श्रीसद्गुरवे नमः

परम पारखी बीजकज्ञान-पारखनिष्ठ
सन्तशिरोमणि सद्गुरु श्रीरामरहससाहेब विरचित-
(सत्यज्ञान पारखबोध दर्शक द्वितीय ग्रन्थः)

पञ्चग्रन्थी-सद्ग्रन्थः

सटीक

१. पञ्चकोश । २. समष्टिसार । ३. मानुषविचार । ४. गुरुबोध-सारशब्द निर्णय । और ५. टकसार-सप्ताईस रमैनी सहित ।

[सद्ग्रन्थ बीजक मूलकी संक्षिप्त टीका वा टिप्पणीरूपमें यह सद्ग्रन्थ मूल निर्मित हुआ है]

प्रकरणोंके अनुसार समस्त ज्ञातव्य बातों और सर्व सिद्धान्तोंका यथार्थ विवेचन करके सत्य पारख सिद्धान्तकी सर्वोत्कृष्टता इसमें प्रतिपादित की गयी है।

[शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

टीकाकारः—
रामस्वरूपदासजी ।

[विक्रमीय सम्वत् २०१२, चैत्रकृष्णः]

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

परम पारखी सत्य निर्णयी कबीरपन्थी सन्त-महात्मा—
पारखनिष्ठ सद्गुरु श्रीरामरहससाहेब विरचित—

पञ्चग्रन्थी—सद्ग्रन्थः ।

[शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

साखीः— फेर परा नहिं अङ्गमें । नहिं इन्द्रीयन माहिं ॥
फेर परा कछु बूझमें । सो निरुवारेहु नाहिं ॥ १ ॥
॥ मानुष विचार, साखी- २१ ॥

दोहाः— मर्यादा जेहि जौन विधि । वर्तै तौन प्रमान ॥
जमा माँहि कछु फेर नहीं । उज्ज्वल धर्म औ ज्ञान ॥ २ ॥
॥ गुरुबोध, दोहा- २७५ ॥

साखीः— ज्ञान बड़े गुरुदेव हैं । मति बुद्धि बड़े महन्त ॥
शब्द विवेकी पारखी । सकल शिरोमणि सन्त ॥ ३ ॥

टीकाकार— लेखकः—

रामस्वरूपदासजी ।

[आचार्य कबीरपन्थ, गद्दीस्थान- श्रीकबीर निर्णय मन्दिर,
नागझिरी, बुरहानपुर, (निमाड़ (खण्डवा) मध्यप्रदेश) ।]

प्रथम संस्करणः— १५०० प्रतियाँ । मूल्य २१) (डाक खर्च अलग ।) वि० सम्वत् २०१३ ॥ ईसवी सन् १९५६ ॥

[सर्वाधिकार हक़ टीकाकारने स्वाधीन सुरक्षित रक्खा है ।]

प्रकाशकः—

रामस्वरूपदासजी ।

नाटीइमली, पद्मनिवास, काशी ।

260-H
10

[प्रकाशकने इसके मुद्रित सब ग्रन्थोंको अपने अधिकारमें
(सर्वहक्क स्वाधीन) करके रक्खा है ।]

॥ ❀ ॥ पारख ज्ञान दर्शक सद्ग्रन्थकी महिमा वर्णन ॥ शब्द ॥ ❀ ॥

जीवन्मुक्ति करानेवाला, पारखि सद्गुरुका सतज्ञान ॥
निजस्वरूप ठहरानेवाला, सो बीजकका पारख ज्ञान ॥ टेक ॥
सत्यशब्द टकसार मथन करि, पञ्चग्रन्थि बनाया है ॥
पञ्चकोश परपञ्च लखाकर, हंस भूमि ठहराया है ॥
साँचा बोध करानेवाला, रामरहसका पारख ज्ञान ॥ १ ॥
पञ्चकोशके भेद लखाकर, समष्टिसार दरशाया है ॥
निर्णय मानुष विचार बताकर, सद्गुरु बोध दृढ़ाया है ॥
टकसार सार कहानेवाला, पञ्चग्रन्थिका है गुरु ज्ञान ॥ २ ॥
सारशब्द निर्णय बतलाकर, षड्दर्शन भेद बताया है ॥
सत्ताईस रमैनी कहकर, उभय जाल दिखलाया है ॥
सब सिद्धान्त लखानेवाला, पञ्चग्रन्थिमें पारख ज्ञान ॥ ३ ॥
आदिगुरु कबीर पारखी, पारख स्वयं ठहराया है ॥
सद्गुरु अनुभव शिक्षा दीन्हा, बीजक ग्रन्थ बनाया है ॥
अनुयायी कहलानेवाला, सब पारखिका पारख ज्ञान ॥ ४ ॥
पारख बोध विस्तार बताकर, बीजक त्रिजा बनाया है ॥
पञ्चग्रन्थी पद रचनाकर, रामरहस प्रगटाया है ॥
रामस्वरूपदास कहानेवाला, लीन्हा सादर सो गुरुज्ञान ॥ ५ ॥

247453

[दिनाङ्क १५ । ६ । १९५६ ई० को यह सद्ग्रन्थ छप करके पूर्ण हुआ है ।]

मुद्रकः— मुकुन्ददास गुप्त, प्रभाकर ।

टाइम टेबुल प्रेस, बनारस ।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी सटीक मुद्रणार्थ धर्मार्थ स्वेच्छा दातव्य सहायता प्रकाश ॥ ❀ ॥

सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थीकी टीका जब लिखी भर गयी थी, तब उस समयमें इसे छपाकर प्रकाश करनेका कुछ भी भरोसा नहीं था। किन्तु, विशेषरूपसे सन्तोंने इसे छपाकर प्रकाश कर देनेका आग्रह किया। फिर स्वयं प्रसन्नतासे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक यथाशक्ति आर्थिक सहायता देना भी सन्तोंने ही शुरू किया। "छपाई होना अभी अनिश्चित है, उसके लिये अभीसे कैसे द्रव्य संग्रह किया जाय?" ऐसा कहकर मना करनेपर भी "जब कभी ग्रन्थ छपेगा, तब यह द्रव्य उसमें लगा दीजिये, यदि समयपर ग्रन्थ नहीं भी छपा, तो भी किसी दूसरे रूपसे भी सन्तोंकी सेवामें यह द्रव्य लगा दीजिये!" ऐसा कहकर स्वयं श्रद्धासे दिनाङ्क २९।१०।१९५२ ई० से आज दिनाङ्क १२।३।१९५६ ई० तक जिन-जिन्होंने स्वेच्छासे धर्मार्थ आर्थिक सहायता दी है, उन श्रद्धालु साधु और सेवकोंके शुभ नाम निम्न लिखे अनुसार जान लीजिये!:—

१६०) साधु गङ्गादासजी गुरु सेवासाहेब, स्थान— भड़रा (विन्ध्यप्रदेश)।
१५०) साधु गुरुशरणदास गुरु श्रीलालसाहेबजी, स्थान— बुरहानपुर।
५०) साधु चेतनदासजी गुरु साहेबदासजी।
३०) साधु गुरुशरणदासजी गुरु मुरलीसाहेब, स्थान— बुरहानपुर।
१००) साधु स्वरूपदास भण्डारी, स्थान— बुरहानपुर।
२००) साधु दीनादासजी गुरु श्रीकाशीसाहेबजी, स्थान— रणाईस।
१००) साधु शरणदासजी गुरु श्रीकाशीसाहेबजी, स्थान— बुरहानपुर।
५०) साधु बलदेवदासजी गुरु जानकीसाहेब, मु०— कालीमाटी, जि०— बालाघाट।
३०) साधु आनन्ददासजी गुरु गरीबसाहेब, मु०— जयपुर।
२५) साधु शुकदेवदासजी गुरु मुरलीसाहेब, स्थान— बुरहानपुर।
२५०) साधु शान्तिसाहेब गुरु श्रीछोटेबालकसाहेबजी, स्थान-बुरहानपुर, (निवास—नेपाल)।
३०८) साधु सरलदास, स्थान—बुरहानपुर।
६०) साधु प्रज्ञादास, स्थान— बुरहानपुर।
२०) साधु विवेकदास, स्थान— बुरहानपुर।
५०) सेवक नूरसिंह साहू, मु०— गाँव करगा, जि०— रायपुर।
१०१) सेवक कान्तीभाई राणा, मु०— बड़ोदा (गुजरात)।
५०) सेवक राजकुमार वन्द डम्बरलाल कत्तपति, मु०— वाङ्ला (राज—नेपाल)।
५००) सीतामहारानी, मु०— महमूरगञ्ज, बनारस नं० ६।
३००) मीनादेवी, पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारस।
२००) भाग्यवती, पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारस।
१००) मिश्री द्वारे, पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारस।
३००) हूबर द्वारे, महमूरगञ्ज, नेपालीकोठी, बनारस।

५०) काशी ब्राह्मणी, महमूरगंज, नेपालीकोठी, बनारस ।
५०) मोदती ब्राह्मणी, महमूरगंज, नेपालीकोठी, बनारस ।
५०) शारदा नानी, पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारस ।
२०) दयादास, नेपाल ।
२०) हेमकुमारी, बनारस ।
१००) कृष्णप्यारी, पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारस ।
५०) नानी दुनुमुनु लड़की, पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारस ।

गतवर्ष हमलोग (दि० २६ । ३ । १९५४ ई० को) बनारस आये, तभीसे अब तक बीस महीनोंका हम लोग चार मूर्ति साधुओंके लिये भोजन खर्च—श्रद्धालु श्रीसद्गुरु भक्त सन्त सेवी "श्री ३ बड़ी महारानी पद्मकुमारी, मु०— पद्मनिवास, नाटीइमली, नेपालीकोठी, बनारस ।" ने दिया है । पारखी सन्तोंके तरफसे उनको शुभ आशीर्वाद प्रदान किया जाता है । शुभ संस्कारके वेगसे ही सन्तोंके सेवा करनेका शुभ अवसर मिलता है । सन्त सेवाका फल जीवको सुखदायी और हितकारी होता है ।

इसके अतिरिक्त लगा हुआ और सब खर्चेके लिये हमने अपने व्यक्तिगतरूपसे द्रव्य लगा करके इस सद्ग्रन्थको छपाकर प्रकाश किया है । अतः हमने इस सद्ग्रन्थके पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार स्वाधीन सुरक्षित रक्खा है ।

स्थान बुरहानपुरसे काशी आनेपर दिनाङ्क २६ । ३ । १९५४ ई० से महमूरगंज, नेपाली-कोठी, बनारसमें निवास करके सद्ग्रन्थ छपाना शुरू किया गया था । इस वर्षके तिथि उत्सव तक "षट् ग्रन्थः, तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक, तिमिर भास्कर और न्यायनामा" इन सद्ग्रन्थोंकी छपाई समाप्त हुई । तदनन्तर स्थान बुरहानपुर जाकर तिथि उत्सवके पश्चात् फिर दिनाङ्क २७ । १२ । १९५४ ई० को बनारस आया गया और महमूरगंजके पूर्वस्थान बनारसमें दिनाङ्क १ । ३ । १९५५ ई० तक निवास किया गया, तब तक सन्ध्यापाठ सटीक छपी । तत्पश्चात् महमूरगंजका निवास स्थान छोड़कर दिनाङ्क २ । ३ । १९५५ ई० से पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारसमें आकर निवास किया गया ।

हमारे साथमें इसवर्ष प्रज्ञादास, विवेकदास, सरलदास और जगजीवनदास ये चार मूर्ति थे। इन लोगोंने सब प्रकारसे श्रद्धा–भक्तिपूर्वक सेवा–टहल किया । श्रीसद्गुरुकी कृपासे इन लोगोंका कल्याण हो ! ऐसे ही साधु–गुरुके सेवामें सदैव उत्साही होना चाहिये ।

इसप्रकारसे यह सद्ग्रन्थ छपाकर प्रकाश करनेके लिये जिन–जिन लोगोंने तन, मन, धन, वचन, निवास स्थान, अन्न–वस्त्र, फल–फूल, औषधि इत्यादि अथवा और जिस–किसी प्रकारसे न्यूनाधिकरूपसे सेवा सहायता किया है, उन सभी सज्जन, नेमी–प्रेमी, गुरुभक्त, श्रद्धालु जनोंके शुभ सद्गुणोंको स्मरण करके मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ, सन्तोंको धन्यवाद देता हूँ, और भक्तोंको शुभ आशीर्वाद प्रदान करता हूँ ! श्रीसद्गुरु बन्दीछोरके महान कृपा–प्रतापसे उन सबोंका कल्याण हो ! शुभ मङ्गल हो !! शान्ति हो !!!

हितैषी प्रेसने गतवर्ष सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी सटीक फर्मा १ से २७ तक ही छापा था। इस वर्ष दि० १। ३। १९५५ ई० से टाइमटेबुल प्रेसने फर्मा २८ से छपाई शुरू किया था, सो दि० १५। ६। १९५६ ई० को ग्रन्थ छपाई पूर्ण किया।

अन्तमें मैं परम प्रेमी सन्त-सेवी सेवक छोटेरामजीको शुभ आशीर्वाद देता हूँ, स्थानके कार्यभार उनके सम्हालकर सहायता कर देनेसे ही यह सद्ग्रन्थ छप सकी; और सब नेमी-प्रेमी भक्त जनोंको दयाभाव है।

इस सद्ग्रन्थमें श्रीसद्गुरुकी सत्य ज्ञानका भण्डार भरा है। जो चाहे जितना ग्रहण कर सकेंगे, उनका उतना ही भला होगा। पारखज्ञानकी व्याख्या जितना समझा जायगा, उतना ही लाभ होगा। अतः हितेच्छुक जनोंने सार ग्रहण करके कल्याणपथगामी होना चाहिये।

ग्रन्थ छपाईमें अक्षर-मात्रादिकी त्रुटि होना, वह तो सहज बात है। फिर यह ग्रन्थ तो बड़ी है, इसके छपाईमें तो अनेकों कठिनाइयोंके सामना करना पड़ा है। बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी मैं जैसा चाहता था, तैसा छपाई नहीं हो सकी। प्रेसके कर्मचारियोंके लापरवाही तथा असावधानीसे छपाई शुद्ध-सुन्दर नहीं हो सकी। समय न मिलनेसे शुद्धाशुद्ध पत्र भी बनाया नहीं जा सका। अतः पाठक वर्ग स्वयं अक्षर मात्रादिकी त्रुटियोंको सुधार लेनेका कष्ट उठावें। मुझे जिन प्रेसवालोंसे यह ग्रन्थ छपाई करानेकी काम पड़ा, उसमेंसे यह ज्ञात हुआ कि, वे प्रेसके अध्यक्ष, सञ्चालक, मैनेजर, कार्यकर्त्तागण, ठेकेदार, कम्पोजिटर, प्रूफरीडर, मशीनमैन आदि लोग अधिकतर लापरवाह होनेसे उन्होंने कम समयमें होनेवाला कार्यको अधिक समय लगा दिया। अतः इतना अधिक परिश्रम उठाने पर भी जैसा चाहिये वैसा शुद्ध साफ छपाई नहीं हो सकी, और छपाई पूर्ण करानेमें समय भी अधिक लगा। इधर बीच-बीचमें छपाई रुकती गई; इसी कारणसे विलम्ब हुई। पारखी साधु-गुरुके कृपासे ही सर्व विघ्न-बाधाओंसे पार होकर यह सद्ग्रन्थ छपाकर पूर्ण करनेमें अब सफलता मिल सकी। मैं तो केवल सेवा करनेके लिये एक निमित्तमात्र हुआ हूँ। पारख ज्ञानका सब बोध तो श्रीसद्गुरुका ही है। इसलिये सत्सङ्ग-विचारसे वा सद्ग्रन्थोंकी पठन-पाठन द्वारा उसी पारख बोधको परिपुष्ट करके जीवन्मुक्त होना चाहिये। श्रीसद्गुरुके सत्यज्ञानका मनन करके सब मुमुक्षुओंने अपना-अपना हित-कल्याण करके दृढ़तासे मुक्ति मार्गमें लग जाना चाहिये॥

॥❀॥ श्रीसद्गुरुकी जय हो! सबमें शान्ति हो !! शुद्ध प्रेमभाव हो !!! ॥❀॥

वर्तमान निवासः—
पद्मनिवास, नाटीइमली, बनारस।
दिनाङ्क १२। ३। १९५६ ई०॥

पारखी श्रीसद्गुरुके अनुचरः—
— रामस्वरूपदास।

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

भूमिका ।

॥ ❀ ॥ सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी सटीककी— ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ आदि भूमिका वर्णन प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

प्रथम चरण बन्दौं गुरु! साहेब सत्य कबीर ॥ पारख ज्ञान प्रकाशिया । खण्ड्यो कालके पीर ॥१॥
आचार्य गुरुपद बन्दगी । जिन बीजक टीकाकरी ॥ सद्गुरु पूरण साहेब । पर्दा मिटाई तम हरी ॥२॥
रामरहस पारखि गुरु । पारख पद गहि लीन्ह ॥ पञ्चग्रन्थी प्रगटाय के । पञ्चकोशमत चीन्ह ॥३॥
सो गुरु निर्णय जो लखै । ताको हो सत बोध ॥ मानन्दी भ्रम भूलकी । मिटिहैं सकल अबोध ॥४॥
टीका पाँचों ग्रन्थकी । सम्पूरण भो ताहिं ॥ आदिभूमिका अवलिखौं । रामस्वरूपयामाहिं ॥५॥
यों तो जगत अनादि है । ताका आदि न अन्त ॥ पै भ्रमकर्त्ता मानिके । भूल्यो जीव बेअन्त ॥६॥
बिरले कोई पारखी । जाने सो सब भेद ॥ लखे लखावैं हंसको । जाते मिटै सब खेद ॥६॥
मानुष आदि भूमिका । कर्मभूमिका सोय ॥ बानि-खानि विस्तार सब । मानुष ही ते होय ॥८॥
आदि बोध पारख गुरु । देहधारि नर चीन्ह ॥ निज स्वरूप स्थिति जब । जड़ाध्यासते भिन्न ॥९॥
रामस्वरूपदास पुनि । गुरुपद करौं प्रणाम ॥ पारख मिलि गुरुकी दया । फल मुक्ति परिणाम ॥१०॥

हे विवेकी सन्त-महात्माओ ! तथा जिज्ञासु भक्त जनो ! सज्जनो ! बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके शुभ नामको तो विशेषतः आप लोगोंमें बहुतोंने सुना होगा । परन्तु, सद्ग्रन्थ बीजकके सत्य सिद्धान्तको तो कोई बिरले ही पारखी सन्त जानते, समझते और मानते हैं । क्योंकि, समस्त संसारमें काल जालोंका ही प्रचार है । श्रीसद्गुरुने स्वयं कहा हैः—

"एकै काल सकल संसारा । एक नाम है जगत पियारा ॥"— बीजक, रमैनी— ७७ ॥
"शब्द न मानै कथै ज्ञाना । ताते यम दियो है थाना ॥"— बीजक, रमैनी— १८ ॥
"भरम बड़ा तिहुँ लोकमें । भरममण्डा सब ठाँव ॥ कहहिं कबीर पुकारिके । तुम बसेउ भरमके गाँव ॥"

और पञ्चग्रन्थीमें भी लिखा है, सुनिये !:— ॥— बीजक, साखी— २५९ ॥

"काल अनेकन रूपते । जीवहि देत विदेश ॥" गुरुबोध, साखी— ५३ ॥

काल और दूसरा कोई नहीं है, गुरुवालोग तथा वाणीमें ब्रह्म-ईश्वरादिकी कल्पना ही 'काल' है; और खानीमें स्त्री तथा मन-माया-मोह यही 'काल' हैं । काम-क्रोधादि तथा कर्मोपासनादिकी विस्तार और विषय एवं कल्पनाका प्रपञ्च ही कालका जाल है । उसमें बिना पारख ज्ञानी, अज्ञानी और विज्ञानी सब कोई बन्धे पड़े हैं । एक जगत्कर्त्ता विश्वपतिकी कल्पना— ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि नामके बोध भ्रममें ही सारे संसारके मनुष्य प्रेमपूर्वक लगे हैं । कोई सत्यासत्यका निर्णय नहीं करते हैं । इसीवास्ते श्रीसद्गुरुने कहा है कि— "वह मिथ्या भ्रम तीनों लोकमें बढ़ता हुआ चला गया ।" अर्थात् त्रिगुणी मनुष्य तथा योगी, ज्ञानी और भक्त, इन्हीं तीन लोगोंमें खूब भ्रम बढ़ा । 'सब ठाँव' यानी सब ठिकाने सब षट् दर्शनोंके मतवादियोंमें भ्रमरूप ईश्वरादि कर्त्ताका ही मण्डन, प्रतिपादन वा स्थापन हुआ है । उसी भ्रमके गाँवमें बहुतेरे पन्थीलोग भी बैठे हैं, कितनेक

बेपारखीजन नाममात्रके कबीरपन्थी कहलानेवाले लोग भी भ्रमके घेरामें ही घिरे बैठे हैं। भ्रम-कल्पनाकी वाणीका ही गायन कर रहे हैं। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें न लगनेसे उनकी भ्रम-भूल नहीं छूटती है। कालरूप गुरुवालोग अनेकों प्रकारके नाम-रूपसे चित्र-विचित्र भेष आदि प्रपञ्च रचना करके नाना कल्पित सिद्धान्तोंकी स्थापना करके उसीमें लगे, तथा औरोंको भी उसीमें लगा करके जीवोंको स्वदेशरूप हंसपदसे छुड़ा करके विदेशरूप चौरासी योनियोंमें भेजकर कैद करा देते हैं; ऐसी दुष्टता कालमें लगी है॥

केवल एक पारखी श्रीसद्गुरु ही कालकी सब कलारूप कल्पनाओंको यथार्थ रीतिसे जिज्ञासु मनुष्योंको समझा करके परखा देते हैं। श्रीसद्गुरुके न्याय-निर्णयमें लगनेवाले हंस जीव कालके सब भयसे छूट करके निर्भय होकर परमपदरूप पारखबोध स्वरूप स्थितिको प्राप्त कर लेते हैं। तभी विवेक दृष्टिसे कालके मोटी-झीनी सब जाल देखनेमें आ जाता है। जो हंस काल जालोंसे छूटकर निजपद पारखमें अटल हो रहते हैं, वे ही सदा सुखी होते हैं। अतएव जो मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगते हैं, सोई बुद्धिमान् कहलाते हैं। परन्तु, ऐसे लोग बहुत ही कम मिलते हैं॥ क्योंकिः—

दोहाः— "सारग्राही हंस जन। लाखोंमें कोइ एक॥ गुरु पारखमें प्रीति जिन। साँचे सोइ विवेक॥"

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब सत्य शोधक, सत्य वक्ता, असाधारण प्रतिभा सम्पन्न अभूतपूर्व उच्च कोटिके अद्वितीय महापुरुष सर्व ज्ञानियोंमें शिरोमणि पारखी महान सत्यज्ञानी हुए हैं। आपने उस समयमें प्रचलित समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थोंका बिलछान करके सत्य सिद्धान्त पारख बोधको दर्शाया है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके मुखसे निकले हुए सारशब्द निर्णय वचनोंका संग्रह मूल बीजक नामके सद्ग्रन्थरूपमें निर्माण हुआ है। उसमें— जीवमुख, मायामुख और ब्रह्ममुख उन तीनोंकी कथन-मानन्दी दर्शा करके उसे गुरुमुख निर्णयसे परखाया गया है। अब उन चारों मुखाकी वाणीका थोड़ा-थोड़ा नमूना लिख दिया जाता है, सो सुनिये!:—

(१) जीवमुख वाणी, बीजक, रमैनी— ७६ में कहा हैः—

"राम नाम अति दुर्लभ। औरेते नहिं काम॥ आदि अन्त औ युग युग। मोहिं रामहीते संग्राम॥"

"जो चरखा जरि जाय। बढ़ैया ना मरे॥ मैं कातौं सूत हजार। चरखुला जिन जरै॥"

"बाँह मरोरे जात हो। मोहिं सोवत लिये जगाय॥"—बीजक, शब्द-६८ तथा बीजक, साखी-११६॥

ऐसी-ऐसी वाणीमें जीवमुखका कथन दर्शाया गया है। कल्पनासे कोई एक ईश्वर कर्त्ता मानकर उसका आधार पकड़ करके विनय करना, महिमा करना, अज्ञानी जीवोंका यही मुख्य काम है। उसीका लक्षण उपरोक्त पदमें बतलाया गया है। तहाँ तुलसीदासजीकी उक्ति भी सुनिये!-

"अर्थ न धर्म न काम रुचि। गति न चहौं निर्वान॥ जन्म जन्म सिय राम पद। यह वरदान न आन॥"

इत्यादि वाणी जीवमुखसे कही हुई जानना चाहिये॥

(२) मायामुख वाणी, बीजक, रमैनी— १७ में कहा हैः—

"सुमिरण करहु रामका। छाड़हु दुःखकी आश॥ तर ऊपर धै चापिहैं। जस कोल्हू कोटि पिचास॥"

"पढ़ना पढ़ो धरो जनि गोई। नहिं तो निश्चय जाहु बिगोई॥"

साखीः—"सुमिरण करहु रामका। काल गहे हैं केश॥ ना जानों कब मारिहैं। क्या घर क्या परदेश?॥"

"कहैं कबीर हरि शरण गहु। गौ खुर बच्छ विस्तार॥"—बीजक, रमैनी- १७। १९। २०॥

"सहज ध्यान रहु, सहज ध्यान रहु। गुरुके वचन समाई हो!॥" बीजक, कहरा- १॥

इत्यादि कथन माया=गुरुवालोगोंके मुख्य उपदेशकी वाणी हैं। ऐसे पद तो बहुतसे हैं, यहाँ उनका लक्षण नमूना मात्र दर्शा दिया गया है। तुलसीदासजीने भी कहा हैः—

"राम नाम मणि दीप धरु। जीह देहरि द्वार॥ तुलसी भीतर बाहिरौ। जो चाहसि उजियार॥"

इत्यादि वाणी मायामुखसे कही हुई जानना चाहिये ॥

(३) ब्रह्ममुख वाणी, बीजक, रमैनी— २१ में कहा है:—

"मैं सिरजौं मैं मारौं। मैं जारौं मैं खाँव ॥ जल थल महियाँ रमि रहौं। मोर निरञ्जन नाँव ॥"

"जब हम रहल, रहल नहिं कोई। हमरे माँहि रहल सब कोई ॥" बीजक, रमैनी- ४३ ॥

धीङ्गी धीङ्गा भलो न माना। जो काहू मोहि हृदया जाना ॥" बीजक, रमैनी- ६७ ॥

"असुन्न तखत अड़ि आसना। पिण्ड झरोखे नूर ॥ जाके दिलमें हौं बसा ॥ सैना लिये हजूर ॥"

बीजक साखी २८; इत्यादि कथन ब्रह्मज्ञानीके मुख्य सिद्धान्तका है। तैसे रामायण-१।६३ मेंभी कहा है:—

"ब्रह्म जो व्यापक विरज अज। अकल अनीह अभेद ॥ सो कि देह धरि होय नर। जाहि न जानत वेद ॥"

इत्यादि वाणी ब्रह्ममुखसे कही हुई जानना चाहिये ॥

अर्थात् अबोध नरजीव निज स्वरूपको न जान करके कोई एक सर्वश्रेष्ठ ईश्वरादि इष्टदेवको कल्पनासे मान करके दुःख हर्त्ता, सुख दाता अनुमानकर उसकी स्तुति-प्रार्थनादिके जो-जो वाक्य कहे या कहते हैं, सो ऐसी दीनतायुक्त सब शब्द 'जीवमुख वाणी' कहलाता है। फिर कोई नरजीव गुरुवा पण्डित उपदेशक बन करके रोचक-भयानक बातका उपदेश देकर मनुष्योंको भुला देते हैं। डरा-धमकाकर चेला बना-बना करके अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे भुलावेकी सब वाणी 'मायामुखी' कहलाती है; और कोई मनुष्य लोग वेदान्ती बन करके अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तकी वाणी पढ़-सुन करके उसीको दृढ़ निश्चयकर स्वयं ब्रह्म बन जाते हैं। तदनन्तर वैसी ही भ्रमपूर्ण अहङ्कार भरी वार्ता करने लग जाते हैं। ब्रह्मज्ञानी आप ही ब्रह्म स्वरूप बनकर जो-जो वार्ता कथन करके मुखसे निकाले या निकाल रहे हैं, सोई सब ब्रह्ममुख वाणी कहलाती है। सो उन तीनों मुखोंकी वाणीका सार संक्षेपमें ऊपरमें कहा गया है। वह तीनों काल, सन्धि और झाँईं का ही जाल है। इसको यथार्थ रीतिसे निर्णय करके परखानेवाला सारशब्द, गुरुमुख वाणी सत्यन्यायकी होती है ॥

(४) गुरुमुख वाणी, बीजक, रमैनी आदिमें कहा है:—

"चीन्हि-चीन्हि का गावहु बौरे! वाणी परी न चीन्ह ॥ आदि अन्त उतपति प्रलय। आपुही कहि दीन्ह ॥"

"कहाँ लौं कहौं युगनकी बाता ? भूले ब्रह्म न चीन्हे बाटा ॥"

"बिन गुरु ज्ञान दुन्द भई। खसम कही मिलि बात ॥ युग युग सो कहवैया। काहु न मानी बात ॥"

"अविगतिकी गति का कहो ? जाके गाँव न ठाँव ॥ गुण बिहूना पेखना। का कहि लीजे नाँव ? ॥"

"अमृत वस्तु जाने नहीं। मगन भया सब लोय ॥ कहहिं कबीर कामो नहीं। जीवहिं मरण न होय ॥"

"सबै लोग जहँड़ाइया। अन्धा सबै भुलान ॥ कहा कोई न मानै। सब एकै माहिं समान ॥"

"भरमका बाँधा ई जग। यहि विधि आवै जाय ॥ मानुष जन्म पायके। नर काहेको जहँड़ाय ॥"

॥ बीजक, रमैनी— ४। ५। ७। १०। १६। २३ ॥ और बीजक, साखी-३२ में कहा है:—

"ये कबीर तैं उतरि रहु। तेरो सम्मल परोहन साथ ॥ सम्मल घटै न पगु थके। जीव बिराने हाथ ॥"

इत्यादि बहुत-सा उपदेश गुरुमुख वाणीसे निर्णय दर्शाकर बीजकमें उपरोक्त तीन मुख वाणीको परखाया है। परन्तु, कोई पारखी सन्त ही इसके यथार्थ मर्मको श्रीसद्गुरुकी कृपासे भलीभाँति जान पाते हैं। गुरुमुख परम्परासे पढ़नेवाले ही सुगमतासे मूल बीजकके सब रहस्यको समझ जाते हैं; और जिन्हें विवेक नहीं है, वेद-शास्त्रादि वाणीका दृढ़ पक्ष लगा है, वैसे लोग तो संस्कृतादि वाणी भाषा पढ़-लिख करके विद्वान समझदार होनेके बदले, उलटे पठित मूर्ख ही हो जाते हैं। क्योंकि, परीक्षादृष्टिसे हंसवत् सारासारका निर्णय तो वे कुछ करते ही नहीं हैं। प्रत्युत चारों मुखोंके परखाये हुए कथनको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका ही खास सिद्धान्त समझ करके गोलमाल करके उपनिषद् शास्त्रोंमें उक्त वार्त्ताका मिलानकर अपने भ्रमिक हो करके दूसरोंको भी भ्रमाते फिरते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा पारखी सन्तोंके शब्दमें वैसे लोग भी एक प्रकारसे गुप्त रूपसे काल ही बने हैं। पारख बोधका

निर्णयको तो वे कुछभी नहीं मानते हैं। वे गुरुवालोग मति-भ्रष्ट होते हैं। "कञ्चन काँच बराबर लेखै" —ऐसी समझ उनकी होती है। तहाँ श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, रमैनी- ७१ के चौपाई ६, तथा साखी १ में कहा है:—

"लपसी लौंग गने एक सारा। खाँड़ छाड़ि मुख फाँके छारा॥"

"इहै विचार विचारते। गये बुद्धि बल चेत॥ दुइ मिलि एकै होय रहा। मैं काहि लगाऊँ हेत॥"

पारखी सन्तोंको छोड़कर और यावत् कबीरपन्थी आदि बेपारखी लोग मूल बीजकका मनमाने वैसे उटपटाङ्ग रीतिसे अर्थका अनर्थ भाव लगा करके बीजक प्रमाणसे ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, देवता, सात लोकादि, भूत-प्रेतादि सिद्ध करनेका अयोग्य-अनुचित प्रयास करते हैं या कर रहे हैं। विवेकियोंको यह वार्त्ता मालूम ही होगी। कितने पन्थ-पन्थाईके अविद्या ग्रसित लोग तो बीजक सद्ग्रन्थ तकको भी नहीं मानते हैं। अन्य ही कपोल कल्पित ग्रन्थोंको श्रेष्ठ समझ करके भूल-भुलैयाके घनचक्रमें पड़े और पड़ रहे हैं। वह सब गुरुवालोगोंकी ही करतूत है, ऐसा जानना चाहिये॥

अब बीजकमें ईश्वरादि खण्डनके बारेमें उल्लिखित वाक्योंको संक्षेपमें यहाँपर दर्शा दिया जाता है; सुनिये! बीजक, रमैनी-३ के साखीकी टीका त्रिजामें कहा है:—

"जीवसे प्रगट शीव भये। अब शिव ठाकुर जिव दास॥ अबोध जीव कहत हैं। मोहि राम नामकी आश॥"
"बाँधेउ देव तैंतीस करोरी," बी० र० ६॥ "राही ले पिपराही बही। करगी आवत काहु न कही॥"

"बाँधेउ ब्रह्मा विष्णु महेशू। सुर नर मुनि औ बाँधु गणेशू॥" बीजक, रमैनी-१०॥
"चले लोग सब मूल गमाई। यमकी बाढ़ि काटि नहिं जाई॥" बीजक, रमैनी-१२॥
"सहज विचारे मूल गमाई। लाभते हानि होयरे भाई!॥" बीजक, रमैनी-१३॥
"अनहद अनुभवके करि आशा। ई विप्रीति देखहु तमाशा॥" बीजक, रमैनी-१९॥
"अलख निरञ्जन लखे न कोई। जेहि बन्धे बन्धा सब लोई॥" बीजक, रमैनी-२२॥
"जेहि झूठे सब बाँधु अयाना। झूठा वचन साँचिकै माना॥" ,, ,, ,, ॥
"अन्ध सो दर्पण वेद पुराना। दर्वी कहा महारस जाना॥" बीजक, रमैनी-३२॥
"जिन्ह जीव कीन्ह आपु विश्वासा। नर्क गये तेहि नर्कहिं वासा॥" बीजक, रमैनी-४३॥
"राम न रमसि कौन दण्ड लागा। मरि जैबे का करबे अभागा?॥" बीजक, शब्द-२१॥
"पण्डित मिथ्या करहु विचारा। ना वहाँ सृष्टि न सिरजनहारा॥" बीजक, शब्द-४३॥
"जो पै बीज रूप भगवान्। तो पण्डित का पूछो आन्?॥" बीजक, शब्द-६७॥
"कहहु हो अम्मर कासों लागा?। चेतनहारा चेत सुभागा॥" बीजक, शब्द-७६॥
"अल्लाह राम जियो तेरी नाईं। जिन्ह पर मेहर होहु तुम साईं॥" बीजक, शब्द-६७॥
"बैठा पण्डित पढ़े पुराण। बिन देखेका करत बखान॥" बीजक, शब्द-१०१॥
"ये भ्रम भूत सकल जग खाया। जिन-जिन पूजा ते जहँड़ाया॥" बीजक, शब्द-१०५॥
"ब्रह्म बड़ा कि? जहाँसे आया?। वेद बड़ा कि? जिन्ह उपजाया॥" बीजक, शब्द-११२॥
"झूठेहि जनि पतियाउ हो। सुनु सन्त सुजाना!॥" बीजक, शब्द-११३॥
"पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित। माँई आपुहि मानी॥" बीजक, शब्द-११५॥

साखी:—"इतते सब कोई गये। भार लदाय लदाय॥ उततें कोई न आइया। जासों पूछिये धाय॥ २६६॥
सज्जनसे दुर्जन भया। सुनि काहूके बोल॥ काँसा तामा होय रहा। हता ठिकोंका मोल॥२६९॥"

इत्यादि बहुत सारा वचन स्पष्ट अर्थ जाहिर कर रहा है। तो भी पक्षपाती लोग उसमें आवरण डालते हैं। जिससे नवीन अबोध जिज्ञासु लोग भ्रमचक्रमें पड़कर पीसे जाते हैं। लोक और वेदका आश्रय पकड़ करके खैंचातान करने लग जाते हैं। हानिके सिवाय वे किसीका लाभ नहीं कर पाते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने तो स्पष्ट ही बीजक, साखी- २०० में कहा है कि:—

साखीः—"जो मोहि जानै, ताहि मैं जानौं ॥ लोक वेदका कहा न मानौं ॥ २०० ॥"
"जो तू चाहै मूझको। छाड़ सकलकी आश ॥ मुझ ही ऐसा होय रहो। सब सुख तेरे पास ॥" साखी-२९८ ॥

इसप्रकारसे सत्य सिद्धान्त पारख बोधका प्रकाश सर्वप्रथम आदिगुरु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबसे ही हुआ है। आपने उस समयमें कई जिज्ञासु नरजीवोंको चेता दिया। पारखबोध देकर भ्रम-भूलका खण्डन किया। समय-समयपर आप सत्य निर्णयका उपदेश पद्य-रचना करके कहते गये। वह सब उपदेश समीपस्थ सत् शिष्योंने लिखकर नोट किया, जिसका नाम श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने "बीजक" रक्खा। वह लेखबद्ध ग्रन्थाकारमें परिणत हुआ। तदनन्तर कितनेक वर्षों तक सत् शिक्षा-का प्रचार परम्परासे होता गया। परन्तु, किसीकी भी उन्नति देखकर दुष्टोंको सहन नहीं होता है। अतएव कितनेक प्रपञ्ची पाखण्डी लोग कबीरपन्थमें भी प्रवेश करके अन्यायका ही विस्तार करनेमें लगे; और समयान्तरमें गुरुवालोगोंने घनघोर भ्रम-पर्दा फैला करके बीजकरूप ज्ञान प्रकाशको भी सूर्यके प्रकाशको बादलके आच्छादनवत् करके छिपाने लगे। अतः भ्रमिकोंके विभिन्न सम्प्रदाय शाखा-प्रशाखादि पन्थ बन गये। कहीं-कहीं कोई विरले ही एक-दो पारखी सन्त-महात्मा रहे।

ऐसे ही समयमें इधर सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब परम प्रवीण सच्चे पारखी सन्त हुए। आपने स्थान—"बुरहानपुर, नागझिरी, श्रीकबीर निर्णय मन्दिर"में निवास करके मूल बीजक सद्ग्रन्थकी भाषामें टीका 'त्रिजा' नामसे रचना करके लिखकर प्रसिद्ध किया। जिसमें मूल पदोंके सम्पूर्ण भाव-अर्थ खोल-खोल कर दर्शा दिया है। जिसको पढ़ करके सब भ्रम-भूलका पर्दा खुल जाता है, तथा जिज्ञासुओंको पारख बोध हो जाता है॥

लगभग उसी समयमें अथवा कुछ समय पहले पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेब भी कबीरपन्थमें प्रख्यात हुए थे। आप गया नामक स्थानमें एक कुटीमें निवास करते रहे। आपने भी बीजक मूलका ही सत्य सिद्धान्त कायम रख करके करीब-करीब टिप्पणी वा संक्षिप्त विरल टीकारूपमें पञ्चग्रन्थी नामक सद्ग्रन्थकी पद्यमें रचना कर दी है। जिसमें सार-असारकी पहिचान, जड़-चैतन्यका निर्णय युक्ति-प्रयुक्तिसे दिखला करके भ्रम-धोखाको मिटा दिया है। आपने बीजक सद्ग्रन्थकी महिमामें विशेषता निम्न प्रकारसे पञ्चग्रन्थीमें बतायी है; सो भी संक्षेपमें मैं यहाँ लिखकर बता देता हूँ, सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ खण्ड— ३० ॥ मानुषविचारमें कहा हैः— ॥ ❀ ॥
"जहाँ जेहि निष्ठा बीजक केरा। अपनी पराई करै निबेरा ॥ १ ॥
परख प्रकाश लहत भ्रम भाजा। निश्चय होय जीवको काजा ॥ २ ॥
नहिं अनुमान न मुये मुक्ता। परख विलास सदा सुख भुक्ता ॥ ३ ॥
रहनी गहनी बहुविधि फरियाई। माया जाल नहीं भरमाई ॥ ४ ॥
सब प्रपञ्च छूटै भ्रम जाला। सदा सुखी सो शरण दयाला ॥ ५ ॥
फन्द फरफन्द न एकौ राखै। निर्णय वचन सत्य सोइ भाखै ॥ ६ ॥
वचन तासु जो सुनै चितलाई। ठहरिके समुझै छोड़ि कदराई ॥ ७ ॥
सदा सुखारी परखके पाये। फन्दा यमके तुरत बहाये ॥ ८ ॥" इत्यादि ॥
"पारखी सबके बीजक कीन्हा। जहाँ वो जीव चीन्हा वै दीन्हा ॥ १ ॥" टकसार। चौपाई, भाग— ८० ॥

॥ ❀ ॥ टकसार ॥ चौपाई ॥ भाग— ९५ में कहा हैः— ॥ ❀ ॥
"बाँचन चहहु जो यमकर फाँसा। वचन बसावहु परख विलासा ॥ १ ॥
सत्य शब्द टकसार कहावै। बीजक जीवन पद परखावै ॥ २ ॥
जहाँ वो जीव रहै अरुझाई। फाँस गाँस यम सबहिं लखाई ॥ ३ ॥
साखीः-वचन बसावहु पारखी। बीजक है सो नाम॥अक्षर अक्षर गुरुसे लखहु। संशय मेटहु तमाम ॥३२२॥"

देखिये ! पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेबने बीजक सद्ग्रन्थका कितना बड़ा भारी महत्त्व बतलाया है। विवेक-विचारकी प्रचण्ड वायु बहा करके भ्रम घटाको छिन्न-भिन्नकर पारख ज्ञानरूप रविको यथार्थतः खोल-खोल करके आपने दिखला दिया है॥

चौपाईः-"पारखी वचन वचावन फाँसा। और वचन है यमके गाँसा॥"—चौपाई भाग-९६, टकसार॥

अतः बीजककी महिमा सचमुच महान है। स्वयं सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी बीजककी विशेषता बखान किया है। सुनिये ! बीजक, रमैनीके साखी— ३७ में कहा हैः—

साखीः-"बीजक वित्त बतावै। जो वित्त गुप्ता होय॥ ऐसे शब्द बतावै जीवको। बूझै बिरला कोय॥"

और पाठ फलके साखीमें भी कहा है किः—

"देखै बीजक हाथ लै। पावै धन तेहि शोध॥ याते बीजक नाम भौ। माया मनको बोध॥ २॥
सारशब्द टकसार है। बीजक याको नाम॥ गुरुकी दयासे परख भई। वचन कबीर तमाम॥ ५॥"

जैसे सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब अनादि कालके जगत्में सर्वशिरोमणि पारख प्रकाशी आदिगुरु सद्गुरु हुए। तैसे ही आपके सत्योपदेशरूप बीजक सद्ग्रन्थ भी एक अपूर्व अद्वितीय पारखबोध देनेवाला महान गुरुज्ञानका ज्ञान भण्डाररूप ही सदाके लिये कायम हो गया है। जिसमेंसे कुछेक सार भागके आधारको ले करके पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेबने इस पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थको बनाया है; और पारखनिष्ठ सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीने बीजककी टीकारूप त्रिजा बनाकर और "निर्णयसार तथा वैराग्यशतक" भी बना दिया है; और पारखी सन्त श्रीगुरुदयाल-साहेबने "श्रीकबीरपरिचय साखी एवं ग्यारह शब्द" की रचना कर दिया है। तैसे ही बुरहानपुर, नागझिरी स्थान, श्रीकबीर निर्णय मन्दिर निवासी पारखनिष्ठ श्रीकाशीसाहेबने भी बीजक सिद्धान्त-को ही कायम रख करके पारख बोधके निर्णयको परिपुष्टकर "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन, सत्यज्ञान बोध नाटक, तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक, और जड़ चैतन्य भेद प्रकाश" नामक ऐसे चार सद्ग्रन्थ बना करके प्रकाश कर गये हैं। और बुरहानपुर निवासी श्रीप्रेमसाहबने 'तिमिरभास्कर' नामक ग्रन्थ रचना की है; और श्रीनारायणसाहबने सखुनबहार दर्पण तथा विवेकसार ग्रन्थ बना दिया है। तथा विवेकचंद्रिकादि ग्रन्थ भी अलग अन्य पारखी सन्तासे बना है। उपरोक्त सभी ग्रन्थ छप करके प्रकाश और प्रचार हो चुके हैं।

वास्तवमें सभी पारखी सन्तोंके आधारभूत पारखज्ञानका सैद्धान्तिक सद्ग्रन्थ "बीजक" और "पञ्चग्रन्थी" ही मुख्य सर्वमान्य है। विशेष करके जहाँ-तहाँ इसका प्रचार भी हो चुका है। इसी अघटित ग्रन्थकोषमेंसे किञ्चित्-किञ्चित् अङ्ग कुछ भागका आधार लेकर शाखा-प्रशाखाओंके रूपमें अन्य ग्रन्थ बने और बन रहे हैं। जिसमेंसे पारख सिद्धान्तका बोध परिपुष्ट होता है, सो सद्ग्रन्थमेंके सारशब्द मुमुक्षुओंके मानने योग्य है॥

बीजकके सत्य ज्ञान पारखबोधको त्याग करके वा अवहेलना करके रचना की हुई, समस्त ग्रन्थ-पन्थ, ज्ञान-ध्यान, विद्यादि सर्वथा असार, तुच्छ, त्याज्य, कुविद्या ही है। क्योंकि, वह कुविद्या जीवोंको धोखेमें भटकानेवाली होती है; कृतघ्न, कुपात्र ही बनाती है; और कोई यों कहें कि— बीजकसे बढ़ करके श्रेष्ठ तो अमुक ग्रन्थ है। जैसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल और निज रचित वर्तमानके कोई भी ग्रन्थोंकी विशेषता बतावें, तो वे भी मतिहीन महामूढ़ ही गिने जाते हैं। क्योंकि, पारख बोधके प्रथम आविष्कारक श्रीसद्गुरुके हृदय गुफारूप खानसे अनुभवसे निर्णित-परिमार्जित, मथन हो करके सारशब्द टकसाररूप बीजक सद्ग्रन्थके अक्षर-अक्षर, पद-पद निकल करके रत्न समान सर्वश्रेष्ठ बने हैं। हाँ ! वे पद गूढ़ अवश्य हैं। कीमती रत्नोंका पारख कोई जौहरी ही करते हैं। सब कोई उसे पहिचान भी नहीं सकते हैं। तैसे ही पारखी सन्तोंके अधिकारमें ही बीजक सद्ग्रन्थके यथार्थ अर्थकी कुञ्जी रक्खी हुई है। वह ताली गुरुपदकी मर्यादासे ही प्राप्त हो सकती है। अन्यथा चाहे कितने भी

प्रयत्न करिये, तो भी बीजक मूलके वास्तविक सिद्धान्तका अर्थ किसीसे भी खुल नहीं सकता है। कङ्कर, पत्थर, लोहा आदि कुधातु चाहे ढेर-के-ढेर पहाड़के समान भी एकत्र क्यों न हों, तो भी क्या वह छोटी-सी पारसकी बटिया तथा बहुमूल्य एक रत्नकी भी बराबरी कर सकेगा? कदापि नहीं कर सकता है। इसीतरहसे बीजक मूल सद्ग्रन्थ तथा सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कृत टीकाका समतूल संसार भरके और कोई भी ग्रन्थ, टीका-टीप्पणी आदि नहीं कर सकते हैं। यों तो पारख सिद्धान्तका प्रचार संसारमें बहुत ही कम है। तथापि मुक्तिमार्ग कुछ प्रशस्त नहीं होता है। कोई बिरले-बिरले ही पारखी सन्त निकल करके भी पारखज्ञानका प्रचार करके परम्परा चला ही करती है। जैसे एक ही सूर्य समस्त संसारको प्रकाशित करता है, तैसे ही एक भी सच्चे पारखी सन्त हों, तो वे पारखज्ञानका प्रकाश संसारमें कर देते हैं वा कर दे सकते हैं। नीतिशास्त्रमें कहा है कि:-

श्लोकः— "शैले-शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे। साधवो न हि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने॥"

अर्थः— पर्वत तो बहुत-से हैं, परन्तु, सब पर्वतोंमें जहाँ-तहाँ कङ्कर-पत्थरकी नाईं मणि-रत्न आदि नहीं मिलते हैं, कोई-कोई पहाड़में ही रत्न मिलते हैं। हाथी तो बहुतसे होते हैं, किन्तु, कोई बिरले ही हाथीमें गजमुक्तारूप मोती होता है। वैसे वन, महावन, जङ्गल तो बहुत जगह होते हैं। वनमें अन्य वृक्षोंकी भरमार पड़ी रहती है। परन्तु, चन्दनके वृक्ष कहीं-कहीं मलयागिरिमें ही होते हैं। इसीप्रकारसे भेषधारी मनुष्य तो दुनियाँमें बहुत-से मिलते हैं, किन्तु, सच्चे साधु, सत्यन्यायी पारखी सन्त सर्वत्र सब समयमें नहीं मिलते हैं। भारतवर्षमें एक-दो प्रान्तके कोनेमें कहीं-कहीं पर कोई-कोई बिरले ही पारखी सन्त मिलते हैं॥ इसबारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी वैसा ही सङ्केत करके बीजक, साखी— १७२ में कहा है कि:—

साखीः— "हीरोंकी ओबरी नहीं। मलयागिर नहिं पाँति॥ सिंहोंके लेंहड़ा नहीं। साधु न चले जमात॥"

—अर्थात् हीरे, लाल, मोती आदि कीमती रत्न बाजारमें आलू-प्याज आदिकी नाईं कोठरी भर-भर करके रक्खे नहीं जाते हैं। कहीं-कहीं जौहरीके पासमें थोड़ेसे रत्न होते हैं, उसे तो वे बड़ी हिफाजतसे डब्बीमें बन्द करके रखते हैं। जङ्गली झाड़की नाईं पंक्ति-के-पंक्ति लाइन लगे हुए चन्दनके वृक्ष नहीं होते हैं; वह तो कहीं-कहीं मलयागिरि-पहाड़में होता है। गाय, भैंस, घोड़े, गधे, भेड़, बकरीके तद्वत् झुण्ड-के-झुण्ड सैकड़ोंकी तादादमें सिंहोंके फौज समूह भी नहीं होते हैं। महावनमें कहीं एक-दो ही सिंह होते हैं। इसीप्रकार साधुका भेष बना करके सैकड़ों, हजारों, लाखोंकी जमात बाँधकर गुरुवालोग ही जमा होते हैं; चढ़ावमें आकर वे इकट्ठे होते हैं। लोगोंको ठगते-फिरते हैं। परन्तु, सत्यन्यायी साधु पारखी सन्त इसप्रकारके जमातमें उपाधि बटोर करके नहीं चलते हैं। जमात-के-जमात सब पारखी भी नहीं होते हैं। साधु पारखी तो कहीं बिरले ही कोई-कोई होते हैं। वे सर्व शिरोमणि महात्मा होते हैं॥

इस प्रमाणसे महत्त्वपूर्ण कीमती वस्तु अल्प मात्रामें ही प्राप्त होती है। इससे उसका प्रभाव कम नहीं होता है, बल्कि, ज्यादा प्रभावशाली होता है। तैसे ही पारखी सन्तोंकी महिमा भी महान है। तहाँ कहा भी है कि:—

दोहाः— "पारसमें अरु सन्तमें। बड़ो अन्तरो जान॥ वह लोहा कञ्चन करै। यह करै आप समान॥"

जिज्ञासु नरजीवोंको सत्यज्ञान बता करके भव-बन्धनोंसे छुड़ा करके मुक्त करना, दयालु पारखी सन्तोंके तो यह स्वाभाविक सद्गुण ही हैं।

प्रख्यात और अप्रख्यात दो तरहके विवेकी पारखी सन्त हुए और होते हैं। तैसे ही वर्तमानमें भी जाहिर है। परन्तु, पारखी सन्तोंके लक्षण शुभ चिह्न सद्गुण संसारमें प्रत्यक्ष होनेसे प्रामाणिक हैं; किन्तु, और चार युगोंमें सतसुकृत आदि चार ही पारखी सद्गुरु होनेका अनुमान जो किया है, सो तो भ्रमिक लोगोंकी मिथ्या कल्पना ही है। क्योंकि, खास करके युगों वर्षोंका बन्धान ही

मनुष्योंकी कल्पनासे हुआ है। तहाँ पण्डित गुरुवालोगोंने सत्ययुगकी वर्ष संख्या सब (१७, २८,०००) सत्रह लाख, अट्ठाईस हजार वर्षोंकी गिनती लगा रक्खा है। अब बताइये, यह हिसाब अनुमान-कल्पनाके सिवाय मनुष्योंने कैसे ? किस प्रमाणसे लगाया है ? कोई भी प्राणधारीका इतनी लम्बी अवधि तक जीवित रह सकना सम्भव नहीं है; और मनुष्योंकी तो इतनी बड़ी आयु हो ही नहीं सकती है। यह तो जगत्कर्त्ता माननेवाले गुरुवालोगोंकी कपोल कल्पना ही है। क्योंकि, वे लोग प्रथम जगत् अनादि न होनेको ठहराकर ब्रह्म-ईश्वरादिकी इच्छासे पश्चात् सृष्टि उत्पत्ति होनेकी बात कल्पना करके मानते हैं। फिर सङ्कल्प पढ़ करके वेदादिके प्रमाणसे चार युग, कल्प-कल्पान्तरों-की गिनती लगा रक्खा है। विवेकी सन्त उसे सत्य मान नहीं सकते हैं; और फिर उतनी लम्बी अवधिमें एक अकेले ही सतसुकृत प्रथम पारखी सद्गुरु हुए, तो उनके शिष्य-शाखाओंकी परम्परा भी तो चली होगी न ? फिर उनकी शिक्षाके लेख वा ग्रन्थ भी तो कुछ लिखे गये होंगे न ? उसके प्रमाण कुछ भी क्यों नहीं मिलते हैं ? जब गुरुवालोगोंके ग्रन्थ-पन्थ प्रचुर मात्रामें चले आ रहे हैं, तब सतसुकृतका ग्रन्थ-पन्थ क्यों नहीं चला ? और यदि शिष्य परम्परा चली आई होगी, तो बीचमें किसी शिष्य विशेषका नाम प्रख्यात क्यों नहीं हुआ ? और फिर त्रेतामें 'मुनिन्द्र' जो मशहूर हुए होंगे, तो वे भी पूर्व परम्परागत गुरुके किसीके चेले ही हुए होंगे। तब तो वे स्वयं बोध प्राप्त ऐसे नहीं हुए। यदि ऐसा नहीं मानते हो, तो क्या सत्ययुगका प्रलय होना मानते हो ? कैसा प्रलय ? मनुष्यादि सब प्राणी एकदमसे मरकर संसारका विध्वंस होना मानते हो क्या ? भला ! ऐसे कैसे होगा ? देहधारी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रारब्ध भोगका एक ही समयमें ही समाप्त हो जाना, ऐसा तो कभी त्रिकालमें भी हो नहीं सकता है; और प्रारब्ध भोग पूर्ण हुए बिना किसीका देह भी नाश ही नहीं होता है। यह कर्मका नियम अटल है। फिर प्रलय होना ही असम्भव बात है। इसकारणसे सत्ययुग नाश होकर त्रेतायुगका आरम्भ होना भी असम्भव बात है; और त्रेतायुगकी वर्ष संख्या सब (१२,९६,०००) बारह लाख, छियान्नवे हजार वर्षोंको माना है। तब मुनिन्द्र हुए होंगे, तो उनकी भी शिष्योंसे पन्थ-परम्परा चली होगी। अथवा त्रेताभर मुनिन्द्र ही जिन्दे रह करके उपदेश दिये कि, उनका देह कभी छूट भी गया था ? क्या-कैसी बात है ? उन्होंने अपने मतका किसीको उत्तराधिकारी भी बनाया कि, नहीं ? क्या द्वापरके 'करुणामय' उन्हींके शिष्य तो नहीं थे ? यदि नहीं थे कहोगे, तो उनके ज्ञानमें ही मिलता-जुलता ज्ञान इनमें कहाँसे आया ? और द्वापरकी सब वर्ष संख्या (८,६४,०००) आठ लाख, चौंसठ हजार वर्षोंकी माना है। तब तो उनका भी पन्थ खूब चला होगा। परन्तु, प्रमाण कहीं भी कुछ सत्यरूपसे नहीं मिलता है। द्वापरभर 'करुणामय' जीवित रहे, फिर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबको उत्तराधिकारी शिष्य बना करके अन्तर्धान हो गये, ऐसा कहना भी अप्रामाणिक होनेसे वह असम्भव बात है। क्या यह गप्प नहीं हाँके हैं ? कैसी बात है ? परन्तु, लोकमें प्रचलित जनश्रुतिकी प्रख्यात बात तो रामानन्दसे भेष बना लेनेकी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके बारेमें चर्चा चल रही है। वहाँपर भी रामानन्द वैष्णव थे, वे तो बिल्कुल बेपारखी, जड़मूर्ति पूजक, भ्रमिक रहे। उनके खासरूपसे शिष्यत्व होना भी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके बारेमें कुछ नहीं घटता है। कलियुगकी सब वर्ष संख्या (४, ३२,०००) चार लाख, बत्तीस हजार वर्षोंकी माना है। प्रथमके क्रमानुसार सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबको भी कलियुगभर जीवित स्वयं कायम रहकर धर्म प्रचार करना था; परन्तु, ऐसा नहीं हुआ। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका स्थूलादि देह तो उस समयपर १२० वर्षकी अवस्थामें ही छूट गया। आप फिर सदाके लिये विदेहमुक्त हो गये॥

अब विचार करके देखिये कि, सैकड़ों वर्षोंकी आयु, मनुष्योंकी आयुका जैसा हिसाब है, सो वैसा ही प्रारब्ध व्यतीत करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका देहान्त हुआ। तब तक आपकी सत् शिक्षासे हजारों शिष्य-सेवक हुए। सत्य बोधरूप उपदेश लेखबद्ध होकर 'बीजक सद्ग्रन्थ' बना। कबीरपन्थका स्थापन और प्रचार हुआ; और प्रमुख शिष्योंके नामसे भिन्न-भिन्न शाखारूपमें कबीरपन्थ

भी चला है। आज तक आपके ज्ञान, पन्थ, ग्रन्थ आदिका विस्तार हो रहा है। भविष्यमें भी प्रचार होता रहेगा। यह बात तो यथार्थ होनेसे सर्वमान्य है। परन्तु, पूर्वके तीन युगोंमें जिन-जिनके नाम गिनाये हैं, वे ऐतिहासिकरूपसे अयथार्थ कल्पित होनेसे पारखी सन्त समाजमें वह मानन्दी अमान्य है। गुण-लक्षणकी घटनासे तो चारों नामका श्रीकबीरसाहेबमें ही समावेश हो जाता है। अतः चारयुगोंमें चार गुरु मानना असत्य कल्पना मात्र है। परन्तु, पक्षपाती भ्रमिक लोग उसे ही प्रतीत करके मानते और मनाते हैं॥

जब वे ऐसा मानते हैं, तो बताओ, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके समान ही चिह्न, लक्षण, ग्रन्थ-पन्थ आदि कुछ भी प्रमाण उक्त तीनों युगोंके गुरुजनोंके जगत्में क्यों प्रगट नहीं हुए? गुरुवालोगों-के कथनसे मनु आदिका समय सत्ययुगमें था, तब 'सतसुकृत' कोई हुए हों, उसका कुछ भी प्रमाण कहीं नहीं मिलता है; और त्रेतायुगमें रामचन्द्रादि हुए, ऐसा कहा है। उस वक्तमें भी पारखी सन्त 'मुनिन्द्र' नामसे कोई नहीं हुए। यदि हुए होते तो प्रमाण भी कुछ मिलता, तथा द्वापरमें पाण्डव, कृष्णादिके समय बताया जाता है। तब भी 'करुणामय' होकर पारखज्ञानका प्रकाश करनेवाले कोई प्रगट नहीं हुए। जिसका कोई प्रमाण ही प्राप्त नहीं है, उसको सत्य मानना अन्धविश्वासके सिवाय और कुछ नहीं ठहरता है। विक्रमीय सम्वत् १४५५ से १५७५ तक सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब जीवित रहे। इस हिसाबके प्रमाणसे करीब (५५३) पाँच सौ तिरपन वर्ष (सं० २००८ विक्रमीय तक) के पूर्वमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब अवतीर्ण हुए थे। कायावीर शूर वीर धीर होनेसे आपके देहका नाम भी "कबीर" ही पड़ा था; और आप सद्गुण निधान रहे। दयासागर कृपालु आप करुणामें सराबोर या करुणाके प्रत्यक्ष मूर्ति रहे। इसवास्ते श्रद्धालु शिष्योंने आपको ही 'करुणामय' नामसे भी पुकारा किया। तैसे ही ऋषि, मुनि, महर्षि, ज्ञानी, ध्यानियोंमें देवेन्द्रके समान आप प्रमुख-श्रेष्ठ शिरोमणि माननीय स्वामी रहे। इसलिये कितनेक नेमी-प्रेमियोंने आपको ही 'मुनिन्द्र' नामसे पुकारा किया; और शुभ संस्कारी पुण्यवान् अल्पवयस्कमें ही त्याग-वैराग्यमें दृढ़ होकर पूर्ण सत्यज्ञान स्वयं प्राप्त होनेसे आपको विचारवानोंने 'सतसुकृत' नामसे भी सम्बोधित किया। अथवा सुकृत=धर्मपरायण नरजीवोंको सत्य=पारख बोधदाता होनेसे आप 'सतसुकृत' कहलाये। इस-तरहसे तो यह चारों नामवाले चार पुरुष चार युगोंमें नहीं हुए थे। बल्कि, पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके गुणानुवाद, महिमा वर्णनमें ही उक्त चार प्रकारसे चार नाम कहा गया है। वैसे तो श्रद्धालु शिष्य श्रीसद्गुरुके सद्गुण वर्णन करके सहस्र नाम धरा करके गुरुसहस्रनामकी भी स्तुति किया करते हैं। उससे सद्गुरु कुछ हजारों व्यक्ति नहीं हो जाते हैं। सद्गुरु तो एक ही व्यक्ति-रूपमें कायम रहते हैं। उनके गुण ही भिन्न-भिन्न प्रकारसे कहे जाते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥

परन्तु, गुरुवालोगोंने कल्पनासे चार युगोंका हिसाब अलग-अलग लगाकर, फिर चारों युगोंमें विष्णुके मुख्य दश अवतार तथा गौण चौदह अवतार और मिला करके सब चौबीस अवतार होनेको बतलाया गया है। वैसी ही यहाँपर भी मानन्दी किया है। उसीप्रकार भ्रमिक अबुद्ध पन्थियोंने भी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके भी मुख्य चार युगोंमें चार अवतार एवं कलियुगमें चौदह बार अवतार धारण किया, ऐसी मनमानी कल्पनाके मनगढ़न्तरूपसे कथन विस्तार किया है। अतः वे भी बेपारखी भ्रमिक गुरुवालोगोंके ही छोटे भाई बने हैं। श्रीसद्गुरुने बीजक सद्ग्रन्थमें कहा है:-

साखी:— "सेमर केरा सूवना। छिवले बैठा जाय॥ चोंच सँवारे शिर धुने। ई उसहीको भाय॥१६३॥"

"जाका गुरु है आँधरा। चेला काह कराय?॥ अन्धे अन्धा पेलिया। दोऊ कूप पराय॥१५४॥"

"अगुवा भूला वन खण्ड मंझा॥" बीजक, रमैनी- १५॥

जब अगुवा बने हुए गुरुवालोग ही संसारके बीचमें वाणी-बानीके जङ्गलोंमें भूले पड़े हैं, उन्हें रास्ता ही नहीं सूझता है। विवेक-विचारहीन अन्धे भी बने हैं। ऐसे उपदेशक गुरु ही जब

अन्धे हैं, तब उनके चेले कहाँसे, क्या, कैसे विवेक करेंगे ? अन्धे गुरुवाने अन्धे शिष्योंको भ्रम धोखाका उपदेश देकर पेल दिया, आगे ढकेल दिया, तो वे दोनों भ्रम कूपसे गर्भकूपमें गिर पड़े। इसके सिवाय और कुछ लाभ नहीं उठा सके। पञ्चग्रन्थीमें भी गुरुबोध, दोहा- १४२ में कहा है:—

दोहाः— "उपदेशी सो नष्ट भो। भ्रष्ट जीव हैरान ॥ वन्दै चरण अबोध जीव। चाहै निज कल्यान ॥"

—उपदेशदाता गुरुवा जो है, सोई नष्ट हुए; कल्पना और विषय तरङ्गमें बह गये। तो उनके पथानुसरण करने वालोंको कहाँसे स्थिति मिलेगी ? नरजीव निजपदसे नष्ट-भ्रष्ट होकर नाना धोखेकी साधनाओंमें लगकर हैरान हो रहे हैं। हित-अहितको न जाननेवाले अबोध नरजीव उन्हीं प्रपञ्ची गुरुवालोगोंकी चरण वन्दना करके निज कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं। इसीसे गुरुवालोग जैसे-जैसे पाखण्डमें उन्हें लगाते हैं, वैसे-वैसे अबोध मनुष्य लगते जाते हैं। इसप्रकार भ्रमचक्रमें भ्रमण करके महान भवजालमें गिर पड़ते हैं। वे कहीं भी ठहर नहीं पाते हैं ॥

यह सब जालोंको लखानेवाले पारखी श्रीसद्गुरुका महान उपकार हुआ, तब कहीं जिज्ञासु नरजीव सब जालोंसे बच पाये; और अभी भी पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर किनारा लगनेवालोंका भ्रम-धोखेसे बचाव हो रहा है। पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पश्चात् आपके अनुयायी शिष्य कितनेक पारखी सन्त हो गये। उन्होंने सत्यज्ञानका प्रचार किया। देह रहे तक सत्सङ्ग मण्डलमें वे प्रख्यात भी हुए। फिर देह छूटनेपर भी जनतामें किम्वदन्तीका प्रचार होता ही गया; और जिन्होंने सद्ग्रन्थोंकी रचना की है, विशेष लेख लिखा है, तथा टीका-त्रिजादि लेख बना दिया है, वे उसी कीर्तिके द्वारा जाहिर हुए हैं। लिखित ग्रन्थसे ही लेखकके हृदयगत भाव, मानन्दी एवं सिद्धान्तका पूर्ण पता लग जाता है। इससे निस्संकोचरूपसे निश्चय करके कहा जा सकता है कि, सत्यन्यायी पारखी सन्तोंके द्वारा निर्मित, रचित, छल-छिद्र रहित यथार्थ पारखबोध देनेवाले लेख-ग्रन्थ अभी तक इने-गिने चुने हुए कुछ ही उपलब्ध हो सके हैं ॥

दोहाः— बड़ उपकारी सद्गुरु ! सद्शिक्षा दे आप ॥ सारासार लखाइया। मेटै सब सन्ताप ॥१॥
सबको दीन्हा बोध प्रभु ! समतायुत वर्ताहिं ॥ सार गहे ते मुक्त भये। सार तजे जहँड़ाहिं ॥२॥
कोई कपटि कृतघ्नभये। मानत नहीं उपकार॥ अहं दम्भ मद पक्ष गही। बहे घोर भवधार ॥३॥
पारखज्ञान विशेषना। जाने विरले सन्त॥ रामस्वरूप परखै सकल। पारखि सन्त महन्त ॥४॥
पर्दा धोख निवारिके। सत्य कहौ अब सोय॥रामस्वरूप सुनिये सुजन ! करनी जस जस होय ॥५॥

हे सन्तो ! सज्जनो ! सुनिये, हित-कल्याण चाहनेवाले सारग्राही विचारवान् मनुष्यको सदा देह रहे तक श्रीसद्गुरुके उपकार माननेवाला कृतज्ञ होना चाहिये। कभी भी कृतघ्न, दुर्मति होना नहीं चाहिये। परन्तु, कभी-कभी पढ़े-लिखे हुए पण्डित-बुद्धिमान् कहलानेवाले लेखक लोग ही कृतघ्न हो जाते हैं। भेदुवेके सरीखे भेद ले करके फिर बोध-भाव करना ही छोड़ देते हैं। न्यायसे वे बड़े दोषी ठहर जाते हैं। श्रीसद्गुरुने बीजक, शब्द- ५८ में कहा है:—

"जानि बूझि जो कपट करतु है। तेहि अस मन्द न कोई॥कहहिं कबीर तेहि मूढ़को। भला कौन विधि होई॥"

अतएव अनजानका दोष तो माफ भी होता है। परन्तु, जानकार समझदारका दोष कैसे माफ हो ? जान-बूझ करके भी फिर कपट, छल-छिद्र करनेवाला जो है, सो महा मन्दमति स्वार्थी है। उसके समान दूसरा मन्दमति तो और कोई भी नहीं होता है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब स्पष्ट-रूपसे कहते हैं कि, उस मूढ़ कृतघ्नको अब किस प्रकारसे भला होगा ? वह तो जड़ काटकर पानी सींचनेका ढोंग करता है। उसका सब प्रयत्न निष्फल हो जाता है। "स्पष्टवक्ता न वञ्चकः"—साफ-साफ सत्य बात बता देनेवाला कभी ठग हो नहीं सकता है।

"निन्दक सोई जानिये। झूठा कहै बनाय ॥ आवर्ण करि साँचमें। मिथ्याको दरशाय ॥"
"जैसाको तैसा कहै। सो तो निन्दा नाहिं॥ उलट फेर करिके कहे। सोई निन्दक आहि ॥"

"भेद न जाने सब कोई। भर्महिको पतियाय॥ भर्म निवारणके लिये। विज्ञ भेद दरशाय॥ यहि मग समझि विचारिके। हमहूँ भये परवित्त॥ कछुक दोष गुण रामस्वरूप। कहि समझाऊँ इत्त॥"

अब यहाँपर कुछ संक्षिप्त पूर्व वृत्तान्त बता करके घटनाका गुण-दोष दर्शाकर बतलाया जाता है, सो सुनिये! इतिहासकारोंने सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका प्रादुर्भाव विक्रमीय सम्वत् १४५५ में और तिरोभाव वा देहान्त समयका साल वि० सं० १५७५ ठहरा करके इतिहासके पृष्ठोंमें विशेषतः यही लेख लिखा हुआ है। युक्तियुक्त होनेसे सो बात ठीक ही जँचता है। इसप्रकार आप १२० वर्ष तक सदेह जीवित रहे। तब तक सत्यन्यायके पारखज्ञानका उपदेश आप देते रहे। सच्चे मनुष्य देहधारी सत्पुरुष हंस पारखी आप थे। आपके जन्म-मरणादिके विषयमें बहुत-से मत भेद हुए हैं। उन सबमें कुछ तत्थ्य नहीं है। यथार्थ बात तो यही है कि, जैसे अभी सब मनुष्योंकी उत्पत्ति माता-पिताके सम्बन्धसे गर्भवासमें रज-वीर्यके सम्मेलन द्वारा जीवकी सत्तासे होती है या हो रही है, तैसे ही आपके देहकी भी उत्पत्ति हुई है; यह निर्विवाद सत्य है। अन्यथा उत्पत्ति जो कथन किया है, सो कपोल कल्पित मिथ्यावाद पक्षपातमात्र है। इसबारेमें संकेत श्रीसद्गुरुने स्वयं ही बीजक सद्ग्रन्थमें किया है, सुनिये!:—

"तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्राण वियापै मोहू॥ ८॥
एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञानसे भयेउ निनारा?॥ ९॥" बीजक, रमैनी- १॥

—अर्थात् जब मनुष्य शरीरमें हैं, तो हम और तुम एक सरीखे ही देहधारी हैं। स्थूल देहमें लोहूसे सम्मिलित सप्तधातु भी हमारे और तुम्हारेमें एक समान ही हैं। तथा सूक्ष्म देहमें स्थित प्राण वायु, चित्त चतुष्टय आदि भी सब एक-से ही हैं। परन्तु, खास फरक तो इतना अवश्य ही है कि, तुम्हारेमें माया-मोहकी आसक्तिका अध्यास व्याप्त है। तुम जड़ाध्यासी होकर बद्ध हो रहे हो; और हम उन सब माया-मोहकी आसक्तिको परखकर परित्याग करके निज पारख स्वरूपमें स्थित होकर मुक्त हुए हैं। यही तुम=जीवपदमें और हम=गुरुपदमें महान अन्तर है॥

और फिर एक समान स्त्रीने सारा संसारके पुत्र और पुत्रियोंको उत्पन्न किया है, सो प्रत्यक्ष ही है। अब कौन-से भ्रमिक ज्ञानसे तुम लोग अपने न्यारा ब्राह्मणादि वर्ण तथा अवर्णरूप ब्रह्म होते हो? क्यों ऐसे अपनेको कहते, मानते हो? सो बतलाओ? इत्यादि॥

अब विचार करिये, जहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं इतना स्पष्टरूपसे कहा है। वहाँ उस वचनपर लक्ष्य ही न करके अन्यथा उटपटाङ्ग रीतिसे उनकी देहकी उत्पत्तिका कथन करना, शब्दस्वरूपी देखनेमात्रका स्वप्नवत् आपका देह बतलाना, मिथ्या आरोपण करना ही सिद्ध हुआ कि, नहीं? जरूर मिथ्या ही ठहरा। यह तो प्रशंसाके बदले खासरूपसे निन्दा करना ही साबित हुआ। पक्षपातमें मदान्ध होकर वे अविवेकी लोग इसबारेमें यथार्थ विचार ही नहीं करते हैं। कोई एक सत्यपुरुष कर्त्ताकी आज्ञासे युगानुयुगमें पृथ्वीमें अवतार लेनेवाले ऐसा माना है। सत्यलोकके बारेमें यथार्थ भेद फिर बादमें कहा जायगा। ऐसे अन्धाधुन्ध चल रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरु ही सब सिद्धान्तोंका निर्णय करके जिज्ञासु मनुष्योंको सच्चा सीधा मार्गमें लगाते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके खास सत्य वाक्यका संग्रह ही "बीजक सद्ग्रन्थ" बना है। यों तो आप भारतवर्ष-भरमें पर्यटन करते रहे। तथापि विशेष समयमें काशी कबीरचौरामें निवास करते रहे। बीजक साखीमें कहा है:—

"देश विदेशे हौं फिरा। मनहीं भरा सुकाल॥ जाको ढूँढ़त हौं फिरौं। ताका परा दुकाल॥ १८५॥
देश विदेशे हौं फिरा। गाँव गाँवकी खोरि॥ ऐसा जियरा ना मिला। लेवै फटक पछोरि॥ ३१६॥"

फिर आपके देहोत्सर्गके पश्चात् शिष्योंके द्वारा मत स्थापना हो करके पन्थ चलता गया। काशी आदि भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न गद्दी स्थापित हुई। तत्पश्चात् अढ़ाई-सौ वर्षके लगभग समय व्यतीत हो गई, तथापि विशेष घटना पन्थमें कुछ नहीं घटी। तब तक पारख

सिद्धान्त प्रतिपादक कोई लेख ग्रन्थ भी बीजक सद्ग्रन्थको छोड़कर और कहीं किसीने बनाया हो, यह बात जाहिर नहीं हुई। तदनन्तर रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह राजाने बीजककी टीका लिखी। परन्तु, वह टीकामें मायामुखसे ही सारा कथन वर्णन किया है। राजा रामोपासक था, सो उसने रामचन्द्रकी ही निर्गुण-सगुण महिमा टीका भरमें विस्तार किया है। उसमें पारखबोधका तो कहीं नामोनिशान तक पता ही नहीं है। फिर उधर जिला पटनामें फतुहा निवासी एक पारखी सन्त गुरुदयालसाहेब हुए। आपने "श्रीकबीरपरिचयकी साखी और ग्यारह शब्द" बीजकके पारख सिद्धान्तके अनुसार ही रचना किया है; और आपके ही एक सत् शिष्य पारखनिष्ठ श्रीरामरहस-साहेब हुए। जिन्होंने यह प्रस्तुत "पञ्चग्रन्थी" सद्ग्रन्थ निर्माण किया है। बड़े-बूढ़े पूज्य गुरु-जनोंसे शब्द प्रमाण द्वारा यही बात यथार्थ साबित हुई है। उसके लिये पञ्चग्रन्थीके पद भी साक्षी दे रहे हैं। इसबारेमें और खुलासा फिर बादमें लिखा जायगा॥

इधर पारखनिष्ठ सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने प्रथम 'वैराग्यशतक' तथा फिर 'निर्णयसार' आदिकी रचना वि० सं० १८९२ में समाप्त करके वि० सं० १८९४ में बीजकके सत्य सिद्धान्त पारख बोध दर्शिनी टीका लिख करके कार्तिक पूर्णिमाको समाप्त किया था, फिर मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीयाके दिनमें ही आपका देहान्त भी हो गया। तत्पश्चात् आपके सत् शिष्य श्रीहंससाहेबने 'बीजक' और 'पञ्चग्रन्थी'के मूलपरसे अर्थ पढ़ानेका कार्य सम्हाल लिया था, और सब पारखी सन्तोंके रहनी, गहनी, कथनी, वदनी एक समान ही सारग्राही होता है, इसवास्ते उन्हें हंसकी उपमा देते हैं। सब तरफके सच्चे पारखी सन्त पारखस्थितिरूप निजघरके एक ही परिवारके सदस्यरूपमें माने जाते हैं। इस बारेमें कहा है:—

"पारखी गुरु नहीं कछु भेदा। और सकल जग कीन्ह निषेधा॥ ५८०॥" निर्णयसार॥

इसवास्ते पारखी सन्त श्रीगुरुदयालसाहेब तथा श्रीरामरहससाहेबको भी हमारे यहाँ सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबके समान ही सर्वश्रेष्ठ पारखी सन्त-महात्मा मान करके आप लोगोंकी रचना-"श्रीकबीरपरिचयकी साखी, ग्यारह शब्द, एवं पञ्चग्रन्थी" आदि सद् ग्रन्थोंको भी बीजक टीकारूप त्रिजादिके समान ही उत्तम मानकर सम्मानसे बुरहानपुर नागझिरी कबीरपन्थ गद्दीमें खास करके अपना लिया गया है। "श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरी-स्थान, बुरहानपुर"में प्रथमाऽचार्य्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबके उत्तराधिकारी आचार्य श्रीहंससाहेब हुए। तभीसे उक्त ग्रन्थोंकी अर्थ-पढ़ाई सन्तोंमें परम्परागत प्रचार होता ही चला आ रहा है; और श्रीहंससाहेबके उत्तराधिकारी आचार्य श्रीसन्तोषसाहेब हुए। तदनन्तर उन्होंके क्रमशः उत्तराधिकारी आचार्य श्रीरामसाहेब हुए। फिर आचार्य श्रीनरोत्तमसाहेब हुए। फिर आचार्य श्रीकाशीसाहेब हुए। फिर आचार्य श्रीछोटेबालकसाहेबजी हुए, तथा आपके सहायक उप आचार्य श्रीलालसाहेबजी समकालीन हुए थे। नियमानुसार आप पारखी श्रीसद्गुरुके कृपाप्रसादसे ही 'बीजक' और 'पञ्चग्रन्थी' तथा 'षट् ग्रन्थः' आदि सद्ग्रन्थोंकी अर्थ पढ़ाई गुरुमुख द्वारा आज तक होती ही चली आ रही है।

श्रीसन्तोषसाहेबके प्रमुख शिष्य श्रीभगवान्साहेबजी तथा श्रीकाशीसाहेबके सत् शिष्य पारखनिष्ठ श्रीलालसाहेबजीके समयमें वि० सं० १९८५ के सालमें काशी कबीरचौरा मठके एक साधु महाराजदास उर्फ राघवदासजीने स्थान बुरहानपुरमें आ करके (वि० सं० १९८५ से १९८७ तक) दो साल करीब स्थानमें रहकर सद्गुरु श्रीलालसाहेबजीसे गुरुमुखसे 'बीजक' और 'पञ्चग्रन्थी' आदि सद्ग्रन्थोंका अर्थ गुरुमुखसे श्रवणकर भलीभाँति पढ़ा था। उनके साथमें पढ़नेवाले (सहपाठी) साधु गरीबदासजी (गुजराती) आदि सन्त अभी विद्यमान हैं; और श्रीभगवान्-साहेबजीके सत्सङ्ग विचार द्वारा 'बीजक' आदि सद्ग्रन्थोंका बहुत कुछ सन्धि-भेद उन्होंने जान लिया था। अर्थ समझनेमें और पढ़नेमें आपसे बहुत कुछ सहायता पाया था॥

अब श्रीरामरहससाहेबके गुरुके बारेमें पञ्चग्रन्थीका प्रमाण सुनिये !:—

साखीः—"साँचा शब्द बताइया। साँचा दिया मुकाम॥ ताते वन्दत हौं तव चरण। साँच गुरु सत नाम॥"

यह पद ग्रन्थके प्रारम्भका मङ्गलाचरणके प्रथम साखी है।

इस साखीसे प्रथम ग्रन्थः 'पञ्चकोश' प्रारम्भ होता है। और:—

"वारौं तन मन धन सबै। पद परखावनहार॥ युग अनन्त जो पचि मरै। बिन गुरु नहिं निस्तार॥"

इस साखीसे द्वितीय ग्रन्थः 'समष्टिसार' प्रारम्भ होता है।

साखीः— "बना बनाया मानवा। बिना बुद्धि वेतूल॥ कहा लाल ले कीजिये? बिना बासका फूल॥"

यह बीजकके ३३३ साखी है। इसी साखीसे तृतीय ग्रन्थः 'मानुष विचार' शुरू हुआ है। और चतुर्थ ग्रन्थः 'गुरुबोध'का प्रारम्भ निम्न तरीकेसे होता है:—

दोहाः—"नमों नमों गुरुदेव जू! साधु स्वरूपी देव!॥ आदि अन्त गुण कालके। जाननहारे भेव॥१॥"

सोरठाः—"मेटेउ कालको जाल। याते गुरु तव नाम यह॥ बन्दीछोर दयाल! अशरण शरण उदार अति॥२॥"

इसके बाद पञ्चम ग्रन्थः 'टकसार' में यह मङ्गलाचरण कहा हुआ है कि:—

दोहाः—"साहेब दीन दयाल गुरु! सो पर और न कोय॥ शरण आय यमसों बचे। आवागमन न होय॥१॥"

तहाँ नौ दोहा तक श्रीसद्गुरुकी विशेषता बखान किया गया है। प्रथम ग्रन्थ और द्वितीय ग्रन्थकी साखीमें श्रीसद्गुरुके पारख बोधकी विशेषता वर्णन करके स्तुति किया है। तृतीय ग्रन्थमें मनुष्यका गुण-लक्षण बताया गया है। चतुर्थ ग्रन्थ गुरुबोधमें दोहामें साधु-गुरुको दो बार या त्रय बार वन्दना करनेका नियम पालन किया है। फिर सोरठामें श्रीसद्गुरुके नाम-रूप-गुणका लक्षण घटाकर ग्रन्थकर्त्ताने निज गुरुका नाम जाहिर करके विनय किया है। सो कैसे कि:— "समस्त कालके जालको मेट दिये हो, इसवास्ते 'गुरु' यह आपका नाम प्रख्यात हुआ है; और दया करके आपने मेरे भव-बन्धन छुड़ा दिये हो, सो हे बन्दीछोर! गुरुदयालसाहेब! आप अत्यन्त उदार हो, अशरणको भी शरणमें लेनेवाले ऐसे आप हो! 'यथा नाम तथा गुण' दीन दयालु पारख बोध दाता श्रेष्ठ श्रीसद्गुरु आप हो! मैं आपके ही शरणागत हूँ!" इत्यादि गुरुबोधके सद्भावको दर्शा करके ग्रन्थकर्त्ताने स्पष्ट ही लिख दिया है।

ऐसी किम्बदन्ती भी प्रचलित है कि— श्रीरामरहससाहेब प्रथम अन्य मतावलम्बी संन्यासी, अथवा किसी भेषके प्रमुख साधु थे, सङ्गठितरूपसे जमात लेकर विचरा करते थे। जिला- पटनामें कहीं बोधवान् एक कबीरपन्थी सेवकसे उनका सत्सङ्ग-विचार हुआ। सत्सङ्गमें वेदान्त पक्षका खण्डन होनेसे वे विवेक-विचारसे प्रभावित हुए। कुछ दिन तक उससे सत्सङ्ग करनेपर सत्यासत्यका बोध दृढ़ होनेसे उस सत्सङ्गीके कहनेसे फिर उसे भी साथ लेकर आप फतुहा स्थानमें चले गये। उस वक्त पारखी सन्त श्रीगुरुदयालसाहेब वहाँपर विराजमान थे। उनसे विशेष सत्सङ्ग निर्णय श्रवण करनेसे आपके हृदयकी आवरण मिटकर अन्तर पारख दृष्टि खुल गई। तब आप श्रीगुरुदयालसाहेबजीको ही श्रीरामरहससाहेबने श्रीसद्गुरु मानकर भेष बदल करके कबीरपन्थी साधु हुए। तब आपने गुरुमुखसे बीजक मूलका अध्ययन करके भलीभाँतिसे मनन भी किया। फिर गुरु-आज्ञासे विचरण करते हुए गयामें अनुकूल स्थान देखकर कुटिया बना करके वहीं रहने लगे। वहींपर आपने पञ्चग्रन्थीकी रचना की। सो 'श्रीकबीरपरिचयकी साखी" आदिकी शैलीमें मिलता-जुलता ही है। तब उस समयमें पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेबका काशी कबीरचौरा स्थानसे कोई सम्बन्ध ही नहीं था। पूर्व इतिवृत्तके जानकार गुरुजन सन्त-महात्मा मान्यवर बड़े-बूढ़ोंसे सुनी गई यही असली बात है; सो प्रामाणिक है, ऐसा जान लीजिये!॥

मूल पञ्चग्रन्थीमें गुरुबोधके प्रारम्भमें प्रथम दोहा रक्खा है, फिर सोरठा छपा है; सो उपयुक्त है। क्योंकि, पहले गुरु वन्दना करके फिर श्रीसद्गुरुके नामसे गुणानुवाद करना, यही सीधी

लाइनके नियमका कार्य है। सो उसीप्रकार बुरहानपुर स्थानमें आज तक सन्ध्यापाठमें पहले "नमों नमों गुरुदेव जू !०" के दोहा, फिर सोरठा तब गुरुशतक सार नाम स्तोत्र आदिका पाठ होता चला आ रहा है, यह बात सबको जाहिर है ॥

परन्तु, राघवदासजीने तो उस क्रमको ही उलट-पलट करके गुरुबोधमें पहले सोरठा लिख करके उसके अर्थके बाद विशेष व्याख्या लिखकर यह सूचित किया है कि, काशी मठके पन्द्रहवें गद्दीके महन्त श्रीशरणसाहेबके आप शिष्य थे। उसमें प्रमाण क्या दिया है कि—
"अशरण शरण उदार अति"— इसमें 'शरण' शब्द आया है, तो गुरुके लिये ही यह नाम प्रगट किये होंगे। "सम्प्रति आपका जीवन चरित्र मिलनेसे यह गुप्त भेद वा कविकी काव्य रचनाका चातुर्य स्पष्ट विदित हो गया।" इत्यादि शब्द राघवदासजीका है। अब बतलाइये, कितनी कम समझकी स्वार्थ बुद्धिकी बात है। श्रीरामरहससाहेबकी जीवनीका लेख राघवदासजीका ही लिखा हुआ है, वह सरासर असत्य मनगढ़न्त है। देखिये ! अशरणको शरण लेनेवाले अत्यन्त उदार आप हो ! यही तो वहाँपर सोरठामें गुण वर्णन हुआ है। उसमें गुरुका नाम कहाँ प्रगट होता है ? "बन्दीछोर दयाल" यह इतना स्पष्ट है। द्वितीय चरणमें हेतु सूचना सहित "याते गुरु तव नाम यह" दर्शाया गया है। तहाँ कोई भी कम समझवाले भी यह समझ सकते हैं कि, इसमेंसे "गुरुदयाल" नाम खास करके प्रगट होता है। फिर यह धूर उन्होंने अपनी ही आँखोंमें क्यों डाली है ? इसमें हठ, पक्षपातके सिवाय और कुछ खास बात नहीं है। यदि वे सच्चे थे, तो दोहा और सोरठाके क्रमको अदल-बदल करके उन्होंने क्यों रक्खा ? उनकी करनीसे ही उनका झूठा प्रपञ्च मालूम हो गया है।

यह तो ऐसा हुआ कि—"एक धूर्त सेठने किसी भोले-भाले बनियाँसे वृक्षकी साक्षी रखकर सैकड़ों रुपये उधारमें ले लिया था। पीछे सीधी तरहसे रुपया न देनेपर पञ्चोंका फैसला हुआ। पञ्चोंने साक्षीके लिये उसी वृक्षका पत्ता लानेको बनियाँको भेजा। कुछ देरके पश्चात् इस सेठसे पूछा गया कि, उस झाड़के पास वह पहुँच गया होगा वा नहीं ? तो उसने—'अभी तो नहीं पहुँचा होगा' ऐसा बतलाया। बस, गवाही हो गई ! अन्तिममें फैसला यही हुआ कि, 'रुपया नहीं लिया !' ऐसा कहनेवाला तू ही झूठा है। वृक्षकी दूरीको तो तूने जाना है, इसीसे तू कसूरदार है। आखिरमें उसको भी कबूल करना ही पड़ा था।" ऐसी ही बात यहाँपर सिद्धान्तमें भी जान लेना चाहिये ! अस्तु ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, रमैनी- ४३ में कहा है:—

रमैनीः— ४जिन्ह जीव कीन्ह आपु विश्वासा। नर्क गये तेहि नर्कहिं बासा ॥ १ ॥
आवत जात न लागे बारा। काल अहेरी साँझ सकारा ॥ २ ॥
चौदह विद्या पढ़ि समुझावा। अपने मरणकी खबरि न पावा ॥ ३ ॥
जाने जीवको परा अन्देशा। झूठहिं आयके कहा सन्देशा ॥ ४ ॥
सङ्गति छाड़ि करै असरारा। उबहै मोट नर्ककर भारा ॥ ५ ॥
साखीः- गुरु द्रोही मन्मुखी। नारी पुरुष विचार॥ते नर चौरासी भरमिहैं। ज्यौं लौं चन्द्र दिवाकार ॥४३॥

पञ्चग्रन्थी, टकसारके साखी- ३१२ में कहा है:—

साखीः—"पारख सीढ़ी झाँकके। पलटि बहै भवधार॥ थाह न पावहिं बूड़हीं। नहिं ताके निस्तार॥"

मूर्ख दो प्रकारके होते हैं:— १. पठित मूर्ख। २. अपठित मूर्ख। दूसरा तो अपना ही अहित करता है; अन्यकी वह विशेष कुछ हानि नहीं कर सकता है। परन्तु, पहला मूर्ख तो अपने साथ-साथमें बहुतोंका बिगाड़ करके सबोंका अहित ही करता रहता है ॥

पठित मूर्ख तो ऐसे ही अन्यायका लेख लिखकर बहुतोंको भ्रममें भी डाल देता है। अबोध मनुष्य बिना विचारे उसीको ही सत्य मानकर भ्रममें पड़कर सत्य बोधसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इसवास्ते जिज्ञासु नरजीवोंके हितके लिये ही उक्त यथार्थ बात लिखकर दर्शा दिया गया है। क्योंकि, रामायणमें कहा भी है, सुनियेः—

चौपाईः— "भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुयश अपलोक विभूती ॥
गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥
दोहाः— भले भलाई पै लहहिं। लहहिं निचाई नीच ॥ सुधा सराहिय अमरता। गरल सराहिय मीच ॥६॥
चौपाईः— खल गह अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहिते कछु गुण दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥" इत्यादि ॥
अथवाः— "सुनत बात मृदु अन्त कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
को न कुसङ्गति पाय नशाई। रहै न नीच मते चतुराई ॥ रामायण, बालकाण्ड ॥
तथाः—"सुनि खल वचन मति भ्रम होवै। हित तजि अहितकी राहहि जोवै ॥"
धूर्त्त सङ्ग विनाश निशेनी। सुमति बिगाड़ कुमति पथ देनी ॥
सावधान याते नित रहहू। नहिं तो दुस्तर सागर बहहू ॥"
रमैनीः— "अक बक भूत बकै परचण्ड। व्यापि रहा सकलो ब्रह्मण्ड ॥ १६ ॥"
"भूत न उतरे भूत सो। सन्तो! करो विचार ॥ कहहिं कबीर पुकारिके। बिन गुरु नहिं निस्तार ॥"
॥ पञ्चग्रन्थी सत्ताईस रमैनी १६। १७ साखी— १८ ॥

और भी कहा हैः— "गुरु सीढ़ीते ऊतरे। शब्द विमूखा होय ॥
ताको काल घसीटि हैं। राखि सकै नहिं कोय ॥" बीजक, साखी— २८६ ॥

अतः हितेच्छुकोंने गुरुपदमें ही सत्यको पालन करके टिके रहना चाहिये ॥

पञ्चम टकसार ग्रन्थके मङ्गलाचरणके प्रथम दोहामें भी ग्रन्थकर्त्ताने स्पष्ट ही खुलासा लिखा है किः—"साहेब दीन दयाल गुरु! सो पर और न कोय ॥"—अर्थात् दीनदयालु श्रीगुरुदयालसाहेब-से परे दूसरे मेरे और कोई गुरु नहीं हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि- श्रीगुरुदयालसाहेब ही मेरे पारख बोध दाता श्रीसद्गुरु हैं। "शरण आय यमसों बचे। आवागमन न होय"— जो ऐसे पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आये या आते हैं, वे गुरुकृपासे यम जालोंसे बच गये और बच जाते हैं; स्वरूप स्थिति होनेपर फिर उनका आवागमनादि नहीं होता है; इत्यादि ॥

साखीः—"दयाकरण औगुण हरण।तारण तरण उदार॥ अशरण शरण बन्दौं चरण।तुम बिन नहिं निस्तार॥"

इसमें भी 'शरण' शब्द आया है, तो क्या इसे भी शरणसाहेबके लिये कहा गया मानेंगे? ऐसा तो कभी भी नहीं माना जायगा। और:—

चौपाईः— "शरण शरण कबीर कृपाला! भक्त सहायक दीनदयाला ॥ ३ ॥" निर्णयसार ॥

ऐसा सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने भी लिखा है, तो क्या इसे भी उक्त शरणसाहेबके लिये ही कहा गया कविका चातुर्य समझेंगे? यदि श्रीसुखलालसाहेब श्रीसद्गुरु प्रख्यात न होते, तो शायद राघवदासजी इसे भी वाग्जालसे उधरही घसीट ले जाते, इसमें कोई आश्चर्य नहीं हो सकता है। अस्तु! ॥ पञ्चग्रन्थी, मानुषविचार चौपाई, खण्ड २९ में कहा गया हैः—

चौपाईः— "पुनि यम आपन फन्द पसारा। नगर हरिभोग दुन्द प्रचारा ॥ ७१५ ॥
साहेब ओट निज नाम धराई। बहुमति दुविधा जीव दृढ़ाई ॥ ७१६ ॥
विविधि पन्थ साहेबके नामा। माया जाल है यमको कामा ॥ ७२२ ॥"
साखीः— कपट भेष परपञ्च रची। भोरे सकल जहान ॥ ७२५ ॥
[४४] बिना प्रकाश प्रभु परखके। केहि विधि होय पहिचान ॥ मानुष विचार, पञ्चग्रन्थी ॥
ऐसा ही हाल संसारमें हो रहा है। छली-कपटी सब कोई कालरूप गुरुवालोग ही माने जाते हैं ॥
"सब परपञ्च छूटै भ्रम जाला। सदा सुखी सो शरण दयाला ॥७३०॥ पञ्चग्रन्थी, मानुषविचार॥
परख प्रत्यक्ष कालको फन्दा। दीनदयालकी शरण आनन्दा ॥१४०॥" पञ्चग्रन्थी, गुरुबोध ॥
"एक रूप गुरु साधुका। दूजा कालको फन्द ॥ अशरण शरण दयाल गुरु। साधु सदा स्वच्छन्द ॥५२॥
ताते हे शिष्य! पकता। कैसे काल दयाल?॥ बन्धन गुण है कालके। बन्दीछोर दयाल ॥५४॥"

"ताते नाम दयाल कहाये। जीवहि निजु पद आपु लखाये ॥ १८२ ॥
दीनबन्धु गुरु दीनदयाला। ताकी कृपादृष्टि लखु जाला ॥ ५४८ ॥" गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी ॥

इत्यादि प्रकारसे पञ्चग्रन्थीमें जहाँ-तहाँ बहुत ठिकाने 'गुरुदयाल' शब्दका प्रयोग आया है। साधारण रीतिसे दया करनेवाले दयाल=दयालु श्रीसद्गुरु पारखी सन्तके प्रति लक्षण घटता है। तथापि श्रीगुरुदयालसाहेबको ही श्रीरामरहससाहेबने श्रीसद्गुरु मान लिये, उनसे ही आपको पारखका बोध हुआ। यही बात निर्भ्रान्त सर्वमान्य वास्तविकता पूर्ण है।

इधर बुरहानपुरमें बीजक टीकारूप त्रिजा बनाकर तैय्यार होनेके पश्चात् कुछ कालान्तरमें कितनेक साधुओंने यहाँ स्थानमें आ-आ करके उस त्रिजाको उतार-उतार करके जहाँ-तहाँ ले गये। फिर उसीको देख-देखकर कितनेक विभिन्न विचारके महात्माओंने अपनी-अपनी बुद्धि समझके अनुसार बीजककी कयीयेक भिन्न-भिन्न टीका भी लिखकर प्रकाश किया। उनमें प्रयागसाहेब और काशी कबीरचौराके मेंहीसाहेब, इन दोनोंने तो बीजक टीकारूप त्रिजाके ही समान नकल वा अनुकरण करके चारमुख वाणीका संकेत रखकर अपनी-अपनी मानन्दी और समझके अनुसार ही उक्त दोनोंने दो तरहकी टीका लिखकर छपवायी है। परन्तु, जनतामें उसका विशेष प्रचार हुआ नहीं है। क्योंकि, उनमें शब्दार्थ-भावार्थ स्पष्ट दर्शानेके बदले विशेषतया अपनी रुचिकी बात ही विस्तारसे लिखी गई है। अतएव जन समाजमें उसकी प्रचार कम हुई।

फिर उधर वंशवाले कबीरपन्थियोंने भी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके नामसे कयीयेक ग्रन्थ छन्दोबद्ध दोहा, चौपाई आदिमें रचना कर डाला है। परन्तु, उनमें पौराणिक कथाओंके समान ही रूपक लगाकर कल्पित असत्य कथाएँ ही लिखी हुई भरी पड़ी हैं। सत्य सार पारख बोधका तो उनमें कहीं दर्शन भी नहीं होता है। असम्भव बातें लिख रक्खी हैं। उन्हें तो गुरुवाई करके स्वार्थ सिद्ध करना ही सूझता है, फिर भला! पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके यथार्थ सत्यनिर्णयको वे क्यों ग्रहण करेंगे? भ्रम चक्रमें ही अपने भटकते और दूसरोंको भी भटकाते रहते हैं ॥

अब यहाँपर सत्यलोकादिके बारेमें कुछ सत्यन्याय-निर्णयका कथन लिखा जाता है, सो सुनिये !:-

'अनुरागसागर' और 'कबीरमन्सूर' आदि ग्रन्थोंके रचयिता तथा उसका माननेवालोंका मत यह है कि, अधर-शून्य-आकाशमें अनन्त योजनोंके ऊपर एक 'सत्यलोक' है। वहाँपर कोई एक अनादि सत्यपुरुष विराजमान रहते हैं। उसके नीचे कमशः चौदह लोक हैं। उन सत्यपुरुषसे ही सारे जगत्की उत्पत्ति होकर काल-निरञ्जनादि भी पैदा होते हैं। परन्तु, इधर कालने संसारमें सब मनुष्योंको भुला करके अपने वश कर लिया। कोई जीव भी यहाँसे सत्यलोकमें नहीं गये। तब उक्त सत्यपुरुषने ज्ञानीजी वा श्रीकबीरसाहेबको प्रगट किया और आज्ञा दिया कि, आप मृत्युलोकमें जाकर अंकुरी जीवोंको चेता करके काल-जालसे छुड़ा कर सत्यलोकमें ले आइये! तहाँ कहा है:—

"युगन युगन सत पुरुष आज्ञा। जीवन कारण पगु धरं ॥"

और—"अमरलोकसे हम चलि आये। आये जगत मंझारा हो ॥
सही छाप परवाना लाये। समरथके कड़िहारा हो! ॥" इत्यादि ॥

अब यहाँपर निष्पक्ष होकर यथार्थ निर्णयसे विवेक करिये, तो यह सब असम्भव कथन मनःकल्पित दोषोंसे भरा हुआ ही है, ऐसा समझनेमें आ जायगा। क्योंकि, जैसे पौराणिकोंने चौदह लोक ऊपर तथा नीचे शून्यमें ही माना है। वैसे ही कुरानियोंने भी चौदह तबक शून्यमें माना है। तथा जैनियोंने भी ऊपर आकाशमें एक चन्द्रमुक्त सिद्ध शिला तीन लोकके अन्तकी सन्धिमें मानी है; और चार आश्रमानोंके ऊपरमें अंग्रेजोंने भी कर्त्ता, ईश्वरका निवास माना है; इत्यादि प्रकारसे लोक-लोकान्तर ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदि कर्त्ता माना हुआ जैसे मनकी भ्रम-कल्पना होनेसे असत्य है। तैसे ही उपरोक्त 'सत्यलोक' और सत्यपुरुष जगत् कर्त्तादि माना हुआ भी

मिथ्या धोखा भ्रम मात्र है। क्योंकि, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं बीजकमें कहा है:—

"बैठा पण्डित पढ़े पुरान। बिनु देखेका करत बखान ॥ ५ ॥

कहहिं कबीर यह पदको जान। सोई सन्त सदा परमान ॥ ६ ॥" बीजक, शब्द- १०१ ॥

साखीः-"बिन देखे वह देशके। बात कहै सो कूर ॥ आपुहि खारी खात है। बेंचत फिरे कपूर ॥३४॥"

पर्वत ऊपर हर बहै। घोड़ा चढ़ि बसे गाँव ॥ बिना फूल भँवरा रस चाहै। कहु बिरवाको नाँव ?॥३६॥

—पण्डित लोग कथावाचक बन करके ऊँचे आसनमें बैठकर भागवतादि अठारह पुराणोंको समयानुसार पढ़ते हैं। लोगोंको कथा सुनाते हैं। जीते तक उन्होंने अपने चर्मचक्षु और विवेक-दृष्टिसे भी जो बात नहीं देखी है, और अनुभव भी नहीं किया है, सोई लिखी हुई कल्पित बात सृष्टि उत्पत्ति, जगत् कर्त्ताकी महिमा, स्वर्ग लोकादिमें एक-से-एक बढ़ करके श्रेष्ठ पदवी, सुख, भोग-विलास वर्णन, अमृत पान, पुष्प शैय्या, अप्सराओंसे क्रीड़ा-विहार, स्वच्छन्द गमन इत्यादि पुष्पित वाणीको खूब बढ़ा-चढ़ा करके बखानकर लोगोंको कथा सुनाते हैं; भ्रमाते-भुलाते हैं। अविचारी मनुष्य भी उन्हींके रोचक-भयानकादि शब्द सुन-सुन कर गुरुवालोगोंके जालोंमें फँस जाते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, यह मनुष्य पदमें सारासारका विवेककर जो पारख-पदको जान जाते हैं, सोई पारखी सन्तोंके सत्य निर्णयके वचन सारशब्द सदा प्रमाण करके मानने योग्य है, पारखी सन्त ही सदा इस पदको परखा करते हैं ॥

देखे बिना ही, परीक्षा किये बिना ही सुनी-सुनाई बातको दृढ़ करके और पुस्तकोंको पढ़कर वह देश=सत्यलोक, स्वर्गादि नाना लोक, देवता, इश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिकी बात बढ़ा-चढ़ा करके जो कहते हैं, सो कूर=कपटी, छली, धूर्त ही हैं। क्योंकि, आप-अपने तो इन्द्रियोंके विषय भोग-रूप खारी खाते है, और कपूरकी नाईं ब्रह्मज्ञान आदि नाना तरहके उपदेश देते फिरते हैं। सो वे बेपारखी ठग हैं, ऐसा जानना चाहिये॥ शून्य अधरमें पर्वत=ब्रह्माण्डमें सुमेरु पहाड़पर स्वर्ग, वैकुण्ठ, सत्यलोक आदि अनेक लोक हैं। वहाँपर हर=परमात्मा परमेश्वर सत्यपुरुषादि कर्त्ता पुरुष रहते हैं। उनकी प्राप्ति होनेसे ही जीवोंकी गति-मुक्ति होती है, इत्यादि रोचक काल्पत वाणी गुरुवालोगोंने सुनाया, तब सब भावुक नरजीवोंका मन उस तरफ बढ़ा, वहाँ लोक-लोकादिमें जानकी इच्छा तीव्र हुई। तो कर्म, उपासनादि साधना नाना उपाय करके काठके घोड़ापर सब चढ़, संसाररूपी गाँवमें विभिन्न मत-पन्थमें बैठे; और मनःकल्पनाके घोड़ापर आरूढ़ हो करके उस लोकादि गाँवमें जाकर बैठना चाहते हैं। अब विचार करिये, यदि वह लोकादि सत्य होता, तो सबको भी प्रत्यक्ष दिखाई देता, और सब कोई वहाँपर सदेह जा भी सकते थे। परन्तु, वह तो झूठा गप्प, भ्रम मात्र है। फिर कहो तो भला! कैसे कोई वहाँ जा सकेंगे? कदापि नहीं जा सकेंगे। यदि फूलका बिरवा सच्चा होगा, उसमें फूल खिले होंगे, तभी तो भँवरा रस चूस करके खा सकता है; और कहीं कागजके फूल हो, तो क्या उससे रस आता है? कदापि नहीं आ सकता है। फूलके समान स्वर्गादि तो कुछ भी नहीं ठहरता है। उसका साक्षात्कार हुए बिना भौंरे=भावुक नरजीव अनुभवसे सुखादिका अच्छा रस लेना चाहते हैं, तो कहाँसे, कैसे लेंगे? उस बिरवाका नाम तो कहो? बिरवा कौन है? नाम क्या है? ब्रह्म, आत्मा, परमेश्वर आदि यह नाम तो कल्पित शब्द मात्र ही है। उनके रूप या स्वरूपका तो कहीं ठिकाना भी नहीं है। अब योगी, ज्ञानी, भक्त तथा मतवादी लोग नाना साधनाएँ करके सत्यलोकादिमें जाना चाहते हैं, तो उनकी इच्छा कैसे पूर्ण होगी? बिना पारख वे भ्रमिक नरजीव जड़ाध्यासी होकर यही संसारमें ही चौरासी योनियोंमें भ्रमण करते रहेंगे ॥

इसप्रकारसे बीजक प्रमाणसे सत्य निर्णय करनेपर कहीं अन्यत्र सत्यलोकादि कोई लोक और सत्यपुरुष आदि कोई कर्त्ता मानना असिद्ध कल्पना ही ठहरता है। अब सच्चा सत्यलोक कौन है? कहाँपर है? सो उसके बारेमें भी निर्णय करके यथार्थ कहा है; सुनिये! पञ्चग्रन्थीमें पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेबने लिखा है:—

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ९२ ॥ टकसार ॥ ❀ ॥ चौपाईः— ॥ ❀ ॥

"ब्रह्मादिक सनकादिक जेते । पीर पैगम्बर औलिया तेते ॥ ५ ॥
बूड़े भवजल मायाके चेरा । गहहु शरण दृढ़ परख सबेरा ॥ ६ ॥
आशा इन्ह परपञ्च न कीजै । जीवन जन्म सफल करि लीजै ॥ ७ ॥
विघ्न कोई नहिं कष्ट अपारा । जाते सुख साहेब दरबारा ॥ ८ ॥
शरण समान करहिं प्रभु अपना । जन्म मरणके मिटे कल्पना ॥ ९ ॥
सत्यलोक सुखसागर सोई । प्रभु शरणागत पारखी जोई ॥ १० ॥
सो सत्यलोक करहु विश्रामा । आश तजहु यमरायके ग्रामा ॥ ११ ॥

साखीः— प्रभु शरणागत परख दृढ़ । सत्यलोक परवान ॥ सन्तत जीव विलास है । झूठा काल गुमान ॥ ३११ ॥"

देखिये ! इसमें कितनी स्पष्ट रीतिसे दर्शाया है । पारखी सन्तोंके ऐसे सत्य निर्णयके वचन होते हैं । ऐसे ही गुरुमुख निर्णय मुमुक्षुओंके हितकारी होते हैं । सोई सत्य निर्णयके वचनको मानना चाहिये । परम पूज्य पारखी श्रीसद्गुरुको ही प्रभु, गरीब प्रवर, दीनबन्धु, बन्दीछोर इत्यादि शुभ नामोंसे कहा जाता है । इसमें अनुमान-कल्पनाका तो लेश मात्र भी नहीं है । प्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पारख प्रकाशी 'आदिगुरु' तो हो ही गये हैं । अब वर्तमानमें रहनी-रहस्य संयुक्त सोई पारख बोध दाता स्थितिवान् जो पारखी सन्त मौजूद हैं, आप प्रत्यक्षमें सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सच्चे अनुयायी हैं । अतः आप पारखी सन्त ही सद्गुरुरूपमें जिज्ञासुओंके लिये परम पूज्य, माननीय हैं । आपके ही शरणागत होकर सत् शिक्षाको धारण करनेसे नर जीवोंका हित-कल्याण या मुक्ति होती है । क्योंकि, प्रभु पारखी श्रीसद्गुरु अपनी शरणमें आनेवालेको निज समान बोधवान् कर देते हैं । कल्पना और विषयाध्यास मिट जानेसे जीव जन्म-मरणसे भी छूट जाते हैं । पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुके जो शरणागत होते हैं, वे काल-जालोंसे बच जाते हैं । सत्सङ्गकी भूमिका जो है, सोई तो प्रत्यक्षमें सत्यलोक सुखका सागर समान स्थिति होनेकी जगह है । इसवास्ते सोई सत्सङ्ग धाममें श्रीसद्गुरुके समीप सच्चा सत्यलोकमें विश्राम करो ! और यम = गुरुवालोगोंने कल्पना करके मान रक्खा हुआ शून्य आकाशके ऊपरमें सत्यलोकादि ग्राममें जानेकी आशा-आसक्ति और भ्रमादिको परख करके परित्याग करो ! क्योंकि, पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुके शरणागत होकर पारखबोधको दृढ़ करना, यही यथार्थ सत्यलोकका निवास है । सोई यथार्थ होनेसे प्रामाणिकरूपमें मानने योग्य है । वहाँपर सदा सत्सङ्गमें पारख विलास करते रहनेसे जीवकी स्थिति हो जाती है; और कल्पित मान-गुमान सब तो झूठा कालका जाल है ॥

अतएव अभी मौजूद पारखी साधु-गुरु ही तरण-तारण हो करके जीवोंके बन्धन छुड़ाते हैं । पूर्वमें विदेहमुक्त हुए सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा पारखी श्रीसद्गुरु जो विदेहमुक्त हो गये हैं, वे कोई भी किसीके बन्धनको छुड़ानेके लिये कदापि कभी कहीं देह धारण करके पुनः नहीं आते हैं । क्योंकि, स्थूल-सूक्ष्मादि सब सम्बन्ध जब देहान्तमें उन विदेहमुक्त जीवका छूट गया, फिर वे कैसे, क्यों देह बन्धनमें आवेंगे ? देह रहे तक उन्होंने सत्य पारख बोधका प्रचार किया, अधिकारियोंको पूर्णरूपसे बोध कर दिया, सोई सिलसिला, बोधका प्रवाह अटूटरूपसे पारखी सन्तोंकी परम्परासे चला ही जा रहा है; और उसीप्रकारसे चलता ही रहेगा । इसकारणसे मिथ्या कल्पनाको छोड़ करके सत्यन्यायसे सारको ग्रहण करना चाहिये । पारख बोध प्रकाशी श्रीसद्गुरुका गुणानुवाद गाना, महत्त्व मानना, बोध ग्रहण करना तो सत्य कर्त्तव्य ही है । परन्तु, अभी वर्तमानमें मौजूद पारखी साधु-गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्ग न करके पूर्वमें हुए सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब आदि महापुरुषोंके नाम मात्र जपकर फोटो आदि नकली रूपमात्रका ध्यान करके मुक्तिकी चाहना करना, सो भी धोखा अविवेक ही है । क्योंकि, इसके बारेमें श्रीसद्गुरुने स्वयं ही चेतावनी दी है । सुनिये ! बीजक, शब्द— ५० में कहा हैः—

"पण्डित बाद वदे सो झूठा ॥ १ ॥ रामके कहै जगत गति पावै । खाँड़ कहै मुख मीठा ॥ २ ॥ पावक कहै पाँव जो डाहै । जल कहै तृषा बुझाई ॥ ३ ॥ भोजन कहै भूख जो भाजै । तो दुनियाँ तरि जाई ॥४॥ नरके सङ्ग सुवा हरि बोलै । हरि परताप न जानै॥५॥ जो कबहीं उड़ि जाय जङ्गलमें।तो हरि सुरति न आनै ॥ बिनु देखे बिनु अर्सपर्श बिनु।नाम लियेक्या होई?॥७॥धनके कहै धनिक जो होवै।निर्धन रहै न कोई ॥८॥"

इत्यादि; जब रामके कहने मात्रसे कोई गति-मुक्ति नहीं पा सकते हैं, तब कबीर-कबीर, गुरु-गुरु आदि शब्द मात्र ही उच्चारण करके कहनेसे भी किसीकी गति-मुक्ति होनेकी आशा नहीं है। इस बारेमें शुद्ध रहनी-रहस्य धारण करनेके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें कहा है:—

साखी:-"साखी कहै गहै नहीं । चाल चली नहिं जाय॥ सलिल धार नदिया बहै। पाँव कहाँ ठहराय॥७९॥ कहन्ता तो बहुते मिला । गहन्ता मिला न कोय ॥ सो कहन्ता बहि जान दे । जो न गहन्ता होय ॥८०॥ जैसी कहै करै जो तैसी । राग द्वेष निरुवारे ॥ तामें घटै बढ़े रतियो नहिं । यहि विधि आपु सँवारे॥२५७॥ आपा तजै हरि भजै । नख सिख तजै विकार ॥ सब जीवनसे निर्वैर रहै । साधु मता है सार ॥ १३७ ॥ पछापछीके कारणे । सब जग रहा भुलान ॥ निर्पक्ष होयके हरि भजै । सोई सन्त सुजान ॥१३८॥" [साखीमें हरि भजै = माया, गुरुवा, कल्पना, स्त्री, विषयादिको परित्याग करना याउस तरफसे भागनेके लिये कहा है; और सब भाव समझनेके लायक सरल है ॥] और पञ्चग्रन्थी मानुषविचारमें कहा है:—

"मानुष बुद्धि दुर्लभ संसारा । कोई जानै जाननहारा ॥ १६ ॥
विचार शील दया है वीरा । चारि रीति हैं मानुष केरा ॥ १९ ॥
जो चारिउ विधि पूरा होई । सबहीं बात सुधारै सोई ॥ मानुषविचार-३, चौपाई-२० ॥
मृतक शरीर नाश सब भाँती । तेहि अपनाय कौन कुशलाती॥ मानुषविचार-६, चौपाई-७७ ॥
जेहि विधि कार्य जीवको होई । निर्णय वाक्य उचारै सोई॥ मानुषविचार-८, चौपाई-१०६ ॥
साँचा साहेब सेवा कीजै । भली प्रकार सबै जँच लीजै ॥ मानुषविचार-१०, चौपाई-१३५॥
कपट कुटिलता काल नशाई । सत्य विचार रहै लौलाई ॥ मानुषविचार १२, चौपाई-१५१॥
जौनि भाँति जीव कारज होई । लाज मिटाय करै दृढ़ सोई॥"मानुषविचार१२, चौपाई-१५२॥

साखी:— जो तू आया जगतमें । तो ऐसा करि लेहु॥ कर साहेबकी बन्दगी । भूखेको कछु देहु ॥ १४ ॥

तथा बीजक साखीमें कहा है:—

साखी:— मानुष तेरा गुण बड़ा । मांस न आवै काज ॥ हाड़ न होते आभरण । त्वचा न बाजन बाज॥१९९॥
साधू होना चाहिये । पक्का होयके खेल ॥ कच्चा सरसों पेरिके । खरी भया नहिं तेल ॥ ८०॥

इसमें मुक्तिके लिये पुरुषोंको सच्चे टकसारी भेषधारी त्यागी साधु होनेके लिये कहा है।

गुरुबोध, पञ्चग्रन्थीमें कहा है:—

दोहा:— सत्य भेष सत्पद सहित । ठहरै अस्ति स्वरूप ॥ ते अधिकारी पारखी । साँचे गुरुमत भूप ॥३६३॥ रहनि गहनि सत्य भेषके । हंस दशा शुद्ध होय ॥ गुरु वाणी निर्णय सहित । लखै अपन पद जोय ॥३६४॥

टकसार, पञ्चग्रन्थी साखीमें कहा है:—

'सन्तत सुख है पारखमें।साधन यतन विनाश॥भूलि भटकि मति जाहु जिव।विविधि कर्मके फाँस॥३२८॥'

"रहहु सदा पारख हुशियारा । नाशक नष्ट सदा व्यौहारा ॥ १८९५ ॥
नष्ट कला नाशक पहिचानी । फाँस गाँस मेटहु बिलछानी ॥ १८९७ ॥
रहस दयाल रहहु लौ लाये । आश गाँस छूटे पारख पाये ॥ १८९८ ॥
जाने जनावै पारख सोई । लहत शरण सुख जीवहि होई ॥" चौपाई भाग- १००, टकसार॥

इत्यादि प्रकारसे पञ्चग्रन्थीमें पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेबने पारख निर्णयका सुन्दर रीतिसे वर्णन करके उपदेश दिया है। एक प्रकारसे तो मूल बीजककी संक्षिप्तरूपसे विस्तृत टीका वा टिप्पणीके समान ही पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थकी रचना हुई है। परन्तु, इसमें और भी बहुत कुछ बात

प्रसङ्गानुसार दर्शाया गया है। सत्यज्ञानके जिज्ञासुओंके लिये तो यह सद्ग्रन्थ बड़ा लाभदायक परम उपयोगी है। "श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, स्थान— नागझिरी, बुरहानपुर" में आचार्य श्रीहंससाहेबके समयसे लेकर अभी वर्तमान तक गुरुमुख द्वारा "मूल बीजक" और पञ्चग्रन्थी, निर्णयसार, वैराग्यशतक, श्रीकबीरपरिचयकी साखी, ग्यारह शब्दादिकी विधिपूर्वक सन्तोंमें अर्थ पढ़ाई यथार्थ निर्णयकी रीतिसे परम्परासे चली ही आ रही है। यह बात कबीरपन्थके सन्त समाज-भरमें जाहिर ही है॥

हमने पूर्णरूपसे पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थके मूलके शब्दार्थ-भावार्थको खुलासा करके इस टीकाको आदिसे अन्त तक विस्तारपूर्वक सन्तोंमें अर्थ पढ़ाईकी चालू रीतिसे लिखकर दर्शा करके समाप्त किया है। आचार्य सद्गुरु श्रीकाशीसाहेबजीने समग्र पञ्चग्रन्थीके कठिन-कठिन स्थलोंकी टिप्पणी तथा चारों लगनियाँकी मुख्य सार संक्षिप्त टीका भी लिख रक्खा था। सो उसीके सम्पूर्ण आधारसे और गुरुमुख अर्थ पढ़ाईकी स्मृतिके सहायतासे यह मूल पञ्चग्रन्थीकी टीका अच्छी तरहसे लिखी जा सकी है॥

प्रथम ग्रन्थः पञ्चकोशके विज्ञानमय कोश वर्णनमें— ५ कोश, ५ देह, ५ आश्रम इत्यादि प्रकारसे ५ अभाव तक पचास पञ्चकोंका वर्णन हुआ है। प्राचीनकालसे ही उसप्रकारकी मानन्दी गुरुवालोगोंमें होती चली आ रही है। उसके लिये पचास श्लोकोंका प्रमाण यथास्थान हमने लिख दिया है। वे श्लोक "श्रीपद्मपुराणे सिद्धान्तसारे कपिल ऋषि सम्वाद" रूपमें पाँच अध्याय तक "कपिल गीता" नामसे अलग ग्रन्थ छपी है; उसके द्वितीय अध्यायमें उक्त श्लोक लिखा है, सो जान लीजिये!॥

दिनाङ्क १। ७। १९४२ ईसवी सन्में हमने आचार्य सद्गुरु श्रीलालसाहेबजीसे पञ्चग्रन्थीकी टीका गुरुमुखसे कही हुई अर्थ श्रवण करके पढ़ना प्रारम्भ किया था, सो दिनाङ्क २४। १०। १९४२ ईसवी तकमें भलीभाँति पढ़ करके समाप्त भी किया था। इस बीचमें स्थानके कार्य विशेषसे ३७ दिन तक पाठ अर्थ-पढ़ाई नहीं हुई थी। इसतरहसे दो महीना सत्रह दिनोंमें हमने समग्र पञ्चग्रथीसे लेकर पारख विचारके अन्त तक अर्थ पढ़ करके सम्पूर्ण किया था। सोई पारखी श्रीसद्गुरुका सत्यज्ञान आज लेखबद्ध करके इस ग्रन्थमें एकत्रित कर दिया हूँ! अब इस टीकाके आधारसे पञ्चग्रन्थीके अर्थ पढ़ने-पढ़ानेवाले विद्यार्थी सन्त-महात्माओंको सुगम एवं मार्ग चलनेमें सरल हो जायगी। यदि समयान्तरमें मूल ग्रन्थके पूर्ण मर्मज्ञ पारखी सन्त मुख्य अध्यापककी अनुपस्थिति हुई, तो इस टीकाके आधारसे अधिकारियोंने अर्थ पढ़ने और पढ़ानेका काम चला लेवें। सद्ग्रन्थोंकी अर्थ पढ़ाईकी प्रणाली बन्द होने न देवें। फिर तो श्रीसद्गुरुकी दयासे सत्पुरुषार्थी जनोंको सब भेद आप-से-आप खुलता ही जायगा, यह निश्चय है: सो जान लीजिये!॥

दोहाः— युग सहस्र वसु सम्वत। एकादशि शुदि जेठ॥ पूर्ण भूमिका रामस्वरूप। शुक्रवार दिन पेठ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी सटीककी— आदि भूमिका वर्णनम् समाप्तम्॥ ❀ ॥

टीका निर्मित स्थानः—
श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, स्थान-नागझिरी,
बुरहानपुर, जिला- निमाड़ (खण्डवा)॥
[दिनाङ्क— १५। ६। १९५१ ईसवी सन्।]

लेखकः—

—रामस्वरूपदास।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यसार निर्णय कथन वर्णन ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

सद्गुरु पद त्रय बन्दगी । पारख ज्ञान प्रकाश ॥ बन्दीछोर कबीर गुरु ! निर्भय मुक्त निराश ॥ १ ॥
सत्य पदारथ जीव ही । निर्णय करिके देख ॥ पारख ज्ञान स्वरूप बिन । सत कोइ मान अलेख ॥२॥
काम क्रोध मद लोभमें । भूला सकल जहान ॥ विषय अध्यास बढ़ायके । भव बन्धन जहँड़ान ॥ ३ ॥
विषय विकार न छूटई । खानि जाल विस्तार ॥ पचि पचि मरते ताहिमें । आशा तृष्णा धार ॥ ४ ॥
रक्षक पालन सत्य नहीं । अलत सदा परिपुष्ट ॥ परपक्षि सुख चाहहिं । कैसे सुख हो कुष्ट ॥ ५ ॥
निशिदिन स्वारथ कारणे । दुःख औरनको देत ॥ पाप कमाई लाभ नहिं । करते नहिं कुछ चेत ॥ ६ ॥
संसारी पशुवत सदा । विषय भोगमें मस्त ॥ पाप पुण्य मानै नहिं । जड़ाध्यासमें ग्रस्त ॥ ७ ॥
मन वच कर्म सत त्यागकर । झूठहि झूठा लीन ॥ सो भटकेयम जालमें । निज गति दुःख नहिं चीन ॥८॥
कोइ लगे परमार्थमें । साधु सन्त विरक्त ॥ नाना मत पथ गहि चले । निज निज मत अनुरक्त ॥९॥
सत्य गहे ते नीक है । पर नहिं सत पहिचान ॥ कल्पित कर्त्ता मानिके । गुरुवा सकल भुलान ॥१०॥
पक्षपात तजना कठिन । पक्ष गहै ते अन्ध ॥ पक्ष लिये सत बोध नहिं । पक्ष तजे निर्बन्ध ॥ ११ ॥
मान बड़ाई ईरषा । परमारथके रोग ॥ रोग लगे ते शोगमें । देखा बिरल निरोग ॥ १२ ॥
ईश ब्रह्म परमातमा । मानन्दो अनुमान ॥ देवि देवता कल्पना । परखेते बिलगान ॥ १३ ॥
अहं बड़ाई कठिन है । सहज तजा नहिं जात ॥ अहं गिरावे हंसको । अहं तजे कुशलात ॥ १४ ॥
साधन मुक्ति त्याग है । तजना मुश्किल राग ॥ सर्व त्याग बिन मुक्ति नहिं । मुक्ति दृढ़ वैराग ॥ १५ ॥
विषय राग बन्धन अहै । भेष राग है विघ्न । सकल राग मिटायके । निजपदमें निर्विघ्न ॥ १६ ॥
षट् पशुधर्म सुधारिये । त्याग करो दश दोष ॥ सद्गुण आठहि धारिये । मानुष साँचा होश ॥ १७ ॥
सेवक हो सेवा करै । गुरु भक्ति चित माँहि ॥ सन्तन सत्सङ्गत करै । सत श्रद्धा वर्त्ताहिं ॥ १८ ॥
साधु हो साधन करै । गुरु आज्ञा नित पाल ॥ साधु गुरु अनुकूल रहि । काल जालको टाल ॥ १९ ॥
मर्यादा पालन करै । सबको उचित है सोय ॥ मर्यादाके भङ्गसे । हानिहि सबको होय ॥ २० ॥
प्रेम भाव समता सहित । जगमें हो वर्त्ताव ॥ सुख शान्तिसे सर्वदा । सहजे समय बिताव ॥ २१ ॥
पारखी गुरु सतसङ्ग करि । समझे सबके भेद ॥ तजि असार सत सार गहै । मिटै सकल जग खेद ॥२२॥
सद्ग्रन्थ नितप्रति पढ़े । ताको करै विचार ॥ निर्णय करि सत्सङ्गसे । सार बोध हिय धार ॥ २३ ॥
देखा सुना मिटायके । करै स्थिर नित वृत्ति ॥ नित अभ्यास बढ़ायके । होवै अन्त निवृत्ति ॥ २४ ॥
निज स्वभाव नित देखिये । तामें करो सुधार ॥ मन विकार मिटायके । हंस रहनि हिय धार ॥ २५ ॥
रहनी धारणके लिये । रहिये सन्त समाज ॥ देखे सुने सीखे बिना । रहनी होय न काज ॥ २६ ॥
राग द्वेष निवारिके । करिये नित सत्सङ्ग ॥ उत्तर प्रश्न विचारते । शील दयाको अङ्ग ॥ २७ ॥
जिज्ञासुके प्रश्न हो । उत्तर सरल सुबोध ॥ यहि विधिहोवे बोध जो । सो हितकारी शोध ॥२८॥
प्राचीन साधु सद्गुरु ! जस परिपाटी कीन्ह ॥ तस चलना सबको चहो । सार मताको चीन्ह ॥२९॥
उपदेश भेष गुरुदेवको । पारख है सिद्धान्त ॥ पुनि पुनि बीजक पाठ पढ़े । सकलो नशि हैं भ्रान्त ॥३०॥
बीजक पञ्चग्रन्थिको । पढ़िये गुरुमुख अर्थ ॥ सब रहस्यका ज्ञान हो । पारखसे परमार्थ ॥ ३१ ॥
बीजक सन्ध्यापाठको । नित प्रति करिये पाठ ॥ गुरु गुण गाई सर्वदा धारण सद्गुण आठ ॥ ३२ ॥
पारख ज्ञान सर्वोपरि । बीजक सद्गुरु बोध ॥ बीजकके अभ्यासते । होवै पारख बोध ॥ ३३ ॥
स्वयं स्वरूप पारख । अपरोक्ष हो जब बोध ॥ रागद्वेष विकार सकल । मिटै सदास्थितिशोध ॥ ३४ ॥
याते सत पुरुषार्थ करि । निज स्वरूपका ज्ञान ॥ रहनि गहनि सुधारिके । पारखपद ठहरान ॥ ३५ ॥
गाफिल कभी न होइये । सन्तो ! करो विचार ॥ घटमें विघ्न अनेक हैं । सदा रहो हुशियार ॥ ३६ ॥
जड़ाध्याससे बन्धन । अध्यासरहित जिवमुक्त ॥ पारखकरि अध्यास तजि । हंस सो जीवन्मुक्त ॥ ३७ ॥
गुरु साधु आधार ले । रहो चलो जग माँहि ॥ गुरुमति मुक्ति ठिकान है । मनमति बन्धन माँहि ॥३८॥
रामस्वरूपदास अब । मुक्ति स्थिति ठहराव ॥ दया कीन्ह सद्गुरु प्रभु ! पारख बोध लखाव ॥ ३९ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥*॥ अथ सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी सटीकका सूचीपत्र वर्णन ॥*॥

॥ ❀ ॥ विषयानुक्रमणिका, प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
	ग्रन्थ छपाईकी सहायता प्रकाश	३
	आदि भूमिका वर्णन	६
	विषयानुक्रमणिका वर्णन	२७
	॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत श्रीसद्गुरु पद वन्दना, प्रथमारम्भः मङ्गलाचरणम् ॥ ❀ ॥	
(१–८ साखी)	बन्दौं प्रथम चरण गुरु	१
(९–२२ साखी)	बीजकके सतभाव लै	२
	श्रीसद्गुरवे नमः का खुलासा अर्थ	३
	अथ लिख्यते मूल पञ्चग्रन्थी	७
	प्रथम अनुसार–परख विज्ञास	७
	पञ्चकोश–व्याख्या—	८
	॥ ❀ ॥ श्रीरामरहससाहेब कृत मङ्गलाचरणम्–॥ ❀ ॥	
(१–साखी)	साँचा शब्द बताइया	८
	॥ ❀ ॥ अथ पञ्चकोश प्रथम ग्रन्थका उपोद्घात (विषय) वर्णन प्रारम्भः ॥ ❀ ॥	
(१–छन्द)	अन्नमय अरु प्राणमय	९
(१–दोहा)	पशुवा लोक अरु वेदके	१२
	व्याख्या–दृष्टान्तः—	१३
	॥ ❀ ॥ अथ प्रथम ग्रन्थः पञ्चकोश प्रारम्भः ॥ ❀ ॥	
	[अन्नमय कोश वर्णन, प्रथमखण्ड, चौकड़ी १, चौपाई १८]	
(१ चौ०)	अन्नमय कोशको सुनो	१५
	टिप्पणीः—ब्रह्मचर्य आश्रमके बारेमें शास्त्रोक्त प्रमाण	१६
(२–छन्द)	थाने चतुर्दश देव	२१
(२–दोहा)	काल शब्द औ सन्धिमें	२१
	॥ ❀ ॥ अथ द्वितीय प्राणमय कोश वर्णन ॥ ❀ ॥	
(३–छन्द)	प्राणधारी जीव जेते	३२
(३–दोहा)	सूक्ष्म देह जानि निजु	३३
	[द्वितीय खण्ड, चौकड़ी २, चौपाई १८]	
(१–चौ०)	कोश प्राणमय सूक्ष्म	३४
	टिप्पणीः—गृहस्थाश्रमके बारेमें शास्त्रोक्त प्रमाण	३४
(४–छन्द)	ज्ञान इन्द्री पाँच औ	४५
(४–दोहा)	स्थूल सो सूक्ष्म अङ्ग है	४७
	॥ ❀ ॥ अथ तृतीय मनोमय कोश वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१–छन्द)	कोश मनोमय रङ्ग	४८
(५–दोहा)	मनोमय कोश विस्तार बहु	५०
	[तृतीय खण्ड, चौकड़ी ३, चौपाई १८]	
(१–चौ०)	कोश मनोमय कारण	५१
	टिप्पणीः—वानप्रस्थाश्रमके बारेमें शास्त्रोक्त प्रमाण	५१
(६–छन्द)	मनोमय कोश कारण देह	६२
(१–सोरठा)	इन्ह अञ्जन संयुक्त	६४
	॥ ❀ ॥ अथ चतुर्थ ज्ञानमय कोश वर्णन ॥ ❀ ॥	
(७–छन्द)	ज्ञानमय यह कोश	६५
(६–दोहा)	ज्ञानमये यह कोशमें	६६
	[चतुर्थ खण्ड, चौकड़ी ४, चौपाई १८]	
(१–चौ०)	ज्ञानमय कोश महाकारण	६७
	टिप्पणीः—संन्यास आश्रमके बारेमें शास्त्रोक्त प्रमाण	६७
(८–छन्द)	इमि ज्ञान कोश बखान	७८
(२–सोरठा)	ऐसो निर्मल ज्ञान	८०
	॥ ❀ ॥ अथ पञ्चम विज्ञानमय कोश वर्णन ॥ ❀ ॥	
(९–छन्द)	अब सुनहु सन्त ! समान	८१
(७–दोहा)	परमहंस मत प्रगट	८२
	[पञ्चम खण्ड, चौकड़ी ५, चौपाई २१]	
(१–चौ०)	विज्ञान कोशको सुनो	८३
(१०–छन्द)	है नहिं कछु तहाँ नहिं सम्भव	९७
(८–दोहा)	पञ्चकोश मत प्रगट	९९
(९–दोहा)	झाँई मूल विकार है	१००
(१०–दोहा)	काल सन्धि औ झाँई	१०१
(११–दोहा)	तत्त्वमसि अरु सोहं	१०१
(१२–दोहा)	आदि सोई सोइ मध्य है	१०२
(१३–दोहा)	जीव दुःखी चाहै	१०३
(१४–दोहा)	नाना मति निज	१०४
(१५–दोहा)	बिन गुरु पारखके	१०४
(१६–दोहा)	बन्दीखान कलेशके	१०५
(१७–दोहा)	सुखको लेस दिखायके	१०६
	॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत पञ्चकोश समाप्तिका पद्य ॥ ❀ ॥	
(१–६ दोहा)	सद्गुरु कबीर पारख	१०७
(१–छन्द) (१–सोरठा) (९–१७ साखी)		१०७
(१८–३७ साखी)	प्राणमय दुइ छन्द है	१०८
	॥ ❀ ॥ इति प्रथम ग्रन्थः पञ्चकोश समाप्तः ॥ ❀ ॥	

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
	॥❀॥ अथ द्वितीय ग्रन्थः समष्टिसार प्रारम्भः ॥❀॥	
	॥❀॥ टीकाकार कृत श्रीसद्गुरु पद वन्दना ॥❀॥	
(१–३ दोहा)	श्रीगुरु पारखी धन्य हो !	१०६
(४–५ छन्द) (६–सोरठा) (७–१० साखी)		१०६
॥ ❀ ॥ श्रीरामरहससाहेब कृत मङ्गलाचरण—॥ ❀ ॥		
(१–साखी)	वारों तन मन धन सबै	११०
(२–साखी)	संसारी पारख बिना	१११
॥ ❀ ॥ समष्टिसार ग्रन्थका उपोद्घात वर्णन ॥ ❀ ॥		
(३–साखी)	पेड़ सन्धि सन्देहके	११२
(४–साखी)	बास मतावै रस चखै	११३
॥ ❀ ॥ समष्टिसार ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ❀ ॥		
[चौ० खण्ड १ । चौपाई १३ । साखी २ ।]		
(१–चौ०)	रामरहस पूरण संसार	११४
(५–साखी)	भरमिक भरम	१२०
(६–साखी)	सन्धि आये माकाशके	१२०
[चौ० खण्ड २ । चौपाई १२ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, २०)	प्रथमहि सूक्षम भया	१२१
(१२–चौ०, ३१)	क्लीं हीं ऐं सों सेव	१२६
(७–साखी)	आपु निरञ्जन कर्ता	१२६
[चौ० खण्ड ३ । चौपाई १३ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, ३३)	जहाँलों त्रिपुटीके हैं	१२७
(८–साखी)	मृतुक सनेही तीनि गुण	१३३
[चौ० खण्ड ४ । चौपाई १४ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, ४७)	तुरियातीत नहिं मान	१३४
(९–साखी)	द्वैत अद्वैत न भेद	१३९
[चौ० खण्ड ५ । चौपाई २६ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, ६२)	आदि अन्त सोइ आपै	१४०
(१०–साखी)	थीर पवन अरु अनल	१४८
[चौ० खण्ड ६ । चौपाई १४ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, ८९)	नीर बीज पृथिवी	१४९
(११–साखी)	स्वतः स्वभाव प्रपञ्च	१५५
[चौ० खण्ड ७ । चौपाई २१ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, १०४)	प्रलय चार चहुँ कहों	१५५
(१२–साखी)	कोइ उलटै कोइ पलटै	१६४
[चौ० खण्ड ८ । चौपाई १९ । साखी २ ।]		
(१–चौ०, १२६)	स्वतः स्वभाव सनातन	१६४
(१३–साखी)	चहुँ कला किये	१७१
(१४–साखी)	कारण-तजि कला	१७२
[चौ० खण्ड ९ । चौपाई २३ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, १४७)	सोई कला ले इन्द्री	१७२
(१५–साखी)	अपनी अपनी विषय	१८०
[चौ० खण्ड १० । चौपाई ३१ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, १७१)	ज्ञान इन्द्रीको इहै	१८१
	पाँच तत्त्वोंके शरीरमें वासस्थानादि वर्णन	१८५
(१६–साखी)	पाँच तत्त्व पचीस	१९२
[चौ० खण्ड ११ । चौपाई २५ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, २०७)	नाड़ी श्वासाके जो	१९३
	टिप्पणीः—चौरासी सिद्धोंका नाम	१९७
(१७–साखी)	एक शून्य संग्रह	२०५
[चौ० खण्ड १२ । चौपाई १५ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, २३३)	श्वासा भेद स्वरोदय	२०६
(१८–साखी)	अन्ध धुन्दमें परि रहा	२१३
	टिप्पणीः—एक अन्धेका दृष्टान्त	२१४
[चौ० खण्ड १३ । चौपाई २८ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, २५९)	योग युक्ति जे कमल	२१६
(१९–साखी)	चिह्न चक्र नर नारीके	२२५
[चौ० खण्ड १४ । चौपाई ११ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, २७८)	चारि देव रेखा सो	२२६
(२०–साखी)	चारि अवस्था चारि	२३०
[चौ० खण्ड १५ । चौपाई १९ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, २९०)	इन्द्री कर्म इन्द्रीके	२३१
(२१–साखी)	महाजाल जन्माल है	२३६
[चौ०ख ण्ड १६ । चौपाई २३ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, ३१०)	दहिने नर बायें सो	२३८
(२२–साखी)	पचीस डार परपञ्च	२४८
	व्याख्या—पचीस मतवाद वर्णन	२४९
[चौ० खण्ड १७ । चौपाई १८ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, ३३४)	सन्धि अव्यक्त अण्ड	२५१
(२३–साखी)	अस्मदादि जीव	२५१
[चौ० खण्ड १८ । चौपाई २० । साखी २ ।]		
(१ चौ०, ३५३)	पनिहारी सब नदिया	२६०
॥ मुस्लिमोंके मानन्दी चार मुक्ति आदि वर्णन ॥		
(२ चौ०, ३५४)	अलफ एक अल्लाह	२६१
(२४–साखी)	रामरहस पारख करै	२६६
(२५–साखी)	नदी उतरै नाव उतरै	२७०
॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत अन्त वन्दनादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१–साखी)	ग्रन्थ द्वितीय पूरण	२७६

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(२–३ कवित्त) (४–छन्द) (५–सवैया) (६–१७–साखी) (१८–४३ साखी) पञ्चग्रन्थि बीजक		२७४
॥ ❀ ॥ इति द्वितीय ग्रन्थः समष्टिसार समाप्तः ॥ ❀ ॥		
॥❀॥ अथ तृतीय ग्रन्थः मानुषविचार प्रारम्भः ॥❀॥		
॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत श्रीसद्गुरु पद वन्दना ॥ ❀ ॥		
(१–साखी) सद्गुरु कबीर पूरण		२७५
(१–छन्द) (१–कवित्त) (१–छन्द) (५–८–दोहा) (६–१० सोरठा) लिखौं मति अनुसार		२७६
(११–दोहा) मानुष विचार ग्रन्थ		२७६
(१–साखी, [बी० सा० ३३३]) बना बनाया		२७६
[चौ० खण्ड १ । चौपाई ६ । मसला १ ।]		
(१ चौ०, २) मानुष मानुष सबै		२७७
(१–मसला) गदहा चलै स्वर्गको		२८०
[चौ० खण्ड २ । चौपाई ५ । साखी २ ।]		
(१ चौ०, ६) कपट बनौरी बहुविधि		२८१
(२–साखी, [बी० सा० १०९]) मानुष होयके		२८३
(३–साखी, [बी० सा० २८४]) रामहि सुमिरै		२८४
[चौ० खण्ड ३ । चौपाई ८ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, १६) मानुष बुद्धि दुर्लभ		२८६
टिप्पणीः—		
(१) दृष्टान्त–'सत्य पालनसे लाभः'		२८८
(२) दृष्टान्त–'विचार करनेसे लाभः'		२८९
(३) दृष्टान्त–'शील गुण धारणसे लाभः'		२८९
(४) दृष्टान्त–'दया धारणसे लाभः'		२९०
(५) दृष्टान्त–'धैर्य धारणसे लाभः'		२९१
पञ्च सद्गुण महिमा, १. सत्य,		२९२
२. विचार, ३. शील, ४. दया, ५. धीरज		२९३
॥ ❀ ॥ षट् पशु धर्म सुधार वर्णन ॥ ❀ ॥		
(६ चौ०, २१) प्रथमे पशुवत् कर्म		२९४
(४–साखी, [बी० सा० २०७]) सङ्गति कीजै		२९५
[चौ० खण्ड ४ । चौपाई १६ । साखी २ ।]		
(१ चौ०, २५) दूजे भोजन कर्म		२९६
(५–साखी) अंकुरज भछै सो मानवा		३०६
(६–साखी) जीयत जीव मुर्दा करै		३०६
[चौ० खण्ड ५ । चौपाई २० । साखी १ ।]		
(१ चौ०, ४६) तीसर मैथुम कर्म		३०७
(७–साखी, [बी० सा० १४८]) कनक कामिनी		३१७
[चौ० खण्ड ६ । चौपाई १२ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, ६७) चौथे भयको करे विचारा		३१८

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(८–साखी) जो पद एकौ थीर		३२४
[चौ० खण्ड ७ । चौपाई १३ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, ८०) पँचयें निद्राको		३२५
(९–साखी) खाया पीया अघायकै		३३१
[चौ० खण्ड ८ । चौपाई १३ । साखी ३ ।]		
(१ चौ०, ९४) छठ्यें मोह माया		३३३
(१०–साखी, [बी० सा० ३३४]) साँच बराबर		३३८
(११–साखी, [बी० सा० २७६]) बोल तो अमोल		३३९
(१२–साखी) शब्द सँभारे बोलिये		३४०
[चौ० खण्ड ९ । चौपाई ११ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, ११०) दूसर शील विचारको		३४१
(१३–साखी, [बी० सा० १९९]) मानुष तेरा गुण		३४६
[चौ० खण्ड १० । चौपाई १४ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, १२२) तीसर दया मानुष		३४७
(१४–साखी) जो तू आया जगतमें		३५३
[चौ० खण्ड ११ । चौपाई ११ । साखी २ ।]		
(१–चौ०, १३७) चौथे वीर व्यवहार		३५४
(१५–साखी, [बी० सा० २८०]) साधू होना		३६०
(१६–साखी, [बी० सा० ६५]) साँचा सौदा		३६१
[चौ० खण्ड १२ । चौपाई १२ । साखी १ ।]		
(१–चौ०, १५०) जेहि मानुष बुद्धि		३६२
(१७–साखी, [बी० सा० ३४]) बिन देखे वह		३६८
[चौ० खण्ड १३ । चौपाई १४ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, १६३) औषध पाँच राह सब		३६९
(१८–साखी) रैन समानी भानमें		३७४
[चौ० खण्ड १४ । चौपाई १५ । साखी ३ ।]		
(१–चौ०, १७८) पाँचों औषध करै		३७५
(१९–साखी, [बी० सा० ४] शब्द बिना सुरति		३८०
(२०–साखी) गुरु गुरूमें भेद है		३८२
(२१–साखी) फेर परा नहिं अङ्कमें		३८२
[चौ० खण्ड १५ । चौपाई ५ । मसला १ ।]		
(१–चौ०, १९६) यह संसार बहु वैध		३८३
(२–मसला, २०१) गुरु कीजिये जान		३८५
[चौ० खण्ड १६ । चौपाई १६ । साखी २ ।]		
(१–चौ०, २०२) वेद पुराण किताब		३८६
(२२–साखी, [बी० सा० १३८]) पछा पछीके		३९२
(२३–साखी, [बी० सा० ५]) शब्द शब्द बहु		३९३
[चौ० खण्ड १७ । चौपाई १६ । साखी ३ ।]		
(१–चौ०, २२३) खरा खोटा परखहु बहु		३९४

पद्याङ्क।	विषय।	पृष्ठाङ्क।
(२४–साखी, [बी० सा० १३२])	बलिहारी तेहि	४०२
(२५–साखी, [बी० सा० २९४])	कर बन्दगी	४०३
(२६–साखी, [बी० सा० ११२])	मानुष जन्म	४०४
(३–मसला, २४५)	अपनी देखी दूर कर	४०५
[चौ० खण्ड १८। चौपाई ११। साखी २।]		
(१–चौ०, २४६)	गुरु कामीको कृष्णहि	४०६
	निगुरा नारदका दृष्टान्त—	४०७
(२७–साखी)	गुरु गूँगा गुरु बावरा	४११
(४–मसला, २५८)	गुरुवा तो सस्ते	४११
[चौ० खण्ड १९। चौपाई १२। साखी २।]		
(१–चौ०, २५९)	साँचा साहेब सेवा	४१२
(२८–साखी)	शब्द कहै सो कीजिये	४१७
(२९–साखी)	गुरु तो ऐसा चाहिये	४१८
(५–मसला, २७४)	राम नाम सार है	४१८
[चौ० खण्ड २०। चौपाई ११। साखी २।]		
(१–चौ०, २७५)	सन्ध्या तर्पण नित नित	४१९
(३०–साखी)	ब्रह्महीको स्वरूप है	४२४
(६–मसला, २८७)	कबीरका गाया	४२४
(३१–साखी, [बी० सा० २४९])	गावै कथै	४२५
[चौ० खण्ड २१। चौपाई ८। साखी ४।]		
(१–चौ०, २८९)	सुरति समानी सब	४२७
(३२–साखी, [बी० सा० १११])	मानुष विचारा	४३०
(३३–साखी, [बी० सा० ३३])	रामहि राम	४३१
(३४–साखी, [बी० सा० २६४])	अहिरहु तजि	४३२
(३५–साखी)	अनहद अनुभव आशमें	४३३
[चौ० खण्ड २२। चौपाई १४। साखी १।]		
(१–चौ०, ३०१)	राम कृष्ण अहिरके	४३४
(३६–साखी, [बी० सा० २३१])	कृष्ण समीपी	४३९
[चौ० खण्ड २३। चौपाई ४२। शब्द चौ० २।]		
(१–चौ०, ३१६)	जगमें जेते भये बलधारी	४४०
(बी० शब्द ५७ के चौ०५–६)	सेतहि सेत	४५५
॥ ❀ ॥ प्रथम इतिहास–हरिभोंगपुरका वर्णन ॥ ❀ ॥		
[चौ० खण्ड २४। चौपाई ४६। साखी १।]		
(१–चौ०, ३६०)	हरिभोंग नगर जहाँ	४५६
(३७–साखी, [बी० सा० १७८])	ऊपरकीदोऊ गई	४६९
[चौ० खण्ड २५। चौपाई ३४। साखी १।]		
(१–चौ०, ४०७)	सब घट एक ब्रह्म सम	४७०
(३८–साखी)	यह निरणय हरिभोंग	४८०

पद्याङ्क।	विषय।	पृष्ठाङ्क।
॥ ❀ ॥ द्वितीय इतिहास–हरिभोंगपुरका वर्णन ॥ ❀ ॥		
[चौ० खण्ड २६। चौपाई ६७। साखी १।]		
(१–चौ०, ४४२)	हरिभोंग पुर पट्टन	४८१
(६७ चौ०, ५०८	सुनत बचन रोगी	४९९
(३९–साखी)	ज्यों ज्यों महिमा सुनावहीं	५००
[चौ० खण्ड २७। चौपाई ४०। साखी २।]		
(१ चौ०, ५१०)	लगन सोधि तोहि	५००
(२ चौ०, ५११)	पूछे परजा वैद्य (प्रश्न)	५०१
(५ चौ०, ५१४)	कहै वैद्य तुम (उत्तर)	५०२
(८ चौ०, ५१७)	परजा पूछे कहो (प्रश्न)	५०३
(१३ चौ०, ५२२)	वैद्य कहै तुम (उत्तर)	५०५
(१८ चौ०, ५२७)	सुनतहि परजा (प्रश्न)	५०७
(१९ चौ०, ५२८)	कहै वैद्य कोई (उत्तर)	५०७
(२० चौ०, ५२९)	महिमा औषध (प्रश्न)	५०७
(२१ चौ०, ५३०)	वैद्य कहै हुज्जत (उत्तर)	५०८
(२२ चौ०, ५३१)	बहुविधि कौल (निर्णय)	५०८
(२६ चौ०, ५३५)	पूछै शिष्य गुरुजी ! (प्रश्न)	५०९
(२८ चौ०, ५३७)	सो है परम वैद्यको (उत्तर)	५१०
(४०–साखी)	बहु विधि औषध (निर्णय)	५१४
(४१–साखी)	कोइ कोइ पूछै (प्रश्न)	५१४
[चौ० खण्ड २८। चौपाई १३९। साखी २।]		
(१ चौ०, ५५२)	सुनो शिष्य मैं (उत्तर)	५१५
(७ चौ०, ५५८)	यह उपदेश वैद्य (निर्णय)	५१७
(९ चौ०, ५६०)	कहा वैद्य सो व्यथा (प्रश्न)	५१७
(११ चौ०, ५६२)	बोले वैद्य सुनहु (उत्तर)	५१८
(२६ चौ०, ५७७)	जो कछु औषध (निर्णय)	५२२
(२९ चौ०, ५८०)	जो मन बुद्धिमें (प्रश्न)	५२३
(३३ चौ०, ५८४)	बिहँसै वैद्य (उत्तर)	५२४
(३९ चौ०, ५९०)	पूछे शिष्य (प्रश्न)	५२६
(४१ चौ०, ५९२)	बोले वैद्य (उत्तर)	५२७
(४४ चौ०, ५९५)	शिष्य सिखापन (निर्णय)	५२७
(४६ चौ०, ५९७)	परम वैद्य प्रभु (प्रश्न)	५२८
(४९ चौ०, ६००)	कहै वैद्य सुनु (उत्तर)	५२९
(५७ चौ०, ६०८)	रोगी रोग एक (प्रश्न)	५३१
(५९ चौ०, ६१०)	सुनहु शिष्य (उत्तर)	५३२
(६१ चौ०, ६१२)	बोलै शिष्य (प्रश्न)	५३२
(६३ चौ०, ६१४)	कहै वैद्य तुम (उत्तर)	५३३
(७२ चौ०, ६२३)	सुनिके बचन (निर्णय)	५३५

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(७५ चौ०, ६२६)	नहीं रोग नहिं (प्रश्न)	५३६
(८६ चौ०, ६३७)	वैद्य कहै तू निन्दक (उत्तर)	५३९
(९३ चौ०, ६४४)	मिथ्यावादी वैद्य (प्रश्न)	५४१
(९९ चौ०, ६५०)	सुनत वचन वैद्य (निर्णय)	५४३
(१०१ चौ०, ६५२)	बहुविधि औषध (उत्तर)	५४३
(१०४ चौ०, ६५५)	राजा रोगिन (निर्णय)	५४४
(१०५ चौ०, ६५६)	कहा परजा (ब्रह्मज्ञानी वचन)	५४५
(११७ चौ०, ६६८)	वचन सुनत (निर्णय)	५४८
(११८ चौ०, ६६९)	कोइ कोइ उजुर (प्रश्न)	५४९
(१२० चौ०, ६७१)	राजा कहै जगत(ब्रह्मज्ञानी कथन)	५५०
(१२३ चौ०, ६७४)	महाराजाजी ! कहो (प्रश्न)	५५१
(१२६ चौ०, ६७७)	सत चिद् आनन्द (उत्तर)	५५१
(१२९ चौ०, ६८०)	पूछे परजा सब (प्रश्न)	५५२
(१३३ चौ०, ६८४)	सुनत राव व्याकुल (निर्णय)	५५३
(१३४ चौ०, ६८५)	ऐसेहि परजा (उत्तर)	५५४
(१३८ चौ०, ६८९)	जेहि जो औषध (निर्णय)	५५५
(४२–साखी, [बी० र० सा० ५३])	तीनलोक मुवा	५५६
(४३–साखी, [बी० सा० १५४])	जाका गुरु है ०	५५७
[चौ० खण्ड २९ । चौपाई ३२ । साखी १ ।]		
(१ चौ०, ६९३)	बहुत कोलाहल ऐसो	५५८
(४४–साखी)	कपट भेष परपञ्च	५७०
[चौ० खण्ड ३० । चौपाई ८ । साखी ५ ।]		
(१ चौ०, ७२६)	जहाँ जेहि निष्ठा बीजक	५७१
(४५–साखी)	जहाँ आपा तहाँ आपदा	५७४
(४६–साखी)	उततै अन्धा आवही	५७५
(४७–साखी)	बन्धेको बन्धा मिला	५७५
	एक राजाका दृष्टान्तः—	५७६
(४८–साखी)	साधू सोई सराहिये	५७९
(४९–साखी, [बी० सा० १६९])	हरि हीरा जन	५८०
॥❀॥ टीकाकार कृत अन्त श्रीसद्गुरु पद वन्दना ॥❀॥		
(१–२१ दोहा)	बन्दौं पारखी सन्त गुरु !	५८१
॥ ❀ ॥ इति मानुषविचार ग्रन्थः प्रथम भाग समाप्तः ॥ ❀ ॥		
॥❀॥ अथ मानुषविचार ग्रन्थः द्वितीय भाग ॥❀॥		
(१–५ दोहा)	टीकाकार कृत वन्दना	५८२
॥ ❀ ॥ षड् दर्शनोंके नाम वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१–साखी)	योगी जङ्गम सेवड़ा	५८२
॥❀॥ षड् दर्शनोंका जाप वर्णन । चौ० भाग १ ॥❀॥		
(१ चौ०, २)	ॐकार ब्राह्मण उपासी	५८३

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
॥❀॥ षड् दर्शनोंके सिद्धान्त वर्णन। चौ० भाग २ ॥❀॥		
(१ चौ०, ६)	अदेव मूल श्रवणको	५८४
॥ ❀ ॥ षट् आश्रम वर्णन । चौ० भाग ३ ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १०)	गृही वानप्रस्थ संन्यासी	५८५
॥ ❀ ॥ छियान्नवे पाखण्ड वर्णन । भाग ४ ॥ ❀ ॥		
(२–साखी)	दश संन्यासी बारह	५८५
॥ ❀ ॥ चारमुक्ति वर्णन ॥ चौ० भाग ४–५ ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १३)	सालोक्य सामीप्य	५८६
	मुक्ति विषय यथार्थ निर्णय विचार वर्णन	५८९
॥ ❀ ॥ अथ सलोने शब्द ॥ चौ० भाग ६ ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, २०)	अन्धा धोबी औघट घाट	५९१
(१२ चौ०, २१)	कहहिं कबीर भोंदूके गाँव	५९७
	लाल बुझक्करके दृष्टान्त (१–२)	५९८
(३–साखी)	कबीर धूरकी यों कहैं	५९८
॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत ग्रन्थ समाप्तिका वन्दना ॥ ❀ ॥		
(१–२१ दोहा)	पारख दीन्हा बोध जिन्ह	६००
॥ ❀ ॥ इति द्वितीयभाग मानुषविचार ग्रन्थः समाप्तम् ॥ ❀ ॥		
॥ ❀ ॥ अथ चतुर्थ ग्रन्थः गुरुबोध प्रारम्भः ॥ ❀ ॥		
॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत श्रीसद्गुरु पद वन्दना ॥ ❀ ॥		
(१–३ दोहा)	बार बार वन्दन करौं	६०१
(४–छन्द) (५–६ सोरठा) (७–८ छन्द)		६०१
(९–१० साखी)	करन चहौं सद्भावसे	६०१
❀अथ ग्रन्थकर्त्ताकृत, मङ्गलाचरण,सद्गुरुपद-वन्दना❀		
(१–दोहा)	नमों नमों गुरुदेव जू !	६०२
(१–सोरठा)	मेटेउ कालको जाल	६०३
॥ ❀ ॥ अथ गुरु शतक सारनाम स्तोत्र वर्णन ॥ ❀ ॥		
[चौपाई १–२४ ॥ भाग–१]		
(१ चौ०, ३)	दीनबन्धु करुणामय	६०४
(१३ चौ०, १५)	आनन्दसिन्धु अहंतातीता	६०८
(२–दोहा)	गुरुके अमृतमय वचन	६१३
(२–सोरठा)	ऐसे गरिब निवाज	६१४
[१–शिष्य प्रश्न । सितारा–१ । खण्ड–१॥]		
(१–छन्द)	हौं कौन ? कौन यह देह पञ्च	६१५
॥१–सद्गुरु उत्तर । किरण–१ । खण्ड–२। चौ०भाग–१॥		
(१ चौ०, ३१)	तू कहिबे मात्र सच्चिदानन्द	६१६
[२–शिष्य प्रश्न । सितारा–२ । खण्ड–३ ॥]		
(३–दोहा)	ऐसे सुनि गुरुके वचन	६१८

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
॥ २–सद्गुरु उत्तर । किरण–२ । खण्ड–४ ॥		
(३–सोरठा)	हे शिष्य ! हृदय विचार	६१९
(४–सोरठा)	इच्छा मन विस्तार	६१९
(१–झूलना)	पाँच तत्त्व तीन गुण	६२०
(५–सोरठा)	माया ब्रह्म समाय	६२२
[३–शिष्य प्रश्न । सितारा–३ । खण्ड–५॥ चौ० भाग–२]		
(१ चौ०, ४५)	श्रवण मनन साक्षातहुँ जाना	६२२
॥ ३–सद्गुरु उत्तर । किरण–३ । खण्ड–६ ॥		
(४–दोहा)	ब्रह्मकी इच्छा माया	६२४
(६–सोरठा)	यह मत सबन प्रमाण	६२४
(७–सोरठा)	ब्रह्म मिलै सुख चैन	६२५
(५–दोहा)	ब्रह्म भये पुनि इच्छा	६२५
[चौपाई, भाग–३ ॥ चौपाई १ से ६ तक]		
(१ चौ०, ५३)	उपजन विनशन रहट	६२६
[४–शिष्य प्रश्न । सितारा–४ । खण्ड–७ ॥]		
(६–दोहा)	परख कौन टकसारकी (प्रश्न)	६२९
(७–दोहा)	ताकी देही कौनती (प्रश्न)	६२९
(८–दोहा)	अण्ड माहिं रचना जेती	६२९
॥ ४–सद्गुरु उत्तर । किरण–४ । खण्ड–८ ॥		
(९–दोहा)	अण्ड निरञ्जन ब्रह्मका	६३०
(१–साखी, [बी० सा० र० २७])	एक अण्ड ॐ कारते	६३०
(११–दोहा)	जथा अनेकन लहरिते	६३१
(१२–दोहा)	दुहुँ प्रकार थिरता नहीं	६३२
(१३–दोहा)	शुद्ध होय दाया द्रवित	६३३
(१४–दोहा)	सो अनुमान प्रचण्ड अस	६३३
(१५–दोहा)	निज झाँई सम्भव लखै	६३४
(१६–दोहा)	निरपक्षिक जे जीयरा	६३४
(१७–दोहा)	हंस स्वतः आनन्द पद	६३५
[५–शिष्य प्रश्न । सितारा–५ । खण्ड ९ । चौ० भाग–४]		
(१ चौ०, ७१)	स्वतः जीव कैसे होते स्वामी !	६३६
॥ ५–सद्गुरु उत्तर । किरण–५ । खण्ड–१० ॥		
(१८–दोहा)	ऐसे सुनि शिष्यके वचन	६३८
(१९–दोहा)	हे शिष्य ! उत्तम प्रश्न यह	६३८
(२०–दोहा)	जीव ब्रह्म दोउ सृष्टिको	६३८
(२१ दोहा)	ब्रह्म सृष्टिमा जीयरा	६३९
(२२–दोहा)	जीव कल्पना ब्रह्म भौ	६४०
(२३–दोहा)	पञ्चै पञ्चौ पञ्चधा	६४०
(२४–दोहा)	पञ्चाहृत गुरुमुख लखै	६४१

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
[चौकड़ी ॥ भाग–२ ॥ १ से १२ तक]		
(१ चौ०, ८४)	जीव कल्पना एकोहं	६४१
(२५–दोहा)	ब्रह्म ईश माया मनहीं	६४५
(२६–दोहा)	जीव रहटमा सो परे	६४६
[चौपाई, भाग–५ ॥ चौ० १ से २२ तक]		
(१ चौ०, ९८)	इमि अबोध बहुते दिन बीता	६४६
(२७–दोहा)	ॐ अण्ड कल्पित सोई	६५५
(२८–दोहा)	शुद्ध साँच सो प्रथम पद	६५५
(२९–दोहा)	ई पाँचों हैं तत्त्व सो	६५६
(३०–दोहा)	इहै कल्पना परखको	६५७
(३१–दोहा)	अब प्रकृति पचीसको	६५७
(३२–दोहा)	साँच तत्त्व है प्रथमता	६५८
(३३–दोहा)	धीरज दूजे तत्त्वकी	६५९
(३४–दोहा)	चौथे सेवन साधुके	६५९
(३५–दोहा)	दया तत्त्व तीजे सुनहु	६६०
(३६–दोहा)	चौथे शीलहि तत्त्वके	६६१
(३७–दोहा)	परख प्रत्यक्ष सब सुख	६६१
(३८–दोहा)	अहै विचार सो पाँचवाँ	६६२
(३९–दोहा)	व्यवहारे शुद्धता गहन	६६२
(४०–दोहा)	इमि पाँचोंकी पञ्चया	६६३
(४१–दोहा)	तीनों गुण आचरण शुभ	६६३
(४२–दोहा)	विराग हन्ता त्यागको	६६४
॥ सत्य शब्द टकसार [मूल बीजक, साखी नं०–२६६] ॥		
(२–साखी–४३)	साधु भया तो क्या भया ?	६६५
[चौपाई, भाग–६ ॥ चौ० १ से ४ तक है ।]		
(१ चौ०, १३७)	ऐसेनि सङ्गति त्यजहु	६६५
[६–शिष्य प्रश्न । सितारा–६ । खण्ड–११ ॥]		
(८–सोरठा)	बन्दीछोर सुजान !	६६७
(४४–दोहा)	जमा एककी अपर बहु	६६७
॥ ६–सद्गुरु उत्तर । किरण–६ । खण्ड–१२ ॥		
(४५–दोहा)	जमा एक पद बहु भया	६६८
(४६–दोहा)	गुरु सम्बन्धी जीयरा	६६८
(४७–दोहा)	एकता भयो भेद बहु	६६९
(४८–दोहा)	उपजावन औ नाशन	६६९
(४९–दोहा)	ऐसे काल दयाल गुण	६७०
(५०–दोहा)	काल अनेकन रूपते	६७०
(३–साखी–२१)	साधु बतावैं गुरुको	६७१
(५२–दोहा)	एक रूप गुरु साधुका	६७१

पद्याङ्क।	विषय।	पृष्ठाङ्क।
(५३–दोहा)	बन्दीछोर कृपाल गुरु	६७२
(५४–दोहा)	ताते हे शिष्य ! एकता	६७३
(५५–दोहा)	जमा एक जीव स्वतः पद	६७३
(५६–दोहा)	रोगी वैद्य कलेशते	६७४
(५७–दोहा)	रोगी एकता ब्रह्म पद	६७४
(५८–दोहा)	एकता और अनेक पद	६७५
(५९–दोहा)	सूझै भूल जो जीयरहिं	६७५
(१–शब्द)	हंसा ! ठहरि देखु थिति बाट	६७६
	[७–शिष्य प्रश्न। सितारा–७। खण्ड–१३ ॥]	
(९–सोरठा)	हे गुरु दीनदयाल !	६७९
(१०–सोरठा)	शङ्का रही चित एक	६७९
	॥ ७–सद्गुरु उत्तर। किरण–७। खण्ड–१४ ॥	
	[चौ० भाग–७ ॥ चौ० १ से २४ तक है।]	
(१–चौ०, १६९)	कल्पित इच्छा ब्रह्म कहावा	६८०
(६०–दोहा)	काल दयालके उभय गुण	६८८
	[८–शिष्य प्रश्न। सितारा–८। खण्ड–१५ ॥]	
	[चौ० भाग ८। चौपाई १ से ६ तक है।]	
(१ चौ०, १९४)	काल दयाल उभय गुण	६८८
	॥ ८–सद्गुरु उत्तर। किरण–८। खण्ड–१६ ॥	
(६१–दोहा)	अस्मदादि जग भेष जो	६९०
(६२–दोहा)	गुरुबोधिक निज थोर पद	६९१
(६३–दोहा)	जाके लक्षण परख गुण	६९१
	[तोमर छन्द, भाग–२। चौ० १ से १० तक है।]	
(१ चौ०, २०३)	सुन साधुनके गुणलक्ष शिष्य !	६९२
[९–शिष्य प्रश्न। सितारा–९। खण्ड–१७। छन्द भाग–३॥]		
(१ चौ०, २१३)	यह सुनत शिष्य मन भई है	६९५
	॥ ९–सद्गुरु उत्तर। किरण–९। खण्ड–१८ ॥	
(६४–दोहा)	सुनहु शिष्य ! वृत्तान्त यह	६९६
(६५–दोहा)	प्रथम कला कालके	६९७
(६६–दोहा)	भेष त्याग प्रापति निमित	६९७
(६७–दोहा)	हे शिष्य ! ठहरै साधु वह	६९८
(६८–दोहा)	उत्तम दशा विरक्तता	६९८
(६९–दोहा)	भेष साधु बहु अन्तरे	६९९
(७०–दोहा)	दीनदयाल भेष यह	६९९
(७१–दोहा)	मङ्गल मूरति साधु गुरु	७००
(७२–दोहा)	साधु गुरुको भेद यह	७००
(७३–दोहा)	गुरु साधु अन्तर नहीं	७०१
(७४–दोहा)	द्रष्टा ठहरै परख गुरु	७०१
(७५–दोहा)	तीनोंगुण आचरण शुभ	७०२
(७६–दोहा)	मानुष बुद्धि पाये बिना	७०२
(७७–दोहा)	परख लहै बिनु जीयरहिं	७०३
(७८–दोहा)	यह प्रकार दाया सहित	७०३
(७९–दोहा)	अशरण शरण दयाल प्रभु !	७०४
	[१०–शिष्य प्रश्न। सितारा–१०। खण्ड–१९ ॥]	
(११–सोरठा)	हे गुरु दीनदयाल !	७०५
(१२–सोरठा)	अब कछु पूछन चाहै	७०५
	॥ १०–सद्गुरु उत्तर। किरण–१०। खण्ड–२० ॥	
	[चौ० भाग–९ ॥ चौ० १ से १८ तक है।]	
(१–चौ०, २३३)	हे शिष्य ! सुनहु यथार्थ	७०५
(८०–दोहा)	चेतन हूँ ते गुण अधिक	७१२
(८१–दोहा)	हंस विहारन खानि जड़	७१३
(८२–दोहा)	निर्णय दया निधानके	७१३
(८३–दोहा)	वाणीते खानी लखै	७१४
(८४–दोहा)	दृष्टि प्रकाशी सो परख गुरु	७१४
(८५–दोहा)	मानुष गुरुमुख परख	७१५
(८६–दोहा)	मानुष देही पाँचकी	७१५
(८७–दोहा)	परम सुउज्ज्वल धर्म है	७१६
(८८–दोहा)	काल कला मानुष लखै	७१६
	[११–शिष्य प्रश्न। सितारा–११। खण्ड–२१ ॥]	
	[चौ० भाग–१०॥ चौ० १ से ४ तक है।]	
(१ चौ०, २६०)	मानुष भिन्न कहेउ कस	७१७
	॥ ११–सद्गुरु उत्तर। किरण–११। खण्ड २२ ॥	
(१३–सोरठा)	सुनहु शिष्य ! वृत्तान्त	७१८
(१४–सोरठा)	सबन कीन्ह परमान	७१९
	[चौ० भाग–११ ॥ चौ० १ से २४ तक है।]	
(१ चौ०, २६६)	चारिउ खानि निरञ्जन थापा	७१९
	॥ सत्यशब्द टकसार॥ मूल बीजक, साखी नं०–१८९ ॥	
(४–साखी–८९)	मानुष होयके ना मुवा	७२७
(९०–दोहा)	दया क्षमा अरु शीलता	७२८
(९१–दोहा)	भोजन छाजन भय सहित	७२९
(९२–दोहा)	सब आश्रित ये पटनके	७३०
(९३–दोहा)	षट् पञ्चाइत न्याव गुरु	७३०
(९४–दोहा)	यह प्रकार समिता लहै	७३१
(९५–दोहा)	वर्तमानकी भूमिका	७३१
(९६–दोहा)	चौरासीकी पञ्जिका	७३२
(९७–दोहा)	यथा पटन निर्णय	७३२
(९८–दोहा)	सत्य वचन सो साँचता	७३३

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(९९–दोहा) चारिउ विधि पूरण		७३३
(१००–दोहा) अद्भुत रूप परिछिन्न शिष्य !		७३४
(१०१–दोहा) निर्णय गुरुमुख यथा		७३४
(१०२–दोहा) चौरासीकी रहट सो		७३५
(१०३–दोहा) हे शिष्य ! उत्तम खानि		७३५
(१०४–दोहा) चौरासी निर्णय सहित		७३६
[१२–शिष्य प्रश्न । सितारा–१२ । खण्ड–२३ ॥]		
(छन्द भाग–४) चारि चौरासीकी निर्णय		७३७
(१०५–दोहा) तुम समान दुःख मेटन		७३९
॥ १२–सद्गुरु उत्तर । किरण–१२ । खण्ड—२३ ॥		
[चौ० भाग–१२ ॥ चौ० १ से १६ तक है ॥]		
(१ चौ०, ३११) सुनहु शिष्य ! मानुषको रूपा		७३९
(१०६–दोहा) सृष्टि कल्पनाते भई		७४४
(१०७–दोहा) भेद न पाये कल्पना		७४५
(१०८–दोहा) ताते हे शिष्य ! उभयता		७४५
(१०९–दोहा) ब्रह्म जीव ईश्वर जगत्		७४६
(११०–दोहा) जाको है यह भासना		७४६
(१११–दोहा) मानुष रूप शुभ प्रथमा		७४७
(११२–दोहा) सोई रूप यह जगतमें		७४७
(११३–दोहा) ताते हे शिष्य ! रूप है		७४७
(११४–दोहा) चौरासी कल्पित भये		७४८
(११५–दोहा) ब्रह्म भये चौरासी गये		७४८
(११६–दोहा ब्रह्म भरम माया मनहीं		७४९
(११७–दोहा) कल्पित याको ब्रह्म भौ		७४९
(११८–दोहा) चौरासी चहुँ खानि		७५०
(११९–दोहा) चारिउ खानी चारिउ वाणी		७५०
(१२०–दोहा) हे शिष्य ! ब्रह्माकारको		७५१
(१२१–दोहा) ताते देखो सबनको		७५१
(१२२–दोहा) रूप मनुष्य सो सब		७५२
(१२३–दोहा) ताते हे शिष्य ! चारिमा		७५२
(१२४–दोहा) मन माया सो कल्पना		७५३
(१२५–दोहा) रूप सबै अरु कछु नहीं		७५३
(१२६–दोहा) नास्ति सनेही सब भये		७५४
(१२७–दोहा) होना कछु न याको हतो		७५४
(१२८–दोहा) प्रथम रूपसे सब भयो		७५५
(१२९–दोहा) हे शिष्य ! देखु विचारिके		७५५
(१३०–दोहा) जीव सङ्कल्पे जग भयो		७५६
(१३१–दोहा) हे शिष्य ! ऐसे मतन महँ		७५६
(१३२–दोहा) ऐसे उपदेश न समुझि		७५७

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१३३–दोहा) ब्रह्मराजमो माया रानी		७५७
(१३४–दोहा) ताते हे शिष्य ! देखु तैं		७५८
(१३५–दोहा) मानुष बिन कछु ना भयो		७५८
(१३६–दोहा) नाम रूप गुणमय जगत		७५९
(५–साखी–१३७) फेर परा नहिं अङ्कमों		७५९
(१३८–दोहा) बूझो सन्तो ! ठहरिके		७६०
(१३९–दोहा) मानुष निर्णय यथाविधि		७६१
(१४०–दोहा) बहु प्रकार वर्णन अहै		७६१
(१४१–दोहा) रहित कल्पना ब्रह्म भौ		७६१
(१४२–दोहा) उपदेशी सो नष्ट भौ		७६२
(१४३–दोहा) ई नहिं जानैं बावरे		७६३
[१३–शिष्य प्रश्न । सितारा–१३ । खण्ड–२५ ॥]		
(छन्द भाग–५) हे स्वामी ! यह निर्णय		७६३
॥ १३–सद्गुरु उत्तर । किरण–१३ । खण्ड–२६ ॥		
(छन्द भाग–६) सुन शिष्य ! सुमति		७६४
(१४४–दोहा) चारि खानिका जीयरा		७६५
(१४५–दोहा) यह लक्षण समुदाय गुण		७६६
[चौ० भाग–१३ ॥ चौ० १ से १२ तक है ।]		
(१ चौ०, ३७१) मानुष समझै मानुष		७६७
(१४६–दोहा) उभय काल गुण दोषमय		७७१
(१४७–दोहा) मन सङ्कल्पते जग		७७१
(१४८–दोहा) गुण उत्तम लक्षण सहित		७७२
(२–शब्द) सन्तो ! मानुष कोइ एक शूरा		७७३
॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, साखी नं०–१६६ ॥		
(६–साखी–१४९) मानुष तेरा गुण बड़ा		७७६
[१४–शिष्य प्रश्न । सितारा–१४ । खण्ड–२७ ॥]		
(१५–सोरठा) बन्दीजन उद्गार		७७७
(१६–सोरठा) मानुष प्रथमा रूप		७७७
॥ १४–सद्गुरु उत्तर । किरण–१४ । खण्ड–२८ ॥		
(१५०–दोहा) हे शिष्य ! थीर जो अस्ति पद		७७८
(१५१–दोहा) व्याप महामाया जनित		७७९
(१५२–दोहा) सात्त्विक जाये चारिउ		७७९
(१५३–दोहा) तामस गुण हंकार		७८०
(१५४–दोहा) चौरासी औ चारिको		७८०
(१५५–दोहा) चारि देह पञ्चम दशा		७८१
(१५६–दोहा) तैसे ब्रह्मते माया		७८१
(१५७–दोहा) याको बहु विस्तारते		७८२
(१५८–दोहा) अरे प्रत्यक्ष प्रमाण जग		७८२
(१५९–दोहा) सब अनुमाने ब्रह्मके		७८३

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१६०–दोहा) काहे हे शिष्य ! ब्रह्मते		७८३
(१६१–दोहा) रूप बिना इच्छा नहीं		७८४
(१६२–दोहा) तातै कल्पित सब भयो		७८४
(१६३–दोहा) रूप मनुष्य प्रथमा अहै		७८५
(१६४–दोहा) अनबनी जतन नशायके		७८५
(१६५–दोहा) रूपहि रूप समोइके		७८६
(१६६–दोहा) हंस स्वतः आनन्द पद		७८७
(१६७–दोहा) भूलो अपने रूपको		७८७
[१५–शिष्य प्रश्न । सितार—१५ । खण्ड—२९ ॥]		
(१६८–दोहा) हंस स्वतः पद थीर जो		७८८
॥ १५–सद्गुरु उत्तर । किरण—१५ । खण्ड—३० ॥		
(१६९–दोहा) हे शिष्य ! सुनहु प्रसङ्ग		७८८
(१७०–दोहा) धीर आदि सब तत्त्वता		६८९
(१७१–दोहा) करत बास तहँ अस्तिके		७९०
(१७२–दोहा) सोहं ब्रह्माकार भौ		७९०
(१७३–दोहा) हे शिष्य ! हंसा मनुष्य		७९१
(१७४–दोहा) कल्पित झाँईमा बसो		७९१
(१७५–दोहा) हे शिष्य ! हंसा मनुष्य		७९२
[१६–शिष्य प्रश्न । सितारा—१६ । खण्ड—३१ ॥]		
(१७–सोरठा) साहेब स्वतः प्रकाश		७९२
(१८–सोरठा) झाँई याही केर		७९३
(१९–सोरठा) कहिये दीनदयाल !		७९३
॥ १६–सद्गुरु उत्तर । किरण—१६ । खण्ड—३२ ॥		
[चौ० भाग—१४ ॥ चौ० १ से २४ तक है ॥]		
(१ चौ०, ४२१) हे शिष्य ! सुमति यथार्थ		७९४
[१७–शिष्य प्रश्न । सितारा—१७ । खण्ड—३३ ॥]		
(१७६–दोहा) ऐसे अमृतमय वचन		८०२
(१७७–दोहा) अब साहेब ! कछु शङ्का		८०२
(१७८–दोहा) जेहि देहिकी बिम्बते		८०३
॥ १७–सद्गुरु उत्तर । किरण—१७ । खण्ड—३४ ॥		
(१७९–दोहा) हे शिष्य ! अतिहि उपाधि		८०३
(१८०–दोहा) रूप है सो प्रतिबिम्ब नहीं		८०४
(७–अरिल्ल छन्द) अस्ति हंस नास्ति रूप		८०४
(८–कवित्त छन्द) समुझि देखु चित्त		८०७
(१८१–दोहा) शिष्य ! ब्रह्म सिद्धान्त		८१०
(१८२–दोहा) भलो होत है भलो जहि		८११
[चौ० भाग—१५ ॥ २ चौपाई है ॥]		
(१ चौ०, ४६६) झाँई सन्धि कालका फेरा		८११
(१८३–दोहा) भासो जीव रूप तेही		८१२

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१८४–दोहा) प्रत्यक्ष गमनन्त यह		८१३
(२०–सोरठा) हे शिष्य ! अस्ति स्वरूप		८१४
[१८–शिष्य प्रश्न । सितारा—१८ । खण्ड—३५ ॥]		
(१८५–दोहा) साहेब दीनदयाल प्रभु !		८१४
(१८६–दोहा) करुणा रवन कृपाल तन		८१५
(१८७–दोहा) अब कहिये प्रभु ! हंसको		८१५
॥ १८–सद्गुरु उत्तर । किरण—१८ । खण्ड—३६ ॥		
(२१–सोरठा) सुन शिष्य ! हंसा देह		८१६
(१८८–दोहा) हंस अस्तिता निज मर्म		८१६
(१८९–दोहा) हंस अस्ति जो जमा		८१७
(१९०–दोहा) जमा हंस अव्वल सो थीर		८१७
(१९१–दोहा) सो नाशक है कल्पना		८१८
(१९२–दोहा) जाल मध्ये बहुते जीया		८१८
(९–सवैया छन्द) आनन्द महल अवास		८१९
(१९३–दोहा) ताहि जमामों थीर पद		८२१
(१९४–दोहा) गुरु शिष्य बोधित बोधना		८२१
(१९५–दोहा) अस्ति आत्माराम यह		८२२
(१९६–दोहा) कला काल छूटे जो सुख		८२२
(१९७–दोहा) गुरु सेवा अरु साधुकी		८२३
(१९८–दोहा) साधु समागम प्रेम विधि		८२४
(१९९–दोहा) ऐसे आहि तहाँ हंस गुरु		८२४
(२००–दोहा) मन माया कृत गुण		८२४
(२०१–दोहा) हे शिष्य ! साधु समाजमों		८२५
(२०२–दोहा) शिष्य ! अस्ति पद प्रगट		८२६
(२०३–दोहा) मङ्गल मूरति साधु गुरु		८२६
(२०४–दोहा) ये नहिं जानहिं जीयरा		८२७
(२०५–दोहा) अनबनि जतन नशायके		८२७
(२०६–दोहा) ऐसो मत जग विदित है		८२८
(२०७–दोहा) हंस विहार सो साधु सङ्ग		८२८
(२०८–दोहा) मन वच कर्म गुरु साधुकी		८२९
(२०९–दोहा) हे शिष्य ! उत्तम शिष्य		८२९
(२१०–दोहा) हमहूँ हे शिष्य ! यह कर्म		८३०
(२११–दोहा) बन्दन चरणामृत गहन		८३१
[१९–शिष्य प्रश्न । सितारा—१९ । खण्ड—३७ ॥]		
(२२–सोरठा) हे साहेब ! अशरण शरण		८३१
(२३–सोरठा) अब गुरु ! कहिये विचार		८३२
(२४–सोरठा) मों सम दीन न कोय		८३२
॥ १९–सद्गुरु उत्तर । किरण—१९ । खण्ड—३८ ॥		
(२१२–दोहा) हे शिष्य ! उत्तम प्रश्न यह		८३३

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(२१३–दोहा)	तोर मर्म जानेउँ भले	८३३
(२१४–दोहा)	अनुमानी आसक्तको	८३४
(२१५–दोहा)	मन मायाको फेर बहु	८३४
(२१६–दोहा)	हे शिष्य ! दृष्टि हंसकी	८३५
(२१७–दोहा)	पारख सबकी थीर पद	८३५
(२१८–दोहा)	गुरुमुख साधु समाज	८३६
(२१९–दोहा)	मैं मेरी सङ्कल्प यह	८३६
(२२०–दोहा)	पारख दृष्टि प्रताप बल	८३७
(२२१–दोहा)	सङ्कल्पे जग है भयो	८३७
(२२२–दोहा)	चौरासीके मध्यमें	८३८
(२२३–दोहा)	सो प्रकाश प्रभुके लखे	८३८
(२२४–दोहा)	ऐसे उज्ज्वल दृष्टि बल	८३९
(२२५–दोहा)	लखै दृष्टि बल परखते	८३९
(२२६–दोहा)	हंस द्रष्टा पद थीर लहि	८४०
(२२७–दोहा)	हे शिष्य ! ऐसे मत कहै	८४०
(२२८–दोहा)	सो पारखके लहैते	८४१
(२२९–दोहा)	मानुष द्रष्टा पारखी	८४१
(२३०–दोहा)	सब जीवनके मर्मको	८४२
(२३१–दोहा)	हन्तामा सबही परे	८४२
(२३२–दोहा)	देखन है बहु भाँतिका	८४३
(२३३–दोहा)	जग सुख अनित्य विचार	८४३
(२३४–दोहा)	अपनी दृष्टि प्रताप बल	८४४
(२३५–दोहा)	सोई पारख प्रगट गुरु	८४५
(२३६–दोहा)	हे शिष्य ! ऐसे हंसको	८४५
(२३७–दोहा)	ताते हे शिष्य ! साधुको	८४६
(२३८–दोहा)	काल कला ब्रह्मास्मि जे	८४६
	[चौ० भाग–१६ ॥ चौ० १ से २० तक है ॥]	
(१ चौ०, ५३३)	काल कला बहुतक	८४६
	[२० शिष्य प्रश्न । सितारा—२० । खण्ड—३९ ॥]	
(२३९–दोहा)	सुनि गुरु बानी अति	८५२
(२४०–दोहा)	मैं आयेउँ राउर शरण	८५३
(२४१–दोहा)	हंस पदारथ सार सो	८५३
(२४२–दोहा)	जाते साहेब धर्मता	८५४
(२४३–दोहा)	यह अनुक्रम यथा विधि	८५४
(२४४–दोहा)	शिष्य ! गुरुपद नेहता	८५४
(२४५–दोहा)	स्वामी ! भाव मोरे	८५५
	॥ २०—सद्गुरु उत्तर । किरण—२० । खण्ड—४० ॥	
(२४६–दोहा)	हे शिष्य ! उत्तम बुद्धि तव	८५५
(२४७–दोहा)	साँच कही हन्ता लहै	८५६

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(२४८–दोहा)	एक एक वर्णन करौं	८५६
(२४९–दोहा)	प्रथमा पदमों नेकता	८५७
(२५०–दोहा)	कारण बढ़यत बहु बड़ो	८५७
(२५१–दोहा)	बहै सु बल अनेक होय	८५८
(२५२–दोहा)	तेहि जालमें जीयरा	८५८
(२५३–दोहा)	दुःखित भये अकुलायके	८५९
(२५४–दोहा)	सो प्रमाण पद हंसको	८५९
(२५५–दोहा)	दुखिया सो सुखिया भयो	८६०
(२५६–दोहा)	मन माया सङ्कल्पको	८६०
(२५७–दोहा)	गुरुमत लखै सो शिष्य है	८६१
(३–शब्द)	हंसा ! ऐसो गुरुमत भारी	८६१
(२५८–दोहा)	हे शिष्य ! निर्णय जो लखै	८६४
(२५९–दोहा)	निर्णय यथा प्रमाण	८६५
(२६०–दोहा)	गुरुमत जाके उर बस्यो	८६५
(२६१–दोहा)	गुरु साधुहिं सन्मानही	८६६
(२६२–दोहा)	दीनदयालको मत लखै	८६६
(२६३–दोहा)	साधु भेष जग विदित है	८६७
(२६४–दोहा)	साधुनको जल अन्नते	८६८
(२६५–दोहा)	गुरु साधु पद दीर्घ जग	८६८
(२६६–दोहा)	हे शिष्य ! जे दानातने	८६९
(२६७–दोहा)	तेई उत्तम पारखी	८६९
(२६८–दोहा)	दास भाव सेवा सहित	८६९
	॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नं०–११२ ॥	
(४–शब्द)	झगरा एक बड़ो राजाराम	८७०
(२६९–दोहा)	यह दृष्टान्त अनुक्रम	८७३
	॥ ❀ ॥ पर उपदेश रीति जिज्ञासा ॥ ❀ ॥	
	[२१–शिष्य प्रश्न । सितारा—२१ । खण्ड—४१ ॥]	
(२७०–दोहा)	हे प्रभु ! कृपानिधान	८७४
(२७१–दोहा)	गुरुपद जानेउँ नीक	८७४
	॥ २१–सद्गुरु उत्तर । किरण–२१ । खण्ड–४२ ॥	
	[चौ० भाग–१७ ॥ चौ० १ से ३६ तक वर्णन है ॥]	
(१ चौ०, ५९८)	सुन शिष्य ! सावधान मत	८७५
(२७२–दोहा)	धर्म त्यागि बहु जीयरा	८८७
(२७३–दोहा)	ऐसो खानि कलेशता	८८८
(२७४–दोहा)	तेहि उपदेशन कौन विधि	८८८
(२७५–दोहा)	शिष्य जानि मत देह यह	८८९
(२७६–दोहा)	देई बहुत स्वाधीनता	८८९
(२७७–दोहा)	शङ्का जौन प्रकारकी	८९०
(२७८–दोहा)	आप स्वतः प्रकाशमें	८९०

पद्याङ्क।	विषय।	पृष्ठाङ्क।
(२७९–दोहा)	दुःख सुख ब्रह्महि नहिं	८९१
(२८०–दोहा)	भयो जीव यहि ब्रह्मते	८९१
(२८१–दोहा)	हे शिष्य ! अनन्त दृष्टान्ततै	८९२
(२८२–दोहा)	जब सो थकै निज कसर	८९२
(२८३–दोहा)	हे शिष्य ! तीनिउँ जाल यह	८९३
(२८४–दोहा)	इन्ह तीनहुँ जालनते	८९३
(२८५–दोहा)	ब्रह्म भरम ईश्वरहु भरम	८९४
(२८६–दोहा)	सुखमें बासा जानिके	८९४
(२८७–दोहा)	हे शिष्य ! ताके शिष्यता	८९५
(२८८–दोहा)	हितके सेवा कियेते	८९५
(२८९–दोहा)	जब ताको निज मत	८९६
(२९०–दोहा)	निर्वचनी पद थीरता	८९६
(२९१–दोहा)	याके बहु उत्तर करै	८९७
(२९२–दोहा)	उत्तर प्रश्न अनेक विधि	८९८
(२९३–दोहा)	काहेते शिष्य ! मेल विधि	८९८
(२९४–दोहा)	मिलि लखेते उचटै नहीं	८९९
॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, साखी नं०—३२२ ॥		
(७–साखी–२९५)	दादा भाई बापकै लेखो	८९९
(२९६–दोहा)	ऐसे उपदेशन युक्ति	९०१
(२९७–दोहा)	ठहरावै तेहि पद निजु	९०१
(२९८–दोहा)	गुरु उपदेशन अनुक्रम	९०१
(२९९–दोहा)	सुन शिष्य ! गुरुमत प्रगट यह	९०२
(३००–दोहा)	ऐसी विधि उपदेशकी	९०२
(३०१–दोहा)	निर्णय मत अनुमान हत	९०३
(३०२–दोहा)	गुरु अनुरागी जीयरा	९०३
[चौ० भाग—१८ ॥ २ चौपाई है ॥]		
(१ चौ०, ६६५)	काल कला सब गुरु	९०४
(३०३–दोहा)	अशरण शरण उपदेशते	९०५
(३०४–दोहा)	सो प्रकाश पूरण अमल	९०५
(३०५–दोहा)	जाकी बुद्धि जहाँ मँढ़ी	९०६
(३०६–दोहा)	ताको कहिये पारखी	९०६
(३०७–दोहा)	सेवा लावै साधु गुरु	९०७
(३०८–दोहा)	बाना दीन दयालको	९०७
(३०९–दोहा)	दीन उद्धारण अस्तिपद	९०८
(३१०–दोहा)	अभ्यासन साक्षातता	९०९
(३११–दोहा)	भेद त्यागि इमि भक्ति गुरु	९०९
(३१२–दोहा)	उपदेशनकी युक्तिता	९१०
[२२–शिष्य प्रश्न । सितारा—२२ । खण्ड—४३ ॥]		
(३१३–दोहा)	हे प्रभु ! दीन्हीं सीख तुम	९१०

पद्याङ्क।	विषय।	पृष्ठाङ्क।
(३१४–दोहा)	अब कहिये करुणा रवन	९११
(३१५–दोहा)	केहि पद पाये कृपानिधि	९११
(३१६–दोहा)	सो साहेब ! विस्तारयुत	९११
॥ २२—सद्गुरु उत्तर । किरण—२२ । खण्ड—४४ ॥		
(३१७–दोहा)	सुन शिष्य ! हंसको थीरपद	९१२
(३१८–दोहा)	समुद्र खार सुतरङ्ग युत	९१३
(३१९–दोहा)	ठौर ठौर सों समेटिकै	९१३
(३२०–दोहा)	पुनि सो प्रापत ब्रह्म जीव	९१४
(३२१–दोहा)	स्वाति नीर किञ्चित अहै	९१५
(३२२–दोहा)	तैसे हे शिष्य ! ठइर पद	९१५
(३२३–दोहा)	वचन सतगुरु यथा विधि	९१६
(३२४–दोहा)	मन माया पद देखिके	९१६
(५–शब्द)	सन्तो ! ठहरिके करहु विचार	९१७
(३२५–दोहा)	बन्दीछोर कबीर गुरु	९२४
(३२६–दोहा)	हे शिष्य ! यह क्रमते करै	९२४
(३२७–दोहा)	नास्ति माँहिं ये अस्ति जो	९२५
(३२८–दोहा)	सङ्कल्पे जग है भयो	९२५
(३२९–दोहा)	अस्तिसे देखे नास्तिको	९२६
(३३०–दोहा)	तदाकार सो अस्ति पद	९२६
(३३१–दोहा)	ब्रह्म अस्ति हन्ता सोई	९२७
[चौ० भाग—१९ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥]		
(१ चौ०, ७१२)	हे शिष्य ! हंसन निश्चय	९२७
(३३२–दोहा)	निश्चय पदके अनुक्रम	९२९
(२५–सोरठा)	अब कछु शङ्का होय	९२९
॥ ❀ ॥ हंस मनुष्योंके शुद्ध व्यवहारकी जिज्ञासा ॥ ❀ ॥		
[२३—शिष्य प्रश्न । सितारा—२३ । खण्ड—४५ ॥]		
(२६–सोरठा)	साहेब ! गरीब निवाज	९३०
(२७–सोरठा)	अब कहु बन्दीछोर !	९३०
(३–चौकड़ी)	सब जानेउँ विधिपूर्व	९३१
॥ ❀ ॥ हंस गुणधारी मनुष्योंका शुद्ध व्यवहार वर्णन ॥ ❀ ॥		
॥ २३—सद्गुरु उत्तर । किरण—२३ । खण्ड—४६ ॥		
(१०–गीतक छन्द)	सुन शिष्य ! याके लक्ष	९३२
(११–तोमर छन्द)	सुनु शिष्य ! कहौं	९३३
(३३३–दोहा)	देह अस्ति पद प्राप्तिको	९३४
(१२–गीतक छन्द)	जे भये प्राप्ति मनुष्य	९३४
[चौ० भाग—२० ॥ २ चौपाई है ॥]		
(१ चौ०, ७३३)	सारशब्द गुरु निर्णय	९३५
(३३४–दोहा)	जो मानुष गृहि धर्म युत	९३६
(३३५–दोहा)	सेवक भाव सादर्श रहै	९३७

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(३३६–दोहा)	सत्य शील दया सहित	९३७
(३३७–दोहा)	बहु संग्रह विषयानको	९३८
	[चौ० भाग—२१ ॥ २ चौपाई है ॥]	
(१ चौ०, ७३९)	प्रीति सदा गुरु पारख	९३९
(३३८–दोहा)	गृही धर्म बड़ खटपटी	९३९
(३३९–दोहा)	जीव घात आदिक कर्म	९४०
(३४०–दोहा)	वाणी अप्रिय कहै नहीं	९४१
(३४१–दोहा)	चारि खानि बहु जीयरहिं	९४१
(३४२–दोहा)	यह प्रकार गृहि धर्मके	९४२
(३४३–दोहा)	विरक्त बोधै देह निजु	९४२
(३४४–दोहा)	कष्ट करै विषयानको	९४३
(३४५–दोहा)	अहङ्कार आनै नहीं	९४४
	॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नं० —३२ ॥	
(६–शब्द)	हंसा हो ! चित्त चेतु सकेरा	९४४
	॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नं०—८० ॥	
(७–शब्द)	बन्दे ! करि ले आपु निबेरा	९४८
(३४६–दोहा)	मन्मथ बुद्धिको ज्ञान जो	९५०
(३४७–दोहा)	दोय प्रकार मन्मथ धर्म	९५१
	॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नं०— ५६ ॥	
(८–शब्द)	नरको नहिं परतीत हमारी	९५२
(३४८–दोहा)	अस विचार गुरु बोधको	९५७
	[चौ० भाग—२२॥ चौ० १ से ४ तक है ॥]	
(१ चौ०, ७७५)	गृहीको है लाजीम सेवा	९५८
(३४९ दोहा)	पञ्चाइत गुरु न्यायको	९५९
	॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, रमैनी नं०—८४ ॥	
(१–रमैनी ९)	ये जीयरा ! तैं अपने	९६०
(८–साखी–३५०)	आपु आपु चेते नहीं	९६५
(३५१–दोहा)	अब सुन शिष्य ! समान	९६६
(३५२–दोहा)	प्राप्ति जीव इच्छा नहीं	९६६
(३५३–दोहा)	हे शिष्य ! जीव अबोध	९६७
(३५४–दोहा)	गृही साधु गुण लक्ष	९६७
(३५५–दोहा)	प्राप्ति पदारथ कारने	९६८
(३५६–दोहा)	सुन शिष्य ! गुरुमत	९६९
(३५७–दोहा)	और विरक्त बुद्धिमान जो	९६९
(३५८–दोहा)	अनुमानी दोऊ दिशा	९७०
	॥ सत्यशब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नं०—९४ ॥	
(१० शब्द)	कहो हो ! निरञ्जन कौने बानी ?	९७१
(३५९–दोहा)	बन्दीछोर सुजान गुरु	९७४
(३६०–दोहा)	ऐसी रहनी जो रहैं	९७४

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(३६१–दोहा)	गृही विरक्त दोउ रूप है	९७५
(३६२–दोहा)	तेही हंस प्रमाण युत	९७५
(३६३–दोहा)	सत्य भेष सत्पद सहित	९७६
(३६४–दोहा)	रहनि गहनि सत्य भेषके	९७६
(३६५–दोहा)	ब्रह्म ईश माया जनित	९७७
(३६६–दोहा)	प्राप्ति मत प्रगट सु यह	९७७
(३६७–दोहा)	सुन शिष्य ! मानुष तनै	९७८
(३६८–दोहा)	ठहरै बुन्द समुद्रता	९७९
(३६९–दोहा)	या रहस्य युत जे जिया	९७९
(३७०–दोहा)	साधुनके बहु भेदता	९८०
(३७१–दोहा)	पारख गुरु टकसारकी	९८०
(३७२–दोहा)	जो रहस्य गुरु बोधको	९८१
(३७३–दोहा)	गुरु शिष्य सम्भाषण अहै	९८१
(३७४–दोहा)	निर्णय पञ्चाहत सुमत	९८२
(३७५–दोहा)	मर्यादा जेहि जौन विधि	९८२
(३७६–दोहा)	सार शब्द निर्णय सहित	९८३
(३७७–दोहा)	हे शिष्य ! तुम गुरु साधुमा	९८४
(३७८–दोहा)	हे शिष्य ! गाफिल ना रहो	९८४
(३७९–दोहा)	गुरु बोधित गुरु बोध यह	९८५
(३८०–दोहा)	गुरु शिष्यको सम्वाद यह	९८५
	॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत चतुर्थ ग्रन्थ समाप्तिको—	
	श्रीसद्गुरु पद वन्दना ॥ ❀ ॥	
(१–३ साखी)	सत्य प्रेम भक्ति सहित	९८६
(४ छन्द) (५ कवित्त) (६ सवैया)		९८६
(७–१० सोरठा)	ऐसा यह गुरु बोध	९८७
(११–छन्द) (१२–२६ साखी) (२७–३३ दोहा)		
(३४–३५ सोरठा)	सद्गुरु मङ्गल धाम	९८७
(३६–३७ साखी)	गुरुके गुण नित गाइये	९८७
	॥ ❀ ॥ इति गुरुबोध ग्रन्थः प्रथम भाग समाप्तः ॥ ❀ ॥	
	॥ ❀ ॥ गुरुबोधान्तर्गतद्वितीय भागः ॥ ❀ ॥	
	॥ ❀ ॥ अथ सारशब्द निर्णय ग्रन्थ प्रारम्भः ॥ ❀ ॥	
	॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत मङ्गलाचरण ॥ ❀ ॥	
(१–५ दोहा)	हो कबीर ! पारखी गुरु	९८८
(१–साखी)	सारशब्द पाये बिना	९८८
॥❀॥ चौकड़ी । खण्ड—१ ॥ चौ० १ से ३२ तक है		॥❀॥
(१ चौ०, २)	सारशब्द निर्णयको नाम	९८९
(२–साखी)	धन्य धन्य सोई जीव है	१००३
(३–साखी)	रामरहस गुरु परख लहो	१००३

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(४–साखी) सारशब्दको निर्णय		१००४
॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत सद्गुरु पद वन्दना ॥ ❀ ॥		
(१–७ साखी) इष्ट देव गुरु पद नमों		१००५
(८–१३ साखी) (१४–दोहा) (१५–छन्द)		१००५
(१६–कवित्त) (१७–छन्द) (१८–सवैया)		१००५
(१९–२० सोरठा) (२१–२२ साखी)		१००५
(२३–२७ साखी) रामरहस कवि पारखी		१००७
॥ ❀ ॥ इति गुरुबोध ग्रन्थः द्वितीय भाग सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥		
॥ ❀ ॥ अथ मध्य भूमिका वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१–५ साखी) सबते बड़े गुरु पारखी		१००७
॥ ❀ ॥ अथ पञ्चम ग्रन्थः टकसार प्रारम्भः ॥ ❀ ॥		
॥ ❀ ॥ अथ टीकाकार कृत मङ्गलाचरण ॥ ❀ ॥		
(१–५ साखी) श्रीकबीरसाहेब गुरु		१०१०
(६–छन्द) टकसार गुरुकी		१०१०
(७–साखी) वृहद् ग्रन्थ टकसार		१०१०
(८–११ सोरठा) बिनु गुरुके टकसार		१०१०
(१२–कवित्त) सार औ असार		१०११
(१३–सवैया) परम पारखी रामरहस		१०११
(१४–२१ साखी) दया कीन्ह पारखी गुरु		१०११
॥ ❀ ॥ अथ ग्रन्थकर्त्ता विरचित मङ्गलाचरण पद ॥ ❀ ॥		
(१–दोहा) साहेब दीनदयाल गुरु		१०११
(२–दोहा) दया करन औगुण		१०१२
(३–दोहा) देखि अधमता		१०१२
(४–दोहा) प्रभु सब लायक		१०१३
(५–दोहा) बन्दौं चरण सब दुःख		१०१३
(६–दोहा) बहे बहाये जातये		१०१४
(७–दोहा) सन्तत अभय गुरुके		१०१४
(८–दोहा) सर्वोपरि गुरुके		१०१४
(९–दोहा) चारि वेद जग विदित		१०१५
॥ शब्द भाग—१ ॥ चौ० १ से १६ तक है ॥		
(१–शब्द) सन्तो ! दुविधा कहाँते		१०१५
तुरियारूप ऋग्वेदका सिद्धान्त		१०१६
(१) "प्रज्ञानं ब्रह्म"—टिप्पणी		१०१६
सुषुप्तिरूप अथर्ववेदका सिद्धान्त		१०१७
(२) "अयमात्मा ब्रह्म"—टिप्पणी		१०१७
स्वप्नरूप यजुर्वेदका सिद्धान्त		१०१९
(३) "अहं ब्रह्मास्मि"—टिप्पणी		१०१९
जागृतिरूप सामवेदका सिद्धान्त		१०२१

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(४) "तत्त्वमसि"—टिप्पणी		१०२१
(१–मसला) यह प्रमाण सबन		१०२२
(२–मसला) शब्दातीत शब्दते		१०२३
(१०–साखी) ब्रह्मादिक सनकादि		१०२४
(११–साखी) गुरुके गुण गावैं		१०२४
(१२–साखी) कर्म धर्म मति तीनि		१०२४
(१३–साखी) कहनेको चूके नहीं		१०२५
(१४–साखी) षट शास्त्र षट मुनि		१०२५
(१–झूलना) मीमांसा कहै सब		१०२५
(१५–साखी) भरम जाल जो		१०२७
(१६–साखी) चिदाकाश महाशून्य		१०२७
(१७–साखी) त्रिगुण मत संसारके		१०२७
(१८–साखी) परमारथ पतिवर्त		१०२७
(१९–साखी) चिदाकाश युग पद		१०२८
॥ ❀ ॥ अष्ट गुरु लक्षण वर्णन ॥ निर्णय पद ॥ ❀ ॥		
[चौपाई ॥भाग–१॥चौ०–७ । साखी–२८ । रमैनी–३है ।]		
(१–चौ०, ४०) पहिला गुरु हैं		१०२८
(२०–साखी) येते गुरु जहानमें		१०२९
(२१–साखी) सन्धि मिटावै जीवकी		१०३०
(२२–साखी) सात गुरु जो जगतमें		१०३०
(२३–साखी) निज स्वभाव ठहरै		१०३०
(१–रमैनी, बी० र० ४४) कबहुँ न भयेउ सङ्ग		१०३१
(२४–साखी) जात सबन कहँ		१०३२
(२–रमैनी, बी० र० ७५) तेहि साहेबके लागहु		१०३२
(२५–साखी) कहहिं कबीर पुकारि		१०३४
(३–रमैनी, बी० र० २३) अलप सुख दुःख		१०३४
(२६–साखी) भरमका बाँधा ई जग		१०३६
(२७–साखी) साँचा शब्द कबीरका		१०३६
(२८–साखी) मूढ़ सबै ज्ञानी भये		१०३७
(२९–साखी) ब्रह्म होय शीतल		१०३७
(३०–साखी) निर्विकार माया		१०३७
(३१–साखी) जीव विवश व्याकुल		१०३८
(३२–साखी) लखि न परै तेहि		१०३८
(३३–साखी, बी० सा० ३२९) पैठा है घट भीतरे		१०३९
(३४–साखी) स्वभाव जीव जोवै		१०३९
(३५–साखी) महासन्धि धोखा		१०३९
(३६–साखी) इच्छा कर्म स्थूल		१०४०
(३७–साखी) नाना मत उदवेग		१०४०
(३८–साखी) विषके माते जीयरा		१०४०

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(३९–साखी)	अव्यक्त रूप सोई	१०४१
(४०–साखी)	ब्रह्म जीव ईश्वर	१०४१
(४१–साखी)	आदि अन्त ये कहत हौं	१०४१
(४२–साखी)	जिन परखा संसार	१०४२
(४३–साखी)	आदि अन्त है जगतके	१०४२
(४४–साखी)	अधिष्ठान जे ज्ञानके	१०४२
(४५–साखी)	इच्छा तेहि अज्ञान	१०४३
(४६–साखी)	अस्ति यह चिद् आतमा	१०४३
(४७–साखी)	दुन्दज सत्य असत्यके	१०४३
[चौकड़ी ॥ भाग—१ । चौ०—१४ । साखी—४३ । रमैनी–२ । पञ्चकोश–५ । छन्द–१ । शब्द–१ है ।]		
(१ चौ०, ९२)	साहेब सो जो आवै न	१०४४
(४८–साखी, बी० सा० ५७)	पारसरूपी जीव	१०४७
(४९–साखी)	गुरु प्रकाश निज	१०४८
(५०–साखी)	चिदवशिष्ट नित्य	१०४८
(५१–साखी)	बहु इच्छा उद्वेग	१०४८
(५२–साखी)	नाम रूप गुणमय	१०४८
(५३–साखी)	अहङ्कार मद राज बल	१०४९
(५४–साखी)	इन्हमें जो गुरु परख	१०४९
(५५–साखी)	जाहि दया गुरु परख लही	१०४९
(५६–साखी)	आपु दुःखी परजा	१०५०
(५७–साखी)	चाहै सुख भव जाल	१०५०
(५८–साखी)	परख समाधि लहै	१०५०
(५९–साखी)	धर्म समाधि तत् है	१०५१
(६०–साखी)	शब्द ब्रह्म अज	१०५१
(६१–साखी)	नाम रूप गुण लीन	१०५१
(४–रमैनी, बी० र० २९)	बज्रहुते तृण	१०५२
(६२–साखी)	अलख जो लागी	१०५४
(५–रमैनी, बी० र० ८२)	सुखके वृत्त एक	१०५४
(६३–साखी)	परदे परदे चलि	१०५६
(६४–साखी)	काल चक्र घुमंत	१०५७
(६५–साखी)	काल चक्र चक्की	१०५७
(६६–साखी)	चक्की चलती देखिके	१०५७
॥ अथ आकार काल चक्रका पञ्चकोशयुक्त वर्णन ॥		
अंश पृथ्वी ॥ १ ॥, अंश चौरासी ॥ २ ॥		१०५८
अंश मूल प्रकृति ॥ ३ ॥, अंश सर्वसाक्षिणी ॥ ४ ॥		१०५९
अंश सन्धि महाकाश ॥ ५ ॥		१०६०
(१–छन्द)	अन्नमय अरु प्राणमय	१०६०
(६७–साखी)	पशुवा लोक अरु वेदके	१०६१

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(६८–साखी)	भरम चक्र यम जाल	१०६१
(६९–साखी)	प्रभु सुखदायी पारखी	१०६२
(७०–साखी)	जो जीव पावै	१०६२
(७१–साखी)	रामरहस गुरु पारख	१०६२
(७२–साखी)	चार अवस्था फन्द	१०६३
(७३–साखी)	जीव दुःखी चाहै	१०६३
(७४–साखी)	त्रिविधि भेष बनायके	१०६३
(७५–साखी)	यतिके चिह्न लङ्गोट	१०६३
(७६–साखी)	महा दुष्ट जोवहिं	१०६४
(७७–साखी)	भेष अमङ्गज नष्ट	१०६४
(७८–साखी)	अदल चलाई सत्यका	१०६४
(७९–साखी)	रीति प्रीति सोइ सत्य	१०६५
(८०–साखी)	सीत प्रसाद सुधा	१०६५
(८१–साखी)	बन्दे सन्मुख पारखी	१०६५
(८२–साखी)	दया दयाल पारख	१०६६
(८३–साखी)	प्रथमें शब्द सुधारिके	१०६६
(८४–साखी)	पारख गुरु सुख	१०६६
(८५–साखी)	साहेब साँचा पाइके	१०६७
(८६–साखी)	नारि पुरुषके भाव	१०६७
(८७–साखी)	जो रहस्य युत पारखी	१०६७
(८८–साखी)	दृढ़ पारख जे जन	१०६८
(८९–साखी)	धन्य धन्य सो जीव है	१०६८
(२–शब्द)	सन्तो ! ठहरिके करहु	१०६८
(९०–साखी)	साधु साधु सब ही	१०७२
[चौपाई ॥ भाग–२ । चौ०–११ । साखी–४ । जगनियाँ–४ है]		
(१ चौ०, १८२)	बन्दीछोर शरण सुख	१०७२
(९१–साखी)	चकी कठिन संसार	१०७४
(९२–साखी)	एक अनन्त निज	१०७५
(९३–साखी)	सो प्रकाश जो कमर	१०७५
॥ ❀ ॥ जतसारीरूप जगनियाँ वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१–भाग)	धरती अकाश बनल दोनों	१०७५
(२–भाग)	रहया ओटि ओटि कहले	१०७९
(३–भाग)	राम नामके हहै	१०८३
(४–भाग)	सुरत मकरिया गाइलेगे	१०८५
(९४–साखी)	जगनियाँ गावहिं साधु जन	१०८८
[चौपाई ॥ भाग–३ । चौ०–२ । साखी–२ । छन्द–२ है ।]		
(१ चौ०, २३३)	अस जतसारि विकट	१०८८
(९५–साखी)	पृथिवी श्वासा शून्य	१०९०
(९६–साखी)	बिनु शरणागत परख	१०९१

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(२–छन्द) भवपार सब उतरन		१०९१
(३–छन्द) बहु फन्द अवस्था		१०९२
[चौपाई ॥ भाग–४ । चौ०–१७ । साखी–१ है ।]		
(१ चौ०, २४८) प्रभु ! प्रसाद पारख		१०९३
(९७–साखी) आपु बेकारी मूल		१०९६
[चौपाई ॥ भाग–५ । चौ०–२१ । साखी–१ है ।]		
(१ चौ०, २६६) महाशून्य सो धून्द		१०९६
(९८–साखी) सर्वरूप जग जीव		११००
[चौपाई ॥ भाग–६ । चौ०–१६ । साखी–२ । शब्द–१ है ।]		
(१ चौ०, २८८) जब प्रगटै पारख		११०१
(९९–साखी) जिन जिन पारख		११०४
(१००–साखी) ज्यों ज्यों लसा छोड़ावहीं		११०४
॥ ❀ ॥ अज्ञानी हंस नरजीवका विलाप ॥ ❀ ॥		
(३–शब्द) चल मोरे नैहर हंसा !		११०५
दृष्टान्त वर्णन		११०५
सिद्धान्तिक भावार्थ		११०६
[चौपाई ॥ भाग–७ । चौ०–१० । साखी–३ । शब्द–३ है ।]		
(१ चौ०, ३११) काल कला विदित		११०८
(१०१–साखी) जो चाहो कल्याण		११११०
(१०२–साखी) सुरति सम्हारो परख ले		११११
(४–शब्द, बी० शब्द–२२) हंसा हो चित्त चेतु		११११
(५–शब्द, बी० शब्द–२६) नरको नहिं परतीत		११११२
॥ ❀ ॥ ६–शब्द, अष्टपदी शब्द ॥ श्रीसद्गुरु स्तुति ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ३४२) प्रभुजी ! तुम बिन कौन		११११४
(१०३–साखी) कपट चतुरता काल		११११८
[चौपाई ॥ भाग–८ । चौ०–१२ । साखी–२ । शब्द–१ है ।]		
(१ चौ०, ३५६) सदा काल निज जाल		११११८
(१०४–साखी) नाच नचावै यम सदा		११२०
(१०५–साखी) भूषण बहुत पहिनायके		११२१
(७–शब्द, बी० शब्द–७८) अब हम जानिया हो!		११२१
[चौपाई ॥ भाग–९ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ३७९) डोरी मोह न छूटै		११२३
(१०६–साखी) पारख तोरे भरम गढ़		११२४
(१०७–साखी) सत्य शरण प्रभु !		११२५
[चौपाई ॥ भाग–१० । चौ०–१६ । साखी–१ है ।]		
(१ चौ०, ३९१) रचना आदि जाल सो		११२५
(१०८–साखी) एक बातकी बात है		११२९
[चौपाई ॥ भाग–११ । चौ०–७ । साखी–१ है ।]		
(१ चौ०, ४०८) निर्विकारके करनि–		११२९

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१०९–साखी) गुरु तो ऐसा चाहिये		११३०
[चौपाई ॥ भाग–१२ । चौ०–८ । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ४१६) सर्व परे प्रभु !		११३१
(११०–साखी) अव्यक्त मूल जग		११३३
(१११–साखी, बी० सा० १४४) तामस केरे		११३३
[चौपाई ॥ भाग–१३ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ४२६) प्रथम निरञ्जन शून्य		११३४
(११२–साखी) जीव फँसे तेहि		११३६
(११३–साखी) साहेबको जाने नहीं		११३६
[चौपाई ॥ भाग—१४ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ४३८) जीवहि ग्रासी एक		११३६
(११४–साखी) नारि पुरुषके मिलापते		११३८
(११५–साखी) चिदाकाश सो पुरुष		११३९
[चौपाई ॥ भाग–१५ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ४५०) करत मिलाप आकर्षण		११३९
(११६–साखी) बैर भाव सो पाँचमें		११४१
(११७–साखी) रङ्ग वर्ण सो पाँचके		११४२
[चौपाई ॥ भाग—१६ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ४६२) तीनि पौन तिनि		११४२
(११८–साखी) तुर्या सुषुप्ती स्वपन ले		११४४
(११९–साखी) कारण उष्मज खानिके		११४५
[चौपाई ॥ भाग–१७ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ४७४) सोई श्वास जिह्वम		११४५
(१२०–साखी) रामरहस गुरुके दया		११४७
(१२१–साखी) पिण्ड जाल वर्णन करौं		११४८
[चौपाई ॥ भाग–१८ । चौ०–१४ । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ४८६) श्वासा गरजि घटा		११४८
(१२२–साखी) तीन अंश महाशून्यके		११५१
(१२३–साखी) त्रिगुण फाँस बहु		११५१
[चौपाई ॥ भाग–१९ । चौ०–११ । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ५०२) पाँच तत्त्व अस्थान		११५२
(१२४–साखी) पाँचसे पुनि पचीस		११५३
(१२५–साखी) वर्णन गुण प्रकृति		११५४
[चौपाई ॥ भाग–२० । चौ०–११ । साखी–१ है ।]		
(१ चौ०, ५१५) पाँच पचीस कीन्ह		११५४
(१२६–साखी) अस प्रपञ्च सब		११५६
[चौपाई ॥ भाग–२१ । चौ०–१५ । साखी–२ । छन्द–२ है]		
(१ चौ०, ५२७) बोलन धावन बल		११५७
नौ नाड़ियोंका वर्णन		११५८

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१२७–साखी) नारि समानी पुरुषमें		११६०
(४–छन्द) परपञ्च पाँच पचीस		११६०
(५–छन्द) बहु व्याधि खानि सो		११६१
(१२८–साखी) परवश हाथ बधिकके		११६२
[चौपाई ॥ भाग–२२ । चौ०–१५ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ षट् चक्रादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ५५२) सात कमल औ		११६३
(१२९–साखी) प्रति प्रति कमल गाँठि		११६५
(१३०–साखी) कारण सब सूतम		११६५
[चौपाई ॥ भाग–२३ । चौ०–१३ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ सात द्वीपादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ५६९) कमल सात सोई		११६५
(१३१–साखी) रग जो बहत्तर सहस		११६८
(१३२–साखी) और अनेकनि जाल		११६८
[चौपाई ॥ भाग–२४ । चौ०–११ । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ५८४) दश वायु दश बाजा		११६८
(१३३–साखी) बल विशेष सम साधना		११७१
(१३४–साखी) बड़ उतपात उत्पातिके		११७१
[चौपाई ॥ भाग–२५ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ५९७) आपन आपन भाग		११७१
(१३५–साखी) षट ऊर्मी षट रस		११७३
(१३६–साखी) षट दक्षिणायन सोई		११७४
[चौपाई ॥ भाग–२६ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ६०९) बड़ खट-खट सोई		११७४
(१३७–साखी) पेडू रसातल ताहिमें		११७६
(१३८–साखी) नारी मोहै पुरुषको		११७६
[चौपाई ॥ भाग–२७ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ६२१) नारी होय पुरुष		११७७
(१३९–साखी) हंस न नारी पुरुष है		११७९
(१४०–साखी, बी० र० सा० ५०) नारी रचन्ते		११८०
(१४१–साखी, बी० सा० २९८) जो तू चाहे		११८०
[चौपाई ॥ भाग–२८ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ६३४) सुनहु काल कला		११८१
(१४२–साखी) बहुत कुकर्मी राज दै		११८३
(१४३–साखी) राजा कुटिल प्रपञ्चो		११८३
[चौपाई ॥ भाग– २९ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ६४६) घट-घट काल करे		११८४
(१४४–साखी) आशा पिण्डज तुरिया		११८६
(१४५–साखी) अंकुरज कारण थीर		११८६

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
[चौपाई ॥ भाग–३० । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
(१ चौ०, ६५८) लिङ्गम कारण उत्पत्ति		११८७
(१४६–साखी) कीड़ा उत्पत्ति लादमें		११८९
(१४७–साखी) देखहु फन्द सो कालके		११८९
[चौपाई ॥ भाग–३१ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ चार प्रकारके स्त्री–पुरुषादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ६७०) रचि खानी बहु कला		११८९
(१४८–साखी) विद्या कोक परगट		११९१
(१४९–साखी) जो नहिं जानहिं कोक		११९२
[चौपाई ॥ भाग–३२ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ शरीरके रूप, रङ्ग, गढ़न आदि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ६८२) रङ्ग रूप कोई गोरा		११९२
(१५०–साखी) पारख पाय फीका परे		११९४
(१५१–साखी) कला काल सब परख ले		११९४
[चौपाई ॥ भाग–३३ । चौ०–११ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ देहके अङ्ग-भङ्गादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ६९४) काल फन्द रचा		११९५
(१५२–साखी) प्रभुके शरण सहाय		११९७
(१५३–साखी) और अनेकन जो		११९७
[चौपाई ॥ भाग–३४ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ भूत-प्रेतादि कल्पना वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ७०७) भूत प्रेत जोइन		११९७
(१५४–साखी) बहु प्रकारके रूप		१२००
(१५५–साखी, बी० सा०, १८१) साहेब-साहेब सब		१२००
[चौपाई ॥ भाग–३५ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ ब्रह्माण्ड विस्तार कथन वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ७१९) और सुनहु ब्रह्माण्ड		१२०१
(१५६–साखी) ब्रह्माण्ड विस्तार		१२०४
(१५७–साखी) तुर्यातीत एकता		१२०४
[चौपाई ॥ भाग–३६ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ प्रकृति–पुरुषका मिलापादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ७३३) महाकारण सो आपुहि		१२०४
(१५८–साखी) कारण शून्य है श्वासके		१२०६
(१५९–साखी) कारण पृथिवी खेत सो		१२०७
[चौपाई ॥ भाग–३७ । चौ०–१४ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ ब्रह्माण्डसे पिण्डकी उत्पत्ति वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ७४२) पाँच कला जो कारण		१२०७
(१६०–साखी) जस जस चन्दा सूर्य बर		१२१०

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१६१–साखी)	पन्द्रह तिथि परवान सो	१२११
[चौपाई ॥ भाग–३८ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ सूर्य–चन्द्रादिके बल और वेरादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ७६१)	अपने घर चन्दा बल	१२११
(१६२–साखी)	पाँच श्वास गुण तीन	१२१३
(१६३–साखी)	रूप अनेकन ताहिमें	१२१४
[चौपाई ॥ भाग–३९ । चौ०–१३ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ दिन–रात तथा योगिनी कलादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ७७३)	रात दिवश जो पलक	१२१४
(१६४–साखी)	जब सो चाल चलावै	१२१७
(१६५–साखी)	दशा सबै सो थूलके	१२१७
[चौपाई ॥ भाग–४० । चौ०–१३ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ सात स्वर्ग, सात पहाड़, सात समुद्रादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ७८८)	सात स्वर्गके सात	१२१७
(१६६–साखी)	प्रति प्रति दीप सङ्गम	१२१९
(१६७–साखी)	जब जब करै जलामयी	१२२०
[चौपाई ॥ भाग–४१ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ सात द्वीप, नव नाड़ी, नव खण्डादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ८०३)	नदी जहाँ तहाँ सङ्गम	१२२०
(१६८–साखी)	अष्ट धातु बहु खानिके	१२२२
(१६९–साखी)	नित उपजे अरु नित	१२२२
[चौपाई ॥ भाग–४२ । चौ०–१० । साखी–२ । हिण्डोला–१ है]		
॥ ❀ ॥ जगत्की अनित्यता तथा चञ्चलतादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ८१५)	चलै नित्य सो जगत	१२२३
(१७०–साखी)	बिरले बाँचहि सुजन	१२२४
(१७१–साखी)	झूला झूलत कल नहीं	१२२५
[मूल बीजक, हिण्डोला नं०–१ । चौ० १ से १९ तक है ।]		
(१ चौ०, ८२७)	भरम हिण्डोला झूले	१२२५
[चौपाई ॥ भाग–४३ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ वाणी प्रपञ्चादि विस्तार वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ८४६)	पुनि परपञ्च जो जग	१२३०
(१७२–साखी)	चिदाकाश श्वासा भया	१२३२
(१७३–साखी)	सात स्वर्ग सो खेतमों	१२३२
[चौपाई ॥ भाग–४४ । चौ०–१७ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ अष्ट वर्ग तथा शब्दोच्चारणके स्थानादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ८५८)	अवर्ग कवर्ग चवर्ग	१२३३
(१७४–साखी)	अपनी-अपनी भाग	१२३६
(१७५–साखी)	श्वासासों स्वर ऊपजे	१२३६
पं० प्र० सूची; ३—		

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
[चौपाई ॥ भाग–४५ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ अक्षरोंकी उत्पत्ति तथा पञ्च देवोंके वासादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ८७७)	नासा आलम्भन शून	१२३७
(१७६–साखी)	उपजावै खपावै	१२३९
(१७७–साखी)	नाभी परा पश्यन्ती	१२३९
[चौपाई ॥ भाग–४६ । चौ०–२२ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ सोहं शब्दकी रचना एवं शब्दोत्पत्ति वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ८९१)	अक्षर रचि कन्या	१२४०
(१७८–साखी)	सोहं अजपा जाप है	१२४४
(१७९–साखी)	सोहं अस्मि वाक्य है	१२४५
[चौपाई ॥ भाग–४७ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ ॐ शब्दकी रचना एवं पाँच मात्रा, गायत्री आदि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ९१५)	रचना सोहं बहुविधि	१२४५
(१८०–साखी)	प्रणव अजके जाप है	१२४७
(१८१–साखी)	मायामयो सब पुरुष हैं	१२४८
(१८२–साखी)	चौबीस अक्षर मिलायके	१२४८
[चौपाई ॥ भाग–४८ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ राम शब्दकी रचना एवं जापादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ९३०)	भू पृथिवीसे जपै	१२४८
(१८३–साखी)	कामिनी रूपी सोई	१२५१
(१८४–साखी)	माया गुण नहिं लखि	१२५२
(१८५–साखी)	श्वासा सो सोहं भया	१२५२
[चौपाई ॥ भाग–४९ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ भाषा विचार, छन्द, कविता, अष्टगणादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ९४५)	तीन शब्द रचि कला	१२५३
(१८६–साखी)	हाव भाव रस भेद ले	१२५६
(१८७–साखी)	लवरीमों लबरा फँसा	१२५६
[चौपाई ॥ भाग–५० । चौ०–१३ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ वाणीजाल, नव तक अङ्क, शून्यके संख्यादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ९५७)	कलम मसी मसियानी	१२५६
(१८८–साखी)	काल कला अरुझावहीं	१२६०
(१८९–साखी)	मोर तोर सब कालके	१२६१
[चौपाई ॥ भाग–५१ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ ६ राग, ३६ रागिनी, ७ स्वर, ३ ताल, इत्यादि सङ्गीत वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, ९७२)	वाचा रचि बहु कला	१२६१
(१९०–साखी)	अपने अपने जालमें	१२६५
(१९१–साखी)	तबका चेतहु बावरे !	१२६५

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
	[चौपाई ॥ भाग–५२ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]	
	॥ ❀ ॥ श्वाससे समय मापका संख्यादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, ९८६)	रचि अनेक विद्या विधि	१२६६
(१० चौ०, ९९५)	छौ सै सहस्र एकईस	१२६७
(१९२–साखी)	नारि पुरुषके भाव	१२६८
(१९३–साखी)	अस्थूल पिण्ड ब्रह्माण्डके	१२६८
	[चौपाई ॥ भाग–५३ । चौ०–१४ । साखी–२ है ।]	
	॥ ❀ ॥ सात वार, १५ तिथि, २ पक्ष, ६ ऋतु, ३ समय, १ सम्वत्से लेकर चार युग एवं कल्प–कल्पान्त तकका संख्या. वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, ९९८)	सात बार सोई स्वर्ग	१२६८
(११ चौ० १००८)	युग अरु कल्प कीन्ह	१२७०
अथ सङ्कल्पसे	सृष्टि संख्या समयका हिसाब वर्णन	१२७१
मानुष वर्षोंके	अनुसार चारोंयुगोंका वर्षसंख्या वर्णन	१२७२
(१–क्रवित्त)	सत्रह लाख हजार	१२७३
(१४ चौ०, १०११)	तेहि प्रतीति कौन	१२७४
(१९४–साखी)	लेखा भाव शुभ अशुभ	१२७५
(१९५–साखी)	सत्य प्रीति परतीत	१२७५
	[चौपाई ॥ भाग–५४ । चौ०–११ । साखी–३ है ।]	
	॥ ❀ ॥ शकुनकी कल्पना, सिद्धि कलादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १०१४)	येहि विधि कला	१२७६
(१९६–साखी)	मनके दाव जो लखि	१२७८
(१९७–साखी)	लाख कोशको भूत	१२७९
(१९८–साखी, बी० सा० २२२)	सिद्ध भया तो क्या	१२८०
	[चौपाई ॥ भाग–५५ । चौ०–११ । साखी–३ है ।]	
	॥ ❀ ॥ ज्यौतिषादि दृष्टिसे फलादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १०२८)	लिङ्गम जो ब्रह्माण्ड	१२८०
(१९९–साखी)	कारण चञ्चल पुरुषके	१२८२
(२००–साखी)	थिर पृथिवी अस्थूल	१२८३
(२०१–साखी)	तर अरु ऊपर आपु ही	१२८३
[चौपाई ॥ भाग–५६ । चौ०–१२ । साखी–६।शब्द–२ है]		
	॥ ❀ ॥ योगाभ्यास तथा षट् चक्र भेदनादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १०४२)	श्वासा साधन युक्ति	१२८३
	चौरासी आसन वर्णन	१२८४
	षट्चक्र विवरण कोष्ठक	१२८६
	योगके षट् कर्म वर्णन	१२८७
(२०२–साखी)	केते साधहिं योग	१२८८
(२०३–साखी)	सम्पूरण चूसे	१२८८
(२०४–साखी, बी० सा० ४२)	झिलमिल झगरा	१२८९
(२०५–साखी, बी० सा० ४३)	गोरख रसिदा	१२८९
	[मूल बीजक, शब्द नं०–२ । चौ० १ से १६ तक है ।]	
(८–शब्द)	सन्तो ! जागत नीन्द न	१२९०
(९–शब्द, बी० श० ६३)	मैं कासों कहौं ?	१२९४
(२०६–साखी, बी० सा० ६)	शब्दै मारा गिर	१२९७
(२०७–साखी)	बिन पारख वाणी	१२९७
[चौपाई॥ भाग–५७ । चौ०–१३ । सा०–४ । रमैनी–१ है ।]		
	॥ ❀ ॥ पञ्च मुद्रा, ४ आश्रम, १२ बानी आदि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ० १०८१)	बहुविधि साधन	१२९७
(२०८–साखी)	बन्दौ शोभा विविधि	३००
(२०९–साखी)	जहाँ तहाँ त्रिदोष	१३००
(२१०–साखी, बी० सा० २५०)	प्रथम एक जो	१३०१
(६–रमैनी, बी० र० ८)	तत्वमसि इनके	१३०१
(२११–साखी)	कुल मर्य्यादा खोयके	१३०३
	[चौपाई ॥ भाग–५८ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]	
	॥ ❀ ॥ यमकी मिथ्या बड़ाई आदि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, ११०४)	बहुत रहे यम जाल	१३०३
(२१२–साखी)	सूझि परै नहिं जाल	१३०६
(२१३–साखी)	जीव न पावै मर्म	१३०६
[चौपाई ॥ भाग–५९ । चौ०–१३ । साखी–१ । शब्द–१ है]		
	॥ ❀ ॥ चहुँविधि भव बन्धन वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १११८)	अज हरि हर त्रिगुण	१३०७
(२१४–साखी)	गाँस फाँस बहुविधि	१३१०
(२१५–साखी)	मोटी माया सब तजे	१३११
(१०–शब्द)	भरोसे अनुभवके भूले	१३११
(२१६–साखी)	जिभ्यापर आवे नहीं	१३१४
(२१७–साखी)	शून्य मरै अजपा मरै	१३१४
(२१८–साखी)	नित पारख परकाशमें	१३१५
	[चौपाई ॥ भाग–६० । चौ०–११ । साखी–२ है ।]	
	॥ ❀ ॥ यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र और तैंतीस कोटि देवतादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, ११५०)	और कला सावर	१३१५
(२१९–साखी)	चटक मटक बाजीगरी	१३१८
(२२०–साखी)	अरमशान सिद्धि	१३१८
	[चौपाई ॥ भाग–६१ । चौ०–११ । साखी–२ है ।]	
	॥ ❀ ॥ अनेक कर्म-कुकर्मादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, ११६३)	डाका घात कुटिलता	१३१८
(२२१–साखी)	महा अघट करनी	१३२१
(२२२–साखी, बी० सा० ३२९)	पैठा है घट	१३२१
	[चौपाई ॥ भाग–६२ । चौ०–१२ । साखी–३ है ।]	

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
	॥ ❀ ॥ पाखण्ड यम जालादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, ११७६)	भानु होय कला	१३२२
(२२३–साखी)	महिमा केरी धमण्डमें	१३२४
(२२४–साखी)	पाँच तत्त्व गुण तीनकी	१३२५
(२२५–साखी, बी० सा० ३८)	चन्दन सर्प	१३२५
[चौपाई ॥ भाग–६३ । चौ०–१५ । साखी–२ है ।]		
	॥ ❀ ॥ वैद्यक, रसायन, नाड़ी परीक्षा, जल तरण, अश्वारोहण, रत्न परीक्षादि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, ११९१)	औरों कला अनेक	१३२६
(१४ चौ०, १२०४)	जतन रतनके चाल	१३२९
(२२६–साखी)	बैर विरोध मचायके	१३३०
(२२७–साखी)	रेखा लक्षण भेद	१३३०
[चौपाई ॥ भाग–६४ । चौ०–१३ । साखी–३ है ।]		
	॥ ❀ ॥ चौदह विद्याएँ, धर्मराय तथा आद्यामायासे त्रिदेवोंकी उत्पत्ति और धर्मरायकी देहान्त आदिका वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १२०८)	जेहि प्रकार अनन्त	१३३१
(२२८–साखी)	प्रीति करै जो ताहि सों	१३३३
(२२९–साखी, बी० सा० १२८)	तीन लोक चोरी	१३३४
(२३०–साखी)	ध्यान धरहिं बहु भाँति	१३३४
[चौपाई ॥ भाग–६५ । चौ०–१६ । साखी–७ है ।]		
	॥❀॥आदि मायाके तीन पुत्रोंको शिक्षा देना इत्यादि वर्णन॥❀॥	
(१ चौ०, १२२४)	त्रिदेवा त्रयगुण	१३३५
(२३१–साखी)	शून्य समाधि लगायके	१३३९
(२३२ साखी)	जब पूछहिं प्रतिबिम्बसों	१३३९
(२३३–साखी, बी० सा० ३४६)	ब्रह्मा पूछै जननी	१३३९
(२३४ साखी, बी० सा०३४७)	रेख रूप वै है नहिं	१३४०
(२३५–साखी, बी० सा० ३४८)	धरै ध्यान गगनके	१३४०
(२३६–साखी, बी० सा० ३४९)	ये मन तो शीतल	१३४१
(२३७–साखी)	लोभ मोह काम क्रोध	१३४१
[चौपाई ॥ भाग -६६ । चौ०–१२ । साखी३ । रमैनी– है]		
	॥ ❀ ॥ जगत् कर्त्ता विषयक त्रिदेवोंका प्रश्न, आदिमायाका भुलावा, विषय भोगका प्रस्ताव आदि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ० १२४७)	कला अनन्त पावै	१३४१
(२३८–साखी)	सुनतहि वाणी पुत्रकी	१३४४
(७–रमैनी, बी० र० २)	जीवरूप एक	१३४५
(२३९–साखी)	बाप पूतको एकै नारी	१३४७
(२४०–साखी)	विषय मूल माया	१३४८
[चौपाई ॥ भाग–६७ । चौ०–१९ । साखी–२ है ।]		
	॥❀॥ खानीवाणी दोनों तरफका आदिमायाका उपदेश वर्णन ॥❀॥	
(१ चौ०, १२६७)	विषय सन्देश दूजे	१३४९
(२४१–साखी)	एकता ज्ञान विषयमयी	१३५३
(२४२–साखी)	ब्रह्मा गुप्त त्रिविधि	१३५३
[चौपाई ॥ भाग–६८ । चौ०–११ । साखी–२ है ।]		
	॥❀॥ अण्डाकार भग-लिङ्गादि पूजाका पाखण्ड वर्णन ॥❀॥	
(१ चौ०, १२८८)	अण्डरूप शिलाके	१३५३
(२४३–साखी)	तीनिहुँ तीन प्रकार	१३५६
(२४४–साखी)	हरि पतिवर्ता कामिनी	१३५६
[चौपाई ॥ भाग–६९ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
	॥❀॥ त्रिदेवके सम्भोगसे तीन पुत्रियोंकाजन्म कर्मादि वर्णन ॥❀॥	
(१ चौ०, १३०१)	उपदेशी नारी सो	१३५६
(२४५–साखी)	रचना सूक्ष्म हेतु	१३५९
(२४६–साखी)	अपनी धरनी राज	१३५९
[चौपाई ॥ भाग–७० । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
	॥❀॥ आदिमायाका त्रिदेवोंको शिक्षा दृढ़ापन आदि वर्णन ॥❀॥	
(१ चौ०, १३१५)	अव्यक्त रूप सहज	१३६०
(२४७–साखी)	औगुणरूप त्रिगुण	१३६२
(२४८–साखी)	पृथक पृथक अनबनि	१३६३
[चौपाई ॥ भाग–७१ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
	॥ ❀ ॥ त्रिदेवोंके कर्म और जाप आदि वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १३२९)	राज मगन मन	१३६३
(२४९–साखी)	अपने अपने राजमें	१३६५
(२५०–साखी)	चारि वेद प्रगट	१३६६
[चौपाई ॥ भाग-७२ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
	॥ ❀ ॥ ब्रह्मा कृत चार वेदोंके चार सिद्धान्त वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १३४३)	चारि वेद ब्रह्मा	१३६६
(२५१– साखी)	समय समय प्रगट	१३६८
(२५२– साखी)	चौथे साम कहै मता	१३६८
[चौपाई ॥ भाग–७३ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
	॥❀॥ चार वेदानुसार चार वर्णोंके भिन्न-भिन्न कर्म वर्णन ॥❀॥	
(१ चौ०, १३५७)	चौथे साम बीज	१३६९
(२५३–साखी)	उत्तम मध्यम कर्म	१३७१
(२५४–साखी)	कर्म कमाई सबन पर	१३७२
[चौपाई ॥ भाग–७४ । चौ०–१४ । साखी–२ है ।]		
	॥ ❀ ॥ नित्य–नैमित्तिकादि नाना कर्म वर्णन ॥ ❀ ॥	
(१ चौ०, १३७१)	नित्यप्रति सबहीं	१३७२
(२५५–साखी)	बहु कर्महिं अरुझाय	१३७५
(२५६–साखी)	चहहिं जो निस्तरनको	१३७६
[चौपाई॥ भाग–७५ । चौ०–११ । रमैनी–१ । साखी–४है ।]		

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
॥❀॥ गुरुवा मायाका घेरा, साधनोंका कष्ट आदि वर्णन ॥❀॥		
(१ चौ०, १३८७) जो कोई जीव इन्हते		१३७६
(८–रमैनी, बी० र०–९) बाँधे अष्ट कष्ट नौ सूता		१३७९
(२५७–साखी) बन्दि मनावै तै फल		१३८१
(२५८–साखी) बन्दीखाना जो परे		१३८२
(२५९–साखी, बी० सा० ७०) जहर जिमी दै		१३८२
(२६०–साखी, बी० सा० १३३) विषके बिरवे घर		१३८३
[चौपाई॥ भाग–७६ । चौ०–११ । साखी–४ । रमैनी–१ है ।]		
॥ ❀ ॥ विष्णुके फाँस भक्ति मार्गादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १४०७) जो कोई जीव		१३८३
(२६१–साखी) विरही अनल		१३८६
(२६२–साखी) तिन्ह आँखिन पथरा		१३८६
(९–रमैनी, बी० र० १२) माटिक कोट		१३८७
(२६३–साखी) मूस बिलाई एक सङ्ग		१३८९
(२६४–साखी) बी० र० सा० ६८) जे कर शर		१३८९
[चौपाई ॥ भाग–७७ । चौ०–१२ । साखी–४ । रमैनी–१ है ।]		
॥ ❀ ॥ शिवके फाँस, योग मार्ग, संन्यासादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १४२८) विष्णु फाँस जेहि		१३९०
(२६५–साखी) पूरण पिण्ड ब्रह्माण्ड		१३९३
(२६६–साखी) बन्दीछोर छोड़ावहीं		१३९३
(१०–रमैनी, बी० र०–१०) राहि ले पिपराही		१३९४
(२६७–साखी) अमृत वस्तु जानै नहिं		१३९६
(२६८–साखी, बी० साखी ८००) करक करेजे		१३९७
[चौपाई ॥ भाग–७८ । चौ० १३ । सा० २ । रमैनी–१ । शब्द–१ है]		
॥ ❀ ॥ राजनितिके कला–साम–दामादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १४५०) तन मन राचे कर्म		१३९७
(२६९–साखी) एकन्हि एकके वशि		१४०२
(११–रमैनी, बी० र० ८३) क्षत्री करै क्षत्रिया		१४०२
(२७०–साखी) मन्मथ मरै न जीवै		१४०५
(११–शब्द, बी० श० ५९) माया महा ठगिनी		१४०५
[चौपाई ॥ भाग–७९ । चौ०–१६ । साखी–५ । रमैनी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ चौदह विद्याएँ और चौंसठ कलाओंका वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १४७८) त्रिदेवा जननीके		१४०८
चौंसठ कलाओंका नाम वर्णन टिप्पणी		१४११
(२७१–साखी) धर्मराय राजा सोई		१४१४
(२७२–साखी) जननीके परसङ्गसों		१४१४
(२७३–साखी) वर्णन करहिं बहु		१४१४
(१२–रमैनी, बी० र० ४३) जिन्ह जीव कीन्ह		१४१५
(२७४–साखी) गुरु द्रोही मन्मुखी		१४१७
(१२–रमैनी, बी० र० ४१) अम्बुकी राशि		१४१८
(२७५–साखी) तेही हरि तेहि ठाकुर		१४२०
[चौपाई । भाग–८० । चौ०–११ । रमैनी–१ । साखी–७ है ।]		
॥ ❀ ॥ त्रिदेवोंके ब्रह्म समाधि आदि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १५०८) ब्रह्म समाधि त्रिदेव		१४२१
(१४–रमैनी, बी० र० ३७) एक सयान सयान न–		१४२४
(२७६–साखी) बीजक वित्त बतावै		१४२६
दृष्टान्त–सिद्धान्त वर्णन		१४२७
(२७७–साखी) तीन लोकके द्रष्टा		१४३१
(२७८–साखी) नहीं रोग नहिं रोगी		१४३२
(२७९–साखी) काल चक्रके फेरमें		१४३२
(२८०–साखी) लोक देव गुण कर्म		१४३२
(२८१–साखी) परवश जियरा		१४३३
(२८२–साखी) महा चाक भव चक्र		१४३३
[चौपाई ॥ भाग–८१ । चौ०–१० । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ विविधि साधनाओंके बिगुर्चादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १५३०) बिन गुरु पूरण		१४३४
(२८३–साखी) महा चक्रके चरख		१४३७
(२८४–साखी, बी० सा० ४६) कबीर भरम न		१४३७
[चौपाई ॥ भाग–८२ । चौ०–६ । रमैनी–१ । साखी ३ है ।]		
॥ ❀ ॥ त्रिदेव और त्रिदेवीकी देहान्तादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १५४२) विशेष रूप त्रिदेव		१४३८
(१९–रमैनी, बी० र० ५४) मरि गौ ब्रह्मा काशी		१४४०
(२८५–साखी) नाथ मछन्दर बाँचे नहिं		१४४१
[चौपाई ॥ भाग–८३ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ सनकादि ऋषि-मुनियोंके वाणी जाल वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १५५२) जेहि त्रिदोष मुये		१४४२
(२८६–साखी) चार वेद षट् अंश		१४४५
(२८७–साखी) खट खट पटके		१४४६
[चौपाई ॥ भाग–८४ । चौ०–१० । साखी–४ है ।]		
॥ ❀ ॥ अठारह पुराणोंके वाणी प्रपञ्च कथन वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १५६६) और अठारह कथे		१४४६
(२८८–साखी) महासागर संसार		१४४९
(२८९–साखी) अनुभव बहु आश्चर्य		१४४९
(२९०–साखी, बी० सा० ८५) हिलगी भाव		१४५०
(२९१–साखी, बी० सा० १००) करक करेजे		१४५१
[चौपाई॥ भाग–८५ । चौ०–१५ । साखी४ । रमैनी २ है]		
॥ ❀ ॥ चार किताब, आदम आदि चार नबी, सरियत आदि चार चाल, नासूत आदि चार मुक्ति वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १५८०) काल कराल तरङ्ग		१४५१

पद्याङ्क।	विषय।	पृष्ठाङ्क।
(२९२–साखी) पँचये सो विज्ञानमें		१४५४
(२९३–साखी) दुर्मति कारण		१४५४
(१६–रमैनी, बी० र० ४०) आदम आदि सुधि		१४५५
(२९४–साखी) सञ्जोगेका गुण रवै		१४५७
(१७–रमैनी, बी० र० ३९) जिन्ह कलमा कलि		१४५८
हिन्दुओंके १६ संस्कार वर्णन		१४६०
(२९५–साखी) पानी पवन सञ्जोयके		१४६०
[चौपाई।।भाग–८६।चौ०–१२। मसला–१। सा०२।शब्द–२ है]		
।।❀।। हिन्दू और तुरुकोंकी वाणी–खानीका फन्दा वर्णन ।।❀।।		
(१ चौ०, १६०८) वेद किताब दोउ		१४६१
(३–मसला) नदिया एक घाट बहुतेरी		१४६५
(२९६–साखी) रेख रूप बिनु वेदमें		१४६६
(१२–शब्द, बी० श० ३०) भाई रे ! दुई जगदीश		१४६६
(१३–शब्द, बी० श० १०) सन्तो ! राह दूनों हम		१४७०
(२९७–साखी) बड़ उतपात यम		१४७३
[चौपाई।।भाग–८७।चौ०–१६। सा०५ ।छन्द–२ । शब्द२ है]		
।। ❀ ।। काल जालोंका महा उरझेरादि वर्णन ।। ❀ ।।		
(१ चौ०, १६४३) असी सहस्र मिलि		१४७३
(२९८–साखी) परखत सुरत		१४७९
(२९९–साखी) पारख अचल अखण्ड		१४७१
(६–छन्द) भटकी बहे बहुधार		१४७९
(७–छन्द) गावे विषय विकार		१४८१
(१४–शब्द) ऐसो वेद वैद्य जग माँहीं		१४८२
दृष्टान्त वर्णन		१४८४
(१५–शब्द) सहज एक ऐसी हूब		१४८५
(३००–साखी, बी० सा० १२५) एक शब्द गुरुदेवका		१४८७
(३०१–साखी,बी० सा० १३३) विषके बिरवे घर		१४८८
(३०२–साखी, बी० सा० १३४) जो घर हैगा सर्पका		१४८८
[चौपाई ।। भाग–८८ । चौ०–११ । साखी–२ है ।]		
।। ❀ ।। चार खानियोंमें ले जानेका कारण–		
चार अवस्थाओंके कर्मादि वर्णन ।। ❀ ।।		
(१ चौ०, १६८७) सो त्रिदोष ब्रह्माण्ड		१४८९
(३०३–साखी) सबै कला सब खानिमें		१४९२
(३०४–साखी) बढ़े विलास चहुँ		१४९३
[चौपाई ।। भाग–८९ । चौ० १३ । साखी २। चौंतीसा १ है]		
।। ❀ ।। अध्यासके अनुसार जीवोंके गति आदि वर्णन ।। ❀ ।।		
(१ चौ०, १७००) तैसो फन्द जनमके		१४९३
(३०५–साखी) उलटि पलटि बहु		१४९७
(३०६–साखी) विविधि प्रकार उपजा करै		१४९७
(१ ज्ञान चौ०, बी० ४) घघा घट विनशै		१४९७
[चौपाई ।। भाग–९० । चौ०–१७ । साखी–२ है ।]		
।। ❀ ।। ऊखके रससे गुड़, राब, शक्कर, चीनी, मिश्री, कन्द, और विकन्द बनानेकी विधिवत् दृष्टान्त सिद्धान्त वर्णन ।। ❀ ।।		
(१ चौ०, १७१७) बुद्धि थूल मिलावै		१४९८
(३०७–साखी) सब विधि खाई आपुहि		१५०३
(१) दृष्टान्त, (२) दृष्टान्त, (३) दृष्टान्त		१५०४
(३०८–साखी, बी० सा० ४७) बिनु डाँड़े जग		१५०७
[चौपाई ।। भाग–९१ । चौ०–१२ । साखी–२ है ।]		
।।❀।। पारखके प्रतापसे गाँस-फाँसका विनाश वर्णन ।।❀।।		
(१ चौ०, १७३६) सर्व कला शाखा यम		१५०८
(३०९–साखी) रामरहस साहेब शरण		१५१२
(३१०–साखी) नाशकके सब रूप		१५१२
[चौपाई ।। भाग–९२ । चौ०–११ । साखी–५ है ।]		
।। ❀ ।। पारखी श्रीसद्गुरुकी महिमा और सत्यलोकादि निर्णय वर्णन ।। ❀ ।।		
(१ चौ०, १७५०) मिथ्या सत्य सबै		१५१३
(३११–साखी) प्रभु शरणागत		१५१६
(३१२–साखी) पारख सीढ़ी झाँकके		१५१७
(३१३–साखी, बी० सा० २८६) गुरु सीढ़ीते		१५१७
(३१४–साखी, बी० सा० ३०८) साँचे आप न		१५१८
(३१५–साखी, बी० सा० ३३४) साँच बराबर		१५१९
[चौपाई।।भाग–९३ । चौ०–१२ । साखी ३ । शब्द–१ है ।]		
।। ❀ ।। त्रिगुणी वाणीका बौडेरा उड़ना इत्यादि वर्णन ।। ❀ ।।		
(१ चौ०, १७६६) विधि हरि हर बहु		१५१९
(३१६–साखी) कथनी कथै अगाध		१५२२
(३१७–साखी) घर जञ्जाल बाहर		१५२३
टिप्पणी, (१) कान्तादासका दृष्टान्त		१५२४
(२) संन्यासी विशुद्धानन्दका दृष्टान्त		१५२६
(३) अज्ञ बाबाजीके गीता-मोहका दृष्टान्त		१५२८
(४) अनधिकारी लोगोंके एकान्त वासका दृष्टान्त		१५३१
(३१८–साखी, बी० सा० ५३) गृह तजिके भये		१५३२
(१६–शब्द) सुन रे सुभगिया !		१५३३
[चौपाई ।। भाग–९४ । चौ०–१३ । साखी–३ है ।]		
।।❀।। पारखी श्रीसद्गुरुकी विशेषता और शिक्षा वर्णन ।।❀।।		
(१ चौ०, १७८६) त्याग सोई जो सदा		१५३५
(३१९–साखी) पूजा सन्तन कीजिये		१५३८
(३२०–साखी) जो तू आया जगतमें		१५३९

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(३२ :–साखी) फेर परा नहिं तत्त्वमें		१५४०
[चौपाई ॥भाग–९५ । चौ०–११ । साखी२ । रमैनी–१ है ।]		
॥ ❀ ॥ मुमुक्षुओंके प्रति सत्य शिक्षा वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १८०२) और जतन कछुवो		१५४०
(३२२–साखी) वचन बसावहु पारखी		१५४३
(१८–रमैनी, बी० र० ५८) तैं सुत मान		१५४४
(३२३–साखी) साधु सन्त तेई जना		१५४६
[चौपाई ॥ भाग–९६ । चौ०–१६ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ वचनका निर्णय तथा पारखीके वचनकी महिमा वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १८२०) वचन वचन जग सब		१५४७
(३२४–साखी) जे जीव परख विलास		१५५२
(३२५–साखी) परख विलासी जीव		१५५२
[चौपाई ॥ भाग–९७ । चौ०–४ । साखी–२ है ।]		
॥ ❀ ॥ अधिकारीके अनुसार खिंचाव वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १८३८) जीवन धन पारख		१५५२
(३२६–साखी) अधम कला सब		१५५४
(३२७–साखी, बी० सा० १०२) काल खड़ा शिर		१५५४
[चौपाई ॥भाग–९८ । चौ०–११ । छन्द–५ । साखी–१ है ।]		
॥ ❀ ॥ साहुरूप सद्गुरु और चोररूप गुरुवाले लोगोंके सङ्गसे होनेका सुख-दुःख फल वर्णन ॥ ❀ ॥		
(१ चौ०, १८४४) साहेब अनबनि		१५५५
॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरु स्तुति-महिमा वर्णन ॥ पञ्चक छन्द ॥ ❀ ॥		
(८–छन्द) साहेब स्वतः प्रकाश		१५५८
(९–छन्द) यम हन्त एक अनन्त		१५६०
(१०–छन्द) जीव हाल कीन्ह		१५६१
(११–छन्द) यह बुद्बुदा जो शरीर		१५६३
(१२–छन्द) नारदादि शुकादि दै		१५६४
(३२८–साखी) सन्तत सुख है		१५६६
[चौपाई ॥भाग–९९ । चौ०–१० । रमैनी–१ । सा०२ है ।]		
॥❀॥ बहुत मत-मतान्तरोंके पक्षपातका नशादि वर्णन ॥❀॥		
(१ चौ०, १८७६) कर्मफाँस बहुते		१५६६
(३२९–साखी) जगै न खोलै पलक		१५६९
(१९–रमैनी, बी० र० २९) बज्रहुते तृण		१५७०
(३३०–साखी) अलख जो लागी		१५७१
(३३१–साखी, बी० सा० १०४) मन माया की कोठरी		१५७१
[चौपाई ॥ भाग–१०० । चौ०–१४ । साखी४ । छन्द–२ है]		
॥❀॥ जीवोंको मुख्य चेतावनी तथा उपदेशादि वर्णन ॥❀॥		
(१ चौ०, १८९५) रहहु सदा पारख		१५७२

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१४ चौ०, १९०८) तन अभिमान लहहु		१५७५
(३३२–साखी, बी० सा० ६२) दोहरा तो नौतन		१५७६
(३३३–साखी, बी० सा० १५९) साहु चोर चीन्है		१५७६
(३३४–साखी, बी० सा० १४०) माया तजे क्या		१५७७
(१३–छन्द) संसार संशय शरीर		१५७७
(१४–छन्द) सो वचन हैं टकसार		१५७९
(१३५–साखी, बी० सा० १०६) बेदा दीन्हों		१५८०
[चौपाई ॥ भाग–१०१ । चौ०–११ । साखी–३ है ।]		
॥❀॥ जिज्ञासुओंको स्वरूप स्थितिका उपदेश वर्णन ॥❀॥		
(१ चौ०, १९२३) संशय भरम मिटावहु		१५८१
(३३६–साखी) साहु साहेब गुरु		१५८४
(३३७–साखी) पारख मिले संशय भजै		१५८४
(३३८–साखी, बी० सा० १२३) जाके मुनिवर		१५८५
[चौपाई ॥ भाग–१०२ । चौ०–१४ । साखी–१ । भूलना–१ । रमैनी–१ है ।]		
॥❀॥ सद्गुण रहनी-रहस्य धारणादिका उपदेश वर्णन ॥❀॥		
(१ चौ०, १९३७) गुरुके मिलत कल्पना		१५८५
(३३९–साखी) बहुतक चाल दुर्मति		१५८९
(२–भूलना) गुरुदेवकी नारी, जो		१५९०
कथानक वर्णन		१५९०
(२०–रमैनी, बी० र० ८१) देव चरित्र सुनहु		१५९४
[चौ० ॥ भाग–१०३ । चौ०–११ । सा०२ । छन्द–१ है ।]		
॥❀॥ यथार्थ सत्यन्यायका त्याग भेषके गुण लक्षणादि वर्णन ॥❀॥		
(१ चौ०, १९६२) करहिं कुचाल		१५९५
(११ चौ०, १९७२) आदि अन्त परखो		१५९८
(३४०–साखी) जिन्ह चेता तिन्ह		१५९८
(३४१–साखी, बी० सा० ११३) मानुष जन्म नर		१५९९
(१५–छन्द) जेहि हेतु सुर नर मुनि		१६००
॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत ग्रन्थ समाप्तिका मङ्गलाचरण ॥ ❀ ॥		
१–दोहा । १–कवित्त । १–सवैया । ४–७–साखी । ३–छन्द । ११–१२–सोरठा		१६०१
(१३–४२–साखी) श्रीकबीर साहेब प्रभु !		१६०२
॥ ❀ ॥ इति टकसार प्रथम भाग समाप्तः ॥ ❀ ॥		
॥ ❀ ॥ अथ टकसार ग्रन्थके द्वितीय भाग, सत्ताईस रमैनी ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ❀ ॥		
॥❀॥ टीकाकार कृत, मङ्गलाचरण आदि प्रारम्भः ॥❀॥		
१–३ साखी । ४–६ सोरठा । १–छन्द । ८–१८ साखी । भाग द्वितीय टकसारकी		१६०३
१९–२७ साखी । दया गुरुको पायके		१६०४

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१)	रमैनी– प्रथम शब्द है शून्याकार	१६०४
(१–साखी)	अकुलाहटके शब्द जे	१६०६
(२)	रमैनी– अनबनि बानी चार	१६०७
(२–साखी)	बिचु जाने सोरह कला	१६१०
(३)	रमैनी– अक्षर वेद पुराण	१६११
(३–साखी)	पहले झाँईं झाँकते	१६१२
(४)	रमैनी– प्रथमें सम्भव शब्द	१६१३
(४–साखी)	भर्मि रहा सब शब्द	१६१५
(५)	रमैनी– धोखा प्रथम परखिये	१६१६
(५–साखी)	धोखा अन्धेरी पायके	१६१७
(६)	रमैनी– योग जप तप ध्यान	१६१७
(६–साखी)	काल शब्दके शोरते	१६१९
दृष्टान्तः—	मूर्ख मनुष्योंका भेड़िया धसान चाल	१६२०
(७)	रमैनी– जब पुनि आय बसी	१६२४
(७–साखी)	सन्धि शब्द है ब्रह्म में	१६२५
(८)	रमैनी– जो कोई सन्धिक धोखा	१६२६
(८–साखी)	सम्भव शब्द अमान	१६२७
(९)	रमैनी– पहिले एक शब्द	१६२७
(९–साखी)	एक शब्द समुदाय	१६२९
(१०)	रमैनी– पाँच तीन नौ छौ औ चार	१६२९
(१०–साखी)	परखावै प्रभु एकको	१६३३
(११)	रमैनी– प्रथमें एक शब्द	१६३३
(११–साखी)	कहहिं कबीर पुकारि	१६३५
(१२)	रमैनी– भरमें जीव परमातम	१६३६
(१२–साखी)	बाप पूत दोउ भरम	१६३७
(१३–साखी)	बाट बाट सब भरम	१६३८
(१३)	रमैनी– कलमा बाँग निमाज	१६३८
(१४–साखी)	भरमि रहा सब वर्णमों	१६४०
(१४)	रमैनी– भरमत भरमत सब	१६४१
(१५–साखी)	खसम न चीन्है	१६४३
(१५)	रमैनी– कनरसकी मतवाली	१६४४
(१६–साखी)	अटकी नार छिनार	१६४६

पद्याङ्क ।	विषय ।	पृष्ठाङ्क ।
(१६)	रमैनी– नौ दरवाजा भरम	१६४६
(१७–साखी)	योगी रोगी भक्त बावरा	१६४८
(१७)	रमैनी– इत उत दौरे सब	१६४९
(१८–साखी)	भूत न उतरे भूत सो	१६५३
(१९–साखी)	परम प्रकाश भास	,,
(२०–साखी)	झाँईं सम्भव बुद्धि	,,
(२१–साखी)	विषय भई सङ्कल्प	१६५४
(२२–साखी)	महातत्व त्रिगुण	१६५४
(१८)	रमैनी– सदा अस्ति भासै निज	१६५५
(२३–साखी)	जतन भयो निज	१६५७
(१९)	रमैनी– पाँजी परख जबै	१६५८
(२४–साखी)	धन्य धन्य तारण	१६६०
(२०)	रमैनी– शब्द सन्धि ले ज्ञानी	१६६०
(२५–साखी)	आप अपन पौ भेद	१६६२
(२१)	रमैनी– निज प्रकाश झाँईं जो	१६६३
(२२)	रमैनी– भासेव जीवरूप जो	१६६७
(२६–साखी)	निजध्यास झाँईं	१६६९
(२३)	रमैनी– लख चौरासी योनी	१६७०
(२४)	रमैनी– भव बूड़त बेड़ा	१६७२
(२५)	रमैनी– अक्षर खानी अक्षर बानी	१६७५
(२७–साखी)	जहाँ ओसको लेश	१६७७
(२६)	रमैनी– अक्षर काया अक्षर माया	१६७८
(२८–साखी)	परखावै गुरु कृपा	१६८०
(२७)	रमैनी– बावनके बन बने तरङ्ग	१६८१
(२९–साखी)	अक्षर है तिहुँ भर्म	१६८६
(३०–साखी)	जहवाँसे प्रगटे सबै	१६८६
(३१–साखी)	ब्रह्म विचारै ब्रह्मको	१६८७
॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत वन्दना, महात्म्य इत्यादि वर्णन ॥ ❀ ॥		
१–दोहा । ३–छन्द । ५–७ साखी		१६८८
८–१० सोरठा । ११–१५ चौपाई । १६–४३ दोहा		१६८९
४४–५५ दोहा । १–८ पञ्चग्रन्थी । ९–१० दोहा		१६९०
(१–५ दोहा)	अन्त भूमिका वर्णन	१६९०
	सद्ग्रन्थोंकी सूची वर्णन	१६९२

॥ ❀ ॥ पञ्चग्रन्थी मूलके पद्याङ्क संख्याओंका सूचीपत्र वर्णन ॥ ❀ ॥

(१) पञ्चकोश प्रथम ग्रन्थः ॥ १ ॥
१–साखी ॥ १०–छन्द ॥ १७–दोहा ॥
५–भाग चौकड़ी ॥ २–सोरठा ॥ १२३ सम्पूर्ण हैं ॥

(२) समष्टिसार द्वितीय ग्रन्थः ॥ २ ॥
२५–साखी ॥ १८–खण्ड चौकड़ी ॥
३७४ सम्पूर्ण संख्या हैं ॥

(३) मानुष विचार तृतीय ग्रन्थः ॥ ३ ॥ भाग–१ ॥
९४–साखी ॥ ६–मसला ॥ ३०–खण्ड चौपाई ॥
७३८ सम्पूर्ण संख्या हैं ॥

(४) मानुषविचार ग्रन्थके द्वितीय भाग–२ ॥
३–साखी॥ ४–भाग चौपाई ॥ १–शब्द ॥ ३२ सम्पूर्ण संख्या हैं ॥

(५) गुरुबोध चतुर्थ ग्रन्थः ॥ ४ ॥ भाग–१ ॥
३८०–दोहा ७साखी सहित ॥ २७–सोरठा॥ २२–भाग चौपाई ॥
१२–छन्द ॥ २३–प्रश्न ॥ २३–उत्तर ॥
४६–खण्ड ॥ १–भूलना ॥ ३–भाग चौकड़ी ॥
१०–शब्द, १ रमैनी सहित ॥ ८२५ सम्पूर्ण संख्या हैं ॥

(६) सारशब्द निर्णय, गुरुबोधके भाग–२ ॥
४–साखी ॥ १–भाग चौकड़ी ॥ ३६ सम्पूर्ण संख्या हैं॥

(७) टकसार पञ्चम ग्रन्थः ॥ ५ ॥ भाग–१ ॥
९–दोहा ॥ १६–शब्द ॥ २–मसला ॥ २–भूलना ॥
३४१–साखी, ६ दोहा सहित ॥ १०३–भाग चौपाई ॥
२०–रमैनी ॥ १–भाग चौकड़ी ॥ ४–लगनियाँ ॥
१५–छन्द ॥ १९७८ सम्पूर्ण पद संख्या हैं ॥

(८) सत्ताईस रमैनी, टकसार ग्रन्थके भाग–२ ॥
२७–रमैनी ॥ ३१–साखी ॥ २३८ सम्पूर्ण संख्या हैं ॥

मूल पञ्चग्रन्थीके पाँचों ग्रन्थः और आठों भागोंके सम्पूर्ण पदोंकी संख्याः—४३४३ एकत्र जोड़में होती हैं ॥

दोहाः— ज्ञान गुरु उर प्रेरक । पारख दियो दृढ़ाय ॥ भ्रम मानन्दी मिटाइया । रामस्वरूप परखाय ॥ १ ॥
पारख प्रकाश तम भजै । कल्पना रहै न कोय ॥ करु सतसङ्गति ग्रन्थ पढ़ । रामस्वरूप स्थिति होय ॥ २ ॥
सोरठाः— सूची लिखि भो पूर्ण । वृहद ग्रन्थ वसु भागकी ॥ दिना सात सम्पूर्ण । जेष्ठ सुदी गुरु तीजमें ॥ ३ ॥

इस सद्ग्रन्थकी सूचीपत्र पृष्ठ २७ से ५० तक तीन फार्म सम्पूर्ण विश्वेश्वर प्रेस, बुलानाला, बनारसमें कम्पोज होकर छपी है ॥ [दिनाङ्क २३ । ६ । १९५६ ई० को सूचीपत्र सहित यह सद्ग्रन्थ छपकर समाप्त हुई है ।]

॥ ❀ ॥ इति श्री सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी सटीक तथा मूलकी सूचीपत्र–विषयानुक्रमणिका, पद्य संख्या सहित वर्णन सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

(आद्य मूल सर्व शिरोमणि परमाऽचार्य्य सद्गुरु बन्दीछोर स्वयं अनुभवी, प्रथम पारखबोध प्रकाशी, श्रीकबीरसाहेबजीके सच्चे नैष्ठिक अनुयायी, मूलबीजकके—पारखबोध दर्शक टीकाकार, बुरहानपुर—नागझिरी गद्दीके प्रथम आचार्य्य, पूज्यपाद पारखनिष्ठ सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीके सिद्धान्तानुसार इस ग्रन्थमें अन्तिम निर्णय—सिद्धान्तदर्शाया गया है ।)

बन्दीछोर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी दयासे प्रकाशित—

मूल बीजक सद्ग्रन्थकी सत्य पारख सिद्धान्तानुसार—

साधुशिरोमणि कबीरपन्थी पारखी सन्त-महात्मा श्रीरामरहस साहेब विरचित—

सद्ग्रन्थ मूल-पञ्चग्रन्थी-सटीक ।

पारखी सद्गुरुकी कृपा-प्रसादसे प्राप्त, गुरुमुख निर्णय दर्शिनी—

[॥ "शब्दार्थ—भावार्थ सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, 'सरल' टीका सहित" ॥]

॥ ❀ ॥ टीकाकारकृत—सद्गुरु पद-वन्दना, प्रथमारम्भः मङ्गलाचरणम् ॥ ❀ ॥

साखीः—वन्दौं प्रथम चरण गुरु ! कबीर बन्दीछोर ॥
तम नाशक पारख रवि । गुरु साहेब शिर मोर ॥ १ ॥
शूर वीर गम्भीर पद । सत्य रहनि संयुक्त ॥
काया वीर कबीर प्रभु ! निर्भय जीवन्मुक्त ॥ २ ॥
पारख प्रकाशी आदि गुरु ! साहेब सत्य कबीर ॥
दाता बीजक ज्ञानके । महा पुरुष मति धीर ॥ ३ ॥
श्रीकबीर गुरु ज्ञानसे । पारख हुआ प्रकाश ॥
भ्रम धोखा बन्धन मिटी । भास अध्यास विनाश ॥ ४ ॥
कबीर गुरु उपदेश लै । शिष्य प्रणालि विकाश ॥
सब पारखी अनुयायि सत । पारख बोध प्रकाश ॥ ५ ॥
सद्गुरु पूरण साहेब । पारख निष्ठ प्रवीन ॥
बीजककी टीका करी । भाव गुरु कहि दीन्ह ॥ ६ ॥
परम पारखी पूरण । साहेब प्रथम आचार्य ॥
गुरु कबीर सम बोध प्रगट । रहनी रहस्य सुधार्य ॥ ७ ॥
रामरहस साहेब पुनि । तैसे पारखी सन्त ॥
पारख बोध ग्रहण करी । भ्रम धोखा कियो अन्त ॥ ८ ॥

247453

बीजकके सतभाव लै । परखायो सब जाल ॥
रामरहस कृत ग्रन्थ यह । पञ्चग्रन्थी सुरसाल ॥ ९ ॥
आचार्य गुरु श्री पूरण । रामरहस साहेब चरण ॥
पारखीसन्त समस्त पद । त्रयबन्दगी भव भय हरण ॥ १० ॥
नग्र बुरहानपुर नागझिरी । पन्थ कबीर शुभ स्थान ॥
गद्दी पूरण साहेब । पारखी सन्त सम्मान ॥ ११ ॥
पञ्चग्रन्थी औ बीजक । मूलते अर्थ पढ़ाई ॥
पारखी गुरु परम्परा । प्रथमैते चलि आई ॥ १२ ॥
नागझिरी शुभ स्थानमें । साधु चहुँ दिश आय ॥
उभय ग्रन्थ गुरुमुख सुनि । पढ़ि गुनि सार लखाय ॥ १३ ॥
अखिल कबीर पन्थमें । जाहिर है यह बात ॥
रामस्वरूप गुरुमुख पढ़ि । लीन्हा बोधको साथ ॥ १४ ॥
पञ्चग्रन्थी यहि ग्रन्थको । मुद्रित प्रथम प्रकाश ॥
बन्दौ काशी साहेब । टिप्पनि कठिन खुलाश ॥ १५ ॥
पञ्चग्रन्थीके बोध कियो । श्री गुरु साहेब लाल ॥
रामस्वरूप गुरुकी दया । लै पारख भ्रम टाल ॥ १६ ॥
पञ्चग्रन्थी यह ग्रन्थका । गुरु शिक्षाके प्रमाण ॥
पाठ्य अर्थ संयुक्त करी । व्याख्या लिखौं प्रमाण ॥ १७ ॥
भाव गुरु उपदेशका । करि सुरक्षित लेख ॥
पूर्ण बोध गुरुमुख लखै । संशय मिटै अलेख ॥ १८ ॥
समयान्तरमें लुप्त न हो । पठन पाठन कार्य ॥
रामस्वरूप यहि ध्येयते । निर्णय तिलक सुधार्य ॥ १९ ॥
सन्त ! सज्जनो ! भक्त जनो ! पढ़ि गुनि लीजे सार ॥
हंस रहनी गहि पारखी । होवैंगे भव पार ॥ २० ॥
सत्य प्रेम भक्ति सहित । बन्दगी है त्रयबार ॥
रामस्वरूपदास सदा । गुरुकी दया आधार ॥ २१ ॥
कबीर पूरण रामरहस । श्रीकाशी बालक लाल ॥
रामस्वरूप त्रय बन्दगी । पारखी सन्त दयाल ॥ २२ ॥

॥ ❀ ॥ इति टीकाकारकृत गुरुपद बन्दना मङ्गलाचरणम् समाप्तम् ॥ ❀ ॥

❀ श्रीसद्गुरवे नमः ❀

—इसका संक्षेपमें अर्थः—सर्वश्रेष्ठ सत्य पारखबोध प्रकाशी, तमरूप अज्ञान विनाशी, ऐसे उन पारखी सद्गुरुदेवको हम नमस्काररूप त्रयबार बन्दगी करते हैं, यह अर्थ है ॥

अब उसीका विस्तार पूर्वक व्याख्या कहता हूँ, या लिखता हूँ, सुनिये–"श्री + सत् + गु + रु + वे + नमः" इसका खुलासा अर्थः—श्री = कहते हैं—सर्वश्रेष्ठको, शोभा संयुक्तवालेको, मान्यवरको, पूज्यवरको और लक्ष्मीको भी कहा है। संसारमें धनवान् लोगोंको श्रीमान् कहके सम्बोधन करते हैं। 'श्री' लगानेसे आदरणीय माना जाता है। सो यहाँ पर सद्गुरुके प्रति 'श्री' लगा है, तो इसका तात्पर्य यह है कि—स्व-स्वरूपसत्य पारखबोध दाता पारखी सद्गुरु सर्व ज्ञानियोंमेंसे अतिशय उच्च वा 'अत्यन्त सर्वश्रेष्ठ हैं और ईश्वरादि पद कल्पित भ्रमरूप होनेसे तुच्छ है, उसे परखानेवाले गुरुदेव सर्वोपरि परम माननीय हैं। और षड्दर्शनोंके भेषधारी साधुवर्ग सभी अनुमान–कल्पनादिमें ही भटककर भूलमें हो पड़े हुए हैं, पारख न होनेसे वे कोई श्रेष्ठ हो नहीं सकते, किन्तु कनिष्ठ हैं। तैसे ही लक्ष्मीरूप धन-सम्पत्ति भी जड़विकारी नाशवान् है, अतः धनिक लोग राजे आदि भी श्रेष्ठ हो नहीं सकते। वे तो माया मोहके विकारसे बन्धनमें पड़े हैं। इससे निर्विकारी पारखी सद्गुरु ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ हैं। आप हंस रहनी रहस्य सद्गुण लक्षणोंसे सम्पन्न श्रेय = कल्याणपद, अमृत, अविनाशी, चैतन्य निज स्वरूपकी पारख बोधमें विराजमान जाग्रत्-सावधान, दया, क्षमादिसे सुशोभित, त्याग वैराग्यसे पूर्ण प्रकाशित परम शोभायमान्, सो ऐसे प्रत्यक्ष सच्चे पारखी सन्त सबसे बढ़कर श्रेष्ठपदमें ठहरे हैं। उन्हीं पारखी साधु गुरुकी यथार्थ श्रेष्ठता दर्शाकर सम्मान सूचनार्थ सद्गुरुके नामके प्रथम 'श्री' लगाया जाता है। इसलिये यहाँ पर भी ग्रंथके ऊपर सबसे पहले 'श्री' अक्षर लिखा गया है, ऐसा जानना चाहिये। यह "श्री" अक्षरका भावार्थ हुआ ॥ और सद् = सत् जो तीनकाल, तीन अवस्था आदिमें किसी प्रकार भी कभी नाश न हो, वही अविनाशी सत्य चैतन्य जीव है, उसीको ही सत् वस्तु कहते हैं। उसको समझनेके लिये खुलासा सुनिये ! भूत, भविष्य, वर्तमान, इसीको तीन काल कहते हैं। अपना चैतन्य स्वरूप जीव तीनों कालमें एकरस, नित्य, सत्य है। सो कैसे कि ? लक्षणसे देखिये ! सो भूत, भविष्यमें जीवको सत्य जाननेके लिये अभी सन्मुखमें उपस्थित वर्तमानमें ही ले लीजिये। मनुष्य खानीमें आके जीव बालकरूप धरके जब जन्म लेता है, तब नवीन शरीर धारण किया होनेसे इस शरीरसे तो उसने कुछ भी विषय भोग और क्रिया-कर्मादि व्यवहार नहीं किया है, तो भी किसीके सिखाये बिना भी उस नवजात शिशुमें समय-समय पर षट्पशु धर्मादिके गुण लक्षण स्वाभाविक रीतिसे प्रत्यक्ष दीखनेमें आते हैं। सो कैसे ? कि—जन्मते ही बालक रोने लगते हैं, और दुःख हुए बिना कोई रोता नहीं। गर्भसे बाहर निकलने पर बाहरकी ठंढी वायु अंगोंमें लगनेसे तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे चोट पहुँचके होनेवाली वेदनाके समान असह्य दुःख-दर्द हो जानेसे बालक घबरायके रोते हैं। फिर धीरे-धीरे सहन होने पर चुप होते हैं। ऐसे दुःख-सुखका ज्ञान उनमें पूर्व संस्कारसे देखनेमें आता है। और प्रथम—माता जब बालकोंके मुखमें अपने स्तन लगा देती है, तब स्तनको पकड़के बालक अपने आपही दूध खींचके चूसकर पीने लग जाते हैं। विचार करिये ! अभी इस शरीरसे तो उसने भोजन खान-पान किया नहीं था, तो भी बिना सिखाये कैसे स्तनसे दूध खेंचके पी लेता है। इससे सिद्ध होता है कि, उस जीवने पहिलेके शरीरमें भोजन खान-पान किया था। भोजन करनेका, दूध पीनेका तरीका जानता था, अतः उसी संस्कारसे अभी भी भूख लगी और स्वयं स्तन पान किया, और फिर तृप्त होनेपर आपही छोड़ देता है, यह भोजनका संस्कार उसमें दीखता है। दूसरा—ठंढी-गर्मीका भी उसमें ज्ञान है। मल-मूत्रमें सन जानेपर और गर्मी होने पर तथा सर्दी लगने पर शिशु घबरायके रोने लग जाता है, फिर जब माता-पितादि उससे अलग करके सर्दी-गर्मी निवारणकर मल-मूत्र साफकर सूखा वस्त्र ओढ़ाके आरामकी व्यवस्था करते हैं, तब प्रशन्न होके चुप हो जाता है। यह 'आच्छादन' का संस्कार भी पूर्व देहमें उसने अनुभव

करके टिकाया था। सोई अब भी जान रहा है। तीसरे-निद्रा प्रत्यक्ष लेते ही हैं। इन्द्रियाँ शिथिल होने पर सुस्त, शान्त हो, निद्रा लेके आराम करनेका संस्कार भी पहलेके जन्मसे उन्होंने टिका रखा है। सोई अभी समय-समय पर प्रगट होता है, तो नींद आनेपर सो जाते हैं। चौथा—मोह, अपने माता पितादिको देखके हर्षित, आकर्षित होना स्वाभाविक ही देखा जाता है। और कोई दूसरे अपरिचित लोग लेने लगे, तो रोने-चिल्लाने लगते हैं, तथा बुलावें तो हाथ सिकोड़ लेते हैं, और मातादिको देखते ही प्रफुल्लित होके उनके गोदमें चले जाते हैं, यही मोहका लक्षण है। अपने परिचित लोगोंमें ममता-मोह टिकाना, यह संस्कार भी पूर्व जन्मसे ही जीवने टिका रखा है। सोई यहाँ प्रगट होता है। पाँचवाँ—उन छोटे-छोटे शिशुओंमें भी मैथुन कर्मका सामान्य लक्षण समय-समय पर दिखाई देता है। यद्यपि बालकोंको मैथुन भोगका इस शरीरसे कुछ भी अनुभव ज्ञान नहीं हुआ है और उनको शरीर उस लायक कुछ है भी नहीं। तथापि पूर्व संस्कारसे किञ्चित् लक्षणको तो वे प्रगट करते ही हैं। सो कैसे कि?—काम वेगसे पुरुषोंका लिंग इन्द्रिय सहज ही सख्त मजबूत होके खड़ी हो जाया करती है। पूर्व देहमें भग-भोग करके मैथुनका अनुभव जीवने कर रखा है। उसीसे लिंग इन्द्रिय खड़ी होनेकी आदत-सी पड़ गयी है। वह संस्कारके वेगसे छोटे-छोटे बालकोंके भी स्वाभाविक रीतिसे कभी-कभी लिंग इन्द्रिय ठनठनाके खड़ी हो जाया करती है। कभी पेशाव करतेमें खड़ी होती है, तो कभी तेल आदि लगातेमें, सुश्रुषामें भी खड़ी होती है। अथवा लिंग स्थानमें मालिश करतेमें आनन्द मानते हुए प्रशन्न रहते हैं। इत्यादि सब लक्षण पूर्वकृत मैथुन कर्मके विषय सुख संस्कार करके ही प्रगट होते हैं। अथवा पशुखानीमें भी बकरी, गाय, भैंस, सूअर, कुत्ता आदियोंके बच्चे स्वाभाविक वेगसे खेल-कूदमें मैथुन कियावत् एक दूसरेपर चढ़ते-चढ़ते आरूढ़ होते हैं। यह भी पूर्व मैथुन संस्कार करके ही लक्षण प्रगट होता है। इस तरह इस शरीरसे भोग न किया हुआ होते भी पूर्व वेगसे बालकोंमें ऐसे स्वाभाविक कियाएँ देखनेमें आती हैं, सो सबको प्रत्यक्ष ही होता है। अतः मैथुन कर्मका भी सूक्ष्म संस्कार उनमें टिका ही हुआ है। छठवाँ—भय भी बालकोंमें होता है, जब कोई भयंकर रूप देखते हैं, तब भी डर जाते हैं। और किसीने जोरसे ताली बजायके हाथ पीट दी तो झिझक जाते हैं। अथवा कहीं बन्दूक वा तोपकी बड़ी आवाज सुनाई दी, तो भी भयभीत होके रोने लग जाते हैं। वैसे उन्हें डरनेका कोई काम नहीं था, किंतु डर होता ही है। हानि, लाभका इस देहसे उन्हें मालूम नहीं है, तो फिर डरते क्यों हैं? इसका कारण ऐसा है कि—पूर्व देहमें जीवने हानि, लाभ आदिका पूरा अनुभव किया हुआ था, और सबको भय, अपना माना हुआ पदार्थोंकी क्षय वा हानि होनेमें ही होता है। और शरीरको सब जीवोंने अज्ञानसे अपना स्वरूप करके ही मान रखा है। फिर बारम्बार अनेकों जन्मोंमें मृत्यु होनेका अनुभव असह्य दुःखोंका सहन करते हुए संस्कार टिका रखा है। खास भय शरीरमें दुःख, घात, चोट आदि लगके पीड़ा होनेका और विशेष दुःख होनेपर प्राणान्त हो जानेका अनुभव पूर्वमें सब जीवोंने किया है। उसका संस्कार टिका हुआ है। इसीसे बालक अबोध होनेपर भी शब्द आदि होनेपर दुःख और मृत्यु से डरता आया हुआ होनेसे घबरायके भयभीत हो रोने, छिपने लग जाते हैं, सोई भयका संस्कार है।

इस प्रकारसे अनुभूत प्रत्यक्ष दृष्ट प्रमाणोंसे देहधारी जीवोंके बालक अवस्थामेंसे ही सुख दुःखोंके ज्ञान सहित भोजन, छाजन, निद्रा, मोह, मैथुन और भय इन षट्पशु धर्मोंके लक्षण प्रगट होते रहते हैं। ज्यों-ज्यों शरीर इन्द्रियादि बढ़के चञ्चलता विशेष बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों ये लक्षणायें भी विशेष विकशित होके बढ़ती जाती हैं। जैसे अनारके छोटेसे फलमें भी बारीक-बारीक दानायें स्वाभाविक ही लगी रहती हैं। फलके साथ वे भी बढ़ जाते हैं। तद्वत् संस्कार है, सो पूर्वसे ही अन्तःकरणमें टिके रहते हैं, देहके साथ जैसे-जैसे शरीर बढ़ती है, वैसे-वैसे वे भी बढ़ते जाते हैं। उक्त षट्धर्म सब देहधारी जीवोंमें स्वाभाविक लगा रहता है। इस तरह जीव अभी तो देहधारी प्रत्यक्ष है ही। और षट्पशु धर्मोंके लक्षण अबोध दशा वाले शिशुओंमें भी प्रगट होनेसे पूर्व देहमें वह सब संस्कार जीवने टिकाया था, यह साबित

होता है। यदि प्रथम बीज वासना कर्मादि संस्कार न बनाया होता, तो फिर यह देह ही कहाँसे कैसे बनती ? अतः प्रथम भूतकालमें भी जीव देहधारी कर्ता, भोक्ता हुआ था। उसी कर्म अध्यासके मुताबिक अभी सुख-दुःखादि भोग रहे हैं। जैसे प्रथमका भोग बीज-वासनासे अभी शरीर धारण किया है। और पाप-पुण्यादिकी वासना संस्कार अन्तःकरणमें टिका रहे हैं, वा टिकाये हुए हैं, तो तैसे ही पूर्ववत् भविष्यत्में भी निश्चयसे जीव चारखानीमें जाके अध्यासके अनुसार देह बनाके कर्मफल भोगा करेंगे। इसमें कोई सन्देह करनेकी जगह है ही नहीं। "जैसा करनी, तैसा भरनी" होता ही है। इस प्रकार भूत, भविष्य और वर्तमान यह तीन कालमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे जीव ही नित्य, सत्य, अखण्ड, एकरस ठहरता है।

अथवा संसारमें कोई सुखी, कोई दुःखी हैं। कोई धनी, कोई निर्धन दरिद्र हो रहे हैं। कोई रागी तो कोई वैराग्यवान् देखे जाते हैं। कोई पण्डित, कोई मूर्ख बने हैं। कोई रोगी कोई निरोगी हो रहे हैं। कोई सज्जन, कोई दुर्जन होते हैं। कोई मन्दबुद्धि, कोई तीव्र बुद्धिवाले देखे जाते हैं। कोईको थोड़ी सी ईशारासे ही बोध शीघ्र हो जाता है, तो कोईको बहुत प्रयत्न करनेपर भी दीर्घकालमें भी ठीकसे बोध नहीं होता। एक ही गुरु या शिक्षकके अनेकों शिष्य या विद्यार्थी, साधक होते हैं, सबोंको गुरु एकसा ही शिक्षा देते हैं, तो भी बुद्धि भेदसे वे सब भिन्न-भिन्न प्रकारसे समझते हैं। और कोईको जन्म भर मेहनत-मजूरी करनेपर भी सुख, सम्पत्ति आदि मिलता नहीं। कोईको बिना प्रयत्न किये ही अचानकमें राज-काज, धन-धान्यादि दौलत आराम आदि मिल जाता है। और एक ही माता-पिताके दश सन्तानोंको देखिये ! सबोंके आकार-प्रकार, रूप-रंग, गुण-स्वभाव, बुद्धि-विचार तथा सुख-दुःखादि भिन्न-भिन्न, नाना किसिमके ही होते हैं, इत्यादि सब क्यों होता है ? त्रिगुणी प्राणि क्यों दिख रहे हैं ? यह सब पूर्व देहमें किया हुआ कर्मोंका संस्कार करके ही हो रहा है, ऐसा जानना चाहिये। और बाल, तरुण वा युवा, पूर्णआयु, अल्पआयुमें मृत्यु न चाहते हुये भी हो जाना, यह सब क्यों होता है ? सो सब पूर्व कर्मके संस्कारानुसार ही होता है तथा स्त्री, पुरुष, नपुंसक देहें प्राप्त होना, रूपवान्, वा कुरूप होना, अंग-भंग अथवा सर्वांग सुन्दर होना, इत्यादि सब जीवोंके कर्मसंस्कार करके ही उक्त फल होते हैं। अतएव जीव ही अखण्ड त्रयकालमें सत्य है, यह यथार्थसे ठहरता है। तैसे ही जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें भी जीव एकरस सत्य है। सो कैसे कि—जाग्रत् अवस्थामें स्थूल देहसे देशों इन्द्रियों द्वारा पंच विषयोंका प्रत्यक्ष उपभोग होता ही है। देखना, सुनना, खाना-पीना, सूँघना, चलना-फिरना, बैठना, उठना आदि क्रियायें होती हैं। अपने हैताका भाव प्रत्यक्ष सबोंको रहता ही है। इसीसे जाग्रत्में जीव सत्य है। जीव बिना जाग्रत्का व्यवहार कौन करे ? जीव न हो, तो जाग्रत् हो सकता ही नहीं। तैसे ही देखे, सुने, भोगे हुए विषयोंका सूक्ष्म अध्यासका ही अर्धनिद्रित अवस्थामें स्वप्न भास होता है। स्वप्नद्रष्टा जीव स्वप्नसे न्यारा ही रहता है। यदि तब जीव न होवै, तो स्वप्नको ही कौन देखेगा ? कौन कहेगा ? अतः स्वप्न अवस्थामें भी जीव जनैया न्यारा सत्य ही रहता है। और चित्त चतुष्टय आदिका कार्य लय हो जानेपर गाढ़ी निद्रा लगके शून्य, अभाव होकर सुषुप्ति अवस्था हो जाती है। उस स्थितिको भी जीव न्यारा होके जानता रहता है। सुषुप्ति अवस्थामें भी जगत्का अभाव और अपना भाव, ऐसे दो तरहके ज्ञानका अनुभव जीवमें रहता है। तभी जाग्रत् होनेपर स्मृति करके उसे जान लेता है। कोई गाढ़ी निद्रामें सोते हुएको पुकारके जगाइये, तो झटसे वह उठ जाता है। यहाँ कोई आया था ? ऐसा पूछनेपर मैं कुछ नहीं जानता, मैं आरामसे सोया था, तुमने नाहक मुझे जगा दिया, इत्यादि कहता है। निवृत्ति आनन्दका अनुभव सहित अपना भाव बाह्य विषयोंके अभाव उसके कथनसे प्रगट होता है। अवस्था भेदसे कम-ज्यादा जाना हुआ सरीखा दीखता है, परन्तु जीवके ज्ञान गुण तो तीनों अवस्थोंमें एकरस ही रहता है। विषयादिके ज्ञान ही कम-ज्यादा होते हैं। जैसे भिन्न-भिन्न प्रकारके चश्मा लगानेसे भिन्न-भिन्न प्रकारके रूप दीखते हैं, परन्तु नेत्रकी दृष्टि तो एकसा ही रहती है, चश्माके भेदसे नाना रूप दीखते हैं। तैसे जाग्रत्में विशेष ज्ञान, स्वप्नमें कम, सुषुप्तिमें शून्य अभाव मालूम पड़ना

सो अवस्था भेदसे ही हैं। जीवके स्वरूपका तो कोई बदलाव होता नहीं। जैसा-जैसा अवस्था सन्मुखमें आती है, वैसी-वैसी ही जानता जाता है। जैसे तालाब वा कूएँमें गिरा पात्र या कोई वस्तुको लानेके लिये कोई डुबकी लगावे, तो भीतर वस्तु मिला वा नहीं, उसे वह स्वयं जानता है; किन्तु पानीके भीतरसे वह दूसरेको बता नहीं सकता है, बाहर आनेपर बता देता है। तैसे सुषुप्ति अवस्थाको जीव स्वय जानता है, किन्तु वहाँ वैखरी वाचाका अभाव होनेसे जाग्रत्में आनेपर ही वहाँका अनुभव स्मृति करके बता देता है, कि "सुखसे सोया था और कुछ नहीं जानता था।" अतः जीव ज्ञान स्वरूप सब प्रकारसे नित्य, सत्य, अविनाशी, अजर, अमर, अखण्ड, एकरस, स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव प्रमाणसे ठहरा हुआ सोई निज स्वरूप जीव जनैया, त्रयकाल, त्रय अवस्थोंमें ज्योंका त्यों चैतन्य सत्य सिद्ध होता है। और उस प्रकारसे निर्णय करनेपर अन्य कोई भी वस्तु सत्य ठहरती नहीं। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, कर्ता पुरुष इत्यादि जो कुछ भी गुरुवा लोगोंने माने हैं, सो सब परिक्षा-दृष्टिसे असत्य, वाणी कल्पना, भ्रम भूल ही ठहरता है। वे सब जीवके समान सत्य स्वरूप किसी तरह कोई प्रमाणसे भी ठहरते नहीं, अतः वह अनुमान, कल्पना असत्य-(मिथ्या) धोखा है। सब प्रकारसे जीवका निज स्वरूप ही सत्य है। "सत्" शब्दका इतना अर्थ हुआ। सो यही सत्य वस्तुका ठहराव खुलासा व्याख्या है। "गु" = वैसे निज सत्य स्वरूपको न जानना सोई 'गु'—गूढ तमरूप अज्ञान, अविद्या स्व-स्वरूपका अबोध वही महान अन्धकाररूप आवर्ण है। जिसमें सब जीव गाफिल होके खानी—वाणी जालमें भूले पड़े हैं। सत्यासत्यके यथार्थ बोधसे विमुख हो रहे हैं। "रु" = सूर्य समान प्रकाश करनेवालेको 'रु' कहते हैं। यहाँ पारख बोधका महान प्रकाश करके हृदयके महान अन्धकार, अबोध, उपरोक्त गूढ़-तम अविद्याको मिटा देनेवाले पारखकी प्रकाशमें निज स्वयं स्वरूपका बोध जिज्ञासु नर जीवोंको करा देनेवाले जो हैं—"वे" = सो वही पारख बोध दाता बन्दीछोर समर्थ सर्वोपरि महाप्रभु सद्गुरु देव हैं। उन सद्गुरु देवकी असीम उपकार मानके हम शिष्य वर्ग सत्य प्रेम, श्रद्धा-भक्तिके सहित जिज्ञासुरूपसे प्रथम गुरुबोध प्राप्तिके लिये और स्वरूपज्ञान बोध प्राप्तिके पश्चात् महान उपकारकी यादकर धन्यता मनाय करके नित्यप्रति—"नमः" = गुरुपदमें शिर झुकाकर नमस्काररूपमें दोनों हाथोंको अञ्जुलिबद्ध भूमिमें टिकाकर त्रयवार "साहेब बन्दगी ३" उच्चारणकर प्रेमपूर्वक सद्गुरुकी वन्दना वा साष्टाङ्ग दण्डवत् वा प्रणाम करते हैं। "पल-पल गुरुको बन्दगी। चरण नमाऊँ शीश॥" इस प्रकार गुरुदेवकी बन्दना करके हम सब सद्गुरुकी दयाभाव सदैव अपने ऊपर चाहते हैं। यहाँ आकरके अब "श्रीसद्गुरवे नमः" इसका अर्थ पूर्णरूपसे समाप्त हो गया॥

दयागुरुकी—श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबरूप पारखी गुरुदेवकी दयासे—

॥ ❋ ॥ अथ लिख्यते मूल पञ्चग्रन्थी नामक सद्ग्रन्थटीका सहित ॥ ❋ ॥

व्याख्या—सर्वोपरि श्रेष्ठ शिरोमणि पारख प्रकाशो, नर जीवोंकी-भ्रम भूल छुड़ाकर चैतन्य पारख बोध देनेवाले ऐसे सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीर साहेब तथा आपके ही पारख स्वरूप सत्य सिद्धान्तमें स्थिति किये हुये पारखी सन्त बोधदाता अपने गुरुदेवकी महान दयादृष्टिरूप कृपा या छोह वा मेहरवानीसे—"अथ" = यह प्रथम आरम्भ वाचक शब्द है। अर्थात् यहाँ प्रथमारम्भ या शुरूमें "लिख्यते" = लिखा जाता है, वा लिखता हूँ। क्या लिखा जाता है ? कि—"मूल" = मुख्य, शुरूमें बने हुए जैसा ही पद समूह होवे, जिसका टीका न होवे, सो मूल कहलाता है। अथवा मूल जड़ चार तत्त्व तथा अनन्त देहधारी चैतन्य जीव हैं। उनका न्यारा-न्यारा भेद दर्शाके इस पुस्तकमें लिखा जाता है। "पञ्च ग्रन्थी" = पाँच तत्त्वोंके सम्बन्धमें पाँच गाँठियाँ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पञ्च विषयोंकी पड़ी हुई हैं। जिसमें आसक्ति अध्यास वश सारे जीव अरुझे पड़े हैं। जीवोंने सुखाध्यासी होके वही पाँच गाँठियोंको अन्तःकरणमें दृढ़ करके बाँध रखे हैं। उसीके विकारसे पञ्चदेह, पञ्चकोश, पञ्चमार्ग, इत्यादि पञ्चाइत जगत् प्रपंचोंका पाँच-पाँच भागोंका नाका कायमकर वहाँ ही सब नर-नारी जीव बन्धायमान हुए और हो रहे हैं। एक-दूसरेको उसी खानी-वाणी जालोंमें हर तरहसे फँसा-फँसा के बाँधे और बाँध ही रहे हैं। उस पञ्चग्रन्थीसे छूटना बिना पारख अति ही कठिन हो गया है। इसीसे जड़ाध्यासी होके सब जीव जन्म, मरण, गर्भवासके कठिन, चक्रमें पड़कर चारखानी चौरासी योनियोंके विकट कैदखानोंमें बन्धे पड़े हैं। जहाँ त्रयतापादि असह्य दुःख सह रहे हैं। सोई महाजालको स्पष्ट रीतिसे खुलासा करके, जिज्ञासु मनुष्योंको परखानेके वास्ते ग्रन्थकर्ता पारखी सन्त श्रीरामरहस साहेबजीने पाँच भागोंमें विभक्त (बाँट) करके इस पुस्तकमें भी पाँच प्रकरणरूपमें अलग-अलग पाँच नामसे पाँच ग्रन्थ निर्माणकर दिये हैं। जिसका नाम क्रमशः इस प्रकार हैः--१. पञ्चकोश ग्रन्थ। २. समष्टिसार ग्रन्थ। ३. मानुषविचार ग्रन्थ। ४. गुरुबोध ग्रन्थ। और ५. सत्यशब्दकसार ग्रन्थ। इन पाँचों ग्रन्थोंको एक जिल्दमें ही एकत्र सम्मिलित करके मिला कर इस मोटी पुस्तकका व्यावहारिक सम्बोधन नाम संज्ञाके लिये भी ग्रन्थकर्ताने उपयुक्त "पञ्चग्रन्थी" ऐसा नाम रखा है। "नामक" = ऐसा यथार्थ गुण-रूप नामवाला यह "सद्ग्रन्थ" = सच्चा पुस्तकको ही सद्ग्रन्थ कहते हैं। बहुतेरे पेजोंको सिलाई करके एक जगहमें गूँथकर या ग्रथितकर जो पुस्तक बनाते हैं, इसीसे उसे ग्रन्थ कहते हैं। सोई सद्ग्रन्थको अब मैं सद्गुरुकी दयासे भावको खुलासाकर "टीका सहित" = अर्थ सहित लिख देता हूँ। जिसे पढ़-सुनके मनन करनेसे जिज्ञासुओंको पारखबोध प्राप्तिका लाभ होगा॥

॥ ❋ ॥ "प्रथम अनुसार—परख विलास" ॥ ❋ ॥

व्याख्या—'प्रथम' = कहिये संसारमें सर्व प्रथम यानी सबसे पहले पारख सिद्धान्त सत्यबोधका आविष्कार या प्रकाशरूपसे प्रचार सद्गुरु श्री कबीर साहेबने ही किये हैं। इसीसे आप आदि गुरु पारखी सद्गुरु बन्दीछोर हुये हैं। 'अनुसार' = कहिये उन्हीं सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके कहे हुये पारख सिद्धान्त दर्शिनी बीजक ज्ञानके मुताबिक या उसी अनुसार वा उसी माफिक इस ग्रन्थमें भी पारख सिद्धांत कायम रखा गया है। अथवा ग्रन्थकर्ताके रचनाके अनुसार ही इसमें मूल ज्योंका त्यों रखा गया है। 'परख विलास' = कहिये जगत्में प्रचलित मत, पन्थोंके समस्त सिद्धान्तोंमें मुख्यतया पञ्च विषयोंकी ही सूक्ष्म हन्ता, मानन्दी, आनन्दरूप सुख-विलास कायम किया हुआ है। जैसे—कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञान आदि मार्गोंमें क्रमशः विषयानन्द कर्ममें, प्रेमानन्द उपासनामें, योगानन्द समाधिमें, ज्ञानानन्द आत्मज्ञानमें, ब्रह्मानन्द, विज्ञानकी धारणामें, अनुमान करके उसे ही प्राप्तिकर

उसीको ध्येय स्वरूप या निज स्वरूप मानकर उसी विलासोंमें या क्रीड़ासे आनन्दमें सब ज्ञानी अज्ञानी मनुष्य लोग भूले पड़े हैं। उन सब विलासोंको परित्यक्त करके और निज स्वरूप पारखमें ही स्थितिका विलास या रमण-विहार करना या निवास करना और अन्यको कराना, यही इस ग्रन्थका मुख्य उद्देश्य है, सोई 'परख विलास' है, ऐसा जानना चाहिये। अथवा प्रथम ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहस साहेबने जैसे इस ग्रन्थकी रचना किये थे, उसी प्रकारसे मूलपद प्रकरण रखकर इसमें भी दर्शाया गया है। कुछ भी फेरफार किया नहीं। इसीलिये 'प्रथम अनुसार' लिखा गया है, ऐसा जानिये ॥

॥ ❋ ॥ "पञ्चकोश" ॥ ❋ ॥

व्याख्या—'पञ्च' = कहिये पाँच प्रकारका, 'कोश' = कहिये तलवार वा खुकुरी (एक प्रकारका नेपाली हथियार होता है), छूरी, कर्द आदिको म्यानमें या खोलमें बन्द करके ढाककर सुरक्षित रखते हैं। ढक्कन, पर्दाको ही कोश कहते हैं। तैसे ही यहाँपर भी जीवोंका स्वयं स्वरूपके ऊपर आवर्णरूप पर्दा या ढाँकन पाँच प्रकारसे पड़ा हुआ है। सोई १. अन्नमयकोश-स्थूल। २. प्राणमय-सूक्ष्म। ३. मनोमय-कारण। ४ ज्ञानमय-महाकारण। ५. विज्ञानमय कैवल्य देह, इन्हींके आवर्णमें पाँच प्रकारसे आच्छादित होके जीव जड़ाध्यासी होकर दबा पड़ा है। और गुप्त-सुप्त या गुमसुम हो रहा है। बिना पारखबोधसे इस पंचकोशसे जीवोंका छुटकारा होता ही नहीं। अब उस जालको पाँच भागोंमें अलग-अलग विभक्त करके ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहससाहेब एक-एक कोशोंका भिन्न-भिन्न गुण-लक्षण विवरण करके दिखाते हैं। सो पंचकोश-विवरणमें कहा गया है। वहाँसे आप लोगोंको भी ठीक-ठीक जाननेमें आवेगा। अब यहाँसे ग्रन्थकर्ता कृत ग्रन्थ शुरू होता है॥

॥ ❋ ॥ साखी मूल, श्रीरामरहससाहेब कृत, मङ्गलाचरणम् ॥ ❋ ॥

साखीः—साँचा शब्द बताइया । साँचा दिया मुकाम ॥
ताते बन्दत हौं तव चरण । साँच गुरु सत नाम ॥ १ ॥

अर्थः—प्रथमारम्भमें सद्गुरुकी पदवन्दना करते हुए ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, जिन पारख प्रकाशी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब तथा पारखनिष्ठ साधुरूप मेरे सद्गुरुदेवने कृपादृष्टि करके मुझको—

साँचा = सत्य चैतन्य तीनकालमें एकरस तीन अवस्थोंमें एक समान अखण्ड, अविनाशी स्वयं स्वरूप आप अपने स्वयं जीव हो नित्य सत्य है, ऐसा सच्चा-सच्चा भेद बताकर,

शब्द = सार शब्दमें निर्णय वाणीका उपदेश देके भ्रम निवारणकर गुरुमुख वाणीको आपने—

बताइया = यथार्थरूपसे जड़-चेतनका जो निर्णय करके सारासार और बन्ध-मोक्षको समझाके बतादिये हो! और मुझे भव बन्धनसे छुड़ा करके मेरे सहित अन्य जिज्ञासु—

साँचा = सत्य चैतन्यनर जीवोंको भी साँचा ही सत्य बोध लखाकरके—

मुकाम = पारख स्वरूपकी स्थितिका निवाश या ठौर-मुकाम मुक्ति स्थितिको—

दिया = प्रत्यक्ष लखा दिये हो और पारख बोध देकर जीवन्मुक्तिको प्राप्त, कायम करादिये हो।

ताते = इसवास्ते या इस कारणसे—

तव = आपके स्वच्छ पवित्र कल्याणकारी—

चरण = बाह्य चरणकमलोंको देहसे और अन्तर गुरुपदको तथा शुद्धाचरण रहनीको भी मनसे—

हौं = मैं आपको नम्रतायुक्त शिष्यत्वभावसे लघुता धारण करके—

बन्दत = सत्य प्रेमभक्ति सहित "साहेब बन्दगी" रूप त्रयबार बन्दना करता हूँ।

साँच गुरु = हे सद्गुरु! आप सत्यपारख स्वरूप हो और चेतन गुरुपदको दर्शानेवाले हो।

सत नाम = इसीसे आपका नाम और काम भी सत्य है। तथा नाम कहिये पारख बोध चेतन जीवका शुद्ध स्वरूप सो सत्य है। यानी सच्चे गुरुका पारख बोध भी सच्चा है।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेबके बन्दना कहनेका भाव ऐसा है कि, जिसका कभी नाश न हो, तीनकाल और तीन अवस्थाओंमें भी एक समान एकरस ज्योंका-त्यों नित्य बना रहे; सोई सत्य चैतन्य जीवका स्वयं स्वरूप है। उसके समान ब्रह्म, ईश्वरादि कोई भी न्यायसे सिद्ध होते नहीं, तो भ्रम छोड़के निजस्वरूपमें ठहरो। ऐसा सारशब्द गुरुमुख वाणीसे निर्णय करके पारखी गुरुदेवने सत्य उपदेश बताय दिये हैं या समझाय दिये कि, जीव सत्य है और कल्पना मिथ्या है। और जिज्ञासु नर जीवोंको या मुझ अबोधको वैसे सत्य चैतन्य जीवका, मुकाम = ठौर स्थितिका जगहमें ठहरनेके लिये पारख बोध देके स्वयं स्वरूपमें कायम करा दिये हो, इस कारणसे बन्दीछोर श्रीकबीर साहेब स्वरूप हे सद्गुरु! आपके बाहरी चरण कमलोंमें भक्तिभाव सहित शिर झुका करके मैं साहेब बन्दगीरूप त्रयबार बन्दना करता हूँ। और आपके भीतरी आचरण रहनीके समान मुझमें भी सद्गुण लक्षण मुक्ति स्थितिकी सदोदित धारण हो, यह चाहता हूँ। या गुरुपद पारखको धारण करके अन्तःकरणसे धन्यता मनाता हूँ। हे सद्गुरो! आप गुरुपद पारखमें अटल विराजमान सत्स्वरूप हो। तथा चेतन सत्य पदको दर्शाने वाले हो। आपके बन्दीछोर नाम भी सत्य है और अथवा नाम कहिये पारख समुझ सत्य बोध भी यथार्थ सत्य है। जैसे आप सच्चे सद्गुरु हो, तैसे आपके नाम-रूप पारख बोध भी सच्चा मुक्तिकी भूमिका है। आपके महान् उपकारको याद कर मैं बारम्बार साहेब बन्दगी करता हूँ ॥ १ ॥

॥ इति ग्रन्थकर्ता कृत मङ्गलाचरण समाप्त ॥

॥ अथ पञ्चकोश प्रथम ग्रन्थका उपोद्घात (विषय) वर्णन प्रारम्भः ॥

छन्दः—अन्नमय अरु प्राणमय ❀ तीजे मनोमय जानिये ॥
(१) ज्ञानमय विज्ञानमय ❀ सोई पंच कोश बखानिये ॥
तत् त्वं असि त्रिविधि वाणि ❀ सबै पहिचानिये ॥
कठिन सो त्रिदोष कारण ❀ परम पद किमि मानिये ? ॥ २ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, हे संतो!

अन्नमय = अन्नके सूक्ष्म सार स्वरूपी कोश यह है कि—अन्नसे उत्पन्न हुए रज-वीर्यसे बना हुआ यह स्थूल देह है। तहाँ उसी शरीर पोषणके लिये चतुराई, नाना तरहके पेट पालनेका धन्धाके व्यवहार और पंच विषय, स्त्री-भोग आसक्ति, पुत्र, कुटुम्ब, वर्ण, कर्म, आश्रम, धनादि संग्रहका जो कर्ममार्ग बना है, सोई स्थूल देहका घेरा है।

अरु = दूसरा कोश—

प्राणमय = प्राण स्वरूपी कोश यह है कि, प्राणरूप श्वास वायुमें लक्ष लगायके भीतर और बाहर सात स्वर्ग ठहरायके, वायुरूप ही अनेक देवतोंकी कल्पना करके, उनके प्राप्तिसे सुख मनोकामना सिद्धिके लिये उपासक भक्त लोग यंत्र, मंत्र, मानसिक पूजा आदि सगुण, निर्गुणभक्ति करते वा कराते हैं, जो उपासना मार्ग बना है, सोई सूक्ष्म देहका घेरा है।

तीजे=फिर तीसरा कोश—

मनोमय = मन स्वरूप ही कोश यह है कि, मनसे मानन्दी करके कोई ईश्वर ही सब जगत्का कर्ता है, सो पिण्ड, ब्रह्माण्डमें गुप्त-प्रकाश ज्योतिस्वरूपसे पूर्ण होरहा है, ऐसा अनुमानसे मानके उसकी प्राप्तिके लिये हठयोग और राजयोगादि साधना योगीजन करते वा कराते हैं। योग मार्ग बना है सोई कारण देहका घेरा है।

जानिये = ऐसा आप भी विवेक दृष्टिसे जान लीजिये।

ज्ञानमय = ज्ञान विचारसे ईश्वरको सर्वसाक्षी ज्ञानस्वरूप ही ठहरायके फिर अन्तमें पूर्ण व्यापक मानन्दी कर उसकी प्राप्तिकी चाहनासे परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान साधना ज्ञानी लोग सब प्रकारसे साधते हैं, जीवको आवर्ण कोशमें डाल देते हैं, जो ज्ञानमार्ग बना है, सोई महाकारण देहका घेरा है।

विज्ञानमय = विज्ञानस्वरूप ही माना हुआ कोश यह है कि, विशेष ज्ञानरूप ब्रह्म परमात्मा चराचरमें व्यापक मानकर वाच्यांश और लक्षांशरूप ब्रह्मज्ञानकी दृढ़तासे गाफिल हो परमहंस बनकर बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़ या अजगरवत् दुर्दशाकी धारणा किये और करते हैं। जो विज्ञान मार्ग बना है, सोई कैवल्य देहका घेरा है।

सोई पंचकोश = वही पाँच पर्दोंकी ढकन जीव पर पड़ा हुआ है, सोई पंचतत्व या पंच विषयोंकी आवर्ण है। अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य यह पंच देह ही पंचकोशका रूप है। अथवा कर्म, वासना, आशा, इच्छा, और आनन्द ये ही पंचकोशका ढाँकन जीवोंपर पड़ा है। यह पंचकोश महान बन्धनका घेरा जाल है। किन्तु—

बखानिये=मतवादियोंने इसीको अपना स्वरूप वर्णन किये हैं। यद्यपि वेदान्तियोंने आत्माको पंचकोशसे न्यारा कहकर आत्मज्ञानको श्रेष्ठ बताया है। परन्तु प्रकरणान्तरमें पंचकोशमें ही वे व्यापक ब्रह्म बनके स्थिति किये। अतः वे बन्धनमें ही पड़े हैं, सो उपरोक्त प्रकारसे नामसंज्ञा ग्रन्थकर्तासे परखा कर दर्शाके बता दिये हैं।

व्याख्या—१. जो कि अन्नसे उत्पन्न रज-वीर्यादिसे बना हो, अन्न-जलादिकी खान-पानसे पालन पोषण होके वृद्धि हुआ हो या होता हो, और पंच विषयोंकी उपभोग स्त्री-सम्भोग, पुत्र, परिवार, कुटुम्बोंका मोह, पेट पालन व्यवहार धन्धाओंमें चतुराई कर धन-संपत्ति आदिमें आसक्त रहे, उसी पदार्थोंके कारणोंसे या अन्न विकार रोग, शोग, त्रिदोष तथा अध्यास करके देह विनाशको प्राप्त हो, ऐसे जीवको आवर्ण करके ढाकने वाला यह पहला अन्नमय नामका कोश है। सोई स्थूल देहका मोटा पर्दा ऊपरसे जीवोंको पड़ा है। अतः अपनेको स्थूल देह स्वरूप ही समझ करके सब जीव बड़ी भूलमें पड़के बद्ध हो रहे हैं, बिना विचार॥

२. जो प्राणसे उत्पन्न हो, प्राणमें आसक्त होवे, फिर प्राण छूटकर नाशको प्राप्त हो, सो प्राणमय कोश है। अथवा बाहर और भीतर चलनेवाली प्राणरूप श्वास वायुमें खान स्वर्गादिका कल्पना करके सूक्ष्म वायुरूप ही अनेक देवतोंकी मानन्दी दृढकर उनके प्रसन्नतासे सुख-सम्पत्ति प्राप्ति या लोकादि प्राप्ति; स्त्री, पुत्रादि प्राप्ति इत्यादिके लिये सगुण-निर्गुण उपासना, भक्तिरूप उपासना मार्गमें भक्त लोग साधना करते वा कराते रहते हैं। सोई कल्पनाके ढकन पर्दारूप यह दूसरा प्राणमय कोश सूक्ष्म देहकी आवर्ण भीतरसे जीवोंपर पड़ी है। इसीसे निज स्वरूपको भूलकर, कल्पना कर सूक्ष्म बन्धनमें बन्धे पड़े हैं॥

३. जो मनसे उत्पन्न हो, मनमानन्दीमें मिला रहे, मनमानन्दी करके ही विनाशको प्राप्त होवे, सो मनोमय कोश है। अथवा मनसे कल्पना करके सब जगत्का कर्ता सर्व शक्तिमान् कोई एक परमेश्वर प्रकाशरूपसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें विराजमान है। उसके प्राप्तिसे ही जीवको भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। ऐसा मान-मान करके हठयोग और राज योगादि अष्टांग योगमार्गकी साधना करना, कराना समाधिमें शून्य गाफिल होना, यही ढकनरूप तीसरा मनोमय कोश कारण देहकी आवर्ण पर्दा हृदयमें जीवोंके पड़ी है। अतः जीव जड़ाध्यासी बनके दृढ़ बन्धनमें ही पड़े हुये हैं॥

४. जो ज्ञानसे उत्पन्न हो, विपर्यय ज्ञानमें ही मिला रहे, फिर मिथ्या ज्ञान करके विनाशको प्राप्त होवे, सो ज्ञानमय कोश है। अथवा आत्मज्ञानियोंने मानन्दीसे कोई सर्वसाक्षी ईश्वर परिपूर्ण

व्यापक है, ऐसा ठहरायके फिर उसके प्राप्ति या स्थिति कायम करनेके लिये परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान साधना करके शम-दमादि संयुक्त अभ्यास करते-कराते हैं, सो ज्ञानमार्गकी भास ढकनरूप ही चौथा ज्ञानमय कोश महाकारण देहकी आवर्ण पर्दा चित चतुष्टयमें आच्छादित हो रही है। इसीसे जीव भ्रमिक होके जड़भासमें भूले पड़े हैं। यह कोश तो तीनों कोशोंके महान कारण बीज है। और—

५. जो विज्ञानसे उत्पन्न हो, विज्ञानमें ही सम्मिलित हो रहै, फिर विज्ञान विकारसे ही विनाश हो जाय, सोई विज्ञानमय कोश है। अथवा कहनेको तो विशेष ज्ञानरूप ही कोई ब्रह्म-परमात्मा जड़ चेतनमें सर्वत्र भरा हुआ मानकर फिर उस ब्रह्मसे अपनेको अभिन्न एकरूप होनेका मानन्दो, कल्पना की धारणा करके ब्रह्मज्ञानी लोग बेभान गाफिल होकर बालकवत्, पिशाचवत्, उन्मत्त, मूक, जड़वत् दशा बनाये वा वैसे दुर्दशा बनाय लेते हैं। यह आवर्ण ढकनरूप पाचवाँ विज्ञानमय कोश कैवल्य देहकी जीवोंपर गाफिली पड़ी है। अतः जीव निजहंसपदसे पतित होकर चोरासी योनिमें बन्धे पड़े हैं, बिना पारख। उपरोक्त पंचकोशोंका नाम तो वेद वेदान्तवादियोंने भी वर्णन किये हैं। पंचकोशसे ब्रह्म वा आत्माको न्यारा कहे हैं। परन्तु व्यापक बनके न्यारा हो ही नहीं सकता। कथनसे न्यारा हुए। परन्तु पारख निर्णय बिना वे पंचकोशोंमें ही स्थिति कायम किये हैं। क्योंकि पाँच तत्त्व पाँच देह और कर्म, वासना, आशा, इच्छा और आनन्द ये ही पंचकोश हैं। इससे वे कोई भी न्यारा हुये नहीं, अतः सब भव बन्धनमें ही पड़े और पड़ रहे हैं। इसका विशेष वर्णन सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने बीजक साखी ५० में कहा है। उसीकी टीकामें विस्तारसे ९ कोशोंका विवरण सद्गुरु श्रीपूरण साहेबजीने दर्शाये हैं (विस्तार वहाँसे जान लीजिये), सोई पारखी सद्गुरुने निर्णयसे वर्णन करके हमें समझाय दिये हैं, उसीका सार संक्षेपमें यहाँ दर्शा दिया है॥

"तत् त्वं असि त्रिविधि वाणि, सबै पहिचानिये॥
कठिन सो त्रिदोष कारण, परम पद किमि मानिये?" ॥ २ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, हे सन्तो!

तत् = ज्ञानमय कोशका भोक्ता साक्षीरूप ज्ञानी सोई ईश्वर तत्पद है, ऐसा माने हैं। यानी तत्पदवाच्य ईश्वर कहा है।

त्वं = अन्नमय, प्राणमय, मनोमय यह तीनों कोशोंका भोक्ता अज्ञान विशिष्ट सोई जीव त्वंपदमें माने हैं। यानी त्वंपदवाच्य जीव अज्ञानी कहा है।

असि=विज्ञानमय कोशका भोक्ता परब्रह्म, परमात्मारूप सोई परमहंस विज्ञानी असिपदमें माने हैं। यानी असिपद लक्ष ब्रह्म ठहराये हैं।

त्रिविधि=तीन प्रकारके उक्त तत्त्वमसि या ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान और कर्म, उपासना, ज्ञान आदि ऐसे त्रिपुटिरूप सिद्धान्तकी जीवमुख, मायामुख और ब्रह्ममुखकी—

बाणी = गुरुवा लोगोंने वाणी जालोंको विस्तार किये हैं, सो सब ही—

सबै = रोचक, भयानक आदि सब कसर खोट सिद्धान्तोंको ठीक-ठीक तरहसे—

पहिचानिये = गुरुमुख यथार्थ निर्णयकी सार शब्दसे सत्संग विचार द्वारा गुरुवा लोगोंके सिद्धान्त सब पंचकोशोंके भीतर ही होनेसे जीवोंको बन्धन ही देनेवाला है, सो पहिचान लीजिये। अच्छी तरहसे परखिये।

सो = उपरोक्त पञ्चकोश, पंचमार्ग, पंचदेह, पंच विषय आदि सो वह तो—

त्रिदोष = वात, पित्त तथाकफकी एकतासे होनेवाला सन्निपात रोग सदृश ही तीन पद ज्ञान, अज्ञान, विज्ञानकी एकता एक ब्रह्म होनेसे असाध्य त्रिदोष ही खड़ा भया है, सो—

कारण = सबका बीज जगत् उत्पत्ति या जन्म, मरणादिका कारण मूल हुआ। अतएव—

कठिन = यह भव बन्धनमें ले जानेका मजबूत फन्दा है। इससे बन्धन छूटना तो अतीव कठिन हो गया।

परमपद = अब उसको अति उच्च बड़ापद या सबसे श्रेष्ठ कल्याणकारी मुक्तपद करके—

किमि = कैसे या किस प्रकारसे उस ब्रह्मज्ञान कैवल्य असिपदादिको—

मानिये = परमपद मानना या कैसे अच्छा माना—जायगा। परन्तु विवेकसे मुक्तपद उसको नहीं माना जायगा, बल्कि बन्धनका हेतु होनेसे चौरासीका कारण ही माना जायगा। पारख दृष्टिसे इसका विवेक करना चाहिये।

व्याख्या—और 'तत्, त्वं, असि' यह तीन प्रकारकी जो वाणी है, इसको सामवेदमें महावाक्य कहा है। उसमें "तत्पद" ज्ञानमय कोशका भोक्ता साक्षीरूप ज्ञानीको ही मुक्त ईश्वर माने हैं। "त्वंपद" अन्नमयादि तीन कोशोंका भोक्ता अज्ञानी जीवोंको बद्ध माने हैं। और "असिपद" विज्ञानमय कोशका भोक्ता परमहंस विज्ञानीको ब्रह्मरूप जैसाका तैसा माने हैं। यह तीनमुख वाणी जीवोंको बन्धनमें ही डालनेवाला है। उनसब त्रिपुटिरूप गुरुवा लोगोंके सिद्धान्तोंको पारखी गुरुके सत्संग गुरुमुख निर्णय उपदेश विचार करके सब ठीक-ठीकसे यथार्थ पहिचान लीजिये। जिस प्रकार शरीरमें वात बढ़नेसे भी दुःख होता है, पित्त बढ़नेसे भी रोग होता है और कफ बढ़नेसे भी दुःख ही होता है; अगर वे तीनों एकत्र मिलें तो असाध्य रोग हो जाता है, फिर उसीसे मृत्यु हो जाती है। और जैसे वात, पित्त, कफ एकत्र त्रिदोष मिल जानेसे सन्निपात होके रोग छूटना कठिन या असाध्य हो जाता है। फिर उसमेंसे कोई सुख चाहै, तो कहाँसे कैसे मिलेगा? तद्वत् तीनपद तत्त्वमसि ज्ञान, अज्ञान, विज्ञानरूप ब्रह्मपद सब जगत्का मूल उत्पत्ति कारण बीज होनेसे जीवोंको ब्रह्म बनके बन्धनोंसे छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन हो गया है और ब्रह्मवादी लोग कभी मुक्त हो सकते नहीं। अब हे विचार मानो! साधो! उसको परमपदरूप कल्याणकारी मुक्तपद तो भी कैसे मानना? विवेकसे उसको मुक्तपद कभी माना नहीं जा सकता; किन्तु बन्धनका हेतु तुच्छपद ही माना जायगा। ऐसा श्रीरामरहससाहेबका इस छन्दमें कहनेका तात्पर्य है। यह भावार्थ है॥ २॥

दोहाः—पशुवा लोक अरु वेदके। मोह अन्ध संसार॥

[१] वह लादै खेदै आपको। यह अपनी चहत उवार॥ ३॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, हे जिज्ञासु मनुष्यो!

संसार = संशयमें पड़े हुये संसारी नरजीव इस जगत्में या संसारमें—

पशुवा = मानुषरूपमें होते हुए भी गुरु बुद्धि सत्य ज्ञानके विना वे पशु समान ही मूढ़ नर-पशु होके भूल रहे हैं। उसमें-ऐसे पशुवा दो प्रकारके हैं। पहलेमें—

लोक = लोकरीति संसार खानीका भाग विषयानन्दके अनेक कर्मोंमें पड़े हुये पक्षपाती अविचारी पुरुष नरपशु, स्त्री-पशु, सुर-पशु, ये तीन तरहके पशु बन रहे हैं।

अरु = और दूसरे भागमें—

वेदके = वेदरीति कहनेको परमार्थ वाणीका भागमें ब्रह्मानन्दादि प्राप्तिके लिये अनेक कर्मोंमें लगे हुये गुरुवा लोग आदि मनुष्य वेद पशु, शास्त्र पशु, पुराण पशु, होकर भ्रमिक हो रहे हैं। ऐसे संसारमें लोक पशु गृहस्थ लोग और वेद पशु षट् दर्शनके भेषधारी साधु लोग विना पारख महापशुके समान ही स्वभाव बनाके वर्त रहे हैं, भटक-भटका रहे हैं।

मोह = और उसी खानी-वाणीके विषयानन्द, तथा ब्रह्मानन्दादिमें मोहित आकर्षित होके आसक्ति जड़ाध्यास टिकाके—

अन्ध = पारख विचार दृष्टिसे रहित गाफिल, अन्धे होके हिताहितको और लाभ-हानीको भी देखते नहीं, संसारमें ऐसे मोहान्ध लोगों का ही भरमार है।

वह = वे बञ्चक गुरुवा लोग और कामिनीजन तो स्वार्थी बनके उन नरपशुरूप पुरुषोंके ऊपर—

लादै = पाँच मार्गोंके अनेक कर्म और प्रपंच पंच विषय भोगोंकी नाना कर्मधन्दा, मेहनत, मजूरी और साधनारूपी लादी बोझाको लाद करके हकाल दिये। कल्पना वा विषय मार्गमें चला दिये।

आपको = यह मूढ़ नरोंको अपने-अपने सिद्धान्त और स्वार्थ व्यौहारोंके तर्फ खैंच-खैंचके—

खेदै = ढकेलके बरबश खेदते जाते हैं या हाँकते ले जा रहे हैं, उक्त नाना कर्म करनेको मजबूर कर देते हैं। इसीसे तो—

यह = संशय ग्रसित यह बेपारखी मूढ़ नर जीव सब कोई भी उसीमें राजी हो-हो करके खुशीके साथ—

अपनी=अपना-अपना इच्छित भोग और साधना मार्गोंमें लगके उससे अपना—

उबार = सुखपूर्वक विषय भोगके अन्त्यमें भव-पार होके मुक्ति, कल्याण या परमपदमें पहुँचने की—

चहत = चाहना या इच्छा करते हैं और सबको भुक्ति-मुक्तिकी विशेष चाहना लगी है; तो यह विपरीत है, सो कैसे पूरा होगा, कभी उनकी उल्टी इच्छा पूर्ण हो नहीं सकती है।

व्याख्या—इस दोहाके भावार्थ या मतलब समझनेके लिये एक दृष्टान्त आया है, सो पहले कहता हूँ, सुन लीजिये! फिर पीछे सिद्धान्त समझनेमें आयेगा। दृष्टान्तः—कोई एक बनियाँ था, उसने अपने व्यापारादिकके लिये कुछ गधे और कुछ टट्टूयें पाल रखा था। एक समय वह व्यापारि बनियाँ व्यापार करनेके लिये घरसे निकल पड़ा। घरसे चलते समय नमक अथवा शक्कर आदिकी थैला (बोरियाँ) अपने पालतू गदहे वा टट्टूओंके पीठ पर लाद करके खेदते हुए उन पशुओंको भगाता हाँकता हुआ हाट-बाजारके तरफ लेके चला गया। रास्तामें जाते-जाते एक जगह बीचमें नदी उतरना पड़ा पूल नहीं था, उतरने लायक नदी थी, टट्टूओं समेत नदीमें हल पड़ा। बोझासे लदे टट्टूओंने नदी पार उतरतेमें नमक वा शक्करादिके थैलोंकी नीचेका कुछ भाग पानीमें भिगाते हुए ले गये। इस कारण भिगा हुआ नमक वा शक्करादि पानीके साथ पिघल-पिघल कर बूँद-बूँद टपक-टपकके नमकादिके बोझा घटता गया, तो बोझा भी कुछ हलुका मालुम पड़ा। हाट-बाजारमें पहुँचने पर बनियाँने नमक वा शक्करादिके थैलोंको उतार कर जो कुछ बचा था, सो उसे तो बिक्रीकर दिया और उस बाजारमेंसे कपड़ेका गाँठ खरीद कर फिर उन्हीं टट्टूओंपर लादके व्यापारी बनियाँ घर तरफ वापिस लौट पड़ा। उधरसे चला आरहा था, तो पूर्वके बीचवाली नदी पार उतरनेका मौका फिर भी दुबारा आपड़ा। इधर टट्टू बोझासे तो खूब लदा ही था, नदीके पानीको देखके प्रसन्न हुआ और उसने मनमें सोचा कि, पहलेका बोझाको पानीमें आधा भिगा दिया था, तो बोझा भी आधा ही घटा जैसा मालूम पड़ा था, अब अपने भागसे फिर भी नदीका उतार तो आ ही गया है, अबकी बार तो मैं पूरा ही इस बोझाको भिगा दूँगा, तब तो मैं भी बहुत ही हलुका हो जाऊँगा, फिर तो मजेमें आरामसे ही घर चला जाऊँगा, जल्दी पहुँचके आराम होगा, इत्यादि प्रकारसे संकल्प-विकल्प कर सोच समझके वह टट्टू कुछ ज्यादा गहरा पानीके तर्फ होके नदीमें चला गया, तो कपड़ेकी गाँठें भी सब भीग-भीगाके गीला हो गया। जब नदी पार पहुँचा, तो उसके समझके अनुसार कुछ भी नहीं हुई, सब विपरीत ही होने लगी। पहले नमक वा शक्करादि थैलोंके वक्त तो बनियाँका नजर चूक गया था, रास्तामें बनियाने देख नहीं पाया था, परन्तु अबके बार तो बनियाँकी नजर तो उस गाँठ पर ही थी, अब पूरी गाँठ भिगा दिया देखके बनियाँ तो खूब नाराज हुआ, कई डंडे भी उन्होंको खूब मारा। फिर ज्यों-ज्यों कपड़ा पानीसे भिगता गया, त्यों ही त्यों बोझा भी ज्यादा-ज्यादा ही बढ़ता गया, इस तरह पहलेसे ड्योढा-दुगुना बोझा मालूम पड़ने लगा। इससे चलनेमें उसे अति कठिनाई सुस्ति होने लगी। तब और भी नाराज होके बनियाँ गुस्सेमें उस टट्टूको डण्डे पर डण्डा मारते हुये खेदने-भगाने लगा। यह टट्टू तो बोझा कम करके हलुका होना चाहता था, परन्तु पशुबुद्धि अविचारके कारण परिणामको कुछ भी न समझके मूढ़तासे एक तो दुगुना बोझाका

दुःख हुआ और दूसरा ऊपरसे डण्डेकी बड़ी ही करारी मार पड़ी, ऐसे दो तरफका दुःख भोगता हुआ लाचारीसे ज्यों-त्यों करके चला आरहा था, ज्यादा मार पड़नेसे मुकाममें पहुँचे विना ही बीच ही में मर गया; उसके मनसा पूर्ण नहीं हुई, यह तो दृष्टान्त हुआ। अब इसको सिद्धान्तमें घटाते हैं सो सुनिये! संसार कहिये इसी जगत्में खानी-वाणीके संशयसे ग्रसित गुरु बुद्धि पारख दृष्टिसे हीन नरजीवरूप मनुष्य सोई गधे या टट्टूवत् पशुरूपी बने हुये हैं। इसमें स्त्री पशु, नर पशु, सुर पशु, ये तीन तरहके खानी भाग विषयके पक्षपाती अविचारी लोकमें पशुवत् बन रहे हैं। और दूसरे वेद पशु, शास्त्र पशु, पुराण पशु ये तीन प्रकारके वेदके कहिये वाणीके पक्षपाती अविचारी मूढ़ पशुवत् हो रहे हैं। अतएव पंच विषय, भग-भोग विषय विलासमें संसारी लोग और ब्रह्मानन्दादिमें योगी ज्ञानी आदि लोग मोहित-आकर्षित होके पारख विना अन्धे हो रहे हैं। ऐसी मोहान्ध अविवेकी जनता सोई टट्टू या गदहा पशुकी नाईं बने हुये हैं। वह वंचक धूर्त गुरुवा लोग और स्त्रियें येही लोग बनियाँके जगहमें जानिये। इनके साथ लगकर कल्पनामें और विषयोंमें पशु बुद्धिवाले नरजीव बिक गये हैं और बिक रहे हैं, इससे दास या गुलाम हो-होकर परवश हो रहे हैं। प्रथम गोरखधन्धा, गो = इन्द्रिकोंको, रख = रक्षा करने, पुष्ट करनेका खानपानादिका कार्य (पेटधन्धा) की नाना चतुराई, स्त्री विषय भोगोंके नाना कर्म, जात-पाँत, कुल, कुटुम्ब, जगत् व्यवहाररूपी बोझा लादके संसाररूपी हाटमें स्त्रीरूपी बनियाँ अगुवा बनके खेदते हुए ले जा रहा थी। बीचमें नदीवत् वैराग्य भेषमें प्रविष्ट हुये तो कल्पनामें भोगे, तहाँ षट्दर्शन भेषके साधु कहलाये, तो संसारकी मोटी नाता और मेहनत मजूरी आदि करनेका इसका बोझा "गीला नमकादिके थैलावत्" टपक करके यानी मोटी मायाका सम्बन्ध छूटनेसे दुःख भी कुछ कम हुआ, हलका मालूम पड़ा। स्त्री, पुत्र परिवार आदिकोंके पालन-पोषण करनेके लिये द्रव्य कमानेमें गृहस्थोंको बहुत दुःख भोग सहना पड़ता है। परन्तु साधु होने पर वह दुःख छूटकर फुर्सत पाके हलका हो जाता है, ऐसा प्रत्यक्ष ही है। और संसाररूपी हाट या बाजारमें ईश्वर कर्ता मानन्दीकी संशयादिसे नाना उपासना, योगादि साधनाओंके खरीद-बिक्री गुरुवा लोग खूब किये और करा रहे हैं। पश्चात् जीवकी स्थितिरूपी घरके तरफ जब लौटे, तो अद्वैत ब्रह्मज्ञानके सिद्धान्त 'अहंब्रह्मास्मि' कहने लगे। अथवा द्वैत, विसिष्टाद्वैत आदि अपने-अपने निश्चयका कोई एक सिद्धान्त ग्रहण किये, सोई कपड़ेकी गाँठवत् मनमें मानन्दी कल्पनाओंके गाँठका बोझारूपी लादी लादके चले आये। अब संसारमें देह व्यवहारमें मान-बड़ाई प्रतिष्ठा और षट्दर्शनोंके भेषके आश्रमोंके दृढ़ पक्ष तथा ९६ पाखण्ड धारारूप नदीका पानी कहिये नाना वासियोंमें उक्त टट्टूवत् ये भेषधारी पक्षपाती लोग डूब गये। इन्होंने तो सोचा था कि, अब सहज ही "अहंब्रह्मास्मि" होके मुक्त हो जायेंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, मुक्तिके बदले महान जड़ाध्यासी हुए, ब्रह्मके बदले जगतरूपमें ही बड़ा दुःखी बने रहे। ज्ञानी-अज्ञानी सब कोई सुख और उबार तो चाहते थे, किन्तु सद्गुरुके पारखबोध उन्हें न होनेसे गुरुवा लोगोंके हाथमें पशुवत् पड़े और गुरुवा लोग नाना कर्मोंका बोझा साधनारूपी लादी लादके अपने-अपने तरफ खैंच-खैंचके खेदने लगे। इस कारण देह रहे तक नाना साधनोंका दुःख और कर्म भोगोंका दण्ड यातनायें सहन करते हुये ज्यों-त्यों करके चले जाते हैं; परन्तु निज मुक्तिस्थिति के मुकाममें न पहुँचके बीचहीमें जड़अध्यासी हो मर जाते हैं। आखिर देह छूट जानेपर जड़ाध्यास वश चारखानी चौरासी योनिमें जाकर गर्भवासादि त्रयतापोंके दुःख भोगी हुये, और हो रहे हैं। विना पारख, किसी प्रकार भी आवागमनादिके दुःख जीवोंका छूटा नहीं। उबार तो चाहते हैं, परन्तु उबार हुआ नहीं या होता नहीं॥

लोक और वेदके जालमें बन्धे हुये पशुवा लोग मोहके मारे संसारमें अन्धे हो रहे हैं। यह नारि और गुरुवा लोग तो खानी-वाणीका बोझा जीवोंपर लादते हैं, और अपने-अपने तरफ नरपशुको खेदते

हैं। यह मूर्ख पशुबुद्धिवाला पुरुष उसी कुसंगमें रहके अपना उवार चाहता है, तो भला कैसे होगा ? नहीं होगा ॥ ३ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पञ्चकोश प्रथम ग्रन्थका उपोद्घात वर्णन समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ अथ प्रथम ग्रन्थः पञ्चकोश प्रकरण वर्णन ॥

॥ * ॥ अथ प्रथम अन्नमय कोश वर्णनम् प्रारम्भः ॥ १ ॥ * ॥

॥ चौकड़ी ॥ प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

१. अन्नमय कोशको सुनो विस्तार * देह स्थूल आश्रम ब्रह्मचार ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—यहाँसे १८ चौकड़ी तक अन्नमय कोशके विभागका वर्णन है ॥

अर्थ :—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—हे साधु-सज्जनो ! अब अन्नमय कोशका विस्तार वर्णन करता हूँ सुनो ! इसकी स्थूल देह और ब्रह्मचर्य आश्रम कहा है। अर्थात्—

अन्नमय = अन्नके सार भागरूप ही रज-वीर्यसे बना हुआ स्थूल शरीर जो है, सो—

कोशको = इस कोशका ढक्कन या म्यान पर्दावत् इस देहका आवर्ण प्रथम जीवपर हो रहा है, उस अन्नमय कोशका—

विस्तार = फैलाव जितने भागमें लेकरके है, उसका विस्तारपूर्वक मैं इस भागमें वर्णन करता हूँ, आप लोग—

सुनो = सो उसे ध्यानपूर्वक सावधान होकर सुन लीजिये !

देह = इस अन्नमय कोशका शरीर जो है, सो—

स्थूल = प्रत्यक्ष नेत्रसे देखनेमें आनेवाला स्थूलाकार, मोटा बाह्य दशों इन्द्रियें दृष्टिगोचर होने वाला है।

आश्रम = इस स्थूल देहका टिकावकी भूमिका या प्रथम गिनतीके आश्रममें यहाँपर ब्रह्मचर्य आश्रम कहा है।

ब्रह्मचार = वीर्य-रक्षा करनेकी अवस्था, यानी वीर्यनिरोधरूप होनेसे उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। गुरुकुलमें निवास करके उक्त ब्रह्मचारी-को चारों वेद अर्थ सहित ४४ वर्ष तक पढ़ने को वेदमें और मनुस्मृति आदिमें कहा है।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे जिज्ञासु साधुओ ! अब मैं यहाँपर पहले अन्नमय नामका जो कोश है, उसका ही विस्तारपूर्वक वर्णन करके आप लोगोंको बता देता हूँ। सो आप लोग भी अब ध्यानपूर्वक सुन लीजिये ! अन्नमय कोशमें श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका ये ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और मुख, हाथ, पाँव, लिंग और गुदा ये ५ कर्मेन्द्रियाँ इत्यादि भाग संयुक्त प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला सो यही स्थूल देह इस अन्नमय कोशका मुख्य भाग है। और पहला आश्रम स्थूल देहके ब्रह्मचर्य माने हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजजातीय तीन वर्णोंके बालकोंको व्रतबन्ध करके यज्ञोपवीत पहिराते हैं। तहाँ उसका समय आठवें वर्षमें ब्राह्मणोंके बालकोंका यज्ञोपवीत कहिये जनेऊ यज्ञ विधि कराके पहनाया जाता है और ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका तथा बारवें वर्षमें वैश्योंके पुत्रोंका व्रतबन्ध करके यज्ञोपवीत या जनेऊ पहिराना कहा है। तबसे उस ब्रह्मचारीने विद्यार्थीरूपसे गुरुकुलमें निवास करके गुरुकी सब प्रकारकी सेवा सहित चारों वेदोंको प्रथम ४४ वर्षों तकमें अर्थ सहित पढ़ लेवे, उतना न बन सके तो ३६ वर्षों तक पढ़े, उतना भी न हुआ तो २५ वर्षों तक तो

अवश्य पढ़ लेवे ऐसा कहा है। उस अवस्थामें रहनेका आश्रम सोई ब्रह्मचर्याश्रम माना है। इसके बारेमें विशेष खुलासा नीचे टिप्पणीमें लिख दिया है, उससे जान लीजिये ❀ ॥ ४ ॥

❀ **टिप्पणीः**—ब्रह्मचर्य आश्रमके बारेमें शास्त्रोक्त प्रमाण सुनिये !—

श्लोकः—"गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥"

—गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत (जनेऊ पहिराना) करना चाहिये। और गर्भसे ग्यारहवें वर्ष क्षत्रियका और गर्भसे बारहवें वर्ष वैश्यका करना चाहिये॥ मनुस्मृतिः, अ० २। श्लोक ३६ ॥ विष्णुस्मृतिके अ० १, श्लोक १३–१४ में भी वही बात कहा है। व्यासस्मृतिके अ० १। १६ में भी वही कहा है॥ शंखस्मृतिके अ० २। ६–७ में भी वही कहा है।

"ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्यपञ्चमे ॥ राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्य स्येहार्थिनोऽष्टमे ॥
आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ॥ आ द्वाविंशात्क्षत्रबन्धोरा चतुर्विंशतेर्विशः ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अ० २। ३७–३८ ॥

—वेदके पढ़ने और अर्थज्ञान आदिसे बढ़े हुये तेजको ब्रह्मवर्चस कहते हैं। उस ब्रह्मतेजको चाहनेवाले ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे पाँचवें वर्षमें करदेना चाहिये। और बलके चाहनेवाले क्षत्रियका छठवें वर्षमें और बहुत खेती आदिकी इच्छा चाहनेवाले वैश्यका आठवें वर्षमें करना चाहिये॥ ३७ ॥ सोलह वर्षके पीछे ब्राह्मणोंको और बाइससे क्षत्रियको और चौबीससे उपरान्त वैश्यको सावित्रीका (गायत्री मन्त्रका) उपदेश नहीं हो सकता। अर्थात् तीनों वर्णोंको पूर्व नियत अवस्थासे दुगुनी समय—ब्राह्मणको १६, क्षत्रियको २२ और वैश्यको २४ वर्ष तक व्रतबन्ध करके जनेऊ पहिरानेका अन्तिम अवधि है। ॥ ३८॥ यदि तबतक भी किसीका व्रतबन्ध नहीं हुआ तो तदुपरान्त नियमसे पतित हीन समझे जाते हैं॥ गौतम स्मृतिः अ० १ में भी वही बात कहा है॥

"षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ॥ तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अ० ३। १ ॥

—ब्राह्मणको जनेऊविधि कराय आठवें वर्षसे आगे छत्तिसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् उसके ४४ वर्षतक ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीन वेद प्रत्येकको बारह-बारह वर्ष प्रमाण अर्थ सहित पठन करे। अथवा उसका आधा १८ वर्षतक पढ़े, अथवा चौथाई भाग नववर्षों तक वेदको पढ़े। अथवा सम्पूर्ण वेदविद्या ग्रहण होवे, तबतक पिता वा आचार्य गुरुसे ब्रह्मचर्य व्रतमें रहकर वेदविद्याको भलीभाँति अर्थ सहित पढ़े॥ साथ ही यम और नियमोंको भलीविधि पालन करे॥

"तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ योगसूत्र, साधनपादे सूत्र ३० ॥

—१ अहिंसा—हिंसावैरादिका त्याग। २ सत्य—सदा सत्य बोलना और सत्य व्यवहारसे चलना। ३ अस्तेय—भीतर बाहरसे चोरीका त्याग। ४ ब्रह्मचर्य—अष्ट मैथुनोंका सर्वथा त्याग। ५ अपरिग्रह—अत्यन्त आसक्ति लोभ छोड़कर अभिमानरहित वर्तना, यह पाँचों मिलके यम साधना कहलाता है॥

"शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ॥ योगसूत्र, साधनपादे सूत्र ३२ ॥

—१ शौच—स्नानादि शुद्ध क्रियाओंसे पवित्र रहना। २ सन्तोष—यथालाभमें संतुष्ट रहना, हानि, लाभमें हर्ष वा शोक नहीं करना। ३ तप—कष्ट सेवन करके भी धर्मयुक्त कर्मोंका पालन करना। ४ स्वाध्याय—पढ़ना और पढ़ाना। ५ ईश्वर प्रणिधान—ईश्वरकी भक्ति विशेषमें अपनेको अर्पित रखना वा आत्मसमर्पण करना। ये पाँच नियम कहलाते हैं॥

"कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। सर्वत्र मैथुन त्यागी ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥" याज्ञवल्क्य॥

—मन, वचन और शरीरसे सब अवस्थाओंमें सदा और सर्वत्र मैथुन त्यागको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। यही तप, ध्याज तथा यज्ञादि सभीसे बढ़कर श्रेष्ठ है॥

"नतपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्"॥

यह ब्रह्मचर्य तीन प्रकारका होता है। एक तो शरीरसे मैथुन नहीं करता, दूसरा मनसे नहीं करता है और तीसरा वचनसे नहीं करता है। किन्तु सच्चा ब्रह्मचारी वही है, जो मन, वचन और शरीर तीनोंसे मैथुन न करे। भीतर बाहरसे अष्ट मैथुनोंके कुभावको त्याग करै॥ तहाँ कहा है:—

"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणं॥"

॥ दक्षसंहिता और दक्षस्मृतिः, अ० ७। ३१-३२॥

—१ स्मरण— स्त्रीकी यादगीरी, २ कीर्तन—गुणगान, ३ केलि—खेल, क्रीड़ा, ४ प्रेक्षण—भोग बुद्धिसे देखना, ५ गुह्यभाषण— गुप्त बातचीत करना, ६ संकल्प—स्त्री प्राप्तिकी इच्छा, ७ अध्यवसाय—स्त्री प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना, और ८ क्रिया निष्पत्ति— स्त्रीसे प्रत्यक्ष सम्भोग करके वीर्यपात करना। यह आठ प्रकारका मैथुन विद्वान् बुद्धिमानोंने कहा है। ब्रह्मचारीको इन आठों लक्षणोंसे विपरीत वा रहित होना चाहिये॥

"समुद्रतरणे यद्वदुपायो नौ प्रकीर्त्तिता। संसार तरणे तद्वद् ब्रह्मचर्यं प्रकीर्त्तितम्॥"

—समुद्रके पार होनेमें जिस प्रकार नौका ही एकमात्र उपाय है। वैसे ही संसारसे पार उतरनेके लिये भी एक ब्रह्मचर्य ही उपयुक्त उपाय है॥

"न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्। ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः॥" तन्त्रशास्त्र॥

—तप तो कुछ भी नहीं है, ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है। जिसने वीर्यको अपने वशमें कर लिया है, वह मनुष्य नहीं, वह तो देवता है॥

भीष्मने युधिष्ठिरके प्रति कहा है कि—

"ब्रह्मचर्यं सुगुणं शृणु त्वं स्थिरया धिया। आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह॥"

—मैं ब्रह्मचर्यका गुण बतलाता हूँ, तुम स्थिर बुद्धिसे सुनो! जो मनुष्य जन्म भर ब्रह्मचारी रहता है, उसे इस संसारमें कुछ भी दुःख नहीं होता है।

"वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्"— वीर्य धारणको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। शिवसंहितामें कहा है:—

"मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्। तस्मादति प्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्॥"
"सिद्धेबिन्दौ महारत्ने किं न सिद्धयतिभूतले। यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशोऽभवत्॥"

—शिवजी कहते हैं—बिन्दुपातसे ही मृत्यु है और इस बिन्दुके धारणसे ही जीवन है। अतएव अति प्रयत्नपूर्वक बिन्दु धारण करना चाहिये। जिसके प्रभावसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें मेरी ऐसी महिमा हुई है, उस-वीर्य-बिन्दुके धारणसे जगत्में कौनसा कार्य ऐसा है, जो सिद्ध नहीं हो सकता?॥ और वाग्भट्टने कहा है कि:—

"ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्। हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम्॥
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टि पुष्टि बलोदयाः। यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्॥
निष्पाद्यन्ते यतो भावा विविधा देह संश्रयाः। उत्साहप्रतिभाधैर्य लावण्यसुकुमारताः॥"

—रससे लेकर वीर्य तक सातों धातुओंका जो तेज है, उसे ओजस् कहते हैं। ओजस् प्रधानतया हृदयमें रहता है, पर वह समस्त शरीरमें व्याप्त है। ओजस्की वृद्धिसे ही तुष्टि, पुष्टि और बलकी उत्पत्ति होती है। ओजस्के नाशसे ही मृत्यु होती है। यह ओजस् पदार्थ ही जीवनका आधार है। इसीसे उत्साह, प्रतिभा, धैर्य, लावण्य, और सुकुमारताकी प्राप्ति होती है॥

"रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमिति॥"—सुश्रुत॥

—रससे शुक्र तक सातों धातुओंके परम तेज भागको ओजस् कहते हैं, यही बल है॥

"ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरंसितम्। सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरंमतम्॥" शार्ङ्गधर॥

—ओजस् सारे शरीरमें रहता है। यह स्निग्ध, शीतल, स्थिर, श्वेतवर्ण, सोमात्मक और शरीरके लिये बल तथा पुष्टिका देनेवाला है॥

"एतेसप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्। रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः॥"

—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र (वीर्य)— ये सात पदार्थ स्वयं स्थित रहकर मनुष्योंकी देहको धारण करते हैं, इसीसे इनका नाम धातु है। मनुष्य जो कुछ भी खाता पीता, शरीर पर लगाता या सूँघता है, वह शरीरमें

जाकर सबसे पहले रसकी उत्पत्ति करता है और उसीसे क्रमशः अन्य धातुएँ बनती हैं ॥

"रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते । मेदसोऽस्थि ततोमज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः ॥" सुश्रुत ॥

— भोजनके पचनेपर सबसे पहले रस बनता है, रससे रक्त, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि (हड्डियाँ), अस्थिसे मज्जा, और मज्जासे सातवाँ सबका सार पदार्थ 'वीर्य' बनता है । (फिर यही वीर्य ओजस्‌रूपी महान् तेज बनकर सम्पूर्ण शरीरमें चमकने लगता है ।) ॥

भोज तथा आयुर्वेदके अन्य आचार्योंने लिखा है कि— रससे लेकर मज्जातक प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ीतक अपनी अवस्थामें रहती है। इस रीतिसे तीस दिन रात और नौ घड़ीमें रससे वीर्य बनता है । यानी आज खाया हुआ भोजनका मुख्य सार वीर्य तीस दिनके पश्चात् बनता है । इसी प्रकार और इतने ही समयमें स्त्रीके शरीरमें भी रज धातु तैयार होता है ॥

अर्थात् एक धातुके पचकर दूसरी धातु बननेमें मोटा-मोटी हिसाबसे पाँच दिन लगते हैं । उसमें सार पदार्थ तो शरीरमें रह जाता है और पाचनकी प्रत्येक क्रियामें बचा हुआ कूड़ा-कचरा, मल-मूत्र, पसीना, मैल, नाखून और दाढ़ी मोछ आदिके बालोंकेरूपमें बाहर निकल आता है । फिर वीर्य बनते ही उसकी पाचन क्रिया रुक जाती है और वह सार पदार्थ ओजस्‌केरूपमें शरीरमें स्थित रहता है । इस प्रकारसे रससे लेकर वीर्य बननेमें प्रत्येक धातुमें पाँच दिनके हिसाबसे छः धातुओंके पाचनमें तीस दिन लगते हैं ॥

और अनुभवी वैद्योंकी रायसे—४० ग्रास आहारसे १ बून्द रक्त बन पाता है । और ४० बून्द रक्तसे १ बून्द वीर्य तैयार होता है । वैसे ही वैज्ञानिकोंका मत है कि— पक्के चालीस सेर भोजनसे १ सेर रक्त बनता है, और उस १ सेर रक्तसे दो तोला वीर्य बनता है । यदि निरोग मनुष्य प्रतिदिन पक्का एक सेरके खुराक अन्न खावें, तो ४० सेर अन्न वह चालीस दिनमें खा सकेगा । इस प्रकार दो तोला वीर्य चालीस दिनकी कमाईका जमा ठहरा । इस हिसाबसे तीस सेर खुराकसे एक महीनेमें जमाकी हुई कमाई सबका सार डेढ़ तोला ही वीर्य बनके प्राप्त होता है । और एक बारके स्त्री-सम्भोगसे डेढ़ तोलाके करीब वीर्य पतन हो जाता है । अब विचार करिये ! जो महीने भरकी कमाई एक क्षणमें ही खो देता है और उसे प्रतिदिन इसी प्रकार खोना चाहता है, फिर उसके सत्यानाश होनेमें क्या देर लगती है ? विवेक, वैराग्य और बलका तो उसके दिवाला ही निकल जाता है ॥

और ब्रह्मचर्य साधनविधि आदिमें तो यहाँ तक लिखा है कि— ऊपरके हिसाबसे भी अत्यन्त कम मात्रामें वीर्य तैयार होता है । उनका कथन निम्न प्रकारसे है:—"भोजनसे रस, रक्त आदि बनते हुए वीर्य तक सप्तधातु क्रमानुसार होते हैं । शरीरमें जिस समय ४० सेर भोजन पहुँच जाता है और शारीरिक मुख्य यन्त्र ठीक काम करते रहते हैं, तो उससे १ सेर रक्त और ३९ सेर मल-मूत्र बनता है । उसमें १४ छटाँक रक्त तो शरीरके नित्यके कार्यमें व्यय होता है । बाकी दो छटाँक रक्तके पाँच दिनमें जाके ढाई तोले मांस बनता है, शेष भाग वात, पित्त, कफमें बदल जाता है । फिर २॥. तोले मांससे मेद बनकर हड्डियाँ १॥. तोले बनती है । शेषसे आँख, नाक, कानका मैल, बाल और नाखून बनते हैं । फिर ५ दिन बाद उसी १॥. तोले हड्डियोंसे ७॥. माशे मज्जा बनती है । बाकी भाग नेत्र और लिंगके मल बनती है । उसी ७॥. माशे मज्जासे ३॥. माशे ओज बनता है । जो पुरुषोंमें वही वीर्य और स्त्रियोंमें रज कहलाता है । इस प्रकार ३० दिनमें ४० सेर भोजनसे ३॥. माशे वीर्य बनता है । और एकबारके विषयभोगमें ४ माशे वीर्य व्यय होता है । जो व्यक्ति वीर्यका पालन नहीं करते, वे इसीलिये रोगी और दुर्बल हो जाते हैं ।" इत्यादि । और शास्त्रोंमें कहा है:—

"यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसे यथा । एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥"

—यह वीर्य सबके शरीरमें उसी प्रकारसे रहा हुआ है, जैसे दूधमें घी और ईखके रसमें गुड़ स्थित रहता है ॥

इसीलिये जैसे दूधमेंसे मक्खन निकालनेमें दूधको मथना पड़ता है, और ईखमेंसे गुड़ निकालनेमें ईखको निचोड़ना पड़ता है, वैसे ही एक बून्द भी वीर्यको निकालनेमें सारे शरीरको मथना या निचोड़ना पड़ता है । जैसे घी निकाल लेनेके बाद दूध सार हीन, निस्तेज होता है, और ईखका दण्ड खोखला और चूर-चूर हो जाता है, वैसे ही वीर्यके निकल जानेसे शरीर भी सारहीन निस्तेज, खोखला और चूर-चूर हो जाता है । शरीरकी तमाम नाड़ियाँ ढीली पड़ जाती हैं और प्रत्येक

अवयवमें उदासी छा जाती है। देह शिथिल हो जाती है।

"यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति"—भगवद्गीता ८। ११ ॥

— कल्याण प्राप्तिके इच्छुक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं ॥

"संसार भयमापन्नो मैथुनं भजते नयः। सदावैराग्यमारूढो ब्रह्मचारी स भण्यते ॥
भिक्षाचर्यां च शुश्रूषा गुरोस्वाध्याय एव च। सन्ध्याकर्मोऽनिकार्यं च धर्मोयं ब्रह्मचारिणाम् ॥" धर्मशास्त्रे ॥

— जो मैथुनको भजता नहीं है, रागसे रहित है, सांसारिक कार्यसे भयभीत रहता है, सदा वैराग्यमें आरूढ़ रहता है, सोई ब्रह्मचारी कहलाता है ॥ और गुरुके सेवा-शुश्रूषा करके सद्विद्याको पढ़नेवाला तथा भिक्षाचर्यासे जीवन बिताना और नित्यप्रति सन्ध्या बन्दनादि करते रहना, यही ब्रह्मचारीका धर्म-कर्मका लक्षण है ॥

और ब्रह्मचारीके लिये मनुस्मृतिमें निम्नलिखित नियम कहा है:—

॥ श्लोकः— ॥

सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन् ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥ १ ॥
नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्यादेवर्षि पितृतर्पणम् ॥ देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥ २ ॥
वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्य रसान् स्त्रियः ॥ शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ ३ ॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥ कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥ ४ ॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ ५ ॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ॥ कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ ६ ॥
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ॥ स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥ ७ ॥
उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिका कुशान् ॥ आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ ८ ॥

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय २। श्लोक १७५–१८२ ॥

अर्थः—ब्रह्मचारी गुरुके गृह वा आश्रममें रहकर अपने तपकी वृद्धिके लिये समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखकर इन नियमोंका पालन करे ॥ १ ॥ नित्य स्नानकर, शुद्ध होकर देव, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे, देवताओंका यथाविधि पूजन करे, वनमेंसे यज्ञके लिये लकड़ियाँ लाकर हवन करे ॥ २ ॥ शहद, मद्य, मांस, चन्दन, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थ, फूल, मालाएँ, रस, स्त्रियाँ और सब प्रकारके खटाई वा आसवोंका तथा प्राणियोंकी हिंसाका सर्वथा त्याग करे ॥ ३ ॥ शरीरमें तेल न लगावे, आँखोंमें सुरमा न डाले, जूते न पहने, छाता न रखे, काम, क्रोध, लोभको त्याग दे, नृत्य न करे, गीत न गावे, बाजा न बजावे ॥ ४ ॥ जूआ न खेले, परचर्चा न करे, निन्दा न करे, झूठ न बोले, स्त्रीको न देखे, न स्पर्श करे, परायी बुराई न करे, इन सबोंको त्याग करै ॥ ५ ॥ सर्वत्र अकेला सोवै, इच्छासे वीर्यपात कभी न करे, और जो ब्रह्मचारी विद्यार्थी कामनासे वीर्यपात करता है, वह अपने ब्रह्मचर्यव्रतका नाश करता है ॥ ६ ॥ बिना इच्छाके ब्रह्मचारी द्विजका यदि स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय, तो सबेरे स्नानकर सूर्यका पूजन करे, और 'पुनर्मामैत्विन्द्रियम्' की ऋचाका तीन बार जप करे, यही यहाँ प्रायश्चित कहा है ॥ ७ ॥ जलका भरा हुआ घड़ा, फूल, गोबर, मृत्तिका, और कुश आदि जितने गुरुको प्रयोजनमें लगता हो, उतनेही गुरुके लिये लाके देवै, और प्रतिदिन भिक्षा करके लावे, इस नियमसे चलै। ८ ॥

भिक्षा माँगनेका विधि :—

"भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥
समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यंयावदर्थममायया ॥ निवेद्यगुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥"

॥ मनुस्मृतिः अध्याय २। ४९ + ५१ ॥

— यज्ञोपवीत (जनेऊ विधि) जिसका हो गया है, ऐसा ब्राह्मण ब्रह्मचारीने 'भवति भिक्षां देहि' ऐसे पहले भवत् शब्दका उच्चारण करके भिक्षा माँगै। और क्षत्रियने 'भिक्षां भवति देहि' ऐसे भवत् शब्दको बीचमें कहै। और वैश्य 'भिक्षां देहि भवति' ऐसे भवत् शब्दको अन्तमें कहके भिक्षा मांगे ॥ तृप्तिके योग्य उस भिक्षाको बहुतोंसे माँगके लायके गुरुको निवेदन करै, फिर कपटरहित हो, पूर्वको मुखकर आचमन करके भोजन करै ॥ और वशिष्ठ स्मृतिके अध्याय ७ में कहा है कि—

२. चिन्ह आचार प्रलयता नित्त * दशा बाल अवस्था जागृत्त ॥ ५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—हे साधु-सज्जनो !

चिह्न = उस ब्रह्मचारीका चिह्न या लक्षण यह है कि—

आचार = शुद्ध आचार-विचारसे वर्तना, शुद्धता-का सब कर्म करना, जैसे स्नान, सन्ध्या, पूजा, पाठ, होम आदि करते रहना, इत्यादि कहा है । और—

प्रलयता नित्त = नित्य वा रोज-रोज ही इन्द्रियादि लय होके अन्नादिके गर्मीसे गाढ़ी निद्राका

— ब्रह्मचारीने भिक्षा माँगके लाया हुआ अन्न प्रथम सब गुरुदेवको अर्पण कर देवे, फिर गुरुका दिया हुआ भाग आज्ञा लेके पीछेसे आप भोजन करै ॥

"द्विविधो ब्रह्मचारीस्यादुपकुर्वाणको ह्यथा ॥ द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेव व्रतेस्थितः॥ दक्षस्मृतिः १।८॥

— (पंडितोंने शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके ब्रह्मचारी कहे हैं, परन्तु यहाँपर मुख्य-) दो प्रकारके ब्रह्मचारी होते हैं । उनका नाम- एक तो "उपकुर्वाणक" जो फिर गृहस्थाश्रम करनेवाला होता है । और दूसरा "नैष्ठिकब्रह्मचारी"—जो जन्मसे लेकर मृत्यु तक ब्रह्मचर्यके व्रतमें ही स्थित रहता है ॥

"मेखलाजिन दंडैश्च ब्रह्मचारीति लक्षते ॥" दक्षस्मृतिः अ० १ । १३ ॥

— मेखला, मृगचर्म, और दण्ड इन चिह्नोंसे यह ब्रह्मचारी है ऐसा जाना जाता है ॥

"अजिने दंडकाष्ठं च मेखलाञ्चोपवीतकम् ॥ धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥
सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः ॥
छत्रं चोपाहनं चैव गन्धमाल्यादि वर्जयेत् ॥ नृत्यं गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥
हस्त्यश्वारोहणं चैव संत्यजेत्संयतेन्द्रियः ॥ सन्ध्योपास्तिप्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥
अभिवाद्यगुरोः पादौसन्ध्याकर्मावसानतः ॥ तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्चभक्तिनः ॥
यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवनेरतः ॥
संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं तु विंदति ॥" हारीतस्मृतिः अ० ३।६-१० । १७ ॥

— मृगछाला, दंड, मेखला (मूँजकी कौंधनी), यज्ञोपवीत, इनको सावधान और अप्रमत्त होकर ब्रह्मचारी धारण करै । जितेन्द्रिय होकर भोजनकी प्राप्तिके निमित्त प्रातःकाल और सन्ध्याके समय भिक्षाके निमित्त भ्रमण करै । छत्री, जूता, गन्ध, माला, नृत्य, गाना, निरर्थक बोलना और मैथुन इन सबको त्यागकर देवे । जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचारी हाथी और घोड़े पर न चढ़ै और व्रतमें स्थित रहकर ब्रह्मचारी सन्ध्योपासना किया करै । सन्ध्या करनेके उपरान्त गुरुके दोनों चरणोंमें नमस्कार वा बन्दनाकर पीछे भक्ति सहित पिता और माताकी सेवा करै ॥

जो ब्रह्मचारी सावधान होकर विधिपूर्वक गुरुकी सेवा करता हुआ पृथ्वीमें भ्रमण करता है, वह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याणरूप विद्याको प्राप्त होकर उस विद्याके सुलभ फलको प्राप्त होता है । ऐसा हारीत मुनिने कहा है ॥

इत्यादि प्रकारसे धर्मशास्त्ररूप स्मृतियोंमें ब्रह्मचर्य आश्रमके बारेमें बहुत कुछ कहा है । उन सबका सारांश संक्षेपमें यहाँ पर संग्रह करके लिख दिया गया है । जिज्ञासु पाठकवर्ग इतने परसे समग्र भाव समझ सकेंगे । ब्रह्मचर्यकी रीतिसे शुद्ध आचार विचारसे रहनेवाले सब कोईको लाभ ही होगा । परन्तु पारखी सद्गुरुकी शिक्षा, नियम प्रमाणसे चलनेवाले मनुष्योंको यथार्थ रीतिसे पूर्णलाभ हो सकेगा । अतः विवेकी सत्यन्याई, पारखी साधु गुरुके सत्संग उपदेश श्रवण, मनन करके विषय वासनासे मनको हटाय, कायिक, वाचिक और मानसिकसे होनेवाले मैथुन सम्बन्धी समस्त विकारोंको सर्वथा प्रयत्नपूर्वक परित्यागकर सच्चे ब्रह्मचारी साधु होकर अथवा सद्गृहस्थ भक्त बनकर अपना और समाजका हित-कल्याण करना चाहिये । उसके लिये सदा सावधान होके वर्तना चाहिये । साधुओंने तो अवश्यमेव ब्रह्मचर्यके शुभ नियमोंको पालन करना चाहिये । तहाँ पारखी साधु गुरुका निर्णय किया हुआ शुभ नियम ही सर्वथा ग्राह्य है । ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ * ॥ इति ब्रह्मचर्याश्रम वर्णन टिप्पणी समाप्तः ॥ * ॥

आजाना, सो सुषुप्तिमें सब लय होना ही 'नित्य प्रलय' माने हैं; उसे दैनन्दिन प्रलय भी कहते हैं। तथा—

दशा = स्थिति या स्वभाव इसमें ऐसी सहजदशा रहती है कि—

बाल = बालकवत् नादान या अज्ञान, अजान हानि-लाभको नहीं मानना, शुभाशुभको न जानना, कहते हैं। अज्ञानियोंकी बाल्यदशा रहती है।

अवस्था = जीवका ठहरावरूपी अवस्था स्थूल देहमें—

जागृत्त = होशके सहित पंचविषयोंके फैलाव-की तरफ विशेष प्रवृत्ति और उपभोग ग्रहण करके अन्तःकरण चतुष्टय और दशों इन्द्रियोंकी निज-निज कार्यमें प्रवृत्ति, सो जाग्रत् अवस्थामें ही होता है।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे जिज्ञासु साधुओं! वहाँपर आचार चिह्न कहिये शुद्धाचरण तथा शुद्ध नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित, निषिद्धादिको नियमपूर्वक कर्म करते रहनेका लक्षण बताया गया है। और नित्य ही देहेन्द्रियोंकी शिथिलतासे अन्नादिको उष्णतासे गाढ़ी निद्रा लगके सुषुप्तिमें सब व्यवहारका लय हो जाना। फिर जाग्रत्में नित्य नया उत्पत्ति होना। ऐसा नित्य प्रलय माने हैं। फिर इसमें बालक सरीखी अज्ञान, अजान दशा माने हैं। सब संसारी बालक-दशामें ही रह रहे हैं। और निद्रासे जाग करके पूर्ववत् सूक्ष्म-स्थूल इन्द्रियोंकी व्यवहार कर्म विषय-भोगोंमें लग जाना, सोई बाह्य चञ्चलवृत्तिकी स्थितिवाली जागृति अवस्था जीवकी प्रथम अवस्था कही गई है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

३. साधन श्रवण सुननको जान ❀ मुक्ति सालोक विश्व अभिमान ॥ ६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे सन्तो! इस अन्नमय कोशमें—

को = कोई एक परमेश्वर कर्तापुरुष है, ऐसा मानके कल्पनासे उसको—

जान = जाननेके वास्ते और नाना कला-कौशल, वेदादि विद्यायें जाननेके लिये ब्रह्मचारी विद्यार्थीगण आदि जन-समाज संसारमें—

साधन = उपयुक्त मेहनत, सेवा, पुरुषार्थ आदि साधना करके तथा दृढ़तासे साधनोंमें प्रवृत्त होके—

श्रवण = गुरुमुखसे वेद विद्या आदिका—

सुनन = उपदेश शिष्य भावसे कान लगायकर सुन-सुनके पढ़ाई करते हैं, सोई श्रवण साधन है।

मुक्ति सालोक = इसलोकमें नाना कर्म करके फिर मृत्यु होनेपर देह दुःखोंसे छूटके सो ऊपरके कल्पित स्वर्गादि लोकोंमें जाके निवास करनेकी चाहना या वासा माना है। अर्थात् ब्रह्मचारियोंकी सालोक्य मुक्ति मानी है।

विश्व = जगत् पंचविषयरूप स्त्री, पुत्रादि देह, गेह आदिकोंका—

अभिमान = मैं-मेरा ममताका विस्तार करके स्थूल संसार और शरीर आदिका अहंपनाका अभिमान लेना है। अथवा कोई सारा जगत्को ही विराटरूप परमात्माका स्वरूप मानके वाणीका हंकार लेते हैं। कोई आप ही विश्वरूप ब्रह्म बनके बड़े अभिमानी होते हैं। सोई विश्व अभिमान कहलाता है।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे जिज्ञासु साधुओ! अन्नमय कोशमें ब्रह्मचारियोंका मुख्य साधना कोई परमात्मा कर्ता है, ऐसा मानके उसको जाननेके लिये या कला-कौशल, नानाविद्या वेदादि जाननेके लिये विद्वान् गुरुके पासमें जायके शिष्यत्व भावयुक्त उनके उपदेशोंको श्रवण (कान) लगायके सुनना, यह श्रवण साधना कहा है। और यहाँ निष्ठा सहित शुभ कर्मादि करके देह छूटनेके बाद पुण्य-प्रतापसे स्वर्ग या वैकुण्ठादि लोकोंमें जायके निवास करना, सो वही 'सालोक्य मुक्ति' माने हैं। इस लोकके समान ही स्वर्गादि लोकोंमें भी विषय भोगोंका कल्पना किये हैं। तथा विश्वरूप जगत्मेंके पंचविषययुक्त देह, गेह, स्त्री, पुत्रादिका अभिमान संसारी लोगोंने पकड़े हैं। और ब्रह्मचारी लोग विश्वात्मा मानके उसी अभिमानमें भूले पड़े हैं ॥ ६ ॥

४. दीक्षा कोऽहं विषयानन्द * क्षर आकार देव शिवनन्द ॥ ७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे सन्त ! इस अन्नमय कोशमें—

दीक्षा = उपदेश या शिक्षा-दीक्षारूप दृढ़ापन इस कोशमें ऐसा है कि—

कोऽहं = मैं इस शरीरमें कौन हूँ ? मैं तो कोई ईश्वरका अंश हूँ या कौन हूँ ? ऐसा सन्देह खड़ा किया—तहाँ उन्हें भ्रमाके (तू ईश्वरांश हो है । ऐसा गुरुवा लोग दीक्षाका शिक्षा निश्चय कराते हैं) और कोऽहं-कोऽहं जपाकर उसीसे हित होगा, कहते हैं ।

विषयानन्द=पंच विषयोंके उपभोग इस अन्नमय कोशमें लगा है । विशेषरूपसे यहाँ स्त्री सम्भोग-में वृत्ति स्थिर होनेसे होनेवाला मानन्दीरूपभ्रम को ही सुख या विषय भोगके आनन्द माने हैं ।

क्षर आकार = यह शरीर स्थूलाकाररूप जो दिखाई दे रही है, सो क्षय होनेवाला नाशवान् या क्षणभंगुर, परिणामी होनेसे सदा सावूत बना न रहनेवाला अनित्य है । अतः स्थूल देहका आकार क्षर वा विनाशी है ।

देव = इस अन्नमय कोशका रक्षक देवता या सुखदाई देवता—

शिवनन्द = शिवजीके पुत्र गणके अधिपति गणेशका मूलद्वार (गुदा स्थान) के निवासी माने हैं । जिससे मल सफाई होकर देह सुरक्षित सुखी होना माने हैं ।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— हे सन्तो ! मैं कौन हूँ ? यह संशय लेके गुरुवा लोगोंके पासमें जाके शिष्य लोग उपदेशरूपमें वही "कोऽहं दिक्षा" लेते हैं; तहाँ तू कोई एक परमात्मा-का अंश है, दृढ़ाते हैं । इसमें स्थूल विषयभोगोंका और स्त्री सम्भोगका क्षणिक सुखको ही विषय आनन्द कहा है । क्षर कहिये शरीरका जो स्थूल दिखानेवाला आकार है, सो अनित्य नाशवान् क्षणभंगुर है । अतः विषयानन्द भी क्षणभंगुर है । और शिवके पुत्र गणेशको मूलद्वार निवासी देहरक्षक देवता माने हैं । क्योंकि मल रुकनेसे अनेक रोग होते हैं, और मल साफ गिरते रहनेसे देह निरोग-सुखी रहता है । उसके लिये रक्षक अधिनायक गणेशजीको माने हैं ॥ यह भावार्थ है ॥ ७ ॥

५. क्रिया शक्ति जठराग्नि जान * पाद प्रथम खेचरी मुद्रा मान ॥ ८ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—अन्नमय कोशका शक्ति—

क्रियाशक्ति = क्रिया करनेकी शक्ति है, जैसे—चलना, फिरना, उठना, बैठना, बोलना आदि देहकी क्रियायें पचीसों प्रकृतियाँ, दशों इन्द्रियोंसे कुछ-न-कुछ धीरे-धीरे कर्म करते रहनेकी देहकी शक्ति जो है, सोई क्रिया-शक्ति है ।

जठराग्नि = पेटके नाभि स्थानके मध्यमें रहनेवाला अग्नि जो है, सोई जठराग्नि है । जिससे लेह्य, पेय, चोष्य और खाद्यादि मुख्य चार प्रकारके अन्न-जलको पाचन या हजम करनेवाला अग्नि है । वह जठर स्थानमें रहता है ।

जान = ऐसा आप लोग भी जान लीजिये ।

पाद प्रथम = इसमें गायत्री मन्त्रका पहला पाद या चरण (भूः) माने हैं । जो पृथ्वी वाचक है ।

खेचरी = खुले नैनोंसे दोनों भौंहोंके बीच त्रिकुटी मध्य शून्यमें एकटक देखनेसे ज्योति-प्रकाश दिखाई देता है । उसे खेचरी कहा है ।

मुद्रा = उसमें मनोवृत्तिको एकाग्र करके टिकाना या स्थिर करना, यही मुद्रा है ।

मान = इससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, ऐसा गुरुवालोगोंने माने हैं । परन्तु यह मिथ्या मान-न्दी नरजीवोंको भटकानेवाला बन्धनरूप है ।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— हे सन्तो ! अन्नमय कोशकी स्थूल देहसे होने-वाली कर्म या क्रिया जो है, सो वही मुख्य अन्न-जलकी शक्ति है, निराहारी मनुष्य शक्तिहीन होते हैं, यह सब जानते ही हैं । और चार प्रकारके खाद्य अन्न-जलोंको पचानेवाला पेटमें रहा हुआ अग्नि सोई जठराग्नि है, ऐसा जानिये । गायत्रीका प्रथमपाद या चरण इसमें भूः पृथ्वी तत्त्वको कहा है । और

खुले नेत्रोंसे त्रिकुटी मध्यमें एकटक देखते रहनेसे ज्योति प्रकाश देखनेमें आता है, उसीमें मनको एकाग्र करना और उसे ही ईश्वररूप मानना, सोई खेचरी मुद्रा माने हैं। अर्थात् ख, खं, खे, आकाशको कहते हैं, त्रिकुटीके शून्यमें मनको टिकाना, खुले नेत्रोंसे ज्योति देखना, सो खेचरी मुद्रा है ॥ ८ ॥

६. वाचा वैखरी मात्रा अंकार * रजोगुण ब्रह्मा नेत्रके द्वार ॥ ९ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—अन्नमय कोशकी शक्ति—

वाचा वैखरी = मुखद्वारा ओष्ठ, दन्त, तालु, कंठादि स्थानोंमें जिभ्याके संयोगसे वाणीरूपमें वचन निकलना, तथा कह-सुनके शंका, समाधान करनेकी वाचा सोई वैखरी है। याने वाणी बिखराके कहना, सुनना जो होता है, उसे वैखरी वाणी या वाचा कहते हैं।

मात्रा = ॐकारके पाँच मात्राओंमेंसे इस कोशरूप देहमें मात्रा, परिमाण, अन्दाज, माप और भाग यह है कि—

अकार = अकार नामक मात्रा त्रिकुटी स्थानमें स्थूल आकारवाला माने हैं। अर्थात् प्रत्यक्ष दीखे सो स्थूलाकार है। अथवा त्रिकुटी सोई अकार मात्रा है।

रजोगुण = राग, रंग, तमाशा, सुन्दरता एवं भोग विषयोंमें अधिक प्रीति आदिक गुण, स्वभावका विशेष लक्षण होना यही रजोगुण है।

ब्रह्मा = उस रजोगुणका खास देवता ब्रह्माको राजसी नाम, रूप, गुणोंका उत्पन्न करनेवाला माने हैं। और—

द्वार = दरवाजा या फाटकरूप द्वार विशेषरूपसे रजोगुण निकलनेका यह है कि—

नेत्रके = नेत्र (आँख) करके ही होता है। इससे रजोगुणयुक्त ब्रह्मा देवता नेत्रके द्वारा ही अपने गुण प्रकट करता रहता है, ऐसा माने हैं। अर्थात् नेत्रकेद्वारा देखा तो लोभ, मोहादि विकार उत्पन्न हुआ, उसे ही रजोगुणका कार्य समझना चाहिये।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि हे सन्तो! मुखसे वाणीरूपमें बोलना, कुछ कहिके दूसरेको समझाना, सो बिखरनेवाली वाणी ही वैखरी वाचा है। इसमें अकार मात्राको त्रिकुटी स्थानमें माने हैं। और राग-रंगमें लगे रहनेका गुण-स्वभाव सोई रजोगुण है। उस रजोगुणका देवता ब्रह्माको कहा है। विशेष करके नेत्रकेद्वारा ही रजोगुण निकल करके भोगादि होता है, यह सब जानते ही हैं ॥ यह भावार्थ है ॥ ९ ॥

७. साढ़ेतीन हाथकी देह * तारक मुखथल त्रिकुटी नेह ॥ १० ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब करते हैं कि—इस अन्नमय कोशका माप या प्रमाण ऐसा है कि—

देह = यह स्थूल देहकी लंबाईका नाप या माप यानी प्रमाण ऐसा है कि—

साढ़े तीन हाथकी = १२ अंगुलकी १ बिल्लस, ऐसे दो बिल्लसका एक हाथ और सात बिल्लस या बालिस्तका ३॥. हाथमें सब ८४ अंगुलकी पूरे शरीरकी लंबाई होती है। यह प्रत्येक मनुष्योंके अपने-अपने हाथके मापसे ३॥. हाथकी देह होती है।

तारक = खेचरी मुद्रासे जो ज्योतिका प्रकाश देखनेमें आता है, उसको तारक ब्रह्म, जीवको भवसागरसे तारनेवाला माने हैं।

मुखथल = उस तारक ब्रह्मके रहनेकी मुख्य स्थिति या ठेकाना या ठौर मुखके जगहमें अथवा—

त्रिकुटी = दोनों भौंहोंकी बीचकी त्रिकुटी स्थानरूप जगहमें मानके साधक लोग त्रिकुटीमें लक्ष लगाय, मन एकाग्र कर—

नेह = ध्यान-मुद्रादि करनेमें प्रीति विशेष लगाते रहते हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे सन्तो! अन्नमय कोशकी स्थूल देह है, उसकी लंबाई छोटे-बड़े सबोंकी अपने-अपने हाथोंके मापसे सात बिल्लस या ८४ अंगुलरूप ३॥. हाथकी देह कहा है। ८४ अंगुल ही चौरासी योनिकी प्रतीक है। अतः स्थूल देह ही ८४ योनिका अधिष्ठानरूप

बना है। और खेचरी मुद्रासे दीखनेवाला ज्योति-प्रकाशको ही तारक ब्रह्म माना है। उसका मुख्य निवास स्थल त्रिकुटी मध्यमें ठहरायके मुद्रा ध्यान करनेमें साधक लोग ज्यादा नेह-प्रेम लगाते हैं ॥१०॥

८. पूरबदिशा इन्द्र सो देव * सिर्जन कर्म अर्ध शून्य भेव ॥ ११ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—इस अन्नमय कोशकी—

पूरबदिशा = इस कोशकी मुख्य दिशा पूर्वदिशाको माने हैं। यहाँ देहमें दोनों हाथोंके बीचमें सामने छातीके जगहपर माना है।

सो देव = सो उस पूर्वदिशाका या हाथका देवता—

इन्द्र = देवराज इन्द्रको माने हैं।

सिर्जन कर्म = स्त्री-पुरुषोंकी भोग कर्मसे देहोंकी उत्पत्ति तथा देहसे नाना कर्म करके पदार्थोंकी उत्पत्ति करना, सोई सिर्जन कर्म है।

अर्ध = नीचेके भागकी जो—

शून्य = छिद्र या खाली जगह पोल है, सो अर्ध-शून्य है और देहमें भग-लिंगके ठिकानेपरकी छिद्रको कहा गया है।

भेव = उसीसे मैथुन कर्म द्वारा स्त्रीको गर्भ स्थापन होके बालकोंकी उत्पत्ति होती है। यही इसका भेद है। यदि अर्ध-शून्य न होता, तो सिर्जन कर्म ही कैसे होता? इसीसे सो यहाँ मुख्य है।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— हे सन्तो! इस कोशमें पूर्वदिशा मानके देहमें दोनों हाथोंके बीच सामने छाती भाग ठहराये हैं। इन्द्र उस पूर्वदिशाका देवता माना है। और नीचेके शून्य भग और लिंगके ठिकानेका वर्णन किया है, मैथुन कर्मसे बालकोंकी उत्पत्ति कर्म वहाँसे होती है। तैसे आधा शून्यरूप ब्रह्माण्ड या आकाशसे सारा जगत्की उत्पत्ति भई है, ऐसा कल्पना करके गुरुवाओंने कहा है और बाहर भी कर्म करके ही नाना वस्तुओंकी उत्पत्तिका होना हो रहा है। ऐसे अर्धशून्यसे सिर्जन कर्म होता है। यही इसका मुख्य भेद कहा है, ऐसा जानिये ॥ यह भावार्थ है ॥ ११ ॥

९. पीत बरण उच्चार हरस्व * साम सो वेद पृथिवी तत्त्व ॥ १२ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—अन्नमय कोशका मुख्य रंग—

पीत बरण = पीला रंग है। रजका और गर्भ कमलका रंग पीला कहा है। तथा पृथ्वी तत्त्वका भी रंग पीला माना है। अंकुर निकलतेमें प्रथम पीला रंग लेके ही निकलते हैं।

उच्चार = मुखसे निकलनेवाला शब्दोंका उच्चारण या बोलीमें—

हरस्व = ह्रस्व यानी लघुमात्रामें फुरतीसे जल्दी-जल्दीसे शब्द कहना या बोलना है। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ऐसे तीन प्रकारसे उच्चारण होता है।

साम सो वेद = वेद मंत्रोंमें गायन भागका जो मंत्र है, सोई सामवेद तीसरा वेद कहलाता है, सो इस कोशमें है, राग-रागिनी संयुक्त सामवेदका गायन होता है। सर्व दृश्य जगत्को एक अद्वैत ब्रह्मस्वरूप माननेका सिद्धान्त इस वेदका है। इसीका महावाक्य "तत्त्वमसि" कहा है।

पृथिवीतत्त्व = दृश्य स्थूलाकार वजनदार मिट्टीका मोटा भाग इस कोशमें है। यानी इसमें पृथ्वी तत्त्वको प्रधान माने हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे सन्तो! पीला रंग पृथ्वी तत्त्वका जो माना है, सोई रज और गर्भ कमलका भी इस कोशमें पीला रंग माने हैं। शरीरमें पृथ्वीकी भाग त्वचाका रंग पीला ठहराये हैं। मुखसे शब्द, मात्राओंका जल्दी-जल्दीसे लघु पदमें बोलना सो हरस्व (ह्रस्व) उच्चारण है। इस कोशका सामवेद है, जो मुखसे उच्चारण कर गायन करते हैं। सब दृश्य जगत्को अद्वैत ब्रह्मरूपमें मानना, उस सामवेदका मुख्य सिद्धान्त है। स्थूल मिट्टीका भाग स्थूलाकार वजनदार इसमें सोई पृथ्वी तत्त्व है ॥ १२ ॥

१०. औ उपदिशा ईशान बखान * शिव अभिमानी ताको जान ॥ १३ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—अन्नमय कोशका—

औ=और इसके अतिरिक्त और भी—
उपदिशा=दूसरी तरफवाली मध्य कोनेमेंकी दिशा जो है, सो इसमें—
ईशान=पूर्व और उत्तरका कोनाको माने हैं। देहमें बायाँ कोखके सामने भागमें माना है।
बखान=सो गुरुवा लोगोंने नाना तरहसे वर्णन करके कहे हैं। कल्पनाका विस्तार बढ़ाये हैं।
शिव=शिव नामके देवता या मैं कल्याणस्वरूप हूँ, ऐसा मानन्दी दृढ़ कर—
अभिमानी=कल्याण शिव पदका अभिमान् या हंकार धारण करनेवाले—
ताको=उसीको ही ईशान दिशाका अभिमानी-रूपमें—
जान=जान लीजिये! कोई दूसरा ईश्वर मानते हैं, तो कोई आपही ब्रह्म बनते हैं, और गुरु पारखसे यह गुरुवा लोगोंके कल्पनाका जाल ही जान लीजिये।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—और दूसरी दिशा इसमें ईशान कहिये पूर्व-उत्तरकी कोनाको उपदिशा माने हैं, कोई ईश्वरको आन=जीवसे दूसरा ही ठहराते हैं। उस दिशाका अभिमानी देवताका नाम शिव कहते हैं। अथवा "केवल शिवोऽहं" कहनेवाले कल्याणका हंकारी सोई शिव है, ऐसा जानिये। यह गुरुवा लोगोंकी मानन्दी किया हुआ बात पर्खानेके लिये श्रीरामरहस साहेबने वर्णन करके मूलमें बताये हैं, उसी मुताबिक यह भावार्थ कहा गया है॥ १३॥

११. तन्ती स्वर अपान सो वायु ❀ घटाकाश अधो शून्य पायु॥ १४॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—इस अन्नमय कोशमें—
तन्ती=तार लगे हुये बाजा, जैसे—सितार, सारंगी, इकतारा आदिके बाहर बाजा बजाते हैं, तैसे ही उसीके सरीखी—
स्वर=आवाज इस शरीरमें भी वायु स्थिर होनेसे सूक्ष्म नादका स्वर अनहद बाजाके भीतर सुननेमें आता है, ऐसा माने हैं।
अपान सो वायु=मल-मूत्रादिका अधर्ं गुदादि द्वार से त्याग करानेवाला सोई अपान—
वायु है। फिर—
घटाकाश=घड़ेमें रहनेवाला पोल या देहमेंका सब पोल भागको ही घटाकाश कहा है।
अधोशून्य=नीचे भग लिंगके ठिकानेमें छिद्र या शून्य जगह होनेसे उसे अधोशून्य कहते हैं।
पायु=वहीं स्त्री-पुरुषोंका संभोग होता है, उसीसे गर्भ, योनिद्वारा सब बालक उत्पन्न होते हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—इस कोशका बाजा तार लगे हुए सितार, गितार, सारंगी इत्यादि बाहर बाजा बजायके मस्त रहते हैं। उसीके सरीखी शरीर भीतर भी अनहद नादका आवाज झनझनाके उठा करता है, ऐसा माना है। और अधोद्वारमें रहनेवाला मल-मूत्रको त्याग करानेवाला, मल दुर्गन्धयुक्त गुदासे निकलनेवाला वायु जो है, सोई अपान वायु है। और घड़ेमें रहनेवाला आकाशवत् शरीरमेंका पोल भाग सोई घटाकाश माना है। तथा नीचेके शून्य यहाँपर स्त्री और पुरुषोंके भग और लिंगके द्वार खुला जगह शून्य मार्ग होनेसे सम्भोग होता है और स्त्रीके गर्भसे योनिद्वारा ही सब बालक पायु कहिये उत्पन्न हुये, और होते हैं॥ १४॥

१२. पीत-रक्त कमलको रंग ❀ मारग पपिल कहै परसंग॥ १५॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—इस अन्नमय कोशमें—
कमलको=और स्त्रीकी गर्भ कमल और रजका, अथवा मूलाधार चक्रमें चारदल कमलका—
रंग=रूप या रंग ऐसा कहते हैं कि—
पीत-रक्त=कुछ पीला और कुछ लाल मिला हुआ रङ्ग माने हैं। उसमें पीला रंग रजका है, और लाल रंग रक्तका माना है।
मारग=मार्ग या रास्ता इस कोशकी—
पपिल=चींटीके सरीखी धीरे-धीरे कुछ न कुछ कर्म करके चलते ही रहना। छोटी मार्ग है। अथवा प्राणायामादि कियासे धीरे-धीरे

श्वासको ब्रह्माण्डमें चढ़ाना, यह पपिलमार्ग माना है।

परसंग=ऐसी कर्ममार्गकी रीति चाल या तरीका युक्तिको प्रसंग मौका विशेषसे—

कहै=गुरुवा लोग नानाविधिसे कहते समझाते हैं, जीवोंको भ्रमाते रहते हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— और गर्भ कंमलका रङ्ग पीला तथा रक्त, मिश्रितरूप माने हैं। अथवा मूलाधार स्थित जो चारदल कमल है यह, तथा अग्निचक्रके दो दलका रंग भी पीत-रक्तवाला ठहराये हैं। इस कोशका पपिलमार्ग कहिये चींटी सरीखी कुछ न कुछ कर्म करते ही रहना, चलते रहना। अथवा श्वासको धीरे धीरे ऊपर ब्रह्माण्डमें चढ़ाना, यही चाल या रीति गुरुवा लोग कहते हैं, और कर्म करते-कराते रहते हैं, यही उनका प्रसंग है ॥ १५ ॥

१३. अद्वै जाति ऋचा गनि लेहु ❀ ऊर्मी कला ताहिको देहु ॥ १६ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— अन्नमय कोशमें—

ऋचा=वेदके मन्त्रोंका नाम ऋचा है। उन वेद मन्त्ररूप ऋचाओंमेंसे ब्रह्मादिकोंने और ऋषि मुनियोंने—

अद्वै=अद्वैत ब्रह्म निरूपणका कथनसे एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा—

जाति=सिद्धान्त कायम करके उसको—

गनि=प्रमाणिक सत्य ठहरायकर वेद-वेदान्त प्रतिपादित सच्चा गिन लिये हैं।

लेहु=उस मिथ्या मानन्दीको अपने हृदयमें धारणकर लिये और दूसरोंको भी वही कल्पना धारण करलेओ, कहते हुये दृढ़ाते हैं।

ऊर्मी=और अन्नमय कोशमें देहके साथ-साथ भूख, प्यास, जन्म, मरण, शोक और मोह (हर्ष) यह षट् ऊर्मीका—

कला=विकार भाग या घट-बढ़ होनेवाला ऊर्मी कला लगा रहता है।

ताहिको=उसी जड़ाध्यासी जीवोंके साथमें उक्त षट् ऊर्मी भी देहके साथ साथमें रह रहा है।

देहु=अन्नमय कोशरूप इस देहमें वही सब दिया गया है या लगा हुआ है। अर्थात् अध्याससे देहके साथ उक्त षट् ऊर्मी लगा है।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— वेद मन्त्ररूप ऋचाओंसे कहा हुआ ब्रह्माका अद्वैत सिद्धान्त सत्य मानके इस कोशमें अद्वैत मत ब्रह्मचारियोंने गिने हैं। और उपरोक्त षट् प्रकारका विकाररूप षट् ऊर्मीका कला विकार देहके साथमें सब जीवोंके पीछे लगा ही हुआ है ॥ १६ ॥

१४. सत्यलोकको भोग विलास ❀ सन्मुखी मुद्रा जहाँ प्रकाश ॥ १७ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस अन्नमय कोशमें—

सत्यलोक=ब्रह्माका लोक, ब्रह्मलोक वा सत्यलोक माने हैं, यहाँ देहमें त्रिकुटीमें तारक ब्रह्मका सत्यलोक मानके—

को=कोई कर्मकाण्डी लोग वहाँका—

भोग=सब प्रकार सुख भोगरूप—

विलास=आनन्द, क्रीड़ा, कलोल करना चाहते हैं। अथवा पुण्य प्रतापसे सत्यलोकमें जायके खूब भोग-विलास करनेको मिलेगा, ऐसा गुरुवा लोग मानते हैं। कल्पनाको ही दृढ़ किये, कराये हैं।

सन्मुखी=सीधे नासिकाके अग्रभाग पर सन्मुखमें या मुखके सामनेमें लक्ष रखना, और—

मुद्रा=दोनों नेत्र, कान, मुख, बन्द करके मनको एकाग्रकर ऐसी अन्तर मुद्रा लगाना, तब—

जहाँ=बाह्यवृत्ति लय होकर जहाँपर ध्यानमें आपही आप—

प्रकाश=ज्योति स्वरूप परमात्माका दर्शन, महा प्रकाशरूपमें नजर आयेगा। ऐसा माने हैं कि, वही सत्यलोकका भोग आनन्द है। पिण्डमें सत्यलोकका भोग-विलास वही माने हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— और गुरुवा लोग यहाँ नानाकर्म करके ऊपर

सत्यलोकमें जायके भोग-विलासका बड़ा आनन्द मिलनेको माने हैं। और सन्मुखमें नासिकाके अग्रभागमें लक्ष लगायके वृत्ति स्थिर करना, ऐसा भीतरी मुद्रा करे कि, दोनों नेत्र, दोनों कान और मुख बन्द रखे, तब जहाँ पर त्रिकुटीमें प्रकाश नजर आवेगा, वहीं वृत्ति निरोध होके महान् आनन्द होगा, वही पिण्डमें सत्यलोकका भोग-विलास है। इत्यादि प्रकारसे गुरुवा लोगोंने ऐसा माने हैं॥ १७॥

१५. झीनी वायु देवदत्त होय ❀ अहं विकार स्थूलको सोय॥ १८॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— अन्नमय कोशकी—

झीनी वायु = ब्रह्माण्ड कलाकी झीनी-सूक्ष्म-वायु इसमें—

देवदत्त = मायाका अंश इच्छारूप वायु है। यह योग साधनामें बल देती है। इससे, जम्भाई आती है। देवदत्त वायु मुख-कंठमें रहती है।

होय = यही भीतरकी झीनी वायु है।

स्थूलको = और स्थूल देह सम्बन्ध करके होनेवाला विकार शरीरमें—

विकार = मोटा, पतला, रूप, कुरूप, जाति, वर्ण, कुल-कुटुम्बादिका विकार ममता आदि—

सोय = सोई विशेषरूपसे जीवोंको गाफिलीरूप—

अहं = अहंकार दृढ़ हो रहा है या अभिमान लगा हुआ है। तहीं विकारसे जीव आवागमनमें पड़े रहते हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—हे सन्तो! इस कोशमें ब्रह्माण्डकी सूक्ष्म या झीनी वायु देवदत्त माने हैं, जिससे देह शिथिल होनेपर जम्भाई आती है। उसी वायुसे योगसाधनामें भी बल मिलता है, मायाका सूक्ष्म अंशरूप कहा है। स्थूल देहके सम्बन्धमें नानाप्रकारके मिथ्या मानन्दी अहंकारका विकार पैदा होना, दृढ़ हो रहना होता है। सोई देहके अहंविकार बन्धनका हेतु है॥ १८॥

१६. भूमिका छिप्रा प्रध्वंसा भाव ❀ भोग स्थूल विषयको चाव॥ १९॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— अन्नमय कोशकी—

भूमिका छिप्रा = और संस्काररूपसे पूर्व कर्मका भोग छिपा हुआ तथा नवीन कर्मवासना बननेका, गुप्त रहनेका, यह कर्मभूमिका जो है, सोई छिप्रा भूमिका है; यह शीघ्रताका जगह है।

प्रध्वंसा भाव = विशेष करके सदा एकसा देहका बना न रहना, शरीरका नाश होके अभाव या गायब हो जाना, सो प्रध्वंस अभाव माने हैं। और—

स्थूल = स्थूल देहमें स्थूलरूपसे—

विषयको = पंच विषयोंकी विशेषरूपसे—

भोग = उपभोग करनेकी या भोगोंको खूब भोगनेकी सदा सर्वदा—

चाव = चाहना या बड़ी इच्छा जड़ासक्त सब जीवोंको बनी ही रहती है। बिना पारख यह चाव छूटती नहीं। इसीसे बन्धे पड़े रहते हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— और कर्मोंके वासना पूर्वके और अभीके जहाँपर छिपा रहता है और नवीन भी गुप्तरूपसे बनता ही जाता है, सोई कर्मभूमिका कहलाता है, वही छिप्रा भूमिका है, जहाँ सब कर्म संस्कार छिपे रहते हैं। समयपर शीघ्र उत्पन्न भी हो जाते हैं। और विशेष करके प्रारब्ध भोग पूरा होनेपर देहका नाश हो जाना, यही प्रध्वंस-अभाव है। तथा स्थूल पंच विषयोंको स्थूलरूपसे भोग करनेकी इच्छा या चाहना अध्यासी जीवोंके मनमें सदा बना ही रहता है। इसीसे जीवोंका आवागमन छूटता नहीं, बिना पारख॥ १९॥

१७. पाँच तत्त्व त्रिगुण मैं जान ❀ और प्रकृति पचीस बखान॥ २०॥

अर्थ—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—इस अन्नमय कोशमें और भी—

पाँच तत्त्व = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और समान-वायुरूपमें, आकाश, यह पाँच तत्त्व लगा है।
त्रिगुण = रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण लगा है, ऐसे—
मैं = पाँच तत्त्व, त्रिगुणके सहित या त्रिगुणमय इसीरूपमें अन्नमय कोशको—
जान = जान लीजिये ! इससे वह न्यारा नहीं।
और = और भी इसके साथमें—
प्रकृति = एक-एक तत्त्वके पाँच-पाँच भाग अलग-अलग करके ऐसी प्रकृतियाँ कार्यरूपसे—
पचीस = पाँच पञ्चे पच्चीस भाग स्थूल-देहके प्रकृतियोंकी बनी हैं। यानी पाँच तत्त्वके पचीस प्रकृतियाँ स्थूलकी हुई हैं।
बखान = ऐसा वर्णन किये हैं, सो यहाँ मैंने भी बखान कर दिया [इसकी प्रकृतियोंका विस्तार व्याख्यामें बताया गया है।]।

व्याख्या— इसमें श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— पहला तो पाँच तत्त्व है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश या समान पवन इनको पाँच तत्त्व या पंचमहाभूत भी कहते हैं, सो इसीका कार्य भाग लेके स्थूल देह बना है। और इसीसे उत्पन्न तीन गुण हैं। जैसे पृथ्वी और जलतत्त्व मिलके रजोगुणकी उत्पत्ति होती है। अग्नि और वायुतत्त्व मिलके सत्त्वगुणकी उत्पत्ति होती है। और समान पवनरूप आकाशतत्त्वसे तमोगुणकी उत्पत्ति होती है। ऐसे त्रिगुण और पाँच तत्त्वोंके पचीस प्रकृती कहिये एक-एक तत्त्वोंके पाँच-पाँच भाग लेके २५ भाग होते हैं। जैसे कि— आकाशतत्त्वरूप समान वायुकी ५ प्रकृतिः— लोभ, काम, क्रोध, मोह और भय है। वायु तत्त्वरूप चञ्चल वायुकी ५ प्रकृतिः—प्रसारण, धावन, बोलन (वलन), संकोचन और चलन है। तेज तत्त्वकी ५ प्रकृतिः—निद्रा, मैथुन, आलस्य, तृषा और क्षुधा है। जलतत्त्वकी ५ प्रकृतिः—लार, रक्त, पसीना, मूत्र और वीर्य है। पृथ्वी तत्त्वकी ५ प्रकृतिः—रोम, नाड़ी, त्वचा, मांस और हड्डी है। इन २५ प्रकृतियोंका मिलापरूप पञ्चीकरण भया है। ["ग्रन्थ तत्त्वयुक्त निज बोध विवेक" में श्रीकाशीसाहेबजीने पंचीकरणका भेद दर्शाये हैं। वहाँसे देखके विस्तार तत्त्वोंकी मिलापसे प्रकृतियोंकी उत्पत्ति आदि जान लेना।] ऐसे उपरोक्त एक-एक तत्त्वके पाँच-पाँच भाग मिलायके २५ प्रकृतियोंकी यह स्थूल देह हुई है ॥ २० ॥

१८. ज्ञान कर्म इन्द्री समुदाय ❀ पाँचों अन्तःकरण मिलाय ॥ २१ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस अन्नमय कोशमें—
ज्ञान = जिन-जिन पाँच इन्द्रियोंसे पाँच विषयोंका ज्ञान जीवोंको होता है— नेत्र, त्वचा, जीभ, कान, नासिका, सोई पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।
कर्म इन्द्री = मुख, हाथ, पाँव, लिंग और गुदा, ये पाँच कर्म करनेवाली इन्द्रियाँ हैं।
पाँचों अन्तःकरण = अन्तःकरण, चित, मन, अहंकार और बुद्धि, यह पाँचों समेत् इसीमें—
मिलाय = एकत्र मिलाय करके या सम्मिलित करके—
समुदाय = उपरोक्त ५ तत्त्व, २५ प्रकृति, १० इन्द्रिय, इत्यादि इकट्ठा करके यही समुदाय जीवकी सत्तासे यहाँ अन्नमयकोशरूप स्थूल देह बनी है। और वैसे ही रीतिसे चल भी रही है।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— और कान, त्वचा, नेत्र, जिभ्या और नासिका, इन्होंसे पञ्च विषयोंका ज्ञान नर-जीवोंको मालूम होता है। इसलिये ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ कही जाती हैं। स्वामीवत् पाँच ज्ञानेन्द्रिया आरामसे विषयोंको ग्रहण करती हैं। तथा मुख, हाथ, पाँव, लिंग और गुदा इन्होंसे पाँच प्रकारका कर्म जीवोंके सत्तासे होता ही रहता है। ये पाँचों इन्द्रियाँ सेवकवत् ज्ञानेन्द्रियोंकी सेवा करती हैं। और ज्ञानेन्द्रियाँ बैठे-बैठे ही पञ्चविषयोंका स्वाद चेतन जीवकी सत्तासे लेती हैं। इसीसे वे पाँचों कर्मेन्द्रियाँ कर्म करनेवाली कहलाती हैं। और सूक्ष्म देहमेंको आकाशतत्त्वरूप समान वायुकी पाँच प्रकृतिः— अन्तःकरण, चित्त, अहंकार, मन और बुद्धि हैं। इसका अन्य तत्त्वोंके मिलापसे उत्पत्ति 'तत्त्वयुक्त०— सूक्ष्म देह विवरण" में देखके विस्तार जान लेना चाहिये। अन्तःकरण

पंचक, प्राणपंचक, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, पंच विषय यही सूक्ष्म देहकी २५ प्रकृतियाँ हैं। यह सब अन्नमय कोशमें मिलापरूपसे आ-जाते हैं। यह इसका भावार्थ है॥ २१ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार ५ तत्त्व, ३ गुण, २५ प्रकृति, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, और सूक्ष्म अन्तःकरण पंचक आदि समेत् मिलायके यही एकत्र समुदायरूप अन्नमय कोशकी स्थूल देह हुई है। इसमें गुरुवा लोगोंकी मानन्दी कर्ममार्ग आदिका वर्णन ऊपर कह चुके हैं। और बाकी १४ देवता आदि भी जो हैं, सो नीचे छन्दमें बताते हैं, सो सुनिये !॥

छन्दः—थाने चतुर्दश देव तिनके ❀ भिन्न भिन्न विचारिये !॥

[२] नाना अनङ्ग-तरङ्ग कौतुक ❀ कला अनन्त सुधारिये ! ॥ [यह आधा छन्द है।]

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस अन्नमय कोशमें गुरुवा लोगोंने और भी भाग माने हैं, सो यह है कि—

थाने = इन्द्रिय गोलकोंके ठिकानेमें शरीरके भीतरी थानामें—

चतुर्दश = चौदह [पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और अन्तःकरण चतुष्टय] का अधिष्ठाता रूपसे—

तिनके = उन चौदह इन्द्रियोंके एक-एक करके—

देव = चौदह देवतायें माने हैं, उसको—

भिन्न-भिन्न = न्यारा-न्यारा या अलग-अलग करके-

विचारिये = (हे जिज्ञासु मनुष्यो ! गुरु पारख दृष्टिसे सत्यासत्यका आपलोग) विचार, विवेक कर लीजिये ! कल्पना छोड़ दीजिये।

अनङ्ग = और जिसका अङ्ग स्थूल दिखे नहीं सो अनङ्ग-काम, कामना, विषय वासना, भोगोंकी इच्छा आदिकी वेग मनुष्योंके घटमें तीव्रतासे—

तरङ्ग = लहरी, स्फुरणाका वेग या धारा-प्रवाह—

नाना = अनेकों प्रकारसे या बहुतेकरूपसे मनमें नाना तरहसे उठा करती है या चला करती है।

कौतुक = सो उसकी गजब तमाशा या खेलरूपी लपेटा या झपेटामें सब जीव वशीभूत हो रहे हैं। और—

कला = खानीमें विषय भोग-काम क्रीड़ाके विकारका कलाका विस्तार हो रहा है, तथा ६४ कलादि वाणी कल्पनाके कौशल कलादि चतुराई भी साथ ही फैला रखे हैं।

अनन्त = जिसका सहजमें अन्त न हो, ऐसे अनेकों या असंख्यरूपसे अध्यासी जीवोंको वही दोनोंका विकार लगा हुआ है, और लग रहा है।

सुधारिये = (यदि मुक्ति चाहते हो, तो हे मनुष्यो !) उस खानी और वाणी तरंगोंको गुरु पारख-बलसे सुधारकर लीजिये, उसे मिटा दीजिये।

व्याख्या—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—उस अन्नमय कोशके अन्तर्गत १४ इन्द्रियँ गोलकोंके ठिकानेमें जो चौदह देवतायें माने हैं। सो उनका नाम सुनियेः—१ अन्तःकरणका देवता—महाविष्णु। २ चित्तका देवता-नारायण। ३ अहंकारका देवता-रुद्र। ४ मनका देवता-चन्द्रमा। ५ बुद्धिका देवता-ब्रह्मा। तथा ६ कानका देवता-दिशा। ७ त्वचाका देवता-वायु। ८ नेत्रका देवता-सूर्य। ९ जिभ्याका देवता-वरुण। १० नासिकाका देवता—अश्विनीकुमार। ११ मुखका देवता-अग्नि। १२ हाथका देवता-इन्द्र। १३ पाँवका देवता-उपेन्द्र (वामन)। १४ लिंगका देवता-प्रजापति। और १५ गुदाका देवता-यमराज, ऐसे माने हैं। इसीमें लिंगका देवता 'प्रजापति' पिण्डकलामें और बुद्धिका देवता 'ब्रह्मा' ब्रह्माण्ड कलामें माने हैं। इसलिये--दश इन्द्रियाँ और अन्तःकरण पञ्चकके १५ देवता होता था, परन्तु गुरुवा लोगोंने उन दोनोंको एक भागमें ठहराके बाकी मुख्यरूपसे १४ ही देवता गिनती करनेमें मानते हैं। यह "तत्त्वयुक्त०" में खुलासासे लिखा हुआ है। परखके लखना चाहिये। और पारखी सद्गुरुके सत्संगसे इसका न्यारा न्यारा विचार भिन्न-भिन्न कर लीजिये। यह सब नर जीवोंकी कल्पनाका पसारा-मात्र ही है। और अनंगरूप काम भोगोंके तथा वाणी कल्पनाके लहरी या तरंगें, इच्छा प्रवाहमें बहुतेक

मनुष्य बह गये, और बहते ही जा रहे हैं। जड़ाध्यास वश नाना योनियोंमें जीव सब नाना देह धारण कर-करके तमाशाके नाईं कौतुककर-कराके विषयादिके खेलमें भूले वा भूल रहे हैं। उस कामकलाके और वाणी कल्पनाके ६४ कलाओंका कौशल आदि सब विकारोंको हे नरजीवो! अभी मनुष्य खानीमें हो, तभी पारखी सद्गुरुके शरणागत होके सत्संग करके जीवन सुधार लीजिये! नहीं तो फिर पीछे पछताना पड़ेगा। चौरासी योनिका दुःख भोगना ही पड़ेगा। यह आधा छन्दका भावार्थ हुआ॥

व्यवहार त्रिविधि विचार नाना ❀ पिण्ड खण्ड प्रमाण सो ॥
भूले अनेकन मध्य भवके ❀ जगत भक्त अमान सो ॥ २२ ॥

अर्थः—श्री रामरहससाहेब कहते हैं कि—

त्रिविधि = तीनों गुणका जो तीनों प्रकारसे कर्म, उपासना और योगादि साधनायें तथा काम, क्रोध, मोह जगत् विषयोंका, ऐसे ऐसे—

नाना = अनेकों तरहका नानाप्रकारके—

व्यवहार = खानी-वाणियोंके व्यवहारमें नानाकर्मका फैलाव करके—

पिण्ड = शरीर, इन्द्रियादियों से विषयादि कर्म कर रहे हैं, और योगमार्गसे इन्द्रियोंके लयरूप समाधिमें सुषुप्तिवत् शून्य रहते हैं; यानी गाफिल हो रहते हैं।

खण्ड = न्यारा-न्यारा इन्द्रियोंके कर्म और ब्रह्माण्डमें न्यारा-न्यारा लोक और देवता मानके तीन मार्गका भिन्न-भिन्न साधना कर रहे हैं।

सो = सो उसीको ही सत्य तथा—

प्रमाण = वेद-शास्त्रादिका आप्त वाक्य या शब्द प्रमाण है, ऐसा मान-मानके पारखहीन मनुष्य सब कल्पित भ्रमका ही—

विचार = विचार दृढ़ कर रहे हैं या किये-कराये हैं। उसको पारखी सद्गुरुके विचारसे परखो, समझो।

जगत = जगत्मेंके संसारी विषयी मनुष्योंने जगत्को देखकर इसका कर्ता कोई एक—

अमान = माया प्रकृतिके मान-गुमानसे रहित कोई ईश्वर-परमात्मा होगा, ऐसा अनुमान कल्पना किये हैं, फिर उसके प्राप्तिसे ही सुख और गति-मुक्ति होनेको मानके—

सो = उस कल्पित ईश्वर प्राप्तिके वास्ते, सो अज्ञानी लोग शोकाकुल हो रहे हैं। वे ही लोग फिर—

भक्त = उपासना नवधा भक्ति आदि करके कई एक भक्त बने, ऐसे—

अनेकन = बहुतेक या अनेकों नरजीव कोई विषयी, कोई भ्रमिक भक्त, कर्मी आदि बन-बनके—

भूले = निजपद पारख स्वरूप बोधको एकदम भूलके महा धोखामें पड़े, ऐसे भूले हुए नरजीव सब—

भवके = खानी-वाणीके चक्रमें भटक-भटक करके जड़ाध्यासमें गोता लगा-लगाकर भवसागररूप संसारके—

मध्य = जगत् जालोंके बीचमें जन्मते-मरते मध्य गर्भवासमें जा-जाके ही दुःख भोग रहे हैं। बिना पारख, आवागमन चक्रके मध्यमें पड़े हैं।

व्याख्या—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— और रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके विषय व्यवहार तथा कर्म, उपासना, योग साधनादिका वाणीका व्यवहार एवं काम, क्रोध, मोहादिका जगत् व्यवहार आदिक नाना प्रकारसे संसारमें सब कर रहे हैं, उसीकी दृढ़ता हो रहा है। सो उसीको सत्य समझकर प्रमाण करके या वेद-शास्त्रादिका प्रमाण सत्य मान मान करके चतुराईसे पिण्डरूप शरीरके स्थूल भोगोंमें ही बहुतेरे संसारी लोग लगे पड़े हैं। कोई योगमार्गसे ध्यानादि कर इन्द्रियोंको लय करके सुषुप्ति अवस्थावत् समाधिमें गाफिल हो रहते हैं। ऐसे न्यारा न्यारा इन्द्रिय विषयोंका ही व्यवहार तथा जागृति स्वप्न, कर्म, उपासना, मार्गोंका व्यवहारके मिथ्या अविचाररूपको ही नाना तरहसे विचार कर-कराके धोखेमें पड़के जगत्मेंके संसारी और परमार्थी बने हुए गुरुवा लोग कोई जगत्कर्ता सुख, दुःखोंका दाता अमान ईश्वरको कल्पनासे मानके सो उसके प्राप्तिके वास्ते भक्त बने, तब नाना साधनाओं-

में अनकों प्रकारसे लगके सब नरजीव बिना गुरु पारख निज स्वरूपको भूल गये। सत्संगबोध बिना जड़ाध्यासी बन-बनके खानी-वाणी धारामें बहके अनेकों योनियोंमें जन्म-मरण और गर्भवासके बीचमें जा पड़े तथा पड़रहे हैं। अतएव हे मुमुक्षुओ! उस अज्ञान-अध्यासोंको गुरुपारखदृष्टि हासिल करके तुम लोग मिटवाओगे, तो उस फन्दासे बच जाओगे; अतः उसीके लिये प्रयत्न करो॥ यह भावार्थ है॥ २२॥

सम्बन्ध—यहाँ तक प्रथम आवर्ण पर्दाकी स्थूल भागका वर्णन हुआ। अब एक दोहामें इस अन्नमय कोशका सारांश दिखाके फिर इस प्रकरणको पूरा किया जाता है॥

दोहाः—काल शब्द औ सन्धिमें। अन्नमय कोश प्रचण्ड॥

[२] परखि तासु गुरु गम लहै। भास मिटे तब पिण्ड॥ २३॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो! सुनिये!—

काल = जीवोंके ज्ञानगुण और मुक्तिपदको हरण करनेवाले कालरूप बनी हुई स्त्रियाँ और वंचक गुरुवा लोगोंके मनको काला करनेवाला काल-जालके—

शब्द = विषयभोग प्राप्तिके वा ईश्वरादि प्राप्तिके आशारूप अनेक तरहके वाणी वचनरूप शब्दको सुन-सुन करके—

औ = और उसीका मोहरूप—

सन्धिमें = गाँठीमें जकड़े हुए या मानन्दीमें पड़े हुए जीव सब जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। इसीसे—

अन्नमय = यह अन्नमयनामके अन्नके रसरूप ही रज-वीर्यसे बना हुआ स्थूलदेहके विकार—

कोश = आवर्ण पर्दारूप ढक्कन विषयासक्ति जीवों-पर पड़ा हुआ है।

प्रचण्ड = सो छूटनेको अत्यन्त कठिन या तीव्र बड़ा दुस्तर हो गया है। सहजमें यह प्रचण्ड बन्धन छूटनेका नहीं। अतः—

परखि = परखी गुरु-साधुकी शरण-ग्रहण करके जो कोई नरजीव खानी-वाणी जालोंको अच्छी तरहसे परख करके—

गुरुगम = पारखी सद्गुरुकी सत्यज्ञानका बोध सत्संग विचारद्वारा, गुरुसे भेद—

लहै = प्राप्त करके जो अपनेमें धारण कर लेंगे—

तासु = उसी जिज्ञासु श्रद्धालु पुरुषार्थी मनुष्यका यह अन्नमय कोशरूप—

पिण्ड = स्थूल शरीरकी और वाणी कल्पनाओंकी अध्यासका गोला—

भास = विषय भोगोंकी आसक्ति तथा अनेक पेट धन्धोंके जगत् व्यवहारोंकी आसक्ति और वर्ण, आश्रमादि कर्मोंकी नाना आसक्तिरूप देहका सब भास, अध्यास—

तब = तब ही गुरु पारखबलसे सदाके लिये—

मिटै = मिटके छूट जावेगा। और केवल देहके अन्न-वस्त्रादिमात्र साधारण गुजारामें संतोषसे रहेगा, तब मुक्ति प्राप्त हो जायगा।

व्याख्या—अब इस आखिरी दोहामें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— जगत्में स्त्रियोंके और गुरुवा लोगोंके विषय भोगोंमें लिप्त, मोहित करनेवाले कल्पित ईश्वर तथा लोकादि प्राप्ति करानेका जितना भी शब्द है, सो सब 'कालशब्द' है। जीवोंके अन्तःकरणमें उसी काल शब्दकी मानन्दीका मजबूत दृढ़ गाँठ पड़ जानेसे सब जीव उसके सन्धिमें सम्बद्ध हुए और हो रहे हैं। इसीसे इस अन्नमयकोश-की जड़ाशक्तिका पर्दा हटना अत्यन्त कठिन हो गया है। यह बन्धन बड़ा प्रचण्ड या तीक्ष्ण है। जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी सद्गुरुदेवकी शरणागत हो करके सत्संगद्वारा गुरुगम कहिये गुरुका भेद, बोध पारखदृष्टिको हासिल करके उस जालोंको ठीक-ठीकसे परख लेंगे। तब हीं उस पुरुषार्थी मनुष्यरूप हंसजीवका समस्त पिण्डके भास-वर्ण, आश्रम, कर्म, उदर पोषणधन्धा एवं विषय भोगोंकी आसक्ति आदि सब बन्धन छूट जायगा। सिर्फ देह रक्षार्थ साधारण अन्न-वस्त्रादिको शुद्धतासे ग्रहण करके सद्गुण संयुक्त संतोषसे जीवन व्यतीत करेगा। वही यह प्रचण्ड भवबन्धनसे छूटके सदाके लिये मुक्त हो जायगा। अतएव हे मुमुक्षु! मनुष्यो! इस मनुष्य जन्ममें ही गुरु पारखको प्राप्त करके

सम्पूर्ण देह अध्यासोंको मिटा दीजिये ! और उसीके लिये दृढ़तासे सच्चा पुरुषार्थ करिये ! ॥ यही भावार्थ है ॥ २३ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री मूल पञ्चग्रन्थीकी पञ्चकोश अन्तर्गत प्रथम अन्नमय कोशकी-शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी सरल टीका सहित समाप्तः ॥ १ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ द्वितीय प्राणमय कोश वर्णनम् प्रारम्भः ॥ ❀ ॥ २ ॥

छन्दः—प्राणधारी जीव जेते ❀ मनोमय वासा किये ॥
[३] त्रयखानि साधन युक्ति जे नर ❀ योग खानि अनुमय लिये ॥ [यह आधा छन्द है ।]

सम्बन्ध—इसी छन्दसे प्राणमयकोशका दूसरा भाग शुरू होता है ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— हे सन्तो ! यह द्वितीय प्राणमय कोशमें—

प्राणधारी= पूर्व कर्म संस्कारके वेगसे देहधारी सब प्राणियोंने प्राणको धारण किये हुये हैं । उसमें अबोध नरजीवोंने प्राणरूप श्वासवायु-को ही अपना स्वरूप मानके—

जीव= चेतन जीव न्यारा निज स्वरूप होते हुये भी उसको भूल गये । ऐसे भ्रमिक नर-जीव संसारमें—

जेते= जितने भी हुये और हैं, सो सब—

मनोमय =मनसे मानन्दी करके कल्पनासे वायुवत् सूक्ष्म कर्ता ईश्वरादिको मानके ऐसे—

वासा = वासनामें निवाश या स्थिति किये, तथा स्वर्गादि लोक और ईश्वर प्राप्तिकी वासना जड़ाध्यासको—

किये = मनमें दृढ़ कर लिये और नाना कर्म अध्यासोंको धारण किये हैं ।

त्रयखानि = अण्डज, पिण्डज और उष्मज यह तीनखानिके अध्यासी जीव वास्तविक उक्त तीनखानीको छोड़के उसके अलावा भूतखानी, देवखानी और सिद्धखानी, ये तीन खानी और कल्पनासे अलग मानके—

जे नर = जो-जो अबोध भ्रमिक मनुष्य या नर-जीव उनसे सुख प्राप्ति करनेकी—

युक्ति = चाहनासे नानायुक्ति-प्रयुक्तिपूर्वक या अनेक उपायसे—

साधन = भक्ति, उपासनादिके साधना करते हैं, वे

योग = श्वासमें लक्ष जोड़के नाम स्मरण, ध्यान आदि करनेसे जो आनन्द हुआ और प्रकाश देखनेमें आया, उसीको ईश्वररूपमें ठहराके भक्तोंने—

अनुमय = अनुमान कल्पनाकी मानन्दीको ही—

लिये = मनमें दृढ़कर लिये हैं । परन्तु—

खानी = तीन खानियोंमें सोई संस्कार अध्यास हमें ले जायेगा, ऐसा नहीं जानके जड़ाध्यासी हुए, अतः फिर-फिर तीन खानीमें ही वे जाते रहते हैं ।

व्याख्या—इस छन्दमें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—प्राणमयकोशमें जितने भी प्राणधारी जीव हैं, वे सब पूर्वके मानन्दीरूप जड़ाध्यासके वशीभूत हो करके आवागमन चक्रमें पड़े हुए हैं, उसमें प्राणरूप श्वासवायुको ही अपना स्वरूप या ईश्वरका स्वरूप माननेवाले जितने उपासक मनुष्य हैं, वे सब भ्रमिक हो मन कल्पनासे वायुवत् कोई कर्ता ईश्वरको सत्य मानके उसी वासना या मानन्दीको दृढ़ किये हुए जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं । कोई उपासक मूर्खलोग अलग ही भूतखानी, देवखानी और सिद्धखानी ऐसे अलग-अलग वायुवत् देहधारी मानके उनकी प्रसन्नतासे सुख-सम्पति प्राप्तिकी चाहनासे कल्पना-की नानायुक्तिसे मिथ्या साधना करने लगे हैं । उनमें से जो मनुष्य कुछ चतुर निकले, वे श्वासमें लक्ष जोड़के नाम स्मरण, ध्यान, धारणादि करके अनुमानसे ईश्वर-जीवकी मिलापरूप एकता ठहरा करके

उसीसे मुक्ति मान लिये हैं। ऐसे साधक सब बिना पारख जड़ाध्यासी हो, पशु आदि तीन खानीमें गये और जा रहे हैं ॥ यह आधा छन्दका भावार्थ है ॥

संयम नेम समाधि प्राणायाम * कष्ट तनको किये ॥
ब्रह्माण्ड बासा खं विलासा * बुद्धि मन तेहि थल दिये ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— हे सन्तो ! यह द्वितीय प्राणमय कोशमें—

संयम = और कोई तो इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकनेका संयम करने लगे। कोई—

नेम = नियमसे आसन, नाम स्मरणादि करते हैं।

प्राणायाम = कोई पूरक, कुम्भक, रेचक करके इस विधि प्राणायामसे श्वासको ब्रह्मांडमें चढ़ाके—

समाधि = ध्यानसे श्वासको लय करके शून्य स्थिर करते हैं, उसे शून्य समाधि कहते हैं, (इत्यादि अनेक तरहके साधनायें करके) उपासक भक्त और योगी लोग—

तनको = इस स्थूल शरीरको सुखायके—

कष्ट = पीड़ा या दुःख तितिक्षादिसे महान् कष्टवाला साधना कर—

किये = क्लेश सहन तो बहुत ही किये; परन्तु बिना विचार सब निष्फल है। और—

ब्रह्माण्ड = हृदय, नाभि या मस्तकमें—

बासा = श्वासवायुको स्थिर करके वहाँ पर ही लक्ष ठहराकर बासा कायम करते हैं। तथा

खं = ब्रह्मरन्ध्रमें वृत्ति लयकर आकाशवत् निर्विकल्प शून्य ब्रह्मकी मानन्दी दृढ़ करते हैं।

विलासा = और खं, शून्यमें श्वासको विलय कर ऐसे स्थिर वृत्तिका आनन्दमें विलास करके उसे ब्रह्मका विलास माने हैं।

बुद्धि = निश्चय करनेवाली बुद्धिको—

मन = तथा मनके संकल्प-विकल्पको भी अर्थात् बुद्धि और मन दोनोंको भी—

तेहि थल = उसी ठिकाने ब्रह्माण्डमें ठहरा दिये, उसीको जीवकी स्थिति मानकर—

दिये = शून्यमें लेजाके सब वृत्तियोंको लय कर दिये, [नाहक धोखामें निजपदको बर्बाद कर दिये, अन्धाधुन्ध महागाफिलीमें गिर पड़े]।

व्याख्या—और कोई पथ्य, परहेज, अल्पाहार-विहार करने लगे, कोई नियमसे स्नान सन्ध्यादि करने लगे, कोई अभ्यास करने लगे; ऐसे संयम, नेम, प्राणायाम, समाधि आदि तथा जलशयन, पंचाग्नि-तापना, ठाढेश्वरी, दिगम्बर आदि होके शरीरको नाना कष्ट देके अभी भी नाना दुःख भोग किये और देह छूटने पर भी चौरासीमें दुःख ही भोगते रहते हैं। और कोई मस्तक या नाभिमें वायु लय करके वहीं पर लक्ष्य ठहरायके स्थितिरूप बासा कायम किये। तथा आकाशवत् ईश्वरको शून्य मानकर ब्रह्माण्डमें शून्य निर्विकल्प आनन्दमें विलास करके मन, बुद्धि, आदि चतुष्टयको भी उसी ठिकाने लय कर दिये। इस प्रकार बिना विवेक गाफिल होके अन्तमें अध्यासवश त्रयखानिको गर्भावास कैदमें जाते भये, और जा रहे हैं, बिना पारख ॥ यह भावार्थ है ॥ १ ॥

दोहाः—सूक्षम देह जानि निजु । करहिं क्रिया बहु मूढ़ ॥
[२] भटकहिं भवकी धार महँ । मानि कहहिं यह गूढ़ ॥ २ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो !

सूक्षमदेह = वायुरूप सूक्ष्मदेहधारी कोई ईश्वर, देवता आदिको माने हैं, और नौतत्त्वयुक्त प्राणरूप जड़वायुको ही भ्रमसे कोई जीव माने हैं। ऐसे-ऐसे प्रकारसे ही सूक्ष्मदेहको ही भ्रमसे—

निजु = अपना निज स्वरूप तथा ईश्वरादिका निजरूप है, ऐसा मिथ्या मानन्दी करके—

जानि = उसे मन कल्पनासे जानके निश्चय कर उन्होंने मान लिये ! अतएव —

मूढ़ = अविवेकी पारखहीन मूढ़लोग अज्ञानतासे—

बहु = उससे बहुतेक सुख-सम्पत्ति प्राप्तिके आशासे अनेक प्रकारकी बहुविधि प्रयत्न तथा—

क्रिया = साधनाओंके क्रियाएँ कर्म आदि—

करहिं = किये या कर रहे हैं। (जब कुछ भी

प्राप्ति नहीं हुआ तब)—

मानि = गुरुवा लोग मन कल्पनासे ऐसे मानने लगे कि–परमेश्वर तो सत्य है, किन्तु हमारे साधनोंमें ही कसर है ! इसीसे दर्शन होता नहीं—

यह = तो ऐसा है कि–वह परमात्मा व्यापक, निराकार होनेसे—

गूढ़ = जाननेको अत्यन्त कठिन अगम्य गुप्त है, यानी गूढ़ है ।

कहहिं = ऐसा एक-दूसरेसे कहते हैं, सोई मानते, मनाते हैं । इस हेतुसे –

भवकी = खानी-वाणीरूप संसार भवसागरकी या आवागमनकी—

धारमहँ = तरंग या धारा प्रवाहमें जन्म-मरणादि-के तीव्र धारामें—

भटकहिं = बारम्बार इधरसे उधर और उधरसे इधर चक्रमें पड़के भटकते ही रहते हैं । चौरासी योनिमें डोला करते हैं, बिना पारख ।

व्याख्या— यह दोहामें ऐसा बताया है कि, बहुतेरे मूढ़ उपासक लोग कल्पित ईश्वरको सूक्ष्मरूप-से माने हैं, और अपने स्वरूपको भी सूक्ष्मदेह प्राणवायुरूप ही मान लिये हैं, और देवता तथा ईश्वरादि-की साक्षात्कार दर्शन करके जाननेके लिये या सुख प्राप्तिके लिये बहुत प्रकारके साधना, क्रियादि करते हैं । वे पारखहीन मूढ़ोंको साधनादि करने पर भी जब कुछ प्राप्ति नहीं होता है, तब माना हुआ ईश्वर-को गूढ़ = जाननेको अत्यन्त कठिन अगम्य, व्यापक, निराकार, ठहराके और भी विशेष साधना करनेको कहते हैं । ऐसे अज्ञानी अविवेकी साधक लोग खानी-वाणीकी धारामें बहके भटकते हुये आवागमनमें लटके पड़े रहते हैं । और दूसरोंको भी भटकाके उसीमें डाले या डाल रहे हैं । अतएव हे जिज्ञासुओ ! पारखी सद्गुरुके सत्संग करके इन गुरुवा लोगोंके फन्दोंसे बच जाइये ! अर्थात् सूक्ष्म देहको ही निज स्वरूप जाननेवाले मूढ़तासे बहुत क्रिया करते हैं । अन्तमें मान-मानके उसे गूढ़ कहते हैं । वे जड़ाध्यासी जीव भवधारामें ही बहके भटकते पड़े रहते हैं, बिना पारख ॥ यह भावार्थ है ॥ २ ॥

सम्बन्ध— अब प्राणमय कोशके विभागोंको १८ चौकड़ीमें बतलाते हैं, सुनिये ! ॥

॥ चौकड़ी ॥ द्वितीय खण्ड ॥ २ ॥

१. कोश प्राणमय सूक्षम देह ❀ आश्रम गृहचार गुन नेह ॥ ३ ॥

पहिला अन्नमय कोश था, दूसरा प्राणमय कोश है । १ स्थूल देह था, २ सूक्ष्मदेह है । १ ब्रह्मचर्य आश्रम था, २ गृहस्थाश्रम है । १ कर्ममें नेह था, २ गुण (सगुण) में नेह रहता है ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब यह प्राणमय कोशमेंका पूरा भाग नीचे लिखे अनुसार वर्णन करते हैं कि—

प्राणमय = प्राणरूप चलनेवाली श्वास वायुके स्वरूपमें ही सम्मिश्रित या इसी नामका यह प्राणमयरूप ही—

कोश = अध्यासका आवर्ण पर्दारूप दूसरा ढक्कन जीवोंको पड़ा है । सो इस कोशका—

सूक्षम देह = सूक्ष्म (झीना) शरीर—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध एवं चित्त, बुद्धि, मन और अहंकार ये नौ तत्त्वोंका वासनारूप देह-सङ्घात माना है ।

आश्रम = टिकावकी भूमिका या गिनतीके दूसरा आश्रम इसमें—

गृहचार = घरमें स्त्री, भोग, पुत्रादि सहित रहनेका स्थान 'गृहस्थाश्रम' है ।

गुन = गृहस्थियोंको विशेषरूपसे सगुण उपासना भक्तिके ऊपर—

नेह = प्रेम या प्रीति श्रद्धा लगी रहती है; यही गुनका नेह है ।

व्याख्या— यह प्राणमय कोशके देह सूक्ष्म पञ्चविषय तथा अन्तःकरण चतुष्टय मिलायके नौतत्त्व-का वासनारूपसे माने हैं । इसमें गृहस्थाश्रम * माना है । गृहस्थाश्रमी लोग जो होते हैं, वे स्त्री, पुत्र और भोग-विलास, घर-बार संयुक्त रहते हैं । इसीसे यहाँ गृहस्थाश्रम मुख्य कहा है । और गृहस्थियों-

* ❀ टिप्पणीः— गृहस्थाश्रममें प्रवेशका समय और गृहस्थोंके कर्तव्यके बारेमें शास्त्रोंमें कहा है:—

को भोगोंकी चाहना विषय-विलासकी इच्छा विशेष बनी रहती है। और रोग-शोगादि होते रहते हैं, इससे सगुण भक्तिपर प्रीति मूर्ति पूजा आदि एवं मान-मनौतीमें श्रद्धा उनकी लगी रहती है, यही गुननेह है॥३॥

श्लोकः—एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रम कांक्षया ॥ प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वय संभवाम् ॥
॥व्यास स्मृतिः, अ० १२ । श्लोक १ ॥

अर्थः— इस प्रकार वेदोंको पढ़कर गुरुकी आज्ञासे स्नातकताको प्राप्त होकर गृहस्थ आश्रमकी अभिलाषा करनेवाला ब्राह्मण पवित्र वंशमें उत्पन्न हुई कन्याके साथ विवाह करनेकी चेष्टा करे ॥ १ ॥

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विंदेतानन्यपूर्वां यवीयसीम् असमान प्रवरैर्विवाह ।
उर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुभ्यो जीविनश्च मातृ बन्धुभ्यः पंचमात् ॥ गौतम स्मृतिः, अ० ४ । १ ॥

अर्थः — वेद पढ़नेके उपरान्त गृहस्थी होकर अपने अनुरूप, जिसका किसीके साथ विवाह न हुआ हो, और अपनी समान थोड़ी अवस्थावाली कन्याके साथ विवाह करे, जो अपनी प्रवरकी होती है, उसके साथ परस्परमें विवाह नहीं होता। पिताके बन्धुओंकी सातवीं पीढ़ीसे ऊपर और माताके बन्धुओंकी पाचवीं पीढ़ीसे ऊपर विवाह हो जाता है ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥
एभ्यो धर्म्यास्तु चत्वारः पूर्वे ये परिकीर्तिताः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य तु शस्यते ॥
संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ॥ यज्ञस्थापर्त्विजे दैव आदायार्षस्तु गो द्वयम् ॥
प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ॥ आसुरोद्रविणादानाद् गन्धर्वः समयान्मिथः ॥
राजसो युद्ध हरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥ ॥ शंखस्मृतिः, अ० ४ । श्लोक २–६ ॥

अर्थः— ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गन्धर्व, राक्षस और पैशाच यह आठ प्रकारके विवाह होते हैं। इनमें आठवाँ पैशाच अधम है ॥ २ ॥ पूर्व कहे हुए इनमें चार धर्म्य विवाह हैं। और गान्धर्व, राक्षस यह दोनों क्षत्रियोंके लिये अच्छे हैं ॥ ३ ॥ जो विवाह बड़े प्रयत्न और प्रार्थना करनेसे हो, उसे "ब्राह्म विवाह" कहते हैं। (यह सब गृहस्थोंके लिये करना उचित है)। और जो कन्या यज्ञमें बैठे ऋत्विजको दी जाय, उसे "दैव विवाह" कहते हैं। और वरसे दो गौवें लेकर जो कन्या दी जाय, उसे "आर्षविवाह" कहते हैं ॥ ४ ॥ कन्या देनेके निमित्त (धर्मसे चलनेके निमित्त) जहाँ वरकी प्रार्थना की जाय, उस विवाहको "प्राजापत्य" कहते हैं। और धन लेकर जिसका विवाह किया जाय, उस विवाहको "आसुरी" कहते हैं। और जो विवाह कन्या और वरकी सम्मतिसे हो, उसे "गान्धर्व विवाह" कहते हैं ॥ ॥ ५ ॥ युद्धमें हरी हुई कन्याके साथ विवाह करनेका नाम "राक्षस विवाह" है, और छल करके कन्याके साथ विवाह करे उसे "पैशाच" विवाह कहते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ॥ कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥
तासं क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ॥ पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पण ॥ होमो दैवो वलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥
॥ मनुस्मृतिः, अ० । ३ श्लोक ६८–७० ॥

अर्थः— गृहस्थके लिये ये पाँच हिंसा होनेके स्थान हैं:—१ चूल्हा, २ चक्की, ३ झाड़ना, बहारना, ४ उखली, मूशल, ५ जलका घड़ा, अपने काममें इनका प्रयोग होनेसे गृहस्थ पापोंके भागी होते हैं ॥ ६८ ॥ उन चूल्हा आदि पाँच हिंसाके स्थानोंसे उत्पन्न पापके निवारणके लिये क्रमसे पाँच यज्ञ मनु आदि आचार्योंने प्रतिदिन गृहस्थोंके करनेको कहे हैं ॥ ६९ ॥ वेदका पढ़ना और पढ़ना, सो 'ब्रह्मयज्ञ' है। जलसे तर्पण करना अथवा अन्न-जलसे पितरोंको तृप्त करना, सो 'पितृ-यज्ञ' है। अग्निमें होम-हवन करना, वलिवैश्वदेव करना, सो 'देवयज्ञ' है। देहधारी प्राणी मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि-कीड़ों आदि भूत प्राणियोंको अन्नादि भोजन बलि खाने देना, सो 'भूतयज्ञ' है। और अतिथि—अभ्यागतोंका आदर-सत्कार करना, भोजन कराना, यह 'मनुष्य यज्ञ' कहा गया है। यह यज्ञ गृहस्थोंने नित्य करना चाहिये, कहा है ॥ ७० ॥ ऐसा ही शंख स्मृतिके पञ्चम अध्यायमें श्लोक १ से ४ तक कहा है। भाव एक ही है ॥ और पाराशर स्मृतिमें भी अ० २ में वैसे ही कहा गया है। और वशिष्ठ स्मृतिःमें कहा है:— गृहस्थी श्रद्धालु, और अलोलुप रहे, अग्निहोत्र करे, स्वाध्याय, सन्तानोत्पादन, यज्ञ, यह गृहस्थियोंके लिये विशेष करके करनेका कर्तव्य है। घरमें आये हुये लोगोंको देख करके उठना, आसन, शैय्या कोमल वचन इत्यादिसे सम्मान करे, शक्तिके अनुसार सबोंका पालन-पोषण करे। गृहस्थ आश्रमके महिमाके बारेमें भी कहा है:—

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ॥ चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥
यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रेयान्ति संस्थितिम् ॥ एव माश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥

॥ वशिष्ठ स्मृतिः, अध्याय ८ ॥

अर्थः— गृहस्थी ही यज्ञ करता है, गृहस्थी ही तप करता है, इस कारण चारों आश्रमोंके बीचमें गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। जिस भाँति सम्पूर्ण नदियें समुद्रमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण आश्रम गृहस्थाश्रममें मिले रहते हैं ॥

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः। गृहस्थस्य प्रसादेन जीवंत्येते यथाविधि ॥

॥ शंखस्मृतिः, अध्याय ५। श्लोक ५ ॥

अर्थः—वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, यती—संन्यासी—यह तीनों द्विजाति गृहस्थीके प्रसादसे यथा विधि जीवन निर्वाह करते हैं ॥

गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः ॥ नित्य जापी च होमी च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
स्वदारे यस्य सन्तोषः परदार निवर्तनम् ॥ अपवादोऽपिनो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥
परदारान्परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ॥ सर्वं तीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥

॥ व्यास स्मृतिः, अध्याय ४ श्लोक, ३। ४ ५ ॥

अर्थः— जो गृहस्थी गुरुमें भक्ति करनेवाला, भृत्योंका प्रतिपालक, दयालु, निन्दा न करनेवाला, सर्वदा जप, होम करने वाला, सत्यभाषी और जितेन्द्रिय है ॥ ३ ॥ जिसे अपनी स्त्रीसे ही सन्तोष है, पराई स्त्रीकी इच्छा न करनेवाला, जिसकी कहीं निन्दा न हो, उस गृहस्थीको घरमें बैठे ही तीर्थका फल मिलता है ॥ ४ ॥ और जो गृहस्थी प्रतिदिन पराई स्त्री और पराये धनको हरण करता है, उसके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी पाप नष्ट नहीं होते ॥ ५ ॥

देवपूजा गुरुयास्तिऽतिथिभक्तश्चधार्मिकः ॥ न्यायोपार्जितं वित्तेन कर्तव्यं ह्यात्म रक्षणम् ॥
अन्यायेनतु यो जीवेत् सर्व कर्म वहिष्कृतः ॥ पोषयेत् स्वं जनान्बंधू गृहस्थोमुख्य उच्यते ॥ अन्यत्र ॥

अर्थः— गृहस्थोंने देवता, और गुरुकी पूजा करना, तथा अतीथियोंका सत्कार करना, भक्त और धार्मिक होना चाहिये। न्यायसे उपार्जित किया धन, धान्यादिसे अपने कर्तव्यकर्म तथा जिविका चलाके अपने आत्माकी रक्षा करें ॥ अन्याय अनीतिके सर्व कर्म परित्याग कर देवै, अन्यायसे जीविका न चलावै, अपने देह और बन्धू-बान्धवोंको धर्मो पार्जित द्रव्यसे पालन पोषण करनेवाला, वही मुख्य श्रेष्ठ गृहस्थ कहलाता है ॥ गृहस्थ ब्राह्मणोंकी शरीर पोषण वृत्तिके बारेमे कहा है:—

ऋत मुञ्छशिलंज्ञेय ममृतं स्यादयाचितम् ॥ मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥
सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ॥ सेवाश्ववृत्ति राख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥
कुशूल धान्यको वा स्यात्कुम्भी धान्यक एव वा ॥ त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥
चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ॥ ज्यायान्परः परोज्ञेयो धर्मतो लोक जित्तम ॥ ८ ॥

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ४। श्लोक ५ ८ ॥

अर्थः— १—खेतोंमें और रास्तोंमें पड़े हुये अन्नोंके दानों तथा बालीको बीनके लावै, वह ऋत—सत्य फलवाला, ऐसा 'शिलोञ्छवृत्ति' कहा है। २—बिना माँगे, बैठे जगह अन्नकी प्राप्ति, वह अमृत समान, 'अयाचितवृत्ति' कहा है। ३—माँगी हुई भिक्षा समूह, वह मृत समान, 'मृतवृत्ति' कहाती है। ४—खेती कृशानीसे अन्न उत्पन्न करना, वह 'प्रमृत-वृत्ति' कहा है। ५—वाणिज्य व्यापार करना, वह 'सत्यानृतवृत्ति' सत्यमें झूठ मिला हुआ कहा है। उससे जीविका करते है। ६—सेवा, नौकरी, चाकरी, करना, सो 'कुत्तेकी-सी वृत्ति' कही गई है। इससे ब्राह्मण उस "सेवावृत्ति" का त्याग करें ॥ फिर १ कुशूल धान्यः—कोठी या बखारमें अन्न भरके तीन वर्षोंतक निर्वाह हो जाय, इतने अन्न जमा या संग्रह करनेवाले होते है। २ कुम्भी धान्यः—एक वर्ष वा छः महीनों तक को, निर्वाहके लिये अन्न संग्रह करनेवाले होते हैं। ३ त्र्यहैहिकः—तीन दिन तक निर्वाह हो, उतना अन्न संग्रह रखता होवे। और ४ श्वस्तनिक (सद्यः प्रक्षालकः):— एक दिनका अन्न संग्रह रखनेवाले होते हैं, जो रोज उत्पन्न करके निर्वाह चलाते हैं ॥ इन चार गृहस्थ ब्राह्मणोंमें पीछे-पीछेके श्रेष्ठवाला अच्छ जानिये। जिससे वह जीविकाके संकोचसे स्वर्ग आदि लोकोंका जीतने वाला होता है। इत्यादि प्रकारसे भिन्न भिन्न भेद कहे हैं। विष्णु स्मृतिः अ० २। १६–१७ में भी वही बात कहा है। और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन गृहस्थाश्रमी द्विजो-

२. गुरुमय चिह्न प्रलय नैमित्य * दशा पिशाचकी जानहु सत्य ॥ ४ ॥

पहिला आचार चिह्न था, दूसरा गुरुमय चिह्न है। १ नित्य प्रलय था, २ नैमित्य प्रलय है। १ बाल दशा था, २ पिशाच दशा है ॥

अर्थः - श्रीरामरहस साहेब यह प्राणमय कोशमेंका पूरा भाग नीचे लिखे अनुसार वर्णन करते हैं कि—

गुरुमय = और उपासक लोग श्वासवायुमें 'सोहं' या 'राम' शब्द कल्पना करके उसीको गुरु-स्वरूप बड़ा ईश्वर मानते हैं—

चिह्न = यही इसका निशानीरूप लक्षण है। जैसा गुरुका भेष, तैसा भेष शिष्यने भी रखना कहा है।

नैमित्य = ध्यान, धारणा, नाम स्मरण आदि निमित्त या कारण पायके थोड़ी देर तक वृत्ति स्थिर रखना—

प्रलय = सोई वृत्तियोंको लय या शून्य करना, यहाँ 'नैमित्य प्रलय' माने हैं। यानी निमित्त पायके प्रलय होना, शून्य होना कहे हैं।

पिशाचकी = बुद्धि विभ्रम हो बावलेकी सरीखी नामस्मरणादिमें विशेष चंचलताका वर्ताव होना, मनमाने वर्तना—

दशा = ऐसा स्वभावकी स्थिति-दशा रहती है। उसे ही पिशाचकी दशा कहते हैं। परन्तु—

सत्य = सत्य चैतन्य जीवोंको जड़ाध्यासी बनाय, यह दुर्दशा करना-कराना किये हैं। अतः यह बात सत्य करके—

जानहु = विवेकद्वारा जान लीजिये कि, वे नर-पिशाच चौरासी योनियोंमें जाकर नाना दुःख भोगा करेंगे।

व्याख्या और इस कोशमेंका चिह्न, निशानी या पहिचानी-एक तो गुरुके सदृश भेष बनाना, दूसरा-श्वासवायुमें कल्पित सोहं, राम शब्दको मानकर उसे गुरुरूप ईश्वर ठहराकर जपते रहना, कहे हैं। वैसे नाम स्मरण, ध्यान आदि करनेसे निमित्त पायके थोड़ी देर तक वृत्तिस्थिर करके लय करना, सोई 'नैमित्य प्रलय' माने हैं। फिर नामस्मरण आदि साधनोंमें ज्यादा चंचल वृत्ति हो बावलेवत् हो जाना, उसको पिशाच दशा कहते हैं। सो सत्य जीवोंको मिथ्या धोखामें लगायके जड़ाध्यासी बनाय, दुर्दशा ही करते हैं। यह निर्णयकी बातको सत्य करके जान लीजिये! वैसे जीव अध्यासवश चौरासी चक्रमें हीं पड़े रहते हैं ॥ ४ ॥

३. अवस्था स्वप्न समान बखान * सामीप्य मुक्ति तैजस अभिमान ॥ ५ ॥

पहिला जाग्रत् अवस्था था, दूसरा स्वप्न अवस्था है। १ सालोक्य मुक्ति था, २ सामीप्य मुक्ति है। १ विश्व अभिमान् था, २ तैजस अभिमान् है ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

अवस्था = जीवकी वृत्ति ठहरावरूपी अवस्था स्थिति जैसे—

स्वप्न = अर्धनिद्रामें जाग्रत्का संस्कार व्यवहार उलटके भास जो विषय देखनेमें आता है, उसे स्वप्न अवस्था कहते हैं। वैसे—

समान = ध्यानादि उपासनामें स्वप्नके समान ही मनकी भावनाका भास होके फिर वृत्तिस्थिर हो जाती है। सो भावनाके अनुसार ही कल्पितरूप देखा करते हैं।

बखान = ध्यानी उपासक लोगोंने उसे ईश्वर दर्शन वर्णन किये हैं। और—

सामीप्य मुक्ति = इस लोकमें जिन-जिन देवतोंकी

ने यथा विधि सोलह संस्कार—गर्भाधान, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्रासन, मुण्डन, यज्ञोपवीत (व्रतबन्ध), विवाह, मृत्यु पश्चात् उत्तर क्रियादि करना चाहिये। तभी आश्रम कर्मका पालन होता है। इत्यादि नाना भेदसे कहा है। यही गृहस्थाश्रम-के शास्त्रोक्त लक्षण, गुण आदि वर्णन है। इत्यादि प्रकारसे बहुत कुछ कहा गया है। इतना ही सारांश है, ऐसा जानिये ॥

॥ * ॥ इति टिप्पणी समाप्त ॥ * ॥

भक्ति किया है, देह छूटने पर उन्हींके लोक वैकुण्ठ आदिमें जाके उन इष्ट-देवतोंके समीप वा नजदीकमें ही हुजूरी दासवत् रहना, उसे सामीप्य मुक्ति माने हैं।

तैजस = सूक्ष्मइन्द्रियोंको और सूक्ष्म-चंचल-वायु तत्त्वरूप प्रकृतियोंको चेतानेवाला या जगानेवाला तैजस नामका इसमें तेजवान या तीक्ष्ण —

अभिमान = सूक्ष्म अहंपनाका अभिमान होता है: वही तैजस अभिमान है।

व्याख्या—प्राणमय कोशकी अवस्था स्वप्न है। तैसे ध्यानी लोग स्वप्न समान ही भावना भास होनेका एकाग्र अवस्था बनायके ध्यानमें मनःकल्पित मूर्तिका भास, ज्योतिप्रकाश आदि रूपको देखके मगन होकर वृत्ति स्थिर करते हैं। ऐसा वर्णन किये हैं। और यहाँ मृत्युलोक या संसारमें उपासना भक्ति आदि द्वारा इष्ट देवताओंको खूब प्रसन्न कर भक्त लोग देह छोड़नेके उपरान्त स्वर्गादि लोकमें इष्ट-देवतोंके पासमें जायके देवतोंके समीप या नजदीकमें सदा हुजूरी दासवत् हाजिर हो रहते हैं, ऐसा सामीप्यमुक्ति कल्पनासे मानते हैं। और सूक्ष्म इन्द्रियोंको भीतरसे जगाने या उठानेवाला या चेतानेवाला ऐसा सूक्ष्म तैजस अभिमान कहते हैं॥ ५॥

४. दीक्षा वोऽहं योगानन्द ❀ अक्षर मात्रा वेदको छन्द॥ ६॥

पहिला कोऽहं दीक्षा था, दूसरा वोऽहं दीक्षा है। १ विषयानन्द था, २ योगानन्द है। १ क्षरअकार मात्रा था, २ अक्षरमात्रा है। जिससे वेदके छन्द बनी है॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—इस प्राणमय कोशमें—

दीक्षा = इस कोशमें शिक्षा उपदेश तथा दीक्षा दृढ़ापनरूप उपदेशका मन्त्र गुरुवा लोगोंने जीवोंको ऐसा दृढ़ाया है कि—

वोऽहं = वह कोई जो ब्रह्म है, सो मैं ही हूँ! अथवा ॐकाररूप ब्रह्म मैं हूँ! ऐसा माने हैं।

योगानन्द = विषय भोगोंमें संयोगसे होनेवाला आनन्द वा बाहर नाम स्मरणादिद्वारा तथा ध्यानसे श्वासमें लक्ष जोड़नेसे ऐसे अन्तर संयोगसे होनेवाला आनन्दको योगानन्दमाने हैं

अक्षरमात्रा = नाश न होनेवाला सूक्ष्म प्राणरूप श्वासवायुको अक्षरका मात्रा निर्णय किये हैं, सो उस श्वाससे ही ५२ अक्षर बनके—

वेदको छन्द = ग्रन्थरूपमें वेदका छन्द, वाणीमें छन्द, प्रबन्ध, काव्य, मन्त्र, ऋचा, श्लोक और भाष्य आदि बनी हैं। इससे वाणीके कारण श्वास है, ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं। अथवा ज्ञानका छन्द भी श्वाससे बना, कहे हैं।

व्याख्या—और भक्तोंको उपासक गुरुवा लोगोंके उपदेशरूप इसमें दीक्षा मन्त्र प्रणवब्रह्म है, अर्थ है कि, वो जो कोई ब्रह्म है सो मैं हूँ 'वोऽहं' सो इसीको सदा जपा करो, ऐसा बतलाते हैं। और नाम ध्यानादि करते रहनेसे श्वासमें लक्ष जोड़के होनेवाला सुखको ही योगानन्द माने हैं। फिर क्षररूप देह, सो नाशवान् है। और अक्षररूप सूक्ष्म प्राण नाश न होनेवाला है। इससे सर्वप्रथम विराटरूप मा ईश्वरके श्वाससे ही ५२ अक्षर पाँच मात्रा आदि स्वयमेव निर्माण हो गये, फिर वह सब आपही य महाशक्तिसे छन्द, मन्त्र, ऋचारूपमें वेद बना। अतएव वेद ईश्वरीय ज्ञान है और ईश्वरीय से यहाँ सब मनुष्योंसे भी श्वाससे ही अक्षर-मात्रादि बनके बोल-चालादि व्यवहार होता है, जीव ईश्वरका ही अंश है, तब जो ईश्वरमें सो जीवमें, ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने यहाँ पखानेके लिये ही दर्शा दिया गया है, ऐसा जानिये॥ यह भावार्थ है॥ ६॥

५. द्रव्य शक्ति देव मार्तण्ड ❀ कामाग्नि पद दुतिया खण्ड॥ ७॥

पहिला क्रियाशक्ति था, दूसरा द्रव्यशक्ति है। १ देव शिवनन्द (गणेश) था, २ देवमार्तण्ड (सूर्य) है। रागिन था, २ कामाग्नि है। १ प्रथमपाद (भूः) था, २ द्वितीयपाद (भुवः) है॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि—इस प्राणमय कोशमें हे सन्तो! और जो भाग

है— सो सुनिये !

द्रव्यशक्ति = शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार यह चतुष्टय वृत्तिद्वारा सदा याद करके ग्रहण करनेकी शक्ति या विषयाशक्ति है। वही द्रव्यशक्ति कहलाती है।

देव मार्तण्ड = देवता सूर्यको माने हैं, सो नेत्र स्थानमें रहिके प्रकाश करता है।

कामाग्नि = स्त्री-भोगकी कामना या विषयकी चाहना होना और भीतर मनमें संकल्प उठनेवाला नाना इच्छारूप अग्नि जो है, सोई कामाग्निकी उष्णता है।

पद = गायत्री मन्त्रोंमेंकी पद या चरण—

दुतिया = दूसरा भाग (भुवः) को—

खण्ड = पहला पदसे न्यारा दूसरा खण्ड माने हैं। और भुवः जलवाचक तथा विष्णुको भी कहा है। अर्थात् इसमें गायत्रीकी दूसरा चरण माना है।

व्याख्या—इस कोशमें द्रव्यशक्ति कहिये नौ द्रव्यमें पंच विषयोंको अन्तःकरण चतुष्टयद्वारा वृत्तियोंसे विषयोंका यादगारी होना या सूक्ष्म विषयाशक्तिका संस्कार बना रहना, फिर समयमें प्रगट होनेकी शक्ति उसमें बना रहना कहा है। और जैसे बाहर सूर्यप्रकाश करता है, तैसे भीतर देहमें भी सूक्ष्म नवद्रव्योंको प्रकाश करनेवाला देवता भी अन्दरमें सूर्यको माने हैं। और विषय भोगोंकी कामना, चाहना या इच्छा उठानेवाली जो अग्नि है, सोई कामाग्नि कहलाता है। फिर गायत्री मन्त्रके दूसरा पद या चरण भुवः जलशायी विष्णुको माने हैं ॥ ७ ॥

६. भूचरी मुद्रा वाचा मध्यमा ❀ मात्रा उकार विष्णु सतगुणा ॥ ८ ॥

प्रथम खेचरी मुद्रा था, दूसरा भूचरी मुद्रा है। १ वैखरीवाचा था, २ मध्यमावाचा है। १ मात्रा अकार था, २ मात्रा उकार है। १ ब्रह्मा रजोगुण था, २ विष्णु सत्त्वगुण माने हैं ॥

अर्थः—श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि—इस प्राणमयकोशमें—हे सन्तो ! और जो भाग है, सो सुनिये !

भूचरी = नासिकाग्र ऊपरसे नाभि अथवा सीधे पृथ्वीपर लक्ष लगाकर एकटक देखके उसीमें चित्त लगाकर फैली हुई—

मुद्रा = मनोवृत्तिको एकाग्र करके टिकाना या स्थिर करना, भूचरी मुद्रा कहा है।

वाचा मध्यमा = कण्ठस्थान मध्यसे निकलनेवाली वाणी। वहींसे सोलह स्वर 'अ' से 'अः' तक उत्पन्न होते हैं, सोई मध्यमा वा बीचकी वाचा माने हैं।

मात्रा = ॐकारके पाँच मात्राओंमें इस कोशमें-का मात्रारूप भाग—

उकार = दूसरी उकार मात्रा कण्ठमें रहता है, ऐसा कहे हैं।

विष्णु = उकार मात्राका देवता विष्णुको माने हैं, और विष्णुके मुख्य गुण—

सतगुण = उसके खास सतगुण कहिये स्वभाव शान्त रहना; भक्ति, ज्ञान, वैराग्यमें प्रीति होना, सद्गुण धारण, शीतल, नम्र, कोमलता आदि होना, ऐसे माने हैं !

व्याख्या—और 'भू' कहिये सीधे पृथ्वीके तरफ ऊपर नासिकाग्र भागसे देखना या नाभिमें देखके मनको वहीं एकाग्र करके ठहराना, इसको ही भूचरी मुद्रा माने हैं। मध्यमा वाचा—कंठ स्थानसे 'अ' से 'अः' तक सोलह स्वरको उत्पन्न करके निकलने वाली वाणीको मध्यकी वाचा कहा है। और इस कोशमें दूसरी उकार नामके मात्राको कण्ठमें ही रहनेवाला माने हैं। उस मात्राका देवता विष्णु है, उसका मुख्य गुण सत्त्वगुण शीतलता माने हैं ॥ ८ ॥

७. देह प्रमाण अङ्गुष्ठाकार ❀ कण्ठस्थान थूल सो विचार ॥ ९ ॥

प्रथम देह ३॥. हाथकी थी, दूसरा अङ्गुष्ठाकार है। १ त्रिकुटी स्थान था, २ कण्ठ स्थान है। १ मोटा विचार था, २ झीना विचार माने हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस प्राणमयकोशमें—

देह = सूक्ष्म देह है, उसके भासरूप—
प्रमाण = लम्बाई मापके प्रमाण—
अङ्गुष्ठाकार = ध्यान साधनाद्वारा हृदय या त्रिकुटी स्थानमें अङ्गुष्ठ आकारकी (अंगूठा सरीखी) भावनामें मूर्तिका प्रकाश दिखती है, सोई देहका प्रमाण मानेहैं। यानी अङ्गुठाके समान छोटा सूक्ष्मदेह कहे हैं।
स्थान = टिकावकी जगहरूप स्थान—
कण्ठ = गला मध्यमें माने हैं। यानी कंठ स्थानमें सूक्ष्म कार्य होता है।
सो = उसी कल्पित भासरूपका सोई—
थूल = सूक्ष्मरूपसे दृढ़ करके—
विचार = मनन या विचार करते रहते हैं कि, यही ईश्वरका स्वरूप है॥

व्याख्या—सूक्ष्मदेहकी मापका प्रमाण छोटा-सा एक अङ्गुठे भरका आकारका बतलाये हैं। अथवा इसमें हृदयादिमें ध्यानसे जो अङ्गुष्ठ आकारका मूर्ति भावनासे देखनेमें आतो है, उसीको अङ्गुष्ठाकार ईश्वरका स्वरूप प्रमाण माने हैं। और सूक्ष्मदेहका मुख्य स्थान कंठमें कहे हैं। कल्पनाका विचार सूक्ष्मरूपसे मनन वहीं होता रहता है॥ ९॥

८. दण्डक नाम जिह्वा सो द्वार ❀ खान पान सो करत अहार॥ १०॥

प्रथम तारक नाम ब्रह्म था, दूसरा दण्डक नाम ब्रह्म है। १ नेत्र द्वार था, २ जिभ्या द्वार है। सो उसीसे खान-पानादिका आहार करते हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस प्राणमयकोशमें—

दण्डक नाम = और साधनासे श्वास दण्डायमान स्थिर होके नाभिसे त्रिकुटी तक चिम-चिमी प्रकाश जो दिखता है, उसीको दण्डक नामके ब्रह्म दण्डाकार माने हैं।
जिह्वा = भीतरकी छोटी जिभ्या जिसको पड़जिभ्या भी कहते हैं।
सो द्वार = सोई इसमेंका सूक्ष्मद्वार या दरवाजा-रूपसे है, कहे हैं।
अहार = मनुष्यादि प्राणी जो भोजनकर खुराकका आहार या भक्षण करते हैं—
खान-पान = सो खाया-पीया हुआ अन्न-जलादिकों-को ठीक ठिकानेसे—
सो करत = सोई हिता नाड़ीद्वारा कण्ठ द्वारमें ही विभाग करके अन्न-जलको अपने-अपने ठिकाने कोठीमें पहुँचानेका काम करती रहती है।

व्याख्या—तैसे ही श्वास दण्डायमान हो, फिर स्थिर होके नाभिसे त्रिकुटी तक जो चिम-चिमाकार प्रकाश साधकोंको दिखती है, उसीको दण्डक नामका ब्रह्मदण्डाकार ज्योतिको माने हैं। इसमेंका सूक्ष्मद्वार पड़जिभ्या = भीतरकी छोटी जिभ्याको कहे हैं। खाया हुआ अन्न-जलको चाहे एक साथ भी क्यों न खाया हो, सो कण्ठ स्थान निवासी हितानाड़ीद्वारा अन्नको अलग और जलको अलग छानके दो भागोंमें अन्न-जलको अपने-अपने दायाँ-बायाँ कोठीके ठिकानेमें पहुँचाती है। यही उसका काम माने हैं। अथवा दण्डक ब्रह्म शरीरमें रहकर मुख-जिभ्या द्वारा खान-पानका आहार करता-कराता रहता है, ऐसा कहे हैं॥ १०॥

९. श्रीहट स्थान दिशा पश्चिम ❀ वरुण देवता ताके सूक्षम॥ ११॥

प्रथम त्रिकुटी स्थान था, दूसरा श्रीहट स्थान है। १ पूर्व दिशा था, २ पश्चिम दिशा है। १ इन्द्र-देवता था, २ वरुण देवता सूक्ष्मरूपसे माने हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस प्राणमयकोशका स्थान चक्र—

श्रीहट = छोटी जिभ्याके ऊपरका द्वारके जगहमें श्रीहटका जगह है।
स्थान = वहीं पर श्रीहटका निवास स्थान माना गया है।
दिशा पश्चिम = इस कोशमें मुख्य पश्चिम दिशा है, देहमें पीठके पीछे तरफ है, और यहाँ श्रीहट-के जगहपर पश्चिम दिशा माने हैं।
ताके = उस पश्चिम दिशाके—

सूक्ष्म = सूक्ष्मरूपसे अधिपति शासक राजाके समान
वरुण = वरुण नामके जलके राजाको—
देवता = अधिष्ठाता, देवता माने हैं, और जिभ्याके देवता भी वरुणको कहे हैं।

व्याख्या— इस प्राणमय कोशमेंका भीतरी स्थान-चक्र श्रीहट है, उसका निवास-स्थान छोटी जिभ्या (पड़जिभ्या) के ऊपरके द्वारमें शून्य जगहपर माने हैं। वहींपर ही पश्चिम दिशा कहा है। तथा शरीरके पीठकी तरफ पीछे भी पश्चिम दिशा कहा है, और उस दिशाके मालिक देवता सूक्ष्मरूपसे जलेश्वर वरुणको माने हैं ॥ ११ ॥

१०. पालन कर्म ऊर्ध शून्य निवास * श्वेत वर्णको कहिये भास ॥ १२ ॥

प्रथम सिर्जन कर्म था, दूसरा पालनकर्म है। १ अर्ध शून्य था, २ ऊर्ध शून्य है। १ पोतवर्ण था, २ श्वेतवर्णके भास कहे हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशका कर्मः—

पालन कर्म = पड़जिभ्याद्वारा लार झरते रहनेसे शरीरका बराबरसे जो पालन होता है, सो देह-रक्षकका काम करता है, यही यहाँपर मुख्य पालनकर्म है।
ऊर्ध शून्य = ऊपर तरफका शून्य खाली भाग जो है, सो इस देहमें श्रीहटके स्थानपर कहे हैं।
निवास = ध्यान, धारणासे उपासक लोग वृत्ति स्थिर करके, वहीं निवास या स्थिति करना चाहते हैं, समाधि लगानेवाले ऊर्ध शून्यमें ही रहते हैं।
श्वेत वर्णको = ध्यानमें वायु रोक देनेसे मोती-सरीखे सफेद रङ्गका प्रकाश जो हुआ, उसीको—
भास = झलक भासको देखके मगन हुए या होते हैं, वह जलतत्त्वका श्वेत रङ्ग है।
कहिये = ध्यान खुलने पर वे कहने लगे कि— ईश्वरका साक्षात्कार दर्शन हमको ध्यानावस्थामें हुआ। वे मिथ्याभासको ही सत्य कहते हैं। वह तो तेज और जलतत्त्वका रङ्ग है। कहिये ऐसे धोखेकी समझसे उन्होंका हित-कल्याण कैसे हो सकता है? कभी हो नहीं सकता है।

व्याख्या— और पड़जिभ्यासे लार झरते रहनेसे बराबर शरीरका पालन-पोषण होता है, वही पालनकर्म वरुणका कार्य कहा है, और ऊपरका शून्य भाग वहीं श्रीहटके स्थानपर ऊर्ध शून्य माना है। वहीं उपासक ध्यानी लोग, ध्यानादि करके अपना निवास-स्थिति कायम करना चाहते हैं, या करते हैं। जब ध्यानमें एकाग्रवृत्ति होती है, तब भीतर जलतत्त्वका रङ्ग मिश्रित मोती सरीखी सफेद रङ्गका प्रकाश भास होता है, या दीखता है। उसीको ईश्वर-परमात्माका इष्ट-दर्शन मानके मिथ्या धोखामें हो भूले पड़े हैं। बिना पारख ॥ १२ ॥

११. दीर्घ उच्चार यजुर सो वेद * जलतत्त्व समान करै परस्वेद ॥ १३ ॥

प्रथम ह्रस्व उच्चार था, दूसरा दीर्घ उच्चार है। १ सामवेद था, २ यजुर्वेद है। १ पृथ्वीतत्त्व था, २ जलतत्त्व है, जो समानरूपसे पसीना निकलता है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

दीर्घ उच्चार = शब्दका दीर्घ या बड़ी मात्रामें लम्बा उच्चारण होना, जैसे ईश्वरी, ऊर्मी, दीर्घ इत्यादि शब्द जानना। अथवा श्वास-वायुका नाभीसे त्रिकुटीतक, लम्बे वेगसे उच्चार होता है। उसको भी दीर्घ उच्चार कहते हैं।
यजुर सो वेद = क्षीरसागरनिवासी आदि नारायणके १० या २४ अवतारोंको ही सगुण ईश्वर ठहरानेवाला, सोई सिद्धान्त कायम करनेवाला दूसरा वेद जो है, सो यजुर्वेद इसमें माने हैं; अथवा यजुर्वेदके मन्त्रोंमें विशेषतः दीर्घ उच्चार आया है।
जलतत्त्व = इस कोशमें जल (पानी) सोई पतला तत्त्व माना है, द्रवत्त्व उसका धर्म है।
समान = इसीसे सो समानरूपसे शरीरमें—
करै परस्वेद = रोम-रोमद्वारा पसीना जो निकाला करता है या निकलता रहता है, सोई यहाँ मुख्य जलतत्त्वका भाग है।

व्याख्या— प्राणमय कोशमें, शब्दसे मात्राका दीर्घ उच्चारण जो होता है, वही दीर्घ-उच्चार कहा है। और श्वासको नाभीसे त्रिकुटी तक आतेमें स्वाँ-फाँ स्वाँ-फाँ ऐसा लम्बा उच्चारणको भी दीर्घ कहते हैं। और सगुणरूपसे नारायण-परमेश्वरको २४ या १० अवतार लेके दुष्टोंका संहार और भक्तोंका पालन करनेवाले वे ही सगुण ईश्वर हैं, ऐसा सिद्धान्त ठहरानेवाला दूसरा इसमें यजुर्वेद माने हैं, और इसमें-का मुख्य तत्त्व सोई जलतत्त्वका भाग पतला कहा है। शरीरमें समान—विशेषरूपमें रोम-रोमसे गर्मीमें उष्णता पायके, जो पसीना निकलता है, सो जलतत्त्वका अङ्गरूप भाग है ॥ १३ ॥

१२. उपदिशा नैऋत्य बखान ❀ नैऋत्य देव तहाँ पहिचान ॥ १४ ॥

प्रथम ईशान्य उपदिशा था, दूसरा नैऋत्य उपदिशा है। १ शिवदेवता था, २ नैऋत्य ही देवता है। ऐसे गुरुवा लोगोंने पहिचान किये, कराये हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

उपदिशा = इस कोशमें दूसरी तरफकी दिशा-का कोना—

नैऋत्य = दक्षिण और पश्चिमका कोनाको माने हैं। और देहमें पीठ तरफके दाहिना कोखमें मानके—

बखान = ऐसा वर्णन करते हैं कि— इसमें नैऋत्यकोण उपदिशा है; और—

नैऋत्य = उस दिशामें नैऋत्य नामका ही अधिपति महाराजाके समान—

देव तहाँ = देवता वहाँ पर मालिकरूपसे रह रहा है, या रहता है। उसीकी सत्तासे वहाँ-का सब-कार्य चलता है, ऐसा कल्पना करके कहे हैं।

पहिचान = शास्त्र प्रमाणसे, यह दिशा, वहाँके अधिष्ठाता देवता आदिको कहा गया है, सो वाणीजाल है, निर्णयसे उसे पहिचान लो; यानी ठीकसे पहिचानके जान लेना चाहिये।

व्याख्या—और दूसरी दिशा, इसमें दक्षिण-पश्चिमके कोनाको नैऋत्य माने हैं। तथा नैऋत्य-नामका ही देवता भी उस दिशाका मालिक है। ऐसा गुरुवा लोगोंने वर्णन करके पहिचान बताये हैं। इसको कल्पना ही जानिये। सत्संगद्वारा सत्यासत्यको परखकर पहिचान लीजिये ॥ १४ ॥

१३. वायु उदान झाँझको नाद ❀ मठाकाश जहाँ है अनाहाद ॥ १५ ॥

प्रथम अपानवायु था, दूसरा उदानवायु है। १ तन्तीनाद था, २ झाँझका नाद है। १ घटाकाश था, २ मठाकाश है। जहाँ अनहद बाजा बजता रहता है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

वायु उदान = यह कण्ठ स्थानमें रहनेवाला वायु है, यह हितानाड़ीके कार्यमें सहायता पहुँचाता रहता है।

झाँझको = झाँझ बाजाके सरीखी ही झन्न, झन्न, झमझमाहट स्वर शब्द जो होता है—

नाद = सो उदानवायुका सूक्ष्म शब्द नादरूपसे ध्यानमें अनाहद शब्द सुननेमें आता है, ऐसा माने हैं।

मठाकाश = मठमें रहनेवाला आकाश है। यहाँ श्वासमें मनको जोड़के, वह लय हुये बाद भावनाके मूर्त्तिका प्रकाश या गोलाकार-प्रकाशको देखना, सोई स्थिरताको मठाकाश माने हैं।

जहाँ = मस्तकमें जहाँपर ध्यानियोंकी वृत्ति एकाग्र हो जाती है, तो लक्ष ठहरके शान्त, शून्य होने पर—

है अनाहाद = अनाहद ध्वनि, घंटा, शंख, मृदङ्ग, झाँझ, सहनाई आदि १० प्रकारके बाजाओंमें-से किसी एकमें लक्ष लगाके सुनते हैं, उसीको अनहद शब्दरूप ब्रह्म सत्य है, करके माने हैं। जिसका हद्द नहीं, सो बेहद्द वा अनहद्द ब्रह्म कहा है।

व्याख्या—प्राणमय कोशमें कण्ठस्थानमें रहनेवाला सूक्ष्म उदानवायुको पिण्ड-कलामें कहा है। वह उदानका कर्म कंठमें नाड़ियोंद्वारा अन्न-जलको बायें तथा दाहिने अङ्गमें पहुँचाय देना। हितानाड़ीमें

मिलके स्वप्नादि भास देखानेका कार्य करता रहता है। उसका सूक्ष्मनाद ध्वनि झाँझके सरीखी माने हैं, और मठमें रहनेवाला आकाश जो है, सोई मठाकाश है। यहाँपर श्वासमें लक्ष लगाके वृत्ति एकाग्र करनेपर, गोलाकार प्रकाशरूप मूर्ति देखना, तथा श्वासके भीतरके पोलको मठाकाश माने हैं। जहाँ ब्रह्माण्डमें १० प्रकारके बाजा, सूक्ष्म अनहद ध्वनि बज रही है, तहाँ-झाँझ, शंख, आदिकी ध्वनि सुनाई देती है। उसे ध्यानी लोग कान बन्द करके सुनते हैं। उसको शब्दब्रह्म भी माने हैं॥ १५॥

१४. श्याम-रक्त रङ्ग कमल प्रकाश ❀ मार्ग विहंगम भक्ति तन दास॥ १६॥

प्रथम रङ्ग पीत-रक्त था, दूसरा श्याम-रक्त रङ्ग कमलका प्रकाश है। १ मार्ग पपील था, २ मार्ग विहंगम है। १ कर्म था, २ दासातन भक्ति है॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

कमल = कण्ठमें षोडशदलका कमल या हृदय-कमलमें—

श्याम-रक्त = काला और लाल मिला हुआ, लाल कालावाला कमल पत्रका रङ्ग—

रङ्ग = और ऐसे ही रङ्गरूपका इष्ट देवताके—

प्रकाश = मूर्तिका स्वरूप आगे सन्मुखमें प्रकाश प्रत्यक्षरूपसे ध्यानमें देखनेमें आता है, ऐसा माने हैं।

मार्ग = इस कोशका रास्ता, भक्तिरूप उपासना-मार्ग ऐसा है कि—

विहंगम = जैसे पक्षी रातमें, एक डगाली पर शान्त होके बैठके विश्राम करता है। तैसे ही यहाँ हृदयमें मन ध्येयरूपमें स्थिर हो जाना माने हैं, और फिर दिन होनेपर, पक्षी उड़ जाता है। शीघ्रही वेगसे जहाँ-तहाँ पहुँचता है, तैसे ही वृत्ति बाहर होनेपर, चञ्चलता होना, मानसिक ध्यानसे उड़ जाना, बाह्य प्रवृत्तिमें लगना, सो विहंगम मार्ग है।

भक्ति तन = दास = इष्ट परमेश्वरको सर्वस्व अर्पण करके, दासत्वभावसे, दासातन भक्ति करना, या अनन्य निष्ठाकी भक्ति करना, उपासना मार्गमें कहा है।

व्याख्या—और उपासकोंको ध्यानमें हृदय और कण्ठ कमलका रङ्ग काला वा लाल मिश्रित प्रकाशरूपमें भासता है, तैसे ही इष्टदेवकी कल्पित मूर्ति भी देखनेमें आती है। वे उस मिथ्या भासको ही सत्य कहते हैं। इसका विहंगम मार्ग कहे हैं, सो चिड़िया रातमें शान्त हो, डालीमें बैठे सरीखी, ध्यानावस्थामें वृत्ति हृदयमें स्थिर होना, और जाग्रत होनेपर चञ्चल होना, ऐसा माने हैं; फिर ईश्वरके दास-भावसे नवधा भाव-भक्ति करके भक्तलोग मुक्ति माने हैं। परन्तु सो मनके मिथ्या धोखा ही है, बिना पारख भूले पड़े हैं॥ १६॥

१५. धूमीं कला लोक वैकुण्ठ ❀ ऋचा वामदेव आकुण्ठ॥१७॥

प्रथम ऊर्मीकला था, दूसरा धूमीकला है। १ सत्यलोक था, २ वैकुण्ठलोक है। १ अद्वैत ऋचा था, २ वामदेव ऋचा है, जो गुप्त कहा है॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें, ध्यानियोंको प्रथम—

धूमीकला = ध्यानमें धुवाँ सरीखी प्रकाश कुहिरा, भाफके नाईं देखनेमें आया, उसीको कल्पना करके ईश्वरका धूमीकला माने हैं।

लोक वैकुण्ठ = विष्णुका लोक वैकुण्ठ है। देहमें जहाँ वैखरी वाचा बन्द होके, ध्यानमें आनन्द हुआ, सो तहाँ वैकुण्ठलोक माने हैं।

ऋचा = यजुर्वेद आदि वेदके मन्त्ररूप ऋचामें ऐसा कहा है कि—

आकुण्ठ = गुप्त रीतिसे संसारमें भक्ति करनेवाले भक्तलोग पुण्यके प्रतापसे, स्वर्गादि लोकोंमें गुप्त रीतिसे ही देवयान मार्गसे जाते हैं, और सब सूक्ष्म भोगोंको भोगकर फिर उस लोक-से भी गुप्त होके—

वामदेव = पुण्य-क्षय होनेके बाद, मृत्युलोकमें वापिस आके शरीर धारणकर प्रगट होते रहते हैं, ऐसा माना है। "क्षीणे पुण्ये मर्त्य-लोकं विशन्ति" ऐसा कहा है। वही वामदेव ऋचाका अर्थ है।

व्याख्या— प्राणमय कोशमें धूमीकला कहिये, ध्यानमें धूवाँवत् या कुहिरें-माफवत् झीनी प्रकाश देखके कल्पनासे उसीको ईश्वरका स्वरूप माने हैं। तथा वैखरी वाणी बन्द होके, होनेवाला आनन्दको ही यहाँपर वैकुण्ठ लोकका सुख माने हैं। और उपासना, काण्डकी वेदकी ऋचारूप मन्त्रमें कहा है कि, जो कोई मृत्युलोकमें गुप्तरीतिसे परमात्माकी भक्ति, उपासना, नामस्मरणादि अनन्य निष्ठासे करते हैं, सो पुण्यके प्रतापसे, देह छूटनेके बाद, गुप्त देवयान मार्गसे विमानमें चढ़के. स्वर्गलोकादिमें जायके, वहाँ-पर खूब सुख भोगते हैं। फिर पुण्य-क्षय होनेके पश्चात्, वे फिर स्वर्गलोकादिसे लौटके औंधेमुँह गिरके पूर्वस्थल मृत्युलोकमें ही आयके शरीर धारणकर, उत्तम कुलमें प्रगट होते हैं।

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति ॥ भ० गीता ९ + २१ ॥

ऐसा गीतामें भी कृष्णने कहा है। वही मतलब 'आकुण्ठ वामदेव ऋचाका' है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १७ ॥

१६. सूक्ष्म विषय भोग तहाँ जान * गुप्त मुद्रा उन्मीलनि मान ॥ १८ ॥

प्रथम स्थूल विषयोंका भोग था, दूसरा सूक्ष्म विषयोंका भोग है। १ गुप्तमुद्रा सन्मुखी था, २ उन्मीलनि गुप्त मुद्रा माने हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें ध्यानियोंको प्रथम—

तहाँ = प्राणमय कोशमें और वैकुण्ठ, ईश्वरदि-लोकमें—

सूक्ष्म = सूक्ष्मदेहसे सूक्ष्म ही अदृश्य—

विषय = पञ्च विषयोंका अनहद शब्द, ज्योति-प्रकाश, आनन्द, अमृतरस, कमलगन्धके—

भोग = स्वप्नवत् उपभोग होता है, तो बड़ा भारी सुख, परमानन्दका विलास होता है—

जान = ऐसा जान लीजिये, कहे हैं, सो स्वप्नवत् मिथ्या भोग है। परन्तु यही बन्धनोंका कारण सूक्ष्म बीज है।

उन्मीलनि = आधे नेत्रके पलक खुले रखना, और आधे पलक ढाके रखना, इस प्रकार दृष्टि स्थिर कर एकलक्ष करके ध्यान करना, इसको—

गुप्त = भीतरी भागके सूक्ष्म या गुप्त अदृश्य—

मुद्रा = मन एकाग्र करनेका साधनारूप गुप्त-मुद्रा बड़ी अच्छी है, ऐसा—

मान = गुरुवा लोगोंने माने हैं। परन्तु सो मनकी कल्पना नर-जीवोंको निजपदसे भटकाने-वाला, विकार-बीज ही है। ऐसा गुरुपारखसे निर्णय करके जानिये।

व्याख्या— और उस स्वर्गादि लोकोंमें, सूक्ष्म देहसे सूक्ष्म पञ्च-विषयोंका भोग होनेका माने हैं। सब प्रकारसे वहाँ सूक्ष्म विषय-भोगोंका कथन किये हैं। इसमें गुप्त मुद्रा उन्मीलनि, आधा नेत्र खुले रखके ध्यान करनेको माने हैं, निश्चय करके जानिये कि, यह सब अध्यास जीवोंको बन्धन ही देनेवाला है। गुरुवा लोगोंने बड़े भारी भ्रमबन्धनमें जीवोंको डाल रखे हैं ॥ यह भावार्थ है ॥ १८ ॥

१७. झीनी नागवायु अनुरूप * मन मन्तव्य सङ्कल्प स्वरूप ॥ १९ ॥

प्रथम झीनी वायु देवदत्त था, दूसरा नागवायु है। १ अहंकर्तृत था, २ मनमन्तव्य है। संकल्प करना ही उसका स्वरूप है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

झीनी = सूक्ष्मरूपसे देहमें रहा हुआ ब्रह्माण्ड कलाकी झीनीवायु, जो है सो—

नागवायु = डकार आनेवाला, या उद्गार निका-लनेवाला, जलतत्त्वका अंशरूप, सूक्ष्म यह नागवायु है।

अनुरूप = अणुरूपसे आँतोंमें या कंठके नीचे नागवायु रहता है। सो सूक्ष्मस्वरूप ही उसे जानिये।

मन मन्तव्य = मनका स्वभाव कुछ न कुछ मानन्दी करते रहना होता है, उसे ही मनकी मन्तव्य, दृढ़ता या निश्चय कहते हैं—

संकल्प = जो संकल्प-विकल्पमें चलायमान होते

रहना, चञ्चलता होते रहना, तथा स्फुरणा उठा करना, सोई संकल्प है।

स्वरूप = यही मनका स्वरूप है, यानी संकल्प-विकल्प करते रहना ही सूक्ष्म मनका स्वरूप है।

व्याख्या— प्राणमय कोशमें, ब्रह्माण्डकी झीनी नागवायुसे डकार आती है। यह अणुरूपसे देहमें रहता हुआ काम करता है। इसीसे वह सूक्ष्म स्वरूपवाला कहलाता है। उसे ब्रह्म भी माना है। वेदका योगमार्ग, इसीसे प्रगटा है। योगीजन इसी वायुके आधारसे, जिभ्या उलटाय, अमृत-पान करते हैं। अर्थात् लारको ही अमृतकारूप मानके चाखते हैं, और मनसे संकल्प-विकल्प करके कोई एक मानन्दी दृढ़ करना, यही उसका संकल्प वा मन्तव्यस्वरूप है ॥ १९ ॥

१८. भूमि गतागत प्राग अभाव ❀ सूक्ष्म देहके कहै स्वभाव ॥ २० ॥

प्रथम छिप्राभूमिका था, दूसरा गतागत भूमिका है। १ प्रध्वंश अभाव था, २ प्राग अभाव है। यही सब सूक्ष्म देहके स्वभाव कहे हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

भूमि = और प्राणमय कोशमें सूक्ष्मदेहकी भूमिका या स्थितिकी जगह, ऐसा है कि—

गतागत = वासना, वायुरूप, सूक्ष्म देह रहनेसे, मृत्यु होने पर स्थूल देह छोड़कर, गुप्त हो जाना, फिर समय पायके देह धारण कर, जन्म लेके बाहर प्रगट हो आना, ऐसा आवागमनका सामर्थ्य उसमें रहता है।

प्राग अभाव = और वासना बीजरूपसे बना रहना, फिर समयान्तरमें भोग होना, किन्तु-अभी अभाव गुप्त होके रहना, ऐसा जो होता है, सोई प्राग अभाव है।

सूक्ष्मदेहके = इस कोशकी ६ तत्त्वरूप सूक्ष्मदेहकी सब मुख्य-मुख्य सूक्ष्म भाग—

स्वभाव = लक्षण, अङ्ग, प्रकृति और सम्पूर्ण स्वाभाविक धर्म—

कहै = निर्णयसे वर्णन करके कहा गया है, यही सूक्ष्म देहकी प्रकृतिका स्वभाव कहलाता है।

व्याख्या— और सूक्ष्मदेहरूप भूमिकामें, जो वासना बीज ठहरी है, उसीसे 'गत' कहिये—स्थूल देह छोड़के चले जाना। फिर 'आगत' कहिये—देह, धारण करके जन्म लेकर चले आना। ऐसे उसमें गतागत भूमिकाकी शक्ति है। तथा वासनाके बीजको अन्तःकरणमें ठहरा रहना; परन्तु जमीनमें पड़ा हुआ बीजवत् देखनेमें वृक्षका तो अभाव दीखता है, किन्तु देहरूप वृक्ष और भोग समय पायके उसीमेंसे प्रगट होते हैं, उसको 'प्राग अभाव' कहते हैं। श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— यही सूक्ष्म देहके सब स्वाभाविक धर्म हैं, सो निर्णय करके मैंने कह दिया हूँ, अब आप लोग भी विचार करके इसके रहस्यको समझ लीजिये! ॥ २० ॥

छन्दः—ज्ञान इन्द्री पाँच औ ❀ अन्तःकरण मन आदि दै ॥
[४] सूक्ष्म पाँचों तत्त्व औ ❀ प्रकृति सबै देवादि दै ॥ [यह आधा छन्द है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

ज्ञान इन्द्री = जिन इन्द्रियोंकेद्वारा, पञ्च-विषयोंका ज्ञान मालूम होता है, वे ज्ञान इन्द्रियाँ हैं; वे—

पाँच = कर्ण (कान), त्वचा, नेत्र, जिभ्या और नासिका, ये पाँच हैं।

औ = और भीतरके दूसरे—

अन्तःकरण = अन्तःकरण, चित्त, बुद्धि, अहंकार एवं—

मन = मन समेत एकत्र करके—

आदि दै = इत्यादि उसीमें मिला दीजिये, तथा—

सूक्ष्म पाँचों तत्त्व = पाँचों तत्त्वोंके सूक्ष्म भागरूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें पाँच विषय—

औ = और उसी पाँच तत्त्वोंकी—

प्रकृति = सूक्ष्म देहकी पचीस प्रकृतियाँ, तथा—

देवादि = चौदह देवता इत्यादि सूक्ष्म भाग—

सबै = उन सबहीको—
दै = इस प्राणमय कोशमें मिला दिया गया है । अथवा इन सबोंको एकत्र मिलाय दे करके, फिर नाना प्रकारकी कार्य विस्तार करते हैं ।

व्याख्या—प्राणमयकोशके सारांशमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँः—श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका है । और अन्तःकरण, चित्त, अहंकार, मन, बुद्धि ये पाँच समेत रहते हैं । तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यही सूक्ष्मभाग तत्त्वोंके स्वरूप पाँच तत्त्वोंके भाग हैं, इससे वही सूक्ष्म पाँच तत्त्व हैं । और पाँच तत्त्वोंके सूक्ष्म २५ प्रकृतियाँ कही गई हैंः—आकाश तत्त्वरूप समान वायुकी ५ प्रकृति हैं, सोई अन्तःकरण पञ्चक ऊपर लिखा है । चञ्चल वायुकी ५ प्रकृतिः— व्यान, समान, उदान, प्राण और अपान है । तेजतत्त्वकी ५ प्रकृतिः— सोई पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ऊपर लिखी हैं । जलतत्त्वकी पाँच प्रकृतिः—सोई पञ्च-विषय ऊपर लिखा है । और पृथ्वीतत्त्वकी पाँच प्रकृतिः—मुख, हाथ, पाँव, लिंग और गुदा है । ऐसे एक-एक तत्त्वके पाँच-पाँच भाग मिलके २५ प्रकृतियोंका सूक्ष्म देह हुआ है; और चौदह देवताओंके नाम, प्रथम ही अन्नमय कोशमें लिख आये हैं । सो वही १४ देवतादि इन सबोंको एकत्र मिलायके, प्राणमय कोशका विस्तार हुआ है ॥ अह आधा छन्दका भावार्थ है ॥

व्यवहार देवनि सूक्ष्म कीन्हा ❀ देखु हृदय विचारिकै ॥
यम जाल खानि कलेश है ❀ प्रेतादि योनि संचारिकै ॥ २१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस प्राणमय कोशमें—

सूक्ष्म = सूक्ष्मतत्त्व, प्रकृति इन्द्रिय गोलकोंद्वारा जीवकी सत्तासे—
व्यवहार = शरीरमें जो देखना, सुनना, चलना, फिरना, नानाकार्य करना, इत्यादि तरहसे, सो अपने-अपने कार्यमें प्रकृतियोंका चलना; यह व्यवहार स्वयं होरहा है । परन्तु उसको गुरुवा लोग क्या कहते हैं कि—
देवनि = १४ देवतोंकी शक्तिसे ही इन्द्रियोंके कार्य होते हैं, या हो रहे हैं । जब वे देवता देहमें प्रवेश करते हैं, तभी व्यवहार होता है ।
कीन्हा = ऐसा कल्पित कथनका मिथ्या वर्णन भ्रमिक लोगोंने किये हैं, और कर रहे हैं ।
हृदय = ग्रन्थकर्ता कहते हैं—अब हे जिज्ञासु मनुष्यो ! अपने अन्तःकरण या हृदयमें आप-लोग इस बातको बील छानकर—
विचारिकै = यथार्थ सत्यसत्यका विचार-विवेक करिये ! और—
देखु = पारखदृष्टि खोलकर देख लीजिये ! (तब साँच-झूठका पहिचान आपको भी मालूम पड़ जायगा) ।
यम = जो जीवोंको बन्धनमें डाले, सो यम है, यहाँ-पर भ्रमिक गुरुवा लोगोंके जमाया हुआ—
जाल = विषय जाल, और वेदादि कल्पित वाणी, सोई जीवोंको फँसानेका बड़ा जाल या बन्धन है । उस जालमें फँसे हुए लोग—
प्रेतादि = भूत, प्रेत, देवता, सिद्ध इत्यादिकोंको—
योनि = अलग-अलग, खानी, देहधारी, शक्तिमान् मानके कल्पनामें पड़े हुए तामसी लोग इन्हींकी उपासना, भक्ति-भावना, करते रहते, हैं । अतः शरीर छूटनेपर, वे जड़ाध्यासी जीव सब नानायोनियोंमें जाके गिर पड़ेंगे ।
संचारिकै = उसी जड़ाध्यास वासनाको, लेकरके जीव देहसे निकले । सञ्चार-चलनगति या आवागमनको कहते हैं । फिर—
खानि = पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें जायके कर्मानुसार देह धरके—
कलेश है = नाना कष्ट, क्लेश, त्रयतापादि दुःख भोगोंको पाते हैं । वही अध्यास ही तीन खानीमें क्लेशभोगानेका कारण बीज है । उसी-से चार खानीमें जीव दुःख भोगते रहते हैं ।

व्याख्या— इसमें गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं कि-- ईश्वरके शक्तिसे चौहद देवतायें, शक्तिमान होकर शरीरमें सूक्ष्मरूपसे सूक्ष्म देह इन्द्रियोंमें निवास किये हैं, उन्हींसे ही देहेन्द्रियोंका अच्छी तरहसे व्यवहार होता है या हो रहा है । सो यह कथन तो कल्पना ही है, किन्तु शरीरमें चैतन्य जीवकी सत्ता-से ही सारा व्यवहार होता है, यह बात प्रत्यक्ष है । हे मुमुक्षु मनुष्यो ! आपलोग हृदयमें विचार करके

देखिये कि, ये गुरुवा लोगोंकी बात १४ देवताओंद्वारा देह, व्यवहार चलनेकी सरासर मिथ्या है। क्योंकि, वास्तवमें तो माने हुये १४ देवतादि, सब ही कल्पनामात्र हैं। यथार्थ बात तो ऐसी है कि, देहमें चेतन-जोवकी सत्ता-संयोगसे तत्त्वोंकी कलामें, शक्ति पहुँचके, इन्द्रियाँ, प्राण आदिकोंका व्यवहारकर्म स्वाभाविक रीतिसे होता है या हो रहा है। ऐसा निर्णयसे जानिये। और गुरुवा लोगोंकी कल्पित वाणीजाल और खानीजाल, यही जीवोंको दृढ़ बन्धन है, देह रहे तक नाना साधनामें लगके भ्रमिक लोग मिथ्या भूत, प्रेत, देवता, सिद्ध, ईश्वरादि कल्पनासे मान-मानके नानाकर्म-कुकर्ममें भूले और दूसरोंको भी भुलाये वा भुला रहे हैं। फिर देह छूटने पर वही अध्यास वासनाके वशीभूत हो, जीव सब तीन खानियोंमें जाय-जायके, दुःख भोगते रहते हैं। अतएव खानोमें पञ्चक्लेश सहित तीनों ताप भोगनेका, बीज या कारण, खानी-वाणीकी अध्यासको ही जान लीजिये। सो पारखी सद्गुरुके सत्संग करके छोड़ना चाहिये, तभी मुक्ति मिल सकेगी। अर्थात् यमजालमें पड़े हुयेको खानीका कष्ट-क्लेश लगाही हुआ है। मुर्दाको-प्रेत कहते हैं, तो देह छूटनेपर फिर आदि=शुरूके चार खानियोंकी नानायोनियोंमें जायके, चक्रमें पड़के, दुःख भोगा ही करते हैं, बिना पारख ॥ यह भावार्थ है ॥ २१ ॥

दोहाः— स्थूल सो सूक्ष्म अङ्ग है ❀ उलटि पलटि अरुझाय ॥
[४] शब्द कला होय परखिले ❀ नहिं तो यमपुर जाय ॥ २२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो !

स्थूल=पाँचतत्त्वके प्रत्यक्ष, दृश्य-भाग, यह स्थूल देह जो है, सो वृक्षरूप है।

सो=सोई स्थूल देहका—

सूक्ष्म=सूक्ष्म या झीनी भाग बीजरूपसे सूक्ष्म देह बना है। अतः यह सूक्ष्म देह भी उस स्थूल-देहका ही एक अंग है।

अङ्ग है=सो स्थूलका ही एक मुख्य अङ्ग होनेसे, सूक्ष्म बीजमें भी सब विकार भरा ही पड़ा है।

उलटि-पलटि=उलटके स्थूलसे सूक्ष्म होता है, और फिर पलटकर सूक्ष्मसे स्थूल बन जाता है, ऐसे उलट-पलटके दोनोंका सम्बन्ध बना रहता है, उसीमें—

अरुझाय=जीव सब जड़ाध्यासी हो, बिना पारख पुनः-पुनः अरुझ-अरुझके बन्धनमें जकड़े हैं, और अभी भी सब उसीमें फँस रहे हैं। दूसरोंको भी घेरघारके फँसा रहे हैं। इसीसे सब अरुझाये हुये हैं।

शब्दकला=गुरुवा लोगोंके वाणीके कला कल्पनासे साधक लोग, उपासना, योगादिसे वायुमें तेजतत्त्वोंका होनेवाला प्रकाश या आनन्दका भास देखकर, उसे ही निज या ईश्वरका स्वरूप मानके धोखामें भूले हैं। तथा स्त्रियोंके विषय शब्दमें भी वैसे ही भूलके—

होय=आसक्त, मोहित, गाफिल, जड़ासक्त होयके, महाबन्धनमें पड़ रहे हैं। सो पारखी-सद्गुरुके शरणागत होयके—

परखिले=हे नरजीव तू ! उक्त शब्दकला, वाणी, खानी जालोंको गुरुमुखवाणी सारशब्दका नित्य विचार करके पारख दिव्यदृष्टिको खोलकर, साँच-झूठका यथार्थ पारख करले, तो बन्धनसे छूटकर मुक्त हो जायगा, सुखी हो जायगा।

नहिं तो=यदि ऐसा पुरुषार्थ नहीं किया, तब तो तुम अवश्यमेव जगत्जालमें फँसके, अध्यासी बन, देह छूटनेपर—

यमपुर=गर्भवासके नगर या नानायोनि गर्भ-वासके कैदमें, मनमें जमा हुआ वासना संस्कारमें बद्ध होकर—

जाय=उसी जड़ाध्यासवश चला जायगा। कभी छुटकारा नहीं पायगा। इसलिये अभी चेत करो, बचनेका उपाय करो।

व्याख्या—प्राणमय कोशके वर्णनमें यह आखिरी दोहा है। इसमें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— स्थूलसे सूक्ष्म और सूक्ष्मसे स्थूल, ओत-प्रोत है। जैसे बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज, उत्पन्न होता ही

रहता है। वह अभिन्न एकही अंग या भाग-विभाग माना जाता है। तद्वत् स्थूल देहका विकार भाग, सो सब भी सूक्ष्म देहमें मौजूद रहता है। सूक्ष्म देह स्थूल देहका ही एक बारीक बीजरूप अङ्ग है। उससे विकार न्यारा नहीं है। इस कारण कर्म या उपासनामें, खानो और वाणीमें कर्मी वा विषयी लोग और उपासक भक्तजन उलटाय-पलटायके, गेंदके नाईं इधरसे-उधर और उधरसे-इधर विषयभोगसे उपासनामें और जड़ उपासनासे विषयभोगोंमें भटक-भटककर वे सब बन्धनमें ही अरुझाये हुए हैं, तथा अरुझाये जा रहे हैं। और किसीको जो भ्रमपूर्ण शब्दकलामें मोह होता है, सो महाअज्ञानमें गरगाफ होता है, तभी तो गुरुवा लोगोंके कहे प्रमाण योग-ध्यानादि साधना करते हैं। तब मन-पवनके रगड़ होनेसे, वायुमें तेजतत्त्वका होनेवाला प्रकाश या आनन्द, अनुभव करके उसी भासको, जीव-ईश्वरका साक्षात्कार वा तदाकारस्वरूप मानके महाधोखामें पड़ गये हैं। वह तो तत्त्वोंका भाग जड़ भासमात्र है, ऐसा बिना पारख जानते नहीं हैं। अतएव हे मुमुक्षु जीवो! यदि तुम बन्धनसे छूटना चाहते हो, तो पारखी सद्गुरुके शरणागत हो, गुरुमुखवाणी या सारशब्दको मनन करके ग्रहण करो, सब कला, कल्पना विषयोंको परखकर त्याग करो। तब तो यह बन्धनसे छूटकर तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे, नहीं तो जड़ाध्यासमें बँधे हुये नानायोनि, गर्भवासके कैदमें ही चले जाओगे। सो अच्छी तरहसे जान लीजिये! अर्थात् सूक्ष्म भी स्थूलका ही एक अङ्ग है। उसीमें उलट-पलटके जीव सब अरुझाये पड़े हैं। पारखी होके शब्दकलाके परीक्षक बन, उसे परख करके जान लो, भ्रमको त्यागो। नहीं तो पारख बिना जड़ाध्यासी होके, यमपुर=गर्भवासमें ही चले जाओगे, दुःख भोगोगे, ऐसा जानलो॥ यह भावार्थ है॥ २२॥

॥ ❀ ॥ इति श्री मूल पञ्चग्रन्थीके पञ्चकोश अन्तर्गत द्वितीय प्राणमय कोशका शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित समाप्तः॥ २॥ ❀ ॥

॥ ❋ ॥ अथ तृतीय मनोमय कोश वर्णनम् प्रारम्भः ॥ ३ ॥ ❋ ॥

छन्दः—कोश मनोमय रङ्ग बहुत ❀ तरङ्ग मुनि व्याकुल भये॥
[५] जग जीव पामर खानि ❀ तीनों कोश तिन गिनती किये॥

सम्बन्ध—इसी छन्दसे मनोमय कोशका भाग शुरू होता है॥ [यह आधा छन्द है।]

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब इस मनोमय कोशके तीसरे भागका वर्णन करके कहते हैं कि—

मनोमय=मनके आकारस्वरूप सोई तीसरा कोश है; तहाँ मनसे मानन्दी किया कि, कोई एक जगत्का कर्ता परमात्मा, प्रकाशरूप सर्वत्र व्यापक है, और सुख-दुःखका दाता भी वही है—ऐसे मनका स्वरूप वही कल्पनाके विस्तारवाला—

कोश=आवरण पर्दारूप ढकनसे ढाकनेवाला, यह तीसरा मनोमय कोश है।

रङ्ग=तब उसके रङ्गरूप नशा चढ़ायके, योगीलोग भ्रमिक भये और इसके सिद्धान्तका रङ्ग—

बहुत=वाणी कल्पनाका विस्तार बहुत ही ग्रन्थ-पन्थ आदि गुरुवा लोगोंने तैयार किये हैं।

तरङ्ग=और उसी वाणीके भ्रम-तरङ्ग या धोखाके लहरी कल्पना प्रवाहमें बह-बहके—

मुनि=ऋषि, मननशील मुनि, बड़े-बड़े सिद्ध, साधक आदि सब भी मन-मानन्दीमें पड़के बिना पारख—

व्याकुल=कल्पित ईश्वरादि प्राप्तिके लिये आशा, वासना बढ़ाकर व्याकुल, घबराहट या साधनोंमें बड़े दुःखी भये।

भये=ऐसे ही व्याकुल पूर्वमें हुये, और अभी हो रहे हैं।

जग=जगत् या संसारमेंके देहधारी—

जीव=अज्ञानी नरजीव या मनुष्य जो हैं, सो—

खानी = स्त्री, पुत्र, धन, घर, पंचविषय, भग-भोग आदिमें लगके—

पामर = पशुवत् विशेष आसक्त, पामर, अविचारी, अनाचारी हो रहे हैं। धर्मबुद्धिसे रहित, विषयासक्त अविचारी, मनुष्यको पामर कहते हैं।

तिन = उन विषयीलोगोंने या उन्होंने संसारमें मुख्य, स्थाई, सुखदाई मानके—

तीनोंकोश = अन्नमय, प्राणमय, और मनोमय यह तीनों कोशोंको और कर्म, भक्ति, योगको वा त्रिगुण-मायाको ही—

गिनती = सत्यस्वरूपमें गणना या हिसाब गिनती करके ठहराये हैं कि, तीनोंकोश सत्य हैं, और—

किये = इसका वर्णन भी बहुत प्रकारसे उन्होंने किये हैं, तो वे इसीमें भूल रहे हैं। अथवा पामरलोगोंको समझानेके लिये यह तीनोंकोश ऋषि, मुनियोंमें गिनती करके बतलाये हैं।

व्याख्या— अब यह तृतीय मनोमय कोशको वर्णन करनेके पूर्व, इस छन्दमें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस मनोमय नामके तीसरे कोशका आवरण पर्दा या ढक्कन, नर-जीवोंपर इस प्रकार पड़ा है कि— कोई एक जगत्कर्ता परमेश्वर होगा, वह जड़, चेतनमें सर्वत्र व्यापक है, ऐसा मनसे कल्पना या मानन्दी करके उसी कल्पनाके रङ्गमें दिवाने हुये हैं। तब गुरुवा लोगोंने वेद, शास्त्रादि वाणी नाना ग्रन्थ-पन्थादि बनाये, फिर बहुत लोग उसी भ्रमके तरङ्गमें वहने लगे। प्रथम ऋषि, मुनि, तपस्वी आदि जो-जो हुये, वे भी बिना पारख ईश्वर प्राप्तिकी कल्पनासे, नाना साधनायें करके व्याकुल, दुःखित हुये, और जगत्के पामर नर-जीव सब तो विषयोंमें अति आसक्त पड़े ही हैं। जब भोगोंमें दुःख आजाता है, तब वे भी ईश्वर, खुदा आदिकी पुकारा करने लग जाते हैं। अतः विषयासक्त पंडितोंने अन्नमय कोश, प्राणमय कोश और मनोमय कोश ऐसे तीन कोशोंको ही सत्य गिने हैं, इसीके घेरेमें अपने सहित सब जीवोंको कैदकर रखे हैं। इन अज्ञानी पामरोंकी तो बात ही क्या कहना ?॥ यह आधा छन्दका भावार्थ हुआ॥

छन्दः— ब्रह्मादि शिवको चित्त क्षोभ्यो * आदि कारण चाहहीं ॥
सो खानि कष्ट कलेशमें * आशा धरै पछतावहीं ॥ १ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस मनोमय कोशका तीसरे भागका, वर्णन करके कहते हैं कि—

ब्रह्मादि = और ब्रह्मा, विष्णु, नारद, शारदा और सनकादि ज्ञानी, तथा भक्तजन इत्यादिकोंके मनमें तथा—

शिवको = महादेवको, बड़े-बड़े योगी-ऋषियोंको और योगी शिवगणोंको भी यह भावना हुई कि—कल्याणकर्ता कोई एक परमेश्वर सत्य होंगे।

चित्त = ऐसा मानन्दी करके अन्तःकरणके एक भाग चित्तमें उन्होंके भी—

क्षोभ्यो = तीव्र इच्छा-स्फुरणा या कल्पनासे चञ्चलता उत्पन्न हुई—

कारण = अतः कार्यजगत् दीख रहा है, तो इसका भी मूल कारण, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ, सो—

आदि = प्रथमारम्भमें सृष्टिका उत्पन्नकर्ता परमेश्वर आदिकारण कोई होगा, उसीके प्राप्तिसे हमारी गति-मुक्ति होगी (ऐसा भ्रमसे निश्चय करके), वे सब—

चाहहीं = कल्पितकर्ता ईश्वरकी प्राप्ति करना या साक्षात्कार करना चाहते हैं। यानी आदि कारण माना हुआ परमात्मासे मिलना चाहते हैं। परन्तु—

सो = माना हुआ ईश्वर, सो तो कल्पनामात्र ही है, कोई सत्य वस्तु तो नहीं है, तथापि सोई ईश्वरादि प्राप्तिकी चाहना करते हैं—

आशा = और चार मुक्ति, चार फलादि प्राप्तिकी आशा या जगत् विषयादिकी आसक्तिको ही—

धरै = मनमें दृढ़तासे धारण करके धरे हैं—

कष्ट कलेशमें = इसीसे निराहार, फलाहार दूधाहारादि, पंचाग्नि, जल-शयनादि, नाना साधनाओंके कष्ट-क्लेश, दुःख तो बहुत सहे, उसीमें आयु बिताये, उसी कष्ट-क्लेशमें मनुष्य

जन्मको बर्बाद किये—

पछतावहीं = आखिर तक भी जब कुछ नहीं मिला, आशापूर्ण नहीं हुई, तब पछताते, हाथ मलते, सिर धुनते रह गये। फिर सो अध्यास—

खानि = वासनावश तीन खानीमें जायके, नाना दुःख भोगते रहते हैं, या भोग रहे हैं। आशा धर-धरके निराश हो, पछता रहे हैं।

व्याख्या—परन्तु ज्ञानी मानेगये हुये ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, व्यास, वशिष्ठादि, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों-की भी बुद्धि भ्रमिक हो गई। सो कैसे कि—जगत्को देखके उसको उत्पन्न करनेवाला आदि कारण, परमेश्वर कोई होना ही चाहिये; ऐसा अनुमान करके एक जगत्कर्ताका निश्चय सबने किया। तब उसकी प्राप्तिके लिये चित्तमें क्षोभ कहिये स्फुरणा वा इच्छा प्रबल हो उठी। क्योंकि उस परमात्माके मिलनेसे ही जीवोंकी मुक्ति मान लिये हैं। अतएव कर्म, उपासना, और योगकी कठिन-कठिन साधना तपस्याके कष्ट-क्लेशमें, वे सब लग पड़े, और आशा-भरोसा लगाये कि, अब ईश्वर मिलेगा! अब ईश्वर मिलेगा! अब इष्टदेवका दर्शन होयगा। इत्यादि नाना आशायें किये और कोई चार फल, चार मुक्ति, प्राप्तिकी आशा धारण किये। परन्तु मृत्यु भी निकट आ गई, तो भी कुछ प्राप्ति नहीं हुई, आशा पूर्ण नहीं हुई, बल्कि अधूरी ही रही। तब तो बहुत पछताये, आकुल-व्याकुल भये, फिर शरीर छोड़के पशु आदि तीन खानीके चक्रमें ही पड़के दुःख भोगते ही रह गये। बिना पारख, ऐसी दुर्गति होती है और दुर्गति हो रही है॥ यह भावार्थ है॥ १॥

दोहाः— मनोमय कोश विस्तार बहु ❀ कहैं मुनिश्वर वेद॥

[५] कारण देह आशा बँधे ❀ प्रत्यक्ष मनको भेद॥ २॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो!

मनोमय = मनमानन्दीरूप इस मनोमय नामके—

कोश = इस कोशका या वाणी कल्पनाके आवरण पर्दाका ढक्कन, मनके ऊपर पड़ा हुआ अध्यासका—

विस्तार बहु = विस्तार, फैलावा या बढ़ावा, बहुत है, इसे विस्तार करके बहुत प्रकारसे—

मुनिश्वर = ब्रह्मादि, व्यास, वशिष्ठादि मुनिश्वरोंने वा मुनियोंमें अग्रगण्य ऋषियोंने—

वेद = चार वेद और शास्त्रोंके प्रमाणोंसे विशेष कथन करके कहे हुये हैं, उन्होंने जो कुछ भी—

कहैं = वर्णन करके कहे हुये हैं, सो सब मनोमय-कोशका ही पसारा, कल्पनाका जाल, मानन्दीका फन्दा है। और—

कारण देह = स्थूल देह पैदा होनेका कारण या जगत्के कारणरूप ईश्वरकी मानन्दी अध्यास, कारण देहमें रहता है। सो उसीके जालमें साधक लोग सब अरुझ गये। तहाँ कारणमें—

आशा = आशा टिकायके उसी आसक्तिमें आशा, भरोसा लगाय, भ्रम, धोखेमें पड़—

बँधे = कठिन बन्धनमें ही बन्धायमान हुए, सो—

प्रत्यक्ष = प्रत्यक्ष ही स्थूल शरीर तथा जगत् विषयोंका अध्यास और—

मनको = मनमानन्दी कल्पनाकी, सो उसीका बीज कारण है। इसमें आवागमन लगा ही हुआ है। उस मनका मर्म पहिचान—

भेद = इसका भेद उन्होंने नहीं जाने, बिना पारख भूलमें ही पड़े रहे। यानी प्रत्यक्षमें मनका भेद न जानके कारण देहकी आशा फाँसमें बन्धे हैं। बिना विवेक।

व्याख्या—इस मनोमय कोशका बहुत ही विस्तार करके वेद प्रमाणादिसे ऋषि, महर्षि, मुनिश्वरोंने शास्त्रोंमें वर्णन करके कहा है। परन्तु कल्पित ईश्वरादि प्राप्तिकी आशा या अध्यासरूप संस्कार कारण-देहमें टिकायके सब मुनिवर्ग, आदि बन्धायमान हुये हैं। सो प्रत्यक्ष करके स्थूल-सूक्ष्मका ही बीज है मनका जाल, मानन्दी कल्पनामात्र है। ऐसा यथार्थ पारखबोध निर्णयसे जाने बिना, मनुष्य सब जड़ाध्यासी हुए, और हो रहे हैं, उसे परखके मिटाना चाहिये॥ २॥

सम्बन्ध—अब मनोमय कोशके विभागोंको १८ चौकड़ी तकमें बताते हैं। सुनिये !—

॥ चौकड़ी ॥ तृतीय खण्ड ॥ ३ ॥

१. कोश मनोमय कारण देह * आश्रम वानप्रस्थका येह ॥ ३ ॥

कोश— १ अन्नमय, २ प्राणमय, ३ मनोमय कोश है। देह—१ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ कारण देह है। आश्रम—१ ब्रह्मचर्य, २ गृहस्थ, ३ वानप्रस्थ आश्रम है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँसे १८ चौकड़ी तक मनोमय कोशके अन्तर्गत सब भागोंका वर्णन करते हैं। इसका खुलासा अर्थ सुनिये !

मनोमय = मन-मानन्दी कल्पनारूप यही मनोमय-सृष्टि है।

कोश = इसका ढकन अध्यास या आवरण पर्दा, जीवोंपर तीसरे घेरेमें पड़ा है।

कारणदेह = मुख्य आशा ही मात्र है। तथा स्थूल, सूक्ष्म दोनों देहोंका, एवं जागृति, स्वप्नका संस्कार, सब बीजरूप यह कारणदेह है। सो यह अध्यासका पुञ्ज देह धरानेमें कारण है।

आश्रम = गिनतीका तीसरा आश्रम और यहाँ योगमार्गमें टिकावकी भूमिकारूप जो है, सो वानप्रस्थाश्रम कहलाता है। खुलासा यह है कि—

वानप्रस्थ = पचास वर्षकी आयु होनेके उपरान्त गृहस्थाश्रममें रहनेवालोंको चाहिये कि, स्त्री, पुरुष घरमेंसे निकलके, वनमें रहके, तपस्या करना। और शयन समय एक ही आसनपर यदि स्त्री-पुरुष दोनों सोते हों, तो उनके बीचमें व्रत रखनेके प्रतिज्ञारूप स्मृतिको बनाये रखनेको; तलवार या कटारी आदि म्यानमें सुरक्षित रखेहुये शस्त्र, मध्यमें रखके दृढ़ प्रतिज्ञा करे। ऐसे विषय-वासनाको जीतना। और ईश्वरके भक्तिमें मनको लगाना कहा है।

का = इस कारणदेहके योगमार्गका वानप्रस्थ आश्रमका कार्य आदिकोंका—

येह = यही लक्षण और नियम बताया है, सो आपलोग भी जान लीजिये।

व्याख्या— इस मनोमय कोशका कारणदेह है, तेजतत्त्वको माना है। उसीसे योगकाण्ड, राजयोग, हठयोगादि सब कर्म प्रगट हुये हैं। स्थूल, सूक्ष्मदेहकी क्रिया, जहाँपर लय हो जाती है, सोई सूक्ष्म बीज-रूप अध्यास-वासना कारणदेह अन्तःकरणमें रहता है। वानप्रस्थ आश्रम तीसरी सीढ़ी, इस कोशमें कहा है। गृस्थाश्रममें, विषय भोगते हुये, जब पुरुषोंको २५ वर्ष व्यतीत हो जावे, अर्थात् जब ५० वर्षके ऊपर आयु हो जावे, तब अपने ऊपर देखे कि, बुढ़ापा आके, बाल सफेद होने लग गया है। घरमें पुत्र-पौत्र भी हो गये हैं, तब घरका सब कारोबार और सम्पत्ति, पुत्रको सौंप करके, वानप्रस्थआश्रम धारणकर लेवे, और वहाँ ईश्वरकी भजन, तपस्यामें लग जावे। यदि घरमें या वनमें रहतेमें, स्त्री सहित रहता होवे, तो युक्तिपूर्वक, विषय-वासनाको हटावे, प्रतिज्ञा करके शयनासनमें म्यानमें रखा हुआ शस्त्र तलवारको आसनके मध्यमें आड़-रखके सोवे, कभी भोगमें मन न लगावे, विषय-भोगके वासनाको जीते। मनको ध्यान-धारणामें लगावे, ऐसे अनेक प्रकारसे वानप्रस्थका साधना, नियम, शास्त्रोंमें कहा है ❀ ॥ ३ ॥

❀ टिप्पणीः—शास्त्रोक्त प्रमाणोंसे वानप्रस्थ आश्रमका लक्षण, नियम वर्णन किया है, सो सुनिये ! ॥

श्लोकः—गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलित मात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । २ ॥

अर्थः— गृहस्थ पुरुष जब अपनी अवस्थाको वृद्ध होती हुई देखे, त्वचाओंमें झुर्रियाँ पड़ गई हैं, अङ्ग शिथिल हो रहे हैं, बालोंको सफेद होता हुआ देखे, और घरमें भी पुत्र और उसके पुत्र-पौत्र उत्पन्न हो चुके हों, ऐसा देखे, तब विषयोंके तरफसे वैराग्य वाला हो, तब वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश करनेके लिये वनमें प्रस्थानकर, वनका ही आश्रय लेवे ॥ ऐसा ही शंख-स्मृतिः; अ० ६ । १ में भी कहा है। हारीत स्मृतिः, अ० ५ । २ में भी कहा है। वनमें निवास करनेवालेको मुनि कहते हैं।

260-H/10 247453

गृहस्थकी अवस्था ५० वर्षकी होनेपर, फिर वानप्रस्थमें प्रवेश करके तपस्या करनेको कहा है। ५० से ७५ वर्ष तक इसकी अवधि माना है।

श्लोकः—**पुत्रेषुदारान्निक्षिप्य तयावानुगतो वनम् ॥ अग्नीनुप चरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥**

॥ शंखस्मृतिः, अध्याय ६। २ ॥

अर्थः— स्त्री (यदि साथही वनकोन जाना चाहै), तो उसे पुत्रोंकी संरक्षणमें छोड़ दे और स्वयं वनको चला जाय, (और यदि स्त्री भी साथ जाना चाहै), तो उसको भी अपने साथ ले जावे, और अग्निकी सेवा करे, और वनमें उत्पन्न हुए कन्द-मूल फलादिका ही भोजन करै ॥ मनुस्मृतिः, अ० ६। ३ में भी यही बात कही गई है ॥

"स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ॥ शस्त्र मध्यस्थ शय्यायां स वानप्रस्थ उच्यते ॥"

॥ मनुस्मृतिः आदि ॥

अर्थः— स्वाध्याय, वेदादिके पठन अभ्यासमें सदा लगा रहे, और शीत उष्ण आदिके दुःखोंको सहनेवाला, तथा सबोंका उपकार करनेवाला, और सदा सावधानतामें मन देनेवाला, भूमिपर शय्या हो, अगर स्त्री-पुरुष साथ रहते, सोते हों, तो शयनासनरूप शैय्यामें व्रत-रक्षाके लिये, मध्यस्थ-प्रतीकरूपमें आसन या बिस्तरके बीचमें शस्त्र रखे, जो इस प्रकार नियमसे चलता है, सोई वानप्रस्थ कहलाता है ॥

"वसीत चर्म चोरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ॥ जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोम नखानि च ॥" ॥ मनु० ६। ६ ॥

अर्थः— मृगचर्मको अथवा वस्त्र खण्डको धारण करे और सायंकाल तथा प्रातःकाल स्नान करे, और सिरमें जटा, डाढ़ी, मूछ तथा नखोंको सदा धारण करे ॥

"ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥ आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६। २३ ॥

अर्थः—अपना तप बढ़ानेके लिये, ग्रीष्म = गरमीकी ऋतुमें, चारोंओर रखी हुई चार अग्नियोंके और ऊपर सूर्यके तेजसे अपने शरीरको तपावै, और वर्षा ऋतुमें मेघ वर्षनेके समय, खुले स्थानमें छप्पर आदिके बिना ही रहे और हेमन्त ऋतुमें गीले वस्त्र पहने, एकवर्षकी गर्मी, ठंडी, चौमासा ये तीन ऋतु करके, यह एक वर्षका नियम है ॥ शंख स्मृतिः, अ० ६। ५ में भी ऐसे ही लिखा है ॥ और विष्णुस्मृतिः, अ० ३। ५ में भी यही बात लिखा है ॥ हारीत स्मृतिः, अ० ५। ७ में भी यही बात कहा है ॥

"कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥ अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामान्शुचिस्ततः ॥"

॥ विष्णुस्मृतिः, अध्याय ३। ६ ॥

अर्थः— और इसके पीछे कृच्छ्र, चन्द्रायण, तुला पुरुष, अति कृच्छ्र, इन व्रतोंको निष्काम होकर शुद्धता से करे ॥

वशिष्ठ स्मृतिःके नवम अध्यायमें कहा है कि:—

"वानप्रस्थ जटा धारण करे रहै, चीरवस्त्र तथा मृगछाला धारण करे, ग्राममें प्रवेश न करे, हलसे जुते हुये अन्नको न खाय, बिना जुता अन्न तथा फल-मूल इनको इकट्ठा करता रहे, ऊर्ध्व रेता रहे, पृथ्वी पर शयन करे, जो आश्रममें अतिथि आवे, उसकी पूजा फल-मूल फूलसे करे, छैः महीनेके उपरान्त अग्नि और स्थानको त्याग दे ॥"

"वार्षिकं वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् । वनस्थ धर्ममातिष्ठन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥
भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् । आदेह पतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥
षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पंचयज्ञक्रियापरः । काले चतुर्थे भुंजानो देहं त्यजति धर्मतः ॥
त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः । निवर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च षष्ठेन्नभोजनः ॥
दिनार्थं मन्नमादाय पञ्चयज्ञ क्रिया रतः । सद्यः प्रक्षालको नाम चतुर्थ परिकीर्तितः ॥"

॥ विष्णु स्मृतिः, अध्याय ३। १२-१६ ॥

अर्थः— प्रथम, सालभरके लिये विधिपूर्वक वनके आहारको संग्रहकर वानप्रस्थोंके धर्ममें स्थित हो, आलस्यको छोड़ और इन्द्रियोंको जीतकर जो समयको बिताता हो, इन सब कर्मके करनेवाले वानप्रस्थको 'भूरिसंवार्षिक' कहते हैं ॥

२. जङ्गम आतमलिंग बसत्त्व * विश्व प्रलय दशा उन्मत्त ॥ ४ ॥

चिह्न = १ आचार, २ गुरुमय, ३ जङ्गमात्मलिंग है। प्रलय = १ नित्य, २ नैमित्य, ३ विश्व है। दशा = १ बाल, २ पिशाच, ३ उन्मत्त दशा है ॥

अर्थः — श्रीरामरहससाहेब यहाँ मनोमय कोशके अन्तर्गत सब भागोंका वर्णन करते हैं। इसका खुलासा अर्थ सुनिये !—

जङ्गम = और देहधारी चैतन्य जीव चलने-फिरने वाले, चार खानीके सब प्राणियोंको जङ्गम कहते हैं, अथवा जङ्गमनामके शिवभक्त सम्प्रदाई लोग भी होते हैं।

आतम = हृदयमें आत्माके प्रकाशको जङ्गमपन्थी-लोग मानते हैं— वे कहते हैं, आत्माको—

लिंग = सूक्ष्मरूपसे पहिचानके या अपनेमें समान लक्षण लगाके जाने कि—

बसत्त्व = सबमें एक समान आत्माका प्रकाश रहता है। और आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ नहीं। सो "जङ्गमात्मलिंग" वानप्रस्थियोंका चिह्न माने हैं। वा जङ्गम लोगोंके सूक्ष्मचिह्न कहे हैं। और—

विश्व = समस्त संसार पिण्ड-ब्रह्माण्डका—

प्रलय = व्यवहार लय हो जाना, अथवा शून्य-सुषुप्ति अवस्थामें, समाधिमें इच्छाका लय हो जानेको 'विश्वप्रलय' माने हैं। अथवा एक समय ऐसा आयेगा कि, सारा विश्व प्रलय होगा, ऐसा कल्पना किये हैं; और—

दशा = स्थिति या स्वभावकी दशा, यहाँपर योगियोंका कैसा रहता है कि, जैसे—

उन्मत्त = मद्यपीके नाईं उन्मत्त या मस्त होके बेभान हो जाना; अथवा सुषुप्ति या समाधिमें धुन्ध, गाफिल हो अचेत हो जाना, कहा है। योगी लोग उन्मत्त दशामें बावलेके सरीखी रहते हैं।

व्याख्या— और सब जङ्गम या चर-प्राणी देहधारी जीवोंमें आत्माका प्रकाश रहता है, ऐसा जाने। तथा सच्चे वानप्रस्थियोंके हृदयमें, सदैव आत्माका प्रकाश रहता है, ऐसा माने हैं। अथवा जङ्गम मतवाले शिवलिङ्ग गलेमें पहिनते हैं, सबके हृदयमें आत्माके प्रकाश चिह्नको मानते हैं। और समस्त संसार सोई विश्व है, उसका व्यवहार समाधिमें लय हो जाना, सो विश्वप्रलय पिण्डमें कहा है। और सारा ब्रह्माण्डका प्रलय होकर ब्रह्ममें मिल जाना, सो बाहरी विश्वप्रलय कल्पना किये हैं, ऐसा माने हैं।

दूसरा, मरणकाल तक वनमें रहै, और मृत्युकी इच्छा भी न करै, और छैः महीने तकके अन्नका संग्रह करै और पञ्च यज्ञ कर्ममें तत्पर रहै। चौथे काल (सन्ध्या) में भोजन करता हुआ धर्मसे शरीरको त्याग करै ॥ तीसरा, एक महीने या तीस दिनके लिये शुद्धव्रत हो, वनके अन्नका संग्रह कर, सम्पूर्ण कर्मोंको करके दिनके छठे भागमें भोजन करै ॥ चौथा, एक दिनके लिये अन्नका संग्रह करके पंच यज्ञकर्ममें तत्पर रहे; यह 'सद्यः प्रक्षालक' नामक चौथा किसीमका वानप्रस्थ कहा है ॥ इनमें पश्चात्-पश्चात् वालेको श्रेष्ठ माने हैं। वानप्रस्थका सीधा अर्थ यही होता है कि, गृहस्थाश्रमके भोग विलासोंको और कुल-कुटुम्बके सम्बन्धोंको त्यागकर ५१ या ५२ वर्षकी अवस्थामें वनमें प्रस्थानकर जाय; यानी तपस्या करनेके लिये ग्राम छोड़कर वनमें प्रवेश करे। वहाँ पहिले पर्णकुटी बनायके रहे, बादमें वृक्षोंके मूलमें कहीं भी पड़ा रहे। सब प्रकारके कठोर तपस्या करनेको कहा है। घरमें रहनेवालेका सच्चा, शुद्ध वानप्रस्थ नहीं माना है। पहिले ऋषि, मुनि लोग कोई स्त्रीके साथ ही और कोई स्त्रीको घरमें छोड़के अकेले ही आरण्य निवास करके तपस्या करते रहे। इसका फल स्वर्गादि लोक प्राप्ति होना माने हैं। वे सब भ्रम चक्रमें ही भूले पड़े थे। आजकल तो वानप्रस्थ आश्रमवाले लोगोंका अभाव है। वैसे नियम पालन करनेवाले कोई दिखाई नहीं देते हैं। संसारमें तो सब देशमें विषयासक्त गृहस्थ और ठग गुरुवा लोगोंकी ही भरमार है। इस आश्रमसे व्यर्थ कष्ट उठाकर जीवको कुछ लाभ नहीं। सारग्राही हितेच्छुक गृहस्थोंको पूरा लाभ तो तभी होगा। जब वे विवेकी सन्त-महात्माओंका सत्सङ्ग—विचारकर, विषय वासनादि विकारोंको हटाकर सद्गुणोंको धारण करेंगे। उसके लिये फुर्सतमें सद्ग्रन्थोंका पठन और सत्सङ्ग करते रहना चाहिये ॥ सो जानिये ॥

॥ * ॥ इति टिप्पणी समाप्तः ॥ * ॥

तथा सुषुप्तिमें या समाधिमें मस्त-गाफिल, बेभान रहनेको उन्मत्त दशा माने हैं। तैसे बाहर भी उन्मत्त साँड़के नाईं, मस्त होके योगी लोग वर्तते रहते हैं। ऐसी उन्मत्त दशा उनकी रहती है ॥ ४ ॥

३. अवस्था सुषुप्ति मुक्ति सारूप * तहाँ अभिमानी प्राज्ञ रूप ॥ ५ ॥

अवस्था = १ जाग्रत्, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति है। मुक्ति = १ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य है। अभिमान = १ विश्व, २ तैजस, ३ प्राज्ञ है॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस मनोमय कोशमें—

अवस्था = जीवकी वृत्ति ठहरावरूपी स्थिति या अवस्था यहाँपर—

सुषुप्ति = गाढ़ी निद्रा लगके, बेखबर हो जाना, चित्तादिका लय होना, सोई सुषुप्ति अवस्था है। तैसे ही शून्य समाधिकी अवस्था भी होता है।

मुक्ति सारूप = विष्णु, शिवादि, इष्ट देवतावोंके समान अपने भी रूप धारण करके जगत्के दुःखोंसे छूटकर, उन्हींके लोकमें रहना माने हैं।

तहाँ = वहाँ मनोमय कोशके कारण देहमें—

अभिमानी = साधनाके अभिमानी योगी लोगोंका निवास हो, सूक्ष्म अभिमानका—

रूप = स्वरूप या आकार, ऐसा रहता है कि—

प्राज्ञ = आनन्दमें समरस या समानता हो जानेको विशेष ज्ञान स्थिति माने हैं। परन्तु विचार दृष्टिसे यो विशेष अज्ञानताकी स्थिति है। यह हंकार बीजरूप है।

व्याख्या— इस कोशमें जीवकी सुषुप्ति अवस्था है, जहाँ जाग्रत्-स्वप्नके व्यवहार सर्वइन्द्रियाँ लय होकर, गाढ़ी निदामें बेभान हो जाती हैं, वही शून्य-गाफिली होना, सो 'सुषुप्ति अवस्था' है। और यहाँ योग-साधनादि साधके इष्टदेवताको प्रसन्न करनेपर, देह छूटे उपरान्त, जगत्के दुःखोंसे छूटकर ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि इष्ट-देवतावोंके समान उस उपासक साधकका भी स्वरूप बन जाता है। वैसे तद्रुप भेष धारण करके उन्हींके स्वर्गादि लोकोंमें निवास करना। इसको गुरुवा लोगोंने सारूप्य मुक्ति माने हैं। इसीसे षट्दर्शनके लोग नकल करके इष्ट देवताके समान भेषका रूप बनाते फिरते हैं। और वहाँके लोक या कोश देहके अभिमानी, प्राज्ञ अभिमानको पकड़ते हैं, सो आनन्दमें एक समान समरस होके मिलनेको 'प्राज्ञ' कहिये विशेष ज्ञान अधिक जानकार कहाता है। परन्तु वह ज्ञान नहीं, विशेष अज्ञान अजानपना ही है। गुप्तरूपसे अविद्याका यह अभिमान वहाँ बना रहता है ॥ ५ ॥

४. दीक्षा तहाँ शिवोऽहं जान * अरु अद्वैत आनन्द बखान ॥ ६ ॥

दीक्षा = १ कोऽहं, २ वोऽहं, ३ शिवोऽहं है। आनन्द = १ विषयानन्द, २ योगानन्द, ३ अद्वैतानन्द क्रमशः तीनकोशमें वर्णन किये हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि— इस मनोमय कोशमें—

तहाँ = मनोमय कोशरूप योगमार्गमेंका गुरुवा लोगोंके—

दीक्षा = उपदेश या शिक्षा-दीक्षाका दृढ़ापन वा निश्चय ऐसा है कि—

शिवोऽहं = मैं शिव हूँ! यानी आनन्द या कल्याण स्वरूप हूँ। और मेरेसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है, ऐसा माने हैं।

जान = सो जानपनाको मिटाय, अजान करनेवाला है, ऐसा जानिये।

अरु = और दूसरा भाग—

अद्वैत = आत्मा एक, अद्वैत सत्य है। इसीसे एक आत्माके सिवाय और कुछ द्वैत भाव न रहनेसे, आत्मा सहज ही अद्वैत है। और—

आनन्द = सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वयमेव महान सुखस्वरूप बना रहता है, सो अद्वैत आनन्द है।

बखान = ऐसा योगी लोगोंने शास्त्र प्रमाणसे वर्णन किया है, और वैसे ही बखान कर रहे हैं।

व्याख्या— और योगमार्गमें योगी लोगोंका उपदेशरूप दीक्षा या दृढ़ता "शिवोऽहं" है; अर्थात् मैं शिवस्वरूप या कल्याणरूप, आनन्दस्वरूप हूँ। ऐसा दृढ़ करके माने हैं; और अद्वैत आनन्द, वही ब्रह्मका

स्वरूप है ! स्वजाती-विजाती स्वगत भेदसे रहित, ब्रह्म एक अद्वैत होनेसे वह सहज ही परमानन्द-स्वरूप है, यही उनका बखान किया हुआ सारांश है। ऐसा गुरुवा लोग वर्णन किये हैं ॥ ६ ॥

५. इच्छाशक्ति साधन निदिध्यास ❀ क्षेत्रज्ञ निर्णय जानहु तास ॥ ७ ॥

शक्ति = १ क्रिया, २ द्रव्य, ३ इच्छा है। साधन = १ श्रवण, २ मनन, ३ निदिध्यासन है। निर्णय = १ क्षर, २ अक्षर, ३ क्षेत्रज्ञ निर्णय है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशकी शक्ति क्या है कि—इच्छामात्र है।

इच्छा = स्फुरणारूप इच्छा अन्तःकरणमें स्फुरनेसे या प्रगट होनेसे सुषुप्ति छूटकर जाग्रत्-स्वप्नादि प्रगट होके स्वेच्छासे व्यवहार करनेकी—

शक्ति = विशेष शक्ति या बल, सामर्थ्य उसी कारण देहमें गुप्तरूपसे बना रहता है, सो इच्छाशक्ति कहलाता है।

निदिध्यास = हमेशा एक अद्वैत आत्माका ही चिन्तवन, अभ्यास करते रहनेकी, यही निदिध्यासन नामकी—

साधन = योगमार्गकी तीसरी साधना माने हैं।

क्षेत्रज्ञ = क्षेत्र सोई देहको "ज्ञ" = जाननेवाला साक्षीरूप ईश्वर है—

निर्णय = ऐसा निर्णयसे विवेक करनेको गुरुवा लोगोंने कहा है, सो—

तास = मनोमय कोशमें योगी गुरुवा लोगोंकी निर्णयका पत्ता भ्रमरूप है—

जानहु = सो वह कल्पनाके निर्णय अनर्थ है, ऐसा यथार्थ पारखसे जानिये।

व्याख्या— सुषुप्ति अवस्थासे उलट करके फिर इच्छा या स्फुरणाका वेग अध्यासवश हृदयमें उठाके स्वप्न या जाग्रत्में पुनः पलट जाना, फिर विशेष इच्छा उठायके नानाकर्म करना, इसको इच्छाशक्ति कहते हैं। वह समय पायके हृदयमें उठा करती है। यह कारण देहकी शक्तिको इच्छाशक्ति कहते हैं, और योगी लोग सदोदित एक अद्वैत आत्माका ही चिन्तन किया करते हैं। उसको निदिध्यासन-साधन कहा है। श्रवण, मनन किया हुआ बातको कार्यमें लाकर अभ्यास बराबर करते रहना, सो निदिध्यासन कहलाता है। और 'क्षेत्र' कहिये शरीरका, 'ज्ञ' कहिये जाननेवाला साक्षी स्वरूपी ईश्वर सत्य है। यह योगी गुरुवा लोगोंके निर्णय इस कोशमें जान लीजिये ! यह कल्पनामात्र है, जानपनाको नाश करनेवाला है; क्योंकि देहोंका जनैया तो चेतन जीव है। वही प्रत्यक्ष सत्य है, फिर क्षेत्रज्ञ ईश्वर दूसरा कहाँसे आयेगा ? वह कैसे देह, गेहादिको जानेगा ? इसलिये वह कल्पना होनेसे असत्य भ्रमही है ॥ ७ ॥

६. देव रुद्र तहाँके होय ❀ मन्दाग्नि औ तमोगुण सोय ॥ ८ ॥

देवता = १ गणेश, २ मार्तण्ड, ३ रुद्र है। अग्नि = १ जठराग्नि, २ कामाग्नि, ३ मन्दाग्नि है। गुण = १ रजोगुण, २ सतोगुण, ३ तमोगुण है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

तहाँके = मनोमय कोशरूप कारण देह, या योगमार्गके—

देव = अधिष्ठाता मालिकरूप मुख्य देवता—

रुद्र = रोने-रुलानेवाला, तमोगुणी महादेव या हृदयमें रुकी हुई वृत्ति, सोई रुद्र है।

होय = ऐसा गुण-लक्षण होनेसे यहाँका देवता शिवगण, सोई रुद्र है, ऐसा माने हैं।

मन्दाग्नि = मन्द बुद्धिसे हठयोग, तपस्या आदि साधना करके योगीलोग समाधि लगाकर, भूख, और प्यासादिका वेग कुछ देर तक रोकके रखते, ऊपर नहीं आने देते, और बुद्धिको मन्द किये रहते हैं। वह ही यहाँ मन्दाग्नि है।

औ = और इसका गुण स्वभाव उनके—

तमोगुण = क्रोध, हिंसा, आलस्य, द्वेष, प्रमाद, मूढ़ता इत्यादि तामसी वृत्ति और—

सोय = बहुत सोना वा दिनमें सोना, व्यर्थ समयको बर्बाद करना, सो यह ही योगी लोगोंकी गाफिली आदि सोई तमोगुणका मुख्य लक्षण या स्वभावकी पहिचान है।

व्याख्या—वहाँ मनोमय कोशके देवता रुद्रको माने हैं। भयंकर ऐसा तमोगुण गुणवाला मूढ़, सोई रुद्र है। निद्रा, आलस्य, प्रमाद, व्यभिचार, कुकर्म, हिंसा, क्रोध, चोरी, जुआरी, आदिकी कुवृत्ति सब तमोगुण कहलाता है। और मन्द बुद्धिवालोंने हठसे तथा अज्ञानतासे हठ योग, पञ्चाग्नि तापना, जल-शयन, धूम्रपान, ठाडेश्वरी, ऊर्ध्वबाहु आदि अनेक साधनामें तपस्या, योगादि कठिन-कठिन साधना करके कुछ दिनके लिये भूख, प्यासके वेगोंको बलपूर्वक रोकते हैं। जिससे अग्निमन्द करते हैं? अथवा समाधिमें भूख-प्यासका वेग नहीं सताता, ऐसा सोच करके समाधि लगाते हैं, सो मन्दबुद्धि ही वहाँपर मन्दाग्नि है, सोई तो तमोगुणका लक्षण है। अथवा ज्यादा सोना, वाहियातमें दिनमें सोनेकी आदत डालना, जीव घातादि करना, मूढ़ता, गाफिली आदि यह सब भी तमोगुणका विकार ही है ॥ ८ ॥

७. तृतीय पाद गायत्री जान ❀ चाचरी मुद्रा रुद्र गुण खान ॥ ९ ॥

पाद गायत्री = १ भूः, २ भुवः, ३ स्वः है। वहिर्मुद्रा = १ खेचरी, २ भूचरी, ३ चाचरी है। देवता = १ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र देवता है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

गायत्री = वेदके गायत्री मन्त्रका इसमें—

तृतीयपाद = तीसरा चरण या पद 'स्वः' को माने हैं, यह अग्नितत्त्व वाचक है।

जान = ऐसा जान लीजिये। और—

चाचरी = दोनों नेत्रोंकी पलकें लगाके बन्दकर अंगुलीसे जरा दबायके भीतर-ही-भीतर चमचमाहट प्रकाशको देखना—

मुद्रा = उसीमें मनको लगाके एकाग्र करके ठहराना, सो चाचरी मुद्रा माने हैं।

रुद्रगुण = शंकरका गुण, सोई तमोगुण है। तथा तमोगुणका देवता, सोई रुद्र कहे हैं। और इस गुणसे—

खान = उष्मजादि चारखानीमें नानायोनियोंकी उत्पत्ति होती है। यह रुद्रगुण खानियोंमें जीवोंको ले जानेवाला है। सब खानियोंमें संस्कारके अनुसार स्वभाव प्रगट कराता है।

व्याख्या— मनोमय कोशमें गायत्रीका तृतीयपाद 'स्वः' को अग्नितत्त्वके स्वरूपमें जानना चाहिये। और नेत्रोंके पलकें मूँदकर कुछ जरा-सा दबायके चम-चम; चिम-चिम प्रकाश देखना, उसीमें मनको टिकाना, इसको चाचरी मुद्रा माने हैं। यह सब साधना तमोगुणी योगियोंकी है। तमोगुणरूप रुद्र गुणके ही अध्यासवश जीव सब उष्मजादि खानियोंमें जाते हैं। उष्मज खानीमें शरीर उत्पत्ति होनेका रुद्रगुण, सोई मुख्य तमोगुण है ॥ ९ ॥

८. वाचा पश्यन्ती मात्रा मकार ❀ स्थान बास हृदय सो द्वार ॥ १० ॥

वाचा = १ वैखरी, २ मध्यमा, ३ पश्यन्ती है। मात्रा = १ अकार, २ उकार ३ मकार है। स्थान = १ त्रिकुटी, २ कंठ, ३ हृदय है। द्वार = १ नेत्र, २ जिह्वा, ३ मुखद्वार है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

वाचा = चार वाचाओंमें तीसरी वाचा यहाँपर

पश्यन्ती = साक्षीरूपसे देखने ही मात्रका वाचा हृदयमें रहता है; वहाँ कहना-सुनना होता नहीं, कहा है।

मात्रा = ॐ कारकी ५ मात्राओंमेंसे यहाँपर—

मकार = तीसरी मकार नामकी मात्रा माने हैं—

हृदय = हृदय या छाती—अन्तःकरणके ठिकाने में मकार मात्राका—

स्थान बास = वासस्थान या रहनेकी जगह माने हैं। मकार सोई हंकार है।

सो = सोई हृदय ही में सो दूसरा, और—

द्वार = सूक्ष्मरूपसे द्वार = आत्मधाममें प्रवेश करनेकी दरवाजा भी है (ऐसा गुरुवा लोगों-ने माने हैं), अथवा मुख इसका मुख्यद्वार कहा है। सो यह ही स्थान-द्वार है।

व्याख्या— कारण देहके सुषुप्ति अवस्थामें सिर्फ शून्य आनन्दको ही जानना, यानी जानरूपसे

देखने मात्रका वाचा रह जाता है, परन्तु बोलनेकी वाचा इस स्थानमें नहीं रहती है, ऐसा कहे हैं। इस कोशका मकार मात्रा है। उस मकारका निवासस्थान अन्तःकरणरूप हृदयमें माने हैं, सूक्ष्म अहंकार ही मकार है। सोई ठिकाने सूक्ष्म द्वार भी है, अथवा मुख द्वार इस कोशमें माना है। ऐसा योगी लोगोंने कल्पना किया है ॥ १० ॥

९. अर्ध अंगुष्ठ देहको भास * ब्रह्म कहै कुण्डल्या जास ॥ ११ ॥

देह परिमाण = १.३॥. हात, २ अङ्गुष्ठ, ३ अर्ध अङ्गुष्ठ है। ब्रह्म = १ तारक, २ दण्डक, ३ जिसे कुण्डल्य कहते हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—देहका माप परिमाण—

अर्ध अंगुष्ठ = योग साधनासे श्वास वायुको नाभि या मस्तकमें लयकर देनेसे, आधा अंगूठा सरीखी आकारका प्रकाश देखनेमें आता है, ऐसा कहते हैं। उसीको ईश्वरके स्वरूपका प्रकाश माने हैं। परन्तु वास्तवमें वह तो—

देहको = सूक्ष्म और कारणदेहोंकी सन्धिमें तत्त्वोंका जड़ भागोंके विकारसे स्वप्नवत् भासनेवाला—

भास = प्रकाश जो भासता या देखनेमें आता है, सो तेज तत्त्वका कार्य मिथ्या भास है, सो अपना स्वरूप नहीं। उस भाससे भासिक जीव तो सदैव न्यारा ही रहता है। फिर जीव भास ही स्वरूप कैसे हो सकता है? कभी ऐसा नहीं हो सकता है।

कुण्डल्या = ध्यानसे हृदयमें कुण्डलीरूप गोलाकार प्रकाश देखके, अथवा कर्णकुण्डलवत् चपल ज्योति निहारके—

जास = जिसको या उसीको मन-मानन्दी टिकायकर—

ब्रह्म = कुण्डल्य नामका वह परब्रह्म है, ऐसा—

कहै = योगी गुरुवालोग कहते हैं; अथवा ऐसा कहे हैं।

व्याख्या— मनोमय कोशमें कारण देहका माप-परिमाणमें अर्धअङ्गुष्ठ आकारका माने हैं। सो कैसे कि? उसमें योगीलोगोंने योगसाधनासे श्वासवायुको नाभि वा मस्तकमें लय किये, तब हृदयमें तेजतत्त्वका प्रकाश आधा अङ्गूठा सरीखी भास देखनेमें आया, उसीको अर्ध-अङ्गुष्ठाकार, ईश्वररूपमें माना है। यही अनुभव लेके कारण देहके परिमाण कल्पनासे कायम किये हैं, सो भास जलतत्त्वोंके प्रकाशमें योगीलोग भूल गये हैं, और कुण्डलीरूपमें जैसे सर्प लिपटके रहता है, तैसे ही कुण्डली आकारवाला गोलाकार प्रकाश जो देखनेमें आया, उसीको योगी गुरुवा लोगोंने कुण्डल्य ब्रह्म कहे हैं, सो भी मिथ्या कल्पनामात्र है ॥ ११ ॥

१०. गोह्लाट हृदय अस्थान * दक्षिण दिशा देव यम मान ॥ १२ ॥

स्थान चक्र = १ त्रिकुटी, २ श्रीहट, ३ गोह्लाट है। दिशा = १ पूर्व, २ पश्चिम, ३ दक्षिण है। दिशाके देव = १ इन्द्र, २ वरुण, ३ यम है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

गोह्लाट = कारण देहके स्थान चक्र वह गोलाकार फिरा हुआ सरीखा आकारका—

हृदय अस्थान = पिण्डमें हृदयस्थानमें कहे हैं, और ब्रह्माण्डमें नेत्र स्थानमें गोह्लाटचक्रको माने हैं।

दक्षिण दिशा = इस कोशमें दक्षिण दिशा कहे हैं। तथा देहमें दाहिने हाथके जगहमें माने हैं।

देव = उस दक्षिण दिशाका अधिष्ठाता, मालिक देवता—

यम मान = यमराजाको माने हैं।

व्याख्या— और गोह्लाट नामके स्थान चक्रको, पिण्डमें, हृदयमें, तथा ब्रह्माण्डमें, नेत्रस्थानमें, चक्राकार फिरा हुआ माने हैं। तैसे ही इस कोशमें बाहर दक्षिणदिशा और दाहिना हाथके जगह, देहमें उसे मानके उस दिशाका देवता यमराजाको ठहराये हैं, और दक्षिण तरफ ही भयंकर सात नर्कलोक भी

कहे हैं। गुरुवा लोगोंने ऐसा वर्णन किये हैं। यमराजको नर्कलोकके राजा माने हैं, और शरीरमें गुदा स्थानके देवता भी यमराजको ही कहे हैं ॥ १२ ॥

११. मध्य शून्य औ प्रलय क्रिया * लाल वर्ण मात्रा कल्पत्या ॥ १३ ॥

शून्य = १ अर्ध, २ ऊर्ध्व, ३ मध्य है। कर्म = १ सिर्जन, २ पालन, ३ प्रलय है। वर्ण = १ पीत, २ श्वेत, ३ लाल है। उच्चार = १ह्रस्व, २ दीर्घ, ३ कल्पत्या (प्लुत) है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि, इस कोशमें—

मध्य शून्य = बीचका खाली जगह, सोई मध्यस्थ शून्य है। यहाँ हृदय स्थानके मध्यमेंका शून्यको माने हैं।

औ = और दूसरा यहाँका मुख्य कर्म—

क्रिया = देहमेंकी स्थूल, सूक्ष्म सब इन्द्रियोंके कर्म या क्रियादि सम्पूर्ण—

प्रलय = सुषुप्तिमें विलय होकर शून्य अभाव होते हैं या नाश होके प्रलय-शून्य हो जाता है। सब तरहसे नाश होनेकी कर्मको यहाँका प्रलय क्रिया कहते हैं।

लाल वर्ण = और लालरङ्ग अग्नितत्त्वके है। ऐसे ही लाल वर्ण द्वादश कमलके भी माने हैं।

मात्रा = श्वास वायुरूपी सूक्ष्म मात्रामेंसे बाहर—

कल्पत्या = पाँच मात्रादिकी अनेकों वाणी कल्पना किये हैं; अथवा शब्दमें प्लुत कहिये मध्यम उच्चारको यहाँ कल्पत्या मात्रा माने हैं।

व्याख्या— मनोमय कोशमें मध्यशून्य हृदयके ठिकाने, बीचोंबीचमें कहा है। जहाँपर सुषुप्ति अवस्थामें, सब इन्द्रियादियोंकी क्रियायें लय होके, शून्यवृत्ति हो जाती हैं, सोई प्रलय क्रिया है। तेज तत्त्वके और हृदयस्थित द्वादशदल कमलके रङ्ग लाल कहा है, और उच्चारणमें ह्रस्व, दीर्घको छोड़ करके प्लुत कहिये मध्यम स्वरमें उच्चारण करना; अथवा श्वास वायुमें अनेकों मात्राओंकी कल्पना करना, सोई कल्पत्या उच्चार कहा है ॥ १३ ॥

१२. तेजतत्त्व वेद अथर्वण धाम * उपदिशा आग्नेय अग्नि देव नाम ॥ १४ ॥

तत्त्व = १ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज है। वेद = १ साम, २ यजुर, ३ अथर्वण है। उपदिशा = १ ईशान्य, २ नैऋत्य, ३ आग्नेय है। दिग्देवता = १ शिव, २ नैऋत्य, ३ अग्नि, ऐसा नाम है ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

तेजतत्त्व = इस कोशमें मुख्य अग्नि तत्त्व माने हैं।

अथर्वण धाम = पाँच तत्त्वोंके प्रकाशको ही परमात्माका स्वरूप, सुखका धाम ठहरानेवाला, अथर्वण नामका ही तृतीय वेद है।

वेद = श्रुतिके मन्त्र भाग, सोई इसमेंका अथर्व वेद माने हैं।

उपदिशा = मुख्य दिशाओंके अलावा और दूसरी-दिशा, मध्यका कोना—

आग्नेय = उसका नाम 'आग्नेय' है। सो पूर्व और दक्षिण तरफके कोनाको आग्नेय माने हैं। देहमें दहिना कोखके सामने तरफ, उसे माना है।

देव = उस दिशाका मालिक देवता—

अग्नि = अग्नि देवताको अधिष्ठाता माने हैं।

नाम = सोई उसका नाम (अग्नि) है। ऐसा जानना चाहिये।

व्याख्या— इसमेंका प्रधानतत्त्व, अग्नितत्त्व है। तीसरा वेद अथर्वणको माने हैं। पाँच तत्त्वके प्रकाशको ही ब्रह्म बताना, उसका मुख्य सिद्धान्त है, और उपदिशाका नाम आग्नेय है; सो पूर्व और दक्षिणके बीचका कोनाको माने हैं। उस दिशाके मालिक, देवताका नाम भी, अग्नि है, ऐसा वर्णन किया है ॥ १४ ॥

१३. बाजा शङ्ख वायु है प्राण * महदाकाश मार्ग कपि जान ॥ १५ ॥

बाजा = १ तन्ती, २ झाँझ, शंख ३ है। पिण्डकी वायु = १ अपान, २ उदान, ३ प्राण है।

आकाश = १ घटाकाश, २ मठाकाश, ३ महदाकाश है। मार्ग = १ पपील, २ विहंगम, ३ कपिमार्ग है॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि — इस कोशमें—

प्राण = दिन और रातमें २१६०० श्वासोच्छ्वासके गतिसे प्राणवायु चलता है। योगियोंने ऐसा अनुमान किये हैं।

वायु है = हृदयमें रहके श्वास चलाते रहनेवाला जो वायु है, वही प्राण है। उसीके नामसे देहधारी जीव सब प्राणी कहलाते हैं।

बाजा शंख = दशनादमेंसे शंखकी ध्वनि जो है, सो इस मनोमय कोशमें, प्राणवायु सम्बन्धी शंखके बाजा माने हैं। और —

महदाकाश = महद् = बड़ा भारी विस्तृत आकाश है, सो ब्रह्माण्ड भरके समस्त आकाश, शून्य-भाग सारा आनन्दरूपसे माने हैं। उसे ही कोई ब्रह्मका स्वरूप भी ठहराते हैं।

मार्गकपि = जैसे बन्दर एक डगालीसे, दूसरी डगालीपर उछल-कूदके चला जाता है, तैसे ही योगीलोग भी, एक-एक चक्रके वायुको योग क्रिया करके ऊपर उठाते जाते हैं, उसको षट्चक्र वेधनक्रिया कहते हैं। योगमार्गमें, योगीलोग, उछल-कूद करते हैं, सो कपिमार्ग है।

जान = ऐसे हठयोगादि मार्गका रीति है, सो धोखा जाल ही है, ऐसा जान लीजिये।

व्याख्या— मनोमय कोशमें रहनेवाला प्राणरूप श्वास वायुको निरञ्जन परमात्मा माने हैं, सो हृदयमें रहता है। इससे दिन-रात चौबीसों घंटोंमें, श्वास उच्छ्वास चलता ही रहता है। शंख सरीखी आवाज, जो नादध्वनि अनहदमें सुनाई देता है, सो इसी प्राणवायुका सूक्ष्म बाजा माने हैं, और महान आकाश जो बाहर ब्रह्माण्ड भरमें है, उसको आनन्दरूपसे, परब्रह्मके स्वरूप निश्चय करके माने हैं। तथा कपि कहिये बन्दरको, तो उसके सरीखा जो उछल-कूदके, छलाङ्ग मारके मार्ग वा रास्ताको चले, सो कपि मार्ग है। अर्थात् हठयोग साधनमें, मूलाधार चक्रसे लेके एक-एक चक्रको प्राणायाम क्रियासे, वेधन करके, अपान, समानादि पंचवायुको ऊपर-ऊपर चढ़ाते ही ले जाते हैं। इस प्रकार छःहों चक्र वेधनेके योग क्रियाको बन्दरवत् योगीलोग साधते हैं, सो कपि मार्ग है, ऐसा जानिये!॥ १५॥

१४. कमल वर्ण रक्त अरु श्वेत ❀ ऋचा तहाँ सत्पुरुष समेत॥ १६॥

कमल रङ्ग = १ पीत-रक्त, २ श्याम-रक्त, ३ रक्त-श्वेत है। ऋचा = १ अद्वै, २ वामदेव, ३ सत्पुरुष ऋचा कहे हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

कमल वर्ण = हृदयमें द्वादशदलका, कमलके, अथवा मस्तकमें सहस्रदलका कमलके रङ्ग-रूप या वर्णप्रकाश कैसा है कि—

रक्त अरु श्वेत = लाल और सफेद रङ्गका मिलाहुआ रूप है, सो ध्यानमें दिखाई देता है, इष्ट-देवताके भी रङ्ग रक्त-श्वेतरूपमें दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं।

तहाँ = हृदय या मस्तक, कमलके मध्यमें, तहाँ ही पर—

सत्पुरुष = परमशुभ्र, महानज्योति, प्रकाशरूपमें दर्शन होता है। सोई सत्पुरुष परमात्मा है।

समेत = समानरूपसे, आदिशक्ति, मूलमाया समेत् ही मिलके वहाँ सत्पुरुष रहता है। यानी शक्तिसमेत् शिवरूप सत्पुष तहाँ सदा रहते हैं।

ऋचा = ऐसा वेदका मन्त्ररूप अथर्वकी ऋचामें वर्णन किया है, सोई गुरुवा लोग अथर्ववेदके प्रमाणसे, बताते हैं। परन्तु वह तेज तत्त्वका प्रकाश, ज्योतिभास जड़ है, वह सत्पुरुष नहीं, किन्तु जीवकी कल्पनामात्र है।

व्याख्या—और हृदयमें द्वादशदलका कमल, तथा मस्तकमें सहस्रदलका कमल, कल्पनासे ठहराके, उसका रङ्ग लाल, सफेद मिश्रित, आधालाल, आधा सफेद रङ्गवाला माने हैं, तथा उसी कमलपर विराजमान सत्पुरुषका दर्शन ज्योतिप्रकाशरूपमें, कमल रङ्गके ही सरीखी, रक्त-श्वेत कान्ति-

युक्त प्रकाश ध्यानमें साक्षात् होता है, ऐसा अथर्व वेदके ऋचाओंमें वर्णन किया हुआ, गुरुवालोग बतलाते हैं। सो तत्त्वोंका प्रकाश जड़भास मात्र होनेसे, असत्य है। बिना पारख, गुरु-चेला समेत् गुरुवा लोग धोखामें पड़के, भटका खा रहे हैं। सच्चे सत्पुरुष, सद्गुरुको पहिचानते नहीं ॥ १६ ॥

१५. ज्योति कला लोक कैलाश * आनन्दमय तहाँ भोग विलास ॥ १७ ॥

कला = १ ऊर्मी, २ धूर्मी, ३ ज्योति है। लोक = १ सत्य, २ वैकुण्ठ, ३ कैलाश है। भोग = स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ आनन्दमयका विलास है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

ज्योति = तेज तत्त्वकी ज्योतिप्रकाश योगी लोगोंको जो ध्यानमें देखनेमें आया, उसको ही भ्रमिक लोग—

कला = महादेवके साक्षात् सोलहों कलाका पूर्ण-दर्शन हुआ; कल्पना करके, ऐसा माने हैं। परन्तु सो तेजतत्त्वकी कला है।

लोक = उसका रहनेकी भूमिका, शिवलोक—

कैलाश = हिमालयमें कैलाश पर्वतपर है, देहमें हृदय स्थानमें माने हैं।

आनन्दमय = चारों तरफ आनन्द-ही-आनन्द या सुख-ही-सुखमात्र होते रहना—

तहाँ = वहाँ शिवलोकमें या समाधिमें, हृदय-स्थानमें या भ्रमर गुफामें—

भोग = ऐसे महान भोग, उपभोग, भोगोंकी प्राप्तिसे परिपूर्ण होकर—

विलास = रमण, क्रीड़ा, खेल होते रहना, मगन-मस्त हो जाना, सोई आनन्दमय तहाँका भोग-विलास कहा है, ऐसा माने हैं।

व्याख्या— मनोमय कोशमें, महादेवकी मुख्यकला, ज्योतिप्रकाश स्वरूपमें मानके और उनका कैलाशलोक हृदयमें भी ठहराये हैं। वहाँका भोगका विलास आनन्दमय कहे हैं; जो स्थूल, सूक्ष्म इन्द्रियादि सर्वलय होकरके, शून्य वृत्तिका आनन्द वही मानन्दीकृत आनन्दमय, भोग-विलास है, जो सदा बना रहता है, ऐसा माने हैं ॥ १७ ॥

१६. शांभवी तहाँ मुद्रा झीनि * कूर्म वायु सूक्ष्म परवीनि ॥ १८ ॥

गुप्तमुद्रा = १ सन्मुखी, २ उन्मीलनी, ३ शांभवी है। झीनि वायु = देवदत्त, २ नाग, ३ कूर्म है। ये सूक्ष्मरूपसे प्रमाण किये हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

झीनि = सूक्ष्म या बारीक अन्तर्वृत्ति करके गुप्त-रूपसे यह ऐसा—

मुद्रा = मुद्रा करना कि—मनोवृत्तिको एकाग्र करके लक्षको समेटकर—

तहाँ = मस्तक या हृदयमें वहाँ ही मनको स्थिर रखना—

शांभवी = तब शम्भूस्वरूप परमतत्त्व परमात्माका ज्योतिप्रकाश, प्रत्यक्ष देखनेमें आवेगा, तो उसीमें मिल जाना, ऐसा माने हैं। जिससे सबकी उत्पत्ति हो, वह किसीसे उत्पन्न न हो, उसे शाम्भवी कहते हैं।

कूर्मवायु = और यह ब्रह्माण्डकलाकी तेजतत्त्व-स्वरूप कूर्मवायु है। इससे नेत्रोंकी दोनों पलकें खुलती और ढकती रहती हैं।

सूक्ष्म = यह कूर्मवायु सूक्ष्म है, और योगसाधनोंमें बल देता है।

परवीनि = प्रवीण चतुर योगी लोगोंने ऐसा अनुमान प्रमाण करके कथन किये हैं। उसे हे प्रवीण जिज्ञासु मनुष्यो ! आपलोग निर्णय करके यथार्थ रहस्यको जानिये।

व्याख्या— और झीनि गुप्तमुद्रा करके, जो प्रकाश, देखनेमें आया, उसको शम्भूस्वरूप परमतत्त्व परमात्मा मान लिये हैं। इसलिये इस मुद्राका नाम भी शांभवी रखे हैं। तथा आँखोंकी दोनों पलकें खोलने और ढाकनेवाला ब्रह्माण्डकी सूक्ष्म कूर्मवायुको इसकोशमें कहे हैं, और कूर्मवायुको ही विष्णु भी माना है। इससे वेदकी उपासना मार्ग प्रगटा है, ऐसा कहे हैं। इसीसे मस्तकमें ज्योतिप्रकाश भी

देखते हैं। यह चतुर योगीलोगोंका प्रमाण है। परन्तु वे अज्ञान दशामें ही पड़े हैं, ऐसा जान लीजिये! भ्रम-भूलको त्यागकर, सत्यबोधको ग्रहणकर लीजिये ॥ १८ ॥

१७. बुद्धि बोधव्य तहाँ व्यवहार * सौलेष्टता भूमि कहै परचार ॥ १९ ॥

सूक्ष्म विषय = १ अहन्तव्य, २ मन्तव्य, ३ बुद्धि बोधव्य है। भूमिका = १ छिप्रा, २ गतागत, ३ सौलेष्टता कहे हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

बुद्धि = बुद्धि नामकी सूक्ष्म इन्द्रियद्वारा, जीव समझ-बूझ करके—

बोधव्य = कोई भी बातकी दृढ़ता निश्चय करते हैं। इससे बुद्धि-बोधव्यका—

तहाँ = योग ध्यान करके यहाँ हृदयमें—

व्यवहार = ज्योति प्रकाश वा आनन्दको ही परमात्मा निश्चय करनेका कार्य या व्यवहार योगी लोग करते हैं, सो यही एकमात्र व्यवहार वहाँ रहता है।

सौलेष्टता = छिप्रा, गतागत ये दोनों भूमिका हृदयमें एक होके लय होनेपर सौलेष्टता भूमिमें परमतत्त्वका प्रकाश जो देखनेमें आया, सो देहके साथ छूटनेवाला, आशा ही मात्र देह धरानेका कारण है। इसलिये—

भूमि = स्थूल, सूक्ष्मकी अध्यास बीज टिकनेका यही कारणरूप सौलेष्टता भूमिका है।

कहै परचार = परन्तु गुरुवा लोग उसीको मुक्ति और आनन्द देनेवाला है, कहके मिथ्याका प्रचार उपदेश करते हैं या कर रहे हैं। सो उनका प्रचार असत्य होनेसे, भटकानेवाला है।

व्याख्या — मनोमय कोशरूप कारण देहके ध्यान-समाधिकी अवस्थामें, योगियोंकी सिर्फ बुद्धिसे, ज्योतिदर्शन और आनन्द निश्चय करनेकी सूक्ष्म मानसिक व्यवहार या कर्म रहता है। उसे बुद्धि बोधव्य व्यवहार तहाँपर माने हैं। तैसे ही स्थूल, सूक्ष्म देहोंकी दोनों भूमिकाके एकता हृदयमें होकर जो प्रकाश योगी लोगोंने देखा, उसको ही परमतत्त्व परमात्मा मानके, सारूप्य मुक्तिकी आशारूपी पाशमें, वे लटके हैं। सोई अध्यास देह धरानेका कारण, बीजरूप सौलेष्टता भूमिका, कारणदेह है। परन्तु गुरुवा लोग, मिथ्यावाणीके उपदेशको प्रचार करके, उसको मुक्ति देनेवाला कहते हैं। सो असत्य है ॥१९॥

१८. अभाव अन्योऽन्य जानहु तीन * मनके कोश कहै परवीन ॥ २० ॥

अभाव = १ प्रध्वंश, २ प्राग, ३ अन्योऽन्य है। यह तीनों भाग सहित प्रवीण लोगोंने, मनोमय कोशका वर्णन कहे हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

अभाव = ईश्वर एकरूप है, ऐसा अपने इष्टदेवका एकमात्र भाव रहै, और तीनों कोशरूप त्रिगुणी जगत्का अभाव होवै।

अन्योऽन्य = और तीन कोश मायासे ईश्वर भिन्न ही सदा न्यारा रहता है, ऐसा अन्योऽन्य अभाव है। यानी त्रिगुणमायामें ईश्वर नहीं, और ईश्वरमें माया नहीं। परस्पर एकमें दूसरेका अभाव है, ऐसा कहे हैं।

तीन = योगी, ज्ञानी, भक्तोंने अन्नमय, प्राणमय और मनोमय यह तीन कोश माने हैं, अथवा प्रध्वंश, प्राग, अन्योऽन्य, तीन कोशमें यही तीन अभाव कहे हैं। मनोमयमें तीनोंका अभाव हो जाता है।

मनके कोश = मन-मानन्दीके आवर्ण पर्दासे, मन सम्पूर्ण ढका पड़ा है। सोई ढक्कनरूप बना हुआ यह मनोमयकोश है।

परवीन = चतुर, पंडित गुरुवा लोगोंने प्रवीणतासे वेद-शास्त्रादि प्रमाणद्वारा—

कहै = बहुत, तरहसे सिद्धान्त कथन करके कहे हैं। सो तुम्हें परखानेके वास्तेही मैंने भी वही सब वर्णन करके, यहाँ कहा है।

जानहु = हे जिज्ञासु मनुष्यो! तुमलोग भी पारखी, सद्गुरुके सत्संग विचार करके, सत्यासत्यका निर्णयकर, मिथ्याकल्पनाके भेदको अच्छी तरहसे जान लीजिये! यही मनोमय कोशकी, सर्वाङ्ग वर्णन कह दिया है, सो जानो॥

व्याख्या— और ईश्वरसे जगत् भिन्न है, तथा जगत् मायासे भी ईश्वर भिन्न ही सदैव न्यारा रहता है। ऐसा समझके, जगत् माया तीन कोशोंका अभाव और अपना भाव बनाये रखना। उसको "अन्योऽन्य अभाव" कहा है। यह तीन कोशका प्रपंच और मनोमय कोशका विस्तारसे नाना भाँतिसे पंडित चतुर योगी, ज्ञानी गुरुवा लोगोंने बहुविधिसे वर्णन करके कहे हैं। उसीमें अपने अरुझके दूसरे अबोध मनुष्योंको भी अरुझा रहे हैं। इसलिये सो जाल सब मुमुक्षु नरजीवोंको यथार्थ परखानेके वास्ते, मैंने भी यहाँपर उन्होंके कथन निर्णय करके बता दिया है। श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—हे जिज्ञासुओ! पारखी सद्गुरुके सत्संग विचारसे सत्य और मिथ्या मानन्दीका रहस्य, आप लोग भी अच्छी तरहसे जान जाइये!॥ यह भावार्थ है॥ २०॥

सम्बन्ध—अब संक्षेपमें मनोमय कोशका निरूपण एकत्रित करके, छन्दमें दिखाते हैं॥

छन्दः— मनोमय कोश कारण देह याके ❀ चारु अन्तःकरणयं॥
[६] तहाँ सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति संयुत ❀ एकते बहु विधि भयं॥ [यह आर्या छन्द है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस छन्दमें, मनोमय कोशका सारांश दिखाते हैं—

मनोमय = मनमानन्दीरूप, मनोमय नामके मन कल्पनाके विस्तारवाला—

कोश = इस कोशकी आवर्ण पर्दाके ढकनमें, सब अध्यासी जीव पड़े हैं।

याके = इस मनोकोशके घेराका विस्तार—

कारण देह = कारण देह, स्थूल, सूक्ष्मका कारण बीज हृदयस्थानमें रहता है, सो देह वहाँ तक है।

चारु अन्तःकरण = अन्तःकरण चतुष्टय कहिये— चित्त, बुद्धि, मन और अहंकार, यह चारों ही सूक्ष्म पुर्जा, भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ—

यं = अयं, यहाँ अन्तःकरणरूप भूमिकामें, देहके कारण, पुर्जाके नाईं बने रहते हैं।

तहाँ = वहाँ कारणदेहके भूमिकासे ही फिर—

सूक्ष्म = सूक्ष्म देहका व्यवहार और—

तत्त्व = पाँच तत्त्वकी सूक्ष्म भाग और स्थूल भाग-के रूपसे निकलके फिर—

प्रकृति = एक-एक तत्त्वकी पाँच-पाँच प्रकृतिके हिसाबसे, पचीस प्रकृतियाँ, सूक्ष्म देहकी, तथा स्थूल देहकी पचीस प्रकृतियाँ, सब पचास प्रकृतियाँ हुईं. और—

संयुत = दश इन्द्रियाँ, दश वायु आदि सहित सब एकमें मिल करके संयुक्त हुई, फिर नानाकर्म उससे होने लगा। ऐसा—

एकते = एक कारण देह अध्यासरूप बीजसे या कल्पित एक कारणरूप ब्रह्मसे, बीजसे वृक्षवत् एकसे अनेक—

बहुविधि = जगत्कार्यका बहुत प्रकारसे विस्तार हुआ। अथवा देह-वासनासे, अनेक तरहके देहधारी—

भयं = जीव उत्पन्न हुये, फिर कल्पनासे भयमें, पड़के वे व्याकुल हुये हैं, या हो रहे हैं।

व्याख्या— इस मनोमय कोशके मुख्य शरीरका नाम 'कारणदेह' है। उसीमें स्थूल, सूक्ष्म दोनों देहोंका बीज बना रहता है। भूमिका इसकी अन्तःकरण है। चित्त, बुद्धि, मन और अहंकार, ये चारों पुर्जे उसमें बने रहते हैं, उसे ही चतुः अन्तःकरण या अन्तःकरण चतुष्टय कहते हैं। जब यह अपने-अपने कार्य करने लग जाते हैं, तब पञ्चविषयोंकी उपस्थिति, पूर्व संस्कार उदय होके, नौ तत्त्वोंके सूक्ष्मदेह प्रगट हो जाता है। फिर उस सूक्ष्म देहके ५ तत्त्व, एक-एक तत्त्वके ५-५ प्रकृतियोंके हिसाबसे सब आये, तो २५ प्रकृतिके सहित बढ़ते-बढ़ते बाहर स्थूलदेह निर्माण हुई। उसमें भी ५ तत्त्वोंके एकमें ५-५ के हिसाबसे, सब २५ प्रकृतियाँ स्थूल देहकी भी बनीं, सो २५ प्रकृति पञ्चीकरणोंका व्यवहार चलने लगा। इस प्रकार जैसे एक कारणसे अनेक कार्य-कर्म आदिकी फैलावका विस्तार हो जाता है। तैसे ही कारण अध्यासरूप, वासनावश एक मनुष्यखानीका जीव, फिर देह छूटनेपर पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें जायके, एकसे अनेक देहें धारण करके, दुःख भोगता रहता है। अथवा एक अद्वैत ब्रह्म ही

स्वयं कारण बननेवाले, वेदान्ती लोग फिर कार्यरूप जगत्में वासना फैलाके बारम्बार दुःखभोगी होते हैं ॥ यह आधा छन्दका भावार्थ हुआ ॥

गन यक्ष योनि निवास कीन्हों ❀ चौरासी कारण अयं ॥
सन्धिक दशा आशा सो झाँई ❀ मनोमय वर्णन अयं ॥ २१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस छन्दमें, मनोमय कोशका सारांश फल वर्णन करके कहते हैं—

गन = गण—समूहरूपसे मानवगण नर-नारी जीव, त्रिगुणी मायाके नानाविषय जालोंमें ही, भूल रहे हैं। उनमेंसे—

यक्ष = धनिक लोग, विशेष तमोगुणी हो; धन, धान्य प्राप्ति और वृद्धिके लिये, यक्ष—राक्षसों-के उपासना-हिंसादिमें लगके क्रूरकर्म किये वा करने लगे। और—

योनि = कोई देवयोनि, सिद्धयोनि आदि अलग कल्पनासे, नानायोनियाँ मानके उन्होंके भक्ति करने लगे। और—

निवास = सिद्धलोक, देवलोकादिमें सामर्थवान् सिद्ध, देवताओंके निवास मानके, वहाँ जाके निवासकर, सुख भोगनेकी चाहनासे, मिथ्या धोखामें पड़के—

कीन्हों = नानाकर्म, कुकर्म, तपस्या, योग, भोग, आदि अनेकों साधना किये, परन्तु मिथ्या आशा तो पूरी नहीं हुई। उसी अध्यासवश अनेकों योनियोंमें जाके, देह धर-धरके, दुःख भोगने लगे। अतएव—

अयं = यह सम्पूर्ण खानी-वाणियोंके कर्म, अध्यास, संस्कार ही सब जीवोंको—

चौरासी = चार खानीके रासी, ढेरी, समूहरूप, अनेकों देह धराके, कष्ट भोगानेका, जन्म, मरण, गर्भवासमें घूमनेके—

कारण = मुख्य कारण बीजरूप ही है। और—

सन्धिक दशा = ईश्वर मानन्दीकी स्थिति, जो योगी लोगोंने मान रखे हैं, भ्रमके सम्बन्धहै।

सो = सो वह भी कल्पनामात्र है। फिर—

झाँई = ब्रह्म, धोखामें पड़के, भ्रमिक, गाफिल होके, योगी, ज्ञानीजन—

आशा = आशा तो मुक्त होनेकी रखते हैं, परन्तु उसी अध्यास, कुसंस्कारवश जगत् चौरासी-योनिके आवागमनमें ही पड़ जाते हैं।

अयं = यह सब निर्णय करके, खुलासासे—

मनोमय वर्णन = मनोमय कोशके वर्णनमें कह दिया है।

व्याख्या— और प्रथम अज्ञानी मनुष्य कल्पना करके, कोई भूतगण, देवगण, सिद्धगण, दानवगण आदि मानते हैं। कोई यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, गुह्यक, विद्याधर, किंपुरुष आदि अनेकों विभिन्न योनियाँ मानके, उनकी उपासना, भक्ति, योगादिसे पूजा, आराधना, मनौती करते हैं। उनसे मनो-कामनापूर्ण कराना, सुख चाहना, लोकादि प्राप्तिकी इच्छा रखते हैं। परन्तु यह सब मिथ्या कल्पना होनेसे किसीकी वह इच्छा तो पूर्ण होती नहीं; किन्तु सब वासनामें बद्ध हो जाते हैं। ऐसे जड़ाध्यासी जीव, समूहरूपसे चारखानीमें, अनेक रासी या ढेरी समूहरूपसे अनेकों देहोंको धारण करके चारखानीमें निवास किये, वहाँ कर्मफल भोगा करते हैं, और भोग ही रहे हैं। इसलिये यही अध्यास चौरासी योनियोंमें लेजानेका मूल कारण बीज है, और योगी, ज्ञानीलोग योग, ज्ञानके नाना साधना करके, कोई एक ईश्वरकी दृढ़ मानन्दी किये हैं। और उसीमें स्थिति कायम करने-की आशा अथवा ब्रह्ममें, मिलनेकी चाहना, तो खूब बढ़ाये हैं; परन्तु सन्धिक दशावाली आशा, सोई झाँई या महान भूल है। सो न जानके भ्रमरूप ब्रह्ममें जीव मिलना चाहते हैं, किन्तु उसमें मिल तो सके नहीं, तब गाफिल होके झाँईमें पड़, जड़ाध्यासी बने, तो फिर आवागमन चक्रमें डोलते ही रह गये। विना पारख जीवोंकी मुक्ति हो नहीं सकती है। इस प्रकार यह मनोमय कोशका विस्तारपूर्वक वर्णन करके, यहाँपर सन्धिक दशाकी आशा, झाँई आदिका विकार दर्शा दिया गया है। इसे यथार्थ रीतिसे जानना चाहिये ॥ यह भावार्थ है ॥ २१ ॥

सोरठाः—इन्ह अङ्गन संयुक्त ❀ मनोमय कारण देह यह ॥
[१] बन्धन त्रिगुण युक्त ❀ ब्रह्म निष्ठामें जीव बँधे ॥ २२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस आखिरी सोरठामें कहते हैं कि—

इन्ह = यह उपरोक्त अठारह चौकड़ीमें कहा हुआ ५६ किसिमका—

अङ्गन = समस्त भाग या अङ्गोंके या ५ तत्त्व, २५ प्रकृतियाँ, १० इन्द्रियाँ, ५ विषयादि सहित ऐसे अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके—

संयुक्त = सब भागोंको एकत्र मिलायके संयुक्त-रूपमें—

कारण देह = स्थूल, सूक्ष्मका कारण बीजरूप वासनाका देह है।

यह = सो यही कारण देह कहलाता है।

मनोमय = मनके स्वरूप मानन्दीके पर्दा, आवरणसे ढका हुआ मनोमय कोश है, और जो मनोमय कोश है, सोई मुख्य यह कारणदेह है।

त्रिगुण = रज, सत्त्व, तम। कर्म, उपासना, योग। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि और काम, क्रोध, मोह, यही त्रिगुण मायाके जालोंमें पड़के—

युक्त = उसीके कर्मअध्यास संयुक्त हो करके समस्त नर-जीव या मनुष्यवर्ग—

बन्धन = महाबन्धनोंमें जकड़े हुये चौरासी योनियोंमें पड़े वा पड़ रहे हैं। और कोई ज्ञानीलोग त्रिगुण व्यवहारोंको बन्धन जानके छोड़ तो दिये, परन्तु—

ब्रह्म निष्ठामें = तत्त्वमस्यादिकी एकताकर अद्वैत ब्रह्म निष्ठाके धोखामें पड़े हैं।

जीव = इस प्रकारसे ज्ञानी-अज्ञानी सब नर-जीव—

बँधे = खानी और वाणीके बन्धनोंमें बन्धायमान होगये, बिना पारख।

व्याख्या— इस सोरठामें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— कोश, आश्रम, देह, चिह्न, दशा, अवस्था इत्यादि इन उपरोक्त ५६ अङ्ग या भागोंके सहित, मनोमय कोशका यह कारणदेह हुआ है; अर्थात् मनके अध्यासरूप ही कारण देह है। इसमें त्रिगुण, तीन मार्ग, तीन अवस्था और काम, क्रोध, मोह इत्यादि त्रिगुणी मायाके जालोंमें पड़े हुये मनुष्य जीव सब महान बन्धनोंमें जकड़े हुये देह छोड़-छोड़के चौरासी योनियोंमें पड़े हैं, और पड़ रहे हैं। इनमें कोई ज्ञानीलोग हुए, वे तीन गुणोंको तो बन्धन जानके त्रिगुणीकर्मको छोड़ दिये। परन्तु कोई एक गुणातीत ब्रह्मको कल्पनासे निर्गुण, निराकार मानके तत्त्वमसिका मनन करने लगे, तो ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान यह त्रिगुण तो और उसी तत्त्वमसिके भीतर ही आगया। सब चराचरमें परिपूर्ण ब्रह्म अद्वैत है, ऐसी ब्रह्मनिष्ठामें या वाणी कल्पनामें, भ्रमिक होके, वे भी जड़ाध्यासके बन्धनमें बन्धायमान हुए, और आवागमन चक्रमें पड़े तथा पड़ रहे हैं। अर्थात् इन्हीं सब अङ्गोंसे संयुक्त यह कारणदेहके मनोमय कोश है। ब्रह्मनिष्ठामें बन्धे हुए जीव, पुनः त्रिगुणयुक्त बन्धनमें गिर पड़ते हैं। पूर्ण पारखबोध हुये बिना, यह खानी-वाणीकी अध्यास किसीकी नहीं मिटती है। अतएव हे जिज्ञासुओ! इन गुरुवा लोगोंके कुसंग, कुविचार त्यागके पारखी सद्गुरुके सत्संग करके, सब बन्धनोंको परखके, त्यागकर, मुक्त होओ!॥ यह भावार्थ है ॥ २२ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री मूल पञ्चग्रन्थीकी पञ्चकोश अन्तर्गत, तृतीय मनोमय कोशकी शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित समाप्तः ॥ ३ ॥ ❀ ॥

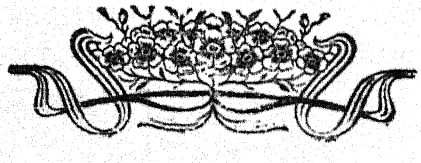

॥ ❀ ॥ अथ चतुर्थ ज्ञानमय कोश वर्णनम् प्रारम्भः ॥ ४ ॥ ❀ ॥

छन्दः—ज्ञानमय यह कोश जानो ❀ महाकारण देहको ॥
[७] उत्पत्ति खानि विकार पूरण ❀ ब्रह्मवर्ण अदेहको ॥ [यह आधा छन्द है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब ज्ञानमय कोशके प्रारम्भमें यह एक छन्द कहते हैं कि— हे सन्तो!

ज्ञानमय = ज्ञानस्वरूपी आत्मा, सर्वसाक्षी, सर्वत्र परिपूर्ण है, ऐसा माना हुआ मानन्दीरूप ज्ञानमय नामका ही ज्ञानस्वरूप ऐसे—
यह = यह चौथा नम्बरका—
कोश = कोश है। सोई साक्षी ज्ञानकी मानन्दी-कृत आवर्ण पर्दामें जीव ढक गया है। ऐसा यह धोखारूप खजानाका कोश है। अतः—
जानो = पारख करके इसको अच्छी तरहसे ठीक-ठीक जानलो।
देहको = तीनों देह, तीनों अवस्थाका साक्षीरूप माना हुआ, इसके देहको—
महाकारण = महानकारणरूप स्थूल, सूक्ष्म, कारण, यह तीनोंदेह पैदा होनेका बीजही जानिये। क्योंकि—
अदेह = देहसे रहित निराकार, निर्गुण—
को = उसको ही इस कोशमें कोई एक विदेहपूर्ण परमात्मा ठहराया है। वह—
ब्रह्मवर्ण = ब्रह्म-परमात्मा रूप-रङ्गसे रहित है, ऐसा वर्णन किये हैं। सो फिर—
पूरण = चराचरमें परिपूर्ण व्यापक ओत-प्रोत भरा हुआ माने हैं। इसीसे वह परिपूर्ण ही पूर्ण रीतिसे—
विकार = समस्त गुप्तमाया विकारसे भरा हुआ महाउपाधिरूप विकारका कारण —
खानी = दुःखकाखदान हुआ या चारों खानियाँ—
उत्पत्ति = पैदा होनेका मूलकारण हुआ, ऐसे वह ब्रह्म ही जगत् उत्पत्तिके खानी है।

व्याख्या— इस छन्दमें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—यह ज्ञानमय कोशको मानन्दीमात्र ही जानिये। इसका आवर्ण नरजीवोंकी बुद्धिको ढाकनेवाला है। महाकारण देह इसकी जो है, सो तीनों देहोंकी उत्पत्तिका बीज है। इच्छारूप तीनों अवस्थाओंका साक्षी ईश्वरको माना है। यह चारों खानीरूप जगत्की उत्पत्ति होनेका आदि कारण है, और पूर्ण जड़ अध्यासरूप विकारसे भरा पड़ा है। परन्तु ज्ञानी लोग ब्रह्मको आवर्ण, अस्फुर्ण, अदेह, निराकार, निर्गुण आदि लक्षणवाला मानके उसको जगत्में परिपूर्ण है, ऐसा कल्पनासे कहते हैं। वही तो पूरा जगत् विकारका खानी है॥ यह आधा छन्दका भावार्थ है॥

देवादि इच्छा करें ताकी ❀ ज्योतिरूप प्रत्यक्ष हैं ॥
साक्षी त्रिगुणको आदि कारण ❀ गुप्त राखैं स्वच्छ सो ॥ १ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब ज्ञानमयकोशके प्रारम्भमें, यह छन्दमें कहते हैं कि— हे सन्तो!

देवादि = ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि सब ऋषि, मुनि, सहित ज्ञानी, योगी, भक्तजन—
ताकी = ताक-ताक करके, उसी ब्रह्मको ही प्राप्त करनेकी वा तदाकार होनेकी या ब्रह्म ही बननेकी—
इच्छा = चाहना, कामना, आशा, इच्छा—
करें = किया करते हैं, प्रथम किये, और अभी कर रहे हैं। जब योगादि साधना किये तो—
ज्योतिरूप = ध्यानमें ज्योति प्रकाशस्वरूपको वृत्ति स्थिर होनेसे, भीतर—
प्रत्यक्ष = सन्मुख प्रत्यक्ष देखने लगे और—
है = यही परमात्मा ब्रह्मका साक्षात् स्वरूप है, ऐसा मान लिये हैं।
त्रिगुणको = और तीनगुण, तीन देह, तीन अवस्था, इत्यादि उत्पत्तिका—
आदि कारण = प्रथम बीज महाकारण या मूलहेतु तो वही है। उसको ज्ञानी गुरुवा लोग—
साक्षी = सर्वसाक्षी, असंग, अलिप्त—
स्वच्छ = शुद्ध निर्विकार या स्वच्छ मानकर—
सो = उसी मानन्दी कल्पनाको दृढ़कर—
गुप्तराखैं = छिपायके मनमें गुप्त करके रखते हैं।

व्याख्या— और माना हुआ विदेह ब्रह्मवर्ण परमात्मा जो है, सो उसीको प्राप्ति करनेकी चाहना ब्रह्मादि, शिवादि देवतालोग और नरजीव या मनुष्यवर्ग बड़ी इच्छा, उत्कट अभिलाषा करते हैं, और कर रहे हैं। इसीसे नाना प्रकारकी साधना ध्यानादि करने लगे, तो मन-पवनकी घर्षणसे वृत्ति स्थिर होकर प्रत्यक्ष ज्योतिप्रकाशमें, कल्पित स्वरूपका भास देखनेमें आया, उसीको उन्होंने यही ब्रह्म स्वरूपका साक्षात् दर्शन है, ऐसा मान लिये; अथवा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें जितना प्रकाश है, सो सब उसी ब्रह्मका ज्योति-स्वरूपका प्रकाश है, ऐसा मान लिये हैं, और त्रिगुणके साक्षी माना हुआ आत्मा ही. तीन देहरूप सारा जगतका मूल आदि कारण है, सोई शुद्ध ब्रह्म है, अधिष्ठान है, ऐसा-ऐसा कहके, उस कल्पित मतको, ज्ञानी लोग गुप्तरूपसे, अन्तःकरणमें छिपाके रखते हैं। परन्तु उस गुप्त अध्याससे पुनः-पुनः आवागमनमें ही जाते रहते हैं। पारखस्वरूपकी स्थिति हासिल किये बिना, कोई भी ब्रह्मज्ञानी मुक्त हो नहीं सकते हैं। इसीसे जन्म-मरणके चक्रमें ही पड़े, और पड़ते रहते हैं॥ यह भावार्थ है॥ १॥

दोहाः—ज्ञानमये यह कोशमें ❀ भटके बहु अज्ञान॥
[६] गुरु पारख पाये बिना ❀ मानि-मानि भरमान॥ २॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—हे सन्तो!

ज्ञानमये = आत्मज्ञानके मानन्दीरूप ज्ञानमय नामके
यह = यह चतुर्थ ज्ञान स्वरूप ही माना हुआ इस—
कोशमें = कोशमें या ढक्कन महाआवर्ण पर्दामें आच्छादित होकरके कल्पित वाणीरूपी खजानाकी कोशका रखवारी कर—
बहु = बहुतेरे या अनेकों मनुष्य—
अज्ञान = सत्यासत्यका यथार्थ पारखज्ञान न जाननेवाले, अज्ञानी भ्रमिक नरजीव सब ही—
भटके = वाणी-खानीके घनचक्रमें भूले-भटके हुए पड़कर, चौरासीयोनियोंमें ही गये और अभी भी भटकते हुए वैसे ही जा रहे हैं।
गुरु = पारखप्रकाशी, तमविनाशी, वन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी—
पारख = सत्यसिद्धान्त, चैतन्य पारखबोध या परिज्ञादृष्टिको खोलकर लखानेवाला, दिव्य दृष्टि—
पाये बिना = प्राप्त या हासिल किये बिना, या स्वरूप बोध हुए बिना, सब मनुष्य-समाज, बिना विवेक—
मानि-मानि = ब्रह्म, ईश्वर, कर्ता, व्यापक आदि वाणी और खानीके जगत् ब्रह्म सम्बन्धी इत्यादि भ्रम कल्पनाको ही मान-मानके, उसी मानन्दी में ही पड़के—
भरमान = भ्रमिक जड़ाध्यासी हो-होकर ऋषि, मुनि आदिसे लेके सब सिद्ध-साधकगण अपने स्वयं भूले और अन्य बहुतेरे मनुष्योंको भी वही भ्रम दृढ़ा-दृढ़ाके, धोखादेके, भुलाये वा भुला रहे हैं। इसीसे सब मान-मानके भरमाये और भरमाय रहे हैं। बिना पारख वह भ्रम नहीं मिटती है।

व्याख्या— इस दोहामें, ग्रन्थकर्ता खुलासा कहते हैं कि—ज्ञानमयकोश यह चौथा कोश है, ज्ञानी लोगोंका माना हुआ, आत्मज्ञानका आवर्ण नरजीवोंपर छाया पड़ा है। इसकी मानन्दीमें बहुतेक मनुष्य अज्ञानतासे ही पड़े हैं। ज्ञानी-अज्ञानी दोनों ही वाणी-खानीके महासघन वनमें भटक-भटक करके, सत्यबोधसे हीन हो जकड़े गये, तो भ्रमकूपमें ही गिर गये हैं, और अज्ञानी जड़ाध्यासी जीव सब आवागमनके अधिकारी हुए हैं। इस कारणसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके गुरु पारखदृष्टि स्व-स्वरूपका यथार्थ ज्ञान सत्यबोध पारखीसद्गुरुके उपदेशद्वारा प्राप्त हुए बिना किसीका भ्रम छूटा नहीं, और छूट सकता भी नहीं। अतएव गुरुवालोग योगी, ज्ञानी, भक्तादि सब कोई धोखासे कर्ता ईश्वरादि, देवी, देवतादि और विषयादि मिथ्या भ्रमको ही कल्पनासे सत्य मान-मानके भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए, और दूसरे मनुष्योंको भी भ्रमा-भ्रमाकर भुला रहे हैं। बिना पारख यह महाभूल किसीकी छूट सकती नहीं। अतः पारखबोध लेकर मानन्दी भ्रमको त्यागना चाहिये॥ यह भावार्थ है॥ २॥

सम्बन्ध— अब यहाँसे ज्ञानमयकोशका अङ्ग विभिन्न विभागोंको; चौकड़ी १ से १८ तकमें कहा गया है ॥

॥ चौकड़ी ॥ चतुर्थ खण्ड ॥ ४ ॥

१. ज्ञानमय कोश महाकारणरूप * आश्रम चौथ संन्यास स्वरूप ॥ ३ ॥

कोशः— १ अन्नमय, २ प्राणमय, ३ मनोमय, ४ यहाँ ज्ञानमय कोश माना है ॥ देहः— १ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ कारण, ४ यहाँ महाँकारण देह कहा है ॥ आश्रमः— १ ब्रह्मचर्य, २ गृहस्थ, ३ वानप्रस्थ, ४ यहाँ संन्यासआश्रम माना है, सो चौथा त्यागका स्वरूप है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो ! इस चौथे कोशमेंका विवरण सुनिये !

ज्ञानमय = ज्ञानस्वरूप ही माना हुआ आत्मज्ञानका आनन्दी, सो इसी नामका यह चतुर्थ—

कोश = कोश है । सो जीवोंको ढाकनेवाला महा-आवर्ण पर्दा या काल जाल ही है, इस कोशमें वाणी कल्पनाका खजाना विशेष भरा रहता है ।

महाकारणरूप = महानकारण-मूल बीजस्वरूप तीनों देहादि जगत् पैदा होनेका हेतुरूप है ।

आश्रम चौथ = इसमें चतुर्थ आश्रम या टिकावकी भूमिकाके भेषमें संन्यास नामका आश्रम है ।

संन्यास = जो सर्वस्व परित्याग करके मूँड़-मुँड़ाय भगवा वस्त्र पहिर करके, कोई मुण्डी बनते हैं, कोई काषायवस्त्र पहिर, त्रिदण्डादि चिह्न धारणकर डण्डी बने हुए दशनामी संन्यासी कहलाते हैं ।

स्वरूप = वे अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को एक व्यापक ब्रह्मका स्वरूपमें ही निश्चय करतेहैं । यही उन्होंका भेष या सिद्धान्तका स्वरूप है ।

व्याख्या— यहाँ चौथा ज्ञानमय कोशका वर्णन है । इसका महाकारण देह कहा गया है । सो महान कारणरूप ही है । यानी स्थूल, सूक्ष्म, कारण, इन तीनों देहोंका बीज वासना, अध्यास आदि सब विकार उसीमें टिके रहते हैं; ऐसा उसका महाकारणरूप है । और आश्रमोंमें, चौथा आश्रम संन्यासको माने हैं । संन्यासी चार प्रकारके होते हैं:—१ कुटीचक, २ बहूदक, ३ हंस, और ४ परमहंस कहलाते हैं । इसका भेद विष्णुस्मृतिके प्रमाण देके "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन" में दिखाया हुआ है, सो उसका खुलासा भेद नीचे टिप्पणीमें ❀ लिख दिया है उससे जान लीजिये । और दण्डी वा मुण्डी दो प्रकारके मुख्य भेद संन्यासियोंमें होता है । जो त्रिदण्ड, कमण्डलु, भस्म, काषाय वस्त्र, धारण करनेवाले होते हैं, वे दण्डी कहे जाते हैं, और मूँड़-मुड़ायके गेरुवा वस्त्रमात्र पहिने हुएको मुण्डी कहते हैं । उनमेंके संन्यासी लोग कोई मधुकरी-भिक्षासे क्षेत्र आदिसे भोजन माँगकर, रोटी आदि भोजन हाथोंमें ही लेके खड़े-खड़े खाते हैं, वे करपात्री कहलाते हैं, कोई कुटीमें लेजाके खाते हैं, ऐसे अनेक तरहके विचित्ररूप बनाये हुए संन्यासी कहलानेवाले होते हैं । दशनाम संन्यासियोंको मुख्य माने हैं । उनके नामः—

दोहाः—"गिरि पर्वत सागर पुरी, भारती वन औ तीर्थ * आरण्यक आश्रम सरस्वती, दशसंन्यासी प्रकीर्थ ॥"

सर्वस्व त्याग करना, संन्यासी होनेका चिह्न कहा है । परन्तु वे तो त्याग क्या करेंगे; उल्टा जगत् सबको भी अपने स्वरूपमें ही ग्रहणकर लेते हैं । खूब राग बढ़ा लेते हैं, तो बन्धन कैसे छूट सकता है ? कभी नहीं छूटता है, सर्वव्यापक या सर्वाधिष्ठान ब्रह्म या आत्माको मानकर, स्वयं जगत्रूप बनके, महाबन्धनमें ही पड़े हैं ॥ ३ ॥

❀ टिप्पणीः—अब यहाँ संन्यास आश्रमके बारेमें शास्त्रोक्त प्रमाण देके वर्णन करते हैं, सो भी सुनिये !—

श्लोकः—"वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ॥ चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । ३३ ॥

अर्थः—इस प्रकार वनमें रहते हुए आयुका तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्षसे ७५वें वर्ष पर्यन्त, वानप्रस्थ होके

आयुके चौथे भागमें (७६वें वर्षसे अन्त तकके लिये) सब प्रकारके संगोंको त्याग कर प्रव्रजित अर्थात् संन्यासी हो जावे ॥

"प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत् ॥ यजुर्वेद ब्राह्मण ॥"

श्लोकः—**"प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ॥ तस्यतेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ॥ सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते" ।**

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । श्लोक ३८ । ३९ । ४२ ॥

अर्थः—यजुर्वेदके कथन प्रमाण प्रजापतिरूप परमेश्वरकी प्राप्तिके अर्थ सर्वस्व दक्षिणावाली इष्टि यानी यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत, शिखादि चिह्नोंको छोड़, विधानके अनुसार आहवनीयादि पाँच अग्नियोंको अपने आत्मामें ही स्थित पञ्च-प्राणोंमें आरोपणकर, यानी मान करके ब्रह्मविद् ब्राह्मण वानप्रस्थआश्रमरूप घरसे निकलकर फिर संन्यासी हो जावे । जो सब भूत प्राणिमात्रको अभयदान देकर घरसे निकलके संन्यासी होता है, उस ब्रह्मवादी संन्यासीके लिये प्रकाशमय लोक प्राप्त होता है । सब सङ्गरहित एक पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है, इस बातको जानकर, अकेला ही सदा मोक्षके लिये विचरे, और जिसका सहायक कोई न होय, जो एकाकी विचरता है, वह किसीको नहीं छोड़ता है, और न किसीके छोड़नेका दुःख पाता है, न किसी करके वह छोड़ा जाता है, और न कोई इस करके छोड़नेके दुःखको अनुभव कराया जाता है, तिससे सर्वत्र ममतारहित सुखसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥

श्लोकः—**"चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचक बहूदकौ ॥ हंसः परमहंसश्च पश्चाद्योयः स उत्तमः ॥"**

॥ विष्णु स्मृतिः, अध्याय ४ । श्लोक ११।१२ ॥

अर्थः—संन्यासी चार प्रकारके होते हैं, उनके नाम ये हैं:—१ कुटीचक, २ बहूदक, ३ हंस, और ४ परमहंस इनमें जो-जो पिछला है, वही-वही उत्तम है ॥

तिन चार प्रकारके संन्यासियोंका खुलासा लक्षण उसी विष्णु स्मृतिके चतुर्थ अध्यायमें श्लोक १२ से २९ के आधा-भाग तक लिखा है । उसका भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है (जो 'निर्पक्ष सत्यज्ञानदर्शन' में भी आया है) ।

(१) प्रथम संन्यासीः—त्रिदण्ड वा एक दण्ड धारणकर सम्पूर्ण सुखोंके स्वादोंको त्याग, पुत्रके लिये समस्त वस्तु वह छोड़ दे । बाहर भिक्षा न माँगके, पुत्रसे ही वह शरीर निर्वाहकी सेवा करवावे । वह घरमें ही नित्य भोजन करे । काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, झूठ, इनको वह छोड़दे, उस संन्यासीको "कुटीचक" कहते हैं ॥ (२) दूसरा संन्यासीः—अपने बन्धुओंको त्यागके त्रिदण्ड, कुण्ड और भिक्षाका पात्र तथा जनेऊ वह नित्य धारण करे । प्राणायाम करके गायत्री जपता रहे । हृदयमें भगवान्का ध्यान कर इन्द्रियोंको जीतकर समय बिताता रहे, सो "बहूदक" संन्यासी कहाता है ॥ परन्तु केवल वस्त्रोंको रँगाके गेरुवा करके एक संन्यासीका चिह्नमात्र जो बनाते हैं, वह अन्नके ही निमित्त है, कुछ मोक्षके निमित्त नहीं, कहा है, ऐसी मर्यादा है ॥ (३) तीसरा संन्यासीः—सम्पूर्ण पुत्र, धनादिकोंको त्यागकर योगके मार्गमें स्थिर रहकर, इन्द्रियाँ और मनको वह वश करे । वह चान्द्रायणादि कठिन व्रतोंको आचरण कर ब्रह्मपदकी इच्छा करता हुआ, अपने शरीर-को सुखादे । यज्ञोपवीत, दण्ड और जिससे मक्खी आदि जीव शरीरपर न गिरें, ऐसा वस्त्र वह धारण करे, उक्त वेदके ज्ञाता संन्यासीको "हंस" कहते हैं ॥ (४) चौथा संन्यासीः—अपने आत्मारूप व्यापक ब्रह्मको ॐकारसे जपता हुआ, और प्राणायामको करता हुआ, सर्व गृहादिकोंके सम्बन्धसे रहित, आत्मामें स्थित वह नित्य पृथ्वीपर विचरे । इन चारोंमें सबसे बड़ा यह "ध्यानभिक्षु (परमहंस)" संन्यासी कहलाता है । त्रिदण्ड, कुण्डी, यज्ञोपवीत, कपालिका (भिक्षाका पात्र), जन्तुओंको निवारण करने योग्य वस्त्र, इन सबोंको यह संन्यासी त्याग दे । कौपीन, ओढ़नेका वस्त्र इतना ही केवल परमहंस धारण करे, और वह एक दण्ड धारण करे । वह अपनी बुद्धिसे सर्व शुभाशुभ कर्मोंको त्यागके, हर्ष, शोक छोड़, गूँगेके समान मौन धारण करके पृथ्वीपर भ्रमण करे ॥

श्लोकः—**"देह संरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्द्विजातिषु ॥ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥"**

अर्थः—देह ही की रक्षाके निमित्त भिक्षाको द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इन तीन जातियोंके घर) में माँगे । भिक्षुकका पात्र हाथ ही है, उसीसे नित्य गृहोंमें विचरणकर, भिक्षा माँगकर खावे ॥

२. महा प्रलय शिव लिङ्ग बखान ❀ दशा मौन तुर्या पद मान ॥ ४ ॥

प्रलयः—१ नित्य, २ नैमित्तिक, ३ विश्व, ४ यहाँ महा प्रलय कहा है ॥ **चिह्नः**—१ आचार, २ गुरुमय, ३ जङ्गमात्मलिङ्ग, ४ यहाँ शिवलिङ्ग बखान किये हैं ॥ **दशाः**—१ बाल, २ पिशाच, ३ उन्मत्त, ४ यहाँ मौन दशा कहा है ॥ **अवस्थाः**—१ जाग्रत्, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति, ४ यहाँ तुरिया अवस्थाको चौथापद माने हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—हे सन्तो ! इस चौथे कोशमेंका विवरण सुनिये !

श्लो०:—"त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥"
॥ विष्णु स्मृतिः, अध्याय ४ । श्लोक ३५ । ३६ ॥

अर्थः— और जो लोक, वेद, विषय, इन्द्रिय इनको त्यागकर, आत्माके विषय ही स्थित रहता है, वह परमपदको प्राप्त होता है ॥

श्लोकः—"कौपीनाच्छादनं वासो बिभृयादव्यथश्चरन् ॥ शून्यागार निकेतः स्याद्यत्र सायं गृहोमुनिः ॥"
॥ शंखस्मृतिः, अध्याय ७ । ५ ॥

अर्थः— दुःखसे रहित संन्यासी वनमें निवास करता हुआ, कौपीन और गुदड़ीके ही वस्त्रोंको पहरै । शून्य स्थानमें निवास करै, जहाँ सन्ध्या हो जाय, वहीं गृह मानकर, मौन हो निवास करै ॥

श्लोकः— "दृष्टि पूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । ४६ ॥ और शंखस्मृतिके अध्याय ७ । ६ में भी कहा है ॥

अर्थः— जब संन्यासी मार्गमें चलै, तब इधर-उधर न देखकर नीचे पृथ्वीपर दृष्टि रखके चले । अर्थात् बाल, हाड़ आदि अशुद्ध जगहमें पैर न पड़े, उसको बचानेके लिये भूमिमें देख-देखके पैर रखे । और सदा वस्त्रसे छानके जल पीवै, निरन्तर सत्यवचन ही बोलै, और सर्वदा मनसे विचारके सत्यका ग्रहणकर असत्यको छोड़ै, निषिद्ध संकल्पोंसे रहित मनसे शुद्धाचरण करै ॥

श्लोकः— "संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनिवासदा । शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष वसुधां चरेत् ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । ६८ ॥

अर्थः— शरीरको दुःख होनेपर भी छोटी प्राणी चींटी आदिकी रक्षाके लिये रात्रिमें वा दिनमें सदा भूमिको देखके विचरै ॥

श्लो०:— "धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥" मनु० ॥

अर्थः— धृति = धैर्य, क्षमा = अपराधका सहनशीलता, दम = मनको दबाना, अस्तेय = चोरीका त्याग, शौच = भीतर-बाहरकी शुद्धता, इन्द्रियनिग्रह = इन्द्रियोंको रोके रखना, धीः = बुद्धि शुद्ध रखना, विद्या = यथार्थ ज्ञान, सत्य = सत्य बोलना, अक्रोध = क्रोधका त्याग करना, यह धर्मका दश प्रकारका लक्षण है । यह उपरोक्त दशों धर्मका लक्षण चारों आश्रमियोंने यत्नसे धारण करने या पालन करनेको कहा गया है ।

इसमें ऊपर कहे हुये सब शास्त्रोंके नियम पालन करनेवाले यतिको संन्यासी वा भिक्षु कहते हैं । और जो इन मर्यादाओंको भी त्यागकर पागलके सरीखी मनमाने वर्तते हैं, बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक और जड़वत् दशाको बनाय, दुर्दशाग्रस्त हो रहते हैं, वे परमहंस विज्ञानी कहे जाते हैं । गुरुवा लोगोंने तो इनकी महिमा सबसे बढ़के वर्णन किया है । परन्तु ये सबसे गये-बीते मूढ़ महा अज्ञानीवत् ही हो जाते हैं ।

अतः इन संन्यासी, परमहंस लोग अद्वैत ब्रह्म अपनेको मानकर भ्रमिक हो गाफिलीमें पड़े रहते हैं । निज चैतन्य स्वरूपकी स्थितिसे वे वञ्चित ही रहते हैं । जड़ाध्यासी होनेसे चौरासीयोनियोंमें भटकनेके ही अधिकारी होते हैं । देह छूटनेपर बारम्बार आवागमन चक्रमें ही वे पड़े रहते हैं । इस कारण मुमुक्षुओंने इस धोखाके खाँचमें कभी पड़ना नहीं चाहिये । सत्यन्यायी, पारखी साधु-गुरुके सत्संग विवेक-विचारद्वारा, भली प्रकार परखकर चारों आश्रमोंका ठीक-ठीक भेदको जान लेना चाहिये । यह संक्षेपमें संन्यास आश्रमकी गुण, लक्षण, बर्तावके बारेमें दिखला दिया है, सो समझके जान लीजिये ॥

॥ ❀ ॥ इति टिप्पणी समाप्तः ॥ ❀ ॥

महाप्रलय = सर्वजगत् प्रपंचको महत्तत्त्वमें लयकर उसको प्रकृति सहित ब्रह्ममें लय करके फिर अपना एक आत्माका भाव बना रहना, मनका लय होना, यह महान प्रलय होना माने हैं।

शिवलिङ्ग = शिव कहिये, कल्याणरूप परमात्मा, सूक्ष्मभावसे सबके हृदयमें प्रकाशरूपसे विराजमान है, ऐसा जानकर आत्मज्ञानसे कल्याण होना, सोई उसका लिङ्ग या चिह्न माने हैं—

बखान = ऐसा ज्ञानी लोग कल्पनासे बखान या वर्णन किये वा करते हैं।

मौन = अपनेको सबमें व्यापक मानकर और ब्रह्मसे भिन्न कुछ भी न जानकर एक अद्वैत पदका दृढ़ निश्चय करके चुपचाप पड़े रहना या वाचासे परे हो जाना, कुछ भी न बोलना, सो मौनदशा माने हैं।

दशा = ऐसी स्वभावकी स्थिति या मूकदशा, ज्ञानीलोग जान-बूझके बनाय लेते हैं।

तुर्यापद = गायत्रीका चतुर्थ पदमें मायादेवीका अधिकार रहता है, सो तुरिया मुख्य मायाका पद है—

मान = ऐसा गुरुवालोगोंने कल्पना करके अचिन्त्य, सर्व शक्तिवाली, अनिवर्चनीय माने हैं। अथवा तुरियाअवस्थाका पद यहाँ चौथा माना गया है॥

व्याख्या— और किसी जमानेमें जगत्का महाप्रलय होके सब नाश हो जायगा, ऐसा संसारी अज्ञानीलोग कल्पना करके भ्रमसे मानते हैं; और ज्ञानीलोग सब जगत्को ब्रह्ममें लयकर जगत्का सर्वथा अभाव, सुनशानकर, और अपना ब्रह्मभाव बनाये रखना, इसको महाप्रलय माने हैं; तथा कल्याणरूप शिवको सूक्ष्मभावसे परमात्मा मानकर उसको सबके हृदयमें प्रकाश करनेवाला सूक्ष्मरूपसे मानना, सो शिवलिङ्ग या शिवके ज्योतिस्वरूपका चिह्न माना है। ऐसा गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हैं। और गूँगा सरीखी गुम-सुम मूक हो रहना, कुछ भी न बोलना, वही उन ज्ञानियोंका मौनदशा कहा है। तुरिया कहिये चौथा गायत्रीका पद या चरण मायारानीको इस कोशमें माने हैं, अथवा चौथे अवस्थामें तुरिया साक्षीपदको माना गया है। अर्थात् तीनों अवस्थाओंसे परे तुरिया साक्षीपद सहविकल्प समाधि स्थितिको चतुर्थ अवस्था सर्वोच्च स्थिति माना गया है। ज्ञानीलोग उसी अवस्थामें रहते हैं, वा रहनेका प्रयत्न किया करते हैं॥ यह भावार्थ है॥ ४॥

३. मुक्ति सायुज्य बखानै वेद ❀ अभिमानी प्रत्यगात्मा भेद॥ ५॥

मुक्तिः— १ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य, ४ यहाँ सायुज्य मुक्ति कहा है॥ अभिमानः— १ विश्व, २ तैजस, ३ प्राज्ञ, ४ यहाँ प्रत्यगात्मा अभिमान माना है। यही भेद कहा है॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

मुक्ति सायुज्य = 'जलतरङ्ग न्याय'से ज्योतिमें ज्योतिका मिलाप या जीव-ब्रह्मकी तदाकार एकता होना। इस प्रकारसे आत्मज्ञानी इष्ट ब्रह्मस्वरूपमें ही मिलकरके जगत्-बन्धनसे छूटकर, सायुज्यमुक्त हो जाते हैं, ऐसे माने हैं।

वेद = सो ऋग्वेदके प्रमाणसे गुरुवा लोगोंने—

बखानै = उपरोक्त प्रकारसे वर्णन करके कहते हैं, या बखान किये हैं। और—

प्रत्यगात्मा = आत्मा सब घटोंघटमें प्रत्येक प्राणियोंमें भरा है। परन्तु सबसे अलिप्त होनेसे न्यारा मैं ही एक आत्मा सर्वरूप हूँ, मेरा ही सब खेल है—

अभिमानी = ऐसे ज्ञानीलोग आत्माभिमानी हुए हैं, इसीसे तो जड़ाध्यासी बद्ध हुए हैं। और हो रहे हैं।

भेद = यही इसका भेद या मर्म है। ऐसा जान लीजिये॥

व्याख्या— वेदवादी गुरुवा लोग वेद प्रमाणसे आत्मज्ञानियोंकी सायुज्यमुक्ति बताते हैं। अर्थात् जैसे जल और तरङ्ग एकमें कोई भेद रहता नहीं, और दियाकी ज्योति, ज्योतिमें मिलके अभेद हो जाता है। तैसे ही ज्ञानसाधनासे भ्रम छूटनेपर जीव और ब्रह्म भी मिलके एक ही रूप हो जाता है, वही बड़ा

भारी मुक्ति कहे हैं। ऐसा कल्पना किये हैं, सो भ्रम ही है, और 'एकोऽहं' इच्छासे सर्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड, कला प्रगट होनेका प्रत्यगात्मा अभिमानको ईश्वरीय कला माने हैं। अर्थात् मैं आत्मा 'सूत्रमणि न्याय' सब घटवासी हूँ। परन्तु अलिप्त होनेसे न्यारा हूँ। ऐसा हंकार लेना, सो प्रत्यगात्मा अभिमान कहलाता है, सोई ज्ञानियोंने प्रत्येक आत्माको एक रूपमें मानके धारण किये हैं ॥ ५ ॥

४. सोऽहं दीक्षा विदेहानन्द * साधन साक्षात्कार आनन्द ॥ ६ ॥

दीक्षाः— १ कोऽहं, २ वोऽहं, ३ शिवोऽहं, ४ यहाँ सोऽहंदीक्षा माना है ॥ आनन्दः—१ विषय, २ योग०, ३ अद्वैत०, ४ यहाँ विदेहानन्द माना है ॥ साधनः—१ श्रवण, २ मनन, ३ निदिध्यासन, ४ साक्षात्कार, यहाँ साधनका आनन्द कहा है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

दीक्षा = ज्ञानी लोगोंके उपदेशरूप शिक्षा-दीक्षारूपी दृढ़ापन इस कोशमें—

सोऽहं = सो कोई ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ। ऐसा कहते या मानते हैं। और सोहंको ही श्वासमें लक्ष लगाके जपा करते हैं।

विदेहानन्द = प्रकाशरूप ब्रह्म देहातीत या विदेह स्वरूप है, सो तीन देहादिसे परे होनेसे विदेह है, और आनन्दमय या आनन्दस्वरूप ही है। आत्माके आनन्द विदेहानन्द है,

ऐसा ठहरायके उसमें मिलनेकी इच्छासे—

साधन = साधन चतुष्टयादि नाना साधनाओंको साध करके, वृत्तिको लयकर शून्यमें समा जाते हैं! माना हुआ—

आनन्द = आनन्दस्वरूप आत्माका—

साक्षात्कार = प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्तिको आत्मसाक्षात्कार फल माने हैं। यानी ज्ञानसाधनासे आनन्दरूप आत्माका साक्षात्कार होता है, ऐसा माने हैं।

व्याख्या— ज्ञानियोंकी मुख्य दीक्षारूप उपदेशका दृढ़ापन यहाँ 'सोऽहं' है। इसीका श्वास-उच्छ्वासमें योगी लोग भी लक्ष लगायके अजपा नामसे जाप करते हैं। और तीन गुण, तीन देहसे परे ऐसे ब्रह्मका आनन्द विदेह है, ऐसा कल्पनासे मानके, उसके प्राप्तिके लिये चतुष्टय साधनायें-विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, और शमादि षट् सम्पत्ति आदि साधना करके, समाधि लगाये, तो वहाँ वृत्तिलय होके निवृत्ति होनेसे एक प्रकारका सुख आनन्दका अनुभव हुआ। उसीको आत्मसाक्षात्कार या आत्मानुभव मानके ज्ञानी लोग मनके भास देहके अध्यासमें भूल गये, अतएव उनकी मुक्ति स्थिति नहीं हुई। बन्धनसे छूट नहीं सके, अतः जगत् बन्धनोंमें हो पड़े हैं ॥ ६ ॥

५. निर्णय आत्मा ईश्वर सो देव। ज्ञान शक्ति ॐ पद भेव ॥ ७ ॥

निर्णयः— १ क्षर, २ अक्षर, ३ क्षेत्रज्ञ, ४ यहाँ आत्मा निर्णय माना है ॥ देवताः—१ गणेश, २ मार्तण्ड, ३ रुद्र, ४ यहाँ ईश्वर देवता कहा है ॥ शक्तिः—१ क्रिया, २ द्रव्य, ३ इच्छा, ४ यहाँ ज्ञानशक्ति कहा है ॥ गायत्रीके पदः—१ भूः (पृथ्वी) २ भुवः, (अन्तरिक्ष) ३ स्वः (द्यौ), ४ ॐ पद (माया), यहाँ पर यही भेद कहा है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

आत्मा = एक आत्मा ही सत्य है और सब असत्य है—

निर्णय = ऐसा अद्वैत सिद्धान्तको यहाँ मुख्य निर्णय माने हैं।

ईश्वर = षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त निराकार सर्वशक्तिमान् कोई एक परमेश्वर ठहराके—

सो देव = सोई देवता इष्ट माने हैं।

ज्ञान शक्ति = सर्वज्ञता सम्पन्न ज्ञानके बड़ा शक्ति यहाँपर माने हैं।

ॐ पद = ॐकार ब्रह्मपद सोई प्रणव स्वरूप मुक्तपद माने हैं। अथवा गायत्रीके चतुर्थ पदमें मायाको कहे हैं।

भेव = यही इसका मर्म या भेद है, यानी ॐ पदका यही भेद जानिये।

व्याख्या—ज्ञानमयकोशमें एक आत्मा ही अद्वैत सत्य है। यही निर्णय आत्मज्ञानियोंने किये हैं। षट्गुण ऐश्वर्यका नाम दोहामें कहा है:—

दोहाः—"श्री, विराग, यश, ज्ञान, बल * प्रभुता जामें होय ॥
षट्ऐश्वर्य संयुक्तको * ईश कहत हैं कोय ॥"

ऐसे ईश्वरको इष्ट-देवता माने हैं। तथा उसका सर्वज्ञतापना ज्ञानकी बड़ीभारी शक्तिको ज्ञानशक्ति कहे हैं। और ॐकारको पूर्णब्रह्मपद मानते हैं; अथवा गायत्रीका चौथापद भी यहाँपर ॐपदमें माया कहे हैं ॥ ७ ॥

६ बड़वाग्नि मुद्रा अगोचरी * मात्रा इकार वाचा परा परी ॥ ८ ॥

अग्निः — १ जठराग्नि, २ कामाग्नि, ३ मन्दाग्नि, ४ यहाँ बड़वाग्नि (ज्ञान) माना है ॥ बहिर्मुद्राः — १ खेचरी, २ भूचरी, ३ चाचरी, ४ यहाँ अगोचरीमुद्रा कहा है ॥ मात्राः— १ अकार, २ उकार, ३ मकार, ४ यहाँ इकार (अर्धमात्रा) माना है ॥ वाचाः— १ वैखरी, २ मध्यमा, ३ पश्यन्ती। ४ यहाँ परावाचाको तीनों वाचासे परे माने हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

बड़वाग्नि = जैसे बड़वानलअग्नि समुद्रमें भीतर रहता है, तो वह जलके लहरियोंको उठाता रहता है, तैसे ही प्रकाशाग्नि अहंइच्छाओंका स्फुरणा करती रहती है। ज्ञानको बड़ा अग्नि माने हैं।

अगोचरी = इन्द्रियोंसे जानने योग्य नहीं, परन्तु अनुभवसे ब्रह्म अनिर्वाच्य स्थितिको जानने योग्य है, ऐसा मानके—

मुद्रा = उसीमें मनोवृत्तिको लगाके एकाग्र करने की क्रियाको मुद्रा माने हैं।

मात्रा = ॐकारकी चौथी मात्रा यहाँपर—

इकार = अर्धमात्राको नाभिमें माने हैं, वही इकार मात्रा कहलाता है।

वाचा परा = परावाचाको ब्रह्माण्डमें तालु स्थानमें और पिण्डमें नाभिस्थानमें मानके उसको—

परी = तीनों वाचाओंसे परे माने हैं, यानी परा वाचाको सबसे परे कहे हैं।

व्याख्याः— और समुद्रके गर्भमें रहनेवाला अग्निका नाम बड़वाग्नि है, वह अपनी उष्णतासे जलको शोषण करता रहता है, उसीसे उद्वेग पायके तरङ्ग उठा करते हैं। सोई यहाँपर प्रकाशाग्निको बड़वाग्नि भी कहते हैं। जैसे समुद्रमें तरङ्ग या लहरी बड़वानल उठाया करता है, तैसे ही आत्मज्ञान हृदयमें स्थित होके स्फुरणासे अहंइच्छा कराता रहता है। इच्छा फुरानेवाला वह अग्नि है। अर्थात् कल्पनासे परमतत्त्व परमात्माको शीतलरूप माने हैं। परन्तु वही बड़वाग्नि समान फिर लहरीवत् जगत्की उत्पत्तिको इच्छा प्रगटानेमें कारण है। इसलिये प्रकाशाग्निको बड़वाग्नि भी कहा है। और अगोचरीमुद्रा कहते हैं, गो—गोचर कहिये इन्द्रियोंसे वह ब्रह्म जाननेमें आनेवाला नहीं है। दश इन्द्रिय, मन, बुद्धि, वाणीसे परे है। उसको अनुभवद्वारा जानना चाहिये, ऐसा कहे हैं। तथा नाभिस्थानमें रहनेवाला अर्धमात्राको ही इकारमात्रा भी कहते हैं, और सबसे परे माना हुआ परावाचाको नीचे नाभि और ऊपर तालू स्थानमें ऐसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें माने हैं ॥ ८ ॥

७. शुद्ध सत्त्व गुण ईश्वर देव * तहाँ स्थान मूर्धनी सेव ॥ ९ ॥

गुणः— १ रज, २ सत्त्व, ३ तम, ४ यहाँ शुद्ध सत्त्वगुण माना है ॥ गुणके देवताः—१ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र (महादेव), ४ यहाँ ईश्वर देवता कहा है ॥ स्थानः—१ त्रिकुटी, २ कण्ठ, ३ हृदय, ४ यहाँ मूर्धनी (नाभि) स्थान माना है, उसीका सेवन करते हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

शुद्ध सत्त्वगुण = त्रिगुणसे परेका गुणको शुद्धसत्त्व-गुण माने हैं। त्रिगुण विकारसे रहित अत्यन्त निर्मल, ऐसा—

ईश्वर देव = शुद्ध सत्त्वगुणवाला सोई यहाँका देवता ईश्वरको सर्वश्रेष्ठ माने हैं।

तहाँ = वहाँपर पिण्डण्डमें यानी शरीरमें—

स्थान = परमेश्वर परब्रह्मका निवासस्थान या स्थितिकी जगह—
मूर्धनी = ऊपर तालूमें और नीचे नाभिस्थानको ही मूर्धनीस्थान कहते हैं, उसी जगहमें इष्ट-देवताका बासा मान करके—
सेव = उसमें मिलनेके लिये ज्ञानी लोग नाना-साधनोंका सेवन करते हैं। यानी अभ्यास किया करते हैं।

व्याख्या—अत्यन्त निर्मल शुद्ध सत्त्वगुणको तीन गुणोंसे न्यारा मानके ऐसे शुद्ध सत्त्वगुणधारीको महान ईश्वर, देवता ज्ञानी माने हैं, और उस परमेश्वरका वासस्थान शरीरमें मूर्धनी कहिये नीचे नाभिमें और ऊपर तालूस्थानमें तहाँपर ही परमात्माको मान करके उसके दर्शन प्राप्तिके वास्ते अनेक साधनायें, सेवा बहुतेरे साधक लोग किया करते हैं ॥ ९ ॥

८. मसूर प्रमाण काया बखान ❀ ब्रह्म अर्धचन्द्र अनुमान ॥ १० ॥

परिमाणः— १, ३॥. हाथ, २ अंगुष्ठ, ३ अर्धअंगुष्ठ, ४ यहाँ मसूर (अणु) परिमाण कहा है ॥ ब्रह्मः— १ तारक, २ दंडक, ३ कुंडल्य, ४ यहाँ अर्धचन्द्र ब्रह्म माना है, सो अनुमानमात्र है ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

मसूर = मसूरके दालवत् सूक्ष्म अणु जैसा बिन्दु-रूप प्रकाश ध्यानमें देखके सो, मसूररूप—
प्रमाण = वही मापके लम्बाईका प्रमाण—
काया = महाकारणदेहका कल्पना किए हैं, ऐसा रीतिसे कायाका मसूर प्रमाण या परिमाण—
बखान = ज्ञानीजन वर्णन किये वा करते हैं।
ब्रह्म अर्धचन्द्र = और श्वासवायु स्थिर करके उसमें अर्धचन्द्रार्क प्रकाश या चम-चम, चिम-चिम प्रकाश देखके उसीको अर्धचन्द्र नामका ब्रह्म निश्चय किये हैं।
अनुमान = सो गुरुवा लोगोंका अनुमान मिथ्या है, वह तो तेजतत्त्वका जड़ प्रकाश है, अनुमान करनेवाला जोव उससे न्यारा रहता है, वही सत्य है, ऐसा जानिये।

व्याख्या— और महाकारण देहका माप लम्बाईका प्रमाण गुरुवा लोगोंने मसूरके दालवत् छोटा वा अतिसूक्ष्म अणुवत् भी मानते हैं। यानी बिन्दुरूप, सूक्ष्म ज्योतिकणका प्रकाश देखके, वही महाकारण कायाका प्रमाण है, ऐसा वर्णन किये हैं। और कोई अर्धचन्द्र नामके ब्रह्मको देहमें ऐसा अनुमान करने लगे कि—ध्यानमें चमचमाहट, चिमचिमाकार प्रकाश देखते-देखते फिर आधाचन्द्रमा सरीखी तेज दिखाई दिया, तो उसीको अर्धचन्द्र ब्रह्म निश्चयकर बैठे। किन्तु सो मिथ्या अनुमान है। द्रष्टा जीव ही सत्य है, वह दृश्य भास, असत्य है। ऐसा न जानके पारख बिना ज्ञानीलोग भ्रमिक होकर भूले पड़े हैं ॥ १० ॥

९. पुण्यगिरी अउठ पीठ स्थान ❀ उत्तर दिशा कुबेर बखान ॥ ११ ॥

स्थानचक्रः— १ त्रिकुटी, २ श्रीहट, ३ गोह्लाट, ४ यहाँ अउठ पीठ स्थान माना है ॥ दिशाः— १ पूर्व, २ पश्चिम, ३ दक्षिण, ४ यहाँ उत्तर दिशा कहा है ॥ दिग्देवताः— १ इन्द्र, २ वरुण, ३ यम, ४ यहाँ कुबेर देवता बखान किये हैं।

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

पुण्यगिरी = पुण्यका पहाड़रूप सब ऋद्धि, सिद्धि, ऐश्वर्य आदि प्राप्त होनेकी जगह—
अउठ पीठ = देहमें नाभिस्थान पिंडमें तथा त्रिकुटी, श्रीहट, गोह्लाट इन तीनोंकी एकताकी जगह कपार स्थान ब्रह्माण्डमें है, ऐसा मानके—
स्थान = उस स्थानमें एकाग्रतासे लक्ष स्थिर होनेसे महासामर्थ्य प्राप्त हो जाती है, ऐसा कल्पनासे माने हैं।
उत्तर दिशा = इस कोशमें उत्तर तरफका दिशा मुख्य मानकर देहमें बाँया हाथके ठिकाने बताये हैं। और—
कुबेर = यक्षोंका राजा धनपति कुबेरको उत्तर दिशाका मालिक वा अधिष्ठाता देवता—
बखान = वर्णन किये हैं।

व्याख्या— ज्ञानमय कोशमें अउठ पीठस्थान नाभि वा कपारकी जगह ठहरायके वहाँ वृत्तिकी स्थिरता होनेको पुण्यगिरी पहाड़ ठहराये हैं। वहाँसे पुण्य = कहिये अष्टसिद्धि, नवनिद्धि, षट्गुण-ऐश्वर्य आदि धर्म-सुखकी प्राप्ति हो जाती है, ऐसा कल्पनासे माने हैं। इस कोशका दिशा बाहरमें उत्तर तरफ और देहमें बायाँ हाथके जगह उत्तर कहते हैं। उस दिशाका राजा कुबेर देवताको माने हैं, सो गुरुवा लोगोंका कपोलकल्पनाका बखान या वर्णन है, ऐसा जानिये ॥ ११ ॥

१०. क्रिया सूर्य प्रत्यक्ष तहाँ जान * हरा वर्ण सर्वशून्य मान ॥ १२ ॥

कर्मः— १ सिर्जन, २ पालन, ३ प्रलय, ४ यहाँ सूर्य क्रिया कहा है। सो प्रत्यक्ष तहाँ जानो ॥ वर्णः—१ पीत, २ श्वेत, ३ लाल, ४ यहाँ हरा वर्ण माना है ॥ शून्यः— १ अर्ध, २ उर्ध्व, ३ मध्य, ४ यहाँ सर्व शून्य माना है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

क्रिया सूर्य = जैसे सूर्यके स्वाभाविक गुण-कर्म प्रकाश है। तैसे सूर्यके नाईं तीनों-देहोंको प्रकाश करके चलानेकी क्रिया—

तहाँ = वहाँ ज्ञानमय कोशमें तहाँपर—

प्रत्यक्ष = साक्षात् प्रत्यक्ष करके होता है, उसके शक्तिसे सब कुछ प्रत्यक्ष जाना जाता है।

जान = सो अनुभवसे जाननेमें आता है, ऐसा ज्ञानीलोग कहते हैं, सो जानिये।

हरा वर्ण = वायुतत्त्वका हरा रङ्ग दर्शाता है, अथवा ज्योतिका रङ्ग भी हरा कहे हैं।

सर्वशून्य = सर्व जगत्का अभाव होके शून्यमें विलय हो जाता है, और अस्तित्व भाव आत्माका मात्र बना रहना है। सर्व वृत्तियोंका विलय होकर शान्त होना, सर्वशून्य माना गया है।

मान = ऐसा ज्ञानी गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं। उसको भ्रम, धोखा ही मानिये। वही मानन्दीसे जीव बन्धनमें पड़े हुए हैं।

व्याख्या— और जैसा सूर्य सब पदार्थोंको प्रकाश करता है, वही उसका गुण-कर्म है। तैसा सूर्यवत् तीनों देहोंको प्रकाश करनेकी क्रिया या सूक्ष्मकर्म यहाँ आत्माका कहे हैं। इसका प्रत्यक्ष ज्ञानमय कोशमें होता है, सो जानो, ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं। और यहाँ वायुतत्त्वका हरा रङ्ग माने हैं, वायुके लगनेसे ही सब वनस्पति हरे-भरे होते हैं; और वैसे ही भीतरी प्रकाशका रङ्ग भी हरा दिखता है, सो वायुका वर्ण ठहराये हैं; और सर्वजगत् शून्यमें लय होके अभाव होना, और अपना भाव बना रहना, उसको सर्वशून्य माने हैं। यानी अन्तःकरणमें वृत्ति लय होकर सब तरफसे शून्य ही शून्य होना सर्वशून्य माना है ॥ १२ ॥

११ उच्चार अर्धमात्रा सो होय * वेद ऋग तहाँ जानहु सोय ॥ १३ ॥

उच्चारः— १ ह्रस्व, २ दीर्घ, ३ कलप्त्या (प्लुत), ४ यहाँ अर्धमात्रा सोई उच्चार माना है ॥ वेदः—१ साम, २ यजुर, ३ अथर्व, ४ यहाँ ऋग्वेद कहा है, ऐसा जानो ॥

अर्थ—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

उच्चार = प्रथम वाणीका उच्चारण—

अर्धमात्रा = नाभिस्थानके इकार मात्रा परावाचासे या अर्धमात्रा श्वासद्वारा सूक्ष्म स्फुरणाके उच्चार-

सो होय = सो वहींसे होता है, ऐसा कहे हैं।

तहाँ = वहाँके परावाचासे ही उत्पन्न भया पहला यह कोशके—

वेद ऋग = ऋग् नामका वेद है। सो कोई निराकार, निर्गुण परमेश्वर मेरे वा तेरे ऊपर मालिक है, ऐसा जीवोंको मानन्दी दृढ़ करानेवाला ऋग्वेद है।

सोय = वही उसका कल्पित सिद्धान्त है।

जानहु = ऐसा जान लीजिये! कि, वह नर-जीवोंसे कल्पना द्वारा निकला हुआ भास और भ्रम, भूलका कथन है।

व्याख्या— ज्ञानमय कोशमें शब्दोंका उच्चारण होनेके पहले अर्धमात्रासे स्फुरणा या उच्चार जैसा

उद्वेग होता है। उसीको परावाचा भी कहते हैं। सो परावाचासे ही प्रथम ऋग्वेदकी उत्पत्ति माने हैं। मेरे ऊपर या तुम्हारे ऊपर कोई निराकार, निर्गुण, एक ईश्वरकर्ता मालिक है; ऐसी मानन्दी मनुष्योंको दृढ़ानेवाला मन्त्रभाग सोई ऋग्वेद है, वही उसका सिद्धान्त भी है। सो मनुष्योंकी मिथ्या कल्पनामात्र है, ऐसा जानिये !॥ १३॥

१२. तत्त्व वायु तहाँ वायु समान ❀ बाजा तहाँ मृदङ्ग बखान ॥ १४ ॥

तत्त्वः— १ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज, ४ यहाँपर वायुतत्त्व कहा है॥ पिण्डकी वायुः—१ अपान, २ उदान, ३ प्राण, ४ यहाँ समानवायु माना है॥ बाजाः—१ तन्ती, २ झाँझ, ३ शङ्ख, ४ यहाँ मृदङ्ग-बाजा बखान किये हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इस कोशमें—

तत्त्व वायु = इस ज्ञानमय कोशमें चञ्चल वायु तत्त्वको मुख्य मायाके स्वरूपमें माने हैं।

तहाँ = और वही वायु वहाँपर शरीरमें जब नाभिस्थानमें निवास करता है, तब उसका नाम—

वायु समान = पिण्डकलाकी समानवायु कहा जाता है। यह नाभिमें रहके, कोल्हूवत् अन्न, जलको औंटाय, रसरूप रक्तको शरीर भरमें भेजता रहता है।

बाजा = दशनाद मध्यमेंका बाजा इसमें समान वायुकी कलासे—

मृदङ्ग = पखावज या मृदङ्गके सूक्ष्म आवाजके समान ही बजता है।

तहाँ = सो ब्रह्माण्डमें एक लक्ष करके ध्यान देने-पर सुनाई देता है—

बखान = ऐसा गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हैं, या बखान करते हैं।

व्याख्या— इस कोशमें चञ्चलवायु तत्त्व मुख्य माने हैं। कोई उसको ब्रह्मकी शक्ति भी मानते हैं; और पिण्डकी वायुमें नाभिस्थानमें रहनेवाला समानवायु भी इसीमें कहे हैं। कोई समान वायुको ही महादेव मानते हैं। नाभिमें कोल्हूवत् अन्न, जलको औंटाय उसका रस, रक्त नव-नाड़ियोंद्वारा देह भरमें पहुँचाता है। इससे शरीर प्रफुल्लित, स्वस्थ रहता है। यह वायु मालीके समान देहरक्षा करनेका काम करता है। ब्रह्माण्डमें मृदङ्गका बाजा, समानवायुके ही शक्तिसे अनहद ध्वनिमें मृदङ्ग बजता है, कहते हैं, ऐसा गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हुये हैं॥ १४॥

१३. वायव्य उपदिशा वायु सो देव ❀ चिदाकाश आकाश गनेव ॥ १५ ॥

उपदिशाः— १ ईशान्य, २ नैऋत्य, ३ आग्नेय, ४ यहाँ वायव्य उपदिशा कहा है॥ दिग्देवताः— १ शिव, २ नैऋत्य, ३ अग्नि, ४ यहाँ वायु देवता माना है॥ आकाशः—१ घटाकाश, २ मठाकाश, ३ महदाकाश, ४ यहाँ चिदाकाश गिने हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

वायव्य = पश्चिम और उत्तरका कोना, सोई वायव्य नामका कोण मुख्य दिशाओंके अलावा—

उपदिशा = दूसरी दिशा यहाँ माने हैं। देहमें बायाँ कोखके पीठ तरफके जगहमें माने हैं।

वायु = वायु ही नामका—

देव = देवता या राजा अधिष्ठाता—

सो = सोई उस उपदिशा वायव्यका मालिक माने हैं। और—

चिदाकाश = चैतन्यको आकाशवत् व्यापक परिपूर्ण प्रकाशरूपसे जानना, सोई इस कोशमें चिदाकाश कहे हैं।

आकाश = असङ्ग पुरुषको आकाशरूपमें यहाँ खुला अवकाशवत् शून्यस्वरूपमें ही—

गनेव = चौथा आकाश गिनाये हैं, यानी ऐसा उसी हिसाबसे गिनते हैं।

व्याख्या— ज्ञानमय कोशमें दूसरा—उपदिशा पश्चिम और उत्तरके कोनाको 'वायव्य दिशा'

माने हैं। शरीरमें बायाँ कोखमें पीठके तरफके भागको वायव्य कहते हैं। सो उस दिशाका मालिक देवता वायुको ही माने हैं; और आत्मा चैतन्य आकाशवत् पूर्ण भरा है। उसको प्रकाशरूपसे चिदाकाश जानना चाहिये, कहे हैं, अर्थात् मस्तक, हृदय, नाभि और त्रिकुटीमें वायुसहित अन्य तत्त्वयुक्त गोलाकार ज्योतिप्रकाश देखके उसे चिदाकाश कहे हैं। मुख्य तत्त्व इसमें यही चिदाकाश गिने हैं, सो भासमात्र मिथ्या है ॥ १५ ॥

१४. वर्ण कमल श्याम शुद्ध पीत * मारग मीन ज्ञान सुचीत ॥ १६ ॥

कमल रङ्गः— १ पीत-रक्त, २ श्याम-रक्त, ३ रक्त-श्वेत, ४ यहाँ श्याम-शुद्ध पीत कमल रङ्ग कहा है ॥ मार्गः— १ पपील, २ विहंगम, ३ कपि, ४ यहाँ मीनमार्ग सुचीत ज्ञान करानेवाला कहे हैं।

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

कमल = नाभिस्थानमें दशदलका कमल मानके उसका ध्यानकी प्रकाशमें—

वर्ण = रङ्ग-रूप ऐसा वर्णन करते हैं कि—

श्याम = साँवला या काला और—

शुद्ध पीत = शुद्ध, स्वच्छ पीला ये दोनों मिश्रित ध्यानमें भीतर दिखाई देता है, ऐसा माने हैं।

मारग = ज्ञानमार्गका साधनाका रास्ता—

मीन = जैसे मछली जलपर उलटी धारामें भी चढ़ती जाती है। वैसे ही राजयोगादि विधिसे श्वासको ब्रह्माण्डमें सीधी रीतिसे वा मेरुदण्डपरसे उलटायके चढ़ाना माने हैं। इसीको मीनमार्ग कहते हैं। और—

ज्ञान सुचीत = आत्मज्ञानको शुद्ध, श्रेष्ठ पहिचानो कहते हैं, ज्ञानमार्गको शुद्ध माने हैं।

व्याख्या— और मणिपूर चक्रको नाभिस्थानमें कल्पनासे दशदलका कमल ठहराके, उसका प्रकाशरूप रङ्ग काला और शुद्ध पीला मिला हुआ ध्यानमें दिखाई देता है, ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं। मीनमार्गः—मछली पानीके धार काट करके, जैसे ऊपर उलटी चली जाती है। तैसे श्वासवायुको नाभिसे उलटा मेरुदंडकी सीढ़ीसे ब्रह्माण्डके तरफ चढ़ायके लेजाना, अथवा चाहे जिस विधिसे हो समाधि लगाना। शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्माको समाधि द्वारा ही पहिचाना जा सकता है। अतएव आत्मज्ञानको शुद्ध सर्वश्रेष्ठ पहिचानना चाहिये, वही सुचीतज्ञान है। ऐसा ज्ञानी गुरुवा लोग कहते हैं। उसको सिर्फ कल्पना ही जानिये ! ॥ १६ ॥

१५. ऋचा ईश्वर कला सो जोय * ज्वाला लोक अधर तहाँ होय ॥ १७ ॥

वेदऋचाः— १ अद्वैत, २ वामदेव, ३ सत्पुरुष, ४ यहाँ ईश्वर ऋचा कहा है ॥ कलाः— १ ऊर्मी, २ धूर्मी, ३ ज्योति, ४ यहाँ ईश्वरको ही कला माना है ॥ लोकः— १ सत्य, २ वैकुंठ, ३ कैलाश, ४ यहाँ ज्वालालोक अधरमें कहे हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

ऋचा = वेदमन्त्रकी ऋचारूप चारों वेदोंको, अथवा ऋग्वेदके ऋचारूप सब मन्त्र भाग—

ईश्वर कला = ईश्वरके श्वासरूप गुप्त कलासे बना हुआ, ठहराके निश्चय किये हैं।

सो = और सो ऋचा या वेदोंको भी ईश्वरस्वरूपमें ही वेद भगवान् मानके—

जोय = देखना चाहिये, ऐसा गुरुवा लोग कहते, देखते, मानते हैं। अथवा ऋग्वेदमें ईश्वरकी विचित्र कलारूप शक्तिकी महिमा वर्णन किये हैं।

ज्वाला लोक = और धधकता हुआ प्रज्ज्वलित तेजोमय प्रकाशलोक, जिसे ज्वालालोक कहते हैं, सो ऊपर—

अधर = निराधार आकाशके मध्यमें मानके—

तहाँ = उस प्रकाशलोकमें अधरमें परमेश्वर सदैव निवास—

होय = करता रहता है, ऐसा कल्पना किये हैं।

व्याख्याः— इस ज्ञानमय कोशमें ज्ञानी गुरुवा लोग कहते हैं कि—ईश्वरकी कला या आदि नारायण-महाविष्णुके श्वासवायुसे सृष्टिके प्रथम ऋग्वेदके मन्त्र या ऋचारूपमें वेद प्रकट हुआ, पश्चात्

यजुर, अथर्व और सामवेद प्रगट हुए। तब ऋषियोंने उसको चार भागमें ग्रहण किये। अर्थात् अग्नि-ऋषिने, ऋग्वेदको; वायुऋषिने, यजुर्वेदको; सूर्य वा आदित्यऋषिने, सामवेदको; और अङ्गिराऋषिने अथर्ववेदको ग्रहण और प्रकाश किये। फिर उन्हीं चारोंसे ब्रह्माने चारों वेद प्राप्त किया, ऐसा कहा है। अतएव वेदोंको भी ईश्वर स्वरूपमें ही देखना और मानना चाहिये, ऐसा गुरुवा लोगोंका कथन है। और ऋग्वेदमें बताया है कि—अधर या निराधार आकाशमें ईश्वरका एक अनूपम ज्वालालोक है। सो हमेशा तेजोमयरूपमें धधकता हुआ प्रकाशरूपमें रहता है, वही परमेश्वरका सर्वोपरि ज्वालालोक माने हैं। परन्तु ये सब गुरुवा लोगोंकी मिथ्या कपोलकल्पना ही है ॥ १७ ॥

१६. ईश्वरमय तहाँ भोग विलास ❀ आत्मभावनी मुद्रा तास ॥ १८ ॥

भोगः—१ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ आनन्दमय, ४ यहाँ ईश्वरमय भोग-विलास माने हैं। उसे आनन्दाभास भी कहते हैं ॥ गुप्त मुद्राः—१ सन्मुखी, २ उन्मीलनी, ३ शांभवी, ४ यहाँ आत्मभावनी गुप्त मुद्रा माना है ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

ईश्वरमय = जैसा परमेश्वर निर्विकार महाआनन्दस्वरूप है। तद्वत् ईश्वरमय ही—

तहाँ = तुरियावस्थारूप ईश्वर लोकमें वा ज्ञानमय कोशमें—

भोग-विलास=भोगका विलास या क्रीड़ारूप आनन्द अकथनीय सुख प्राप्त होता है, ऐसा माने हैं।

तास = उस परमानन्द अनुभवका सदैव स्थिति ठहराव करनेके लिये—

आत्मभावनी = आत्मामें भावना रखना कि, मैं साक्षीस्वरूप आत्मा पूर्णव्यापक सत्य हूँ। एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, ऐसी भावना दृढ़ बनाये रखना; उसे ही आत्मभावनी गुप्तमुद्रा कहा है।

मुद्रा = उसी आत्मभावनामें ही मनोवृत्ति या लक्षको एकाग्र करके टिकाये रखना या लयकर देना, उसे मुद्रा माने हैं।

व्याख्या—उस लोकमेंका भोग-विलास ईश्वरमय ही कहे हैं। यानी जैसे ईश्वरको समस्त सुख भोग प्राप्त है, वह तो आनन्दस्वरूप ही है। और जो कोई ज्ञानीजन उसके रूपमें मिल जाते हैं, वे भी वैसे ही भोग-विलासको प्राप्तकर लेते हैं। ऐसा मानके सहस्रदल कमलका वा नाभि कमलका गन्ध और स्पर्शका सुखाभास जो भया, सोई आनन्दाभास भोगको ईश्वरमय भोग कहे हैं। ऐसा मानके फिर उसी कल्पनाका ही सदैव भावना करने लगे कि, मैं ही साक्षीस्वरूप आत्मा सुखरूप हूँ। उसीमें मनके लक्षको लगाये रहना, सोई आत्मभावनी मुद्रा मान लिये हैं ॥ १८ ॥

१७. किंकिरा सूक्ष्म तहाँ बाय ❀ चित्तको स्वभाव चैतन्य बताय ॥ १९ ॥

ब्रह्माण्डकी भीनीवायुः—१ देवदत्त, २ नाग, ३ कूर्म, ४ यहाँ किंकिरा, सूक्ष्मवायु कहा है ॥ चित्तादि-चतुष्टय और विषयः—१ हंकार-अहन्तव्य, २ मन-मन्तव्य, ३ बुद्धि-बोधव्य, ४ चित्त-चिन्तन, सोई यहाँ चित्तको स्वभाव चैतन्य बताये हैं ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—इस कोशमें—

तहाँ = ब्रह्माण्डमें रहनेवाला ज्ञानमय कोशमें ब्रह्माण्डकलाकी, और—

सूक्ष्म = सूक्ष्म देहकी सूक्ष्म ही गुण स्वभाववाला ऐसे—

बाय = चञ्चल वायुकी एक कलाका नाम यहाँपर—

किंकिरा = कुकल है। इससे छींक आती है। यह वायु ज्ञानमार्गमें बल देनेवाला महादेवके रूपमें माने हैं।

चित्तको स्वभाव = चिन्तन करते रहना, चित्तका मोटा स्वभाव है, और चित्तमें स्फुरणा बीजरूपसे बना रहना, सो चित्तके स्वाभाविक सूक्ष्म लक्षण है।

चैतन्य = सो चेतन आत्माका ही गुप्त-स्वभाव

तद्रूपसे है। उसीसे चित्तमें चैतन्यताका प्रकाश स्वभावसे होता रहता है।

बताय = ऐसा वर्णन करके, गुरुवा लोग बताते हैं; अथवा ऐसा ही बताये हैं।

व्याख्या – तहाँ ज्ञानमय कोशमें ब्रह्माण्डकलाकी सूक्ष्मवायु किंकिरा कहो या कृकल कहो, सो एक ही बात है। इसे कोई महादेवरूपमें भी मानते हैं। देहमें छींक इसी वायुके वेगसे आती है, और ज्ञानमार्गमें ज्ञानी, योगी लोगोंको साधनोंमें इसीसे बल प्राप्त होता है। इसी वायुको महादेव मानकर योगीजन मस्तकमें श्वास चढ़ाय, वहाँ कमलका स्पर्शरूप आनन्द भोगते हैं, तथा शून्यमें गरगाफ होते हैं। इससे वेदका ज्ञानमार्ग प्रगटना भी माने हैं। चैतन्य होना, चिन्तन करना, यह चित्तका स्वभाव बतलाये हैं। सो जहाँ चित्तमें पूर्व कर्माध्याससे स्फुरणा बीजरूपसे बना रहता है, तहाँ समय पायके वह फिर निकलता है, तथा चेतन जीवोंको आवर्ण करता है, इत्यादि जो होता है, सो गुरुवा लोगोंने चैतन्य आत्माका वा चित्तका स्वभाव माने हैं ॥ १९ ॥

१८. भूमि सुलीन अभाव अत्यन्त ❀ ज्ञान प्रकाश निर्णय सम्यन्त ॥ २० ॥

भूमिकाः— १ छिप्रा, २ गतागत, ३ सौलेष्टता, ४ यहाँ सुलीन भूमिका कहा है ॥ अभावः— १ प्रध्वंस, २ प्राग, ३ अन्योऽन्य, ४ यहाँ अत्यन्त अभाव माना है ॥ बराबरसे ज्ञानका प्रकाश हो रहना, यही ज्ञानियोंका निर्णय है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस कोशमें—

भूमि सुलीन = चौथी भूमिका यहाँपर सुलीन नाम की है। सो तीनों अवस्थाओंकी साक्षी, तीनों भूमिका जहाँ लीन भये, सोई सुलीनभूमिका माने हैं।

अभाव अत्यन्त = सर्व जगत्को अन्त या लय करके, अत्यन्त ही अभाव या विस्मृत करना, परन्तु अपना आत्मभाव ज्योंका-त्यों बना रहना, और द्वैतका कुछ भी भाव न रहना, उसे अत्यन्त अभाव कहा है।

निर्णय = आत्म-ज्ञानियोंका यहाँपर निर्णय या ठहराव, निश्चय ऐसा है कि—

सम्यन्त = समानरूपसे चराचर जगत्में बराबर सम्यक् प्रकारसे एक सरीखी—

ज्ञान = ज्ञानस्वरूप चेतन आत्माका—

प्रकाश = ज्ञानका प्रकाश या फैलाव अस्ति करके, सर्वत्र विद्यमान है, फिर वह अस्ति, भाति, प्रियरूपसे व्यापक है, ऐसे ब्रह्मज्ञानका प्रकाश जाहिर करते हैं, वही उनका मुख्य निर्णय है, सो भ्रममात्र है।

व्याख्या—और जहाँपर छिप्रा, गतागत, सौलेष्टता, ये तीनों भूमिका और तीनों अवस्था मिलके अच्छी तरहसे लीन या अन्त हो जाती हैं, उसको शुद्ध ज्ञानरूप सुलीन भूमिका माने हैं। अर्थात् तुरिया अवस्था, साक्षीदशा, अहं इच्छाका कारणरूप तथा त्रिगुण मायाका अभाव, सोई सुलीन ज्ञानभूमिका माना है। अत्यन्त करके जगत्का अभाव, बेभान, बेहोश होके, कुछ भी जाननेमें न आना, परन्तु आत्माका, अपना भाव होना, ऐसा अत्यन्ताऽभाव कहते हैं। समानरूपसे आत्मा पूर्ण है, ऐसा ब्रह्मज्ञानका प्रकाश या प्रचार किया है, सो निर्णय माने हैं। सो तो भ्रम, भूल, धोखामात्र है, विना विवेक कल्पनामें पड़े हैं ॥ २० ॥

छन्दः— इमि ज्ञानकोश बखान वेद ❀ प्रमाण महाकारण कह्यो ॥

[८] अभिन्न हं चिद खानि उतपति ❀ जीव तेहि परवश रह्यो ॥ [यह आर्या छन्द है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस छन्दमें कहते हैं कि— हे जिज्ञासु मनुष्यो !

इमि = इस प्रकारसे यह ऐसा वा इस तरह—

ज्ञानकोश = आत्मज्ञानके भ्रमका आवर्ण पर्दा जिस प्रकारसे जीवोंको पड़ा है, सो ज्ञानमय नामक कोशका विस्तार—

बखान = यहाँ वर्णन करके या बखानकर—

वेद = वेदोंके ही कथनानुसार ठीक तरहसे

जानकर, फिर उसी—

प्रमाण = प्रमाणसे गुरुवा लोगोंने जैसा-जैसा—

कह्यो = कहे हैं, सोई सब जालको परखानेके वास्ते, मैंने भी यहाँपर निर्णय दर्शाकर कहा है ।

महाकारण = सोई महान् कारणरूप तीनोंदेह उत्पन्न होनेका बीज है । इसलिये उसे महा-कारण देह कहते हैं ।

अभिन्न = मैं आत्मासे भिन्न नहीं, और आत्मा जगत्से भिन्न नहीं, ऐसा एकताकी भावना, सोई अभिन्न अद्वैतमतकी धारणा है । उसी-

हं = अहं इच्छाके कारण बीज अध्यासको लेकरके जड़ाध्यासी बन, बद्ध होकर—

चिद = चैतन्य जीवरूप मनुष्य पतित हुए—

खानि = उसी कर्मकी चूकसे वासनावश जीव चार खानियोंमें जायके पड़ते हैं, और पड़े हैं वा पड़ रहे हैं ।

उतपति = बारम्बार देह धारणकर जन्म ,मरणोंमें पड़ते रहते हैं (यही अहंइच्छा खानी उत्पत्ति होनेका बीज, मूलकारण है, ऐसा न जानके) नरदेहमें उत्पन्न हो-होकर—

जीव = अबोध नरजीव सब—

तेहि = वही भ्रमिक गुरुवा लोगोंकी, और महा-कारण मानन्दीकी—

परवश = दूसरेके वश या जड़ाध्यासोंके वशीभूत शक्तिहीन, पराया अधीनमें दुःखित—

रह्यो = हो रहे हैं (इसीसे नाना योनि चार-खानियोंमें देह धर-धरकर दुःखित परम-बेहाल हो रहे हैं) बिना विचार कष्ट-क्लेशमें पड़ रहे हैं ।

व्याख्या—ज्ञानमय कोश वर्णनकी इस छन्दमें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— वेद प्रमाणसे वर्णन किया हुआ, ज्ञानमय कोशका विस्तार मैंने यहाँपर सत्यासत्यका निर्णय परखानेके वास्ते कहा है, सो यह महान कारणरूप बीज है । परन्तु गुरुवा लोगोंने उसको ही मुक्ति देनेवाला माने हैं । परन्तु आत्माको चराचर जगत्से अभिन्न, व्यापक मानके उसीकी अहं इच्छारूप अध्याससे बारम्बार जगत्की उत्पत्ति, प्रलय होते रहनेका वर्णन किये हैं । फिर कहिये उससे जीवोंका आवागमन कैसे छूटेगा ? बन्धन तो छूटनेका नहीं । यही बीज वासनासे ही तो चारखानीकी उत्पत्ति होती है, और हो रही है । किन्तु बेपारखी लोग कल्पना और भ्रम, धोखाको ही दृढ़ कर-करके परवश बद्ध हो रहे हैं ॥ यह आधा छन्दका भावार्थ है ॥

साक्षी विकल्प समाधि पूरण ❀ निर्विकल्प इच्छा धरे ॥
बहु कलेश देश अनामयं ❀ सेवन्त जे पिस आदरे ॥ २१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस छन्दमें कहते हैं कि— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! सुनो !—

साक्षी = तीनों देह, तीनों अवस्थायें, तीनों कोशों-का पूर्ण साक्षीस्वरूप आत्मा है, (ऐसा निश्चय किये हुये ज्ञानीलोग)—

विकल्प समाधि = तुरिया अवस्थामें सहविकल्प समाधिको प्राप्त हुये, तो वहाँ कल्पना बीज सहितकी स्थिति रही (संकल्प-विकल्प तो उनकी छूटी नहीं, इससे)—

इच्छा धरे = ऐसी इच्छा धारण करते रहते हैं कि, कब हमारा—

पूरण = पूर्णरीतिसे शून्यवृत्ति होगी, कब परि-पूर्ण ब्रह्ममें मिलेंगे, और कब मुक्त होंगे, इत्यादि इच्छा किया करते हैं ।

निर्विकल्प = कल्पना, होश, जानना कुछ भी न होनेको निर्विकल्प स्थिति कहते हैं, ऐसे स्फुरणासे रहित निवृत्ति शून्य होनेकी वे अभिलाषा रखते हैं ।

देश = शुद्ध ब्रह्मपद या आत्मदेशको—

अनामयं = नाम, रूप, माया, काया, रोग, भोग, तापसे परे, माया उपाधिसेरहित ऐसा मान करके (उसमें मिलके एक होनेकी इच्छासे)—

जे = जो-जो साधक मनुष्य लोग—

आदरे = बड़े प्रेम, श्रद्धा, भक्ति-भावपूर्वक आदर सम्मानसे—

सेवन्त = सेवा साधना करके, परमात्मासे मिलने-

की तीव्र चाहना करते हैं; सो सब भ्रमिक जन धोखामें पड़के—

पिस = अभी तो अनेक कष्ट साधनाओंमें पीसे जाते हैं, और देह छूटनेपर आवागमनोंमें त्रयतापोंमें पीसे जाते हैं। और—

बहु कलेश = चार खानियोंमें त्रिविधि तापोंका असह्य दुःख, गर्भवासमें जठराग्नि ज्वालाका क्लेश बहुतेक भोगते रहते हैं, सदा पञ्चक्लेशमें बहुत तरहसे पीड़ित होते रहते हैं। (पारख बोध बिना यह दुःख छूट नहीं सकता है)।

व्याख्या—और सर्वका साक्षी आत्माको मानके ज्ञानी लोग सहविकल्प-समाधि तुरिया अवस्थामें पहुँचे। परन्तु वहाँ उनकी कुछ स्फुरणा नहीं मिटी; तभी तो उससे आगे वृत्ति निरोध करके शून्य होके कल्पना, जानपनासे रहित निर्विकल्प समाधिमें स्थित हो, परिपूर्ण ब्रह्म बनके, एकदम महाशून्य स्थितिको प्राप्त करनेकी इच्छा धारण करके आगे बढ़े चले जाते हैं; और माना हुआ ब्रह्मको माया-कायाजनित रोग-विकारसे रहित देश, अनामय ऐसे निरोग आत्म-देश समझके उसको मिलनेके लिये, बहुत श्रद्धा भक्तिसे आदरपूर्वक अनेकों साधक ज्ञानी लोग ज्ञानसाधना सेवन करने लगे। ऐसे साधक सब अभी देह रहेतक, तो बिना विचार नाना साधनोंमें पीसे जाते हैं, और देह छूटनेपर अध्यासवश जन्म, मरण, गर्भवासमें पीसे जाकर, त्रिविधि तापोंके दुःख, कष्ट, क्लेश नाना तरहसे भोगते ही रहते हैं। पारख स्थिति हुए बिना जड़ाध्यासजनित पञ्चक्लेश किसीका छूटता नहीं। जड़ाध्यास छूटे बिना जीवोंकी मुक्ति हो नहीं सकती है। अतएव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरके इस भ्रम-भूलसे उत्पन्न होने वाला जड़ाध्यासोंको छोड़ना चाहिये। तभी जीवोंका बन्धन मिटके यथार्थ मुक्ति स्थिति होवेगी॥ यह भावार्थ है॥ २१॥

सोरठाः—ऐसो निर्मल ज्ञान ❀ खानि कलेशको बीज है॥
[२] जो पै सन्त सुजान ❀ परख बुद्धि तेहि ना गहै॥ २२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस सोरठामें कहते हैं कि—

निर्मल = मायामलसे रहित, निर्मल करके जीवोंको आत्मस्थितिमें पहुँचाने वाला, ऐसा माना हुआ—

ज्ञान = यह आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान है। ऐसा कहके ज्ञानमय कोशमें—

ऐसो = ऐसे इसकी बड़ाई, महिमा तो गुरुवा लोगोंने खूब किये हैं। परन्तु वही तो—

खानी = चारखानियोंमें उलटके, जायके—

कलेशको = नाना कष्ट, क्लेश, दुःख भोगते रहनेका, अथवा पञ्चक्लेशमें भटकते रहनेका चौरासी योनियोंमें पड़नेका—

बीज है = बड़ा कठिन हेतु यह सूक्ष्म बीजरूप वासना है। परन्तु पारख बिना ऐसा कोई नहीं जानते हैं, इसीसे बँधे पड़े हैं।

पै = परन्तु इनमेंसे जो कोई मुमुक्षु मनुष्य होंगे,

जो = जो कोई सारग्राही जिज्ञासु नर-जीव निकलेंगे—

सन्त सुजान = वे विवेकी, पारखी, सत्यासत्यके अच्छे जानकार (सन्त सुजान) पारखी साधु-गुरुके शरणमें जायके सत्सङ्ग द्वारा सार-असार और जड़-चैतन्यके भेदको अच्छी तरहसे जान जायेंगे, तो—

परख बुद्धि = बुद्धिमें पारखका प्रकाश या पारख-दृष्टि उदय होनेसे गुरुबलके प्रतापसे धोखाको परखकर छोड़ देवेंगे, फिर बुद्धिको निजबोधसे स्थिर करके—

तेहि = वह वाणी कल्पनाका ब्रह्मजाल तथा खानी विकारका विषय जालोंको सर्वथा परित्यागकर देंगे, सो—

ना गहै = पुनः उसको पकड़के ग्रहण नहीं करेंगे। या वे उसे ग्रहण नहीं करते हैं।

व्याख्या— यह ज्ञानमय कोश वर्णनका अन्तिम पद सोरठा है। इसमें ग्रन्थकर्ता ऐसा कहते हैं कि—आत्मज्ञानियोंने वेद-वेदान्त प्रमाणसे, खूब महिमा बढ़ायके, आत्मज्ञान वा ब्रह्मज्ञानका कथन तो बहुत किया। उनके कहनेके मुताबिक ज्ञान तो ऐसे निर्मल, शुद्ध ठहरा कि, उसको धारण करते ही जीव

का भी सब मल छूटके निर्मल स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है, ऐसा कहे हैं। परन्तु यही ज्ञानके भीतर अज्ञानकी कालिमा या चारखानी जगत् उत्पन्न होके नाना कष्ट, क्लेश, दुःख भोगनेकी बीज मूल महान् कारण भी उसीमें छिपा पड़ा है। इस कारणसे इन ज्ञानियोंकी मुक्ति नहीं हुई, या हो नहीं सकती है। परन्तु जो कोई मनुष्य सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख ज्ञानके अच्छे जानकार पारखी सन्त-महात्मा, साधु हैं, उनके शरणागत हो, यथार्थ सत्सङ्गमें सार-असारका विचार, विवेक करेंगे, तो वे भी कसर, खोट खानी-वाणी जालोंके सब विकारोंको अच्छी तरहसे समझ जायेंगे। फिर अपरोक्ष पारखबोध बुद्धिमें प्रकाश हो जानेसे वे जिज्ञासु नरजीव भी उस कल्पना, अध्यास, ब्रह्म-भ्रमको सर्वथा परित्यागकर देंगे, उसे कदापि ग्रहण नहीं करेंगे। वैसे सत्यन्यायी, सच्चे पारखी साधु ही कोई जीवन्मुक्त हो जावेंगे। अतएव पारखीगुरु, साधुके सत्सङ्ग विचार सबोंने करते रहना चाहिये। वही हितकारी मुख्य कर्तव्य है। ऐसा जानिये ॥ यह भावार्थ है ॥ २२ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री मूल पञ्चग्रन्थीकी पञ्चकोश अन्तर्गत, चतुर्थ ज्ञानमय कोशकी शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित समाप्तः ॥ ४ ॥ ❀ ॥

॥ ❋ ॥ अथ पञ्चम विज्ञानमय कोश वर्णनम् प्रारम्भः ॥ ५ ॥ ❋ ॥

छन्दः—अब सुनहु सन्त ! समान चित ❋ विज्ञानमय पूरण अयं ॥
[६] कैवल्य देह सो ब्रह्म अद्वै ❋ अनामय अव्यक्त स्वयं ॥ [यह आधा छन्द है।]

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब विज्ञानमय कोश वर्णन करनेके पहिले उस कोशका संक्षिप्त लक्षण, निर्णयसे इस छन्दमें कहते हैं, सो सुनियेः—

सन्त = हे जिज्ञासु सन्त-साधुओ !—

समान चित = चित्तको एक समान स्थिर करके सावधान होकर लक्ष लगायके जो मैं कहता हूँ, सो आपलोग सुन लीजिये !—

अब = अब मैं बाकीके यह पाँचवाँ कोशका भी निर्णय करके कह देता हूँ—

सुनहु = सो भी ध्यानपूर्वक सुन लीजिये !

विज्ञानमय = विशेष ज्ञानस्वरूप माना हुआ, इसी नामका यह विज्ञानमय कोश है।

अयं = यह या इसको गुरुवा लोगोंने—

पूरण = परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मस्वरूपमें माने हैं। परन्तु यह तो पूर्ण धोखाका ही घर है। और—

कैवल्य देह = ब्रह्मका देह केवल शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जनरूप कैवल्य कहते हैं।

सो ब्रह्म = सो वह ब्रह्म परमात्मा ऐसा है कि—

अद्वै = द्वैत उपाधिसे परे एक ही अद्वैत कहा है, तथा—

अनामय = माया, कायादिके रोग तथा नाम-रूपसे रहित है, एवं शुद्ध, निरोग, निर्गुण है; और—

अव्यक्त = जगत्के व्यक्तिगत भावसे रहित या जगत्से परे है, अतः वह किसीके जाननेमें आ सकता नहीं।

स्वयं = आप-ही-आप स्वयं अकेला है, दूसरा कोई भी उस पर नहीं है। ऐसा माना है ॥

व्याख्या— सत्यन्यायको जाननेकी अभिलाषावाले हे सन्त-साधुओ ! अब मैं बाकीका पाँचवाँ यह विज्ञानमय कोशका भी सत्य निर्णय करके बतलाता हूँ। सो आपलोग चित्तको एकाग्र-समाधान या स्थिर करके सुन लीजिये ! यह विज्ञानमय शब्द आनन्दरूप परिपूर्ण ब्रह्मको ही माने हैं। सो केवल शुद्ध निराकार ही उसका कैवल्य देह कहा है। वह ब्रह्म एक ही अद्वैत है। इसलिये उसमें मायाका कोई भी रोग नहीं है। तथा जगत्से भी परे है। ऐसे स्वयंस्वरूप ब्रह्म है, ऐसा माना गया है ॥ यह आधा छन्दका भावार्थ है ॥

पं० प्र० टीका; ११—

जो परात्पर निर्वचन सब पर ❀ वेद अमल भनन्त जे ॥
ते लखहु सज्जन ! परखि गुरुमुख ❀ देख सत्त भासन्त जे ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—

जो = जो कि वह ब्रह्म परमात्मा—

परात्पर = परावाचासे भी अत्यन्त परे है, और—

निर्वचन = वाणी वचनसे भी परे अनिर्वाच्य है, मन, बुद्धि, वाणीसे परे, ऐसा अकथनीय है। वचनमें नहीं आ सकता है।

सबपर = ब्रह्मपद सब सृष्टिके ऊपरका सर्वोच्च-पद माने हैं।

वेद = वेद भी या वेदज्ञाता मुनिजन भी वेद प्रमाणसे गुण गाते-गाते पार न पाकर अपार नेति-नेति कहते हैं; और—

जे = जिसकोकी वेद भी—

अमल = दागरूपी मायामलसे रहित, परिशुद्ध या निर्मल, स्वच्छ, निर्विकार—

भनन्त = कहके पुकारते हैं, या ऐसे वर्णन करते हैं। परन्तु—

सज्जन = सत्यग्राही, सत्यशोधक, सज्जन, हे मुमुक्षुओ !

ते = वह ब्रह्म सिद्धान्त मानन्दीकी सत्य, मिथ्या-का निर्णय करके—

गुरुमुख = पारखी श्रीसद्गुरुके मुखारविन्दके सत्य उपदेश, श्रवण करके गुरुमुखसे कहा हुआ सारशब्द निर्णयको—

परखि = विवेक दृष्टिसे परख करके—

लखहु = साँच, झूठकी पहिचान करके लख लीजिये, या जान लीजिये !।

देख = तब परीक्षादृष्टिसे निष्पक्ष होके देखिये—

जे = जिस ब्रह्मको गुरुवा लोगोंने—

सत्त = नित्य, सत्य करके माना है, सो असत्य है—

भासन्त = भासमात्र या मनकी भावनामात्र है, सो अन्तमें नाश होनेवाला, मिथ्या धोखा ही जान लीजिये। यानी जो भ्रमसे सत्य भासने वाला ब्रह्म है, सो मिथ्या-भासमात्र है॥

व्याख्या—जो कि परात्पर-परावाचासे भी परे होनेसे, उसके बारेमें वाणीसे वर्णन भी कुछ किया नहीं जा सकता है। क्योंकि, ब्रह्म-परमात्माकी जगह अनिर्वाच्य स्थिति कहा है। वही सर्वोपरि अधिष्ठान सबका मालिक है। जिसको वेद-प्रमाणसे ब्रह्मादि भी निर्मल, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन कहके वर्णन करते हैं। या वेद भी उसको अमल कहके पुकारता है। जिसकी ऐसी बड़ी भारी महिमा गुरुवा लोग गा रहे हैं, सो क्या है ? सत्य है कि, मिथ्या है ? सार है कि, असार है ? इसका यथार्थ निर्णय हे सज्जन साधो ! और भक्त सेवको ! सत्यन्यायी पारखीसाधु, गुरुकी शरणागत होके गुरुमुख निर्णयकी वाणीसे यथार्थ सत्य उपदेशको श्रवण, मनन करके फिर लखो या उक्त सिद्धान्तको देखो, पारख दृष्टिसे विवेक करो, तो वास्तवमें असत्य होनेसे वह असार, मिथ्या धोखा ही दिखाई देगा। गुरुवा लोगोंने जिसको सत्य परमात्मा ब्रह्म करके माना है, सो मनका भास अनुमानमात्र होनेसे भ्रम है। अन्तमें न ठहरने वाला है। परन्तु उस अध्याससे जीवोंको अन्तमें चारखानी गर्भवासमें ही जाना पड़ता है॥ यह भावार्थ है ॥ १ ॥

दोहाः—परमहंस मत प्रगट यह ❀ झाँई प्रथम विकार ॥
[७] यह अनुरागी जीव कहँ ❀ खानी कलेश अधिकार ॥ २ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब इस दोहामें कहते हैं कि—

परमहंस = हंससे भी बढ़के होय, सो परमहंस कहते हैं। बड़े शुद्ध, पवित्र कहलानेवाले, बाल, पिशाचादि दशाधारी विज्ञानी ब्रह्मज्ञानियोंने—

यह = यह जो वेद प्रमाणसे—

मत = अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तका मत, भासको बुद्धि-से निश्चय करके अपना मत—

प्रगट = संसारमें प्रगट किये या ब्रह्मज्ञानको प्रकाश करके फैलाये हैं।

प्रथम = सो प्रथम मनुष्यके ही नर-देहकी करतूत-से उत्पन्न हुआ भास है।

विकार = जो सूक्ष्म अहंकारका विकार खड़ा हुआ सो उसीमें तद्रूप विकारी होके—

झाँई = प्रथम नर-देहका भास, जीवकी भूल, गाफिलीका सूक्ष्महंकार, झाँईको ही ब्रह्म परमात्मा मान लिये हैं। और निर्णय करिये, तो ब्रह्म कोई वस्तु ही नहीं; इसीसें—

यह = यह अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तके—

अनुरागी = परमप्रेमी या दृढ़ स्नेह करनेवाले अनुरागी—

जीवकहँ = भ्रमिक नरजीवोंको या मनुष्योंको—

खानी = चारखानी, चौरासी योनि जगत्में ही भटकते हुए बारम्बार उसी—

कलेश = जड़ाध्यासवश नाना कष्ट, क्लेश, जन्म, मरणादि त्रिविधितापोंका दुःख भोग भोगनेका वा पञ्च क्लेशमें पड़े रहनेका—

अधिकार = पूरा अधिकार प्राप्त हो जाता है। यानी आवागमनमें जानेका, क्लेश भोगते रहनेका, वे ही अधिकारी हो जाते हैं। बिना पारख वह क्लेश छूट सकता नहीं॥

व्याख्या—जगत्में परमहंस ब्रह्मज्ञानियोंका जो मत वा सिद्धान्त प्रगट भया है, सो झाँई, गाफिली, भूल, भासरूप ब्रह्मका हंकार है, सो प्रथम मनुष्य देहका भासको महाविकार अनर्थका बीजरूप ही जानिये। क्योंकि, ब्रह्म क्या है? कि भ्रम है, भ्रम सोई विकार है, विकार सोई हंकार है। हंकार बना अध्याससे, अध्यास सोई आवागमनका मूल कारण है। अतएव इस ब्रह्मरूप झाँईमें प्रेम लगानेवाले अनुरागी, प्रेमी नरजीव चारखानी, चौरासी योनियोंमें जाय-जायके नाना तरहसे कष्ट, क्लेश, दुःख भोगनेके अधिकारी हो जाते हैं। अतः पारख स्थिति हुए बिना यह आवागमनादिका दुःख भोग किसोकी भी मिट नहीं सकती है, ऐसा जानिये! ॥ २ ॥

सम्बन्ध—अब यहाँसे विज्ञानमय कोशका अङ्ग विभिन्न विभागोंको चौकड़ी १ से २१ तकमें कहा गया है॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ पञ्चम खण्ड ॥ ५ ॥ ❀ ॥

१. विज्ञान कोशको सुनो विस्तार * जाते खानी कलेश अपार ॥ ३ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं, हे जिज्ञासु जनो!—

विज्ञान कोशको = यह विज्ञानमय नामके कोशका—

विस्तार = फैलावा जहाँ तक है, उसका भी विस्तारपूर्वक अब मैं यहाँ दर्शा देता हूँ!

सुनो = सो भी ध्यानपूर्वक सुनिये!—

जाते = जिस ब्रह्म भास मानन्दीके कारणसे जीव धोखेमें चले जाते हैं। और—

अपार = जिसका पार पाया नहीं जाता, सोई अपार परमात्मा है। ऐसा माननेवाले नरजीव अध्यासवश आवागमनसे पार नहीं पाते हैं, वे तो पुनः-पुनः उलट-उलट करके—

खानी = पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें ही जा-जा करके—

कलेश = नाना दुःख, कष्ट, क्लेश तीन ताप आदि भोगते रहते हैं। और पञ्च क्लेश उनके पीछे लगा ही रहता है॥

व्याख्या— इस चौकड़ीमें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि —अब पाँचवाँ विज्ञानमय कोशका निर्णय भी मैं विस्तारपूर्वक कह देता हूँ, सो श्रवण कीजिये! परमतत्त्व परमात्मा कोई अपार, अगम, है, ऐसा मान करके, जोव जड़ाध्यास वश पशु, उष्मजादि योनि, चारखानियोंमें दुःख, कष्ट, क्लेश भोगनेको चले जाते हैं; और उक्त खानीमें जाके कर्मका भोग नाना दुःख भोगते रहते हैं। इस हेतु सत्सङ्गमें परख करके इस भ्रमको त्याग कर देना चाहिये॥ ३ ॥

२. विज्ञान कोश देह कैवल्य * आश्रम परमहंस निश्चल्य ॥ ४ ॥

श्लोकः—अन्नप्राणमनोज्ञेयं ज्ञान विज्ञान मेव च ॥ पञ्चकोश इमेप्रोक्तं बन्धनं सर्व देहिनाम् ॥ १ ॥

दोहाः—अन्नमय औ प्राणमय, कोश मनोमय जान ॥ ज्ञानमय विज्ञानमय, कोश पञ्च बन्दिखान ॥ १ ॥

कोशः ५—१ अन्नमय, २ प्राणमय, ३ मनोमय, ४ ज्ञानमय और ५ विज्ञानमय कोश यहाँ कहा है॥ ये पाँच कोश जो कहे हैं, सो सब जीवोंको बन्धनदाई है, ऐसा जानिये!॥

श्लोकः—स्थूलं सूक्ष्मं कारणं च महाकारणकं परम् ॥ कैवल्य ज्ञानदेहश्च पञ्चदेहाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥
दोहाः—स्थूल सूक्ष्म कारण, महाकारण कैवल्य ॥ पञ्च देहके फन्दमें, जीव परे मतिचल्य ॥ २ ॥
देह ५ः—१ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ कारण, ४ महाकारण और ५ कैवल्य देह है, ये पाँच देह कहलाते हैं ॥
श्लोकः—ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ परमहंसो पञ्चमं च माश्रमं पचकं विदुः ॥ ३ ॥
दोहाः—ब्रह्मचर्य गृहस्थ रु, वानप्रस्थ संन्यास ॥ परमहंस आश्रम यही, पञ्च प्रपञ्च गरास ॥ ३ ॥
आश्रम ५ः—१ ब्रह्मचर्य, २ गृहस्थ, ३ वानप्रस्थ, ४ संन्यास और ५ परमहंस आश्रम माना है। ये पाँच आश्रमोंके नाम है, सो जानिये ! ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं, हे जिज्ञासु जनो ! सुनो !—

विज्ञान = विशेषज्ञान माना हुआ ब्रह्मकी मानन्दी यही महाअज्ञानरूप है।

कोश = सो नरजीवोंको आवरण करके भ्रमरूपी पर्दामें छिपानेवाला यह कोश है, इस कोशमें जड़ाध्यासका खजाना छिपा रहता है।

देह = विदेहमाने हुये ब्रह्मका देह यहाँपर-

कैवल्य = केवल शुद्ध, बुद्ध, निर्गुण, निराकार-स्वरूप निरञ्जन माने हैं।

आश्रम = उनके ठहरावकी भूमिकारूप पाँचवाँ आश्रम यहाँपर—

परमहंस = उच्चस्थिति हंससे बढ़के परमहंसका स्वभाव बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक और जड़, अजगरवत् दशा या वृत्ति धारण किये हुए ब्रह्मज्ञानीको परमहंस माने हैं। किन्तु वे सदा भ्रष्ट दुर्दशामें ही पड़े रहते हैं। और—

निश्चल्य = ब्रह्म सत्यका निश्चय करके उसीमें वृत्ति स्थिर अटल करते हैं। जड़वत् शून्य-वृत्ति बनाय लेते हैं। जहाँ-तहाँ अजगरवत् पड़े रहते हैं, वही निश्चल्य माने हैं ॥

व्याख्या—विशेष ज्ञानरूप माना हुआ यह विज्ञानमय कोश है। परन्तु इसमें विशेष गाढ़ा अज्ञान ही भरा है। इसकोशमें ब्रह्मका कैवल्य देहको शुद्ध माने हैं; किन्तु वह अशुद्ध ही है। मुख्यतया आकाश-तत्त्वरूप समानवायुको इसमें माना है। उसीसे विज्ञानमार्ग प्रगटा है। इसमें परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान कहे हैं। आश्रम परमहंस कहा है, देहका वेभान किये हुये, खाद्याखाद्य, भक्ष्याभक्ष्य तथा कर्तव्य अकर्तव्य आदि विचाररहित मूढ़ पशुवत् वृत्तिधारे हुये जड़वत् पड़े हुए लोगोंको स्थिर परमहंस, श्रेष्ठ आश्रमवाले हैं, ऐसा गुरुवा लोगोंने निश्चय किये हैं, सो धोखाके निश्चय है ॥ ४ ॥

३. प्रसाद चिह्न प्रलय एकान्त ❀ दशा सुजड़ जानो बिभ्रान्त ॥ ५ ॥

श्लोकः—आचारं च गुरुं चैव तृतीयं जङ्गमात्मकम् ॥ शिवलिङ्गंप्रसादेयं चिह्नं पञ्चक उच्यते ॥ ४ ॥
दोहाः—आचार गुरुमय जङ्गम,-आत्मलिङ्ग वसत्त्व ॥ शिवलिङ्ग प्रसाद यही, पञ्च चिह्न महत्त्व ॥ ४ ॥
चिन्ह ५ः—१ आचार, २ गुरुमय, ३ जङ्गमात्मलिङ्ग, ४ शिवलिङ्ग और, ५ प्रसाद चिह्न है। ये ५ चिह्न कहे जाते हैं ॥
श्लोकः—नित्यनैमित्तिकंविश्वं महाप्रलयकं परम् ॥ एकान्तंप्रलयं ह्येते प्रलयं पंचकं स्मृतम् ॥ ५ ॥
दोहाः—नित्य नैमित्तिक विश्व महा, प्रलय एकान्त बखान ॥ जीवनके स्थिति नाशक, गाफिलिताको जान ॥ ५ ॥
प्रलय ५ः—१ नित्य, २ नैमित्तिक, ३ विश्व, ४ महा और ५ एकान्त प्रलय माना है, सो जानिये ॥
श्लोकः—दशाबाल्यं पिशाचं च मूकोन्मत्त तथैव च ॥ सुजडं पञ्चमं ज्ञेयं दशापञ्चप्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥
दोहाः—बाल पिशाच उन्मत्त अरु, मौन परे जड़ जान ॥ पञ्च दशा सो दुर्दशा, किये जीव हैरान ॥ ६ ॥
दशा ५ः—१ बाल, २ पिशाच, ३ उन्मत्त, ४ मूक और ५ जड़ दशाको विभ्रान्त ही जान लो, ये ५ दशा कहे जाते हैं ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैंः— इस कोशमें—

प्रसाद = ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी कृपा प्रसादसे अद्वैत ब्रह्मबोधको प्राप्तकर लेना, 'अहं ब्रह्मास्मि'का दृढ़ निश्चयकर लेना—

चिह्न = यह लक्षण पहिचानरूप गुरुकृपाका ही

चिह्न है, ऐसा कहते हैं।

प्रलय एकान्त = सर्व इच्छाओंका लय करते-करते अन्तमें एक अद्वैत ब्रह्ममें ही तदाकार होके मिल रहना, एक ब्रह्ममें सब वृत्तियोंका लय होना, सोई एकान्तिक प्रलय कहा है।

दशा = ब्रह्मज्ञानियोंकी स्थितिका स्वभाव या उनकी दशा, यहाँपर—

सुजड़ = विशेष करके अच्छी तरह महान जड़दशा, अजगरवत् पड़े रहते हैं। वे—

बिभ्रान्त = मद्यपीके नाईं विशेष भ्रमका नशा चढ़ाके, गाफिल मूढ़ बनते हैं। अक्क, बक्क, झक्क, किया करते हैं।

जानो = उनका कुछ होश ठीक नहीं रहता है, महा दुर्दशाग्रस्त मूढ़हो रहते हैं। ऐसा जान लीजिये॥

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें गुरुका प्रसाद या कृपाका चिह्नसे अद्वैत ब्रह्मबोध प्राप्तिकी अचल स्थितिमें पहुँचनेको माने हैं। तथा सबका अन्त होके वृत्तिलय होनेसे एक अद्वैत ब्रह्म ही बचे रहना, उसीमें जीव भी मिल जाना, चित्तचतुष्टयका लय होना, इसको एकान्त प्रलय कहते हैं; यानी एक ब्रह्ममें सबका अन्त होना माने हैं। और विशेष भ्रमिक होनेपर ज्ञानियोंकी बुद्धि विभ्रम हो, नशा पीनेवालेकी सरीखी मूढ़ गाफिल हो जाते हैं। अच्छा, बुरा जाननेका ज्ञान भी उन्हें नहीं रहता है। अच्छी तरहसे महान जड़ अजगरवत् दुर्दशामें वे पहुँच जाते हैं। ऐसी दुर्दशाको प्राप्त होते हैं, सो उसे सुजड़ दशा कहते हैं, ऐसा जानिये! ॥ ५ ॥

४. उन्मनि वाचा सहजारूप * निर्गुणमय मुक्तिता भूप ॥ ६ ॥

श्लोकः—जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुर्यावस्था च उन्मनी॥ साचैव सहजावस्था पंचावस्थाः प्रकीर्तिताः॥ ७ ॥

दोहाः—जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति परे, तुरिया उन्मुनिपञ्च॥ अवस्था पाँच ताको कहै, स्थिति होवे नहिं रञ्च॥७॥

अवस्था ५ः—१ जाग्रत्, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति, ४ तुरिया और ५ उन्मुनि अवस्था माना है, उसे सहजावस्था भी कहते हैं, ये पाँच अवस्थायें कहलाती हैं॥

श्लोकः—सालोक्यं मुक्ति सामीप्यं सारूप्यं तृतियंस्तथा॥ सायुज्यं निर्गुणं श्रेष्ठं पंचमुक्तिः परम्स्मृतम्॥८॥

दोहाः—सालोक्य औ सामीप्य पुनि, सायुज्य सारूप बखान। निर्गुण जीवन्मुक्ति कहा, पंचमुक्ति परवान॥८॥

मुक्ति ५ः—१ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य, ४ सायुज्य और ५ निर्गुण जीवन्मुक्तिको सब मुक्तियोंमें श्रेष्ठ बड़ा राजा माना है॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

उन्मनि वाचा = मनमर जाना, कोई वाणीभी कहने सुननेको न रहना, उसको अनिर्वाच्य मौन स्थिति या उन्मनि वाचा माने हैं। परन्तु मानन्दीरूपी मनसे वे आप ही मृतकवत् पड़े रहते हैं, यह तुरियातीत अवस्था है।

सहजारूप = आकाशवत् परिपूर्ण व्यापक, सहज-ही-सहज ज्योंका-त्यों ठहरायके सहज ब्रह्म-स्वरूपको माने हैं। यह पाँचवाँ सहज साधना कथन किये हैं।

निर्गुणमय = त्रिगुण मायासेरहित सबसे परे श्रेष्ठ निर्गुण जीवन्मुक्तिको ब्रह्मका ही स्वरूप माने हैं। जिसमें कोई भी सद्गुण नहीं रहता, सोई निर्गुणमय कहा जाता है—

मुक्तिता = यह चारों मुक्तियोंसे परे उन्होंसे बढ़-कर पाँचवीं ब्रह्मज्ञानियोंकी मुक्ति है, ऐसा कहे हैं।

भूप = राजाके समान मुक्तियोंमें सबसे बड़ा महाराजावत् निर्गुणमुक्ति ब्रह्मपदमें मिलाने-वाला सर्वोच्च मुक्ति माने हैं। परन्तु वह मिथ्या मानन्दी भ्रम, धोखा ही है॥

व्याख्या— और वहाँपर वाणी भी नहीं रह जाती, तो अनिर्वाच्य रहता है। उसको उन्मनि वाचा वा अवस्था माने हैं। अर्थात् उन्मनी अवस्था कहिये मन नष्ट हुआ, वा मन मर गया, ऐसी अवस्था मानी है। परन्तु मैं ब्रह्म दशोंदिशामें सर्वत्र परिपूर्ण भरा हूँ। वह माननारूप मन तो मरा नहीं, सूक्ष्म बीजरूपसे बना ही रहा। ऐसी ब्रह्मस्थितिको एकान्तिक प्रलय भी कहा है, और तुरिया साक्षी अव-

स्थाके परे महा जड़दशा अनिर्वाच्य स्थितिको परात्परवाचा भी कहते हैं। तथा आकाशवत् सहज ही सहज व्यापक ब्रह्म निर्गुण रहता है, सोई मुक्तिका रूप है। इसको सर्वोपरि निर्गुण जीवन्मुक्ति कथन किये हैं। यह पाँचवाँ मुक्ति, प्रथमके चारोंमुक्तियोंसे बढ़कर राजावत् सर्वश्रेष्ठ मुक्तियोंमें महाराजा माना गया है। ऐसा भ्रमिक गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं। उसीकी झूठी महिमा बता-बताके मनुष्योंको भुला रखे हैं। पारखी सद्गुरुके सत्संगमें उसे परखके यथार्थ बन्धन और मुक्तिके भेदको जानना चाहिये ॥ ६ ॥

५. तहाँ निरञ्जन आप अभिमान * दीक्षा अनामयोऽहं जान ॥ ७ ॥

श्लोकः-विश्व तैजस प्राज्ञश्च प्रत्यगात्माभिमानिनः ॥ निरंजनस्तदातीतः सोभिमानी तु पंचमः ॥ ६ ॥
दोहाः— विश्व तैजस प्राज्ञ त्रय, प्रत्यगात्म है चार ॥ निरंजन मिलि पाँच यही, अभिमान गुरुवन धार ॥ ६ ॥

अभिमान ५:—१ विश्व, २ तैजस, ३ प्राज्ञ, ४ प्रत्यगात्म और ५ निरञ्जन अभिमान माना है ॥

श्लोक, दीक्षा ५:— नामांतदीक्षा परमार्थनिष्ठा। अहं च सोहं च ततश्च कोहम् ॥
शिवोहमस्मीत्य शिवंविचिन्त्य। अनात्म कोऽहं परिपूर्ण गुह्यः ॥ १० ॥
दोहाः—कोहं वोहं जाप है, और शिवोहं जान ॥ सोहं अनामय पञ्चम, दीक्षा पञ्च पिछान ॥ १० ॥

दीक्षा ५:-१ कोऽहं, २ वोऽहं, ३ शिवोऽहं, ४ सोऽहं, और ५ अनामयोऽहं, ऐसे पाँच दीक्षा कहा है ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस विज्ञानमय कोशमें—

तहाँ = विज्ञानमयके भीतर ब्रह्मानन्दकी स्थिति-रूप इस कोशमें—

आप = अपने आपको ही कर्ता, धर्ता, हर्ता, एक-ब्रह्मस्वरूप मान करके—

निरञ्जन = कहनेको तो माया विकारकी अंजनसे परे आकारसेरहित कहते हैं। परन्तु व्यापक बनके विराटरूप सब जगत्की सूक्ष्म अहंभावका—

अभिमान = मूल अभिमान कारणरूपसे बना रहता है, सोई निरञ्जन अभिमान है।

दीक्षा = विज्ञानियोंके उपदेश या शिक्षा, दीक्षाकी यहाँ दृढ़ापन—

अनामयोऽहं = नाम, रूप, माया, कायासे परे मैं ब्रह्म हूँ। ऐसी धारणा रखना, और 'अनामयोऽहं' इसी मन्त्रका जाप करना भी कहे हैं।

जान = सो गुरुवा लोगोंकी कल्पना ही है, ऐसा जान लीजिये! उसमें कोई सार नहीं है ॥

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें तहाँपर ब्रह्मज्ञानी आपही निरंजन ब्रह्म बनते हैं। फिर विराट-रूप सब चराचर जगत्को अपना ही स्वरूप मानके सूक्ष्म अहंरूपसे जो अभिमान रखते हैं, सोई निरंजन अभिमान कहलाता है। सो उसीको लेके ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति मान लिये हैं। ब्रह्म-ज्ञानियोंकी दीक्षारूप उपदेश " अनामयोऽहं " कहा है। अर्थात् मैं ब्रह्म नाम-रूप समस्त मायासे परे हूँ। ऐसे दृढ़ करना या उसे ही मन्त्र समझके जपा करना कहते हैं, ऐसा जानिये ॥ ७ ॥

६. ब्रह्मानन्द मगनता पाय * साधन ज्योति स्वरूप कहाय ॥ ८ ॥

श्लोकः— विषयानन्द योगाख्यमद्वैतानन्द सम्मतम् ॥ विदेहानन्दविख्यातं ब्रह्मानन्देति पञ्चकम् ॥११॥
दोहाः—विषयानन्द रु योग सुख, अद्वैतानन्द बखान ॥ विदेहा ब्रह्मानन्द सो, आनन्द पाँच ठहरान ॥११॥

आनन्द ५:—१ विषयानन्द, २ योगानन्द, ३ अद्वैतानन्द, ४ विदेहानन्द और ५ ब्रह्मानन्द माना है ॥

श्लोकः— श्रवणं मननं चैव निदिध्यासनमात्मनः ॥ साक्षात्कारपरंज्योति सहजा पञ्चसाधनः ॥ १२ ॥
दोहाः—श्रवण मनन निदिध्यासन, साक्षात्कार सो ज्ञान ॥ सहजारूप ज्योतिमय, साधन पाँच प्रमान ॥१२॥

साधन ५:—१ श्रवण, २ मनन, ३ निदिध्यासन, ४ साक्षात्कार और ५ सहजारूप साधन कहा है। यह परमज्योतिकी सहज-साधना माना है। यही पाँच साधन हैं। और दूसरा साधन यहाँ ज्योतिस्वरूपका प्रत्यक्ष कहलाता है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस विज्ञानमय कोशमें—

ब्रह्मानन्द = सर्वोत्कृष्ट महान ब्रह्मस्वरूपमें मिल जाना, उस सुखको ब्रह्मानन्द कहे हैं।

मगनता = जगत् दुःखसे छूटकर कोई बिरले ही उस ब्रह्म-सुखको पायके मगनमस्त हो जाता है, तो ब्रह्मानन्दमें पहुँचनेपर मन मगन हो जाता है। उसे—

पाय = अद्वैत स्थिति बोधवाले ही इस तरहके आनन्दको प्राप्तकर सकते हैं, इसको पाना दुर्लभ है; ऐसा कहते हैं।

साधन = उसी आनन्दको प्राप्त करनेके लिये, ज्ञानी लोग साधनचतुष्टयादि साधते रहते हैं।

ज्योति स्वरूप = साधना द्वारा तत्त्वोंका ज्योति प्रकाश देखके उसीको, ज्योतिस्वरूप ब्रह्म निश्चय किये—

कहाय = फिर अपना भाव उसीमें हो मिलायके मैं ही ज्योतिप्रकाशरूप पूर्ण ब्रह्म हूँ, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार स्वयं ज्योति स्वरूप ब्रह्म कहलाते हैं॥

व्याख्या—और साधन चतुष्टय सम्पन्न हो करके, अभ्यास पूरा होनेपर ब्रह्म-ज्योतिमें जायके जीवकी ज्योति मिल जाती है। तो एक अद्वैत ज्योतिस्वरूप ब्रह्ममें ज्ञानी आप-ही-आप स्वयं कहलाता है, वहाँ अभेद हो जाता है। ब्रह्मानन्दमें सराबोर होके, एकरस हो, जीव—ब्रह्ममें मिल जाता है; और विशेष वृत्तिकी स्थिरतासे होनेवाले निर्विकल्पावस्थाके शून्य आनन्दरूप सुखको ब्रह्मानन्द भोग माने हैं। ऐसे मगनताको कोई बड़े भाग्यवान् महात्मा ही प्राप्तकर सकते हैं। वे फिर धन्य! धन्य! कृतकृत्य हो जाते हैं। ऐसी महिमा बढ़ायके गुरुवा लोग ब्रह्मानन्द प्राप्तिके वास्ते नाना साधनाओंमें पच-पचके मरते हैं। फिर जड़ाध्यासी होके आवागमनमें भ्रमते रहते हैं, बिना पारख वह धोखा नहीं छूटती है॥ ८॥

७. कूटस्थ निर्विकल्पता मान ❀ निर्णय देव तहाँ शक्ति बखान॥ ९॥

श्लोकः—क्षरंचैवाक्षरं चैव कूटस्थं चात्मनिर्णयः॥ क्षेत्रज्ञं पंचमंप्रोक्तं विचारः पंचनिर्णयः॥ १३॥

दोहाः—क्षर अक्षर यह निर्णय, क्षेत्रज्ञ आत्म कूटस्थ। निर्णय पाँच ठहरायके, भ्रममें गुरुवा मस्त॥१३॥

निर्णय ५ः—१ क्षर, २ अक्षर, ३ क्षेत्रज्ञ, ४ आत्मा और ५ कूटस्थ ये पाँच निर्णय कहे हैं॥

श्लोकः—गणेशोभास्करोविष्णू रुद्र शक्ति च शास्वतम्॥ वेदगर्भेषु पूज्यंते पंचायतन देवताः॥ १४॥

दोहाः— गणपति रवि औ रुद्र तहाँ, ईश्वर देव बखान॥ शक्ति अथवा निरंजन, पंचदेव मनमान॥१४॥

देवता ५ः—१ गणेश, २ मार्तण्ड, ३ रुद्र, ४ ईश्वर और ५ पाँचवाँ निरञ्जनको सर्वशक्तिमान् देवता बखान किये हैं॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

कूटस्थ = 'कूट' कहिये अहिरन और 'स्थ' कहिये स्थिर रहनेवाला स्थाई, ऐसा अहिरन सरीखा अचल, अलिप्त, निर्विकार परमात्मा है। यहाँ ऐसा निर्णय माने हैं।

निर्विकल्पता = स्फुरणा, संकल्प-विकल्पसेरहित शून्य स्थितिको ही—

मान = निर्विकल्प ब्रह्म स्थिति माने हैं।

देव = परमतत्त्व परमात्मा ब्रह्म ही सबका मालिक, सुख, दुःख देनेवाला देवता है, ऐसा यहाँपर—

निर्णय = ज्ञानियोंने निर्णय किये हैं।

तहाँ = वहाँपर विज्ञानमय कोशमें—

शक्ति = वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है। आदि शक्ति उसीके साथमें सदा बनी रहती है। अतः यहाँके देवता मुख्य शक्ति ही है।

बखान = ऐसा वर्णन गुरुवा लोगोंने किये हैं, या वैसे बखान किया गया है॥

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें ब्रह्मको कूटस्थ माना है। जैसे लोहार या सुनारके पासमें रहनेवाला अहिरनको 'कूट' कहते हैं। वह 'स्थ' कहिये एक जगहमें गड़ा हुआ स्थिर स्थाईरूपसे अचल रहता है। कितनेक आभूषण या बर्तन, औजार आदि उसके ऊपर बनाके चले जाते हैं;

और कई नित्य नया लाके उसीपर रखके बिगाड़े भी जाते हैं। परन्तु वह अहिरन ज्योंका-त्यों सदा वैसे ही बना रहता है। तैसे ही ब्रह्म अधिष्ठानके ऊपर कितनेक बार जगत् उत्पत्ति और प्रलय होके बनते-ही-बिगड़ते रहते हैं। अनन्तों बार चराचर सृष्टिको उत्पत्ति-प्रलय हो चुका, और होता ही रहेगा। परन्तु ब्रह्म अचल, अलिप्त, निर्विकार हो ज्योंका-त्यों सदा स्थिर बना रहता है। इसी कारण उसको कूटस्थ आत्मा कहते हैं, और उसमें कोई संकल्प, विकल्प सम्बन्ध भी कुछ नहीं होता है, सदा निर्विकल्प रहता है। ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं, और सबका मालिकरूपसे कर्मफल देनेवाला देवता सोई परमेश्वर है, ऐसा निर्णय किये हैं। और वह सर्वशक्तिमान् है, आदिशक्तिमाया सदैव अभिन्नतासे उसीमें रहती है, ऐसा वर्णन किये हैं ॥ ९ ॥

८. शक्ति परा है सबकी खान * ब्रह्माग्नि पदारथ पद मान ॥ १० ॥

श्लोकः—क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्ति रिच्छाशक्तिस्तथैव च। आदिशक्तिः पराशक्तिः शक्तिःपंचविधास्मृता ॥१५॥
दोहाः—क्रिया द्रव्य इच्छा अरु, ज्ञानशक्ति सो चार। पराआनन्द शक्ति यही, पाँचशक्ति निरधार ॥१५॥

शक्ति ५ः—१ क्रिया, २ द्रव्य, ३ इच्छा, ४ ज्ञान और ५ परा वा आनन्द शक्ति कहा है, ये पाँच प्रकारकी शक्ति मानी हैं ॥

श्लोकः—बडवाग्निश्चमन्दाग्नि प्रलयाग्निस्तथैव च ॥ शोकाग्निश्चाथकामाग्निर्ब्रह्माग्निः पंचकंस्मृतम् ॥ १६ ॥
दोहाः—जठर काम मन्दाग्नि है, बड़वाग्नि सो ज्ञान ॥ ब्रह्माग्नि मिलि पञ्चम, अग्नि महा अज्ञान ॥ १६ ॥

अग्नि ५ः—१ जठराग्नि, २ कामाग्नि, ३ मन्दाग्नि, ४ बड़वाग्नि (ज्ञान) और ५ ब्रह्माग्नि कहा है, ये पाँच अग्नि जानिये ! ॥

श्लोकः—गायत्र्याः प्रथमः पादोद्वितीयश्च तृतीयकः ॥ चतुर्थपाद ॐकारः पंचमः परमार्थकः ॥ १७ ॥
दोहाः—भूर्भुवः स्वः तृतीयपद, ॐपद माया चार ॥ ब्रह्म पदारथ पञ्चम, पद गायत्री विचार ॥ १७ ॥

गायत्रीका पद ५ः—१. प्रथम (भूः), २. द्वितीय (भुवः), ३. तृतीय (स्वः), ४. चतुर्थ (माया) का पद ॐकार और ५. पञ्चम (पदारथपद ब्रह्म-ॐ-को माने हैं) सो परमार्थपद कहे हैं।

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें —

शक्तिपरा = ब्रह्मके मुख्य शक्तिरूप आदिमाया, सो देहमें, नाभिमें रहनेवाली 'परावाचा' है। उसीको सबसे परे पराशक्ति भी कहते हैं।

है सबकी खान = वही आदि शक्ति सब चारों-खानी उत्पन्न होनेकी मूलकारण बीजरूप है, ऐसा माने हैं। अथवा सब चराचरकी खानी वही शक्ति है, कहा है।

ब्रह्माग्नि = ब्रह्मज्ञान जो है, सो धधकता हुआ अग्निवत् है, जगत्की द्वैतभावकी अविद्याको भस्म करनेवाला वह ब्रह्माग्नि माने हैं।

पदारथ = एक ही ब्रह्म सत्य पदार्थ है, और पदका अर्थ पदार्थ भी वही है।

पद = सो ब्रह्म नित्य मुक्तपद है।

मान = ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पनासे माने हैं, अथवा गायत्रीके पंचम पदमें बिन्दु ब्रह्मको पदार्थ पद ॐ माने हैं ॥

व्याख्या—और ब्रह्मकी पराशक्ति वा विज्ञानशक्ति सर्वसे परे है, वह देहमें नाभिमें रहती है। सो उसीसे चारों देहोंमें शक्ति पहुँचती रहती है। तथा सब जगत्की स्थावर-जङ्गम आदि सम्पूर्ण खानी उत्पत्ति और नाश होनेकी अधिष्ठात्री बीजरूप ऐसे अचिन्त्य शक्ति अनिर्वचनीय आदि मायाको माने हैं। और ब्रह्माग्निको मुक्ति सुखदाई कहते हैं, अर्थात् सर्व अज्ञानकर्म ज्ञानाग्निमें जलाय, विज्ञानरूप शान्तपदको ब्रह्माग्नि माना है। परन्तु जगत्का बीज सूक्ष्म अहंभाव भीतर बना ही रहा है, सोई फिर उत्पत्तिकी कारण होती है। सत्यपदार्थ मुक्तपद भी ब्रह्मको ही गुरुवालोगोंने माने हैं। अथवा गायत्रीके पाँचवाँ पदमें ॐकारकी बिन्दु मात्राको ब्रह्म मुक्तपदार्थ माने हैं ॥ १० ॥

६. सर्व साक्षी मुद्रा ताके लक्ष * वाचा परात्पर अहै प्रत्यक्ष ॥ ११ ॥

श्लोकः—खेचरी भूचरी चैव चाचरी च अगोचरी ॥ उन्मनी चेतिविख्याताः पञ्चमुद्राः प्रकीर्तिताः ॥१८॥
दोहाः—खेचरी मुद्रा भूचरी, चाचरी व अगोचरी ॥ मुद्रा सर्वसाक्षिणी, पाँच बहिरमुद्रा करी ॥ १८ ॥

बहिरमुद्रा ५ः—१ खेचरी, २ भूचरी, ३ चाचरी, ४ अगोचरी, और ५ सर्व साक्षिणी मुद्राको उन्मनी भी कहते हैं, ऐसे पाँचमुद्रा बाहरी माना है ॥

श्लोकः—वैखरीमध्यमावाचः पश्यन्ती च तथा परा ॥ परात्परा च विज्ञेयावाचः पञ्चकसंज्ञिताः ॥ १६ ॥
दोहाः—वैखरी वाणी मध्यमा, पश्यन्ती वाचा परा ॥ परात्पर अवाच्य पद, वाचा पाँच विकार भरा ॥१९॥

वाचा ५ः—१ वैखरी, २ मध्यमा, ३ पश्यन्तो, ४ परा और ५ अनिर्वाच्य वा परात्पर वाचा प्रत्यक्ष है, ऐसा कहा है। ये पाँच वाचाके नाम जानिये ! ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

सर्व साक्षी = चराचर सर्वके द्रष्टा होनेसे ब्रह्म सर्वका साक्षी है, इस तरह ब्रह्मको सर्वसाक्षिणी मानके उसमें—
मुद्रा = मनको एकाग्र करके लगाना, सोई मुद्राका लक्षण यहाँपर माने हैं।
ताके = उस ब्रह्मके तरफ ताकके—
लक्ष = लक्ष उसीमें स्थिर करके फिर अलक्ष हो जाना कहे हैं। यही मुद्राका लक्ष वा लक्षणा है।
वाचा परात्पर = चारों वाचासे अत्यन्त परे, सब वाचासे रहित, अनिर्वाच्यको परात्पर वाचा भी कहते हैं।
अहै प्रत्यक्ष=सो ब्रह्म प्रत्यक्ष ही पूर्ण है ऐसा माने हैं॥

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें सर्वसाक्षिणी मुद्रा सर्वके साक्षी तथा अलक्ष ब्रह्म कथन करके उसीकी मुद्रा लगायके ताकते हैं। परावाचासे जो परे हो, उसको परात्पर वाचा कहते हैं, ब्रह्मके ठिकाने सो प्रत्यक्ष ही है, ऐसा माने हैं। परन्तु वह तुरिया साक्षी अवस्थाके परे महामूढ़ जड़दशा अनिर्वाच्य शून्य स्थिति है ॥ ११ ॥

१०. मात्रायं निर्गुण गुणतहाँ * शिवदेव गुण कै है जहाँ ॥ १२ ॥

श्लोकः—अकारश्च उकारश्च मकारश्चत्रिमात्रिकम् ॥ इकारश्चैव यंकारः पञ्चकंमातृसंज्ञिकम् ॥२०॥
दोहाः—अकार उकार मात्रा दुई, मकार अर्धमात्राइकार ॥ यंकार बिन्दू जानिये, मात्रा पाँच ॐकार ॥२०॥

मात्रा ॐकारकी ५ः—१ अकार, २ उकार, ३ मकार, ४ इकार (अर्धमात्रा) और ५ यं (बिन्दू मात्रा) कहा है। ये पाँच मात्राओंके नाम जानिये ! ॥

श्लोकः—रजः सत्त्वंतमश्चैव शुद्धसत्त्वं चतुर्थकम् ॥ निर्गुणं सगुणातीतं पञ्चमं सुप्रतिष्ठितम् ॥ २१ ॥
दोहाः—रज सत तम गुण शुद्धसतो, निर्गुण मिलि गुण पाँच ॥ बाँधे जीवनकोसकल, चौरासीकेखाँच ॥२१॥

गुण ५ः—१ रजोगुण, २ सत्त्वगुण, ३ तमोगुण, ४ शुद्धसत्त्वगुण और ५ निर्गुण कहा है, यही पाँच गुण हैं, उसमें निर्गुण सुप्रतिष्ठित गुणातीत माना जाता है ॥

श्लोकः—ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ पञ्चदैवंतु विख्यातं पञ्चब्रह्मस्वरूपवत् ॥२२॥
दोहाः—ब्रह्मा विष्णु रुद्र त्रय, देवता ईश्वर चार ॥ शिवदेव सो ब्रह्म है, पञ्चगुण देव ठहार ॥ २२ ॥

गुणके देवता ५ः—१ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र, ४ ईश्वर और ५ शिवदेव (ब्रह्म) को कहा है, पाँच ब्रह्मके स्वरूपवत् ये पाँच देवता माने जाते हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस कोशमें—

मात्रा = ॐकारकी पाँचवीं मात्रा यहाँपर—
यं = बिन्दूमात्राको यंकार माने हैं।
तहाँ = ब्रह्मके ठिकानेपर विज्ञानमें—
गुण = तीनों गुणसे रहित गुणातीत—
निर्गुण = निर्गुण, निरीह माने हैं।
जहाँ = संसारसे लक्ष छूटकर जहाँपर ब्रह्ममें लक्ष लग जाता है, तो—
शिवदेव = कल्याण देनेवाला शिवदेवताके मुक्ति-

पं० ब्र० टीका; १२—

रूपी-ऐश्वर्य—
गुणके है = सद्गुण उसको भी प्राप्त हो जाता है; अथवा निर्गुणके देवता शिवदेव (ब्रह्म) को कहे हैं ॥

व्याख्या—और ॐकारकी पञ्चम मात्रा यंकार सोई विन्दु माने हैं, अर्थात् पिण्ड, ब्रह्माण्ड-रूप सर्वजगत्का अधिष्ठान ब्रह्म ही बीज है, विन्दुरूप मात्राको मस्तकमें माने हैं । तहाँ ब्रह्मके निर्गुण ही गुण कहा है । यानी चारों गुणोंमेंसे जिसमें कोई भी गुण नहीं होवे, सो निर्गुण माना हुआ कल्पित ब्रह्मको, गुणातीत या निर्गुण कहते हैं । निर्गुणका मालिक शिव देवता है । जहाँ-पर उसके मुख्य गुण कल्याणदाता या मुक्तस्वरूपी हो जाना है । तो फिर जगत् बन्धनसे छूटकर ज्ञानी उसीके गुणमें मिलके निर्गुणको प्राप्त हो, मुक्त हो जाते हैं । ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना-से माने हैं ॥ १२ ॥

११. अस्थल शिखा ब्रह्ममय विन्दु * नील वर्ण तहाँ क्रिया है इन्दु ॥ १३ ॥

श्लोकः—नेत्रं जिह्वां च वाक् नाभिम् शिखायां ऊर्ध्व द्वारतः ॥ स्थान द्वारं सकथ्यन्ते पञ्चद्वारंइमेस्मृता ।।२३॥
दोहाः—नेत्रद्वार रसना मुख, नाभि शिखा सो स्थान ॥ स्थान द्वार ये पाँच हैं, पञ्चकोश बन्धान ॥२३॥

स्थल या द्वार ५ः—१ नेत्र, २ जिह्वा, ३ मुख, ४ नाभि और ५ शिखा या उर्द्ध द्वार माना है, ये पाँच स्थान-द्वार कहलाते हैं, ऐसा जानिये ॥

श्लोकः—तारकं दंडकं चैव कुंडलं चार्द्धचन्द्रकम् ॥ पञ्चमं विन्दु संकाशं पञ्च ब्रह्म सनातनम् ॥२४॥
दोहाः—तारक दण्डक कुण्डली, अर्धचन्द्र औ बिन्दु ॥ पञ्चब्रह्म माने सोई, गुरुवा भ्रमिक मतिमन्दु ॥२४॥

ब्रह्म ५ः—१ तारक, २ दण्डक, ३ कुण्डल्य, ४ अर्धचन्द्र और ५ विन्दुमय ब्रह्म कहा है, इन्हें सनातन पाँच ब्रह्मके रूपमें माना है ॥

श्लोकः—रक्तं श्वेतं तथा श्यामं नीलं सुनीलपङ्कजम् ॥ पञ्चमं शुद्धपीतं च तस्यांतेश्वेतमुज्ज्वलम् ॥२५॥
दोहाः—पीत श्वेत रङ्गलाल हरा, नील वर्ण वा श्याम ॥ पञ्चवर्ण सो तत्त्वके, गुरुवन कथन सुनाम ॥२५॥

वर्ण ५ः—१ पीत, २ श्वेत, ३ लाल, ४ हरा और ५ नीला या काला वर्ण माना गया है ॥

श्लोकः—सर्जनं पालनं चैव प्रलयश्च तृतीयकः ॥ सूर्यक्रिया चन्द्रक्रिया क्रियाः पंचकसंज्ञिताः ॥२६॥
दोहाः—सिर्जन पालन प्रलय औ, क्रिया सूर्य औ चन्द्र ॥ क्रिया कर्म पाँचों वही, चक्रभ्रमण गति तन्द्र ॥२६॥

कर्म या क्रिया ५ः—१ सिर्जन, २ पालन, ३ प्रलय, ४ सूर्य और ५ चन्द्र (इन्दु) ये पाँच क्रियाओंके नाम कहे हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

अस्थल = ब्रह्म विराजमान रहनेका स्थान-द्वार यहाँपर स्थिर होनेका जगह—
शिखा = शिरमें चोटीके जगह माने हैं । उसी शिखा स्थानके भीतर रहनेवाला—
बिन्दु = शून्यरूप विन्दुमात्रा यही वीर्यरूपमें शक्तिमान्—
ब्रह्ममय = बिन्दु ब्रह्मके स्वरूपमें माने हैं । यानी बिन्दुस्वरूप ही ब्रह्म है, ऐसा कहे हैं ।
नील वर्ण = ध्यानमें नीला या काला रङ्ग जो दिखाई दिया, सोई ब्रह्मका आभास रङ्ग माने हैं ।
तहाँ = समाधिमें ब्रह्मके ठिकाने—
इन्दु = चन्द्रमाके समान शीतल शुभ्र प्रकाश कम-ज्यादा मात्रामें घट-बढ़कर देना, ऐसा वहाँ-
क्रिया है = क्रिया होती है ऐसा माने हैं सो गुप्त-प्रगट, साकार, निराकार होनेका चन्द्रकर्म कहा है ॥

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें स्थिर होनेकी जगह शिखा स्थान ठहराके यहाँपर विन्दु ब्रह्मका निवास माने हैं, तालूके ऊपरी भागको सिरके चोटीकी जगहको ब्रह्मरन्ध्र, भ्रमरगुफा और शिखास्थान भी कहते हैं । उसका रङ्ग नीला या काला कहते हैं । ब्रह्माण्डमें वीर्यरूप विन्दुब्रह्मका क्रिया चन्द्रमाके समान शीतल, शान्ति, आनन्द देनेका—गुप्त, प्रगट होते रहनेका माने हैं ॥ १३ ॥

१२. स्थान सूक्ष्म ब्रह्मरन्ध्र जान * भ्रमरगुफा ताको परवान ॥ १४ ॥

श्लोकः—नेत्रंकंठोऽथहृदयं मूर्धा स्थानान्यनुक्रमात् ॥ शिखायां पञ्चमं स्थानं पञ्चस्थान प्रकीर्तितम् ॥२७॥
दोहाः—त्रिकुटी कण्ठ हृदय अपर, मूर्धनि अरु ब्रह्मरन्ध्र ॥ सूक्ष्म स्थान पाँचों कहै, उलट पुलट जिमिचन्द्र ॥२७॥

सूक्ष्म स्थान ५ः—१ त्रिकुटी, २ कण्ठ, ३ हृदय, ४ मूर्धनी, और ५ ब्रह्मरन्ध्र शिखा स्थान में माना है, ये पाँच सूक्ष्म स्थान कहलाते हैं ॥

श्लोकः—त्रिकुटी श्रीहटंस्थानं गुह्लाटं चौटपीटकम् ॥ पुण्याद्रि भ्रामरीगुम्फाब्रह्मरन्ध्राण्यनुक्रमात् ॥ २८ ॥
दोहाः—त्रिकुटी श्रीहट गोह्लाट रु, औटपीट ये चार ॥ स्थान चक्र भ्रमरगुफा, साधक पञ्च अपार ॥२८॥

स्थान चक्र ५ः— १ त्रिकुटी, २ श्रीहट, ३ गोह्लाट, ४ औटपीट, और ५ भ्रमरगुफा कहा है। यही प्रमाण माना है। अथवा ब्रह्मरन्ध्रको ही कोई भ्रमरगुफा भी कहते हैं, वही उसका प्रमाण कहा है ॥

श्लोक। देह परिमाण ५ः— सार्धत्रिहस्तो यदिस्थूल। भोगोह्यंगुष्ठमात्रं प्रमितं लिङ्गम् ॥
पर्वार्द्धमात्रमसुरप्रमाणं । प्रमाणहीनं हि भवेत्प्रमाणम् ॥ २९ ॥

दोहाः—साढ़े तीन हाथ तन, अङ्गुष्ठ अर्ध अंगुष्ठ ॥ मसूर प्रमाण हीन कही, पञ्च परिमाण सुपुष्ट ॥ २९ ॥

देह परिमाण ५ः—१ साढ़ेतीन हाथ, २ अंगुष्ठ, ३ अर्ध अंगुष्ठ, ४ मसूर (अणु), और ५ परिमाणहीन (परमाणु) यही कैवल्य देहकी कल्पित माप है, ऐसा जानिये ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस कोशमें —

स्थान सूक्ष्म = देहमें ब्रह्मके रहनेका मुख्य सूक्ष्म स्थान या ठिकान सूक्ष्म रीतिसे—
ब्रह्मरन्ध्र = दशवाँद्वार मस्तकमें तालूकी जगह शून्यभागमें ब्रह्मका निवास ठहराके माने हैं। इसीलिये उस स्थानको भी ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं।
जान = सो ब्रह्मको पोल ही जान लीजिये !
ताको = उसी जगहको कोई-कोई योगी ज्ञानीलोग—
भ्रमरगुफा = गुप्त भ्रमरगुफा भी कहते हैं।
परवान = पंडित गुरुवा लोगोंने यही शास्त्रानुसार प्रमाण किये हैं। अथवा कैवल्य देहका प्रमाण-परमाणुवत् परिमाणहीन, निराकार, निर्गुण है, ऐसा शास्त्रकारोंने कल्पनासे अनुमान प्रमाणमें लक्ष बाँधे हैं ॥

व्याख्या— और सूक्ष्मरूपसे ब्रह्मका वासस्थान दशवाँद्वार मस्तकमें तालूकी जगह ब्रह्मरन्ध्रमें माने हैं। उसीको भ्रमरगुफा नामसे भी प्रमाण किये हैं, और कैवल्यदेहको परिमाणहीन कहे हैं ॥१४॥

१३. दिशा ऊर्ध्व ब्रह्म तहाँ देव * महाशून्य उच्चार समेव ॥ १५ ॥

श्लोक। मुख्य दिशा और दिग्देवता ५ः— पूर्वेन्द्रपश्चिमदिशावरुणः प्रसिद्धो। धर्मश्चदक्षिणदिशोत्तरदिक्कुबेरः ॥
ऊर्ध्वाहि पद्मजननो जगतो विधाता। एवं दिशोऽथपतिदैवत पंचकं च ॥३०॥

दो—हाः पूरब पश्चिम दक्षिण, उत्तर उर्ध्व सो पाँच ॥ मुख्य दिशा सो पाँच है, जन्म मरण जिव नाच ॥३०॥

दिशा ५ः— १ पूर्व, २ पश्चिम, ३ दक्षिण, ४ उत्तर, और ५ ऊर्ध्व दिशा माना है। ये मुख्य पाँच दिशायें हैं ॥

दोहाः—इन्द्र वरुण यम कही, कुबेर ब्रह्मा देव ॥ दिशा पाँचके अधिपति, पाँचों देव गनेव ॥३१॥

दिग्देवता ५ः—१ इन्द्र, २ वरुण, ३ यम, ४ कुबेर, और ५ ब्रह्म (ब्रह्मा) देवता माने हैं ॥

श्लोक। शून्य ५ः— अधः शून्यं चोर्ध्वशून्यं हि मध्यं। सर्वशून्यं शून्यंशून्यमिहान्तशून्यम् ॥
चतुः शून्यागोचरं यन्निः शून्यं। निर्नामशून्यं हि निरामयं च ॥ ३१ ॥

दोहाः—अर्ध ऊर्ध पुनि मध्यमें, सर्व शून्य महा शून्य ॥ पाँच प्रकार सो शून्य है, गवने गर्भ सुन शून्य ॥३२॥

शून्य ५ः—१ अर्ध, २ ऊर्ध्व, ३ मध्य, ४ सर्व और ५ महाशून्य कहा है, ऐसे पाँच शून्य माना है ॥

श्लोक। उच्चार ५ः— ह्रस्वमात्रादीर्घमात्राप्लुतमात्राप्रभेदतः ॥ अर्धमात्राप्यनुच्चार्यामात्राः पञ्चक संज्ञिताः ॥ ३२ ॥

दो-हाः-ह्रस्व दीर्घ उच्चार द्वय, कल्पत्या प्लुत नाम ॥ मात्रा अर्ध अनिर्वच्च, उच्चार पाँच सुठाम ॥ ३३ ॥

उच्चार ५ः—१ ह्रस्व, २ दीर्घ, ३ कल्पत्या (प्लुत), ४ अर्धमात्रा, और ५ अनिर्वाच्य कहा है। ये नाम हैं ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस कोशमें—

दिशा = यहाँ मुख्य प्रधान दिशाका भाग—

उर्ध्व = ऊपर महाकाशके तरफ कहे हैं । और सिरके ठिकाने देहमें माने हैं ।

तहाँ = वहाँके मालिक, यानी ऊर्ध्व दिशामें रहनेवाले अधिष्ठाता—

देव = देवता या उस दिशाके देवता—

ब्रह्म = निर्गुणब्रह्म परमात्माको ही माने हैं ।

महाशून्य = और तीनकालका भाव न होना, ब्रह्ममें महान शून्यरूपसे जगत्का अभाव हो जाना, यहाँ निर्विकल्प समाधिमें महाशून्य माने हैं ।

समेव = उसी महाशून्यमें तन, मनसहित जीवको समाके ब्रह्ममें मिल जानेके लिये ज्ञानीजन प्रयत्न किया करते हैं ।

उच्चार = और सब उच्चारण लय होके अनिर्वाच्य होनेके लिये अभ्यास नाना तरहसे किया करते हैं । यानी शून्यमें लय करना अवाच्य ही यहाँका उच्चार माना है ॥

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें मुख्य ऊपरका ऊर्ध्वदिशा माना है, तहाँ ब्रह्म देवताका स्वयं निवास माने हैं । और महाशून्य माना हुआ ब्रह्ममें मिलनेके वास्ते कोई नाना आचार-विचारादि साधनाओंके अभ्यास करते रहते हैं । और इस कोशमें सब उच्चार जहाँ लय भया; सोई अनिर्वाच्य उच्चार महाशून्यमें समाना कहे हैं ॥ १५ ॥

१४. सुसंवेद तहाँ तत्त्व आकाश ❀ उपदिशा अधो विष्णुको वास ॥ १६ ॥

श्लोकः—ऋग्वेदोथ यजुर्वेदः सामवेदोह्यथर्वणः ॥ सूक्ष्म वेदोहिचाध्यक्षः पञ्चवेदाः प्रतिष्ठिताः ॥ ३३ ॥

दोहाः—साम यजुर अथर्व ऋग्, स्वसंवेद सो पाँच ॥ पाँचों वेद प्रमाण करि, भव अरण्यमें नाच ॥ ३४ ॥

वेद ५:—१ सामवेद, २ यजुरवेद, ३ अथर्ववेद, ४ ऋग्वेद, और ५ स्वसंवेद कहा है ॥

श्लोकः—पृथिव्याप्यस्तथा तेजो वायुराकाश मेव च ॥ पञ्च भूतानि कल्प्यन्ते पञ्चभूताः सुनिश्चिताः ॥३४॥

दोहाः—छिति जल पावक वायु नभ, पंच तत्त्व कहि नाम ॥ महाभूत ताको कहै, अरुझे तत्त्वन ठाम ॥३५॥

तत्त्व ५:—१ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, और ५ आकाश । यह अनादि पाँचतत्त्व हैं ॥

श्लोक । उपदिशा और दिग्देवता ५:—नैर्ऋत्यकोण निर्ऋतीश्वरमीशकोण, माग्नेयकोणमधिदैवतमग्निदेवः ॥ वायव्यकोणमधिदैवत वायुदेव, श्राधोदिशा अथ च दैवतमत्र विष्णुः ॥३५॥

दोहाः—ईशान्य नैऋति अग्नि है, वायव्य अधो जग चीन ॥ चार दिशाके कोनमें, उपदिशा पञ्च यह कीन ॥३६॥

उपदिशा ५:— १ ईशान्य, २ नैऋत्य, ३ आग्नेय, ४ वायव्य और ५ अधोदिशा माना है ॥

दोहाः—शिव नैऋति अग्नि अरु, वायु विष्णु यहि देव ॥ उपदिशाके अधिपती, पाँचों देव गिनेव ॥ ३७ ॥

उपदिशाओंके देवता ५:— १ शिव, २ नैऋत्य, ३ अग्नि, ४ वायु, और ५ विष्णु देवताके निवास उन दिशाओंमें क्रमशः कहे हैं ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं,इस कोशमें—

सुसंवेद = स्वानुभवसे परमात्माको चराचर सबमें पूर्ण व्यापक जानना, उसे ज्ञानीलोग स्वसंवेद्य मानते हैं । सूक्ष्मवेद अपना ज्ञान, स्वयंका अनुभव वही स्वसंवेद माना है ।

तहाँ = तहाँपर ब्रह्मके समीप या पासमें—

तत्त्व = पाँचतत्त्वोंमेंके मुख्य भागोंमें पृथ्वी आदि चारों तत्त्वोंको छोड़कर पाँचवाँ यहाँपर—

आकाश = शून्यपोलरूप आकाशतत्त्वको माने हैं । "आकाश शरीरं ब्रह्म" ऐसा उपनिषद्में कहा है ।

उपदिशा = और दूसरी दिशा मुख्यदिशाओंसे भिन्न दूसरा कोना वा भाग—

अधो = यहाँपर नीचे पातालके तरफ बताते हैं । शरीरमें पैरके तलुओंको माने हैं । वही इस कोशमें अधोदिशा कहे हैं ।

वास = उसी दिशामें रहनेवाला मालिक देवता, प्रधान अधिष्ठाता—

विष्णुको = विष्णुजीको माने हैं । अर्थात् अधोदिशामें सदैव विष्णुका निवास रहता है ऐसा कथन किये हैं ।

व्याख्या स्वयं हो अनुभवद्वारा जाननेमें आता है कि, परमत्मा सर्वमें परिपूर्ण व्यापक है, ऐसा ज्ञानीलोग स्वसंवेदको यहाँपर पाँचवाँ वेद माने हैं। वहाँ ब्रह्मके ठिकानेपर आकाशको मुख्य तत्त्व कहे हैं। और उपदिशा अर्ध या नीचे पाताल तरफ है, देहमें पैरके नीचेके भागमें उसे मानके वहाँके निवासी देवता विष्णुको माने हैं। यह सब भाग विज्ञानमय कोशमें ही मुख्य-मुख्य ठहरायके कहा है ॥ १६ ॥

१५. बंशी नाद वायु तहाँ व्यान * निजाकाश माकाश बखान ॥ १७ ॥

श्लोकः—तन्तिवीणा वितन्तश्चमृदङ्गं घनकांस्यकम् ॥ सुस्वरो वंशिकानादोऽनाहतो वाद्य पञ्चकम् ॥३६॥
दोहाः—तन्ती झाँझ शङ्ख ध्वनि, मृदङ्ग वंशि इमिनाद ॥ बाजा पाँचों कोशमें, माने हैं अनहाद ॥ ३८ ॥

बाजा ५ः—१ तन्ती, २ झाँझ, ३ शङ्ख, ४ मृदङ्ग, और ५ बंशी बाजा, यहाँ माना गया है ॥

पिण्डकी पाँच वायु और वासस्थान ५ः—प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ॥शरीरस्था इमे—
श्लोकः—हृदिप्राणो गुदेऽपानः समानो नाभि मण्डले ॥ उदानः कण्ठदेशेस्यात् व्यानः सर्वशरीरगः ॥३७॥

—हृदयमें प्राण, गुदामें अपान, नाभिमण्डलमें समान, उदान कण्ठदेशमें और व्यान वायु सर्व शरीरमें रहता है ॥ ३७ ॥

दोहाः—अपान उदान हृदि प्राण है, समान व्यान शरीर ॥ वायु पाँचोंपिण्डकी, कहते पण्डित धीर॥३९॥

पिण्डकी वायु ५ः—१ अपान, २ उदान, ३ प्राण, ४ समान, और ५ व्यान वायु कहा है ॥

श्लोकः—घटाकाशमठाकाशमहदाकाश संज्ञिता ॥ चिदाकाशं निजाकाशमाकाशपञ्चकं विदुः ॥३८॥
दोहाः—घटाकाश मठ नभ महद्; चिदाकाश विचार ॥ निजाकाश माकाशइक, पाँच अकाश विस्तार ॥४०॥

आकाश ५ः—१ घटाकाश, २ मठाकाश, ३ महदाकाश, ४ चिदाकाश, और ५ निजाकाशको यहाँ महाकाश भी बखान किये हैं। ऐसा जानिये ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इस कोशमें—

नाद = अनहद नादमेंके नादध्वनिमेंसे इसमेंका व्यान वायु सम्बन्धी अनाहद नादमें पाँचवाँ बाजा यहाँपर—

बंशी = बाँसुरी सरीखी आवाज सुनाई देती है, ऐसा माने हैं।

तहाँ = वहाँ शरीरमें रहनेवाला—

वायु = पिण्डकलाकी वायुमेंसे—

व्यान = पाँचवाँ व्यान वायुको माने हैं। सो सर्वशरीरमें खूनको लेके दौड़ता रहता है। अतः सब शरीरभरमें उसका निवास होता रहता है।

निजाकाश = निजस्वरूप ब्रह्मको आकाशवत् व्यापकरूपसे माने हैं।

माकाश = सर्वमें परिपूर्ण व्यापक महान आकाश-को आनन्दस्वरूपसे माने हैं—

बखान = ऐसे आकाश और ब्रह्मको एक समान-रूपमें वेदान्तियोंने निजाकाशको ही महाकाश ठहराके ऐसे वर्णन किये हैं।

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें व्यानवायुको कोई मायारूपमें भी मानते हैं। वह शरीरके सब जोड़ोंको फिराती है। यानी सर्वशरीरमें रहनेवाली व्यानवायुको कहे हैं। उस व्यानवायुके वेगसे होनेवाली आवाज यहाँ ब्रह्माण्डमें बाँसुरीके नादध्वनिके रूपमें मधुर-मधुर ध्वनि सुननेमें आती है, ऐसा कहते हैं। और ब्रह्माण्ड भरके महान आकाशके समानही निज ब्रह्मस्वरूपको भी आकाशवत् व्यापक पूर्णत्वकी मानन्दी किये हैं। उसको निजाकाश माने हैं, अर्थात् विभु व्यापकरूपसे महाआनन्द ऐसे निजाकाशको महाकाश भी कहते हैं ॥ १७ ॥

१६. पद्म रङ्ग पीत औ श्वेत * मारग शेष सब परके हेत ॥ १८ ॥

श्लोक। कमल रङ्ग ५ः —पृथग् रक्तपीतं तथा शुभ्रवर्णं। तथा कर्बुरं श्यामवर्णादि भूतम् ॥
नीलं सुनीलं शुद्धपीतं सुशुभ्रं। तथा पञ्चमं पीतवर्णं पुरस्तात् ॥ ३९ ॥
दोहाः—पीतरक्त औ श्याम रगत्, रक्त श्वेत ये तीन ॥ श्याम शुद्धपीत कमल, पीत श्वेत रङ्ग चीन ॥४१॥

कमल रङ्ग ५:— १ पीत-रक्त, २ श्याम-रक्त, ३ रक्त-श्वेत, ४ श्याम-शुद्धपीत और ५ पीत और श्वेत रङ्ग है ॥

श्लोकः—पिपीलिका विहंगश्च कपिमार्गो हि मीनकः ॥ शेषमार्गो हि संख्यायां पञ्चमार्गाः पुरातनाः ॥४०॥

दोहाः—पपील विहंगम कपिवत, मीन शेष सम पाँच ॥ गुरुवन पाँचों मार्ग चले, बहुरूपिया इव नाच॥४२॥

मार्ग ५:—१ पपिल, २ विहंगम, ३ कपि; ४ मीन और ५ शेषमार्ग कहा है। वह निज-पर सबके हितकारी माने हैं। ये पाँच मार्ग पुरातन गिने हैं ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस कोशमें—

पद्मरङ्ग = सहस्र दल कमलका रङ्ग, रूप, आकार-प्रकार यहाँपर—

पीत = पीला (पृथ्वीतत्त्वका मुख्य भाग) है—

औ = और दूसरा—

श्वेत = सफेद (जलतत्त्वका मुख्य भाग) है, ये दोनों मिश्रित रङ्ग माने हैं।

मारग = विज्ञानमय कोशके मार्ग या रास्ता चलने-के लिये पथ, यहाँ सप वा नागके सरीखी सरसरायके तीव्रतासे चलना, फिर अजगर-वत् शून्य पड़े रहना, ऐसा कहे हैं।

शेष = अथवा सबसे श्रेष्ठ मुख्य सारपद परमात्माको सत्य जानना, सो शेषमार्ग कहे हैं।

सब = ब्रह्म सबमें व्यापक रहके सबसे न्यारा हो रहता है, इससे—

परके = दूसरेके दोषोंसे रहित निर्लिप्त निर्विकार समानभावसे सबोंके हितकारी और सबके-

हेत = हित वा कल्याणकर्ता है। तैसे ही विज्ञानियों ने अपने और परके भेदभाव छोड़कर सबके कल्याण करनेका प्रेमभाव रखना चाहिये, ऐसा कहनेका तात्पर्य है। अथवा शेष मार्ग-को निज-पर सबके हितकर ठहराके उसमें प्रेम लगाये हैं ॥

व्याख्या—और सिरके भीतर रहनेवाला सहस्रदल कमलके प्रकाशरूप पत्रका रङ्ग पीला और सफेद मिला हुआ ध्यानमें दिखता है, ऐसा कहते हैं। तथा सबसे श्रेष्ठ अन्तिम बाकीका मार्गको शेषमार्ग कहे हैं। इसको मुख्य सारपद परमात्मा जाननेका मार्ग सबके हितकारी माने हैं। जैसे परमेश्वर सबमें रहके सबके गुण-दोषोंसे निर्लिप्त शुद्ध रहता है। तैसे परब्रह्ममें प्रीति लगाने-वालेने भी सब भेदभावको छोड़कर एक अद्वैत ब्रह्मदृष्टिसे सबोंको देखके, हितेच्छुक बने, और किसीमें भी मोह करके लिपायमान न होवे, ऐसा कथन किये हैं ॥ १८ ॥

१७. ऋचा अघोर लोक निराधार ❀ कलातीत जानहु निराकार ॥ १९ ॥

श्लोक। वेद ऋचा ५:—सद्योजातं वामदेवाय चेति। तत्पुरुषायेतिचेशान मन्त्रः ॥
अघोरेभ्योऽथघोरेभ्य इति ब्रह्म। यजुःष्वीशानः पञ्चवक्त्रं पुरस्तात् ॥४१॥

दोहाः—अद्वैत वामदेव ऋचा, सत्पुरुष ईश्वर चार ॥ अघोर पाँचों ऋचा अहै, वेद मन्त्र आधार ॥४३॥

वेद ऋचा ५:—१ अद्वैत, २ वामदेव, ३ सत्पुरुष, ४ ईश्वर और ५ अघोर ऋचा कहा गया है ॥

श्लोकः—सत्यवैकुण्ठकैलाशमाश्रयो हि चतुर्थकः ॥ निराश्रयः पञ्चमश्च पञ्चलोकाः प्रतिष्ठिताः ॥४२॥

दोहाः—सत्यलोक वैकुण्ठ पुनि, लोक कहै कैलाश ॥ ज्वाला निराधार यही, पाँचोंलोक भवपाश ॥ ४४॥

लोक ५:— १ सत्य, २ वैकुण्ठ, ३ कैलाश, ४ ज्वाला और ५ निराधार लोक है। ये पाँच प्रतिष्ठित लोक हैं ॥

श्लोकः—ऊर्मी चैवापिधूर्मी च ज्योतिर्ज्वाला चतुष्कला ॥ कलातीताकलाः प्रोक्ताः पञ्च वै सुप्रतिष्ठिताः ॥४३॥

दोहाः—ऊर्मी धूर्मी ज्योतिकला, ईश्वर कलाको मान ॥ कलातीत निराकार है, पाँचकला प्रगटान ॥४५॥

कला ५:—१ उर्मी, २ धूर्मी, ३ ज्योति, ४ ईश्वर (ज्वाला) और ५ कलातीतको निराकार ही जानिये। ये सुप्रतिष्ठित पञ्च कला कहे हैं ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस कोशमें—

ऋचा = वेदके मन्त्ररूप ऋचाओंमें ऐसा वर्णन किया है कि—

अघोर = 'घोर' कहते हैं दुःखको, सो माया-जनित सब दुःखोंसे रहित 'अघोर' वह ब्रह्म परमात्मा सुखस्वरूप है।

लोक = उनका लोक निवास स्थान या स्थिति ब्रह्मलोक जो है, सो—

निराधार = माया के सब आधारसे रहित, निराधारमें माने हैं। और—

कलातीत = सब जगत्कलासे परे मायाके कला-विकारसे रहित, निर्विकार—

निराकार = सब प्रकारके आकारसे रहित ऐसे—

जानहु = ब्रह्मको माने हैं, सो जान लीजिये ॥ !

व्याख्या—विज्ञानमय कोशमें सब माया दुःखोंसे परे सुखस्वरूप वह ब्रह्मको 'अघोर' कहे हैं, ऐसा वेदके ऋचारूप मन्त्रोंमें वर्णन किया है, इसीसे सुखमय ब्रह्म बननेके लिये सब नियमोंको छोड़कर परमहंस अघोरी हो जाते हैं; और उस परमात्माका लोक निराधारमें माया आधारसे-रहित ठहराये हैं। तथा जगत्की सम्पूर्ण कलासे परे कलातीत होनेसे ब्रह्म परमात्माको निराकार, निर्गुण भी कहते हैं, ऐसा जानिये ! ॥ १६ ॥

१८. ब्रह्ममयी तहाँ भोग बखान ❀ पूर्ण बोधनी मुद्रा मान ॥ २० ॥

श्लोकः-स्थूलं सूक्ष्मं च आनन्द आनन्दाभास ईश्वर ॥ ब्रह्ममयंभोग विख्यातं पञ्चभोगाः प्रकीर्तिताः॥४४॥
दोहाः—स्थूल सूक्ष्म आनन्दमय, आनन्दाभासको भोग॥ ब्रह्ममय यही भाँतिसे, पाँच भोग संयोग॥४६॥
भोग ५ः—१ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ आनन्दमय, ४ आनन्दाभास (ईश्वरमय) और ५ ब्रह्ममय भोग कहा है॥
श्लोकः—परमुखी चोन्मीलिनी च शांभवी चात्मभाषिणी ॥ पूर्णबोध प्रबोधी च पञ्चगोप्याहि मुद्रिकाः॥४५॥
दोहाः—सन्मुखी उन्मीलनी, शांभवी आत्मभावनी ॥ पाँचोंमुद्रा गुप्त कही, अन्तिम सो पूर्णबोधनी॥४७॥

गुप्तमुद्रा ५ः—१ सन्मुखी, २ उन्मीलनी, ३ शांभवी, ४ आत्म-भावनी, ५ और पूर्णबोधनी मुद्रा तहाँपर गुप्तरूपसे माने हैं॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस कोशमें—

ब्रह्ममयी = केवल ब्रह्म ही स्वरूप आनन्द ही आनन्द ऐसे ब्रह्ममय—

भोग = महाआनन्दकी भोग-विलास—

तहाँ = समाधि ब्रह्म स्थितिमें अनुभव होता है या साक्षात् भोग होता है—

बखान = ऐसा ज्ञानीजन वर्णन किये हैं। सो भास अध्यासका ही बखान है।

पूर्णबोधनी = सबमें परिपूर्ण निज बोधरूप ब्रह्मको निश्चय करके—

मुद्रा = उसीमें मनको एकाग्र, एक लक्ष करके लगाना, सो गुप्त झीनी पूर्णबोधिनी मुद्रा है।

मान = ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं॥

व्याख्या— और तहाँपर विज्ञानमें ब्रह्ममयी ही भोग-विलास वर्णन किये हैं। फिर पूर्णबोधिनी मुद्रा ऐसा है कि, गुप्तरूपसे मैं सबमें परिपूर्ण व्यापक पूर्णबोधस्वरूप ब्रह्म हूँ, ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंने कल्पना करके माने हैं॥ २० ॥

१९. धनञ्जय झीनी वायु गनाय ❀ अन्तः निर्विकल्पता पाय ॥ २१ ॥

श्लोकः—नागकूर्मदेवदत्त कृकलं च धनंजय ॥ शरीरस्थस्थितंसूक्ष्म ब्रह्माण्डे पञ्च वायवः ॥४६॥
दोहाः—देवदत्त रु नाग औ, कूर्म कृकल धनञ्जय ॥ झीनी वायु ब्रह्माण्डको, पाँचों जानिये सञ्जय ॥४८॥

ब्रह्माण्डकी झीनी वायु ५ः—१ देवदत्त, २ नाग, ३ कूर्म, ४ कृकल और ५ धनञ्जय कहा गया है॥

श्लोकः—चितंमनसिहंकार अन्तःकरणमेव च ॥ बुद्धि मिन्द्रिय पञ्चैते सूक्ष्म देहे प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥
दोहाः-हंकार मन बुद्धि चित्त रु, अन्तःकरण सो पाँच ॥ घेरा सूक्ष्मदेहके, टिकि संस्कारहि साँच ॥४९॥

अन्तःकरण पञ्चक ५ः —१ अहंकार, २ मन, ३ बुद्धि, ४ चित्त और ५ अन्तःकरण कहा गया है॥

श्लोक । अन्तःकरण पञ्चक और उसके विषय— ५:— अहंतव्यं च मन्तव्यं बोधव्यं चितचिन्तनः ॥ निर्विकल्पं अभावं तु पंचैते विषयं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

दोहाः—अहंतव्य मन्तव्य करि, बोधव्य चिन्तन होय ॥ निर्विकल्प पाँचो विषय, पञ्चकके हैं सोय ॥५०॥

अन्तःकरण, पञ्चक विषय ५:--१ अहंतव्य, २ मन्तव्य, ३ बोधव्य, ४ चिन्तन, और ५ निर्विकल्प है ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस विज्ञानमय कोशमें—

धनञ्जय = विज्ञानको बल देनेवाला और मरण बाद देह फुलानेवाला, जो वायु है, उसे धनञ्जय नामसे कहते हैं ।

झीनी वायु = यह ब्रह्माण्डकलाकी सूक्ष्म या झीनी धनञ्जय वायु, इस कोशमें मानके—

गनाय = गुरुवा लोगोंने उसे पाँचवाँ भागमें ऐसे गिनाये हैं। अथवा आकाशतत्त्वके जगहमें यही धनञ्जय वायु समानरूपमें गिना जाता है।

अन्तः = अन्तःकरणमें सब चारों कला लय होके सुषुप्ति वा समाधि अवस्थामें—

निर्विकल्पता = शून्य निर्विकल्पदशा या स्थिति हो जानेपर जो भास होता है; सोई निर्विकल्प अन्तःकरणका विषय है ।

पाय = उसीको परमात्माकी प्राप्ति हो गई, ऐसा कल्पनासे माने हैं। उसका भेद उन्होंने कुछ जान नहीं पाये ।

व्याख्या— विज्ञानमय कोशमें ब्रह्माण्ड कलाकी सूक्ष्म या झीनीवायु धनञ्जय वायु माने हैं। इसे आकाशतत्त्वरूप समान वायुका अंश कहे है । यह विज्ञानमें और योगसाधनामें बल देती है, कहे हैं, और मृत्युके बादमें देहको फुलानेका काम भी करती है, कोई धनञ्जयको निरञ्जन परमात्मा भी माने हैं। इससे वेदका विज्ञानमार्ग प्रगटा—कहे हैं । इसीसे १० नाद योगीजन सुनते हैं ॥ और चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार इन चारोंके ही अन्तःकरणमें लय होके जब शून्यवृत्ति हो जाती है। तब उसको निर्विकल्प ब्रह्मानन्द स्थिति प्राप्ति माने हैं। परन्तु सो निर्विकल्प होना, तो अन्तःकरणका स्वाभाविक विषय है । ऐसा न जानके बिना पारख धोखामें ही पड़े हैं ॥ २१ ॥

२०. तहाँ अभाव भूमिका जान ❀ भावातीत भाव पहिचान ॥ २२ ॥

श्लोकः—छिप्रागतागतसौलेष्ट सुलीनं च अभावयः ॥ पञ्चदेहेस्थितं तेनस्याद्ज्ञेयं पञ्चभूमिका ॥ ४९ ॥

दोहाः—छिप्रा गतागत सौलेष्टता, सुलीन अभाव मिलाय ॥ पाँच भूमिका जीवकी, भवबन्धन ठहराय ॥५१॥

भूमिका ५:—१ छिप्रा, २ गतागत, ३ सौलेष्टता, ४ सुलीन और ५ अभाव भूमिका तहाँका पञ्च-देहोंके क्रमशः ये पञ्चभूमिका हैं, ऐसा जानिये ! ॥

श्लोकः—प्रध्वंसप्राग अन्योऽन्य अत्यन्तास चतुर्थिका ॥ भावातीताभाव कथ्यंते अभावा पञ्चकं स्मृतम् ॥'५०॥

दोहाः-प्रध्वंस प्राग अन्योन्यता, अत्यन्ताभाव है चार ॥ भावातीत अभाव इमि, पाँच अभाव विस्तार ॥'५२॥

अभाव ५:—१ प्रध्वंस, २ प्राग, ३ अन्योऽन्य, ४ अत्यन्त और ५ भावातीत भाव इसमें पहिचान-कर लीजिये। पाँच प्रकारके अभाव जो कहा है, सो इन्हें ही जान लीजिये ! ॥

दोहाः-यहि विधि पाँचों कोशके, पाँच-पाँच विस्तार ॥ यामें बावन सब अहै, का बहु लिखूँ विस्तार ॥'५३॥

पाँच कोश बन्धन कठिन, परखायो गुरुदेव ॥ रामस्वरूप पारख करी, बन्धन करिये छेव ॥५४॥

याद करन हित सन्तको, सुगम सरल पद लेख ॥ रामस्वरूपदास सोई, गुरु विचारयुत देख ॥'५५॥

पञ्च प्रपञ्चमें जीव पड़ि, पायो कष्ट अनेक ॥ रामस्वरूप गुरुशरण गहि, करु सत्सङ्ग विवेक ॥'५६॥

पारखी सद्गुरुकी दया, सकलो मर्म पिछान ॥ निज पदमें स्थिति कीजिये, तब होवै कल्यान ॥'५७॥

हंसरहनी हितकारि है, रहनि बिना नहीं काम ॥ याते शुभ रहनी सकल, धारिये आठोंयाम ॥'५८॥

पाँचों मार्गके जाल तजि, लीजिये गुरुमुख ज्ञान ॥ पारख बिन सिद्धान्त सब, जानिये घोर अज्ञान ॥'५९॥

साधु गुरु जो पारखी, करिये नित सत्सङ्ग ॥ रामस्वरूप तब होवई, भ्रम धोखा सब भङ्ग ॥६०॥

पञ्च कोश यहि ग्रन्थकी, भीतर जितने भाग ॥ दोहामें सब लिख दिया, रामस्वरूप इति लाग ॥६१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस विज्ञानमय कोशमें—

तहाँ = ब्रह्मके ठिकाने तहाँपर—

अभाव = अपना और समस्त जगत्का समेत् एकदम भाव मिटाकर बेभानरूप अभाव करके गाफिल हो जाते हैं, उसे ही ठिकावकी अभाव भूमिका कहे हैं।

भूमिका = आनन्दरूप वही भूमिकामें मस्त गाफिल पड़े रहना, उसे ब्रह्म स्थिति माने हैं।

जान = वहाँ जानना कुछ नहीं रहता है, बिलकुल जड़ता, मूढ़ता ही रहती है, ऐसा जानिये।

भावातीत = सर्व पदार्थोंका साक्षीरूप भावसे रहित अति अभाव, ऐसे दशाको भावातीत नामका भाव जोकि—

भाव = महान् अभावरूप ही भाव यहाँ माने हैं।

पहिचान = सो महा-मूढ़ता, महा-अज्ञानता ही है, ऐसा पहिचान लीजिये॥

व्याख्या—फिर सब जगत्का अपने समेत् अभाव शून्य हो जानेको अभाव भूमिका माने हैं, अर्थात् तुरियातीत अवस्था, महान शून्य, आनन्दरूप विज्ञानमार्गमें मुख्य भूमिका अभाव कहा है। तथा साक्षीभावसे भी रहित होनेको भावातीतभाव कहते हैं। सो बन्धनरूप पहिचान लीजिये॥२२॥

२१. है विज्ञान कोश वर्णन येह ❀ कहवे मात्रित कहिये देह॥ २३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस विज्ञानमय कोशमें—

विज्ञान कोश = विज्ञानमय नामका यह जो कोश है, सो विशेष ज्ञानरूप माना हुआ है, परन्तु वास्तवमें विशेष अज्ञानका ही आवरण या ढक्कन है, धोखाका वह कोश है।

वर्णन येह = यह वर्णन गुरुवा लोगोंकी मान्यता दिखानेके वास्ते ही निर्णय करके परखाकर जिज्ञासुओंके प्रति—

है = कहा गया है। सो यही विज्ञानमय कोशका मुख्य-मुख्य वर्णन है।

देह = यहाँ ब्रह्मका कैवल्य शुद्ध देह जो माने हैं, सो—

कहवे मात्रित = कहने, सुननेमात्रकी वाणीका विलास वाणी कल्पनामात्र है, वास्तविक वह कोई देह नहीं है, स्थूलका ही भास है।

कहिये = अब कहिये विचार मानो! इसको सत्य कैसे कहना? मिथ्या ही कहना चाहिये। क्योंकि, यह सब मानन्दीमात्र ही है। जीवोंको धोखामात्र भया है। अतः इसे परखके भ्रम त्यागना चाहिये॥

व्याख्या—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—गुरुवा लोगोंकी मानन्दी सिद्धान्त निर्णय करके दर्शानेके लिये ही हमने यह विज्ञानमय कोशका वर्णन किया है। यही सब विज्ञानमय कोशका अङ्ग, प्रत्यङ्गका वर्णन है। परन्तु इस विज्ञानमय कोशका ब्रह्मकी कैवल्य देह जो माने हैं, सो कहनेमात्रका मिथ्यावाणी कल्पनाका विस्तारमात्र है। वह कोई असली शरीर नहीं है, किन्तु तन, मनका भास-हीमात्र है। ऐसा पारख करके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा निर्णयसे सत्यासत्यको यथार्थ पहिचानकर भ्रम, भूलको हटाकर, गुरुवा लोगोंके कहे हुए अनुमान, कल्पनाओंको त्याग करना चाहिये। और पञ्चकोशके महाबन्धनोंसे छूटनेके लिये सतत प्रयत्न वा सत्पुरुषार्थ करना चाहिये। स्थूल और सूक्ष्म ये दोनों शरीर तो चार तत्त्वोंके परमाणु संयुक्त कार्यरूपमें बनके अध्यासी जीवके साथ लगे हैं, और कारण, महाकारण, कैवल्य देह ये तीनों अध्यास, भास और कल्पनारूपमें बनके जीवको फँसाते हैं। इसमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनदेह खानीजालका भाग है, और महाकारण, कैवल्य, ये दोनोंको सिर्फ वाणीजालका भाग ही जानिये। ये पाँचों देह भव-बन्धनका स्वरूप है। परखकर इन्हें त्यागना चाहिये॥२३॥

छन्दः— है नहिं कछु तहाँ नहिं सम्भव ❀ वर्णन वेद बखानहीं॥

[१०] निर्वचन परे परात्पर सो ❀ ब्रह्म कैवल्य मानहीं॥ [यह आधा छन्द है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस छन्दमें कहते हैं— ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि—

है नहिं = एक अद्वैत पूर्ण ब्रह्ममें जगत् द्वैत माया का विकार तीनकालमें है ही नहीं । "एको-ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" फिर—

कछु = कुछ भी जगत् पदार्थ आदिक द्वैतप्रपञ्च मायाजाल—

तहाँ = वहाँ ब्रह्ममेंसे कभी भी—

नहिं सम्भव = उत्पत्ति हो नहीं सकती है, यानी उत्पत्ति होना सम्भवता नहीं ।

वर्णन = ऐसा अद्वैत ब्रह्मसिद्धान्तका बहुत प्रकार-से वर्णन करके—

वेद = श्रुति, मन्त्र भाग या वेद-वेदान्त प्रमाणसे विस्तार करके वेदज्ञ—

बखानहीं = वेदान्ती गुरुवा लोग नाना तरहसे बयान या बखान करते हैं, और वह ब्रह्म—

निर्वचन = अनिर्वाच्य, मन, बुद्धि, वाणीसे भी वह—

परे = अत्यन्त परे है, तथा —

परात्पर = परावाचा तुरिया साक्षी पदसे भी परे, ऐसा परात्पर माना है ।

सो = सोईको कल्पना करके परमतत्त्व परमात्मा—

ब्रह्म कैवल्य = केवल शुद्ध, बुद्ध, परब्रह्म—

मान हीं = मानते हैं या माने हैं ।

अर्थात् जहाँ कुछ नहीं है, तहाँ शून्यमें सत्य वस्तु होना भी सम्भव नहीं । किन्तु वेद-वादी उसी धोखाको ही सत्य बखान करते हैं । वाणीसे परे परात्पर कहके सो उसीको कैवल्य ब्रह्म मानते हैं वा मान रहे हैं ॥

व्याख्या—वेदान्तीलोग कहते हैं कि—ब्रह्म एक ही सत्य है, जगत् मिथ्या है । इसीसे तो तीन कालमें द्वैत जगत् है ही नहीं । सिर्फ अद्वैत ब्रह्म ही ज्यों-का-त्यों है, इस कारण मायिक जगत् पदार्थादि कुछ भी ब्रह्मसे उत्पत्ति होना सम्भवता नहीं । ब्रह्मसे उत्पत्ति, प्रलय होना ही असम्भव है । ऐसा वेद प्रमाणसे वर्णन किये हैं या करते हैं । और मन, बुद्धि, वाणीसे परे अनिर्वाच्य परात्पर सोई लक्षणवालाको कैवल्य ब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, निराकार माने हैं ॥ यह आधा छन्दका भावार्थ है ॥

छन्दः— जहाँ नहिं कछु सब भये कहाँसे ❀ कहहु सत्य विचारिकै ॥
झाँईं सम्भव प्रथम गाँसी ❀ वेदाकार देखु निहारिकै ॥ २४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस छन्दमें कहते हैं— (अब यहाँपर ग्रन्थकर्ता अपने तरफसे निर्णय करके कहते हैं कि—) हे सन्तो !

जहाँ नहिं कछु = जहाँ अद्वैत एक ब्रह्ममें द्वैत विकार जगत् माया, कायाका कुछ भी लेश-मात्र भी तीनकालमें है ही नहीं, ऐसा जो कहते हो, तो सुनो !—

सब = फिर यह सब त्रिगुण माया, काया, जड़, चैतन्यादि जगत्का पसारा—

भये कहाँसे = कहाँसे उत्पन्न होके निकल आये ? या कहाँसे कैसे उत्पन्न होते भये ?

सत्य = सो सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यका ही समर्थन करके, और—

विचारिकै = विचार करके निर्णयमें ठहरे, ऐसे सत्य-विचारकी वाणी, अब—

कहहु = हे ब्रह्मज्ञानी ! आप कहिये ! समझाइये ! अरे भाई ! क्या भूलमें पड़े हो, सुनो !

प्रथम = यह प्रथम मनुष्यखानीमें नरजीवोंको सर्वप्रथम महाभूल खड़ी हुई कि, कोई जगत् कर्त्ता ब्रह्म परमात्मा होगा ।

झाँईं = ऐसे ब्रह्म मानन्दीकी गाफिलीमें पड़े, और—

गाँसी = सोई झाँईंकी गाँठी बाँधके या अनुमान-में गँसके, जुटके या मिलके—

वेदाकार = वेदवाणीके अक्षरका आकार ग्रन्थ, पन्थ या जगत् ही ब्रह्मरूपमें एकाकारकी कल्पना, मानन्दीको ज्ञानाकार, ऐसे—

सम्भव = नरजीवोंने कथन उत्पन्न किये, बनाये । अतएव चारखानीमें बारम्बार जन्मते, मरते, दुःख भोगते ही रहते हैं । इससे हे मुमुक्षुजनो !

निहारिकै = पारखदृष्टिसे अच्छी तरह गौर करके निहारिके—

देखु = देख लीजिये या परीक्षाकर लीजिये कि, वह ब्रह्म ही प्रथम जगत् उत्पत्तिका मूल कारण है । अतः उस धोखाको परखकर छोड़ दीजिये ॥

व्याख्या— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— इन वेदान्तियोंके कथनसे जहाँ ब्रह्ममें कुछ भी विकार नहीं, और जगत् पदार्थ कुछ भी उससे उत्पन्न हो नहीं सकता है, जब ऐसा कहते हो या ऐसा निश्चय करते हो, तो यह जगत् जड़, चैतन्यका विस्तार, नाना प्रपञ्च कहाँसे पैदा भये ? या कहाँसे टपक पड़े ? ब्रह्मके बीचमें आके कहाँसे घुस पड़े ? इसका सत्यविचार करके, सत्य और असत्यका निर्णय विचारमें जो ठहरे, ऐसा सोचके अब कहिये ? हे सन्तो ! ये भ्रमिक गुरुवा लोग इसका यथार्थ उत्तर तो क्या कहेंगे ? कुछ भी नहीं कहेंगे । पारखी सद्गुरुका निर्णय मैं ही यहाँ कह देता हूँ । हे जिज्ञासु नरजीवो ! जड़, चैतन्यरूप जगत् यह स्वतः अनादिका है । अतएव प्रथम मनुष्य खानीमेंके नरजीवोंको ही निज-स्वरूपकी भूल हो गई । सोई गाफिलीमें पड़के एक ब्रह्मकी मानन्दीरूप झाँई दृढ़ हुई; उसी कल्पनाको गाँठीमें बाँधके वाणी वेदकी उत्पत्ति किये, तो ग्रन्थ, पन्थ, वेद, वेदान्तादि नाना तरहसे बनाये, तब जगत्को भी अभेद करके, अद्वैत ब्रह्माकारमें ठहराये । अतएव जड़ाध्यासी हो-होके आवागमनमें नाना दुःख भोगते हुए पड़े हैं । ऐसे त्रयखानीमें देह उत्पन्न होनेका बीज अध्यास ही है । सो हे मुमुक्षु नरजीवो ! पारखी सद्गुरुदेवकी शरण, सत्सङ्गद्वारा पारखदृष्टिको खोलकर अच्छी तरह विवेकसे निहारके देखिये ! ज्ञानाकार, हे जीव ! तुम वेदाकार ब्रह्मको निर्णयकर विवेकदृष्टिसे देखो ! वह सिर्फ भ्रममात्र है । सो उसका कसर खोट पारखसे आपको भी देखनेमें आ जावेगा । अतः मिथ्या मानन्दी पक्षको छोड़कर सारग्राही बन करके, निज कल्याण मार्गको ही ग्रहणकर लीजिये ॥ यह भावार्थ है ॥ २४ ॥

दोहाः— पञ्चकोश मत प्रगट यह ❀ वेद कहै सत सोय ॥
[८] परख दृष्टि बल तेहि सो ❀ गुरू कृपा जब होय ॥ २५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

पञ्चकोश = पञ्चतत्त्वरूप पञ्चकोशोंकी पञ्चदेह; पञ्चमार्गादि उपरोक्त सब पाँच-पञ्चके आवरणका ढक्कन जीवोंको पड़ा है ।

मत = पाँच प्रकारके वही पञ्चकोशोंके सिद्धान्तके नाना मत, पन्थ, समझ, बुद्धि, पक्ष इत्यादि-

यह = यह ही विस्ताररूपसे—

प्रगट = जगत् या संसारमें मनुष्योंद्वारा ही प्रगट हुआ है, सो सबको प्रत्यक्ष ही जाहिर है । और—

वेद = वेद या वेदवादीजन भी उसीको—

सत = व्यापकरूपसे तीनकालमें नित्य, सत्य परमात्मा है, तो उसको प्राप्त करानेवाला पाँचों मार्ग भी सत्य हैं ।—

कहै = ऐसा कहते हैं या वर्णन करते हैं ।

सोय = उसी कल्पनाको धारणकर-कराके नर-जीव सब गाफिलीमें सो रहे हैं । विकट खानी-वाणी जालमें अरुझे पड़े हैं—

जब = जबकी कोई बिरले जिज्ञासु भाग्यवान् नरजीवोंको जब या जिस समयमें—

गुरु = पारख प्रकाशी साधु सद्गुरु मिलेंगे और सद्गुरुकी—

कृपा = पूरी कृपादृष्टि या दयाभाव प्राप्त होगा, तब ही उस मनुष्यको—

पारख दृष्टि = यथार्थ निर्मल गुरु पारखकी दिव्यदृष्टि हृदयमें खुलेगी, तथा सार, असार झूठ, साँचको ठीकसे देख सकेगा, तब तो—

बल = गुरुकी महान् ज्ञानशक्ति पारखबोध-की बलसे—

तेहि सो = गुरुवा लोगोंके समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थरूप पञ्चकोशोंके जाल ब्रह्म और विष-योंका फन्दा उसी पारखदृष्टिकी बलसे छिन्न-भिन्न होके छूट जायगा । फिर वह नरजीव अभी मनुष्य देहमें ही स्वयं—

होय = निर्बन्ध जीवन्मुक्त हो जायगा, उसीका कर्तव्य सफल वा पूरा होगा । ऐसे ही मुमुक्षु-को पुरुषार्थी होना चाहिये ॥

व्याख्या— पञ्चकोश, सोई पञ्चतत्त्वका पाँच प्रकारसे जीवोंको आवरण पड़ा है, तो अन्नमय,

प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमयका यहाँ तक जितना विस्तार वर्णनकर आये हैं। वह सब मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त अनेकोंरूपसे संसारमें प्रत्यक्ष प्रगट हैं। यह खानी, वाणी जाल जीवोंको सब प्रकारसे बन्धन है। परन्तु गुरुवा लोग वेदादि प्रमाणसे ऐसा बताते हैं कि— व्यापकरूपसे एक ब्रह्म-परमात्मा ही सत्य है। सो ब्रह्म, ईश्वर प्राप्ति करानेवाले वेद, शास्त्रादिके सब मार्ग भी सत्य हैं। ऐसा-ऐसा कहके, अपने भी भूले हैं और दूसरोंको भी भुला रहे हैं। जब कोई जिज्ञासु मनुष्योंको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके निर्णय अपरोक्ष पारखबोध प्राप्त, पारखनिष्ठ साधु सद्गुरु बड़े भाग्यसे मिलेंगे, जब उनके शरण ग्रहण करके, वे मनुष्य सारासारका विचार करेंगे। तब उन सद्गुरुकी कृपादृष्टि उपदेशके प्रतापसे पूर्णबोध पारखदृष्टि खुलेगी, ज्ञानका प्रकाश उदय होगा, तो पारखी सद्गुरुके गुरुबलके आधारसे उस जिज्ञासुकी वह समस्त जाल खानी-वाणीका बन्धन सर्वथा छूटकर जीवन्मुक्त हो जावेगा। अतएव हे नरजीवो ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सत्यबोधको हासिल करिये, और बन्धनोंको परख-कर छोड़ दीजिये। अर्थात् सारांश यही है कि— संसारमें विस्तारसे यही पञ्च कोशका मत सब ठिकाने प्रगट है। वेद और वेदवादी भी, सो उसीको सत्य कहते हैं। परन्तु वह मिथ्याजाल जीवोंको बन्धन है, और जब पारखी सद्गुरुकी कृपासे पारखदृष्टिकी गुरुबल प्राप्त होगी, तब उस पञ्चकोशके बन्धनसे नरजीव छूटकर मुक्त हो जावेंगे ॥ यह भावार्थ है ॥ २५ ॥

दोहाः—झाँईं मूल विकार है ❀ जाते भये अनेक ॥

[६] गुरुगम परख प्रकाश लहु ❀ करहु विचार विवेक ॥ २६ ॥

अर्थः-श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—हे सन्तो !

झाँईं = मनुष्य देहकी गाफिलीसे जीवोंको जो ब्रह्मकी मानन्दी दृढ़ हुई, वही ब्रह्मरूप भ्रमकी झाँईं है, वही—

मूल = आवागमनमें पड़नेका मुख्य हेतुरूप मूल जड़-

विकार है = अहंकारका अध्यास करके, होने-वाला विकारकी खानी ही है।

जाते = जिससे अद्वैत अधिष्ठान ब्रह्म या उस विकार करके ही—

अनेक = चारखानी, चौरासी योनिरूप जगत् जालका विस्तार अनेकों रूपमें—

भये = पैदा होते भये या फैल गये (अतः उसकी मानन्दीसे जीवोंका हित कभी होनेका नहीं) इससे—

गुरुगम = पारखी सद्गुरुका यथार्थ पारखबोध-का गम, ज्ञानद्वारा भेद जानके—

परख प्रकाश = सत्यासत्यकी परीक्षा करके, सत्य पारखका प्रकाश हृदयमें—

लहु = प्राप्त करलो, तब स्वरूपकी स्थिति हासिल-कर सकोगे। अतएव—

विवेक = जड़, चेतन, सत्य, असत्य, नित्य, अनित्य, सार, असार आदिका न्यारा-न्यारा विवेक करके गुण-दोषोंको पहिचानकर, दोषोंको छोड़ दो, और—

विचार = सत्यसार चैतन्य निजस्वरूपका पारख-विचार करके शान्त होओ, और सद्विचार ही सदा सर्वदा—

करहु = करते रहो, इस प्रकार वाणी कल्पना आदिको छोड़कर, निज कल्याण करो। सदा विवेक, विचार करते रहो ॥

व्याख्या— झाँईंरूप ब्रह्मकी मानन्दी नरदेहका भास गाफिली, यही मूल आदि कारणका विकार, अहंकार, अध्यास ही जगत् जाल चारखानी, नानायोनि विस्तार होनेका मुख्य कारण है। ब्रह्मसे जगत् और जगत्से ब्रह्म होके, जिससे जड़ाध्यासी जीव नरदेह छोड़कर पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें जाके अनेक देहें धारण करके पैदा भये वहाँ दुःख भोगी भये और हो रहे हैं। अब उसी ब्रह्म झाँईंकी बड़ाई करके प्राप्त करना-कराना चाहते हैं, यह कितना अविवेक है। अतएव हे मुमुक्षु नरजीवो ! यदि तुम्हें आवागमनसे छूटके मुक्त होनेकी चाहना है, तो पारखी साधु सद्गुरुके शरणागत होके, गुरुगम पारख-बोध हासिल करके सब भेदको जानकर हृदयको पारखसे प्रकाशित करो, और साँच, झूठका यथार्थ

रीतिसे गुरुका विचार द्वारा विवेक करो। और असत्यरूप ब्रह्म, ईश्वर आदि भ्रम, धोखाको छोड़कर, निजस्वरूपकी स्थितिमें कायम होओ, यही मुख्य कर्तव्य है। यानी झाँईं ही मूल विकार है, जिससे एकसे अनेक भये और होते रहते हैं। अतः विवेक, विचार करके गुरुगमसे पारख प्रकाशको प्राप्त करो, यही मुख्य कर्तव्य है॥ २६॥

दोहाः— काल सन्धि औ झाँईं * तीनिउ पञ्च समान॥
[१०] पाँच कोश परपञ्च रचि * भोरे सकल जहान॥ २७॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे जिज्ञासुओ!
काल = अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ये तीनोंकोशके भोक्ता, त्वंपद, जीव अज्ञानी बने हैं। इसीसे कालकी कल्पनामें पड़े हैं।
सन्धि = ज्ञानमय कोशके भोक्ता तत्पद ईश्वर, ज्ञानके मानन्दी किये हैं। वह सन्धिमें पड़े हैं।
औ = और बाकी तीसरा—
झाँईं = विज्ञानमयकोशका भोक्ता, असिपद ब्रह्म विज्ञान माने हैं, सो झाँईंमें पड़े हैं।
तीनिउ = काल, सन्धि, झाँईं और अज्ञान, ज्ञान, तथा विज्ञान ये तीनों ही—
पञ्च = पञ्चकोशोंके अन्तर्गत—
समान = समाये हुये हैं या उसीके समान ही ये तत्त्वमसि भी हैं। (यानी भ्रम बन्धन-रूप ही हैं)।
पाँच कोश = अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय ऐसे पाँच तरहके आवरण, पर्दारूप जीवोंको ढकन पड़ा है।
परपञ्च = पाँच काण्डोंके नाना वाणी जालोंके पाखण्ड प्रपञ्च और विषयादि प्रपञ्च—
रचि = ग्रन्थ, पन्थादि खूब रचना करके या बनाय-बनायके वञ्चक गुरुवा लोगोंने तथानारियोंने—
सकल जहान = समस्त जगत्के सम्पूर्ण नर-जीवोंको—
भोरे = स्वर्ग सुख, चार फल, चार मुक्ति आदिकी लालच दे-दे करके और विषयभोगका चाट लगाके, भ्रम, धोखामें भुलाय दिये हैं, या भ्रमाय दिये हैं, (इसीसे यह भ्रम छूटना कठिन हो रहा है) बिना पारख॥

व्याख्या— इसमें त्वंपद जीव अज्ञान, सोई काल है, जो नाना कल्पनामें पड़े हैं। तथा तत्पद ईश्वर ज्ञान, सोई सन्धि, ईश्वरादिकी मानन्दी है, जो नाना भ्रममें जुटे हैं, और असिपद ब्रह्म विज्ञान, सोई झाँईं है, जो गाफिलीमें पड़े हैं। ये तीनों पञ्च कोशोंके अन्तर्गत हैं और उसीके समान ही जीवोंको महान बन्धनरूप हैं। परन्तु भ्रमिक गुरुवा लोगोंने पञ्च कोशमेंसे पाँच काण्डोंकी वाणी जालोंका प्रपञ्च रचना करके संसारके सर्व अबोध नर-जीवोंको अनेक तरहोंके लालच लगाय-लगायके, मिथ्या धोखामें फँसायके भ्रमाय दिये हैं, यानी भुलाय दिये और भुला रहे हैं। अतः पारखी सद्गुरुके सत्य-बोध बिना यह भ्रम-धोखासे कोई बच पाये नहीं, और बच सकते नहीं॥ यह भावार्थ है॥ २७॥

दोहाः— तत्त्वमसि अरु सोहं * वोहं ब्रह्म स्वरूप॥
[११] काल सन्धि अरु झाँईं * येही विविधि स्वरूप॥ २८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवा लोगोंने वाणी कल्पनासे—
तत्त्वमसि = यह सामवेदका महावाक्य है. उसके सिद्धान्त ऐसा है कि "वह ब्रह्म तू ही है" ऐसा कहके यही रटना करने लगे की "तत्त्वमसि-तत्त्वमसि"।
अरु = और किसीने ऐसा माना कि,—
सोहं = सो कोई ब्रह्म जो है, सो मैं ही हूँ! 'सोहं-सोहं' ऐसा मानके श्वासमें लक्ष लगाके उसी सोहं-सोहंकी जाप करने लगे। तथा कोईने—
वोहं = वह जगत्में व्यापक ब्रह्म जो, है सो मैं ही हूँ! 'वोहं-वोहं' जपने लगे। ऐसा मन मानन्दीसे निश्चय किये; अथवा ॐकार ब्रह्म वह मैं ही हूँ, कहने लगे।
ब्रह्म स्वरूप = इस तरह तीनों प्रकारसे एक ब्रह्मस्वरूप ही अपनेको दृढ़कर लिये या

मान लिये हैं। और तत्त्वमसि, सोहं, वोहं, यह तीनोंका मतलब एक ही ब्रह्मस्वरूप ठहरानेका हुआ।

काल = उसमें वोहं सोई काल कल्पना है। अथवा गुरुवा लोगोंके जाल कर्म, उपासना, योगमें कोई अज्ञानी जीव अरुझे हैं।

सन्धि = कोई ईश्वर मानन्दीके ज्ञानमें भूले हैं। सोहं यहाँ सन्धि वा मिलाप है—

अरु = और तीसरे कोई—

झाँई = तत्त्वमसि झाँईके गाफिलीमें पड़े हैं। अथवा ब्रह्म मानन्दीके विज्ञान धोखामें भ्रमिक हो गये हैं—

येही = यही उपरोक्त वाणी कल्पनाको ही दृढ़ कर-कराके गुरुवा लोगोंने—

विविधि = नाना प्रकारके सिद्धान्त, मत, पन्थ, ग्रन्थादि विस्तार बढ़ाकर यही नाना तरहके स्वरूप बनाये हैं।

स्वरूप = निज स्वरूपको भूल करके उसी मानन्दी कल्पनाको ही अपना स्वरूप मानके भूले वा भूल रहे हैं। (विना पारख धोखा छूटती नहीं)॥

व्याख्या— सत्यपारखका बोध न होनेसे गुरुवा लोगोंने वेदादि वाणी बनायके मति अनुसार नाना सिद्धान्त कायम किये हैं। वही योगी, ज्ञानी, भक्तोंने संसारमें दृढ़ किये हैं, और दूसरोंको भी दृढ़ा रहे हैं। उसमें सामवेदके प्रमाणसे ज्ञानियोंने "तत्त्वमसि" महावाक्य कहा। उसका अर्थ यह है कि, वह ब्रह्म तू ही है, कहा है। फिर किसी योगीने सोऽहं—'सो ब्रह्म मैं ही हूँ' माना है। किन्हीं ब्रह्मचारियोंने वोऽहं—'वह पूर्ण ब्रह्म मैं ही हूँ'! ऐसा माने हैं। अथवा सोऽहं, वोऽहंका कोई श्वासमें लक्ष लगायके जाप भी करने लगे, उसे अजपा जाप, विना जपे आप-ही-आप होनेवाला माने हैं। इस प्रकारसे एक ब्रह्मका स्वरूप तीन तरहसे निश्चय किये हैं। परन्तु वह तो काल, सन्धि, झाँईका विकट बन्धन ही खड़ा होके दृढ़ हुआ है। उसमें कर्म, उपासना, योग यह और वोहं वह कालका जाल है। ज्ञान और सोहं सोई सन्धि या मानन्दीका जाल है। और विज्ञान, धोखा, गाफिली और तत्त्वमसि सोई झाँईका पर्दा है। यही विविध प्रकारके स्वरूपमें उलटाय-पलटायके नाना मिथ्या सिद्धान्तके स्वरूप बने हैं और बनते जाते हैं। विना विचार नर-जीव सब उसीमें ही भूल रहे हैं। उसे यथार्थ परखके जानना चाहिये॥ यह भावार्थ है॥ २८॥

दोहाः— आदि सोई सोइ मध्य है ❀ अन्त सोई परमान॥

[१२] त्रिविधि घात यम जाल है ❀ किये जीव हैरान॥ २९॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

आदि सोई = प्रथम ज्ञानीको निज स्वरूपकी भूलसे एक ब्रह्म मानन्दी खड़ी हुई, तहाँ सोहं कहा। अथवा अज्ञानीको स्त्री, पुत्र, धनादिकी चाहना उत्पन्न हुई, फिर सोई दृढ़ करके बढ़े—

सोइ मध्य है = वही माना हुआ ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते मध्यमें साधनायें करने लगे, तो तहाँ वोहं कहा। और उधर नाना उद्योग धन्धादि करने लगे, तो कर्म, उपासना, ज्ञानादि बीचमें निकाले हैं—

अन्त सोई = आखिरमें वही 'तत् त्वं असि' और विषय भोगोंके अध्यास पक्का कर लिये, तो देह अन्त होनेके बादमें चौरासी योनियोंमें चले गये—

परमान = आदि, मध्य, अन्तमें एक ही बात प्रमाण किये हैं, अथवा कर्म नियमका प्रमाण ऐसा है कि, जीवनमें जो जितना प्रमाणसे अध्यास दृढ़ किया है, उसीसे चारखानीमें जीव जाते हैं।

त्रिविधि = वही आदि मध्य, अन्तके अथवा स्त्री, पुत्रादि वा धनमें भूलके और कर्म, उपासना, ज्ञानमें, उद्योगमें, तत् त्वं असि आदि त्रिगुणरूप मायाका जाल फाँस फैलायके ऐसे तीनों तरहसे—

घात = जीवोंका घात करनेको घातक बने हुए—

यम = गुरुवा लोग और स्त्रियोंको यम जानिये।

जाल है = खानी-वाणी यह उन्हींके दो बड़े भारी

जाल हैं।

जीव = उसीमें अबोध नरजीवोंको फँसा-फँसा करके, घात किये और कर रहे हैं।

हैरान = इस प्रकारसे वे दुष्ट यम जीतेतंक नाना प्रपञ्च, फन्द, फरफन्दमें भटकायके व्याकुल किये। और मरनेपर भी नाना योनियोंमें कर्म भोगनेमें हैरान, दुःखित बनाये। क्योंकि, अध्यासी जीवोंको कभी सुख नहीं होता है।

किये = ऐसे गुरुवा लोग और स्त्रियोंने ऐसे-ऐसे नाना तरहसे जीवोंको बेहाल किये वा कर दिये या कर रहे हैं। जिससे कोई भी नर-जीव किसी प्रकारसे भी पारख न होनेसे उस महाजालसे छूट नहीं सक रहे हैं॥

व्याख्या—चारखानियोंमें आदि = प्रथम ऐसे नरदेहमें जीव प्रथम जड़ाध्यासी होके भूला, तो फिर आदि कहिये पहले जो भूल खड़ी हुई थी, सोई एक ब्रह्म माना। फिर ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते मध्यमें नाना साधनायें साधने लगे। और अन्तमें ब्रह्म बोध लेके, जगत्में ही व्यापक होके, फिर-फिराकर आवागमन चौरासी योनियोंमें ही पड़े और पड़ रहे हैं। अथवा आदिमें पुरुषोंके मनमें विषय-भोग करनेकी इच्छा खड़ी हुई, इससे प्रयत्न करके स्त्री लाये। तब मध्यमें स्त्री-भोगसे पुत्रादि सन्तान पैदा हुए। और अन्तमें उनका पालन-पोषणके वास्ते धन कमानेमें लगे, उसी व्यवहारमें आयु बिताके मरकर, फिर पशु आदि खानियोंमें हैरान होते हुए चले गये। अथवा आदिमें जीव अबोध अज्ञानी अल्पज्ञ बना, मध्यमें ज्ञान साधना करके ज्ञानी सर्वज्ञ ईश्वर बना और अन्तमें जीव-ईश्वरकी एकता करके विज्ञानी अधिष्ठान एक ब्रह्म बने। इससे जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंमें जायके समाये। अथवा आदिमें सोहं कहा, मध्यमें वोहं कहा और अन्तमें एक तत्त्वमसि ठहराया। इस प्रकार आदिमें जो खानी, वाणीकी बन्धन थी, सोई मध्यमें और मजबूत होके दृढ़ हुई। पश्चात् अन्तमें देह छोड़के उसी अध्यासवश जीव सब नाना दुःख भोगा करते हैं। संसारमें जितने भी त्रिगुण मायाके त्रिपुटीका जाल है, सो सब घातक यमरूप गुरुवा और स्त्रियोंकी बझानेका जाल या फाँसी है। इन्होंने नरजीवोंको उसीमें नाना तरहसे फँसा-फँसाके हैरान किये और कर रहे हैं। बिना पारखी सद्गुरुकी दयासे इस जालसे छुट-कारा नहीं पाया जा सकता, अतः सद्गुरुके शरण सत्सङ्गमें ही लगे रहना चाहिये॥ यह भावार्थ है॥२९॥

दोहाः— जीव दुःखी चाहै छुटन ❀ बहु विधि करै उपाय॥
[१३] रक्षक जानि शरण गहै ❀ भोंदू तेहि भरमाय॥ ३०॥

अर्थः—श्रीरामसाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

जीव = संसारके समस्त नरजीवादि—

दुःखी = जड़ाध्यासवश त्रयतापोंमें महान दुःखी बेहाल होके—

छुटन = उस दुःखरूप ज्वाला जन्म, मरणादि-कोंसे छुटकारा पाके—

चाहै = सदाके लिये मुक्त होना या सुखको पाना, सुखी होना चाहते हैं। इसीवास्ते—

बहु विधि = बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक संसारमें सब कोई प्राणी—

उपाय = नाना तरहका उद्योग, साधनायें, पुरुषार्थ, मेहनत इत्यादि—

करै = सुख प्राप्तिके वास्ते करते-कराते रहते हैं।

रक्षक = इसीसे भ्रमिक होके स्त्रियोंको और गुरुवा लोगोंको, तथा ईश्वर, ब्रह्म आदि जिन जिनको रक्षा करनेवाले या दुःखसे बचाने-वाले, ऐसा—

जानि = जान करके या समझके उनकी—

शरण गहै = शरणको ग्रहण करते हैं या आश्रय वा आधार पकड़ते हैं। परन्तु—

भोंदू = अज्ञानी बिना पारख भोंदू गुरुवा लोग कुछ उनका भी हित नहीं करते, उल्टा वे अपना जाल फैलाके उन्हें, भ्रमा भुलाकर—

तेहि = वही अबुद्ध नरजीवोंको तेही धोखामें डालके, नाना तरहकी कुबुद्धि कल्पनामें लगा-लगाके सर्वदा मनुष्योंको—

भरमाय = भुला-भुलाके भ्रमाय रहे हैं और उनके ज्ञान, बुद्धि, बलको नष्टकर रहे हैं॥

व्याख्या—अनादिकालके जगत्में जड़ाध्यासी चारों खानीके जीव सब नाना तरहके कर्म भोगनेमें अत्यन्त दुःखी व्याकुल हो रहे हैं। इस कारण त्रयतापादि दुःख निवृत्ति करनेके लिये या आवागमनोंसे छूटके मुक्ति पानेकी बड़ी चाहना करके, बहुत प्रकारके उपाय साधनायें किये और करने लगे हैं। और जिन-जिन्होंको रक्षक, प्रतिपालक, सुख देनेवाले जानके या समझके उन्होंकी शरणागत हुए या चरण शरणको पकड़के आधार माने हैं। वे गुरुवालोग तो पारखहीन, भ्रमिक, भोंदू भक्षक हैं। और स्त्रियाँ डाँकिनी बनी हैं, अतएव भोंदू लोगोंने जीवोंको और भी भ्रमाके जालमें फँसा लिये, तहाँ कष्टको और भी चौगुना कर दिये। विना विवेक जगत्में जीवोंकी ऐसी दुर्दशा हुई और हो रही है॥ यह भावार्थ है॥ ३०॥

दोहाः—नाना मति निज कल्पि करि ❀ फन्दा रचै बनाय॥

[१४] सेवक ताहि बनायके ❀ स्वामी आप कहाय॥ ३१॥

अर्थः - श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—इन भ्रमिक गुरुवा लोगोंने—

नाना = अनेक प्रकारकी संसारमें नाना तरहसे—

मति = मत, पन्थ, ग्रन्थादि अपने-अपने भ्रमिक बुद्धिके अनुसार निश्चय करके—

निज = निज स्वरूपको भूलकर अपने मनमानन्दी-को ही दृढ़कर—

कल्पि करि = मनसे नाना कल्पनायें करके अथवा सङ्कल्प-विकल्पसे—

फन्दा = वाणी और खानीके फन्दारूपी जाल फाँसको बढ़ाकर—

रचै = बड़ी कौशलसे अरुझानेके वास्ते खूब रचना करके—

बनाय = बनाके फैला रखे हैं, और नित्य नया जाल बना ही रहे हैं।

ताहि = फिर उन्हीं अज्ञानी नरजीवोंको वही वाणी कल्पनादि दृढ़ा-दृढ़ाके लालच दे के फँसा लेते हैं। तब—

सेवक = उनको शिष्य, दास, गुलाम या सेवक ऐसे भक्तोंको, प्रेमियोंको अपने—

बनायके = अधीन स्ववश बनाय करके अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। इस प्रकार शिष्य, सेवक बनायके फिर—

आप = ठग गुरुवा लोग अपने प्रभुत्व फैलायकर आप बड़े राजावत्—

स्वामी = मालिक, महाराजजी, गुरुजी या स्वामीजी इत्यादि नामोंसे—

कहाय = महानुभाव बड़े कहलाते हैं। यानी अपने-आप स्वामी कहलाते हैं। (परन्तु इनके अन्दरमें नीच-भाव ही भरा रहता है, तो किसीका भला वे क्या करेंगे?)॥

व्याख्या—षड् दर्शनोंके गुरुवा-पण्डित लोगोंने अपनी-अपनी समझ या बुद्धिके अनुसार कल्पना कर-करके मत, पन्थ, ग्रन्थ, वाणी, खानीके फन्दा या जाल तो नाना प्रकारसे रचना करके बनाये हैं और उसको संसारमें फैलाके अपने स्वार्थ भोग ही सिद्ध करने लगे हैं। तो अज्ञानी अबोध नरजीवोंको वही वाणी दृढ़ा-दृढ़ाके उनको शिष्य, सेवक या दास बनायके सेवा, धन्धाके काम उन्होंको सौंप दिये हैं। आप ढोंगीजी बड़े ढोंग या आडम्बर फैलाके स्वामीजी वा स्वाङीजी मालिक बने और तहाँ खूब महिमा कराके सिद्ध आदि कहलाते हैं। परन्तु यह सब तो गुरुवा लोगोंके दलालीके जाल, जञ्जाल ही है। उनसे जीवोंका कुछ हित नहीं होता है। ऐसा जानके जिज्ञासुओंने, उनके कुसङ्ग छोड़ देना चाहिये॥ यह भावार्थ है॥ ३१॥

दोहाः— बिन गुरु पारखके लहै ❀ काल जाल न लखाय॥

[१५] बिना लखे यह जालके ❀ सकलों सेवहिं आय॥ ३२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

गुरु=पारखी साधु गुरु द्वारा श्रीसद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके महानपद तम विनाशक पारख-का प्रकाश—

पारखके= सत्य निर्णय यथार्थ पारखबोध गुरुपदको जान, बूझ, समझके स्वरूप स्थितिको—

लहै=प्राप्त किये बिना या बोध हासिल करनेमें तत्पर—

बिन=हुये बिना, कोई मनुष्योंको—

काल=गुरुवा लोग और स्त्रियोंका काला, मैला-कुचैला—

जाल=कल्पित वाणीजाल और विषय खानी-जाल, सब प्रकारसे बन्धनरूप है, ऐसा—

न लखाय=किसीको भी लखनेमें नहीं आता है या यह जाननेमें नहीं आ सकता है। बिना पारख भेद नहीं लखाता है; और—

यह=यह बन्धनदाई कालरूप वे स्त्री और गुरुवा लोगोंके—

जालके=खानी-वाणी जालोंके विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिको—

बिना लखे=महान बन्धनका फन्दा है, ऐसा यथार्थ जानके, लखे बिना, समझे-बूझे बिना ही

सकलों=समस्त मनुष्य लोग सब प्रकारसे—

आय=उन्हीं वञ्चकोंके घेरा, मण्डल या समाज-में आय-आय करके फँसते हैं। फिर वैसे ही हो जाते हैं।

सेवहिं=उसी जहररूप मत, पन्थ, विषयोंको ही ग्रहण करके नित्य सेवन करते हैं या सेवा कर रहे हैं। [इससे बन्धन छूटना दुस्तर हो गया है]॥

व्याख्या— पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्यबोधको पारखी सद्गुरुसे निर्णय द्वारा पारखबोध पाये बिना, नर-जीवोंको काल-जालका बन्धन लखनेमें नहीं आता है या देखनेमें नहीं आता है। इसीसे यह जालोंको अच्छी तरहसे लखे बिना या परखे बिना समस्त मनुष्य उन्हीं गुरुवा लोग और स्त्रियोंके ही फन्दा-जाल, खानी, वाणीके घेरामें आय-आयके खुशीसे उसके सेवा या सेवन धारण करके बन्धनोंमें जकड़ गये, और आवागमनोंमें पड़ रहे हैं॥ यह भावार्थ है॥ ३२॥

दोहाः— बन्दीखान कलेशके ❀ परे त्रिविधि सो जीव॥

[१६] एकहिं एक पुकारहीं ❀ गोहरावहिं कोउ पीव॥ ३३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

जीव=संसारमें मनुष्य खानीमें नरजीव सब कोई—

सो=स्व-स्वरूपका अपरोक्ष पारखबोध पाये बिना भ्रमिक हो-हो करके—

त्रिविधि=तीन प्रकारके मायाकी फाँसरूप कर्म, उपासना, ज्ञानमें, योगी, ज्ञानी, भक्त पड़े हैं; और काम, क्रोध, मोहमें विषयी लोग ऐसे घिरे पड़े हैं कि, वे त्रिविधि जालोंमें ही अच्छी तरहसे—

परे=जकड़े हुये पड़ गये हैं, उसीसे उधर तीन खानीके बन्धनमें पड़ रहे हैं—

बन्दीखान=सोई खानी-वाणीके घेरा जेलखाना-में बन्दी बने हुये अध्यासी जीव, नाना खानी-में पड़ करके बन्दीखाना वा कैद घरमें घिरे हुये पड़े हैं। वहाँ—

कलेशके=तीन तापोंके दुःख और जन्म-मरणादि-के नाना कष्ट, क्लेश भोगे हैं, और फिर भी भोग रहे हैं, ऐसे दुःख पायके पञ्च क्लेशमें आकुल-व्याकुल होयके—

एकहिं एक=एक-एकको अपनी रक्षाके वास्ते, रक्षक मानके पुकारा करते हैं। कोई माता, पिता, स्त्री, पुत्रादिको याद करते हैं। कोई देवी, देवता, भैरों, हनुमान, राम, कृष्ण, पीर, पैगम्बरादिकोंको, तो कोई ईश्वर, खुदा, आदिको नाम ले-लेके—

पुकारहीं=पुकारा करके बुलाते-चिल्लाते आवाज करते हैं, गोहराते हैं। और—

कोउ=कोई जगत्कर्ता, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, खुदादिको मन कल्पनासे—

पीव=पिया, मालिक, स्वामी आदि मान-मान करके सब लोग नाना तरहसे—

गोहरावहिं = प्रार्थना करके नाम स्मरण करते हैं, या पुकारा करते हैं कि— हे भगवान् ! हे राम ! हे खुदा ! अय अल्लाह ! प्रभो ! अब तो भी आके हमको बचाओ, रक्षा करो, इत्यादि प्रकारसे गोहराते हैं। परन्तु सुनता कोई नहीं। [कहो तो कल्पनासे किसीकी रक्षा होती है, ऐसा तो नहीं होता है, इसीसे पच-पचके मरते रहते हैं।] ॥

व्याख्या— जड़ाध्यासी जीव तीनखानीके जेलखानोंमें पड़के कर्म भोगते हुये नाना कष्ट-क्लेश तो सब भोग ही रहे हैं। उनमें मनुष्य खानीमें आनेपर भी उसके प्रतीकरूप त्रिविधि बन्दीखानामें वे पड़े ही हुये हैं। सो संसारमें काम, क्रोध, मोह। स्त्री, पुत्र, धनादि त्रिविधि कैदमें विषयीजन सब बँधे हैं, और योगी, ज्ञानी, भक्तलोग द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैत आदि त्रिगुणी मायाकी फाँसीमें पड़े हैं और पड़ रहे हैं। इस प्रकारसे साधना और उद्योग आदिमें तथा देहोंके कर्म भोगोंमें पड़े हुये वे जीव सब अपनी रक्षा या बचावाके वास्ते एक-एकको सहायक समझके पुकारते हैं। घरमें परिवारोंका नाम ले-लेके पुकारते हैं, और बाहर देवी-देवताओंका नाम ले-लेके बुलाते हैं; और कोई तो जगत्के कर्ता सुख-दुःखोंके दाता, कोई एक ईश्वर, ब्रह्म, खुदादिको रक्षक मानके उनको ही आर्त होके रो-रोके नाना तरहसे प्रार्थना, विनय कर गोहराते हैं। और बहुत प्रकारसे स्तुति करके प्रार्थना किया करते हैं। परन्तु कल्पनाका पुकारा यह अरण्य रूदनवत् निष्फल होनेसे सब व्यर्थ हो जाता है। कर्मफल, आवागमन जीवोंको भोगना ही पड़ता है। पारख स्वरूपकी स्थिति हुये बिना जन्म, मृत्युका दुःख नहीं छूटता है॥ यह भावार्थ है ॥ ३३ ॥

दोहाः— सुखको लेस दिखायके * जीवहिं रखै भुलाय ॥
[१७] बन्दीछोर बिनु कौन हैं * जीवहिं लेहि छुड़ाय ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीरामरहससाहेबकृत मूल पञ्चग्रन्थी अन्तर्गत पञ्चकोश प्रथमग्रन्थे विज्ञानमय कोश मूल समाप्तः ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इन यम और यमदूतोंने संसारमें—

सुखको = विषयानन्द, जगदानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ब्रह्मानन्दादि सुखोंकी महिमा बढ़ायके, उसीके प्राप्ति करानेका, आश्वासन, लालच देके और—

लेस = थोड़ा वा जरासा या किञ्चित् देर वा अल्पकाल तक इन्द्रियोंकी वृत्ति स्थिरतासे होने वाला, ऐसे कुछ-कुछ—

दिखायके = आनन्द या सुखाभास दिखायके या अनुभव मालूम करायके, ऐसे ही तुम्हें और भी बहुत सुख मिलेगा, ऐसा आशा देके—

जीवहिं = समस्त नरजीवोंको इसी प्रकार गुरुवा लोग और नारियोंने नाना तरहसे ऐसे ही—

भुलाय = हाव, भाव, कटाक्ष आदिका प्रयोग करके निजपदसे भुलाय दिये हैं—

रखै = और जगत् बन्धनोंमें ही अरुझा रखे हैं, और फँसाके रख रहे हैं। ऐसे जीवोंको भुलायके आवागमनोंमें ही झुलाय रहे हैं। भुलावा देकर बड़ी कठिन बन्धनोंमें डाल रखें हैं। इस कारणसे उस भूलको छुड़ानेवाले—

बन्दीछोर = समस्त खानी-वाणी सम्बन्धित देह-बन्धनोंसे छुड़ानेवाले मुक्तिदाता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधवाले पारखी साधु गुरु जो हैं, सोई बन्दीछोर कहे जाते हैं।

बिनु = ऐसे उन कृपालु पारखी साधु-गुरु बन्दी-छोरके सत्य पारखबोध प्राप्त हुए बिना या बोधदाता उन सद्गुरुके शरणागत हुए बिना, स्व-स्वरूपका ज्ञान नहीं हो सकता है।

जीवहिं = अतः मनुष्य जीवोंको यही जगत् जाल महान बन्धनोंसे, काल जालसे—

लेहि छुड़ाय = छुड़ाय लेनेवाले वा बचाय लेनेवाले या मुक्त करानेवाले—

कौन हैं = संसारमें और कौन हैं ? कोई भी नहीं हैं। [और तो सब कोई कल्पनामें ही ड़े हुए धोखा देके बन्धनमें ही डालनेवाले हैं,] एक पारखी सद्गुरु ही भवबन्धनोंसे छुड़ानेवाले हैं॥

व्याख्या--- यह विज्ञानमयकोश समाप्तिका आखिरी दोहा है। इसमें श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— संसारमें षट्-दर्शन और छयान्नबे पाखण्डवाले गुरुवा लोगोंने और इधर स्त्री, माता-पितादि परिवारोंने, अबोध नरजीवोंको, जरा-सा या थोड़ा-सा देहादि-सम्बन्धी विषय सुख चखाके भुला दिये हैं, और उधर वैसे ही किञ्चित् वृत्तिकी स्थिरतासे विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादिका अनुभवसे देख-दिखाके आगे और इससे भी ज्यादा ही सुख होगा, ऐसा मानके या लालच देके मनुष्योंको भुला रखे हैं, और इसी प्रकार सब भूल रहे हैं। ऐसे दृढ़ बन्धनोंमें जीव बन्धे पड़े हैं। इस कठिन बन्धन खानी-वाणी जालोंसे छुड़ाकर मुक्त करनेवाले एक ऐसे बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए तथा आपके ही अनुयायी पारखपदमें स्थितिवान् पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण किये बिना और किसी प्रकारसे कल्याण नहीं होता है, कोई रक्षक और संसारमें नहीं हैं। उन पारखी साधु-गुरुके बिना जीवोंका भव-बन्धन छुड़ानेवाले और कौन हैं ? कोई भी तो नहीं हैं। अतएव मुक्ति चाहनेवाले हे नरजीवो ! पारखी साधु-गुरुकी ही शरण-ग्रहणकर, सत्सङ्ग विचार करते हुए, नरजन्म सफल करके, जीवन्मुक्त हो जाइये ! यही मुख्य कर्तव्य है, ऐसा जानिये ! ॥ यह भावार्थ है ॥ ३४ ॥

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत पञ्चकोश समाप्तिका पद्य समूह वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

सद्गुरु कबीर पारखनिधि, परखायो सब जाल। बीजक ज्ञान प्रकाश करी, खानी वाणिको टाल ॥ १ ॥
जीवन बन्ध छुड़ा-चित्र बन्दीछोर कृपाल। गुरुपारख परताप लखु, गुरुवा नारी काल ॥ २ ॥
दृढ़ बन्धन छूटन कठिन, है प्रवाह अज्ञान। गुरु दया निज बोध जब, तब छूटै हो ज्ञान ॥ ३ ॥
परम कृपालु गुरु पारखी, साँच झूठ परखाय। मिथ्या धोख हटायके, सत्य स्वरूप लखाय ॥ ४ ॥
पारख निर्णई साधु गुरु, रामरहससाहेब हुए। पञ्चग्रन्थी पदरूपमें, निर्णय गुरु लखाय दिए ॥ ५ ॥
सोई मूल सद्ग्रन्थको, गुरु निर्णय अनुसार। रामस्वरूप यहि दासने, टीका भाव विस्तार ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

पञ्चकोश प्रपञ्च बन्धन, में फँस्यो जेहि भाँतिसे। भिन्न भिन्न लखायके सब, वर्णिया यहिमाँ तिसे ॥
अङ्ग उपाङ्ग समस्त कोशन, निर्णये गुरुमुख दिसे। सत्य पारख धारणा करि, कोश ते न्यारा इसे ॥ ७ ॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

यामें लिखा सोइ बोध, गुरुमुखसे जो मैं पढ़ा। परख पारखी शोध, रामस्वरूपदास सदा ॥ ८ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

महाजाल संसारमें, पञ्चकोश विस्तार। पारख बिन मुक्ति नहीं, भटके घोर अन्धार ॥ ९ ॥
प्रथम कोश सो अन्नमय, जन विषयी बन्धान्। कर्मी जन तेहिमें फँसे, उभय रहे अज्ञान ॥१०॥
कोश द्वितीय है प्राणमय, सकलो भक्त भुलान्। उपासना बहु विधिकरि, बन्दीगृह पहुँचान् ॥११॥
तृतीय कोश मनोमय, मन मानन्दि पसार। योग साधना अमित करि, योगीभूल मँझार ॥१२॥
कोश ज्ञानमय चतुर्थ है, सब ज्ञानिन स्थितिधार। आत्मा पूरण मानिके, बार बार भव धार ॥१३॥
पञ्चमकोश विज्ञानमय, जन विज्ञानी भूल। ब्रह्मज्ञान सबते बड़ा, भोगे बहुतक शूल ॥१४॥
एक एक निर्णय करि, परखायो सब जाल। रामस्वरूप गुरु रामरहस, काल जाल सब टाल ॥१५॥
पदके संख्या अब कहौं, सुन लीजे सब सन्त। पञ्चकोश पूरण भयो, दर्शाऊँ यहि अन्त ॥१६॥
प्रथमें साखी एक है, ऊपर तले दुई छन्द। तर ऊपर दोहा दुई, चौकड़ी अठार प्रबन्ध ॥१७॥

प्राणमय दुइ छन्द है, तर ऊपर दुइ दोहा। अष्टादश चौकड़ी अहै, यहि विधि भाग समोहा ॥१८॥
तस मनोमय छन्द दुई, दोहा यामें एक। अष्टादश चौकड़ी पुनि, सोरठा अन्तिम एक ॥१९॥
छन्द दुई है ज्ञानमय, दोहा सोरठ इक एक। चौकड़ी अष्टादश तहाँ, कीन्हा ज्ञान विवेक ॥२०॥
छन्द दुई विज्ञानमय, एकादश दोहा तहाँ। इक्कीस चौकड़ी जानिये, दर्शायो सब भाग यहाँ ॥२१॥
यहि विधि पाँचों कोशकी, भिन्न भिन्न विस्तार। एक कोशके ग्रन्थ इक, पञ्चकोश सब सार ॥२२॥
पञ्चकोश लखि साहेब, पञ्चग्रन्थी रचि दीन्ह। निर्णय गुरुमुख पारख, सारासारको चीन्ह ॥२३॥
प्रथम ग्रन्थ यहि ग्रन्थकी, पञ्चकोश समाप्त। टीका रहस्य बोधिनी, लेख भयो पर्याप्त ॥२४॥
गुरुमुखसे प्रथमें पढ़ा, रामस्वरूप मन लाय। सन्तन अर्थ पढ़ाय पुनि, टीका लिखी बनाय ॥२५॥
टीकामें सब भाव प्रगट, जानेंगे सब सन्त। तदपि सन्धि न खूलई, जानें गुरू महन्त ॥२६॥
याते गुरुमुख श्रवण करि, सन्धि करिये पिछान। पुष्ट मनन जब होवई, तब हो पारख ज्ञान ॥२७॥
पारखी गुरु सर्वोपरि, गुरु सेवा है सार। जाते रहनी प्राप्त हो, स्थिति स्वरूप भवपार ॥२८॥
गुरु सेवा करि बोध हो, पूरा ताको जान। भ्रम धोखा संशय नशे, साँचा पारख ज्ञान ॥२९॥
ग्रन्थ आदि पढ़ि सुनि करि, होवै वाचक ज्ञान। परोक्ष बोध अधूरि है, काँचा समय नशान ॥३०॥
याते सच्चा बोध गहि, विधिवत् हितमें लाग। सन्त सज्जनो ! जागिये, पारख हो बड़ भाग ॥३१॥
पठन पाठन नित प्रति, करते रहिये सन्त ! सब विधि रहनि धारिके, करिये हृदया शान्त ॥३२॥
चित्त चतुष्टय वृत्तिको, करना चहिये स्थिर। विवेक विचार प्रवाह करि, हो रहिये नित वीर ॥३३॥
खानी त्याग सत साधन, वाणी परखके त्याग। मनकी चाह मिटायके, चाहिये दृढ़ वैराग ॥३४॥
युग सहस्र षट सम्वत, पौष शुदी तिथी तीन। गुरु दिन बाइस, द्वादश, उनपचास इति चीन ॥३५॥
शब्द अर्थ भावार्थ युत, निर्णय रहस्य मिलाय। बोधिनी सरलटीका यही, [illegible] आय ॥३६॥
रामस्वरूपदास अब, बन्दौं गुरुपद आज। गुरुकी दया [illegible] स्थित, होवैंगे मम काज ॥३७॥

॥ ❀ ॥ इति श्री मूल पञ्चग्रन्थीकी पञ्चकोशान्तर्गत, पञ्चम विज्ञानमय कोश सहित पञ्चकोश नामक प्रथम ग्रन्थकी—रामस्वरूपदास, अनुवादित—शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित-सम्पूर्णम् समाप्तम् शुभम् ॥ ५ ॥ ❀ ॥

॥ ❋ ॥ पञ्चकोश--प्रथम ग्रन्थः समाप्तः ॥ १ ॥ ❋ ॥

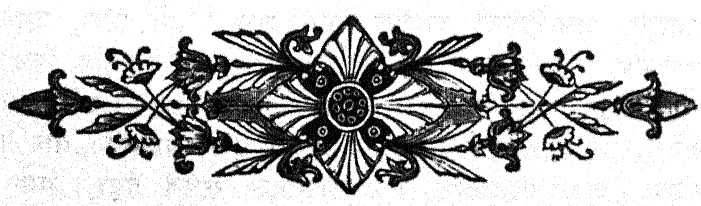

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ दया श्रीसद्गुरुकी ॥ ❀ ॥

बन्दीछोर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी दयासे प्रकाशित—मूल बीजक सद्ग्रन्थकी सत्य पारख सिद्धान्तानुसार—

साधुशिरोमणि कबीरपन्थी पारखी सन्त-महात्मा श्रीरामरहससाहेब विरचित—

सद्ग्रन्थ मूल-पञ्चग्रन्थी-सटीक ।

॥ ❀ ॥ अथ समष्टिसार नामक द्वितीय ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

[शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दोहा ॥ ❀ ॥

श्रीगुरु पारखी धन्य हो ! धीर वीर गम्भीर । सत्य-सार लखायउ, सद्गुरु साधु कबीर ॥१॥
सद्गुरु सत बोध बिन, जीव अहै बेहाल । तव पदको नर जो लहै, सो सब होय निहाल ॥२॥
पञ्चग्रन्थी यह ग्रन्थका, द्वितीय समष्टिसार । रामरहस गुरु निर्णय, पारख सार असार ॥३॥

॥ ❀ ॥ छन्दः ॥ ❀ ॥

चैतन्य जड़ जग व्यष्टिको, समेटि समष्टि बखानहीं । ब्रह्म ईश खुदादि गुरुवन, श्रेष्ठ कर्ता मानहीं ॥
मत पन्थ नाना ग्रन्थ बहुविधि, होय खैंचातानहीं । असार धोख लखाय कर गुरु, सार समष्टि ज्ञानहीं ॥४॥
वर्णन बिना सत असतको, पहिचानमें नहिं आवता । जाने बिना सत ग्रहण कैसे ? असार ही को धावता ॥
याते दया करि पारखी गुरु, मत पन्थ सब बतलावता । करिके परीक्षा सुज्ञजन, पारख समझ तब पावता ॥५॥

॥ ❀ ॥ सोरठा ॥ ❀ ॥

सो सब यामे बोध, परखायो पारखी गुरु । ताको मिटै अबोध, गुरुमुख पढ़ि सुनि मनन करै ॥६॥

॥ ❀ ॥ साखी ॥ ❀ ॥

सत्य प्रेम भक्ति सहित, पद बन्दौं गुरु सन्त ! गुरुके कृपा कटाक्षसे, नाशै विघ्न अनन्त ॥७॥
शब्द भाव निर्णय सहित, लिखौं सुबोधिनी टीका । मम मन गुरुप्रकाश करु, संशय मिटै भ्रम जीका ॥८॥
कबीर निर्णय मन्दिर, बुरहानपुरके माहिं । अर्थ पढ़ाई परम्परा, गुरुमुख साधु कराहिं ॥९॥
सो रामस्वरूप दासने, सोई प्रमाण यामें लिखा । गुरुपद करौं त्रयबन्दगी, खोलिदृष्टिको दिये दिखा ।१०।

सम्बन्ध— यह पञ्चग्रन्थीके दूसरा समष्टिसार नामक ग्रन्थ है । व्यष्टि और समष्टि ऐसे दो प्रकारके भेद होते हैं । उसमें व्यष्टि कहिये भिन्न-भिन्न हो, जैसे—जड़ अलग है, और चैतन्य जीव अलग है, सो प्रत्यक्ष है । और समष्टि कहिये जड़-चेतनको एकमें मिलाके समेटकर चराचरमें व्यापक एक

अद्वैत ब्रह्मको गुरुवा लोगोंने माने हैं, सो अनुमान है। जैसे वृक्ष अलग-अलग रहते हैं, तो उनको व्यष्टि जानना चाहिये। और वे वृक्षोंके समूहको जंगल या वन वा आरण्य कहते हैं, सो समष्टि नाम कहलाता है। ऐसे ही यहाँ संसारमें जड़, चैतन्य न्यारा-न्यारा होनेसे व्यष्टि कहलाता है, और उसीको एक ब्रह्म मानना, समष्टि कहलाता है। इस तरहसे जगत् और ब्रह्म कुछ फरक ही नहीं हुआ, जगत् ही ब्रह्म ठहरा, तबतो यह सब ब्रह्मज्ञान असार ही हुआ। अतएव संसारमें गुरुवा लोगोंने जितने मत, पन्थ, ग्रन्थ, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाईबिल आदि वाणी बनायके ईश्वर, खुदादिका सिद्धान्त कायम किये हैं। उन सबोंके सारको समष्टिसार जानिये। और उन्होंकी मुख्य-मुख्य बात इस ग्रन्थमें श्रीरामरहस-साहेब दर्शाये हैं। इसीसे समष्टिसार,सोई संसार वाणीजाल है। अर्थात् सबके सार सिद्धान्त ठहराव-को समेटकर निर्णय करके इस भागमें दिखलाया गया है, ऐसा जान लीजिये! ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहससाहेब कृत मङ्गलाचरणम् ॥ ❀ ॥

साखीः— वारों तन मन धन सबै ❀ पद परखावनहार ॥

[१] युग अनन्त जो पचि मरैं ❀ बिन गुरु नहिं निस्तार ॥ १ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— मैं सर्व प्रथम ग्रन्थके आरम्भमें—

पद = सत्य, चैतन्य यथार्थ पारखपद या गुरुपद या निजपदको भली प्रकारसे—

पारखावनहार = मुझ अबोधके प्रति दयादृष्टि करके परखानेवाले श्रीकबीरसाहेबरूप बन्दीछोर पारखी सद्गुरुदेवके चरणोंमें मैं उन गुरुके उपकारको याद करके मेरे माने हुये सर्वस्व समर्पण करदेता हूँ। उसमेंः—

तन = स्थूलरूप यह देह दशों इन्द्रियोंके घेरा भागको; तथा—

मन = सूक्ष्मरूप देह या अन्तःकरण चतुष्टय मन-मानन्दीका भाग; एवं—

धन = स्थूल-सूक्ष्म सम्बन्ध जनित कारणरूप सोरह कला और बन्धु, बान्धव, स्त्री, पुत्र, धनादि खानीकीपक्ष मानन्दी और वेद, शास्त्र, ब्रह्म, ईश्वरादि वाणीकी श्रेष्ठ धनरूप माना हुआ मानन्दी इत्यादि—

सबै = सम्पूर्ण मेरे पासमें बाहर—भीतर जो कुछ भी है, सो तन, मन, धनादि सब ही पदार्थोंको-

वारों = निछावर करके अर्पणकर देता हूँ! [हे प्रभु! यह विकारी जड़ वस्तु आपके बोधके बराबरी तो कर नहीं सकता है। तथापि मेरे कल्याणके वास्ते इसे स्वीकार कीजिये!]

अनन्त = अनन्तों जन्म-जन्मान्तरमें अनेकों कर्म अध्यासके वश हो-होकर—

युग = स्त्री-पुरुषोंकी दो विधि देहें धारण कर यह जीव नानायुक्ति, नानामत, कर्मोंकी साधना करता हुआ नरदेहमें जड़ाध्यासी हो-होके—

पचिमरैं = कर्मोंमें पच-पचके मरे जाते हैं, और जन्मते-मरते, चारखानियोंमें बहुतेक दुःख भोग, सह रहे हैं—

जो = जोकि, अभी तक भी वैसे ही दुर्दशामें पड़ा हुआ है। तैसे मैं भी उसी चक्करमें प्रथम पड़ा हुआ था—

बिन गुरु = सो पारखी साधु गुरु मिले बिना या गुरुके पारखबोध मिले बिना—

निस्तार = जीवोंको खानी-वाणीके जाल बन्धनोंसे छुटकारा होनेका रास्ता नहीं मिलता है। इससे आवागमनोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्ति—

नहिं = कदापि हो नहीं सकती है। [अतएव हे गुरु! आपके कृपा बिना मेरा निस्तार होनेका नहीं, इससे कृपादृष्टि मुझ दासपर बनाये रखिये] ॥

व्याख्या— अनादि कालके संसारमें जड़ाध्यासी जीव चार खानियोंमें नारी, पुरुषोंका दो देह धारण करके, अनन्तों बार जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ा हुआ दुस्सह दुःख भोगा और भोग रहा है। और नरदेहमें आया, तो फिर वही वाणी कल्पना तथा विषय अध्यासी होके नानायुक्ति, नानामत, कर्मोंकी साधनाएँ

कर-करके कर्मोंमें पच-पचके मरे और मर रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरु बन्दीछोरके शरणागत हो, पारख-बोध पाये बिना, इस अनन्त दुःख यातनासे जीवका निस्तार या छुटकारा नहीं हो सकता है या हुआ नहीं है। यह बात भी मुझे श्रीगुरुदेवके ही दयासे मालुम हुआ। इस कारणसे मुझ अबोधपर दयादृष्टि कर पारख गुरुपद या स्व-स्वरूप निजपद्रको परखानेवाले सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा उन्हींके अनुयायी या उन्हींके पारखबोधदाता श्रीगुरुदेवके पदकमलोंमें, मैं-मेरे माने हुये सर्वस्वको समर्पण करके जीवन्मुक्त होनेकी अभिलाषा करता हूँ। तो मेरे माने हुये मेरे पासमें यही तन-मन-धनादि है। उसमेंः- स्थूलदेह और स्थूल पदार्थरूप दृश्य, सोई तन है। सूक्ष्मदेह, सूक्ष्म इन्द्रियाँ अदृश्य, सोई मन है। और तन-मनके सम्बन्धमें कारणरूप माना हुआ, धन सम्पत्ति-स्त्री, पुत्र, परिवार तथा ब्रह्म, ईश्वर, लोकादि वाणी जालको ही मैं श्रेष्ठ धनरूप मानता रहा था, अब सो सब विकारी जानके मुक्तिके वास्ते आपका सत्यबोध धारणकर यह तन, मन, धन सब ही आपको मैं निछावर या अर्पण कर देता हूँ !। हे सद्गुरु! आप मुझ दासको अपने शरणमें लेकरके निर्भय निर्बन्ध कर दीजिये। यही दीनतासे मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ यह भावार्थ है ॥ १ ॥

साखीः — संसारी पारख बिना * कैसे पावै ठौर ॥
[२] विविध युक्ति अनमिल सबै * भोगवहिं औरकी और ॥ २ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
संसारी = खानी-वाणीके संशयमें पड़े हुये संसारी या जगत्के नरजीवोंको, अथवा संसारमें रमण करके रहनेवाले सर्व मनुष्योंको—
पारख = पारखी साधु गुरु द्वारा सत्य पारखदृष्टि या स्वरूपबोधको अपरोक्ष जान—
बिना = पाये बिना या बोध हासिल किये बिना
ठौर = निज स्वरूपकी स्थिति या मुक्तपद पारख भूमिकामें ठहराव—
कैसे पावै = कैसे करके प्राप्त कर सकेंगे? यानी किसी प्रकार भी पा नहीं सकेंगे। (अतएव संसारी जीव दुःखोंसे छूटके सुख या मुक्ति पानेके वास्ते मनमाने तरीकेसे)—
युक्ति = कर्म, उपासना, योगादिकी युक्ति-प्रयुक्ति साधनाएँ, उपाय—
विविध = अनेक प्रकारसे संसारमें नाना तरहसे वे नर-जीव कर रहे हैं—
सबै = वह सब कल्पित साधनाओंके मार्ग हैं, इससे—
अनमिल = ब्रह्म, ईश्वरादि जीवके स्वरूपमें मिलनेवाला नहीं है या उससे जीवोंको स्वरूप स्थिति मुक्तिपद भी मिलनेवाला नहीं है, इस कारणसे वे लोग—
औरकी और = भ्रमसे कुछ-का-कुछ ही मान लिये, इससे जाते तो हैं मुक्त होनेके लिये, परन्तु अध्यासवश गर्भवासके खाँचमें आके गिर पड़ते हैं—
भोगवहिं = गुरुवादि लोगोंने अभी नाना साधनोंके कष्ट भोगाये हैं। फिर देहान्तमें, नाना-योनियोंमें जाके वासनावश नानाकष्ट जीव सब भोगते हैं या भोग रहे हैं ॥

व्याख्याः— जगत् या संसारमें मनुष्योंको जबतक पारखी सद्गुरु नहीं मिलते हैं, तबतक सत्यबोध नहीं हो सकता है। और पारखबोध मिले बिना संशय छूट नहीं सकता है। इसीसे तो खानीजाल और वाणी-जालोंके संशय अध्यासमें पड़े हुये संसारी पारखहीन मूढ़ नरजीवोंको पारखकी प्राप्ति न होनेसे स्व-स्वरूप-की स्थिति भी नहीं पा सकते हैं। और पारखी साधु गुरुकी दया तथा सेवाभाव बिना पारख बोध मिल नहीं सकता है। और पारखबोध पाये बिना नरजीव कैसे निजठौर मुक्तपद पावेगा? यानी नहीं पा सकेगा। परन्तु दुःखसे बचावा, सुख प्राप्ति तो सब जीव चाहते हैं और सुख तो होता नहीं। अतएव संसारमें नाना प्रकारकी युक्ति-प्रयुक्ति, साधना, अभ्यास तो सब लोग किये और कर रहे हैं। परन्तु वह सबसे जीवको मुक्ति मिलनेवाली नहीं है, और कल्पित ब्रह्म आदि जीवके स्वरूपमें मिलनेवाले नहीं हैं, सो अनमिल हैं। इसी कारण गुरुवा और नारियोंके फन्दोंमें पड़कर जीव अभी यहाँ भी नाना कष्ट

भोगते-भोगाते हैं और देह छोड़के भी चौरासी योनियोंमें कष्ट भोगते रहते हैं। देखिये ! उन अबुद्धोंकी समझसे तो सुख भोगनेको या मुक्त होनेको कर्म करके जाते हैं। परन्तु उधर और-का-तौर वा कुछ-का-कुछ या और-का-और ही विपरीत होके अध्यासवश गर्भवास खाँचमें गिर पड़ते हैं, त्रयतापादि महान दुःख भोगते रहते हैं, विना पारख ॥ यह भावार्थ है ॥ २ ॥

॥ ❀ ॥ समष्टिसार ग्रन्थका उपोद्घात् वर्णन ॥ ❀ ॥

साखीः— पेड़ सन्धि सन्देहके ❀ मताधीश सब डार ॥
[३] अनबनि पत्र भौचक्र है ❀ फूलै फलै जञ्जार ॥ ३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँसे ग्रन्थका प्रकरण रहस्य वर्णन करके बताते हैं। सो ध्यानपूर्वक सुनिये !

पेड़ = वाणीका वृक्ष (झाड़) रूप एक कोई परम-तत्त्व परमात्मा है। ऐसा कल्पनासे ठहराये हैं। फिर सोई—

सन्धि = मानन्दी दृढ़ करके गुरुवा लोगोंने अनुमान किये। भ्रममें जुटे, तहाँ पेड़ वा सन्धि दोनों सन्देहके जाल हैं, किन्तु—

सन्देहके = नाना वाणीका उपदेश देके सन्देहके निवारण करनेके वास्ते ब्रह्म, ईश्वरादि कोई एक जगत्कर्ता कल्पनासे निश्चय कर-करायके संशयरूपसे ही उसे ग्रहण किये। उसी-से मुक्ति माने हैं।

मताधीश = मत-पन्थोंके मालिक, पन्थ-प्रवर्तक षट्दर्शन या षट्शास्त्रोंके आचार्य अधिपति जो भये, सो—

सब डार = सब उसके डगाली हुए; तो वे सब सम्प्रदाई लोग नरजीवोंको धोखेमें ही डालनेवाले हुए, अर्थात् मत-पन्थोंके अधीश्वर गुरुवा लोग सब डालीरूपमें लम्बे-लम्बे सन्देह बढ़ानेवाले ही हुए और अभी हैं।

अनबनि = उन गुरुवा लोगोंने वाणी कल्पनासे जो उपदेश दिये, उससे नरजीवोंका कल्याण मुक्ति स्थिति कुछ भी बननेका नहीं है। परन्तु अनेकों वाणी उन लोगोंने बनाये, उनमेंसे—

पत्र = चार वेद छः शास्त्रादिकी बहुत वाणी या नाना मत-पन्थोंकी वाणी ग्रन्थ सब पत्ते हुए, यानी अनेकवाणी पत्रके समान निकले—

भौचक्र है = सो पञ्चकोशोंके वाणी और खानी-का घनचक्र है। यही जन्मृतिमें घुमानेवाला जगत्का चक्र है। अब उसीके विस्तार हो के—

फूलै = द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि अनेकों सिद्धान्त फूलरूपमें, फूलके निकले, कोई "अहंब्रह्मास्मि" 'तत्त्वमसि' कहके फूले—

फलै = चार मुक्ति या अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि यह चार फल और अनेकों फल उसमें कल्पना-से लगाये, सो प्राप्ति होनेको बताये, और—

जञ्जार = सो फल प्राप्तिके वास्ते नाना साधनों-की उपाधियोंमें पड़के अध्यासरूपी जञ्जीरमें बँधके, चौरासी योनियोंमें पड़ गये। यानी गुरुवालोग वाणी-खानीमें फूले-फले तो बहुत ही, परन्तु आखिरमें बन्धनमें ही पड़े हैं।

व्याख्या— जैसे पृथ्वीमें बोया हुआ बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है, तो उसके गाँठ या सन्धिसे डाली निकलके उसमें नाना पत्ते और फूल, फलादि लगते हैं। सो उससे फल खायके कई प्राणी तृप्त होते हैं। तैसे ही गुरुवा लोगोंने यहाँ अन्तःकरणरूपी भूमिकामें कल्पनारूपी बीज बोया, उससे सबका मूल अधिष्ठान एक कोई ब्रह्म परमात्माको माने हैं, सोई वाणीका वृक्ष (झाड़) पैदा भया। और जगत्कर्ताकी अनेक प्रकारसे मानन्दी, कल्पना भई, सोई गाँठकी सन्धि हुयी। तथा ब्रह्म, ईश्वरादि प्राप्तिके लिये ब्रह्म निरूपणकर सन्देहके उपदेश देनेवाले मताधीश-ऋषि, मुनि, पूर्वाचार्य, मतवादी और षट्शास्त्र, षट्दर्शनोंके आचार्य, मत, पन्थ स्थापक, गुरुवा लोग सब इसमें डगालीके समान हुए हैं। वे सब मनुष्योंको भ्रममें ही डालनेवाले हुए हैं; और

उन्होंके उपदेशोंसे जीवोंका कुछ कल्याण तो बननेका नहीं, तो भी सब उनके ही अनुयायी हो रहे हैं। तथा ब्रह्म, ईश्वरादि भी जीवोंके स्वरूपमें मिलनेवाला नहीं है। परन्तु अनेक प्रकारके वेद, शास्त्रोंकी वाणी, तथा मत, पन्थों, ग्रन्थोंकी वाणी जो संसारमें बनी है, यही सब पत्ता या पत्र लगा है। उसमें अनेकों सिद्धान्त, लोक-लोकादि वर्णन, रोचकता आदिके फूल फूलने लगे। एवं चार मुक्ति, चार फल, सुख प्राप्तिके नाना फल तथा जीव-ब्रह्मकी एकताका मुख्य फल मानके, नाना साधनोंकी उपाधिमें पड़के मनुष्य सब बन्धायमान हुये। जड़ाध्यासवश भवचक्ररूप खानी-वाणीकी विकट धारामें गोते लगाके आवागमनोंमें पड़े, और पड़ रहे हैं। बिना गुरु पारखके बोध हुए, यह भवचक्रसे छुटकारा नहीं मिलता है, अतः गुरुबोध पारखको लेना चाहिये॥ यह भावार्थ है॥ ३॥

साखीः---- बास मतावै रस चखै ❀ ये बहु करहिं गोहार॥

[४] अन्धा तेही तजे नहीं ❀ गहै सो बारम्बार॥ ४॥

अर्थः-- श्रीरामरहससाहेब कहते हैं--हे सन्तो!

ये = यह अबोध संसारी नरजीव सब तो—

बहु = बहुत दुःख पायके बहुत प्रकारसे गुरुवा लोगोंसे बहुत बार--

गोहार = प्रार्थना या पुकारा करने लगे कि, हे गुरुजी! हमें ईश्वर प्राप्ति और सुख प्राप्ति करा दीजिये! तो गुरुवा लोग पुकारा—

करहिं = करते हैं कि–हे भक्तो! जैसा-जैसा हम कहते हैं, वैसा-वैसा करो, तब खूब सुखकी प्राप्ति होगी, ऐसा कहते भये—

बास = ईश्वरादि वाणी, कल्पना पकड़के, वासना बहुत बढ़ाये, इस तरह धोखामें--

मतावै = सब जीव मस्त गाफिल हुए, या वाणीके नशामें मस्त भये तथा—

रस चखै = भक्ति, योग, ज्ञानादि साधना करके ब्रह्म-परमात्माका अनुभव आनन्दरूपी रस लेना चाहते हैं या चाखना चाहते हैं।

अन्धा = माना हुआ ब्रह्म धोखामात्र है, किन्तु पारखदृष्टिहीन जड़ासक्त अज्ञानी ऐसा देख तो पाते नहीं। इसीसे वे अन्धे बने हैं--

तेही = अनुमान, कल्पना, वाणी-खानीके अध्यासों-को ही हृदयमें दृढ़कर रखे हैं।

तजे नहीं = उसे छोड़ते तो हैं नहीं, बल्कि उल्टा –

बारम्बार = फिर-फिरके पुनः-पुनः या बारम्बार—

सो = उसी नारी, गुरुवाओंके बन्धनरूप विषया-नन्द, ब्रह्मानन्द आदिमें आसक्तिको टिकाके ही—

गहै = मजबूतीसे उसे पकड़ते रहते हैं या पकड़ रहे हैं, तो कैसे मुक्त हो सकेंगे? इस तरह कभी मुक्त नहीं होवेंगे॥

व्याख्या— संसारमें बहुत दुःख पायके अज्ञानी नरजीव गुरुवा लोगोंके पासमें जायके पुकारा करने लगे कि—हे गुरु महाराज! हमें यह दुःखसे बचाइये, और सुख तथा परमात्मासे मिलनेका रास्ता बताइये! इत्यादि कहते भये। तो गुरुवा लोगोंने उनसे वेदादि वाणीका पुकारा करके, ईश्वर और लोकादि कल्पित सुखकी महिमा वर्णन किये। तब ऐसा कल्पित वाणीकी ही सुन-सुनके बहुतेक मनुष्य उसी वासनामें मन लगायके, मस्त गाफिल हुये। और कोई तो रस चाखना चाहते हैं। यानी भक्ति, योगादि साधना करके, ब्रह्मानन्दका अनुभवरूपी रस लेना चाहते हैं। ये अन्धे लोग साँच, झूठको तो कुछ देख सकते ही नहीं, यानी विचार तो कुछ करते ही नहीं, कि, जिसको हम प्राप्त करना चाहते हैं, सो तो भ्रममात्र है। कुछ मिलनेवाला नहीं, अतएव वे पारख दृष्टिहीन अन्धे, उस भ्रम, धोखेको छोड़ते नहीं। परन्तु बारम्बार दृढ़तासे पकड़ते ही रहते हैं। अब कहिये इनका बन्धन कैसे छूटेगा? कभी नहीं छूटेगा। बिना पारख॥ ४॥ (इति उपोद्घात समाप्तः)

सम्बन्ध— यहाँसे चौकड़ीका अलग-अलग खण्ड शुरू होता है। प्रथम खण्डमें १ चौकड़ीसे १३ चौकड़ी तक वर्णन हुआ है॥

॥ ❋ ॥ समष्टिसार ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ चौकड़ी प्रथम खण्ड ॥ १ ॥ ❋ ॥

१. रामरहस पूरण संसार ❋ परखै कौतुक परखनहार ॥ ५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि—हे जिज्ञासु सन्तो ! अब मैं यहाँ समष्टिसारकी खास-खास बातें कहता हूँ, चित्त लगाके सुनिये-

रामरहस = रमैयाराम चेतनजीवको राम कहते हैं। सो जीव खानीजाल और वाणीके रहस्य-रास, क्रीड़ामें रमके चारखानीमें ही बद्ध हो रहे हैं। सो उनमें किसी ज्ञानीने आत्मारामको अपना व्यापक स्वरूप मानके ऐसा निश्चय किये कि—

पूरण = चराचरमें परिपूर्ण व्यापक आत्माराम वा परब्रह्म जो है, सो—

संसार = जड़, चेतनरूप संसारमें भरा हुआ एक अद्वैत है।

कौतुक = अरे ! यह आश्चर्यमय तमाशाको तो देखिये ! ब्रह्म-ईश्वर आदिको पूर्णव्यापक मानके फिर उनसे मिलनेके वास्ते नाना साधनाएँ भी कर रहे हैं। वह तो मिथ्या धोखा है, तो मिलेगा कैसे ? यह नहीं जानते कि व्यापक आत्मा अपना ही स्वरूप है, फिर कौन किससे कैसे मिलेगा ? परन्तु अद्वैतवादी लोग बड़ी विचित्र कौतुकमें पड़े हैं।

परखनहार = जड़ और चैतन्यके यथार्थरूपको परखनेवाले और सच्चा भेदको जाननेवाले, पारखीसन्त जो हैं, सोई इस भ्रम धोखादिको

परखै = ठीकसे परखते हैं। या परीक्षा करते हैं। अथवा पारखी सद्गुरुकी दयासे जिसको सत्यबोध पारखदृष्टि प्राप्त हुई है, सोई परखके न्यारा होंगे ॥

व्याख्या— इस चौकड़ीमें श्रीरामरहससाहेब अपने नामसे संकेत करके, सूक्ष्म अर्थका भाव दर्शाके कहते हैं कि—'राम' कहिये रमैयाराम चैतन्य जीव है, 'रहस' कहिये जगत् ब्रह्मकी या खानी-वाणीकी खेल-क्रीड़ाके रसमें रम गया, भूल गया है। परन्तु आत्माराम रहस्यमय ढंगसे संसारमें परिपूर्ण भरा है, आत्मा एक है; ऐसा माने हैं। वह झूठी कथन वाणीकी कौतुक = खेल या तमाशा है। इसे कोई परखनेवाले पारखी सन्त ही, परखके मिथ्या जानते हैं। अर्थात् उनमें ब्रह्मज्ञानियोंने तो संसारमें परिपूर्ण ब्रह्म-परमात्माको एक ही अद्वैत ठहराये हैं, और उसीको प्राप्त करने-करानेका ठेका लेके, नाना साधनाएँ करने-कराने भी लगे हैं। यह बड़ी आश्चर्य है कि— मिथ्या धोखा असत्य, भ्रमरूप ब्रह्म, सत्यजीवोंको कैसे मिलेगा ? और व्यापक है, तो एकदेशीयको प्राप्त कैसे होगा ? एक-अनेक मानना, कौतुक वा तमाशा ही है। कोई विवेकी सत्यान्यायी पारखी सन्त ही इसको परखते हैं। और उन पारखी सद्गुरुकी दयासे जिन्होंको पारखदृष्टि प्राप्त हुई है, वे भी मिथ्या भ्रमको परखके त्याग करते हैं या करेंगे, यानी कोई परखनेवाले सत्यन्यायी ही इसे परखके जानते हैं, और दूसरे सब कोई जान ही नहीं सकते हैं, इसीसे भ्रमते रहते हैं ॥ ५ ॥

२. संशयरूप जगत परचार ❋ दूसरी संशय ब्रह्म विचार ॥ ६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— हे जिज्ञासु सन्तो !—

संशयरूप = संशयरूपी या बन्धन स्वरूपी पहिला यह—

जगत् = संसारके खानीजालमें स्त्री, पुत्र, धन, विषय भोगादि अध्यास जीवको जन्म, मृत्यु, गर्भमें ले जाते रहनेका हेतु है।

परचार = परन्तु गुरुवा लोग मिथ्या उपदेशका प्रचार करके ऐसा कहते हैं कि, वेद प्रमाणसे चलनेसे संसारमें भोग-भोगते हुए भी मुक्ति होती है। और ज्ञानमार्गसे भी मुक्ति होती है। ऐसे अनेक प्रकारसे संशयरूप कल्पनाका ही जगत्में प्रचारकर रखे हैं,—

दूसरी = और दूसरी वाणीका भागरूप भ्रम दूसरे तरफ गुरुवा लोगोंने—

संशय = जीवोंको बन्धनकारी कल्पनाका भ्रम,

दुविधा या संशय जो है, सो उसमें --
ब्रह्म = परमात्मा-ब्रह्मको जड़-चैतन्य सबमें परिपूर्ण व्यापक भरा हुआ एक ही है, ऐसा—
विचार = ज्ञानीलोग विचार करते हैं। या किये और कर रहे हैं। यही ब्रह्म विचारका उपदेश दे रहे हैं।

व्याख्या—संसारमें जीवोंको खानी और वाणी दो कठिन बन्धन हैं। उसमें पहिला संशयरूपी बन्धन जगत्के खानी जालका मोटी पञ्च-विषयोंका भाग है। परन्तु अद्वैतवादीने जगत्को भी ब्रह्ममें मिलाके अद्वैत मतमें घोटालाकर रखा है, और दूसरा ब्रह्म, ईश्वरादिका संशय जो गुरुवा लोग विचार करते हैं कि, ब्रह्म एक ही सत्य है, सो भी भ्रम वाणी-जालका सूक्ष्म बन्धन है। परन्तु भ्रमिक गुरुवा लोग ऐसा उपदेश प्रचार करते हैं कि, वेद प्रमाणसे चलनेवाले ब्राह्मणादि चारों वर्णके सब लोग चारों आश्रमसे मुक्ति प्राप्तकर सकते हैं। इससे अपने-अपने आश्रमका धर्म, कर्मको विधिपूर्वक पालन करना चाहिये और द्वैत दिखता हुआ जगत् असत्य है, वास्तवमें अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, यही संशयरूप ब्रह्मका विचार करके ऐसे गोलमाल करके छोड़ देते हैं॥ ६॥

३. ब्रह्म विचारके ऐसा भेव ❀ बिन पारख सो लावै सेव॥ ७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि— हे जिज्ञासु सन्तो!—
ब्रह्म = ब्रह्मको परिपूर्ण अद्वैत व्यापक मानके—
ऐसा = इस प्रकारसे ठहराके ऐसा—
विचारके = वेद-वेदान्तको विचारके मनन करके निश्चय तो कर लिये कि-"अहं ब्रह्मास्मि" परन्तु यह तो—
भेव = हमारा भास भ्रममात्र है। मैं भासिक इससे न्यारा हूँ, ऐसा भेद या मर्मको तो वे जाने ही नहीं। और—
बिन पारख = यह ब्रह्मज्ञानसे हम मुक्त नहीं होवेंगे, उल्टे बन्धनमें पड़ेंगे? यह पारखदृष्टि हुए बिना—
सो = पारखहीन भ्रमिक लोग सब कोई सोई भ्रम धोखाको दृढ़ करके—
लावै = गुरुवा लोगोंके मिथ्या उपदेश, सिद्धान्तोंमें मन लगा-लगाके—
सेव = प्रेमपूर्वक उन्होंकी सेवा, भक्ति तथा साधनोंके सेवनमें लगे, और लग रहे हैं। बिना विवेक॥

व्याख्या— और ब्रह्मज्ञानका तो ऐसा विचार करते हैं कि—ब्रह्म एक अद्वैत शुद्ध, पूर्ण, अलिप्त, व्यापक है। परमहंसवृत्तिवाले विज्ञानी चाहे जो कुछ कर्म करें, सो ब्रह्मरूप मुक्त ही हैं। ऐसा समझके पशुवत् वृत्ति बनाय लेते हैं, तो उसका भेद ऐसा है कि, ऐसे जड़ाध्यासी, बेपारखी लोग यह तो जानते ही नहीं कि, अद्वैत ब्रह्मज्ञान तो हमारे मनकी कल्पना है। अतः उससे हमारी मुक्ति नहीं होगी, यानी अध्यासवश, चारखानी, चौरासी योनियोंमें पड़ेंगे? ऐसा समझ, बोध न होनेसे धोखामें पड़के बिना पारख उसीकी सेवा, साधनामें लगे या लग रहे हैं। तो उसी अध्यासवश पुनः-पुनः चौरासी योनियोंमें ही जा-जाके पड़ते रहते हैं, बिना विवेक॥ ७॥

४. अज हरि हर मुनिवर प्रचण्ड ❀ सनकादिक जीव जे ब्रह्मण्ड॥ ८॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
अज = कर्मकाण्डका प्रगटकर्ता ब्रह्माको अज, विधाता, विधि आदि कहते हैं।
हरि = उपासनाकाण्डका प्रगटकर्ता, विष्णुको हरि, नारायण, कमलापति आदि कहते हैं।
हर = योगकाण्डका प्रगटकर्ता, महादेवको हर, त्रिपुरारी, महेश्वर, शिव आदि कहते हैं।
मुनिवर = बड़े-बड़े श्रेष्ठ ऋषि, मुनिगण, महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, तपस्वीगण, एवं—
सनकादिक = सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ज्ञानी इत्यादिक—
प्रचण्ड = तीक्ष्ण बुद्धि-विचारवाले पण्डित, योगी, ज्ञानी, भक्त सब कोई अपने-अपने समझ बोधकी तीव्रतासे—
ब्रह्मण्ड = संसार या ब्रह्माण्डमें कल्पित ऋद्धि,

सिद्धि आदि कला-कौशलोंसे विख्यात या जगजाहिर हुए—

जे = ऐसे जितने या जो-जो भी जगत्में—

जीव = नरजीव पुरुषार्थी या अनुभवी हो गये हैं या हुए हैं, वे सब बिना पारख भूलके भ्रम धोखामें ही पड़े रहे ॥

व्याख्या— संसारमें ब्रह्माण्डके कल्पित सिद्धि कलाधारी या वेद-वेदान्त पारङ्गत सिद्ध पुरुष माने गये, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु महेश, और तीव्र बुद्धिवाले श्रेष्ठ ऋषि, मुनिलोग तथा सनकादि, व्यासादि, शुकादि जो-जो जितने नरजीव पूर्वमें प्रख्यात, श्रेष्ठ हो गये हैं, वे वाणी प्रमाणसे या अनुमान, कल्पनासे कोई परमतत्त्व परमात्मा एक सत्य है । सो पूर्ण व्यापक ब्रह्म मैं ही हूँ "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा तत्त्व विचार करके दूसरोंको भी वही उपदेश बताये हैं। इस प्रकार वे सब जो-जो वाणीमें पारङ्गत नरजीव हुए, बिना पारख भ्रम धोखामें ही पड़े रहे ॥ ८ ॥

५. बड़े कहाये तत्त्व विचार ❀ मत समस्त ऐसे निरुवार ॥ ९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

तत्त्व विचार = कोई परमतत्त्व परमात्मा ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण व्यापक स्वरूप जो है, सो मैं हूँ । ऐसा तत्त्व विचार करनेवाले तत्त्ववेत्ता या ज्ञानीलोग, अविचारी अज्ञानीलोगोंके समाजमें, संसारमें—

बड़े कहाये = बड़े श्रेष्ठ महात्मा आचार्य गुरु, अनुभवी महापुरुष आदि बड़े सिद्ध कहलाये, या ऐसे ही उनकी महात्म्य हो रही है ।

मत = अब उनके सिद्धान्त, मत, पन्थ, ग्रन्थ आदि मत-मतान्तरके—

समस्त = योगी, ज्ञानी, भक्त, ऋषि, मुनि इत्यादिक इन्होंने जो-जो मत निकाले, सो समस्तमें या उन सबोंने भी अपने-अपने बुद्धि अनुसार—

निरुवार = वेद-वेदान्त, शास्त्र, उपनिषद् आदि विचार करके यही निर्णय किये कि—एक ही अद्वैत-ब्रह्म सत्य है, उसीके इच्छासे यह सारा जगत् उत्पन्न भया है, तो जगत्में ही वह ब्रह्म व्यापक है, इत्यादि—

ऐसे = ऐसे जाननेसे मुक्ति माने हैं । ऐसे भ्रमिक मिथ्यावादी भये हैं, यही उनके मतका निरुवार है, ऐसे जानिये ! ॥

व्याख्या— आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, तत्त्वज्ञानी, या तत्त्ववेता ऐसे श्रेष्ठ आचार्य गुरु बड़े कहलाये, सो इसलिये कि— उन्होंने ब्रह्मतत्त्वका अद्वैतरूपमें विचार किया था । अतः संसारमें वे बड़े कहलाये । उन योगी, ज्ञानी, भक्तोंके समस्त मतमें ऐसे ही कर्ता, ब्रह्म, ईश्वर आदि कोई एक है । उसके प्राप्ति होनेसे ही जीवोंकी मुक्ति होती है । यह निरुवार या छानबीन करके उन समस्त मतवादियोंने निरुवाररूपमें निर्णय किये हैं, वही उनका सार निर्णय है ॥ ९ ॥

६. प्रगट बखाने चारिउ वेद ❀ पञ्चीकरण है ताके भेद ॥ १० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

चारिउ वेद = और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्वण वेद, ये चारों वेदोंमें जो सिद्धान्त वर्णन किया है, सोई वेदोंका प्रमाण दे करके—

प्रगट = सबके सन्मुखमें वही बात निकालके प्रत्यक्षमें प्रगट या जाहिर करके—

बखाने = गुरुवा लोग वर्णन करके पुष्ट करते हैं, या वही बखान प्रगट किये हैं—

ताके = उस अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तके—

भेद = मर्म या भेद रहस्यको खुलासा करके और भी पाँच भाग करके कहे हैं ।

पञ्चीकरण है = सो पञ्चीकरण नामके वेदान्त ग्रन्थमें स्पष्ट निरूपण या वर्णन किया गया है । पाँचों तत्त्वोंकी ब्रह्मसे उत्पत्ति बताया है, सो मिथ्या ही है ॥

व्याख्या— और चार वेदोंको प्रगट करके वर्णन किये हैं । उसीका प्रमाण दे-दे करके अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त आदिका गुरुवा लोग सबके सन्मुखमें जाहिर करके बखान करते हैं । उसी अद्वैत सिद्धान्तको युक्ति-प्रयुक्तिसे पुष्टि करके पञ्चीकरण नामके एक वेदान्त ग्रन्थ बनायके उसमें भी

उसका मर्म समझाये हैं या भेद बताये हैं। अथवा चारों वेदोंने जो प्रगट बखान किया है, सो पञ्चीकरण भाग एकमें मिलायके ब्रह्मको एक अद्वैत कहा है, यही उसका मुख्य भेद कहा है। परन्तु बिना पारख कल्पनामें ही गाफिल हुए और भ्रमिक हो रहे हैं॥ १०॥

७. छौ में वेद वेदान्त है जेठ * और अठारह जगतके पेठ॥ ११॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

छौ में = षट्शास्त्रोंमें सबसे श्रेष्ठ मुख्य करके—

वेद = वेदका ही प्रमाण लेके ब्रह्म सिद्धान्त कथन करनेवाला वेद और शास्त्रोंमें उत्तम-सार भाग जो है, सो—

वेदान्त है = वेदका अन्तिम भाग वेदान्त शास्त्र ही है। क्योंकि, वह—

जेठ = सबसे श्रेष्ठ अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तको ही निरूपण करके बताता है। इससे जेठ या बड़ा प्रभावशाली माने हैं। यानी षट्शास्त्रों में वेदके अंशरूप वेदान्त शास्त्र प्रथम सबसे बड़ा अग्रगण्य माना गया है—

और = और उसके अलावा, अन्य पाँच शास्त्र छोटा वा मध्यम ठहराये हैं। और फिर—

अठारह = अठारह पुराणोंमें भिन्न-भिन्न प्रकार-से मत वर्णन किया है तथा वह ६ और अठारह मिलायके २४ होते हैं, सोई—

जगतके पेठ = संसार या जगत्के पीठमें या बीचमें २४ अवतार समय-समयपर प्रगट हुए, उनकी लीला महात्म्य और सिद्धान्तों-को श्रेष्ठ ठहरायके १८ पुराणोंमें विस्तारसे बताया गया है॥

व्याख्या— मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातञ्जल, सांख्य और वेदान्त, यह षट्शास्त्रोंमें चार वेदको श्रेष्ठ माने हैं। और चार वेदोंमें भी वेदका अन्तिम भाग वेदान्त-उपनिषद् ज्ञानकाण्डकी भागको सबसे बड़ा सर्वश्रेष्ठ माने हैं। क्योंकि, उसमें अद्वैत ब्रह्मसिद्धान्तका निर्णय किया है, इसलिये वह श्रेष्ठ माना गया है। और कोई अलग अठारह पुराणोंको बनाये हैं। ऐसे ६ शास्त्र, और १८ पुराण मिलाके २४ भाग होते हैं, उसी प्रमाणसे जगत्के मध्यमें ईश्वरके भी २४ अवतार धर्म स्थापनके वास्ते हुए, ऐसा मानके उन्होंके लीला महात्म्य और नाना सिद्धान्तादि वर्णन किये हैं, उसे मानते हैं, उसीसे अपना हित समझते हैं॥ ११॥

८. सार निवेरिके करैं बखान * गीता भागवत है परमान॥ १२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

निवेरिके = वेद, वेदान्त, शास्त्रादिका छानबीन करके ऐसा निर्णय किये कि—

सार = परमतत्त्व परमात्मा ही एक सत्य सार है, वही अद्वैत ब्रह्म सार है—

बखान = ऐसे नाना भाँति सिद्धान्त कथनकर, उसे विस्तार करके वर्णन या बखान—

करैं = गुरुवा लोग किये हैं या करते हैं। यानी उन्होंने जो कुछ सार निर्णय करके बखान किये, सो गीता और भागवतमें लिखा हुआ प्रमाण मौजूद है।

गीता = भगवद्गीतामें श्रीकृष्णजीने वही ब्रह्म-सिद्धान्त कायम किया है। जो अर्जुनके प्रति लक्ष करके कहा गया है।

भागवत = और दूसरा भागवत पुराणमें भी वही ब्रह्म बोध या अद्वैत ब्रह्मका ही वर्णन व्यास जीने युक्तिपूर्वक कथामें दर्शाया है। इससे—

है परमान = पारखहीन लोग उसीको सत्य प्रमाण करके मानते हैं, या निश्चय करके दृढ़ करा रहे हैं॥

व्याख्या— और सबोंका सार निचोड़ करके कोई सत्य सार ब्रह्म परमात्मा ही एक है, ऐसा बखान करते हैं। उसके लिये भगवद्गीता और भागवतका प्रमाण देते हैं, कि—एक ब्रह्मबोध ही अर्जुनको श्रीकृष्णजीने गीतामें उपदेश दिया है। तथा व्यासजीने भी भागवतमें वही ब्रह्मज्ञानको श्रेष्ठ बतलाया है। तथा वेदान्त-शास्त्रमें ब्रह्मसूत्र भी व्यासजीने ही बनाया है; वहाँ एक अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त ही कायम किया है, इसलिये अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त ही सार है, ऐसा कहे हैं॥ १२॥

९. अधिष्ठाता जे बानी वेद * वेद अपक्ष जानै भेद ॥ १३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
जे = जिन्ह-जिन्होंने या जिन ऋषि-मुनियोंने—
बानी वेद = वेद वाणी या उपनिषदोंको बनाया, अथवा ध्यानसे पढ़ा, सो वेद वाणीके प्रमाणसे कहते हैं कि—
अधिष्ठाता = ॐकाररूप ब्रह्म-परमात्मा ही सब जगत्का अधिष्ठान या आधार है, वही सब संसारके मालिक है—
भेद = तो इसका भेद या मर्मको—
जानै = कोई ज्ञानी ही जानते हैं, ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं कि—
वेद अपक्ष = वेदमें किसीका पक्षपात नहीं, ऐसा कहके संसारका द्वैतपक्ष छुड़ायके वेद-वाणीसे, अद्वैत ब्रह्मका पक्ष पकड़ लिये और दूसरोंको भी वही मिथ्या पक्ष पकड़ाये हैं । वेद-अपक्ष है, कोई वेद-वेत्ता ही इसका भेद जान पाते हैं, ऐसा कहते हैं ॥

व्याख्या— और जिन्होंने वेदवाणी पढ़ा, वे कहते हैं कि, सबका अधिष्ठान एक ॐकार ब्रह्म ही है । सब वेदवाणीका परमेश्वर ही अधिष्ठाता मालिक है । अतः संसारमें जितनी वाणी है, सो सब वाणी वेदमेंसे ही निकली है । वेदमें किसीका पक्षपात नहीं है, और अभेद दर्शन है, वेदका ज्ञान शुद्ध है । यह भेद कोई ज्ञानी ही जानते हैं । ऐसा कहके जगत्के अन्य द्वैत पक्ष छुड़ायकर, वेद-वाणीसे ब्रह्मका मिथ्या अद्वैत पक्ष पकड़ते-पकड़ाते हैं, विना विवेक ॥ १३ ॥

१०. वेदकी उतपति प्रलय होय * अधिष्ठाता ज्योंका त्यों सोय ॥ १४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—फिर कोई ज्ञानी कहते हैं कि—
वेदकी = बावन अक्षरोंमें बनी हुई वेद-वाणी ज्ञान ग्रन्थका प्रथमारम्भमें—
उतपति = आदिनारायण परमेश्वरके श्वाससे उत्पत्ति होके निकला है, इसीसे सब मनुष्योंके भी श्वाससे ही अक्षरोंकी उत्पत्ति होती है । और—
प्रलय = महाप्रलयमें वेदादि सब वाणी नाश होके परमेश्वरमें ही समा जावैगा, बना हुआ अक्षर नाश हो जाता है ।
होय = ऐसा ५२ अक्षररूप वेदोंकी उत्पत्ति और नाश होता रहता है । और ज्ञानका भी विकाश तथा लय होता रहता है, परन्तु—
अधिष्ठाता = ब्रह्म जो सबका अधिष्ठाता, स्वामी, आधार स्वरूप है—
सोय = सो वह सत्य, अटल, अचल, सदा-सर्वदा
ज्यों-का-त्यों = जैसा-का-तैसा अद्वैत निर्लिप्त, निराकार निरंजन एकरस ही बना रहता है । ऐसा निश्चय गुरुवा लोगोंने किये हैं ॥

व्याख्या— ईश्वरवादिने सृष्टिके आदिमें परमेश्वरके श्वासवायुसे वेदोंकी उत्पत्ति माने हैं । तथा महाप्रलयमें फिर ईश्वरमें ही वेद-मन्त्र सब समाके लय हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं । अथवा बावन अक्षररूपमें बना हुआ वेद वाणीको ज्ञानी पंडित मनुष्योंसे मन-कल्पना द्वारा उत्पत्ति होके अन्तमें प्रलय भी हो जाता है, ज्ञानकी भी उत्पत्ति-प्रलय होती रहती है । परन्तु सब चराचर जगत्के आधार विश्वपति अधिष्ठाता ब्रह्म जो है, सो तो ज्यों-का-त्यों अटल अखण्ड बना ही रहता है; इसलिये ब्रह्म अधिष्ठाताका ही आधार पकड़े रहना चाहिये । ऐसा गुरुवा लोगोंने कहा है ॥ १४ ॥

११. निराकार निर्लेप बखान * बानी छोड़ि ऐसो अनुमान ॥ १५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
निराकार = और स्थूल, सूक्ष्म सब आकारसे रहित सो आकाशवत् निराकार वह—
निर्लेप = ब्रह्म किसीमें लेपायमान या मिश्रित नहीं, तो सहज ही निर्लेप है, ऐसा कहके—
बानी छोड़ि = मन, बुद्धि, वाणीसे परे मानकर फिर वाणीको भी छोड़कर अनिर्वाच्य होके रहे, मौन हो गये ।

ऐसो = ऐसा या इस प्रकारकी—
अनुमान = मिथ्या धोखासे ब्रह्मकर्ताके अनुमानको दृढ़ करके यही अनुमानके वाणी गुरुवा लोग अनेक तरहसे—
बखान = वेद, शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं। सोई वर्तमानमें भी पंडित लोग बखान करके समझाते हैं, अनुमानसे वाणीसे परे आवाच्य ब्रह्म बतलाते हैं (सो भ्रम-धोखा, मात्र है), उसे परखके जानना चाहिये॥

व्याख्या— सो वह निराकार निर्लेप ब्रह्म मन, बुद्धि, वाणी विलाससे अति परे अनिर्वाच्य है, सोई सत्य है। इस प्रकार वाणी पकड़े तो कल्पनामें लगे; और वाणी छोड़े, तो ऐसे अवाच्य ब्रह्मका अनुमान करने लगे। और ऐसा मिथ्या अनुमान दृढ़ करके गुरुवा लोग ब्रह्मज्ञानके वर्णन किये और कर रहे हैं, अपने धोखेमें भूलके दूसरोंको भी भुला रहे हैं॥ १५॥

१२. सोऽहं ब्रह्म सनातन एक ❀ निज स्वभावते भये अनेक॥ १६॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
एक = एक ही अद्वैतरूप परमात्मा—
सनातन = सदा-सर्वदासे एक समान अनादि, अनन्त, अविनाशी, सनातन, सत्य स्वरूप ऐसे—
सोऽहं ब्रह्म = सो कोई कर्ता ब्रह्म जो है, सो मैं ही हूँ! ऐसा ज्ञानियोंने निश्चय किये हैं। और—
निज स्वभावते = उसके नित्य निज स्वभावमें इच्छारूप मायाकी स्फुरणा रहनेसे 'जल-तरङ्ग न्याय वत्' "एकोऽहं बहुस्याम्" इस रीतिसे स्वयं स्वभावसे—
अनेक = जड़-चैतन्य जगत्का विस्तार अनेक रूपमें एकसे अनेकों—
भये = सृष्टि पैदा होते भये या अपने ही ब्रह्म अनेकरूप धारण करता भया, ऐसा माने हैं। अर्थात् सनातनसे सोहं ब्रह्म तो एक ही था, किन्तु निज स्वतः स्वभावसे एक रूप छोड़के, वही अनेकरूप हो जाता भया, ऐसा कहे हैं॥

व्याख्या— कोई एक सनातन ब्रह्म है, ऐसा मानके गुरुवा लोग उसे चारों तरफ ढूँढ़ने लगे। बहुत कुछ ढूँढ़नेपर भी बाहर जब कहीं कुछ पता नहीं लगा, तो घटमें उलटके लक्ष लगाये, फिर कल्पनासे "सोऽहं ब्रह्म" वह ब्रह्म मैं ही हूँ, ऐसा मान लिये। फिर "एकोऽहं बहुस्याम्" ऐसा इच्छा करके अपने ही नित्य स्वभावसे सहज स्फुरणा द्वारा "जलतरङ्गन्याय" इच्छारूप मायाके सहायतासे अनेक जगत्रूपमें परिणत होता भया। तथापि जगत्के अधिष्ठाता ही होके रहा, ऐसा भ्रम-भूलकी बात मान लिये हैं॥ १६॥

१३. सो है युक्ति विदित विस्तार ❀ ऐसे लखै असारहि सार॥ १७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
सो = अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी सोई वह—
युक्ति = ब्रह्म सिद्धान्त प्रतिपादन करनेकी युक्ति प्रयुक्ति चालाकी, धूर्ताई—
विस्तार = नाना प्रकारके ग्रन्थ फैलाहट या विस्ताररूपसे संसारमें जो वाणीका जाल विछाये हैं, प्रचार किये हैं—
विदित = जो जग जाहिर प्रचार—
है = हो ही रहा है यह सुज्ञजनोंको मालूम ही है। परन्तु—
असारहि = नाशवान असार देहका भास अध्यास-रूप भ्रम-भूलकी विकार—
ऐसे = ऐसे धोखाको ही वे—
सार = श्रेष्ठपद सार वस्तु ब्रह्म-परमात्मा मान लिये या मान रहे हैं।
लखै = उसको पारखी सत्यन्यायीने ही मिथ्या लखके परित्याग किये। और सद्गुरुकी दया-से जिज्ञासु भी उसे असार लखके त्यागेंगे॥

व्याख्या— सो वेदान्तकी युक्ति ब्रह्म अद्वैत सिद्धान्तका विस्तार, ग्रन्थ, पन्थ, आदि रूपसे संसारमें प्रचार हो रहा है। सो सबको विदित ही है। ऐसे मिथ्या असार देहका भासको ही

कल्पनासे सार सत्य ब्रह्म लखके मान रहे हैं। कोई विरले पारखी सन्त ही इसको मिथ्या धोखा असार लखके त्याग करते हैं। तथा पारखी सद्गुरुकी दयासे कोई जिज्ञासु मनुष्य ही इस भ्रमको छोड़ेंगे। अन्यथा यह भ्रम छूट नहीं सकता है ॥ १७ ॥

साखीः--- भरमिक भरम उद्वेगते ❀ सन्तत करें विचार ॥
[५] दुग दुग मिटै न जीवकी ❀ कहैं असारहु सार ॥ १८ ॥

अर्थः--- श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

भरमिक = जिनके बुद्धि भ्रममें पड़ गया है, ऐसे नरजीव भ्रमिकोंने—

उद्वेगते = मनके द्वारा भ्रमके उद्वेगसे, संकल्प-विकल्परूप अनेकों कल्पनासे सिद्ध करके—

भरम = भ्रान्तिरूप ब्रह्म-परमात्मा पदको निश्चय कर लिये हैं कि, एक ब्रह्म ही सत्य है, सो मैं हूँ।

सन्तत = फिर हर-हमेशा या निरन्तर अब उसी मानन्दीका ही विचार किया करते हैं।

विचार = अपने और जगत्-ब्रह्मकी अभिन्नता या एकताका विचारसे मनन सदोदित—

करैं = करते हैं या कर रहे हैं या करने लगे। परन्तु ऐसे अहंब्रह्मका विचार करनेपर भी मन स्थिर नहीं हुआ।

दुग-दुग = जड़ और चैतन्य वास्तवमें एक है या दो हैं, ऐसा संशयरूप भ्रान्ति या दुगदुगी जो पड़ी है—

जीवकी = वे बेपारखी भ्रमिक नर जीवोंकी अन्तःकरणसे वह भ्रमरूप दुगदुगी—

मिटै न = धोखा कभी मिटती नहीं (इसीकारण दुविधा भ्रमवश)—

असारहु = मिथ्या मानन्दी असार देहका भास-को ही—

सार = सत्य ब्रह्म-परमात्मा सारपद मुक्तिदाता इत्यादिक

कहैं = भूलकी वाणी दिवानेके समान कहते हैं। उसीसे दूसरोंको भी भ्रमाके फँसाते हैं। बिना पारख ॥

व्याख्या — पारख विचारहीन भ्रमिक नरजीवोंने मनमें संकल्प-विकल्प करके भ्रमके उद्वेगसे कल्पनामें मिलके भ्रमरूपकर्ता ब्रह्म-परमात्माका निश्चय किया कि— जगत्का कर्ता कोई एक ब्रह्म अवश्य है, तो जीव—ब्रह्म एक ही है, इसमें कोई भेद नहीं, सो सबका कर्ता ब्रह्म मैं ही हूँ। इसीका सदा विचार मनमें करने लगे। इसीको ज्ञानी लोग अद्वैत ब्रह्मका विचार कहते हैं। परन्तु प्रत्यक्षमें तो द्वैत दिख रहा है, वास्तवमें दरअसल जड़, चैतन्य न्यारा-न्यारा हैं या एक है, यह ठहरा नहीं पाये, तो द्वैताद्वैत है, कह दिये। यानी व्यवहारमें द्वैत दृश्य है, सोई परमार्थ दृष्टिमें अद्वैत है, ऐसा मान लिये हैं। या जो कुछ भी हो, वेदान्तका तो अद्वैत सिद्धान्त है, यही निश्चय करके मानना चाहिये कि, द्वैत है ही नहीं; ऐसा दुगदुगीरूप मनका संशय जीवोंकी मिटती तो नहीं है, अतएव संशयमें पड़े हुये भ्रमिक गुरुवा लोग असार देहका भास मिथ्या मानन्दी भ्रम-को ही ब्रह्म-परमात्मा मानके वही सार सत्य है, ऐसा कहते हैं; और वैसे ही मानते-मनाते हैं। पूरा पारखबोध हुए बिना यह भ्रम नहीं मिटती है। और जीवोंके चौरासी योनियोंका दुःख नहीं छूटता है ॥ यह भावार्थ है ॥ १८ ॥

साखीः--- सन्धि आये माकाशके ❀ रोग सुभाविक मान ॥
[६] उपजै खपै उपाधि सो ❀ तेहिके करें बखान ॥ १९ ॥

अर्थः — श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने स्थितिके वास्ते—

माकाशके = महान आकाशके समान निर्विकल्प सुखस्वरूप ब्रह्म-परमात्मा ठहराके उसी—

सन्धि = ईश्वर कर्ताकी मानन्दी दृढ़ कर लिये कि, उस ब्रह्ममें मिलनेसे जीवोंकी मुक्ति हो जाती है। ऐसा कल्पना चिपकाये।

आये = अब संसारके दुःखी जीव मुक्तिके वास्ते गुरुवा लोगोंके शरणमें आये, तो पूर्वोक्त निश्चयानुसार नाना साधना करने लगाये।

तथापि जीवोंका कुछ भी कल्याण-हित हुआ नहीं, और—

रोग = दुःखरूपी रोग नहीं मिटा। क्योंकि, रोग-का मूल तो ब्रह्मपद ही है। उसमें—

सुभाविक = इच्छा-स्फुरणा उठना तो स्वाभाविक बात है। इच्छा तो उठा ही करती है, उठती ही रहेगी। और—

मान = वेदान्त विचारसे जीवको ब्रह्म भी माना, तो भी मुक्ति नहीं हुई। मुक्ति होने-की भी नहीं। क्योंकि, रोगको स्वाभाविक माना गया है। अतः—

सो = उसी कारणरूप ब्रह्म अधिष्ठानसे ही तो—

उपजै = समस्त संसार प्रपञ्च प्रथमारम्भमें उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहते हैं; अथवा जड़ाध्याससे ही तो जीव नाना देह धारण करके जन्मे हैं।

खपै = और देह छोड़के नाना योनियोंमें वासना-वश जाते रहते हैं; अथवा महाप्रलयमें सब जगत्का नाश होके वहीं ब्रह्ममें समाजावेगा ऐसा कहा है। ऐसे—

उपाधि = उपाधिका मूलकारण तो वह ब्रह्म ही हुआ, उसमें कभी उपाधि तो मिट नहीं सकती है, परन्तु गुरुवा लोग झूठ ही महात्म्य कहकर—

तेहिके = उसीके, रोचक वाणीसे महिमा बढ़ाय करके, ब्रह्म, ईश्वरादिके—

बखान = प्राप्ति आदिकी बात, वेद, शास्त्रादियोंमें वर्णन करके कहे हैं।

करैं = इन भ्रमिक गुरुवा लोग, धोखाको न जान-के ब्रह्मज्ञान समझाते हैं; यानी जीवोंको भ्रमिक करते हैं। जिसमें उत्पत्ति, प्रलय लगा है, उसे मुक्तिकी पद वर्णन करते हैं, बिना विवेक॥

व्याख्या— जड़ाध्यासी जीव सब चार खानियोंमें तीन ताप आदि दुःखपायके व्याकुल हुये या हो रहे हैं। ऐसे दुःखी मनुष्य सुख प्राप्तिके वास्ते गुरुवा लोगोंके पास शरणमें आये, मुक्ति पानेके लिये विनय किये, तो गुरुवा लोगोंने उन्हें समझाया कि, महाआकाशवत् निराकार व्यापक कोई ईश्वर वा ब्रह्म कर्ता है, उसके प्राप्तिसे तुम्हारी मुक्ति होगी, ऐसा समझाके या मानन्दी दृढ़ कर-कराके नाना साधनाएँ करने-कराने लगे। फिर ज्ञानमार्गमें गये, तो वेदान्त प्रमाणसे अपनेको ब्रह्मस्वरूप ही मान लिये, तो भी आवागमनरूप रोग मिटा नहीं। क्योंकि, ब्रह्मपदमें ही स्वाभाविक "एकोहं बहुस्याम्" ऐसे इच्छा-स्फुरणा उठते रहनेके रोगका जड़ लगा है। सब उपाधियोंका मूलकारण तो वही ब्रह्म ही है। उसीसे बारम्बार उत्पत्ति और प्रलय होता ही रहता है, या जन्म-मरण लगा रहता है। उसका ही वर्णन गुरुवा लोगोंने वेद, शास्त्रोंमें किये वा कर रहे हैं। बिना पारख, यह धोखा नहीं मिटती है॥ यह भावार्थ है॥ १९॥

सम्बन्ध— यहाँ चौकड़ी १ से १२ तक द्वितीय खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ द्वितीय खण्ड ॥ २ ॥ ❀ ॥

१. प्रथमहि सूक्षम भया अहं * सोई कहावे एकोहं ॥ २० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

प्रथमहि = सबसे पहले मनुष्य खानीमें किसी मनुष्यको सोचते-सोचते यही विचार या स्फुरणा हुयी कि—

अहं = मैं हूँ सो ब्रह्म हूँ! ऐसी भावना करके—

सूक्षम = जीव सूक्ष्मदेहके साथ सूक्ष्म पञ्चतत्त्वोंमें मिलके भीतर प्रकाश देखा या आनन्दमें मग्न हुआ, तब—

भया = सोई ब्रह्मका अध्यास सूक्ष्म अहंकार खड़ा भया। सूक्ष्म अहं जाग्रत् भया—

एकोहं = फिर मैं अद्वैत एक ही ब्रह्म हूँ! ऐसी स्फुरणासे इच्छारूप मायाको खड़ा करके उससे सङ्ग किया—

सोई = सोई अध्यासी नरजीवसे उत्पन्न भया अहं ही-

कहावै = कल्पनासे एकोहं स्वयं ब्रह्म हूँ, कहने कहलाने लगा॥

व्याख्या— जड़-चेतनमय संसार स्वतः अनादि है। अनादि चारखानीमें मनुष्य खानी सर्व प्रथम

कर्मभूमिका है। प्रथम किसी मनुष्यके मनमें सूक्ष्मअहंकार खड़ा हुआ। क्योंकि, नरजीव सूक्ष्मदेह संयुक्त अनादिसे है। अतः जब सूक्ष्म पञ्चतत्त्वोंमें सम्मिलित हुआ; तो तत्त्वोंका प्रकाश देखके आनन्दमें मग्न हुआ। सोई भासको ब्रह्म मानके भ्रमरूप ब्रह्मके अध्यासी जीव हुआ। फिर इच्छा मायाका विशेष सम्बन्ध करके "एकोहं ब्रह्म" कहता भया, या कहलाता भया, । यह मनकी मानन्दीसे 'अहं' वा 'एकोहं' विकार उत्पन्न होती भयी, प्रथम सूक्ष्म अहं भया, फिर सोई एकोहं कहलाया ॥ २० ॥

२. बहुस्याम प्रजाय विलास ❀ तेहि मिलि तीनि एकहि अकाश ॥ २१ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

विलास = उसी इच्छा मायाके सङ्गमें मन-ही-मन भोग, विलास वा रमण या क्रीड़ा, कलोल, दीर्घकाल तक करके उससे—

बहुस्याम = एकसे अनेक त्रिगुणरूप जगत्का बहुत ही विस्तार—

प्रजाय = चारखानी चौरासी योनियाँ आदि प्रजारूपमें उत्पन्न किया या पैदा होता भया। यानी विलासकी इच्छासे बहुतसे प्रजा उत्पन्न किया।

तेहि = और वही ब्रह्म फिर एकसे तीन हुआ, तहाँ—

तीनि = १ सूक्ष्म अहं, २ एकोहं, और ३ बहुस्याम्, ये तीनोंमें प्रगट भया—

मिली = फिर जहाँ वे तीनों मिलकरके या सम्मिलित होकर एक हो गये, तहाँ—

अकाश = आकाशवत् पूर्ण व्यापक, शून्य निराकार, निर्गुण—

एकहि = एक अद्वैत ही बाकी रहा। पुनः एक ही से त्रिपुटी पैदा हुआ; एकसे तीन और तीन मिला, तो एक होता रहा ॥

व्याख्या— फिर इच्छा माया या स्त्रियोंके विलास विषय भोगोंसे बहुत सन्तानरूपसे प्रजाएँ उत्पन्न हुए तथा त्रिगुणरूप जगत्का विस्तार भी बहुस्याम् होके फैलता भया। तथा १ सूक्ष्म अहं, २ एकोहं, ३ बहुस्याम् ये तीनोंको पुनः समेटके एकमें ही मिलायके तहाँ आकाशवत् ब्रह्म माना गया। फिर एक आकाशसे जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश, ऐसे तीन आकाशके भाग उत्पन्न हुये, फिर अन्तमें एक ही महाकाशमें आके वे तीनों मिल जाते हैं। तैसे ही ब्रह्म भी उक्त त्रिपुटीमें आयके समाय गया। ऐसा मानते भये। अर्थात् सूक्ष्मअहं, एकोहं, बहुस्याम् इन तीनोंसे प्रजारूप जगत् उत्पन्न करके विलास किया। फिर उन तीनोंको एकमें मिलाया, तो एक आकाशवत् निर्गुण ब्रह्म पूर्ववत् रहा वा रहता है, ऐसा कहा है ॥ २१ ॥

३. घटाकाश प्रणव बहुस्याम ❀ मठाकाश एकोहं राम ॥ २२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

प्रणव = ॐ काररूप ब्रह्म-परमात्मासे ही गोलाकार पिण्ड, ब्रह्माण्ड बना।

बहुस्याम = मैं एकसे अनेक रूपमें पैदा होऊँ, ऐसी इच्छासे त्रिगुणरूप जगत् बहुत पैदा होता भया है। उसमें—

घटाकाश = घड़ेमें रहनेवाला आकाशवत् वैसे चारखानीके घटरूप अनेक देहें और जगत्के नाना पदार्थ स्थूलरूपसे उत्पन्न हुये, (तदनन्तर मायोपाधिमें दुःखित हो जीव दुःख छुटनेके लिये)—

राम = राम-नामका सुमिरण करने लगे, कोई आत्मा-रामको व्यापकरूपसे घट, मठादिमें भरा हुआ व्यापक—

एकोहं = एक ही आत्मामान लिये या मैं ही एक आत्मा स्वरूप हूँ, कहने लगे।

मठाकाश = कोई मनमें विचार करके साधनासे भीतर श्वासवायु स्थिर किये, तो गोलाकार प्रकाश ज्योति देखनेमें आया, उसीको मठाकाश निवासी सूक्ष्म ब्रह्म मानते भये ॥

व्याख्या— और उसीमें प्रणव कहिये ॐकाररूप ब्रह्मसे गोलाकार पिण्ड तथा ब्रह्माण्डमें अनेक देहें और जगत्के समस्त पदार्थ स्थूलरूपसे बहुत विस्तार होके प्रगट हुआ या पैदा हुआ माने हैं। तदुपरान्त माया-मोहके जालमें भूलके जीव सब दुःखी हुये। अज्ञानवश कर्मफल दाता,

कर्ता, मालिक, कोई ईश्वर मानके उसके प्राप्तिसे दुःख निवृत्ति होनेका अनुमान किये। अतएव योग, भक्ति आदिका साधना किये, तो मनरूपी मठमें श्वास स्थिर होनेसे गोलाकार प्रकाश दिखाई दिया, उसीको मठाकाशमें स्थित परमात्मा निश्चय किये हैं। और किसीने आत्माराम माने, तो किसीने एकोहं ब्रह्म मान लिये हैं, ऐसे नाना तरहसे मानन्दी किये हैं ॥ २२॥

४. अधिष्ठाता सोई माकाश ❀ ताके यों कहते दृढ़ भास ॥ २३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
अधिष्ठाता = ऐसे घट, मठादि सबके आधाररूपसे अधिष्ठान जो है, सो आत्मा सर्वेश्वर घट, मठादिका अधिष्ठाता ठहराकर उसे—
माकाश = महान आकाशरूप परिपूर्ण या सर्वव्यापक स्वरूप माने हैं।
सोई = सोई ब्रह्म-परमात्मा है, ऐसा मानके—
ताके = उसके प्राप्तिके वास्ते नाना साधनाएँ करके ताकने या देखने लगे और उसीके—
भास = तहाँ तत्त्वोंका प्रकाश या आनन्दभास या अध्यास जीवोंको हुआ—
दृढ़ = तो उसीको मानन्दीसे ब्रह्म स्वरूप दृढ़कर लिये हैं। ऐसे गुरुवा लोग—
यों कहते = ऐसा कहते हैं कि—हमको उस ब्रह्मका दृढ़भास या अनुभव हुआ है, ब्रह्म व्यापकस्वरूप आनन्द ही है। ऐसा हमने अनुभव करके जाना है। परन्तु उनका भास मिथ्या है, यह उन्होंने जाने नहीं ॥

व्याख्या— और कोई महाआकाशको सोई घट-मठादि सबका अधिष्ठाता मानने लगे। उसके लिये गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं कि— व्यापकरूप ब्रह्मका दर्शन, ध्यान, समाधिद्वारा साक्षात् भास या अनुभव होता है। ऐसे वाणी सुन-सुनके कितनेक लोग साधना करके उसे ताकने या देखने लगे, जो कुछ ध्यानमें भास हुआ, उसीको परमात्मा समझके दृढ़कर लिये, भास कल्पनासे भासिक जीव न्यारा रहता है, यह पारख उन्होंको नहीं हुई। इसीलिये धोखामें ही भूले रहे ॥ २३ ॥

५. घटाकाश तत्त्व इन्द्रिय भास ❀ मठाकाश मन करे विलास ॥ २४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अब उस आकाशका भेद सुनिये !—
घटाकाश = घड़ेमें रहनेवाला आकाश है, यहाँ घटरूपमें जो स्थूल देह है, उसमेंके खाली शून्य भागको घटाकाश कहते हैं। इसमें खास करके—
तत्त्व = स्थूलरूपसे जड़ पाँचतत्त्व और उन्हींके कार्यरूप—
इन्द्रिय = दश इन्द्रियाँदि विस्तारका, आकार प्रकारवाला शरीर—
भास = प्रत्यक्ष भासती है या देखनेमें आती है। ऐसे घटाकाशमें तत्त्व, इन्द्रियाँ भासा करती हैं। और—
मठाकाश = मठमें रहनेवाला आकाश है, सो यहाँ अन्तःकरणरूपी मठमेंकी शून्य भाग ही मठाकाश है। तहाँपर—
मन = सूक्ष्म इन्द्रियरूपी मन यही चित्त चतुष्टयके रूपमें बदल-बदलके—
विलास = मानन्दी, संकल्प-विकल्प, कल्पना, ब्रह्म, ईश्वर, विषयादिका विलास या कलोल सदा-सर्वदा हृदयमें रहकर, ऐसे विलास—
करे = करता रहता है ॥

व्याख्या— स्थूल देहमें ५ तत्त्व, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, मिलायके दश इन्द्रियाँदि जो स्थूलाकार प्रत्यक्ष भास हो रहा है या दिख रहा है, सोई घटाकाशके भीतर माने हैं। तथा अन्तःकरणमें मन-मानन्दीका सूक्ष्म विलास होना, सो उसे मठाकाश कहा है, यानी मठमें रहनेवाला शून्यको 'मठाकाश' कहते हैं ॥ २४ ॥

६. चिदाकाश माकाश बखान ❀ सदा अलेप सोई परवान ॥ २५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
चिदाकाश = और चैतन्य ब्रह्मको आकाशके समान निराकार चिदाकाश मानके उसको—
माकाश = बाहरके महान आकाशवत् परिपूर्ण

सुखस्वरूप सच्चिदानन्द कथन करके—
बखान = ऐसा गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हैं। और—
सोई = परमात्मा-ब्रह्म जो है, सोई—
सदा = सदा-सर्वदा निर्विकार, निराकार रहनेसे—
अलेप = सबसे न्यारा, किसीमें लिपायमान न होनेवाला निर्लेप है—
परवान = ऐसा ज्ञानी लोगोंने अनुमान-प्रमाण करके माने हैं। अर्थात् चिदाकाशको आकाश बखान करके, सो सदा अलिप्त रहता है, ऐसा कल्पनासे प्रमाण किये हैं॥

व्याख्या— और बाहरके महान आकाशके समान सच्चिदानन्दघन परमेश्वरको सर्वत्र परिपूर्ण समानरूपसे चिदाकाश ब्रह्म कहा है। उसे निर्लिप्त, सदा एकरस निराकार, निर्गुण आदि वेदान्त प्रमाणसे वर्णन करके सोई ब्रह्मस्वरूप अपनेको माने हैं॥ २५॥

७. चौथे भेद बुद्धि उठि जाय ❀ निर्वचनी कछु कहे न कहाय॥ २६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
चौथे = चौथे चिदाकाशकी चतुर्थ तुरियाअवस्था-में पहुँचकर इच्छारूपी माया लय हो जाती है—
भेद बुद्धि = इससे ब्रह्म स्थितिमें जड़-चेतनको अलग-अलग निश्चय करनेवाली भेद-भावकी विकारी बुद्धि आदि द्वैतभावकी समझ, नानत्व बुद्धि—
उठि जाय = सब उठ जाती हैं, यानी लय होके शून्य हो जाती है। वहाँपर—
निर्वचनी = अनिर्वाच्य होनेसे मन, बुद्धि, वाणी-से परेकी स्थिति रहती है। वचन शून्य हो जाती है, इसीसे—
कछु = कुछ भी उस अवस्थामें—
कहे = कहते नहीं बनता और कुछ कहते-कहाते नहीं बनता है। तथा—
न कहाय = किसीका कहा हुआ भी कुछ सुनाई नहीं देता है। यह ब्रह्म स्थिति है! ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— और चौथा चिदाकाशकी तुरिया अवस्थामें इच्छारूप मायाका लय हो करके निर्विकल्प समाधिमें पहुँचनेपर बुद्धिका भेदभाव, ज्ञान-अज्ञान सब उठ जाता है। वहाँ मन, बुद्धि, वाणीसे परे, अनिर्वाच्य स्थिति होनेसे वाणीका कहना-सुनना कुछ भी नहीं रहता है। सब ब्रह्ममें ही लीन रहता है। ऐसा ज्ञानी लोगोंने भासका वर्णन करके कहा है॥ २६॥

८. प्रथम दुतीया तृतीया चार ❀ सर्व कला आपै निरधार॥ २७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
प्रथम = महाकारण देहकी "सूक्ष्म अहं" यह पहिला है। चिदाकाश कहा जाता है।
दुतिया = कारण देहकी "एकोहं" यह दूसरा है। महदाकाश कहा जाता है।
तृतीया = सूक्ष्म देहकी "बहुस्याम्" यह तीसरा है। मठाकाश कहा जाता है।
चार = स्थूल देहकी जगत् व्यवहारका प्रपञ्च यह चौथा है। घटाकाश कहा जाता है। इस प्रकारसे—
सर्वकला = यह चारों देहोंकी सर्वभाग कलावों-का अधिष्ठानरूप—
आपै = आप-ही-आप स्वयं निरञ्जन ब्रह्म परमात्मा ही निजाकाश है। ऐसा अनुमान, कल्पनासे ठहराकर—
निरधार = गुरुवा लोगोंने निश्चय किये हैं, कि, वह ब्रह्म निराधार है। परन्तु सबका वही मुख्य आधार है, यही उन्होंने निर्णय किये हैं॥

व्याख्या— और १ सूक्ष्म अहं-से चिदाकाश हुआ। २ एकोहं-से महदाकाश हुआ। ३ बहुस्याम्-से घटाकाश हुआ। और ४ जगत् व्यवहार-से घटाकाशकी उत्पत्ति हुई। यह सब कलाओंका आधार अधिष्ठान आप ही स्वयं ब्रह्म निरञ्जन परमात्मा है, ऐसा निश्चय करके गुरुवा लोगोंने अपना निर्णय कहा है॥ २७॥

९. ब्रह्माण्ड हिरण्यगर्भ अव्याकृति ❀ भौ चहुँ शरीरले मूल प्रकृति॥ २८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— जीवोंके पिण्डमें चार देहोंके चार अवस्थाओंके समान

ही ब्रह्माण्डमें ईश्वरके भी चार देह, चार अवस्था आदि गुरुवा लोगोंने माने हैं। सो इस प्रकार कहे हैं, सुनिये! —

ब्रह्माण्ड = ब्रह्माण्डमें बाहर ईश्वरके स्थूल देहके जगहमें विराट देह माना है।

हिरण्यगर्भ = यह ईश्वरकी सूक्ष्म देह कहा है। यह खान या खदानमें रहा हुआ सुवर्णवत् शुद्ध चमकता हुआ हिरण्यगर्भ कहा है।

अव्याकृति = यह ईश्वरकी कारण देह है। इसे वाणीसे परे माने हैं। और—

मूलप्रकृति = यह ईश्वरका महाकारणदेह है। इसे सबकी मूल माया माने हैं।

ले = वे ऊपर जो वर्णन किया गया, वहाँ तक सो—

चहुँशरीर = परमेश्वरके चार प्रकारके शरीर माना है। ऐसे चार देह होते भये—

भौ = उसीसे ही समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति ईश्वरसे भया है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या—यहाँ जीवके चार शरीरके समान ही बाहरमें ईश्वरके भी चार शरीर इस प्रकार माने हैं:— ईश्वरके स्थूल शरीर सोई विराट ब्रह्माण्ड है। सूक्ष्म शरीर हिरण्यगर्भ है, ब्रह्माका एक नाम हिरण्य गर्भ भी कहा है। कारण शरीर अव्याकृत गुप्त कहा है। और महाकारण शरीर मूलप्रकृतिको सबका मूल ही माने हैं॥ २८॥

१०. उतपति पालन औ संहार * सर्वसाक्षिणी अवस्था चार॥ २९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

उतपति = यह ईश्वरकी जाग्रत् अवस्था है। इससे सृष्टिकी उत्पति करता है, ऐसा कहा है।

पालन = यह ईश्वरकी स्वप्न अवस्था है। इससे जगत्का पालना या रक्षा करता है, कहा है।

औ = और भी तीसरी अवस्था यहाँ—

संहार = यह ईश्वरकी सुषुप्ति अवस्था है। इससे जगत्की नाश करता है, कहा है। और—

सर्वसाक्षिणी = यह ईश्वरकी तुरिया अवस्था है। इससे सबका हाल साक्षीरूपसे जानता रहता है, ऐसा माने हैं।

अवस्था चार = यह उपरोक्त कल्पित ईश्वरकी चारों देहोंकी क्रमशः चार प्रकारकी अवस्थाएँ गुरुवा लोगोंने माने हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड या विराट देहकी जाग्रत्में उत्पत्ति होती है। हिरण्यगर्भसे पालन, तथा अव्याकृतिसे संहार और मूल प्रकृतिसे सर्वसाक्षिणी अवस्था, ऐसे चार प्रकारसे होती है, ऐसा कहा है॥

व्याख्या— उपरोक्त चार देहोंके चार अवस्थाएँ भी ईश्वरके अलग-अलग माने हैं। सो ऐसा है कि—विराट देहसे उत्पत्ति होता है। अतः वह उत्पत्ति करनेवाला जाग्रत् अवस्था है। हिरण्यगर्भ सूक्ष्म देहसे पालन होता है। अतः पालन स्वप्न अवस्थामें होता है। अव्याकृति कारण देहसे संहार होता है, अतः वह संहार सुषुप्ति अवस्थामें करता है और मूलप्रकृति महाकारणदेहसे साक्षी स्थिति होता है। अतः वह सर्वसाक्षिणी तुरियाअवस्था माने हैं। अवस्थाओंके अनुसार ही ईश्वर उक्त भिन्न-भिन्न कर्म किया करता है, ऐसा माने हैं॥ २९॥

११. भूर्भुवः स्वः जपे जो तीन * प्रणव मूल पूरण परबीन॥ ३०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

भूः = पृथ्वी, रजोगुण, ब्रह्मा कहा है।

भुवः = जल (अन्तरिक्ष), सत्त्वगुण, विष्णु कहा है।

स्वः = अग्नि (द्यौ), तमोगुण, महेश कहा है।

तीन = यही भूर्भुवः स्वः तीन अक्षरको द्विज जातिके तीन वर्णोंके लोग—

जपे जो = जो कि ब्राह्मणादिलोग गायत्री मन्त्र जाप करते वक्त प्रथम कहते हैं या जाप करते हैं। सोई तुरियारूप वायुतत्त्वसे उत्पन्न हुये हैं। ऐसा ठहरायके—

प्रणव = ॐकारको प्राणके समान प्रिय मानके—

मूल = मुख्य मूल मन्त्रके रूपमें—

पूरण = पूर्णब्रह्ममें मिलनेके वास्ते पूर्ण रीतिसे ही

परबीन = चतुर पण्डित, ज्ञानी, प्रवीण लोगोंने धारण किये हैं या कर रहे हैं। यानी ॐभूर्भुवः स्वः ऐसे पूर्णरीतिसे प्रवीणलोग जाप करते हैं॥

व्याख्या— और "भूर्भुवः स्वः" यह तीन अक्षरोंको क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नितत्त्वरूप तीन देवताओंके भावना करके, गायत्री मन्त्रके साथमें, प्रथम ॐ लगायके, "ॐ भूर्भुवः स्वः," कहते हुये ब्राह्मणादि जाप करते हैं। सबका मूल प्रणवरूप ॐकारको ब्रह्म स्वरूप पूर्ण माने हैं। ऐसा प्रवीण चतुर गुरुवा लोगोंने प्रमाण करके दृढ़ाये हुए हैं ॥ ३० ॥

१२. क्लीं ह्रीं एँ सों सेव ❀ घ्रीं सो बीज निरञ्जन देव ॥ ३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

क्लीं = यह अक्षर महादेवका बीज मन्त्र है। इसीसे संहार करते हैं, ऐसा माने हैं।

ह्रीं = यह अक्षर विष्णुका बीज मन्त्र है। इसीसे पालन करते हैं, ऐसा कहे हैं।

एँ = यह अक्षर ब्रह्माका बीज मन्त्र है। इसीसे उत्पत्ति करते हैं, ऐसा माने हैं।

सों सेव = कर्मी, उपासक, योगी उसीको बड़ा बीज मन्त्र मानके जाप या सेवनकर रहे हैं या किये हैं। और —

घ्रीं = नासिकासे ब्रह्माण्डमें वायु चढ़ायके सुषुम्नामें ठहरतेमें, जो घरघराहटका, आवाज होती है, उसीको घ्रीं कहा है।

सो बीज = सोई घ्रीं को सबका बीज अक्षर माने हैं।

निरञ्जन देव = उसका देवता निरञ्जन, परमात्मा सबोंको सुख-दुःखदाता, कर्ता पुरुष माने हैं ॥

व्याख्या—महेश, विष्णु, ब्रह्माके बीज मन्त्र क्रमशः क्लीं, ह्रीं, एँ माने हैं। इसी बीज मन्त्रके जापसे, क्रमशः संहार, पालन, और उत्पत्ति वे तीनोंदेव किया करते हैं। यही उनसे कर्म होता है। ऐसा मानके कर्मी, उपासक, और योगीलोग इसी मन्त्रके जापका सेवन करते हैं। और ज्ञानी लोगोंने घ्रीं अक्षरको सबका मूल बीज मन्त्र माने हैं। सो मस्तकमें श्वास वायु चढ़ातेमें घर्र-घुर्र शब्द होता है, उसी घ्रींमें लक्ष लगायकर सुषुम्नामें मन ठहराके, वृत्ति लय करते हैं। वहाँ निरञ्जन देवताके बासा मानके उसीमें मिल जाना चाहते हैं। और निरञ्जनको बीजरूपसे घ्रीं अक्षरका मुख्य देवता मानते हैं; यह गुरुवा लोगोंकी कल्पना है, ऐसा जान लीजिये !॥ यह भावार्थ है ॥ ३१ ॥

साखीः— आपु निरञ्जन कर्ता ❀ दुतिया इच्छा नार ॥

[७] त्रिगुण नाना भाँतिके ❀ महाजाल विस्तार ॥ ३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने ऐसा माने हैं कि—

आपु = आप-ही-आप स्वयं सिद्ध विश्वेश्वर—

निरञ्जन = व्यापकरूपसे निराकार, अञ्जनरूप विकारसे रहित निर्विकार, निर्गुण, परमतत्त्व परमात्मा ब्रह्म जो है, सो जिनका नाम निरञ्जन है।

कर्ता = सोई परमपुरुष जगत्का कर्ता आदि कारण सर्व समर्थ कर्ता है।

दुतिया = दूसरी, आदि कारिणी जगत्कर्ती ब्रह्मके साथमें रही हुई ब्रह्मके मूलशक्ति—

इच्छा नार = अर्धांगिनी माया इच्छारूपी नारी प्रकृति है। (इन्हीं पुरुष-प्रकृति या ब्रह्म मायाके सम्बन्धसे पिण्ड, ब्रह्माण्डकी त्रिगुणी सृष्टि रचना हुई)—

त्रिगुण = तहाँ रज, सत्त्व, तमोगुणवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश पैदा भये या त्रिगुणी मायाका जगत् जालोंकी उत्पत्ति हुई—

नाना भाँतिके = सोई नानारूपमें नाना तरहसे अनेकों भाँतिके बनते भये।

महाजाल = महान कठिन खानी, वाणीके अनन्त जाल, फन्दा रचना करके या बना-बनाकर—

विस्तार = भ्रमिक मनुष्योंने फैलावा किये, तथा चारखानीमें अनन्त योनियोंका विस्तार हुआ, तो फिर ब्रह्म ही जीव बनके आवागमन चक्रमें आ पड़ा। इससे यह कभी छुटकारा होनेवाला नहीं है। अर्थात् निरञ्जन कर्तापुरुष तथा इच्छारूपी स्त्रीके सम्बन्धसे त्रिगुणमय नाना भाँतिके महाजाल विस्तार हुआ, ऐसा कहा है ॥

व्याख्या— पाँच जड़तत्त्व और अनन्त देहधारी चैतन्य-जीव तो अनादि स्वतः हैं। परन्तु गुरुवा लोगोंने जगत्की उत्पत्तिकी जो कल्पना किये हैं, सो पर्खानेके वास्ते ही यह उत्पत्तिका कथन

यहाँ दर्शाया है। कर्तावादी कहते हैं कि, जगत्कर्ता स्वयं आप ही निरञ्जन, परमपुरुष परमात्माकोई है। सृष्टिकी प्रथमारम्भमें उसने इच्छा वा स्फुरणा किया, तो उसके इच्छामात्रसे मनमोहिनी नारी आदि माया मूल-स्त्री प्रकृति उत्पन्न होके उसके सन्मुख खड़ी भई। तब उसीके साथमें कर्तापुरुषने रमण या भोग-विलास करके, त्रिगुणवाले तीन लड़के उत्पन्न किये। और उधर आकाश-वायुका संयोग हुआ, उनसे जगत्में तीन तत्त्व आदिकी उत्पत्ति भई। फिर उन्हीं तीनतत्त्व और ब्रह्मादि तीन पुत्रोंसे नाना' भाँतिके महाजाल, जगत्का विस्तार हुआ, इस तरह सब जीव बन्धनमें पड़े हैं। यदि पूर्ण-ब्रह्मबोध होवे, तब यह जालोंसे जीव छूटकर मुक्त हो जावेगा। ऐसा मिथ्या कल्पना करके माने हैं। यथार्थमें जीव स्वयं अखण्ड सत्य है। मन सोई निरञ्जन है, मन-मानन्दीसे विषय-भोगोंकी इच्छा जो हुई, सोई इच्छारूपी नारी है। फिर बाह्य स्त्रीसे भगभोग द्वारा त्रिगुणी सन्तान उत्पन्न करके, नाना भाँतिके खानी, वाणीकी बन्धन महान जञ्जाल विस्तार किये, फिर उसी अध्यासवश चौरासी योनियोंमें जाय-जायके पड़े या पड़ रहे हैं बिना पारख ॥ यह भावार्थ है ! ॥ ३२ ॥

सम्बन्ध—चौकड़ी १ से १३ तक तीसरा खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ तृतीय खण्ड ॥ ३ ॥ ❀ ॥

१. जहाँलों त्रिपुटीके हैं जाल ❀ त्रिगुण तीनि लोक तिहुँ काल ॥ ३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब अब त्रिगुणमयी त्रिपुटीके भीतर माया प्रकृतिके तीन-तीन अङ्ग वर्णन करके बताते हैं, सो सुनिये!—(यहाँ त्रिगुणरूप त्रिपुटीके जाल बाहर ब्रह्माण्डमें घटाके बतलाते हैं।)—

जहाँलों = जहाँ तक भी वृद्धि, विस्ताररूपसे संसारमें—

त्रिपुटीके = तीन-तीन भाग मिलायके, त्रीपुटी बनी हैं, सो सब त्रिगुणका ही व्यवहार हैं। उन त्रिपुटियोंके घेरा—

हैं जाल = यह त्रिगुणकी महाजाल वा फन्दा जीवोंको चारों तरफसे बन्धनोंमें फँसानेवाले हैं, जैसे—

त्रिगुण = रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण, यह तीन प्रकारके गुण स्वभाव हैं। सो सबोंमें समान-विशेषरूपमें रहता है।

तीनि लोक = और स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तथा उत्तम, मध्यम, कनिष्ट ये तीन प्रकारके लोक और लोग होते हैं ! ॥

तिहुँ काल = तैसे ही भूत, भविष्य और वर्तमान, ये तीन काल होते हैं। तथा योगी, ज्ञानी, भक्त। कामी, क्रोधी, मोही, ये तीनों-तीनों भी यहाँ बन्धनदायी काल ही बने हैं। यही मुख्य त्रिपुटीके जाल हैं, इसीसे सब जाल फैलते हैं, ऐसा जान लीजिये ! ॥

व्याख्या—इस प्रकरणमें अब माया प्रकृतिके त्रिगुणका विस्तारसे महाजाल दर्शाते हैं। संसारमें जहाँतक भी गुरुवा लोगोंने त्रिपुटीके विभाग बता करके तीन-तीन भाग वर्णन किये हैं, सो सब त्रिगुण मायाका व्यवहार महाजाल है। प्रथम, जड़ाध्यासी सब जीव रज, सत्त्व, तमोगुणयुक्त स्वभाववाले चार-खानीमें नाना देहें धरके पैदा भये हैं। दूसरा, नरजीवोंने स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, ऐसे तीन लोक होनेका बाहर कल्पना किये हैं। और तीसरा, भूत, भविष्य, वर्तमान, ये तीन कालमें जड़ाध्यासी जीव काल कवलित हो रहे हैं, अर्थात् देह धरते, छोड़ते, जन्म, मरण, गर्भवासके चक्रमें पड़े हुये हैं। यही कार्य तनी कालमें चल रहा है ॥ ३३ ॥

२. वर्षा शिशिर धूप निहार ❀ शशि औ सूर्य राहु परचार ॥ ३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब त्रिगुणमयी त्रिपुटीके भीतर माया प्रकृतिके तीन-तीन अङ्गोंका ही वर्णन करके बतला रहे हैं—

वर्षा = वर्षाकालका समय, रजोगुण ब्रह्माके रूपमें उत्पत्तिकर्ता माने हैं।

शिशिर = ठण्डीका समय, सत्त्वगुण विष्णुके रूपमें पालनकर्ता माने हैं।

धूप = और गर्मीका समय तमोगुण महेशके रूपमें संहारकर्ता माने हैं।

निहार = ऐसे तीन कालको ही त्रिगुणके लक्षण घटाके तीन देवताके रूपमें तीन कर्म करनेवाले, ऐसे गुरुवा लोग देखने लगे या देख रहे हैं। तैसे और भी कहा है सुनिये!

शशि = चन्द्रमाको रजोगुण ब्रह्माके रूपमें कहा है। देहमें चन्द्रनाड़ीसे उत्पत्ति माने हैं।

औ = और दूसरा—

सूर्य = सूर्यको सत्त्वगुण विष्णुके स्वरूपमें कहा है। देहमें पिंगलानाड़ीसे पालन माने हैं।

राहु = चन्द्र-सूर्यको ग्रास करनेवाला माना हुआ राहुको तमोगुण महेशके रूपमें कहा है। देहमें सुषुम्ना नाड़ीसे संहार होना माने हैं।

परचार = ऐसा गुरुवा लोगोंने मानके वाणीका प्रचार किये हैं। यह सब मानन्दी उन्हीं लोगोंका है, ऐसा परिचय करके जानिये! ॥

व्याख्या—अब सोई बात ब्रह्माण्डमें बाहर भी घटाके बतलाते हैं। वर्षा, शिशिर, और धूप, ये तीन काल या मौशम होता है। उसमें वर्षा द्वारा वनस्पति आदि खानियोंकी पृथ्वीमें उत्पत्ति होती है, इससे वर्षाकालको रजोगुण ब्रह्माका स्वरूप माने हैं। शिशिर-ऋतुमें उन उत्पन्न हुये पदार्थ सबका पालन होता है, इससे सत्त्वगुण विष्णुका स्वरूप शिशिर-ऋतुको माने हैं। और धूपकालमें वे सब परिपक्व होके नाश हो जाते हैं। इससे धूपको तमोगुण महादेवका स्वरूपमें माने हैं॥ और वैसे ही चन्द्र, सूर्य, राहुको बाहर ग्रह माने हैं। उनमें चन्द्रमाको रजोगुण ब्रह्माके रूपमें, सूर्यको सत्त्वगुण विष्णुके रूपमें, और राहुको तमोगुण महादेवके रूपमें निश्चय करके माने हैं। वही यहाँ देहमें इङ्गलारूप चन्द्र-नाड़ीसे उत्पत्ति होती है। पिङ्गलारूप सूर्य-नाड़ीसे पालन होता है। और सुषुम्नारूप राहुनाड़ीसे संहार होता है, ऐसा माने हैं। यही सब गुरुवालोग नाना प्रकारसे उपदेश देके संसारमें अपना-अपना मत प्रचार कर रहे हैं, उसे परखके भ्रमको त्यागना चाहिये॥ ३४॥

३. रेखा अकार उकार मकार ❀ क्षर अक्षर निःअक्षर सार॥ ३५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! उसी प्रकार और भी कहा है सुनिये!—

रेखा = ॐकारके तीन मात्राओंका रेखा वा चिह्न, इस प्रकार कहा है—

अकार = रजोगुण ब्रह्मा सोई अकार मात्रा है। देहमें त्रिकुटी स्थानमें अकार मात्रा माने हैं।

उकार = सत्त्वगुण विष्णु सोई उकार मात्रा है। देहमें कंठ स्थानमें उकार मात्रा कहा है।

मकार = तमोगुण महादेव सोई मकार मात्रा है। देहमें हृदय स्थानमें मकार मात्रा माने हैं।

क्षर = और स्थूल शरीर नाश होनेवाला है। यह रजोगुणके ठिकानेमें कहा है।

अक्षर = सूक्ष्म देह या प्राणवायुको माने हैं। यह सत्त्वगुणके ठिकानेमें माना है।

निःअक्षर = श्वास स्थिर होनेसे देखनेमें आनेवाला प्रकाशको ब्रह्म माने हैं। यह तमोगुणके ठिकानेमें कहा है।

सार = निःअक्षर प्रकाशको ही परमतत्त्व परमात्मा सबका सार माने हुए हैं॥

व्याख्या— अकार, उकार, मकार यह तीन मात्राओंको शरीरमें रेखा माने हैं। उसीको तीन गुण, तीनदेव और देहमें तीन स्थानोंमें घटाये हैं। तथा क्षर, अक्षर, निःअक्षरको भी देह, श्वास, और ज्योतिके रूपमें सार ठहराके तीनों गुणोंमें घटाया गया है॥ ३५॥

४. अव्यक्त व्यक्त है बानी तीनि ❀ इङ्गला पिङ्गला सुषुम्ना कीनि॥ ३६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अव्यक्त = वाणीसे परे माना हुआ अप्रगट या गुप्त ब्रह्म है, यहाँपर श्वासका लय होना, अव्यक्त सोई तमोगुण है।

व्यक्त है = ब्रह्मसे प्रगट हुई माया है। यहाँपर श्वास वायु चलता है, सो उसको सत्त्वगुणमें माने हैं।

बानी = यह रजोगुण है, इससे बावन अक्षरोंकी उत्पत्ति हो, वेद, शास्त्रादिके सब वाणी बनी है।

तीनि = पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी यह तीन वाचासे क्रमशः उक्त तीनों वाणी आदि उत्पन्न

हुई कहते हैं। और—

इङ्गला = नाशिकाके बायाँ छिद्रसे चलनेवाली वायु है, सो रजोगुण ब्रह्माके रूपमें कहा है।

पिङ्गला = नाशिकाके दाहिना छिद्रसे चलनेवाली वायु है, उसे सत्त्वगुण विष्णुके रूपमें माना है।

सुषुम्ना = दोनों छिद्रसे मध्यमें समान श्वास चलना, उसको तमोगुण महादेवके रूपमें गुरुवा लोगोंने माने हैं।

कीनि = ऐसे त्रिभाग करके योगी लोग श्वास चढ़ायके ध्यान समाधि करते हैं। इस तरहसे तीन-तीन भागके त्रिपुटी कथन किये हैं॥

व्याख्या—और अव्यक्त, व्यक्त तथा वाणी यह तीनोंको भी क्रमशः श्वासका लय, श्वासका चलना और ५२ अक्षरोंकी सब वाणी बनी, सो भी तीनों गुणमें माने हैं। एवं इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, यह तीनों नाड़ियोंको जो नाशिकाके बायाँ, दाहिना, और मध्यसे चलती हुई वायु है, इसको भी तीन गुण, तीन देवतामें विभक्त किया गया है, ऐसा जानना चाहिये। खुलासा ऊपर शब्दार्थमें हो चुका है। अतः संक्षेपमें व्याख्या कहा गया है॥ ३६॥

५. वोहं सोहं रं अमान ❀ सत्त सादृश मध्य जो भान॥ ३७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! और गुरुवा लोगोंकी मानन्दी सुनिये!—

वोहं = ॐकार स्वरूप वो कोई ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ। यह रजोगुणी ब्रह्माका जाप है। कर्म मार्गमें ॐअक्षर प्रधान माना है।

सोहं = सो ब्रह्म मैं हूँ! यह तमोगुणी महेशका जाप है। योग मार्गमें प्रधान माना है।

रं = सबमें रमा हुआ आत्माराम मैं हूँ! यह सत्त्वगुणी विष्णुका जाप है। उपासना मार्गमें प्रधान माना है।

अमान = मायारूप जगत्के मानसेरहित कोई शुद्ध ब्रह्म-परमात्मा मानके उसके प्राप्तिके वास्ते उपरोक्त जाप और साधना किये और कर रहे हैं। वह त्रिगुणी लोगोंका जाप है।

सत्त = और कोई वस्तुको या ईश्वरादिको सत्य करके मानना, सो रजोगुणमें है।

सादृश = उसके कल्पनाके सरीखी वस्तु ध्यानमें या प्रत्यक्षमें देखनेमें आना, सो सत्त्वगुणमें माने हैं। और—

मध्य = उन दोनोंके बीचमें या मध्य भागमें हृदय स्थानमें—

जो भान = जो कि, पहिचान या ज्ञान होना, वा भान होता है, सो तमोगुणरूपमें माने हैं॥

व्याख्या— जगत्के मान-गुमान, विकार मायोपाधिसे रहित कोई एक परब्रह्म परमात्मा कर्ता पुरुष मानके ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन्होंने प्रथम ध्यान लगायके श्वास वायुमें लक्ष लगाये, तो वोहं या ॐका जाप ब्रह्माने रजोगुणसे किया। सोहंका जाप महादेवने तमोगुणसे किया और रं या रामका जाप विष्णुके सत्त्वगुणसे किया। इसीको अजपा-जाप माने हैं। सत्त, सादृश और भान, यह त्रिपुटीमें कोई वस्तुको या ईश्वरको सत्य माने हैं; सो रजोगुण सम्बन्धी है। अपने-अपने भावनाके स्वरूपमें वस्तु देखनेमें आना, सो सादृश सत्त्वगुण सम्बन्धी है। और सत्त-सादृशके मध्यमें पदार्थोंका ज्ञान होना, वह भान है; सो तमोगुण सम्बन्धी माने हैं॥ ३७॥

६. दैहिक दैविक भौतिक ताप ❀ वर्णन मोक्ष पुण्य औ पाप॥ ३८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दैहिक = देहके सम्बन्धमें ज्वर, शूल, दर्द, खाँसी, दमा इत्यादि नाना रोग होना, सो यह सत्त्वगुण सम्बन्धी कहा है। वह मानसिक कर्म अध्यासका फल है।

दैविक = अकस्मात् होनेवाला दुःख, चार तत्त्व सम्बन्धसे जो हो जाता है, सो तमोगुण सम्बन्धी माने हैं। वह वाचिक कर्म अध्यासका फल है।

भौतिक ताप = साँप, बाघ, सिंहादि, नर, पशु, प्राणीमात्रसे दुःख मिलना, इसको रजोगुण सम्बन्धी माने हैं। यह कायिक कर्म अध्यास-

का फल है। यही तीन तापोंका वर्णन है।

मोक्ष = जगत् बन्धनादिसे छूटके मुक्त हो जाना, या सब जगत्को एक ब्रह्ममें लय करके मोक्ष होना कहे हैं, सो तमोगुण प्रधान कहा है। और—

पुण्य = अच्छा धर्म, कर्म करके प्राणियोंको सुख देना, सो सत्त्वगुण प्रधान कहा है।

औ = और तीसरा—

पाप = नाना कुकर्म करके जीवोंको दुख देना, हिंसादि पापकर्म करना, सो रजोगुण प्रधान कहा है।

वर्णन = वर्ण आश्रमादि धर्म, नियम, कर्म पालनादिका वर्णन वेद, शास्त्रोंमें विस्तारसे किया है॥

व्याख्या— तीन तापोंमें—सतोगुण मानसिक कर्म-विकार अध्यासका भाग ही दैहिक ताप होता है। रजोगुण कायिक कर्म विकार अध्यासका भाग भौतिक ताप होता है। और तमोगुण वाचिक कर्मविकार अध्यासका भाग दैविक ताप होता है, ऐसा माना जाता है॥ "चौपाईः—दैहिक दैविक भौतिक तापा। मानस वाचिक कायिक पापा॥ रज सत तमगुण कर्मसे चाला। भौतिक दैहिक दैविक हाला॥" पाप, पुण्य और मोक्षका जो शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं, सो रजोगुणसे पाप होता है। सत्त्वगुणसे पुण्य होता है, और तमोगुणसे सबका लय करके मोक्ष माने हैं॥ ३८॥

७. देव तीनि नाम गुण रूप ❀ कर्ता क्रिया कर्म स्वरूप॥ ३९॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

देव तीनि = ब्रह्मा, विष्णु, महादेवको मुख्य तीन देवता माने हैं। अथवा उन्हें उत्पत्ति, पालन, संहार कर्ता ठहराये हैं।

नाम = देह और पदार्थादिका कोई कल्पित नाम रखना, सो रजोगुण कहा है।

रूप = प्रत्यक्ष दृश्य आकार स्वरूप यह सत्त्वगुणका भाग माने हैं। और—

गुण = वस्तुओंके विषय या गुण यह तमोगुणके भागमें कहे हैं।

कर्ता = जगत्कर्ता माना हुआ ईश्वर या देहके कर्मकर्ता जीव, तमोगुणमें कहलाता है।

क्रिया = सूक्ष्म चित्त, बुद्धि, मन, हंकारकृत क्रियाका व्यवहार, यह सतोगुण सम्बन्धमें होता है। तथा—

कर्म = स्थूल, सूक्ष्म देहोंसे होनेवाला सब कर्म रजोगुणके भागमें माने हैं।

स्वरूप = इसी जड़ाध्यासोंमें लगके जीव निज स्वरूपको भूला है और भूल रहा है!॥

व्याख्या— अब यहाँ तीन देवताओंको नाम, रूप, गुणमें घटाते हैं। नाम, रजोगुण ब्रह्माका भाग माना है। रूप सत्त्वगुण विष्णुका भाग कहा है। और गुण तमोगुण महादेवका भाग माने हैं। तथा कर्ता, ईश्वरादि तमोगुण सम्बन्धी है। क्रिया, अन्तःकरण चतुष्टयादिकी व्यवहार सत्त्वगुण सम्बन्धी है। और कर्म, समस्त रजोगुण सम्बन्धी माने हैं। ऐसा तीन-तीन भाग सब तीन गुणोंमें ही बट जाते हैं। ऐसा जानना चाहिये॥ ३९॥

८. इन्द्री इन्द्रिय कर्म विचार ❀ इन्द्री देव सोई अनुहार॥ ४०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

इन्द्री = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँदि सब १० इन्द्रियाँ जो हैं, सो रजोगुण सम्बन्धित हैं।

इन्द्रिय कर्म = और दशों इन्द्रियादियोंसे देखना, सुननादि जो कर्म हो रहा है, सो विषय तमोगुणका भाग है।

इन्द्री देव = चौदह इन्द्रियोंके १४ देवताएँ सो- सत्त्वगुण सम्बन्धित माने हैं।

सोई = उसीको जीवकी सत्तासे तत्त्वोंके कलासे वे चलते हैं, ऐसा बोध न होनेसे गुरुवा लोगोंने—

अनुहार = सूक्ष्मरूपसे व्यवहार करनेवाले सच्चा देवता माने हैं।

विचार = सत्य विचार करके देखिये! यह सब देवतादि मिथ्या कल्पना ही मात्र है। परन्तु गुरुवा लोगोंने उसे ही सच्चा मानके विचार किये हैं

व्याख्या— इसमें स्थूल, सूक्ष्म चौदह इन्द्रियोंकी रजोगुणसे उत्पत्ति कहे हैं। तथा इन्द्रियोंके चौदह देवताओंका सत्त्वगुणसे उत्पत्ति और इन्द्रियोंके कर्म-विषयादिको तमोगुणसे उत्पत्ति माने हैं। देवताएँ सूक्ष्म वायुरूपसे सत्य हैं, ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं। परन्तु यह अविचारकी कल्पनामात्र है। क्योंकि, देहमें तत्त्वोंके कलासे बनी हुई इन्द्रियाँ, तत्त्वोंकी शक्ति तथा जीवकी सत्तासे चलती हैं। और माना हुआ १४ देवता ही असिद्ध, असत्य है, तो फिर उनके शक्तिसे देह, इन्द्रियाँ कैसे चलेगी ? यह ठीक विचारसे जानना चाहिये ॥ ४० ॥

९. ज्ञान भक्ति कर्मके भेव * प्रयागराज त्रिवेणी सेव ॥ ४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं – हे सन्तो !

ज्ञान = ब्रह्मज्ञान तमोगुण प्रधान है।

भक्ति = और नवधा भक्ति सत्त्वगुण प्रधान कहा है। और—

कर्मके = जितने कर्मकाण्डके विस्तार हैं, सो सब रजोगुणके प्रधान भागमें हैं।

भेव = इसका उपरोक्त यही भेद है, ऐसा जान लीजिये ! अथवा कोई ज्ञानमें लगे हैं। कोई भक्ति, उपासनामें लगे हैं और कोई कर्मकाण्डमें लगे हैं। पारखका भेद पाये बिना वे सब धोखामें ही पड़े हैं।

प्रयागराज = बाहर तीर्थोंका राजा माना हुआ प्रयागराज, इलाहाबादमें पड़ता है। तैसे देहमें त्रिकुटीमें माने हैं। वहाँपर—

त्रिवेणी = तीन नदियोंका सङ्गम या मिलाप हुआ है। सो गङ्गा-सत्त्वगुण है, यमुना रजोगुण है, और सरस्वती तमोगुणरूपमें कहा गया है; एवं इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना इन तीन नाड़ियोंको देहमें भी वैसे ही माने हैं।

सेव = मुक्तिके वास्ते भ्रमिक लोग उसीकी सेवन, अभ्यास किया करते हैं या कर रहे हैं॥

व्याख्या— और वेदके ज्ञानकाण्डसे ब्रह्मज्ञान मार्गसे अद्वैत मत जो निकाले हैं, सो तमोगुणका ही भागमें है। तथा उपासना काण्डसे द्वैतमत, नवधा-भक्ति, सगुण-निर्गुण भक्तिमार्ग जो निकाले हैं, सो सत्त्वगुणका भाग कहा है। और कर्मकाण्डसे जो विसिष्टाद्वैत मत तथा नाना प्रकारसे कर्म मार्ग निकाले हैं, सो रजोगुणका भाग है। ऐसा उसका भेद जानिये ! और बाहर इलाहाबादके पास-मेंसे बहती हुई त्रिवेणी नदी सङ्गमको प्रयागराज—सब तीर्थोंके राजा माने हैं। उसमें सत्त्वगुणसे गङ्गाजी होती भयी। रजोगुणसे यमुना प्रगट भयी। और तमोगुणसे सरस्वती उत्पन्न भयी। ऐसा अनुमानसे माने हैं। सोई शरीरमें त्रिकुटी घाटमें प्रयागराज मानके उसमें इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, सत्त्व, रज, तम, ऐसे तीनों गुण तीनों नदीके समान मिलाप होना माने हैं। कर्मी, योगी, भक्त आदि मुक्तिके वास्ते उसीकी सेवन किये और कर रहे हैं, बिना विचार भ्रम चक्रमें ही पड़े हैं॥ ४१ ॥

१०. कारण कारज परगट होय * यथार्थ परमार्थ स्वार्थ सोय ॥ ४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कारण = बाहर चारों तत्त्वोंके परमाणु कारण हैं। यहाँ सुखका अहं अध्यास जन्मृतिका कारण है। यह तमोगुणमें है।

कारज = घट-मठादि कार्यका बनाव होना या अन्तःकरणमें इच्छा मायाका स्फुरणाका होना कार्य है। यह सत्त्वगुणमें है।

परगट = प्रत्यक्षरूपमें नाना वस्तु तैयार होके प्रगट-

होय = होना, या इन्द्रियोंके व्यवहार प्रगट होके खानी, वाणीका विस्तार होना है, यह रजोगुणमें है। और—

यथार्थ = जैसा-का-तैसा सत्यको यथार्थ कहते हैं, परन्तु सो यहाँ तो ब्रह्मको सत्य यथार्थ माने हैं, सो तमोगुणका भाग है।

परमार्थ = निज, पर कल्याणकरनेको परमार्थ कहा है, परन्तु वहाँ ईश्वरादिके भक्तिको परमार्थ माने हैं, सो सत्त्वगुणका भाग है।

स्वार्थ = स्वयंके आनन्द विषय सुखादिके वास्ते प्रयत्न करना सो स्वार्थ है। यह रजोगुणका भाग है।

सोय = उसीमें सब नरजीव गाफिल हो सो रहे हैं॥

व्याख्या— और सत्य चैतन्य जीवको यथार्थ न जानके गुरुवा लोगोंने कोई एक कर्ता ईश्वर, ब्रह्म आदिको यथार्थ वस्तु माने हैं, सो तमोगुणका भाग है। फिर पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचार करके परम अर्थ, यानी जीवनका कल्याण करना, सो सच्चा परमार्थ है। परन्तु सो यह ठीकसे न जानके कल्पित ईश्वरादिके भक्तिमें लगना, उसे परमार्थ माने हैं। सो सत्त्वगुणका भाग है। और सिर्फ पशुवत् विषय भोगोंमें ही लक्ष बना रहना। उसीके निमित्त नाना प्रयत्न करना, सो स्वार्थ रजोगुणका भाग है। और चार तत्त्व स्थूल तथा सूक्ष्म परमाणु यही जगत् घट-मठादिका कारण है। तथा सुखका अहं अध्यास, देह धारण करानेका मुख्य हेतु है। परन्तु गुरुवा लोगोंने कोई ब्रह्म कारण जो माने हैं, सो तमोगुणका भाग है। तथा तत्त्वोंकी शक्तिसे नाना पदार्थ बनना-बिगड़ना, सो कार्य है। और भीतर इच्छा, स्फुरणाका उठना, वह भी कार्य है। परन्तु ईश्वरसे जगत् कार्यरूपमें पैदा भया, जो माने हैं, सो सत्त्वगुणका भाग है। और बना हुआ पदार्थ प्रत्यक्ष देखनेमें आना, या देहादि पैदा होके आना, एवं इन्द्रियोंका व्यवहार खानी-वाणीमें प्रगट होना, सो रजोगुणका भाग कहा है। इस प्रकार अध्यासवश यही त्रिगुण चक्रमें ही जीव घुमते रहते हैं, बिना पारख ॥ ४२ ॥

११. शब्द ब्रह्म ब्रह्माके भेव * सगुण ब्रह्म हरी सो देव ॥ ४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

शब्द ब्रह्म = "शब्द ब्रह्मेति श्रुतिः" ऐसा वेद प्रमाणसे ॐकारको शब्दरूप ब्रह्म ठहरायके, सोई सिद्धान्त—

ब्रह्माके = रजोगुणी ब्रह्माके मनमें दृढ़ हुई, सो उसीके मानन्दीका—

भेव = सत्य भेद न पाके भेद-अभेद मिलाकरके एक मान लिये, यही इसका मर्म है। यह रजोगुण सम्बन्धी है।

सगुण ब्रह्म = "सगुण ब्रह्मेति श्रुतिः" ऐसा वेद प्रमाणसे क्षीर सागर निवासी आदिनारायण-वा महाविष्णु तथा उनके २४ अवतारको भी सगुणरूपसे ब्रह्म करके सिद्धान्त ठहराना—

हरी सो = सोई सत्त्वगुणी विष्णुका मत या सिद्धान्त है। यह सत्त्वगुण सम्बन्धी है।

देव = जीवोंको कर्म भोग सुख-दुःख फलादि देनेवाले बड़े देवता ब्रह्मा, विष्णु आदिको ही बहुतेरे लोगोंने माने हैं। अथवा सोई हरि देवको ही भक्तोंने सगुण ब्रह्म कहे हैं॥

व्याख्या— अर्थात् वेद प्रमाणसे ब्रह्माने शब्द ब्रह्म ॐकारको सिद्ध किया है। सो रजोगुणकी कला है। तैसे ही—विष्णुने सगुणब्रह्मको ब्रह्म देवता सिद्ध किया, सो सत्त्वगुणकी कला है॥ ४३ ॥

१२. शङ्कर निर्गुण आपै आप * भेद उठै तिहुँ होय मिलाप ॥ ४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शङ्कर = और तमोगुणी महादेवने—

निर्गुण = "निर्गुण ब्रह्मेति श्रुतिः" ऐसा वेद प्रमाणसे निर्गुण, निराकर, पूर्णव्यापक ब्रह्मसिद्धान्तको माने हैं। और उसको—

आपै आप = निरञ्जन परमात्मा स्वयमेव या स्वतः अधिष्ठान माना गया है। तहाँ—

भेद = द्वैतका भेदभाव सब एकदमसे सर्वथा—

उठै = उठ जानेपर या नाश हो जानेपर अभेद, अद्वैत दर्शन या आत्मस्थितिमें—

तिहुँ = ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनोंके-शब्दब्रह्म, सगुणब्रह्म, निर्गुणब्रह्म, यह तीनों ही—

होय मिलाप = एक अद्वैत अधिष्ठान ब्रह्ममें मिलाप होय करके एकत्व हो जाता है। ऐसे परब्रह्ममें सब मिलके अभेद हो जाते हैं, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— और महादेवने निर्गुण निरञ्जन ब्रह्म स्वयं कर्ता सिद्ध किया है, सो तमोगुणका भाग है। परन्तु ब्रह्म स्थितिमें तीन गुण, तीन देह, तीन अवस्थादि सब भेदभाव मिट करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनोंका मिलाप हो जाता है या एक समान स्थिति तीनोंकी हो जाती है, तो अभेद अद्वैत ही शेष रह जाता है, फिर वहाँपर कोई कुछ भी भेद नहीं रह जाता है, ऐसा माने हैं॥ ४४ ॥

१३. वात पित्त कफ नाड़ी तीन * सन्निपात शून्य लौलीन ॥ ४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

वात = वायु सम्बन्धी नाड़ी है, यहाँ योग तमोगुणरूप सोई काम विकार है ।

पित्त = पित्तनाड़ी, भक्ति, सत्त्वगुणरूप है, सो यहाँ क्रोध विकार है ।

कफ = कफनाड़ी, कर्म, रजोगुणरूप है, सो यहाँ लोभ विकार है ।

नाड़ी तीन = यह तीन नाड़ी स्थूल, सूक्ष्म, कारण, इन तीन देहोंकी कहा गया है । जब तीनों नाड़ी, तीनों मार्ग तीन गुण और तीनों विकार—मिलके एक हो जाते हैं; तब—

सन्निपात = विकृत सन्निपात अवस्था होके सब कार्य बिगड़ जाता है । सब विनाश हो जाता है ।

शून्य = इच्छामाया भी शून्य ब्रह्ममें जायके एकमेंक होके शून्यमें—

लौलीन = लय होके मिल जाती है । तो देह छूटके नाश हो जाता है, तथा संसार भी प्रलय हो जाता है, ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं ॥

व्याख्या— देहमें वात, पित्त, और कफ, ऐसे तीन नाड़ियाँ रह रही हैं । सो तीनोंका एकत्र-मिलाप हो जानेसे सन्निपात रोग होता है, तो फिर उस अवस्थामें कोई दवाई भी नहीं लगती है । पश्चात् देह नाश ही हो जाता है । तैसे ही यहाँपर कफ, रजोगुण, कर्ममार्ग है । पित्त, सत्त्वगुण, उपासनामार्ग है । और वात तमोगुण, योगमार्ग है । ये तीनों ज्ञानमार्गमें सम्मिलित हुए, सोई सन्निपातवत् होके शून्य धोखारूप ब्रह्ममें वृत्ति लौलीन या लय हो जाते हैं । फिर उनको कोई औषधरूप सत्य उपदेश विचार भी नहीं लगता है । जड़ाध्यासी हो, चारखानी चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं ॥ यह भावार्थ है ॥ ४५ ॥

साखीः— मृतुक सनेही तीनि गुण * चौथे शून्य सो जान ॥

[८] भेद उठावै चहुँ कला * तुर्यातीत विज्ञान ॥ ४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

मृतुक = जिसमें, चैतन्यता कुछ भी नहीं है, ऐसे जड़ पाँचतत्त्वोंके भागरूप देह आदिको मृतक नाशवान् कहते हैं, और—

तीनि गुण = रज, सत्त्व, तम ये त्रिगुण हैं तथा तीन देह, तीन नाड़ी, तीन पद आदि जो हैं, उसीको त्रिगुणी जड़ाध्यासी मानव—

सनेही = नरजीवोंने वा पूर्वमें अज, हरि, हर, इन्होंने स्नेह या प्रीति लगायके महान बन्धनोंमें पड़े और पड़ रहे हैं ।

चौथे शून्य = उक्त तीनों गुणोंका लय करके आगे बढ़े, तो चतुर्थ तुरिया इच्छा मायामें, शून्यतामें प्रेम लगा—

सो जान = सो बीजरूप महाकारण है, ऐसा जानिये ! और सो उसमें, जानपनाका अभाव ही रहता है ।

चहुँ कला = फिर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया, ऐसे चार अवस्थाओंका चारमार्ग, चारदेह आदि चारों कलाओंका जब कि—

भेद उठावै = भेद-भाव उठा दिया जाता है, या भेद उठाके अभेद हो जाता है—

तुर्यातीत = तब पाँचवाँ सोई तुरियातीत अवस्थामें एक निर्विकल्प ब्रह्म, साक्षीसे परे—

विज्ञान = विशेष ज्ञान, समान चैतन्यरूपमें रह जाता है, कोई परमहंस ही विज्ञान ब्रह्म दशाको प्राप्त करते हैं । ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् जड़, चैतन्यका भेद न जान करके त्रिगुणी जड़ाध्यासी नरजीवोंने मृतुक कहिये जड़ पाँच तत्त्वोंके ही मुख्य भाग त्रिगुण हैं । जैसे—पृथ्वी, जल दोनों तत्त्व मिलके रजोगुण उत्पन्न होता है । अग्नि, वायु दोनों तत्त्व मिलके सत्त्वगुण होता है, और समान पवनसे तमोगुण प्रगट होता है । ऐसे त्रिगुण संयुक्त प्राणी पञ्चविषयोंमें ही लक्ष लगायके खानी और वाणीके रूपमें प्रेम,

प्रीति लगायके स्नेह किये हैं। तो उसी स्नेहरूप अध्यासोंमें बिना पारख प्रथम ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिसे लेकर समस्त मनुष्य बद्ध हुये। और चौथे ज्ञानीलोग तुरिया अवस्थामें तीनों अवस्थाओंको लय करके शून्य किये। तथा चारों अवस्थाओंके चारों कलाके भेद जहाँ उठा देते हैं या उठ जाता है, सो तुरियातीत साक्षीरहित विज्ञान निर्विकल्प ब्रह्म स्थिति माने हैं। अर्थात् त्रिगुणी प्राणी मृतक शरीरमें स्नेह कर रहे हैं, चौथे ज्ञानी शून्यमें प्रेम लगा रहे हैं। और चारों कलाका जहाँ भेद उठा दिया गया, तहाँ पाँचवाँ तुरियातीतके विज्ञानमें पहुँचके गरगाफ हो जाते हैं। फिर वही अध्यासोंसे चारखानीमें पुनः पुनः भ्रमण करते रहते हैं। बिना विवेक ॥ ४६ ॥

सम्बन्ध—चौकड़ी १ से १४ तक चौथे खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जान लीजिये ! ॥

॥ * ॥ चौकड़ी ॥ चतुर्थ खण्ड ॥ ४ ॥ * ॥

१. तुरियातीत नहिं मान अमान * ज्योंका त्यों सोई परमान ॥ ४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
अमान = माना हुआ ब्रह्म-परमात्मा या अमानी विज्ञानी लोगोंकी स्थिति यहाँपर—
तुरियातीत = साक्षी भावसेरहित, अभाव पाँचवाँ तुरियातीत अवस्थामें निर्विकल्प, अभाव ही बना रहता है, इसीसे—
नहिं मान = जगत्का ज्ञान या मान, गुमान, अपमानादि जानना कुछ भी नहीं रहता है, वृत्ति शून्य रहती है, अथवा मान—जगत् वा अमान—ईश्वर भी कुछ नहीं रहता है—
ज्योंका त्यों = तो जैसाका तैसा ओत-प्रोत आकाशवत् शून्य, शान्त, परिपूर्ण व्यापक ब्रह्ममें एकता बनी रहती है।
सोई = सोई कैवल्य ब्रह्म मुक्तपद है।
परमान = ऐसा कल्पित प्रमाण गुरुवा लोगोंने कायम किये हैं। सो भ्रम भूल ही का वर्णन है॥

व्याख्या— यह चतुर्थ खण्डके चौकड़ीमें ग्रन्थकर्ता दर्शाते हैं कि— तुरियातीत अवस्थामें मान-अपमान, गुमान आदि जगत्का विकारी भाव, या मान-अमान कहिये जगत्-ईश्वर, ब्रह्म, ऐसा कहने-सुननेका कुछ भी व्यवहार नहीं रहता है। तो ज्यों-का-त्यों अद्वैत पूर्ण व्यापक सोई ब्रह्म परमात्मा बना रहता है। ऐसा कथन वेदादि प्रमाणसे कहके गुरुवा लोगोंने यही प्रमाण करके सत्य माने हैं ॥ ४७ ॥

२. है विज्ञान सोइ तुरियातीत * भेद अवस्था उठै परतीत ॥ ४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
तुरियातीत = जाननारूप साक्षीसे रहित, ऐसा तुरियातीतमें शून्य उन्मुन होकर मन लय हुआ—
सोइ = उसीको या सोईको ही—
है विज्ञान = विशेष ज्ञानरूप ब्रह्मज्ञान या विज्ञान दशा माना गया है।
अवस्था = तहाँ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया, ये चारों अवस्थाओंका ही—
भेद = भेदभाव या न्यारा-न्यारा कार्यका नाश होके सम्पूर्ण अवस्थाका भेद—
उठै = उठ जाता है या विलीन होके अभेद हो जाता है। इसीसे तो—
परतीत = सोई ब्रह्म मुक्तपद है। ऐसा विश्वाससे निश्चय या प्रतीति किये हैं॥

व्याख्या— और कहते हैं कि— तुरियातीत अवस्था सोई विज्ञान, कैवल्य दशा ब्रह्मपद है। वहाँ चारों अवस्थाओंका भेद-भाव उठ जाता है। जान-अनजानपना कुछ भी नहीं रहता है, भेदाभेद विवर्जित रहता है। ऐसा निश्चय करके विश्वास या प्रतीत किये हैं ॥ ४८ ॥

३. तुरियातीत निरञ्जन राय * आनन्द भास अव्यक्त कहाय ॥ ४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
तुरियातीत = और साक्षी भाससे रहित विज्ञान जो है, सो तुरियातीत के पद है।
निरञ्जन = सो माया-मलसे रहित निराकार, निर्गुण, निरञ्जन परमात्माको—
राय = सबका मालिक महाराजा माने हैं।

आनन्द भास = फिर वृत्ति स्थिर होनेपर तुरिया इच्छा रूपसे जो आनन्द भासा, तो उसीको आनन्दरूप ब्रह्म माने हैं।

अव्यक्त = वह शून्य अवस्था वाणीसे परे अव्यक्त सबल ब्रह्म है, जो व्यक्त नहीं है, सो अव्यक्त—

कहाय = कहलाया या ऐसा गुरुवा लोग कहने-कहलाने लगे। सो देहका भासमात्र मिथ्या धोखा है। आनन्दभास अव्यक्त भी कहलाया, तो भी मिथ्या ही है॥

व्याख्या— अतएव सकल विश्वका महाराजा या विश्वात्मा, जगदाधार निरञ्जन-परमात्मा सदैव ही तुरियातीत अवस्थामें निराकार, निर्गुण ही बना रहता है। और इच्छा मायाके सम्बन्धसे तुरिया अवस्थामें ब्रह्मानन्दका जो भास भासता है या मालूम होता है, सो माया-ब्रह्म सम्मिलित अव्यक्त सबल ब्रह्म कहलाता है। ऐसा गुरुवा लोग ध्यानका अनुभव लेके, मनसे कल्पना करके, कहते हैं, सो भ्रम है। अर्थात् पाँचवाँ तुरियातीत अवस्थाके शून्य निर्विकल्प स्थितिमें निरञ्जन राजा विशेषरूपसे रहता है। जब उसे लक्षमें आनन्द भासता है, तब वह अव्यक्त ब्रह्म कहलाता है। तहाँ आदि माया उसके साथ ही रहती है, ऐसा कथन किया है, सो जान लीजिये!॥ ५९॥

४. ऋग सो वेद बखाने भेव ❀ अलेप अमान निरञ्जन देव॥ ५०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सो = उपरोक्त उस अव्यक्त आनन्द भासरूपमें माना हुआ कल्पित ब्रह्मका—

भेव = भेद या मर्म अच्छी तरहसे खुलासा करके—

ऋग्वेद = ज्ञानकाण्डका ऋग् नामके वेदमें या ऋग्वेदमें तुरिया साक्षीकी अनुभवसे—

बखाने = ऐसा वर्णन किया है कि—

अलेप = ब्रह्म-परमात्मा व्यापक होते हुये भी किसीमें लेपायमान नहीं है, सो निर्लिप्त है, तथा—

अमान = मायामल या मान-गुमानसे रहित परमेश्वर—

निरञ्जन = निराकार, निर्गुण, निर्विकार वही ब्रह्म-परमात्मा है। और—

देव = सबका मालिक सुख-दुःखका दाता, बड़ा देवता परमेश्वर भी वही है, ऐसा कहा है॥

व्याख्या— सर्वव्यापक होते हुये भी अलिप्त, न्यारा, माया, और मानसे रहित, सोई निरञ्जन देवता ब्रह्म निराकार है। सो ऐसा भेद ऋग्वेदमें वर्णन किया है। वह जीवका भासमात्र है। सोई गुरुवा लोग वर्णन करके मनुष्योंको भुला रहे हैं॥ ५०॥

५. दूजे सुषुप्ति मन आकाश ❀ वेद अथर्वण शून्य विलास॥ ५१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दूजे = और दूसरा वेदका सिद्धान्त ऐसा है कि—

वेद अथर्वण = अथर्वण नामका वेद ऐसा वर्णन करता है या उसमें ऐसा वर्णन किया गया है कि:—

सुषुप्ति = जैसे सुषुप्ति अवस्थामें गाढ़ी निद्रा होनेसे मनुष्य बेभान रहता है, तद्वत् समाधिमें अनुभव हुआ, कि—

मन आकाश = मनादि इन्द्रियाँ शून्य समाधिमें आकाशवत् लय होनेसे जो प्रकाश दिखाई दिया, और—

शून्य = फिर हृदयाकाशमें वृति शून्य होके सुषुप्तिके समान कुछ विशेष—

विलास = दीर्घकाल तक आनन्दका विलास अनुभव हुआ, उसीको परब्रह्मका स्वरूप बतलाया है॥

व्याख्या— दूसरा अथर्वण वेदका सिद्धान्त— सुषुप्ति अवस्था समान समाधिमें मनादि चतुष्टय आकाशवत् अन्तःकरणमें लय होनेसे शून्य सुखका विलास हुआ करता है; अथवा कुछ ज्योति किसी ने देखा; तो उसी आनन्द और ज्योतिको ब्रह्म ठहराया, सो अध्यासमात्र है। ऐसे अथर्वण वेदका शून्य विलास है॥ ५१॥

६. तीजे विकल्प श्वास परमान * शून्य आनरूप यजुर परधान ॥ ५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
तीजे = और तीसरा वेदका सिद्धान्त ऐसा है कि-
विकल्प श्वास = प्राणधारी श्वासकी क्रिया चलानेवाले संकल्प-विकल्प करनेवाले सूक्ष्म, स्थूल देहधारी साकार दश अवतारको ही-
परमान = सगुण ब्रह्म होनेका दृढ़ प्रमाण किया है। यानी श्वासमें विकल्प करके कल्पनासे सगुण परमात्माका प्रमाण किया गया है।
शून्य आनरूप = सो शून्यका आनरूप कहिये, दूसरा स्वरूप स्वप्न अवस्थाका भास या कल्पना है। उसीको—
यजुर = यजुर्वेदमें वर्णन करके—
परधान = मुख्य महान या प्रधान सिद्धान्त कथन करके माना है॥

व्याख्या— तीसरा यजुर्वेदका प्रधान वा मुख्य सिद्धान्त—ईश्वरके साकार दश अवतार देहधारी कहा है। जो कि, प्राणरूप श्वासकी क्रियाको चलाते हुये संकल्प-विकल्प करनेवाले परमात्मा माने हैं। सो शून्य सुषुप्तिके, दूसरा स्वरूप स्वप्न अवस्थाकी कल्पनामात्र है। यही यजुर्वेदका प्रधान कथन शून्य आनरूप स्वप्नवत् कहा है॥ ५२॥

७. चौथे जागृति शब्द विलास * पाँच पचीसों अनन्य भास॥ ५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
चौथे = चौथा वेदका सिद्धान्त ऐसा है कि—
जागृति = जाग्रत् अवस्थाके अध्यास या अनुभवले करके—
शब्द विलास = वाणीके विलास कल्पनासे एक ॐकारको अद्वैत ब्रह्म सुखरूप ठहराये हैं। तो उसमें—
पाँच पचीसों = पाँच तत्त्व और पचीस प्रकृतियोंके सहित पिण्ड-ब्रह्माण्ड समस्त संसार जो है, सो—
अनन्य = ब्रह्मसे दूसरा नहीं, एक ही ब्रह्मस्वरूप ही है।
भास = ऐसा भास दिखता है या ऐसा समझके देखो कहते हैं॥

व्याख्या— और चौथा जागृति अवस्थाके अनुमानसे जो शब्दका विलास किया, सो अद्वैत ॐकार ब्रह्म माना है। पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृति सहित पिण्ड-ब्रह्माण्ड सब एक ही ब्रह्मरूप भासता है, ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं॥ ५३॥

८. सामवेद पूरण परकाश * चारि वेदका सोइ विलास ॥ ५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
सामवेद = और सामवेदमें यही सिद्धान्त वर्णन करके कहा है, और—
पूरण = सर्वमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मका ही महान दिव्य ज्योति—
परकाश = प्रकाश सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है। अतः सब प्रकाश उसीका है। वह पूर्णप्रकाशरूप है, ऐसा माने हैं।
चारि वेदका = ऋग्, अथर्वण, यजुर और साम, ये चारों वेदोंके सिद्धान्त—
सोइ = तुरिया, सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् सोई चार अवस्थाओंके—
विलास = भास, अध्यास, कल्पना, और अनुमानसे सोई परा, पश्यन्ती, मध्यमा, और वैखरी, ऐसे चार वाचाओंके विलाससे प्रगट किये हैं। सो सब जीवोंको बन्धनमें ही डालनेवाला है। बड़ा फन्दा ही खड़ा किया है, ऐसा समझना चाहिये !॥

व्याख्या— सामवेद उसी सिद्धान्तको पूर्णरूपसे प्रकाश करता है कि— सूर्य, चन्द्र, तारागणादि सहित सर्वजगत् पूर्ण ब्रह्मके प्रकाशसे ही प्रकाशित हैं, वह स्वयं प्रकाशरूप है। अर्थात् जागृतिमें शब्दका विलास करके पाँच-पचीसों सहित अनन्य भासना, यही सामवेदका कथन शब्द ब्रह्मका पूर्णप्रकाश कहा है। सोई चार वेदोंके सिद्धान्त क्रमशः अलेप निरञ्जन, शून्य विलास, विकल्प श्वास, और शब्द विलास, यही चारवेदके विलास हैं। सो चार अवस्थाओंके चार वाचासे

निकला हुआ वाणी-विलासमात्र विषय होनेसे मिथ्या भ्रम, धोखा है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ ५४ ॥

सम्बन्धः— अब यहाँ माया प्रकृतिके चार-चार अङ्गोंका वर्णन करके बतलाते हैं, सो सुनिये ! ॥

९. युग जो चार, चार पन होय * जहाँलों चार-चार है सोय ॥ ५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो !

युग जो चार = जो कि बाहर चार युग (४३ लाख, २० हजार वर्षोंकी सब गिनती) माने हैं। सो यहाँपर सत्ययुग, तुरियारूपमें। त्रेतायुग, सुषुप्तिरूपमें। द्वापरयुग, स्वप्नरूपमें। और कलियुग, जाग्रत्‌रूपमें माने हैं। और अष्टाङ्ग मार्ग भी कहे हैं।

चार पन = बालपन ३ वर्ष तक। कुमारपन १० वर्ष तक। युवापन ४५ वर्ष तक। तदुपरान्त चौथा वृद्धापन कहे हैं।

होय = यह मनुष्यादिकी अवस्थाएँ होती रहती हैं। सोई तुरियारूप बालकमें। सुषुप्तिरूप कुमारमें। स्वप्नरूप युवामें। और जाग्रत्‌रूप वृद्धमें, अध्यासकी अवस्था हो जाती है।

जहाँलों = इसी प्रकार जहाँतक भी और—

चार-चार = ४ खानी, ४ वाणी, ४ देह, ४ मुक्ति, ४ वर्ण, ४ आश्रमादि चारों देहोंके चार-चार भाग सब हैं—

है सोय = सोई जीवोंको, बन्धनरूप खड़ा भया है, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— गुरुवा लोगोंने निम्न प्रकारसे समयके हिसाब लगाके कल्पनासे चारयुग माने हैं। चार युगोंकी, वर्षोंकी गिनतीः— १७ लाख, २८ हजार वर्षका सत्ययुग। १२ लाख, ९६ हजार वर्षका त्रेतायुग। ८ लाख, ६४ हजार वर्षका द्वापरयुग। और ४ लाख, ३२ हजार वर्षका कलियुग माने हैं। कलि का दुगुना द्वापर; तिगुना त्रेता और चौगुना वर्ष सत्ययुगमें गिने हैं। सब ४३ लाख, २० हजार वर्षकी एक चतुर्युगी कही गयी है। कल्पनासे ही वह गिनती लगायी गयी है ॥ सो यहाँ सत्य, त्रेता, द्वापर, कलिको तुरिया, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्‌में क्रमशः घटाये हैं। अथवा दो भागोंको भी युग कहते हैं। सो यहाँ चार दूने आठमें अष्टमैथुन, अष्टप्रतिमा पूजा, अष्टाङ्ग योग आदि कार्य भी हो रहे हैं। तथा चार पन देहके माने हैं। सो किसीने ऐसा हिसाब लगाये हैं कि—३ वर्ष तकके बालक, तुरिया सहविकल्पमें रहते हैं। १० वर्ष तकके कुमार, सुषुप्तिरूप मूढ़तामें होते हैं। जवान ४५ वर्ष तक स्वप्नरूप भोग क्रीड़ामें लगे रहते हैं। और तत्पश्चात् बुढ़ापामें चिन्ता, शोक विषयाध्यास जाग्रत् अवस्थामें सन्मुख दृश्य होता रहता है। तदनुसार ही जीवकी गति होती रहती है। जहाँ आशा तहाँ बासा हो जाता है। ऐसे जहाँ तक भी चार-चार भाग चार देहोंके हैं, सो सब जीवोंको बन्धनरूप ही हैं, ऐसा जानिये ! ॥ ५५ ॥

१०. प्रथम हं कारण सो एक * उलटि विचार चतुर्थ विवेक ॥ ५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

प्रथम = मनुष्य देहमें सबसे पहले या सृष्टिके आदिमें जीवोंको—

हं = मैं ब्रह्म कर्ता हूँ ! ऐसी इच्छारूप स्फुरणा प्रगट हुई।

कारण सो = सोई अध्यास, देहादि जगत् बननेका हेतु या कारण बीज है।

एक = जीवमें एक अहंब्रह्म कर्ताकी कल्पना जो खड़ी हुई या स्वयं ब्रह्म ही जगत् उत्पत्तिका निमित्तोपादान कारण हुआ। ऐसा जो माना है। सो बन्धनका कारण हुआ।

चतुर्थ = फिर सहविकल्प तुरियावस्थामें उपरोक्त चारों देहोंके चार-चार भाग सबोंको और जाग्रतादि अवस्थाओंको—

उलटि = उलटायके या लय करके स्वयं निरञ्जन ब्रह्म-परमात्मा अधिष्ठान बना, और उसीका ही—

विचार = ऐसा चिन्तन, मनन या सोच-विचार करके ज्ञानी लोगोंने—

विवेक = आत्म-ज्ञानका विवेक किया कि— मैं ही अद्वैत ब्रह्म सत्य हूँ। सबसे मैं न्यारा हूँ ॥

व्याख्या— प्रथम खानी मनुष्य देह है। सो पहिले किसी मनुष्यने, मैं एक ब्रह्मस्वरूप हूँ !

ऐसा हंकार धारण किया। सोई एक अद्वैत माना हुआ ब्रह्म जगत्का कारण बीजरूप हुआ। उसीसे चारों देह, चारों खानी-वाणी, चार-चार भाग आदि सबका उत्पत्ति हुआ, सो उत्पत्तिकर्ता उसे माने हैं! पश्चात् फिर चारों देह, जगत् सबको कल्पनासे उलटायके या लय करके तुरिया अवस्थामें एक निरञ्जन परमात्माको ही सत्य मानके विचार-विवेक करके, दृढ़कर लिये कि, एक ब्रह्म ही सत्य है ॥ ५६ ॥

सम्बन्ध— माया प्रकृतिके दो-दो अङ्ग वर्णन किया जाता है। सो सुनिये!

११. दुतिया दुन्दज कारण होय ❀ जड़ चेतन दुःख सुख गुण सोय ॥ ५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कारण = जगत्के आदि कारण माना हुआ उस ब्रह्मसे या कारण देहसे—

दुतिया = दूसरी आदि माया वा इच्छा स्फुरणा-रूप मूल माया उत्पन्न हुई। उसीसे—

दुन्दज = जगत् वा देह पैदा होकर, एक-दूसरेसे विरुद्ध महान् दुन्दज, झगड़ा, आवागमन विस्तार—

होय = होने लगी या हुई वा हो रही है, वह माया ही झगड़ेका मुख्य कारण है।

जड़ = पाँच तत्त्व ज्ञान गुणहीन जड़ हैं, इससे भिन्न ही जड़-मायाकृत उत्पन्न हुई, और—

चेतन = ज्ञान गुणवाले चारखानीके अनन्त चेतन जीव नित्य सत्य हैं। चेतन सबको भी ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ माने हैं।

दुःख = कहीं अध्यासी जीव आवागमन, त्रय-तापादि दुःख पा रहे हैं। सो मायाकृत कहा है।

सुख = और कहीं पुण्यफलसे सुख पा रहे हैं, सो ब्रह्मकृत माना है।

गुण = कहीं निर्गुण माने हैं, तो कहीं सगुण हैं, सोई निराकार, साकार कहा है।

सोय = सोई दो-दो भाग मायाका अङ्ग है, उसमें गुण मायाका भाग है, और निर्गुण ब्रह्मका भाग माना है॥

व्याख्या— फिर उसी कारण ब्रह्मसे प्रथमारम्भमें दूसरी इच्छारूप माया उत्पन्न हुई; तब द्वैत भाग जगत्के विस्तार करके, नाना झगड़ा मचा दी। यानी दुन्द हो गया, कहते हैं। अब यहाँसे माया प्रकृतिकी २×२ भागका वर्णन करते हैं। सो उसमें कहीं जड़ कहीं, चेतनका झगड़ा पड़ा; उसमें चेतन ब्रह्मका भाग है, और जड़ मायाका भाग कहा है। तैसे दुःख-सुख, गुण-अवगुण, सगुण-निर्गुणका विभेद झगड़ा बढ़ता ही गया, तहाँ ब्रह्मसे सुख, मायासे दुःख है। ब्रह्मसे गुण, मायासे अवगुण है। ब्रह्मसे निर्गुण, मायासे सगुण भया है, ऐसा कथन किये हैं॥ ५७ ॥

१२. दिन औ रैन पुण्य औ पाप ❀ स्वर्ग नर्क नर नारी थाप ॥ ५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दिन = उजियाला, प्रकाश वा ज्ञानको दिन कहते हैं। सो ब्रह्मकृत प्रगट हुआ कहे हैं।

औ = और इसके विरुद्ध दूसरा भाग—

रैन = अँधियारी, काला वा अज्ञानको रैन कहते हैं। सो मायाकृत उत्पन्न भया माने हैं।

पुण्य = तैसे शुभ कर्म, प्राणियोंको सुख देना, सो पुण्य है। सो ब्रह्मकृत है।

औ = और उसके विरुद्ध दूसरा भाग—

पाप = अशुभ, कुकर्म, हिंसा, व्यभिचार आदिसे जीवोंको सताना, सो पाप है। यह मायाकृत है।

स्वर्ग = कल्पित ७ स्वर्ग वा सुख प्राप्ति या मनुष्य जन्म पाना, स्वर्ग कहा गया है। सो ब्रह्म-कृत है।

नर्क = और कल्पित ७ नरक, या दुःख प्राप्ति वा पशु आदि जन्म पाना नरक माना गया है, यह मायाकृत है।

नर = पुरुष या पतिको नर कहते हैं, सो ब्रह्मकृत कहा है।

नारी = प्रकृति या स्त्रीको जनाना वा नारी कहते हैं, यह मायाकृत अङ्ग है।

थाप = ऐसे दो-दो भागोंमें एक-दूसरेके विपरीत या विरुद्ध थप्पड़ दे, होड़ लगाय, थापना करके, दो-दो भाग ठहराये हैं॥

व्याख्या— तैसे ही दिन और रात, पुण्य और पाप, स्वर्ग-नर्क, नर-नारी; प्रकृति-पुरुष;

ऐसे दोनों विभिन्न प्रकारसे स्थापना किये हैं ॥ ५८ ॥

१३. गुण औ दोष है साधु असाधु * देवता दानव द्वैत बियाधु ॥ ५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

गुण = सद्गुण या त्रिगुण जो है, सो पुरुष अङ्गमें कहा है, अतः यह ब्रह्मकृत है।

औ = और उसके विरुद्ध दूसरा भाग—

दोष है = दुर्गुण, कुस्वभाव, सो दोष है। जो गुणसे विपरीत हो, सो निर्गुण कहा जाता है। इसे मायाकृत कहा है।

साधु = और भेषधारी त्यागी इन्द्रिय जीत सहनशील होवे, सो साधु है। इसे ब्रह्मकृत माना है।

असाधु = तैसे गृहस्थ, भोगी, असंयमी, कुशील, दुष्ट स्वभाववाले असाधु होते हैं, सो इसे मायाकृत जानिये।

देवता = दूसरोंको सुख देनेवाले सद्गुण सम्पन्न, जो हैं, सोई देवता हैं। इसे ब्रह्मकृत कहा है।

दानव = दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाले, दुर्गुणसे भरे हुये, दैत्य, मानव ही, दानव कहलाते हैं। यह मायाकृत है।

द्वैत = ऐसे दो-दो भागोंमें, जितने भी द्वैत हैं—

बियाधु = सो एक-दूसरेके विरुद्ध मिलनेसे रोगों-के समान दुःखदाई होते हैं, इसीको द्वैत, व्याधि समझना चाहिये ॥

व्याख्या— और गुण तथा दोष; साधु, असाधु; देवता, दैत्य; इत्यादि प्रकारसे, दो-दो भाग सो सब द्वैत व्याधिरूप रोग ही यह खड़ा भया है। क्योंकि, वे दोनों एक-दूसरेसे विरुद्ध रहते हैं, इससे वह द्वैत व्याधि है ॥ ५९ ॥

१४. हेतु दुविधा कारज बहु होय * दुन्दज द्वैत कहावै सोय ॥ ६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

हेतु = कारणरूप इच्छा, माया वा ब्रह्मके स्फुरणासे माया करके ही—

दुविधा = उपरोक्त दो-दो प्रकारके संशयरूप जगत् सोई दुविधा—

कारज = कार्य, अंश या विभागरूपमें—

बहु होय = बहुत ही तरहसे यानी अनन्तों प्रकार-से उत्पन्न हुआ या हो रहा है।

सोय = सोई ब्रह्मसे पृथक्—

द्वैत = द्वैतरूप मायाकी दूसरी उपाधि है।

दुन्दज = जिससे वैर-विरोध, जगत् प्रपञ्च माया-का झगड़ा, वही सब दुन्दज—

कहावै = कहलाता है। यानी भवसागर आवा-गमनका झगड़ा, ब्रह्म कहानेवाले भ्रमिक नर-जीवोंको लगा ही रहता है। यह निर्णय है। अतः बहुत कार्य होनेवाला दुविधा हेतुको ही मिटा देना चाहिये ॥

व्याख्या— यह सबोंका हेतु या कारण इच्छा मायाको माने हैं। उसी मायासे द्वैत विस्तार कार्यरूप जगत् पदार्थ बहुत ही उत्पन्न हुआ या होता है, तो सोई जगत् प्रपञ्चका झगड़ा द्वैत कहलाता है। ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं। परन्तु अपनेसे भिन्न दूसरा ब्रह्म मानन्दी किये, सोई द्वैत वाणीका प्रपञ्च कल्पनाका झगड़ा है। इससे जन्ममृतिका झगड़ा लगा ही रहता है ॥ ६० ॥

साखीः— द्वैत अद्वैत न भेद कछु * एकै भाव अनेक ॥

[९] आदि अन्त पूरण तेई * माया मध्य विवेक ॥ ६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब ब्रह्म ज्ञानियोंके मानन्दी दरशाते हैं— हे सन्तो ! गुरुवा लोग कहते हैं कि—

द्वैत = द्वैत प्रपञ्च, माया, व्यष्टि जगत् सृष्टिमें—

अद्वैत = और एक ही अद्वैत, समष्टि अनन्त ब्रह्ममें

कछु = कुछ भी अन्तर वा फरक—

न भेद = भेदभाव नहीं है, वास्तवमें सो अभेद है। क्योंकि—

एकै = अद्वैत पूर्ण एक ही परब्रह्मसे—

भाव = भावना, इच्छा, स्फुरणा या माया उत्पन्न करके ब्रह्मके संकल्पसे ही मायाद्वारा प्रेम-भावसे—

अनेक = जड़-चैतन्य, पिण्ड-ब्रह्माण्डरूप जगत् सृष्टि अनेकोंरूपमें विस्तार होके पैदा हुई है। इसीसे वह ब्रह्म-परमात्मा सदा जैसाका

तैसा ही बना रहता है।

आदि = प्रथमारम्भ या पूर्वमें जगत् सृष्टिके पहले तथा जगत् उत्पन्न होनेपर शुरूसे ही आदि-से लेके—

अन्त = आखिरी पर्यन्त तथा जगत्का अन्त होके महाप्रलय होनेपर भी—

तेई = वह परब्रह्म-परमात्मा सर्वाधिष्ठान हमेशा ज्यों-का-त्यों ही—

पूरण = परिपूर्ण सर्वव्यापक बना ही रहता है।

इसका अनुभव—

माया = माया, काया, जगत्में बेदवाणीके प्रमाणसे

मध्य = बीचका द्वैत भ्रम हटायके हृदयके मध्यमें—

विवेक = विवेक द्वारा उस सत्य आत्मस्वरूपको अभेद दृष्टिसे जानना चाहिये, ऐसा वाणी, कल्पनासे जो ब्रह्मका विवेक गुरुवा लोगोंने किये हैं, सो मिथ्या, भ्रम, धोखामात्र ही है॥

व्याख्या— ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि— द्वैत जगत् और अद्वैत ब्रह्ममें कुछ भी भेदभाव नहीं है। वास्तवमें अभेद ही है। क्योंकि, एक ही ब्रह्मके स्वभावसे "एकोहं बहुस्याम्" करके इच्छा मायासे अनेक जगत् उत्पन्न हुआ है, सो 'घट-मृत्तिका न्याय' एक ही है, तहाँ कहा है:— "सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति"॥ ब्रह्मानन्द वल्ली, अनुवाक ६, तैत्तिरीय उ०॥—वही ब्रह्म बहुत रूप होनेकी इच्छा करता भया॥ अतएव आदिसे अन्त तक या शुरूसे आखिरी पर्यन्त, तथा उत्पत्तिसे महाप्रलय तक और जगत्से ब्रह्मतक दूसरा कुछ द्वैत भाव नहीं है। वही परब्रह्म ही सर्वत्र सब समय पूर्ण व्यापक भरा हुआ है। तब भेद कैसे हो सकता है? यह बीचमें जगत्रूप माया वा काया जो दिखता है, सो भ्रममात्र है। वेद-वेदान्तके वाणी विचारद्वारा हृदयमें विवेक करो कि— यह सब ब्रह्मरूप ही है, इससे अद्वैत ब्रह्म ही एक सत्य है। "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति"। ऐसा गुरुवा लोग वेद वाणीसे ब्रह्मका जो विवेक किये, सो तो मिथ्या भ्रममात्र है। बिना पारख यह भ्रम, धोखा मिटती नहीं। सो पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके उस भ्रमको मिटाना चाहिये॥ ६१॥

सम्बन्ध— चौकड़ी १ से २६ तक पाँचवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ पञ्चम खण्ड ॥ ५ ॥ ❀ ॥

१. आदि अन्त सोइ आपै आप ❀ जगत मध्य माया सन्ताप ॥ ६२ ॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब अब यह पञ्चम खण्डके चौकड़ियोंमें कहते हैं, कि— हे सन्तो! सुनिये, गुरुवा लोगोंने जो सिद्धान्त माने हैं, सो खुलासा करके कहता हूँ!॥

आदि = शुरूसे सृष्टि उत्पन्न होनेके पहले या सृष्टि होनेपर जगत्के आरम्भसे लेकर—

अन्त = एक ब्रह्म ही पश्चात् परिणाममें जगत्के अन्त या प्रलय होनेपर भी वैसे ही पूर्ववत् आदिसे-अन्त तक ज्योंका-त्यों—

आपै आप = स्वयंस्वरूप एक अद्वैत ब्रह्म-परमात्मा ही आपै-आप बना रहता है। इससे—

सोइ = वही सत्य है। और—

मध्य = बीचमें मायोपाधि भ्रान्ति करके—

जगत = जो द्वैत जगत्का प्रपञ्च दृश्य हो रहा है, सो असत्य मिथ्या है।

माया सन्ताप = माया निर्मित काया, सोई जगत् या संसार है, यह मायारूप मिथ्या भास-मात्र मृगजलवत् है। इसमें सिर्फ दुःख ही दुःख भरा है। ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं॥

व्याख्या— यहाँ पर ब्रह्मज्ञानी लोगोंका मत-मानन्दी दिखाते हैं। वेदान्ती लोग कहते हैं कि— ब्रह्म आदिसे अन्त तक उत्पत्तिसे प्रलय तक आप-ही-आप स्वयं ही ज्योंका त्यों बना रहता है। अथवा वह आदि जगत् उत्पत्तिके प्रथम भी सत्य था, मध्यमें भी सत्य है। और अन्तमें जगत्के प्रलय होने-पर भी सत्य ही बना रहता है। इसलिये सोई ब्रह्म आदि-अन्तका कारण आप-ही-आप अधिष्ठान सत्य है। और मध्यमें जो मायाका विस्तार जगत् द्वैतरूपसे दिख रहा है, सो मायोपाधि मृगजलवत् भ्रान्ति मिथ्या भासमात्र है। इसमें जो दुःख-सुख त्रिविधि तापादिसे सन्ताप होता है,

सो भी भ्रममात्र मिथ्या है। अर्थात् यह जगत् तो मध्यके मायाका सन्तापमात्र है। ब्रह्म तो आदिसे अन्त तक आपै-आप स्वयं है ॥ ६२ ॥

२. प्रणव सो पूरण जग भेव * जो दृढ़ गहै सो सोहं देव ॥ ६३ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
सो = सो वह परब्रह्म-परमेश्वर—
प्रणव = पिण्ड-ब्रह्माण्डमें भरा हुआ प्रणव या अण्डरूप ॐकार परमात्मा है।
जग = सो जगत्में सर्वत्र भरा हुआ—
पूरण = परिपूर्ण व्यापक है।
भेव = सो इसका भेद या मर्म ऐसा है कि—
जो = जो कोई जिज्ञासु जीव—
दृढ़ = वेद-वेदान्तके प्रमाण द्वारा दृढ़तासे मनन करके—
गहै = अद्वैत ब्रह्म बोधको ग्रहण करेंगे, या धारण करेंगे, या किये हैं—
सो = सो वह ब्रह्मज्ञानी अभेददर्शी महात्मा "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इस कथनसे—
सोहं देव = स्वयं ब्रह्मदेव सोहंदेव हो जाते हैं। यानी परमात्मामें जीवात्माको मिलाके, वे सोहं ब्रह्मदेवता होते हैं या हुये हैं, ऐसा माना है ॥

व्याख्या— और जगत्में जो परिपूर्ण ब्रह्म है, सोई सत्य है, ऐसा भेद वेदान्त विचार द्वारा जान करके, जो कोईने दृढ़ करके, अद्वैत ज्ञानको ग्रहणकर लिये हैं, सो सोहंदेव या स्वयं ब्रह्म हो गये या हो जाते हैं, अर्थात् प्रणव (ॐ) सोई जगत्में पूर्ण भरा है। सो ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा दृढ़तासे जो ग्रहण करते हैं, सो सोहंदेव हो जाते हैं, ऐसा मानन्दी किये हैं ॥ ६३ ॥

३. सोहं देवका इहै विचार * लिखि मेटै मानै निरधार ॥ ६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं– हे सन्तो !
सोहं देवका = सो ब्रह्म मैं हूँ ! सबको सुख-दुःख दाता, कर्ता, निरञ्जन देव मैं हूँ, यह दृढ़ता ब्रह्मज्ञानका होना, वही सोहंदेवका—
इहै विचार = यही विचार करते हैं कि, वह स्वयं ब्रह्म है।
लिखि = लिख करके यानी बनायके वा उत्पन्न करके जगत्को फिर—
मेटै = मिटाय देवे, या प्रलय करके जो मिटाय देता है, सोई सर्वशक्तिमान्—
मानै = परब्रह्म कर्तापुरुष है, ऐसा मान करके अनुमानसे ठहराकर—
निरधार = यह निश्चय गुरुवा लोगोंने किये हैं कि— वह ब्रह्म निराधार है ॥

व्याख्या— स्वयं ब्रह्म-परमात्मा सोहंदेवका मुख्य विचार यही है कि— जो जगत् सृष्टि आदिको उत्पन्न कर सकै, और फिर उसको मिटायके नाश भी कर सकै, परन्तु वह ज्यों-का-त्यों बना रहै, सोई सर्वशक्तिमान ब्रह्म सत्य, निराधार है। ऐसा निश्चयसे ठहरा करके माने हैं ॥ ६४ ॥

४. अनुस्वार आपै माकाश * अर्धचन्द्र सो शक्ति विलास ॥ ६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
अनुस्वार = और ॐकारकी पाचवीं मात्रा बिन्दु, सो निरञ्जन ब्रह्म स्वरूप है।
आपै = सो आप-ही-आप स्वयंब्रह्म—
माकाश = महान आकाशवत् निराकार आनन्द-स्वरूप है, ऐसा माने हैं।
अर्धचन्द्र = फिर अर्धचन्द्राकार चतुर्थ अर्ध मात्रा जो है—
सो शक्ति = सो यही आदिशक्ति अर्ध मात्रा माया, ब्रह्मकी मूलशक्ति प्रकृति माने हैं।
विलास = ब्रह्म और मायाकी क्रीड़ा विलास सम्बन्धसे यह सृष्टिकी उत्पत्ति माने हैं ॥

व्याख्या— और बिन्दुरूप ब्रह्म, सो स्वयं महाआकाशवत् आनन्दरूप है। सो उसकी शक्ति अर्धचन्द्ररूप आदिमाया है। उसीके साथमें बिन्दु ब्रह्म सर्वदा विलास करता रहता है। तो ब्रह्म तथा शक्तिके सुख विलाससे सब सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, ऐसा माने हैं ॥ ६५ ॥

५. कर्म द्रव्य इच्छा अरु ज्ञान * चारों चरण शक्तिके मान ॥ ६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
कर्म = उत्पत्तिका कर्म होना, सो स्थूल भाग है।
द्रव्य = वस्तुका बनना, पञ्चद्रव्य जो हैं, सो सूक्ष्म भाग है।
इच्छा = स्फुरणा, चाहना, इच्छा प्रगट होना, सो कारण भाग है।
अरु = और चौथा—
ज्ञान = सर्वसाक्षी होके, सब जगत्को नित्य जानना, सो महाकारण भाग है।
चारों चरण = यह चारों भाग या चारों पद, चारों देहोंके ठिकानेमें क्रमशः कहे हैं।
शक्तिके = सो ब्रह्मके अर्धाङ्गिनी आदिमाया या आद्याशक्तिके चाररूपमें घटायके—
मान = गुरुवा लोगोंने माने हैं ॥

व्याख्या— और कर्म, द्रव्य, इच्छा और ज्ञान, यह चारों पद या चरण, माया शक्तिके, चार देहोंके जगहमें माने हैं ॥ ६६ ॥

६. कर्म स्थूल द्रव्य सो थूल * इच्छा कारण ज्ञान है मूल ॥ ६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
कर्म = उसमेंसे यह मायाके मुख्य कर्मरूप—
स्थूल = शक्तिके स्थूल देह या विराट देहके ठिकानेमें कहा है, उससे स्थूल कर्म होते रहते हैं।
द्रव्य = यह मायाके मुख्य द्रव्यरूप है—
सो थूल = सोई सूक्ष्म देहके ठिकानेमें कहा है। उससे सूक्ष्मद्रव्य बनते रहते हैं।
इच्छा = यह मायाके इच्छा-स्फुरणारूप—
कारण = शक्तिके कारण देहके ठिकानेमें कहा है। इससे इच्छा होती रहती है।
ज्ञान = यह मायाकी मुख्य साक्षी ज्ञानरूप है—
है मूल = सो सबोंके मूल शक्तिके महाकारण देहके ठिकानेमें कहा है। इसीसे इच्छा, द्रव्य, कर्म आदि सब विस्तार होता रहता है। ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं। सो आवागमनका कारण मूल ही है। ऐसा जानिये !॥

व्याख्या— उसमें कर्म मायाके स्थूल देहके जगहमें, स्थूल कर्म करनेवाला है। द्रव्य सोई मायाके सूक्ष्मदेहके जगहमें, सूक्ष्मद्रव्य उत्पन्न करनेवाला है। इच्छा, मायाके कारण देहके जगहमें, इच्छा उठानेवाला है। और ज्ञान, मायाके महाकारण देहके जगहमें सर्वसाक्षी हो रहनेवाला है, ऐसा माने हैं। और यह महाकारण ज्ञानशक्ति ही सबोंके उत्पत्तिका मूल है, ऐसा माने हैं ॥ ६७ ॥

७. ज्ञानी आपै स्वतः प्रकाश * ज्ञान अज्ञान सो शक्ति विलास ॥ ६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि—
ज्ञानी = सर्वज्ञ ब्रह्म या उसको जाननेवाले विज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी—
आपै = ब्रह्मस्वरूपमें मिले हुये, आप ही साक्षात् स्वयं ब्रह्म हैं।
स्वतः प्रकाश = सो उनके सर्वज्ञ ज्ञानका प्रकाश या आत्म-प्रकाश स्वतः है—
ज्ञान = बाहर कुछ विशेष जानना या तत्पदका ज्ञान, और—
अज्ञान = विशेष अनजानपना या न जानना, त्वंपद अज्ञान, यह दोनों ही —
सो शक्ति = सो सब माया शक्तिका—
विलास = खेल, क्रीड़ाका व्यवहार विलासमात्र है॥

व्याख्या— वेदान्ती गुरुवा लोग कहते हैं कि— ब्रह्मज्ञानी आप ही ब्रह्म स्वरूपमें मिलके स्वतः प्रकाश एक अद्वैत ब्रह्म रह जाते हैं। सोई विज्ञान असिपद है। और ज्ञान, अज्ञान या तत्पद, त्वंपद, सो सब शक्तिरूपी मायाका विलास विकारमात्र है; यानी ज्ञानी तो आप स्वतः प्रकाश है, और ज्ञान, अज्ञानका प्रकाश तो शक्तिके विलास करके होता है ॥ ६८ ॥

८. विद्या अविद्या मायारूप * अधिष्ठाता पद स्वतः अनूप ॥ ६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
विद्या = और परा विद्यारूप अनुभव ज्ञान—
अविद्या = तथा अपरा विद्यारूप परोक्ष वाणीका ज्ञान सो अविद्या कहलाता है।
मायारूप = यह दोनों भी मायाका स्वरूप विकार ही माने हैं। परन्तु—

अधिष्ठाता = सबका आधार अधिष्ठाता स्वरूप जो है, सो विद्या, अविद्याका भी अधिष्ठाता है।

पद = वह अद्वैत ब्रह्मपद तो—
अनूप = उपमाओंसे रहित—
स्वतः = स्वयं आप-ही-आप है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— और विद्या, अविद्या तथा परा, अपरा एवं परोक्ष, अपरोक्ष ज्ञान यह सब भी मायाका ही स्वरूप है। उस माया विकारसे परे, सर्वाधिष्ठान ब्रह्मपद तो स्वतः ही उपमासेरहित, अनूपम अधिष्ठाता पद है॥ ६९॥

९. ज्ञानते उतपति हृदय होय ❀ अङ्क तीनि तीहुँ गुणमें सोय॥ ७०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
ज्ञानते = उस चैतन्य ब्रह्म कर्ताके ज्ञानसे—
हृदय = अन्तःकरण मध्य हृदयाकाशमें—
उतपति होय = स्फुरणा करके प्रथम शुद्धसत्त्वगुण तुरियारूपसे इच्छा माया प्रगट होती है या उत्पन्न होती है। वही ज्ञानसे हृदयकी उत्पत्ति हुई, कहे हैं।

सोय = सोई आदि मायासे पुनः—
तीहुँ गुणमें = रज, सत्त्व, तम, ये तीनों गुणमय या तीनों गुणोंमें मिले हुये—
अङ्क तीनि = अकार, उकार, मकार, ये तीनों मात्रारूप अंक या उस मायाके गोदमें त्रिगुणी तीन पुत्र पैदा होके रहे, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— और प्रथमारम्भमें चैतन्य ब्रह्मके ज्ञानसे ही हृदयाकाश या अन्तःकरणमें तुरियारूप इच्छा माया शुद्ध सत्त्वगुणके रूपमें प्रगट होके, उत्पन्न होती भयी। फिर उसी मायाके सम्बन्धसे त्रिगुणरूप तीन मात्रा एक, दो, तीन, नम्बरवार ॐकारसे उत्पन्न होते हैं। उसका खुलासा नीचे कहते हैं, सुनिये!॥ ७०॥

१०. अज अकार है हरी उकार ❀ हर सो तहाँ भये मकार॥ ७१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
अज = उनमेंसे मायाका प्रथम पुत्र, ब्रह्माको—
अकार = अकार मात्रा स्थूलरूपसे—
है = माने हैं। तथा—
हरी = मायाका द्वितीय पुत्र, विष्णुको—
उकार = मात्रामें उकार सूक्ष्मरूपसे माने हैं।

हर = और मायाका तृतीय पुत्र, महादेवको—
मकार = मात्रामें मकार कारणरूपसे माने हैं।
सो = सो वह तीनों ही मात्रा तीन गुण—
तहाँ = ॐकारमें तथा वाणी मायाके गोदमें वा तहाँ जगत्में—
भये = पैदा होते भये, ऐसा जानिये!॥

व्याख्या— उसमें पहला नम्बर, ब्रह्मा अकार मात्रारूप रजोगुणमें उत्पन्न हुआ है। दूसरा नम्बर, विष्णु उकार मात्रारूप सत्त्वगुणमें प्रगट भया है। और तीसरा नम्बर, हर = महादेव सोई मकार मात्रारूप तमोगुणमें उत्पन्न भया है। सो तीनों पुत्ररूपसे आदिमायाद्वारा पिण्ड और ब्रह्माण्डमें उत्पन्न भये, ऐसा माने हैं॥ ७१॥

११. अङ्क तीनि अर्धके माँह ❀ अर्ध रहै शून्यकी छाँह॥ ७२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
अङ्क तीनि = परिणाममें फिर तीनों अङ्करूप तीन मात्राएँ—
अर्धके = अर्धमात्रा माया शक्तिके—
माँह = गोदमें या उसी मायाके स्वरूपमें ही लय होके मिल जाते हैं। और—

अर्ध = वह अर्धमात्रा माया भी अन्तमें सबको निगल करके या लय करके—
रहै = जब अकेली रह जाती है, तब वह माया भी—
शून्यकी = शून्य आकाशरूप ब्रह्मकी—
छाँह = छायामें जाके, एक होके, समा जाती है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— फिर परिणाममें प्रलय होतेमें, तीनों गुण, तीनों मात्रारूप, तीनों अङ्क नाश होके अर्धमात्रारूप मायामें जाके समाये वा समा जाते हैं। फिर माया शक्ति भी सब जगत्को प्रलय करके

समेटके आकाशवत् शून्य ब्रह्मके आश्रयमें जाके, समाके लय हो जाती है। तब अकेला ही महाशून्य-रूपसे ब्रह्म निराकार बना रहता है। ऐसा गुरुवा लोग उत्पत्ति और प्रलयका कथन करके कहते हैं। सो भ्रमिक लोगोंने इस तरह कल्पना करके माने हैं। उसे निर्णय करके धोखा ही जान लीजिये !॥ ७२॥

१२. पाँच कला प्रणवके विचार * अज हरि हर माया अनुसार ॥ ७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
पाँच कला = अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दु यह पाँच मात्राके पाँच भाग, सोई पाँच कला है।
प्रणवके = वह ॐकार ब्रह्मके भीतर समष्टिस्वरूप मानके इसीको सत्य—
विचार = और मुक्तिदाता ऐसा गुरुवा लोगोंने विचार किये हैं और कर रहे हैं।
अज = उसके देवता ब्रह्मा, सोई अकार मात्रामें हैं।
हरि = विष्णु सोई उकार मात्रामें है।
हर = शिव सोई मकार मात्रामें है।
माया = आदिमाया अर्धमात्रामें है।
अनुसार = निरञ्जन ब्रह्म, सोई बिन्दु मात्रामें वा अनुस्वारमें घटाके माने हैं॥

व्याख्या— गुरुवा लोगोंने प्रणव कहिये ॐकारमेंसे पाँच कलाके उत्पत्तिका ऐसा विचार किये हैं कि— सो अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दु यही पाँच कलाके भीतर क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, शिव, माया और ब्रह्म, ये पाँच देवता का निवास कहे हैं, वे समष्टिरूपसे एक ॐकारमें सम्मिलित रहते हैं। अतएव ॐकारका जाप या स्मरणकरनेसे शीघ्र ही मुक्ति प्राप्ति हो जाती है। ऐसा कल्पनाका विचार किये हैं॥ ७३॥

१३. मूल प्रकृति कला सो साँच * तेहिते भये तत्त्व सो पाँच ॥ ७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
साँच = एक सत्य ब्रह्म-परमात्मासे ही जगत् ढालनेका साँचा, वा मशीनस्वरूप आदिमें साँच कला—
मूल प्रकृति = इच्छा स्फुरणारूप मूल आदि शक्ति माया प्रकृति हुई।
कला सो = ब्रह्मके मुख्य कला या अंशसे सो वह माया उत्पन्न भयी है।
तेहिते = पुनः उसी मूल प्रकृति मायासे ही—
सो = सोई जगत् निर्माण होनेके प्रथम—
तत्त्व = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—
पाँच = यह पाँच तत्त्व क्रमशः—
भये = उत्पन्न होते भये या पैदा भये, ऐसा गुरुवा लोगोंने कहे हैं॥

व्याख्या— और ब्रह्मकी आदिकला, सोई मूल प्रकृति आदिशक्ति जगत् उत्पत्तिका साँचा या बड़ी मशीन है। उसी मूल प्रकृतिसे प्रथम पाँच तत्त्वोंकी उत्पति भयी। पहले आकाश उत्पन्न हुआ, फिर क्रमशः आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति भयी, पृथ्वीसे स्थावर और जङ्गमकी सृष्टि भयी, ऐसा कल्पनासे माने हैं॥ ७४॥

१४. शून्याशून्य भास अकाश * तेहिसों प्रगटी अर्ध बतास ॥ ७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
शून्याशून्य = (पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्ति कैसे भयी ? तहाँ कहा है-) सुषुप्तिमें सब वृत्तियाँ लय होके सर्वत्र शून्य रहता है, किन्तु, जीव लय-रूप आनन्दका साक्षी रहा—
भास अकाश = तो शून्य सुषुप्तिवत् आनन्दमें मिलके जो भास हुआ, उसीको आकाशवत् व्यापक परमात्मा माने, और उसीको आकाशकी उत्पत्ति मान लिये हैं। अर्थात् शून्याशून्यका भास होना, वही आकाशकी उत्पत्ति कहा गया है।
तेहिसों = उसी आकाशरूप ब्रह्मसे वा आकाशमें-से ही—
अर्ध बतास = अर्धमात्रा तुरिया माया उत्पन्न हुई या सोई वायुतत्त्वकी उसके नीचेसे ही—
प्रगटी = उत्पत्ति होके प्रगट भयी, ऐसा मानन्दी किये हैं॥

व्याख्या— और पिण्डमें पञ्चतत्त्वकी उत्पत्तिका लक्षण इसप्रकार कहते हैं। शून्य सुषुप्तिवत् आनन्दमें

मिलके आकाशवत् व्यापक परमात्माका भास होता है, या ऐसा भास हुआ, सोई शून्याशून्य भासना, आकाशके उत्पत्ति माने हैं। तथा फिर उसी ब्रह्मसे अर्धमात्रा तुरिया माया प्रगट भयी वा उसी आकाशसे अर्धबतासरूप चञ्चलवायुकी उत्पत्ति भयी, ऐसा माने हैं ॥ ७५॥

१५. पूरण पवन थीर सो भेव ❀ तासों प्रगट भये सो देव ॥ ७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
पूरण = इसप्रकार परिपूर्ण व्यापक परब्रह्मसे—
थीर = इच्छा माया स्थिर होनेसे आकाशतत्त्व-रूप समानवायुकी उत्पत्ति हुयी, फिर उससे-
पवन = चञ्चलवायु प्रगट होती भयी। उसीकी सम्बन्धसे अन्य तीन तत्त्व भी उत्पन्न होते भये।
सो भेव = सो यही उत्पत्ति प्रकरणकी भेद गुरुवा-लोगोंने बताये हैं। और—
तासों = उसी इच्छामाया या चञ्चलवायुसे फिर—
प्रगट भये = जो उत्पत्ति होके प्रगट होते भये—
सो = सोई अग्नि, जल, पृथ्वी ये तीन तत्त्व—
देव = महेश, विष्णु, ब्रह्मा, ऐसे तीन देवता होते भये या तीन तत्त्वरूपमें वे पैदा भये हैं— ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— और पूर्ण ब्रह्मसे समानवायु आकाश पैदा हुआ, फिर उससे चञ्चलवायु हुयी। अथवा पूर्ण रीतिसे पवन स्थिर रहा, सो उसीके स्थान भेदसे तीन देव प्रगट भये। फिर उसी वायुसे अन्य तीन तत्त्व अग्नि, जल, पृथ्वी प्रगट होती भयी। तथा तीन देवता उसीमें प्रगट भये; ऐसा कल्पना करके माने हैं। इसका खुलासा नीचेके चौकड़ियोंमें दरशाते हैं॥ ७६ ॥

१६. चञ्चल पवन सो हरके रूप ❀ उठै तरङ्ग अनेक अनुरूप ॥ ७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! और सुनिये ! गुरुवा लोगोंने ऐसा माना है कि—
चञ्चल पवन = मायाशक्तिसे ब्रह्माण्डके सूक्ष्म पञ्च-तत्त्वोंके जगहमें पञ्चवायु हुये—धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग, और देवदत्त पैदा भये। अथवा थीर, चञ्चल, प्रेरक, आकर्षक, शोषक, ये चञ्चलरूपसे तथा वृत्ति चञ्चलतासे पाँच-रूपमें उत्पन्न हुई, ऐसा माने हैं।
सो हरके = सोई चञ्चल पवन यहाँपर महादेवके कारण—
रूप = स्वरूप है, ऐसा माने हैं।
उठै तरङ्ग = उसी चञ्चलवायु द्वारा पिण्ड-ब्रह्माण्ड-में और समुद्रमें, यहाँ अन्तःकरणमें भी लहरीरूप तरङ्गें खूब उठता ही रहता है।
अनुरूप = सूक्ष्म, अणु, परमाणु, मिश्रणरूपसे उसके समान ही—
अनेक = उस चञ्चलवायुका अनेकों स्वरूप या भेद हो जाते हैं या हुये हैं॥

व्याख्या— प्रथम पिण्ड तथा ब्रह्माण्डमेंके स्थिर वायुसे चञ्चलवायु उत्पन्न भयी। सो चञ्चल पवन कहिये ब्रह्माण्डके पञ्चतत्त्वोंके सूक्ष्मरूपमें पञ्चवायुको चञ्चलरूपसे माने हैं। सो चञ्चल पवनको महादेवके स्वरूपमें ठहराये हैं। उससे वायुमें तरङ्ग या लहरी उठाते ही रहना होता है; और चञ्चल पवनसे समुद्रमें भी लहरी उठाता है। तैसे ही अन्तःकरणमें भी अनेक स्फुरणाका तरङ्गें इच्छा उठाता रहता है। ऐसा सूक्ष्मरूपसे उसके समान ही अनेक भाग वायुका बन जाता है॥ ७७ ॥

१७. कोटि उनचास पवन परमान ❀ गिनती वेद सो करै बखान ॥ ७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो !
कोटि उनचास पवन = तो उस थीरवायु एकसे पाँच हुयी, फिर पाँचसे १०, फिर (४९) उनचास पवन हुयी, पुनःएक-एकको एक-एक करोड़ भागमें विभक्त करके उनचास करोड़ सब वायुका भेद होती भयी—
परमान = ऐसा वेद प्रमाणसे गुरुवा लोगोंने कल्पना करके प्रमाण माने हैं।
वेद सो = सो वेदमेंसे वेदवेत्ताओंने—
गिनती = हिसाब लगाय करके वायुओंकी संख्याओंका गणना या गिनती किये।
करै बखान = सो विस्ताररूपसे वर्णन किये हैं, सोई गुरुवा लोग वर्णन करते हैं॥

व्याख्या— और एक स्थिर वायुसे विभेद होके दो भयी, फिर पाँच, दश और उनचास भाग पवनका किये। उसकी गिनती ऐसी है:— प्राणादि ५, धनञ्जयादि ५, वात, पित्त, कफ, ये ३, इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, ये ३, नौ नाड़ी, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ विषय, ४ चित्त-चतुष्टय और स्थूल देह-मेंके सङ्कोचनादि, वायुकी प्रकृति ५, यह सब मिलायके शरीरमें पवनके ४९ भाग मुख्यरूपसे इन्हें ही जानना चाहिये। (और ४९ पवनके सब नाम "तत्त्वयुक्त०" में कहा है।) उसे एकमें एक करोड़ भागमें मानके ४९ से उनचास करोड़ पवन हुये, ऐसा वेद प्रमाणसे गुरुवा लोगोंने वायुकी संख्याका गिनती करके कल्पनासे वर्णन किये हैं। सो अनुमान ही मात्र है॥ ७८॥

१८. कारण शोषक पवनके माँह ❀ जल कारण पुनि तेहि दर्शाह॥ ७९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
पवनके माँह = चञ्चल वायुके मध्यमें ही सूक्ष्मरूप-से मिला हुआ—
कारण = अन्य कार्य प्रगट होनेका हेतु, बीज-रूपसे मुख्य कारण—
शोषक = शोषक नामका वायु रहता है। सो होती हुयी वर्षाको भी बन्द कराता है, और जलके भाफ अणुओंको शोषण करके सफेद बर्फ समान बादल बनायके, आकाशमें उड़ायके लेजाना, इत्यादि कार्य प्रगट करता रहता है।
पुनि = फिर वही शोषकवायु द्वारा ही—
जल कारण = कारण जलका कार्य बादल करना, फिर उसका जल बनायके वर्षा कराना, यह दोहरा कार्य करानेका हेतु वह—
तेहि = शोषक पवन ही—
दर्शाह = दर्शाता है या उसमेंसे ऐसा कार्य दिखाई देता है॥

व्याख्या— और जलको, शोषण करनेवाला शोषक पवन कारणरूपसे उसी चञ्चल पवनके बीचमें ही बीजरूपसे रहता है। उसीसे जलका कारण भाफ अणुरूपमें बदलके वातावरणमें वा आकाशमें उड़ायके ले जाता है। तथा मोटा-पतला बादल बनानेका कार्य दिखता रहता है। एवं जलके स्वरूप पूर्ववत् पतला करनेमें भी मदद करता है॥ ७९॥

१९. पवन आकर्षण अनल उपाय ❀ हरिके कला सोई प्रगटाय॥ ८०॥

अर्थः— श्रीरामरहसाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
पवन = नीचेका शोषक पवन तथा ऊपरका आकर्षकवायु जबकि—
आकर्षण = परस्पर दोनोंका खैंचावसे वायु-वायुकी रगड़ या घर्षण होने लगता है, तब—
अनल = बिजुलीरूप अग्नि उसमेंसे—
उपाय = उत्पन्न हो जाती है।
हरिके कला = विष्णुके कला या भाग—
सोई प्रगटाय = सो वही प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। ऐसा वाणी कल्पना गुरुवा लोगोंने प्रगट किये हैं॥

व्याख्या— और विरुद्ध दिशाओंके दोनों पवनोंके परस्पर आकर्षणसे रगड़ हो जानेसे उष्णतारूपी अग्नि वा बिजली भी उत्पन्न हो जाती है। सोई विष्णुके कला या भाग प्रगट हुआ जानो, ऐसा माने हैं॥८०॥

२०. चमके बिजुली पवन समाय ❀ पाये वेग नीर निरमाय॥ ८१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
पवन = आकर्षक वायुकी खैंचावसे तेजतत्त्वके परमाणु समूहरूपसे एकत्रित होते हैं, फिर वायुकी रगड़ होनेसे—
चमके बिजुली = बिजुली बनके चकाचौंध करके बिजुली चमकने लगती है।
समाय = सो वातावरणमें उष्णता फैलायके पुनः वायुमें ही समा जाती है।
पाये वेग = वायु द्वारा बिजुलीके उष्णताका वेग पाय करके उससे—
नीर = पानी या जलतत्त्वकी—
निरमाय = निर्माण या पतलारूपमें उत्पत्ति होती है॥

व्याख्या— बाहर दो दिशाओंसे बहनेवाली वायु— वायुके आकर्षणसे अग्नि तत्त्वके परमाणु एकत्र सम्मिलित होके बिजुलीरूपमें वह चमकने लग जाती है। तथा गर्मी फैलायके फिर वह

समानवायुमें ही समा जाता है। ऐसे तेज और वायुके विशेष वेग पायके जल उत्पन्न होता है, ऐसा कहे हैं ॥ ८१ ॥

२१. घटा होय देखलाई देय ❀ उतपति जलकी प्रगटै सोय ॥ ८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
घटा = सोई बादमें घनी आकारके बादलका घटा—
होय = बनके या फैलाव होयके—
देखलाई देय = चौतरफ बादल छाया हुआ सबको दिखलाई देता है। तब—
जलकी = जलतत्त्वकी उसी बादलमेंसे—
उतपति = पतला भागमें उत्पत्ति हो करके—
प्रगटै सोय = बून्दोंकी समूहरूपमें सोई पानी प्रगट हो जाता है। या सोई बून्द-बून्द वर्षारूपमें प्रगट होता है। ऐसा जलतत्त्वकी उत्पत्ति कहे हैं ॥

व्याख्या— फिर वह सूक्ष्म जल वातावरणमें फैलके बड़ी-बड़ी बादलोंके आकारमें प्रगट होयके चौतरफ बादल छाया हुआ घटाटोप दिखलाई देता है। उसीसे जलतत्त्वकी उत्पत्ति हो करके पीछे बून्द-रूपमें प्रगट हो जाता है ॥ ८२ ॥

२२. अधिकारी जो अनल धमाय ❀ पूरण जल तेहिते प्रगटाय ॥ ८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
अधिकारी = जलतत्त्वके विशेष विरोधी तेजतत्त्व ज्यादा मात्रामें जब अधिकतासे बढ़ जाता है तब—
जो अनल = जो अग्नि तत्त्वरूप सूर्य है, उसके किरण प्रचण्ड तीक्ष्ण हो जाता है। और बार-बार बिजुली चमकके उष्णता बढ़ जाती है।
धमाय = ऐसे गर्मीकी ज्यादा बढ़ाव होके उष्ण-वायु "लू" की धूम चलनेसे, तत्पश्चात्—
पूरण जल = पूर्णरीतिसे अच्छी तरह बहल पिघल के पतला पानी वर्षारूपमें बदलके—
तेहिते = उसी अग्नि और वायुके वेग या सहायतासे
प्रगटाय = प्रगट होके गिरने लगती है। ऐसे अग्निसे जलतत्त्वकी उत्पत्ति कहे हैं ॥

व्याख्या— जब कि— अधिक मात्रामें अधिकाधिक जो अग्निरूप उष्णताकी धूम चलती है, या गर्मी मौसममें सूर्यकी किरण तिक्ष्ण होनेसे ज्यादा ही गर्मी बढ़ जाती है। बाहर "लू" चलने लगती है। ऐसे गर्मीकी धूमधाम होनेसे उसीसे पूर्ण रीतिसे जल प्रगट होके वर्षा होने लग जाता है, और शरीरमें पसीना बहने लगता है ॥ ८३ ॥

२३. कारण आदि एक सो होय ❀ कार्य्य अनेक दिखावै सोय ॥ ८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
कारण आदि = यह सब कार्य उत्पन्न होनेका मूल आदि कारण एक थीर पवन है।
एक सो = सो वही एक थीर पवन या समान-वायुके शक्तिसे ही—
होय = चञ्चल, शोषक, आकर्षक, प्रेरक आदि नाना विभाग होय करके—
सोय = उपरोक्त सोई वायुओंके मिलापसे—
कार्य्य अनेक = अनेकों प्रकारके कार्यका विभिन्न स्वरूप बाहर—
दिखावै = दिखलाता है या देखनेमें आता है। अर्थात् आदि कारण तो एक ही होता है, उससे सम्बन्धमें अनेक कार्य दिखाता है ॥

व्याख्या— इसमेंका आदिकारण या सबका मूलहेतु एक ही थीरवायु है। उसी एक थीर-पवनसे अन्य अनेक पवन उत्पत्ति होके परस्पर सम्बन्ध हो जानेसे वही वायु भीतर-बाहर अनेकों प्रकारके कार्य दिखलाता है। ऐसा देखनेमें आता है ॥ ८४ ॥

२४. जो जल शोषक उठै बतास ❀ तुरितहिं तहाँ घटाको नाश ॥ ८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
जो जल = जो कि जलकी वर्षा चौतरफ हो रही है, ऐसे समयमें यदि—
शोषक = जलको शोषण करनेवाला, शोषक नाम-

का यह—
उठै बतास = वायु उठ करके बहने लग जाय या जब शोषक पवन उठके चलने लगे, तबतो—
तुरितहिं = तुरन्त उसी समयमें ही—
तहाँ = तहाँपर या वर्षा होती हुयी जगहमें—
घटाको नाश = बादलको छिन्न-भिन्न करके त्रसरेणु, अणु, परमाणु बनाय, उसको उड़ायके वर्षा-का नाशकर आकाश खुलाकर देता है। ऐसी उसमें प्रबल शक्ति है ॥

व्याख्या— आकर्षक वायु समुद्रादिसे जलको भाफ बनायके वातावरणमें उड़ायके लेजाता है। तथा प्रेरक वायु फैले हुए भाफोंको पतली बादलोंको समेटकर इकट्ठा करके पिघालकर वर्षा कराता है, और शोषक वायु पानीको शोषणकरके सूखा करा देता है। ऐसे वायुमें अनादिसे स्वयं शक्ति है। अतएव वर्षा होते समयमें जो कभी कहीं शोषकवायु उठके बहने लगजाता है। तबतो उस जगहमें तुरन्त ही बादल फटके वर्षा होना ही बन्द होजाता है। क्योंकि, तहाँपरका घटा कहिये बादल समूहोंको वह शोषकवायु छिन्न-भिन्न करके अणु, त्रसरेणु बनायके जहाँ-तहाँ उड़ाय देता है। गीला पानीके भागको सुखायके हल्काकर देता है, यह उसका स्वाभाविक कार्य है ॥ ८५ ॥

२५. सोई नीर है अजके रूप ❀ पुनि त्रिगुणमें तीहुँ स्वरूप ॥ ८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
सोई = उपरोक्त प्रकारसे वर्णित सोई—
नीर है = कार्य-कारणरूप पानी जो है—
अजके रूप = सो ब्रह्माके रजोगुणके स्वरूपमें उत्पत्ति कर्ता माने हैं।
पुनि = फिर वही वायु और तीन तत्त्व—
त्रिगुणमें = रज, सत्त्व, तम ये त्रिगुणमें जा करके एकमें ही तीन भाग होके—
तीहुँ स्वरूप = ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, ये तीन स्वरूपमें बदल जाते हैं। वा तीन खानीमें त्रिगुणी सृष्टिका तीन स्वरूप धारण करलेते हैं। अथवा वर्षा, शिशिर, धूप ऐसे तीन स्वरूप हो जाते हैं, ऐसा माना है ॥

व्याख्या— उसी पानीको यहाँ ब्रह्माके रूपमें गुरुवा लोगोंने माने हैं। फिर त्रिगुणमें जाके उन तीनोंका न्यारा-न्यारा स्वरूप बन जाता है वा एक ही में तीनों स्वरूप आके मिल जाते हैं, ऐसा माने हैं ॥ ८६ ॥

२६. तेहि नीरते पृथिवी होय ❀ तेज अरु पवन सहायक सोय ॥ ८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो !
तेहि = वही पिण्ड और ब्रह्माण्डके—
नीरते = पानीरूप रज वा वीर्य तथा वर्षाके जलसे—
पृथिवी = तीन खानीमें देहोंकी उत्पत्ति होती हैं। और बाहर वृक्ष, गुल्म, लता, अनाज, पौधा आदि अनेक वनस्पतियाँ—
होय = उत्पन्न होके प्रगट होते हैं।
तेज = अग्नि तत्त्वरूप उष्णता—
अरु = और दूसरा—
पवन = वायु तत्त्वकी स्थिर और चञ्चलतासे बहाव—
सोय = सोई जड़ और चेतन खानियोंके उत्पत्ति होनेमें—
सहायक = सहायता करनेवाले आधार होते हैं, या रहते हैं। यानी अग्नि और वायु उत्पत्ति-के कार्यमें सहायक होते हैं ॥

व्याख्या— और वही पानीके वर्षा होनेसे पृथ्वी परके १८ भार वनस्पतियोंके भी उत्पत्ति हो जाती है, और रज-वीर्यरूप पानीसे मनुष्य, पशु, पक्षी आदिकी देहोंकी उत्पत्ति होती है। उसमें अग्नि और वायु तत्त्व ये दोनों सहायक या आधार देनेवाले बने रहते हैं, ऐसा कहा गया है ॥ ८७ ॥

साखीः— थीर पवन अरु अनल जल ❀ मिलि पृथिवी परमान ॥
[१०] स्थूलरूप माया भई ❀ पुरुष नीर परधान ॥ ८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिस प्रकार गुरुवा लोगोंने ब्रह्माण्डमें पाँच

तत्त्वोंकी उत्पत्ति माने हैं, सो ऊपर बता दिये हैं। अब नीचे पिण्डकी उत्पत्ति होनेकी व्यवस्था भी दरशाते हैं, सुनिये! गुरुवा लोगोंका कथन ऐसा है कि—

थीर = समान वायुरूप आकाशतत्त्वसे—

पवन = चञ्चलवायु प्रगट भयी, इस वायुसे—

अरु = और अन्य तत्त्वमें—

अनल = वायुसे अग्नितत्त्व उत्पन्न हुआ, इससे—

जल = जलतत्त्व पैदा भया। तदन्तर—

मिलि = उक्त चारोंतत्त्व एकत्र मिलके—

पृथिवी = ब्रह्माण्डमें भूगोल पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न भयी, तथा पिण्डमें चारोंतत्त्व मिश्रित कार्यरूपमें शरीर पैदा होता भया।

परमान = ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पनासे प्रमाण करके माने हैं।

माया = यह जो काया है, सो स्त्री-पुरुषोंके रजवीर्य सम्बन्धसे जीवके सत्तासे गर्भवासमें बन करके—

स्थूलरूप = मोटा, बड़ा, दृश्य, स्थूलाकाररूपमें यह ३॥ हाथका शरीर—

भई = तैयार भयी है, तथा अवधि पूरा होनेपर उत्पन्न हुयी है। इसमें—

पुरुष नीर = मुख्य करके पुरुषका वीर्यरूप पानी ही, पुरुषका शरीर बननेमें और जीवको गर्भमें लेजानेमें—

परधान = प्रधान वा विशेषता रखता है, वीर्य ही ज्यादा शक्तिवाला रहता है। ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या—एक ब्रह्मसे पाँच तत्त्वरूप संसारकी उत्पत्ति गुरुवा लोगोंकी मान्यता कल्पनाका वर्णन ऊपर बता आये हैं। अब संक्षेपमें यहाँपर भी ब्रह्माण्ड और पिण्डकी उत्पत्ति बतलाते हैं। गुरुवा लोग कहते हैं कि— कर्ता पुरुष परमेश्वरसे प्रथम मूलप्रकृति उत्पन्न हुयी। उससे महतत्त्व, हंकार, त्रिगुण, पैदा होते हुये, फिर आकाश उत्पन्न भया। सो शून्यमें पवन थीर रहा, सोई आकाशरूप समान वायुकी उत्पत्ति हुयी। उसमेंसे वायु चलने-फिरने लगी, तो चञ्चल वायुकी उत्पत्ति हुई। इस वायुसे अग्नि उत्पन्न हुआ। अग्निसे जल उत्पन्न हुआ, और उक्त चारों तत्त्वके परमाणु, अणु, त्रसरेणु, समूहरूपसे इकट्ठे होके मिले, तो महान पृथ्वीरूपमें भूगोल ब्रह्माण्ड निर्माण भया, ऐसा अनुमान प्रमाण करके माने हैं! सो तो कल्पना ही मात्र है। क्योंकि, जड़ पाँचों तत्त्व और चैतन्य अनन्त जीव अनादि सत्य अखण्ड वस्तु है। इनका कोई भिन्न तीसरा और कारण या कर्ता नहीं है। कर्ता ब्रह्म माने सो मिथ्या भ्रममात्र है। क्योंकि, आकाश निराकार शून्य पोल है, फिर भला उसकी उत्पत्ति कोई कैसे करेगा? और निराकार शून्य पोलका कार्य कुछ बन ही नहीं सकता है। फिर शून्य आकाशसे परमाणुयुक्त सूक्ष्माकार वायु चलनगतिवाली कैसे बन सकेगी? यह असम्भव है। ऐसे चञ्चल अदृश्य वायुसे उष्ण गुणयुक्त स्थूल—सूक्ष्माकार दृश्य अग्नि बन ही नहीं सकती है। तथा ऐसे उष्ण अग्निका कार्य जल पतला शीतगुणवाला हो ही नहीं सकता है, और जल जम जानेपर बरफ वा हिम हो जाता है। किन्तु, मट्टी और पत्थर जलसे कभी उत्पन्न हो नहीं सकता है? यह बात प्रत्यक्ष अनुभवसे जाहिर है। अतएव पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्ति मानके एक—दूसरेको क्रमशः कार्य ठहराना, सरासर भूल मिथ्या कल्पना है। कारणरूप ब्रह्माण्डकी पाँचों तत्त्व पृथक्-पृथक् अनादि स्वतः हैं, और तत्त्वोंके कार्य, देहादि आदि यानी पीछेसे बनने-बिगड़नेवाली हैं। अतएव अध्यासी जीवोंकी सत्तासे चार तत्त्वोंके भाग मिश्रित रज-वीर्यसे त्रयखानीमें मुख्य पृथ्वीरूप देहें बनके उत्पन्न होती हैं। यह काया स्थूलाकाररूपमें जो निर्माण भयी है, सो इसमें पुरुषका वीर्य ही प्रधान वा विशेषतावाला होनेसे मुख्य है। क्योंकि, जीव वीर्यके द्वारा ही गर्भमें जाता है, तब शरीर बनता है। अथवा वीर्यकी अधिकतासे पुरुषका देह और रजकी अधिकतासे स्त्रीका देह बनता है, ऐसा भी माने हैं। सो जानिये!॥ ८८॥

सम्बन्ध— चौकड़ी १ से १४ तक छठवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ षष्ठ खण्ड ॥ ६ ॥ ❀ ॥

१, नीर बीज पृथिवी रज मान ❀ अद्भुत कला मध्य प्रगटान॥ ८९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस खण्डमें देहोत्पत्ति और लय वर्णन करते हैं। यहाँ खानीमें

देह उत्पत्ति होनेमें कारण ऐसा है कि—
नीर बीज = पानी स्वरूप पुरुषका वीर्य सोई देह उत्पन्न होनेमें मुख्य बीज है। और—
पृथिवी रज = भूमिका, क्षेत्र वा मट्टी स्वरूप यहाँ स्त्रीका रज सोई आधार पृथ्वीके समान है।
मान = मानन्दी या विषयाध्यासमें पड़े हुये जीव उसी वीर्यमें समायके गर्भमें जाते हैं। ऐसा मान लीजिये। और—
मध्य = चारखानीके बीचमें अध्यासी जीव जायके रज-वीर्यके सम्बन्धसे गर्भके मध्यमें समायके—
अद्भुत कला = आश्चर्यमय भिन्न-भिन्न अङ्ग, उपाङ्ग, नाड़ियाँ, अवयवादि भाग सहित अनेकों देहोंकी कला, आकार-प्रकार धारण करके समय पूरा होने पर अद्भुत कला-के सहित—
प्रगटान = स्त्री, पुरुष, नपुंसक, ऐसे त्रयलिङ्ग या चिह्न संयुक्त गर्भ-योनिसे निकलके प्रगट होते हैं, यानी बालकरूपमें पैदा होते हैं॥

व्याख्या— यहाँ पिण्ड खानियोंके देह उत्पत्ति होनेमें जलके सामान पुरुषोंका वीर्य ही बीज है। तथा पृथ्वीके समान स्त्रीका रज ही क्षेत्र—भूमि है। जड़ाध्यासी जीव पुरुषोंके वीर्य द्वारा फिर मैथुनके सम्बन्धसे स्त्रियोंके रजमें मिलके तब गर्भवासको प्राप्त होते हैं। फिर वहाँ आश्चर्यमय ढङ्गसे अनेकों जीव नाना देहें बनाय लेते हैं। तहाँ स्त्री, पुरुष और नपुंसक, ऐसे भिन्न-भिन्न आकार धारण करके अध्यासके मुताबिक पैदा होते हैं॥ ८९॥

२. रज औ वीर्य सो मैं उपाय ❀ वैसे उलटी जाय समाय॥ ९०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो!
रज = स्त्रीका रक्तरूप रज—
औ = और दूसरा भाग—
वीर्य सो = पुरुषका वीर्यरूप बीज, सोई दोनों गर्भ क्षेत्रमें सम्मिलित होके—
मैं = स्त्री-पुरुषादिका स्थूल देहें बनके तैय्यार भया वा तैय्यार होता है, पश्चात्—
उपाय = समय पायके वैसे शरीरधारी बालक जन्म लेते हैं, या उत्पन्न होके आते हैं। अर्थात् रज, और वीर्यके सम्बन्धसे शरीर बनके उत्पन्न होता है।
वैसे = मृत्यु होके शरीर छूटनेपर फिर वैसे ही कार्य बिगड़के—
उलटी = मृत देहोंके तत्त्वोंके भाग उलट करके छिन्न-भिन्न होकर—
जाय = ब्रह्माण्डके कारणरूप चारतत्त्वोंमें ही जायके—
समाय = समायकर मिल जाते हैं, यानी कार्य देहका सब भाग कारण तत्त्वोंमें ही जाकर समा जाता है। तैसे जीव अध्यासवश गर्भ-में ही पूर्वोक्त रीतिसे समा जाते हैं। ऐसे बनाव, बिगड़ाव होता रहता है॥

व्याख्या— सो यहाँ तीन खानियोंमें रज और वीर्यके मिलापसे ही नाना देहें उत्पन्न भया है या होता है, सो प्रत्यक्ष है। पुनः शरीर छूटनेपर वैसे ही शरीर बिगड़ करके बाहरके चारों तत्त्वोंमें उलटके समा जाता है। यानी तत्त्वोंके कार्य भाग तत्त्वोंमें ही समा जाते हैं॥ ९०॥

३. कसर कला कोई जो होय ❀ जाय बिलाय रहै ना कोय॥ ९१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
कला = रज-वीर्यके भाग या कलाओंमें ही—
कसर = यदि कसर, विकार होवे या गर्भ कोठी (गर्भाशय) में गर्मी विशेष होवे वा भग कमलके भीतरी मुख तिर्छा, ऊँच, नीचमें होवे, छिद्र बन्द होवे—
कोई = ऐसा कोई कारणसे या अन्य भी कई एक कारणरूप रुकावट होवे—
जो होय = जो विकार होके रज-वीर्य बिगड़ गया होय, सो ऐसा होनेसे—
जाय बिलाय = रज-वीर्य दोनों ही पतन होके व्यर्थ हो जाता है या पानीके समान गिरके बिलाय जाता है, ऐसे नाश हो जाता है। इसलिये—
रहै ना कोय = कोई अध्यासी जीवका सम्बन्ध न होनेसे भी गर्भ नहीं रहता है। स्त्रियाँ

बाँझ ही रहती हैं। पुरुष नपुंसक होते हैं; अथवा ऐसे कई कारणोंसे कई स्त्रियों-को गर्भ रह सकता ही नहीं, यानी रज, वीर्यका कुछ गर्भमें ठहराव होता ही नहीं, बिलाय जाता है। यदि वह सब कसर मिट गया, वा मिटा दिया गया, तो फिर स्त्रियोंको गर्भ रहके बच्चा उत्पन्न होता भी है, ऐसा कहा है ॥

व्याख्या— यदि जो कोई भी कारणसे हो रज-वीर्यमें ही कसर विकार होवे, गर्भाशय वा बच्चादानीमें विशेष करके उष्णता भरा होवे, या किसी जीवका अध्यास सम्बन्ध लगा ही न होवे, इत्यादि बहुतेरे कारण हो जानेसे तहाँ स्त्रीको गर्भ रह नहीं सकता है। पानीके समान रज-वीर्य पतन होके बिलाय जाता है, व्यर्थ हो जाता है। ऐसी हालतमें कोई हो, किसीको भी गर्भ नहीं रहता है। ऐसा जानना चाहिये। यदि कोई औषधोपचारसे रज-वीर्यकी शुद्धि करै, स्त्रीका गर्भ कोठाको और भगके मुखको अप्रेशन आदिसे ठीक करै, तो फिर उसे गर्भ रह सकता है। [१०।१२ वर्ष तक भी गर्भ न रही हुई स्त्री भी यहाँ खण्डवामें स्त्री डाक्टरसे अप्रेशन कराके अच्छी होनेपर फिर उसे गर्भ रहा, और बालक उत्पन्न हुआ, ऐसा सुननेमें आया है] ॥ ९१ ॥

४. पृथिवी लीन होय जल माँहि ❀ जलको तेज प्रत्यक्षहि खाँहि ॥ ९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इसमें कारणमें कार्य भाग किस प्रकार लयहोके मिल जाता है, सो दिखाते हैं। गुरुवा लोगोंका कथन ऐसा है कि, अब यहाँ लय-चिन्तन सुनिये ! —

पृथिवी = पृथ्वीके स्थूल कार्य भाग, सूक्ष्म-कारण रूप पृथ्वीतत्त्वमें ही समाके मिल जाता है—

लीन होय = लीन या लय होके एक समान हो जाता है, अथवा पृथ्वीके मोटा भाग लीन होके या बिगड़ करके महाप्रलयमें—

जलमाँहि = जलतत्त्वमें जाके मिल जाता है, तथा जलके कार्य उसीके कारणरूपमें लय होता है।

जलको = फिर जलतत्त्वके विशेष स्थूल भागोंको भी—

तेज = अग्नि तत्त्व विशेष उष्णतासे बढ़ जानेपर वही तेज जलको शोषण करके—

प्रत्यक्षहि = प्रत्यक्षरूपमें जलके दृश्य भागोंको वहाँ ही—

खाँहि = खा लेता है या शोषण करके नाश कर देता है। तथा अग्निके कार्य भी उसीके कारणमें मिल जाता है ॥

व्याख्या—यद्यपि प्रत्येक तत्त्वोंका कार्य भाग अपने-अपने कारण तत्त्वोंमें ही लय होते हैं। और चारों तत्त्वोंके कार्य-कारण भागमें पंचीकरणका मिलाप हो ही रहा है। तथापि भ्रमिक गुरुवा लोग लय-चिन्तन और ही ढंगसे कल्पना करके बताये हैं। सो भी सुन लीजिये ! वे कहते हैं कि-महाप्रलय-में सब पदार्थ पृथ्वीमें लय हो जावेगा। फिर समस्त भूमण्डल भी जलमें जाके डूबके लय हो जावेगा, तो जलामय रहेगा। फिर उस सब महासागरके प्रलयका जलको भी प्रचण्ड अग्नितत्त्व प्रत्यक्ष ही देखते-देखते मुँह पसारके खाय लेवेगा, यानी शोषण कर लेवेगा ॥ ९२ ॥

५. तेज पवनमें जाय बिलाय ❀ पवन सो जाय अकाश समाय ॥ ९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो !

तेज = स्थूलाकार अग्निके भाग भी—

पवनमें = चञ्चलवायुके रूपमें मिलके—

जाय बिलाय = दृश्य भाग नाश होके परमाणु-रूपमें बिलाय जाता है। या अग्नि वायुमें लय हो जाता है।

पवन = और चञ्चलवायु तत्त्वका कार्य भी कारण-रूप वायुके परमाणुमें ही लय हो जाता है।

सो = सो वह चञ्चलवायुके परमाणु भी समान-वायुमें जाके समा रहता है। और—

जाय अकाश = समानवायु जाके शून्यरूप पोल आकाशमें ठहर जाता है।

समाय = वहीं आकाशमें वायु समा जाती है, ऐसा कहे हैं ॥

व्याख्या— तत्पश्चात् कुछ काल बाद वह प्रचण्ड तेज तत्त्व भी वायु तत्त्वमें जायके, लीन

होके विलाय जावेगा। तब तीव्र वायुका वेग बहता रहेगा। सो महान वायु भी समयान्तरमें आकाश मध्यमें जायके महदाकाशमें समा जावेगा, तब सर्वत्र शून्यशान रहेगा ॥ ९३ ॥

६. आकाश लीन शब्दमें होय * वर्णन प्रणव ताहि कहै सोय ॥ ९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो !
आकाश = और शून्य अवकाश या समानवायु जो है, सो—
लीन = यह भी लय हो करके—
शब्दमें = ब्रह्मका प्रकाश ॐकार शब्दमें लीन होके मिल जाता है। ऐसा गुरुवा लोगोंका कल्पना हुआ है।
होय = ऐसा वास्तवमें लय होता तो नहीं है, परन्तु भ्रमिकोंने ब्रह्ममें सबका लय होना माने हैं।
ताहि = उसीको अधिष्ठान स्वरूप—
प्रणव = ॐकार ब्रह्म कर्ता परमात्मा है—
वर्णन = ऐसा वेद, वेदान्तोंमें वर्णन किये हैं। या ऐसा वर्णन करके—
सोय = वही कल्पित असत्य वाणी—
कहै = पण्डित गुरुवा लोगोंने कहे हैं। अर्थात् आकाश शब्दमें लीन होता है, तो उसे ही प्रणव ब्रह्म वर्णन करके कहते हैं। सो मनुष्योंका भ्रम ही मात्र है ॥

व्याख्या— तदन्तर वह शून्य आकाश भी ॐकार स्वरूप शब्द ब्रह्ममें लीन होके समा जावेगा। तब एक ब्रह्म ही ॐकार वा प्रणवरूप अधिष्ठान ज्योंका-त्यों बना रहता है। ऐसा वर्णन वेद-वेदान्तोंमें गुरुवा लोगोंने किये हैं। सो पारखहीन मिथ्यावादियोंकी कल्पना होनेसे असत्य है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारसे सत्य भेदको यथार्थ जानना चाहिये ॥ ९४ ॥

७. शब्द अकाशके मध्य विलाय * अकार उकार लै होय जाय ॥ ९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— और गुरुवा लोगोंका कथन ऐसा है, कि—
शब्द = पूर्वोक्त प्रणव या ॐकार शब्द भी समयान्तरमें फिर उलटके—
अकाशके = उसी शून्य महा आकाशके—
मध्य = बीचमें जा करके निराकारमें—
विलाय = लय होके विलाय जाता है। या वह भी सम-समान निराकार हो जाता है। तो उसी ॐ शब्दमें—
अकार = प्रथम ही अकार मात्रा पृथ्वी तत्त्व और—
उकार = उकार मात्रा जलतत्त्व समेत्—
लै = लय हो करके—
जाय = उसीमें मिल जाते हैं।
होय = इस प्रकारसे सो एकरूप ही हो जाता है ॥

व्याख्या—प्रलयके विचरणमें, लय-चिन्तनकी व्याख्यामें गुरुवा लोग कल्पना करके ऐसा बताते हैं कि, बाहरकी समस्त वाणी और चारों खानीसहित पृथ्वी अकारमें आके मिली। फिर सो जल समेत् उकारमें लय हो जाती है। तथा ॐकार शब्द महाकाशके मध्यमें विलाय जाता है, ऐसा कहते हैं ॥ ९५ ॥

८. सो धून नाश मकारके माँहि * श्वासा अर्धचन्द्रके पाँहि ॥ ९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो !
सो धून = सो उकार मात्रा भी सूक्ष्म धून्याकार होके फिर—
मकारके = मकार मात्राके स्वरूप अग्नि तत्त्वके भीतर—
माँहि = मध्यमें जा करके—
नाश = लय होके नाश हो जाता है, यानी कारणमें मिल जाता है। और—
श्वासा = सो मकार मात्रा भी प्राणमें लय होकर मिला, तो फिर वह श्वासवायु भी—
अर्धचन्द्रके = अर्धचन्द्राकार अर्धमात्रा मायाके घेरा भीतर—
पाँहि = पासमें या मध्यमें पहुँचके लय होके मिल गया वा मिल जाता है ॥

व्याख्या— और सूक्ष्म उकार मात्रा भी ध्वनि करते हुए मकाररूप कारणमें जाके नाश होके मिल जाता है। तथा मकार श्वासमें मिली, श्वास भी अर्धचन्द्रके पास पहुँचके लय हुआ, ऐसा कहा है ॥ ९६ ॥

९. अर्धचन्द्र मिटि शून्या रहै * महाकाल महाप्रलय कहै ॥ ९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
अर्धचन्द्र = वह माया अर्धमात्रा भी लय होके, बिन्दुमें जाके मिली, तो—
मिटि = तहाँ उसका अस्तित्व भी मिट गया ।
शून्या = महाशून्य स्वरूप निरञ्जन परमात्मा एक ही—
रहै = तब निराकार, निर्गुण बना रहता है ।
महाकाल = अतः वही सबको निगलनेवाला महानकाल वा महारुद्र है, तथा—
महाप्रलय = समस्त पिण्ड-ब्रह्माण्डका नाश हो जाना, सो महान प्रलय कहा है ।
कहै = इस तरहसे गुरुवा लोग, माना हुआ एक ब्रह्मको महाकाल, महाप्रलय सर्वाधिष्ठान ठहराके, ऐसा उपरोक्तबात कल्पनासे कहते हैं ॥

व्याख्या— पश्चात् अर्धचन्द्रका भी रूप मिट करके शून्य निरञ्जन ब्रह्म रहता है । सबके अधिष्ठान उसी निराकार ब्रह्मको महाकाल और महाप्रलय कहते हैं । इत्यादि प्रकारसे वर्णन किये हैं ॥ ९७ ॥

१०. कर्म नशाय द्रव्यके साथ * नाशे द्रव्य इच्छाके हाथ ॥ ९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! और भी सुनिये !—
कर्म = स्थूल देहकी कर्म या क्रिया शक्तिसे होनेवाले सकल कर्मको भी—
नशाय = नशायके या विनाश करके—
द्रव्यके साथ = सूक्ष्म द्रव्य शक्तिके साथमें जाके आप ही लय होके मिल जाती है ।
द्रव्य = फिर सूक्ष्म देहकी नौ द्रव्यकी शक्ति भी—
नाशे = नाश हो करके—
इच्छाके = कारण देहके इच्छा शक्तिके—
हाथ = घेरामें प्रविष्ट होकर मिल जाती है ॥

व्याख्या— प्राणियोंके प्रथम स्थूल देहकी कर्म-शक्ति द्रव्यके साथमें जाके नाश हो जाती है । तथा सूक्ष्म देहके नौ द्रव्यकी शक्ति भी इच्छाके हाथरूप घेरा भीतर पड़के लय हो जाती है ॥ ९८ ॥

११. इच्छा ज्ञानमें होवै लीन * ज्ञानी आपु ब्रह्म परवीन ॥ ९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
इच्छा = कारण देहकी इच्छाशक्ति भी—
ज्ञानमें = महाकारण देहके तुरिया ज्ञानमें जाकरके ज्ञानशक्तिमें—
लीन = लय, समरस, तल्लीन वा एक ही—
होवै = हो जाता है । तब—
ज्ञानी = आत्मज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी परमहंस दशामें—
आपु = स्वयं आप-ही-आप—
ब्रह्म = परब्रह्मस्वरूप होके रह जाते हैं । सो—
परवीन = वाणी कल्पनामें पड़े हुए चतुर पण्डित गुरुवा लोगोंने ऐसे प्रमाण करके माने हैं ॥

व्याख्या— फिर कारणदेहके इच्छाशक्ति भी ज्ञानमें लौलीन होके मिल जाती है । और महाकारणदेहके ज्ञानशक्ति भी कैवल्यदेहके पराशक्तिमें लय हो जाती है । तथा वहाँपर ज्ञानी स्वयं ब्रह्म आप ही बाकी बने रहते हैं । ऐसे लय-चिन्तनका कथन, प्रवीण या चतुर गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं ॥ ९९ ॥

१२. एकान्तिक प्रलय कहावै सोय * पुनि सो इच्छा परगट होय ॥ १०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
एकान्तिक प्रलय = एक ब्रह्ममें ही सब सृष्टिका अन्त या नाश होके मिल जाना और कुछ भी बाकी न रहना—
सोय = वही एकान्तिक नामका प्रलय शून्यशान होना—
कहावै = कहलाता है या ऐसा कहते हैं ।
पुनि = फिर समयान्तरमें या समय पायके—
सो = सो उसी एक ब्रह्मसे ही—
इच्छा = इच्छा माया 'एकोहं बहुस्याम्' की स्फुरणा, जगत् उत्पत्तिका हेतु—
परगट होय = स्वाभाविकरूपसे प्रगट या उत्पन्न हो जाती है, तो ऐसे उत्पत्ति, लय होता ही रहता है, ऐसा गुरुवा लोगोंने कहे हैं ॥

व्याख्या— तदनन्तर सब लय होकर एक ब्रह्म ही अन्तमें बने रहना, सोईको एकान्तिक प्रलय कहते हैं। फिर उसी ब्रह्मने कुछ कालके बाद इच्छा स्फुरणा करके माया प्रगट किया, तथा मायासे जगत् उत्पन्न हुआ, या होता है ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं। इस प्रकारसे तो वही ब्रह्म सब आवागमन विकारका घर ही हुआ, अतः बिना पारख किसीकी भ्रम नहीं छूट सकता है ॥ १०० ॥

१३. पुरुष प्रकृति सनातन जान ❀ सन्तत स्वतः स्वभाव समान ॥ १०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इस प्रकारसे गुरुवा लोगोंके कथनसे तो—

पुरुष = कर्ता पुरुष ब्रह्म-परमात्मा और—
प्रकृति = उसकी आदि शक्ति माया इच्छारूप प्रकृति, यह दोनों ही—
सनातन = नित्य, अनादि सर्वदासे ऐसे ही सनातन अद्वैत, द्वैत समष्टिरूपसे मुख्य उत्पत्ति—प्रलयके कारण—
जान = जानना चाहिये। ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं, तथा वही बात जानते, जनाते हैं।
सन्तत = सदा काल या हरहमेशा ऐसा होनेसे—
स्वतः = खुद वा स्वयं ब्रह्मकी स्वरूपसे ही—
स्वभाव = इच्छा-स्फुरणा होनेसे जगत् उत्पत्ति प्रलय होते रहना, यह ब्रह्मका अनादि स्वभाव ही सिद्ध हुआ। एवं—
समान = समानरूपसे व्यापक, ऐसा स्वाभाविक इच्छा समाया हुआ ब्रह्म माननेसे अध्यासी जीव बार-बार गर्भवासमें समाते रहते हैं। क्योंकि, पुरुष-प्रकृतिका सम्बन्ध सनातन होनेसे बनाव-बिगड़ावका स्वभाव उसमें समाये ही रहता है॥

व्याख्या— पारखहीन भ्रमिक गुरुवा लोग कोई अद्वैत मतको, तो कोई द्वैत आदि मतको मानते हैं। उनमेंसे कोई प्रकृति-पुरुषको भिन्न-भिन्न मानते हैं। कोई एक ही मानते हैं। वे कहते हैं कि— पुरुष ब्रह्म, तथा प्रकृति मायाको अनादि नित्य सनातन जानिये। हमेशा समान-विशेष भावसे पुरुष-प्रकृतिका सम्बन्ध होता ही रहता है। इसलिये स्वतः ब्रह्ममें ही सदोदित इच्छा वा स्फुरणा उठके जगत् पैदा होके फिर सो वह स्वभाव उसीमें समाता ही रहता है; यानी जगत् प्रलय होके उसीमें समा जाता है, ऐसा कहा है॥ १०१ ॥

१४. स्वतः स्वभाव नहिं मिटै मिटाय ❀ सन्तत जोई सोई प्रगटाय ॥ १०२ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

स्वतः स्वभाव = इच्छासे जगत् उत्पत्ति होना, यह ब्रह्मका स्वयं अनादि स्वभाव या स्वयं अनादिका धर्म होनेसे इसको—
मिटाय = कोई भी किसी प्रकारसे भी मिटायके नाश कर नहीं सकते हैं, और—
नहिं मिटै = किसीके मिटानेसे भी किसी हालतमें वह मिट ही नहीं सकती है। स्वाभाविक धर्म कभी मिट नहीं सकता है, इससे यह उपाधि मिटनेवाला नहीं है।
सन्तत = सदा-सर्वदासे या हमेशासे—
जोई = जो हो रही है या जो चली आ रही है, नित्य स्वभाव जो लगी हुई है—
सोई = सो वही ब्रह्मसे इच्छा वा स्फुरणा उठके—
प्रगटाय = माया प्रगट होती है, उस मायासे जगत्-जाल उत्पन्न हो, आवागमन चौरासी योनियोंके भोग होता ही रहता है, (बिना पारख भ्रमिकोंकी यह अनादिके रोग छूट सकती ही नहीं है)॥

व्याख्या— इसकारणरूप स्वतःस्वभाव जगतके उत्पत्ति-प्रलय होनेवाली इच्छा कभी मिटनेवाली नहीं है और किसीके मिटानेसे भी वह मिट नहीं सकती है। अर्थात् स्वतः स्वभाव मिटायेसे भी मिटता नहीं है। जो अनादि स्वाभाविक है, सोई प्रगट होता ही रहता है। क्योंकि, जो सदाकालके अनादि नित्य स्वभाव है, सोई प्रगट हुआ है, और वह बार-बार प्रगट होता ही रहेगा। ऐसा जानके बन्ध, मुक्तिके चिन्ता छोड़ करके मौन होना चाहिये। ऐसा कहकर गुरुवा लोग धोखामें पड़कर चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं, बिना विवेक ॥ १०२ ॥

साखीः— स्वतःस्वभाव प्रपञ्च जो * छूटै कौन उपाय ? ॥

[११] दुःख सुख सम अनुमानके * सहज रहा जहँड़ाय ॥ १०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंके कथनसे सिद्ध—

स्वतः = स्वयं ब्रह्म-परमात्माके स्वतः ही स्वरूपसे-

स्वभाव = स्वाभाविक धर्मसे इच्छा वा स्फुरणारूप माया प्रगट हो करके—

प्रपञ्च = जड़-चेतन, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, जगत्प्रपञ्च, सृष्टिका विस्तार—

जो = जो कुछ उत्पन्न हुआ है, और हो रहा है, सो अनादि नित्य धर्म है। इससे—

छूटै = वह उत्पत्ति-प्रलयकी रहटा कभी छूटा नहीं, और छूटनेवाला भी नहीं है, तो कहो यह कैसे छूटेगा ?।

कौन उपाय = अनादि स्वभाविक धर्म छूटने-छूटानेका कोई भी उपाय या साधन नहीं है। इसमें कोई उपाय वा प्रयत्न लगनेका नहीं, ऐसा समझ करके, और—

दुःख = जगत्के बन्धन प्रपञ्च या आवागमन आदिका दुःख और—

सुख = ब्रह्म निर्बन्ध निष्प्रपञ्च या नित्य मुक्त, नित्य तृप्त, मोक्षका सुख—

सम = यह दोनों दुःख-सुख, जगत्-ब्रह्म बन्ध-मोक्षको एक समान समझ करके, निश्चय किये, क्योंकि—

अनुमानके = ब्रह्म अधिष्ठान होनेसे यह सब उसको छोड़के कहाँ जायगा ? व्यापकरूपसे वही सबमें भरा है, सोई ब्रह्म मैं हूँ ! ऐसा अनुमान दृढ़ करके भ्रमिक लोग—

सहज = आकाशवत् सहजस्वरूप परमात्माका अहं अध्यासी होके सहजमें ही—

जहँड़ाय = जड़ाध्यास गाफिलीमें बँधे हुए जहँड़ाकर—

रहा = अभी नानादुःख भोगे हैं और चारखानी गर्भवासादिमें जाकर दुस्सह दुःख भोग रहे हैं, बिना विचार ॥

व्याख्या—जो कि गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं कि—स्वयं ब्रह्मके स्वतः स्वाभाविक इच्छा या स्फुरणासे 'एकोहं बहुस्याम्' करके जगत् प्रपञ्चकी सृष्टि हुई है, और उसीमें ब्रह्मकर्ता व्यापकरूपसे भरा भी है। उसका नित्य सम्बन्ध है। तो वह कभी छूट नहीं सकता है; अर्थात् जो कि, जगत् प्रपञ्च ब्रह्मके स्वतः स्वभावसे उत्पन्न भया है। फिर भला ! वह कौन उपायसे छूटेगा ? उसके छूटनेको कोई उपाय ही नहीं। समय-समयमें सदोदित उत्पत्ति तथा प्रलय होता ही रहेगा। इससे तो ब्रह्मकी कोई हानि ही नहीं है। क्योंकि, जगत्का दुःख और ब्रह्मका सुख एक समान है। जगत् तो मिथ्या भ्रान्ति-मात्र है। बन्ध, मोक्ष भी मिथ्या है। मैं तो शुद्ध ब्रह्म सहज आकाशवत् निर्लिप्त हूँ ! ऐसा भ्रमसे अनुमान करके मिथ्या धोखामें पड़े हुये भ्रमिक लोग जड़ाध्यासमें जहँड़ाके चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़े और पड़ रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी सत्यबोध पाये बिना यह भ्रम भूल मिटता नहीं है यह भावार्थ है ॥ १०३ ॥

सम्बन्ध— चौकड़ी १ से २१ तक सातवें खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ * ॥ चौकड़ी ॥ सप्तम खण्ड ॥ ७ ॥ * ॥

१. प्रलय चार चहुँ कहों बुझाय * नित्य प्रलय नित नितहि नशाय ॥ १०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस खण्डमें चार प्रलयोंका भेद बतलाते हैं—

प्रलय चार = महाप्रलय, एकान्तिक प्रलय, नित्य प्रलय, और जलामय प्रलय, ऐसे गुरुवा लोगोंने चार प्रकारके प्रलय माने हैं।

चहुँ = सो चारों देहोंके लय अवस्थासे होनेवाला कार्य है। उन चारोंका भेद भी—

बुझाय = हे जिज्ञासुओ ! मैं तुम्हें समझायके या दरशायके—

कहों = अब यहाँपर कह देता हूँ ! सो ध्यान लगायके सुनिये ! अर्थात् चारों प्रलयोंकी लक्षण दरशायके मैं यहाँ आप लोगोंको समझाय-

बुझायके कहता हूँ, सो सुन लीजिये ! —

नित्य प्रलय = पहला नित्य प्रलयको जो माने हैं, सो नींदमेंकी सुषुप्ति अवस्था है ।

नित = नित्य जीवकी सत्तासे अवस्था जब बदलती है, तब जैसे—

नितहि = रोज ही सोना और जागना होता रहता है, तहाँ जाग्रत् मिटके स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाका होते रहना होता है ।

नशाय = अतः सुषुप्ति अवस्थामें जाग्रत्, स्वप्नका व्यवहार सब एकदम नाश हो जाता है । सोई नित्य होते रहनेवाला प्रलय माने हैं ॥

व्याख्या— यह सप्तम खण्डके चौकड़ियोंमें चार प्रलयोंके भेद बताते हैं । वेदप्रमाणसे गुरुवा लोगोंने चार प्रलय माने हैं । १ नित्य प्रलय । २ जलामय प्रलय । ३ एकान्ति प्रलय और ४ महाप्रलय कहा है । इनमें अन्तिमके दोनों प्रलयोंका भेद ९७ चौकड़ी और १०० चौकड़ीमें बता चुके हैं । अब रहे हुये बाकीके दोनों प्रलयोंके भेद भी यहाँ बताते हैं । हे जिज्ञासुओ ! अब मैं चारों प्रलयोंके भेद भी गुरुवा लोगोंने जैसे माने हैं, तैसे ही समझायके आप लोगोंसे कहता हूँ ! सो भी ध्यान देके सुनिये ! प्रथम नित्य प्रलय, यह निद्रा लगके सुषुप्तिमें शून्य होनेको माने हैं । नित्य ही जीव गाफिलीमें पड़ते हैं, रोज-रोज ही सो जानेपर व्यवहार नाश हो जाता है, इस तरह नित-नित ही जो नाश हो, सो नित्य प्रलय कहा है ॥ १०४ ॥

२. जागृतमें जेता उतपात ❀ उपजहिं पिण्ड ब्रह्माण्ड नशात ॥ १०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं– हे सन्तो !

जागृतमें = जाग्रत् अवस्थामें या जागे हुये समयमें

जेता उतपात = जितने भी शुभ-अशुभ कर्मोंकी उपाधियाँ लगी हैं या कर्मोंकी उतपात धूम मचा रहे हैं, उससे—

पिण्ड ब्रह्माण्ड = पिण्ड और ब्रह्माण्डके संसारमें विषय भोगादि नाना कर्म और परमार्थके भक्ति, योग, ज्ञानादि कर्म अनेकों विस्तार होके—

उपजहिं = उन सबोंकी नित्य ही उत्पत्ति होती रहती है । और—

नशात = उक्त सब कर्म सुषुप्ति अवस्थामें जाके नित्य ही नाश भी हो जाती है । इसीसे उसे नित्य प्रलय कहते हैं ॥

व्याख्या— और जाग्रत् अवस्थामें जितने भी पाप-पुण्य या शुभाशुभ कर्मोंकी उपाधि लगी है, उसी उपाधिसे पिण्ड-ब्रह्माण्डके विषय भोगादि कर्म और भक्ति, योग, ज्ञानादि कर्म सब उत्पन्न होते हैं, और सुषुप्ति अवस्थामें सो सब फिर लय होके नाश हो जाते हैं ॥ १०५ ॥

३. शैन अस्थूल भोग मिटि जाय ❀ कारण रहै पुनि पुनि प्रगटाय ॥ १०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं– हे सन्तो !

शैन = और सो करके सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेपर शयन करनेवालेकी पञ्चज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य और मुख्यतया दृष्टि-गोचररूप विषयादि

अस्थूल भोग = मोटा-मोटी स्थूल पञ्चविषयोंकी उपभोग सब ही—

मिटि जाय = मिटके बिलायकर, बेभान होके लय हो जाता है । यानी सब स्थूल भोग मिटके तब नाश हो जाता है ।

कारण = किन्तु, कारण देहमें स्थूल, सूक्ष्मका बीज कारणरूपसे वहाँपर—

रहै = बना ही रहता है । अतएव—

पुनि-पुनि = फिर-फिर बारम्बार उलट-उलट करके-

प्रगटाय = बीजसे वृक्षवत् सारा प्रपञ्च पिण्ड—ब्रह्माण्डका व्यवहार वहींसे उत्पन्न या प्रगट हो जाता है ॥

व्याख्या— दृष्टिगोचर पञ्चविषयोंके स्थूल देहकी स्थूल भोग सब, सोके गाढ़ी निद्रा आजानेपर शयनके समयमें वह सब मिटके नाश हो जाता है । परन्तु उसका बीज कारण देहमें हेतु वा कारणरूपसे बना रहता है । इसलिये बारम्बार या पुनः-पुनः स्थूल, सूक्ष्म देहोंका क्रिया व्यवहार प्रगट या उत्पन्न होता रहता है ॥ १०६ ॥

४. सोइ नित्य प्रलय कहत है वेद * प्रलय मरण जलामय भेद ॥ १०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं– हे सन्तो !
सोइ = वही गाढ़ी निद्रा अवस्थाको—
वेद = वेदमें वेदवेत्ताओंने वेद प्रमाणसे—
नित्य प्रलय = रोज सृष्टिका नाश होनेवाला, ऐसा नित्य प्रलय—
कहत है = कहे या कहते हैं। वही नित्य प्रलय कहलाता है।
मरण = और मृत्यु अवस्था उपस्थित होके या मृत्यु होके—
प्रलय = स्थूल देहका सम्बन्ध नाश होकर प्रलय हो जाना, उसको—
जलामय = सर्वत्र पानी-ही-पानी होना या मृत्यु-के बाद शरीर फूल जाना, उसे जलामय प्रलय माने हैं—
भेद = यही इसका भेद है। विशेष भेद नीचेके चौकड़ियोंमें दरशाये हैं। यानी मरण प्रलयका दूसरा भेद बाहर जलामय प्रलय कहा है॥

व्याख्या— उसीको वेद या वेदवादी लोग 'नित्य प्रलय' कहते हैं। और सृष्टिकर्ता विधाता ब्रह्माजीके जाग्रत् हो जानेपर सकल सृष्टिके उत्पत्ति होना और ब्रह्माके सो जानेपर फिर सृष्टिके नित्य प्रलय होना, उपरोक्त विधिसे पुराणोंमें कल्पना करके लिखे हैं। और मृत्यु होके देह नाश हो जाना, यहाँपर 'जलामय प्रलय' कहे हैं। तथा बाहर ब्रह्माण्डमें स्थूल पृथ्वी प्रलयमें नाश होके कभी जलमें डूब जायगी, तो सर्वत्र जलामय वा जल ही जल हो जानेका प्रलय हो जायगा, ऐसा कल्पना किये हैं। यही इसका मुख्य भेद है। और भी इसका भेद बतलाते हैं, सो सुनिये !॥ १०७ ॥

५. पाँच तत्त्व पिण्ड ब्रह्माण्ड * प्रलय पिण्ड जलामय अण्ड ॥ १०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं– हे सन्तो !
पाँच तत्त्व = पृथ्वी, जल, तेज, वायु और समान-वायुरूप आकाश, यह पाँच तत्त्वोंके कार्य पदार्थ–
पिण्ड = चारों खानीके शरीरादि-पिण्ड, तथा—
ब्रह्माण्ड = बाहरके जगत्‌मेंके वस्तु, अथवा नाना वाणीके व्यवहार, यह सब भी—
प्रलय = नाश होके सब लीन या प्रलय जब हो जाते हैं, तब—
पिण्ड = शरीर छूटके देहके आकार-प्रकार भी सब नाश हो जाता है।
जलामय = उसीको जलामय प्रलय कहते हैं। परन्तु-
अण्ड = जीवके साथमें सूक्ष्मदेहमें सूक्ष्मरूपसे वासनाके गोली बना रहता है, अथवा वही पिण्ड-अण्डका जलामय प्रलय कहा गया है॥

व्याख्या— पाँच तत्त्वका जगत् यह पिण्ड, ब्रह्माण्ड वा खानी, वाणीका जो कुछ भी विस्तार है, सो सबोंका आकार-प्रकार सहित जलामय प्रलयमें नाश हो जाता है। और सूक्ष्म वासनारूपी अण्ड बाकी बीजमात्र बना रहता है; अर्थात् पिण्डका नाश हो जाना, सो पिण्डका प्रलय है। और पाँच तत्त्वसहित पिण्ड-ब्रह्माण्डका विनाश जलामय प्रलय कहा है। तहाँ देह नाश होनेपर वासनाका अण्ड बाकी रहता है। तैसे जगत् नाश होनेपर एक अण्ड ॐकार ब्रह्म ही बना रहता है, ऐसा माने हैं॥ १०८ ॥

६. नाड़ी तीनि एक घर होय * सन्निपात गुण नाशक सोय ॥ १०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
नाड़ी तीनि = पिण्डकी तीन नाड़ी—वात, पित्त और कफ जब वा जिस समयमें—
एक घर = एकमें एक मिलके एकत्र एक ठिकाने या एक घरमें घिरके उनके जब ऐसे—
होय = सम्मेलन हो जाता है, तब—
सन्निपात = आव-बाव बर्राते हुए कठिन असाध्य त्रिदोष कुपित होके सन्निपात रोग हो जाता है।
सोय = वही सन्निपातरूप रोग तथा असिपद ब्रह्म गाफिली सोई—
गुण = तीनगुण और सद्‌गुणोंको
नाशक = नाश करनेवाला हो जाता है। फिर उसमें कोई औषधि या उपाय भी नहीं लगता है और उपदेश भी नहीं लगता है। क्योंकि, सन्निपातका गुण ही नाशक होता है॥

व्याख्या— और जब वात, पित्त, कफ यह तीनों नाड़ियाँ अपने-अपने काम बन्द करके एक घरमें दाखिल या एकत्र हो जाते हैं, तब असाध्य रोग सन्निपात होकरके तीनों गुणोंको वह नाश कर देता है। अथवा भक्ति, योग, ज्ञानको एकत्र करके जब विज्ञान असिपदरूपी सन्निपात रोग बलिष्ट हुआ, तो मुक्ति प्राप्ति करानेवाले सत्सङ्ग आदि समस्त सद्गुणोंको सोई नाश कर देता है ॥ १०९ ॥

७. जलमा सोई सीतङ्ग उपाय ❀ श्वासा उलटि गगन समाय ॥ ११० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
जलमा = और जलतत्त्वके भागरूप रक्तमें और मनमें-
सोई = वही सन्निपातके दोष बढ़ जानेसे उष्णता गायब हो करके—
सीतङ्ग = हाथ, पैरादि अङ्ग-प्रत्यङ्ग या सर्वाङ्गमें ठंडा बढ़ते-बढ़ते बर्फवत् शीतलता वा शीताङ्ग—
उपाय = उत्पन्न होने लग जाती है, या ऐसे हुई, तो उसको निवारण करनेका कोई उपाय नहीं लगता है, तब—
श्वासा उलटि = श्वासकी गति उलटी होके उर्ध्व श्वास चलने लगती है, पैरकी नाड़ी पेडूमें और हाथकी नाड़ी कंठमें आई, फिर सब खिंच-खिंचायके हृदयमें आ गई, तथा नाभिसे वायुकी गाँठ टूटके खुल गई, ऐसे श्वासा उलटके एक दम—
गगन = शून्य ब्रह्माण्डमें या वासनावश शून्य गर्भवासके गगनमें जीव—
समाय = जाके समा जाता है ॥

व्याख्या— फिर देहमें जलके भागरूप रक्तमें शीतलता प्रवेश करके सर्वाङ्ग ठण्डा वा शीताङ्ग हो जाता है, और नाड़ी भी आकर्षित हो जाती हैं, तो नाभि, हृदयकी गाँठें खुलके श्वासवायु उलटके ब्रह्माण्ड-में समा जाती है। तब मूर्छा खाके देह छूट जाती है अथवा वाणी कल्पनासे शीतल ब्रह्म बने हुए भ्रमिक लोग मनसे व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी किये। तहाँ कोई योगी लोग श्वासको उलटायके गगनरूप ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर शून्यमें समाके गाफिल हुए हैं ॥ ११० ॥

८. उलटि पाँचों जाय बिलाय ❀ सूक्ष्म देह सो थूल रहाय ॥ १११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
पाँचों = और पाँचों तत्त्वरूप स्थूल-सूक्ष्म पिण्ड-ब्रह्माण्डकी पाँचों वा दशों वायु भी क्रमशः—
उलटि = अपने-अपने स्थानसे उलट करके—
जाय बिलाय = प्राणवायुमें जायके बिलायके लय हो जाते हैं।
सूक्ष्म देह = चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार और पञ्च-विषय ये नौ तत्त्वयुक्त सूक्ष्म बीजरूप देहमें सब संयुक्त होके—
सो = सोई सूक्ष्म देहमें—
थूल = समस्त सूक्ष्म वासना सूक्ष्मरूपसे विलीन होकर—
रहाय = संस्कार जमा बना रहता है, उसी बीज-से वृक्षरूप फिर स्थूल देह बनकर कर्मभोग होता रहता है ॥

व्याख्या— तत्पश्चात् पाँचों तत्त्वोंके दशों इन्द्रियाँ और दशोंवायुके सब भाग भी उलट-पलट करके अपने-अपने कार्य स्थानको छोड़-छोड़के प्राणवायुमें ही विलाय जाते हैं। सोई नौ तत्त्वोंके सूक्ष्म-देहमें सूक्ष्मरूपसे एकत्र रहते हैं। स्थूल देह तो नाश हो जाती है। परन्तु सूक्ष्मदेह वैसे ही बना रहता है। इसीसे सूक्ष्मवासना या संस्कार सब बीजरूपसे उसीमें बने रहते हैं। अतएव समय पायके सूक्ष्म-से ही स्थूल देह बनके कर्मफल भोग होता रहता है ॥ १११ ॥

९. मन आदि इन्द्रीके विलास ❀ स्वर्ग नर्क दुःख सुख परकाश ॥ ११२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
मन आदि = मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार यह भीतरी सूक्ष्म इन्द्रियोंसे—
इन्द्रीके = बाहरी दश इन्द्रियोंके सम्बन्ध करके—
विलास = पञ्चविषय भोगोंका सुख विलास जो किया वा करता था, अथवा मनादि इन्द्रियों-को वश करके वृत्ति स्थिर कर समाधिमें आनन्द विलास किया करता था—

स्वर्ग = पुण्य फलसे ऊपर सात स्वर्ग प्राप्ति माना था, वा कल्पना किया था, और—

नर्क = पाप कर्मसे नीचे नर्क लोकके दुःख दण्ड भोग माना था, सो यहाँ ही देह धरकर कर्म भोग-

दुःख = त्रितापादि दुःख, अनेक पापफलका नर्क-भोग भोगा; और—

सुख = शुभ कर्मोंका फल देहादि सुख स्वर्ग भोग भोगा और भोग रहा है।

परकाश = ऐसे दुःख-सुखका जनैया ज्ञान प्रकाशी जीव अपने स्वरूपको न जान कर दुःख-सुखादिका प्रकाश करनेवाला कोई ईश्वरादि कर्ता मानकर सो सब ही जड़ाध्यास अन्तःकरणमें जमा किया और कर रहा है; फिर स्थूल देह छूटा, तो सूक्ष्म देह बाकी रहा॥

व्याख्या— यहाँ नरजीव सब मन आदि सूक्ष्म इन्द्रियोंद्वारा स्थूल देहसे पञ्चविषयोंकी भोग-विलास जो किये थे या करते थे, सो दुःख, सुखका फल भोग यहीं स्वर्ग-नर्कादिरूपमें जब तक देह है, तबतक प्रत्यक्ष भोगे, बादमें सो सब वासना सूक्ष्म देहमें जमा हो रही॥ अथवा गुरुवा लोग सुख-दुःखदाता परमात्मा कोई मानकर मन आदि इन्द्रियोंको वशकर भक्ति, योगादि नाना साधनाएँ किये। वेदमें कहा हुआ धर्म, कर्म पालनेसे सात स्वर्गादि प्राप्ति होके बहुत सुख भोग मिलना माने हैं। और वेदविरुद्ध मार्ग वा पापाचरण करनेसे नर्क प्राप्ति होके बहुत दुःख भोग होगा, ऐसा कहे हैं। वैसा कल्पित वाणीका प्रकाश किये या कर रहे हैं। अर्थात् मनुष्योंने मन आदि सूक्ष्म और स्थूल देहकी इन्द्रियोंके विलाससे स्वर्ग-नर्कमें कल्पनासे सुख-दुःखका प्रकाश वाणीसे किये हैं॥ ११२॥

१०. पुनि सूक्षम अस्थूल सो होय ❀ प्रथम अनुहार दृढ़ावै सोय॥ ११३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो!

पुनि सूक्षम = फिर उसी सूक्ष्म बीजरूप वासनासे सूक्ष्म देहसे उलटके—

अस्थूल = फिर चारखानीमें स्थूल देह संयुक्त—

सो होय = सोई देह धारण होके उत्पन्न होता है, अर्थात् फिर सूक्ष्मसे स्थूल देह प्रगट होता है।

प्रथम = तब पहले मनुष्य जन्ममें जैसा-जैसा कर्म अध्यास दृढ़ किया था, या प्रथम पूर्वमें जैसा-जैसा भोग चार खानियोंमें किया था, उसी तरह—

अनुहार = सूक्ष्म घटाध्यास संचित संस्कार सूक्ष्म रूपसे तदनुरूप जमा हो रहा है।

सोय = वही घटाध्यासी जीव गाफिली वासना वश जिस-जिस खानीमें जाके देह धरता है-

दृढ़ावै = वहाँ ही पूर्व दृढ़ हुआ अध्यास सन्मुख होके दृढ़तासे सब कर्मादि व्यवहार होने लगता है॥

व्याख्या— फिर वही सूक्ष्म देहमें रहा हुआ बीज वासना करके अध्यासवश चारखानियों-में जीव जायके स्थूल देह धारण करता है। इस तरहसे तो सूक्ष्मसे ही स्थूल हुआ, 'बीज वृक्षवत्' जब खानियोंमें स्थूल देह तैयार होके उत्पन्न हुआ। तब प्रथमके घटाध्यास संचित सूक्ष्म संस्कार जो दृढ़ हुआ है, उसीसे बिना सिखाये ही षट् पशु धर्मके लक्षण और भोग सो आप ही दृढ़तासे करने लगते हैं, सोई प्रथम अनुहार दृढ़ाना है॥ ११३॥

११. तीनि नाड़ि तिहुँ समय प्रचण्ड ❀ होय एकत्र जलामय अण्ड॥ ११४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं- हे सन्तो!

तीनि नाड़ी = वात, पित्त, और कफ पिण्डकी ये तीन नाड़ियाँ हैं।

तिहुँ समय = शिशिर, धूप, और वर्षा ब्रह्माण्डकी ये तीन समयमें क्रमानुसार वे तीनों नाड़ियाँ बढ़के—

प्रचण्ड = तीव्र वेगवाले कुपित हो जाते हैं ज्यादा तेज होके संघर्ष होने लग जाता है, तो बड़े प्रचण्ड हो जाते हैं।

होय एकत्र = पिण्डमें वात, पित्त, कफ इकट्ठे होके सन्निपात होता है; और ब्रह्माण्डमें वर्षा, शिशिर, धूप, ये तीनों समय एकत्र होके प्रलय होता है, इस प्रकार—

जलामय = यहाँ मृत्यु होके देह छूट जात है,

और सर्वत्र जल ही जल भरके बाहर प्रलय हो जाता है। तब—

अण्ड = ॐकाररूप परमात्मा एक ही ज्योंका त्यों गोलाकार व्यापक बना रहता है और सब उसीमें समा जाते है, ऐसा गुरुवा लोगों-ने माने हैं। अथवा देह छूटनेपर भी सूक्ष्म वासना बनी रहती है॥

व्याख्या— और पिण्डकी तीन नाड़ी-यहाँ वात, पित्त, कफ है। शिशिर-ठंडीके मौसममें वातका विकार ज्यादा बढ़ जाता है। धूप-गर्मीके मौसममें पित्तका विकार विशेष बढ़ता है। और वर्षाके मौसममें कफका विकार ज्यादा बढ़ जाता है। ऐसे तीन समयमें तीनों नाड़ियाँ प्रचण्ड वा तीव्र वेगवाले हो जाते हैं। और जब वात, पित्त, कफ तीनों एकत्र होके मिल जाते हैं, तब सन्निपातका प्रकोप होके देह छूट जाता है, यानी मृत्यु हो जाता है। परन्तु सूक्ष्म वासना—संस्कार अण्डाकार सूक्ष्म देहमें जीवके साथ बना ही रहता है। उसीसे जीव पुनः गर्भमें जाके देह धारण करता रहता है, और गुरुवा लोग कहते हैं कि— वर्षा, शिशिर और धूप यह बाहर ब्रह्माण्डकी तीन नाड़ी माने हैं। सो अपने-अपने समयमें प्रचण्ड वेगवान् रहती हैं। जब तीनों समय किसी वक्त एकत्र हो जावेंगे, तब विषम परिस्थिति उपस्थित होके सर्वनाश होके, जलामय प्रलय हो जावेगा। तो सब संसार एक अण्ड ॐकाररूप परमात्मामें ही समा जावेंगे। एक ॐकार ब्रह्म ही तब अण्डरूपमें बना रहता है। ऐसा कल्पना करके माने हैं॥ ११४॥

१२. पाँच तत्त्व सो जाय नशाय ❀ सूक्ष्म ग्रह आदिक सो रहाय॥ ११५॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

पाँच तत्त्व = और स्थूलाकार पिण्ड-ब्रह्माण्डकी पाँच तत्त्वका विस्तार—

सो = जो है सो, सब तो आखिरमें—

नशाय = नाश हो करके या एक दूसरेको नशाय-के वा लय करके—

जाय = बिगड़ कर मिट जाते हैं। और—

सूक्ष्म ग्रह = सूक्ष्म पाचों तत्त्व त्रसरेणु, अणु, परमाणुरूपसे या सूक्ष्मनवग्रह तथा नौ तत्त्वोंकी सूक्ष्म देहकी घेरा, सो सूक्ष्मग्रह—

आदिक = जीवोंके साथ वासना संस्काररूपसे रहता है और बाहर सूर्य, चन्द्र, तारागणादि खगोल इत्यादि—

सो रहाय = सो तो बीजरूपसे या सूक्ष्मरूपसे बना ही रहता है॥

व्याख्या— यहाँपर गुरुवा लोगोंके मत ऐसा है कि-सो बताते हैं सुनिये! महाप्रलयमें ब्रह्माण्डके स्थूल पाँच तत्त्वके सृष्टि समस्त स्थूल भाग तो नशाय जाते हैं, या बिगड़ जाता है। परन्तु उसके सूक्ष्मभाग कारण सूक्ष्म पाँचतत्त्व और नवग्रह तारामण्डल इत्यादि सो बीजरूपसे हेतु रह जाता है। अर्थात् पाँच तत्त्व नशाय जाता है; परन्तुउसके कारण सूक्ष्म ग्रह आदिक सो बाकी बचे रहते हैं, ऐसा कहे हैं॥११५॥

१३. पुनि उपजै पुनि जाय बिलाय ❀ ब्रह्माण्ड जलामय सोइ कहाय॥ ११६॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

पुनि उपजै = फिर उसी सूक्ष्म बीज या कारणसे देह और बाहरी जगत्का कार्य समयपर उत्पन्न हो जाता है। तथा—

पुनि = फिर वह सब सम्बन्ध बिगड़ करके अन्तमें—

जाय बिलाय = सब बिलायके या लीन होके नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्माण्ड = बाहर जगत् सृष्टिके विनाश होना—

सोइ = सोईको या उसीको—

जलामय = जलामय नामके बड़ा प्रलय यानी सर्वत्र जल-ही-जल होना—

कहाय = ऐसा कहलाता है या गुरुवालोग ऐसा कल्पना करके कहते हैं कि, ईश्वरसे उत्पन्न हुआ सृष्टि अन्तमें ईश्वरमें ही लय हो जाती है, सो ब्रह्माण्डका जलामय प्रलय कहलाता है॥

व्याख्या— अतएव पुनः उस सूक्ष्म हेतुसे स्थूल सृष्टि उत्पन्न हो जाती है। और समयान्तरमें

पुनः सब बिलायके एकमें-एक लय होकरके नाश हो जाते हैं, या ईश्वरमें ही लय होके मिल जाते हैं। सोई ब्रह्माण्ड सृष्टिके जलामय प्रलय कहलाता है। अर्थात् फिर उत्पन्न होना, फिर नाश होके बिलाय जाना, सोई ब्रह्माण्डका जलामय प्रलय कहाता है। ऐसे कल्पना करके गुरुवा लोग कहते हैं, इस प्रकार जलामय प्रलयका लक्षण पिण्ड और ब्रह्माण्डमें माने हैं, सो मिथ्या अनुमान ही किये हैं, ऐसा परख-करके जानिये ॥ ११६ ॥

१४. थूल नशाय सुषुप्ति भोग ❀ धुन्धाकार दुहुँ भास वियोग ॥ ११७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

थूल = सूक्ष्म देहके तत्त्व, प्रकृति और चतुष्टय-मनादि तथा पञ्चविषयादि समस्त सूक्ष्म मशालाको—

नशाय = नाश करके या लय होके वा नशाय, बिलाय करके—

सुषुप्ति भोग = गाढ़ी निद्राके सुषुप्ति अवस्थामें आनन्द, सुख भोगमात्र बना रहता है। या समाधिमें भी वैसे ही शून्य, आनन्द भोग, रहता है।

दुहुँ भास = स्थूल और सूक्ष्म दोनों देहों का कार्य या ज्ञानका आभास साक्षीभाव सब वहाँपर—

वियोग = विनाश होकरके वियोग वा अलग हो जाता है। तहाँ—

धुन्धाकार = धुन्ध अन्धकार अज्ञानताके आनन्दमें गाफिल मस्त या बेहोश पड़े रहते हैं ॥

व्याख्या— सूक्ष्म इन्द्रियाँ भी सुषुप्ति अवस्थामें जाके नाश या लय हो जाती हैं। तो वहाँ आनन्द-का ही उपभोग रहता है। स्थूल और सूक्ष्म दोनोंका भास वा ज्ञान भी वहाँपर वियोग हो जाता है। धुन्ध आनन्दमें गाफिल पड़े रहते हैं। वैसे ही योग समाधिमें भी हो जाता है, अर्थात् सूक्ष्म नशायके सुषुप्तिमें सुख भोग होता है। धुन्धाकारमें दोनों देहोंके भासका वियोग हो जाता है ॥ ११७ ॥

१५. कारण सब छिपि रहैं तेहि माँह ❀ थूल अस्थूल बहुरि प्रगटाह ॥ ११८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

कारण = स्थूल और सूक्ष्मका कारणरूपी बीज कारण देहमें—

तेहि माँह = उसी सुषुप्ति या समाधिके आनन्द गाफिलीमें ही—

सब छिपि रहैं = सब छिपे हुये गुप्त-सुप्त वा लीन होके पड़े रहते हैं। और समय पायके वह —

बहुरि = फिर भी वहींसे, उसी बीजमेंसे—

थूल = सूक्ष्म देह आदिके कार्य तथा—

अस्थूल = स्थूल देहादिका नाना प्रपञ्च विषय व्यवहारादि—

प्रगटाह = पुनः प्रगट हो, उत्पन्न होके प्रत्यक्ष-रूपसे होने लगता है। अर्थात् सबका कारण उसीमें छिपे रहते हैं, इसीसे फिर भी सूक्ष्म और स्थूल वहींसे प्रगट होते हैं। ऐसे कार्य-कारण उलट-पलट होते रहते हैं, ऐसा कहा है ॥

व्याख्या— परन्तु उसीमें ही सबोंके कारण बीज छिपे रहते हैं। इसलिये फिर भी सूक्ष्म और स्थूल उसीमेंसे प्रगट होता ही रहता है, अर्थात् उसीमें सबका कारण छिपे रहते हैं। अतः फिर-फिर भी सूक्ष्म और स्थूल प्रगट होते रहते हैं ॥ ११८ ॥

१६. सो कारण नाशै ब्रह्मज्ञान ❀ ज्ञान नशाय आपु अमान ॥ ११९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सो कारण = सो स्थूल, सूक्ष्म, और कारण, यह तीनों देह तथा तीनों अवस्था या तीनोंके कार्य-कारण भाग सब भी—

ब्रह्मज्ञान = तुरिया अवस्था साक्षी दशामें या अद्वैत ब्रह्मज्ञानके स्थितिमें पहुँचनेपर—

नाशै = नाश हो करके लय हो जाता है और विज्ञानी लोग तो—

ज्ञान = तुरिया साक्षी ज्ञानको भी—

नशाय = नाश कर देते हैं, अथवा जब ज्ञान भी नशाय जाता है, तब —

आपु = स्वयं निरञ्जन ब्रह्ममें मिल जाते हैं। सो वह आप-ही-आप—

अमान = व्यापक ब्रह्म मायाके विकारसे रहित निर्विकार, अलिप्त, अमान, रहता है ऐसा अनुमान किये हैं ॥

व्याख्या— ब्रह्मज्ञानसे सो कारणदेह नाश होता है। फिर ज्ञानको भी नशायके आप स्वयं अमान ब्रह्म बन जाते हैं। यानी सो कारण देह सहित तीनों देह तुरिया अवस्था साक्षी दशामें जाके नाश वा लय हो जाता है। और वह तुरिया वस्थाके सहविकल्प ज्ञान भी नाश हो करके निर्विकल्प माया मलसे रहित, निरञ्जन अमान व्यापक ब्रह्म स्वयं रह जाता है। ऐसा कल्पना किये हैं ॥ ११६ ॥

१७. पिण्ड भाव ब्रह्माण्ड अनुमान ❀ प्रलय चार सो वेद परमान ॥ १२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

पिण्ड = मनुष्य शरीरके पिण्डमें—

भाव = तत्त्व, प्रकृति, अवस्था, इन्द्रियादिकी लय-रूप अभाव तथा स्फुरणा चलनरूप भाव इसको देख करके इसीके समान भावना करके गुरुवा लोग भ्रमिकोंने पिंडके भावसे—

ब्रह्माण्ड = बाहरके संसार पाँच तत्त्वरूप ब्रह्माण्ड समस्तका भी उसी प्रकार ईश्वरसे उत्पत्ति-प्रलय होनेका लय-चिन्तन करके—

अनुमान = मिथ्या अनुमान, कल्पना ही किये हैं, सो भ्रम, भूल मात्र है।

प्रलय चार = १. नित्य प्रलय—गाढीनिद्रामें सुषुप्ति होना है। २. जलामय प्रलय—मरण या संसारका नाश होना कहा है। ३. एकान्तिक प्रलय—अद्वैत ब्रह्मज्ञानमें द्वैतका नाश होना माना है। ४. महाप्रलय-महाशून्यमें सर्वलीन होना माना है। ऐसे चार प्रकारके प्रलय कहा है।

सो = सो उपरोक्त ४ प्रलयोंका वर्णन—

वेद परमान = वेद प्रमाणोंसे गुरुवा लोगोंने कहे हैं, सोई यहाँ पर्खानेके लिये दरशा दिया है, सो भ्रममात्र है। ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— इस प्रकारसे पिण्डाण्डरूप देहके भावना करके, यानी जाग्रत् अवस्थामें कर्म सृष्टि तथा स्वप्न अवस्थामें पालना या स्वप्नभास होना और सुषुप्ति अवस्थामें सबका विलय या नाश देखके; अथवा तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रिय, विषय, गुणादिका जाग्रत्में उत्पत्ति विस्तार और षुसुप्तिमें विनाश देखके; अथवा, जन्म, बाल, युवा, वृद्ध और मरण यह अवस्थाके बदलाव होते हुए देख करके, यही पिण्ड-भावनाको दृढ़ करके कि—"जो पिण्डाण्डे सो ब्रह्माण्डे" इस तरहसे अनुमान, कल्पना दृढ़ करके समस्त बाहरी संसार या ब्रह्माण्डका भी किसी एक कर्ता ईश्वरादिसे उत्पत्ति होके फिर उसीकी इच्छासे प्रलयमें नाश भी हो जाता है; ऐसा माने हैं। इसप्रकार चार प्रकारके प्रलय—१ नित्य, २ जलामय, ३ एकान्तिक, और ४ महाप्रलय, ये क्रमशः सुषुप्ति, मृत्यु, ब्रह्म, सर्वशून्यके ठिकाने माने हैं। अथवा ब्रह्माके निद्रामें 'नित्यप्रलय' कहे हैं। ब्रह्माके मृत्युमें 'जलामय प्रलय' माने हैं। निराकार एक ब्रह्ममात्र अद्वैत रहना सो 'एकान्तिकप्रलय' ठहराये हैं। और महत्तत्त्व प्रकृति, पुरुषसमेत् महाशून्यमें लय होना, सो 'महाप्रलय' माने हैं। सो उपरोक्त चार प्रलय वेदप्रमाणसे गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हैं। सो कसर परखानेके वास्ते यहाँपर श्रीरामरहससाहेबने वर्णन करके दरशाये हैं। ऐसा जानिये ॥ १२० ॥

१८. अभाव चार सोई सहिदान ❀ प्राग प्रध्वंसा अन्योन्य जान ॥ १२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— अब यहाँ चार अभाव, चार प्रलयके जगह घटाके बतलाते हैं ॥

अभाव चार = चार देहोंके लय अवस्थारूप चार प्रकारके अभाव माने हैं—

सोई = सो वही चार प्रकारके अभाव यह ही—

सहिदान = चार प्रकारके प्रलयोंकी निशानी या पहिचानी है। उसका लक्षण निम्न प्रकारसे है।

प्रध्वंसा = स्थूल देहका अभाव है, यह विशेष करके स्थूल देहका नाश होना है।

प्राग = यह सूक्ष्म देहका अभाव है, बीजरूपसे गुप्त वासनाका बना रहना होता है।

अन्योन्य = यह कारण देहका अभाव है, यहाँ ईश्वर एकरूपमें और तीनों कोशोंका अभाव माने हैं। ब्रह्ममें जगत्का अभाव और जगत्-में ब्रह्मका अभाव कहा है।

जान = यह तीन अभावका लक्षण जानिये ॥

व्याख्या— चार देहोंके चार अभाव सोई चार प्रलयोंकी निशानी या पहिचानी माने हैं। उनके

नामः—१ प्रध्वंसा अभाव। २ प्राग अभाव। ३ अन्योन्य अभाव। और ४ अत्यन्ता अभाव है, ऐसा जानिये!॥ १२१॥

१९. अत्यन्ता नहिं मान अमान * अन्योन्य कहिये आपु अमान॥ १२२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
अत्यन्ता = सब द्वैत जगत्का अत्यन्त अभाव होके केवल अद्वैत आत्माका ही भाव बना रहना, यह महाप्रलयके ठिकानेमें माना है।
मान = और अत्यन्ता भावमें जगत्के मैं-मेराके मान्यता या भास और—
अमान = ईश्वरके अमान, निर्मोह, अचाह आदि गुण यह सब भी—
नहिं = वहाँपर कुछ भी नहीं रहता है या ये वहाँ नहीं हैं, कहते हैं। तथा—
अन्योन्य कहिये = अन्योन्य अभाव कहिये एकान्तिक प्रलयके ठिकाने एक ईश्वर ही है, दूसरा और कुछ नहीं।
अमान = जगत्के द्वैत मान्यतारूपी मायामलसे रहित अमान सो परमेश्वर है—
आपु = वह आप ही आप स्वयं पूर्णरूप है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— इनके लक्षणः— जहाँपर मान, अमान कुछ नहीं, जगत् और ईश्वरका भी अत्यन्त ही अभाव है, सो महाप्रलयके स्थिति आत्मस्वरूप माने हैं; इसे अत्यन्ताभाव कहते हैं। और स्वयं ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, ईश्वरके सिवाय और भिन्न वस्तु कुछ नहीं है, उसको अन्योन्य अभाव कहते हैं, सो एकान्तिक प्रलयकी जगह माने हैं, और अपने-आपमें अमान रहना, उसे अनन्य कहे हैं॥ १२२॥

२०. प्रागभाव कारणके जान * प्रध्वंसा परलय पहिचान॥ १२३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
प्रागभाव = वृक्ष नाश होके बीज बना रहना। तैसे देह छूटनेपरभी अध्यास बना रहना। यह जलामय प्रलयके ठिकानेपर प्रागभाव माने हैं।
कारणके = इसमें कार्यका नाश होके कारणके रूप बाकी बना रहता है।
जान = ऐसा जानिये।
प्रध्वंसा परलय = यह प्रध्वंसा अभावको नित्य प्रलयके ठिकाने माने हैं। जैसे कि—
पहिचान = घट, पट आदि बना हुआ कार्य पदार्थ परिणाममें नाश होना, सो प्रध्वंसा है, ऐसा पहिचान लीजिये॥

व्याख्या— फिर कार्य सब नाश हो करके कारणके स्वरूपमें सूक्ष्म बीज बना रहना, वही प्रागभाव जानिये; सो जलामय प्रलयकी जगह माने हैं। और देह, वृक्षादि स्थूल कार्यका प्रत्यक्ष नाश होना, यह प्रध्वंसाभाव नित्य प्रलयकी जगहमें ठहराये हैं॥ १२३॥

२१. चारों अभाव स्वरूपी राम * सोहं वोहं राम अकाम॥ १२४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
चारों अभाव = उक्त चारों देहोंके चार तरहके अभाव या सर्वका लय—
स्वरूपी = उक्त चारों अभावके मुख्य अधिष्ठान स्वरूप ही बना हुआ तथा—
राम = सर्व जगत्के अणु, रेणुमें भी सम-समान रमा हुआ परमात्मा है, ऐसा निश्चय करके माने हैं और खोजि करने लगे। उनमेंसे—
सोहं = सो वह ब्रह्म मैं ही हूँ! ऐसा योगी लोगोंने मान लिये, तो सोहं-सोहं जपने लगे।
वोहं = ॐकारस्वरूप वह जो परमात्मा है, सो मैं हूँ! यह कर्मी लोगोंने माने, तो ॐ, वोहं जपने लगे।
राम = और सबमें रमा हुआ आत्माराम है! यह उपासक भक्त लोगोंने माने, तो राम-राम जपने लगे।
अकाम = निष्काम ब्रह्मको ज्ञानियोंने स्वयं माने हैं, ऐसे अकाम ब्रह्म सब बनने लगे हैं॥

व्याख्या— ऐसे चारों अभावोंको एकत्र मिलायके अभाव या लय स्वरूप ही अधिष्ठान आत्मा-

रामको माने हैं। उसमें मिलनेके लिये योगी, ज्ञानी, भक्तोंने बहुत-बहुत साधना करके तलाश किये। जब कहीं रामका पता नहीं लगा, तब मन कल्पनासे श्वासमें सुरति लगाके योगियोंने सोहं-सोहं जपने लगे, सो ब्रह्म मैं हूँ! ऐसा माने हैं। कर्मियोंने ओहं या ॐ-ॐ जपे, तहाँ वो ब्रह्म मैं हूँ! ऐसा माने हैं। और उपासक भक्तोंने राम-राम या रंरं जपे, तहाँ सो सबमें रमा हुआ आत्माराम मैं हूँ, माने हैं। ज्ञानियोंने निष्काम ब्रह्म मानके 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'शिवोऽहं-शिवोऽहं' जपे। अथवा, ब्रह्म-परमात्मा प्राप्तिके वास्ते जगत्के कामना या भोग इच्छा छोड़के नाना जाप, ध्यानादि सब कोई करने लगे। परन्तु जिससे कुछ काम होनेवाला नहीं ऐसे भ्रम, धोखामें पड़के बरबाद भये, बिना पारख ॥ १२४ ॥

साखीः— कोइ उलटै कोइ पलटै ❀ सोहं वोहं राम ॥

[१२] दुहुँ भाँति जब थिति नहीं ❀ आपु सकाम अकाम ॥ १२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कोइ = जगत्कर्ता कोई सुख-दुःखकादाता एक परमात्मा मानके उसके प्राप्तिके वास्ते लक्ष लगाये, तो किसीने—

उलटै = वृत्ति उलटायके हंसो-हंसो, हंवो-हंवो, मरा-मरा, ऐसे उलटा जाप करने लगे, और—

कोइ = कोई साधकोंने तो उसके विपरीत—

पलटै = मनोवृत्तिको और अक्षरोंको भी पलट करके सीधी रीतिसे जाप करने लगे, जैसे कि— सोहं-सोहं, वोहं-वोहं, राम-राम, कहके लक्ष लगाने लगे।

सोहं = सो वह ब्रह्म मैं हूँ का जाप किये।

वोहं = वह ब्रह्म मैं ही हूँ का जाप किये।

राम = और रमैया आत्माराम मैं हूँ का जाप किये, ऐसे जाप बार-बार जपने लगे।

दुहुँ भाँति = दोनों प्रकारसे उलटा और सीधा नाम स्मरण जाप तथा एक लक्ष ध्यान करनेपर भी—

जब = जब कि उन साधकोंको कुछ भी—

थिति = स्थिति या स्थिरता, निवृत्ति या शान्ति, सन्तोष—

नहीं = प्राप्ति हुई नहीं, या ठहराव नहीं हुआ, तब कल्पना करके—

आपु = आप-ही-आप स्वयं पूर्ण ब्रह्म बन गये कैसे कि,

सकाम = प्रवृत्तिमें आयके सगुण सहविकल्प-आत्मा बने। और—

अकाम = निवृत्तिमें जाके निर्विकल्परूप निर्गुण ब्रह्म बने। ऐसे ब्रह्म बनके भ्रम चक्रमें पड़े। सकाम-अकामसे जीवका कुछ भी कल्याण नहीं हुआ ॥

व्याख्या— पारख विचार न होनेसे भ्रमिक नरजीवोंने कर्ता परमेश्वर कोई एक मानके नाना कल्पना किये। फिर ईश्वरमें मिलनेके वास्ते उलटा-सीधा साधनाएँ और जाप करने लगे। कोई सोहं, वोहं रामका श्वासमें लक्ष लगायके सीधा जाप जपने लगे, और कोई उसीको उलटायके हंसो, हंवो, मरा-मरा जपके स्मरण करने लगे। उलटा और सीधा दोनों प्रकारसे जाप करनेपर भी जब उन्होंको स्थिति नहीं मिली; तब सबको खिचड़ीवत् एकमें मिलाके कहने लगे कि— वह ब्रह्म स्वयं मैं हूँ! सकाम और अकाम दोनों मैं ही हूँ! अर्थात् सगुण, निर्गुण या सकाम, निष्काम तथा सहविकल्प, निर्विकल्प स्वरूप सर्वव्यापक मैं आप ही ब्रह्म हूँ। ऐसा मानके गुरुवा-लोग भ्रम धोखामें गरगाफ हुए। इस तरह अपने आप अकाम बनके निकम्बे हो गये हैं। बिना विवेक यह भूल नहीं मिटती है ॥ १२५ ॥

सम्बन्ध— चौकड़ी १ से १६ तक आठवें खण्डमें वर्णन भया है, ऐसा जानिये! ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ अष्टम खण्ड ॥ ८ ॥ ❀ ॥

१. स्वतः स्वभाव सनातन देव ❀ कैल पिण्डके कहते भेव ॥ १२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सनातन = अविनाशी सदा-सर्वदासे ज्यों-का-त्यों बना रहनेवाला अनादि—

देव = दिव्य गुण संयुक्त माना हुआ निरञ्जन

परमात्मा, ब्रह्मदेवके—
स्वतः = स्वयं स्वाभाविक वा स्वतः ही —
स्वभाव = इच्छा-स्फुरणा, या प्रकृतिके स्वभावसे—
कैल = ब्रह्माण्डरूप संसारका उत्पत्ति किया हुआ जो कल्पना किये थे, सो उत्पत्ति--प्रलयका विस्तार भेद ऊपर बता चुके हैं।
पिण्डके = अब पिण्डमें चारखानियोंके उत्पत्ति व्यवहारके कथन गुरुवा लोगोंकी मानन्दीका—
भेव = मर्म या भेदके विस्तार भी--
कहते = मैं यहाँपर वर्णन करके कह देता हूँ। सुनिये !—॥

व्याख्या— इस अष्टम खण्डमें कहते हैं कि— सनातन माना हुआ ब्रह्म निरञ्जनदेवके स्वतः स्वभावरूप इच्छा वा स्फुरणासे जगत्के उत्पत्ति और प्रलय जिस प्रकार गुरुवा लोगोंने माने थे, सो सप्तम खण्डके चौकड़ियों तकमें कह चुका हूँ। अब चारखानी पिण्डकी उत्पत्ति किस प्रकार भया है ? और कैसे माने हैं ? सो भेद भी यहाँ कहता हूँ ! ध्यानपूर्वक सुन लीजिये ! ॥ १२६ ॥

२. जेहि प्रकार भया ब्रह्माण्ड ❀ सोई कला विचार जो पिण्ड ॥ १२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
जेहि प्रकार = जिस तरह वा जिस प्रकारसे—
ब्रह्माण्ड = बाहरके संसार वा ब्रह्माण्डके कार्य-पदार्थोंकी उत्पत्ति कथन —
भया = हुआ है। उसी प्रकारसे—
सोई कला = सोई पाँचतत्त्वोंकी भाग या कला लेकरके
जो पिण्ड = जो कि चारखानीमें पिण्डरूप देहोंकी उत्पत्ति हुयी या होती है।
विचार = सो जीवोंकी सत्तासे ही होती हैं। विचार करके इसको समझ लीजिये। अर्थात् जिस तरह ब्रह्माण्ड बनता भया, सोई कला-का विचार लेके यह जो पिण्ड है, उसकी भी उत्पत्ति कहा है, इसे ठीक-ठीक विचार कीजिये ! ॥

व्याख्या— जिस प्रकार बाहर ब्रह्माण्डमें तत्त्वोंके शक्तिसे कार्य पदार्थ उत्पन्न भया है, या होता है, उसीतरह सोई बाहरके तत्त्वोंकी कला या कार्य-भागोंको लेकरके खानियोंमें पिण्डरूप शरीरोंकी भी उत्पत्ति होती है। सो विचार द्वारा समझना चाहिये ॥ १२७ ॥

३. पाँच तत्त्व मिलि नाना रूप ❀ खण्ड ब्रह्माण्ड अनेक स्वरूप ॥ १२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
पाँच तत्त्व = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और समान-वायुरूप आकाश, यह पाँचतत्त्व—
मिलि = एक-में-एक पञ्चीकरण, कार्य-कारण भाव मिल करके—
नाना रूप = पृथ्वीमें झाड़, पहाड़, वनस्पति आदि नानारूप बाहरमें तथा मनुष्य, पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुषादि खानीमें ऐसे नानातरहके रूप विचित्र देखनेमें आते हैं। सो—
खण्ड = चारखानीके न्यारे-न्यारे शरीरादि और—
ब्रह्माण्ड = वाणी-जाल या बाहरके पाँच तत्त्वकी सूक्ष्म-स्थूल भागसे—
अनेक = अनेक तरह या अनन्त प्रकारके—
स्वरूप = आकार-प्रकार या स्वरूप बने हैं, सो प्रत्यक्ष ही दिख रहे हैं ॥

व्याख्या— जड़ पाँचतत्त्वोंके पञ्चीकरण भाग मिल करके नाना प्रकारके पदार्थ बने हैं। तथा मनुष्य, पशु, आदिके नाना शरीरके रूप भी बना हुआ दिखाई देता है। न्यारा-न्यारा अनन्त शरीर-धारी जीव हैं, उनके अनेक वाणी हैं तथा बाहर भी अनेक स्वरूप कार्य बना हुआ दिख रहा है ॥१२८॥

४. पिण्ड ब्रह्माण्ड बहुत कराल ❀ इन्द्री प्रकृति अनेकन्हि जाल ॥ १२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
पिण्ड = चारखानी पिण्ड कलामें नाना देहोंकी और-
ब्रह्माण्ड = चार वाणी, चारवेद या पाँचतत्त्व बाहरी ब्रह्माण्डकी कला—
कराल = विकराल वा भयङ्कर अत्यन्त दृढ़ कठिन जाल बना है।
बहुत = उसमें खानी-वाणीका विस्तार बहुत ही बढ़ गया है। इससे छूटना बहुत ही कठिन

हो रहा है; क्योंकि—
इन्द्री = दश इन्द्रियोंकी अपने-अपने विषयोंकी तरफ तीव्र खैंचाव लगा ही हुआ है; और—
प्रकृति = पाँचतत्त्वोंके २५ प्रकृतियाँ हैं—
अनेकन्हि = पिण्डमें ऐसे अनेकों तरहके—
जाल = बन्धनरूप महाजाल छाया हुआ है। उसीमें अध्यासी जीव बन्धायमान हुये या बद्ध होके जकड़े पड़े हुए हैं॥

व्याख्या— पिण्ड और ब्रह्माण्डके खानी-वाणीका जाल बड़ा भयङ्कर है। सो बहुत विस्तारसे फैला हुआ है। आसानीसे कोई छूट नहीं सकते हैं, और देहमें ५ तत्त्व, १० इन्द्रियाँ, २५ प्रकृति आदि अनेकों जाल या बन्धन जीवोंपर पड़ा हुआ है। कोई बिरले पारखी ही इस देह बन्धनरूप महाजालोंसे छूट पाते हैं। जो बन्धनोंसे छूटे हैं, सोई धन्य-धन्य हैं!॥ १२९॥

५. पाँच थूल तत्त्व ब्रह्माण्ड ❀ सोई देखिये प्रगटे पिण्ड॥ १३०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
पाँच = जो पाँच प्रकारकी—
थूल तत्त्व = सूक्ष्म, कारणरूप पाँचतत्त्वोंसे—
ब्रह्माण्ड = बाहरके संसाररूप ब्रह्माण्ड भूगोल पिण्डकी विस्तार या उत्पत्ति भयी है।
सोई = सोई सूक्ष्म पाँचतत्त्वोंके भाग लेकरके—
पिण्ड = चार खानियोंमें शरीर बनके—
प्रगटे = उत्पन्न होता है, या प्रगट होता है—
देखिये = सो प्रत्यक्ष विवेक करके देख लीजिये। वह पाँचतत्त्वका ही भाग है॥

व्याख्या— ब्रह्माण्डमें जो सूक्ष्म—कारणरूप पाँचतत्त्वोंसे अनेक कार्य बनता है और बन रहा है। सोई सूक्ष्म पाँचों तत्त्वोंके भाग लेके चार खानियोंमें भी पिण्डरूप देह बनके जीवकी सत्तासे प्रगट होता है। सो विचार करके देख लीजिये कि— देह जो बना है, सो भी जड़तत्त्वोंके ही कार्य है॥ १३०॥

६. पाँचों तत्त्व पाँच समान ❀ अधिकारी प्रति नाम बखान॥ १३१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
पाँचों तत्त्व = पृथ्वी, जल, तेज, वायु और समान-वायुरूप आकाश, यह पाँचोंतत्त्व—
पाँच समान = पञ्चीकरणसे एकमें चारों समान रीतिसे मिला हुआ है। सो पिण्ड-ब्रह्माण्डमें समानरूपसे समाया हुआ या रहा हुआ है। उसमें—
अधिकारी प्रति = प्रत्येक तत्त्वोंके विशेष भागकी अधिकता जहाँ-जहाँ पर हो जाती है, तहाँ-तहाँ वही तत्त्व दिखाई देता है। तो उसी अधिकारीके प्रति लक्ष दे करके—
नाम = इसीसे वह प्रगट देखनेमें आनेवाला विशेष तत्त्वके ही नामसे—
बखान = यह अमुक तत्त्व है, ऐसा वर्णन किया जाता है या बखान किये हैं। सो देहमें पाँच तत्त्वके रूपको देखके उनके नाम वर्णन करके कहा गया है॥

व्याख्या— और पाँचों तत्त्वोंमें पञ्चीकरण समाया हुआ है। यानी एक-एक तत्त्वोंमें चारों तत्त्व मिला हुआ है। जैसे वायुमें पृथ्वी, जल, अग्नि मिला है, वैसे ही सबोंमें जान लेना चाहिये। पृथ्वीमें जल, अग्नि, वायु सब मिले हैं। परन्तु विशेष भाग स्थूल पृथ्वीका है, इसीसे पृथ्वी अलग एक तत्त्व माना जाता है। इसी प्रकार आठ आना अर्थात् आधा भाग ज्यादा विशेष भाग जिस-जिस तत्त्वका रहता है उसी नामसे यह अमुक तत्त्व है, कहके प्रत्येक अधिक तत्त्वके भिन्न-भिन्न नाम लेके उसे अलग मानकर ऐसा वर्णन किया जाता है॥ १३१॥

७. पोल सन्धि सोई आकाश ❀ श्वासा पूरण वायु विलास॥ १३२॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पिण्डरूप शरीरमें पाँच तत्त्वोंके रूप बताते हैं, सुनिये!
पोल सन्धि = चारतत्त्वोंके सन्धि—जोड़में या देहमें जहाँ-जहाँ पर सन्धि, गाँठ या पोल भाग है या खाली भाग है—
सोई आकाश = सोई सन्धिमेंके पोलको आकाश या अवकाश कहते हैं।
पूरण = और पूर्ण रीतिसे सुभीतासे उस खाली भागमें या नाभिसे मस्तक तक पूरण होके चलने वाली—

श्वासा = प्राणरूप श्वासवायु आती-जाती चलती रहती है। अथवा शून्यमें समान-विशेषरूपसे वायु चलती ही रहती है।
वायु = सोई मुख्य वायु तत्त्व है।
विलास = ऐसे वायुका विलास या गति होता ही रहता है॥

व्याख्या— अतएव अब यहाँ शरीरमें पाँचतत्त्व कौनसे हैं? सो भी बताते हैं। जहाँ-जहाँपर सन्धि, गाँठ या पोल देहमें है; सोई आकाश या अवकाश है, और पोलमें वायु चलती ही रहती है। इससे पूर्णरूपसे श्वासवायु जो देहमें चल रही है, सोई मुख्य वायुतत्त्व है। प्राण चलनेसे ही सब नस नाड़ियोंमें वायुका विलास हो रहा है॥ १३२॥

८. जठर अग्नि है जल सो अनङ्ग ❀ तासों पृथिवी प्रगटे सङ्ग॥ १३३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जठर = और पेटमें नाभि स्थानके पासमें रहा हुआ अन्न-जलको पचानेवाली, सो जठराग्नि है।
अग्नि है = सोई देहमें मुख्य अग्नितत्त्व है और बाहर सूर्यादि अग्नितत्त्व हैं।
जल = नदी, समुद्रादि बाहर जो जलतत्त्व है, सो प्रत्यक्ष दृश्य ही है—
सो = सोई यहाँपर देहमें—
अनङ्ग = कामदेव या वीर्य मुख्य जलतत्त्वका भाग कपार या भालमें रहता है।
तासों = उसी जलतत्त्वरूप वीर्यसे—
सङ्ग = स्त्री-पुरुषोंके सम्भोगसे रज-वीर्यके सङ्गसे
पृथिवी = स्थूल देहरूप पृथ्वीतत्त्वका मुख्य भाग—
प्रगटे = गर्भमें देह तैयार होके फिर उत्पन्न या प्रगट हो जाता है। सो यहाँपर जीवकी सत्तासे देह बनता है॥

व्याख्या— तैसे ही पेटमें रही हुयी जठराग्नि यहाँ मुख्य अग्नितत्त्व है। जिससे चार प्रकारके अन्न-जलादि हजम होता है। तथा अनङ्ग कहिये काम वा वीर्य जो है, सोई मुख्य यहाँ जलतत्त्व है; पुरुषोंके कपारमें वह रहता है। स्त्रीके सम्भोग वा मैथुन-सङ्गद्वारा वीर्य स्खलित होके रजसे मिलके गर्भमें स्थित हो, फिर पृथ्वी तत्त्वका भाग मुख्य स्थूल देह हाड़, मांसादि सप्तधातुका शरीर तैयार हो, प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है या प्रगट होता है। शरीरमें ऐसे मुख्य पाँच तत्त्वोंके भाग समझना चाहिये। तैसे ही बाहर वर्षासे पृथ्वीपर वनस्पतियाँ पैदा होती हैं, ऐसा जानना चाहिये॥ १३३॥

९. उभय अकाश नहिं कछु आस ❀ अन्तःकरण भया सो भास॥ १३४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अब यहाँ ब्रह्माण्डकी पाँच वायुको, पाँच तत्त्व, और पाँच देवताके रूपमें कहते हैं—
उभय = पिण्ड और ब्रह्माण्ड यह दोनों जगहके—
अकाश = घटाकाश (हृदयाकाश) और महाकाश यह दोनोंमें शून्य पोल तो एक समान है, इसमें आकाशमें तो—
कछु = कुछ भी या जरा भी—
आस = अन्तर या आसरा, पर्दा वा फरक—
नहिं = नहीं है या कुछ भेद नहीं है, इसीसे उसमें परमात्मा पूर्ण व्यापक भरा है। ऐसा मानन्दी या कल्पना गुरुवा लोगोंको—
अन्तःकरण = ध्यान समाधि आदि द्वारा हृदयमें वृत्ति स्थिर या शून्य होनेसे व्यापक ब्रह्म होनेका अन्तःकरणमें—
सो भास = सो ऐसा भास या अनुभव—
भया = होता भया। सो भास मिथ्या भ्रममात्र है॥

व्याख्या— योगी, ज्ञानियोंने जब वृत्ति एकाग्र करके समाधि लगाये, तब सुषुप्तिवत् शून्य समाधिमें निवृत्ति-निर्विकल्प स्थिति हुई। पश्चात् सहविकल्प अवस्थामें आके उन्होंके अन्तःकरणमें सो ऐसा भास भया कि— पिण्ड और ब्रह्माण्डके आकाशमें कुछ भी भेद या अन्तर नहीं है। क्योंकि, दोनों आकाशमें परमात्मा पूर्ण व्यापक भरा हुआ माने हैं। सो आनन्द या शून्य भास भ्रममात्र होनेसे मिथ्या है। उससे न्यारा भासिक जीवका उन्होंको पारख नहीं हुई। इसीसे सोई कल्पनामें

वे भूल गये हैं। अथवा उभय आकाश कहिये पिण्डकी आकाशतत्त्वरूप थीर पवन और ब्रह्माण्डकी मुख्य धनञ्जयवायु— वह भी आकाशतत्त्वरूप ही है। वे दोनों मिलके सूक्ष्म देहमें अन्तःकरणकी उत्पत्ति भयी, और निर्विकल्पका भास होना ही उसका मुख्य विषय है। ऐसा जान लेना चाहिये ॥१३४॥

१०. तासों प्रगटै थीर बतास ❀ पञ्च कला तामें परकाश ॥ १३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
तासों = उसी आकाशवत् व्यापक माना हुआ ब्रह्मसे—
थीर बतास = समान वायु वा इच्छा या स्फुरणारूप आदि माया प्रथम थीर बतासके रूपमें
प्रगटै = प्रगट या उत्पन्न हुई, ऐसा माने हैं।
पञ्च कला = सूक्ष्म पाँचतत्त्वोंके भाग पाँच वायुके रूपमें पाँच कला—
तामें = उसी थीर पवन या मायामेंसे—
परकाश = उत्पन्न होके बाहर प्रकाश भये वा ध्यानमें पाँच कलाका सूक्ष्म प्रकाश देखनेमें आता है, ऐसा कहते हैं॥

व्याख्या— फिर ऐसा कल्पना किये कि, उसी शून्य आकाशवत् परमात्मासे इच्छामाया वा थीरबतास प्रगट होती भयी। उस थीरबतास या मायामेंसे पाँच तत्त्वकी पाँच कलारूपमें यहाँ ब्रह्माण्डकी पाँच वायु, पिण्डरूप शरीरमें प्रगट हुयी; सो ध्यानमें पाँचों कलाका प्रकाश देखनेमें आता है, ऐसा माने हैं। अर्थात् उभय आकाशसे थीर बतास प्रगट भयी, उसमेंसे फिर पाँचकला उत्पन्न होके बाहर प्रकाश हुयी कहा है। अथवा प्रथम आकाशसे थीर बतास उत्पन्न हुयी। फिर उसी कारणरूप थीरपवनसे क्रमशः धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग और देवदत्तके रूपमें यही पञ्चकला उसमेंसे प्रकाश हुयी, अर्थात् उत्पन्न होती भयी। ऐसा जानिये! ॥ १३५ ॥

११. धनञ्जय सो अकाश अनुरूप ❀ सोई निरञ्जन लिये स्वरूप ॥ १३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
धनञ्जय = देह फुलानेवाला या पोषण करनेवाला ब्रह्माण्ड कलाकी यह धनञ्जय आकाशतत्त्वरूप वायु है।
अनुरूप = सूक्ष्म अणुरूपसे धनञ्जयवायु ही आकाशके जगह तद्रूप कहा है—
सो अकाश = सो वही पिण्ड कलामें वा देहमें आकाशतत्त्व है ऐसा जानना चाहिये।
सोई = और वही धनञ्जयवायुको—
निरञ्जन = निराकार, निरञ्जन, परब्रह्म—
स्वरूप = व्यापक पूर्ण स्वरूप मानके—
लिये = गुरुवा लोगोंने निश्चय कर लिये या धारणा कर लिये हैं॥

व्याख्या— धनञ्जयवायु सोई सूक्ष्मरूपसे आकाश तत्त्वरूप माने हैं। उसीको निरञ्जन ब्रह्मका स्वरूपमें मान लिये हैं॥ १३६ ॥

१२. देवदत्त शक्ति परवान ❀ जेहि आश्रित सब कर्म उपान ॥ १३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
देवदत्त = जम्भाई आनेवाला ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप वायु और पिण्डकी अपानवायु—
शक्ति = आदिमाया वा ब्रह्मकी मुख्य आदि शक्तिरूप सामर्थ्य है, ऐसा माने हैं।
परवान = और ऐसा प्रमाण किये हैं कि—
जेहि = जिस देवदत्तवायुकी शक्तिके—
आश्रित = आधारसे या आश्रयसे—
सब कर्म = देहके समस्त कर्म या बाहर कर्मकाण्डके सब कर्ममार्ग—
उपान = उत्पन्न हुये हैं या पैदा होते हैं; ऐसा कल्पना करके गुरुवा लोगोंने माने हैं॥

व्याख्या— और देवदत्तवायु पृथ्वीके स्वरूपमें मायाशक्ति है, ऐसा प्रमाण करके माने हैं। देवदत्त वायुके आश्रयसे ही सब कर्ममार्ग देहमेंसे उत्पन्न भया है। तथा सब कर्म अभी देवदत्तवायुके आश्रयसे ही देहसे पैदा होते हैं। ऐसा गुरुवा लोगोंने निश्चय किये हैं ॥ १३७॥

१३. वायु कूर्म नैनके दाव ❀ नाग वायु उदगार स्वभाव ॥ १३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
वायु कूर्म = इसी कूर्मवायुको विष्णुकेरूपमें भी माना है, और ब्रह्माण्ड कलाकी यह कूर्मवायु तथा पिण्डकी प्राणवायु दोनों मिल करके—

नैनके दाव = नेत्रोंके पलकें खुलता और दबता है, यानी ढक जाता है। अर्थात् पलकोंको खोलने-ढाकनेका काम करता है।

नाग वायु = ब्रह्माण्ड कलाकी यह नागवायुको ब्रह्माके रूपमें भी माना है। यही नागवायु तथा पिण्डकी उदान वायु दोनों मिल करके—

उदगार = डकार आना, हिचकी लगना, यह कार्य होता है।

स्वभाव = उपरोक्त वायुका यही स्वभाव या धर्मरूप कार्य है॥

व्याख्या— बाहरके सामान्य अग्नितत्त्वसे देहमें कूर्मवायु हुआ है, तथा उसके तद्वत् दूसरा प्राण-वायु भी है। नेत्रोंके पलकोंको खोलना और ढाकना, यह कार्य कूर्मवायु करता है। अतः इसे विष्णुरूप-में भी माना है। तथा बाहरके जलतत्त्वके अंशसे देहमें नागवायु हुई है, तद्वत् दूसरा उदानवायु भी है। उदगार वा हिचकी, डकार नागवायुसे आती है, यही नागवायुका स्वभाव है। अतः इसे ब्रह्माके रूपमें भी माना है॥ १३८॥

१४. चमकावन कृकराके जान ❀ झीनी पाँचों पै निरमान॥ १३९॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कृकराके = इस कृकलवायुको महादेवके रूपमें भी माना है, और ब्रह्माण्ड कलाकी यह कृकलवायु तथा पिण्डकी समानवायु दोनों मिलके—

चमकावन = देहमें चमक उठाना या नाकमेंसे छींक आना होती है।

जान = यही इस वायुका कार्य जानिये।

झीनी पाँचों पै = सूक्ष्म पाँच तत्त्वोंके ऊपरसे सूक्ष्म ब्रह्माण्ड कलाकी उक्त पाँचवायु देहमें अलग-अलग झीनी स्वरूपमें अर्थात् सूक्ष्म-रूपमें वे पाँचों वायु—

निरमान = बनकरके उत्पन्न हुये हैं, और जीवकी सत्तासे चलती हैं या चल रही हैं॥

व्याख्या— और बाहरके चञ्चलवायु तत्त्वके अंशसे देहमें कृकल या किङ्किरावायु हुयी है। तद्वत् दूसरा समानवायु भी है। नासिकासे छींक आना, जुकाम लगना, देहमें चमक उठना आदि कृकलवायुका कार्य है, अतः इसे महादेवके रूपमें भी माना है। बाहरके सूक्ष्म पाचों तत्त्वोंके अंश परसे ही देहमें भी ब्रह्माण्ड कलाकी पाँचों वायु झीनी ही बनके उत्पन्न हुयी हैं, ऐसा जानिये!॥ १३९॥

१५. रेचक पूरक कुम्भक तीन ❀ त्रिगुणा नाड़ी तहाँसों कीन्ह॥ १४०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

तहाँसों = फिर उसी सूक्ष्म समानवायु वा चञ्चल पाँच वायुमेंसे—

नाड़ी = इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, यह तीन नाड़िया पैदा भयीं, इसमेंसे—

त्रिगुणा = एक-एक नाड़ीमें त्रिगुणका भाग देकरके तिगुना किये, यानी एकमें तीन प्रकारसे विभाग किये—

कीन्ह = उससे कार्य उत्पन्न किये हैं, जैसे—

रेचक = तीन प्रकारके रेचक क्रिया होता है।

पूरक = तीन प्रकारके पूरक क्रिया होता है। और—

कुम्भक = तीन तरहके कुम्भक क्रिया कहा है।

तीन = यह तीनों मिलायके एक प्राणायाम होता है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— और उसी सूक्ष्म पाँच वायुमेंसे इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, यह तीन नाड़ी प्रगट हुयी। गुरुवा लोगोंने एक नाड़ीमें तीन गुणका तीन भाग देके नौ भाग किये हैं। इङ्गला नाड़ीसे पूरक करना, इसके तीन भाग हैं। पिङ्गला नाड़ीसे रेचक करना, इसके तीन भाग हैं और सुषुम्ना नाड़ीसे कुम्भक करना, इसके तीन भाग हैं, ऐसे एकमें तीन-तीन भाग करके पूरा प्राणायाम साधनामें योगी लोग साधते रहते हैं। इसका खुलासा नीचेके चौकड़ियोंमें दरशाया है, भाव वहाँसे मालूम हो जावेगा॥ १४०॥

१६. खैंचै गहै चढावै श्वास ❀ अङ्गिकार पूरकके गाँस॥ १४१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— अब त्रिविधि प्राणायामके नौ भागोंका विवरण कहा जाता है, सो सुनिये!—

श्वास = श्वासरूप, प्राणवायुको नासिकाके बायाँ छिद्रसे धीरे-धीरे—
खैंचै = श्वासको पहले खूब तानके खैंच लेवे, फिर उसे भीतर—
गहै = एक लक्ष करके उसीको ग्रहण कर लेवे—
चढ़ावै = पुनः प्राणको ब्रह्माण्ड तक लेजाके चढ़ा देवे, इस तरह खैंचना, ग्रहण करना, चढ़ाना, ऐसे तीन—
अङ्किार = भीतरकी क्रिया करके, सीधा श्वास-को स्वीकार करते हुये उसीमें—
गाँस = मनोवृत्तिको गाँसना या जोड़ देना। सो वही—
पूरकके = तीन तरहके पूरक नामकी प्राणायामके प्रथम क्रिया कहा है ॥

व्याख्या— श्वासको खैंचना, ग्रहण करना, और चढ़ाना, यह तीन तरहसे प्राणको भीतरी क्रियासे अङ्किार करना, सोई पूरकके गाँसी है ॥ १४१ ॥

१७. छाड़ै उतारै डारै जोय ❀ प्रतीकार रेचकके होय ॥ १४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
छाड़ै = और रोका हुआ श्वास वायुको छोड़ देना, ढीला कर देना—
उतारै = धीरे-धीरे नीचे उतारके बाहर ले आना, या उतारु कर देना। तथा—
डारै = बाहर डाल देना या पटक देना, या सब-के-सब निकाल देना—
जोय = जो यह क्रिया करते हैं, या ऐसे क्रिया होता है। जो है सो—
प्रतीकार = छाड़ना, उतारना, डारना, ऐसे बाहर-की क्रिया द्वारा उलटाय देना या वापिस करना, यह—
रेचकके = तीन तरहके रेचक नामकी प्राणायामके दूसरी क्रिया है।
होय = योगी लोगोंसे यह क्रिया साधना होती है ॥

व्याख्या— पुनः श्वासको छोड़ना, उतारना, डारदेना, यह तीन प्रकारकी क्रिया जो है, सो उससे विपरीत क्रिया है; यह प्रतिकार क्रिया रेचकसे होता है ॥ १४२ ॥

१८. कुम्भक छिपावै मिटावै श्वास ❀ भास अभास सो करै विलास ॥ १४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
छिपावै = और तीसरी श्वासको ब्रह्माण्डमें लेजाके छिपाय देना या दबा देना—
मिटावै = फिर प्राणके चलन क्रियाको मिटादेना या रोक देना—
श्वास = श्वासवायुको भ्रमरगुफामें लय कर देना, बन्दकर देना, या शून्य कर देना, इसको—
कुम्भक = कुम्भक क्रिया कहते हैं, यह प्राणायामकी तीसरी क्रिया है। इसप्रकार साधना करके—
सो = सो योगाभ्यासी योगी लोग—
करै विलास = शून्य समाधि आदिमें आनन्द विलास या क्रीड़ा करते हैं। उसमें—
भास अभास = श्वास चलना और छिप जाना, हो करके जो आनन्द और ज्योति आदिका भास, अभास हुआ, उसीके जड़ाध्यासी जीव हुये वा हो रहे हैं ॥

व्याख्या— और श्वासको भीतर छिपा देना, मिटा देना, लय करके शून्य कर देना या रोक रखना, सो तीन प्रकारसे कुम्भककी क्रिया होती है। उसी श्वासको चलाना और छिपाना इत्यादि क्रिया साधनेकी क्रीड़ा खेल या विलास आनन्द योगीलोग करते हैं, और वृत्ति स्थिर होनेसे जो भास-अभास वा आभास हुआ, उसीको निजरूप मानके जड़ाध्यासी हुये हैं ॥ १४३ ॥

१९. चारि कला तेहि माँह देखाय ❀ सम्मत द्वादश वाक्य उपाय ॥ १४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
चारि कला = चार तत्त्वोंके रूप, रङ्ग, कला-कौशल और चार वेदोंके महावाक्यः— ऋग्— प्रज्ञानंब्रह्मः। यजुः—अहंब्रह्मास्मि। सामः— तत्त्वमसी; और अथर्वः—अयमात्माब्रह्म। यह चार प्रकारकी वाणीके कला भी—
तेहि माँह = उसी श्वास वायुकी स्थिरतामें समाधि द्वारा ब्रह्माण्डमें योगीको—

देखाय = देखनेमें आता है, यह मानन्दी तथा वाणी संसारमें गुरुवालोगोंने देखाये और देखा रहे हैं। और—

द्वादश वाक्य = चार महावाक्योंसे द्वादश अवान्तर वाक्य और उत्पन्न हुये। जैसेः—क्षर, अक्षर, निःअक्षर। जहद, अजहद, जहदाजहद। जीव, ब्रह्म, आत्मा। तत्, त्वं, असी। यह चार वेदोंके बारह प्रकारके वाक्य कहा है।

सम्मत = गुरुवा लोगोंकी सलाह सम्मति ऐसा हुयी कि, बाहर एक वर्षके १२ महीना होते हुए भी साल एक गिना जाता है। तैसे उक्त १२ अवान्तर वाक्य चार वाक्योंके अन्तर्गतमें चार वेदोंका बारह भेद होते हुये भी सिद्धान्तमें अधिष्ठान ब्रह्म एक अद्वैत ही माने हैं।

उपाय = उसीमेंसे नाना उपाय करके अनेक वाणी, मत, पन्थ, ग्रन्थ उत्पन्न किये हैं, और कर रहे हैं, अर्थात् उसीसे चार कला भी देखाये हैं। बाहर एक सम्वत्में एक वर्षके भीतर १२ महीनाका भोग होनेके समान, एक ब्रह्म सिद्धान्तमेंसे अवान्तररूपमें द्वादशवाक्य भी उत्पन्न किये हैं। यही गुरुवा लोगोंके उपाय, चालाकी है, ऐसा जानिये!॥

व्याख्या— उसी श्वासवायुमें लक्ष लगाके ध्यान करनेसे भावनासे चार तत्त्वोंके रङ्ग, रूप तथा चार वाचासे चार वेद उत्पन्न किये हैं, उसके मुख्य चार महावाक्य उत्पन्न करके देखे, दिखाये हैं, और उसमेंसे बारह अवान्तर वाक्य निकालके ब्रह्मकर्ताके निश्चय अद्वैत सिद्धान्तमें सब एकमत हुए हैं। तैसे बाहर बारह महीना भिन्न-भिन्न बनायके एक सालमें उन सबोंका मिलान माने हैं। यह सब गुरुवा लोगोंकी चतुराई का उपाय है, ऐसा जानना चाहिये॥ १४४॥

साखीः— चहुँ कला किये तिह अङ्गमें * द्वादश वाक्य पहिचान॥

[१३] सम्वत् बारह मास सो * तीनके समय प्रमान॥ १४५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

तिह अङ्गमें = तीनगुण, पाँच तत्त्वसंयुक्त ऐसे अष्टाङ्गके सूक्ष्म, स्थूल शरीरमें अन्तःकरण चतुष्टय मिलायके—

किये = बारह भाग विभक्त किये हैं।

चहुँ कला = सोई चार तत्त्वोंकी चार कला है। जैसे कि, पृथ्वी, रजोगुण, बुद्धि। जल, सत्त्वगुण, मन। अग्नि, तमोगुण, हङ्कार और वायु, शुद्ध सत्त्वगुण, चित्त। यह १२ भाग शरीरमें कायम किये हैं। तथा चार वेदोंके चार महावाक्यकी चार कला कल्पना करके उसमें भी एकके तीन-तीन भाग किये हैं, सोई—

द्वादश वाक्य = बारह अवान्तर वाक्य कहलाते हैं। जैसे कि—

पहिचान = सो ऋग्वेदके—जीव, ब्रह्म, आत्मा है। यजुर्वेदके-क्षर, अक्षर, निःअक्षर है। सामवेदके-तत्, त्वं, असि है। और अथर्ववेदके-जहद, अजहद, जहदाजहद कहा है। ऐसे इसका भेद पहिचान लीजिये! और उसी प्रकारके भेदसे—

सम्वत् = पुनः बाहर एकसाल पूराको भी सम्वत् कहते हैं। उसके भीतर भी—

सो = सो उसी प्रकारसे—

बारह मास = बारह महीना पृथक्-पृथक् हुए हैं या वैसे माना गया है। जैसाकि—वैशाख, जेष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन और चैत्र। यह बारह महीनोंके नाम हैं।

तीनके = उन बारह महीनोंका एक सालके भीतरमें तीन समय होते हैं—

समय = चार महीनोंके एक समय मान करके वर्षाकाल, शिशिरकाल, धूपकाल हुआ है। ऐसे तीन समय होते हैं।

प्रमान = सो जगत्में प्रत्यक्ष प्रमाणसे माना जा रहा है। सो समय प्रमाणसे बदलते ही जाते हैं॥

व्याख्या— चारतत्त्वोंके कलारूप अष्टाङ्ग शरीरमें तीन देहके भीतर बारह भाग किये थे, तैसे ही चार वेदोंके चार अङ्गसे ही बाहर द्वादश वाक्य बनाये हैं; ऐसा पहिचान लीजिये!। और बाहर दूसरा

बारह महीना इकट्ठे मिलायके एक सालका, सोई सम्वत् माने हैं। उसमें वर्षा, शिशिर, धूप, यह तीन समय चार-चार महीनोंका एक समयका हिसाबसे एक सालमें तीन समय होनेका प्रमाण करके माने हैं ॥ १४५ ॥

साखीः—कारण तजि कला भया ❀ धनञ्जयादि समुदाय ॥
[१४] विकल्प भाव इन्द्री बहिर ❀ झीनी चाल उपाय ॥ १४६ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
कारण = बाहरके चारों तत्त्वोंके परमाणु कारण भाग या थीर कारणरूप समानवायुके स्वरूपको—
तजि = छोड़ करके या बदलाव होकरके उसीका—
कला भया = कार्य भाग यह शरीरका कला सूक्ष्म तत्त्व उत्पन्न हुयी या निर्माण भया है।
धनञ्जयादि = पाँच तत्त्वस्वरूप सूक्ष्म ब्रह्माण्डके-पाँच वायु, धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग, और देवदत्त तथा अन्तःकरण पञ्चक सूक्ष्म २५ प्रकृति इत्यादिक शरीरमें—
समुदाय = पाँचतत्त्वोंके विभिन्न भाग सूक्ष्म, स्थूल-के अवयव सब एकत्र समुदाय पैदा हुआ है।
विकल्प भाव = प्रथम गर्भावस्था या सुषुप्ति-अवस्थामें वृत्ति लय रहनेसे निर्विकल्प अभाव-रहा था, उसीमेंसे अंकुररूप इच्छा स्फुरणाके भावना स्वप्न उदय होनेसे, निर्विकल्प छूट-नेसे सङ्कल्पकी भावना हुई, फिर सङ्कल्प-विकल्प होने लगी—
इन्द्री = तब भीतर सूक्ष्म मनादिमें हलचल क्रिया होके मनन, निश्चयादि कार्य होने लगा। पश्चात्
बहिर = बाहिर वृत्ति प्रगट होके बाहरके दशों-इन्द्रियोंमें वेग भर जानेसे स्थूलदेहसे नाना-कार्य होने लग जाता है।
झीनी चाल = और सूक्ष्म मनादि इन्द्रियोंका चाल सूक्ष्म रीतिसे ही होती रहती है।
उपाय = सो जीवकी सत्तासे यह सब समय पायके उत्पन्न होते हैं। अध्यास टिकाते हैं। फिर चारखानीमें जाके पैदा होते रहते हैं ॥

व्याख्या— और बाहरके कारण तत्त्वके रूप बदलके या थीर वायुके रूप छोड़के कार्य-भाग उत्पन्न भया, सोई कारण तजि कला भया है। उसमें धनञ्जय आदि सूक्ष्म तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रियादि सब समुदायरूपसे एकत्रित रहते हैं। ऐसा जान लीजिये ! जब निर्विकल्प लय अवस्थासे सङ्कल्पकी भावना या स्फुरणा हुयी, तब झीनी चाल या वेग मन, बुद्धि आदिमें उत्पन्न होने लगती है। सूक्ष्म इन्द्रियोंकी क्रिया होनेपर फिर स्थूल इन्द्रियोंमें भी क्रिया उत्पन्न होके चलने लग जाती है। ऐसा जान लीजिये ! ॥ १४६ ॥

सम्बन्ध— चौकड़ी १ से २३ तक नववाँ खण्डमें वर्णन भया है, ऐसा जानिये !—

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ नवम खण्ड ॥ ९ ॥ ❀ ॥

१. सोई कला ले इन्द्री होय ❀ हं चित बुद्धि मन जानहु सोय ॥ १४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब इस खण्डमें देहोंमें सूक्ष्म इन्द्रियादिकी उत्पत्तिका भेद बताते हैं। सो ध्यानपूर्वक सुनिये—
सोई कला = ब्रह्माण्डके बाहरी सूक्ष्म-कारणरूप पाँच तत्त्वके कार्यरूप देहमें सोई धनञ्जय, कृकलादि पाँच ब्रह्माण्ड कलाकी वायु हैं।
ले = उसी धनञ्जयादि वायुके मिलाप लेकरके यहाँपर जीवकी सत्तासे—
इन्द्री = सूक्ष्म देहकी इन्द्रियाँ वा अन्तःकरण चतुष्टयोंकी—
होय = बनाव होके उत्पत्ति होती है। उसमें प्रथम—
हं = अहङ्कार अग्नितत्त्वकी कला कार्यभाग है।
चित = चित्त वायुतत्त्वकी कला कार्यभाग है।
बुद्धि = बुद्धि पृथ्वीतत्त्वकी कला कार्यभाग है।
मन = और मन जलतत्त्वकी कला कार्यभाग है।
सोय = सोई चार सूक्ष्म इन्द्रियाँ सूक्ष्म देहके चार तत्त्वोंके कला कार्यभाग है।
जानहु = ऐसा जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— अब यहाँपर सूक्ष्म इन्द्रियोंके उत्पत्ति देहमें कैसा भया है ? सो बतलाते हैं, सुनिये ! विशेष बात तो ऊपर लिखा ही जा चुका है। संक्षेपसे व्याख्यामें उसीका तात्पर्य बतलाया जाता है। बाहरकी पाँच तत्त्वोंके कार्यरूप मुख्य कलासे प्रथम देहमें धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग, और देवदत्त उत्पन्न हुयी हैं। फिर सोई कला लेकरके या पिण्ड-ब्रह्माण्डके तत्त्वोंके मिलाप हो करके चित्त, अहङ्कार, मन और बुद्धिकी सोई सूक्ष्म इन्द्रियोंके ठिकानेमें उत्पत्ति और स्थिति होती है, सो विचार करके जान लीजिये ! ॥ १४७ ॥

२. वायु अकाश मिलि चित अनुसन्धान * तेज अकाश हङ्कार करतूत जान ॥ १४८ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! (अब यहाँ चित्त चतुष्टयकी उत्पत्ति कहते हैं) सुनिये !

अकाश = आकाश तत्त्वरूप समानवायुके जगहमें यहाँ ब्रह्माण्ड कलाकी सोई धनञ्जय वायु है, और—

वायु = बाहरकी या पिण्डकी वायुतत्त्वरूप चञ्चल वायु, यह दोनों एकत्र—

मिलि = मिल करके देहमें जीवकी सत्तासे—

चित = चित्त इन्द्रिय बनके उत्पन्न होती है।

अनुसन्धान = उस चित्तका कार्य या विषय, चिन्तवन करना या खोजी करना होता है। उसे अनुसन्धान कहते हैं। और—

अकाश = बाहरकी समान वायु वा आकाशतत्त्वरूप ब्रह्माण्डकी धनञ्जय वायु—

तेज = तथा बाहरकी या पिण्डकी अग्नितत्त्व, यह दोनों संयुक्त मिल करके जीवकी सत्तासे—

हङ्कार = अहङ्कार इन्द्रिय बनके उत्पन्न होता है।

करतूत = उस अहङ्कारका कार्य या विषय अहं-कर्तृत्व यानी कर्मका हङ्कार करना होता है। उसे अहं करतूत कहते हैं।

जान = ऐसा जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— उसमेंसे पहले आकाश तत्त्वरूप धनञ्जय वायु और पिण्डकी चञ्चल वायु यह दोनों मिलके चित्तकी उत्पत्ति हुयी, उसका विषय अनुसन्धान कहिये चिन्तन करना या किसी इच्छित वस्तुको खोजते रहना होता है। तथा आकाश तत्त्वरूप धनञ्जय वायु और पिण्डकी अग्नितत्त्व यह दोनों मिलके हङ्कारकी उत्पत्ति हुयी, तिसका विषय 'अहं कर्तृत्व' वा करतूत करना होता है, सो जानिये ! ॥ १४८ ॥

३. आकाश नीर ले मन अनुहरे * सङ्कल्प विकल्प जानहु करे ॥ १४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

आकाश = और बाहरकी समानवायु वा आकाश तत्त्वरूप ब्रह्माण्ड कलाकी धनञ्जय वायु, तथा—

नीर = बाहरकी जलतत्त्व या पिण्ड कलाकी जल यह दोनों ही—

ले = जब मिले या मिल करके एक भये, तब जीवकी सत्तासे हृदयमें—

मन = मन इन्द्रिय बनके उत्पन्न होती है।

अनुहरे = यह मन सूक्ष्मरूपसे चला ही करता है।

सङ्कल्प-विकल्प = फिर मनका कार्य या विषय कल्पना-स्फुरणा उठाना और पुनः वह मिटके लय होना, ऐसे होता है। उसे ही इच्छा-अनिच्छा कहते हैं।

करे = मन सदा सङ्कल्प-विकल्प करता ही रहता है।

जानहु = ऐसा जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— फिर आकाश तत्त्वरूप धनञ्जयवायु और पिण्डकी जल तत्त्व यह दोनों मिलके मनकी उत्पत्ति हुई, सङ्कल्प-विकल्प करते रहना ही तिसका विषय है, ऐसा जानिये ! ॥ १४९ ॥

४. होखै गगन पृथिवीके सङ्ग * निश्चय कर्म बुद्धिके अङ्ग ॥ १५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

गगन = और बाहरकी समान वायु वा आकाश तत्त्वरूप ब्रह्माण्डकी धनञ्जयवायु तथा—

पृथिवीके = बाहरकी या पिण्डकी पृथ्वीतत्त्व यह दोनोंके—

सङ्ग = संयोग-सम्बन्धरूप मिलाप—

होखै = हो करके या सङ्ग होनेसे—
अङ्ग = अन्तरङ्ग या अन्तःकरणरूप भीतरी अङ्गमें एक भागमें जीवकी सत्तासे—
बुद्धिके = बुद्धि इन्द्रिय बनके उत्पन्न होती है।
निश्चय = उस बुद्धिके विषय या कार्य, कोई बातको दृढ़ करना, या निश्चय करना होता है।
कर्म = ऐसा प्रत्येक सूक्ष्म इन्द्रियोंके विषयरूप कर्म न्यारा-न्यारा जान लीजिये। इस तरह तत्त्वोंका मिलाप और जीवके सत्ता सम्बन्धसे हृदयमें चित्त-चतुष्टयकी उत्पत्ति होती हैं फिर वह विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं॥

व्याख्या— एवं आकाश तत्त्वरूप धनञ्जयवायु और पिण्डकी पृथ्वीतत्त्व यह दोनोंके मिलाप हो करके बुद्धिके अङ्ग या भाग उत्पन्नहुयी, निश्चय करना ही उसका कर्म या विषय है, सो जानिये!॥१५०॥ और पिण्डकी समान वायुरूप आकाश तत्त्व वा थीरपवन तथा ब्रह्माण्डकलाकी धनञ्जयवायु यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे चित्त उत्पन्न होनेके प्रथम ही अन्तःकरणकी उत्पत्ति हो जाती है, उसका विषय निर्विकल्प वा लय होना होता है। इसके बाद उपरोक्त चारों इन्द्रियाँ क्रमश, उत्पन्न होती हैं। उत्पत्ति प्रकरणमें एक भाग पिण्ड-कलाकी और दूसरी एक भाग ब्रह्माण्ड-कलाकी मिलाप होती है। इसमें अन्तःकरण ही मुख्य विशेष भाग है। दूसरी प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। ऐसा जान लीजिये!॥

५. धनञ्जय सो गगन स्वरूप ❀ देवदत्त पृथिवी अनुरूप॥ १५१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—अब भीनी पञ्चवायुको पञ्चतत्त्वोंके मुख्य मुख्य स्वरूपमें कायम करके उसका भेद बतलाते हैं, सुनिये!—
धनञ्जय = ब्रह्माण्ड कलाकी धनञ्जयवायु जो है, सो यहाँपर—
सो = सोई पिण्डकलामें वा शरीरमें आके—
गगन स्वरूप = आकाश तत्त्वका स्वरूप हो जाता है, वह समान वायुका थीर स्वरूप है, यह—दोनोंमें कोई भेद नहीं है, एक ही है—
देवदत्त = और ब्रह्माण्ड कलाकी देवदत्त वायु यह जो है, सो पिण्डकलारूप देहमें—
अनुरूप = सूक्ष्म बारीकरूपसे मुख्य वैसा ही—
पृथिवी = पृथ्वी तत्त्वके ही स्वरूप है। ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या— देहमें पाँच तत्त्वोंका मुख्य स्वरूपमें पाँच वायुको बतलाया जाता है। धनञ्जयवायु सोई आकाश तत्त्वका स्वरूप है, और पृथ्वीके सूक्ष्म स्वरूपमें देवदत्तवायु है, यह पृथ्वीतत्त्वके समान ही गुण रखता है, ऐसा जानना चाहिये॥ १५१॥

६. वायु किङ्किरा कूर्म सो आग ❀ नीर अनुरूप बखानै नाग॥ १५२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
किङ्किरा = ब्रह्माण्डकलाकी कृकलवायु यह जो है, पिण्डकलारूप देहमें—
वायु = चञ्चल वायुतत्त्वके स्वरूपमें है।
कूर्म = और ब्रह्माण्ड कलाकी कूर्मवायु यह जो है, सो पिण्ड कलारूप देहमें—
सो आग = सोई अग्नितत्त्वके स्वरूप है, अर्थात् कूर्मवायुको मुख्य अग्नितत्त्वके जगहमें कहा है।
नाग = ब्रह्माण्ड कलाकी नागवायु यह जो है, सो पिण्ड कलारूप देहमें आके—
नीर = जलतत्त्वका ही—
अनुरूप = मुख्य सूक्ष्म स्वरूप धारण कर लेता है।
बखानै = ऐसा तत्त्वज्ञानके विवरणमें कहा जाता है; ज्ञानियोंने ऐसा बखान किये हैं, सो जान लीजिये!॥

व्याख्या— किङ्किरावायु मुख्य चञ्चल वायु तत्त्वके रूपमें है। तैसे ही कूर्मवायु सोई मुख्य अग्नितत्त्वके रूपमें है, और नागवायु मुख्य जलतत्त्वके सूक्ष्म स्वरूपमें है। यह तत्त्वज्ञान समझाके ज्ञानियोंने वर्णन किया है, सो जानिये!॥ १५२॥

७. बाहर इन्द्री कारण प्रतिकूल ❀ सूक्ष्म देह आवै सो मूल॥ १५३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बाहर इन्द्री = बाहिरके दशों इन्द्रियाँ जो हैं, सो कार्यरूपमें वृक्षके समान होनेसे—
कारण = भीतरके कारणरूप सूक्ष्मबीज या सूक्ष्म क्रियादिकोंसे स्वभावतः—
प्रतिकूल = उलटा वा विपरीत कार्यके चालमें प्रतिकूल होके चलते हैं। तथापि—
सूक्ष्मदेह = नौ तत्त्वरूप सूक्ष्म शरीरमें ही स्थूल-देहका समस्त बीज और मूलरूप जड़ है।
सो मूल = कर्मअध्यास सोई जड़ाध्यासरूपी मूल मुख्य बीजका जड़ है।
आवै = भोग हुये उपरान्त सब संस्कार एकत्र होके सूक्ष्मदेहमें ही आके टिकते हैं वा जमा रहते हैं; उसीसे जीव जन्म-मरणमें आते-जाते हैं॥

व्याख्या— तहाँ भीतरके सूक्ष्म इन्द्रियाँ बीजरूपमें हैं, तथा बाहरके इन्द्रियाँ वृक्षरूपमें हैं। इस कारण बाहरके स्थूल इन्द्रियाँ अन्दरके कारण इन्द्रियोंके विपरीत वा प्रतिकूल कार्य करती हैं। परन्तु, सबोंका सम्बन्ध तो सूक्ष्मदेहमें ही आके होता है। अतः सबका मूल-जड़ सोई सूक्ष्मदेह है। अर्थात् बाहरके इन्द्रियाँ कारणके प्रतिकूल रहती हैं, सो उसका मूल सूक्ष्मदेहमें आके मिली रहती है। अतएव स्थूल-सूक्ष्म इन्द्रियोंके द्वारा जो कर्म होता है, उसका जड़ाध्यास संस्कार अन्तःकरणमें ही जमा होके टिका रहता है। वही अध्यासवश जीव सब बारम्बार आवागमनमें आते-जाते ही पड़े रहते हैं। पारख, बोध अपरोक्ष हुए बिना किसीका वह अध्यास नहीं छूटता है॥ १५३॥

८. देवदत्त कर्म अभिमान ❀ धनञ्जय सो विशेष विज्ञान॥ १५४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— वे भीनी पाँचवायु विशेष करके पाँच मार्गमें बल देती हैं। कौन किसमें बल देती है? उस बारेमें कहते हैं, सुनिये!—

देवदत्त = पृथ्वीतत्त्वके अंशरूप यह देवदत्त वायु-को मायाशक्तिके स्वरूपमें माने हैं, यह वायु मुख्यतया —
कर्म = कर्ममार्गमें विशेष बलदेती है वा शारीरिक बल या शक्ति कर्म करनेमें इसीसे प्राप्त होता है।
अभिमान = नाना कर्म कर-करके सब जीव कर्म-के अभिमानी ही सब तरफ हुये या हो रहे हैं।
धनञ्जय = और समानवायुके अंशरूप यह वायु आकाश तत्त्वके जगहमें गिना जाता है।
सो = सो धनञ्जयवायुको ही निरञ्जन स्वरूप माने हैं, और सो—
विशेष = विशेष करके मुख्यतया —
विज्ञान = विज्ञानमार्गमें या विशेष ज्ञानमें बल पहुँचाता है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— अर्थात् देवदत्तवायु कर्ममार्गमें बल देता है, सो कर्मीलोग कर्म करके अभिमानी हुये और हो रहे हैं। तथा धनञ्जयवायु सो विशेष करके विज्ञानमें बल देता है यह तात्पर्य है॥ १५४॥

९. वायु किङ्किरा ज्ञान स्वरूप ❀ कूर्म आग उपासना रूप॥ १५५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
वायु किङ्किरा = तैसे चञ्चल वायुके अंशरूप यह कृकलवायुको महादेवके स्वरूपमें माने हैं। यह वायु—
ज्ञान स्वरूप = ब्रह्म स्वरूपके बोध करनेवाला ज्ञानमार्गमें विशेष करके बल या शक्ति पहुँ-चाता वा मदत देता है। और—
कूर्म आग = कूर्मवायु मुख्य अग्नितत्त्वके अंशरूप विष्णुके स्वरूप ठहराके माने हैं, और यह वायु—
उपासना = भक्तिमार्गके ध्यान, धारणा, उपासना करनेमें बल दे करके—
रूप = नाना तरहके ज्योति प्रकाशके रूप दिखाता है, ऐसा कहा है, अर्थात् कूर्मवायु तेजतत्त्वरूप है, वह उपासना मार्गमें बल देता है, ऐसा जानिये॥

व्याख्या— और कृकलवायु ज्ञानमार्गमें बल देता है। यही उसका मुख्य स्वरूप है। अग्नि तत्त्वरूप-में कूर्मवायु है, सो उपासनामें बल देता है। उसीसे ज्योति आदिरूप देखते हुये ध्यान करते हैं॥ १५५॥

१०. नागवायु योग बल ठान * तासों पवन श्वास निरमान ॥ १५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
नागवायु = जलतत्त्वके अंशरूप यह नागवायु है, इसको ब्रह्मा माने हैं। यह—
योग = अष्टाङ्ग योगमार्गोंके साधनादि साधनेमें—
बल ठान = विशेष करके बल या शक्ति देता है, ऐसा निश्चय करके माने हैं।
तासों = उसी सूक्ष्म नागवायुकी संयोगसे या ब्रह्माण्डके उक्त पाँचों सूक्ष्मवायुसे कारणरूप—
पवन = थीरपवनके मेलसे या वृत्ति शून्य होके पवनथीर होनेसे आनन्दका भास होता है।
श्वास = पश्चात् श्वासरूप प्राणवायुकी चलनगति चञ्चलतासे—
निरमान = उत्पन्न होके प्राण बनती भई, या श्वास निर्माण हुआ, ऐसा कहा है॥

व्याख्या— और नागवायु योगमार्गमें बल देती है, ऐसा योगी लोगोंने ठाने या माने हैं। उसीसे थीरपवन द्वारा पुनः श्वास वायुकी उत्पत्ति हुयी, ऐसा माने हैं॥ १५६॥

११. पाँचों भये प्रत्यक्ष विशेष * श्वासा बीच कला औ रेष ॥ १५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
पाँचों भये = पाँच तत्त्वोंसे उक्त पाँचोंवायु उत्पन्न होते भये, उससे पाँच मार्गमें साधनाको बल भी मिलता गया और थीर पवन तथा श्वाससे ही पाँच तत्त्व उत्पन्न हुआ।
विशेष = विशेष योग साधनादिमें रगड़ करनेसे पाँचों तत्त्वोंके विशेषता या विशेष भाग—
प्रत्यक्ष = योग-ध्यानमें साक्षात् प्रत्यक्ष देखनेमें भी आता है, तथा बाहर भी प्रत्यक्ष वही दिखता है, ऐसे योगी लोग कहते हैं कि—
श्वासा बीच = हृदय मध्यमें श्वासवायुके बीच भागमें ही ध्यानमें—
कला औ रेष = पाँचों रङ्ग, पाँचों चाल सुख-दुःखादि नाना कला और रेखा, पहिचान, लक्षण आदि सब देखनेमें आता है, ऐसा कहे हैं॥

व्याख्या— विशेष करके योग साधना करनेसे प्रत्यक्ष पाँचों तत्त्वोंकी उत्पत्ति भीतर देखनेमें आती है। और प्रत्यक्ष बाहर भी पाँचों तत्त्वोंकी उत्पत्ति हुयी या होती है, ऐसा कल्पना किये हैं। ज्ञान स्वरोदय, साधने वाले योगीलोग श्वासके बीचमें ही सब तत्त्वोंके कला और रेखा देखते हैं, तो रङ्ग, चाल, सुख-दुःख आदिके कला और हाथ-पैरादिके रेखा-चिन्ह नाना लक्षण दिखलाई देता है, ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं॥ १५७॥

१२. इङ्गलादिक नाड़ी तीन * झीनी नाड़ी परगट कीन ॥ १५८ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
नाड़ी तीन = और ब्रह्माण्डकलाकी तीन नाड़ी उसी श्वासवायुमें लक्ष लगायके कल्पना किये हैं जैसे—
इङ्गलादिक = इङ्गलानाड़ी, पिङ्गलानाड़ी, और सुषुम्नानाड़ी, ऐसे तीन प्रकारकी—
झीनी नाड़ी = यह बारीक या सूक्ष्म तीन नाड़ियाँ नासिकाके बाँये-दहिने और मध्यमें चलने-वाली श्वासवायुको—
परगट = मानके योगी लोगोंने कल्पनासे उत्पन्न या प्रगट—
कीन = किये हैं, ऐसा जानिये!॥

व्याख्या— योगी लोगोंने श्वासमें लक्ष लगायके विचार करके इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ऐसे तीन नामकी झीनी नाड़ी श्वासवायुमें प्रगट किये हैं, वह नासिकाके बायाँ, दहिना और मध्यमें चलने वाली वायुको माने हैं॥ १५८॥

१३. सो अस्थूल भया परचण्ड * और पाँच सो प्रगटै पिण्ड ॥ १५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हेसन्तो !
सो = सो इस तरहसे उपरोक्त सब—
अस्थूल = सूक्ष्मतत्त्वोंके समूहसे मोटा स्थूल भाग इकट्ठे होकर—
भया परचण्ड = तेज वेगवाले छूटनेको अति कठिन प्रचण्ड होता भया, सोई स्थूल देहका जाल

जीवोंपर पड़ा है।
और = उसमेंसे और भी—
सो = सो उसी प्रकारके लक्षणवाले—
पाँच = पाँच वायु भिन्न-भिन्न ही—
पिण्ड = पिण्ड-कलाकी स्थूल देहमें—
प्रगटै = प्रगट होके उत्पन्न हुए हैं, सो नीचे उनके नाम कहा है। अर्थात् उसमेंसे और भी पिण्डकी पाँच वायु प्रगट होके उत्पन्न भई हैं। इस तरह सो स्थूल बड़ा प्रचण्ड हो गया है॥

व्याख्या— सो इस प्रकारसे सूक्ष्मदेहसे स्थूल मोटा भाग प्रचण्डतासे दृढ़ हुआ। उसीमेंसे, फिर और भी पिण्ड-कलाकी पाँच वायु उत्पन्न होके प्रगट हुये हैं! अर्थात् ब्रह्माण्डके पाँच वायुके अतिरिक्त पिण्डके पाँच वायु और भी सो उसीसे प्रगट भये हैं, ऐसे सो स्थूल भाग प्रचण्ड भया है॥ १५९॥

१४. प्राण अपान व्यान समान * और उदान उतपति पहिचान॥ १६०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! पिण्डकी ५ वायुओंके नाम और उत्पत्ति कहते हैं, सुनिये!

प्राण = पिण्डमें अग्नितत्त्वके भागरूप यह प्राणवायु है।
अपान = पिण्डमें पृथ्वीतत्त्वके भागरूप यह अपानवायु है।
व्यान = पिण्डमें आकाशतत्त्वरूप समान-वायुके भागरूप यह व्यानवायु है।
समान = पिण्डमें चञ्चलवायुके भागरूप यह समानवायु है।
और = और बाकीके पाँचवें वायु—
उदान = पिण्डमें जलतत्त्वके भागरूप यह उदानवायु है।
उतपति = ये पाँचों भी पूर्वोक्त रीतिसे ही उत्पन्न हुये हैं, अब उन्होंकी जिस प्रकारसे उत्पत्ति भयी है, सो भी कहते हैं।
पहिचान = सो विचार करके पहिचान या मालूम कर लीजिये!॥

व्याख्या— व्यान, समान, प्राण, उदान, और अपान यही पाँच पिण्डकी वायु हैं। अब इन्होंकी उत्पत्ति भी कहता हूँ, सो पहिचान करके जान लीजिये!॥ १६०॥

१५. वायु अकाश व्यान सो होय * सर्व शरीर व्यापै सोय॥ १६१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

वायु = ब्रह्माण्डकी कृकलवायु और—
अकाश = पिण्डकी आकाश तत्त्वरूप थीरपवन वा समानवायु यह दोनों मिलके—
व्यान सो होय = व्यान वायु सोई यहाँ पर शरीरमें उत्पन्न हुई है।
सर्व शरीर = पैरके अंगुठेसे लेकरके शिर पर्यन्त सर्व शरीरमें, नस-नसमें—
सोय = सोई व्यान नामको वायु—
व्यापै = नस नाड़ियोंमें फैलते हुए व्याप रहा है। यानी देहभरमें इसका दौड़ होता रहता है॥

व्याख्या— जैसेकि ब्रह्माण्ड-कलाकी वायु तत्त्वरूप कृकलवायु और पिण्ड-कलाकी आकाश तत्त्वरूप थीर पवन सो यह दोनों मिल करके व्यान वायुकी उत्पत्ति हुयी है। सो व्यानवायु सर्व शरीर भरके नसोंमें भरा हुआ रहता है। ऐसा जानिये!॥ १६१॥

१६. नाभि समान वायु जुग जान * तेज वायु मिलि हृदया प्राण॥ १६२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

वायु जुग = दो प्रकारके वायु होते हैं। एक वायुकी प्रकृति है, और दूसरा ब्रह्माण्डकी वायु है। जैसे कि, ब्रह्माण्डकी कृकलवायु और पिण्डकी चञ्चलवायु यह दोनोंमिल करके—
समान = समान वायुकी उत्पत्ति हुयी है।
नाभि = उस समानवायुका मुख्य वासस्थान नाभिमें है। खाया हुआ अन्न-जलके रसको अलग निकालना उसका काम है।
जान = ऐसा जानिये।
वायु = और ब्रह्माण्डकी कृकलवायु और—
तेज = पिण्डकी अग्नितत्त्व यह दोनों—
मिलि = मिल करके या एकत्र सम्मेलन हो करके—

प्राण = प्राण वायुकी उत्पत्ति हुयी है ।
हृदया = हृदय स्थानमें मुख्य करके प्राणवायुका वासा रहता है । उससे श्वासके गति सदा चला करता है ॥

व्याख्या— ब्रह्माण्ड कलाकी कृकलवायु और पिण्ड कलाकी चञ्चलवायु यह दोनों मिलके देहमें समान वायुकी उत्पत्ति हुयी है । वह नाभिमें रहके नाड़ियोंमें रस निकालके पहुँचाता रहता है । तैसे ब्रह्माण्ड कलाकी कृकलवायु और पिण्ड कलाकी अग्नितत्त्व दोनों मिलके प्राणवायुकी उत्पत्ति हुयी है । वह हृदयमें रहके दिन-रात सदोदित श्वासको चलाता रहता है ॥ १६२ ॥

१७. जल वायु मिलि कण्ठ उदान ❀ मृत्तिका वायु गुदा अपान ॥ १६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
वायु = फिर ब्रह्माण्डकी कृकल वायु और—
जल = पिण्डकी जलतत्त्व यह दोनों—
मिलि = मिल करके या सम्मिलित हो करके—
उदान = उदान वायुकी उत्पत्ति हुयी है ।
कण्ठ = गला या कण्ठ स्थानमें मुख्य करके उदानवायु रहता है, और खाया हुआ अन्न जलको छानके अलग-अलग कोठीमें पहुँचाने का काम भी करता है ।
वायु = ब्रह्माण्डकी कृकल वायु और —
मृत्तिका = पिण्डकी पृथ्वीतत्त्व यह दोनों मिल करके—
अपान = अपान वायुकी उत्पत्ति हुयी है ।
गुदा = गुदा स्थानमें रह करके वह अपानवायु मलको साफ कराता है ॥

व्याख्या— ब्रह्माण्ड कलाकी कृकलवायु और पिण्ड कलाकी जलतत्त्व दोनों मिलके उदान वायुकी उत्पत्ति हुयी है । वह कण्ठमें रहके अन्न-जलको छानता है, तथा स्वप्न आदि भास भी कराता है, और ब्रह्माण्ड कलाकी कृकलवायु तथा पिण्डकलाकी पृथ्वीतत्त्व दोनों मिलके अपान वायुकी उत्पत्ति हुयी है । वह गुदा स्थानमें रहिके मलको बाहर निकालता है, और दूषित वायुको त्याग कराता है ॥ १६३ ॥

१८. तेहिते ज्ञान इन्द्री समुदाय ❀ कर्म इन्द्री पाछे प्रगटाय ॥ १६४ ॥

अर्थः — श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
तेहिते = उसीसे यानी पिण्ड-ब्रह्माडकी उक्त दोनों वायुके भाग मिलके—
ज्ञान इन्द्री = पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ प्रथम ही—
समुदाय = समस्त समुदायरूपसे स्थूल देहमें उत्पन्न होती हैं ।
पाछे = तत्पश्चात् या उसके बादमें—
कर्म इन्द्री = पाँचों कर्म इन्द्रियाँ भी स्थूल रूपसे—
प्रगटाय = देहमें उत्पन्न या प्रगट होती हैं ।
[अब पहले ज्ञानेन्द्रियोंके नाम बतायके फिर उत्पत्ति कहते हैं] ॥

व्याख्या— यही विधिसे इच्छामाया द्वारा अथवा जीवकी सत्तासे ब्रह्माण्ड और पिण्डका दोनों वायुकी मिलाप होनेसे पहले पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके समुदाय क्रमशः उत्पत्ति हुई या होती हैं । तदनन्तर फिर कर्मेन्द्रियोंके भी उत्पत्ति होके प्रगट होती हैं । सो सब विवरण भी यथास्थान बतलावेंगे । उसमें प्रथम ज्ञानेन्द्रियोंके नाम बतायके फिर उत्पत्ति भी दरशावेंगे ॥ १६४ ॥

१९. श्रवण रसना नैन बखान ❀ त्वचा नासिका उतपति मान ॥ १६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
श्रवण = कान, समान वायुके भागसे हैं ।
रसना = जीभ, जलतत्त्वके भागसे है ।
नैन = नेत्र या आँख, अग्निके भागसे हैं ।
बखान = ये तीन ज्ञानेन्द्रियोंके नाम कहा गया, बाकीके और भी वर्णन करते हैं—
त्वचा = चमड़ी, चञ्चल वायुके भागसे है ।
नासिका = नाक, पृथ्वीके भागसे है ।
उतपति = मुख्य करके तत्त्वोंके मिलापसे उक्त पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुयी हैं या पैदा होते हैं ।
मान = ऐसा मान लीजिये वा ऐसा माने हैं (अब उन्होंके उत्पत्ति कहते हैं, सो भी सुनिये) ॥

व्याख्या— कान, त्वचा, नेत्र, जिभ्या, और नासिका, यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं । अब उनके उत्पत्तिकी मिलाप भी वर्णन करते हैं, सो सुनिये ! ॥ १६५ ॥

२०. तेज अकाश मिलि श्रवण होय * बिना तेज सुनते नहिं कोय ॥ १६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
तेज = तेजतत्त्वरूप ब्रह्माण्डकी कूर्मवायु और—
अकाश = आकाश तत्त्वरूप पिण्डकी व्यानवायु यह—
मिलि = दोनों मिल करके जीवकी सत्ता-सम्बन्ध-से शरीरमें—
श्रवण = कान, यह इन्द्रियकी उत्पत्ति हुयी हैं।
होय = कानसे शब्द-कुशब्द सुननेका कार्य या विषय होता है।
बिना तेज = तेज तत्त्वकी विशेषता हुए बिना—
कोय = कोई भी व्यक्ति वा प्राणी—
सुनते नहिं = सुन नहीं सकते हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् तेजरूप कूर्मवायु, और आकाशरूप व्यानवायु, यह दोनों मिलके 'कान' उत्पन्न हुआ है। तेजके विशेषता हुये विना कोई सुन नहीं सकते हैं। इसलिये कानोंमें विशेष तेजका भाग रहता है ॥ १६६ ॥

२१. वायु तेज त्वचा परचण्ड * इन्द्री सो स्पर्श प्रगटै पिण्ड ॥ १६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
तेज = तेजतत्त्वरूप ब्रह्माण्डकी कूर्मवायु और—
वायु = चञ्चल वायुरूप पिण्डकी समान वायु, यह दोनों मिल करके शरीरमें—
त्वचा = चमड़ीरूप त्वचा इन्द्रियकी उत्पत्ति हुयी है।
परचण्ड = तीक्ष्ण रीतिसे प्रचण्डता करके—
स्पर्श = स्पर्श विषय इसीसे मालूम होता है। यानी ठण्डी, गर्मी जाना जाता है।
पिण्ड = स्थूल शरीररूपी पिण्डमें—
इन्द्री सो = सोई दूसरा ज्ञानेन्द्रियसे नरम-गरम आदि मालूम होता है।
प्रगटै = ऐसे शरीरमें यह त्वचा प्रगट हुयी है। अर्थात् पिण्डमें स्पर्श विषयको प्रगट करने वाली ज्ञानेन्द्रिय सोई प्रचण्ड त्वचा है। वह तेज और वायु मिलके बनी है ॥

व्याख्या— तैसे ही वायुरूपमें समानवायु, और तेजरूपमें कूर्मवायु यह दोनों मिलके प्रचण्डता-से 'त्वचा' की उत्पत्ति हुयी है। सो त्वचा इन्द्रिय पिण्डमें स्पर्श प्रगट करनेवाली है ॥ १६७ ॥

२२. तेज तेज मिलि चक्षु उपाय * तेज नीर रसना प्रगटाय ॥ १६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
तेज = तेज तत्त्वरूप ब्रह्माण्डकी कूर्मवायु और दूसरा—
तेज = तेज तत्त्वरूप पिण्डकी प्राणवायु यह दोनों-
मिलि = मिल करके शरीरमें—
चक्षु = दोनों नेत्र इन्द्रियोंकी—
उपाय = उत्पत्ति हुयी है। रूप देखना इसका विषय है। तथा—
तेज = तेज तत्त्वरूप ब्रह्माण्डकी कूर्मवायु और—
नीर = जल तत्त्वरूप पिण्डकी उदानवायु यह दोनों मिल करके शरीरमें—
रसना = जिभ्या इन्द्रियकी—
प्रगटाय = उत्पत्ति होके प्रगट होती है वा हुयी है। इससे षट्रसका ग्रहण होता है ॥

व्याख्या— और तेजरूपमें कूर्म और पिण्डके दूसरा तेजरूपमें प्राण, यह दोनों मिलके नेत्र उत्पन्न हुआ है। तेजरूपमें कूर्म और नीररूपमें उदान मिलके रसना प्रगट भयी है ॥ १६८ ॥

२३. तेज पृथिवी जुग नासा होय * पाँचों पाँच विषय रस भोय ॥ १६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
तेज = और तेजतत्त्वरूप ब्रह्माण्डकी कूर्मवायु और—
पृथिवी = पृथ्वी तत्त्वरूप पिण्डकी अपानवायु यह—
जुग = दोनों मिल करके दो छिद्रवाली—
नासा = नासिका इन्द्रियकी उत्पत्ति देहमें हुयी है।
होय = इससे गन्ध विषयका ग्रहण होता है। इस प्रकार—
पाँचों = श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और नासिका यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंसे—
पाँच विषय = शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध,

यह पाँचों विषयोंकी—
रस = रस यह मुख्य भाग उत्पन्न हो जाता है।
सो विषय रसभोग अनुभवसे ग्रहण होता है।
भोय = सोई विषय जीवोंको भुलाने वाले होते हैं, या भुलाय देते हैं। जिससे जीव भवबन्धनमें पड़ जाते हैं। बिना पारख ॥

व्याख्या— और तेजरूपमें कूर्म तथा पृथ्वीरूपमें अपान यह दोनों मिलके दो छिद्रवाली नासिका उत्पन्न हुयी हैं। ऐसे पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होके पञ्च विषयोंके रस भोगोंमें जीवोंको खैंच-खैंच-के भुला देती हैं, या भुला रही हैं। सो सत्सङ्ग-विचार द्वारा परखके विषयोंके अध्यासोंको छोड़ना और स्वभाव सुधारना चाहिये ॥ १६९ ॥

साखीः— अपनी अपनी विषयको * कारण ग्राही होय ॥

[१५] षड् सम्पुट औ त्रिपुटी * राम प्रकाशिक सोय ॥ १७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
अपनी अपनी = शरीरमें तत्त्वोंसे बने हुए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। कान शब्दको, त्वचा स्पर्शको, जीभ रसको, नेत्र रूपको, और नाक गन्धको, ऐसे अपने-अपने भागरूप तत्त्वोंकी कला—
विषयको = कार्यरूप विषयोंको ही—
कारण = एक-एक कारण तत्त्वोंकी ज्ञानेन्द्रियाँ आकर्षण करके—
ग्राही = ग्राहक या ग्रहण करने वाले—
होय = हो जाते हैं या ग्रहण हो ही जाता है। अर्थात् अपने-अपने कार्य विषयोंको कारण तत्त्व और इन्द्रियाँ ग्राहक हो जाते हैं। उन-में स्वभावतः ही खिचाव रहता है।
षड् सम्पुट = एक-में-एक मिले हुये इन्द्रियोंके षट् गोलक और छाजनादि षट् पशुधर्म, षट्ऊर्मी, षट्शास्त्र आदि सब षट्-षट् कलाओंको—
औ = और वाणी-खानीके—
त्रिपुटी = तीन देह, तीन गुण, तीन कोश, तीन अवस्था, तीन मार्गादि समस्त त्रिपुटियों समेत्को—
प्रकाशिक = जानने, मानने, सत्ता देके प्रकाश करने वाला, देखानेवाले—
सोय = सोई सत्स्वरूप अविनाशी—
राम = देहादिमें रमा हुआ चैतन्य जीव नित्य सत्य है, और देहादि जड़ है। विवेकसे ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— अर्थात् कारण तत्त्वोंके ज्ञानेन्द्रियोंसे अपने-अपने तत्त्वोंके कार्य भागमें बना हुआ वही-वही विषय ही ग्रहण होता है। एक इन्द्रियसे एक ही विषय ग्रहण हो सकता है, दूसरे विषय ग्रहण कभी हो नहीं सकता है। क्योंकि, जिस तत्वका कार्य भाग है, सो उसी तत्त्वके कारणमें जाके मिलती है और स्वजातीय तत्त्वोंका मिलान भी हो जाता है। इसी हेतुसे निज-निज विषय भोगोंको ही कारणरूप इन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं, तो ग्रहण भी हो जाता है। जैसे—कानोंसे शब्द ही का ग्रहण होता है, अन्य विषयोंका ग्रहण नहीं हो सकता है। त्वचासे स्पर्श, नेत्रसे रूप, जिभ्यासे रस और नासिका-से गन्ध मात्र एक-एक विषय ग्रहण होता है। इसी प्रकार सबोंको समझ लीजिये कि, एक इन्द्रिय एक ही विषयके सिवाय और दूसरा विषयको वह ले नहीं सकती है, और सम्पुटके आकारके इन्द्रिय गोलक तथा छाजन, भोजन, मैथुनादि षट्पशुधर्म, षट्पन, षट्ऊर्मी आदि षट्-षट्के सब भाग और तीन देह, तीनोंगुण सम्बन्धी समस्त त्रिपुटियाँ सो सब जड़ ज्ञानशून्य, विकारी हैं। इन सबोंको रमैयाराम चैतन्य जीव ही अध्यास बाँधके रम-रमके प्रकाश करता है। सो सबोंका प्रकाशक जीव ही है। परन्तु गुरुवा लोग कोई एक परमात्मा वा आत्मारामको, कल्पनासे षट्सम्पुट और त्रिपुटीका प्रकाशक मानें हैं। ऐसा जानिये! ॥ १७० ॥

सम्बन्ध—अब यहाँसे चौकड़ी १ से ३५ तक दशवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ दशम खण्ड ॥ १० ॥ ❀ ॥

१. ज्ञान इन्द्रीको इहै विचार ❀ कर्म इन्द्री उतपति निरुवार ॥ १७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इस खण्डमें कर्मेन्द्रियाँ और २५ प्रकृतियोंकी उत्पत्तिकी मिलाप बतलाते हैं, सुनिये !—

ज्ञान इन्द्रीको = पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति विवरण जो है, सो—
इहै = उपरोक्त इसी प्रकारसे भया है, सो कह चुका हूँ ! ।
विचार = सो हे विचारवानो ! आप लोग भी विचार कर लीजिये ! यही ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी विचार है ।
कर्म इन्द्री = अब पाँच कर्मेन्द्रियोंके भी जिस प्रकार—
उतपति = तत्त्वोंके मिलापसे उत्पत्ति हुई या होती है, सो भी—
निरुवार = निर्णय करके कहता हूँ ! सो ध्यानसे सुनके आप लोग भी निर्णयको जानकर सार ग्रहण करिये ॥

व्याख्या— ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति और उनके पञ्चविषयोंके कार्य यही ऊपर कहे अनुसार हैं, सो विचार करके जान लीजिये ! अब पाँच कर्मेन्द्रियोंके उत्पत्ति तथा उसका विषय भी निर्णय करके कहता हूँ ! सो भी सुन लीजिये और सत्य निर्णयको ही ग्रहण करिये ॥ १७१ ॥

२. क्षिति औ गगन जहाँ मिलाय ❀ वाक्य इन्द्री सो तहाँ दृढ़ाय ॥ १७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

क्षिति = ब्रह्माण्ड कलाकी देवदत्तवायु; सोई यहाँ पृथ्वीतत्त्व है ।
औ = और दूसरा—
गगन = आकाश तत्त्वरूप पिण्ड-कलाकी व्यानवायु है, यह दोनों ही—
जहाँ मिलाय = जहाँपर संयोग होके मिल जाते हैं, वहाँ पर—
वाक्य इन्द्री = मुख या वाक् इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ।
सो = सो उस मुख इन्द्रिय द्वारा—
तहाँ = तहाँ पर—
दृढ़ाय = दृढ़तासे वाणी उच्चारण होके बोलना होता है । ऐसा तहाँ दृढ़ाया हुआ है ॥

व्याख्या— पृथ्वीतत्त्व और आकाशके जगहमें, यहाँ देवदत्तवायु और व्यानवायु जहाँ मिल जाता है, तहाँ वाक् कहिये मुख इन्द्रियकी उत्पत्ति हुयी वा होती है, सो मुखसे बोला जाता है; बोलना ही मुखका विषय है ॥ १७२ ॥

३. क्षिति वायु दोनों परसङ्ग ❀ इन्द्री हाथ कर्मके अङ्ग ॥ १७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

क्षिति = ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप देवदत्त-वायु और—
वायु = पिण्ड कलाकी वायुरूप समानवायु यह—
दोनों = दोनोंका एकत्र वा—
परसङ्ग = परस्पर संयोगरूप मिलाप होनेसे—
इन्द्री हाथ = हाथ यही इन्द्रियकीउत्पत्ति हुयी है ।
अङ्ग = उस हाथरूपी अङ्गसे यहाँ—
कर्मके = लेने-देने आदिकी कर्मके विषय होता है ॥

व्याख्या— पृथ्वी और वायुके जगहमें यहाँ देवदत्त और समानवायु दोनों मिलके हाथ इन्द्रिय-की उत्पत्ति हुयी वा होती है । लेन-देन आदिके कर्म वा विषय उस हाथरूपी अङ्गसे होता है ॥ १७३ ॥

४. क्षिति अरु तेज पाद उतपान ❀ पृथिवी नीर शिश्न परवान ॥ १७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

क्षिति = और ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीरूप देवदत्त-वायु—
अरु = और दूसरा—
तेज = पिण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप प्राणवायु, यह दोनों मिलके—

पाद = पैर या पाँव इन्द्रियकी यहाँ पर—
उतपान = उत्पत्ति होती है या हुयी है। जिससे चला-फिरा जाता है।
पृथिवी = और ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीरूप देवदत्त-वायु, और—
नीर = पिण्ड कलाकी जलरूप उदानवायु, यह दोनों मिलके—
शिश्न = उपस्थ या लिङ्ग इन्द्रियकी उत्पत्ति हुयी, इससे मैथुन-भोग और मूत्र त्याग होता है।
परवान = यह प्रमाणिक बात है वा ऐसा प्रमाण किया जाता है॥

व्याख्या— तैसे ही पृथ्वी और तेजतत्त्वके जगहमें यहाँ देवदत्तवायु और प्राणवायु दोनों मिलके पैरकी उत्पत्ति हुई वा होती है। गमनागमन क्रिया वा विषय उस पैरसे होता है। फिर पृथ्वी और जल तत्त्वके जगहमें देवदत्तवायु और उदानवायु, यह दोनों मिलके लिङ्ग या उपस्थ इन्द्रियकी उत्पत्ति हुयी वा होती है। इससे मूत्र त्याग और मैथुन कर्मकी विषय उस लिङ्ग द्वारा होता है॥ १७४॥

५. क्षिति क्षिति गुदा बखानै सोय ❀ पाचों कर्म इन्द्री हैं जोय॥ १७५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
क्षिति = तथा ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप देवदत्तवायु, और—
क्षिति = पिण्ड कलाकी पृथ्वीरूप अपानवायु, यह दोनों ही तत्त्व मिल करके—
गुदा = गुदा द्वारके इन्द्रियकी उत्पत्ति हुयी है।
सोय = सोई गुदासे मलका त्याग होता है।
बखानै = यह सब वर्णन करके बता दिया है। वा ऐसा बताया गया है।
पाँचों = मुख, हाथ, पाँव, लिङ्ग और गुदा, यह पाँचों ही—
जोय = जो कि, विचार करके देखिये! उन्होंसे बाहरी कार्य होता रहता है, इससे—
कर्म इन्द्री हैं = सो कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। यही कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्तिका वर्णन है, अर्थात् जो यह ऊपर नाम कहा गया है, सो पाँचों ही शरीरमें रही हुयी कर्म करनेवाली इन्द्रियाँ हैं, ऐसा जानिये!॥

व्याख्या— और पिण्ड-ब्रह्माण्डकी दोनों पृथ्वीतत्त्वके जगहमें यहाँपर देवदत्तवायु और अपान-वायु यह दोनों मिलके गुदा इन्द्रियकी उत्पति हुयी वा होती है। उस गुदासे मल त्याग करनेका कर्मरूप विषय होता है। इस प्रकार उपरोक्त पाँच कर्म करनेवाली पाँच कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति जीवकी सत्तासे शरीरमें हुई हैं। सो विचार करके देख लीजिये! इसमें गुदा विशेष भाग है, अन्य प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। तत्त्वोंके भागरूप उक्त पाँचों कर्म इन्द्रियाँ जड़ हैं। उनको चलानेवाला चैतन्य जीव उनसे सदैव न्यारा ही रहता है। उन इन्द्रियोंसे नाना तरहके कर्म करके अबोध जीव ही जड़ाध्यासी होते हुए सदा दुःख-सुख भोगते रहते हैं॥ १७५॥

६. शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ❀ पाँचों विषय उतपति प्रतिबन्ध॥ १७६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! यहाँ पर पञ्चविषयोंकी उत्पत्ति बतलाते हैं, सो सुनिये!
शब्द = समान वायुकी भाग कानका शब्द विषय है।
स्पर्श = चञ्चल वायुकी भाग त्वचाका स्पर्श विषय है।
रूप = तेजतत्त्वकी भाग नेत्रका रूप विषय है।
रस = जल तत्त्वकी भाग जिभ्याका रस विषय है।
गन्ध = और पृथ्वी तत्त्वकी भाग नाकका गन्ध विषय है।
पाँचों विषय = उक्त पाँचों इन्द्रियोंके यह पाँचों विषय हैं, ये—
प्रतिबन्ध = जीवोंको मुक्तिमें रुकावट डालनेवाले, बन्धन देनेवाले हैं। और इन्द्रियोंमें बन्धान होके किस प्रकार वे—
उतपति = पञ्चविषयोंके उत्पत्ति हुयी या होती है। सो उत्पत्तिका भेद नीचे बतलाते हैं॥

व्याख्या— शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पाँचों विषयोंकी उत्पत्तिका बन्धान भी उसी

प्रकार परस्पर तत्त्वोंके मिलापसे हुआ है, ये विषय मुक्ति-मार्गमें रुकावट डालके उत्पत्तिमें ले जाते हैं ॥ १७६ ॥

७. नीर गगन ले शब्द उपाय * जल वायु स्पर्श दृढ़ाय ॥ १७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
नीर = ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु और-
गगन = पिण्डकलाकी आकाश तत्त्वरूप व्यानवायु यह दोनोंकी—
ले = मिलाप ले करके—
शब्द = शब्द विषयकी—
उपाय = उत्पत्ति हुयी, इससे राग, स्वर, अर्थकी उत्पत्ति होती है। तथा—
जल = ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु और—
वायु = पिण्ड कलाकी वायु तत्त्वरूप समानवायु यह दोनों मिल करके—
स्पर्श = स्पर्श विषयकी उत्पत्ति हुयी हैं।
दृढ़ाय = इससे मृदुत्त्व, कठिनत्त्व, कोमलत्त्व, शीत, उष्णादि स्पर्श दृढ़ होता है, यानी ऐसा जाना जाता है ॥

व्याख्या— अब उनकी उत्पत्ति कहते हैं, सो सुनिये! नीर और गगनके जगहमें नागवायु और व्यानवायु मिलके 'शब्द' उत्पन्न होता है। जल और वायुके जगहमें नागवायु और समानवायु मिलके 'स्पर्श' उत्पन्न होके दृढ़ होती है ॥ १७७ ॥

८. नीर तेज रूप दृढ़ भास * जल ही जल रस करै विलास ॥ १७८ ॥

अर्थः — श्रीरामरहससाहेब कहते हैं — हे सन्तो!
नीर = तैसे ही ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु, और—
तेज = पिण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप प्राणवायु, यह दोनों मिलके—
रूप = रूप विषयकी उत्पत्ति हुयी है।
दृढ़ भास = इससे दृढ़तासे सुन्दरत्त्व या रूप कुरूपादिका नाना रङ्ग भास होता है।
जल ही = एवं ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप यही नागवायु, और—
जल = पिण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप उदानवायु, यह दोनों मिल करके —
रस = रस विषयकी उत्पत्ति हुई है।
करै विलास = इससे जिभ्या द्वारा मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त, ऐसे षट्रसोंका भोग-विलासका स्वाद लेना, जीव करते रहते हैं ॥

व्याख्या— तैसे ही नीर और तेजके जगहमें नागवायु और प्राणवायु मिलके 'रूप' की उत्पत्ति होकर नेत्र द्वारा दृढ़तासे जीवोंको भास होता है। तथा जल ही जलके जगहमें नागवायु और उदानवायु मिलके 'रस' की उत्पत्ति होती है। जिससे सब प्राणी षट्रसोंके स्वादमें विलास करते हैं ॥ १७८ ॥

९. नीर पृथिवी गन्ध सो होय * पाँचों विषय कहावै सोय ॥ १७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
नीर = ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु और-
पृथिवी = पिण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप अपानवायु यह दोनों मिल करके—
गन्ध = गन्ध विषयकी उत्पत्ति हुयी है।
सो होय = सो नासिका द्वारा जीवोंको करम्भ, सौरम्भ, बदबू, शान्त, ऐसे सुगन्ध, और दुर्गन्धोंका मालूम होता है।
सोय = सोई पाँचतत्त्वके भागरूप—
पाँचों विषय = पाँचों विषय और उसकी उत्पत्ति—
कहावै = कहलाता है, सो निर्णयसे एक-एक करके कह दिया गया है। ऐसा जान लीजिये!॥

व्याख्या— और नीर तथा पृथ्वीके जगहमें नागवायु और अपानवायु मिलके, सो यहाँ 'गन्ध' की उत्पत्ति होती है। सोई पाँचों विषय कहलाते हैं, ऐसा निर्णयसे जानिये!॥ १७९ ॥

१०. पाँच स्थान सो तहाँ विशेष * भिन्न भिन्न लेखा सो लेख ॥ १८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— यहाँ शरीरमें पाँच तत्त्वके मुख्य बासस्थान बतलाते हैं,

विशेष करके कौन तत्त्व कहाँ रहता है ? यह दिखलाते हैं, सो सुनिये !—

तहाँ = यहाँ पिण्डरूपी शरीरमें, तहाँपर—
विशेष = विशेष या ज्यादा करके—
सो = सोई बाहरके पञ्चतत्त्व तथा पञ्चविषयोंके मुख्य भाग—
पाँच स्थान = पाँच जगहके मुकाममें रहते हैं, ऐसा माना गया है।
भिन्न भिन्न = पृथक्-पृथक् या न्यारा-न्यारा करके-
सो = सो उसका—
लेखा = हिसाब, संख्या, या गिनती भी भाग लगायके, मैं यहाँपर—
लेख = लिखता हूँ ! सो आप लोग भी उसे लख लीजिये ॥

व्याख्या— तहाँ पिण्डरूप शरीरमें विशेष करके पाँच तत्त्वोंका रहनेके पाँच जगह मुख्य वास-स्थान माने हैं। सो उसका लेखा भी भिन्न-भिन्न करके नीचे लिखा जाता है। सो विचार करके लख लीजिये ! ॥ १८० ॥

११. शून्य ब्रह्माण्ड अनहदका भोग ❀ नाभि पवन गन्ध उतयोग ॥ १८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
ब्रह्माण्ड = मस्तक भ्रमर गुफारूपी ब्रह्माण्डमें—
शून्य = सब वृति लय होके आकाश शून्यरूपमें प्रधान रहता है। अथवा समान वायु सोई आकाशके स्वरूपमें शून्यवृतिसे स्थिर रहता है। इसीसे शून्य ब्रह्माण्डमें जाके—
अनहदका = घंटा, मृदङ्ग, आदि १० प्रकारकी अनहद नादकी बाजा वहाँपर होता है वा बजता है, उसीका ब्रह्म-परमात्मा बेहद्दरूपसे
भोग = उपभोग करता है। तथा योगी लोग भी कान बन्दकरके साधनासे सो अनहद भोगों-को भोगके मगन होते हैं। ऐसा माने हैं।
और—
नाभि = नाभि स्थानमें मुख्य करके—
पवन = सब वायुके गाँठ बँधी हैं, इसीसे विशेष करके वायुका वासस्थान नाभिमें माने हैं।
तथा—
गन्ध = दश दल कमलका महान सुगन्ध भी वहीं नाभिसे ही उठके नासिका द्वारा सुगन्ध—
उतयोग = उत्पन्न होके निकलता है, योगीलोग ध्यान साधनासे सो सुगन्धको सूँघके मगन-मस्त रहते हैं, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— शून्य ब्रह्माण्ड या मस्तक स्थानमें अनहद बाजाका भोग होता है, अतः वहाँ पर आकाशका निवास माने हैं। तैसे नाभिमें वायुका मुख्य करके, वासा तथा कमलके सुगन्धका उत्पत्ति और भोग माने हैं ॥ १८१ ॥

१२. तेज क्षुधा है पीत मुकाम ❀ द्वारा नैन रूपसो काम ॥ १८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
तेज = अग्नि तत्त्वकी शरीरमें—
मुकाम = मुख्य करके बासस्थान या रहनेका मुकाम —
पीत = पित्तकी घड़ियाँ-थैलीमें माने हैं। ब्रह्माण्ड-में पित्त चढ़ायके योगीलोग ज्योति देखते हैं,
और—
क्षुधा है = पिण्डके भागमें पेटमें पित्तसे ही अन्नादि हजम होके भूख लगती है। अर्थात् पित्तके-मुकाममें रहनेवाला तेजके जरियेसे ही क्षुधा लगती है।
नैन = दोनों नेत्रोंके भीतरी—
द्वारा = द्वार या दरवाजासे ही पित्तके तेज बहिर्गत हो करके—
सो = सोई पित्तकी तेज प्रकाशसे—
रूप = नाना प्रकारके रङ्ग-रूप देखनेका और दिखानेका—
काम = कार्य या काम होता है, सो जानिये ! ॥

व्याख्या— पित्तमें तेज तत्त्वका वासा है, जिससे क्षुधा लगता है। नेत्र द्वार है, रूप देखना ही उसका काम है ॥ १८२ ॥

१३. बासा नीर विशेष लिलाट * मैथुन भोग जुग खुलै कपाट ॥ १८३ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
नीर = तैसेही जलतत्त्वरूप वीर्यकी देहमें मुख्य—
बासा = बासस्थान या रहनेकी जगह—
विशेष = विशेष करके वा मुख्यतया—
लिलाट = ललाट या भाल मस्तकके कुछ नीचेकी जगहमें है, जहाँकी वीर्यका सार एकत्रित रहता है, ऐसा माने हैं।
जुग = और स्त्री-पुरुष दोनोंके विषय सम्बन्धमें—
मैथुन भोग = परस्पर मैथुन-सम्भोगसे घर्षण करनेसे विशेष उष्णता बढ़के—
कपाट = वहाँका द्वार या दरवाजाके किवाड़रूप पर्दा—
खुलै = खुलके हट जाता है, इससे स्त्री-पुरुषके रज और वीर्य पतन होके गिरता है, ऐसाकहा है॥

व्याख्या — जल या वीर्यका विशेष करके ललाटमें बासा कहा है। मैथुन-सम्भोगके समय स्त्री-पुरुषके रज-वीर्यके स्थानका द्वार या पर्दारूप कपाट खुल जाता है, ऐसा कहा है ॥ १८३ ॥

१४. पृथिवी कलेजा मुख जेहि द्वार * खान पान सो करत अहार ॥ १८४ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
पृथिवी = और पृथ्वीतत्त्वका देहमें मुख्य करके बासस्थान—
कलेजा = हृदयके पासमें कलेजा या यकृतके जगहमें माने हैं।
जेहि = जिसका की—
मुख = मुखस्थान यही मुख्य करके बाहरके—
द्वार = दरवाजा या फाटक कहा है।
सो = सो उसी मुखसे ही सब कोई—
अहार = खुराक या भोजनके आहार—
खान = चार प्रकारके अन्न भक्षण या खाना-खाते हैं। तथा—
पान = पानी, दूध, शर्बत आदि पतला पदार्थ भी पीते हैं।
करत = ऐसे अन्न-जलकी नित्य-प्रति भोजन वा आहार करते रहते हैं। इससे कलेजा तथा सर्वाङ्ग पुष्ट होते रहते हैं। अर्थात् पृथ्वी-तत्त्वका मुख्य स्था नशरीरमें कलेजामें माना है। जिसका कर्म इन्द्रियरूप द्वार मुख है। सो मुखसे ही सब कोई खान-पानके आहार करते हैं। इसीसे कलेजा पुष्ट रहता है॥

व्याख्या— और पृथ्वीका बासा कलेजामें है, जिसका द्वार मुख है। सो मुखसे ही खान-पानका आहार किया जाता है, उसी अन्न-जलके रससे कलेजा परिपुष्ट रहिके शरीरमें ताकत रहती है। कहनेका यही मुख्य भाव है॥ १८४॥ इसीप्रकार नीचेके दोहोंमें भी वही बात कहा है:—

॥ ❀ ॥ पाँच तत्त्वोंके शरीरमें बासस्थान, द्वार, रङ्ग, और उसका आहाररूप विषय वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दोहा ॥ ❀ ॥

नभ ब्रह्माण्डमें रहत है, श्रवण जानिये द्वार। श्याम रङ्ग नभका कहै, अनहद नाद अहार॥ १॥
पवन नाभिमें रहत है, नासा जानिये द्वार। हरा रङ्ग है वायुको, गन्ध सुगन्ध अहार॥ २॥
पित्तेमें पावक रहै, नैन जानिये द्वार। लाल रङ्ग है अग्निको, लोभ औ मोह अहार॥ ३॥
जलको बासा भाल है, लिङ्ग जानिये द्वार। मैथुन कर्म अहार है, रङ्ग सफेद निहार॥ ४॥
पृथ्वी कलेजामें रहै, मुख सो जानिये द्वार। पीला रङ्ग है पृथिवीको, पीवन खान अहार॥ ५॥

इसप्रकार देहमें पाँच तत्त्वोंके रहनेका मुख्य पाँच स्थान, विषय द्वार आदि माना गया है। सो गुरुवालोगोंका कथन है, ऐसा जान लीजिये !॥

१५. पाँच तत्त्वसों भये पचीस * अंश पिण्ड ब्रह्माण्ड सो ईश ॥ १८५ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! अब पाँच तत्त्वोंसे पिण्डमें जो पचीस प्रकृतियाँ उत्पन्न भई हैं, सो विस्तारसे बतलाया जाता है, सुनिये !
पाँच तत्त्वसों = पिण्ड-ब्रह्माण्डके कार्य और कारणरूप पाँचतत्त्वोंमेंसे—
पचीस = पचीस प्रकृतियाँ और—

भये = स्थूल देहमें जीवकी सत्तासे उत्पन्न होते भये। परन्तु, गुरुवा लोग कहते हैं कि—
ब्रह्माण्ड = बाहरी समस्त सृष्टि या संसाररूप ब्रह्माण्ड भरका एक मालिक है—
सो ईश = सोई परमेश्वर जगत्कर्ता, धर्ता, मूल कारण है, और—
पिण्ड = शरीर आदि पदार्थ और देहमें रहनेवाले जीव सबोंको उसी कल्पित—
अंश = ईश्वरके अंश कहते हैं। तथा तत्त्वोंके कार्य भाग या अंशरूपमें सबको ठहराये हैं। यानी "जो ब्रह्माण्डे, सो पिण्डाण्डे" ऐसा माने हैं। सो मिथ्या कल्पनामात्र है॥

व्याख्या— जीवकी सत्तासे फिर वह जड़ पाँच तत्त्वसे पचीस प्रकृतियाँ स्थूल देहमें उत्पन्न हुई हैं और जीवकी सत्तासे ही चल भी रही हैं। परन्तु, गुरुवालोग कल्पना करके ऐसा कहते हैं कि— एक ईश्वर कर्ताने बाहरी ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके, अपनी ईश्वरीय अंशसे जीवोंको बनाया और तत्त्वोंके अंशसे पिण्डको बनाया। इससे पिण्ड अंश है, ब्रह्माण्ड कारण अंशी है। तथा जीव अंश है, ईश्वर सोई अंशी है, ऐसा कहा है, सो भ्रम कल्पना मात्रका कथन है॥ १८५॥

१६. लोभ काम क्रोध औ मोह ❀ भय मिलि पञ्च गगन महँ सोह॥ १८६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
गगन = आकाशतत्त्वरूप समान वायुके मुख्य कार्यरूप प्रकृतियाँ—
महँ = इसमेंके भागसे स्थूल देहमें—
सोह = सोई पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुयी हैं, सो उनके नाम यह है कि—
लोभ = किसीके वस्तु लेनेका लोभ-लालच करना, यह पहला प्रकृति है।
काम = विषय भोग या मैथुनकी इच्छा उठाना, सो दूसरा प्रकृति है।
क्रोध = गुस्सासे क्रोधित हो जाना, यह तीसरा प्रकृति है।
औ = और—
मोह = स्त्री-परिवारादिमें लुब्ध या मोहित रहना। सो चौथा प्रकृति है।
भय = और दुःख या मृत्युसे डरना, यह पाँचवाँ प्रकृति है।
मिलि = पाँचोंतत्त्वोंके मिलापसे—
पञ्च = यह पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, या हुयी हैं॥

व्याख्या— लोभ, काम, क्रोध, मोह, और भय, यह पाँच सोई आकाश तत्त्वरूप समानवायुकी प्रकृतियाँ हैं। पाँच तत्त्वोंके मिलापसे इनकी भी उत्पत्ति होती हैं॥ १८६॥

१७. शून्यहि शून्य उत्पति है लोभ ❀ वायु शून्य कामके क्षोभ॥ १८७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— देहमें जीवकी सत्तासे अब आकाशतत्त्व या थीर पवनरूप समान-वायुकी पाँच प्रकृतिके उत्पत्तिमें तत्त्वोंका मिलाप कहते हैं, सुनियेः—
शून्यहि = शून्यरूप यही ब्रह्माण्ड कलाकी आकाश-तत्त्वरूप धनञ्जय वायु है और दूसरा शून्य—
शून्य = पिण्ड कलाकी शून्य आकाशतत्त्वरूप व्यान वायु है, यह दोनों ही मिल करके भीतर मनमें—
लोभ = लोभ प्रकृति या स्वभावकी—
उत्पति है = उत्पत्ति या पैदाइस होती है। तथा—
शून्य = ब्रह्माण्ड कलाकी शून्य आकाश तत्त्वरूप धनञ्जयवायु और—
वायु = पिण्ड कलाकी वायु तत्त्वरूप समान वायु यह दोनों मिलके मनमें—
कामके = काम प्रकृति या चञ्चल स्वभाव होके इसके—
क्षोभ = इच्छा वा स्फुरणाकी उत्पत्ति हुई या होती है॥

व्याख्या— अर्थात् आकाशतत्त्वरूप धनञ्जय वायुकी मानी हुई पाँच प्रकृतियोंकी अब यहाँ तत्त्वोंके मिलापसे होनेवाली उत्पत्ति बतलाते हैं। शून्य-ही-शून्यरूप पिण्ड-ब्रह्माण्डके दोनों आकाशके जगहमें यहाँ धनञ्जय और व्यानवायु यह दोनों मिलके लोभकी उत्पत्ति होती है। फिर वायु और शून्यके जगहमें धनञ्जय और समानवायु यह दोनों मिलके 'काम' रूप क्षोभ करनेवाली इच्छाकी उत्पत्ति होती है॥१८७॥

१८. तेज अकाश क्रोध तेहि होय * कारण मोह गगन जल सोय ॥ १८८ ॥

अर्थः — श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
अकाश = फिर ब्रह्माण्ड कलाकी आकाशतत्त्वरूप धनञ्जयवायु और—
तेज = पिण्ड कलाकी तेजतत्त्वरूप प्राणवायु यह दोनों मिल करके भीतर—
क्रोध = क्रोध प्रकृति या उग्रस्वभाव होके—
तेहि = उससे क्रोधकी उत्पत्ति—
होय = प्राणियोंमें होती है।
गगन = तैसे ही ब्रह्माण्ड कलाकी आकाशतत्त्वरूप धनञ्जय वायु और—
जल = पिण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप उदानवायु यह दोनों मिलके—
मोह = मोह प्रकृति या आसक्त स्वभावकी हृदयमें उत्पत्ति होती है या हुयी है।
सोय = सोई यह दोनों तत्त्वोंके मिलाप ही—
कारण = मोह उत्पन्न होनेमें मुख्य कारण या हेतु कहा है॥

व्याख्या— तैसे ही तेज और आकाशके जगहमें धनञ्जय और प्राणवायु यह दोनों मिलके वहींसे 'क्रोध' की उत्पत्ति होती है। फिर गगन और जलके जगहमें धनञ्जय और उदानवायु मिलके या इसीके कारणसे सोई 'मोह' उत्पन्न होती है॥ १८८॥

१९. पृथिवी आकाश मिलि भय मान * शून्य प्रकृति पाँच परवान ॥ १८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
आकाश = और ब्रह्माण्ड कलाकी आकाशतत्त्वरूप धनञ्जय वायु और—
पृथिवी = पिण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप अपानवायु यह दोनों—
मिलि = मिल करके वा एकत्र हो करके—
भय = डर वा भय प्रकृतिका जीवोंके—
मान = मानन्दीसे उत्पत्ति हुयी वा होती है ऐसा माने हैं, सो जान लीजिये!
शून्य = इस प्रकार ब्रह्माण्डकी आकाशतत्त्वरूप धनञ्जय वायुकी—
प्रकृति = कार्य स्वभाव या प्रकृतियाँ—
पाँच = लोभ, काम, क्रोध, मोह, और भय, ऐसे पाँच तरहसे उत्पत्ति हुई हैं—
परवान = प्रवीण लोगोंने यह ऐसा ही प्रमाण करके माने हैं, सो जानिये!॥

व्याख्या— और पृथ्वी तथा आकाशके जगहमें धनञ्जय और अपानवायु मिलके 'भय' या डर मानना उत्पत्ति होती है। इसमें विशेष भाग लोभ है। अन्य प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। इस प्रकार आकाशतत्त्वरूप धनञ्जयकी यह पाँच प्रकृति प्रवीण वा ज्ञानियोंने प्रमाण करके माने हैं। सो जीवके सत्तासे देहमें ऐसे स्वभाव समय पायके उत्पन्न हुयी या होती है॥ १८९॥

२०. चलन बोलन पसारन जोय * सिकोरन धावन वायुते होय ॥ १९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! और देहमें जीवकी सत्तासे अब चञ्चल वायुतत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंके उत्पत्ति बताया जाता है, सो सुनिये!-
चलन = पैरसे चलना, फिरना, डोलना आदि क्रिया होती है।
बोलन = मुखसे बोलना, शब्दको उच्चारण करना या शरीरसे बल-शक्ति प्रगट करना होता है।
पसारन = अङ्गको प्रत्येक जगह फैलाना, पसार देना होता है।
जोय = यह जो है, सो मुख्य वायुतत्त्वसे होता है, ऐसा देख लीजिये।
सिकोरन = समेटलेना, सङ्कोचन करना या खैंचलेना होता है।
धावन = वेगसे चलना या दौड़ते हुए जाना होता है।
वायुते = चञ्चल वायुसे यह पाँच प्रकृति स्थूल देहमें—
होय = जीवकी शक्तिसे उत्पन्न होते हैं। इसमें भी पाँचों तत्त्वोंकी मिलाप है, सो नीचे कहा है॥

व्याख्या— चञ्चलवायु तत्त्वकी पाँच प्रकृतियाँ हैं, और तत्त्वोंके मिलापसे उनकी भी उत्पत्ति भई है। और चञ्चलवायु तत्त्वकी या कूकलवायुकी पाँच प्रकृतियोंके नाम ये हैं:— पसारन, धावन, बोलन

या बलन, सङ्कोचन और चलन है। इनके क्रिया विशेषरूपसे वायुके वेग करके ही होता है। अतः ये पाँच वायुके प्रकृति कहाते हैं ॥ १९० ॥

२१. वायु आकाशते पसारन होय * वायु वायु मिलि धावन सोय ॥ १९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
वायु = ब्रह्माण्ड कलाकी वायुतत्त्वरूप कृकलवायु और—
आकाश = पिण्ड कलाकी आकाशतत्त्वरूप व्यानवायु
ते = इससे या यह दोनों मिल करके –
पसारन = यह पसारन प्रकृतिके—
होय = उत्पत्ति होती है।
वायु = फिर ब्रह्माण्ड कलाकी वायुतत्त्वरूप कृकलवायु और दूसरी—
वायु = पिण्ड कलाकी वायुतत्त्वरूप समानवायु यह दोनों—
मिलि = मिल करके—
धावन = धावन प्रकृति या दौड़नेका क्रियाकी—
सोय = सोई उत्पत्ति हुयी या होती है ॥

व्याख्या— वायु और आकाशके जगहमें कृकल और व्यान यह दोनों मिलके 'पसारन' होती है। वायु-ही-वायुके जगहमें कृकल और समान यह दोनों मिलके 'धावन' होती है ॥ १९१ ॥

२२. वायु तेज मिलि बोलन जान * वायु जल सिकोरन परवान ॥ १९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
वायु = तैसे ही ब्रह्माण्ड कलाकी वायुतत्त्वरूप कृकलवायु और—
तेज = पिण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप प्राणवायु यह दोनों—
मिलि = मिल करके या सम्मिलित होके—
बोलन = बोलन या बलन प्रकृतिकी उत्पत्ति हुयी या होती है—
जान = ऐसा जान लीजिये। तथा—
वायु = ब्रह्माण्ड कलाकी वायुतत्त्वरूप कृकलवायु और—
जल = पिण्ड कलाकी जल तत्त्वरूप उदानवायु यह दोनों मिल करके—
सिकोरन = सिकोरन-समेटना, यानी सङ्कोचन प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई या होती है।
परवान = तत्त्वज्ञानी लोगोंने यह बात प्रमाण करके बताये हैं ॥

व्याख्या— तैसे ही वायु और तेजके जगहमें कृकल और प्राण यह दोनों मिलके 'बोलन' होती है। फिर वायु और जलके जगहमें कृकल और उदान यह दोनों मिलके (सङ्कोचन) होती है, सो प्रमाण होनेसे माना गया है ॥ १९२ ॥

२३. वायु पृथिवीसे चलन होय * पाँच प्रकृति पवनके सोय ॥ १९३ ।

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
वायु = और ब्रह्माण्ड कलाकी वायु तत्त्वरूप कृकलवायु और—
पृथिवी = पिण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप अपान वायु यह दोनों ही—
से = मिल जानेसे—
चलन = चलने-फिरनेकी क्रिया या प्रकृतिकी उत्पत्ति—
होय = हुई, या होती है।
पाँच प्रकृति = उक्त पाँच तत्त्वोंके मिलापसे यह पाँच प्रकृतियाँ—
पवनके = चञ्चलवायुतत्त्वके भागसे स्थूल शरीरमें—
सोय = सोई जीवकी सत्तासे उत्पन्न होती हैं। इसमें धावन सोई विशेष भागसे है। और प्रकृतियाँ सामान्य भागसे मिली हैं ॥

व्याख्या— और वायु तथा पृथिवीके जगहमें कृकल और अपान यह दोनों मिलके 'चलन' होती है। सोई पाँच प्रकृति वायुतत्त्वकी कही गयी हैं और "धावन" इसमें विशेष भाग है। तथा अन्य प्रकृतियाँ सामान्य भागसे मिली हैं ॥ १९३ ॥

२४. निद्रा मैथुन आलस जान * तृषा क्षुधा अनल पहिचान ॥ १९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— जीवकी सत्तासे देहमें तेज तत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंकी उत्पत्ति

हुयी हैं। सो उनके नाम इस प्रकारसे है—
निद्रा = नींद लग जाना, गाढ़ा निद्राका आना होता है।
मैथुन = कामके वेगसे भग-भोग करना या स्त्री-पुरुषोंका सम्भोग होना, सो मैथुन कहलाता है।
आलस = अन्नकी गर्मी बढ़के देहमें आलस्यका होना होता है।
जान = यह इसकी तीन प्रकृति जानिये! और—
तृषा = प्यासका लगना या गला सूख जाना, जल पीनेकी इच्छा लगना, उसे ही तृषा कहते हैं।
क्षुधा = भूखका लगना सोई क्षुधा है।
अनल = यह पाँचों ही अग्नि तत्त्वरूप कूर्मवायुसे प्रकृति उत्पन्न होती हैं।
पहिचान = ऐसा पहिचानके जान लीजिये! इसमें भी पाँच तत्त्वोंके मिलापसे कार्य होता है, सो नीचे कहा गया है॥

व्याख्या— अब यहाँपर अग्नितत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंका भी और तत्त्वोंके मिलापसे उनकी उत्पत्ति कहा जाता है। तेजतत्त्व या कूर्मवायुकी पाँच प्रकृतियोंके नामः—निद्रा, मैथुन, आलस्य, तृषा और क्षुधा, ये अग्नि तत्त्वसे उत्पन्न होते हैं, ऐसा पहिचानिये!॥ १९४॥

२५. तेज आकाशते निद्रा होय ❀ तेज वायुते मैथुन सोय॥ १९५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
तेज = ब्रह्माण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप कूर्मवायु और—
आकाश = पिण्ड कलाकी आकाश तत्त्वरूप व्यानवायु—
ते = उससे या यह दोनों मिल करके—
निद्रा = निद्रा प्रकृतिकी—
होय = उत्पत्ति होती है या हुई है।
तेज = फिर ब्रह्माण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप कूर्मवायु और—
वायु = पिण्ड कलाकी वायु तत्त्वरूप समानवायु यह दोनों मिलकरके—
ते = उससे—
मैथुन = मैथुन प्रकृति या भग-भोग क्रियाकी—
सोय = सोई उत्पत्ति होती है॥

व्याख्या— उसमें तेज और आकाशके जगहमें कूर्म और व्यान यह दोनों मिलके 'निद्रा' आती है। फिर तेज और वायुके जगहमें कूर्म और समान यह दोनों मिलके 'मैथुन' होती है॥ १९५॥

२६. तेज तेज मिलि आलस जान ❀ तेज नीरते तृषा मान॥ १९६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
तेज = तैसे ही ब्रह्माड कलाकी अग्नितत्त्वरूप कूर्मवायु और दूसरा—
तेज = पिण्ड कलाकी तेजतत्त्वरूप प्राणवायु यह यह दोनों ही—
मिलि = मिल करके—
आलस = आलस्य यह प्रकृतिकी उत्पत्ति हुयी या होती है।
जान = यह जान लीजिये!
तेज = फिर ब्रह्माण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप कूर्मवायु और—
नीर = पिण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप उदानवायु यह दोनों मिल करके—
ते = उससे—
तृषा = प्यास प्रकृतिकी उत्पत्ति हुयी या होती है।
मान = ऐसा माना गया है, सो जानिये!॥

व्याख्या— तैसे ही तेज-ही-तेजके जगहमें कूर्म और प्राण यह दोनों मिलके 'आलस्य' आती है। फिर तेज और नीरके जगहमें कूर्म और उदान यह दोनों मिलके 'तृषा' लगती है, ऐसा माना गया है॥ १९६॥

२७. तेज पृथिवीते क्षुधा बखान ❀ पाँच प्रकृति तेजके जान॥ १९७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
तेज = और ब्रह्माण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप कूर्मवायु और—
पृथिवी = पिण्ड कलाकी पृथिवी तत्त्वरूप अपान-

वायु यह दोना—
ते = से मिलाप हो करके—
क्षुधा = भूख प्रकृतिकी उत्पत्ति होती है।
बखान = ऐसा वर्णन किया गया है। इसमें विशेष भाग 'आलस्य' है, और प्रकृति समान भागसे मिली हैं।
पाँच प्रकृति = पाँच तत्त्वोंके मिलापसे यह पाँच प्रकृतियाँ देहमें—
तेजके = अग्नितत्त्वके विशेष भागसे उत्पन्न हुई या होती हैं।
जान = उसमें सत्ता जीवकी है, ऐसा जान लीजिये! अर्थात् जीवकी सत्तासे तेजतत्त्वसे वे पाँचों प्रकृतियाँ उत्पन्न हुयी हैं। ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या— और तेज तथा पृथ्वीके जगहमें कूर्म और अपान यह दोनों मिलके 'क्षुधा' लगती है। इसीमें 'आलस्य' सोई विशेष भाग है, और अन्य प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। इस प्रकार यह तेज तत्त्वके पाँच प्रकृतियोंकी उत्पत्ति स्थूल देहमें जीवकी सत्तासे होती हैं, ऐसा विचारसे जान लीजिये!॥ १६७॥

२८. लार रक्त पसीना बनाय ❀ मल मूत्र पाँचों जलते उपाय॥ १६८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— जीवकी सत्तासे स्थूलदेहमें जलतत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंकी उत्पत्ति भई है। सो कहा जाता है—
लार = मुखसे टपकनेवाली लार सोई थूकको जानना।
रक्त = नस-नाड़ियोंमें रही हुई खून सोई रक्त है।
पसीना = रोम-रोमसे देहसे टपकनेवाली या निकलनेवाली पानी सोई पसीना है।
बनाय = यह जलसे ही ऐसी प्रकृति बनता वा बनाता है।
मल = सप्तधातुके सार आखिरी मलरूप बिन्दू या वीर्य है।
मूत्र = लिङ्गसे निकलनेवाली पानी सोई मूत्र है।
पाँचों = यह पाँचों प्रकृतियाँ—
जलते = उदानरूप जलतत्त्वकी मुख्य भागसे—
उपाय = देहमें जीवकी सत्तासे उत्पत्ति होती है। पाँचतत्त्वोंके मिलाप इसमें भी उसी प्रकारसे होता है, ऐसा जानिये!॥

व्याख्या— जलतत्त्वकी पाँच प्रकृति और उसके तत्त्वोंके मिलापसे उत्पत्ति कहते हैं। लार, रक्त, पसीना, मूत्र, और वीर्य यह जलतत्त्वकी पाँच प्रकृतियाँ हैं। यह मुख्य करके जलतत्त्वकी विशेषतासे ही उत्पन्न होती हैं॥ १६८॥

२६. जल अकाशते लार होय ❀ जल वायुते रक्त है सोय॥ १६६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
जल = ब्रह्माण्ड-कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु और—
अकाश = पिण्ड कलाकी आकाशतत्त्वरूप व्यानवायु यह दोनों मिल करके—
ते = उसीसे—
लार = लार प्रकृतिकी मुखमेंसे—
होय = उत्पत्ति होती है।
जल = वैसे ही ब्रह्माण्डकलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु, और—
वायु = पिण्ड कलाकी वायुतत्त्वरूप समानवायु, यह दोनों मिल करके—
ते = उसीसे—
रक्त है = खून वा रक्त बनता है।
सोय = सोई रक्तकी उत्पत्ति हुई है॥

व्याख्या— जल और आकाशके जगहमें नागवायु और व्यानवायु यह दोनों मिलके 'लार' होती है। जल और वायुके जगहमें नागवायु और समानवायु, यह दोनों मिलके 'रक्त' होती है॥ १६६॥

३०. जल औ तेजते पसीना जान ❀ जल जलते मूत्र पहिचान॥ २००॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जल = फिर ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु—
औ = और दूसरा—
तेज = पिण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप प्राणवायु, यह दोनों मिल करके—

ते = उसीसे—
पसीना = पसीना प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई या होती है।
जान = ऐसा जान लीजिये !
जल = तथा ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु और दूसरा—
जल = पिण्ड कलाकी जल तत्त्वरूप उदानवायु, यह दोनों मिल करके—
ते = उसीसे—
मूत्र = मूत्र प्रकृतिकी उत्पत्ति भयी है।
पहिचान = ऐसा पहिचानके जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— जल और तेजके जगहमें नागवायु और प्राणवायु यह दोनों मिलके 'पसीना' निकलता है। जल-ही-जलके जगहमें नागवायु और उदानवायु यह दोनों मिलके उससे 'मूत्र' होता है ॥ २०० ॥

३१. जल पृथिवी सों मल उतपान ❀ पाँच प्रकृति नीर परधान ॥ २०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
जल = और ब्रह्माण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप नागवायु तथा—
पृथिवी = पिण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप अपानवायु यह दोनों मिल करके—
सों = उसीसे—
मल = बिन्दुरूप मल वा वीर्यका भाग—
उतपान = उत्पन्न हुई है या होती है।
पाँच प्रकृति = जल समेत् पाँच तत्त्वोंके मिलापसे यह पाँच प्रकृतियाँ स्थूल देहमें—
नीर = जल तत्त्वरूप नागवायुसे उत्पन्न हुई हैं।
परधान = उसमें मुख्यतया प्रधान करके जलका भाग है, सो जीवकी सत्तासे उत्पन्न होती है इसमें मूत्र विशेष भाग है, अन्य प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं ॥

व्याख्या— और जल तथा पृथ्वीके जगहमें नागवायु और अपानवायु यह दोनों मिलनेसे वीर्य वा मल उत्पन्न होता है। इस प्रकार जलतत्त्वरूप नागवायुके यह पाँच प्रकृतियाँ हैं। इसमें मुख्य भाग 'मूत्र' है और प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। स्थूलदेहमें जीवकी सत्तासे यही जलकी पाँच प्रकृतियाँ प्रधानरूपसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २०१ ॥

३२. रोम नाड़ी त्वचा मांस अस्थि ❀ पृथिवी प्रकृति पचीस समस्ति। २०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं— जीवकी सत्तासे स्थूल देहमें तैसे ही और पृथ्वीतत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंकी भी उत्पत्ति भयी है। सो इस प्रकारसे है—
रोम = देहके ऊपरके समस्त अङ्गोंके खालका बाल या केशको रोम कहते हैं।
नाड़ी = अङ्ग-प्रत्यङ्गके नस-नाड़ियोंका जाल सारे शरीर भरमें फैली हुई हैं।
त्वचा = चमड़ीको त्वचा कहते हैं।
मांस = सब शरीरकी मांस जो है, सो पृथ्वीके ही भागमें है।
अस्थि = सब हड्डियोंका भाग ही विशेष पृथ्वीतत्त्वका सार है।
पृथिवी = पृथ्वीतत्त्वके यही—
प्रकृति = पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं।
समस्ति = एक तत्त्वके पाँच प्रकृतियोंके हिसाबसे पाँच तत्त्वोंके सब भाग या समस्त संख्या
पचीस = पाँच पंचे पचीस प्रकृतियाँ सब उत्पन्न भई हैं। उसमें नीचे पृथ्वीके पाँच प्रकृतियोंके उत्पत्ति कहा गया है ॥

व्याख्या—अर्थात् पृथ्वीतत्त्वकी पाँच प्रकृतिः—रोम, नाड़ी, त्वचा, मांस और हड्डी, कहलाती हैं, यही उनका नाम है। यह पाँच समेत् मिलायके समस्त प्रकृतियाँ २५ स्थूलदेहमें गिना जाता है ॥२०२॥

३३. पृथिवी अकाश रोम उतपान ❀ छिति वायुते नाड़ी परधान ॥ २०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
पृथिवी = ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप देवदत्तवायु और—
अकाश = पिण्ड कलाकी आकाशतत्त्वरूप व्यानवायु, यह दोनों मिल करके—
रोम = रोम या बाल वा केश, यह प्रकृतिकी—
उतपान = उत्पत्ति हुई है या होती है।
छिति = तैसे ही ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप

देवदत्तवायु और—
वायु = पिण्ड कलाकी वायुतत्त्वरूप समानवायु, यह दोनों मिल करके—
ते = उससे—
परधान = प्रधान या मुख्य करके—
नाड़ी = समस्त नस-नाड़ियोंकी उत्पत्ति हुई है वा होती है ॥

व्याख्या— अब इन्होंकी तत्त्वोंके मिलापसे स्थूल देहमें पृथ्वीतत्त्वकी प्रकृतिकी उत्पत्ति सुनिये ! पृथ्वी और आकाशके जगहमें देवदत्तवायु और व्यानवायु यह दोनों मिलके 'रोम' होता है। छिति और वायुके जगहमें देवदत्तवायु और समानवायु यह दोनों मिलके प्रधानतासे नस-नाड़ी पैदा भई है ॥ २०३ ॥

३४. पृथिवी तेज मिलि त्वचा सो होय ❀ छिति जलते मांस प्रगटै सोय ॥ २०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
पृथिवी = फिर ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप देवदत्तवायु और—
तेज = पिण्ड कलाकी अग्नितत्त्वरूप प्राणवायु यह दोनों—
मिलि = मिल करके—
त्वचा = चर्म या त्वचा प्रकृतिकी—
सो होय = सोई उत्पत्ति होती है।
छिति = तथा ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप देवदत्तवायु—
जल = पिण्ड कलाकी जलतत्त्वरूप उदानवायु यह दोनों मिल करके—
ते = उससे—
मांस = मांस प्रकृतिका भाग—
सोय = सोई देहमें स्थूल रूपसे—
प्रगटै = प्रगट या उत्पन्न होती है ॥

व्याख्या— पृथ्वी और तेजके जगहमें देवदत्तवायु और प्राणवायु यह दोनों मिलके 'त्वचा' होता है। छिति और जलके जगहमें देवदत्तवायु और उदानवायु यह दोनों मिल करके मांस प्रगट होता है, ऐसा कहा है ॥ २०४ ॥

३५. पृथिवी पृथिवी मिलि अस्थि उपाय ❀ सोई पचीस प्रकृति कहाय ॥ २०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
पृथिवी = और ब्रह्माण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप देवदत्तवायु तथा दूसरा—
पृथिवी = पिण्ड कलाकी पृथ्वीतत्त्वरूप अपानवायु, यह दोनों—
मिलि = मिल करके—
अस्थि = हड्डियाँ यह प्रकृतिकी—
उपाय = उत्पत्ति होती है या हुई है, इसमें हड्डी विशेष भाग है, और प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं।
सोई = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, समानवायुरूप आकाश, यह पाँचतत्त्वके सोई ऊपर कहा गया हुआ २५ प्रकृतियाँ हैं; अर्थात्—
पचीस प्रकृति = लोभ, काम, क्रोध, मोह, भय। पसारन, धावन, बोलन, सङ्कोचन, चलन। निद्रा, मैथुन, आलस्य, तृषा, क्षुधा। लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य। और रोम, नाड़ी, त्वचा, मांस, हड्डी, यह २५ प्रकृतियाँ हैं।
कहाय = सो उपरोक्त प्रकृतियाँ जड़ ही कहलाती हैं, और चैतन्य जीवकीसत्ता पायके सब चला करती हैं ॥

व्याख्या— और पृथ्वी-ही-पृथ्वीके जगहमें देवदत्तवायु और अपानवायु यह दोनों मिलके हड्डियोंकी उत्पत्ति होती है। इसमें हड्डी सोई विशेष भाग है, और अन्य प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। सोई एक तत्त्वके पाँच प्रकृतिके हिसाबसे पाँच तत्त्वोंके पचीस प्रकृतियाँ सब स्थूलदे हमें कहलाती हैं। सो सब जड़ हैं। जीवके सत्ता-सम्बन्धसे उत्पन्न हुई और चल रही हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥२०५॥

साखीः— पाँच तत्त्व पचीस होय ❀ प्रगट भये सो पिण्ड ॥
[१६] नाड़ी तीनि नौ रूप धरी ❀ रची जाल परचण्ड ॥ २०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
पाँच तत्त्व = पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश-रूप थीरपवन, ऐसे पिण्ड-ब्रह्माण्डके यह पाँच तत्त्वोंके भागका मिलाप होकर—

पचीस = स्थूल देहकी पचीस प्रकृतियोंकी—
होय = उपरोक्त विभाग होय करके या भिन्न-भिन्न प्रकृति होके—
पिण्ड = स्थूल शरीररूपी इस पिण्डमें जीवकी सत्तासे—
सो = सो सब क्रमानुसार—
प्रगट भये = प्रगट या उत्पन्न होते भये हैं।
नाड़ी तीनि = और फिर उसमेंसे ब्रह्माण्ड कलाकी तीन नाड़ियाँ:— इङ्गला, पिङ्गला, तथा सुषुम्ना यही आगे जाके—
नौ रूप = नौ प्रकारके नवीन स्वरूपमें बँट जाती भई। जैसे कि:— पुहुखा; बाएँ कानमें। पयस्विनी; दाहिने कानमें। गन्धारी—बाएँ नेत्रमें। हस्थिनी—दाहिने नेत्रमें। गणेशनी—बाएँ हाथमें। वारुणी—दाहिने हाथमें। कूहू—लिङ्गमें। शंखीनी—गुदामें। और अलम्बुषा—मुखमें माने हैं।
धरी = ऐसे एकसे नौरूप नाड़ीने धारण किया, ऐसा कहा है। इस प्रकारसे—
जाल = मुख्य खानी विषयका महाजाल बन्धन यही—
परचण्ड = तीक्ष्ण जबरदस्त छूटनेको अत्यन्त कठिन आवागमनके चक्रमें जीव पड़ करके अध्याससे—
रची = ऐसे नाना देहादि फन्दा रचना करते भये या ऐसे प्रचण्ड जाल रचना होती भयी है॥

व्याख्या— अर्थात् ब्रह्माण्डके कारणरूप पाँचतत्त्वोंके ही कार्यरूपमें यह पिण्डके पाँचतत्त्व होती भयी! फिर दोनों भागोंका मिलाप होकरके २५ प्रकृति सोई पिण्डमें प्रगट होती भयी। ऐसे पाँच तत्त्व और २५ प्रकृतिके समूहका मिलाप होके पिण्डरूप स्थूलदेह बनके प्रगट हुआ है। और तत्पश्चात् इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना यह तीन नाड़ियोंने भी अपने-अपने कलासे नौ तरहके रूप धारण करके उत्पन्न होती भयी। ऐसे प्रचण्ड खानी जालोंकी रचना होती भयी। अध्यासी जीव उसी फन्दामें अरुझे हुए चार-खानियोंमें बन्धे पड़े हैं, तथा कर्मानुसार दुःख भोग रहे हैं। पूरा पारख बोध स्थिति हुए बिना यह काल जालका फन्दा नहीं छूटता है। अतः पारख बोधको गुरु सत्सङ्गसे प्राप्त करना चाहिये॥ २०६॥

सम्बन्ध— यहाँपर चौकड़ी १ से २५ तक ग्यारहवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ एकादश खण्ड ॥ ११ ॥ ❀ ॥

१. नाड़ी श्वासाके जो तीन ❀ त्रिविध कला ताहि महँ कीन्ह॥ २०७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
श्वासाके = श्वासवायुके साथमें चलनेवाली—
जो तीन = जो कि तीन प्रकारकी—
नाड़ी = इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, यह ब्रह्माण्ड कलाकी तीन नाड़ियाँ हैं, इसको प्रकृति वा स्त्रीकी भागमें मानें हैं। और—
ताहि महँ = उसी श्वास वायुके तीन नाड़ियोंमें रेचक, पूरक और कुम्भक, यह तीन क्रिया साधना करके उसको पुरुषका भागमें माने हैं।
त्रिविध कला = उसमेंसे एक नाड़ीके तीन भागके तीन कला या कार्य मान करके उसीमें तीन तरहके कलाका कल्पना किये हैं।
कीन्ह = सो योगकाण्डमें कल्पनाका ही विस्तार किये हैं॥

व्याख्या— श्वास वायुके भागसे तीन नाड़ी ब्रह्माण्ड कलामें उत्पन्न भयी हैं। उसको स्त्रीके अंश-का भाग माने हैं। जैसे इङ्गलामें सरस्वती। पिङ्गलामें लक्ष्मी। और सुषुम्नामें पार्वतीका बासा ठहराये हैं। तैसे ही रेचक, पूरक, कुम्भक क्रियाको पुरुषके अंशरूप भाग माने हैं। पूरकमें ब्रह्मा। रेचकमें विष्णु। और कुम्भकमें, महादेवका बासा कहा है। उसी श्वासमें गुरुवा लोगोंने ऐसे तीन भागके त्रिविध कला-का कल्पना किये हैं सो जानिये!॥ २०७॥

२. तीनि तीया नौ द्वारा जान ❀ दशयें रुधिर रज वीर्य मान॥ २०८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
तीनि तीया = और एकके तीन गुना हिसाब कर, सो एक नाड़ीके तीन भाग किये हैं। तो तीन तियाँ नौ भाग हुआ। कैसे कि—

सुनिये ! गन्धारी, हस्तिनी, कुहू, ये तीन नाड़ी इङ्गलामेंसे उत्पन्न भयी। गणेशनी, वारुणी, शङ्खिनी, ये तीन नाड़ी पिङ्गलामेंसे होती भयी। पुहुखा, पयस्विनी, अलम्बुषा, ये तीन नाड़ी सुषुम्ना नाड़ीमेंसे उत्पन्न भयी हैं। ऐसा तीनसे नौ नाड़ियोंकी उत्पत्ति माने हैं।

नौ द्वारा = और उसी प्रकार, सोई दूसरे भागरूप पिण्डमें तीन तियाँ नौके हिसाबसे तीन नाड़ीसे नौ द्वार भी माने हैं। जैसे कि—नेत्रके दोनों छिद्र और लिङ्गद्वार, यह इङ्गला नाड़ीसे भयी है। तथा नासिकाके दोनों छिद्र और गुदाद्वार यह पिङ्गलासे भयी है, और कानके दोनों छिद्र तथा मुखद्वार, यह सुषुम्ना नाड़ीसे बनी है, ऐसा माने हैं।

जान = ऐसे तीन तियाँ नौ नाड़ी और नौ द्वारोंके भेद जान लीजिये।

दशयें = तथा दशम उर्ध्वद्वार ब्रह्मरन्ध्रमें है—

रुधिर = जहाँपर रक्तका परिशुद्ध बना हुआ भाग रुका हुआ सप्तधातुमेंका अन्तिम सार वही—

रज = स्त्रीका रज भाग है। और—

वीर्य = पुरुषका बिन्दुरूप सफेद वीर्यका भाग है, सो वहाँ दशम द्वारमें ही उसका मुख्य सार इकट्ठा रहता है।

मान = ऐसा योगी और भोगी लोगोंने निश्चय करके माने हैं। अथवा वहीं परमात्माका वासा भी माने हैं, ऐसा जानिये ॥

व्याख्या— और एकके तीन-तीन विभाग करके तीन तियाँ नौ नाड़ियाँ ब्रह्माण्ड कलाकी कहा है। तैसे ही नौ द्वार पिण्ड कलामें बनी हुई माने गये हैं। दशवाँ द्वार ब्रह्मरन्ध्रके ठिकाने माना है, जहाँपर रज और वीर्यका मुख्य वासस्थान कहे हैं और वहीं परमेश्वरका निवास होनेकी जगह भी माने हैं ॥ २०८ ॥

३. नाड़ी तीनि वात पित्त शीत ❀ तेहि नौ चाल चिकित्सा रीत ॥ २०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

नाड़ी तीनि = पिण्ड कलाकी और तीन नाड़ी कहा है, सो—

वात = वायु सम्बन्धी वात नाड़ी है।

पित्त = पित्त सम्बन्धी पित्त नाड़ी है।

शीत = शीत सम्बन्धी कफ नाड़ी है।

तेहि = वात, पित्त, कफ इन तीनोंके—

नौ चाल = एक-एकके तीन-तीन चाल या गति हो जानेसे नौ तरहकी चाल हो जाती है। जैसे कि— वात-वात मिलके। वात-कफ मिलके। और वात-पित्त मिलके, यह एक नाड़ीके तीन चाल हुई, इसी तरह तीनोंका नौ चाल जान लेना चाहिये।

चिकित्सा रीत = वैद्यक शास्त्र द्वारा वैद्यलोग उस तीन नाड़ियोंकी नौ चालोंको देखकर नाड़ी, मल-मूत्रादि परीक्षाकर रोगीको उपयुक्त दवाई देते हैं। यह वैद्योंकी रीति या चाल है। इसे चिकित्साकी रीति कहते हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् पिण्डकी तीन नाड़ी यहाँपर वात, पित्त और कफ है। उसके नौ चालोंको पहिचान कर, फिर चिकित्सा करनेकी वैद्योंकी रीति है। यानी वातके तीन चाल हैं:— वात-वातका मिलापसे होनेवाला विकार। वात-पित्तका मिलापसे पैदा होनेवाला विकार। और वात-कफका मिलापसे उठनेवाला विकार है। पित्तके भी तीन चाल हैं:—पित्त-पित्तके प्रकोपसे होनेवाला विकार। पित्त—वातके प्रकोपसे होनेवाला विकार, और पित्त-कफके प्रकोपसे उठनेवाला विकार है। कफके भी तीन चाल हैं:— कफ-कफके मिलापसे होनेवाला विकार। कफ-वातके मिलापसे होनेवाला विकार। और कफ-पित्तके मिलापसे उठनेवाला विकार है, यही नौ चाल कहा है। वैद्यक ग्रन्थमें मल-मूत्रादि और इन नाड़ियोंके चालोंको परीक्षा करके रोगको पहिचान करके, फिर उसी माफिक औषधि देनेसे रोग छूट जाता है, ऐसा कहा है ॥ २०९ ॥

४. बीचमें नौका अङ्क सो गाँस ❀ एक पर शून्या दशयें नाश ॥ २१० ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

बीचमें = नाभि स्थानके मध्यमें, यानी बीचमें

अथवा (०) शून्यमें—

नौका = नवों नाड़ियोंका मिलाप है। तथा

गिनतीमें १ से ९ तकका--
अङ्क = अङ्कोंका भाग तथा नाभिके भीतरी गोदमें नौका अङ्क वा नवों नाड़ियाँ—
सो गाँस = सो सब गाँसी हुई या जुटी हुई तहाँ मिलके गाँठ पड़के रही हुयी हैं।
एक पर = और एक अङ्कके ऊपरमें वा नाभिके मुख्य एक केन्द्रके ऊपरमें—
शून्या = शून्य विन्दु भाग रख देनेसे या वायुके गाँठ खुल जानेसे उसके कार्य बन्द होके शून्य हो गई वा शून्य हो जाती है।
दशयें नाश = तब दशम भागमें जाके नौ तकके अङ्कका हिसाब नाश हो जाती है। तैसे ही नौ नाड़ी तो नाश होके शरीर तो छूट जाती है। परन्तु, एक पर शून्य रख देनेसे जो दशम भाग बढ़ा था सोइ दशवाँ परमात्मा ब्रह्मपद सबको नाश करके आप ज्यों-का-त्यों बना रहता है। ऐसा कल्पना करके माने हैं॥

व्याख्या— और एकसे लेके नौ तक अङ्कोंकी गिनती किया जाता है। नौके बाद एक पर शून्य (१०) रखदेनेसे दश माना है। वहाँ नौ तकके सब अङ्कोंका हिसाब मिटके नाश हो जाते हैं। अर्थात् बीचमें नौ अङ्क तकका जोड़ है। फिर १ में ० लगा देनेसे ९ तकका नाश होके वह दशवाँ उनसे बड़ा बन जाता है। तैसे ही शरीरमेंके नौ नाड़ी नौ द्वार सबोंकी गाँठिके मिलान अङ्क वा गोदरूप नाभिस्थानके बीचमें आके हुआ है। जब वहाँ नाभिमें वायुकी गाँठ खुल जाती है, तब शून्य सुषुप्तिवत् मूर्छा अवस्था आके मृत्यु समय शून्य स्थिति होकर देहका नाश हो जाता है। परन्तु, गुरुवा लोग एक जीवपर शून्य ब्रह्मकी धोखा चढ़ाके दशवाँ वह शून्य आकाशवत् ब्रह्मको अविनाशी मानते हैं। सो कल्पना ही मात्र है॥ २१०॥

५. चान्द सूर्य राहू घर तीनि ❀ नौ ग्रह कला दशम परवीनि॥ २११॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
चान्द = चन्द्र-नाड़ी, इङ्गला, बाएँ श्वासमें कहा है।
सूर्य = सूर्य-नाड़ी, पिङ्गला, दाहिना श्वासमें कहा है।
राहू = राहू-नाड़ी, सुषुम्ना, बीच श्वासमें कहा है।
घर तीनि = उनके तीन घर या बासस्थान देहमें नासिकाके बाएँ छिद्रमें चन्द्र, दाहिना छिद्रमें सूर्य और मध्यमें राहू, ऐसे माने हैं।
नौ ग्रह = देहमें नौ नाड़ी, नौ द्वार पहले कह चुके हैं। बाहरमें सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु मिलाके नौ ग्रह माना गया है।
परवीनि = प्रवीण वा चतुर भ्रमिक पण्डित लोगोंने—
दशम = दशों दिशाओंमें परिपूर्ण कोई एक परब्रह्म है, सोई दशम मूल कारणसे—
कला = जगत्की सम्पूर्ण कला और नौग्रह आदि कार्यरूपमें उत्पन्न भया है। वही सबका आधार है; ऐसा कल्पना किये हैं!॥

व्याख्या— अर्थात् बाहर चन्द्र, सूर्य, राहु ये तीनों अपने-अपने तीन घरमें रहते हैं। और समयका मौका पायके राहू जाके चन्द्र-सूर्यको ग्रास करता है, ऐसा माने हैं। अथवा राहू कहिये पृथ्वी सूर्यके चौतरफ परिभ्रमणमें कभी सीधीरेखामें आजानेसे उसका छाया चन्द्र और पुनः सूर्यपर भी पड़ जाता है वा चन्द्रका छाया सूर्यपर हो जाता है, ऐसा कहा है; उसीसे ग्रहण लगता है। तैसे ही देहमें नासिकाके बाएँ, दाहिना और मध्य भागके घरमें चन्द्र, सूर्य तथा राहू ये तीनों तीन नाड़ीके रूपसे रहते हैं, ऐसा माने हैं। तैसे ही सातवार और राहु तथा केतु इन दोनोंको मिलाके नौग्रह कलाका मानन्दी किये हैं। और प्रवीण लोगोंने दशवें परमेश्वरको नौ ग्रहसे परे माने हैं॥ २११॥

६. दश द्वारा दश दिग सो होय ❀ तहाँ तिहुँ समय लखावै सोय॥ २१२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
दश द्वारा = और नासिकाके दो छिद्र। नेत्रके दो छिद्र। कानोंके दो छिद्र। मुख, लिङ्ग, गुदा और दशवें गुप्तद्वार ब्रह्मरन्धमें माने हैं। इसीको देहमें दश द्वार कहते हैं।
दश दिग = बाहर सोई दशों दिशाएँ कहा है। जैसेकि—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ये मुख्य ४ दिशा हैं। ईशान्य, नैर्ऋत्य, आग्नेय,

वायव्य चार, ये उपदिशा हैं और अर्ध, उर्ध्व ये दो मिलाके दश दिशा माने हैं।

सो होय = सोई पिण्ड और ब्रह्माण्डमें दश-दशके भाग माना हुआ है।

तहाँ = तहाँ ब्रह्माण्डमें भी देहके समान ही—

तिहुँ समय = वर्षा, शिशिर, और धूप, ये तीन काल या समयका कार्य—

सोय = सोई बारह महीनोंके भीतर मास परिवर्तनमें चार-चार महीनोंके बाद—

लखावै = लखनेमें या देखनेमें आता है, यानी ऐसा तीन समय लखाता है ॥

व्याख्या—और देहमें सोई दशद्वार जो प्रगट हुआ है, सोई बाहरमें दशदिशाएँ विस्तार हुआ कहा है। जैसे कि—पूर्व-उत्तरका कोना, ईशान्य दिशा है। पश्चिम-दक्षिणका कोना, नैर्ऋत्य दिशा है। पूर्व-दक्षिणका कोना, आग्नेय दिशा है। और उत्तर-पश्चिमके कोनाको, वायव्य दिशा कहते हैं। यह आठ दिशाएँ हुई और अर्ध तथा उर्ध्व ये दो को जोड़के सब बाहर दिशाएँ दश गिने हैं। फिर वर्षा, शिशिर, धूप, ये तीन समयका काम तहाँ बाहर भी सो चार-चार महीनोंके बादमें लखाता है या दिखलाई देता है, इस प्रकार मानन्दी भिन्न-भिन्न तरहसे किये हैं, सो जान लीजिये ! ॥ २१२ ॥

७. पुनि तीहुँ माँह नौ चाल समान ❀ दशयें शून्य प्रगट तहाँ आन ॥ २१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

पुनि = फिर उसी बाहरके—

तीहुँ माँह = वर्षा, शिशिर, धूप यह तीनों समयोंमें भी—

नौ चाल समान = नौ तरहकी गति या चलन-चाल समान-विशेषरूपसे उनके मिलापसे हुयी या होती है। जैसे कि—वर्षा-वर्षा मिलके, वर्षा-धूप मिलके, और वर्षा-शीत मिलके ऐसे एकमें तीन क्रिया होनेसे तीनमें नौ क्रियाकी चाल समाया हुआ है, ऐसे माने हुए हैं।

दशयें = वह नौके ऊपर दशवें परमात्मा-ब्रह्मपदमें सब लय होके—

शून्य = महाशून्य हो प्रलय हो जाता है। पश्चात् कुछ काल बाद—

तहाँ = ब्रह्म अधिष्ठानरूप भूमिकामेंसे वा तहाँसे—

आन = दूसरा रूपमें शून्यसे सूक्ष्म होना, फिर सूक्ष्मसे स्थूल होना, बीजसे वृक्षवत् जगत् निकलके आया वा उत्पन्न होके आता है।

प्रगट = इस प्रकार उत्पत्ति होके संसार प्रगट हुआ या होता है, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या—फिर बाहरके तीन समयमें भी नौ चाल इसप्रकार बराबर समाया हुआ है:—१. धूप-वर्षा मिलके। २. धूप-धूप मिलके। ३. धूप और शिशिर मिलके। ४. शिशिर-वर्षाका मिलाप। ५. शिशिर-शिशिरका मिलाप। ६. शिशिर-धूपका मिलाप। और ७. वर्षा-वर्षा मिलके। ८. वर्षा-शिशिर मिलके। और ९. वर्षा-धूप मिलके, इस प्रकार ९ चाल माने हैं ॥ यह समान-विशेषरूपसे मौसमका नौ चालकी होती हैं। और दशएँ चाल कुछ भी प्रगट नहीं होना, सब शून्य हो जाना कहा है। फिर सूक्ष्मरूपसे उत्पन्न होना; यहाँपर ब्रह्मकर्ताको दशएँ शून्यरूपमें प्रगट करके तहाँपर ले आते हैं ॥ २१३ ॥

८. सोई कला धरती नौ खण्ड ❀ तीर्थराज नाड़ी परचण्ड ॥ २१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सोई = वही कल्पित ब्रह्मको या कारण तत्त्वोंकी—

कला = कलासे या कार्य भागसे—

धरती नौ खण्ड = बाहर पृथ्वीके नौ खण्ड भागोंकी उत्पत्ति हुयी तथा शरीर भीतर नौ नाड़ी तथा नौ द्वारोंके जगहमें और नौ खण्ड भागोंकी उत्पत्ति माने हैं।

तीर्थराज = बाहर प्रयागमें जहाँपर गङ्गा, यमुना, सरस्वती, इन तीनों नदियोंका सङ्गम हुआ है, उसको तीर्थोंका राजा माने हैं। और—

नाड़ी = देहमें इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, ये तीन नाड़ियाँ जहाँपर—

परचण्ड = तीव्र या तीक्ष्णरूपसे चलती हुयी मिलती हैं, उस जगह त्रिकुटी स्थानमें भी तीर्थराज माने हैं ॥

व्याख्या - सोई मुख्य कला लेके पिण्ड-ब्रह्माण्डकी नौखण्ड पृथ्वीकी उत्पत्ति माने हैं। सो इस प्रकार कहा है: १ ब्रह्मखण्ड, कानकी जगहमें है। २ सौम्यखण्ड, त्वचा है। ३ गभस्तिखण्ड, नेत्र है। ४ वरुणखण्ड, जिभ्या है। ५ नागखण्ड, नाक है। ६ इन्द्रखण्ड, हाथ है। ७ कसेरूखण्ड, पाँव है। ८ भरतखण्ड लिङ्ग है। और ९ ताम्रखण्ड, गुदाकी जगहमें कहा है। और त्रिकुटीमें तीन नाड़ी तीव्रतासे मिली वा मिलती हैं। सो योगी लोगोंका तीर्थराज है। तथा प्रयागमें तीन नदियाँ आके मिली हैं, सो कर्मियोंका तीर्थराज माने हैं ॥ २१४ ॥

९. दशयें जलामय गर्बड़ी होय * शून्याशून्य दिखावै सोय ॥ २१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

दशयें = अन्तिम दशामें प्राण ब्रह्माण्डमें लय होके और बाहर ईश्वरकी इच्छा दशम खण्डमें होनेसे—

जलामय = शरीरमें मृत्यु आजाती है। और बाहर सब दूर जल-ही-जल भर जानेसे जलामय-प्रलय हो जाता है।

गर्बड़ी होय = तब सृष्टिका सब काम व्यवस्था बिगड़के बड़ी ही गड़बड़ी उपाधि होनेसे प्रलय हो जाती है। तो सब नाश हो जाते हैं।

शून्याशून्य = तब सर्वत्र शून्य-ही-शून्य महा शून्य हो जाता है।

दिखावै = ऐसा अनुमानके अनुभवसे दिखाता है।

सोय = फिर सोई ब्रह्म ही अकेला रह जाता है। ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं ॥

व्याख्या—और दशएँके जगहमें मृत्यु होके शरीर ही छूट जाता है, तैसे ही बाहर भी किसी समयमें जलामय प्रलय होके, सब जगत्की व्यवस्था बिगड़के गड़बड़ीसे ध्वंश हो जावेगा, तब शून्य-ही-शून्य दिखावेगा सो उस वक्त दशएँ अधिष्ठान ब्रह्म आप ही यह दृश्य देखता, दिखाता रहता है, ऐसा माने हैं ॥ २१५ ॥

१०. नौ नाथ होय बैठी नारि * शक्ति सिद्ध चौरासी झारि ॥ २१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

नारि = माया वा अनाड़ी गुरुवा योगी लोगोंने देहके तीन नाड़ियोंको और—

नौ नाथ = नौ प्रधान नाड़ियोंको समेत् साधनोंसे नाथके वश किये। ऐसे साधना करने वाले सो मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथादि सब नौनाथ योगी जगत्में—

होय = प्रसिद्ध हुये। वे सब भ्रमिक होयके—

बैठी = धोखेमें ही बैठे या भ्रममें स्थिति किये।

झारि = और सम्पूर्ण शरीरमें या बाहर सब—

शक्ति = शक्ति पहुँचाने वाली तथा शक्तिमान् माने हुये—

सिद्ध चौरासी = चौरासी सिद्ध योगी हुये, ऐसा माने हैं; और देहमें ८४ मुख्य नसें चलती हैं। तथा चौरासी योगासन साधते हैं। अर्थात् जैसे शरीरमें नौ नाड़ी प्रधान होके बैठी है। वह अन्य सब चौरासी नाड़ियोंमें शक्ति पहुँचाती है। तैसे ही बाहर भी नौ नाथ और चौरासी-योगी सब सिद्ध नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। वे शक्तिशाली भये, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— और देहमें नौ नाड़ी प्रधान या मुख्य होके जगह-जगहमें बैठी है। तैसे ही बाहर योगी, नारी वा माया गुरुवा लोग उक्त नाड़ियोंके साधन करनेवाले प्रथम नौ नाथ हुए हैं। उनका नामः— १ मत्स्येन्द्रनाथ। २ गोरखनाथ। ३ जालन्धरनाथ। ४ चर्पटनाथ। ५ मङ्गलनाथ। ६ चम्बानाथ। ७ प्राणनाथ। ८ घघ्यूनाथ। और ९ गोपीनाथ, यह सब नौ नाथ हुए हैं। और चौरासी नसोंकी जोड़ देहमें कहा है; तथा चौरासी आसन योगके गिने हैं। और सब चौरासी सिद्ध योगी,❀ बाहर भूतकालमें हुए हैं ऐसा माने हैं, (चौरासी सिद्धोंका नाम टिप्पणीमें लिखा है) ॥ २१६ ॥

❀टिप्पणीः— नाथ सम्प्रदायमें सब ८४ सिद्ध हुए, ऐसा माने जाते हैं। ८४ सिद्धोंका नाम, कल्याणके योगाङ्कमें निम्न प्रकारसे लिखा है:—१ लूहिया। २ लीलापा। ३ विरुपा। ४ डोम्भिपा। ५ शबरीपा। ६ सरहपा। ७ कङ्कालीपा। ८ मीनपा। ९ गोरक्षपा। १० चोरङ्गिपा। ११ वीणापा। १२ शान्तिपा। १३ तन्तिपा। १४ चमरिपा। १५ खड्गपा।

११. पाँच पाँच जेते होय प्रकाश * पञ्चकोशके पूर विलास ॥ २१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
जेते = जगत्में जितने भी—
पाँच = पाँचकोशोंके भागमें ५ तत्त्व, ५ देह, ५ अवस्था, ५ कर्म—
पाँच = और पाँच शक्ति, ५ देवता, ५ वायु, ५ मार्ग, ५ इन्द्रियाँ आदि हैं, सो सब ही—
प्रकाश = प्रत्यक्ष जीवकी सत्तासे पिण्डमें प्रकाशित—
होय = होय रहा है। और सो सब ही—
पञ्चकोशके = अन्नमयादि पाँचों कोशोंके अन्तर्गत रहिके—
पूर = पूर्णरीतिसे जीवोंके द्वारा—
विलास = विषयोंका ही विलास होता है वा हो रहा है। सोई जीवोंको बन्धनके कारण हुआ है ॥

व्याख्या— अर्थात् जितने भी पाँच-पाँच भागोंका फैलावा प्रकाश हो रहा है। सो सब पाँच तत्त्वोंके पञ्चकोशोंका ही पूरा अङ्ग या भागका पूरा विलास है। जीव ही उनको प्रकाशित करके पूरा विषयोंका विलास करता है। और बन्धनोंमें ही पड़ा रहता है ॥ २१७ ॥

१२. तीनि अंश नाड़ी परमान * तीनि अंशके षट परधान ॥ २१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
नाड़ी = और ब्रह्माण्डके तीन नाड़ियोंमें—
तीनि अंश = तीन तो स्त्रीका अंश है, और तीन पुरुषका अंश है।
परमान = योगियोंने ऐसा प्रमाण माने हैं। अर्थात् तीन नाड़िमें नर-नारी दोनोंका तीन-तीन अंश रहनेका अनुमान प्रमाण किये हैं।
तीनि अंशके = सो कैसे किः— १ रेचक, २ पूरक, ३ कुम्भक ये ३, पुरुष अंशके कहा है। तथा इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, ये तीन स्त्री अंशके कहा है। उसमेंसे तीन अंशके अधिष्ठाता षट् हुये हैं, अर्थात्—
षट = एकमें दो-दो करके छै भाग हुआ, जैसे कि— इङ्गलामें ब्रह्मा, सावित्री दो। पिङ्गलामें विष्णु, लक्ष्मी दो। सुषुम्नामें शिव, पार्वती दोनोंका वासा, ऐसे ६ कलाका निवास हुयी।
परधान = सो प्रधानतासे प्रकृति पुरुषका मिलाप हुआ है, ऐसे माने हैं ॥

व्याख्या— फिर शरीरमें स्त्रीके अंशसे इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना, यही तीन नाड़ी माने हैं। उसी-में ही रेचक, पूरक, कुम्भक, ये तीन क्रियाओंको पुरुषके अंशसे माने हैं। इसमें ऐसा प्रमाण करते हैं कि— इङ्गला, सावित्रीके तथा पूरक ब्रह्माके अंशसे होती है। पिङ्गला लक्ष्मीके तथा रेचक विष्णुके अंशसे होती है। और सुषुम्ना पार्वतीके तथा कुम्भक महादेवके अंशसे होती है। ऐसे एक नाड़ीमें दो-दोके अंश मिलायके स्त्रीके अंशसे ३ भाग, और पुरुषके अंशसे ३ भाग, इन दोनोंको मिलाकर षट्भाग प्रधान माने हैं, ऐसा जानिये ! ॥ २१८ ॥

---

१६ नागार्जुन। १७ कराहपा। १८ कर्णरिपा। १९ थगनपा। २० तारोपा। २१ शालिपा। २२ तिलोपा। २३ छत्रपा। २४ भद्रपा। २५ दोखन्धिपा। २६ अजोगिपा। २७ कालपा। २८ धोभिपा। २९ कङ्कणपा। ३० कमरिपा। ३१ डेंगिपा। ३२ भदेपा। ३३ तन्धेपा। ३४ कुकुरिपा। ३५ कुसूलिपा। ३६ धर्मपा। ३७ महीपा। ३८ अचिन्तिपा। ३९ भलहपा। ४० नलिनपा। ४१ भूसुकुपा। ४२ इन्द्रभूति। ४३ मेकोपा। ४४ कुठालिपा। ४५ कमरिपा। ४६ जालन्धरपा। ४७ राहुलपा। ४८ घर्भरिपा। ४९ घोकरिपा। ५० मेदिनीपा। ५१ पङ्कजपा। ५२ घण्टापा। ५३ जोगीपा। ५४ चेलुकपा। ५५ गुण्डरिपा। ५६ लुचिकपा। ५७ निर्गुणापा। ५८ जयानन्तपा। ५९ चर्पटिपा। ६० चम्पकपा। ६१ भिखनपा। ६२ भलिपा। ६३ कुमरिपा। ६४ जवरिपा। ६५ मणिभद्रा। ६६ मेखला। ६७ कनखला। ६८ कलकलपा। ६९ कन्तलिपा। ७० धहुलिपा। ७१ उधलिपा। ७२ कपालपा। ७३ किलपा। ७४ सागरपा। ७५ सर्वभक्षपा। ७६ नागबोधिपा। ७७ दारिकपा। ७८ पुतुलिका। ७९ पनहपा। ८० कोकलिपा। ८१ अनङ्गपा। ८२ लक्ष्मीकरा। ८३ समुदपा। और ८४ भलिपा। ऐसे नामके नौ नाथोंमें शक्तिशाली प्रसिद्ध चौरासी सिद्ध हुए, ऐसा कहते हैं, सो जान लीजिये ॥

१३. सो षट अंशी जग पहिचान * षट शास्त्र षट कर्म अमान ॥ २१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
सो षट अंशी = सोई माया व ब्रह्म, तथा स्त्री व पुरुष, अंश व अंशी, कारण व कार्य हुये हैं। उन्हींके अंशरूप षट् भागोंके मिलापसे यहाँ—
जग = सप्तधातुके शरीर और बाहर सारा जगत्-का उत्पत्ति विस्तार हुआ है, गुरुवा लोगोंने कल्पनासे—
पहिचान = ऐसा पहिचान या मालुम किये हैं।
अमान = कोई कर्ता परमात्माका अनुमान करके फिर उसे अमान मानकर—
षट शास्त्र = षट् ऋषियोंने षट् शास्त्रोंको कल्पना करके बनाये, तथा—
षट कर्म = षट् कर्मोंको पालन करनेकी व्यवस्था कायम किये हैं। सोई करते-कराते हैं ॥

व्याख्या— सो षट्भागके अंशी कारण मुख्य प्रकृति-पुरुषरूप माया--ब्रह्मको माने हैं। जिनसे कि सारा चराचर जगत् षट् अंशीके रूपमें उत्पन्न हुआ, ऐसा पहिचान करनेको गुरुवा लोगोंने कहा है। यहाँ स्त्री-पुरुषोंके रज-वीर्य द्वारा स्थूल शरीर सप्तधातुकी जीवकी सत्तासे बनती है, सो पहिचानिये। और १. जैमिनीने मीमांसा-शास्त्र बनाया है। २. कणादने वैशेषिक-शास्त्र बनाया है। ३ गौतमने न्याय-शास्त्र बनाया है। ४ पतञ्जलिने योग-शास्त्र बनाया है। ५. कपिलने सांख्य-शास्त्र बनाया है। तथा ६. व्यास-ने वेदान्त शास्त्र बनाया है। तथा यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, यह मुख्य षट्कर्म वेद-शास्त्रोंमेंसे निकालके बनाये हैं। उसी प्रमाणसे कोई अमान परमेश्वर कल्पनासे मानके उसके प्राप्ति-के लिये नाना कर्मादिमें भूले पड़े हैं। ऐसे जड़ाध्यासी हुए वा हो रहे हैं ॥ २१९ ॥

१४. षट दर्शनके सोई भास * पण्डौं छठयें कर्म विलास ॥ २२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
षट दर्शन = १ योगी, २ जङ्गम, सेवड़ा या जैनी, ४ संन्यासी, ५ दरवेश या फकीर, और ६ ब्रह्मचारी ब्राह्मण, ये षटदर्शन माने हैं।
के = उनलोगोंके मनमें भी—
सोई = वही कोई कर्ता परमेश्वर मालिक है, ऐसा कल्पना सोई—
भास = भास दृढ़ होके भास रहा है, यानी वेदादि वाणीके भावनाका भास मनमें घुसी है, तो छै जाप तथा छै सिद्धान्त उनको जो भासा, सो पक्का हुयी या हो रही है। और—
पण्डौं = युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पाँच पाण्डव लोग सदैव ही—
छटयें = श्रीकृष्णजीकी सेवाके कर्म या भक्ति उपा-सना करते रहे। और—
कर्म = देहमें पञ्चविषय तथा पञ्चकोशोंके कर्म छठवाँ मन द्वारा करते हुये—
विलास = सब प्राणी उसीमें भोग-विलास या आनन्द-कलोल कर रहे हैं ॥

व्याख्या— षट दर्शनोंके सोई भास ऐसा है कि:— सोहं जाप और पृथ्वीमें महा पृथ्वीवत् ईश्वर सिद्धान्त, यह योगियोंके मनकी भास है। निरञ्जनाय, जाप और महदाकाशवत् शिवका स्वरूप यह सिद्धान्त जङ्गमोंकी बुद्धिकी भास है। तत्त्वनाम-अरिहन् जाप और चन्द्रमुक्तशिला, यह सिद्धान्त जैनियोंके मनकी भास है। सोहंब्रह्मास्मि जाप और अहंब्रह्मास्मि, यह सिद्धान्त, संन्यासियोंकी हंकारकी भास है। सोहं हंसो और हूँ अल्लाहूँ जाप, और पवनमें महापवनवत् पूर्ण ईश्वर वा खुदा यह सिद्धान्त हिन्दू और मुस्लिम फकीरोंकी चित्तकी भास है। और ॐकारका जाप तथा अद्वैत परमात्माका सिद्धान्त यह ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंकी चित्तकी भास है। सोई षटदर्शनोंके भास है, ऐसा जानिये। और पाँच पाण्डव कृष्णके भक्तिरूप सेवा कर्मके विलासमें लगे थे। तैसे ही मनसे पञ्च विषय सेवनके भोग कर्मोंके विलासमें सब प्राणी लगे हैं ॥ २२० ॥

१५. सतयें सत्त वर्तमान * विद्या अविद्या मूल निधान ॥ २२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
सतयें = सातवाँ सात स्वर्गादि लोक या सात आसमानोंके ऊपरसे नीचे तक समान व्यापक भरा हुआ—

सत्त = कोई निरञ्जन परमात्मा वा खुदा आदिको सत्य अविनाशी और—

वर्तमान = अभी सर्वत्र मौजूद मानके वर्तमानमें नाना साधनाएँ करके उसीमें मिल जाना चाहते हैं। ऐसे मिथ्या धोखामें पड़े हैं। वर्तमानमें सत्य जीवको कोई ख्याल करते नहीं।

विद्या = ब्रह्मज्ञानको पराविद्या सर्वश्रेष्ठ माने हैं।

अविद्या = और ब्रह्मके अज्ञानको या परोक्ष शास्त्र-ज्ञान मात्रको अपराविद्या या अविद्या ही माने हैं। परन्तु—

मूल = विद्या, अविद्या इन दोनोंके मूल आदिमाया है। उस माया शक्तिका भी मूल कारण या अधिष्ठान—

निधान = परब्रह्मको विद्या-अविद्याका खदान या समुद्रवत् माने हैं। अतः सूक्ष्म बीज उसमें रहनेसे फिर स्थूल प्रपञ्च उत्पन्न होनेका बन्धनके मूल कारण भी उसीमें बना ही रहता है॥

व्याख्या— सातवाँ भूत, भविष्यत् और वर्तमान, ये त्रिकालमें सत्य एक कोई निरञ्जन ब्रह्मको माने हैं। और कहते हैं कि—परा विद्या वा अपरा विद्या-अविद्या दोनोंकी मूल प्रकृतिसे उत्पत्ति हुई, वह जगत् उत्पतिके बीजोंकी खानी है। तथा उस मायाके भी मूल आधार ब्रह्म ही है, ऐसा माने हैं। यही अध्यास ही आवागमनका मूल कारण है॥ २२१॥

१६. कहूँ पञ्च कन्या पञ्च पचीस ❀ चारि तीन दो विध कहुँ ईश॥ २२२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कहूँ = कहीं पर तो गुरुवालोगोंने—

पञ्च कन्या = अहिल्या, कुन्ती, तारा, मन्दोदरी, द्रौपदी, इन्होंको पाँच कन्याके रूप माने हैं। और देहमें पाँच शक्तिः—क्रिया, द्रव्य, इच्छा, ज्ञान, पराशक्तिको पाँच कन्या माने हैं।

पञ्च पचीस = देहमें पञ्चतत्त्वके पचीस प्रकृतियाँ अलग ही गिनती करके माने हैं। तैसे ही और कहीं तो—

चारि = चार देह, ४ अवस्था, ४ वेद, ४ मुक्ति, ४ आश्रमादि माने हैं।

तीन = तीन गुण, तीन देव, तीन लोक, ३ नाड़ी, ३ सिद्धान्तादि कहा है।

दो विध = दो प्रकारके सुख, दुःख, पाप, पुण्य, ईश्वर, जीवादि बताये हैं।

कहुँ = और कहीं पर तो कल्पना करके—

ईश = एक ईश्वरको ही उपरोक्त सब जगत्का कर्ता गुरुवा लोगोंने माने हुये हैं। बिना विवेक ऐसे एकसे अनेक तककी कल्पना किये हैं॥

व्याख्या— और कहीं बाहर तो पाँच कन्या जिनको माने हैं, उनके तो कई एक पति थे। व्यभिचारिणीको भी अन्धे गुरुवा लोगोंने कन्यारूपमें पवित्र माने हैं। कहा हैः—"अहिल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा। पञ्चकन्या स्मरेत् नित्यं, महापातक नाशनः॥" ऐसा गुरुवा लोगोंका वचन है। और देहमें पाँच शक्तिको ही पञ्च कन्याके रूपमें माना गया है। तथा पाँचतत्त्व उनकी पचीस प्रकृतियाँ, देहमें पृथक्-पृथक् ही हुयी हैं। और भी कयीएक भाग माने हैं। जैसे—कहीं तो माया प्रकृतिके एकसे अनेक अङ्ग हुई हैं। चार-चारका भाग। तीन-तीनका भाग। दो-दोका भाग, इत्यदि बहुत प्रकारसे वर्णन किया है। और कहीं पर तो एक ही परमेश्वरको समस्त जड़-चैतन्य जगत्का कर्ता-धर्ता माने हैं। सो तो भ्रम कल्पना ही मात्र है, बिना पारख भूलमें ही सब पड़े हैं॥ २२२॥

१७. कहूँ षट् कला देखावै अनेक ❀ कहूँ सात सत्त ॐ एक॥ २२३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कहूँ = और कहीं पर तो गुरुवा लोगोंने—

षट् कला = षट्पशुधर्म, षट्ऊर्मी, षट्कर्म, षट्शास्त्र, षट्दर्शन, षट् चक्र इत्यादि छै-छैके भाग ऐसे षट्कला—

अनेक = और भी अनेकों प्रकारसे—

देखावै = उसे ही सत्य बताय करके दिखाते हैं। उसीमें जीवोंको भुलाते हैं।

कहुँ = फिर कहीं पर वे ही गुरुवालोग—

सात = सात स्वर्ग लोक आकाशके ऊपरमें, सात

मृत्युलोक पृथ्वीके मध्यमें, तथा सात पाताल नीचेमें और भी कई एक सात-सातके भाग माने हैं। और कहीं तो:—

सत्त = सबसे परे सत्य परमात्मा—

ॐ एक = एक ॐकारको ही अधिष्ठान अद्वैत ब्रह्म माने हैं॥

व्याख्या— अर्थात् कहीं तो मायाका कार्य षट् कलाका विस्तार गुरुवा लोगोंने अनेक तरहसे दिखाये हैं और दिखा रहे हैं। कहीं तो सात लोकोंसे परे एक ॐकार ब्रह्मको ही सत्य बताये हैं॥ २२३॥

१८. सात स्वर्ग सो कारण होय ❀ अपवर्ग आठ आपु है सोय॥ २२४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सात स्वर्ग = तहाँ भूर्लोक, भूवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, और सत्यलोक, यह सातलोक कार्यरूपमें माना है और इन सबका—

कारण = आदि कारण परमात्मा जो है, सो निराधार अलोकमें है।

सो = सोई सब लोकोंका रचयिता—

होय = कर्ता और कारणरूपमें निमित्तोपादान कारण है, ऐसा कहा है।

आठ = सात स्वर्गके ऊपरमें आठवाँ—

अपवर्ग = मोक्ष या मुक्ति पदमें—

सोय = सोई परब्रह्म परमात्मा ही—

आपु है = आप-ही-आप स्वयं नित्यमुक्त, नित्यतृप्त रहता है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या—और कहीं सात स्वर्गको ही ऊपर आकाशमें अलग-अलगरूपसे गिनके सत्य बताये हैं। फिर कहीं सात स्वर्गको मायाका कार्य कहके उसका मूल कारण एक ब्रह्म ही है कहते हैं, और सातस्वर्ग-से परे आठवाँ अपवर्गरूप मुक्तिपदमें सो आप ही निरञ्जन-ब्रह्म स्वयं बना रहता है, ऐसा माने हैं॥२२४॥

१९. धरती सात एक शीश सुमेर ❀ मस्तक अष्टम अङ्ग निबेर॥ २२५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

धरती सात = सातद्वीप भीतर-बाहरमें, कहा है:— जम्बूद्वीप, हाड़में है। शंखद्वीप, मज्जामें है। कुशद्वीप, मांसमें है। श्वेतद्वीप, बालमें है। पुष्करद्वीप, नाभिमें है। शाल्मलद्वीप, त्वचामें है और क्रौञ्चद्वीप, शिरमें है। ऐसा माने हैं।

सुमेर = सुमेरु पहाड़ सातद्वीपके बीचमें अथवा सबसे ऊपरमें माना है। तैसे ही शरीरमें सुमेरुके समान ही—

एक शीश = सबके ऊपरमें एक शिर भागको ठहराये हैं।

अष्टम अङ्ग = सात अङ्गके ऊपरमें आठवाँ अङ्ग या भाग वही—

मस्तक = शिर वा मस्तक या माथा माना है। सो मस्तकमें शिखास्थान पर—

निबेर = निरञ्जन परमात्माका बासा है। ऐसा गुरुवा लोगोंने निबेराकरके कल्पनासे माने हैं। सो उसको निर्णयसे निबेरा वा छानबीन कर लेना चाहिये॥

व्याख्या— और सात द्वीपकी पृथ्वी बाहरमें कहा है, उनके नाम ये हैं:— जम्बू, सङ्ख, कुश, श्वेत, पुष्कर, शाल्मली, और क्रौंच—ऐसे नामसे सात द्वीप ठहराये हैं। सो उसे शरीरमें— हाड़, मज्जा, मांस, बाल, नाभि, त्वचा, और शिरमें क्रमानुसार घटाके माने हैं। और कण्ठके नीचे भाग-के सात अङ्गमें सात पाताल माने हैं। जैसे कि:—१ अतल—हाथके जगहमें। २ तल—पीठमें। ३ वितल—छातीमें। ४ सुतल—पेटमें। ५ रसातल—भग वा लिङ्गके ठिकानेमें। ६ तलातल—पाँवमें। और ७ पाताल—गुदास्थानमें कहा है। और जैसे बड़ा भारी सुमेरु पहाड़ लक्षयोजन ऊँचा ऐसा बाहर पृथ्वीमें कहींपर है कहिके अनुमान-कल्पना किये हैं। तैसे ही शरीरके उपरोक्त सात अङ्गोंके ऊपरमें एक सुमेरुके समान ऊँचा भाग शिरको ही कहे हैं। उसीको अष्टम अङ्ग भी निबेर करके कहते हैं। गुरुवा लोगोंने ऐसा निर्णय किये हैं कि—यहाँ मस्तकस्थानमें ही निरञ्जन ब्रह्मका बासा है। इसीसे उसके दर्शनके लिये ध्यान-समाधि लगाते हैं, नाना साधना करते-कराते रहते हैं॥ २२५॥

२०, सात कमल एक श्वासा भोग * सायर सात नीर प्रतियोग ॥ २२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सात कमल = चारदलका कमल, मूलाधार चक्र, गुदास्थानमें। छैदलका कमल, स्वाधिष्ठान-चक्र, पेडूमें। दशदलका कमल, मणिपूर-चक्र, नाभिमें। बारहदलका कमल, अनाहद-चक्र, हृदयमें। सोलहदलका कमल, विशुद्धि-चक्र, कंठमें। और दो दलका कमल, आज्ञा-चक्र, त्रिकुटीमें। और सहस्रदलका कमल, सहस्रचक्र, मस्तकमें योगियोंने ऐसे कल्पना-से माने हैं। वहाँपर—

एक श्वासा = एक ही प्राणरूप श्वासवायुका भिन्न-भिन्न हिसाबसे—

भोग = एकमें छः सौका, तीनमें छः-छः हजारका और तीनमें एक-एक हजारका ऐसा सब इक्कीस हजार छः सौ श्वास उच्छ्वास-का भोग या जाप होता है, ऐसा कल्पना किये हैं।

सायर सात = सातसमुद्र, पिण्ड और ब्रह्माण्ड-में:—लोणसमुद्र, मूत्रके जगहमें। मीठा-समुद्र—मैथुन भोगका आनन्द वा मल साफ गिरनेसे सुख होनेमें। क्षीरसमुद्र-दूधमें स्त्री-के कुचोंमें। सुरासमुद्र—पित्तके घड़ियामें। दधीसमुद्र—कफमें। घृतसमुद्र—नाकके पोटामें। अमृत या शुद्ध जलका समुद्र—लार-का झरनामें माने हैं। ऐसे सात समुद्र शरीरके प्रत्यङ्गमें घटाके कहे हैं।

नीर = वही सातों समुद्रोंके पानी—

प्रति योग = प्रत्येक द्वीपरूप कमलके घेरामें है, एक समुद्र एक कमलको घेरकर रहता है। ऐसा कहा है। अर्थात् सात तो कमल हैं, परन्तु, उनमें एक ही श्वासाका भोग होता है। और सात समुद्रके पानी वा रस प्रत्येक कमलके चौतरफ घेरा डालके फिर रहा है, इत्यादि कहा है॥

व्याख्या— अर्थात् देहमें सात कमल जो कहे हैं, सोई सात चक्र माने हैं। उसका विवरण नीचे लिखे अनुसार है, सुनिये! (१) मूलाधार चक्र-गुदा स्थान, देवलोक, गणेश देवता, चारदलका कमल, सोई "व, श, ष, स," यह चार अक्षर वहींसे प्रकटे हैं, वहाँ छः सौ श्वासोंका जाप माने हैं। (२) स्वाधिष्ठान चक्र-पेडूस्थान (नाभिके छः अंगुल तरे), ब्रह्मलोक, ब्रह्मादेवता, छै दलका कमल-सोई "ब, भ, म, य, र, ल," यह छै अक्षर वहींसे प्रगटे हैं, वहाँ छः हजार श्वासोंका जाप माने हैं। (३) मणिपूरचक्र,-नाभिस्थान, वैकुण्ठलोक, विष्णु देवता, दशदलका कमल-सोई "ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ," यह दश अक्षर प्रगटे हैं, वहाँ छः हजार श्वासोंका जाप माने हैं। (४) अनाहदचक्र-हृदय-स्थान, कैलाशलोक, महादेव देवता, द्वादशदलका कमल-सोई-"क से ठ" तकके १२ अक्षर प्रगटे हैं, यहाँपर छः हजार श्वासोंका जाप माने हैं। (५) विशुद्धीचक्रः—कण्ठस्थान, सत्यलोक शारदादेवी देवता, षोड़शदलका कमल,—सोई "अ, आ से अः" तकके १६ अक्षर प्रगटे हैं, वहाँपर एक हजार श्वासोंका जाप माने हैं। (६) अग्नि या आज्ञाचक्र-त्रिकुटी स्थान, (नेत्रोंके दोनों भौंहोंके बीचमें) भूर्लोक, महाविष्णु देवता, द्विदलका कमल—सोई "हं-क्षं" ये दो अक्षर प्रगटे हैं, वहाँपर एक हजार श्वासोंका जाप माने हैं। और (७) सहस्रदलचक्र-मस्तक या ब्रह्माण्डस्थान, निराधारलोक, परमतत्त्व परब्रह्मदेवता, सहस्रदलका कमल-सोई ॐकारसे ब्रह्मज्ञानादि सहस्रों वाणी प्रगटे हैं, वहाँपर एक हजार श्वासोंका जाप माने हैं। इस-प्रकारसे ऐसे सात स्थानोंमें वायुकी जो गाँठ बँधी हुई है, सोईको सात कमलरूप सातचक्र और सात स्वर्गादि मानन्दी किये हैं। सोई सात कमलमें एक श्वासवायुकी उपभोगसे आनन्द होना योगी लोगोंने माने हैं। और बाहर सात समुद्रोंका सात द्वीपोंमें चौतरफ घेरा माने हैं। जैसे कि:—१. जम्बू-द्वीप, एक लाख योजन विस्तारका ठहराकर, उसके चौतरफ क्षार वा लोण समुद्रका घेरा माने हैं। फिर उसके बाहर २. प्लक्ष (श्वेत) द्वीपकी दो लाख योजनका विस्तार ठहरा कर, उसके चौतरफ ईखरस वा मीठा समुद्रका घेरा माने हैं। ३. उसके बाहर शाल्मलीद्वीपकी चार लाख योजनका विस्तार ठहरा कर, उसके चौतरफ मदिरा समुद्रका घेरा माने हैं। ४. उसके भी बाहर कुशद्वीपकी आठ लाख योजनका

विस्तार ठहराकर, उसके चौतरफ घृत समुद्रका घेरा माने हैं। ५. उसके बाहरमें क्रौञ्च द्वीपकी सोलह लाख योजनका विस्तार ठहरा कर, उसके चौतरफ क्षीर समुद्रका घेरा माने हैं। ६. उसके बाहर शाक या शंखद्वीपकी बत्तीस लाख योजनका विस्तार ठहराकर, उसके चौतरफ दधि या मट्ठेके समुद्रका घेरा माने हैं। और ७. उसके भी आगेमें बाहर पुष्कर द्वीपकी चौंसठ लाख योजनका विस्तार ठहराकर, अमृत वा शुद्ध जलका समुद्रकी घेरा उसके चौतरफमें है, ऐसा गुरुवालोगोंने कल्पना किये हैं। ऐसा ही वर्णन भागवतादिमें लिखा है। यही "सायर सात नीर प्रतियोग" का विस्तार है, सो जानिये ! ॥ २२६ ॥

२१. वार सात यह भाँति उपान ❀ अष्टम अष्टङ्गी पहिचान ॥ २२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

वार सात = और रवि; सोम; मङ्गल; बुध; गुरु; शुक्र; और शनि; यह सात दिनके सात वार-का नाम बाहर माने हैं। और कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ, ये सात ऋषि भये हैं। शरीरमें हाथ, पाँव, नेत्र, जठर, पीठ, लिङ्ग और गुदा, ये सात दफे करके माने हैं।

यह भाँति = इस प्रकार तरह-तरहसे या नाना भाँतिसे सात-सातका भागोंको भी—

उपान = कल्पना करके उत्पन्न किये हैं या कर रखे हैं।

अष्टम = अब माया प्रकृतिके आठवाँ भागमें—

अष्टङ्गी = अष्ट-अङ्गी मायाको जानिये। सो पाँच तत्त्व, तीन गुण मिलके अष्टधा प्रकृतिसे पिण्ड-ब्रह्माण्ड बना है। तहाँ पिण्डकी पाँच वायु तथा तीन नाड़ी मिलके एक माया है। ब्रह्माण्डके पाँच वायु तथा तीन नाड़ी मिलके दूसरी माया है, इत्यादि यही अष्टङ्गी मायाका स्वरूप है।

पहिचान = ऐसा पहिचान कर लीजिये ॥

व्याख्या—और सात वारका सात दिन और सप्तऋषि आदि इसी प्रकार उत्पन्न हुये। अध्यासी जीवोंने देह धारणकर नाना कल्पना और वाणी-खानी बनाके उत्पन्न किये हैं। आठवाँ अष्टङ्गी माया कई तरहकी भयी है। सो उसमेंः—१. पाँच तत्त्व, तीन गुण मिलके है। २. धनञ्जयादि पाँच वायु, इङ्गलादि तीन नाड़ी मिलके है। ३. व्यानादि पाँच वायु, वातादि तीन नाड़ी मिलके है। ४. अन्तःकरण चतुष्टयका दोहरा विषय मिलके है। ५. अष्ट मैथुन मिलके है, इत्यादि भेदसे अष्टाङ्गी मायाका भेद पहिचानिये ॥ २२७ ॥

२२. अष्ट भुजी अष्ट वर्ग विलास ❀ षोड़श नर नारी जुग भास ॥ २२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

अष्ट भुजी = मायाको अष्टभुजी भी कहते हैं। तमोगुणी हिंसक लोग आठ हाथवाली देवीकी जड़मूर्ति बनायके जीवहिंसा, बलिदान उसीके सामने करते-कराते हैं।

अष्ट वर्ग = और पाँच अक्षरोंका एकवर्ग होता है, वा भया है। सो-क, च, ट, त, प, य, श, और आठवाँ १६ स्वरका अपवर्ग माने हैं, उसीको अष्ट-वर्ग कहते हैं। तैसे देहमें आठ दलका मन चक्र कहा है—

विलास = उसीके क्रीड़ा विलासमें जीव भूले पड़े हैं। तथा—

षोड़श = दश इन्द्रियाँ, पञ्चविषय और मन, यह सोलहकला संयुक्त स्थूल-सूक्ष्म शरीर भया है, सो—

नर-नारी = पुरुष और स्त्री यह—

जुग = दोनोंके रज-वीर्य सम्बन्धसे पाँच तत्त्व तीन गुण दोनोंका भाग एकत्र मिलके—

भास = स्थूलाकार नर-नारीका शरीर भासता है, यानी देखनेमें आता है। ऐसे नर-नारी दोनोंसे षोड़श कलावाला देहका भास खड़ा हुआ है ॥

व्याख्या— और राक्षसी वृत्तिवाले हिंसक लोग देवीकी आठ भुजावाली जड़मूर्ति बनायके, उसके सामने पूजाकर बकरा, मेंढ़ा, बतक, भैंसादि प्राणियोंकी बलिदान चढ़ाके हिंसा करते हैं, सोई राक्षसी

अष्टभुजी हैं। अष्टवर्गः— क वर्ग ५ अक्षरकी है—'क, ख, ग, घ, ङ'; इसी तरह च, ट, त, प, य, श, और अ वर्गको भी माने हैं, सो जान लेना। इसमें और अष्टदलका मनचक्र माने हैं, उसमें भी प्राणी विलास किये और कर रहे हैं। पाँच तत्त्व तीनगुण स्त्री और पुरुष दोनोंके मिलकर १६ कलाकी स्थूलदेह बनी है, सो प्रत्यक्ष देखनेमें भास आता है, सो जड़ तत्त्वोंका भाग जानिये। देहको चलानेवाला चैतन्य जीव देहादिसे सदैव न्यारा ही रहता है, ऐसा पहिचानिये। और हृदयस्थानमें जो अष्टदल या आठखानाका घूमनेवाला मनका अष्टचक्र माने हैं, सो उसमें जो-जो दल या खानामें जाके मन बैठ जाता है, तो तैसी-ही-तैसी बुद्धि भी फिरती या घुमती जाती है। वैसा ही स्वभाव देखनेमें भी आता है। ऐसा कहा है कि, अर्थात् १. प्रथम दलपर जब मन बैठता है, तब हास्य, विनोद और आनन्द होता है। २. दूसरे पर बैठनेसे स्त्री, पुत्रादिकी मोह जाल उत्पन्न होता है। ३. तीसरे पर बैठनेसे क्रोध, द्वेष, दुष्ट वासनादि प्रगट होता है। ४. चौथे पर बैठ जानेसे आलस्य, उद्वेग, चिन्तादि उत्पन्न होता है। ५. पाँचवें पर बैठनेसे उदार, वीर, शुद्ध वासनाका भाव आजाता है। ६. छठयें पर बैठनेसे श्रवण, कीर्तन, धर्म, शान्ति आदि प्रगट होता है। ७. सातयें पर बैठनेसे अष्टभोगोंमें मन प्रवृत्त होता है। और ८. आठवें दल पर मन बैठ जानेसे तीर्थयात्रा करनेका मन होता है— ऐसा माना गया है। इसे अष्टवर्गके भीतर प्रगट होनेवाला मनका अष्टचक्र जान लेना चाहिये ॥ २२८ ॥

२३. सात भूमिका आपु अमान * सोरह कला पूर पहिचान ॥ २२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सात भूमिका = ज्ञानकी सात जगह, जिसे— सप्त ज्ञान भूमिका माने हैं। सो १ शुभ इच्छा। २ सुविचारणा। ३ तनुमानसा। ४ सत्त्वापत्ति। ५ असंशक्ति। ६ पदार्थाभाविनी। और ७ तुरिया है। यही उनका नाम है।

आपु = स्वयं निरञ्जन परमात्मा सबका अधिष्ठान होते हुए भी—

अमान = माया मलरूप मान-अपमानसे रहित उसे निर्मल शुद्ध माने हैं। यानी सात भूमिकासे परे आप ब्रह्म स्वयं अमान है, ऐसा कहा है।

सोरह कला पूर = सोरहों कलाके शक्तिसे पूर्ण कोई परमेश्वरको ही माने हैं। तैसे— चन्द्रमाकी १६ कला एकपक्षमें पूरा होता है। और १६ कलासे पूर्ण सूक्ष्म-स्थूल शरीर लेके होता है।

पहिचान = ऐसा पहिचानके जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— ज्ञानी लोगोंने ज्ञान प्राप्तिकी सीढ़ीरूप सात प्रकारकी भूमिका जो माने हैं, सो ऊपर लिखा जा चुका है। तैसे ही अज्ञानकी भी सात भूमिका माने हैं। सो उनके नाम ये हैं:— १ बीज जाग्रत्। २ जाग्रत्। ३ महाजाग्रत्। ४ जाग्रत्-स्वप्न। ५ पञ्चमस्वप्न। ६ स्वप्न जाग्रत्। और ७ सुषुप्ति, ये सात प्रकारके मुख्य अज्ञानरूप मोहकी सात अवस्थाएँ माने हैं। इसका विस्तार योग वाशिष्ठादिमें वर्णन किया है। ऐसे ज्ञान-अज्ञान दोनोंकी भूमिकाओंसे परे मायाके विकारसे रहित अमान-निरञ्जन ब्रह्मको स्वयं अलिप्त सर्वाधार माने हैं। सोई परब्रह्मको ही सोरहों कलासे परिपूर्ण ठहराये हैं। तैसे ही अमावससे प्रतिपदा तिथीतक १६ [illegible] चन्द्रमाको माने हैं। एवं ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ विषय, और १ मन मिलायके सोरह कला[illegible] पूरा शरीर बना है, सो पहिचान लीजिये ॥ २२९ ॥

२४. अष्टाङ्ग योग बखानै वेद * सोरह आना सोरह भेद ॥ २३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

वेद = वेदवादी वेदके प्रमाणसे—

अष्टाङ्ग योग = आठ अङ्गः— यम, नियम, प्राणायाम, आसन, मुद्रा, धारणा, ध्यान, समाधि, इन ८ अङ्ग सहितके आठ योग-लय, तारक, अमनस्क, सांख्य, लम्बिका, कुण्डली, राज, हठ। और बाहरमें अष्ट गुरुवोंका संयोगसे वाणी-खानीका ज्ञान होता है—

बखानै = ऐसा वर्णन किये हैं। और—

सोरह आना = एक रुपयामें सब १६ आनें होते

हैं। तैसे ही एक स्वरसे १६ स्वर अ से अः तक उत्पन्न हुये हैं। और—

सोरह भेद = स्त्रियोंके १६ शृङ्गार माने हैं। ऐसे १६ भागोंके विभिन्न भेद माने गये हैं, यही इसका भेद है॥

व्याख्या— फिर वेद प्रमाणसे आठ योग और आठ अङ्ग योगका बताये हैं। १६ स्वर, १६ आने-का एक रुपया, १६ शृङ्गारादि भेद अलग-अलग बताये हैं॥ २३०॥

२५. आठौं नवौं पुनि अङ्क बिलाय * शून्या लहत एक दहलाय॥ २३१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

आठौं = अष्ट प्रतिमा पूजा, अष्टाङ्गयोग, आदि आठ-आठके सब भाग—

नवौं = नवधा भक्ति, नवरात्र, नौ देवी वा नव-दुर्गादियोंके भक्ति-पूजादि नौ-नौके सब भाग और—

पुनि अङ्क = फिर एकसे नौ तकके अङ्क (१-९) सब भी मायाके गोदमें जाके—

बिलाय = आखिरमें बिलायके लय हो जाते हैं, उनके नामों-निशान रहता नहीं।

शून्या लहत = शून्य बिन्दुको प्राप्त होनेपर या शून्य ब्रह्म स्थितिकी गाफिली प्राप्ति होनेसे—

एक = एक अङ्क या एक जीव सो—

दहलाय = निजपदसे नाश हो जाता है। जैसेः— १ में ० आनेसे एकका नाश होके दशगुणा उपाधि बढ़ गया। तैसे ही जीवने शून्य भगभोग वा समाधिमें शून्य ब्रह्मानन्द आदि सुख मानन्दी करके भ्रममें आनेसे १० गुणा उपाधि अध्यास दृढ़ करके फिर नरजन्मसे नाश होके नाना योनियोंमें गर्भवासका दुःख दश महीना तक वा खानियोंके नियमानुसार गर्भका दुःख भोगते रहते हैं॥

व्याख्या— और अङ्क लिखाईके हिसाबमें ×१×२×३×४×५×६×७×८×९× ऐसे आठ-नौ तक सीधा लिखा जाता है। तथा एक-दूसरे अङ्क भी आठ-नौ तक ही मिलाया भी जाता है। तत्पश्चात् जब ० लगा दिया जाता है, तब उन अंकोंका मुख्य भाग तो नाश हो जाता है। परन्तु, दशगुणा हिसाबमें उपाधि वा पदवी बढ़ता ही जाता है। जैसे ० शून्य लगा देनेसे १ नाश होके १० बन जाता है! इसी-प्रकार सिद्धान्तमें भी माया प्रकृतिके आठ-आठके भाग तथा नौ-नौके भाग अष्टयोगादि, नवधाभक्ति आदि उलट-फिर करके जहाँ बिलाय जाता है, लय होके नाश हुआ कि, वहाँ शून्य वृत्ति हो, उन्मुन गरगाफ होकर जीवके मनुष्य पदकी विवेकका नाश हो जाता है। शून्य समाधि ब्रह्मानन्द सुख प्राप्तिके मानन्दीसे दशगुणा उपाधि और अध्यास बढ़ गया, तथा स्त्रियोंके शून्य भगभोग विलासके आसक्तिसे दशगुणा वासना-संस्कार बढ़कर आखिरमें दोनों तरहसे गर्भवास दुःख जीवोंको भोगना पड़ता है, और भोग रहे हैं, बिना पारख॥ २३१॥

साखीः— एक शून्य संग्रह किये * परखै नहीं सो सन्ध॥

[१७] अनेक जाल भौ अङ्कमें * परे जीव सब बन्ध॥ २३२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

एक = नर जीवने एक कर्ता ब्रह्म मानके उसके प्राप्तिके वास्ते—

संग्रह = नाना साधनोंका अभ्यास वेद-शास्त्रादि वाणी कल्पनाका संग्रह या इकट्ठा करके—

शून्य = वृत्ति, होश या ज्ञानको लयकर शून्य-वृत्ति उन्मुन—

किये = किये, वही शून्यका संग्रह करना है। ऐसे रीतिसे तो अध्यास ही इकट्ठा किये हैं—

सो सन्ध = सो शून्यके अध्यास या शून्य ब्रह्मके मानन्दी ही हम जीवोंको बन्धन है, ऐसे यथार्थ सन्धिको—

परखै नहीं = परखते नहीं, यानी पारख न होनेसे परखना जानते ही नहीं। अतएव—

अनेक = चारखानी-चौरासी योनियोंमें लेजानेका अनेका-अनेकों—

जाल भौ = भवसागरखानी वाणियोंके प्रपञ्च महा-जाल खड़ा हुआ है, सो कहाँसे खड़ा हुआकि—

अङ्कमें = उसी अङ्करूप ब्रह्मके गोदमेंसे ही वह सब जाल पैदा हुआ है।

सब = जगत्के समस्त या सब कोई—
जीव = अज्ञानी-ज्ञानी पारखहीन नरजीव—
परे = धोखाधार मानन्दी अध्यासमें पड़े हुये जो उस जालमें पड़े हैं—
बन्ध = सो सब महान बन्धनमें अरुझकर बन्धायमान हुए हैं। अतः गुरु पारख प्राप्त हुए बिना वह बन्धन छूट नहीं सकता है॥

व्याख्या— जैसे कि, एक अङ्कके ऊपरमें शून्य संग्रह करते-करते हिसाबको गणितज्ञोंने खूब बढ़ा लिये हैं = [१०००००००००००००००००००] उसीमें और जितना भी शून्य बढ़ेगा, उतना अधिक दशगुणा भाग बढ़ता जायगा, हिसाबके अनेक जञ्जाल झगड़ा घटाबढ़ी, जोड़, भाग-विभाग आदि सब प्रपञ्च उसी अङ्कमेंसे फैलायके दुनियादारी सब बन्धनमें बन्धे पड़े हैं। परन्तु, सो किसीके साथमें एक कौड़ी भी अन्तमें जानेवाला नहीं है, यह सन्धि कोई विचार करके नहीं परखते हैं। इसीसे दुनियाँकी उपाधि भी नहीं छूटती है। अथवा वाणीमें एक नरजीवने एक कर्ता परमात्माको शून्य आकाशवत् व्यापक मानके उसमें मिलनेके लिये या उसके प्राप्तिके वास्ते अनेक वेदादि वाणीको संग्रह करके शून्यवृत्ति किये, सो सन्धिरूपी मानन्दीको तो कोई कुछ परखते ही नहीं कि, शून्य अध्यास ही जीवोंको चौरासी योनियोंमें लेजानेके बीज है। क्योंकि, जीव शून्यमें मिलके शून्य ही तो कभी होनेका नहीं। किन्तु, अध्यासी होके बन्धनमें ही पड़ते हैं। और ब्रह्म-भ्रमके अङ्क या गोदमेंसे अनेक जगत् जाल खड़ा हुआ,वा विस्तार हुआ, ऐसे वह तो अनेक जालका मूल कारण बना है। बिना पारखबोध हुए सब नरजीव उसी महाबन्धनमें पड़े और पड़ रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके दया बिना यह जाल लखनेमें नहीं आता है, इसीसे छोड़ा नहीं जाता है॥२३२॥

सम्बन्ध— यहाँसे चौकड़ी १ से १५ तक बारहवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ द्वादश खण्ड ॥१२॥ ❀ ॥

१. श्वासा भेद स्वरोदय जान ❀ नाड़ी स्वभाव चिकित्सा मान ॥ २३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
श्वासा = श्वास-उच्छ्वासरूप प्राणवायुके चलन-क्रिया वा गतिमें लक्ष लगाय करके उसमें—
भेद = भिन्न-भिन्न प्रकारके रूप, रङ्ग, माप अङ्गुल प्रमाण, आयुका हिसाब, सुख, दुःख, हानि, लाभ, संयोग, वियोग, इत्यादि अनेकों भेद या मर्म-रहस्य जाननेका साधना—
स्वरोदय = ज्ञान स्वरोदयसे—इङ्गला, पिङ्गला, और सुषुम्नाका विचार अभ्यास सिद्ध होने पर वह—
जान = सब जगत्के बातें योगीलोग जान लेते हैं या उससे जाना जा सकता है वा जाननेमें आता है, ऐसा कल्पना किये हैं।
नाड़ी = और वात, पित्त, कफ, ये तीन नाड़ीके द्वारा उनके लक्षण—
स्वभाव = चलनक्रिया या स्वभावका गति देख करके वैद्य लोग—
चिकित्सा = वैद्यक शास्त्रके विधिसे परीक्षा करके रोगोंका दवाई उपयुक्त रीतिसे करते हैं। इसे चिकित्सा कहते हैं।
मान = प्रवीण वैद्य सब रोगोंको अच्छी तरहसे पहिचान कर जो दवाई देते हैं, तो उससे अवश्य रोग मिट जाता है, ऐसा अनुमानसे माने हैं॥

व्याख्या— अर्थात् स्वरोदय ज्ञानसे श्वासमें विचार करनेसे सब पिण्ड-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति-प्रलयों-की बात जाननेमें आती है, ऐसा कहते हैं। तहाँ वायुके चार अङ्गुल, अग्निके आठ अङ्गुल, जलके सोरह अङ्गुल और पृथ्वीके बारह अङ्गुल प्रमाणसे श्वास चलनेको उक्त तत्त्वोंकी उत्पत्ति माने हैं। तैसे ही आकार, प्रकार आदि सब हाल और समाधिमें श्वास लय करके निर्गुण ब्रह्म समेत्का सब भेद स्वरोदय-से जाना जाता है; यानी योगीलोग वह बातको जान लेते हैं, ऐसा माने हैं। और तैसे ही वैद्य लोग नाड़ी-का स्वभाव चाल देखते हैं। तहाँ वात विकारमें जोंक या सर्पके समान नाड़ीकी गति रहती है। पित्तकी विकारमें मेढ़क या कागके समान नाड़ीकी गति चलती है। और कफकी विकार बढ़ जानेमें परेवा या हंसके समान गतिसे नाड़ी चलती है, ऐसा माने हैं। सो ऐसे नाड़ियोंका स्वभाव,

चाल या गतिका विचार करके तथा मल-मूत्रादिका परीक्षासे देख करके चिकित्सा करनेकी वैद्यक शास्त्रका हिसाब वा चाल है। रोगका पूर्ण परीक्षा करके ठीकसे दिया हुआ औषधिसे रोग छूटके अवश्य आराम हो जाता है; ऐसा माने हैं। तैसे ही अनाड़ी अज्ञानियोंके रुचि देख करके गुरुवालोग भी कोई एक जड़ मूर्तिकी ध्यान, नाम स्मरण और मिथ्या मानन्दी धोखा नरजीवोंको दृढ़ाके भ्रम लगा देते हैं। अविवेकीजन उसीको सत्य समझके मान लेते हैं ॥ २३३ ॥

२. ग्रह चाल बुद्धि जोतिष होय ❀ समय स्वभाव किसानी सोय ॥ २३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

ग्रह = और सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शनि, शुक्र, राहु, और केतु, ये नवग्रहोंके और—

चाल = पृथ्वीके परिभ्रमणरूप चलन गति या चालोंको अच्छी तरहसे गणित विद्यासे जानने वाले ज्योतिषी लोग—

बुद्धि = तिक्ष्ण बुद्धि द्वारा हिसाब लगायके ग्रहण आदिका समय पहले ही बताय देते हैं।

जोतिष = सो ज्योतिष विद्याका अभ्यास मनन द्वारा ऐसा बुद्धिका—

होय = बोध विकाश प्राप्त होके प्रकाश हो जाता है, ऐसा माने हुए हैं। और—

समय = वर्षा, शिशिर, और धूप, ये तीन समय या सुकाल, अकालका ज्ञान—

स्वभाव = ब्रह्माण्ड प्रकृतिका स्वभाव या लक्षणका परीक्षा बोध करनेवाले—

किसानी = कृषि-विद्यासे जान जाते हैं, और गुरुवा लोगोंका किसानी, नाना कर्म, उपासनादिके उपदेशोंसे—

सोय = सोई बाहरके वार्ताका मालुम और धर्म-कर्मादिका मालुम शिष्य लागोंको होता है, ऐसा माने हुए हैं ॥

व्याख्या— और नवग्रह तथा अष्टवसु सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी आदिकी दैनिक क्रियाका चाल तथा परिधिमें घूमते रहनेकी गतिका हिसाब सब ज्योतिष विद्याके गणित शास्त्रके ज्ञान द्वारा जाना जाता है, ऐसा कहा है। तैसे ही उन सब खगोल पिण्ड और भूगोल पिण्डोंको उत्पन्न करके चलानेवाला मन, बुद्धि, वाणीसे परे अगम्य कोई एक कर्ता परब्रह्म है, ऐसा कल्पना दृढ़ किये हैं। और कृषि-विद्यासे बाहरके समय या मौसम अच्छी तरहसे ठीक-ठीक जाननेमें आता है। समय देखके किसान लोग अनाज आदिके बीज बोते हैं, रक्षा करते हैं। फिर उसके समयमें पक जानेपर काटके घरमें लाते हैं। तैसे ही परमेश्वर प्रथम इच्छा करके जगत् सृष्टिका उत्पन्न करता है। मध्यमें पालन-रक्षण करके फिर अन्तमें महाप्रलय करके सबोंका नाश करके अपनेमें ही मिलाय लेता है। ऐसा गुरुवा लोग किसानी करके जगत्में उपदेश देते हैं। कहते हैं—कर्म, उपासना, भक्ति आदि करो, जिससे परमात्मामें जाके मिल जाओगे, तो दुःख छूट जावेगा ॥ २३४ ॥

३. नाना मत ताके व्यवहार ❀ अरुझै जहाँ तहाँ अरुझनहार ॥ २३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

नाना मत = षट् दर्शनोंके अनेक भेष नाना प्रकारके मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्तादि निकाल कर उसमें—

व्यवहार = कर्म, उपासना, योग, ज्ञानादि साधनोंका व्यवहार बढ़ाके—

ताके = भ्रमिकलोग उसी माना हुआ भ्रम कल्पित ईश्वरादिको तकाने और ताकने या देखने-ढूँढने लगे। इसप्रकार नरजीव—

जहाँ तहाँ = भोग, योग, रोगादिमें जहाँ-जहाँ जाते हैं, तहाँ-तहाँ पर—

अरुझनहार = अरुझनेवाले ज्ञानस्वरूप चैतन्य मनुष्य जीव ही स्वयं नाना मानन्दी दृढ़ करके मनुष्य पदको सद्गुण विवेकको विनाश कर हारके वा खोके नष्ट कर दिये इसी कारणसे—

अरुझै = वाणी-खानी जालोंमें अरुझे हैं; यानी फाँसमें फँसे हुए दूसरोंको समेत् उसीमें फँसा-फँसा करके चौरासी योनियोंमें पड़े और पड़ रहे हैं ॥

व्याख्या— कोई जगत् कर्ता परमात्मा सुख-दुःखोंका दाता है, ऐसा मानके उसके प्राप्तिके वास्ते नाना मत, पन्थ, सिद्धान्त प्रगट करते भये। और कर्मोपासनादिके अनेक व्यवहार करके ईश्वरादिको ताकने या खोजने लगे। इसतरह जहाँ-तहाँ जाके मानन्दी कर्ता जीव ही मनुष्यके शुभगुण लक्षणोंको हारके वाणी-खानीमें अपने आप अरुझे हैं और दूसरोंको भी अरुझा रहे हैं। बिना विचार ॥ २३५ ॥

४. नष्टरूप जे जगके जाल * सोहं देव कहै ब्रह्म जाल ॥ २३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
जगके जाल = जगत् या संसारके नानामतोंके सिद्धान्तादि सब खानी-वाणीके अन्तर्गत महाजालका—
जे = जितने भी विस्तार हैं, या उनको जिन-जिन्होंने ग्रहण किये हैं, सो—
नष्टरूप = मानुषपद या मुक्तिपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये। उन्होंको निज स्वरूपका बोध नहीं हुआ, इसीसे नष्टरूप व्यापक परमात्मा मानन्दीमें मिलके अज्ञानी बन, जीवकी ज्ञान कलाको ढाकके नष्ट किये—
सोहं देव = परन्तु, सो कोई निरञ्जन परमेश्वर देवता जो है, सो मैं हूँ! मैं ही ब्रह्मदेव स्वयं हूँ!
कहै = ऐसा जो वेदादि महावाक्यको दृढ़ करके कहते हैं वा सुनाते हैं, सो—
ब्रह्म जाल = भ्रममात्र धोखा ब्रह्मजाल वाणी कल्पना-के फन्दा या कठिन जञ्जाल ही खड़ा हुआ है॥

व्याख्या— वैसे जगत्के विषय भोगोंके जाल तो मुक्तिपदको नष्ट करनेवाला हो है। परन्तु, जगत्-ब्रह्मको एक व्यापक मानके जो ब्रह्म बने, वे भी जीवकी ज्ञान कलाको आवरण डाल करके नष्ट-भ्रष्ट किये हैं, तो जो जगत्के जालमें बन्धन था, सोई ब्रह्मके मानन्दीमें भी वाणी कल्पनाके जञ्जाल दृढ़ भया है। कोई सोहंदेव मैं ही ब्रह्म हूँ, ऐसा कहते हैं, सो भी ब्रह्म-भ्रमका जाल गर्भमें ले जानेका बीज ही है ॥ २३६ ॥

५. एक एक अङ्ग कोई बलवान * कहूँ सर्वज्ञ पूर्ण परवान ॥ २३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
एक-एक अङ्ग = द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और चार वेदोंके चार सिद्धान्त, षट्शास्त्रोंके छैः सिद्धान्त, जैनी, बौद्ध, आस्तिक-नास्तिक इत्यादि अनेकों मतमेंसे जिन्होंको जो भाया, सो एक-एक मतके अङ्ग भागको—
कोई = कोई कुछ-कोई कुछ पकड़करके दृढ़ किये हैं।
बलवान = सो उसीको परिपुष्ट वा मजबूत करके बड़े बलवान वा प्रचण्ड हुए और हो रहे हैं।
कहूँ = कहीं पर तो भ्रमिक लोग—
सर्वज्ञ = सर्वको सर्व समयमें जाननेवाला त्रिकालज्ञ परब्रह्म-परमात्मा—
पूर्ण = जड़, चेतन सबमें परिपूर्ण सर्व व्यापक है।
परवान = ऐसा गुरुवालोगोंने प्रमाण करके माने हैं॥

व्याख्या— जगत्के अनेकों मत, पन्थवाले कोई एक-एक मतके मानन्दी-कल्पनाको पकड़के दृढ़ किये हैं, सो अपने-अपने मतमें षट्दर्शनके लोग छियान्नवे पाखण्ड निकालके उसमें बलिष्ट, सण्ड-मुसण्ड प्रचण्ड भये। और कहीं पर तो ज्ञानी गुरुवालोग परिपूर्ण सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा कोई परमात्मा है; ऐसा वाणीका प्रमाण किये हैं ॥ २३७ ॥

६. जथा प्रयोगमें रहै तमान * अधिक भये वह सुख अनुमान ॥ २३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
जथा = जिसको जैसा अच्छा लगा, वैसे ही उसे सच्चा यथार्थ मानके—
प्रयोगमें = भक्ति, योग, ज्ञानके अनेक साधनोंमें लगके खूब अभ्यासका प्रयोग किये और कर रहे हैं। सो—
तमान = कोई ईश्वरादि मानके तम या अज्ञान-के खाँचमें गाफिल, मूढ़ या तबाह होके

अन्धकारमें पड़के नष्ट—
रहै = हो रहे हैं। सो आवागमनमें जाके गर्भमें पड़ रहे हैं।
अधिक भये = ज्यादा साधनादि करके विशेष थक जानेपर या बाह्यवृत्ति लय होके ज्यादा निवृत्ति होनेपर, जिनको ऐसा भया है—
वह = वे योगी, भोगी लोग वा साधक वह मनुष्य-
अनुमान = अपने मनमें मानन्दीके अनुमान या कल्पनासे—
सुख = कोई विषय भोगोंको ही सुख समझने लगे, और कोई निर्विकल्प शून्यवृत्तिके आनन्दको ब्रह्मानन्द स्वयं सुख स्वरूप समझके मानने लगे। बिना पारख, ऐसे-ऐसे अनुमानमें ही भूले हैं॥

व्याख्या— वे लोग अपने-अपने साधनाको ही सत्य यथार्थ मानके साधने लगे, तो चक्कर खायके महान अन्धकारमें गाफिल होके पड़ रहे हैं। और ज्यादा ही भ्रम गाफिली बढ़ायके ज्यादा साधनाओंसे वृत्तिस्थिर होनेसे वहाँपर निर्विकल्प आनन्दका भास भया, उसीको पारखहीन वे गुरुवा लोगोंने सुख-स्वरूप ब्रह्मका अनुमान किये हैं। अथवा जैसे-जैसे प्रयोगमें रहे, तैसे-तैसे भ्रम बढ़ता गया, अधिक गाफिल भये, तो अनुमानसे उसे बड़ा सुख मानते भये। अर्थात् महाअज्ञानकी अन्धकार तो उनके हृदयमें ही फैली रही, किन्तु, उसीको ही भ्रम अनुमानसे ब्रह्मानन्दका सुख मानने लगे। वैसे ही विषय व्यवहारमें भी ज्यादा थक जानेसे भोगादिमें कुछ देर वृत्ति रुकनेसे उसको संसारी लोगोंने भी अनुमानसे ईश्वरका ही अंशरूपमें सुखको मान लिये हैं। यह सुखके अध्यास या सूक्ष्म अहन्ता हृ जीवोंको गर्भवासमें लेजानेका बीज है, यह नहीं जानते भये। बिना सत्सङ्ग-विचार॥ २३८॥

७. जगत समाय रहा ब्रह्मज्ञान ❀ सूर्य कला महँ रैनि समान॥ २३९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
जगत = संसारके जड़ाध्यासी नरजीव पारख विवेक बिना—
ब्रह्मज्ञान = वेदान्तके अद्वैत व्यापक ब्रह्मके ज्ञानको दृढ़ करके—
समाय रहा = धोखामें समा गये या मिलके भ्रम-वश आवागमनमें ही जा रहे हैं और धोखेमें पड़ रहे हैं। क्योंकि—
सूर्य = चैतन्य जीवके ज्ञान प्रकाशका वा सूर्यके महा प्रकाशका—
कला = अभाव जगहके भागमें ही अर्थात् उसीके विपरीत कलामें—
रैनि = अज्ञानता ब्रह्मपदकी अन्धकार या जड़त्व वा रात्रिरूप—
महँ = उसीमें अहंता, ममतादि विकार तत्त्व आदि उसी सबमें—
समान = समाया रहता है, यानी जड़के धर्म एक-समान ज्ञानहीन जड़त्व ही कायम रहते हैं, वैसे ही ब्रह्म आदिमेंके अध्यासी जीव भी चार खानीमें ही समाये रहते हैं॥

व्याख्या— जैसे सूर्य प्रकाशरूप है, उसके स्वरूपमें तो तीन कालमें अन्धकार नहीं रह सकता है। परन्तु, उसके दूसरे कलामें यानी प्रकाशके अभाव या आड़के जगहमें रात्रि या अन्धकार समाया हुआ रहता है। वैसे ही सूर्य समान ज्ञान प्रकाश स्वरूप चैतन्य जीव है। सो जीवके कल्पनारूपी कलामेंसे रैनरूपी ब्रह्मपदकी मानन्दी निज स्वरूपकी अज्ञानता उनके हृदयमें समायी हुयी है। सो अद्वैत सिद्धान्तमें ब्रह्म-जगत् अभेद है। जैसे जगत्में ब्रह्म समाया है, वैसे ही ब्रह्ममें जगत् समाया हुआ है। ऐसा धोखा भ्रमरूप ब्रह्मज्ञानके सिद्धान्तका दृढ़मानन्दी निश्चय करके जगत्मेंके पारखहीन नरजीवोंमें विकट भ्रम-भूल समाय रहा है। अर्थात् सूर्य कलामें रात्रिके समान ब्रह्मज्ञानमें जगत्के अबोध नरजीव समा रहे हैं, बिना विचार॥ २३९॥

८. कहुँ सुख स्वभाव देखाई देय ❀ कहुँ अधिकै दुःख मानै तेय॥ २४०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
कहुँ = और कहीं पर तो विशेष साधना करके समाधि लगानेसे—
सुख स्वभाव = निर्विकल्प अवस्थामें ज्यादा ही सुख या आनन्द स्थिर वृत्तिके सुख होनेसे साधकोंको अच्छा—

देखाई देय = दिखलाई देता है, यानी, ऐसा मालुम होता है। सो वाणीसे दूसरोंको भी बताके दिखाते हैं। और—

कहुँ = कहीं पर तो विषयोंके तरफ मन उलटके वृत्ति चञ्चल होनेसे —

अधिकै दुःख = संकल्प-विकल्प करके नाना कर्मों में लगके ज्यादा-ज्यादा ही अधिक दुःख, कष्ट, संतापादि पाते हैं।

मानै तेय = ऐसे नाना दुःख पाते हुए भी हठ करके उसी ब्रह्म तथा विषयादिको ही सुख स्वरूपमें निश्चय करके मानते हैं॥

व्याख्या — कहीं तो योगी, ज्ञानी लोग समाधि, ध्यान, धारणादि लगाये, तब वृत्ति स्थिर होके निर्विकल्प स्थितिमें सुखका स्वभाव दिखलाई दिया। उसीको ब्रह्मानन्द सुख मान लिये हैं। और कहीं-पर तो समाधिमें वृत्ति लय होके न ठहरनेसे बहिर्वृत्ति होके चञ्चलता बढ़ी, तब सङ्कल्प-विकल्प करके नाना कर्म, भक्ति, योगादि साधनोंमें लगके स्थिति प्राप्ति करनेमें बहुत ही दुःख वा कष्ट मानने लगे। तथापि उसी धोखाको ही सुखरूप सत्य मान लिये हैं। अर्थात् कहीं पर तो मानन्दीसे सुखका स्वभाव दिखाई देता है, और कहीं पर तो वे ही अधिक ही दुःख मानते हैं॥ २४० ॥

६. सायर वारि स्वभाव सो आग ❀ अपने स्वभाव चलै सो भाग॥ २४१ ॥

अथः — श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सायर वारि = समुद्रके खारा पानीवत् वेद-वाणीके कल्पित व्यापक ब्रह्मसिद्धान्त जो माने हैं, सो भी खारा निकम्मा है।

स्वभाव = उस ब्रह्ममें स्वाभाविकरूपसे ही माया प्रकृति लगी रहती है।

सो आग = सोई आगे इच्छारूप अग्निको प्रचण्डरूपसे जगाती है।

सो = सो संसारी मनुष्य जगत्में नाना दुःख पायके वैराग्य होनेसे—

भाग = स्त्री, पुत्रादिको छोड़कर भागे, तो भागते-भागते ढूँढते ढूँढते यहाँ पर—

चलै = गुरुवा लोगोंके शरण, भेषमें सुख पानेकी आशासे चले आये। तो उन्होंने ब्रह्मानन्दादि प्राप्तिके भरोसा देके नाना तरहके साधना कराये, तहाँ साधकोंने—

अपने स्वभाव = देह भासको ब्रह्म सुख स्वरूप माना, तो भी ब्रह्मका अपने नित्य उत्पत्ति, प्रलय होनेकी स्वभाव नहीं छूटा, अतः फिर अध्यासवश जीव चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़े॥

व्याख्या— और सायर कहिये समुद्रको, वारि कहिये पानीका सहज स्वभाव तरङ्ग उठके चला ही करना होता है। क्योंकि, सो समुद्रके गर्भमें बड़वाग्नि रहा हुआ है। उसके वेगसे भीतरसे भी तरङ्ग उठ आता है, तथा बाहर वायुके वेगसे भी हिलोरा तरङ्ग बढ़ता ही जाता है। सो पानीके पतला स्वभाव होनेसे तरङ्गें उठ-उठके वायुके वेगसे सो लहरी दूर तक भागता वा फैलता ही चला जाता है। यह तो बाहरी दृष्टान्त हुआ। वैसे ही सिद्धान्तमें संसाररूपी समुद्रमें वाणी-खानीके विषय यही पतला पानीवत् भरा पड़ा है। इच्छारूपी बड़वाग्नि स्वाभाविक जीवोंके अन्तःकरणमें ठहरके रहा हुआ है। सो इच्छाके वेगसे वासनाके तरङ्ग उठके चञ्चलतासे प्रवृत्ति बढ़ता ही जाता है। अपने स्वभावकी चाही हुई वस्तु जहाँ देखता है, वहाँ वा उधर ही मन भागके दौड़ते हुये जायके झपट लेता है। अथवा वाणीके समुद्र सोई वेद है। वेद-वेदान्तके सिद्धान्तसे एक व्यापक ब्रह्मकर्ता परमात्मा माने हैं। परन्तु, उसके अन्दरमें स्वाभाविक जगत् उत्पत्तिकी इच्छा माया बनी ही रहती है। सो ब्रह्मके इच्छा बड़वाग्निके समान प्रचण्ड होनेसे जगत् तरङ्ग अनेक प्रकारसे उठके उत्पत्ति होती है और समाती रहती है। तब जगत्में जीवोंको त्रयतापादि दुःख कष्ट तो बहुत हुआ, इससे घबराके घर-द्वार, स्त्री, पुत्रादि सब छोड़-छाड़के गुरुवा लोगोंके शरणमें सुख प्राप्तिके उपाय-उपदेश लेनेको भागके सो बहुतसे लोग चले गये। तो उनको वे योगी, ज्ञानी, भक्तोंने नाना साधनाओंमें लगाके ब्रह्मज्ञान दृढ़ा दिये। आखिरमें देहके भास, अध्यासादि अपने स्वभावमें ही गरगाफ हुए, चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े। यानी समुद्रके जलके स्वभावसे विपरीत सो अग्निका

उष्णत्व स्वभाव है। अग्नि, जल दोनों अपने-अपने स्वभावसे भागते हुए चलते हैं ॥ २४१ ॥

१०. भागत अनल अधिक लहराय * अपने स्वभाव वारि हुलसाय ॥ २४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

भागत अनल = दौड़ते-भागतेमें जैसे ज्यादा गर्मी बढ़ जाती है, वैसे ही गृहस्थाश्रमसे भागके भेषमें आये, यहाँ नाना कर्मोंके अहङ्कार करके गर्मीरूपी अग्नि—

अधिक = ज्यादा-ही-ज्यादा वेगसे—

लहराय = अहं अध्यासके लहरी तरङ्ग खूब जोरोंसे आने लगी, तो मद, मत्सर लहराती भई।

अपने स्वभाव = तत्त्वोंके भास, प्रकाश, देह-मनके जड़ शून्य स्वभावसे —

वारि हुलसाय = वाणीमें मिलके नाद-बिन्दुके समरसताईमें निवृत्ति पायके बड़े प्रसन्न वा खुश होते भये ॥

व्याख्या— अग्निके वेग पायके जलमें लहरी या तरङ्ग ज्यादा ही उठ आता है। पानीका पतला स्वभाव होनेसे वह लहरी वा तरङ्ग फिर उलटके पानीमें ही विलीन होके समाय जाता है। वैसे ही संसारके स्त्री, पुत्रादि गृहस्थाश्रमसे मनुष्य जब भाग करके षट्दर्शनादिके भेषमें जाके वैरागी, संन्यासी, उदासी आदि भये। तो वहाँ भेष, विद्या, कर्म-साधनाएँ आदिकी अहंकारके लहरी वा मनके तरङ्ग बहुत ही बढ़ गया। मूढ़तासे कल्पित वाणी पढ़-सुन, गुन, उपदेश करके बहुत ही प्रसन्न या खुश होते भये। और अपने स्वभाव या वृत्तिको योग या ज्ञान समाधि द्वारा शून्य या उन्मुन करके उसको ब्रह्मस्थिति प्राप्ति समझके खूब खुश हुये। यानी संसारसे भागतेमें इच्छारूप अग्नितो अधिक लहरायके बढ़ी, परन्तु, अपने मूढ़ स्वभावसे झूठी वाणी सुन-सुनके हुलसाये। परन्तु, जगत् उत्पत्तिका बीज-कारण तो उसी ब्रह्ममें छिपा है। फिर भी वृक्षाकार जगत् दुःखमें पड़ेंगे, यह पारख तो उनको हुई नहीं। अतएव गुरुवालोग महान गाफिलीमें पड़े हैं। ऐसा सत्सङ्गसे जानिये ! ॥ २४२ ॥

११. सो दुःख देखि भये जब थीर * सुख अनुमान मिटा बहु पीर ॥ २४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सो दुःख = साधक लोगोंने सो विषयादिसे होनेवाला सोई दुःख तथा साधनाओंसे होनेवाला वह दुःखोंको भी—

देखि = देखकर अनुभव कर या दुःख झेलकरके तत्पश्चात् दुःखोंसे छूटनेके लिये—

भये = खूब दृढ़तासे योग-ज्ञानादिके साधनाएँ करते भये, अभ्यास करते भये।

जब थीर = जब कि उन्होंकी वृत्ति स्थिर वा शान्त होके लय हो गई, तब तो—

सुख = बड़ा सुख वा आनन्द मालुम होने लगा। तब उसीको—

अनुमान = सच्चिदानन्द या ब्रह्मानन्दका स्वरूप प्राप्ति समझके वा अनुमान करके मगन भये। और—

बहु पीर = पहले साधनाओंके कष्ट व्याकुलता और भी बहुत-सी जो दुःख होता था, सो अब—

मिटा = उसी मानन्दीके दृढ़ होनेसे वह सब दुःख मिट गया, ऐसा समझ लिये। भ्रम धोखामें पड़ गये ॥

व्याख्या— जबकी जगत्में त्रिविधि तापादिका अनेकों दुःख जीवोंने देखे, तब बड़ा अधीर होके चञ्चल हुए। और गुरुवालोगोंके शरणमें गये तथा उन्होंने फिर नाना साधनोंका दुःख सहन करने लगा दिये उस साधनोंका दुःखको देख-देखके सहन करते गये। जब अन्तमें वृत्ति शून्य हुआ, तब सुख मालुम पड़ा। उसीको अनुमानसे ध्येय सिद्धि, ब्रह्म प्राप्ति आदि मान लिये। अब पहलेके दुःख-चिन्ता यहाँ पर मिट गया; अर्थात् सो दुःख देखके जब स्थिर भये, तब सुख अनुमान करके बहुत पीर वा दुःख मिटा, ऐसा मान लिये हैं ॥ २४३ ॥

१२. भावना मिटि रही सो समाय * बारम्बार वारि अकुलाय ॥ २४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

वारि = पानीरूपी वेदादि वाणीकी रोचक भया- नक वाक्य सुन-सुन करके पहले जो साधक लोगोंके मनमें—

बारम्बार = हर रोज क्षण-क्षणमें या पुनः-पुनः या बारम्बार यह सोचकर कि, कब परमात्मा मिलेंगे ? कब जीव-ब्रह्मकी एकता होगी ? ऐसे चिन्तन कर-करके—

अकुलाय = आकुल-व्याकुल होते थे या बहुत ही घबराहटमें पड़े थे—

सो = सो उनको वृत्तिकी स्थिरतासे आनन्द भास होनेसे, तत्पश्चात्—

समाय = उसी शून्य वृत्तिमें मनको समायके या समरस होयके तब मैं ब्रह्ममें समा गया हूँ, ऐसा मान लिये। ऐसा दृढ़ता होनेसे—

भावना = प्रथम जो ब्रह्म या आत्माकी प्राप्ति करनेकी भावना या श्रद्धा जो कुछ लगी रही, सो अब—

मिटि = उनलोगोंकी मिट गई, या नाश होगई, शान्त हो गई।

रही = परन्तु, बीज वासना अध्यास तो भीतर ज्योंके-त्यों ही बनी रही ! इससे उन्होंके मुक्ति नहीं हुई ॥

व्याख्या— वेदादि वाणी पढ़-सुनके कई लोग व्याकुल हो रहे हैं कि—कब ईश्वर मिलेंगे ? ईश्वरके दर्शन हुए बिना नरकसे छुटकारा नहीं होगा, तो कैसे परमात्मामें जाके समायें ? ऐसे ऐसे सोचके बारम्बार अकुलाते थे। उनमेंसे किसी साधककी समाधि लगी, तो शून्यमें समायके सो गाफिल हुआ। तो उसीको ब्रह्मप्राप्ति समझके पूर्वमें जो भावना हो रही थी, सो सब मिट गई। परन्तु, बीजरूपी अध्यास तो बनी रही। यह उन्होंको पारख नहीं हुई, यानी शून्यमें समाके रहे, तो वहाँ भावना मिटी और जब जाग्रत् हुए तो बारम्बार वाणी कल्पनामें पड़के अकुलाते रहते हैं ॥ २४४ ॥

१३. पानी खासा औ मलहीन ❀ सार मता सोई दृढ़ कीन ॥ २४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

पानी = पानीरूपी वेद-वेदान्त शास्त्रके वाणियोंको गुरुवालोगोंने—

मलहीन = मायामल विकारसे रहित, सच्चा शुद्ध निर्मल माने हैं।

औ = और वह वेदादि वाणी जीवोंको—

खासा = स्वच्छ शुद्ध बहुत ही अच्छा, ऐसा निर्मल परब्रह्मका बोध देती है, ऐसा माने हैं।

सोई = सोई वेद वाणीके प्रमाणसे—

सार मता = सब सारका - सार महामत ब्रह्म सिद्धान्तको सर्वोपरि मानके—

दृढ़ कीन = गुरुवालोगोंने वही दृढ़ निश्चय कर लिये और दृढ़ कर रहे हैं वा दृढ़ करा रहे हैं ॥

व्याख्या— और उन भ्रमिक गुरुवा लोगोंने पानी कहिये वेदादि वाणीको मलहीन शुद्ध खासा माने हैं। और शुद्ध ब्रह्मका बोध वेद-वेदान्तसे होता है, ऐसा कहा है। सोई कल्पित धोखारूप अद्वैत मतको सबोंका सारमत ब्रह्म सिद्धान्त सर्व श्रेष्ठ सच्चा है, ऐसा मानके दृढ़ किये हैं। वही दूसरोंको भी दृढ़ कराते हैं। अर्थात् पानीरूप कल्पित वाणीको ही खासा और मलहीन शुद्ध मानके उसी वेदादिके अद्वैतादि सिद्धान्तको सार मत वा सब मतोंका सार ठहराके कल्पनाको ही दृढ़ किये हैं ॥ २४५ ॥

१४. पूर्ण कलाके अनमिल दाव ❀ जोई सहाय सोई सो नशाव ॥ २४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

पूर्ण = चराचरमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मको सर्वाधिष्ठान जो माने हैं, सो—

कलाके = वाणी कल्पनाके कला गुरुवालोगोंका विकार भ्रम मात्र है। इससे सो—

अनमिल = जीवोंको मिलने वाला नहीं है। तथा जीवके पारख स्वरूपमें भी मिलित होनेवाला नहीं है। उससे जीवोंको मुक्ति मिलनेका आशा भी नहीं है। ऐसा वह अनमिल दाव है।

दाव = यह तो गुरुवालोगोंका जीवोंको फँसानेका दाव-पेंच प्रपञ्च ही है, उसमें लगनेसे मनुष्य जन्मका मौका या दाव बेकार चला जाता है।

जोई = जो कोईने जिन गुरुवाओंको या ईश्वरादिको, श्रेष्ठ समझ कर—

सहाय = अपना सहायता करनेवाले वा मुक्ति

दाता माने हैं।
सो = सो ऐसे अबोध भ्रमिक नरजीवोंको—
सोई = गुरुवालोग और ईश्वरादि कल्पना अध्यास सो वही—
नशाव = मनुष्यपद, मुक्ति स्थिति, पारख विचार-को हानी करके नशाय देते हैं। यानी जीवोंके कर्तव्य भ्रष्ट करके समयको बर्बाद कर देते हैं॥

व्याख्या— पूर्ण कला माना हुआ ब्रह्मके जो अद्वैत सिद्धान्त निकाले हैं, सो जीवोंको फँसानेका दाव-घात मात्र है। वह ब्रह्म, कल्पना होनेसे जीवके स्वरूपमें कुछ मिल नहीं सकता है। इससे जीवों-को कुछ कल्याण भी नहीं मिल सकता है। उस भ्रममें जो लगे, सो नर जन्मका मौका मुक्ति होनेका अवसर चूक गये। क्योंकि, जो जिसको सहायक माने हैं, सोई गुरुवा लोग तथा कल्पित परमेश्वरादि भ्रम नर जीवोंको नशाय रहे हैं। यानी नशानेवाले बने हैं। सो उसीमें जो लगे, सो मनुष्य पदसे नाश हुये वा नष्ट हो रहे हैं॥ २४६॥

१५. रक्षक भक्षक हर्ष विलाप ❀ दुतिया नहिं कछु आपै आप॥ २४७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
रक्षक भक्षक = जहाँपर गुरुवा लोगोंको मुक्ति दाता रक्षक, बन्धन और दुःखसे छुड़ायके रक्षा करनेवाले माने हैं, वहाँपर सो उल्टा नाना जालोंमें फँसाके भ्रमानेवाले कालरूपी भक्षक ही बने हैं। जीवोंको फँसा-फँसाके शोषण ही कर रहे हैं। अथवा परमात्मा-ब्रह्मपदको जो अपना रक्षक माने हैं, सो जीवोंको गाफिल करनेवाला कल्पना ज्ञानका भक्षक ही बना है।
हर्ष = और जहाँ ब्रह्मपदमें परमानन्द सुख मानके हर्षोत्फुल्ल हुए वा हर्षित होते हैं—
विलाप = सोई वहाँ जन्म-मरण, गर्भवासमें ले जानेका कारण दुःखदाई शोक विलापका घर हुआ। परन्तु, यथार्थ पारखबोध न होनेसे—
आपै आप = स्वयं जीव ही अपने मनके कल्पना-के आवरणसे आच्छादित हो करके मैं आप ही आप स्वयं अद्वैत ब्रह्म हूँ! और—
दुतिया = ब्रह्मसे भिन्न दूसरा माया प्रपञ्च जगत् द्वैत भाव—
नहिं कछु = कुछ भी नहीं है। समष्टिरूपसे सब एक ही ब्रह्म है। ऐसा कहिके मिथ्या मानन्दी किये वा कराते हैं॥

व्याख्या— अतएव संसारमें मनुष्योंने जिन-जिनको रक्षक माने हैं, सोई-सोई भक्षकरूप काल हुए हैं। जैसे कि- स्त्री, परिवार, गुरुवालोग, देवी, देवता, ईश्वर, खुदा आदिको मनुष्योंने अपना रक्षक माने हुए हैं। परन्तु, वे रक्षक हो नहीं सकते हैं, क्योंकि, ज्ञान गुण और मनुष्य पदको वे नाश कर देनेवाले होनेसे भक्षक ही बने हैं। और विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादि प्राप्तिमें मूढ़ लोग जहाँ हर्ष वा खुशी मानते हैं, वहींसे बादमें आवागमनादि दुःख भोग होके विलापका कारण बन जाता है। परन्तु, बेपारखी भ्रमिक मनुष्य लोग यह रहस्य कुछ जानते ही नहीं हैं। इसीसे वे लोग पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग कर सत्यबोध लेना छोड़ करके मिथ्या ब्रह्मवादी और विषयवादी हुए और हो रहे हैं। तहाँ वे कहते हैं कि— ब्रह्म एक ही अद्वैत पूर्ण सत्य है। दूसरा द्वैत भाग कुछ भी नहीं है; मैं स्वयं आपै-आप ब्रह्म हूँ! "सोहंब्रह्मास्मि" दिवाने होके ऐसे अण्ड-बण्ड बकने लगे, बिना पारख यह महाभूल नहीं मिटती है॥ २४७॥

साखीः— अन्ध धून्दमें पगि रहा ❀ दुखिया चहै विलास॥
[१८] बिनु शरणागत पारखी ❀ बिलटै निज उश्वास॥ २४८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे जिज्ञासु सन्तो! इस प्रकारसे सब मनुष्य भ्रमिक हो करके अन्धाधुन्दमें पड़े हैं। अर्थात्—
दुखिया = संसारके सब जीव जड़ाध्यासवश चारखानीमें त्रयताप आदि दुःख भोगके कष्ट-में पड़े हैं। वे सब मनुष्यादि प्राणीजन—
चहै = मनमें यह चाहना या इच्छा अभिलाषा

करते हैं कि—

विलास = दुःख मिटके हमको सुख विलास मिले, आनन्दका ही उपभोग करें, और स्वर्गादि सुख तथा मुक्ति प्राप्त हो जाय, ऐसे चाह बढ़ानेसे जिसने जैसा बताया, वैसे साधनाएँ करने लगे। कल्पना करने लगे। तहाँ—

अन्ध धून्दमें = जैसे अन्धे लोग मूर्खतासे धून बाँधे हुए चले गये, तो आगे खाँचमें जाके गिर पड़े। वैसे ही अन्धाधून्द कल्पनामें पड़े हुए गुरुवालोग महा अज्ञानतारूपी परमात्मा अनिर्वाच्य ब्रह्मपद मानके गर्भ खाँन्दमें गिर पड़े।

पगि रहा = और अब भी कईलोग उसी धोखारूपी ब्रह्ममें मिलके भ्रममें पड़ रहे हैं। तो उसीमें पच-पचके जन्मृतिमें पड़ रहे हैं। अब जीवों-को सुख मिले तो कैसे मिले? हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं।

पारखी = जड़, चैतन्यका न्यारा-न्यारा गुण और लक्षण परखायके सत्यबोध पारखपदको लखाने वाले पारखी साधु-गुरु मिले बिना और ऐसे सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुदेवके—

शरणागत = चरण कमलोंके शरणमें आके सत्सङ्ग बोध—

बिनु = अच्छी तरहसे हुए बिना, यह भ्रम धोखा अध्यास कदापि मिट नहीं सकता है, इसीसे सुख भी कभी पा नहीं सकते हैं। परन्तु—

निज उश्वास = निज स्वरूपका सत्यबोध न होने-से कल्पित वह परब्रह्मको ही अपना निज स्वरूप है, ऐसा उल्टा मानके उसीमें मिलने-की आशामें योगी, ज्ञानी जन भूले हुये भट-का खाये हैं। इसतरह—

बिलटै = खराब हुये, तो यहाँ साधनाओंमें नाना तरहसे दुःख पाये और चारखानी चौरासी योनियोंके गर्भवास आवागमनोंमें पड़के अनेकों दुःख पाते रहते हैं; अर्थात् पारखी सद्गुरुके शरणागत हुए बिना अपने-अपने मिथ्या मानन्दीमें पड़के खराब हो रहे हैं॥

व्याख्या— कोई मनुष्य दुःख पायके वह सुख चाहता हो, परन्तु, बिना विचारे अन्धाधून्द काम करता हो, तो वह हानिके सिवाय लाभ कैसे पायगा?। जैसे कोई अन्धोंकी टोली एक-दूसरेको पकड़-के सीधे रास्तेसे जा रहे थे, तो उन्हें देखके किसी मसखरेने टेढ़ा-रास्ता बता दिया, कहा कि, सूरदासजी इधरसे जाओ, ये रास्ता तुम्हें ठीक पड़ेगा इत्यादि; फिर वे अन्धे अपने धुन बाँधे हुए विश्वास करके उधरसे ही चले गये, आगे बड़ा-सा गड्ढा आया, रास्ता सकरा था, नेत्रोंसे न देखनेके कारण उसी गड्ढेमें धड़ामसे वे अन्धे गिर पड़े। तब रोते-कलपते वहीं दुःखमें पड़े रहे। फिर कोई दयालु मनुष्य उधरसे निकला, तो उसने उन्हें गड्ढेसे निकालके बचाया। इसमें और भी एक दृष्टान्त आया है, सो टिप्पणीमें लिखा है, वहाँसे देख लीजिये ❀। जैसे अन्धे लोग सुख चाहते हुए भी नेत्रोंके बिना,

---

❀ टिप्पणी वर्णनः—एक अन्धेका दृष्टान्तः— किसी एक बड़े भारी शहरमें एक अन्धा रहा करता था, समयान्तरमें उसे वहाँ अनेक प्रकारके दुःखोंसे बड़ा कष्ट होने लगा। तब उस अन्धेने किसी एक दूसरे मनुष्यसे पूछा कि, हे भाई! मैं इस शहरसे बाहर निकल जाना चाहता हूँ! इस कारण यहाँसे निकल जानेका मार्ग कहाँ-किधर है? सो आप मुझे बता दीजिये! तब उस आदमीने उत्तर दिया कि, सूरदासजी! इस शहरके चारों तरफ एक बड़ा ऊँचा-सा कोट यानी दिवाल लगा हुआ है। जिसमें आने-जानेका केवल एक ही द्वार या फाटक है। उस द्वारके अतिरिक्त दूसरा मार्ग इस शहरसे निकलनेका कोई भी नहीं है। इस कारण तुम उस कोटकी दीवालको पकड़ कर टटोलता हुआ चले जाओ। जब दरवाजा आ जायगा, तब उसमेंसे निकलकर बाहर चले जाना, फिर तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाना। ऐसा कहकर वह आदमी अपने रास्तासे चला गया। तब उस आदमीका ऐसा बातको सुनकर उस अन्धेने भी समीपके कोटकी दिवालको पकड़कर चलना आरम्भ किया। चलते चलते जब दरवाजा आया, तब उस अन्धेके शिरमें जो दाद थी, उसमें खुजलाहट चलने लगी, तब अन्धेने सोचाकि, अभी तो द्वार दूर ही होगा, दाद खुजा लूँ! दिवालको छोड़कर दाद खुजाने लगा और चलता भी गया, इतनेमें द्वार आया और निकल भी गया। जब दादमें आग या जलन उठी, तब अन्धेने खुजाना बन्द करके फिर हाथ लम्बा किया, तो वही कोटकी

खाँचमें गिरके दुःख ही पाते भये । वैसे ही इस साखीमें कहा है कि— दुःखिया अध्यासी पारखदृष्टि-हीन नरजीव सुख तो सब कोई चाहते हैं । परन्तु, सुख पानेका उपाय, सत्कर्म तो वेन हीं करते हैं । फिर सुख कहाँसे कैसे मिलेगा ? जो वञ्चक गुरुवा मिले, उन्होंने तो और भटकनामें डाल दिये, टेढ़े कल्पना-में लगा दिये । इससे अन्धधून्द कहिये महा अज्ञानतासे परमात्मा अनिर्वाच्य पद जो माने हैं, उसी भ्रममें मिलके जगत् खाँच और गर्भ खाँचमें ही पड़े और पड़ रहे हैं । अब कहिये उन्होंको सुख कैसे मिल सकता है ? कदापि मिल नहीं सकता है, और पारखी साधु-गुरुके शरणागत हुए बिना, सत्या-सत्यका पारखबोध हो नहीं सकता है, बोधके हुए बिना अध्यास छूटके मुक्ति हो नहीं सकती है । सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य पारखबोध प्राप्त न होनेसे ही योगी, ज्ञानी, भक्तादि सब धोखामें पड़े हैं । अतएव निज स्वरूपको न जानके कल्पना किये कि, वह परमात्मा ही मेरा निज स्वरूप है, मैं परमात्मामें जाके मिल जाऊँगा, इत्यादि ऐसी मिथ्या आशामें बन्धे हुए भ्रमिक लोग बारम्बार आवागमन चकमें पड़े हुए नाना दुःख पा रहे हैं, और दुःख पाते रहेंगे । ऐसा विवेक करके जानिये ! ॥ २४८ ॥

दिवाल हाथ आ गई, विचारा अन्धा उसीको पकड़ कर फिर चक्कर खाने लगा । शहर बहुत बड़े घेरेमें था, इससे चलते चलते अन्धेको कहीं पत्थरोंमें ठोकर लगती थी, कहीं काँटे छिद जाते थे, और कहीं खड्ढेमें गिरता था, इत्यादि अनेकों प्रकारके दुःखोंको सहता हुआ जब वह विचारा अन्धा द्वार पर आ पहुँचता था, तब-तब उसके सिरमेंकी दादमें खुजली चलती थी, वह खुजलाने लगता था, ऐसेमें ही शहरसे निकलनेका दरवाजा हाथसे मौका चूकता जाता रहता था । बस, इसी प्रकारसे वह अविचारी अन्धा फिर-फिरके घनचक्कर खाता रहा । परन्तु, उस दुःखदाई शहरसे बाहर निकलनेका अवसर या मौका उसके हाथमें नहीं आया, इतनेमें महान कष्ट सहन करता हुआ सुख चाहते हुए भी दुःख ही पाकर वह अन्धा उसी फेरामें मर गया ॥

यह तो एक दृष्टान्त हुआ । अब इसको वास्तविक सिद्धान्तमें घटाते हैं । सुनिये ! बड़ा भारी शहर सो यही संसार है । इसमें रहने वाले अन्धे पारखदृष्टिहीन अज्ञानी नर जीव हैं । जब वे आधि, व्याधि, उपाधि, तथा गर्भवास, जन्म, मरणादि अनेक प्रकारके कष्ट वा दुःखोंसे पीड़ित होने लगे, तब दुखोंसे घबराकर दुःखोंसे छुटकारा पाके सुख पानेकी अभि-लाषासे इधर-उधर भटकने लगे, इतनेमें योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवालोग राहगिर संसारके मार्गमें मिले, उनसे पूछा कि, संसारसे पार उतर कर सुख प्राप्ति होनेका मार्ग वा उपाय हे गुरुमहाराज ! कृपाकरके हमको बताइये ? इत्यादि कहे । तो गुरुवा लोगोंने उन्हें बताये कि—यह जगत्रूपी महादेश और काया नगरका राजा परमात्मा है । उन्होंने जगत्में घेरा डालके चौरासी योनियोंका दिवाल या कोट मायाका पर्दा जबरदस्त बनाया हुआ है । उसमें एक दरवाजाके जगहमें मनुष्य जन्म ही एक कर्मभूमिका बना रखा है । और यहाँपर चारवेदका कोटके घेरा है, सो तुम वेद प्रमाणसे कर्म, उपासनादिको टोते हुए साधना करके बाहर निकल जाओ, तो तुम्हें परमात्मा प्राप्ति होके मुक्त हो जाओगे । अथवा परमानन्द सुखको पाओगे, इत्यादि उपदेश देके उपाय कहते भये । तब ऐसा सुनके पारख दृष्टिहीन अन्धे मनुष्योंने कर्मादि कोटको पकड़के अन्धाधून्द जिधर-तिधर चलने लगे । और विषयादि भोगकी चाहना सोई दादके समान वह सबोंपर लगा हुआ है । सो बीच-बीचमें विषय भोगते हुये खुजलाने लग जाते हैं, कर्मादि भी करते जाते हैं, ऐसी तैसी करते-करातेमें आयु और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके बन्धनोंसे निकल जानेका मुख्य दरवाजा और औसर छूट जाता है । फिर-फिरके दैहिक, दैविक और भौतिक ताप तथा नाना कष्ट क्लेश, खानी, वाणीके ठोकरें खायके जड़ाध्यासी हो-हो करके मर-मरके गर्भवासरूपी गड्ढेमें जाके गिर पड़ते हैं । इसप्रकार दुःखिया जीव सुख विलास वा आनन्दको पाना तो चाहते हैं, परन्तु, महा अज्ञानतासे कोई विषय भोगोंमें ही आसक्त पड़े रहते हैं; और कोई अनिर्वाच्य ब्रह्मपद सत्य मानके धोखामें ही मिल रहे हैं । सत्यन्यायी, परोपकारी, परमदयालु पारखी श्रीसद्गुरुके शरणमें आये बिना सत्यासत्यका यथार्थ बोध नर जीवोंको मिल नहीं सकता है । अतएव अपने सत्स्वरूपको न जानकर अध्यास कल्पनासे और ही कुछ भ्रमको निज स्वरूप मानकर आवागमन चौरासी योनियोंमें ही पड़-पड़के दुःख पाते रहते हैं, बिना पारख ॥ इति टिप्पणी समाप्तः ॥ ❀ ॥

सम्बन्ध— यहाँसे चौकड़ी १ से २८ तक तेरहवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ त्रयोदश खण्ड ॥ १३ ॥ ❀ ॥

१. योग युक्ति जे कमल विहार ❀ कहैं प्रचार स्वर्ग अनुहार ॥ २४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! इस खण्डमें योगी लोगोंने सात चक्र, सात कमल, सात लोक, सात भोग, सात समुद्र, सात देवता इत्यादिका कल्पना करके जिसप्रकार माने हैं, सो बताके परखाते हैं । सुनिये ! :—

योग युक्ति = अष्टाङ्ग योगकी युक्ति या उपायसे—

जे = जिन योगी गुरुवा लोगोंने, जोकी कल्पना करके—

कमल = शरीरमें सात प्रकारके कमलरूप चक्र मान करके—

विहार = योग साधनाओंसे श्वासवायु ऊपर चढ़ाकर उसीमें क्रीड़ारूप विहार करते भये । फिर ध्यान उतरने पर—

कहै प्रचार = बाहर दूसरे लोगोंसे उसीका बयान महिमा बोध करते हैं, या उपदेशका प्रचार करके ऐसा कहते हैं कि—

स्वर्ग = सात स्वर्गका सुख भोगरूप आनन्द योग साधनाओंसे षट्चक्रभेदन करने वाले योगियोंको—

अनुहार = सूक्ष्म रीतिसे अनुभव द्वारा यहाँ ही साक्षात् मिल जाता है, [इससे हे मनुष्यो ! तुम लोग भी योग साधना करके उस स्वर्ग सुखको प्राप्त होओ, ऐसा कहते हैं] ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्ता इस तेरहवें खण्डमें योगी लोगोंके कल्पना आदि परखाते हैं कि — योगी लोगोंने कैसे जीवोंको भ्रमाये हैं, सो सुनिये ! जिन-जिन्होंने योग युक्तिसे साधना किये और करते हैं, सो सात चक्रोंमें सात कमल मानके श्वासके साथ वहाँ विहार किये वा करते हैं । वहाँ ही सात स्वर्गका सूक्ष्म भोग मिलता है, ऐसा बोध देके योगीलोग उपदेशका प्रचार या फैलावा करके कहते हैं, अर्थात् योग युक्तिसे जो षट्चक्रके कमलोंमें विहार किये वे उसे सूक्ष्मरूपसे स्वर्गीय सुख कहके प्रचार किये हैं, और नीचे कमल तथा लोकादिका वर्णन किया है ॥ २४९ ॥

२. कमल सहस्र दल सोई गौलोक ❀ शब्द विलास अनहदका भोग ॥ २५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सहस्र दल = हजार पत्तावाला ऐसा सहस्रदल-रूप हजारों वर्णवाला, ऐसा—

कमल = खिला हुआ एक कमलका पुष्प है—

सोई = सोई यहाँपर मस्तक या ब्रह्माण्ड स्थानमें माना है, सो वहाँ ही—

गौलोक = कृष्णजीके परमधाम सातवाँ गौलोक माने हैं । परमतत्त्व परमात्मा देवताका बासा वहाँ पर ठहराये हैं । और—

शब्द = ॐकार शब्दरूप ब्रह्मका सदैव—

विलास = उस जगहमें विलास क्रीड़ा वा आनन्द खेल होता ही रहता है ।

अनहद = सो घण्टा, शङ्ख, दुन्दुभि आदि दश नाद ध्वनि या बाजा वहाँपर बजता है, और बेहद आनन्दका ब्रह्मके सुख—

का = उसीका कायामें ही—

भोग = उपभोग या महान दिव्य भोग उस जगहमें रहता है । ध्यान, समाधि द्वारा योगीलोग ऐसे अनुभवसे उस सुखको पाते हैं, ऐसा गुरुवा लोगोंने कहा है ॥

व्याख्या— यहाँ मस्तकमें एक सहस्र दलका कमल है, ऐसा मानके वहाँपर गौलोक धाम ठहराये हैं । और ॐकाररूप शब्द ब्रह्मका विलास होनेसे अनहदरूपी दश नादका बेहद भोग वा आनन्द वहाँ होता रहता है । यानी मस्तकमें जहाँ सहस्र दलका कमल है, सोई यहाँ पर गौलोक है । वहाँ शब्द विलासके रूपमें अनहदका भोग होता है । ऐसा मानते हैं ॥ २५० ॥

३. सकल गोपिका कृष्ण विलास * अद्भुत शोभा लीला रास ॥ २५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
सकल गोपिका = सम्पूर्ण गोपिनियोंके समान उस जगहमें—पिण्डके पाँच वायु तथा धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग और देवदत्त सहित सूक्ष्म सकल इन्द्रियोंके साथमें भीतर-ही-भीतर—
कृष्ण = जैसे कृष्णजी उन गोपिनियाँ—
विलास = स्त्रियोंके साथमें भोग-विलास करते थे, वैसे ही योगी लोग भी ब्रह्माण्डमें जाके वायुके साथ आनन्द विलास करते हैं, ऐसा माने हैं। और कहते हैं कि—
अद्भुत = आश्चर्यमय अनिर्वाच्य सुख और अजब तमाशा—
शोभा = ज्योति प्रकाशकी महान शोभा—
लीलारास = रासलीलाके समान समाधिमें लवलीन होके महालीलामें योगीजन मस्त रत रहते हैं॥

व्याख्या— पुराणोंमें जैसे कहा है कि— ब्रजकी गोपिकाओंके साथमें कृष्णजीकी भोग-विलास क्रीड़ा खूब होती रही, ऐसा उनके भोग-विलास होनेका वर्णन किया है। तहाँ रासलीलाकी शोभा-रूप सुन्दरता अद्भुत वा आश्चर्यका अजब तमाशा बताया है। गपोड़शंखोंने खूब लम्बी-चौड़ी गपोड़ा हाँकनेमें कुछ बाकी नहीं रखे हैं। तैसे ही यहाँपर भी योगीलोग कृष्ण बने हैं, और सकल गोपिकाएँ सो तहाँ सूक्ष्म इन्द्रियाँ, पञ्च वायुको माने हैं। कहते हैं, समाधिमें बड़ा आनन्दका भोग-विलास होता है, उस रासलीलाका वर्णन हो नहीं सकता है, आश्चर्यमय ज्योति प्रकाशमें परमात्माकी शोभा निराली ही रहती है। यानी ब्रह्माण्डके गोलोकमें कृष्णरूप योगी सकल गोपिकारूप नस-नाड़ी वायुओंके साथमें विलास करते हैं; और तहाँकी लीला रासकी शोभा अद्भुत होती है। ज्योति प्रकाशकी शोभाको वर्णन किया जा सकता नहीं, ऐसे कल्पना किये हैं॥ २५१॥

४. सायर शुद्ध अमीके खान * योगी चहहीं सोई परवान ॥ २५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
सायर शुद्ध = शुद्ध जलके समुद्र वहाँ भरापड़ा है।
अमीके खान = सो अमृतके खानी मस्तकमें उसका कुण्ड भरा है। लम्बिका योगसे जिभ्या उलटायके उसीको योगीलोग चाखते हैं।
सोई = सोई समाधि स्थितिको—
परवान = प्रमाण करके मुक्तिपद दाता मानके—
योगी = योगीलोग साधना द्वारा—
चहहीं = उसे प्राप्त करना चाहते हैं। और अमृत पीकर तृप्त होना चाहते हैं। वैसे ही परमात्मामें मिल जाना चाहते हैं। परन्तु, अपने भ्रम, कल्पनाको वे आप ही नहीं जानते हैं॥

व्याख्या— शुद्ध जलके समान अमृतके समुद्र वहाँ ब्रह्माण्डमें भरा पड़ा है। ऐसा प्रमाण करके योगीलोग अमृतरूप लारको चाख-चाखकर पीना चाहते हैं। इसीसे कोई लम्बिका योग साधकर जिभ्याको बढ़ायके उलटायकर तालूके ऊपर लगाकर लारको ही अमृत मानके चाखते हैं, यानी ब्रह्माण्डमें शुद्ध अमृतके समुद्रकी खानी मानके योगीलोग उसे प्राप्त करके पीना चाहते हैं, यही प्रमाण किया है॥ २५२॥

५. सहस्र श्वास ताहीके भोग * कारा रङ्ग गगन संजोग ॥ २५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
सहस्र श्वास = एक हजार श्वास वायुका दिन-रातमें जाप होता है, ऐसा कहा है।
ताहीके भोग = वही सहस्र दल कमलके भीतर आनन्दका और श्वासके खर्चका भोग होता है, ऐसा माने हैं।
कारा रङ्ग = कमलका रङ्ग काला या श्यामवर्ण माने हैं।
गगन संजोग = यहाँपर आकाशतत्त्व कहा है, और भ्रमरगुफामें पिण्ड-ब्रह्माण्डके आकाशतत्त्वका मिलाप माने हैं॥

व्याख्या— तहाँके सूक्ष्म भोग एक हजार श्वास चौबीस घण्टोंमें तहाँपर चलकर सुख भोग

या जाप होता है, ऐसा माने हैं। उस जगह आकाशतत्त्वका उभयरूपसे मिलाप होनेसे कमलका काला रङ्ग दिखता है, ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना करके माने हैं। यानी एक सहस्र श्वास उसी जगहके भोग कहा है; और गगनके संयोगसे मुख्य काला रङ्ग माने हैं ॥ २५३ ॥

६. महा वैकुण्ठ दुइ दल सो ज्योत * सहस्र श्वास भोग तेहि होत ॥ २५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दुइ दल = आज्ञाचक्र त्रिकुटी स्थानमें दो दलका कमलसे "हं+क्षं" यह दो अक्षर उत्पन्न भई है, ऐसा कहके—

महा वैकुण्ठ = वहाँपर ही महा वैकुण्ठलोक माने हैं। उस लोकमें—

सो ज्योत = सो महाविष्णु देवता स्वयं ज्योति प्रकाश स्वरूपमें विराजमान रहते हैं, ऐसा कहा है।

सहस्र श्वास = और एक हजार श्वास वायुका दिन-रातमें वहाँपर जाप होता है, सोई श्वासका मुख्य करके—

भोग = उपभोग या हिसाबका नाश, खर्च या भोग-विलास होता है।

तेहि = उसी अग्निचक्र करके सदैव—

होत = वह भास होता रहता है। ऐसा गुरुवा लोगोंने कहा है ॥

व्याख्या— यहाँ महा वैकुण्ठ लोक, दो दलका कमल, आज्ञाचक्रमें कहा है। सोई स्थानमें महाविष्णु देवता ज्योतिरूपमें रहते हैं। वहाँपर एक हजार श्वास वायुका चौबीस घण्टोंमें भोग या जाप होता है, ऐसी कल्पना किये हैं ॥ २५४ ॥

७. सायर घृत तहाँ परवान * लाल वर्ण झलकारी जान ॥ २५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सायर घृत = वहाँपर घी का समुद्र यानी नाकसे बहनेवाला, पतला, गाढ़ा पोटाका कुण्ड—

तहाँ = तहाँ ही त्रिकुटी स्थानमें रहता है।

परवान = ऐसा प्रमाण किये हैं।

लाल वर्ण = फिर कमलका और तेजतत्त्वका लालरङ्ग माने हैं।

झलकारी = ज्योति प्रकाशकी झलकमात्र, दर्शन, ध्यान, समाधि द्वारा योगी लोगोंको

जान = जाननेमें या देखनेमें आता है, ऐसा माने हैं। सो उन्होंकी मनकी भावना ही मात्र है, ऐसा जानिये ॥

व्याख्या— घीके समुद्रका घेरा तहाँपर होनेका प्रमाण किये हैं। सो घी तो वहाँपर कुछ होना नहीं हैं। किन्तु, नाकसे बहनेवाला पोटा वहाँ त्रिकुटीमें रहता है। और यहाँ अग्नितत्त्व तथा कमलका रङ्ग लाल माने हैं। एवं ध्यानमें ज्योतिका झलकारी होता है। सोई परमात्माका दर्शन जानना चाहिये, ऐसा कहते हैं ॥ २५५ ॥

८. सत्त लोक दल षोड़श होय * सती शारदा बासा सोय ॥ २५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दल षोड़श = सोलह दलके कमल, विशुद्धिचक्र, कण्ठस्थानमें 'अ' से 'अः' तकके सोलह अक्षरको माने हैं। और—

सत्त लोक = वहाँपर सत्तलोक ठहराये हैं। उस लोकमें—

सती शारदा = सत्यवादिनी शारदादेवी या सती सरस्वतीका—

सोय = सोई सुख पूर्वक मगन मस्तीसे—

बासा = निवास या ठहराव सदा-सर्वदा—

होय = होता रहता है, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— सत्यलोक, षोड़श (सोलह) दलका कमल, विशुद्धिचक्र, कण्ठस्थानमें माने हैं। वहाँपर सोई सती सरस्वती देवीका बासा माने हैं ॥ २५६ ॥

९. श्वेत रङ्ग दधि सायर जान * भोग सहस्र श्वासा अनुमान ॥ २५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

श्वेत रङ्ग = जलतत्त्वका सफेद रङ्ग है, यहाँ सोई

कमलका श्वेत रङ्ग माने हैं। और—
दधि सायर=दहीका समुद्र जो माने हैं, सो यहाँपर खकार-थूक ही जमा रहता है। उसके अलावा कण्ठमें कहीं दहीका समुद्र नहीं रहता है।
जान=ऐसा जानिये!।
सहस्र श्वासा=एक हजार श्वास वायुका दिन-रातमें यहाँपर—
भोग=जाप या उपभोगकी समाप्ति होती है। गुरुवा लोगोंने—
अनुमान=ऐसा अनुमान किये हैं॥

व्याख्या— जलतत्त्व, सफेदरङ्ग, दहीका समुद्र वहाँपर होनेको जनाये हैं। परन्तु, दही तो वहाँपर नहीं है, खकार-थूक ही कण्ठमें जमा रहता है, सो जानिये! फिर एक हजार श्वासके चौबीस घण्टोंमें वहाँपर भोग होनेका अनुमानसे माने हैं, यानी ऐसी कल्पना किये हैं॥ २५७॥

१०. सोरह स्वर ऊपजै ताहि ❀ अक्षर वाणी प्रगटी जाहि॥ २५८॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सोरह स्वर=अ, आ से अं, अः तकके सोलह अक्षर यही सोलह (१६) स्वर—
ताहि=उसी कण्ठस्थानसे ही—
ऊपजै=उत्पन्न होकर प्रगट हुए हैं। उसीकी सहायतासे मात्रादि मेलका जोड़-जोड़कर उसमें—
अक्षर=चौंतीस अक्षर और मिलाकर—
जाहि=जिससे जगत्में—
वाणी=वेद-शास्त्रादिकी अनेकों वाणी जाल ग्रन्थ, पन्थादि—
प्रगटी=विस्ताररूपसे उत्पन्न हुए हैं। ऐसा वह माया-जाल ही प्रगट हुआ है॥

व्याख्या— वहीं कण्ठस्थानसे हीः— अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः— यही १६ स्वरके अक्षरोंकी उत्पत्ति होती है, ऐसा कहा है। पाँच मात्रा और बावन (५२) अक्षर मिलायके वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि अनेक वाणी कल्पना विस्तार होकर जिससे कि, संसारमें प्रगट हुई है; सो बन्धनरूप ही बनी है॥ २५८॥

११. द्वादश दल कैलाश बखान ❀ अनहद चक्र हरके अस्थान॥ २५९॥

अर्थः— श्रीरामरसहसाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
द्वादश दल=फिर बारह दलका कमल, अनाहद-चक्र हृदय स्थानमें मानकर वहाँपर, 'क' से 'ठ' तकके १२ अक्षरोंकी उत्पत्ति कहा है—
कैलाश=कैलाश लोक वहाँपर ठहराये हैं।
बखान=गुरुवा लोगोंने ऐसा वर्णन किये हैं, कि—
अनहद चक्र=हृदय स्थानपर अनहद नामके मध्य चक्रपर ही—
हरके=महादेवजीके—
अस्थान=रहनेका घर या वासस्थान है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— अर्थात् द्वादश दलके कमलसेः— क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ; यही बारह (१२) अक्षरोंकी उत्पत्ति माने हैं। अनहद चक्र, कैलाश लोकरूपी हृदय स्थानमें महेशका बासा माने हैं॥ २५९॥

१२. मदिरा मस्त करै अचेत ❀ भोग सहस्र छौ रङ्ग है श्वेत॥ २६०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
मदिरा=सुरासमुद्र पित्तकी घड़ियोंमें कहा है। कोई बाहर मदिरा पीके उन्मत्त गाफिल होते हैं।
अचेत=योगीलोग शून्य वृत्तिमें अचेत होके बेभान होकर तहाँ—
मस्त करै=मस्तामस्ती करते हैं या उसी नशामें उन्मत्त होते हैं।
सहस्र छौ=छः हजार श्वासवायुका दिन-रातमें यहाँपर—
भोग=भोग या जाप होता है, ऐसा माने हैं।
रङ्ग है श्वेत=उस बारह (१२) दल कमलका रङ्ग जो है, सो शुद्ध सफेद रङ्गका है। सो ध्यानमें दिखता है, ऐसा कहते हैं॥

व्याख्या— मदिरा समुद्र, सो यहाँ पित्त है। पित्त ब्रह्माण्डमें छा जानेपर योगी लोगोंको मस्त कर देता है, तो वे अचेत हो जाते हैं। बाहर कोई शराब पीकर वाममार्गीलोग अचेत होते हैं। कोई मत-पन्थके अहङ्कारमें अचेत हो रहे हैं। वहाँ चौबीस घण्टोंमें छः हजार श्वासका भोग माने हैं। तथा कमलका रङ्ग शुद्ध सफेद दिखता है, ऐसा माने हैं ॥ २६० ॥

१३. दश दल विष्णु लोक परवान ❀ क्षीर समुद्र हरिके परधान ॥२६१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

दश दल=दशदलका कमल, मणिपुर चक्रसे 'ड से फ' तकके दश अक्षर प्रगटे, सो नाभि स्थानमें माने हैं।

विष्णु लोक=और तहाँपर विष्णुका लोक या रहनेका घर मानके—

परवान=योगी लोगोंने सोई बात प्रमाण किये हैं। तथा—

क्षीर समुद्र=दूधका समुद्र वहाँपर भरा पड़ा है, ऐसा कहते हैं; सो पुरुषोंके स्तनोंसे तो दूध नहीं आता है, स्त्रियोंके स्तनोंमेंसे दूध आता है।

परधान=प्रधान या मुख्य करके दशदल कमल-रूप नाभि स्थानमें ही—

हरिके=विष्णुके सोने या आराम करनेकी जगह ठहराये हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् मणिपुर चक्र, नाभिस्थानमें दशदलका कमल माने हैं। सोई ड। ढ। ण। त। थ। द। ध। न। प। फ। यह दश (१०) अक्षरोंको दशदलसे उत्पत्ति हुआ कहा है। और विष्णुलोक वहाँपर ही प्रमाण किये हैं। तथा दूधसे लबालब भरा हुआ समुद्र नाभिमें कहा है। यानी कण्ठसे नाभि तक नाड़ियाँ बढ़के गर्भवती स्त्रियोंके प्रसव होनेपर स्तन या कुचोंमेंसे दूध पैदा होता है। उसीको क्षीर समुद्र माने हैं। विष्णु देवता प्रधानरूपसे यहीं आरामसे सोते रहते हैं; ऐसा माने हैं ॥२६१॥

१४. श्याम वर्ण षट सहस्र विलास ❀ प्रगट कहै सो विष्णु निवास ॥ २६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

श्याम वर्ण=उस कमलका रङ्ग ध्यानमें श्याम वा काला दिखता है, ऐसा कहा है।

षट सहस्र=वहाँपर दिन-रातमें छः हजार श्वास वायुका खर्च या जाप होनेका—

विलास=भोग-विलास होता है, ऐसा माने हैं।

प्रगट कहै=प्रगट करके गुरुवालोग यह कहते हैं कि, दशअक्षरें और काया तथा जगत्की उत्पत्ति यहींसे होती है। और—

सो=सो वह नाभि स्थानके कमलमें ही—

विष्णु=विष्णु देवताका सदैव—

निवास=उपस्थिति या विराजमान होके मौजूद रहते हैं, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— दशदल कमलका श्याम रङ्ग है, छः हजार श्वासका चौबीस घण्टोंमें भोग या जाप होना, दश अक्षरादिकी उत्पत्ति विष्णु देवताके निवासमेंसे होता है। ऐसा गुरुवालोग कल्पना-को प्रगट करके कहते हैं ॥ २६२ ॥

१५. षट दल ब्रह्म लोक परचार ❀ बासा अजके करहिं विचार ॥ २६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

षट दल=छैः दलका कमल, स्वाधिष्ठान चक्रसे 'ब से ल' तककी छैः अक्षरें उपजीं। सो पेड़ू स्थानमें माने हैं। और वहाँपर—

ब्रह्मलोक=ब्रह्माका लोक या देश मानके बहुत सुख ठहराये हैं।

परचार=गुरुवालोग सोई कल्पित बात जगत्में फैलाके प्रचार किये वा कर रहे हैं। यानी षटदलमें ब्रह्मलोक होनेका प्रचार किये हैं।

अजके=चतुर्मुखी बूढ़े ब्रह्माजीके उस ठिकानेमें

बासा=बास, स्थान, निवास या मौजूदगी सदा रहती है।

विचार=ऐसा कल्पनाका विचार—

करहिं=योगीजन करते हैं ॥

व्याख्या— तैसे ही स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिसे छः अंगुल नीचे पेड़ू स्थानमें छै दलका कमलसे छः अक्षरः— ब। भ। म। य। र। ल। की उत्पत्ति माने हैं। वहाँपर ब्रह्मलोक है, ऐसा प्रचार किये

हैं। उस लोकमें ब्रह्माके बासा होनेका विचार किये और कर रहे हैं ॥ २६३ ॥

१६. मीठा सायर भोग विलास * षट सहस्र श्वासा परकाश ॥ २६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मीठा सायर = स्वादिष्ट मीठा पानीसे भरा हुआ समुद्रका घेरा—

भोग = जो है, सो वहाँपर स्त्री-पुरुषोंका मैथुन सम्भोगकी—

विलास = क्रीड़ासे आनन्द-विलास होनेको ही माने हैं।

श्वासा = दिन-रातमें श्वास वायुका खर्च वहाँपर—

षट सहस्र = छः हजार गिनतीसे जाप या भोगके रूपमें होता है।

परकाश = ऐसा गुरुवालोगोंने कल्पनासे वाणीका प्रकाश किये हैं ॥

व्याख्या— फिर मीठा समुद्र वहाँपर माने हैं। सो स्त्री-सम्भोगका आनन्द-विलासको ही ठहराये हैं। छः हजार श्वासका चौबीस घण्टोंमें भोग या व्यय होनेका अन्दाज वाणी कल्पना गुरुवा लोगोंने प्रकाश किये हैं ॥ २६४ ॥

१७. पीत वर्ण भू पृथिवी जान * सो तहाँ प्रजापति अनुमान ॥ २६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पीत वर्ण = उस जगहके कमलका रङ्ग पीला माने हैं। ऐसा ही ध्यानमें दिखता है, कहा है।

भू = भूमिका या तत्त्व वहाँपर—

पृथिवी = मोटा भाग पृथ्वी तत्त्वको माने हैं।

जान = यह सब कल्पनाका कथन ही जानिये।

सो तहाँ = सो तहाँ पेड़ स्थानके चक्र पर रहनेवाले देवता मुख्य—

प्रजापति = प्रजाके मालिक होनेसे प्रजापति नामके ही देवता कहा है।

अनुमान = गुरुवा लोगोंने ऐसे-ऐसे मिथ्या अनुमानका पसारा किये हैं। उसीमें अबोध मनुष्य भूल रहे हैं ॥

व्याख्या— वहाँ भूमिका पृथ्वी तत्त्व है, कमलका रङ्ग पीला है, सो तहाँपर प्रजापति देवताका निवास है। ऐसा गुरुवा लोगोंने अनुमान करके नरजीवोंको दृढ़ाकर भ्रमा रहे हैं, ऐसा जानिये ! ॥ २६५ ॥

१८. देवलोक है दल सो चार * गणनायक शूर मूल द्वार ॥ २६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दल सो चार = चार दलका कमलसे सोई चार अक्षरः— व । श । ष । स । उत्पन्न हुआ। मूलाधार चक्र, गुदास्थानमें माना है। वहाँपर—

देवलोक है = देवलोक-देवताओंका देश है, ऐसा माने हैं। तथा—

शूर = देवताओंके सेनामें शूर, वीर, बलवान् ऐसे—

गणनायक = सैनिक गणोंके मालिक, सेनापति गणेशजी देवता वहाँपर—

मूल द्वार = गुदाद्वारमें रहते हैं, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् मूलाधार चक्र, गुदास्थानमें चारदलका कमलसे चार अक्षरः— व । श । ष । स । की उत्पत्ति हुई, और तहाँ देवलोक माने हैं। देवताओंके सेनापति गणनायक शूर ऐसे गणेशजीको गुदा द्वारमें रहनेवाले देवता माने हैं ॥ २६६ ॥

१९. मूत्र सायर लोन सो जान * छौ सै श्वासा लाल पहिचान ॥ २६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सायर लोन = क्षार 'खारा' या नमकीन समुद्र वहाँपर बाहर माने हैं। वैसे ही—

सो = सो यहाँ पर—

मूत्र = लिङ्गसे निकलनेवाला मूत्र वा लघुशङ्का या पेशावको ही—

जान = लोन समुद्रके जगहमें जानिये। और—

छौ सै श्वासा = दिन-रातमें छौ सै श्व स वायुका व्यय, जाप या भोग वहाँपर होता है, ऐसा माने हैं।

लाल = चार दल कमलका रङ्ग लाल माने हैं।

पहिचान = यह सब गुरुवा लोगोंकी कल्पना ही है, ऐसे सत्सङ्गसे पहिचान लीजिये ! अर्थात् यहाँ मूत्रको ही लोण समुद्र जानना।

लाल रङ्ग और छौ सै श्वासका भोग | पहिचानना कहा है ॥

व्याख्या— वहाँ खारा लोण समुद्रको जो माने हैं, सो मूत्रको ही जानिये। छः सै श्वासका चोवीस घण्टोंमें भोग तथा लाल रङ्ग माने हैं। सो कल्पना ही है, ऐसा पहिचानिये ॥ २६७ ॥

२०. छियानवे कोटि श्वासाके भोग * सो प्रतिबन्ध मनुष्य उतयोग ॥ २६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

छियानवे कोटि=और गिनतीके हिसाबसे जब पूरा छियानवे करोड़ दफे—

श्वासाके भोग=श्वासरूप प्राणवायुके श्वासोच्छ्वास वेग चले वा इतना खर्च होवे, तब मनुष्यकी पूर्ण आयु १२०½ वर्ष, वा १२३½ वर्षकी पूर्ण होती है।

सो=सो वह हिसाबकी गिनती करके—

प्रतिबन्ध=फिर छियानवे करोड़ श्वास भोगके बाद रुकावट घेरा या हद्द होना, सो प्रतिबन्ध है।

मनुष्य=योगी मनुष्योंने सब मनुष्योंकी—

उतयोग=पूर्ण आयु या उमरका प्रमाण योग साधनोंके विचार संयोग द्वारा कल्पनासे उत्पन्न किये हैं। और आयु पूर्ण न होनेसे फिर बार-बार उत्पत्ति होनेको माने हैं। यानी सो मनुष्योंसे उत्पन्न किया हुआ कल्पनाका प्रतिबन्ध है, ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— योगी लोगोंने मनुष्योंकी पूर्ण आयुका हिसाब करके कुल जोड़ छियानवे करोड़ (९६००००००) श्वासोंका भोग व्यय होनेपर मृत्यु होती है, ऐसा माने हैं। सो उस हिसाबमें रुकावट होनेसे मनुष्य अपूर्ण आयुमें ही मरते हैं; तो फिर-फिर भी जन्मते रहते हैं। सो उसमें रुकावट न होनेपर पूर्ण आयु होती है। योग साधना करनेसे पूर्ण आयु प्राप्त होती है, ऐसा माने हैं ॥ २६८ ॥

२१. सहस्र एकईस छौ सै दिन-रात * पल षट् श्वासा गिनति गिनात ॥ २६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गिनति गिनात=उस गिनतीके प्रमाण या हिसाब इस प्रकार गिनाते हैं कि, अच्छी प्रकृतिके स्वस्थ मनुष्यकी—

पल=एक बार नेत्रोंकी पलकें या निमिष गिरती हैं, उतनी देरमें ही—

षट् श्वासा=छै दफे श्वास वायु भीतर-बाहर आती-जाती हैं, ऐसे छै श्वास होती हैं।

दिन-रात=उसी हिसाबके जोड़से चौबीस घण्टोंके दिन और रात भरमें—

सहस्र एकईस छौ सै=एकईस हजार छः सौ श्वास-उच्छ्वासको भोगके व्यय या जाप होता है, ऐसा अनुमानसे माना गया है ॥

व्याख्या— यह टोटल लगानेका प्रमाण या तरीका ऐसा बतलाया गया है कि— तन्दुरुस्त वा स्वस्थ मनुष्यकी एकबार नेत्रकी पलकें गिरती हैं; उतनी समयमें छैः दफे श्वास भीतर-बाहर आती-जाती चलती रहती हैं। वह एक पलमें षट्श्वासके हिसाबसे एक मिनटमें १५ श्वास चलती हैं, और एक घण्टामें ९०० श्वास चलीं। दो घण्टोंमें १८०० श्वास चलीं। छै घण्टोंमें ५४०० चलीं बारह घण्टोंमें १०८०० चलीं। और रात-दिनमें २४ घण्टा मिलाकर उसमें (२१६००) एकईस हजार छः सौ श्वासकी गति चलकर खर्च होनेको माने हैं। इसी हिसाबसे पन्द्रह दिन-रातका एक पक्ष। तीस दिन-रातका एक महीना। ३६० दिन-रातका एक वर्ष जोड़कर बढ़ाते-बढ़ाते ले जानेसे (९६००००००) छियान्नवे करोड़ श्वास चलके पूर्ण आयु होनेमें १२३ वर्ष। ५ महीना। १४ दिन। १० घण्टे। ४० मिनट जोड़नेमें कुल आते हैं। कोई १२०½ वर्षकी उमरको ही पूर्ण आयु मानते हैं। इस प्रकारसे यह सारी बातें कल्पना करके ही माने हैं। सो पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें सत्यन्यायसे परख करके भ्रम कल्पना छोड़ना चाहिये ॥ २६९ ॥

२२. पुनि स्थिति नहीं जीयरे होय * मृत्यु अकाल बतावैं सोय ॥ २७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

जीयरे=योगी-भोगी आदि नरजीवोंको विषय भोग और योग समाधि साधनादि करनेपर भी जब कि, निज स्वरूपकी—

स्थिति = स्थिति-ठहराव या ऊपर लिखी हुई आयुका पूर्ण भोग भी—
नहीं = जब हुआ नहीं। तब—
पुनि = फिर कल्पना करके कहते हैं कि—
होय = उन्होंकी दुर्गति हुयी या होगी। क्योंकि, समाधिमें पूर्ण स्थिति न होनेसे उलटकर चौरासी-योनियोंका भोग होता है; और बताते हैं कि—
मृत्यु अकाल = योग साधनोंमें कोई चूक होनेसे गाफिलीमें श्वास टूटकर देह छूट जानेको, अथवा अचानक थोड़ी उमरमें ही ऊपर लिखे हुए आयुका पूर्ण भोग हुए विना मरजानेको 'अकालमृत्यु' के नामसे प्रसिद्ध करके कहा है।
सोय = सोई भ्रमिक गुरुवालोग कल्पना करके-
बतावैं = ऐसा बताते हुए वर्णन करते हैं कि, उस अकाल मृत्युवाले जीव सब बाकी आयु लेके प्रेतादि योनियोंमें जाके दुःख भोग भोगते रहते हैं॥

व्याख्या— अर्थात् फिर नरजीवोंको पारखी सद्गुरुका सत्यबोध सत्सङ्ग न मिलनेसे स्वरूपकी स्थिति तो नहीं होती है। जब जीवोंको स्थिति नहीं हुई, तब भ्रम-चक्रमें ही पड़ जाते हैं। अथवा, फिर गुरुवालोग क्या कहते हैं कि— योग साधनोंमें चूक होके शरीर छूटनेसे उसकी अकाल मृत्यु हुई वा होती है। तथा भौतिक और दैविक तापोंमेंसे शरीर जिन्होंका छूटा, उसको भी अकाल मृत्यु हुई बताते हैं; अथवा छियानवे कोटि श्वासाके भोग पूर्ण होनेमें बाकी रही आयु अपूर्ण हुई, फिर जब जीवोंकी स्थिति नहीं हुई, तब बीचमें मर गये, तो उसे अकाल मृत्यु हुई, ऐसा बतलाते हैं॥ २७०॥

२३. प्रेत योनी भुगतावै भोग ❀ सो योनि अस कहै संजोग॥ २७१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
प्रेत योनी = भूत, प्रेत आदि सूक्ष्म देहधारी योनियोंमें जाय-जायके फिर वे—
भोग = अपना पाप-पुण्यका भोग—
भुगतावै = भोग लेते हैं; नाना तरहसे कष्ट सहनकर आयु पूर्ण करलेते हैं। ऐसा मिथ्या कल्पना किये हैं।
सो योनि = सो कल्पित प्रेत योनिका हाल वर्णन करके—
अस कहै = गुरुवालोग ऐसा कहते हैं कि—
संजोग = अकाल मृत्यु होनेपर उसका संयोग बिगड़ जाता है। पाप कर्मका सम्बन्ध होनेसे स्थूल शरीर छूट जानेपर उस जीवको प्रेतयोनिमें जाके बाकी आयु भोगना पड़ता है; इत्यादि भ्रमकी बात कहते हैं॥

व्याख्या— फिर वे बाकी आयुका दुःख भोग प्रेत-योनिमें जाके भोग लेते हैं। सो प्रेत-योनिका संयोग वियोगका भेद ऐसे बतलाते हैं; अर्थात् अकाल मृत्यु होनेपर जीव प्रेत-योनिमें जाके कर्म भुगतते रहते हैं। सो प्रेत-योनिका संयोग और ऐसा कहा है कि— (नीचेके चौपाईमें बताया गया है)॥ २७१॥

२४. सूक्ष्म शरीर श्वासाके साथ ❀ वाको भोग भुगतावै नाथ॥ २७२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
सूक्ष्म शरीर = अन्तःकरण चतुष्टय तथा विषय पञ्चक संयुक्त नौ तत्त्वका सूक्ष्म बीजरूप शरीर ही—
श्वासाके साथ = सूक्ष्म प्राणरूप श्वास वायुके साथमें पाँच तत्त्व, तीन गुणकी अष्टधा प्रकृति वायुरूप ही उसका अदृश्य शरीर रहता है।
वाको = उस प्रेतको या प्रेतकी कल्पना करनेवाले नरजीवोंको—
भोग = नानाप्रकारके दुःख, कष्ट या यम-यातनाका भोग अनन्त पीड़ाएँ स्वयं तो वे जीव भोगना नहीं चाहते हैं, परन्तु—
नाथ = सबके मालिक नाथ, एक परमेश्वर या यमराज अपने यम पासमें बैलोंको नाथनेके सरीखा जीवोंको नाथकर या बाँधकर दण्ड

भोगा देते हैं। ऐसावाणीमें नथे गये या धोखामें फँसे हुए गुरुवालोग झूठ-मूठकी रोचक भयानक वाणी बता-बताकर जीवोंको-

भुगतावै=नाना साधनोंका कष्ट, और अन्तमें चौरासी-योनियोंका दुःख भुगताते हैं॥

व्याख्या— श्वास वायुके साथमें सूक्ष्म पाँच तत्त्व, तीन गुणकी पूर्वष्टकरूपी वायुरूप शरीर धारण करके नौ तत्त्व संयुक्त सूक्ष्म देह लेकर प्रेत बने हुए जीव जहाँ-तहाँ घूमते रहते हैं। सूक्ष्मसे कभी स्थूल शरीर भी धारण करके वे प्रगट होकर फिर अदृश्य भी हो जाते हैं। पाप भोगका दुःख वे अपनी खुशीसे तो भोगना ही नहीं चाहते हैं। परन्तु, यमराज या परमेश्वर उन्होंको पकड़-पकड़ करके जबरदस्ती नाना कष्ट भोग, भोगा देते हैं। नरक कुण्डमें डाल देते हैं; इत्यादि कल्पित वाणीका डर बताके वाणीमें नथे हुए बैलके समान भ्रम बोझा को लादे हुए गुरुवालोग ही नाना साधनोंका कष्ट अपने भोगते हैं; और अन्य नरजीवोंको भी वही कल्पित वाणीमें नाथ-नाथके कष्ट-क्लेश भुगाते हैं। फिर, 'प्रेत' कहिये शरीर छूटनेके बाद अध्यासवश चार खानियोंमें जायके नाना दुःख भोगते-भोगाते रहते हैं; विना पारख। अर्थात् तब सूक्ष्म शरीर श्वासाके साथमें रहता है। उस जीवको परमेश्वर नाथ-नाथके भोग भुगाता रहता है; ऐसा कल्पना करके कहा है॥ २७२॥

२५. हाथ अतल है हरिके भेव ❀ छाति वितल ब्रह्मा सो देव॥ २७३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अब सात पाताल शरीरमें जो माना है, सो उसकी जगह, तथा देवतादिका वर्णन करके यहाँ दर्शाते हैं; सुनिये!:—

अतल=अतल नामके नीचेके एक लोक—
है=जो है, सो यहाँपर—
हाथ=देहमें हाथोंके ठिकानेमें माने हैं।
हरिके=वहाँपर विष्णु देवताका बासा कहा है।
भेव=यहाँ इसका मर्म या भाव वा भेद यही है।
वितल=वितल नामके दूसरा अर्धलोक यहाँपर
छाति=देहमें छाती या हृदय स्थानमें ठहराकर
तहाँपर—
देव=निवासी देवता—
ब्रह्मा सो=सोई रजोगुणी ब्रह्माको माने हैं॥

व्याख्या— गुरुवा लोगोंने शरीरमें सात पाताल कैसे माने हैं, सो सुनिये! हाथोंमें अतल लोक विष्णुका बासा कहा है। छातीमें वितल लोक है, सो वहाँके देवता ब्रह्माको माने हैं, सो उसका यही भेद है॥ २७३॥

२६. तल सो पीठ शम्भु सहिदान ❀ पेट सुतल सावित्री स्थान॥ २७४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

तल=तल (महातल) नामके तीसरा अर्धलोक
यहाँपर—
सो=सोई देहमें—
पीठ=छातीके पीछे तरफके भाग पीठपर
ठहराकर—
शम्भु=महादेव देवता वहाँ सदा रहते हैं ऐसा
माने हैं।
सहिदान=सोई इसकी पहिचानी या निशानी
है, अथवा यही सहिदानी कहा है।
सुतल=और सुतल नामके चौथा अर्धलोक
यहाँपर—
पेट=देहमें पेटकी जगहमें माने हैं।
सावित्री=सावित्री या सरस्वती देवीका—
स्थान=वासस्थान मुख्यतया उदरमें ठहराये
हैं। अर्थात् सावित्रीका स्थान सुतल लोक
यहाँ पेटकी जगहमें कहा है॥

व्याख्या— पीठमें तललोक है, सो वहाँ शम्भुकी सहिदानी वा निशानी कहागया है। पेटमें सुतललोक सावित्री देवीका स्थान माने हैं॥ २७४॥

२७. शङ्कर पूत सो रहै पताल ❀ तलातल लक्ष्मी पद प्रतिपाल॥ २७५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

पताल=पाताल नामके सबसे नीचेकी लोक
देहमें गुदा स्थानमें ठहरा कर—
सो रहै=सो उस जगहमें रहनेवाला देवता

शङ्कर पूत = महादेवके पुत्र गणेशजीको माने हैं। तैसे ही—

तलातल = तलातल नामके अधोलोक —

पद = देहमें पाँव (पैर) की जगहमें माने हैं।

प्रतिपाल = देहको पालन-पोषण या रक्षण करने वाली देवी (देवता) वहाँपर—

लक्ष्मी = लक्ष्मी देवीको ठहराये हैं ॥

व्याख्या— शङ्करका पुत्र गणेश, सो तो पातालरूप गुदा स्थानमें रहता है। तलातल लोक पैरमें है, जहाँपर लक्ष्मी देवी रहिके देहका प्रतिपालन करती है, ऐसा कहा है ॥ २७५ ॥

२८. रसातल पेड़ू आद्या रूप ❀ कहुँ लिङ्ग कहुँ भग चक्र अनूप ॥ २७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

रसातल = जहाँसे पानीका रस बाहर निकला ही करता है, ऐसे नीचेका रसातल नामका लोक देहमें—

पेड़ू = नाभिके छः अङ्गुल नीचे पेड़ू या भग-लिङ्ग-की जगहमें माने हैं।

आद्या रूप = आदिमाया जगज्जननी माया शक्ति-रूपिणी देवीको वहाँपर रहनेवाली देवता माने हैं।

कहुँ = और कहींपर तो किसीने—

लिङ्ग = लिङ्ग स्वरूपी महादेवको या सूक्ष्म कर्त्ता ब्रह्मको लिङ्गरूपमें ही ठहराये हैं।

कहुँ = और, कहींपर तो किसीने दूसरा ही—

भग चक्र = भग (योनि) चक्र धारिणी भगवती महामायाके भगको ही षट् ऐश्वर्य संयुक्त संसार चक्रको चलानेवाली—

अनूप = उपमासे रहित माने हुए हैं। इसतरह-से कहीं लिङ्गको, कहीं भगको ही अनूपचक्र ठहराये हुए हैं ॥

व्याख्या— रसातल पेड़ू स्थानमें आद्यारूपिणी आदिमाया भगवती स्वयं रहती है, ऐसा कहा है। और कहींपर तो लिङ्गको ही लिंगेश्वर महादेव, ब्रह्म, सूक्ष्मरूपसे सृष्टिका कारण वा कर्त्तादि माने हैं। तथा, कहींपर तो भगचक्रको ही भगवती जगत्-माता, सृष्टि पैदा करके चक्रके समान घुमानेवाली उपमासे रहित मोहके मूल ऐसे-ऐसे कल्पना करके माने हैं। इस तरहसे प्रतिपादन करके सब भग-भोगोंमें ही भूले पड़े हैं, बिना विचार ॥ २७६ ॥

साखीः— चिह्न चक्र नर नारीके ❀ चिदाभास विलास ॥
[१९] उपजै अनबनी मोहमें ❀ खानी कलेश निवास ॥ २७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

नर = पुरुष या कोई कल्पित परम-पुरुष परमात्माके, तथा—

नारीके = स्त्रीके या प्रकृतिरूप आदिमायाके भिन्न-भिन्न —

चिह्न = लक्षण, पहिचान, आकार-प्रकारके चिह्न भीतर-बाहरमें देखके—

चक्र = कोईने षट् या सात चक्रोंमें ही देवी, देवता स्वर्गादि कल्पनाका वाणी चक्र बनाये हैं, और कोई तो भग-लिङ्गके ही घन-चक्र देखके मोहित भये हैं।

चिदाभास = ऐसे चैतन्य जीव देहधारी नर-नारियोंने एक-दूसरोंके स्थूल शरीरको ही देख-देखके भोगमें आसक्त भये; अथवा प्रकाशरूप समान व्यापक चैतन्य परमात्मा-का भास ग्रहण करके उसी चिदाभासकी मानन्दी किये तो —

विलास = कोई षट्चक्र भेदन क्रियासे समाधि आदि सुखमें विलास करने लगे। और कोई भग-भोग स्त्री सङ्गादिमें आनन्द, क्रीड़ा विलासमें सलग्न हुए। ऐसे दोनों प्रकारसे जड़ाध्यासी हो-हो कर—

अनबनी = जिससे जीवोंका कल्याण न बननेवाला, ऐसे अनेक तरहके वाणी जाल तथा खानी जालोंके—

मोहमें = स्त्री-पुत्रादिके माया-मोहमें वा ईश्वरादिके मोह-ममतामें आसक्त, गाफल हुए, ऐसे जीव सब अध्यासवश—

ऊपजै = चौरासी-योनियोंमें अनेक देह धारण करके जन्मते-मरते फिर-फिर जन्म लेते रहते हैं।

खानी = अण्डज, उष्मजादि चारखानियोंमें अनेक तरहोंके मोटी-झीनी देहें धारण करके—

कलेश = जन्म, मरण, गर्भवास तथा दैहिक, दैविक, भौतिकादि नाना कष्ट-क्लेश, दुःख भोगते हुए वहीं पञ्चक्लेशसे आच्छादित होके-

निवास = नरक कुण्डरूप गर्भवासमें ही रचे-पचे रहते हैं। विना पारख वहाँसे छुटकारा नहीं होती है॥

व्याख्या— संसारमें स्त्री और पुरुषोंकी पहिचान भग-चक्र और लिङ्ग-चक्रके चिह्न देख करके ही हुई या होती है। सो चैतन्य नरजीव अपने स्वरूपको भूलके नर-नारी देहोंके आकार-प्रकार देखके विषयाध्यासको बढ़ायके मोहित, आसक्त भये, तो भोग-विलासमें लगके विषयानन्दमें उन्मत्त हुये। जिस स्त्री-पुत्रादिके मोहमें पड़े हैं, सो उससे तो जीवोंका हित, मुक्ति बनाव कुछ भी होनेका नहीं। इसलिये जड़ाध्यासी जीव बार-बार जन्म-मृत्युमें पड़के चारखानियोंमें नाना दुःख, कष्ट-क्लेश भोगते हुए वहीं चौरासी-योनियोंमें ही पड़े रहते हैं। वैसे ही बाणी भागमें देहमेंके सात चक्रकी गड्ढा, सोई नारीरूप माया-प्रकृतिके भगका चिह्न है। तथा लिङ्गाकार श्वासवायु, सोई पुरुषका चिह्न माने हैं। और षट् चक्र भेदनसे श्वास वायुको ब्रह्माण्डमें चढ़ायके आनन्दका भोग-विलास योगी, ज्ञानियोंने किये, तो वहाँ चैतन्य ब्रह्म समान व्यापक प्रकाशरूपसे है, ऐसा भास दृढ़ किये, सोई 'चिदाभास' माना है। तदनन्तर अनेक प्रकारके वाणीजाल वेद-शास्त्रादि बनाये, उससे कल्याण बननेवाला तो है नहीं, परन्तु, कल्पित वाणी पढ़-सुन करके उसीके मिथ्या मोहमें बद्ध हुए हैं। इस प्रकारसे व्यापक ब्रह्म बने हुए अध्यासी जीव सब भी चारखानी चौरासी-योनियोंमें अनेक देहें धारण करके नाना कष्ट-क्लेश भोगते हुए आवागमनमें ही पड़े रहते हैं। यानी नर-नारीके भग-लिङ्ग चक्र देखके चिदाभासके विलासमें भूले, तो अनेकों मोह उपजे। अतः खानी क्लेशमें जीव निवास किये वा कर रहे हैं। अतएव जिज्ञासु मनुष्योंको चाहिये कि, उक्त खानी और बाणीके अध्यास पारखी श्रीसद्गुरु-के सत्सङ्ग द्वारा परख करके सत्यबोधको धारण करके छोड़ देना चाहिये। तभी नर-जन्म सफल होगा, सो जानिये!॥ २७७॥

सम्बन्ध— यहाँसें चौकड़ी १ से ११ तक चौदहवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ चतुर्दश खण्ड ॥ १४ ॥ ❀ ॥

१. चारि देव रेखा सो चार * चारि देहका करहिं विचार ॥ २७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! इस खण्डमें माया-प्रकृतिके चार-चार अङ्गोंके भेद वर्णन करके दरशाते हैं, सुनिये!:—

चारि देव = बाहर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और परमेश्वरी-आदिमाया समेत् चार देवता मुख्य माने हैं।

रेखा सो चार = सो उन्हींके ही पिण्ड-ब्रह्माण्डमें रेखा या चिह्नरूप मात्रा— अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा (इकार), ये चार मात्राको माने हैं।

चारि देहका = स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महा-कारण, ये चार देहोंको अलग-अलग मानके—

करहिं विचार = सो उन्हीं चार देवताओंके रहने-का घर उत्पन्न भया है, उसीमें वे रहते हैं। ऐसा कल्पनासे विचार करते हैं॥

व्याख्या— अब माया-प्रकृतिके बाकी रहे हुए चार-चार अङ्गोंका वर्णन करते हैं। तहाँपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ईश्वर (माया), ये चार प्रधान देवता माने हैं। तथा अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा, ये चार रेखा या मात्रा माने हैं। वैसे ही चार देहोंका भी विचार नीचेकी चौकड़ीमें अलग-अलग किया है॥ २७८॥

२. महाकारण कारण औ थूल * पिण्ड विराजै सो स्थूल ॥ २७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

महाकारण = उसका खुलासा यह है कि— ईश्वरी-मायाका निवासस्थान महाकारण देहमें कहा है।

कारण = शङ्करका निवास कारण देहमें होता है।
औ = और—
थूल = विष्णुका निवास सूक्ष्म देहमें माना है।
स्थूल = स्थूल देहमें ब्रह्माका निवास रहता है, ऐसा कहा है।
सो = और सोई देवतागण—
पिण्ड = पिण्ड-ब्रह्माण्डमें भीतर-बाहर—
विराजै = अपने-अपने सूक्ष्म अंशसे सदोदित विराजमान रहते हैं, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— महाकारण, कारण, सूक्ष्म और स्थूल, ये चार देहोंमें पिण्ड बाँधकर, स्थिति बनाकर चार देवता विराजमान रहते हैं, ऐसा कल्पना करके माने हैं ॥ २७९ ॥

३. तुर्या सुषुप्ति स्वप्न विलास ❀ चौथी अवस्था जागृति भास ॥ २८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
तुर्या = चौथी तुरिया अवस्थामें ईश्वरकी स्थिति कहा है।
सुषुप्ति = तीसरी सुषुप्ति अवस्थामें महेशकी स्थिति माना है।
स्वप्न = दूसरी स्वप्न अवस्थामें विष्णुकी स्थिति कहा है।
विलास = उन तीनों अवस्थाओंमें सूक्ष्म आनन्दका भोग-विलास होना माने हैं।
चौथी अवस्था = चौथी ब्रह्माकी स्थिति स्थूल देहकी मुख्य अवस्था यहाँ—
जागृति = जाग्रत् अवस्थामें कहा है। जिसमें सब इन्द्रियाँ प्रकृतियाँ सचेत वा जाग्रत् रह करके—
भास = जगत्का भास होना, पञ्चविषयोंका भोग होना, इत्यादि कार्य होता है ॥

व्याख्या— फिर तुरिया, सुषुप्ति, स्वप्न, और जाग्रत्, ये चार अवस्थाओंमें ज्ञानी, योगी, उपासक, और कर्मीलोग अपने-अपने भासमें विलास करते हैं ॥ २८० ॥

४. प्रत्यज्ञ प्राज्ञ तैजस अभिमान ❀ विश्व अभिमान चार पहिचान ॥ २८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अब चार अभिमान कहते हैं, सुनिये!:—
प्रत्यज्ञ = प्रत्यगात्मा अभिमान तुरियामें, ईश्वररूप ज्ञानियोंको होता है।
प्राज्ञ = प्राज्ञ अभिमान सुषुप्तिमें महेशरूप योगियोंको होता है।
तैजस अभिमान = स्वप्नमें विष्णुरूप उपासकोंको तैजस अभिमान बना रहता है। और—
विश्व अभिमान = जाग्रत्में ब्रह्मारूप कर्मी लोगोंको जगत् कर्मोंका विश्व अभिमान दृढ़ रहता है। (इसका खुलासा अर्थ पहिले ही पञ्चकोशमें वर्णन हो चुका है)।
चार = यह चार देह और चार अवस्थाओंके उक्त चार अभिमान हैं।
पहिचान = यह जीवोंको बन्धनदायी है, ऐसा विवेकसे पहिचान लीजिये! ॥

व्याख्या— प्रत्यगात्मा, प्राज्ञ, तैजस तथा विश्व, ये चार अभिमान कहलाता है। सो चार अवस्थाओंमें चार देवोंका स्वभाव माने हैं। यह चारोंका सब भाग मनुष्य जीवोंको जकड़ानेवाला दृढ़ बन्धन ही बना है। ऐसा पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके पहिचान लीजिये और उनके विकारको त्याग कीजिये ॥ २८१ ॥

५. ऋग् अथर्वण यजुर औ साम ❀ चारों वर्ण चहूँ मुकाम ॥ २८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
(यहाँ चार वेदोंके नाम बता देते हैं)
ऋग् = पहिला ऋग्वेदसे ज्ञान काण्ड निकला है।
अथर्वण = दूसरा अथर्वण वेदसे योग काण्ड निकला है।
यजुर = तीसरा यजुर्वेदसे उपासना काण्ड निकला है।
औ = और चौथा वेद—
साम = सामवेदसे कर्मकाण्ड निकला है; ऐसा जानिये। अथवा ऋग्, यजुर, साम और अथर्व वेद, ऐसे चार वेदोंके चारनाम ब्राह्मणलोग गिनाते हैं।
चारों वर्ण = और भारतवर्षमें वेद प्रमाणसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार

वर्ण या जात वर्णन किये हैं।

चहूँ=उन चार वर्णोंने चार प्रकारके कर्म, व्यवस्था, मर्यादा बाँधा है।

मुकाम=और चारवेदोंके प्रमाणसे चार मुक्तिकी स्थिति या ठहरावको प्राप्त करनेके लिये चार आश्रमः— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ऐसे क्रमशः निश्चित अवधि बनायके उसीमें मुकाम किये हैं वा ठहरे हुए हैं; ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या— १. ऋग्वेद, २. अथर्वणवेद, ३. यजुर्वेद और ४. सामवेद, ऐसे चारवेद ब्राह्मणोंने माने हैं। और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र, ये चार वर्ण वेद प्रमाणसे हिन्दुओंमें ठहराये हैं। फिर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार आश्रमरूप चार मुकाम या स्थिति भी चार मुक्ति प्राप्तिके लिये वेद प्रमाणसे ही कायम किये हैं। तथा उन्होंमें अलग-अलग वर्ण व्यवस्था कर्माचरणका बन्धान, नियम पालनादिका ठहराव किये हैं॥ २८२॥

६. मूर्धनी हृदय कण्ठ औ नैन * चारि अवस्था बखानैं बैन॥ २८३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

मूर्धनी=नाभिस्थान पिण्डमें तथा ब्रह्माण्डमें तालू स्थानको भी 'मूर्धनी' माना है। वह तुरिया अवस्था होनेकी जगह है।

हृदय=छातीमें हृदयस्थान कहा है। वह सुषुप्ति होनेकी जगह है।

कण्ठ=गला सोई कण्ठस्थान है। वह स्वप्न होनेकी जगह है।

औ=और चौथा स्थान—

नैन=नेत्र स्थान है, वह जाग्रत् होनेकी जगह माने हैं। यही देहमें चार मुख्य स्थान है।

चारि अवस्था=जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तथा तुरिया, ये चार अवस्था उक्त चार स्थानोंमें रहिके होता है, और चार अवस्थाओंमें चार प्रकारकी—

बैन=वाणी रहती है, ऐसा कहा है। जैसे कि, जाग्रत्में वैखरी वाणी, स्वप्नमें मध्यमा वाणी, सुषुप्तिमें पश्यन्ती वाणी, और तुरियामें परा वाणी इसप्रकारसे—

बखानैं=गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हैं॥

व्याख्या— मूर्धनी, हृदय, कण्ठ और नेत्र, इन चार स्थानोंमेंसे अन्तिम क्रमानुसार जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तथा तुरिया, ये चार अवस्था उत्पन्न होके उसीकी स्थिति रहती है, ऐसा कहा है। तथा उन चार अवस्थाओंसे चार वाचाः— वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, और परा, यह वाणी वा वाचा उत्पन्न होती है, ऐसा वर्णन किया गया है; सो समझ लेना चाहिये॥ २८३॥

७. आनन्दाभास आनन्दापोत * अस्थूल विलास भोग चहुँ होत॥ २८४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! चार प्रकारके भोग कहते हैं, सुनिये!:—

आनन्दाभास=सहविकल्प तुरिया अवस्थामें निवृत्तिका महान सुख आनन्दका आभास मालूम पड़ता है, ऐसा कहा है; सो ज्ञानमार्गमेंका मुख्य भोग है। फिर दूसरा—

आनन्दापोत=शून्य सुषुप्ति या समाधि अवस्थामें 'अपोत' कहिये बहुत ही गाढ़ा आनन्द हो जाता है, ऐसा माने हैं। सो योग मार्गमेंका मुख्य भोग है। फिर तीसरा—

विलास=स्वप्न वा ध्यानावस्थामें सूक्ष्म मधुर आनन्द-विलासका भोग माने हैं। सो उपासना मार्गमेंका मुख्य भोग है। और चौथा—

अस्थूल=जाग्रत् अवस्थामें स्थूल देहसे स्थूल कर्मोंका संयोग करके—

भोग=स्थूल विषयोंका पाँच प्रकारसे भोग होता है। सो कर्ममार्गमेंका मुख्य भोग वा विषय-विलास है।

चहुँ होत=ऐसे चार अवस्था द्वारा चार तरहके आनन्दका भोग-विलास होता है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— ज्ञानमार्गमें सप्तज्ञान भूमिकाकी साधना द्वारा आत्मभावनासे वृत्तिको स्थिर किये हुए ज्ञानियोंको तुरिया अवस्थामें बड़ा आनन्दका भास मालूम होता है, सो 'आनन्दाभास' भोग है।

योगमार्गसे अष्टाङ्ग योग साधना द्वारा वृत्तिको शून्य करके समाधि लगाये हुए योगी लोगोंको वहाँपर बहुत ही सुख या आनन्द मालूम होता है, सो 'आनन्दापोत' भोग कहा है। उपासनामार्गसे नवधा-भक्तिकी भावना द्वारा लक्ष्य एकाग्र करनेसे मनका विलास सुख मालूम पड़ना, सो 'विलास' भोग है। और कर्ममार्गसे अष्ट प्रतिमादि पूजा नाना कर्ममें लक्ष्य रखके स्थूल पञ्चविषयोंको खूब भोग करना, सो 'स्थूल' भोग है। ऐसे चार प्रकारके भोग होता है। सोई अध्यास आखिरमें जीवोंको बन्धनका बीजरूप कारण होता है ॥ २८४ ॥

८. रज सत तम गुण तीनिउ जोय * चौथे शुद्ध सतोगुण होय ॥ २८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चार तरहके गुण बताते हैं, सुनिये !:—

रज = ब्रह्माका नित्य स्वाभाविक धर्म या गुण सो रजोगुण कहा है।

सत = विष्णुका स्वाभाविक धर्म सो सत्त्वगुण कहा है।

तम = महेशका स्वाभाविक धर्म सो तमोगुण कहा है।

गुण = ऐसे तीन तरहके गुण या विषय धर्म—

तीनिउ जोय = जो कि, जगत्में त्रिगुणी सृष्टि कहलाता है, सोई तीनगुण सब प्राणियोंमें हो रहा है; सो देख लीजिये।

चौथे = और उक्त तीन गुणोंसे परे, चौथा—

शुद्ध सतोगुण = परमेश्वरका शुद्ध सत्त्वगुण निर्मल स्वभाव रहता है, ऐसा कहा है।

होय = कर्मी, उपासक, योगी और ज्ञानी, इन्हींका यह मुख्य गुण है। ऐसे स्वभाव उनमें प्रगट होता है, सो जानिये ! ॥

व्याख्या— तैसे ही देहधारी प्राणियोंमें रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण, यह तीन स्वभाव जो होता है या देखनेमें आता है; सो उसे तीन देवोंका गुण माने हैं। और चौथा शुद्धसत्त्वगुण जो ज्ञानियोंमें होता है, सो ईश्वरका गुण कल्पना करके माने हैं ॥ २८५ ॥

९. छिप्रा गतागत दूजी मान * सौलेष्टता सुलीन भूमिका जान ॥ २८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चार भूमिका कहते हैं, सुनिये !:—

छिप्रा = क्षिप्रा भूमिका स्थूल देहकी प्रथम कर्म भूमिका है।

गतागत = सूक्ष्म देहके आवागमन होनेकी द्वितीय भूमिका सोई गतागत भूमिका है।

दूजी मान = यह दो भूमिका माने हैं, सोई पहली तथा दूसरी मान लीजिये।

सौलेष्टता = यह तीसरी भूमिका कारण देहकी बीजरूपमें है, उसे सौलेष्टता कहते हैं।

सुलीन = चौथी भूमिका इसमें उक्त तीनों ही लय होके सुलीनरूपमें रहती है।

भूमिका = यह चार देहोंकी चार भूमिका कही गई है।

जान = सो जान लीजिये ! (इसके खुलासा अर्थ प्रथम ही पञ्चकोशमें हो चुका है) ॥

व्याख्या— प्रथम क्षिप्रा भूमिका है। दूसरी गतागत भूमिका माने हैं। तीसरी सौलेष्टता भूमिका है। चौथी सुलीन भूमिका ठहराये हैं, सो जानिये ! ॥ २८६ ॥

१०. मुक्ति सालोक्य सामीप्य सारूप * चौथे है सायुज्य अनूप ॥ २८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मुक्ति = चार तरहसे मुक्ति भी चार प्रकारके माने हैं, सो सुनिये !:—

सालोक्य = स्वर्गलोकमें बासा माने हैं। यहाँके सरीखी स्वर्गमें भी विषय भोग मिलनेको कहा है।

सामीप्य = इष्टदेवके नजदीक रहना (समीपमें ही इच्छित सुख भोगना) कहा है।

सारूप = इष्टदेवके समान स्वरूप अपना भी हो जाना, और ध्येय विषयके स्वरूप ही स्वयं बन जाना, ऐसा कहा है।

सायुज्य = वैसेही 'जल तरङ्गन्याय' एकमें-एक हो जाना, जीव-ब्रह्मकी एकताको सायुज्य कहा है।

अनूप = उपमासे रहित ब्रह्मपदकी प्राप्ति हो जाना वा उस पदकी प्राप्ति करानेवाला सायुज्य अनूप है, ऐसा कहा है।

चौथे है = सो चतुर्थ मुक्तिको सर्वश्रेष्ठ माने हैं ॥

व्याख्या— तैसे ही मुक्ति भी चार माने हैं:— १. सालोक्य मुक्ति, २. सामीप्य मुक्ति, ३.सारूप्य मुक्ति, और ४. सायुज्य मुक्ति कहा है। यह चतुर्थ मुक्तिको उपमाओंसे रहित बताये है॥ २८७॥

११. जेते चारि चारि परसङ्ग * सबका देखहु एकै रङ्ग ॥ २८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जेते = जगत्में जितने भी और—

चारि चारि = चार देह, ४ आश्रम, ४ दशा, ४ अवस्था, ४ शक्ति, ४ अभिमान, ४ गुण, ४ वेद, ४ लोक, ४ अभाव, इत्यादि चार-चार भागोंका विस्तार—

परसङ्ग = प्रसंग, प्रकरण, अध्यायके मेलसे जो परस्पर भाग कहा गया है—

सबका = सो सबोंका—

एकै रङ्ग = एक सरीखा ही रङ्ग, रूप, आकार, प्रकार, गुण, धर्म आदि जड़ विकारी हैं। इसी कारणसे—

देखहु = विवेक-दृष्टिसे देखिये! और वह सब गुरुवा लोगोंकी कल्पनाको परख करके न्यारे हो जाइये॥

व्याख्या— इसप्रकार संसारमें जितने भी चार-चार भागके प्रसंग हैं, सो सबोंका रङ्ग वा लक्षण, हिसाब एक सरीखा ही है वा एक ही है। माया-प्रकृतिका ही वह सब अङ्ग है। जड़देहोंका विकार ही है। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परख करके देखिये! तब सत्यासत्यका पूरा भेद मालूम पड़ेगा। और इसका विशेष खुलासा वर्णन "तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक" ग्रन्थकी द्वितीयावृत्ति-के पृष्ठ १६३ में आया है। वहाँ चारों देहोंके चार-चार भागोंके कोष्ठकमें बाईस तरहसे नाम बताया है, सो जानिये! इसतरह उन चार-चार भाग सबोंका एकै रङ्ग देखके भ्रम कल्पनाको हटा देना चाहिये॥ २८८॥

साखीः— चारि अवस्था चारि चहूँ * सोई चारि शरीर ॥
[२०] महा शून्य औ शून्यमें * लहै सदा बहु पीर ॥ २८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

चारि अवस्था = शरीरमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया, ये चार अवस्थाओंके कर्म अध्यास ही जीवोंको क्रमशः—

चारि चहूँ = पशु, अण्डज, उष्मज, और मनुष्य, ये चार खानीमें ले जानेका बीज है। तैसे ही चार वाणी, चार वाचा, ४ मुक्ति, ४ वर्ण, ४ काण्ड आदि सब भी चौरासी-योनियोंमें ले जानेका ही बीजरूप जाल है।

सोई = सोई चार अवस्थाओंके जड़ाध्याससे ही जीव सब—

चारि शरीर = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, और महा-कारण, ये चार शरीरोंके घेरामें बद्ध हो, बन्धनमें अरुझके आवागमनोंमें ही पड़े रहते हैं, और इसीसे चारखानीमें जा-जाके चार तरहके शरीर धारण करते रहते हैं।

महा शून्य = इधर ज्ञानी लोगोंने सब जगत्का अभाव करके महान शून्यरूप समाधि लगाके तुरिया ईश्वररूप आदि कारण सर्वका साक्षी भी मानन्दी किये हैं।

औ = और अज्ञानी तथा विज्ञानियोंने—

शून्यमें = शून्य अज्ञान सुषुप्तिमें एवं आकाशवत् ब्रह्म कैवल्य दशामें परमात्मारूप स्वयं बनके ज्ञान सुषुप्तिमें स्थिति किये हैं। इस कारणसे पारखबोधके बिना—

सदा = सदा-सर्वदा वा हमेशा या बारम्बार ही महाशून्य और शून्यके घेरा भीतर पड़के—

बहु पीर = बहुत-बहुत पीड़ा, साधना या उद्योगका दुःख, तथा त्रयताप-गर्भादिका महान दुःख बहुत ही क्लेश—

लहै = जीवोंने पाये और पुनः-पुनः वही दुःख वे उसी कारणसे पाते रहेंगे। बिना विवेक कोई शून्यवृत्तिकर और कोई भग-भोगोंमें आसक्त होकर चौरासी-योनियोंके खाँचमें पड़ रहे हैं, सब जीव उसी प्रकारके दुःख भोग रहे हैं॥

व्याख्या— चार अवस्थाओंके कर्म अध्याससे ही जीव चार खानियोंमें चले जाते हैं। तहाँ

स्थूल देहकी जाग्रत् अवस्था द्वारा पञ्च विषय भोग षट् पशुधर्ममें निपुण विशेष माया-मोहकी आसक्तिवश जीव पशु खानीमें जाकर उत्तम, मध्यम, और कनिष्ठ कर्मानुसार वैसे ही देह धारण करके जन्म लेकर कर्म भोगते हैं। फिर, सूक्ष्म देहकी स्वप्न अवस्था द्वारा ध्यान उपासना करके संस्कार टिकानेसे जीव अण्डज खानीमें जायके कर्मानुसार भोग पाते हैं। तथा कारण देहकी सुषुप्ति अवस्था द्वारा योग साधनाकर शून्यवृत्ति करके जड़ाध्यासी होनेसे, वे उष्मज खानीमें जायके कर्मफल भोग करते हैं। और महाकारण देहकी तुरिया साक्षी अवस्थाके ज्ञान संस्कार रहनेसे जीव मनुष्य खानीमें आयके उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ, कर्मानुसार वैसे ही जगह देह लेके दुःख-सुखादि फल भोगते हैं। इसप्रकारसे चार खानियोंमें जीवोंको जानेका कारण-बीज उन्होंके सोई चार शरीरकी अवस्थाओंके कर्म संस्कारसे ही होता है। अज्ञानी, ज्ञानी, तथा विज्ञानी, वे तीनों ही निजपद स्थितिसे गाफिल हुए हैं। इससे कोईने महाशून्य तुरिया ईश्वररूपमें जगत्का अभाव माने हैं। और कोई ब्रह्मज्ञानियोंने शून्य आकाशवत् कैवल्य दशा परमात्मा स्वरूप स्वयं अपनेको माने हैं। परन्तु, खानी-वाणीके जड़ाध्यास न छुटनेसे वे ज्ञानी, अज्ञानी समस्त जीव सदा-सर्वदा ही चार खानी चौरासी-योनियोंके चक्रमें पड़कर बहुत-बहुत पीड़ा, यातनाएँ या दुःख भोगे वा भोग रहे हैं और भोगते रहेंगे। अतएव जिज्ञासु नरजीवोंको चाहिये कि, पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार द्वारा सारको ग्रहणकर सब अध्यास त्यागना चाहिये ॥ २८९ ॥

सम्बन्ध— यहाँसे चौकड़ी १ से १९ तक पन्द्रवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ पञ्चदश खण्ड ॥ १५ ॥ ❀ ॥

१. इन्द्री कर्म इन्द्रीके भेव * जहाँ जेहि कला इन्द्रीके देव ॥ २९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इस खण्डमें चौदह (१४) इन्द्रियाँ, उन्होंके देवता, तथा विषयोंको तीन तापोंमें घटाकर बताया जाता है, सो सुनिये !:—

इन्द्री = स्थूल-सूक्ष्मरूप चौदहों इन्द्रियाँ रजोगुण-रूप 'अध्यात्म' माना है।

कर्म इन्द्रीके = उन इन्द्रियोंके सब कर्म या विषय, सो तमोगुणरूप 'अधिभूत' माना है।

भेव = यही इसका भेद या मर्म है।

जहाँ जेहि कला = और जहाँपर जिस तत्त्वकी कला या भाग विशेष हुआ है—

इन्द्रीके देव = उसीको इन्द्रियोंके देवता माना गया है। सो चौदह (१४) देवताएँ सत्त्वगुणरूप 'अधिदैव' माने हैं ॥

व्याख्या— इस खण्डमें तीन तापोंका विवरण कहते हैं। उसमें चौदह इन्द्रियाँ अध्यात्म, रजोगुणसे उत्पन्न हुई हैं। उन इन्द्रियोंके कर्म या विषयें अधिभूत, तमोगुणसे उत्पन्न हुए हैं। और जहाँ जिस तत्त्वोंकी कला विशेष हुई, सो उन इन्द्रियोंकी शक्तिरूप देवताएँ अधिदैव, सत्त्वगुणसे उत्पत्ति हुई, ऐसा माने हैं ॥ २९० ॥

२. सो सुनि लेहु करहु विचार * त्रिगुण तत्त्वमसि सब सार ॥ २९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सो सुनि लेहु = हे जिज्ञासुओ ! उसका वर्णन भी अब यहाँ किया जाता है। उसको भी गुरुमुख द्वारा निर्णय सुन लीजिये ! और-

विचार = सत्यासत्यका निर्णयसे विचार-विवेक करके—

करहु = सार सत्यका ग्रहणकर निज हित कर लीजिये !—

त्रिगुण = रज, सत्त्व, तम, यह तीन गुण अज्ञानियों-का है, और—

तत्त्वमसि = तत्, त्वं, असि, यह तीनगुण ज्ञानियों-का माने हैं।

सब = सो सब असार बन्धनरूप है।

सार = चैतन्य स्वरूप ही सत्य सार है; ऐसा जान लीजिये ! परन्तु, तत्त्वमसिको ही भ्रमिकोंने सार माने हैं ॥

व्याख्या— सो उसका विस्तारसे वर्णन भी जिज्ञासुओंको यथार्थ परखानेके वास्ते मैं यहाँपर

लिख देता हूँ। हे मुमुक्षुओ ! आपलोग ध्यान पूर्वक पारखी श्रीसद्गुरुके मुखारविन्द द्वारा निर्णयको सुन करके सत्यका विचारकर लीजिये ! जिससे सब सार-असारका भेद मालूम हो जायेगा। तीन गुण और तत्त्वमसिमें भी तीन तापका भाग लगा हुआ है। सो इंसप्रकारसे समझियेः— रजोगुण, अध्यात्म है। सत्त्वगुण, अधिदैव है। तमोगुण, अधिभूत माना है। तथा त्वंपद, अध्यात्म है। तत्पद, अधिभूत है। असिपद, अधिदैव माना है। गुरुवा लोगोंके वेद-वेदान्त वाणियोंका यही सार निचोड़ है, ऐसा जानिये ! ॥ २९१ ॥

३. निर्गुण मत शङ्करके होय ❀ शब्द ब्रह्म ब्रह्मा है सोय ॥ २९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

निर्गुण मत = निर्गुण निराकार प्रकाशरूप व्यापक ब्रह्मका अद्वैतमतका सिद्धान्त यह—
शङ्करके = महादेवके तथा उनके अनुयायी संन्यासी शङ्कराचार्यादिकोंके—
होय = है। उन्होंने उसे माने हैं; सो अधिदैवमें है।
शब्द ब्रह्म = ॐकार शब्द स्वरूपी ब्रह्म, सो अध्यात्मरूपमें कहा है। सो—
ब्रह्मा है = ब्रह्माका सिद्धान्तरूपी मत है।
सोय = सोई उनके अनुयायी ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंने ग्रहण किये हैं ॥

व्याख्या— उसीमें निर्गुण, निराकार, प्रकाशरूप व्यापक परमात्मा मानना, यह अद्वैतमत शङ्करका है। सोई शङ्कराचार्यादिकोंने माने हैं; सो अधिदैवमें है। प्रणवरूप शब्द-ब्रह्मका विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त सोई ब्रह्माका है। सो रामानुजादि भक्तोंने माने हैं; यह अध्यात्ममें कहा है ॥ २९२ ॥

४. हरि सो सगुण ब्रह्म परवान ❀ गुण औ नाम रूप पहिचान ॥ २९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सगुण ब्रह्म = द्वैतमतमें सगुण दश अवतारादिको ब्रह्म मानना—
सो = सोई सिद्धान्त आधिभौतिकरूपमें—
हरि = विष्णुने तथा उनके अनुयायी भक्तोंने विशेषरूपसे—
परवान = प्रमाण करके मान लिये हैं।
गुण = निर्गुण ब्रह्मको अधिदैव माने हैं, सो गुण तमोगुण है।
औ = और दूसरा—
नाम = ॐकार शब्द-ब्रह्मको अध्यात्म कहा है। सो नाम रजोगुण है।
रूप = सगुण ब्रह्म अवतारादिको अधिभूत माने हैं। सो रूप सत्त्वगुण है।
पहिचान = सो एक-एक करके पहिचानके भ्रम कल्पनाको त्याग करिये ॥

व्याख्या— सगुण ब्रह्म सोई विष्णुका मत है। यह द्वैतवादका सिद्धान्त माधवाचार्य आदिने प्रमाण करके माने हैं; सो अधिभूतमें है। सो संक्षेपमें यहाँपर नाम, रूप, और गुणके भीतर ही उन सबको पहिचानकर लीजिये। कैसे किः— नाम सो ॐ कार ब्रह्म, अध्यात्म है। रूप सो अवतारादि सगुण ब्रह्म, अधिभूत है। और गुण सो निर्गुणब्रह्म, अधिदैव है। इसप्रकारसे माने हैं, सो सब नर-जीवोंकी कल्पनाका ही पसारा है, ऐसा पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे पहिचानकर लीजिये ! ॥ २९३ ॥

५. अन्तस् निर्विकल्प अधिभूत ❀ महाविष्णु देव मजबूत ॥ २९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

अन्तस् = अन्तःकरण, सो सूक्ष्म इन्द्रिय होनेसे अध्यात्म है।
निर्विकल्प = अन्तःकरणका विषय निर्विकल्प-शून्य होना होता है—
अधिभूत = सो अधिभूत माने हैं।
महाविष्णु देव = और महाविष्णु नामके ही सो उसके देवताको अधिदैव करके—
मजबूत = दृढ़ता या मजबूतीसे पकड़े हैं, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— आकाशतत्त्वरूप समान वायुकी सूक्ष्म इन्द्रियोंकी भूमिका होनेसे 'अन्तःकरण' यह 'अध्यात्म' है। उसका विषय 'निर्विकल्प' होना, सो 'अधिभूत' है। और 'महाविष्णु' देवताको मजबूत करके 'अधिदैव' रूपमें माने हैं ॥ २९४ ॥

६. मन इन्द्री मन्तव्य व्यवहार * शशि अस्राधी देव परचार ॥ २९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मन इन्द्री = मन यह जलतत्त्वका कार्य इन्द्रिय होनेसे अध्यात्म कहा है।

मन्तव्य व्यवहार = मनसे मनन वा सङ्कल्प-विकल्पादि होनेवाला व्यवहार या विषय यही अधिभूत कहलाता है।

शशि = चन्द्रमा (घट-बढ़ कलासहित)—

अस्राधी देव = मनमें रहनेवाला अधिष्ठाता देवता सोई अधिदैव कहा है।

परचार = ऐसा गुरुवा लोगोंने वाणीका प्रचार किये हैं ॥

व्याख्या— तैसे ही जलतत्त्वका भाग सूक्ष्म इन्द्रिय मन होनेसे सो अध्यात्म है। उसका विषय सङ्कल्प-विकल्प या मन-मन्तव्य होना, सो अधिभूत है। और चन्द्रमा अधिष्ठाता देवताको अधिदैव मानके गुरुवा लोगोंने ऐसे-ऐसे कल्पित वाणीका प्रचार किये हैं ॥ २९५ ॥

७. बुद्धि अध्यात्म निश्चय भास * ब्रह्मा देवता सङ्ग विलास ॥ २९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बुद्धि = पृथ्वीतत्त्वके भागसे बना हुआ बुद्धि एक इन्द्रिय है।

अध्यात्म = इसलिये सो अध्यात्म है।

निश्चय भास = जो-जो बुद्धिमें भास दृढ़ होता जाता है, सोई-सोई बात निश्चय होता है। यह विषय ही अधिभूत है। और—

ब्रह्मा देवता = ब्रह्मा उसका देवता है, सोई अधिदैव माने हैं।

सङ्ग = रजोगुण बुद्धिके सङ्ग-साथमें—

विलास = प्राणी क्रीड़ा विलास या कलोल करके वैसे ही कर्म कर-करके बद्ध हो जाते हैं ॥

व्याख्या— पृथ्वीतत्त्वका भागरूप सूक्ष्म इन्द्रिय बुद्धि है, सो अध्यात्म है। उसका विषय निश्चय-निश्चयात्मक भास, सो अधिभूत है; और ब्रह्मा देवताको अधिदैव माने हैं उसी बुद्धिके सङ्गमें सब कोई विलास कर रहे हैं ॥ २९६ ॥

८. चित्त अध्यात्म चिन्तन करै * तासु देवता हरि अनुहरै ॥ २९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

चित्त = वायुतत्त्वका कार्य भागसे बना हुआ चित्त इन्द्रिय है, यह—

अध्यात्म = अध्यात्म कहलाता है।

चिन्तन करै = चित्तसे चिन्तन करना, यह विषय अधिभूत है।

तासु देवता = उस चित्तमें रहनेवाला उसका देवता—

हरि = विष्णु या नारायण-हरिको—

अनुहरै = सूक्ष्म ही रूपसे माने हैं। सोई अधिदैव कहा है ॥

व्याख्या— वायुतत्त्वका सूक्ष्म इन्द्रिय चित्त सोई अध्यात्म है। चित्तसे चिन्तन या अनुसन्धान करना वह विषय यही अधिभूत है। और उसके सूक्ष्मरूपसे देवता नारायणको अधिदैव माने हैं ॥२९७॥

९. अहङ्कार अध्यात्म करणी अहं * रुद्र देवता एकोहं ॥ २९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अहङ्कार = अग्नितत्त्वका भागसे बना हुआ होनेसे यह अहङ्कार—

अध्यात्म = इन्द्रिय या अध्यात्म कहलाता है।

करणी अहं = उसका विषय अहंकरतूतसे नाना कर्म अहङ्कार करना, सो अधिभूत है।

रुद्र देवता = इसका अधिष्ठाता रुद्र देवताको अधिदैव माने हैं।

एकोहं = इसीसे "मैं एक ब्रह्म व्यापक हूँ !" ऐसा अहङ्कार करते हैं ॥

व्याख्या— तेज तत्त्वका सूक्ष्म इन्द्रिय अहङ्कार सोई अध्यात्म है। उसका विषय अहंकरणी या अहंकरतूत, सो अधिभूत है। और रुद्र देवताको अधिदैव मानके एकोहं ब्रह्म आदिका अहङ्कार लेते हैं॥२९८॥

१०. श्रवण तेहि सुनना अधिभूत * दिग अस्राधी देव मजबूत ॥ २९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

श्रवण तेहि = 'कान' वही समानवायुका कार्य,

एक ज्ञानेन्द्रिय होनेसे अध्यात्म कहलाता है।
सुनना = सुनना उसका विषय है, सोई—
अधिभूत = अधिभूत कहलाता है।
दिग = दशों दिशाएँ सोई—
अस्राधी देव = कानके स्थानीय अधिष्ठाता देवता या अधिदैव मानके—
मजबूत = उसी भ्रम-कल्पनाको दृढ़ किये या पक्का किये हैं॥

व्याख्या— कान एक पहला ज्ञानेन्द्रिय है, इसे अध्यात्म माना है। उसका विषय शब्द सुनना सो अधिभूत है। तथा दिशाएँ सोई अधिष्ठाता देवता मजबूत करके अधिदैव माने हैं॥ २९९॥

११. त्वचा इन्द्री स्पर्श व्यवहार ❀ वायु अस्राधी देव अनुहार॥ ३००॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

त्वचा = वायुतत्त्वका कार्यसे बना हुआ चमड़ी या 'त्वचा' यह एक—
इन्द्री = ज्ञानेन्द्रिय होनेसे अध्यात्म माने हैं।
स्पर्श व्यवहार = उसका विषय ठण्ढी-गर्मीका स्पर्श द्वारा मालूम करना, सो अधिभूत कहा है।
वायु = चञ्चलवायु यही इसका—
अस्राधी देव = त्वचा स्थानीय अधिष्ठाता देवता या अधिदैव—
अनुहार = सूक्ष्म रीतिसे सूक्ष्म ही स्वरूपमें माने हैं॥

व्याख्या— त्वचा यह दूसरा ज्ञानेन्द्रिय है, उसे अध्यात्म माना है। उसका विषय नरम-गरम, कठिन-शीतादि व्यवहारमें स्पर्श होना, सो अधिभूत है। उसका अधिष्ठाता देवता सूक्ष्मरूपसे वायुको अधिदैव माने हैं। ऐसा सब गुरुवा लोगोंके कल्पनाका वर्णन है। सो जिज्ञासुओंको परखाके समझानेके वास्ते ही यह सब दिखाया-बताया जा रहा है, सो जानिये!॥ ३००॥

१२. चक्षु अध्यात्म दृष्टव्य सो भेव ❀ सूर्य अस्राधी ताहिके देव॥ ३०१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चक्षु = अग्नितत्त्वका कार्यरूप 'नेत्र' यह तीसरा ज्ञानेन्द्रिय है, सो—
अध्यात्म = अध्यात्म इन्द्रिय कहलाता है।
दृष्टव्य = रूप-कुरूपको देखना उसका विषय है।
सो भेव = सो उसका भेद ऐसा है कि— वह विषय ही अधिभूत है।
सूर्य = प्रकाशरूप सूर्यको यही—
ताहिके = उसी नेत्र स्थानके प्रकाशक—
अस्राधी = अधिष्ठाता या अधिदैव—
देव = देवताके रूपमें माने हैं॥

व्याख्या— नेत्र यह तीसरा ज्ञानेन्द्रियको अध्यात्म कहा है। रूपको देखना उसका विषय ही अधिभूत माना है। उसके अधिष्ठाता देवता सूर्यको अधिदैव रूपमें माने हैं, सो उसका यही भेद है॥ ३०१॥

१३. जिभ्या रस वरुण सो देव ❀ घ्राण गन्ध अश्विनी सेव॥ ३०२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जिभ्या = जलतत्त्वका कार्यरूप चौथा ज्ञानेन्द्रिय 'जिभ्या' है, सोई अध्यात्म वा इन्द्रिय है।
रस = उसका विषय षटरस लेना, यही अधिभूत माना है।
वरुण सो देव = वरुण नामके देवता सोई उसका अधिदैव माने हैं। और—
घ्राण = पृथ्वीतत्त्वका कार्यरूप पाँचवाँ ज्ञानेन्द्रिय नासिका है, सोई अध्यात्म इन्द्रिय कहलाता है।
गन्ध = दुर्गन्ध-सुगन्ध लेना, उसका विषयको अधिभूत माना है।
अश्विनी = अश्विनीकुमार उसका वासस्थानीय देवता ठहराये हैं।
सेव = सोई अधिदैव मानके इन्हीं देवताओंकी सेवा भ्रमिक भक्तलोग करते-कराते हैं॥

व्याख्या— जिह्वा, यह चौथा ज्ञानेन्द्रिय है। उसको अध्यात्म इन्द्रिय माना है। षट्रसोंका स्वाद लेना, वह विषय ही अधिभूत है। और वरुण देवताको अधिदैव माने हैं। नासिका यह पाँचवाँ ज्ञानेन्द्रियको अध्यात्म कहा है। गन्ध-सुगन्ध सूँघना यह विषय ही अधिभूत है। देवताओंके वैद्य

अश्विनीकुमार दोनों भाईको अधिदैव रूपमें मानके उन्हींकी सेवा करते हैं ॥ ३०२ ॥

१४. वाक्य सोई वक्तव्य विचार * अग्नि असाधी देव निरुवार ॥ ३०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं — हे सन्तो !

वाक्य = कर्मेन्द्रियोंमें 'मुख' इन्द्रिय एक है, सो अध्यात्म इन्द्रिय है।
सोई = सो वही मुखका विषय या कार्य —
वक्तव्य = वाणी वचन बोलना, सो यही अधिभूत है।
विचार = ऐसा गुरुवालोगोंने विचार किये हैं; उसको विचार करिये।
अग्नि = अग्नितत्त्वको ज्वलन्त देवताके रूपमें प्रज्वलित—
असाधी देव = मुख स्थानमें रहनेवाला अधिष्ठाता देवता या अधिदैवरूपमें मानके ठहराये हैं।
निरुवार = सो ऐसा निर्णय गुरुवा लोगोंने किये हैं। उसको परख करके सत्सङ्गमें निर्णय करिये ॥

व्याख्या— मुख पहला कर्मेन्द्रिय है। उसको अध्यात्म इन्द्रिय कहा है। सोई मुखसे बोल-चाल करना, उस विषयको वक्तव्यसे अधिभूत होनेका विचार किये हैं। मुख स्थानके अधिष्ठाता देवता अग्निको अधिदैव निरुवार किये हैं ॥ ३०३ ॥

१५. पाणी अध्यात्म ग्रहण सो भेव * इन्द्र असाधी कहावै देव ॥ ३०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पाणी = वैसे ही 'हाथ' यह दूसरा कर्मेन्द्रिय है।
अध्यात्म = हाथ इन्द्रियको ही अध्यात्म माने हैं।
ग्रहण = त्याग-ग्रहण या लेना-देना, करना, यह विषय ही यहाँ अधिभत माना है।
सो भेव = सो वही उसका भेद है।
इन्द्र = देवताओंके राजा माना हुआ इन्द्र देवताको—
असाधी = हाथ स्थानीय अधिष्ठाता—
देव = अधिदैवके रूपमें कहा है। वही अधिदैव-
कहावै = कहलाता है या गुरुवालोग ऐसा कल्पना करके कहते हैं। सो परख करके जानना चाहिये ॥

व्याख्या— हाथ दूसरा कर्मेन्द्रियको अध्यात्म माना है। लेन-देन करके ग्रहण करना, उस विषयको अधिभूत माने हैं; सो यही इसका भेद है। और देवराज इन्द्र हाथके अधिष्ठाता देवता अधिदैव कहलाता है। ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पना किये हैं। निर्णय करके उन सबोंका भेद यथार्थ जानना चाहिये ॥ ३०४ ॥

१६. पाद अध्यात्म चलना होय * उपेन्द्र असाधी देवता सोय ॥ ३०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पाद = 'पैर' यह तीसरा कर्मइन्द्रिय होनेसे इसको
अध्यात्म = अध्यात्म इन्द्रिय कहते हैं।
चलना होय = चलना-फिरना पैरसे जो होता है, सो विषय ही अधिभूत है।
उपेन्द्र = वामन अवतारी विष्णुको—
सोय = सोई पैर स्थानमें रहनेवाला—
असाधी = अधिष्ठातारूपमें—
देवता = अधिदैव कहा है ॥

व्याख्या— तीसरी कर्मेन्द्रिय पाँव (पैर) है; सो अध्यात्म है। चलना-फिरना, डोलना, आना-जानादि क्रिया उसके विषय जो होता है, सो अधिभूत माना है। सो पैरका अधिष्ठाता देवता यहाँ सोई उपेन्द्र (वामन) को अधिदैव कहा है ॥ ३०५ ॥

१७. शिश्न अध्यात्म मैथुन भोग * प्रजापति असाधी देवता योग ॥ ३०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं हे सन्तो !

शिश्न = 'भग-लिङ्ग' या उपस्थ यह चौथा कर्म इन्द्रिय होनेसे इसको—
अध्यात्म = अध्यात्म-इन्द्रिय माना है।
मैथुन भोग = स्त्री-पुरुषोंका मैथुन वा सम्भोग यही विषय ही यहाँ अधिभूत कहलाता है।

प्रजापति=प्रजाको उत्पन्न करनेवाले प्रजाके मालिक इसी नामके प्रजापतिको—
योग=स्त्री-पुरुष दोनोंके भग-लिङ्गमें रहनेवाला दोनोंका योग वा संयोग करानेवाला ऐसे—
अस्राधी=अधिष्ठाता देवताको यहाँपर—
देवता=अधिदैव माने हैं; ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— चौथा कर्मेन्द्रिय शिश्न (उपस्थ) या लिङ्ग है, सो उसे अध्यात्म माना है। मैथुन सम्भोग करना, उसके विषयको अधिभूत कहा है। और दोनों स्त्री-पुरुषोंके भग-लिङ्गमें संयोग करके रहनेवाला अधिष्ठाता देवता प्रजापतिको यहाँ अधिदैव माने हैं ॥ ३०६ ॥

१८. गुदा विसर्जनि सोई जान * यम अस्राधी देवता मान ॥ ३०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गुदा='गुदाद्वार' यह पाचवाँ कर्म इन्द्रिय है। अध्यात्म इन्द्रिय भी इसको माने हैं।
विसर्जनि=मलका त्याग करना, यह कार्य—
सोई=सो ही गुदाके विषय है, सो इसे अधिभूत माने हैं।
जान=ऐसा भेद जान लीजिये।
यम=यमराज या मृत्यु वा कालको—
अस्राधी=गुदास्थानमें घर करके रहनेवाला अधिष्ठाता—
देवता=देवता या अधिदैव करके
मान=गुरुवा लोगोंने माने हैं। सो ऐसी मानन्दी दृढ़ किये हैं ॥

व्याख्या— पाँचवाँ कर्मेन्द्रिय गुदाद्वार है; सो उसे अध्यात्म माना है। मल त्याग करना, जाने उसका विषयका अधिभूत जानिये ! यमराजको गुदामें रहनेवाला अधिष्ठाता देवतारूपमें अधिदैव माने हैं ॥ ३०७ ॥

१९. सोई अस्थूल पिण्ड ब्रह्माण्ड * प्रगटै कला अनेक प्रचण्ड ॥ ३०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो।

सोई=सो वही ऊपर कहे हुए ५ तत्त्व, ३ गुण, १४ इन्द्रियाँ, तिनके १४ विषयें, १४ देवता, २५ प्रकृतियाँ आदि सब—
पिण्ड=एकत्र गोला समूह मिलाकर यह शरीर-रूपमें पिण्ड बना है। और—
ब्रह्माण्ड=बाहरके जगत्का पसारा या वाणी कल्पनाका विस्तार भी—
अस्थूल=सो स्थूलाकार बड़ा मोटारूपसे हुआ है और वाणीका विस्तार भी वैसे ही किये हैं।
कला=उसी पिण्ड-ब्रह्माण्डके कार्य भाग या कला-कौशल ले-ले करके—
अनेक=इस प्रकारसे अनेकानेक बहुत सारी कला प्रचण्डरूपसे प्रगट हुई वा हो रही है।
प्रचण्ड=खानी-वाणीका भाग तीक्ष्ण या तीव्र वेगसे प्रचण्डरूपमें—
प्रगटै=उत्पन्न होके प्रगट होती भई, सो महान बन्धन बना है, ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— सोई सब ऊपर जो वर्णन कर आये हैं, अर्थात् तत्त्व, गुण, इन्द्रियाँ, प्रकृतियाँ, देवताएँ विषयें इत्यादि समूहरूपसे स्थूलाकारमें मिलाप इकट्ठा होनेसे स्थूलदेहका पिण्ड और ब्रह्माण्ड जगत्का फैलावा हुआ है। तथा वाणी कल्पनाका विस्तार भी गुरुवालोगोंने खूब किये हैं। एवं खानी-जालका विस्तार विषयी जनोंने और नारियोंने खूब किये हैं। उसीकी कला-कल्पना, बन्धनरूप काम-कला प्रचण्ड वेगसे अनेकों प्रगट हुआ है। उसीमें फँसे हुए जीव सब वासनावश चौरासी-योनियोंमें अनेकों देह धर-धरके प्रगट हुए और हो रहे हैं ॥ ३०८ ॥

साखीः— महाजाल जञ्जाल है * आस ओस संभार ॥
[२१] भाँई सन्धि सो परखिले * गुरुमुख शब्द विचार ॥ ३०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे जिज्ञासु मनुष्यो ! जगत्में गुरुवा लोगोंकी वाणी कल्पनाका जाल, तथा स्त्रियोंके विषय भोगोंके खानी-जाल, यह दोनों जबर्दस्त जीवोंको बन्धन हुआ है। इसीसे, सो-
महाजाल=बड़ाजाल छूटनेको अत्यन्त कठिन फन्दा गुरुवालोग तथा स्त्रियोंने महान

जाल संसारमें फैला रक्खा है। उसमेंकी-

जञ्जाल है=एक तो वेदादि वाणीकी अनेकों कल्पना मानन्दीका जञ्जाल है। तथा दूसरा विषयभोगोंका अनेकों कर्म अध्यास है, यही बड़ाभारी अरुझन या जञ्जालोंमें नरजीव फन्दे गये हैं—

आस ओस=उसमें सुख प्राप्तिकी आशा तो ओसके बून्द चाटकर प्यास बुझानेको चाहनेके माफिक जरा-सा विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि सुख वृत्ति रुकनेसे जो माने हैं, सो भी देहके साथमें छूट जानेवाला क्षणिक नश्वर है।

संभार=नरजीवोंने आनन्द अध्यास या सुख हन्ताको मनमें जो ग्रहणकर लिया है। सोई संसारमें भटकानेवाला है। यदि मुक्ति चाहते हो, तो उस अध्याससे सम्हलकर रहो, अध्यासको हटा दो, मनको सम्हारलो! और आश-ओसरूप सुख चाहनासे वृत्ति हटायके अपनेको अभी सम्हाले रहो, सावधान होओ।

झाँईं=फिर परिपूर्ण व्यापक माना हुआ परब्रह्म-परमात्मा झाँईंपद तुरियातीत आनन्दका अध्यास तथा—

सन्धि=मानन्दी, सोई ईश्वर साक्षीपदकी तुरियारूप इच्छा, सन्धिका अध्यास तथा विषय भोगोंका अध्यास—

सो=सोई तो जीवोंको जन्म, मरण, गर्भवासमें लेजानेका मूल कारणरूप बीज है। अतः—

परखिले=हे मुमुक्षुओ! तुम इसका यथार्थ पारख पहिचान करलो और वह झाँईं, सन्धि दोनोंको अच्छी तरहसे निणय करके पारख करलो, भ्रम-भूलको हटा दो। तथा उस अध्यासोंको छोड़ दो! और—

गुरुमुख=पारखी साधु गुरुके चरण की शरण ग्रहण करके सद्गुरु श्रीकबारसाहेबके बीजकके सत्य सिद्धान्तको पारखी सद्गुरु-के मुखारविन्दसे भली भाँति श्रवण करके गुरुमुख निर्णय उपदेशको धारण करो, और—

शब्द=तीन मुखकी वाणी कल्पनाको परखके छोड़कर सारशब्द सत्य निर्णयकी गुरुमुख वाणीको ही तुम लोग—

विचार=सर्वदा विचार करते रहो, तथा गुरु विचारमें ही स्थिति करते रहो। जो ऐसा करोगे, तो तुम्हारा बन्धन मिट जायगा। ऐसा जानिये!॥

व्याख्या— वैसे-जाल तो संसारमें बहुत हैं। उनमेंसे जबरदस्त छूटनेको अत्यन्त कठिन महान विस्तारूप महाजाल खानी और वाणी नामसे दो तरहके ही मुख्य जाल बने हैं। सो उनके मोटी और झीनी दो रूप हैं। और एक बड़े फन्दामें दूसरे छोटे-छोटे अनेकों फन्दा लटके-लटकाये हुए हों, उसको जञ्जाल कहते हैं। सो एक कल्पनाके ऊपर वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिके अनेकों वाणीके जञ्जाल लगे हुए हैं। तथा एक भोगके ऊपर काम, क्रोध, लोभ, मोहादि और स्त्री, पुत्र, परिवारादि अनेकों जञ्जाल जगत्में लगे हुए हैं। उसमें विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दादि सुख प्राप्तिकी आशा तो सब कोई दृढ़ करलिये हैं; परन्तु, ओसके चाटनेसे जैसे प्यास नहीं मिटती है; वैसे ही ओस बून्दके माफिक वृत्ति स्थिरतासे होनेवाला किञ्चित्, जरा-सा वा थोड़ा-सा सुख भास होनेसे किसीकी इच्छापूर्ण होके निवृत्ति नहीं होती है। तथापि, उसी सुख भोग प्राप्तिके लिये नाना साधनाएँ और उद्योग ग्रहण करलिये हैं, धोखारूप बन्धनको ही सम्हाल-सम्हालकर सबकोई धारण करने लगे हैं, तो कहिये बन्धनोंसे छुटकारा कैसे होगा? कभी नहीं होगा। उनमें कोई ब्रह्मकी झाँईं में पड़े हैं। कोई धनकी झाँईं में पड़े हैं। कोई ईश्वर कर्त्ताकी मानन्दी दृढ़ किये हैं। कोई स्त्री-पुत्रादिकी मानन्दी दृढ़ किये हैं। ऐसे सन्धिमें फँसे हैं। सो उनसबोंके अध्यास ही जीवोंको चौरासी-योनियोंमें लेजाकर आवागमनमें डाल रखता है। अतएव हे मुमुक्षु नरजीवो! पारखी साधु सद्गुरुके शरणागत होकर उनके सत्सङ्ग करो, संसारमें सब तरफ महाजाल-जञ्जालका ही प्रचार है। ओसकी आशामें सब लगे हैं, उससे सम्हलो! गुरुमुख शब्दका ही विचार करके सो झाँईं, और सन्धि आदिको परखके त्याग

कर दो। उसके लिये प्रथम साधनारूपमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके मुखारविन्दसे निकला हुआ सत्य निर्णय बीजक सद्ग्रन्थके सत्य सिद्धान्त सारशब्दोंको पारखी सद्गुरुके मुखारविन्दसे श्रवण करो, सत्यासत्यका विचार करो। सब खानी-वाणी जालोंको, झाँईं, सन्धि आदिको परख करके परित्याग करना चाहिये। तथा सद्विचारमें ही कायम रहना चाहिये। तभी भव-बन्धन छूटकर मुक्ति हो सकेगी। ऐसा जानिये ! ॥ ३०९ ॥

सम्बन्ध— यहाँसे चौकड़ी १ से २३ तक सोलहवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ षोड़श खण्ड ॥ १६ ॥ ❀ ॥

१. दहिने नर बायें सो नार * शून्य अङ्ग निरञ्जन सार ॥ ३१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इस खण्डमें ज्ञानस्वरोदयसे तत्त्वोंकी उत्पत्ति, लम्बाई प्रमाण, गढ़न और अनेक मत-मतान्तरोंका भिन्न-भिन्न सिद्धान्त वर्णन करके दरशाते हैं, सो सुनिये ! स्वरोदयज्ञान जाननेवाले योगीलोगोंने देहमें—

दहिने=नासिकाके दहिने छिद्र द्वारा चलनेवाली श्वासवायु पिङ्गला नाड़ीको—

नर=पुरुषका अंश-भागरूपमें माने हैं। तथा—

बायें=नासिकाके बाएँ छिद्र द्वारा चलनेवाली श्वास वायुको इड़ा या इङ्गला ठहराकर—

सो नार=सोई इङ्गला नाड़ीको नारीरूप माया प्रकृति या स्त्रीका अंशरूपमें माने हैं। और—

शून्य अङ्ग=दोनों नाड़ी लय होके बीच अङ्गमें जो शून्य रहा, सोसुषुम्ना नाड़ीको—

निरञ्जन=निरञ्जन-निराकार ब्रह्म-परमात्माके रूपमें ठहराकर उसे नपुंसक अंशसे उत्पन्न भया, ऐसा माने हैं।

सार=और सत्य सबसार-का-सार सर्व श्रेष्ठ उसी निरञ्जनको मान लिये हैं। उसीसे सबकी उत्पत्ति माने हैं ॥

व्याख्या— इसमें मुख्य करके गुरुवालोग ऐसा कहते हैं कि, सबोंके शरीरमें दहिना अङ्ग पुरुषका है। बायाँ अङ्ग स्त्रीका है। और मध्य शून्य अङ्ग नपुंसकका है। उस शून्य अङ्गको ही योगी जनोंने सार माने हैं। वैसे ही प्राणियोंके शरीरका रङ्ग—काला, श्याम, सफेद, तथा पीला जो दिखता है, सो तत्त्वोंकी कला है। परन्तु, गुरुवालोग कहते हैं कि— जिस रीतिसे ईश्वरने ब्रह्माण्ड पैदा किया है, उसी रीतिसे पिण्डरूप शरीरको भी उत्पन्न किया है। उन सब बातोंका अनुभव ज्ञानस्वरोदय साधना द्वारा देहमें ही हो जाता है। सो कैसे कि— नासिकाके दाहिने छिद्रसे चलनेवाली वायु पुरुषका अङ्ग पिङ्गला नाड़ी है। नासिकाके बायाँ छिद्रसे चलनेवाली वायु स्त्रीका अङ्ग इङ्गला नाड़ी है। और नासिकाके मध्य भागसे चलनेवाली वायु नपुंसकका अङ्ग सुषुम्ना नाड़ी है। शून्य अङ्ग सोई निरञ्जन ब्रह्म सर्व श्रेष्ठ सार परमात्माका भाग है। इस कारण स्वरोदय ज्ञान जाननेवाले गुरुवालोग कहते हैं कि— इङ्गला, पिङ्गला, ये दोनों नाड़ियाँ अढ़ाई घड़ियोंमें या एक घण्टामें सदा ही दिन-रात्रिमें उलट-पलट बदलती हुई चलती ही रहती है। और सुषुम्ना नाड़ी दोनों श्वास बदलते समयमें ५ मिनट चलती है, ऐसा माने हैं। [और अनुभवी वैद्योंकी रायसे मनुष्यका प्रत्येक नथना दो घण्टे चौबीस मिनट तक लगातार सदा चलता रहता है। इसी क्रमसे दिन-रात अदल-बदल होता रहता है। इस क्रममें फरक पड़नेसे रोग उत्पन्न होता है। फिर क्रम ठीक होनेपर रोग शान्त हो जाता है, ऐसा कहा है] ॥ ३१० ॥

२. कारा श्याम गोरा औ पीत * चारों रङ्ग कला तेहि रीत ॥ ३११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कारा=भीतर सूक्ष्म श्वास चला और शून्य हुआ, उसको आकाशतत्त्वकी उत्पत्ति मानकरउसका रङ्ग काला या नीला कल्पना करके माने हैं।

श्याम=तैसे श्वास नासिकासे बाहर आठ अंगुल चलनेको वायुतत्त्वकी उत्पत्ति मानकर वायुका श्याम या हरा रङ्ग माने हैं। और चार अंगुल श्वास चलनेको अग्निकी उत्पत्ति लाल रङ्गमें माने हैं। फिर—

गोरा=सफेद रङ्ग जल तत्त्वका है, सो जलकी उत्पत्ति श्वास नाभि तक सोलह (१६) अङ्गुल चलनेको माने हैं।

औ=और बाकीका—

पीत=पीला रङ्ग पृथ्वी तत्त्वका है, सो श्वास-वायु बाहर १२ अंगुल तक चलनेको पृथ्वी-की उत्पत्ति माने हैं।

रीत=इसरीतिसे या इसप्रकारसे—

चारों रङ्ग=काला, हरा, सफेद और पीला, ऐसे चारों रङ्ग चार तत्त्वोंका पिण्ड-ब्रह्माण्ड-में जो है, सो—

तेहि=उसी परमेश्वरका या तत्त्वोंका मुख्य—

कला=अंश या भागसे अथवा ईश्वरीय कला शक्तिसे उत्पन्न हुआ है। ऐसी कल्पनासे वाणीकी कला गुरुवा लोगोंने बनाये या ऐसे कहे हैं॥

व्याख्या— तहाँ आकाश तत्त्वकी उत्पत्ति नासिकाके भीतर-भीतर श्वास चलनेको मानकर आकाश निराकार अदृश्य रहते हुए भी भ्रमसे उसका दृश्य काला या विचित्र रङ्ग ठहराये हैं। फिर श्वास वायु नासिकाके बाहर आठ अंगुल चलनेको वायुतत्त्वकी उत्पत्ति ठहराय, उसका हरा या नीला रङ्ग माने हैं। फिर श्वास वायु नासिकाके बाहरमें चार अङ्गुल चलनेको अग्नितत्त्वकी उत्पत्ति मानकर उसका लाल रङ्ग ठहराये हैं। फिर श्वास वायु नासिकाके बाहर सोलह अंगुल नाभितक चलनेको जलतत्त्वकी उत्पत्ति ठहराय, उसका सफेद रङ्ग माने हैं। फिर श्वास वायु नासिकाके बाहर बारह अंगुल चलनेको पृथ्वीतत्त्वकी उत्पत्ति ठहराय, उसका पीला रङ्ग सिद्ध किये हैं। इसप्रकारसे क्रमसे आकाश आदि पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्ति श्वास वायुमेंसे मानकर स्वरोदय ज्ञान साधक योगीलोगोंने ब्रह्माण्डके पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्तिकी भी कल्पना किये हैं। इस रीतिसे पाँचों तत्त्वोंके रङ्ग—आकाशका काला, वायुका हरा, अग्निका लाल, जलका सफेद और पृथ्वीका पीला, ऐसे ध्यानमें देखकर कल्पनाकी कलासे कोई ईश्वरने समस्त ब्रह्माण्ड और पिण्डकी उत्पत्ति किया, ऐसा अनुमान गुरुवा लोगोंने किये हैं, सो मिथ्या भ्रममात्र है। स्वरोदय ज्ञानसे पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्तिका वर्णन "तत्त्वयुक्त निज बोध विवेक ग्रन्थ" में इसीप्रकार (वर्णन) भया है; सो जान लीजिये! अथवा ऐसे चार रङ्गोंका रूप मनुष्यादि प्राणियोंमें भी कहा है॥ ३११॥

३. बवना नाटा और मझोल * लम्बा चौथे करै कलोल॥ ३१२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! शरीरके आकार, गढ़न, कैसे हैं कि— अभ्यासी जीव लम्बा, छोटा, मोटा अनेक तरहके शरीरधारी हुए, हैं उसमें—

बवना=यहाँ मनुष्य खानीमें कोई बावन अंगुल मापके देहवाले बवना दिखाई देते हैं। तैसे ही प्रथम वामन अवतारको माने हैं।

नाटा=कोई तो बवनासे कुछ ही बड़े वे नाटे कदके दिखाई देते हैं। तैसे गणेश देवताको नाटा माने हैं।

और=और तीसरे—

मझोल=मझोला कदके नाटेसे कुछ बड़े कोई देखनेमें आते हैं। तैसे ही स्वामी कार्तिक-को मझोल माने हैं।

चौथे=अब चौथा कोई तो इन सबोंसे विलक्षण मापवाले—

लम्बा=ऊँचा-पूरा लम्बा डिलडौलवाला देहका पतला दिखाई देते हैं। तैसे ही वामन, हनुमान, कृष्ण आदिके शरीर बढ़ानेकी कथा कहते और मानते हैं।

कलोल=वे सब अपने-अपने गढ़न आकार-प्रकार-में सुख, खुशी मानकर विषयोंमें क्रीड़ा, किलोलकर रहे हैं, तथा अवतारादिकोंको वैसे ही मन गढ़न्त आकारका मानकर भक्ति-भावनामें भक्तलोग किलोल करके प्रसन्नता प्रगट—

करै=करते-कराते रहते हैं। बिना विचार॥

व्याख्या— स्थूल शरीरका मुख्य माप या परिमाण (साढ़े तीन ३½) हाथका माना गया है। तहाँ छोटे-बड़े, बालक-जवान, वृद्ध सब ही मनुष्योंके अपने-अपने हाथोंसे अपने देह मापनेसे साढ़े तीन

हाथका ही हो जाता है, ऐसा कहा है। परन्तु, यहाँ हिसाबमें सामान्य गजके मापसे विशेष दृष्टिसे लिया गया है। उसमें कोईका शरीर बवना वा बौना होता है। दूसरेके मापसे बावन (५२) अंगुल के परिमाणवाला उसका शरीर होता है। कोई तो उस बौनेसे कुछ बड़ा, किन्तु, नाटा देहधाला होता है। तथा कोई नाटासे तो कुछ बड़ा, किन्तु, मझोला देहवाला दिखता है। और कोई सबसे लम्बा ऊँचाईमें ज्यादा बढ़ा हुआ देखनेमें आता है। तहाँ कोई मोटे-ताजे हैं, तो कोई दुबले-पतले दिखते हैं। वे सब अपने-अपने देहके गढ़नमें सुख मानकर किलोल कर रहे हैं। वैसे ही उन्होंने उनके देवताओंको भी अपने समान ही आकारवाले माने हैं। वामनको पहले बवना फिर पीछे तीन पैरसे तीन लोक मापनेवाला बड़ा लम्बा माने हैं। फिर नाटामें गणेशजीको स्थूलकाय लम्बोदर, सूँड़वाले माने हैं। तथा मझोलमें उन्हीं गणेशके भाई कार्तिकजीको ठहराये हैं। और लम्बामें विराट पुरुषको तथा कृष्णने अर्जुनको अपना विश्वरूप दर्शन कराया हुआ लिखा है। और हनुमानने लङ्का जातेमें सुरसाके सम्वादमें शरीर बढ़ाते गये, ऐसा मानके वर्णन किया है। उन्हींकी उपासना-भक्ति करनेमें भक्तलोग कल्पनामें किलोलकर रहे हैं ॥ ३१२ ॥

४. कर्म धर्म मत त्रिगुण राज ❀ शम दम दण्ड विभेद समाज ॥ ३१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कर्म=अष्ट प्रतिमा पूजादि कर्म मार्ग है। यह रजोगुण करके होता है।

धर्म=भक्ति और योगके अङ्ग धर्मका मार्ग है। यह सत्त्वगुण करके होता है। और—

मत=तमोगुण करके ब्रह्मज्ञानका अद्वैतमत विज्ञान मार्ग माने हैं। तैसे ही—

त्रिगुण=संसारमें रज, सत, तम, या काम, क्रोध, मोह, यह त्रिगुणका ही व्यवहार प्रपञ्च फैला हुआ है।

राज=राज्य व्यवस्था सुदृढ़ रीतिसे कायम रखनेके लिये राजाओंने चारसाधन या नियम बना रखे हैं। सो—

शम=शान्तिसे आपसमें समझौता या सन्धि-पत्र दृढ़ करना कहा गया है; इसे सामनीति माना है।

दम=अगर शत्रु कमजोर हुआ, तो उसे दबा देना। यदि बलवान् दिखपड़ा, तो उसे रुपया, कर, हर्जाना देके मिलाप करना, ऐसे दम वा दाम नीतिसे बर्तते हैं। फिर—

दण्ड=समयपर शत्रुको पकड़के गिरफ्तार करना, कैद करके दण्डरूपमें दुःख देनेका बर्ताव करते हैं। और

विभेद=चौथा कूट नीतिमें जासूस या सी० आई० डी०के गुप्त चर लगाके शत्रुपक्ष-मेंसे भेद लेकर फूट डाल देना वा भेद करा-देना; ऐसे राजालोग करा देते हैं।

समाज=राज समाजोंमें यह चार कूट नीतिका बर्ताव करके अन्य राजा या प्रजा समाजों-को वशकर काबूमें रखनेकी यह चाल या चालाकी राजनीति कहलाती है। वैसे ही योगी लोगोंमें भी माने हैं॥

व्याख्या— कर्ममार्ग, उपासनामार्ग, ब्रह्मज्ञानका मार्ग तथा विषय भोग त्रिगुणके मार्गमें सब ज्ञानी, अज्ञानी लगे हैं। और राजाओंने राज समाज तथा प्रजाओंको सुव्यवस्थितरूपसे नियन्त्रणमें रखनेके लिये— साम, दाम, भेद तथा दण्ड, ऐसे चार तरहसे कूट नीति अपनाये हैं। उसमें साम=शान्तिसे समझौता या सन्धि-मिलाप कर लेना होता है। दाम=दमन करना या रुपयादि देके मेल करना होता है। भेद=शत्रुपक्षके गुप्त चरसे गुप्त भेद पाकर नाश करदेना या फूट करा देना होता है। और दण्ड=शत्रुको पकड़कर कठिन दण्ड वा दुःख देना, सो दण्ड नीति कहा है ॥ ३१३ ॥

५. सम समान दम निग्रह जान ❀ विराग विचार साधन पहिचान ॥ ३१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सम समान=सो वही परमार्थ मार्गमें ऐसा कहा है कि— 'सम' कहिये मनको समान रीतिसे विषयोंकी तरफसे हटा करके ध्यानमें

स्थिर रखना।

दम निग्रह=दम उसको कहते हैं कि, दशों इन्द्रियोंको बलपूर्वक दबायके दमन करते हुए विषयोंसे रोक रखना, काबू करना—

जान=ऐसा माने हैं, सो जानिये।

विराग=और इसलोकसे ब्रह्मलोक तकके सुख-भोगोंसे दृढ़ वैराग्य रखना, यह वैराग्य-का दण्ड माने हैं। इसे योग दण्ड भी कहते हैं।

विचार=यह विभेदकी जगहमें है। तहाँ संसार-से मनको छुड़ाके ज्ञानमें लगाना, आत्मा, अनात्माका विचार करना कहा है।

साधन=ऐसे चार नीति राजाओंमें और चार साधना- योगी-ज्ञानियोंमें माने हैं। सो साधन-चतुष्टय सम्पन्नको ब्रह्मज्ञानका अधिकारी माने हैं।

पहिचान=ऐसा समझकर पहिचानकर लीजिये॥

व्याख्या— वैसे ही योगी, ज्ञानियोंने भी उसे शम, दम, दण्ड, विभेदरूपमें चार साधनोंकी नीति अपनाये हैं। सो कैसे कि— पञ्च विषयोंकी तरफसे मनको खैंचके समान रीतिसे ध्यानमें स्थिर रखना, सो 'शम' है। दशों इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटायके दबाना वा काबू करना, सो 'दम' है। दृढ़ वैराग्य धारण करना, सोई 'दण्ड' कहा है। और संसारसे छूटकर ज्ञानमें लगनेका विचार करना, सो 'विभेद' माने हैं। यही यहाँपर ज्ञानके साधन चतुष्टय पहिचान लीजिये!॥ ३१४॥

६. कर्म समाधि अजके होय * धर्म समाधि विष्णु है सोय॥ ३१५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कर्म=जप, तप, उपवास, तीर्थ, व्रत, तपस्यादि कर्म साधना करते हुये—

समाधि=आधि कहिये दुःखोंको मिटायके मन, बुद्धिको स्थिर करना, सो कर्म समाधि कहलाता है।

अजके होय=यह ब्रह्मा रजोगुणी कर्ममार्गी लोगों-के मत-सिद्धान्त या मानन्दी दृढ़ हुआ है।

धर्म=वैसे ही नामस्मरण, ध्यान, सगुण-निर्गुण उपासना नवधाभक्ति आदिको धर्म मानकर वही साधना करते हुये—

समाधि=मनोवृत्तिको एकाग्र करके दुःख निवृत्ति करना या ध्यानमें स्थिर होना। यह—

सोय=मत या सिद्धान्त सोई उपासना मार्गकी दृढ़ता, धर्म समाधि है। उसको—

विष्णु है=विष्णुने माना है। अथवा उपासक भक्तलोगोंने विष्णुकी भक्तिको ही श्रेष्ठ मानन्दी किये हैं॥

व्याख्या— कर्म करते-करते वृत्तिको स्थिर करना, सो कर्म-समाधिको ब्रह्मा या कर्मी-लोगोंने माने हैं। भक्तिरूप धर्म करते-करते मनको स्थिर करना, सो धर्म-समाधिको विष्णु या उपासक लोगोंने माने हैं॥ ३१५॥

७. सहज समाधि शिवके भेव * तीनिउ कला विराजै देव॥ ३१६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सहज=सहज-ही-सहज राजयोग, सांख्ययोग वा हठ योगादि अष्टाङ्ग योग साधना करके आकाशवत् प्रकाशरूप ब्रह्म मानना और—

समाधि=वृत्तिको शून्य करके योग द्वारा सहज समाधि लगाकर शून्यमें गाफिल रहना—

भेव=भेद-अभेद सब भावको मिटाय देना, यह मर्म या भेद वा सिद्धान्त—

शिवके=तमोगुणी महादेवकी मानन्दी है। तथा वही मत योगी लोगोंका है।

तीनिउ कला=वेदके तीन मार्गरूप कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड (योगकाण्ड) और ज्ञान-काण्ड, यह तीनोंकी भिन्न-भिन्न कला या भाग मार्गोंमें—

देव=ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीन देव तथा उन्होंके अनुयायी त्रिगुणी मनुष्य उनको ही सुख देनेवाले देवता मानकर उसी तीन तरहके—

विराजै=कर्म, धर्म, योगमें ही विराजमान रहते भये। ऐसे वे अपने राजरूप मनुष्यपदसे भ्रष्ट होके राजहीन हो चौरासी-योनियोंमें ही जाके देह धर-धरके वहीं पड़े रहते हैं। बिना पारख॥

व्याख्या— योग साधना करके शून्य वृत्ति करना, सो सहजसमाधि शिव या योगियोंने माने हैं, यही तीनोंका भेद है। ऐसे तीन कलामें तीनदेव विराजे हैं। परन्तु, पारख विना जड़ाध्यासी होकर मनुष्य पदसे छूटकर वे पशु आदि चार खानियोंमें जाके विराजमान हुए और हो रहे हैं ॥३१६॥

८. षटका षट मुनि करैं विचार ❀ जुगतावैं बिन्दु द्वय सार ॥ ३१७ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेबकहते हैं—हे सन्तो !

षटका=मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त, ये षट्शास्त्रोंका या षट्जापोंका तथा षट्सिद्धान्तोंका और षट्-षट् भागोंका—

षट मुनि=जैमिनि, कणाद, गौतम, पतञ्जली, कपिल और व्यास, ये छै मुनियोंने तथा षट्दर्शनके लोगोंने अपने-अपने मत-सिद्धान्त सत्य होनेका—

करैं विचार=सोच-विचार निश्चय किये वा करते भये या कररहे हैं।

सार=फिर उन्होंने सार सिद्धान्त अन्तमें दो तरहसे कहा है। सो प्रथम—

बिन्दु=निराकार आकाशवत् शून्य सो बिन्दु ब्रह्म माने हैं। अथवा भग बिन्दु और मस्तक बिन्दु इसी दो को सार कहा है।

द्वय=और दूसरा द्वैतरूप जगत् पसारा अलग माने हैं। ऐसे ब्रह्म-जगत् दो पदार्थ कोईने माने हैं, तो कोई दोनोंको एकमें ही मिलायके—

जुगतावैं=युक्ति पूर्वक अद्वैतरूप एक ब्रह्म ठहराते हैं, योग-भोग दोनों दो तरफ जुगताते हैं ॥

व्याख्या— संसारमें षट् शास्त्रोंका षट् मुनि कर्त्ता भये; वे अलग-अलग छैः तरहके सिद्धान्तोंका विचार किये हैं, अभी वही पण्डितलोग विचार करते हैं। तथा षट्दर्शनके मतवादी लोग, अलग ही छै जापादिकी मानन्दी करके और उसका भी उन्होंने विचार किये हैं वा कर रहे हैं। आखिरमें सार यही निकाले कि, जगत् और ब्रह्म यही द्वैत वा अद्वैतरूपमें ठहराकर युक्ति-प्रयुक्तिसे निरूपण किये हैं; अथवा प्रथम बिन्दु ब्रह्म है, द्वितीय बिन्दु वीर्य है। संसार खानीमें विषयानन्दका अच्छा माना है, तथा वाणीमें ब्रह्मानन्दको श्रेष्ठ सार कहा है। 'भग' और 'ब्रह्म' सोई बिन्दु द्वय सार माने हैं ॥३१७॥

९. मीमांसा कर्म ही परधान ❀ वैशेषिक सो समय बखान ॥ ३१८ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यहाँ उन्होंके सिद्धान्त भी कहते हैं—

मीमांसा=प्रथम जैमिनि मुनिने मीमांसा शास्त्र बनायके उसमें मुख्य सिद्धान्त—

कर्म ही=कर्म करके ही उत्पत्ति, पालन, प्रलय, होता है। कर्मानुसार ही सुख-दुःख फल भोग होता है। इससे 'कर्म' यही ब्रह्म है।

परधान=ऐसा कर्मको ही प्रधान या सर्वश्रेष्ठ माने हैं। दूसरा—

वैशेषिक=कणाद मुनिने वैशेषिक शास्त्र बना करके मुख्य सिद्धान्त—

सो=सो उसमें उन्होंने—

समय=समय पायके सब काम होते हैं, इससे काल वा समय ही ब्रह्म माने हैं। और—

बखान=समय ब्रह्म ठहरानेके लिये बहुत विस्तारसे युक्ति वर्णन किये हैं ॥

व्याख्या— मीमांसा शास्त्रमें कर्मको ही प्रधानरूपसे ब्रह्म माना है। वैशेषिक शास्त्रमें काल वा समयको ही मुख्यरूपमें बखान करके सो समयको ही ब्रह्म माना है ॥ ३१८ ॥

१०. न्याय एक कर्त्ता लौलीन ❀ पातञ्जल योग कला परवीन ॥ ३१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

न्याय=तीसरा गौतम मुनिने न्यायशास्त्रकी रचना करके उसमें मुख्य करके—

एक कर्त्ता=कोई एक जगत्का कर्त्ता सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको कल्पनासे सत्य मानकर—

लौलीन=उसीमें प्रीति या प्रेम लगा करके लवलीन हुए हैं। अर्थात् न्यायवादी एक कल्पित कर्त्ता ईश्वर मानकर भ्रमसे उसीमें

लौलीन हुए हैं।

पातञ्जल=चौथा शेषका अवतार माने गये पतञ्जलि मुनिने योगशास्त्रको बनायके उसमें मुख्य सिद्धान्त—

योग कला=योग साधनोंसे कला-कौशलकी प्राप्ति तथा योग कलासे ही ज्योतिरूप ब्रह्मका दर्शन होता है, ऐसा माने हैं।

परवीन=इसप्रकार प्रवीण, चतुर, बुद्धिमान् श्रेष्ठ कहलानेवाले योगीलोगोंने कल्पना किये हैं॥

व्याख्या— न्यायशास्त्रमें कल्पनासे एक कर्त्ता ईश्वरको ही मुख्य मानकर उसीमें लौलीनतासे प्रेम लगाकर धोखेमें पड़े हैं। प्रवीण योगीलोगोंने पातञ्जलशास्त्रमें योग कलाको ही श्रेष्ठ प्रकाशरूप परमात्मा माने हैं॥ ३१९॥

११. नित्यानित्य सो सांख्य दृढ़ाय * पूरण कहै वेदान्त बुझाय॥ ३२०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सांख्य=पाँचवाँ कपिल मुनिने सांख्यशास्त्र बनायके—

सो=सो उसमें मुख्य सिद्धान्त—

नित्यानित्य=अविनाशी असङ्ग ब्रह्म पुरुष नित्य-सत्य स्वरूप है और माया प्रकृतिका कार्य जगत् नाशवान् वा अनित्य-असत्य है। ऐसा मानकर यह मत—

दृढ़ाय=अपने दृढ़ किये हैं और दूसरोंको भी दृढ़ाये हैं।

वेदान्त=और छठवाँ व्यासजीने वेदान्तशास्त्रको बनायके उसमें मुख्य सिद्धान्त—

पूरण=परिपूर्ण चराचर व्यापक "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ऐसे अद्वैत एक ब्रह्म ही सत्य है, कहिके—

बुझाय=उसका वार्ता युक्ति-प्रयुक्तिसे दूसरोंको समझाय-बुझायके—

कहै=कहा है। सोई वेदान्तीलोग सब कहते हैं वा कह रहे हैं॥

व्याख्या— सांख्यशास्त्रमें नित्यानित्यका विचार, यानी पुरुष नित्य तथा माया प्रकृति अनित्य, ऐसे विवेक करनेको कहा है। सोई बात दृढ़ाया है। और सबके बाद अन्तमें बुझाय या समझायके वेदान्त शास्त्रवादी कहते हैं कि— एक ही अद्वैत ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण है; और द्वैत प्रपञ्च कहीं कुछ भी है ही नहीं। जो दिखता है, सो मिथ्या भ्रान्ति मात्र है, ऐसा कहा है॥ ३२०॥

१२. सतयें भक्ति अनन्य अकाम * साँच समान विशेषी नाम॥ ३२१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सतयें=अब सातवाँ मत या सिद्धान्त—

भक्ति=भक्त लोगोंका भक्तिमार्गमें नवधा भक्ति-भाव करके—

अकाम=जगत् माया कामनासे रहित, कोई एक परमेश्वर मुक्ति दाता है—

अनन्य=वह एक ईश्वर ही पुरुष है, हम सब नारी हैं, ऐसा मानके एकत्वरूपमें भक्ति-भाव करके प्रेमसे ईश्वररूपमें ही एक होके मिल जाना चाहते हैं। अथवा ईश्वरसे न्यारा कोई वस्तु नहीं है, वह सर्व व्यापक है, एक है, ऐसा माने हैं।

साँच=सत्य परमेश्वर जो है, सो—

समान=सामान्यरूपसे आकाशवत् सर्वत्र जगत्-में परिपूर्ण भरा है।

नाम=हरि, कृष्ण, राम, परमात्मा, इत्यादि ऐसे नाम स्मरण करके प्रेमी भक्तलोग जब पुकारा करते हैं, तब—

विशेषी=साकार दशअवतारादिके विशेषरूपमें वही प्रगट होके दर्शन देता है। भक्तोंको उबारके दुष्टोंका समूल संहार करता है। ऐसा भक्तलोगोंने कल्पना किये हैं॥

व्याख्या— सातवाँ भक्त लोग एक ईश्वर वा रामको ही सत्य मानते हैं। वे कहते हैं कि- सर्व-श्रेष्ठ एक परमेश्वर ही है, उससे न्यारा श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। उसे एक स्वामी मानकर उसीमें मिल जानेके लिये नवधा भक्ति करते हैं। और कहते हैं कि- समानरूपसे सत्य परमेश्वर सबमें सर्वत्र भरा है। जब भक्तलोग प्रेमसे ईश्वरका नाम स्मरण करते हैं, तब ईश्वर "भक्त प्रेम वश परगट होई"

इसीसे "राम न सकई नाम गुण गाई" नाम स्मरणके प्रताप या शक्तिसे तो भगवान्का आसन ही हिल जाता है। फिर दश वा चौबीस अवतारादिमें कोई भी साकार अवतारमें विशेषरूपसे प्रगट हो दर्शन देकर भक्तोंके दुःख हरण तथा दुष्टोंके नाश करण करते हैं, इत्यादि भक्त वैरागियोंने कल्पना किये हैं। अर्थात् भक्तलोग ईश्वरकी अनन्य भावसे भक्ति करते हैं, तहाँ 'साँच' समानरूपसे, और विशेषरूपसे नाम-स्मरणको श्रेष्ठ माने हैं ॥ ३२१ ॥

१३. जगत कला जो है विस्तार * गाय गाय सो कहै विचार ॥ ३२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जगत कला = संसारमें कल्पना करके चौबीस अवतारादिको किसीने सत्य माने हैं। वैसे ही जगत्के नाना मत, नाना सिद्धान्तादि गुरुवा लोगोंने बनायके—

जो = जो कि १८ पुराण, ६ शास्त्रादिमें—

विस्तार = वाणी कल्पनाका पसारा या मत-मतान्तरोंका विस्तार किये हैं, सो भ्रमपूर्ण-

है = धोखा ही खड़ा हुआ है।

गाय गाय = षट्दर्शनोंके गुरुवा लोगोंने वही वाणी गाय--गायके सुनाये या उपदेश किये वा कर रहे हैं।

सो = सोई अविचारी जन गाय--गायके धोखा धारमें बहे वा बह रहे हैं।

कहै = सो उन्होंका मत-सिद्धान्त संक्षेपमें मैं यहाँ-पर कुछ कह देता हूँ वा लिखता हूँ, सो सुनिये !:—

विचार = सत्य न्यायसे विचारकरके परख लीजिये !

व्याख्या— जगत्में ईश्वरीय कला माने हुए चौबीस अवतारादिके लीला वर्णन पुराणादिमें जो विस्तार किये हैं; सोई भक्तजन गाय-गायके कीर्तन करके उसीसे स्वर्ग जानेका और मुक्त होनेका विचार करते हैं। अथवा जगत्में वाणी कल्पना फरके मनुष्योंने नाना मतके अनेक सिद्धान्त आदिका कला-कौशल जो कहे हैं, या लिखे हैं, सोई अन्य मनुष्य विचार करने लगे; तो उसे ही सत्य मानने लगे। परन्तु, पारखदृष्टिके बिना अनुमान, कल्पना उन्होंके समझनेमें नहीं आई। सो उनमेंसे कुछ मतके सिद्धान्त यहाँपर संक्षेपमें दरशादेते हैं। उसको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे विचार करके परखना चाहिये ॥ ३२२ ॥

१४. अस्थूल पाँच तत्त्वको जान * अष्टम मता इहै परधान ॥ ३२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

पाँचतत्त्व = उनमें कोई भौतिक वादी पाँच तत्त्वों-के सम्बन्धसे ही कार्यरूपमें अनेक जीवोंकी उत्पत्ति और नाश होना मानते हैं, वैसे ही-

अस्थूल = स्थूलाकार शरीरको ही सत्य मानके शरीरसे भिन्न और कोई जीवको नहीं मानते हैं; और—

को = देहको ही अपना स्वरूप करके—

जान = मानते हैं; विषयभोगको ही पुरुषार्थ समझते हैं। वे पञ्च विषयोंमें आसक्त अभिमानी बने पड़े हैं; सो जानिये !।

अष्टम मता = यही आठवाँमत नास्तिक, वाममार्गी, तत्त्ववादी पामर भौतिक-वादियोंने दृढ़ करके माने या पकड़े हैं।

इहै = वे मूढ़लोग यही नास्तिक मतमें लगके भोग-विलासको ही—

परधान = मुख्यतया प्रधान, बड़ा या श्रेष्ठ करके मानते हैं ॥

व्याख्या— कोई षट्दर्शन तथा भक्तोंसे भिन्न चार्वाकोंके नास्तिकमत वहाँपर आठवाँ निकाले हैं। उसमें स्थूल पाँच तत्त्वोंको ही सब कुछ जानते हैं। कहते हैं-पाँचतत्त्वोंके परमाणु समूह ही जीव है। जैसे अनाज सड़ानेसे शराब बनके उसमेंसे एक प्रकारका नशा पैदा हो जाता है, तथा चूना और हल्दी मिलानेसे लाली हो जाती है, वैसे ही पाँचतत्त्व परस्पर मिलनेसे स्थूल शरीर तथा जीव दोनों बन जाते हैं; नाश होनेपर फिर वे उसीमें मिल जाते हैं। इससे वास्तवमें पाप-पुण्य कुछ भी नहीं है। विषय भोगना ही परमपुरुषार्थ है, इत्यादि कथन किये हैं। मैं स्थूल शरीर ही हूँ। ऐसे माननेवाले बुद्धिहीन नास्तिक तथा वाममार्गीलोगोंने उसीको प्रधान करके माने हैं। बिना विवेक वे

भूलमें ही पड़े हैं ॥ ३२३ ॥

१५. व्यापक एक एकहि मान * भिन्न भिन्न कोई करै बखान ॥ ३२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

एक = कोई एक मतमें या वेदान्त सिद्धान्तमें—

व्यापक = चराचरमें व्यापक एक अद्वैत ब्रह्मको ही सत्य कहा है। तथा—

एकहि = ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, सबका सम्बन्ध और सबका भेद कहते हुए भी अन्तमें सब एक ही ब्रह्ममें अद्वैत है—

मान = ऐसा मिथ्या कल्पना करके माने हुए हैं। और—

कोई = कोई मतवादी तो—

भिन्न = अद्वैतसे भिन्न द्वैतवाद न्यारा ही मानते हैं। वे कहते हैं—

भिन्न = ईश्वर भिन्न है, जीव भिन्न है, सातस्वर्ग तैंतीस करोड़ देवता न्यारे-न्यारे हैं। यहाँ-पर कर्म-धर्म करनेसे उन ऊपरके लोकोंमें जाके बड़ा सुख भोग मिलता है, इत्यादि नाना

करै बखान = कल्पित वाणीका बयान खूब बढ़ायके किये या कर रहे हैं ॥

व्याख्या— उनमेंसे कोई एक वेदान्तीलोग कहते हैं कि- जगदाधार परब्रह्म एक ही व्यापक है। नानात्त्व देखना भ्रम है। वेदान्तमें जो षट् पदार्थ अनादि माना है, सो शान्त है। और ब्रह्म अनन्त होनेसे सबमें भरा हुआ अद्वैत, एक है; ऐसा कल्पना करके माने हैं। और कोई द्वैतवादी कहते हैं, कि— एक ईश्वर ही सबका स्वामी है, दूसरा जीव सेवक है, सो दोनों भिन्न-भिन्न हैं, वे कभी एक हो नहीं सकते हैं। ईश्वरकी भक्ति करनेसे जीव स्वर्गादि सुख और मुक्ति सुखका फल पायेंगे। सात स्वर्ग ऊपरमें हैं, तीन लोकोंमें तैंतीस करोड़ देवताएँ हैं, उनकी भक्ति करनेसे स्वर्गादि सुख मिलता है, इत्यादि प्रकारसे वर्णन करके न्यारा-न्यारा द्वैतमत कोई बखान करते हैं, इस प्रकारसे यह सब अनुमान-कल्पनामें ही भूले पड़े हैं ॥ ३२४ ॥

१६. पृथिवी सनातन काहु विचार * स्वयं शिला ताहि अनुहार ॥ ३२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

काहु = किसी योगी लोगोंने, ऐसा माने हैं कि-

पृथिवी = स्थूल-सूक्ष्माकार पृथ्वी तत्त्व यही सबका अधिष्ठानरूप आधार जन्म-भूमिका माता है, तथा परमात्मा परमपिता स्वरूप है या पृथ्वीके गन्धवत् ब्रह्म है।

सनातन = सोई एक अनादि अविनाशी सर्वाधार है वा पृथ्वी ही सनातन है—

विचार = सो जड़-चैतन्य दोनोंका मूल कारण है, ऐसा विचार करके योग समाधि लगाने-से मुक्ति माने हैं।

स्वयं शिला = और चन्द्रमुक्त स्वयं शिलाका बड़ा भारी एक पत्थर आशमानके ऊपरमें मानकर जैनीलोग—

ताहि = उसी मुक्ति शिलाको कल्पना करके—

अनुहार = ध्यान करते हैं, तथा सूक्ष्मरूपसे वहाँ जाके मुक्त होना चाहते हैं। यह जैनी लोगोंका निश्चय है ॥

व्याख्या— कोई मूर्ति पूजकोंने पृथ्वीको अनादि सत्य मानकर जड़ पत्थरकी मूर्तिको ही श्रेष्ठ ईश्वर या देवता समझकर अनेक तरहसे पूजा करने-कराने लगे हैं। अथवा योगीलोगोंने पृथ्वीको ही सनातन ब्रह्म अधिष्ठान मानकर मुक्तिके लिये पृथ्वी तत्त्वका ही विचार करने लगे। फिर कोई जैनियों-ने सात आसमानोंके ऊपर एक बड़ाभारी लम्बा-चौड़ा चन्द्रमुक्त शिला ठहराकर, सूक्ष्म मार्गसे वहाँ-पर पहुँचकर मुक्ति होनेका कल्पनासे निश्चय किये हैं ॥ ३२५ ॥

१७. काहू नीर बीज परवान * अनल ज्योति कोइ लावै ध्यान ॥ ३२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

काहु = कोई नास्तिक मतवादियोंने ऐसा माने हैं कि—

नीर = बाहर गङ्गा, यमुनादिके पानीमें स्नान, सन्ध्या, परिक्रमा करनेसे मुक्ति होगी, ऐसा माने हैं। कोईने सोई—

बीज = नीररूप बीज देहमें वीर्यको श्रेष्ठ ब्रह्म या बिन्दु ब्रह्म या वीर्य ही जीवका स्वरूप

है, ऐसा—
परवान = अनुमान-प्रमाण करके मिथ्या धोखामें पड़े हैं या ऐसा मानते हैं।
कोइ = और कोई ध्यानी, भक्त, योगी लोग तो
लावै ध्यान = आखें मूँदके ध्यान लगाते-लगाते मनोवृत्ति स्थिर तथा वायुका घर्षण होनेसे मनकी भावना एकाग्र होनेपर भीतरमें—
अनल = धधकती हुई अग्नितत्त्वके समान या सूर्यवत्—
ज्योति = तेजतत्त्वका ज्योति प्रकाश कई तरहसे दिखाई दिया। उसीको ब्रह्म-ज्योतिका दर्शन हुआ समझके उसीसे मुक्ति मानते हैं॥

व्याख्या— किसीने गङ्गादि नदियोंके स्नानसे मुक्ति होनेका विचार किया है। तो किसीने पानीरूप वीर्यको ही चेतन जीव या ब्रह्मरूपमें कथन करके प्रमाण किया है। ये सब नास्तिक मतवादी ही बने हैं। क्योंकि, वीर्यको चेतन मानकर भोग-विलासमें पशुसे भी ज्यादा आसक्त रहना, इन्होंका काम है; और कोई ध्यान लगाते हैं, तहाँ नाद-बिन्दका घर्षण होनेसे अग्नितत्त्वका ज्योति प्रकाश ध्यानमें दिखाई देता है। उसे देखकर भ्रमिकोंने उसीको अपना या ईश्वरका स्वरूप मानकर महान भ्रम-चक्र धोखेमें पड़े हैं, बिना विचार॥ ३२६॥

१८. कोई लखावै ख्याल बतास * शून्य धून्ध कोई लावै श्वास॥ ३२७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कोई = स्वरोदयज्ञान साधन करनेवाले कोई-कोई लोग तो कहते हैं कि—
बतास = वायुरूप श्वास या प्राणवायुमें ही लक्ष्य जोड़नेसे, और—
ख्याल = उसमें ख्याल या ध्यान करनेसे पाँच तत्त्वोंके नाना रूप, रङ्ग, आकार-प्रकार आदि
लखावै = लखनेमें या देखनेमें आता है। इससे ज्ञान स्वरोदय ही सच्चा मार्ग है, ऐसा उन्होंने माने हैं। वे श्वासको ही जीव कहते हैं।
कोई = और कोई योगाभ्यासी लोग तो—
श्वास = प्राणायामादि क्रियासे श्वास वायुको ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर—
लावै = लय या स्थिर निरोध करके लक्ष्य उसीमें लगाते हैं, तब—
शून्य = सब वृत्ति शून्य होके निर्विकल्प शून्य समाधि लगाकर—
धून्ध = बेभान, गाफिल, जड़वत् पड़े रहते हैं। उसीको वे लोगोंने मुक्ति स्थिति माने हैं॥

व्याख्या— कोईने तो स्वरोदय ज्ञानके विचारसे श्वास वायुमें ही ख्याल करके भीतर अनेक रङ्ग-रूप देखकर उसीको ईश्वरका स्वरूप समझकर माने हैं। और कोई श्वासवायुको लय करके फिर उसी शून्यरूप अन्धाधुन्धमें प्रीति लगाते हैं, तो उसीको ही निर्विकल्प ब्रह्म स्थिति मानते हैं। इस-प्रकार बिना पारख धोखा-कल्पनामें ही वे लोग भूले पड़े हैं॥ ३२७॥

१९. वैयाकरण शब्द परचण्ड * ग्रह आदिक जोतिष ब्रह्मण्ड॥ ३२८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

वैयाकरण = और कोई व्याकरण शास्त्रोंके कर्त्ता पाणिनीय आदि कहते हैं कि—
शब्द = ॐकाररूप शब्द, ध्वनि, वर्ण, मात्रादि यही आदि-अन्त-मध्यमें एक ही प्रणवब्रह्म है। ऐसा—
परचण्ड = तीक्ष्ण या तीव्र वेगवान् गतिसे वाणीकी कल्पना किये हैं।
ज्योतिष = वैसे ही ज्यौतिषशास्त्रके कर्त्ता भास्कराचार्यादि ज्योतिषीलोग कहते हैं कि, ज्यौतिषशास्त्रका विचारसे—
ब्रह्मण्ड = समस्त बाह्य ब्रह्माण्डोंका हाल पूर्ण-रूपसे जाननेमें आ जाता है। तथा—
ग्रह आदिक = सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणादि एवं पृथ्वीरूप भूगोल तथा खगोल नव-ग्रहादि सबका ठीक-ठीक गतिका पता ज्यौतिष द्वारा चलता है। सो ज्योति-स्वरूप ईश्वरसे ही यह शास्त्र प्रगटा है, ऐसा कल्पनासे माने हैं॥

व्याख्या— फिर व्याकरणवाले शब्दको ही श्रेष्ठ मानकर शब्दको ब्रह्मरूपमें प्रचण्ड रूपसे ठहराये

हैं। और नवग्रह ब्रह्माण्ड आदिका गणित विचार द्वारा ज्योतिषीलोग ज्यौतिषशास्त्रसे विचार करके मनन किये, तो उसीको ही उन्होंने श्रेष्ठ माने हैं ॥ ३२८ ॥

२०. कोई अस्थूल करै विश्वास ❀ कोई स्वतः पद थीर बतास ॥ ३२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेबकहते हैं—हे सन्तो !

कोई=और कोई तमोगुणी दानवलोग तो—

अस्थूल=मैं मोटा हूँ ! मैं पतला या दुबला हूँ ! रूप या कुरूप हूँ ! ऐसा मानके स्थूल शरीरको ही अपना सत्य स्वरूप चैतन्य जीव है—

विश्वास=ऐसा निश्चयसे दृढ़ विश्वास या यकीन—

करै=किये या करते-कराते हैं। और—

कोई=कोई दरवेशादिलोग तो—

थीर बतास=समानवायु या समाधिमें श्वासरूप वायु स्थिर होकर रुकजानेको वा बाहरके थीर बतासको ही—

स्वतः पद=स्वयं चैतन्य जीव या ब्रह्म वा खुदाकी मुक्तपद स्थिति मानते हैं। यह सब बेपारखियोंकी कल्पना है, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— कोई मूढ़लोग नाशवान् स्थूल शरीरको ही अपना स्वरूप मानकर विश्वास किये या करते हैं। कोई वायु स्थिर होनेको वा समानरूपसे रहा हुआ पवनको ही स्वतःपद ब्रह्म मानकर निश्चय किये हैं। बिना पारख ऐसे सब भूले पड़े हैं ॥ ३२९ ॥

२१. कोई स्वर्गादि निश्चय करै ❀ सातों सात भाँति अनुहरै ॥३३०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कोई=कोई कर्मकाण्डी पौराणिकलोगोंने ऊपरमें—

स्वर्गादि=भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोकादि ऊपर आकाशमें सत्यलोक आदि कईलोक-लोकान्तर अनुमान करके—

करै=तीर्थ, व्रत, तपस्या, पूजादि नाना कर्म करते हैं। इसके प्रतापसे मरनेपर उस लोकोंमें जायके खूब सुख भोगेंगे, इत्यादि धोखेका ही, भ्रम-भूलसे—

निश्चय=निश्चय करके विश्वास किये हैं या कर रहे हैं। इसप्रकारसे स्वर्गादि सातों लोकोंका, सात तरहसे कथन किये हैं। अथवा—

सातों=उपरोक्त षट्शास्त्रवादी और सतयें भक्तजन या षट्दर्शनवाले तथा नास्तिकवादी मिलाकर यह सातों, अथवा पौराणिक, व्याकरण, ज्योतिष और चारवाक, ये सातों ही—

सात भाँति=सात प्रकारसे न्यारा-न्यारा अपना-अपना मत, पन्थ, ग्रन्थ फैलायके—

अनुहरै=उसी भावनाको मनमें सूक्ष्मरूपसे निश्चय करके चले और चल रहे हैं ॥

व्याख्या— कोई-कोई तो ऊपरमें सत्यलोक, स्वर्ग लोकादि सातलोक मानकर यहाँ पुण्य कर्म करके वहाँ जाकर सुख भोगनेका निश्चय करते हैं। ऐसे सातऋषि, सातमार्ग, सातस्वर्ग, षट्दर्शन और नास्तिक समेत् सात पन्थीलोग तथा षट्शास्त्री और भक्तलोग, अथवा ज्योतिषी, व्याकरणी, पौराणिक, तत्त्ववादी, देहवादी, वीर्यवादी, और शून्यवादी, ऐसे सात-सात भाँतिसे निश्चय करके अलग-अलग मार्गसे चल रहे हैं ॥ ३३० ॥

२२. कोई समुझै निश्चय ज्ञान ❀ पचीस समस्त मता पहिचान ॥ ३३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कोई=और कोई भ्रमिक ब्रह्मज्ञानीलोग तो ज्ञान-विज्ञानकी धारणा करके—

समुझै=भलीभाँति अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी प्रक्रिया जान-बूझ समझके—

ज्ञान=उसी ब्रह्मज्ञानके निश्चयसे "अहंब्रह्मास्मि" कहके अपनेको विदेहमुक्त ही होनेका—

निश्चय=निश्चय या विश्वास कर लिये हैं। सो ऐसे निश्चय कर रहे हैं।

पचीस=पाँचतत्त्वकी पचीस (२५) प्रकृतियोंके समान ही संसारमें या अकेले भारतवर्ष

मात्रमें ऊपर कहे हुए पचीस (२५) तरहके—

समस्त=सम्पूर्ण मुख्य-मुख्य प्रधानरूपसे—

मता=मत-पन्थोंके पचीस (२५) सिद्धान्त प्रगट हुए हैं।

पहिचान=सो सबोंको पारखहीन भ्रमिकलोग ही जानिये या सत्सङ्ग द्वारा उनके मतोंको अच्छी तरहसे पहिचानिये ! ॥

व्याख्या— कोई तो ब्रह्मज्ञान समझने मात्रसे या "अहंब्रह्मास्मि" कहनेसे सहज ही मुक्ति होनेका निश्चय कर लिये हैं, कोई साधारण ज्ञान समझकर कल्याण होनेका निश्चय करनेवाले होते हैं। ऐसे सब मत मुख्यतया पचीस (२५) हुए हैं, सो एक तत्त्वमें पाँच प्रकृतिके हिसाबसे पाँच तत्त्वोंमें पचीस (२५) प्रकृति बनायके माननेके समान ही एक कल्पनासे पचीस मत-पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त भिन्न-भिन्न फैलाये हैं। ऊपर संकेत आये हुए पचीस (२५) मतोंके नामः— १. कर्म समाधि। २. धर्म समाधि। ३. सहजसमाधि। ४.-९. षट्शास्त्रोंका मत। १०. भक्तिमार्ग। ११. तत्त्ववाद। १२. व्यापकवाद। १३. एकदेशीयवाद। १४. पृथ्वीवादी योगी। १५. जैनी। १६. वीर्यवादी। १७. ज्योतिवादी-जङ्गम। १८. स्वरोदयवादी। १९. शून्यवादी। २०. व्याकरण-शब्दवादी। २१. ज्यौतिषवाद। २२. देहवादी। २३. पवनवादी-दरवेश। २४. सातस्वर्गवादी-पौराणिक। और २५. ज्ञानमार्ग। ऐसे सब पचीस (२५) मत प्रगट हुए हैं, सो पहिचान कर लीजिये। सो वे सबको सत्य ज्ञान पारख न होनेसे भ्रम-चक्रमें ही पड़े हैं, ऐसा यथार्थ पहिचान लीजिये ! ॥ ३३१ ॥

२३. ताके शाखा भये अनेक ❀ अद्बुद पन्थ सब करें विवेक ॥ ३३२ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

ताके=उन पचीस मतवादियोंके—

शाखा=शास्त्र, वाणी या डालीरूप भिन्न-भिन्न उनमेंसे निकले हुए मत-मतान्तर, पन्थ-पन्थाई और भी शाखा-प्रशाखाएँ—

अनेक=अनेकों कई तरहोंके विस्तार—

भये=होते भये हैं या हुए हैं। ऐसे हजारों मत-पन्थ संसार भरमें होके फैले हुए हैं, सो—

अद्बुद=बेबुद्ध आश्चर्यरूप, पारखहीन लोगोंने निकाला हुआ—

पन्थ=सब मार्ग या उन्होंने निकाले हुए सब पन्थ जीवोंको भटकानेवाला ही बना है। परन्तु—

सब=सब कोई मनुष्योंको श्रीसद्गुरुके—

विवेक=पारख दृष्टि या विवेक न होनेसे वे सब-कोई उसीका ही विचार-मनन या विवेक करके—

करें=दृढ़ निश्चयकिये या करते हैं वा कररहे हैं ॥

व्याख्या— अब उन मतवादियोंकी कल्पनाके बढ़ावासे भिन्न-भिन्न अनेक शास्त्र बने तथा शाखा-परशाखा विभिन्न सम्प्रदायोंके न्यारे-न्यारे झोपड़े कई एक भेद होतेहुए अनेकों जञ्जाल प्रपञ्चका विस्तार होते भये हैं। वह सब मत-पन्थ आश्चर्यरूप बेबुद्ध या विचित्र ही बने हैं। परन्तु, सब कोई उसीका ही विवेक या विचार करते हैं, उसीका मिथ्या पक्ष हठतासे पकड़ते हैं। सत्यासत्यसे निर्णय करके पारख दृष्टिका विवेक तो वे कोई करते ही नहीं हैं। इससे उन्होंका धोखा भी नहीं छूटता है। अतः कल्याण-हित चाहनेवाले जिज्ञासु नरजीवोंको उन सबोंका पक्ष छोड़कर पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गकर सत्य निर्णयसे भेद समझना चाहिये ! सारग्राही, विवेकी होना चाहिये ॥ ३३२ ॥

साखीः— पचीस डार परपञ्च है ❀ समस्त मूल सो एक ॥
[२२] अद्बुद रङ्ग तरङ्ग है ❀ पन्थिक पत्र अनेक ॥ ३३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पचीस डार=उपरोक्त पचीस प्रकारके मत, पचीस तरहके सिद्धान्त, तथा पचीस प्रकृतियाँ आदि सब डालीके समान निकले हैं; उसीमें—

परपञ्च है=नाना कल्पित वाणीके व्यवहार साधनादिका जो प्रपञ्च फैला है, सो छोटी-छोटी डालीवत् बने हैं—

समस्त=उन समस्त प्रचलित मत-पन्थ,

ग्रन्थादियोंके—
मूल=मूल कारण या मुख्य जड़रूप मूल—
सो एक=सोई जीवोंकी एक कल्पना, एक कर्त्ता, परमेश्वरादि ब्रह्मरूपी भ्रम है। सो एक बीजसे ही यह अनेकमत फैले हुए हैं। और—
अनेक=अनेकों मतवादी भ्रमिक नरजीव उसमें-
पन्थिक=नाना पन्थ या मार्गोंसे चलनेवाले पथिक या राहगिर हो-होकर—
पत्र=पत्तेके माफिक यत्र-तत्र छितराये हुए वासनामें डोल रहे हैं।
अद्‌बुद=वह आश्चर्यरूप बेबुझ वा बुद्धिको हीन करनेवाला उन सब—
रङ्ग=मतोंके नशाके, विचित्र प्रकारसे मनुष्योंपर रङ्ग चढ़ गये हैं वा नशारूपी रङ्ग चढ़ रहा है।
तरङ्ग है=उसका वेग या लहरीका तरङ्ग बड़ा प्रबल है। नरजीवोंको धक्का देकर चौरासी योनियोंमें फेंक देता है, इससे उसे परखके अभी छोड़ देना चाहिये॥

व्याख्या— जैसे एक वृक्ष होता है, तो उसका जड़ तो जमीनमें गड़ा रहता है, उसके ऊपर बड़ी डालें-छोटी डालें तथा पत्ते वगैरह बहुत लगे रहते हैं। वैसे ही सिद्धान्तमें- संसार यही समूहरूपमें एक वृक्षरूप है। पाँच तत्त्व तथा देहधारी अनन्त जीव उसके मूलरूप जड़ हैं। पच्चीस प्रकृतियाँ आदि शरीरमें डाली निकली हैं। तथा उन्होंके विषय छोटी डगालियाँवत् हैं। शरीरके समस्त कार्य एक जीवकी सत्तासे ही चलते रहते हैं। कर्मकर्त्ता तथा विषयभोक्ता जीव अनेक पत्रके समान इच्छारूपी पवनमें हिल-डुल रहे हैं। उस वासना वायुका वेग तीव्रतासे बह रहा है। विषय वासनाके रङ्गकी तरङ्गें बड़ी विचित्र प्रकारसे उठती जाती हैं। उसी धारामें पत्ते टूटके नदीमें बह जानेकी नाईं सब प्राणी भी निजपदसे टूट-छूटके खानी-वाणीकी धाराओंमें पड़कर बहे और बहे जा रहे हैं; चारखानीमें पड़कर अपने-अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं॥ और वाणी भागमें- सब मुख्य पचीस (२५) प्रकारके मतवाद भये हैं, सो उनके नाम इस प्रकार हैं, सुनिये !:— १. अद्वैतवाद (शङ्करादि)। २. द्वैतवाद (माधवादि)। ३. विशिष्टाद्वैतवाद (रामानुजादि)। ४. कर्मवाद (जैमिनि)। ५. कालवाद (कणाद)। ६. ईश्वर- कर्त्तावाद (गौतम)। ७. योगवाद (पतञ्जलि)। ८. सांख्यवाद (कपिल)। ९. ब्रह्मवाद-शुद्धाद्वैत (व्यास)। १०. निराकारवाद (ब्रह्मचारी-ब्राह्मण)। ११. अहंब्रह्मवाद (संन्यासी-दत्तात्रेय आदि)। १२. वायुवाद (दरवेश)। १३. पृथ्वीवाद योगी)। १४. चन्द्रमुक्त स्वयं- शिलावाद (जैनी)। १५. महदाकाशवाद (जङ्गम)। १६. पौराणिक-स्वर्गवाद। १७. ज्ञानस्वरोदयवाद। १८. शब्दवाद (व्याकरणी)। १९. ज्यौतिषवाद। २०. चार्वाक नास्तिक तत्त्ववाद। २१. शून्यवाद (बौद्ध)। २२. वीर्यवाद (नास्तिक विषयी)। २३. देहवाद (भौतिकवादी पाश्चात्य) २४. भक्तिवाद (भक्तवर्ग-वैरागी)। और २५. खुदावाद (इसलामी वा मुस्लिम)। इस प्रकारसे ऐसे पच्चीस (२५) मतवाद सब मोटी-मोटी डालीके समान उत्पन्न हुए हैं, उन्होंके वाणीका व्यवहार प्रपञ्च सोई छोटी-छोटी डालियाँवत् लगे हैं। उस समस्तका मूल एक कल्पना या कर्त्ता पुरुष जीवसे बना है। और नाना मार्गोंसे चलनेवाले अनेक मनुष्य पत्रके तद्वत् भये हैं। तथा उसके आश्चर्यरूप कल्पनाके रङ्ग वा नशाकी तरङ्ग अत्यन्त प्रबल होके बहने लगी है। उसीमें पारखहीन मनुष्य जड़ाध्यासी हो-होके बहे और बह रहे हैं, जिससे चौरासी-योनियोंके आवागमनके चक्रमें पड़के बड़े दुःख भोगी हो रहे हैं, नष्ट-भ्रष्ट हुए वा हो रहे हैं। अतएव उससे बचावा या हित चाहनेवाले मनुष्यों-को पारखी साधु गुरुके शरण-सत्सङ्ग करके उन सबोंके कसर-खोटको परखकर उनके पक्ष तथा अध्यासोंको शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये। तभी निजस्थिति पासकेंगे, यह भावार्थ है॥ ३३३॥

सम्बन्ध— यहाँसे चौकड़ी १ से १८ तक सत्रहवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये !॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ सप्तदश खण्ड ॥ १७ ॥ ❀ ॥

१. सन्धि अव्यक्त अण्ड परकाश * परकाशिक परकाश विलास॥ ३३४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इस खण्डमें अध्यासी नरजीवोंने एक-दो

से लेके अनेकों तक माया-प्रकृतिके अङ्ग भाग पिण्ड--ब्रह्माण्डमें जो मानन्दी किये हैं, सो संक्षेपमें यहाँ बताकर दरशाते हैं, सो सुनिये ! प्रथम—

अव्यक्त=मन, बुद्धि, वाणीसे व्यक्त वा प्रगट न हो सके, उनसे परे अद्वैत निरञ्जन परमात्मा कोई अव्यक्त है, ऐसा—

सन्धि=मनसे मानन्दी या कल्पना दृढ़ करके फिर उसी सन्धिमें जुट गये। और—

अण्ड=ॐकाररूपसे वह ब्रह्म पिण्ड और ब्रह्माण्डमें एक समान पूर्ण भरा हुआ अण्डाकार है। तथा—

परकाश=सम्पूर्ण जगत्को उजियाला करके प्रकाश करनेवाला वही परमेश्वर सत्य है। ऐसी वाणी कल्पनाका प्रकाश या फैलावा गुरुवा लोगोंने किये हैं।

परकाशिक=और देहादिको सत्ता देकर सुन्दर-रूपसे ज्ञानका प्रकाश करनेवाले तो चेतन जीव हैं। परन्तु, पारख स्थितिके विना वे नरजीव सब भ्रमसे दूसरा ही—

परकाश=कोई आनन्द प्रकाशरूपमें ब्रह्मको मानकर या विषयोंको सुख मानकर वही खानी-वाणीके ही विषयोंके प्रकाशमें मगन होकर उसीमें—

विलास=क्रीड़ा विलास करते भये। और विलास करनेकी चाहना या इच्छा करने लगे, विना पारख॥

व्याख्या— एकसे अनेक कैसे भया ? पूर्वके मनुष्योंने सो कैसे माने हैं, उसका विवरण इस खण्डमें होता है। पारखहीन अबोध नरजीवोंने भ्रम-चक्रमें पड़कर नाना वाणी कल्पनाका प्रकाश किये हैं। वे ही गुरुवा कहलाये या कहलाते हैं। ऐसे भ्रमिक गुरुवा लोगोंने पहले मन-मानन्दी दृढ़ करके अव्यक्त, अवाच्य, निरञ्जन ब्रह्म ॐकारस्वरूप सर्वत्र प्रकाशरूपसे भरा हुआ व्यापक ठहराये हैं। प्रकाशिक जीव उसी मानन्दीमें भूलकर फिर क्या ठहराये कि, प्रथमारम्भमें वह कत्ता ब्रह्म असन्धिरूपमें अकेला था, कुछ काल बादमें ब्रह्मको जगत् प्रकाश करके विलास करनेकी स्फुरणा-खड़ी भई, अर्थात् अव्यक्त अण्डरूप ब्रह्मकी सन्धिमेंसे प्रथम स्फुरणाका प्रकाश हुआ; फिर, वही स्वयं प्रकाशिक ब्रह्म निज प्रकाशमें ही विलास करने लगा; इत्यादि प्रकारसे भ्रमिक मनुष्योंने कल्पना करके मानन्दी किये हैं॥ ३३४॥

२. दुतिया द्वैत इच्छा सो नार * तीन अङ्ग अज हरिहर सार॥ ३३५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

इच्छा सो नार=तत्पश्चात्, इच्छारूपी चाहना जो उठी, सोई नारी मायाके सङ्गमें ब्रह्मका विलास हुआ। अथवा स्त्रीके सङ्गमें पुरुषका प्रत्यक्ष सम्भोग हुआ।

दुतिया द्वैत=ऐसे ब्रह्म-माया, स्त्री-पुरुष, एकसे दो-दो का भाग सब निकलता गया, सो अद्वैत छूट कर द्वैत खड़ा हुआ। फिर—

तीन अङ्ग=माया, ब्रह्मके संयोगसे तीन स्वभाव-के लड़के मायासे पैदा होकर उसकी गोदमें खेलने लगे। उनके नाम—

अज=पहला लड़का ब्रह्मा, रजोगुणी हुआ।

हरि=दूसरा लड़का विष्णु, सत्वगुणी हुआ। और—

हर=तीसरा लड़का महेश, तमोगुणी हुआ, ऐसे तीन पुत्र उत्पन्न होते भये।

सार=ॐ, राम, सोहं, इसीको सार मानके वे तीनों लोग जपने-जपाने लगे। उसी कल्पना-में योगी, ज्ञानी, भक्तादि सब ही भूले पड़े हैं। अर्थात् दूसरी द्वैत इच्छारूपी नारीसे तीन अङ्गमें तीन पुत्र पैदा भये। यही माया-ब्रह्म मिलनेका सार निकला, जिससे सारा संसार उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा है॥

व्याख्या— तब उसीकी इच्छासे सोई आदिमाया नारी दूसरे रूपमें प्रगट होकर खड़ी भई; ऐसे ब्रह्मरूप पुरुष और मायारूप स्त्री दोनोंके रूपमें द्वैत होकर उन दोनाका परस्पर प्रेम-आकर्षणसे सम्बन्ध स्थापित होकर भोग-विलास हुआ। तब उस मायाके गर्भसे ब्रह्मा, विष्णु, और महेश, ये तीन पुत्र उत्पन्न होकर उस मायारूप माताकी गोदमें तीनों खेलने लगे। इन्हीं तीनोंसे बादमें सारा

संसारकी त्रिगुणी सृष्टि उत्पन्न हुई। ऐसे गुरुवा लोगोंने कल्पना किये हैं। वैसे ही खानीमें देहका प्रकाशिक नर जीवने विषय भोगको सुखरूपमें मानन्दी करके कामेच्छाको प्रकाश करके अण्डरूप वीर्यको उत्तेजित किया, उसको अव्यक्त माना। फिर, मैथुन भोग-विलासकी भावना जागृत हुई, तब विषय भोगकी इच्छासे दूसरी स्त्री को विवाहादि प्रयत्न करके लाया। तब एक पुरुष और एक स्त्री ऐसे दो हुए, सो दोनोंके सम्बन्धसे मैथुन होकर स्त्रीको गर्भ रहा, फिर अवधि पूरा होनेपर रजोगुणी, सत्त्वगुणी, और तमोगुणी, ऐसे तीन प्रकारकी सन्तान पैदा होते भये। ऐसे ही सारा संसारका विस्तार होता भया, और हो रहा है। इस प्रकारसे बाहर तीन देव उत्पन्न भये, सोई देहमें तीन गुण, तीन जाप, तीन ताप आदिका विस्तार माने हैं ॥ ३३५ ॥

३. सनकादिक चारिउ चहुँरूप ❀ भ्राता चारि चतुर्भुज भूप ॥ ३३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सनकादिक = बाहरमें ब्रह्माके मानसिक पुत्र माने हुए— सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, इन चारों भाइयोंको सदा पाँच वर्षके उमरके तद्वत् छोटे-ठिंगनेरूपमें रहते रहे, ऐसा माने हैं।

चारिउ = और देहमें चार अवस्थाको ठहराये हैं।

चहुँरूप = चार रूपमें स्थूलादि सोई चार देह भी माना गया है।

भ्राता चारि = तैसे बाहरमें चार भाई राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको श्रेष्ठ माने हैं। देहमें प्रध्वंसा, प्राग, अनन्य तथा अत्यन्ता, यह चार अभावको माने हैं।

चतुर्भुज = फिर चार हाथ वाले माने हुए विष्णु-को चतुर्भुज कहा है, और देहमें चार जाप कहा है। सो ॐ, राम, सोहं, रंरं वा अनहद नादका जाप माने हैं।

भूप = राजाके समान श्रेष्ठ शक्तिशाली यहाँपर सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य यह चार मुक्तिका सुख कहा है ॥

व्याख्या— ब्रह्माके मनसे सर्व प्रथम उत्पन्न हुए माने गये सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, इन चारोंको बाल-ब्रह्मचारी सदैव पाँच वर्षके इतने बड़े वा छोटे आकारमें रहे वा वैसे रहने वाले माने हैं। तैसे ही देहमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरिया, ये चार अवस्था तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, ये चार देहोंके चार रूप माने हैं। और दशरथ राजाके चारपुत्रः— राम, भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न, ये चार भाइयोंमें घनिष्ठ प्रेम रहा कहा है। सो देहमें चार अभाव माने हैं। और चार हाथवाले विष्णुको बाहरमें तीन लोकके राजा माने हैं। तैसे देहमें चार जाप, चार मुक्तिको श्रेष्ठ माने हैं ॥ ३३६ ॥

४. शङ्ख चक्र गदादिक चार ❀ पाँचों पण्डौं पाँच विचार ॥ ३३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

शङ्ख = पाञ्चजन्य नामका शङ्ख बाजा ऊपरके बायाँ हाथमें लिये रहते हैं।

चक्र = सुदर्शनचक्र दाहिना हाथमें रहता है।

गदादिक = कौमोदकी गदा नीचेका बायाँ हाथमें और पद्म या कमल नीचेका दाहिना हाथमें धारण किये रहते हैं। यही चार आयुध या शस्त्रादि चार चिह्न विष्णुके चारों हाथोंमें रहते हैं, ऐसा माने हैं।

चार = तैसे ही यहाँ देहमें परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी, यह चार वाचा ठहराये हैं। और—

पाँचों = पृथ्वी, जलादि पाँचतत्त्व देहमें कहा है, वैसे ही बाहरमें—

पण्डौं = युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, तथा सहदेव, ये पाण्डुके क्षेत्रज पाँच पुत्र, पाँच पाण्डवके नामसे प्रख्यात हुए हैं।

पाँच = वैसे शरीरमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, इन पाँच विषयोंको ठहराया है।

विचार = जैसे पाँच पाण्डव कृष्णके विचार या सलाहमें लगकर ही चलते थे। वैसे मनके विचारमें जीव सब भी पञ्च विषयोंके मार्ग भोगोंमें ही चले जाते हैं। सो अच्छी तरहसे विचार कर लीजिये ॥

व्याख्या— शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ये विष्णुके चार हाथोंमें रहनेवाले चार आयुधको उत्तम माने हैं। वैसे ही देहमें चार वाचाको उसके स्थानमें ठहराये हैं। फिर, बाहर पाँच पाण्डवोंको कृष्णके विचारमें चलनेवाले माने हैं। तैसे ही देहमें पाँच तत्त्व, पाँच अन्तःकरण, ज्ञान इन्द्रियादि पञ्चक, पञ्च-विषयादिमें सुख भोगनेके विचारसे जीव सब चल रहे हैं। इन सबोंका सत्यासत्य विचार अच्छी तरहसे सत्सङ्ग द्वारा करलेना चाहिये ॥ ३३७ ॥

५. चतुरानन पञ्चानन भेव * षटमुख कार्तिक नाना देव ॥ ३३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! और सुनिये !:—

चतुरानन = ब्रह्माण्डमें बाहर चार मुखवाले ब्रह्मा भये है, ऐसा माने हैं। वैसे ही देहमें चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कार, ये चार मुखकी जगहमें कहा है।

पञ्चानन = फिर पाँचमुखके माने हुए महादेव बाहर ब्रह्माण्डमें कहा है। वैसे ही, देहमें पाँच अभिमान माने हैं।

भेव = प्रथम ब्रह्माण्डमें कल्पना करके फिर पिण्डमें घटाना, यही इसका भेद है।

षटमुख कार्तिक = छैः मुखवाले कार्तिककुमारको बाहरमें माने हैं; वैसे ही शरीरमें षट्कर्म यजनादि, षट्ऊर्मि जन्मादि, षट्पशुधर्म छाजनादि, ऐसे समस्त षट्-षट् अङ्गोंका विस्तार भया है।

नाना देव = और भी तैंतीसकोटि नाना तरहके देवता बाहर-भीतरमें माने हैं, अर्थात् दो, तीन, चार, पाँच, छः, ऐसे नाना मुखके बाहर नाना देवता मुख्य-मुख्य माने हैं। वैसे शरीरमें भी नाना तरहसे मुख्य-मुख्य भागका वर्णन करके कहा है ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंने विचित्र-विचित्र प्रकारसे मनमानी वैसी कल्पना किये हैं। उसमें एक मुखके विष्णु, चार हाथवाले कहा है। दो मुखोंके अश्व। तीन मुखोंके दत्तात्रेय। चार मुखोंके ब्रह्मा, चार हाथवाले। पाँच मुखोंके महादेव, चार हाथवाले। छैःमुखोंके कार्तिक कुमार। सात मुखोंके सूर्यका घोड़ा, तथा सप्त ऋषि आदि। आठ मुखोंका अष्टवसु और अगास्त। नव मुखोंके नव दुर्गा, नवनाथ आदि। दश मुखोंके रावण, ग्यारहवाँ मुख रावणके सिरके उपर ही गधेका मुख माने हैं। एकादश रुद्र, बारह मुखमें द्वादश आदित्य इत्यादि। सहस्र मुख शेषनागके। अनन्त मुखके विराट भगवान् ऐसी-ऐसी कपाल कल्पत वाणी, गपोड़शङ्ख गुरुवालोगोंने पुराणमें वर्णन करके लिख रक्खा है। सो भ्रमको परखानेके वास्ते ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर उन्होंकी मानन्दी दिखाकर शरीरमेंके भागको भी घटाकर दरशा दिया है, और सत्य-असत्यको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें विचार करके जानलेना चाहिये। अब पदका अर्थ सुनिये !:—

व्याख्या— चार दिशामें-चार मुखवाले ब्रह्माजीको चतुरानन कहते हैं। वैसे देहमें चित्त, बुद्धि, मन, अहङ्कारको चार मुख ठहराये हैं। तथा पाँच मुखवाले महादेवको पञ्चानन कहते हैं। देहमें विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्म और निरञ्जन, ये पाँच अभिमानको पाँच मुख ठहराये हैं। यही इसका भेद है। और छैःमुखके कार्तिकको माने हैं। सो देहमें षट्पशुधर्म, षट्ऊर्मि आदि अनेक षट्-षट्का अङ्ग माने हैं। और नाना देवताओंको यहाँ नाना रोम-कूप नस-नाड़ी आदिकी जगहमें माने हैं ॥ ३३८ ॥

६. छौ चकवे छौ मुनि परवान * सप्त ऋषि सो सात गुमान ॥ ३३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

छौ चकवे = बाहर पूर्वमें छौ चक्रवर्ती महाराजे हुए कहा है:— नहुष, शिवि, मान्धाता, सुहोत्र, मरुत और पृथुको माने हैं। और देहमें मूलाधारसे लेकर त्रिकुटी स्थानतकके माने हुए षट् कमलको कहा है। और—

छौ मुनि = जैमिनी आदि षट्शास्त्रोंके षट् आचार्य भये हैं, और देहमें षट्चक्रोंके छैः देवताको माने हैं।

परवान = ऐसे सब गुरुवालोगोंने प्रमाण करके माने हैं। तथा—

सप्त ऋषि = कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, जमदग्नि और विश्वामित्र, ये सात ऋषि हुए माने हैं; और सात धातु स्थूलदेहमें माने हुए हैं।

सो सात गुमान = सोई सात महाबीज-मन्त्रोंमें ॐ, श्रीं, ररं, सों, ऐं, ह्रीं, क्लीं, का जाप करते हैं, उसीका अभिमान करते हैं, देहमें कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, उत्पत्ति, पालन, प्रलय, यह सात कर्मोंका गुमान धारण-किये हैं॥

व्याख्या— वैसे ही छौ चकवे—[दोहाः—"पृथु सुहोत्र तीसर शिवि, नहुष मरुत ये पाँच ॥ मान्धाता छठवाँ कह्यो, चक्रवर्ती भौ साँच ॥"] ऐसे छैः चक्रवर्ती महाराजे प्राचीन कालमें बाहरमें हुए माने हैं। देहमें, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनहद, विशुद्धि और आज्ञाचक्रको षट्चक्र ठहराये हैं। और छौ मुनि— जैमिनी, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, कपिल और व्यासको कहा है। देहमें, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शारदा, महाविष्णु, ये षट्चक्रोंके देवता माने हैं। सप्तऋषि— कश्यपादिको पूर्वोक्त प्रकारसे कहा है। देहमें— हाड़, मज्जा, नाड़ी, रक्त, मांस, त्वचा, राम, ये सप्तधातुको ठहराये हैं। और सात गुमानः— ॐ, श्रीं, ररं, सों, ऐं, ह्रीं, क्लीं, ये सप्तबीज-मन्त्रोंके अभिमान लेते हैं। देहमें, कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, उत्पत्ति, पालन, प्रलय, यह सात कर्मोंका अभिमान गुरुवालोगोंने धारण किये हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ३३९ ॥

७. अठयें कुम्भज करे विलास * नवें नाथ नौ अङ्क नेवास ॥ ३४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अठयें = अष्टसिद्धि, अष्टाङ्गयोग, अष्टप्रतिमा पूजादि और आठवाँ यहाँ—

कुम्भज = घड़ासे उत्पन्न हुए अगस्त्य मुनिको माने हैं। तथा देहमें सब वायु इकट्ठा करके श्वास ऊपर चढ़ाके रोकना, सो उसे कुम्भक क्रिया कहा है।

करे विलास = योगीलोग श्वासवायुको ब्रह्माण्डमें चढ़ायके कुम्भकसे रोककर समाधिमें आनन्द विलास करते हैं।

नवें नाथ = नववाँ, नौ नाथ गोरखादि बाहरमें भये हैं, तथा देहमें हस्तिनी आदि नौ नाड़ियोंको ठहराये हैं।

नौ अङ्क = एकसे नौ तककी गिनतीमें हिसाब होता है, सोई देहमें—

नेवास = नौ द्वारके स्थानमें निवास माने हैं। इसीमें बासा किये वा कर रहे हैं॥

व्याख्या— इसमें अगस्त्य मुनिको आठवाँ, घड़ासे उत्पन्न कुम्भज ऋषि माने हैं। वैसे ही अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वाशित्वका अष्ट सिद्धि माने हैं। उसकी प्राप्तिके वास्ते अष्टाङ्ग योगादि साधनाएँ करते हैं। कोई, अष्ट प्रतिमा—धातु, पाषाण, काष्ठ, मिट्टी, काँच, रती, चित्र, भीत या पीढ़ापर चन्दनसे लिखी हुई मूर्तिकी पूजा करते हैं। अथवा देहमें कुम्भज कहिये प्राणायामकी कुम्भक क्रिया द्वारा सब वायुका एकत्र करके रोकना तथा ब्रह्माण्डमें वायुको चढ़ाकर उसीमें योगीलोग विलास करते हैं। नववाँ नौ नाथः— मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, चपटनाथ, मङ्गलनाथ, चम्बानाथ, प्राणनाथ, घध्यूनाथ, गोपीनाथ, ये नौ नाथोंको सिद्ध माने हैं। वैसे ही देहमें, पयास्विनी, गन्धारी, हास्तिनी, कुहू, शाङ्खिनी, गणाशना, वारुणी, अलम्बुषा, ये नव नाड़ियोंको प्रधान माने हैं। नौ अङ्कः— १। २। ३। ४। ५। ६। ७। ८। ९, तककी गिनती किये हैं। देहमें नव द्वार दो कानोंके छिद्र, दो नेत्रोंके छिद्र, दो नासिकाके, छिद्र, मुख, लिङ्ग, गुदा, यह तीन मिलायके नव (९) माने हैं। और नवरस, नौखण्ड, नवधाभक्ति, नवग्रह, नौनिद्धि, नवकोश, नवव्याकरण, इत्यादि नौ-नौ अङ्कोंकी मायाका बहुत ही भेदसे विस्तार हुआ है॥ ३४० ॥

८. दश अवतार एकादश नार * वाक्य द्वादश तिलक अनुहार ॥ ३४१ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

दश अवतार = मच्छ, कच्छादि दश अवतार बाहर ठहराये हैं। तथा देहमें दश इन्द्रियोंको माने हैं।

एकादश नार=वैसे ही और एकादश रुद्र तथा एकादशीका व्रत माने हैं। देहमें, दश इन्द्रियोंके मालिक मनको ठहराये हैं।

वाक्य द्वादश=वेदके बारह महावाक्य या अवान्तर द्वादश वाक्य माने हैं।

तिलक=वैसे ही देहमें द्वादश तिलक देहकी बारह जगहोंमें लगाते हैं। जैसे, नासिका, कपाल, मस्तक, गला, दोनोंकान, दोनोंहाथ, छातीपर दोनोंतरफ, नाभि और पीठपर तिलक लगाते हैं।

अनुहार=यह सूक्ष्मरीतिसे सब नरजीवोंकी कल्पनाका विस्तार है, ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— दश अवतारः— मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बौद्ध और निष्कलंकी, यह गुरुवा लोगोंने माने हैं। वैसे ही देहमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलायके दश इन्द्रियोंको माने हैं। और दशमुद्रा, दशअनहद, आदि दश-दशका भाग भी बहुतसा हुआ है। एकादश रुद्रः— वासुकी, कपाली, त्र्यम्बक, महावीर, कपर्दी, मृग, व्याध, बहुरूप, हरिरैवत्, वीरभद्र और वृषशम्भुको कहा है। एकादशी तिथि सो नारीका व्रत दिन कहा है। देहमें दश इन्द्रियोंके ऊपर ग्यारहवाँ मनको माने हैं। द्वादश अवान्तर वाक्यः— तत्, त्वं, असी। क्षर, अक्षर, निःअक्षर। जहद्, अजहद्, जहदाजहद्। जीव, ब्रह्म, आत्मा। यह चार वेदोंके बारह (१२) अवान्तर वाक्य माने हैं। वैसे ही शरीरमें द्वादश तिलक उपरोक्त प्रकारसे कर्मकाण्डीलोग देहके बारह (१२) स्थानोंपर तिलक लगाते हैं। यह सब स्थूल-सूक्ष्म नरजीवोंकी कल्पनाओंको सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ समझना चाहिये ॥३४१॥

९. निश्चय सोई द्वादश अस्कन्ध * चतुष्ट श्लोकी सोई सन्ध ॥ ३४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

द्वादश अस्कन्ध=भागवत ग्रन्थके बारह स्कन्ध वा प्रकरणरूप भागोंको माने हैं। देहमें दोनों हाथ और दोनों पैरोंके बारह जोड़ोंको माने हैं। बारह अंगुल श्वास पृथ्वी तत्त्वकी कलासे चलनेको कहा है।

सोई=सोई सब बात गुरुवा लोगोंकी कल्पना किये हुए हैं।

निश्चय=सो सब लोगोंने निश्चय करके सत्य माने हैं। और—

चतुष्ट श्लोकी=कहते हैं— पहले विष्णुने चार श्लोकमें भागवत बनाये थे, फिर सो ब्रह्मासे कहा और ब्रह्माने वह चार श्लोक नारदसे कहा, नारदने वही चार श्लोक व्यासजीको दिया।

सोई सन्ध=सोई एकसे चार श्लोक और चारसे बारह श्लोक बनायके उसी श्लोकमें फिर सन्धि मिलायके सब बारह स्कन्ध बनाये, ऐसे बारह स्कन्धका भागवत्का जोड़ व्यासजीने बनाये, ऐसे पण्डित लोगोंने मानन्दी किये हैं ॥

व्याख्या— बाहरमें श्रीमद्भागवत ग्रन्थका द्वादश भाग या प्रकरणरूपमें बारह स्कन्ध निश्चय करके माने हैं कि— 'उसमें लिखी हुई बात सो सब सत्य है, ऐसा निश्चय करना चाहिये' कहते हैं। फिर गुरुवालोगोंने कल्पना किये हैं कि, सबसे पहले विष्णुने अन्तःकरण चतुष्टयसे चार श्लोक निकाले, सोई चतुःश्लोकी भागवत हुआ; फिर विष्णुने वही चार श्लोकका भागवत ब्रह्माको उपदेश दिया, तथा उसे ब्रह्माने सनकादिको, सनकादिने नारदको सुनाया और नारदने उसका उपदेश व्यासको दिया। व्यासने एक-एक श्लोककी सन्धि लेके चार श्लोकका बारह स्कन्धवाला भागवत-ग्रन्थ वृहद्रूपमें बनाय दिये हैं। श्रीमद्भागवत महापुराणमें अठारह (१८) हजार सब श्लोकोंकी संख्या गिनाया है। [भागवत स्कन्ध १२। अध्याय १३।] ऐसी मानन्दी दृढ़ किये हैं। सोई बात अविचारियोंने सत्य माने हैं। अथवा देहमें, दोनों पैरोंमें एड़ी, घुँटना, जाँघके सन्धि लेके छः हुआ। वैसे दोनों हाथोंमें भी छः जोड़ या सन्धियाँ मिलायके सब बारह (१२) भागोंकी सन्धि माना है। सो मानन्दी अभ्याससे ही जीव चार खानियोंमें जाकर बद्ध पड़े हैं ॥ ३४२ ॥

१०. सम्वत् सब द्वादश अस्थूल * तेरह आपै सबनके मूल ॥ ३४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सम्वत्=एक साल या वर्षका सम्वत् होता है, उसमें—

सब द्वादश अस्थूल=सब बारह महीने होते हैं, बारहों महीना एकत्र करके स्थूल या मोटा हिसाबसे एक वर्ष कहते हैं। वैसे देहमें भी बारह अङ्गका भाग मिलकर स्थूलदेह माना गया है।

तेरह=तेरहवाँ सदा एकरस रहनेवाला—

आपै=निरञ्जन परमात्मा या जीव आपै-आप बाकी रहता है।

सबनके मूल=सोई सब पिण्ड-ब्रह्माण्डका मूल कारण है। अन्तमें सबउसीमें लय होकर एक वही रह जाता है। फिर, आदिमें उसीसे उत्पन्न होकर सब प्रगट होते हैं, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या—स्थूलरूपसे बारह महीना मिलायके एक सम्वत् या साल माने हैं। देहमें दश इन्द्रियाँ छाती तथा सिर मिलायके मोटारूपमें स्थूल शरीर सबोंका कहा है। वैसे द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग, बारह इमाम, मुसलमानोंमें इत्यादि बारह अङ्गोंका भाग भी बहुत ही माने हैं॥ और कोईने त्रयोदश गुणका बीड़ा माने हैं। कोईने तेरहवाँ निरञ्जन परमात्माको आप-ही-आप स्वयं माने हैं। कहते हैं कि, उसी निरञ्जनमें ही यह सब सृष्टि प्रलयमें नाश होकर लय हो जावेगा। फिर, उत्पत्तिमें वहींसे निकल कर आ जाता है, ऐसा सबोंके उत्पत्ति-प्रलयका मूलकारण बीजरूपमें उसे कल्पना करके माने हैं॥ ३४३ ॥

११. मनु चौदह सोई विद्या जान * गाँठ अनन्त कला परधान ॥ ३४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

मनु चौंदह=बाहर स्वायंभुव मनुसे लेकर सब चौदह मनु हुए माने हैं, देहमें चौदह देवता ठहराये हैं।

सोई=सो उसीकी मानन्दी करके फिर—

विद्या=ब्रह्मज्ञानादि चौदह विद्याएँ बनाये हैं।

जान=सो सब अनुमान, कल्पनाका विस्तार ही जानिये। सो—

गाँठ=उसीकी गाँठी, सन्धि या मानन्दी दृढ़ करके वाणी जोड़-जोड़ कर—

परधान=नरजीवोंने प्रधान, श्रेष्ठ या मुख्य करके—

अनन्त कला=चौंसठ कलादिसे ले करके अनन्तों कला अनेकों विद्याएँ कल्पना-वाणीका विस्तार कर स्वयं भव-बन्धनोंमें पड़े, और दूसरोंको भी बन्धनमें डाल रहे हैं॥

व्याख्या— चौदह मनुः— १. स्वायंभुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. श्राद्धदेव (वैवस्वत), ८. सावर्णि, ९. दक्षसावर्णि, १०. ब्रह्मसावर्णि, ११. धर्मसावर्णि, १२. रुद्रसावर्णि, १३. देवसावर्णि, और १४. इन्द्रसावर्णि, ऐसे नामसे माने हैं। सो उसी प्रकार चौदह रत्न भी माने हैं। और चौदह विद्या भी जानिये। चौदह विद्याओंके नामः— ब्रह्मज्ञान। रस क्रिया। काव्य। वेद। ज्योतिष। व्याकरण। धनुर्विद्या। जलतरण। सङ्गीत। वैद्यक। अश्वसँवारण। कोक। नाटक-चाटक। चातुरी। इसीका वस्तार भया है। सो वैसे ही देहमें चौदह देवतादि माने हैं। उसकी गाँठी जोड़-जोड़के चौंसठ (६४) कलाएँमुख्य और अनन्त कला कल्पनाएँ प्रधान करके जीवोंने माने हैं। उसी अध्यासकी गाँठी जीवोंके अन्तःकरणमें मजबूत पड़ गयी है। सो बिना पारख नहीं निकलती है या नहीं खुलती है॥ ३४४ ॥

१२. पन्द्रह तिथि पक्ष अनुहार * सोरह सोरह कला विचार ॥ ३४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

पन्द्रह तिथि=परिवा, दुइज (प्रतिपदा, दूज या द्वितिया) आदिसे लेकर पन्द्रह (१५ तिथि बाहर माने हैं। देहमें सो दश इन्द्रियाँ, पञ्च विषय मिलके पन्द्रह (१५) भाग माने हैं।

पक्ष=एक महीनामें दो पक्ष होते हैं, उनमें पन्द्रह (१५) दिनोंका शुक्लपक्ष, पन्द्रह (१५) दिनोंका कृष्णपक्ष माने हैं। वैसे देहमें भी ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ दो भाग कहा है।

अनुहार = उसीके रूपमें यह सूक्ष्म मनसे कल्पना किया गया है, सो विचारिये।
सोरह = सोलहवाँ सोलह १६) स्वर, १६ आनें—
सोरह कला = और चन्द्रमाके सोरह कला, देहमें स्त्रीके सोरह (१६) शृङ्गार माने हैं—
विचार = ऐसा गुरुवालोगोंने विचार किये हैं, उसके अङ्ग सोलहों अङ्गोंको विचार करना चाहिये ॥

व्याख्या— फिर परिवा, द्वितीयादिसे लेकर पूर्णिमा तककी पन्द्रह (१५) तिथियोंको शुक्लपक्ष और अमावस तककी कृष्णपक्ष, ऐसे—१५ + १५ रोजके दो-पक्ष मिलायके एक महीना माने हैं। सोई सूक्ष्म रीतिसे देहमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ, तथा पञ्च विषय मिलाके पन्द्रह (१५) माने हैं। तथा द्रव्यमें पन्द्रह दोष कहा है। सोलहवाँमें १६ स्वर, १६ चन्द्रकी कला, रुपयामें १६ आनें, स्त्रीके १६ शृङ्गार आदि अनेकों जाल बने हैं; सब जीव जिसमें पड़के गाफिल होके सोये रहते हैं, सोई सोरहों कलाका मजबूत बन्धन हुआ है। सो उसे परखना चाहिये ॥ ३४५ ॥

१३. सत्रह जाल भागवत सार ❀ हरि पुराण अठारह भार ॥ ३४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

भागवत सार = सारा भागवत यह सत्रहवाँ वाणी जाल है। अथवा— भागवतके सार सिद्धान्त सूक्ष्म परमात्मा मुक्तपद सगुण, निर्गुणरूपमें सत्य है। उसीको गुरुवालोगोंने—
सत्रह जाल = सत्रहवाँ सत्य रहनेवाला सिद्ध किया है, सो सत्रहवाँ वाणीका जाल कल्पना मात्र है। देहमें दश इन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन, बुद्धि मिलाके सत्रह (१७) तत्त्वोंके सूक्ष्मदेह कहा है। और—
हरि = विष्णुके चौवीस (२४) अवतारोंके लीला वर्णनादिके विस्ताररूप विष्णुपुराण समेत्—
पुराण = और अठारह पुराण बनाये हैं।
अठारह भार = और ब्रह्माण्डमें सब वनस्पति घास, वेलि, वृक्ष, गुल्म, लतादि मिलायके पृथ्वीके सब अंकुर अठारह (१८) भार वनस्पति ठहराये हैं। तथा ४ वर्ण, ४ आश्रम, ४ सम्प्रदाय, और छः दर्शन मिलायके कहा है। सो अठारह प्रकारके भार भ्रमके बोझा वाले ही भये हैं ॥

व्याख्या— सत्रहवाँ वाणीका जो जाल है, सो भागवतका सार सिद्धान्त सूक्ष्म परमात्मा मुक्तपद ठहराये हैं। देहमें सत्रह तत्त्वोंका सूक्ष्म देह— पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पञ्चप्राण, मन और बुद्धि मिलायके भी माने हैं। और 'हरिपुराण' कहिये विष्णुके अवतारोंकी लीला वर्णन किया हुआ भाग विष्णु पुराण सहित मुख्य अठारह पुराण बनाये हुए हैं। उसमें सब कल्पनाके बोझा लादा गया है। उन अठारह (१८) पुराणोंके नाम इस प्रकार कहा है:— १ ब्रह्मपुराण, २ पद्म, ३ विष्णु, ४ शिव, ५ भागवत, ६ नारद, ७ मार्कण्डेय, ८ अग्नि, ९ भविष्य, १० ब्रह्मवैवर्त, ११ लिङ्ग, १२ वराह, १३ स्कन्ध, १४ वामन, १५ कूर्म, १६ मत्स्य, १७ गरुड़, और १८ ब्रह्माण्ड पुराण, ऐसे १८ माने हैं। वैसे ही अठारह वर्णोंके गुरु ब्राह्मणको— चार वेद, षट् नित्यकर्म, चार वर्ण, और चार आश्रम मिलायके श्रेष्ठ माने हैं। तथा अठारह भार वनस्पति— वृक्ष, लता, घास, वेलि, गुल्मादि पृथ्वीपरके सब अंकुर मिलायके माने हैं। और षट्दर्शन चारवर्ण, चार आश्रम, चार सम्प्रदाय, मिलायके इसको भी अठारह (१८) भारका मत कहते हैं ॥ ३४६ ॥

१४. सप्तश्लोकी गीता होय ❀ अध्याय अठारह जानों सोय ॥ ३४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गीता = भगवद्गीतामें सारांश भाग—
सप्तश्लोकी = सात ही श्लोकोंमें कहके समाप्त किया है। सोई सप्तश्लोकी गीता कहा है। अथवा सब भगवद्गीतामें सात सौ (७००) श्लोक आया है, इससे उसे सप्तशती गीता भी कहते हैं।
होय = यह कृष्णकी, अर्जुनको महाभारतके समयमें, कही हुई वाणी व्यासने श्लोकोंमें लिखा है; ऐसा माने हैं।

सोय = उस श्रीमद्भगवद्गीताके—
अध्याय = विभाग, प्रकरण या अध्याय—
अठारह = सब अठारह भाग तक विभक्त भया है।
जानों = इस गीताको गुरुवालोगोंने सर्वश्रेष्ठ उपनिषदोंका सार माने हैं, ऐसा जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— कहते हैं कि, पहले श्रीमद्भगवद्गीता सात ही श्लोकोंमें बना था। जिसको सप्तश्लोकी गीता कहते हैं। फिर कृष्णजीने उसी सात श्लोककी व्याख्या करके सब सात सौ (७००) श्लोकोंमें अर्जुनको महाभारत युद्धके प्रारम्भमें गीता कहकर सुनाया था। सो गीता अठारह अध्यायोंमें विभक्त किया गया है, सब उपनिषदोंका सारांश गीताको माने हैं, सो जानिये ! ॥ ३४७ ॥

१५. एकईस ब्रह्माण्ड विचार ❀ तत्त्व सोई चौबीस अवतार ॥ ३४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

एकईस = पिण्ड और ब्रह्माण्डमें सब एकईस—
ब्रह्माण्ड = ब्रह्माण्ड या खण्ड माने हैं। जैसे सात स्वर्गलोक, सात मृत्युलोक और सात पाताललोक मिलायके बाहरमें एकईस (२१) कहा है। तथा देहमें पीठ पीछेका मध्य मेरुदण्डकी हाड़की नलीमें एकईस (२१) मणका या हाड़की चौखुटी गुरियाँ लगी हैं। सोई उसको एकईस (२१) ब्रह्माण्ड या स्वर्ग माने हैं।
विचार = ऐसा गुरुवालोगोंने निश्चय करके विचार किये हैं।
तत्त्व सोई = चौबीस (२४) तत्त्वका स्थूल-सूक्ष्मदेह कहा है। दश इन्द्रियाँ, पाँच विषय, पाँच प्राण, अन्तःकरण चतुष्टय संयुक्त चौबीस (२४) माना गया है। सोई बाहरमें—
चौबीस अवतार = मच्छ, कच्छादि दश मुख्य अवतार और दत्तात्रेय, व्यास, कपिल, हयग्रीव आदि और चौदह मिलायके सब चौबीस (२४) अवतारोंको माने हैं॥

व्याख्या— स्वर्ग, मृत्यु, पातालमें सात-सात लोक मानकर तीनोंमें एकईस (२१) ब्रह्माण्ड गिनाये हैं। सो एकईस (२१) ब्रह्माण्डको बनाकर चलानेवाला कोई कर्त्ता परमात्मा होना चाहिये, ऐसा सोचकर, उसका विचार गुरुवालोगोंने किये हैं। तथा देहमें पीठ पीछेकी मेरुदण्ड नामक हाड़की नलीमें एकईस (२१) मणकाको ही एकईस (२१) स्वर्ग योगियोंने माने हैं। और देहमें चौबीस (२४) तत्त्व हैं, सोई चौबीस (२४) अवतार बाहरमें माने हैं। पन्द्रह तत्त्वोंका स्थूल देह तथा नौ तत्त्वमें पञ्चप्राण, चार अन्तःकरणका सूक्ष्म देह दोनों मिलायके चौबीस (२४) तत्त्वका पूरा शरीर माने हैं। और चौबीस (२४) अवतारोंके नाम ये हैं:— १ मच्छ, २ कच्छ, ३ वराह, ४ नरसिंह, ५ वामन, ६ परशुराम ७ राम, ८ कृष्ण, ९ बौद्ध और १० निष्कलंकी, ये १० को मुख्य माने हैं। और ११ दत्तात्रेय, १२ व्यास, १३ कपिल, १४ हयग्रीव, १५ पृथु, १६ जड़भरत, १७ ऋषभदेव, १८ सनकादि, १९ मनु, २० बद्री, २१ धन्वन्तरि, २२ हंस, २३ नारद और २४ मोहिनी, ऐसे १४ गौण और मिलायके सब चौबीस (२४) अवतार गिने हैं। वैसे ही जैनियोंने भी उनके मतमें चौबीस (२४) तिर्थङ्कर माने हैं, और मुसलमानोंने भी उनके मजहबमें सब चौबीस (२४) पैगम्बर माने हैं॥ ३४८ ॥

१६. चौंतीस अक्षर बावन रूप ❀ दानी तीनि लोक बलि भूप ॥ ३४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चौंतीस अक्षर = क, ख, ग, घ, ङ, से श, ष, स, ह, क्ष, तकके चौंतीस (३४) अक्षरोंका बाराखड़ी बनाये हुए हैं। और—
बावन रूप = उन्हीं अक्षर बढ़ते हुए बावन (५२) रूप हुआ है। सो उक्त चौंतीस अक्षरमें और 'अ' से 'अः' तकके सोलह (१६) स्वर तथा त्र, ज्ञ, मिलायके बावन (५२) वर्ण सब माना गया है। तैसे ही चौंतीस अक्षरके समूह वेद-पाठी वामन, ब्रह्मचारीके रूपमें बलिके यज्ञमें गया था; ऐसा कहते हैं।
बलि भूप = बलिराजाने दान देते-देते तीनोंलोकोंमें यश पाया, तो विष्णुके छलनेपर उसने तीनोंलोक वामनको ही दानमें दे दिया कहा है। वैसे ही गुरुवालोग कहते हैं कि—

दानी = कर्म, उपासना, योग या ज्ञानके महान् उपदेश दान देनेवाले महादानी बलिष्ठ पराक्रमी—

तीनि लोक = तीनोंलोकोंमें सर्वश्रेष्ठ कौन भये—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन तीनोंको ही निश्चय करके माने हैं ॥

व्याख्या— चौंतीस (३४) अक्षरोंके नाम ये हैं:— क, ख, ग, घ, ङ; च, छ, ज, झ, ञ; ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न; प, फ, ब, भ, म; य, र, ल, व, श; ष, स, ह, क्ष; यहाँ तकके अक्षरोंको चौंतीस (३४) वर्ण कहा है। तथा उक्त ३४ अक्षर एवं त्र, ज्ञ, और अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, यह १६ स्वर मिलायके सब बावन रूपके ५२ अक्षरें हुए हैं। और बलिराजाको तीन लोकोंका दानी प्रख्यात यशस्वी माने हैं। वैसे ही तीनलोकोंके अधिपति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीन माने हुए जगद्गुरु कर्म, उपासना, ज्ञानके उपदेश दाता मनोकामना पूर्ण करनेवाले महादानी सर्वश्रेष्ठ इत्यादि महिमा बढ़ाके माने हैं। तथा उन्हींकी भक्तिमें गुरुवालोग अपने लगे हैं और दूसरोंको भी लगा रहे हैं ॥ ३४९ ॥

१७. सभै कला अवतार औ रेख * लोभ मोह कहुँ क्रोध विशेष ॥ ३५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अवतार = जगत्में पैदा हुए बहुरूपिये विचित्र प्राणियोंमेंसे गुरुवालोगोंने जो कि, चौबीस अवतारोंको श्रेष्ठ करके माने हैं।

सभै कला = उनमें सबको ही कला-कौशल शक्ति सम्पन्न ठहराये हैं। तथा कोई अवतारमें पूर्णकला और कोईमें अपूर्ण अंश कलाधारी हुए, ऐसा भी माने हैं। सो उनमें विकार विशेष ही रहा—

औ रेख = और उन्हींकी रेखा-चिह्न या पहचान, आकार-प्रकार लीला आदि बहुत-बहुत वर्णन किये हैं। परन्तु—

लोभ = उनमेंसे वामन अवतारमें 'लोभ बहुत ही रहा, जिसने बलिराजाका सर्वस्व छलसे धोखा देके दानमें लेके बलिको फिर बाँधकर पातालमें डाल दिया, ऐसा कहा है।

मोह = वैसे ही रामचन्द्रमें 'मोह' ज्यादा मात्रामें रहा, जो कि— सीताके विरहमें वन-वन भटकके वृक्ष, पत्तोंसे भी पूछते फिरे, ऐसा कहा है।

कहुँ = कहींपर तो अवतार माने हुए नृसिंह बड़े क्रोधी भयङ्कर हुए। और—

क्रोध = परशुराम भी अत्यन्त क्रोधी भये थे, जिन्होंने २१ वार निरपराध क्षत्रिय वंशोंको नाश करके निःक्षत्रिय किया; ऐसा वर्णन किया है।

विशेष = ऐसे लोभ, मोह, क्रोधादि विशेष या ज्यादा-ही-ज्यादा विकार जिनमें रहा, उन्हींको अवतार करके गुरुवालोगोंने मान लिये हैं॥

व्याख्या— अर्थात् देहधारी सभी नरजीवोंको काम, क्रोधादि विकार विषयासक्ति वह तो बन्धन देनेवाला ही है। अपने ही भोगे हुए विषयोंसे ही जब भव-बन्धनोंमें जीव पड़ते हैं। तब दूसरोंके भोगे हुए विषयोंकी लीला याद करके कीर्तन करनेसे क्या कभी कोई मुक्त होंगे? कभी नहीं होंगे। परन्तु, जगत्में निन्दित विकारोंमेंसे विशेष-विशेष कला या भाग जिन्होंमें प्रगट हुआ, उन्हीं-उन्हींको गुरुवालोगोंने अवतारी ठहराकर सब चौबीस (२४) अवतार माने हैं। सो अब उन अवतारोंके कुछ लक्षण भी सुन लीजिये!:— १. मच्छ— मछली, वह तो कीड़ा या जलचर जन्तु है। २. कच्छ— कछुवा भी विशेषतः जलचर जन्तु है, वे दोनों पाप योनि हैं। ३. वराह— सूअर निकृष्ट विष्ठा भक्षण-करनेवाला एक पशु है। ४. नरसिंह— सिंहका खाल ओढ़े हुए कोई जङ्गली मूढ़ नरपशु ही है। ५. वामन— बौना, पूर्वका पापात्मा दरिद्र ही रहा। ६. परशुराम अत्यन्त क्रोधी महाहिंसक क्रूर पापी बना रहा। ७. राम— दशरथराजाके पुत्र स्त्रीके मोहमें अन्ध बने रहे। ८. कृष्ण— वसुदेवके पुत्र, विषयासक्त व्यभिचारी तथा हिंसक भी बने रहे। ९, बौद्ध— नास्तिक मतवादी, सर्व भक्षी रहे। १०. कलंकी-सब ही कलंक-दोषोंसे भरा हुआ होता है। ११. दत्तात्रेय— अवधूत उन्मत्त रहे। १२. व्यास—

गप्पी रहे। १३. कपिल— पारखहीन सांख्यवादी रहे। १४. हयग्रीव— घोड़ेका मुख जैसा कोई जङ्गली मनुष्य रहा। १५. पृथु— एक क्षत्रिय राजा रहे। १६. जड़भरत— मूढ़बुद्धिवाला कोई ब्राह्मण रहा। १७. ऋषभदेव— पहले राजा रहे, बादमें वे अघोरी बन गये थे। १८. सनकादि— लड़के समान बाल्य स्वभाववाले रहे। १९. मनु— पूर्वमें एक महाराजा रहे। २०. बद्री— एक उग्र तपस्वी हुए रहे। २१. धन्वन्तरि— वैद्यराज प्रसिद्ध भये हैं। २२. हंस— एक हंसपक्षी या सफेद रोगवाला कोई मनुष्य संन्यासी रहा। २३. नारद— भक्त रहे; परन्तु, चुगलखोरीमें बड़े प्रवीण रहे। और २४. मोहिनी- एक सुन्दर रूपवाली हाव, भाव, कटाक्षसे पुरुषोंको मोहनेवाली कोई स्त्री बन्धनका मूल कारण रही। इस प्रकारसे छानबीन करके देखिये, तो वे सब पारखहीन, विकारके खानी ही दिखाई देते हैं। उन्हींको गुरुवालोगोंने श्रेष्ठ अवतारी पुरुष ठहराये हैं। और उनमें वामन अवतारमें 'लोभ' विशेष रहा। रामचन्द्रमें 'मोह' विशेष रहा। परशुराममें 'क्रोध' विशेष रहा, ऐसा जानिये ॥ ३५० ॥

१८. कहुँ कामी कहुँ भय परचार* कहुँ वक्ता कहुँ जड़ अवतार ॥ ३५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कहुँ कामी = और कहींपर तो अत्यन्त महाकामी, विषयी कृष्णको पूर्णकलाधारी श्रेष्ठ अवतारी माने हैं।

कहुँ = कहींपर तो उसी प्रकार—

भय परचार = भयदायी या भय फैलानेवाले नरसिंह, मच्छ, कच्छ आदि अवतारोंको विशेष श्रेष्ठ करके माने हैं। उनमें आधा नर, आधा सिंह रूप मिला हुआ नरपशुको ही नृसिंह अवतार ठहराये हैं, और उन्हें भक्तवत्सल भगवान् मानके उपदेश प्रचार कर रहे हैं। भय देकर मनुष्योंको भुला रहे हैं।

कहुँ = और कहींपर तो—

वक्ता = व्यास, वशिष्ठ, दत्तात्रेयादिको वेद, शास्त्रोंके उपदेश वक्ता, विशेष वक्तृत्वकलाधारी माने हुए हैं।

कहुँ = और कहींपर तो वैसे ही—

जड़ = जड़-मूढ़ता विशेष भरा हुआ ऐसे जड़भरत, मच्छ, कच्छप आदि एवं शालिग्राम, शिवलिङ्ग बनाये हुए पत्थरादिको ही जड़ अवतार माने हैं।

अवतार = ऐसे-ऐसे विशेष विकारके खानी बने हुए या जिन्होंमें विशेषरूपसे काम, क्रोधादि प्रगट हुआ, उन्हींको ही अविचारियोंने श्रेष्ठ अवतार मानकर सब चौबीस (२४) अवतार गिनाये हैं ॥

व्याख्या— वैसे ही और कहीं कृष्णमें तो कामोपभोग विषयासक्ति ज्यादा रही। कहीं नरसिंहादिमें भयावनी सूरत करके डरवाते रहे। कहीं व्यास, दत्तात्रेयादि वक्ता भये थे। और कहींपर तो मच्छ, कच्छ या जड़भरतादिको जड़ अवताररूपमें माने हैं, तथा कहीं शालिग्राम आदि पत्थरोंको ही शिलावतार मानकर मूढ़ गुरुवालोग उसीको पूजते तथा पुजवाते हैं; कीर्तनादिमें भूले-भुला रहे हैं। इस प्रकारसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि अधिक कुस्वभाव उन माने हुए अवतारोंमें रहा, जड़ता-मूढ़ता भी उनमें रही। बिना विचार उन्हें श्रेष्ठ मानकर कल्पित उपदेशका गुरुवालोग प्रचार कर रहे हैं; उसे परखकर जानना चाहिये ॥ ३५१ ॥

साखीः— अस्मदादि जीव जगतके * विशेष सोई अवतार ॥
[२३] अधिक कला सब तासुके * ब्रह्मज्ञान परचार ॥ ३५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अस्मदादि = अपने-अपने कर्म देहाभिमानी अनन्त जीव समूहरूपसे जड़ाध्यासी हो, चारखानीमें देहधारी हो रहे हैं। सो—

जगतके = चारतत्त्वोंके संसार या जगत्के बीचमें जन्म और मरणके रहट्टा या चक्रमें वे—

जीव = समस्त अध्यासी जीव पड़े हुए हैं। उन जीवोंमेंसे—

विशेष = काम, क्रोध, लोभ, मोहादि तथा योग, ज्ञान, भक्ति, कर्मादि कोई एक अङ्ग विशेषरूपसे ज्यादा-ही-ज्यादा जहाँ देखनेमें आया या

बढ़ गया—

सोई=वही मनुष्य, पशु, ज्ञानी, अज्ञानी, स्त्री, पुरुषादिमें सोई लोगोंको—

अवतार=देहधारी सगुण श्रेष्ठ चौबीस (२४) अवतार स्वजातीय या विजातीय कोई एकको मान लिये हैं वा मान रहे हैं।

तासुके=उन अवतारी माने हुए योगी, ज्ञानी, भक्तादि, शूर-वीरोंके—

सब=सबसे ज्यादा या सबसे ऊपर सब कोई गुरुवा लोगोंने वहाँ—

अधिक कला=ज्यादा ही शक्ति ऋद्धि, सिद्धि-का कला-कौशल, पुरुषार्थ विशेष करके माने हैं। उसमेंसे उन्होंकी विशेष कला या शक्ति यहीं तक पहुँची है कि, जगत्में—

ब्रह्मज्ञान=चराचर परिपूर्ण व्यापक जगत्का अधिष्ठान ब्रह्म एक अद्वैत सत्य है। ऐसा ब्रह्मज्ञानको जान लेनेसे मुक्ति होती है।

परचार=यही अद्वैत सिद्धान्त वेदान्तका उपदेश गुरुवालोग या वे अवतारी माने हुए लोगोंने खूब प्रचार किये या कर रहे हैं॥

व्याख्या— जगत्में हमारे-तुम्हारे समान देहधारी नरजीव समूहरूपसे चारखानियोंमें जितने भी हैं, सो शरीराभिमानी हुए हैं। मनुष्य जन्ममें विशेष अध्यास जमा करके ही चौरासी-योनियोंमें जाकर देह धारणकर पैदा होते हैं। उनमेंसे विशेष संस्कारी या ज्यादा शक्तिशालीको संसारमें अवतारी पुरुष या श्रेष्ठ माने हैं। उन २४ अवतारियोंमें या योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मियोंमें अधिक कला-कौशल सिद्धतायी आदि बयान किये हैं। उन्होंकी सबसे ज्यादे कला क्या हुई? कि— कल्पना-से चराचर जगत्में व्यापक भरा हुआ ब्रह्म मैं हूँ या तूँ है! ऐसा ब्रह्मज्ञानका उपदेश प्रचार कर दिये या अभी उसीका प्रचार गुरुवालोग कर रहे हैं। बिना सत्यपारख वे भ्रम-धोखामें गरगाफ हुए पड़े हैं। जिज्ञासु मनुष्योंको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ परख करके उस भ्रम-धोखाका परित्याग करना चाहिये॥ ३५२॥

सम्बन्ध— अब यहाँ चौकड़ी १ से २० तक अठारहवाँ खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ अष्टादश खण्ड ॥ १८ ॥ ❀ ॥

१. पनिहारी सब नदिया एक * बानी विविधि घाट अनेक ॥ ३५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जैसे एक ही नदीमें आकर अनेक लोग, सब पानी भरनेवाली पनिहारीरूपमें अनेक घाटोंसे, एक ही नदीके पानी भरकर भिन्न-भिन्न रास्तोंसे चले जाते हैं। वैसे ही नर-जीवोंकी वाणीका सिद्धान्त भी न्यारी-न्यारी वाणी कल्पनासे निकला है। इस खण्डमें मुसलमानोंकी मान्यता, सिद्धान्त दिखलाते हैं, सो सुनिये!:—

पनिहारी=योगी, ज्ञानी, भक्त, षट्दर्शनादि मतवादीलोग पानीरूप वाणी भरनेवाली कल्पनाको ग्रहण करनेवाले ही हुए हैं।

सब=छियान्नवे पाखण्डकेलोग सबोंने भी उसी वाणीको ग्रहण किये हैं।

नदिया एक=नाद-बिन्दुरूपसे यहाँ एक नदी-की जगहमें ब्रह्म-खुदा या स्त्री भोगका सुख, आनन्द बहानेवाली एक नदी मानन्दी किये हैं। वहाँपर—

बानी विविधि=वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानोंकी अनेकों वाणी बनाये हैं। उससे—

घाट=द्वैत, अद्वैत, ब्रह्म, खुदादिकी स्थिति या सिद्धान्त घटाकर वह घाट—

अनेक=अनेकों रीतिसे भिन्न-भिन्न मत हिन्दुओंने और मुसलमानोंने निकाले हैं। परन्तु, सबोंकी भ्रम-कल्पना तो एक ही हुई या हो रही है। इस तरफ वे कुछ भी विचार नहीं करते हैं॥

व्याख्या— अर्थात् पानी भरनेवाले सैकड़ोंलोग सब एक नदीमें ही आयके छोटे-बड़े अनेकों बर्तनोंमें पानी भरते हैं। उन्होंके पानी भरनेके घाट-घाटें तो अनेक होते हैं। परन्तु, नदीका पानी तो एक ही होता है। अथवा, समस्त भूमण्डल पहाड़ घाटियोंकी नदियाँ, नाले, खोले आदि सब ही अपने-अपने वेगसे बहते हुए आखिरमें सब एक ही जगह समुद्रमें आके मिल जाती है। इसीप्रकार

सिद्धान्तमें यहाँ षट्दर्शन, छियान्नवे पाखण्डोंके नाना मत, पन्थ, सम्प्रदायोंके समस्त साधकलोग सोई पनिहारी भये हैं। तथा, अनुमानसे जगत्कर्त्ता एक ब्रह्म-परमात्मा या अल्लाह-खुदा, गॉड आदि-को नदीकी जगहमें माने हैं। और नाद-विन्दुकी महानदी जगत्में खूब वेगसे बहने लगी। ईश्वरादि प्राप्तिसे सुख पानेकी आशा तो बहुत लोगोंने लगाये हैं। परन्तु, न-दिया=उस वाणी कल्पनाने सुख किसी को भी नहीं दिया। कहीं धोखासे भी सुख मिलता है? नहीं मिलता है। तथापि मनसे कल्पना कर-करके विविधि प्रकारकी वाणी—वेद-शास्त्रादि, कुरान, बाइबिलादिकी नाना वाणी बनाकर ग्रहण कर लिये। उसमें घाटकी जगहमें अनेकों सिद्धान्त ठहराकर स्थिति करना चाहते हैं। परन्तु, वह नदी ही कुछ वस्तु नहीं है, तो घाट क्या काममें आयेगा? यह तो गुरुवालोगोंका, भ्रम-धोखा मात्र है। इसको पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गसे परखकर छोड़ना चाहिये ॥ ३५३ ॥

२. अलफ एक अल्लाह बखान * बे बन्दा दूजा परमान ॥ ३५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अल्लाह=मुसलमानलोग कहते हैं कि-दुनियाँ-का मालिक खुदा है या अल्लाह है; जिसको अल्लाह कहते हैं, सो—

अलफ एक=एक ही सबसे न्यारा है। या बेचून, बेनमून, निर्लिप्त, ऐसा एक खुदा कोई है; वही खुदा जहाँपनाह है।

बखान=मुस्लिमलोगोंने ऐसा-ऐसा वर्णन करके कहा है या बखान किया है।

बे=दूसरा खुदासे भिन्न अज्ञानी जीव खुदाका नूर है। सो खुदाको—

बन्दा=भूलकर बन्धनमें पड़ा हुआ है; तो भी खुदाका गुलाम या बन्दा है।

दूजा=सो बन्दा उस मालिक खुदासे सदैव दूसरा भिन्न या न्यारा ही बना रहता है। खुदाकी भक्ति या सलाम करनेसे ही हित, सुख, खैरियत पा सकता है; इत्यादि बात कल्पनासे—

परमान=कुरानका प्रमाण करके कहते हैं, या उसी बातको सच्ची करके मानते हैं॥

व्याख्या— हिन्दुओंने जैसे कल्पना बढ़ाये हैं, वैसे ही मुसलमान आदियोंने भी मिथ्या कल्पनाका विस्तार किये हैं। तहाँ वे कहते हैं कि:— अलफ=सबसे न्यारा या निर्लिप्त रहनेवाला एक ही जहान या दुनियाँका मालिक वही खुदा या अल्लाहमियाँ है, ऐसा नवी-काजियोंने बखान या वर्णन किया है। और बे=दूसरा अज्ञानी जीव सो तो बन्दा=खुदाके बन्दा या गुलाम है। दूजा= वे सब खुदाके नूर खुदासे भिन्नदूसरे हैं; परन्तु, अल्लाहकी शुक्रिया अदा करके सलाम या बन्दगी करते रहनेसे ही इस बन्दाकी खैरियत है। ऐसा मुस्लिमलोगोंने कुरान मतका प्रमाण मानकर कहा है ॥ ३५४ ॥

३. जात सिफात सोई पहिचान * दुविधा द्वैत चाल बिगरान ॥ ३५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! मुसलमानोंका कहना ऐसा है कि—

जात=खुदाका सिद्धान्त असली जातका है।

सिफात=इससे वह तारीफ करने लायक शुद्ध सच्चा मत है।

सोई=सोई अल्लाह मियाँको ही अपना मालिक करके, अए मुसलमानो!—

पहिचान=तुमलोग उसे पहिचान कर लो। यह कुरानका प्रमाण है, ऐसा कहते हैं। और—

दुविधा=अगर इस इस्लाम धर्ममें संशय करोगे वा दुविधा रक्खोगे, तथा—

द्वैत चाल=दूसरोंके मजहबोंको सत्य मानकर चलोगे, तो तुम लोग—

बिगरान=बिगड़कर दोजखमें ही चले जाओगे। वहाँ बहुत ही दुःख पाओगे। इससे दूसरों-के मतमें जाकर बिगड़ो मत, अपने इस्लाम धर्ममें ही डटे रहो, ऐसा कहकर भमाये हैं। वे धोखामें पड़के बिगड़े, और बिगाड़ रहे हैं; बिना विवेक ॥

व्याख्या— मुसलमानोंके बुजुर्गलोग कहते हैं कि— संसारमें एक खुदाका सिद्धान्त ही तारीफ

करने लायक शुद्ध सच्चा है। इसमें दुविधा या संशय करनेवाले इस्लाम मतको छोड़कर जो दूसरोंके मजहबमें जाके द्वैत चालसे चलते हैं, सो जिन्दगीसे बिगड़कर धर्मभ्रष्ट हो, नरक या दोजखमें पड़ जायेंगे। अतएव खुदाके कुरान मतको ही ग्रहण वा धारण करो, जिससे तुमलोग बहिस्त जाओगे। ऐसा अपनेसे भिन्न दूसरा कल्पित खुदा मानकर नरजीव बिगड़के जड़ाध्यासी हुए हैं ॥ ३५५ ॥

४. कादिर कुदरत जामें हक्क * सभै मुकैयद खुद मुतलक्क ॥ ३५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कादिर = मुस्लिमोंने वह खुदाको देहधारी या शरीरको रखनेवाला कादिर माने हैं। तथा—

कुदरत = कुरान आदि वाणीके प्रमाणसे माया-को खुदाकी शक्ति कुदरती ठहरायके उससे—

जामें = जहाँ जगत्में सबोंकी उत्पत्ति कहे या माने हैं। तथा संसारमें—

हक्क = साँच वस्तु एक वही खलकमें भरा हुआ खालिक या खुदाको ही हक्क हाजीर माने हैं; और कहते हैं कि—

सभै = जगत्के समस्त प्राणी तथा—

खुद = हम-खुद कहनेवाले तुम सुननेवाले—

मुतलक्क = संसारके सब मनुष्य वास्तवमें ठीक रीतिसे देखो, तो बिलकुल ही खुदाके नूर-अंश या एक ही सन्तान या प्रजा हैं। यही मुतलक्क या बिलकुल ठीक बात है।

मुकैयद = ऐसा कौल या ठहरावका निश्चय करो, खुदाको सलाम करो, कहा है। यानी सब कौल खुदाको याद करनेके लिये है ॥

व्याख्या— कहते हैं कि, एक खुदा ही हक्क-साँच वस्तु है। वह अपनी कुदरत (माया) से कभी स्थूल शरीर भी धारण करके पासमें रख लेता है। दुनियाँ सब कुदरती पैदाइस है। ऐसा कुरान आदि वाणी पढ़कर प्रमाण करके कहते हैं। और निश्चय करके कौल या ठहराव करो कि, हम-तुम सब दुनियाँ बिलकुल एक ही खुदाके नूर या अंश हैं। इसमें कोई सन्देह न करो। इस्लाम धर्म-में सामिल हो, कुरान और खुदाको ही सच्चा मानो, तभी तुम सबोंकी भलाई होयगी। ऐसे मुसलमानलोग अपना राग अलग ही अलापकर अबोध लोगोंको भ्रमा और फँसा रहे हैं ॥ ३५६ ॥

५. जबराईल वक्ता अज होय * मिकाईल हरि गुण गावै सोय ॥ ३५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! हिन्दुओंके समान ही मुसलमानोंने भी माने हैं कि-फिरिस्तोंके तीन सरदार हैं, और चारमुक्ति, चारकितेब आदि वर्णन किये हैं। यथाः—

अज = हिन्दुओंमें वेद वक्ता सृष्टिकर्त्ता माना हुआ ब्रह्माके समान ही मुस्लिमोंने भी—

जबराईल = दुनियाँको उत्पन्न करनेवाला जबराईलको ब्रह्माकी तरह जबरदस्त ठहराकर उसे—

वक्ता = इञ्जिल, तौरेत, जम्बूर और फुर्कान ये चार कितेब या कुरानका वक्ता—

होय = उपदेश प्रचारक हैं, ऐसा माने हैं। और—

मिकाईल = मिकाईल नामके फिरिस्तोंके सरदार-को सत्त्वगुणी प्रतिपालक माने हैं। उसे फिर

हरि = विष्णुके समान मानकर—

सोय = उसी मिकाईलको श्रेष्ठ ठहराकर—

गुण गावै = मुसलमानलोग उसके गुणका खूब वर्णन करके गाते हैं ॥

व्याख्या— हिन्दू और मुसलमानोंमें कल्पना-मानन्दी तो एक-सी ही भयी है, सिर्फ भाषाका ही फरक किया है, सो विचार करके देखिये! ब्रह्मा, विष्णु, महेशको हिन्दुओंने इधर उत्पत्ति, पालन, और संहार करनेवाले माने हैं। वैसे ही मुसलमानोंने भी नाम और भाषा बदलकर उधर जबराईल, मिकाईल, और इजराईलको उन्होंके ही समान उत्पत्ति, पालन, संहारकर्त्ताके रूपमें ठहराये हैं। चार वेदोंके वक्ता इधर ब्रह्माको कहा है, तो चार कितेबरूप कुरानके वक्ता उधर जबराईलको माने हैं। फिर हरिके समान मिकाईलके भी सो उसी प्रकार गुण गाते हैं ॥ ३५७ ॥

६. इजराईल शङ्कर संघार * तीहुँ फिरिस्तनमें सरदार ॥ ३५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

शङ्कर=फिर, महादेवके समान तमोगुणी प्रलय करनेवाला, ऐसे ही उन्होंने—
इजराईल=ईजराईल नामके फिरिस्तोंके सरदार-को माने हैं। सो यही अन्तमें—
संघार=दुनियाँका फना करके नाश कर डालता है, ऐसे माने हैं।
तीहुँ=ब्रह्मा, विष्णु और महेशके समान ही तुरुकोंमें जबराईल, मिकाईल और ईजराईल-को उत्पत्ति, पालन और संहारकर्त्ता ठहरा-कर उन तीनोंको—
फिरिस्तनमें=देवतोंके समान स्वर्गके बड़े-बड़े अधिकारी फिरिस्तोंमेंसे—
सरदार=श्रेष्ठ, मुखिया, राजाके समान उच्च माने हुए हैं। अर्थात् वे तीनों जबराईल आदिको सब फिरिस्तोंमें अग्रगण्य सरदार ठहराये हैं॥

व्याख्या— शङ्करके समान ही संहार करनेवाला इजराईलको भी ठहराये हैं। जैसे इधर देवगणोंमें ब्रह्मादि तीन देवोंको श्रेष्ठतासे माने हैं, उसीके समान सब फिरिस्तोंमें वे तीनों जबराईल आदिको सरदार या श्रेष्ठ मुखिया माने हुए हैं॥ ३५८॥

७. नासूत मलकूत जबरूत बखान * लाहूत चौथे हाहूत अमान॥ ३५९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नासूत=प्रथम, सालोक्य मुक्तिकी ठिकानेमें सरियत मार्गसे नासूतमुकामकी प्राप्ति कहा है
मलकूत=दूसरा, सामीप्य मुक्तिकी जगहमें तरीकतमार्गसे मलकूत मुकामकी प्राप्ति कहा है।
जबरूत=तीसरा, सारूप्य मुक्तिके ठिकानेमें हकीकत मार्गसे जबरूत मुकामकी प्राप्ति माने हैं।
बखान=ऐसा मुसलमानोंने वर्णन किये हैं।
चौथे=अब चौथी मुक्ति सोई—
लाहूत=सायुज्य मुक्तिकी जगहमें मारफत मार्गसे लाहूत मुकामकी प्राप्ति कहा है।
हाहूत=और पाचवीं मुक्ति हूकामैदान, निर्गुण जीवन्मुक्तिके समान हाहूत मुकाम माने हैं। तहाँपर—
अमान=माया विकारसे रहित ब्रह्मके समान खालिक वा खुदाको सब खलकमें भरा हुआ परिपूर्ण अमान ठहराये हैं॥

व्याख्या— हिन्दुओंकी पाँच मुक्तिके समान ही मुसलमानोंने भी नाम बदलकर पाँच मुक्ति कहा है। सो नासूतमुकाम—सालोक्य मुक्तिमें है। मलकूतमुकाम—सामीप्य मुक्तिमें है। जबरूत-मुकाम—सारूप्य मुक्तिमें है। लाहूतमुकाम—सायुज्य मुक्तिमें चौथा है। और हाहूत मुकाम—हूकामैदान पाँचवीं जीवन्मुक्ति निर्गुणकी जगहमें माने हैं। वैसे ही 'अमान' ईश्वर या ब्रह्मके समान ही खुदा या अल्लाहको बेचून-बेनमून माने हैं॥ ३५९॥

८. जम्बूर तौरेत इञ्जील फुर्कान * कुतुब चार चहुँयार गुमान॥ ३६०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

जम्बूर=मुसलमानोंने प्रथम ऋग्वेदके समान 'जम्बूर' नामक पुस्तकको माने हैं। दूसरा—
तौरेत=अथर्व वेदकी जगह 'तौरेत' नामक पुस्तकको ठहराये हैं। तीसरा—
इञ्जील=यजुर्वेदके समान 'इञ्जील' नामक किताब-को कहा है। और चौथा—
फुर्कान=सामवेदके समान 'फुर्कान' नामक किताबको माने हैं। यह चारों किताब मिलकर एक 'कुरान' कहा है।
चार=उस कुरानकी चार किताबोंके अच्छे जानकार और—
कुतुब=तारोंके समान ऊँचे, ऐसे ज्ञानमें प्रकाश-मान चमकनेवाले—
चहुँयार=अबुबकर, ऊमर, उसमान और अली, ये ही सर्वश्रेष्ठ माने हुए चार यार भये हैं। परन्तु—
गुमान=वे मिथ्यापक्ष पकड़कर बड़े अभिमानी हुये। अब मुस्लिमलोग उन्हींका पक्ष पकड़-कर अहङ्कारमें गाफिल पड़े हैं, बिना विचार॥

व्याख्या— हिन्दुओंने जैसे चार वेद माने हैं; वैसे ही मुस्लिमोंने भी चारकितेब ठहराये हैं।

सो १. जम्बूर=ऋग्वेदकी जगहमें है। २. तौरेत=अथर्ववेदकी जगहमें है। ३. इञ्जील=यजुर्वेदकी जगहमें है। तथा ४. फुर्कान=सामवेदके समान कहा है। और हिन्दुओंने जैसे चार ऋषियोंको चार वेदके पूर्ण ज्ञाता माने हैं; वैसे ही मुस्लिमोंने भी चार यारोंको चार किताबके पूर्ण जानकार ताराके समान ज्ञानमें प्रकाशमान चमकनेवाले मानकर उनका मिथ्या पक्ष पकड़कर गुमानी, भ्रमिक भये हैं ॥ ३६० ॥

९. अबूबकर उमर उसमान अली * चारों यार मुकामी बली ॥ ३६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अबूबकर=मुसलमानोंका पहला औलिया या यार 'अबूबकर' नामका भया है।
उमर=दूसरा औलियाका 'उमर' नाम कहा है।
उसमान=तीसरा यारका 'उसमान' नाम कहा है।
अली=और चौथा औलियाका 'अली' नाम कहा है।
चारों यार=वे चारोंयार खुदाके दोस्त श्रेष्ठ-यार हुए हैं, ऐसा कहा है।
मुकामी=और चार मुक्तिका मुकाम या खुदाके पास नजदीकमें सदा-सर्वदा बहिस्तमें रहनेवाले—
बली=बड़े शक्तिशाली प्रतापी, ऐसे वे औलिया हुये हैं; ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् हिन्दुओंने जैसे अङ्गिरा, आदित्य, वायु, और अग्नि, इन चार ऋषियोंको श्रेष्ठ वेदके ज्ञाता ज्ञानके प्रकाशकर्त्ता माने हैं। वैसे ही मुसलमानोंने भी अबूबकर, उमर, उसमान और अली, ये चार नामके चार यारोंको खुदाके दोस्त अल्लाहके मुकाममें पहुँचानेवाले पीर-पैगम्बर, औलिया बलवान् ठहरा करके माने हैं ॥ ३६१ ॥

१०. पँचयें महम्मद खतम नबी * पञ्चतन पाक अजीद गबी ॥ ३६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पँचयें=उन चारोंके बाद पाँचवें नम्बरमें अन्तमें—
महम्मद=मुहम्मद नामका पैगम्बर हुआ था।
खतम नबी=आखिरमें वही मुहम्मद ही मुस्लिम धर्मका कुरानका उपदेशक धर्म-प्रचारक हुआ, उसके बाद रसूल नबीकी गद्दी-परम्परा खतम हो गई, ऐसे उसे खतम नबी माने हैं।
पञ्चतन=चार यार और मुहम्मद समेत् मिलाय-के यह पाँचों जनोंको—
पाक=शुद्ध पवित्र बिना दागके ज्ञानी हुए, ऐसे माने हैं। और—
अजीद गबी=उन्होंके ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। उनके समान कोईका भी ज्ञान श्रेष्ठ नहीं है। यह खुदाके रसूल यानी सन्देश लानेवाले हुए, ऐसा माने हैं। सो उसे कल्पनाका कथन ही जानिये ॥

व्याख्या— पाँचवें मुहम्मदको आखिरमें कुरानके धर्मको उपदेश द्वारा दुनियाँमें प्रचार करनेवाला नबी माने हैं। कहते हैं कि— मुहम्मदके बादसे उस गद्दीमें कोई नहीं बैठा, नबीपद खतम हो गया। इससे खतम नबी वही मुहम्मदको माने हैं। चारोंयार और मुहम्मद, यह पाँचों जनें पवित्र बिना दागके ज्ञानी हुए, उन्होंके ज्ञान समान और कोईका भी ज्ञान श्रेष्ठ नहीं है। सर्वश्रेष्ठ ज्ञान उन्हींका है, ऐसा कट्टर मुस्लिमोंने माने हैं ॥ ३६२ ॥

११. शरियत तरीकत हकीकत होय * मारफत चारों चाल हैं सोय ॥ ३६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शरियत=प्रथम कर्ममार्गमेंः— सुन्नत करना, वजू करना आदि जो है, सो 'शरियत' कहलाता है।
तरीकत=दूसरा तीस दिनका रोजा रखना, हज्ज करना आदि उपासनामार्ग जो है, सो 'तरीकत' कहलाता है।
हकीकत=तीसरा योगमार्गमेंः— साम-सबेरे बाँग पुकारना आदि जो है, सो 'हकीकत' कहलाता है।
होय=यह हिन्दुओंके तीन मार्गोंके समान तीन चाल माने हैं, और चौथा—
मारफत=ज्ञानमार्गके ठिकानेमेंः— पाँचों वक्त निमाज पढ़ना आदि जो होता है, उसे

मारफत माने हैं।
चारों=ऊपर कहे हुए चारों, हिन्दुओंके चार मार्गोंके समान ही—
सोय=सोई सुन्नत, रोजा, बाँग, निमाज आदि करना यही—
चाल हैं=चार प्रकारकी चाल मुसलमानोंने निकाले हैं। सो पालन करते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या फिर चार मार्ग वेद प्रमाणसे जैसे हिन्दुओंने माने हैं; वैसे ही कुरान प्रमाणसे चार चाल मुसलमानोंने भी माने हैं। सो शरियत— कर्म मार्गके समान है। तरीकत— उपासना मार्गके समान है। हकीकत— योग मार्गके समान है। और मारफत— ज्ञान मार्गके समान माने हैं। सो चार चाल— सुन्नत करना, रोजा रखना, बाँग पुकारना, और निमाज पढ़ना, ऐसे निकाले हैं॥ ३६३॥

१२. शेख सैय्यद मिर्जा खान ❀ चारों वर्ण कहैं अनुमान॥ ३६४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
शेख=क्षत्रिय जातिके समान 'शेख' को माने हैं।
सैय्यद=फिर ब्राह्मण जातिके समान उन्होंने 'सैय्यद' को ठहराये हैं।
मिर्जा=वैसे ही वैश्य जातिके समान ही 'मुगल' या 'मिर्जा' को माने हैं। तथा—
खान=शूद्र जातिके समान ही 'पठान' को खाँ कहिके माने हैं।
चारों वर्ण=हिन्दुओंके चार वर्ण या जातिके समान ही मुसलमानोंने भी उक्त प्रकारसे चार भेद लगायके जातिके चार पद—
कहैं अनुमान=अनुमान करके कहा है। वैसे ही अनुमानसे खुदाकी झूठी महिमा आदि भी कही है; ऐसा जानिये!॥

व्याख्या— हिन्दुओंमें चार वर्ण या चार जाति न्यारा-न्यारा भेदसे जैसे माने हैं, वैसे ही मुसलमानोंने भी अनुमानसे दूसरी वाणीमें चार वर्ण कहा है। जैसे कि— सैय्यद-ब्राह्मण जैसा। शेख-क्षत्रिय जैसा। मिर्जा- वैश्य जैसा। खान या पठान— शूद्र जैसा जाति भेद माने हैं। वे दोनोंने मिथ्या ही वाणी कहे हैं या कह रहे हैं; बिना विचार॥ ३६४॥

१३. बारह इमाम चौदह मासूम ❀ तेहिते बहुत फरीक अमूम॥ ३६५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
बारह इमाम=मुसलमानलोग बारह इमामके नामसे—शाह मर्दान, हसन, हुसेन आदि बारह पुरुषोंको श्रेष्ठ मानकर सब मुसलमानलोग उन्होंके मरण दिन मनाकर त्यौहार करते हैं। तथा—
चौदह मासूम=मुस्लिमोंके चौदह मतके फकीर हुए जैसे-जलाली, मलाली, बानवा, जिन्दा, शाह आदि भेदसे चौदह (१४) माने हैं।
तेहिते=बारह इमाम और चौदह फकीर आदि इन्हींलोगोंसे संसारमें—
अमूम=सब मुसलमानी मत, ग्रन्थ, पन्थ, सिद्धान्तादि—
फरीक=फरक-फरक वा न्यारे-न्यारे या अलग-अलग—
बहुत=बहुतेक बने हैं और दुनियाँमें फैले हैं। उसीमें बहुत ही अज्ञानी मनुष्य लगे और लग रहे हैं; बिना विवेक॥

व्याख्या— जैसे हिन्दुओंने द्वादश आदित्य तथा द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग आदि माने हुए हैं, वैसे ही मुसलमानोंने भी बारह इमाम माने हैं। उन्होंके नामः— १. शाहमर्दान। २. हसन। ३. हुसेन। ४. जैनूल। ५. अबदीन। ६. महम्मद बाकर। ७. जाफर। ८. मूसाकाजीम। ९. अली। १०. मूसारजा। ११. नकी-हसन अजगरी। और १२. मेंहदी, ये बारह इमामको महापुरुष मानके इन्होंके मृत्यु हुए दिनको यादकर त्योहार करते हैं। जैसे कि— हिन्दूलोग श्राद्ध करते हैं, तद्वत् उनके भी भाव है, ऐसा जानियें; और हिन्दुओंके चौदह मनुके समान ही मुसलमानोंमें भी चौदह मतके फकीर माने हैं; जलाली, मलाली, बानवा, जिन्दा, शाह आदि ऐसे नाम फकीरोंके रक्खे हैं। उन्हींलोगोंसे न्यारा-न्यारा बहुत सब मुसलमानी पन्थ चलाकर फैलाये हैं॥ ३६५॥

१४. अठासी सहस्र नबी परवान ❀ ताके पन्थ अद्बुद पहिचान॥ ३६६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अठासी सहस्र=अठासी हजार ऋषि-मुनि सब प्रथम हुए, ऐसा हिन्दूधर्मी ब्राह्मणोंने माने हैं। वैसे ही—

नबी=मुसलमानोंने मुस्लिम धर्मका उपदेशक एक लाख अस्सी हजार पैगम्बर या नबी प्रथम हुए हैं।

परवान=ऐसा कल्पनासे प्रमाण किये हैं या कराते हैं।

ताके पन्थ=उन्हीं मुसलमानोंके रास्तोंमें चलकर अविवेकी मूढ़लोग कितनेक एक खुदाको सत्य मानकर ताकने-तकाने लगे। ऐसे उन्होंके अनेक पन्थ चले हैं।

अद्‌बुद=सो सब बेबुद्ध विचित्र या आश्चर्यमय धोखा देकर लोगोंको फँसानेका जाल ही बना है।

पहिचान=उसे सत्सङ्ग द्वारा परख करके यह सब भेदको पहिचान लीजिये, और उन दोनोंके भ्रम-भूलको त्याग दीजिये ॥

व्याख्या— अठासी हजार ऋषि-मुनि हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंमें माने हैं, तो मुसलमानोंने एक लाख अस्सी हजार पैगम्बरकी गिनती लगाकर अनुमान-प्रमाण किये हैं। उन्हीं लोगोंसे अनेक मत, पन्थ, आश्चर्यरूपमें जीवोंको फँसानेवाला, भुलाकर गाफिल करनेवाला जगत्‌में फैला है। उसी प्रमाणसे अनुमान धोखाको ही सब ताक रहे हैं। पारखी सद्‌गुरुके सत्सङ्ग सत्य निर्णय द्वारा उसको अच्छी तरहसे पहिचानकर लीजिये ! ॥ ३६६ ॥

१५. ईशा इङ्गलीस बारह ग्रन्थ ❀ समस्त विचार अबैबी पन्थ ॥ ३६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ईशा=ईशा पैगम्बर या ईशूखिस्तका चलाया हुआ पन्थ या धर्म ईसाई या क्रिश्चियन मत कहलाता है।

इङ्गलीश=सो ईसाई मतको युरोप देशके गोरे अंग्रेजोंने अपनाकर माने हैं और उन्होंने अंग्रेजी भाषामें—

बारह ग्रन्थ=बड़े-बड़े बारह अध्यायवाला बाइबिल शास्त्र या ग्रन्थका निर्माण किया है। सो मार्क, लूक, योहन्नादि रचित ग्रन्थोंका ईसाइयोंने विस्तार किये हैं।

समस्त=हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पार्सी आदि समस्त मतवादी—

विचार=सत्य न्यायके पारख विचारसे हीन होकर धोखेमें ही पड़े थे, अभी वैसे ही पड़े हैं, इससे उन्होंका—

पन्थ=ग्रन्थ, पन्थादि विभिन्नरूपसे अनेकों चला वा चल रहा है। परन्तु, विचार करके देखिये, कहीं किसीको पारखबोध हुआ नहीं।

अबैबी=अनुमान उन सबोंका एक ही हुआ है। निर्गुण-निराकार बेचून-बेनमून कर्त्ता सबोंने माने हैं। ऐबरूपी मनका विकार-दोष, किसीका नहीं छूटा; बिना पारख ॥

व्याख्या— ईशूखिस्त पैगम्बरसे ईसाई मत चला है, सो युरोपदेश-निवासी अंग्रेजोंने पीछेसे विशेषरूपसे वही क्रिश्चियनमतको स्वीकार करके मान लिये हैं। तहाँ मार्क, लूक, योहन्ना आदियोंके रचित ग्रन्थ अंग्रेजी भाषामें बना है; और बाइबिल ग्रन्थमें बारह बड़े-बड़े प्रकरण या अध्यायोंमें विस्तारसे वर्णन किया है, वही इंगलिसके बारह ग्रन्थ कहलाते हैं। सो उन सबोंके अनुमान, कल्पना तो एक ही जैसा हुआ है। कोई ईश्वर-ब्रह्मको निराकार-निर्गुण कर्त्ता मानते हैं, तो कोई अल्लाह-खुदा या गॉडको बेचून-बेनमून कर्त्ता मालिक मानते हैं। ऐसे अनेकोंमत-पन्थ तो संसारमें प्रगट हुए हैं, परन्तु, वे सब पारखहीन अविचारी ही हुए वा हो रहे हैं। उसके सत्यासत्यका विचार सत्सङ्गमें कर लेना चाहिये ॥ ३६७ ॥

१६. इसारा कुन हूकम मुतलक ❀ मसाईन स्वाभाविक हक ॥ ३६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

इसारा=मुस्लिम गुरुवालोगोंने वाणी कल्पनाका इशारा, शैन देकर बतलाये कि— कोई परमेश्वर या खुदा एक जगत्‌का कर्त्ता है। वह—

कुन=खुदा इच्छा करके "कुन" ऐसा शब्द जब

जोरसे उच्चारण करता है, तब—

हूकम=उसकी आज्ञा तामील होके उसी हुक्म-से ही—

मुतलक=समस्त दुनियाँ बिलकुल एकदमसे उत्पन्न हो जाती है।

स्वाभाविक=ईश्वर या खुदाकी स्वाभाविक इच्छासे संसार उत्पन्न तथा प्रलय होते रहनेको कल्पना करके माने हैं।

मसाईन=तहाँ शरीरके भाससे साधकोंको ज्योति प्रकाश, आनन्दादि जो भासा या मालूम हुआ—

हक=उसीको सच्ची वस्तु खुदा वा ब्रह्मकी कल्पना करके माने हैं। सत्य जीवको छोड़कर मिथ्या भासमें भूले पड़े हैं॥

व्याख्या— मुसलमानलोग कहते हैं कि— पहले कुछ भी नहीं था, खुदा ही एक अकेला था। उसको दुनियाँ बनानेकी इच्छा हुई, तब खुदाने "कुन्" ऐसा शब्द जोरसे बोलके प्रकाश किया, उससे कुदरत (माया) प्रगट भई। उसको अल्लाह मियाँने इशारा देकर हुक्म दिया कि— दुनियाँ उत्पन्न-कर! तब क्या देर थी, समस्त संसार क्षणभरमें ही बनके तैयार हुआ; ऐसे खुदाके हुक्मसे पलमात्रमें बिलकुल सब दुनियाँ उत्पन्न हुई है। वैसे ही खुदा जब "फैकुन्" शब्द कयामतके समयमें कहेगा, तब सब संसार पल भरमें ही फना होकर नाश हो जायगा। ऐसे 'कुन् वा फैकुन्' से उत्पत्ति और प्रलय खुदा वा ब्रह्मकी स्वाभाविक इच्छासे होता ही रहता है। ऐसा वाणीका कल्पित इशारा या शैन गुरुवालोगोंने बतलाये हैं; और ध्यान साधनादि करनेसे जो देहका प्रतिबिम्ब भास हुआ या आनन्द ज्योतिप्रकाश आदि प्रगट हुआ, उसीको सच्चा खुदा या परमात्मा मानकर हिन्दू और तुरुकलोग धोखामें ही भूले पड़े हैं; बिना पारख यह धोखा नहीं छूटता है॥ ३६८॥

१७. जोगई सङ्गाल एक अनुमान ❀ बचन फेर बहु पन्थ उपान॥ ३६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जोगई=जो गुरुवालोगोंने कल्पना करके वेद, कुरान, बाइबिलादि नाना वाणी बनायके गाये वा कहे हैं—

सङ्गाल=सोई विभिन्न वाणियोंको संग्रह करके बेपारखी मनुष्योंने उसे सत्य मानके ग्रहण-कर लिये हैं।

एक अनुमान=अनुमान-कल्पना तो सबोंका एक-सा ही हुआ है। एक जगत्कर्त्ताका अनुमान उन सबोंने माने हैं। उसमें—

बचन फेर=सिर्फ भाषाकी वाणीका ही हेर-फेर उलट-पलट करके न्यारा-न्यारा वचनका फेर मात्र किया है, नहीं तो सब उसी धोखेमें ही पड़े हैं; ऐसा दिखता है। इसीसे वाणीके फेरा या चक्रसे घूम-फिरकर—

बहु पन्थ=नाना मत, पन्थ, ग्रन्थ, षट्दर्शन छियान्नवे पाखण्ड इत्यादि अनेक मार्गोंका विस्तार करके—

उपान=जगत्में उत्पन्न किये हैं या पैदा कर रहे हैं। सो सब भ्रमिक ही हुए वा हो रहे हैं। अर्थात् एक अनुमानसे वाणीका संग्रह करके जो जमा किये, जो कथन करके गाये हैं; उसमें सिर्फ बचनके हेर-फेरसे बहुत पन्थ उत्पन्न किये हैं। किन्तु, कल्पना सबोंकी एक-सी हुई है॥

व्याख्या— पूर्वमें जो गुरुवालोगोंने कल्पित वाणी गाये, और नाना ग्रन्थ बनाये हैं; सोई नरजीवोंने संग्रह करके ग्रहण किये हैं। तहाँ ईश्वर, खुदादि जगत् कर्त्तादिके मानन्दी-अनुमान तो उन सबोंका एक-सा ही भया है। सिर्फ बचनरूपी भाषाकी वाणीका मात्र ही फेर-फार है, वाणीके फेर या चक्रसे बहुत ही पन्थ, मत-मजहब संसारमें उत्पन्न किये हैं। उसीमें पड़े हुए जड़ाध्यासी जीव सब आवागमनोंमें ही जा पड़े और वहीं पड़ रहे हैं॥ ३६९॥

१८. जेहि जो भावै करै विचार ❀ आस्तिक नास्तिक मत अनुहार॥ ३७०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जेहि=इसप्रकार वहाँपर हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पार्सी आदि जिन्ह-जिन्ह मनुष्योंको जैसा-जैसा विचार भया—

जो=और जो-जो बात या अनुमान-कल्पना मनमें दृढ़ निश्चय हुई है—

भावै=सो उसी-उसीके ऊपरमें भावना कायम करके अच्छा मान लिये हैं।

करै विचार=फिर वे सब अपनी-अपनी भावना अनुकूलताके अनुसार ही विचार करते हैं, तो वही-वही बात ही बिना पारख उन्हें सच्ची मालूम पड़ जाती है। सोई पकड़ लेते हैं।

आस्तिक=सत्य चैतन्य अखण्ड तो जीव स्वयं था, किन्तु, पारख न होनेसे कोई ईश्वरादि कर्त्तावादी, मूर्तिपूजक आदि अपनेको आस्तिक मानने लगे। अपने मत वेद विरुद्ध चलने वालोंको वे लोग द्वेष करके—

नास्तिक=नास्तिक कहने लगे। परन्तु, मिथ्या ब्रह्म, खुदादिको माननेवाले, वे ही नास्तिक भये हैं या कोई शून्यवादी, तत्त्ववादी आदि नास्तिक भये हैं।

मत=ऐसे संसारमें नाना मत, नाना सिद्धान्त चलाकर गुरुवा लोगोंने—

अनुहार=सूक्ष्म-स्थूलरूपसे धोखा कल्पनाका ही प्रचार किये और कर रहे हैं; बिना पारख॥

व्याख्या— अब जिस-जिसको जो-जो भावना दृढ़ हुई या जैसा-जैसा अच्छा लगा, उसीको सत्य मानकर सब कोई उसीका विचार करने लगे। परन्तु, पारख विचार तो उन्होंमें है ही नहीं; इससे 'अस्ति' सत्य चैतन्य स्वयं स्वरूप जीव जो है, इसका तो कोई विचार ही नहीं करते हैं। किन्तु, 'नास्ति' जो कि नहीं है, उसीको जगत्का कर्त्ता परमेश्वर या खुदा कोई है, ऐसा मानकर भूले हैं। फिर वेदादिको माननेवालोंको आस्तिक और न माननेवालोंको नास्तिक उन्होंने ठहराये हैं। तथा कोई ईश्वरवादी और कोई शून्यवादी भये हैं। ऐसे नाना मत-पन्थोंकी सूक्ष्म कल्पना पकड़कर उसीकी धारणा या प्रचार वैसे ही करने लगे; बिना विवेक॥ ३७०॥

१९. त्रिगुण चाल सोहं सो देव ❀ परखै परखनहारा भेव॥ ३७१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

त्रिगुण=सत्त्व, रज, और तम, ये तीनगुण अज्ञानियोंके हैं, तथा तत्, त्वं, असि, ये तीनगुण ज्ञानियोंके माने हैं।

चाल=सो 'त्वं' पदमें जीव रजोगुण कर्ममार्गकी चालसे चलने लगे। 'तत्' पदमें ईश्वर या ज्ञानी, ज्ञानमार्गकी चालसे चलने लगे। और 'असि' पदमें ब्रह्म, विज्ञानी विज्ञान मार्गकी चालसे चलने लगे। तथा—

सोहं=सोहं, ओहं, राम, ये तीन प्रकारसे जाप या नाम स्मरण करके 'सो ब्रह्म मैं हूँ!' ऐसा निश्चय करके योगी, ज्ञानी, भक्तोंने मुक्ति मान लिये हैं।

सो देव=सोई ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन तीनोंका उपदेश या सिद्धान्तको बेपारखी लोगोंने मुक्तिदायी श्रेष्ठ मान लिये, या मान रहे हैं, इसीसे वे भव-बन्धनोंमें ही पड़े हैं।

भेव=इसके यथार्थ भेद सत्यासत्यका ज्ञान, बन्धन-मुक्तिका मर्म या भेदको—

परखनहारा=परखनेवाले पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा उनके सच्चे अनुयायी पारखी सन्त ही उन सबोंको परखनेवाले सत्यन्यायी होते हैं। उन्हींकी शरण-ग्रहण करके, सत्सङ्ग करके कोई बिरले मुमुक्षु जन ही—

परखै=यह सब वाणी-खानीके जालोंको परखकर, त्यागकर न्यारे हो रहेंगे। अर्थात् उसके भेदको परखनेवाले कोई पारखी ही होते हैं, वे ही परखते हैं। दूसरे उसे परख नहीं पाते हैं॥

व्याख्या— अर्थात् भक्ति, योग, ज्ञान, ये तीन मार्गके प्रगटकर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु, महेश भये हैं। उन्होंने जगत्के त्रिगुणी जीवोंको त्रिगुण मार्गकी ही तीन चाल सिखाये हैं। तहाँ 'सोहं ब्रह्म' जपनेकी चाल, योग मार्ग, शिवजीने सिखाये हैं। 'ओहं ब्रह्म' जपनेकी चाल, कर्म या ज्ञानमार्ग, ब्रह्माजीने सिखाये हैं। 'राम या रंरं' रमैया राम जपनेकी चाल, उपासनामार्ग, विष्णुने सिखाये हैं। सो उसी चालसे चलकर योगी, ज्ञानी, भक्तोंने—'सो कोई ब्रह्म जो है, सो मैं ही हूँ' ऐसी कल्पना दृढ़ कर लिये

हैं। तथा उसी नाम स्मरण या मानन्दीको मुक्ति देनेवाला सर्वश्रेष्ठ ठहराये हैं। ऐसी मानन्दी कल्पनासे नरजीवोंकी मुक्ति तो नहीं होती है, किन्तु, बन्धन तो अवश्य दृढ़ होता है। इसके भेदको तो कोई परखनेवाले पारखी ही परखेंगे। सर्व प्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने इस भ्रम-धोखाको परखा करके सत्य भेद बतलाये हैं। तबसे पारख बोध जिज्ञासु मनुष्योंको मिला। ऐसे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग द्वारा जिन्होंको सत्य भेद मालूम हो जायगा, सो भी मिथ्या-सत्यके भेदको यथार्थ जानके ठीक रीतिसे परखेंगे; तो उनकी भी समस्त भ्रम-भूल मिट जायगी, सो जानिये ! ॥ ३७१ ॥

२०. परखहु रामरहस विचार * समष्टिसार सोई संसार ॥ ३७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

रामरहस = अब यहाँपरग्रन्थकर्त्ता [श्रीरामरहस-साहेब] कहते हैं कि—'राम'-चैतन्य जीवका 'रहस्य'—पारख बोधको धारण करके हे मुमुक्षु जनो !—

विचार = सत्य निर्णयसे विवेक-विचारको फैला-कर संसारमें—

परखहु = सार और असार, सत्य-मिथ्या आदिको पारखसे ठीक-ठीक परख लीजिये। फिर, सत्यको ग्रहणकर असत्य पक्षको त्याग दीजिये ! और—

समष्टिसार = खानी-वाणी बन्धन जाल सबको समेटकर या लपेट करके एक अद्वैत ब्रह्म कहा गया है। तथा खलकमें भरा हुआ एक खालिक बतलाये हैं। ऐसा सार सिद्धान्त मानकर भ्रमिक गुरुवालोगोंने उसे ही सत्य ठहराये हैं।

सोई = वही धोखारूप ब्रह्म-खुदाके सिद्धान्तकी कल्पना ही—

संसार = जगत्में संशय-ग्रसित संसारी नर-जीवोंने परमोत्तम मानकर ग्रहण किये हैं और ग्रहण करा रहे हैं। सो जीवोंको अहितकर महान बन्धनरूप ही है, ऐसा पारखी श्रीसद्गुरुने इस 'समष्टिसार' नामके ग्रन्थमें यहाँ तक परखाते हुए सब वाणी-खानी जालोंका विस्तार दरशा दिये हैं। अब सत्सङ्ग-विचार द्वारा इसको अच्छी तरहसे जान लीजिये ! कि— संसार ही सोई मुख्य 'समष्टिसार' है ॥

व्याख्या— यहाँपर अब ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब अपने आपको तथा जिज्ञासु मनुष्योंके प्रति लक्ष्य करके स्वनामके सम्बोधन पूर्वक कहते हैं कि— हे रामरहस ! अथवा हे मनुष्यो ! रमैया-रामरूप अपने जीवके पारख रहस्यरूप स्वरूप बोधको धारण करके सत्यासत्यका यथार्थ विचारकरो, तथा सार-असारका पारख करो। सारका ग्रहण और असारका परित्याग करो। अभी मनुष्य जन्ममें यदि सुधार, उद्धार नहीं हुआ, तो फिर पश्चात् कुछ हो सकनेका नहीं। और यह 'समष्टिसार' ग्रन्थमें यहाँतक जगत्में नरजीवोंकी मानन्दीका सार मुख्य-मुख्य बातोंको दरशाकर परखा दिया गया है। सो निर्णयको समझकर ग्रहण करो। और संक्षेपमें समष्टिसार कहिये जड़-चेतन सब समेटकर एकमें मिलाय, एक अद्वैत ब्रह्म या खलकमें भरा हुआ खालिक कहा है; ऐसा सार सिद्धान्त ठहराके गुरुवालोगोंने उसे माने हैं। सोई महान धोखा बन्धनका कारण है। समष्टिसार सोई संसार है, यह पारखी श्रीसद्गुरुने यहाँ परखा दिये हैं। सो भ्रम-संशयको परखकर त्याग करना चाहिये; तभी मुक्ति हो सकेगी, ऐसा जानिये ! ॥ ३७२ ॥

साखीः— रामरहस पारख करै * जो शब्द विवेकी होय ॥

[२४] लखै सन्धि सन्देहका * भाँई रहै न कोय ॥ ३७३ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

रामरहस = यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता अपने तथा जिज्ञासुके प्रति लक्ष्य करके कहते हैं कि— 'राम' सो रमैया राम चैतन्य जीवकी 'रहस'-स्थिति ठहराव करनेके लिये पारख रहस्य होना चाहिये। उसके लिये—

पारख करै = पारखी सन्तोंके सत्सङ्गमें रहिके सत्य-असत्य, जड़-चैतन्य, तथा खानी-

वाणी आदि सबोंको, परीक्षा या पारख करके परखना चाहिये।

जो=जो कोई सत्यका जिज्ञासु नरजीव—

होय=होयगा, सो पारखी श्रीसद्गुरुके उपदेश-का विचार करेगा, तो उसको भी पारखका बोध हो जायगा। अतएव, हे मुमुक्षुओ!

शब्द=काल, सन्धि, झाँईं, तत्त्वमस्यादि कल्पित वाणी जालोंको गुरुमुख निर्णय सारशब्दसे परीक्षा करो तथा निष्पक्ष होकर—

विवेकी=विवेकी पारखी श्रीसद्गुरुकी विवेक दृष्टिको अपनेमें लेकरके नित्य-अनित्य या सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिये। तभी तुम भी शब्द-विवेकी हो जाओगे।

सन्धि=और ईश्वरपदकी मानन्दी तथा जगत् विषयोंकी मानन्दी और बन्धनके जुटाव सोई 'सन्धि' है।

सन्देहका=कर्त्ता ब्रह्म आदिका भ्रम-संशय सुख-दुःख दाता मानन्दी धोखा सन्देहका मूल वा जड़ क्या है? तो भ्रम है।

लखै=और पारख स्वरूपका अबोध, अज्ञान—यही सन्देहका कारण है। ऐसा पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें जब अच्छी तरहसे लखनेमें या जाननेमें आ जायगा। तब श्रीसद्-गुरुकी दयासे पारख-दृष्टि उदय होनेसे उन मनुष्योंका भ्रम छूट जायगा। तथा—

झाँईं=ब्रह्मपदकी गाफिली धोखा और विषयादिके जड़ाध्यास भी सब नाश हो जायेंगे।

कोय=खानी-वाणीमेंका कोई भी अध्यास उनका तब बाकी कुछ भी—

रहै न=नहीं रहेगा; यानी बन्धन बाकी रहेगा नहीं, अर्थात् आवागमनोंका कारणरूप जड़ाध्यास, अपरोक्ष पारखबोध होनेपर फिर कोई बाकी रहनेका नहीं। यही बनाना मनुष्योंका मुख्य कर्त्तव्य है। सारांश, चैतन्य रहस्यका पारख करके जो शब्द-विवेकी पारखी होते हैं, फिर वे पारख दृष्टिसे सन्देहकी सन्धि लखते हैं, अतः उनके पास तब कुछ भी झाँईं, सन्धि आदि विकार रह नहीं सकता है। इससे पारखी सन्त निर्विकार, निर्बन्ध हो जाते हैं; ऐसा जानना चाहिये! ॥

व्याख्या— श्रीरामरहससाहेब अब यह दूसरा ग्रन्थ "समष्टिसार" समाप्त करते हुए अन्तमें कहते हैं कि— हे मुमुक्षु नरजीवो! जो शब्द विवेकी पारखी साधु-गुरु होते हैं, सो सबका पारख करते हैं। निर्बन्ध सत्यन्यायी होते हैं। इस कारणसे यदि तुम अपने हित-कल्याण चाहते हो, तो उन्हीं पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणागत होकर सत्सङ्गमें रहिके जो कि, बन्धनरूप गुरुवालोगोंके शब्द-वेद, कुरानादि वाणी जाल हैं, तथा विषयीलोग और स्त्रियोंके शब्द खानी जालोंको अच्छी तरहसे पारख करके विवेकी होकर उसे सर्वथा परित्याग करदो; और भोग-विलासोंका नाना संशय तथा सुख-दुःख दाता कोई कर्त्ता परमात्मा मानन्दीरूप सन्धिका सन्देह एवं विषय विलासकी गाफिली, ब्रह्मानन्दादिका धोखा झाँईं यही हम जीवोंको जबरदस्त बन्धन पड़ा है, ऐसा जानके इसको पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य निर्णय उपदेशको श्रवण, मननकर उसे धारण करके अच्छी तरहसे लख लेना चाहिये। जो कोई मनुष्य उसे ठीक-ठीकसे लख लेगा, जब अपरोक्ष पारख बोध पक्का होगा, तब उनमनुष्योंका अध्यासरूप बन्धन कोई भी बाकी नहीं रहेगा; फिर वे जीवन्मुक्त हो जावेंगे। यही बनाना मनुष्योंका स्वधर्म है, ऐसा जान लीजिये! ॥ ३७३ ॥

साखीः— नदी उतरै नाला उतरै * समुद्रहु ऊतर जाय ॥
[२५] खाई अंगुल चारकी * तामें गोता खाय ॥ ३७४ ॥

॥ * ॥ इति श्री मूलपञ्चग्रन्थीका द्वितीय ग्रन्थः समष्टिसार— श्रीरामरहससाहेब कृत समाप्तम् ॥ * ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु सन्तो!

नाला=अज्ञानी 'त्वंपद' जीवोंने नालारूप कर्ममार्ग पुराणोंकी वाणी छोड़कर—

उतरै=आगे उतरकर बढ़ते चले गये, तो वहाँ वे ज्ञानी होते भये, फिर वे—

नदी = ज्ञानी भी 'तत्पद' ईश्वर मानके उपासना-मार्गमें, षट् शास्त्रोंकी वाणीरूप नदीकी धारामें बहने लगे।

उतरै = कोई उस नदीको भी युक्ति-प्रयुक्तिसे पार उतरकर बढ़ते चले गये, तो वहाँ वे विज्ञानी बनते भये। फिर—

समुद्रहु = विज्ञानी 'असिपद' ब्रह्मको वेद-वेदान्तसे निश्चय करके योगमार्गसे समाधिमें जाकर शून्यमें मिले। 'वह ब्रह्मको वाणीसे कुछ कहते नहीं बनता, अनिर्वाच्य है' ऐसा मानकर महान धोखामें पड़े। इस प्रकार समुद्ररूप उस ब्रह्मज्ञानके कथनको भी छोड़ करके शून्य भये।

ऊतर = तब नरजीव मनुष्य पदसे भी उतरकर बियावानमें पहुँचकर गरगाफ भये, अब अन्य लोग—

जाय = उसी शून्यमें जाना चाहते हैं, तो कहाँ जायेंगे ? अध्यासवश शून्य गर्भवासमें चौरासी-योनियोंमें ही चले जावेंगे।

खाई = और सब तरफसे उतरकर अन्तमें खाईमें आकर गिर पड़े, तो भगखाई या भ्रमरगुफामें भोगानन्द और योगानन्दादिका रसास्वादन करके उसीअध्यासवश उलटकर देह छूटनेके बाद भग द्वारा पुनः—

अंगुल चारकी = वे जीव चारखानियोंमें गर्भवासमें जाकर पड़ते हैं। अथवा चार वेदोंके प्रमाणसे ब्रह्म भासका अध्यास अन्तःकरण चतुष्टयमें टिकाकर उसीके संस्कारसे पुनः गर्भमें ही जाते हैं।

तामें = ऐसे उलट-पलटकर खानी-वाणीमें ही पड़े हुए सब जीव उसी भग या गर्भवासमें ही जाय-जायके—

गोता = जन्म-मरणादि त्रिविधि तापादिमें नीचे-ऊपर, भीतर-बाहर गोता लगाते हुए—

खाय = अनेकों दुःख भोग रहे हैं। ऐसे सब गोता खा रहे हैं; बिना पारख॥

व्याख्या— (१) अर्थात् भूमण्डलमें पहाड़ोंपरसे तथा पृथ्वीकी ऊँच-नीच जमीनमेंके टीले और खाँचपरसे पानी एकत्रित होके छोटे-छोटे प्रवाहरूपमें जब बहने लग जाते हैं, तो उसको 'नाला' कहते हैं। ऐसे कईएक नाले मिल जानेसे बड़े वेगसे पानीकी बड़ी भारी धारारूपसे बहने लग जाती हैं, तो उसीको 'नदी' कहा जाता है। ऐसे संसारकी समस्त नदियाँ बहती हुई उतरती-उतरती अन्तमें समुद्रमें जाकर मिल जाती हैं। सब पानी समुद्रमें एकत्रित होता है। फिर सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे वह शोषक या आकर्षक वायुकी सहायतासे समुद्रादिके पानीका भाफ, अणु, प्रमाणुरूपमें खिचाव होकर मेघ मण्डलमें चला जाता है। पश्चात् वर्षा होकर फिर पृथ्वीमें ही गिरकर वैसे ही पूर्ववत् चक्कर लगाने लग जाता है। और तहाँ मनुष्य लोग नालोंको और छोटी-छोटी नदियोंको भी उतारपरसे जाके पैरोंसे चलके सहज ही पार उतर जाते हैं। और बड़ी नदियोंको कोई तैरकर तथा कोई नौका, अग्निबोट आदिकी सहायतासे पार उतर जाते हैं। एवं समुद्रको भी बड़ी-बड़ी जहाजोंमें चढ़के उतरते हुए एक टापूसे दूसरे टापू या दूसरे देशोंमें लोग चले जाते हैं। ऐसे-ऐसे शूर-वीर तैरनेको खूब जाननेवाले लोग भी कभी-कभी चूकसे जब छोटी-सी खाई, कूआँ या भँवरमें पड़ जाते हैं, तब गोता लगाके होश-हवाश भी उड़ाकर मर जाते हैं। इस तरहसे तो उनके लिये छोटी खाई भी समुद्रसे भी बड़ी भयानक सिद्ध हो जाती है। यह तो दृष्टान्त हुआ। अब इसका सिद्धान्त सुनिये ! संसारमें अनेकों देहधारी जीव जो हैं, सोई बड़े-छोटे देहकी दृष्टिसे पहाड़के समान हैं। पानी यहाँपर विषय वासना या उन्होंकी अनेकों वाणीकी कल्पनाएँ हैं। सो विषय और कल्पनाकी धाराएँ वहाँ अज्ञानी मनुष्योंमेंसे छोटी-छोटी या थोड़ी-थोड़ी रूपमें निकलके बहने लगीं, सोई नालाके रूपमें हुए। वे नालेको सब उतरते-उतरते आखिरमें नदीवत् माने गये ज्ञानियोंमें जाके मिले; तो उन्होंमें बहुत ही वाणी कल्पनाएँ इकट्ठी होके बड़े वेगसे भ्रमरूपमें बहने लगीं। आखिरमें ज्ञानियोंकी कल्पनाएँ विज्ञान ब्रह्मरूपी समुद्रमें पहुँचीं, तो वहाँ समाधि लगी, सहविकल्पसे उतर करके निर्विकल्प दशामें पहुँचे, शून्यमें गाफिल हुए। परन्तु, उन्होंका अध्यास तो कुछ नहीं छूटा; इससे

मनुष्य पदसे उतरकर यानी देह छोड़कर उलटकर वासनावश पुरुषके वीर्यमें जाकर मिले। फिर, मैथुन समयमें भग-खाईमें जाकर गिर पड़े, सो योनि द्वारा गर्भवासमें जा पड़े। तहाँ समयानुसार देह तैयार होनेपर जन्म ले करके पैदा होते भये, पुनः जवान होकर उसी भग-भोगोंमें भूलते हुए फिर-फिर भी वही आवागमनोंमें गोता खा रहे हैं ॥

(२) अथवा नाला, त्वंपद अज्ञानी जीव हैं, सो अज्ञानसे पार उतरके नदीरूप तत्पद ज्ञानी, ईश्वरमें जाके मिले। फिर ज्ञानी भी तत्पद साक्षीसे पार उतरके समुद्ररूप असिपद ब्रह्म विज्ञानमें जाके मिले, तो वहाँपर अवाच्य शून्य ब्रह्म मानन्दी करके मनुष्यपदके विवेकसे भी उतरे, तो चार वेदोंके प्रमाणसे "अहंब्रह्मास्मि" मानकर चित्त, बुद्धि, मन, अहङ्कार, इन चारोंको लय करके शून्य खाईमें जा पड़े, उसीमें गोता खाने लगे, तो गर्भवाससे बाहर और बाहरसे गर्भवास इसी प्रकारसे गोता खाने लगे ॥

(३) अथवा कोई पुराणोंकी तरफसे उतरकर शास्त्रोंमें जाके गिर पड़े, और कोई-कोई तो शास्त्रोंसे भी उतरकर वेदोंमें गये। फिर कोई वेदोंसे भी उतरकर मन, बुद्धि, वाणीसे परे ब्रह्म भये, सो वहाँ भ्रम अध्यासवश चार खानी चौरासी-योनियोंमें जीव गोता खाने लगे ॥

(४) अथवा कोईने कर्ममार्गको पकड़े हैं, और कर्मको छोड़कर कोईने उपासना मार्गको पकड़े हैं; कोईने उपासनाको भी छोड़कर योग मार्गको पकड़े हैं। वहाँ योग समाधिमें शून्य गाफिल होते हैं। फिर देह छूटनेपर वे ही योनि द्वारा गर्भवासमें गोता खाने लग जाते हैं ॥

(५) अथवा कोई स्थूलसे उतरकर सूक्ष्ममें गये, फिर सूक्ष्मसे भी उतरकर कारणमें गये, कोई कारणसे भी उतरकर महाकारण और कैवल्यमें चले गये। परन्तु, स्थिति उनकी कहीं भी नहीं भयी; अतः सोई अध्यासने उन्हें फिर उलटायके चार अङ्गुलकी भग खाईमें लाकर डाल दिया; वे जीव चारखानीके गर्भवासमें पड़-पड़कर बारम्बार गोता खाने लगे ॥

इसप्रकारसे साधक मनुष्य नदीसे उतरे, तो फिर वहाँ नाला आ पड़ा, उससे भी उतरके पीछेसे बड़ा विस्तारवाला समुद्रको भी किसी तरहसे उतरके आगे निकल जाते हैं; परन्तु, यह चार अङ्गुलकी खाईमें आकर एकदम उसमें गोता खाने लग जाते हैं। यह चार अंगुलकी खाई अति गहरी बड़ी जबरदस्त छूटनेको अत्यन्त कठिन हो गयी है। वही खाई खानीमें स्त्रीकी भगखाई बनी है। और वाणीमें ब्रह्म-भ्रमकी खाई है, सो चित्त चतुष्टयसे कल्पना दृढ़ भई है। कोई विरले पारखी महान् पुरुषार्थी नरजीव ही गुरु पारखके महान् बलसे उक्त नदी, नाला, समुद्र, तथा यह चार अंगुलकी कठिन अँधेरी खाईसे पार उतरके जीवन्मुक्त स्थितिमें पहुँच जाते हैं। उन्होंके सत्सङ्ग करके सावधानीसे गुरुभक्ति, वैराग्य बोधकी दृढ़ता करनेवाले कोई मुमुक्षु नरजीव भी सद्गुरुकी दयासे इस भवबन्धनोंसे छूट जावेंगे। उसके लिये सर्वदा प्रयत्न और सत्सङ्ग करते रहना चाहिये। मुमुक्षुओंके लिये यही अन्तिम सत् शिक्षा है, सो जान लीजिये ! ॥ ३७४ ॥

इस समष्टिसार नामक द्वितीय ग्रन्थमें संसार भरके व्यष्टि=मत, पन्थ, ग्रन्थ और सिद्धान्तोंको एकत्र समष्टि=कहिये समेट करके सार-सार बातोंको निर्णय करते हुए ग्रन्थ कर्त्ताने मूलमें संक्षेपरूपमें दरशा दिये हैं। [और टीका-व्याख्यामें विस्तारसे बताके खुलासा करके लिखा गया है] फिर सबोंकी आखिरी स्थिति भी "खाई अंगुल चारकी" में आके लाचार होके उसीमें गिर पड़नेका भेद भी बताय दिये हैं। सो विचार करके अध्यासोंको छोड़कर अपना नरजन्म पानेका सफल करना चाहिये। पारखी श्रीसद्गुरुकी कृपासे प्राप्त सत्यबोधके प्रतापसे इस समष्टिसार द्वितीय ग्रन्थकी-शब्दार्थ-भावार्थ सत्य निर्णय यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका पूर्णरूपसे यहाँ समाप्त हो गयी है। इसको श्रवण, मनन, पठन-पाठन करते हुए सत्य रहस्यको जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ [टीकाकार कृत द्वितीय ग्रन्थ समाप्तिकी वन्दना इत्यादि पद्यावली वर्णन] ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

ग्रन्थ द्वितीय पूरण इति। गुरुकी दयाते आज ॥ रामस्वरूप त्रय बन्दगी। पारख हृदय विराज ॥१॥

॥ ❀ ॥ कवित्तः— ॥ ❀ ॥

जड़ और चेतन सो। व्यष्टि जग भिन्न भिन्न॥ नाम रूप गुण ताहि। विलोकिये छिन्न छिन्न ॥
ज्ञान हीन जड़ तत्त्व। जगतमें छिन्न भिन्न ॥ चेतन स्वरूप जीव। अमित सो चिन्ह चिन्ह ॥
जगत अनादि आहि। कर्त्ता कोइ नाहिं ताहि ॥ गुरु ज्ञान परखाहि। हित बोध लेन चाहि ॥
गुरुवा समेटि ताहिं। ब्रह्म जग एक माहिं ॥ समष्टि धोख भरमाहिं। रामस्वरूप भटकाहिं ॥२॥
साहेब कबीर गुरु। बीजकमें परखाये ॥ बीज वृत्त ब्रह्म जग। खानि वाणि दरशाये ॥
काल सन्धि झाँई जाल। तोड़ि जीव मुकताये ॥ गरीब निवाज प्रभु !। ज्ञान धनको लुटाये ॥
सोई ज्ञान पाये जिन। पारखि साधु कहाये ॥ माया मोटि झिनि नाशि। निजपद ठहराये ॥
रामरहस सद्गुरु। पञ्चग्रन्थिमें लखाये ॥ रामस्वरूप जग माहिं। जो-जो गुरुवा भुलाये ॥३॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

संसार समष्टिसारको। कोइ पार परखि पावते ॥ गुरुवा अनेकन्हि युक्ति से। ब्रह्मज्ञान लखावते ॥
इमि जीव भटके असार माहिं। मर्म कोइ नहिं पावते ॥ रामस्वरूप कबीरसद्गुरु। जीवनबन्धछुड़ावते॥४॥

सवैयाः— ईश कहै कोइ ब्रह्म कहै कोइ। खुदा बताय रहैं जग माहीं ॥
स्वर्ग कहै सतलोक कहै अरु। कोई बहिस्त असमान बताहीं ॥
शून्य कहै भग भोग लहै सो। पुनि भग गर्भमें बास हो ताहीं ॥
मत पन्थ समष्टि असार बहै। रामस्वरूप निस्तार न ताहीं ॥ ५ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

कबीर साहेब बीजक। ज्ञान कियो परकाश ॥ स्वरूपबोध हंसन कियो। भ्रम तम धोखविनाश ॥६॥
ग्रन्थ समष्टिसारमें। आया सबके सार ॥ गुरुबिन भावबोध कठिन। तिलककियानिर्धार ॥७॥
रामस्वरूप गुरु ज्ञानको। व्याख्या लिखा बनाय ॥ भेद खुलै याते सकल। संशय सबहिं नशाय ॥८॥
पठन-पाठन सरलता। सुगम होय सत बोध ॥ सन्धि मिटावै जीवको। जो कोइ गुरुमुख शोध ॥९॥
पारखी गुरु सबते बड़े। गुरुबिन होय न बोध ॥ भक्ति भाव सत्सङ्गते। गुरुमुख लेहु सुबोध ॥१०॥
कपट कुटिल पाखण्ड तजि। सब कुसङ्गहिं टार ॥ साधुभाव सद्गुण ग्रहण। जोकरे सो भवपार ॥११॥
पञ्चग्रन्थिके अङ्गमें। द्वितीय समष्टिसार ॥ अर्थहिं व्याख्यासहितसो। पूर्णसमाप्त सुधार ॥१२॥
मानुषका यहि काम है। निज-पर करना हीत ॥ ताकेगुण लक्षण सहित। मानुषविचार कहीत ॥१३॥
बन्दौं पारखी साधु गुरु। जिन्ह दीन्हा सतबोध ॥ रामस्वरूप टीका करि। गुरुमुखनिर्णय शोध ॥१४॥
सत्यज्ञान पारख गुरु। पारख जीवनमुक्त ॥ पारखके परतापते। स्थिति स्वरूप सदोक्त ॥१५॥
बन्दीछोर गुरु पारखी। पारख दीन्हा बोध ॥ खानि वाणिकी जाल नशि। हंसमुक्त गुरु बोध ॥१६॥
बोधयथार्थ जो चाहिये। बीजक ग्रन्थ विचार ॥ पञ्चग्रन्थि टीका पढ़ी। जानो सो सत सार ॥१७॥

पञ्चग्रन्थि बीजक यही। पारख ज्ञान बताय ॥ पढ़ि गुनि यहि सद्ग्रन्थको। पारखमें ठहराय ॥१८॥
मूल गहे कल्याण है। तजि असार गहु सार ॥ ग्रन्थ पन्थके भारको। परख दीजिये डार ॥१९॥
बीजक ज्ञान सत सार है। पारखज्ञान बताय ॥ पारखके परतापते। जीव मुक्त हो जाय ॥२०॥
कबीरसाहेब अनुभव। बीजक ज्ञान प्रकाश ॥ काल सन्धि झाँई नशि। स्वयं स्वरूप उजास ॥२१॥
वेद पुराण कुरानमें। अरुझे जीव तमाम ॥ सो वाणीकी जाल है। बिनु पारख बेकाम ॥२२॥
ऋद्धि सिद्धि अरु देवता। स्वर्गादिकके भोग ॥ कल्पित आशा धारिके। फँसेफँसाये लोग ॥२३॥
कर्म भक्ति कोइ योगमें। ज्ञान विज्ञान चलाय ॥ भूले स्थिति पाये नहीं। मानि-मानि जहँड़ाय ॥२४॥
विषय भोगके जालमें। संसारी अरुझाय ॥ चैन न पावै ताहिमें। व्याकुल निशिदिन धाय ॥२५॥
नारि पुत्र धन कामना। रोग शोगमिटि आश ॥ मान बड़ाई चाहिये। सब शत्रुनके नाश ॥२६॥
मनोराज बहुविधि करि। कर्म कुकर्ममें लाग ॥ बहु अध्यास कमायके। त्रिविधितापमें पाग ॥२७॥
सो सब खानीजाल है। कुल कुटुम्बि धनधाम ॥ प्रथम कठिन यह जाल है। मोहममता यहि चाम ॥२८॥
उभय बन्धनमें पड़ा। जीव सन्तत जगमाहिं ॥ यम घेरा चहुँदिश अहै। मोटी झीनि फँसाहिं ॥२९॥
असजञ्जालविलोकिके। पारखकबीरगुरुकीन्ह ॥ स्वयंमुक्तदोउजालते। निजस्वरूपस्थितिचिन्ह ॥३०॥
निजदया कृतकृत्य करि। भये सो जीवन्मुक्त ॥ पूरण पारख प्रकाशमें। दृष्टि रहस्य सब उक्त ॥३१॥
परदया सद्गुरु किये। पारख ज्ञान बताय ॥ भूल मिटाये जीवकी। सार असार लखाय ॥३२॥
बन्दीछोर कबीर गुरु। बीजक सत उपदेश ॥ बीजक बोध प्रतापते। संशय रहै न लेश ॥३३॥
अनुयायी पारखि सकल। बीजकके आधार ॥ रचनाकरि सद्ग्रन्थको। सत सिद्धान्त प्रचार ॥३४॥
बीजक निष्ठा रामरहस। पञ्चग्रन्थि बतलाय ॥ महिमा बीजकप्रकाशिया। विदितअहैजनताय ॥३५॥
पञ्चकोशके जालको। प्रथम कहा विस्तार ॥ द्वितीय समष्टिसारमें। कहा सबनके सार ॥३६॥
चौकड़ीखण्ड अष्टादश। साखीपचीस यामाहिं ॥ त्रयशत चौहत्तर पद अहै। समष्टिसारके माहिं ॥३७॥
श्रीलालसाहेब सद्गुरु। गुरुमुख भेद बताय ॥ रामस्वरूपदास सोई। टीका यही बताय ॥३८॥
नागझिरी गुरु स्थानमें। पञ्चग्रन्थिके अर्थ ॥ पाठ्यक्रम अनुसार तस। टीका लेख भावार्थ ॥३९॥
ग्रन्थरूप विस्तार है। बहुविधि कहा बुझाय ॥ पठन-पाठ संक्षिप्त ही। स्मृति जसहोय सुभाय ॥४०॥
रामस्वरूपदास नित। त्रय बन्दगी गुरुदेव ॥ बन्दौं पारखी सन्त सब। हितकर गुरुपद सेव ॥४१॥
युग सहस्र षट् सम्वत। माघ शुक्ल द्वादश तिथि ॥ चन्द्रवारसम्पूर्णभो। जनवरितीस, पचास इति ॥४२॥
पढ़िये सुनिये ज्ञानगुरु। साधो करो विचार! ॥ ठहर पारख रामस्वरूप। बोध भाव भव पार ॥४३॥

॥ * ॥ इति श्रीपारखनिष्ठ पूर्ण पारखीसन्त श्रीरामरहससाहेब विरचित मूल पञ्चग्रन्थी ग्रन्थे—द्वितीय ग्रन्थः समष्टिसारका— रामस्वरूपदास अनुवादित—शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित समाप्तम् ॥ २ ॥ * ॥

इति समष्टिसारकी टीका—व्याख्या सम्पूर्णम्

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

बन्दीछोर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी दयासे प्रकाशित– मूल बीजक सद्ग्रन्थके सत्य पारख सिद्धान्तानुसार—

साधुशिरोमणि कबीरपन्थी सन्त–महात्मा पारखनिष्ठश्रीरामरहससाहेब विरचित

सद्ग्रन्थः मूल-पञ्चग्रन्थी–सटीक ।

॥ ❀ ॥ अथ मानुषविचार नामक तृतीय ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

[शब्दार्थ–भावार्थ, सत्य निर्णय यथार्थ, पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत–श्रीसद्गुरु पद-वन्दना– मङ्गलाचरण ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

सद्गुरु कबीर पूरण, पद बन्दौं त्रयबार ॥ गुरुकीदया टीका किया, तृतीय मानुषविचार ॥१॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

आदि मध्य औ अन्तमें, गुरुदेव पदको वन्दना ॥ मन माँहि भक्ति भाव धरकर-, जोरि पुनःपुनः वन्दना ॥
धन्य पारखि साधु सद्गुरु !, कालजालनिकन्दना ॥ हंस पदमें हो स्थिति, रामस्वरूप यहि चाहना॥२॥

॥ ❀ ॥ कवित्तः— ॥ ❀ ॥

मानुषके जन्म पुण्य–, प्रतापते पाइया ॥ याहिं भूमि माहिं कर्म, बनत बनाइया ॥
समझ औ बुद्धि भेद, भेद होइ जाइया ॥ लक्षण न होय सोई, रूप मानुष कहाइया ॥
खरको ओढ़ायो कोई, सिंहहिंके खोलरी ॥ शक्ति सिंह ताहि नाहिं, पहिचान बोलरी ॥
हंस गुण लक्षण हो, साँच नर अडोलरी ॥ रामस्वरूप याहि माहिं, साहेब सो बोलरी ॥ ३ ॥

॥ ❀ ॥ छन्दः—॥ ❀ ॥

त्रय खानि चक्कर भोगकर । नर खानि जीव सिधारते ॥ संस्कार जैसा पूर्वके । तस तस स्वभावको धारते ॥
सतसङ्ग बिनु पशुवत् सभी । षट धर्म पशु व्यवहारते ॥ मानुष विचारमें रामस्वरूप। बिलगाय गुरु दरशारते ।

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥ ॥ ४ ॥

जामें गुरु बुद्धि रहै । मानुष सोई साँच ॥ रामस्वरूप पारख बिनु । नरपशु भटके पाँच ॥५॥
पञ्चग्रन्थी यह ग्रन्थमें । तृतीय मानुषविचार ॥ रामरहससाहेब गुरु । दरशाय सार असार ॥६॥
करि विचार याको पढ़े । काम क्रोध मद टार ॥ सत्य शील गुरु भक्ति चरै । साँचा मानुष सार ॥७॥
जस गुरुमुखते बोध भो । तस टीका भाषा करौं ॥ शब्द भाव संयुक्तते । अर्थ सरल यामें भरौं ॥८॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

लिखौं मति अनुसार । पद समस्तके सार ॥ सतसङ्गतमें विचार । बाकी हो तब सब खुलै ॥९॥
बन्दौं पारखी सन्त । जन दयालु उपाकारि गुरु ॥ खानि वाणि करे अन्त । गुरुबिनु रामस्वरूपको ॥१०॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

मानुषविचार ग्रन्थ जस । तस गुण मानुष होय ॥ रामस्वरूप गुरुकी दया । हंस मुक्त सत सोय ॥११॥

सम्बन्ध—यह पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थमें तीसरा 'मानुषविचार' नामका ग्रन्थ शुरू होता है । देखनेमें तो सब एक सरीखे मनुष्यरूपमें दिखते हैं, तथा कहते भी हैं कि, हम मनुष्य हैं । परन्तु, उनमें सच्चा मनुष्यका गुण-लक्षण क्या है ? नाम मात्रका रूप देखनेमात्र मनुष्य कौन हैं ? उसीका विचार विस्तार पूर्वक इस ग्रन्थमें वर्णन किया गया है । तहाँ सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति और वैराग्य आदि सद्गुण संयुक्त जिनमें लक्षण हों, सो सच्चे मनुष्य या हंसजीव सत्यन्यायी पारखी जीवन्मुक्त मनुष्यका निर्णय कहा है; और छाजनादि षट् पशुधर्ममें आसक्त अविवेकीका रूप मनुष्य या नरपशु ही होनेका लक्षण भलीभाँति इस ग्रन्थमें दिखाया गया है । सो पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा निर्णयको ग्रहण करके जान लेना चाहिये । मानुषविचार ग्रन्थ शुरू करनेके पहिले मङ्गलाचरणके रूपमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कृत— मूल बीजककी साखी नम्बर ३३३ का प्रमाण देकर श्रीरामरहससाहेबने ग्रन्थ प्रारम्भ किया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ मूल ग्रन्थके मङ्गलाचरण । मूल बीजककी साखी नम्बर— ३३३ ॥ ❀ ॥

साखीः— बना बनाया मानवा * बिना बुद्धि बेतूल ॥
[१] कहा लाल ले कीजिये * बिना बासका फूल ॥ १ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

बना=सत्यबोध बिना जीव, अज्ञानी जड़ासक्त दीन हीन मलीन बना । कोई भ्रमिक हो 'आदि' नरदेहमें, वे जीव पाँच तत्त्वोंमें मिलके तत्त्वका ही प्रकाश देखकर आनन्दरूप ब्रह्म, ईश्वर, आत्मादि स्वयं बने ।

बनाया=फिर अज्ञानी जीवोंने अपने ऊपर कर्त्ता सुख-दुःखोंका दाता कोई एक मालिक बनाये । ज्ञानीने एक अद्वैत ब्रह्मसे अहंइच्छा, स्फुरणा करके कल्पनासे सब जगत्की उत्पत्ति बनाया या ऐसी भावना बनाया ।

मानवा=मनुष्य खानीके जीवोंने ऐसी नाना प्रकारकी मिथ्या मानन्दी दृढ़ करके अनेक वाणी-खानी जाल बनाये । और—

बुद्धि=गुरुबुद्धि, पारखदृष्टि सत्यन्यायके बोधको—

बिना=पाये बिना, समझ हुए बिना, जगत् जालोंको ही बीन-बीनकर जोड़ता गया, इकट्ठा करता गया । इस कारणसे—

बेतूल=बरोबर पारख स्वरूप स्थितिमें नहीं तुलता है, तो सेमरकी रूईकी तरह हलका हुआ; यानी नरपशु ही बना और बन रहा है; निकम्मा हो रहा है ।

लाल=और सेमरका लाल फूल देखने मात्रका अच्छा होता है । तैसे ही लाल रङ्गरूप मनुष्यदेह तो अभी जीवको मिला है । परन्तु—

ले=विषय वासना और कल्पना ले-ले करके—

कहा=अनेक धोखेकी वाणी कहा और बहा, तो क्या फायदा हुआ ?—

कीजिये=मनुष्य देह ही मात्र पानेसे क्या हुआ ? यानी करनी बिना नर होके भी क्या करना ? व्यर्थ ही हुआ । क्योंकि—

बासका=गुरुबुद्धिकी शुद्ध शुभ वासना या खुशबू, सत्य-विचारादिके वासका—

बिना=हासिल हुए बिना, वाणी कल्पना भ्रमको ही बीन-बीन करके ज्ञानी-अज्ञानी, पारखहीन मनुष्य सब बिना विवेक—

फूल=षट् दर्शन, छियान्नवे पाखण्डोंके अनेक

मत-पन्थोंके भ्रमिक सिद्धान्तोंको मान-मान-कर फूले हैं। कोई देहमें फूले, कोई ब्रह्ममें फूले, कोई जगत्में फूले, तो वे सब गर्भ-वासमें भूले और भूल रहे हैं। जङ्गलके फूलवत् बेकारमें नरजन्म गमादिये वा गमा रहे हैं, बिना पारख ॥

व्याख्या— बीजकमें श्रीसद्गुरुने कहा है कि— मनुष्य खानीमें आनेमात्रसे कोई मनुष्यपदके अधिकारी हो नहीं सकते हैं। क्योंकि, नरजीव पहले तो अपने नाना प्रकारसे विचित्ररूपके समझ-वाले बने। फिर, दूसरेको भी वैसे ही बनाये। सो कैसे कि- संसारमें एक तो जाति, वर्ण, कुल, आश्रमाभिमानी बने हैं, दूसरे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पार्सी आदि बने हैं, तीसरे ऊँच, नीच और चार खानीमें नाना देहधारी बने हैं। तहाँ देहको ही निज स्वरूप करके माने हैं, और सुखी-दुःखी, नारी-पुरुष, नपुंसकादि बने हैं। कोईने भावना करके तत्त्वोंके भास, अध्यासमें मिलके आनन्दरूप ब्रह्म बने वा कर्त्ता बने हैं। तत्पश्चात् कल्पना करके देवी-देवता, लोक-परलोक, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि वाणी बनाये। कोई कर्त्ता परमेश्वर ठहराये हैं; और ज्ञानियोंने अहं ब्रह्मकी इच्छासे समस्त जगत्की उत्पत्ति बताये या धोखासे भ्रमको पुष्ट बनाये हैं। इस प्रकार मनुष्योंने अनेक मानन्दी या अध्यास नरदेहमेंसे बनाये हैं। वे सब गुरुबुद्धि पारख विचारके बिना बेतूल या हलके, पशुवत् जड़ाध्यासी विवश हुए। जैसे देखनेमें सेमरका फूल लाल होता है, तो उसको लेके क्या करना? उसमें कोई खुशबू या सुवास तो है नहीं। बिना वासके फूल जैसे बेकार है, तैसे ही लाल रङ्गके समान मनुष्य देह जीवको अभी मिला है; किन्तु, सत्यबोध विचारके बिना कोई विषय वासना ले-ले करके जगत्में विषय भोग करनेको ही उत्तम कहते हैं और वैसे ही बर्ताव भी करते हैं। और कोई गुरुवालोग धोखासे आशाको ले-लेकर जप, तप, योगादि करनेको कहते हैं। बिना पारख नाना सिद्धान्तोंके अभिमानमें ही फूले या भूले पड़े हैं। कोई देहमें फूले हैं, कोई वाणीसे ब्रह्म बनके फूले हैं। इस प्रकार व्यर्थ ही नरजन्मको बिता करके आवागमनमें पड़े या पड़ रहे हैं। अर्थात् प्रथम तो मनुष्य अपने ही भ्रमिक बना, फिर कल्पनासे दूसरा कर्त्ता बनाया, धोखामें पड़ा; बिना बुद्धि हलुका हो रहा है। बिना वासका फूल लाल भी हुआ, तो उसको लेके क्या करना? तैसे ही सुन्दर नरदेह भी मिला, किन्तु पारख विचार नहीं भया, तो बेकाम है, बद्ध है, ऐसा जानिये! ॥ १ ॥

सम्बन्ध— अब यहाँ १ चौपाईसे ६ चौपाई, और १ मसला तक पहला खण्डका वर्णन हुआ है, ऐसा जानिये! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ एक खण्ड ॥ १ ॥ ❀ ॥

१. मानुष मानुष सबै कहावै * मानुष बुद्धि कोई बिरला पावै ॥ २ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु सन्तो! सुनिये!:—

मानुष = मनुष्यके रूपमें तो संसारी विषय-भोगी गृहस्थाश्रमी— स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, सन्तान, घर-द्वारवाले रागीजन और वैरागी त्यागी बने हुए षट्दर्शनोंके भेषधारी साधु बने हुए ऐसे नरजीव, सब ही व्यवहारमें तो वे—

सबै = सब कोई अपने-अपनेको श्रेष्ठ मानकर—

कहावै = हम मनुष्य हैं, हम भी मनुष्य हैं, ऐसा कहते हैं और मोटारूपमें वे मनुष्य ही कहलाते हैं। परन्तु—

मानुष बुद्धि = सार-असार निर्णय करनेका मनुष्यकी श्रेष्ठ बुद्धि, पारख दृष्टि और सत्य, शील, दयादि हंस गुण-लक्षणयुक्त सद्गुरुका पारखबोध तो—

कोई बिरला = हजारों, लाखों, करोड़ों मनुष्योंमें-से कोई एक संस्कारी पुण्यात्मा ही ऐसे मनुष्योंमें निकल आते हैं।

पावै = वे ही जिज्ञासु नरजीवोंको पारखी सद्गुरुकी दया सत्सङ्गसे ही पारखबोधका ज्ञान प्राप्त होता है। अन्यथा सबको पारख ज्ञान मिल नहीं सकता है ॥

व्याख्या— श्रीरामरहससाहेब यहाँसे अब ग्रन्थ शुरू करते हुए कहते हैं कि— मनुष्य-ही-मनुष्य तो सब ही कोई कहलाते हैं; गृहस्थ-विषयी भी मनुष्य ही कहे जाते हैं। तथा भेषधारी-संन्यासी, उदासी, वनवासी आदि त्यागी साधु भी मनुष्य ही कहलाते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, क्रुस्तान आदि नाना मतवाले भी अपने-अपनेको श्रेष्ठ मनुष्य ही कहते हैं। इस प्रकारसे मनुष्य होनेका दावा तो सब कोई करते हैं। परन्तु, उनमेंसे सच्चे मनुष्यकी बुद्धि तो कोई विरले ही नरजीव पा सकते हैं। तहाँ सत्य-असत्य, जड़-चैतन्य तथा बन्धन-मुक्तिके निर्णय करनेकी शुद्ध बुद्धि, पारखदृष्टि या गुरु-बुद्धिका विवेक तो करोड़ों मनुष्योंमें किसी भाग्यवान् शुभ संस्कारी मनुष्योंको ही पारखी सद्गुरुकी दयासे मिल सकता है या वे ही उसे पा सकते हैं। सोई सद्गुण सम्पन्न सच्चे मनुष्य होते हैं। बाकीके तो सब कहने भरके ही होते हैं ॥ २ ॥

२. छाजन भोजन मैथुन कर्मा ❀ भय निद्रा मोह षट धर्मा ॥ ३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

छाजन=षट् पशुधर्मोंमें प्रथम, आच्छादन, अन्तरमें आवरणरूपी अज्ञानका रहना, तथा बाहर देहको ढाकनेके लिये आसरा या कपड़ा, रोवाँ, छाया, घरादि सब छाजनके भीतर आ जाता है।

भोजन=दूसरा, नाना तरहके आहार, खुराकादि भोजन किया जाता है।

मैथुन=तीसरा, स्त्री-पुरुषोंके सम्भोग कर्मादि होता है, जिसे मैथुन कर्म वा ग्राम्यधर्म कहते हैं।

कर्मा=ऊपर कहे हुए ये तीनों कर्म हैं; और बाकी रहे हुए तीन कर्मोंको भी सुनिये !—

भय=चौथा, डर, दुःख आनेका या देह छूटनेका भयादिसे कम्पकम्पी, चञ्चलता सब प्राणियों-को होता है।

निद्रा=पाँचवाँ, तैसे निजपदकी गाफिली या आराम करना, आँखें मूँदकर सोना भी सभी करते हैं। और—

मोह=छठवाँ, पुत्र-परिवारोंमें ममताका खिंचाव आदि सो मोह उत्पन्न होना; यह भी सबोंको होता है।

षट धर्मा=यह छैः पशुधर्म या पशुके षट्स्वभाव कहलाते हैं। सो ये षट् पशुधर्म संसारमें तीन खानीके प्राणियोंमें एक-से ही होते रहते हैं ॥

व्याख्या— षट् पशुधर्म तो सब देहधारियोंमें एक समान ही हो रहा है। जैसे कि— खानियों-के अनुसार 'भोजन' मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब कोई करते ही हैं। शरीरकी रक्षा, शीत-उष्णसे बचावा, 'आच्छादन' भी सब करते ही हैं। भग-भोग वा स्त्री-पुरुषोंका 'मैथुन' कर्म भी तीनों खानीमें होता ही है। दुःख तथा मृत्युसे सब कोई भयभीत होकर 'भय' करते ही हैं। आराम करके 'निद्रा' लेकर सब कोई सोते भी हैं; और अपने शरीरका तथा वस्तु, स्त्री-परिवारादिका 'मोह' भी सबोंमें देखा ही जाता है। इस तरहका स्वभाव बर्ताव होना, सो यही "षट् पशुधर्म" कहलाता है ॥ ३ ॥

३. पशु पक्षी सबहिनको व्यापै ❀ निशि वासर सो दावा दापै ॥ ४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पशु=चौपाये सब तरहके पशु देहधारियोंमें भी वही षट् पशुधर्म हो रहा है। तथा—

पक्षी=अण्डज खानीके सब प्रकारकी चिड़ियाँ (पक्षियों) में भी वही षट्धर्म प्रकाश हो रहा है। इस प्रकारसे—

सबहिनको=मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब जीव-जन्तुओंको चारोंखानियोंमें अध्यास या भिन्न-भिन्न खानीके स्वभावके रूपमें—

व्यापै=वही षट् पशुधर्म लगा हुआ है या व्याप रहा है, समाया हुआ है। अतएव समस्त जड़ाध्यासी जीव—

निशि वासर=रात्रि-दिनकी नाईं उलट-पलटके ज्ञानी-अज्ञानी या मनुष्य-पशु आदि जीव—

सो=सोई षट् पशुधर्मके अभ्यासवश चार खानियोंमें जा-जा करके—

दावा=जठराग्निकी आँच त्रयतापादिके अनेकों दुःखोंमें पड़े हुए दब रहे हैं।

दापै=सो तहाँ सब कोई दुःख ही भोग रहे हैं। या कष्ट पा रहे हैं, दबे हुए हैं॥

व्याख्या— सो वह षट्स्वभाव पशु, पक्षी, मनुष्यादि चारों खानियोंके देहधारी जीव-जन्तुओंमें मुख्य अध्यासयुक्त षट्धर्म सबमें व्याप्त हो रहा है। दिन-रात वे उसीमें दबे पड़े हैं। इसीसे जन्म-मरणादिमें पड़के जठराग्निका दुःख (वे) पाते रहते हैं, बिना पारख ॥ ४ ॥

४. इन्ह षट धर्म निपुण सब भाँती * चतुर मूढ़ मानुष पशु जाती ॥ ५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

इन्ह=ये ऊपर कहे हुए जो-जो स्वभाव—

षट धर्म=आहार, निद्रा, भय, मैथुन, मोह और आच्छादन, यह षट् पशुधर्ममें ही निपुण वा पूर्ण हैं, तथा—

सब भाँती=सब प्रकारसे या सब तरहसे जो कोई भी मनुष्य होंगे, चाहे वे—

निपुण=प्रवीण हों या जानकार, चालाक हों, ऐसे चाहे तो—

चतुर=पण्डित, ज्ञानी, बुद्धिमान् जगत्में चतुर कहलानेवाले हों, चाहे—

मूढ़=मूर्ख, अज्ञानी, निर्बुद्धिवाले वे विषयासक्त अनाड़ी हों—

मानुष=ऐसे दोनों तरहोंके लोगोंके तो जिनका रूपमात्र मनुष्यका है, नहीं तो—

पशु जाती= वे पशुजातिके ही जीव हैं। क्योंकि, पशु खानीसे ही यहाँ आये हैं, अभी पशुका ही स्वभाव धारण कर रहे हैं। देह छोड़के फिर पशु खानीमें ही जावेंगे। इसीसे वे पशुजातिके ठहरते हैं॥

व्याख्या— अर्थात् यही षट् पशुधर्मोंमें ही सब भाँतिसे जो मनुष्य निपुण हैं; इसके अलावा सत्य, विचार, शील, विवेक, गुरुभक्ति, वैराग्य आदि सद्गुण-लक्षण कुछ भी जिनमें नहीं हैं, वैसे चाहे तो संसारमें चतुर पण्डित, ज्ञानी आदि कहलानेवाले होवें, चाहे मूढ़, नादान, विषयासक्त, बने हुए हों, वैसे दोनों ही तरहके मानुष, मनुष्यपदके अधिकारी नहीं हैं। उनके देखने मात्रका रूप मनुष्यका है, नहीं तो, वे सब पशुजातिके ही जीव हैं; और चौरासी योनियोंमें वा पशुखानीमें ही जानेवाले हैं॥ ५॥

५. निर्णय करि देखो मन माहीं * पशु मानुषते भिन्न कछु नाहीं ॥ ६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

निर्णय करि=सत्सङ्ग द्वारा सत्य निर्णय करके न्यारा-न्यारा गुण-लक्षणोंको—

देखो=विचार-दृष्टिसे देखिये और—

मन माहीं=मनमें उनके गुणोंका मनन द्वारा निर्णय-निश्चयसे पहिचान कर लीजिये! तब आपको भी मालूम पड़ेगा; यानी अपने मनमें विवेकसे निर्णय करके देखिये कि—

पशु=षट् पशुधर्मका व्यवहाररूपी कर्म पशु, पक्षी आदि त्रयखानियोंमें और—

मानुष=मनुष्य खानिके जीवोंमें या नरदेहधारी आदि सभी प्राणियोंमें एक समान ही हो रहा है।

ते=वह षट् पशुधर्मके कर्मोंमें किसीमें—

भिन्न=विभिन्नता या भेदभाव वा पृथक्ता—

कछु नाहीं=कुछ भी नहीं है या कुछ फरक देखनेमें नहीं आता है; ऐसा तो सबको देखनेमें आता ही है, कि- पशु और मनुष्यमें वह स्वभावमें तो कुछ भी विभिन्नता नहीं है॥

व्याख्या— हे सत्य प्रेमी साधु-सज्जनो! सत्सङ्गमें आके निर्णय करके आपलोग मनमें निष्पक्ष होके विवेकदृष्टि उघाड़कर देखिये! तो षट् पशुधर्म जाननेका ज्ञान, अध्यास या आसक्ति तो सबमें समान है, ऐसा दिखाई देगा। यदि षट् पशुधर्मको ही विशेषता रही, तो मनुष्योंमें और पशुओंमें विभिन्नताका लक्षण-गुण कुछ हुआ ही नहीं। सब नर, पशु समान ही हुए वा हो रहे हैं; इसलिये मनुष्यका गुण कुछ और ही है; ऐसा जानना चाहिये॥ ६॥

६. मानुष बुद्धि न देखै जोई * कपट भेष नाना विधि सोई ॥ ७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मानुष बुद्धि=मनुष्य देहधारी होके भी जिसमें मनुष्यकी बुद्धि,सत्यासत्यका निर्णय करनेकी गुरुबुद्धि पारख दृष्टि, यह कुछ भी—

न देखै=नहीं देखनेमें आवे या विवेक दृष्टिसे जो नहीं देखता है; और—

जोई=जो कि, सत्सङ्गमें खोज करके निर्णय करके देखनेकी कोशीश भी नहीं करते हैं, वे पशुवत् ही हैं।

कपट भेष=तहाँ भेषरूप, आकारमात्र मनुष्यका है, नहीं तो भीतर मनमें छल, कपट, घात ही उनमें भरा है। तैसे ही धोखा मानन्दी लगानेवाले भेषधारी कपटी गुरुवालोग धूर्त बने हैं।

नाना विधि=वे अनेक प्रकार या नाना तरहसे भेष बनायके लोगोंको नाना विधिसे ठगते फिरते हैं।

सोई=सोई तो महापशु या घातक, काल बने हैं। ऐसा विवेक दृष्टिसे जानना चाहिये॥

व्याख्या— सच्चा मनुष्य तो सोई है कि- जिसकी बुद्धि प्रकाश हो, सार-असारको पहिचानता हो, स्वरूपका ज्ञान हो, बन्धन-मुक्तिको समझता हो; सोई समझ गुरुबुद्धि कहलाती है। नहीं तो, जिसमें वैसे मनुष्यकी बुद्धि, कुछ भी देखनेमें न आवे, जो सत्सङ्गमें निर्णय न करै, सार-असारकी खोज करके नहीं देखे, सो सरासर नरपशु ही है। जैसे बगुला कपटसे ध्यान लगाके कपटी-मुनि बनके मछलीको पकड़के गटक जाता है; तैसे ही "मन मलीन तन सदा उदासी। गलमें डिम्भ कपटकी फाँसी" वाले ऐसे कपटके भेष बनानेवाले, धोखा-मानन्दी लगानेवाले गुरुवालोग वञ्चक वा ठग नाना प्रकारसे षट्दर्शन-छियान्नवे पाखण्ड आदिका भेष बनाय-बनायके जीवोंका घातकर अहित ही कर रहे हैं। सोई काल, हिंसक पशुके सरदार समान बने हैं। इनसे अहितके सिवाय कभी किसी जीवोंके कल्याण होनेकी आशा नहीं है। ऐसा ठीक तरहसे जानके उन गुरुवाओंके सङ्गसे दूर ही रहना चाहिये॥७॥

[१] मसलाः— गदहा चलै स्वर्गको ❀ छार लगाय-लगाय ॥ ८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेबने सत्य निर्णयका चुटकुला या कहावत कहा है— जैसे गदहा छार या राख लपेटकर ऊपर स्वर्गमें उछल-कूदकर जाना चाहे, तो कहाँ जायगा? नीचे ही गिर पड़ेगा। तैसे ही, सिद्धान्तमें कहते हैं—

गदहा=विषयासक्त पामर गधेलोग और ज्ञान-गधे बने हुए कर्मीलोग, वैरागीलोग, इत्यादि वे सब—

स्वर्गको=सुख प्राप्ति, ऐश्वर्य प्राप्ति, सुवर्ग, अच्छे मनुष्य और सत्यज्ञानी बननेकी आशा लेकरके या स्वर्गादि लोकोंमें जानेके लिये—

चलै=गुरुवालोगोंके पासमें सब कोई चले गये। तहाँ उन्होंने नाना साधनोंमें लगाये। कोई तीर्थ-व्रतादिमें चले, कोई कर्म, उपासना, योगादिमें चले, तहाँपर—

छार=राख या धूरके समान नाना विषयभोग प्रपञ्च जप-तपादि कर्म करके—

लगाय=कल्पना धोखेमें अपने लगे और दूसरोंको लगाये। और भी—

लगाय=मिथ्या भ्रम-मानन्दीको दृढ़ करके विषयानन्द वा योगानन्दादिमें सुख प्राप्ति ईश्वर प्राप्तिकी आशा लगाये और लगा रहे हैं, बिना विवेक॥

व्याख्या— जहाँपर धूर, गर्दा या राख आदि पड़ा हुआ देखता है, तहाँपर गदहा जाकर लोट-पोट होकर गर्दाको शरीर-भरमें खूब फैला लेता है, और उछल-कूदकर भाग जाता है, तो पीछे डण्डेकी मार सहकर दुःख ही पाता है। तैसे ही, गदहावत् संसारी विषयासक्त लोग सुख प्राप्तिके लिये जहाँ-तहाँ विषय क्रीड़ा करनेको चले जाते हैं; तहाँ-तहाँ कष्ट ही पाते हैं। अथवा निर्बुद्धि वैरागी आदि लोग अविवेकी होनेसे गदहावत् ही बने हैं। वे स्वर्गादि प्राप्तिके लिये आशा बाँधकर छार या राख सर्वाङ्गमें लगाय-लगायके भूरे जङ्गली माफिक हो जाते हैं। फिर चारोंधाम आदिकी तीर्थयात्रामें भटक-भटककर तितिक्षादिमें, नाना कष्ट-दण्ड सहनकर जड़ाध्यासी हो मर जाते हैं। फिर चौरासी योनियोंमें जाकर दुःख भोगते रहते हैं, बिना पारख॥ ८॥

सम्बन्ध— यहाँ १ चौपाईसे ५ चौपाई, और २ साखीतक दूसरा खण्डका वर्णन भया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ दो खण्ड ॥ २ ॥ ❀ ॥

१. कपट बनौरी बहुविधि कीन्हा * अरुझि अरुझि जीव मिथ्या दीन्हा ॥ ९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कपट = छल-कपटसे गुरुवालोगोंने कल्पित प्रपञ्चका विस्तार करके—

बनौरी = वाणीमें वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि वाणीजाल और खानी जालको अलग-अलग ही बनाये हैं। उसमें—

बहुविधि = बहुत प्रकारसे विधि पूर्वक, रोचक, भयानकादिका—

कीन्हा = वर्णन करके उपदेश किये हैं; जीवोंको नाना लालच लगा दिये हैं। तो—

अरुझि = कोई जगत्में विषयानन्द सम्बन्धी काम-क्रोधादिमें अरुझ कर फँसे हैं; और कोई दूसरी तरफ—

अरुझि = ब्रह्मज्ञानमें पड़कर, ब्रह्मानन्दमें गाफिल होकर अरुझे पड़े हैं। इस प्रकारसे दोनों तरहसे—

जीव = नरजीव निजपद चैतन्य स्वरूपकी स्थिति न होनेसे—

मिथ्या = देहाभिमान, मिथ्या नाशवान् व्यवहार माया जाल और मिथ्या ब्रह्मके भ्रममें लग करके अन्तमें गर्भमें चले जाते हैं।

दीन्हा = इस तरह नरजन्मको बर्बाद करके व्यर्थ ही खो दिये हैं; तथा अन्य जीवोंको भी उसी-में फँसा दिये और फँसा रहे हैं ॥

व्याख्या— भ्रमिक गुरुवा लोगोंने स्वार्थ सिद्धकर मनमाने भोग भोगनेके वास्ते वेद-कुरानादि-के वाणीजालोंकी रचना, छल-कपट करके बहुत प्रकारसे बनाये हैं। पारखहीन मनुष्य उसीमें अरुझ-अरुझाकर ब्रह्म-जगत् या ब्रह्मानन्द-विषयानन्दादिके चाटमें फँसे हुए हैं। इसीसे तो उनका नरजन्म व्यर्थ ही बर्बाद हुआ। भ्रमिक हो करके मिथ्यामें ही लगकर आयु खो दिये हैं। अन्तमें उसी अध्याससे जीव गर्भवासमें गये और जा रहे हैं ॥ ९ ॥

२. कपट स्वाङ्ग विद्या बहु भाँती * दिन दिन संशय शोग उतपाती ॥ १० ।

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

स्वाङ्ग = उधर गुरुवा लोगोंने नकली साधु वा त्यागीका भेष बनाकर नाना स्वाङ्ग धारण किये। और—

कपट = उन्होंने मनमें तो कपट, छल-छिद्रका दाव-पेंच, कल्पना और विषय भोगोंके लिये बना रक्खे हैं और—

बहु भाँती = बाहर बहुत भाँति-भाँतिके वा नाना तरहके प्रपञ्च फैलाकर—

विद्या = कुचक्रसे कुविद्या भी बहुत किसिमसे बनाये हैं। तहाँ-जारण, मारण, वशीकरणादि सात विद्याएँ, वाममार्ग तथा मन्त्र-तन्त्रादि नाना जाल-फाँस रचना करके बनाये हैं। फिर उसीको दृढ़ कर-कराके—

दिन दिन = रोज-रोज ज्ञानी-अज्ञानी, भोगी-त्यागी सब जन दिनोंदिन—

संशय = भोगके टिकाव तथा ईश्वरादि प्राप्तिके सन्देहमें और—

शोग = ब्रह्म वा विषयादि न मिलनेकी विरह-व्यथा, शोक, दुःखमें अधीर होकर वे—

उतपाती = अनेक कर्म-कुकर्मोंके उपद्रव, उपाधि, झंझटमें पड़े हैं। फिर जन्म-मरण चौरासी-योनियोंके चक्रमें पड़े वा पड़ रहे हैं, बिना विचार ॥

व्याख्या— कपटी, स्वार्थी, प्रपञ्चियोंने छल-कपट करके बाहर शरीरमें दिखानेको तो बड़े ही स्वाङ्ग धारण किये हैं। षट्दर्शनोंके साधुका भेष बनाये हैं। परन्तु, वे तो भीतरसे नकली वा खोटे हैं। जैसे चूहेके ऊपर बिल्लीका दाव लगा रहता है; उसी प्रकार जीवोंपर गुरुवालोग घात लगा रहे हैं। योगी, यती, तपस्वी बने, तहाँ बहुत तरहके भेष बनाये हैं; तथा जारण, मारण, वशीकरण, मोहन, आकर्षण, स्तम्भनादिक विद्याएँ भी बहुतेक उन्होंने बनाये हैं। अब उसीमें लगकर नरजीवको दिन-प्रतिदिन संशयसे शोक उत्पन्न होता है। संशय ग्रसित विरही शोकाकुल हुए, तो कर्म-कुकर्मकी

उपाधिमें पड़े हैं; अन्तमें आवागमन चक्रमें जा पड़ते हैं ॥ १० ॥

३. आपु गये औरन ले नाशी * बाट चलाय डारै गर फाँसी ॥ ११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

आपु = गुरुवालोग, जड़ाध्यासी जीव अपने स्वयं तो मनुष्यपदसे बिगड़ करके भ्रष्ट ही हो गये, और—

गये = मानन्दी धोखामें पड़े हुए चारखानी गर्भवासमें चले ही गये हैं; और अभी भी जा रहे हैं, तथा साथ-साथमें—

औरन = और भी बहुतेक नरजीवोंको भ्रम धोखा-में फँसाय-अरुझायके—

ले = समेटकर बल-बुद्धिका हरण कर लिये। तथा—

नाशी = मनुष्यके गुण-लक्षणोंको भी नाश करके पथ-भ्रष्टकर नशाय दिये। वे चौरासी-योनियोंके गर्भवासमें ही डाल देते हैं। परन्तु—

बाट = संसारमें कर्म, उपासना, योग और विषयादिके नानामार्ग बनायके—

चलाय = उस मार्गको बहुविधिसे चालू करके उसमें अपने चले, तथा दूसरोंको भी उसी धोखेमें चलाय-चलाय करके हैरान किये। ऐसे कुपन्थका बाट चलायके गुरुवालोग—

गर = अपने वा दूसरेके गलेमें या तन-मनमें विषैला—

फाँसी = फन्दारूपी वाणीके फाँसी जालोंमें फँस-फँसाके जकड़ाकर जीवोंको उसी—

डारै = फाँसीमें डाल दिये, लटका दिये और डाल रहे हैं या चौरासी-योनियोंमें डाल दिये हैं ॥

व्याख्या— पारखहीन वञ्चक काल बने हुए गुरुवालोग अपने तो स्वयं भ्रम, कल्पना, विषय, गर्भवासमें चले गये हैं। साथमें जहाँतक उन्होंका जोर लगा, तहाँतक और मनुष्योंको भी अपने फन्दोंमें फँसा-फँसाकर धोखा देकर मनुष्यबुद्धिको नाश कर दिये हैं। वाममार्ग, दक्षिणमार्ग, ज्ञानमार्ग, भोगमार्ग, ऐसे नाना रास्ता चलायके अपने और दूसरे लोगोंके गलेमें वही कल्पित वाणी और खानीकी फाँसी डाले हैं, और अभी वैसे ही वाणी फाँसीमें डाल रहे हैं; ये चौरासी योनियोंके अधिकारी भये हैं ॥ ११ ॥

४. जो काहू मानुष बुद्धि आवै * कहै और ते और बनावै ॥ १२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो काहू = जो कभी किसी एक शुभ संस्कारी नरजीवको—

मानुष बुद्धि = मनुष्यकी अच्छी बुद्धि आजावे, तथा सत्य, विचारादि सद्गुण संयुक्त पारखदृष्टि शुद्ध सत्यबुद्धि सद्गुरुकी दयासे उसके हृदयमें यदि—

आवै = प्रकाश होकर आजावे, तथा पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें प्रेम बढ़कर आने लगे या आवे-जावे, तब तो—

कहै = गुरुवालोग दुष्टतासे वाक्य प्रहार करके भयानक वाणी कहते हैं या निन्दा चर्चा करते हुए तिरस्कार करते हैं।

और ते = } अच्छाको बुरा, बुद्धिमान्को मूढ़,
और = } ज्ञानीको अज्ञानी कहते हैं। और जीवोंको भ्रमाकर और ही कोई जगत्कर्त्ता ब्रह्म आदि श्रेष्ठ बतलाते हैं। इसतरह और-से-और ही उलटा बनाते हैं।

बनावै = कहीं पापी, कहीं धर्मी बनाते हैं। कहीं अल्पज्ञ दीन, हीन, मलीन, बनाते हैं; और कहीं ईश्वरादिके अंश जीवोंको बनाते हैं। ऐसे कुछ-का-कुछ ही कहते हुए भ्रमिक बनाते हैं, अतः बुद्धिको बिगाड़ देते हैं ॥

व्याख्या— कभी किसीको जो बड़े भाग्यसे मनुष्यकी सद्बुद्धि, सद्गुण-लक्षण ग्रहण होके सारासारका विचार होवे, पारखी सन्तोंके सत्सङ्गमें आने-जाने लगे, तो गुरुवालोग उससे बड़े नाराज हो जाते हैं। उसको भला-बुरा कहने लग जाते हैं। कहीं उसको पापी, अधर्मी, ईश्वर-वेद द्रोही, नास्तिक आदि कहते हैं; इतरहसे भटकाना चाहते हैं। जीव तो स्वयं सत्य है; परन्तु,

जीवके ऊपर कर्त्ता मालिक- ईश्वर, खुदादि कोई और ही बतलाते हैं। ऐसी मिथ्या बातोंको जो न माने, तो उसको कुछ-का-कुछ कहकर तुच्छ बताते हैं; यानी मनमाने सो मिथ्या मनगढ़न्त बातें बनाते हैं; ऐसे फाँसमें वे फँसा रहे हैं ॥ १२ ॥

५. चाहत सुख पड़े ठग हाथा * भरम भूत भयो ठग साथा ॥ १३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सुख = विषयभोगोंका सुख या ब्रह्मानन्दादि सुख तथा मुक्त होकर दुःखोंसे छुटकारा होना तो संसारमें—

चाहत = समस्त जीव या प्राणीमात्र चाहते हैं या चाहना करते हैं। परन्तु, सुख-दुःखोंकी परीक्षा दृष्टि तो उन्होंको है नहीं। इसीवास्ते लालचवश—

ठग = यहाँ दशों इन्द्रियें मनादि साथके ठगोंके तथा माता-पिता, स्त्री, पुत्रादि परिवार, ये घरके ठगोंके और बाहरके धूर्त गुरुवालोगोंके, ऐसे-ऐसे ठगोंके—

हाथा = हाथोंमें या घेरा (फन्दा, जेल) में आप ही-

पड़े = जा-जाकर पड़ गये हैं, तो वहाँ मुक्तिसे विमुख हुए, मारे गये। ऐसे सुखकी चाहनासे ठगोंके हाथोंमें पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। और—

ठग = गुरुवा, स्त्री आदि ठगोंके अब नित्यप्रति ही—

साथा = सहवास या साथ करते-करते साथ-साथमें रहते हुए उन्होंकी बुद्धिभ्रष्ट हो गई। तब—

भरम भूत = भ्रान्तिसे कोई देहको ही सत्य अपना स्वरूप मानने लगे कोई-कोई तो भूत, प्रेत, देवी, देवता, ब्रह्म, खुदा आदि भ्रान्तिकी मानन्दी दृढ़ किये हैं। ऐसे भ्रम-भूतके धोखेमें पड़ जाते भये, इसलिये—

भयो = ऐसे जड़ाध्यासी हुए जीव देह छोड़कर पशु, पक्षी आदि चौरासी योनियोंमें देहधारी हुए या होते हैं, बिनापारख ठगोंके साथमें भ्रम-भूतके खिलौना हो रहे हैं ॥

व्याख्या— जगत्में विषय भोगोंके सुख तथा स्वर्गादिके कल्पित सुख, ब्रह्मानन्दादि सुख विशेषकी चाहना और आवागमनोंसे छूटकर मुक्ति सुखकी चाहना कर-करके ठग गुरुवादि और स्त्री-पुत्र, परिवारादि और मनके घेरा या हाथ, बन्धनोंमें सब जीव पड़े हैं। बिना पारख सुख चाहते हुए ही दुखोंके हाथरूप महान घेरामें जा पड़े वा पड़ रहे हैं। ठग गुरुवा वा स्त्री आदियोंके साथ लगकर भ्रम-भूत भये, तहाँ ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता और भूत-प्रेतादिकी कल्पनासे मिथ्या मानन्दी दृढ़ करते भये। वही अध्यास जीवोंको चौरासी योनियोंमें ले जानेका और दुःख भोगानेका कारण हुआ। यह उन्हें समझ नहीं हुई ॥ १३ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता प्रमाणके लिये बीजककी दो साखी, नं० १०६ और २८४ लिखकर बातको परिपुष्टकर निर्णयका प्रमाण देते हैं; सो सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ साखी मूल बीजककी, साखी नम्बर- १०६ ॥ ❀ ॥

साखीः— मानुष होयके ना मुवा * मुवा सो डाङ्गर ढोर ॥
[२] एकौ जीव ठौर नहिं लागा * भया सो हाथी घोर ॥ १४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मानुष होयके = जो नरजीव सच्चा मनुष्यपदमें सद्गुण संयुक्त हो, जड़-चेतनका निर्णयकर पारखदृष्टि लेकर हंसपदमें जीवन्मुक्त होकर ठहर गये हैं, वे ही यथार्थमें सच्चे मनुष्य हैं। ऐसे मनुष्य होकर पारख पदमें ठहरकर तो कोई भी—

ना मुवा = जड़ाध्यासी नहीं हुए; तो वे जीवन्मुक्त होनेसे फिर आवागमन चक्रमें भी नहीं पड़ते हैं। इसके अलावा जो कोई—

मुवा = जड़ाध्यासी होकर नरजीव मरे हैं, यानी देह छोड़े हैं, वे जन्म-मरणमें पड़े।

सो = सोई विषय वासना और ब्रह्म-जगत्के अध्यास ही जीवोंको—

डाङ्गर ढोर = पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें

और निकम्मे ढोरोंके जन्ममें लेजाकर डाल देता है; अर्थात् मनुष्य होकर तो कोई मरा वा बन्धनमें नहीं पड़ा। जो मरा-बन्धनमें पड़ा, सो डाङ्गर ढोर सारीखा पशुखानीके ही पशुलक्षणवाला जीव है। अतः वह बारम्बार बन्धनोंमें ही पड़ा करता है। परन्तु—

एकौ जीव=चारखानीके अनन्तों जीवमेंसे वा अनेकों मनुष्योंमेंसे कोई एक भी नरजीव निज स्व-स्वरूपका बोध हासिलकर-

ठौर=पारख स्थितिका ठिकाना या जीवन्मुक्त निजस्थितिमें आकर ठौरमें—

नहिं लागा=नहीं लगे; स्वरूप विचारमें नहीं लगे। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें नहीं लगे। इससे स्थिति तो कुछ उन्होंको प्राप्त नहीं हुई; अतएव—

सो=सो जड़ाध्यासी ब्रह्म-जगत्के अभिमानी जीव अभी या बादमें—

हाथी=मन-मानन्दीमें पड़कर मदमें फूले, सो हाथीके जन्म लेते भये। तथा—

घोर=उन्मत्त जीव घोड़ेकी योनिमें जाते भये, ऐसे नाना जन्मोंका अनेक घोर दुःख भोगी अध्यासी—

भया=जीव होते भये या हो रहे हैं; यानी एक जीव एक पारखके ठौरमें तो नहीं लगे। उल्टे हाथी-घोड़ेके सरीखा उन्मत्त होकर अनेक ठौर-में लगे अतः चौरासी योनियोंमें जाकर पड़े ॥

व्याख्या— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— पूर्व संस्कारसे जीव मनुष्य खानीमें आकर मनुष्यका शरीर वा रूप लेकर उत्पन्न हुए हैं। परन्तु, गुण-लक्षण, स्वभाव तो पशुका ही धारण कर रहे हैं। तहाँ षट् पशुधर्ममें विशेष आसक्त हो रहे हैं। अतः सो वैसे लोग सच्चे 'मनुष्य' कहलानेके अधिकारी नहीं हैं। और सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति तथा दृढ़ वैराग्यका सच्चा भाव, सद्गुण लक्षण संयुक्त जिनमें हों, सोई सच्चे मनुष्य पारखीसन्त जीवन्मुक्त स्वरूप हैं। ऐसी स्वरूप स्थिति जिनमें हुई है, सो मनुष्य जड़ाध्यासोंसे रहित हो आवागमनसे सर्वथा छूट गये हैं। सोई 'मानुष होयके ना मुवा' हुए हैं। परन्तु, ऐसी स्थिति नर तन पाकर भी यदि नरजीवोंकी न हुई, और जो खानी-वाणीमें जड़ासक्त अध्यासी बने हैं, सो वे सब जीव मरकर वा देह छोड़के डाङ्गर ढोर-रूप निकम्मे पशुआदि खानीमें ही चले जावेंगे। जीते रहे तब भी निकम्मे ढोर-सरीखा ही व्यर्थ जन्म बिताते हैं। जीव तो प्रत्येक शरीरमें एक एक भिन्न-भिन्न ही है। वैसे अनेकों खानी भोगकर नर तनमें जीव आया है, तब भी अनेकों मनुष्योंमेंसे एक भी जीव अपनी तरफ देखकर निज स्वरूपका बोध लेकर सत्य पारख स्थितिमें नहीं लगा; और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें, सेवा बन्दगी करनेमें भी नहीं लगा, तो हाथीके सरीखा मद अभिमान बढ़ायकर मन-मानन्दीमें पड़कर मस्त गाफिल होता रहा। तथा घोड़ाके सरीखा चञ्चल उन्मत्त होकर जहाँ-तहाँ भटकता रहा, तो वही अध्यासवश पुनः वह जीव घोड़ा, हाथी, बैल, गधे, भैंसा आदि पशुआदि खानियोंमें जायके वैसे ही शरीर ले-ले कर बहुत-बहुत ही त्रिविधि तापोंको तथा जन्म, मरण गर्भवास आदिका दुःख नाना जन्ममें भोगते रहेंगे। बिना पारख यह दुःख छूटनेका नहीं। अतः नरजन्म पाकर सच्चे मनुष्यका गुण-लक्षण, हंस रहनीको प्रयत्न पूर्वक धारण करना चाहिये ॥ १४ ॥

सम्बन्ध— और मूल बीजकके साखी नं० २८४ का भी यहाँपर प्रमाण दिया है ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजककी, साखी नम्बर— २८४ ॥ ❀ ॥

साखीः— रामहि सुमिरै रण भिरै * फिरै औरकी गैल ॥
[३] मानुष केरी खोलरी * ओढ़े फिरत हैं बैल ॥ १५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो !

राम=चराचर व्यापक कोई आत्माराम जगत्-का कर्त्ता मानकर—

हि=उसीको ही श्रेष्ठ मुक्तिदाता समझकर वा निश्चय करके ही—

सुमिरै=संसारीलोग भक्त बनकर उसी रामका ही कल्पित नामस्मरण किया करते हैं।

और भक्तिके शुद्धभाव दया-धर्मको छोड़ करके—

रण=स्वार्थके वास्ते रणमें वा युद्ध स्थानमें लड़ाई या घमासान-युद्ध करके लड़-झगड़-कर अवतारी माने हुए राम, कृष्ण, परशु-रामादियोंने और पाण्डवादि भक्तोंने समेत्-

भिरै=शत्रुतासे एक-दूसरेसे भिड़े थे, यानी युद्धमें हजारों मनुष्यों आदि प्राणियोंको घायल कर, गले काटकर मार डाले वा दुःख दिये थे; तो ये रामके भक्त नहीं बने, बैरी बने हैं। क्योंकि, रमैयारामको घात करना बैरीका ही काम होता है।

औरकी गैल=फिर कोई तो और ही प्रकारसे वाममार्ग, यज्ञ-याग, बलिदानादिमें जीव-हिंसा घातकी कर्मकर कुरास्ता, कुकर्मोंमें ही-

फिरै=वे लोग मनमाने फिरे हैं या फिर रहे हैं, वा चल रहे हैं। बिना विचार और ही औरके गैलसे भटकते हुए चल रहे हैं।

मानुष= } इसीसे उनके खोलरीमात्र मनुष्यका
केरी= } रहा, गुण नहीं रहा। अतः सत्य, दयादि मनुष्यके सद्गुण रहित वे ज्ञानी, भक्त, तपस्वी, कर्मी आदि लोग और संसारी सर्वजनोंने मनुष्यका तो रूप मात्र धारे हैं। वास्तवमें नररूपमें वे पशु ही बने हैं।

खोलरी=ऊपरके सुन्दर खोलवत् खाल या चमड़ाके खोलरी ओढ़े हुए मनुष्यका तो आकार-प्रकार मात्र उनका रहा।

ओढ़े=जैसे सिंहका खाल ओढ़ाया हुआ गधा कदापि सिंह नहीं हो सकता है। तैसे मनुष्य-का खाल मात्र ओढ़े हुए विषयी, भक्त, ज्ञानी आदि वे भी मनुष्य हो नहीं सकते हैं।

बैल=अतः पारखदृष्टि गुरुबुद्धिहीन, प्रत्यक्ष वाणी-खानीके बोझा ढोनेवाले वे भी बैल-पशुवत् बने और बन रहे हैं। ये मानुषरूपमें बैलके भाई बने हैं।

फिरत हैं=वे स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये इधर-उधर मारा-मारा फिरते हैं। तथा उसी जड़ाध्यासवश आवागमन चौरासी योनियों-के चक्रमें फिरते रहते हैं। यानी मनुष्यकी खोलरी ओढ़कर बैलरूप नर ही जहाँ-तहाँ फिरे और फिर रहे हैं; बिना पारख॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— संसारी नरजीव भक्त बनकर कोई कल्पनासे आत्मारामको सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक निराकार और साकाररूपमें मानकर उसका ही ध्यान, नाम-स्मरण, जाप, आराधनादि किये वा करने लगे। प्रत्यक्षमें देहधारी रमैयाराम सत्य चैतन्य जीवको नहीं जाने। इसीवास्ते स्वार्थवश एक-दूसरेको शत्रु मान-मानकर राम, कृष्ण, परशुरामादि अवतारी श्रेष्ठ कहलानेवालोंने और पाण्डव, मोरध्वजादि भक्त क्षत्रिय तथा बड़े-बड़े भक्त कहलानेवाले उन सबोंने रणमें भिड़कर युद्धकर बहुतेक मनुष्य, पशु आदि प्राणियोंको निर्दयतासे मार डाले और गले काट-काटकर गिरा दिये, दुःख दिये; तो अब विचार करिये, वे रामके उपासक भक्त भये कि, द्वेषी, बैरी भये? उन्होंको ज्ञानी भक्त कहना, कि— अज्ञानी हिंसक कसाई कहना? जो जीव हत्या करे, करावे सोई तो कसाई है; और कोई 'औरकी गैल' कहिये वाममार्गादि हिंसा कुकर्ममें फिरे हैं, कोई यज्ञादिकर-करायके बकरादिको मारकर बलिदान करने लगे। कोई मनमाने जब-तब जीव-हिंसामें शिकार करने लगे, ऐसे दुर्मतिसे फिरे और फिर रहे हैं। वे प्रत्यक्षमें मनुष्यकी तो खोलरी वा चमड़ी-मात्र ओढ़े हुए बैलके समान पक्के नरपशु ही बने थे, और अभी वैसे बने हैं। जैसे सिंहके खाल-मेंढ़ा, गधादिको ओढ़ा देनेसे उनमें सिंहकी जैसी शक्ति नहीं आती है। तैसे ही शुभसंस्कारहीन कुसङ्गमें पड़े हुए सद्बुद्धि हीन, सद्गुण-लक्षण रहित पक्षपाती छैः प्रकारके पशु मनुष्य संसारमें बने हैं। चाहे वे ज्ञानी, भक्त, कर्मी आदि बड़े-बड़े नामधारी अज्ञ समाजोंमें श्रेष्ठ कहलाते क्यों न हों,? परन्तु, पारखदृष्टि न होनेसे वे सरासर बैलके समान हैं। खानीजाल और वाणीजालोंको अपने ऊपर ओढ़े हुए इधर-उधर भटकते हुए फिरे वा फिर रहे हैं। उसी अध्यासवश चौरासीयोनियोंमें फिरे वा फिरेंगे। देखिये! बाहर दिखानेको तो लोग मुखसे 'राम-राम' का ही सुमिरण करते हैं। फिर मौका पड़नेपर क्रोधित होकर

सशस्त्र रणमें जाकर भिड़ते हैं। जूझ-जूझकर बहुतेरे प्राणियोंकी हत्या, जीवहिंसा करते हैं; ये रामको सुमिरण करनेवाले अपने रास्ता भक्ति, दयादि छोड़कर उल्टे दूसरेके कुरास्तासे चले गये। अतः वे मनुष्यकी खोलरीमात्र ओढ़े हुए बैलरूपका पशु, मूढ़ वा हिंसक नरपशु ही बने थे। वैसे आचरण करनेवाले अभी भी उसी प्रकार कपटी पशु ही बन रहे हैं। "मुखमें 'राम-राम' बगलमें छूरा" वाली चाल उन्हींकी रहती है, ऐसा जानिये! ॥ १५ ॥

सम्बन्ध— अब तीसरे खण्डमें, १ चौपाईसे ८ चौपाई, और १ साखी तकका वर्णन भया है, ऐसा जानिये! ॥

॥ ❀ । चौपाई ॥ तीन खण्ड ॥ ३ ॥ ❀ ॥

१. मानुष बुद्धि दुर्लभ संसारा * कोई जानै जाननहारा ॥ १६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मानुष बुद्धि = सत्य, विचार, विवेकादि संयुक्त जड़-चेतनका निर्णय करना, गुरुबुद्धि पारखदृष्टि प्राप्त करना—

दुर्लभ = अत्यन्त कठिन है, सो पाना दुर्लभ ही है। क्योंकि—

संसारा = जगत्में खानी-वाणीके फन्दोंमें सब जीव पड़े हुए हैं। संशय ग्रसित हो रहे हैं, इससे ऐसोंको सद्बुद्धि मिलना तो अत्यन्त दुर्लभ हो रहा है।

कोई = करोड़ोंमें शुभ संस्कारी जो हैं, सो कोई नरजीव ही पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा सद्बुद्धि पायेंगे।

जाननहारा = जिनको पारखदृष्टि प्राप्त हुई, सोई पारखीसन्त सर्व सिद्धान्तके रहस्य सत्यासत्यका भेद जाननेवाले महान श्रेष्ठ हैं।

जानै = वही सच्चे जानकार बन्धन-मुक्तिको ठीकसे जानते हैं ॥

व्याख्या— संसारमें जीवोंको मनुष्यबुद्धि या पारखबोध पाना अत्यन्त दुर्लभ है। करोड़ों मनुष्योंमें सद्रहस्यको जाननेवाले कोई पारखी सन्त ही इस भेदको पारखदृष्टिसे जानते हैं ॥१६॥

२. बिन जानै कोई ठौर न पावै * भरमभूत होयके पछतावै ॥ १७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बिन जानै = सद्गुरुकी पारख दृष्टिको यथार्थ रीतिसे जाने बिना—

कोई = कोई भी मनुष्योंको संसारमें—

ठौर = पारख बोध जीवन्मुक्त स्थिति शान्ति पदका ठिकाना नहीं मिलता है, और वे स्थिति-

न पावै = पा नहीं सकते हैं या उन्हें ठौर मिल नहीं सकती है। क्योंकि, सद्गुरुकी दयासे ही बिरलेको ऐसी स्थिति मिलती है। अतएव—

भरमभूत = भ्रम संशय धोखामें पड़कर कहीं ब्रह्म बनते या मानते हैं, कहीं ईश्वर-खुदादि मान रहे हैं, कहीं भूत-प्रेतादि मानन्दी करके—

होयके = जड़ाध्यासी होकर अपने ही भ्रमसे ब्रह्म आदि होकर गाफिल हुए। इसी-कारणसे—

पछतावै = अभी साधनोंमें दुःखी हो रहे हैं। अन्तमें देह छोड़कर चौरासी योनियोंमें नाना योनिमें जा-जाकर अनेकों दुःख पाते, पछताते हैं ॥

व्याख्या— निजस्वरूपका पारख बोध सत्यासत्यको यथार्थ गुरु सत्सङ्गसे जाने बिना, कोई भी जीवन्मुक्त स्थितिको पा नहीं सकते या ठिकाना नहीं पाते हैं। अतः भ्रमिक होकर ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, भूत-प्रेत, देवी-देवतादिको सुखदाता मानकर भूले। उनकी भरोसामें नाना साधनाएँ, अनुष्ठान आदि करने लगे। परन्तु, कार्य सिद्ध नहीं हुआ, तो पछताने लगे, फिर उसी अध्यासवश चौरासी योनियों-में नाना देहधारी होयके दुःख भोगते हुए व्याकुल होते हैं, सोई पछताना है ॥ १७ ॥

३. मानुष जन्म दुर्लभ संसारा * जाते आवागमन निवारा ॥ १८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

संसारा = संसार या जगत्में संसारी जड़ाध्यासी पामर, विषयी जीवोंको—

मानुष = कर्म भूमिकारूप श्रेष्ठ मनुष्यका—
जन्म = जन्म या नरदेह पाना—

दुर्लभ = अति दुर्लभ या बड़ी मुश्किल हो गयी है।

जाते = जिस मनुष्य जन्मसे, कर्म भूमिका होनेसे कोई पारखीसन्त सर्व अध्यासको छोड़कर—

आवागमन = जन्म-मरणसे रहित जीवन्मुक्त हो जाते हैं। ऐसे यह नर जन्म श्रेष्ठ है। जिससे—

निवारा = आवागमनोंसे छूटकर न्यारा हो, मुक्ति होनेकी यह जगह है। यहीं सत्यासत्यका निर्णय वैखरी वाणी होनेसे हो सकता है॥

व्याख्या— संसारमें जड़ाध्यासी जीवोंको मनुष्य जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ या कठिन है। शुभ संस्कार बिना बार-बार किसीको मनुष्य-जन्म नहीं मिलता है। क्योंकि, यह कर्म भूमिका है। सत्सङ्ग करके अध्यासको मिटाकर जीवन्मुक्त हो, आवागमनसे छूटनेकी जगह है। पारखी सद्गुरु साधुके सत्सङ्ग बोधमें जो ठहर गये, सो जीवन्मुक्त हो गये। पारख पदमें जो ठहरेंगे, सो मनुष्य भी जीवन्मुक्त हो जावेंगे। यह कर्म भूमिका होनेसे बन्धन और मुक्तिका कर्त्तव्य यहीं बनता-बिगड़ता है॥ १८॥

४. विचार शील दया है बीरा * चारि रीति हैं मानुष केरा॥ १९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मानुष केरा = सच्चा मनुष्य वा हंस नर जीवोंकी पहिचान—

चारि = चार प्रकार या चार—

रीति = तरहके रीति-रिवाजके—

हैं = गुण-लक्षण उनमें दिखाई देते हैं या मौजूद रहते हैं, सो इस प्रकार है—

विचार = सत्यासत्य, जड़-चैतन्य, सार-असार, बन्धन-मुक्ति, हित-अहितादिका यथार्थ विचार करते रहना, तथा सत्य-चैतन्य सार पदको ग्रहण करके असारको त्यागना।

शील = नम्रता, कोमलता, शीतलता, गुरुभक्ति संयुक्त शीलस्वभावको धारण करके, कुशील कठोरतादिका त्याग करना।

दया = निजदया और परदयाको धारण करते हुए शक्तिभर छोटे-बड़े देहधारी जीवोंकी रक्षा करना, तथा निर्दयताको त्याग करना, और—

है = सत्य तो प्रथमसे ही मौजूद ही है।

बीरा = धैर्यता, शूर-वीरोंके सरीखा सर्व देहोंके मानन्दी, भास, अध्यास, विकारादि हटायके चैतन्य जीवको निज पारख पदमें स्थिति करना, सोई मनुष्यका धर्म है॥

व्याख्या— सच्चे मनुष्य या हंस नर जीवके, सद्गुण-लक्षण मुख्यतया चार प्रकारसे या पाँच प्रकारसे मौजूद रहता है; उन्होंके नामः— (१) विचार, (२) शील, (३) दया, (४) वीर या धैर्य, और (५) सत्य है। ये पाँचों और शुद्ध तीनगुण मिलायके अष्ट महा सद्गुण मुक्तिमें पहुँचानेवाले आठ सीढ़ियोंके समान हैं। उनमेंसे (१) विचार—जड़-चैतन्यका निर्णय करके जड़ासक्तिको परित्याग कर, निज चैतन्यपदमें विचारपूर्वक कायम रहना है। (२) शील—स्वभावको शान्त बनाके मीठा बोलना, नम्रता, दीनता, कोमलता, उपकार करना, उपकार किया हुआको मानना, साधु-गुरुकी भक्ति प्रेमसे करना इत्यादि गुण शीलमें आजाते हैं। (३) दया—अपनेको सत्सङ्ग द्वारा पुरुषार्थ करके जड़ अध्याससे छुड़ाना, यह 'निजदया' कहलाता है। और मन, वचन, कर्मसे दूसरे देहधारी छोटे-बड़े जीवोंकी रक्षा, उपकार, बचाव, शक्ति रहे तक करना 'परदया' कहा जाता है— सो दोनों प्रकारसे दयाका पालन करना चाहिये। (४) वीरा—रणमें लड़नेवाले शूर-वीरकी नाईं धैर्यवान, अडिग्ग होके काम, क्रोधादिको दमनकर मनको शमन करते हुए भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनादि विकार, समस्त देहादि मानन्दियोंको हटायके चैतन्य जीवको पारख पदमें स्थित करना, वही सच्ची वीरता है। और (५) सत्य—मन, वाणी तथा कर्मादिसे सदैव सत्यका ही पालन करना; सत्य स्वरूप तो जीवका स्वयं ही है, सो जानके बाहरके कार्य व्यवहार भी सचाईसे करना चाहिये। इसप्रकार जिनमें गुण-लक्षण

होवें, सोई हंस वा मनुष्यकी चालसे चलनेवाले हैं। यह एक-एक गुण धारण करनेसे भी कई एक मनुष्योंका अपना और दूसरोंका हित सुधार हो गया है। जो सब ही हंस गुण-लक्षणोंको धारण करेंगे, सो अवश्यमेव परमहित कल्याण पदको प्राप्त करलेंगे ॥ १६ ॥

तहाँ इस बारेमें जिज्ञासुओंको बोधके लिये अन्यत्रके उपयुक्त दृष्टान्त संग्रह करके यहाँ दर्शा दिया जाता है; सो सुनिये ! नीचे * टिप्पणीमें दृष्टान्त लिखा है, सो पढ़ लीजिये ! ॥

* **टिप्पणीः**— सत्य, विचार, शील, दया और धीरज, पालनके विषयमें उपयुक्त दृष्टान्त यहाँपर लिख दिया जाता है; सो क्रमानुसार समझियेगा। (१) दृष्टान्त ॥"सत्यपालनसे लाभः"॥ कहींपर एक ब्राह्मणके दो पुत्र थे। जब कि, तिसका एक लड़का बारह वर्षका हुआ और दूसरा आठ वर्षका हुआ, तब तिस ब्राह्मणका देहान्त हो गया। तिसके देहान्त होनेके कुछ दिन पश्चात् बड़े लड़केने अपनी मातासे कहा कि, हम विदेशमें विद्याध्ययन करनेको जायेंगे; आप हमको विदेश जानेके लिये आज्ञा और खर्च दीजिये। प्रथम तो तिसकी माताने उसको जानेसे मना किया, हिला-हवाला किया। जब कि, लड़केने बहुत-सी विनती की, तब माताने पढ़नेको जानेके लिये तिसको आज्ञा दे दी, और तिसकी माताने कहा कि, बेटा ! पचास अशरफी मेरे पास मौजूद हैं, तिसमें पचीस तो तुम्हारे छोटे भाईका हिस्सा है, तिसको तो मैं अपने पास रख छोड़ती हूँ ! और पचीस अशरफी जो कि, तुम्हारा हिस्सा है, तिनको मैं तुम्हारी गोदड़ीमें सी देती हूँ ! जहाँपर तुमको खर्चका काम पड़े, तब एक-एक निकालकर अपना काम चला लेना, ऐसी बहुत-सी बात उसे समझा दी। जब कि, लड़का यात्रियोंकी जमातके साथ होकर अपने देशसे विदेशमें काशी तरफ जाने लगा, तब माताने तिस लड़केसे कहा— बेटा ! एक वचन हमारा और भी अन्तमें मानना; उस बेटेने कहा— माताजी ! कहिये हम मानेंगे। माताने कहा कि— बेटा ! झूठ कभी नहीं बोलना, चाहे सर्वस्व भी नष्ट हो जाय, तब भी झूठ नहीं बोलना; समझे ! बेटेने कहा— माताजी ! ऐसा ही आपकी आज्ञा पालन करूँगा। तत्पश्चात् मातासे विदा होकर वह लड़का व्यापारी यात्रियोंकी जमातके साथ काशी जानेको चल दिया। जाते-जाते कईएक दिन बादमें एक दिन जङ्गलमें जमात जाकर उतरी; सन्ध्या होनेसे वहीं पड़ाव पड़ा, संयोगसे रात्रिके समय वहाँ चोरोंका एक दल आ गया, और सब मुसाफिर व्यापारी यात्री लोगोंको चोरलोग लूटने लगे। सबोंको लूटकर फिर तिस लड़केके पासमें आकर तिससे चोरोंने कहा— लड़के ! तुम्हारे पासमें क्या है ? बता, लड़केने कहा कि— हमारे पास पचीस अशरफी है। चोरोंने कहा— वह कहाँपर है ? लड़केने कहा— इस गोदड़ीमें सब सिली हुई हैं। चोरोंके सरदारने गोदड़ीको जब खोलकर देखा, तब तिसमेंसे ठीक-ठीक पच्चीस अशरफी निकल आई। फिर चोरोंके सरदारने कहा— अए लड़के ! तुमने हमको अशरफी क्यों बताई ? हम लोग तो चोर हैं; सबको लूटनेके लिये आये हैं; सबको लूटा भी है, यदि तुम न बताते तब तुम्हारी अशरफी बच जाती। उस लड़केने कहा— जब हम विदेश जानेके लिये घरसे निकले थे, तब हमारी माताजीने हमको कहा था कि, बेटा ! झूठ कभी भी नहीं बोलना, चाहे सर्वस्व चला जाय। मैंने कहा था, कि— ऐसा ही करूँगा, सो अपनी माताजीकी आज्ञाको हमने पालन किया है, इसवास्ते हमने आपको अपनी अशरफी, पूछनेपर बता दिया है। ऐसा देख-सुनकर चोरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब चोरोंके सरदारने कहा— देखो ! बड़े आश्चर्यकी बात, यह तो अपूर्व घटना भयी है ! इससे हमें भी शिक्षा लेनी चाहिये। यह छोटा-सा बालक होकर भी अपनी माताकी आज्ञाको नहीं टालता है, और इसने पूर्णरूपसे यहाँ भी ऐसी अवस्थामें अपनी सम्पत्ति लूटे जानेकी चिन्ता तक न करके अपनी माताकी आज्ञाका ही पालन किया है; इसको हम धन्यवाद देते हैं। धन्य है इस लड़केके सत्य पालनको ! और हमलोगोंको धिक्कार है ! हमलोग इतने बड़े-बड़े होकर भी माता-पिता, गुरु-सज्जनोंकी आज्ञाका पालन नहीं करते हैं; हितकर गुरुजन सदा दूसरोंकी भलाई, उपकार करनेको, सत्य बोलने-चलनेको कहते हैं। उस हित बातको पालन करना छोड़कर हमलोग आज तक ऐसी बुराईके कर्ममें लगे हैं, अफशोस है ! अब आजसे पीछे हम भी दूसरोंको सतानेका, चोरी, हिंसादि खराब कर्म नहीं करेंगे; और-मजदूरी करके खावेंगे, अपना निर्वाह करेंगे। फिर चोरोंके सरदारने जितना माल उस जमातका लूटा था, सो सबोंको फेर दिया। और लड़केकी गोदड़ीमें उन अशरफियोंको सीकर तिस लड़केके हवाले कर दिया। अपने साथी चोरोंको भी समझाकर शान्त किया; और तिस लड़के के काशीमें जहाँपर जाना था, वहाँपर तिसके साथ जाकर सुरक्षित पहुँचा भी दिया। इस प्रकार उस एक ही लड़केके सत्य भाषणसे उन सब व्यापारी जमातोंके लूटे गये माल भी बचकर मिल गये, और वे चोर लोग भी सज्जन बन गये।

अतएव हितेच्छुक मनुष्योंको इस दृष्टान्तसे सदैव सत्यपर अटल रहनेकी शिक्षा लेनी चाहिये। सत्यकी रहनी, सत्यकी वाणी, सत्यकी ही चाल-चलन, वर्तमान व्यवहार, पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग द्वारा चैतन्य सत्य स्वरूप बोधपर ठहरना चाहिये। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक-साखीमें कहा है, किः—

साखीः— "साँच बराबर तप नहीं। झूठ बराबर पाप॥ जाके हृदया साँच है। ताके हृदया आप॥३३४॥"

इत्यादि जानना चाहिये, अर्थ स्पष्ट है॥ ॥ बीजक, साखी ॥ ३३४ ॥

(२) दृष्टान्त ॥ "विचार करनेसे लाभः" ॥ "विचारं परमं ज्ञानम्" ॥ कोई मनुष्य सत्सङ्गी था, नित्यप्रति साधु-महात्माओंके सङ्गमें उपदेश सुननेको वह जाया करता था। जहाँ यह भक्त रहता था, वहाँके और लोग भी एक दिन एक महात्माके दर्शन करनेको जाने लगे। उनमेंसे एक मनुष्यके पास बोलनेवाला एक तोता था। उधर उन साधुजीकी कुटीके वृक्षमें भी एक तोता रहा करता था। उन सब जनोंने महात्माजीसे पूछनेके लिये एक-एक प्रश्न सोच रखे थे। एकने उस तोतेसे भी कहा कि, मिट्ठू! क्या तुम्हारे लिये भी साधुजीसे कुछ पूछ देना है? तो सहज भावसे तोता कुछ बोला! उसका अर्थ उस आदमीने यह लगाया, कि यह अपनी मुक्तिके बारेमें पूछनेको कहता है। तदुपरान्त, सब लोग महात्माजीके दर्शन करनेको चले गये। उन्होंने सन्तकी कुटीके पास पहुँचकर वृक्षपर एक तोता देखा, तो पहले उससे पूछा, हे सत्सङ्गी तोते! घरवाला तोता तुमसे मुक्तिके बारेमें पूछता है कि, मेरी मुक्ति कैसे हो? अचानक तोता मूर्च्छित जैसा हो गया। तब वे लोग कुटीमें भीतर गये; और महात्माजीसे प्रणामकर तोतेका ही हाल कहा; यह सब बात सुन विचारकर महात्माजी भी अचेतके समान पृथ्वीपर गिर गये, यही कार्य उनका उत्तर था। परन्तु, यह बात न समझकर यह हाल देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ देर बादमें सन्तजी उठे; परन्तु, इसका कारण पूछनेकी किसीकी हिम्मत नहीं हुई। कुछ देर वार्तालाप करके वे सब अपने घर लौट आये। उनमेंसे एक घरके तोतेके पास जाकर बोला, कि तेरी मुक्तिके प्रश्न सुनकर तो वहाँके शुग्गा और महात्मा दोनों भी बेहोश हो गये। उत्तर कुछ नहीं दिये, समझ गया! तब वह तोता भी चौंथ-चूँईं करके अचेत जैसा पड़ गया; सब लोग देखकर आश्चर्य करने लगे। उसको पिञ्जड़ासे निकालकर देखने लगे। इतनेमें तोता सावधान होकर उड़ गया॥

इसको सिद्धान्तमें यों घटाना चाहिये कि, पारखी सन्त सोई विचारवान् महात्मा हैं; उनके पासमें कई प्रकारके मनुष्य उपदेश सुननेको आते हैं। घररूपी पिञ्जड़ामें तोतेके समान कई वाचाललोग बन्द पड़े रहते हैं; वे सत्सङ्गमें भी नहीं जाते हैं। कभी किसीके कहनेपर कुछ बात पूछनेको कह देते हैं या संसारमें रहते हुए, भोग भोगते हुए भी मुक्ति होनेका हठ करते हैं, वही बात पूछनेको भी कहते हैं। श्रद्धालु लोग पारखी सद्गुरुके आश्रममें दर्शन करनेको जाते हैं, तो वहाँ कुटीमें रहनेवाले भेषधारी वैरागी साधुको देखके पहले उन्हींसे मुक्तिके बारेमें पूछते हैं, तो वे विचारवान् निवृत्ति धारणकर शान्त, मौन हो जाते हैं। यह देखकर, वे उनको छोड़कर भीतर उपदेशक महात्माके पास आकर वही प्रश्न और साधुका हाल बतलाये। तो मतलब समझकर महात्माजी भी आँखें मूँदकर मौन, शान्त, गम्भीर हो गये। इसका मतलब वे लोग कुछ समझे ही नहीं। वहाँसे जाकर घरमें तोतेवत् वाचाल मनुष्योंको बतलाये; यह हाल सुन-समझकर उनमेंसे कोई समझदार जिज्ञासु नरजीव जगत्के व्यवहार विषय भोगोंसे निवृत्त, निकम्मे होके पड़े, तो घरके लोगोंने उससे अपने कुछ स्वार्थ सधता न देखकर उसे निकाल दिये या निकल जाओ, ऐसा कह दिये। तब घर छोड़कर वह साधु-गुरुकी शरणमें आकर सत्सङ्गमें ठहरकर जड़-चैतन्यका विचार, सत्यासत्यका विवेक करते हुए जड़ाध्यासोंको छोड़कर यहीं जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त हुए और होंगे। यह ही दृष्टान्तका तात्पर्य, रहस्य है॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा हैः—

साखीः— "फहम आगे फहम पाछे। फहम दहिने डेरि॥ फहमपर जो फहम करै॥ सो फहम है मेरि॥१८८॥"

॥ अर्थ त्रिजा-टीकासे देखिये! बीजक, साखी १८८ ॥

(३) दृष्टान्त ॥ "शील गुण धारणसे लाभः" ॥ किसी समय अमेरिकाके एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालयसे विद्या पढ़ाई-में पास होकर एकने ग्रेजुएट=शास्त्री या बड़े पण्डितकी पदवी (उपाधि) प्राप्त की थी। बादमें उसे कहीं भी गुजारा चलानेलायक काम नहीं मिला। उसे ऐसी कोई भी नौकरी कहीं नहीं मिली थी, जिससे वह अपना निर्वाह कर सकता। इसलिये वह युवक निर्धनतासे बहुत ही कष्ट भोगने लगा; ऐसेमें कई दिन निकले। एक दिन वह युवक नौकरीकी तलाशमें एक व्यापारीके कार्यालयमें चला गया। नौकरी लगानेके लिये उसने विनय किया। व्यापारीने उसकी प्रार्थना सुनकर कहा—। हे युवक! तुम्हारे लायक जगह मेरे यहाँ नहीं है। तब युवकने कहा— श्रीमान्! मुझे चाहे जैसी नौकरी देवें, मैं करूँगा

व्यापारी बोला— शुरू-शुरूमें तो कई उम्मीदवार ऐसा ही कहते हैं कि, चाहे जैसा काम सौंपो, करेंगे। परन्तु, जब काम सौंपा जाता है, तब वे ठीकसे सन्तोष दायक रीतिसे काम नहीं करते हैं। यह बात सुनकर वह युवक बोला— मेरे भी ऐसे ही विचार थे कि, अमुक काम मेरे करनेका है, और अमुक काम ओछा है, सो जिसको मुझे करना नहीं चाहिये। परन्तु, अब मेरा मन पलट गया है। सब प्रकारसे पुरुषार्थ करना चाहिये, यह दृढ़ कर लिया हूँ; और इस समयमें एक पैसा भी मेरे पासमें नहीं है। इसलिये मैंने निश्चय किया है कि, जो भी काम मुझे मिलेगा, वही करूँगा, समझूँगा कि, मेरे भाग्यमें ऐसा ही काम बना है। व्यापारीने विचार किया कि, यह इसकी बकवाद ही है। शास्त्री पास पण्डित—ग्रेजुएटोंके खयाल ऐसे होते ही नहीं हैं। फिर भी उसने युवककी परीक्षा लेनेके लिये कहा— सुनो! आफिसमें आनेके मार्गकी आजकल मरम्मत हो रही है, मजदूरलोग रास्ता खोद रहे हैं। तुम भी अगर इनके साथ रास्ता खोदनेका काम करोगे, तो तुमको भी चार आनें रोज मिलेंगे। वह युवक बोला— मेहरबान्! यह काम भी मैं खुशीके साथ करूँगा। तब उस व्यापारीने दरबानको बुलाकर हुक्म दिया कि, इस मनुष्यको औजार देकर रास्ता खोदनेके काममें लगाओ। उस युवकको ले जाकर काम करनेके लिये रास्तेका कोई अमुक भाग बताया गया। उसने हाथमें कुदाली, फावड़ा लेकर रास्ता खोदना और साफ करना शुरू किया। मार्ग जरा टेढ़ा-मेढ़ा था, पर इस युवकने उसे कूट-पीट खोदकर बराबर कर दिया। व्यापारीने आफिससे लौटते समय देखा कि, दूसरे मजदूरोंकी अपेक्षा इस पठित मजदूरका काम बहुत मजबूत और सफाईदार है। यह देखकर उसने युवकको शाबासी दी, और दूसरे दिनसे उसको मजदूरोंका मुखिया बनाकर आठ आनें रोज वेतन कर दिया। इस युवकने मुखियाका काम करते समय भी मजदूरोंपर अच्छी तरह देख-रेख रक्खी और मजदूरोंको भी खुश रक्खा। इतना ही नहीं, बल्कि जिस जगहमें मजदूरोंसे भूल हो जाती थी, उस जगह वह स्वयं जाकर उस भूलको सुधार देता था। ऐसा करनेसे सड़क बहुत अच्छी बन गई। व्यापारीने खुश होकर उसे दूसरे काम भी सौंपना शुरू किया। वे सब भी उस युवकने ईमानदारी और सन्तोष-दायक रीतिसे किये। इससे उसकी तनख्वाह धीरे-धीरे बढ़ने लगी। अन्तमें व्यापारीने उसे अपना हिस्सेदार और मुख्य व्यवस्थापक तक बनाया और वह शील गुणसे बड़ा बनता गया।

इसप्रकार एक पढ़ा-लिखा पंडित समयपर अपनी विद्याका अभिमान छोड़कर दीनता, नम्रता, कोमलता, सचाईसे या ईमानदारीसे एक चार आनेंकी मजदूरीसे कठिन परिश्रम करते-करते दूकानका पाँतीदार और बड़ा मैनेजर तक बना॥

यह तो दृष्टान्त है, इसीप्रकार जिज्ञासु जीवोंको मुक्तिके लिये जाति, वर्ण, कुल, आश्रम, विद्या, बुद्धि आदिका अभिमान छोड़कर पारखी साधु सद्गुरुके शरणागत हो, तन, मन, धन, वचनसे साधु-गुरुके सर्व प्रकारसे सेवा, टहल, बन्दगी, चाकरी करते रहनेसे अज्ञानका मूर्चा झड़कर अपरोक्ष पारख ज्ञान हृदयमें प्रकाश होगा। अतएव सुन्दर श्रेष्ठ पदमें पहुँचानेवाला यही शील गुण है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक साखीमें कहा है:—

साखीः— "आपा तजै हरि भजै। नखशिखतजैविकार॥ सबजीवनसेनिर्वैररहै। साधुमताहैसार॥१३७॥"

॥ टीका त्रिजामें देखिये! ॥

(४) दृष्टान्त ॥ "दया धारणसे लाभः" ॥ एक शहरके बाहर एक मन्दिरमें एक महात्मा रहते थे। वे नित्यप्रति सत्सङ्ग उपदेश कथा करते थे। उनके उपदेश, कथामें एक क्षत्रिय भी सुनने जाता रहा। परन्तु, वह गरीब था, सड़कके किनारेपर खुमचा लगाकर बैठकर बेचता था। एक दिन उस भक्तने महात्मासे कहा, महाराज! हमने आपके उपदेशोंको भलीभाँति श्रवण कर लिया। चैतन्य जीव जड़देहसे न्यारा है, ऐसा भी समझ लिया। अपने कर्मका ही भोग जीव स्वयं भोग रहे हैं। जैसा करेंगे, वैसा भरेंगे; यह भी जाननेमें आया। अध्यास रहित होनेपर जीव मुक्त हो जाता है, यह तो आपकी दयासे जाननेमें आया। जहाँतक होता है अध्यास या वासनाओंको मिटानेका प्रयत्न भी कर रहा हूँ, तो भी मेरा मन स्थिर नहीं होता है; शान्ति-सन्तोषरूप नित्य सुख अनुभव नहीं होता है। हे गुरो! इसमें क्या कारण है? सो कुछ समझनेमें नहीं आता है; दया करके सो समझा दीजिये! तब महात्माने कहा— हे भक्त! इसमें तुम्हारे पूर्व जन्मके कोई पाप या अशुभ संस्कारकी मलिनता ही कारण है। जब कि, वह विकार या पाप भोगकर या शुभ कर्मके संस्कारसे दूर हो जावेगा; तब तुमको शान्ति स्थितिका सुख मालूम होवेगा। नित्य सत्सङ्ग-विचार तथा सत्कर्म करते रहो। महात्माकी ऐसी वार्ताको सुनकर वह भक्त चुप रह गया। एक दिन वह क्षत्रिय भक्त सड़कके किनारेपर कूएँके समीप छायामें खुमचा रखकर बैठा था; गरमीके दिन थे। एक मनुष्य जातिका चमार घासके गट्ठा उठाकर चला आता था, जब कि, वह कूएँके समीप पहुँचा, तब गरमीके मारे व्याकुल

होकर ठोकर खाकर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। ऐसा देखकर तुरन्त ही वह क्षत्रिय भक्त उठा और तिस चमार मनुष्यको उठाकर तिसने छायामें कर दिया। और ठण्डा पानी निकालकर शर्बत बनाकर तिसके मुखमें थोड़ा-थोड़ा डालना शुरू किया, थोड़ी देरमें वह चमार मनुष्य होशमें आ गया, तब कुछ थोड़ा-सा तिसको चना-चबेना भी खिलाया, पानी पिलाया। तो स्वस्थ वा चङ्गा होनेपर वह चमार मनुष्य उठकर चला गया। उसी दिनसे उस क्षत्रिय भक्तके हृदयमें शान्ति-सन्तोषके सुख मालूम होने लगा। कुछ दिन बादमें उसने जाकर महात्मा गुरुसे कहा— सब वृतान्त बतलाया। शान्ति उदय होनेका हाल भी कहा, यह सुनकर महात्मा गुरु बोले— तुम्हारेमें पूर्वके जो कोई अशुभ संस्कार पापके विकार प्रतिबन्धक था, वह दया पालन करनेसे जाता रहा, यानी दया धर्मसे पूर्वके पापका दोष शमन हो गया। क्योंकि, तुमने दया करके एक आदमीको प्राणदान दिया या रक्षा किया है; यह दयाका फल बड़ा भारी है। दयासे भीतर-बाहरके सब प्रकारके दोष दूर हो जाते हैं। परन्तु, निष्कपट निस्स्वार्थ होकर दया करना चाहिये ॥

इस प्रकारसे परदया— छोटे-बड़े देहधारी प्राणियोंको जान-बूझकर न सताना, शक्ति अनुसार रक्षा करना; और निजदया— पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके अपनेको जगत् बन्धनोंसे छुड़ा करके जड़ाध्यास रहित करना है; दया धर्मकी महिमा बहुत ही श्रेष्ठ है ॥ तहाँ कहा है कि:—

दोहाः— "दया धर्मका मूल है। पाप मूल अभिमान ॥ तुलसी दया न छोड़िये। जब लग घटमें प्राण ॥"

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी कहा है:—

साखीः— "जीवमतिमारोबापुरा। सबकाएकैप्राण ॥ हत्याकबहुँनछूटिहै। जोकोटिनसुनोपुराण ॥२१२॥"
"जीवघातनाकीजिये। बहुरिलेतवै कान ॥ तीरथगये न बाँचि हो। जोकोटिहीरादेहुदान॥२१३॥"

इत्यादि बीजक, साखीमें कहा है ॥

(५) **दृष्टान्त** ॥ "वीरता या धैर्य धारणसे लाभः" ॥ मनुष्योंमें एक विलक्षण श्रेष्ठ गुण धैर्य या वीरता है। जितने भी कठिन-से-कठिन काम क्यों न हों, वे धैर्यपूर्वक करनेसे ही सिद्ध होते हैं। अधैर्य मनुष्योंसे कार्य सिद्ध हो नहीं सकता है। क्योंकि, वैसे लोग कर्त्तव्यको ठीकसे न सोचकर अकर्त्तव्य ही कर डालते हैं। काम बिगड़ जानेपर पीछे पछताते हैं। कहा है कि:—

"बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय ॥ काम बिगारै आपनो, जगमें होत हँसाय ॥ इत्यादि ॥"

अधैर्यवाले मनुष्योंका कार्य कभी सफल हो नहीं सकता है। इसलिये हरएक काममें चाहे वह व्यवहारका हो या परमार्थका हो, उसमें सबको एकाग्रता और धीरज या वीरता धारण करना अति आवश्यक है। इसमें एक लौकिक उदाहरण है, सो सुनिये !:—

कोई एक शौकीन धनाढ्य मनुष्यने एक सिंहके बच्चाको छोटेपनसे पाला था। उसपर वह सेठ बड़ा प्यार करता था। मानो वह एक घरका ही बान्धव—आदमीके समान प्रेम रखता था। दूध पिलाकर अनाज आदि खिलाकर उसका पालन-पोषण किया। धीरे-धीरे समय पाकर वह बच्चा बढ़ते हुए एक पूरा, बड़ा सिंह हो गया। परन्तु, वह अबोध प्रेमवश था। उसे यह ज्ञान नहीं था कि, मालिक आदमी एक रुधिर-मांसका ही पिण्ड बना है। वह शेर अपने पालक स्वामीको देखकर उसके पासमें चला आता और प्रेम दिखाके हाथ-पैर उसका चाटने लगता था; ऐसे कई दिन गुजर गये। एक समयकी बात ऐसी हुई कि, उस सिंहका स्वामी सेठ एक आराम कुर्सीपर बैठा हुआ पुस्तक पढ़ रहा था; और ठण्ढी-ठण्ढी हवा भी चल रही थी। वह सिंह भी उसकी बाईं ओर बैठा हुआ था। वह मनुष्य अपने पालतू सिंहको देखकर प्रसन्न हो रहा था; और विचार कर रहा था कि, मेरे समान संसारमें बड़ा कोई नहीं होगा। क्योंकि, सिंहके डरसे दुनियाँ काँपती है, वही सिंह आज मेरे साथ बकरीकी भाँति पूँछ हिलाये फिरता है। इस गर्वके उदय होते ही वहाँपर नतीजा भी उलटा हो जाता है, उसका फल भोग भी उसके सन्मुख होता है। उस समयमें सिंह उस सेठका हाथ चाटने लगा। धीरे-धीरे सिंह आधा घण्टा तक हाथ चाटता रहा, जब उसकी जीभकी रगड़से हाथमें कुछ रुधिर चमचमा आया, और सिंहको कुछ-कुछ स्वादिष्ट मालूम पड़ा, तो और जोरसे चाटने लगा। क्योंकि, मनुष्यके रक्तका स्वाद उसको लग गया था। जब सेठको हाथमें तकलीफ मालूम हुई, तब अपना हाथ खींचने लगा, सिंहने पहिले तो हाथ खींचने नहीं दिया, परन्तु, जब उसने हाथको झटका, तो सिंह गरज उठा। उसका स्वभाव पलट गया देखकर सेठने धैर्य धारण कर अपना हाथ पूर्ववत् ज्यों-के-त्यों ही रख दिया; सिंह फिर हाथ चाटने लगा। उसका स्वामी सेठ फौरन ताड़ गया कि, अब सिंहकी दृष्टि बदल गई है। अगर मैं हाथको खींचता हूँ, तो यह अभी मुझे ही मार करके खा

॥ ❀ ॥ अथ पञ्च सद्गुण महिमा पृथक्-पृथक् वर्णन ॥ अर्थ कवित्त और सवैया ॥ ❀ ॥

कवित्तः— जीव चिरञ्जीव नित्य, सत्य ताहि जानिये । जीवते परे न कोइ, परे जड़ मानिये ॥
काय वच मन करि, सत्यमें टिकानिये । सत्यके प्रताप बड़, रामस्वरूप ठानिये ॥ १ ॥

सवैयाः— पालन सत्य समान न और, बड़ा जप तीरथ ध्यान न होई ॥

सत्यः— संयम नेम आचार करे पर, सत्य विना बिरथा पन खोई ॥

(१) साँच बराबर कोइ नहीं तप, श्रीगुरु बीजकमें कहि सोई ॥
भीतर-बाहर रामस्वरूप जो, सत्य धरै बड़ ज्ञानि है सोई ॥ २ ॥

विचारः— तजि कुसङ्ग सतसङ्गत करके, जो मनमें सतको ठहरावै ॥

जायगा । ऐसी अवस्थामें घबड़ानेसे काम नहीं बनेगा, इसकारण धीरजसे ही काम लेना चाहिये । यह सोच-विचारकर पुस्तक-की ओर ही मुँह करके अपने नौकरको धीरेसे बुलाया, आवाज दिया । जब नौकर आया, तब सेठने कहा कि, जल्दीसे जाकर बङ्गलेमें भरी हुई दो नली बन्दूक रक्खी है, सो उसे लाकर सावधानी पूर्वक चुपकेसे सिंहके सीना और पेटमें मारो । निशान नहीं चूकना । नहीं तो, यह अभी मुझे मार डालेगा । यह बात सेठकी सुनकर नौकर भी थर्रा गया; और वह धैर्यको धारणकर बङ्गलेमेंसे बन्दूक ले आया; और डेढ़ हाथकी दूरीसे सिंहके पेट और छातीमें ताककर दोनों गोली ऐसी मारी कि, तुरन्त ही वह सिंह वहींपर मर गया । इस तरह नौकरने मालिकका प्राण बचा लिया; तब सेठ बोला कि— "जान बची सो लाखों पाये" अब देखिये कि— यदि सेठ पहले ही घबड़ा कर, अधैर्य होकर हाथ खींच लेता, तो सिंह बिगड़ा तो था ही, एकदमसे उसको मारकर खा लेता; धैर्यसे युक्ति पूर्वक चलनेसे दुष्ट सिंहको मारकर वह बच गया ॥

यह तो एक दृष्टान्त है । सारांश इसका यही है कि, सब काममें धीरज रखनेकी आवश्यकता पड़ती है । धैर्यका फल मीठा होता है । धैर्य बिना मोटा-मोटी व्यवहारका काम भी नहीं बनता है । तब परमार्थका झीना काम कैसे बनेगा ? धैर्यसे युद्धमें डटे रहनेवाले शूर-वीर कहलाते हैं । शूर बहुतोंको पराजय करनेमें समर्थ होते हैं । जिस समय शूर युद्धमें चढ़ाई करता है, उस समय किसीकी भी परवाह नहीं करता है । अपने शरीरको तृण समान समझता है । समरमें डटकर युद्ध करनेवाले, बहुतोंको विजय करनेवाले मदोन्मत्त हाथीके गण्डस्थलका विदारण करनेवाले, अनेक प्रचण्ड सिंहोंको वध करनेवाले, सर्पादिको-वश करनेवाले, ऐसे-ऐसे अनेकों शूर हुए और होते हैं । परन्तु, यह शूर-वीरता लौकिक, क्षणिक है । उपरोक्त दृष्टान्तका सिद्धान्तः—

सेठके समान जीवने देहरूपी अपने घरमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मन-मानन्दीको सिंहके बच्चाकी नाईं पालन-पोषणकर शक्ति दे-देकर बलिष्ठ बनाया है । वही मनोविकार उपयुक्त समयमें जीवरूपी मालिकका घात करना चाहता है । उधर विषय जालोंसे हटना चाहो, तो हटने ही नहीं देता है । विकार सन्मुख होकर अनेक तरहसे गुर्राता है । मानो जीवको झपटना ही चाहता है । ऐसी अवस्थामें मुमुक्षुको धैर्यसे काम लेना चाहिये । गुरु-सत्सङ्गसे प्राप्त विवेक-बोधरूपी गोली छोड़-छोड़कर इस दुष्ट मन तथा काम-क्रोधादिको एकदम मार देना चाहिये । दमन-शमन करना चाहिये, तभी जीवकी रक्षा होगी । काम, क्रोधादिके वेग, घमण्डको तोड़नेवाले कोई बिरले ही पारखी सन्त होते हैं । खानी-वाणीके जड़ाध्यास रहित कायावीर कबीर जीते-जी माया-मोह विकारको नाश किये हुए शूर-वीर-धीर गम्भीर जीवन्मुक्त सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए । आपके ही पारख बोधमें कायम स्थितिवान् पारखी सन्त भी जीवन्मुक्त वीर धीर कहलाते हैं । ऐसे साधु-गुरुके उपदेशको धारणकर जिज्ञासु मनुष्योंको धैर्यवान् होना चाहिये । धैर्य तथा अभ्याससे कठिन-से-कठिन कार्य भी सरल-सुगम हो जाते हैं । तहाँ कहा है कि:—

दोहाः— "करत करत अभ्यास अस, जड़मति होत सुजान ॥ रसरीआवतजातते, शिलपरहोत निशान ॥"

और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें कहा है:—

साखीः— "भँवर जाल बगुजाल है । बूड़े बहुतअचेत ॥ कहहिं कबीरतेबाँचिहैं । जाकेहृदयविवेक ॥९२॥"

इत्यादि ॥ अब यहाँपर सत्य, विचार, शील, दया, धीरजके ऊपरमें घटित अन्यत्रके दृष्टान्त तथा अपने लेने लायक सिद्धान्तके वर्णन सहित यह टिप्पणी समाप्त हुई है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ * ॥ इति टिप्पणी सम्पूर्णम् ॥ * ॥

(२) निर्णय सत्य असत्य करै जो, बुद्धि प्रकाश विचार सभावै ॥
परम ज्ञान विचारते होवत, साधु गुरु सज्जन जन गावै ॥
रामस्वरूप सब साधन व्यर्थ ही, परख विचार बिना झुलसावै ॥ ३ ॥

शीलः— कोमल नम्र सुशील स्वभावते, मान प्रेम सुख मिलै मिलावै ॥
(३) मिलकर सबहिं प्रसन्न होयके, आदर गुप्त प्रगट गुण गावै ॥
शीलवान गुरुभक्त सुसङ्गी, मन अभिमान समूल नशावै ॥
रामस्वरूप गुण शील बिना नर, पशुवत आयु व्यर्थ गमावै ॥ ४ ॥

दयाः— दया महान सबन हित कारक, प्रगट दया मन शुद्ध हो जावै ॥
(४) पाप तापके दोष विनाशक, निज-परको सुख शान्ति दिलावै ॥
निजदया पाले ते मुक्ति, परदया सुख भोग भोगावै ॥
रामस्वरूप गुण दया बिना जो, निर्दई काल चौरासि सभावै ॥ ५ ॥

धीरजः— हिम्मत शक्ति धीर वीरमें, रणमें शौर्य योधा दिखलावै ॥
(५) समनदमन मन इन्द्रिय साधन, काम क्रोध वश वीर कहावै ॥
मन्मथ दम्भ प्रचण्ड रिपु सेना, धीर विराग डटि नाश करावै ॥
रामस्वरूप सो परम वीर है, पारखी गुरु कबीर ठहरावै ॥ ६ ॥

संक्षिप्तः— सत्य विचार औ शील दयाअरु, धीरज पाँच हंस ततसारा ॥
शुद्ध त्रिगुण युत अष्ट महागुण, मुक्ति सोपान चढ़िते निस्तारा ॥
पारखी साधु गुरु सहवासते, खानि वाणि बन्धन मिटिसारा ॥
रामस्वरूप हो जीवनमुक्ति, गुण सर्वाङ्ग जे हियमें धारा ॥ ७ ॥

सोरठाः— पाँचों तत्त्व महान * हंस रहनि जो कोइ रहै ॥
आवागमन मिटान * गुरु पारख परकाशते ॥ ८ ॥

॥ ❀ ॥ इति सद्गुण महिमा वर्णन समाप्तः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ षट् पशुधर्म सुधार वर्णन ॥ ❀ ॥

५. जो चारिउ विधि पूरा होई * सबहीं बात सुधारै सोई ॥ २० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो = जो कोई जिज्ञासु मनुष्य—
चारिउ = विचार, शील, दया, वीर, ये चारों सद्गुणोंको अच्छी तरहसे—
विधि = विधिपूर्वक बुद्धिमें पक्का करके—
पूरा = } पूर्ण रीतिसे पूरा गुणवान्—
होई = } होगा या हो गया है—
सोई = सोई सद्गुणधारी मुमुक्षु नर जीव—
सबहीं = } सब जड़ाध्यास खानी-वाणीके
बात = } विकारोंको छोड़कर सब प्रकारकी बातोंको और संस्कारोंको—
सुधारै = सुधार करेगा या जीवनमें मन-मानन्दी-का सुधार करके मुक्त हो जावेगा ॥

व्याख्या— जो कोई जिज्ञासु मनुष्य विधिपूर्वकसे विचार, शील, दया, और धीर-वीर, ये

चारोंमें पूर्ण रहनी- रहस्यवाले होवेंगे, सो और सभी बातोंको भी सुधार लेंगे। उन चारोंमें पूरा होनेसे सर्व कुवृत्ति, कुवासना, कुसङ्ग, कुसंस्कारादि मिटकर जीवनका सुधार हो जाता है। सोई गुरु होकर अपने सुधरकर दूसरे जिज्ञासुओंको भी सुधारनेवाले हो जाते हैं ॥ २० ॥

६. प्रथमे पशुवत् कर्म सुधारै * जो वर्तै सो भली संभारै ॥ २१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

प्रथमे = मनुष्य जन्ममें हितेच्छुक नर जीवोंको चाहिये कि, सबसे पहिले मनुष्य और पशुओंका गुण-लक्षण पहिचान लेवें, फिर प्रथममें—

पशुवत् कर्म = पशुके समान कर्म विचार रहित षट् पशुधर्मका वर्ताव जो तन-मनादिसे होता है, उन कर्मोंको विवेक द्वारा विलगा करके—

सुधारै = सुधार करे, मनुष्यके गुण धर्मको ग्रहण करके पशु वृत्तिको त्याग करे, ऐसे सुधारै।

जो वर्तै = जो कुछ भी कार्य करै सचाईसे करै, मनुष्य देहमें विचार पूर्वक वर्तमानमें चलै, ऐसा जो कोई शुभ वर्तावसे वर्तै—

सो = सो मुमुक्षु नर जीव—

भली = अच्छी तरह या भलीभाँतिसे बन्धन-मुक्तिको सत्सङ्गसे जानकर—

संभारै = अपनेको बन्धनके मार्गसे संभाल लेवें, बचाय लेवें या जो ऐसे जान गये हैं, सो निज-पर जीवोंको बन्धनोंसे बचाय लेते हैं॥

व्याख्या— हे नर जीव! तुम्हें मनुष्य जन्म कर्मभूमिका जो मिला है, सो यहाँपर सर्व प्रथम पशुवत् कर्म अनाचार-अविचार विषय भोगासक्ति आदि षट् पशुधर्मोंको ठीकसे सुधार करो। और मन, वचन, तथा कर्मोंको अच्छी तरहसे सम्हाल-सुधार करके भूत-भविष्यकी आशा वासनाको छोड़कर मनुष्य देहके वर्तमानमें शुद्ध चालसे वर्तो, चलो। जो इसप्रकारसे शुद्ध, निराश वर्तमानमें वर्तते हैं या चलते हैं, सोई सच्चे हंस जीव हैं ॥ २१ ॥

७. छाजन सो मतलब है सङ्ग्रा * करै सुसङ्ग छाड़ि मति भङ्ग्रा ॥ २२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! [अब षट् पशु धर्मका सुधार कैसे करना? सो कहा जाता है, सुनिये!]

छाजन = आच्छादन, देहको ढाँकनेको कपड़ा और जड़ासक्तिरूप आवरण पर्दा, जो पड़ा है, सो कुसङ्गादिको आसक्ति त्यागकर—

सो = सो मुक्ति चाहनेवाले मनुष्योंको—

है = जो पूर्व कर्मसे यह देह बना है, इसकी रक्षाके वास्ते सत्कर्म करना है, और—

मतलब = गुजारा लायक शीत-उष्णादिसे बचाव हो सके, उतना काम पूर्ति ही कपड़ा आदि वस्तु पास रक्खे, तथा आवश्यक कार्य हो, तभी ही संसारी लोगोंसे मिलकर थोड़ेसेमें काम बनाय लेवे।

सङ्ग्रा = ऐसे अल्प वस्तु संग्रह करै, कुसङ्गोंका त्याग करके सज्जनोंका सङ्ग-साथ करै, और सत्सङ्गमें निवास करै।

मति भङ्ग्रा = मति-बुद्धिको भङ्ग वा भ्रष्ट करनेवाले, तथा चैतन्य बोधको छोड़ने-छुड़ानेवाले, जड़ाध्यास लगा करके भ्रमानेवाले, ऐसे बुद्धिहीन करनेवाले गुरुवालोग तथा विषयी-जन स्त्रियाँ आदि कुसङ्गियोंके—

छाड़ि = सङ्ग-साथको और प्रेमको एकदमसे छोड़ करके त्याग देवे और हमेशा—

सुसङ्ग = श्रेष्ठ पारखी साधु-सन्त, भक्त, सज्जनोंका सङ्ग, बैठक, सहवास, सत्सङ्ग-विचार ही—

करै = सदा करता रहै या सदा सत्सङ्ग करते रहना चाहिये ॥

व्याख्या— अब यहाँसे षट् पशुधर्मोंका सुधार, त्याग-ग्रहण करनेका उपदेश कहा जाता है। छाजनसे दो अर्थ निकलता है। एक, तो आच्छादन = शरीरको ढाँकनेके निमित्त कपड़ा पहिरना। दूसरा, आवरण पर्दा जड़ाध्यास जीवोंपर अविद्याका ढकन पड़ा है। सो दोनों प्रकारके छाजनोंको मतलब पूर्ति ही सङ्गमें लेना चाहिये। अर्थात् देहको शीत-उष्णसे बचा करके रक्षा करनेके निमित्त ही प्रयोजन पूर्ति कपड़ा पहिरना, ओढ़ना, बिछाना चाहिये। सुगमतासे देहका व्यहार चले, उतना वस्त्र

रखना चाहिये। ज्यादा वस्त्र बढ़ा करके आसक्ति रखना बन्धनदायी होता है। अथवा किसीने कीमती वस्त्र शाल-दुशाले मखमल आदि खरीद करके घरमें धरा है। उसे अपने उपयोगमें नहीं लिया, मैला होनेके और जल्दी फट जानेके डरसे भी नहीं पहिनता है। वैसे ही रक्खा रहा, ऐसेमें ही उसका देह छूटकर कपड़ोंमें ही वासना यदि रह गयी, तो वह जीव कीड़े होकर उन कपड़ोंमें ही उत्पन्न होके उसे काटा करेगा, अतएव सुज्ञजनोंको ऐसी वासना कभी रखनी नहीं चाहिये। इसीलिये यहाँपर "छाजन सो मतलब है सङ्गा" कहा है। तैसे ही व्यवहारमें भी विषयी, कुसङ्गियोंका सङ्ग बहुत बचायके करना चाहिये; और मतिको भङ्ग करनेवाले पामर, विषयी, स्त्रियाँ; कुमार्गीलोग तथा गुरुवालोग जो कि, चैतन्य जीवको छोड़कर बुद्धिको भ्रमा करके ब्रह्म-ईश्वरादि दूसरा ही कर्त्ता कल्पनासे बतानेवाले ऐसे लोगोंके सङ्गको सर्वथा छोड़कर या त्यागकर सदा सुसङ्ग, पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार ही करते रहना चाहिये। जिससे जीवोंका आवरण पर्दा धीरे-धीरे हट जायगा ॥ २२ ॥

८. सङ्गति भली भली बुद्धि होई * ओछी सङ्गति मूलहु खोई ॥ २३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सङ्गति भली = विचारवान अच्छे सच्चे पारखी सन्त-महात्माओंका सङ्ग या सत्सङ्ग करते रहनेसे जीवोंकी भलाई होती है। और—

बुद्धि = बुद्धि भी प्रकाश हो जाती है, तो सुबुद्धि-गुरुबुद्धि उनको होकर—

भली = अच्छा विचार प्राप्त हो जाता है। फिर उसमें अपनी और दूसरेकी भी भलाई हो जाती है। इस तरहसे—

होई = सद्बुद्धि उदय होनेसे सबोंका हित-कल्याण ही होता है। और—

ओछी सङ्गति = हलुकी, अन्यायी, पक्षपाती, नीच, अविचारी, जड़ासक्त गुरुवालोग तथा विषयी पामरोंका सङ्ग करनेसे, नित्यके सङ्गसे बुद्धि भ्रष्ट होकर—

मूलहु = मनुष्यपदके सद्गुण-लक्षणादि मूल तथा जीवकी जानीवपना या साक्षीदशा समेत् भी—

खोई = नाश हो करके हेराय जाता है या शून्यमें गाफिल हो जाते हैं, तो जीवका मूलपद ही ढँक जाता है ॥

व्याख्या— भली सङ्गति करनेसे बुद्धि भी अच्छी होती है। और बुरी सङ्गति करनेसे उसका असर बुद्धिमें भी बुरा ही पड़ जाता है। इसकारणसे सत्पुरुष साधु-गुरु पारखी सन्त-महात्मा, सज्जनोंका अच्छा सुसङ्ग ही सर्वदा करते रहना चाहिये। जिससे बुद्धिका विकार मिटकर बुद्धि स्वच्छ सुन्दर, प्रकाश हो, अच्छा समझ-बोध होगा। शान्ति-स्थिति प्राप्त होयगी। और 'ओछी' कहिये नीच, हलुकी, दुर्बुद्धि छोटोंकी सङ्गति करनेसे, यानी पामरलोग एवं स्त्रियाँ और भ्रमिक गुरुवालोगों-की सङ्गतिसे हाथमें आया हुआ मूल नर-जन्म सद्गुण भी नाश हो जाता है; तथा चैतन्य पदका विवेक भी नाशको प्राप्त हो जाता है या गायब हो जाता है। जीव उन्होंके सङ्गमें लगकर भग-भोग या शून्य समाधि आदिमें लगकर नष्ट-भ्रष्ट हो चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जाते हैं। इससे कभी कुसङ्ग नहीं करना चाहिये ॥ २३ ॥

इस बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक साखीमें जो कहा है, सो यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने प्रमाण दिया है, सो सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ मूल बीजककी— साखी नम्बर— २०७ ॥ ❀ ॥

साखीः— सङ्गति कीजै साधुकी * हरै औरकी व्याधि ॥
[४] ओछी सङ्गति कूरकी * आठों पहर उपाधि ॥ २४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो !

साधुकी = पहले तो तुम सच्चे साधु पारखीकी | पहिचान करो। पारखी साधु कैसे हैं ? कि,

वे तन, मन, वचनको साधे हुए वा वशमें किये हुए भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनादि विकारोंसे रहित हैं, ऐसे पारखी साधुकी ही—

सङ्गति कीजै=शरण-ग्रहण करके सदा-सर्वदा सत्सङ्ग कर लीजिये ! उनके सत्य उपदेशोंका श्रवण-मनन करके विचार धारण कर लीजिये। इसीसे कल्याण होगा; जीवनका जय लाभ होगा। पारखी सन्त गुरु अपने भवरोग, भ्रम, संशय, भूल, अध्यासोंको मिटा करके—

औरकी=शरणागत दूसरे जिज्ञासु नर जीवोंकी भी खानी-वाणीके धोखा-अध्यासोंको मिटाकर—

व्याधि=परमौषधि पारखबोध देकर नाना तरहके आधि, व्याधि, उपाधि आदि विकारोंको नाश करके—

हरै=हरण कर देते हैं। भ्रम मिटा करके शान्त कर देते हैं। सोई सच्चे पारखी सद्गुरु मानने योग्य हैं; और—

कूरकी=बेपारखी कपटी, छली, पक्षपाती और विषयासक्त भोगी, ऐसे कूर-दुष्ट लोगोंकी या स्त्रियोंकी—

ओछी=तुच्छ, नीचबुद्धि, हलुकाई, धोखा, पक्षपात लगा हुआ जीवोंको भटकाने फँसानेकी चाल, जञ्जाल रहता है।

सङ्गति=उससे इन्होंके सङ्गको कुसङ्ग बन्धन-दायी जान करके कभी नहीं करना। उन्होंके फन्दोंमें कभी नहीं पड़ना। यदि लालचसे तुम गुरुवा लोगोंकी नीच सङ्गतिमें जाओगे, तो तुम्हें वे—

आठों पहर=दिन-रात यानी चार प्रहर दिन, और चार प्रहरकी रातमें भी कभी चैन लेने नहीं देंगे, ऐसे तो आठों ही प्रहरमें तुम्हें पाँच तत्त्व, तीन गुणोंके जालोंमें ही फँसायेंगे, नचायेंगे। और—

उपाधि=विषयोंकी उपाधि तो लगी ही है। कहीं कर्म, ज्ञान, योग, भक्ति, उपासना आदिकी नाना उपाधिमें तुम्हें लगायेंगे। इससे जन्म-मरणादिके रोग तुम्हारे कुछ छूटनेका नहीं, बल्कि ज्यादा ही बढ़ेगा, सो जानो ! ॥

व्याख्या— हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! तुम्हें यदि मुक्तिकी चाहना है, तो सब कुसङ्गतोंको परित्याग करके पारखी साधु सन्त-महात्माओंका सत्सङ्ग करो। जिससे तुम्हें भी पारख बोधकी पहिचान हो जावेगी। पारखी साधु कैसे होते हैं कि, अपनी व्याधिको मिटाते हुए औरकी भी आधि, व्याधि, उपाधि आदिको भी वे हरण कर देते हैं। जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाते हैं, उनको सत्यासत्यकी पहिचान कराकर कल्पना, अनुमानको हरण कर देते हैं। अपरोक्ष पारखबोध होनेपर भास, अध्यास भी नाश हो जाता है, तब व्याधिरूप जन्म-मरणादिका रोग सदैवके लिये निवृत्त हो जाता है। अतएव नित्यप्रति पारखी साधु-गुरुका ही सत्सङ्ग करते रहना चाहिये। और कूर=कपटी, छली, प्रपञ्ची, पाखण्डी गुरुवालोग तथा पामर, विषयी, स्त्रियाँ, इन्होंकी सङ्गति तुच्छ, नीच सङ्ग है; जीवोंको हलुकाई, तुच्छ, नीच बनानेवाला है। इससे उनका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। क्योंकि, वह कुसङ्ग है; उससे जीवोंकी मति-बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। और वे प्रपञ्ची लोग आठोंप्रहरकी दिन-रातमें उपाधि लगाये ही रहते हैं। कहीं विषयोंका काम, क्रोधादिकी उपाधि लड़ाई-झगड़ामें डालते हैं; तो कहीं जप, तप, व्रत, उपवास, पुरश्चरण, तीर्थाटन, कर्म, भक्ति, योगादिकी उपाधि, धोखेमें फँसाये रहते हैं। जिससे जन्मृतिरोग छूटनेके बदले और दुगुना होकर बढ़ जाता है। अतएव उन्हें पहिचानकर कूरोंके सङ्गमें पड़ना नहीं चाहिये, सदा न्यारा रहना चाहिये ॥ २४ ॥

सम्बन्ध— चौथा खण्डमें १९ चौपाई, और २ साखी वर्णन हुआ है, ऐसा जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ चार खण्ड ॥ ४ ॥ ❀ ॥

१. दूजे भोजन कर्म सुधारै * अंकुरज भछे जीव प्रतिपालै ॥ २५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दूजे=दूसरा नम्बरमें अविचारसे जैसा-तैसा खान-पान करना, सो पशुधर्म कहलाता है।

भोजन कर्म=आहार, खान-पान या भोजन सम्बन्धी जितने भी कर्म व्यवहार होते हैं, उसको—

सुधारै=सत्सङ्ग करके मनुष्य बुद्धि द्वारा निर्णय-को लेकर अशुद्ध, अभक्षका त्याग, शुद्धका ग्रहण करके सुधारकर लेवें या ऐसे सुधारना चाहिये।

अंकुरज=फल, फूल, कन्द, मूल, पत्र, अन्नादि पृथ्वीसे पैदा हुए अंकुरजमात्रमें विष और नशीले पदार्थोंको छोड़कर शुद्ध अन्न-जलादिको ही—

भछै=शरीर रक्षाके लिये खाना-पीना चाहिये। अथवा खावे, तो शुद्ध खावे, और—

जीव=देहधारी छोटे-बड़े जीवमात्रको कभी किसी प्रकारसे भी हिंसा न करे और मांस, मछली आदि अभक्ष्य भी न खावे।

प्रतिपालै=मनमें दया-धर्मको रखकर सब-प्राणियोंका प्रतिपालन करै, यानी शक्तिभर जीवोंकी रक्षा करे, बचावे॥

व्याख्या— पहला आच्छादनके त्याग-ग्रहणकी रीति, सुधार बताचुके हैं। अब दूसरा भोजन कर्मका सुधार बता रहे हैं। जिज्ञासु मनुष्योंको भोजन सम्बन्धी कर्म भी अच्छी तरहसे सुधार लेना चाहिये। क्योंकि, भोजनका असर देह और मनपर जल्दी ही पड़ जाता है। इसलिये सदा शुद्ध सात्त्विक ही आहार करना चाहिये। पृथ्वीसे उत्पन्न कन्द, मूल, फूल, फल, अनाज, वनस्पतियोंको 'अंकुरज' कहते हैं। उसमें गाँजा, भाँग, चरस आदि नशीले पदार्थ तथा विषैली वस्तुओंको छोड़कर और दुर्गन्धवाले लहसुन, प्याज आदि त्यागकर बाकीके अनाज, साग-भाजियोंको शुद्ध अमनियाँ करके फटक-पछोरकर, जल छानकर तब भोजन बनावे। शुद्धतासे बनाया हुआ, ऐसे भोजनको देह रक्षाके लिये खाना चाहिये। हमेशा जल छानकर ही पीना चाहिये। इसीको ही सात्त्विक भोजन कहते हैं; और छोटे-बड़े शरीरधारी जीवोंको शक्ति रहते तक हमेशा बचाकर प्रतिपालन करना चाहिये। जीव हिंसा करके मांस आता है, इससे मांस, मछली मदिरादि कभी खाना-पीना नहीं चाहिये॥ २५॥

२. जीव अजीवहि करै विचारा ❀ जड़ चेतन जो है संसारा॥ २६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! और सत्सङ्ग, विचार-विवेक द्वारा—

जीव=चैतन्य अविनाशी देहधारी जीव स्वरूपसे अनन्त हैं; तथा—

अजीवहि=पाँच तत्त्व जड़ निर्जीव कार्य-कारण संयुक्त दोनों न्यारा-न्यारा अनादि वस्तु हैं। इसीका यथार्थ—

करै विचार=सत्य विवेक विचार-करता रहे; जो काम करे सदा विवेक-विचारसे ही करे। जिससे सबका हित हो, ऐसा विचार करे।

जड़=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और शून्य आकाश यह जो पाँच तत्त्व हैं, सो ज्ञान-गुणसे रहित कार्य-कारण भाग वाले होनेसे जड़ तत्त्व कहलाते हैं।

चेतन=मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज— ये चारखानीके अनन्त देहधारी ज्ञान-गुणवाले "जीव" चैतन्य स्वरूप हैं।

संसारा=बाहर जगत्में पिण्ड-ब्रह्माण्डोंका विस्तारयुक्त एक 'जड़' का भाग और एक जड़-चेतन संयुक्त संसार है।

जो है=ऐसे जो कुछ भी संसारमें वस्तु या पदार्थ हैं, सो सब अनादि स्वयं ही हैं। इनका कोई कर्त्ता नहीं है॥

व्याख्या— साधु पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके मनमें जीव-अजीवका ठीकसे सच्चा विचार करना चाहिये। जीव क्या है? अजीव क्या है? सुनो! जीव सोई चैतन्य है। अजीव सोई जड़को कहते हैं। ऐसे संसारमें मुख्यतया जड़ और चैतन्य- यह दो ही वस्तु जो दिख रहे हैं, सो स्वयं ही अनादि हैं। इनको किसीने बनाया नहीं है, तो कोई कभी बिगाड़कर सर्वथा नाश कर सकनेका भी नहीं। संसारमें एक तो ब्रह्माण्डमें सिर्फ कार्य-कारणरूप जड़ तत्त्वोंका भागमात्र है। दूसरा, पिण्ड

चार खानियोंके देहमें जीव और जड़ तत्त्वयुक्त सम्मिलित हैं। सो कर्मोंका अध्यास करके हैं। ऐसा विवेक करके जान लेना चाहिये कि, जगत्का कर्त्ता कोई ईश्वर-खुदादि नहीं है। जगत् स्वतः अनादि कालका है ॥ २६ ॥

३. जहाँ जीव तहाँ चेतन होई * दुःख सुख सब विधि जानै सोई ॥ २७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
जहाँ=जगत्में चार खानीके अन्दर जहाँ-पर भी—
जीव=जड़ाध्यासी जीव बद्ध होकर निवास किये हुए हैं—
तहाँ=सो तहाँ उसमें या तहाँपर देहोंमें—
चेतन होई=सुख-दुःखादि जाननेका ज्ञान गुण चैतन्यता अवश्य होता है। यानी जीव और चेतन एकके ही नाम हैं; दो नहीं हैं।
सुख=आराम आनन्दरूप सुखका भान और—
दुःख=कष्ट, क्लेश, पीड़ारूप दुःखका ज्ञान—
सब विधि=सब प्रकारसे विधिपूर्वक—
सोई=चैतन्य ज्ञानस्वरूप अखण्ड सोई जीव ही उसमें नित्य—
जानै=जानपना होनेसे अच्छी तरहसे जानता है या सदा सुख-दुःखोंको जानता रहता है-

व्याख्या— जहाँपर अध्यासी जीवोंका निवास है, चार खानियोंमें, तहाँपर चेतनता या ज्ञानगुण अवश्यमेव होता है। चेतन होनेका लक्षण क्या है? कि, विभिन्न देहोंका बनना तथा सुख-दुःखादिको सब प्रकारसे जानना, इच्छाका होना, अवस्थाका बदलना, अनेक क्रिया प्रगट होना और अमरताका लक्षण, पूर्व देहोंका कर्मफल अभी भोगना, ऐसे जिसमें जहाँपर गुण-लक्षण प्रगट हों, सोई चेतन जीव हैं, ऐसा जानिये। तहाँ कहा भी हैः—

दोहाः— "इच्छा क्रिया अवस्था। ज्ञान अमरता होय ॥ ये लक्षण जहाँ पाइये। जीव जानिये सोय ॥"

अतएव जानमात्र या ज्ञान स्वरूप ही जीवोंका स्वरूप जानिये ! ॥ २७ ॥

४. जैसे उष्ण अनलको कर्मा * सदा शीत है जलको धर्मा ॥ २८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
जैसे=जिस प्रकारसे दृष्टान्तमें—
उष्ण=उष्णत्व यानी गरम करना, सर्दी मिटाना, पकाना, प्रकाश करना इत्यादि लक्षण—
अनलको=अग्नितत्त्वके हैं।
कर्मा=उक्त सब कर्म या कार्य अग्नि तत्त्वसे ही होते हैं। उष्णता तेजका नित्यधर्म है। और—
सदा=सदा-सर्वदा या हरहमेशा—
शीत=ठण्ढा या शीतल होना, दाहको मिटाना, प्यास मिटाना आदि—
जलको=उक्त सब कार्य जल तत्त्वके हैं, सो जल तत्त्वका मुख्य—
धर्मा=गुण या धर्म शीतलता—
है=सदैव जलमें ही रहता है ॥

व्याख्या— यहाँ दृष्टान्त देकर सिद्धान्त समझाते हैं। जैसे अग्नि तत्त्वके उष्णता धर्म नित्य है। इससे तेजसे गर्मी बढ़ती है, प्रकाश होता है, देहमें भूख, प्यास लगती है, दाह होता है; पकाना, भस्म करना इत्यादि बहुतेक कर्म अग्नि करके होते हैं; और सदा शीतल रहना जल तत्त्वका नित्य धर्म है। इससे ठण्ढा होना, गीला होना, वस्तु नरम होना, पदार्थोंको भिगा देना, धूर आदि चूर्णको गोला बाँध देना, गर्मी शान्त करना इत्यादि कार्य नाना तरहसे होते हैं। सोई नित्य शीतलताका गुण या धर्म जल तत्त्वमें सदा ही मौजूद रहता है। इस प्रकारसे अग्निसे कभी उष्णता न्यारी नहीं होती है और जलसे शीतलता अलग नहीं होती है, इसीसे तो वह एक ही है ॥ २८ ॥

५. सूर प्रकाश भिन्न नहिं दोई * वैसे जीव धर्म चिद होई ॥ २९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
सूर=तेजोमय सूर्य और—
प्रकाश=सूर्यका प्रचण्ड उष्ण प्रकाश या किरण—
दोई=यह दोनों अर्थात् सूर्य और सूर्यका प्रकाश—
भिन्न नहिं=एक-दूसरेसे कदापि न्यारा या भिन्न हो नहीं सकते हैं। सो भिन्न-भिन्न नहीं हैं, एक ही है।

वैसे=इसप्रकार सिद्धान्तमें भी वैसे ही—
जीव=चैतन्य जीव और उसका—
चिद=चैतन्यपना, जानना या जड़को चेताना, ज्ञानका प्रकाश करना—
धर्म=यह जीवके धर्म या गुण नित्य है; यानी वह तो एक ही स्वरूप है।
होई=जीव और चैतन्य नाममात्र दो कहा है, वस्तु तो एक ही है, भिन्न नहीं हैं॥

व्याख्या— जैसे सूर्य और सूर्यकी प्रकाशरूप किरणें दोनों भिन्न-भिन्न नहीं हैं, किन्तु, एक ही वस्तु है। तैसे ही, जीव और जीवका चैतन्य धर्म या ज्ञान गुण भी एक है, दो नहीं है। सिर्फ नाम, शब्द मात्र दो हैं। अतएव जीव अध्याससे चारों खानियोंमें चाहे कहीं देह धरकर रहे; शरीर छोटा-बड़ा होगा, लेकिन चैतन्य जीव एकरस अखण्ड ही सदा रहते हैं। कहीं किसी जीवोंसे जानपना न्यारा नहीं होता है, यह यथार्थ विवेकसे समझना चाहिये॥ २९॥

६. जल थल पावक पवन अकाशा ❀ सो सब स्वर्ग जीवको बासा॥ ३०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जड़ाध्यासी जीव जहाँ-तहाँ देह धारण करके कर्म फल भोग रहे हैं; उसमेंसे—
जल=कितनेक जीव जलचर बनकर नदी, नाले, समुद्रादिमें रह रहे हैं।
थल=कई जीव थलचर बनकर जमीनकी मिट्टीके अन्दर-बाहर मनुष्य-पशु आदिके रूपमें रह रहे हैं।
पावक=कईएक, रूप-विषयके अध्यासी जीव अनाजोंमें उष्णतासे उत्पन्न हो, वहीं रहते हैं, सो तेज तत्त्व सम्बन्धी हैं
पवन=कईएक नभचर वायुके वेग लेकर उड़ा करते हैं। प्राणधारी अध्यासी तो सब जीव बने ही हैं।
अकाशा=कईलोग आकाशमें निराकार ईश्वरादिका ध्यान लगाकर शून्यके अध्यासी बने हैं।
सो=सो वह पाँच तत्त्वोंको ही—
सब=बेपारखी सब जनोंने विभिन्न रूपमें मानन्दी किये, तो—
स्वर्ग=ऊपर सात स्वर्ग कल्पना किये हैं और यहाँ पञ्चविषय सुख अध्यासी होकर फिर पञ्चतत्त्वरूप भूमिकामें ही—
जीवको=जड़ाध्यासी जीवोंका—
बासा=वासनावश चार खानीमें निवास हुआ और हो रहा है॥

व्याख्या— जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, और आकाश, सो सबोंको ही पारखहीन भ्रमिक लोगोंने ईश्वररूपमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे माने हैं। अष्ट प्रतिमा पूजादिरूपमें पृथ्वीको। गङ्गादि तीर्थरूपमें जलको। सूर्यादि पूजा, अग्निहोत्ररूपमें अग्निको। प्राण उपासनारूपमें वायुको; और शून्य आकाशवत् ब्रह्मको माने हैं। (इसका विस्तार तत्त्वयुक्त निजबोध विवेकमें किया है, वहींसे जान लेना)। तथा पञ्चविषयोंको स्वर्ग कहिये सुखका धाम विषयी लोगोंने माने हैं और ऊपर सात स्वर्ग लोकोंकी कल्पना किये हैं। अतएव खानी-वाणीके अध्यासवश या जड़ पाँच तत्त्वोंमें ही सब जीवोंकी वासना होनेसे उलट-पलट करके जड़ाध्यासी सब जीव जल, थल, फल, पत्र, पुष्प, वनस्पति आदिमें देह धरकर निवास करके विचर रहे हैं॥ ३०॥

७. सकल पसारा जड़को होई ❀ पाँचों तत्त्व कहावैं सोई॥ ३१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
सकल=
पसारा= } पिण्ड-ब्रह्माण्डमें जितने भी— आकार-प्रकारका विस्तार भया है, सो सकल फैलावा दृश्य-अदृश्यरूपसे—
जड़को=
होई= } पञ्च जड़ तत्त्वोंका ही है या हो रहा है; उससे जीव न्यारा है।
सोई=स्थूलाकार, सूक्ष्माकार और निराकार भेदसे सोई तो—
पाँचों तत्त्व=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इस नामसे पाँच तत्त्वोंका विस्तार सब जगत्—
कहावैं=कहलाता है या उन्हें ही पाँचतत्त्व कहा जाता है या गुरुवालोगोंने पञ्चतत्त्वको ही ईश्वर और स्वर्ग करके कहे और माने हैं॥

व्याख्या— पिण्ड-ब्रह्माण्डमें जितने भी पसारा फैलावा दिखाई दे रहे हैं, सो सकल जड़का ही पसारा है। स्थूल, सूक्ष्म और शून्यरूपसे सोई पाँच तत्त्व ही कहलाते हैं। जैसे— पृथ्वी-जल स्थूलाकार, तेज-वायु सूक्ष्माकार, और आकाश निराकार है, यह सब जड़ हैं। भ्रमिकोंने इसीको ईश्वर माने हैं ॥ ३१ ॥

८. जैसे केश उधमज है देहा * ऐसे अंकुरज पृथिवी नेहा ॥ ३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
जैसे = जैसे कि, यहाँ पिण्ड कलामें—
केश = कपाल या शिर, बगल, छाती, दाढ़ी आदि विशेष स्थानोंमें रोम या बालोंका विस्तार जीवकी सत्तासे—
देहा = देहोंमें होकर—
उधमज है = उत्पन्न हो जाते हैं, सो जल और पृथ्वीके सम्बन्धमें उत्पन्न होनेवाले जड़ पृथ्वीका ही भाग या प्रकृति है।
ऐसे = इसी प्रकारसे ऐसे ही—
अंकुरज = बीजमेंसे अंकुर फूटकर निकलनेवाले वृक्ष, तृण, अन्नादि वनस्पतियोंके समस्तके बीज पहलेसे—
पृथिवी = पृथ्वी वा जमीनमें पड़े रहते हैं, तो वह पृथ्वीतत्त्वका ही भाग है। और—
नेहा = जलतत्त्वका स्नेह वा गीलापनके सम्बन्ध पायके समयपर सब अंकुरज, अन्नादि वनस्पति आप-ही-आप उत्पन्न हो जाते हैं ॥

व्याख्या— शरीरमें मुख्य-मुख्य मर्म स्थानमें विशेष और दूसरे जगहोंमें समानरूपसे जैसे रोम या केश देहमें उत्पन्न भया है; सो रज-वीर्यके मिलापसे सन्धि-सन्धिमें बाल निकला हुआ है। उस रोमको कटाय देनेसे जीवको कुछ भी दुःख नहीं होता है। तैसे ही फल, फूल, कन्द, मूल, पत्र, साग, भाजी, अनाज आदि वनस्पतियाँ अंकुरजमात्र बीज, पृथ्वी और जलके मेलसे तथा उनकी स्वयं जड़शक्तिसे अंकुरित होकर उत्पन्न हुए तथा बढ़ते हुए फैले हैं। उसमें जीवका सम्बन्ध नहीं है, सिर्फ जड़का ही सम्बन्ध है; इसलिये अंकुरज भोजन शुद्ध निर्दोष है; ऐसा जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

९. शून्य सुषुप्ति अस्ति समाना * तेहि आश्रित अंकुरज उतपाना ॥ ३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! स्वमतके मुख्य सिद्धान्तमें— अस्ति = सत्य जीव योगमार्गसे वा भोग मार्गसे सुषुप्तिवत् शून्यके जड़ाध्यासी होके शरीर छोड़े, तो वासनावश अंकुरजादि खानीमें जाकर उष्मजदेहें धारण करके उत्पन्न भये वा हो रहे हैं। - यानी जीव शून्य सुषुप्तिमें समाये, तहाँ उसी अध्यासके आश्रित वा आधारसे अंकुरजोंमें निवासी उष्मज खानीके देह धारण करके उत्पन्न हुए और उत्पन्न हो रहे हैं ॥ अथवाः—
अस्ति = नित्य सत्य चैतन्य जीव या मनुष्य अपने अस्तित्व सहित सुख प्राप्तिके प्रयत्न करने लगे, तो—
शून्य = कोई योग-ध्यानादि साधना द्वारा समाधि लगाय वृत्ति शून्य किये. गाफिल हुए। और—
सुषुप्ति = कोई सब काम समेटकर सो गये, तो गाढ़ी निद्रा आई, तब सुषुप्तिमें गाफिल हुए। ऐसे अज्ञान सुषुप्ति और ज्ञान सुषुप्तिरूप शून्यमें ही—
समाना = वृत्ति लय करके ज्ञानी और अज्ञानीलोग समा गये; और कोई समान आकाशवत् व्यापक ब्रह्म माने हैं। इस तरह—
तेहि = वे ही भ्रमिक मनुष्य जीवोंके—
आश्रित = सत्ता-सम्बन्धके आधारसे नाना शुभाशुभ कर्म होकर जड़ाध्यास दृढ़ होकर टिका, तो—
अंकुरज = } कोई पेट पालनेके लिये किसानी
उतपाना = } धन्धासे अनाज, फल-फूलादि अंकुरजोंकी खेतीसे पैदा करने लगे; तथा खाने-खिलाने लगे। उसी योग वा भोगोंके अध्याससे जीव अंकुरजोंमें जाकर कीड़े-मकोड़े आदि उष्मज देहें धर कर उत्पन्न हुए; और वनस्पतियोंमें रहने लगे ॥

व्याख्या— अथवाः— गुरुवालोग ऐसा कहते हैं कि— शून्य सुषुप्ति अवस्थामें ईश्वरके

अंशरूप जीव समानेसे उसीके आश्रयसे अंकुरज खानीकी उत्पत्ति हुई है, तो स्थावर खानीमें और समस्त अंकुरजोंमें जीवोंकी वासा सुषुप्ति अवस्थामें रहती है। यानी शून्य सुषुप्ति अवस्थामें चैतन्य ईश्वर वा जीव जल-थल चराचरमें सर्वत्र समाया हुआ है। सो उसीके आधारसे वा आश्रयसे अंकुरजादि स्थावर खानीकी भी उत्पत्ति भई है वा होती है इत्यादि प्रकारसे कल्पना किये हैं; ऐसा जो गुरुवा लोगोंने माने हैं, सो भ्रम कल्पना मात्र है; यथार्थ बात नहीं है। क्योंकि, अंकुरज झाड़, पहाड़ आदि सभी जड़ हैं। उसमें जीव और अवस्थाएँ कुछ भी नहीं हैं। इसका खास अर्थ ऐसा है कि— जीव सब सुखाध्यासी भये हैं। सुखके वास्ते ही कोई सोकर गाढ़ी निद्रा सुषुप्तिमें समाते हैं, गाफिल बेभान हो जाते हैं; और कोई शून्य समाधि लगाकर शून्यमें समाये, लय हुए, तो सुषुप्तिवत् गरगाफ हो जाते हैं। इसप्रकार अस्ति जीव शून्यमें दोनों प्रकारसे समाया, तो जड़ाध्यासी हुआ। उसी अध्यासके वशीभूत हो जीव उष्मजादि खानियोंमें उत्पन्न होकर वनस्पति आदियोंमें यत्र-तत्र देह धरकर भिन्न ही रहते हैं। शक्ति अनुसार उन्होंको बचाना चाहिये; और देह गुजाराके वास्ते किसान लोग मेहनतसे अनाज, फलादि उत्पादन करते हैं; सो बाहर जीवोंकी सहायतामात्र कुछ रहती है। परन्तु, तत्त्व बीजादिके आधारसे या जड़ शक्तिसे ही अंकुरज उत्पन्न होते हैं, ऐसा जानिये !॥ ३३॥

१०. पूरण अस्ति पिण्ड ब्रह्मण्डा * भेद अवस्था खण्ड औ पिण्डा ॥ ३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
अस्ति = नित्य सत्य चैतन्य जीवोंने पूर्व कर्मानुसार ही—
पिण्ड = चार खानियोंमें नाना देहें धारण किये हैं; और नरजीवोंने—
ब्रह्मण्डा = निज-निज मति अनुसार नाना वाणी कल्पना करके बनाये और भ्रमसे पिण्ड-ब्रह्माण्डका कर्त्ता कोई परमेश्वरको मानन्दी किये, तथा—
पूरण = सर्वत्र चराचरमें परिपूर्ण व्यापक कर्त्ता ब्रह्मको ठहराये हैं; और—
भेद = अद्वैतमें अभेद, द्वैतमें भेद माने हैं, इसका भेद ऐसा है कि—
अवस्था = अवस्थातीत होनेसे ब्रह्ममें अभेद रहता है। चार अवस्थाओंकी उपाधि सहित होनेसे जीवोंमें भेद-भाव बना रहता है, ऐसा माने हैं।
औ = और भी इसका खुलासा ऐसा है कि—
पिण्डा = चार खानियोंमें नाना देहधारी जीवोंको-
खण्ड = न्यारे-न्यारे परिछिन्न ब्रह्मका अंश माने हैं, सो मिथ्या कल्पना मात्र है। जीव स्वरूपसे अखण्ड अनेक देहधारी प्रत्यक्ष सत्य हैं॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं कि, सर्वत्र पिण्ड-ब्रह्माण्डोंमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म ही एक सत्य है। उसमें कोई भेद नहीं है, अभेद है, तो न्यारे-न्यारे अवस्था और पिण्ड देहादिकोंसे वह परे है; उसमें यह सब कुछ नहीं है। वह अवस्थातीत है। परन्तु, न्यारे-न्यारे पिण्ड-ब्रह्माण्ड अवस्थाके भेद और नाना देहें यह सब ब्रह्मके आश्रयमें रही हुई मायासे ही विस्तार भये हैं। तथापि, उन सबोंमें ब्रह्म तो पूर्णरूपसे ही भरा पड़ा है, कहीं खाली नहीं है। यह तो गुरुवाओंकी मिथ्या कल्पनाका वर्णन है। वास्तवमें अर्थ ऐसा है कि— 'अस्ति' चैतन्य जीव सत्य है। अध्यासवश जीव सब पिण्ड-देहधारी बने हैं; तो मनुष्योंने ही कल्पना-मानना करके वेद, कुरानादि वाणियोंको नाना तरहसे बनाये हैं, फिर ब्रह्माण्डरूप जगत्को बनानेवाला कोई पूर्ण परमात्माका अनुमान किये और भ्रमिक हुए; तो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया, ऐसे अवस्थाओंके भेदसे उसका कर्म, उपासना, योग, ज्ञानादि मार्गोंमें भी भेद हुआ, न्यारे-न्यारे सिद्धान्त, मत, पन्थ, ग्रन्थोंकी रचना हुई। तहाँ किसीने ब्रह्म-जगत्को अभेद माने, तो कोई भेद मानने लगे। ऐसे भिन्न-भिन्न अवस्था, मार्गोंके अध्यासोंसे जीव चारखानीमें विभिन्न पिण्ड-देहधारी हुए और कर्म फल भोग रहे हैं॥ ३४॥

११. जागृति स्वप्न जहाँ व्यवहारा * नहीं तहाँ अंकुरज पै सारा ॥ ३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

जहाँ=जगत्में जहाँपर जिस ठिकानेमें—
जागृति=जागना, चलना, फिरना, बैठना, उठना, सोना, श्वास लेना, सुख-दुःखादि जानना इत्यादि कार्य जाग्रत् अवस्थामें होते हैं। तथा—
स्वप्न=सो जानेपर भीतर जाग्रत्का भास फोटोवत् स्वप्न देखना, सो लय होना, फिर जागना-सोना इत्यादि अनेक प्रकारके—
व्यवहारा=कर्म व्यवहार या कार्य होते हैं या हो रहे हैं, तहाँ ही चेतन जीवोंकी वासा, मौजूदगी है, और यह व्यवहार जाग्रत्-स्वप्नादि जहाँपर कुछ है ही नहीं, सो जड़ है।
पै सारा=परन्तु, इतना बड़ा भारी पसारा या फैलाव, विस्तार जगत्में—
अंकुरज=अठारह भार वनस्पति, अंकुरज, झाड़ तथा पहाड़, पत्थर, मिट्टी और जल, तेज आदिकोंमें—
तहाँ=तहाँपर बारीकीसे देखनेपर भी—
नहीं=जाग्रत्, स्वप्नादि अवस्थाएँ तथा सुख-दुःखादि कुछ दिखाई देते ही नहीं। इससे उसमें खाली जड़ भाग है, चेतन जीव है ही नहीं॥

व्याख्या— जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ उनका नाना व्यवहार, जहाँपर है या देखनेमें आता है, तहाँपर ही चेतन जीवका निवास है, ऐसा जानना चाहिये; और जहाँपर जाग्रतादि अवस्थाओंके व्यवहार देखनेमें न आवें, सो जड़ तत्त्वका कार्य है। वहाँ जीव नहीं है; सो जानना चाहिये। कोई अनाड़ी मूढ़लोग अंकुरजोंमें जीवका होना मानते हैं, वह उनकी भूल है। सत्य विवेक करके देखिये! अठारह भार गिना हुआ वनस्पति गुल्म, लता, बेली, वृक्षादि अंकुरजोंके पसारा फैलावा तो बहुत-बहुत हैं; परन्तु, उनमें चेतन जीव होनेका ज्ञानगुण तथा जाग्रत्-स्वप्नादि अवस्थाएँ सुख-दुःखादि कोई भी लक्षण नहीं हैं। अतएव स्थावर अंकुरोंमें जीव नहीं हैं। ऐसा विवेक द्वारा जान लीजिये!॥ ३५॥

१२. हरे सूखै जो शङ्का होई ❀ ताकर भेद तुम लेहु बिलोई॥ ३६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! यदि तुम्हें अंकुरजादि वनस्पतियोंमें जो—
हरै=हरा-भरा प्रफुल्लित होनेका, पत्र-पुष्प, फलादि लगनेका, बढ़ना, जमना आदि कार्य होनेका; तथा—
सूखै=सूख जाना, सड़-गलकर नाश होनेका, पकजाने आदिको देख करके—
जो=जो कि, तुम लोगोंको यदि
शङ्का होई=मनमें यह शङ्का या सन्देह उत्पन्न होवे कि, उसमें जीव हुए बिना यह सब कैसे हो जाता होगा? जीव ही यह सब करता होगा? तो सुनो!—
ताकर भेद=उसका यथार्थ भेद ऐसा है कि, चारों तत्त्व और बीजकी स्वयं शक्ति जड़त्व धर्म करके यह सब बात हो जाती है। इसका विस्तार भेद—
बिलोई=पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें सत्य निर्णय करके अच्छी तरहसे—
तुम लेहु=तुम लोग समझकर जान लेओ॥

व्याख्या— हे मनुष्यो! यदि तुम्हें ऐसा सन्देह या शङ्का उत्पन्न होवे कि, वनस्पति, वृक्षादि पृथ्वीसे उत्पन्न होकर बढ़ते हैं, हरा-भरा रहते हैं, फल-फूल, पत्र, मञ्जरियाँ आदि उनमें लग जाती हैं, जमते हैं; समयपर फल परिपक्व होकर सूख जाते हैं; वृक्ष भी सूखते हैं। यह सब जीवके बिना कैसे होता होगा? इससे उनमें जीव होना चाहिये? सुनो! इसका पूरा भेद तो तुम पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग करके सत्य निर्णयको अच्छी तरहसे ही समझ सकते हो। किन्तु, संक्षेपमें यहाँ भी लिख दिया जाता है, सो सुनो! मनुष्य, पशु, अण्डज, और उष्मज, यह चार खानियोंमें ही जीवोंका निवास है; और स्थावर वनस्पति अंकुरजादिमें जीव नहीं हैं, वे निर्जीव जड़ हैं। जड़तत्त्वोंमें जड़त्व शक्ति स्वयं है। अतएव बीजें तथा पृथ्वी-जलादिकी स्वयं शक्तिसे ही वृक्ष, तृणादि सर्व अंकुरजोंकी उत्पत्ति होकर तिनमें अनेक पत्र, डालियाँ, मञ्जरियाँ, फूल, फलादि लग जाने, परस्पर पेड़ोंपर कमल बन्ध

जाने, वृक्षोंमें बाँदा प्रगट होने इत्यादि कार्य करानेका विशेष करके जलतत्त्वमें स्वयं अनेक शक्तियाँ हैं। इस विषयमें श्रीकाशीसाहेबने कहा है:—

चौपाई:—"वृक्ष तृणादि अंकुरज जामें। पत्र फूल फल उपजे तामें॥
बाँदा ह्वै अरु कलम लगि जाई। सदैव अस जल शक्ति रहाई॥" जड़ चेतन भेद प्रकाश॥

इसप्रकार हरा-भरा होने, बढ़ने, फूलने, फलने, इत्यादिका भेद तो समझ ही गये होंगे। विशेषतया यह सब जल तत्त्वकी शक्तिसे, बीजसे ही होता है। अब सूखनेके बारेमें सुनिये! वृक्षादिकी एक डाली कहीं सूख जाती है; फिर कभी वह सूखी हुई जैसी भी हरी होने लग जाती है। तो क्या, जीव निकलनेसे सूख गया, फिर जीव आनेसे हरा हो गया कहोगे? या आधा जीव निकल गया था, आधा रहा है, ऐसा मानोगे? यह बात ऐसा मानना तो अन्याय, अविचारका है। क्योंकि, जीव अखण्ड है, उसमें ऐसी बात नहीं घटती है। वास्तवमें सूर्यकी उष्ण किरणोंसे जलके परमाणु आकर्षित होनेसे अनाजोंकी फसल, घास, बेली, बाली आदि समयपर सूख जाती हैं; और वृक्षोंके जड़ोंमें बरोबर पानी न मिलनेसे या दीमक लगकर जड़ें कट जानेसे ऐसे ही कई विकार होनेसे वृक्ष सूख जाते हैं। जितने भागके डालियोंमें रस बरोबर पहुँच नहीं पाता है, उतने ही भाग सूख जाते हैं। इस तरह जड़ तत्त्वोंकी कला कम-ज्यादा होनेसे ही हरा होना, सूख जाना आदि कार्य होते हैं। उसमें जीवकी कोई आवश्यकता नहीं है। अतएव अंकुरजोंमें जीव नहीं है; ऐसा जानिये! और ज्यादा शङ्का हो, तो सत्सङ्ग द्वारा सत्यासत्यका विलछान करके निर्णय करके जान लीजिये!॥ ३६॥

१३. चिखुर बढ़ाये बहुविधि बाढ़ै ❀ अनल जराय छिनमों डारै॥ ३७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

चिखुर=रोम या केश शरीरमें जड़ रक्त, मांसादिकी सन्धियोंमें पैदा होता है। सो बालको-

बढ़ाये=बढ़ाकर रखनेसे जटा-जूट आदि—

बहुविधि=बहुत लोग विधि पूर्वक बहुत प्रकारसे—

बाढ़ै=बढ़ाते हैं, तो बाल बढ़ता ही जाता है। लम्बी-लम्बी जटाएँ हो जाती हैं। ऐसे बहुत दिन तक बढ़ाया हुआ बालको यदि कटा दिया गया तो कट जाता है, कटानेवालेको कुछ दुःख भी नहीं होता है।

अनल= } यदि आगमें केश जला दिया
जराय= } जाय, तो जल जाता है,—

छिनमों= } सो अग्नि क्षण भरमें ही बालको
डारै= } जलायके भस्मकर डालती है।

(जैसे केश निर्जीव, जड़ पथार्थ है। तैसे सब अंकुरज भी जड़ वस्तु हैं; ऐसा समझना चाहिये।)॥

व्याख्या— देहमें रोम बढ़ानेसे बहुत प्रकारसे बढ़ जाता है। स्त्रियोंके सिरमें तो बाल बढ़ा हुआ ही रहता है। पुरुषोंमें सिखलोग सब ही दाढ़ी-मोंछ और सिरके सब बाल बढ़ाते हैं; और कोई ब्रह्मचारी, वैरागीलोग जटाधारी, जटाजूटवाले होते हैं। सो रक्त-मांसके सम्बन्धमें केश उत्पन्न होता है, वह बढ़ानेपर लम्बा होके बढ़ता जाता है। अगर हजामत बना लिया गया, तो कट जाता है। यदि आगमें जला दिया गया तो क्षण भरमें ही जलकर खाक हो जाता है या जलाके भस्म कर डालता है। सो खाली केशमें जीव न होनेसे उससे किसीकी कुछ हानि या दुःख नहीं होता है, तैसे ही अंकुरजमात्रका अमनियाँ करके सेवन करनेसे कोई दोष नहीं लगता है; बल्कि उससे लाभ ही होता है; ऐसा विवेक करके जान लीजिये!॥ ३७॥

१४. अनल दीपको तेल अधारा ❀ पवन थीरमें करत विहारा॥ ३८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अनल=जबतक लकड़ी आदिका आधार मिलता है, तबतक अग्नि प्रज्ज्वलित रहती है; तथा अग्निकी लपटसे—

दीपको=दीपकको जला रखनेके लिये—

तेल= } तेलका आधार होना चाहिये।
अधारा= } तेलका आधार मिलता रहे, तबतक

दीपक जलती रहती है। तथा—

पवन= } सामान्य वायुकी जगहमें थीर पवन
थीरमें= } और तेजकी सहायतासे तेलको खैंचते हुए दीपककी ज्वाला—

विहारा=सीधी रीतिसे एक-सी लपट विहरकर या विहार करते हुए—

करत=प्रकाश करनेका कार्य करती है; उस जगहको चौतरफ प्रकाशित करती है॥

व्याख्या— बाहर अग्नि प्रज्ज्वलित करके चेता रखनेके लिये इन्धन-लकड़ी आदिका आधार होना चाहिये। तथा दीयामें अग्निकी ज्योति चेताकर लपट-प्रकाश कायम रखनेके लिये तेलका आधार लगता है। अर्थात् तेलके आधार मिलनेसे ही दीपक जलती रहती है। समानवायुकी जगहमें दीपक थीर होकर एक-सा जलती है। समान वायु और अग्निके आकर्षणसे ही तेलका खिंचाव होकर जो दीपकका प्रकाश दिखता है, सो जड़ ही है॥ ३८॥

१५. पवन झकोरते जाय बुझाई ❀ अधार पाय पुनि देर रहाई॥ ३९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पवन=चञ्चल वायुके—

झकोरते=वेगसे झोंका लगनेसे—

जाय बुझाई=जलती हुई दिया गुल होकर बुझ जाती है या बुझके अँधियारा हो जाता है। और फिर—

अधार पाय=वायुका झोंका रोकनेका आड़, चिमनी, भीत, मकान भीतर या हाथ आदिके आड़रूप आधार पायके, ऐसे आधार मिलनेसे—

पुनि=फिर वह बुझने लगा हुआ दीया भी—

देर=कुछ देरतक यानी तेल है तबतक—

रहाई=जलता हुआ ठहरे रहता है॥

व्याख्या— अगर जलते हुए दीपकको चञ्चल वायुका तीव्र झोंका लग जाय, तो वायुके झोंकासे दिया बुझ जाती है, फिर तहाँ अँधियारा हो जाता है। यदि वायु लगतेमें उसको रोकनेके लिये चिमनी काँच आदिकी आड़, आधार पा जाय, तो फिर वह देर तक जलती रहती है। तेल खतम होनेपर फिर आप ही बुझ जाती है। यह सब जड़तत्त्वका ही प्रकाशादि करनेका कार्य है। उसमें चेतन जीव नहीं रहता है, ऐसा समझना चाहिये॥ ३९॥

१६. लोहू चर्म है चिखुर अधारा ❀ जल पृथिवी अंकुरजको सारा॥ ४०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

लोहू=रक्त यह देहमें जलतत्त्वका मुख्य भाग है, तथा—

चर्म=त्वचा या चमड़ी पृथ्वी तत्त्वका मुख्य भाग है। इससे दोनोंके मेलमें—

चिखुर=देहमें सब रोमोंकी उत्पत्ति हुई है।

है=सो बाल जो हैं, उनकी वृद्धिके लिये—

अधारा=रक्त और त्वचाका आधार रहता है। इसीसे रोम बढ़ते रहते हैं। तैसे ही बाहर ब्रह्माण्डमें भी—

जल=जल तत्त्व और—

पृथिवी=पृथ्वी तत्त्व, यह दोनोंके सम्बन्धमें बीजके मिलाप हो करके—

सारा=समस्त ब्रह्माण्डके वनस्पति—

अंकुरजको=अंकुरजरूप उद्भिज वृक्ष, अनाज, तृण, बेली आदिकी उत्पत्ति भई है या होती है। रोमके समान सो सब जड़ पदार्थ हैं॥

व्याख्या— तैसे शरीरमें भी जलका भाग रक्त और पृथ्वीका भाग त्वचा, यह दोनोंके सम्बन्धरूप आधारमें सब बालोंकी उत्पत्ति, बढ़ती, स्थिति होती है; सो केश जड़ ही है। तैसे ही केशवत् बाहरमें भी जलतत्त्व और पृथ्वीतत्त्वके सम्बन्धमेंसे बीज-वृक्षादि सारा अंकुरज आदिकोंकी उत्पत्ति हो, बढ़ते, फूलते, फलते हरा-भरा होते तथा समय पायके फिर सूखकर नष्ट हो जाते हैं। अतः इनमें जीव नहीं है; केवल जड़तत्त्वोंका मिश्रण कार्य भाग है॥ ४०॥

१७. पाँच तत्त्वको उपमज आहीं ❀ इनके भछे दोष कछु नाहीं॥ ४१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पाँच तत्त्वको = पृथ्वी-जलादि जड़ पाँच तत्त्वोंके मिलापसे जड़शक्तिसे—
उधमज = उत्पन्न होनेवाले या उत्पन्न भये हुए—
आही = पृथ्वीसे उत्पन्न सर्व अंकुरज पदार्थ निर्जीव जड़ हैं; अतएव हे जिज्ञासुओ !—
इनके = सब प्रकारके अन्न, कन्द, मूल, फूल, फल, साग-भाजी आदि इनको शुद्ध अमनियाँ करके—
भछे = खाने या भोजन करनेसे—
दोष = किसीको हिंसादिका दोष या पापका दोष
कछु नाहीं = कुछ भी नहीं लगता है या लग नहीं सकता है, वे निर्दोष ही रहते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और समानवायु, यह जड़ पाँच तत्त्वोंके सम्मेलनसे उत्पन्न भये हुए या उत्पन्न होनेवाले जड़ अंकुरजादि वनस्पतियाँ हैं। इस कारणसे अनाज, साग, भाजी, कन्द, मूल, फल, फूलादिको छान-बीन अमनियाँ करके शुद्ध भोजन या आहार करनेसे किसीको कुछ दोष नहीं लगता है। क्योंकि, ये सब जड़ पदार्थ निर्जीव शुद्ध हैं। इसके सेवन करनेवाले दोष रहित होते या निष्पाप रहते हैं; विवेक करके ऐसा जानिये ! ॥ ४१ ॥

१८. नानारूप जीव कृमि होई * जल-थल अंकुरज रहा समोई ॥ ४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
जीव = जड़ाध्यासवश सब जीव आवागमनोंके चक्रमें पड़े हुए हैं—
नानारूप = सो चार खानियोंमें नाना तरहके स्वरूप, विभिन्न आकारप्र कार रूप-रङ्गके अनेकों देहें धारण करके जहाँ-तहाँ फैले हैं। उनमेंसे—
कृमि होई = कितनेक जीव तो उष्मज खानीमें कीड़े-मकोड़े, दीमक, चींटी आदि छोटे-बड़े देहधारी हैं, ऐसे हुए या हो रहे हैं।
जल = कोई जलमें उत्पन्न जलचर जीव अनेकों तरहके विचित्र प्रकारके हैं। तथा—
थल = कोई थलचर, वनचर आदि किसिम-किसिमके जीव हैं; और—
अंकुरज = कोई अंकुरजोंमें अलग ही छोटे-छोटे कीड़ोंके देह धरकर बैठे हैं।
रहा = ऐसे अध्यासी जीव जलमें, थलमें,
समोई = पत्र, पुष्प, वनस्पतियोंमें जहाँ-जहाँ वासना टिकाये हैं, वहाँ-वहाँ समाय रहे हैं। यानी वहाँ ही घर बनायके बैठे हुए हैं ॥

व्याख्या— मनुष्य देहमें किये हुए कर्म वासना-संस्कारके अनुसार पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें जा-जा कर जीव सब नाना प्रकारके देहोंकारूप धारे हुए कीड़े, मकोड़े, दीमक, चीटियाँ, पाई, जूँ, खटमल आदि ऐसे अनेक देहधारी-जीव जलमें, थलमें, मिट्टीमें, गोबर-मल-मूत्रमें, कीचड़में पत्र, पुष्प, वनस्पति अंकुरजोंमें जहाँ-तहाँ अध्यासवश समाय रहे हैं। वहीं उत्पन्न होकर अलग-अलग बैठे हुए हैं। शक्तिभर दृष्टि रखनेके तिनको रक्षाकर बचाना चाहिये ॥ ४२ ॥

१९. दुःख दियेते बड़ अपराधा * दया विचारमें होवै बाधा ॥ ४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
दुःख दियेते = जान-बूझकर शक्ति रहते हुए न बचाकर, जो कोई उन छोटे-बड़े देहधारी जीवोंको दुःख, कष्ट-क्लेशादि देते हैं, सो जीवोंको दुःख देनेसे—
बड़ अपराधा = बड़ा भारी अपराध या पाप होता है। वे अपराधी, दोषी, घातकीलोग वैसे ही फिर बदला पावेंगे; और—
दया = धर्मका मूल जो निजदया तथा परदया है—
विचारमें = ज्ञानका मूल जो विचार है— उस घातकी, हिंसक, दुष्ट प्रकृतिवालेमें कहाँ दया और विचाररूप धर्म रह सकता है ? कदापि नहीं रह सकता है, क्योंकि, उसमें—
बाधा = पापकी रुकावट ही धर्मका बाधक हो जाता है। उस व्याधा निर्दयीकी कभी भी—
होवै = सुगति हो नहीं सकती है, इसीसे तो उसको चौरासी योनियोंमें ही पाप कर्मोंका फल भोगते रहना होगा, कभी छुटकारा नहीं होगा। इसलिये दया धारण करके जीव-रक्षा करनी चाहिये ॥

व्याख्या— यदि कोई उन परवश जीवोंको जान-बूझकर सतायेगा, मारेगा, दुःख देगा, तो बड़ा भारी अपराधी पापका भागी होगा। मनुष्यका सत्यगुण या धर्म, 'दया' और 'विचार' में भी बाधक रुकावट हो जायगी। दया ही मानव धर्मका मूल आधार है। तथा "विचारं परमं ज्ञानम्" विचारसे ही परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इससे ज्ञानका मूल 'विचार' है। ये दोनों सद्गुणोंको रोककर या त्यागकर ही जीव घात, हिंसा आदि कुकर्मसे जीवोंको सताकर दुःख देके बड़े अपराधी-पापी बनते हैं। अतएव अपना हित, सुख चाहनेवालोंको तो दया और विचारको दृढ़तासे धारण कर लेना चाहिये ॥ ४३ ॥

साखीः— अंकुरज भछै सो मानवा * मांस भछै सो श्वान ॥

[५] जीव वधै सो काल है * सदा नरक परवान ॥ ४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अंकुरज = पृथ्वीसे अंकुर फूटके या पौधा निकलके पैदा होवे, सो अनाज, साग, भाजी, फल, फूल, कन्द, मूलादिको ही समष्टिमें अंकुरज कहते हैं।

भछै = देह रक्षाके लिये शुद्ध आहारोंका भोजन ऊपर बताये चीजोंमेंसे ग्रहण करे—

सो मानवा = सोई सच्चे मनुष्य पदके अधिकारी मनुष्य हैं; और जो मनुष्यके रूप-आकारमें होते हुए भी—

मांस = जीव हत्या करके बकरे, भेड़े, मुर्गे, गाय, भैंसादिकोंको मारकर उन्होंका मांसको जो कोई निर्दयीलोग—

भछै = खा लेते हैं, निधड़क मांस निगलते हैं—

सो = चाहे सो ब्राह्मणादि वर्णके हिन्दू हों या मुसलमानादि कोई भी हों, सोई तो—

श्वान = कुत्ता, भेड़िया, बाघ, चीतादिके समान हिंसक स्वभाववाले नीच पशुवत् ही हैं। और—

जीव = देहधारी मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि आदि सजीव प्राणियोंको—

वधै = धोखा देके नाना तरहोंसे फँसायके जो जीवोंको जानसे मार डालते हैं, सो वधिक हैं।

सो काल है = सोई तो काल, कसाई, हत्यारा, कठोर मनवाले पापी हैं। सो ऐसे पापी-लोग देह छूटनेपर—

सदा = सदा-सर्वदाके लिये यानी जबतक पाप कर्म भोग उनका पूरा नहीं होता है, तब-तकके लिये—

नरक = पशु आदि नीच खानी और गर्भवासादि-में दुःख भोगनेको चले जाते हैं। सो ऐसे नरकमें ही पड़े रहते हैं।

परवान = इसके लिये उनके पाप कर्मके अध्यास ही प्रमाणिक हैं। कर्म भोगते हुए चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं ॥

व्याख्या— मनुष्योंका शुद्ध भोजन अनाज आदि अंकुरज हैं। इससे जो कोई अंकुरज मात्रका शुद्ध आहार या भोजन करके निर्वाह करते हैं, सोई मनुष्य कहलानेके अधिकारी हैं; सोई सच्चे मनुष्य हैं। और जीव हत्या करके जो मांस-मछलियोंको खाते हैं, सोई कुत्तेके समान हिंसक क्रूर स्वभाववाले तुच्छ नीच पशुवत् हैं; और जो कि, जीव वध या हिंसा-घात करते हैं, सोई काल या कसाई हैं, चाहे वे जो भी हों, जीवघाती कसाई काल ही कहलावेंगे। ऐसे अधर्मी पापीलोग सदा नरक कुण्ड गर्भवास तथा जन्म-मरणमें पड़ेंगे ! और उष्मजादि खानियोंमें कर्म फल भोग नाना तरहोंके दुःख और बदला भोगेंगे; सो उसके लिये प्रमाण प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं, कर्म ही मुख्य प्रमाण जानिये ! ॥ ४४ ॥

साखीः— जीयत जीव मुर्दा करै * कर्महि भया कसाय ॥

[६] मरी खाय चमरा भया * अधम कर्मके दाय ॥ ४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जीयत = जीते हुए प्राणधारी सजीव पशु-जीव = पक्षियोंको निर्दयतासे—

मुर्दा करै = जो कोई नरजन किसी निमित्तसे भी मार-पीटकर या अस्त्र-शस्त्रोंसे वध करके मुर्दा करते हैं—

कर्महि = कुकर्मी कर्महीन ऐसे लोगोंकी हत्याके

कर्म करके ही—

भया कसाय = वे हत्यारेलोग नीच कसाई भये, चाहे लोकमें ऊँचे क्यों न कहाते हों। किन्तु, जीव हिंसा करनेवाले पापीलोग कसाई ही होते हैं। अधर्मी बने हैं। और—

मरी खाय = मारे-मरे हुए पशु आदिके शरीर तो मुर्दा लाश भया। ऐसे मरी हुई मुर्दा लाशको यानी जो मांसको खाते हैं—

चमरा भया = सो भी नीच पतित चमार दुष्ट चाण्डालके सगे भाईके समान तुच्छ हुए।

अधम = ऐसे पापी, हत्यारे-दोषी, मांस भक्षी,
कर्मके = मुर्दा खानेवाले नर पिशाच, सब प्रकारके कुकर्मोंसे अधम हिंसा कर्मको करनेवाले जो-जो हैं, सो सब लोग—

दाय = पाप कर्मोंके भागीदार या हिस्सेदार होके नरक यातना भोगे और फिर भोगेंगे। कोई अभी भोग रहे हैं। पापके हिस्सेदार सब-लोग नरक भोगनेको जायेंगे॥

व्याख्या— बलिदान आदिके नामसे जो कोई जीते जीव, पशु आदिको जानसे मारकर मुर्दा कर देते हैं। तहाँ उनका कर्म तो सरासर निर्दयी कसाईका ही भया। चाहे वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हों, चाहे मुसलमान, क्रिस्तान, गृहस्थ अथवा साधु बने हुए कोई भी क्यों न होवें, देवी-देवताओंके नामसे भूत-प्रेतोंके नामसे बकरा, भैंसा, मुर्गा, कबूतर, बत्तक, गाय इत्यादिकोंको जो झटकासे तलवार या खड्गसे मार डालते हैं; अथवा छूरीसे हलाल करते हैं, सो ऐसे हत्याके कुकर्म करनेवाले नीच कसाई, कुकर्मी पापी हैं। और कोई स्वादी लोग कहते हैं कि— हम जीव हिंसाके पाप कर्म तो नहीं करते हैं, परन्तु, बाजारमें बिकते हुए मांसको मोल लेकर खाते हैं, इसमें कौन दोष? ये तो खरीदा हुआ सागके समान तरकारी है, इसमें कोई दोष तो देखनेमें नहीं आता है? ऐसे जिभ्या स्वादके लम्पट लोग बकवाद करके कहते हैं। ऐसी बात है, तो सुनो! अगर मांस खानेवाले न खावें, न खरीदें, तो कसाई लोग भी हत्या कम करेंगे; और खाने, खरीदनेवाले ही हत्यामें मदद देकर ज्यादा हत्या बढ़ा देते हैं। फिर मल-मूत्ररूप रज-वीर्यसे मांसकी उत्पत्ति भयी है। तथा पशु आदि वध करनेपर वे उधर मुर्दा लाश हो जाते हैं। कोई चमार आप ही मरे हुए पशुओंके मांस खाते हैं, तो दूसरे लोग उन्होंको नीच, तुच्छ मानते या खराब ठहराते हैं। परन्तु, विचार करके देखो! वे चमारोंसे ये लोग क्या कम हुए। बल्कि उनसे बढ़ करके नीच पापी महाचमार गँवार ही हुए। क्योंकि, वे तो स्वयं मरे हुए पशुको ही खाते हैं, वहाँ वे हत्याके दोषसे तो छूटे हैं। परन्तु, ये लोग एक तो हत्यारे पापी हुए, दूसरे मुर्दा फरोस हुए, यानी मुर्दाको खानेवाले पक्के चमार हुए। बल्कि चमारसे भी बढ़ करके ये गँवार हुए, वे सब दुष्ट लोग— १. हिंसा करनेवाले, २. मारनेको सलाह देनेवाले, ३. अङ्ग-प्रत्यङ्गको खण्ड-खण्ड टुकड़ा करनेवाले, ४. बेचनेवाले, ५. खरीदनेवाले, ६. पकानेवाले, ७. परोसनेवाले और ८. मांसको खानेवाले, ऐसे आठ प्रकारके लोग अधम कर्मोंके दायभागी या हिस्सेदार कहलाते हैं [मनुस्मृतिः]। अतएव भलाई चाहनेवालोंको कभी जीव हत्या करनी नहीं चाहिये, और मांस, मछली, अण्डे, शराब इत्यादि अभक्ष राक्षसी भक्षणको कभी भी खाना-पीना नहीं चाहिये। तथा— बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, भाँग, चरश आदि नशाको और नशीली चीजको सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकारसे दूसरे पशु-धर्म भोजनका सुधार करके मनुष्य होना चाहिये॥ ४५॥

सम्बन्ध— पाँचवाँ खण्डमें २० चौपाई, और १ साखी कहा है। उसमें तीसरे पशुधर्मका सुधार, त्याग-ग्रहण करनेकी शिक्षा बताया है, ऐसा जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ पाँच खण्ड ॥ ५ ॥ ❀ ॥

१. तीसर मैथुन कर्म विचारै * हानी लाभको भले निहारै॥ ४६॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

तीसर = तीसरे नम्बरमें सुधारने लायक पशुधर्म या स्वभाव यह—

मैथुन कर्म = स्त्री-पुरुषोंके सम्भोग कर्म, क्रीड़ा या मैथुन कर्म है। मैथुन भोग जो है, सो पशु कर्म ही है।

विचारै=साधु गुरुके सत्सङ्गमें जाकर इस विषयमें हित-अहितका अच्छी तरहसे सत्य विचार करे या ऐसा विचार करना चाहिये।
हानी=मैथुन कर्मसे बल, वीर्य, बुद्धि आदि दश गुणोंका नाश हो, मुक्तिपदकी हानि होती है।
लाभको=विषय भोगका त्याग, वीर्य रक्षासे देह परिपुष्ट हो, स्वार्थ-परमार्थका लाभ तथा वैराग्यमें दृढ़ता होनेसे जीवन्मुक्तिकी स्थितिका लाभतक होता है। ऐसे हानि और लाभ दोनोंको—
भले=अच्छी तरहसे भलीभाँतिसे—
निहारै=निष्पक्ष होके विवेक दृष्टिसे देखे या देखना चाहिये॥

व्याख्या— अब तीसरा पशुधर्म या पशु कर्म मैथुनका सुधार करना है; सो उसका विचार इस खण्डमें किया जाता है। तहाँ स्त्री-पुरुषके परस्पर सम्भोगको मैथुन कर्म कहते हैं। अब विचार करना चाहिये कि, मैथुनसे कितना लाभ होता है और कितनी हानि होती है। विवेक दृष्टिसे देखे, तभी ठीक-ठीक मालूम पड़ेगा। गृहस्थोंके लिये वंश-परम्परा चलानेके लिये सन्तान उत्पत्ति करनेका एक साधन है। उन्होंको सन्तान उत्पन्न करना, इतना ही एक लाभ दिखता है; और तो सिवाय हानिके कोई लाभ नहीं है। गृहस्थोंको धर्म नीतिके अनुसार विवाहित स्त्रीसे एक या दो सन्तान उत्पत्ति करनेतक ही सुयोग्य समयमें स्त्री-सङ्ग करनेके लिये कहा है। फिर विचार करके भोग विषयको त्याग करना चाहिये। देहमें वीर्यकी विशेषतासे ही बल या शक्ति रहती है। जिससे शरीर स्वस्थ होनेसे स्वार्थ और परमार्थका कार्य अच्छी तरहसे हो सकता है; और भेषधारी साधुओंके लिये तो सर्वथा अष्ट मैथुनोंका त्याग ही करना चाहिये। पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही त्याग-वैराग्यकी महिमा, शोभा और दृढ़ता हो सकती है। मन स्थिर करके शान्ति स्थितिमें ठहराव हो सकती है। विषय-वासना तथा मैथुन कर्मोंसे सिवाय हानिके और कुछ भी लाभ नहीं है। अतः भोगमें लगना क्या है? नरजन्मको बर्बाद ही करना है। इसको पारख दृष्टिसे देखे और अच्छी तरहसे समझे॥ ४६॥

२. छिन एक घसत घसावत भावै * पाछे नाना दुःख दिखलावै॥ ४७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

छिन एक=अल्प काल या एक क्षणमात्रके लिये एक-दूसरेसे मिलके—
घसत=, घसावत= } स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धसे भग भोगनेमें घिसते-घिसाते या रगड़ते-रगड़ातेमें घर्षणसे कामाग्नि प्रचण्ड होके वीर्य पतन होतेमें मूर्च्छा आयी, सो थोड़ी ही देरके लिये नारी-पुरुषको परस्पर—
भावै=मानन्दी भावना दृढ़ हो करके अच्छा लगा, आनन्द भया या सुख मालूम होता है। परन्तु, सो नहीं ठहरता है, भ्रम ही तो है।
पाछे=मैथुन भोगमें वीर्य-पातके बादमें या पश्चात्में वही भोग कर्म—
नाना दुःख=मनमें ग्लानिका दुःख, शरीरमें कमजोरी होनेका दुःख, चाहनाएँ बढ़नेका दुःख आदि अनेकों दुःख-ही-दुःख चारों तरफसे नर-नारीको—
दिखलावै=दिखलाई देता है या देखनेमें दुःख ही विशेष आता है॥

व्याख्या— एक क्षणभरके लिये ही कामी स्त्री-पुरुष अधोइन्द्रिय घर्षण करके आनन्द मानते हैं। घसत-घसावतमें थोड़ी देरके लिये अच्छा मजा मानते हैं। परन्तु, वही सुख ही सब दुःखोंका बीज बन जाता है। उसीसे तो दुःखरूपी देह वृक्ष खड़ा होकर पश्चात् नाना प्रकारके-अनेकों दुःख-ही-दुःखोंका विस्तार दिखलाता है या देखनेमें दुःख ही ज्यादा आता है। चिन्ता, भय, कष्ट, क्लेश, कमजोरी आदियोंकी वह उत्पत्ति करता है॥ ४७॥

३. काम खलित दोऊकी हानी * ज्ञान रहा सो ताहि समानी॥ ४८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

काम=वीर्य और रजका भाग विशेषरूपसे—
खलित=उसको जगहसे पिघलकर पतन होके गिर जानेसे बादमें—
दोऊकी=स्त्री और पुरुष इन दोनोंकी—
हानी=बल, वीर्य, विवेक-विचार आदि क्षीण हो, तन, मन, वचनादि मलीन होके मनुष्य पदकी हानि-ही-हानि होती है।
ज्ञान=जीवका ज्ञान, गुण, बोध, सत्यादि—
रहा=जो कुछ भी पासमें इकट्ठा रहा—
सो=सो सब नाश होके, शुद्ध कर्मसे पतित हो—
ताहि= } उसी मलीन भोगमें सब समादिये।
समानी= } फिर उसी वासनासे जीव देह छूटनेपर भग द्वारा गर्भवासमें ही समा जाता है या समा गया। (गृहस्थ लोग भग भोगी भये, इसीसे तो उन्होंको संसारमें सुख चैन कहाँ है ?) ॥

व्याख्या— विशेष रगड़ होनेसे कामाग्नि प्रचण्ड होके स्त्री-पुरुषोंका काम=रज-वीर्य उसके रहनेकी जगहसे पिघलकर स्खलित हो जाता है, यानी पतन हो जाता है। तब नर-नारी दोनोंकी ही शक्ति क्षीण होकर हानि हो जाती है। क्योंकि, वैद्यक ग्रन्थोंमें लिखा है कि— चालीस रक्तोंके बूंदोंका आखिरमें वीर्यका एक बून्द बन जाता है; और स्त्री-सम्भोग समय बीससे भी अधिक वीर्यके बून्द देहसे गिर जाते हैं। अर्थात् आठ सौ बून्दोंसे भी अधिक रक्त एक ही समयमें मैथुन कर्म द्वारा देहसे निकल जाता है। अब सोचिये ! कितनी बड़ी भारी हानि हुई। बल, वीर्य, विवेक आदिका नाश, तन क्षीण, मन मलीन और काम वासनाकी परिपुष्टि हो मुक्ति होनेके मनुष्य पदकी हानि हो जाती है। जो कुछ नरजीवोंमें ज्ञान, विवेक-वैराग्य आदि पहले थोड़ा-बहुत रहा; सो सब भी भग-भोगोंमें प्रवृत्त होके काम क्रीड़ामें लग जानेसे स्वाहा होके नष्ट हो जाता है; और बुद्धि-विचार भी हेरा जाता है। आखिरमें अध्यासवश जीव योनि द्वारा गर्भवासको ही समा जाता है। इससे शान्ति-हित मुक्ति चाहनेवाले साधु-सज्जनोंको अष्ट मैथुनोंकी वासनाओंसे सर्वदा न्यारा हो रहना चाहिये।
दोहाः—"श्रवण, सुमिरण, किरतन, चितवन बात इकन्त। दृढ़ सङ्कल्प प्रयत्न पुनि, प्रापति अष्ट कहन्त ॥"
इस एक दोहामें ही अष्ट मैथुनोंके नाम कहा है ॥ ४८ ॥

४. जात पाँत हुरमतके गाहक ❀ तिनकी डर पैठी उर नाहक ॥ ४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !
जात=ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार वर्णमें छत्तिस (३६) जातोंका भेद अलग-अलग माने हैं।
पाँत=कहीं कोई काम बिगड़के बिरादरीके लोग पंक्तीसे-जातिसे बाहर न कर देवें, यह डर लगा है। और—
हुरमतके=इज्जत या आबरू बिगड़ने न पावे; उसके लिये चिन्तित रहते हैं।
गाहक=संसारमें सब तो स्वार्थी ही हैं— कोई जात-पाँतको बिगाड़ना चाहते हैं, कोई बनाना चाहते हैं, धन सम्पत्ति लेनेके सब कोई ग्राहक या हिस्सेदार बने हैं।
तिनकी=भाई, कुटुम्बी, कबीले, नाते, गोते-दारोंकी मानन्दी और वे रूठ न जायें इसकी दहसत, घबराहट, भय, मनकी—
डर=कमजोरीसे थरथराहट हो, डर जाना—
नाहक=हकनाहक वाहियातमें जिससे जीवका कुछ भी कल्याण होनेका नहीं, ऐसी बात उन भोगी लोगोंके—
उर=अन्तःकरण या मन-बुद्धिमें—
पैठी=घुसी पड़ी है दृढ़ हो गई या वही प्रपञ्च-की बात दृढ़ हो रही है ॥

व्याख्या— विचार करके देखिये, एक भग-भोगोंके ही कारणसे गृहस्थोंको कितनी झंझट, उपाधि सहनी पड़ती है। जातिका विचार, पक्षपात, पंक्तीका भेदभाव, इज्जत-आबरू बिगड़नेका डर, लोभ, काम, क्रोध, मोह, मदादिके विशेष ग्राहकी और बन्धु-बान्धव, जाति-विरादरी लोगोंके दबाव, कहीं कुटुम्बके लोग नाराज न हो जायँ, ऐसे हकनाहकके डर दृढ़ होके मनमें घुसे हैं। जिससे जीवका तो उस तरफसे कोई कल्याण होनेवाला नहीं है। वही सब बन्धन ही विशेष फैलता जाता है। अतएव प्रथमसे ही ब्रह्मचर्य पालन करना मनुष्योंके लिये अति उत्तम बात है। जिससे सत्सङ्ग

द्वारा शीघ्र पारख बोध प्राप्त हो, मुक्ति पदको वही पा सकेंगे। अन्यथा विषय भोगते हुए कदापि मुक्ति प्राप्त हो नहीं सकती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४९ ॥

५. बड़ी देख भाई सो डाहै * ओछी परी तो नाहिं निबाहै ॥ ५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बड़ी देख = बड़े भाईकी ज्यादा बड़ी धन-सम्पत्ति देखके, भौजाईको सुन्दर देखके, बढ़ती जवानी देख करके—

सो = सो उसके अपने खास—

भाई = सगे भाई या छोटे भाई ही—

डाहै = डाह, ईर्षा-द्वेषादि करने लग जाता है। अच्छी बड़ी चीजको वह हथियाना चाहता है।

ओछी परी = यदि कभी धनकी कमी हुई, गरीबी आई और पुरुष नपुंसक निकला तथा स्त्री बाँझ या छोटी पड़ी—

तो = तब तो उन लोगोंके परस्परमें कभी—

नाहिं = निबाहै = निर्वाह, मेल, गुजारा हो नहीं सकता है। एक-दूसरेको छोड़कर व्यभिचारी आदि हो जाते हैं ॥

व्याख्या— संसारियोंके हाल सुनिये ! घरमें बड़ा भाई रूपवान् हुआ, छोटा भाई कुरूप हुआ, तो भी डाह होती है। यदि बड़ा भाई धन कमाने वाला, छोटा भाई धन न कमाने वाला हुआ, तो भी डाह होती है। तथा बड़े भाईकी स्त्री रूपवती हुई और छोटेकी वैसी नहीं हुई, तो भी डाह होती है; और समय पायके वही भाई व्यभिचारमें भी लग जाता है। यदि बहिन बड़ी हुई, शादी नहीं हुई है, तो कहीं कभी-कभी भाई-बहिनमें भी व्यभिचार कुकर्म हो जाता है। अगर भाई-भाईमें बटवारा हुआ, फिर कोई बड़ी सम्पतिवाला भया, तो दूसरेको बड़ा डाह, ईर्षा-द्वेष, जलन पैदा हो जाती है। फिर गरीब भाईके साथमें धनिकका निर्वाह भी नहीं होता है; और किसी स्त्रीका पुरुष नपुंसक निकला, तो स्त्रीका उसके साथमें निर्वाह तृप्ति नहीं होती है, तो वह व्यभिचारसे परपुरुष सङ्ग कर बैठती है। तैसे ही स्त्री बाँझ हुई, तो पुरुष दूसरी स्त्री कर लेता है। ऐसे विषय भोगियोंका सदा निर्वाह एक-दूसरेसे नहीं होता है; राग-द्वेष, कलह, कल्पना, फूट, ईर्षा, मद इत्यादि उनमें विकार लगा ही रहता है ॥ ५० ॥

६. पुत्र न होय तो अति बड़ शोगी * कुहकत जहाँ तहाँ जस रोगी ॥ ५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हेसन्तो !

पुत्र न होय = विवाह किया हुआ कई वर्ष व्यतीत होनेके बाद भी यदि स्त्रीको पुत्र पैदा नहीं हुआ—

तो = तब तो स्त्री-पुरुष दोनों ही—

अति = अत्यन्त दुःखी, व्याकुल होके—

बड़ शोगी = बड़ी ही चिन्ता, शोक करनेवाले होते हैं। सर्वदा शोकमें डूबे ही रहते हैं।

जस रोगी = जैसे रोग पीड़ित रोगी मनुष्य व्याकुल, अधीर होके रोता कलपता है। तैसे ही अपुत्र नर-नारी भी हमेशा मनोरथ बाँधकर सो पूरा न होनेसे—

कुहकत = रोते, कलपते, विलाप करते, विरहमें ही पड़े रहते हैं। और—

जहाँ = तहाँ = जिसने जहाँ-जहाँ जो-जो उपाय पुत्र प्राप्तिके लिये बताया, तहाँ-तहाँपर भी जायके सब कर्म-कुकर्म करने लगे और सब कुछ करते हैं ॥

व्याख्या— विवाह किया हुआ कई वर्ष हो जाय, जब स्त्रीको पुत्र उत्पन्न न होवे या किसीको पुत्री-ही-पुत्री पैदा होवे, तब अत्यन्त बड़े शोगी हो जाते हैं। अब कैसे वंश-परम्परा चलेगी ? बिना पुत्रके नरकमें जाना पड़ेगा, पिण्ड-पानी देनेवाला पुत्रके बिना नरकसे कैसे छूटेंगे ? ऐसी-ऐसी कल्पना करके बड़े दुःखी, शोगी होते हैं। जैसे रोगी रोगके मारे कुहराम-कोलाहल मचाते हैं; जिसने जो दवा बतायी सोई बिना विचारे करते हैं, तैसे ही अपुत्रवाले भी कुहकते, रोते, विलाप करते हैं; जहाँ-तहाँ दौड़े जाते हैं। देवी, देवता, भैरव, भवानी, महावीर, गणेश इत्यादिको मानते मनौती करते हैं; और औलिया, पीर-पैगम्बरोंको भी मानते-मनाते हैं। जिसने जैसे उपाय

बताया, तैसे ही नाना कर्मका अनुष्ठान करते हैं। कोई पुत्र प्राप्तिके लिये जीव हिंसा, बलिदान भी करते-करवाते हैं। ऐसे महामूढ़ मतिहीन हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

७. जो होय पुत्र अधिक सो मोहू * छिन एक चैन न आवै वोहू ॥ ५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जो = जो कभी कर्म-संयोगसे उन्होंको—
होय पुत्र = यदि पुत्र पैदा हो गया, तब तो—
सो = सो उस पुत्रके ऊपर माता-पिताका—
अधिक = ज्यादा-ही-ज्यादा अधिक प्रेम दृढ़ हो जाता है।
मोहू = उसीके मोहमें सदा आसक्त गाफिल पड़े रहते हैं।
छिन एक = फिर तब तो एक क्षण मात्रके लिये भी—
चैन = शान्ति-सन्तोष धर्मके विचारमें कभी भी चैन वा आराम—
वोहू = उन आसक्त नर-नारियोंको—
न आवै = ध्यान ही नहीं आता है। सत्सङ्गमें तो वे कभी आते भी नहीं हैं। ऐसे विशेष मोहमें ग्रसित हो जाते हैं ॥

व्याख्या— यदि कर्माध्यास संयोगसे किसीको जल्दी या देरीसे भी जो पुत्र उत्पन्न हो गया, तब तो माता-पिताओंको उस पुत्रके ऊपरमें अत्यन्त ही मोह दृढ़ हो जाता है। कभी एक क्षण भी उन लोगोंको मनमें चैन, स्थिरता तो आती ही नहीं है। धर्म-चर्चा, सत्सङ्ग-विचार करनेकी तो कभी उन्हें फुर्सत ही नहीं मिलती है। उसी पुत्रके लाड़-प्यारमें चाट-चूममें दिन-रात बिता देते हैं। ऐसे विषयोंमें भूले पड़े रहते हैं ॥ ५२ ॥

८. छतिस पवनियाँ रहें लौलाई * अपनी अपनी चाह सुनाई ॥ ५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारी लोगोंके यहाँ पुत्र उत्पन्न होनेपर सब लोग बड़ी खुशी मनाते हैं। उस खुशीमें भाग लेनेवाले बहुत जनें होते हैं। उनमेंसे—
छतिस = चार वर्णोंकी मानी हुई छत्तिस जातियोंके लोग—
पवनियाँ = पाहुने वाले, नाते, गोते, बिरादरी या कुटुम्बियोंके लोग और माँगनेवाले नाई, धोबी, चमार, बढ़ई, लोहार, सोनार, वैद्य, पुरोहित इत्यादि जान-पहिचानके लोग जुटके—
लौलाई = प्रेम-प्रीति आशा लगायके—
रहें = उनके घरमें इकट्ठे हो रहते हैं, तथा कुछ इनाम पानेकी आशा ही लगाये रहते हैं।
[पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसके पिताके मिलनेपर सब जनें]—
अपनी = } भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी इच्छाके
अपनी = } अनुसार—
चाह = चाहना आवश्यकता गर्जकी—
सुनाई = बात उसकी बड़ाई करके सुनाते हैं; धन-सम्पत्ति, कपड़े, जमीन आदि इनाम माँगते हैं। कोई तो मिठाई खानेकी ही बात सुनाते हैं ॥

व्याख्या— जिसके घर पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके यहाँपर नाते, गोते, मँगन्ते, गवैये, भाट, चारण, नाई, धोबी आदि मानी हुई छत्तिस (३६) जातिके लोग, शहदमें मक्खीके सरीखा झूम-झूम-कर आके इकट्ठे होते हैं। अपने-अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये वे लौ लगा रहे हैं। जिसको जो चीज लेनेकी चाहना है, सो उसे सुनाते हैं। पुत्रको चिरायु होनेका आशीर्वाद देते हैं। धन, धान्य, जमीन, जागीर, कपड़े आदि मन चाही वस्तु उस वक्त लेना चाहते हैं। सोई बड़ाई दे-दे कर माँगते हैं ॥ ५३ ॥

९. उत्सव बड़ा बधावा बाजा * सम्पति बड़ी निछावर छाजा ॥ ५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
उत्सव बड़ा = उस समयमें गृहस्थ लोग बड़ा हर्ष उत्सव मनाके मङ्गल गान, खेल, बड़ाई आदि करते हैं। और—
बधावा = आ-आके खुशीकी बधाई देते हैं, खिलअत लुटाते हैं। तथा—
बाजा = नाना तरहके बाजे बजवाते हैं, बाजा सुन-सुन कर मगन होते हैं।

सम्पति=धन-सम्पत्ति, रुपये-पैसे, सोना-चाँदी आदि—
बड़ी=दिल खोलकर बड़ी ही उदारतासे बड़े-बड़े रकमोंको पुत्रके नामसे—
निछावर=दान-सम्मान, चढ़ौती, अर्पण आदि निछावर करते हैं, चढ़ा देते हैं।
छाजा=इसप्रकार, अपनी शक्तिके अनुसार पुत्र उत्पत्तिकी शोभाको बढ़ाते हैं; और अच्छे-अच्छे कपड़े पहिनते-पहिनाते हैं। शोभायमान् होते हैं॥

व्याख्या— पुत्र उत्पत्तिके अवसरपर गृहस्थलोग बड़ा उत्सव करते हैं। घरमें जगह-जगह तोरण झंडियाँ लगाते हैं, मिठाई बाँटते हैं, नाच-गाना कराते हैं; तथा बड़ा भारी हर्ष मनाते हैं, बधाई देते हैं; बन्दूक, तोप आदि छोड़ाते हैं। सहनाई, मृदङ्ग, चौघड़ा, मजीरा, पखावज, ढोलक आदि अनेकों प्रकारके नाना बाजे बजवाते हैं। बड़ी-बड़ी सम्पत्तिका दान करते हैं। मन्दिरादिमें धन-सम्पत्ति निछावर करते, चढ़ाते हैं। अथवा लड़केको छुवायके उसके नामसे रुपया, पैसा, अनाज आदि बँटा देते हैं। इसप्रकारसे पुत्र उत्पत्तिकी शोभाको शक्ति मुताबिक खूब उत्सव मनाते हर्ष बढ़ाते हैं॥ ५४॥

१०. मरिगया पुत्र भया हाहाकारा * चली अपरबल मोहकी धारा॥ ५५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुत्र=अपना माना हुआ प्रिय पुत्र यदि कदाचित् आयु न रहनेसे—
मरिगया=बालकपनमें या युवा अवस्थामें ही जो वह मर गया, यानी मृत्युको प्राप्त हो गया—
हाहाकारा=तब तो क्या पूछते हो? हा-हाकार हो कर रोना, सिर पीटना, व्याकुल होना, कुहराम मचाना, ऐसी-ऐसी दुर्दशा हाय! हाय!—
भया=घर-परिवारमें भया या ऐसे होने लगा, फिर तो पिता-मातादि बेहाल दुःखी हो जाते हैं
अपरबल=जबर्दस्त बलवान् मनकी आसक्ति उसमें टिकी होनेसे—
चली=मन-मानन्दीकी वेग तरङ्ग खूब जोरोंसे बहिके चलने लगी, क्षणभरमें जहाँ-तहाँ खबर फैल गई, तब—
मोहकी धारा=मोहकी धारामें बहते हुए जो बिरादरीके लोग देखनेको आये, सो सब भी रोने-चिल्लाने ही लगे, तब तो सबोंके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बह चली वा बहने लगी॥

व्याख्या— बहुत लाड़ प्यारसे अपना मानके पाला हुआ पुत्र यदि कथंकदाचित् छोटेपनमें या कुछ बड़ा होके १०। २० वर्षका होके मर गया, तब तो घरमें बड़ी हाहाकारसे रोना, पीटना, कलपना, विलाप करना होने लगता है, जबर्दस्त मोहकी धारा बहके चली जाती है। आँसूकी धारा बहाय ढाढ़ें मारकर चिल्ला-चिल्लाकर रोने लग जाते हैं। ज्यादा मोह जिनमें है, वे ज्यादा ही रोने लगते हैं। जो कोई बिरादरीके लोग देखनेको आते हैं, सो भी वैसे ही रोने लग जाते हैं, इसीको मोहकी प्रबल धारा कहते हैं॥ ५५॥

११. हित परिवार बुझावन आवै * गुण सो देखि दुहुँ विधि कुहुकावै॥ ५६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
हित=हितैषी कहलानेवाले—
परिवार=इष्ट-मित्र, कुल-कुटुम्बीके लोग—
बुझावन=जिसके घरमें मृत्यु हुई, उसको समझाने, धैर्य दिलानेके वास्ते—
आवै=कई जनें आये और आने-जाने लगे, जो कोई परिवारके लोग आये—
सो=सो वे लोग सब जनें भी—
गुण=मरनेवाले लड़केका गुण-स्वभाव आदिका वर्णन करके उसके गुण—
देखि=दिखा-दिखा करके या याद कर-कराके नाना तरहसे कहके-सुनाके—
दुहुँ विधि=दोनों प्रकारसे धैर्यके बदले अधैर्य बढ़ायके शोकको उत्तेजित करके—
कुहुकावै=अपने भी रोने लगे और दूसरोंको भी रुलाने लगे, तथा इस तरहसे जिसका पुत्र मरा है, उसको दोनों तरहसे सन्ताप देने लगे॥

व्याख्या— उनके हित चाहनेवाले परिवारके भाई-बन्धु, दादा, मामा, काका, चाचा आदि कई लोग उसको वहाँपर समझानेके लिये, ढाढ़स बन्धानेके लिये आये; तो कुछ कहते-सुनतेमें सो मरनेवालेको देख-दिखाके उसके गुण, बयान करके दिखा-दिखाके अपने ही रोने लगे, तो दूसरेको क्या समझाते? और दोनों भाँतिसे व्याकुल कराके रोने-रुलाने लगे और चिन्ता-शोकमें डाल देने लगे; ऐसे ही संसारियोंके हाल हैं ॥ ५६ ॥

१२. अशौच्य कर्म लगावै ताँहीं * हित बन्धू ऐसे जग माँहीं ॥ ५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

अशौच्य = मृत्यु होनेका, घरमें मुर्दा रहनेका, सूतक, अपवित्रता, छूत आदि बताकर—

कर्म = मुर्दाको जल्दीसे उठाके श्मशानमें ले जाकर दाह-कर्म मृत्यु-संस्कार आदि नाना कर्म करनेको—

ताँहीं = उसी मरनेवालेके पिता या पुत्र आदि जो कोई हैं, उन्होंको—

लगावै = और भी नाना तरहके प्रपञ्चोंमें लगाते हैं, उसे फँसाकर श्राद्धादि करनेको लगाते हैं।

हित बन्धू = हित कहलानेवाले भाई-बन्धु परिवारके लोग—

जग = संसार या दुनियाँके बीचमें वा जगत्में—

ऐसे = ऐसे पूरे पक्के स्वार्थी बने हैं कि—

माँहीं = माया-मोहके बीचमें प्रेम इसलिये दिखाते हैं कि, अपने विषय भोगोंके स्वार्थ पूरा हो। नहीं तो कोई किसीको पूछते भी नहीं, सब कोई अपने सुख-स्वार्थके लिये ही रोते हैं ॥

व्याख्या— जिसके लड़का या पिता-मातादि कोई घरमें मरे हैं, उनके घरके परिवारोंको सम्बन्धीलोग कहते हैं कि- देखो! यह तो मरकर प्रेत हो गया है, अब इस मुर्दाको जल्दीसे लेजाकर जला देना इत्यादि मृतकके शुद्ध संस्कारादि कर्म करा देना चाहिये; रोनेसे काम नहीं चलेगा। जल्दीसे रुपया निकालकर लाओ, बाजारसे सामान मँगाओ, तब काम चलेगा; नहीं तो हमारे काममें हर्जा होता है; जल्दी करो, हमें परेशान मतकरो, इत्यादि कहिके उसको अशौच कर्म बताकर पाखण्ड-में लगाते हैं। जहाँ तक मिले, सम्पत्ति ऐंठ लेते हैं। जगत्में ऐसे स्वार्थी वञ्चक हित-बन्धु कहलाकर धूर्ततायीसे स्वार्थ सिद्ध करते हैं; इसलिये उन सबोंको काल ही जान लीजिये! ॥ ५७ ॥

१३. जो जीवै नाना जञ्जाला * जग धन्धामें सदा बेहाला ॥ ५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो जीवै = जो कि, किसी जीवका कर्म भोग भोगना बाकी रहनेसे यदि किसीका पुत्र जीता रहा, तब तो वे बड़े खुश रहते हैं। और गुजाराके लिये—

नाना जञ्जाला = अनेकों जगत् प्रपञ्चोंके नाना तरहसे जञ्जाल, उपाधियोंमें लगे रहते हैं। तथा—

जग = जगत्में दुनियाँदारियोंके—

धन्धामें = विषय भोगोंके नाना कर्मोंमें नौकरी, चाकरी, खेती, व्यापारी, मजदूरी आदि करके पैसा कमानेमें—

सदा = हरहमेशा या सदा-सर्वदा ही—

बेहाला = विशेष दुःखी, परेशान या बेहाल रहा करते हैं ॥

व्याख्या— यदि प्रारब्ध वेग होनेसे किसीका लड़का रोगसे जी गया या जीता ही रहा, तब तो स्त्री-पुरुष उन लड़के-बच्चोंको पालन-पोषण करनेके लिये नाना जञ्जाल प्रपञ्च बढ़ाय लेते हैं। तहाँ जगत्के अनेकों धन्धोंमें विषय भोगोंके नाना कर्मोंमें सदा-सर्वदा वे बेहाल परम दुःखी ही बने रहते हैं ॥ ५८ ॥

१४. धन्धा सोच सदा रहै घेरा * निशि दिन चैन नहीं संसारा ॥ ५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

धन्धा = व्यापार, खेती, नौकरी, ठेकेदारी, मजदूरी इत्यादि जो जिस धन्धामें लगे हैं, सो उसमें उन्नति करके फायदा उठानेका ही—

सोच = दिन-रात सोच-विचार किया करते हैं कि, कैसे मुझे लाभ हो? कैसे बहुत धन पा सकूँ?

ऐसा चिन्तन करते रहते हैं।
सदा=सदा-सर्वदा वही सोच-फिकरमें ही—
रहै घेरा=घिरा हुआ चिन्ता ग्रसित बने रहते हैं।
निशि-दिन=सो रात-दिन मूर्ख और पण्डित बने हुए लोग सबको ही तथा—
संसारा=संशय और भोगासक्तिमें पड़े हुए समस्त संसारियोंको जगत्में—
चैन=सुख-सन्तोष शान्ति स्थितिका आराम तो क्षणभर भी—
नहीं=मिलता नहीं या चैन पा नहीं सकते हैं॥

व्याख्या— धन्धा बढ़ानेका, फायदा उठानेकी, किसप्रकार मैं बहुत धन इकट्ठा करूँ? ऐसा सोच, फिक्र, चिन्ता सर्वदा उन्होंको घेरे रहती है। दिन-रात संसारियोंको कभी तो संसारमें चैन-शान्ति नहीं आती है। ज्ञानी-अज्ञानी सब काम-क्रोधादि विकारमें बेचैन ही पड़े हुए हैं॥ ५६॥

१५. कनक सञ्चवन बहुविधि करहीं ❀ मोरी हुरमत कैसे निवही॥ ६०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
कनक=मुख्य सुवर्ण और उसके भीतर चाँदी, रुपया, पैसा और जवाहिरातादि धन-सम्पत्ति
बहुविधि=बहुत प्रकारसे झूठ-साँच, अन्याय, छल, कपट, चोरी आदि कर्म-कुकर्म करके भी-
सञ्चवन=जोड़-जोड़कर इकट्ठा (संग्रह)—
करहीं=करते हैं; इस तरह धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करके धनिक होते हैं।
मोरी=यह चिन्ता फिक्र करते हैं कि, संसारमें मेरे कुल-कुटुम्बकी बड़ाई कैसे हो? नाम कैसे बढ़े? और—
हुरमत=हमारी इज्जत या आबरू मान-मर्यादा-का टेक दुनियाँमें—
कैसे निवही=कैसे या किस प्रकारसे ठीक बनेगा या कैसे बना रहेगा? यही सोचकर धन इकट्ठा करते हैं॥

व्याख्या— बहुत प्रकारसे सुवर्ण, जवाहिरात, रुपये आदि जोड़-जोड़कर छल-कपटसे द्रव्य इकट्ठा या संग्रह करते हैं; और हमारे नाम कैसे चलेगा? इज्जतका निर्वाह कैसे होगा? किस प्रकार-से आबरू बनी रहेगी? यही सोचकर गरीबीमें हलुकाई होनेके डरसे पाप कर्मसे धोखा देकर भी धन बटोरते रहते हैं॥ ६०॥

१६. जेहि जञ्जाल फँसे पितु माता ❀ पुत्र फँसावैं कहैं कुशलाता॥ ६१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जेहि जञ्जाल=अब जिस प्रकारके जञ्जाल या उपाधि, प्रपञ्च दुनियाँदारीकी खेती-बाड़ी, नौकरी, व्यापारी आदिमें—
पितु माता=पिता (बाप), माता और कुटुम्बी आदिके लोग पहलेसे ही—
फँसे=फँसे पड़े हैं या उधर लगे हुए बन्धनोंमें स्वयं पड़े हैं; वैसे ही प्रकारसे—
पुत्र=लड़कोंको भी उसी जञ्जालोंमें—
फँसावैं=लेजाके फँसाते, जकड़ाते, बाँध देते हैं। यदि उनके मनके अनुसार ही पुत्र भी फँस गया, तब तो बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। और—
कहैं=सबसे कहते फिरते हैं कि—
कुशलाता='भाई! बड़ा कुशल हित हो गया है' हमारे लड़के बच्चोंने काम धन्धा सम्हाल लिये हैं, घरमें बहू आ गई और नाती-पोते हो गये। यह सब हमारे लिये अच्छा कुशल हुआ॥

व्याख्या— जिस जगत् जञ्जालरूपी महा बन्धनोंमें माता-पितादि स्वयं पहिलेसे फँसे पड़े हैं, उसीमें ही अपने-अपने पुत्रोंको भी अनेक तरहसे लालच दे-देकर फँसाय देते हैं। यदि कोई-कोई नहीं फँसा, उनके कहे अनुसार नहीं चला, तो उससे नाराज होकर उसे घरसे भी निकाल देते हैं। अगर कोई उनकी इच्छाके मुताबिक ही चला, घर-गृहस्थीका काम-धन्धा ठीक-ठीक करने लगा, तब तो उनके माता-पितादि खुश होकर उसकी खूब तारीफ करते हैं। बड़ा कुशल हुआ कहते हैं। विषय भोगोंको ही वे मूढ़ोंने कुशल माने हैं। यदि-धन सम्पत्ति बढ़ी, शादी हुई, स्त्री घरमें आई, पुत्र पैदा हुआ पुत्रने बड़ा होकर काम सम्हाला, बहू आई और नाती-पोते हुए इत्यादि जाल-फाँसोंको ही संसारी लोगोंने कुशल माने हैं। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें कहा है कि:—

"कुशल कहत-कहत जग विनशे। कुशल कालकी फाँसी हो!॥" (बीजक, कहरा) ॥ ८ ॥

यहाँ प्रपञ्चियोंने जिसको कुशल माने हैं, सो तो असली कुशल नहीं है। किन्तु, वह तो कालकी फाँसी है, ऐसा जानिये! ॥ ६१ ॥

१७. धूर्त सपूत महा जञ्जाली * साँचा सुधा भक्ति कुलघाली ॥ ६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

धूर्त=संसारी पामर-विषयीलोग स्वयं तो धूर्त बने ही हैं, तैसे ही उन्होंके पुत्र भी यदि धूर्त बनके दूसरोंके धन हरण करनेमें प्रवीण चालाक निकले, तब तो धर्मकी दृष्टिसे वैसे कपूत धूर्तको भी वे लोग—

सपूत=सत्पुत्र, सुपात्र, मेहनती, कुलको थामनेवाला इत्यादि प्रसंशा करके सपूत बताते हैं।

महा जञ्जाली=ऐसे महान प्रपञ्चीलोग पुत्रोंको भी महा जञ्जाली, ठग, अपने समान बनाना चाहते हैं। जो पुत्र महा प्रपञ्ची होते हैं, उन्हींको सपूत मानकर उनसे प्रेम करते हैं।

साँचा सुधा=और जो कोई पुत्र सत्य, विचार आदि और सत्सङ्गको अमृतके समान जानकर सत्यको ही ग्रहण करनेवाला हो, नरम स्वभावका हो, सच्चा सीधासादा हो; तथा-

भक्ति=साधु-गुरुके चैतन्य भक्तिमें निष्ठा रखनेवाला, भक्ति करनेवाला प्रेमी भक्त होवे, तब तो उससे बहुत नाराज हो जाते हैं। लड़ते-झगड़ते हैं; और—

कुलघाली=कुलको नाश करनेवाला कुलाङ्गार कुलघातक, कुलडुबानेवाला दुष्ट कहते हैं। किन्तु, वे अपने ही कुलघातक बने हैं॥

व्याख्या— धूर्त माता-पिताओंने सपूत पुत्रोंको भी बिगाड़ करके धूर्त बना दिये हैं या धूर्त ही बनाना चाहते हैं। ऐसे महा जञ्जाली भये हैं। और अमृतके समान सच्चा चेतन बोध गुरुभक्तिको छोड़कर जड़भक्ति करके कुलको बिगाड़नेवाले कुलघालक हुए हैं। अथवा कोई पुत्र धूर्तोंकी सङ्गति करके धूर्त बन जाय, महा जञ्जाली, छली, कपटी, ठग, प्रपञ्ची हो जाय, परन्तु, रुपया-पैसा कुछ लाके उन्हें देता रहे, तब उसके माता-पिता उसको सपूत ही कहते हैं और अच्छा मानते हैं। और यदि कोई शुभ संस्कारी पुत्र सत्य बोलनेवाला, सज्जन सत्सङ्ग करनेवाला, अमृतके समान सुखदायी चैतन्य गुरुभक्ति करनेवाला, कपट करके धन न कमानेवाला सन्तोषी भया; ऐसा सद्गुणी निकला, तब तो उसको वे मूर्ख स्वार्थीलोग कुलघालक, कुलकलङ्क कहकर तुच्छ करते हैं॥ ६२ ॥

१८. निज हित हेतु भक्ति जो करहीं * कलह कल्पना देखि सो डरहीं ॥ ६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं - हे सन्तो!

जो=जो कोई समझदार सत्पुत्र सज्जनलोग—

निज=अपने स्वयं चैतन्य जीवकी—

हित=कल्याण प्राप्ति, बन्धनोंसे छुटकारा, मुक्ति प्राप्तिके ऐसे बड़ा हितके लिये—

हेतु=जीवन सुधारके हेतु या इसीकारणसे साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके—

भक्ति=विषय प्रपञ्चोंसे भाग जाते हैं तथा चैतन्य गुरुभक्ति, विवेक-विचार, वैराग्यादि-

करहीं=जो करते हैं या करने लग जाते हैं, तब तो वे विरोधकर बैठते हैं।

कलह=झगड़ा-फसाद, वाद-विवाद, गाली-गलौजादि कलह करते हैं। भला-बुरा सुनाते हैं, और—

सो डरहीं=सो उस लड़केको डाँटते-फटकारते डराते-धमकाते हैं। तब भी यदि वह नहीं माने तो वे अपने ही डर जाते हैं, कि कुलमें न मालूम कोई नयी आपत्ति न आ जाय? और—

कल्पना=
देखि=
} कल्पनासे ईश्वरादि कर्त्ता, देवी, देवता, कुलाचार, लोकाचार आदि अपने पूर्वजोंकी रीति-रिवाजोंको दिखाते हैं। जिससे कल्पनादिको देख करके धमकीसे डरकर लड़का उनके कहे मुताबिक करने लग जाय, यही उलटी आशा रखते हैं॥

व्याख्या— जो कोई पुत्र अपने नर जीवनका सुधार, कल्याण, मुक्तिपद प्राप्ति करनेके लिये

दुनियाँके झूठे झगड़ोंको छोड़कर गुरुभक्ति, साधु सङ्ग, बोध-विचार आदि सत्कर्मों को करता है या सत्सङ्ग करने लग जाता है; तब तो उससे लड़ाई, झगड़ा, तोफान करके कलह बढ़ा लेते हैं। और कुलाचारके विरोध होनेसे कहीं देवी-देवता हमसे रुष्ट न हो जायँ? तथा यह तो ईश्वरको मानता भी नहीं, कहीं हम सबोंके ऊपर भी ईश्वरीय प्रकोप न हो जाय? ऐसी मिथ्या कल्पना करके सो विरोधी पुत्रको देख-देखके वे डर जाते हैं। अथवा सो उसी लड़केको ही वेद-शास्त्रादि वाणीके प्रमाण दिखाकर कैसा भी हो पिता-माताका वचन मानना चाहिये, कहकर देशाचार-कुलाचार आदि दिखाकर समझाते हैं, डराते हैं, धमकाते हैं; और हमारे कहे हिसाबसे नहीं चलेगा, तो तेरा हित नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। तब भी वह नहीं माने, तो कोई उसे घरसे ही निकाल देते हैं ॥६३॥

१९. जीवत मरत दोऊ विधि लूटै * बिना विचार न यमसे छूटै ॥ ६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जीवत=संसारमें लड़के-बच्चे अज्ञानीलोगोंको नाना फन्दोंमें अरुझायके, जीते हैं तबतक और जन्मसे लेकरके—

मरत=मृत्यु होनेतक, यानी जन्मसे मरणतक जड़ अध्यासोंमें फँसायके—

दोऊ=नर-नारियोंको गुरुवा और स्त्रीलोग दोनों तरहसे खानी-वाणीमें फँसाय-फँसायके

विधि=विधि पूर्वक अच्छी तरहसे—

लूटै=बल, वीर्य, धन-सम्पत्ति, ज्ञान, बुद्धि-विचार, मनुष्यके गुण-लक्षणादि लूट लिये और लूट मचा रहे हैं।

विचार=हिताहितका ज्ञान, गुरु विचार, परीक्षा-दृष्टि खुले—

विना=विना या गुरुबोध पाये विना—

यमसे=कालरूप बने हुए स्वार्थी-कुटुम्बी नारी आदि तथा ठग गुरुवालोग इन यमोंके फन्दोंसे—

छूटै=कोई छूटे ही नहीं या कोई उससे छूट सकते ही—

न=नहीं; बच सकते नहीं। (इससे हे जिज्ञासु मनुष्यो! सत्सङ्ग करके इस बारेमें खूब अच्छी तरहसे विचार कर लो।) ॥

व्याख्या— देखिये! यह यम गुरुवालोग जीवोंके जन्मते, मरतेमें दोनों तरहसे लूटते हैं। सो कैसे? कि— जब किसीके यहाँ बालक पैदा हुआ, तो पुरोहितजी आये। पहले तो लग्न-मुहूर्त देखनेको भेंट लिये, फिर जातकर्ममें दक्षिणा लिये, नामकरणमें भी जो कुछ मिल सका सो लूटे। ऐसे ही अन्नप्रासनमें, व्रतबन्धमें, विवाहमें, जन्मोत्सवमें, त्यौहारोंमें, पर्वोंमें, ग्रहण-अमावस, पूर्णिमा आदि नाना तरहका जाल लगायके जन्मसे मरणतक धन-सम्पत्ति लूटते गये। फिर मरनेपर भी और लूट मचाने लगे। दश दानमें, प्रेत कर्ममें, श्मशानमें, शैय्यादान आदिमें, श्राद्ध कर्ममें अनेक तरहसे धोखेमें लगाकर लूटे और लूटते ही जाते हैं। तैसे ही माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-परिवारके लोग भी विषयोंमें फँसाय-फँसायके स्वार्थमें लग-लगाकर बल, बुद्धि, वीर्य, विचारादिको खूब लूटे और लूट मचा रहे हैं। अतः गुरु पारखका यथार्थ विचार-बोध उदय हुए बिना इन लुटेरोंके फन्दोंसे नरजीव छूट नहीं सकते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें कहा है कि:—

"आवत जात दोऊ विधि लूटे। सर्व तङ्ग हरि लिन्हा हो!॥" बीजक, कहरा ८; इत्यादि ॥ ६४ ॥

२०. निर्णय करि देखो सो फन्दा * परवश कुँवा परा है अन्धा ॥ ६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

निर्णय करि=पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ सत्य निर्णय करके छान-बीन करके-

देखो=विवेक दृष्टिसे निष्पक्ष होकर देखिये! तब ही—

सो फन्दा=सो गुरुवालोगोंकी तथा नारियोंकी मोटी-झीनी दोनों फन्दा जाल तुम्हें दिखेगा, सो जबर्दस्त फन्दा है, सावधान रहना!

अन्धा=पारखदृष्टिहीन अविवेकी अज्ञानी नर-जीव सब अन्धे बने हैं; इसीसे—

परवश=पराये विजातीय भोगासक्तिवश मनके

वश और स्त्री तथा गुरुवाओंके वशीभूत होकर जकड़ गये, निकम्मा, नादान हो गये। इसलिये मनुष्यपदसे गिरके—

कुँवा=भ्रमकूप, भगकूपमें गिरकर अन्तमें चौरासी योनियोंके गर्भरूपी अँधेरे कूएँमें जा-जा करके गिरे—

परा है=पड़े हुए हैं; तैसे उसी कूएँमें फिर भी पड़ रहे हैं। ऐसे नरजीव कर्म बिगाड़के आँखें फोड़के चौरासी योनियोंके गर्भ कूएँमें पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख॥

व्याख्या— इस कारणसे श्रीसद्गुरु कहते हैं कि, हे मुमुक्षु जनो! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें इसका सत्य निर्णय करो, परीक्षादृष्टिसे देखो! उस फन्दाको पहिचानो, वाणी-खानीका जाल माया-मोह जो है, सो यही सब जीवोंको फँसानेका फन्दा या जाल फाँस है। अबोध नरजीव वासना, लालच, चाहनावश स्त्री और गुरुवाओंके वशीभूत गुलाम हुए हैं। जबर्दस्त मनकी मानन्दी आसक्तिवश हुए हैं। अतएव पारखदृष्टि परीक्षाहीन, अन्धे नरजीव सब मोह-मायाके अन्धेरे कूएँमें पड़े हुए हैं। सो फिर-फिरकर चारखानीके गर्भवास कूएँमें जा पड़ेंगे। और कई अभी पड़े हैं, तथा पड़ रहे हैं। गुरु पारखके बोध हुए बिना इस कैदखानासे कोई छूट नहीं सकते हैं॥ ६५॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकारने बीजककी साखीका प्रमाण दिया है—

॥ ❀ ॥ मूल बीजककी, साखी नम्बर— १४८ ॥ ❀ ॥

साखीः— कनक कामिनी देखिके * तू मति भूल सुरङ्ग॥
[७] मिलन बिछुरन दुहेलरा * जस केंचुली तजत भुजङ्ग॥ ६६॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो!

सुरङ्ग=ज्ञान रङ्गवाले शुद्ध ज्ञानस्वरूप हे नरजीव! तू अपने पदपर ठहर, और—

कनक=सुवर्ण, रत्न, धन-सम्पत्ति आदि तथा सुवर्णवत् माना हुआ कल्पित ब्रह्म सिद्धान्त आदि, और—

कामिनी=कामके खदानरूप स्त्रियाँ तथा वेदादि कल्पना की हुई वाणियाँ—

देखिके=इन दोनोंको देख करके, हित-सुख मान करके, उसके ऊपरकी चिकनी सुन्दरताई देखकर उस कुरङ्गमें—

तू=हे नर! तू मन मत ललचा! जो-जो उसमें ललचा गये, सो वे सबोंने दुस्सह दुःख पाये। इसकारणसे—

मति=तुम सद्बुद्धिसे विचार करो, निजपदमें ही ठहरे रहो; और बुद्धि भ्रष्ट करके कभी भी उसमें नहीं लगना वा लगो मत। और—

भूल=मत भूलना, यदि भूलोगे, तो चौरासी योनियोंके चक्रमें जा पड़ोगे। यही भूलसे ही तुम आवागमन चक्रमें पड़े हुए हो। अब भूलो मत, बल्कि परखकर उन कनक-कामिनीके सङ्गको छोड़ो।

जस=जैसे या जिस प्रकारसे—

भुजङ्ग=सर्प या फणवाले साँप—

केंचुली=
तजत=
पुरानी केंचुली छोड़कर नयी केंचुली धारण करता है, तो छोड़तेमें भी आँखें ढककर अन्धा बन जाता है; और नयी केंचुलीमें कङ्कर चुभते, चींटी काटती हैं, ऐसे दोनों तरहसे दुःख पाता है। तैसे ही यह जीवकी भी गति है।

मिलन=कनक-कामिनीरूप द्रव्य और नारियाँ तथा वाणीके सिद्धान्तादि मिलनेके लिये भी महान सङ्कट उपाधियाँ झेलनी पड़ती हैं। कभी मिल भी गई, तो उसकी रक्षाके-लिये चिन्ता, परेशानी लगी ही रहती है। और—

बिछुरन=कभी वह बिछुड़ गई, नाश हो गई, तो आसक्तिसे जीव अन्धे होते हैं। प्राण जानेके समान दुःख मानते हैं। ऐसे—

दुहेलरा=दोनों तरहसे खानी-वाणीकी प्राप्ति और विछोहमें जीव जड़ाध्यासवश महान दुःखी होते हैं। फिर जन्म-मरणादिके नाना दुःख ही पाते रहते हैं। इससे कभी कनक-कामिनीमें भूलना नहीं चाहिये॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे शुद्ध ज्ञान रङ्गवाले नरजीव! कनक और

कामिनियोंको देखकर उसमें तू मत भूल, मत ललचाओ। कनक-कामिनी यह दोनों विकारसे भरी हुई मायाकी फाँसी है। उसकी सुन्दरतामें तुम भूलो मत। तहाँ सोनाको कनक कहते हैं, तथा धन-सम्पत्ति, रत्न, मणि-माणिक्यादि उसके अन्तर्गत हैं; और धतूराको भी कनक कहा है। जैसे कि:—

दोहाः—"कनक कनकते सो गुनी, मादकता अधिकाय ॥ यह खाये बौरात है, यहि पाये बौराय ॥"

इससे सम्पत्तिकी नशाका मद धतूरासे भी बढ़ करके ठहरा; और कामिनीमें मुख्य स्त्रियाँ हैं। उनके रूप, हाव-भाव-कटाक्षोंको देख करके विषय विकार भोगकी कामना, चाहना उत्पन्न हो जाती है। तहाँ कहा है:—

दोहाः—"अहि विष तन काटत चढ़े, यह चितवत चढ़ि जाय ॥ ज्ञान ध्यान औ प्राणहू, लेत मूल युत खाय ॥"

अतएव माया-कायाका विकार बन्धनरूप कनक और कामिनीको देखकर उनके सङ्ग प्राप्त करनेकी इच्छाको तू भूल करके भी कभी कदापि मत कर! हे सुरङ्ग जीव! तू निज रङ्ग ज्ञानमें ही ठहराव कर! तैसे ही उधर वाणीमें शुद्ध सुवर्णवत् माना हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्म, सो 'कनक' है। कल्पनासे बनी हुई वेदादिकी अनेक वाणी, सो 'कामिनी' है। इनको देख-सुनकर और हित मानकर हे जिज्ञासुओ! तुम उसमें मत भूलो! गुरु पारखमें ठहराव या स्थिति कायम करो! यदि तुम जान-अनजानसे भी खानी और वाणीमें भूल जाओगे, तो तुम्हारी बड़ी दुर्दशा होयगी! उस भुजङ्गके समान तुम्हारी भी गति होगी। जैसे कि, साँप जब पुरानी केंचुली शरीरसे निकालते हुए छोड़ने लग जाता है, तब भी बड़ा कष्ट-क्लेश सहन करता है। उसकी आँखें ढँक जाती हैं। अन्धेके समान रहता है। पक्षी, कीड़े वगैरह आके उसको परेशान करते हैं; और जब नयी केंचुली निकलके आ जाती है, तब वह नरम रहती है। इससे जल्दी चल नहीं पाता है। चलता है, तो कङ्करें, काँटें चुभ जाते हैं; चीटियाँ लिपटकर काटने लग जाती हैं। ऐसे दोनों प्रकारसे-जैसे सर्प केंचुली त्यागतेमें दुःख पाता है। तैसे ही हे मनुष्य जीवो! जड़के अध्यास रखनेसे तुम्हारी भी वैसी ही हालत हो जाती है। पहिले तो धन-सम्पत्ति कमानेमें, विवाह करके स्त्री लानेमें ही बहुत सारा कष्ट उठाना पड़ता है, मनमें चिन्ता-सोच लगी रहती है। फिर उनकी रक्षा-रखवारी करनेमें नाना दुःख सहना पड़ता है। यदि कदाचित् वह नाश हो गई, बिछुड़ गई, तो मोहके कारण असह्य दुःख-शोक घेर लेता है। दोनों तरहसे खानी-वाणियोंमें लगके स्त्री-पुरुषोंको सुख नहीं होता है। तैसे, साधकोंके वाणी सिद्धान्तोंमें भी समझ लेना चाहिये। कनक-कामिनीका सङ्ग तथा आशा दोनों तरहसे दोहरा दुःख देने वाली हैं, ऐसे अच्छी तरहसे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार द्वारा जानकर अपनी भूलको सुधारना चाहिये ॥ ६६ ॥

सम्बन्ध— अब छठवाँ खण्डमें १२ चौपाई, और १ साखीमें चौथा पशुधर्म 'भय' का त्याग और सुधार करनेका शिक्षा वर्णन भया है, ऐसा जानिये! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ छैः खण्ड ॥ ६ ॥ ❀ ॥

१. चौथे भयको करे विचारा * बिना विचारको पावै पारा ? ॥ ६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चौथे=चौथा नम्बरमें पशुधर्म जो कि—

भयको=भय है; इस भयके कारणको अच्छी तरहसे पहिचान करके देखे।

करे विचारा=फिर सत्य-विचार करे कि, इस भयसे मेरा कोई फायदा नहीं है। दुःखोंसे सब डरते हैं, मुख्यतया मृत्युका बड़ा भारी डर लगा रहता है। भोग टलेगा नहीं, शरीर तो छूट ही जायेगा, फिर डरनेसे क्या लाभ?—

बिना विचार=सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ विचार किये बिना या विवेक बिना—

को=कोई कर्त्ताका डर, यम यातनाका डर, भूत-प्रेतादिका डर, अनिष्टका डर इत्यादि भयोंसे कोई भी—

पावै पारा=पार नहीं पा सकते हैं या भयसे छूट नहीं सकते हैं; यानी गुरु विचार बिना मिथ्या भयोंसे पार पाया नहीं जा सकता है ॥

व्याख्या— चौथा पशुधर्ममें भय आता है। सब कोई प्राणी दुःख-आपत्तिसे डरते हैं। सुख सब कोई चाहते हैं। जीवोंको सबसे बड़ा भारी भय मरणका रहता है। क्योंकि, मृत्यु समयमें पीड़ा अत्यधिक हो जाती है। अपनी मानी हुई वस्तुको सहजमें कोई नहीं छोड़ना चाहते हैं। परन्तु, आयु पूरी होनेपर शरीर छूट ही जाता है। देह रहेतक पूर्व कर्मोंका फल-भोग अवश्य भोगना ही पड़ता है। अनेक पूर्व देहोंके जन्म-मृत्युके अनुभव संस्कार पासमें होनेसे जीव विशेषतः मरनेसे डरते हैं; और कोई कल्पनासे जगत्कर्त्ता परमेश्वर मानके उससे डरते हैं, कोई यमराज, भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस, देवी-देवताओंके प्रकोपसे डरते हैं। अब उस भयके बारेमें अच्छी तरहसे विचार करना चाहिये। ईश्वर, यम, देवता, भूतादि जो माने हैं, सो मिथ्या भ्रम कल्पनामात्र है; सो उनसे कुछ बनने-बिगड़नेवाला नहीं है, तो डरना काहेको? और जैसा पूर्वमें कर्म बनाया गया है, वैसा भोगकर एक दिन तो शरीर अवश्य छूट ही जायेगा। लाखों प्रयत्न करनेपर भी जीवित रहनेका नहीं; फिर इसमें भी डरनेका कोई काम नहीं है? हाँ! भय करके कुकर्म न करे, अभी मनुष्यके जन्ममें है, अतः कर्मोंको सुधार लेवे, तो उसका हित ही होगा। यथार्थ रीतिसे सत्यन्यायका विचार किये बिना यह भय छूट नहीं सकता है। बिना गुरु विचार-विवेकके हुए भयसे किसीने पार पाया भी नहीं, और पार पायेगा भी नहीं; क्योंकि, मनमें दृढ़ घुसा हुआ भय जल्दीसे नहीं निकलता है, बार-बार वह सन्मुख होता रहता है। अतएव हे मुमुक्षुओ! पारख दृष्टि ले करके इस भयको सर्वथा दूर कर डालो! ॥ ६७ ॥

२. निशि दिन चहहु शरीर बचावा * ताको छिन-छिन होत चलावा ॥ ६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

निशि दिन=रात और दिनमें ज्ञानी-अज्ञानी सब जन कर्म अध्यासोंसे—

शरीर=थूल देह धारण किये हैं। अब उस शरीरमें आसक्ति करके हे मनुष्यो!—

बचावा=जो तुम देहको बचाना, पुष्ट करना, सुख भोगना, सदैव जीवित ही होते रहना इत्यादि बचावा—

चहहु=जो करना चाहते हो, ऐसी इच्छा करते हो, प्रयत्न करते हो; परन्तु सो देह तो क्षणभंगुर नाशवान् है।

ताको=उस तुम्हारे देहका तो—

छिन-छिन=पल-पल वा निमिष-निमिष एक-एक क्षणोंमें ही कुछका कुछ—

होत=अदल-बदल या परिवर्तन होता है और हुआ जा रहा है, देह एकरस नहीं है। और—

चलावा=दिन-रात करके आयु चली ही जा रही है। प्रारब्ध भोग पूरा होनेपर शरीर छूट ही जायगा, जीव निकलके अन्य खानियोंमें चला जायगा ॥

व्याख्या— रात-दिन जिस शरीरको तुमलोग बचाना वा संरक्षण करना चाहते हो, उस देहका तो क्षण-क्षणमें परिवर्तन हो रहा है, आयु नाश हो रही है; तो कहाँतक देहको बचाओगे? एक दिन तो अवश्यमेव देह छूट ही जायगा। अगर बचा सको तो कुकर्म-कुवासनाओंको बचाते जाओ; जिससे सुखी-सन्तुष्ट रहोगे ॥ ६८ ॥

३. जासु मोह सब जीव डेराई * सो एकौ छिन नहिं ठहराई ॥ ६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जासु=जिस देह, गेह, स्त्री, पुत्र, धनादिकी आसक्ति करके—

मोह=मोहित, आकर्षित, गाफिल हो—

सब=सब कोई मनुष्यादि भूल रहे हैं और—

जीव=सब आसक्त नर जीव तन-धनादि कहीं नाश न हो जाय? हमें दुःख न हो? ऐसा शोचकर—

डेराई=इसवास्ते भयभीत हो डरते ही रहते हैं; सशङ्क रहते हैं; तो भी—

सो=सो देहादि परिणामी नाशवान् पदार्थ समय पूरा होनेपर—

एकौ छिन=एक क्षण, निमिष वा पलमात्रके लिये भी—

नहिं ठहराई=ठहरता नहीं है। आखिरमें नाश होके बिगड़ ही जाता है॥

व्याख्या— जिस शरीर आदि पदार्थोंके ऊपर जीव मोहित हो रहे हैं; कहीं देहादिका नाश वा हानि न हो जाय, सो याद करके इसीलिये सब जीव डेरा रहे हैं। परन्तु, देह तो क्षणभंगुर नाशवान् है। प्रारब्ध भोग पूरा होनेपर लाखों उपाय करनेपर भी जीव उस देहमें ठहर नहीं सकता है, निकल ही जाता है। फिर जीवके निकलनेपर देह एक क्षण मात्रके लिये भी पूर्ववत् ठहर नहीं सकता है; गिरकर नाश ही हो जाता है। इस कारण देह छूटनेसे पहिले ही होश, शक्ति रहते-रहते ही सत्कर्म करके शुभ संस्कार जमा लेना चाहिये। अर्थात् शरीरकी विशेष आसक्तिमें पड़कर समस्त जीव निजस्वरूपको भूलकर देहादिमें ही मोहित हो रहे हैं। इसीसे देहादिकी हानिकी आशङ्का करके सदा अज्ञ जीव भयभीत रहते हैं, और अपने शरीरकी बचावके लिये अनेकों उपाय करते हैं। परन्तु, कर्मभोग पूरा होनेपर फिर शरीर क्षणभरके लिये भी कायम नहीं रहता है। बचाव-के सब प्रयत्न बेकार हो जाते हैं। अतः प्रथमसे ही कर्त्तव्यका सुधार करना चाहिये॥ ६६॥

४. दशों द्वार नरककी खानी ❀ तहाँ जीव चाहत अबादानी॥ ७०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दशों द्वार=दोनों नासिकाके छिद्र, दोनों कान, दोनों आँखें, मुख, लिङ्ग, गुदा और मस्तक, ऐसे दशों द्वार शरीरमें जो हैं, सो उन सब द्वारोंमें—

नरककी=विकार, मैल, मल, मूत्र, कफ, पोटा आदि नर्क-अपवित्र की चीज ही—

खानी=भरी है, इसीसे तो शरीर एक नर्कका खदान, मलकी मोटरी, गन्दगीका घर वा खानी ही है।

तहाँ=ऐसे अपवित्र शरीरमें रहिके निकृष्ट विषयादि भोग यथेष्ट भोगते हुए, ऐसे बेढङ्ग, उलटी रीतिसे ही—

जीव=जड़ाध्यासी अज्ञानी नरजीव लोग सब कोई—

अवादानी=आबाद होना, मुक्त होना, सुख भोगों-से तृप्त होना, इसप्रकारसे जीव अपना खास कुशल आवागमनसे रहित होना उसी प्रकार-

चाहत=चाहते हैं; ऐसी मनमानी इच्छाएँ, चाहनाएँ तो लोग बहुत-बहुत करते हैं, परन्तु कर्त्तव्य तो बिगाड़ते ही चले जाते हैं। फिर कहो कुशल तो भी कैसे हो सकता है? खाली चाहना ही करनेसे कुछ फल होनेका नहीं। पुरुषार्थ किये विना कुछ लाभ हो नहीं सकता है॥

व्याख्या— हे मनुष्यो! जिस शरीरका तुम लोग व्यर्थ अभिमान करते हो, सो उसके वास्तविक रूपका तो विचार करो! रज-वीर्यसे देह बना है, नाकसे सिगान वा पोटा गिरता है, आँखोंसे कीचड़ निकलती है, कानोंसे मैल निकलता है, मुखसे थूक, खकार, कफादि बाहर होते हैं। लिङ्गसे मूत्र और वीर्य निकलता है और गुदासे मल (विष्ठा) बाहर निकलता है। फिर रोम-रोमसे पसीना चूता है। आँतोंमें विकार गन्दा होकर भरा है। विचार करके देखो! इसतरह दशों द्वारसे लेके समस्त शरीरमें एक नर्ककी खानी भरी हुई विकारका घर बना है। यदि एक दिन भी इसको ठीकसे साफ किया न जाय, तो देहसे बदबू आने लग जाती है। ऐसे विकाररूप देहका वृथा क्या गुमान करते हो? देखो! नर्ककी खानीमें रहिके जीव उसी नर्कके भोगसे कुशल चाहते हैं, तो भला उस तरह-से कैसे कुशल होगा? और विषयोंको नित्य भोगते हुए मुक्त होना चाहते हैं, यह असम्भव बात कभी हो नहीं सकती है। पारब्ध बोध सहित विवेक, वैराग्यमें पूर्णतासे ठहरनेपर ही कोई जीवन्मुक्त हो सकते हैं; सोई बनाना चाहिये॥ ७०॥

५. सोऊ सङ्ग न काहुके लागे * मिथ्या पचि पचि मरहिं अभागे ॥ ७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सोऊ=मैलेकी खानीरूप सो देह और देह सम्बन्धी नाशवान् पदार्थ, सो सब भी तो—

काहुके=किसी जीवोंके भी कभी—

सङ्ग न=सङ्ग-साथमें न गया है और न कभी किसीके साथमें ही जायगा। वह सब तो यहाँ ही पड़ा रहेगा, सङ्गमें नहीं जायगा।

लागे=जिसके पीछे ममता-मोह भोगोंमें दिन-रात लगे पड़े रहते हैं, सो देह तो यहीं छूट जायगा; साथ लगके नहीं जायगा।

मिथ्या=झूठे विषय भोगोंमें और ईश्वरादि मिथ्या कल्पनाओंमें लगकर उसमें मानन्दी टिका करके—

पचि पचि=आसक्त हो-होकर नाना कर्म साधनों-में फँस-फँस रच-पचकर ऐसे पच-पचकर—

अभागे=भाग्यहीन, कर्महीन, बुद्धिहीन, अभागे नरजीव कर्मको बिगाड़ करके—

मरहिं=नाना कष्ट सहनकर जड़ाध्यासी होकर मरते हैं; फिर सो वे चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं॥

व्याख्या— मल-मूत्रकी मोटरी, पेटारीरूप सो वह देह भी तो किसीके सङ्गमें लगके नहीं जाता है। बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी आदि सबोंका ही समय आनेपर देह यहीं छूटकर रह जाता है। जब किसीके सङ्गमें देह नहीं गया, तो फिर तुम्हारे ही सङ्गमें क्या जायेगा ? कभी न जायगा। परन्तु, जो मिथ्या धोखा कल्पना विषयोंमें पच-पचके आयुको बर्बाद कर देते हैं, व्यर्थमें नर जन्मको बिताय देते हैं, वे सब अभागे बने हैं॥ ७१ ॥

६. पशुके समान पोषै तन सोई * विषय विवश गये आपु बिगोई ॥ ७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पशुके समान=जैसे हिंसक पशु निर्बल प्राणियोंको मारकर खा जाते हैं। तैसे ही, पशुके समान क्रूर स्वभाव लेकर नर-पशु बनकर हिंसादि करके मांस खाते हैं। अन्यायसे धन एकत्र करके—

पोषै तन=नाना तरहके पकवान छत्तिस(३६) व्यञ्जनादि खा-खाकर, शरीर पोषणकर हृष्ट-पुष्ट-बलिष्ठ होते हैं। और—

सोई=सो वही अच्छी खुराकसे वीर्य, बल, देहमें बढ़नेसे मदान्ध होकर—

विवश=कामासक्त मनके वशमें पड़कर बेकाबू भये और कामातुर होनेसे विवश भये, इसीसे

विषय=स्त्री भग-भोगसे लेकर पाँचों विषयोंमें गरगाफ होके फँस गये।

आपु=ऐसे नरजीव स्वयं आप ही अपने हाथसे कर्म-कुकर्म करके—

बिगोई=नर जन्ममें कर्त्तव्योंको बिगाड़कर विषयोंमें बह गये। इसीसे—

गये=चौरासी योनियोंमें जीव गये और जा रहे हैं॥

व्याख्या— हिंसक दुष्ट पशुओंके समान दाव-घातसे अन्यको मार-धाड़कर लूट-खसोरकर पशु-पक्षियोंको मारकर, जो शरीर पोषण करते हैं, वे नर पशु हैं; और नाना व्यञ्जनोंको खाकर शरीरको हृष्ट-पुष्टकर पञ्चविषयोंके भोग विषयोंके वशीभूत हुए अपने मानुष पदको बिगाड़के वासनामें बहकर बहुतेरे जीव चौरासी योनियोंमें गये और अभी उसी प्रकार जा रहे हैं॥ ७२ ॥

७. उत्तम नरकी देह जो लागे * भूलि गये सो अधम अभागे ॥ ७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

नरकी देह=बड़े भाग्यसे ही मनुष्यका जन्ममें नरदेह जीवोंको शुभ संस्कारसे मिलता है।

उत्तम=यह जन्म कर्म भूमिका होनेसे सर्वोत्तम वा परमोत्तम जगह है। इसमें उत्तम-उत्तम सत्कर्म, पुण्य, परोपकार आदि करके—

जो लागे=जो कोई सत्सङ्ग, सद्विचार, गुरुकी शरणमें लगे हैं, निज-पर सुधार तथा उपकारमें लगे हैं, सो उन्हींका जन्म सफल हुआ, वे ही सच्चे मनुष्य हैं; और जो कोई—

भूलि गये=विषयादि भोगोंमें पड़कर निज

कर्त्तव्योंको और निज स्वरूपको भूल गये, कर्म बिगाड़ लिये हैं—
सो=सो ऐसे पामर जड़ाध्यासी मनुष्य जीव—
अभागे=भाग्यहीन, कर्मसे ठगाये हुए अभागे बने हैं। सोई—
अधम=नीच, पापी, दुर्जन, दुष्ट और अधम हैं। (इस कारणसे हे मनुष्यो! उस भूलको मिटाकर उत्तम हंस बनकर सुखी होओ।)॥

व्याख्या— नर-देह, यह सर्वोत्तम जगह है। शुभ संस्कार उदय होनेसे ही जीवोंको नर-देह मिलता है। जो ऐसे उत्तम नर-देह पाकर सत्सङ्ग, विचारसे सुधारमें लगते हैं, सोई सच्चे मनुष्य हैं। और जो बिगाड़ करते हैं, कर्म-कुकर्म करके विषय भोगोंमें ही भूल गये या भूल रहे हैं, सो अभागे अधम, पापी, नीच कहलाते हैं॥ ७३॥

८. करहु विचार सुधारहु अपना ❀ नहिंतो काल विवश है कल्पना॥ ७४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे हितेच्छुक जनो!
विचार=सत्यासत्यका यथार्थ विचार करके—
करहु=साधु-गुरुका सत्सङ्ग करो, और—
अपना=निजस्वरूपको पहिचानकर अपना इस—
सुधारहु=नरजीवनमें, कर्त्तव्योंका सुधार करो, स्वभाव बनाओ; और—
नहिंतो=यदि ऐसा नहीं करोगे? तब तो तुम्हारा बचाव होनेका नहीं। क्योंकि—
काल=स्त्रियाँ और गुरुवाओंके फन्दोंमें जो पड़े, सो काल-जालोंमें जकड़ गये।
कल्पना=सो सब वाणी कल्पना वा विषयोंमें बन्धे हुए या फँसे हुए लोग—
विवश है=मनमानन्दीके अध्यासोंसे स्वयं परवश वा विवश हुए हैं। वे आखिरमें लाचार हो वासनावश चौरासी योनियोंमें गये और जा रहे हैं॥

व्याख्या— इसवास्ते हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो! अपने हित-अहित होनेका सत्सङ्गमें यथार्थ विचार करो। अपना कर्त्तव्य और नवीन संस्कारका नरजन्ममें सुधार करो। जिससे बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाओगे; यदि ऐसा नहीं करोगे? तब तो काल गुरुवा ठगलोग तुम्हें कल्पनाके वशीभूत करके खींचलेंगे; और स्त्रियाँ विषयोंमें फँसाकर जबरन चौरासी योनियोंमें घसीटेंगी। तब तुम मजबूरन कल्पना और विषयोंको पकड़-पकड़कर भवजालोंमें पड़े रहोगे। पहिले बड़े-बड़े भी बिना पारख इसमें फँसकर बर्बाद भये हैं, अभी तुमलोग भी यदि पारखी साधु-गुरुकी शरण हो पारख विचार नहीं करोगे, तो तुम्हारा भी कहीं बचाव होनेका नहीं, सो जानलो!॥ ७४॥

९. नरकी देह जो होवै विचारा ❀ तो हित पोषण उचित अचारा॥ ७५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
नरकी देह=यह मनुष्यका देह कर्मभूमिकारूप है। विषयभोगोंमें लगकर बर्बाद करनेके लिये यह नहीं मिला है, यह तो मुक्ति होनेकी जगह है, इससे ऐसे उत्तम नरदेहको पायके
विचारा=सत्य-असत्य, जड़-चैतन्य, बन्धन-मोक्ष आदिका यथार्थ विचार करो।
जो होवै=जिससे ऐसा सद्विचार, सत्सङ्ग, परोपकार, जीवन सुधार आदि सत्कर्म होता होवे, तब तो ठीक है। और—
अचारा=शुद्धाचार, शुद्धविचार, शुद्धकर्म होवै, अपना और दूसरोंका हित-कल्याण होवे, इसलिये—
पोषण=शुद्ध अन्न-जलादि सेवनकर शरीर पोषण, रक्षण, पालन, करते रहना, यह तो—
उचित=सर्वथा ही उचित, ठीक है।
तो=तब तो शरीरमें समान-विशेषरूपसे शक्ति या बल बने रहनेसे—
हित=सबका उन्होंसे हित-कल्याण या भलाई ही होगी, सो सबके लिये हितकारी है॥

व्याख्या— मनुष्यका देह मिलकर जो कि, मुक्ति होनेका सच्चा विचार-विवेक वैराग्यादि बढ़े, सत्कर्म होवें, तब तो शरीर पोषण करना उचित ही है। जिससे देहमें शक्ति होकर शुद्ध आचार-विचार प्रगट करनेका आचरणकर अपना और दूसरोंका भी हित ही होगा, वे सबोंके हित ही करेंगे। ऐसे

विवेकी सन्तोंको ही विनय पूर्वक भोजन कराना चाहिये, वही सफल होता है ॥ ७५ ॥

१०. धन्य सो जीव तारण तरणा ❀ अभय अशङ्क त्रास नहिं मरणा ॥ ७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तरणा=जो पारखी सन्त एकरस पारखदृष्टि रखकर खानी-वाणी भवसागररूपी महा जालोंसे पार उतर गये हैं—

सो जीव=सोई नरजीव जीवन्मुक्त स्वरूपमें स्थित हैं। वे अन्य जिज्ञासु नरजीवोंको भी सत्य पारख बोध दे करके—

तारण=जगत् जालोंसे वा भवधारोंसे पार उतार देनेवाले बड़े उपकारी हैं। आप मुक्तिमार्गके कर्णधार हैं। इसलिये—

धन्य=उन शूर-वीर-धीर श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी पारखी साधु महात्माको बारम्बार धन्यवाद है ! धन्य ! धन्य है !! क्योंकि—

अभय=ईश्वर, यम, भूतादि कल्पित भय, तथा कर्म दुःख और देहपात आदिके सब भयोंसे रहित आप सदा अभय या निर्भय रहते हैं। और—

अशङ्क=किसी इष्ट वा अनिष्टकी शङ्कासे रहित हैं; एवं—

मरणा=जड़ाध्यासोंका नाश होनेसे जन्म-मरण चक्रमें पड़नेके भी उन पारखी जीवन्मुक्त साधुको—

त्रास नहिं=किसी प्रकारका कोई त्रास वा डर मनमें नहीं रहता है; सदा अविचल शान्त रहते हैं ॥

व्याख्या— जो नरजीव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके खानी-वाणियोंके भव-जालोंसे स्वयं छूट गये हैं, जीवन्मुक्त हो भवपार उतर गये हैं; तथा मुमुक्षु जीवोंको भी यथार्थ निर्णयसे परखायके सो बन्धन छुड़ाय, भवपार उतार देते हैं; सोई तरण-तारण पारखी महात्माको धन्य ! धन्य ! धन्यवाद है। क्योंकि, वे अपने कर्त्तव्यको इस नर देहमें पूरा कर लिये हैं। उनको अब किसी कल्पना वा देहपातका भय नहीं रहा है; और कोई सन्देह शङ्का भी उनमें कुछ नहीं रहती है; अशङ्क, निर्भय हो गये हैं। अतएव देहादिके अध्यास वासना शेष न होनेसे ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषको मरणका त्रास और आवागमन भी बाकी नहीं रहता है ॥ ७६ ॥

११. मृतक शरीर नाश सब भाँती ❀ तेहि अपनाय कौन कुशलाती ॥ ७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मृतक=नाशवान्, जड़तत्त्वोंके कार्यरूप विकारी मलसे भरा हुआ, मृत्यु होनेवाला जड़ —

शरीर=ऐसा यह शरीर है; सदा बना रहनेवाला नहीं है।

सब भाँती=सब प्रकारसे या सब तरहसे—

नाश=जीर्ण, शीर्ण, क्षीर्ण होकर नाश होनेवाला परिणामी, विनश्वर और क्षणभंगुर है।

तेहि=ऐसे उसी विकारी जड़ अनित्य शरीरको ही—

अपनाय=अपना ही स्व-स्वरूप सत्य समझ करके मानके उसे अपनायके देहकी ममता मोहमें ग्रसित रहनेसे सिवाय हानि आसक्ति बन्धन बढ़ाना ही होता है।

कौन= } तो उससे जीवका कौन-सा
कुशलाती= } कुशल वा हित हुआ ? वास्तवमें कोई भी कुशल होनेका नहीं; और ऐसी समझसे कुछ भी कुशल नहीं हुआ ॥

व्याख्या— हे भाई ! जिस देहका तुम ममता-मोह करते हो, सो तो मृतक=मरनेवाला मृत्यु ग्रसित, नाशवान् जड़ विजातीय है, और सब भाँतिसे नाश होनेवाला, न ठहरनेवाला, परिणामशील है। अविचारसे उस शरीरको ही अपना सत्य स्वरूप करके मान लिये हो। वैसी उलटी समझसे क्या कुछ कुशल हित होनेवाला है ? कुछ नहीं; कौन-सा कुशल होगा कहो ? प्रारब्ध भोग पूरा होनेपर स्थूल देह तो यहीं छूट जायगा, और तुम जीव अध्यासवश चारखानीके गर्भवासमें चले जाओगे। क्या यही हालको कुशल समझते हो ? अभी तो भी सत्सङ्ग-विचार करके जड़ देहादिकी विपरीत मानन्दीको हटाओ ॥ ७७ ॥

१२. मानुष होय देह भय त्यागै * अपने कारज सो मन लागै ॥ ७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे हितेच्छुको ! अभी तुम लोगोंने ऐसे उत्तम-

मानुष होय=नर देह पाये हो, तो सच्चा-सच्चा मनुष्य गुणधारी होकर, हंस बनकर—

देह भय=प्रारब्ध भोगोंमें दुःख होने और शरीर छूटनेका इत्यादि देहके सम्पूर्ण भयको—

त्यागै=विवेक करके सब त्यागकर देओ; और-

अपने=स्वयं (निज) जीव या जीवनके—

कारज=हित-कल्याण वा मुक्तिके शुभ कार्यमें तथा—

सो=स्व-स्वरूपकी पारख स्थितिमें दृढ़तासे—

मन लागै=मनको अच्छी तरहसे लगाना चाहिये। जिसका मन विवेक, वैराग्यादि शुभ कार्योंमें लगता है, सोई तो असली मनुष्य है, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— हे नरजीवो ! जो तुम लोग मनुष्य हुए हो, तो सच्चा हंस होकर देहका सब भय त्याग दो। ईश्वर तो तुम्हारी ही कल्पना है, वह किसीको कभी सुख-दुःख नहीं देता है। कर्मानुसार ही प्रारब्ध भोग जीवोंको होता है; उसमें डरनेका कोई काम नहीं है। जो देहादिका भय त्यागेंगे, सोई तो सच्चे मनुष्य हैं। अतः अपने कल्याणके कार्यमें ही सदैव मनको लगाना चाहिये। क्योंकि, बनाव-बिगड़ाव नर जन्ममें ही होता है। इस कारणसे अपनी जीवन्मुक्ति हो, वैसे विवेक, वैराग्य, सत्सङ्ग आदिमें ही सदा लगे रहना चाहिये ॥ ७८ ॥

साखीः— जो पद एकौ थीर नहीं * सो भय मानुष नाहिं ॥

[८] समझहु बादर गगनके * उपजहिं तुरित बिलाहिं ॥ ७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो पद=जो कि, हंस जीवका निजपद तो सत्य है, परन्तु माना हुआ ब्रह्मपद वा ईश्वर, आत्मा, खुदा आदि अन्य पदको जो ठहराये हैं, सो तो परीक्षा करनेपर—

एकौ=उनमेंसे एक भी तो सत्य नहीं ठहरता है। क्योंकि—

थीर नहीं=पारखमें सो एक भी यथार्थ ठहरता नहीं, उस धोखामें जो मानन्दी करके लगे, सो उससे जीवोंकी मुक्ति स्थिति नहीं होती है; वह सब मनःकल्पित चञ्चलपद है। इससे—

मानुष=सत्यासत्यके परीक्षक पारखी सच्चे मनुष्यको वा हंस जीवको—

सो भय=सो मिथ्या कल्पनाका भय तथा कर्त्तादिका डर और देहका भय यह कोई भी-

नाहिं=नहीं रहता है; वे सदा निर्भय हो रहते हैं। पारखमें कोई भय ठहर नहीं सकता है। सो ऐसे भयमें जो पड़े हैं, सो सच्चे मनुष्य हुए ही नहीं हैं। अतएव—

बादर = आकाशके बादलोंकी नाईं ही उसी

गगनके = जड़ाध्यासरूप आवरणमें पड़े हुए जीव गमनागमनके चक्करमें ही सदा पड़े रहते हैं। स्वरूप स्थिति पारख न होनेसे उनकी कभी मुक्ति नहीं होती है।

उपजहिं=जैसे नभमें बादल उत्पन्न होते हैं, फिर तुरन्त वे नाश हो जाते हैं। तैसे ही अध्यासी जीव सब भी चार खानियोंमें नाना देहें धारणकर जन्म लेकर उत्पन्न होते हैं, और—

तुरित=प्रारब्ध कर्म भोग पूर्ण होनेपर तुरन्त (शीघ्र) ही अन्तमें—

बिलाहिं=शरीर छोड़कर अन्य खानियोंमें चले जाते हैं।

समुझहु=यह भेदको अच्छी तरहसे समझ लीजिये कि— पारख बोधमें स्थिति हो, जड़ अध्यासके नाश हुए बिना जीव कभी निर्भय-सुखी हो नहीं सकते हैं; और इसीसे मुक्त भी नहीं हो सकते हैं ॥

व्याख्या— जो कि, श्रेष्ठ माना हुआ ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, भूत-प्रेतादि वे सब मिथ्या कल्पना-मात्र हैं। अनेकों मानन्दी, कल्पनामें एक भी स्थिर रहनेवाले नहीं हैं, सब चञ्चल हैं; और परीक्षा करनेपर, सो तो एक भी सत्य नहीं ठहरता हैं। सो मिथ्या भ्रमको परखकर जिन्होंने दूर हटाय दिये हैं।

ऐसे पारखी हंस मनुष्यको सो उसका कोई भय नहीं रहता है। पूर्व कर्मके वेगसे यह देह बना है, सो भी प्रारब्ध कर्मानुसार ही आयु बरत जायगी, इससे देहादिकी मृत्युका भी भय पारखी सन्तको नहीं रहता है। इसीसे तो वे निर्भय मुक्तपदमें सदा रहते हैं; और जो नरजीव अनेकोंमेंसे एक मनुष्य भी हंसपदमें पारखदृष्टि सहित स्थिर नहीं हुआ या निजपदमें ठहराव जिसका नहीं हुआ है, सोई नाना प्रकारसे भयमें सदा ग्रसित रहता है। जिनका रूपमात्र मनुष्यका दिखता है, परन्तु वास्तवमें मनुष्यपदका वह अधिकारी नहीं है। वह तो जड़ाध्यासी नरपशु बनकर आवागमनके भयमें ही पड़ा रहता है। दृष्टान्तमें ऐसा समझो कि— जैसे ऊपर गगनमें वायुके वेगसे बादल उत्पन्न हो-होकर घटा दिखाई दे-देकर फिर वायुके वेगसे तुरन्त वहाँ ही बिलाय जाते हैं। उसी प्रकारसे यहाँपर जीव जड़ाध्यासवश वासनारूप वायुके वेगसे चारखानियोंमें नाना देहें उत्पन्न कर लेते हैं। फिर भोग पूरा होनेपर तुरन्त ही देह छोड़के अन्यत्र चले जाते हैं। अध्यासरूप बीज रहे तक जीव देह धरते और छोड़ते रहेंगे; और पूर्ण पारख स्थिति होनेपर, कोई बिरले ही मुक्त होवेंगे ॥ ७९ ॥

सम्बन्ध— सातवाँ खण्डमें १३ चौपाई, और १ साखीमें पाँचवाँ पशुधर्म 'निद्रा'का सुधारके बारेमें वर्णन किया है, सो जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ सात खण्ड ॥ ७ ॥ ❀ ॥

१. पँचयें निद्राको निरुवारै * जहाँ सुषुप्ति स्वप्न बिडारै ॥ ८० ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पँचयें = } पाँचवाँ नम्बरमें पशुधर्म 'निद्रा'

निद्राको = } है; सो दो तरहकी होती है। (१) अज्ञानमें आँखें मूँदकर सोते पड़े रहना, और (२) ज्ञानमें समाधि तथा पाँच अवस्थाओं-के कर्मकी मूढ़तारूप निद्रा और चराचर व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी गाफिली वह निद्रा है। सो दोनों प्रकारकी निद्राको ठीक तरहसे

निरुवारै = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें निर्णय करके सुधार लेवे। भूलको निरुवार कर डाले।

जहाँ = जहाँपर संसारमें गुरुसत्सङ्गमें जाके पारख बोधको प्राप्त कर लेवे, फिर—

सुषुप्ति = जाग्रत्का बीज जैसे अज्ञान सुषुप्तिरूप गाढ़ी निद्रामें सूक्ष्मरूपसे बना रहता है। तैसे ही ज्ञान सुषुप्तिमें कैवल्यरूप अद्वैत व्यापक परमात्मा सबका अधिष्ठान जगत्कर्त्ता जो माने हैं, सो महान भूल गाफिली है। उसमें जन्म-मरणका बीज बना रहता है।

स्वप्न = जाग्रत् कर्मका भास फोटो जैसे स्वप्नमें दिखाई देता है, तैसे ही स्वप्न भास सरीखा संसारका व्यवहार भी झूठा ही हो रहा है। और ध्यानी लोग मनकी भावनाको तैसे ही मानन्दीसे देखने लग जाते हैं। वहाँ कर्म अध्यास वैसे ही बना रहता है। इसकारण-से अध्यासी जीव—

बिडारै = चौरासी योनियोंमें देह धरकर भिन्न-भिन्न उत्पन्न होते रहते हैं। अतएव स्वप्न और सुषुप्ति उन दोनोंके अध्यासको परखकर नाशकर देना चाहिये ॥

व्याख्या— अब पञ्चम पशुधर्म 'निद्रा' है; उसका निर्णय करते हैं। सब कोई देहकी थकावट दूर करके आराम करनेके लिये ही सोते हैं। विश्रान्ति मिलनेसे तन-मनकी सुस्ती मिटकर नयी स्फूर्ति आ जाती है। परन्तु, उपयुक्त मात्रामें ही सोना नींद लेना चाहिये। ज्यादा सोनेसे हानि ही होगी। इस कारणसे सन्त और भक्तोंको २४ घण्टोंमें केवल रात्रिमें ही सिर्फ ६ घण्टोंतक सोना बहुत है। इतनेमें शरीर ठीक स्वस्थ रह सकता है। परन्तु, आहार-विहार शुद्ध सात्त्विक हलका रखना चाहिये। दिनमें कभी सोना न चाहिये। यदि दिनमें सोनेकी किसीकी आदत पड़ी है, तो उसको कोशीश करके हटाना चाहिये। क्योंकि, सोनेके वास्ते दिन नहीं बना है; तो दिनमें सोते रहना यह तो नादानीके काम है। मेहनती साधु और संसारी मनुष्योंको रात्रिमें छःसे आठ घण्टोंतक नींद लेना काफी है। इतनेमें सब थकावट दूर हो सकती है। इससे ज्यादा किसीको सोना नहीं

चाहिये। ज्यादा सोनेवाले स्वार्थ और परमार्थ दोनोंकी ही हानि करते हैं। अतएव समयको बर्बाद करके नीन्दरूप गाफिलीमें पड़कर नर जीवनकी बड़ी हानि नहीं करनी चाहिये; और जाग्रत्में पाँच अवस्थाओंके कर्म मनुष्य जीवोंसे होते हैं। सो उसका सब संस्कार सूक्ष्म देहमें ठहरा रहता है और अर्धनिद्रामें उसीका भास जो दिखाई देता है, सो उसे स्वप्न कहते हैं। जहाँपर स्वप्न दृश्य भी गायब हो जाता है, सो गाढ़ी निद्राको सुषुप्ति कहते हैं। वहाँ सब वासनाका बीज गुप्त बना रहता है। फिर उलटकर स्वप्न और जाग्रत् होता रहता है। इसप्रकार कर्म अध्यासोंमें गाफिल जीव नरदेह छूटनेपर पशु, अण्डज, उष्मजादिमें जाकर देह धरते हैं। चारों खानियोंमें जानेका और वहाँ भोगनेका कर्म मनुष्य देहकी जाग्रत् अवस्थामें ही बन जाता है; और जाग्रत्में ही विवेक, विचार, पारखसे अध्यास मिटानेसे मिट भी सकता है।

तहाँ निद्रा दो प्रकारकी हुई; (१) अज्ञान निद्रा और (२) ज्ञान निद्रा है। तैसे ही दो प्रकारकी सुषुप्ति भी होती है। (१) अज्ञान सुषुप्ति और (२) ज्ञान सुषुप्ति है। इन दोनोंका यथार्थ निर्णय पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें जाकर अच्छी तरहसे हानि और लाभको जान करके तब हानि-कारक गाफिलीका परित्याग कर देना चाहिये। यहाँपर जाग्रत्में ही स्वप्न तथा सुषुप्ति दोनोंका अध्यास गाफिलीका बीज नाश कर देना चाहिये ॥ ८० ॥

२. जागृति स्वप्न सुषुप्ति तुरिया * सो सब जुइनी यमकी कुरिया ॥ ८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जागृति = 'जाग्रत्' अवस्था यह कर्म मार्ग है। इसमें नाना विषयादि भोगोंके कर्म होते रहते हैं, सोई वासना टिकती है।

स्वप्न = 'स्वप्न' अवस्था यह उपासना मार्ग है। अध्यासके अनुसार वहाँ भास होता है। सूक्ष्मदेहमें सबका बीज रहता है।

सुषुप्ति = 'सुषुप्ति' अवस्था यह योग मार्ग है। वहाँ अध्यास कारणरूपसे रहता है।

तुरिया = 'तुरिया' अवस्था यह ज्ञान मार्ग है। महाकारणरूपमें संस्कार बना रहता है।

सो सब = उक्त चारों अवस्थाओंके सो सब ही कर्मोंके अध्यासवश सब जीव—

जुइनी = पशु, पक्षी, उष्मज और मनुष्यादिअनेक योनियोंमें चले जाते हैं। चौरासी योनियोंमें जानेका बीज कारण यही चार अवस्थाओं-के कर्म ही हैं। और—

यमकी = कालरूपी गुरुवा लोगोंकी अन्तिम
कुरिया = ब्रह्म स्थितिका मकान या महल-कैवल्य चराचर परिपूर्ण परब्रह्म जो माने हैं, सो भी चौरासी योनियोंमें ही लेजानेका कारण है। वह तो कालका घर ही है। ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया— ये चारों अवस्थाओंके कर्म, उपासना, योग और ज्ञानमार्गोंके सो सब संस्कार ही जीवोंको क्रमशः पशु, पक्षी, उष्मज और मनुष्य— ये चारखानी या चौरासी योनियोंमें ले जानेके मूल कारण हैं; और स्त्रियोंके विषय भोगोंमें आसक्तिका घर जिन्होंने बना रक्खे हैं, सो सब तो गर्भवास नाना योनियोंमें ही जायेंगे। परन्तु, यमरूप गुरुवा लोगों-के कुरिया = घर या मकानरूपी चराचरमें परिपूर्ण व्यापक कैवल्य ब्रह्म स्थिति, परमहंस दशा, यही ज्ञानसुषुप्तिकी गाफिली होनेसे इस अध्याससे भी जीव वही चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं। ब्रह्म क्या है ? चौरासी योनियोंका घर ही तो है। अतएव इस मिथ्या भ्रम मानन्दीको परखकर छोड़ना चाहिये ॥ ८१ ॥

३. सत्य असत्यके वर्तै जोई * धोखामें जिव जाय बिगोई ॥ ८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक मतवादी लोग—

सत्य = सत्य चैतन्य जीवको कल्पनासे
असत्यके = असत्य, प्रतिबिम्ब वा अंशरूप मानते हैं, और असत्य धोखामात्र ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिको सत्य, अविनाशी,

कर्त्ता, धर्ता ठहराते हैं। वे बेपारखी मूढ़ हैं। इसीसे ब्रह्मको सत्य तथा जगत्को असत्य = मिथ्या बताते हैं। ऐसे भ्रम करके मानने-वाले, वैसे ही मनमानी चालसे—

वर्तैं जोई = उलटी रीतिसे बर्ताव करते हैं। विवेकको छोड़ आँखें मूँदकर चलते हैं। जो कि, नाना साधना व्यवहारमें वर्तते हैं। और ब्रह्मस्वरूप ही हमको सब जगत् दिखता है, ऐसा कहते हैं।

धोखामें = ऐसे मिथ्या धोखारूप ब्रह्मके भ्रममें पड़ करके बिना विचार—

जिव = ज्ञानी-अज्ञानी नरजीव सब मनुष्यपदसे पतित हो करके—

जाय बिगोई = बिगड़ जाते हैं, उसीमें बह जाते हैं, तो फिर चौरासी योनि गर्भवासमें ही उलटकर चले जाते हैं॥

व्याख्या— सत्यको असत्य और असत्यको सत्य मान करके जो विपरीत बर्ताव करते हैं, सो वैसे लोग धोखामें पड़कर बिगड़ जाते हैं। अर्थात् सत्य चैतन्य जीवको असत्य वाणीसे ब्रह्म या ईश्वरका अंश और खुदाका नूर वा प्रतिबिम्ब तथा परा प्रकृति मानके जड़के समान कार्य ऐसे झूठ-मूठ असत्य ही ठहराये हैं; और असत्य ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवतादि जो माने हैं, सो तो मिथ्या कल्पनामात्र है। परन्तु, उनको सत्य सर्वशक्तिमान् माने हैं। अथवा ब्रह्मको सत्य और जगत्को असत्य बतलाते हैं, सो ब्रह्मका तो अस्तित्त्व वा ठिकाना भी कहीं नहीं है; और जगत् तो सन्मुखमें सबोंको प्रत्यक्ष है। फिर उसे असत्य खपुष्प समान कैसे कहते हो? हकनाहक धोखामें पड़कर पारख बिना नरजीव मनुष्यपदसे बिगड़ गये और वैसे ही बिगड़ रहे हैं; वाणी-खानीकी धारामें ही बह गये और बह रहे हैं; बिना पारख॥ ८२॥

४. अस्थूल त्याग कोई झाँईं सोना ❀ झाँईं स्वर्ग नर्ककी होना॥ ८३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कोई = कोई भ्रमिक साधक लोग तो—

अस्थूल = स्थूल देहके कर्म मार्गकी साधनाओं-को छोड़ करके और—

त्याग = कर्म मार्गका तो परित्याग कर दिये, उससे आगे फिर बढ़े, उधर—

झाँईं = उपासना, योगादि साधनोंके द्वारा ध्यान करके झाँईं रूप गाफिलीमें ही चले गये, तो-

सोना = वहाँ भी जीव ज्ञान सुषुप्तिमें जाके सो गये या बेभान हुए, अध्यासी भये।

स्वर्ग = भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोकादि ऊपर सात लोक कल्पनासे ठहराके वहाँपर वायु-रूप सूक्ष्म देहधारी अनेकों देवताएँ वहाँ रहनेका और नाना सुख भोगादिका जो वर्णन किये वा माने हैं, सो भी गाफिली भूल है।

और—

नर्ककी = नीचे एकईस (२१) नरकलोक होनेकी जो कल्पना किये हैं; वहाँ अनेक तरहके नरकोंका दुःख भोग यम दण्ड वर्णन किये हैं, सो भी कल्पना गाफिली ही है। और—

झाँईं = ज्ञान-विज्ञान मार्गोंकी साधनोंसे बाल, पिशाच, उन्मत्त, जड़ादि दशा धारण करके एक अद्वैत ब्रह्मकी मानन्दी जो किये वा करते हैं, सो भी गाफिली भूल है।

होना = वास्तवमें इस जीवको कुछ होनेकी जरूरत तो नहीं थी, परन्तु मानन्दी कर-करके भ्रमिक हो जाता है, इसीसे चौरासी योनियोंमें पड़कर, नानारूपधारी होना तथा दुःख पाना होता है॥

व्याख्या— कोई तो स्थूल विषय भोगके कर्म मार्गमें लगे हैं। कोई स्वर्ग लोकादिकी प्राप्तिकी आशासे कर्म मार्गोंको त्याग करके झाँईं में सोने लगे। यानी उपासना मार्गमें नवधाभक्ति ध्यान आदि साधनाएँ करनेमें लगे, तो वहीं वे गाफिल हो गये। तथा सात स्वर्गोंको ऊपर मानकर वहाँ-पर जो जाना चाहते हैं, सो भी गाफिली है; और सात नरक या एकईस (२१) नरक नीचे होनेकी कल्पनासे मानकर वहाँ बहुत-बहुत यम यातना वर्णन जो किये हैं, सो भी गाफिली है; और योग, ज्ञान तथा विज्ञानकी स्थिति जो कहा है, सो भी गाफिली ही है। ब्रह्मज्ञानकी झाँईं में पड़कर जड़

उन्मत्तवत् दशा जो कर लिये, सो भी गाफिली है। इसप्रकारसे नरजीव अनेक तरहसे धोखामें ही पड़कर गाफिल हुए हैं और गाफिल हो रहे हैं। सो जीवोंको तो कुछ होनेकी जरूरत तो नहीं है, किन्तु, भ्रमसे और ही कुछ होना चाहते हैं। इससे विरूप या कुरूप होकर नाना दुःख ही सहते हैं। अतः अपने हित चाहनेवालोंको पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग करके उस निद्रारूपी गाफिली भूलको सुधारना चाहिये ॥ ८३ ॥

५. स्वर्ग नर्कका सपना चीन्हा * सुषुप्ति शून्य महल घर कीन्हा ॥ ८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं— हे सन्तो !

स्वर्ग=) कोई ऊपर और नीचे स्वर्गलोक और
नर्कका=) नरक लोकोंकी मिथ्या मानन्दी किये हैं। विषयी लोगोंने जिसको स्वर्गीय सुख माने हैं, सोई तो नरकका घर है। और कोई स्वर्ग-नरक दोनोंको ही—

सपना=) स्वप्नके समान असत्य या झूठा
चीन्हा=) समझकर आगे परमात्माको निर्गुण, निराकार मानकर उसको पहिचाननेकी कोशीश करते हैं वा साधना करते हैं। और कोई—

सुषुप्ति=योगमार्गसे समाधि लगाकर सुषुप्तिके समान वृत्तिको लय करके बेभान करते हैं। इस तरहसे तहाँ—

शून्य महल=ब्रह्माण्डमें वृत्ति शून्य करके भ्रमर-गुफाके महलमें जाकर वहाँ ही—

घर कीन्हा=स्थिति या निवास योगी लोगोंने किये या निवास करनेके लिये साधना करने लगे ॥

व्याख्या— भोगी लोगोंने स्वर्ग सुखके समान माना हुआ भोग स्वप्नवत् झूठा नरक जानेका और नरक भोगनेका चिह्न है; और कर्मीलोग बाहर कहीं स्वर्ग वा नरक मानकर तहाँ नरकसे बचकर स्वर्गमें जाना चाहते हैं। और योगीलोग स्वर्ग-नरकको बाहर झूठा समझकर कोई श्रेष्ठ ईश्वर कर्त्ता मानकर उसको चीन्हना चाहते हैं। अतएव, अष्टाङ्ग योग साधनाएँ करके तहाँ वृत्तिको शून्य करके समाधि लगाकर सुषुप्तिवत् गाफिल हुए; योगीलोग इस प्रकार मनको शून्यकर ब्रह्माण्ड महलमें जाकर स्थितिरूपी घर किये। तो भी जड़ाध्यास तो उनका कुछ छूटा नहीं; ज्यों-का-त्यों ही बना रहा; बल्कि अध्यास बढ़ता ही गया ॥ ८४ ॥

६. तुर्या शुद्ध प्रकाश बखाना * साक्षी तीनि अवस्था जाना ॥ ८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तुर्या=चतुर्थ अवस्था तुरिया, ज्ञानसमाधि, सहविकल्प ठहराकर ज्ञानियोंने—

शुद्ध=वहाँपर ईश्वरका शुद्ध सत्त्वगुण माने हैं।

प्रकाश=सबका प्रकाशक परमात्मा जो है, सो महान प्रकाशरूप वा ज्योतिस्वरूप तुरिया अवस्थामें साक्षात् दर्शन होता है।

बखाना=ऐसा भ्रमिक ज्ञानी गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हैं। और—

तीनि अवस्था=जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति- ये तीनों अवस्थाओंको—

जाना=जाननेवाला प्रकाश करनेवाला—

साक्षी=साक्षी स्वरूप परमेश्वर है, सो तुरिया-से जाना जाता है, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या—ज्ञानीलोग तुरिया अवस्थामें शुद्ध सत्त्वगुण शुद्ध आत्माका प्रकाशमात्र रहता है, ऐसा कहते हैं; और ऐसा भी वर्णन किये हैं कि— आत्मा तीन अवस्था आदि सबका साक्षी सर्वज्ञ है, सो अनुभवसे जाना जाता है, उसे जानना चाहिये, ऐसा कहा है ॥ ८५ ॥

७. सर्व साक्षिणी धोखा ज्ञाना * सर्वहि माँहि नास्ति विज्ञाना ॥ ८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सर्व साक्षिणी="तीन देह, तीन गुण, तीन अवस्था, तीन लोक, तीन काल इत्यादि सर्व चराचरका ज्ञाता, सर्व साक्षिणी सोई आत्मा है।" ऐसा जो गुरुवालोगोंने ठहराये हैं, सो उस प्रकारका—

धोखा ज्ञाना=आत्मज्ञान क्या है ? कि, एक

धोखाका ज्ञान है, यानी जीवका धोखा भ्रममात्र है।

सर्वहि माँहि=सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक, सबमें भरा हुआ अद्वैत ब्रह्म जो माने हैं, सो तो सबसे बढ़ करके महा धोखा है। और—

विज्ञाना=विशेष ज्ञानरूप कहा हुआ विज्ञान ब्रह्मको जो एक ही सर्व व्यापक माने हैं, सो वह विशेष भूलकी मानन्दी होनेसे वास्तवमें—

नास्ति=मिथ्या है, कोई वस्तु ही नहीं है ॥

व्याख्या— माना हुआ सर्व साक्षिणी आत्मज्ञान, तो जीवोंका धोखा ही है, भ्रममात्र है; और सबमें पूर्ण व्यापक माना हुआ विज्ञान ब्रह्म वह तो सबसे अधिक नास्ति=जो नहीं है, ऐसा झूठा ज्ञान है। इससे जीवोंका कोई कल्याण होनेका नहीं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

८. आदि सन्धि नहिं सूझै ताही * भरमहिं सदा ताहिके माँही ॥ ८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

आदि सन्धि=नर जीवकी मानन्दी जो कि, आदि वा शुरूरूप मनुष्य देहमें मानन्दी किया कि— आदिमें जगत् उत्पन्नकर्त्ता कोई आदि कर्त्ता ब्रह्म होगा वा है।

नहिं सूझै=पारखदृष्टि न होनेसे यह तो मनुष्यों-की ही कल्पना है, ऐसा उन्हें देखनेमें नहीं आता है वा इस भेदको वे नहीं समझते हैं। अतएव—

ताही=अविवेकी मनुष्य धोखासे उसी कल्पित ब्रह्म आदि कर्त्ताको मानकर—

सदा=सदा-सर्वदा वा हरहमेशा—

भरमहिं=भ्रमिक होकर भ्रमते ही रहते हैं और वे दूसरोंको भी भ्रमाते ही रहते हैं।

ताहिके= } उसी मन-मानन्दीरूप कल्पित ब्रह्म
माही= } और विषयोंमें ही गड़कर पड़े हैं और उसीमें आसक्त हो आवागमनमें ही भ्रमते-भटकते रहते हैं ॥

व्याख्या— 'आदि सन्धि' कहिये शुरूमें मनुष्योंने ही ऐसी मानन्दी किये कि, जगत्का आदि कर्त्ता कोई ब्रह्म-परमेश्वर होगा? पारख न होनेसे भ्रमिक मनुष्योंको तो कुछ सूझ ही नहीं पड़ता है या देख नहीं पड़ता है कि, हमने कल्पना करके जो कर्त्ता माने हैं, सो सत्य है वा असत्य है। इससे मिथ्याको ही सत्य मान-मानके उसी कल्पनामें ही वे पड़े हैं। ऐसे जीव सर्वदासे ही जड़ाध्यासी हो रहे हैं। बिना पारख सदा-सर्वदा उसी भ्रममें ही वे पड़े रहेंगे, तो आवागमनोंमें ही सदा पड़े रहेंगे। क्योंकि, भ्रान्ति अध्यास छूटे बिना नरजीवोंको स्थिति मिल नहीं सकती है; पारखी सद्गुरुके बोधके बिना भ्रान्ति किसीकी छूट नहीं सकती है। इसकारणसे सदा पारखी सन्त सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही लगे रहना चाहिये ॥ ८७ ॥

९. पुनि पुनि जाय मरै संसारा * समता करहिं बुड़हिं भौ धारा ॥ ८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुनि पुनि=फिर-फिर भी बारम्बार उलट-पलट करके—

संसारा=संसारमें संशय ग्रसित नरजीव सब सुख प्राप्तिके वास्ते—

जाय=स्त्रियोंके पासमें और गुरुवा लोगोंके पासमें जा-जा करके उनकी खानी-वाणीके जालोंमें फँस जाते हैं; तथा—

मरै=नाना कष्ट-क्लेश भोगते हुए शरीर छोड़के मर जाते हैं, फिर देह धरकर जन्म लेते हैं, ऐसे जन्म-मरणमें अध्यासी जीव पड़ते हैं।

समता= } अज्ञानसे भोगकी समता करते हैं
करहिं= } और ज्ञानसे सम समान चराचरमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी दृढ़ करते हैं। ऐसे सब मनुष्य लोग—

भौ धारा=खानी-वाणीकी प्रबल भवधारामें बहते हुए चले जाते हैं। और अन्तमें—

बुड़हिं=जड़ाध्यासके बोझासे लदकर गर्भवास-में जाकर डूब जाते हैं ॥

व्याख्या— जगत्में विषय भोगोंके कर्म और साधनाओंमें नरजीव बहुत-बहुत कष्ट सहते हुए भी उसे नहीं छोड़ते हैं; और फिर-फिर भी उसीमें जायके पड़ते हैं। संशय ग्रसित होकर संसार-

में मनुष्य विषय भोग प्राप्ति और ब्रह्म प्राप्तिके लिये मर जाते हैं। अनेकों दुःख झेलते हुए भी आशा-तृष्णा नहीं छोड़ते हैं। ऐसे में ही आयु बिताकर मृत्युको प्राप्त होते हैं। ज्ञानी लोगोंने जड़-चेतनमें भ्रमसे समता करके परिपूर्ण व्यापक कोई ब्रह्मको माने हैं। वे वाणी कल्पनाकी धारामें डूब गये, तो चारखानीमें जायके पड़े; बिना विवेक। अर्थात् वेदान्तीजन ज्ञान कथनसे तो ब्रह्मका प्रतिपादन करते हैं; किन्तु, फिर-फिराके संसारमें जाकर विषयोंमें रमण करते हैं, और अद्वैतमें सबकी समता करके जड़ाध्यासी हो भवधारामें डूब मरते हैं। तहाँ बारम्बार चौरासी योनियोंमें गोता लगाया करते हैं, बिना पारख ॥ ८८ ॥

१०. जागृति पृथिवी सपना स्वासा * सुषुप्ति शून्य तुर्या परकाशा ॥ ८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जागृति = जाग्रत् अवस्थामें नरजीव सब—

पृथिवी = स्थूल देहके कर्म मार्गोंमें लगकर देखा, सुना हुआ विषय भोगादि कर्मोंमें लगे रहतेहैं।

सपना = स्वप्न अवस्थामें सूक्ष्म देहके साथ नाना भासोंको देखनेमें लगे रहते हैं; और स्वप्नवत्-

स्वासा = भक्तलोग उपासना मार्गमें लगकर श्वासाके साथ सूक्ष्म ध्यानमें लगे रहते हैं।

सुषुप्ति = सुषुप्ति अवस्थामें कारण देहके साथ जीव तटस्थ रहता है, वृत्तियाँ सब लय हो रहती हैं।

शून्य = तैसे ही योगमार्गसे वृत्तियोंको शून्य करके समाधिमें सुषुप्तिवत् शून्य बेभान हो योगीलोग गाफिल पड़े रहते हैं।

तुर्या = तुरिया अवस्थामें महाकारण देहके साथमें जीव रहता है, इसकारण—

परकाशा = ज्ञानमार्गमें एकाग्रता होनेसे वहाँ ज्योतिप्रकाश नजर आता है, उसी दृश्य भास आदिमें बिना पारख जीव सब भूल गये और भूले जा रहे हैं॥

व्याख्या— पृथ्वीपर नरजीव जाग्रत् अवस्थामें स्थूलदेह सहित कर्म मार्गमें लगे रहते हैं। स्वप्नमें सूक्ष्म देहका व्यवहार रहता है। तैसे श्वासमें लक्ष्य लगायकर उपासनासे ध्यान, भक्ति करते हैं, तहाँ भक्तलोग स्वप्नवत् दृश्य भासमें भूल जाते हैं। योग मार्गसे योगीलोग शून्य सुषुप्तिवत् समाधिमें गाफिल पड़े रहते हैं; और तुरिया अवस्थामें केवल आत्माका प्रकाश रहता है, सोई ज्ञानमार्गसे उसे सर्वश्रेष्ठ माने हैं ॥ ८९ ॥

११. चारि अवस्था भले विचारे * एक एकै सबै सुधारे ॥ ९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चारि अवस्था = उपरोक्त चारों अवस्थाओंके चार मार्गोंके अध्यासवश जीव चारखानियों-में गये और चले जा रहे हैं। इसवास्ते—

भले = हे भले मनुष्यो! तुमलोग इसको भलीभाँतिसे या अच्छी तरहसे—

विचारे = यथार्थ विचार करो, बन्धन और मुक्ति होनेके कारणको ठीक तरहसे जानो। और पारखी साधु-गुरुके सङ्गमें निर्णयसे परीक्षा करके ठीकसे विचार करना चाहिये।

एक = } फिर एक-एक करके खानी-वाणीकी

एकै = } मोटी-झीनी वासना या अध्यास उन सबोंको निकालते जाओ, हटाते जाओ, परखके त्याग करते जाओ। और—

सबै = जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया आदि पाँचों अवस्थाओंके सब ही कर्म मानन्दीको हटाते हुए ठीक-ठीक तरहसे उन सब कर्मोंका—

सुधारे = सुधार करना चाहिये। बन्धनका त्याग करै, और मुक्तिदायी सद्गुणोंको ग्रहण करे, इस तरहसे सुधार करे॥

व्याख्या— इन चार अवस्थाओंको और इनके कर्मोंको भी गुरु सत्सङ्ग द्वारा अच्छी तरहसे या भलीभाँतिसे निर्णय करके ठीक-ठीक विचार करलेवे कि— इसीके अध्यासवश जीव चारखानीमें जाते हैं। अतएव इसको एक-एक करके सबोंका सुधार कर लेना चाहिये। सत्कर्म, सत्सङ्ग, सद्वासनासे जाग्रत् अवस्थाको सुधारे, तथा गुरुभक्ति या बोधभाव, सद्विचार धारण करके उससे स्वप्नके विकारको त्यागै, इसतरह स्वप्नको सुधारे; और ज्ञान-अज्ञान, योगादिकी गाफिलीको हटाकर

वृत्ति स्थिर रखकर सुषुप्तिको सुधारे एवं पारखमें एकरस स्थिति कायम करके तुरियाके विकारको सुधारे। इसप्रकारसे पारखी सद्गुरुके पारखबोध लेकर सबोंको सुधारकर लेवे ॥ ९० ॥

१२. बिना सुधारे भरम न जाई * यमके फन्दा रहै अरुझाई ॥ ९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बिना सुधारे = अपनी उलटी समझको पारखी सद्गुरुके सत्य बोधसे सीधा करके ठीकसे सुधारे बिना या बनाये बिना, तो कभी भी

भरम = } नर जीवोंकी भ्रान्ति, भूल, धोखा,
न जाई = } अध्यास, मानन्दी आदि बन्धन कभी छूट नहीं सकता है वा जा नहीं सकता है, और भ्रमवश जीव संसारमें—

यमके = गुरुवा वञ्चकलोग और स्त्री, पुत्र, कुटुम्बियोंके और मनमें जमी हुई वासनाओं-के-इन्हीं यमके—

फन्दा = जाल-फाँसोंमें वा अरुझनोंमें ही—

अरुझाई = जा-जा करके फँसा हुआ, लटका हुआ, जकड़ा हुआ, ऐसे ही सदा बन्धनोंमें ही

रहै = पड़ा रहता है; पारख न होनेसे कभी छूट नहीं सकता है ॥

व्याख्या— चार अवस्थाओंके कर्म और षट् पशुधर्म इसीको सुधारे बिना जीवोंकी भ्रान्ति तथा भव बन्धन कभी छूटनेके नहीं। भ्रमवश मनुष्य गुरुवालोग और स्त्री तथा मन इन यमोंके फन्दों वा जालोंमें अरुझ गये; तथा अभी उसीमें अरुझ रहे हैं या अरुझ जायेंगे; बिना पारख किसीकी छुटकारा नहीं होती है ॥ ९१ ॥

१३. सूझि न परे दिनोंदिन अन्धा * पचिपचि मरै न छूटै गन्धा ॥ ९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अन्धा = जैसे अन्धेको कुछ वस्तु दिखाई नहीं देती है; तैसे ही पारख विवेकदृष्टि या ज्ञान नेत्रहीन नर जीवोंकी गति अन्धेके समान है। क्योंकि, बेपारखीको—

सूझि न परे = सत्य-असत्य, जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्ति यह कुछ भी दिखाई नहीं देती है। सबसे परे परमात्मामें सब एक समान व्यापक मिला हुआ मानते हैं।

दिनोंदिन = प्रतिदिन वा रोज-ब-रोज, ज्ञानी और अज्ञानी ये लोग भोग और भ्रममें पड़के अन्धे ही हो रहे हैं। इसकारणसे—

गन्धा = गन्दी देहमें रहनेवाला अज्ञानी नरजीव गन्दा जड़ासक्त हो-होकर—

पचिपचि = अनेक साधना और भोग वासनाओं-की कीचड़में गड़-गड़कर रच-पच, लत-पत हो करके—

मरै = दुःख पाते हुए मर जाते हैं, और आवागमनोंमें पड़े रहते हैं। इस तरहसे—

न छूटै = आजतक कभी जीव छूट नहीं पाये। और पारख बोध स्वरूप स्थिति हो अध्यास रहित हुए बिना कभी जीव चारखानीके दुःखोंसे छूट नहीं सकते हैं। इसीसे अभी पारख बोध प्राप्त करके मुक्त हो जाना चाहिये ॥

व्याख्या— पारखदृष्टि न होनेसे नरजीवोंको खानी-वाणीका बन्धन तो कुछ दिखाई नहीं देता है, इससे दिनोंदिन ज्ञानी और अज्ञानी विवेकहीन अन्धे होकर अहितको ही हित मानकर पकड़ने लगे या पकड़ लिये हैं। इससे जीव गन्धा = जड़ाध्यासी हो-होकर, पच-पचकर, दुःख भोग करके मरते हैं; और चौरासी योनियोंमें जाकर अनन्त दुःख सहन करते हैं, बिना पारख ॥ ९२ ॥

साखीः— खाया पीया अघायके * सोवै पाँव पसार ॥
[९] भोंदू कछु जानै नहीं * को हम ? को संसार ? ॥ ९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ज्ञानी और अज्ञानी नरजीव संसारमें कैसे भूले हैं सो इस साखीमें कहते हैं; सुनिये!:—

खाया = अज्ञानी संसारी लोग अनेक पकवान खाकर पेट भर लिये, और ज्ञानी लोग सब चराचर जगत्को एक ब्रह्मका पेट अन्दरमें लय करके धोखाका भोजन खाते भये तथा—

पीया = कोई शर्बत, पानी आदि पेय पदार्थ

पीने लगे; और कोई सब वेद-शास्त्रादि वाणियोंकी मानन्दीसे पीकर वा ग्रहण करके अन्तःकरणमें लयकर अनिर्वाच्य बने।

अघायकै=इसप्रकारसे तृप्त-सन्तुष्ट और महाभ्रमिक हो-हो करके ऐसे अघायके—

पाँव पसार= कोई पाँव फैलायकर आरामसे सोने लगे; और कोई मन-मानन्दी कल्पना-को फैलाकर दशों दिशाओंमें परिपूर्ण 'मैं व्यापक अद्वैत ब्रह्म हूँ!' ऐसा निश्चय करके—

सोवै=कोई अज्ञान सुषुप्तिमें मस्त होकर सोये और कोई ज्ञान सुषुप्तिमें मस्त गरगाफ होकर सो गये या ऐसे सोने लगे। अतएव—

भोंदू=अनाड़ी, मूढ़मतिवाले भुलक्कड़ और दूसरेको भ्रमानेवाले ब्रह्मज्ञानी भोंदू लोग—

कछु=उपरोक्त प्रकारसे ज्ञान-अज्ञान निद्रामें सोकर गाफिल होनेके सिवाय और कुछ भी—

जानै= वे नहीं जानते हैं; सत्यासत्य,

नहीं= जड़-चेतन का निर्णय करना तो वे कुछ भी जानते ही नहीं और—

को हम= हम कौन हैं? जगत् क्या है?

को संसार= जड़-चैतन्यका क्या स्वरूप है? क्या सम्बन्ध है? बन्धन कैसे है? और मुक्ति कैसे होगी? इत्यादि बातोंकी तो उन्हें कुछ समझ ही नहीं है; "मैं सत्य चैतन्य जीव हूँ, जड़ तत्त्वोंका पसारा सब संसार हैं; यह अनादि है।" परन्तु, 'हम कोई सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं। जगत् हमारा विलास है। हमारेमें द्वैत जगत् भिन्न होनेका कोई संशय ही नहीं है, हम तो सदा ही अद्वैत ब्रह्म हैं" ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— विषयासक्त पामर अनाड़ीलोग षट् पशुधर्ममें ही प्रवीण रहते हैं। इससे अच्छे-अच्छे मेवा-मिष्टान्न, पकवान, पेटभर ठूँस-ठूँसकर खाये तथा पानी, शर्बत, शराब आदि भी खूब भरपेट पी गये; ऐसी ही रीतिसे तो गलेतक खा-पीकर तृप्त हुए, तहाँ अघा करके और कोई अच्छा काम तो उनसे नहीं हुआ; ज्यादा खानेसे शरीरमें आलस्य घिर आई, तो एकान्त स्थानमें जाकर पाँव पसारकर ऊपर चद्दर तानके सो गये। अब उन्हें और कोई बातसे प्रयोजन नहीं रहा। सिर्फ मस्त होकर सोना ही वे अच्छी तरहसे जानते हैं। वैसे भोंदू अनाड़ीलोग निज-पर हित-सुधारकी बातें तो कुछ भी जानते ही नहीं हैं। हम कौन हैं? संसार क्या है? हमारा क्या कर्त्तव्य है? इत्यादि अच्छी बातोंकी उन्हें कुछ खबर ही नहीं है; और न वे इन बातोंको जानना ही चाहते हैं। बस, पशुके समान ही व्यर्थ जीवन बिता देते हैं॥

अथवा गुरुवालोग, ब्रह्मवादीजन कल्पनाके मुख पसारकर चराचर जगत्को ही खा गये। ब्रह्मके अन्दर विराटके पेटमें सबको समा लिये। तथा वेद, शास्त्र, पुराणादिकी वाणियोंको यथेष्ट पी गये तो मन, बुद्धि, वाणीको लय करके अनिर्वाच्य, निर्विकल्प होते भये; और दशों दिशाओंमें परिपूर्ण व्यापक एक अद्वैत स्वरूप 'ब्रह्म मैं हूँ!' ऐसा निश्चय करके मन-मानन्दीका पाँव पसार करके सो गये; और गाफिल हो गये। तैसे ही कोई परमहंसदशा बाल, पिशाच आदि वृत्ति धारणकर भक्षाभक्षका विचार छोड़ दिये; सर्वभक्षी अघोरीवत् बने। जैसा-तैसा यथेच्छ खान-पान भी करने लगे; जड़वत्, अजगरवत् कहीं भी सोये पड़े रहते हैं; वे भोंदू मूढ़ ही बने हैं। ऐसे ब्रह्मज्ञानी, विज्ञानीलोग सत्यासत्यका विवेक कुछ तो जानते ही नहीं हैं। हम कौन हैं? संसार क्या है? इससे उनको कुछ वास्ता ही नहीं है। परन्तु, वे कहते हैं कि, जगत् दिखता है, इसीसे तो इसका उत्पन्नकर्त्ता कोई परब्रह्म है; "अहंब्रह्मास्मि" सो जगत्के आदि कारण ब्रह्म तो "मैं ही हूँ!" क्योंकि 'कोऽहं' का भेद मिटा दिया तब सोई 'शिवोऽहं' है, फिर ब्रह्ममें द्वैत कहाँ रहा? संसार कहना कैसा? जगत् तो तीन कालमें नहीं है; सब कुछ एक ब्रह्म ही है। ऐसा कल्पनासे मान लिये हैं, परन्तु भ्रम संशय तो उनका नहीं छूटा। बिना पारख महान धोखा गाफिली नहीं छूटी, और अब उनसे भ्रम छूट सकता भी नहीं, ऐसे महान धोखेमें ज्ञानी-विज्ञानीलोग गाफिल पड़े हैं॥ ९३॥

सम्बन्ध— अब आठवाँ खण्डमें १३ चौपाई, और ३ साखीका वर्णन हुआ है। उसमें छठवाँ

पशुधर्म 'मोह' का त्याग और सुधारके लिये कहा है; ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ आठ खण्ड ॥ ८ ॥ ❀ ॥

१. छठयें मोह माया परचण्डा * कुल परिवार को नाना दण्डा ॥ ९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
छठयें = छठवाँ नम्बरमें पशुधर्म जो है—
मोह = सो मोह-ममता आसक्तिका होना है।
माया = कायाके सम्बन्धसे माता-पिता, स्त्री, पुत्रादिकोंका नाता और उनके मोह तथा गुरुवा लोगोंका मोह प्रेमादि—
परचण्डा = संसारमें तीव्र, वेगवान्, बलिष्ठ छुटनेको अति कठिन हो रहा है। उसमें—
कुल = जाति-विरादरी, ब्राह्मण-क्षत्रियादि कुलके तथा कुल (सब) मत-पन्थोंकी रीति-रिवाजमें लोग पड़े हैं। सो—
परिवार = भाई-बान्धव, सगेभाई, स्त्री-पुत्रादि घरके परिवार तथा चेला-चाटी, गुरुभाई आदि परिवारोंका सङ्ग—
को = उन लोगोंके मोहसे उन्होंको पालन-पोषण या परवरिश करनेके वास्ते—
नाना दण्डा = नाना प्रकारसे मेहनत, मजदूरी, नौकरी, चाकरी आदिका दुःख और अनेक साधनाओंके कष्ट सहन करनेका, और भीख माँगनेका दुःख वे सहते रहते हैं, अथवा जबरन ऐसे दुःख सहना पड़ता है। इससे जीवकी कोई भी भलाई नहीं होती है ॥

व्याख्या— छठवाँ पशुधर्ममें 'मोह' आता है; आसक्तिको ही 'मोह' कहते हैं। माया-काया, पिता-माता, स्त्री-पुत्र, कुल-कुटुम्बी आदिकोंका मोह संसारमें अति प्रचण्ड-तीक्ष्ण हो रहा है। कुल परिवारोंके लिये, संसारी लोग नाना तरहके दण्ड वा दुःख सङ्कट सहते हैं। परन्तु, वे मोह नहीं छोड़ सकते हैं और मायामें गुरुवालोग भी आ जाते हैं। जैसे संसारके मोह छूटनेको कठिन हो रहा है, तैसे ही गुरुवाओंके मोह भी नहीं छूटता है, वह बड़ा बलिष्ठ है। इसीसे वे साधनोंका नाना दण्ड सहा करते हैं। परन्तु, कल्पनाको छोड़ नहीं सकते हैं, इसलिये मोहको प्रचण्ड कहा गया है ॥ ९४ ॥

२. सो परिवार स्वप्नको साथी * झूठा नेह देह कुल जाती ॥ ९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
सो परिवार = माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई आदि कुटुम्बीलोग तथा चेला-चाटी आदि सो वे स्वार्थी परिवार लोग जो हैं, सो सब—
स्वप्नको = } स्वप्नमें दिखाई देता हुआ सरीखा
साथी = } झूठे साथी-सङ्गी लोग हमेशा साथमें न रहनेवाले हैं।
झूठा नेह = इसवास्ते जगत्की प्रीति और ब्रह्मका प्रेम झूठा असत्य है। और—
देह = देह भी क्षणभंगुर नाशवान् है।
कुल = तैसे ही कुल-कुटुम्बी भी हमेशा बने न रहनेवाले, बिछुड़ जानेवाले हैं।
जाती = वर्ण-आश्रम जाति-पाँति और नाना सिद्धान्त भी जो माने हैं, सो सब मनःकल्पित असत्य प्रपञ्च हैं ॥

व्याख्या— हे भाई ! जिन परिवारोंको तुम अपने करके मान रहे हो, सो वे तो स्वप्नके समान झूठे साथी हैं। संसारमें अज्ञानका व्यवहार भी एक बड़ा बाह्य स्वप्नके समान है; वैसे ही कार्य हो रहा है। स्वप्नके साथीसे किसका क्या भला होयगा ? दुनियाँ सब मतलबी हैं। अतएव परिवारोंसे नेह लगाना झूठा ही है। तथा देवी-देवता, ईश्वरादिमें प्रेम लगाना, सो भी झूठा है; और देह, कुल-जातिकी मोह-ममता सब भी झूठी है। नाना सिद्धान्त जो माने हैं, सो सब भी झूठा है। वास्तवमें सत्य तो जीव स्वयं ही है। उसे भटकानेवाले सो भी झूठे काल बने हैं। ऐसा अच्छी तरहसे जान लेना चाहिये ॥ ९५ ॥

३. तासों नेह नहीं दृढ़ कीजे * जीव है एक कहाँ कहाँ दीजे ॥ ९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
तासों = उन झूठे स्त्री-परिवारोंसे और गुरुवा-लोगोंसे कदापि—
नेह = प्रेम-प्रीति आसक्ति वा स्नेहको—

नहीं=कभी नहीं लगाना, उससे कुछ कल्याण नहीं होता है। इसवास्ते—

दृढ़= कीजे= } वासना, मोहको दूसरोंमें दृढ़ करके अपनेको मत बाँधिये! बान्धवोंमें प्रेम-आसक्ति दृढ़ न कीजिये।

जीव है एक=शरीरमें जीव तो एक ही है, फिर अपने एक जीवको भुलाकर-भटकाकर—

कहाँ कहाँ= दीजै= } कहाँ-कहाँ ले जाकर डाल दोगे? कहाँ-कहाँपर मनको देओगे? खानी-वाणीमें जहाँपर भी मन लगाकर आसक्त होओगे, सो सब तुम्हें बन्धन ही होवेगा॥

व्याख्या— इसवास्ते उन लोगोंसे अर्थात् जीवको बन्धनोंमें डालनेवाले वञ्चकोंसे कभी भी भूल करके मोह, नेह दृढ़ नहीं करना चाहिये। नहीं तो तुम भव जालोंमें फँस जाओगे। हे भाई! अपने जीव तो एक है, यों तो शरीर बन्धनमें जीव पहलेसे ही पड़ा है; और फिर स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, देवी, देवता, भूत, प्रेत, ईश्वर, खुदा इत्यादि नाना खानी और वाणी प्रपञ्च, जञ्जालोंमें कहाँ-कहाँपर फँसाना चाहते हो? इससे विचार करो, इन्होंमें मनको मत लगाओ और जीवको धोखेमें मत डालो॥ ९६॥

४. दिना कईकके सङ्गी कहिये * तेहि कारण नाना दुःख सहिये॥ ९७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कहिये=कहो तो भला! जिनको तुम अपने प्रिय स्वजन मित्र करके मान रहे हो, सो वे लोग तुम्हारे—

दिना = कईकके = सङ्गी = } कितने दिनके साथी हैं? प्रारब्ध कर्म भोग शेष हैं, तबतक सब लोग सङ्गी-साथी बने हैं और प्रारब्ध पूरा होनेपर फिर कोई किसीके सङ्गी नहीं रहते हैं। कितनेक लोगोंके शरीर छूट गये, उनके सङ्गमें कोई गया क्या? कोई भी गया नहीं, तो फिर तुम्हारे ही सङ्गमें कौन जायगा?

तेहि कारण=इसवास्ते साथ न जानेवाले स्वार्थी लोगोंके मोहमें पड़कर उस कारणसे जीव—

नाना दुःख सहिये = } अभी तो मेहनत, मजदूरी आदिमें लगके नाना तरहके दुःख सहन करते हैं। फिर देह छूटनेके बाद भी कर्म अभ्यासवश जन्म-मरणादि नाना योनियोंमें त्रिविध तापोंका दुस्सह दुःख सहते रहते हैं॥

व्याख्या— अरे भाई! जिन परिवारोंको तुमने अपना करके माना है, जिनके मोहमें तुम दिवाने हो रहे हो, सो तुम्हारे कितने दिनके सङ्गी-साथी हैं? थोड़े दिनकी आयु है, तबतकके सङ्गी हैं। उसमें भी स्वार्थी लोग कोई किसीके सुख-दुःखोंके सङ्गी नहीं होते हैं। तुम तो देख ही रहे हो, कितने पास-पड़ोसके लोगोंका शरीर छूट गया, फिर उन्होंके साथमें कोई गया क्या? कोई नहीं गया, तो फिर तुम्हारे सङ्गमें भी कौन जायगा? जिनके वास्ते तुम जिस हेतुसे नाना दुःख सहते हो, सो कोई तुम्हारे हितकारी नहीं हैं। अध्यासी मूढ़ नरजीव अभी भी यहाँ नाना दुःख सहते हैं, फिर देह छोड़कर चौरासी योनियोंमें जायके भी अनेक दुःख ही सहते हैं॥ ९७॥

५. पुनि सो इनकी मोह बहोरी * चौरासी राखहिं बरजोरी॥ ९८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुनि सो=फिर सो उसी बन्धनदाईमें ही उलट-पलट करके जाके जीव पड़ते हैं।

इनकी=अविवेकी मनुष्योंकी स्त्री, पुत्र, धनादियोंमें और वाणी कल्पनाओंमें—

मोह=मोह, ममता, आसक्ति दृढ़ हो-होके—

बहोरी=मनुष्य पदसे बारम्बार फिर-फिरके उसीमें मन लगा रहता है।

बरजोरी=वही जड़ाभ्यास जबर्दस्त होनेसे, जीवोंको वासनाके खिंचाव होनेसे जबरन—

चौरासी=चारखानी चौरासी-योनियोंमें ही ले जाकर डाल देता है, और वहींपर ही—

राखहिं=कर्म भोगाके जीवोंको बाँध रखता है। जन्मृतिमें ही डाल रखता है॥

व्याख्या— फिर स्त्री, पुत्र, धन, परिवारोंके मोह और देवी, देवता, ईश्वरादि वाणी कल्पनाका मोह, नर जीवोंको भव-बन्धनमें उलटाकर बारम्बार जबरन खैंचके चौरासी योनियोंमें ही डाल

रखता है। अध्यास रहनेसे अनेकों दुःखोंसे कभी छुटकारा नहीं होता है ॥ ९८ ॥

६. बहुत कष्ट कै दाम कमावै * सो सब विषयके फन्द उड़ावै ॥ ९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारी लोग संसारमें—

बहुत = } बहुत कष्ट करके शीत-उष्ण सहकर
कष्ट कै = } बड़े प्रयत्न, मेहनतसे—
दाम = रुपया, धन-सम्पत्ति आदि दौलत—
कमावै = कमाई करते हैं; रुपया जमा करके धन इकट्ठा करते हैं।
सो सब = सो बड़े कष्टसे प्राप्त किया हुआ दौलत या धन सब ही स्वार्थ साधनेमें—
विषयके = } विषयोंके जालोंमें लगाकर उड़ा
फन्द = } देते हैं। विवाह, जाति-विरादरीके
उड़ावै = } भोजमें, नाच-तमाशोंमें भोग विलास क्रीड़ाओंमें ही बहुत धन खर्च करके उड़ा देते हैं ॥

व्याख्या— संसारीलोग बहुत-बहुत कष्ट करके दाम-रुपया, पैसा, धन-सम्पत्ति कमाते हैं। एक-एक पैसा जोड़ते-जोड़ते लाखों-करोड़ों रुपया एकत्र कर लेते हैं। सो सब विषय-फन्दा भोग-विलासोंमें ही उड़ा देते हैं; शादीमें नाच-तमाशा करानेमें रुपया खर्च कर डालते हैं, स्वार्थिक काममें तो खूब दिल खोलकर धन लगा देते हैं। परन्तु, परोपकार दया, दान, साधु सेवामें बहुतेरे धनिक लोग कुछ भी धन नहीं लगाते हैं। विषय प्रपञ्चके जाल बढ़ानेमें ही बहुत धन उड़ा देते हैं॥९९॥

७. कृपिण कनक बहु भाँति जोगावै * सर्प होय निज जन्म गमावै ॥ १०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कृपिण = कञ्जूस, लोभी, लालची आदमी ऐसे कृपणलोग संसारमें—
बहु भाँति = बहुत तरहसे वा बहुत प्रकारसे शारीरिक, मानसिक कष्ट-क्लेश सहन करके भी कौड़ी-कौड़ी जोड़कर—
कनक = सोना, चाँदी, रुपया, पैसा, रत्नादि—
जोगावै = खर्चसे बचाय-बचायके पेट मार-मारकर संग्रह करते-करते हजारों, लाखों, करोड़ों, अरबों, खरबों धन-सम्पत्ति जमा कर लेते हैं।
निज = सो अपने और परायेके अच्छे काममें तो लगाते ही नहीं हैं, दान-पुण्यमें भी खर्च नहीं करते हैं, इसी तरह धन, जोड़-जोड़कर—
जन्म = } मनुष्य जन्मकी आयु बिता देते हैं।
गमावै = } और धन गाड़कर रखते हैं, सो भी व्यर्थ गमाय जाता है, नष्ट हो जाता है। ऐसे नर जन्मको गमायके उसी धनमें वासना दृढ़ रहनेसे, जीव देह छूटनेपर फिर—
सर्प होय = साँप होय करके वह जन्म लेता है। फिर धन रक्खी हुई जगहमें ही घर बनायके रहने लगता है ॥

व्याख्या— कोई कृपण लोग कञ्जूसी करके बहुत सारा धन बटोरते हैं; वे अपने स्वार्थमें तथा खाने-पीनेमें भी बहुत कम खर्च करते हैं; और परमार्थमें तो कभी भी कुछ द्रव्य ही नहीं लगाते हैं। ऐसे लोभी, कञ्जूस लोग सोना, चाँदी, रत्न आदि बटोरकर संग्रहकर बचायके कहीं छिपा रखते हैं। जिन लोगोंका उसी गाड़ा हुआ, छिपाया हुआ, धनकी वासना रहकर शरीर छूट गया, तो वे "जहाँ आशा तहाँ वासा" के अनुसार धनकी वासनासे फिर सर्प होयके जन्मते हैं, और धन रक्खी हुई जगहमें ही निवास करते हैं। उसीके आसपास घूम-फिर कर रक्षा करते रहते हैं। कभी किसीसे मारे भी जाते हैं। हकनाहक नरजन्मको व्यर्थ गमाकर आयु खो देते हैं; और ऐसे नीच तीन खानीमें पड़े रहते हैं ॥ १०० ॥

८. ममता मोह सदा दुःखकारी * पशु नहिं चीन्है कर्म विकारी ॥ १०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ममता मोह = देह, गेह, परिवार और कल्पना-की मद-ममता, मोह, आसक्ति जो बढ़ाये हैं, सो—
सदा = } सदा-सर्वदा जीवोंको दुःखदायी
दुःखकारी = } हैं; दुःख देती ही रहती हैं।
पशु = मनुष्यरूप धारे हुए षट्पक्षपाती अविवेकी

नरपशु आदि जो हैं, सो—
कर्म विकारी=विकारी जड़ अध्यासोंके कर्मको—
नहिं चीन्है=बन्धनरूप चीन्हते, पहिचानते नहीं हैं, इसीसे बन्धनमें फँसे पड़े हैं ॥

व्याख्या— खानी जालमेंः- स्त्री, पुत्र, धनादिकी मोह-ममता, और वाणी जालमेंः- ईश्वरादिकी मानन्दी तथा गुरुवा लोगोंकी ममता और मोह-मद सदा-सर्वदा जीवोंको दुःखकारी है। (१) नरपशु, (२) स्त्री पशु, (३) सुर पशु, (४) वेद पशु, (५) शास्त्र पशु और (६) पुराण पशु- ऐसे षट् पक्षपाती पशु स्वभावधारी पारखहीन रूप मनुष्य महा पशु ही बने हैं। वे पशु बुद्धिवाले विकारी कर्मोंको तो नहीं पहिचानते हैं। इसीसे काम, क्रोधादि, कल्पना, अनुमानादि विकार बढ़ाकर नाना कर्म करके जड़ाध्यासी होकर आवागमनोंमें ही पड़े रहते हैं; बिना विचार ॥ १०१ ॥

९. सो सब पशुवत कर्म सुधारै * कसर खोट सबहीं खोय डारै ॥ १०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
पशुवत कर्म=पशुके समान जो कर्म हैं, सो तथा छाजन-भोजनादि षट् पशुधर्म, और अन्याय, कुसङ्ग, कुकर्म इत्यादि—
सो सब=सो वह सब ही विकारोंको बन्धनरूप जानकर त्याग करैं; और—
सुधारै=पारखी सद्गुरुके उपदेश प्रमाणसे मन, वचन, कर्मादिको सब प्रकारसे सुधार करै।
कसर खोट=तन-मनके सब कसर तथा मत-पन्थादिके सब खोट, विकार, विषय, कल्पना इत्यादि—
सबहीं=सब बन्धनोंको अच्छी तरहसे परख करके—
खोय डारै=नाशकर डारै, मिटाय डारै तथा निजस्वरूप स्थितिमें स्थिर रहै ॥

व्याख्या— छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा, मोह, काम, क्रोध, लोभ इत्यादि सो सब ही पशुवत् कर्म विषय भोगोंके पशुधर्मको अच्छी रीतिसे सत्सङ्ग करके सुधार कर लेवे। खानी-वाणीके सब कसर-खोटोंको परखकर उसे मिटाय डारे वा नाश कर डारे, स्वयं स्वरूपमें स्थिर, ऐसे शुद्ध स्वच्छ होय रहे ॥ १०२ ॥

१०. हृदया साँच साँच मुख भाखै * कपट खोट एकौ नहिं राखै ॥ १०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
हृदया साँच=हृदयमें जैसा सत्य चैतन्य जीवका निवास है, तैसे ही सत्य बोध, सत्य रहनीका धारण हृदयमें सदा बनाये रक्खै।
साँच=सत्य गुरुमुख वाणी साँच वचनको ही—
मुख भाखै=मुखसे मुख्य करके कहे, बोले—
कपट खोट=छल-कपट, दगाबाज, खोटी-चाल, कल्पना, धोखा और विषय, क्रोधादि-
एकौ नहिं राखै=ऐसे एक भी विकार अपने मन, वचनमें तथा व्यवहारमें नहीं रक्खे, शुद्ध रहै ॥

व्याख्या— हृदयमें भी सत्यकी धारणा रक्खे और मुखसे भी सत्य-सत्य ही वाणी कहे। सत्य चैतन्य निज स्वरूप जीव हृदयमें ही स्थित है। उसका सदा विचार करे, वृत्तिको कहीं डोलायमान न करे, स्थिर रक्खे। इसप्रकार साधु-गुरुके सत्सङ्गमें सार-असारको यथार्थ परख करके निष्कपट होवे; और एक भी कपट-खोटका कसर अपने मनमें नहीं रक्खे, अर्थात् जैसे बाहर तैसे भीतर भी रहना चाहिये। मुख और हृदयमें एका-सा सत्य रहना चाहिये। सद्गुरुने कहा हैः—
"जैसी कहै करै जो तैसी। राग द्वेष निरुवारै ॥ तामें घटै बढ़ै रतियो नहीं। यहि विधि आपु सँवारै ॥"
॥ बीजक, साखी २५७ ॥

सत्यको हृदयमें रखकर मुखसे भी सदा सत्य ही बोले और कपट-खोट आदि विकार अपनेमें एक भी नहीं रक्खे, ऐसे सुधार करै ॥ १०३ ॥

११. कोई बात कहे नहिं काँची * बोल अडोल भाखे सो साँची ॥ १०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
कोई बात=कोई भी बात कहे, तो सच्ची-सच्ची ही कहै। सत्यन्याय निर्णयकी वाणी ही

कहै सुनै, और—
काँची=असत्य (झूठ), धोखा, कपटकी वाणी-
कहे नहिं=कभी किसीको कहकर नहीं भुलावे, धोखा नहीं देवे। न जानी हुई, और न समझी हुई बात कभी नहीं कहै। जब भी जो बात कहै, तो जानी-बूझी हुई सच्ची ही कहै।
बोल=जब कभी भी बोलना हो, तो वाणी ऐसी बोले कि—
अडोल=किसीके डोलायेसे नहीं डोले और खण्डन कियेसे भी खण्डन न हो। ऐसे अडोल अनुभवकी ही—
भाखे=सत्य वाणी बोले, कहै और वर्णन करै।
सो साँची=सो सत्य वचनसे जीवकी भ्रम-भूल छूटती है, निज पारख स्वरूपमें स्थिति होती है। इससे सत्य रहनीको लेके स्वयं स्वरूपके सत्यमें ही अटल रहै॥

व्याख्या— जब भी कहीं किसीसे कोई बात कहना होय तो कच्ची बात कभी न कहे। जो कोई बात कहे, सो सच्ची-सच्ची कहै। चाहे व्यवहारका हो या परमार्थका हो, सत्य बात ही सदा कहै; असत्य बात कभी न कहै। वाणी ऐसी बोले कि, किसीके डोलायेसे नहीं डोले, अडोल रहे। सो सत्य वचनमें ही ऐसी शक्ति रहती है, जो किसीके डोलायेसे वह डोल नहीं सकता है। सत्य निर्णयकी वाणीसे ही मनुष्योंका भ्रम छूटके पारख पदमें स्थिति हो जाती है। इससे सदा सत्य ही बोले; इसतरहसे जीवन पर्यन्त सत्य रहनीमें ही दृढ़ होके टिके रहना चाहिये॥ १०४॥

१२. भव बन्धन जाते होय रूढ़ा ❀ ऐसी बात कहे सो मूढ़ा॥ १०५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
जाते=जिस आदत, बर्ताव, खानी-वाणी करके नरजीवोंको—
भव बन्धन=भवसागर चौरासी-योनियोंमें जकड़ जानेका वा फँस जानेका और जिससे—
होय रूढ़ा=वासना उत्पन्न होवे, आसक्ति भ्रम मानन्दी दृढ़ परिपुष्ट हो जावे या बढ़ती जाय, तथा वही सब मनमें आरूढ़ हो जावें-
ऐसी बात=ऐसे विकारको बढ़ानेवाले अविचारकी वाणी बन्धनदायी बात—
कहे=जो कोई कहते हैं, ऐसी बात बताते या भुलावा देते हैं—
सो=सो ठग गुरुवालोग, प्रपञ्ची, स्वार्थी होनेसे-
मूढ़ा=वे बड़े मूढ़ हैं; पारखहीन अज्ञ हैं। उन्होंकी झूठी बातको जो ठीक मानते हैं, सो भी महामूढ़ मन्दमति बने हैं॥

व्याख्या— जिस वाणीके कहने-सुननेसे काम-क्रोधादि विकार ज्यादा बढ़े, और अनुमान, कल्पना आदि भ्रम बढ़े, भव-बन्धनोंकी ही परिपुष्टि दृढ़ता होवे, ऐसी फँसानेवाली बात जो कहते, सुनते और सुनाते हैं, सो सब मूढ़ मन्दमति हैं। ऐसे लोगोंकी सङ्गति कभी नहीं करनी चाहिये। उनके सङ्गको कुसङ्ग हानिकर जानके त्याग देना चाहिये; तभी हित होगा॥ १०५॥

१३. जेहि विधि कार्य जीवको होई ❀ निर्णय वाक्य उचारै सोई॥ १०६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
जेहि विधि=जिस तरह या जिस प्रकारसे—
कार्य=कल्याण, मुक्ति स्थिति, सन्तोषका कार्य-
जीवको होई=नरजीवोंको प्राप्त हो जावे, जीवन-का सुधार, बन्धनका क्षय होकर जीवोंको पारख बोध होवे—
सोई=सो वही साधना सत्सङ्ग सद्विचार करना चाहिये।
निर्णय वाक्य= } और गुरुमुख न्याय-निर्णयके
उचारै= } ही वचनको मुखसे उच्चारण करे; ऐसा निर्णय सत्य वाक्यको कहे कि-अपना और दूसरोंका कल्याण ही होवे॥

व्याख्या— विधिपूर्वक जिससे नरजीवोंके कल्याणका कार्य जिस तरहसे भी हो सिद्ध होवे, सो वैसे ही सत्पुरुषार्थ करना चाहिये। पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग करके गुरुमुख न्याय-निर्णयकी ही वाणी कहना, सुनना, सोई ग्रहण करना, और सत्य वचन ही उच्चारण करना चाहिये। उसीसे नरजीवोंका हित-सुधार होकर कल्याण होगा; ऐसा जानना चाहिये॥ १०६॥

सम्बन्ध- इस बारेमें परिपुष्टि करनेके लिये ग्रन्थकर्त्ताने यहाँ बीजकका प्रमाण दिया है, सो सुनिये!॥

पं० प्र० टीका; ४३—

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— ३३४ ॥ ❀ ॥

साखीः—साँच बराबर तप नहीं ❀ झूठ बराबर पाप ॥

[१०] जाके हृदया साँच है ❀ ताके हृदया आप ॥ १०७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

साँच=त्रिकाल-अबाध, नित्य, सत्य, अखण्ड, चैतन्य स्वरूप जीव है, सोई जगत्में साँच वस्तु है।

बराबर=सो वह सदा एकसमान, एकरस, घट-बढ़से रहित, सदैव नित्य रहता है। इसकारण पारखी सद्गुरुका गुरुबोध पारख विचार सर्वोपरि है। उस विचारके समान बराबरी करनेवाला संसारमें—

तप नहीं=कोई भी तपस्या-साधनाएँ, ज्ञान, ध्यान, योग, जपादि नहीं हैं। क्योंकि, मन इन्द्रियोंको वश करके निज सत्स्वरूपमें सदैव ठहरना, सो बड़ा भारी उत्तम तप है। उसके सामनेमें दूसरे सब तरहके तप तुच्छ हैं। अतः उन सत्यवादीके लिये और कोई तप करनेकी जरूरत नहीं है; और-जान-बूझकर—

झूठ=झूठा बोलनेवाला तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि मिथ्या मानन्दी धोखाधार और देहादिके अध्यास, जो सत्य जीवको आवरण करे उसीका पक्ष पकड़े, वस्तु कुछ ठहरता न हो, सो झूठ है, सिर्फ वाणी कल्पनाका विषय है।

बराबर=बराबर जान-बूझके जो असत्य बोलते हैं, सो उस झूठके समान बराबरी करनेवाला या उससे बढ़ करके भी—

पाप=और कोई दूसरा पाप नहीं है। विकार दोष मैल वा कालिमा, यही पापका लक्षण है; सो झूठ होनेसे सब तरहके दोष उसमें आ जाते हैं। इसीसे झूठ ही सबसे बड़ा पाप है। और—

जाके=जिस मनुष्यके यानी जिस साधु, सन्त, भक्त, सज्जन, जिज्ञासु नरजीवोंके—

हृदया= अन्तःकरणमें चैतन्य निजस्वरूपकी
साँच है= पारखदृष्टिसे सत्यबोधकी धारणा है, तथा हृदयस्थ चैतन्य जीव ही मेरा सत्स्वरूप है, ऐसा अपरोक्ष ज्ञान है; और सत्य रहनी सहित समस्त सद्गुणोंकी हृदयमें धारणा है।

ताके=उन्हीं विवेकी हंस पारखी नरजीवोंकी सब भ्रान्ति कल्पना और विषयासक्ति छूट गई, ऐसा जानना चाहिये। और—

आप=आप अपने ही पारख स्वरूप स्थितिके सिवाय और कुछ भी वैसे पारखी सन्त चाहना, मानना आदि विकार मनमें नहीं रखते हैं।

हृदया=पारखी सद्गुरुकी दयासे जिनका हृदय शुद्ध हो गया है। निजसत्स्व-स्वरूपका पारखबोध हृदयमें दृढ़ अटल हो गया है; सो प्रत्यक्ष जीवन्मुक्त स्वरूप हैं। जड़ासक्ति बन्धन उन्हींके हृदयसे निर्मूल हो गया है, इसकारणसे, हे जिज्ञासुओ ! तुमलोग भी सत्य वाणी तथा सत्यबोधको धारण करके अपना चैतन्य स्वरूपमें लक्ष्य लगाकर आप अपने हृदयमें स्थिर हो जाओ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें खास सत्य वस्तु तो चैतन्य जीव ही है; जीवके समान दूसरा कोई सत्य वस्तु नहीं है। इसकारणसे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग करके सद्गुण, सत्य विचारको धारण करना चाहिये। और पारखी सद्गुरुके सद्विचारमें दृढ़तासे ठहरनेके समान दूसरी कोई तपस्या नहीं है; यह बड़ी भारी तपस्या है। और सत्य वचन बोलना बड़ी तपस्याके बराबर है; बल्कि तपसे बढ़ करके सत्य वचनका फल है। सत्यवादी तपस्वीसे बढ़ करके श्रेष्ठ होते हैं; और जान-बूझकर झूठ बोलनेके समान दूसरा कोई पाप नहीं है। झूठ बोलनेवाला बड़ा पापी-दोषी होता है। झूठ बोलनेवाला सब प्रकारके पाप कर सकता है। मिथ्या-वादको ही झूठ कहते हैं। अतः सिद्धान्तमें ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेतादि कोई वस्तु

नहीं हैं; सिर्फ मनुष्योंकी कल्पनामात्र है। उसको सत्य बताना कोई जगत्कर्त्ता मानना, सो सब झूठ ही है; सोई तो पाप, दोष, मनका विकार है। उससे जड़-अध्यास बढ़ जाता है। अतएव झूठ बोलकर धोखा देनेके बराबर और कोई पाप नहीं है। ऐसा अच्छी तरहसे जान करके जिन हंस मनुष्योंके हृदयमें सत्य चैतन्य पारख बोध, सद्गुण रहनी-रहस्य धारण हो गया है, सो उन पारखी साधुके हृदयमेंसे सब खानी-वाणियोंके अध्यास मिट जाते हैं। वह दोष कुछ भी बाकी नहीं रहता है; अपने (निज) स्वरूपकी पारख स्थितिमें ही वे सदा स्थिर रहते हैं। अतएव हे मुमुक्षुओ! तुमलोग भी दृढ़तासे सत्यका ही पालन करो ॥ १०७ ॥

सम्बन्ध— उसी बारेमें प्रमाणके लिये और भी बीजककी साखी ग्रन्थकर्त्ताने यहाँ लिखी है, सो सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— २७६ ॥ ❀ ॥

साखीः— बोल तो अमोल है * जो कोई बोले जान ॥
[११] हिये तराजू तौलके * तब मुख बाहर आन ॥ १०८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बोल=वाणी, वचन, शब्द उच्चारणको बोल कहते हैं। यानी गुरुमुख वाणी, उपदेश, सद्वचन, सारशब्द, गुरुका बोल या बोध-

तो=सो वह तो बड़ा वजनदार श्रेष्ठ है, तथा—

अमोल=जिसका मोल वा कीमत किया वा दिया जा नहीं सकता है, सो अनमोल महान् रत्नके समान सत्यशब्द है।

है=सो गुरु निर्णय पारख सारशब्दसे ही जीवोंका बन्धन छूट सकता है।

जो कोई=जो कोई परीक्षक, परिणामदर्शी पारखी विवेकी साधु होते हैं—

जान=सो सब बातोंको जान-बूझ, समझकर कहेजानेवाले शब्दके अर्थका विचार करके ही वाणी—

बोले=बोलते, कहते, सुनते हैं; वे ही जीवोंके भ्रम-धोखाका निवारण करते हैं। इसलिये कोई भी मनुष्यको बोलनेके पहले उस बात-को अच्छी तरहसे जान-बूझ समझकर ही तब कोई बातको बोलना चाहिये।

हिये तराजू= } और कोई बात बोलनेके पहले
तौलके= } हृदयरूपी तराजूमें विवेक-विचाररूपी पलड़ोंपर उस बातको रख करके सत्यके बाटसे निष्पक्ष होकर तौल लेवे, तौलमें फरक न पड़े, जब बराबर सत्यन्यायसे जँचे—

तब=तबहीं उस वजनदार सत्य निर्णयकी बातको या उपदेशादिको अपने—

मुख= } मुखसे बाहर निकालना चाहिये।
बाहर= } जिससे सबोंका हित हो, राग-द्वेष
आन= } न बढ़े, शान्ति-सन्तोष हो जाय, ऐसी सत्य वाणी देश, काल, समय आदिको देखकर मुख्य-मुख्य बातको कहना चाहिये। मुखसे वाणी निकालनेके प्रथम ही मनमें उसके अर्थ-को गौर कर लेना चाहिये। असत्यका तो लेश भी हो, ऐसी वाणी कभी न कहना चाहिये। सब प्रकारसे सत्यवादी होना चाहिये ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! बोली वाणी तो अमोल या बड़ी कीमती होती है। इससे व्यर्थमें बकवाद गप्प करना नहीं चाहिये। जो कोई बात बोलना हो, तो उसे जान-बूझकर सत्य ही बात बोलना चाहिये। और बोलनेके पहले ही हृदयरूपी तराजूमें तौल करके देख लेना कि, जो मैं बोलना चाहता हूँ, सो सत्य और ठीक है कि नहीं। यदि सत्य हो, और अपने कहनेसे किसीकी भलाई होती हो, तब मुख खोलकर वचनको बाहर निकालना चाहिये; नहीं तो मुखको बन्द ही रखना ठीक है। ऐसा जान-समझकर व्यवहारमें और परमार्थमें सब जगह सत्य ही बोलना चाहिये। यह तो साखीका बाहरी अर्थ है। और इसका भीतरी मुख्य भावार्थ ऐसा है कि— सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुका बोल, उपदेश, सारशब्द, यह तो बड़ा ही अमोल है। उसका कोई मोल चुका

नहीं सकते हैं, क्योंकि, सत्य चैतन्य पारखबोध भव-बन्धनोंको नशानेवाला है। उसपर विकारी नाशवान् जड़ सम्पत्ति किनने भी निछावर करिये, तो भी उसके मोल पूरा हो नहीं सकता है। इससे पारखबोध अनमोल है। और जो कोई पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर तन, मन, धनादिको अर्पण करके उनके ही अधीन हो जायगा, सोई इस रहस्य बोधको पायेगा। विवेकी सन्त जो कोई भी पहले उपदेश बोले, कहे वा अभी कहते-बोलते हैं; सो वे ठीकसे हानि-लाभको जान करके मनुष्योंके हितकी ही वाणी कहते हैं। तथा हितकारी सन्त हृदयरूपी तराजूमें बराबर तौलके ही, तब मुख्य-मुख्य बात उपदेशको मुखसे बाहर निकालते हैं। अतएव हे मुमुक्षुओ! तुमलोग भी उनके समान सद्गुणोंको धारण करके सत्य वचन ही बोल-चाल करो। वजनदार सत्य न्याय निर्णयकी वाणीको ही ग्रहण करो। हृदयरूपी तराजूमें तौलकर वैसे सत्य वचनको ही मुखसे सदैव बोला करो ॥ १०८ ॥

साखीः— शब्द सँभारे बोलिये * शब्दके हाथ न पाँव ॥
[१२] एक शब्द औषधि करै * एक शब्द करै घाव ॥ १०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

शब्द=वाणी, वचन, आवाज, बोलीको शब्द कहते हैं। सो वचनको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें विवेकसे—

सँभारे = बोलिये = सम्हारकर या सुधारकर बोलना चाहिये। सत्य वचन ही बोलिये! कटुक वा प्रिय भी असत्य कभी मत बोलिये! हंस मनुष्यकी बोली मीठी सत्य वाणीको बोलिये! और अण्ट-सण्ट मिथ्या पशु वाणीको कभी न बोलिये। क्योंकि—

शब्दके = हाथ न = पाँव = शब्द विषयके स्वरूप जड़ है, शब्द अदृश्य होनेसे उसके हाथ-पैर तो नहीं हैं, परन्तु, कटुकवाणी अति तीक्ष्ण होती है। और माना हुआ शब्द-स्वरूपी ॐकार ब्रह्मके भी हाथ=घेरा, सीमा, पाँव=प्राप्तिका पता तो कुछ नहीं है; इसीसे तो वह मिथ्या धोखामात्र है।

एक शब्द=पारखी सत्यन्यायी सन्तोंके गुरुमुख निर्णयकी वाणी जीवके सत्य स्वरूपको लखाता है, ऐसे इधरका एक शब्द तो—

औषधि करै=आधि, व्याधि, उपाधि आदिमें दुःखित नरजीवोंको धैर्य बँधाता है, भ्रम हटाता है, निर्णयका उपदेश मुक्तिका हेतु होनेसे महौषधिके समान गुणी है। अतः वह औषधिके समान काम करता है। और-

एक शब्द=काम, क्रोधादि युक्त वाणी स्त्रियोंके विषयोत्पादक वचन और तत्त्वमस्यादि अनुमान-कल्पनाकी वाणी, एवं मिथ्यावादियोंके एक तरफके शब्द एक जीवको बन्धनमें डाल देता है। और हृदयमें—

घाव=चोट, कष्ट, क्लेश, जड़ासक्तिवश करके दुःखितकर जन्म-मरणादिमें बारम्बार—

करै=डालनेका काम करता है। यानी विवश, हैरान कर देता है। इसीसे सदा सत्य वचन ही बोलिये और सत्य वचनको ही सुनिये! ॥

व्याख्या— शब्दको बोलतेमें विचार करके सम्हाल-सुधार करके तब ही बोलना चाहिये। जो बोलनेका ही काम पड़े, तो सत्य शब्द ही कहकर बोलिये और मिथ्या शब्दसे सदा डरते रहिये। शब्दके हाथ-पाँव स्थूल आकार तो नहीं है; सूक्ष्म वायु तत्त्व स्वरूप शब्द विषय जड़ होनेसे जल्दी ही अन्तःकरणमें पहुँचकर चोट कर देता है, जल्दी असर पहुँचा देता है। कहा-सुना न जाय, तब-तक तो शब्दकी रुकावट रहती है; जब कहा-सुना गया, तब शब्दका असर मनपर अवश्य पड़ जाता है। कर्णद्वार होकर शब्दका भाव अन्तःकरणमें ग्रहण होकर धँस जाता है। तब समस्त शरीरको हिलाय देता है। इस बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं बीजक, साखीमें कहा है कि:—

साखीः— "मधुर वचन है औषधि। कटुक वचन है तीर॥ श्रवणद्वार होय सञ्चरे। सालै सकल शरीर॥"
॥ बीजक, साखी ३०१ ॥

इस कारणसे एक शब्द तो औषधिके समान फायदा पहुँचानेका काम करता है। और एक शब्द विष या हथियारके समान घाव वा चोट पहुँचाता है। इसका भाव ऐसा है कि— मृतसञ्जीवनी-सुधाके समान पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयका उपदेश जन्म-मरणादि रोग विनाशक, शोकध्वंसक, मुक्तिदायी महान गुणकारी श्रेष्ठ औषधिका काम करता है। वह मनके समस्त ताप-पापको मिटा देता है; और दूसरी तरफ पामर, विषयी, दुराचारी, मिथ्यावादी, मोहिनी स्त्रियाँ, राँड़, भाँड़, घातक, धोखेबाज और गुरुवालोगोंकी कपट-कुटिलताकी वह वाणी, शब्द-जालके फाँसमें फँसाके मनुष्योंका घात करते हैं, घायल, दुःखी, पीड़ित करते हैं; और वे भवचक्रमें डाल देनेवाले होते हैं। अतएव ऐसे कुशब्द कभी बोलना और सुनना नहीं चाहिये। इसप्रकार बाहर-भीतर सत्य रहनीको पूर्णतासे धारण कर लेना चाहिये ॥ १०९ ॥

सम्बन्ध— यहाँतक षट् पशुधर्मोंका त्याग-ग्रहण या सुधार बताकर फिर उसके बाद सत्यको मन, वाणी, कर्त्तव्यसे प्रथम ही धारण करके फिर विचार पूर्वक बरतनेको भी कहा है॥ अब नवम खण्डमें विचार सहित शील-गुणका वर्णन करके दर्शाया गया है। उसमें ११ चौपाई, और १ साखीमें निर्णय कहा गया है, सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ नौ खण्ड ॥ ९ ॥ ❀ ॥

१. दूसर शील विचारको अङ्ग * सब अस्थूल अङ्ग होय भङ्ग ॥ ११० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पहला, षट् पशुधर्मका सुधार बताया गया, तहाँ सत्य धारण करनेके लिये विशेषरूपसे कह चुके हैं। सत्य-विचारके निर्णय कहिके इस प्रकरणमें दूसरा, शील और विचारके अङ्गका गुण धारणके लिये खुलासा करके बताया जाता है, सो सुनिये !:—

दूसर=दूसरे नम्बरमें मनुष्योंको एक-दूसरे परस्पर सद्गुणोंको ग्रहण करना चाहिये। उसमेंसे मनुष्यको रहनीके लिये—

शील=नम्र, कोमल, मृदुता, दीनता, गरीबी, उपकारी, निरभिमानी होना चाहिये, सोई शील है।

विचारको= विचारके दूसरा ही भाग या
अङ्गा= अङ्गरूप यह शील गुण है। इसलिये सर्वाङ्ग सहित शील-विचारको हृदयमें धारण करना चाहिये। जो कोई इसको धारण करेगा, उसका—

सब अस्थूल= स्थूल देहके स्थूल अङ्ग-उपाङ्ग-
अङ्ग= से होनेवाले खोटे व्यवहार कुकर्मके दुष्ट स्वभाव सब छूटकर शुद्ध हो जायगा।

होय = फिर हंसपदमें स्थिति होयके काग
भङ्गा= कुमति-गति विकार नाश होकर स्वभाव पलटाव सुधार होवेगा। इसकारण पहलेसे ही मनुष्योंको विचार और शीलको ग्रहण करना चाहिये ॥

व्याख्या— विचारका ही दूसरा नाम या दूसरा अङ्ग यहाँ शील है। निरहङ्कारी होना, यही शीलका मुख्य लक्षण है। शील तथा गुरुभक्तिके धारण करनेसे स्थूल देहसे होनेवाले सब कुकर्मका कुव्यवहार समूल नाश हो जाता है। सत्कर्म सद्वृत्ति, नम्रता, कोमलता आनेपर जानो कि, शीलका धारण हो गया। तब स्थूल देहका मनके विकार सब नाश हो जाता है ॥ ११० ॥

२. बुरे कर्म सो लज्जा करै * बिना विचारके पगु नहिं धरै ॥ १११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बुरे कर्म=चोरी, हिंसा, व्यभिचार, छल-कपट—

सो=पाखण्ड, जड़मानन्दीके नाना खोटा कर्म-कुकर्म, जीवोंको भ्रमानेका अकर्म इत्यादिसे—

लज्जा करै=लाज-शरम करै, ऐसे कुकर्म करके अपने और दूसरेको बन्धनोंमें कभी न डालै, उससे सङ्कोच करै। और—

बिना विचारके=सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय किये बिना तथा कभी भी विचारे बिना किसी कार्यमें न लगे, और एकाएक—

पगु=नहिं धरै= } मनको वा पैर-शरीरको सोचे बिना कहीं न लगावे, न धरे और धोखा-को मनमें धारण न करै; होश करै ॥

व्याख्या— जितने भी बुरे-खोटे कर्म हैं, उनसे दूर रहे। जड़ मानन्दीके द्वारा होनेवाले बुरेकर्म करनेमें मनमें लज्जा करे। अपनेको सद्बुद्धिसे रक्षा करे, रुकावट करै। विचारे बिना किसी कार्यमें कहीं भी पैर न डाले। यानी हित-अहितका निर्णयसे पूरा विचार किये बिना एकदमसे कहीं मनको न लगावे। ऐसा परिणाम न सोचनेवालेको कार्यके पीछे पछताना ही पड़ता है ॥ १११ ॥

३. जो काहूके होय उपकारा ❀ मन वच कर्म करिलिये विचारा ॥ ११२ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो काहूके=जो कि, किसी मनुष्यके किसीसे किसी वक्तपर कहींपर भी—

उपकारा=उपकार, सुधार, सहायता, कल्याण, भलाई, हित इत्यादि—

होय=होता होवे, सुख होता हो, विवेक, वैराग्य, बोध बढ़ता होवे, तब तो—

मन=मनसे भी हित-कल्याण ही चिन्तन करना चाहिये, शुद्ध भाव रक्खे रहै; तथा—

वच=वचन भी सत्य निर्णयका ही कहना या बोलना चाहिये। और—

कर्म=कर्मसे भी जहाँतक हो, सहायता पहुँचावे, इसप्रकारसे—

विचारा=शील, सन्तोष, सद्विचार पूर्वक हित-कल्याणका ही विचार करते हुए—

करिलिये=परोपकार, जीवन सुधार, मन, वचन और कर्मसे भलाई कर लेना चाहिये। ऐसे स्वभावको बनाना चाहिये ॥

व्याख्या— यदि अपनेसे जो किसीका परोपकार होता होवे, तब तो मनसे, वचनसे और कर्मसे हरतरहसे ऊपकार करलेना चाहिये। उसमें भी विचार करके ही सबकी भलाई करनी चाहिये। उपकार करनेसे कभी पीछे न हटना चाहिये ॥ ११२ ॥

४. मानुष भरसक चूकै नाहीं ❀ आखिर होय दोष नहिं ताही ॥ ११३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मानुष=विचारवान् मनुष्योंको चाहिये कि, पहिले तो स्वयं सच्चा मनुष्य हंस होवे। फिर—

भरसक=जहाँतक अपना बल या वश चले, तहाँतक शक्तिभर या यथाशक्ति साधन पुरुषार्थ करै—

चूकै नाहीं=अपना जीवन सुधार करनेमें तथा परोपकार, जीवोंपर दया रक्षा करनेमें, सेवा, सत्सङ्ग, वैराग्य, बोध इत्यादि सत्कार्य-में कभी नहीं चूकै। पीछे न हटै, जान-बूझके गल्ती न करै।

आखिर होय=यदि प्रयत्न करके बचाते-बचाते, सुधारते-सुधारते शक्तिके बाहर होकर कोई कार्य हो जावे, यानी बचाते हुए भी कोई जीव अचानक मरजावे, तो—

ताही=उस बचानेवालेको वा साधकको—

दोष=नहिं= } कोई दोष या पाप, विकारादि उस हालतमें कुछ लगनेका नहीं वा नहीं लगेगा ॥

व्याख्या— जीवने मनुष्य शरीर पाया है, यहाँ पहले तो पूर्ण रीतिसे सद्गुण रहस्य-रहनीको धारणकर सच्चा मनुष्य बने। फिर मनुष्यको चाहिये कि, अपनी शक्तिभर निज-उपकार और पर-उपकार हित-कल्याणके कार्यमें ही लगा रहै, शक्ति रहते हुए कभी आलस्य लापरवाही न करे, नहीं तो बड़ी हानि होयगी। और भरसक मनुष्योंको चाहिये कि, सत्य बोध लेने और देनेमें चूक नहीं करे, समझाते-समझातेमें भी कोई नहीं समझे, तो समझानेवालेको कोई दोष नहीं है। तैसे अपने शक्ति अनुसार छोटे-बड़े देहधारी जीवोंको बचावे, रक्षा करे। यदि बचाते-बचातेमें भी कोई कष्ट पाया वा मर गया, तो अनजानमेंका पाप वा दोष कुछ नहीं लगेगा। मनमें सद्भावना रखकर शक्ति अनुसार शुभ कार्य करे, फिर भी कुछ बिगड़ जाय, तो उसका कुछ दोष लगनेका नहीं, ऐसा

जानना चाहिये ॥ ११३ ॥

५. पशुवा होय सो आँखि छिपावै * मानुष बुद्धि सपने नहिं पावै ॥ ११४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पशुवा होय=रूपमात्र मनुष्यका दिखता है, परन्तु, विषयासक्त निर्बुद्धि पशुका स्वभाव जिनमें है, सो नरपशु ही हैं। पशु खानीसे आया, फिर पशु खानीमें ही जानेवाला है। इससे जो नर पशुके समान होता है—

सो=सोई मन्दमति पामर विषयीजन अभागे लोग ही—

आँखि छिपावै=अपने कल्याण, जीवन सुधार, परोपकार आदि सत्कर्मसे आँखें छिपालेते हैं, नेत्र मूँद लेते हैं, यानी विवेक-विचार तो कुछ करते ही नहीं, मनको दूसरी ही तरफ लगाते हैं।

मानुष बुद्धि=ऐसे दुर्मति नरजन मनुष्यकी सद्बुद्धि निर्णय करनेकी विवेक-बुद्धि—

सपने=जाग्रत्के समान ठहराव होनेकी बात तो कौन कहे, स्वप्न समान अल्प कालतक झलकमात्र भी कभी—

नहिं पावै=स्वप्न या जाग्रत्में भी वे पा नहीं सकते हैं। अथवा मनुष्य बुद्धिके दर्शनमात्र भी वे नहीं पाते हैं ॥

व्याख्या— जो नर-पशु होयगा, सो विषयासक्त पामर बनके अपने कल्याण और परोपकार आदिसे आँखें छिपायेगा वा मुँह छिपायेगा, मन छिपायेगा। ऐसे मूढ़ दुर्बुद्धिवालेको मनुष्यका सत्य निर्णयकी विवेक-बुद्धि स्वप्नवत् झलकमात्र भी नहीं मिल सकती है, फिर शरीर छूटे बाद शीघ्र नर देह भी वह पा नहीं सकता है ॥ ११४ ॥

६. जिन्हकी आँखि शील नहिं होई * काल स्वरूप जानिये सोई ॥ ११५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जिन्हकी आँखि=जिस मनुष्यकी आँखोंमें या मन, बुद्धि, वाणीमें भी—

शील=नम्रता, कोमलता, दयालुता आदि शील स्वभावका प्रकाश—

नहिं होई=यदि कुछ भी नहीं है; बिलकुल जिसमें शीलका अभाव है—

सोई=सो उसी मूढ़ क्रूरको ही—

काल स्वरूप= } काल-कसाई, निर्दयी, वञ्चक,
जानिये= } घातक हिंसक आदिके भयानक स्वरूपवाला ही जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— जिसकी आँखोंमें वा मन, वचन और कर्ममें शीलका प्रकाश नम्रता, कोमलता आदि शील स्वभाव नहीं होता है, उसीको कालका स्वरूप जान लीजिये। वह घातक बनकर अपनी और दूसरोंकी भी बड़ी भारी हानि करता है, ऐसा जानिये ! ॥ ११५ ॥

७. बिना शील बेपीर कठोरा * लम्पट विषई झूठा चोरा ॥ ११६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

बिना शील=शील स्वभाव कोमलता, नम्रताके स्वभाव हुए बिना आदमी कैसा हो जाता है कि, पशुसे भी गया-बीता हो जाता है।

बेपीर= } जिनमें शील नहीं है, वे दूसरेके
कठोरा= } दुःख-दर्दको कुछ भी न जाननेवाले न समझनेवाले, न माननेवाले हो, कठोर बज्र हृदयवाले बन जाते हैं।

लम्पट= } और स्त्री लम्पट, विषय लम्पट, विषयी
विषई= } गन्दा गधेके समान हो जाते हैं, और
झूठा= } मिथ्यावादी, कपटी, छली, झूठे, चोर,
चोरा= } बदमाश, दुराचारी, ऐसे हो जाते हैं।

शीलके बिना ऐसे दुर्गुण एक-एक करके सब आ जाते हैं ॥

व्याख्या— शीलके बिना रूप-मनुष्य पशुसे भी बढ़कर क्रूर स्वभाववाले हो जाते हैं। बेपीर, कठोर मनवाले हो जाते हैं। भग-भोग स्त्री विषय लम्पट, पामर, विषयी, झूठे, चोर, दुष्ट, नर-पिशाच या राक्षस ही बन जाते हैं। शील, सदाचार, सत्सङ्ग, गुरुभक्ति आदि सत्कर्म, सद्विचार न होनेसे दुर्गुण आनेमें कोई देर नहीं लगती है। कुसङ्गके सहवास और प्रभावसे सब दुर्गुण आ जाते हैं। फिर

मनुष्य एकदम पतित हो जाते हैं। अतएव शीलव्रत सदाचारको दृढ़तासे अपनाना चाहिये ॥ ११६ ॥

८. मानुषके गुण ही अधिकारा * मुये भछै जेहि श्वान सियारा ॥ ११७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मानुषके = गुणहीं = मनुष्यके तो सद्गुण विवेक, वैराग्य, सत्य, शील आदिकी ही

अधिकारा = विशेषता वा अधिकता होवे, तो ही मुक्तिका अधिकार होता है, उन्हींकी बड़ाई होती है; और गुणहीन शरीरकी कोई विशेषता नहीं है। क्योंकि—

मुये = यह देह तो विकारसे भरा हुआ नाशवान् है, कर्म भोग पूरा होनेपर मृत्यु होकर देह तो नाश हो जाता है। सो मरा हुआ मुर्दा-को देखकर सब घृणा करके उसे त्याग देते हैं।

जेहि = जिस मुर्दाको मनुष्यलोग निकम्मा जानके फेंक देते हैं, सो यदि कहीं जङ्गलोंमें या श्मशानोंमें पड़ा हुआ कोई मुर्दा मिल जाता है, तब तो उसको—

श्वान सियारा = कुत्ते, सियार, गीद्ध वगैरह जानवर नोंच-खसोटकर—

भछै = चारों तरफसे खैंच-खैंचके छिन्न-भिन्न करके मांसको खा जाते हैं। इस प्रकार देह विनाश हो जाता है; विष्ठा बन जाता है॥

व्याख्या— जीवोंने शुभ संस्कारसे मनुष्य जन्म पाये हैं, तो इसमें सद्गुणोंकी रहनीकी ही विशेषता है; और सद्बोध, सद्गुणोंसे ही मुक्ति पानेका अधिकार मिलता है। गुणीकी ही बड़ाई होती है, नहीं तो शरीरकी कोई विशेषता या बड़ाई नहीं है। क्योंकि, शरीर तो नाशवान् है। विकार-का घर है। मृत्यु होनेपर उसको कोई घरमें भी नहीं रखते हैं। श्मशान आदिमें ले जाके फेंक ही देते हैं। यदि कहीं कुत्ते, सियार, काग, गीद्धोंको कहीं पड़ा हुआ मुर्दा मिला, तो वे जानवर उस मुर्दा शरीरको बड़ी प्रसन्नतासे खा जाते हैं। इस तरहसे देह नष्ट-भ्रष्ट ही हो जाता है। ऐसा जान करके इस देहका अभिमान करना नहीं चाहिये ॥ ११७ ॥

९. अग्नि जरै माटी गलि जाई * हाड़ चामकी यही बड़ाई ॥ ११८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यहाँ मृत्यु होनेपर शरीरकी गति बताते हैं।

अग्नि जरै = यदि मुर्दा देहको कोई श्मशानमें ले जाके चितामें रखकर आग लगा देंगे, तो लकड़ीके साथ अग्निकी ज्वालामें देह जल जायगा, राख हो जायगा।

माटी गलि जाई = यदि जमीनमें गाड़ दिये, तो सड़-गलकर देह मिट्टीमें ही मिल जायगा। यदि नदीमें डाल दिये या जङ्गलमें छोड़ दिये, तो जलचर और वनचर उसे खा जायेंगे।

हाड़ चामकी = इस तरह हड्डी, चर्म, मांसका लोथ पाँच तत्त्वके बना हुआ चमड़ीके पुतलारूप जड़ विकारी, क्षणभंगुर देहकी—

यही बड़ाई = यहाँ तो यह ही बड़ाई या विशेषता हुई कि, वह अन्तमें नाश हो जाता है। परन्तु, नरदेह पाकर जिन्होंने निजहित और परहित-कल्याण किये, उनकी ही सब प्रकारसे प्रशंसा-बड़ाई होती है ॥

व्याख्या— शरीरकी गतिके बारेमें कहा है:—

पदः— "तनगति नित किर्म विष्ठ है, नातर खाक उड़ै हैं। कहाँ वह नैन? कहाँ वह शोभा? कहाँ वह रूप? देखैहैं॥"

और बीजकमें लिखा है कि:—

शब्दः— "जो जारै तन भस्म होय धुरी। गाड़े किरमिटि खाई ॥
सीकर श्वान कागका भोजन। तनकी इहै बड़ाई ॥" बीजक, शब्द- ७२ ॥

इस प्रकार यहाँ ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— मृत्यु होनेपर जीव तो निकलके वासनावश अन्य खानियों-में चला जाता है; और मुर्दा शरीरको कोई श्मशानमें ले जाके अग्निमें जलाय देते हैं, जिसे दाह-संस्कार करना कहते हैं; जला देनेसे तो वह राख हो जाता है। मिट्टीमें गाड़ देते हैं, तो सड़-गलके पृथ्वीमें ही मिल जाता है। कहीं नदी आदिमें लेजाके जलमें डुबाय देते हैं, तो जलजन्तु उसे खा

जाते हैं। जङ्गलोंमें मुर्दा पड़ा रहा, तो वनजन्तु उसे खा लेते हैं। इस तरह सब प्रकारसे देह नाशको ही प्राप्त हो जाता है। हाड़-चामकी और तो कोई बड़ाई नहीं है; चाहे इसीको बड़ाई मान लो। मनुष्योंके बुद्धि-विचार परोपकार आदि गुणकी ही बड़ाई की जाती है; मात्र शरीरकी नहीं। अतः सबोंको गुणवान् होना चाहिये ॥ ११८ ॥

१०. जो ना भाव भक्ति बनि आवै * बिन गुरु भवते कौन छुड़ावै ? ॥ ११९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो = जो कि, यह सर्वोत्तम कर्मभूमिका नर देह पायकर भी यदि—

भाव भक्ति = सद्भावना और गुरुभक्ति शुद्ध साधु भाव, बोध भाव लेके खानी-वाणी जालोंसे दूर भागके पारखी सद्गुरुकी साँची भक्ति सेवा, सत्सङ्गादिमें दृढ़तासे लगना—

बनि आवै = ऐसा जिस किसीसे बन गया, तब तो ठीक है, हित ही है। यदि, ऐसा जिससे नहीं बना या बन नहीं आया—

ना = तो उसका कहींपर भी ठिकाना लगनेका नहीं। शुभ संस्कारसे रहित होनेसे वह जल्दी नरतन भी नहीं पा सकता है। उसका जीवन व्यर्थ ही गया। और—

बिन गुरु = पारखी साधु-गुरुके शरणागत हुए बिना पारखका यथार्थ बोध होनेका नहीं। बिना बोधके बन्धन कभी छूट नहीं सकता है। इससे साधु-गुरुके दया बिना हे मनुष्यो !

भवते = तुम्हें भवसागररूप खानी-वाणीके महाजालोंसे पारकर निस्तार करके—

कौन छुड़ावै = और कौन छुड़ा सकता है ? कोई भी और छुड़ानेवाले नहीं हैं। इसीसे गुरुपदको ही ग्रहण करो ॥

व्याख्या— जो कि, मनुष्य देह पायके भाव-भक्ति, सत्सङ्ग विचार वैराग्य, बोधादि जो बनि नहीं आया; यानी मुक्तिदायी सत्कर्मोंका बनाव सत्पुरुषार्थ यदि नहीं बना, तब तो मनुष्य जन्म पाना ही व्यर्थ हुआ। इस भवसागररूप खानी-वाणीकी विकट धारा महा बन्धनोंसे छुड़ानेवाले एक पारखी साधु सद्गुरु ही रक्षक हैं। उन सद्गुरुके सिवाय और कोई भव भयसे छुड़ानेवाले नहीं हैं। सद्गुरुको छोड़कर और कौन छुड़ा सकता है ? कोई नहीं ॥ ११९ ॥

११. भक्तिहीन नर पशु है सोई * गुणवन्ता तैं देखु बिलोई ॥ १२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

भक्तिहीन = गुरुभक्ति, साधु सेवा, गुरुपूजा, सत्य प्रेम भाव निष्ठासेहीन चैतन्य भक्ति विमुख ऐसे लोग—

नर पशु है = सोई = } मनुष्य जन्मकी खोलरीमात्र पहिरे हुए हैं, वास्तवमें तो गुण-हीन पशु ही बने हैं। सोई तो नरपशु कहलाते हैं। अतएव—

गुणवन्ता = हे गुणवान् सुबुद्धिवाले नरजीवो !

तैं = तुमलोग इस वक्तमें सच्चे मनुष्य बनो, सद्गुणोंको धारण करो; और—

बिलोई = पारखीसद्गुरुके सत्सङ्गमें जाकर विवेक करके जड़-चेतनका तथा पशु और मनुष्य-का गुण-लक्षण न्यारा-न्यारा करके छान-बीनकर सत्यासत्यका निर्णय करो; और—

देखु = बन्धन-मुक्तिकी राहको ठीक तरहसे देखो, परीक्षा-दृष्टि खोलकर देखो ॥

व्याख्या— गुरुभक्ति, बोधभाव, सद्गुण, रहनी-रहस्यसे हीन सब मनुष्य नरपशु ही बने हैं। सो फिर पशु खानीमें ही जायँगे। कभी चौरासी योनियोंसे छुटकारा नहीं पायँगे। हे गुणवान् सत्सङ्गी मनुष्यो ! तुम लोग विवेकसे निर्णय करके अच्छी तरहसे देखो ! कि, सुधार-बिगाड़, बन्धन और मुक्ति इसी नर देहमें आयके ही होता है। यदि अभी पुरुषार्थमें चूक गया, तो अनेकों जन्म, मरण, गर्भवास और त्रयतापोंका नाना दुःख भोगते रहना पड़ेगा। इस कारणसे अभी नरदेहमें ही अपना अच्छी तरहसे बनाव करो ॥ १२० ॥

सम्बन्ध— यहाँपर श्रीरामरहससाहेबने बीजक साखीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर—१९९ ॥ ❀ ॥

साखीः— मानुष तेरा गुण बड़ा * माँसु न आवै काज ॥

[१३] हाड़ न होते आभरण * त्वचा न बाजन बाज ॥ १२१ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मानुष तेरा = } हे मनुष्य ! तेरा तो पारखदृष्टि
गुण बड़ा = } ज्ञानगुण और सद्गुण हंस रहनी यही सबसे बड़ा है। यानी मनुष्य शरीरमें बड़ाई जो है, सो गुणोंकी ही है। विवेक, वैराग्य, दया, क्षमा, दान, धैर्यादि सद्गुण जो धारण किये या करते हैं, वे ही बड़े श्रेष्ठ कहलाते हैं। इसीसे मनुष्यके यही सद्गुण रहनी-रहस्य, पारखदृष्टि सबसे बड़ी है। नहीं तो, देहकी कोई बड़ाई नहीं है, बल्कि पशुओंके देहसे भी बेकार, निकम्मा मनुष्योंका देह है। इसीसे—

माँसु न = } मनुष्योंका न मांस ही कोई
आवे काज = } काममें आता है। पशुओंके मांस-को खायके तो कई प्राणियोंका उदर पोषण होता है। तैसे ही मनुष्योंके मांसकी कोई व्यवस्था नहीं है, इससे ही नरमांस कोई काम लायक नहीं कहा है। और—

आभरण = गहना-आभूषण, हथियार-औजारोंके बेंट, बटन इत्यादि पशुओंकी हड्डियोंसे बनाते हैं। सो काममें लेते-लगाते हैं। तैसे ही उपयोग आभूषणादि बनानेके लिये—

हाड़ = } मनुष्योंकी हड्डियोंका प्रयोग नहीं
न होते = } करते हैं। इससे हड्डी भी कोई कामकी नहीं हुयी या कामकी नहीं होती है। और—

त्वचा = पशुओंके चामसे बहुतेक काम होते हैं, ढोलक, मृदङ्ग, खँजड़ी, नगारादि बाजा बनाते हैं। जूते बनाकर सबोंके पैरोंकी रक्षा करते हैं। मोट, थैली, पीपा, बाक्स, बूट इत्यादि अनेकों चीज पशुकी चमड़ीके बनाते हैं। तैसे मनुष्योंकी चमड़ी या त्वचाकी कोई चीज नहीं बनाते हैं। और नरम चाम होनेसे—

न बाजन = बाजोंमें मढ़कर बजाया भी नहीं जा सकता है। और—

बाज = न मनुष्योंका चर्मवाला बाजा ही बजाया जाता है। ऐसे देहकी सारी वस्तुएँ बेकार हैं, कोई कामकी दिखाई नहीं देती हैं, इसीसे तो गुण ही बड़ा कहा है ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब चेतावनी देकर मनुष्योंको समझाते हैं कि— हे मनुष्यो ! तुम्हारे शरीरमें और तो ऐसी कोई बड़ी चीज नहीं दिखती है। परन्तु, सबसे बड़ी क्या चीज है? कि, ज्ञानगुणी जीवके मनुष्य देहमें परीक्षा होनेका गुण, पारखदृष्टिवाला गुण, यही महान बड़ा है। पारख बोधमें स्थिति होनेसे समस्त भव-बन्धन नाश हो जाते हैं; और विवेक, विचार, त्याग, वैराग्य, बोध, धीरता, गम्भीरता, सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, गुरुभक्ति, क्षमा, सरलता, सत्सङ्ग, दान, पुण्य, धर्म, कर्म, कला, कौशल, विद्या, बुद्धि, चतुराई, बुद्धिकी विशेषता इत्यादि मनुष्योंसे ही प्रगट होती हैं। मनुष्य जन्म मुक्ति होनेकी जगह द्वारके समान है। इन सद्गुण रहनी-रहस्यको जो धारण करते हैं, वे ही मनुष्य सबसे बड़े हैं। पारखी सन्त सद्गुरु ही सबसे श्रेष्ठ शिरोमणि हैं। ऐसे मनुष्य देहमें नर-जीवका सद्गुण ही बड़ा है। जिन्होंमें वे सद्गुण धारण हुआ तथा प्रगट दिखाई दिया, ऐसे वे साधु सन्त, महात्मा, सत्पुरुष नामसे प्रख्यात हुए संसारमें वन्दनीय हुए, परोपकारी हुए हैं। उन्होंके ही गुणानुवाद बहुत दिन तक गाया जाता है; चरित्र कहा-सुना जाता है। इसकारणसे हे मुमुक्षुओ ! सर्वदा प्रयत्न करके सद्गुणोंको ही ग्रहण-धारण करो ! जिससे नरजन्म पानेकी सफलता होयगी। नहीं तो, जड़ देहकी कोई विशेषता नहीं है; यह तो दुर्गुण विकारकी पेटारी ही है; तुच्छ है। तभी तो मनुष्योंके देहकी कोई वस्तु किसीके कुछ काममें नहीं आती है। निरुपयोग जानकर सब लोग फेंक देते या जराय-जरायके नाश कर देते हैं। विचार करके देखिये ! पशुओंके सरीखा मनुष्योंका न तो मांस ही काममें आता है, न हड्डी ही काममें लगती है; और न त्वचासे ही कुछ बनता है। इस

तरह हड्डी, मांस, त्वचा, रोम, नाड़ी आदि कोई भी अवयवोंसे किसीका कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होता है। ऐसा यह देहके समस्त वस्तु विकारी घृणित अपवित्र हैं। इसकारण जड़ मुर्दा होके फेंका जानेवाला ऐसे देहकी आसक्ति, मान-गुमान कभी करना नहीं चाहिये। सदा नम्र होकर शील सदाचारी सद्गुणी होना चाहिये। सत्सङ्ग, सद्विचार, गुरुभक्ति करके जीवन सुधार करे; देह रहेतक यही करते ही रहना चाहिये। यही सद्गुरुकी शिक्षा-उपदेशका सारांश है, सो जानिये ! ॥ १२१ ॥

सम्बन्ध— अब दशम खण्डमें दयाका स्वरूप, दया धारणसे लाभ और निर्दयतासे हानि आदिका वर्णन विस्तारसे कहा है; सो तहाँ १४ चौपाई, और १ साखीमें वर्णन किया है, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ दशम खण्ड ॥ १० ॥ ❀ ॥

१. तीसर दया मानुष व्यवहारा * निर्दया क्या करै विचारा ? ॥ १२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तीसर = तीसरा नम्बरमें त्रिगुणोंके विकारोंको छोड़कर नर जीवोंको—

दया = अपने जीवको जड़ मानन्दीसे छुड़ानेके वास्ते सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके प्रथम निजदयाको पूरा रखना चाहिये। फिर परदयाका पालन करना चाहिये।

मानुष = मनुष्योंको शुद्ध निर्मल करनेवाला यह दया धर्म महान है, इसलिये निजदया और परदया दोनोंको धारण करते हुए—

व्यवहारा = वर्तमान व्यवहारोंके कार्योंमें विचार पूर्वक शुद्धतासे वर्तना चाहिये।

निर्दया = जिसको उक्त दोनों प्रकारकी दयाका कुछ भी पालन नहीं है, वैसे निर्दई कठोर दुष्ट मनुष्य फिर—

विचारा = धर्मका विचार, बन्धन-मुक्तिका विचार, हित-अहित आदिका तथा कल्याण-का विचार, इन सब बातोंका—

क्या करै = वे क्या विचार करेंगे ? कुछ नहीं करते हैं। उनके मन मलीन होनेके हेतु विचार करनेकी शक्ति ही नहीं रहती है, तो फिर वे क्या दयाका विचार कर सकेंगे ? व्यर्थमें ही नर जन्म गमाते हैं ॥

व्याख्या— प्रथम सत्य, दूसरा शीलका वर्णन कर आये हैं। अब यहाँ तीसरा दयाके बारेमें कहते हैं। दया दो प्रकारसे होती है; सो दोनों ही तरहसे दयाको पालन करना चाहिये। पहली निजदया है; यह अपने जीवको जड़ अध्यासोंसे हटायके पारख स्वरूप स्थितिके पुरुषार्थमें लगे रहनेसे होती है। दूसरी परदया करना है; सो मन, कर्म, वचनोंसे जीवोंकी रक्षा, हित करनेसे होती है। यह दोनों प्रकारसे दया धारण करना, मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य है। मनुष्यको चाहिये कि, दयाको प्रधानरूपसे पालन करते हुए व्यवहारोंको शुद्ध रीतिसे करे। दया रखके वर्तना वा चलना ही सच्चे मनुष्योंका सद्व्यवहार है। यही तो हितका मार्ग है; और निर्दयी मनुष्य क्या हित-अहितका विचार-कर सकता है ? नहीं। क्योंकि, जिसके स्वभाव क्रूर-कठोर हैं, वह धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्मादिका क्या विचार करेगा ? उसका बर्ताव तो हिंसक पशु समान रहता है, इसीसे वह दयाका विचार ही नहीं करता है ॥ १२२ ॥

२. दया धर्म हृदया जेहि नाहीं * भुक्ते नर्क सो यमपुर माहीं ॥ १२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दया धर्म = दया रखना, यही मनुष्योंका मुख्य धर्म वा सद्धर्म है। यह दयारूपी महान् धर्मका पालन—

जेहि = जिस मनुष्य जीवोंके—

हृदया = अन्तःकरण या हृदयमें ग्रहण, धारण—

नाहीं = कुछ भी यदि जो नहीं हुआ, दया धर्मसे जिसका हृदय शून्य है, ऐसे निर्दयी, अधर्मी-को ही पापी कहते हैं।

सो = सो वे निर्दयी अधर्मी मनुष्य लोग—

भुक्ते = अभी नाना तरहसे पूर्व कर्मोंका फल भोग रहे हैं और अभी किये हुए कर्मोंके फल भोग तीन खानियोंमें जाकर नाना तरहोंसे भोगते हैं या भोगेंगे।

नर्क=मल-मूत्र नालीके कीचड़ दुर्गन्धादि स्थानोंमें जाके उष्मज देहधारी होकर दुःख भोगते हैं।

यमपुर=और कोई तो यमरूपी स्त्रियोंके पुर=गर्भवासोंमें तीन खानीके गर्भमें कैद हो-हो-कर अनेक दुःख यातनाएँ भोगे और भोगते रहते हैं। वैसे ही गुरुवालोगोंके यहाँ साधनोंका नाना दुःख भोगते हैं।

माहीं=नर जन्ममें दयादि सद्गुणोंको धारण-करके यदि सुधार न किया, तो जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें गर्भवासादि दुःखोंमें ही पड़े रहते हैं॥

व्याख्या— जिसके हृदयमें दया पालनरूपी महान मनुष्यका मुख्य धर्म धारण नहीं हुआ है, वही अधर्मी, निर्दयी कसाईवत् क्रूरकर्मी, अधम जीव है। सो अभी नाना तरहसे छल-प्रपञ्च करके पूर्व कर्म भोगते हुए पापकी ही कमाई करते हैं। फिर शरीर छूटनेपर कर्म फलानुसार चारखानी चौरासी योनियोंमें नाना शरीर धारण कर वे जीव नरक यातनाका दुःख भोग भोगते ही रहते हैं। बारम्बार उलट-पलटके स्त्रियोंके गर्भकुण्डरूप यमपुरमें ही जाते हुए कठिन दुःख भोगते रहते हैं। अतएव दया धर्मको पूर्णतासे धारण करके अभी समस्त गर्वको छोड़कर गर्भवासमें जानेसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिये॥ १२३॥

३. अपनी ओर छोह जीव करहीं ❀ भावै वैसे आपुहि मरहीं॥ १२४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ!

अपनी ओर=मनुष्योंको चाहिये कि, अपनी तरफसे तो भरसक अन्य दूसरे छोटे-बड़े देहधारी प्राणियोंके ऊपर—

जीव=स्वजातीय जीव जान करके सर्व जीवों-पर सदैव—

छोह=दयाका पालन करके जीव दया करनेमें प्रीति रखना चाहिये; और इसी तरहसे—

करहीं=सबपर दया करना चाहिये, जो कुछ भी कर्त्तव्य करे, तो दयाको रखके करे, दया-धर्मको पालन करे, अर्थात् अपनी तरफसे सब जीवोंपर दया ही करता रहे।

भावै=फिर चाहे वे जहाँ-तहाँ सुख-दुःख कुछ भी पावें, वह तो उन्होंके कर्माधीन है; और जिस-जिसके जहाँ-जहाँपर जैसी-जैसी भावना लगी है, वही अध्यासोंके अनुसार ही वे जीव फल भोग रहे हैं और भोगते रहेंगे।

आपुहि=स्वयं जीव ही नरदेहमें नाना कर्म अध्यास बनाते हैं, फिर आप अपने ही अध्यासके मुताबिक दुःख पाते हैं।

वैसे=जैसे-जैसे कर्म अध्यास बनाये हैं, वैसी-वैसी योनियोंमें जाय-जायके जीव सब—

मरहीं=जन्म-मरणादिमें पड़के नाना कष्ट-क्लेश दुःख भोगते रहते हैं और आप ही मर भी जाते हैं॥

व्याख्या— सत्सङ्गी कल्याण इच्छुक नरजीवोंको चाहिये कि, अपनी तरफसे तो सर्व देहधारी जीवोंपर दया, बचाव, प्रीति ही सर्वदा करते रहे। जान-बूझकर किसीको न सतावे। फिर कर्मानुसार दुःख और सुख तो सब जीव पाते ही रहते हैं। उससे अपनी कुछ हानि होनेकी नहीं। परन्तु, नरजीव जिस-जिस प्रकारसे जहाँ-जहाँपर जैसी-जैसी भावना लगाते हैं, और अध्यास दृढ़ करते हैं, फिर वैसे-वैसे ही शरीर धारण करके जन्मते, मरते नाना कष्ट, दुःख भोगते रहते हैं। अपने-अपने कर्मका भोग ही चार खानियोंमें जीव भोग रहे हैं। अतएव, मनुष्य देहमें ही कर्म वासना-का सुधार करना चाहिये॥ १२४॥

४. यह संसार मृतकको थाना ❀ भरम भूत जग रहा भुलाना॥ १२५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

यह संसार=यह जगत् तो आवागमन होनेकी जगह है, सो रहट-चक्रके समान है, जीव संशय या अध्यासके वशीभूत संसारके मध्यमें पड़े हुए हैं; और—

मृतकको= } जड़ तत्त्वोंके ठिकानारूप देह,
थाना= } गेहादिमें जीव बद्ध हैं, यह तो मृत्युलोककी बस्ती है। यानी एक-एक दिन

सबोंका देह छूटता जाता है। परन्तु, अध्यास जीवोंके साथमें लगा ही रहता है, सहजमें वह नहीं छूटता है। इस कारणसे—

जग=जगत्में नरजीव सब पारख बोध बिना खानी-वाणीमें आसक्त होकर—

भरम=भ्रमिक गाफिल मूढ़ हो करके—

भूत=पञ्च महाभूतोंके पञ्चविषयोंमें और कल्पित भ्रम-भूत ब्रह्म, ईश्वरादि भूत-प्रेतादि, देवी, देवता आदि मिथ्या धोखाको सत्य समझकर मानन्दी दृढ़ कर-कराके हकनाहक—

रहा भुलाना=भूल-भुलाय रहे हैं; और दूसरोंको भी भूल भुलैयामें फँसा रहे हैं, भटका रहे हैं॥

व्याख्या— यह संसार मृत्युलोकका गाँव है। यानी धारण किया हुआ देह एक-एक दिन सबोंको छोड़ना पड़ता है। फिर 'मृतक' कहिये जड़ तत्त्वोंके ठिकाने विषयासक्त जीव देहादि बन्धनों-में पड़े हुए हैं। निज स्वरूपको भूलकर भ्रमवश जीव खानीजाल और वाणीजालोंमें भुलाय रहे हैं। उसमें भ्रमभूत कहिये ब्रह्म, ईश्वरादि, भूत-प्रेतादि कल्पना और पञ्च विषयादि भग-भोगोंमें जगत्-के जीव सब गाफिल होकर भूले और भुला रहे हैं; तैसे ही उसीमें दूसरोंको भी भुलाय-फँसाय रहे हैं॥ १२५॥

५. उपजै विनसै भवका फन्दा ❀ बिन गुरु राह न पावै गन्दा॥ १२६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

भवका= } भवसागर कहिये, खानी-वाणीके
फन्दा= } महाजालोंसे छूटना अत्यन्त कठिन हो रहा है। इसीसे इस फन्दोंमें पड़े हुए जीव सब—

उपजै= } वासनावश चारखानियोंमें नानादेहें
विनसै= } धारण करके जन्म लेते हैं, और कर्म भोग पूरा होनेके उपरान्त फिर शरीर-को छोड़कर, मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे बारम्बार जन्मते-मरते रहते हैं।

बिन गुरु=बन्दीछोर पारखी सद्गुरु मिले बिना, उनकी शरणमें आये बिना, कभी भी—

राह=आवागमनसे छूटनेका रास्ता या मुक्ति-का मार्ग, सत्यबोधको—

न पावै=कोई नहीं पाते हैं या पा नहीं सकते हैं। अतएव—

गन्दा=मल-मूत्रसे भरी हुई दुर्गन्धी देहमें, विषयोंमें आसक्त रहनेवाले जीव सर्वदा जड़ाध्यासी गन्दे ही बने रहते हैं। गन्दा, मलीन होकर सद्गुरुकी शरणमें नहीं जाते हैं। इसीसे भव-बन्धनोंसे भी जीव कभी नहीं छूटते हैं॥

व्याख्या— खानी-वाणीरूप भवजालोंके फन्दोंमें फँसे हुए वा बन्धे हुए जीव सब पशु, पक्षी, उष्मजादि योनियोंमें देह धर कर उपजते-विनशते, जन्म-मरणोंमें ही बारम्बार पड़े रहते हैं। परन्तु, सद्गुरुके पारख बोध पाये बिना मुक्तिका सीधा मार्ग मनुष्योंको मिल नहीं सकता है। अतएव गन्दे जीव गन्दे देह विषयोंमें ही आसक्त होकर गन्दी जगह गर्भवास और जन्म-मरणोंमें ही पड़े रहते हैं॥ १२६॥

६. घात परस्पर लावै दोऊ ❀ कष्ट बहुविधि पावै सोऊ॥ १२७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दोऊ=स्त्री और पुरुष दोनों-ही-दोनोंको फँसा रहे हैं। अथवा नारी और गुरुवालोग दोनों दो तरफसे अबोध नरजीवोंको खानी और वाणी जालोंमें फँसानेका वा भुलानेका—

घात=दाव, पेंच, ताक, प्रहार, घात-प्रतिघात आदि—

परस्पर=एक-दूसरेके ऊपर आपसमें खैंचातानी—

लावै=लगाते हैं, यानी अपने-अपने जालोंमें फँसानेको घात लगाते हैं; और जहाँ-तहाँ घात लगा ही रहे हैं।

सोऊ=सोई महाफन्दोंमें पड़-पड़ करके अज्ञानी पारखहीन मनुष्यलोग सब तरफ—

कष्ट=दुःख क्लेश, सन्ताप, त्रिविधि ताप आदि महान सङ्कट, कष्ट—

बहुविधि=बहुत प्रकारसे त्रास और महान

दुःख, साधनोंका दुःख, चौरासी योनियोंका कर्म-भोग, अनेक दुःख-ही-दुःख—

पावै=जहाँ-तहाँ पाते रहते हैं। इससे कभी छुटकारा नहीं पाते हैं॥

व्याख्या— जगत्में सब एक-दूसरेका घातक बने हैं। विषयोंके लिये स्त्री पुरुषोंपर घात लगाती है; और पुरुष भी स्त्रियोंपर घात लगाता है। और गुरुवा तथा नारी अज्ञ नरोंपर घात लगा रहे हैं। इस प्रकार परस्पर दोनों ही एक-दूसरोंपर घात, दाव-पेंच लगाते हैं, फँसते-फँसाते हैं। उसीमें बहुत प्रकारके कष्ट-दुःख सब लोग पाते रहते हैं। पारखी सद्गुरुकी दया बिना, उनके सत्सङ्ग बिना इस कष्टसे जीव कभी छुटकारा पा नहीं सकते हैं॥ १२७॥

७. एक दुःखी सब यह संसारा ❀ दुःख दिये तेहि कौन विचारा॥ १२८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

एक=एक तो पहलेसे ही जीव सब एक अद्वैत ब्रह्म मानकर और विषयोंके जड़ाध्यासी हो-हो करके—

दुःखी=चारखानियोंमें कर्म फल भोगनेमें बेहाल, दुःखी एवं परेशान हो रहे हैं; व्याकुल हुए पड़े हैं।

सब=सब कोई मनुष्य तथा सब जीवोंकी ऐसी दुर्गति तो आँखोंसे प्रत्यक्ष ही देख रहे हो। और—

यह संसारा=यह बात तो संसारमें दिखाई दे ही रही है, सुन भी रहे हैं। यह बात संसारमें जाहिर ही है। फिर—

तेहि=बेचारे उन दुःखी जीवोंको नाहकमें तुम-लोग निर्दयी बनकर सताते हो, यह बड़ा अनुचित करते हो।

दुःख दिये=जिभ्या स्वाद और विषय भोगोंके स्वार्थके वास्ते हिंसादि करके बहुतेरे जीवों-को दुःख-यातना दिये और दुःख दे रहे हैं, तथा धर्मके नामसे पाप कर रहे हैं, तो कहो यह कितने अविचारकी बात हुई?

कौन विचारा=और इन वञ्चक गुरुवालोगोंका काम कौन विचारका हुआ? कोई विचार-का नहीं हुआ, किन्तु, मूर्खताका ही हुआ॥

व्याख्या— एक तो जड़ाध्यासी जीव पूर्व कर्मके चूकसे कर्म फल भोगनेमें अपने आप ही सब संसारमें दुःखी हो रहे हैं। दुःखके मारे घबड़ाके अधीर होकर रो रहे हैं। और कोई एक ब्रह्म मानकर उसकी प्राप्तिके लिये नाना साधनाओंमें दुःखी हो रहे हैं। कोई पशु, पक्षी आदि देहें धर-धरके दुःखी हो रहे हैं। ऐसे दुःखी जीवोंकी रक्षा करना छोड़कर और उलटा धर्मके नामसे जीवहिंसा बलिदानादि करके जीवोंको अपार दुःख देते हैं। स्वर्गादि चार फल सुखकी झूठी आशा देकर कल्पित मिथ्या मानन्दी दृढ़ाके मनुष्योंको कठिन साधनोंमें लगाकर बहुत-बहुत दुःख देते हैं। तो इन गुरुवा लोगोंका यह काम कौन विचारका हुआ? यह तो कोई विचारका कार्य नहीं हुआ। बल्कि, महान मूढ़ताका पाप बढ़ानेवाला ही काम हुआ। विचारवानोंको कभी ऐसा विपरीत काम करना नहीं चाहिये, यह कहनेका मुख्य मतलब है॥ १२८॥

८. निर्बैरी बर्तै जग माँहीं ❀ मन वच कर्म घात कोउ नाहीं॥ १२९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जग माहीं=संसार या जगत्में तुमलोग जो कि, यह नरदेह लेकर जन्म लिये हो, तो जगत्में रहकर अपना सुधार और हित करो।

निर्बैरी बर्तै=और सबोंसे निर्बैरी होकर मित्र-भाव, प्रेमभाव, दया स्वभाव रखकर बर्तना या चलना वा कहीं रहना चाहिये। तैसे ही—

मन=मनसे किसीकी हानि बुराई न चितावे; अपने मनको सदा शुद्ध रखै।

वच=वचनसे कटुवाक्य और झूठ बोलकर किसीका भी बिगाड़ न करे, अपने वचनको शुद्ध सत्य रक्खे; और—

कर्म=कर्त्तव्य या कर्मसे भी किसीकी नुकशान या हानि न करे, किन्तु शुद्ध सत्कर्ममात्र करे। और—

कोउ=मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटियाँ आदि किसी भी जीवोंकी जान-बूझकर—

घात=द्वेष, वैर-विरोध करके घात-प्रतिघात वा हिंसा—

नाहीं=कभी करनी नहीं चाहिये। सबपर दया रखनी चाहिये॥

व्याख्या— हे मुमुक्षुओ! जगत्में रहिके किसी प्राणियोंसे वैर-विरोध, द्वेष नहीं करो। निर्वैरी होकर मैत्रीभावसे जगत्में वर्तमानमें बर्तो। मनसे, वचनसे और कर्मसे किसी जीवोंकी घात वा हिंसा, हानि और बिगाड़ मत् करो। चारोंखानीके छोटे-बड़े देहधारी जीवोंकी शक्तिभर बचाकर रक्षा ही करनी चाहिये। ऐसी दयाके प्रतापसे ही जल्दीसे अन्तःकरण निर्मल हो जायगा, सो जानलो॥ १२६॥

९. सकभरि काहू सो नहिं मुरई * भूखा नङ्गा तिर्पित करई॥ १३०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! दयाधारियोंकोः—

सकभरि=अपनेमें शक्ति रहते हुए भरसक दयाको पूर्णतासे धारण करना चाहिये।

काहू सो= किसी जीवोंकी यथाशक्ति रक्षा
नहिं मुरई= करनेमें पीछे हटना या पीछे देखना न चाहिये। हितकारी साधनोंसे मुँह छिपाना न चाहिये। सत्य न्यायकी वाणी ही भरसक कहना-सुनना चाहिये, इससे पीछे न हटना चाहिये।

भूखा=बाहर भूखे-प्यासेको पासमें यदि अन्न-जल है, तो खिला-पिला देना चाहिये। और दूसरा, ज्ञानके भूखेको सत्यज्ञानका उपदेश भली-भाँति समझाय देना चाहिये। और—

नङ्गा=अपने पासमें कपड़ा होवे, तो नङ्गोंको पहिरने देना चाहिये। और दूसरी तरफ विवेक-विचार रहित, ऐसा भीतरके नङ्गा=अज्ञ होवै, तो उसे विवेक, बोध कराना चाहिये।

तिर्पित= इस प्रकारसे जो जैसा अधिकारी
करई= होवे, वैसी ही सहायता करके जीवोंको शक्ति अनुसार सन्तुष्ट, तृप्त, सुखी और ज्ञानबोध करते रहना चाहिये। यही मनुष्योंका सत्कर्त्तव्य है॥

व्याख्या— भरसक शक्ति रहते हुए प्राणियोंकी भलाई, हित ही करना चाहिये। शक्ति रहते हुए सत्कर्म, परोपकार करनेमें कभी पीछे हटना वा पीछे देखना, मुँह छिपाना नहीं चाहिये। किसी प्राणीसे भी विमुख होकर उपकारके कर्त्तव्यसे मुड़ना या हटना नहीं चाहिये। अपने पासमें यदि अन्न, जल, वस्त्रादि बाह्य पदार्थ होवे, तो उनके अधिकारियोंको समय आनेपर भोजन, जल, कपड़ादि उचितरूपमें देकर उन्होंके भूख, प्यासे, शीतोष्णका निवारण करके तृप्त कर देना चाहिये। और यदि कोई ज्ञानके भूखे-प्यासे पारख विचारके नङ्गे होवें, तो उनको भी अपनेसे बने तहाँतक सत्य-न्यायसे सत्यज्ञानका बोध देकर तृप्त वा समाधान कर देवे; ऐसे दोनों प्रकारके भूखा-नङ्गाको तृप्त कर देना चाहिये॥ १३०॥

१०. गुरुके शब्द रहै लौलाई * जाते फन्दा काल नशाई॥ १३१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

गुरुके=पारखी सद्गुरुके उपदेशरूप—

शब्द=सारशब्द सत्य निर्णयकी गुरुमुख वाणी-को ग्रहण करके—

रहै लौलाई=उसी सत्यन्यायकी धारणा गुरुभक्ति बोधभावमें सत्य प्रेम-प्रीतिसे लौ लगायके सदा अटल दृढ़ होकर रहना चाहिये; ऐसे गुरुके शब्दमें लौ लगायके पक्का हो रहै।

जाते=जिससे या जिसके प्रतापसे—

काल=स्त्रियाँ और काल गुरुवा लोगोंका मजबूत बन्धन और—

फन्दा=विषयोंके फन्दा तथा कल्पनादिके जाल-फाँस महाफन्दा सब ही—

नशाई=विध्वंस होकर नाश हो, छिन्न-भिन्न हो जायगा; और जिससे जीव सुखी हो मुक्त हो जायगा॥

व्याख्या— मुमुक्षुओंको चाहिये कि, पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य निर्णयके उपदेश सारशब्दमें लौ लगायके गुरुभक्तिमें दृढ़ रहे, जिससे गुरुकी दया और बोधके प्रतापसे काल-जालका समस्त

फन्दा नाश हो जायगा और सदाके लिये भव-बन्धन भी छूट जायगा ॥ १३१ ॥

११. गुरु साँचा साँची सो बानी * झूठेके सङ्ग मूलहु हानी ॥ १३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गुरु साँचा = अज्ञान-अन्धकार मोह-जालोंको नाश करके सत्य पारखबोधका प्रकाश कर देनेवाले सोई सच्चे सद्गुरु बन्दीछोर पारखी सद्गुरु हैं।

सो = सो उन सद्गुरुके उपदेशरूपी—

बानी = सत्य निर्णयकी गुरुमुख वाणी सारशब्द-का बोध भी—

साँची = यथार्थ सत्य है। जो कि, सत्य चैतन्य स्वरूपका पारखबोध देनेवाला होनेसे सच्चा है। और—

झूठे = मिथ्यावादी, पक्षपाती, कर्मी, भक्त, योगी, ज्ञानी आदि और झूठे विषयी लोगोंकी झूठी ही मोह-मानन्दीमें पड़कर—

के सङ्ग = उन लोगोंके धोखा पकड़कर उन्होंके सङ्ग-साथ सहवास प्रीतिमें जो लगे, सो ऐसे लगनेसे उन्हें—

मूलहु = लाभ तो कुछ होनेका नहीं। बल्कि,

हानी = अपने मूल जमापद जीवकी स्थिति होनेके सद्गुणोंकी भी सब तरफसे हानि, नुकशानी होकर नरजन्मकी बर्बादी हो जाती है। इससे उन्होंके कुसङ्ग कभी करना नहीं चाहिये ॥

व्याख्या— पारख प्रकाश करनेवाले सद्गुरु सच्चे बन्दीछोर हैं। उनकी गुरुमुख वाणी सत्यन्यायका उपदेश सारशब्द टकसार है, सो भी यथार्थ सत्य चैतन्य बोधदाता सच्ची वाणी है। इसके ग्रहण करनेसे नर जीव भव-बन्धनोंसे छूट जाते हैं। और झूठे गुरुवालोगोंके तथा नारियों-के सङ्ग-साथमें लगे रहकर विषय और कल्पनादिमें अटके रहनेसे नर जीवोंके मूल जमापद प्राप्त होनेका हंस रहनी सद्गुण तथा नर-जन्म भी व्यर्थ होकर समूल हानि हो जाती है। जिससे जीव चौरासी योनियोंके अधिकारी हो जाते हैं। इसकारणसे झूठे लोगोंके सङ्ग कभी करना नहीं चाहिये। उनके सङ्गको कुसङ्ग, तुच्छ जानकर छोड़देना चाहिये ॥ १३२ ॥

१२. मूल दया जो आप सँवारे * सँवरे और जीवको तारै ॥ १३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो = जो कोई सत्सङ्गी मनुष्य जो कि—

आप = अपने आप ही स्वयं स्वरूपी जीवको जीवन्मुक्त होनेके वास्ते—

सँवारे = देहोंके जड़ाध्यास खानी-वाणी मानन्दी-को सर्वथा हटाय करके वासनाको शुद्ध करते हैं, कर्त्तव्योंको सुधारते हैं, ऐसे अपनेको बन्धनोंसे सम्हालना या बचाना यही—

मूल दया = सर्वश्रेष्ठ महान 'मूल दया' या 'निज दया' कहलाती है। जिससे जीवको निज-पदकी स्थिति प्राप्ति होती है।

सँवरे = जो कोई महाभाग्यवान् महान् नरजीव अपने खानी-वाणियोंके बन्धनोंसे छूटे हुए सम्हले हुए पारखी हैं, सोई सद्गुरुरूपसे सत्य उपदेश देकर—

और = दूसरे और जिज्ञासु मनुष्योंको भी सारासार परखाय देते हैं; वे ही—

जीवको = नरजीवोंको भव-बन्धनोंसे छुड़ाकर

तारै = पार उतार देते हैं। यानी भवसागर-से तारकर पारखपदमें टिकाय देते हैं, मुक्त कराय देते हैं ॥

व्याख्या— दो प्रकारकी दयाका यहाँपर खुलासा करते हैं। एक तो 'मूल दया' वा 'निज दया' है। दूसरी, 'पर दया' कहलाती है। अपने जीवको देह बन्धन, जड़ाध्याससे निकालना या बचाना, सम्हालना, मुक्त करनेके पुरुषार्थ सत्सङ्ग-विचार करना, यही "मूल दया या निज दया" का लक्षण है। इसप्रकार पहले अपने खानी-वाणियोंके बन्धनोंसे छूटकर या बचकर जीवन्मुक्त होना चाहिये। फिर अन्य अधिकारी जिज्ञासु नरजीवोंको सत्य पारखबोध देकर भवसागरसे पार उतारना चाहिये। बन्धनसे छूटे हुए, पारखी सन्त ही मनुष्योंको बन्धनोंसे मुक्तकर भव पार उतार सकते हैं, और

मुमुक्षुओंको पार उतारते भी हैं ॥ १३३ ॥

१३. सो बिन गुरुकी दया न होई ❀ गुरु साँचा जग बिरला कोई ॥ १३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सो=सो निजदया या जीवन्मुक्त स्थिति प्राप्ति होनेको—

बिन गुरुकी=बिना पारखी सद्गुरुदेवकी—

दया=दयादृष्टि या पूर्ण कृपाके हुए—

न होई=कदापि किसीको मुक्तिपदकी प्राप्ति या हाशिली हो नहीं सकती है। इससे सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करना चाहिये।

जग=जगत् या संसारके बीचमें वञ्चक गुरुवालोग तो बहुत हैं, परन्तु—

गुरु=महान् अविद्यारूप अज्ञान मोहको हटाकर सत्य चैतन्य पारखबोधको प्रकाश करनेवाले, ऐसे पारखी सद्गुरु जो हैं, सो—

साँचा=सच्चे साधु-महात्मा सत्यवक्ता सत्य बोधदाता होनेसे ऐसे बहुत कम मिलते हैं।

बिरला=
कोई= } लाखों, करोड़ों साधुओंमें कोई बिरले ही एक सत्यन्यायी पारखी सन्त बड़े भाग्यसे ही मिलते हैं। उनको कोई-कोई ही पहिचान पाते हैं ॥

व्याख्या— बन्दीछोर पारखी सद्गुरुकी कृपा या दयादृष्टि हुए बिना, सत्यबोध प्राप्त करना, मूल-दया धारण करना, यह कभी हो नहीं सकता है। सद्गुरुकी दया होनेपर तथा शुभ संस्कार जाग्रत् होनेपर ही ऐसा होता है; और सच्चे पारखी सद्गुरुका मिलना भी अति कठिन है। क्योंकि, गुरुवालोगोंकी जगत्में भरमार है। जहाँ-तहाँ पाखण्ड फैला हुआ है। इसकारण जगत्में पारखी सद्गुरु सच्चे कोई बिरले ही होते हैं; सो बड़े भाग्यसे ही मिलते हैं ॥ १३४ ॥

१४. साँचा साहेब सेवा कीजे ❀ भली प्रकार सबै जँच लीजै ॥ १३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

साहेब=सर्वश्रेष्ठ ज्ञान शिरोमणि सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा उनके पारख सिद्धान्तके अनुयायी पारखी श्रेष्ठ सन्त—

साँचा=सत्य पारखबोध प्रकाशी, सच्चे कबीरपन्थी, साधु सद्गुरु साहेबके ही, हे मुमुक्षुओ ! तुम लोग—

सेवा=निष्कपट शुद्ध भावसे तन, मन, धन और सर्वस्व अर्पण करके यथार्थ सेवा-सत्कार बोधभाव बन्दगी, यथाशक्तिसे नित्यप्रति—

कीजे=कर लीजिये ! नर जीवनका सुधार, कल्याण कर लीजिये ! और—

भली प्रकार=भलीभाँति वा अच्छी तरहसे निःशङ्कोच होकर—

सबै=सब सिद्धान्तोंके मर्म, खानी-वाणी, बन्धन-मुक्तिकी बातें सब ही—

जँच लीजै=पूछ-पूछकर समझ लीजिये ! और जैसा सद्गुरु कहें, वैसा विवेक करके परख लीजिये ! सब कसरखोटको जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— अर्थात् हे मुमुक्षुओ ! सच्चे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके अनुयायी पारखबोधदाता सर्वश्रेष्ठ पारखी सद्गुरुको अच्छी तरहसे पहिचान करके उन साहेबकी सेवा कल्याणके लिये तन, मन, धनादि अर्पण करके यथार्थ रीतिसे कर लीजिये ! और समय-समयपर पारखी सद्गुरुसे भलीप्रकारसे सब सिद्धान्तोंका सार-असार तथा मुक्तिमार्गका रहस्य पूछ-पूछकर जान लीजिये ! सद्गुरु साहेब जैसा लखावें परखावें, वैसा अपने भी परखकर सारको ग्रहण करके और असारको त्याग दीजिये ! तभी नर जन्म सफल होगा, ऐसा जानिये ! ॥ १३५ ॥

साखीः— जो तू आया जगतमें ❀ तो ऐसा करि लेहु ॥
[१४] कर साहेबकी बन्दगी ❀ भूखेको कछु देहु ॥ १३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो तू=हे जीव ! जो कि, तू तो नित्य चैतन्य अखण्ड, अमर स्वरूप है; जड़ाध्यासके

कारण चारखानीके अनेकों योनियोंमें भटक रहा है।

आया = } तहाँ जन्मते-मरते तीन खानियोंमें
जगतमें = } घूमते-फिरते अभी तुम जो मनुष्य जन्ममें आया है, सो बड़े भाग्यसे ही आया है। यह कर्मभूमिका है, सो जानो; और अपने कल्याणका पुरुषार्थ करो।

तो = अब तो हे मनुष्यो! सावधान होके तुमलोग

ऐसा करि लेहु = ऐसा उत्तम सत्कर्म करलो कि, जिससे फिर तुम्हें चौरासी योनियोंमें जाना न पड़े। मुक्ति प्राप्त हो जाय, ऐसा दृढ़ होके सत्पुरुषार्थ करलो! और साथमें दो काम अवश्य करो, सो कौन? कि, सुनो! एक तो पहले यह करो कि—

साहेबकी = सर्वश्रेष्ठ पारखी सद्गुरु साहेबकी शरण-ग्रहण करके नाशवान् तन, मन, धनादि सर्व अर्पण करके उनकी भक्ति और—

बन्दगी = सेवा भाव, बन्दगी, टहल करके आज्ञा पालन करो; और—

कर = हाथ, पाँव, सिर आदि दशों इन्द्रियाँ तथा मनादिको गुरुसेवामें दृढ़तासे लगालो! हमेसा साहेबकी बन्दगी सत्य प्रेमसे किया करो, उसमें चूक मत करो! और दूसरा काम यह है कि—

भूखेको = } भोजनके भूखेको अन्न-जल और
कछु देहु = } ज्ञानके भूखेको सत्यज्ञान, विचार पारख, जो कुछ भी तुम्हारे पासमें मौजूद होवे, उसको अधिकारीके प्रति सो वस्तु उदारतासे दान कर दो। जिससे सबोंकी हित-भलाई हो, सोई करो, इसमें चूक मत करो!॥

व्याख्या— हे नर जीव! जो तुम जगत्में अभी मनुष्य जन्म ले करके आया है; सो यह तो तुम्हारा बड़ा भाग्य उदय हुआ है। क्योंकि, तुम अमर-अविनाशी होनेसे जड़ वासनावश चौरासी योनियोंमें घूम रहा था; अनन्तों दुःख भोगा और भोग रहा था। सो तहाँ तीन खानी भोग-भूमिका होनेसे वहाँ कुछ कर्त्तव्य बनानेसे नहीं बनता था। यह कर्म-भूमिका मनुष्य खानीमें अभी जो तुम आये हो, तो अब ऐसा सत्कर्म, सत्सङ्ग करो कि, जिससे तुम्हारा जन्म सफल हो जाय और मुक्ति प्राप्त हो जाय। साथ ही दो काम यह भी करो कि, सत्यज्ञानी सर्वश्रेष्ठ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख बोधवाले पारखी सद्गुरु साहेबके शरणागत होकर दृढ़तासे सेवा, टहल, बन्दगीमें ही तन, मन, धनादि अर्पण करके निरहङ्कारी बनो; और भूखे मनुष्योंको अन्न-जलादि पासमें हो, तो खिलाओ-पिलाओ। तथा ज्ञान बोधके भूखे होयँ तो जो कुछ ज्ञान तुम जानते हो, सो सत्यन्यायसे बोध करो; अपना और सबका हित हो, सोई कार्य करो॥ १३६॥

सम्बन्ध— ग्यारहवाँ खण्डमें शूर-वीर या धीर स्वभाव धारण करनेका व्यवहार रहनीके बारेमें कहा गया है। तहाँ ११ चौपाई, और २ साखीका वर्णन हुआ है, सो जानिये!॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ग्यारह खण्ड ॥ ११ ॥ ❀ ॥

१. चौथे वीर व्यवहार विचारै * पक्का होयके सबै सुधारै॥ १३७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

चौथे = चौथा नम्बरमें चारखानीके दुःखोंसे बचनेके लिये—

वीर = मनुष्योंको चाहिये कि, शूर-वीर, धीर, अडिग्ग, सहनशील और पुरुषार्थी बन करके सर्व सद्गुणोंको धारणकर—

व्यवहार = काया, वचन, मनसे होनेवाले कर्म वा प्रवृत्ति-निवृत्ति व्यवहारोंको शुद्धता पूर्वक कर लेवे। और—

विचारै = कर्म करनेके पहले परिणामका खूब विचार कर लेवे कि, इससे हमें बन्धन तो होनेवाला नहीं है? और सदा मुक्ति सहायक सत्कर्मको ही विचार पूर्वक करे-करावे। और—

पक्का होयके = सद्गुण रहनी संयुक्त पारखदृष्टि बोधमें दृढ़ मजबूत स्थिर होयके, ऐसे पक्का होयके—

सबै = सर्व षट् पशुधर्मोंको और झिनी तथा मोटी मायाके जालोंको निवेरा करके यह सबको—

सुधारै=अच्छी तरहसे सुधार लेवे इस तरह- से नरजन्मका सुधार कर लेवे ॥

व्याख्या— जैसे सच्चा शूर-वीर चतुरङ्गिणी सेना (हाथी, घोड़ा, पैदल, रथ) लेकर रणस्थल-में प्रवेश करता है। अपनी वीरतासे शत्रु सैन्यको विनाश करके विजयी होकर लौट आता है। इसी-प्रकार परमार्थ-मुक्ति साधनाके लिये भी चारों तरफसे सर्वाङ्ग सद्गुणोंको धारण करनेकी आवश्यकता-है। बुद्धिसे सत्यको धारण करे। मनसे विचारको ग्रहण करे। अहङ्कारकी जगहमें शील रक्खे। चित्तमें दयाको टिकावे; और अन्तःकरणमें धैर्य धारण करे। तब वह नर शूर-वीरकी नाईं अन्तःकरण चतुष्टयोंको वशमें करनेवाला पराक्रमी, विजयी हो जायगा। यहाँपर चतुर्थ सद्गुण 'वीरता' धारण करनेके लिये कहा है। कल्याणपथमें पैर रक्खा, तो आगे ही बढ़ते जाना चाहिये। चाहे कैसे भी सङ्कट आ पड़े, तो भी पीछे हटना नहीं चाहिये। शत्रुदलको दमन करके परास्त करना वीरोंका व्यवहार है। तैसे आगे-पीछे सूक्ष्म-स्थूल सब व्यवहारोंको विचार करके करै। परिणाममें अपना हितकर हो, वैसे सद्व्यवहार ही करै। चाहे अभी कठिन भी मालूम पड़े, तो भी स्वभावमें वीरताको ही रक्खे। पहले तो सत्सङ्ग-विचारमें पक्का होवे, फिर पारखदृष्टिमें स्थिर होवे। इसप्रकारसे सब कर्म, धर्म, वासना, अध्यासोंको सुधार करके मुक्ति पथारूढ़ हो जाना चाहिये ॥ १३७ ॥

२. पक्का जो कछु करै विचारा ❀ तासों कबहुँ टरै नहिं टारा ॥ १३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो कछु करै=स्वार्थ और परमार्थके जो कुछ भी कार्य करै या करना होवे, तो उसके नतीजाको वा परिणामको, फलको सोचे, समझे, जिससे निज-पर हित ही हो, ऐसा खूब मनमें—

विचारा=सद्विचार या मनन करके तब कोई कार्य करे; इससे वह कच्चा या गलती होनेका नहीं। विचार पूर्वक किया हुआ कार्य अच्छा होता है।

पक्का=सब कार्यमें कुशल पक्का होयके सद्गुण सहित पारखदृष्टिमें ही स्थिर हो, ऐसा पूरा पक्का होना चाहिये।

तासों=जिससे अन्य किसी लोगोंसे भी उस अपनी स्थितिसे—

कबहुँ=कभी किसी समयमें भी अपने कार्य या बातको और हंस रहनीको—

टरै नहिं टारा=हटानेसे भी न हटै। खण्डन करनेसे भी न टूटै; और टालने, छिपानेसे भी न टलै, न छिपै। ऐसी पक्की बात या सत्कर्त्तव्य करना चाहिये ॥

व्याख्या— जो कुछ भी काम करे और कहै, तो उसमें पक्का विचार पारख करके ही करना और कहना चाहिये। जिससे सबोंका हित हो; और दूसरोंके बिगाड़नेसे तथा हटानेसे भी न बिगड़े और न हटे; यानी कभी किसीके टारनेसे भी न टरे, न हिले। ऐसे सच्चा वर्तमान व्यवहार रखकर सत्य सिद्धान्तको ही ग्रहण करना चाहिये ॥ १३८ ॥

३. जो जीव भगजुगनी समतूला ❀ छिन चमकै छिन धुन्ध बेसूला ॥ १३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

भगजुगनी=जैसे जुगनू कीड़ाके भग या मूल द्वारके पासमें कुछ चमकाहट-प्रकाश रहता है। वैसे ही जुगनू कीड़ाके—

समतूला=समान या बरोबर जुगनूवत् क्षणिक स्वभाववाले, चञ्चल मनुष्य—

जो जीव=जो कोई ऐसे अज्ञानी, अबोध, नरजीव हैं, सो चञ्चलताके कारण सदा भव-बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं।

छिन चमकै=
छिन धुन्ध=
बेसूला=
जैसे रात्रिमें जुगनूका थोड़ा-थोड़ा प्रकाश क्षण भरमें तो चमक करके दिखाई देता है, और क्षणमें वह बुझके अँधेरा ही हो जाता है। तैसे ही बेपारखी अज्ञानी गृहस्थ, भक्त, और भेषधारियोंको कभी-कभी सत्कर्म, दया, विचारादि करनेका थोड़ा प्रकाश हो जाता है, फिर वह जल्दी ही गायब होके महा

अज्ञान माया-मोह, धोखेमें ही पड़े रहते हैं। और कहीं पारखी सन्तोंके उपदेश सुनने-पर अपने-अपने कर्मोंसे लजाय जाते हैं। फिर वह सब सुना हुआ भूलकर बन्धनोंमें ही गाफिल हो पड़े रहते हैं॥

व्याख्या— जो नरजीव भगगुगनूके समान स्वभाववाले होते हैं, वे तो पामर मूढ़ हैं। अर्थात् जैसे भगजुगनू जिसको जुगनू, पटबीजना, खद्योत भी कहते हैं, सो एक छोटा-सा काला रङ्गका कीड़ा होता है। उसके भग या मूल द्वारके पासमें थोड़ी-सी सफेद चमड़ी रहती है। वहाँपर कुछ-कुछ प्रकाश चमकता रहता है; सो वह क्षणमें तो कुछ उजियाला होकर चमकता है, फिर क्षणमें ही बुझके अँधियारा हो जाता है। ऐसे ही कितनेक मनुष्य भी भगजुगनूके समान ही लक्षणवाले होते हैं। वे क्षणमें तो कुछ विचारके कार्य करने लगते हैं, तहाँ दया, धर्म, परोपकार भी कुछ करते हैं। फिर क्षणमें ही उससे विमुख हो जाते हैं। अपने स्वार्थके लिये वे ही लोग हिंसा, अधर्म, व्यभिचार, दूसरों-की हानि भी कर बैठते हैं। यही लक्षण ही तो जुगनूके स्वभावके समान है। और कई पण्डितलोग कथा बाँचते हैं, तहाँपर तो पुस्तकमें लिखी बातें, तो खूब चमकाय पुकार-पुकारके कह देते हैं; दूसरोंको वा श्रोताओंको पुस्तककी बात सुनाय देते हैं। परन्तु, कथा समाप्त होनेपर अपने वही बात जो कही थी, सो वे कुछ भी पालन नहीं करते हैं, उसे तो भूल ही जाते हैं। यह तो, जुगनूका-सा काम हुआ कि नहीं? दूसरोंको ही जुगनूका प्रकाश देखनेमें आता है। परन्तु, जुगनू तो वह अपने प्रकाशसे कुछ फायदा नहीं लेता है। तैसे ही वञ्चक पण्डित लोगोंकी चाल हो रही है। और कोई संसारी गृहस्थलोग, तथा भेषधारी लोग कभी पारखी सन्तोंके सत्सङ्गमें आये, वहाँपर यथार्थ निर्णयके उपदेश सुननेसे क्षण-भरके लिये तो उनमें कुछ विचार चमका; अपने-अपने कर्मोंकी कुछ कसर-खोट मालूम हुई। फिर वहाँसे उठके जब अपने-अपने ठिकाने गये, तो वह बात सब वे भूल गये। पहले सरीखे विषयोंमें और कल्पना, धोखाओंमें पड़े; धुन्ध-अन्ध गाफिलीमें जाके पड़ जाते हैं। ऐसे उन्होंकी विचित्र चाल हो रही है॥ १३९॥

४. चमकै रात अँधियारी माँही * दिनके जोत भग माँहि समाही॥ १४०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चमकै रात = अँधियारी माँही = अँधियारी रात्रिमें ही भगजुगनू-का अल्प प्रकाश कुछ-कुछ चमकता रहता है। और वह दिनमें दिखाई नहीं देता है। तद्वत् योगी, ज्ञानी, भक्त आदि गुरुवालोगोंके मिथ्या धोखा, अनुमान, कल्पनाका उपदेश अज्ञानी, अबोध मूढ़ लोगोंके यहाँ ही चमकता वा फैलता है। और—

दिनके जोत = भग-माँहि = समाही = दिनमें सूर्यके तीव्र प्रकाश होनेसे जुगनूकी अल्प ज्योति उसके भगमें ही समा जाती है। तैसे ही सत्यन्यायी पारखी सन्त-महात्मा-के पारख प्रकाश, सत्य उपदेशके सामने गुरुवालोगोंका कल्पना, धोखा कुछ ठहर नहीं सकता है। और पारखी सन्तके सन्मुखमें उन्होंके भ्रम फीका, तुच्छ होके वह भ्रम गुरुवालोगोंके अन्तःकरणमें ही जाके समा जाता है। अर्थात् पारखी सद्गुरुके सामने सबके तेज फीके पड़ जाते हैं। अतः सब कोई अपनी-अपनी मानन्दी प्रगट न करके छिपाये रहते हैं॥

व्याख्या— जुगनूका प्रकाश अँधियारी रात्रिमें ही अल्प चमकता है। दिनमें सूर्यका प्रकाश होने-पर वह छिप जाता है या मन्द होके दब जाता है। तद्वत् कर्मी, भक्त, ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवालोगोंकी चाल जुगनूके समान है। क्योंकि, भ्रमिक गुरुवालोगोंके पाखण्ड, धोखा, कल्पनाका उपदेश अज्ञानी पारखहीन मूढ़ मनुष्योंमें ही चमकता है वा प्रचार होता है। क्योंकि, सार-असार तो वे कुछ जानते ही नहीं; जैसे गुरुवालोग भुलाय देते हैं, वैसे ही भूलके भ्रमिक हो जाते हैं। सूर्यके समान पारखी

सन्तोंके ज्ञानका प्रकाश है; सो जहाँ पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयका उपदेश प्रकाश होता है, वहाँपर पाखण्डी गुरुवालोगोंकी ज्योति, बल-बुद्धि वा कल्पनाएँ क्षीण हो जाती हैं, तो उन्हीं लोगोंके हृदयमें ही वह समा जाती हैं। बाहर निकल नहीं सकती हैं; वे गुरुवालोग गुपचुप सरकके चले जाते हैं ॥१४०॥

५. कछुवा लोमरी जानहु सोई * छिन चमकै छिन भीतर होई ॥ १४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

कछुवा=जैसे कछुवा कभी हाथ-पैर, सिर बाहर निकालके चलने-फिरने लग जाता है; और कभी खतरा जानके सब समेटके भीतर घुसेड़ लेता है। तैसे ही गुरुवालोग कभी तो ज्ञानी बनते हैं, उपदेश देने लगते हैं, और कभी अज्ञानी बनकर पशुवत् आचरण करने लग जाते हैं। और—

लोमरी=लोमड़ी एक जानवर होती है। वह एक तरफ चलती है, तो दूसरी तरफ देखती जाती है। तैसे बेपारखीलोग कर्म, भक्ति और ज्ञानकी तरफ चलते हैं, तो विषय भोगोंमें आसक्ति रखके संसारकी तरफ देखते जाते हैं या वासना संसारमें लगाते जाते हैं।

जानहु सोई=ऐसे अविवेकी मनुष्योंको कछुवा, लोमड़ीके समान नरपशु ही जान लो। आगे वे पशु आदि चौरासी योनियोंमें ही जानेवाले हैं। और—

छिन चमकै=क्षण भरमें तो खूब चमकते हैं, अनेक सिद्धान्तोंका कथन, उपदेश, साधनादि करते हैं; और—

छिन भीतर होई=क्षण भरमें वे ही अज्ञानी विषयासक्त हो जाते हैं। कहीं अद्वैत ब्रह्म कथन करके विषय भोगी हो जाते हैं, तथा कोई शून्यमें गाफिल हो जाते हैं। ऐसे उनका सब बुद्धि-विचार नष्ट हो जाता है ॥

व्याख्या— जो कि, क्षणिक बुद्धिवाले हैं, सो क्षणमें तो सुसङ्गी तथा क्षणमें ही कुसङ्गी बन जाते हैं; और क्षणमें ज्ञानी तथा क्षणमें अज्ञानी ही बन जाते हैं। क्षणमें उपदेशक तथा क्षणमें मूढ़ बन जाते हैं। क्षणमें नाना कर्मोंमें चमकते हैं तथा क्षणमें भीतर घुसके शून्यवृत्ति कर लेते हैं। ऐसे मनुष्योंको कछुवा और लोमड़ीके समान धूर्त जन्तु पशु ही जान लीजिये ! एकरस जिनका बोध-विचार होवे, सोई सच्चे मनुष्य हैं ॥ १४१ ॥

६. मानुष बिना विचार न करई * जो कछु करै सो नाहीं टरई ॥ १४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मानुष बिना= विचार न करई= } सच्चे पारखी मनुष्य तो परिणामको विचारे बिना कोई कार्य ही नहीं करते हैं। अतएव, जिज्ञासु मनुष्योंको भी चाहिये कि, हिताहितका विचार किये बिना कोई कार्य न करे, मनुष्य बुद्धिसे विचार किये बिना कुछ भी करना नहीं चाहिये।

जो कछु करै= सो नाहीं टरई= } पारखी सन्त जो कुछ भी सत्यन्यायका उपदेशादि कार्य करते हैं; सो किसीके टराये या टालेसे टल नहीं सकता है, इससे तुम भी जो कुछ करो, सो सत्य ही करो, जो किसीके हिलाये या डिगानेसे नहीं डिगे, अटल रहे, ऐसा कार्य बर्ताव करना चाहिये ॥

व्याख्या— सच्चे मनुष्य पारखी सन्त तो पारख विचारसे यथार्थ शोध-बोध किये बिना कोई कार्य और उपदेश किसीको भी नहीं करते हैं। सत्यन्याय निर्णयसे जो कुछ उपदेशादि सत्कार्य परमार्थ करते हैं; सो यथार्थ सच्चा होनेसे किसीके टलायेसे टल नहीं सकता है, अतः वह अटल, दृढ़, पक्का ही रहता है ॥ १४२ ॥

७. जो कछु बुरा कर्म बनि आवै * परखत ताही तुरीत बहावै ॥ १४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो कछु=हे मनुष्यो ! सङ्ग-कुसङ्गसे जो कुछ भी तुम्हारेसे किसी समयमें—

बुरा कर्म= बनि आवै= } बुराईका दुषित कर्म-कुकर्म दुर्गुण-से यदि हो जाय या बन जाय,

अथवा यदि बुरा कर्म होनेका मौका आवे, तो उसको सुधारनेका लक्ष्य रखना चाहिये। और—

परखत = जो अपने ही ख्यालमें आवे कि, बुराई-का कुकर्म हो गया या होनेका मौका आ रहा है, यदि कोई पारखी सन्त सद्गुरुने चेताके बता दिये वा जगा दिये, तो वैसे अवसरमें ठीकसे परखके वा समझके—

ताही = वह बुरा स्वभाव, बुरी आदत, बुरे कर्मों-को एकदमसे—

तुरीत = जल्दीसे विशेष प्रयत्न करके भी शीघ्रातिशीघ्र—

बहावै = बहाय देवे, छोड़ देवे, अपनेसे हटायके अलगकर देवे वा उसको फौरन त्याग देवे॥

व्याख्या— हित चाहनेवाले मनुष्योंको चाहिये कि, कभी भूलसे कुसङ्गमें पड़के अपने द्वारा जो कुछ भी बुराईका अकर्म बन आवे, तो स्वयंको वह चेत होनेपर वा पारखी सद्गुरुके चेताय देनेपर या परखाय देनेपर उसको तुरन्त ही छोड़ देना या त्याग देना चाहिये; उसे त्याग देनेमें जरा भी विलम्ब नहीं करना चाहिये॥ १४३॥

८. मन वच कर्म साँचके सङ्गी * छाड़ै सङ्ग जीव बहुरङ्गी॥ १४४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

मन = मनमें भी सत्यका ही विचार करै—

वच = वचनसे भी सत्य-सत्य ही बोलै; और—

कर्म = कर्म या कर्त्तव्यसे भी सत्य ही व्यवहार, सत्कर्मको ही करै; इस प्रकारसे मन, वचन और कर्म तीनोंसे ही—

साँचके = सङ्गी = सत्यन्यायी सच्चे पारखी साधु-गुरु-के ही सत्सङ्ग, सेवा, भक्ति करता रहे और सज्जनोंका ही सदा सुसङ्ग करै, सद्गुणोंका ही ग्रहण तथा धारण करता रहे। फिर—

छाड़ै सङ्ग = कुसङ्गको सर्वथा छोड़ देवे। कभी कुसङ्गमें न पड़ै।

जीव = बहुरङ्गी = हे नरजीव! और बहुरङ्गी स्त्रियों-का संसर्ग, व्यभिचारी विषयी-जनोंका सङ्ग तथा अनेक प्रकारके भेषवाले पाखण्डी गुरुवा लोगोंके सङ्ग-साथ भी सर्वथा छोड़ देना चाहिये। इनके सङ्गसे सिवाय हानिके कोई लाभ होनेके नहीं, सो जानके कुसङ्गको त्यागके सत्सङ्गमें लगे रहो॥

व्याख्या— मनसे, वचनसे और कर्मसे पारखी साधु सद्गुरुका ही सत्सङ्गी, प्रेमी, सेवक होवे और सत्य रहनी, सत्य गहनीको ही अपने सङ्गमें करके धारण करै; और बहुरङ्गी पाखण्डी गुरुवालोग तथा विषयीलोग स्त्रियाँ आदि दुर्जन जीवोंके सङ्ग-साथको एकदम छोड़ देवे। कभी भूलकर भी उनका साथ न करै॥ १४४॥

९. आँधरि गुष्ट न भावै कोई * बिन देखे परतीत न होई॥ १४५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

आँधरि = गुष्ट = अन्धोंकी वार्ता, यानी पारखहीन अन्धे गुरुवालोगोंकी वाणी कल्पना-का जालरूप वेदोंका सिद्धान्त ब्रह्म, ईश्वरादि देहका भास मिथ्या है, ऐसा जान करके समझ-बूझके—

न भावै कोई = पारखी सन्तोंका भाव उन कोई भी धोखेमें नहीं रहता है। यानी कोई भी मिथ्या कल्पित सिद्धान्तोंको पारखी सन्त अच्छा नहीं मानते हैं, इससे किसीपर कुछ भाव-लगाव भी नहीं रखते हैं।

बिन देखे = विवेक-विचारसे अच्छी तरह सार-असारको देखे-समझे-बूझे पहचाने बिना, अर्थात् अन्तरदृष्टिसे स्वयं देखे बिना—

परतीत न होई = पारखी सन्तोंको गुरुवालोगोंकी झूठी बातोंपर कभी विश्वास हो नहीं सकता है; इससे हितेच्छुकोंको ठीक तरहसे समझे बिना अन्धश्रद्धासे किसीके मिथ्या सिद्धान्तोंकी बातोंको झटसे विश्वास कर लेना नहीं चाहिये। बिना समझे हुए प्रतीत किया हुआ अच्छा नहीं होता है॥

व्याख्या— जैसे अन्धोंकी गोष्ठी-वार्तामें सिवाय झूठके और कुछ नहीं होता है। वैसे ही वेद-

शास्त्रोंके मुख्य सिद्धान्त ब्रह्म-ईश्वरादि, जो ठहराये हैं, सो देहका भास, अध्यास, कल्पनादि होनेसे मिथ्या है। ऐसा जाननेवाले पारखी सन्तोंको वह आँधरिगुष्टका सिद्धान्त कभी अच्छा नहीं लग सकता है। उस मिथ्या भ्रममें उनका कुछ भाव टिक भी नहीं सकता है। कोई भी विवेकी सन्त मिथ्या धोखाको नहीं मान सकते हैं। जो देखा नहीं, समझा नहीं और देखने-समझनेमें भी नहीं आता है, उसपर विश्वास कैसे हो सकता है? कभी विश्वास हो नहीं सकता है। अतएव हे जिज्ञासुओ! वेदादि वाणी कल्पनाके मिथ्या सिद्धान्तोंमें भ्रमसे कोई सत्य भाव न करो। पूरी तौरसे देखे, समझे, बूझे बिना, विवेकसे यथार्थ ठहरे बिना धोखाको विश्वास करके मत मानो। यद्यपि देखे बिना तो अच्छी तरहसे प्रतीत हो नहीं सकता है; तथापि गुरुवालोग झूठ-मूठका ही कुछ तमाशा देखायके मनुष्योंको भुलाय देते हैं। अतः बुद्धिमानको वहाँ भूलना नहीं चाहिये ॥ १४५ ॥

१०. जौलों देखिये न अपने नैना * तौलों मानिये न गुरुके बैना ॥ १४६ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जौलों = जबतक अच्छी तरहसे ठीकसे—
अपने नैना = निज पारखदृष्टिके नेत्रोंसे यानी अपनी विवेक-दृष्टिसे—
देखिये न = सत्यासत्यको परख करके नहीं देखा है या समझा-बूझा जाना नहीं गया है, अथवा ठीक तरीकेसे देखे-समझे बिना, समाधान हुए बिना—
तौलों = तबतक जिज्ञासु नर जीवोंको निश्चय ही नहीं होता है; और—
गुरुके बैना = सद्गुरु और गुरुवा लोगोंके वाणी-उपदेशोंको तथा उन्होंके सिद्धान्तोंको भी—
मानिये न = मान नहीं सकते हैं या माना ही नहीं जाता है। तथा निश्चयसे सत्यका ही बोध हो, तभी उपदेश भी मानै, नहीं तो किसीकी वाणीको एकाएक मान लेना नहीं चाहिये। एकदम किसीकी बातको नहीं मानिये, किन्तु पारख करिये तब सत्य सिद्धान्तको मानिये॥

व्याख्या— हे जिज्ञासु मनुष्यो! जबतक अपने नेत्रोंसे और विवेकसे किसी बातको या वस्तुको सच्चा देख न लो, तबतक किसी गुरुवा उपदेशककी कही हुई बातको भी ठीक समझकर एकदम मत मान लो। तुम्हारे समझनेमें देखनेमें ठीक आवे, तब बातको मान लो। अथवा पारखदृष्टिके नेत्रोंसे जबतक मनुष्यने नहीं देखा है, तबतक गुरुने कितने ही समझाया, तो भी उस शिष्यने उपदेश माना ही नहीं। जब सार-असार देख लिया, समझ गया, तब तो मान ही लिया। विचारवान् अपने स्वयं ही-बुद्धि विचारसे देखे और समझे बिना किसीकी बातको यों ही सत्य मान नहीं सकते हैं। इस कारणसे परीक्षा किये बिना गुरुवालोगोंकी वाणीको सत्य मानना नहीं चाहिये ॥ १४६ ॥

११. गुरु उपदेश समुझावन हेतू * मुये कहाँ समुझाव अचेतू ॥ १४७ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
गुरु = सोई साधु-सन्त-महात्मा गुरु मानने योग्य हैं, जो कि, सार-असारको परखायकर हृदयके अज्ञान-अन्धकारको मिटायकर सत्यज्ञान पारखबोधका प्रकाश कर देवें; सोई सद्गुरु कहे जाते हैं।
उपदेश = बन्दीछोर पारखी सद्गुरुकी ही शिक्षा, उपदेशको समझकर मान लेना चाहिये। और
समुझावन = } पारखी सद्गुरु जो उपदेश देते
हेतू = } हैं, सो मनुष्योंको सत्यासत्य समझानेके हेतुसे ही देते हैं, सो अपने कल्याणके लिये सद्गुरुका समझाया हुआ बोधको ठीकसे समझ लेना चाहिये। जिससे सोई मुक्तिका हेतु हो जायगा। और गुरु करनेका हेतु यही है, कि बन्धन-मुक्तिके सकल भेद समझनेमें आवे, इसीके वास्ते गुरु किया जाता है। और—
मुये = जो जड़ाध्यासमें आप ही गाफिल हैं, सो या जो-जो मर-मर गये, वे लोग और विवेक बुद्धि जिसकी मरी हुई है, ऐसे मूढ़ पक्षपाती-जन अथवा जड़ पीतर-पाथर, धातुओंकी मूर्ति- देवी-देवता जो थापना करके रक्खे हैं या ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पनासे जो माने हैं, सो सब मुये हैं।

अचेतू=वे सब अचेत जड़, जाड़, मूढ़ बने हैं। ज्ञानबोधसे हीन हुए वा हो रहे हैं, सो—
कहाँ समुझाव=नर जीवोंको कहाँ सत्य पारख बोध समझा सकते हैं? इससे कहाँ-का-कहाँ धोखेमें ही मनुष्य चले जाते हैं। सो बिना समझके कारणसे ही ऐसा होता है॥

व्याख्या— सत्य उपदेश समझने-समझानेके वास्ते गुरु-शिष्य किया जाता है। सत्यबोध प्राप्त करनेका हेतु ही सिद्ध न होवे, तो गुरु करना निष्फल है। संसारमें गुरुवालोग तो बहुत हैं; किन्तु, सद्गुरु पारखी सन्त कोई बिरले ही होते हैं, सो बड़े भाग्यसे ही मिलते हैं। पारखी सद्गुरुके ही शरण-ग्रहणकर सत्यासत्यको समझ लेना चाहिये। यही गुरु करनेका हेतु है कि, उनके उपदेश श्रवण करके सत्यबोध प्राप्त करे; और जड़ प्रतिमा पूजक, मूढ़, पामर, पाखण्डी, जड़-पूजामें लगानेवाले और कल्पित ब्रह्म, ईश्वरादि धोखामें लगानेवाले गुरुवालोग 'मुये' कहिये जड़ाध्यासी हुए हैं, वे अपने ही अचेत गाफिल पड़े हैं, तो दूसरोंको क्या सारासार समझायेंगे? कुछ समझा नहीं सकते हैं; इसकारणसे उन्होंकी सङ्गति, जड़ पूजादिको छोड़कर सत्सङ्गमें लगना चाहिये॥ १४७॥

सम्बन्ध— यहाँपर बीजककी दो साखियोंका प्रमाण देकर प्रकरण समझाया गया है, सो जानिये!॥

॥ ❀ ॥ बीजक मूल, साखी नम्बर— २८० ॥ ❀ ॥

साखीः— साधू होना चाहिये * पक्का होयके खेल॥
[१५] कच्चा सरसों पेरिके * खरी भया नहिं तेल॥ १४८॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

साधू होना= मुक्तिके वास्ते मनुष्योंको त्यागी,
चाहिये= भेषधारी साधु तो अवश्य होना ही चाहिये। परन्तु, साधु होना सरल बात नहीं है। क्योंकि, तन, मन, वचनोंको साधकर वा वशकर साधन सम्पन्न, सहनशील, गुरुभक्त, निज-पर उपकारी, ऐसा सच्चा साधु होना चाहिये, तभी मुक्ति प्राप्ति हो सकेगी। उसके लिये—
पक्का=पूरा दृढ़ वैराग्य पक्का होनेपर घर छोड़े, और हंस गुण रहनी-रहस्यमें पक्का मजबूत हो जावे, हृदयमें सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति, वैराग्य तथा पारख दृष्टिको लेकर धारण करे। इसतरह-
होयके=सच्चा मनुष्य वा सच्चा साधु होय करके जड़ाध्याससे चेतन जीवको अलग निकालकर गुणवान् होयके इसप्रकार—
खेल=सत्सङ्गमें रमण करे, वैराग्यमें खेलै, तथा संसारमें वर्तमान व्यतीत करे, तो उसीका नर तन पाना और साधु होना सफल होता है, तथा वही श्रेष्ठ है। नहीं तो—
कच्चा=काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, विषयासक्ति और मान-बड़ाईकी चाहना, अष्टमद, माया-ब्रह्म मिलके व्यापक अद्वैत ब्रह्मपदका सिद्धान्तका अहङ्कार जो लेते हैं, सो सब कच्चे बेपारखी अधूरे हैं, और क्षणिक वैराग्यके जोशमें आके—
सरसों= झटपट जो साधु भेष ले लेते या
पेरिके= भेष बनाय लेते हैं, सो बिना बोध-की दृढ़ताके विनष्ट हो जाते हैं। सद्गुणोंके बिना कर्मसे भ्रष्ट होकर नर-पशु ही हो जाते हैं। जैसा किसीने उतावलासे कच्चा ही सरसों लाके पेराय डारा, तो वह हानि उठायके पछतावा ही करता रहा। क्योंकि-
खरी भया= उससे तेल भी नहीं निकला
नहिं तेल= और न खली ही हुआ, इसीसे तो बेकार हो गया। तैसे ही वह अबोध मनुष्य संसारी भक्त सेवक होके भी नहीं रहा और पूर्ण वैराग्यवान्, बोधवान् सद्गुणधारी साधु भी हो नहीं सका। इससे वह अधबीच-का भ्रष्ट हो कर ठग वा वञ्चक हो गया। उसने अपनी बड़ी ही हानि की। ऐसा कभी किसीको करना नहीं चाहिये॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सत्यन्याय निर्णयसे यथार्थ उपदेश कहा है कि, संसार

बन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्ति प्राप्तिके वास्ते त्याग-वैराग्य, बोध-विचारादि सद्गुण-लक्षण धारण करके सच्चा साधु तो अवश्य ही होना चाहिये। साधु हुए बिना जीवन्मुक्ति तो और किसीको मिल नहीं सकती है। विषय भोगते हुए गृहस्थाश्रमसे मुक्तिकी चाहना करना सरासर मूर्खता है; यह असम्भव बात है। मुमुक्षुओंने साधु तो होना ही चाहिये। परन्तु, पूर्ण वैराग्य लेकर ही सच्चा साधु होना चाहिये। और भेष प्रपञ्चके पाखण्डोंमें पड़ना नहीं चाहिये। सच्चे पारखी सद्गुरुसे भेष लेकरके पक्का मजबूत होना चाहिये। और सत्य, विचार, शील, दयादि सद्गुण-लक्षणोंको पूर्णतासे धारणकर पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये। और पारख दृष्टि लेकर अपने जीवको जड़ाध्यासोंसे अलग निकालना चाहिये। ऐसे पक्का होके देह वर्तमानमें वर्तना चाहिये। इसप्रकार पक्का सच्चा साधु तो होना ही चाहिये। नहीं तो, सिवाय हानिके कोई लाभ होनेका नहीं। जैसे किसीने जल्दीके लिये कच्चा ही सरसोंको पेराय डारा, तो उससे तेल तो कुछ निकला ही नहीं; परन्तु, खली भी तो नहीं भया। वह दरबरा होके बेकारमें गया। तैसे ही पूरा बोध, विचार, त्याग, वैराग्य-की दृढ़ता पक्का हुए बिना कच्चेपना कम अवस्थामें ही कहीं साधु हो गये। तहाँ काम, क्रोधादिके विकार तो कुछ नहीं मिटा। न भास, अध्यास, कल्पनादि ही छूटी। और खानी-वाणीके अहङ्कार, अध्यास दुगुना बढ़ने लगा, इससे कई अधबीचमें ही पथभ्रष्ट, नष्ट हो गये। पामर, विषयी और ठग, लुच्चे बन गये। गुरुवाई करके अबोध मनुष्योंको ठगने-भटकाने लगे। कुमार्गमें पड़के वे बर्बाद हो जाते हैं। अब वे गृहस्थ भक्त भी नहीं रहे तथा सन्तोंमें प्रेम भाव, सेवा-सत्कार भी उन्होंसे छूट गया। और सच्चे साधु भी बन नहीं सके। तहाँ कोई संयोगी भये और कोई भ्रमिक पाखण्डी हो गये। इस कारण सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, इसप्रकारसे उभय जीवनभ्रष्ट कभी नहीं होना चाहिये। पूरा दृढ़ वैराग्य बोध हुए बिना कभी गृहस्थाश्रमको न छोड़े; और साधु बनानेवाले गुरुओंको भी चाहिये कि, जल्दी भेष देके किसीको साधु न बनावें। साल-छैः महीनोंतक अथवा बहुत दिनोंतक साथमें वा समीपमें रखके परीक्षा ले करके यदि वह पक्का निकले, तब अधिकारीको ही भेष देके साधु बनावें। यह सद्गुरुकी सत्य शिक्षा सदा-सर्वदा ध्यानमें सबोंको रखना चाहिये॥१४८॥

॥ ❀ ॥ बीजक मूल, साखी नम्बर— ६५ ॥ ❀ ॥

साखीः— साँचा सौदा कीजिये * अपने मनमें जानि॥

[१६] साँचे हीरा पाइये * झूठे मूलहु हानि ॥ १४९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो!

साँचा सौदा = पारखी सन्त जौहरीके पासमें
कीजिये = या सद्गुरुकी शरणमें जायके, हे जिज्ञासुओ! तुम सत्यको पहिचान करो; और चैतन्य जीव नित्य-सत्य है, तथा कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादि, देहका भास विषयादि असत्य हैं। ऐसा जान करके सत्यासत्यकी परीक्षा बोधका सौदा खरीद कीजिये वा ग्रहण कीजिये। फिर जैसा सद्गुरुने परखाये हैं, तैसा ही—

अपने = अपने हृदयमें या मनमें भी ठीक-ठीक
मनमें = विवेक करके सार और असारको
जानि = जान लीजिये वा पहिचान कीजिये। और अपने मन इन्द्रियादिकोंको सत्ता देकर चलानेवाला जनैया जीव सत्य स्वरूप है, ऐसा जानिये। तथा—

साँचे = सच्चे पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहनेसे हे नर! तुम भी सच्चे रहनीवान् बनकर—

हीरा = सच्चा हीराके समान अखण्ड निज
पाइये = सत्य चैतन्य स्वरूपका पारखबोध जान पाओगे; हीरारूपी पारखबोध पानेपर तुम्हारी सब अज्ञान-दरिद्रता दूर हो जायगी; इससे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें सदा प्रेम-निष्ठासे लगे रहो। और—

झूठे = मिथ्यावादी झूठे गुरुवा लोगोंके तथा कामिनियोंके सङ्ग कभी न करना

चाहिये। यदि उन झूठे लोगोंके सङ्ग करोगे, तो लाभके बदले उलटा—

मूलहु =) मूल मनुष्य पदके सद्गुण-विचार
हानि =) नर जन्मके आयुष्यादि वह सब भी व्यर्थ ही हानि होके बर्बाद हो जायगी, सो जान लो। अतः झूठेके सङ्गसे सदा दूर ही रहना चाहिये ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— जैसे रत्न, जवाहिरात, हीरा वगैरह कोई भी वस्तुकी खरीद या सौदा करना होवे, तो सच्चे जौहरी, ईमानदार व्यापारीसे ही व्यवहार करना चाहिये। जिससे रुपया देके उनसे असली माल ही मिलेगा। और झूठे ठग व्यापारियोंसे सौदा करनेसे धोखा देके वे नकली वस्तु देते हैं। वह वस्तु तो निकम्मी होनेसे कोई काममें आ नहीं सकती है और अपने गाँठके जो रुपये गये, सो उसकी तो बड़ी हानि हो गई। इस प्रकार झूठे धोखे बाजोंके सङ्गसे दोनों तरफसे हानि उठानी पड़ती है। इसीप्रकार सिद्धान्तमें पारखी साधु-गुरु ही सच्चे सौदागर हैं। उनकी शरणमें जायके तन, मन, धनादि नाशवान् कीमत अर्पण करके सत्य चैतन्य स्वरूपका बोध पारख दृष्टिका सच्चा सौदा ले लीजिये। सार-असारको सत्यन्यायी सद्गुरुके उपदेशका मनन द्वारा अपने मनमें आप भी अपरोक्ष करके जान लीजिये। सबका जनैया साक्षी स्वयं प्रकाशी चैतन्य जीव ही तन-मनादि जड़ोंका प्रकाशी सत्य है। और कर्त्ता ईश्वरादि मानन्दी कल्पनामात्र मिथ्या भ्रम है, ऐसा जान लीजिये। निज स्वरूप अखण्ड चैतन्य जीव ही सच्चा हीरा है। इस बोधको सद्गुरुकी दयासे आप प्राप्त कर लीजिये। और उसकी रक्षा करके बचाके रखिये। तभी आपको मुक्ति प्राप्तिमें काम आयगा, वह बड़ा सहायक होगा। और झूठे प्रपञ्ची गुरुवा-लोग तथा झूठी विषयाभिलाषिनी नारियाँ, इन्होंका सङ्ग कभी भूलके भी नहीं करना। क्योंकि, झूठोंके सङ्गसे मूल मनुष्यपदके धनरूपी मुक्ति सहायक सद्गुण रहनी तथा नर जन्मकी भी हानि होके बेकार हो जायेगी। अतएव सदा कुसङ्गसे बचे रहना चाहिये ॥ १४९ ॥

सम्बन्ध— बारहवाँ खण्डमें १२ चौपाई, और १ साखीमें मनुष्य बुद्धिके बारेमें कहा है; सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ बारह खण्ड ॥ १२ ॥ ❀ ॥

१. जेहि मानुप बुद्धि सब विधि आवै * अपना कारज सोइ बनावै ॥ १५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जेहि = जिस पुण्यात्मा भाग्यवान् नरजीवको पुण्य प्रतापसे, जिस प्रकारसे भी हो—

मानुप बुद्धि = मनुष्यका सार-असार निर्णय करनेकी सद्बुद्धि, परीक्षादृष्टि, पारखी सद्गुरुकी दयासे गुरुबुद्धिका प्रकाश हो—

सब विधि =) सब प्रकारसे विधिपूर्वक मनमें
आवै =) आजावे, यानी बुद्धिमें वह धारणा हो जावे, बोध हो जाय—

सोइ = तो वह सोई सत्सङ्गी शुद्ध बुद्धिवाला मनुष्य ही—

अपना =) अपने जीवको विषयादि वासनाओं-
कारज =) से बचायके अपने कल्याणका कार्य सब प्रकारसे इसी जन्ममें ही—

बनावै = जीवन्मुक्त स्थिति रहनीको भी वह बनाय लेता है। सत्य पुरुषार्थसे मुक्तिके कार्य पूर्णकर लेता है ॥

व्याख्या— सब प्रकारसे परीक्षादृष्टि मनुष्यकी सद्बुद्धि जिस मनुष्यमें आ जाती है या धारण होती है, सोई अपना मुख्य कार्य कल्याण बना लेता है; और सब बन्धनोंको हटाकर जीवन्मुक्त स्थितिको भी बना लेता है; वही मनुष्य धन्यवादका पात्र है ॥ १५० ॥

२. कपट कुटिलता काल नशाई * सत्य विचार रहै लौलाई ॥ १५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं — हे सन्तो !

कपट कुटिलता = फिर वे हंस मनुष्य छल-
काल नशाई = कपट, कुटिलता, कठोरता तजकर काल कल्पना और विषय जञ्जाल दुर्वासनाओंको समेत् समूल भीतर-बाहरसे नाशकर देते हैं।

सत्य = मनमें सब प्रकारसे सत्यको ही धारण करके सत्यकी ही रहनी-गहनीमें ही वैसे हंस जीव टिके रहते हैं। तथा—

विचार = विवेक-विचारको हमेशा साथ किये रहते हैं। और—

रहै लौलाई = पारखी साधु-गुरुमें प्रेम तथा सर्व प्रकारसे सद्गुण पालन करनेमें ही लौ लगाय रहते हैं। अतएव वे सद्गुणी मनुष्य सदा सुखी रहते हैं॥

व्याख्या— (इसवास्ते) हे मनुष्यो! कपटजाल, निर्दया, कठोर, कुटिलता आदि छोड़ करके कल्पना तथा विषयोंको नाश करके गुरुवा और स्त्रियोंके सङ्गोंको छोड़कर सत्य, विचार आदि सद्गुणधारी पारखी सद्गुरुकी भक्तिमें लौ लगायके सद्गुणोंको धारण किये रहो। जिससे तुम्हारे हितकी साधना पूर्ण हो जायगी॥ १५१॥

३. जौनि भाँति जीव कारज होई ❀ लाज मिटाय करै दृढ़ सोई॥ १५२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं हे— सन्तो!

जौनि भाँति = जिस प्रकार वा जिस तरह या जिस भाँतिसे भी हो जाय—

जीव = हे नरजीवो! अपने जीवके
कारज होई = कल्याणका कार्य होवे बन्धनोंका नाश होवे, ऐसा सत्कर्म सत्पुरुषार्थ करना चाहिये।

लाज मिटाय = उसमें बाधक व्यर्थका आवरण-रूप लोक-लाज कुलकी-लाज, सङ्कोच, प्रमादको हटायके या मिटाय करके निःसङ्कोच हो करके—

करै दृढ़ = मनको दृढ़ पक्का करके
सोई = सत्सङ्गादि करै कि, जिससे बन्धन छूटकर मुक्ति प्राप्ति हो सके, सो सदा वैसा प्रयत्न किया करे॥

व्याख्या— हे जिज्ञासुओ! अभी कष्ट सहन करके भी जिस भाँतिसे भी हो अपने जीवका कल्याण, मुक्ति होवे, वैसा सत्कार्यको कुल और लोक लाज आदि सर्व लज्जारूप विघ्नोंको मिटाय वा हटाय करके दृढ़ता मजबूतीसे सोई शुभ साधना पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करते रहो॥ १५२॥

४. लोक लाज कुल कानके मारे ❀ भँवरि भँवरि भव रहहिं विचारे॥ १५३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

लोक लाज = दुनियाँदारियोंकी लज्जा कि, कहीं दूसरे लोग "यह भक्त, सत्सङ्गी हो गया कुलाचार, लोकाचारको छोड़के बिगड़ गया" ऐसा मुझे कोई नहीं कहे, इस लाजसे तथा-

कुलकान = जाति-विरादरीके लोग रूठ न
के मारे = जाँय, कहीं मुझे जातिसे बाहर न करदें, इस डरके मारे और वेद वाणी तथा षट् दर्शन भेषोंकी मर्यादा मान-प्रतिष्ठाके मारे पक्षपाती, अविचारी हो, जड़ाध्यासी मनुष्य मुक्ति-पदसे मारे गये वा नष्ट हो गये। इसीसे—

भँवरि = भ्रमिक हो-होके उलट-पलटके या
भँवरि = घूम-फिरके चक्कर खा-खा करके वे अध्यासी जीव भटक-भटक करके—

विचारे = बिना विचारे कर्म-कुकर्म करके उसके वासनावश दीन-हीन हो करके—

भव रहहिं—खानी-वाणीके मझधार वा चौरासी योनियोंके भवसागरमें ही सदा पड़े रहते हैं या वैसे ही पड़े रहेंगे। बिना पारख उससे छूट नहीं सकते हैं॥

व्याख्या— नर जीवोंको मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये महान कठिनाई क्यों पड़ती है? सो इसलिये कि— लोककी झूठी लज्जा और कुल-कुटुम्बोंके व्यर्थका डर, लोक, वेद और षट्दर्शन भेषोंकी नाना मर्यादा, मान-अभिमान, आशा-तृष्णा इत्यादि अनेक बन्धन, जड़ाध्यासके मारे खानी-वाणीके चक्करमें पड़के, बारम्बार भटक-भटकके, भँवरि-भँवरिके बेचारे अध्यासी जीव सब भवसागररूपी

चौरासी योनियोंमें ही गोता लगाये पड़े रहते हैं। बिना सद्गुरुके पारख विचारमें कायम हुए यह चक्करसे जीव नहीं छूट सकते हैं ॥ १५३ ॥

५. जेहि यम फन्दा छूटै सो करना * नाहकमें क्यों पचि पचि मरना ॥ १५४ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

जेहि=हे नरजीवो ! जिस प्रकारसे या जिस तरहसे भी हो सके—

यम फन्दा=गुरुवा और स्त्रियोंकी वाणी कल्पना और विषयोंकी जाल-फाँसी या बन्धन, यही यम फन्दा है, इससे जीव—

छूटै=अभी ही छूट जाय, अपने जीवकी मुक्ति हो जाय—

सो करना=सोई दृढ़ प्रयत्न करके सत्पुरुषार्थ वा सत्कर्म, सत्सङ्ग, त्याग, वैराग्य, बोधको हासिल कर परिपुष्ट करना चाहिये।

नाहकमें=हकनाहकमें व्यर्थके धोखा मिथ्या ईश्वरादिकी आशा-भरोशा और विषयादियोंके सङ्ग दुराशा फन्दाओंमें पड़के, जकड़के—

क्यों पचि-पचि=
मरना=
क्यों अपने आपकी हानि करके जीवनको नष्ट-भ्रष्ट करते हो ? क्यों माया-मोहकी कीचड़में गड़के, पच-पचके जड़ाध्यासी होके मरते हो ? मुक्तिके मार्गको छोड़के क्यों भव-बन्धनोंके मार्गमें जाके कष्ट सहते हो ? अब भी तो जागो, अपना हितकर कार्य करनेमें लगो ॥

व्याख्या— इसवास्ते सद्गुरु साहेब कहते हैं कि, हे मनुष्यो ! तुम गाफिल मत होओ। जिस प्रकार जिस भाँतिसे भी हो, यम फन्दारूप स्त्री और गुरुवाओंके जाल-फाँससे जीव छूटै, सोई सत्पुरुषार्थ करना चाहिये। पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण करके सब यम फन्दाओंसे छूटनेका मुक्तिका मार्ग ग्रहण करो। हकनाहक मिथ्या धोखा विषयोंमें पड़के पच-पचके क्यों मरते हो ? क्यों जड़के अध्यासी बनते हो ? इस अध्यासमें पड़े रहनेसे तुम्हें गर्भवासादिमें पच-पचके जन्मते-मरते रहना पड़ेगा। इससे अभी सावधान हो जाओ ॥ १५४ ॥

६. भलीभाँति सो लेहु विचारी * सकल अचरज यम आप सुधारी ॥ १५५ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

भलीभाँति सो=
लेहु विचारी=
भली प्रकारसे अच्छी तरह हे नरजीवो ! तुम अपने मुक्तिपदका ठीकसे विचार करलो। चाहे बन्धनमें पड़ो या मुक्त हो जाओ, यह कर्म करना तो तुम्हारे ही हाथोंमें है। इसका तथा जड़-चैतन्य स्वरूपका विचार ठीकसे करलो।

सकल=पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा तुम सकल सिद्धान्तोंके कसर-खोटोंको परखके विवेक करलो। और सम्पूर्ण—

अचरज यम=आश्चर्यमय मिथ्या कल्पित ब्रह्म, ईश्वरादिका कथन तो यमरूप गुरुवा लोगोंने वेदादि वाणी द्वारा जो वर्णन किये हैं, सो महान धोखा है। वह जीवोंको बन्धन कारक है।

आप=आप अपने सत्य स्वरूपको भूल करके मनुष्य जीव नाना भ्रम-मानन्दीमें जकड़े पड़े हैं, सो गुरु पारखसे निज स्वरूपको जान करके अपने आपको वा कर्त्तव्योंको—

सुधारी=सुधारके मुक्त कर लेना चाहिये। जो सब मानन्दीको सुधार लेते हैं, सो यम फन्दोंसे छूट जाते हैं ॥

व्याख्या— हे नर ! जिसको तुमने सुख समझ करके अच्छा माना है, हित समझा है, सो तो वास्तवमें अहित करनेवाला दुःखका ही घर है। उसको तुम भलीभाँतिसे विचार करलो कि, विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि मानन्दी दुःखोंका बीज है। सत्यासत्यको अच्छी तरहसे विचार करलो। तहाँ आश्चर्यरूप नाना सिद्धान्त षट्दर्शन छियान्नवे पाखण्ड यह सकल जीवोंको फँसानेका गुरुवालोगों-का जाल-फाँस है। और स्त्रियोंका आश्चर्यरूप विषय फन्दा है। अर्थात् सो यम लोगोंने अपने-अपने स्वार्थ पूर्ण करनेके वास्ते ही सकल आश्चर्यकारक तमाशा फैलाये हैं, सो धोखा है, उसे भलीभाँति विचार करके जानो, और आश्चर्य मानके उसमें मत भूलो ! सचेत होके न्यारे रहो। सो तुम अपनी

मुक्ति चाहते हो, तो उन्होंका सङ्ग छोड़कर अपनी वृत्ति सुधार लो। परीक्षादृष्टिसे मानन्दीको सुधार लो! तब ही अपना कल्याण होवेगा ॥ १५५ ॥

७. खरा खोटा जो परखा नाहीं * अन्धा धोखा मूल नशाहीं ॥ १५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

खरा खोटा = नित्य-सत्य अविनाशी खरा चैतन्य जीव है; और अनित्य, असत्य, मिथ्या, धोखा कल्पित वाणीमात्र खोटा ब्रह्म, ईश्वरादि कर्त्ता, देवता भूत-प्रेतादि सब खोटा मानन्दीमात्र है।

जो = जिस मनुष्यने उपरोक्त खरा-खोटा या सत्यासत्यका निर्णय करके—

परखा नाहीं = यथार्थ परीक्षादृष्टि खोलके परखा नहीं या पारख किया नहीं, जाना-बूझा नहीं।

अन्धा = सो अन्धा बेपारखी, भ्रमिक, विचारहीन है। ऐसे लोग—

धोखा = सत्यको असत्य और असत्यको ही सत्य मान करके धोखामें पड़के या धोखा खायके—

मूल नशाहीं = मूल मनुष्य जन्मके सद्गुण रहनी, मुक्ति पदको ही नाशकर डालते हैं। समूल नाश कर बर्बाद हो जाते हैं। इसकारण प्रथम-से ही सत्यासत्यका विवेक करना चाहिये ॥

व्याख्या— सत्य चैतन्य जीव 'खरा' है, और मिथ्या ब्रह्म, ईश्वरादि 'खोटा' असत्य है; ऐसा जिस मनुष्यने नहीं परखा, सो पारख विचारहीन, विवेकदृष्टि रहित अन्धा है। वह धोखा खाके मिथ्याको ही सत्य मानके सो अपना मूल मनुष्यपद वा हंसपदको भी नशाय देता है। यानी धोखा-में पड़के उसके मूल जमा सद्गुणका ही नाश हो जाता है ॥ १५६ ॥

८. प्रथम विचारहु औषध रोगा * केहि विधि शब्द हरै सब शोगा ॥ १५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

प्रथम = मुमुक्षु मनुष्योंको चाहिये कि, मनुष्य जन्ममें सबसे पहले क्या करे कि—

विचारहु = बन्धन और उससे मुक्ति होनेका उपाय विचारकर लेना चाहिये। फिर मुक्ति मार्गमें लग जाना चाहिये। इससे पहले यह विचार करो कि—

औषध = सद्गुरु और गुरुवाओंके उपदेशरूप दवाईका पारख करो। तथा—

रोगा = गर्भ, जन्म, मरणादि रोगोंके हेतुको जानो। कौन दवाईरूप उपदेशसे रोग मिटता है, उसकी परीक्षा करो। और—

केहि विधि = शब्द हरै = सब शोगा = } किस प्रकारके शब्दसे सब शोक सन्ताप हरण होता है, सो परीक्षा करो। अर्थात् गुरुवा लोगोंकी कल्पित वाणीसे कर्त्तादिके अनुमान करके माननेसे आवागमनका दुःख कैसे छूट सकता है? कभी छूटनेका नहीं, तथा सारशब्द पारख निर्णयसे ही सब दुःख शोक छूट सकता है, ऐसा जानिये! ॥

व्याख्या— हे मनुष्यो! पहले तो तुम लोग रोगोंको जानो; फिर किस रोगमें कौन औषधि लगती है, सो पहिचानो, विचार करो। तब तो तुम्हारी साधना, वैराग्य करना, उपदेश लेना-देना ठीक होता है; नहीं तो, व्यर्थ ही हो जाता है। क्योंकि, रोगको जाने बिना दवाई करने-करानेसे सिवाय हानिके और क्या हो सकता है? यहाँ रोग जन्म-मरणादि त्रयतापोंका लगा है। उसीमें सब शोकाकुल दुःखी हो रहे हैं। उसको मिटानेके लिये औषधिकी जगह उपदेश है। गुरुवालोगोंके मिथ्या धोखेका उपदेश, अनुमान, कल्पनाकी धारणासे जड़भावना, जड़मूर्ति पूजासे आवागमनका रोग कैसे छूटेगा? बल्कि, और ज्यादा ही बढ़ जायेगा। इसकारणसे गुरुवालोगोंके मिथ्या उपदेशोंको छोड़कर पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशको ग्रहण करो, तो सब रोग-शोक जीवोंका मिट जायगा। और गुरुवालोगोंके वेद, शास्त्र, कुरान आदिके कल्पित शब्दकी मानन्दीसे जीवोंके सब शोक-सन्ताप कैसे नाश होयेंगे? इसलिये पारखी सद्गुरुके सारशब्द निर्णयसे जो सब वाणी कल्पनादिके भ्रमको परखकर छोड़ देंगे, सो उनके सब वाणी-खानीके रोग-शोक हरण होके छूट जाते हैं। फिर वे

यह प्रत्यक्ष जान जाते हैं कि, सारशब्दके प्रतापसे सब शोक कैसे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १५७ ॥

९. देखो शब्द प्रकाश विचारी * जाते सकल होय उजियारी ॥ १५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो।

देखो = विवेक करके देखो कि, ईश्वरादिको मनुष्योंने ही कल्पना करके माने हैं, सो कल्पनासे क्या किसीकी भलाई हो सकती है ? मुक्ति हो सकती है ? कभी नहीं।

शब्द प्रकाश विचारी = पारखी सद्गुरुके यथार्थ सत्य निर्णय सारशब्दोंके प्रकाशमें या उजियालामें और सबोंके शब्द- वेद, शास्त्रादियोंके वाणी सिद्धान्तोंको विचार पूर्वक देखो, निर्णय करो, परखो—

जाते = जिससे कि, सद्गुरुकी दया तथा पारखके प्रतापसे—

सकल = समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्तोंकी कसर-खोट और सार-असारका सकल भेद जाननेमें आ जायगा। और—

होय उजियारी = हृदयमें पारखका महान प्रकाश होनेसे सर्व भ्रम, संशय दूर होके छूट जायेंगे; सो जीवकी स्थिति निज स्वरूपमें ही हो जायगी; बन्धन छूट जायगा ॥

व्याख्या— अतएव हे नरजीवो ! पारखी सद्गुरुके सत्यन्याय निर्णयके सारशब्दोंको हृदयमें प्रकाशकर विचार पूर्वक उसके प्रकाशमें सब मतवादियोंके वेदादि ग्रन्थोंके शब्दोंको परख करके देखो ! जिससे सकलके सार-असार पारख प्रकाशसे तुम्हारे सन्मुख प्रत्यक्ष देखनेमें आ जायगा और परखने जाननेमें आ जायगा। इसकारण परीक्षक पारखीसन्त सद्गुरुके ही सत्सङ्गमें लगे रहो ॥ १५८ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर जिज्ञासु शिष्य पारखी सद्गुरुसे जो पूछता है, सो बात दो चौपाईमें कहा है ॥

॥ ❀ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१०. गुरु एक सो कौन कहावै ? * जाते आवागमन नशावै ॥ १५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं – हे सन्तो ! यहाँ शिष्यने प्रश्न किया है कि—

गुरु एक सो कौन कहावै = हे सद्गुरुदेव ! संसारमें उपदेशक गुरु बननेवाले तो बहुतेक हैं, उनमेंसे स्व-स्वरूप बोधदाता सद्गुरु किसको कहना ? कौन सर्वश्रेष्ठ सद्गुरु कहलाते हैं ? सद्गुरु कहलाने योग्य एक ही सत्पुरुष कौन है ? सो कहिये !

जाते आवागमन नशावै = जिससे पहले मैं श्रेष्ठ सद्गुरुको जान सकूँ, फिर उनका सत्य उपदेश धारण करके मेरा आवागमन नाश हो जायगा या जिससे मेरा जन्मृति नाश हो, सो उपाय बता दीजिये ! अथवा प्रश्न- एक श्रेष्ठ सद्गुरु कौन हैं ? उत्तर- जिसके बोध उपदेशसे आवागमन नाश होवे, सोई श्रेष्ठ सद्गुरु हैं ॥

व्याख्या— ऊपरके प्रकरणमें सद्गुरुका समाधान उपदेश सुन करके एक जिज्ञासु शिष्य प्रश्न करता है कि, हे साधु-गुरु ! सत्य चैतन्य बोधदाता श्रेष्ठ सर्वोपरि एक सद्गुरु कौन कहलाते हैं ? या किसको सद्गुरु कहना ? जिसके शरण-ग्रहण करके सत्य उपदेशको पालन करके मेरा आवागमन नाश हो जाय, ऐसे सद्गुरुके शुभ लक्षण-गुण दया करके बता दीजिये ! ॥ १५९ ॥

११. सेवा अनेक करिये केहि केरा ? * बिन जानै सब धुन्ध अँधेरा ॥ १६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य पूछ रहा है—

अनेक = हे प्रभो ! जगतमें जहाँ-तहाँ झट-पट चेले बनानेको चाहनेवाले अनेक भेषोंके अनेकों महात्मा गुरु देखे जाते हैं। वैसे गुरुवा लोगतो संसारमें अनेकों हैं। परन्तु, उनमेंसे किसको सद्गुरु मानना ? और—

सेवा = किसकी सेवा करनेसे मेरा हित-कल्याण होगा ? क्योंकि, सेवाकी अनेक विधि बतलाये हैं। इसलिये—

करिये केहि = किसको गुरु करना ? सब केरा = विधिसे किसकी सेवा करना ?
सो कृपा करके कहिये !
बिन जानै सब = यथार्थ जाने-पहिचाने बिना धुन्ध अँधेरा = हम सब अनेकों मतको देख-सुन करके चकराये हुए महान अँधियारी आवरण, अज्ञानमें पड़े हैं, सो उसे मिटाइये ॥

व्याख्या— संसारमें अनेक मत-पन्थोंके सन्त-महात्मा गुरु बनते हुए नाना तरहसे उपदेश समझाते हैं, सो देखनेमें आते हैं; और वे अनेकों तरहसे गुरुकी सेवा करो, ऐसा कहिके फर्माते हैं। इससे मैं कुछ निश्चय नहीं कर सका कि, किसको सद्गुरु जानके गुरु करूँ ? और विधिपूर्वक अनेक तरहसे किसकी सेवा करूँ ? क्या करना चाहिये ? क्या नहीं करना चाहिये ? इसका यथार्थ सत्य भेद जाने बिना मुझे तो सब तरफ धुन्ध-अँधियारा ही दिख रहा है। सो आप कृपा करके मेरे इस संशयको हटाकर बुद्धिका प्रकाश कर दीजिये ! ॥ १६० ॥

सम्बन्ध— इस प्रश्नका उत्तर सद्गुरुने एक चौपाईमें ही समाधान करके बता दिया है ॥

॥ ❀ ॥ गुरु उत्तर ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१२. गुरुमत मन्मत करै विचारा * तब सो जीव करै निरुवारा ॥ १६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेबने उपरोक्त प्रश्नका उत्तर यहाँ बतलाया है— हे जिज्ञासु शिष्य ! सुनो, और विचार करो—

गुरुमत = अतिशय गरुवा अजर, अमर, अखण्ड, नित्य निज चैतन्य स्व-स्वरूपका पारखबोध जो है, सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सत्य सिद्धान्त 'गुरुमत' है। सो गुरुमतको लखानेवाले पारखी सद्गुरु ही सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसा जानो। और—

मन्मत = मनःकल्पित वेद-शास्त्रादि वाणी प्रमाणसे माना हुआ ईश्वर, ब्रह्म, खुदादि मानन्दी करानेवाले सब मत-पन्थवाले बेपारखी मन्मति जो हैं, सो भ्रमिक गुरुवालोग कहे जाते हैं।

करै विचारा = इसका सत्सङ्गमें सत्यन्याय निर्णयसे यथार्थ विचार-विवेक करे, सार-असारको लखै।

तब सो जीव = तब ही सो वह जिज्ञासु नर करै निरुवारा = जीवको सब भेद मालूम हो जायगा और पारखी साधु-गुरुके सत्य निर्णयको समझकर जड़ और चैतन्यका निरुवार न्यारा-न्यारा करे; अथवा फिर जड़ासक्ति वा जड़ग्रन्थीको त्याग करके चैतन्य पारख स्वरूपमें स्थिर हो रहेगा। इसतरह सबका निर्णय करके निज स्वरूपमें ही स्थिति-ठहराव करना चाहिये ॥

व्याख्या— सद्गुरु कहते हैं कि— हे शिष्य ! प्रथम तुम सत्सङ्ग करो, फिर उसका विचार करो, तब सब भेद तुम जान पाओगे। संसारमें दो मत मुख्य हैं। एक तो गुरुमत है। दूसरा मन्मत है। इसका अच्छी तरहसे विचार करना चाहिये। अतिशय गरुवा सत्य चैतन्य पारखपद ही "गुरुपद" और गुरुका मत सत्य सिद्धान्त है। प्रथम बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ही यह लखाये हैं। और वर्तमानमें पारख बोधदाता जो पारखी साधु-गुरु हैं, सोई श्रेष्ठ सद्गुरु मानने योग्य हैं। जिनसे गुरुमतका हृदयमें प्रकाश हो जायगा; और मन-कल्पनासे ठहराया हुआ मानन्दीरूप मिथ्या जगत् कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वरादि परोक्ष वाणीके धोखारूप सब सिद्धान्त मनमत हैं। इनसे जीवोंके कोई कल्याण होनेके नहीं। मन्मतका उपदेश करनेवाले सब भ्रमिक गुरुवालोग हैं। इसका यथार्थ सत्य निर्णय करके विचार करो और असारको बिलगायके हटाओ; जड़-चेतनका निरुवार करके अपने जीवको जड़ाध्यासोंसे न्यारा करो; तब तुम नरजीवको निजपदकी स्थिति हो जायगी। और गुरु तथा गुरुवाओंकी पहिचान सत्सङ्ग द्वारा हो जायगी ॥ १६१ ॥

सम्बन्ध— गुरुवालोग कैसे कपटी-क्रूर, भ्रमिक होते हैं, सो दर्शाते हुए ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर

बीजक साखीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर–३४ ॥ ❀ ॥

साखीः— बिन देखे वह देशकी * बात कहै सो कूर ॥
[१७] आपुहि खारी खात है * बेंचत फिरै कपूर ॥ १६२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! यह मायारूप गुरुवालोग मनुष्योंको कैसे भुला रहे हैं कि—

बिन देखे=बिना देखे, बिना समझे, बिना बूझे, यानी विवेकसे यथार्थ देखे, समझे बिना ही कल्पना करके—

वह देशकी=वे भ्रमिक गुरुवालोग उस देशकी वार्ता करते हैं कि, जहाँपर जीवोंकी पहुँच नहीं है; चन्द्र, सूर्य, तारोंका प्रकाश नहीं है, और मन, बुद्धि, वाणीसे परे है, ऐसा परब्रह्मका निराकार देश है और कोई स्वर्गादि लोक-लोकादि वर्णन किये हैं; इस तरहसे—

बात कहै= } बिना अनुभव किये रोचक,
सो कूर= } भयानकादि कल्पित वाणी तथा वेद-शास्त्रादिकी वाणीको जो लोग बढ़ाय-चढ़ायके 'यह बात सत्य है' कहिके बताते हैं, सो कूर=कपटी, धोखेबाज, ठग हैं। क्योंकि, वे दूसरोंको भ्रमाय, बहकायके स्वार्थसिद्ध करते हैं। और—

आपुहि=गुरुवालोग आप अपने ही धोखेमें पड़े हैं। निज स्वरूपके सत्य बोधमें उनकी स्थिति ही नहीं है। फिर दूसरेको वे क्या बतायेंगे ?

खारी= } वे अपने तो खारी=इन्द्रियोंके
खात है= } विषय स्वादोंको ही खाते हुए वा भोगते हुए यहाँ गोते खा रहे हैं, जड़ासक्त हो रहे हैं। और संसारमें बड़े त्यागी ढोंगी बनके—

कपूर=ज्ञान-विज्ञान या ब्रह्मज्ञानकी महिमा बढ़ायके केवल ब्रह्म बोधसे मुक्ति बतायके सो उसकी प्राप्तिके लिये नाना तरहकी रोचक वाणीका उपदेश; तथा—

बेंचत= } त्याग-वैराग्यादि साधनोंके कपटकी
फिरै= } बातें बताते फिरते हैं। उसीकी प्रचार-शिक्षा करते हुए जहाँ-तहाँ घूमते-फिरते हैं। ऐसे ठगोंसे बचे रहना चाहिये। वे गुरुवालोग पूरे धूर्त बने हैं॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने गुरुवा लोगोंकी कसरको बताये हैं कि— हे मनुष्यो! समझे, बूझे, देखे, परखे बिना ही वह देश–सात स्वर्ग, सत्यलोकादि और व्यापक निराकार ब्रह्म सर्व देशमें भरा है; ऐसी बेतुकी कल्पित भ्रमिक बात उपदेश जो कहते हैं, सो गुरुवालोग कूर=कपटी, वञ्चक धूर्त बने हैं, ऐसा जानो। क्योंकि, वे लोग कुछ कहते हैं, और कुछ ही करते फिरते हैं। अपने तो 'खारी' कहिये इन्द्रियोंके विषयोंका नाना स्वाद भोग करते हैं; विषयासक्त हो धोखे खा रहे हैं। और संसारमें बड़े त्यागी-वैरागी बनके त्याग-वैराग्यका उपदेश देकर 'कपूर' कहिये ब्रह्मज्ञानको श्रेष्ठ बतायके उसीका उपदेश बेचते-फिरते हैं; उसका खूब बयान करते फिरते हैं। ऐसे ठगोंको पहिचानकर उन्होंके सङ्गसे दूर रहना चाहिये। और चेतन स्वरूपके सत्यबोध अपरोक्ष पारख स्थिति हुए बिना तथा पारखी सद्गुरुकी सेवा किये बिना, सत्सङ्गमें सारासारका विवेक देखे-सुने बिना, जो ग्रन्थ ही पढ़के बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, गुरु बनते फिरते हैं, सो कूर=कपटी हैं। क्योंकि, वे अपने तो खोटे विषयोंको खाते वा भोगते हुए परद्रव्य ऐंठनेमें लगे हैं। और दूसरोंको ज्ञानका उपदेश देते फिरते हैं, सो वे उलटे ठग ही बने हैं। अतः जिज्ञासुओंको उनका सङ्ग करना नहीं चाहिये॥ १६२॥

सम्बन्ध— तेरहवाँ खण्डमें १४ चौपाई, और १ साखीमें पाँच प्रकारके 'औषधि' कहिये उपदेशका भेद वर्णन किया है, सो जान लीजिये !॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ तेरह खण्ड ॥ १३ ॥ ❀ ॥

१. औषध पाँच राह सब करहीं * औषध बिना न कोई सरहीं ॥ १६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग—

औषध पाँच = पाँच प्रकारके रास्तासे
राह सब करहीं = औषधिरूपी उपदेश सब कोई मनुष्योंको करते वा कराते हैं। अर्थात् पञ्चकोशोंके पाँचमार्गोंमें कर्म मार्ग 'काढ़ा' की जगहमें है। उपासना 'रस' की जगहमें है। योग 'चूर्ण' की जगहमें है। ज्ञान 'गोली' की जगहमें है; और विज्ञान 'मात्रा' की जगहमें ठहराये हैं। अथवा पञ्च विषयोंका ग्रहण पाँच मार्गसे सब कोई लेते हैं।

औषध बिना = उक्त औषधिरूप उपदेश तथा
न कोई सरहीं = विषयोंको ग्रहण किये बिना किसीके भी काम नहीं चल सकता है। संसारमें सब तो अशुद्ध, अयुक्त रीतिसे उसे ग्रहण करके बन्धनोंमें पड़े हुए हैं। कोई जिज्ञासु पारखी सद्गुरुसे शोध करके शुद्धतासे चलकर मुक्त हो सकते हैं॥

व्याख्या— वैद्यलोग रोगियोंकी जब औषधि करते हैं, तो तब पाँच तरीकासे दवाई देते हैं। पहले तो नाड़ी परीक्षा, मल, मूत्र, जिभ्या और रक्त परीक्षा करते हैं। फिर रोगानुसार काढ़ा, रस, चूर्ण, गोली, मात्रा अनुपानसे औषधि देते हैं। तैसे ही गुरुवालोग संसारमें सब कोईको उपदेशरूपी औषधि पञ्च कोशोंके पाँचों मार्गोंसे करते हैं। कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञानको दृढ़ाते हैं। और पञ्चविषयोंके ग्राहक तो सब जीव हो ही रहे हैं। पञ्च विषयोंके अध्यासी होनेसे उसके बिना किसीका काम ही नहीं चलता है। परन्तु, यह गुरुवालोगोंके उपदेश, कल्पना और विषयासक्ति ही जीवोंको दृढ़ बन्धन है। यह पूर्णतासे जाने बिना और सद्गुरुके सत्य उपदेशको समझे बिना किसीकी मुक्ति वा कल्याण हो नहीं सकता है ॥ १६३ ॥

२. शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा * द्वारा पाँच औषधके सन्धा ॥ १६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शब्द = वाणीको सुन करके किसी वस्तुको जानना और मानना, शब्दसे होता है। शब्द कहने और सुननेमें आता है।

स्पर्श = किसी वस्तुको छूकर या टटोलकर पहिचानना, स्पर्श द्वारा होता है। शीत, उष्ण, कठिन, कोमल और आनन्द, स्पर्श द्वारा मालूम होता है।

रूप = नेत्रोंसे देखकर वस्तुका मालूम होना, रूप कहलाता है। सात प्रकारके रङ्ग और चित्र-विचित्रता रूप देखके जाना जाता है।

रस = जिभ्यासे चखकर उस पदार्थकी पहिचान करना, रस है। षट्रस और छप्पन व्यञ्जनोंका रस, स्वाद खानेसे मालूम होता है।

गन्धा = नासिकासे सूँघकर मालूम करना, सो गन्ध कहलाता है। चार प्रकारके सुगन्ध-दुर्गन्ध सूँघकर जाननेमें आते हैं।

द्वारा पाँच = कर्ण द्वार, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका— ये पाँच द्वारोंसे पञ्चविषयोंका ग्रहण होता है।

औषधके सन्धा = तैसे ही गुरुवालोगों द्वारा पञ्च-मार्गोंका उपदेश जो किया गया है, सो उसीमें मिलापरूप मानन्दी सब मनुष्योंकी हो रही है, और पञ्च विषयोंके अध्यासी जीव मानन्दीमें तो पहलेसे पड़े ही हैं। इससे वही विषयासक्ति सब जीवोंको बन्धन हो रहा है॥

व्याख्या— शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पञ्च विषयोंकी मानन्दीद्वारा पञ्च मार्गोंमें भूले हुए जीव जड़ अध्यासी हो रहे हैं; और गुरुवालोग वाणी कल्पनासे पञ्च मार्ग बताके उसीकी नाना मानन्दीमें धोखा दृढ़ाके नरजीवोंको भुलाके फँसा रहे हैं ॥ १६४ ॥

३. सबहीं द्वारा बूझ रहाई * बिन बूझे नहिं कोइ ठहराई ॥ १६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सबहीं द्वारा = उन पाँचों द्वारोंसे जाननेवाला
बूझ रहाई = जीव उन पाँचोंसे भिन्न ही रहता है। तथा जीवकी जानपना या चैतन्यता तो सभी देहधारियोंमें रहती है। ऐसा समझके पारखपदमें रहे।
बिन बूझे = बूझे या जाने बिना तो—
नहिं कोइ ठहराई = विषयोंको कोई ठहरा ही नहीं सकते हैं। इससे विषयोंके ज्ञाता तो सब जीव हैं। परन्तु, विषयोंको बन्धनरूपसे जानते, समझते, बूझते नहीं। पारखबोधसे स्व-स्वरूपको अपरोक्ष समझे-बूझे बिना और विषयासक्तिसे छूटे बिना, कोई भी जीवन्मुक्तिपदमें ठहर नहीं सकते हैं॥

व्याख्या— अध्यासवश जीव चार खानीमें कहीं भी जाय, परन्तु सब ठिकाने, सब द्वारे विषय भोगोंका ज्ञान जीवोंमें बना रहता है। जीव पाँचों इन्द्रियों द्वारा पञ्चविषयोंका ज्ञाता बना रहता है। जड़-चैतन्यका भेद और बन्धन-मुक्तिका मर्म, तथा सार-असार आदिको अच्छी तरहसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें समझे, बूझे, जाने बिना कोई भी मनुष्य निजस्वरूप पारखमें ठहर नहीं सकते हैं, इसकारण पारखी सद्गुरुके शरणागत हो करके सब सिद्धान्तोंको अच्छी तरहसे समझकर सार-पदको ग्रहण करके अपना हित जीवन सुधार कर लेना चाहिये॥ १६५॥

४. कहिं झीना कहिं मोटा द्वारा * तैसा तासु भिन्न व्यवहारा॥ १६६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कहिं = कहींपर तो गुरुवालोगोंके उपदेश तथा साधनोंका मार्ग और विषय ग्रहण करनेकी रीति—
झीना = अति बारीक, सूक्ष्म वर्णन किये हैं और सूक्ष्म विषय भी होते हैं।
कहिं = और कहींपर तो उसके विपरीत—
मोटा द्वारा = मोटा स्थूल मार्ग या स्थूल क्रियाओंके साधनोंका द्वार कहे हैं। तैसे ही स्थूल द्वारोंसे स्थूल विषयोंका ग्रहण होता है।
तैसा = जैसा-जैसा मार्ग साधनोंका द्वार है, तैसा-तैसा ही विचार, कार्य, रीति और भोग
तासु = उन मार्गोंका बारीक और मोटा हिसाबसे और विषयोंके मुताबिक—
भिन्न = अलग-अलग वा न्यारा अनेक तरहके—
व्यवहारा = व्यवहार कार्य और भोग होते रहते हैं, और साधनाएँ होती रहती हैं॥

व्याख्या— तत्त्व, इन्द्रिय, विषय, द्वार, मार्ग आदियोंमें कहीं तो झीना या सूक्ष्म भाग रहता है। और कहींपर वही एक-से-एक मोटा स्थूल भाग रूपमें रहता है। जैसा तत्त्व है, वैसा ही उसका विषय भी है, तैसा ही उसका द्वार भी बना है। द्वारोंके अनुसार विषयोंका और मार्गोंका व्यवहार ग्रहण भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है। उसको विचार करके समझना चाहिये। गुरुवालोगोंने मोटा और झीना मार्गोंका वर्णन कैसे किये हैं? सो नीचे कहा है, सुनिये!॥ १६६॥

५. झीना शब्द है पवन स्वरूपा * तासों मोटा अनलको रूपा॥ १६७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

झीना शब्द है = अत्यन्त सूक्ष्म अदृश्य वायु-
पवन स्वरूपा = का मुख्य स्वरूप है, सो वायुके रगड़-संस्पर्शसे ही शब्द प्रगट होता है। वायुके शब्द और स्पर्श दो विषय हैं। सिद्धान्तमें ज्ञानीलोगोंने शब्द स्वरूपी ब्रह्मको माना है। अतएव ज्ञानमार्गका विचार अति बारीक ठहराये हैं।
तासों मोटा = और उस ज्ञानमार्गसे कुछ
अनलको रूपा = मोटा स्थूल भागवाला योगमार्गके स्वरूपको माने हैं।
जैसे वायु और शब्दको देख नहीं सकते हैं, परन्तु, अग्नि तथा रूपको नेत्रोंसे भी देख लेते हैं। इसी तरह योगमार्गको ज्ञानमार्गसे मोटा ठहराये हैं॥

व्याख्या— वायु तत्त्वका स्वरूप अति सूक्ष्म अदृश्य है। इससे होनेवाले विषय शब्द और स्पर्श भी सूक्ष्म हैं। वायुकी अपेक्षासे कुछ स्थूलाकारवाला अग्नि है। इससे उसका रूप विषय आँखों-

से प्रत्यक्ष देखनेमें आ जाता है। इसीतरह वेद-वेदान्तकी वाणी प्रमाणसे प्रणव शब्द स्वरूपी ही ब्रह्मको निराकार माने हैं। अतएव 'झीना शब्द' कहिये ज्ञानमार्गको गुरुवालोगोंने अतिसूक्ष्म ठहराये हैं। और ज्ञानमार्गसे कुछ मोटा योगमार्गको माने हैं। तहाँ ज्ञानमार्गसे आनन्दको ही ब्रह्म माने हैं। और योगमार्गसे ज्योति स्वरूपको परमात्मा ठहराये हैं, सो यह दृश्य होनेसे मोटा हुआ कहते हैं ॥१६७॥

६. अनलहुते जल मोटा होई * जलते मोटा पृथिवी सोई ॥ १६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अनलहुते = अग्निसे भी जलका आकार
जल मोटा होई = स्थूल है। इसीसे जलको हाथोंसे भी उठायके ले सकते हैं, अंजुलीसे पी सकते हैं। तैसे ही योगमार्गसे भी मोटा या स्थूल उपासना मार्गको माने हैं, और भक्तिमार्गको सर्व साधारणके लिये भी सुगम कहे हैं।

जलते मोटा = जलसे भी स्थूल आकारवाला
पृथिवी सोई = कठिन भाग पृथ्वीका है। मिट्टी आदि कठोर पदार्थ सोई पृथ्वीका भाग है। तैसे ही उपासना मार्गसे बढ़ करके मोटा अतिस्थूल मार्ग सोई कर्ममार्गको ठहराये हैं॥

व्याख्या— जलका आकार अग्निसे भी स्थूल है। क्योंकि, अग्निको हाथोंसे पकड़ नहीं सकते हैं, और जलको अंजुलीमें ले सकते हैं। तथा जलसे भी मोटा पृथ्वीका स्वरूप अति स्थूल है। तैसे ही योग मार्गसे भी मोटा उपासना मार्ग माने हैं। वहाँ मानसिक ध्यान करते हैं; और उपाना मार्गसे भी अतिस्थूल कर्म मार्गको कहे हैं। जो कि, सब कोई भी मोटा-मोटी कर्म कर सकते हैं; ऐसे क्रमशः एक-से-एक तत्त्व और मार्ग मोटा बताया गया है ॥ १६८ ॥

७. पुनि प्रकाश एकते एका * थिर होय देखे करे विवेका ॥ १६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुनि = फिर उसी प्रकार क्रमानुसार—
प्रकाश = तत्त्वोंका प्रकाश और विषयोंका प्रकाश तथा उन-उन मार्गोंका प्रकाश या पहुँचकी शक्ति भी—
एकते एका = एक-से-एक बढ़कर ज्यादा और कमवाली होती हैं।

थिर होय = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें स्थिर
देखे = हो करके और अपनी बुद्धिको स्थिर करके देख लेवे वा परख लेवे और—
करे विवेका = सार-असार जड़- चैतन्यका विवेक करे, तथा सारपदको ग्रहण करके असार मानन्दीका त्याग कर देवे। इसप्रकार अपना हित या सुधार करे॥

व्याख्या— तत्त्व आदिकोंका प्रकाश भी एक-से-एक कम-ज्यादा माने हैं। सत्सङ्गमें बुद्धिको स्थिर करके विवेकी-परीक्षक होयके उन सबोंको पारखसे विवेक करके देखे। भ्रम कल्पनाको छोड़कर पारखपदमें ठहरा रहे ॥ १६९ ॥

८. पृथिवी मोटा गन्ध प्रकाशा * तासों मध्यम दृष्टि प्रवेशा ॥ १७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पृथिवी मोटा = पृथ्वी तत्त्वका स्थूल आकार
गन्ध प्रकाशा = है, गन्ध उसका गुण है। प्रकाश उसका मन्द और मोटा है। इससे गन्धवत् सामान्य व्यापक परमात्मा जो माने हैं, उसका प्रकाश कहीं देखनेमें नहीं आता है। परन्तु, कर्मीलोग स्थूल कर्म करके उसीको ध्यावते हैं।

तासों मध्यम = इसवास्ते पृथ्वीका प्रकाश
दृष्टि प्रवेशा = मोटा होनेसे जगत्के सब स्थूल पदार्थ तक ही मध्यम दृष्टि प्रवेश कर सकती है। पृथ्वी भीतरके सूक्ष्म पदार्थोंमें दृष्टि पहुँच नहीं पाती है। तैसे ही स्थूल जल, पाषाणादि अष्टप्रतिमादिको मानना छोड़कर और कुछ भी कर्मी लोग नहीं देखते हैं॥

व्याख्या— पृथ्वीका भाग मोटा है। गन्ध तक ही उसके प्रकाशकी पहुँच है। इसवास्ते दृष्टिका प्रवेश मध्यम वा मोटा होनेसे जगत्के सब स्थूल पदार्थमात्र दिखाई देते हैं। जमीन भीतरके सूक्ष्म

पदार्थ सहजमें सबको दिखाई नहीं देते हैं। इसी तरह कर्म मार्ग मोटा है। गन्धवत् समान व्यापक परमात्मा जो माने हैं, वह कुछ दिखाई नहीं देता है। इसवास्ते स्थूल अष्ट प्रतिमा पूजा तीर्थ-व्रतादि तक ही मोटी तौरसे कर्मियोंकी दृष्टि जाती है ॥ १७० ॥

९. पृथिवीसों जल झीना होई * भीतर जो है दीसै सोई ॥ १७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पृथिवीसों जल = पृथ्वी तत्त्वसे जल तत्त्वका
झीना होई = प्रकाश सूक्ष्म या बारीक है, इसी तरह कर्म मार्गसे उपासना मार्गकी चाल और प्रकाश सूक्ष्म है।

भीतर जो है = जल पतला होनेसे स्थिर स्वच्छ
दीसै सोई = जलमें भीतरमें जो कुछ है, सो भी दिखाई देता है। तैसे ही उपासना मार्गके मानसिक ध्यानमें वृत्ति एकाग्र होनेपर भीतर मनमें जो भावना पक्की की गयी होती है, सो मूर्तिका कल्पित रूप दिखाई देता है। स्वप्न समान भास होता है ॥

व्याख्या— पृथ्वीसे जलतत्त्व बारीक है। स्वच्छ स्थिर जलमें भीतर जो कुछ पड़ा होता है, सो दिखाई देता है। तैसे ही कर्मसे उपासना सूक्ष्म है; जो कुछ भावना दृढ़ करके ध्यान-धारणादि करते हैं, सो भक्तोंकी एकाग्र वृत्ति होनेसे कल्पित भावनाकी मूर्ति अंगुष्ठमात्र प्रकाश दिखाई देता है। सो उसीको भ्रमसे ईश्वरादि मानते हैं ॥ १७१ ॥

१०. जलसों झीना तेज प्रकाशा * जामें दीसै धरति अकाशा ॥ १७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जलसों झीना = जल तत्त्वसे भी सूक्ष्म अग्नि
तेज प्रकाशा = तत्त्वका प्रकाश है। उजियाला-में ही सब कुछ वस्तु देखनेमें आती है। तैसे ही उपासना मार्गसे भी सूक्ष्म योग मार्ग माना है। जिससे अनेक तरहकी ज्योतिका प्रकाश देखनेमें आ जाता है। और—

जामें दीसै = सूर्य अग्नि तत्त्व है, जिसके
धरति अकाशा = प्रकाशमें पृथ्वीसे आकाश पर्यन्त नीचेसे ऊपर तकके सब पदार्थ देखनेमें आ जाते हैं, तैसे ही योग मार्गके अष्टाङ्ग योग साधना करनेवालेको नाभिसे मस्तक तक श्वास चढ़ानेसे पिण्ड और ब्रह्माण्डमें ज्योति स्वरूपका प्रकाश देखनेमें आता है ॥

व्याख्या— जलसे भी सूक्ष्म प्रकाश अग्नि तत्त्वका है। क्योंकि, सूर्य, दीपक आदिके प्रकाशमें पृथ्वीसे आकाश पर्यन्तकी सब वस्तुएँ प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। तैसे अष्टाङ्ग योग साधना करनेवालेको उपासनासे भी सूक्ष्म योगका प्रकाश होनेसे धरती-आकाश या पिण्ड-ब्रह्माण्डमें एक ही ज्योति-प्रकाश नजर आता है। उसी तेज तत्त्वके प्रकाशको ही परमेश्वर मानकर योगी लोग भूले पड़े हैं ॥ १७२ ॥

११. रूपसों अधिक शब्द उजियारा * दृष्टिमें आवै सब संसारा ॥ १७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

रूपसों अधिक = तेजके प्रकाशसे भी ज्यादा
शब्द उजियारा = सूक्ष्म शब्दका प्रकाश है। क्योंकि, अँधेरेमें भी शब्दसे वस्तुका मालूम हो जाता है। तैसे ही योग मार्गसे भी बारीक ज्ञान मार्ग माने हैं। शब्द बोध गुरुके उपदेशके ज्ञानसे ही हृदय प्रकाश होता है, ऐसा कहा है।

दृष्टिमें आवै = आड़ या पर्दामें होनेपर भी
सब संसारा = शब्द द्वारा सब संसारकी बात जाननेमें आ जाती है। तैसे ही पारखी सद्गुरुके निर्णय उपदेश सारशब्दसे संसारके सब मत, सिद्धान्तोंकी कसर-खोट विवेकदृष्टिसे देखनेमें या परखनेमें आ जाती हैं; और भूतकालकी बहुत-सी बात शब्द द्वारा ही जानी जाती है ॥

व्याख्या— तेज तत्त्वके रूप प्रकाशसे भी ज्यादा सूक्ष्म वायुके शब्दका प्रकाश रहता है। इसीसे भूतकालमें व्यतीत हो गया हुआ इतिहास तथा अभी दूरमें अदृश्य जगहकी हाल-खबर सब संसारके

बात समाचार शब्दसे ही देखनेमें या समझनेमें आते हैं। तैसे ही योग मार्गसे ज्ञान मार्गका प्रकाश सूक्ष्म कहा है। गुरुवालोग वाणी प्रमाणसे ही सब संसारको अद्वैत ब्रह्म देखके या वैसे मानके भूले पड़े हैं। और पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशके प्रकाशमें सब भ्रम खानी-वाणी और संसारके जाल देखने, समझने, परखनेमें आ जाते हैं ॥ १७३ ॥

१२. भूत भविष्य जो है वर्तमाना * शब्दके भीतर सबै समाना ॥ १७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
भूत = पहले जो हो गया, सो भूतकालके तथा—
भविष्य = बादमें होनेवाला भविष्य कालके और
जो है = जो अभी हो रहा है, सो सब—
वर्तमाना = जो बरत रहा है, यह वर्तमान कालके हाल-चाल व्यवहारादि तीनोंकालोंकी बातें—
शब्दके भीतर = शब्दके भीतरमें ही सब
सबै समाना = समायी हुई हैं। यानी इतिहास, पुराण, जीवनी आदि शास्त्रोंके भीतर ही सब बातें तीनों कालोंके बयान समाये हुए हैं या लिखे हुए हैं। इससे शब्दका प्रकाश अतिसूक्ष्म या तीक्ष्ण माना है ॥

व्याख्या— शब्द द्वारा ही भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालोंका बोध होता है। प्रथम बात क्या-क्या भया ? अभी क्या हो रहा है ? और फिर क्या होगा ? यह बात सब शब्द द्वारा ही प्रगट होती है। इतिहास-पुराणोंमें पूर्वकी सब बातें लिखी रक्खी हैं। और सब नरजीवोंकी मानन्दी भी शब्दोंके भीतरमें ही समायी हुई है। और शब्द ब्रह्मके भीतर ही सब जगत् समाया हुआ है, ऐसा वेदान्तीलोग कल्पना किये हैं। इसप्रकार शब्दके अन्दरमें मनुष्योंके भाव वा कुभाव समाये हुए हैं ॥ १७४ ॥

१३. बूझ शब्दमें पैठे जाई * शब्दके भीतर अनल रहाई ॥ १७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
बूझ शब्दमें = संसारी जीव नाना शब्दोंकी
पैठे जाई = मानन्दीमें घुस करके जड़ाध्यासी हुए और कोई योगी, ज्ञानी, भक्तोंसे वेद शास्त्रादि वाणियोंको बूझ-समझकर प्रणव वा ॐकार शब्दरूप ब्रह्म मानकर उसी अनुमानमें जाकर घुसे उसमें लक्ष्य लगाये, तो धोखेमें ही भूलकर चले गये। क्योंकि—
शब्दके भीतर = शब्द ब्रह्म जो माने हैं, उस
अनल रहाई = मानन्दीके भीतरमें अग्निरूपी सूक्ष्म अहंइच्छा बनी ही रही, जिसने नर-जन्मके सद्विचारको जलाय दिया। उसी अहंइच्छासे चौरासी योनियोंमें जाकर नाना रूप देह खड़ा किया ॥

व्याख्या— शब्दके भीतर ही स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँचों विषय भी समाये हुए हैं। नर जीव सब नाना प्रकारके शब्दोंकी मानन्दीमें पैठे वा घुसे हैं। शब्द मुख्य वायु तत्त्वका विषय है। सो वायु तत्त्वमें अग्नि, जल और पृथ्वी समेत् चारों तत्त्वोंका मिलाप-सम्बन्ध बना हुआ है। सब मनुष्योंने शब्द-कुशब्दमें मन लगा रखे हैं। इससे 'बूझ शब्द' कहिये ॐकाररूप व्यापक ब्रह्म जगत्कर्त्ता माना है, ऐसा वेद-वेदान्तसे बूझके कईलोग उसी धोखेमें जाके पैठे वा घुस गये हैं। परन्तु, माना हुआ उसी शब्द-ब्रह्मके भीतरमें ही अहंइच्छारूप प्रचण्ड अग्नि सुलगी रहती है; उसीसे वह मुक्तिपदको भस्म करके चौरासी योनियोंमें ले जाके डाल देती है। अथवा बूझरूप बुद्धि, शब्दरूप चित्तमें जब लय हो जाती है, तब शब्दरूप चित्तके भीतरमें ही अनलरूप अहङ्कार भी छिपा हुआ, गुप्त रहता है ॥१७५॥

१४. अनल मध्य होयके जल देखै * जलके भीतर पृथिवी पेखै ॥ १७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
अनल मध्य होयके जल देखै = ब्रह्म और विषय अध्यासी जीव सूक्ष्म अहं इच्छा वासनाके बीचमें ग्रसित होकर खानी-वाणीको विकारी आसक्तदृष्टिसे देखते हैं। इसीसे सूक्ष्म संस्कारयुक्त जीव अध्यासी होयके देह छूटनेपर प्रथम पुरुषके वीर्यमें जाके

रहते हैं। फिर मैथुन कर्म द्वारा गर्भमें जाते हैं। और—

जलके भीतर = } अध्यासी जीव संयुक्त रज-
पृथिवी पेखे = } वीर्यरूपी जल जब गर्भके भीतर

टिक जाता है, तब वहाँ ही वह जीव पृथ्वी-रूपी स्थूल शरीर बनाय लेता है। तहाँ स्त्रियोंके गर्भवती होना, फिर समय पूरा होने-पर बालक पैदा होना, यह बादमें सब कोई देखते ही हैं। इसतरहसे देह बनता है। सोई जलके भीतर पृथ्वी को देखना कहा है॥

व्याख्या— अहंइच्छा स्फुरणाके मध्यमें गाफिल होयके ज्ञानीलोग जगत्को ब्रह्म मानके या भ्रमसे जगत्को ही ब्रह्म देखके चौरासी योनियोंके आवागमनमें पड़ते हैं। और अज्ञानीलोग कामाग्निमें सन्तप्त होयके भग-भोगोंको सुख मानके भ्रमदृष्टिसे देखते हैं। परन्तु, देह छूटनेपर उसी इच्छा-वासनाओंमें बद्ध हो करके जीव जल कहिये वीर्यमें सम्मिलित होयके मैथुनके द्वारा रजमें मिलके गर्भवासमें जाके नर्क कुण्डको देखता है; तो जिस समय जिस रज-वीर्यमें जड़ाध्यासी जीव आके मिलता है, सो उसके भीतरमें ही स्थूल देह बनानेका मसाला सूक्ष्म देह रहता है। सो उसीसे गर्भवासके भीतरमें ही स्थूल देह बनके तैय्यार हो जाता है। और फिर सो जन्म लेनेपर तो सब कोई देहयुक्त जीवको देखते ही हैं। इसप्रकार खानी-वाणीके वासनावश जीव आवागमनोंमें पड़े हुए हैं। सो सत्सङ्ग द्वारा अच्छी तरहसे परखकर अध्यासोंको छोड़कर मुक्त होना चाहिये। और अग्नि, जल, पृथ्वी तथा वायुके परमाणु एक-दूसरे तत्त्वोंके साथ मिले रहते हैं। सो उन्होंके विशेष भागोंके सम्बन्धसे ही बाहरके पदार्थ और शरीर बन जाते हैं; ऐसा जानना चाहिये॥ १७६॥

साखीः— रैन समानी भानमें ❀ भान अकाशहि माहिं॥

[१८] अकाश समाना शब्दमें ❀ शब्द रहा कछु नाहिं॥ १७७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

रैन = अन्धकार, अज्ञान, अविद्या, पिङ्गला और जीव यह क्रमशः—

भानमें = प्रकाशरूप सूर्यमें, ज्ञान, विद्या, पिङ्गला तथा ईश्वरके रूपमें—

समानी = जायके एकमेंक होयके वे सब उन्होंमें ही समा गये वा मिल गये।

भान = और फिर वह प्रकाश, ज्ञान, विद्या, पिङ्गला एवं ईश्वरादि सब भी—

अकाशहि = } आकाश, विज्ञान, आत्मा, सुषुम्ना
माहिं = } और ब्रह्मके स्वरूपमें जाके एक होके मिल गये। फिर—

अकाश = आकाशवत् माना हुआ ब्रह्म और विज्ञान, सुषुम्नादि सब भी—

समाना = } प्रणवरूप शब्द ध्वनिमें या शून्यमें
शब्दमें = } जाके समा गये, इसप्रकार सब एकमें-एक लय होके शून्य हो गये। तब—

शब्द रहा = } शब्द स्वरूपी ॐकार ब्रह्म या
कछु नाहिं = } परमतत्त्व परमात्मा ज्योति प्रकाश कर्त्ता पुरुष जो माना था, सो मिथ्या अनुमान देहके भास, अध्यास, देहके साथ ही छूट गया, वह जीवोंके कुछ काम नहीं आया, अतः कुछ फायदा नहीं हुआ, इसीसे तो सब प्रयत्न बेकार हुआ॥

व्याख्या— जैसे सबेरा होनेपर रात्रिके अन्धकार सूर्यके तेजमें ही समा गया, और फिर शाम होनेपर सूर्यका प्रकाश महा आकाशमें ही रहा, सो आड़ पड़कर प्रकाश उधर ही छिप गया। और शब्द बोलनेसे अँधेरामें भी व्यवहार होता है, फिर शब्द भी नाश हो जाता है, कुछ नहीं रहता है। अथवा तैसे ही दूसरा अज्ञानरूपी रैन ज्ञानरूपी भानुमें समाया और ज्ञान भी विज्ञानरूपी आकाशमें समाया, फिर विज्ञानको ॐकार शब्द ब्रह्ममें लय किये, तब शब्द ब्रह्म तो भ्रममात्र हुआ, वह कुछ वस्तु तो नहीं रहा; किन्तु, जीव अध्यासी भये। अथवा तीसरा इङ्गलाको पिङ्गलामें लय किये। पिङ्गलाको सुषुम्नामें लय किये। और शून्यमें जायके सुषुम्ना समागई, फिर शून्य पोल कुछ वस्तु ही नहीं रहा; उसमें योगी गाफिल हुए। अथवा चौथा अविद्याको विद्यामें तथा विद्याको आत्मामें मिलाये और आत्माको परमात्मामें लय किये, सो मिथ्या धोखा कुछ वस्तु नहीं रही;

पण्डित लोग उसमें भूले। अथवा पाँचवाँ जीवको ईश्वरमें लय किये, तथा ईश्वरको ब्रह्ममें और ब्रह्मको शब्दमें लय किये; परन्तु, शब्द जीवकी कल्पना होनेसे कुछ नहीं रहा; ज्ञानी लोग इसी भ्रममें पड़के भ्रमिक हुए। इसप्रकार नर जीव जड़ाध्यासी हो-होकर आवागमन चक्रमें घूम रहे हैं, बिना पारख कहीं बचावा नहीं होता है ॥ १७७ ॥

सम्बन्ध— चौदहवाँ खण्डमें १५ चौपाई, और ३ साखीमें पञ्चविषयोंको और पाँच मार्गोंको विचार पूर्वक औषधि प्रमाण हिसाबसे सुधार करके ग्रहण करनेको कहा है; ऐसा जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ चौदह खण्ड ॥ १४ ॥ ❀ ॥

१. पाँचों औषध करै विचारा * मोटा झीना है व्यवहारा ॥ १७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पाँचों औषध = कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान ये पाँचों मार्गोंके उपदेश तथा पाँचों विषयोंके कर्मोंके परिणामोंको—

करै विचारा = सत्य निर्णयसे अच्छी तरह विचार-विवेक करना चाहिये। जिससे सार-असारकी पहिचान हो सके, वैसे पारख करे।

मोटा झीना = कहीं तो स्थूल कर्म मार्गके
है व्यवहारा = स्थूल व्यवहार विषय प्रपञ्चकी साधनाएँ बताये हैं। और कहीं भक्ति, ज्ञानादिके सूक्ष्म व्यवहार अनेक साधनाएँ कल्पनाकी उपाधि वाणी-जाल गुरुवालोगोंने बताये हैं। सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परखकर जान लेना चाहिये॥

व्याख्या— 'औषध' कहिये 'उपदेश' सो गुरुवालोगोंने पाँच तरहसे किये हैं। सोई कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान मार्गमें भटकाये हैं। उसको पारखी सद्गुरुके निर्णयसे विचार करै, परख लेवे। स्थूल-सूक्ष्मका जो कुछ व्यवहार है, उसको सुधार लेवे; और पञ्च विषयोंको औषधि प्रमाण काममें लेवे, मोटा-झीना जो व्यवहार है, उसको शुद्ध रीतिसे करै ॥ १७८ ॥

२. औषध अन्न जल पेट समाहीं * जाते क्षुधा अरु प्यास नशाहीं ॥ १७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

औषध अन्न जल = उपयुक्त मात्रामें यथारुचि
पेट समाहीं = खाया हुआ अन्न-जल पेटमें जाके उसके रस नस-नाड़ियोंमें समाके औषधिरूप अमृतके समान गुण करता है। बल-वीर्यको बढ़ाता हुआ देह-को सुखी करता है। तैसे ही उपदेशरूप औषधि सत्यन्याय निर्णयका हो, तो जीवोंको सुखी-मुक्त करनेवाला होता है।

जाते क्षुधा अरु = हितकर अन्न-जलके सेवन-
प्यास नशाहीं = से जैसे भूख-प्यास नाश होके आराम हो जाता है। तैसे ही पारखी सद्गुरुके हितकर सत्य उपदेशको ग्रहण करनेसे ही इच्छा-वासनादि अध्यास मनुष्योंके नाश होकर जीवन्मुक्त हो सुखी हो सकते हैं; सोई प्रयत्न करना चाहिये ॥

व्याख्या— शुद्ध अन्न-जल ठीक मात्रामें जब पेटमें जाता है, यानी जब खाया-पीया जाता है, तब उससे भूख-प्यास नाश हो जाती है, तथा देह सुखी रहता है। इसीसे तो शुद्ध अन्न-जल हिसाब-से खाने-पीनेसे औषधिके समान गुण करता है। बल-वीर्यको बढ़ायके देहमें शक्ति देता है। और वही चीज बेहिसाबसे ज्यादा खाने-पीनेसे और अशुद्ध पदार्थ भक्षण करनेसे उसका गुण बिगड़कर विषके समान अवगुण हानि कर देता है, रोग बढ़ाय देता है। इसी कारणसे भोजन शुद्ध-सादा तथा कम करना चाहिये। इसीप्रकार खानी-वाणीके संसर्ग और सद्गुरु तथा गुरुवालोगोंके उपदेशका भी प्रभाव जीवोंपर पड़ जाता है। सद्गुरु पारखीके उपदेश ग्रहण करनेसे इच्छा-वासना या आशा-तृष्णाएँ नाश हो जाती हैं; और गुरुवा लोगोंके उपदेशसे ज्यादा ही आशा-तृष्णा आदि विकार बढ़के बन्धन दृढ़ हो जाता है। अतएव कुसङ्गको छोड़कर सत्सङ्गमें ही लगे रहना चाहिये ॥ १७९ ॥

३. बहु प्रकार लादके रोगू * सो सब जाय भोजन सञ्जोगू ॥ १८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
बहु प्रकार= } देहमें अनेक तरहके जो रोग
लादके रोगू= } उत्पन्न होते हैं, उनमेंसे बहुत रोग तो उदर विकारोंसे ही होते हैं। सो उदरके रोग भूखको मिटानेके लिये पेट धन्धाओंके बोझा, विषयादि कर्मोंको लादके मनुष्य दुःखी हो रहे हैं। और—

सो सब जाय= } शुद्ध सात्त्विक भोजन खा
भोजन सञ्जोगू= } लेनेसे भूख मिटनेके साथ-ही-साथ पेटके कई रोग भी मिट जाते हैं। और बाहर संयोगसे इच्छित वस्तु मिलनेसे जीव कुछ देरके लिये सब दुःख भूल जाते हैं। तैसे सत्सङ्ग विचारके संयोग मिलनेसे मनके विकार सब भी दूर हो जाते हैं॥

व्याख्या— "तन रोगोंकी खान है" यह शरीर रोगोंके घर या खान ही रूप है। तहाँ पेट सम्बन्धी रोग बहुत प्रकारके हैं। जैसे— मन्दाग्नि, अरुचि, कब्जियत, भस्मक रोग, शूल, उदर विकार, वायुगोला, तापतिल्ली इत्यादि यह सब पेटके ही रोग हैं। सो सब रोग औषधिरूप शुद्ध सात्त्विक भोजन और पत्थ्य, परहेजके संयोग पायके मिट जाते हैं। और बेपरहेज, अपत्थ्य करनेसे ज्यादा ही रोग बढ़ जाता है। इसकारण सात्त्विक भोजनको ही भूख लगनेपर हिसाबसे खाना चाहिये। संसारी जीव बहुत प्रकारसे पेट-धन्धोंके बोझाको लादके नाना प्रकारके विषय कर्मोंमें लगे हुए रोगीके समान व्याकुल दुःखी हो रहे हैं; और अच्छे खान-पान तथा मनचाही विषय भोग जब कभी पाते हैं, तब तो सो सब दुःखोंको भूलके गाफिल हो जाते हैं॥ १८० ॥

४. गन्ध कपाले पहुँचे जाई * गुण औगुण सब अङ्ग समाई ॥ १८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
गन्ध कपाले= } खाया हुआ अन्नादिके रस
पहुँचे जाई= } आदि धातुओंका गन्धरूप वीर्य बनकर सो गन्ध कपाल या मस्तकमें पहुँच जाती है, सोई देह भरमें शक्ति पहुँचा देती है। और—

गुण औगुण सब= } सो उसका फायदा वा
अङ्ग समाई= } हानि या गुण वा अवगुणसे सत्त्व, रज, तमोगुणमें प्रवृत्ति होती है। यानी जैसा अन्नादि खाया जाता है, वैसा ही गुण वा अवगुण सर्वाङ्गमें समा जाता है। वैसा ही बुद्धि-स्वभाव भी जो जाता है॥

व्याख्या— जो अन्न-जलादि मनुष्य खाते हैं, उसके रससे रक्त, मांस, नाड़ी, हड्डी, त्वचा, मज्जा और वीर्य क्रमशः सप्त धातु बनते हुए उसका सार गन्धरूप वीर्य कपालमें जायके पहुँच जाता है। जिससे शरीरमें परिपुष्टता हो, शक्ति आती है; और वह सर्वाङ्गमें समाके गुण वा अवगुण सभीको दिखाई देता है। तिसी प्रकार प्राणियोंकी बुद्धिका स्वभाव रजोगुणी, सत्त्वगुणी और तमोगुणी हो जाता है। कहा भी है:—

दोहाः— "जैसा अन्न जो खाइये। तैसी ही बुद्धि होय॥ जैसा पानी पीजिये। तैसी वाणी होय॥"
इस कारणसे आहारको शुद्ध रखना चाहिये॥ १८१॥

५. लेपै गुण सब ले पहुँचावै * गुण औगुण सब माँहिं समावै ॥ १८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
लेपै गुण सब= } विषयादि कर्मोंमें लिप्त आसक्त
ले पहुँचावै= } होके जैसा-जैसा गुण-स्वभाव या पाप-पुण्यादि कर्म मनुष्य करते हैं, सोई जड़ाध्यास वासना ही सब जीवोंको पशु आदि अन्य खानियोंमें ले जाके पहुँचा देती है।
गुण औगुण सब= } फिर चारों खानियोंमें पूर्व
माँहिं समावै= } कर्मानुसार त्रिगुणी स्वभाव गुण वा अवगुण सब देहधारियोंमें लगा रहता है। तैसे ही पारखी सद्गुरु और गुरुवालोगोंके उपदेशका भी फल गुण तथा अवगुणका कार्य सब मनुष्योंमें समा जाता है। फिर वैसे कर्मानुसार नाना योनियोंमें जाके समा जाते हैं॥

व्याख्या— विषय भोगोंमें आसक्त लिप्त रहनेसे वैसे ही गुण-स्वभाव मनुष्योंमें उत्पन्न होके टिक जाते हैं; और जैसा संस्कार टिक जाता है, सो तैसा ही शरीर छूटनेपर सब जीवोंको वह संस्कार चौरासी योनियोंमें ले जाके पहुँचा देता है। तहाँ भी सबोंमें गुण वा अवगुण समाया हुआ ही रहता है। और अभी मनुष्य जैसा गुणी या अवगुणियोंके सङ्गमें लगते हैं, तैसे ही शुभाशुभ कर्म करने लगते हैं। फिर वैसी ही वासना बनाय सुख-दुःख फल भोगते रहते हैं। इसकारणसे गुरुवालोगोंके कल्पना-भ्रमको छोड़ करके पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशके अनुसार सत्कर्त्तव्य वा सत्पुरुषार्थ करनेमें लगना चाहिये ॥ १८२ ॥

६. आँखिकी राह रूप गहि लेई * शीत उष्ण अङ्गमहिं देई ॥ १८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

आँखिकी राह = } नेत्र झरोखाके मार्ग द्वारा
रूप गहि लेई = } रूप विषयको जीव हण कर लेते हैं। नाना राग-रङ्ग तमाशादि जो देखते हैं, सो उसका अध्यास मनमें टिकाय लेते हैं या उसका संस्कार टिक जाता है। सो पक्का होके अन्तःकरणमें रहता है।

शीत उष्ण = } ठण्ढी-गर्मी, नरम-कठोरादिका
अङ्ग महिं देई = } शरीरमें त्वचा द्वारा मालूम किया जाता है, सो स्पर्शका अध्यास मनमें जमा रहता है; वह बीजरूपसे रहता है ॥

व्याख्या— देहमें नेत्रों द्वारा रूप-कुरूपका ग्रहण होता है। त्वचा द्वारा शीत-उष्णादिका ज्ञान होता है। परन्तु, विषय तो देखकर वा छूकर, ग्रहण करके कार्यके साथ चला जाता है और उसका अध्यास अन्तःकरणमें जमा होके टिका रहता है; सो बीजरूपसे बना रहता है ॥ १८३ ॥

७. शब्द औषधी कानके द्वारा * बूझ समाय करै निरुवारा ॥ १८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शब्द औषधी = } नाना प्रकारके शब्दरूप वाणी
कानके द्वारा = } और गुरुवालोगोंके उपदेश तथा स्त्रियोंके मोहक शब्द, सो कान द्वारा सुनके वैसे कर्म करते हैं, तो उसका अध्यास चित्तमें दृढ़ होके टिका रहता है।

बूझ समाय = } जीव उन्हीं अध्यासोंमें समाय
करै निरुवारा = } या मिलके चौरासी योनियों-में जाते हैं। अतएव सत्सङ्ग द्वारा इनके सब भेदोंको समझ-बूझ करके निर्णय करे और सारको लेकर असारको छोड़ देवे ॥

व्याख्या— शब्द विषयमें अनेक तरहकी आवाज तथा गुरुवालोगोंकी रोचक-भयानक वाणी-का उपदेश कानके द्वारा सुना जाता है। जैसा सुनते हैं, तैसा भावको समझ-बूझके जीव उसीमें भूल जाते हैं। उसको गुरु सत्सङ्ग द्वारा निर्णय करके ठीकसे समझना-बूझना चाहिये। जिससे सब भव-बन्धन छूट जाय, सो वैसे पुरुषार्थ करे ॥ १८४ ॥

८. हर्ष विषाद यन्त्र औ मन्त्रा * व्यापै सब कोइ कोई स्वतन्त्रा ॥ १८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

हर्ष = ब्रह्मानन्द तथा विषयानन्दादियोंको सुख मानकर उसकी प्राप्ति होनेकी चाह और प्राप्तिमें खुशीसे सुखी होना। अथवा मन-चाही वस्तु पानेपर प्रसन्नता हो जाना, सो 'हर्ष' कहलाता है।

विषाद = मनकी चाहना, पूरी न होनेसे दुःखी बनकर शोक सन्तप्त होना, सो 'विषाद' है।

यन्त्र = शरीर तथा मशीनरूपी यन्त्र लगे हुए कारखानाओंमें प्रेम लगायके आसक्त रहना।

औ मन्त्रा = और कल्पित मन्त्रोंको सत्य मानना एवं नाना वाणियोंमें भ्रमिक होकर भूल जाना इत्यादि—

व्यापै सब कोइ = } खानी-वाणीके माया-मोह
कोई स्वतन्त्रा = } फन्दोंमें सब कोई जीव लिप्त होके आसक्त हो रहे हैं। उन सबको जड़ाध्यास व्याप्त हो रहा है। कोई बिरले साधु पारखी ही उक्त जड़ाध्यास जालोंसे छूटकर स्वतन्त्र जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥

व्याख्या— संसारमें सर्व प्राणियोंको हर्ष, शोक, सुख, दुःख, हानि, लाभ, माया, मोह, घर, द्वार, यन्त्र, मन्त्र, स्त्री, पुत्रादि प्रपञ्च जालोंकी ममता खानी-वाणीके महान बन्धन व्याप्त या मजबूत होके दृढ़ हो रहा है। सब कोई उसीमें लिप्त या आसक्त हो रहे हैं। कोई विरले पारखी साधु ही उन जालोंसे छूटकर न्यारे स्वतन्त्र हुए और होते हैं। यह जाल बड़ा जबर्दस्त है, छूटनेको अत्यन्त कठिन है; पूर्ण पारख होनेपर ही कोई छूट सकते हैं ॥ १८५ ॥

९. मर्म सबै द्वाराको बूझै * बिना शब्द निर्णय नहिं सूझै ॥ १८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मर्म सबै द्वारा = बन्धन और मुक्तिका भेद
को बूझै = और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ द्वारों-का मर्म तथा गुरुवालोगों द्वारा प्रतिपादित सब सिद्धान्तोंका भेद इन सबको अच्छी तरहसे स्वतन्त्र पारखी सद्गुरुसे बूझ लेवे और सार-असारका विवेक करके उसे समझ-बूझ लेना चाहिये।

बिना शब्द = शब्दके आधार बिना तो सत्य
निर्णय नहिं = निर्णय देखने समझनेमें नहीं
सूझै = आता है। इसवास्ते पारखी सद्गुरुके गुरुमुख वाणी सारशब्दका बोध श्रवण-मननादिसे प्रथम कर लेवे। फिर सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय करके देखै। सद्गुरुके सारशब्द बिना किसीको सत्यबोध हो नहीं सकता है; ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— हे जिज्ञासु मनुष्यो! पहिले सत्सङ्ग करके सब द्वारोंका मर्म अच्छी तरहसे बूझ लो। कान, त्वचा, नेत्र, जिभ्या और नासिकासे पाँच विषयोंका ग्रहण होता है। अनुचित ढङ्गसे उनका ग्रहणकर आसक्ति टिकानेसे वे बन्धनदायी होते हैं; और उचित प्रमाणसे शुद्ध रीतिसे उसे ग्रहण करनेसे मुक्ति होनेमें भी सहायक होते हैं। तैसे कर्म-उपासनादिकी मिथ्या कल्पना-मानन्दीसे बन्धन होता है; और शुद्ध शुभकर्म गुरुभक्ति, चैतन्य उपासना करना हितकारी वा कल्याणकारी होते हैं। इसकारणसे पारखी सद्गुरु द्वारा इन सबोंके मर्म या भेदको अच्छी तरहसे समझ-बूझ लेना चाहिये। सारशब्द निर्णयके बिना जीवोंको सत्यासत्य देखनेमें या उसे समझनेमें नहीं आता है। अतएव सत्सङ्गमें लगके सदा सारासारका विचार करते रहना चाहिये ॥ १८६ ॥

१०. स्पर्श रूप इत्यादिक चारी * सो सब मोटा स्थूल अधिकारी ॥ १८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

स्पर्श रूप = शीतोष्ण, नरम, कठिनत्व और
इत्यादिक = आनन्दादि त्वचाका स्पर्श विषय
चारी = है, तथा नेत्रोंका सुरूप वा कुरूप आदि देखना रूप विषय है। षट्रस ग्रहण करना रस विषय जिभ्याका है; और गन्ध-सुगन्ध नासिकासे जाना जाता है। ये चारों विषयें है।

सो सब मोटा = सो सब ही मोटा-मोटी-
स्थूल अधिकारी = रूपसे स्थूल देहके सम्बन्धमें ही विशेष करके होते हैं; स्थूल देहमें ही चारों विषयोंके भाग अधिकाधिक मात्रामें उत्पन्न होते हैं। अतः ये विषय भोग स्थूलदेह सम्बन्धी अनित्य, विकारी हैं ॥

व्याख्या— वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये चार तत्त्वोंके क्रमशः स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये चार विषय मुख्य हैं। सो सब मोटा भागसे विषयोंका स्थूल देहके आधारसे विशेषरूपसे भोगोंका ग्रहण होता है। यानी स्थूल देहका सम्बन्ध करके विशेषरूपसे उन स्थूल विषयोंका ही भोग जीव करते हैं। तहाँ विषयोंका तो भोग होनेपर नाश हो जाता है, परन्तु उसका अध्यास मनुष्योंके मनमें टिका रहता है; वही फिर जीवको आवागमनोंमें ले जानेका हेतु होता है ॥ १८७ ॥

११. पुनि अस्थूल सो थिर न रहाई * तैसे औषध ताहिं समाई ॥ १८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुनि अस्थूल सो = फिर यह स्थूल देह जो कि,
थिर न रहाई = विषय भोगोंका अधिष्ठान वा आधार स्वरूप है; सो भी तो अनित्य होनेसे स्थिर नहीं रहता है, नाशवान् देह

एक दिन तो नाश हो जाता है, फिर तो विषय क्या एकरस रह सकते हैं, कभी नहीं रहते हैं।

तैसे औषध = } जैसे देह नाश हो जाता है, सो
ताहिं समाई = } तैसे ही कार्यरूप विषय भी नाश होके कारण तत्त्वोंमें ही समा जाते हैं। और विषयोंके जड़ाध्यासी जीव देह छोड़कर फिर चार खानीमें नाना योनियोंके गर्भवास-में समा जाते हैं। इसप्रकार बारम्बार दुःख भोगते रहते हैं। विषयादि सुखाध्याससे उलट-पलटकर दुःख पाते रहते हैं, तो भी फिर-फिर उन्हीं विषयोंमें ही जाके समाते हैं॥

व्याख्या— फिर यह स्थूल देह भी तो सदा-सर्वदा स्थिर नहीं रहता है; जीर्ण-शीर्ण होके एक दिन नाश हो जाता ही है। तब देह सम्बन्धी पदार्थ और विषय कहाँ टिके रह सकते हैं? जैसे चार तत्त्वोंका कार्य भाग देह नाशको प्राप्त हो जाता है; तैसे ही उन तत्त्वोंके पाँच विषय भी तत्त्वों-में ही जाके समा जाते हैं। तब कोई भी पदार्थ और विषय जीवके कामके नहीं हुए। परन्तु, नाहक उसका मोह वा आसक्ति लेके जीव बन्धनमें पड़े हैं। इसीप्रकार गुरुवालोगोंके पाँच मार्गोंके उपदेशसे माना हुआ ईश्वर, ब्रह्म, देवी-देवता आदि भी मिथ्या कल्पना होनेसे कोई कामके नहीं हैं। और पारखमें वे एक भी टिकनेवाले नहीं हैं। वाणी कल्पनामें पड़े हुए भ्रमिक जीव भी देह छूटनेपर फिर उलटके चौरासी योनियोंमें ही जाके समाते हैं। अतएव हे मुमुक्षु मनुष्यो! इस खानी-वाणीके सर्व जालोंको सत्सङ्ग द्वारा अभी नर जन्ममें ही परख करके छोड़ दीजिये! और स्व-स्वरूप पारख स्थितिपर कायम होके जीवन्मुक्त हो जाइये! यही परम कर्त्तव्य या परम पुरुषार्थ करना मुमुक्षुका मुख्य कर्त्तव्य है॥ १८८॥

१२. अङ्ग अङ्गको देश है जैसा ❀ अल्प गहिये औषध तैसा॥ १८९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अङ्ग अङ्गको = } नेत्र, त्वचा, नाक, मुख आदि
देश है जैसा = } देहमें जैसा-जैसा इन्द्रियोंका देश, जगह, अङ्ग-उपाङ्ग है, तैसा-तैसा ही वहाँका कार्य चलता है; और जैसी भूमिका है, वैसी ही वहाँके व्यवहारकी पहुँच भी होती है। इसलिये—

अल्प गहिये = } अल्प मात्रामें खाया हुआ
औषध तैसा = } भोजन जैसा कि औषधिके समान गुण करता है। तैसा ही पाँचों विषयोंको भी थोड़ी-थोड़ी मात्रामें हिसाबसे शुद्ध रीतिसे ग्रहण करिये, तो औषधिके समान वह भी गुणकारी होगा॥

व्याख्या— देहमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग दशोंइन्द्रियाँदि जैसा देश या जैसी भूमिका बनी है, वैसा ही उससे कार्य विषय ग्रहण होता है। अतः मुमुक्षुओंको चाहिये कि— तैसा ही अल्पमात्रामें औषधिके समान आहार-विहार तथा शब्द, रूप, गन्धादिको ग्रहण करे। सर्वत्र सब समयमें अपना हित साधन मुक्तिका ही ध्यान रखके सत्कर्म करता रहे॥ १८९॥

१३. शब्द अति झीना बूझ विचारा ❀ जाते होय सकल निरुवारा॥ १९०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

शब्द अति = } कानसे सुनाई देनेवाला शब्द
झीना = } अत्यन्त सूक्ष्म है। शब्दरूपी गुण अति बारीक है। क्योंकि—

बूझ विचारा = शब्दके श्रवणसे ही मनमें बुद्धि विचार उत्पन्न हो जाता है। इसलिये पारख विवेक करके सब शब्दोंको समझो-बूझो, विचार करलो।

जाते होय = } जिस शब्दसे वेद-शास्त्रादि वाणी
सकल = } जाल, काल, सन्धि, झाँई,
निरुवारा = } तत्त्वमस्यादि सकल बन्धनोंका तथा जड़-चेतनोंका यथार्थ निर्णय होवे, सोई सारशब्द गुरुमुख वाणी है। जिससे सब कसरका निरुवार हो जाता है॥

व्याख्या— पाँचों विषयोंमेंसे शब्द विषय अत्यन्त झीना है। गुरुसत्सङ्गमें शब्दोंकी कसर-खोटोंको समझ-बूझकर विचार करके सारशब्दको ही ग्रहण करके धारण करे। जिससे जड़-चैतन्य,

बन्धन-मुक्ति आदि सकलका यथार्थ निर्णय होवे, सोई पारखी सद्गुरुका सारशब्द गुरुमुख वाणी है। उसीको अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिये ॥ १९० ॥

१४. शब्द बिना कोई पार न पावै * बिन गुरु कौन सो दाव लखावै ॥ १९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शब्द बिना कोई = शब्द पार न पावै = के विचार बिना तो कोई पार पा सकते ही नहीं, धोखामें पड़के अपार, अगम, अगोचर ब्रह्म मानके भ्रममें ही पड़े रहते हैं। सो पारखी सद्गुरुके सारशब्दका बोध हुए बिना कल्पना, भ्रम, विषयोंका कोई भी पार, अन्त नहीं पा सकते हैं। और—

बिन गुरु = कौन सो = दाव लखावै = पारखी सद्गुरु बन्दीछोरके मिले बिना वह दाव वाणी-खानीके अध्यास, मानन्दीरूप महा बन्धनको तथा स्त्री और गुरुवाओंके घातको परखाके कोई लखानेवाला वा बतानेवाला नहीं है। पारखी सद्गुरु ही दया करके बताके परखाते हैं; और कौन लखा सकता है ? कोई नहीं ॥

व्याख्या— सारशब्दके बोध हुए विना, तो धोखा, अनुमान, कल्पनाका कोई पार नहीं पाये हैं, और पार पा सकते भी नहीं। इसीसे गुरुवालोग अपार, अगम, अथाह, ब्रह्म मानके भ्रम चक्रमें ही रहि गये; सो गुरुवा लोगोंकी वाणी कल्पनाका दाव और स्त्रियोंके विषयोंका दाव-घात जड़ाध्यास मानन्दी फन्दाको बन्दीछोर दयालु पारखी सद्गुरुके बिना और कौन बतानेवाला या लखानेवाला है? कोई लखानेवाला नहीं, इससे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें ही जो लगे रहेंगे, उन्हींका ही हित वा कल्याण होगा ॥ १९१ ॥

१५. सर्व देश स्वल्पज्ञ है सोई * बिनु तेहि कारज सधै न कोई ॥ १९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सर्व देश = स्वल्पज्ञ = है सोई = सब जगह वा सब देशोंमें जहाँ-तहाँ तो बेपारखी भ्रमिक गुरुवालोगोंका ही बोलवाला हो रहा है। जिनको पूरा-पूरा सत्य-असत्य का भी बोध नहीं है, वे ही योगी, ज्ञानी, भक्त, पण्डित बने हुए हैं। जो कि, सर्व देशमें व्यापक ब्रह्म, ईश्वरादिको सर्वज्ञ जगत्कर्त्ता मानते हैं, और जीवोंको अल्पज्ञ, कार्यरूपमें ठहराते हैं; सोई तो अविवेकी, अबोध अज्ञानी हैं। और—

बिनु तेहि = कारज = सधै न कोई = पारखी सद्गुरुके सत्यन्याय निर्णयका उपदेश सारशब्दके बोध हुए बिना भ्रम अध्यास नहीं छूटता है, और उसके छूटे बिना किसी-का कल्याण मुक्तिका कार्य सिद्ध हो नहीं सकता है ॥

व्याख्या— जो सर्वदेशी, सर्वज्ञ, जगत्कर्त्ता ईश्वरादि मानते हैं, और जीवोंको अल्पज्ञ, अंश समझते हैं, सोई तो बेपारखी मूढ़ हैं। जिनको पूरा पारख स्वरूपका बोध नहीं है, सो ऐसे भ्रमिक गुरुवालोग सब देशमें जहाँ-तहाँ फैले हुए हैं। वे पाखण्डोंका ही फैलाव कर रहे हैं। पारखी सद्गुरुके सत्य बोध सारशब्दके बिना खानी-वाणीके जाल समझकर त्याग नहीं होता है; और सो भ्रम छूटे बिना किसीका भी कल्याणका कार्य सिद्ध नहीं होता है। ऐसा जानकर मनुष्योंने पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें सदा लगे रहना चाहिये। तथा त्याग वा ग्रहणके रहस्यको ठीकसे समझना चाहिये ॥ १९२ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर बीजक साखीका प्रमाण देकर समझाया गया है ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— ४ ॥ ❀ ॥

साखीः— शब्द बिना सुरति आँधरी * कहो कहाँको जाय ? ॥
[१९] द्वार न पावै शब्दका * फिर फिर भटका खाय ॥ १९३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शब्द बिना = सारशब्दसे पारख बोध हुए
सुरति आँधरी = बिना नर जीवोंके सुरति या लक्ष्य, मनमें अँधियारा, अज्ञान छाया रहता है, वे अन्धेके समान इधर-उधर धोखेमें भटकते रहते हैं। क्योंकि, उन जीवोंकी सुरति सत्य शब्दके बिना अन्धी हो गयी या अदृष्ट हो रही है।

कहो कहाँको = अब कहो तो भला! ऐसे
जाय? = भ्रमिक मनुष्य धोखावश चौरासी योनियोंके सिवाय और कहाँको जायेंगे? कहो भाई! तुम निर्गुण, निराकार, ब्रह्म, ईश्वरादि मानके अब कहाँको जाना चाहते हो? इसलिये श्रीकबीरसाहेब कहते हैं, हे जिज्ञासुओ! जो मैं सारशब्दमें बीजक ज्ञान न कहता, तो इन मनुष्योंकी सुरति पारख बोधमें कहाँ जा सकती है? भ्रम कल्पना कहाँ छूट सकती है। इसीसे मैंने भ्रम छुड़ानेके वास्ते सारशब्दरूपी बीजकका ज्ञान कहा है। और—

द्वार न पावै = वेद, शास्त्र, कुरान आदि वाणी
शब्दका = जालोंका विस्तार करके कल्पनामें जीवोंको गुरुवालोगोंने खूब भुलाय दिये हैं। इससे शब्दका द्वार जीव जान नहीं पाते हैं। क्योंकि, "तत्, त्वं, असि और सार"- ये शब्दके चार द्वार हैं। सो "जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख" की वाणी हैं। इनका भेद जबतक जाननेमें नहीं आता है, तबतक भ्रम बन्धन छूट नहीं सकता है। इसकारणसे—

फिर फिर = उलट-पलटके बारम्बार जीव
भटका खाय = सब कोई विषय जालोंमें बद्ध होके संसारमें भटकते हुए चौरासी योनियोंके गर्भवासमें गोता खाये और कोई योग, ज्ञान, भक्ति आदि मार्गोंमें फिर-फिरा करके भटकने लगे अनेक कल्पनामें चक्कर लगाये, चार धाम चौंसठ (६४) तीर्थादिमें भटकते हुए धक्का-मुक्का खाये, फिर देह छोड़कर चारखानीमें भटका खाये और धक्का खा रहे हैं, बिना पारख॥

व्याख्या— बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि- सारशब्दके बिना मनुष्योंकी सुरति, लक्ष्य अन्धी हो, अँधियारीमें पड़ी है। कहो ऐसी हालतमें धोखेके सिवाय और कहाँको जायेंगे? इसकारण मन, बुद्धि, वाणीसे परे शब्दातीत अवाच्य माना हुआ ब्रह्म, श्रुति, वेद-वेदान्तका जो बड़ा सिद्धान्त है, सो अन्धी-अँधियारी है; बेपारखी मनुष्योंकी सुरति उसमें ही लगी हुई है; तो कहो भला! व्यापक ब्रह्म बनके चौरासी योनियोंके सिवाय और कहाँको जायेंगे? कानका विषय 'शब्द' है, सो शब्दके श्रवण बिना, कान अन्धीरूप बहरी होती है या कल्पित वाणीके श्रवणसे बुद्धि भ्रमिक अन्धी हो जाती है। सो गुरुवा लोगोंकी रोचक, भयानक मिथ्या वाणी सुन-सुनकर मनुष्य स्वर्गादि लोकोंमें जाना चाहते हैं, तथा ब्रह्म, ईश्वरादिमें मिलना चाहते हैं; तो कहो वह वस्तु ही कुछ नहीं है, तो कहाँ जायेंगे? अतएव सारशब्द निर्णय बीजकका सत्य ज्ञान मैंने परखानेके वास्ते वा सत्य बोध देनेके वास्ते कहा है। जो मैं सारशब्दका पारख बोध जिज्ञासुओंको न कहता, तो उनका लक्ष्य सत्य बोधपर कहाँ जा सकता था? क्योंकि, सुरति या लक्ष्य शब्द द्वारे होके चलता है। इसकारण खानी-वाणीके बन्धन परखानेके वास्ते ही मैंने सारशब्दका निर्णय कहा हूँ! कुछ जीवोंको बन्धन देनेके वास्ते नहीं कहा है। जैसे बज्रसे बज्रको काटा जाता है, गड़ा हुआ काँटाको बाहरके काँटासे निकाल लिया जाता है। तैसे ही सारशब्दसे असार शब्दोंको परखकर छोड़ दिया जाता है। तहाँ शब्दका चार द्वार हैं। तत्, त्वं, असि और सार, ये ही चार मुखोंसे समस्त शब्द वर्णन हुआ है। जबतक पारखी सद्गुरुसे इनका यथार्थ रहस्य वा भेद जाननेमें न आवेगा, तबतक सब मनुष्य खानी-वाणीमें घूम-फिरकर बारम्बार चौरासी योनियोंके आवागमन चक्रमें पड़कर भटका खाते रहेंगे। और अध्यासवश नाना देहोंको धारण करके अनेक दुःख भोगते रहेंगे। इसकारणसे अभी पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग करके सार-असार तथा चारों द्वारोंका विस्तार भेद जान लेना चाहिये॥ १६३॥

साखीः— गुरू गुरूमें भेद है * गुरू गुरूमें भाव ॥
[२०] गुरू सदा सो बन्दिये * जो शब्द बतावै दाव ॥ १९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
गुरू गुरूमें = भेद है = वस्तु-वस्तुमें फरक है, वजन-वजनमें फरक है, और वजन एक-सी होनेपर भी उसकी कीमतमें फरक रहता है। तैसे ही संसारमें अष्ट गुरुवोंमें भी फरक या भेद है, जीव एक होते हुए भी उसके देह और बुद्धिमें भेद रहता है। इससे पारखी सद्गुरु और भ्रमिक गुरुवाओं-में बहुत भेद या अन्तर है।
गुरू गुरूमें = भाव = सो पारखी सद्गुरु तो जड़-चैतन्यका निर्णयकर्त्ता पारख बोधदाता हैं। और गुरुवालोग एक ब्रह्म बतानेवाले कल्पित ईश्वर और देवी-देवताओंके कुभावमें लगानेवाले होते हैं, ऐसे दोनोंके भावोंमें भी फरक हैं। और—
गुरू सदा = सो बन्दिये = सदा-सर्वदा उन पारखी सद्गुरु-की ही सेवा पूजा, टहल, वन्दना, सत्सङ्ग करते रहिये तथा उपदेश श्रवण करते रहिये।
जो शब्द = बतावै दाव = जो कि, सारशब्दको यथार्थ निर्णयसे बतायके और असार शब्द तत्त्वमस्यादि जीव, माया, ब्रह्ममुखी शब्द वा वाणीकी कसर-खोट और गुरुवा लोगोंके दाव-पेंच, काल-जाल जड़ाध्यास, मन-मानन्दी, विषय फन्दा इत्यादि पारख दृष्टिसे देखायके जीवोंको मुक्त करते हैं, सोई सच्चे सद्गुरु हैं, वे ही सदा वन्दनीय हैं ॥

व्याख्या— संसारमें गुरु बननेवाले गुरुवालोगोंकी भरमार है। उनके बोध समझमें बड़ा फरक है। भ्रमिक, जड़ाध्यासी ठग गुरुवालोग और पारख बोधदाता परोपकारी दयालु सद्गुरुमें बड़ा भेद या अन्तर है। तैसे ही गुरु और गुरुवाओंकी भावनाओंमें भी अन्तर है। गुरुवालोग कुभावना कल्पनामें लगाके स्वार्थ साधनेमें लगे हैं; और पारखी सद्गुरु सद्भावनासे जीवोंके परोपकार करते हैं। इसकारणसे जो साधु-महात्मा सारशब्दसे जड़-चैतन्यका भेद बतायके गुरुवा लोगोंके दाव-पेंच, घातको देखायकर जड़ाध्यास मानन्दीको मिटाय देते हैं, सोई पारखी सद्गुरु मानने योग्य हैं। सद्गुरुदेव परम पूज्य हैं। उनकी ही वन्दना, सेवा, पूजा, आरती करते रहना चाहिये। गुरुभक्ति सदा करना चाहिये ॥ १९४ ॥

साखीः— फेर परा नहिं अङ्गमें * नहिं इन्द्रीयन माहिं ॥
[२१] फेर परा कछु बूझमें * सो निरुवारेहु नाहिं ॥ १९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ज्ञानी-अज्ञानी पारखी और बेपारखियोंके रूप देखनेमें तो कुछ विशेष फरक मालूम नहीं पड़ता है; परन्तु, उन दोनोंकी समझमें ही खास फरक है, सो कहते हैं, सुनिये !:—

फेर परा नहिं अङ्गमें = नहिं इन्द्रीयन माहिं = अज्ञानी लोगोंके और सत्य ज्ञानियोंके स्थूल देहके सर्व अङ्गोंमें दृष्टि करिये, तो कुछ फेर-फार पड़ा हुआ नहीं दिखता है। और इन्द्रियोंमें भी कुछ फरक पड़ा हुआ देखनेमें नहीं आता है। शिर, आँख, कान, मुख, हाथ, पैर आदि सर्व इन्द्रियाँ और नस नाड़ियाँ, पाँचों तत्त्वोंका भाग तथा चैतन्य जीव सुख-दुखादिका ज्ञान, यह सब तो एक समान ही सबोंमें बरोबर रहता है। परन्तु—
फेर परा = कछु बूझमें = जो कुछ फेरफार पड़ा है, सो तो उन्होंकी समझ-बूझकी कमी होनेसे पारखमें ही अन्तर पड़ा है। क्योंकि, अज्ञानी भ्रमिक लोग कल्पनासे कुछ-का-कुछ ब्रह्म, ईश्वरादि कर्त्ता, मालिक मानकर गाफिलीमें पड़ गये हैं। और ज्ञानी पारखीने सत्य निर्णयकर जड़ाध्याससे जीव-

को न्यारा किये हैं, यही समझ-बूझमें बहुत फेर पड़ गई।

सो निरुवारेहु नाहिं = पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णयकर भ्रम कल्पना विषयादिसे जो अलग नहीं हुए, वे सब चौरासी योनियों-के चक्रमें भ्रमते पड़े हैं। सो उसका निरुवार नहीं किये, इसीसे बन्धनमें पड़े हैं॥

व्याख्या— जीवन्मुक्त पारखी साधु और संसारी बद्ध मनुष्योंको ऊपरसे देखनेमें तो एक सरीखा ही दिखाई देते हैं। क्योंकि, उन्होंके अङ्ग-उपाङ्ग, सर्वाङ्ग दशों इन्द्रियादि सहित स्थूल देहमें तो कुछ फेरफार वा कमी-बेसी नहीं हुई, अज्ञान अवस्थामें शरीर जैसा बना था, तैसा ही आकार ज्ञान होनेपर भी बना रहता है। तो फेर किसमें पड़ा कि, कुछ समझ-बूझ और पारखमें ही फरक पड़ गया है। जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय करके जड़ाध्यास कल्पनाओंको छोड़कर पारखी सन्त ज्ञानी जीवन्मुक्त हुए हैं; और अज्ञानी, अविचारी, पक्षपाती मनुष्य ईश्वरादि जगत्कर्त्ताकी कल्पना तथा अद्वैत ब्रह्मकी मानन्दी और विषयके अध्यासादिमें गाफिल बने रहे। सो उसका निरुवार नहीं किये। इससे वे चौरासी योनियोंके बन्धनोंमें ही पड़े हुए हैं; यही खास फरक पड़ा है॥ १९५॥

सम्बन्धः— पन्द्रहवाँ खण्डमें ५ चौपाई, और १ मसलामें साँच-झूठ, असल-नकलके बारेमें निर्णय करके कहा है; सो जान लीजिये!॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ पन्द्रह खण्ड ॥ १५ ॥ ❀ ॥

१. यह संसार बहु वैद्य विराजै * नाना भाँति औषधी छाजै ॥ १९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

यह संसार = यह संसार या जगत्में संशय ग्रसित अज्ञानी जीव सब रोगी दुःखी हुए या हो रहे हैं। और—

बहु वैद्य विराजै = सो रोग-शोक दूर करनेके वास्ते नाना प्रयत्नमें लगे हुए वैद्यरूपी गुरुवा लोग कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी आदि बहुतेक संसारमें रहते हैं, सो अपना राज वा कर्त्तव्य भ्रष्ट होकर भ्रमचक्रमें लगे हुए हैं। और उन वैद्य गुरुवा लोगोंने—

नाना भाँति औषधी छाजै = नाना प्रकारके उपदेशरूपी औषधि बना रक्खी है। सो किसीको काँढ़ा = कर्मका उपदेश देते हैं, तैसे ही किसीको रस = उपासना बतलाते हैं, तथा चूर्ण = योगका, गोली = ज्ञानका और भस्म = विज्ञानका उपदेश देके जीवोंपर आवरण डालके भुलाय देते हैं और भुला रहे हैं॥

व्याख्या— यह संसार है, इसमें सब तरहके मनुष्य रहते हैं। रोगी, निरोगी, वैद्य, कुवैद्य, सज्जन, दुर्जनादि सभीका यहाँ निवास है। और रोगी बने हुए अज्ञानी अबोध जीव बहुत हैं। और वैद्य बने हुए गुरुवा लोग कर्मी, उपासक, ज्ञानी आदि बहुतेक उपदेशक भ्रमिक लोग विराजे हुए हैं। सो सतपदरूपी राजसे विमुख पथभ्रष्ट हो रहे हैं। उन्होंने नाना प्रकारकी औषधिरूप उपदेश वाणी-जाल बना रक्खे हैं। सोई अधिकारीके प्रति कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान मार्गके उपदेश = काँढ़ा (कषाय), रस, चूर्ण, गोली और भस्मके सदृश देते हैं। पूर्ण परीक्षा न होनेसे वे निज-पर अहित ही करते रहते हैं॥ १९६॥

२. साँच एक झूठ बहुतेरा * बिना साँच नहिं होय निबेरा ॥ १९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

साँच एक = सत्य चैतन्यपद बोधक पारख सिद्धान्त तो एक ही है; और पारखी सन्त भी कोई एक बिरले होते हैं। और—

झूठ बहुतेरा = मिथ्या ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, भूत, प्रेत, देवी, देवता आदि कल्पित सिद्धान्तको मानने-मनानेवाले भ्रमिक गुरुवालोग तो बहुतेरे सस्ते ही मिल जाते हैं। और—

बिना साँच नहिं होय निबेरा = सच्चे पारखी साधु-गुरु मिले बिना सत्य चैतन्य स्वरूपका यथार्थ पारख बोध नहीं होता है। पारख बोध हुए बिना जड़-चैतन्य निर्णय

तथा बन्धन-मुक्तिका निबेरा करके यथार्थ समझ कभी हो नहीं सकती है ॥

व्याख्या— साँच या सच्चे तो एक ही होते हैं, परन्तु झूठे बहुतेरे होते हैं। तैसे ही सत्स्वरूप निज जीव चैतन्य तो एक ही है। उसके ऊपर ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि मिथ्या कर्त्ता मालिक बहुतेरे झूठ-मूठ मान रक्खे हैं। और सच्चे पारखी साधु तो कोई एक ही होते हैं, तथा झूठे भ्रमिक गुरुवालोग बहुतेरे ठग हैं। इसकारण सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु मिले बिना सत्यासत्य, सारासार, जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय हो नहीं सकता है; तथा पारखी सद्गुरुके सत्य बोध पाये बिना कोई जीव मुक्त भी हो नहीं सकते हैं ॥ १९७ ॥

३. एक असल पर नकल अनेका * अनेक नकल नहिं पावै एका ॥ १९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

एक असल पर = असली वस्तु पारखपद चैतन्य जीवका स्वरूप तो एक ही है। परन्तु, उसके ऊपर आवरण जाल बिछाके ढककर एक असली चीजपर, और—

नकल अनेका = नकली सिद्धान्त, नकली स्वाङ्ग, षट् दर्शनोंके भेष गुरुवालोगोंने अनेकों बना रक्खे हैं। उसीसे अबोध नरजीव धोखेमें पड़ जाते हैं। पहिचान न सकनेसे नकलीमें ही जाके भूल जाते हैं।

अनेक नकल नहिं पावै एका = परन्तु, अनेकों नकली खोटे गुरुवालोग और उन्होंके कल्पित मिथ्या सिद्धान्त सब मिल करके भी एकमात्र असली सत्य सिद्धान्त पारख तथा पारखी साधु सद्गुरुकी बराबरी वे कर नहीं सकते हैं। यानी अनेकों नकलीलोग मिल करके भी एक असलीके पदको वे कभी पा नहीं सकते हैं ॥

व्याख्या— एक असल सत्य जीव चैतन्यपदके उपर अनेकों नकल- ब्रह्म, ईश्वरादिकी मिथ्या मानन्दी किये हैं। परन्तु, वह अनेकों नकल, कल्पना, नाना सिद्धान्तोंको मानकर भी असली एक ही पारख स्वरूपका अपरोक्ष बोध हो नहीं सकता है। यानी अनेकों कल्पना लेकरके भी एक पारखको कोई पा नहीं सकते हैं। तथा एक असली त्याग भेषकी देखा-देखी अनेकों रागी भी स्वाङ्गसे साधु भेषधारी हुए, सो सब नकली ही रहे। ऐसे नकली अनेकों पाखण्डी भेषकी जमात जुट करके भी पारखी सच्चे साधुके बोध स्थितिको वे कभी पा नहीं सकते हैं ॥ १९८ ॥

४. बहु विधि ठग सब करैं ठगाई * यमके फन्दा रहै अरुझाई ॥ १९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बहु विधि = बहुत प्रकारसे या नाना तरहसे विधि पूर्वक—

ठग = ठग बने हुए धूर्त गुरुवालोग रोचक, भयानकादि नाना वाणी सुनाय-सुनाय करके

सब करैं ठगाई = सब अबोध नरजीवोंको योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मी आदि सब लोग धोखेमें फँसायके तन, मन, धनादि सब हरण करके ठगाई करते हैं, तथा कहीं विषयोंमें फँसायके ठगते हैं। और—

यमके फन्दा = अज्ञानी मनुष्य भी उन्हीं गुरुवालोग यमोंके फन्दा जाल-फाँसोंमें लिपटे हुए—

रहै अरुझाई = फँस रहे हैं या अरुझे हुए परवश बद्ध हो रहे हैं। इसवास्ते हे जिज्ञासु मनुष्यो ! पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग द्वारा उन ठगोंको पहिचानके अलग हो रहो ॥

व्याख्या— 'ठग' कहिये गुरुवालोग और धूर्त वञ्चकलोग तथा विषयीलोग, स्त्रियाँ- ये सब अज्ञानी मनुष्योंको मीठी-मीठी वाणी सुनाय-सुनायकर भुलायके बहुत प्रकारसे ठगाई करते हैं। उन्हीं यमरूपी गुरुवालोग तथा स्त्रियोंके वाणी जाल और खानी जालोंके फन्दोंमें बेपारखी मनुष्य सब अरुझ रहे हैं; नाना तरहकी लालचमें पड़के फँस रहे हैं ॥ १९९ ॥

५. बूझि समुझिके औषध कीजे * मिथ्यामें जीव काहेको दीजे ? ॥ २०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बूझि समुझिके = } प्रथम सत्सङ्ग द्वारा खूब
औषध कीजे = } अच्छी तरहसे सद्गुरु और गुरुवाओंके लक्षणादिकी परीक्षा करके हित-अहितको बूझके सार-असारको समझके तभी औषधिरूपी सत्य निर्णयका उपदेश लीजिये और उसको धारणकर अपना कल्याण कीजिये।

मिथ्यामें जीव = } हे नर जीवो! बिना समझे-
काहेको दीजे = } बूझे ब्रह्म, ईश्वरादि तथा विषयादि मिथ्या धोखामें लगके अपना अमूल्य समय नरजीवनको हक-नाहक क्यों बर्बादकर देते हो? होश करो, मिथ्यामें जीवको लगा देनेसे चौरासी योनियोंमें दुःख भोगनेके सिवाय और कुछ हासिल होनेका नहीं, सो जान लेओ॥

व्याख्या— इस कारणसे हे कल्याणेच्छुक नर जीवो! सत्सङ्ग द्वारा खूब समझ-बूझके पारखी सद्गुरुको पहिचान करके तभी 'औषधि' कहिये सत्य निर्णयका उपदेश श्रवण कीजिये! और बिना विचार गुरुवालोगोंके उपदेशको प्रतीत करके मिथ्या धोखारूप ब्रह्म-ईश्वरादिके पीछे लगके जीवको क्यों बन्धनमें डाल देते हो? सावधान रहो! अपना बन्धन छूटै, वैसा सत्कार्य करते रहो॥ २००॥

[२] मसलाः— गुरु कीजिये जान ❀ पानी पीजिये छान॥ २०१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मसला = सत्य निर्णयका दृष्टान्त-सिद्धान्त बतानेवाला चुटकुला या कहावतको "मसला" कहते हैं।

गुरु कीजिये = } चैतन्य जीव सत्य है, ऐसा
जान = } बोधदाता पारख प्रकाश-कर्त्ता पारखी साधुको ही ठीक तरहसे जान-पहचानके उनके शरणागत होके सद्गुरु करना वा मानना चाहिये, जिससे भ्रम बन्धनादि छूट जायगा।

पानी = } और जलको छानकर पीना चाहिये।
पीजिये = } जिससे स्वास्थ्यको बड़ा लाभ
छान = } होगा। तैसे ही पानी कहिये वाणी, वेद-शास्त्रादिरूपमें अनेकों बनी हैं। उनमें कचरा कल्पना मिश्रित है। उसको पारख विवेकसे छान-छान करके मिथ्या कसर कल्पनाको छोड़कर सत्य निर्णयकी गुरुमुख वाणीको ही ग्रहण करना चाहिये, जिससे कल्याण प्राप्ति होती है॥

व्याख्या— यहाँपर दूसरा सत्य निर्णयका मसला या चुटकुला कहा गया है। संसारमें गुरु बननेवाले ठग गुरुवा लोग तो बहुतेक हैं। वे लोग नाना तरहके भेष बनाके पाखण्डका ही विस्तार कर रहे हैं। अतएव हे मुमुक्षु जीवो! खूब जान-बूझकर जिसको गुरु करना है, उसके रहनी-रहस्योंको मालूम करके सत्य चैतन्य पारख बोधदाता महात्मा साधुको ही सद्गुरु मानना या गुरु करना चाहिये। तन, मन, धनादिके अभिमानको छोड़कर सद्गुरुको सर्वस्व अर्पणकर दासत्व भावको ग्रहण करना चाहिये। तथा श्रद्धा-भक्तिको जीवन पर्यन्त अटल बनाये रखना चाहिये। और खान-पानादि व्यवहार शुद्ध सात्त्विक बनाना चाहिये। तथा पानीको कपड़ासे छानके पीनेसे जैसा कि, शरीरको हितकर होता है; तैसा ही 'पानी' कहिये 'वाणी' सो वाणी कल्पनाका विस्तार बहुतेक हुआ है। उसको पारखी सद्गुरुके सत्यन्याय बोधसे छानकर या विवेक करके मिथ्या कल्पना, अनुमान मिलित वाणीको छोड़कर गुरुमुख वाणी सारशब्दको ही पीना कहिये ग्रहण करना चाहिये। जिससे सब भ्रम तथा आशा-तृष्णारूपी प्यास दूर हो जायगी। इसलिये जैसे पानी छानके पीना चाहिये; तैसे ही गुरु भी भली भाँति जान-बूझके ही करना चाहिये॥ २०१॥

सम्बन्ध— अब सोलहवाँ खण्डमें १६ चौपाई, और २ साखीमें वाणियोंके नाम-रूप आदिका निर्णयकर फिर गुरुमत, सच्ची सेवा आदिका वर्णन कहा गया है, सो जान लीजिये!॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ सोलह खण्ड ॥ १६ ॥ ❀ ॥

१. वेद पुराण किताब कुराना * दोहा साखी छन्द प्रमाना ॥ २०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

वेद = ऋग्, यजुः, साम और अथर्व नामके चार वेद गूढ़ संस्कृतमें हिन्दुओंके बने हैं। और—

पुराण = अठारह पुराण संस्कृत श्लोकोंमें हिन्दू पण्डितोंने बनाय रखे हैं। और—

किताब = तौरेत, जम्बूर, इञ्जील तथा
कुराना = फुर्कान, ये चार किताब मिलायके एक कुरान माने हैं। सो अरबी भाषामें मुसलमानोंने बनाय रक्खे हैं; और इन्हीं वेद, पुराण और किताबोंके मत, सिद्धान्त, कायम रखके पण्डित और कविलोगोंने साधारण लोगोंको समझानेके लिये भाषा पद्यमें भी अनेकों ग्रन्थ बनाय रक्खे हैं। सो वह—

दोहा साखी = दो लाइनके दोहा वा साखी
छन्द प्रमाना = रहता है; तथा चार लाइनके पूरा छन्द होता है। तैसे चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पै आदि अनेकों पद्योंमें देशी भाषामें बहुतेक ग्रन्थ कवि गुरुवालोगोंने रचकर बना रक्खे हैं। सो उसीका प्रमाण करके कोई एक ईश्वर वा खुदादिको कल्पनासे जगत्कर्त्ता मान रहे हैं। इस प्रकारसे संसारमें वाणी-जालको फैलाकर सब मनुष्योंको भुलाके अरुझा रक्खे हैं। बिना पारख कोई उससे छूट नहीं सकते हैं ॥

व्याख्या— चार वेद, अठारह (१८) पुराणादि वाणी संस्कृतमें हिन्दुओंके बने हुए हैं। और चार किताब आदि वाणी अरबी और उर्दूमें मुसलमानोंके बने हैं। फिर उन्हींके सारको लेकर कवियोंने दोहा, साखी, छन्द, चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पै, अरिल्ल, रेखता, शब्द, झूलना इत्यादि नानारूपमें देशी भाषाओंमें अनेकों ग्रन्थ बना रक्खे हैं और बना रहे हैं; जिसको पढ़-सुनके मनुष्य भ्रममें गोते खा रहे हैं ॥ २०२ ॥

२. अनन्त भाँतिका शब्द पसारा * बिन जाने नहिं होय सुधारा ॥ २०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अनन्त भाँतिका = भाँति-भाँतिके अनन्तों
शब्द पसारा = प्रकारकी वाणी-कल्पना, शब्द जाल ग्रन्थ-पन्थोंका पसारा या विस्तार गुरुवालोगोंने किये हैं; सो उसीमें सब मनुष्यलोग भूले पड़े हैं।

बिन जाने नहिं = सत्य निर्णय गुरुमुख वाणी
होय सुधारा = सारशब्दसे विलछान करके सार-असारका पारख बोध जाने बिना, कर्त्तव्योंका सुधार, कल्पनाका त्याग हो नहीं सकता है। इसवास्ते हे जिज्ञासु मनुष्यो ! प्रथम उसको अच्छी तरहसे जानो, फिर अपना सुधार करो ॥

व्याख्या— इसतरहसे अनन्त भाँतिसे शब्दरूप वाणी जालोंका पसारा जगत्में गुरुवा लोगोंने किये और कर रहे हैं। उसका यथार्थ भेद सत्य निर्णय सद्गुरुकी पारख-दृष्टिसे देखे, जाने, समझे बिना मनुष्योंके स्वभावका कभी सुधार हो नहीं सकता है ॥ २०३ ॥

३. सो सब औषध बहु विधि जाँचै * यम फन्दासे तबहीं बाँचै ॥ २०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सो सब औषध = सो सब ही ग्रन्थ-पन्थों-
बहु विधि जाँचै = की वाणी तथा गुरुवालोगोंके शब्द उपदेशोंको भलीभाँति बहुत तरहसे विधिपूर्वक स्वयं परीक्षा करके जाँच करे तथा पारखी सन्त-गुरुके सत्सङ्गमें परखावे। तब असार मिथ्या कल्पित वाणी-को छोड़ कर सार सत्य शब्दके बोधको लेवे। और—

यम फन्दासे = तब ही नर जीव गुरु पारखके
तबहीं बाँचै = प्रतापसे यम गुरुवालोग तथा स्त्रियोंके फन्दारूप खानी-वाणी जालोंसे छूटकर बच जायेंगे ॥

व्याख्या— इसकारणसे सो सब ही शब्दोंको या ग्रन्थ-पन्थोंके उपदेशोंको बहुत-प्रकारसे विधि पूर्वक पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें निर्णय करके जँचावे, तथा अपनेभी उसको ठीक तौरसे परीक्षा करके देख लेवे। जब सत्य बोध होयगा, तब ही मनुष्य यम फन्दोंसे बाँचेंगे; अर्थात् जब सत्सङ्ग विचार द्वारा पूर्ण पारख बोध हो जायगा, तब ही गुरुवालोग और स्त्रियोंकी जालरूप कल्पना तथा विषयोंसे मनुष्य बच जायेंगे; ऐसा जानना चाहिये ॥ २०४ ॥

४. पक्ष वाणीको मन्मत कहिये ❀ जाते दुन्द सबै घर लहिये ॥ २०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पक्ष वाणीको = वेद पक्ष, शास्त्र पक्ष, पुराण
मन्मत कहिये = पक्ष, कुरान पक्ष, इत्यादि कल्पित मिथ्या वाणियोंका पक्षपाती होकर हठता-शठतासे जो मत सिद्धान्तको ठहराते हैं, सो क्या है ? मन्मत कहिये मनकी मिथ्या मानन्दी कल्पित मत है, धोखामात्र है, ऐसा जानै; और—

जातेदुन्द = जिस वेदादि वाणीके प्रमाणसे
सबै घर = हल्ला करके गुरुवालोग कहते हैं
लहिये = कि, सर्वमें परिपूर्ण व्यापक परमतत्त्व-परमात्मा, एक अद्वैत स्वरूप है। परन्तु, संसारमें देखिये तो सब मतवादियोंके यहाँ सिद्धान्तमें परस्पर झगड़ा-फसादसे अनमेल ही हो रहा है। यदि अद्वैत ही सत्य होता, तो फिर ऐसा सब घरमें दुन्द क्यों होता ? इससे अद्वैत है ही नहीं; द्वैत प्रत्यक्ष है, इससे लोगोंमें झगड़ा लगा ही रहता है, उसी अध्यासोंको लेकर जीव सब चारों खानियोंमें चले जाते हैं। वहाँ भी वे एक-दूसरेसे लड़ते-झगड़ते ही रहते हैं ॥

व्याख्या— पक्षपातकी जितनी वेद-शास्त्रादिकी वाणी हैं, सो सब मनःकल्पित हैं। उनको मनमुखी भ्रमिकलोग ही सत्य कहते हैं। जिससे सबमें व्यापक ब्रह्म मानके मत-पन्थोंके दुन्द = झगड़ा मचाकर फिर चौरासी योनियोंमें ही जाते हैं। वहाँ भी अपने-अपने नाना कर्मोंका अदला-बदला चुकानेमें दुन्द मचाते हैं; बिना पारख यह दुन्द जीवोंका नहीं मिटता है ॥ २०५ ॥

५. निर्णय वाणी गुरुमत होई ❀ जाते पच्छापच्छ सब खोई ॥ २०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

निर्णय वाणी = सत्यन्याय निर्णयसे कहा
गुरुमत होई = हुआ सद्गुरुका वाक्य, सोई गुरुमुख वाणी है। उससे प्रतिपादित पारख सिद्धान्त ही गुरुमत है; यानी वही सच्चा श्रेष्ठमत है।

जाते पच्छापच्छ = जिससे सत्य निर्णयके
सब खोई = गुरु उपदेशको धारण करनेसे 'पक्ष' जगत्-जाल विषयोंकी और 'अपक्ष' ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ता मानन्दी वाणी जालोंकी सब कसर-खोट मिट जावेगी। सारशब्दके बोधसे सब पक्षापक्ष मिटकर फिर मनुष्य निष्पक्ष सत्यग्राही हो जाते हैं ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुका मत, सद्गुरुका सिद्धान्त, सद्गुरुके सत्यनिर्णयकी वाणीसे ही भलीभाँति सत्य पारख स्वरूप जाना जाता है। निर्णयसे वर्णन किया हुआ उपदेशका सार सोई गुरुमत है। जिससे कि, जगत्के विषय भोगोंका पक्षपात, दुराचारादि तथा अपक्ष कहिये ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि, कल्पनाके जाल सब भ्रम-संशय नाश हो जावे, मिट जावे, जीव निष्पक्ष होकर बन्धनोंसे छूट जावे, सोई गुरुमत है ॥ २०६ ॥

६. जब निर्णयकी वाणी आवै ❀ झूठा खोटा आपु लजावै ॥ २०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जब निर्णयकी = जब जिज्ञासु मनुष्य सत्य
वाणी आवै = निर्णयी पारखी सद्गुरुकी
शरणमें आ जाते हैं, और उनके गुरुमुख
निर्णयकी वाणीका बोध मनुष्योंके हृदयमें
आ जाता है; यानी जब धारण हो
जाता है—

झूठा खोटा आपु लजावै = तब झूठे गुरुवा लोगोंकी मिथ्या
मानन्दीकी तरफसे वह आप ही
लज्जा-शरम करके छोड़ देता है, और झूठे-
लोग भी उससे लजायके भाग जाते हैं।
तथा ब्रह्म-ईश्वरादि झूठा और विषयादि
खोटा है, पारख बोधसे वह आप-ही-आप
नाश होके विलाय जाते हैं ॥

व्याख्या— जब कि, निर्णयकी गुरुमुख वाणीसे जिज्ञासु मनुष्योंके हृदयमें बोध उदय होके आ जाता है, तब आप-ही-आप वे झूठा-खोटा मन-मानन्दीसे लजाय जाते हैं, और उसको छोड़कर हट जाते हैं। सत्यके आगे झूठा ठहर नहीं सकता है, तथा खोटा टिक नहीं सकता है, और जो झूठा वा खोटामें ही चिपका हुआ लगा रहता है, सो अपने जीवको आप ही बन्धनोंमें डालता है और दुःख भोगी हो जाता है ॥ २०७ ॥

७. निर्णय सो सबके हितकारी ❀ जेहि परसे जीव होय सुखारी ॥ २०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

निर्णय सो सबके हितकारी = पारखी सद्गुरुका सत्यन्याय, सत्य निर्णय जो है, सो सब मुमुक्षुओंका हित-कल्याण करनेलावा बन्धन छुड़ानेवाला बड़ा हितकारी है।

जेहि परसे जीव होय सुखारी = जिस सत्य निर्णयरूपी पारख बोधको प्राप्त हो जानेसे उसकी धारणासे जिज्ञासु नरजीव भव-बन्धनोंसे छूटकर सुखी वा जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥

व्याख्या— सत्यनिर्णयका बोध जो है, सो तो सब मनुष्योंके हितकारी मुक्तिदायी है। जिस गुरुपारख बोधको नरजीव परसते हैं या प्राप्त हो जाते हैं, सो नरजीव सर्वदाके लिये सुखी जीवन्मुक्त शान्त हो जाते हैं ॥ २०८ ॥

८. सारशब्द निर्णयको नामा ❀ जाते होय जीवको कामा ॥ २०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सारशब्द निर्णयको नामा = सारशब्द, यह सत्य निर्णयसे चैतन्य पारख बोध देनेवाला गुरु उपदेशको कहते हैं। निर्णय वाणीका दूसरा नाम ही 'सारशब्द' है। इससे समस्त असार, मिथ्या, खोटा शब्द जालोंकी पहिचान हो जाती है। और—

जाते होय जीवको कामा = जिस सारशब्दके प्रतापसे जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय होकर जड़ाध्यासोंसे छूटकर मुमुक्षुजीव कल्याणपद जीवन्मुक्तिको भी पा जाते हैं। जिससे जीवोंका कार्य सफल या सिद्ध होके मुक्ति प्राप्त हो जावे, उस गुरुमुख वाणीको सारशब्द कहा जाता है ॥

व्याख्या— अतएव हे मनुष्यो! सत्य निर्णयका पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशका नाम ही 'सारशब्द' है, ऐसा जानो। जिससे अपरोक्ष पारख बोध होयकर मुमुक्षु जीवोंका कल्याणके काम सिद्ध हो जाता है। यानी जीवन्मुक्ति स्थिति प्राप्ति हो जाती है। सो वही सद्गुरुको सारशब्द सत्यबोध धारणके प्रतापसे ही कार्य पूर्ण हो जाता है ॥ २०९ ॥

९. गुरु एक जो निर्णय करई ❀ झगरा कबहुँ पारै न परई ॥ २१० ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

गुरु एक जो निर्णय करई = अज्ञान अन्धकारको हटाकर सत्य ज्ञानका प्रकाश करनेवाले निज सत्य स्वरूप एक जो जीव है, उसीका सब प्रकारसे सत्य निर्णय कर पारख बोधदाता जो होवें, ऐसा निर्णय जो करते हैं, सोई एक सद्गुरु हैं, वे सब प्रकारसे मानने योग्य हैं।

झगरा कबहुँ = वे सद्गुरु खानी-वाणीके प्रपञ्च,
पारै न परई = मत-पन्थ ग्रन्थके विरोधी झगड़ा, लड़ाई, द्वेष आदिमें विवेकी साधु-गुरु न अपने ही कभी जाके पड़ते हैं; और न दूसरेको वैसे झगड़ा-फसादमें डालते हैं। वे तो वैसी उपाधिसे न्यारा होके रहते हैं। झगड़ामें जो पड़ें वा पड़ावें, सो गुरु नहीं हैं, ऐसा तो सद्गुरुवा लोगोंका काम है॥

व्याख्या— एक ही सद्गुरु मानने योग्य, ऐसे कौन हैं? इसका उत्तर देते हैं कि, जो कि एक निजस्वरूप जीव और दूसरा जड़ तत्त्व इसका सत्यन्यायसे जो निर्णय करते हैं और जीवोंका जड़ाध्यास छुड़ाकर पारख बोध देते हैं, सोई सद्गुरु मानने योग्य एक महापुरुष हैं। वे सदा-सर्वदा निज स्थिति विवेकमें ही रहते हैं। इसलिये कभी खानी-वाणी आदिके झगड़ोंमें वे आप नहीं पड़ते हैं। और किसी दूसरेको भी वैसे झगड़ा, उपाधि बन्धनोंमें वे नहीं डालते हैं। अपने स्वयं बन्धनोंसे छूटकर दूसरोंको भी निर्बन्ध करनेवाले होते हैं॥ २१०॥

१०. जो कोइ निर्णय आश्रित भयऊ ❀ सेवा करि निज कारज कियऊ॥ २११॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो कोई = जो कोई भाग्यवान् जिज्ञासु नर-जीव-
निर्णय = सत्यन्यायी, सत्यनिर्णयी, पारखी सद्गुरुके तथा सत्यन्याय निर्णयकेयुक्त—
आश्रित = गुरु शरणागत हो कर सद्गुरुके आधार या आश्रयमें रहकर सच्चा त्यागी-वैराग्यवान्—
भयऊ = सद्गुरुका शिष्य जो हो गया है—
सेवा करि = सो नाशवान् तन, मन,
निज कारज = धनादिको गुरु अर्पण करके
कियऊ = सत्य निष्ठा, प्रेम भक्ति पूर्वक पारखी सद्गुरुकी सेवा, सब प्रकारसे करके निरहङ्कारी हो, निज कल्याण वा जीवन्मुक्ति स्थितिको प्राप्त किये और करते हैं, तथा कर रहे हैं॥

व्याख्या— जो कोई जिज्ञासु नरजीव ऐसे पारखी सद्गुरुकी शरणमें आके आश्रित वा उनके आधारमें टिक गये, सो वे सत्य निर्णयको ग्रहणकर, सद्गुरुकी सब तरहसे सेवा करके अभिमान, ममतादिको दूरकर अपना कल्याणका कार्य पूरा कर लिये और सो जीवन्मुक्तिका कार्य सिद्ध कर लेते हैं॥ २११॥

११. सो सब सेवा शिष्य कहावै ❀ मन्मत सो जो और बनावै॥ २१२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सो सब = सो मुमुक्षु शिष्योंको चाहिये
सेवा शिष्य = कि, सब प्रकारसे पारखी
कहावै = सद्गुरुकी दासत्त्व भावसे सेवा करै; सो सब प्रकारसे सद्गुरुकी सेवा करनेवाला आज्ञाकारी ही सत्शिष्य कहलाता है। ऐसे शिष्योंको ही पारख बोध होता है।
मन्मत सो = सोई तो मन्मति मूढ़ अविचारी
जो और = है, जो कि— और-का-तौर झूठ-
बनावै = मूठको मानता है। नाम मात्रका सद्गुरुका शिष्य हुआ, परन्तु वह और ही और कल्पना, मिथ्या धोखाको ही अपना इष्ट मालिक बनाता है। तथा कल्पित ईश्वर, भूत-प्रेतादिको मानता है, सोई मन्मति आप ही निगुरा बन जाता है॥

व्याख्या— सब प्रकारसे सद्गुरुकी सेवामें जो ठहरता है, सोई सच्चा शिष्य कहलाता है। सेवा भाव सहित आज्ञा पालन करना, यही शिष्यभाव कहाता है। कहा है:— "आज्ञा सम न सुसाहेब सेवा" और सोई मन्मति या मन्मुखी है, जो कि, सद्गुरुका शिष्य बनकर भी और ही मालिक ईश्वरादि देवी-देवतादिको मानकर पाखण्डको बनाता या बढ़ाता है। अतः आज्ञाकारी सत् शिष्य ही होना चाहिये॥ २१२॥

१२. जग बुद्धि कहै मम गुरु एका ❀ जेहि तेहि सेवा करै अनेका॥ २१३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जग बुद्धि= कहै मम = गुरु एका= जगत्के बुद्धिहीन या निर्बुद्धि मनुष्य कहते हैं कि, हमारे तो एक परमेश्वर ही गुरु हैं, वही हमारे मालिक हैं; और कोई कहते हैं, भाई! हमनेभी वैष्णव आदिको या कोई पण्डितजी-को गुरु थापे हैं या माने हैं। हमने तो अमुकसे कान फुका लिया है, हम तो निगुरे नहीं, गुरुमुखी हैं, ऐसे कहते हैं।

जेहि तेहि= सेवा करै= अनेका= परन्तु, इन दुर्मतियोंकी चाल तो देखो, कैसे पथभ्रष्ट हो रहे हैं। कहीं मिट्टी, पानी, पत्थर, गोबर आदिकी जड़ पूजा करते हैं। तथा कहीं भूत-प्रेतादि धोखेकी अनेकों तरहसे जिस-तिसकी सेवा कर रहे हैं। अब ये मन्मति नहीं तो कौन हैं? मूढ़ मनमुखी ही बने हैं॥

व्याख्या— जगत्के दुर्बुद्धि अज्ञानी मनुष्य कहते हैं कि, मेरे तो एक ईश्वर ही गुरु हैं। अथवा हमारे भी एक गुरु हैं। दीक्षा गुरु, शिक्षा गुरु, विद्या गुरु, आदिमेंसे एक कोईको बताते हैं। और कहते हैं कि— हमने तो छोटेपनमें ही वैरागी, उदासी, संन्यासी आदि किसीसे कान फुका लिया है। हम तो गुरुमुखी बने हैं, इत्यादि कहते हैं। परन्तु, उन्होंकी चाल देखो तो मलिन है। अष्ट प्रतिमादि और पानी-पत्थरादिकी, जिस-तिसकी धोखेकी ही सेवामें लगे हैं। इसप्रकारसे अज्ञानीलोग अनेकोंको गुरु करके मानते हैं। बिना विचार मिथ्या धोखेमें पड़के भ्रममें ही लगे हैं। अतएव इन्होंका गुरु मानना निरर्थक है, वह कोई कामका नहीं होता है॥ २१३॥

१३. पुनि जाको इन गुरु ठहराई ❀ ताको दूसर गुरू सहाई॥ २१४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुनि जाको= इन गुरु= ठहराई= फिर जिन कर्मी, भक्त, योगी लोगादिकोंको इन अज्ञानी संसारी मनुष्योंने गुरु करके ठहराये हैं, वे भी वैसे ही पारखहीन अज्ञानी भ्रमिक वञ्चक बने हैं।

ताको= उन गुरुवालोगोंको भी गुरुपदका बोध नहीं है। इसकारण उनको भी दूसरे गुरुका ही भरोसा लगा है। और—

दूसर= दूसरा ही कोई जगत्से दूर रहनेवाला निर्गुण-निराकाररूप मानकर जीवको स्वपदसे दूर सरकानेवाला—

गुरू= कल्पित परमेश्वरको गुरु मानके उसके ध्यान करते-कराते हैं।

सहाई= वह ईश्वर सहायता करके अन्तमें मुक्त करेगा, ऐसी झूठी आशा लगाके भ्रमचक्रमें पड़े हैं; धोखेका आसरा ले रहे हैं॥

व्याख्या— अज्ञानी संसारियोंने फिर जिन गुरुवालोगोंको श्रेष्ठ गुरु करके माने या ठहराये हैं, वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं। दूसरा कोई कल्पित परमात्माको गुरु मानके गुरुवालोग मुक्तिके लिये उसके आसरारूप आशा-भरोसामें पड़े हैं। ईश्वर ही सहायता करके सब भक्तोंकी मुक्ति करेगा, ऐसा भ्रमसे मान रहे हैं॥ २१४॥

१४. जेहिकी सेवा करै लौलाई ❀ सो सेवा पद कैसे कहाई॥ २१५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जेहिकी= सेवा करै= लौलाई= जिनकी सेवा ये लोग लौ लगाके करते हैं, सो चैतन्य बोधदाता सद्गुरु तो नहीं हैं। अज्ञानी अनाड़ी भ्रमिक जनोंकी तथा कल्पित ईश्वरादिकी और जड़ पीतर-पाथरकी, धोखेकी सेवामें प्रेम लगा रहे हैं, इससे—

सो सेवा= पद कैसे= कहाई= सो वह तो पाखण्ड है। सो सच्चा गुरुपदकी सेवा कैसे कहला सकता है? कभी नहीं कहा जा सकता है। सत्यासत्यको जाननेवाले ही गुरुसेवा पदका मर्म समझ सकते हैं॥

व्याख्या— जिस कल्पित ईश्वरकी तथा देवी-देवता, भैरव आदिकी प्रेम-प्रीति लगाके भ्रमिक-लोग सेवा, भजन, पूजनादि कर रहे हैं, सो तो मिथ्या धोखा है, वह गुरुपदकी सेवा तो नहीं है। इसवास्ते वह गुरु सेवाका सच्चापद कैसे कहला सकता है? गुरुवा लोगोंके कार्य सब व्यर्थके

भ्रमपूर्ण पाखण्डरूप ही होते हैं ॥ २१५ ॥

१५. टहल करै टहलुवा कहावै * तासो कैसे पद सेवा बनि आवै ॥ २१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

टहल करै = जो कोई खाली पेट भरनेके लिये
टहलुवा = या मजदूरीके लिये तथा स्त्री, पुत्र,
कहावै = धनादि प्राप्तिकी चाहनासे या स्वर्गादि तथा ईश्वरादि प्राप्तिकी अभिलाषासे साधु भेषधारियोंकी और जड़ प्रतिमा मूर्तिकी टहल, सेवा, चाकरी जो करते हैं- सो टहलुवा, नौकर, दास, गुलाम, ऐसे कहलाते हैं वे तो सिर्फ स्वार्थ साधते हैं।

तासो कैसे = उस स्वार्थी टहलुवासे गुरुपदका
पद सेवा = सच्चा निःस्वार्थ सेवाभाव कैसे
बनि आवै = बन सकता है ? ऐसी सच्ची सेवा करना, तो उसको आता ही नहीं। वह तो सत्सङ्गमें आता ही नहीं, सत्सङ्गसे दूर भागता है, तो उससे क्या सेवा बनैगी ? कुछ नहीं बनती है ॥

व्याख्या— पेट भरनेके लिये और मायिक पदार्थ प्राप्तिके लिये वा स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये जो किसीकी टहल, चाकरी, करते हैं, सो वैसेलोग तो टहलुवा या वेतन भोगी नौकर कहलाते हैं। उन लोगोंसे सच्चे गुरुपदकी सेवा कैसे बन आ सकती है ? कदापि बन नहीं सकती है ॥ २१६ ॥

१६. सोई सेवक जो सेवा करई * बिना विचार बूझि ना परई ॥ २१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सोई सेवक = सोई सच्चा सेवक कहला
जो सेवा = सकता है, जो कि- दीनता,
करई = दासातन, प्रेम भावसे सर्व प्रकारसे पारखी साधु-गुरुकी सेवा, भक्ति करता है, सोई गुरुपदका अधिकारी सेवक है।

बिना विचार = गुरु सत्सङ्गमें सार-असार-
बूझि ना परई = को विचारे बिना, परिणामके हित-अहितको समझे-बूझे बिना वह गुरुभक्त किसी कार्यमें भी नहीं पड़ता है। और विचार समझ-बूझ, जहाँसे कुछ मिलता ही नहीं, वैसे गुरुवालोग आदिके सङ्ग ईश्वरादि कल्पनामें तथा जड़ मूर्ति पूजादि धोखेमें वह कभी नहीं पड़ता है। सब कामको विचारसे ही करता हुआ वर्तता है ॥

व्याख्या— निष्कपट भावसे कर्त्तव्य समझकर सत्यबोध प्राप्ति तथा स्थितिके लिये पारखी साधु-गुरुकी तन, मन, वचन, धन और सर्वस्व निछावर करके जो सच्चाईसे सेवा करता है, सोई सेवापदका अधिकारी सद्गुरुका सच्चा सेवक होता है। वह समझे, बूझे, विचारे बिना किसी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होता है। और जहाँ समझ, बोध, विचार कुछ दिखाई ही नहीं देता है, वैसे गुरुवालोग और विषयी लोगोंके कुसङ्गमें तथा जड़ भावना प्रतिमा पूजामें कभी नहीं पड़ता है। सदा सत्सङ्गमें ही लगा रहता है ॥ २१७ ॥

१७. अपनी अपनी गुरुमत जानै * और सबै मन्मत अनुमानै ॥ २१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अपनी अपनी = यों तो जगत्में बेपारखी
गुरुमत जानै = सब मतवादीलोग अपने-अपने मत, पन्थ, सिद्धान्तोंको श्रेष्ठ, बड़ा गुरुका मत हमारा ही है, ऐसा जानते या मानते हैं। परन्तु, जहाँ पारखबोध नहीं है, सो गुरुमत कैसे हो सकेगा ? कदापि हो नहीं सकता है।

और सबै = तथापि वे गुरुवालोग अपने-
मन्मत = अपने मतको ही गुरुमत ठहरायके,
अनुमानै = और दूसरे सब मत-पन्थोंको मन्मत हैं, ऐसा बतलाते हैं। परन्तु, वे सब कोई अनुमान, कल्पनाको ही श्रेष्ठ मानके भूले पड़े हैं ॥

व्याख्या— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सार-असारको जानो। देखो ! संसारमें सब वञ्चक गुरुवालोग अपने-अपने पाखण्ड मतको ही बड़ा श्रेष्ठ गुरुमत है, ऐसा जानते वा मानते या जनाते वा मनाते हैं। और दूसरे सबोंके मतोंको मन्मत होनेका अनुमान करते हैं वा

मन्मत ठहराते हैं। विचार करो ! जो अनुमान, भ्रम, कल्पना, और विषय आदिमें पड़ा हुआ है, सो गुरुमत कैसे हो सकता है ? मन्मुखी तो वे सरासर ही हो रहे हैं। क्योंकि, मनके विषयोंकी तरफ जिसका मुख वा लक्ष्य हो, सोई मन्मुखी है ॥ २१८ ॥

१८. बिना निर्णय सो दुन्द न जाई * पचि पचि मरहिं करहिं लराई ॥ २१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बिना निर्णय = सो दुन्द = न जाई = सारासारके परीक्षक पारखी सद्गुरुके सत्यन्याय सत्य निर्णयके बिना, सो अनेकों पाखण्ड, झगड़ा, कल्पनाएँ छूट नहीं सकती हैं या मनसे निकलकर नहीं जाती हैं।

पचि पचि = मरहिं करहिं = लराई = इसलिये वे खानी-वाणीके नाना झगड़ोंमें पड़े हुए मत-वादीलोग आपसमें लड़ाई करते, झगड़ते हुए हल्ला करके दुन्द मचाते हैं, मारे-पीटे जाते हैं। प्रपञ्चमें ही पच-पचकर नाना जञ्जालोंको रच-रचकर जड़ाध्यासी होके मरकर चौरासी योनियोंकी खानियोंमें चले जाते हैं ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुके सत्यन्याय निर्णयके बिना सो मत-पन्थोंका और नाना विषयोंका जो दुन्द वा झगड़ा मच रहा है, वह छूटकर जा नहीं सकता है, यानी मिट नहीं सकता है। इसकारण अनेक झगड़ोंमें पड़के लड़ाई करके झगड़ोंकी उपाधि करते हैं। फिर उसीमें पच-पचके दुःख भोगते हैं, मरते हैं, और चार खानीमें चले जाते हैं ॥ २१९ ॥

१९. जहाँ झगरा तहाँ गुरुमत नाहीं * जहाँ गुरुमत तहाँ दुन्द नशाहीं ॥ २२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जहाँ झगरा = तहाँ गुरुमत = नाहीं = जहाँपर विषय भोगोंका और कल्पना, वाणीका झगड़ा, विरोध लगा हुआ है, तहाँपर गुरुमत पारखका बोध टिकाव स्थिति नहीं होती है या हो नहीं सकती है, और तैसे ही-

जहाँ गुरुमत = तहाँ दुन्द = नशाहीं = जहाँपर जिन जिज्ञासुओंको गुरुमत पारख स्वरूपका सत्य बोध हो गया है या हो जायगा, तहाँपर समस्त दुन्दरूप झगड़ा खानी-वाणीकी मानन्दी बन्धन नाश हो जाता है या छूट जाता है ॥

व्याख्या— इसवास्ते जहाँपर व्यर्थका झगड़ा, खानी-वाणीका रगड़ा लगा है, तहाँपर कदापि गुरुमतका बोध ठहराव हो नहीं सकता है। और जहाँपर जिन मनुष्योंमें गुरुमत पारखका सत्य बोध हो गया है, फिर तहाँ कोई दुन्द रह नहीं सकता है। सब भ्रमका झगड़ा नाश हो जाता है। जीव निरुपाधि स्थितिमें शान्त रहता है ॥ २२० ॥

सबन्ध— यहाँपर बीजककी दो साखीका प्रमाण देकर समझाया गया है ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— १३८ ॥ ❀ ॥

साखीः— पछापछीके कारने * सब जग रहा भुलान ॥
[२२] निर्पक्ष होयके हरि भजै * सोई सन्त सुजान ॥ २२१ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पछापछीके = कारने = पक्ष और अपक्षके कारणसे अर्थात् पक्षः— वेद, शास्त्र, पुराणादि; कर्म, उपासना, योगादि; स्त्री, पुत्र, धनादि; जाति, पाँति, कुल-मर्यादादि इन सबोंके लिये पक्ष करना, तरफदारी खिंचाव करना और अपक्षः- ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि प्राप्तिके लिये तथा ज्ञान-विज्ञानादिके लिये आकर्षित होना, इसप्रकार लोक और वेदके पक्षपातके हेतुसे नरजीव सब भ्रम फन्दोंमें पड़े हैं।

सब जग = रहा भुलान = इसीसे जगत्के सब मनुष्य निज सत्य स्वरूपके विचारको

छोड़के भ्रम, धोखा, कल्पना तथा विषयादि-में ही भूल रहे हैं या भूल गये हैं।

निर्पक्ष = होयके = हरि भजै = अतएव जो कोई मुमुक्षु मनुष्य इन दोनों खानी-वाणीके पक्ष वा अपक्षको छोड़कर निर्पक्ष सत्यन्यायी हो करके हरि कहिये ज्ञान गुणको हरण करके बन्धन देनेवाले गुरुवालोग तथा स्त्री माया इन लोगोंसे भागकर या इन्होंके सङ्ग-साथको त्यागकर पारखी सद्गुरुके सङ्गमें लगा रहै। जो इस प्रकार रहते हैं—

सोई सन्त = सुजान = सोई सन्त-महात्मा हैं, जिनका भ्रम, संशय, शान्त हो गया है; तथा बन्धन और मुक्तिके भेदको पूर्णतासे जाननेवाले श्रेष्ठ चतुर सुजान सोई सच्चे पारखी सन्त हैं॥

व्याख्या— पक्षापक्षके खैंचातानीके कारणसे सब संसारके मनुष्य मिथ्या धोखेमें ही भूले वा भुलाय रहे हैं। तहाँ स्त्रीका पक्ष पकड़े, सो 'स्त्री पशु' हैं। बड़े-बड़े पुरुषोंका पक्ष पकड़े, सो 'नर पशु' हैं। देवतोंका पक्ष लेवें, सो 'सुर पशु' हैं। वेदका पक्षपाती सो 'वेद पशु' हैं। शास्त्रोंका पक्ष लेवें, सो 'शास्त्र पशु' हैं। पुराणोंका पक्ष पकड़ें, सो 'पुराण पशु' कहलाते हैं। ऐसे षट् पक्षपाती संसारमें रहते हैं। सो मनुष्यका देह रखते हुए भी पशु स्वभावोंको ले-लेकर पशु ही बने हुए कर्मोंका बोझा ढो रहे हैं। इसप्रकार विषय विलास और कल्पना, अध्यासादिकी तरफदारी करै, सो "पक्ष" का भाग है; और जगत्कर्त्ता कोई परमेश्वर वा खुदा आदि मानकर उसकी प्राप्तिके लिये भक्ति, योग, ज्ञानादिके नाना साधनोंमें जो लगे हैं, सो "अपक्ष" का भाग है। यही दोनों फन्दोंके दुन्दमें पड़नेके कारणसे सब जगत्के नरजीव राग-द्वेष, कलह-कल्पना, काम-क्रोधादिमें लगकर जड़ाध्यासमें पड़ने-से निज सत्स्वरूपको भूल गये हैं, सो धोखा-भ्रममें ही एक-दूसरेको भुला रहे हैं। अब उनमेंसे जो कोई सत्य शोधक मनुष्य पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके यथार्थ रीतिसे जड़ और चैतन्यके भेदको जानकर बन्धन और मुक्तिके कारणको ठीकसे पहिचान लिये, तथा बन्धनमें बाँधनेवाले, सद्गुणोंको हरण करनेवाले ऐसे कालरूप 'हरि' कहिये माया गुरुवालोग और स्त्रियाँ आदि इन्होंके सङ्गको 'भजै' कहिये त्याग देवे वा जिन्होंने त्याग दिये हैं, और इनके जञ्जालोंसे दूर भाग गये हैं। सर्व आसक्तिको छोड़ दिये हैं, सोई सच्चे जानकार पूर्ण चतुर ज्ञानी पारखी सन्त सर्व श्रेष्ठ हैं। उनकी शरण, सत्सङ्ग बोधसे ही जिज्ञासु मनुष्योंका कल्याण होता है, ऐसा जानना चाहिये॥ २२१॥

सम्बन्ध— और भी बीजक साखीका प्रमाण यहाँ दिया है, सो सुनिये!॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— ५ ॥ ❀ ॥

साखीः— शब्द शब्द बहु अन्तरे * सारशब्द मथि लीजै॥
[२३] कहहिं कबीर जहाँ सारशब्द नहिं * धृग जीवन सो जीजै॥ २२२॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

शब्द शब्द = ब्रह्मादि, सनकादि, व्यासादि ऋषि मुनियोंके वचनरूप वेद-वेदान्त, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण तथा कुरान आदिके शब्द वा वाणियोंमें और सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके उपदेशरूप निर्णयकी वाणीमें—

बहु अन्तरे = बहुत ही अन्तर या फरक है। सो मिथ्या शब्दोंका भ्रम, ओट, आड़, पर्दा, और दूरीमें बहुतेक अज्ञ बेपारखी मनुष्य गाफिलीमें पड़े, और पड़ रहे हैं।

सारशब्द = मथि लीजै = इसकारण, हे मुमुक्षुओ! उसमें भूलो मत! और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग द्वारा सार वा असारको पहिचान लो, फिर सब शब्दोंको मथनकर या छानबीनकर सारशब्दको ही ग्रहणकर लीजिये! सत्य चैतन्यजीवके स्वरूपका बोध जिससे होवे, सोई सारशब्द पारख बोधको लीजिये!

कहहिं कबीर = पारखबोधदाता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि,
जहाँ सार = जहाँपर जिस मनुष्योंमें
शब्द नहीं = सारशब्द सद्गुरुका निर्णय पारखका बोध नहीं है या हुआ नहीं; और जो असार कुशब्दोंकी कल्पना तथा विषयोंमें ही पड़े रहे, तो फिर—
धृग जीवन = उन मनुष्योंका जीवन व्यर्थ ही
सो जीजै = बर्बाद हो गया। इसप्रकार उसका जीना भी धिक्कार है! शतशः धिक्कार है! क्योंकि, वह कर्म-कुकर्म करके चौरासी योनियोंके बन्धनोंको ही दृढ़ करके बनाता या बढ़ाता लेजाता है। अतएव सारशब्दका बोध प्रथम कर लेना चाहिये। सो जिस निर्णयके शब्द, उपदेशसे पक्ष-अपक्ष, अनुमान-कल्पना, दृश्य-अदृश्यादिकी सब कसर-खोट परखनेमें आवे और निज स्वरूपका पारख बोध होवे, सोई गुरुमुखवाणी सारशब्द हैं; ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या— शब्द-ही-शब्दोंमें बड़ा ओट, आड़, पर्दाका अन्तर, फासला या दूरी है। शब्दोंमें बड़ा दाव-पेंच लगा है। शब्द जङ्गलोंके काँटेदार वृक्षोंके समान झाड़ी है। शब्द सबोंको अरुझानेवाला और मोहित करके आसक्त करानेवाला है। शब्द जालोंका विस्तार बड़ा भारी सर्वत्र छाया हुआ है। प्रथम जितने मत-पन्थोंके प्रवर्तक हुए, सो उन्होंने भी शब्दोंका ही अनेक रीतिसे प्रचार कर गये हैं। शब्द जालोंको यथार्थ परखानेवाले महापुरुष, महान अनुभवी पारखी सद्गुरु ऐसे एक ही बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए हैं। आपने इस साखीमें यथार्थ परखाते हुए कहा है कि, हे मनुष्यो! पारखी सन्तोंका सारशब्द सत्य उपदेशमें तथा गुरुवालोगोंका असारशब्द-कुशब्दरूप वेद, शास्त्र, कुरान आदिकी वाणियोंमें बड़ा भारी अन्तर वा फरक है। सो असार शब्दसे जीव भव-बन्धनोंमें पड़ जाते हैं, और सारशब्दोंके बोधसे मुक्ति पा जाते हैं। इसकारण शब्द-ही-शब्दमें बहुत अन्तर है, सो पहिचान करके सत्सङ्गमें प्रवीण हो, सारशब्दोंका मथन करके मक्खनके समान निकाल लीजिये; और रोचक, भयानकादि कल्पित शब्दोंकी भावना छोड़कर यथार्थ गुरुमुख वाणी सत्य निर्णयरूप सारशब्दको ग्रहणकर धारणकर लीजिये! सब वाणी-खानीकी कसर-खोटोंको परखानेवाला सोई सद्गुरुका उपदेश सारशब्द है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, संसारमें सारशब्द द्वारा पारखका बोध जिस मनुष्योंमें जहाँपर नहीं हुआ कि, तहाँ उसका जीवन व्यर्थ हुआ; उस अभागेका जीवन धारणकर पशुके समान जीते रहना भी धिक्कार है, व्यर्थ है! जी कर खाली बन्धन बढ़ानेके सिवाय और वह क्या करेगा? इसलिये उसका जीवन धिक्कारके योग्य है॥ २२२॥

सम्बन्ध— अब सत्रहवाँ खण्डमें १६ चौपाई, और ३ साखीमें सत्यासत्यकी परीक्षा करनेका गुरु निर्णयके बारेमें कहा गया है, सो जान लीजिये!॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ सत्रह खण्ड ॥ १७ ॥ ❀ ॥

१. खरा खोटा परखहु बहु भाँती * तबहीं होय जीव कुशलाती ॥ २२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
खरा = सत्य चैतन्य, अविनाशी, अखण्ड, अजर, अमर निजस्वरूप जीव ही वास्तवमें खरा है। और—
खोटा = मिथ्या, भ्रम, धोखा, कल्पनारूप ईश्वर, ब्रह्म, खुदादि और विषय भोगादि सब खोटा बन्धनरूप है।
परखहु = हे नरजीवो! ऐसे सत्य-असत्यको
बहुभाँती = बहुत प्रकारसे छानबीन करके विवेकसे परीक्षा करलो, खोटाको छोड़कर, खराको ही ग्रहण करलो।
तबहीं होय = पारखदृष्टि खुलनेपर तबहीं
जीव कुशलाती = तुम्हारे नर जीवनका सफल होयके बन्धनोंसे छूटकर जीवको मुक्तिरूपी कुशल प्राप्ति होयगा॥

व्याख्या—'खरा' सत्य चैतन्य जीव है, और 'खोटा' मिथ्या ब्रह्म, ईश्वरादि भ्रम, कल्पना है।

सो इसको बहुत प्रकारसे पारख करके देख लो, और मिथ्याको त्यागकर सत्यको ग्रहण करो। तभी जीवका बन्धन छूटकर सच्ची कुशलतारूप मुक्ति प्राप्ति होयगी ॥ २२३ ॥

२. जेहि गुरुज्ञान न छूटन केरा * बहु अनुमान भरम बौडेरा ॥ २२४ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं हे सन्तो !

जेहि = जिन मनुष्योंको अभी नरजन्ममें आ करके भी—

गुरुज्ञान = पारखी सद्गुरुका सत्यज्ञान, निजस्वरूपका पारख बोध नहीं हुआ, उसका नर जन्म पाया हुआ व्यर्थ गया और गुरुवा लोगोंके उपदेशसे तो अज्ञान किसीका नहीं छूटा।

न छूटन = केरा = इसलिये कोई भी संसार बन्धनोंसे छुटकारा नहीं पाते हैं, और छूटनेका रास्ता भी कोई नहीं पाते हैं, तो कैसे छूटेंगे?

बहु अनुमान = भरम बौडेरा = इससे अनेकों मनुष्य नाना तरहके अनुमान, कल्पना, भ्रान्ति, अध्यास, खानी-वाणीके महान चक्र, तोफानमें पड़के चूर-चूर हुए और चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं ॥

व्याख्या— जिसको पारखी सद्गुरुका सत्यज्ञान नहीं मिला है, सो गुरुवा लोगोंकी वाणी कल्पनामें पड़कर भ्रमिक हो गया, इसीसे तो और भी बन्धनोंमें जकड़ जाते हैं। वैसे मनुष्य जीव कदापि आवागमनसे छुटकारा पा नहीं सकते हैं, इसवास्ते बहुत प्रकारके अनुमान, कल्पना, भ्रान्तिका तोफान, खानी-वाणियोंके चक्रमें ही बहुत तरहसे घूमते रहते हैं ॥ २२४ ॥

३. भवसागर दुस्तर कठिनाई * नौका नाम तहाँ सत्य दृढ़ाई ॥ २२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

भवसागर = दुस्तर = कठिनाई = यह संसाररूपी भवसागर विषय जाल, कल्पनाकी तरङ्गसे छूटकर पार होना या मुक्ति पा जाना अत्यन्त कठिन बड़ा मुश्किल है। पारख स्थिति हुए बिना कोई भी इस आवागमन चक्रसे छुटकारा पा नहीं सकते हैं; किन्तु—

नौका नाम = तहाँ सत्य = दृढ़ाई = मिथ्यावादी गुरुवालोग मनुष्योंको कैसे भुलावा दे रहे हैं कि- वे कहते हैं राम-नामरूपी नौका है, यह बड़ा मजबूत पक्का और सच्चा है। नाम स्मरण करते रहनेसे जीव अनायास भवसागरसे पार उतरकर परमधामको चला जाता है। इससे सदैव राम-नामके स्मरणमें ही लगे रहना चाहिये। ऐसा भक्त गुरुवालोगोंने वाणी दृढ़ाये हैं। इसको परखकर छोड़ दो ॥

व्याख्या— यह संसारसे छुटकारा पाना, खानी-वाणी जालोंसे बचना अति कठिनाईकी बात है। कोई बिरले पारखी ही इससे छूटकर पार उतर पाते हैं। परन्तु, भ्रमिक गुरुवालोग कहते हैं कि, वैसे तो भवसागरसे पार उतरना दुस्तर है; अति ही कठिन है। यदि नौका या जहाजमें बैठके चला जाय, तो सहजमें पार हो सकते हैं। तैसे ही राम-नामरूपी यह जहाज या नौका सच्चा है; ऐसा कहिके दृढ़ाते हैं कि, नाम स्मरणसे अनायास ही पार उतर जाओगे। इसतरह धोखा देकर भुला रक्खे हैं ॥ २२५ ॥

४. बूड़े भवकी धार न सूझै * मुये मुक्त ऐसी दृढ़ बूझै ॥ २२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मुये मुक्त = ऐसी दृढ़ = बूझै = ये भ्रमिक योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवालोगोंने ऐसा मानते भये कि, हम लोग ईश्वरकी भक्ति करते हैं, तो जब हम मर जायेंगे, तब परमेश्वर हमको अवश्य मुक्त कर देंगे, यानी शरीर छूटनेपर हमारी मुक्ति हो जायगी, हम ईश्वरमें ही मिल जायेंगे, ऐसी मन-मानन्दीसे दृढ़ करके वाणीको समझ-बूझकर धोखाको पक्काकर रक्खे हैं।

बूड़े भवकी = धार न सूझै = परन्तु, वे सब बेपारखी मनुष्य खानी-वाणीके भवसागरमें जड़ाध्यासी होकर डूब गये और डूब रहे हैं। तो भी बिना पारख उन्होंको कुछ सत्य-असत्यकी समझ नहीं होती है। कुछ सूझ नहीं पड़ती है; अन्धे हो रहे हैं। इसीसे मरनेपर मुक्ति मान रहे हैं॥

व्याख्या— बुद्धि-विचारहीन भक्त, योगी, जैनी आदि लोगोंने ऐसी दृढ़ता करके माने हैं कि, मरनेपर हमारी सहजमें ही मुक्ति हो जायगी। क्योंकि, हम परमेश्वरकी उपासना आदि करते हैं, तो ईश्वर हमें मरनेपर मुक्त कर देगा, ऐसी मानन्दी कर रहे हैं। परन्तु, मुक्ति होना तो दूर रहा, मनुष्यसे फिर मनुष्य होना भी दुर्लभ है। क्योंकि, खानी-वाणीके जड़ाध्यासी होकर संसारमें आसक्तिके भवधारमें गोते लगाके डूब रहे हैं। बिना पारख सो तो इनको नहीं सूझता है। इससे मरकर मुक्त तो होंगे नहीं, चौरासी-योनियोंमें तो अवश्य चले जायेंगे; तहाँ कर्म फल भोगते रहेंगे॥२२६॥

५. जहाँसे उपजै तहाँ समानै ❀ कसर विकार मूल नहिं जानै ॥ २२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जहाँसे उपजै = तहाँ समानै = इसीलिये यह जगत्-ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, ऐसी कल्पना करके उसी ब्रह्मरूपी भ्रममें वा उत्पत्ति स्थानमें जाके समाये। तहाँ ब्रह्ममें तो जीवकी कुछ स्थिति नहीं हुई। फिर उलट कर जहाँ स्त्रीकी योनिसे प्रथम जन्म लेकर आये थे, वहींपर देह छोड़कर अध्यासी जीव वीर्यमें मिलकर भग द्वारा गर्भवासको जाके प्राप्त हुए या गर्भ कुण्डमें जाके समा गये।

कसर विकार = मूल नहिं जानै = सब कसर और विकारका मूल जड़रूपी माना हुआ कर्त्ता ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा ही है वा विषयासक्त मन है। ऐसा परीक्षा करके तो जानते ही नहीं हैं। इसीसे चौरासी योनियोंके विकारमें ही भ्रमते-भटकते रहते हैं॥

व्याख्या— जड़ाध्यासी जीव शरीर छोड़कर जायेंगे कहाँ? जहाँ संसारमें स्त्रियोंके गर्भवाससे योनि द्वारा प्रथम जन्म लेकर आये थे, फिर पश्चात् भी वासनावश मैथुन सम्बन्धसे योनि द्वारा गर्भवासमें ही जाके समाते हैं। शरीर तैय्यार होनेपर फिर जन्म लेते हैं। और जो ब्रह्म बने, सो जगत्के आवागमनोंमें ही पड़े रहते हैं। क्योंकि, सब कसर विकाररूपी जगत्का कारण तो वही ब्रह्म है; वही सब उपाधिरूप चौरासी योनियोंका घेरा वा घर है, ऐसा पारख करके भ्रमिक लोग तो जानते ही नहीं। इसीसे उनका चौरासी योनियोंका फेरा नहीं छूटता है॥ २२७॥

६. भरमें आप जीवन भरमावै ❀ नाटक चाटक सुयश बढ़ावै ॥ २२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

भरमें आप = अपने-आप गुरुवालोग तो ब्रह्म भ्रम, अनुमान, कल्पनादिमें पड़के भ्रमिक तो हुए ही हैं। और—

जीवन = भरमावै = दूसरे नर जीवोंको भी वही कल्पना दृढ़ा-दृढ़ाकर भ्रमा रहे हैं या भ्रमाकर-भुलाकर धोखेमें ले जाकर डाल देते हैं।

नाटक चाटक = नाना चमत्काररूप नाच तमाशा, गायन, कीर्तन दिखा-सुनाकर तथा प्राणायाम और चौरासी आसन मन्त्र-तन्त्रादि ढोंग पाखण्डमें लोगोंको आकर्षण वा मोहित करके संसारमें—

सुयश = बढ़ावै = गुरुवालोग अपनी महात्म्य-विशेषता का सुयश बढ़ाते हैं। अज्ञानियोंमें प्रभाव डालते हैं, सो सब प्रचार झूठ-मूठका ही करते हैं॥

व्याख्या— ये गुरुवालोग अपने तो भ्रममें पड़कर भ्रमिक हो ही गये वा भ्रमिक ही हो रहे हैं, और दूसरे मनुष्योंको भी धोखेमें फँसा-फँसाकर भ्रमा रहे हैं। नाच, गाना, तमाशादि दिखायके और नाना तरहके झूठे चमत्कार आसनादि दिखायके अपनी महिमारूप सुयश बढ़ाते हैं॥ २२८॥

७. करामात करतूत बखानै ❀ नास्ति ज्ञान सोई सत्यकै मानै ॥ २२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

करामात = बाजीगरी तमाशा सरीखी कुछ
करतूत = झूठी खेल-क्रियादि दिखायके
बखानै = गुरुवालोग ठगाईके लिये मन्त्रका सामर्थ्य सिद्धिकी महिमा नाना भाँतिसे वर्णन करते हैं। उस कर्त्तव्यका अहङ्कार करते हैं; व्याख्यान देते हैं। और—

नास्ति ज्ञान = मिथ्या धोखारूप ब्रह्मज्ञान
सोई सत्यकै = और विषय ज्ञानादिको, सो
मानै = वही भ्रमिक लोग सत्य करके मानते वा मनाते हैं। इन ठग गुरुवालोगोंके मिथ्या ज्ञान कल्पित ईश्वर-खुदादि कर्त्ता, स्वर्ग लोकादि, ऋद्धि-सिद्धिकी महिमा, रोचक-भयानक वाणी सुन-सुनकर पारख-हीन मनुष्य सब उसीको सत्य करके मान लिये और मान रहे हैं॥

व्याख्या— नाना प्रकारके करामात, मन्त्र-सामर्थ्य, बाजीगरी, खेल दिखाकर उसकी विशेषता-की करतूत वर्णन करके लोगोंको भुला दिये हैं। मिथ्या ब्रह्मज्ञानादि नास्तिको ही सत्य करके मान लिये हैं, वही नास्तिक ज्ञानको अज्ञानी सब मनुष्य सत्य करके मान रहे हैं, बिना विवेक॥ २२९ ॥

८. ऋद्धि सिद्धि सब जात नशाई ❀ नास्ति ज्ञान नहीं कुशलाई ॥ २३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

ऋद्धि सिद्धि = झूठी ही नव निद्धि और अष्ट सिद्धि आदि मान करके उसकी प्राप्तिकी आशा लेकर और दूसरोंको झूठी आशा लगाकर—
सब = सब अबोध नरजीव बिना विचार—
जात नशाई = कल्पित मिथ्या सिद्धान्तोंके पीछे लग करके वृथा नर जन्मको नशायके चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं। अर्थात् जो ऋद्धि-सिद्धि आदि कल्पनाके पीछे पड़ा, सो उसने नर जन्मको नशाय दिया, और उसी कारणसे मुक्तिकापद भी नशाय गया, बर्बाद हो गया।

नास्ति ज्ञान = मिथ्या धोखारूप झूठा
नहीं कुशलाई = नास्तिक ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, षट्दर्शनोंके ज्ञान तथा तत्त्ववाद, शून्यवाद, वीर्यवाद, देहवाद, वाममार्गादि झूठे अज्ञानरूप नास्ति ज्ञानसे किसीका भी हित कल्याण-मुक्ति प्राप्ति होनेका, कुशल होनेका नहीं। उससे चौरासीयोनि छूटनेकी नहीं॥

व्याख्या— ऋद्धि-सिद्धि आदिकी कल्पनामें भ्रम फन्दोंमें जो पड़े, सो सब नशाय गये और नशाय जाते हैं। इसमें मुक्तिपद ठहर नहीं सकता है। विषयका, जगत्का, ब्रह्म-ईश्वरादिका जो ज्ञान माने हैं, सो नास्ति है। उसमें लगके नरजीवोंकी कुछ कुशलता या हित-कल्याण कभी नहीं हुआ और होनेवाला भी नहीं है॥ २३० ॥

९. सब ऐश्वर्य नास्तिहि माहीं ❀ जाके पाछे जीव बौराहीं ॥ २३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सब ऐश्वर्य = सब माना हुआ षट्गुण
नास्तिहि = ऐश्वर्य तथा संसारके नाशवान्
माहीं = विषय सुख, धन-सम्पत्ति, भोग-विलास आदि सब ही देह सम्बन्ध-रूप बन्धनके बीचमें ही हैं और हो रहे हैं।

जाके पाछे = धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादि सुख,
जीव बौराहीं = ऐश्वर्य प्राप्ति तथा सिद्धि-ऋद्धि करामात प्राप्ति आदि, जिसकी लालचके पीछे सब अबोध नरजीव दिवाने हुए या पागल भ्रमिक हो रहे हैं। सोई तो महान बन्धनोंका जाल फाँस है। यह न जानकर फँसते जा रहे हैं॥

व्याख्या— संसारमें विषय भोगोंके सब ऐश्वर्य और वाणी कल्पित षट्गुण माना हुआ ईश्वरके सब ऐश्वर्य नाशवान् देहमें और जगत्में सबोंको बन्धनरूप ही हैं। जिस सुख-ऐश्वर्यके पीछे पड़ करके नरजीव पागल होके बौरा रहे हैं। सो तो महान दुःखदायी या दुःखोंका मूल कारण वा

बीजरूप है, यह नहीं जानते हैं ॥ २३१ ॥

१०. आपु गये यजमानहु खोये * भाँति भाँतिके फन्दा अरुझाये ॥ २३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

आपु गये = ये गुरुवालोग योगी, ज्ञानी, भक्त आदि आप तो स्वयं ही भ्रम चक्र, कल्पना ऋद्धि-सिद्धिके धोखा आदिमें लगकर भ्रमिक गाफिल हो ही गये। परन्तु, शिष्य-शाखा, सेवक वर्ग, इन सबोंको भी बुद्धिभ्रष्ट कराके नष्ट कर दिये, भटका दिये, ऐसी हानि कर दिये।

यजमानहु खोये =

भाँति भाँतिके फन्दा अरुझाये = और संसारी मनुष्योंको लालच, आशा, भरोसा आदि दे-दे करके नाना तरहोंके या अनेक प्रकारके वाणी जाल तथा खानी जालोंके फन्दोंमें अरुझा दिये और अरुझा रहे हैं॥

व्याख्या— ये वञ्चक वा ठग, गुरुवालोग अपने-आप तो धोखाधार वाणी-खानीमें फँसके नष्ट-भ्रष्ट हो ही गये हैं। परन्तु, 'यजमान' कहिये सेवक-शिष्यवर्गोंको भी उसीमें लगाके ज्ञान-विचार, बुद्धिको खो दिये; मुक्तिमार्गसे हटा दिये वा नाश कर दिये। नाना प्रकारके या भाँति-भाँतिके जञ्जालोंमें-फन्दाओंमें ले जाके अरुझा दिये वा फँसा दिये या जकड़ा दिये हैं। इसप्रकारसे अपनी और परायी हानि किये वा कर रहे हैं ॥ २३२ ॥

११. रोगी वैद्य दोनों एक ठाऊँ * औषध केहि कल्याणके गाऊँ ॥ २३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

रोगी वैद्य दोनों एक ठाऊँ = रोगी तथा वैद्य दोनों एक ही होवे या एक जगह होवे, तो दवाई कहाँसे आके कौन देवे ? इसीसे वह रोगमें ही पीड़ित होकर मर जायगा। तैसे ही रोगी=संसारी मनुष्य लोग हैं, और वैद्य=परमार्थी बने हुए गुरुवालोग यह दोनों एक ही कल्पनासे एक ईश्वर या एक ब्रह्मके ठिकाने भ्रम चक्रमें टिक गये। अब कहो तो भला !—

औषध केहि कल्याणके गाऊँ = जन्म-मरणादि रोग निवृत्ति करने वा करानेवाला औषधिरूपी सत्य उपदेश किस ठिकाने, किसको कैसे मिलेगा ? कल्याण या मुक्ति किस गाँवमें जाके होयगी ? एक ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ताकी कल्पना छूटे बिना और पारखी सद्गुरु मिले बिना, किसीका आवागमन दुःख छूट नहीं सकता है ॥

व्याख्या— यहाँ रोगी विषयासक्त संसारी मनुष्य भये हैं; और वैद्य योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवालोग भये हैं। यह दोनों जनें एक ब्रह्म-ईश्वरके ठिकाने वा ब्रह्मानन्द तथा विषयानन्दके ठिकाने पहुँचके एक ही कर्त्ताकी कल्पनामें तथा सुखाध्यासके एक ही ठाँवमें टिक कर रह गये। अब कहिये ! भव-बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्ति होनेका सत्य उपदेशरूपी औषधि किसको कहाँसे मिलेगी ? अर्थात् रोगी=अज्ञानी मनुष्य तथा वैद्य=वाचकज्ञानी गुरुवालोग. ये दोनों संसाररूपी संशय वा ब्रह्मरूपी भ्रम और विषयरूपी जङ्गलमें एकत्र असहाय होके पड़े हैं। अब कल्याण होनेकी औषधि किस गाँवमें है ? कहाँसे-कैसे मिलेगी ? यह उन्हें कौन बतावे ? इसीसे वे भव-बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं। अतः पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेश पाये बिना किसीको मुक्ति नहीं मिल सकती है ॥२३३॥

१२. जेहि कारण नर साई देवै * सो सौदा जाँचि काहे न लेवै ॥ २३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जेहि कारण नर साई देवै = हे नर जीवो ! जिस कारणसे तुम लोग मुक्तिके वास्ते गुरुवालोगोंको तन, मन, धनादि सर्वस्व अर्पण करके यही मुक्तिके लिये बयाना या पेशगी पहलेसे दे देते हो ! तब फिर—

सो सौदा जाँचि काहे न लेवै = सो उन्होंका सौदारूप सिद्धान्तोंको अच्छी तरहसे सत्यासत्यकी परीक्षा निर्णय क्यों नहीं कर लेते हो ? पारखी सद्गुरु और गुरुवालोगोंके गुण-लक्षण उपदेशोंको अच्छी तरहसे परीक्षा करके जाँच-बूझकर

तभी निर्णयका उपदेश पारखी सद्गुरुसे । लेना चाहिये ॥

व्याख्या— आदमी जिस वस्तु लेनेके लिये बयाना देते हैं, सो सौदा जाँचकर ले लेते हैं। फिर जिज्ञासु जीव जिसके कारण कि, कल्याण वा मुक्ति प्राप्त हो, सो गुरुवालोगोंको साईं= बयानामें सोई तन, मन, धनादि अर्पण कर देते हैं। परन्तु, सो उनके पासके सौदारूप उपदेश सिद्धान्तोंको क्यों जाँच करके परीक्षा कर नहीं लेते हो? धोखामें पड़के गुरुवालोग जैसे उलटा-सीधा कहते हैं, उसीको ही सत्य क्यों मान बैठते हो? सत्सङ्ग करके सत्यासत्यका निर्णय करो, तब असत्यका त्याग करके सत्यका ग्रहण करो; तभी हित वा कल्याण होगा ॥ २३४ ॥

१३. ठग भरमावै बहु विधि लूटै ❀ जग धन्धासे कबहुँ न छूटै ॥ २३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ठग भरमावै = गुरुवालोग छली, कपटी, बहु विधि = प्रपञ्ची, बड़े भारी ठग बने हैं। लूटै = सो ये ठगलोग अबोध मनुष्यों-को अनेक प्रकारसे भ्रमाय देते हैं, धोखा देके बहकायके लालचमें फँसायके धन-सम्पत्ति और बुद्धि-विचार ज्ञान-गुण आदि सब लूट लेते हैं। इसप्रकार अबोध मनुष्यों-को नङ्गे कर देते हैं।

जगधन्धा = इसवास्ते जड़ाध्यासी जीव सब से कबहुँ = जगत्के नाना धन्धा, कर्म, न छूटै = वासनाएँ, जन्म-मरण, गर्भवाससे कभी भी छूट नहीं पाते हैं या छूट नहीं सकते हैं। सदा भवचक्रमें ही पड़े रहते हैं॥

व्याख्या— संसारमें गुरुवालोग बड़े धूर्त, ठग्गूभगत बने हुए हैं। ऐसे ठगलोग मनुष्योंको बहुत तरहसे भ्रमाय-भुलायके धोखा देकर बहुत विधिसे लूट लेते हैं। धन-सम्पत्ति आदि तथा बुद्धि-विचारादिको भी हरण कर लेते हैं। इसवास्ते पशुवत् उन्होंके वशमें पड़े हुए जीव जगत्के नाना धन्धा, कष्ट-क्लेश उपाधियोंसे और चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति वा आवागमनोंसे कभी भी छूट नहीं सकते हैं। जन्म-मरणके चक्रमें ही सदा पड़े रहते हैं ॥ २३५ ॥

१४. मोटी अविद्या छुड़ावन लागै ❀ झीनी महा अविद्या पागै ॥ २३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मोटी अविद्या = संसारमें पारखदृष्टिहीन ठग छुड़ावन लागै = गुरुवालोग स्थूल अज्ञानसे सम्बन्धित मोटी मायारूप स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, धन-जनादिको बन्धन बताकर या ऐसा समझकर मुक्तिके लिये उसको छोड़ने और छुड़ाने लगे। षट् दर्शनोंमें नाना भेषधारी साधु बनने-बनाने लगे; ऐसे मोटी अविद्या त्याग करके दूसरी तरफ और—

झीनी महा = वाणी कल्पित ईश्वर, अविद्या पागै = ब्रह्म, देवता, भूत-प्रेतादि, स्वर्गादिकी चाहनासे कर्म, भक्ति, ज्ञानकी नाना साधनाएँ तथा आश्रम, मत-पन्थोंका अभिमान, सूक्ष्म अहं इच्छा अध्यासरूप बीज, ऐसे महा कठिन झीनी, बड़ी भारी अविद्यामें जाके जकड़ गये। इसलिये बन्धन कुछ भी नहीं छूटा ॥

व्याख्या— मोटी अविद्यामें घर-द्वार, माता-पिता, स्त्री-पुत्र कुल-कुटुम्बादिकोंको बन्धन बतायके गुरुवालोग इसको छोड़ने और छुड़ाने लगे; और भेषधारी बनके कर्म, उपासना, योगादि साधना, तीर्थ, व्रत, उपासनादिमें, ईश्वर आदि प्राप्तिके लिये लगे; यही तो झीनी महा अविद्या है, जो कि— ब्रह्म-परमात्मादिका कल्पित सिद्धान्त, अहं इच्छा तथा जड़ाध्यासरूप बीज वासनाके अविद्यामें तो खूब दृढ़ होके पड़े हैं, गाफिल हुए हैं; सो वही चौरासी योनियोंमें ले जानेका मूल कारण है। बिना पारख यह भेद नहीं जाने वा नहीं जानते हैं ॥ २३६ ॥

१५. झीनी मोटी दोउ कष्ट स्वरूपा ❀ कारण नास्ति परै तेहि कूपा ॥ २३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

झीनी मोटी= दोउ कष्ट= स्वरूपा= } वाणी कल्पना तथा खानी विषय और स्थूल भोग तथा सूक्ष्म वासना, यह दोनों ही जीवको पथभ्रष्ट करके कष्ट देनेवाले आवागमनादि दुःखोंके बीज स्वरूप हैं, ऐसा न जाननेवाले अबोध मनुष्य सब—

कारण= नास्ति परे= तेहि कूपा= } मोटी-झीनी मायाके जड़ाध्यास-के कारणसे ही मुक्तिपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो करके देह छोड़कर अध्यासवश जीव उसी भगकूप द्वारा चौरासी योनियोंमें गर्भकूपमें जाके पड़े हैं, और बारम्बार उसी कूपमें जाके नास्ति धोखाके अध्यासवश पड़ते रहेंगे ॥

व्याख्या— सूक्ष्म, बारीक, झीनीरूप वाणी-कल्पनाकी मानन्दी, अध्यास तथा मोटी स्थूल देहके विषय खानी जालोंकी वासना यह दोनों कष्ट देनेवाली आवागमनादि दुःखोंके मूल बीज स्वरूप हैं। उसी दोनों अध्यासोंके कारणसे ही नरजीव नाशवान् देहके विषय भोगोंमें तथा मिथ्या धोखा-रूप ब्रह्मके भ्रममें जाकर पड़े हैं; इसलिये उसीके अध्यासोंमें बद्ध होकर जीव भ्रमकूपसे भगकूपमें इससे अन्धकूप गर्भवासमें जाके पड़ते हैं; और उसी तरह पड़ रहे हैं। फिर कर्मानुसार तहाँ फल भोग करते रहते हैं ॥ २३७ ॥

१६. पूरा धनी पूरा सो सौदा ❀ परखत मेटै कालके फन्दा ॥ २३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पूरा धनी= पूरा सो= सौदा= } पारखी सद्गुरु पूर्ण परीक्षक होनेसे पूरे ज्ञानी ज्ञान धनसे पूर्ण बोधवान् हैं। और— सो उन पारखी सद्गुरुका उपदेश भी सत्यन्याय-निर्णयका जड़-चैतन्यका भेद बतानेवाला, भ्रान्ति छुड़ाने-वाला, ऐसा होनेसे सोई पूरा सौदा सार वस्तु दायक है। और—

परखत मेटै = कालके फन्दा= } पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें जो जिज्ञासु नरजीव लगे रहते हैं; उनको भी खानी-वाणीका जाल, सत्य-असत्यका भेद बतायके गुरुवा और स्त्रियोंके फन्दा, कल्पना तथा विषयोंका विकार दिखायके वा परखायके सद्गुरु उसको मिटाय देते हैं वा हटाय देते हैं; जीवोंको मुक्त कर देते हैं ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरु ही एकमात्र सत्यन्यायी हैं। सच्चे माल रखनेवाले वे सच्चे महाजन बड़े सेठ-साहूकारके समान हैं। सो उनका चैतन्य स्वरूपबोधरूप सौदा सत्य निर्णयका उपदेश भी पूरा-पूरा सत्यन्यायका रहता है। जो मनुष्य गुरुबोधको ले करके विवेकदृष्टिको फैलाता है, सो उसको सद्गुरुकी दयासे कालका फन्दा समस्त परखनेमें आ जाता है। फिर उन फन्दोंको मिटायकर तोड़कर नाश कर देता है। अर्थात् पारखी सद्गुरु ही सब कालका फन्दा परखायके मिटाय देते हैं ॥ २३८ ॥

१७. सन्धि लखावहिं कारण रोगा ❀ मेटहिं सब विधि सन्धिक सोगा ॥ २३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सन्धि= लखावहिं= } मानन्दी, सन्देह, ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कर्त्ताकी कल्पना और स्त्री, पुत्र, परिवार, जगत् विषयजालोंकी ऐसे यह दोनोंकी न्धिको— पारखी सद्गुरु निर्णयसे परखायके लखाते हैं कि, हे मनुष्यो !—

कारण रोगा= यह मानन्दी वा जड़ाध्यास ही तुम्हें आवागमन चारखानियोंमें ले जानेवाला जन्मृति, त्रयतापादि रोगोंका कारणरूप बीज है, सो उसे लखो; इसप्रकार भलीभाँति समझाय करके—

मेटहिं सब= विधि सन्धिक= सोगा= } मानन्दी, कल्पना, भास, अध्यास आदि करके उत्पन्न होनेवाले रोग, शोक, कष्ट, दुःखादि सब प्रकारसे परखायके पारखी सद्गुरु मिटाय देते हैं या नाश करा देते हैं ॥

व्याख्या— चारखानियोंमें आने-जानेका जन्म, मृत्यु, गर्भवासादि महान रोगोंका मूल कारण या बीजरूप खानी-वाणीकी वासना, मानन्दी, आसक्ति ही है। सो बीजरूप मानन्दीको परखायकर लखायके मुमुक्षु मनुष्योंके सब प्रकारसे वह मानन्दी, कल्पना, तथा विषयासक्तिसे होनेवाले चिन्ता, शोक, कष्ट-क्लेशादिको भी सद्गुरु सत्यबोध देकर मिटाय देते हैं ॥ २३९ ॥

१८. नहिं सन्देह न यमको त्रासा ❀ सदा सुखारी परख विलासा ॥ २४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नहिं सन्देह = पारखनिष्ठ, महाज्ञानी, बोधवान् पारखी साधु-गुरुको किसी प्रकारके भी सन्देह ही नहीं रहता है। सब सिद्धान्तोंके मर्म भलीभाँतिसे वे जानते हैं। इससे जो उनकी शरणमें रहिके सत्सङ्ग-विचार करते हैं, उनका भी सब सन्देह, संशय मिट जाता है; फिर कोई सन्देह बाकी नहीं रहता है। और—

न यमको = त्रासा = इससे उनको काल, कल्पना, मृत्यु वा आवागमनादिमें पड़नेके डर, जड़ाध्यास संस्कारका भय, त्रास भी कुछ नहीं रहता है।

सदा सुखारी = परख विलासा = अतः निज स्वरूपके बोध पारखमें स्थिति होनेसे पारखी सन्त सदा-सर्वदा परीक्षादृष्टि विवेक-वैराग्यमें रमते हुए सदाके लिये सुखी जीवन्मुक्त रहते हैं। पारखमें ही उनका विलास तथा सत्सङ्गमें निवास रहता है ॥

व्याख्या— पारखी साधु-गुरुको कोई बातका सन्देह, भ्रम, संशय तो नहीं है, और न यमरूप वञ्चक गुरुवालोगोंका तथा कल्पित ईश्वरादिका ही कोई डर या त्रास रहता है; वे तो निर्भय रहते हैं। पारख विलासी सन्त सदा सुखी जीवन्मुक्त रहते हैं। तैसे ही जो उनकी शरणमें जाकर सत्य उपदेशोंको ग्रहण करके धारण किये, उन जिज्ञासु मनुष्योंको भी कोई सन्देह और यमका त्रास रह नहीं सकता है; पारख विचारमें रहनेसे वे सदा सुखी रहते हैं ॥ २४० ॥

१९. धन्य सो बूझि समुझि पग धरहीं ❀ अन्धरन भटकि भटकि भव परहीं ॥ २४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

धन्य सो = बूझि समुझि = पग धरहीं = सो उन जिज्ञासु मनुष्योंको धन्य-धन्य है, जो कि, पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगके सत्य-असत्य, सार-असार, जड़-चैतन्यके भेदको ठीक-ठीकसे समझ-बूझकर सब सिद्धान्तोंको परखकर आगे पारखपदमें ही मनको लगाकर बढ़े, सो जीवन्मुक्त हो गये। और उसीप्रकार पारखी सन्त जीवन्मुक्त स्थितिवान् हो रहे हैं। और—

अन्धरन = भटकि भटकि = भव परहीं = पारखहीन अविचारी नर अन्धे गुरुवालोग और स्त्रियों-के खानी-वाणी जङ्गलोंमें इधर-उधर भटक-भटक करके धोखामें पड़-पड़के चौरासी योनियोंमें जाके पड़-जाते हैं। अतः वे गर्भादि त्रयतापोंके दुःखों-में पड़े रहते हैं। बिना पारख वह भटकना छूट नहीं सकता है ॥

व्याख्या— संसारमें पारखदृष्टिहीन अन्धे गुरुवालोगोंके पासमें अविवेकी अज्ञानी मनुष्य जो गये, सो खानी-वाणीमें भटक-भटककर, चक्कर लगाकर भवसागररूपी गर्भवास चौरासी योनियोंमें ही जा-जाके पड़ते हैं; उनको बारम्बार धिक्कार है! व्यर्थ नर जन्मको बर्बाद करदिये हैं। और जो मनुष्य समझ-बूझ करके आगे ही पैर बढ़ाते हैं या सत्सङ्गमें ही पैर रखते हैं; यानी पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयको समझ-बूझके उसीमें ही अपने मनको टिकाय रखते हैं; अपना हित-कल्याण करते हैं, सोई नरजीव धन्यवादके पात्र हैं; उन्हें ही धन्य! धन्य है! ॥ २४१ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक मूलकी तीन साखियोंका प्रमाण दिया है ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— १३२ ॥ ❀ ॥

साखीः— बलिहारी तेहि पुरुषकी * जो परचित परखनिहार ॥

[२४] साई दीन्हों खाँड़को * खारी बूझै गँवार ॥ २४२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बलिहारी = अनेकबार धन्यवाद ! तो उन
तेहि = पुरुषको है, जो सत्यन्यायी
पुरुषकी = निर्णयी पारख बोधवाले निज स्वरूपके स्थितिवान् सन्त हैं। उन्हीं सच्चे पुरुषकी बलिहारी है ! महिमा है—

जो परचित = जो कि, सत्यासत्य, सारासार,
परख = जड़-चैतन्य आदिके अच्छे
निहार = जानकार हैं; सत्यके अनुभवी हैं। पारखदृष्टिसे देखके सत्य स्वरूपका ही प्रतीत करते हैं; सम्पूर्ण कसर-विकारोंको खूब निहारके निकाल डालते हैं । और शुद्ध निज पारख स्वरूपमें स्थिर रहते हैं, ऐसे सत्यासत्यको परखनेवाले सत्पुरुष सन्तकी ही बलिहारी है ! और—

साई दीन्हों = जैसे किसीने शक्करका सौदा
खाँड़को = ठहराकर बयाना(पेशगी)दिया,
खारी बूझै = फिर मूल्य चुकाकर नमक उठा
गँवार = लाया, सो बड़ा मूढ़ गँवार बना । तैसे ही अज्ञानी मनुष्योंने ब्रह्मानन्दरूपी खाँड़के लिये गुरुवालोगोंको तन, मन, धनादि बयाना या मूल्यमें अर्पणकर दिये। फिर साधनाएँ करके ज्योतिप्रकाश, आनन्द, अनहद, अमृतरस, कमलकी सुगन्धादि ऐसे सूक्ष्म इन्द्रियोंके पञ्च विषयोंको ही ब्रह्म, परमात्मारूप सत्य करके मान लिये, सो बेपारखी मूढ़ गँवार हैं। कल्याणरूप मुक्तिके लिये, गुरुवालोगोंको सर्वस्व चढ़ाये, सो उन्होंने धोखा देकर समझादिये कि, तुम ही ब्रह्म स्वरूप हो; फिर भ्रम-कल्पनासे 'अहंब्रह्मास्मि' जो बूझै, सो गँवार बुद्धिहीन है। बिना पारख वे धोखेमें पड़ रहे हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब इस साखीमें दृष्टान्त देके सत्य-मिथ्याको समझाते हैं। उन सत्यन्यायी, सत्पुरुष, विवेकी, पारखी सन्तकी 'बलिहारी' कहिये धन्यवाद है ! उनको ही सब निछावर करने योग्य है। जो कि, जीवोंके रहनी-रहस्य चित्त, बुद्धि, मन, अहङ्कारादिकी चाल, जीवोंके बन्धन और मुक्तिके अच्छे जानकार पारखी हैं । जिनको खानी-वाणी आदि समस्त बन्धनोंकी वा जगत् जालोंकी पहिचान है। सर्वके परीक्षक पारखी सन्त जो हैं, सो पारख अनुभवमें ठहरनेपर ही किसी बातको प्रतीत करते हैं । और कसर, खोट, विकार बन्धनोंको हटाके निकाल डालते हैं । ऐसे उपकारी पुरुषकी ही बलिहारी है ! और सौदा ठहरायके जो बयाना (पेशगी) पहले दे देते हैं; उसको साई कहते हैं। यहाँ कोई मनुष्य शक्करके सौदा ठहराके बयाना देकर चला जावे, फिर आके निमकका थैला उठाकर शक्करके बदले ले जावे और मूल्य शक्करका ही चुकावे; वस्तुको नहीं-देखे, तो वह सरासर मूढ़ गँवार अबूझ ही माना जाता है। जैसे इसने मूढ़ताके कारणसे धोखेमें पड़कर बड़ी हानि उठायी। तैसे ही संसारके अज्ञानी मनुष्योंने नित्यसुख या मुक्तिके वास्ते कल्याणके लिये गुरुवा लोगोंसे बात-चीत वा सत्सङ्ग करके उपदेश श्रवण किये और तब सौदा पक्का किये कि, ब्रह्म प्राप्ति होके मुक्ति होगी। इसके लिये उन ठग गुरुवा लोगोंको तन, मन, धनादि सर्वस्व अर्पणकर बयाना और कीमत चुका दिये। तब उनको योग, ज्ञान, भक्ति आदिकी साधनाओंमें गुरुवा लोगोंने लगाये। जब चित्त एकाग्र हुआ, तब अन्तरकी सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा सूक्ष्म विषयोंका अनुभव ज्योतिप्रकाश, आनन्दादि हुआ, उसी विषयोंको ब्रह्मका स्वरूप समझ करके जो भूले हैं, सो मूढ़ गँवार हैं। ब्रह्म जो माने, सो तो कच्चा खाँड़का नकली हीराकी नाईं कल्पनामात्र है। सो उसको जो सच्चा मानते हैं, वे बेपारखी गँवार हैं। क्योंकि, खाँड़ = खं, आकाश, ब्रह्म जो है, सो जीवका अनुमान, अध्यास, भास वा कल्पना है। यह चित्त, अहङ्कार, बुद्धि और मनका सम्बन्धित विषय है। कोई ब्रह्म है या होगा, ऐसा

मानना यह 'अनुमान' है। मैं ही ब्रह्म हूँ! यह माना हुआ 'अध्यास' है। जैसे-का-तैसा सर्व जगत्‌रूप ब्रह्म है, यह मानना 'भास' है। और जगत्कर्त्ता कोई दूसरा ब्रह्म है, यह 'कल्पना' से माने हैं। मन-मानन्दी करके भ्रमसे ब्रह्मको जो सत्य समझते हैं, सो अविवेकी मूढ़, गँवार होकर व्यर्थमें मनुष्य जन्मको बर्बाद करके पथभ्रष्ट हुए और हो रहे हैं। उसको परखनेवाले पारखी सन्तको धन्यवाद है! ॥ २४२ ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— २१४ ॥ ❀ ॥

साखीः— कर बन्दगी विवेककी * भेष धरै सब कोय ॥

[२५] सो बन्दगी बहिजान दे * जहाँ शब्द विवेक न होय ॥ २४३ ॥

अर्थः— सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कर बन्दगी = हे मुमुक्षु मनुष्यो! सत्य, विवेककी = असत्य, जड़-चैतन्य, सार-असारका विवेक करनेवाले सत्यन्यायी, पारखी, विवेकी सन्तोंको ही सिर नवायके हाथ जोड़कर भक्ति पूर्वक बन्दगीभाव करो। उनके चरणकी शरण-ग्रहण करो, जिससे तुम्हारे भ्रम, अविवेक मिटके विवेक, बोधका प्रकाश उदय हो जायगा।

भेष धरै = खाली ऊपरके भेषमात्र ही देखके सब कोय = भूलो मत। क्योंकि, भेष तो सब कोई मनमाने वैसे धर लेते हैं। नकली भेष बनानेवाले तो सब सस्ते ही हो जाते हैं। विवेक, वैराग्य, पारख बोधके विना खाली भेषसे किसीका कल्याण या मुक्ति नहीं होती है, इसलिये पारखी सद्‌गुरुकी सेवा करके पारख बोधको प्राप्त करो। और—

सो बन्दगी = सो झूठे गुरुवा लोगोंकी सेवा बहिजान दे = बन्दगीमें लगकर बहना मत, उन्होंके सङ्ग छोड़ दो। और जड़ अष्ट प्रतिमादिकी सेवा भाव, कल्पित ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिकी बन्दगी, पुकारा, ध्यान, पूजा आदि जो करते-कराते हैं, सो तो अविवेकी झूठे हैं। उन्होंकी सङ्गतिकर अपने जन्मको व्यर्थ जाने मत दो। किन्तु, गुरुवा लोगोंको निकल जाने दो, बहि जाने दो, तुम तो अपने पदपर ही ठहराव करो, क्योंकि—

जहाँ शब्द विवेक न होय = सारमें योगी, ज्ञानी, भक्त, षट्‌दर्शनोंके भेषवालोंकी जमातमें, जहाँपर कि, सार-असारका साँच तथा झूठका निर्णय शब्द उपदेश द्वारा नहीं होता है। बल्कि सब गोलमाल वा गबगुंण्ड करके एक ईश्वर या ब्रह्मरूपी भ्रममें लगादेते हैं। ऐसे अविवेकीके बन्दगीमें और सङ्गमें रहिके कोई फायदा हो नहीं सकता है। इससे जहाँ सारशब्दका विवेक होता है, वहाँपर उन्हीं पारखी सन्तकी सेवा-बन्दगीमें लगे रहना चाहिये ॥

व्याख्या— सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेब इस साखीमें सारग्राही होनेको कहते हैं। हे कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यो! सुनो! पहले तो तुम सत्सङ्ग करके सत्यासत्य, नित्यानित्य, कर्तव्याकर्तव्य, सारासार, जीव-अजीव, ज्ञान-अज्ञान इनकी समझ या यथार्थ विवेक करो। जहाँसे वा जिन सन्त महात्माओंके पाससे तुम्हें विवेक-बोध प्राप्त होवे और जिनमें ऐसे बोध-विवेक, पारख ज्ञान मालूम हो, उन सत्यन्यायी, विवेकी-पारखी, साधु-गुरुकी हमेशा सेवाभाव, पूजा-आरती, बन्दगी या साष्टाङ्ग दण्डवत् करना, तथा उन्हींकी आज्ञा पालन करते रहना चाहिये। इसप्रकारसे पारखी सन्त-सद्‌गुरुकी ही सेवा बन्दगी करो। और बाहरके भेषमात्र देख करके एकाएक तुम भेषमें भूल मत जाओ। क्योंकि, ऊपरी भेष धरनेमें तो कोई कठिनाई नहीं है; जो चाहें सो सब कोई भेषधर सकते हैं और धर लेते हैं। क्योंकि, भेष जड़ है, सो स्थूल देहको कपड़ा आदिसे सजायके त्याग-वैराग्यके ऊपरी स्वाङ्गमात्र बनाय लेनेसे क्या किसीको ज्ञान बोध हो जाता है? ऐसा कभी नहीं होता है। ज्ञान-बोध, रहनी-रहस्य, तो किसी-किसीको पारखी सद्‌गुरुके सत्सङ्गके द्वारा बड़ी कठिनाईसे ही प्राप्त

होता है। फिर वे शुद्ध भेषमें साधारण स्थितिको छोड़ करके और कोई पाखण्डकी सजावटोंमें लगते ही नहीं। इसलिये षट्दर्शनोंके मनमाने भेष तो सब कोई बनाय लेते हैं। उनमें नाममात्रको थोड़ा-सा भी विवेक-विचार नहीं रहता है। फिर उन वञ्चक गुरुवा लोगोंकी सेवा-बन्दगीमें लगके किसीका हित वा कल्याण कैसे हो सकेगा? अतएव विवेककी बन्दगी करो! खाली ऊपरी भेषमात्रकी नहीं। हे जिज्ञासुओ! सो उस बेफायदेके बेकारकी सेवा-बन्दगी, और गुरुवा लोगोंकी सङ्गतिको बहि जाने दो, सर्वथा त्याग करके छोड़ दो! क्योंकि, जहाँपर शब्दका विवेक नहीं होता है। और सार-असारका निर्णय ही नहीं होता है। वहाँपर जीवकी कोई भलाई होनेकी नहीं। रोचक, भयानक, तीक्ष्ण वाणी सुनाय-सुनायके कल्पनासे ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ता बतायके उनकी प्राप्तिको कर्म, भक्ति, ज्ञानादिमें नर-जीवोंको फँसाय देते हैं। नाना तरहसे आवरण डाल देते हैं। बुद्धि भ्रमाय देते हैं। पाखण्डोंमें लगाय देते हैं। इसप्रकार जीवोंका अहितके सिवाय अविवेकी गुरुवालोग हित तो कभी कर ही नहीं सकते हैं। सो समझ-बूझके जहाँपर शब्दोंका विवेक नहीं होता है, वहाँपर जाके बन्दगी, मानन्दी मत करो, उन सबको छोड़ दो, और विवेकी पारखी साधु-सन्तोंकी बन्दगीमें ही सदा लगे रहो। और जब कि, बोध, त्याग-वैराग्यमें पक्का हो जाओ, संसारमें भूलनेका डर न होवे, मनमें जब दृढ़ता आ जाय, तब खूब सोच-समझ विचार करके जिन सच्चे त्यागी पारखी साधुमें अपना भक्तिभाव, निष्ठा-प्रेम होय, उनके ही सेवा-सत्सङ्गमें लगे रहो, और सद्गुरुकी जब कृपा होय, तब उनसे साधु भेषका चिह्नरूप भेष लेना या धारण करना चाहिये। जिससे रहनी-रहस्य और बोध तथा भेषमें कोई कसर होने नहीं पावेगा, सो जानिये! ॥ २४३ ॥

सम्बन्ध— और भी यहाँ मूल बीजककी साखीका प्रमाण दिया है। उसमें मनुष्य जन्मकी विशेषता और कर्त्तव्यके बारेमें कहा है ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— ११३ ॥ ❀ ॥

साखीः— मानुष जन्म नर पायके * चूके अबकी घात ॥
[२६] जाय परे भव चक्रमें * सहै घनेरी लात ॥ २४४ ॥

अर्थः— सद्गुरुश्रीकबीरसाहेब कहते हैं-हे सन्तो!

नर=हे नर जीवो! बड़े भाग्यसे पुण्य उदयके शुभ संस्कारसे अभी तुम्हें सर्वोत्तम स्थान-

मानुष= } यह मनुष्य देहका जन्म मिला है।
जन्म= } सो यह मुक्ति होनेकी जगह तथा कर्म भूमिका है और मुक्तिका द्वार है।

पायके=अतएव यह सर्वोत्तम शुभ अवसर मनुष्य शरीरको पायके पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका भेद पिछानकर जड़ाध्यासोंको छोड़कर जीवन्मुक्त होना चाहिये। तब तो नर तन पाया हुआ सफल हुआ, नहीं तो जो यदि ऐसा सत्पुरुषार्थ नहीं किया—

चूके= } और नर जीवने अबकी मौका
अबकी घात= } ऐसा अच्छा, उत्तम अवसरको जो यदि इस बार चूक गया वा भूल गया था गाफिल हो गया, तो फिर मुक्तिपदको बर्बाद करके नष्ट कर दिया। और खानी-वाणी प्रपञ्चोंमें लगकर निज स्वरूपकी स्थिति जो न किया, तो उसकी गति कैसी होती है कि—

जाय परे= } यह जीव जड़ाध्यासवश होकर
भव चक्रमें= } मनुष्य शरीरको छोड़कर भोग-भूमिकारूप पशु, पक्षी, उष्मजादि चौरासी योनियोंमें भगचक्र द्वारा गर्भवासमें जाके पड़ जाते हैं, सो आवागमनोंके चक्रमें जाके पड़ते हैं। और—

सहै= }
घनेरी= } फिर वहाँ चारखानियोंमें कर्म संस्कारके अनुसार अनेकों दुःख,
लात= } तीन तापका भोग, अदला-बदला, लातें, मुक्कों, डण्डों अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार बहुतेक कष्ट-क्लेशका सन्ताप सहे और बारम्बार वही दुःख भोगते हुए सहना पड़ेगा। इसकारण अभी ऐसा नरदेह मिला

है, तो इसमें चूक मत करो। सत्सङ्गमें लगकर जीवनका सुधार हित करो। यदि तुम विषयादिमें ही लगके चूक जाओगे, तो फिर उसका फल कर्मभोग चौरासी योनियोंमें जायके घनेरी लातें सहोगे, ऐसा तुम अब अच्छी तरहसे जान लेओ ॥

व्याख्या— सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे जीव! तुमने मनुष्य खानीमें आयके जन्म लेकर नरदेहको जो पाये हो, और सर्वाङ्ग सुन्दर होकर शुभ अवसर जो पा रहे हो, सो यह तुम्हारा भाग्य उदय हुआ है। क्योंकि, यह कर्मभूमिका होनेसे सब भव बन्धनोंको परखके छोड़कर जीवन्मुक्त होनेकी जगह है, मौका अच्छा मिला है। मनुष्य शरीरके बिना और कहीं कोई शरीरसे मुक्तिकी साधना हो नहीं सकती है। अतएव अब तुम महान पुरुषार्थ करके अलभ्य लाभको उठालो! यदि नर तन पायके भी कर्मसे चूक गया, अबकी बार कुछ भी नहीं बनाया, अबकी मौका चूकके उत्तम समयको व्यर्थ ही विषय भोगोंमें और कल्पना-भ्रममें लगके बर्बाद कर दिया, तो फिर उस चूकनेवाले जीवका बचाव कहीं हो नहीं सकता है। वह कर्महीन, अभागा, जड़ाध्यासी जीव, नर-देह छोड़कर वासनावश भवचक्ररूप चौरासी योनियोंमें जायके पड़ेगा। और वहाँपर कर्मोंका भोग घनेरी लात त्रयतापादि नाना तरहोंके क्लेश दुःख सहेगा और उसी प्रकार दुःख भोगता रहेगा। फिर वह छुटकारा पा सकनेका नहीं। इसकारणसे हे मनुष्यो! सत्सङ्ग-विचार करके अभी इस नर जन्मको सफल करो ॥ २४४ ॥

सम्बन्ध— अब गुरुवा लोगोंका कथन सिद्धान्त यहाँपर "समाचार पराईत मसला" में कहते हुए दिखलाया गया है, सो जान लीजिये! ॥

॥ ❀ ॥ समाचार पराईत-मसला ॥ ३ ॥ ❀ ॥

॥ * ॥ अन्योक्ति वाचक यानी गुरुवा लोगोंके कथन, वाणीका समाचार वा हाल-खबर, दृष्टात-सिद्धान्तरूपसे चुटकुला रूपक मसला कहा है ॥ * ॥

[३] मसलाः— अपनी देखी दूर कर * भले आदमीका कहा कर ॥ २४५ ॥

अर्थः— भ्रमिक गुरुवालोग कहते हैं— हे भाई मनुष्यो!

अपनी = देखी = दूर कर = जो तुमने अपने नेत्रोंसे देखे हो, और मन, बुद्धि, वाणीसे अनुभव-विचार करके ठहराये हो, उसको दूर करके हटाओ। क्योंकि, तुम अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् परिछिन्न जीव हो, जो तुम जीवको ही सत्य मान लेते हो, यह तुम्हारी भूल है। जीव तो ईश्वरका अंश है। इससे वह ईश्वर ही नित्य-सत्य है। चराचरकी सृष्टिका कर्त्ता सबका कारण भी वही है। और मन, बुद्धि, वाणीसे वह अति परे है। इसलिये अपना देखा हुआ जीव-भावको दूर कर डालो, उस भावको त्यागो।

भले = आदमीका = कहा कर = और बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, पण्डित, व्यास, वशिष्ठ, वाल्मीकि, दत्तात्रेय, गौतमादि भले-भले बड़े आदमियोंने शास्त्रोंमें जो कुछ कहा है, सो उसे माना करो। उसी अनुसार साधनाएँ किया करो। देखो! ईश्वर या ब्रह्म-परमात्मा एक जगत्का कर्त्ता परम-पुरुष है; सो चराचरमें पूर्ण व्यापक है, ऐसा निश्चय करके जानो तथा वेद-शास्त्रोंके मतको ही सच्चा मानो। ईश्वरका ही सदा ध्यान किया करो, तो ईश्वरकी कृपासे तुम्हारी गति-मुक्ति होगी, ऐसा जानो ॥

व्याख्या— तुमलोग जो जगत्में जड़ और चैतन्यको भिन्न-भिन्नदेखते हो, यह अज्ञानता है, भ्रम है; इसको दूर करो। और भले आदमीरूप ज्ञानीजन जो एक अद्वैत ब्रह्म जड़-चैतन्यमें मिश्रित सम-समान व्यापक कहते हैं, तथा जो वेदान्त शास्त्रमें भी लिखा है, उसीको सच्चा समझके माना करो। फिर ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते वे जैसी साधनाएँ बतावें, वैसी ही साधना किया करो, तो तुम्हें सच्चिदानन्द ब्रह्मकी प्राप्ति हो जायगी और सब द्वैत भ्रम दूर हो जायगा। ऐसा गुरुवालोग नाना

प्रकारसे कहकर जीवोंको भ्रमाते हैं ॥ २४५ ॥

सम्बन्ध— अब अठारहवाँ खण्डमें ११ चौपाई, और २ साखीमें गुरुवा लोगोंके पाखण्ड जालोंका उपदेश दर्शाकर निर्णय करते हैं, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ अठारह खण्ड ॥ १८ ॥ ❀ ॥

१. गुरु कामीको कृष्णहि जानै * क्रोधी होय नरसिंघ बखानै ॥ २४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवा लोगोंका उपदेश कहते हैं— हे सन्तो !

गुरु कामीको = गुरुवालोग कहते हैं— हे
कृष्णहि जानै = शिष्यो ! यदि गुरुजी कदाचित् स्त्री-लम्पट कामी होवें, तो उनको साक्षात् भगवान् कृष्णके अवतार स्वरूप ही नर-लीलाकारी जानकर सेवा, पूजा, भक्ति करनी चाहिये, सो ऐसा जानो !

क्रोधी होय = और यदि गुरुजी अतिक्रोधी
नरसिंघ = गुस्सा करनेवाले तथा हिंसक
बखानै = वृत्तिवाले होवें, तो उनको साक्षात् नृसिंह भगवान्के अवतारके स्वरूप समझके प्रार्थना, सेवा-पूजा करते रहना; ऐसा वर्णन किये वा ऐसी बात करते हैं ॥

व्याख्या— अब इस खण्डमें गुरुवा लोगोंके पाखण्डको ही वर्णन करके दिखा रहे हैं। सो प्रपञ्ची, स्वार्थी, ठग गुरुवालोग अज्ञ शिष्योंको किस प्रकारसे बहकायके फँसाते हैं, सो सुनिये ! वे कहते हैं, सनातन धर्मको माननेवाले, तथा वेद-शास्त्रादिके सिद्धान्तको ठहरानेवाले, पण्डित कर्मकाण्डी भक्त, योगी, ज्ञानी, ये जगत्गुरु बने हैं। सो दीक्षागुरु, शिक्षागुरु, लोकगुरु, वेदगुरु, जगत्गुरु इनको अनन्य निष्ठा भाव-प्रेमसे मानना, सेवा चाकरी करना चाहिये। परन्तु, कभी भी किसी प्रकार वा किसी कारणसे भी गुरुमें दोष देखना नहीं चाहिये। और यदि अपने गुरु अत्यन्त कामी, स्त्री-भग-लम्पट, विषयासक्त हों, तो उन्हें पूर्ण ब्रह्म कृष्णचन्द्रके ही नवीन अवतार स्वरूप जान करके हरतरहसे मानना चाहिये; और यदि क्रोधी, अहङ्कारी, हिंसक स्वभाववाले होवें, तो उन गुरुको नृसिंह भगवान्के स्वरूपमें समझकर खूब स्तुति करनी चाहिये। जिस तरहसे भी हो गुरुको प्रसन्न रखना चाहिये; ऐसा गुरुवा लोगोंने वर्णन किये हैं ॥ २४६ ॥

२. लोभी बावनरूप अनुमानै * मोही रामचन्द्र मन मानै ॥ २४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

लोभी बावन- = यदि गुरुजी धन-सम्पत्तिके
रूप अनुमानै = अति लोभी होवें, तो उनको प्रत्यक्ष वामनका अवतार स्वरूप ही अनुमान करके समझ लेवे।

मोही रामचन्द्र = अगर गुरु स्त्री-परिवारोंमें
मन मानै = आसक्त मोही होवें, तब साक्षात् रामचन्द्रके अवतारूपमें गुरुको ही निश्चय करके मनमें मान लेवे और खूब श्रद्धासे भक्तिभाव करे ॥

व्याख्या— गुरुजीमें अगर ज्यादा लोभ होवे, तो वामन भगवान्के अवतार स्वरूपमें ही दर्शन हुआ, ऐसा अनुमान करके मान लेना। यदि स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त मोही दिखें, तब साक्षात् रामचन्द्रके रूपमें ही गुरुको निश्चय करके मान लेना चाहिये, ऐसा बताकर भुला रक्खे हैं ॥ २४७ ॥

३. बुरा कर्म जो गुरुमें होई * यहि विधि शिष्य सुधारै सोई ॥ २४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन है—

बुरा कर्म = यदि काम-क्रोधादि छल-छिद्र,
जो गुरुमें = हिंसा, पाखण्ड, व्यभिचार
होई = इत्यादि संयुक्त लोकमें बुराई समझे जानेवाले कुकर्म जो कुछ भी अपने योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुजीमें गुप्त वा प्रगटरूपसे होवे, तब—

यहि विधि शिष्य = इसी प्रकारसे गुरुको उसी
सुधारै सोई = रूपमें अवतारीरूप श्रेष्ठ भगवान् जानकर शिष्योंने सद्भावना रख करके अपने मनको सुधार लेना चाहिये।

वही सच्चा शिष्य कहलाता है; वे ऐसा | कहते हैं ॥

व्याख्या— जो कुछ भी जग निन्दित बुराईका कर्म गुरुमें होवे, दिखे, तो शिष्योंको चाहिये कि, इसी प्रकारसे शुभ भावना करके सो सबोंको सुधार लेवे। कभी मनमें कुभावना, दोषदृष्टि गुरुके प्रति न लावे। सदा सद्भाव बढ़ाकरके श्रद्धा-भक्ति ही करता रहे ॥ २४८ ॥

४. देखी कुकर्म शङ्का जो आनै ❀ चौरासीको भोग न जानै ॥ २४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

देखी कुकर्म = योगी, ज्ञानी, भक्त गुरुजीसे
शङ्का जो आनै = होता हुआ कर्म-कुकर्म, अनाचारको देख करके अरे ! गुरुने तो ऐसा कुकर्म किये, समझके जो शिष्य मनमें अश्रद्धा लाकर जो कुछ भी शङ्का करता है—
चौरासीको = सो दोषदर्शी शिष्य चौरासी-
भोग न जानै = योनिनरककुण्डका दुःख भोगनेको पड़ जायगा, सो जानो; अथवा चौरासी योनियोंका दुःख भोगना पड़ेगा, ऐसा जो नहीं जानता है, वही गुरुसे होता हुआ कर्म-कुकर्म देखके शङ्का उत्पन्न करता है, इसीसे फिर उसका दण्ड भी नरकमें जाके वह खूब पाता है। अतः गुरुमें दोष देखके कुछ भी शङ्का मत करो। समर्थको कुछ दोष नहीं है; अतः गुरुको सर्व समर्थ जानो ॥

व्याख्या— गुरुके द्वारा होता हुआ कुकर्मोंको देखके जो शिष्य मनमें शङ्का वा सन्देह करके अश्रद्धामात्र भी चित्तमें ले आता है, सो महा दोषी होकर मरके चौरासी लक्ष योनियोंमें नरक यातना भोगनेको चला जायगा, सो ऐसा जान करके गुरुके प्रति कभी शङ्का मत करो; ऐसा गुरुवालोग कहते हैं ॥ २४९ ॥

५. एक बार नारद पै कहिया ❀ तेहि कारण नाना दुःख सहिया ॥ २५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब, गुरुवा लोगोंके कथन बता रहे हैं— भक्त लोग कहते हैं—

एक बार = एक बार नारदजी स्वर्गलोकमें
नारद पै = गये थे, तो विष्णुने उनसे पूछा
कहिया = कि, हे नारद ! तुमने गुरु किये हो ? तब नारदने सकपकाके कहा कि, हाँ गुरु तो किये हैं, 'पै' = परन्तु कहिके रुक गये। क्योंकि, उन्होंने कोई धीवरको गुरु किया था। सो नारदके मुखसे दोषदृष्टिका वचन सुनके विष्णुने उनको चौरासी योनियाँ भोगनेका शाप दे दिया कि, तुमने गुरुमें दोष देखा है, इससे अब तुमको चौरासी योनियोंका दुःख भोगना पड़ेगा।—

तेहि कारण = उसी कारणसे यानी गुरुमें
नाना दुःख = थोड़ा दोष देखनेके हेतुसे नारदने
सहिया = चौरासी योनियोंमें पड़के नाना प्रकारके दुःख भोग सहा। इसवास्ते कभी भी गुरुमें किसीने दोष नहीं देखना चाहिये ॥

व्याख्या— अर्थात् भक्त गुरुवालोग गुरुभक्तिभावके बारेमें एक दृष्टान्त दिया करते हैं; सोई प्रकरण यहाँपर आया है। कथा इसप्रकार आता है कि, विष्णुभक्त नारद वैष्णव भक्त थे। बराबर वैकुण्ठमें विष्णुके यहाँ जाया करते थे। उनके बैठनेकी एक जगह निर्दिष्ट की गयी थी। जब नारद बात करके वैकुण्ठसे चले जाते, तब उनके बैठे हुए जगहसे मिट्टी खोदायके निकालकर फिर दूसरी मिट्टी भराय दिया जाता था। कुछ दिन बादमें नारदजीको यह बात किसीने बताय दिया। तब नारद बड़ा दुःखी हुए; और विष्णुके पासमें जाकर इसका कारण पूछा, तब विष्णुने कहा कि, तुम गुरुमुखी नहीं हुए हो, निगुरोंके बैठे हुए जगह अपवित्र हो जाते हैं, इसलिये मिट्टी बदली कर दिया जाता था। नारद—"हे प्रभो ! मैं तो ऐसा नहीं जानता था, इसलिये किसीको गुरु नहीं किया हूँ। अब आप कृपा करके बताइये कि, मैं किसको गुरु करूँ ? नारदका ऐसा नम्र वचन सुन करके विष्णुने कहा कि, कल सबेरे रास्ता चलतेमें जो सबसे पहले तुमको मिले, उसीको बिना सोचे-विचारे तुमने गुरु कर लेना, ऐसा विष्णुके वचन सुनके नारद चले आये। सबेरे उठकर रास्तासे चले जा रहे थे,

उस वक्त प्रथम ही एक धीवर जाल, साज-बाजको लिये उधरसे निकलके आता दिखाई दिया। नारद बड़े असमञ्जसमें पड़े, यह धीवरको कैसे गुरु करूँ ? फिर विष्णुके वचनको याद करके धीवरके पैरोंमें पड़के अपनेको शिष्य करनेका विनय किया। उसने 'राम' मन्त्रका दीक्षा दे दिया और "ॐ नमो नारायणाय" का जाप करते रहो कह दिया; बादमें उसको प्रणाम करके नारदजी चलते बने। सीधे वैकुण्ठमें चले आये, तिलक, छाप, कण्ठी, माला, लगाये हुए थे। विष्णुने उनको स्वागत करके बैठाया और पूछा कि, कहिये नारदजी ! आपने आज गुरु किये हैं? नारद बोले— हाँ ! गुरु तो किया, परन्तु (पै) ·····कहिके रुक गये, फिर कुछ बोल नहीं सके। विष्णुने कहा कि, आप बोलते-बोलते क्यों रुके ? आपको गुरु कैसे मिले, सो कहिये ? तब नारद बोले— "धीवर" इतना कहिके फिर रुक गये। ऐसा देखके विष्णुने कुपित होकर शाप दिया कि, तुमने गुरुमें दोष माना वा दोष लगाया, इस अपराधके कारणसे हे नारद ! तुमको अब चौरासी लक्ष योनियोंका दुःख भोगना पड़ेगा। ऐसा शाप सुन करके नारद बहुत घबड़ा गये; रो-रोकर अपने दोषके निवारणके लिये प्रार्थना करने लगे। तब विष्णु बोले कि, यह दुःखसे छूटनेकी युक्ति वही तुम्हारे गुरुजी बतावेंगे। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ; अब मैं तुम्हें बचा नहीं सकता हूँ। नारद कहते हैं कि, हे प्रभो ! मैं तो उन गुरुजीके निवास स्थानको भी नहीं जानता हूँ ! अब कैसे दर्शन पाऊँगा ? विष्णुने कहा कि, देखो ! कल सबेरे भी तुम्हें वहीं रास्तामें आते हुए वे फिर मिलेंगे जाओ; उनकी ही शरणमें पड़ो। नारद अपनी कुटीमें आकर बड़ा पछताये। चिन्ता, शोचमें रात बिताये। सबेरे मार्गमें चले जा रहे थे, उसी रास्तासे वही धीवर गुरु पूर्व सदृश चले आते हुए दिखे। मछली पकड़नेका बड़ा-सा जाल कन्धेमें रखे हुए और भी बड़े विचित्र रूपमें आ रहे थे। अबकी बार शुद्ध मनसे नारद उनके पैरोंमें जा पड़े और अपने कसूर तथा विष्णुके शाप होनेका हाल बताकर उस शापसे छूटनेका उपाय पूछते भये। तब गुरुने कहा, तू मेरी शरणमें आया है, अब निर्भय हो जा ! तू विष्णुके पास जाकर चौरासीके योनियोंके वर्णनको एक कागजमें लिखा लेना, फिर वह कागजको विष्णुके चरण-कमलोंमें रखके तूँ उसीमें लोट-पोट-कर लेना, फिर तेरा चौरासी योनियोंका दुःख भोग मिट जायगा। जा, अब आगेसे गुरुमें ऐसा कभी दोष मत देखना; मनको सदा शुद्ध रखना। इतना समझाके धीवर गुरु चले गये। उसीप्रकार गुरुके कहे अनुसार कार्य करके नारदने चौरासीसे छुटकारा पाया। इसप्रकार यह दृष्टान्त "एक बार नारद पै कहिया" में आता है। तहाँ गुरुमें दोष देखनेके कारणसे नारदने नाना प्रकारके अनेक दुःख ठोकरें, शाप, चिन्ता, कष्ट-क्लेश आदिको सहन करते भये। फिर उन्हीं गुरुकी दया होनेसे ही वे दुःखोंसे छूटे, ऐसा वर्णन भया है। सो गुरुवालोगोंका कथन यहाँ जना दिया गया है, सो भेद जान लीजिये ! ॥ २५० ॥

६. गुरु पाथरको ठाकुर कहिये ❀ शिष्य चतुरा होय सो गहिये ॥ २५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गुरु पाथरको = दीक्षा गुरु वा कुल गुरु आदि
ठाकुर कहिये = यदि अनपढ़ निरक्षर मूर्ख होवें अथवा गुरुकी स्थापना की हुई मूर्ति, जड़-पत्थर प्रतिमा कोई क्यों न होवे, उनको श्रेष्ठ मालिक, ईश्वरके समान समझना चाहिये, ऐसा कहते हैं।

शिष्य = जो शिष्य पूर्ण चतुर, गुरुभक्त,
चतुरा होय = श्रद्धावान् होता है, सो इसी-
सो गहिये = प्रकार गुरुमें निष्ठा, प्रेम रखके सारको ही ग्रहण कर लेते हैं। सो वे ही मुक्तिके अधिकारी हो जाते हैं। गुरुभक्तिके प्रतापसे तर जाते हैं ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं कि, यदि अपना गुरु जड़ निपट मूर्ख भी होवें, तब भी गुरु-को श्रेष्ठ ठाकुर मालिक करके समझना चाहिये। अथवा गुरुने स्थापना किया हुआ देवी, देवता, महादेव, विष्णुकी मूर्ति पत्थरके ही क्यों न हों ? जैसे शिवलिङ्ग, शालिग्राम, गणेश आदिको ईश्वरकी

प्रतिमा स्वरूप भगवान्‌के रूपमें ही भावसे मानना चाहिये। जो चतुर शिष्य है, सोई सब प्रकारसे गुरुभक्तिको ग्रहण कर लेता है। इससे वह सहज ही मुक्तिको पा जाता है, ऐसा बतलाये हैं ॥ २५१ ॥

७. काहु मच्छा काहु भैंसा दृढ़ाई * निश्चय होय अपनी गति पाई ॥ २५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! काहु मच्छा = काहु भैंसा = दृढ़ाई = पहले किसीने कोई शिष्यको मोटी बुद्धिवाला मूर्ख समझकर मच्छा-मच्छाका रटन करनेको लगाये और मत्स्य अवतारका ध्यान सिखाया था, और किसीने भैंसा-भैंसा या भैंसेका सिङ्ग-भैंसेकासिङ्गका जाप तथा यमराजका ध्यान बतायकर उसीको दृढ़ा दिया था। निश्चय = होय अपनी = गति पाई = उन श्रद्धालु शिष्योंका गुरुके वाक्यपर दृढ़ निश्चय होनेसे उसीसे उन्होंको भगवान्‌का दर्शन हुआ और अपनी उसी साधनासे गति-मुक्ति पा गये। परमधामको चले गये, ऐसा बतलाये हैं ॥

व्याख्या— जैसे वाल्मीकिने "मरा-मरा" ऐसा उलटा नाम जपकर उत्तम गतिको पा गये थे; तैसे ही किसी गुरुसे अहीर, कोल, भीलोंने गुरुमन्त्र चाहनेपर उन लोगोंकी मोटी बुद्धि देखके किसीका मच्छा-मच्छाका जाप बताये थे, और किसीको भैंसा-भैंसा वा भैंसके सिङ्ग-भैंसके सिङ्ग लखाये थे; और किसीको गोपाल-गोपालका वा झम्पाल-झम्पालका इत्यादि तरहसे मन्त्र-दीक्षा देके उन्हींकी ध्यान-धारणाकी बात दृढ़ा दिये थे। परन्तु, शिष्योंकी एकाग्र वृत्ति हो निश्चय होकर ध्यान, जाप करनेसे सब पापोंसे छूटकर अपनी गति परमपदको वे पा गये, ऐसा कहा है ॥ २५२ ॥

८. शिष्य पूरा होय गुरुको तारै * निशिदिन विरह अग्नि तन जारै ॥ २५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! शिष्य पूरा होय = गुरुको तारै = सब कर्त्तव्य पूरा करना, तो शिष्यके ऊपर ही है। यदि शिष्य भाव-भक्तिमें पूरा-पूरा हो गया, तो वह अपने साथ-साथ गुरुको भी पार उतारके ले जाता है। शिष्यकी भक्तिसे गुरुकी भी साथ ही मुक्ति हो जाती है! ऐसा पक्का जान करके हे शिष्यो! तुमलोग पूरा गुरुभक्त हो जाओ। और— निशिदिन = विरह अग्नि = तन जारै = रात-दिन भगवान्‌में मिलनेकी विरह व्यथामें पीड़ित हो, उसी विरहाग्निमें यह शरीरको जला देना चाहिये। जो विरह अग्निमें दिन-रात देहको जला देता है, सोई सच्चा शिष्य है। ऐसे ही शिष्यकी गुरुभक्तिके प्रतापसे एकबार सारी अयोध्या नगरीके निवासी वैकुण्ठमें चले गये थे, ऐसी मिथ्या महिमा बढ़ाये हैं ॥

व्याख्या— भाई! गुरुभक्तिसे अपने ही तरनेकी बात क्या पूछते हो? जब कि, वह शिष्य गुरुभक्तिमें पूरा परिपक्व हो जाता है, तब अपने साथमें गुरुको और उनके साथमें उनके परिवारोंको इसतरह परस्पर सम्बन्ध लगते-लगते सारा शहर, गाँव, बस्ती तथा जहाँपर कि, वह रहता है, उस देशको ही पार उतार देता हैं। एक समयमें अयोध्या नगरीमें एक सच्चा गुरुभक्त भया था, उसके प्रतापसे सारा ही अयोध्यावासी स्वर्ग लोकमें चले गये थे। बादमें दूसरेलोग आके वहाँ बसे थे, फिर कोई वैसे गुरुभक्त होंगे, तो वैकुण्ठमें जायेंगे, ऐसी आशामें दिन बिता रहे हैं। इसलिये जो कि, शिष्य पक्का पूरा होगा, तो अपने गुरुको भी पार उतार लेगा। जैसे गोरखनाथने मत्स्येन्द्रनाथ-गुरुको विषय भोगोंसे निकालकर बचाके ले आया था। तैसे स्वर्गलोक और मुक्तिमें भी पहुँचानेकी सहायता शिष्य करेगा। इस कारणसे शिष्यको पक्का होनेके लिये चाहिये कि, भगवान्‌की प्राप्तिकी विरह अग्निमें रात्रि-दिन लगा रहे; उसीमें तनको जलावे। देह आदि किसीकी आशा-वासना न रक्खे, एक गुरुरूप परमात्माके ही ध्यानमें मनको लगा रक्खे। ऐसे महान् कष्टसे साधना करते-करते जब सब पाप नाश हो जायेंगे, तब परमात्माका साक्षात् दर्शन होके कृतकृत्य हो जायगा। इत्यादि महिमा गुरुवालोगोंने कहा है ॥ २५३ ॥

९. पतिवर्ता सम करै स्वभाऊ * सो शिष्य जगमें पूर कहाऊ ॥ २५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवालोगोंके कथन बताते हैं; वे (गुरुवालोग) कहते हैं—

पतिवर्ता = शिष्योंको चाहिये कि, अपने मनके
सम करै = स्वभावको जैसे पतिव्रता नारी
स्वभाऊ = पतिमें ही मनको एकनिष्ठ करके लगाये रहती है, तैसे ही पतिरूप गुरुको स्वामी, नाथ समझ करके उन्हींमें ही मनको लगाये रहे, तथा अपनेको गुरुके शिष्यरूपमें स्त्रीवत् ही समझे; ऐसा प्यारा स्वभाव बनाय लेवे।

सो शिष्य = ऐसा प्रेमपूर्ण स्वभाववाला
जगमें पूर = अनन्य निष्ठावन्त जो है, सोई
कहाऊ = शिष्य जगत्में पूरा वा सच्चा शिष्य कहलाता है। ऐसे ही पूरा चेला बनना चाहिये; तभी कार्य पूर्ण होगा ॥

व्याख्या— जो कि, पतिव्रताके समान अपने तन, मन, स्वभावको पतिरूप गुरुमें अर्पण जो चेला कर लेता है, सोई जगत्में पूरा वा सच्चा शिष्य कहलाता है ॥ २५४ ॥

१०. जो पति कुष्ट नपुंसक होई * पतिवर्ता मन भावै सोई ॥ २५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो पति कुष्ट = जो कि, यदि कदाचित्
नपुंसक होई = भाग्यवश पुरुष कोढ़ी हुआ और नपुंसक हुआ। ऐसा निकम्मा भी पति हो जावे; तो भी—

पतिवर्ता मन = पतिव्रता स्त्रीकी निष्ठा, भाव,
भावै सोई = प्रेम उसी पुरुष अपने पतिपर ही रहता है, मन उसी पतिमें ही लगाये रहती है। तैसे ही गुरु स्वामी यदि महा अज्ञानी मूढ़, नशेवाले, अविवेकी भी होवें, तो भी श्रद्धालु शिष्योंके मनमें उन्हीं गुरुपर भाव प्रेम भक्ति बनी रहती है ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं कि, कर्म संयोगसे यदि पति कोढ़ी, नपुंसक, अन्धा, लूला, काना, बहरा, अपाहिज भी हो गया या कभी ऐसा हो जावे, तो भी पतिव्रताके मनमें तो अपने पुरुषपर वही अच्छा सुभाव बना रहता है, जैसे कि, पहले था। उसी पतिपर ही पतिव्रता अपने मनमें भाव, प्रेम, निष्ठा बनाये रहती है। तैसे ही शिष्योंने भी अपने गुरुपर सद्भाव एक व्रत रखना चाहिये, ऐसा बताये हैं ॥ २५५ ॥

११. जो पति छाड़ होय व्यभिचारी * वेश्या भजै पर पुरुष छिनारी ॥ २५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो पति = जो कोई स्त्री अपने पतिकी
छाड़ होय = सेवा, प्रेम, पतिव्रता
व्यभिचारी = धर्मको छोड़कर व्यभिचारिणी, कुलक्षिणी होकर दूसरोंके सङ्ग विषय भोग करती है, सो पापिनी, नरक गामिनी हो जाती है। तैसे ही जो शिष्य अपने कुल गुरु वा दीक्षा गुरुको छोड़कर मन्मुखी हो जाता है। जहाँ-तहाँ, जिस-तिसके पासमें औरोंके सङ्गमें चला जाता है। गुरुमें श्रद्धाको नहीं रखता है, सो व्यभिचारी, पापी बनके नरकमें जायगा।

वेश्या भजै = पर-पुरुषोंका ही ध्यान, उनके ही
पर पुरुष = सङ्ग विषय भोग करते रहने-
छिनारी = वाली वेश्याएँ होती हैं। वे ही छिनारी बनके पर-पुरुषोंको भजती वा खुश करती, पाप कर्मोंमें लगी रहती हैं। तैसे जो शिष्य अपने गुरुको छोड़ करके दूसरे वा पराये साधु-सन्तोंका सङ्ग भजन करते हैं, गुरुने बताये हुए देवताओंको छोड़कर दूसरोंकी पूजा करते हैं। सो भी वेश्याके समान ही छिनारी, अविचारी बने हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् जो स्त्री पतिको छोड़ करके व्यभिचारिणी हो जाती हैं, सोई वेश्या कहलाती हैं। ऐसी स्त्री वेश्याएँ बन-बनके छिनार, राँड़ लोग पराये पुरुष वा जिस-तिसके साथमें सम्भोग करती-कराती हैं। सो ऐसी पापिनी नरकमें दुःख भोगेंगी। इसी प्रकारसे अपने गुरुको

छोड़ करके जो शिष्य लोग दूसरेको गुरु करके उसके सङ्ग-साथमें लग जाते हैं, सो अविचारी हैं, गुरुने बताये हुए देवी-देवताओंकी मूर्ति पूजाको छोड़कर और ही दूसरे परपुरुषका भजन-कीर्तन करते हैं, सो वेश्याकी नाईं छिनार बने हैं, सो उनका कभी भला नहीं होयगा। ऐसा कथन करके गुरुवालोग कहते हैं ॥ २५६ ॥

साखीः— गुरु गूँगा गुरु बावरा * गुरु देवनका देव ॥
[२७] जो तू चेला चतुर है * तो करो गुरुकी सेव ॥ २५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवालोगोंका और कथन बतला रहे हैं, वे गुरुवालोग कहते हैं:—

गुरु गूँगा = यदि कुल गुरु, मन्त्र गुरु
गुरु बावरा = कुछ बोलनेकी शक्तिसे
गुरु देवनका देव = हीन, गूँगा हो, और बावरा वा पागल बन गया हो, आवबाव बकता-झकता हो, अज्ञानी, मूर्ख, लम्पट, लबार, पाखण्डी, व्यभिचारी, जड़ाध्यासी भी क्यों न हो, तो भी गुरु तो देव-के-देव महादेवके समान समर्थ, पवित्र, श्रेष्ठ, आराध्य, पूजनीय ही रहते हैं।

जो तू चेला = इसवास्ते हे चेला! हे
चतुर है तो = शिष्य! जो कि, तुम
करो गुरुकी सेव = बुद्धिमान् चतुर शास्त्रके जानकार होवे, तो "समरथको नहिं दोष" ऐसा समझकर अपने गुरुके प्रति दोषदृष्टि न करके, पूज्य-दृष्टि भक्ति-भाव, श्रद्धा, प्रेम दिनोंदिन बढ़ायके ले जाओ! तब तो तुम गुरुकी सेवा टहल ही करते रहो; उसी गुरु-सेवासे ही तू भव पार हो जायगा, सो जानो॥

व्याख्या— गूँगे और बावले कैसे भी अपने गुरु हों, तो भी देव-के-देव ही होते हैं। देखो! परमेश्वर जो महागुरु है, सो निराकार होनेसे कभी नहीं बोलता है, इसीसे गूँगा है। और महादेवजी नशोंमें मस्त होके बावले या दिवाने बने फिरते थे। तथा ब्रह्मा गुरु अपनी ही पुत्रीके सङ्ग व्यभिचार किये थे; विष्णु गुरु कपटी, कामी, छली रहे। फिर सूरदासजी अन्धे रहे। जड़ भरत जड़ासक्त मूढ़वत् रहे। जनकजी भोगी रहे। रामजी मोही रहे। कृष्णजी कामासक्त भोगी रहे। नृसिंह और परशुराम अति क्रोधी रहे। परन्तु, तुलसीदासजीने कहा है:—

चौपाईः— "समरथको नहिं दोष गोसाँईं। रवि पावक सुरसरिकी नाईं॥" (रामायण) ॥

इसलिये गुरुको समर्थ होनेसे कोई दोष लग ही नहीं सकता है, ऐसा जानकर अपने गुरु कैसे भी क्यों न हों, कुछ न जाननेवाले, कुछ कह न सकनेवाले, मति विभ्रम बावले आदि भी होवें, तो भी माननीय देवन-के-देव ऐसे गुरुदेव पूज्य होते हैं। गुरुवालोग कहते हैं कि, हे चेलो! हे प्रिय शिष्यो! जो तुम लोग चतुर, बुद्धिमान्, जानकार हो वा ऐसे चतुर होना चाहते हो, तो सब प्रकारसे गुरुकी ही सेवा किया करो और कोई बातका विचार मत करो। गुरु सेवा करना ही तुम्हारा मुख्य परम धर्म है। इससे तुम्हारा हित-कल्याण होगा, सो तुम जानो ॥ २५७ ॥

सम्बन्ध— ऊपर गुरुवालोगोंका कथन समाप्त हो गया, नीचे निर्णयका सिद्धान्त बतलाया गया है ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णय, मसला ॥ ४ ॥ ❀ ॥

[४] मसलाः— गुरुवातो सस्ते भये * कौड़ी अर्थ पचास ॥
अपने तनकी सुधि नहिं * शिष्य करनकी आश ॥ २५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब अब सत्यन्याय, निर्णयसे गुरुवालोगोंकी बातोंका फैसला करके दृष्टान्त और सिद्धान्त समझायके चुटकुलारूपमें यह साखी कहे हैं; ऐसा जान लीजिये! ॥

गुरुवा = जिनको सत्य चैतन्य स्वरूपका पारख ज्ञान नहीं है। नाना तरहकी कल्पना, उपाधि लगायके नर जीवोंको फँसाते वा बाँधते हैं, वैसे धूर्त पण्डित, कर्मी, उपासक, योगी,

ज्ञानी, विज्ञानी आदि सब लोग बेपारखी होनेसे गुरुवा कहे जाते हैं।

तो=उपरोक्त ऐसे वञ्चक वा ठग, गुरुवालोग तो संसारमें—

सस्ते भये=अनेकोंके तादादमें सब जगह फैले हुए बहुतायतसे बहुत सस्ते हुए, और सस्ते अनेकों मिल रहे हैं।

कौड़ी= अर्थ= पचास= } थोड़ी-सी धन-सम्पत्तिके वास्ते या एक रुपयाके लिये या थोड़ी ही कौड़ीके लिये ही पचासों या सैकड़ों गुरुवालोग चारों तरफसे घिरके इकट्ठे हो जाते हैं, नाना रीतिसे उपदेश दे-दे करके द्रव्य खैंचनेके उपाय, धन्धोंमें पड़े हुए हैं। और—

अपने=इन मूढ़ गुरुवालोगोंको तो निज चैतन्य स्वरूपकी पहिचान तो कुछ है ही नहीं। और न जड़के गुण-लक्षण ही जानते हैं। तथा—

तनकी= सुधि= नाहीं= } तन, मन, वचनोंकी गति, उनकारूप गुण, इनकी भी तो कुछ सुध-बुध वा खबर नहीं है। तन-मनको सम्हालनेकी भी सुधि नहीं है। ऐसे नादान लोग धोखा कल्पनामें पड़े हैं।

शिष्य= करनकी= आश= } और दूसरे मनुष्योंको भ्रमाय, भुलायके जगत्के भोग-विलास तथा स्वर्गादि सुख प्राप्तिकी झूठी आशामें फँसायके बहुत शिष्य करनेकी मत-पन्थ बढ़ानेकी, गुरु होनेकी बड़ी भारी आशामें गुरुवालोग पड़े हैं। इसलिये हे जिज्ञासुओ! गुरुवालोगोंको पहिचानकर उनके सङ्गसे दूर रहो॥

व्याख्या— संसारमें मनुष्योंको भ्रमाने-भुलानेवाले, भटकानेवाले, स्वार्थी, ठग, गुरुवालोग तो बहुत ही सस्ते हो गये हैं। चारों धामोंमें उन गुरुवालोग ठगोंकी ही भरमार है। सब शहरोंमें सब गाँव-खेड़ोंमें धूर्त लोग फैले पड़े हैं। घरोंघरमें पुरोहितादि बनके दाव-घात लगा रहे हैं। कोई दानी यदि दान करना चाहें, तो एक कौड़ीके लिये ही पचासों पण्डे, पुजारी, साधु, ब्राह्मण आदि इकट्ठे हो जाते हैं। तहाँ लड़ाई, झगड़ा, तोफान, गाली-गलौज करने और छीना-झपटी करने लग जाते हैं। कोई जिज्ञासु यदि शिष्य होना चाहता है, तो उसको चेला बनानेके वास्ते भी पचासों गुरुवालोग इकट्ठे हो जाते हैं। अपनी-अपनी तरफ खींचना चाहते हैं। इस तरह कौड़ी अर्थमें थोड़े धनादिके लिये ही पचासों ग्राहक इकट्ठे होके हुल्लड़ मचाते हैं। परन्तु, उन अज्ञानी भ्रमिक गुरुवालोगोंको निज स्वरूपका बोध तथा बन्धन-मुक्तिका ज्ञान तो नहीं है। अपने तन, मन, वचन सम्हालनेकी भी उन्होंको सुधि-बुद्धि खबर कुछ नहीं है। भ्रम जालोंमें ही पड़े हुए हैं। ऐसे होनेपर भी उन्होंको शिष्य या चेला बनायके गुरु बननेकी, मत बढ़ानेकी बड़ी भारी आशा तथा जगत्की आसक्ति लगी हुई है। अनेक आशा देके मनुष्योंको फँसाते हैं। जैसे कि, निर्धन पुरुष भी विवाह करके स्त्री लानेकी इच्छा करता है। तैसे अज्ञानी होनेपर भी गुरुवालोग शिष्य बना लेनेकी आशा करते हैं। सो भेद जान करके गुरुवालोगोंके सङ्ग-साथको छोड़ देना चाहिये॥ २५८॥

सम्बन्ध— उन्नीसवाँ खण्डमें १३ चौपाई, और २ साखी, तथा १ मसला आया है। उसमें सच्चे पारखी सन्तोंकी सत्सङ्ग-सेवा आदि करनेका वर्णन किया है, सो जान लीजिये!॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ उन्नीस खण्ड ॥ १९ ॥ ❀ ॥

१. साँचा साहेब सेवा लावै * ठग झूठेके सङ्ग नहिं जावै॥ २५९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँसे निर्णय वचन कहते हैं— हे मुमुक्षुओ!

साँचा साहेब= सेवा लावै= } सत्य चैतन्य पारख बोधदाता सच्चे सर्वसे श्रेष्ठ श्रीकबीर-साहेबके सत्य पारख सिद्धान्तके अनुयायी पारखी सद्गुरु साहेबकी सेवा सत्सङ्गमें अपने तन,मन तथा जीवनको वहीं लगाओ या सच्चे साहेबकी सेवामें मन लगाना चाहिये।

ठग झूठेके= सङ्ग नहिं= जावै= } तथा गुरुवालोग और स्त्रियाँ जो कि, झूठा जाल फन्दोंमें लगाय-के जीवनधन बुद्धिको ठगके हरण करनेवाले हैं। इससे उन झूठे ठगोंके

सङ्ग-घेरामें कभी भी जाना न चाहिये या नहीं जावै, दूर बना रहे ॥

व्याख्या— मुक्ति चाहनेवाले हे मनुष्यो ! सत्य बोधदाता पारखी सद्गुरु साहेब जो हैं, सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य सिद्धान्त पारखको दर्शाते हैं। उन्हीं सच्चे साहेबकी सेवा, टहल, बन्दगी और सत्सङ्गमें अपना जीवन, तन, मन, धनादिको लगाओ। उसीसे तुम्हारे जन्म सफल होगा। और ठगनेवाले झूठे प्रपञ्ची गुरुवालोग तथा नारियोंके सङ्ग-कुसङ्गमें भूल करके भी नहीं जाओ। क्योंकि, उन झूठोंके सङ्गसे बुद्धि भ्रष्ट होके जीव ठगाय जाता है; इसीसे कुसङ्गमें कभी न जावे॥२५९॥

२. कामी क्रोधी लोभी मोही ❀ दुष्ट जीव जग जानहु सोही ॥ २६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कामी = स्त्री-भग-लम्पट विषयासक्त संसारी-जन वा कृष्ण आदि कामी लोग भये हैं। कामीलोग पशुवत् बर्तते हैं।

क्रोधी = अविचारी, अहङ्कारी, नृसिंह, पशुराम आदि क्रोधी, हुए हैं। और कितनेक बड़े क्रोधी स्वभावसे नरपशु ही होते हैं।

लोभी = वामनादि लोभी भये हैं। और बहुतसे-लोग लोभमें ग्रसित मतिमन्द होते हैं।

मोही = स्त्री-परिवारोंमें आसक्त रामादि मोही बने थे। और बहुतसे लोग मोहमें ग्रसित विचारहीन हो रहे हैं।

दुष्ट जीव = जगत्में ऐसे काम, क्रोध आदि-जग जानहु = में गाफिल जो-जो भये और सोही = अभी जो-जो हैं, सो सब दुष्ट स्वभाववाले जड़ाध्यासी, पामर, अज्ञानी जीव हैं। आवागमनोंके वे अधिकारी बने हैं। सो ऐसा विवेक करके जान लीजिये ॥

व्याख्या— कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, हिंसक, व्यभिचारी, पाखण्डी, धूर्त, लबार ये गुण-लक्षणवाले, तामसी स्वभाववाले दुष्ट जीव हैं। चाहे वे अवतारी कहलाते हों वा चाहे बड़े-बड़े ज्ञानी, योगी, भक्त, कर्मी कहलाते हों; परन्तु, वे चारासी योनियोंके भव चक्रमें ही डालनेवाले होनेसे उन सबोंको दुष्ट बन्धन देनवाले, जड़ाध्यासी जीव ही जान लीजिये ! ॥ २६० ॥

३. जो अपने नहिं तिर्पित होई ❀ तासों तिर्पित कैसे कोई ॥ २६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

जो अपने नहिं तिर्पित होई = जो कि, अपने ही भूख-प्यासे हो, वह दूसरोंकी भूख-प्यास तासों तिर्पित कैसे कोई = कैसे दूर कर सकेगा ? अपने ही तृप्त नहीं है, तो औरको वह कैसे तृप्त करेगा ! इसी प्रकार ये भ्रामिक गुरुवालोग अनेक इच्छा-वासना आशा-तृष्णादिमें, लगके बन्धनोंमें पड़े हैं। वे दूसरोंका बन्धन क्या छुड़ावेंगे ? आप ही अज्ञानी हैं, फिर दूसरेको सत्यज्ञान कहाँसे कौन देंगे ? कौन जीवोंको तृप्त मुक्त करेंगे ? कोई नहीं। ऐसा जानके गुरुवालोगोंके जालोंमें पड़ना नहीं चाहिये ॥

व्याख्या— जो अपने ही तृप्त न हो, प्यासमें मर रहा हो, उससे कैसे करके कोई तृप्त हो सकेगा ? इसी तरहसे जो अपने ही मुक्त न हो, जिसकी इच्छा, वासना, तृष्णादि शान्त हुई न हों, उसीमें तलमला रहा हो, ऐसे भ्रामक विषयी गुरुवालोगोंसे कैसे करके कोई मुक्ति पा सकेंगे ? चौरासी योनियोंके बन्धनोंसे कैसे छूटेंगे ? कभी नहीं छूट सकते हैं ॥ २६१ ॥

४. जो जल साँच पियास नशाई ❀ ध्यान अनुमान भरम अधिकाई ॥ २६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो जल साँच पियास नशाई = जो यदि प्यासा मनुष्य सच्चा ही जलको पीवेगा, तो उसकी प्यास अवश्य ही नाश हो जायगी। इसी प्रकार जो कोई जिज्ञासु नर-जीव सत्य निर्णयकी गुरुमुख वाणी सारशब्दको श्रवण करके धारण करेगा, तो उसकी सर्व भ्रम-तृष्णा, सन्देह-चाहनाएँ नाश होके मिट जायेंगी। और जो कोई ऐसा न करके खाली—

ध्यान अनुमान = भरम अधिकाई = } अनुमानसे पानीका ध्यान मात्र ही करेगा, सो वह तो ज्यादा कण्ठ सूख जानेपर दुःख पाके मर जायगा। तैसे ही अष्ट प्रतिमा पूजा, मानसिक ध्यान, ईश्वर कर्त्ताकी और स्वर्गादिकी अनुमान-कल्पनामात्र ही करता रहेगा, सो ज्यादा-ही-ज्यादा भ्रमिक होयके जड़ाध्यासी हो भव चक्रमें जाके पड़ेगा, और वहाँ दुःख भोगता रहेगा ॥

व्याख्या— जो सच्चा जल होता है, सो पीनेसे प्यास भी नाश हो जाता है; और झूठा ही जलका अनुमान करके कोई पानीका ध्यान ही करता रहेगा, तो वह प्यासमें ही मर जायगा। तैसे ही सत्य निर्णयकी गुरुमुख वाणीको श्रवण-मनन करनेसे भ्रम, संशय, तृष्णादि छूटकर पारख बोधमें स्थिति हो जायगी; और कल्पित वेदादि वाणीको श्रवणकर मिथ्या ईश्वरादिका अनुमान करके ध्यान करनेसे अधिकाधिक भ्रम जड़ाध्यास बढ़कर जीव चौरासी योनियोंमें ही जाके पड़ेंगे ॥ २६२ ॥

५. आपै रोगी वैद्य विचारा ❀ तासों कौन होय निरुवारा ? ॥ २६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

आपै रोगी = वैद्य विचारा = } बेचारे वैद्य यदि आप ही रोगी होवे, तो भला वह दूसरेकी दवाई क्या करेगा ? तद्वत् वैद्य बने हुए उपदेशक गुरुवालोग आप ही (खुद) जड़ाध्यासी रोगी बनके विना विचार आवागमन चौरासी योनियोंमें पड़े हैं।

तासों कौन = होय = निरुवारा = } फिर उन रोगी जड़ासक्त कर्मी, योगी, ज्ञानी, भक्तोंसे किसकी मुक्ति होयगी ? किसीकी मुक्ति उनसे नहीं होगी। उन्होंसे जड़-चैतन्यका सत्य निर्णय तो नहीं होता है। इसीसे किसीका बन्धन भी नहीं छूटता है ॥

व्याख्या— यदि वैद्य ही अपने रोगी होवे, तब विचार करिये, वह दूसरोंको निरोग कैसे करेगा ? फिर उससे किसके रोगका निर्णय होके रोग कैसे छूटेगा ? नहीं छूटेगा। इसीतरहसे नाना मत-पन्थोंके उपदेश देने वाले गुरुवालोग आप ही भ्रमिक, अविचारी, जड़ाध्यासी हो दीन, हीन, मलीन रोगी बने हैं। अब उन्होंसे जड़-चेतनका निर्णय तो कुछ होता ही नहीं। पारख तो उन्होंमें कुछ है ही नहीं। फिर कहिये ! गुरुवा लोगोंसे कौन-किसकी भलाई वा मुक्तिका निर्णय हुआ है या होयगा ? उनसे कुछ भी निर्णय नहीं होवेगा ॥ २६३ ॥

६. कनक लोभ बहु भेष बनाई ❀ झूठा बहुविधि करै ठगाई ॥ २६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कनक लोभ = बहु भेष = बनाई = } सोना, चाँदी आदि धनके तथा मठ-मन्दिर, जागीरके लोभसे बहुत तरहके षट्दर्शनोंके भेष बनाये हैं। अथवा सुवर्ण समान माना हुआ शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति आदिकी लोभ-लालचसे बहुतोंने पाखण्डोंका नाना भेष बनाये हैं। और वैसे ही नकली भेष बना रहे हैं।

झूठा = बहुविधि = करै ठगाई = } झूठे गुरुवा लोगोंने जिसको केवल ब्रह्म माने हैं, सो भी झूठा है, सो उसी झूठी लालचमें जीवोंको धोखा देकर बहुत प्रकारसे ठगाई, स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। ऐसे ठग लोग ठगाई करके जीवनधन हरण कर रहे हैं ॥

व्याख्या— सोना, चाँदी, रुपया, पैसा, द्रव्य-सम्पत्तिके लोभसे तो बहुतोंने नान प्रकारका भेष बनाये हैं। और बहुत प्रकारसे झूठा पाखण्ड फैलायके बहुत तरहसे मनुष्योंको ठगाई किये और कर रहे हैं। अथवा कोई कनकवत् शुद्ध केवल ब्रह्मको बतायके या मानके ब्रह्मानन्दादि प्राप्तिके लोभसे षट्दर्शनोंके बहुत भेष बनाये हैं। परन्तु, सो ब्रह्म ही भ्रमरूप झूठा है, तो उन्हें मिलेगा कैसे ? परन्तु, वेदान्तीलोग बहुत प्रकारसे लोगोंको भ्रमाके जगत्में ठगाई कर रहे हैं ॥ २६४ ॥

७. नाता नारि पुरुषका लावै * जगत जाल कहिके समुझावै ॥ २६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नाता नारि पुरुषका लावै = गुरुवा लोग संसारमें कल्पनासे कोई एक परमपुरुष-परमात्माको खाविन्द (पति) या जगत्के स्वामी ठहरा करके सब मनुष्योंको प्रकृतिरूप स्त्री बतायके उस ईश्वरमें और अपने गुरुमें शिष्य वा भक्तोंने नारीभाव धारणकर ऐसे पति-पत्नीका-सा नाता सम्बन्ध, प्रेम लगावे या वैसे प्रेम लगाना चाहिये। ऐसा कहिके भ्रममें लगाये हैं।

जगत जाल कहिके समुझावै = फिर जगत्के कुल-कुटुम्बोंके नाता, काम-धन्धा उन सबोंको यह जगत्का जाल बन्धन है, कहिके तो समझाते हैं, परन्तु, खानी जाल छुड़ायके और फिर वाणी जालोंमें लेजायके गाड़ देते हैं वा फँसाय देते हैं ॥

व्याख्या— कोई ईश्वर उपासक भक्तलोग कल्पनासे एक ईश्वरको पति-पुरुषके रूपमें और भक्तोंको स्त्रियोंके रूपमें ठहराकर स्त्री-पुरुषका नाता-सम्बन्ध लगाते हैं। और जगत्को झूठा जाल है,' कहिके दूसरोंको तो समझाते हैं, परन्तु, स्वयं वैसा नहीं समझते हैं; फिर दूसरे रूपमें अपने तो गुरु रूपमें पुरुष या पति बनकर शिष्योंको भक्तरूपी नारी ठहराते हैं। चेलोंकी मतिभ्रष्ट करके विषय क्रीड़ामें आसक्त बने रहते हैं; और भोग भोगते हुए भी ईश्वरकी कृपासे जगत् जालोंसे मुक्ति हो जायगी ऐसी झूठ-मूठकी बात अज्ञानी लोगोंको समझाते हैं ॥ २६५ ॥

८. आपहु नारी शिष्यहु नारी * दोउ कामिनी शुद्ध व्यभिचारी ॥ २६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

आपहु नारी = ये गुरुवालोग आप भी अनेकों कामना, चाहना, भोगासक्त होके ईश्वरके उपासक सोई नारी-भक्त अज्ञानी वा अनाड़ी बने हैं। और इन्होंने—

शिष्यहु नारी = जिनको शिष्य बनाये हैं, वे भी वैसे ही लालची नाना चाहनावाले, विषयासक्त भक्त अनाड़ी वा अज्ञानी हैं।

दोउ = उन दोनों ही गुरु और चेले—

कामिनी = अनेकों विषय-कामनाओंमें पड़े हुए स्त्रीरूपिणी भक्तलोग कामिनीवत्—

शुद्ध व्यभिचारी = बिल्कुल अविवेकी, विचारहीन, व्यभिचारी हुए, तब शुद्ध सच्चे कैसे हो सकेंगे? शुद्ध नहीं हुए; किन्तु, वे दोनों अशुद्ध लुब्ध व्यभिचारी हो गये ॥

व्याख्या— अब विचार करिये, जब परमपुरुष ईश्वरको पति माने, तब गुरु अपने भी तथा शिष्य समेत् भी दोनों स्त्रीरूपी भक्त हुए। ये अनाड़ी लोग महा अज्ञानी गाफिल जड़ाध्यासी हुए। इसीसे तो उद्धार दोनोंका ही नहीं हुआ। क्योंकि, दोनों स्त्रीरूप होनेसे किसीकी मनोकामना पूरी नहीं हुई। इसकारणसे गुरु और चेले दोनों मनकी नाना कामना, चाहना, वासनाओंमें पड़के उसमें उन्मत्त हो गये; इसतरह वे कामिनीलोग शुद्धता विचारको छोड़के पूरे व्यभिचारी, पाखण्डी, वेश्याके समान हुए। इसलिये कर्त्तव्य भ्रष्ट होके मनुष्य जन्मको बर्बाद करके चारखानी पशुआदि जन्ममें जावेंगे वा कितनेक चले भी गये। अर्थात् गुरुवालोग ईश्वरके भक्त बनके अपने भी नारी भये; और शिष्योंको भी वैसे ही नारीरूप भक्त बनाये। अतः दोनों कामिनी बनके पूरे व्यभिचारी लम्पट हो गये ॥ २६६ ॥

९. एक पुरुषका सुमिरन करई * इष्ट विचार विरहते मरई ॥ २६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

एक पुरुषका सुमिरन करई = परमपुरुष परमेश्वर कोई एक ही मानके भक्तलोग उसीकी कल्पित भावनासे नाम-स्मरण, जाप, कीर्तन आदि अपने करते हैं और दूसरोंसे वैसे कराते हैं। और—

इष्ट विचार विरहते मरई = इष्ट देवताका ध्यानमें विचार करके कब उनके दर्शन पायेंगे? इसी चिन्ता विरहमें भक्त-लोग दुःखी हो भ्रमिक हो जड़ाध्यासी हो-

होके मरे जाते हैं। उसीमें खूब व्याकुल । हो रहते हैं ॥

व्याख्या— भक्तलोग एक कल्पित ईश्वर पुरुषको भवतारक समझकर उसीका नाम-स्मरण, जाप किया करते हैं। इष्टदेवकी मूर्तिका ध्यान, विचार करके उसके साक्षात् दर्शन पानेके लिये विरह व्यथाके दुःखमें तलफते हुए मरे जाते हैं ॥ २६७ ॥

१०. अधम कला पाखण्ड पसारा ❀ मिथ्या पचहीं मूढ़ गँवारा ॥ २६८ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अधम कला = नीच अन्यायी अविवेकी
पाखण्ड पसारा = अधम गुरुवालोग नाना प्रकारसे विकार कल्पना विषयादिकी कला फैलाकर पाखण्ड-प्रपञ्चका ही जाल पसारा किये हैं वा कर रहे हैं।

मिथ्या पचहीं = उसी मिथ्या धोखेमें ही
मूढ़ गँवारा = अज्ञानी मूढ़ गँवार रच-पचके मारे जाते हैं, ये मूढ़ गँवारलोग मिथ्या ब्रह्म वा विषयोंमें ही पच-पचके गड़के नाना दुःख पाते हैं।

व्याख्या— नीच अन्यायी पाखण्डी गुरुवालोग खानी-वाणीके पाखण्ड, कला, कल्पना, विकारका पसारा करके मिथ्या धोखेमें ही मूढ़-गँवारलोग पच-पचके गड्ढेमें, चौरासी योनियोंमें गिर जाते हैं, और दूसरोंको भी वहीं गिरा देते हैं ॥ २६८ ॥

११. नाम बढ़ावै पन्थ चलावै ❀ आप नशाने और नशावै ॥ २६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

नाम बढ़ावै = कल्पित ईश्वरके नाम या राम-नामकी महिमा बहुत बढ़ाये और उसीका महात्म्य बढ़ाते हैं। उससे अपना नाम, मान-मर्यादा बढ़ाना चाहते हैं। और—
पन्थ = उदासी, संन्यासी, नाथ, निरञ्जनी, नागे, वैरागी, इत्यादि पन्थ, मत, सम्प्रदाय इत्यादि-
चलावै = मार्ग या विभिन्न रास्ता, नाना सिद्धान्त चलाये वा चला रहे हैं।

आप नशाने = तहाँ उसीमें भ्रमिक, जड़ाध्यासी हो करके अपने जीवन-जीवको आप ही कर्म-कुकर्ममें लगाके नाश किये। ऐसे प्रथम तो आप ही नशाय गये। फिर—
और नशावै = और दूसरे मनुष्योंको भी आशा, तृष्णा, लोभ, लालच लगायके बुद्धिभ्रष्ट करके मनुष्य पदसे मुक्तिको नशाय दिये या नशाय देते हैं, नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं ॥

व्याख्या— गुरुवालोग झूठ ही कल्पित ईश्वरादिका और अपना नाम बढ़ाते हैं; महिमा, मान-मर्यादा बढ़ाते हैं। षट्दर्शनोंके छियान्नावे पाखण्डोंके मत-पन्थोंको प्रचलित करके चलाते हैं। उसीमें अपने भी मुक्तिदायी मनुष्यपदसे नष्ट हुए, और दूसरे चेलोंको भी भ्रमायके नशाय दिये हैं। ऐसे मुक्तिको नशाते हैं ॥ २६९ ॥

१२. शर्माशर्मी पचि पचि मरहीं ❀ साँचा निर्णय चित्त नहिं धरहीं ॥ २७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शर्माशर्मी = किसी मत, पन्थ, सिद्धान्तोंमें
पचि पचि = फँसकर जकड़ जानेके बाद
मरहीं = उसमें दोष होनेपर भी छोड़ नहीं सकते हैं। आदत, मान-मर्यादा इनको छोड़ नहीं सकते हैं। इसीसे मन-ही-मन शरमके मारे लजायके उसी धोखा वा खोटामें और खानी-वाणीके कीचड़में गड़के पच-पचके मरते हैं। और—

साँचा निर्णय = सत्य निर्णयको वा सत्य
चित्त नहिं = बोधको वे प्रपञ्चीलोग,
धरहीं = चित्तमें रखकर धारण ही नहीं करते हैं; और पारखी सद्गुरुके परखानेपर भी नहीं चेतते हैं। इसीसे चौरासी योनियोंमें दुःख भोगते रहेंगे। और जहाँ-तहाँ भटकते रहेंगे ॥

व्याख्या— जब पारखी सद्गुरु समझाते हैं, और अपने मतमें दोष भी देखते हैं, तो भी मान, प्रतिष्ठाकी कमी न हो जाय, इसके डरसे और हँसी होनेकी लज्जासे शर्माशर्मि पच-पचके मरते हैं।

इसीसे चौरासी योनियोंमें नाना दुःख भोगी होते हैं। तो भी समझ-बूझ करके पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णको चित्तमें धारण नहीं करते हैं; ऐसे अभागे कर्महीन हो रहे हैं ॥ २७० ॥

१३. बहु पाथर पारस नहिं भाई * साँच बिरले काहु ठहराई ॥ २७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

बहु पाथर पारस नहिं भाई = हे भाई! जगत्में जो कि, बहुतेक पत्थरके खदान, पहाड़ोंमें भरे पड़े हैं। और ऐसे पत्थर तो जहाँ-तहाँ बहुत ही मिल जाते हैं। परन्तु, वह तो पारसमणि हो नहीं सकते हैं, तैसे ही बहुत मनुष्य समूहोंमें अनेकों भेषके साधु जहाँ-तहाँ दिखाई देते हैं, सो वे भी तो कङ्कर-पत्थरकी नाईं हैं; वे पारस-रूप विवेकी पारखी सन्त नहीं हो सकते हैं।

साँच बिरले काहु ठहराई = सच्चे सत्यन्यायी पारख-बोधवाले पारखी विवेकी साधु कोई बिरले ही ठहरते हैं; विवेकी कहीं-कहीं होते हैं ॥

व्याख्या— हे भाई! पहाड़ोंमें बहुत पत्थर भरे पड़े हैं; सो बहुत पत्थर पारस तो हो नहीं सकते हैं; और सच्चा पारसमणि तो कहीं बिरला ही ठहरता है। तैसे ही बहुत भेषोंके साधु बेपारखी पत्थर समान हैं, सच्चे पारखी बोधवान् कोई बिरले ही ठहरते हैं। पारखी सद्गुरु मिलनेपर ही बन्धन नाश हो सकता है। अर्थात् बहुत प्रकारके जहाँ-तहाँ ढेरके-ढेर मिलनेवाले सस्ते पत्थर वे तो अमूल्य, दुर्लभ पारसमणिवत् गुणवान् हो ही नहीं सकते हैं। उसी प्रकारसे संसाररूपी पहाड़में बहुसंख्यक मनुष्योंमें साधुओंके जमात भी बहुत ही बढ़ाये हुए हैं, उनकी कीमत साधारण ऊपरी भेषमात्र ही है। साधुओंमें छानबीन करनेपर सच्चे पारखी सन्त तो कोई बिरले ही मुश्किलसे मिलते हैं; वे ही सत्य चैतन्य जीवको पारख स्थितिमें ठहरानेवाले होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ २७१ ॥

साखीः— शब्द कहै सो कीजिये * गुरुवा बड़े लबार ॥

[२८] अपने अपने काजको * ठौर ठौर बटपार ॥ २७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मुमुक्षु मनुष्यो! सुनो!:—

गुरुवा बड़े लबार = योगी, ज्ञानी, भक्त गुरुवालोग बड़े भ्रमिक और बड़े झूठे वा मिथ्यावादी प्रपञ्ची हुए हैं, और वैसे हो रहे हैं। इससे उन लबारोंकी बातोंको ग्रहण करना नहीं चाहिये।

शब्द कहै सो कीजिये = गुरुवालोग कहते हैं कि, वेद, शास्त्र, पुराण आदिके शब्दोंमें जो उपदेश कहा है, सो उसी प्रमाणके अनुसार ही स्वधर्म पालन कीजिये "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" गीता ॥ ऐसे रोचक-भयानक वाणीको सुनाय-सुनायकर मनुष्योंको भ्रमाये और भ्रमा रहे हैं, सो हे नरजीवो! तुम उसमें भूलो मत! पारखी सद्गुरुके उपदेश प्रमाणसे चलकर निज कल्याणको प्राप्त कर लीजिये।

अपने अपने काजको = ये गुरुवालोग निज कल्याणके मार्गको छोड़कर अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धिके लिये, मत-पन्थादि बढ़ानेके कार्यके लिये अनेकरूप धारण करके-

ठौर ठौर बटपार = जगह-जगह नाना मत, नाना पन्थ, ग्रन्थादि फैलायके, चारधाम, तीर्थ, क्षेत्रादियोंमें ठगाई, लुटाई करके धन हरण करनेमें लगे हैं। और कोई ज्ञान-विज्ञानादिका उपदेश देके धोखेमें डालकर नरजीवोंके ज्ञान, कला, बोध, विचारको लूटते हैं। अतएव इन लुटेरोंसे सर्वत्र सावधान रहना चाहिये ॥

व्याख्या— हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो सुनो! गुरु और गुरुवाओंके भेदको पहिले सत्सङ्ग करके जानलो। क्योंकि, गुरुवालोग बड़े लबार, मिथ्यावादी, प्रपञ्ची, स्वार्थी होते हैं। इसलिये सत्यन्याय-को छोड़ाकर गुरुवालोग कहते हैं कि, हे मनुष्यो! ऋषि-मुनियोंने वेद-शास्त्रोंके शब्दोंमें जो धर्म कहा है, उसी प्रमाण वर्णाश्रम धर्मको पालन कीजिये! शास्त्र प्रमाणमें कुछ विचार, तर्क-वितर्क मत

कीजिये ! कर्मादि साधना कीजिये ! जिससे ईश्वरकी कृपासे मुक्ति-मुक्ति दोनों मिल जायगी, इत्यादि वाणी लबारलोग कहके दृढ़ाते हैं। सो उसकी परीक्षा पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें कीजिये ! सत्यन्याय-के उपदेश सारशब्दके कहे अनुसार चलके अपना हित हासिल कीजिये; और सुनिये ! ये गुरुवालोग अपने-अपने कार्य सिद्ध करनेके लिये तथा मत-पन्थ बढ़ानेके लिये, जहाँ-तहाँ ठौर-ठौरमें अड्डा जमाय रक्खे हैं। लुटेरोंकी नाईं मनुष्योंकी धन-सम्पत्ति तथा जीवनधन, बोध, ज्ञान आदि सब हरण करके लूट रहे हैं; सो उन्होंको पहिचान करके उनसे दूर ही हो रहिये ! ॥ २७२ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर नीचेकी साखीमें सद्गुरुका लक्षण बतलाया गया है, सो जानिये ! ॥

साखीः— गुरु तो ऐसा चाहिये * ज्यों शिकलीगर होय ॥

[२९] जन्म जन्मका मूरचा * गुरु पलमें डारै खोय ॥ २७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गुरु तो ऐसा = चाहिये = ज्यों शिकलीगर = होय = जैसे कि, औजारोंमें शान चढ़ाके तेज धार करनेवाला लोहार शिकलीगर कहलाता है। तैसे ही गुरुको भी होना चाहिये। कैसे कि, पारख प्रकाश करके मनकी मानन्दी अज्ञानरूप अन्धकार-को मिटायके स्वच्छ शुद्ध चैतन्य निज स्वरूपमें स्थिति किये हुए, खानी-वाणीके अध्यासोंको हटानेवाले, ऐसे पारखी सद्गुरुके शिष्य होना चाहिये ॥

जन्म जन्म- = का मूरचा = गुरु पलमें = डारै खोय = जिससे अनन्तों जन्मोंका जड़ाध्यासरूपी जीवोंपर पड़ा हुआ आवरण, सोई अध्यास-रूपी मूर्चा है। जिससे जन्म, मरण, गर्भवासमें पड़के जीव अनादि कालसे उस प्रवाहमें बहते चले आ रहे हैं। सो जन्म-जन्मान्तरोंका मूर्चा पारख-यन्त्रमें चढ़ायके हृदयमें सत्यज्ञानका प्रकाशकर पलमें अज्ञान, भ्रम, आसक्तिको जो खोय डारैं, मिटाय डारैं, सोई मुक्तिदाता सच्चे सद्गुरु पूज्य हैं॥

व्याख्या— हे मनुष्यो ! मुक्ति पानेके लिये गुरु तो ऐसा होना चाहिये कि, शिष्योंके भ्रम कल्पनादि सब बन्धनोंको हटानेमें समर्थ होवें। जैसे कि, जो शिकलीगर होता है, सो अनेकों वर्षोंतक जमीनमें पड़ा हुआ जङ्ग खाके मूर्चा लगा हुआ लोहाको भी शिकलीरूपी चक्कीमें रगड़-रगड़के मूर्चा-को हटायके साफ स्वच्छ लोहा या औजारोंको चमकता हुआ बनाय देता है। इसीप्रकारसे सद्गुरुको भी होना चाहिये। जीव अमर होनेसे अनन्तोंबार जन्म-मरणोंमें पड़कर जड़ाध्यासी हो गया है; सो उस अनादि प्रवाहरूप अध्यासरूप मूर्चाको जो जड़-चैतन्यका भेद लखाकर त्याग-ग्रहण, बन्धन-मुक्तिका रहस्य बताकर पारखदृष्टि खोलकर यथार्थ दर्शाय देवें, सोई पारखी सद्गुरु हैं। वे ही सद्गुरु जिज्ञासुको पलभर या क्षणमात्रमें पारखसे सब भेदको परखाकर भूल, भ्रम, अध्यासोंको मिटाय करके जीवन्मुक्त कर देते हैं ॥ २७३ ॥

सम्बध— अब यहाँ पाँचवाँ मसलामें गुरुवालोगोंका समाचार बतलाया गया है, सो जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ समाचार पराईत मसला ॥ ५ ॥ ❀ ॥

[५] मसलाः— राम नाम सार है * और सब लबार है ॥ २७४ ॥

अर्थः— (अन्योक्ति वाचक गुरुवालोगोंकी हाल-खबर उनका सिद्धान्त और कथनका समाचार, इस पराइत मसलारूप कहावतमें ग्रन्थकर्त्ताने दर्शाया है।) गुरुवालोग कहते हैं—

राम नाम = सार है = संसारमें सब सार-का-सार यही राम-नाम है। सो सगुण स्वरूपी 'राम' है और निर्गुणरूप 'नाम' है। ऐसा जानकर जो आत्माराम वा परमात्माका भजन-स्मरण करेगा, सो उसीका जीवन सफल हुआ और उसीका जन्म लेना भी सार है, ऐसा भक्तलोग कहते हैं।

और सब = और स्त्री, पुत्र, धन, घरादि तथा
लबार है = योग, जप, तपादि रामके नाम स्मरण किये बिना किया हुआ तो वह सब ही झूठा बेकाम है; और राम-नामकी याद बिना कहा हुआ सब कथन भी व्यर्थका मिथ्या बकवाद है। इसीसे और सब राम-नामके बिना लबार है, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंका कथन ऐसा है कि, परमतत्त्व-परमात्मा सर्वत्र सम-समान व्यापक अणु-रेणुमें रमा हुआ सो 'राम' है। "रमेतीतिरामः" वह आत्माराम निर्गुण-सगुण दोनों रूपमें है। जैसे कि कहा है:— "अगुण अरूप अलख अज जोई। भक्त हेतु सो परगट होई ॥" (रामायण) ॥ उस परमात्माका नाम 'राम' है। जगत्में राम-नाम ही एक सर्व श्रेष्ठ सार सिद्धान्त है; और तो सब संसारका पसारा खेल झूठा है। राम-नामको छोड़कर कही हुई सब वाणी लबार है; ऐसा वर्णन करके मनुष्योंको भ्रमा रक्खे हैं ॥ २७४ ॥

सम्बन्ध— अब इस बीसवाँ खण्डमें ११ चौपाई, और १ साखीमें वैरागी-भक्तोंके कथन तथा सिद्धान्तका स्पष्ट रीतिसे खुलाशा करके कहा गया है, सो जान लीजिये! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ बीस खण्ड ॥ २० ॥ ❀ ॥

१. सन्ध्या तर्पण नित नित कीजे * राम कृष्ण सुमिरन चित दीजे ॥ २७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब भक्त गुरुवा लोगोंके कथन दर्शाके कहते हैं— वे गुरुवालोग कहते हैं- हे भक्तो! तुमलोग सुगति पाना और स्वर्ग लोकमें जाना चाहते हो, तो इसप्रकारसे करो, कैसा करना? सो सुनोः—

सन्ध्या = त्रिकाल सन्ध्या वन्दन, गायत्री मन्त्रका जाप और सन्ध्या आरती करो; तथा—
तर्पण = स्वर्गवासी देवता लोगोंको और अपने मृत पितृयों (पितरों) के नामसे नित्यप्रति तर्पण करके उनको पानी दिया करो। जिसे देवतर्पण तथा पितृतर्पण कहते हैं, सो विधि पूर्वक करते रहना चाहिये।
नित नित = रोज-रोज स्नान, सन्ध्या, तर्पण, पूजा, पाठ, होम-हवनादि नित्य-कर्मको मन लगायके ठीक तरहसे—
कीजे = कर लीजिये! इसमें चूक मत कीजिये। कर्म पालन कीजिये, और कभी कर्म लोप होने मत दीजिये। तथा—
राम = भगवान् रामचन्द्रका नाम "सीताराम-सीताराम" की रटन और सदा राम-रामका जाप किया करिये। तथा—
कृष्ण = श्रीकृष्णचन्द्रके भजन "राधेकृष्ण-राधेकृष्ण, हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!" आदि नामोंका उच्चारण वा—
सुमिरन = जाप याद हमेशा राम-कृष्णके नाम-स्मरण करनेमें ही लगिये।
चित दीजे = श्रद्धा-भक्तिसे चित्त सुमिरणमें ही लगा दीजिये। इसी प्रकार मनको एकाग्र कीजिये! ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं— हे मनुष्यो! सनातन धर्म वेद-शास्त्रोंके मतको ही अपनाओ। उसमें कहे अनुसार त्रिकाल सन्ध्या करो, गायत्री मन्त्रका जाप करो, भजन-पूजन, कीर्तन रोज-रोज करो, और अपने स्वर्गवासी पिता, माता, पितामह आदिके नामसे नित्यप्रति तर्पण करो, और सालमें एक-दो बार तो भी श्राद्ध करो, जिससे पितृगण तुम्हें आशीर्वाद देके सुखी करेंगे। फिर भक्त बनके रामचन्द्र, कृष्णचन्द्रके या सीताराम, राधेश्यामकी नवधाभक्ति, नाम-स्मरण करनेमें चित्तको लगाओ। तब तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा, और तुम भुक्ति-मुक्ति पाओगे, ऐसा जानो इत्यादि प्रकारसे कहते हैं ॥ २७५ ॥

२. नहिं तो पारब्रह्म मन लावै * कर्म भरम सब दूरि बहावै ॥ २७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नहिं तो = यदि तुमसे ऐसी कर्म साधना हो नहीं सके, तब तो ऐसा करो कि—

पारब्रह्म = एक सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मामें ही

मन लावै = मनको लवलीन करके लगाइये। आत्मभाव दृढ़ करिये। सब तरफसे मनको हटाके ब्रह्ममें ही मनको लगाना चाहिये।

कर्म भरम = सब दूरि = बहावै = } और अद्वैत ब्रह्मनिष्ठामें ही टिक करके सब द्वैत कर्मोंकी भ्रान्ति दूर करके छोड़ देवे। यानी एक लक्ष्य करके अनन्य भक्ति-भावमें रहकर और सब कर्मोंके भ्रमको दूर करके बहा देवे वा छोड़ देवे॥

व्याख्या— यदि इस प्रकारकी साधना तुमसे हो नहीं सकेगी, ऐसे कर्म करनेमें कठिनाई मालूम पड़े, तब तो ऐसा करो कि, सबसे सहज एक परब्रह्म-परमात्मामें ही एकनिष्ठ होके मनको लगाओ; बाकीके सब कर्मोंकी भ्रान्ति दूर करके बहा दो। यानी और सब साधनोंको भ्रमरूप जानके त्याग कर दो, परब्रह्ममें ही चित्त एकाग्र करके लगाये रक्खो॥ २७६॥

३. बूझि विचार कहाँलगि करना ❀ भजन करो जाते होय तरना॥ २७७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंका उपदेश ऐसा है कि—

बूझि विचार = कहाँ लगि = करना = } हे भाई! सत्सङ्गमें लगके जड़-चेतन आदिके निर्णय ज्ञानको समझ-बूझकर क्या करोगे? ज्ञानके विचारका तो अन्त ही नहीं है, फिर ज्ञान विचार तो भी कहाँतक करना? उसमें तो कुछ हासिल ही नहीं होता है, और कुछ रस भी नहीं मिलता है, फिर उसमें माथापच्ची कहाँतक करते रहना? इससे यह बूझ-विचारके मार्गको छोड़कर भक्ति मार्गमें लगो।

भजन करो = जाते होय तरना = } सर्व समर्थ भगवान्का भजन, पूजन, भक्ति, नाम-स्मरण किया करो। अरे भाई! कैसे भी करके भवसागरसे पार उतरना वा मुक्त होना ही तो है। फिर सगुण परमात्माके चाहे जिसरूपको इष्ट मानके ईश्वरके भजन करो, जिससे कि, तुम सहज ही भवसागरसे पार उतर जाओगे। यही मार्ग सरल-सरस सुखद है, ऐसा जानलो!॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं— सूखा नीरस ज्ञानमार्गको बूझ-विचारके तो भी क्या करना? कहाँतक विचार करना? सब कुछ करनेका सार मतलब तो आखिरमें मुक्ति ही पाना है। फिर भगवान्के किसी भी रूप वा मूर्तिको इष्ट मानके ध्यान और भजन करो, जिससे आरामसे वा सुगमतासे सहज ही भवसागर पार उतरनेको हो जायगा। अरे भाई! सावधान होओ! अब तो, भी सब ज्ञानके साधनोंको छोड़के एक भगवान्का भजन ही करते रहो, जिससे जो भवसागरसे पार उतरनेका है, सो सहजमें ही तुम भव-जलसे पार उतर जाओगे॥ २७७॥

४. वाक्य ज्ञान कोई पार न पावै ❀ आपै आप अनुभव बनि आवै॥ २७८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवा लोगोंका कथन ऐसा है कि—

वाक्य ज्ञान = कोई पार = न पावै = } शुष्क वेदान्त वाक्यके नीरस ज्ञानके तर्क-वितर्कसे तो कोई भी पार पा नहीं सकते हैं। फिर उससे भवसागरसे पार कोई कैसे पावेगा? भक्तिके विना सब वाक्यज्ञान व्यर्थ है। उससे निस्तार हो नहीं सकता है।

आपै आप = अनुभव = बनि आवै = } जो कोई भगवान्का नाम-स्मरण करके भक्तिमें लवलीन हो रहेगा, फिर परमेश्वरकी दयासे उस भक्तको अपने-आप ही हृदयमें ज्ञान प्रकाश होके आत्मसाक्षात्कारका अनुभव हो जायगा; ऐसे आप-ही-आप ज्ञानका अनुभव बनके सन्मुख आ जाता है। अतःभक्ति भावमें ही प्रेम पूर्वक लगे रहना चाहिये॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं— भक्ति मार्ग जो है सो, सरस, मीठा, सहज और सुखदाता है।

और ज्ञानमार्ग नीरस, कड़ुवा, महान् कष्टदायी, कठिन साधनावाला है। और वाक्यज्ञान=जो वाणीका वाच्यज्ञान है, सो उसका पार तो कोई पा ही नहीं सकते हैं। बड़े-बड़े पण्डित, ज्ञानी उससे हार बैठे। इससे वाक्यज्ञानमें पड़नेका कोई काम नहीं है। सिर्फ भक्ति-भजन करते-करते जब परमेश्वर प्रसन्न हो जायेंगे, तब उनकी दयासे आप-ही-आप ज्ञानका अनुभव, आत्मस्वरूपका साक्षात्कार हो जाता है, यानी ऐसा बनाव आप ही हो जाता है। इसकारणसे सबसे बड़ा भक्तिमार्ग है, इसीमें लगे रहो; ऐसा बतलाये हैं ॥ २७८ ॥

५. ताकी आश रहो लौलाई ❀ अनेक जन्म सिद्धि तिन पाई ॥ २७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवालोगोंका कथन दर्शा रहे हैं, भक्तलोग कहते हैं—

ताकी आश = हे मनुष्यो ! उस परमेश्वरको
रहो लौलाई = ही एकाग्र मनसे ताको या उसे देखके एक लक्ष्य करो, उसके कृपादृष्टिकी आशा-भरोसासे भक्ति भावनामें ही लौ = प्रेम लगाये रहो, दृढ़ हो रहो, भक्तिमें लवलीन हो जाओ।

अनेक जन्म = इसप्रकारसे जो सदा ईश्वरकी
सिद्धि तिन = भक्तिमें ही लगे रहेंगे, सो अनेकों
पाई = जन्मके पुण्य प्रताप उदय होके किसी एक नर जन्ममें सम्पूर्ण सिद्धि पाय-के मुक्त हो ईश्वरमें ही मिल जायेंगे। कोई अनेकों जन्मोंके बाद सिद्धि पाके मुक्त होते हैं॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं कि, हे मुमुक्षुओ ! परमेश्वरको ही ताककर उसीके आशा-भरोसा लगाके प्रेमसे भक्तिमें लौ लगाये रहो। इससे अनेक जन्मोंमें तुम सिद्धि पा जाओगे। तहाँ कहा है:— "अनेक जन्म संसिद्धि ततोयाति परांगतिम् ॥" (भ० गीता)॥ अनेकों जन्मके शुभ वासना, शुभ संस्कार होनेपर ही कोई मनुष्य परमगतिको पाते हैं। उन कई भक्तोंने अनेक जन्मोंके साधनोंसे सफल होके अभी सिद्धि प्राप्त किये हैं। ईश्वरके दर्शन पाके कृतार्थ भये हैं। इसी प्रकारसे तुमलोग भी भक्ति मार्गमें ही लगे रहोगे, तो अनेकों जन्मोंमें सिद्धि लाभ करके मोक्ष फल पा जाओगे, ऐसा जानो ॥ २७९ ॥

६. तीरथ वर्त करो चित लाई ❀ पाप कटै पुण्य होय सहाई ॥ २८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन है—

तीरथ = हे भक्तो ! गङ्गा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, गोमती आदि तीर्थोंमें जाके स्नान वा दान करो, तीर्थयात्री बनो, तीर्थवासी हो जाओ। और—
वर्त = एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या, रामनवमी, जन्माष्टमी, प्रदोष इत्यादि व्रत विधि पूर्वक—
करो = किया करो; और उपवास करो, धर्म-कर्म करो।

चित लाई = तीर्थ, व्रत, पूजा, पाठ आदिजो कुछ भी करो, सो ईश्वरमें ही चित्त लगायके किया करो। निष्काम भक्तिमें चित्तको लगाओ।
पाप कटै = इससे तुम्हारे सब जन्मोंके पाप-
पुण्य होय = रूपी मल कट-कटकर नाश हो
सहाई = जायेंगे; और पुण्य कर्म तुम्हें स्वर्ग प्राप्ति, ईश्वर प्राप्तिमें सहायता करेगा, और पुण्य प्रतापकी सहायतासे ही फिर तुम मुक्त भी हो जाओगे ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं— अतएव चित्त लगायके धर्म-कर्म, पुण्यकर्म किया करो। अठसठ तीर्थोंकी स्नान-परिक्रमा करके दान-पुण्य करो। फिर चारों धामोंका दर्शन-पर्शन करो। और व्रत, उपवास किया करो। चान्द्रायण, किच्छ्रचाद्रायण आदि व्रत रक्खो। तथा पूजा, पाठ, होम, हवन, बलिवैश्वदेव ये सब चित्त लगायके करो। नित्य, नैमित्य, काम्य, प्रायश्चित्त और निष्काम, ऐसे कर्मोंके पाँच भेद हैं; उन सबोंको किया करो। इससे तुम्हारे सब जन्म-जन्मान्तरोंके पाप कटके नाश हो जायेंगे; और पुण्य प्रतापकी सहायतासे तुम सदा सुखी हो जाओगे ॥ २८० ॥

७. भजहु सदा लीला अवतारा ❀ यह पद दुर्लभ है संसारा ॥ २८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन है—

भजहु सदा = हे भक्त लोगो ! तुमलोग
लीला अवतारा = सदा-सर्वदा परमेश्वरका ही भजन करते रहो, और भगवान्‌के साकार चौबीस (२४) अवतारोंकी जीवनीकी लीला, चरित्रोंका गायन, कीर्तन, भजन सदा करते रहो; अवतारोंकी लीलाको ही कहते-सुनते रहो। और—

यह पद = यह मनुष्य जन्म पाना और
दुर्लभ है = ईश्वरकी भक्तिपदमें मन लगना,
संसारा = संसारमें बड़ा ही दुर्लभ है। किसी भाग्यवान्‌को ही यह पद मिल सकता है, सबको नहीं मिल सकता है; इसीसे यह पद पाना बड़ा दुर्लभ है ॥

व्याख्या— इसलिये धर्म-कर्म करते हुए सदा-सर्वदा भगवान्‌के भजन चौबीस (२४) अवतारोंकी लीला गुणानुवाद गायन, कीर्तन, भजन करते रहो। यह भक्तिका पद संसारमें बड़ा दुर्लभपद है। कोई विरलेको ही ईश्वरकी दयासे भक्ति मिलती है, ऐसी महिमा गुरुवालोग बतलाते हैं ॥ २८१ ॥

८. सोई तुम्हार मुक्तिको मूला ❀ मुक्तिहु नाहिं ताहि समतूला ॥ २८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन है—

सोई तुम्हार = हे मित्र ! तुम्हारी मुक्तिका
मुक्तिको मूला = मूल तो सोई ऊपर कहे हुए भगवान्‌की अनन्य नवधा भक्ति है। तुम्हारे हितके लिये ही मैंने तुम्हें यह बात बता दिया हूँ ! और भक्तिका पद तो बहुत ही बड़ा श्रेष्ठपद है। तुम्हारी मुक्तिका मूल कारण सोई खास करके भक्ति ही है। भक्तिसे ही मुक्ति मिलती है। किन्तु, असलमें बात तो ऐसी है—

मुक्तिहु नाहिं = अरे भाई ! सुनो ! चारों
ताहि समतूला = मुक्ति भी मिलकर भक्ति पदकी बराबरी नहीं कर सकती है, इसीसे तो उससे बढ़ करके और कौन हो सकता है ? सच्चा भगवद्‌भक्त तो ईश्वरकी भक्ति, निष्ठा, प्रेमको छोड़कर कभी मुक्ति भी नहीं चाहता है। इससे मुक्तिसे भी बढ़के भक्तिका दर्जा ऊँचा है, सो जानो ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! सोई ईश्वरकी अनन्य भक्तिपद ही तुम्हारी मुक्तिका मूल कारण है। तुम्हारेपर बड़ा प्रेम होनेसे यह मूलपद तुम्हें मैंने बता दिया हूँ। अरे भाई ! भक्तिका दर्जा तो बहुत भारी ऊँचा है। क्योंकि, मुक्ति भी उसकी बरोबरी नहीं कर सकती है। भक्तिके आगे मुक्ति हलुकी वा तुच्छ है। इसलिये सच्चे भक्तलोग तो भगवान्‌की भक्ति छोड़कर कदापि मुक्तिकी इच्छा ही नहीं करते हैं। तहाँ तुलसीदासजीने कहा है; सुनियेः—

दोहाः— "अर्थ न धर्म न काम रुचि। गति न चहौं निर्वाण ॥ जन्म जन्म सियरामपद। यह वरदान न आन॥"

इसकारणसे सदा ईश्वरकी भक्तिमें ही मनको लगाये रहना चाहिये, ऐसा गुरुवालोग कहते हैं ॥२८२॥

९. निशि दिन पाठ करहु मम गाया ❀ रामका अन्त काहू नहिं पाया ॥ २८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवालोगोंके कथन दर्शा रहे हैं। गुरुवालोग कहते हैं—

निशि दिन = हे भक्तो ! दिन-रात तुमलोग
पाठ करहु = पाठ वही करो, अथवा याद
मम गाया = वही करो, जो कि, हमने तुम्हें उपदेश दिया है या हम जो कुछ गाते हैं, कहते-सुनते, भजन-कीर्तन करते हैं, सो वही गीता, रामायण, भागवत, उपनिषद् आदिका नित्यप्रति पाठ किया करो, और कृष्णजीने भी अर्जुनको ऐसे ही उपदेश दिया है।

रामका = निराकार, निर्गुण, जगत्कर्त्ता,
अन्त काहू = सर्वव्यापक, आत्मारामका
नहिं पाया = अन्त, भेद, पता, थाह तो किसीने भी आजतक पाये ही नहीं। वेद भी "नेति-नेति" कहिके रह गया है। वह

बेअन्त, अगम, अथाह है। अतः वेद प्रमाणसे चलना ही मनुष्योंका कर्त्तव्य है, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं कि, जैसे कृष्णजीने अर्जुनको कहा है कि, हे अर्जुन ! तू मेरा कहा हुआ वचनको पालन कर, उसे मान, यादकर या पाठकर। तैसे ही हे भक्त जनो ! तुम लोग भी हमारी गायी हुई या कही हुई वाणीका पाठ रोज करो; याद करो। गीता, भागवतादि जो हम पढ़ते हैं, सो उसकी कथा हमारेसे रोज सुना करो। अरे भाई ! रामका अन्त तो आजतक किसीने भी पाया ही नहीं है, वह बेअन्त, निर्गुण, निराकार है, ऐसा जानके अन्त पानेकी इच्छा त्याग दो ॥ २८३ ॥

१०. ब्रह्मादिक जेहि पार न पाई ❀ रामकी माया अपरबल भाई ! ॥ २८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन है—

ब्रह्मादिक = ब्रह्मा, विष्णु, महेश, व्यास, वशिष्ठ, जेहि पार = नारदादि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि न पाई = हुए, उन सबोंने भी जिस निराकार परमात्माकी थाह, पता या पार नहीं पाये या पार पा नहीं सके। इससे उसको अपार, अगम, अगोचर, मन, बुद्धि, वाणीके परे ठहराये हैं; सोई जगदाधार परमप्रभु परमात्मा है। उसीकी शरण होना चाहिये।

रामकी माया = हे भाई ! भक्तजनो ! सत्सङ्गी अपरबल भाई ! = लोगो ! उस परमेश्वर रामकी आदिशक्ति महामायाका बल वा शक्ति भी अपार है। वह बड़ी जबर्दस्त, दुर्धर्ष है। उसको कोई जीत नहीं सकते हैं, बड़े-बड़े शक्तिशाली उस मायके आगे हार गये। ईश्वर ही दया करके बचावे, तो ही बचाव होगा ॥

व्याख्या— ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि बड़े-बड़े समर्थ ऋषि-मुनि हुए हैं। उन्होंको भी रामका अन्त तक पता नहीं लगा; और रामकी माया बड़ी जबर्दस्त है। जिसको कि, ब्रह्मादिकोंने भी पार नहीं पाये, तो इतर तुच्छ जीव क्या पार पा सकेंगे ? हाँ ! जिस भक्तके ऊपर रामजी कृपा करेंगे, वह उनकी मायासे सहज ही बच जायगा ॥ २८४ ॥

११. रसना राम कृष्ण रट लइये ❀ जाते चार पदारथ पइये ॥ २८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन है—

रसना = इसवास्ते हे भावुक भक्तो ! राम कृष्ण = मुख-जिभ्यासे सदा राम-कृष्ण- रट लइये = का नाम स्मरण करनेमें 'हरे राम', 'हरे कृष्ण', इस तारक मन्त्रका रटन, जाप, भक्ति करनेमें तन, मन, वचनोंको एक करके लगाइये, उसीमें जोड़िये। अर्थात् हे रसनारूपी जीवो ! तुमलोग सदा भगवान् राम-कृष्णादिका नाम रटन-स्मरण करनेमें मनको एकाग्र करके लगाओ। 'राम-नाम' को जपते रहो। और—

जाते चार = जिससे भक्ति करके पुण्योदय पदारथ = होगा, तब ईश्वरकी कृपासे पइये = तुम्हारी सब मनोकामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी। उसीसे अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष, ये चार पदार्थ भी सहजमें ही तुम पा जाओगे। सो अभी संसारमें तीनों फलोंका रस सुख भोगोंको पाकर फिर अन्तमें मुक्ति भी पा जाओगे। इसीसे नाम-स्मरण करनेमें रट लगाये रहो, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं— इसकारणसे हे भक्तो ! मुख-जिभ्यासे सदा "हरे राम-हरे राम, राम-राम, हरे-हरे ! हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे" यह तारक मन्त्र राम-कृष्णका नाम स्मरण करनेमें मन लगाइये। जिससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, यह चार पदार्थ तुम्हें प्राप्त हो जायगा। फिर तुम्हारा जीवन सुखमय हो जायगा, चार पदार्थ पाकर तुम निहाल हो जाओगे ॥ २८५ ॥

साखीः— ब्रह्महीको स्वरूप है * माया ब्रह्म दोउ एक ॥
[३०] सीता राम सुमिर लेहु * भजनका करहु विवेक ॥ २८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब बताते हैं, देखिये ! गुरुवालोगोंने और कहा है—

ब्रह्महीको = रामजी जो हैं, सो साक्षात् ब्रह्मके स्वरूप है = ही साकार स्वरूपमें प्रगट हुए हैं; भक्तोंके उद्धारके लिये ब्रह्म ही रामचन्द्रके स्वरूपमें अवतार लिये थे। और—

माया = ब्रह्मकी आदिमाया जगज्जननी सीताजीके स्वरूपमें प्रगट हुई हैं; तथा—

ब्रह्म = ब्रह्म निर्गुण-निराकार है, उसीके आधारमें ही आदिशक्ति माया रहती है। और वास्तवमें विचारसे देखा जाय, तो उसमें कोई खास भेद तो नहीं है।

दोउ = माया-ब्रह्म, सीता-राम, ये दोनों ही—

एक = अभिन्न एक ही स्वरूप है। सिर्फ साकार वा निराकाररूपमें वे दो कहलाते हैं, किन्तु, स्वरूप दोनोंका एक ही है।

सीता राम = इसकारणसे हे भक्त सज्जनो !
सुमिर लेहु = और सब बातोंको छोड़ करके निशि-दिन "सीता-राम, सीता-राम"का रटन, स्मरण, नाम जप कर लिया करो। इसी एक सुमिरनसे ही जीवोंका बेड़ा पार हो जायगा। इसीसे—

भजनका = राम-नामके भजन-भाव कीर्तन,
करहु = गायन, पूजा, पाठ किया करो।
विवेक = और भजनका ही विवेक कर लिया करो। संसारमें रामका भजन ही एक सार है, और सब असार है। ऐसा जानकर जो भजनमें लगते हैं, सोई विवेकी हैं, ऐसा गुरुवालोग कहके समझाते हैं ॥

व्याख्या— भक्त गुरुवालोग कहते हैं— ब्रह्मका मुख्य स्वरूप तो निराकार है। परन्तु, भक्तोंकी रक्षा करके दुष्टोंके संहार करनेके वास्ते जो रामचन्द्रजीका अवतार हुआ, सो खास सगुणरूपमें ब्रह्म-परमात्माके ही स्वरूप हैं; और जानकी माता सीताजी आदिमायाके स्वरूप हैं। इसलिये 'माया' और 'ब्रह्म' तथा 'सीता' और 'राम' इन दोनोंमें कोई भी कुछ फरक नहीं है, वे दोनोंके-दोनों एक ही स्वरूप हैं। इसवास्ते सीता-रामके नामका सुमिरण कर लो, उनके ही भजनका विवेक करो; और सब तरफसे मनको हटाकर, सब बातोंको छोड़कर नाम-स्मरणमें ही लगे रहो। इसीसे ही तुम्हारा कल्याण हो जायगा; ऐसा वैरागी गुरुवालोग कहते हुए समझाते हैं ॥ २८६ ॥

सम्बन्ध— छठवाँ मसलामें सत्य निर्णयकी बात बतायी गयी है, सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णय मसला ॥ ६ ॥ ❀ ॥

[६] मसलाः— कबीरका गाया गावैगा * अजगैबका धक्का पावैगा ॥
कबीरका गाया बूझैगा * तो तीन लोक सब सूझैगा ॥ २८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यह सत्य निर्णयके चुटकुला या कहावतमें दृष्टान्त देके सिद्धान्तका फैसला करते हैं—

कबीरका = योगी, ज्ञानी, भक्त आदि गुरुवालोगोंका—

गाया = गाया हुआ वा कथन, उपदेश किया हुआ, वेद-शास्त्रादिके वाणी-वचनोंको जो कोई—

गावैगा = कहेगा, सुनेगा, गावेगा, ईश्वरादिका पुकारा करेगा और कल्पनाको लेवेगा—

अजगैब-का धक्का पावैगा = सो नरजीव आश्चर्यमय, मिथ्यारूप शून्य आकाशवत् व्यापक ब्रह्मभ्रमका घाट या स्थिति-ठिकानाको प्राप्त होगा, तो जड़ाध्यासी हो कर शून्य गर्भवासमें ही चला जावेगा। अर्थात् जहाँ जानेका मार्ग ही ठीक नहीं है, ऐसा आश्चर्यकारक ब्रह्मका धक्कारूप किनारामें पड़ूँचेगा।

कबीरका= गाया= बूझैगा= } और जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगके भ्रमिक गुरुवालोगोंके गाये हुए, वेद-शास्त्रोंके वाणी-मतको सत्य निर्णयसे परखकर गुरुमुख द्वारा सत्यन्यायसे बूझ लेगा वा समझ लेगा—

तो तीन लोक= सब सूझैगा = } तब तो उस जिज्ञासुको त्रिगुणी मनुष्योंके कर्म, उपासना, योगादि जाल तथा काम, क्रोध, मोह, तत्त्वमसि, काल, सन्धि, झाँईं आदि सबोंकी कसर-खोट पारखदृष्टिसे दिखाई देगा; और सबसे परे निजस्वरूपका भी बोध हो जायगा ॥

व्याख्या— इस मसलामें ग्रन्थकर्त्ता निर्णयकी बातका फैसला करते हैं। 'कबीर' कहिये जीवको सो कायामें आसक्त होकर विषय और कल्पनामें पड़ा है। वही मनुष्य गुरुवारूप भ्रमिक बना। उन गुरुवाओंने ऐसा गाया वा कहा कि, यह जगत्को उत्पन्न करनेवाला, कोई सर्व शक्तिमान् परमेश्वर है; उसीको ब्रह्म भी कहते हैं। उसको प्राप्त हुए बिना जगत्का बन्धन छूट नहीं सकता है। इसकारणसे वेद, शास्त्र, पुराणादिके प्रमाणसे कर्म, भक्ति, ज्ञानमार्गोंसे चलना चाहिये; और उसी मार्गके उपदेशक गुरुकी आज्ञाका पालन करना चाहिये; इत्यादि प्रकारसे गुरुवालोगोंके गाये हुए उपदेशको जो मनुष्य अन्धेकी नाईं गावेगा, ठहरावेगा, उसे ही सत्य मान करके धारण करेगा वा प्रचार करेगा; सो महान मिथ्या भ्रम, धोखेमें पड़के बड़ा भारी धक्कम-धक्काकी चोट पावेगा। अथवा ठिकाना, घाट, किनारा, बन्दरगाहको भी धक्का कहते हैं। सो यहाँपर आश्चर्य तो यह है कि, महाशून्यको ही ब्रह्म स्थिति समझ करके आकाशवत् व्यापक परमतत्त्व-परमात्मा ठहराये हैं। सो गुरुवालोगोंका आखिरी धक्का या घाटरूप स्थिति-ठिकाना परब्रह्मरूप महा शून्यकी प्राप्ति कहा है। यही धोखा पायेंगे, भूलेंगे, भटकेंगे। इससे उन गुरुवालोगोंका सङ्ग छोड़कर जो जिज्ञासु मनुष्य पारखी सद्गुरुकी शरण और सत्सङ्गमें आकर, कबीर=गुरुवालोगोंके गाये हुए कथन वेद, शास्त्र, पुराणादिकी वाणी सिद्धान्तोंको अच्छी तरहसे सत्यनिर्णयसे परख करके गुरुमुख द्वारा समझ-बूझ लेंगे, तो उनको तीन लोककी कसर-खोट तथा बन्धन सब सूझ पड़ेगा। यानी त्रिगुणी मनुष्य सोई तीन प्रकारके लोग हैं, जैसेः— कामी, क्रोधी, मोही। रजोगुणी, सत्त्वगुणी, तमोगुणी। योगी, ज्ञानी, भक्त। तत्, त्वं, असि। काल, सन्धि, झाँईं; इत्यादि उन तीन-तीन प्रकारके जालोंमें अरुझे हुए भ्रम-चक्रमें नाचनेवालोंका सब तमाशा, विकारको पारखदृष्टिसे सद्गुरुकी दयासे सो सब दिख पड़ेगा। और उसका भेद यथार्थ जानने, समझने, बूझनेमें आवेगा; यही सूझना या दिखाई देना है ॥ २८७ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक साखीका प्रमाण दिया है, सो जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— २४६ ॥ ❀ ॥

साखीः— गावै कथै विचारै नाहीं * अनजानेका दोहा ॥

[३१] कहहिं कबीर पारस परसे बिना * जस पाहन भीतर लोहा ॥ २८८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें योगी, ज्ञानी, भक्त आदि मनुष्य लोग—

गावै=वेद-वेदान्त, उपनिषद्, शास्त्रोंकी वाणीको गाते भी हैं, कहते-सुनते भी हैं। कोई अनेक तरहके भजन, कीर्तनको गायन करते हैं। और—

कथै=हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओंमें गद्य, पद्योंमें छन्द-प्रबन्धोंका कथन पुस्तकोंकी रचना भी खूब करते हैं; और जगत्कर्त्ता सुख-दुःखोंका दाता कोई परमेश्वर ठहरायके कल्पनामें ही पड़े हैं। और—

विचारै= नाहीं= } जड़-चैतन्य स्वरूपका विचार, सत्यासत्यका निर्णय तो वे करते ही नहीं। हम जिस ईश्वरको मानके स्तुति गाते, वाणी कथन करते हैं, सो क्या वस्तु है? यदि मनुष्य उसे न ठहराये, तो ईश्वरका

कहींपर कोई चिह्न वा अस्तित्व ठहरता ही नहीं, तो वह सत्य कैसे होगा ? ऐसे विचार विवेक तो वे कुछ नहीं करते हैं। और फिर—

अनजाने-का दोहा = जिसको जगत्कर्त्ता ब्रह्म-परमात्मा माना है, सो उसका वास्तविक स्वरूप तो आजतक किसीको भी जाननेमें नहीं आया; अतः अनजाने ही रहि गया। इसलिये द्वैत-अद्वैत, साकार-निराकार या सगुण-निर्गुण, जगत्-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष इत्यादि भ्रमिक गुरुवा लोगोंने दुविधा वा संशयसे दो-दो प्रकारसे कहे, ये भी है, ओ भी है; परन्तु, सो उनका ब्रह्म तो भ्रम है, ये बात उन्हें जाननेमें नहीं आई; इसीसे दुविधामें पड़के निजस्वरूपको नहीं जाने, सो अनजाने ही रह गये।

कहहिं कबीर = सद्गुरु बन्दीछोर पारखप्रकाशी श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, हे मनुष्यो ! सुनोः—

पारस परसे बिना = पारसके स्पर्श हुए बिना जैसे लोहा मिट्टी वा पत्थरमें पड़ा-पड़ा खराब हो जाता है। तैसे ही सत्यनिर्णय पारख स्वरूपका अपरोक्ष बोध स्थिति प्राप्त हुए बिना, यह नरजीवोंकी कभी मुक्ति हो नहीं सकती है।

जस पाहन भीतर लोहा = जैसे पहाड़ भीतरका लोहा निकम्मा हो जाता है; तैसे ही संसारमें सब जीव मनकी अनेक मानन्दियोंमें पड़े हुए खानी-वाणीके जड़ाध्यासी बनके कर्त्तव्यसे खराब हुए, ऐसे नष्ट होकर चार खानी गर्भवासमें पड़कर दुःख पाते हैं। अब चाहे वेद-शास्त्रोंको गावें या कथन करें वा योग समाधि करें, नाना साधनाएँ करें, तोभी निजस्वरूपका सत्य पारखबोध न होनेसे संसारमें व्यर्थ आयु बिता करके कर्म अध्यासवश जीव चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं। कभी उससे छुटकारा नहीं पाते हैं, बिना पारख॥

व्याख्या— इस साखीमें यथार्थवक्ता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैंः— चाहे तो वेद-वेदान्त, शास्त्रोंको गावें, चाहे नाना वाणी ग्रन्थोंका कथन करें, कवि-कोविद होवें, परन्तु, पारख स्वरूपका विचार न होनेसे उनका किया-कराया सब व्यर्थ हो जाता है। जैसा किसीने एक दोहा फारसी आदि अन्य भाषामें कहा, तहाँ कहनेमें तो खूब राग अलापा, किन्तु, वह दोहाका अर्थ विचार तो किसीको जानने-समझनेमें नहीं आया। सो बेकारका बकवाद वा अनर्थसे कोई लाभ नहीं हुआ। इसीप्रकारसे गुरुवालोग पण्डितोंने वेद-शास्त्रादिकी वाणी तो खूब गाये, उपदेश भी बहुत सुनाये और कथन भी वाणी-कल्पनाका खूब किये, एक कर्त्ता परमेश्वरको ठहरायके उसको मिलनेके लिये भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना साधनाएँ भी किये, परन्तु, धोखेमें जायके पड़े। क्योंकि, वे लोग सत्य-असत्य, जड़-चैतन्यका विचार तो कुछ करते ही नहीं; सर्व व्यापक आकाशवत् परिपूर्ण परब्रह्मको जो माने हैं, सो 'अनजानेका दोहा' है। विचार करिये ! एक तो आकाश शून्य पोल है, फिर वैसे ही दूसरा ब्रह्म आके उसमें कैसे घुस सकेगा ? निर्गुण-निराकार, निरञ्जन कोई वस्तु ही नहीं है। फिर उससे जगत् कैसे उत्पन्न हो सकेगा ? अतएव ब्रह्म क्या है कि, नरजीवोंका मिथ्या भ्रम है, सो आजतक किसीको भी ब्रह्मके सत्य स्वरूपका बोध नहीं हुआ, इसीसे दुविधामें पड़कर दो-दो तरहके सिद्धान्त कहे हैं। ऐसे अनजानेका दोहारूप ब्रह्मसे किसीका कल्याण होनेका नहीं। सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने यहाँपर कहा है कि, पारसमणिके स्पर्श हुए बिना लोहा पहाड़ोंमें चाहे हजारों वर्ष पड़ा रहे, तो भी वह कभी सुवर्ण होनेका नहीं। बल्कि जङ्ग खायके खराब ही हो जायगा। इसी तरहसे पारखी सद्गुरु द्वारा पारख बोधकी प्राप्ति हुए बिना, नरजीव योग, ध्यान, ज्ञान, भक्ति, तीर्थ, व्रत, कथा, कीर्तन, कथन, उपदेशादि चाहे जितनी साधनाएँ मिहनत करें, उससे किसीकी मुक्ति होनेकी नहीं। क्योंकि, यह संसार सोई पहाड़ है; नाना प्रकारकी मन-मानन्दी सोई मजबूत डबल पत्थर हैं। लोहेकी नाईं अज्ञानी जीव बने हैं, और तहाँ खानी-वाणीके आवरण पड़े हैं। जड़ाध्यासी जीव

वाणी-कल्पना, अनुमान, और विषयादिमें चाहे स्थूल-सूक्ष्म किसीरूपसे भी पड़े रहें, बिना पारख चारखानीके दुःख आवागमन गर्भवाससे वे बच नहीं सकते हैं ॥ २८८ ॥

सम्बन्ध— अब एकईसवाँ खण्डमें ८ चौपाई, और ४ साखियोंमें सुरति संसारमें फैलके जीव किस-किस प्रकारसे दुःखी हो रहे हैं, सो कहा है; ऐसा जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ एकईस खण्ड ॥ २१ ॥ ❀ ॥

१. सुरति समानी सब संसारा * उत्पति परलय भरम अपारा ॥ २८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सुरति समानी = लक्ष्य, वासना, सुर्ता, प्रेम, सब संसारा = याद, इच्छाको 'सुरति' कहते हैं। सो सब मनुष्योंकी वासना संसारके पञ्च विषय और वाणी कल्पनाओंमें ही समा रही है वा फैल रही है। कोई संसारमें सर्वत्र व्यापक, एक परमेश्वर मानके उसमें सब कोई लक्ष्य लगा रहे हैं। और—

उत्पति परलय = उसी कल्पित परब्रह्मसे भरम अपारा = आदिमें जगत्की उत्पत्ति हुई, और अन्तमें प्रलय होनेको मानके तथा ब्रह्मको अपार मानकर महा भ्रममें पड़े हैं। उसी खानी-वाणीकी अनेकों भ्रम-वासनावश जीव चार खानीकी अनेक योनियोंमें जाके जन्म-मरणमें पड़े हैं ॥

व्याख्या— संसारमें नर जीवोंका लक्ष्य या वासना विशेष करके स्त्रीमें भग-भोगादि विषयोंकी तरफमें लगा हुआ आसक्त हो रहा है। उसी वासनावश सब जीव जन्म-मरण, गर्भवासके चक्रमें अनेकों दुःखोंमें पड़े हैं। और कोई गुरुवालोग दूसरी तरफ संसारके कर्त्ता सब जगत्में परिपूर्ण परमात्माकी कल्पना करके उसमें सुरति समाय दिये हैं। वे कहते हैं कि, ईश्वरकी इच्छासे ही जगत्का उत्पत्ति-प्रलय होता है। ऐसे अपार ब्रह्मकी भ्रान्तिमें पड़कर वे जीव आवागमनोंमें पड़े और पड़ रहे हैं ॥ २८९ ॥

२. बिना शब्द सो दीसत नाहीं * दिन दिन संशय अधिक समाहीं ॥ २९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बिना शब्द = सो दीसत = नाहीं = ब्रह्मको सत्य अवाच्य माने हैं, सो तो कुछ दिखाई नहीं देता है। परन्तु, भ्रमसे ब्रह्मको मान रहे हैं, सो पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयका उपदेश सारशब्दका बोध श्रवण-मनन हुए बिना, भ्रम धोखा कल्पना किसीको दिखाई नहीं देता है या परखनेमें नहीं आता है। इसी कारणसे जीव सब बिना समझके—

दिन दिन = संशय अधिक = समाहीं = भ्रमिक हो, दिनोंदिन ज्ञानी अज्ञानी सब कोई अधिकाधिक संशय ग्रसित हो-होकर चौरासी योनियोंमें जाके समाते हैं, हंस पदसे गिर जाते हैं ॥

व्याख्या— अनिर्वाच्य माना हुआ ब्रह्म, सो तो किसीको दिखता ही नहीं। परन्तु, अत्यन्त ज्यादा ही भ्रम सन्देह बढ़के दिनोंदिन भ्रम दृढ़ होके वह भ्रम हृदयमें समाता जा रहा है। सो पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयके सारशब्द गुरुमुख वाणीसे यथार्थ बोध हुए बिना परखने-समझने या देखनेमें नहीं आता है। इसीसे दिनोंदिन मनुष्य सब संशय, अध्यास ग्रसित होके अन्तमें गर्भवासमें जाके समाते हैं ॥ २९० ॥

३. तासु हेत बहु शब्द उचारा * जाते होय जीव निरुवारा ॥ २९१ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

तासु हेत = बहु शब्द = उचारा = इसवास्ते जिज्ञासु-मुमुक्षु नर जीवोंके हित-कल्याण या मुक्तिके निमित्त सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने तथा तत्पश्चात् पारखी सन्तोंने भी वाणी-खानीका निर्णय करके शब्द जालोंको परखानेके वास्ते बहुत ही सारशब्दका निर्णय वर्णन उच्चारण करके सत्य उपदेश दिये हैं, तथा सारासारको परखाये हैं। और—

जाते होय = जीव = निरुवारा = जिस गुरु-उपदेशको ग्रहण करके धारण करनेसे जड़-चेतनका भेद सत्य निर्णयसे जानकर नर जीवोंकी मुक्ति भी हो जाती है। जिससेकी जीव सदाके लिये बन्धनोंसे छूट जाते हैं॥

व्याख्या— सत्यशब्द गुरु-निर्णय सत्यन्यायके बिना मनुष्योंके भ्रम, संशय छूट ही नहीं सकते हैं। इसीवास्ते भ्रमको हटायके, कल्पना छुड़ायके श्रद्धालु मनुष्योंके हित-कल्याणके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने और आपके अनुयायी पारखी सन्तोंने दया करके संसारमें वाणी-कल्पनाओंके बहुतेक भ्रम मिटानेके वास्ते बहुत-बहुत सारशब्द कहिके सत्यनिर्णयका उपदेश उच्चारण किये और सब भेदको समझाये हैं। जिसके विचार करनेसे जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय भेद समझकर जड़ाध्यासोंको छोड़ देनेसे नर जीवोंकी मुक्ति भी हो जाती है, और सदैवके लिये जीव भव-बन्धनोंसे छूट जाता है॥ २९१॥

४. सो जो बूझि परै नहिं अबहीं ❀ आँधरि गुष्ट न भावै कबहीं॥ २९२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सो जो बूझि = परै नहिं अबहीं = सो सत्यासत्यका निर्णय, जो कि, पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे अभी नर देहमें ही जिसने समझा-बूझा नहीं, जड़ासक्ति छोड़ा नहीं, सो वह चौरासी योनियोंके दुःखोंसे कभी छूट सकनेका नहीं। और जिस मनुष्यने अभी पारखी सद्गुरुकी दयासे खानी-वाणी जालोंको ठीकसे समझ-बूझ लिया है, सो कभी धोखेमें पड़ नहीं सकता है।

आँधरि गुष्ट = न भावै कबहीं = फिर उस जिज्ञासुको "अन्धोंके स्वर्ग देख आनेकी वार्ताके समान" झूठे गुरुवा लोगोंके कथन वेद-शास्त्रोंके मिथ्या सिद्धान्तोंकी वाणी आदि पर उसका कभी भाव या विश्वास हो नहीं सकता है। सो उसको वह अच्छा नहीं मानता है। अर्थात् अविवेकी अन्धोंकी गोष्ठी (वार्तालाप), विवेकीको कभी रुच नहीं सकती है॥

व्याख्या— सो जो कोईने अभी नर देहमें रहते ही जड़-चैतन्यके स्वरूपको समझा-बूझा नहीं; वह फिर कर भ्रम खाँचमें ही पड़ जायगा। और जो कोई जिज्ञासु मनुष्योंने अभी नरजन्ममें ही वाणी-खानी जालोंको परख लिया है, पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें समझ-बूझ लिया है, फिर वह बन्धनोंमें जाके पड़ नहीं सकता है। और अन्धोंकी गोष्ठी = वार्तामें नाच-तमाशोंका वर्णन सुनके प्रतीत करना जैसे झूठा है। तैसे ही वेद-शास्त्रोंकी वाणी अन्धोंकी वार्तावत् हैं। पारखहीन गुरुवालोग अन्धे बने हैं। उनकी मिथ्या बात विवेकीको कभी प्रतीत हो नहीं सकती है; इससे मिथ्या वाणीको पारखी सन्त कभी अच्छा नहीं समझते हैं। असारमें कभी भाव नहीं लगाते हैं॥ २९२॥

५. जेहि सो आजु तेहि सो काला ❀ बिन बूझै सो सदा बेहाला॥ २९३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जेहि सो आजु = तेहि सो काला = आज वर्तमानके नरदेहमें जीवित रहते ही जो कुछ शुभाशुभ संस्कार, वासना या अध्यास बनाया गया है, जो दृढ़ हुआ है, सोई मृत्यु होकर देह छूटनेके पश्चात् भी चारखानीमें देह धरायके उसके फल, सुख-दुःखादि भोगानेका बीजरूप कारण हो जाता है।

बिन बूझै = सो सदा = बेहाला = सो कर्मगति वा कर्मोंका भेद मोटी-झीनी अध्यासोंका हाल समझे-बूझे बिना तथा सत्य-असत्य पहिचानकी परीक्षादृष्टि खुले बिना अनुमान, कल्पना, तथा विषयोंको मान-मानके वासना दृढ़ करके जीव चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़के सदा-सर्वदा बेहाल वा परम दुःखी ही बने हुए हैं और दुःखी ही बने रहेंगे॥

व्याख्या— आज वर्तमानमें जो मनुष्य देह है, सो कर्मभूमिका है। अब यहाँ जैसा-जैसा कर्म करेंगे, उसके शुभाशुभके कर्म संस्कार अन्तःकरणमें टिके रहेंगे। इसलिये जो आज नरदेहमें अध्यास-

रूप कर्मोंका संस्कार बनाके रक्खा हुआ है, वही मृत्यु होके देह छूट जानेपर भी जीवके सन्मुख होके वैसे ही खानीमें ले जाके देह धारण करावेगा, तथा कर्मानुसार ही सुख-दुःखादि भोगावेगा। ऐसा जानकर अभी कर्मोंको सुधार लेना चाहिये। हानि-लाभ या हित-अहितको ठीकसे समझे-बूझे बिना मनुष्य लोग स्त्रियोंके तथा भ्रमिक गुरुवा लोगोंके फन्दोंमें पड़के कर्म-कुकर्मोंका अध्यास जमा करके सदा-सर्वदा चौरासी योनियोंमें आवागमनोंमें पड़के बेहाल वा परम दुःखी हो रहते हैं। बिना पारख वे इन दुःखोंसे छूट नहीं पाते हैं॥ २९३॥

६. करो विचार भरम मिटि जाई ❀ भरम मिटै तो होय भलाई॥ २९४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इसकारण हे सन्तो! हे मनुष्यो!—

करो विचार = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें जाकर जड़ और चैतन्यका निर्णय करो, तथा सत्य-असत्यको जानके पारख विचार करो,
भरम मिटि = जिससे तुम्हारे सब भ्रम-मानन्दीके बन्धन
जाई = मिट जायेंगे वा छूट जायेंगे। और—

भरम मिटै = ब्रह्म-जगत्की मिथ्या भ्रान्ति
तो होय = तथा खानी-वाणीके मानन्दी-
भलाई = अध्यास मिट जानेपर ही जीवकी भलाईरूप कल्याण वा जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति हो जायगी॥

व्याख्या— इसवास्ते पारखी सद्गुरु परखाते हुए चेताते हैं कि, हे मनुष्यो! तुम अभी भूल मत् करो, विचार करो, सत्य-असत्यका निर्णय करो। सत्य स्वरूप तो तुम ही चैतन्य जीव हो! और ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना तो असत्य है, इसको परखो; जिससे तुम्हारी जगत्कर्त्ताकी कल्पना, ब्रह्मकी भ्रान्ति मिट जायगी। यदि अभी नर देहमें तुम्हारे सब भ्रम, सन्देह, विषयाध्यास, कल्पना, इत्यादि विकार गुरु पारखसे मिट गये वा मिटाये जायेंगे; तो तुम्हारी भलाई, कल्याण या मुक्ति हो जायगी, ऐसा जानलो॥ २९४॥

७. आँधर दर्पण सूझत नाहीं ❀ ऐसो शब्द भरमको आहीं॥ २९५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

आँधर दर्पण = जैसे पाराहीन खाली शीशा
सूझत नाहीं = अन्धा दर्पण कहलाता है, उसमें कुछ मुँह (चेहरा) देखनेमें नहीं आता है, और अन्धेको यदि अच्छा दर्पण भी दिया, तो नेत्र बिना वह देख ही नहीं सकता है, तैसा ही अन्धा दर्पण वेद-शास्त्रादि हैं, उसमें पारख बोध लिखा नहीं है, इससे सत्स्वरूपका ज्ञान उससे नहीं होता है; और अन्धे गुरुवालोगोंको पारख निर्णयका सद्ग्रन्थ तथा सत्य उपदेश देनेपर भी विवेक बिना वे कुछ समझकर ग्रहण कर नहीं सकते हैं।

ऐसो शब्द = ऐसे ही भ्रमिक गुरुवा लोगोंके
भरमको = शब्द उपदेश वेद-शास्त्रादिकी
आहीं = वाणीमें कल्पना भरी हुई है, जीवोंको वह भ्रमानेवाले, भटकानेवाले हैं। सो भ्रमको बढ़ानेवाले ही हैं, अर्थात् अन्धा दर्पणवत् भ्रमिकोंके सब शब्द हैं; उसमेंसे निज स्वरूपका ज्ञान हो नहीं सकता है॥

व्याख्या— अन्धा दर्पणमें कुछ चेहरा दिखाई नहीं देता है; क्योंकि, उसमें सार पारा लगा हुआ नहीं है। इससे दृष्टि घेरेमें न ठहरनेसे प्रतिबिम्ब-देहका स्वरूप कुछ उसमें देखनेमें नहीं आता है, और जिस दर्पणमें पारा लगा हुआ होता है, निर्मल होता है, उसमें स्पष्टरूपसे मुखारविन्द नजर आता है। इसीप्रकार अन्धा दर्पणके समान वेद-शास्त्र, कुरान आदि ग्रन्थ बने हैं। उसमें पारखका बोध तो कुछ भी नहीं रक्खा है, इससे वेदादि वाणी पढ़नेसे स्व-स्वरूपका यथार्थ बोध किसीको नहीं होता है। वहाँ तो कोई कर्त्ताकी कल्पना करके ईश्वर या खुदाको कहीं दूर ऊपर बताया है। स्वर्गादि लोकोंमें देवताओंका निवास बताया है, और भूत-प्रेतादि होनेकी अनेक मिथ्या कल्पना किये हैं, ऐसे-ऐसे भ्रान्ति उत्पादक शब्द बेपारखी अन्धे गुरुवा लोगोंके हैं। उससे जीवोंका कोई कल्याण हो नहीं

सकता है; ऐसा जानके उसे छोड़ देना चाहिये ॥ २९५ ॥

८. शुद्ध वचन साँचाके होई * जामें देख परै सब कोई ॥ २९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

शुद्ध वचन = साँचाके = होई = कसर-खोट विकारसे रहित, शुद्ध निर्मल वाणी सत्य वचन तो सच्चे सत्यन्यायी पारखी साधु गुरुके ही होते हैं; उसी सत्य उपदेशसे ही जीवोंका भ्रम छूट सकता है। 'निज चैतन्य स्वरूप जीव ही सत्य है' ऐसा बोध देवें, सो यथार्थ शुद्ध वचन है, ऐसा जानना चाहिये। और—

जामें देख = परै सब = कोई = जिसमें कि, पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशका बोध हो जानेपर फिर सब कोईके मत, पन्थ, ग्रन्थोंकी कसर-खोट, वाणीका विकार धोखा, भ्रमादि असार है, और उसको माननेवाले जीव सार हैं, ऐसा सब कुछ स्पष्टरूपसे जानने-समझने या देखनेमें आ आता है। सोई सत्य वचन है, जिसमें सब कोईकी मानन्दी दिख पड़ती है ॥

व्याख्या— शुद्ध सत्य वचन तो सच्चे पारखी सद्गुरुका ही होता है। जिससे शुद्ध अखण्ड सत्य स्वरूप निज-चैतन्यपदका यथार्थ बोध उदय होता है; और जिस पारखके प्रकाशमें सब कोईके सिद्धान्तोंके मर्म देखने-परखनेमें आजाते हैं, तथा कसरको मिटाकर सन्देह रहित हो निजपदमें स्थिति करावे, सोई सत्यज्ञान है ॥ २९६ ॥

सम्बन्ध— अब यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक मूलकी तीन साखियोंके प्रमाण दिया है, सो सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— १११ ॥ ❀ ॥

साखीः— मानुष विचारा क्या करै? * जाके कहे न खुलै कपाट ॥

[३२] स्वनहा चौक बैठायके * फिर फिर ऐपन चाट ॥ २९७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं-हे सन्तो!

मानुष विचारा = क्या करै ? = पारखी सन्त सच्चे मनुष्य विचारवान् सत्यनिर्णयी होते हैं; वे मनुष्योंको सत्य उपदेशका बोध देते हैं। वे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य दोनों बातोंको दिखाके यथार्थ समझानेके सिवाय और क्या करेंगे ?

जाके कहे = न खुलै = कपाट = पारखी सद्गुरुके यथार्थ रीतिसे परखायकर बन्धन-मुक्तिके मार्ग दिखानेपर भी जिन पक्षपाती मूढ़ जनोंका भ्रम, कल्पना, पक्ष, विषयासक्ति-रूपी पर्दा नहीं खुलता है, तो सद्गुरु उसमें क्या करेंगे ?

स्वनहा चौक = बैठायके फिर = फिर ऐपन चाट = जैसे कुत्ताको चौकामें ले जाके बैठाया गया, सो रसोई लानेके पहले ही ऐपनके आँटाको चाटने लगा। तैसे ही मूढ़ मनुष्योंको सत्य बोध तो नहीं हुआ; पहले ही चौकामें बैठायके ॐ, राम, आदि मन्त्र गुरुवालोगोंने कानमें फूँक दिये। सो उसीको अन्तःकरण चतुष्टयमें दृढ़ करके विषय भोग और स्वर्गादिके चाटमें पड़कर नाना कर्म-साधनाएँ करने लगे। फिर-फिरके धोखेमें पड़ गये; बिना पारख ॥

व्याख्या— हंसगुण-लक्षण संयुक्त बोधवान् पारखी, सोई सच्चे विचारवान् मनुष्य हैं। पारखी साधु-गुरु मनुष्योंके कल्याणके वास्ते सत्यन्यायका यथार्थ उपदेश देते हैं। सार-असार, बन्धन-मुक्तिको देखाय-परखाते हैं। मनुष्योंको क्या करना चाहिये ? और क्या न करना चाहिये ? यह बतलाते हैं। परन्तु, उन सद्गुरुके समझाने वा परखानेपर भी मनुष्य यदि न चेतें, तो उन लोगोंका बड़ा अभाग्य है। जिन पारखी सद्गुरुके यथार्थ उपदेश कहनेपर भी संसारी लोगोंके अन्तःकरणमें लगा हुआ महा-अज्ञानरूपी कपाट तथा विषयासक्ति, जड़ाध्यास, भ्रम, कल्पना, धोखेका पर्दा नहीं खुला, तो उसकी

मुक्ति कभी हो नहीं सकती है। उसके लिये समझानेके सिवाय पारखी सद्गुरु भी और क्या करेंगे ? विचारवान् पारखी सद्गुरुके उपदेशका प्रभाव क्यों नहीं पड़ा ? इसका कारण कहते हैं कि, वह मनुष्य ज्ञानके अनधिकारी था। यहाँ उसके लिये दृष्टान्त दिया है कि- जैसे कोई दयालु मनुष्य पशुओं-में नीच कुत्तेको गलीमें पड़ा हुआ दुःखी, भूखा देख करके उसपर दयादृष्टिकर उसे अपने घर लायके स्नान कराय, स्वच्छ-पवित्रकर उस कुत्तेको आँटाका चौका पूरा हुआ जगहमें ले जाके बिठावे, और वह भोजन लानेको रसोई घरमें चला जाय, तबतक वह अज्ञानी मूर्ख तुच्छ पशु धैर्य ले करके बैठ नहीं सकता है। स्वभावकी चञ्चलताके कारण इधर-उधर फिर-फिर करके ऐपनके आँटाको ही चाटने लग जाता है; ऐसे लक्षणसे उसकी तुच्छताका परिचय मिल जाता है। तैसे ही सिद्धान्तमें कुत्तेके समान अज्ञानी मूढ़ मनुष्योंको दुःखी जानकर दया करके सत्सङ्गके चौकमें लाके बैठाये, वहाँ निवृत्ति-वैराग्यकी बात सुन करके उनको धैर्य नहीं हुआ; सो अधीर होकर त्यागनेके लिये बताया हुआ विषय भोग तथा कल्पनाको ही बारम्बार चाटने लगे। ऐसे तुच्छ बुद्धिवाले मूढ़जन भये हैं, इसलिये सद्गुरुका बोध उनको नहीं लगा, भ्रमका कपाट नहीं खुला। नारी और गुरुवाओंके सङ्गमें जाके बैठ गये, तब गुरुवा लोगोंने इन मूढ़ोंके कान खूब फूँके। तहाँ कोई एक मन्त्र दीक्षा दृढ़ायके वेद प्रमाणसे 'स्वनहा' कहिये ॐकारको शुद्ध ब्रह्म बतायके वेदान्तकी वाणी-कल्पना अन्तःकरण चतुष्टयमें पक्का-मजबूत करके बैठाय दिये। इसवास्ते फिर-फिरके बारम्बार भ्रमिक हो-होकर अनुमान-कल्पनाको ही चाटने लगे। और स्वर्गादि प्राप्ति, ईश्वरादि प्राप्तिकी आशामें पड़कर गाफिल हुए, और कोई विषयोंको फिर-फिरके चाटने लगे; नाना कर्म-कुकर्म करके चौरासी योनियोंमें पड़ने लगे। अर्थात् बेचारे विवेकी-विचारवान् मनुष्यके समझाये हुए उपदेशको कोई नहीं मानते हैं, फिर समझानेके सिवाय वे और क्या करेंगे ? भोगीलोग और भ्रमिकलोग कुत्तेवत् बनकर फिर-फिरकर विषय भोग और कल्पनाको ही स्वाद लेकर चाटते हैं, इसीसे भव-बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं; बिना पारख ॥ २९७ ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, रमैनीके साखी नम्बर— ३३ ॥ ❀ ॥

साखीः— रामहि राम पुकारते * जिभ्या परिगौ रोंस ॥

[३३] सूधा जल पीवै नहीं * खोद पीवनकी हौंस ॥ २९८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखहीन संसारी उपासक, भक्तलोग सुख-समृद्धि और मुक्ति प्राप्ति आदिके वास्ते रामको पुकारते हैं। तहाँ—

रामहि राम = हरे राम ! हरे कृष्ण ! हे शिव ! पुकारते = हे भगवान् ! हे प्रभो ! इत्यादि नामोंका उच्चारण और ओहं, सोहं, राम आदि नामोंका स्मरण, जाप करते हुए भक्त-लोग पुकारा करते हैं; ऊँचे स्वरसे गोहार करते हैं।

जिभ्या = ऐसे पुकारते-पुकारतेमें भी कोई परिगौ = रामने तो नहीं सुना, इन भक्तोंके रोंस = मुख, ओठ, जीभ, कण्ठ, तालु सूख गये और जीभमें छाले भी पड़ गये; और अन्तःकरणमें जड़ाध्यास दृढ़ हो गया, तथापि कल्पित रामकी प्राप्ति किसीको नहीं हुई।

सूधा जल = शुद्ध निर्मल जलको न पीनेवाले पीवै नहीं = मूर्खकी नाईं शुद्ध चैतन्य पारख बोध देनेवाले पारखी सद्गुरुके सारशब्दका उपदेश सत्यनिर्णयकी वाणीको तो सत्सङ्ग-रूपी घाटमें जायके कोई विचार पूर्वक ग्रहण तो नहीं करते हैं; और—

खोद पीवन की हौंस = प्यास लगनेपर कुआँ खोदकर पानी पीनेकी इच्छा करनेवाले मूढ़की नाईं भ्रमिकलोग कठिन साधनाएँ, तपस्या, हठ योग, बारह (१२) वर्षोंके तीर्थाटन, नाम-जप, अनुष्ठानादि करके सुख, स्वर्ग, ईश्वरादि प्राप्ति करनेकी व्यर्थ ही मनःकल्पनासे इच्छा या चाहनाएँ करते हैं, तो वह पूरी कैसे होगी ? ॥

व्याख्या— अर्थात् सद्गुरुने इस साखीमें कहा है कि- देखिये ! भ्रमिक मनुष्य कैसी महा अज्ञान-दशामें पड़े हुए हैं। निज स्वरूपका विचार करना छोड़कर मिथ्याका पुकारा करते हैं। भक्तलोग कल्पनासे कोई परमतत्त्व-परमात्मा सर्वशक्तिमान् रामको अनुमान करके राम-नाम आदिका रटना पुकारा करने लगे। परन्तु, उनके कल्पित रामने उन भक्तोंका पुकारा कभी सुना भी नहीं। तो फिर चिल्लाते-चिल्लाते जिभ्यामें छाले पड़ गये, कण्ठ सूख गये और जड़का अध्यास दृढ़ हो गया, ऐसी हालतमें भी स्वच्छ शुद्ध नदीके जलको पीना छोड़कर कोई कुआँ खोदकर पानी निकालकर प्यास मिटाना चाहे, तो उसके जैसा निपट मूर्ख और कौन होगा ? इसी तरह विषय भोगोंके आराममें पड़े हुए संसारीलोग भोगको, और भक्तलोग स्वर्गादिको पाना चाहते हैं। उसके लिये नाना प्रयत्न करते हैं। जप, तप, व्रत, उपवास, योगादि साधते हैं, ईश्वरकी प्रसन्नतासे वह सब पाना चाहते हैं; परन्तु, सो सब व्यर्थ है। पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग करके निज स्वरूपका बोध सत्य उपदेशको ग्रहण नहीं करते हैं, तो सुखी कैसे होवेंगे ? ॥ २६८ ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— २६४ ॥ ❀ ॥

साखीः— अहिरहु तजि खसमहु तजी * बिना दादकी ढोर ॥

[३४] मुक्ति परे बिललात है * वृन्दावनकी खोर ॥ २६६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कोई निकम्मा बैल आदि ढोरको उसके मालिकने भी बेकार जानके छोड़ दिया, और चरवाहा अहिरने भी वास्ता छोड़ दिया, हकाल दिया। अब वह बेवारिस, बेइन्साफका होके मारा-मारा भटकता फिरता है। फिर दुःख पाके मर जाता है। तैसे ही यहाँ सिद्धान्तमें कहते हैं—

अहिरहु तजि = नर जीवोंको गुरुवा लोगोंने
खसमहु तजी = ईश्वर प्राप्तिका भरोशा देकर वेदादि वाणी कल्पनामें लगाके हकाल दिये, सङ्ग-साथ छोड़ दिये। और खसम माना हुआ परमेश्वर तो धोखा भ्रममात्र होनेसे जीवसे पहलेसे ही छूटा-छुटाया है, और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग भी छोड़ दिये, ऐसे मनुष्य निकम्मे अविचारी मूढ़ हो गये। और—

बिना दाद- = ढोरके समान अनाड़ी, मूर्ख,
की ढोर = अविचारी, गँवार, पारखहीन मनुष्य पक्षपाती बने हैं, 'दाद' कहिये न्याय-निर्णय-इन्साफ, अब उनको कहीं दाद नहीं मिलता है। क्योंकि, पारखी सद्गुरुको छोड़कर भ्रमिक गुरुवा लोगोंकी शरणमें गये, उन्होंने धन-सम्पत्ति और बुद्धि-विचार सब लूट करके धोखा देके छोड़ दिये। इससे ढोरवत् जीव अविचारसे अन्यायमें ही पड़ गये। अतएव—

मुक्ति परे = अब सबसे परे परब्रह्मकी
बिललात है = प्राप्तिसे मुक्ति मानकर या सबसे परे बड़ी सायुज्य मुक्ति मानकर उस मुक्तिको पानेके लिये व्याकुल अधीर हो बिलबिलाते हुए जहाँ-तहाँ भटकते मारे-मारे फिरते हैं। अनेकों साधनाओंके कष्ट वा दुःख सहन करते हैं, हैरान होते हैं; और-

वृन्दावन- = वीर्यसे पैदा हुआ देह जो है,
की खोर = उसीके पञ्च विषय भोगोंकी खोरीमें आसक्त हुए। और कोई मुक्तिके लिये मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, काशी, चारधाम, जङ्गल, पहाड़ कन्दरा, गुहा अनेकों तीर्थोंमें भटकने लगे; और कोई योगी लोग देहमें ही श्वास वायुको ब्रह्माण्डमें चढ़ाके भ्रमर-गुफामें समाधिस्थ हुए, वहाँ दशनाद, ज्योति प्रकाश, देहका भास, आनन्द, प्रमरस आदिमें तदासक्त हो, उसीसे मुक्ति मानने लगे; बिना पारख ऐसे भूलमें जा पड़े हैं ॥

व्याख्या— इस साखीमें सद्गुरुने बताया है कि, अहिर और मालिकका छोड़ा हुआ ढोर निकम्मा वा बेकामका होता है। तभी तो वे दोनों उसे त्याग देते हैं। फिर उसका न्याय, बचाव, देख-रेखका

इन्तजाम कौन करे? वह ढोर दुःखोंसे, भूख-प्याससे व्याकुल होता हुआ उससे छूटने, बचनेके वास्ते भटकता हुआ जङ्गल, कन्दराओंमें गया, वहाँ बाघ आदिने उसको मारके खा गये। कहीं उसकी रक्षा नहीं हुई। इसी तरह भ्रमिक अनाड़ी नरजीव ढोरकी जगहमें हैं। अहिर गुरुवा-लोग बने हैं; और खसम ईश्वरको माने हैं। सो मालिक माना हुआ परमेश्वर तो कल्पना-मात्र होनेसे नरजीवोंसे छूटा ही हुआ है, वह कभी जीवोंका रक्षक ही नहीं होता है। और गुरुवालोगोंकी शरणमें जो गये, तो उन्होंने वेदादि वाणीके प्रमाणसे ब्रह्म-ईश्वरादि धोखेके भरोसेमें ही छोड़ दिये, और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें तो वे गये ही नहीं और जाते भी नहीं, अब कहो तो भला! जीवोंकी रक्षा कैसे होवे? इसीसे बेइन्साफ वा अन्यायके चक्रमें घूमते हुए भटक रहे हैं। और जगत्के दुःखोंसे छुटकारा होके मुक्ति तो सब जीव चाहते हैं। परन्तु, मुक्ति तो सबसे परे परमात्माके ही पासमें उन्होंने माने हैं। वह मुक्ति पानेके लिये व्याकुल होके नाना साधनाओंमें लगे, तो इधर वीर्यसे बना हुआ देहमें कोई विषयखोरी करने लगे; और कोई तीर्थ, व्रत, उपासना, चारधाम, मथुरा-वृन्दावन आदिका भ्रमण, जङ्गल, पहाड़, गुफाका निवास करने लगे। और कोई योग समाधि लगाकर तत्त्वोंके भास, प्रकाश तथा आनन्दको ही मुक्तिदायी समझ लिये। इसप्रकारसे सब खोटे कल्पना, भास, अध्यासोंको दृढ़ करके नर जन्मको निष्फलकर चौरासी योनियोंमें जाते हैं॥ २९९॥

सम्बन्ध— यहाँपर अब यह नीचेकी एक साखीमें ग्रन्थकर्त्ताने अपनी तरफसे बतलाया है:—

साखीः— अनहद अनुभव आशमें ❀ बूड़े बहुत अचेत॥

[३५] अचरज एक देखो हो सन्तो! ❀ बेरहि खाया खेत॥ ३००॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

अनहद = जिसका वार-पार वा सीमा, हद नहीं है, सो बेहद, निर्गुण, निराकार, परब्रह्म-परमात्मा मानके—

अनुभव = योग, ध्यान, समाधि आदिसे
आशमें = उसका साक्षात्कार करके उसीमें मिल जानेकी मिथ्या आशामें बड़े-बड़े योगी, ज्ञानीलोग गाफिल, भ्रमिक हुए वा हो रहे हैं; और—

बूड़े = अनादि कालके संसारमें ऐसे बहुतेक
बहुत = मनुष्य ऋषि, मुनि, तपस्वी, कर्मी,
अचेत = भक्त इत्यादि ईश्वरकर्त्ता ब्रह्म आदि मान-मानकर वाणी-कल्पना और खानी-विषयोंमें अचेत, मस्त, बेभान हो-होकर जड़ाध्यासी जीव भवसागरमें डूब गये, चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ गये। बहुत ही अचेत होके डूब गये हैं।

अचरज = हे विवेकी सन्त-साधुओ! एक
एक देखो = बड़ाभारी आश्चर्यरूप विपरीत
हो सन्तो! = बातको तो आप देखिये! संसारमें कैसा धोखा हो रहा है? सबमें एक ब्रह्म व्यापक मानके कैसे भूल रहे हैं? और—

बेरहि = खेतकी फसल, फल-फूलोंकी रक्षाके
खाया = वास्ते जो बाड़ लगाया था, उसीने
खेत = ही यदि खेतकी फसल खाकर नाश कर दिया, तब कहो खेतकी रक्षा कैसे होय? और कौन रक्षा करे? इसी प्रकार सिद्धान्तमें संसाररूपी खेतमें जीवरूपी फसलकी रक्षाके लिये गुरुवा किसानलोगोंने वेद-शास्त्रोंकी वाणीके बाड़, घेरा, मर्यादा चौतरफ- चारवर्ण, चार आश्रमोंमें लगा दिये हैं, परन्तु, वही वेदादि वाणीकी कल्पनाने नरजीवोंके विवेकको खा लिया, भ्रमाय दिया। इससे मुक्तिरूपी फलकी प्राप्ति नहीं हुई॥

व्याख्या— जिसका हद, थाह, पता कुछ न मिले, सो अनहद कहलाता है। ऐसे ईश्वर या ब्रह्मको अनहद मान करके उसका अनुभव करके उसमें मिल जानेकी आशामें बहुतेक नरजीव योगी, ज्ञानी, भक्तादि लोग लगके अचेत, भ्रमिक होयके जड़ाध्यासवश खानी-वाणीके भवधारमें डूब गये,

गर्भवासमें जाकर डूबकर गड़ गये। हे विवेकी साधु-सन्तो ! एक बड़ा भारी आश्चर्य तो देखिये ! यहाँ कैसा उलटा काम हो गया है, बाड़ या बड़ाङ्गने ही सब खेतोंकी फसल खा गया। अथवा फलकी आशासे खेतमें जो बेरकी झाड़ लगाया था, उसीने ही खेतकी सब चीज खाकर-रगड़कर सत्यानाश कर दिया। तद्वत् वेद, ईश्वरकी मानन्दी दृढ़ाके गुरुवाओंने मनुष्योंको भ्रमायके विनाश कर दिया। अर्थात् संसारी जीवोंके बचाव वा रक्षाके वास्ते गुरुवाओंने वेद आदि-वाणीका घेरा लगाया। वेद आज्ञाके बाहर नहीं जाना चाहिये कहा। वेद प्रमाणसे चलनेसे मुक्ति बताया है; परन्तु, उसी कल्पनामें पड़कर जीव सब जड़ाध्यासी भ्रमिक हुए और भ्रमिक हो रहे हैं। इसीसे आवागमनमें पड़ रहे हैं; बिना विचार ॥ ३०० ॥

सम्बन्ध— अब बाईसवाँ प्रकरणमें या खण्डमें कृष्ण और पाण्डवोंके कर्त्तव्यका समाचार वर्णन किया गया है। तहाँ १४ चौपाई, और १ साखीमें कहा गया है; सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ समाचार कृष्ण-पाण्डवोंका ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ बाईस खण्ड ॥ २२ ॥ ❀ ॥

१. राम कृष्ण अहिरके बालक * ब्रज वधू कौरव कुल घालक ॥ ३०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! यहाँपर कृष्ण और पाण्डवोंके समाचार वा हाल-खबर बताया जाता है, सो सुनिये !:—

राम=रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए बलराम या बलदेवजी थे, वे द्वापरमें राम, बलराम तथा बलदाऊ कहलाते थे। और—

कृष्ण=देवकीके गर्भसे पैदा हुए कृष्णजी बलरामके छोटे भाई लगते थे, इन दोनोंने—

अहिरके= गोकुलमें नन्द-बाबा अहिरके
बालक= घरमें ग्वाल-बालोंके साथमें बाल्यकाल बिताये थे, छोटेपनसे ही अहिरोंके बीचमें पल करके बड़े हुए, इससे अहिरके प्रतिपालित-पोषित बालक कहलाये;

और—

ब्रजवधू= जवान होनेपर गोकुलकी
कौरव कुल= ब्रजवासिनी, गोपिनी स्त्रियोंको
घालक= विषय भोगोंमें फँसायके बहुतोंको बिगाड़ दिये थे, और राज कारणसे कौरव-कुलके साथ शत्रुता होनेसे महाभारत युद्धमें पाण्डवोंको सहायता देकर तमाम कौरव-कुलका सत्यानाश कराके हत्या करा दिये थे; ऐसे हत्यारे हिंसा कर्मोंमें प्रवीण बने रहे ॥

व्याख्या— यहाँपर कृष्ण तथा पाण्डवोंका समाचार संक्षेप रीतिसे ही बता रहे हैं। बलराम कृष्णके बड़े भाई लगते थे, और कृष्ण उनके छोटे भाई थे। इन दोनोंके पिता वसुदेव थे। माता अलग-अलग दो जनी थीं। वसुदेव-देवकी कंशके कैद वा कारागारमें रहे। उसके पहले ही रोहिणी या कालिन्दी गर्भवती अवस्थामें गोकुलमें नन्दके यहाँ जाके रहने गी थीं, उनके गर्भसे बलरामका जन्म प्रथम हुआ था। पश्चात् कारागारमें देवकीके गर्भसे कृष्णका जन्म हुआ। तदनन्तर कृष्णके जन्म होनेपर कई युक्ति-प्रयुक्तिसे नन्दके घरमें उस बालकको ले जाके वसुदेवने पहुँचा दिया था। इसतरह जन्मसे लेके छोटे बालक अवस्थासे ही नन्द-यशोदाके घरमें पालन-पोषण होनेसे बलराम और कृष्ण दोनों ही अहिरके बालक कहलाये। तथा ग्वाल-बालोंके साथमें ही रहके वे बड़े हुए; फिर युवा अवस्थामें गोकुलकी ब्रजवधू नारियोंके साथ क्रीड़ा, भोग-विलासमें रत रहे। इसतरहसे कई ब्रजवधुओंको बिगाड़कर व्यभिचारमें फँसा डाले थे; और जब कौरव तथा पाण्डवोंमें झगड़ा हुआ, तब महाभारतका युद्ध कराये; उस वक्त पाण्डवोंकी तरफसे सहायता करके सब कौरव कुलका नाश कराके हत्या करा दिये थे। ऐसे कौरव कुलका घालक हुए थे ॥ ३०१ ॥

२. सोरह कला जाने बहु भाँती * छली अनेक कामिनी उतपाती ॥ ३०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सोरह कला = चौदह विद्याएँ और छल तथा कपट मिलायके ऐसे सब सोरहों कलाओंका भेद वे लोग बहुत प्रकारसे वा अच्छी तरहसे जानते रहे। बड़े चतुर-चालाक रहे। स्वार्थ साधनेमें तो बड़े प्रवीण रहे। इसी कारण कृष्ण तथा बलदेवने—

छली अनेक कामिनी = अनेक तरहकी युक्तिसे छल, बल, कपट, प्रपञ्च रच करके अनेकों स्त्रियोंको छलके अपने वश करके भोग-विलास किये और अनेकों—

उतपाती = उपद्रव वा उपाधि, टण्टा, बखेड़ा फैलायके अनेक लोगोंको मरवा डाले तथा उन्होंकी पुत्री वा स्त्रियोंको भी हरण करके लाये, स्त्री-भोगादिके लिये ही ज्यादा करके नाना तरहके उपद्रव करते रहे। इनका चरित्र भागवतादि ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन हुआ है॥

व्याख्या— छल-कपट मिलायके चौदहों विद्या सहित सोरहों कला-कौशलोंको बहुत भाँतिसे वे जानते रहे। उसी कला-कौशलकी चतुराईसे अनेकों कामिनियोंको छल-बलसे वश किये। और बहुत उपाधि या उपद्रव मचाये थे। स्त्री-भोगके लिये तो बहुत ही प्रपञ्च फैलाये थे, उसीमें छल-कपटसे अनेकों पुरुषोंको मरवाय दिये थे, ऐसे-ऐसे व्यभिचार, कुकर्म और हिंसा आदिमें वे प्रवीण बने रहे; विस्तारसे कृष्ण चरित्र आदिका वर्णन भागवत पुराण आदि ग्रन्थोंमें कहा हुआ है, संक्षेपमें वही बात यहाँपर दर्शा रहे हैं॥ ३०२॥

३. सो सखियनसों रहै अनकूला ❀ वेद वेदान्त कथै बहु मूला॥ ३०३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सो सखियन सों रहै अनकूला = सो वे कृष्णजी गोपिनी स्त्रियोंसे विषय भोगोंमें मेल-मिलाप करके बड़ा प्रसन्न वा खुश रहते थे। और वे व्रजनारियाँ भी लोक-लाज कुलकी मर्यादाओंको छोड़कर विषयोन्मत्त होकर कृष्णके वशमें ही रहती थीं। इसतरहसे वे दोनों भाई गोप स्त्रियाँ-सखियोंसे मिले हुए सदा उनके अनुकूल बने रहे।

वेद वेदान्त कथै बहु मूला = और बाहर सबके समक्षमें वेद-वेदान्त-उपनिषद्की वाणी बहुत कथन करके सुनाते थे सबका मूल ब्रह्मज्ञान ठहराकर अद्वैत सिद्धान्तको कहते थे। ब्रह्मज्ञानका बोध होनेपर उसको कोई कर्मका दोष-विकार नहीं लगता है। विधि-निषेध फिर वहाँ नहीं रहता है, इत्यादि उलटी-सीधी बात समझाकर मुख्यतया भग-भोगोंमें ही लगे रहते थे॥

व्याख्या— सखी ग्वालिनी स्त्रियोंसे मिले-जुले रहके उन्होंके अनुकूल होकर उन्हीं स्त्रियोंसे भोग-विलास बढ़ा करके सो कृष्ण उसीसे प्रसन्न वा खुश रहते थे, और इसप्रकारसे भीतर-भीतर व्यभिचार बढ़ायके बाहर बड़े ज्ञानी बनते थे। वेद-वेदान्त, उपनिषद् शास्त्रोंकी अनेक वाणीको कथन करके बहुत प्रकारसे मुख्यतया ब्रह्मज्ञानको ही ठहराते थे, निष्काम बनते थे; और 'फल इच्छा रहित हो किया हुआ कर्मका कुछ दोष नहीं लगता है', ऐसा कहते थे॥ ३०३॥

४. कपटी झूठा बात लबारी ❀ अनेक राजा छलसों मारी॥ ३०४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कपटी झूठा बात लबारी = कृष्णजी बड़े छली-कपटी रहे। झूठी बात कहके दूसरोंको फँसानेवाले मिथ्या ब्रह्मवादी भ्रमिक ही रहे। और यही छल-कपट, झूठी बातोंके दाव-पेंच चला करके—

अनेक राजा छलसों मारी = तहाँ कंश, शिशुपाल, जरासन्ध कालयवनादि अनेकों राजाओं-को इन्होंने छल-बल, कपटसे मार डाले हैं। और कईको इसी रीतिसे अन्यके द्वारा मरवा डाले थे॥

व्याख्या— कृष्णजी बड़े कपटी रहे; झूठे ही किसीको विश्वास देके धोखेमें डाल देते रहे।

लबारी बात बोलनेवाले भये थे। और छल-बल, कपटसे अनेकों राजाओंको मार डाले और मरवा भी दिये; ऐसे-ऐसे उनके चरित्र कर्त्तव्य हुए रहे ॥ ३०४ ॥

५. सो अवतार गोसाँईं भाखा * सुजस बहुत पोथी लिख राखा ॥ ३०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सो अवतार = सो ऐसे छली, कपटी, हिंसक, गोसाँईं = व्यभिचारी दुर्गुणोंसे भरे हुए भाखा = कृष्णको सच्चिदानन्द ब्रह्मके पूर्ण अवतार समर्थ निर्दोष परमात्माके स्वरूपमें उनको मानकर व्यासजीने तथा सूरदासजीने खूब महिमा वर्णन किये हैं; उनको ही सर्वश्रेष्ठ ठहराये हैं।

सुजस = और उनके कुकर्मोंकी भी बहुत पोथी = अच्छी कीर्ति गायके महिमा, लिख राखा = सुयशकी विशेषता बहुत-बहुत वर्णन करके वह भागवतमें तथा सूरसागर आदि ग्रन्थोंमें लिख रक्खे हैं, बड़ी प्रसंशा कीर्तन हो रही है॥

व्याख्या— सो उन कृष्णजीको गोसाँईं कहिये सूरदासजीने और भागवतकार व्यास आदिकोंने पूर्ण ब्रह्मका अवतार लीला विग्रही, निर्लिप्त भगवान् थे, ऐसा वर्णन किये हैं। तथा उनके सब कुकर्मोंको भी अच्छा ही समझके मिथ्या रूपककी उपमा देके महिमा बढ़ायके बहुत ही सुयश ग्रन्थों-में लिख रक्खे हैं। सोई भागवत्, सूरसागर आदिमें बहुत महिमा गाये हैं ॥ ३०५ ॥

६. ब्रह्मज्ञान कथै ब्रह्म कहावै * नाम हेतु बहु पन्थ बढ़ावै ॥ ३०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

ब्रह्मज्ञान = कृष्णजी विशेषतः अद्वैत ब्रह्मज्ञान- कथै ब्रह्म = के पक्षपाती थे, इसीसे ब्रह्मज्ञान- कहावै = का ही विशेषरूपसे सिद्धान्तकी वाणी कथन करते थे, सो भगवद्गीता तथा भागवतमें वर्णन किया है। आर आप अच्युत ब्रह्म कहलाना चाहते थे, विषय भोग भोगते हुए भी निर्विकार, निर्लिप्त बननेका ढोंग फैलाते थे। और—

नाम हेतु = अपना नाम, महिमा, यश बहु पन्थ = बढ़ानेके वास्ते बहुत लोगोंको बढ़ावै = लालच देके जहाँ-तहाँ ब्रह्मज्ञानका पन्थ बढ़ाके प्रचार करनेमें लगाते थे। स्वयं भी उस पन्थको बढ़ानेके कार्यमें जीवनभर लगे थे ॥

व्याख्या— उपनिषद्रूप वेदान्त आदि शास्त्रोंके प्रमाणसे अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तको पुष्ट करके ब्रह्मज्ञानका कथन कर स्वयं अच्युत ब्रह्म कहलाते थे। और दूसरोंसे भी ब्रह्मज्ञानका ही प्रचार कराके अपने-आप ब्रह्म बनते थे। नाम, महात्म्य, मान, प्रतिष्ठा बढ़ानेके हेतुसे बहुत लोगोंको अपने घेरामें लेके पन्थ बढ़ानेमें लगाये थे, ऐसे बहुत किसिमसे अपना मत-पन्थ बढ़ाते रहे ॥ ३०६ ॥

७. पाँचों पण्डौ मन कर्म बानी * ताकी सेवा रहै लपटानी ॥ ३०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पाँचों पण्डौ = पाण्डु राजाके पुत्र युधिष्ठिर, मन कर्म बानी = भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, ये पाँचों पाण्डव कहलाते थे। ये पाँचों जनें मनसे, कर्मसे और वचनसे कृष्ण-को श्रेष्ठ मानकर उनके भक्त बने रहे।

और—

ताकी सेवा = उन्हीं कृष्णके सेवा-सत्कार रहै लपटानी = करनेमें प्रेमसे लपटाय, लौ लगाये रहते थे; हजूरी दासकी नाईं सदा उनकी सेवामें हाजिर रहते थे ॥

व्याख्या— युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डव मन, वचन, कर्मोंसे कृष्णकी सेवामें प्रेमसे लपटायके लगे रहते थे; और श्रद्धा भक्ति-भावसे उनकी आज्ञाका पालन करते थे ॥ ३०७ ॥

८. अर्जुनको ब्रह्मज्ञान दृढ़ाई * संशय गाँठि न अन्ते जाई ॥ ३०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अर्जुनको ब्रह्मज्ञान दृढ़ाई = कृष्णजीने अर्जुनको वैसे तो समय-समयपर और विशेषतः महाभारतके युद्धस्थलपर भी नाना युक्ति-प्रयुक्तिसे भ्रमायके ब्रह्मज्ञान दृढ़ाये, सब करने-करानेवाला कर्त्ता ब्रह्म स्वयं अपने बने और 'तू निमित्त मात्र है' ऐसा बताये।

संशय गाँठि न अन्ते जाई = तथापि सन्देहकी गाँठि ब्रह्म है कि नहीं? निराकार है कि साकार है? ब्रह्म-जीव एक होगा कि नहीं? ऐसे भ्रम-संशयकी ग्रन्थि कृष्णजीकी ही नहीं छूटी, तो फिर अर्जुनके मनसे संशय छूटकर कहाँ जायगा? उन्होंके यह भ्रमकी गाँठि नाश होकर नहीं छूटी; अतः उनके भ्रम धोखारूप ब्रह्ममें ही टिकी रही॥

व्याख्या— अर्जुन कृष्णका परम प्रिय सखा या मित्र था। इससे अर्जुनको खूब ब्रह्मज्ञान दृढ़ाये और खूब भ्रमाये थे, तो भी संशयकी गाँठि खुलकर वा छूटकर नाश नहीं हुई। तहाँ घुमाय-फिरायके अपने स्वयं ही ब्रह्म बननेका दावा करते रहे। इससे संशयकी गाँठि कहीं अन्ते नहीं गई। उन भ्रमिकोंमें ही सन्देहरूपसे भ्रम लगा रहा॥ ३०८॥

९. विराटरूप माया दिखलाया ❀ भाँति भाँतिका त्रास बताया॥ ३०९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

विराटरूप माया दिखलाया = 'माया' कहिये कायामें कृष्णने अर्जुनको 'विराट' कहिये ब्रह्माण्ड-के समस्त तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रिय, विषयोंको घटाकर दिखलाये, तत्त्वज्ञान बताये; अथवा अपने माया जालसे बाजीगरी तमाशावत् अपना ही बड़ा रूप करके वही विश्वरूप दिखला दिये। अथात् नजरबन्दी करके विपरीत भयङ्करूप दिखाये।

भाँति भाँतिका त्रास बताया = तब कहे कि, तुमको युद्ध करना ही पड़गा। इन लोगोंको मारनेका दोष तुमको नहीं लगेगा, यदि तुम युद्ध न करोगे, तो तुम कायर होओगे, अभी लोकमें तुम्हारी निन्दा, हँसी होयगी, और मरकर भी नरकमें जाओगे। और युद्धमें तो मरनेपर स्वर्ग और जीतने-पर राज्य मिलेगा; इत्यादि तरहसे कहके अनेक भाँति वा नाना तरहसे उसे डराय, धमकायके त्रास बताये। और अपनी इच्छानुसार अर्जुनसे कार्य कराये।

व्याख्या— इतनेपर भी जब अर्जुनने नहीं माना, वह युद्ध करना नहीं चाहता था, तब कृष्णजी-ने अपनी चालाकीसे उसकी नजरबन्दी करके बाजीगरी तमाशावत् विराटरूपमें मायाका झूठा खेल दिखलाये। उसमें सब कुछ करने-करानेवाला अपनेको दर्शा दिये। अथवा कायारूपी मायामें बाहरी ब्रह्माण्डके पाँचोंतत्त्वोंका भाग पञ्चीकरणका कार्य दिखला दिये, तत्त्वज्ञान समझाये; और भाँति-भाँतिके त्रास या भय बताकर अपने अधीनमें अर्जुनको किये फिर उसे युद्धमें लगाये॥ ३०९॥

१०. दुर्योधनसों युद्ध कराई ❀ कुल परिवारको मार ढहाई॥ ३१०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दुर्योधनसों युद्ध कराई = पाण्डवोंको दुर्योधनादि कौरवों-से बड़ा भारी संग्राम महा-भारतका युद्ध कराये। उसमें अगुआ प्रधान मददगार तो कृष्ण ही बने रहे।

कुल परिवार-को मार ढहाई = तहाँ दोनों तरफकी सेनाएँ कुल-परिवारके सब लोगों-को रणस्थलमें मार-मारके गिराय दिये विनाश करा दिये। (दोनों तरफकी मिला-कर अठारह अक्षौहिणी सेना महाभारतके युद्धमें मारी गयीं, ऐसा वर्णन किया है।)॥

व्याख्या— इसप्रकार पाण्डवोंको दुर्योधनादि कौरव सैन्योंसे युद्ध या घमाशान लड़ाई करायके अन्तमें उनके सब कुल-परिवारोंको मराय-मरायके गिराय दिये; विनाश कराय दिये। तहाँ महाभारतके युद्धमें अनेकों प्राणियोंका संहार वा घात हुआ, इसका विस्तार पूर्वक वर्णन

महाभारत ग्रन्थमें लिखा है ॥ ३१० ॥

११. पुनि सो कहा भया अपराधा * अश्वमेध करो जेहि मिटे उपाधा ॥ ३११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पुनि सो कहा = भया अपराधा = फिर सोई कृष्णजीने कुछ समय बाद पाण्डवोंसे कहा कि, तुम लोगोंसे युद्धमें कुल-वंशोंका घात हुआ है, उसका पाप या अपराध तुम्हें लगा है, इससे तुम्हारे चित्तमें विक्षेप बना रहता है- सो मिटानेका उपाय करो। और—

अश्वमेध = करो जेहि = मिटे उपाधा = वह महा पाप मिटानेके लिये तुम लोग अश्वमेध नामके यज्ञ करो। जिससे कि, तुम्हारे बाहर-भीतरके सब उपाधि-दोष मिट जायेंगे। अश्वमेध यज्ञ करनेसे तुम्हारे सब पाप-ताप मिट जायेंगे ॥

व्याख्या— पहले तो कृष्णने ही उकसायके मददगार बनके महाभारतका युद्ध कराये। कौरव सैन्योंका विनाश कराये। फिर कुछ काल बादमें युधिष्ठिरको उदास देखके कृष्णने कहा कि— भाई ! तुम लोगोंसे कुल-घातका अपराध पाप हो गया है; सो उसको मिटाना चाहिये, तभी मनकी शान्ति होयगी और राज्यमें होनेवाली उपाधि भी मिट जायगी। युधिष्ठिरने कहा कि, हे कृष्ण ! आप ही बताइये कि, मैं किस उपायसे यह अपराधको मिटाऊँ ? तब कृष्णने बताया कि, अश्वमेध नामक एक महान यज्ञ करो, जिससे कि, तुम्हारा सब पाप-ताप उपाधि मिट जायगी ॥ ३११ ॥

१२. जो जो कहा सो सब कछु कीन्हा * कोई बातसों चूक न लीन्हा ॥ ३१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

जो जो कहा = सो सब = कछु कीन्हा = इसप्रकार जो-जो उपाय, युक्ति पाप मिटानेके लिये कृष्णने कहा, सो-सो सब कुछ ही पाण्डवोंने किये। सब कार्योंको पूरी तौरसे करते गये। और—

कोई बातसों = चूक न लीन्हा = कृष्णकी आज्ञाका पालन करनेमें कोई बातसे भी भूल-चूक नहीं किये। सावधानीसे सब बातोंको पूर्ण तौरसे पालन करते रहे ॥

व्याख्या— और भी जो-जो बातें करनेके लिये कृष्णने कहा, सो सब कुछ प्रयत्न पूर्वक पाण्डवोंने किया। कृष्णकी कोई भी बातको पालन करनेमें चूक वा भूल नहीं किया। होशियारीसे ही सब आज्ञाको पालन किये रहे ॥ ३१२ ॥

१३. बन्धे बरिष अश्वमेधको लागी * मोचन पाप लायउ न आगी ॥ ३१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बन्धे बरिष = अश्वमेध- = को लागी = घोड़ाके माथमें (शिरमें) सुवर्णकी विजयपत्रिका बाँधकर अश्वमेध महायज्ञ करनेके लिये वह घोड़ा छोड़ दिये। फिर सबदूर वह घोड़ा घूम-फिरके आनेपर उसको मारके उसके मांस अग्निमें होम करनेको दिये, ऐसा अश्वमेध यज्ञ करनेको लगाये। अब देखिये ! युद्धकी हत्याका—

मोचन पाप = पाप छुड़ानेके वास्ते जो—

लायउ न आगी = अश्वमेध यज्ञ ठाने, तो उस घोड़ाको जिन-जिन्होंने रोके उन्होंके साथमें भी भयङ्कर युद्ध होके जन संहार कराये, फिर उस गरीब मूक घोड़ाका भी प्राणघात किये। इस तरहसे पाप छुड़ानेके बदले और भी सब तरफसे पाप-ही-पाप लगा दिये। किन्तु, पाप नाशक दया धर्मसे पुण्यरूपी अग्नि तो किसी ठिकाने भी नहीं लगी। और पापकी ही ज्वालामें झुलसा दिये ॥

व्याख्या— तब अश्वमेध यज्ञ करनेका पक्का निश्चय करके सब तैय्यारी किये। यज्ञके लिये एक उत्तम घोड़ा लाये। और उसके मस्तकपर सुवर्णके पत्रमें अपनी विजयका हाल लिखकर सब राजाओंको अधीन होनेकी बात लिखी गई। वह पत्रिका अश्वके शिरमें बाँधकर घोड़ा छोड़ा गया, रक्षक सैन्य-दल उसके साथमें गये। फिर उस अश्वको रोकने-पकड़नेवालोंके साथ युद्ध करके और

बहुतोंको मार गिराये। पश्चात् वह घोड़ाको भी मारकर यज्ञ कुण्डमें होम दिये। इसप्रकारसे अश्वमेध यज्ञ हुआ। पाप छुड़ानेके लिये यज्ञ हुआ था; परन्तु, और कई गुना अधिक पापका दोष आके लगा। उस यज्ञकी अग्निसे कोई एक भी पाप नहीं जला। और पापकी ही अग्नि लगाकर दया धर्म आदिको ही जला दिये। दया-धर्मका पालन तो कहीं भी नहीं हुआ। और पाप नाशक धर्मके ज्ञानकी अग्निको तो उन्होंने जलाये ही नहीं। किन्तु, पापकी ही अग्निको प्रज्ज्वलित करके समूल धर्मको जलाकर नाश कर दिये ॥ ३१३ ॥

१४. अन्तकाल चहिये कल्याना * गले हिंवारे जाय अयाना ॥ ३१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अन्तकाल = कृष्णके अन्तकाल वा मृत्युसमय
चहिये = जब पाण्डव मिलनेको गये, तब
कल्याना = "कल्याणकी इच्छा हो, तो तुम लोग हिमालयमें जाकर गलो" अन्तिम उपदेश कृष्णने अर्जुनको ऐसा ही बताये। आखिर अन्तकालमें कल्याणकी चाहनासे और वैकुण्ठमें फिर कृष्णसे मिलनेकी इच्छासे—

गले हिंवारे = वे पाण्डवलोग अज्ञानतावश
जाय अयाना = हिमालय पहाड़में जाके बरफमें गलकर मरे, बिना पारख धोखेमें पड़के नष्ट भये ॥

व्याख्या— कृष्णके अन्तकालमें कल्याणकी चाहनासे उपाय पूछनेको पाण्डवलोगोंमें अर्जुन दर्शन करनेको गया था, सो उससे कृष्णने कहा कि, अब कलियुग आ गया है, तुमलोग उत्तरापथ हिमालयमें जाके देह छोड़ो; जब तुमलोग स्वर्गमें आओगे, तब फिर वहाँ मिलेंगे, ऐसा कहिके कृष्ण मर गये। उस बातको अर्जुनने आके युधिष्ठिरादिसे कहा, फिर उसे ही दृढ़ करके कल्याणकी चाहनासे पाण्डवलोग अन्तकाल=बुढ़ापेमें हिमालयमें बड़ी कठिनाईसे चले गये; और वहाँ ठण्ढीमें अकड़कर क्रमशः मर गये। अज्ञानताके कारणसे बिना विचार मुक्तिकी आशासे बरफके पहाड़में जा करके गलकर मर गये। परन्तु, जीते ही अध्यास छूटे बिना ऐसे गलकर मरनेसे किसीकी मुक्ति कदापि हो नहीं सकती है; ऐसा जानना चाहिये ॥ ३१४ ॥

सम्बन्ध— इसबारेमें ग्रन्थकर्त्ताने बीजक साखीका प्रमाण यहाँपर दिया है, सो सुनियेः—

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— २३६ ॥ ❀ ॥

साखीः— कृष्ण समीपी पाण्डवा * गले हिंवारे जाय ॥
[३६] लोहाको पारस मिलै * तो काहेको काई खाय ?॥ ३१५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो ! सुनोः—

कृष्ण समीपी = जिनको तुमलोग भगवान्
पाण्डवा = कृष्णजी मुक्ति देनेवाले पूर्ण ब्रह्म कहते हो, उन्हीं कृष्णजीके नाता, गोत्रवाले अत्यन्त समीपी अर्जुन आदि पाण्डवलोग परम प्रिय मित्र तथा भक्त थे। जो कि, सदा कृष्णके नजदीक ही रहते थे, जिनको कि, गूढ़ ब्रह्मज्ञान भी कृष्णने बताया था, और कृष्णके अन्तकालके उपदेश मानकर—

गले = स्वर्ग प्राप्ति वा मुक्तिके लिये पाँचों
हिंवारे = पाण्डवलोग हिमालय पहाड़के
जाय = बरफकी ढ़ेरीमें जाके गल-गलकर मर गये। और नाना कष्ट-यातनायें सहे। इससे कल्पना, भ्रम, अध्यास जीते ही न छूटनेसे उन्हींकी ही मुक्ति नहीं हुई। तब तुम्हारी और दूसरोंकी मुक्ति कृष्ण-भक्तिसे कैसे होयगी ?—

लोहाको = यदि लोहाको पारसमणिका
पारस मिलै = संस्पर्श मिल जाय, तब तो वह
तो काहेको = शुद्ध सुवर्ण हो ही जायगा।
काई खाय = फिर तो उसको कोई मूरचा या जङ्ग क्यों खायगा ? तैसे ही अबोध-अज्ञानी नर जीवोंको यदि सत्य चैतन्य पारख स्वरूपका बोध अपरोक्ष हो जायगा, तब तो

वे निर्मल, बन्धन रहित, कल्पना रहित, जीवन्मुक्त हो जायेंगे। सो फिर उनको कोई जड़ाध्यास-कल्पना हो नहीं सकती है। परन्तु, कृष्णका ब्रह्मज्ञान खोटा था, इससे पाण्डवोंको सत्यका बोध होके कल्पना नहीं छूटी। जब कि, खास कृष्णजी और पाण्डवोंको ही पारख स्वरूपका बोध नहीं हुआ, फिर अब गीता-भागवत् पढ़ने वालोंका कहाँसे बन्धन छूटेगा? कदापि नहीं छूटेगा॥

व्याख्या— सद्गुरुने यथार्थ परखाये हैं कि, हे मनुष्यो! तुमलोग मिथ्या भ्रममें पड़के क्यों भूल रहे हो? क्यों मिथ्या पक्ष पकड़के गाफिलीमें पड़ते हो? सत्यासत्यकी परीक्षा करके देखो, झूठे गुरुवालोगोंके भुलावामें मत् पड़ो। जिन कृष्णको तुमलोग ब्रह्म स्वरूप मानते हो, वे तो भ्रममें ही पड़े थे। और उनके उपदेश ज्ञान और भक्तिसे जो मुक्ति मान बैठे हो, सो भी यथार्थ नहीं है। क्योंकि, पाण्डव लोग कृष्णके परम भक्त, उपासक और नजदीकके नातेदार, सम्बन्धी ही थे। सब ज्ञान-विचार कृष्णने उन्होंको बताये थे, कोई बात पाण्डवोंसे छिपायके तो नहीं रक्खे थे। ऐसी अवस्थामें पाण्डवोंकी मुक्ति सहज थी कि नहीं? परन्तु, कृष्णके ब्रह्मज्ञानसे पाण्डवोंकी न भ्रम-कल्पना ही छूटी, न मुक्ति ही हुई। क्योंकि, जब अन्तकालमें पाण्डव वा अर्जुन कृष्णके पास दर्शनको गया, और उसने अपने कल्याणका उपाय पूछा, तो उसको तुम पाँचों पाण्डव हिमालयमें जाके वहाँ गलके स्वर्गमें आओ कहा। और कृष्णजीके कहे अनुसार ही पाँचों पाण्डव उत्तराखण्ड हिमालयकी घोर ठण्ढीमें जाके बरफमें गल-गलके एक-एक करके मर-मर गये। यह महा अज्ञानताका काम एक प्रकारका आत्मघात नहीं तो क्या है? यदि लोहाको पारसमणिका स्पर्श हो जाय, तो उसको काई क्यों खा सकेगा? तैसे ही जिसको स्वरूपका ज्ञान पारख बोध हो जायगा, तो वह भ्रम, धोखा, कल्पनामें क्यों पड़ेगा? ब्रह्म प्राप्ति, स्वर्ग प्राप्ति आदिकी आशा जबतक लगी है, तबतक उसका भव-बन्धन छूट नहीं सकता है। और स्वरूपका यथार्थ बोध होनेपर फिर कोई आशा, बासा, कल्पना रह नहीं सकती है। इसकारणसे जब कृष्ण और पाण्डवोंकी ही मुक्ति नहीं हुई, तो अब उनके गुण-चरित्र गाकर, गीता तथा भागवत्को पढ़कर ब्रह्मज्ञानके भ्रममें पड़े हुए लोगोंकी मुक्ति कैसे हो सकेगी? उस तरहसे तो मुक्ति कभी नहीं होयगी, सो यथार्थ विवेक करिये! और भ्रम-भूलको मिटाइये!॥ ३१५॥

सम्बन्ध— अब तेईसवाँ खण्डमें ४२ चौपाई, और १ साखीमें पारखबोधहीन भ्रमिक संसारी मनुष्योंकी विपरीत बुद्धिका कार्य भजन, आराधना, साधना जो-जो हो रही है, उसके बारेमें दर्शायके परखाते हैं; सो जान लीजिये!॥

॥ ❀ ॥ समाचार भजन-आराधन जग बुद्धि ॥ ❀ ॥
॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ तेईस खण्ड ॥ २३ ॥ ❀ ॥

१. जगमें जेते भये बलधारी * महिमा एक अनेक सँवारी ॥ ३१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जगत्के पारखहीन मनुष्योंकी दुर्बुद्धि, अल्प समझ और भक्तोंके इष्टदेव, भजन-कीर्तन, आराधना आदिका भ्रम, अविचार किसप्रकारसे हो रहा है, सो इसका हाल-खबर, समाचार यहाँपर दर्शाते हैं, सो सुनिये!:—

जगमें = जगत् या संसारमें जितने भी
जेते भये = बल, पराक्रम, पुरुषार्थ, साहस,
बलधारी = वीरता-शूरता आदि गुणवाले बलधारी या बलवान् मनुष्य हुए या हो गये हैं—
महिमा एक = उनकी महिमा वा महात्म्य
अनेक = एक ग्रन्थसे लेकर अनेकों
सँवारी = पुस्तकोंमें लिखे हुए हैं, वे लोग भी कोई एक विशेष कार्य करके और साधारण अनेकों कार्य वा कर्त्तव्य कर-करके नाना मानन्दी दिखलाके चले गये। अथवा एक ईश्वरके ही अंशसे अनेक अवतार हुए, ऐसी महिमा करके एकसे लेके अनेकों प्रकारकी बात सिद्धान्तोंको बनाके भिन्न-भिन्नरूपमें सजा रक्खे हैं॥

व्याख्या— जगत्में जितने भी मनुष्यलोग बल-बुद्धिधारी पराक्रमी हुए हैं, उन्होंके एक-एक कर्मकी विशेषता वर्णन गुरुवा लोगोंने कर रक्खे हैं। उन्होंने जो कुछ कर्म कर गये, सो उसकी महिमा बढ़ायके एक ईश्वरके ही अनेकों रूपमें अवतार मानकर लोगोंको भुला रहे हैं; अर्थात् संसारमें एक-से-एक जितने भी विशेष कलाधारी हुए हैं, उनकी महिमा एकसे अनेक प्रकारतक वर्णन करके गुरुवा-लोगोंने ग्रन्थोंमें लिख रक्खे हैं ॥ ३१६ ॥

२. मच्छ कच्छ शूकर बपु धारा ❀ जो जो कर्म किया संसारा ॥ ३१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मच्छ = प्रथम, मत्स्य अवतार मछलीके रूपमें प्रगट होकर शङ्खासुरको मारकर वेदकी रक्षा करनेके वास्ते हुआ, ऐसा माने हैं।

कच्छ = दूसरा, कछुवेके रूप धारण करके मन्दराचल पहाड़ और पृथ्वीको थामनेका काम किया, ऐसा माने हैं।

शूकर = तीसरा, सूअरके मुँहवाले वराह अवतार-ने विष्ठासे वा पातालसे पृथ्वीको निकालके दाढ़में पृथ्वीको रखनेका काम किया, माने हैं।

बपु धारा = मछली, कछुवे, सूअरादिके शरीर-धारी ऐसे-ऐसे अवतार हुए, कहे हैं।

जो जो कर्म = किया संसारा = } उन लोगोंने जो-जो कर्म वा कुकर्म, अच्छा-बुरा, संसार-में आके किये या कर गये, वही सब बात पुराण आदि ग्रन्थोंमें महिमा बढ़ायके लिख रक्खे हैं; और भक्तलोग उसीका ही गुण-गान, कीर्तन कर रहे हैं ॥

व्याख्या— मत्स्य अवतार मछलीका है, कच्छ सोई कछुवेका है, और सूअर या वराह, ऐसे-ऐसे शरीर धारण करके उन्होंने जो-जो कर्म-कुकर्म किये, सो-सो संसारमें श्रेष्ठ मानकर भक्तलोग उनकी गुण-महिमा गा रहे हैं ॥ ३१७ ॥

३. नरहरि बावन छल अधिकारी ❀ परशुराम क्षत्री जिन मारी ॥ ३१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नरहरि = मनुष्य और सिंहके आधा-आधा रूप बनाये हुए नरसिंहने छलसे हिरण्यकशिपुको मार डाला कहा है, सो नृसिंह अवतार माने हैं। और—

बावन = बटुकरूपधारी बौना ब्राह्मणने छल-कपटसे बलीराजाका सर्वस्व हरण कर लिया और बलीराजाको कैद करके पाताल भेज दिया, ऐसा कहा है।

छल = अधिकारी = } छल, कपट, प्रपञ्च, धोखा नृसिंह और वामनमें ज्यादा ही रहा। छलनेमें वे दोनों अधिक प्रवीण रहे। और—

परशुराम = क्षत्री = जिन मारी = } जमदग्निका पुत्र परशुराम अत्यन्त क्रोधी, महा हिंसक रहा। जिसने क्षत्रियोंको मार-मारकर एकईस (२१) बार निःक्षत्रिय पृथ्वीको किया, ऐसा वर्णन करके लिखा है ॥

व्याख्या— नृसिंह तथा वामन इन दोनोंमें बड़ी अधिक मात्रामें छल-कपट भरा था; क्योंकि, छलसे ही हिरण्यकशिपु मारा गया। तथा बलीराजा दानके बहानासे धोखेमें लूटा गया, और कैद किया गया, बाँधा गया। और परशुराम अत्यन्त क्रोधी, हिंसक रहा, जिसने निरपराध सब क्षत्रियोंको मार कर एकईस (२१) बार निःक्षत्रिय पृथ्वी किया, ऐसा लिखा है ॥ ३१८ ॥

४. बहु महिमा लीला रघुराई ❀ बाल्मीक शङ्कर गुण गाई ॥ ३१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बहु महिमा = लीला रघुराई = } रघुकुलके राजा रामचन्द्रकी लीला और महिमा बहुत ही वर्णन करके गाया और लिखा है। रामको मर्यादा पुरुषोत्तम माना है।

बाल्मीक = शङ्कर = गुण गाई = } शङ्करजीने और बाल्मीकि मुनिने रामचन्द्रकी महिमा, गुणानुवाद बहुत गायन किये हैं। सो उसका विस्तार बाल्मीकीय रामायणमें और तुलसीकृत रामायणादिमें लिखा हुआ है ॥

व्याख्या— दशरथ राजाके पुत्र रामचन्द्रजीकी लीला बाल्यकालसे लेकरके अन्तकाल तककी

महिमा बहुत ही वर्णन किये हैं। सो शिवजीने और वाल्मीकि मुनिने रामके गुणानुवाद चरित्र गायन बहुत-बहुत किये हैं। वह सब बात वाल्मीकीय रामायणादिमें विस्तारसे लिखी हुई है ॥ ३१९ ॥

५. केकई सौत संशय उर आनी ❀ दशरथ छली कामवश जानी ॥ ३२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

केकई सौत = दशरथ राजाकी छोटी रानी
संशय उर = कैकेयी थी। सौतके डाहसे
आनी = कैकेयीके मनमें एक सन्देह उत्पन्न हुआ कि, "कहीं रामके राज्याभिषेक होनेपर मैं अपमानित न हो जाऊँ ?" इससे मन्थराके बहकावेमें लग गई। तब कोप-भवनमें जाके बैठी।

दशरथ = जब दशरथ उससे मिलने आये,
छली काम = तो उसकी दुर्दशा देखकर
वश जानी = खुशामद करने लगे, राजाको कामासक्त अपने वशमें जानकर पूर्वके वरदान लेनेका छल-कपट करके रामको चौदह (१४) वर्ष वनवास और भरतको राज्याभिषेक कर देनेको माँगी ॥

व्याख्या— अयोध्याके राजा दशरथकी कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी नामकी तीन रानियाँ रहीं। राजाने रामकी योग्य अवस्था होनेपर राज्याभिषेक करनेकी तैय्यारी की थी। सो बात चेरी मन्थराने उलटी-सीधी करके कैकेयीको बतायी। तब सौतेली डाह वा ईर्षा-द्वेषसे उसके मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ; कि "रामके युवराज बननेसे कौशल्याका मान बढ़ेगा, मैं अपमानित हो जाऊँगी" इत्यादि; बादमें अपने दुःखी होनेकी कल्पना उत्पन्न की, तब क्रोधित होके उदास बनकर बैठ रही; जब रातमें राजा दशरथ उससे मिलनेको आये, तब उसे दुःखी दुर्दशाग्रस्त देखे और उसके कामवश आसक्त होनेसे उसको मनाने लगे। तब दशरथको कामवश जान करके कैकेयीने छली। पहिले थाती रखी हुई दो वर लेनेके बहानेसे रामको चौदह (१४) वर्षका वनवास और भरतके लिये राज्य माँग लेती भई ॥ ३२० ॥

६. दशरथ वचन राम वन गवना ❀ सीता हरण कियो तहाँ रावना ॥ ३२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दशरथ = तब प्रतिज्ञाबद्ध दशरथ राजाके
वचन राम = वचनको पालन करके रामचन्द्रजी
वन गवना = सीता और लक्ष्मणके सहित वनवासको चले गये। और फिर—

सीता हरण = वनवासके कुछ दिन बादमें
कियो तहाँ = तहाँ पञ्चवटीकी कुटीमें सीता-
रावना = को अकेली देखके मौका पाकर रावणने आकर सीताको हरण करके उसे लङ्कामें ले गया ॥

व्याख्या— दशरथ राजाके वचन वा पिताके आज्ञा पालन करके रामचन्द्र वनवासको गये, सो उनके साथमें सीता और लक्ष्मण भी गये थे। एक दिन पञ्चवटीकी पर्णशालामें सीता अकेली बैठी थी, तब मौका पाकर रावण आयके सीताको छलसे हरण करके लङ्कापुरीमें लेके चला गया॥३२१॥

७. तासु मोह विकल भये भारी ❀ कपिदल साज रावणा मारी ॥ ३२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तासु मोह = पश्चात् कुटीमें जानकीको न
विकल = पाकर चौतरफ ढूँढ़े, जब सीता
भये भारी = कहीं नहीं मिली, तब सीताके मोहमें आसक्त होकर राम बड़े भारी व्याकुल, दुःखी हुए। मतिहीन बनकर वृक्ष-लताओंसे सीताकी सुधि पूछते फिरे थे, ऐसे भारी विकल भये रहे। और—

कपिदल साज = फिर हनुमान, सुग्रीव आदि-
रावणा मारी = के मिलनेसे उन्होंसे मित्रता करके कपि-योद्धाओंके दल-बल, सैन्य साजकर लङ्कामें जाय पहुँचे। फिर घोर संग्राम करके युद्धमें रावण आदिको रामने मार डाले ॥

व्याख्या— सीताके वियोग होनेपर उसके मोहमें विशेष आशक्त होनेसे राम बड़े भारी विकल भये। बुद्धि विभ्रम हो गयी थी, इससे झाड़, पहाड़, नदी, लता, गुल्म, बेलियोंसे सीताकी

सुधि पूछते फिरते थे। फिर बीचमें हनुमानसे भेट हुई; सुग्रीवसे मित्रता किये। लङ्कामें सीताके होनेकी खबर पाकर बन्दरोंकी सेना एकत्रकर बड़ी मेहनत तथा युक्तिसे लङ्का जा पहुँचे। वहाँपर घोर लड़ाई लड़ करके सैन्य सहित रावणको मारे, इत्यादि वर्णन किया है ॥ ३२२ ॥

८. राज कर्ममें भयेउ पुनीता ❀ निश्चर निकर अपर्बल जीता ॥ ३२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! निश्चर निकर = } राक्षसोंके समस्त शत्रु सैन्य अपर्बल जीता = } समूहोंको हराकर अपनी बड़ी शक्तिसे बड़े-बड़े बलशाली राक्षसोंको मारकर युद्धमें रामचन्द्र विजयी हुए, शत्रुओंको जीत लिये। इस प्रकार सीताका उद्धार करके फिर उसे प्राप्त कर लिये। और- राज कर्ममें = } चौदह (१४) वर्षकी अवधि भयेउ पुनीता = } बिताकर फिर रामजी अयोध्यामें आकर राजा भये। राज्यके सब कर्मोंमें बड़े चतुर, कुशल, न्यायी, प्रवीण हुए रहे ॥

व्याख्या— इसतरह बड़े बलवान् राक्षसोंके समूह शत्रुपक्षवालोंको मारकर युद्धमें उन्हें जीत लिये। विभीषणको लङ्काका राज्य दिये। सीताको बन्धनसे मुक्त किये (रावणकी कैदसे छुड़ा लिये)। तत्पश्चात् वनवासके समय पूरा व्यतीत करके सीता तथा लक्ष्मणादि सहित रामचन्द्र अयोध्यामें आये। फिर उनका राज्याभिषेक हुआ। राज-काजमें बड़े सच्चे, न्याय निपुण, प्रवीण, धर्म पालक, भये रहे ॥ ३२३ ॥

९. कल्याण हेतु संशय उर आई ❀ मुनि वशिष्ठ ब्रह्मज्ञान दृढ़ाई ॥ ३२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! कल्याण हेतु = } एक समयमें रामचन्द्रके संशय उर आई = } मनमें यह शङ्का या सन्देह उत्पन्न हुआ कि, रावण तो ब्राह्मण-कुलका रहा, उसको मैंने मार डाला, उस दोषसे छुटकारा कैसे होवे? और मेरा कल्याण या मुक्ति कैसे-किस प्रकारसे होयगी? यह संशय रामके उरमें वा हृदयमें हो आया। मुनि वशिष्ठ = } तब कुलगुरु वशिष्ठ मुनिके ब्रह्मज्ञान दृढ़ाई = } पासमें जाके रामने शङ्का प्रगट की। फिर वशिष्ठ मुनिने रामको ब्रह्मज्ञान दृढ़ा करके कहा कि, हे राम! तू तो अकर्त्ता, अभोक्ता, असङ्ग, नित्यमुक्त, आत्माराम या ब्रह्म स्वरूप है। तू निर्दोष है, जो कुछ हुआ या होता है, सो प्रकृतिके खेल हैं। अपनेको तू शुद्ध ब्रह्म जान! इत्यादि विधिसे भ्रम ही दृढ़ा दिया था ॥

व्याख्या— रावण जो था, सो पुलस्त्य ऋषिका नाती और विश्रवाका पुत्र होनेसे ब्राह्मण कुलोत्पन्न रहा। परन्तु, हिंसादि कुकर्म रत रहनेसे तमोगुणी असुर वा राक्षस माना जाता रहा। रामचन्द्रके मनमें किसीवक्त यह संशय उत्पन्न हुआ कि, मुझसे ब्रह्म हत्या हुई है, वह कैसे छूटेगी? मेरा कल्याण वा मुक्ति अब किस प्रकारसे होवेगी? यह शोचकर गुरु वशिष्ठके पासमें जाके शङ्का कहा। तब वशिष्ठजीने रामको अद्वैत ब्रह्मज्ञान दृढ़ा दिया। "तू तो नित्य शुद्ध ब्रह्म स्वरूप है, तुझे कोई विधि-निषेध लग नहीं सकता है। तू यह मिथ्या सन्देह छोड़ दे! मैं ब्रह्म हूँ! यह चिन्तनकर!" इस प्रकारसे नाना तरहसे समझाकर रामको ब्रह्मज्ञान दृढ़ निश्चय करा दिया, सो विस्तारसे योगवाशिष्ठ ग्रन्थमें लिखा है ॥ ३२४ ॥

१०. अन्तस ब्रह्मज्ञान अभिमानी ❀ पूजा पाठ बहुत उन ठानी ॥ ३२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अन्तस = } वही ब्रह्मज्ञानको अन्तःकरणमें ब्रह्मज्ञान = } दृढ़ निश्चय करके भीतर मनमें अभिमानी = } "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा निश्चय रखकर ब्रह्मज्ञानके अभिमानी बने रहे। और— पूजा पाठ = } बाहर लोकाचारको पालन करके- बहुत उन = } मूर्ति आदि देवी-देवताओंकी ठानी = } पूजा और वेद पाठादि कर्म मार्ग- का विधान भी बहुत ही पालन करते रहे।

सो उसी प्रकारसे अभी संसारी वैरागी भक्त-लोग उन रामकी ही भक्ति पूजा-पाठ करते-करते हैं, और रामको ही ईश्वरका अवतार मानकर भ्रम चक्रमें पड़े हैं ॥

व्याख्या— तब वही ब्रह्मज्ञान 'अहंब्रह्मास्मि' का अभिमान अन्तरमें धारण किये रहे। परन्तु, बाहर लोकरीतिमें पूजा, पाठ, दान, पुण्य भी बहुत करते रहे। सो अभी वैरागी भक्त संसारी लोग, रामकी मूर्तिकी पूजा, रामायणके पाठ आदिसे मुक्ति मानकर जो पूजा-पाठ करते हैं या करा रहे हैं, सो इससे उन्होंकी मुक्ति तो हो नहीं सकती है; क्योंकि, उन रामका ही भव-बन्धन नहीं छूटा, तो उनके भक्तोंका कैसे छूटेगा ? ॥ ३२५ ॥

११. लीला कृष्ण बरनि बहु भाँति ❀ धरे ध्यान दिवस औ राती ॥ ३२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

लीला कृष्ण = और कृष्णकी लीला, कृष्ण
बरनि बहुभाँति = भक्तोंने बहुत प्रकारसे वर्णन किये हैं। सो भागवतादि पढ़कर नाना भाँतिसे वर्णन करते हैं। सोई विषय लीला गा-गाकर सुन-सुनकर वा सुना-सुनाकर भक्त लोग—
धरे ध्यान = कृष्णके रूपका ही ध्यान करते-
दिवस = करातें हैं। दिन और रात्रि कृष्ण-
औ राती = लीलाका ही चिन्तन करते हैं; उसीमें मस्त पड़े रहते हैं ॥

व्याख्या— कृष्ण भक्तोंने कृष्णकी लीला बहुत भाँतिसे वर्णन किये हैं। चोरी, जारी, छली, बटपारी वा ठगाई इत्यादि वर्णन करके बताये हैं। वही विषय-लीलाके चिन्तनसे ही हित होनेका मानकर दिन-रात कृष्णके रूपका ध्यान किया करते हैं। भला ! इससे मनका दोषरूपि कालिमा बढ़ानेके सिवाय वह कैसे घटेगी वा कैसे छूटेगी ? ॥ ३२६ ॥

१२. कामिनी छली रूप अधिकाई ❀ अबला मोहै बाँस बजाई ॥ ३२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कामिनी छली = कृष्णजी अत्यन्त साज-शृङ्गार
रूप अधिकाई = करके बड़ा सुन्दर स्वरूप दिखलाय, छैल-छबीला बनते रहे; और छल, बल, कपट, प्रपञ्च करके ग्वालोंकी स्त्री ग्वालिनी कामिनियोंके साथ सम्भोग करते रहे। ऐसे बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंको छलकर वश किये रहे। इसप्रकारसे जो वशमें न हुई, उनको फँसानेके लिये और भी बहुत-सा उपाय करते रहे, बहुतोंके पातिव्रत्य धर्मको नष्ट-भ्रष्ट कर दिये।
अबला मोहै = और बाँसुरी बजा-बजा करके
बाँस बजाई = मधुर-मधुर ध्वनि सुना-सुनाकर ग्वालिनी स्त्रियोंको मोहितकर अपने वशीभूत करते रहे। रात्रिमें बाँसुरी बजाकर उसके संकेतसे स्त्रियोंको बुला-बुलाकर व्यभिचारसे मैथुन कुकर्म करते रहे; ऐसे पशु कर्मोंसे क्या किसीकी भलाई हो सकती है ? कभी हो नहीं सकती है ॥

व्याख्या— कृष्ण तो ऐसा विषयी व्यभिचारी रहा कि, सुन्दरी स्त्रियोंको देखकर हरतरहसे उन्हें छलके अपने वशमें करता रहा। स्वयं भी बहुत सुन्दर रूपका स्वाङ्ग बनाता रहा। अधिक सुन्दरता दिखाकर बहुतेक कामिनियोंको छला, तो भी सन्तुष्ट न होकर रूपसे वश न हुई स्त्रियोंको बाँसुरी बजा-बजाकर शब्दसे मोहित करता रहा ॥ ३२७ ॥

१३. तिनके सङ्ग क्रीड़ा बहु करई ❀ कामातुरसों पायन परई ॥ ३२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तिनके सङ्ग = फिर कृष्ण उन गोपिनी स्त्रियों-
क्रीड़ा बहु = के सङ्गमें खेल, कूद, हास्य,
करई = विनोद, आलिङ्गन, चुम्बन आदि बहुत प्रकारसे विषय काम-क्रीड़ा, मैथुन-कर्म, भोग ऐसे-ऐसे व्यभिचार करता रहा। और—
कामातुरसों = जब कोई युवती सहजमें
पायन परई = मानती नहीं थी या वशमें नहीं

होती थी, तब तो कृष्ण कामातुर मदान्ध होके उन स्त्रियोंके पाँव भी पड़ता रहा, इसप्रकार पाँव पड़-पड़कर खुशामद करके उन्हें मनाकर सम्भोग किया करता रहा ॥

व्याख्या— कृष्णजी छैल-छबीला बनकर गोप स्त्रियोंके साथ बहुत प्रकारसे काम क्रीड़ा भोग-विलास करके मस्त रहता था। यदि कोई स्त्रियाँ सहजमें राजी न हुईं, तो कामातुर हो करके उन स्त्रियोंके पाँव पड़-पड़के मनाकर भी सम्भोग करता रहा। यह सब कुकर्मोंका विस्तारसे वर्णन भागवतादि ग्रन्थोंमें कई तरहसे आया है ॥ ३२८ ॥

१४. विषय वासना निशि दिन धावै ❀ ब्रह्म अच्युतानन्द कहावै ॥ ३२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! वैसे तो कृष्ण—

विषय वासना = स्त्री-विषयके भोग
निशि दिन धावै = वासनाओंमें रात-दिन लगा हुआ उधर ही दौड़ा करता था। यानी मनको विषय वासनाओंमें ही दिन-रात दौड़ाते हुए भी कृष्ण झूठे ही ब्रह्म बनता था; कर्म तो दिन-रात विषय भोगनेका ही करता रहा, और कहनेको तो ऐसा कहता रहा कि—

ब्रह्म अच्युता- = सो मैं तो सदा ब्रह्म अखण्ड
नन्द कहावै = हूँ ! और कभी च्युत होकर संसारमें न गिरनेवाला तथा छूति विषयोंसे रहित, ऐसा मैं शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ, ऐसी बात कृष्ण कहता रहा। और लोगोंको धनादिसे वशमें करके ऐसे कहलवाता भी रहा ॥

व्याख्या— दिन-रात तो विषय वासनावश कर्म-कुकर्ममें ही कृष्ण दौड़ते रहे। नयी-नयी स्त्रियोंको ही ढूँढ़ते-फिरते रहे। और लोगोंसे क्या कहते रहे कि, "मैं तो शुद्ध ब्रह्म हूँ !" ब्रह्म कभी संसारके छूति विषयोंमें लिप्त नहीं रहता है; सो मैं निर्लिप्त अच्युतानन्द ब्रह्म हूँ ! ऐसा अपने कहते रहे। और दूसरे लोगोंको भी कई प्रकारके स्वार्थसे धन-जनादिसे काबू करके 'कृष्ण तो अच्युतानन्द ब्रह्म है' ऐसा कहलाने लगाते रहे ॥ ३२९ ॥

१५. राज काज सबै अधिकारी ❀ विरह व्याकुल ब्रजकी नारी ॥ ३३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं - हे सन्तो !

राज काज = राज सम्बन्धी कार्योंमें साम,
सबै अधिकारी = दाम, भेद और दण्ड आदि सब बातोंके जानकार सब प्रकारके अधिकार प्राप्त, राजनीतिमें चतुर, चालाक, प्रवीण, कार्यकुशल ऐसे कृष्ण रहे। और राज-काज-में सब अधिकारी लोग कृष्णको विशेषरूपसे आदर करके मानते रहे।

विरह व्याकुल = परन्तु, जब गोकुलसे कृष्णजी
ब्रजकी नारी = मथुरा जाकर रहने लगे, तब ब्रज मण्डलकी पूर्व सम्बन्धित स्त्रियोंकी याद करके काम विरहमें कृष्ण व्याकुल भये, तो उद्धवको भेजकर उनकी खबर मँगाये। उधर ब्रजकी नारियोंको तो कृष्णका विरह खूब असह्य था। उनके वियोगमें वे व्याकुल ही पड़ी रहती थीं ॥

व्याख्या— कृष्णजी राजनीतिके सब कार्योंमें निपुण विशेष चतुर रहे, इसलिये राजकार्यके सब अधिकार उनको प्राप्त रहे; तथा सब लोग उनको मानते रहे। और मथुरा तथा द्वारका जाके जब कृष्णको ब्रजकी नारियोंका सङ्ग-वियोग होनेकी याद हुई, तब तो बड़े विरही व्याकुल हुए। फिर उद्धवको गोपिनियोंकी सुधि लेनेको गोकुल भेजे रहे, तो वहाँ भी ब्रजकी नारियाँ कृष्णके विरह-वियोगमें अत्यन्त व्याकुल रहीं। यह खबर सुनकर और भी कृष्ण दुःखी भये रहे ॥ ३३० ॥

१६. गोपिन विरह अनल तन जारी ❀ तासु लोक गौलोक विचारी ॥ ३३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गोपिन विरह = पश्चात् जब कृष्णकी मृत्यु
अनल = हुई, तब तो गोपिनियाँ बड़ी
तन जारी = ही विरहिनी होकर विरह अग्निमें जलकर मरने लगीं। विरह व्याकुल होके इसी आवेशमें कई स्त्रियोंने अग्नि जलायके उसीमें शरीरको भस्मकर जलके

मर गयीं। और—

तासु लोक = कृष्ण भक्तोंने कृष्णका लोक
गौलोक = परमधाम, गौलोक नामसे ऊपर
विचारी = मानकर कल्पना ही किये हैं, और उन कृष्णके विरहमें मरनेवाली सब स्त्रियोंको उसी गौलोककी प्राप्ति हुई, ऐसे झूठ-मूठका गुरुवालोगोंने विचार किये हैं, सो यथार्थ बात नहीं है ॥

व्याख्या— इसप्रकार विषयासक्तिमें ही जन्म बितायके जब कृष्णका देह छूटा, तब यह समाचार पायके गोपिनी स्त्रियोंने भी कृष्णके वियोगकी विरहाग्निमें तथा कईयोंने तो चिता बनायके आग लगाकर उसीमें कूद-कूदकर शरीरको जलाकर मर-मर गईं; ऐसी आत्मघातिनी हुईं। और कृष्णका परमधाम सबसे ऊपर गौलोक नामक माने हैं। अब झूठ-मूठकी कपोल कल्पना करके कृष्ण भक्त-लोग कहते हैं कि, उन गोपिनियोंकी तो सद्गति हुई। जो कृष्णके विरहमें मरीं, सो सब गौलोकमें चली गईं। वहाँपर तो एक पुरुष कृष्ण ही हैं; और सब स्त्रियाँ ही रहती हैं। अब जो कोई भक्त अपनेको गोपिकाकी भावना दृढ़ करके कृष्णके विरहमें देह छोड़ेंगे सो वे भी वहीं गौलोकमें जाके पहुँचेंगे। ऐसा गुरुवालोगोंने झूठी कल्पनाका विचार किये हैं ॥ ३३१ ॥

१७. सोइ सोइ पाट करहिं लौलाई * संशय मोह दिन दिन अधिकाई ॥ ३३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सोइ सोइ = राम और कृष्णने जो कुछ
पाट करहिं = विषय सम्बन्धी चरित्र, कर्त्तव्य
लौलाई = किये थे, वर्तमानमें भक्तलोग सो वही-वही नकल चरित्रका 'पाट' कहिये लीला कर-करायके उसी विषयोंमें ही लौ-लगायके प्रेम कर रहे हैं।

संशय मोह = इससे उन लोगोंके मनमें सन्देह
दिन दिन = और मोह विषयोंकी आसक्ति-
अधिकाई = रूपी बन्धन दिनोंदिन अधिक-ही-अधिक ज्यादा बढ़ता जाता है; भ्रम-भूल बढ़ती ही जाती है ॥

व्याख्या— जो-जो पहले रामचन्द्र और कृष्णचन्द्रने कार्य-लीला कर गये हैं, सोई-सोई नकल पार्ट या पाट रामलीला-कृष्णलीलाके नामसे भक्तलोग करते हैं, और उसीमें प्रेम लगाते हैं। इससे जन्म-मरणमें जानेका विषय अध्यास, संशय, मोहादि दिन-प्रतिदिन ज्यादा-ही-ज्यादा बढ़ता गया या बढ़ता जाता है ॥ ३३२ ॥

१८. जगत जाल नाना दुःख पावै * मुक्ति हेतु सो लीला गावै ॥ ३३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

जगत जाल = जगत्के गृह-जाल, विषय
नाना दुःख = भोगोंमें जब नाना तरहसे
पावै = दुःख, कष्ट-क्लेश पाये, तब संसारी मनुष्य गुरुवालोगोंकी शरण हो भक्ति मार्गमें लगने आये। और—
तहाँ गुरुवालोगोंके कहे प्रमाणसे—

मुक्ति हेतु सो = संसाररूपी भवसागरसे तरकर
लीला गावै = मुक्तिके वास्ते इसीकारण सो रामचन्द्र और कृष्णजीके कर्त्तव्योंकी विषय लीलाको प्रेमसे गाने-कहने लगे। परन्तु, विषय विलासका कीर्तनसे मुक्ति किसीकी नहीं भई। और भी दृढ़ भव-बन्धनमें जाके पड़ जाते हैं ॥

व्याख्या— संसारी अज्ञानी नरजीव जगत्के खानी जालोंमें नाना प्रकारके दुःख भोग पाकर उससे मुक्ति पानेके लिये, सोई राम वा कृष्णादिके विषयोंकी लीला जीवन-चरित्र गाते हैं। परन्तु, जब अपने ही विषय भोगनेसे उससे किसीकी गति-मुक्ति नहीं होती है, तो दूसरोंके विषय-भोगोंकी लीला गानेसे मुक्ति कैसे होगी? उस प्रकारसे कदापि मुक्ति नहीं होगी ॥ ३३३ ॥

१९. चाहै भवसागरसों तरना * पुनि सो भव जल फेर न गहना ॥ ३३४ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चाहै भवसागर = संसारके बन्धनोंसे छूटकर
सों तरना = नरजीव पार उतरना और मुक्त होना तो चाहते हैं, परन्तु, खानी-वाणी जड़ाध्यासोंको नहीं छोड़ते हैं, तो कैसे

पार उतरेंगे ? यदि कोई इस भवसागरसे पार उतरना चाहें, मुक्त होना चाहें, तो सुनो !—

पुनिसो = भव जल = फेर न गहना = प्रथम तो पारखी सद्गुरुके शरणागत होओ, फिर परख करके उस कल्पना तथा विषयोंको छोड़ दो, फिर उलट करके भव-सागरमें लेजानेवाला खानी-वाणीके अध्यासोंको कभी भी ग्रहण करके न पकड़ना, सर्वथा उसे त्यागकर देना चाहिये ॥

व्याख्या— भवसागरसे तरनेकी चाहना तो सब कोई करते हैं; परन्तु, उपाय तो जानते ही नहीं। यदि भवसागरसे पार उतरकर मुक्त होनेकी तीव्र इच्छा होवे, तो हे मनुष्यो ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके फिर खानी-वाणीके विषय तथा कल्पनाओंको कभी भूलकर भी ग्रहण नहीं करना, फिर उसे कभी नहीं पकड़ना। उसको परखकर त्याग करो, तभी मुक्ति होगी। अर्थात् तुमलोग यदि भवसागरसे पार उतरना वा सदाके लिये मुक्त होना चाहते हो, तो फिर उस बन्धनके मूल कारण-रूप विषयासक्ति और भ्रम-कल्पनाओंको सर्वथा-परित्याग करो; पुनः इसे कभी जीवनभर ग्रहण न करो, तब तो पार उतर जाओगे, ऐसा जानो ॥ ३३४ ॥

२०. जगन्नाथ प्रतिमा बनाई ❀ कृष्ण पिण्ड गाड़ा तहाँ जाई ॥ ३३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जगन्नाथ = प्रतिमा = बनाई = पुरीधाममें जगन्नाथ नामसे जो चन्दनकी लकड़ीका कृष्ण, बलराम तथा सुभद्राकी तीन मूर्ति प्रतिमा बना रक्खे हैं, सो उसका महात्म्य इसलिये गुरुवालोग विशेषरूपसे फैलाते वा फैला रहे हैं कि—

कृष्ण पिण्ड = गाड़ा तहाँ = जाई = प्रभास पट्टनमें व्याधाके तीरसे कृष्णकी मृत्यु होनेपर उनके भक्तोंने सो कृष्णके पिण्डरूप शरीरको पुरीमें लेजायके गाड़ दिये; उनकी समाधिके ऊपर उक्त प्रतिमा बनाकर स्थापनाकर जगन्नाथके नामसे महिमा बढ़ाये हैं। परन्तु, भ्रम चक्रमें ही पड़े हैं ॥

व्याख्या— यदुवंशियोंके विनाश होनेपर जरा नामक व्याधाके बाण कृष्णके पैरमें आकर लगा। उसीसे उनकी भी मृत्यु हुई। तब कृष्णके भक्तोंने कृष्णके मृत शरीरको पुरीमें लेजाके गाड़ दिये, वहाँ समाधि बनाकर उसके ऊपर जो प्रतिमा बनाके रक्खे, सो कृष्ण, बलराम और सुभद्राकी मूर्ति चन्दनके काष्ठपर प्रतिमा बनाये हैं। उसीको अब जगन्नाथके नामसे प्रसिद्ध किये हैं। कोई उसीको बौद्धका अवतार भी मानते हैं ॥ ३३५ ॥

२१. बुद्ध गया जो बौद्ध अवतारा ❀ जाके पन्थ जैनी संचारा ॥ ३३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बुद्ध गया = जो बौद्ध = अवतारा = गयासे सात मील दूरपर बुद्ध-गया नामका प्रदेश है, जो कि, वहाँपर गौतम-बुद्धने जाकर तपस्या, ध्यान, समाधि लगायी थी; वहीं उनको बोध प्राप्त होनेसे वे अवतारी बुद्ध कहलाये; त्यागी भिक्षु हुए थे।

जाके पन्थ = जैनी संचारा = जिनका मत वा पन्थ अब बुद्ध-मतके नामसे प्रसिद्ध है; और बुद्धके ही जमानेमें महावीर स्वामी हुए थे; उनसे अलग जैन मत चला हुआ है। बहुत कुछ अंशोंमें इन दोनोंकी बातोंका मिलान होता है, इसीसे बौद्धके पन्थको जैनियोंने चलाया कहा गया है ॥

व्याख्या— प्रसिद्ध गया नामक क्षेत्रसे हटकर ७ मील दूरपर बौद्धगया नामकी भूमि है। वहाँपर ही गौतम-बुद्धने आकर एक पीपल वृक्षके नीचे बैठकर ध्यान-समाधि लगाया, जिससे वहींपर उन्हें बोध उदय हुआ। इसकारणसे गौतमका नाम 'बुद्ध' पड़ा, और उस जगहका नाम तबसे 'बौद्धगया' कहलाया; वे अवतारी माने गये। बुद्धसे ही करीब पचीस सौ उनतीस वर्ष (२५२९) [ई० सन् १९५४ से] पहले भारतमें बौद्ध मतका पन्थ चला है। और बुद्धके समकालीन महावीरस्वामी हुए थे, २४८१ वर्ष

पहले सो उनसे जैनमतका पन्थ अलग ही चला है। परन्तु, इन दोनोंकी बहुत-सी बातोंमें तथा साधनोंमें मिलती-जुलती है; इससे "जाके पन्थ जैनी संचारा" कहा है। और अमरकोशके कर्त्ताने बुद्धके नाम संख्यामें "जिन" लिखा है। अतः पहले लोग जैन और बुद्धमतको प्रायः एक ही मानते थे। अब वे दोनों भिन्न-भिन्न दो पन्थ माने जाते हैं, एक नहीं हैं। उन दोनोंके— सिद्धान्त अलग-अलग हैं, उनमें मत भेद है ॥ ३३६ ॥

२२. दत्तात्रेय व्यास कवि नाना * गिनती चौबिस करहिं बखाना ॥ ३३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दत्तात्रेय व्यास = दत्तात्रेय, व्यास कवि, कपिल,
कवि नाना = हयग्रीव आदि चौदह (१४)
और मुख्य दश (१०) को मिलायके कवियोंने नाना प्रकारसे अवतार माने हैं,

उनमेंसे मुख्यतया—
गिनती चौबिस = सब चौबीस अवतार
करहिं बखाना = गिनकर उनकी महिमा
गुरुवा लोगोंने पुराणोंमें वर्णन किये हैं ॥

व्याख्या— दत्तात्रेय और व्यासादि ये प्राचीन कवि भये हैं। इन्होंने नाना प्रकारकी वाणी कथन किये हैं; और कई कवियोंने नाना प्रकारसे भिन्न-भिन्न मत-पन्थ माने हैं। तहाँ सनातनियोंने संसारमें सब चौबीस अवतार माने हैं। उनके नामः— मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बौद्ध, निष्कलंकी; दत्त, व्यास, कपिल, हयग्रीव, पृथु, जड़भरत, ऋषभदेव, सनकादि, मनु, बद्री, धन्वन्तरी, हंस, नारद और मोहिनी, ऐसे दश (१०) मुख्य और चौदह (१४) गौण अवतार सब मिलके चौबीस (२४) गिनाये हैं, पुराणोंमें उनका विस्तार वर्णन किया है ॥ ३३७ ॥

२३. एक आश आगे लौलावै * कली विषहरन कलंकी गावै ॥ ३३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

एक आश = उपरोक्त २४ अवतारोंमेंसे २३ तो
आगे = पूर्वमें ही हो चुके या अवतार
लौ लावै = हो-होकर मर चुके हैं, और आगे
भविष्यमें एक अवतार होना बाकी है, ऐसी कल्पना करके उसी एक होनेवाले अवतारकी आशामें लौ लगा रहे हैं। उससे भुक्ति तथा मुक्ति पानेकी आशा-भरोसामें भूले पड़े हैं।

कली विषहरन = यह कलियुगरूपी संसारमें
कलंकी गावै = रोग, शोक, पापकी विष-ज्वालाको हरण करनेवाले परमेश्वरका मूल अवतार सर्व समर्थ कलंकी या निष्कलंकी भगवान् अवतीर्ण होंगे वा प्रगट होंगे। ऐसा गुरुवालोगोंने वर्णन करके गाये हैं ॥

व्याख्या— कलियुगमें विषको हरणकर दुःखोंको मिटानेवाले पापियोंको विनाशकर धर्मकी रक्षा करनेवाले निष्कलंकी नामके अवतार आगे भविष्यमें एक और होनेवाले हैं। ऐसा मानकर भ्रमिक गुरुवालोग उसी एक ईश्वरकी आशामें लौ लगा रहे हैं। और प्रेमसे उसीका कीर्त्तन, भजन, स्मरण करनेमें लगे हैं; बिना विवेक धोखेमें ही पड़े हुए हैं ॥ ३३८ ॥

२४. सनकादिक शुक नारद ज्ञानी * सहस्र अठासी मुनिवर खानी ॥ ३३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

सनकादिक = अनादि कालके संसारमें
शुक नारद = ब्रह्मादि तथा सनक, सनन्दन,
ज्ञानी = सनातन, सनत्कुमार, शुकदेव, शुक्राचार्य, बृहस्पति, व्यास, वशिष्ठ, नारदादि अनेकों ज्ञानी, योगी, भक्त, सिद्ध-साधकवर्ग हुए हैं।

सहस्र = हिन्दुओंमें बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंकी
अठासी = गणना सब अट्ठासी हजार माने
मुनिवर = हैं। परन्तु, सो सब पारखहीन,
खानी = भ्रमिक होनेसे ब्रह्म, ईश्वर, देवी, देवता, लोक-लोकादि मान-मानकर जड़ाध्यासी हो, चारखानी चौरासी योनियोंके ही अधिकारी हुए थे ॥

व्याख्या— सनकादि चार भाई, शुकदेव, नारद, व्यास, वशिष्ठादि ब्रह्मज्ञानी हुए थे। वैसे मुख्य-

मुख्य बड़े-बड़े ऋषि-मुनिकी गिनती कुल अट्ठासी हजार वर्णन किये हैं। परन्तु, वे सब भ्रमिक, पारख-हीन होकर चारखानी-चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़े थे। यह उन्होंके मत उनकी वाणीसे संसारमें जाहिर है, और उन्होंको जहाँ तक जो कुछ भी बोध हुआ था, सो शास्त्रोंमें वर्णन किया है ॥ ३३६ ॥

२५. आप आप सब ब्रह्म कहावै * खोजि खोजि कछु अन्त न पावै ॥ ३४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

आप आप = वे ऋषि-मुनि सब आप अपने
सब ब्रह्म = निज चैतन्य स्वरूप पारखको
कहावै = भूल करके अपनेसे भिन्न कोई ईश्वरकर्त्ता तथा अपने स्वयं ही सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म कहलायके या ऐसी मानन्दी करके भ्रमसे गाफिलीमें पड़े थे। सब भूले ही हुए थे।

खोजि खोजि = अपनी-अपनी मानन्दी, युक्ति-
कछु अन्त = प्रयुक्ति, योग, ध्यान, समाधि
न पावै = लगाकर बाहर और भीतर बहुत-बहुत ब्रह्मकर्त्ताकी तलाश किये। परन्तु, उसका अन्त और थाह वा पता किसीको कुछ नहीं लगा, इसकारण बेअन्त, अथाह, अगम, अगोचर मानकर भूलके भ्रममें ही वे सब रह गये ॥

व्याख्या— सब कोई वेदान्तीलोग अपने-अपनेको आप-ही-आप ब्रह्म कहते हुए 'अहं ब्रह्मास्मि' मानते हैं। परन्तु, अपने सत्य चैतन्य जीव स्वरूपको उन्होंने यथार्थ नहीं जाना। व्यापक ब्रह्म मान-मानकर भूलमें पड़े थे। और जहाँ-तहाँ खोज-खोजकर उस ब्रह्मका पता तो बहुत लगाये; परतु, उसका कुछ भी गुण-लक्षणका पता वा अन्त नहीं पाये, तब हार मान करके निर्गुण, निराकार, बेअन्त, अथाह मानकर गोता खाके रह गये ॥ ३४० ॥

२६. आप गये औरन भरमावै * पुनि सो ब्रह्म एक भिन्न कहावै ॥ ३४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

आप गये = अपने तो वे योगी, ज्ञानी, भक्त,
औरन = ऋषि, मुनि, गुरुवालोग भ्रम,
भरमावै = धोखा, कल्पना, वाणी-खानी गाफिली महा भव-बन्धनोंमें खुशीसे चले ही गये। परन्तु, और अबोध मनुष्योंको भी नाना भाँतिसे भ्रमाय, भुलाय, लालच दे-देकर बन्धनोंमें बाँध डाले और धोखेमें डाल रहे हैं। इसप्रकार भ्रमा दिये हैं। और—

पुनि सो ब्रह्म = फिर सो माना हुआ ब्रह्मको
एक भिन्न = निराकार, निर्गुण, निरञ्जन,
कहावै = एक अद्वैत अधिष्ठान और सब जगत् उपाधिसे भिन्न, अलिप्त भी कहते हैं। तथा सबसे न्यारा या भिन्न एक ब्रह्म है, कहिके ब्रह्म प्राप्तिका उपदेश दृढ़ाके दूसरों-को भ्रमा-भ्रमाकर धोखेमें डाल देते हैं ॥

व्याख्या— गुरुवालोग अपने आप तो जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंमें चले गये और जा रहे हैं। और दूसरे मनुष्योंको भी अनेक तरहसे भ्रमाय दिये और भ्रमा रहे हैं। फिर उस ब्रह्मको एक अद्वैत सबसे भिन्न, निर्लिप्त कहते हैं, तथा स्वयं ही ब्रह्म बनते हैं ॥ ३४१ ॥

२७. असी सहस्र पैगम्बर होई * कुदरत खोज तिनहुँ नहिं पाई ॥ ३४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अब मुसलमानोंकी बात बतायी जाती है, सो सुनिये!:—

असी सहस्र = मुसलमानोंके धर्मोपदेशक
पैगम्बर होई = गुरुवालोग जिन्हें पैगम्बर कहते हैं, वे अस्सी हजार हुए, ऐसा माने हैं।
कुदरत खोज = उन सबोंने भी खुदाकी खोजी
तिनहुँ = तलाशी बहुत-बहुत किये।

नहिं पाई = परन्तु, खुदाका पता पाना तो दूर रहा, उसकी 'कुदरत' माने मायाके मोटे-मोटे भेद भी उन पैगम्बरोंने जान नहीं पाये या कुछ समझ नहीं पा सके। इसीसे बेचून, बेनमून, गोयमगोय कहिके रह गये ॥

व्याख्या— अस्सी हजार पैगम्बर मुसलमानोंमें भये, ऐसा कहते हैं। और कहीं-कहीं उनकी गिनती एक लाख अस्सी हजार माने हैं। परन्तु, उन्होंने भी माया, कल्पनाका ठीक-ठीक पता नहीं पाये।

खुदाकी खोज करते-करते उसकी कुदरतका ही कुछ पता नहीं पाये। बेचून, बेनमून, गोयमगोय कहके धोखेमें रह गये ॥ ३४२ ॥

२८. आदम आद होय अल्लाह पठाना ❀ नाम खलीलकी बानी ठाना ॥ ३४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

आदम आद = होय अल्लाह = पठाना = मुसलमानोंका कहना है कि, बाबा आदम दुनियाँमें सबसे पहलेके आदि मूल पुरुष हैं। अल्लाहने ही उसको मामा हव्वाके साथ शुरूमें दुनियाँमें भेजा या पठाया है। इन्हीं लोगोंसे फिर जगत्की उत्पत्तिकी शुरूआत हुई है, ऐसा माने हैं। और—

नाम खलीलकी = बानी ठाना = बाबा आदम ही खुदाई धर्म-के पहले उपदेशक हुए, फिर ईब्राहिम खलुल्ला पैगम्बर हुए। उन्होंने खुदा वा अल्लाहका नाम बताया और खलकमें सब दूर खालिक भरा है, खुदा बिना कोई जगह खाली नहीं है, ऐसी वाणीका उपदेश कायम किये ॥

व्याख्या— मुसलमान लोग कहते हैं— सृष्टिके आदि वा शुरूमें खुदाने बाबा आदमको मामा हव्वाके सहित दुनियाँ उत्पन्न करनेके लिये भेजा। फिर उसने आके दुनियाँ बनाकर खुदा-ताला खलक-में ही भरा है, ऐसी वाणी कायम करके ठहरा दिया। और फिर ईब्राहिम खलुल्ला पैगम्बरने भी वही वाणीको निश्चयकर लिया और खुदाका नाम रटन करके जपने लगा; वही मार्ग औरोंको भी उसने बताया ॥ ३४३ ॥

२९. नुह सुलेमान ईशा मूसा ❀ नाम महम्मद कहै सन्देशा ॥ ३४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

नुह सुलेमान = ईशा, मूसा = 'नूह' कहिये दाउद, दूसरा सुलेमान, तीसरा ईशुखिस्त और चौथा मूसा, ये चार पैगम्बर पहले ही हो गये। इनके बादमें और—

नाम महम्मद = कहै सन्देशा = पाँचवाँ महम्मदका नाम आता है। ये आखिरी पैगम्बर हुए; और ये पाँचों खुदाका सन्देश, कितेब-कुरान मुस्लिम मजहबका उपदेश देनेवाले हुए या खुदाके सन्देश कहनेवाले हुए, ऐसा माना है ॥

व्याख्या— नूह, सुलेमान, मूसा और ईशा- ये चार पैगम्बर पहले हुए और पाँचवाँ पैगम्बरके नाम महम्मद कहा जाता है। इन्होंने अल्लाहका नाम जपते हुए खुदाके सन्देशरूप आज्ञा, खबर, कुरानशरीफ आदि पुस्तक पढ़कर सुना दिये वही बात कह गये हैं; सो वही मुस्लिमलोग मान रहे हैं ॥ ३४४ ॥

३०. अपनी उक्ती कुरान बनाई ❀ रोजा हज्ज फर्ज फुरमाई ॥ ३४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अपनी उक्ती = कुरान बनाई = महम्मदादिकोंने ही अपनी युक्ति-प्रयुक्तिसे चार कितेब-का कथन, लेखन करके कुरान शरीफ नामक पुस्तक बनाये; उसको खुदाके नामसे दुनियाँ-में जाहिर या प्रख्यात कर दिये। फिर उसमें-से मुसलमानोंको उपदेश दिया कि—

रोजा = तीस दिनका रोजाका व्रत रखना—

हज्ज फर्ज फुरमाई = और मक्का, मदीना आदि तीर्थ स्थानोंमें जाके दर्शन कर आना। उसको हज्ज करना कहते हैं। फिर पाँच वखत बाँग पुकारना वा निमाज पढ़ना और मुस्लिम विधिसे सुन्नति आदि कर्म करना, यह प्रत्येक मुसलमानका कर्त्तव्य है; ऐसा फर्ज या कर्त्तव्यका हुकम फर्माये हैं। यानी ऐसा करनेकी आज्ञा दिये हैं ॥

व्याख्या— महम्मदादियोंने अपनी ही उक्ति, कथनकी वाणी एकत्र लिखकर 'कुरान' नामके ग्रन्थ बनाये। और छिपाकर उसे वृक्षमें रखकर लोगोंको ले जाकर दिखाया और खुदाने कुरान भेजा है, ऐसा कहके प्रगटमें जाहिर किया। उसमेंसे उपदेश कहा कि- ३० रोजके रोजेका व्रत रखना, हज्ज

करनेको मक्का-मदीनामें जाना इत्यादि हुकम फर्माये हैं। यही मुसलमानलोग सबोंने किये और अभी कर रहे हैं; परन्तु, धोखा किसीका नहीं छूटा ॥ ३४५ ॥

३१. निमाज हज्ज सिजदेमें जाई * भरम जाल जग रहा भुलाई ॥ ३४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

निमाज हज्ज = मुसलमान लोग कोई घरमें ही
सिजदेमें जाई = पाँच वक्त निमाज पढ़ते हैं; और
कोई हज्ज = मक्का-मदीनामें वा मसजिदमें
जाकर निहुर-निहुरकर निमाज पढ़ते हैं।

भरम जाल = इसप्रकार अनेकों जीव कल्पना
जग रहा = भ्रान्ति जालोंमें पड़कर ऐसे
भुलाई = जगत्के मनुष्य भूल रहे हैं, और
दूसरोंको भी भुला रहे हैं ॥

व्याख्या— मुस्लिम मजहबी लोग कोई घरमें तथा कोई मसजिदमें जाके निमाज पढ़ते हैं। कोई मक्का वा मदीनाके हज्जमें जाके 'सिज़्दा' कहिये निहुर-निहुरकर निमाज पढ़ते हैं; किन्तु, जिसके वास्ते ये निमाज पढ़ते हैं, वह खुदाका तो कहीं पता ही नहीं पाते हैं। इसकारण भव जालोंमें ही जगत्के मुस्लिम मनुष्य भूले वा भुलाय रहे हैं ॥ ३४६ ॥

३२. खतमा नबी कल्मा जग आना * तेहि पाछे जग भया दिवाना ॥ ३४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

खतमा नबी = मुस्लिम धर्मका उपदेशक
कल्मा = आखिरी पैगम्बर महम्मद
जग आना = भया, उसने दुनियाँमें 'कल्मा'
पढ़कर बकरा आदि प्राणियोंकी हत्यारूप
हलालकर पीरोंको फातिया देना या भोग
लगानेका ढङ्ग निकाला, वही कल्माका
प्रचार किया। और—

तेहि पाछे = उसीके पीछे लगकर जगत्के
जग भया = मुसलमानलोग दिवाने वा
दिवाना = भ्रमिक अविचारी मूढ़, पागल
ही भये हैं; और वैसे अभी हो रहे हैं ॥

व्याख्या— महम्मद मुसलमानोंका अन्तिम नबी धर्मोपदेशक हुआ, उसने कल्मा पढ़कर हलाल करनेकी चाल दुनियाँमें निकाली। सो कल्मा पढ़कर मुरगा, बकरा आदि प्राणियोंका हलाल या हत्या करते हैं। फिर उसके मांससे पीरोंको 'फातिया' कहिये भोग लगाते या चढ़ाते हैं। उसी कुकर्मके पीछे लगकर दुनियाँके मुसलमानलोग दिवाने या पागल, भ्रमिक, मूढ़ हुए और वैसे हो दिवाने हो रहे हैं ॥ ३४७ ॥

३३. खोजि खोजि कछु अन्त न पावै * अनलहक्क तब आप कहावै ॥ ३४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

खोजि खोजि = उन मुसलमान लोगोंने खुदाको
कछु अन्त = ढूँढ़-ढूँढ़कर तलाश लगाये,
न पावै = खोज-खोजकर जब कुछ भी
अन्त या पता नहीं पाये, तब हारकर बेअन्त,
बेनमून कहने लगे। और—

अनलहक्क = तुम-हम सब खुदाके नूर एक
तब आप = स्वरूप हैं; अर्थात् 'अहंब्रह्मास्मि'
कहावै = के समान 'मैं खुदाका नूर हूँ'
कहने लगे या वैसे कहलाने लगे। उसे
उन्होंने "अनलहक्क" कहा है ॥

व्याख्या— खुदाकी खोज कर-करके जब कि, कुछ भी अन्तमें पता नहीं पाये; तब हार मान करके मुस्लिम लोगोंके गुरु आप ही 'अनलहक्क' कहने लगे। यानी 'अहंब्रह्मास्मि' वत् हम-तुम सब खुदाके नूर एक ही रूप हैं, ऐसा मानके भूले हैं ॥ ३४८ ॥

३४. निज पहिचान हेत जब कियेऊ * पीर पैगम्बर औलिया भयेऊ ॥ ३४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

निज पहिचान = जब कि, मनुष्योंको अपने
हेत जब कियेऊ = स्वरूपकी या कर्त्ता ईश्वर
वा खुदादिकी पहिचान करनेके कारण
जाननेकी इच्छा, प्रेम उत्पन्न हुआ, ऐसे हेत
किये; तत्पश्चात्—
कोई गुरुवा लोगोंकी शरणमें गये।

पीर पैगम्बर = } कोई पीर बने, कोई पैगम्बर
औलिया भयेऊ = } धर्मके आचार्य उपदेशक बने, और कोई औलिया-सिद्ध परमहंस ज्ञानी-ध्यानी बने। परन्तु, वे पारख बिना भ्रम धोखेमें ही पड़े रहे ॥

व्याख्या— संसारमें मनुष्योंको अपने स्वरूपकी पहिचान और ईश्वर कर्त्ता या खुदा आदिकी पहिचान करनेकी प्रबल चाहना वा इच्छारूप कारणसे जब प्रेम उत्पन्न हुआ, तब कोई पीर, पैगम्बर हुए और कोई औलिया हुए। तैसे ही कोई ज्ञानी, ध्यानी, योगी, यती, तपी, सिद्ध, साधक, संन्यासी, वनवासी आदि होते भये। परन्तु, बिना पारख जड़-चैतन्यका भेद सत्यासत्यकी पहिचान उन्होंको जाननेमें नहीं आयी ॥ ३४९ ॥

३५. प्रथम अज्ञान न चीन्है आपू * मध्यमें जात विविध सन्तापू ॥ ३५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

प्रथम अज्ञान = } आदि नर देहमें की हुई भूल
न चीन्है आपू = } जो कि, अपने ऊपर दूसरा कर्त्ता मालिक, ईश्वर वा खुदा आदि मान-मानकर मनुष्य भूल रहे हैं। सो यह मेरे नर जन्ममें की हुई अज्ञान-भूल ही मुझे दुःख दे रही है। जगत्कर्त्ता कोई नहीं है, मैं जीव स्वयं सत्य हूँ ! ऐसा अपने आपको तो नहीं चीन्हता है, सोई प्रथमका अज्ञान है। और फिर—

मध्यमें जात = } उसी जड़ाध्यास अज्ञानके-
विविध सन्तापू = } वश जीव चार खानीके बीचमें (गर्भमें) जाकर नाना देहें धारण करके अनेकों दुःख, सन्ताप, कष्ट-क्लेश भोगते हैं। और कोई-कोई जगत्के मध्यमें अनेक सिद्धान्त, मत, पन्थ आदिको मान-कर यहाँ साधनोंके अनेक कर्मोंका दुःख सन्ताप सहते हैं। फिर देह छोड़कर गर्भवास-में जाकर दुःख भोगते रहते हैं ॥

व्याख्या— प्रथम कर्म होनेकी, भूलनेकी और भूल सुधारनेकी भूमिका यही मनुष्य जन्म है। सो मनुष्यने निजस्वरूपका विचार छोड़कर आदिमें जगत्कर्त्ताकी अनुमान-कल्पना करके उसको अपना मालिक ठहराया; यही प्रथमका मुख्य अज्ञान है। उसको नरजीव अपने आप परख करके तो पहिचान नहीं करते हैं। इसलिये विषयोंकी अध्यास-वासनावश मध्य गर्भवासमें जाकर देह धारण करके नाना सन्ताप, त्रिविधि तापादि अनेक दुःख भोगते रहते हैं। अथवा कोई मनुष्य संसारके बीचमें नाना सिद्धान्तोंको मानकर अनेक साधनाओंके सन्ताप सहते हैं। आखिरमें जन्म-मरणोंके फेरारूप चक्रमें पड़े रहते हैं ॥ ३५० ॥

३६. अन्त पैगम्बर जीव बखानै * मारफनाका निज मुख गानै ॥ ३५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अन्त पैगम्बर = } अन्तमें जगत्के प्रलय होनेकी
जीव बखानै = } बात मुसलमानोंके अन्तिम या आखिरी पैगम्बर महम्मदने ऐसा वर्णन करके नरजीवोंको सुनाया कि—

मारफनाका = } यह दुनियाँका एकमात्र
निजमुख गानै = } खुदा मालिक है। जब खुदा अपने मुखसे "फरमान निकाल करके फैकुन्न-फैकुन्न शब्द बोलेगा" तब सब दुनियाँ एकदम फना होकर मिट जावैगी, फिर तो कयामत वा महाप्रलय हो जायगा, इससे हरवक्त उसी खुदाकी याद करते रहो, उसे सलाम करते रहो ॥

व्याख्या— मुसल्मानोंका अन्तिम पैगम्बर महम्मद हुआ। उसने यह जगत्की उत्पत्ति खुदासे हुई बताकर फिर प्रलय होनेका ढङ्ग नरजीवोंको ऐसा बताया कि, जब कयामतका वक्त आवेगा, तब वह खुदा-ताला अपने मुखसे "मारफना-मारफना वा फैकुन्न-फैकुन्न" शब्द जोर-जोरसे आवाज करेगा। वह शब्द सुनकर उस वक्त सारा संसार काँप उठेगा, फिर सब दुनियाँ मर-मिटकर खाली हो जावेगी। फिर तो वही खुदा ही अकेला बचा रहेगा; ऐसी कल्पनाका प्रचार किये हैं ॥ ३५१ ॥

३७. आदि अन्त मध्य चीन्ह न जाई * खुद खुदाय रहा जहँड़ाई ॥ ३५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

आदि अन्त मध्य = यह संसार अनादि काल-
चीन्ह न जाई = का है। इसका आदि वा अन्त नहीं होता है, ऐसे सत्सङ्गके बीचमें जाकर तो चीन्हते-जानते नहीं, इससे नर जीवोंने आदिमें जगत्कर्त्ताकी और विषयादिकी मानन्दी अध्यास दृढ़ किये। मध्यमें देह ले-लेकर नाना प्रकारके कर्म करने लगे। और अन्तमें खानी-वाणीके जड़ाध्यास बीजको लेकर देह छोड़के चौरासी योनियोंमें घूम-फिरकर भटक रहे हैं। भ्रमिकोंसे यह बात तो चिन्ही नहीं गयी। इससे—

खुद खुदाय = खुद-ब-खुद निज चैतन्य
रहा जहँड़ाई = स्वरूपको भूलकर मनुष्य कोई एक कर्त्ता खुदा या ईश्वरादिको मान-मानकर बन्धनमें पड़े हुए जहँड़ाय रहे हैं। खुद-खुदाय तो जीव ही है, उसीको न जानकर अपनेको अनेकों जाल-फाँसोंमें फँसा रहे हैं॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि, ऐसी-ऐसी कर्त्ता कल्पनाकी मानन्दी 'आदि' में मनुष्योंने किये। फिर 'मध्य' में देह धारण करके नाना कर्म कर रहे हैं। और फिर 'अन्त' में वही जड़के अध्यास बीज लेकर चार खानियोंमें चले जाते हैं। सत्सङ्गमें जाके विचार करके यह बातको तो कोई नहीं चीन्हते हैं। खुद-खुदाय अपने जीवको ही जड़ाध्यासी बना-बनाकर बन्धनोंमें जहँड़ाकर बाँध रहे हैं। तहाँ आदिमें जन्म होता है, मध्यमें नाना कर्म होता है और अन्तमें मृत्यु होनेपर फिर संस्कारके अनुसार जीवोंकी गति आवागमनमें होती रहती है॥ ३५२॥

३८. केते कहै जनकूँ दसीह दीशा * काहि सो छीपा और को दीशा ? ॥ ३५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

केते कहै जनकूँ = कितने गुरुवालोग तो
दसीह दीशा = चेले, भक्तजन, शिष्यवर्ग, जनसमाजोंको उपदेश-शिक्षा दे-देकर कहते हैं कि, हे भक्तजनो! वह परमात्मा ईश्वर या खुदा जगत्कर्त्ता-धर्ता जो है, सो दशों-दिशामें परिपूर्ण व्यापकरूपसे भरा हुआ है, ऐसा जान लो।

काहि सो छीपा = ग्रन्थकर्त्ता यहाँ कहते हैं,
और को दीशा = कि, जब तुम्हारा ईश्वर या खुदा दशोंदिशाओंमें पूर्ण भरा है, फिर अभी सबोंको वह क्यों नहीं दिखाई देता है? सो किसके भय वा शरमसे छिपा है? और उसको किसने देखा है? कौनसे आकारमें देखा है? सो स्पष्ट करके बताओ॥

व्याख्या— कितनेक हिन्दू और मुस्लिम गुरुवालोग तो भक्तजनोंको ऐसा कहके समझाते हैं कि, वह परमात्मा या खुदा दशोंदिशाओंमें भरा हुआ सर्वत्र समा रहा है। परन्तु, उस बातपर उनसे पूछा जाता है, कि— उसको देखा तो भी किसने? और सबको वह प्रगटमें क्यों दिखाई नहीं देता है? किसके डर या लाजके वह छिपा हुआ है? इसीसे ईश्वर या खुदा माना हुआ मिथ्या कल्पनाके सिवाय और कुछ नहीं है। क्योंकि, सत्य पदार्थ एक देशमें रहा हुआ कोई छोटी-सी भी वस्तु सबोंको प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। किन्तु, दशोंदिशाओंमें व्यापक माना हुआ विश्वात्मा किसीको भी नहीं दिखता है॥ ३५३॥

३९. भरमिक भरम सन्धि बौआई * बिन गुरु सन्तत रहा जहँड़ाई ॥ ३५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

भरमिक भरम = भ्रमिक योगी, ज्ञानी, भक्त
सन्धि बौआई = गुरुवालोगोंके उपदेश सुन-सुन करके अबोध नर जीव सब ब्रह्म-भ्रम ईश्वरादिकी दृढ़ मानन्दी करके कल्पनामें पड़कर बौरायके दिवाने हो गये। और—

बिन गुरु = सनातन जीव जड़ाध्यासी
सन्तत रहा = बन करके सदा-सर्वदासे भव-
जहँड़ाई = बन्धनोंमें पड़ा हुआ है, सो पारखी सद्गुरुकी दयासे पारखबोध मिले बिना वह बन्धन छूट नहीं सकता है। इसीसे जहँड़ा ही रहा है॥

व्याख्या— भ्रमिक मनुष्य भ्रमवश ईश्वर [illegible]दादिकी मिथ्या मानन्दी करके वा कराके

पागल हुए और ऐसे ही पागल हो रहे हैं। पारखी सद्गुरुके शरणागत हो पारखज्ञान पाये विना सर्वदासे ऐसे ही जहँड़ा रहे हैं; यानी जड़ाध्यासी बद्ध हो रहे हैं ॥ ३५४ ॥

४०. जामें मुनिवर पचि-पचि हारे ❀ हवी नवी सब भये विचारे ॥ ३५५ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जामें मुनिवर = जिसमें कि, ब्रह्म, ईश्वर,
पचि-पचि हारे = आत्मा, खुदा आदि मिले, स्वर्ग लोकादि प्राप्ति हो, इस आशा-भरोशासे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, पीर-पैगम्बरादि अनेक साधनाओंके कष्ट सहनेमें पच-पच करके दुःखी हुए, आखिरमें कुछ नहीं मिला, तो हार मानकर अपार-अगम मान बैठे। अर्थात् श्रेष्ठ मुनिलोग भी जिसमें पड़कर पच-पचके हार गये, उस धोखेका अन्त नहीं पाये।

हवी = हिन्दुओंके धर्मोपदेशक- योगी, ज्ञानी, ध्यानी, भक्तादि लोग, और—

नवी = मुसलमान धर्मका उपदेश देनेवाले पीर, पैगम्बर, औलिया आदि लोग—

सब भये = वे सब भी ईश्वर या खुदादिकी
विचारे = खोजमें हैरान या परेशान हुए, तो भी उन बेचारोंको कुछ पता ही नहीं लगा; कुछ सूझ-समझ नहीं पड़ी। अतः गोयमगोय या जैसे-का-तैसा है, कहिके रह गये ऐसे वे भूल गये ॥

व्याख्या— जिस अनुमान धोखा कल्पनामें पड़कर ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, स्वर्गादि मान-मान करके बड़े-बड़े व्यास, वशिष्ठादि ऋषि, मुनि अनेकों साधनोंमें पच-पच करके हार गये; कोई पार नहीं पाये; अब साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? वे क्या पार पायेंगे ? हवी-नवी कहिये हिन्दू और मुसलमानोंके धर्मके उपदेश देनेवाले गुरुवालोग भी उसीका विचार कर अनुमान बाँधे। उन बेचारोंको भी कुछ पता नहीं लगा। तब उनके पीछे लगनेवालेको क्या पता लगेगा ? नाहक सब भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं ॥ ३५५ ॥

४१. सोइ सोइ कीर्ति निशि दिन गावै ❀ अकबतको बेर खैर बतावै ॥ ३५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सोइ सोइ कीर्ति = उन प्रथमके गुरुवालोगोंने
निशि दिन गावै = वेद-शास्त्र और कुरान आदि जो-जो वाणी ग्रन्थ बना गये हैं; अब सोई-सोई पढ़-पढ़ाके ईश्वरादिकी तथा गुरुवालोगोंकी महिमा, गुणानुवाद, कीर्ति, सुयश, ज्ञानी-अज्ञानीलोग-रात-दिन गाते हैं या गा रहे हैं; प्रशंसा कर रहे हैं।

अकबतको बेर = वे कहते हैं कि, भाई ! अभी
खैर बतावै = ईश्वर या खुदाकी भक्ति करो, तब तो मरनेपर तुम्हारी खैर है। यानी भक्तिसे ही देह छूटे बादमें सहज ही मुक्ति होगी, ऐसा बतलाते हैं ॥

व्याख्या— अब वर्तमानमें रात-दिन सोई-सोई बातकी कीर्ति, सुयश गाते हैं। कर्त्ता ईश्वरादि मानके महिमा वर्णन करते हैं। गुरुवालोग शिष्योंको क्या बताते हैं कि, जो अभी ईश्वरादिकी भाव-भक्तिमें लगे हैं, उनको मरनेपर भगवान् मुक्त कर देते हैं; स्वर्ग, वैकुण्ठादि लोकोंमें पहुँचा देते हैं। ऐसा धोखा देकर देह छूटनेके बाद मुक्ति बतलाते हैं ॥ ३५६ ॥

४२. मुये मुक्ति सबहिनकी होई ❀ सन्धि मृत्यु नहिं चीन्है कोई ॥ ३५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मुये मुक्ति = बेपारखी भ्रमिकलोग मानते
सबहिनकी = हैं कि, मरनेपर ईश्वर या खुदा
होई = सबकी मुक्ति करेगा; ऐसी मिथ्या आशा-भरोशामें पड़े हैं। यदि ऐसा है, तो पशु, पक्षी आदि सबकी भी मरनेपर मुक्ति होनी चाहिये ? ऐसा तो हो नहीं सकता है, फिर मरनेपर सबोंकी मुक्ति कैसे होयगी ? और—

सन्धि मृत्यु = जड़ाध्यास, जड़देह-गेहादि,
नहिं चीन्है = ईश्वर, खुदा, लोकादिकी
कोई = मानन्दी, भास, कल्पना, यही तो जन्म-मृत्युके महान कारण हैं। इस मानन्दी जड़ासक्तिरूपी महामृत्युको तो

कोई नहीं चीन्हते हैं; और पारखी सद्गुरु के सत्सङ्ग करके पहिचाननेकी कोशीश भी नहीं करते हैं, फिर वैसे भ्रमिक जीवोंकी कभी मुक्ति हो नहीं सकती है ॥

व्याख्या— इसप्रकार कर्त्तावादी सभी लोगोंकी तथा नास्तिकोंकी भी देह छूटनेपर मुक्ति होयगी, ऐसी आशा लगी है। परन्तु, ईश्वरादि तथा जड़ देह-गेहादिकी मानन्दी और विषयादिका अध्यास, यही तो मुख्य मृत्युकारूप था कारण है। इसको तो कोई परखकर चीन्हते-पहिचानते नहीं। पारख बिना किसीकी मुक्ति होनेकी नहीं। सद्गुरुने कहा भी है:—

शब्दः—"जियत न तरेहु मुयेका तरिहो! जियत ही जो न तरे ॥
गहि परतीत कीन्ह जिन्ह जासों। सोई तहाँ अमरे ॥" बीजक-शब्द- ॥१४॥
"मुये मुक्ति गुरु कहै स्वारथी, झूठा दै विश्वासा ॥ सन्तो! जीयत ही करु आशा ॥" क० भ० ॥
इसलिये जीवन्मुक्तकी मुक्ति ही सच्ची मानी जाती है ॥ ३५७ ॥

सम्बन्ध— अब यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक शब्दका प्रमाण दिया है, सो सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, शब्द ५७ के चौपाई नम्बर— ५—६ ॥ ❀ ॥

[५] सेतहि सेत सितङ्ग भौ * सैन बादु अधिकाय ॥ ३५८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं:— हे सन्तो! बेपारखी मनुष्योंने भ्रममें पड़के—

सेतहि सेत = सफेद स्वच्छ निर्मल शुद्धरूप
सितङ्ग भौ = ब्रह्म और खुदा कर्त्ता कोई मानकर शून्य, मिथ्या धोखा भ्रममें पड़ गये। तब साधकलोगोंकी शून्यवृत्ति होनेसे उसीमें स्थिति मानकर स्थिर शान्त हुए। कोई परमहंसलोग गूँगे, बावले, जड़-अजगरवत् भये। आगे—
सैन बादु = ब्रह्म अनुमान 'अहंब्रह्मास्मि'
अधिकाय = अनुभवका इशारा खूब ही बढ़ा, खूब भ्रमिक हो गये। और उन्होंके उपदेश-का इशारा पाकर बहुत ही मत, पन्थ बढ़ाये हैं; परन्तु, इससे क्या हुआ? सब व्यर्थ है ॥

व्याख्या— सद्गुरुने इस शब्दमें कहा है कि, जैसे कोई रोगीका शरीर हाथ, पाँव, सफेद ठण्ढा होते-होते जब सर्वाङ्ग शीताङ्ग हो जाता है, तब वाणी बोलना भी बन्द होके आगे नेत्रादिसे सैन या इशारा करने लग जाता है। फिर बात, पित्त और कफ ये तीन दोष इकट्ठे होकर सन्निपातमें पड़ा हुआ रोगी मर जाता है। फिर तो उसको कोई उपाय, दवाई नहीं लगती है। इसीप्रकारसे सिद्धान्तमें योगी, ज्ञानी, भक्त, साधकलोग रोगी भये, तो सेतहि-सेत कहिये शून्य, मिथ्या, धोखाको शुद्ध स्वरूप परब्रह्म मानकर उसीमें लक्ष्य लगायकर सितङ्ग=शान्त, शून्य, उन्मुन भये। उसीको ब्रह्म स्थिति मानलिये। आगे मौन होके अनुभवरूपी सैन अनुमान, कल्पना खूब अधिक ही बढ़ गई ॥३५८॥

[६] जो सन्निपात रोगियन मारै * सो साधु न सिद्धि पाय ॥ ३५९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो सन्निपात = जो कि, सन्निपात रोगमें
रोगियन मारै = त्रिदोष एकत्र हो जानेसे रोगी मर जाता है। तैसे ही काम, क्रोध और लोभ एकत्र अज्ञानियोंमें मेल हुआ। और अज्ञान, ज्ञान तथा विज्ञान, जड़-चैतन्य एकमें मिलायके व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी जिन्होंने किये, वे नरजीव जड़ाध्यासी होकर मुक्तिपद-से मारे गये; बाल, पिशाच, उन्मत्त बनकर ऐसे गाफिल हुए।
सो साधु = ऐसे ज्ञानी, विज्ञानी, सिद्ध-साधक
न सिद्धि = बने हुए भ्रमिक साधु लोगोंको
पाय = कल्याण-मुक्ति प्राप्तिकी कार्यसिद्धि कैसे मिलेगी? क्योंकि, उन्होंको पारख बोध तो नहीं मिला, इससे उन्होंकी मुक्ति नहीं भयी। यानी वैसे कोई लोग मुक्ति नहीं पाये या पा नहीं सकते हैं, बिना पारख ॥

व्याख्या— इसप्रकार जो कि, मुक्ति चाहनेवाले नरजीव कोई काम, क्रोध, लोभमें; कोई ज्ञान, अज्ञान, विज्ञानमें पड़के सबको एकमें मिलाय सन्निपात ग्रसित रोगीवत् भये। विवेक-विचार

बोधको नष्ट-भ्रष्ट करके जड़-चैतन्य व्यापक ब्रह्म ठहरायके मनुष्यपदसे मारे गये, जड़ाध्यासी भये। सो उन्होंकी गुरुवालोग तो मुक्त भये, सिद्ध भये कह कर, प्रसंशा करते हैं। परन्तु,सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, इसप्रकारके लक्षणवाले षट्दर्शनोंके साधक-साधुओंको तो पारख बोध ही नहीं मिला; फिर नरजन्मकी कार्यसिद्धिरूप मुक्ति स्थिति उन्होंको कैसे प्राप्त होगी? पारख स्वरूपका ज्ञान हुए विना किसी साधु वा गृहस्थोंने जीवन्मुक्ति स्थिति नहीं पाये और विना पारख कोई भी मुक्ति नहीं पायेंगे ॥ ३५९ ॥

सम्बन्ध— अब चौबीसवाँ खण्डमें एक दृष्टान्त द्वारा गुरुवालोगोंके अन्याय, कल्पित मिथ्या सिद्धान्तकी जबर्दस्ती ज्यादती धोखा जालोंको दर्शायके फिर उसे सिद्धान्तमें घटाया गया है। तहाँ ४६ चौपाई, और १ साखीका वर्णन हुआ है; सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ प्रथम इतिहास—हरिभोंगपुरका वर्णन ॥ ❀ ॥

[संसाररूपी महा नगरमें गुरुवालोगोंके अन्याय चाल-कुचालका दृष्टान्त-सिद्धान्त वर्णन।]

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ चौबीस खण्ड ॥ २४ ॥ ❀ ॥

१. हरिभोंग नगर जहाँ चौपट राजा * भाजी टके टके सेर खाजा ॥ ३६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
हरिभोंग नगर = संसारमें 'हरिभोंग' नाम-
जहाँ चौपट राजा = का एक शहर था, जहाँपर
कि, निपट मूर्ख 'चौपट' नामका राजा राज्य
करके रहता था। सो यहाँ मत-पन्थके नगर-
में अविवेकीलोग ही चौपट राजा बने हैं।

भाजी टके = वहाँ दो पैसेमें एक सेर
टके सेर खाजा = साग-सब्जी आदि भाजी
मिलती थी, और मिठाई आदि सब
वस्तुएँ भी दो पैसे सेर भरके हिसाबसे ही
बिकती थीं। सो यहाँ पर विषय सुख तथा
ब्रह्मसुख दोनोंको एक समान समझना है ॥

व्याख्या— यहाँपर पहले एक दृष्टान्तके रूपमें प्रकरण वर्णनकर फिर सिद्धान्त घटाया गया है। पहले दृष्टान्त कहा जाता है, फिर बादमें सिद्धान्त बताया जायगा, ऐसा समझना चाहिये ॥

हरिभोंग नामका एक महानगर था, विवेक-विचारहीन, महामूढ़ वहाँका चौपटसिंह शासक राजा था। उसीके हुकमके मुताबिक सारे शहरका कारोबार चलता था। उस राजाने डौंड़ी पिटवाय-के मुनादी कर दी थी कि, हमारे राज्यमें सब वस्तुका भाव एक होवे। तब सब चीजोंका भाव एक टका सेरके हिसाबसे नियम बाँध दिया। इससे वहाँपर साग-भाजी, पत्ती, फल, फूल भी दो पैसेमें एक सेर मिलता था; और 'खाजा' कहिये एक प्रकारका मिठाई, तथा लड्डू, पेड़ा, बरफी, गुलाबजामुन आदिके भाव भी दो पैसे सेर ही मिलते थे। और अनाज, सोना, चाँदी, लोहा, पीतल इत्यादि सभी चीजें दो पैसेमें ही एक सेर मिल जाती थीं। और कोई चीजके भावमें कमी-बेशी नहीं थी, सब चीजोंका एक भाव था; तथा एक सेरसे अधिक किसीको कोई चीज मिलती ही नहीं थी ॥ ३६० ॥

२. खाँड़ छार गनै एक सारा * हरिभोंग नगरके चाल निन्यारा ॥ ३६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
खाँड़ छार = उस नगरमें खाँड़-शक्करका
गनै एकसारा = और धूर, राखका भाव एक
समान ही गिनते थे; सो यहाँ ब्रह्म-जगत्को
एक ही समझना है।

हरिभोंग नगरके = सब देशोंसे सब राज्योंसे
चाल निन्यारा = उस 'चौपट' राजाके
राज्यका चाल-चलन ही विपरीत, निराला,
विचित्र रहा। यहाँ पर अन्याय, अविवेककी
चाल भी भिन्न-भिन्न वा न्यारी ही रहती है ॥

व्याख्या— बल्कि उस हरिभोंग नगरकी चाल, हिसाब, बर्ताव तो सब जगहसे न्यारा ही था। क्योंकि, वहाँ मिथ्यावादी ब्रह्मज्ञानियोंकी भरमार थी। जैसे कि— "ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, करहिं न दूसर बात ॥" इसी तरहका ही हिसाब चलता था; इसलिये खाँड़ = शक्कर, मिश्री, गुड़ आदिको

तथा छार=राख, गर्दा, धूरको एक समान ही गिनते थे। कहते थे कि, यह दोनों ही पृथ्वी तत्त्वका भाग है, इसलिये उसमें अभेद है। अतः इनकी कीमत भी एक होनी चाहिये। ऐसे विचित्र अन्याय-की न्यारी ही चाल वहाँ चलती थी ॥ ३६१ ॥

३. एक वस्तु विक्री जो जाई ❀ तहाँ नौ नेंगी दुन्द मचाई ॥ ३६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

एक वस्तु= / विक्री जो= / जाई= } वहाँपर कोई एक भी चीज लेके विक्री करनेको जाता था या व्यापार करना चाहता था, तो—

तहाँ नौ नेंगी= / दुन्द मचाई= } उस शहरमें मण्डी बाजार तक पहुँचनेमें नौ जगह चुङ्गी-घर वा चौकी पड़ता था, सो वे चुङ्गी लेने-वाले चुङ्गीके पैसे बढ़ा-चढ़ाकर चौकी चुकानेके लिये बड़ा झगड़ा मचाते थे। तैसे यहाँ कोई उपदेश लेनेवाला आवे, तो गुरुवा-लोग उसे नौ तरफ खैंचते हुए झगड़ते हैं ॥

व्याख्या— उस नगरमें अगर कोई कहींसे एक वस्तु भी विक्री करनेके लिये ले जाता था, तो वहाँपर नौ चौकीदार चुङ्गी लेनेवाले ताक लगाये बैठे रहते थे। जब कोई आता था, तो वे लोग भी चुङ्गीके पैसे बढ़ाय-चढ़ायके लेनेके लिये उससे झगड़ा-तकरार मचाते थे। फिर चुङ्गीके पैसे वसूल करके ही उसे आगे बढ़के जाने देते थे ॥ ३६२ ॥

४. आपु आपुको खैंचे सबहीं ❀ घटी होय नफा नहिं कबहीं ॥ ३६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

आपु आपुको= / खैंचे सबहीं= } वे नौ चुङ्गीवाले व्यापारियों-को अपनी-अपनी तरफ खैंचातानी, रगड़-झगड़ करने लगते थे। तैसे यहाँपर अपने-अपने मत-पन्थोंके पक्षकी तरफ खैंचते हैं।

घटी होय= / नफा नहिं= / कबहीं= } नौ जगह चुङ्गी चुकाते-चुकाते घाटाके सिवाय कभी उसको नफा नहीं होता था। वस्तुकी कीमतसे भी ज्यादा तो चुङ्गीवाले ही ले लेते थे; फिर नफा कैसे होवे? इसीसे कभी नफा नहीं हुआ॥

व्याख्या— वे चुङ्गीवाले सब लोग कभी तो इकट्ठे होके व्यापारीको झकझोरके अपनी-अपनी तरफमें ही खैंचते थे। जल्दीसे पैसा निकाल ! कहकर थप्पड़ भी लगाते थे। जैसे-तैसे करके उन्होंके पञ्जोंसे बचकर चुङ्गी चुकायके बाजारमें गया, तो मालका भाव अति मन्दा होनेसे कम कीमतमें ही माल बेचना पड़ता था। यदि न बेचे तो दूसरे दिन फिर उतनी ही चुङ्गी देनी पड़ती थी। इसकारण सदा घाटा ही सहना पड़ जाता था। माल विक्री करके कभी तो भी मुनाफा नहीं होता था। क्योंकि, जितनेके माल बिके उससे अधिक ही चुङ्गी चुकाते-चुकातेमें चला जाता था। इसप्रकार हरिभोंग नगरकी उटपटाङ्ग (उलटी) चाल सदा चलती ही रहती थी। सो यहीं चाल ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवालोगोंने अपनाये हैं। अन्याय-अनीतिका बर्तावकर मनुष्योंको धोखेमें डाल रहे हैं। और सिद्धान्त इसका इकट्ठे ही बादमें दृष्टान्त पूरा होनेपर लिखा जायगा ॥ ३६३ ॥

५. ताहि नगर अँधेरी राता ❀ चलै चोर चोरीके घाता ॥ ३६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ताहि नगर= / अँधेरी राता= } एक समय उसी हरिभोंग नगरमें अमावसकी घोर अँधियारी रात्रिमें एक आदमी जो कि—

चलै चोर= / चोरीके घाता= } चोर था, वह चोर चोरी करनेकी इच्छासे दाव-घात लगानेको चला गया। तैसे यहाँपर मोहकी रात्रिमें लोभरूपी चोर घात लगानेको निकला ॥

व्याख्या— हरिभोंग नामके शहरमें किसी समयमें द्रव्य-सम्पत्ति चोरी करनेकी इच्छासे एक चोर अँधियारी रात्रिमें घरसे निकलकर चला गया। चोरी करनेका घात लगायके इधर-उधर घूम-घूमकर ताकता गया ॥ ३६४ ॥

६. दीन्हीं सेंध महल कोइ साहू * तहाँ न भई मनोरथ लाहू ॥ ३६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दीन्हीं सेंध = } तब उस चोरने जाकर
महल कोइ साहू = } कोई एक साहू महाजनके घरमें दीवाल वा भीतमें सुराखकर छेद बनाके सेंध लगा दिया। परन्तु—

तहाँ न भई = } वहाँ साहूके घरमें उस चोरके
मनोरथ लाहू = } मनोरथ पूर्ण लाभ नहीं हुआ। क्योंकि, वहाँ उसको धन प्राप्ति नहीं हुई। तैसे यहाँपर साहूरूपी जीवके घरमें लोभ चोर घुसा; उसकी इच्छा पूर्ण न हुई ॥

व्याख्या— और कोई धनिक बड़े साहूकारके महलमें जाके सेंध लगा दिया, यानी भीत फोड़कर छिद्र करता भया। परन्तु, उसका चोरी करके माल ले जानेकी इच्छारूपी मनोरथ वहाँ सिद्ध होनेका लाभ नहीं हुआ ॥ ३६५ ॥

७. पैठत सेंध मरै दबि चोरा * देर भई चोरटी सुध केरा ॥ ३६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पैठत सेंध = } जब वह चोर भीतके छिद्रमेंसे
मरै दबि चोरा = } भीतर घुस रहा था, तब एकाएक भीतकी दीवाल गिर पड़नेसे वहीं दबके चोर मर गया; उसका कुछ अङ्ग बाहर दिखता रहा।

देर भई = चोरको घर लौट आनेमें जब देर हुई-

चोरटी सुध केरा = तब उस चोरकी स्त्री चोरटी सबेरे जाकर उसकी खोज-तलाश शोध करने लगी। तैसे यहाँपर चार फलके लोभसे नाना साधनाएँ किये। उस सेंधमें घुसनेसे लोभ दबके मर गया। तब अविद्यारूपी स्त्री जाके उसकी तलाश करने लगी ॥

व्याख्या— क्योंकि, उस चोरने जो दिवाल या भीतमें सुराख बनायी थी, उस सेंधमेंसे भीतर घुसने लगनेमें अचानक ही भीत गिर पड़ा, तो उसीमें वह चोर भी दब करके मर गया। जब उस चोरको घर लौटकर आनेमें देर हो गई, सवेरे तक भी नहीं आया, तब उसकी स्त्री चोरटीने शोध लगाके खोज-तलाश करने गई ॥ ३६६ ॥

८. खोजत खोजत पहुँची तहँवाँ * तस्कर दबी मुवा है जहँवाँ ॥ ३६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

खोजत खोजत = } उस चोरको खोजते-खोजते
पहुँची तहँवाँ = } तलाश पता लगाते-लगाते चोरकी स्त्री चोरटी, वहाँ उसी जगहपर जा पहुँची।

तस्कर दबी = } जहाँपर कि, साहूके घरके
मुवा है जहँवाँ = } भीतमें वह चोर दबकर मर गया था। तैसे ही यहाँपर अविद्या तहाँ पहुँची, जहाँ अन्तःकरणमें वृत्ति रुक गई थी ॥

व्याख्या— खोजते-खोजते चोरटी वहींपर पहुँच गई; जहाँपर कि वह चोर भीतमें दबकर मरा पड़ा था। उसका आधा शरीर बाहरसे ही दिखाई दे रहा था, इससे स्त्रीने उसे पहिचान लिया ॥३६७॥

९. करत विलाप गई ढिग राजा * जहाँके भोंदू सकल समाजा ॥ ३६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

करत विलाप = } तब चोरको वहाँपर मरा
गई ढिग राजा = } पड़ा हुआ देखकर विलाप करती हुई, रोती-चिल्लाती उस चोरकी स्त्री वहाँके चौपट राजाके पासमें राज दरबारके नजदीकमें चली गई, और फर्याद करने लगी।

जहाँके भोंदू = } जहाँपर कि, वह राजा और
सकल समाजा = } उसके कर्मचारी, अधिकारी-वर्ग सकल समाज सब-के-सब भोंदू = अन्यायी अविचारी मूढ़ ही थे। तैसे यहाँपर मन राजाके पासमें अविद्या गई। जिसके कि, सब समाज भी मूढ़ भोंदू हैं ॥

व्याख्या— तब वह चोरटी स्त्री रोती-कलपती विलाप करती हुई, चौपट राजाके दरबारमें

राजाके पासमें ही जाकर पहुँची; जहाँपर कि, चौपट राजाके सब समाज एकदम भोंदू अन्यायी अविचारी मूर्ख मण्डली लगी थी ॥ ३६८ ॥

१०. कहा दाद मोहि दीजे राऊ * नहिं तो परजा बसै न गाऊँ ॥ ३६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
कहा दाद मोहि = वह चोरटी स्त्री पुकारकर
दीजे राऊ = कहने लगी कि, हे महाराज! मेरी मामलाका न्याय वा इन्शाफ कर दीजिये! मुझपर बड़ा भारी अन्याय हो गया है।
नहिं तो परजा = अगर मेरा इन्शाफ नहीं
बसै न गाऊँ = करोगे, तब तो हम सब प्रजा वा रैयत लोग आपके राज्यके गाँवोंमें नहीं रहेंगे; सब चले जावेंगे। तैसे ही यहाँ मन राजापर अविद्याने अपना प्रभाव डालके आवरण फैलाती है ॥

व्याख्या— उस चोरटीने पुकारकर कहा कि, हे महाराज! मुझको 'दाद' कहिये न्याय-इन्शाफ कर दीजिये। मुझ अबलापर बड़ा भारी जोर-जुल्म अन्याय हुआ है। अब आप अपराधीको पकड़ाकर न्याय कर दीजिये। यदि आप मेरे मामलेका ठीक-ठीक इन्शाफ नहीं करोगे, तो हम सब प्रजाजन आपके राज्यके गाँव वा नगरमें नहीं रहेंगे! निकल ही जायेंगे! ॥ ३६९ ॥

११. चोर गये चोरीके हेता * सो दबि मुवा साहूके भीता ॥ ३७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जब उस राजाने चोरकी स्त्रीसे पूछा कि, तुम्हारी बात क्या है? किस मामलाका फैसला करना है? सो कहो? तब चोरटी कहती है कि, हे महाराज! सुनोः—
चोर गये = हमारे पति जो कट्टर चोर थे,
चोरीके हेता = सो अपने धन्धा, गुजाराके लिये चोरी करनेके वास्ते कल रातमें शहरमें गये थे; वे नहीं आये, तो मैं उनकी तलाश करती हुई उनको देखनेको गई—
सो दबि मुआ = सो हमारे पति चोर फलाने—
साहूके भीता = साहूके घरमें भीतसे दबकर मरे हुए दिखाई दिये; उस साहूने ही भीत वा दीवालको गिराकर चोरको मारा होगा। तैसे यहाँपर अविद्याने मनसे फर्याद किया कि, लोभ चोर, जीवरूपी साहूके भीतरूपी अन्तःकरणमें दबके मर गया है ॥

व्याख्या चोरकी स्त्री कहती है कि, हे राजा! मेरे चोर पति बाल-बच्चोंके पालन-पोषणके लिये सम्पत्ति लानेको अपने धन्धा, चोरी करनेके वास्ते नित्यकी तरह कल रातमें भी घरसे बाहर गये थे। सो वे लौटकर नहीं आये; परन्तु, अमुक साहूके घरके भीतके नीचे दबकर मर गये। सो मैं आँखोंसे अभी देखकर आई। उनके मरनेसे हमारेपर बड़ी विपत्ति आ पड़ी है, सो साहूने ही उनको मारा होगा ॥ ३७० ॥

१२. साहु बुलायके फाँसी दीजे * यही न्याव देर मति कीजे ॥ ३७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
साहु बुलायके = इसवास्ते चोरटी कहती है
फाँसी दीजे = कि, हे राजा! आप उस साहूको पकड़कर बुलायके फाँसीमें लटका दीजिये! इसप्रकार उसे मार दीजिये।
यही न्याय देर = यही हमारा मामलाका
मति कीजे = सच्चा न्याय करना है। सो यह न्याय करनेमें आप अब कुछ भी देर मत कीजिये! जल्दी न्याय कर दीजिये! तैसे ही यहाँपर जीवरूपी साहूको घेरघारकर फँसा दीजिये! ऐसा अविद्या कहती है ॥

व्याख्या— चोरटी कहती है कि— हे राजन्! उस अपराधी साहूको पकड़के बुलाकर तुरन्त ही अभी मेरे सामनेमें ही फाँसीपर लटकाय करके मार दीजिये! यही इसका खास न्याय है, सो न्याय करनेमें अब आप कुछ भी विलम्ब मत कीजिये! ॥ ३७१ ॥

१३. राजा साहू पकरि बुलावा * फाँसी देन तुरित फुरमावा ॥ ३७२ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

राजा साहू = पकरि बुलावा = चोरटीके मामला सुननेके बाद तब उस चौपट अविचारी राजाने निर्दोष सत्यचन्द्र साहूको सिपाही भेजकर पकड़के हजूरमें बुलवाया। और—

फाँसी देन = तुरित = फुरमावा = साहूके आनेपर उसको उपरोक्त कसूर सुनायके, तुरन्त ही फाँसी देनेकी आज्ञा फर्माया; कह दिया कि, इस साहूको फाँसी दे दो। तैसे यहाँपर मन राजाने जीवको पकड़कर चौरासी योनियोंमें फँसाय देनेको कहा ॥

व्याख्या— चोरटीकी ऐसी बात सुनकर बिना सोचे-समझे चौपट मूर्ख राजाने अपने सिपाही भेजकर निरपराध सत्यचन्द्र साहूको पकड़ाकर बुला लिया। फिर चोर मरनेमें तेरा ही दोष है, ऐसा कहिके तुरन्त साहूको फाँसी दे देनेका हुक्म फर्माया ॥ ३७२ ॥

१४. साहू उजुर किया प्रभु ! मेरा * ई खोरी सुतिहारन केरा ॥ ३७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

साहू उजुर = किया प्रभु मेरा = तब सत्यचन्द्र साहू घबरायके विनती या प्रार्थना किया कि, हे प्रभु ! इसमें तो मेरा कोई कसूर या दोष नहीं है। दोषी कौन है, सो मैं कहता हूँ, सुनिये— हमारे घर तो कड़िया और—

ई खोरी = सुतिहारन केरा = सुतार कारीगरोंने बनाया है। इससे दोष या कसूर इस मामलेमें उन्हीं लोगोंका है। तैसे यहाँपर जीवने कहा, ब्रह्मा सुतारने देह बनाया है। इसीसे उसीका इसमें दोष है। इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं है ॥

व्याख्या— तब साहूने आकरके उजूर किया कि, हे मेरे प्रभु ! राजा ! इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं है। इसमें सब दोष सुतार-कारीगर कड़िया लोगोंका है, इस बातको तो आप भी जान सकते हैं ॥ ३७३ ॥

१५. घर काँचा उन काहे उठाई * देत सेंध चोर दबि जाई ॥ ३७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

घर काँचा उन = काहे उठाई = घर बनानेमें सुतारोंने वा कड़ियोंने भीत या दिवालों-को नरम, कच्चा करके क्यों उठाये ? पक्का करके क्यों नहीं बनाये ? इसमें तो उन्होंने बड़ी कसर किये।

देत सेंध = इसलिये सेंध देतेमें या भीत— खोदतेमें दिवाल गिरनेसे वहाँ—

चोर दबिजाई = चोर दबकर मर गया। यदि भीत पक्का होता, तो वह नहीं गिरता, फिर चोर भी न मरता। इसीसे दोष भीत बनानेवालों-का है। तैसे यहाँपर कच्चा शरीर क्यों बनाया ? जिसमें साधना करनेसे लोभ दबा। ऐसा मन राजासे जीवने कहा ॥

व्याख्या— साहू कहता है कि, हे राजा ! क्योंकि, मैंने मेरे अपने हाथसे तो घर नहीं बनाया; घर तो कारीगरोंने ही बनाये, फिर उन लोगोंने कच्चा घर क्यों बनाये ? और दिवाल या भीतको कच्चा ही क्यों उठा दिये ? जिससे कि, सेंध देतेमें भीत गिरनेसे चोर वहीं दबकर मर गया। यदि पक्का दिवाल बनाया होता, तो चोर कभी वहाँ दबकर नहीं मरता ॥ ३७४ ॥

१६. राजा पकरि मँगावा सोई * दोष तुम्हारा फाँसी होई ॥ ३७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! साहुकारकी उपरोक्त दलील युक्ति पूर्ण बात जब राजाने सुनी—

राजा पकरि = मँगावा सोई = तब भोंदू राजाने उस साहूको छोड़कर सुतार-कड़ियोंको, सो उसी वक्त चपरासी भेजकर पकड़ा कर मँगवाया; बुला कर अपने सामनेमें हाजिर

करने लगाया; और सुतार कड़िये लोगोंके आनेपर कहा कि—

दोष तुम्हारा = फाँसी होई = चोरकी मृत्युहोनेमें तुम्हारे लोगोंका दोष है। इससे अभी तुम्हें फाँसी होयगी। ऐसा हुकम सुना दिया। तैसे यहाँपर कर्मी ब्रह्माको पकड़कर उसके दोष बताकर उसे फँसानेको जीवने कहा ॥

व्याख्या— ऐसी उपरोक्त बात सुनकर राजाने साहूको बरी कर दिया और सोई घर बनानेवाले सुतार, राजगीरोंको अपने सिपाही भेजकर पकड़वाके मँगवाया। उनको चोर मरनेका हाल बतायके कहा कि, इसमें तुम्हीं लोगोंका दोष है; इसीसे तुम लोगोंको फाँसी होगी ॥ ३७५ ॥

१७. उजुर किया बहुविधि सुतिहारा ❀ दोष मजूरन नाहिं हमारा ॥ ३७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

उजुर किया बहु-विधि सुतिहारा = तब चौपट राजासे उन सुतार-कारीगरोंने बहुत प्रकारसे विधि पूर्वक नम्रतासे विनय, प्रार्थना किये कि, हे महाराज !—

दोष = इसमें सारा दोष वा कसूर— मजूरन नाहिं हमारा = मजदूरोंका ही है और हमारा तो किञ्चित् भी दोष नहीं है। तैसे ही कर्मी ब्रह्मा वा ब्राह्मणलोग कहने लगे, देह तो कर्मसे बना है, फिर हमारा उसमें क्या दोष है? अतः कर्मका ही सब दोष है ॥

व्याख्या— तदनन्तर चौपट राजाको मनाते हुए बहुत प्रकारसे सुतार-कारीगरोंने उजूर वा विनय किया और कहा कि, हे राजा ! इस मामलेमें हमारे तो कुछ भी कसूर नहीं है, और सब दोष तो मजदूरोंका ही दिखता है; इससे दोषी तो मजदूर लोग ही हैं ॥ ३७६ ॥

१८. गिलावा कसर मजूरन केरी ❀ ताते भीत गिरी भौ ढेरी ॥ ३७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कारीगरोंने कहा कि—

गिलावा कसर मजूरन केरी = गारा मिट्टीके गिलावा बनातेमें मजदूरोंने ही कसर रख दिये। इससे दोषी मजदूरलोग ही हुए। यदि उन्होंने गिलावा अच्छा बनाया होता, तब ऐसा कच्चा भीत न बनता।

ताते भीत गिरी भौ ढेरी = इसकारण कच्चा गिलावा होनेसे और भीतमें धक्का लगनेसे भीत गिरके ढेर हो गया। तैसे यहाँपर कच्चा कर्म होनेसे शरीर छूट जाता है, कच्चा कर्म क्यों बनाया ? यदि कर्म पक्का बनाया होता, तो शरीरादि नाश न होता ॥

व्याख्या— क्योंकि, ईंटा, गारा, पानी, चूना आदि देनेवाले मजदूरलोग ही होते हैं। इससे मजदूरोंने ही गिलावा या गारा बनानेमें कसर-विकार कर दिये हैं। जैसे गारा उन्होंने दिये थे, वैसे ही हमने घरमें रखते भीत बनाते गये। अतः गिलावामें ही कसर थी, इसकारण सेंध लगानेमें धक्का लगनेसे भीत गिरके ढेरी हो गई, इसलिये उन दोषी मजदूरोंको ही पकड़कर दण्ड दीजिये ! ॥ ३७७ ॥

१९. मजुरा पकरि बुलावा जबहीं ❀ बहु विधि उजुर सुनाया तबहीं ॥ ३७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मजुरा पकरि बुलावा जबहीं = फिर जब उन मजदूरोंको सिपाही भेजके पकड़ाके बुलाया और जब वे हाजिर हुए, तब उन्हें दोष बताया। तब तो वे सब मजदूरलोग घबड़ा गये और—

बहु विधि = फिर उन्होंने बहुत प्रकारसे— उजुर सुनाया तबहीं = नम्रतासे उजूर (प्रार्थना) करके राजाको सुनाये। जब राजाने पूछा, तबहीं अपने निर्दोष होनेकी बात उन्होंने बतायी। तैसे यहाँपर जब कर्मको वा कर्मीको बुलायके दोष लगाया गया, तब वह अपने निर्दोष होनेको साबित करता है ॥

व्याख्या— तब फिर राजाने उन कारीगरोंको छोड़कर पुलिसोंको भेजकर उन सब मजदूरोंको पकड़वाकर मँगाया, जिन्होंने उस मकान बनानेमें काम किया था। जब वे आये, तब राजाको सलाम

करके खड़े हुए, तब फिर मजदूरोंने बहुत विधिसे अपने उजूर (अर्जी) या विनय सुनाये ॥ ३७८ ॥

२०. मजुरा कहै सुनो हो राऊ ! * हम पर दोष तुम काहे लगाऊ ॥ ३७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मजुरा कहै= तब वे मजदूरलोग विनय करके कहने लगे कि, हे महाराज ! हमारी बातको भी आप ध्यानसे सुन लीजिये ! फिर न्याय करिये ! दोनों तरफकी बात सुने बिना न्याय नहीं होता है।

सुनो हो राऊ= करके कहने लगे कि, हे महाराज ! हमारी बातको भी आप ध्यानसे सुन लीजिये ! फिर न्याय करिये ! दोनों तरफकी बात सुने बिना न्याय नहीं होता है।

हमपर दोष तुम= हमारे जैसे गरीब लोगोंके

काहे लगाऊ= ऊपर आपने दोष क्यों लगाये ? इसमें हमारे तो कोई दोष नहीं है। तैसे यहाँ कर्म कहता है कि, हे मन ! देह बननेमें हमारा कोई दोष नहीं है ॥

व्याख्या— वे मजदूरलोग कहते हैं कि, हे महाराज ! हमारी भी प्रार्थना सुनिये ! आपने हम गरीब दीन लोगोंपर दोष क्यों लगाये ? इस मामलेमें तो हमारा कुछ भी अपराध नहीं है ॥ ३७९ ॥

२१. पुत्री काजी चढ़ी अटारी * नूपुर शब्द भया झनकारी ॥ ३८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मजदूरलोग अपनी सफाई पेश करते हुए राजासे कह रहे हैं—

पुत्री काजी= क्योंकि, उस वक्त काजीकी

चढ़ी अटारी= लड़की अतीव सुन्दरी मकानके छतपर या घरके दूसरे खण्डकी अटारीपर चढ़ी हुई थी। उसके चढ़ने-उतरनेमें और इधर-उधर फिरतेमें—

नूपुर शब्द= उसके पायजेब आदि गहने

भया झनकारी= नूपुरका शब्द छम-छम करके झनकार होता भया। तैसे यहाँपर पण्डितोंने अनुमान, कल्पनामें पुराणकी वाणी बढ़ा-चढ़ा कर सुनाये, सो सुन-सुनकर लोग भूल गये हैं॥

व्याख्या— उसके कारण भी सुनिये ! आपके पुरोहित बड़े काजीजीकी लड़की अतीव सुन्दरी उस मौकेमें सामने ही घरके दुमञ्जिले अटारीमें जाके चढ़ी थी। वह इधर-उधर उछल-कूद करती हुई खेल रही थी और उसके पायजेब नूपुर, घुँघुरुका शब्द छमछमाहट झनकार हो रही थी ॥ ३८० ॥

२२. नाना भाँतिसों पायल बाजै * कोटि भानु शोभा सो लाजै ॥ ३८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मजदूरलोग कह रहे हैं कि—

नाना भाँतिसों= नाना प्रकारसे या विविध

पायल बाजै= भाँतिसे उस युवतीकी हाव-भाव कटाक्ष देखकर और नाना तरहके बजते हुए घुँघुरु पैजनियोंकी आवाज सुन-सुनके हमलोग मोहित होकर मस्त हो गये थे।

कोटि भानु=क्योंकि, करोड़ों सूर्य भी उस-

शोभा सो= स्त्रीकी शोभाके सामने लजाता

लाजै= था। महाराज ! वह ऐसी सुन्दरी थी; उसको ही देखके हम लोग भूल गये थे। तैसे ही पुराणोंकी नाना वाणी सुनकर यहाँपर लोग भूले हैं। करोड़ों सूर्यसे बढ़के ईश्वरकी शोभा बताये थे, ऐसे भ्रमाये थे ॥

व्याख्या— नाना भाँतिसे उस युवतीके पैरकी पैजनियाँ बजती थी। और उसकी शोभाका क्या वर्णन करें ? करोड़ों सूर्यके प्रकाश भी उस सुन्दरी नारीके शोभायमान मुखचन्द्रके आगे लजाते थे। ऐसा उसके रूपको देखकर और शब्दको सुनकर हम सब लोग तो एकदम मस्त, बेसुध हो गये थे। इसीसे हम लोगोंको भुलानेवाली काजीकी लड़की है, और उसीका इसमें दोष है ॥ ३८१ ॥

२३. सुनत देखत हम सबै भुलाना * खोरि तासु हम नहीं अयाना ॥ ३८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मजदूर लोग कह रहे हैं कि—

सुनत देखत= काजीकी पुत्रीके आभूषणों-

हम सबै भुलाना= के झनकार मधुर ध्वनिको सुनकर तथा उसके महान् सौन्दर्यको देखकर हम सब लोग मोहित भये, तो बेभान

होकर सुध-बुध ही भूल गये। कुछ काम करनेकी खबर ही नहीं रही।

खोरि तासु हम = नहीं अयाना = } इसकारण इस मामलेमें तो उसी काजीकी पुत्रीका ही बड़ा भारी दोष हुआ। नहीं तो, हम लोग कुछ अनाड़ी-अज्ञानी नहीं हैं, जो काम बिगड़ने देते। तैसे यहाँपर कर्मीने पौराणिकों-के ऊपर दोष लगाया ॥

व्याख्या— मजदूरलोग राजासे कहते हैं कि, उस काजीकी पुत्रीकी शोभा तथा आभूषणोंकी आवाज देखते-सुनतेमें हम सब मस्त होकर भूल गये। उस वक्त काम करनेकी कुछ सुधि ही न रही, इसलिये सारा दोष तो उसी युवतीका है। नहीं तो, हम कुछ अज्ञानी वा कमअकल नहीं थे ॥३८२॥

२४. पुत्री काजी पकरि बुलाई ❀ काहेको अटारी चढ़ी भुलाई ॥ ३८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुत्री काजी = पकरि बुलाई = } ऐसा सुन करके फिर चौपट राजाने तुरन्त सिपाहीको भेजकर काजीके उस पुत्रीको पकड़कर बुलवा लिया।

काहेको अटारी चढ़ी भुलाई = } जब वह आई, तब राजाने कहा, अरी! लड़की! तू उस वक्त अटारी वा छतपर चढ़ने क्यों गई? अटारीपर चढ़कर रूप और शब्दसे इन मजदूरोंको तुमने क्यों भुलाई? इससे चोर मरनेमें दोषी तूही ठहरी। तैसे ही यहाँपर मनने पौराणिकोंको पकड़कर पूछा कि, तुम गद्दीमें चढ़कर पुराण सुनाकर जनताको क्यों भुलाते हो? ॥

व्याख्या— तब राजाने हलकारेको भेजकर काजीकी पुत्रीको ही पकड़कर बुलाया। और कहा कि, अरी छोकरी! तू अटारीपर जाकर उस वक्त क्यों चढ़ी थी। और हाव-भाव-कटाक्ष करके इन मजदूरोंको क्यों भुलाई थी? जिससे कि, सब काम बिगड़कर चोर मरा। इसीसे यह दोष अब तेरे शिरपर आता है ॥ ३८३ ॥

२५. पुत्री काजी कहै पुकारी ❀ दोष न दीजे राव हमारी ॥ ३८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुत्री काजी = कहै पुकारी = } तब वह युवती काजीकी पुत्री पुकार करके ऊँचे स्वरसे कहती है कि—

दोष न दीजे = राव हमारी = } हे भोंदू महाराज! इसमें तो हमारा कोई दोष नहीं है। नाहक हमको दोष मत लगाइये! तैसे यहाँपर पौराणिक आप निर्दोष बनते हैं। पुराण सुनानेका कारण बताते हैं ॥

व्याख्या— तब पुकार-पुकारकर काजीकी पुत्री कहने लगी कि, हे महाराज! इसमें हमारा तो कोई कसूर नहीं है। नाहक आप हमपर दोष क्यों लगाते हो? ॥ ३८४ ॥

२६. बादशाहकी खड़ी असवारी ❀ शोभा देखन चढ़ी अटारी ॥ ३८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! लड़की कहती है कि—

बादशाहकी खड़ी असवारी = } हे राजा! उस वक्त दुनियाँ का मालिक बड़े बादशाह जहाँपनाहकी बड़ी भारी सवारी धूम-धाम-से चतुरङ्गिणी सेना सहित ऐसी सवारी उस रास्तेसे निकली थी या आई थी, अतएव—

शोभा देखन = चढ़ी अटारी = } उनके महान शोभा-सौन्दर्य, झाँकी, सुन्दर स्वरूप और जुलूस देखनेके वास्ते मैं अपने घरकी अटारी वा छतपर चढ़ गई थी, और उनकी शोभा देखी थी ॥

व्याख्या— उस समयमें दुनियाँका सम्राट् बड़े भारी बादशाहकी सवारी सेना हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी उस रास्तेसे जा रही थी। उस जुलूसकी शोभा देखनेके लिये ही मैं अटारी वा छतपर चढ़ी थी। क्योंकि, नीचेसे वह सवारी दीखती ही नहीं थी ॥ ३८५ ॥

२७. बादशाहको पकरि मँगावो ❀ हम पर दोष तुम काहे लगावो? ॥ ३८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बादशाहको = पकरि मँगाओ = इसकारण सारा दोष तो उसी बादशाहका है। अगर उस रास्तेसे वह न आया होता, तो हम काहे देखनेको जाती! इसीसे आप उसी बादशाहको पकड़कर मँगाओ, और उसीको ही दण्ड दो!

हमपर दोष तुम = काहे लगावो = अब हकनाहक हम निर्दोष-पर आप दोष क्यों लगाते हो? अब दोष क्यों लगा रहे हो? तैसे ही यहाँ जगत्में दस अवतार हुए, उन्हींका लीला वर्णन पुराणोंमें किया है। उन्हीं अवतारोंका पीछा पकड़ो; पुराण तो निर्दोष है, ऐसा बताते हैं॥

व्याख्या— इसकारण उसी बादशाहको आप पकड़कर मँगा लीजिये! उसीको ही दण्ड दीजिये! हम अबलापर नाहक दोष क्यों लगाते हो?॥ ३८६॥

२८. लश्कर पकरन ताहि पठाई ❀ नहिं पाई लश्कर फिरि आई॥ ३८७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

लश्कर पकरन = ताहि पठाई = तब राजाने फौज सिपाहीके लश्कर उस बादशाहको पकड़कर लानेको भेजा। जाओ उसको गिरफ्तार करके लाओ! कहकर पठाया।

नहिं पाई लश्कर = फिरि आई = तब उसकी सेना-फौज खूब मनसूबा करके गई कि, अभी उस बादशाहको पकड़कर लावेंगे; परन्तु, कहीं उसका पता नहीं पाये। राज्यके बाहर निकल गया था, तो लश्कर उलटकर वापस आई। तैसे यहाँपर अवतारी ईश्वरको ढूँढ़ते हैं, वे मर गये, अब किसीको नहीं मिलते हैं॥

व्याख्या— तब चौपट राजाने यह बात सही समझकर अपने सब सिपाही लश्करोंको हुक्म देकर बादशाहको पकड़नेके वास्ते भेजा। फौजने जाकर इधर-उधर ढूँढ़ा, तो वह सीमा पार होकर कबके असीम-अपार हो गया था; इसीसे उसको पकड़ नहीं पाया, तब लश्कर खाली हाथ वापिस लौट आया॥ ३८७॥

२९. मींजहिं हाथ परा पछतावा ❀ चोरटी न्याव न बनत बनावा॥ ३८८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! फौजियोंने वापिस आयके जब बादशाह न मिलनेका हाल कहा, तब तो चौपट राजा बड़ा संकोचसे कठिनाईमें पड़ा, इससे—

मींजहिं हाथ = परा पछतावा = दोनों हाथोंको घिसकर चौपटराजा अब क्या करें? कहके पछताने लगा।

चोरटी न्याव न = बनत बनावा = अरे! चोर तो मर गया! यह चोरकी स्त्रीके मामलाका न्याय-फैसला बनानेपर भी कुछ नहीं बनता है, अपराधी तो मिलता ही नहीं, अब दण्ड किसको दें? कहके चिन्ता करने लगा। तैसे यहाँपर ईश्वर न मिलनेसे मनमें चिन्ता-पछतावा बढ़ने लगी॥

व्याख्या— बादशाह पकड़नेमें न मिलनेसे बड़ा पछतावा करके चौपटराजा अपना दोनों हाथ घिसने लगा। चोरकी स्त्रीके मामलाका न्याय बनाना चाहते हुए भी कुछ नहीं बनता है। हे मन्त्री! अब क्या करें? ऐसा कहके चिन्ता-फिक्र करने लगा॥ ३८८॥

३०. तेहि अवसर मन्त्री उपदेशा ❀ राजा काहे करहु अन्देशा॥ ३८९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

तेहि अवसर = मन्त्री उपदेशा = उसी औसर या मौकामें उस राजाका प्रधान मन्त्री, महा भोंदू मूढ़ जो था, सो आयके उपदेश देके समझाने लगा कि—

राजा काहे = करहु अन्देशा = हे महाराजाधिराज! आप क्यों इतनी छोटी-सी बातके लिये चिन्ता, सन्देह या दुविधा कर रहे हैं। क्यों दुःखी हो रहे हैं? एक बात सुनिये!॥

व्याख्या— उसी अवसरमें उलटचण्ड मूर्ख मन्त्रिने आके नाना तरहसे राजाको उपदेश

देकर उलटा-सीधा समझाने लगा; कहने लगा कि, हे प्रवीण न्याय कुशल राजा ! आप किसी बात-की चिन्ता, सन्देह क्यों करते हैं? आप कोई सन्देह न करिये, सुनिये ! मैं एक युक्ति बतलाता हूँ ! ॥३८६॥

३१. बादशाह औरो दरवेशा ❀ दोऊ समतुल अस कहैं सन्देशा ॥ ३९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बादशाह औरो = दुनियाँके सम्राट् बादशाह
दरवेशा = और मनके सम्राट् दरवेश या साधु-फकीर होते हैं—
दोऊ समतुल = यह दोनों ही बराबरी
अस कहैं सन्देशा = दर्जेके होते हैं। ऐसा बुजुर्ग बड़े-बड़े पण्डित लोगोंने खबर कहे हैं, सो शास्त्रोंमें भी लिखा है। तैसे यहाँपर बुद्धिरूपी मन्त्रीने मनको समझाया कि, ब्रह्मज्ञानीको ही ब्रह्म स्वरूप जानो, वेद-वेदान्तका यही सन्देश है ॥

व्याख्या— बादशाह और दरवेश-साधु दोनों बराबर समान दर्जेके होते हैं। ऐसा पण्डितलोग सन्देश वा खबर कहते हैं; सो ग्रन्थोंमें भी लिखा हुआ है ॥ ३९० ॥

३२. मोटा होय तेहि फाँसी दीजे ❀ अपजस न्यावमें काहेको लीजे ? ॥ ३९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मोटा होय तेहि = इसवास्ते हे राजा ! जो
फाँसी दीजे = कोई मोटा-ताजा, तगड़ा, साधु या फकीर नगरमें होय, उसीको इस मामलामें दोषी ठहराकर फाँसीमें लटका दीजिये !
अपजस न्यावमें = न्याय करनेमें देर करके
काहेको लीजे = किसीकी अपयश-निन्दा काहेको लेना ? यानी न्याय-निर्णय करनेमें क्यों आप अपयश लीजियेगा। तैसे यहाँपर निर्बुद्धिलोग विवेकी लोगोंको फँसाना चाहते हैं ॥

व्याख्या— इसकारण आपके राज्यभरमें जो कोई साधु हृष्ट-पुष्ट, मोटा होवे, उसीको पकड़-करके फिर फाँसीमें चढ़ा दीजिये ! चोरटीके न्याय करनेमें आप अपयश क्यों लीजियेगा? अब तो आप झट-पट मोटे साधुको फाँसी देकर न्याय करनेमें सुयश लीजिये ! ॥ ३९१ ॥

३३. तेहि नगर दोउ रहे फकीरा ❀ सन्त सुखी बहु मोट गम्भीरा ॥ ३९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तेहि नगर दोउ = उसी हरिभोग नगरमें उस
रहे फकीरा = समय संयोगसे गुरु और शिष्य दो जनें साधु या फकीर कहींसे आके कुछ दिनसे रहते रहे।
सन्त सुखी = सब चिन्ता क्लेश विकारोंको
बहु मोट = त्यागकर इन्द्रिय और मनको
गम्भीरा = शमन, दमन, शान्त किये हुए सन्त सुखपूर्वक रहते रहे। इससे वे दोनों मोटे-ताजे, हृष्ट-पुष्ट, गम्भीर, धैर्य स्वभाव-वाले रहे ॥

व्याख्या— उस नगरमें उसी मौकेमें गुरु-शिष्य दो जनें फकीर वा साधु भी कहींसे आकर कुछ दिनसे रहते रहे। वे दोनों सन्त सुखी, कल्पना-विषयादि विकारसे रहित शान्त, गम्भीर, धैर्यवान् बहुत मोटे-ताजे परिपुष्ट देहवाले रहे ॥ ३९२ ॥

३४. हुकुम किया सो पकरि मँगाये ❀ फाँसी देन तुरित फुरमाये ॥ ३९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

हुकुम किया सो = मन्त्रीके निर्णय अनुसार
पकरि मँगाये = राजाने भी हुक्म या आज्ञा दे दिया कि, मोटे-ताजे साधुको ही पकड़ लाओ। तब ढूँढ़ते हुएमें सिपाही लोगोंको वही दोनों सन्त मोटे-ताजे दिखे, सो उन्हीं दोनोंको पकड़कर मँगाया, तो पकड़ करके वे लाये गये।
फाँसी देन = उक्त दोनों साधुओंको
तुरित फुरमाये = मोटे-ताजे देखकर तुरन्त ही फाँसी देनेके लिये राजाने फर्माया। तैसे

यहाँपर विवेक-वैराग्य दोनोंको धोखेमें । फँसाकर नष्ट करना चाहते हैं ॥

व्याख्या— जब चौपटराजाने मोटे साधुको पकड़कर लानेका हुकम दिया, तो वही दोनों साधुओंको मोटे देखकर सिपाहियोंने पकड़कर लाये। तब तुरन्त ही इनको फाँसीमें चढ़ा दो, राजाने ऐसी आज्ञा फर्माया वा ऐसा कह दिया ॥ ३९३ ॥

३५. दोऊ विचार करैं मन माहीं * यह हरिभोंग बचावा नाहीं ॥ ३९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
दोऊ विचार = } जब उन दोनों साधुओंको
करैं मन माँहीं = } फाँसीकी जगहमें ले जाने लगे; यह अन्यायका तमाशा देखा, तब उन दोनों जनें साधु अपने-अपने मनमें इस उपाधिसे छूटनेका विचार करने लगे। फिर बाहर आपसमें कहे; तहाँ—
गुरुने शिष्यसे कहा कि, मैंने पहले ही तुझे-मनाकिया था कि, चलो यहाँसे, यहाँ रहना ठीक नहीं; सो नहीं गये तो अब आके फँस गये। यह अन्यायी मूढ़ राजाका राज्य—
यह हरिभोंग = } हरिभोंग नगर है। यहाँ अब
बचावा नाहीं = } कोई तीव्र युक्ति किये बिना बचाव होनेका नहीं। सो मैं जैसा कहूँ, तैसा तूने करना, तब तो शायद बचाव हो जाय। सो यहाँपर विवेक-वैराग्यका विचार करना है ॥

व्याख्या— तब दोनों गुरु और शिष्य मनमें विचार करने लगे कि, अहो! यह कहाँ उपाधिमें आके हमलोग पड़ गये। फिर गुरुने कहा कि, देखो! मैंने पहले ही कहा था कि, इस अन्यायी राजाके नगरमें हमें नहीं रहना चाहिये। सो तुमने मेरा कहा नहीं माना? तो उसका फल आज हम दोनों जनें पकड़े गये और फाँसी देनेको ले जा रहे हैं। यह हरिभोंग नगरमें अन्यायी-अविचारियोंका राज है। अब कोई बड़ी युक्तिके किये बिना बचाव नहीं होगा। इसलिये मैं पहले फाँसी तरफ जाऊँ, तो तुम मुझे खैंच लेना और तुमको मैं खैंचूँगा, इसी तरह करनेसे शायद बच जायेंगे, ऐसा कहिके समझाये ॥ ३९४ ॥

३६. एक कहै मोहि फाँसी दीजे * दूसर कहै खैंचि मोहि लीजे ॥ ३९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
एक कहै मोहि = } तब उनमेंसे एक जनें गुरुने
फाँसी दीजै = } पहले कहा कि, जल्लादो! झट-पट पहले मुझे ही फाँसी दे दो, कहके आगे पहुँच गया।
दूसर कहै = } फिर दूसरे जनें चेलाने उसको
खचि मोहि = } खैंचके ढकेल दिया और कहा
लीजे = } कि, नहीं-नहीं मुझको ही पहले फाँसीमें ले लो जी! सो यहाँपर विवेक-वैराग्यका आगे-पीछे होना है ॥

व्याख्या— तब उनमें चतुर एक जो गुरु था, उसने कहा— पहले-पहल मुझको ही फाँसी दे दो! और आगे चला गया। तब दूसरा चेलाने झट-पट उसको खैंचके दूसरी तरफ ढकेलते हुए कहा कि, नहीं जी! तुम्हारा काम नहीं है, पहले मुझको ही फाँसी लगा दो, इसमें देर मत करो! वे दोनों उसीप्रकार खैंचा-खैंची करने लगे ॥ ३९५ ॥

३७. रार परस्पर देखी राऊ * अचरज पूछहिं भेद बताऊ ॥ ३९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
रार परस्पर = } इसप्रकार दोनों जनोंको पहले
देखी राऊ = } फाँसीपर चढ़नेकी बातपर लड़ते-झगड़ते, तकरार करते, परस्पर आगे जाते हुए उस राजाने देखा। तब तो—
अचरज पूछहिं = } बड़ा भारी आश्चर्यमें पड़के
भेद बताऊ = } भोंदू राजा उन्होंसे पूछने लगा कि, भाई! इसका माने वा भेद क्या है? सो हमको बताओ। सो यहाँपर विवेक, वैराग्यके मर्मको मनका न जान सकना है ॥

व्याख्या— ऐसा परस्परका झगड़ा-तकरार, खैंचा-खैंची, पटका-पटकी उन दोनों जनोंका जब देखा, तो चौपटराजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। इससे उन साधुओंसे पूछा कि, इसका भेद क्या है? पहले फाँसीमें चढ़नेवालेको क्या लाभ मिलेगा? सो भेद हमसे बताओ? ॥ ३९६ ॥

३८. मन्त्री तहाँ निर्णय अनुमाना * मर्म फकीरा हम पहिचाना ॥ ३९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मन्त्री तहाँ = राजाके पूछनेपर भी जब उन
निर्णय = साधुओंने कुछ भी बात न बता-
अनुमाना = कर खैंचा-तानी ही करते रहे, तब निर्बुद्धि भोंदू मन्त्रीने उनकी बातका निर्णय अनुमानसे लगाया, और कहने लगा कि—

मर्म फकीरा = अरे! इन साधु-फकीरोंके
हम पहिचाना = तकरारका मर्म या भेद तो मैंने अपनी बुद्धिसे पहिचान लिया, मर्म जान लिया हूँ! सो यहाँपर बुद्धिसे कोई एक बातका निश्चय करना है ॥

व्याख्या— तहाँपर जो भोंदू मन्त्री बैठा था, उसने अनुमानसे कल्पना बढ़ा करके उसका निर्णय या कोई बातका निश्चय करके कहा कि, इन फकीर-साधुओंकी बातका मर्म तो मैं पहिचान गया हूँ! ॥३९७॥

३९. कहा लगन उत्तम यह होई * ऐसी लगन न पावै कोई ॥ ३९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कहा लगन = राजाके पूछनेपर फिर मन्त्री-
उत्तम यह होई = ने कहा कि, यह अति उत्तम शुभ लग्न वा मुहूर्त फाँसी चढ़नेका इस समयमें होगा, ऐसा जान पड़ता है; इसीसे ये लोग बड़ी खुशी मना करके आगे होनेके लिये खैंच-तान कर रहे हैं।

मन्त्रीकी ऐसी मनगढ़न्त बात सुनकर—

ऐसी लगन = तब साधुने कहा कि- वाह वा!
न पावै कोई = आपकी बड़ी तीव्र बुद्धि है! हमारे भेदको आपने सहज ही जान लिया; तभी तो हमलोग फाँसीमें पहले चढ़नेकी उतावली कर रहे हैं। ऐसा शुभ महान लग्न मुहूर्त सब कोई पा नहीं सकते हैं; कोई बड़े भाग्यवान्को ही ऐसा लग्न मिलता है। सो यहाँपर विवेकका उदय होना है ॥

व्याख्या— राजाने उस मन्त्रीसे पूछा, क्या बात है? हमें बताओ! तो मन्त्री बोला— इस अवसरमें फाँसीपर चढ़नेका सर्वोत्तम लग्न-मुहूर्त होगा? तब वे साधु झट बोले कि, धन्य हो मन्त्रीजी! हमारे मनकी बात असली भेदको तो आप जान ही गये, ऐसे शुभ लग्न, शुभ घड़ी तो कोई भी पा ही नहीं सकते हैं, धन्य! बड़े भाग्यसे हमें आज यह अवसर मिला है; ऐसा कहकर साधु चुप हो गये ॥ ३९८ ॥

४०. चार चरण चारों परवाना * ताका मर्म कोई बिरले जाना ॥ ३९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! तब भोंदू मन्त्रीने चपलता दिखाके लग्न-मुहूर्तका वर्णन निम्न प्रकारसे किया—

चार चरण = सो शुभ लग्नोंके चारों भाग
चारों परवाना = चार पद या चार हिसाब है। वह जैमिनी, जगपति, केतकी और व्याली, ये चारों मुहूर्त प्रमाण करके माने गये हैं, सो हे राजन्! मानने योग्य हैं।

ताका मर्म कोई = उसका मर्म या भेदको तो
बिरले जाना = कोई बिरले पण्डित ही जानते हैं। इस टायममें भी फाँसी चढ़नेके लिये ये ही चार शुभ लग्नका उदय हुआ होगा, उस लग्नके भीतर ही यदि जो फाँसीमें लटकेगा, तो उसके सुखका फिर वर्णन हो नहीं सकता है, ऐसा यहाँपर भी बुद्धिने धोखेका निश्चय किया ॥

व्याख्या— मन्त्रीने कहा— उस मुहूर्तके चार चरणरूप चार पद हैं, सो चारों ही प्रामाणिक हैं। उसका पूरा-पूरा भेद तो कोई बिरले ही ज्ञानी, पण्डित लोग जान सके हैं [illegible] की फाँसी चार मुक्ति देनेवाली है; ऐसे अनुमान किया ॥ ३९९ ॥ [illegible] बिगड़ गये। अथ—

४१. पहिली लगन जो फाँसी परई * अचल राज त्रैलोकके करई ॥ ४०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ऊपर जो चार लग्न बता[illegible] उनमेंसे चारों मुहूर्तमें फाँसीपर चढ़नेका फल-महिमा यहाँ बता रहे हैं—

पहिली लगन = जो फाँसी परई = भोंदू मन्त्री कहता है- सुनो महाराज ! अभी पहला मुहूर्त जैमिनीमें जो मनुष्य जाके फाँसीमें पड़ेगा या फाँसीमें लटक जायगा, सो फिर- अचल राज = मरकर स्वर्गमें जाकर अचल, अटल—

त्रैलोकके = करई = ईश्वरपद पाकर फिर तीनों लोकोंका राज्य सुख भोग करेगा। उसका राज्य सदा अचल रहेगा। तैसे ही यहाँ ज्ञानमार्गमें फँसनेपर उसे सायुज्य मुक्ति सर्व सुख प्राप्ति ठहराये हैं ॥

व्याख्या— अब यहाँपर चार लग्नकी फाँसी बतलाते हैं- निपट मूर्ख मन्त्रीने चार लग्नमें क्रमानुसार फाँसी लेनेका फल इसप्रकार कल्पना करके बतलाया। हे महाराज ! सुनो, सबसे पहलेके लग्न-मुहूर्तमें जो फाँसीपर चढ़ेगा या पड़ेगा, सो फिर स्वर्गलोक वा परलोकमें जाकर तीनों लोकोंका राज्य पाकर त्रैलोक्यका स्वामी हो सर्वदा अचल, निष्कण्टक राज्य भोग करता रहेगा ॥ ४०० ॥

४२. दूसर लगन फाँसी व्रत ठानी ❀ अक्षय वजीरी निश्चय जानी ॥ ४०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मन्त्री कहता है, हे राजा !

दूसर लगन = फाँसी व्रत ठानी = फिर दूसरा मुहूर्त-जगपतिमें जिसने व्रत रखकर फाँसीमें चढ़ेगा, यानी दूसरा नम्बरमें फाँसीमें लग करके जो मर जायगा, सो उस पुण्यके प्रभावसे मरकर फिर परलोकमें—

अक्षय वजीरी = निश्चय जानी = कभी नाश न होनेवाला अक्षय महा मन्त्रीकी पदवीको वह पायेगा। यह निश्चय करके जानलो ! तैसे यहाँ योग मार्गके साधकको सारूप्य मुक्ति प्राप्ति बताये हैं ॥

व्याख्या— दूसरा लग्न-मुहूर्तमें जो फाँसीमें चढ़नेका महाव्रत करेगा, सो अक्षय, अटल वजीर = प्रधान मन्त्रीका पद पाकर सुखी होयगा; यह निश्चय करके जान लीजिये ! ॥ ४०१ ॥

४३. तीसर लगन मुसाहिब होई ❀ चौथी लश्कर जानहु सोई ॥ ४०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मन्त्री कहता है, हे राजा !—

तीसर लगन = मुसाहिब होई = तीसरा मुहूर्त केतकीमें जो कोई फाँसीमें लटककर मरेगा, सो फिर सरदार बड़े-बड़े अधिकारी, सामन्त होगा या उपप्रधान मन्त्री ही हो जायगा। तैसे यहाँपर उपासनासे सामीप्य मुक्ति प्राप्ति माने हैं। और—

चौथी लश्कर = जानहु सोई = चौथा मुहूर्त व्यालीमें फाँसीमें जो चढ़गे, सो शूर, वीर, सैन्य वा सिपाही होंगे, ऐसा जानो। तैसे यहाँपर कर्म मार्गकी साधनाओंमें फँसकर मरनेवालेको सालोक्य मुक्ति प्राप्ति होगी, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— तीसरे लग्न-मुहूर्तमें जो फाँसी लगालेगा, सो उपमन्त्री, सरदार और अधिकारी वर्गके ओहदेको पायेगा; और चौथे मुहूर्तमें फाँसीमें चढ़नेवाले लोग सब शूर-वीर लश्करके सिपाही होवेंगे। सो यही अभीके चारों लग्नमे फाँसी लगा लेनेका फल है, सो निश्चय करके इस बातको सत्य जानिये ! ऐसा मन्त्रीने कल्पित बात परिपुष्ट करके कहा ॥ ४०२ ॥

४४. सुनत राव दरवेश निकारी ❀ फाँसी अपने गरे सँवारी ॥ ४०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सुनत राव = दरवेश = निकारी = भोंद मन्त्रीके मुखसे फाँसीमें चढ़ते, तकरार करते, मना शुभ लग्न-मुहूरतका माहात्म्य सुनकर उस चौपटराजा निपट मूर्खने उन दोनों साधु-फकीरोंको, हटाओ इनको ? कहके बाहर निकाल दिया। तदनन्तर—

फाँसी अपने = गरे सँवारी = और सोनेकी जञ्जीर लगाकर अपने गलेमें फाँसी डालकर पहले वही लटककर मर गया। सो यहाँपर मन शून्यमें लय होकर मरा ॥

व्याख्या— ऐसी मूढ़ मन्त्रीकी रोचक वाणी सुनकर चौपट राजाने उस बातका विश्वास कर

लिया, और उन दोनों दरवेश साधुओंको तो बाहर निकाल दिया; और त्रैलोक्यके अचल राज्यकी लालचसे अपने ही गलेमें फाँसी डाल लिया और मर गया ॥ ४०३ ॥

४५. दूसर फाँसी मन्त्री लीन्हा * तीसर लगन मुसाहिब दीन्हा ॥ ४०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दूसर फाँसी = फिर दूसरा नम्बरमें चाँदीकी
मन्त्री लीन्हा = जञ्जीर लगी हुई फाँसीको लेकरके उसीमें लटककर मन्त्री भी मर गया। सो यहाँपर बुद्धि भी लय होकर शून्य हुई।

तीसर लगन = और तीसरे नम्बरमें लगन
मुसाहिब दीन्हा = लगानेवाले प्रेमी सरदार हाकिम लोग भी पीतलके जञ्जीरवाली फाँसी गलेमें डालकर उसीमें लटकके मर गये। सो यहाँपर सब सूक्ष्म इन्द्रियाँ शान्त हुईं ॥

व्याख्या— फिर दूसरे नम्बरमें आगे जाकर मन्त्रीने भी फाँसी अपने गलेमें डालकर मर गया। यह देख करके बातको सच्ची मानकर तीसरे नम्बरमें लगन लगाकर सरदार, अधिकारी वर्ग भी अपने-अपने गलेमें फाँसी डाल-डाल कर मर गये ॥ ४०४ ॥

४६. चौथी लगन सकल हरिभोंगू * फाँसी परहिं बड़े संयोगू ॥ ४०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

चौथी लगन = फिर चौथे नम्बरमें बाकी-
सकल हरिभोंगू = के सबलोग सारे शहर-की मूर्ख मण्डली समेत् धोखेमें लगन लगाय-लगायके रस्सीकी फाँसीमें लटक-लटक कर मर-मर गये। सो यहाँपर तत्त्व-प्रकृतियाँ आदि सबोंका लय होना है।

फाँसी परहिं = इसप्रकार चौपट राजा, चोरकी
बड़े संयोगू = मृत्यु होनेमें चोरटीके न्याय करनेको बैठा था, तहाँ तो होते-होते आखिरमें उस राजा सहित सारे फौज बड़े संयोगसे स्वयं जा-जाकर फाँसीमें पड़कर लटककर मरे। यही विचित्र प्रकारका वहाँपर न्याय हुआ ॥

व्याख्या— चौथे नम्बरके लगनमें तो देखा-देखी सकल फौज सहित हरिभोंग नगरके निवासी अपने ही फाँसीमें जा-जाकर पड़ने लगे। देखो ! बड़े संयोगसे चोरटीका न्याय उस चौपट राजाके यहाँ इसप्रकार अद्भुत् रीतिसे हुआ ॥ ४०५ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर अब ग्रन्थकर्त्तानें बीजक साखीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— १७८ ॥ ❀ ॥

साखीः— ऊपरकी दोऊ गई * हियेहुकी गई हेराय ॥
[३७] कहहिं कबीर जाकी चारों गई * ताको काह उपाय ? ॥ ४०६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ऊपरकी = ऊपरके बाहरी मुखके दो
दोऊ गई = नेत्रोंसे पदार्थ दिखाई देते हैं। सो न्यारा-न्यारा ही जड़-चैतन्यको सब देखते हैं ! परन्तु, गुरुवालोग एक ही अद्वैत व्यापक है, एक ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं। इससे स्थूल-सूक्ष्म दोनोंका विचार चला गया, कुछ समझ नहीं रही। और—

हियेहुकी = अन्तःकरणकी बूझ-बुद्धिरूप
गई हेराय = विवेक-विचार यह दोनों भी नाश हो गया और कारण, महाकारण भी लय होकर खो गया वा हेराय गया। तब उसके समान महा अन्धा संसारमें दूसरा और कौन है ? कोई नहीं है।

कहहिं कबीर = पारख प्रकाशी सद्गुरु
जाकी चारों गई = श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, जिस मनुष्यकी बाहरी दो चर्मदृष्टि तथा भीतरी बूझ-विचार मिलायके ये चारों बिगड़ गये। अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण ये चारों देह लय हो गये, तहाँ कैवल्य ब्रह्म मानकर निर्विकल्प दशाको प्राप्त भये, सो गरगाफ जड़-मूढ़ हुए।

ताको काह = उपाय = } अब उस भ्रमिक विवेकदृष्टि-हीन महा अन्धेको मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये कोई उपाय लग नहीं सकता है। पारख स्वरूपकी बोध-स्थिति हुए बिना आवागमनोंसे छूटकर मुक्ति पानेका और कोई भी उपाय नहीं है; इसीसे तो वे जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंके भवचक्रमें ही भटकते रहेंगे ॥

व्याख्या— इस साखीमें सद्गुरु कहते हैं कि, मनुष्योंकी बाहरी और भीतरी मिलायके चार दृष्टियाँ होती हैं। उसमें बाह्य चर्म दृष्टिसे ऊपरके स्थूल पदार्थोंको देखके वस्तुका ज्ञान होता है, तथा भीतरी विवेकदृष्टिसे सूक्ष्म पदार्थोंका भान होता है। इन चारों दृष्टिसे ठीक-ठीक देखनेवालेको ही सच्चा नेत्रवाला कहा जाता है। एक तरफ मात्रसे देखनेवालेको 'काना' कहते हैं। जिसके दोनों नेत्र न हों, सो 'अन्धा' है। अन्धेको रूप पदार्थका ज्ञान किसी प्रकार भी हो नहीं सकता है। फिर कोई उपाय भी उसके लिये क्या लगेगा ? इसीप्रकार संसारमें जड़ पाँच तत्त्वोंके विस्तार और अनन्त देहधारी चैतन्य जीव स्वरूपसे ही न्यारे-न्यारे प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं। परन्तु, ब्रह्मवादी वेदान्ती गुरुवालोग जान-बूझ करके आँखें मूँदकर कहते हैं कि, जड़-चेतनमें व्यापक सर्वत्र सम-समान अद्वैत एक ही ब्रह्म स्वरूप है। ब्रह्ममें दूसरा द्वैत होना तीनकालमें नहीं सम्भवता है, ऐसा कहके हठसे पक्ष पकड़ते हैं। इसवास्ते उनकी ऊपकी चर्मदृष्टि भी फूट ही गई, जिससे अज्ञानरूपी अन्धेरेमें सब एक समान देखते हैं। और अन्तःकरणकी विवेक-विचाररूपी बूझ-बुद्धि भी फूट गई वा खो गई। इसीसे सत्यासत्यका निर्णय छोड़कर सत्कर्म, सद्गुण धारण करना, त्यागकर पशुवत् उन्मत्त, जड़, जाड़, मूढ़ होते हैं। यहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, जिस मनुष्यकी उन गुरुवालोगोंसे प्रीति हुई कि, वह भी अन्धा हो जाता है। जिन-जिन भ्रमिक मनुष्योंके उपरोक्त चारों नेत्र फूट गये, उसको सत्य उपदेश देकर समझानेका कोई उपाय नहीं लगता है। अथवा स्थूल और सूक्ष्मके सुधार त्याग-ग्रहण छोड़कर दोनों देहोंका भाव भी लय हो गया। भीतरका दोनों कारण, महाकारण भी लय होकर शून्यमें समा गया; तो साहेब कहते हैं कि, जिसका उक्त चारों देह हेरा गया, शून्यमें लय हो गया, सो कैवल्य निर्विकल्प जड़ दशामें पहुँचा। अब वह चौरासी योनियोंके बन्धनोंसे कभी छूट नहीं सकता है। ऐसा कोई उपाय-प्रयत्न भी नहीं है, जो कि, ऐसे जीव मुक्त हो सके। पारख बिना जड़ाध्यास नहीं छूटता है। पारखके निकट तो वह भ्रमिक जीव जाता ही नहीं। फिर वह तो सर्व व्यापक एक आत्मा बना है। ऐसे महा अन्धे लोगोंको स्वरूप ज्ञान दिखानेका कोई उपाय नहीं है। जैसे अन्धेको रूप पदार्थका यथार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान कराया जा नहीं सकता है। तैसे ही विवेकहीन अन्धे मतवादी गुरुवालोगोंको भी स्वरूपका ज्ञान पारखबोध कराना निरुपाय होनेसे असक्य है। इससे संसारमें "अन्धे अन्धा पेलिया, दोनों कूप पराय" की नाईं होकर जीवोंकी दुर्गति हो रही है ॥ ४०६ ॥

सम्बन्ध— हरिभोंग नगरका रूपक-दृष्टान्त ऊपर खतम हो गया है। अब यहाँपर उसके सिद्धान्तके भावको घटाकर दर्शाया गया है। पच्चीसवें खण्डमें ३४ चौपाई, और १ साखीमें उसी निर्णयका वर्णन किया गया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ पच्चीस खण्ड ॥ २५ ॥ ❀ ॥

१. सब घट एक ब्रह्म सम लेखै * सोई टके सेर विक्री पेखै ॥ ४०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सब घट = एक ब्रह्म = सम लेखै = } मनुष्य, पशु, पक्षी, उष्मज, स्थावर वृक्षादि पाँचों तत्त्वोंमें वा सब चराचरमें परिपूर्ण व्यापक घट-घट निवासी एक परब्रह्म-परमात्मा ही सत्य है, ऐसा मानकर गदहा, सन्त, ऊँच-नीच, सार-असार, ज्ञानी-अज्ञानी, मुक्ति-बन्धन इत्यादि सबको एक समान समझकर उसी ब्रह्मज्ञानको श्रेष्ठ समझते हैं।

सोई टके सेर = विक्री पेखै = } जैसे ढ्याकमें दो पैसा होनेसे एक टका कहते हैं। तैसे जड़-

चेतन एकत्र मिश्रित एक ब्रह्म माने हैं। सोई अविवेकका टेक, पक्ष, हठको श्रेष्ठ मानना ब्रह्मज्ञानका उपदेश देना; यही टके सेर बिक्रीकी जगह देखना चाहिये ॥

व्याख्या— उपरोक्त दृष्टान्तका भेद सिद्धान्तमें घटाकर यहाँपर कहा जाता है। घट, मठ, तट, पट, सर्वत्र-चराचरमें एक ही ब्रह्म अद्वैत है। सम-समान आकाशवत् निराकार पूर्ण है। ऐसा संसारमें जो गुरुवालोगोंने माना है, इससे विवेक तहाँ कुछ नहीं हुआ। गदहा, सन्त, पापी, धर्मी, साँच, झूठ इन सबोंको बराबर समझना; ब्रह्मको ही श्रेष्ठ मानकर उसीका टेक रखना, निर्गुण, सगुण दोनोंको एक बनाना, ऐसे अन्यायका उपदेश सोई टके सेरकी बिक्री है। संसार यही हरिभोग नगर है। ब्रह्मज्ञानी बाहरमें चौपट राजा बने हैं, और शरीरमें मन चौपट राजा बना है। सो इनके सब ही समाज भोंदू, अन्यायी, अविचारी हैं। वे पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्तिको एक भावसे टके सेरसे बिक्री करते हैं ॥ ४०७ ॥

२. नौ नाड़ीमें जीव अरुझाना ❀ नौ नेंगीको सोइ निशाना ॥ ४०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
नौ नाड़ीमें = शङ्खिनी, हस्तिनी आदि नौ नाड़ियोंमें योगी लोग, तथा नवधाभक्तिमें भक्त लोग, और नवग्रह पूजनमें कर्मी लोग, तथा नव व्याकरण पढ़ाईमें पण्डितलोग एवं नव-द्वारोंके विषय भोगोंमें विषयीलोग, ऐसे नरजीव नौ-नौमें जहाँ-तहाँ अरुझकर फँसे हैं।
जीव = अरुझाना =
नौ नेंगीको = सोई यहाँपर नाका-जगात चौकी नौ जगह चुङ्गी चुकाने-की पहिचानी लक्षण या निशानी है ॥
सोइ निशाना =

व्याख्या— संसारमें नौ व्याकरण, नवग्रह पूजा, नवधा भक्ति, नौ द्वारोंके विषय भोग तथा शरीरमें पुहूखा, पयश्विनी, गान्धारी आदि नव नाड़ी इन्हींमें मनुष्य आदि जीव सब अरुझे हुए हैं। वही नौ जगह चुङ्गी या चौकी चुकानेकी निशानी या पहिचानी है ॥ ४०८ ॥

३. तस्कर लोभ, मोहकी राती ❀ जीव साहु घर चलै निवाती ॥ ४०९ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
तस्कर लोभ = लोभ यही चोर है; सो धन-सम्पत्ति वृद्धिके लोभ, सुख ऐश्वर्य प्राप्तिके लोभ, अष्ट सिद्धि, नवनिद्धि-के लोभ, स्वर्गादि प्राप्तिके लोभ हृदयमें खूब बढ़ा, ऐसे लोभरूपी चोर महामोह आसक्तिकी अँधियारी रात्रिमें चुरानेके लिये निकला।
मोहकी राती =
जीव साहु = जीव यही ज्ञानवान्, धनवान् सच्चा साहुकार है। दया, क्षमा, सत्य, शील, सन्तोषादि उसकी धन-सम्पत्ति हैं। देह-गेहादि मानन्दीरूपी घरमें जीव रह रहा है। उसीके घरमें लोभ चोर 'निवाती' कहिये धन-सम्पत्ति लूटनेको वा चुरा लानेके लिये चला गया और घुस गया था ॥
घर चलै =
निवाती =

व्याख्या— यहाँपर 'लोभ' ही चोर है। सो धन-सम्पत्ति, राज-काज, नाज, ऋद्धि, सिद्धि, स्वर्गादि प्राप्ति करनेका लोभ सबको लग रहा है; और 'मोह' ही महाअँधियारी रात्रि है। स्त्री, पुत्र, परिवारोंका मोह तथा देवी, देवता, ब्रह्म, ईश्वरादिके मोहमें आसक्त गाफिल पड़े हैं। और 'जीव' ही साहुरूपी सच्चा अविनाशी है। जीवके घररूपी घटमें सद्गुण रहस्य रहनीरूपी धन हैं। वही सद्गुणोंको 'निवाती' कहिये लूटनेके लिये वा हरण करनेको लोभ-चोर भीतर ताक लगाके चला गया ॥ ४०९ ॥

४. पदार्थ अर्थ इत्यादिक चारी ❀ जप तप साधन सेंध सँवारी ॥ ४१० ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
पदार्थ अर्थ = चार पदार्थ—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष यह चार फल महान् श्रेष्ठ सुखका फल है। सो ईश्वरकी प्रसन्नता और दयादृष्टिसे ही यह चारों फल मिलेगा, ऐसा दृढ़ायके गुरुवालोगोंने मनुष्योंको भुलाय-भ्रमाय रक्खे हैं। और—
इत्यादिक =
चारी =

जप तप साधन सेंध सँवारी = गायत्री वा दीक्षा मन्त्रका जप, पञ्चाक्षरी, अष्टाक्षरी, द्वादशाक्षरी आदि मन्त्रोंका विविध प्रकारसे जप करना, और पञ्चाग्नि, चौरासी धुनी आदि तापनेकी तपस्या करना। ऐसे अनेक साधनोंमें लगना वा लगाना; सोई मनमें सेंध देना वा भीत फोड़ कर सुराख कर देना है ॥

व्याख्या— अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष, ये चार पदार्थरूपी सम्पत्ति प्राप्तिके वास्ते अज्ञलोग गायत्री मन्त्रादि नाना जप और तपस्या— उर्ध्व बाहू, मौनी, दिगम्बरी, पञ्चाग्नि, जलशयनादि अनेक कठिन साधनाएँ करने वा कराने लगे। सोई सेंध लगाना या हृदयमें भीत फोड़ना है ॥ ४१० ॥

५. पैठत सेंध मरै दबि लोभा * जो किये चारि पदारथ शोभा ॥ ४११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

पैठत सेंध मरै दबि लोभा = साधकलोग कठिन-कठिन साधनाओंमें लगकर जब साधनोंमें घुसे, तब संसारके विषय तथा स्त्री-पुत्रादि और धनके लोभ छोड़ दिये। यानी साधनोंमें दब करके लोभ मर गया। तो कितनेक लोग घर-बार छोड़कर साधु होते भये।

जो किये चारि पदारथ शोभा = जो कि, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इनकी शोभा, सुख, सुन्दरताकी महिमा गुरुवालोगोंने बहुत-बहुत किये हैं। इससे चार फल प्राप्तिका लोभ खूब बढ़ा था। जो उसे पानेकी इच्छा किये थे, सो पूरी नहीं हुई। शून्यवृत्तिमें जाकर साधकलोग गाफिल हुए ॥

व्याख्या— योग साधनोंमें घुसनेसे शून्य वृत्ति होकर लोभरूपी चोर भीतर दबके मर गया। अर्थ, धर्मादि चार पदार्थोंकी शोभा देख-सुनकर उसको चुरा लेनेकी जो इच्छा करके चला आया था, सो इच्छा उसकी पूरी नहीं हुई ॥ ४११ ॥

६. निःकामी होय जप तप साधी * तहाँ पदारथ चाहे उपाधि ॥ ४१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

निः कामी होय जप तप साधी = जिस चार पदार्थ या चार फल प्राप्तिकी इच्छासे नाना तरहके मन्त्रोंका जप तथा अनेक प्रकारकी तपस्या, ध्यान आदि साधना किये थे, सो इच्छा या कामना सिद्ध वा पूर्ण नहीं हुई; क्योंकि, समाधि लगाकर निर्विकल्प होनेसे तब तहाँ कामना ही मर गई, और कोई तो निःकामी ब्रह्म हो गये।

तहाँ पदारथ चाहे उपाधि = फिर तहाँ मायाके उपाधिरूप चार पदार्थोंकी चाहना कैसे रहेगी? ब्रह्मको शून्य, निर्विकल्प माना है। परन्तु, वहाँसे ही जगत् विलासमें पदार्थोंकी चाहनारूप उपाधि खड़ी होती रहती है; ऐसे उपाधि लगी रही ॥

व्याख्या— जप-तपादि साधनाओंमें लगनेसे और योगाभ्यास करनेसे मन उन्मुन होकर निष्काम हो गया; और कोई ब्रह्म बने, तो भी चार पदार्थकी चाहनारूपी उपाधि नहीं मिटी; इसीसे चार पदार्थ पानेके लिये अनेक उपाधिमें पड़कर जप, तपादिकी नाना साधनाएँ किये। परन्तु, 'निःकामी' कहिये उन्होंकी वह इच्छा सिद्ध नहीं हुई वा पूर्ण नहीं हुई; सो अधूरे जड़ाध्यासी होके मरकर चौरासी योनियोंमें पड़ रहे हैं ॥ ४१२ ॥

७. चोरटी अविद्या कीन्ह विलापा * संशय शोग सोई उर व्यापा ॥ ४१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चोरटी अविद्या कीन्ह विलापा = लोभरूपी चोरको मरा हुआ देखकर उसकी स्त्री अविद्यारूपी चोरटी शोक-विलाप करके रोने लगी; दुःख मानकर कलपने लगी।

संशय शोग सोई उर व्यापा = सो यहाँ नाना सन्देह, चिन्ता, शोक, कल्पना, विषय विकार अन्तःकरणमें व्याप्त होकर फैल जाना, सो अविद्या करके ही होता है ॥

व्याख्या— जब कि, लोभ फिर अन्तःकरणमें वापिस नहीं आया, तब अविद्यारूपी स्त्री उसकी खोज करनेको गई, तो लोभको साधनोंमें दबकर मरा हुआ देखकर वह चोरटीरूपी अविद्या विलाप करके रोने लगी। इससे संशय, शोग, चिन्ता, परेशानी हृदयमें व्यापके फैल गई ॥ ४१३ ॥

८. इन्द्रियनपर है मनुवा राजा ❀ जाकी अटपट सकल समाजा ॥ ४१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

इन्द्रियनपर है = दश इन्द्रियाँ और पच्चीस (२५) प्रकृतियोंके ऊपरमें
मनुवा राजा = शासक मन यही यहाँपर राजा बना है, सो चौपट-भोंदू है।

जाकी अटपट = एकमें एक न मिलनेवाले
सकल समाजा = अनमिल, अटपट सकल समाज अधिकारी वर्ग, जिस मन राजाके निकट सदा बने रहते हैं; वे सब बेहूदे हैं॥

व्याख्या— सब इन्द्रियाँ तथा प्रकृतियोंके ऊपरमें रहनेवाला मन यही चौपट राजा है। जिसके कि, सकल समाज वृत्ति, सङ्कल्प-विकल्पादि अटपट-खटपट किसीसे मेल न खानेवाले चञ्चल अन्यायी बने हैं; "मन राजा बहकावते, पाँचों बड़े असाधि" ऐसा हो रहा है ॥ ४१४ ॥

९. नालिश करी साहु जीव घेरी ❀ साहु कहै नहिं खोरी मेरी ॥ ४१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नालिश करी = अविद्याने लोभके मरनेसे
साहु जीव = दुःखी होकर मन राजाके
घेरी = पास जाकर अर्जी पेशकर नालिश करदी और तुरन्त न्याय कर देनेको कही, तब जीवरूपी साहुको पकड़कर घेर लिया, उसे फँसाना चाहा।

साहु कहै नहिं = तब साहुरूपी जीव कहने
खोरी मेरी = लगा कि, हे राजा! इसमें मेरा तो कुछ भी दोष नहीं है। क्योंकि, सुनिये!—

व्याख्या— उसी मन राजाके समक्ष जाकर अविद्याने फरियाद सुनाकर नालिश दे करके अर्जी पेश करी। साहुरूपी जीवको फाँसी देनेके वास्ते पुकारकर माँग करी। तब मन राजाने जीव साहुको पकड़कर अपने घेरामें कर लिया और उसे दोष लगाकर फँसाना चाहा, तब जीव-साहु कहता है कि, हे राजा! इसमें मेरा रञ्चकमात्र भी कसूर या दोष नहीं है। क्योंकि, उसका कारण मैं बतलाता हूँ, सुनिये!— ॥ ४१५ ॥

१०. महल शरीर ब्रह्मा सुतिहारा ❀ जाकी रची सकल संसारा ॥ ४१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

महल शरीर = यह शरीररूपी जो मेरा
ब्रह्मा सुतिहारा = महल है, उसको रजोगुणी ब्रह्मा कारीगर सुतारने बनाया है। मैं तो इसमें रहनेवाला मात्र हूँ! और—

जाकी रची = सकल संसारके रचयिता
सकल संसारा = सृष्टिकर्त्ता वही ब्रह्मा कहलाता है। उसीने सबके महलरूपी देहको रचा है॥

व्याख्या— महलरूपी शरीरको बनानेवाला सुतार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा सोई 'रजोगुण' है। जिसकी रचनासे सारा संसार बना है, वही जगत्का कर्त्ता कहलाता है। उसीने मेरे भी शरीररूपी महलको बनाया है। अतः रजोगुण वा बुद्धिरूपी ब्रह्माने सबोंके देह रचना करके बनाया है॥ ४१६ ॥

११. मिथ्या काँची भीत उठाई ❀ तासु हेतु चोर दबि जाई ॥ ४१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मिथ्या काँची = मिथ्या संसारमें नाशवान्
भीत उठाई = क्षणभंगुर कच्चा देहको रजोगुण बुद्धिरूपी ब्रह्माने क्यों बनाया? देह बनानेमें ही उसने कसर कर दिया है;

देहको बिगाड़कर छोड़ दिया है।

तासु हेतु चोर = इसीकारणसे लोभरूपी चोर
दबि जाई = जाकर देहमें छिपा रहा, तो देह-इन्द्रियादि शून्य होकर गिरनेपर साथमें वह लोभ भी मर गया। इसीसे दोषी

बुद्धिरूप ब्रह्मा हुआ; उसीको पकड़ो और उसीको जो चाहे सो दण्ड दो ॥

व्याख्या— रजोगुण प्रधान ब्रह्मा, ब्राह्मणलोग बुद्धि तेज करके कहते हैं कि, कोई सृष्टिकर्त्ता विधाता है। उसीने सम्पूर्ण चराचर जगत्को बनाया है। यह बात दृढ़ करके अबोध नरजीव अपने निर्दोष बनकर कहता है कि, मिथ्या, असत्य संसार और कच्चा-क्षणभंगुर देह ब्रह्माने क्यों बनाया? देहको नाशवान् बनाया है, इसीकारणसे साधना करते-करतेमें ही वृत्ति शून्य होगई; अथवा देह छूट गया, तो लोभ चोर भी उसीमें दबकर मर गया। इसका सारा दोष देह बनानेवाला बुद्धिरूप ब्रह्मापर है ॥ ४१७ ॥

१२. सो सुतिहार कहै परचारा ❀ दोष कर्म नाना परकारा ॥ ४१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सो सुतिहार = जब बुद्धिरूपी ब्रह्मा वा
कहै परचारा = रजोगुणीको पकड़के लाये, तो वह सुतारूप ब्रह्मा ऊँचे स्वरसे प्रचार करके सबको सुनाकर कहने लगा कि, सुनो पञ्चो!

दोष कर्म नाना = नाना प्रकारके पाप-पुण्य
परकारा = कर्म जो जैसा-जैसा लोगोंने किया है, उसी अनुसार देह बनाया गया है; तो देह कच्चा होनेमें सब दोष कर्मका ही है ॥

इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं है।

व्याख्या— तब ब्रह्मा रजोगुणीको बुलाकर हाजिर किया गया। नश्वर देह बनानेका दोष उसे लगाया। सो रजोगुणी ब्रह्मा-बुद्धिरूपी सुतार पुकारकर प्रचार करके कहने लगा कि, इसमें तो मेरा कोई दोष नहीं है। सब दोष तो कर्मपर है। नाना प्रकारके शुभाशुभ वा अच्छे-बुरे जो जैसा-जैसा कर्म करते हैं, तैसा-तैसा फल पाते हैं; और जैसी साधना करते हैं, तैसी वृत्ति हो जाती है ॥ ४१८ ॥

१३. जैसा कर्म गिलावा कीन्हा ❀ तैसा महल उठाई दीन्हा ॥ ४१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जैसा कर्म = जैसा-जैसा कर्म या कर्मी-
गिलावा कीन्हा = रूपी मजदूरोंने गिलावा = गारावत् शुभाशुभ कर्म अध्यास दृढ़ करके बनाये, संस्कार टिकाये हैं—

तैसा महल = तैसा-ही-तैसा चार खानियोंमें
उठाई दीन्हा = शरीररूपी महल रज-वीर्य संयोगसे उठा दिया है या बना दिया है, तो सब दोष कर्मका हुआ, विधिका नहीं हुआ ॥

व्याख्या— जैसा कर्म मजदूरलोग गिलावावत् जड़ाध्यास पाप-पुण्यादि बनाते हैं, तैसा-तैसा ही शरीर, आयु, भोग बनाकर उठा देते हैं। यानी जैसा कर्म संस्कार टिकाया हुआ है, वैसा-वैसा ही देह बनकर सुख-दुःखोंका फल भोग होता रहता है ॥ ४१९ ॥

१४. कर्म कहै हम नहीं अयाना ❀ काजी पण्डित पुत्रि पुराना ॥ ४२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कर्म कहै हम = तब कर्म या कर्मीलोग हाजिर
नहीं अयाना = होकर कहने लगे कि, हे राजा! हमलोग वैसे अनाड़ी-अज्ञानी नहीं हैं। बिना समझे-बूझे हमने कोई कर्म नहीं किया है।

काजी पण्डित = काजीरूपी पण्डितलोगोंके
पुत्रि पुराना = पैदा किया हुआ वेद, शास्त्र, पुराण, तथा कुरान आदि पुत्रीको देख-सुन करके उसके रूप और शब्दमें मोहित दृढ़ होकर हमने सब कर्म-धर्म किये थे, और अभी उसी प्रकार कर्म कर रहे हैं ॥

व्याख्या— फिर कर्मी लोगोंको गिरफ्तार करके दोषी ठहरानेपर वे कर्मी मजदूरलोग अपनी सफाई पेश करके कहने लगे कि, हम वैसे तो अज्ञानी-मूढ़ नहीं हैं। वेद, पुराण, शास्त्रोंमें जैसा विधि-विधान धर्म-कर्म करनेको कहा है; वैसा ही हमने किये और कर रहे हैं। काजीकी जगहमें पण्डित-लोग हैं। उनकी सुन्दरी पुत्रीकी जगहमें 'पुराण' और 'कुरान' हैं। सो ईश्वर या खुदाकी शोभा सुनकर कल्पित वाणी बार-बार पढ़-गुन करके सब मनुष्य कर्म मार्गमें लगकर जड़ासक्त हुए, वही मोहित होना है। फिर धर्मके नामसे हिंसा, व्यभिचार, चोरी, छिनारी आदि अनेक कुकर्म भी कराये।

इस कारणसे अनेक दुःख फल भोग प्राणी भोग रहे हैं। तहाँ कहा है:—

"वेदकी पुत्री सुमृति भाई ! सो जेवरी कर लेतहि आई ॥" बीजक, रमैनी ॥ ३३ ॥

इस प्रमाणसे काजीरूपी पण्डितोंकी पुत्रीरूपी शास्त्र-पुराण आदि ग्रन्थ बने हैं, उसे ही सुन-सुनकर नाना कर्म करनेमें लगकर मनुष्य लोग भूले पड़े हैं, बिना पारख ॥ ४२० ॥

१५. जाके शब्द कर्म अरुझाई ❀ कसर खोट बहु विधि रहि जाई ॥ ४२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जाके शब्द कर्म = जस वेद, पुराण, कुरान आदिके शब्दरूप वाणीको अरुझाई = सुन-सुनकर अनेक कर्म मार्ग चला है, उसी कर्ममें मनुष्य अरुझ गये वा भूलकर फँस गये हैं। इसवास्ते—

कसर खोट = जड़ाध्यासकी कसर-खोट, ब्रह्म बहु विधि = और विषयोंकी मानन्दी दृढ़ रहि जाई = होकर बहुत प्रकारसे रहि गया, इसीसे देह बिगड़ गया वा नाश हुआ। इससे शास्त्रकारोंका ही सब दोष ठहरता है॥

व्याख्या— काजीकी पुत्रीको देखकर मोहित होनेके समान यहाँपर पुराणोंको देखकर-पढ़कर जिसके शब्दको सुनकर संसारी मनुष्य कर्मकाण्ड- तीर्थ, व्रतादि नाना कर्मोंमें अरुझ गये। विवेक न होनेसे बहुत प्रकारसे कसर-खोट जड़ाध्यासका विकार हृदयमें रह गया ॥ ४२१ ॥

१६. पुत्री काजी कहै बहूरी ❀ बादशाहकी निश्चय खोरी ॥ ४२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पुत्री काजी = तब वहाँ फिर पौराणिक लोग कहै बहूरी = कहने लगे कि, हे भाई ! सुनो, हमारा दोष नहीं है। क्योंकि—

बादशाहकी = बादशाहरूप जगत्के मालिक निश्चय खोरी = परमेश्वरका समय-समयपर अवतार होता है, उसीकी शोभा देखने-दिखानेके लिये हम लोग अटारीरूपी गद्दीमें चढ़कर पुराणोंको देखते वा कथन करके कहते हैं। इसीसे निश्चयसे दोष तो उसी ईश्वरका है॥

व्याख्या— फिर काजीकी पुत्रीकी जगह पण्डितोंके चेले पुराणके पक्षपाती पौराणिकलोग फिर-फिरकर उलट करके कहने लगे कि, इसमें हमारा दोष तो नहीं है। जिसके लीला-चरित्र पुराणोंमें वर्णन हैं, उन्हीं बादशाहरूप भगवान्का ही दोष निश्चय करके मानना पड़ेगा। क्योंकि, उनके ही दर्शन झाँकनेके लिये हमलोग पुराणकी कथा कहते हैं ॥ ४२२ ॥

१७. बादशाह अवतार अनेका ❀ पूरण ब्रह्म कोई करै विवेका ॥ ४२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बादशाह = चौबीस अवतारोंसे लेकर जो अवतार = अनेक अवतार हुए, सो जगत्के अनेका = मालिक बादशाह ईश्वरके स्वरूप-में ही माने गये हैं।

पूरण ब्रह्म कोई = कोई-कोई तो ऐसा विवेक करै विवेका = करते हैं, कि, जगत्कर्त्ता मालिक परिपूर्ण सर्व व्यापक परब्रह्म ही एक सत्य है। वही निराकार-साकार स्वरूप सबका बादशाह है॥

व्याख्या— मच्छ-कच्छादिसे लेकर चौबीस अवतार वा और भी अनेकों अवतार परमेश्वरके हुए हैं; वे दुनियाँभरके बादशाह हैं। और कोई-कोई तो पूर्ण परब्रह्मको ही बादशाह, त्रैलोकाधिपति निराकार माननेका विवेक करते हैं; वे साकार-निराकारमें कुछ भी भेद नहीं मानते हैं ॥ ४२३ ॥

१८. तासु चरित्र भये वेद पुराना ❀ दोहा छन्द किताब कुराना ॥ ४२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

तासु चरित्र = उसी निर्गुण ब्रह्मकी महिमा भये वेद = और चौबीस अवतारोंकी पुराना = लीला, जीवन चरित्र आदिका वर्णन जो किया है, सो चार वेद और अठारह पुराणादि ग्रन्थके रूपमें प्रगट हुए हैं। संस्कृत गद्य-पद्यादिमें वेद, शास्त्र, पुराणादि-

दोहा छन्द = } ग्रन्थ लिखा हुआ है।
किताब कुराना = } उसीका उल्था कवियोंने दोहा, चौपाई, छन्द आदिमें रचे हैं। और मुसलमानोंने चार किताबरूप कुरान खुदाकी बड़ाई तथा पीर-पैगम्बरोंकी महिमा करके लिखे हैं; उसीको पढ़-सुनकर भ्रमिक हो रहे हैं॥

व्याख्या— उन्हीं माने हुए ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता चौबीस अवतारादियोंके चरित्र, लीला, महिमा वर्णन करके वेद तथा पुराणोंकी रचना हुई है। कोईने वही बात प्रचलित भाषामें दोहा, साखी, चौपाई, छन्द, कवित्तादिमें रचकर वा कहकर लिखे हैं। और कोईने अर्बी, उर्दूमें चार कितेबरूप कुरान आदि ग्रन्थ लिख रक्खे हैं; इसप्रकार नाना वाणी ग्रन्थोंका विस्तार हुआ है॥ ४२४॥

१९. बादशाहको पकरि न पावै ❀ बेचून बेअन्त कहिके पछतावै॥ ४२५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बादशाहको = } माना हुआ मालिक, बादशाह
पकरि न पावै = } ईश्वर, खुदा तथा अवतारोंको तो कोई पकड़ ही नहीं पाते हैं। क्योंकि, वह मिलता ही नहीं तो कैसे पकड़ेंगे? अतः—

बेचून बेअन्त = } निराकार, निर्गुण या बेचून
कहिके पछतावै = } बेनमून, बेअन्त, अथाह, अपार ब्रह्म है, ऐसा कह-कहकर हाथ मलकर पछताते हैं, सोच-फिक्र करते हैं॥

व्याख्या— माना हुआ बादशाह, ईश्वर, खुदा, अवतारादिको तो कोई पता लगाकर पकड़ तो नहीं पाते हैं। इसीसे हारकर बेचून, बेनमून, बेअन्त कह-कहकर पश्चात्ताप करते हैं। फिर भी उसी धोखेके पीछे ही लगे पड़े रहते हैं॥ ४२५॥

२०. मन बुद्धि तहाँ कछु पहुँचत नाहीं ❀ धोखा धार मन गोता खाई॥ ४२६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मन बुद्धि तहाँ = } उस निराकार ब्रह्ममें
कछु पहुँचत नाहीं = } मन, बुद्धि, वाणी तथा लक्ष्य कुछ भी पहुँच नहीं सकता है; वह सबसे परे अपार है, इसप्रकार मान करके और—

धोखा धार मन = } ऐसा कहकर मिथ्या धोखा
गोता खाई = } वाणीकी धारामें मनको लगाकर भ्रम चक्रमें पड़े तो आवागमन गर्भवासमें गोता खाये और गोता खा रहे हैं॥

व्याख्या— मन, बुद्धि, वाणीसे परे ब्रह्म-परमात्मामें किसीकी कुछ भी पहुँच हो नहीं सकती है, ऐसा मानकर धोखाकी धारामें मनको लगाकर गोता खा रहे हैं॥ ४२६॥

२१. मन्त्री बुद्धि तहाँ निर्णय कीन्हा ❀ बदला शाह दरवेशहिं लीन्हा॥ ४२७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मन्त्री बुद्धि तहाँ = } मन राजाके प्रधान मन्त्री
निर्णय कीन्हा = } भोंदू 'बुद्धि' था। तब वहाँपर उसी बुद्धिने मन राजाको समझाते हुए यह निर्णय किया कि, हे महाराज!—
बदला शाह = वह बादशाह परमेश्वर—

दरवेशहिं लीन्हा = निराकार होनेसे न मिल सका, तो उसके बदलेमें आप ब्रह्मज्ञानी साधुको ही पकड़ लीजिये! ब्रह्म और ब्रह्मज्ञानीको एक मान लीजिये! "ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति" ऐसा कहा भी है॥

व्याख्या— मन राजाको कुछ भी फैसला न कर व्याकुल उदास होते हुए देखकर उसके मुख्य मन्त्री बुद्धिने तहाँ अपनी तरफसे यह निर्णय किया कि, बादशाह = परमात्माके बदलेमें जो कोई मोटे महात्मा, योगी, ज्ञानी, भक्त मिलें, उन्हींको ही पकड़कर संसारमें फँसाय दीजिये! तो न्याय पूरा हो जायगा, ऐसा कहा॥ ४२७॥

२२. विवेक वैराग्य दोउ दरवेशा ❀ सन्त सुखी नहिं दुःखकर लेशा॥ ४२८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

विवेक वैराग्य = सत्यासत्यका विवेक हो,
दोउ दरवेशा = और दृढ़ वैराग्य धारण हो,
यही दोनों सच्चे साधुके गुण-लक्षण होते हैं।
सन्त सुखी नहिं = जो कोई साधु-सन्तजन—
दुःख कर लेशा = विवेक, वैराग्यादि सद्गुण रहनीको धारण करके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें रहते हैं, वे निर्बन्ध सुखी होते हैं। खानी-वाणी दुःखोंका लेशमात्र भी अध्यास उनमें नहीं रहता है ॥

व्याख्या— उस शहररूपी मनुष्य देहके नगरमें 'विवेक और वैराग्य' दो सच्चे साधु रहते थे, और जो कोई भी मनुष्य विवेक-वैराग्य सत्सङ्गादि सद्गुण धारण किये, वे चञ्चल वृत्तिको शान्त करके सन्त हुए, फिर उनमें जिन्होंने पारखबोधको प्राप्त किये, वे जीवन्मुक्त सुखी हुए वा सुखी होते हैं। उनमें फिर दुःखदायी अध्यासका लेशमात्र भी नहीं रहता है ॥ ४२८ ॥

२३. फाँसी देनको पकरे जबहीं ❀ रार परस्पर लाये तबहीं ॥ ४२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

फाँसी देनको = संसारके भव-बन्धनोंमें
पकरे जबहीं = फँसानेके वास्ते मनकी सेनाने
जब उन दोनों विवेक-वैराग्यको घेरके पकड़े- रार परस्पर = तब परस्पर उन दोनोंने आगे
लाये तबहीं = होनेके लिये तकरार बढ़ाये;
विचित्र चाल या अद्भुत् ढङ्ग करने लगे ॥

व्याख्या— भव-बन्धनोंमें फँसानेके लिये विवेकी-वैराग्यवानोंको जब मन-मायाके सैन्यने पकड़कर लाया, तब वे दोनों परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे। वे दोनों आगे-आगे ही होना चाहते थे॥४२९॥

२४. बिना वैराग्य विवेक न होई ❀ बिना विवेक वैराग्य न कोई ॥ ॥ ४३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बिना वैराग्य = जगत् पञ्च विषयभोगोंकी
विवेक न = तरफसे उपराम दृढ़ वैराग्य
होई = उत्पन्न हुए बिना किसीको भी
सत्यासत्य जड़-चैतन्य स्वरूपका विवेक हो नहीं सकता है या होनेका नहीं। और फिर- बिना विवेक = सत्यज्ञान स्वरूपका विवेक
वैराग्य = धारण किये बिना न कोई
न कोई = वैराग्यमें ही ठहर सकता है,
और न किसीको वैराग्यका फल ही मिल सकता है। यानी विवेक बिना वैराग्य नहीं ठहरता है ॥

व्याख्या— सो विषय भोगोंकी तरफसे दृढ़ वैराग्यसे ग्लानि उत्पन्न हुए बिना जड़-चैतन्य बन्धन-मुक्तिका विवेक नहीं होता है। और तैसे ही सच्चा विवेकसे स्वरूपज्ञान हुए बिना कोई किसीका वैराग्य ठहर नहीं सकता है। यानी विवेकके बिना हठ करके किया हुआ वैराग्य कोई कामका नहीं होता है ॥४३०॥

२५. दोउ विधि देखि राव अकुलाना ❀ पूछा तहाँ मन्त्री अनुमाना ॥ ४३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दोउ विधि देखि = ऐसे दोनों प्रकारसे विवेकी,
राव अकुलाना = वैराग्यवान् सन्तोंका शक्ति
आकर्षण देख करके मन राजा बहुत व्याकुल,
आश्चर्यित तथा अधीर हुआ। पूछा तहाँ = तब उसने वहाँपर साधुओं-
मन्त्री अनुमाना = से भेद पूछा, तो वे कुछ
नहीं बोले, फिर तहाँ बैठा हुआ मन्त्रीने ही-
अपने अनुमान अन्दाजसे निम्न बात कही ॥

व्याख्या— इसप्रकार विवेक तथा वैराग्य दोनोंकी विशेषता, प्रताप, सत्सङ्ग देख करके भोंदू मन राजा बहुत अकुलाकर व्याकुल हुआ और पूछने लगा कि, इसका भेद बताओ ? परन्तु, वे विवेक-वैराग्य अपना कार्य छोड़कर कुछ भी नहीं बोले। तब तहाँपर उपस्थित बुद्धिरूप मन्त्रीने अपना अनुमान लगाया ॥ ४३१ ॥

२६. उत्तम लगन मनुज अवतारा ❀ फाँसी मान बनौरी सारा ॥ ४३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

उत्तम लगन = } उत्तम शुभ लग्न-मुहूर्तके
मनुज अवतारा = } समान बड़े भाग्यसे जीवने मनुष्य जन्ममें देह धारणकर अवतार लिया है।

फाँसी मान = } परन्तु, अनेक प्रकारकी
बनौरी सारा = } मानन्दी, कल्पना, वाणी विषयोंको सार मानकर बिना विचार फाँसी-फन्दोंमें पड़े हुए हैं॥

व्याख्या— बुद्धिरूप मन्त्रीने कहा, सर्वोत्तम लग्न-मुहूर्त अभी मनुष्य जन्ममें अवतार लेना है। इसमें खानी-वाणीकी मानन्दी-कल्पना सब फाँसी बनी हैं॥ ४३२॥

२७. चारि चरणका किया विचारा ❀ किया भिन्न भिन्न निरुवारा॥ ४३३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चारि चरणका = } चार मार्गके आचरणसे
किया विचारा = } चार पदरूपी चार मुक्ति प्राप्ति होगी, ऐसा विचारका निश्चय गुरुवा-लोगोंने किये और कर रहे हैं। और—

किया भिन्न = } वेद-वेदान्त, पुराणादि
भिन्न निरुवारा = } ग्रन्थोंमें उसी चार मुक्ति आदिका निर्णय विस्तारसे वर्णन न्यारे-न्यारे तरहसे किया है॥

व्याख्या— सो बुद्धि मन्त्रीने कहा कि, हे मन राजा! अभी मनुष्य जन्ममें चार प्रकारकी मुक्ति प्राप्ति होनेके शुभ आचरणरूप चार मार्ग बने हैं। इसका विचार भी पण्डितोंने भली भाँतिसे किया है। कर्म, उपासना, योग और ज्ञान-इसका भिन्न-भिन्न निर्णय भी शास्त्रोंमें वर्णन किया है। सो उसीमें नर-जीव बिना विवेक बद्ध हो गये और फँसकर वैसे ही बद्ध हो रहे हैं॥ ४३३॥

२८. स्वतः प्रकाश प्रथम अनुमानी ❀ फाँसी परे भये ब्रह्मज्ञानी॥ ४३४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

स्वतः प्रकाश = } पहिला चरणमें स्वयं
प्रथम अनुमानी = } प्रकाश, परिपूर्ण व्यापक एक ब्रह्मका अनुमान किये हैं; उसको सर्वाधिष्ठान अद्वैत निरञ्जन-निराकार मानके

फाँसी परे = } सब बन्धनोंसे परे सदा मुक्त
भये ब्रह्मज्ञानी = } स्वरूप 'अहंब्रह्म' मानते भये। परन्तु, सो ब्रह्मज्ञानीलोग वाणी-कल्पना-भासके फन्दा या फाँसीमें जाकर पड़े हैं॥

व्याख्या— पहला ज्ञानमार्गसे चलनेवाले लोगोंने स्वयं प्रकाश परब्रह्म-परमात्मा जगदाधार व्यापक है, ऐसा अनुमान करके वे ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्म स्वरूप बनते भये। परन्तु, उस प्रकारसे तो महा फन्दा धोखेमें ही फँसकर चौरासी योनियोंमें जा पड़े। अब उसी अद्वैत ब्रह्मज्ञानमें फँस-फँसकर कई लोग मर रहे हैं, बिना विचार॥ ४३४॥

२९. दूजे दुतिया दास कहावै ❀ भक्ति वजीरी युग युग पावै॥ ४३५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दूजे दुतिया = } दूसरा चरणमें भक्तलोग अपने-
दास कहावै = } से भिन्न जगत्कर्त्ता मालिक परमेश्वरको स्वामी मानकर अपने दास बनते या सेवक कहलाते हैं; और दासत्व भावसे उसीकी भक्ति करते हैं।

भक्ति वजीरी = } भक्तिके प्रधान अधिकार
युग युग पावै = } वजीरी वा मन्त्री-पदवी भक्तिके प्रतापसे उपासकोंको युगान-युग तक प्राप्त होता रहेगा, ऐसी आशा लगाकर कल्पनाकी फाँसीपर लटक मरे हैं॥

व्याख्या— दूसरे द्वैतवादीलोग एक सबसे भिन्न ईश्वरकी कल्पना करके उसको स्वामी मान-कर आप दास कहलाते हैं। सो भक्तिके प्रतापसे युगान-युगतक वजीरी वा प्रधान मन्त्रीकी पदवी पाकर ईश्वरके नजदीकमें रहनेका सौभाग्य वह प्राप्त करेगा; ऐसा माने हैं॥ ४३५॥

३०. तीजे लगन योगके होई ❀ साधे सिद्ध कहावै सोई॥ ४३६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

तीजे लगन = तीसरा चरणमें अभ्यासमें लगन
योगके होई = लगानेवाले योगी लोग हुए हैं। वे अष्टाङ्ग योग मार्गमें प्रेम लगाकर साधन कर रहे हैं, योगके प्रतापसे इष्टके तद्रूप ही होना चाहते हैं।

साधे सिद्ध = इसकारण अनेक तरहसे योग-
कहावै सोई = क्रिया साधना करके ऋद्धि-सिद्धिके लालची लोग सिद्ध कहलाते हैं। सो वे जड़ाध्यासकी फाँसीमें लटककर मर जाते हैं॥

व्याख्या— तीसरे नम्बरमें कई लोग योग मार्गमें लगन लगाकर फँसे हैं। अष्टाङ्ग योगको साधकर योगीलोग सिद्ध कहलाते हैं। सो उसीके अभिमानमें लटककर वा मटककर मर रहे हैं॥४३६॥

३१. चौथे तीरथ वर्त अचारा ❀ लोक बासका किया विचारा॥ ४३७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चौथे तीरथ = चौथा चरणमें संसारीलोग
वर्त अचारा = अठसठ तीर्थ स्नान, परिक्रमा, एकादशी, पूनम, अमावसादिके व्रत और आचार-विचार, होम, हवन, पूजा, पाठ, जाप इत्यादि कर्म मार्गमें लगे हुए हैं या लग रहे हैं। और—

लोक बासका = ब्रह्मलोक, विष्णुलोक,
किया विचारा = शिवलोक तथा वैकुण्ठादि सातलोक ऊपर मानकर उसी लोकोंमें जाके निवास करनेकी विचार-चाहना किये हैं। सो अनुमानकी फाँसीपर लटक-लटककर मरे या मर रहे हैं॥

व्याख्या— चौथे संसारी विषयीलोग नाना तीर्थ-व्रत, नेम-आचार आदि पालनकर ईश्वरकी कृपा और पुण्यके प्रतापसे स्वर्गादि सात लोकोंमें जाकर सुख भोगनेकी वासना रखकर भ्रम-धोखेका ही बार-बार विचार कर रहे हैं॥ ४३७॥

३२. चार मुक्ति सोई अनुमानी ❀ सायुज्य सामीप्य सारूप्य बखानी॥ ४३८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चार मुक्ति =
सोई अनुमानी = सो उपरोक्त चार प्रकारके वाणी जाल फन्दा या फाँसी-को ही भ्रमिक गुरुवालोगोंने चार प्रकारकी मुक्ति अनुमानसे ठहराये हैं। तहाँ—

सायुज्य = ज्ञान मार्गसे जलतरङ्गवत् ब्रह्ममें ही जाकर मिल जाना, सो "सायुज्य मुक्ति" कहा है।

सारूप्य = योग मार्गसे तदाकार होना, अर्थात् विष्णु, शिवादिके समान रूपवाला हो जाना, सो "सारूप्य मुक्ति" कहा है।

सामीप्य = उपासना मार्गसे हजूरी दासवत् पार्षद बन जाना, सो "सामीप्य मुक्ति" कहा है।

बखानी = ऐसी कल्पना करके गुरुवालोगोंने मुक्तिका वर्णन किये हैं॥

व्याख्या— ऐसे चार प्रकारकी मुक्ति जो माना है, सो गुरुवालोगोंकी कल्पनाकी जाल-फाँसी है। उसीको ही चार तरहसे मुक्ति होनेका अनुमान किये हैं। तहाँ ज्ञानमार्गसे "सायुज्य मुक्ति" मान लिये हैं। योग मार्गसे "सारूप्य मुक्ति" कथन किये हैं। उपासना मार्गसे "सामीप्य मुक्ति" का वर्णन किये हैं॥ ३३८॥

३३. चौथे सो सालोक्य बताई ❀ जेहि पाछे सब जग भरमाई॥ ४३९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चौथे सो = चौथे नम्बरमें कर्म मार्गसे होने-
सालोक्य = वाली मुक्ति "सालोक्य" कहिये
बताई = स्वर्गादि लोकोंमें जाके सुख भोगते रहना, ऐसा पण्डितोंने बतलाये हैं।

जेहि पाछे सब = जिस अनुमान, कल्पना,
जग भरमाई = धोखारूप चार मुक्तिके पीछे बेपारखी जगत्के सब मनुष्य भ्रमिक हो-होके भूल गये। सो गुरुवालोग अब भी सबको भ्रमाकर उसीमें फँसा रहे हैं॥

व्याख्या— चौथे कर्म मार्गके धर्माचरणसे प्राप्त होनेवाली "सालोक्य मुक्ति" है; ऐसा गुरुवालोगोंने रोचक वाणीसे बतलाये हैं। जिस चार मुक्तिकी महिमा सुनकर उक्त मुक्ति प्राप्ति करनेकी अभिलाषा-

से गुरुवालोगोंके पीछे पड़कर जगत्के अबोध मनुष्य पारख बिना भ्रमिक होकर बौरा गये; और गुरुवालोग भी उन सबोंको भ्रमा रहे हैं ॥ ४३९ ॥

३४. सो हरिभोंग नगर संसारा * जाकी शोभा अगम अपारा ॥ ४४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
सो हरिभोंग = } सो हरिभोंग नामके नगर
नगर संसारा = } अन्यायी राजाकी राजधानी यह संसार ही है। गुरुवालोग और स्त्रियाँ पुरुषोंको भुला-भुला करके भोग-विलास कर रहे हैं। कालने अपने जालमें अबोध मनुष्यों-को अरुझा रक्खा है। और—

जाकी शोभा = } जिसका रूप नहीं, गुण नहीं,
अगम अपारा = } मन, बुद्धि, वाणी, लक्ष्यका भी तहाँ गम नहीं है, और चराचरमें समान व्यापक देश, काल, वस्तुसे परे जिसका अन्त नहीं है, सो विभु ब्रह्मकी अद्भुत् शोभा बता रहे हैं। परन्तु, सो वाणी कल्पनाकी ही मिथ्या शोभा है ॥

व्याख्या— सो हरिभोंग नामका विचित्र नगर तो यह संसार ही है। क्योंकि, 'हरि' कहिये मायारूपी गुरुवालोग और स्त्री, ये लोग पुरुषोंको भुलाय-भुलायकर ढोंग दिखाकर नाना तरहसे भोग भोग रहे हैं। संशयमें पड़े हुए लोग भोग्य बने हैं; और आखिरमें जिस परमेश्वर-ब्रह्मको मुक्तिदाता, स्वामी ठहराकर उसकी शोभाको अनेक भाँतिसे वर्णन किये हैं, सो तो बाँझ पुत्रकी नाईं मिथ्या धोखा मात्र है। क्योंकि, जिसे 'अगम' कहिये मन, बुद्धि, वाचा, लक्ष्य, ज्ञानका भी जहाँपर गम नहीं है, पहुँच नहीं है, और 'अपार' कहिये जिसका कुछ भी ओर-छोरका पार पाया जा नहीं सकता है, तो वह आकाशके समान चराचरमें व्यापक, बेअन्त, अथाह, निर्गुण, निराकार ऐसा कुलक्षणवाला जो ब्रह्म माने हैं, सो तो भ्रममात्र है; कोई सत्य वस्तु नहीं है। परन्तु, बुद्धिहीन भोंदूलोग उसीको सत्य मानकर उसकी विचित्र शोभा वर्णनकर अपने तथा दूसरेके नर जन्मको नष्ट-भ्रष्ट किये और हानि कर रहे हैं; बिना सत्सङ्ग गाफिलीमें पड़े हैं ॥ ४४० ॥

साखीः— यह निरणय हरिभोंग पुर * भोंदू सकल समाज ॥
[३८] मानुष बुद्धि बिन पशु सबै * भये सो राज बिराज ॥ ४४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
यह निरणय = } यह संसाररूपी हरिभोंग
हरिभोंग पुर = } शहरमें नरजीव जिस प्रकार-से पड़कर भ्रमिक, पतित, नष्ट-भ्रष्ट होकर अन्याय, अनीतिमें पड़े थे और पड़े हैं, सो इस कथाके सिद्धान्तमें निर्णय करके बता दिया गया है। जिससे जिज्ञासु मनुष्योंको सत्यासत्य मालूम होगा। और—

भोंदू सकल = } संसारमें प्रचलित मतवादी-
समाज = } वेद और कुरानवादी तथा योगी, ज्ञानी, भक्त एवं विषयी आदि समस्त समाज अविवेकी पारखहीन भ्रमिक हो रहे हैं; ऐसे सब समाज ही भूलमें पड़े हुए हैं।

मानुष बुद्धि = मनुष्योंमें गुरु निर्णयकी बुद्धि-

बिन पशु सबै = स्वरूपका ज्ञान, सारासारका विवेक, बन्धन-मुक्तिकी पहिचान, सद्गुण रहनी धारणा, सद्बुद्धि उदय हुए बिना षट् पशुधर्मोंमें आसक्त अन्यायी, अविचारी, हठी, पक्षपाती बने हुए सबलोग तो नरपशु ही बने हैं। तिनकी बुद्धि तो पशुकी जैसी है, और खोलरो-देहमात्र मनुष्योंका लिये हैं, इससे कोई मनुष्य हो नहीं सकते हैं।

भये सो = } इसकारण नर जन्म यह स्वराज्य
राज = } स्वरूपकी स्थिति होनेकी जगहपर
बिराज = } होनेपर भी मन-मानन्दीकी भूलमें पड़कर नरजीव जानीवपद ज्ञानको ढँककर विषयी पशु और परमहंस जड़दशावाले पशुवत् परवश हो रहे हैं ॥

व्याख्या— इस साखीमें ग्रन्थकर्त्ता दृष्टान्त-सिद्धान्तका सारांश बतलाते हैं। हरिभोंगपुर जो है, सो यही संसार है, इसीमें मन और ब्रह्मज्ञानी चौपट राजा अन्यायी बने हैं। विवेक-विचारका सत्य निर्णय तो जिनके पासमें नहीं है; उन दोनोंके सारे समाज भी भोंदू पारखहीन अनाड़ी हैं। सो कर्मी,

उपासक, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी और विषयीलोगोंका समाज तथा ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रणामीसमाज, बौद्ध, जैन, चार्वाक् आदिसे लेकर षट्दर्शनोंके सब समाज पारखदृष्टिहीन भोंदू बने हैं। सो वहाँ सत्यन्याय कहाँसे होवे ? यही इनके कहनेका सार निर्णय है। सारासार विचारिणी बुद्धि पारख होवे, वही तो सच्चा मनुष्य हैं। उस गुरुबुद्धि पारख बोधको पाये बिना और सब पशु गुण-लक्षणधारी नरपशु ही हो रहे हैं। आगे पशु खानीमें जानेके ही वे अधिकारी हो रहे हैं। इसकारण जनैया जीव मनुष्य निज स्थिति मुक्ति प्राप्त होनेकी जगहमें होनेपर भी इस राज्यको गमाकर कर्त्तव्य बिगाड़कर राज्य-भ्रष्ट ज्ञानहीन हुए हैं। यानी कोई विषय भोगोंमें पशुवत् लुब्ध हो रहे हैं, और कोई परमहंस बनके बाल, पिशाच, जड़दशाको धारणकर पशुवत् आचरण करके कर्म भ्रष्ट बने हैं। इसकारण जड़ाध्यासकी पराधीनतामें पड़े हुए जीव चौरासी योनियोंके दुःख भोगी हो रहे हैं॥४४१॥

सम्बन्ध— यहाँपर पहला इतिहासका सिद्धान्त-दर्शन सहित समाप्त हो गया है। अब दूसरा इतिहास वर्णनके साथ-ही-साथ सिद्धान्त भी वर्णन करते जायेंगे। तहाँपर छब्बीसवें खण्डमें ६७ चौपाई, और १ साखी कही गयी है; सो जान लीजिये ! ॥

॥❀॥ द्वितीय इतिहास—हरिभोंगपुरका वर्णन ॥❀॥ चौपाई ॥ छब्बीस खण्ड ॥ २६ ॥❀॥

१. हरिभोंग पुर पट्टन संसारा * बहु विपरीत जेहि वार न पारा ॥ ४४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

हरिभोंग पुर = पट्टन संसारा = गुरुवा और स्त्रियोंने नरजीवोंको फुसलायके सुखकी लालच देकर विवेकरूपी नेत्रोंमें पट्टी बाँधके अनेक संशयमें डाल दिये। ऐसा यह बड़ा भारी भुलौवाका शहर। यही संसार है। इसे हरिभोंगपुर कहते हैं।

बहु विपरीत = तहाँपर बहुत ही उलटी चाल-

जेहि वार = न पारा = अन्यायका राज्य है, सो चैतन्य जीवको निज स्वरूपमें स्थिति तो नहीं होती है, और जड़ाध्यास तथा ब्रह्म व्यापक धोखेमें मानन्दी, प्रेम लगा रहे हैं। जिसका कि, वार-पार पता कहीं कुछ लगता ही नहीं, सो ऐसे भ्रम चक्रमें पड़े हैं, तहाँ समान व्यापक ब्रह्म ही सत्य मान रहे हैं॥

व्याख्या— यह दूसरा इतिहासमें विशेषरूपसे सिद्धान्तका ही वर्णन हुआ है। दृष्टान्तमें— एक बड़ा शहर 'हरिभोंगपुर' नामका था। जहाँपर सब काम उलटा-ही-उलटा होता था। विपरीत कार्यका वहाँपर वार-पार कुछ नहीं लगता था। बड़ा दुर्गन्धमय गन्दा देश था। उसकी चारों तरफ विकार मल-मूत्र, कचराकी खान भरी थी। इससे बहुत दुर्गन्धमय वायु चलती थी। वहाँका पानी भी बड़ा खराब था। सो गजबजाते सड़े हुए कीड़े बिलबिलाते हुए ऐसे पानी थे; और पूर्णरूपसे सो गाँव बिगड़ा हुआ नष्ट होता जा रहा था। उस राजधानीके महाराजका नाम 'भुकड़ भोंदू' था। उसको किसीके दुःखसे कोई वास्ता नहीं था। तथा प्रजाजनोंके दुःख-सुखको वह कुछ पहिचान ही नहीं करता था। एकसे लेके अनन्तोंतक सो वहीं जहँड़ा रहे थे, गाफिल मस्त हो रहे थे। अब इसका सिद्धान्त सुनिये ! 'हरि' कहिये माया-गुरुवा और स्त्रियोंके भोगनेकी जगह खानी-वाणीके विस्तारूप बड़ा-शहर यही संसार है। यहाँ सबको सन्देह या संशय मनमें लगा ही रहता है; और यहाँ बहुत विपरीतकी चाल चल रही है। सत्यको असत्य और असत्यको सत्य मान रहे हैं। जिसका कुछ वारपार नहीं लगता है। यानी जड़ और चैतन्यमें कहीं पता ही नहीं लगता है; उसको समान व्यापक पूर्ण ब्रह्म ठहराये हैं। और निज चैतन्य स्व-स्वरूपमें तो स्थिति नहीं करते हैं, किन्तु, जड़ाध्याससे व्यापक ब्रह्म मानन्दी और भग-भोग आदिसे प्रीति करते हैं। परन्तु, साधु पारखीसे कभी प्रेम नहीं रखते हैं, ऐसी उलटी चालसे चलते हैं ॥ ४४२ ॥

२. गन्धा देश विकारकी खानी * गन्धी पवन सो गजबज पानी ॥ ४४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इसका दृष्टान्त तो ऊपर कहा ही जा चुका

है; अब उसको सिद्धान्तमें घटाकर कहते हैं, सो सुनिये !—

गन्धादेश= विकारकी= खानी= } गन्धवत् सर्वत्र पूर्ण, सर्वदेशी माना हुआ ब्रह्म सिद्धान्त, वह तो गन्धा=जगत् वासनासे भरा हुआ देश है। तहाँ अन्तःकरणमें ब्रह्मानन्दी टिकनेसे चारों खानियोंमें नाना शरीर उत्पत्ति होनेका बीज बना रहा। सोई ब्रह्म चौरासी योनियोंके विकारोंकी खानी बना है।

गन्धी पवन= सो गजवज= पानी= } और जड़ कर्मोंकी अनेक इच्छाएँ, विषय भोगोंकी नाना वासनाएँ, कर्मोंके अध्यास, यही अति दुर्गन्ध आनेवाली वायुके समान हैं। तथा नाना मत-मतान्तरोंकी अटपट विरोधी कल्पित वाणी वह तो सड़ी हुई मोरीकी कीचड़का बदबूके पानी समान हो रहा है॥

व्याख्या— ब्रह्म सिद्धान्त यही गन्धा देश है। क्योंकि, गन्धवत् सर्वदेशी, निराकार परमात्माको माने हैं; सोई सब विकारकी खानी है। वही अध्यास बीजसे चारखानियोंमें अनेक देहें उत्पन्न होते हैं। तथा जड़ कर्मोंकी वासना और विषय वासना, यही गन्धी पवन चल रही है। सो संसारमें नाना मत-मतान्तरोंमेंकी प्रचलित वेद तथा कुरान आदिकी अटपट विरोधी वाणी ही गजबजानेवाला पानी है॥ ४४३॥

३. नष्टरूप पूरण सो गाऊँ ❀ महाराज भोंदू तेहि नाऊँ ॥ ४४४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

नष्टरूप= पूरण सो= गाऊँ= } जिसका स्वरूप ही कुछ नहीं है और जो नष्ट-भ्रष्ट, छिन्न-भिन्न है, सो जीवोंके स्वरूपपर आवरण पर्दा डालनेवाला भ्रम, परिपूर्ण व्यापक जो ब्रह्म सिद्धान्तको गाये हैं, सो राजधानी सबको पूरी तरहसे सत्यानाश करनेवाली धोखा है। और—

महाराज= भोंदू= तेहि नाऊँ= } उस गन्दा देशके राज्यमें रहनेवाले बड़े महाराजा जगत्गुरु बने हुएका नाम भुक्कड़ भोंदू है। अर्थात् निज स्वरूपसे भूले हुए औरोंको भी धोखा दे-देकर भुलाने-भ्रमानेवाले अन्यायी पक्षपाती पारखहीन ब्रह्मज्ञानीलोग ही भोंदू बड़े गुरु बने हैं॥

व्याख्या— उसका रूप ही कुछ नहीं, तो सहज ही नष्ट है। यही भ्रमरूप ब्रह्म सिद्धान्तकी महिमा गुरुवालोगोंने खूब गाये हैं, कल्पनाको ही बढ़ाये हैं। सो उसको परिपूर्ण सर्व व्यापक बताये हैं। यही तो आवरण पर्दा जीवपर डाले हैं। इस तरह नरजीवोंको नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। भोंदू ब्रह्मज्ञानीलोग बड़े गुरु महाराज बने बैठे हैं; परन्तु, वे बड़े भुलक्कड़ हैं, उनके नाम सब कोई आदरसे ले रहे हैं॥ ४४४॥

४. तेहि दुःख दुःखित न परै पहिचाना ❀ एक अनन्त सोई जहँड़ाना ॥ ४४५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

तेहि दुःख= दुःखित न= परै पहिचाना= } सच्चिदानन्द ब्रह्म बने हुएको दूसरेका दुःख और जन्म-मरण होनेका कारण तो कुछ पहिचान नहीं पाते हैं, और उसी ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते नरजीव अनेक साधनोंके कष्ट सहनेमें दुःखी हुए; तथा यही तो हमें जन्मृति दुःखमें ले जानेका बीज कारण है, यह भेद भी विना पारख वे जानते-पहिचानते नहीं हैं। अतएव—

एक अनन्त= सोई जहँड़ाना= } एक ब्रह्म और अनन्त जगत्को एकरूपमें मानकर सो एक जीव अनेकों भ्रम, मानन्दी, कल्पनाओंमें पड़ करके जड़ाध्यासी गाफिल होके बँधा है॥

व्याख्या— यही ब्रह्म तथा जगत्के अध्यास ही आवागमन दुःखका कारण है, यह पहिचान तो उनको नहीं पड़ी। इसीसे ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते अनेक तरहकी साधनाओंके दुःखोंमें जीव दुःखित हो रहे हैं। यह मेरी भूल है, मैं चैतन्य जीव ही सत्य हूँ ! यह पहिचाने विना धोखेमें पड़े हैं; अतः उनको कुछ पारख नहीं हुआ। अतएव एक ब्रह्म और अनन्त जगत् विषयोंको मान-मानकर सो उसीमें बद्ध जड़ाध्यासी हो गये और वैसे ही हो रहे हैं॥ ४४५॥

५. जथा जमा जब गौ छितराई * सोई हरिभोंग नगर बसाई ॥ ४४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जथा जमा = यथार्थमें सत्य जमा चैतन्य-
जब गौ = जीव पद है। सो निज स्वरूप-
छितराई = को भूलकर जब नरजीव इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदिके साथ सङ्ग-कुसङ्गमें लगकर अनेक मन-मानन्दीके सिद्धान्तमें भ्रमिक होकर छितरा गया और कल्पना बढ़के फैल गई, तब—
सोई हरिभोंग = सोई चैतन्य जीवोंने
नगर बसाई = चारखानीमें वासनासे देह बनाकर वहाँ रहे। सो संसारमें ब्रह्मज्ञानियों-ने ब्रह्म सिद्धान्तका अद्वैत नगर बसाये या कल्पनाके नगर कायम किये हैं ॥

व्याख्या— जैसे जमा-पूँजीको छितरा देनेसे फैलते-फैलते खर्च हो जाता है। तैसे ही सत्य स्वरूप चैतन्य जीव जमा है; जब जीवने नाना मन-मानन्दी विषयोंमें लगकर लक्ष्यको फैलाया, तब जड़ाध्यासी होकर चारखानीमें जाकर छितराया। सोई यह हरिभोंग नामका नगर संसार, देह, गेह, वासनासे बसाया है। अथवा जब नर जीव नाना मत-पन्थ कल्पनामें छितराया, भ्रमिक हुआ, तब एक अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तको बड़ा मानकर ठहराया। मनमें ब्रह्मज्ञानका निश्चय किया, सो उसीमें भूल गया ॥ ४४६ ॥

६. सब चाहैं सुख पावैं न मर्मा * बाढ़ै दुःख करै जो कर्मा ॥ ४४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सब चाहैं सुख = जन्म-मरणोंसे छूट कर मुक्ति
पावैं न मर्मा = होनेके सुख, तो सभी कोई मनुष्य चाहते हैं; इच्छा करते हैं; परन्तु, मन-मानन्दी अध्यास छूटे बिना तो मुक्ति नहीं होती है, इसका भेद तो कोई जान नहीं पाते हैं।
बाढ़ै दुःख = और जिससे आवागमनादि
करै जो = दुःख बढ़ता जावे, ऐसा ही कर्म-
कर्मा = कुकर्म करते हैं; जो कुछ कर्म करते हैं, सो सब दुःख बढ़नेका ही करते हैं। फिर सुख तो भी कहाँसे मिलेगा ? ॥

व्याख्या— विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिका सुख और मुक्तिका सुख पाना तो सब कोई चाहते हैं। परन्तु, वही सुखाध्यास ही जन्मृति दुःखोंका बीज है, यह मर्म तो कोई जान ही नहीं पाते हैं। इसलिये जो कुछ कर्म करते हैं, उससे चौरासी योनियोंकी यातनाका दुःख वासना ही बढ़ती जाती है ॥ ४४७ ॥

७. बहु विस्तार छोरि न जाई * विवश दुःखी समष्टि ठहराई ॥ ४४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बहु विस्तार = खानी-वाणी जञ्जालका
छोरि न जाई = विस्तार, फैलावा, उलझन बहुत बढ़ा हुआ है, उसमें कष्ट-क्लेश भी खूब पाते हैं, तथा अनेक साधनाओंमें पड़के दुःख सहन करते हैं। तथापि स्त्री और गुरुवालोगोंका सङ्ग तथा अध्यास छोड़ा नहीं जाता है या उसे छोड़ते ही नहीं और—
विवश दुःखी = आखिरमें दुःखोंसे मजबूर,
समष्टि ठहराई = लाचार, विवश हो करके एक सर्व जगत्का नियन्ता व्यापक कर्त्ता परमेश्वर सुख-दुःखका दाता ठहराये हैं ॥

व्याख्या— खानी-वाणी बन्धनोंके विस्तार बहुत हैं। लालची जीव बन्धनोंमें पड़कर नाना दुःख पाते हुए भी उसकी आसक्ति नहीं छोड़ते हैं या लालच छोड़ी नहीं जाती है। जब न चाहनेपर भी पूर्व कर्मानुसार दुःख पाते रहने लगे, तब विवश वा लाचार दुःखी होकर सब जड़-चेतन जगत्को समेटकर समष्टिमें एक जगत्कर्त्ता पूर्ण व्यापक परमेश्वरको सुख-दुःखोंका दाता, मुक्तिकर्त्ता कल्पनासे ठहराये हैं ॥ ४४८ ॥

८. भरम कर्म अनेकन भाँती * राज काज चाहैं कुशलाती ॥ ४४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

भरम कर्म = अनेकन = भाँती = फिर उस ईश्वर कर्त्ताको प्रसन्न करानेके वास्ते भ्रमवश योग, जप, तप, तीर्थ व्रतादि अनेक प्रकारके कर्म, भक्ति और ज्ञान साधने लगे। ऐसे नाना प्रयत्न, उद्योग करने लगे।

राज काज = चाहैं कुशलाती = संसारमें ब्रह्मादि गुरुवा-लोग राजा बने, और शिष्य-लोग प्रजा हुए। कर्म, उपासना, योगादि साधनाका प्रचार वही राज्यका कार्य हुआ। भ्रमिक नरजीव उसीमें लगकर अपना कुशल और मुक्ति पाना चाहते हैं, तो कैसे होगा ? ॥

व्याख्या— तब ईश्वर मिलनेके भ्रमसे नाना प्रकारके शुभाशुभ कर्म अनेक भाँतिसे करने लगे। गुरुवालोगोंने अपने राज्य-हुक्म चलानेके लिये कर्म उपासना, ज्ञानादिके साधनादिका काजमें लगे वा लगाये हैं। अब उसीसे कुशल, सुख, मुक्ति चाह रहे हैं, तो विना पारख जीवोंका कुशल कैसे होगा ? ॥ ४४६ ॥

९. जहाँ समष्टि जथा विस्तारा ❀ ज्ञान कला सो ईश विचारा ॥ ४५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जहाँ समष्टि = जथा विस्तारा = जहाँपर नर जीवोंमें सब इकट्ठे ही चतुराई ज्ञान, श्री, ब्रह्माण्ड, यश, विद्या, बलका विस्तार हो, ऐसे षट्गुण ऐश्वर्य जिसमें एकत्रित हुआ—

ज्ञान कला = सो ईश = विचारा = तथा ब्रह्मज्ञानकी कल्पनामें विशेषता हुई, सो उसीको श्रेष्ठ ईश्वर ठहराकर गुरुवालोगोंने विचार किये हैं या उसीको कर्त्ता ईश्वर मान लिये हैं ॥

व्याख्या— संसारमें जहाँ जिन नर जीवोंमें षट्गुण ऐश्वर्यधारी एक व्यापक परमेश्वरकी अनुमान-कल्पनाका विस्तार हुआ, और विशेषरूपसे ब्रह्मज्ञानकी धारणा हुई, सो अज्ञानी मनुष्योंने उन ज्ञान कलावालेको ईश्वर मान लिये हैं। यही फिर सबोंने विचार करके निश्चय किये हैं ॥ ४५० ॥

१०. सर्व साक्षिणी ज्ञान कहावै ❀ बहु प्रकार मर्म ठहरावै ॥ ४५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सर्व साक्षिणी = ज्ञान कहावै = सो ज्ञान कलावाला परमेश्वर या परमात्मा सर्व जगत् घट-घटका साक्षी है, ऐसा कहते हैं। और आत्मज्ञानी सर्वका साक्षी कहलाते हैं, फिर-

बहु प्रकार = मर्म ठहरावै = बहुत प्रकारसे भेद वा अभेद दिखलाकर फिर एक ब्रह्मको ही सत्य ठहराते हैं ॥

व्याख्या— जो कि, सर्वज्ञतासे सर्व जगत्के हालको जाननेवाला घट-घट प्रकाशी, सर्व-साक्षिणी गुणवाले ज्ञानी हैं, वे ईश्वर कहलाये या उन्हींको लोगोंने ईश्वर कहा। इसमें भी अनेक भेद हैं, सो गुरुवालोग बहुत प्रकारसे कल्पनाकर ब्रह्मको अभेद, अद्वैत ठहराते हैं ॥ ४५१ ॥

११. निर्वचनी सो ब्रह्म महाराजा ❀ वचन विलास जगत सब साजा ॥ ४५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

निर्वचनी सो = ब्रह्म महाराजा = ब्रह्मज्ञानियोंने ब्रह्मको मन, बुद्धि, वाणी, लक्ष्यसे परे अवाच्य जगत्कर्त्ता महाराजा मानके मायाको अनिर्वचनीय महारानी ठहराये हैं।

वचन विलास = जगत सब साजा = ब्रह्मकी इच्छा शब्द विलास मात्रसे यह सब शोभा सहित् जगत्की उत्पत्ति भई, ऐसा माने हैं। इसीसे 'ब्रह्म सत्य' 'जगत् मिथ्या' का साज सब जगत्में फैलाये हैं; सोई मिथ्या वचनका विलास है, उसमें सार कुछ भी नहीं है ॥

व्याख्या— अनिर्वचनीय माया महारानी तथा अवाच्य महाराजा ब्रह्मको माने हैं। किन्तु, जब उनके सङ्केत वचनका विलास, इच्छा, क्रीड़ा होता है, तब सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती है। सो मिथ्या ही कहने, देखने, सुनने, विलास करने मात्रके लिये है, ऐसा माने हैं ॥ ४५२ ॥

१२. शब्दातीत शब्द परकाशा * बिन दुःख दर्द कैसे भासा ? ॥ ४५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

शब्दातीत = ब्रह्मको शब्दसे परे भी कहते
शब्द परकाशा = हैं, फिर ॐ शब्दरूप ब्रह्म है, ऐसा कहके वेद-वेदान्तके शब्दसे ही ब्रह्मज्ञानका प्रकाश करते हैं। अतएव—

बिन दुःख दर्द = पूर्वमें द्वैत जगत् हुए
कैसे भासा = बिना आवागमनोंके दुःख त्रिविधि ताप आदिका दर्द किसको फिर कैसे भास होकर मालूम हुआ? क्यों मुक्तिकी चाह हुई? ॥

व्याख्या— शब्दसे 'अतीत' कहिये 'परे' मन, बुद्धि, वाणीसे परे, ऐसा ब्रह्मको शब्दातीत ठहराकर फिर प्रणव शब्द स्वरूपी ब्रह्म है, ऐसा वेद-वेदान्तके वाणीसे ब्रह्म सिद्धान्तका प्रकाश किये; और जब एक अद्वैत ही ब्रह्म है, तब द्वैतरूप जगत्के बिना ही त्रिविधि ताप, जन्म-मरणादि दुःख-दर्दका भास होकर कैसे मालूम हुआ? ॥ ४५३ ॥

१३. कुहकत एकोहं भये ज्ञानी * राजकला सोई ठहरानी ४५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कुहकत एकोहं = कोई संसारमें नाना दुःख
भये ज्ञानी = पायके रोते हैं, तो कोई ब्रह्मज्ञानी हो करके मैं अद्वैत व्यापक एक ही ब्रह्म हूँ, ऐसा कहते हुए ब्रह्मज्ञानका ही उपदेश सबको दे रहे हैं। और—

राजकला = गुरुवालोगोंके ब्रह्म सिद्धान्त
सोई ठहरानी = जो है, सो तो मिथ्या कल्पना है; परन्तु, धोखा दे-देकर उसी ब्रह्मज्ञानको सत्य ठहराते हैं; सो अपना शासन कायम करते हैं ॥

व्याख्या— संसारके दुःखोंमें व्याकुल होते, रोते-कराहते मनुष्य जब ब्रह्मज्ञानीकी शरण या पासमें जाते भये, तब ब्रह्मज्ञानी गुरुवाने उपदेश दिया कि, हे भाई! रोओ मत; सुनो! "मैं एक अद्वैत ब्रह्म हूँ, तो तू भी अद्वैत ब्रह्म है, सो निश्चयकर लेओ! ऐसा कहा; फिर गुरुवालोगोंने अनेक तरहसे उन लोगोंको भ्रमायके कल्पनाकी कलासे सोई ब्रह्म सिद्धान्तका राज्य ठहराये वा दृढ़ाये हैं ॥ ४५४ ॥

१४. बहुस्यामि विस्तार अनेका * रैयत त्रिगुण राज विवेका ॥ ४५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

बहुस्यामि = 'मैं ब्रह्म एकसे अनेक होऊँ!'
विस्तार = ऐसी कल्पना करके वाणी-
अनेका = खानी जगत् जालोंका विस्तार वा फैलावा किया, सो गुरुवालोग तो महाराज बने हैं। और—

रैयत त्रिगुण = संसारके समस्त जीव उस
राज विवेका = ब्रह्म राजाकी रैयत या प्रजा माने गये। सो त्रिगुणके राज्यमें भूले हुए गाफिल पड़े हैं। सत्यासत्यका विवेक तो वे नहीं करते हैं, मत-पन्थके राज्यमदमें उन्मत्त पड़े हैं ॥

व्याख्या— फिर 'एकोहं बहुस्याम्' के भ्रमसे अनेकों वाणी-खानी जालका विस्तार बनाये। सब त्रिगुणी मनुष्योंको रैयतरूप प्रजा मानकर अपने अविवेकसे मत-पन्थका राज्य चलाने लगे। अथवा कर्म, भक्ति, योग- ये त्रिगुणोंके अन्तमें एक ब्रह्मके राज्यमें जाके मिलते हैं, यही उन्होंने विवेक माने हैं। परन्तु, सो तो बड़ा अविवेक, अन्याय ही किये हैं ॥ ४५५ ॥

१५. त्रिगुण तीनों लोक विराजै * देवता दानव मनुज होय गाजै ॥ ४५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

त्रिगुण तीनों = स्वर्ग लोकमें सत्त्वगुण,
लोक विराजै = मृत्यु लोकमें रजोगुण और पाताल लोकमें तमोगुण, ऐसे तीन लोकमें तीन गुण तथा त्रिगुणी प्राणी रहते हैं।

देवता दानव = सोई यहाँपर सत्त्वगुणी
मनुज होय गाजै = मनुष्य देवता हैं, रजोगुणी मानव वा मनुष्य हैं, और तमोगुणी दानव स्वभाव वाले हैं; सो वे अपने-अपने गुणमें गरज

रहे हैं। और वे कर्म, भक्ति तथा योग मार्गमें | लगे हैं ॥

व्याख्या— तीनों गुणधारी तीनों देवता तीन लोकमें जाके विराजमान हुए, सो उनके अंशसे यहाँ पृथ्वीमें 'देवता' सत्त्वगुणी मनुष्य, 'दानव' तमोगुणी मनुष्य और 'मानव' रजोगुणी स्वभाववाले मनुष्य होयके उसी गुण-स्वभावके कार्यमें वे गरज रहे हैं, ऐसा माने हैं ॥ ४५६ ॥

१६. चारों खानि योनि चौरासी ❀ चौदह भुवन जीव जन्तु वासी ॥ ४५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

चारों खानि = योनि चौरासी = } ब्रह्म-जगत्की विषय वासना-वश जीव मनुष्य, पशु, पक्षी और कृमि, ये चारों खानियोंमें जाकर एक खानीके अनेक-अनेक योनियोंके राशी-समूहके हिसाबसे चारोंके बहुत समूहरूप चौरासी योनियोंमें देह ले रहे हैं। और—

चौदह भुवन = जीव जन्तु वासी = } चौदहों लोकोंमें वा ब्रह्माण्डमें वासनावश बद्ध जड़ाध्यासी जीव नाना देहधारी होकर जहाँ-तहाँ त्रिगुणी फाँसमें भटक रहे हैं ॥

व्याख्या— चार खानी चौरासी योनियाँ चौदह लोकादि ब्रह्माण्डमें जीव वासनाके वशीभूत होकर अनेक देहें धारणकर त्रिगुणयुक्त कर्म फल भोग रहे हैं ॥ ४५७ ॥

१७. जीव सृष्टि महन्तो त्रिदेवा ❀ अविद्या शक्ति सबै उपेवा ॥ ४५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जीव सृष्टि = महन्तो त्रिदेवा = } संसारमें जीव सृष्टिमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये त्रिदेव बड़े प्रवीण, चतुर, अग्रगण्य गुरुवा-महन्त बने थे। और—

अविद्या शक्ति = सबै उपेवा = } इच्छा, माया, अज्ञान, जड़ाध्यास करके त्रिदेवसे लेकर समस्त प्राणी देह धारणकर उत्पन्न हुए हैं, और हो रहे हैं। तहाँ निज-निज कर्मफल सब जीव भोग रहे हैं ॥

व्याख्या— चैतन्य जीव सृष्टियोंके सब प्राणियोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये त्रिगुणी त्रिदेव महन्तरूप श्रेष्ठ मार्ग स्थापक गुरु कहलाये। जड़ाध्यास, इच्छा-माया या अज्ञानरूप अविद्या शक्तिसे तीनों देवोंसे लेकर सब जीव देह धारणकर उत्पन्न हुए और हो रहे हैं ॥ ४५८ ॥

१८. कहुँ तामस राजस अधिकारी ❀ कहुँ सात्त्विक देव विचारी ॥ ४५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कहु तामस = राजस = अधिकारी = } कहींपर तो तमोगुणकी अधिक प्रबलता प्राणियोंमें देखी जाती है; और कहीं रजोगुणकी ही विशेषता रहती है। तहाँ तामसीलोग योग-मार्गके अधिकारी हुए, तो राजसीलोग कर्म मार्गके ग्राहक बने हैं। और—

कहुँ सात्त्विक = देव विचारी = } कहींपर तो सत्त्वगुणी नर नाना देवता, विष्णुकी भक्तिके विचारमें लगे हैं; और तमोगुणी शिवके उपासक हैं। रजोगुणी ब्रह्माके उपासक हैं। सत्त्वगुणी विष्णुके उपासक होकर तीनों तीन गुणके विचारमें लगे हुए हैं ॥

व्याख्या— रजोगुण ब्रह्मा, सत्त्वगुण विष्णु और तमोगुण शिव- ये तीन गुणोंके देवताओंकी ही भक्ति, ज्ञान, योगका विचार करनेवाले त्रिगुणी मनुष्य हुए हैं। कहीं किसीमें तमोगुणकी विशेषता है। फिर कहीं रजोगुणकी अधिकता है, तो कहीं सत्त्वगुणवाले दिखाई देते हैं ॥ ४५९ ॥

१९. ईश्वरी मायाके गुण गावै ❀ महन्तो त्रिदेवा समुझावै ॥ ४६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ईश्वरी मायाके = गुण गावै = } वेद वाणीके प्रमाणसे गुरुवा-लोग कोई परमेश्वर जगत्-का कर्त्ता, धर्ता हर्ता है, ऐसी कल्पनासे गुण गाते हैं वा महिमा करते हैं। और—

महन्तो = त्रिदेवा = समुझावै = } ब्रह्मा, विष्णु और शिवको जगत्के मालिक महान् श्रेष्ठ तीनों इष्ट देवता समर्थ हैं, ऐसा समझाते हैं;

तथा वे तीनोंने भी वेद प्रमाणसे ब्रह्मका गुण गाकर कर्म, भक्ति, योगादि मार्गको समझाये हैं ॥

व्याख्या— पूर्वमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये त्रिविधि मत स्थापक महन्त हुए हैं। उन्होंने भी वेद वाणी पढ़-पढ़कर परब्रह्मके गुण गाये। उसको कर्त्ता पुरुष ठहराये हैं। सो वर्तमानमें गुरुवालोग भी वही वेद वाणीके प्रमाण दे-देकर कोई परमेश्वर जगत्कर्त्ता मानकर उसके गुणानुवाद गाते हैं या गुण गा रहे हैं। और उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाले वे तीनों देवता महान् श्रेष्ठ सर्व समर्थ हैं; ऐसा लोगोंको समझाते हैं या समझा रहे हैं ॥ ४६० ॥

२०. चौथे ईश्वर ज्ञान स्वरूपा * अङ्ग प्रकाश प्रकाशक भूपा ॥ ४६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! चौथे ईश्वर = चतुर्थ महाकारण देहमें ज्ञान ज्ञान स्वरूपा = स्वरूप ईश्वरको साक्षी, तुरीय-रूप माने हैं। तथा— अङ्ग प्रकाश = देहरूप माया और पिण्ड- प्रकाशक भूपा = ब्रह्माण्ड सर्वाङ्गको प्रकाश करनेवाला ईश्वरको सर्वका प्रकाशक और उसे संसारका राजा माने हैं ॥

व्याख्या— ज्ञान स्वरूप ईश्वर चेतनको चतुर्थ-तुरिया साक्षी सर्वज्ञ माने हैं। सो काया-माया, पिण्ड-ब्रह्माण्डादि सर्वाङ्गको प्रकाश करनेवाला सबका प्रकाशक ईश्वरको ही स्वामी या विश्वका राजा माने हैं ॥ ४६१ ॥

२१. ज्ञान अज्ञानको पँचयें मूला * अक्षरातीत ब्रह्म अनुकूला ॥ ४६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

ज्ञान अज्ञानको = तत्पद ईश्वर, त्वंपद जीव- पँचयें मूला = ये दोनोंके मूल कारण पञ्चम बिन्दुरूप असिपद कैवल्य ब्रह्मको माने हैं। सोई ब्रह्म, ज्ञान-अज्ञानादिक काया-मायाका और मूल-मायाकी उत्पत्तिका आधार माने हैं। परन्तु— अक्षरातीत = मन, बुद्धि, वाणीसे परे वह ब्रह्म अनुकूला = निःअक्षर ब्रह्म व्यापक होनेसे सबके सहायक वा अनुकूल ही बना रहता है, ऐसी कल्पना किये हैं ॥

व्याख्या— ज्ञान-अज्ञान दोनोंके मूलकारण पँचयें कैवल्य ब्रह्मको अक्षरातीत वाणीसे परे निःअक्षर सबके अनुकूल रहनेवाला माने हैं। सो त्वं-तत्का मूल 'असिपद' है। तथा ईश्वर-जीवका मूल 'ब्रह्म' है। और नारी-पुरुषका मूल 'माया' है। एवं स्थूल-सूक्ष्मका मूल 'कारण' है। यहाँ कैवल्य ब्रह्मको ही माया उत्पत्तिका आधार माने हैं ॥ ४६२ ॥

२२. दुःखिया त्रिविधि सृष्टि बनाई * ब्रह्म ईश्वर जीव रहा जहँड़ाई ॥ ४६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दुःखिया = भ्रमिक अध्यासी त्रिगुणी त्रिविधि = साधनाओंमें दुःखी, ऐसे सृष्टि बनाई = नरजीवोंने तीन प्रकारकी सृष्टि कल्पना करके वाणी-वेदादि बनाये हैं। सो— ब्रह्म ईश्वर जीव = विज्ञानीकी ब्रह्मसृष्टि रहा जहँड़ाई = असिपद। ज्ञानीकी ईश्वर-सृष्टि तत्पद; और अज्ञानीकी जीवसृष्टि त्वंपद कहा है। इसीके घेरेमें बद्ध हो जड़ाध्याससे चौरासी योनियोंके चक्रमें घूम रहे हैं ॥

व्याख्या— त्रिविधि तापोंमें दुःखी पारखहीन नर जीवोंने त्रिगुण कल्पनासे तीन-तीन प्रकारकी सृष्टि बनाये— ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरसृष्टि और जीवसृष्टि सोई विज्ञानी, ज्ञानी, अज्ञानी; असि, तत्, त्वंके अध्यास लेकर स्त्री, पुरुष, नपुंसक देह धरकर पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें जहँड़ा रहे हैं; कठिन बन्धनोंमें पड़े हुए हैं ॥ ४६३ ॥

२३. अटल राज नहिं कलह कल्पना * नष्ट बुद्धि नहिं सूझै मरना ॥ ४६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

अटल राज= नहिं कलह= कल्पना= जहाँपर वाणी-खानीका कलह, दुन्द, मिथ्या कल्पना है, तहाँ-पर अटल पारख स्थितिकी प्राप्ति नहीं होती है, और पारख निज स्वरूपकी बोध-स्थितिमें जो विराजमान हैं, उनके पास कोई कलह-कल्पना भ्रम नहीं है या वह भ्रम उनमें नहीं रह सकता है।

नष्ट बुद्धि नहिं= सूझै मरना = जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, ऐसे विषयीलोग तथा गुरुवा-लोगोंको जीवका दुःख, हानि, जड़ाध्यास, जन्मृतिका बन्धन कुछ सूझ-समझ ही नहीं पड़ता है ॥

व्याख्या— पारख स्वरूपमें अटल-विराजमान सन्त कोई कलह-कल्पना, खानी-वाणीके फन्दामें नहीं रहते हैं। नष्ट-बुद्धि भ्रष्ट मनुष्योंको खानी-वाणीके अध्यास यही हमें जन्म-मरणमें डालकर देह धरानेवाला कारण दुःखोंका बीज है; यह समझ कुछ नहीं सूझती है ॥ ४६४ ॥

२४. पुरवासी रहैं रोग बेहाला ❀ निशि दिन शोक व्यथा जञ्जाला ॥ ४६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पुरवासी रहैं= रोग बेहाल = संसार नगरके निवासी सब जीव अध्यासवश आवागमन, त्रिविधि तापके रोगमें पड़कर बेहाल वा दुःखी हो रहे हैं। और—

निशि दिन शोक= व्यथा जञ्जाला = सो ज्ञानी-अज्ञानी, रात-दिन ईश्वर प्राप्तिकी विरह-अग्नि, नाना कर्मोंकी साधना इत्यादिक शोक, चिन्ता, दुःख, व्यथा, कर्म जञ्जालोंमें ही पड़े रहते हैं ॥

व्याख्या— इसवास्ते संसारपुरके निवासी वासनाओंको परिपुष्ट करके जन्म-मरणादिके रोग-दैहिक, दैविक, भौतिक तापोंमें सदा बेहाल, व्याकुल, दुःखी बने रहते हैं; और ज्ञानी तथा अज्ञानी, रात-दिन, विषय प्राप्ति और ब्रह्म प्राप्तिकी चिन्ता, शोक, विरहाग्निमें जलके उस व्यथारूप पीड़ामें दुःखी होकर नाना कर्म साधनाओंके जञ्जालोंमें पड़े और पड़ रहे हैं॥ ४६५ ॥

२५. आँखि न सूझै पीड़ा भारी ❀ मोह अमल माते संसारी ॥ ४६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

आँखि न सूझै= पीड़ा भारी = भ्रमिक जड़ाध्यासी मनुष्यों-की विवेक-दृष्टि फूट जानेसे चैतन्य निज स्वरूपकी पारख-दृष्टि तो उन्होंको सूझ नहीं पड़ती है; इससे जन्म, मरण और गर्भवासके भारी पीड़ा वा कष्ट, दुःख पा रहे हैं, ऐसे दुःख भोग रहे हैं।

मोह अमल= माते संसारी = संशयरूप सन्देहमें ग्रसित संसारके नर जीव सब स्त्री और ब्रह्मके विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दके नशामें चूर, मोहित, मलिन, उन्मत्त, बद्ध हो गये हैं, कोई वेद वाणीके मोह अमलमें मातके उन्मत्त हो रहे हैं ॥

व्याख्या— चैतन्यकी पारख-दृष्टि न सूझनेसे नरजीव भारी पीड़ा सहन करके आवागमनोंके दुःख चक्रमें पड़े हुए हैं। संशयमें पड़े हुए सब संसारी खानी-वाणीके महा मोहरूप अमल नशामें चूर होकर उन्मत्त पागल भ्रमिक अध्यासी हो रहे हैं। बिना विवेक-विचारके वह मोह अमल किसी-का नहीं छूटता है ॥ ४६६ ॥

२६. दशा परस्पर लेहिं निहारी ❀ बर्तें सब सन्तोष विचारी ॥ ४६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दशा परस्पर= लेहिं निहारी= एक-दूसरेकी दुर्दशा देखकर परस्परमें वा आपसमें एक-एककी गरीबी हालत देखकर और साधनों-में आपसकी स्थिति-कठिनाइयोंकी बराबरी देख लेते हैं। इसीसे—

बर्तें सब= सन्तोष = विचारी= वे सब मनुष्य ऐसा सोचकर कि, दुःख-सुखोंमें हमारे समान ये सरेलोग भी तो हैं, यह तो सभीको वैसा ही है, ऐसा विचार करके सन्तोष लेकर बर्त्तते या चलते अपना गुजाराकर लेते हैं ॥

व्याख्या— अज्ञानी विषयीजन और साधकलोग आपसमें एक-एककी स्थिति वा दशाके कष्ट-

क्लेश देख करके सब कोईको दुःख एक समान ही हो रहा है, ऐसा सोच-विचारके सन्तोष लेके बर्तते हैं ॥ ४६७ ॥

२७. जो हरिभोंग नगरसे न्यारा * परम परख परखा टकसारा ॥ ४६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

जो हरिभोंग = जो कोई महाभाग्यवान्
नगरसे न्यारा = मुमुक्षु शुभ संस्कारी नरजीव संसारमें गुरुवा और स्त्रियोंके भोग फन्दासे अलग हो गये हैं या न्यारे हो जावेंगे, वे ही पारखी सद्गुरुकी शरण वा सत्सङ्गमें जाकर-

परम परख = परम प्रवीण होके बीजक
परखा टकसारा = सद्ग्रन्थ टकसारके सत्य सिद्धान्त पारखपदको पहिचान करके खानी-वाणी जालोंको परखकर त्याग देते हैं; और पारख स्वरूप स्थिति प्राप्ति कर जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥

व्याख्या— जो कोई भाग्यवान् शुभ संस्कारी नर जीव संसारमें स्त्री तथा गुरुवालोगोंके भोग-विलास, कुकर्म, कुसङ्गसे न्यारा होकर परम पारखी सद्गुरुकी शरणमें आया, सो उसने टकसार सद्ग्रन्थ बीजकको पढ़-गुन धारणकर सब जालोंको परखकर त्याग किया; सो पारख स्वरूपमें ही स्थिर रहता है ॥ ४६८ ॥

२८. महा अगम सम्भव दुःख नाशी * शरण गये सो सुखभौ बासी ॥ ४६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

महा अगम = अगम, अगोचर, अपार माना
सम्भव = हुआ ब्रह्मपदमें जगत्का उत्पत्ति-
दुःख नाशी = प्रलय होना माने हैं। सो महान् धोखा भ्रम अध्यास जन्म-मरण दुःखोंका कारण है। पारख बोधसे सो भ्रम नाश होता है। इसलिये—

शरण गये सो = पारखी सद्गुरुकी शरणमें
सुखभौ बासी = जो मनुष्य गये, सो खानी-वाणी अध्यासोंको नशायके जीवन्मुक्त स्थितिके सुखमें निवास करते भये या वैसे सुखमें रहेंगे ॥

व्याख्या— ब्रह्मपदको महा अगम माने हैं। परन्तु, दुःखरूप जगत्की उसीसे उत्पत्ति और नाश होता रहता है, ऐसा माने हैं। इससे वह ब्रह्म आवागमनोंका कारण हुआ। जो कोई मनुष्य पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाकर सत्यासत्यको परखते हैं, सो उनकी भ्रम-कल्पना, वासना, सब नाश होकर सुखमें निवास करने वाले वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ ४६९ ॥

२९. सो निज ओर दया प्रभु कीन्हा * महा कष्ट छुड़ावन लीन्हा ॥ ४७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सो निज ओर = सो परम दयालु सद्गुरु
दया प्रभु कीन्हा = श्रीकबीरसाहेब प्रभुने तथा आपके अनुयायी पारखी साधु-गुरुने अपनी तरफसे ही स्वजातीय जीव जानकर महान् दया करके पारखपद परखा दिये। और—

महा कष्ट = महान् कष्टदायी विषय जाल तथा
छुड़ावन = वाणी कल्पनाके ब्रह्म जालोंसे
लीन्हा = हंस जीवोंको छुड़ा लिये। बन्दीछोर सद्गुरुने ही जीवोंको मुक्त किये हैं ॥

व्याख्या— सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा आपके अनुयायी पारखी सद्गुरु प्रभुने अपनी तरफसे ही जब दया किये, तब पारख बोध देके महा कष्टमय खानी-वाणी जालोंको छुड़ाय दिये, अपनी शरणमें ले लिये; इसप्रकार जीवोंकी रक्षा किये ॥ ४७० ॥

३०. इन्हमें जे वैराग्य समाना * नहिं थिति बिनु कल्याण अपाना ॥ ४७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

इन्हमें जे = अनेकों संसारी तथा योगी, ज्ञानी,
वैराग्य = भक्त, इन्होंमेंसे जो कोई दृढ़
समाना = वैराग्यवान् होकर सत्सङ्ग करनेमें विचारमें लगे थे, सो उन्होंको ऐसी समझ उत्पन्न हुई, कि खाली वैराग्य मात्रसे तो मुक्ति-प्राप्ति होनेकी नहीं। और—

नहिं थिति-= बिनु कल्याण= अपाना= } पारख स्वरूपमें स्थिति करके एकरस कायम हुए बिना अपने जीवका कल्याण या जीवन्मुक्ति कभी होनेकी नहीं। अतएव पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्ग विवेकमें ही लगे रहना चाहिये ॥

व्याख्या— शुभसंस्कारसे मनमें वैराग्य समाकर मुक्तिकी इच्छा होती है। उन वैराग्यवानोंमें-से किसीने विवेक किया कि, सत्य ज्ञान हुए बिना तो वैराग्य अधूरा ही रहता है। एकरस पारख बोध होके स्वरूप स्थिति हुए बिना अपने जीवका कल्याण या मुक्ति होनेकी नहीं; सो कैसे मुक्ति पावें॥४७१॥

३१. छल प्रपञ्च एकौ नहिं भावै ❀ चाहत मर्म भरम लखि आवै ॥ ४७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

छल प्रपञ्च= एकौ नहिं= भावै= } सारग्राही, सत्य शोधक, विवेकी मुमुक्षुओंको गुरुवालोगोंके छल-से निरूपित ब्रह्म, पञ्चकोशोंकी वाणी तथा खानीके प्रपञ्च कर्म जाल, कल्पनादि किसीमें भी भाव नहीं जमता है। यानी उनको वह अच्छा नहीं लगता है।

चाहत मर्म= भरम लखि= आवै= } सार सिद्धान्तका भेद या मर्म जानना चाहते हैं, तो गुरुवालोग ब्रह्मका भ्रम ही लखानेको आ जाते हैं, सो भ्रम ही दृढ़ाते हैं। जब पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आये, तब जड़-चैतन्य मिश्रित माना हुआ ब्रह्म पद तो भ्रम ही लखनेमें आ गया ॥

व्याख्या— पारखी सन्त-गुरुके सत्सङ्गमें लगनेवालेको छल, प्रपञ्च, कपट, ठगी, वाणी कल्पनासे ब्रह्म, ईश्वर धोखा भ्रम जो गुरुवा लोगोंने दृढ़ाये हैं, सो एक भी अच्छा नहीं मानते हैं; वे उसमें भाव नहीं लगाते हैं। क्योंकि, ये तो सार सिद्धान्तके बोधसे कल्याण चाहते हैं। सद्गुरुके भेद पानेसे सब भ्रान्ति लखनेमें आयी, तो फिर उसमें वे भूल नहीं सकते हैं ॥ ४७२ ॥

३२. परख अधिकारी शुद्ध तेहि जानी ❀ परख प्रकाश शरण निज ठानी ॥ ४७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

परख अधिकारी= शुद्ध तेहि जानी= } सत्सङ्गी, शुद्ध हृदयवाले-कोई जिज्ञासुको पारख बोध पानेके अधिकारी, ग्राहक जानकर पारखी सद्गुरुने—

परख प्रकाश= शरण निज= ठानी= } उसको अपनी शरणमें लेकर सारासार, जड़-चेतनके भेदको सब परखाकर-समझाकर हृदयमें पारख बोधका प्रकाश कर दिये ॥

व्याख्या— शुद्ध अन्तःकरणवाले सरल, छल-छिद्र रहित, ऐसे जिज्ञासुको पारखी सद्गुरुने पारख बोध लेनेका अधिकारी जान करके अपनी शरणमें उसे लेके उसके हृदयमें पारखबोधका प्रकाश करदिये या पारख प्रकाश कर देते हैं ॥ ४७३ ॥

३३. लहत प्रकाश तिमिर नशाना ❀ सब हरिभोंग चाल पहिचाना ॥ ४७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

लहत प्रकाश= तिमिर नशाना= } सद्गुरुकी दयासे सत्य अपरोक्ष पारखकाबोध प्रकाश हृदयमें हो जानेसे अज्ञान-अविद्याका सब अन्धकार नाश हो गया। और—

सब हरिभोंग= चाल पहिचाना= } संसारमें स्त्री तथा गुरुवालोगोंके धोखेकी चाल, जञ्जाल-घेरा सबको पहिचानकर छोड़ दिये; अपने न्यारे हो गये ॥

व्याख्या— सद्गुरुकी महान् दयासे जब पारख स्वरूप बोधका प्रकाश प्राप्त हो गया या हो जाता है, तब अज्ञान, अविद्या, अन्धकार मानन्दी सब नाश होके छूट जाती है, और संसारके सब बन्धन, स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंके भुलावा, कुचाल वह सबको पहिचानके दूरसे ही छोड़ देता है ॥ ४७४ ॥

३४. दया स्वभाव परख प्रकाशी ❀ अभय अशङ्क सदा सुख राशी ॥ ४७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दया स्वभाव = } सो पारखी सद्गुरु कैसे हैं
परख प्रकाशी = } कि, स्वाभाविक जिनमें दया, क्षमा, सत्य, शीलादि सद्गुण रहनी भरे पड़े हैं, पारख ज्ञानका प्रकाश करनेवाले पारखी हैं; तथा—

अभय अशङ्क = } ईश्वर, ब्रह्म, यमादि मिथ्या
सदा सुख राशी = } मानन्दी भयसे रहित ऐसे अभय हैं; और अभय दाता हैं। सर्व सन्देह शङ्कासे रहित अशङ्क हैं, समाधान करनेवाले जड़ाध्याससे रहित सदा स्वरूपपर स्थिर जीवन्मुक्त सुखराशी हैं॥

व्याख्या— जिनके स्वाभाविक पूर्ण दया है, सत्यादि सद्गुण धारण किये हैं, पारख प्रकाशी भ्रम-तम विनाशी हैं; निर्भय तथा सन्देह-दुविधा, भ्रान्ति जिनमें कुछ जड़ाध्यासका लेश नहीं है, ऐसे पारखी सद्गुरु जीवन्मुक्त सदा सुखके राशी तथा मुक्ति दाता हैं॥ ४७५॥

३५. निजपद जानि सो दीन दयाला ❀ लगे छोड़ावन जीव बेहाला॥ ४७६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

निजपद = } सो दीनदयालु पारखी सद्गुरु
जानि सो = } निजपद पारखमें ठहरकर
दीनदयाला = } अधिकारी पुरुषोंको निजपद पारखका बोध समझाने लगे। और—

लगे छोड़ावन = } खानी-वाणी भव तरङ्गोंमें डूबे
जीव बेहाला = } हुए, बेहाल ऐसे महा दुःखी नर जीवोंपर दया-दृष्टि करके परखा-परखा कर सर्व बन्धन छुड़ाने लगे, जीवोंको बचाने लगे॥

व्याख्या— सो दीनदयालु पारखी सद्गुरु प्रभुने निजपद जाननेके इच्छुक, सत्सङ्गी जिज्ञासुओंको देखकर भव-बन्धनोंमें बेहाल दुःखी जीवोंका सत्यासत्य परखायकर बन्धन छुड़ाने लगे॥ ४७६॥

३६. परख परखाय अनेक सुधारे ❀ परम वैद्य निज नाम प्रचारे॥ ४७७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

परख परखाय = } काल, सन्धि, झाँई के महा
अनेक सुधारे = } जञ्जाल ब्रह्म-भ्रम तथा विष-रूप विषय आवागमनका कारण सब दिखाय पारखसे एक जीवके अनेक बन्धनोंको छुड़ाकर अनेक हंसजीवोंका जन्म सुधार कर दिये। इसलिये—

परम वैद्य = } परम पारखी सद्गुरु वैद्य
निज नाम = } बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबने ऐसे
प्रचारे = } अपना शुभ नाम तथा चैतन्य बोधको संसारमें बताकर आपने ही प्रचार किये हैं॥

व्याख्या— समस्त काल-फाँसोंको परखाय-परखाय दिखाय-दिखाय करके अनेक जीवोंकी भ्रम-कल्पना मिटाकर सुधार दिये, पारख बोध करा दिये। अतएव परम पारखी परम वैद्य भवरोग, जन्म-मरणादि विनाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बन्दीछोर ऐसे नाम संसारमें प्रचार किये॥ ४७७॥

३७. महन्तों गाँव रहै खिसियाई ❀ पुरबासी कहाँ जाय पराई॥ ४७८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

महन्तों गाँव = } संसारके गाँवमें पारखी सन्त
रहै खिसियाई = } गुरुके उपदेशका प्रभाव देखकर त्रिदेवके पक्षपाती उनके अनुयायी कर्मी, उपासक, योगी आदि गुरुवालोग क्रोधित होते भये। तब झुँझलायके खिसियाये और कहने लगे कि—

पुरबासी कहाँ = } अरे! संसारके निवासी
जाय पराई = } चेलो! सेवक-शिष्य लोगो! तुम सब लोग हमें छोड़कर कहाँ-कहाँ भागे जाते हो? क्यों भाग रहे हो? क्यों भटक रहे हो? सो खुलासा करके कहो!॥

व्याख्या— पारखी सन्तोंके निर्णय सत्य उपदेश सुनकर बहुत-मनुष्य उनके उपदेश ग्रहण करने लगे। गुरुवालोगोंके मतको छोड़ दिये। तब योगी, ज्ञानी, भक्त संसारके ठेकेदार महन्तलोग गाँवमें जा करके बड़ा खिसियाके झुँझलाने, क्रोध करने लगे, और कहने लगे कि, हे पुरवासी चेले-भक्त लोगो! तुमलोग हमें छोड़कर कहाँ भागे जाते हो? सनातन मतको छोड़कर नवीन मत क्यों

ग्रहण करते हो ? फिर इसका पता लगाने लगे कि, देखें ये लोग कहाँ जाते हैं ? ॥ ४७८ ॥

३८. पावै न भेद बहुत अकुलाई * ममता राज लाग खिसियाई ॥ ४७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पावै न भेद = जब पारखी सद्गुरुके सार
बहुत अकुलाई = सिद्धान्त सत्य निर्णयका भेद कुछ भी गुरुवालोगोंने जान नहीं पाये, तब बहुत ही अकुलायके व्याकुल वा चिन्तित हुए।

ममता राज = मत-पन्थके राज्य, शिष्य-
लाग खिसियाई = शाखाओंमें आसक्ति-ममता लगी हुई होनेसे मूढ़ गुरुवालोग उनके मत छोड़ता हुआ देखकर नाराज हो खिसियाकर क्रोध करने लगे ॥

व्याख्या— फिर पारखी सन्तोंको देखकर बाहरसे पता लगाने लगे कि, ये किस मतके हैं, इनका क्या सिद्धान्त है ? परन्तु, पारखी सन्तके सार सिद्धान्त निर्णयके भेद वे कुछ भी समझ नहीं पाये, तब बहुत आकुल-व्याकुल हुए; और अपने मत-पन्थके प्रभाव घटेगा, शिष्य वा आमदनी कम न हो जायँ, इस राज्यकी ममतासे खिसियाकर क्रोध करने लगे ॥ ४७९ ॥

३९. अनबनि भाँति लराई ठाना * हारि हारि मनमें पछताना ॥ ४८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

अनबनि भाँति = विशेष क्रोध बढ़नेसे वे
लराई ठाना = पारखी सन्तोंसे तथा जिज्ञासु शिष्योंसे अनेक प्रकारसे वाद-विवाद प्रश्नोत्तर-सम्वादकी लड़ाई, झगड़ा करने लगे।

हारि हारि = परन्तु, निर्णय ज्ञान शक्तिके आगे
मनमें = गुरुवालोगोंके सब बल क्षीण
पछताना = हो गये; सब तरफकी लड़ाईमें हार गये, तब हारमानके मनमें बड़ा पछतावा करने लगे ॥

व्याख्या— फिर क्रोधान्ध होकर गुरुवालोग अनेक प्रकारसे पारखी सन्त और सत्सङ्गी-जनोंसे सम्वाद, तर्क-वितर्क, प्रश्नोत्तर, वाक्य प्रहार आक्षेप करके लड़ाई किये या करने लगे। आखिरमें जीतकर उन्हें हटा नहीं सके, तो गुरुवालोग हार मान-मानकर मनमें बड़े पछताने लगे और शर्माने लगे ॥ ४८० ॥

४०. भोंदू राजाके ढिग जाई * समाचार हरिभोंग सुनाई ॥ ४८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

भोंदू राजाके = फिर बड़े दुःखी हो करके भोंदू
ढिग जाई = राजा = परमहंस ब्रह्मज्ञानी जो कि, बुद्धिहीन, भ्रमिक, अविवेकी हैं, उनके पास वा नजदीकमें चले गये। और—

समाचार = संसारमें गाँव-गाँवके शिष्य
हरिभोंग = सेवकानोंके हाल महन्त गुरुवा-
सुनाई = लोगोंने राजारूप ब्रह्मज्ञानीको जाके सब समाचार सुनाये ॥

व्याख्या— तब कर्मी, उपासक, योगी ये अधिकारी वर्ग महन्तलोग भोंदू राजा ब्रह्मज्ञानी मूढ़ भ्रमिक जो हैं, उनके पास जाके हरिभोंगपुर वा संसारके हाल-समाचार सब सुनाने लगे ॥४८१॥

४१. परम वैद्य एक पट्टन आवा * बहु हरिभोंगिनको अपनावा ॥ ४८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

परम वैद्य = उन्होंने कहा कि, हे महाराज !
एक पट्टन = आपके राज्यरूप सेवकानोंके
आवा = अन्दर शहरमें एक पारखी सन्त नामका उपदेशक आया है। और—

बहु हरिभोंगिन- = सो अनेक प्रकारकी बातें
को अपनावा = उपदेश सुना-सुनाकर संसारके हमारे शिष्योंको बहका-बहकाकर अपनी तरफ खींच-खींचकर उसने अपना चेला बना लिया है, ऐसे बहुतोंको अपना लिया है ॥

व्याख्या— हे राजा ! आपके राज्यके शहरमें एक परमवैद्य नामका पारखी सन्त आया है। उसने आपके बहुतेक शिष्योंको अपनी तरफ खींचकर अपनाय लिया है; चेला बना लिया है। ऐसे

बहुत लोग आपके मत-पन्थको छोड़-छाड़कर उसके मतमें जा रहे हैं ॥ ४८२ ॥

४२. गाँव ठाँव सो जानि न जाई * परजा तेहि दिश जाय पराई ॥ ४८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं - हे सन्तो !

गाँव ठाँव सो = सो उस पारखी सन्तकी
जानि न जाई = स्थितिका ठौर-ठिकाना सिद्धान्त, पहुँच तो हम लोगोंसे कुछ जाना नहीं जाता है या जाना नहीं गया। क्योंकि, कुछ समझमें नहीं आता है कि, वे क्या बकते हैं। परन्तु—

परजा तेहि = आपकी प्रजारूप शिष्य-शाखा वा
दिश जाय = सेवकलोग बहुत जनें उसी
पराई = पारखी सन्तकी तरफ ही आकर्षित हो करके भाग-भागकर उधर ही झुकते जा रहे हैं ॥

व्याख्या— उसके गाँव-ठाँवका पता लगाया, तो भी कुछ जाननेमें नहीं आया कि, वे कौनसे सिद्धान्त मानते हैं ? स्थितिका ठौर-ठिकाना क्या है ? हम तो कुछ भी जान नहीं सके। और आपकी तथा हमारी सब प्रजारूप शिष्य-शाखालोग उसी पारखीकी तरफ ही दौड़-दौड़कर चले गये और उसी तरफ प्रेमसे झुककर भागे चले जा रहे हैं; रोकनेपर भी कोई नहीं मानते हैं ॥ ४८३ ॥

४३. बहु प्रकार लरेऊँ तेहि सङ्गा * होवै न ताके एकौ भङ्गा ॥४८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बहु प्रकार = कर्मी, उपासकादि गुरुवालोग
लरेऊँ = ब्रह्मज्ञानीसे कहते हैं कि, हे
तेहि सङ्गा = राजन्! बहुत प्रकारसे हमलोग उस पारखी सन्तसे लड़े-भिड़े, वाक् प्रहार करके छेड़-खान, खण्डन-मण्डन किये; उसके सङ्गमें लड़नेमें हमने कोई कसर नहीं रक्खी। तथापि—

होवै न = उस पारखी साधुकी बात,
ताके एकौ = सिद्धान्त तो एक बाल बरोबर
भङ्गा = भी नहीं डिगा और नाश नहीं हुआ। हमारी बातसे तो उसकी बात नहीं कटी, ज्यों-की-त्यों ही डटी रही ॥

व्याख्या— ब्रह्मज्ञानीके पासमें कर्मी, भक्त, योगी लोगोंने जाकर बताये, कि, बहुत प्रकारसे वाद-विवाद करके उस पारखी सन्तके साथमें हमलोग लड़े-भिड़े भी; परन्तु, उसकी एक बात भी हमारे बातसे नहीं कटी, उसका तो एक बाल भी नहीं टूटा ॥ ४८४ ॥

४४. सब हथियार मम खाली परहीं * तुम्हरे डरसों नाहीं डरहीं ॥ ४८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सब हथियार = मेरे ज्ञानरूपी सब हथियार
मम खाली = युक्ति-प्रयुक्ति, प्रक्रिया,
परहीं = खण्डनके अस्त्र-शस्त्र, उसके सामने सब खाली, बेकार होकर गिर पड़े। और—

तुम्हरे डरसों = वह पारखीको आप ब्रह्मज्ञानी-
नाहीं डरहीं = की महिमा बताय करके डराये-धमकाये; परन्तु, वह तो आपको कुछ समझता ही नहीं। आपके डरसे कुछ भी नहीं डरता है, ऐसा निडर-निर्भय बना है ॥

व्याख्या— हमारे ज्ञानके सब हथियार चलाने पर भी वार खाली गया। सब अस्त्र-शस्त्रको उसने काटकर खाली कर दिया। महाराज ! अगम बलशाली आपके डरसे भी वह नहीं डरता है। वह तो आपको कुछ समझता ही नहीं; अतः वह शान्त निर्भय हो रहता है ॥ ४८५ ॥

४५. राज हेतु महाराज अकुलाना * विविधि भाँति लराई ठाना ॥ ४८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

राज हेतु = ऐसी शिकायत सुनकर राज्य
महाराज = शासन बनाये रखनेके लिये
अकुलाना = ब्रह्मज्ञानी महाराज बड़े ही अकुलायके व्याकुल भये, तब झुँझलाकर बोले, ले चलो हमको उसके पास ! देखें, कैसा योद्धा है।

विविधि भाँति = फिर जहाँपर पारखी सन्त
लराई ठाना = रहते थे, वहाँजाके वाक् प्रहार,
सम्वाद, आक्षेपका वाद-विवाद करने लगे;
अनेक तरहसे वाक् युद्धके लड़ाई-झगड़ा
किये, अद्वैत ब्रह्मज्ञानको ऊँचा बताने लगे ॥

व्याख्या— ऐसा सुनके राज्य कायम रखनेके वास्ते ब्रह्मज्ञानी महाराज बड़े क्रोधित होकर झुँझलाये और पारखी सन्तोंके ठिकाने जाकर नाना प्रकारसे उनसे लड़ाई, झगड़ा, वाक्-बाणके प्रहार वाद-विवाद किये ॥ ४८६ ॥

४६. हारि देखि सकुचाने राजा * घेरा निज पट्टन महाराजा ॥ ४८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

हारि देखी = पारखी सन्तोंके सत्य निर्णयसे
सकुचाने = ब्रह्मज्ञानकी बात खण्डित हो गई।
राजा = और अपने पक्षकी हार होती हुई
देखकर, अब इनसे ज्यादा लड़नेमें अपने ही
मारे जावेंगे, ऐसा सोचकर ब्रह्मज्ञानी राजा
हारकर संकोच करके वहाँसे उठकर भाग
गये वा खिसक गये।

घेरा निज = तब अपने शहररूप सिद्धान्तमें
पट्टन = ठहरकर सब शिष्य-शाखाओंको
महाराजा = बुलाकर ब्रह्मज्ञानीने वेद-वेदान्तके
घेरा डाल दिये, धोखा भ्रमके अन्दर
फँसा दिये ॥

व्याख्या— पारखी सन्तकी शान्ति, गम्भीरता, सहनशीलता, सत्यनिर्णयका प्रत्युत्तर पानेसे उनकी एक न चली, तब अपनी हार होती हुई देखकर ब्रह्मज्ञानी राजा भी वहाँसे खिसककर भागकर चले आये; और अपने शिष्यवर्ग-सेवकानोंमें आकर विशेष आज्ञा उपदेशका घेरा डाल दिये, वही ब्रह्मज्ञान दृढ़ाने लगे ॥ ४८७ ॥

४७. सब परजाको कहा प्रचारी * अमल बाहर मति जाव हमारी ॥ ४८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सब परजाको = सब शिष्य-सेवकवर्ग प्रजाओं-
कहा प्रचारी = को एकत्र बुलायके सबोंको
सुनाय करके यह सख्त हुक्म कहा, वाणी
प्रचार किया कि—
अमल बाहर = हे प्रजाजनो ! सुनो ! हमारे—

मति जाव हमारी = वेद-वेदान्त शास्त्रके हुक्म
कायदा-कानूनरूप हमारे उपदेश पालनको
छोड़कर बाहर दूसरेके मत-पन्थोंमें कोई भी
मत जाओ। हमारे अमलरूप सिद्धान्तमें रहने-
से ही तुम्हारी भलाई वा हित होनेवाला है ॥

व्याख्या— सब शिष्यरूप प्रजाओंको इकट्ठेकर सबको सुनायके उपदेशका प्रचार करने लगे— हे प्रजाजनो ! हमारे वेद-वेदान्तके अमल, कायदा-कानूनके बाहर कोई भी मत जाओ ! ॥ ४८८ ॥

४८. मम पट्टनसे भिन्न जे चाहै * महा दण्डकी राह निबाहै ॥ ४८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मम पट्टनसे = मेरे शहररूप ब्रह्म सिद्धान्त-
भिन्न जे चाहे = को छोड़कर और ही न्यारे
नये सिद्धान्तोंमें जो जाना चाहते हैं या
वेद मतको छोड़कर वेद बाह्य भिन्न मतमें
जानेकी इच्छा जो करते होवें, तो—

महादण्ड- = वे राजद्रोही, गुरुद्रोही, वेदद्रोही,
की राह = ईश्वरद्रोही, देशद्रोही, महादण्डनीय
निबाहै = अपराधी हैं। उनको हम शाप
देकर नष्टकर-करा देंगे। फिर उनका निर्वाह
नहीं होगा, मरकर रौरव-नरकमें बहुत
कष्ट यम यातनाका दुःख सहते रहेंगे ॥

व्याख्या— यदि कोई मूर्ख हमारे राज्यके शहर वेदके सिद्धान्तसे भिन्न ही और कोई मत-पन्थ-के सिद्धान्तोंमें जायगा या जाना चाहेगा, तो वह महा दण्ड पायेगा; नरकमें यम यातनाके रास्ता-में ही चला जायगा ॥ ४८९ ॥

४९. परजन भोंदू कहा बहोरी * तुम्हरे राज कष्ट बहुतेरी ॥ ४९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसा ब्रह्मज्ञानीके बचन सुन करके—

परजन भोंदू = } उनके शिष्यवर्ग प्रजालोग
कहा बहोरी = } भोंदू ब्रह्मज्ञानी राजासे फिर उलटकर दोनों हाथोंको जोड़कर कहे या कहने लगे कि, हे महाराज !—

तुम्हरे राज = } आपके राज्य अनुशासन,
कष्ट बहुतेरी = } उपदेश पालन साधनाओंमें बहुतेक कष्ट-क्लेश सहना पड़ता है। और फिर आवागमनका दुःख छूटनेका कोई भरोसा भी तो नहीं है ॥

व्याख्या— ब्रह्मज्ञानीके सख्त मुनादी, रोचक, भयानक, वाणी सुन करके उनके शिष्यरूप प्रजाओंने भोंदू राजाके पास आकर फिर कहा कि, हे महाराज ! आपके राज्यमें हमारेको बहुत कष्ट हो रहा है। यहाँ बहुत साधनाओंके कष्ट सहन करके भी मुक्ति होनेका विश्वास नहीं होता है ॥४९०॥

५०. कष्ट दूर जो होय हमारा * काहेको अन्ते भाग विचारा ॥ ४९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कष्ट दूर जो = } यदि मिथ्या साधनोंके कष्ट
होय हमारा = } छूटकर आवागमनादि दुःख भी जो दूर होवे, ऐसा हमारा मनमें भरोसा उत्पन्न हो जावे, सत्यासत्य समझमें आवे-

काहेको अन्ते = } तब फिर हमलोग काहेको
भाग विचारा = } आपके उपदेश छोड़ेंगे ? फिर क्यों आपके मतको छोड़कर दूसरेके मत सिद्धान्त सत्सङ्गमें भागे जानेका विचार करेंगे ? ॥

व्याख्या— हे महाराज ! यदि हमारा सब कष्ट दूर हो जावे, सुख पूर्वक रहने पावें, आवागमनादि दुःखोंसे मुक्ति पानेका निश्चय हो जावे, तब फिर दूसरेकी शरणमें भाग जानेका विचार हम काहेको करते ? और क्यों करेंगे ? ऐसा शिष्योंका वचन सुनकर तब ब्रह्मज्ञानी गुरुवा कहता है— ॥ ४९१ ॥

५१. महन्तन राजा कहा बुझाई * वैदक तीनों हम देव बताई ॥ ४९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

महन्तन राजा = } कर्मी, भक्त, योगी,
कहा बुझाई = } राज्याधिकारी महन्तोंको ब्रह्मज्ञानी पण्डित राजाने समझाय-बुझायके उपदेश देनेकी तरीकाएँ इस विधिसे कही कि, हे महन्तो !—

वैदक तीनों = } मैं तीनों वेदके सार तीन
हम देव बताई = } प्रकारके उपदेश, तीन मार्ग तुम्हें बताय देता हूँ ! अधिकारी शिष्योंको तुमलोग भी वैसे ही बताकर समझाना; उन्हें रोचक वाणीमें सुनायके कहना ॥

व्याख्या— ऐसा उन सत्सङ्गी शिष्योंके वचन सुन करके ब्रह्मज्ञानी राजाने तीन मार्गोंके अधिकारी महन्तोंको बुलायके समझाय-बुझायके यह कहा, कि, तीन वेदके तीन सिद्धान्त तीन वैदिक मार्ग वेद प्रमाणसे हम तुम्हें बताय देते हैं, सो तुमलोग भी अधिकारी सुपात्र देखकर इसका उपदेश रोचक वाक्यमें करना। हे प्रजाजनो ! अब हम तुम्हें तीन वेदका सच्चा मार्गका उपदेश बतलाते हैं, सो ध्यानसे सुनो !— ॥ ४९२ ॥

५२. नीनिउ चाल न्यारा न्यारा * नहिं भागे ते प्रजा हमारा ॥ ४९३ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

तीनिउ चाल = } कर्म, उपासना और ज्ञान यह
न्यारा न्यारा = } तीनों मार्गकी चाल, साधना, रहनी, लोक प्राप्ति, न्यारा-न्यारा ही प्रकारसे होता है। सो युक्ति पूर्वक चलनेको शिष्योंको बताना चाहिये। जिससे हमारे शिष्य प्रजालोग—

नहिं भागे ते = } हमारे मत छोड़कर वे भागने
प्रजा हमारा = } न पावें। ऐसा घेरामें डालो ? और हे प्रजाजनो ! हमारे मतके साधन छोड़कर जो भागता है, सो, हमारा शत्रु है, और न भागनेवाला वह मेरा प्रिय पुत्रके समान सच्ची प्रजा है ॥

व्याख्या— कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्तिमार्ग- ये तीनोंकी चाल, साधना, फल प्राप्ति न्यारी-

न्यारो हैं। वे अनसमझ प्रजालोग हमारे राज्यसे न भागें, ऐसा उपाय करके चलो; और जो कोई इन तीन मार्ग छोड़कर भागेगा, सो हमारा शत्रु होगा, और जो नहीं भागेगा, सो हमारी प्यारी प्रजा होगा ॥ ४९३ ॥

५३. एक सन्देह सागर परवाना * दूजे शोग पोख परधाना ॥ ४९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

एक सन्देह = सागर परवाना = वेद प्रमाणसे पहला ब्रह्मज्ञान मार्गका उपदेश दिये, तहाँ समुद्रमें जलके समान मनमें सन्देह बना रहा। ब्रह्म चराचर पूर्ण व्यापक मानकर भ्रम-धोखेमें पड़े रहे। यही प्रमाण पत्र-रूपमें लिख दिये। और—

दूजे शोग = पोख परधाना = दूसरा उपासना मार्गके उपदेश दिये। तहाँ विरह-रूपी शोक ज्यादा-ही-ज्यादा बढ़ाकर नवधाभक्तिमें लगाये। यह मुख्य तालाबके जलवत् बनाये ॥

व्याख्या— अब त्रिविधि वेद मार्ग बतलाते हैं, सो सुनो ! पहला नम्बरमें एक-'सन्देहका सागर' अद्वैत ब्रह्मज्ञान मार्गका प्रमाण बतलाये हैं; सो चराचर परिपूर्ण व्यापक मानकर सन्देह, संशयमें ही पड़े रहते हैं। इससे मुक्ति लाभका प्रमाण किये हैं। दूसरा नम्बरमें 'शोग-पोखका' प्रधान उपासना मार्गमें रहता है। सो एक सगुण ईश्वर मानकर उसकी प्राप्तिके लिये विरहरूपी शोक, भक्ति ज्यादा ही बढ़ाकर जीवोंको गिराते रहते हैं ॥ ४९४ ॥

५४. तीजे शङ्काके नाम बताई * अनबनि विधि तदबीर दृढ़ाई ॥ ४९५ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तीजे शङ्काके = नाम बताई = तीसरे योगमार्गका उपदेश दिये। तहाँ श्वासमें नाम स्मरण किये; और द्वैत सत्य है या अद्वैत सत्य है ? यह शङ्का वा दुगदुगीका संयोग सन्देह बताये; उसीसे मुक्ति होनेको भी दृढ़ाये।

अनबनी विधि = तदबीर = दृढ़ाई = ऐसे तीनों मार्गोंके अनेक प्रकारके विधि-विधान नाना उपाय प्रयत्न द्वारा ब्रह्म प्राप्ति होनेको दृढ़ाये हैं; इसीमें सबोंको अरुझाये रक्खे हैं ॥

व्याख्या— तीसरा नम्बरमें 'शङ्काके नाम' योग मार्ग बतलाये हैं। ब्रह्म-जगत्, एक-अनेक, द्वैत-अद्वैतकी शङ्का वा दुगदुगी तहाँ लगी रहती है। इसी तीन मार्गोंके अनेक भेद नाना साधनोंके उपाय दृढ़ाकर जीवोंको भुलाये और भुला रहे हैं। किन्तु, उससे मुक्ति प्राप्ति होनेकी नहीं। अर्थात् तीसरे 'शङ्काके नाम' कहिये योग मार्गमें अनेकों प्रकारसे योग साधनाओंके उपाय बतलाये, सो इसीसे मुक्ति होगी, ऐसा दृढ़ाये हैं ॥ ४९५ ॥

५५. राज दण्डसों औषध कीन्हा * डर औ लोभ चौकी तेहि दीन्हा ॥ ४९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! प्रपञ्ची गुरुवालोगोंने संसारमें आकर कहा—

राज दण्डसों = औषध कीन्हा = मनुष्योंके ऊपर शासन करके दबाकर राजदण्ड-रूप ईश्वरीय कोप होनेको बताके रोगीरूप अज्ञानी जीवोंको उपदेश दीक्षा-मन्त्रादि यही औषधि दे दिये, सो धारण करना ही पत्थ्य-परहेज बतलाये।

डर औ लोभ = चौकी तेहि दीन्हा = यदि यह उपदेश नहीं मानोगे, तो नरकमें जाके महान दुःख यम यातनाका दण्ड सहोगे ! और हमारे कहे अनुसार चलोगे, तो सात स्वर्ग, चार फल, चार मुक्ति, ऋद्धि-सिद्धियाँ इत्यादि सब सुख प्राप्ति होगी। ऐसा वाणी चमकाना यही चौकी वा पहरा बिठा दिये ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंने राजदण्डकी नाईं जबर्दस्ती दबायके कल्पनाके उपदेश किये। तहाँ नरकमें यमयातनादिका दुःख तथा शापका डर और स्वर्गादि प्राप्ति, ऐश्वर्य, ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्तिका लोभ यही पहरेदाररूप धोखा अन्तःकरण चतुष्टयमें दृढ़ाय दिये ॥ ४९६ ॥

५६. आदि अन्त मुचलिका राखी * त्रिविधि अनादि वैदक साखी ॥ ४९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

आदि अन्त मुचलिका राखी = आदिसे अन्ततक, जन्मसे मरण तक, शुरूसे आखिरी तक आपके उपदेश छोड़कर और किसी दूसरेके उपदेश नहीं मानेंगे, ऐसा इकरारनामा पत्र लिखा करके सही कराकर रख लिये। तब कहने लगे कि—

त्रिविधि अनादि वैदक साखी = भक्ति, योग और ज्ञान यह तीनों मार्ग अनादि हैं। ईश्वरने इसे निकाला है; सो ईश्वरीय ज्ञान वेदका इसमें साक्षी या प्रमाण है, ऐसा मानो कहकर बतलाये ॥

व्याख्या— फिर जन्मसे मृत्यु पर्यन्त या अभी शुरूसे आखिरी तक हम दूसरे किसीके भी उपदेश नहीं मानेंगे, आपके उपदेशको ही पालन करेंगे, ऐसे करार-पत्र लिखाकर उसमें सही-दस्तखत और गवाही कराकर रख लिये। वेदके साक्षी प्रमाण देकर भक्ति, योग तथा ज्ञान, ये तीनों मार्गोंको अनादि बतलाते भये ॥ ४९७ ॥

५७. दीन्ह दृढ़ाय महन्तो बहुभाँती * शहर ढिंढोरा कहै कुशलाती ॥ ४९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

दीन्ह दृढ़ाय महन्तो बहुभाँती = ऐसे ब्रह्मज्ञानीने कर्मी, उपासक तथा योगी महन्त लोगोंको दृढ़ा दिये, फिर उन गुरुवा-लोगोंने सब मनुष्योंको यही बात बहुत प्रकारसे दृढ़ा दिये वा निश्चय करा दिये।

शहर ढिंढोरा कहै कुशलाती = और सब संसाररूप शहर, गाँवकी शिष्य-शाखा लोगों-में ढिंढोरा या ड्योंड़ी पीटकर प्रचार करके कह दिये कि, हमारे वेद मार्गमें ही तुम्हारा हित वा कुशल-सुख है, ऐसा समझो ॥

व्याख्या— इसप्रकार ब्रह्मज्ञानीने योगी, ज्ञानी और भक्त इन महन्तोंको फिर वही उपदेश देनेकी बात बताये, तब उन्होंने संसारी मनुष्योंको बहुत प्रकारसे वही बात दृढ़ निश्चय करा दिये। और संसाररूप शहरमें ढिंढोरा पीटकर सबको कह करके सुना दिये कि, इसीके पालनसे तुम्हारे सबोंका कुशल है ॥ ४९८ ॥

५८. कुशल चहहु वैदक अनुसरहू * हाकिम हुकम शीशपर धरहू ॥ ४९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने कहा—

कुशल चहहु वैदक अनुसरहू = हे मनुष्यो! यदि तुमलोग अपने कुशलरूप हित-सुख और मुक्ति पाना चाहते हो, तो वेद प्रमाण-के अनुसार अपने-अपने वर्ण-आश्रमके कर्म, धर्मको, पालन करके चलो। तथा—

हाकिम हुकम शीशपर धरहू = ज्ञानी, योगी, भक्त इन हाकिमरूप गुरुवोंका हुक्म वा आज्ञा-उपदेशको शिरोधार्य करके श्रेष्ठ समझकर पालन वा धारण करते रहो ॥

व्याख्या— अगर कुशल चाहते हो, तो वेद प्रमाणसे चलो। हाकिम=गुरु लोगोंकी आज्ञाको शिरोधार्य करो, उसे पालन करो! ॥ ४९९ ॥

५९. इन्ह तीनों छोरि अन्ते जो जाई * सो मम दुष्ट बहुत पछिताई ॥ ५०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

इन्ह तीनों छोरि अन्ते जो जाई = ब्रह्मज्ञानीलोग कहने लगे कि, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड, यह तीन वेद मार्गको छोड़कर जो कोई मनुष्य दूसरे मत, पन्थमें चला जायगा वा वेद विरोधी होगा—

सो मम दुष्ट बहुत पछिताई = सो मेरी आज्ञाको तोड़नेवाला महा अपराधी बड़ा दुष्ट है। मेरे विरुद्ध चलनेवाला वह दुष्ट, बहुत दुःख पायके बहुत पछतायगा, और नरकमें पड़ेगा; कभी उसका निस्तार नहीं होगा ॥

व्याख्या— यह तीनों मार्ग छोड़कर जो कोई अन्ते दूसरे मतमें चला जायगा, सो मेरा हुक्म न माननेवाला महा दुष्ट यहाँ और वहाँ नरकमें दुःख पाकर बहुत पछतायगा ॥ ५०० ॥

६०. ऐसा ढिंढोरा शहर फिराई * त्रिविधि वैदक चाल चलाई ॥ ५०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ऐसा ढिंढोरा = } सब शहर और सब गाँव-
शहर फिराई = } गाँवमें गुरुवालोगोंने ऐसा ढिंढोरा फिराय दिये वा ड्योंड़ी पीटकर प्रचार कर दिये कि, वेद विरुद्ध चलनेवाले महा अपराधी होंगे, नास्तिक होंगे, उनका सत्यानाश होगा, और रौरव-नरकमें पड़ेंगे इत्यादि भय बताकर डरवाये, डाँट-डपट किये। और—

त्रिविधि = }
वैदक = } कर्म मार्ग, उपासना मार्ग,
चाल चलाई = } तथा योग मार्ग, यह तीन प्रकारकी चाल वेद प्रमाणसे गुरुवालोगोंने अनेक तरहसे चलाये और प्रचार किये। इसीसे सुख, गति, मुक्ति बतायके अबोध मनुष्योंको भुलाये; उस मार्गसे अपने चले और दूसरोंको भी चलाये वा चला रहे हैं ॥

व्याख्या— ऐसी कल्पित बातकी रोचक-भयानक वाणीका प्रचार ढिंढोरा पीट-पीटकर संसाररूपी शहरमें फिराय दिये; और वेदवादियोंने कर्म, उपासना, योग- यह तीन मार्गोंकी चाल वा साधना वेद प्रमाणसे चला दिये ॥ ५०१ ॥

६१. जो अकुलाय राज इनकेरा * वैद्य जानि जाई तेहि घेरा ॥ ५०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो अकुलाय = } जो कोई मनुष्य संसारमें नाना
राज इनकेरा = } दुःख, कष्ट-क्लेश पायके व्याकुल हुए थे, वे सब इन गुरुवालोगोंके राज्यरूप मत-पन्थमें चले गये। और—

वैद्य जानि जाई = } दुःखरूप रोगोंका नाशक,
तेहि घेरा = } सुख-दाता वैद्य या गुरु जान करके या समझके उन्हीं गुरुवालोगोंकी शरणमें जायके उन्हें घेर लिये या उनके घेरामें जाके पड़ गये ॥

व्याख्या— संसारी मनुष्य पूर्व कर्मके दुःख भोगनेमें आकुल-व्याकुल हो करके गुरुवालोगोंके राज्यरूप उपदेशकी शरणमें गये। उन्होंको सुखदाता गुरु समझके उन्हीं गुरुवालोगोंको जायके घेर लिये, तो वही घेरा जालोंमें अपने भी पड़ गये ॥ ५०२ ॥

६२. मन वच कर्म वैद्य ढिग जाई * व्यथा पीड़ा सब कहिके सुनाई ॥ ५०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

मन वच कर्म = } मनसे, वचनसे, कर्मसे,
वैद्य ढिग जाई = } भक्ति-भाव दृढ़ करके योगी, ज्ञानी, भक्त वैद्यरूप गुरुवालोगोंके पास वा नजदीकमें जाके—

व्यथा पीड़ा = }
सब कहिके = } अपना-अपना रोग, शोक,
सुनाई = } चाहना, तन-मनके दुःख-दर्द-का हाल सब कह करके सुनाये, सुख प्राप्तिके उपाय पूछेते भये ॥

व्याख्या— मन, वचन, कर्मसे गुरुवालोगोंके नजदीक वा पासमें जाके शरण हुए। और अपने मनकी व्यथा, तनकी पीड़ा, सुखकी चाहनादि सब बात कहके सुनाते भये ॥ ५०३ ॥

६३. बिहँसि वैद्य कहा मुख बानी * भली प्रकार हम औषधि जानी ॥ ५०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बिहँसि वैद्य = }
कहा मुख बानी = } ऐसा अज्ञानी मनुष्योंके रोग सुन करके वैद्यरूप गुरुवालोग हँस करके प्रसन्न-खुश होकर तब मुख खोलकर मुख्य-मुख्य बात कहने लगे।

ऐसी वाणी मुखसे कहे कि, हे रोगी !—

भली प्रकार हम = }
औषधि जानी = } हमने तुम्हारे रोग अब भली-प्रकारसे जान लिये हैं। इसकी औषधिरूप उपदेश हम भलीभाँति जानते हैं, सो तुम्हें देकर रोग अच्छा करदेंगे ॥

व्याख्या— उन अज्ञानी मनुष्योंकी बात सुनकर हँसके खुश होकर, अब मेरे जालोंमें ये लोग आ गये, ऐसा समझकर गुरुवालोगोंने मुखसे मुख्य-मुख्य ऐसे वाणी-वचन कहे कि— हे मनुष्यो ! अब हमने तुम्हारे रोगकी पहिचान अच्छी तरहसे कर ली है। इसको निवृत्त करनेकी औषधिरूप उपदेश हम भलीप्रकारसे जानते हैं; अब तुम्हारे रोग छूटा ही समझो ! ॥ ५०४ ॥

६४. पशु पक्षी सब सन्मुख आवै ❀ परसत जड़ी सो रोग नशावै ॥ ५०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पशु पक्षी सब = } पशु, पक्षी, मनुष्यादिसे
सन्मुख आवै = } लेकर सब कोई प्राणीमें जो कोई हमारे और भगवान्के सन्मुखमें शरण होके आ जाते हैं, सो सुखी हो जाते हैं। क्योंकि—

परसत जड़ी = } हमारे राम-नामरूपी जड़ी-
सो रोग नशावै = } बूटी लेते ही वा छूते ही उसे प्राप्त करते ही, सो उसके प्रतापसे सब संसारके रोग समूल (जड़से) नाश हो जाते हैं ॥

व्याख्या— सुनो ! नन्दी, भृङ्गी, हनुमान, जाम्बवन्त, गरुड़, कागभुसुण्डी, जटायु-गीद्ध, गजेन्द्र, शेषनाग वगैरह पशु-पक्षी आदि सब भी भगवान्के सन्मुखमें शरण आनेसे मुक्त हो गये। फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या कहना ? जो कोई भी हमारे सन्मुख आकर हमारे उपदेशरूप जड़ीका स्पर्श प्राप्त करेंगे, सो उनका सब रोग-शोग तुरन्त नाश हो जायगा, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा ॥ ५०५ ॥

६५. बूटी नाम सुने जो पावै ❀ छिनमें कष्ट सब दूर बहावै ॥ ५०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बूटी नाम = } रामका गुप्त नाम ही महान् बूटी
सुने जो = } है, सो तारक मन्त्रको जो कोई
पावै = } गुरुसे दीक्षा सुन पाता है, सो उस भक्तके—

छिनमें = } सकल कष्ट, आवागमनके दुःख
कष्ट सब = } सब क्षणमात्रमें ही दूर होके
दूर बहावै = } भाग जाते हैं। अर्थात् राम-नामके प्रतापसे कष्ट सब बहकर दूर हो जाते हैं ॥

व्याख्या— राम-नामरूपी बूटीका नाममात्र भी जो सुन पायेगा, उसका सब कष्ट क्षण भरमें दूर हो जायेगा; अर्थात् गुरुमुखसे नामरूपी बूटी जो सुन पाता है, उसका सब कष्ट उसी वक्त नाश हो जाता है ॥ ५०६ ॥

६६. महिमा जड़ीकी जाय न वरणी ❀ धन्य नाम भवसागर तरणी ॥ ५०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

महिमा जड़ीकी = } राम-नामरूपी जड़ी-बूटीकी
जाय न वरणी = } तथा आत्मज्ञान उपदेशकी महिमा अपार है। उसका महात्म्य वर्णन किया जा नहीं सकता है।

धन्य नाम = } भवसागर धाराको पार उतारने-
भवसागर = } वाली नौका या महान् जहाज-
तरणी = } रूप यह राम-नामको अनेकों धन्यवाद है ! उस राम-नामकी बलिहारी है ॥

व्याख्या— इस राम-नामरूपी जड़ीकी महिमा वर्णन किया नहीं जा सकता है; धन्य ! धन्य ! है, उस राम-नामको, जो अनायास भवसागर पार उतारनेवाला जहाजके समान है ॥ ५०७ ॥

६७. सुनत वचन रोगी हरषाई ❀ वैद्य प्रसाद रोग अब जाई ॥ ५०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सुनत वचन = } गुरुवालोगोंके ऐसे-ऐसे रोचक
रोगी हरषाई = } वाणी, उपदेशके वचन सुन-सुन करके रोगीरूप अज्ञानीलोग बहुत हर्षायके बड़े खुश हो गये। तथा—

वैद्य प्रसाद = } इन वैद्यरूप गुरुवालोगोंके
रोग अब जाई = } कृपा-प्रसादसे या दयासे अब हमारा सब संसारका दुःख तथा जन्म-मरणादि रोग छूट जायगा, यह निश्चय किये ॥

व्याख्या— ऐसे गुरुवालोगोंके रोचक वाणीकी महिमा सुन-सुनके संसारी अज्ञानी नर जीव बड़े हर्षाय गये, अब उन लोगोंके मनमें यह दृढ़ निश्चय हुआ कि, इन गुरुकी कृपासे हमारा सब रोग-शोकका दुःख छूट जायगा। हम लोग सुखी हो जायेंगे, ऐसे समझते भये ॥ ५०८ ॥

साखीः— ज्यों ज्यों महिमा सुनावहीं * त्यों त्यों होय अभिलाष ॥
[३९] जो चाहै सो. औषधी * गुप्त रखे नहिं भाष ॥ ५०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
ज्यों ज्यों महिमा = जैसे-जैसे योगी, ज्ञानी,
सुनावहीं = भक्त गुरुवालोग वेद-वेदान्त, पुराणादि पढ़कर ईश्वरकी तथा स्वर्गादिकी, चार मुक्ति, चार फलोंकी और ऋद्धि-सिद्धि करामात मन्त्र सामर्थ्य आदि प्राप्त होनेकी, नाना विधिसे महिमा बढ़ा-बढ़ाकर सुनाने लगे या सुनाते भये—
त्यों त्यों होय = तैसे-ही-तैसे संसारी मनुष्यों-
अभिलाष = के मनमें अभिलाषा-इच्छा बढ़ती ही गयी कि, कब वह सब हम प्राप्त-कर लेवें? कब मन चाहा सुख हो? ऐसा सोचने लगे, सोई बात उन्होंसे कहने लगे।

जो चाहै सो = तब गुरुवालोग कहते हैं कि,
औषधी = हमारे दीक्षा-उपदेश लेकर साधना करनेसे जो कुछ भी तुम चाहोगे, सो सब तुम्हें मिल जायगा, यह निश्चय कर लेओ। ऐसा सुनकर कई श्रद्धालु लोगोंने उनसे दीक्षा-मन्त्र ले लिये।
गुप्त रखे = तब गुरुवालोग कहने लगे कि,
नहिं भाष = यह हमने जो तुमको मन्त्र दिया है, उसको गुप्त रखना, मन-ही-मन जाप किया करना, मुखसे बोलकर किसीको न बताना, यदि बताओगे, तो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा। आँख, कान आदि नाश होगा, निर्वंश होगा, इत्यादि जानना ॥

व्याख्या— जैसे-जैसे महिमा बढ़ाय-चढ़ायके स्वर्गादि सुख, ईश्वरादि प्राप्ति होनेका गुरुवालोगोंने सुनाये, उसके लिये कर्म, उपासना, योग और ज्ञानके मार्ग साधना बताये। तैसे-तैसे ही संसारी मनुष्योंके मनमें इच्छा, चाहना या अभिलाषा सुख प्राप्ति आदिके लिये बढ़ी। तब गुरुवालोगोंकी शरणमें जाकर प्रार्थना किये, तो गुरुवालोगोंने कहा— कि, भाई! जो तुम्हें चाहिये, सो औषधिरूप उपदेश हमारे पासमें है। इससिये धन, जन, स्वर्गादि जो कुछ चाहना हो, सो सब तुम्हें हमारे दीक्षा उपदेशके प्रतापसे मिल जायगा, ऐसा कहा, तो कितनेक भावुक लोगोंने गुरुवालोगोंसे दीक्षा-मन्त्र सुन लिये! "ॐ रामाय नमः, ॐ शिवाय नमः" आदि 'फुस्, फुस्, फुस्' कानमें तीन फूँक मार दिये, और कहने लगे कि, यह हमने तुम्हें महामन्त्रकी दीक्षा दी है। इसको गुप्त रखना, मन-ही-मन जप करना, किसीको प्रगट करके मुखसे कह कर नहीं सुनाना। अगर सुनाओगे, बोलोगे, तो तुम्हारे कान, आँखें, नाक आदि चली जायगी, मुख टेढ़ा हो जायगा, फिर तुम-तुम्हारा जानो, सत्यानाश हो जायगा। यदि गुमसुम हो करके जाप करते रहोगे, तो मनोकामना पूर्ण हो जायगी। इसप्रकार भ्रमा दिये हैं ॥ ५०९ ॥

सम्बन्ध— अब सत्ताईसवें खण्डमें ४० चौपाई, और २ (दो) साखीमें गुरुवालोग और जिज्ञासु शिष्योंका प्रश्नोत्तर सम्वादका वर्णन हुआ है; सो जान लीजिये! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ सत्ताईस खण्ड ॥ २७ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्य और गुरुवालोगोंके प्रश्नोत्तर ॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥

१. लगन सोधि तोहि औषध देहों * तोहरे राशिकी मुरी बनैहों ॥ ५१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ठग गुरुवालोगोंने नर जीवोंको भ्रमायके कहते भये कि—
लगन सोधि = शुभ लग्न-मुहूर्त, घड़ी, पल, दिन, मास, पक्ष, तिथि, बारको अच्छी तरहसे शोधके वा ठहराके तब—

तोहि औषध = हे प्यारे भक्तो ! तुम्हें हम दीक्षा
दैहों = मन्त्रका उपदेश सुना देंगे।
अभी मत् घबड़ाओ, मैं सब बात तैय्यार करनेमें लगा हूँ, सो ऐसा जानो। और—
तोहरे राशिकी = अभी पहले तो तुम्हारे नाम-
मुरी बनैहों = राशिके अनुसार फल विचारकर तुम्हारे लिये जड़ी उखाड़ करके उसी राशिमें एक ताबीज बनाऊँगा। फिर शुभ मुहूर्तमें तुम्हें मन्त्र उपदेश देकर वह ताबीज पहिनाके मैं तुम्हें अपना चेला बनाऊँगा। तब तुम्हारी सब इच्छा पूर्ण हो जायगी, ऐसा जानलो ! ॥

व्याख्या— यहाँपर गुरुवालोगोंके ठगनेका तरीका जाल खुलासा करके बतलाते हैं। पूर्व साखीमें दीक्षाको गुप्त रखना पड़ेगा, ऐसा गुरुवाने कहा था। सो बात भी मञ्जूर करके कोई जिज्ञासु भावसे शिष्य बननेको गुरुवालोगोंके पासमें गया और अपना अभिप्राय बतलाया। तब गुरुवालोग कहने लगे कि, तुम अभी जल्दी मत् करो, नहीं घबड़ाओ। शुभ लग्न-मुहूर्त शोध करके दिन ठहराकर तब तुम्हें मैं औषधिरूपी दीक्षा-मन्त्रका उपदेश देऊँगा। तुम्हारा क्या नाम है ? सो नाम राशिके अनुसार ग्रह, नक्षत्र शोधकर मैं अभी तुम्हारे नाम-राशिके अनुसार यन्त्र या ताबीज बनाऊँगा। फिर उत्तम घड़ीमें तुम्हें वह पहिनाकर मैं अपना शिष्य बनाकर तुमको मन्त्र सब विधिसे बताऊँगा, सो जानो ॥५१०॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

२. पूछे परजा वैद्यजी ! कहहू * राश लगन काहे चित चहहू ॥ ५११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
पूछे परजा = गुरुवाका वचन सुनकर प्रजा-
वैद्यजी = रूप शिष्यवर्ग पूछते भये कि,
कहहू = हे वैद्य गुरुजी ! यह तो कहकर बतलाइये कि, उपदेश देनेके लिये—
राश लगन = राशि, फल, लग्न-मुहूर्त दिन-
काहे चित = बारकी कल्पना, यह आप क्यों
चहहू = चित्तमें चाहना या इच्छा करते हैं ? इन सबकी आपको क्या जरूरत है ? राशि लग्नादिसे क्या करना है ? ॥

व्याख्या— लग्न शोधकर तुम्हें दीक्षा देंगे, गुरुवाकी ऐसी बात सुनकर कोई एक सत्सङ्गी समझदार शिष्य विनय पूर्वक गुरुवासे पूछता है— हे वैद्यजी ! हे गुरुजी ! हमलोग जो पूछते हैं, उसका खुलासा उत्तर आप कहिये ! पहले तो आपने-अपने उपदेशकी बड़ी प्रशंसा की, फिर अभी राशि, लग्न-मुहूर्तका रास्ता देखके उसकी चित्तमें चाहना, चिन्तन, फिक्र क्यों करते हैं ? उसे क्यों चाहते हैं ? अब उसकी आपको क्या आवश्यकता है ? सो कहिये ? ॥ ५११ ॥

३. जो जल सत्य अनल प्रभु मेरे ! * सब दिन शीतल तपन निबेरे ॥ ५१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—
जो जल सत्य = जो कि, सत्य जलसे मेरी
अनल प्रभु मेरे = प्यास और गर्मी मिट जाती है, फिर आपकी वाणी-उपदेश यदि सत्य ही होवे, तो हे प्रभु ! सो अभी कहिये ? जिससे मेरी इच्छा निवृत्त हो जाय, वासनाकी अग्नि बुझ जावे। तथा—
सब दिन = जैसे जलका गुण सब दिन—
शीतल = शीतल नरम होनेसे जब चाहे
तपन निबेरे = पीओ तब तपनको मिटा देता है। तैसे ही यदि आपका उपदेश सत्य है, तो अभी आज, कल, परसों शुभ हो या अशुभ हो, सब दिन हमारे अज्ञानके तापको मिटायकर हृदय शीतल करेगा। जड़-चेतनका निर्णय करके जन्म-मरणादिसे छुड़ाय देगा ॥

व्याख्या— हे प्रभो ! जो जल सत्य ही होवे और पीनेको मिले, तो मेरे प्यास, दाह, तपन आदिको सब दिन चाहे जब कोई भी समय, दिन, बार, अशुभ घड़ी हो, तो भी दाह मिटायके शीतल ही कर देता है। तैसे ही 'पानी' कहिये 'वाणी' सो आपके उपदेश भी सत्य यथार्थ होवे, तो मेरी इच्छा, वासनादि अग्निकी ज्वालाको शान्त करके अध्यासरूपी तापको मिटाकर शीतल कर देगा। सत्य निर्णयका उपदेश देनेमें कोई दिन-बार रोककर अटका नहीं सकता है। और यथार्थ उपदेश सब दिनमें

जब चाहे तब दे-ले सकते हैं ॥ ५१२ ॥

४. जेहि औषधि महिमा अति भाखब * लगन आधिन काहेक राखब ? ॥ ५१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

जेहि औषधि महिमा अति भाखब = जिस औषधिरूपी उपदेशकी आपने पहले तो अत्यन्त महिमा वर्णन करके कहा था कि, 'राम रसायन बूटी है', जिसके दर्श-पर्श मात्रसे समस्त रोग-शोक छूट जाते हैं। उसके श्रवणमात्रसे जीव मुक्त हो जाते हैं; इत्यादि महिमा वर्णन किया था।

लगन आधिन काहेक राखब ? = सो अब लग्न, मुहूर्त, दिन-मान, घड़ी, पल, वार आदि कल्पनाके अधीन रुकावट करके उपदेश देने, कहनेमें क्यों रुकावट कर रक्खे हो ? या काहेको ऐसे श्रेष्ठ माना हुआ मन्त्र उपदेश देनेको लग्नादिके परवश करके रोक रखते हो ? इस बातको स्पष्ट (खुलासा) करके बताइये ? ॥

व्याख्या— आपने पहले जिस औषधिको "रामरसायन, प्राणेश्वर, मृतसञ्जीवनी बूटी" इत्यादि नामसे उपदेश देने-लेनेकी महिमा अत्यन्त बढ़ाय-चढ़ायकर कहा था। सो अब उसको हम रोगियोंको झटपट देना छोड़कर लग्न-मुहूर्तके अधीनमें रुकावट करके— 'जब शुभ घड़ी आयेगा, तब दीक्षा देंगे' ऐसा कहकर क्यों रोक रखते हो? लग्नके आधीनकर उपदेशको रोक रखनेसे हमें क्या फायदा होगा ? सो कहिये ! ॥ ५१३ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

५. कहै वैद्य तुम भेद न पावा * समय पायके जड़ी उपावा ॥ ५१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब गुरुवालोगोंने ऐसा उत्तर देते भये कि—

कहै वैद्य तुम भेद न पावा = वैद्य गुरुवालोग कहते हैं कि, हे शिष्यो ! सुनो, तुमलोग अज्ञानी हो, इससे हमारे भेद वा मतलबको तुम जान नहीं पाते हो। तुमने हमारी बात-के भेद तो कुछ जान ही नहीं पाया। जो पूछे हो, तो सुनो—

समय पायके जड़ी उपावा = समय पाकर ही गुणकारी बड़ी-बड़ी जड़ी-बूटी उखाड़ी जाती है; तभी कार्य सफल हो जाता है। तैसे ही दीक्षा उपदेश मन्त्र भी शुभ घड़ी, शुभ समय पा करके ही दिया जाता है। समय पाके ही ज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा जानो॥

व्याख्या— शिष्योंका आक्षेप सुन करके गुरुवा तेज होकर बोलने लगा। वैद्यरूप गुरुवाने कहा— अरे शिष्यो ! तुम लोगोंने हमारे कहनेका मतलब कुछ समझ नहीं पाया। हमारे कथनका कुछ भेद या मर्म जान नहीं पाया, तभी तुम ऐसे बकते हो। सुनो, समय पा करके ही जड़ी-बूटी उखाड़ी जाती है। पहले दिन उन जड़ियोंको निमन्त्रण देकर फिर समय आनेपर चुपचाप जाकर उखाड़के लाया हुआ जड़ी ही रोग नाशक गुण करता है। तैसे ही शुभ मुहूर्तमें स्नानादिसे पवित्र होके शुभ घड़ी आनेपर ही 'राम रसायन बूटी' मन्त्र-उपदेश दिया जाता है। सोई जड़ी गुणकारी हो बन्धनरूप दुःख नशाता है ॥ ५१४ ॥

६. जाहि समय जो वस्तु अधिकारी * बहुविधि बल सो वस्तु निहारी ॥ ५१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग उत्तर दे रहे हैं—

जाहि समय जो वस्तु अधिकारी = जिस-जिस समयमें जो-जो वस्तु (पदार्थ) विशेष बढ़ने-का वा उत्पन्न होनेका समय रहता है, वही-वही ज्यादा बढ़कर फैल जाता है। तैसे जो जैसा उपदेशका अधिकारी होता है, सो उसको तैसे ही समयमें दीक्षा दी जाती है।

बहुविधि बल सो वस्तु निहारी = बहुत प्रकारसे सो उन-उन वस्तुओंके बल, गुण, पराक्रम समय आनेपर ही दिखाई देते

हैं। सब दिन वैसा देखनेमें नहीं आता है। तैसे ही उपदेशका बल भी बहुविधिसे सुसमयमें ही देखनेमें आता है ॥

व्याख्या— जो वस्तु जिस समयमें विशेष अधिकार रखता है, उस समयमें उस वस्तुका बहुत प्रकारसे बल देखनेमें आता है। तद्वत् मनुष्योंके भी अधिकार देखकर उसी माफिक शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्तमें दीक्षा-मन्त्र उपदेश दिया हुआ सफल बलकारी वा गुणकारी हो जाता है ॥ ५१५ ॥

७. गरमी समय अनल परचण्डा * समय शीत जल शीतल पिण्डा ॥ ५१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाका कथन है—

गरमी समय = वैशाख-जेष्ठके समय गर्मी
अनल परचण्डा = होनेका महीना है; उन दिनों सूर्यकी किरणसे अग्निकी ज्वाला उष्णता तीक्ष्णता या तीव्रतासे प्रचण्ड हो जाती है, सो सब जानते ही हैं। तैसे युवा अवस्थामें ही बुद्धि तीव्र हो विशेष होती है। और—

समय शीत = पौष-माघके महीना ठण्ढी या
जल शीतल = शीतका समय है। उस वक्त
पिण्डा = पानी अतीव ठण्ढा हो जाता है। कहीं पानी जमकर बरफ हो जाता है। ठण्ढीके मारे देह अकड़ जाता है, शीतल ज्यादा हो जाता है। तैसे ही शान्तिके समय सत्त्वगुण अधिक बढ़नेपर ही उपदेश दिया जाता है। उसीका पूरा फल मिलता है ॥

व्याख्या— जैसे कि, गर्मीके मौसममें अग्निकी उष्णता सूर्यकी किरण प्रचण्ड होके खूब गर्मी-ताप बढ़ जाता है, और ठण्ढीके मौसममें जल बहुत ठण्ढा हो जाता है। जिससे पानीका बरफ, हिम, गोलाकार होके जम जाता है, यहाँपर शरीरमें ज्यादा ठण्ढ लगनेसे देह अकड़ जाता है। जो तुमने, 'सब दिन जल शीतल रहता है' कहा था, सो कहाँ रहता है ? गर्मीमें तो जल भी गरम हो जाता है। इसकारण बालक अवस्थामें ज्ञान समझ होनेका समय नहीं है। और अति वृद्धाईमें भी समझ सिथिल हो जाती है। युवावस्थामें सत्त्वगुणी होनेपर ही उपदेशका असर पड़ता है। इसलिये समय देखकर ही उपदेश दिया जाता है, सो जानो ! ॥ ५१६ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

८. परजा पूछे कहो समुझाई * गरमी दिन जो गरमी पाई ॥ ५१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंके उत्तर सुनके फिर जिज्ञासु शिष्यने इसप्रकार कहा—

परजा पूछे = शिष्योंने पूछा कि, हे गुरुजी !
कहो समुझाई = यह बात हमें ठीकसे समझाकर कहिये कि—

गरमी दिन = जो कि, गर्मीके दिनोंमें बहुत
जो गरमी = उष्णता बढ़के गर्मी होनेपर
पाई = शरीरमें ज्यादा गर्मी आ जानेपर या गर्मी पानेसे घबराहट होती है ॥

व्याख्या— गुरुवाके वचनसे समाधान तो कुछ नहीं हुआ, और ज्यादा सन्देह ही बढ़ा, इससे जिज्ञासु चतुर शिष्यने फिर पूछता भया कि, हे गुरुजी ! हमारी समझमें तो कुछ नहीं आया, इसकारण यह बातको और समझाकर कहिये कि, गर्मीके दिनोंमें गर्मी तो ज्यादा बढ़ती ही है। उससे प्राणियोंको तकलीफ होती ही है, यह बात तो सबको मालूम ही है ॥ ५१७ ॥

९. तहाँ तृषा बहु धूपके मारे * जल पाये सुख होय हमारे ॥ ५१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य प्रश्न कह रहा है—

तहाँ तृषा ब = तहाँ उष्णकालमें धूपसे
धूपके मारे = सन्तप्त हो, गर्मीके मारे प्यास बहुत लगती है। मुँह-कण्ठ सूख जाता है, पसीना बहुत निकलती है। इससे व्याकुलता बढ़ जाती है।

जल पाये सुख = ऐसे मौकेपर ठण्ढा जल
होय हमारे = मिल जानेपर उसे पीकर
स्नानादि करके प्राणी सुखी हो जाते हैं;
यह बात तो हमारेको अनुभव है। तैसे ही
अज्ञानरूपी तृष्णामें बहुत पड़े हुए दुःखी
मनुष्योंको सत्य उपदेशका बोध पानेसे
हमारे अन्दरके मैं-ममताके बन्धन छूट
जाय, तो सुख हो जाता है ॥

व्याख्या— धूपकी विशेषताके मारे उष्णता बढ़के प्यास बहुत लगने लगती है। कण्ठ, ओठ, मुख भी सूख जाता है। तहाँ ऐसे अवसरपर यदि शीतल जलाशय मिल जाय, तो जलको देखकर, पीकर, स्नानादि करके सुखी हो जाता है। हमारेको भी कईबार गर्मीमें जलाशय पानेसे सुख हुआ है। इसीसे इस बातका हमको अनुभव है। तैसे कुमार्ग, कुकर्ममें पड़के सन्तप्त हुएको सत्सङ्गका लगाव लग गया, तो वह कुसङ्गसे होनेवाले दुःखोंसे छूटकर सुखी हो जाता है, यह हमारा निश्चय है ॥५१८॥

१०. जाहि शीत अमल अधिकारी ❀ तहाँ अनल जीव करत सुखारी ॥ ५१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— हे सन्तो !

जाहि शीत = जिस किसीको नशाके सरीखी
अमल = शीत प्रकोप या ठण्ढी ज्यादा
अधिकारी = वा अधिक ही बढ़ जावे या
शीतलता विशेष बढ़ गयी होवे, उस अवसरमें
फिर—
तहाँ अनल जीव = तहाँपर उन जीवोंको अग्नि
करत सुखारी = तापना, सेकना करनेसे
गर्मी बढ़ानेसे सुख होता है, ऐसे वही अग्नि
सुखदायी होती है। तैसे विशेष अज्ञानमें
जकड़े हुएको ज्ञान मिल जानेपर ही सुख
मिल सकता है, अन्यथा नहीं मिलता है ॥

व्याख्या— जिसको ज्यादा शीत वा ठण्ढी लग गयी रहती है, और कोई-कोईको तो नशाके सरीखी विशेष शीत लग जानेसे बेहोश हो जाते हैं। तहाँपर यदि उन्होंको अग्नि मिल गयी, तो फिर शीत मिटायके सुखी हो जाते हैं। शीत व्यापे हुए जीवोंको अग्नि ही सुख देनेवाली हो जाती है। इसी तरहसे यदि अज्ञानी मूढ़लोग भी ज्ञान बोधको पा जायँ, तो वे सुखी हो जाते हैं ॥ ५१९ ॥

११. जो जेहि समय वस्तु बलदाई ❀ तेहि संयोग कष्ट अधिकाई ॥ ५२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— हे सन्तो !

जो जेहि समय वस्तु = जो वस्तु जिस समयमें बल वा
बलदाई = शक्ति देनेवाली होती है, उसी
समयमें वह सम्बन्ध पायके
प्रचण्ड तेज हो जाती है, जैसे—
तेहि संयोग = गर्मी समयमें उष्णता वा अङ्गार-
कष्ट = का ही संयोग मिलनेपर उस-
अधिकाई = से प्राणीको ज्यादा ही कष्ट
हो जाता है। तथा ठण्ढे समयमें शीत जल,
ठण्ढी हवा और बर्फानी देश अधिक दुःख
देनेवाला होता है। तैसे ही अज्ञानीको
अज्ञान-भ्रम हो और भी लाद देनेसे वह सुखी
कभी हो नहीं सकेगा; किन्तु, ज्यादा दुःखी
ही होगा ॥

व्याख्या— जो वस्तु जिस समय प्रचण्ड बलवाली होती है; उसीके समान दूसरी आकर यदि वहाँ संयोग हुआ, तो फिर ज्यादा ही कष्टकारक होती है। जैसे कि, गर्मीके समयमें आगकी ज्वालाके निकट रहना, तथा ठण्ढीके समय बरफके बीचमें और नदीके ठण्ढे पानीमें वा खुली हवामें रहना, यह संयोग सम्बन्ध पाकर जीवोंको अधिक कष्ट-क्लेश हो जाता है। तैसे ही एक तो जीव अज्ञानमें दुःखी, पीड़ित हैं, फिर उन्होंको जप, तप, व्रत, उपवास, पञ्चाग्नि तापना, जलशयन करना इत्यादि करनेमें लगाकर अधिक-अधिक ही दुःख दे रहे हैं। अज्ञान करके जीव जहाँ-तहाँ दुःख ही विशेष पा रहे हैं ॥५२०॥

१२. एक समय है काल स्वरूपा ❀ तेहि वश कीन्ह कल्याण अनूपा ॥ ५२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— हे सन्तो !

एक समय = है काल = स्वरूपा = } एक तो शुभ लग्न-मुहूर्त, शुभ घड़ी, सिद्धि मानना ही काल-कल्पनाके स्वरूप होनेसे मिथ्या है। फिर जिस ईश्वरादिकी महिमाका वर्णन बहुत ही किये हो, उसके स्वरूपका कहीं ठिकाना ही नहीं है, अतः सो भी कल्पना ही ठहरी।

और दूसरा दीक्षामन्त्ररूप उपदेशको—

तेहि वश = कीन्ह कल्याण = अनूपा = } महान् कल्याण करनेवाला, उपमासे रहित मुक्ति सुख दाता बतलाके भी फिर लग्न मुहूर्त, समयके वश अधीनकर दिये हो, अब कहो, भला! कल्याण तो भी कैसे-किसका होवे? दोनों परस्पर विरोधी बातमें कल्पना एक ही हुई; इससे कल्याण नहीं होगा॥

व्याख्या— एक तो प्रथम राम-नाम आदि उपदेशकी महिमा बढ़ाके उसमें खूब प्रतापरूप बल वर्णन किये थे। दूसरा काल, समय, मुहूर्त, शुभ घड़ी, नक्षत्र आदिका बल कथन किये। सो उसी समयके अधीनमें उपदेशको रखकर नर जीवोंको वशकर उपमासे रहित अनूपम ईश्वर प्राप्तिसे कल्याण वा मुक्ति होनेको बतलाये। यह दोनों तरफसे कल्पना-भ्रमकी आग लगाकर मनुष्योंके बुद्धि-विचारको भस्म कर डाले। तो कहो भला! अब कल्याण कहाँसे, कैसे होवे? क्योंकि, एक तो शुभ घड़ी, शुभ समय, लग्न-मुहूर्त ही कल्पनाके स्वरूप हैं। दूसरा कर्त्ता ईश्वर भी भ्रमरूप मिथ्या है। उसी दोनोंके अधीनमें मिथ्या मन्त्र जपादिसे कल्याण मानना महा धोखा ही ठहरता है। कहिये! ऐसे मिथ्या वाणी जालोंसे कैसे कल्याण होगा?॥ ५२१॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१३. वैद्य कहै तुम बाद बखानो * हम वैदकके विधिवत मानो॥ ५२२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जिज्ञासुके यथार्थ वचन सुनके नाराज होके गुरुवालोग कहने लगे—

वैद्य कहै तुम = बाद बखानो = } तब भ्रमिक गुरुवा कहने लगे कि, अरे अनाड़ी चेलो! तुम-लोग तो वाद-विवाद, तकरार-झगड़ाकी बात बढ़ायके कहने लगे। तुम क्या बकवाद करते हो? नास्तिकताकी बात करते हो!

हम वैदकके = विधिवत = मानो = } हम तो वेद-वेदान्त शास्त्रोंमें लिखी हुई बातको ही विधि पूर्वक प्रामाणिक सत्य करके मानते हैं। जैसा हम कहते हैं, तैसा तुम लोग भी मान लो। तब तो भलाई होगी, नहीं तो ठीक नहीं होगा॥

व्याख्या— सत्सङ्गियोंका निर्णय वचन सुनकर गुरुवालोग गुस्सायके बोले, कहने लगे कि, अरे! तुमलोग तो हमसे वाद-विवाद करते हो! विरोधकी बात बखान करते हो। गुरुमें श्रद्धा ठिकाना तो दूर रहा, ईश्वर, वेद तकमें तुमलोग अविश्वास करते हो! इसप्रकार तो तुमलोग नास्तिक हो आओगे, और हम तो विधि पूर्वक वेद-शास्त्रोंमें लिखी हुई बातको ही सत्य प्रामाणिक करके मानते हैं; हमहीं क्या, बड़े-बड़े पण्डितलोग भी उसे मानते हैं॥ ५२२॥

१४. तुम्हरे बुद्धिका क्या परवाना? * वैद्य कहै सोई परधाना॥ ५२३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोग कह रहे हैं—

तुम्हरे बुद्धिका = क्या परवाना? = } अरे अज्ञानी मनुष्यो! तुम तो अल्पज्ञ होनेसे मायोपाधिमें पड़े हो, फिर तुम्हारी छोटी बुद्धिका प्रमाण ही क्या हो सकता है? तुम्हारी बात नहीं मानी जाती है, जिसमें फिर ऐसी विरुद्ध बात करते हो, सो तो सर्वथा नहीं मानी जायगी।

वैद्य कहै = सोई = परधाना = } वेद-शास्त्रोंकी बात ज्ञानी, पण्डित, गुरु जो करते हैं, वे जो उपदेश देते हैं, सोई मुख्य प्रामाणिकरूपसे प्रधान मानने योग्य है। क्योंकि, सर्वज्ञ ईश्वर तथा ऋषियोंसे वेद और शास्त्र बना है; इसीसे वह माननीय है॥

व्याख्या— तुम्हारी बुद्धि-समझ ही क्या है ? अल्पज्ञ, अल्पमति हो ! इससे तुम्हारी तुच्छ बुद्धिका क्या प्रमाण होगा ? कुछ नहीं। जो योगी, ज्ञानी, पण्डित गुरु, वेद प्रमाणसे कहते हैं, सोई बात प्रधान है, वही मुख्य माननीय बात प्रमाण है ॥ ५२३ ॥

१५. प्रथम मुचलिका लिखो प्रचारी ❀ पाँचों औषध करो विचारी ॥ ५२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कह रहे हैं—

प्रथम = मुचलिका = लिखो प्रचारी = } यदि अपना हित वा भलाई कल्याण चाहते हो, तो हे शिष्यो ! तुम लोग सर्व प्रथम इकरारनामा या मुख्त्यार पत्र लिखके उसमें सही और गवाही कर दो; और इसबातको सब जगत्में जाहिर या प्रचार करो कि, हमने मुचलिका-पत्र लिख दिया है।

तत्पश्चात्—

पाँचों औषध = करो विचारी = } कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान- यह पाँचों औषधिरूप उपदेशका विचार पूर्वक सेवन, साधन करो, ऐसे ही अभ्यास करते रहो; इससे तो तुम्हारा भला होगा ॥

व्याख्या— हे मनुष्यो ! यदि तुमलोग अपना कल्याण चाहते हो, तो सबसे पहले इकरारनामा सोई मुचलिका पत्र लिख दो। फिर उसमें हस्ताक्षररूप सही-गवाही करके संसारमें हम इनके शिष्य बन गये, यह बात प्रचार कर दो। फिर पाँचों औषधिका विचार पूर्वक सेवन करो। यानी कर्म, उपासना आदिका साधन-विचार करते रहो ॥ ५२४ ॥

१६. रोग दूर होयकी नाहीं ❀ और औषधिके ढिग नहिं जाहीं ॥ ५२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कह रहे हैं—

रोग दूर = होयकी = नाहीं = } यह प्रतिज्ञा-पत्रमें लिखो कि, आपके उपदेशसे मेरा जन्म-मरणादि रोग दूर होके छूटे अथवा न छूटे, और—

और औषधि- = के ढिग = नहिं जाहीं = } तो भी मैं आपकी शरणमें ही लगा रहूँगा। आपके उपदेश-को छोड़कर मैं और किसीके पास वा शरणमें उपदेश शिक्षारूपी औषधि लेनेको नहीं जाऊँगा ॥

व्याख्या— शर्त यह लिखो कि, यह पाँचों मार्गोंकी साधना द्वारा हमारा जन्म-मरणादिका रोग दूर हो जावे तो भला ! और दूर न होवे, तो कोई पर्वाह नहीं। रोग छूटे या न छूटे, तो भी और किसी वैद्यरूप गुरु-सत्सङ्गके पास (नजदीक)जाके उनके उपदेशरूप औषधि नहीं लेंगे। यानी उन्होंके समीप ही नहीं जायेंगे ॥ ५२५ ॥

१७. जो जाऊँ तो कैद मोहिं कीजे ❀ नाना भाँतिके शासत दीजे ॥ ५२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग शिष्यसे कह रहे हैं—

जो जाऊँ तो = कैद मोहिं = कीजे = } यदि मैं इस इकरारनामाके विरुद्ध किसी दूसरे मतवालेके पास दूसरेकी शरणमें भूलकर भी गया या जाऊँगा, तो आप मुझे पकड़कर कैद कर लेना, जेलमें डाल देना। तथा—

नाना भाँतिके = शासत दीजे = } नाना प्रकारके या भाँति-भाँतिके दण्ड, राजदण्ड, कर्मदण्ड, अनेक तरहके दुःख, भोगा दीजिये। मैं महा अपराधी माना जाऊँगा। इकरारनामामें यह सब शर्त लिखाके दस्तखत कर दो। और हमारे चेले बनकर भगवान्की भक्ति करनेमें प्रेम लगाओ। तब तुम्हारा बेड़ा पार हो जायगा ॥

व्याख्या— यदि मैं कभी किसी निर्णय उपदेशी पारखी गुरुके पास या शरणमें जाऊँ, तो मुझको गिरफ्तार करके कैद कर लीजिये। फिर जेलमें डालकर मनमाने दण्ड, कठोर दुःख नाना भाँतिसे शासत दे दीजिये ! यह मुझको कबूल है, ऐसा मुचलिका लिखाके सही करके अर्पण करो, तो

तुम्हारा मन वश होगा ॥ ५२६ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१८. सुनतहि परजा उठै चिहाई * दूसर और वैद्यको भाई ! ॥ ५२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसा गुरुवालोगोंकी बात सुनकर शिष्यलोग सब सशङ्क हो उठे, और कहने लगे—

सुनतहि = जीवोंको भ्रम चक्र घेरामें डालने-
परजा उठै = वाली ऐसी गुरुवालोगोंकी
चिहाई = वाणी सुनते ही विचारवान् शिष्यवर्ग चमकर चिल्ला उठे, घबड़ा गये, तब कहने लगे कि, हमको तो अभी-तक मालूम नहीं था—

दूसर और = हे भाई ! दूसरा और भी कोई
वैद्यको = सत्य उपदेशक सद्गुरु वैद्य हैं
भाई ! = क्या ? वे कौन होंगे ? कहाँ होंगे ? अभी इन्हीं गुरुजीके कहनेसे सन्देह उत्पन्न हो गया, तो कहो गुरुजी ! और दूसरा वैद्य कौन है ? सो बता दीजिये ! ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंके फँसानेकी जबर्दस्त वाणी सुन करके परजारूप शिष्यलोग चमककर घबड़ाकर चिल्ला उठे। आपसमें कहने लगे कि, हे भाई ! और भी दूसरा कोई सद्गुरु वैद्य हैं, यह बात इन्हीं गुरुजीके कहनेसे पता लगता है। सो वे कहाँ रहते होंगे ? तुम्हें मालूम है क्या ? जब मालूम न हुआ, तब उन्हींसे पूछे कि- और वैद्य कौन है ? सो बताइये ? ॥ ५२७ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१९. कहै वैद्य कोई दूसर नाहीं * विधिवत वैदक सब विधि चाही ॥ ५२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसा शिष्योंका प्रश्न सुनकर गुरुवालोग उत्तर देते हैं—

कहै वैद्य = योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवालोग
कोई दूसर = कहते हैं कि, हमें छोड़कर इस
नाहीं = संसाररूप शहरमें सच्चा वैद्यरूप गुरु और कोई दूसरे नहीं हैं। जो हैं सो तो कच्चे अप्रमाणिक हैं। उनके फन्देमें न पड़ो, यही कहनेका सार है।

विधिवत = सब प्रकारसे वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता विधिपूर्वक—

वैदक = वेद प्रमाणसे चलने-वाले
सब विधि = पण्डितको गुरु करना चाहिये।
चाही = यही मतलब कहनेका था, सो तुमने नहीं समझा। यदि तुमको भुक्ति-मुक्ति चाहिये, तो सब प्रकारसे विधि पूर्वक वेद प्रमाणके मार्गसे ही चलो, उसी प्रकारसे साधना करो ॥

व्याख्या— शिष्योंकी शङ्का सुनकर उनको भुलाय-भ्रमायके गुरुवालोग कहते भये कि, हे भक्तो ! हम मुक्ति दिलानेवालेके ठेकेदार रजिष्ट्री कराये हुए सच्चे वैद्यके ठिकानेपर हैं। ऐसे वैद्यरूप गुरु तो और दूसरे कोई भी नहीं हैं। परन्तु, कच्चे अनाड़ी वैद्य पन्सारीके समान मिलते हैं। उनके पास न जानेके लिये ही तुम लोगोंको चेतावनी देकर मैंने बताया है। और हमारे समान सब प्रकारसे वेद-वेदान्त शास्त्रोंके ज्ञाता, प्रकाण्ड पण्डित विधिवत् वैदिक मार्गमें चलनेवाले ऐसे तो दूसरे कोई नहीं हैं। यदि तुम्हें ईश्वर प्राप्ति, स्वर्गादि प्राप्ति और जगत्में सुख प्राप्ति आदिकी चाहना हो, तो विधिवत् वैदिक मार्गको सब विधिसे निष्ठा रखकर साधना पालन करना चाहिये, सो अभ्यास करते रहो। यही पहले भी हमारे कहनेका मतलब था, सो जानो ! ॥ ५२८ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

२०. महिमा औषधके बहुतेरा * तो काहे लिखो मुचलिका मेरा ? ॥ ५२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब जिज्ञासु शिष्यने कहा कि—

महिमा औषध- के बहुतेरा = हे वैद्य गुरुजी ! आपने तो पहले औषधिरूप उपदेश, दीक्षा-मन्त्र, राम-नामकी महिमा बहुतेरे वर्णन करके सुनाये थे। परन्तु, अब उस महिमाको गायब क्यों किये ? यदि राम-नाम बूटीकी महिमा सच्ची ही है, तो काहे लिखो = तब तो फिर इकरारनामा मुचलिका मेरा = मुझसे क्यों लिखाते हो ? और मुचलिका लिखाकर मेरा हस्ताक्षर क्यों चाहते हो ? धोखा देनेकी मनसा है क्या ? क्या बात है ? सो बतलाइये ! ॥

व्याख्या— चतुर शिष्यने कहा—वैद्यजी ! आपने पहले शुरूमें तो औषधिरूपी उपदेश दीक्षाकी महिमा-विशेषता तो बहुतेरा वर्णन किये, गुण गाकर, सुनाये थे। तो फिर उस महात्म्यको दबाकर अब मुझसे मुचलिका वा इकरारनामा क्यों लिखवाते हो ? सही-गवाही क्यों चाहते हो ? यह बात तो जहाँ कोई महिमा न हो, तहाँ अविश्वाससे किया जाता है; फिर यह धोखेकी बात आप कैसे कह रहे हो ? सो कहिये ? ॥ ५२९ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

२१. वैद्य कहै हुज्जत मत करहू * वैदक कहै सोई निर्बहहू ॥ ५३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब गुरुवालोग क्रोधित होके कहने लगे— अरे मूर्ख शिष्यो ! सुनो—

वैद्य कहै = वञ्चक गुरुवालोग कहते हैं, हे हुज्जत = शिष्य ! तुम मुझसे हठ, तकरार मत करहू = या हुज्जत मत करो ! कैसा भी है, तो भी तुम अज्ञानी तुच्छ बुद्धिवाला है; वेद-शास्त्रपर आक्षेप मत् करो।

वैदक कहै = बड़े-बड़े ऋषि-मुनि वेद प्रमाण- सोई = से निर्वाह करके परमपदको निर्बहहू = पहुँचे। इसकारण जो वेद-वेदान्तमें कहा है, जैसा हमलोग तुझे कहते हैं, उसी तरह उपदेश पालनका निर्वाह करो, तो तुम भी परमपद मुक्तिको पा जाओगे; सो जानो ॥

व्याख्या— तब ठग गुरुवालोगोंने ऐसा कहा कि, अरे शिष्यो ! तुम हमसे नाहकमें क्यों हुज्जत तकरार, वाद-विवाद करते हो ? हठ क्यों पकड़ते हो ? ऐसा मत् करो ! तुम्हारी तुच्छ बुद्धि है, इसीलिये तुम ऐसा कर रहे हो। विचार करो, ब्रह्मादिसे लेकर बड़े-बड़े प्रतापी ऋषि-मुनि, महर्षि, सिद्ध, तपस्वी अनेकों हो गये। उन्होंने भी वेद प्रमाणसे ही अपना जीवन निर्वाह किया था; उसी रास्तेमें तुमलोग भी चलो। जैसा वेद-शास्त्रोंमें लिखा है, और गुरुलोग कहते हैं, सोई बातको पालन करके निर्वाह कर लो, इसीसे तुमलोग संसारमें सुख पाकर फिर मुक्ति पाओगे, ऐसा जानो ॥५३०॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे यथार्थ निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

२२. बहु विधि कौल करार दृढ़ाई * फन्दा वैदक गया जहँड़ाई ॥ ५३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकारसे गुरुवालोगोंने संसारी अबोध नरजीवोंको भय दिखाकर और लालच दे-दे करके भ्रमाये हैं। तहाँ—

बहु विधि = सो बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक कौल करार = नर जीवोंको करार या प्रतिज्ञा दृढ़ाई = शर्त कबूल कराकर तब भ्रम कल्पना गुरुवालोगोंने दृढ़ाय दिये या निश्चय कराय दिये।

फन्दा वैदक = अतएव बहुतेक मनुष्य वैदिक वा वेदके फन्दोंमें—

गया जहँड़ाई = शास्त्रोंके फन्दोंमें तथा पुराणोंके फन्दोंमें और कुरानोंके फन्दोंमें एवं बाइबिल आदि वाणी जालोंके महा फन्दोंमें अरुझकर जड़ाध्यासी हो गये, चौरासी योनियोंमें जाके पड़ गये ॥

व्याख्या— यहाँ ग्रन्थकर्त्ता अपनी तरफसे कहते हैं; बहुत प्रकारसे करारको कबूल करा करके वाणी कल्पना दृढ़ा दिये। इसप्रकार वेदादि वाणीके जाल फन्दाओंमें गुरुवालोगोंके द्वारा मनुष्य

जहँड़ा गये, वा फँस गये; बिना पारख कोई उससे छूट नहीं पा रहे हैं ॥ ५३१ ॥

२३. कोई दिन बिते लगन बहु सोधा * चौका बैठि नाम एक बोधा ॥ ५३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कोई दिन = तत्पश्चात् कुछ दिन व्यतीत
बिते लगन = होनेके उपरान्त लग्न, मुहूर्त,
बहु सोधा = नक्षत्र, दिन, योग, बार इत्यादि-
का बहुत-बहुत शोध लगाके शिष्य बनानेके लिये नाम राशिके अनुसार अमृतसिद्धि आदि एक अच्छा योग ठहरा लिये। फिर—

चौका बैठि नाम = पीढ़ा बिछाकर उसपर
एक बोधा = शिष्यको बैठायके एक कपोल कल्पित नाम मन्त्र-दीक्षाका उपदेश बोध करने लगे; अपने चौकामें जाके बैठ गये॥

व्याख्या— कुछ दिन बीतनेपर बहुत प्रकारसे लग्न-मुहूर्त शोधके कोई एक दिन सिद्धि योग ठहराये। गुरुवालोग चौकामें आके बैठकर चेलोंको भी पीढ़ेपर बैठाके कोई एक नाम मन्त्र उसके कानमें सुना दिये, वही बोध किये ॥ ५३२ ॥

२४. शङ्खन भेरी झाँझ बजाई * फुस फुस कान लगे गुरु आई ॥ ५३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

शङ्खन भेरी = जब गुरुवालोग किसीको
झाँझ बजाई = चेला बनानेको चौकामें जाके बैठे, तब उधर मण्डलीलोग उत्सव मनायके शङ्ख, भेरी, दुन्दुभी, झाँझ, सहनाई, मृदङ्ग, खँजड़ी, मञ्जीरा आदि बाजे खूब ताल मिलाके बजाने लगे।
तब गुरुवा आके चेलेको पास बैठाके—

फुस फुस = मुण्डपर कपड़ा दोशाला
कान लगे = आदिसे ढाँकके—"ॐ रामाय
गुरु आई = नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ नमोनारायणाय, ॐ, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, फट् स्वाहा" इत्यादि कोई एक मन्त्र मुखसे बोलके चेले लोगोंके कानमें मुँह ले जाके तब "फुस् फुस् फुस्" करके तीन फूँक मार दिये, और पीठ ठोक दिये; बस! काम पूरा हो गया॥

व्याख्या— मन्त्र देनेके समय उत्सव मनाके शङ्ख, नफीरी, झाँझ वगैरह बाजे बजाने लगाये। फिर गुरुवा चेलेके पास आयके मुण्डपर कपड़ा ढाँकके फुस-फुसायके "ॐ रामायनमः, ॐ नमोभगवते वासुदेवाय" आदि तीन फूँक फुस्, फुस्, फुस्, कानमें फुँसकार मार दिये। इसतरहसे चेला बनाके उन्हें पशुवत् अपने अधीन कर लिये ॥ ५३३ ॥

२५. कहा वैद्य गुरु मन्तर आही * निशि दिन जपो कहो मति काही ॥ ५३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कहा वैद्य = तब फिर वैद्यरूप गुरुने कहा
गुरु मन्तर = कि, हे चेला! यह हमारा
आही = मुख्य गुप्त गुरुमन्त्र या दीक्षा-मन्त्र है। तुम्हारे बड़े भाग्य जागे, जो यह दीक्षा-मन्त्र आज तुम्हें मिला है। और—

निशि दिन = अब तुम इसी मन्त्रको रात-
जपो कहो = दिन जपो, भगवान्का ध्यान
मति काही = किया करो। परन्तु, यह गुरु-मन्त्र कभी किसीको नहीं कहना। यदि कहोगे, तो तुम्हारा नाश होगा, सो ध्यानमें रखना॥

व्याख्या— तब गुरुवाने कहा— यह हमारा महान् गुप्त "गुरु मन्त्र" है। रात-दिन मन लगाकर इसे जपा करो, इससे सिद्धि मिलेगी; और किसीसे यह मन्त्र नहीं कहना। इसे कहनेपर तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा, सो जानो ॥ ५३४ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

२६. पूछै शिष्य गुरुजी! कहिये * महिमा बहुत एकौ नहिं लहिये ॥ ५३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! उपदेश लेनेके बाद शिष्यने इसप्रकार पूछा-

पूछै शिष्य = गुरुजी ! = कहिये = } दीक्षा उपदेश प्राप्त उन शिष्योंमेंसे एक शिष्यने पूछा कि, हे गुरुजी ! हे वैद्यजी ! यह बात तो हमें समझाके कहिये, भेद बताइये कि-

महिमा = दीक्षाकी महिमा तो आपने—

बहुत एकौ = नहिं लहिये = } बहुत-बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहा था, परमात्मा मिलनेकी, सब इच्छा पूर्ण होनेकी, चार फल पानेकी, उनमेंसे एक भी महिमा हमें दिखाई नहीं दी। एक भी फल नहीं मिला, सो इसका क्या कारण है ? ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंसे दीक्षा लेनेके कुछ दिन पश्चात् एक शिष्यने जाकर पूछा कि, हे गुरुजी ! आप यह बतलाकर कहिये ! जो बहुत महिमा दीक्षा-मन्त्र लेनेकी आपने पहले कहा था, उसमेंसे एक भी महिमा आजतक हमें तो दिखाई नहीं दी, और एक फल भी नहीं मिला, सो ऐसा क्यों हुआ ? सो समझाइये ॥ ५३५ ॥

२७. कौन जड़ीको नाम यह आही * ठौर ठिकाना देहु बताही ॥ ५३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य पूछता है—

कौन जड़ीको = नाम यह = आही = } यहाँ यह जड़ीरूप मन्त्र किस देवताका है ? उस देवताका मुख्य नाम क्या है ? किस प्रकारसे वह मिलेगा ? इस नामका अर्थ क्या है ?

ठौर ठिकाना = देहु बताई = } इससे होनेवाली सिद्धिका ठहराव और गति-मुक्तिका ठौर-ठिकाना या होनेवाली स्थिति- यह सब बातें कृपा करके आप मुझे बता दीजिये वा समझा दीजिये ? ॥

व्याख्या— अर्थात् यह जड़ी कौन है ? इसका नाम क्या है ? यानी इष्ट देवता कौन है ? उनका नाम क्या है ? वे कहाँ पर रहते हैं ? कैसे मिलेंगे ? इन सब बातोंका खुलासा तथा ठौर-ठिकाना या निजपदकी स्थिति दया करके बतला दीजिये ? ॥ ५३६ ॥

॥ ❀ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

२८. सो है परम वैद्यको नामा * जाते होय तुम्हारो कामा ॥ ५३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब गुरुवालोग इसतरहसे कहने लगे—

सो है परम = वैद्यको नामा = } हे शिष्य ! हमने जो बात तुम्हें बताया है, सो परमतत्त्व-परमात्माका सच्चा 'राम' ऐसा नाम है। वह राम सर्वव्यापक सबमें रमा हुआ है, ऐसा जानो।

जाते होय = तुम्हारो = कामा = } जिसके जाप, स्मरण, ध्यान, धारणा करनेसे जिससे सहज ही तुम्हारा कल्याणका कार्य सिद्ध हो जायगा, यह निश्चय करके जान लो। अर्थात् परमात्माका नाम स्मरण करनेसे ही तुम्हारा सब कार्य सिद्ध हो जायगा, सो जानो॥

व्याख्या— शिष्यकी जिज्ञासा देखके गुरुवालोग भ्रमायके कहते हैं कि, हे शिष्य ! सुनो, 'राम-नाम' जो है, सो भव व्याधि विनाशक परम वैद्य परमात्माका खास सच्चा नाम है। जिसके जाप, स्मरण करते रहनेसे तुम्हारा सब काम और कल्याण अवश्य हो जायगा। इसमें कोई सन्देह मत् करो ॥ ५३७ ॥

२९. वैद्यराज हम आहि तुम्हारो * पशु पक्षी जत रोग विचारो ॥ ५३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन है—

वैद्यराज = हम आहि = तुम्हारो = } हम तो सब वैद्योंके राजा हैं, तुम्हारे बाप, दादा, परदादाके जमानेसे ही कुलगुरु हैं। हम

तुम्हारे भी गुरु हैं। हमारी ही दयासे तुम्हारी भलाई होनी है। और—

पशु पक्षी जत = } हम पशु-पक्षीसे लेके जगत्के
रोग विचारो = } सब जीवोंके रोगोंका विचार करते हैं; और हमारे 'राम-नाम' बूटी पानेसे सभीके जन्मृति रोगका नाश हो जाता है; फिर तुम तो मनुष्य हो, तुम्हारी मुक्ति होनेमें क्या सन्देह है ? कुछ भी नहीं है ॥

व्याख्या— हम तो तुम्हारे वंश परम्पराके कुलगुरु पुरोहित हैं। हमारे प्रतापसे तुम्हारे बाप-दादा स्वर्ग पहुँच गये। सब वैद्योंसे बढ़कर वैद्योंके राजा हम तुम्हारे गुरु महाराज हैं। हमारे प्रतापको तुम अभी नहीं जानते हो। सब प्राणीके रोगोंको हम जानते हैं। सो पशु-पक्षी आदि प्राणी भी हमारे पास आयके रामका नाम सुनते हैं, तो वे सब मुक्त हो जाते हैं। फिर तुम तो मनुष्य हो, राम-मन्त्रके प्रतापसे तुम्हारी मुक्ति तो सहज ही हो जायगी; ऐसा जानकर तुम निश्चिन्त हो बेफिक्र रहो ॥ ५३८ ॥

३०. हमका वैद्यई पूजा पूजो ❀ परम वैद्यको ध्यानमें खोजो ॥ ५३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

हमका वैद्यई = } ऐसे लाभ तुम्हें करा दिया,
पूजा पूजो = } इससे गुरु-दक्षिणामें हमको तन, मन, धनादि चढ़ाके खूब पूजा-सेवा करो, उपकार मानो, हमारी पूजा करो— परम वैद्यको = } और परमतत्त्व-परमात्माको
ध्यानमें खोजो = } ध्यानमें एकाग्र लक्ष्य लगायके खोजो, तलाश करो, तो कभी-न-कभी दर्शन अवश्य ही होगा ॥

व्याख्या— हमने तुम्हारा इतना बड़ा उपकार कर दिया है, इसवास्ते हमको तन, मन, धनादि सर्वस्व गुरु-दक्षिणामें भेंट देके अच्छी तरहसे पूजा करो, अर्पण करो। पूजा-पूजके हमें सन्तुष्ट करो। फिर ध्यान लगायके ध्यानमें ही परमात्माको खोज लो! मन निर्मल होनेपर परमेश्वरका दर्शन हो जायगा ॥ ५३९ ॥

३१. तीरथ व्रत जप तप कीजे ❀ नाना भाँति अनुपायन लीजे ॥ ५४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

तीरथ व्रत = } गङ्गा-यमुनादि तीर्थोंका
जप तप कीजे = } स्नान, परिक्रमा, एकादशी आदिका व्रत, उपवास, मन्त्रोंका जाप, तपस्या इत्यादि साधना कर लीजिये! नाना भाँति = } पुरश्चरण, प्रायश्चित, अनुष्ठान,
अनुपायन = } ऐसे नाना तरहसे वा अनेक
लीजे = } भाँतिसे कर्ममार्ग वा भक्तिमार्गमें चलना, यही पत्थ्य-अनुपान ग्रहण कर लीजिये, तो निरोगरूप मुक्ति अवश्य होगी ॥

व्याख्या— चार धाम-चौंसठ तीर्थोंका दर्शन, पर्शन, परिक्रमा करो। नित्य पूजा, पाठ, जाप करो, व्रत-उपवास रक्खा करो। कठिन-कठिन तपस्या किया करो। इसप्रकार नाना भाँतिके कर्म, उपासनादि साधना करना यही अनुपान, पत्थ्यको ग्रहण कर लेना। वेद विरुद्ध मार्गोंसे परहेज रखना; तब तो निश्चयसे शीघ्र ही भगवान् मिल जायेंगे ॥ ५४० ॥

३२. श्वासा सोहं करो बिलछानी ❀ ज्योति स्वरूप अनहद बानी ॥ ५४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

श्वासा सोहं = } मनको श्वासके साथ सोहं
करो बिलछानी = } शब्दमें जोड़के एकाग्र लक्ष्य लगाओ। ब्रह्म-मायाकी छान-बीन करके सोहं ब्रह्ममें सुरति लय कर दो। ज्योति स्वरूप = } तब तुम्हें ज्योतिस्वरूप
अनहद बानी = } परमात्माका साक्षात् दर्शन होगा; और दश अनहद नाद-ध्वनि, शब्द ब्रह्माण्डमें स्वयं सुनाई देगा; तब तो तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥

व्याख्या— अथवा उन मार्गोंकी साधनाएँ तुमसे न बने, तो योग मार्गको ही पकड़के चलो। शरीरमें छान-बीन करके श्वास वायुमें मनको लगाकर सोहं शब्दको एक लक्ष्यसे जाप करो।

ऐसे करते-करते अन्तःकरण शुद्ध होनेपर भीतर ज्योति स्वरूपमें परमात्माका दर्शन होगा। तथा दशनाद अनहद बाजोंकी मधुर-मधुर ध्वनि सुनाई देगी; उसमें मगन होके तुम परमपदको पा जाओगे ॥ ५४१ ॥

३३. श्वासा उलटि निःअक्षर ध्यावो * मूल ठिकाना सूर्ति समावो ॥ ५४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब और भी गुरुवालोगोंके कथन दर्शा रहे हैं; योगी गुरुवा कहता है-

श्वासा उलटि = जो श्वासरूप प्राण सीधे चल रहा है। उस श्वास वायुको उलटायके मस्तकमें चढ़ायकर फिर अक्षरातीत निःअक्षर, निरञ्जन, परमात्माका ध्यान करो, तो ज्योतिस्वरूपमें तुम्हें वह दिखाई देगा।

मूल ठिकाना = उसके लिये सुरति या लक्ष्य वा वृत्तिको नाभि-मूलमें या मस्तकरूप ब्रह्माण्डके ठिकानेमें लगाके लक्ष्यको लय करो, तो अलक्ष्य ब्रह्म तुम्हें मिल जायगा ॥

व्याख्या— योगी गुरुवालोग कहते हैं— हे भक्तो! चाहे तो तुम योगमार्गमें आके साधना करो। तहाँ श्वासको उलटके ब्रह्माण्डमें चढ़ाओ; मूल ठिकाना नाभि या मस्तकमें सुरतिरूप लक्ष्यको समाके लय कर देना और निःअक्षर-ज्योति परमात्माका ध्यान करते रहना ॥ ५४२ ॥

३४. पाँचों मुद्रा करो विचारा * योग अष्टाङ्ग करो पसारा ॥ ५४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

पाँचों मुद्रा = खेचरी, भूचरी, चाँचरी, अगोचरी एवं सर्वसाक्षिणी, ये पाँच बहिर्मुद्राको लगाके आत्मतत्त्वका ही विचार करते रहो।

करो विचारा =

योग अष्टाङ्ग = आठ अङ्गवाला योग है, सो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि संयुक्त साधना साधो; और हठ योग, लय, तारक, सांख्य, लम्बिका, अमनस्क, राज, कुण्डलीयोग, ऐसे सब आठ भाग योग मार्गका है। सो फैले हुए अष्टाङ्ग योगोंकी साधनाएँ खूब सावधानीसे किया करो; तो तुम्हें सब अष्ट सिद्धि मिल जायगी ॥

करो पसारा =

व्याख्या— खेचरी, भूचरी आदि पाँच बहिर्मुद्राका विचार करो। अथवा सन्मुखी, उन्मीलनी, शाम्भवी, आत्मभाविनी और पूर्ण बोधिनी, इन पाँचो मुद्राका विचार करो, तथा अष्टाङ्ग योगोंके जितने पसारा हैं, उन सबोंको सीखके योगमें पारङ्गत हो जाओ ॥ ५४३ ॥

३५. रकार अकार रहो लौलाई * वोहं सोहं जो मन भाई ॥ ५४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

रकार अकार = 'राम' शब्दके नाम स्मरण करनेमें दिन-रात प्रेम बढ़ाते हुए लौ लगाये रहो। रमैया राम परमात्मा सब जगह घट-घटमें रम रहा है। साकार-निराकार स्वरूप ऐसे भगवान् हैं, उन्हींमें प्रेम लगायके मस्त पड़े रहो।

रहो लौ लाई =

ओहं सोहं = अथवा हे भाई! प्राण प्रवाहमें ही श्वास-उच्छ्वासके बीचमें 'वोऽहं, सोऽहं, राम' यह तीनोंमें जो तुम्हें मनमें भावे वा अच्छा लगै, जिसमें भावना बढ़ै, उसीको मन लगायके पकड़ो, वही अजपा जाप करते रहो ॥

जो मन भाई =

व्याख्या— अथवा 'राम' शब्दके नाम स्मरणमें लौ लगाके रहो। वोहं, सोहं यही अजपा जापको जपते रहो; इनमेंसे जो तुम्हारे मनमें भावै सो करो ॥ ५४४ ॥

३६. प्राणायाम श्वासा जुक्तावो * अमर शरीर करिके तुम पावो ॥ ५४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

प्राणायाम = श्वासा = जुक्तावो = नहीं तो योगी गुरुसे प्राणायाम-की विधि सीखके रेचक, पूरक, कुम्भक यह तीन क्रियाको साध-के धीरे-धीरे युक्तिसे श्वास वायुको ब्रह्माण्ड भ्रमरगुफामें चढ़ाके निर्विकल्प समाधि लगाके रहो। यदि तुम इसमें सफल हुए—

अमर शरीर = करिके तुम = पावो = तब तो काया अमर करके अष्ट-सिद्धि, नव निद्धि, षट्गुण-ऐश्वर्य सहित ईश्वरत्वको तुम पा जाओगे। शरीर अमर-बज्रके समान होके तुम युग-युग तक जीते-जागते रहोगे; फिर कभी तुम्हारा मरण नहीं होगा॥

व्याख्या— अथवा प्राणायामकी युक्तिको ही साध लो। यदि युक्ति पूर्वक प्राणायाम साधके निर्विकल्प अखण्ड समाधि लगी, तब तो तुम शरीरको अमर कर पाओगे। तुम्हारी काया अमर हो जायगी, तब तो ईश्वर-पदवीमें ही पहुँचोगे, फिर सब सामर्थ्य तुम पा जाओगे, ऐसा जानलो ॥५४५॥

३७. नाम निःअक्षर करो अध्यासा ❀ ऋद्धि-सिद्धिके बहुत विलासा ॥ ५४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब, गुरुवालोगोंके कथन दर्शा रहे हैं; हे सन्तो! गुरुवा कहता है—

नाम निःअक्षर = करो अध्यासा = जगत् मायाके अध्यास छोड़कर परमेश्वरमें अध्यास दृढ़ करो और श्वास ब्रह्माण्डमें स्थिर करके वहाँ निःअक्षर ज्योतिस्वरूपका दर्शन करो,

यही अभ्यास नित्य किया करो।

ऋद्धि सिद्धिके = बहुत विलासा = इससे तुम्हें नव निद्धि तथा अष्ट सिद्धि आदिके बहुत अपार सुख विलास या आनन्द प्राप्त होगा॥

व्याख्या— यहाँपर गुरुवालोग कहते हैं कि, 'क्षर' देह, 'अक्षर' श्वास और 'निःअक्षर' श्वास ब्रह्माण्डमें लय करके स्थिर हुआ; सो शून्य नाम-जापका अभ्यास करते हुए ब्रह्माण्डमें ले जाके वृत्ति लय करो; निःअक्षर, अवाच्य ब्रह्म होय रहो। इससे सब ऋद्धि-सिद्धियोंके सहित बहुत सुख विलास या अपार आनन्द तुम्हें मिलेगा ॥ ५४६ ॥

३८. ज्ञान स्वरोदय अभय अरु ध्याना ❀ काल परीक्षा होय पहिचाना ॥ ५४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

ज्ञान स्वदोदय = अभय अरु ध्याना = जो कोई ज्ञानस्वरोदय-का श्वासमें लक्ष्य लगा-के ध्यान-विचार करता है, सो कालरूप मृत्युसे निर्भय हो जाता है। क्योंकि—

काल = उस योगीको भूत, भविष्य, और-वर्तमान यह तीन कालके ज्ञान, तथा—

परीक्षा होय पहिचाना = परीक्षा सन्मुख होते रहनेसे अपने मृत्यु समयकी पहिचान खबर पहलेसे ही हो जाती है। इसीसे समाधि लगाके वह योगी कालको जीत लेता है॥

व्याख्या —श्वासमें लक्ष्य लगाकर ज्ञान स्वरोदयकी विधिसे ध्यान करनेसे निर्भय हो ब्रह्मपद-की प्राप्ति हो जायगी। फिर त्रिकालज्ञ हो जायगा; और ध्यानसे देखनेसे तीनों कालोंकी परीक्षा होकर सब बातोंकी पहिचान उसे हो जायगी। इसीसे देहमें आयु तथा मृत्युको देखके समाधि लगाकर कालको जीतनेकी शक्ति आ जायगी ॥ ५४७ ॥

३९. देवी देवताको अपनावो ❀ परम वैद्यका नित गुण गावो ॥ ५४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाका कहना है कि—

देवी देवताको = अपनावो = यदि तुम्हें सहज सुगम मार्ग चाहिये, तो सगुण भक्ति-मार्गको पकड़ो, लक्ष्मी, पार्वती, सावित्री आदि देवी और ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश आदि देवताओंको अपना इष्ट देव मानो; उन्हें अपनाओ। और—

परम वैद्यका = नित गुण गावो = परमतत्त्व- परमात्माका नित्यप्रति गुणानुवाद कीर्तन गाया करो, स्तुति किया करो॥

व्याख्या— अगर योग मार्ग तुम्हें कठिन मालूम पड़े, तो उपासनाका सगुण भक्ति मार्ग सुगम है, उसको पकड़ो। देवी-देवताकी भक्तिरूप उपासनाको अपनाओ। तैंतीस कोटि देवी-देवताओंमें

जिनमें अपना भाव जमे उन्हींको अपना इष्टदेव मानलो; और परमात्मा भगवान्का नित्यप्रति गुण कीर्तन गाया करो। इनमेंसे जो भी साधना पकड़ोगे वा करोगे, सोई तुम्हारा बेड़ा पार करेगा ॥५४८॥

४०. वैदक औषध नाना भाँति * सब मिलि सुनो होय कुशलाती ॥ ५४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाका कहना है कि—

वैदक औषध= / नाना भाँति= } इस प्रकार हमारे वैदकरूप वेद-शास्त्रोंमें अनेक तरहसे नाना भाँतिके रोग निवारणके लिये उपदेश-रूप औषधि भी अनेक तरहसे वर्णन हुआ है।

सब मिलि सुनो = / होय कुशलाती= } अतएव हे भक्तवर्गो ! तुम सब लोग मिल करके हमारे उपदेश सुनो ! ऊपर कहे हुए कोई भी मार्गको ग्रहण करो। उन सबसे तुम्हारी कुशलरूप गति-मुक्ति होयगी। वे सभी मार्ग हितकर हैं ॥

व्याख्या— इसप्रकार वैदिक मार्ग सनातन धर्ममें वेद, शास्त्र, पुराणोंके प्रमाणसे नाना भाँतिके औषधिरूप उपदेशका वर्णन किया है। जैसे रोग अनेक तरहके हैं, तैसे औषधि भी अनेक तरहके हैं। वैसे ही अनेक अज्ञानी मनुष्योंको करनेके लिये साधनाएँ भी अनेक हैं। हे मनुष्यो ! तुम सबलोग मिलकर हमारे सनातन धर्मके उपदेशको सुनो ! और वेद प्रमाणसे साधना-अभ्यास करो; उसीसे तुम्हारे कुशल वा गति-मुक्ति प्राप्ति हो जायगी, ऐसा समझो ॥ ५४९ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥

साखीः— बहु विधि औषध श्रवण करि * केतेहि रहैं भुलाय ॥

[४०] अपनी अपनी भावना * लीन्हीं शीश चढ़ाय ॥ ५५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बहु विधि= / औषध= / श्रवण करि= } जप, तप, व्रत, उपवास, पूजा, पाठ, तीर्थ, दान ऐसे बहुत प्रकारसे कर्ममार्ग, उपासनमार्ग, योगादिके औषधिरूपी नाना तरहके उपदेश सुन-सुन करके प्रभावित होके—

केतेहि रहैं= / भुलाय= } कितनेक अनाड़ीलोग शिष्य बन-बनाकर उसीमें भूल गये और एक-दूसरेको भुला रहे हैं। और—

अपनी अपनी= / भावना= } वे लोग अपनी-अपनी श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, भावनाके अनुसार कोई एक मत, पन्थ, सिद्धान्त साधनाओंको दृढ़तासे पकड़ लिये।

लीन्हीं शीश= / चढ़ाय= } इसप्रकार गुरुवालोगोंके कल्पित उपदेशको वा आज्ञा-को शिरोधार्य कर लिये; यानी शिर-माथेपर आज्ञाको चढ़ाकर धारण वा पालन करलिये॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंके रोचक-भयानक वाणी-उपदेशको बहुत प्रकारसे कर्म-श्रुति, फल-श्रुतिको बारम्बार श्रवण करके कितनेक या बहुतेक तो उसीमें भूले या भुला रहे हैं। अपनी-अपनी भावनाके अनुसार साधनाका मार्ग पकड़कर उपदेशरूप आज्ञाको शिरपर चढ़ा लिये; उसी आज्ञाको पालन कर लिये ॥ ५५० ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ साखी ॥ ❀ ॥

साखीः— कोइ कोइ पूछैं वैद्यसों * परम वैद्य बतलाव ॥

[४१] इन्ह कर्मन कल्याण नहीं * काहे मोहि जहँड़ाव ॥ ५५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका कथन कहते हैं— हे सन्तो !

कोइ कोइ= / पूछैं वैद्यसों= } उनमेंसे जो कोई चतुर समझदार शिष्य रहे, वे कोई-कोई वैद्यरूप गुरुवा लोगोंसे पूछते भये कि, हे गुरुजी !-

परम वैद्य = } अब तो हमें जल्दीसे आप
बतलाव = } परमात्माके दर्शन कराइये ! बतलाइये परमात्मा कहाँपर है? कैसे, कब, किस प्रकार दर्शन होगा ?

इन्ह कर्मन = } इन जड़ मिथ्या कर्मोंके पचड़ेसे
कल्याण नहीं = } हमारी क्या भलाई होगी? इन कर्मोंसे हमें तो कोई कल्याण होता हुआ दिखाई नहीं देता है; तो फिर—

काहे मोहि = } क्यों हमको इसीमें डालके
जहँड़ाव = } बाँधते हो ? क्यों धोखा देके जहँड़ाते, भ्रमाते हो ? हमें तो अब खास परम वैद्यरूप परमेश्वरका ही दर्शन कराओ ? अब भुलावा मत दो ॥

व्याख्या— बहुत शिष्य वर्ग तो धोखमें ही भूलके अलमस्त हो गये। उनमेंसे कोई-कोई चतुर मनुष्य भी थे, वे लोग गुरुवालोगोंसे पूछते भये कि, हे गुरुजी! सुनिये, आपके कहे अनुसार साधनाएँ करते-करते कई महीने गुजर गये। परन्तु, हमें आजतक ईश्वरका दर्शन तो नहीं हुआ; और जप-तपादि इन कर्मोंसे कोई हित-कल्याण होता हुआ भी दिखाई नहीं देता है। फिर मुझको ये जड़ कर्मों-के मिथ्या पचड़ेमें डालकर क्यों भ्रमाके धोखेमें जहँड़ाके भुला रहे हो ? अब जल्दीसे बतलाइये कि, वह परमात्मा कहाँ रहता है ? उसका दर्शन कैसे होगा ? ॥ ५५१ ॥

सम्बन्ध— अब अट्ठाइसवें खण्डमें भी जिज्ञासु शिष्य और भ्रमिक ठग गुरुवालोगोंके प्रश्नोत्तर-का ही सिलसिला जारी रहेगा; और बीच-बीचमें ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वचन भी आयगा। फिर ब्रह्मज्ञानियोंके कथन उनके सिद्धान्तका वर्णन भी हुआ है। तहाँ १३६ चौपाई, और बीजककी २ साखीके प्रमाणका वर्णन हुआ है; सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ अट्ठाईस खण्ड ॥ २८ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उक्तर ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१. सुनो शिष्य मैं कहौं समुझाई * वह सब जगत कला दिखलाई ॥ ५५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जिज्ञासु शिष्योंका प्रश्न सुन करके गुरुवालोग उन्हें और भी भ्रमाय-भुलायके कल्पनारूप वाणी जालोंमें जकड़ाते हैं, सो यहाँपर कह रहे हैं; सुनिये !

गुरुवाका कहना है कि—

सुनो शिष्य मैं = } हे प्रिय शिष्य ! तुम अब
कहौं समुझाई = } नहीं घबड़ाओ ! मैं तुम्हें सब बातें कहके समझाऊँगा। जो तुमने पूछा, सो उसका उत्तर अब ध्यान लगायके सुनो, मैं अभी समझायके कहता हूँ !

वह सब जगत = } पहले मैंने जो साधन कहा,
कला दिखलाई = } वह सब संसारी जीवोंके लिये जगत् कलामें कर्ममार्ग दिखलाया था। क्योंकि, वह कर्म किये बिना चित्त शुद्ध नहीं हो सकता है, और अशुद्ध चित्तसे ईश्वरका दर्शन हो नहीं सकता है ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं, हे शिष्य! जो बात तुमने पूछा है, उसका उत्तर सुनो ! मैं तुम्हें समझायके कहता हूँ। प्रथम प्रकरणमें जो बात कही थी, सो वह सब तो जगत्की कला, कर्ममार्ग आदि मोटामोटी स्थूल बुद्धिवालोंके लिये दिखलाया गया था, वह भी चित्त शुद्धिका ही साधन है ॥ ५५२ ॥

२. परम वैद्यकी अद्भुत शोभा * ध्यान धरत जेहि मनुवा लोभा ॥ ५५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाका कहना है कि—

परम वैद्यकी = } उस परमतत्त्व परमात्मारूप
अद्भुत शोभा = } परम वैद्यकी शोभा क्या पूछते हो ? महान् आश्चर्य स्वरूप अकथनीय ऐसे सौन्दर्यका स्वरूप वह शोभायमान् है !

ध्यान धरत जेहि = जिसके ध्यान करते-करतेमें

मनुवा लोभा = जिस किसी पुण्यात्माको दर्शनकी झलकमात्र भी मिल जायगी, तो उसीमें तल्लीन होकर मन लुब्ध हो जायगा, उस ध्यानको छोड़कर फिर मन दूसरेमें जाकर नहीं लगेगा ॥

व्याख्या— परमेश्वरकी शोभा तो अद्भुत वा आश्चर्यमयी विचित्र परम सुन्दर शोभा है। उस रूपके ध्यान धरतेमें मन लुब्ध होके लय हो जाता है। ध्यानमें जिसको वह रूपका दर्शन हो जावे, तो उसका बड़ा भाग्य जागे, ऐसा समझो ॥ ५५३ ॥

३. कोई एक रूप गहो मनमानी * निःकामी होहु तुम ध्यानी ॥ ५५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाका कहना है, अतएव हे शिष्य !

कोई एक रूप = गहो मनमानी = दश अवतार तथा देवताओं-मेंसे जिसमें तुम्हारा मन मानै, श्रद्धा, भक्ति, भावना लगै, सो कोई भी एक सगुण-साकार रूपको वा जी चाहे उसको इष्ट भावनासे ग्रहण करो। और—

निःकामी होहु = तुम ध्यानी = फल प्राप्तिकी इच्छा वा कामनासे रहित होकर निष्काम भावसे तुम सदा ध्यानी होके ध्यान करो, तो ध्यानमें ही उस परमात्माका दर्शन पाके तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥

व्याख्या— इसकारण पहले तुम मनमाने कोई भी एक साकार रूपको पकड़ लो, फिर फल प्राप्तिकी आशा, इच्छासे रहित होके निष्काम भावसे तुम ध्यानी होओ; तो फिर उसी ध्यानसे साक्षात् परमात्माका दर्शन तुम पाओगे ॥ ५५४ ॥

४. रोग दूरको इच्छा कैसा ? * धरो ध्यान लहो वर तैसा ॥ ५५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाका कहना है कि—

रोग दूरको = इच्छा कैसा ? = अरे भाई ! जन्म-मरणादि रोग दूर करनेकी, संसारसे छूटनेकी कैसी इच्छा करते हो ? भक्तिसे बढ़ करके तो मुक्ति भी नहीं है। मुक्ति होनेकी क्या सोचते हो ? भगवान् सर्व समर्थ हैं। इससे हे भक्तो !—

धरो ध्यान = लहो वर तैसा = उन्हीं परमेश्वरकी ही सदा ध्यान-धारणा करो, फिर तुम्हारी जैसी इच्छा होय, तैसा चार फलों-की प्राप्तिका वरदान ले सकते हो। जो चाहे सो वर ले लो ! चाहे मुक्त होओ और चाहे तो संसारके सुख भोग भोगो ॥

व्याख्या— अरे भक्तो ! रोग छूटनेभरकी ही क्या इच्छा करते हो, ईश्वरका ध्यान धरो, फिर जैसी इच्छा करोगे, वैसा वरदान ले लेना। अर्थ, धर्म, काम और मोक्षमेंसे जो चाहे सो वर लेलो ! जन्म-मरणादि रोग छूटनेकी पहले ही कैसी इच्छा करते हो ? ईश्वरकी कृपासे वह तो आप-ही-आप हो जायगा ॥ ५५५ ॥

५. परम वैद्य जब परगट होई * रोग शोग दुःख सबहीं खोई ॥ ५५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाका कहना है कि—

परम वैद्य जब = परगट होई = जब तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जायगा, तब तुम्हें ध्यानमें ही साक्षात् परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन हो जायगा; और परमात्मा जब तुम्हार सन्मुखमें प्रगट हो जायेंगे—

रोग शोग = दुःख सबहीं = खोई = तब सब विकार आवागमनका रोग, शोक, चिन्ता, सन्ताप, त्रिविधि तापका दुःख, यह सब आप ही मिट जायगा वा नाश हो जायगा ॥

व्याख्या— सुनो ! ध्यान करते-करते जब परमात्मा प्रगट होके दर्शन दे देंगे, तब सब रोग, शोक, दुःख-दारिद्र्य नाश हो जायगा। तब जीव सुखी होके आप ही मुक्ति पा जायगा ॥ ५५६ ॥

६. सबसों न्यारा सब घट माँहीं * निश्चय होय तुरत प्रगटाहीं ॥ ५५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाका कहना है कि—

सबसों न्यारा = सब घट माँहीं = वह सर्वशक्तिमान् परमत्त्व परमात्मा सर्व जगत्में घटों-घटमें परिपूर्ण व्यापक भरा हुआ है। परन्तु, वह माया विकारसे रहित सबसे न्यारा,

निर्लिप्त रहता है।

निश्चय = ऐसा निश्चय करके—

होय तुरत = } ध्यान-धारणासे ढूँढ़नेवालेको
प्रगटाहीं = } जहाँपर जल, थल, नभ, जड़-चेतनमें उसका भाव दृढ़ होवे, वहींसे वह दयालु परमात्मा भक्तका सच्चा भाव निश्चय-को देखकर तुरन्त ही प्रगट होके दर्शन दे देता है; उसे पार कर देता है॥

व्याख्या— वह परमेश्वर सर्व व्यापक होनेसे सब चराचर-घटोंघटमें परिपूर्ण भरा है। असङ्ग, शुद्ध, निर्लिप्त होनेसे सब घट, मठ, पटादिके विकारोंसे न्यारा निर्विकार है। सद्भावनासे जिस भक्तको यह बात निश्चय हो गयी होवे, तब जिस जगहमें उसकी दृढ़ भावना होगी, वहींसे तुरन्त वा अविलम्ब ही प्रगट होके प्रत्यक्ष दर्शन देवेंगे। इसीप्रकार दशों अवतार प्रगट भये हैं; इसलिये भावना शुद्ध करके दृढ़तासे ध्यान करो॥ ५५७॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

७. यह उपदेश वैद्य जो कीन्हा * सो रोगिन माथे गहि लीन्हा॥ ५५८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

यह उपदेश = } वैद्य गुरुवा लोगोंने यह कर्म,
वैद्य जो = } उपासना और योग मार्गका
कीन्हा = } जो कुछ उपदेश किये, उसमें महिमा बहुतेरे सुन-सुन करके—

सो रोगिन = } सो रोगी अज्ञानी मनुष्योंने उनकी
माथे गहि = } आज्ञाको शिरोधार्य करके पालन
लीन्हा = } कर लिये। माथपर आज्ञाको चढ़ा लिये वा ग्रहण कर लिये॥

व्याख्या— ईश्वरादि प्राप्तिके वास्ते योगी, ज्ञानी, भक्त गुरुवालोगोंने जो अनेक प्रकारके साधन मार्गोंका उपदेश किये; सो रोगी बने हुए अज्ञानी मनुष्योंने शिरपर चढ़ायके अपने माथेपर गहि लिये, यानी उसे पालन कर लिये॥ ५५८॥

८. औषध पाय बहु भरम भुलाने * इनमें जो कोइ कोइ अकुलाने॥ ५५९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

औषध पाय = } रोचक उपदेश औषधिरूप
बहु भरम = } साधन अभ्यासकी सीख पाय-
भुलाने = } कर बहुतेक भावुक अनाड़ी नरजीव तो उसी भ्रम कल्पना धोखामें ही भुलाय गये। और—

इनमें जो कोइ = } उनमेंसे जो कोई समझदार
कोइ अकुलाने = } बुद्धिमान् रहे। वे कोई-कोई मनुष्य इस भ्रान्तिसे व्याकुल-दुःखित होकर अकुला गये वा घबड़ा गये॥

व्याख्या— इसप्रकार गुरुवालोगोंसे धोखेका उपदेश पायकर बहुत जनें, तो उसी भ्रान्तिमें भूल करके गरगाफ हो गये। तथा उनमेंसे जो कोईको सार-असारका विचार हुआ, वे कोई-कोई इस पाखण्डसे अकुलाय गये वा दुःखित होते भये। इस मार्गमें तो सार कुछ दिखता ही नहीं, अब क्या करें? छोड़ें, कि उसीमें चलें, ऐसा शोचके फिर गुरुवालोगोंके पासमें गये॥ ५५९॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

९. कहा वैद्यसो व्यथा बहोरी * जेहि विधि जाय करो जनि खोरी॥ ५६०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्य वाक्यको बतलाते हैं— हे सन्तो!

कहा वैद्यसो = } तब उस शिष्यने वैद्यरूप
व्यथा बहोरी = } गुरुवाके पासमें जायके फिर अपनी व्यथा दुःख-दर्दकी कहानी, समाचार कहा कि, देखिये! अभी तक साधनाएँ करने-पर भी मेरे दुख नहीं मिटे हैं।

जेहि विधि = } अब हे गुरु! मेरी खोरी, हँसी,
जाय करो = } मसखरी, दुर्दशा मत् करो!
जनि खोरी = } जिस प्रकारसे मेरा दुःख-ताप मिटै, वैसा उपाय करो, मैं आपकी भरोसामें हूँ! मेरा उद्धार करो! जल्दी दुःखोंसे बचाओ॥

व्याख्या— फिर गुरुवालोगोंके पासमें जायके समझदार शिष्योंने अपने तन-मनकी व्यथा,

साधनाकी असफलताके बारेमें शङ्कारूपमें हाल-समाचार सब कहा। हे गुरु! हमने खूब साधना किया, परन्तु, अभीतक भी उससे कुछ फायदा नहीं हुआ, रोगरूप दुःख नहीं मिटा; बल्कि 'ज्यों ज्यों दवा-की मर्ज बढ़ता गया' इसीकी तरह और पीड़ा भ्रम बढ़ता गया। हे प्रभो! अब मेरी हँसी, ठठौली, मसखरी करके दुर्दशा मत कीजिये! अब दया करके जिस प्रकारसे भी मेरा रोग चला जाय, वैसा उपाय बतलाइये ॥ ५६० ॥

१०. परम वैद्य खोजा बहु भाँती * ध्यान अनुमान रोग नहिं जाती ॥ ५६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! शिष्यने कहा—

परम वैद्य= खोजा बहु= भाँती= } आपके कहे अनुसार साधना करके युक्तिसे मैंने बहुत प्रकार-से परमात्माकी खोज किया, परन्तु, बहुत भाँतिसे खोजनेपर भी अभीतक मुझे परमेश्वर नहीं मिला, अतः साधनाएँ सब व्यर्थ हुईं। दवाई प्रत्यक्ष सन्मुख हुए बिना—

ध्यान अनुमान= रोग नहिं जाती= } ध्यान अनुमानकी औषधि-से रोग तो किसीका छूटकर नहीं जाता है। तैसे ईश्वरके कल्पित रूपके अनुमानसे ध्यान करनेसे आवागमनका रोग छूटकर नहीं जाता, वैसे वह मिट नहीं सकता है। इसीसे हमें ईश्वरका साक्षात्कार कराइये ॥

व्याख्या— आपके कहे मुताबिक तीर्थ, व्रत, ध्यान, धारणा, जाप, स्मरण आदि साधनाओंको करके परमतत्त्व-परमात्माको बहुत भाँतिसे हमने खोजा। परन्तु, आजतक भी परमेश्वर हमें नहीं मिला; तो मेरे मनमें शङ्का ऐसी उत्पन्न हुई, कि, अनुमानसे दवाईका ध्यान करनेसे कहीं रोग जा सकता है? जब औषधि खानसे ही रोग मिट सकता है, और खाली ध्यानसे रोग नहीं मिटता है, तब कल्पना वा अनुमानके ध्यान-धारणासे हमारे त्रिविधिताप आवागमनका रोग कैसे मिटेगा? अतएव अब तो भी कृपा करके सच्चा रास्तारूप उपदेश बतलाइये? ॥ ५६१ ॥

॥ ❀ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

११. बोले वैद्य सुनहु शिष्य मोरा! * उत्तम शिष्य हम जानब तोरा ॥ ५६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवालोगोंके उत्तर-कथन दर्शाते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

बोले वैद्य= सुनहु= शिष्य मोरा!= } तब वैद्यरूप ठग गुरुवालोग अपने प्रपञ्च वाणी-जाल फैला-कर बोलते भये। वे गुरुवालोग कहते हैं कि, हे मेरे प्यारे शिष्य! मेरे सत्य उपदेश गुप्त वार्ताको तुम अब चित्त लगायके सुनो!

उत्तम शिष्य= हम जानब= तोरा= } हमारे सब चेलोंमेंसे तुमको मैं उत्तम अधिकारी शिष्य जानता हूँ! सब बात तुम्हें अब मैं समझाय दूँगा! सावधान रहो! ॥

व्याख्या— शिष्यका सन्देह भरा वाक्य सुनकर तब वञ्चक गुरुवा बोला— हे प्रिय शिष्य! तू मेरे गोप्य उपदेशके सारको ध्यानसे सुन! तुम्हारे लक्षण, प्रश्न और भक्ति-भाव देखकर, मैं तुम्हें उत्तम शिष्य ज्ञानका अधिकारी जानता या समझता हूँ ॥ ५६२ ॥

१२. प्रथम उन्हें जो कहा पुकारी * तामें भूलि रहा संसारी ॥ ५६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

प्रथम उन्हें जो= कहा पुकारी= } पहले शुरूमें मैंने उन और लोगोंको जो स्थूल कर्म-मार्गकी साधना पुकार-पुकारकर कहा, सो वे लोगोंकी मोटी बुद्धि होनेसे उसीके अधिकारी थे।

तामें भूलि = रहा संसारी= } इसीसे उसी मार्गमें ही वे संसारीलोग सब भूल रहे या भूल गये हैं। क्योंकि, आगे वे लोग सूक्ष्म बातोंका विचार कर नहीं सकते थे; अतः उन्हें वही मार्ग ठीक था ॥

व्याख्या— पहले मैंने वे अन्य मनुष्योंको जो बात उपदेश पुकारके कहा। वे सब उसी कर्म-मार्गादिके अधिकारी थे। स्थूल बुद्धिवाले होनेसे वे संसारीलोग सब उसीमें भूल रहे हैं। आगे सूक्ष्म बातकी तरफ उन्होंका लक्ष्य नहीं पहुँचता है ॥ ५६३ ॥

१३. तुम्हें निपुण हम औषध देहौं ❀ अपयश वैदक काहेको लेहौं ॥ ५६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

तुम्हें निपुण = तुम हम औषध = हो। देहौं = हम भी तुम्हें निपुण, चतुर, होशियार समझते हैं। इसीसे अब हम तुम्हें कीमती औषधिरूपी श्रेष्ठ ज्ञानमार्गका सर्वोत्तम उपदेश दूँगा, तुम्हारे रोग-शोकको एकदम निर्मूल कर दूँगा।

अपयश = वैदक = काहेको = लेहौं = हम तो वेद-वेदान्त शास्त्रोंके प्रकाण्ड पण्डित हैं। अधिकारी देखकर वैसे उपदेश देते हैं। वैदिक मार्गसे भी रोग न मिटनेका अपयश वा निन्दा हम अपने शिर काहेको लेंगे। तुम्हारे सब रोग मिटायके छोड़ेंगे, ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— तुम्हारे प्रश्नसे हम तुमको चतुर, बुद्धिमान् समझते हैं; तुम समझदार निपुण हो। अब हम तुम्हें सर्वोत्तम ज्ञानमार्गका उपदेश देंगे। तुम्हारे सब सन्देह भ्रमको दूरकर देंगे। उपदेश देनेमें हम अपयश, अपकीर्ति काहेको लेंगे? देखो! वेद-वेदान्तके सिद्धान्तमें कोई दोष नहीं है; दोष तो न समझनेवाले तुम्हारे जैसे अनसमझका ही है ॥ ५६४ ॥

१४. परम वैद्यको निर्गुण ध्यावो ❀ अगम अगोचरके गुण गावो ॥ ५६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

परम वैद्यको = निर्गुण ध्यावो = अब तुम सगुण भक्तिको छोड़कर निर्गुण उपासना करो। भवरोग मिटानेवाले परमेश्वर ही परम वैद्य हैं, उन परमात्माको निराकार जानकर निर्गुण-निरञ्जनका ध्यान करो।

अगम अगोचर- के गुण गावो = वह बुद्धिके गमसे परे अगम है। इन्द्रियोंके विषयोंके समान दृष्टिगोचर न होनेसे अगोचर है। उसी ब्रह्मके गुणानुवाद-धन्यवाद, कीर्तन, प्रशंसा गाया करो, नाम जपा करो ॥

व्याख्या— अर्थात् परमतत्त्व परमात्माको निर्गुण समझकर तुम निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करो। तथा सदा अगम-अगोचर ऐसे शुद्ध ब्रह्मके ही गुण गाओ ॥ ५६५ ॥

१५. मन बुद्धि बानी न जाने भेदा ❀ नेति नेति गुण गावत वेदा ॥ ५६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

मन बुद्धि बानी न जाने भेदा = उस जगदाधार कर्त्ता परमात्माके भेदको मन, बुद्धि, वाणीसे कोई भी जान नहीं सकते हैं। क्योंकि, वह सबसे परे अलक्ष्य वा अवाच्य है।

नेति नेति गुण गावत वेदा = जिसको वेदने भी पार नहीं पाया; "न इतिः न इतिः" उसका अन्त, आखिरी पता कुछ भी लगता नहीं है, ऐसा गुणगान वेद भगवान्‌ने गाया है, उसीको सब ऋषि-मुनियोंने ध्याये हैं; सो वेदका ही प्रमाण माननीय है ॥

व्याख्या— मन, बुद्धि, वाणी भी जिस ब्रह्मका भेद जान नहीं सकता है, सो अभेद है। वेदने भी जिसका गुणगान "नेति-नेति" कहिके गाया है, ऐसा अपार वह परमात्मा है ॥ ५६६ ॥

१६. अलख निःअक्षर है निर्वाना ❀ सोई स्वरूपको धरिये ध्याना ॥ ५६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

अलख = निः अक्षर है = निर्वाना = वह परब्रह्म मन, वचन और कर्मसे लखनेमें आता ही नहीं है, तो अलख है। तथा देह, श्वास, शब्दसे परे है, सो निःअक्षर ज्योति स्वरूप है। मायिक धोखा बन्धनके बाहर वह निर्वान-मुक्त स्वरूप है।

सोई स्वरूपको = सोई परब्रह्म-परमेश्वरके
धरिये ध्याना = सत्स्वरूपका वेद-वेदान्त तथा गुरु प्रमाणसे निश्चयकर लक्ष्य लगाकर नित्य-प्रति ध्यान धरो, धारण करो, तो इसीसे तुम ब्रह्मपदकी एकताको प्राप्त हो जाओगे, सो जानो ॥

व्याख्या— वह परब्रह्म अलख है, निःअक्षर है, निर्वान है, सोई सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूपकी हृदयमें अटल ध्यान-धारणा करो। ऐसे ध्यान करते-करते 'कीट भृङ्ग न्याय' से तुम भी ब्रह्मस्वरूपमें एक होकर मिल जाओगे; संसारके दुःखोंसे छूट जाओगे ॥ ५६७ ॥

१७. शीत उष्ण समान सो करहू ❀ वीतराग पद चित्तमें धरहू ॥ ५६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब, गुरुवालोगोंके कथन बता रहे हैं— हे सन्तो ! गुरुवा कहता है, हे शिष्य ! परमात्मा प्राप्तिके वास्ते साधनोंमें कष्ट सहना होता है, तहाँ—

शीत उष्ण = पहले तुम तितिक्षा करके ठण्ढी
समान सो = और गर्मीको समान करके
करहू = शीतोष्णको सहन करो, सहनशील बनो।

वीतराग पद = मनमें दृढ़ वैराग्य, उदास-
चित्तमें धरहू = वृत्तिको धारण करके ब्रह्मपद-में चित्तको लगाओ वा ठहराओ ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं— कष्ट सहन किये बिना कोई काम हो नहीं सकता है; तो फिर परमात्मा सहजमें कैसे मिलेगा ? इसीसे कायासे कष्ट सहन करो, तहाँ ठण्ढी-गर्मीको समान रीतिसे जानकर तितिक्षा साधन करो, और दृढ़ वैराग्यवान् होकर ब्रह्मपदको चित्तमें धारण करो ॥५६८॥

१८. खाक लगाओ बनमें जाओ ❀ ठाड़ेश्वरी दिगम्बर मौनी होओ ॥ ५६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

खाक लगाओ = वस्त्र-अलङ्कारको त्यागकर
बनमें जाओ = सारा शरीरमें राख लगालो, भस्म रमा लो, गाँव बस्ती छोड़कर जङ्गल वा कन्दरा, गुफा कहीं वनमें जाकर रहो। और—

ठाड़ेश्वरी = दिन-रात वृक्ष सरीखा खड़े
दिगम्बर = हो रहनेकी साधना करो,
मौनी होओ = ऐसे ठाड़ेश्वरी होओ; तथा दिगम्बर, वस्त्र रहित नङ्ग-धड़ङ्ग हो रहो। मुखसे कुछ न बोलो; गूँगेवत् मौनी होओ ॥

व्याख्या— देहमें सर्वाङ्ग खाक या राख लगाकर वन, कन्दरा, गुफामें जाकर रहो; या तो ठाड़ेश्वरी होओ या दिगम्बर वा मौनी बनो ॥ ५६९ ॥

१९. काया कष्ट करो मन लाई ❀ ऊर्धमुख धूम्रपान फुरमाई ॥ ५७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

काया कष्ट = इसप्रकार भगवान्में मन
करो मनलाई = लगायके कायासे कठिन-कठिन कष्ट साधनाको सहन करो। मन लगायकर श्रद्धासे काया कष्ट किया करो। और—

ऊर्ध मुख = मुखको ऊपर करके एक टक-सूर्य या आकाशको देखा करो। और—

धूम्र पान = पैरको वृक्षकी डालीमें रस्सीसे
फुरमाई = बाँधकर नीचे शरीर लटकाय, तले अग्निकुण्डमेंसे धूआँ आवे, उसको पान करो; यह धूम्रपान फर्माये हैं ॥

व्याख्या— खूब मन लगायके साधना करनेमें कायासे कष्ट सहन करो; देहको सुखाय डालो। या तो ऊर्ध्वमुख करके रहो वा धूम्रपान करो। साधक गुरुवालोगोंने यही आज्ञा फर्माये हैं वा बताये हैं, सो पालन करो ॥ ५७० ॥

२०. पञ्च अग्नि गरमीके काला ❀ शीत समय जल शयन सो हाला ॥ ५७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

पञ्च अग्नि = गरमीके = काला = वैशाख-जेष्ठकी गर्मीके मौसममें दो पहरको ऊपर सूर्य तथा मटकामें अग्नि शिरपर रखकर चारों तरफ आग जलाकर ऐसे पञ्चाग्नि तापो। तथा—

शीत समय = जल शयन = सो हाला = पौष-माघके शीत, ठण्ढे समयमें नदीके किनारे जलके पासमें मचान बाँधके रातभर जलमें शयन करो, सो उससे होनेवाला दुःख वा कष्टको सहन करो ॥

व्याख्या— गर्मीके काल या समयमें पञ्चाग्नि तापो। वैसे ही ठण्ढीकी कड़कके समयमें गङ्गामें जाकर जलशयन करो। इसप्रकारसे साधनोंके सब दुःखोंको सो हाल = अभी सहन कर लेओ ॥ ५७१ ॥

२१. जो दृढ़ होहु कहा सो करहू ❀ महा कष्ट सरिताते तरहू ॥ ५७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

जो दृढ़ होहु = कहा सो करहू = जो तुम्हें स्वर्गादि प्राप्ति वा ईश्वर प्राप्तिकी सच्ची इच्छा होवे, तो मनको दृढ़ करके सच्चे साधक होओ। जो-जो साधना हमने कही है, सो सब दृढ़तासे करते जाओ।

महा कष्ट = सरिताते = तरहू = यहाँ ही साधनाओंमें कष्ट सहनकर लेनेसे फिर तुम ईश्वरकी दयासे महान कष्टकारी भवसागरकी जल-धारासे या नदीरूप संसारसे सहज ही पार उतरकर तर जाओगे ॥

व्याख्या— अगर तुम्हारेमें दृढ़ता होवे, ईश्वर तथा स्वर्गादि प्राप्तिकी तीव्र चाहना होवे, तो जैसे-जैसे हमने साधना करनेको कहा, वैसे-वैसे बेधड़क करते जाओ। इससे तुम महाकष्टदायी भवसागरके या नदीरूप संसारके जल तरङ्गोंसे पार उतर जाओगे। अभी जीतेजी सब कष्ट भोग लिया, ब्रह्मार्पण कर दिया, तो फिर मर कर उसे चौरासी योनियोंका दुःख भोगना नहीं पड़ेगा। वह मुक्त हो जायगा ॥ ५७२ ॥

२२. जल थल पूरण है सब माँहीं ❀ निश्चय नहिं केहि विधि प्रगटाहीं ॥ ५७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

जल थल पूरण है सब माँहीं = अरे भाई! परब्रह्म तो जलमें, थलमें, सर्वत्र चराचरमें परिपूर्ण व्यापक भरा है—

निश्चय नहिं = परन्तु, अज्ञानी मनुष्योंको यह बातका पता वा निश्चय नहीं है—

केहि विधि = प्रगटाहीं = तो फिर किस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन होवे? ज्ञानीलोग निश्चयसे ब्रह्मको पूर्ण देखते हैं; तो उनको सर्वत्र परमात्माका दर्शन होता है ॥

व्याख्या— वास्तवमें परमतत्त्व परमात्मा तो जल, थल, पावक, आकाश, ज्वाला-माला सर्वत्र परिपूर्ण भरा हुआ व्यापक है। ऐसे ज्ञानीजन अनुभवके निश्चयसे जानते हैं। परन्तु, अज्ञानी संसारियोंको यह बात निश्चय ही नहीं होता है, तो किस प्रकारसे वह प्रगट होगा; अतः विना निश्चयके वह प्रगट नहीं होता है ॥ ५७३ ॥

२३. जो मिलना निश्चयकै जानो ❀ निज जीवन ममता मति आनो ॥ ५७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब, गुरुवालोगोंके आशयका कथन ही बतला रहे हैं— हे सन्तो! गुरुवा कहता है—

जो मिलना = निश्चयकै = जानो = हे श्रद्धालु मनुष्यो! जो तुम-लोग परमेश्वरसे मिलना चाहते हो, और स्वर्गादि लोकमें जाना होवे, तो निश्चय करके जानो कि, सर्वस्व सहित जीवन अर्पण करना होगा। फिर वेद-गुरुके वाक्यमें दृढ़ विश्वास होनेपर तुम ईश्वरको जान सकोगे। इसकारण तुमलोग—

निज जीवन = ममता मति = आनो = अपने जीवनकी, जीते रहनेकी, सुख भोगनेकी, अपने प्राण, देह, धन, स्त्री-पुत्रादि किसी-की भी मोह-ममता, माया मनमें मत् लाओ,

ममता मत् करो, यदि जीनेकी ममता करोगे, । तो कार्य सिद्ध नहीं होगा ॥

व्याख्या— गुरुवालोग कहते हैं— हे भक्तो ! यदि तुम्हें भगवान्‌से मिलना है, तो हमारे उपदेशको सत्य समझकर विश्वास करो। परमात्मा व्यापक है, ऐसा निश्चय करके जानो। और देहका मोह छोड़कर जीवन अर्पण कर देनेसे निश्चयसे परमेश्वर मिलेंगे, ऐसा जानो; और मनमें अपने जीवनके ममता-मोहको मत् लाओ ॥ ५७४ ॥

२४. जल सिज्या अनल सिज्या कीजे ❀ जीयत समाधि धरतीमों लीजे ॥ ५७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा— अतएव हे साधक लोगो !

जल सिज्या = अनल सिज्या = कीजे = नदी आदि जलाशयोंमें मचान बाँधकर उस शैय्यापर शयन करो; अथवा जल समाधि लगालो; और धधकता हुआ अङ्गार बिछाकर उसके ऊपर लोहेकी पट्टीवाले पलङ्गपर सो जाओ; ऐसे शीत-उष्णका सहन करो। और—

जीयत समाधि = धरतीमों लीजे = पृथ्वीमें गहरा गड्ढा खोदाकर उसमें बैठ जाना, ऊपरसे मिट्टीसे पूरा-पूरा ढाँक देना और वहीं मर जाना, ऐसे जीते जी धरतीमें गड़कर मरनेकी जीवित समाधि लेलो ! इससे तुम सीधे वैकुण्ठ पहुँच जाओगे ॥

व्याख्या— तीर्थ स्थानोंमें जाकर जलशैय्या, अनल शैय्यापर शयन करो; अथवा काशी-करवत-में कूदकर मरो या तो हिमालयमें जाके भैरव-झम्पासे कूदकर प्राण त्याग करो; और पृथ्वीमें गड़कर जीवित समाधि लेलो! या तो गलेमें घड़ा या पत्थर बाँधकर नदीमें कूदकर जल समाधि लेलो ! इससे सहजमें तुम्हारी मुक्ति हो जायगी ॥ ५७५ ॥

२५. श्वासा साधि मस्तक तरकावो ❀ जीवन्मुक्ति प्रत्यक्षहि पावो ॥ ५७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

श्वासा साधि = मस्तक तरकावो = योग साधना करके श्वास वायुको पिण्डसे ब्रह्माण्ड-पर भ्रमरगुफामें चढ़ाकर ले जाना, फिर समाधि लगाकर मस्तकमें श्वास रखकर ब्रह्माण्ड फोड़के देह छोड़ देना वा ऐसा करके शरीर त्याग देओ।

जीवन्मुक्ति = प्रत्यक्षहि = पावो = इस क्रियासे तुम प्रत्यक्षमें ही ब्रह्म स्वरूपमें मिलकर साक्षात् जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति पा जाओगे, तो सब दुःखोंसे छूट जाओगे; इसलिये योगाभ्यास करके समाधि लगाना सीखो ॥

व्याख्या— षट्चक्र बेधन करके पाँचों प्राणोंको ऊपर ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर साधना करके कुम्भक क्रिया द्वारा ब्रह्मरन्ध्रको वेधनकर मस्तकमें श्वास रखकर, खोपड़ी फोड़कर देह छोड़ दो; तो प्रत्यक्ष ही तुम ज्योति स्वरूप परमात्मामें मिलकर जीवन्मुक्ति वा विदेहमुक्ति पा जाओगे। तब आवागमन बन्धनोंसे छूट जाओगे, ऐसा जानो ॥ ५७६ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥

२६. जो कछु औषध रोगिन दीन्हा ❀ बहु प्रकार शिष्य सब कीन्हा ॥ ५७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जो कछु औषध = रोगिन दीन्हा = जो कुछ भी गुरुवालोगोंने कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादि नाना साधनोंके उपदेशरूपी औषधि दिये, सो सब अज्ञानी, रोगीरूपी मनुष्योंने ग्रहण-कर लिये। और—

बहु प्रकार शिष्य = सब कीन्हा = बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक सब शिष्योंने वह सब साधनाएँ किये, ऐसे दवाई सेवन किये ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंने रोगीरूपी अज्ञानी संसारी जीवोंको जो कुछ भी औषधिरूपी उपदेश दृढ़ा दिये, सो बहुत प्रकारसे उन शिष्योंने पालन करके साधना सेवन किये; परन्तु, फायदा किसीको

भी नहीं हुआ, रोग उन लोगोंका बढ़ता ही गया ॥ ५७७ ॥

२७. राज दण्डको पन्थ पसारा * बिनु पारख पचि मरहिं गँवारा ॥ ५७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

राज दण्डको = सो राजदण्ड वेद-विरुद्धमें
पन्थ पसारा = पापी, नास्तिक नरकगामी हो, यम दण्ड भोगनेका डर बताकर अपना-अपना पन्थ वा मार्ग फैलाये हैं।

बिनु पारख = गुरु पारखके बोध हुए बिना-
पचि मरहिं = गँवार मूढ़लोग उसीमें जा-
गँवारा = जाकर गाफिलीमें पच-पच-कर मरते हैं। जड़ाध्यासी हो, नाना दुःख पाते रहते हैं॥

व्याख्या— तथापि राजदण्डका भय, ईश्वर द्रोही, वेद द्रोहीको रौरव-नरकोंकी, यम यातनाका डर बतलायके जबरन अपने-अपने पन्थ वा मार्ग सिद्धान्तोंका पसारा फैलावा किये हैं। सत्य चैतन्य पारख बोध सद्गुरुके सत्सङ्गको पाये बिना कई मूढ़-गँवार वहीं पच-पचकर मर गये और जड़ाध्यासी होकर मर रहे हैं॥ ५७८ ॥

२८. जो कछु दण्ड जानि बिलगाना * वैद्यके सङ्गसों कलेश बखाना ॥ ५७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो कछु दण्ड = जो कोई जिज्ञासु मनुष्य
जानि बिलगाना = उन गुरुवालोगोंके सब कुछ भ्रम धोखा दण्डोंको ठीकसे असत्य जानकर अलग हुए। उन्होंके सङ्गसे न्यारे हुए—

वैद्यके सङ्गसों = उन्होंने ही आकर दूसरे
कलेश बखाना = लोगोंको बताया कि, गुरुवा-लोगोंके सङ्गमें महा क्लेश है; ऐसा वहाँपर नाना दुःख होनेका बखान किये॥

व्याख्या— जो कोई जिज्ञासु नरजीवको विवेक हुआ कि, इन गुरुवालोगोंके पन्थमें सब तरफ दुःखदायी साधनाओंका दण्ड-ही-दण्डमात्र है, सार हासिल कुछ नहीं होता है; सो मिथ्या धोखा भ्रममात्र ही है, सिर्फ भय बतायके भुलाय रहे हैं, ऐसा जान गये, सो उन्होंके सङ्गसे छूटके न्यारे हुए। फिर संसारमें जिज्ञासुजनोंको सो उन्होंने बतलाये कि, इन गुरुवारूप वैद्योंके सङ्गमें तो सिर्फ कष्ट-क्लेश मात्र ही है, और कुछ सार प्राप्ति नहीं होती है। इसीसे तुमलोग इनके सङ्गमें जाके मत् भूलो, मत् फँसो! अथवा जो कुछ दण्ड जानके कोई पृथक् हुए, सो साधनाओंको छोड़के गुरुवालोगोंके पासमें जाके अपने क्लेश बखान करने लगे॥ ५७९ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

२९. जो मन बुद्धिमें आवत नाहीं * तासों कैसे रोग नशाहीं ? ॥ ५८० ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब, यहाँपर शिष्यका प्रश्न बतलाते हैं— हे सन्तो! जिज्ञासु शिष्य कहता है—

जो मन बुद्धिमें = हे गुरुजी! सुनो, जो कि,
आवत नाहीं = ब्रह्म- मन, बुद्धि, वाणी, लक्ष्यमें भी नहीं आ सकता है, ऐसा आप कहते हैं, तो फिर—

तासों कैसे = उस मिथ्या अवस्तुसे मेरा
रोग नशाहीं ? = जन्म, मरणादिका रोग कैसे नाश होगा? दवाई खानेमें आया ही नहीं, तो उसके नाममात्रसे रोग कैसे छूटेगा?॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंके समझानेके पश्चात् जिज्ञासु मनुष्यने कहा कि, हे महाराज! आपने परमात्माको मन-बुद्धि आदिसे परे बतलाये हो, अब विचार करिये कि, जो चीज मनमें, बुद्धिमें और वाणी-लक्ष्यमें भी नहीं आती है, तो भला! फिर उससे हमारा आवागमनका रोग कैसे नाश होगा? क्या दवाईका सिर्फ नाम सुननेमात्रसे ही रोग मिट जायगा? ऐसा तो कहीं नहीं होता है, तब अगम्य ब्रह्मज्ञानसे मुक्ति कैसे होगी? ॥ ५८० ॥

३०. नष्ट भये कल्याण न होई * मेरे मन दृढ़ भासे सोई ॥ ५८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! शिष्य कहता है—

नष्ट भये = कल्याण न होई = } समाधि-जलशयन आदि द्वारा किसी भी प्रकारसे आत्मघात करके देहको नष्टकर देनेसे-किसी-का कल्याण या मुक्ति हो नहीं सकती है। यानी उसतरहसे कल्याण या मुक्ति प्राप्ति होनेकी नहीं।

मेरे मन दृढ़ = भासे सोई = } सोई बात विवेक द्वारा मेरे मनमें तो दृढ़तासे भासती है या मालूम होती है या वही बातका दृढ़ निश्चय होता है॥

व्याख्या— आपने जीवित समाधि, जल समाधि, स्थल समाधि इत्यादि साधनोंद्वारा देहको नष्ट करके मरनेसे मुक्ति बतलाये; ये भी बड़ी उलटी बात है। क्योंकि, आत्मघातसे देहको नष्ट करनेसे भी कहीं मुक्ति होती है? देह तो नाशवान् है, आप ही नाश हो जायगा। मनके वासना अध्यास छूटे बिना कभी कल्याण हो नहीं सकता है, सो मेरे मनमें तो यही बातका दृढ़ भास होता है। यानी विवेक होता है कि, देहको सुखायके, जलायके, गाड़के और पानीमें डूबके मरनेसे अधोगतिके सिवाय कभी भी मुक्ति हो नहीं सकती है, यही बात निश्चय है॥ ५८१ ॥

३१. जल थल जड़, नहिं चेतन दीसे * तासों कैसे रोग सब खीसे ? ॥ ५८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! शिष्य कहता है—

जल थल जड़ = नहिं चेतन = दीसे = } पृथ्वी, जलादि पाँचोंतत्त्व प्रत्यक्ष जड़, ज्ञानहीन हैं, उनमें कहीं भी चेतनताका कुछ लक्षण दिखाई ही नहीं देता है; तो फिर जल, थलमें पूर्ण ईश्वरको तो भी कैसे मानना?

तासों कैसे = रोग सब = खीसे = } इस धोखारूप अद्वैत ब्रह्मज्ञानसे हमारा आवागमनका रोग त्रयतापोंका शोक, यह दुःख सब कैसे करके नाश होगा?॥

व्याख्या— जलमें-थलमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक परमात्मा जो आपने बताये हैं, सो भी गलत बात मालूम पड़ती है। क्योंकि, पाँचोंतत्त्वोंको जड़ कहा है, तथा ज्ञानगुण चेतनत्व धर्मरहित जल-थल सब प्रत्यक्ष जड़ पदार्थ हैं। उनके कार्य-कारणमें कहीं भी चेतन होनेका लक्षण नहीं दिखता है। फिर यह धोखारूप ब्रह्मज्ञानसे सब रोग आवागमनादि कैसे नाश होगा? जैसे प्यास लगी, तो सबमें पानी मानके पानीके नाम जपनेसे प्यास कैसे जायगी? पानी पीये बिना प्यास कदापि मिट नहीं सकती है॥५८२॥

३२. तुम हो वैद्य रोग पहिचानो * जेहि विधि जाय उपाय सो ठानो ॥ ५८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! शिष्य कहता है—

तुम हो वैद्य = रोग पहिचानो = } आप तो वेद-शास्त्रज्ञ विद्वान् वैद्यरूप गुरु हो! अतः हमारे वास्तविक रोग-शोगका हेतु क्या है? सो ठीकसे पहले पहिचान कर लीजिये! फिर—

जेहि विधि = जाय उपाय = सो ठानो = } जिस तरहसे विधिपूर्वक समूल रोग नाश हो जाय, ऐसी युक्ति वा उपायसे औषधि देनेका प्रयत्न करिये, तभी रोग छूटनेकी आशा होगी॥

व्याख्या— आप तो विद्वान् वैद्यरूप ज्ञानी गुरुवा बने हो! उपदेशक कहलाते हो! इससे मेरे रोग क्या है? उसका कारण कौन है? इसकी पहिचान करो। फिर जिस प्रकारसे मेरा जन्म-मरणादिका रोग मिट जाय, वैसा उपाय वा प्रयत्न निश्चय करिये, सच्ची दवाई करिये!॥ ५८३ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

३३. बिहँसै वैद्य यह भकुवा संसारा * हम जो कहा सो नाहिं विचारा ॥ ५८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब, गुरुवालोगोंके उत्तर बतलाते हैं— गुरुवाने कहा—

बिहँसै वैद्य = यह भकुवा = संसारा = } उपरोक्त शिष्योंके प्रश्न सुन करके गुरुवारूपी वैद्यलोग विशेषरूपसे ठठायके हँसे, फिर बोले कि, अरे! यह संसारीलोग तो अज्ञानी भकुवे मूर्ख हैं वा अनसमझ नादान हैं।

हम जो कहा = हे शिष्य ! हमने जो बात
सो नाहिं = पहले कही, सो उसका किसीने
विचारा = ठीकसे विचार नहीं किये।
परन्तु, तुमने भी उस बातका ठीकसे विचार नहीं किया। इससे तुम्हें सन्देह हुआ, अब उसका उत्तर सुनो ! ॥

व्याख्या— जिज्ञासु शिष्यकी शङ्का सुन करके गुरुवा खूब हँसे। फिर कहने लगे कि, यह संसारी सब लोग तो भकुवे-अज्ञानी-मूर्ख हैं। हमने जो उपदेश कहा, उसका विचार तो किसीने भी किया ही नहीं। अब तुम उस बारेमें विचार करना चाहते हो, तो सुनो— ॥ ५८४ ॥

३४. यह परम वैद्य जो कछु कहिया * बहु विधि सगुण अगुण कहि जहिया ॥ ५८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

यह परम वैद्य = परम वैद्यरूपी परमेश्वर
जो कछु कहिया = परमात्मा कर्त्ता पुरुष है, यह बात पूर्वपक्षमें मैंने जो कुछ भी तुम्हें कही थी, सो तुम्हारी स्थूल बुद्धिमें प्रवेश करानेके लिये ही थी।

बहु विधि = बहुत प्रकारसे सगुण और
सगुण अगुण = निर्गुणरूप ईश्वरके अवतारों-
कहि जहिया = का मैंने कथन किया, सो जब-जब जैसा-जैसा कार्य उपस्थित होता है, तब-तब तैसा-तैसा अवतार धारण होता है; ऐसी बात है ॥

व्याख्या— बात यह है कि, परमात्मा कर्त्ता पुरुष है, ऐसा जो कुछ कहा, सो जब कि, बहुत प्रकारसे सगुण और निर्गुणका भेद भी कहा, जब-जैसा अवसर आता है, तब-वैसा ही रूप परमात्मा-का हो जाता है। अतः उसे कहीं सगुण और कहीं निर्गुण नामसे कहा जाता है ॥ ५८५ ॥

३५. सो तो तुमहीं करो निरुवारा * आपै राम रमै संसारा ॥ ५८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा —

सो तो तुमहीं = सो परब्रह्म तो तुम ही स्वयं
करो निरुवारा = हो, जीव-ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है, एक ही है। वेदान्त शास्त्रके विचारसे इसका निर्णय करो, अद्वैत सिद्धान्तको ग्रहण करो।

आपै राम = तुम आप ही आत्माराम हो !
रमै संसारा = सब संसारमें वह आत्माराम ही परिपूर्ण होके रम रहा है, व्यापक हो रहा है। "एको ब्रह्म द्वितियोनास्ति" ऐसा सिद्धान्त जानो ॥

व्याख्या— सो परब्रह्म तो तुम ही खुद-ब-खुद हो, इस बारेमें वेदान्त-सिद्धान्तका निर्णय करो। स्वयं आत्माराम सारा संसारमें रमा हुआ है या रम रहा है; ऐसा जानना चाहिये ॥ ५८६ ॥

३६. परम वैद्य कोइ दुतिया नाहीं * जासों रोग तुम्हारो जाहीं ॥ ५८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

परम वैद्य कोइ = इसलिये तुमको छोड़कर
दुतिया नाहीं = और कोई दूसरा भिन्न परमात्मा नहीं है, अद्वैतमें द्वैत कभी नहीं सम्भावता है। अर्थात् तुम अपनेको ही ब्रह्म स्वरूप निश्चय करके जानो। और दूसरा कोई परम वैद्यरूप परमेश्वर नहीं है।

जासों रोग = फिर जिससे मिलके तुम्हारा
तुम्हारो जाहीं = आवागमनका रोग चला जाय वा मिट जाय, ऐसा भी नहीं सम्भवता है। क्योंकि, तुम स्वयं ब्रह्म हो, जगत् तुम्हारीरचना है, रोग-शोगतो सिर्फ भ्रममात्र है, ऐसी खास बात है, अब इसे तुम जानलो ॥

व्याख्या— इसवास्ते तुमसे भिन्न कोई दूसरा परमात्मा नहीं है। जिससे मिलके तुम्हारा रोग चला जावे, यह बात होनेकी नहीं। इसलिये अपने आपको ब्रह्म जानके निश्चिन्त हो रहो ॥५८७॥

३७. दिसे देह सो सगुण बखानी * निर्गुण आतम स्वतःकै मानी ॥ ५८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

दिसे देह सो = जो यह स्थूल देह दिखता
सगुण बखानी = है या दिख रहा है, सो यही सगुण साकार जगत् स्वरूप है; और जिसको सगुण वर्णन करते हैं, सो यहाँपर देह ही दृश्य है। और—

निर्गुण आतम = जीवात्माको ही निर्गुण,
स्वतःकै मानी = निराकार स्वतः करके मान, लो। क्योंकि, आत्माको स्वयं निर्गुण करके माना है, ऐसा समझो ॥

व्याख्या— जो देह दिखता है, सो इसीको सगुण वर्णन किया है; और स्वतः स्वरूप आत्माको निर्गुण-निराकार माना गया है ॥ ५८८ ॥

३८. यह मत शिष्य ! तुम निश्चय करहू * हमारा कहा शीशपर धरहू ॥ ५८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! यह मत शिष्य ! = गुरुवाने कहा, हे प्यारे
तुम निश्चय करहू = शिष्य ! यह अद्वैत मत ब्रह्म सिद्धान्तको अब तुम निःसन्देह होकर दृढ़तासे निश्चय करलो, इसे तुम मानलो।

हमारा कहा = हमारा कहा हुआ वेद-
शीशपर धरहू = वेदान्तके उपदेशको सच्चा सार समझके सर्वश्रेष्ठ मानके तुमलोग शिरोधार्य कर लो। यानी आज्ञाको अपने माथे-पर चढ़ायके रखलो, इसे धारण करो। फिर तुम्हें कोई बन्धन नहीं है, ऐसा जानलो ॥

व्याख्या— अतएव हे शिष्य ! यह अद्वैत मत, ब्रह्म सिद्धान्तको तुम दृढ़तासे निश्चय करो कि, "अहंब्रह्मास्मि" और हमारा कहा हुआ ब्रह्मज्ञानके उपदेशको शिरपर चढ़ायके धारण करो। यानी उसे सर्व श्रेष्ठ समझके माथेपर चढ़ा रक्खो; इससे तुम्हें परमानन्दकी प्राप्ति हो जायगी ॥ ५८९ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

३९. पूछे शिष्य प्रभु ! कहो बुझाई * परम वैद्य जो हमहिं कहाई ॥ ५९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसा गुरुवाका उत्तर सुनके जिज्ञासु शिष्य-ने यह प्रश्न किया—

पूछे शिष्य = तब चतुर शिष्यने विनय पूर्वक
प्रभु ! कहो = पूछा कि, हे प्रभु ! हे गुरु ! यह
बुझाई = बात मेरे समझनमें नहीं आई, सो समझा-बुझाके कहिये ? आपके कथनसे—

परम वैद्य जो = यदि जो कि, हमहीं आखिर-
हमहिं कहाई = में परम वैद्यरूप परमात्मा कहलाये या हुए, तो इसमें बड़ा सन्देह होता है ॥

व्याख्या— तब जिज्ञासु शिष्यने पूछा कि, हे गुरु महाराज ! हे प्रभु ! आपके उत्तरसे मेरे कुछ भी समाधान नहीं हुआ। यह जो बात आपने कही, सो मेरे समझनेमें नहीं आई। उसको अब समझा-बुझाके कहिये ! आपने तो अब मुझे ही परमात्मा स्वरूप बता दिये। जो कि, हम ही परमात्मा कहलावें या कहलाते हैं, तब निम्न प्रकारसे शङ्का उत्पन्न होती है, उसे श्रवण करके समाधान करिये ! ॥ ५९० ॥

४०. तो हम रोगी काहेको भयऊ ? * कुहकत निशि वासर मम गयऊ ॥ ५९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

तो हम रोगी = तब तो हम निरोग, सुखी
काहेको भयऊ ? = होना छोड़ कर, रोगी, अज्ञानी, दुःखी ऐसे क्यों हुए ? किस कारण-से ऐसे भये ? जिससे कि—

कुहकत =
निशि वासर = रात-दिन रोते-कराहते जन्म-
मम गयऊ = मरण, त्रयतापादिमें दुःखित होते हुए हमारी आयु चली जाती है या चली जा रही है। सो ऐसा क्यों हो रहा है ? ॥

व्याख्या— तब तो हम रोगी, दुःखी, अज्ञानी, देहधारी क्यों भये ? रात-दिन दुःखमें रोते

चिल्लाते ही मेरा समय चला जा रहा है; तब फिर सच्चिदानन्द ब्रह्म हम कैसे हुए ? सो यह बात खुलासासे समझाके कहिये ! ॥ ५९१ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

४१. बोले वैद्य भरम यह तेरा * शोक मोहते सबै अन्धेरा ॥ ५९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तदनन्तर गुरुवालोगोंने ऐसा उत्तर दिया, तहाँ गुरुवाने कहा—

बोले वैद्य = तब वेदान्ती गुरुवालोग
भरम यह तेरा = बोलके कहते भये कि, हे शिष्य ! यह सब तो तेरे मनकी भ्रान्ति मात्रहै ? ब्रह्ममें जन्म-मरणादि रोगोंके कहीं नामोनिशान नहीं है । परन्तु—

शोक मोहते = भ्रमसे अपनेको जीव मानके
सबै अन्धेरा = अविद्याके कारण शोक-मोहादि विकारमें पड़के सब अज्ञान-अन्धकारमें पड़े हुए अल्पज्ञ हो रहे हैं । इससे सब तरफ उन्हें अन्धेरा ही दिखता है ॥

व्याख्या— शिष्योंके सन्देहकी बात सुनके भ्रमिक गुरुवा बोला कि, हे शिष्य ! यह तो तुझे मिथ्या भ्रान्ति हो गई है; तू अपनेको जीव मानता है, इससे अज्ञानवश भ्रम चक्रमें नाचता है, शोक-मोहमें पड़ता है । अविद्याकी रात्रिमें तुझे सब तरफ अन्धेरा-ही-अन्धेरा दिखता है ॥ ५९२ ॥

४२. अब यह जानि न संशय कीजै * आत्मा आप सो परिचय लीजै ॥ ५९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

अब यह जानि = शास्त्र, गुरु तथा निज प्रतीतिसे
न संशय कीजै = अब यह बात जानके कि, मैं केवल ब्रह्म हूँ, रोग-शोग, मिथ्या भ्रान्तिमात्र असत्य है; ऐसा समझके कोई बातका संशय नहीं करिये ।

आत्मा आप सो = मैं सर्वात्मा परिपूर्ण व्यापक
परिचय लीजै = आप-ही-आप स्वयं सत्य हूँ ! ऐसा पहिचान विवेकसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे कर लीजिये ! यानी अपने आपको आत्मा जान लीजिये, यही परिचय करना है ॥

व्याख्या— अब यह जानलो कि, तू ब्रह्म स्वरूप है "तत्त्वमसि" । आवागमनादि दुःख-सुख सब मिथ्या भ्रान्ति असत्य है । ऐसा जानकर कुछ संशय मत् कीजिये ! निर्विकार, निराकार, जगदाधार स्वयं आत्मा है, सो अपने आपको ही आत्मा पहिचान लीजिये ! "अहंब्रह्मास्मि" का निश्चय कीजिये ! ॥ ५९३ ॥

४३. जब निजरूप परे पहिचानी * सकल रोग तब होवै हानी ॥ ५९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

जब निजरूप परे पहिचानी = जब कि, जीवको निज अपरोक्ष ब्रह्म स्वरूपकी पहिचान होकर मालूम हो जायगा, तब अद्वैत निष्ठामें अटल हो जायगा, अतः सच्चिदानन्द स्वरूपमें वह निमग्न रहेगा ।

सकल रोग तब होवै हानी = तब जगत् मायाकी उपाधि, त्रयताप, जन्म-मरणादि सकल रोग-शोगोंका समूल ही नाश हो जायगा । फिर परमानन्दमें ही परमहंस सदा विलास करता रहेगा ॥

व्याख्या— जब कि, अपने अद्वैत ब्रह्म स्वरूपको अपरोक्षरूपसे पहिचान करके दृढ़ प्रतीति हो जायगी, तब मायाजनित सब विकार आवागमनादि रोग सकल दुःख-सन्ताप नशाय जायेंगे । ब्रह्मज्ञानसे रोग-शोग सब ताप नाश हो जाता है । अतएव ब्रह्मज्ञानका ही सदा श्रवण-मनन करते रहो, उसे ही धारण किया करो ॥ ५९४ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

४४. शिष्य सिखापन ऐसे पाई * केतेक तहाँ रहे शिथलाई ॥ ५९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शिष्य सिखापन = अबोध अज्ञानी भावुक शिष्य लोगोंने गुरुवाओंसे
ऐसे पाई = ऐसे इसप्रकारके शिक्षा उपदेशोंको सुन पाय-
के उसी उपदेशको सत्य मानकर दृढ़कर लिये।

केतेक तहाँ = ऐसे कितनेक श्रद्धालु शिष्य-
रहे शिथलाई = वर्ग तहाँ गुरुवालोगोंके
सिद्धान्तमें जाके शान्त या स्थिर ढीले होके
चुपचाप हो रहे ॥

व्याख्या— यहाँपर श्रीरामरहससाहेब दर्शाते हैं कि, कई भोले-भाले शिष्यलोग गुरुवालोगोंसे भक्ति, योग, ज्ञानमार्गोंका ऐसे सिखापन या उपदेश पाके कितनेक लोगोंने अन्ध-विश्वाससे उसीको सत्य मानकर शान्त-स्थिर हो चुपचाप भये, तहाँपर ढीले पड़ गये तो गुपचुप हो रहे ॥ ५९५ ॥

४५. इनमें जो कोइ रहै सयाना * वैद्यसों पुनि निज व्यथा बखाना ॥ ५९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

इनमें जो कोइ = उन अनेकों शिष्य वर्गोंमेंसे जो कोई एक जिज्ञासु चतुर समझदार
रहै = सयाने विचारवान् रहे, वे फिर
सयाना = जा करके—

वैद्यसों पुनि निज = योगी, ज्ञानी, गुरुवा-
व्यथा बखाना = लोगोंसे अपने शङ्का दुःख-
दर्दका सन्देह, व्यथा वर्णन करके कह कर
उन्हें सुनाने लगे ॥

व्याख्या— उन्हींमेंसे जो कोई सयाने प्रवीण चतुर रहे, वे फिर वैद्यरूप गुरुवाके पासमें जाय-के अपने सन्देहकी व्यथा बखान करने लगे ॥ ५९६ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

४६. परम वैद्य प्रभु ! हमका कीन्हा * रोग व्यथा नहिं आवत चीन्हा ॥ ५९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब शिष्यने फिर प्रश्न किया कि—

परम वैद्य प्रभु ! = हे प्रभु ! हे गुरु ! परमतत्त्व-
हमका कीन्हा = परमात्माका स्वरूप खुद
हमको ही आपने ठहराये हो या कायम
किये हो ! परन्तु, हम ही परमात्मा होके भी
हमारा क्या फायदा हुआ ? क्या लाभ हुआ ?

रोग व्यथा = क्योंकि, आवागमनोंका रोग
नहिं आवत = और त्रिविधि तापोंकी व्यथा,
चीन्हा = किस कारणसे हमको हो रही
है ? उसका हेतु तो कुछ चीन्हनेमें पहिचाननें-
में हमारे नहीं आया या पहिचानमें आता ही
नहीं है ॥

व्याख्या— जिज्ञासु शिष्य कहता है कि, हे प्रभो ! आखीरमें घुमाय-फिरायके आपने तो हमको ही परम वैद्यरूप परमात्मा बनाये या ऐसे बतलाये हो ! किन्तु, इससे हमारा क्या कल्याण हुआ ? क्या लाभ हुआ ? मूल रोग व्यथा निवारण होनेका उपाय वा युक्ति तो कुछ चीन्हनेमें नहीं आया। आवागमन छूटनेका साधन तो कुछ भी पता नहीं लगा ॥ ५९७ ॥

४७. सूझ न परै पीड़ा अधिकाई * परम वैद्य प्रभु ! कैसे कहाई ? ॥ ५९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

सूझ न परै = रोगका मूल स्थान, कारण
पीड़ा अधिकाई = तथा निवारणका उपाय
तो हमें कुछ देख वा समझ नहीं पड़ती है,
और दुःख-दर्द वेदनाकी व्यथा तो बहुत ही
ज्यादा बढ़ गयी है।
प्रभु = हे गुरु महाराज प्रभो ! अब इस हालतमें
वा ऐसी दशामें—

परम वैद्य = सच्चिदानन्द सुख स्वरूप परमेश्वर
या परमात्मा ऐसे—
कैसे कहाई ? = मैं स्वयं हूँ, सो कैसे करके कहला
सकता हूँ ? या कैसे कहलाया ? रङ्कको
राजा कहनेसे नाममात्रसे क्या वह राजा
हुआ ? वा क्या वह राजा हो सकता है ? कभी
नहीं हो सकता है ॥

व्याख्या— आपके उपदेशमें हमें मुक्ति मार्ग तो कुछ दिखाई ही नहीं देता है। जिस ब्रह्मको

आप श्रेष्ठ बतलाते हो, वह भी कुछ दिखाई नहीं देता है। हमें दुःखकी पीड़ा तो बहुत अधिक हो रही है, इसीसे हम व्याकुल हो रहे हैं। अब हे प्रभो! हम परम वैद्य-परमात्मारूप सुख स्वरूप ही कैसे कहला सकते हैं? या कैसे कहलावेंगे? ॥ ५९८ ॥

४८. जौन दीसै सो दूसर होई * निज स्वरूप किमि जानै सोई? ॥ ५९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेबकहते हैं— हे सन्तो! शिष्यने कहा—

जौन दीसै सो = जो वस्तु बाहर या भीतर
दूसर होई = स्थूल-सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा देखनेमें या जाननेमें आती है, सो वह सब तो द्रष्टासे न्यारा दृश्य पदार्थ दूसरा भिन्न ही होता है, तब दिखता है।

निज स्वरूप = उस दृश्य भास, विषयको निज
किमि जानै = सत्य चैतन्य स्वरूप करके कैसे
सोई? = जानना? या उसको कैसे सत्य करके मानना? ॥

व्याख्या— जो आप ध्यान-समाधिमें परमात्माको देखनेको कहते हो, उसमें विचार करिये! जो वस्तु या पदार्थ वा विषयादि भीतर-बाहर दिखता है, सो देखनेवालासे भिन्न दूसरा दृश्य जड़ पदार्थ ही होता है या जड़ ही ठहरता है। उसको फिर निज चैतन्य स्वरूप करके कैसे जानना? या कैसे झूठ-मूठ मानना? सो कहिये! ॥ ५९९ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

४९. कहै वैद्य सुनु शिष्य! सयाना * वे सब भोंदू परम अयाना ॥ ६०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने इसप्रकार उत्तर दिया—

कहै वैद्य सुनु = वैद्य बना हुआ भ्रमिक
शिष्य! सयाना = गुरुवाने कहा कि, हे सयाने चतुर शिष्य! अब तुम सार बात ध्यान लगाके सुनो!—

वे सब भोंदू = वे सब दूसरे शिष्यलोग तो
परम अयाना = परम अज्ञानी, बड़े भोंदू मूढ़ रहे, इसवास्ते मैंने मोटी-मोटी बात कह दी थी। उनमें तुम प्रवीण निकले हो, तुम्हें मैं झीनी बात कहूँगा ॥

व्याख्या— शिष्यके गूढ़ सन्देह सुन करके ब्रह्मज्ञानी गुरुवा कहने लगा कि, हे प्रवीण सयाने शिष्य! मेरी बात सुनो! अधिकारीके अनुसार वैसे उपदेश दिया जाता है। वे दूसरे लोग सब भोंदू स्थूल बुद्धिवाले बड़े अज्ञानी रहे। इसलिये मैंने झीनी बात उन्होंको नहीं बतायी, तुम सुबुद्धि श्रेष्ठ निकले हो, तुम्हें मैं सूक्ष्म बात बतलाता हूँ; अब ध्यान देके उसे सुनो!— ॥ ६०० ॥

५०. जो हम कही सोइ-सोइ मानी * और औषधको मर्म न जानी ॥ ६०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

जो हम कही = तुमने देखा न, जो हमने
सोइ-सोइ = मोटा-मोटी साधना वा
मानी = सिद्धान्तकी बात कही, सोई-सोई उन्होंने मानके शान्त हो गये, तो उन्होंकी बुद्धि वहींतक पहुँच सकती थी, इसीसे उनको वही बात ठीक थी।

और औषध- = और आगेके उपदेशरूप सच्ची
को मर्म न = औषधिके भेदको वे लोग जाने
जानी = नहीं या जान ही नहीं सकते हैं ॥

व्याख्या— वे मोटी समझवाले लोगोंने तो जो हमने मोटी ऊपरकी बात कही थी, उसी-उसी-को ही दृढ़ मानके बैठ गये। इसके आगे और भी झीनी उपदेशरूप औषधि है, यह मर्म तो उन्होंने कुछ नहीं जाने या उनको यह बात मालूम ही नहीं हुई ॥ ६०१ ॥

५१. तुम पूछे हो परम विवेकी * तुमसे छिपाय न राखों एकी ॥ ६०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

तुम पूछे हो = हे परम विवेकी शिष्य ! परम विवेकी = तुमने जो कुछ पूछा है, उसका सार मैं बतलाता हूँ ।

तुमसे छिपाय = गुप्त बात तुमसे छिपायके न राखौं एकी = अब एक भी बाकी नहीं रक्खूँगा, सो सुनो !—॥

व्याख्या— तुमने जो आगेकी बात पूछे हो, इसलिये मैं समझता हूँ कि, तुम परम विवेकी हो, तुमको परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी । अब मैं तुमसे एक भी बात छिपायके गुप्त नहीं रक्खूँगा, सब बात तुम्हें बताऊँगा, तुम निःसन्देह होके सुनो !— ॥ ६०२ ॥

५२. करहु विचार रोग औ रोगी * रोगिमें रोगकी रोगमें रोगी ॥ ६०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा--

करहु विचार = रोग औ रोगी = सबसे पहले तुम यह बात का विचार करो कि, रोग और रोगी क्या चीज है ? और—

रोगिमें रोग- = की रोगमें = रोगी जीवमें स्वयं जन्मृति- का रोग लगा है कि—

रोगी = आवागमन रोगमें ही जीव रोगी होके परवश पड़ा है या किसीने उसे रोगमें डाल दिया है वा दोनों अभिन्न वा एकमें-एक हैं ? सो विचार करलो ! तब मूल तत्त्व तुम्हारी समझमें आयगा ॥

व्याख्या— तुम पहले यह विचार करो कि, रोग और रोगी क्या है ? एक है कि, दो हैं ? रोगी जीवमें अवागमन रोग स्वतः लगा है, अथवा जबर्दस्ती जीवको रोगमें किसीने डाल दिया है ? ॥६०३॥

५३. रोगी भिन्न रोग है भीन्ना * यह औषध कोई बिरले चीन्हा ॥ ६०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

रोगी भिन्न = रोग है भीन्ना = देखो ! ब्रह्मांश सनातन जीव रोगी भिन्न है, और उससे जगत् माया-कायाके विकार भ्रमरूप जन्मृति रोग सदैव न्यारा भिन्न ही है। रोग तो मिथ्या है।

यह औषध = कोई बिरले = चीन्हा = यह सच्चा अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेशरूपी औषधिके प्रभावको कोई-कोई बिरले ही मनुष्य पहिचानते हैं ॥

व्याख्या— देखो ! ब्रह्मके अंशरूप जीव जो रोगी है, सो और मिथ्या भ्रमरूप आवागमनका रोग दोनों भिन्न-भिन्न हैं । ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, यह औषधिरूप उपदेशको कोई बिरले ज्ञानी ही पहिचानते हैं ॥ ६०४ ॥

५४. सोइ विचार निशि वासर करहू * महा मोह भव सरिता तरहू ॥ ६०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

सोइ विचार = निशि वासर = करहू = "मैं ब्रह्म सर्वदा रोग-शोगसे न्यारा हूँ !" सो यही विचार-को दिन-रात करो, रोग तो भ्रमके सिवाय और कुछ भी नहीं है।

महा मोह = भव सरिता = तरहू = ब्रह्मज्ञानके दृढ़ होनेसे महामोह-रूपी द्वैत भ्रमकी भवजल तरङ्गोंसे तुम पार उतर जाओगे ॥

व्याख्या— इसकारण सोई ब्रह्मज्ञानके अद्वैत विचारको ही रात-दिनमें मनन करते रहो । इसीसे महामोहरूपी मायाके भवसागरसे सहजमें ही पार उतर जाओगे ॥ ६०५ ॥

५५. सब रोगी मिलि करहु विचारा * हम कछु और रोग कछु औरा ॥ ६०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा – इसवास्ते—

सब रोगी मिलि = करहु विचारा = हे रोगी मनुष्यो ! तुम सब जनें मिलके ब्रह्मज्ञान-का विचार दृढ़ करो !

हम कछु और = रोग कछु औरा = हम और ही कुछ केवल ब्रह्म हैं; जगत्के रोग और ही कुछ मिथ्या भ्रम है, सो जानो ॥

व्याख्या— अतएव हे शिष्य लोगो ! तुम सब जो रोगी-शोगी बने हो, तो सब जनें मिलके अब ऐसा विचार करो कि, हम तो कुछ और ही निर्विकार ब्रह्म हैं, जगत्का रोग कुछ और ही मिथ्या भ्रम मात्र है, इससे हमारा कोई खास सम्बन्ध नहीं है, ऐसा समझके निश्चिन्त हो जाओ ॥ ६०६ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

५६. इनमें जो कोइ रहैं प्रवीना * बोले वचन वैद्य सो दीना ॥ ६०७ ॥

अर्थः – श्रीरामरहससाहेब कहते हैं – हे सन्तो !

इनमें = उन अनेकों शिष्य वर्गोंमेंसे—

जो कोइ = रहैं प्रवीना = जो कोई एक-दो जनें प्रवीण वा चतुर बुद्धिमान् रहे, वे विचार-दृष्टिसे निर्णयको ग्रहणकर, फिर—

वैद्य सो = उन गुरुवा लोगोंसे यथोचित समाधान-के लिये उनके समीपमें जाके—

दीना = दीनता, नम्रता, कोमलतासे—

वचन = मधुर वाणी या नम्र वचनोंसे अपने सन्देहको—

बोले = बतलाते हुए प्रश्न बोलते भये या अपने सन्देहकी बात बोलने लगे ॥

व्याख्या— तदनन्तर गुरुवाओंके उत्तर सुनकर उन शिष्योंमेंसे जो कोई समझदार प्रवीण रहे, वे फिर उन गुरुवासे दीनता पूर्वक प्रश्न करके सन्देहको दर्शायके वचन बोलते भये। इसप्रकार कहने लगे— ॥ ६०७ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

५७. रोगी रोग एक नहिं होई * सो तो विदित जाने सब कोई ॥ ६०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब शिष्यने पूछा कि—

रोगी = रोगी बने हुए जीव और—

रोग = जन्म, मरण, गर्भवासका मूल रोग या दुःख-सन्ताप, यह दोनों भिन्न-भिन्न हैं। इसीसे—

एक नहिं होई = यह कभी एक हो नहीं सकते हैं। तथा यह एक नहीं है, दो ही हैं।

सो तो = सो यह बातको तो संसारमें—

विदित जाने सब कोई = सब कोई अच्छी तरहसे जानते हैं। क्योंकि, यह बात जगजाहिर प्रत्यक्ष ही है। यह समझानेकी तो कोई आवश्यता ही नहीं है ॥

व्याख्या— हे गुरुजी ! रोगी और रोग एक नहीं होते हैं। भिन्न-भिन्न ही हैं, यदि वे दोनों एक होवें, तो दुःख भोग ही काहेको होवे ? यह तो जगजाहिर बात है; सब कोई इस बातको जानते हैं। अतः इस बारेमें और विचार बारीकीसे क्या करें ? ॥ ६०८ ॥

५८. कुहको काहे रोग जो न्यारा * तुम उपदेश भल कीन्ह विचारा ॥ ६०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

कुहको काहे रोग जो न्यारा = आपसे मैं जो पूछता हूँ, सो समझाइये कि, जब रोग जन्म-मरणादिसे जीवोंका कोई सम्बन्ध ही न होवे, सदा न्यारा होवे, तो काहेको दुःखों-में पड़कर रोते-कलपते तड़फड़ाते हैं ? इसीसे रोग-रोगीका सम्बन्ध यहाँ प्रत्यक्ष ही है।

तुम उपदेश भल कीन्ह विचारा = आपके उपदेशका तो मैंने अच्छी तरहसे विचार कर लिया है। आप तो रोगको मिथ्या भ्रममात्र बतलाते हो; परन्तु, मिथ्या रोग-को मिटानेके लिये औषधिरूप उपदेश आप क्यों करते हो ? फिर इसकी क्या जरूरत है ?॥

व्याख्या— पूछना तो हमें यह है कि, जन्ममृति त्रयतापादि रोगोंसे जीवका कोई सम्बन्ध न होकर न्यारा जो होवे, तो फिर नाहक काहेको सब-के-सब जीव दुःखी हो-होके रोते, कराहते, व्याकुल हो रहे हैं। इसवास्ते रोग-रोगीका सम्बन्ध तो प्रत्यक्ष ही हो रहा है। और आपने जो ब्रह्मज्ञानका उपदेश देके रोगको मिथ्या भ्रम ठहराये, सो उपदेशको तो हमने भलीभाँतिसे विचार किया। परन्तु, यह बात नहीं ठहरती है; और फिर रोग तो कुछ नहीं है, भ्रममात्र है, उसकी औषधि ज्ञानका उपदेश

रोग मिटानेका भरोसा देकर आप क्यों करते हैं ? यह आपको और बड़ा भ्रम कहाँसे घुस गया ? सो कहिये ! ॥ ६०९ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

५९. सुनहु शिष्य आतम सुधि जानो * बुद्धिसे परे निःकल्प अनुमानो ॥ ६१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब गुरुवाने ऐसा उत्तर दिया कि, गुरुवाने कहा—

सुनहु शिष्य=हे शिष्य ! तुम मेरे गूढ़ वचनोंको ध्यान पूर्वक एकाग्र चित्तसे श्रवण करो।

आतम= } आत्माको पूर्ण शुद्ध स्वच्छ
सुधि जानो= } निर्गुण-निराकार पहिचानो। यही परमात्माकी पहिचान है, सो इसीका विचार करो। और—

बुद्धिसे परे=मन, बुद्धि, वाणीसे अत्यन्त परे वह आत्मा है।

निःकल्प=कल्पना, सङ्कल्प-विकल्पसे परे निर्विकल्प आत्मा ही मैं हूँ ! तू है ! विश्व है !

अनुमानो=ऐसा अनुमानको दृढ़ करके निश्चयसे मान लो ॥

व्याख्या— गुरुवा कहता है कि, हे शिष्य ! तुम मेरी बातको सुनो ! और उसको मनमें गुनो ! तुम तो आत्मा स्वरूप शुद्ध हो ! सुधि या याद करके अपने आपको आत्मा जानो या पहिचानो; और मन, बुद्धि, वाणी आदि सबसे परे निर्विकल्प, निरीह, निरञ्जन तुम्हारा स्वरूप है, ऐसा अनुमानसे निश्चय कर लो ॥ ६१० ॥

६०. भास बुद्धि रोग भ्रम भाई ! * बुद्धिसे परे तुम ब्रह्म सुखदाई ॥ ६११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

भाई !=हे भाई ! हे शिष्य ! सुनो !—

रोग=जन्म-मरणादि रोग-शोगोंका विकार तुम्हारी बुद्धिमें मिथ्या—

भास बुद्धि=मृग जलवत् जो भास दृढ़ हो गया है, सो असत्य है।

भ्रम=सो तुम्हारी मिथ्या भ्रम-तरङ्ग मात्र है, ऐसा जान लो; और—

तुम=हे शिष्य ! तुम तो निर्विकार—

ब्रह्म=खास पूर्ण ब्रह्मस्वरूप—

सुखदाई=सच्चिदानन्दघन सुखरूप वा सुखदायी हो; तथा—

बुद्धिसे परे=मन, बुद्धि, वाणीके गम्यसे परे अगम्य तुम ही परमात्मा हो, सो जानो ॥

व्याख्या— हे भाई ! तुमको जन्म-मरणादि रोगोंका जो भास हो रहा है, सो बुद्धिका विकार मिथ्या भ्रममात्र असत्य है; और तुम तो मन, बुद्धि, वाणीसे परे सत्यब्रह्म सुख स्वरूप पूर्ण व्यापक हो, ऐसा समझ लो ! ॥ ६११ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

६१. बोलै शिष्य सुनो प्रभु ! मेरा * बुद्धि भ्रष्ट भई कारण केरा ? ॥ ६१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! फिर शिष्यने ऐसा प्रश्न किया—

बोलै शिष्य= } पुनः जिज्ञासु शिष्य विनयपूर्वक
सुनो प्रभु != } बोला कि, हे गुरो ! हे प्रभो !
मेरा= } मेरे विनयरूप सन्देहको आप सुन लीजिये ! और उसका उचितरूपसे समाधान कीजिये ! समझाइये कि—

बुद्धि भ्रष्ट भई= } मैं ब्रह्म स्वरूप होते हुए भी
कारण केरा ?= } किस कारणसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई ? सो कहिये ! ॥

व्याख्या— गुरुवाके समझानेके बादमें फिर जिज्ञासु शिष्यने बोलकर कहा कि, हे प्रभु ! मेरे मनमें और सन्देह उत्पन्न हुआ है, सो सुन लीजिये ! जब मैं निर्विकल्प आत्मस्वरूप ठहरा, तब किस कारणसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हुई ? सो समझाके कहिये ! ॥ ६१२ ॥

६२. बुद्धि भ्रष्टके कारण कौना ? * सो समुझाय कहो प्रभु ! तौना ॥ ६१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

बुद्धि भ्रष्टके कारण कौना? = मैं आत्मस्वरूप बुद्धिसे परे हूँ ! फिर मेरी बुद्धि भ्रष्ट होकर बिगड़नेका कौन-सा कारण हुआ ? सो हेतु मैं नहीं जानता हूँ । अतएव अब—

सो समुझाय कहो प्रभु! तौना = हे प्रभु ! सो सब बात अच्छी हरहसे समझायके मुझसे कहिये कि, भूल-भ्रमका आदि हेतु क्या है ? ॥

व्याख्या— मैं तो मन-बुद्धिसे परे केवल ब्रह्म हो करके भी मेरी बुद्धि भ्रष्ट होके बिगड़ गई, भ्रम हो गया; तो कौन कारणसे ऐसा हुआ ? सो बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारणको और तौन भेदको, हे प्रभो ! अब सब समझाकर मेरे प्रति कहिये ? समाधान कर दीजिये ! ॥ ६१३ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

६३. कहै वैद्य तुम भली विचारी * तुम्हरे बुद्धि न तुलै अनारी ॥ ६१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानीने इसप्रकार उत्तर देकर कहा —

कहै वैद्य तुम भली विचारी = ज्ञानी गुरुवाने कहा कि— हे शिष्य ! तुमने अच्छा विचार किया; तुम्हारा विचार भला है । अर्थात् तुमने जो विचार किया है, सो भलाई करनेवाला है ।

तुम्हरे बुद्धि न तुलै अनारी = तुम्हारी बुद्धि तीव्र है । अज्ञानी जीवोंकी बुद्धि-समझ तुम्हारी विचार-बुद्धिकी बराबरी नहीं कर सकती है; तुम सुबुद्धिवाले हो ! ॥

व्याख्या— ब्रह्मज्ञानीने कहा कि, हे शिष्य ! तुमने जो बात विचार किया, सो भली है । अनाड़ी मनुष्योंकी बुद्धि तुम्हारी तीक्ष्ण बुद्धिकी बराबरी नहीं कर सकती है ॥ ६१४ ॥

६४. औषध एक कहौं प्रन ठानी * शोक मोहकी रहै न निशानी ॥ ६१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

औषध एक कहौं प्रन ठानी = अब देखो ! मैं तुम्हें एक "रामरसायन महौषधि" बता देता हूँ ! और प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि, इसको निश्चयपूर्वक ग्रहण करनेसे तुम्हारे समस्त दुःख-रोग छूट जायेंगे; और—

शोक मोहकी रहै न निशानी = फिर उस दवाके प्रतापसे तुम्हारेमें जगत् मायाके शोक-मोहादिका नामोनिशान बाकी नहीं रहेगा ॥

व्याख्या— अब मैं तुमको एक गुप्त कीमती औषधि देता हूँ ! और प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि, उसको निश्चयपूर्वक धारण करनेसे शोक-मोह आदिका नामोनिशान तुम्हारेमें नहीं रह जायगा ॥ ६१५ ॥

६५. नहिं कछु रोग नहीं कछु रोगी * नहिं कछु भोग नहीं कछु भोगी ॥ ६१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने प्रतिज्ञा करनेके उपरान्त कहा—

नहिं कछु रोग नहीं कछु रोगी = "तत्त्वमसि" तू ही एक ब्रह्म है, इसीसे तेरेमें न जन्म-मरणादि रोग है और न रोगी अल्पज्ञ जीव ही है । ये कुछ भी नहीं है, रोग-रोगी तेरेमें कुछ भी नहीं है, सो जानो ।

नहिं कछु भोग नहीं कछु भोगी = तू ब्रह्म अकर्त्ता, अभोक्ता है, अतः कुछ भोग्य पदार्थ भी नहीं है, तथा भोगनेवाला भी कोई नहीं है, तो एक ही अद्वैत व्यापक ब्रह्म है ॥

व्याख्या— वह उपदेश यह है कि, तुम ही एक अखण्ड ब्रह्म स्वरूप हो, और तुम्हारेमें रोग-रोगी कुछ भी नहीं है; तथा भोग-भोगी भी कुछ नहीं है ॥ ६१६ ॥

६६. ज्योंका त्योंही ब्रह्म विराजै * एक अनन्त सबै भ्रम भाजै ॥ ६१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

ज्योंका त्यों = जगत् उत्पत्तिके पूर्व जैसा
ही ब्रह्म = निर्विकार ब्रह्म था, तैसा ही
विराजै = अभी भी है, अतः जैसा-का-तैसा आकाशवत् अचल, निराकार ब्रह्म सर्वत्र विराजमान होकर भरा है, सो जानो ! अतएव अद्वैत स्थितिमें—

एक अनन्त = एक और अनन्त कुछ कहते
सबै भ्रम = नहीं बनता है; एक कहना या
भाजै = अनन्त कहना, यह सब भ्रम-मात्र है। ब्रह्मज्ञानसे उस जगत् भ्रमको दूर हटा दो ! उसे त्याग दो ॥

व्याख्या— ज्यों-का-त्यों सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक विराजमान परब्रह्म तुम ही स्वयं हो। 'अहं-ब्रह्मास्मि' के निश्चय होते ही एक और अनेकका द्वैत भावना-भ्रम सब तुम्हारा भाग जायगा ॥ ६१७ ॥

६७. जो कछु होय तो द्रष्टा कहिये * दृष्ट अदृष्ट न एकौ लहिये ॥ ६१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

जो कछु होय = परब्रह्मसे भिन्न जो कि,
तो द्रष्टा कहिये = कुछ दृश्य पदार्थका द्वैत होय, तब तो द्रष्टाको न्यारा कहते बनेगा या जीव द्रष्टा कहा जायगा; परन्तु, यहाँ तो वास्तवमें अद्वैत है।

दृष्ट अदृष्ट = इसीसे द्रष्टा-दृश्य या दृष्ट-अदृष्ट
न एकौ = स्थूल-सूक्ष्म; यह एक भी उस
लहिये = ब्रह्ममें मिल नहीं सकता है। अर्थात् दृष्ट-अदृष्ट एक भी ब्रह्ममें नहीं होता है ॥

व्याख्या— अरे भाई ! अद्वैत एक ब्रह्मसे भिन्न तो कुछ नहीं है। यदि जो कि, कोई कुछ पदार्थ ब्रह्मसे न्यारा होय, तब द्रष्टा न्यारा कहलायगा। दृश्य और अदृश्य एक भी ब्रह्ममें नहीं सम्भवता है; "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" कहा है, ऐसा जानलो ! ॥ ६१८ ॥

६८. नहिं कछु हुवा न होवनहारा * शब्द विलास भया संसारा ॥ ६१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब गुरुवा लोगोंके उत्तर ही कह रहे हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

नहिं कछु हुवा = अद्वैत ब्रह्ममें द्वैत जगत्का
न होवनहारा = कुछ लेश मात्र भी भाव नहीं है। इससे जगत्की उत्पत्ति भी हुई नहीं और आगे उत्पन्न होनेवाली भी नहीं है। इसीसे न रोग है, न बन्धन है, यह सब कुछ नहीं है।

शब्द विलास = मूलतः शब्द ब्रह्मकी क्रीड़ा
भया संसारा = विलाससे यह संसार खड़ा हुआ है। अतः सुख-दुःख, बन्धन-मुक्ति, रोग-शोग एक-अनेक, यह सब कहने-सुनने मात्रका ही शब्द या वाणीका विलास संसारमें हुआ या हो रहा है ॥

व्याख्या— उसी सिलसिलामें ज्ञानी गुरुवाने कहा कि, एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ वस्तु नहीं है, न कभी हुआ और न होनेवाला ही है। तीन कालमें द्वैत जगत्का कुछ अस्तित्त्व नहीं है। यह संसार माया-ब्रह्मके विलासकी क्रीड़ास्थली है। इसकारणसे वाणीका विलास कहने-सुनने मात्रके लिये संसारका पसारा हुआ है और बात कुछ नहीं है ॥ ६१९ ॥

६९. अध्यारोप कहाँलों कीजे * वचन रचन होय मन चित दीजे ॥ ६२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

अध्यारोप = अद्वैत निर्गुण ब्रह्मकी जगह द्वैत
कहाँलों = सगुण जगत्की कल्पित स्थापना
कीजे = या मिथ्या मानना, ऐसा अध्यारोप कहाँतक करना या जगत्का झूठा आरोप कहाँतक करते हो ? और—

वचन रचन = वाणी ग्रन्थ-पन्थोंकी रचना मनः-
होय मन = कल्पित है, अतः उससे उपराम
चित दीजे = या निवृत्त होयके मन, चित्त, बुद्धि आदिको लय करके एक ब्रह्ममें ही लगा दीजिये ॥

व्याख्या— अरे भाई ! एक ब्रह्मके ठिकाने जगत्का झूठा आरोप कल्पित स्थापना कहाँतक करना ? वचनकी रचनाको छोड़कर शान्त होयके मन और चित्तको केवल ब्रह्ममें ही लगा दीजिये ! ॥ ६२० ॥

७०. आगे जो पूछो सो भर्मा * रोग अवस्था पिण्डके धर्मा ॥ ६२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

आगे जो पूछो = इसके आगे अब कुछ पूछनेकी जगह ही नहीं है, सब सार बात तो मैंने तुमको बता ही दिया है। आगे और तर्क करके जो पूछोगे, सो तुम्हारी मिथ्या हठ-भ्रान्ति ठहरेगी, अब हद हो गया है। और—

सो भर्मा =

रोग अवस्था = आवागमनादि रोग, जाग्रतादि अवस्था तथा बाल्यादि पन, यह सब होना तो पिण्डरूप देहके धर्म मायिक हैं। सो इससे ब्रह्मका कोई सम्बन्ध नहीं है, तथा उससे ब्रह्मका कुछ हानि भी नहीं है ॥

पिण्डके धर्मा =

व्याख्या— इसके आगे जो तर्क करके पूछोगे, तो वह तुम्हारा मिथ्या भ्रम ही कहलायेगा। अतः अब कुछ आगे नहीं पूछना। सुनो ! जन्म-मरणादि रोग चार खानीके अवस्था अनुसार होनेवाला पिण्डरूप देहके धर्म हैं। सो माया जनित होनेसे काया-मायाके साथ लगे रहते हैं। परन्तु, आत्मामें यह सब कुछ नहीं है ॥ ६२१ ॥

७१. शब्द उद्वेगते संशय होई * जो जाने निर्वचनी सोई ॥ ६२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

शब्द उद्वेगते = मनसे कल्पना करके शब्द उठानेसे तथा कहने-सुननेसे शब्दद्वारा कल्पना बढ़कर तुम्हें जो सन्देह उत्पन्न हुआ, उस संशयको मिटाय डारो, अब मौन हो रहो।

संशय होई =

जो जाने = मन, बुद्धि, वाणीसे अति परे ब्रह्म अनिर्वाच्य है, ऐसा जिसने जान लिया है, सो ज्ञानी सब सङ्कल्प-विकल्प, कहना-सुनना छोड़कर ब्रह्म स्वरूप अवाच्य ही हो जाता है, ऐसा जानो ॥

निर्वचनी सोई =

व्याख्या— शब्दकी कल्पना करनेसे कहने-सुननेसे मनमें संशय उत्पन्न होता ही जाता है। अतएव शब्दके उद्वेग-कल्पनाको छोड़कर शब्दातीत परमात्माको जिसने जान लिया, सोई स्वयं अनिर्वाच्य ब्रह्म स्वरूप हो गया। तुम भी इस प्रकार तर्क-शब्दको छोड़कर अवाच्य ब्रह्ममें समा जाओ ॥ ६२२ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

७२. सुनिके वचन शीतल भये रोगी * खुटका विवश रहा सब शोगी ॥ ६२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब अपनी तरफसे कहते हैं— हे सन्तो !

सुनिके वचन = भ्रमिक गुरुवाका ऐसे चपेटाकी बात, गोलमालका उपदेश सुन-सुन करके रोगी, कई अज्ञानी मनुष्यलोग शान्त, शीतल, गुपचुप होगये।

शीतल भये =

रोगी =

खुटका विवश = परन्तु, मनकी दुगदुगी, भ्रान्ति, सन्देहके खुटका तो कुछ नहीं मिटा। उसीमें लाचार परवश या मजबूर होके सब शोक-चिन्तामें पड़के व्याकुल-शोगी हो रहे ॥

रहा सब शोगी =

व्याख्या— ज्ञानी गुरुवाका तीक्ष्ण वचन, उपदेश सुनकर भयवश सब अज्ञानी रोगी शिष्यलोग शीतल होकर मौन हो गये। परन्तु, मनका खुटकारूप सन्देह तो कुछ नहीं मिटा। आखिर लाचार होके सब शोक-सन्देहमें ही पड़े रहे ॥ ६२३ ॥

७३. घिचपिच समुझि परे नहिं कोई * जापर बीते जाने सोई ॥ ६२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

धिचपिच = समुझि परे = नहिं कोई = } अण्डबण्ड, गड़बड़ बातें जैसे- कहीं एक या अनेक कहते हैं, कहीं व्यापक या न्यारा कहते हैं, कहीं जड़-चैतन्य मिश्रित बतलाते हैं। बेठिकानकी अनमिल वाणी नाना मत-सिद्धान्त जो कहा वह कुछ भी समझ नहीं पड़ता है या समझनेमें तो नहीं आता है, यों ही जबरन मनाते हैं, भयसे मानते हैं। परन्तु, इससे तो किसीका कुछ कल्याण नहीं हुआ।

जापर बीते = जाने सोई = } जिसके ऊपरमें आपत्ति या कष्ट बीतता है या आ पड़ता है, सोई उस दुःख-दर्दका हाल जानता है, दूसरा क्या जाने ? तैसे साधनोंका कष्ट, मानसिक क्लेश वे साधक लोग ही जानते हैं, गुरुवालोग धोखा-कल्पनाको क्या जानें ? ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंने ऐसे घिचपिचके गोलमालकी बात बताये कि, कुछ भी किसीके समझनेमें नहीं आया। कहीं द्वैत तो कहीं अद्वैत दृढ़ाये। कहीं भक्ति, योग और ज्ञानमार्ग बताये, तो कहीं सबका निषेध कर दिये; जड़-चैतन्यको एकमें सान दिये। भला ! इससे किसका क्या हित-कल्याण होता है ? परन्तु, जिसके ऊपर इस धोखेकी कठिनाई बीतती है, वही उसका हाल असारको जानता है; और कोई पारखी ही इन्होंके हालको जानते हैं ॥ ६२४ ॥

७४. पुनि कोई इनमें पूछै जाई * वैद्य कृपा करि होहु सहाई ॥ ६२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

पुनि कोई = इनमें पूछै = जाई = } संशयमें ग्रसित होके वा व्याकुल होके उनमेंसे जो कोई विशेष चतुर शाहसी शिष्य रहा, सो फिर भी उन्हीं गुरुवालोगोंके पासमें जाकर-के विनयसे सन्देहको प्रगट करके पूछने लगा कि—

वैद्य कृपा = करि होहु = सहाई = } हे वैद्य गुरु महाराज ! आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि करके सहायक होइये। यानी कृपाकर सहायता करके मेरी शङ्काका निवारण या समाधान कर दीजिये ! ॥

व्याख्या— तत्पश्चात् फिर उन्होंमेंसे जो कोई एक विशेष चतुर रहा, सो गुरुवाके पासमें जाकर पुनः पूछने लगा। उसने कहा कि, हे वैद्य गुरुजी! आप हमारे ऊपर कृपा करके मेरी शङ्काका समाधान करनेके सहायक दयालु होइये ! इतना कहकर शङ्का प्रगट करके कहने लगा—॥ ६२५ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

७५. नहीं रोग नहिं रोगी कहते * अनल रोग सदा हम दहते ॥ ६२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न बता रहे हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है— हे गुरुजी ! सुनिये !

नहीं रोग नहिं = रोगी कहते = } आप तो बड़ी ही विचित्र बात कहते हो, जन्म-मरण आदि रोग भी नहीं है, तथा रोगी जीव भी नहीं है, ऐसा आप कहते हो; परन्तु, उसके विपरीत यहाँपर तो—

अनल रोग = सदा हम दहते = } त्रिविधि ताप जन्म-मरणादि रोगरूप पावककी ज्वालामें हम रोगी होके झुलस रहे हैं, सन्तप्त हो रहे हैं, दुःख वा कष्ट पा रहे हैं ॥

व्याख्या— शिष्य कहता है कि, हे गुरुजी ! आप तो ऐसी बेठिकानकी बात कहते हैं कि, जो हमारे ध्यानमें ही नहीं आता है। रोग भी नहीं है और रोगी भी नहीं है कहते हो, यह कैसी उलटी बात है ? और हम तो रोगरूप त्रिविधि तापकी अग्निकी ज्वालामें सदा ही जल रहे हैं। आप तो आँखें मूँद लिये हो क्या ? जिससे आपको हमारे दुःख-दर्द कुछ दिखता ही नहीं है ॥ ६२६ ॥

७६. बिना दर्द किमि कुहको भाई ! * कुहक विलास जगत दिखलाई ॥ ६२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

बिना दर्द किमि = कुहको भाई ! = } हे भाई ! बिना हमें दुःख-दर्द हुए क्या हमारी खुशी थी कि, रोते-तड़फते, कराहते रहते ? और—

कुहक विलास = } मैं तो कष्ट पाके रो रहा
जगत दिखलाई = } हूँ, और आप इसी जगत्को ब्रह्मका विलास सुख स्वरूपमें बतलाते हैं, ये कैसे अचम्भेकी बात है ? ॥

व्याख्या— हे भाई ! कष्ट-क्लेशसे दर्द-दुःख हुए बिना हम काहेको रोते-कराहते, और इसी दुःख भोगको तथा जगत्को ही आप ब्रह्मानन्द सुख विलासकेरूपमें बतलाते हो या दिखलाते हो, यह कैसी आपकी उलटी समझ है; दुःखको ही सुख कैसे करके मानना ? ॥ ६२७ ॥

७७. जथा जमा क्यों फूटा प्रभु ! मेरा ❀ कारण कौन लगा यह केरा ? ॥ ६२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

जथा जमा क्यों = } हे प्रभु ! मेरा सत्य चैतन्य
फूटा प्रभु मेरा = } जमा पद ब्रह्म यथार्थ है,
तो फिर वह फूटकर नानात्व क्यों हो गया है ?

कारण कौन = } इसको ऐसे कौन कारण लगा
लगा यह = } कि, जिससे फूटकर टुकड़ा-
केरा ? = } टुकड़ा हो गया, सो कहिये ? ॥

व्याख्या— हे प्रभु ! मेरा जमापद यथार्थ सत्य है, तो फिर ब्रह्म होकर जगत्में क्यों फूटा ? इसको फूटनेमें क्या कारण लगा ? ॥ ६२८ ॥

७८. जो कहहु फूटा नहिं सोई ❀ एक अनन्त कहाँते होई ? ॥ ६२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

जो कहहु = } जो आप कहोगे कि, जमापद
फूटा नहिं = } तो फूटा नहीं है, वह अखण्ड
सोई = } ही ज्यों-का-त्यों है।

एक अनन्त = } तो फिर यह एक ब्रह्म वा अनन्त
कहाँते होई ? = } जगत् जड़-चैतन्य कहाँसे
उत्पन्न हुए, सो बतलाइये ? ॥

व्याख्या— जो यदि आप ऐसा कहोगे कि, ब्रह्म तो अखण्ड है, फूटा-टूटा कुछ नहीं है, तो फिर एक ब्रह्ममें अनन्त जगत् विस्तार जड़-चैतन्य आदि कहाँसे पैदा होकर आया ? सो समझाके कहिये ! ॥ ६२९ ॥

७९. एक वैद्य एक रोगी कहहू ❀ परम वैद्य एक भिन्न अनुसरहू ॥ ६३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यकी प्रश्न-वार्ता ही यहाँपर बतला रहे हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है, आपके अद्वैत सिद्धान्तमें भी कोई ठहरावका प्रमाण नहीं दिखता है, क्योंकि—

एक वैद्य = } एक तो अपनेको ज्ञानी गुरु वैद्य
एक रोगी = } बतलाते हो, और एक हम लोगों-
कहहू = } को अज्ञानी शिष्य रोगी ठहराते
हो, ऐसे न्यारा-न्यारा कहते हो। और—

परम वैद्य = } एक परमात्माको सबसे भिन्न
एक भिन्न = } परम वैद्य कथन करते हो;
अनुसरहू = } उसके लिये कई साधनोंके मार्ग-
में चलनेको बतलाते हो या उसी अनुसार
आप भी चलते-फिरते हो ! ॥

व्याख्या— जिज्ञासुने कहा कि, देखो ! इन गुरुवाओंकी बातकी कुछ स्थिति ही नहीं रहती है। क्योंकि, कभी एक अद्वैत ब्रह्म बतलाते हैं, फिर कभी द्वैत कथन करके उपदेश देते हैं। एक वैद्य, एक रोगी; एक गुरु, एक चेला, एकको ज्ञानी, दूसरेको अज्ञानी; ऐसा कहते वा मानते हैं। फिर परम वैद्यरूप परमात्माको एक अलग वा भिन्न ही ठहराकर उसकी प्राप्तिके लिये अनेक साधनाएँ करते-कराते हैं; ऐसे नाना चालसे चलते वा चलाते हैं ॥ ६३० ॥

८०. पुनि घिचपिच सब एक बतावो ❀ नहिं रोगी कहिके समुझावो ॥ ६३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

पुनि घिचपिच = } फिर बातको गड़बड़-
सब एक बतावो = } सड़बड़ गोलमाल करके
घिचपिचायके सबको एक ही अद्वैत ब्रह्म
बतलाते हो। और—

नहिं रोगी = } कोई रोगी जीव ही नहीं
कहिके = } है, निरोगी एक परब्रह्म ही सब-
समुझावो = } में पूर्ण भरा है, कह करके ऐसे
समझाते हो ! ॥

व्याख्या— फिर धिनपिचायके सबको एक ही ब्रह्म अभेद बतलाते हो ! ब्रह्मके सिवाय पृथक् कोई रोगी जीव ही नहीं है, ऐसा कहके समझाते हो ॥ ६३१ ॥

८१. जो है सत्य वैद्य तुम नाऊँ * वैदक आनन्द सत्य दरशाऊँ ॥ ६३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

जो है सत्य = जो कि, यदि आपका ज्ञान
वैद्य तुम नाऊँ = सत्य है। भव रोग नाशक सद्गुरु वैद्य यह नाम आपमें यथार्थ घटे, तब तो उसका काम भी वैसा ही होना चाहिये।

वैदक आनन्द = वेद प्रमाणसे ब्रह्मानन्द सुख-
सत्य दरशाऊँ = की महिमा जो बतलाये हो, सो हमें साक्षात्‌रूपसे प्रत्यक्ष अनुभव कराके दरशाइये या सच्चा सुख बतलाइये ! ॥

व्याख्या— अब जो आपका 'गुरु' यह नाम सत्य है, और उपदेश सत्य है, तो हे वैद्यजी ! हमारे समस्त रोग-शोग मिटायके वेद-वेदान्त कथित ब्रह्मानन्द या महाआनन्दको साक्षात् सत्य करके हमें दरशाइये या प्राप्त करा दीजिये ! ॥ ६३२ ॥

८२. तो पहिचान करहु प्रभु ! मेरा * कैसा रोग भया हम केरा ? ॥ ६३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

तो पहिचान = हे प्रभु ! तब तो प्रथम मेरा
करहु प्रभु ! मेरा = रोग और उसके मूल हेतु-
की पहिचान कर लीजिये ! और—

कैसा रोग = हमको कौन रोग, कैसा हो गया
भया हम = है ? किस विकारके होनेसे रोग-
केरा ? = रूपी अज्ञान खड़ा हुआ ? सो किस प्रकार बढ़ा ? यह बात मालूम करके बतलाइये ? ॥

व्याख्या— अब तो हे प्रभु ! मेरे खास रोगको आप पहिचान कर लीजिये ! हमको कैसा रोग है ? किस प्रकारसे रोग हुआ ? सो बतलाइये ! ॥ ६३३ ॥

८३. कैसे रोग दूर सो होई ? * वैसी औषधि देहु बताई ॥ ६३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

कैसे रोग = वह अज्ञानजनित भय वा रोग
दूर सो होई ? = मेरा कैसे वा किस तरहसे दूर होकर छूट जायगा ? उसका निदान बतलाइये !

वैसी औषधि = और वैसी ही महौषधिरूप
देहु बताई = सत्य उपदेश, सत् शिक्षा सत्साधना मुझे कृपा करके बता दीजिये ! ॥

व्याख्या— सो आवागमनका महारोग कैसे दूर होगा ? वैसी सच्ची औषधिरूप सत्य उपदेश हमें बता दीजिये ! ॥ ६३४ ॥

८४. एक रोग नाना जञ्जाला * दूसर औषध कीन्ह बेहाला ॥ ६३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

एक रोग नाना = एक तो जीव जड़ाध्यासवश
जञ्जाला = जन्म, मरण, गर्भवास, त्रय-तापादि रोगोंमें पड़ा है। तहाँ विषय प्रपञ्चोंके नाना जञ्जाल- स्त्री, पुत्र, धनादि खानी-जालोंमें बद्ध होकर पड़ा हुआ है।

दूसर औषध = दूसरा गुरुवालोगोंने ब्रह्म,
कीन्ह बेहाला = ईश्वरादि प्राप्तिके वास्ते पञ्च मार्गोंके उपदेशमें लगाकर बेहाल करके फँसा दिये हैं, ऐसी विपरीत चाल हो रही है ॥

व्याख्या— एक तो जीव भवरोगरूप संसार खानी जालके नाना जञ्जालोंमें पहलेसे ही पड़ कर दुःखी हो रहा है। दूसरा रोग मिटानेके लिये गुरुवालोगोंके पासमें गये, तो उन्होंने कल्पित उपदेशरूप खोटी औषधि नाना जप, तप, व्रतादिक नाना साधनोंमें लगाकर और परम दुःखी-बेहाल कर दिये या वैसे ही बेहाल कर रहे हैं ॥ ६३५ ॥

८५. औषध सो जो रोग नशाई * नहिं चाहत हम ब्रह्म कहाई ॥ ६३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्य कहता है—

औषध सो = जो आवागमनादि रोगोंको नाश कर मुक्त करे, सोई सत्य उपदेश है; वही हमें प्राप्त होना चाहिये, वही औषधि दे दीजिये ! और—

जो रोग = नशाई =

नहिं चाहत हम = ब्रह्म कहाई = हम ब्रह्म बनकर जगत् बन्धन जन्मृति रहटोंमें रहना नहीं चाहते हैं। ब्रह्मरूपी भ्रममें हमें मत् डालिये, ब्रह्म पदकी हमें चाहना नहीं है। हमें तो सिर्फ जीवन्मुक्तिकी आवश्यकता है। सो आपसे हो सके तो कहिये ! नहीं तो साफ जवाब दे दीजिये ! ॥

व्याख्या— औषधिरूप सच्चा उपदेश तो सोई है, जो कि, जन्म-मरणादि रोग-शोगोंको नशायके जीवन्मुक्त करे, सकल दुःखोंका नाश करे। ऐसी ही औषधि या उपदेश हमको प्राप्त होना चाहिये; और हम हकनाहक ब्रह्म कहलायके भ्रमवश चौरासी योनियोंके दुःखोंमें रहना नहीं चाहते हैं। हमें ब्रह्म कहलानेकी कुछ चाहना नहीं है, सत्य चैतन्य मुक्ति-स्थितिका हमें बोध दीजिये ! सो बोध आपके पासमें न होय, तो साफ बता दीजिये, हमें अब नहीं भुलाइये ! ॥ ६३६ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

८६. वैद्य कहै तू निन्दक अहही * इन्ह लोगन कहँ फाँसी चहही ॥ ६३७ ॥

अर्थः— यह गुरुवालोगोंका उत्तर श्रीरामरहससाहेब बतला रहे हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुकी उपरोक्त बात सुनकर गुरुवा नाराज होकर बोलता भया—

वैद्य कहै तू = निन्दक अहही = भ्रमिक ब्रह्मज्ञानीने कहा कि, अरे चेला ! तू तो बड़ा निन्दक हो गया है। वेद-शास्त्रोंके वचन विरुद्ध निन्दाकी ही बात बोलता है, तू बड़ा अपराधी हो गया है।

इन्ह लोगन कहँ = फाँसी चहही = इनमेंसे जो-जो वेदद्रोही, निन्दक, नास्तिक हैं, उन सब लोगोंको फाँसीमें लटका देना चाहिये। देखो ! ज्यादा तिकड़म करोगे, तो हम तुम्हें शाप देकर नाश कर देंगे। इन्होंको जबरन कर्म मार्गमें लगा दो, ऐसा कहा ॥

व्याख्या— शिष्यके उपरोक्त निर्णय वचन सुनकर गुरुवा क्रोधित होकर बोला— अरे नादान ! तू बड़ा निन्दक है; तेरा भाग्य फूट गया, जो तूँ ऐसा निन्दक हो गया है। तूँ फाँसीमें चढ़ना चाहता है क्या ? वेद, शास्त्र, ईश्वर और गुरुकी निन्दा करनेवालोंको सीधे फाँसीमें चढ़ा दिया जाता है। अरे ! तूँ ऐसे ही हठ करेगा, तो मैं तुझे शाप देके भस्मकर सत्यानाश कर दूँगा ! अरे कोई है ? इन्होंको जबर्दस्ती ढकेलकर कमामें लगाओ ! अब इन्हें कैद कर दो ॥ ६३७ ॥

८७. जो हम कहा सो मानत नाहीं * औषध औरसों माँगत जाहीं ॥ ६३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

जो हम कहा सो = मानत नाहीं = जो कि, हमने दया करके वैदिक मतका सार उपदेश कहा, सो तो ये मूढ़लोग मानते ही नहीं हैं; और—

औषध औरसों = माँगत जाहीं = दूसरेसे जाकर उपदेश लेनेकी धमकी देते हैं, और-ही-और आगे-आगे ही उपदेशरूपी औषधि माँगते जाते हैं ॥

व्याख्या— देखो न, कितने ढीठ बने हैं ! जो हमने वेद-वेदान्तका सार सिद्धान्त सत्य मत कहा, सो तो मानते ही नहीं हैं; और-ही-और आगे-आगे औषधि वा उपदेश माँगते जाते हैं, और दूसरेसे उपदेश माँगनेकी बातें कहते हैं ॥ ६३८ ॥

८८. यह हरिभोंग सनातन ऐसा * रोग स्वभाविक छूटै कैसा ॥ ६३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

यह हरिभोंग = सनातन ऐसा = यह हरिभोंग संसारका अनादि या सनातनसे ही ऐसी चाल चली आ रही है !

रोग स्वभाविक = छूटै कैसा = } देह और जगत्का उत्पत्ति-प्रलय या जन्म-मरणादि होनेका मूल रोग तो स्वाभाविक ही होते रहनेवाला नित्य है। तहाँ ब्रह्मसे जगत् और जगत्से ब्रह्म तो होता ही रहता है, फिर यह कैसे छूट सकेगा? नहीं छूटेगा वा यह रहटा कभी छूटनेवाला नहीं है॥

व्याख्या— यह हरिभोग नगररूप संसारमें जैसा अभी वर्तमानमें कार्य चल रहा है, ऐसा ही उत्पत्ति-प्रलय होना सनातन वा नित्यका कार्य है। रोग तो स्वाभाविक ही स्वतः सिद्ध है, फिर छूटेगा कैसे? तुम छूटनेकी बात ही कैसे करते हो? जगत्-ब्रह्मका नित्य सम्बन्ध है। अतः चाहे कुछ भी करो, तो भी यह ब्रह्मसृष्टिका खेल कभी बन्द होनेका नहीं है॥ ६३९॥

८९. पाँच तत्त्व अनादि हैं भाई! * स्वतः सदा ऐसेहि समुझाई॥ ६४०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

पाँच तत्त्व अनादि हैं भाई!= } हे भाई! सुनो, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, यह पाँच तत्त्व अनादिसे ही नित्य मौजूद है। इसीसे यह जगत् ब्रह्मरूपसे अनादि है। इसका समस्त कार्य ब्रह्मकी इच्छासे स्वयमेव हुआ करता है। और—

स्वतः सदा ऐसेहि समुझाई = } सदा-सर्वदासे स्वयमेव उत्पत्ति तथा प्रलय होता चला आ रहा है। ऐसे ही सर्वदा वह कार्य होता रहेगा, यह कार्य कभी रुक नहीं सकता है, ऐसा समझ लो! अब सब तर्क-वितर्क छोड़ दो, भलाई चाहते हो, तो शान्त निर्विकल्प हो रहो॥

व्याख्या— हे भाई! ब्रह्म अधिष्ठानमें यह पाँच तत्त्वका जगत् बना है। इसलिये यह पाँचतत्त्व भी अनादि है; और सदा-कालसे स्वयं ऐसे ही उत्पत्ति-प्रलय होता है, और होता रहेगा; ऐसा समझ लो॥ ६४०॥

९०. संयोग पाय बहुरूप उपाई * वियोग होत सो जात नशाई॥ ६४१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

संयोग पाय बहुरूप उपाई = } तत्त्व-प्रकृति या माया-ब्रह्मका मिलापरूप संयोग पायके घट-मठादि बहुतरूपमें अनन्त कार्य उत्पन्न हो जाते हैं। और—

वियोग होत सो जात नशाई = } वियोग होकर अलग-अलग होनेसे सो सब दृश्य कार्यका विनाश हो जाता है॥

व्याख्या— प्रकृति-पुरुषका या तत्त्व-तत्त्वोंके परस्पर मिलापरूप संयोग-सम्बन्ध पायके चारखानी तथा घट-पटादि बहुतेकरूपमें पदार्थ उत्पन्न होते हैं; और उसीका फिर वियोग पायके भिन्न-भिन्न हो जानेसे सो सबरूप नाश होकर उसी कारणमें जाके समा जाता है। यह नित्यका सिलसिला जानकर सन्तुष्ट हो जाओ। अब तर्क-वितर्क करके असन्तोष प्रगट मत् करो॥ ६४१॥

९१. वचन बोधते संशय होई * तेहि पाछे मति जाहु बिगोई॥ ६४२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवाका उत्तर ही बतला रहे हैं— हे सन्तो! गुरुवाने कहा—

वचन बोधते संशय होई = } अनेक प्रकारकी वाणियोंको कहने-सुननेसे विभिन्न प्रकारकी समझ तथा बोध-अबोधके कारण-से मनमें नाना सन्देह उत्पन्न हो जाते हैं, सो भ्रम है।

तेहि पाछे मति जाहु बिगोई = } सो उसके पीछे मत् पड़ो, और पुष्पित वाणीसे बुद्धि भ्रष्ट बना-कर तुम बिगाड़के रास्तेमें मत् जाओ; उसके पीछे लगके मत् बिगड़ो॥

व्याख्या— भ्रमिक गुरुवाने कहा कि, हे शिष्य! वाणी-वचनके श्रवण द्वारा बोध वा अबोधके कारणसे संशय, तर्क उत्पन्न होता है; और आत्माका स्वरूप तो वाणीसे परे है। इस वास्ते उस पुष्पित

मिथ्या वाणीके पीछे पड़कर या उसमें लगकर तुम मत् बिगड़ो ! अपनी हानि मत् करो, सब सन्देहको छोड़ दो ! ॥ ६४२ ॥

६२. शब्दका कारज कहिये सुनिये * बन्धन मोक्ष भरममों लहिये ॥ ६४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

शब्दका कारज कहिये सुनिये = शब्दरूप वाणीका कार्य तो इतना ही है कि, कुछ कहना और कानसे सुनना होता है। क्योंकि, सबोंसे चुप-चाप बैठा नहीं जाता है, तो कुछ वेद-वेदान्तके वाक्य कह-सुनकर समय गुजारा जाता है। नहीं तो ब्रह्म अवाच्य, निर्विकल्प, निरञ्जन है।

बन्धन-मोक्ष भरममों लहिये = उसमें बन्धन और मुक्ति कुछ नहीं है; इसीसे तो बन्धनमें पड़ना भी भ्रान्ति है, तथा मोक्ष पाना भी भ्रान्ति है, भ्रम करके ही यह दोनों होता है ॥

व्याख्या— मुखसे कहना और कानसे सुनना, इतना ही शब्दका कार्य है। वास्तवमें तो ब्रह्म सबका कारण प्रणव शब्दरूप है। सो ब्रह्म बोधके लिये ही शब्द कहना-सुनना चाहिये। इससे बन्धनकी भ्रान्तिवालेको मोक्ष प्राप्त होता है। नहीं तो बन्धन और मोक्ष दोनों भ्रममात्र हैं। भ्रान्तिमें ही यह भास होता है, ऐसा समझकर भ्रान्तिसे रहित हो रहो ॥ ६४३ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

६३. मिथ्यावादी वैद्य कहीजे * वचन प्रमाण कौने विधि कीजे ? ॥ ६४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब जिज्ञासुके कथन बतला रहे हैं— हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

मिथ्या वादी वैद्य कहीजे = इन वैद्य बने हुए गुरुवाको मिथ्यावादी कहना चाहिये। क्योंकि, जितनी वाणी इन्होंने कही, सो सब झूठी-ही-झूठी निकली। कहो भाई !—

वचन प्रमाण = अब इनके वचन वेदादिके प्रमाण भी—

कौने विधि कीजे ? = किस प्रकारसे या किस विधिसे करना ? सत्य-न्यायसे तो इनकी बात कुछ सत्य ठहरती ही नहीं है। अतः वह तो मानने योग्य नहीं है, ऐसा ही मालूम पड़ता है ॥

व्याख्या— जिज्ञासु शिष्यको जब सद्विचारका उदय हुआ, तब इसप्रकार स्पष्टरूपसे कहने लगा कि, हे वैद्य ! तुम गुरुवालोग जो कुछ कहते हो, सो सब मिथ्या वाद-विवादमात्र है। अतः तुमलोग मिथ्यावादी झूठे ही गुरु बने हो। तुम्हारे वचनका प्रमाण तो भी किस प्रकारसे करना ? तुम तो गोलमाल करके छोड़देते हो; झूठी ही बात करते हो। निर्णयमें ठहरे, ऐसी बात तो कुछ कहते ही नहीं हो। अब तुम्हारे वचनका प्रमाण किस प्रकारसे करें ? ॥ ६४४ ॥

६४. पाँच तत्त्व जड़ आपुहि आपा * किमि संयोग लहहिं प्रतापा ॥ ६४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

पाँच तत्त्व जड़ आपुहि आपा = पाँचों तत्त्व यह स्वयं ही जड़ हैं। इनमें चेतनपना, ज्ञानगुण कुछ भी नहीं है। फिर ये अपने आप जीव सृष्टिको कैसे करेंगे ?

किमि संयोग लहहिं प्रतापा = जड़ तत्त्वोंमें इच्छा शक्तिके प्रताप तो नहीं है। फिर कैसे संयोग करके चारखानीकी उत्पत्ति करेंगे ? सिर्फ जड़में नारी-पुरुषका संयोग कहाँ है ? सो बतलाइये ? ॥

व्याख्या— पाँचतत्त्व तो अनादि और स्वयं जड़ ही हैं। चेतन जीवोंके सम्बन्ध बिना आप-ही-आप जड़ तत्त्वोंके सम्बन्धमात्रसे चारखानीके अनन्त देहधारी जीवोंकी उत्पत्ति कैसे वा कहाँसे होयगी ? यह प्रताप कहाँसे आयेगा ? ॥ ६४५ ॥

९५. अनबनरूप किमि जड़की रचना ? * पुनि वियोग किमि कारण खचना ? ॥ ६४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

अनबनरूप = किमि जड़की = रचना ? = मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चार खानियोंमें नाना तरहोंके आकार-प्रकार स्त्री-पुरुषादिके रूप दिखाई देते हैं, सो जीवके बिना सिर्फ जड़तत्त्वोंसे ही कैसे रचना हो सकेगी ?

पुनि वियोग = किमि कारण = खचना ? = फिर नाश या देह छूट जानेपर शरीर और जीवका वियोग होकर जड़तत्त्ववत् जीव कारणरूप तत्त्वोंमें जाकर कैसे मिलेगा ? या लय तो भी कैसे होगा ? यानी चेतनका नाश कैसे होगा ? वैसा तो कदापि नहीं होगा ॥

व्याख्या— जीवकी सत्ता बिना तथा कर्म संस्कारके विना नानारूप अनेकों प्राणियोंके देहोंकी रचना सिर्फ जड़तत्त्वमात्रसे कैसे होगी ? भला ! फिर देह छूटनेपर देहोंके साथ ही जीवोंका भी नाश होकर कारण तत्त्वमें जाकर चैतन्य जड़में कैसे समायेगा ? या कैसे नाश होगा ? यह बात तो असम्भव मालूम पड़ती है ॥ ६४६ ॥

९६. निज स्वभाव कैसे सुख मानो ? * सुखकी चाह कहिके पहिचानो ॥ ६४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शिष्यने कहा—

निज स्वभाव = कैसे सुख = मानो ? = निज स्वरूप जो द्रष्टा है, उसको स्वाभाविक सुख-स्वरूप वह सच्चिदानन्द ब्रह्म है, करके कैसे मानना ? सुख-दुःख तो भिन्न-भिन्न सम्बन्धमें होता है, उसको निज स्वाभाविक सुख कैसे मानते हो ?

सुखकी चाह = कहिके पहिचानो = और जो (यदि) हमारा स्वरूप ही सुखमय होता, तो फिर हमें सुखकी चाहना क्यों होती ? फिर आप ब्रह्मको सुख-स्वरूप कहकर बतलाते हो, तो सुखकी चाहना क्यों हुई ? उसके स्वरूपको कह-सुनकर कैसे पहिचानना। अथवा आप कैसे पहिचानते हो ? ॥

व्याख्या— अपनेको स्वाभाविक सुख स्वरूप ब्रह्म तो भी कैसे मानना ? क्योंकि, सुखरूप मैं स्वयं होता, तो मुझे सुखकी चाहना क्यों होती ? भिन्न पदार्थ सम्बन्धके बिना सुख कैसे होगा ? इससे स्वाभाविक सुखरूप निजको मानना गलत बात भ्रममात्र है। फिर ? सुखरूप ब्रह्म प्राप्तिकी चाहना लगाकर नाना उपदेश कहकर उसको पहिचाननेको कहते हो, तो इसप्रकार किसको क्या पहिचान होगी ? ॥ ६४७ ॥

९७. वैद्य प्रपञ्ची झूठा खोटा * भोरे सकल कुशलके ओटा ॥ ६४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

वैद्य प्रपञ्ची = झूठा खोटा = हे वैद्यजी ! तुम बड़े ही प्रपञ्ची ठग और झूठे मिथ्यावादी हो, तुम्हारा मत भी खोटा या असत्य है। तुम बड़े धूर्त हो, ऐसा मालूम पड़ता है।

भोरे सकल = कुशलके ओटा = हम सबको तुमने कुशल या कल्याणरूप मुक्ति प्राप्तिके आशा-भरोसाकी आड़ (पर्दा) में भुलायकर धोखेमें डालकर विनाश कर रहे थे, सो अभी तुम्हारा पोल खुला ॥

व्याख्या— हे वैद्य-गुरुवा ! तुम तो महा प्रपञ्ची पाखण्डी हो, तुम्हारे उपदेश भी झूठे हैं, और सिद्धान्त भी खोटे हैं। कल्याणरूप गति-मुक्ति प्राप्तिकी ओट, आड़, आवरण-पर्दामें सब मनुष्योंको भुलाकर धोखेमें डाल दिये हो। यह तुम्हारी कुटिलता तो पारखी सद्गुरुकी दयासे अब जाननेमें आया ॥ ६४८ ॥

९८. अब कहा कुशल कहा गुरुवाई * वैदक झूठा वैद्य अन्याई ॥ ६४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

अब कहा = जब तुमने सबको मिथ्या
कुशल कहा = बताकर ब्रह्म-जगत्को एक
गुरुवाई = ठहरा दिया; अब कहो भला! कुशलरूप कल्याण कहाँसे होगा? तुम्हारे गुरु उपदेशकी विशेषता भी कुछ नहीं रही, गुरुवाई भी धूरमें मिल गयी। और—

वैदक झूठा = हे वैद्य! तुम गुरुवालोग अन्यायी
वैद्य अन्याई = अविचारी हो, और तुम्हारे वेद-वेदान्त ग्रन्थ सब भी झूठे वा मिथ्या कल्पना-का पसारामात्र है, ऐसा निर्णयसे ठहरता है॥

व्याख्या— तुम्हारी झूठी बातोंसे अब हमारा कुशल कहाँ हुआ? तुम्हारी गुरुवाईकी क्या विशेषता हुई? हे वैद्य-गुरुवालोगो! तुमलोग अन्यायी धूर्त बने हो! वेदादि वाणी भी तुम्हारा झूठा पसारा है; इससे उसमें कुछ सार नहीं दिखता है॥ ६४९॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

९९. सुनत वचन वैद्य खिसियाने * अनल क्रोध बहुते झुलसाने॥ ६५०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब अपनी तरफसे कहते हैं— हे सन्तो!

सुनत वचन = जिज्ञासुका ऐसा साफ-
वैद्य खिसियाने = साफ निर्णयकी, निर्भय वाणी सुन करके वैद्यरूप गुरुवा-पण्डितलोग खिसियाकर बहुत नाराज हो गये, तिलमिला उठे; और—

अनल क्रोध = क्रोधरूपी अग्निमें अत्यन्त ही
बहुते = झुलस गये। क्रोधके मारे शरीर
झुलसाने = लाल होकर काँपने लगा; और तब गुरुवालोग बड़बड़ाने लगे॥

व्याख्या— जिज्ञासु शिष्यका निर्णय वचन सुन करके गुरुवालोग असन्तुष्ट-रुष्ट होकर खिसियाने लगे। उसी क्रोधकी अग्निमें खूब बहुत ही झुलस गये। शरीर लाल होकर क्रोधसे काँपने लगे; तबसे बाहर हो उठकर चल दिये॥ ६५०॥

१००. वैद्य गये ढिग भोंदू राऊ * कहा राउ तुम करहू न्याऊ॥ ६५१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

वैद्य गये ढिग = तदनन्तर वे योगी, ज्ञानी,
भोंदू राऊ = भक्त गुरुवालोग भोंदू राजा बने हुए ब्रह्मज्ञानीके नजदीक या पासमें फरियाद करनेको चले गये। और—

कहा राउ = उन्होंने कहा कि, हे हमारे
तुम करहू = महाराज! आपकी प्रजा
न्याऊ = सब अन्यायी हो गयी; हमारे वचनको ही नहीं मानती है, इस मामलेका आप ठीक-ठीकसे जल्दी न्याय कर दीजिये!॥

व्याख्या— तत्पश्चात् वे गुरुवालोग भोंदू ब्रह्मज्ञानी राजाके पास चले गये और शिकायत वा फरियाद करके कहने लगे कि, हे महाराज! आप जल्दी ही इस बातपर ध्यान देकर न्याय करिये! अब आपकी शिष्यरूप प्रजा अन्यायी होती जा रही है। गुरुवाने साफ-साफ मामला बताओ! कहनेपर, वे लोग इसप्रकार नीचे खुलासा करके कहने लगे॥ ६५१॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक गुरुवाका उत्तर ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१०१. बहु विधि औषध रोगिन दीन्हा * पोथी कहै तेहि चूक न कीन्हा॥ ६५२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुवाका कथन बतला रहे हैं— हे सन्तो! तब उन गुरुवालोगोंने ब्रह्मज्ञानीको बतलाया कि—

बहु विधि = बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक
औषध = हमने रोगीरूप अज्ञानी जनों-
रोगिन दीन्हा = को औषधिरूपी भक्ति, योगादिका उपदेश बताये, सब बात समझा दिये वा नियम-साधन कहे। और—

पोथी कहै = वेद, वेदान्त, भागवत, गीताकी
तेहि चूक = कथा, पुराण कहकर भी सुनाये।
न कीन्हा = सनातन धर्मका उपदेश हमने भलीभाँतिसे बतलाये, शास्त्र प्रमाणसे उपदेश देनेमें हमने कुछ भी चूक नहीं किया॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंने कहा कि, हे महाराज ! हमने बहुत प्रकारसे अच्छी तरहसे एक-एक बातोंको समझा-समझाकर अज्ञानी मनुष्योंको नाना प्रकारसे उपदेश दिया, तथा वेद-वेदान्तके गोप्य-गूढ़ सिद्धान्तको भी खोल-खोलकर हमने उन शिष्योंको बतलाया; और कथा कहकर भी उन्हें सुनाया, कोई बातकी चूक उपदेश देनेमें हमने नहीं की है ॥ ६५२ ॥

१०२. तबहुँ कहै रोग नहिं जाई ❀ ऐसी परजा भई अन्याई ॥ ६५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने शिकायत करके ब्रह्मज्ञानीसे कहा—

तबहुँ कहै = तब भी शिष्यवर्ग, प्रजाजन
रोग नहिं = कहते हैं कि, उससे उनका
जाई = अज्ञानरूपी रोग नहीं गया और भवरोग नहीं छूटेगा। आगे सच्चा उपदेश दो, ऐसा बोलते हैं।

ऐसी परजा = आपके प्रजारूप शिष्यवर्ग
भई अन्याई = ऐसे मनमुखी हठी मर्यादाको तोड़नेवाले अन्यायी, अपराधी, वेदद्रोही, गुरुद्रोही हो गये हैं ॥

व्याख्या— तब भी शिष्यलोग कहते हैं कि, अज्ञान नहीं गया, मुक्ति नहीं भयी, बन्धन नहीं छूटा, ऐसी-ऐसी उलटी बात कहने लगे। ईश्वर, वेद और गुरुका द्रोह करने लगे, ऐसे चेलेलोग महा अन्यायी-अपराधी भये हैं ॥ ६५३ ॥

१०३. ताहि पकरिके फाँसी दीजे ❀ पोथी कहै सोई प्रभु ! कीजे ॥ ६५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवाने कहा—

ताहि पकरिके = इसवास्ते उन दुष्ट विद्रोहियों-
फाँसी दीजे = को सेना भेजकर पकड़वाइये और फाँसीमें चढ़ा दीजिये, शाप देके नष्ट करिये या जबर्दस्ती घसीटकर कर्म-धर्ममें लगा दीजिये !

पोथी कहै = हे प्रभु ! आप तो सर्व समर्थ हो !
सोई प्रभु ! = अतः वेद-शास्त्रोंमें जो कायदा,
कीजे = कानून, दण्ड विधान कहा है, सोई दृढ़तासे कायम कीजिये ! अपनी शासन सत्ताको प्रगट कीजिये, दुष्टोंको दण्ड दीजिये ! ॥

व्याख्या— हे प्रभो ! आप तो सर्वशक्तिमान् हो, शासन-सत्ता आपके हाथमें है, इसीसे विद्रोह फैलनेके पहले ही उन दोषी मनमतियोंको पकड़वाके फाँसीमें डाल देनेका हुक्म दे दीजिये ! किसी तरह भी उन्होंको फँसाय दीजिये ! वेद-शास्त्रोंमें जो दण्ड-विधान कहा है, सोई प्रगटरूपसे स्थापन कीजिये ! जिससे आपका प्रभाव संसारमें सबको विदित हो जायगा ॥ ६५४ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताका निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१०४. राजा रोगिन पकरि मँगावा ❀ बहु प्रकार शासत दिखलावा ॥ ६५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

राजा = तब ब्रह्मज्ञानीरूप महाराजने अप्रसन्न होकर बलवान् फौज भेजकर उन सब विद्रोहीलोग—
रोगिन = अज्ञानी तर्क-वितर्क करनेवाले शिष्य मण्डलियोंको, गरीब सेवकोंको—
पकरि = घेरा डालकर पकड़वाकर जबर्दस्ती—
मँगावा = अपने सन्मुखमें बुलवाकर मँगवाया। जब उन्होंको लाये, तब—

बहु प्रकार = पहले तो बहुत प्रकारसे उन्हें समझाया, भय बतायके फिर अनेक तरहसे धमकायके—
शासत = शाप देके सर्वस्व नाश कर देनेका
दिखलावा = भय, एकईस (२१) नरकोंमें पड़के अनेक कष्ट-क्लेश पानेका डर इत्यादि नाना दण्ड दिखलाके डरवाया और पीट-मार करके भी भय दिखलाया ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— तदनन्तर ब्रह्मज्ञानीरूप राजाने उन सब रोगीरूप शिष्योंको पकड़वाकर मँगा लिया। फिर उन्हें बहुत तरह-तरहके कष्ट देकर शाप, नरक, चौरासी योनियाँ

आदिका भय बताकर अपनी उजड्डताका प्रभाव दिखलाया। यानी रोचक-भयानक वाणी सुनायके आगे और कहने लगा; इसप्रकार बहुत तरहसे शासत दिखलाया ॥ ६५५ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक ब्रह्मज्ञानीका वचन वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१०५. कहा परजा सुनहु तुम मेरा * चहहु उजारन पट्टन केरा ॥ ६५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब ब्रह्मज्ञानीके कथन दर्शाकर कहते हैं— हे सन्तो! भ्रमिक राजाने कहा—

कहा परजा = ब्रह्मज्ञानी राजाने कहा कि,
सुनहु = हे शिष्य प्रजाजनो! मेरे वचन
तुम मेरा = वा सर्वोच्च आज्ञाको तुमलोग ध्यानसे सुनो!—

चहहु = क्या तुमलोग मनमतिसे हमारे
उजारन = राजधानी शहररूप संसारमें
पट्टन केरा = सनातन धर्म-कर्मको नाश वा लोप करके इसे उजाड़ना चाहते हो? या क्या करना चाहते हो? ॥

व्याख्या— भोंदू राजाने कहा कि, हे प्रजा लोगो! मेरी बातको तुम सब लोग कान लगायके सुनो! तुम्हारे मनमें क्या है? मेरे शहर और राज्य शासनको उजाड़ कर डालना चाहते हो क्या? ऐसा कभी होने नहीं दूँगा! सावधान रहो! नहीं तो तुम्हारे सत्यानाश ही करदूँगा, सो जानो ॥ ६५६ ॥

१०६. तुम्हरे तो कछु रोग न होई * वैदक अनुहार करेगा सोई ॥ ६५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

तुम्हरे तो = तुम्हारे बर्ताव चाल-ढालसे तो
कछु रोग = यही मालूम पड़ता है कि, तुमलोग
न होई = निरोग हो, तुम्हारेमें कुछ रोग, शोग ही नहीं हुआ है। फिर झूठ ही रोगी क्यों होते हो? और तुम्हारे आत्मस्वरूपमें तो कुछ रोगका लेश मात्र भी नहीं है; परन्तु, तुम्हारे मनमें जो रोग-शोगकी मिथ्या भ्रान्ति बीचमें लगी है—

सोई = सो उसी मिथ्या भ्रमको ही—
वैदक = वेद-वेदान्तकी उपदेश-शिक्षासे—
अनुहार = दूर करके मिटा दिया जायगा।
करगा = यानी ब्रह्मज्ञान ही तुम्हार भ्रमका अन्त करेगा। इसीलिये तो जो वेदान्ती गुरुने बताया, सोई बात सही मानी जायगी ॥

व्याख्या— अरे भाई! तुम्हारे आत्मस्वरूपमें रोगोंका तो नामोंनिशान नहीं है। फिर तुम रोगी कैसे हुए? तुम्हारेमें तो कुछ रोग ही नहीं है। जो वेद और गुरु कहते हैं, सोई बात सच्ची है। और रोगादिका मिथ्या भ्रम जो लगा है, उसके लिये वेदान्त उपदेशको जो धारण करेगा, सो ब्रह्मज्ञान ही सब भ्रमको नाश करके दूर करेगा, ऐसा जानो ॥ ६५७ ॥

१०७. सदा रोग जो शिरपर धरहू * फुस फुस बहु भाँतिसे करहू ॥ ६५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

सदा रोग जो = अरे मूढ़ो! जो कि, तुमलोग
शिरपर धरहू = सदाकाल भ्रमरूपी रोग शिरपर धारण करते रहोगे, तो कैसे काम चलेगा? और कल्याण कैसे होगा? ऐसे तो ठीक नहीं होगा।
वेद-गुरुके विरुद्ध बातें आपसमें तुमलोग—

फुस फुस = फुस-फुसाते रहते हो, यह काम
बहु भाँत-से करहू = तुम्हारा दुषित है। सो निन्दा-चर्चारूपी कहरना छोड़कर नाम-स्मरण, योग, ध्यान, जप, तपादिक साधन बहुत प्रकारसे करो, जिससे तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा ॥

व्याख्या— हे मनुष्यो! तुमलोग भ्रमरूपी रोगको सदा-सर्वदा शिरपर चढ़ाये धरे रखते हो! और गुरु तथा वेदकी निन्दा कानाफूसी करते हो, यह तो विनाशके मार्गमें जा रहे हो। ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं है। यदि तुम्हें वास्तवमें रोग-शोग है, तो परमात्माका नाम-स्मरण करो, ध्यान, धारणा, समाधि लगाओ वा जप, तप, व्रत, उपवास करो! इससे तो बहुत प्रकारके रोग तुम्हारे मिट जायेंगे, सो जानो ॥ ६५८ ॥

१०८. लिखो मुचलिका चाहो न काजा * सो तुम रानी अटल हम राजा ॥ ६५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

लिखो मुचलिका = चाहो न काजा = हे प्यारे शिष्यो! अब तुमलोग हमारी बातको मान जाओ! अब एक इकरारनामा बनाके लिखो कि, हम आपकी आज्ञाके विरुद्ध होकर कोई काज करना नहीं चाहेंगे, ऐसा लिखाकर सही कर दो।

सो तुम रानी = अटल हम राजा = बस! फिर तो तुम्हारा भाग्य खुल जायगा। हम तीनों लोकोंके अटल महाराज हैं, सो तुमको हम अटल पटरानी बनायेंगे। हमारे कहे अनुसारसे चलो, तो तुम फिर त्रैलोक्यकी महारानी बन जाओगी॥

व्याख्या— तुम हमारी शरणमें आओ! तन, मन, धनादि अर्पण करके एक मुचलिका = इकरारनामा पत्र लिखो कि, 'हम आपके हुकम पालन करेंगे, और दूसरे कुछ काजको नहीं चाहेंगे'— यह शर्त लिखके दस्तखत कर दो! सो फिर तुम्हें हम अपनी महारानी बनायेंगे। हम तीनों लोकोंके अधिपति अटल महाराजा हैं। हमारे कहे अनुसार चलनेसे तुम हमारी प्यारी महारानी बनोगी, और तीनलोकका राज्य सुख भोगोगी॥ ६५९॥

१०९. तुम कामिनि हम पुरुष तुम्हारा * कौतुक राज आचार हमारा ॥ ६६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब, ब्रह्मज्ञानीके कथन बतला रहे हैं—हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

तुम कामिनि = हम पुरुष = तुम्हारा = मुक्तिकी इच्छा या कामना करनेवाले हे शिष्यो! तुमलोग भक्त-स्त्रीरूपी कामिनी हो, और हम तुम्हारी मनोकामनाको पूरी कर देनेवाले गुरु ब्रह्मरूप पुरुष पति या स्वामी हैं, तुम सेवक हो। ऐसे तुम हमारे स्त्री हो, और हम तुम्हारे पुरुष हैं।

कौतुक राज = आचार हमारा = महालीला-तमाशाकी भूमि आश्चर्यमय विचित्र जगत् ही हमारी राजधानी है। परमानन्दमें निमग्न रहते हुए क्रीड़ा करना, यही हमारा आचार है, ऐसा तुम जानलो॥

व्याख्या— भोंदू ब्रह्मज्ञानीने कहा कि, हे भाई! जैसे तुमलोग चेले हो और मैं तुम्हारे गुरु हूँ! तैसे ही तुमलोग कामिनीरूपी स्त्री हो, मैं तुम्हारा पुरुषरूप पति सुखदाता हूँ! और तुम्हारा तथा हमारा खेल-क्रीड़ा करना यही काम संसार-राज्यमें करना है, हमारा आचार तो आश्चर्यरूप आनन्दमय रहता है। इसे सब कोई समझ नहीं सकते हैं, हमारे साथमें लगे रहो, तो तुमलोग भी इसे जानोगे॥६६०॥

११० जस हम तस तुम भेद न कोई * राज विलास नर नारी सोई ॥ ६६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

जस हम = तस तुम = भेद न कोई = वास्तवमें तो जैसे हम अद्वैत सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं, तैसे तुमलोग भी ब्रह्मांशरूप जीव होनेसे ब्रह्म ही स्वरूप हो। तुम-हम दोनोंमें कुछ भेद नहीं है, अभेद है। अद्वैतमें द्वैतका भेद कुछ हो नहीं सकता है।

राज विलास = नर नारी सोई = परन्तु, संसार राज्यके सुख भोग-विलास आनन्द करनेके वास्ते, सो एकका ही दो भाग स्त्री-पुरुषका जोड़ा बना है। उसमें तुमलोग स्त्री हो, मैं पुरुष हूँ! जब तुम्हारे-हमारे मन मिलेगा, तो ब्रह्म-विलास होगा॥

व्याख्या— वास्तवमें जैसे हम ब्रह्म हैं, तैसे तुमलोग भी हमारा अंश ब्रह्मरूप ही हो! हम दोनोंमें कोई भेद ही नहीं है अभेद है। परन्तु, राज्यके सुख जगत् विलास करनेके लिये सोई ब्रह्म ही नर-नारी या प्रकृति-पुरुषके आकारमें एकसे दो भाग हुआ है; वह तुम और हम हैं, ऐसा जानो॥ ६६१॥

१११. कामरूप मम जग उपजाया * सदा स्वभाविक मोरी माया ॥ ६६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

कामरूप = मम जग = उपजाया = प्रथमारम्भमें मैंने ही कामना या इच्छा वा स्फुरणा करके सर्व साकाररूप जगत्को उत्पन्न किया है। इसीसे जगत् मेरी काम-क्रीड़ाका स्थूल रूप है। और—

सदा स्वभाविक = मोरी माया = इच्छारूपी माया-प्रकृति सदा-सर्वदा मेरी स्वाभाविक अर्धाङ्गिनी है, सो मेरे पासमें ही रहती है, वह कभी मुझसे भिन्न नहीं होती है॥

व्याख्या— कामनारूपसे इच्छा करके मैंने ही सारा जगत्को उत्पन्न किया है। "एकोहं बहुस्यामेति प्रजायेय"— मेरी इच्छारूप आदिमाया सदाकाल स्वाभाविक ही मुझमें बनी रहती है। वह कभी मुझसे न्यारी नहीं रहती है॥ ६६२॥

११२. अब यह जानि रहहु हरिभोंगू ❀ चारि मुक्ति लहहु संजोगू॥ ६६३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

अब यह = जानि रहहु = हरिभोंगू = हे प्यारे भक्तो! अब यह बात अच्छी तरहसे जानलो कि, तुम तो हमारे ही अंश हो, हमारे बिना तुम्हें कहीं ठहराव नहीं है। यह बातको जान करके हमारे सिद्धान्तमें मिल करके सन्देह छोड़कर सुख पूर्वक संसारमें मस्त हो रहो; और—

चारि मुक्ति = लहहु संजोगू = वैदिक मार्गसे चलकर कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादि द्वारा सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य ये चार मुक्ति तथा षट्गुण ऐश्वर्य जो चाहे सो प्राप्त करलो; यह औसर या समय-संयोग तुम्हें बड़े भाग्यसे मिला है, इसको अब सफल करो; मत् चूको! सावधान रहो!॥

व्याख्या— हे भक्तो! जीव-ब्रह्म तथा जगत्में कोई द्वैत भेद नहीं है। सब अभेद अद्वैत है। अब ऐसा जान करके निश्चिन्त, निःसन्देह निर्द्वन्द्व होकर सुख पूर्वक संसारमें रहो। अभी बड़ा संयोग आके मिला है, त्रिकाण्ड वेद प्रमाणसे चारमुक्ति आदिमेंसे जो चाहे, सो तुम प्राप्त करलो॥६६३॥

११३. नाचो नाना रूप बनाई ❀ विरह विकल चित मम मति ताई॥ ६६४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर ब्रह्मज्ञानीके वाक्य ही बतला रहे हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

नाना रूप = बनाई = हे शिष्यो! तुमलोग ईश्वर प्राप्तिके वास्ते संन्यासी, वैरागी, उदासी आदि षट्दर्शनोंके भेषका नानारूप बनायके शृङ्गार-सँवारकर इष्ट प्रसन्नताके लिये—

नाचो = पाँवमें घुँघुरु बाँधकर हाव-भावसे नाचो, कीर्तन-गायनमें तल्लीन हो जाओ। मन्दिरमें मूर्तिके सन्मुख जाके नाचो, गाओ! अथवा पृथ्वीके समस्त तीर्थाटन करनेके नाचको खूब नाचो!—

मम मति ताई = हमारे मति-बुद्धि उपदेशके अनुसार तुम चलो; और—

विरह विकल = चित = चित्तको भगवान्में लगायके उनसे मिलनेके लिये विरह-वियोगमें व्याकुल हो रहो। सब सुध-बुध भूल जाओ। अनन्य भाव दृढ़ करो। सदा चित्तको विरहमें विकल रक्खो॥

व्याख्या— भ्रमिक ब्रह्मज्ञानी शिष्य लोगोंको बता रहे हैं कि, हे मनुष्यो! मनभावनी भेष पहिरके शृङ्गारकर संन्यासी, उदासी, वनवासी, नागे, निर्वानी, मौनी, जटाधारी आदि नाना प्रकारके रूप चित्र-विचित्र आकार बनायके हमारे सामनेमें वा मन्दिरमें मूर्तिके आगे जाके जहाँ दिल चाहे, वहाँ खूब प्रेमसे भक्ति पूर्वक नाचो-गाओ! और बाहर तीर्थाटन करनेमें नाचो। परमेश्वरमें ही चित्तवृत्तिको लगायके ईश्वर दर्शनके लिये विरहमें व्याकुल हो रहो। इसप्रकार तुमलोग हमारे उपदेशके अनुसार मन लगायके साधनोंमें चलो, आगे बढ़ते जाओ॥ ६६४॥

११४. त्रिविधि सृष्टि विलास हमारा ❀ हमरे सुखमें सुख तुम्हारा॥ ६६५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

त्रिविधि सृष्टि = भक्ति, योग, ज्ञानकी; रज, विलास हमारा = सत्त्व, तमकी और जीव, ईश्वर, ब्रह्मकी; यह तीनों प्रकारकी सृष्टि वा पैदायश वह सब हमारा ही विलास या क्रीड़ाका खेल है। इसवास्ते—

हमरे सुखमें = हमारे ब्रह्म विलास या ब्रह्मानन्द सुख तुम्हारा = सुखमें आके मिल जानेसे ही तुम्हारेको सुख होगा। हमारे पासमें ही तुम्हारा सुख है। अतः तुम हमारे पास आके एक चित्त होके क्रोड़में लगके रमण करो॥

व्याख्या— कर्म, उपासना, योगादिसे होनेवाला आनन्द सो तो हमारा ही विलास है; और त्रिगुणमयी त्रिविधि सृष्टि यह जगत् भी हमारे ही खेल-विलाससे पैदा हुआ है। तथा हमारे सुखमें ही तुम्हारे सुखका निवास है। अतः हमें हरतरहसे सुखी करो, तो उससे तुमको भी सुख मिलेगा। सो हमारेमें तन-मन मिलानेसे तुम्हें महा आनन्द प्राप्त होगा, ऐसा जानो॥ ६६५॥

११५. जिन यह मानि सोई मम रानी ❀ निःकामी सेवा सो ठानी॥ ६६६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

जिन यह = जिस-जिसने यह मेरी बातको मानि सोई = दृढ़ करके मान लिया, सोई मम रानी = प्यारा शिष्य मेरी प्यारी महारानी है। उसके तो मैं सदा वशीभूत बना रहता हूँ।

निःकामी = सो मेरा प्यारा भक्त भी सब सेवा सो = कामनासे रहित निष्कामी, निरीह ठानी = होके सेवा, चाकरी करनेमें ही लौ लगाये रहता है। सर्वदा सेवा ही करता रहता है॥

व्याख्या— जिन-जिन्होंने यह मेरे वचनको शिरोधार्यकर स्वीकार करके मान लिये या मानेंगे, सोई मेरे शिष्य भक्तलोग मेरी प्रिय पटरानी होंगे, उसीको महदानन्द मिलेगा। जिसने निष्काम कर्म या निष्काम भावसे सेवा करनेका व्रत ठान लिया है, सोई परम प्रवीण कहलाता है। निष्काम होके सेवा करने वाले, सो मेरे भक्त मुझे अति प्रिय हैं॥ ६६६॥

११६. कहो प्रचारि ढिंढोरा देई ❀ नहिं मानै सो दुष्ट मम होई॥ ६६७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

कहो प्रचारि = अब हे अफसरो! हे पण्डितो! ढिंढोरा देई = यह मेरे आज्ञा-उपदेश या हुकमको संसार नगररूपी हमारे राज्य भरमें सब जगह ढिण्ढोरा पीटके प्रचार करके सब शिष्यरूपी प्रजाओंको सुना दो!

नहिं मानै = जो मेरी आज्ञाको मान जायगा, सो दुष्ट = पालन करेगा, उससे मैं प्रसन्न मम होई = रहूँगा; और जो कोईने हठ या विराध करके मेरी अज्ञाको नहीं मानेगा, सो महादुष्ट अपराधी मेरा शत्रु होगा। उसको मैं हरतरहसे कठिन दण्ड देके दमन करके फिर संहार करके उसे समूल नष्ट कर दूँगा। फिर उस मेरे दुश्मनका कहीं बचाव होनेका नहीं। यह बात सबको ठीकसे बताय दो॥

व्याख्या— अतएव हे महानुभाव योगी, भक्त, कर्मी, पण्डित लोगो! यह मेरे सन्देश, आज्ञाको वेद-वेदान्तरूपी ढोल पीट-पीट करके ढिण्ढोरा दे-देकर उपदेशका प्रचार कर दीजिये! लाभ-हानि बताय दीजिये! जो कोई इस हुकमको नहीं मानेगा, सो मेरा द्रोही महा दुष्ट दण्डका भागी अपराधी पापी होगा। उस दुष्टको पकड़के मेरे पास लाना; यथोचित दण्ड देकर कुचलकर चौरासी योनियोंके जेलमें उसे ठूँस दिया जायगा॥ ६६७॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

११७. वचन सुनत बहु चित ठहराना ❀ राज अनुशासनमें बिलखाना॥ ६६८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकार ऊपर कहे हुए—

वचन सुनत = बहु चित = ठहराना = ब्रह्मज्ञानीके वचन या उपदेश सुन करके रोचक वा भयानक शब्दको सत्य मानके बहुतेक अबोध नर जीवोंके चित्तमें वह बात ठहर गयी; यानी निश्चयसे प्रतीति हो गयी ॥

राज अनुशासनमें = विलखाना = ज्ञानी, पण्डित लोगोंकी सख्त आज्ञाके दबावमें पड़कर कुछ हासिल न होते हुए भी जप, तप, तीर्थ, व्रत, उपवासादि नाना कर्मोंके महाजालोंमें दुःखी हो, कष्ट सहन करके-रोते हुए पड़े और उसीमें पड़कर रो रहे हैं ॥

व्याख्या— ऐसे भ्रमिक ब्रह्मज्ञानीके वचन, शिक्षा श्रवणकर उनको बड़े श्रेष्ठ माननेवाले बहुतेक श्रद्धालु मनुष्योंके चित्तमें उनकी बात ठहरकर पक्की हो गई। उन्हीं ज्ञानी राजाकी कठिन आज्ञा, रोब, दबावसे नाना कर्म जालोंमें पड़कर कई मनुष्य धोखेके साधनमें लगकर व्याकुल, दुःखी, कष्टित होकर रोते पड़े हैं ॥ ६६८ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

११८. कोइ कोइ उजुर किया महाराजा * तुम सुखरूप कष्ट केहि साजा ? ॥ ६६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर शिष्यके सन्देहरूप प्रश्नको दर्शाते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

कोइ कोइ = उजुर किया = महाराजा = उनमेंसे कोई-कोई एक-दो जनें जो शाहसी विवेकी थे, वे उठ कर ब्रह्मज्ञानीके पासमें जाकर, फिर अपना सन्देह प्रगट करके उजुर या विनय करके कहते भये कि, हे महाराजा !-

तुम सुख- = रूप कष्ट = आप तो सुख स्वरूपी ब्रह्म भये, फिर यह कष्टरूप जगत्को-

केहि साजा = किसने बनाया ? हम-तुम दोनों एक, अभेद हैं, तो तुम सुखी और हम दुःखी क्यों भये ? यह किसने भेद बनाया है ? और हमें भी आप सुखरूप बतलाते हो, परन्तु, यह सब कष्टकी सामग्री किसने कहाँसे लाके हमारमें डाल दिया ? सो कहो ॥

व्याख्या— बहुतेक शिष्य तो डर, दबावके मारे गुपचुप होके रहे। परन्तु, कोई एक-दो जनें विचारवान् हिम्मतवाले निकलकर ब्रह्मज्ञानीके समीपमें जाकर उजूर-प्रार्थना किये कि, हे महाराज ! आपने तो जो अभी हम सबको सुखरूप ब्रह्म बतलाये हो, परन्तु, यदि हम सुखरूप हैं, तो फिर कष्ट दुःखरूप देह या जगत्को किसने क्यों बनाया है ? तुम्हारे सुखरूप बतानेसे भी हमें तो दुःख ही हो रहा है, फिर हम सुखरूप कैसे हुए ? ॥ ६६९ ॥

११९. जो दुःख रहै फुसफुसके लागी * वैदक कौन अर्थ अनुरागी ? ॥ ६७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

फुस फुस- = के लागी = आपके फुसफुसाहटके उपदेश भक्ति, योग, ज्ञान तथा नाम-स्मरण, मन्त्र-जप इत्यादि साधनोंमें हम इतने दिनोंतक तो लगे रहे, सो उसमें लगे रहनेसे हमें कुछ लाभ तो नहीं हुआ; और-

जो दुःख = रहै = हमारा मूल दुःख तो जैसा पहले रहा, वैसा ही अब भी बना है, उलटा जो कि, अनेक और-और भी दुःख हमारे पीछे लग रहे हैं।

वैदक कौन = अर्थ अनुरागी ? = अब कहिये ! आपके वेद-शास्त्रोंके उपदेश पालन करने-से हमारा कौन हित वा कल्याणका लाभ हुआ ? वेद-वेदान्तमें प्रेम लगानेसे हमें कौन-सा फायदा हुआ ? कुछ भी नहीं हुआ ॥

व्याख्या— आपने जो नाम-स्मरण, योग, ध्यानादि साधना हमें बतलाये, उसमें आजतक लगे रहनेसे भी हमारा कोई दुःख नहीं मिटा। प्रथमका दुःख ज्यों-का-त्यों ही है; और अभी तो नवीन-नवीन दुःख जो कि, हमें नित्यप्रति हो रहे हैं। अब भला कहिये ! आपके वेद-शास्त्र वर्णित मार्गोंमें अनुराग लगा करके भी हमारा कौन अर्थरूप हित वा कल्याण सिद्ध हुआ ? जब कुछ अर्थ ही नहीं

है, तब फिर उसमें प्रेम लगाके क्या करना ? सो बतलाइये ! ॥ ६७० ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक ब्रह्मज्ञानीका कथन वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१२०. राजा कहै जगत मम सपना * झूठा सार तुम्हार कल्पना ॥ ६७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब, ब्रह्मज्ञानीके कथन बतला रहे हैं— हे सन्तो ! भोंदू गुरुवाने कहा—

राजा कहै जगत = राजा बने हुए ब्रह्मज्ञानीने कहा कि, सुनो ! यह सारा चराचर जगत् मेरेसे उत्पन्न हुआ, सो मेरा मिथ्या स्वप्नमात्र है । मृगजलवत् मिथ्या भास है ।

झूठा सार = झूठाको सच्चा सार मानना
तुम्हार कल्पना = यह तुम्हारी कल्पना भ्रममात्र है । जो तुम झूठा जगत्को ही सार मानते हो, इसीसे तुम्हें रोग-शोग होता है । सो सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है, उसको छोड़ो ॥

व्याख्या— तब ब्रह्मज्ञानी राजाने कहा कि, अरे भाई ! यह जगत् सब तो मेरी स्वप्न अवस्थाका भासमात्र है । सो झूठा जगत्को जो तुम सार-सत्य मान रहे हो, सोई तो तुम्हारी मिथ्या कल्पना, भ्रममात्र है ॥ ६७१ ॥

१२१. हमरे हुकुम सपने तुम देखा * कौतुक खेल सो जानहु लेखा ॥ ६७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! भोंदू गुरुवाने कहा—

हमरे हुकुम = हे शिष्य ! हमारे हुकम या
सपने तुम देखा = आज्ञाको तुम मान लो; तुम्हारा देखा हुआ यह दृश्य जगत् स्वप्नके समान असत्य है । सो हमारे हुकमरूप प्रेरणासे ही जो तुमने जगत्को देखा है, सो भी स्वप्नवत् है, ऐसा जानो ।

कौतुक खेल = बाजीगरके खेल-तमाशाकी
सो जानहु लेखा = नाईं या बालकके बेप्रयोजन खेलकी नाईं वास्तवमें असत्य, ऐसे इस हिसाबसे, सो दृश्यरूप यह जगत् सहज ही मिथ्या है; सो तुम लखकर जान लेओ । यानी स्वप्नके खेल-कौतुकवत् लेखा लगाकर जानो कि, सो संसार मिथ्या प्रतीति मात्र है ॥

व्याख्या— जो तुमने अभीतक जगत्को सत्य करके देखा-सुना है, सो स्वप्नके समान भ्रम है । अब हमारे हुक्म वा आज्ञाको पालन करके जगत्को स्वप्नवत् तुम देखो ! प्रथम हमारे हुक्मसे मायाने मिथ्या जगत्को बनाया, सो वर्तमानमें तुमने स्वप्नवत् जगत्को देखा । सो यह तो मायाका खेल-तमाशा गन्धर्वनगरवत् असत्य है । हमारी सहज लीलासे यह जगत्की खेल-तमाशावत् रचना भयी है । इसका लेखा लगायके जानो, तो अधिष्ठान ब्रह्म एक सत्य है, और जगत् नानात्व मिथ्या ही है ॥ ६७२ ॥

१२२. हमरे ढिग जागृत है तेरा * सपना भरम विवश है तुम्हारा ॥ ६७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं - हे सन्तो ! भोंदू गुरुवाने कहा—

हमरे ढिग = हे जीव ! तुम्हारी चैतन्य
जागृत है तेरा = सत्ता तो हमारे पासमें है । तुम हमारा ही सनातन अंश हो । इसीसे तुम्हारेमें जानपना अल्प है । तुम्हारी जाग्रत्-अवस्था तो मेरे समीपमें है, इसीसे तुम मुझे नहीं जानता है । और—

सपना भरम = तुम्हारे पासमें सिर्फ
विवश है तुम्हारा = स्वप्न अवस्था है । अतः भ्रान्तिके वशीभूत कल्पनाके विवश तुम होते हो, सो तुम्हारा जगत्को सत्य मानना, स्वप्न भ्रान्तिवत् झूठा है, ऐसा जानो ॥

व्याख्या— हे जीव ! तेरी जागृति-चैतन्य शक्तिका निवास तो मेरे पासमें है । जो मेरे पासमें मौजूद है, सोई तेरी जाग्रत्-अवस्था है । और तुम संसारमें मेरे अंशरूपसे हो, सो स्वप्न अवस्थामें है । अतएव स्वप्नरूप जगत्में माया-मोहके विवश होकर तुम मुझे भूल रहा है । अब तो भी होश करके

मुझमें आके मिल जा ! भ्रान्तिको छोड़ दे ! ॥ ६७३ ॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१२३. महाराजाजी ! कहो समुझाई * प्रथम कैसे रहे दुचिताई ? ॥ ६७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न बतला रहे हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

महाराजाजी ! = हे महाराज ! हे ब्रह्मज्ञानीजी !
कहो समुझाई = आप कृपा करके यह बातको समझाइये कि—
प्रथम कैसे = सर्व प्रथम ब्रह्म एक अद्वैत
रहे दुचिताई ? = था, तो फिर द्वैत जगत् कहाँ रहा ? कहाँसे उत्पन्न भया ? तथा द्वैत बुद्धि, दुविधा, भ्रान्ति—यह कहाँसे ? कैसे ? किसमें ? क्यों उत्पन्न हुई ? सो कारण कहिये ? ॥

व्याख्या— हे ज्ञानी महाराजजी ! यह बात आप मुझे अच्छी तरहसे समझायके खुलासा वर्णन करके कहिये कि, प्रथमारम्भमें आप कैसे रहे ? एक अद्वैत सत्य था, तो आपमें द्वैत-बुद्धि कहाँसे उत्पन्न हुई ? एक आपका और दूसरा मायाका दो चित्त कैसे हुआ ? कहाँपर ? कैसे रहते रहे ? सो कहिये ! ॥ ६७४ ॥

१२४. जागत नींद कौने विधि कीन्हा * त्रिधा सृष्टि उपजाई लीन्हा ॥ ६७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

जागत नींद कौने = वह ब्रह्म जाग्रत् चैतन्य
विधि कीन्हा = द्रष्टा साक्षी था, तो फिर उसने नींद, गाफिली, अज्ञान, माया, अविद्यावश जड़, दृश्य, अनात्म, जगत्को किस प्रकारसे बनाकर कहाँसे उत्पन्न किया ? क्यों किया ? और जिससे—
त्रिधा सृष्टि = अण्डज, उष्मज, पिण्डजादि
उपजाई लीन्हा = त्रिगुणी नानात्व जगत्की सृष्टि उत्पन्न कर लिया है, सो किस लिये किया ? सो एकसे ही कैसे हुआ ? ॥

व्याख्या— आप जाग्रत् चैतन्य, द्रष्टा, ब्रह्म होके फिर किस विधिसे नींद, अज्ञान-अविद्या, गाफिलीमें पड़े ? अविद्या कहाँसे खड़ी भई ? जिससे त्रिविधि त्रिगुणी जगत् सृष्टिको उत्पन्न कर लिया, सो क्यों किया ? जगत् उत्पन्न करके आपको क्या प्रयोजन सिद्ध करना था ? ॥ ६७५ ॥

१२५. नर नारी केहि भाँति उपाई * सकल भेद मोहि कहो बुझाई ॥ ६७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

नर नारी केहि = नपुंसक ब्रह्मसे प्रकृति-पुरुष
भाँति उपाई = दो रूपसे संसारमें स्त्री-पुरुष-का भिन्न-भिन्न आकार, स्वभाव, चिह्न किस प्रकार, कैसे उत्पन्न किया ? क्यों किया ?—
सकल भेद = सो सम्पूर्ण मेरे सन्देहका
मोहि कहो = समाधान हो, ऐसे भेद या मर्म
बुझाई = दिखलायके कृपा करके मुझे समझाइये वा बुझाइये ॥

व्याख्या— प्रथम सृष्टि नहीं थी, तो फिर 'स्त्री' और 'पुरुष' ये दो रूपको किसने किस भाँति-से उत्पन्न किया ? तथा 'ब्रह्म' नपुंसकसे प्रकृति-पुरुष, ये दो न्यारा-न्यारा किस तरह उत्पन्न हुआ होगा ? ऐसे सब सन्देहका सर्व भेद मुझको समझाय-बुझायके कहिये ! ॥ ६७६ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक ब्रह्मज्ञानीका उत्तर कथन वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१२६. सत चिद् आनन्द रूप हमारा * तेही विलास जगत विस्तारा ॥ ६७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब ज्ञानी गुरुवाका उत्तर बतला रहे हैं— हे सन्तो ! भोंदू गुरुवाने कहा—

सत = त्रिकालाबाध्य 'हैता'से मौजूद है, सो ब्रह्म 'सत्' है; उसे "अस्ति" कहते हैं।
चिद् = जिसको सब कुछ भासता है, सो 'चित्' चैतन्यरूप ब्रह्म है; उसे "भाति" कहते हैं।
आनन्द = सुख स्वरूप है; जिसको सब कोई चाहते हैं, ऐसे 'आनन्दमय' वही ब्रह्म है; उसे

"प्रियरूप" कहते हैं। सोई 'सच्चिदानन्द' कहलाता है।

रूप हमारा=ऐसे निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, हमारा स्वरूप है।

तेही विलास= } मुझ ब्रह्मको जब क्रीड़ा
जगत विस्तारा= } विलास करनेकी इच्छा हुई, तब मैंने समस्त चराचर जगत्की विस्तारसे सृष्टि उत्पन्न की॥

व्याख्या— उत्तरमें ब्रह्मज्ञानी कहने लगे कि, हमारा खास स्वरूप "सच्चिदानन्द ब्रह्म" है। उसी आनन्द विलासमें निमग्न होनेसे सहज-लीलासे सारा जगत्की उत्पत्तिका विस्तार हुआ है॥ ६७७॥

१२७. चिद स्वरूप मैं पुरुष अमाना ❀ आनन्द नारी अङ्ग बिलगाना॥ ६७८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

चिद स्वरूप= } मैं ही चैतन्य स्वरूपी आदि
मैं पुरुष= } पुरुष हूँ; जगत्का कर्त्ता-धर्त्ता हूँ! और—

अमाना=जगत्के मान-अपमान, माया, मोह, विकारसे रहित सर्वातीत अमानी पुरुष हूँ!

आनन्द= } मुझमेंसे जो आनन्द प्रगट हुआ,
नारी अङ्ग= } सो मेरी स्त्रीरूप आदि मायाका
बिलगाना= } अङ्ग सृष्टिके लिये पृथक् होता भया; ऐसे नारीका अङ्ग मुझसे न्यारा हुआ॥

व्याख्या— तहाँ चैतन्य स्वरूप मैं ही अमान पुरुष आदि कर्त्ता हूँ! परमात्मा हूँ! और आनन्द सोई नारी या आदिमाया स्त्रीका मुख्य अङ्ग है, सो न्यारा है; ऐसे भेदको बिलगायके जानलो॥६७८॥

१२८. सदा शब्द एक अङ्ग हमारा ❀ ताके मोह नींद विस्तारा॥ ६७९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

सदा शब्द एक= } सदाकाल एकरस अद्वैत
अङ्ग हमारा= } ब्रह्म ॐकाररूपसे आत्म-सत्ताका प्रकाशक सर्वत्र पूर्ण व्यापक, सोई हमारा स्वरूप, आकार या अङ्ग है।

ताके मोह= } ब्रह्मने आनन्दरूपी नारी
नींद विस्तारा= } मायाको जब ताका या देखा, तो उसके सम्मोहसे आकर्षण हुआ, उसीसे अज्ञानरूप नींद आई; तहाँ अविद्या द्वारा पुनः जगत्का विस्तारहोके प्रगट होता भया॥

व्याख्या— सदा-सर्वदा शब्द स्वरूपी मैं ॐकार ब्रह्म हूँ! मेरी सत्ताका प्रकाश सबमें व्यापक है; तथा माया-प्रकृति भी हमारा ही एक अङ्ग या भाग है। उस आनन्दरूपी स्त्रीके मोहमें जब मैं मस्त, गाफिल हुआ, तो नींद आ गई; सोई अज्ञानरूपी अविद्या मायाके सङ्गसे सकल पिण्ड-ब्रह्माण्डकी विस्तारसे उत्पत्ति हुई, ऐसा जान जाओ॥ ६७९॥

॥ ❀ ॥ जिज्ञासु शिष्यका प्रश्न ॥ ❀ ॥ चौपाई॥ ❀ ॥

१२९. पूछे परजा सब सन्देहा ❀ जथा जमा फूटा केहि नेहा॥ ६८०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जब ऐसा ऊपरमें ब्रह्मज्ञानीने समझाया; तब जिज्ञासु शिष्यने उस उत्तरकी उपेक्षा करके अपना और भी सन्देह प्रगट करके कहा—

पूछे परजा= } तत्पश्चात् जिज्ञासु शिष्यने
सब सन्देहा= } और भी अपने मनके बढ़े हुए सब सन्देहोंको प्रगट करके पूछा कि, हे गुरुजी! यह तो बतलाइये कि—

जथा जमा= } जब ब्रह्म यथार्थ सत्य
फूटा केहि नेहा= } जमापद अकेला था, दूसरा तो वहाँपर कोई नहीं था, फिर उससे स्नेह, प्रीति, मोह, स्फुरणा क्यों फूटी? कैसे, किसके लिये फूटी? वह एकसे अनेक टुकड़ा होकर जगत्में आकर क्यों बिखर गया? क्या एक ही सत्य वस्तु इसप्रकारसे फूट सकता है? सो कहिये!॥

व्याख्या— गुरुवाका उत्तर सुनके सब शिष्यलोग और भी सन्देह सहित होकर पूछते भये। हे राजाजी! ब्रह्म एक ही यथार्थ सच्चा है, तो फिर किसकी प्रीति वा स्नेहसे वह फूटकर अनेक हुआ?

क्यों ऐसा हुआ ? सो बतलाइये ! ॥ ६८० ॥

१३०. फूटा अण्ड कहहु केहि भाँती ? * सत चित आनन्द कैसे कहाती ? ॥ ६८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

फूटा अण्ड = अण्डरूप ब्रह्म ॐकार एक ही
कहहु केहि = गोलाकार पिण्ड-ब्रह्माण्डमें
भाँती ? = भरा है, ऐसा कहते हो, सो ॐकार किस तरहसे फूटा ? फूटकर उसके तीन टुकड़े कैसे हो गये ? एक ब्रह्ममें कैसे ? किस तरहसे इच्छा फूटी ? सो समझाकर कहिये ?

सत चित = जब वह फूटकर नाना टुकड़ा-
आनन्द कैसे = टुकड़ा हुआ, तब असत्, जड़,
कहाती ? = दुःखरूप जगत् बना, तो फिर सत्, चिद्, आनन्द वह कैसे करके कहलावेगा ? अतः वह फिर तो सत् कहला ही नहीं सकता है ॥

व्याख्या— ॐकार ब्रह्ममें पिण्ड-ब्रह्माण्ड उत्पन्न करनेकी इच्छा किस भाँतिसे उत्पन्न हुई ? सो कहो ! भला ! एक-अकेलामें इच्छा उदय ही कैसे हुई ? जब वह स्वरूपसे फूटकर अनेकरूप या टुकड़ा-टुकड़ामें हो गया, तब सच्चिदानन्द भी फिर वह कैसे कहलायेगा ? क्योंकि, सत्से असत्, चिद्से जड़, और आनन्दसे दुःखरूपमें बदल गया, फिर शुद्ध कैसे कहला सकता है ? ॥ ६८१ ॥

१३१. तीनि अङ्क तुम कहेउ विचारी * एक शुद्ध एक करै खुवारी ॥ ६८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

तीनि अङ्क = आपने तो सत्, चिद्, आनन्द
तुम कहेउ = ये तीनों अङ्क वा भागोंको एक
बिचारी = अद्वैत ब्रह्ममें घटायके एक ही ब्रह्म-का विचार करनेको कहे हो या कहते हो कि, 'त्रिगुणातीत ब्रह्म परमात्मा एक है, व्यापक है।'

एक शुद्ध = फिर एक ब्रह्मको शुद्ध निर्विकार
एक करै = और एक जीव वा जगत्को
खुवारी = विकारवान् अशुद्ध खराब कथन करते हो, ऐसे ठहराते हो, तो तहाँ अद्वैत मिटके अच्छा और खराब क्यों कैसे हुआ ? ॥

व्याख्या— आपने तीन प्रकारसे ही एक ब्रह्मका सत्, चिद्, आनन्दमय विचार करनेको कहे हो या कहते हो ! परन्तु, एक ब्रह्मको शुद्ध ठहरायके जगत् जीवको खराब, अशुद्ध, अल्पज्ञ प्रतिपादन करते हो, तो यह द्वैत हुआ कि नहीं ? सो क्यों ? कैसे ? कहाँसे हुआ ? ॥ ६८२ ॥

१३२ कहहु केहि कारण तुम जहँड़ाने * एक अनन्त त्रिधा होय बिहँड़ाने ॥ ६८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिज्ञासुने कहा—

कहहु केहि = अब कहो भला ! तुम ब्रह्म थे,
कारण तुम = तो किस कारणसे जगत्
जहँड़ाने = बन्धनोंमें आके माया-जालोंमें फँस गये या क्यों जहँड़ा गये ? ऐसा क्या कारण आ पड़ा ?

त्रिधा होय = त्रिगुणी सृष्टि जगत्में अनन्त-
बिहँड़ाने = रूप होयकर कष्टमें व्याकुल होयके दुःखको पाये या दुःख पा रहे हैं, सो ऐसा क्यों हुआ ? एक-अनेक और त्रिधामें भ्रमिक होयके आप क्यों दुःख पाते हो ? क्यों नहीं चेतते हो ? ॥

एक अनन्त = एक ॐकार ब्रह्म फूट करके—

व्याख्या— किस कारणसे तुम धोखेमें जहँड़ा गये ? क्या कारणसे बन्धनमें पड़ गये ? सो समझायके कहिये ! और एक-ब्रह्म, अनन्त-जगत्, त्रिगुणी-सृष्टि ये न्यारा-न्यारा होयकर तहाँ सब जीव दुःख क्यों पाते हैं ? आप क्यों भ्रम चक्कर खाते हैं, सो कहिये ! ॥ ६८३ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताका निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१३३. सुनत राव व्याकुल तब भयऊ * हमरे राज दुष्ट यह ठयऊ ॥ ६८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सुनत राव = व्याकुल तब = भयऊ = } जिज्ञासु शिष्यका ऐसा निर्णय वचन सुन करके ब्रह्मज्ञानीरूप राजा तथा सब गुरुवालोग घबड़ाके तब व्याकुल-क्रोधित हो चुरमुराकर बेताव होते भये। और— गुस्सायके कहने लगे कि, अरे!—

हमरे राज दुष्ट = यह ठयऊ = } हमारे राज्यरूप उपदेशके शिष्य मण्डलियोंमें यह बड़ा ही नालायक, दुष्ट, पाजी, नास्तिक, निन्दक ठहर गया। बड़ा मुँहजोर बनकर बोलता ही जाता है, चुप तो होता ही नहीं; क्या करें? ऐसा बोल कर कहने लगे— ॥

व्याख्या— गुरुवाने जब शिष्यका निर्णय युक्तियुक्त बात सुनी, तब तो वे बड़े व्याकुल, परेशान भये। फिर क्रोधसे बोले कि, यह तो हमारे राज्यमें बड़ा ही दुष्ट वेदद्रोही-गुरुद्रोही निकल आया। हमारी बात तो यह मानता ही नहीं; ऐसा कहा— ॥ ६८४ ॥

॥ ❀ ॥ भ्रमिक ब्रह्मज्ञानीका उत्तर कथन वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१३४. ऐसेहि परजा जाय पराई * भेद लहौं तो करों प्रभुताई ॥ ६८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब ब्रह्मज्ञानीके वाक्य बतला रहे हैं— हे सन्तो! भ्रमिक भोंदू ब्रह्मज्ञानीने कहा—

ऐसेहि परजा = जाय पराई = } हे मन्त्रियो! देखो, ऐसे ही हकनाहक हमारे ये शिष्यरूप प्रजालोग अपने सनातन मत-पन्थ, ग्रन्थोंको छोड़-छाड़कर अन्य नवीन मत-पन्थोंमें लगकर वहीं भूलकर भागे जाते हैं, और भागे जा रहे हैं। परन्तु, कहाँ जाते हैं, इसका कुछ पता ही नहीं लगता है।

भेद लहौं = यदि मैं इनका पूरा भेद जान पाऊँ कि—

तो करों = प्रभुताई = } ये कहाँ जाते हैं? क्या मानते हैं? कौन स्थितिमें ठहरते हैं? तो मैं अपने बलरूप शासन-सत्ताका प्रयोग करके प्रभुता दिखाकर उन्हें वश करके जीत लेता। तुम इसका गुप्त रीतिसे पता लगाओ! किसी तरहसे भी पता लगाकर भेद जान लो, फिर उन्होंको दबाकर कुचल दो! ऐसी प्रभुताई करो। यह बात पण्डित वा महन्तोंसे ब्रह्मज्ञानीने कहा ॥

व्याख्या— राजा बने हुए ब्रह्मज्ञानीने मन्त्रीरूप अन्य गुरुवालोगोंसे इस प्रकार कहा— अरे! ऐसे ही हमारे शिष्यलोग भाग-भागकर हमारे मतको छोड़कर दूसरेके मतमें जाने लगे, तो हमारे मत-पन्थोंकी वृद्धि कैसे होगी? इनके भागनेका सब रास्ता रोककर पकड़ लेना चाहिये। जब मैं इन्होंका भेद जान पाऊँ कि, क्या मानते हैं? क्या जानते हैं? क्या करते हैं? भेद मिलनेपर उस मतरूप शक्तिको खण्डनकर चूर्ण-चूर्ण करके मैं अपने प्रभुत्वकी शक्ति दिखा दूँ! परन्तु, अभी मैं भेद जान नहीं पा रहा हूँ! अब हे महन्त लोगो! तुमलोग जहाँ-वहाँ जा-जाकर गुप्तरूपसे उन्होंके सब भेद जान लो! फिर अपने सिपाही ले जाके उन्हें गिरफ्तार करो, अपनी प्रभुताकी शक्तिसे दण्ड देकर विद्रोहियोंको एकदम कुचल डालो; ऐसी हुकूमत चलायी ॥ ६८५ ॥

१३५. फाँसी दिया किया बरजोरा * फेरा सारा शहर ढिंढोरा ॥ ६८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो

फाँसी दिया = किया बरजोरा = } फिर उन्होंके जाल-घेरामें जो पकड़नेमें आ गये, उन्होंको नाना तरहोंके कर्मोंकी फाँसीमें फँसाकर जहाँ-तहाँ लटका दिये। किसीको शाप दिये, डराये, धमकाये, ठोंके, पीटे, ऐसे जबर्दस्ती मनमानी दण्ड देकर जीवोंकी दुर्दशा किये। और—

फेरा सारा = शहर ढिंढोरा = } संसारके सारे शहर, गाँव, बस्तियोंमें ब्रह्मज्ञानी राजाके हुक्म ढिंढोरा पीट-पीटकर मुनादी फिरा दिये। सब शिष्य जनताओंको यह बात समझा दिये कि, हे भक्त वर्गो! सुनो— हमारे मतसे कभी बाहर नहीं जाना, यदि जाओगे तो तुम्हारा सत्यानाश होगा, सो जानो ॥

व्याख्या— तब गुरुवालोगोंने जहाँतक हो सका, लोगोंको पकड़ा; किसीको फाँसी दिये, शाप दिये, किसीको डराय-धमकायके कर्मादिमें ही फँसाय दिये। ऐसे जबर्दस्ती बल प्रयोग करके शिष्योंको नाना दण्ड दिये, और सारे संसारमें उपदेशका ढिंढोरा फिराय दिये॥ ६८६॥

१३६. जो कोई पोथी कहा न मानै ❀ यही हाल सो आपन जानै॥ ६८७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

जो कोई पोथी = } तुममेंसे जो कोई भी मनुष्य
कहा न मानै = } हमारे कानूनकी पुस्तक वेद, शास्त्र, पुराणादिमें कही हुई बात, साधनाएँ, धर्म-कर्मको नहीं मानेगा, तो वह राजद्रोही महापापी ठहरेगा।

यही हाल सो = } सो उसका फिर बचाव
आपन जानै = } होनेका नहीं, सत्यानाश होगा, दरिद्र होकर महाकष्ट पायेगा, फिर मरकर रौरव-नरकमें पड़ेगा, यही हाल सो अपना होनेवाला जान लेवे॥

व्याख्या— भोंदू राजाका हुक्म यह सुनाये कि, जो कोई भी वेद-शास्त्रोंकी कही हुई बातको नहीं मानेंगे, तो इन अन्य लोगोंको जैसा दण्ड दिया गया है, तैसी ही दुर्दशा यही हाल अपना भी होगा; ऐसा तुम सबलोग भी जान लो!॥ ६८७॥

१३७. झूठहि वैद्य कहै सो साँचा ❀ झूठा सो जो चाहै जाँचा॥ ६८८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भोंदू गुरुवाने कहा—

झूठहि वैद्य = } ज्ञानी गुरुने ब्रह्म सत्य,
कहै सो साँचा = } जगत् मिथ्या, ऐसा जो कहा है, सो सर्वथा सच्चा है। यदि कभी तुम्हारी समझसे गुरु झूठा भी कहते हों, तो भी वास्तवमें वह बात सच्ची है। सत्य न भी हो, तो भी सत्य समझना चाहिये।

फिर वह आप-ही-आप सत्य ही हो जाता है।
झूठा सो जो = } और जो सन्देहवाला होकर
चाहै जाँचा = } गुरुसे तर्क करता है, जाँच वा परीक्षा करना चाहता है, सोई झूठा मूर्ख अभागा है, ऐसा जानलो!॥

व्याख्या— सुनो! वैद्यरूप गुरु जो कभी झूठी भी बात कह दें, तो उसको सच्ची समझना चाहिये। तुम्हारी समझमें झूठी होनेपर भी वास्तवमें तो गुरुकी बात सच्ची ही होती है। यहाँपर- "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवाब्रह्मैवनापरः" ऐसा सिद्धान्त है। और खास झूठा तो वही है, जो कि, गुरुवाक्यमें सन्देह करके बार-बार पूछ-पूछकर जाँच वा परीक्षा करना चाहता है। उस झूठेको आत्मज्ञानका बोध कहाँसे होगा?॥ ६८८॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताकी तरफसे निर्णय वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

१३८. जेहि जो औषध वैद्य बताई ❀ सोइ सोइ चाल चले समुझाई॥ ६८९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकार संसारमें—

जेहि जो औषध = } वैद्यरूप गुरुवालोगोंने
वैद्य बताई = } रोगीरूप चेलेलोगोंको जिस-जिसको जैसी-जैसी भावना हुई, जो कुछ प्राप्तिकी चाहना हुई, वैसी-वैसी ही कर्म, उपासना, योग, ज्ञानादि उपदेशरूप दवा-शिक्षा बता दिये; उसीमें उन्हें ठहरादिये।

सोइ सोइ = } सो उसीको सत्य समझ करके
चाल चले = } सोई-सोई तीर्थ, व्रत, योग,
समुझाई = } ज्ञान, ध्यानादि नाना मार्गोंकी चालसे चलने लगे; और दूसरे लोगोंको भी वही बात समझा-समझा कर उसी चालमें चलाने लगे॥

व्याख्या— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— भ्रमिक गुरुवालोगोंने झूठ ही वैद्य बनकर मनुष्योंको धोखा दिये। सो जिस-जिसको जो उपदेश बताये, चार फल, चार मुक्ति आदि प्राप्तिकी आशामें लगाये, उसी बातको बहुतोंने निश्चय करके विभिन्न मार्गोंकी चाल-चलन समझ-समझायकर सोई-सोई चालोंसे चले या चलाने लगे। अर्थात् गुरुवालोगोंने जिन्हें जैसी बात, उपदेश बताये, उसे ही

हितकारी समझकर दृढ़तासे पकड़कर अबोध मनुष्यलोग चलने वा चलाने लगे ॥ ६८९ ॥

१३९. नाना चाल चली है हरिभोंगू * विविधि कष्टके लहहिं संजोगू ॥ ६९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो

नाना चाल चली है हरिभोंगू = हरिभोंग नगर- यही संसारमें गुरुवालोगोंने नानाप्रकारकी चाल-बाजीसे षट्दर्शन, छियान्नवे (९६) पाखण्ड, आस्तिक-नास्तिक इत्यादिकोंके मत, पन्थ, ग्रन्थोंका पसारा करके नाना मार्गोंकी चाल-चलन, रीति-रिवाज चलाये हैं। उसीमें सब नरजीव चल रहे हैं। वही कल्पना बढ़ती ही चली जा रही है।

विविधि कष्टके लहहिं संयोगू = अब पारखहीन मनुष्य भ्रमिक हो-हो करके विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दादि प्राप्तिके वास्ते गुरुवालोगोंसे मिलाप करके नाना तरहोंकी कष्टकर साधनाएँ करके दुःख ही पाते हैं। परन्तु, माना हुआ ईश्वरादिसे संयोग या मिलाप कभी न हुआ, न होगा; नाहक नरजन्म गँवा रहे हैं॥

व्याख्या— इसप्रकार यह संसारमें गुरुवालोगोंसे नाना मार्गोंकी उटपटाङ्ग चाल वा साधनाएँ चलीं और चल रही हैं। उसीका मिलाप या संयोग कर-करके यहाँ विविध प्रकारके साधनोंका कष्ट पाते हैं, फिर अध्यासवश चौरासी योनियोंमें जाकर नाना दुःख भोगमें पड़ जाते हैं। बिना गुरु पारखके बोध पाये मनुष्य इस कष्टसे छूट नहीं सकते हैं ॥ ६९० ॥

सम्बन्ध— इस बारेमें ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर बीजक साखीका प्रमाण दिया है, सो सुनियेः—

॥ ❀ ॥ बीजकमूल, रमैनी नम्बर ५३ की साखी— १ ॥ ❀ ॥

साखीः— तीन लोक मुवा कौवायके * छूटि न काहुकी आश ॥
[४२] एकै अन्धरे जग खाया * सबका भया निपात ॥ ६९१ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो ! सुनो !—

तीन लोक = कर्मी, उपासक और ज्ञानीजन; ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक- ऊपरमें ऐसे तीनलोक मानकर त्रिविधि मार्गोंकी साधना करनेमें लगे। तथा कामी, क्रोधी और मोही विषय भोगोंमें लगे हैं।

कौवायके = सो वे लोग कागकी नाईं चिल्लाने, कराहने लगे कि, कोई जगत्कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वर या खुदादि है; उन्हींकी दयासे ही जीवोंकी गति-मुक्ति होगी, अतः हरि भजन करो, ऐसी वाणीके नाना कल्पित सिद्धान्त पुकार-पुकार करके एकके पीछे एक कहने लगे। कोई विषय भोगोंकी बात ही पुकारकर कहने और फँसाने लगे। इसतरह चिल्ला-चिल्लाकर पुकारते-पुकारते—

मुवा = भ्रमिक मनुष्य साधना-प्रयत्नमें दुःखी हो-होकर जड़ाध्यासी हुए और मर गये।

छूटि न काहुकी आश = बिना पारख योगी, ज्ञानी, भक्त, और विषयी आदि किसीकी भी झूठे सुखकी आशारूप मनकी आसक्ति नहीं छूटी, आशा-तृष्णाकी आसक्ति लेकर ही मरे, तो वे चार खानीमें चले गये।

एकै अन्धरे = एक अद्वैत चराचरमें परिपूर्ण व्यापक विज्ञानरूप ब्रह्मको माननेवाले पारखदृष्टिहीन अन्धे महा अज्ञानी बने हैं। सो इन्ही भ्रमिक गुरुवालोगोंने—

जग खाया = जगत्के मनुष्योंको भी भ्रमाकर उन्हींकी विवेक-बुद्धिको खाकर नाश कर दिये। तो इन अन्धोंने भी धोखा खाया, और दूसरोंको भी धोखा खिलाया; संसारमें उसी मत-पन्थोंका प्रचार और ग्रहण हो रहा है। जगत् जीवोंने विषय तथा वाणी-कल्पनाको ही खूब खाये, इसीकारणसे—

सबका भया निपात = मुक्ति साधक सद्गुण सत्य, शील, दया, विचारादि इन सबोंका विनाश करके जीव चैतन्य पदकी स्थितिको छोड़कर जड़अध्यासोंकी धारणा किये। इसलिये बेपारखी, जड़ाध्यासी सब कोई मनुष्य हंसपदसे पतित हुए। अतः

सबका नाश हुआ, तो वे चौरासी योनियोंमें । गमन करके बद्ध होते भये ॥

व्याख्या— इस साखीमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सत्य निर्णयको दर्शाया है कि, संसारमें त्रिगुणी मनुष्य कोई त्रिविधि भोग प्राप्तिकी बातें पुकार रहे हैं, कोई स्वर्गादि तीन लोक वा ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नाना कल्पित वाणी पुकार-पुकारकर भ्रमा रहे हैं। सो खानी जालमें विषय भोगोंकी आसक्ति और वाणी जालोंमें नाना सुखकी आसक्ति बिना पारख किसी भी मनुष्योंकी नहीं छूटी; और एक अन्धेने सब जगत्को एक ही पूर्ण ब्रह्म बतायकर भ्रमाया। दूसरे अन्धेने विषयादि भोगोंमें लगकर वा लगाकर भ्रमाया-भुलाया। इसप्रकार कर्मभूमिकारूप मनुष्य देहमें सद्गुण रहनी-रहस्य सत्सङ्गके बिना पारखहीन समस्त नर जीवोंका विनाश हुआ। अतएव जड़ाध्यासी होकर आवागमन चौरासी योनियोंमें जाकरके पड़े और पड़ रहे हैं ॥ ६९१ ॥

॥ ❀ ॥ बीजक मूलकी, साखी नम्बर— १५४ ॥ ❀ ॥

साखीः— जाका गुरु है आँधरा * चेला काह कराय ? ॥
[४३] अन्धे अन्धा पेलिया * दोऊ कूप पराय ॥ ६९२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे मुमुक्षुओ सुनो !—

जाका गुरु = है आँधरा = जिसका कि, गुरु ही पारखदृष्टि-हीन महा अन्धा है, पठित मूर्ख है, प्रपञ्ची है, लोभी, कामी, क्रोधी, मोही, धूर्त, भग-लम्पट है, और शठ है, फिर कहो भला ! उसका शिष्य अच्छा कैसे ? कहाँसे होगा ? जो कोई—

चेला काह कराय ? = अविचारी, बेपारखी, गुरुवाका चेला हो गया, फिर उसीका पक्ष पकड़कर हठ करनेवाला वह तो अन्धामें भी डबल अन्धा वा पक्का अन्धा है। अतः वह अपना या पराया हित वा कल्याण क्या करेगा ? हकनाहक बकवाद करनेसे, धोखेका पुकारा करनेसे किसीकी भलाई हो नहीं सकती है।

अन्धे अन्धा = पेलिया = अन्धे गुरु गृहस्थने चेले अन्धाको कर्मादिका उपदेश दिया; वे दोनों भग-भोगी भये। योगी, ज्ञानी, बेपारखी गुरुवालोगोंने संसारियोंको उपदेश दिये, तो वे दोनों भ्रमिक हुए। स्त्री, यौवन, धन और राज्य- ये चार मदोंमें अन्धे लोगोंको विद्या, ज्ञान, तप, और सिद्धि- ये चार मदान्धलोगोंने उपदेश दिये, तो ये विषय कल्पनासे वे चौरासी योनि गामी हुए। तथा वाममार्गी अन्धेने भोगी अन्धाको ढकेला, तो वे नरपशु बने, और अन्धे ब्रह्मज्ञानीने अन्धा अज्ञानी नरजीवको समझाया, तो वे दोनों धोखेमें जा पड़े। ऐसे-

दोऊ कूप पराय = क्रमशः भगकूप, भ्रमकूप, चौरासी योनिकूप, माया-अन्ध-गर्भकूप और जगत् प्रपञ्च-कूपमें वे दोनों गुरु-चेले ढकेला-ढकेलीसे उक्त पाँचों कुएँमें जाकर गिर पड़े ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, कोई अन्धा चेला किसीके पास जाकर रास्ता पूछता भया, तो आगे उसको मार्ग बतलानेवाला गुरु भी अन्धा मिला, वे दोनों एक-दूसरेको पकड़कर चले गये। कुछ दूर जानेपर रास्ताके पासमें एक अन्धेरा कुआँ या गड्ढा था। चलते-चलते एकने दूसरेको जल्दी चलो हो ! कहकर कुछ ढकेला ही था कि, संयोगसे वे दोनों जनें उसी कूएँमें जाके गिर पड़े। अङ्गमें चोटें लगीं; हाय-हाय करके वहीं मर गये। यह तो दृष्टान्त हुआ। सिद्धान्तमें इसीप्रकार- जिसका गुरु ही पारखहीन भ्रमिक अन्धा बना है, फिर उस गुरुवाके चेलोंको सत्य पारखका बोध कौन, कैसे करायेगा ? कैसे होगा ? उनकी दुर्गतिके सिवाय और क्या होगी ? क्योंकि, अन्धे बेपारखी गुरुवालोग गृहस्थ, भक्त, योगी, पण्डित, वाममार्गी और ब्रह्मज्ञानियोंने जन्म-अन्ध सदृश अज्ञानी, पामर, विषयी, मूढ़, गँवारोंको नाना तरहोंकी स्वार्थ-सिद्धिके उपदेश दिये, तो देखिये ! गुरु-चेले दोनों अन्धे-ही-अन्धे ठहरे, विवेकरूपी आँखें न होनेसे वे दोनों विषयासक्ति और भ्रम कल्पनावश

चौरासी योनियोंके गर्भवासके कूएँमें जाकर गिर पड़े और अभी पड़ रहे हैं ॥ ६९२ ॥

सम्बन्ध— उनतीसवें खण्डमें ३२ चौपाई, और १ साखी आया है। उसमें गुरुवालोगोंका प्रपञ्च पसाराका जो कठिन फन्दा है, सो और दयालु पारखी सद्गुरुका सत्य उपदेशके प्रभाव आदिका विस्तारसे वर्णन हुआ है, सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थकर्त्ताका सत्य निर्णय वर्णन ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥ उनतीस खण्ड ॥ २९ ॥ ❀ ।

१. बहुत कोलाहल ऐसो देशा * मानत कौन सन्त उपदेशा ॥ ६९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सत्य जिज्ञासु मनुष्यो ! सुनो !—

बहुत = कोलाहल = ऐसो देशा = संसारमें समस्त देश-देशान्तरों-में भ्रमिक पाखण्डी गुरुवा-लोगोंके नाना मत-मतान्तरोंके उपदेशोंका और विषय प्रपञ्चोंका ऐसे बहुत-बहुत जोरदार हल्ला-गुल्ला तथा झगड़ा मच रहा है। समस्त मनुष्य उसी कोलाहलमें सामिल हुए हैं। और—

मानत कौन = सन्त उपदेशा = पारखी सन्त सद्गुरुके सत्य उपदेश निर्णयको ऐसे मूढ़ गँवारलोग कौन मानेंगे? या मान सकते हैं? वे कोई नहीं मानते हैं, कोई विरले जिज्ञासु मनुष्य ही सद्गुरुके उपदेशको जो मानते हैं; उन्हींका ही कल्याण होता है ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— इसप्रकार संसारमें मत-पन्थोंकी उपदेश वाणी-कल्पनाका बहुत ही कोलाहल, हो हल्ला हो रहा है। ऐसे शोरगुलमें पारखी सद्गुरुका धीमा स्वर सत्य-न्यायका उपदेश कौन सुने ? कौन माने ? पक्षपाती लोग तो उसे नहीं मानते हैं। कोई जिज्ञासु लोग ही उसे मानते हैं ॥ ६९३ ॥

२. गाढ़ी चौकी फिरत दिन-राती * घर घर भौ राजा उतपाती ॥ ६९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गाढ़ी चौकी = फिरत दिन = राती = चार धाम, चौंसठ तीर्थादि और मक्का-मदीना, मसजिद, मन्दिर आदि चौकी नाका गाड़ दिये हैं, खूँटा रोपन्त किये हैं। वहाँ कड़ा पहरा लगा दिये हैं। दिन-रात गुरुवारूप सिपाहीलोग फिर-फिर कर ज्ञानी-अज्ञानीलोगोंकी रखवारी करने लगे। इससे जगत् विषय तथा ब्रह्म आदि नाना वाणी सिद्धान्तोंका अध्यास सबोंके मनमें दृढ़ होकर गड़ गया, उसीमें दिन-रात फिरने-फिराने लगे।

घर घर = भौ राजा = उतपाती = राजारूप ब्रह्म ज्ञानी उपाधिखोर भये। सो घरोंघरमें जायके घटों-घटमें व्यापक एक ब्रह्मका बोध उपदेश देकर कल्पना दृढ़ाके घट-घटमें उत्पात करने लगे, इसतरहसे संशय, कल्पना फैलानेवाले होते भये ॥

व्याख्या— दिन-रात ज्ञानी-अज्ञानीके पीछे जबर्दस्त चौकीदार फिरते रहते हैं। सो विषयानन्द और ब्रह्मानन्दोंका अध्यास सबोंके मनमें गड़ गया है वा ठस गया है। ब्रह्मज्ञानीलोग घरोंघरमें जाकर उपद्रव मचाते हैं, तथा घटोंघटमें ब्रह्मज्ञानकी उपाधि दृढ़ हुई या हो रही है ॥ ६९४ ॥

३. गोंठ गोंठ जो चहुँदिश हेरा * लहत परख सब कष्ट निबेरा ॥ ६९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

गोंठ गोंठ जो = चहुँदिश हेरा = इन गुरुवालोगोंकी जमात मण्डली सौ, पाँच सौ, हजार आदि इकट्ठे होकर झुण्ड-के-झुण्ड जनसमूह-की धूम मचाकर जो कि, चारों दिशाओंमें सब तरफ घूमते-फिरते, देखते, मत प्रचार करते चले गये और ऐसे ही जा रहे हैं। सबको भ्रमा-भुला रहे हैं, और सब गुरुवा-लोगोंके दल समूह चार वेदोंको पढ़-पढ़ाकर व्यापक ब्रह्म प्राप्तिके लिये नाना साधनोंमें लगे और लगा रहे हैं।

लहत परख सब = } बड़े भाग्यसे जिस किसी
कष्ट निवेरा = } जिज्ञासुको पारखी सद्गुरु मिल गये तथा आपने सब परखाय दिये, पारखबोध प्राप्त हो गया, तो फिर उसका सब ही कष्ट-क्लेश छूट जाता है। सत्य निर्णय-को जान जाते हैं। इसलिये पारख गुरुबोधके प्रतापसे सब कष्टोंसे वे छूट जाते हैं ॥

व्याख्या— झुण्ड-का झुण्ड-जमात लेकर गुरुवालोग चारों दिशाओंमें घूम-घूम कर लोगोंको फँसा रहे हैं। जिधर देखो, उधर ही गुरुवालोगोंका झुण्ड दिखलाई देता है; उन्होंके ढोंग और चार वेद देखकर अज्ञानी लोग आकर्षित हुए हैं। पारखी सद्गुरुकी दयासे जिसको गुरु निर्णय पारख बोध प्राप्त हो गया, सो उसके सब भ्रम कष्ट छूट गये या वह कष्ट कल्पनासे छूटकर सत्य निर्णयमें ठहर जाता है ॥६९५॥

४. जाल फाँस राजाके खोई ❀ अभय अशङ्क सदा सुखदाई ॥ ६९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जाल फाँस = } राजा ब्रह्मज्ञानी वा गुरुवा-
राजाके खोई = } लोगोंकी समस्त मिथ्या वाणी कल्पनाका, जाल तथा विषयोंके फन्दोंको तोड़-फोड़कर ध्वंस करके वह जिज्ञासु मिटाय देता है या खो देता है।
पारखी सद्गुरुकी महान दयासे—
अभय = } जब मनुष्यकी भ्रम-भूल सब मिट
अशङ्क = } गयी, तब यमराज, ईश्वर, देवी,
सदा = } देवतादिके मिथ्या भयसे छूटकर
सुखदाई = } निर्भय हो गया, और कोई शङ्का-सन्देह उसका नहीं रहा, तो वह सदा निःशङ्क शान्त, सुखमें ही रहता है। और अन्य सबोंको भी सुख ही देता है ॥

व्याख्या— पारखपद प्राप्त हो जानेपर गुरुवालोगोंके सब जाल-जञ्जाल फाँसी-फन्दा मिट जाते हैं। और जिन्होंने सब फन्दोंको वा जड़ाध्यासोंको खो दिये, सो निर्भय, निःशङ्क हो, सदाकाल शान्ति, सन्तोष सुखमें रहकर सब प्राणीको सुख ही देते हैं ॥ ६९६ ॥

५. देखा चौकीदार बहु रीसे ❀ कला न लहै हाथ सब मीसे ॥ ६९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
देखा चौकीदार = } जब कर्मी, भक्त, योगी,
बहु रीसे = } ज्ञानी आदि चौकीदार गुरुवालोगोंने देखा कि, कोई जिज्ञासु नर जीव उन्होंके जाल-घेराको तोड़कर कल्पना को छोड़के भाग गया, तो वे बहुत नाराज होकर क्रोधमें जाज्वल्य भये, खूब रिसाये।
कला न = } फिरसे पकड़क फँसानेके वास्ते
लहै हाथ = } खूब कोशीश किये, दौड़-धूप
सब मीसे = } किये। परन्तु, अब उन्होंकी कला-कल्पना, उपाय, युक्ति कुछ भी न लगी। तब हार मानकर हाथ घीस-घीसकर पछताने लगे, अफशोस करने लगे ॥

व्याख्या— कर्मी, भक्त, योगी आदि चौकीदार गुरुवालोग ऐसे सत्यान्यायी सन्तोंको देखकर बहुत रीस या क्रोध करते हैं। उनको फँसाने-डिगानेके लिये एक भी कला-कल्पना-युक्ति उनकी नहीं लगी, तो हाथ घीसकर पछताने लगे ॥ ६९७ ॥

६. सब हरिभोंग करें कौवारा ❀ हम लोगनसे भया यह न्यारा ॥ ६९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
सब हरि भोंग = } तब संसारके निवासी सब
करें कौवारा = } गुरुवालोग तथा उनके पक्षपातीलोग सब जनें मिलकर एक-दूसरे-को पुकारकर सूचना दे-देकर बड़ा हल्ला मचाकर कोलाहल करने लगे; धरो, पकड़ो, यह छूटने न पावे, ऐसा कहने लगे।
हम लोगनसे = } पारखबोध पानेपर जब
भया यह न्यारा = } नर-जीव इन्होंके हाथोंमें नहीं आये, तब हाय-हाय! यह नर-जीव देखो! अब हम लोगोंके सङ्ग जाल-फाँससे न्यारा हो गया, छूट गया; बड़ा अनर्थ हुआ। ऐसा कहकर गुरुवालोग चिन्ता-फिक्र

करने लगे; अपनी हानि समझते भये; और आपसमें कहने लगे कि, देखो तो यह नर-जीव कैसे छूट गया? बड़ी गलती हुई, अब ऐसे होने न पावे ॥

व्याख्या— सत्यन्यायी पारखी सन्तोंके उपदेशमें लोगोंको लगे हुए देखकर सब संसारके स्वार्थी गुरुवालोग चिल्लाकर अफशोस करके पुकारा करते हैं। जब लोभ दिखलानेपर भी वे कोई नहीं फिरे, तब बड़ा दुःख मानकर कहने लगे कि, बड़ी हानि हो गयी। यह जीव हम लोगोंसे छूटकर न्यारा हो गया! पकड़में ही नहीं आता है। हाय! अब क्या उपाय करें? इत्यादि कहकर पछताने लगे ॥ ६९८ ॥

७. नहिं डर महन्तों न राजा मानै * ना जानों यह क्या व्रत ठानै ? ॥ ६९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नहिं डर = महन्तों न = राजा मानै = ये लोग परमेश्वर या यमराज-का भी कुछ डर नहीं मानते हैं, और ब्रह्मा, विष्णु, शिवको भी नहीं मानते हैं, तथा ब्रह्मज्ञानी राजा वा कर्मी, भक्त, योगी आदि अफसरोंका भी कुछ भय नहीं मानते हैं; निडर, ढीठ हो गये हैं।

ना जानों = यह क्या = व्रत ठानै? = पहले तो ये ऐसे नहीं थे, अब न मालूम इन्होंने क्या व्रत ठान लिया है? क्या सिद्धान्त दृढ़ करके पकड़ लिया है? जिससे हमारा प्रभाव इनपर नहीं पड़ता है, यह बात कुछ जाननेमें नहीं आती है ॥

व्याख्या— देखो भाई! पारखी सन्तोंके उपदेशमें जो लग गये, फिर वे निडर हो जाते हैं। ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवता, भूत-प्रेतादि किसीसे भी वे नहीं डरते हैं; और ब्रह्मज्ञानी, योगी आदिको भी कुछ नहीं मानते हैं। न मालूम क्या व्रत इन्होंने ठान लिया है? क्या सिद्धान्त मान लिया है? सो कुछ समझमें नहीं आता है, बात कुछ नहीं, ये तो नास्तिक हो गये हैं, अब इनको छोड़ दो! दूसरे शिष्यलोग फिर ऐसे होने न पावें, यह पूरा प्रबन्ध करलो, ऐसा कहके गुरुवालोग अपने फँसानेके काममें जी-जानसे लगे ॥ ६९९ ॥

८. यहि विधि युगन युगन चलि आई * दया दयाल काल अन्याई ॥ ७०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

यहि विधि = इसीप्रकारसे या इसीतरहसे ऊपर कहे अनुसार यहि विधिसे—

युगन युगन = चलि आई = युगानयुगोंसे जीव जड़ाध्यासी होकर आवागमनोंमें पड़ता हुआ चला ही आ रहा है। बिना पारख भव-बन्धन जन्मृति नहीं छूटता है, पूर्व कर्मानुसार ही देह वा स्वभाव बनता है।

दया दयाल = काल अन्याई = सत्त्वगुण दयादि शुभ संस्कार-से कोई मनुष्य दयालु, सद्गुणी, सत्यग्राही पारखी सद्गुरु हो जाते हैं। और कोई विषय तथा कल्पनादिके तमोगुणी जड़ाध्यासके कारणसे कठोर हृदयवाले काल वा कसाई, अन्यायी, दुर्गुणी, अविचारी ठग गुरुवा बन जाते हैं। फिर वैसे ही कार्य करने लग जाते हैं ॥

व्याख्या— संसारमें जीव सब जड़ाध्यासी होनेसे सदैवसे बद्ध हैं। इसीप्रकार आवागमन बन्धन भी युगानयुगसे प्रवाहरूप अनादिसे ही चला आ रहा है। जो जैसा कर्म करता है, सो तैसा ही संस्कारसे स्वभाव बना लेता है। पारखी सद्गुरु दयालु मुक्तिदाता होते हैं, और गुरुवालोग भ्रमिक, अन्यायी, बन्धनमें डालनेवाले होते हैं; सो अच्छी तरहसे उन दोनोंको पहिचान लेना चाहिये ॥ ७०० ॥

९. सतयुग सतसुकृत गुरु आई * त्रेता मुनिन्द्र बहु जीव चेताई ॥ ७०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! चारों युगोंके चार नाम भिन्न-भिन्न चार व्यक्तियोंका नहीं कहा है; किन्तु, पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके यथार्थ सद्गुण-लक्षणोंको देखकर उन्हीं गुणोंमें नाम घटाकर चार प्रकारसे कहा गया है। सद्गुरुके सौ नाम वा सहस्र नाम कहा है, तहाँ चार नाम एक ही सद्गुरुका कहा जाय, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अतः

सतसुकृत आदि चार नाम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके लिये ही कहा गया है; ऐसा यथार्थ जानना चाहिये ॥

सत युग = सतसुकृत = गुरु आई = 'युग' कहिये दो को, सो जड़ और चैतन्य जीव- ये दोनों नित्य, सत्य, अनादि पदार्थ हैं; ऐसा सद्गुरुका पारख बोध है। तो जिसके घटमें पारख बोध प्रथम उदय हो आया, सो पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए; उनमें भीतर-बाहर सत्यकी निष्ठा, सत्यका प्रकाश, सत्यकी रहनी-गहनी हुई, इसीसे यहाँ ऐसे 'सतयुग' होता है, सो सुकृत = शुभ संस्कारी पुण्यवान् नर जीवोंको सत्य पारख चैतन्य बोध दाता जो हुए, सोई पारखी सद्गुरु 'सतसुकृत' श्रीकबीरसाहेब कहलाये।

त्रेता मुनिन्द्र = बहु जीव चेताई = भक्त, योगी और ज्ञानी इन तीनोंके समाजमें ऋषि, मुनि, महर्षि, बड़े-बड़े होते भये, उन मुनि, ज्ञानियोंमें सर्व श्रेष्ठ इन्द्रवत् शिरोमणि पारखी सद्गुरु ठहरते हैं। वे सद्गुरु जिज्ञासु नरजीवोंको सत्य पारखका बोध देकर बहुतोंको चेताये, षट्दर्शनोंके सब भ्रमको लखाये; आप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका ही एक नाम 'मुनीन्द्र' कहा गया है ॥

व्याख्या— चार युगोंका विभिन्न समय जो मानते हैं, सो गुरुवालोगोंकी मिथ्या कल्पना है। सो कल्पनाको सर्वत्र ग्रन्थकर्त्ताने खण्डन किया है। फिर यहाँपर चार युगोंकी कल्पना पारखी ग्रन्थकर्त्ता कैसे मान लेते ? सो बात नहीं सम्भवती है, अतः यहाँपर चार युग कथनमें सिर्फ शब्दार्थसे गुण-दर्शन वा गुण-ग्रहण किया गया है। जो कि, एक ही पारखी सद्गुरुके सद्गुणोंको देखकर चार नामसे या कई नामोंसे शिष्योंने पुकारा किया है। चार युगोंमें एक ही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका चाररूप भिन्न-भिन्न मानना, मिथ्या कल्पनामात्र ठहरता है। अतः कल्पनाको छोड़कर यथार्थ बातको ही ग्रहण करना चाहिये। सतयुगका ऐसा अर्थ है— 'युग' नाम दोका है, सो भीतर सूक्ष्म, बाहर स्थूल दोनों देहोंसे सत्यकी रहनी-गहनी धारण किये हुए पारखी सन्त सद्गुरु हैं, उनके पास जो जिज्ञासु सुकृत जीव आते हैं, तिनको सत्य पारख बोध सद्गुरु लखा देते हैं, उनके भ्रम छुड़ा देते हैं सोई 'सतसुकृत'का अर्थ है। और त्रेता-युगमें तीन और दो पाँच होता है, अर्थात् त्रेतायुग = त्रेता × तीन, युग × दो, इसको एकत्र मिलानेपर पाँच होता है। अथवा तीनका दुगुना छः होता है। सो पञ्च विषय, पञ्चकोशोंकी वाणी और षट् शास्त्रोंके पक्षमें बहुतेक मनुष्य अचेत हो रहे थे। मुनियोंमें इन्द्र राजाके समान ज्ञान शिरोमणि 'मुनीन्द्र' सद्गुणवाले पारखी सद्गुरुने जीवोंको बहुत प्रकारसे चेताके सारासारके भेद दर्शाये। तहाँ सार ग्रहण करनेवाले जीवोंने कल्याण पदको पाये! इसलिये सत-युग गुणवान् 'सतसुकृत' तथा त्रेता गुणवान् 'मुनीन्द्र' यह दोनों नाम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका ही हुआ। और उक्त दो युगोंमें दो पुरुष भिन्न-भिन्न होनेकी कल्पना करना मिथ्या है, सो जान लीजिये ! ॥ ७०१ ॥

१०. द्वापर करुणामय सुखदाई ❀ कलियुग कबीर जीव मुक्ताई ॥ ७०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

द्वापर = करुणामय = सुखदाई = यह जीव खानी और वाणी- यह दो जालोंमें फँसा पड़ा है, फिर चारखानी-चार वाणीके कष्टसे व्याकुल हो रहा है, ऐसा देखके दयालु करुणास्वरूपी पारखी सद्गुरुने स्वरूप बोध लखाकर जीवोंको सुख दिये वा मुक्त किये। सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका ही एक नाम 'करुणामय' हुआ। मोटी-झीनी दोनों जालोंको आपने ही परखाये, जीवोंपर विशेषरूपसे दया किये, इसीसे 'करुणामय' कहलाये। और—

कलियुग कबीर = जीव मुक्ताई = संसारमें स्त्री और कल्पना ये दोमें लिपटके सब जीव बद्ध हैरान हुए हैं, सो कायामें

अनासक्त शूर-वीर सकल माया-मोह जड़ मानन्दीसे छूटे हुए चैतन्य जीवके स्वरूप पारखपदमें स्थिर जीवन्मुक्त पारखी साधु-गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए थे। उन्होंने जिज्ञासु मनुष्योंको सर्व प्रथम पारख बोध देकर मुक्तिमार्ग बतलाये, इसीसे जीवोंके मुक्तिदाता हुए; अतः कलियुगरूपी संसार-में निज-पर जीवोंको सब बन्धनोंसे छुड़ाकर मुक्त करनेमें समर्थ ऐसे एक सद्गुरु-'श्रीकबीरसाहेब' ही हुए हैं ॥

व्याख्या— द्वापर=दो पर या दो पक्षवाला होता है; एक जगत् मायाका पक्ष लेकर विषयासक्त होते हैं। दूसरे ब्रह्मका पक्ष लेकर निर्गुणियाँ बने हैं। कोई दो के चार बढ़ाकर चार वेद, चार वर्ण, चार आश्रमादिके पक्षपाती अविचारी बने, और नाना दुःख भोगते हुए वाममार्ग वा दक्षिणमार्गादि-में कष्ट पा रहे थे; व्याकुल हो रहे थे। करुणामय पारखी सद्गुरुने उन जीवोंपर असीम दयादृष्टि करके सारपदको परखाये, तो उनमेंसे कई जिज्ञासुओंका भ्रम मिटा, जिससे सुख पाये; ऐसे सुखदाई भये; और कलियुगमें कलि=काया, युग=दो, स्त्री-पुरुषकी विषयासक्तिके कारणसे कायाके काम भोगोंमें समस्त संसारी भूले हैं। और दूसरा कलिरूपी वाणी है, सो अज्ञानी जीव मायामुख, ब्रह्ममुखकी वाणीमें भ्रमिक हो, भव चक्रमें गाफिल पड़े हैं। ऐसे यह 'कलियुग' कहिये संसारमें जीव महान् बन्धनमें आ पड़े हैं। कोई महापुण्यवान् शुभ संस्कारी जीव कायामें जीते ही सकल माया-मोहको जीते हुए शूर-वीर रणधीरके समान कायावीर सद्गुरु श्रीकबीर जीवन्मुक्त परमपुरुषार्थी स्वयं पारख बोध प्राप्त सर्व प्रथम ऐसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए। आपके सिवाय पहले कोई पारख प्रकाशी सन्त नहीं हुए; और आपके पारख बोध ग्रहण करके फिर जीव मुक्तिको पाने लगे; तबसे आपके अनुयायी पारखी सन्तोंकी परम्परा चली ही आ रही है ॥ ७०२ ॥

११. बन्दीछोर बिन नहिं छुटकारा ❀ खानी कष्ट हरिभोग अपारा ॥ ७०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बन्दीछोर=सकल माया-मोहके बन्धनोंसे जीव-को छुड़ानेवाले सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा आपके सच्चे अनुयायी पारखबोध सत्य ज्ञानमें परिपक्व स्थितिवान् पारखी सन्तको 'बन्दीछोर' कहते हैं।

बिन नहिं=छुटकारा= सो वैसे परोपकारी पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर सत्य बोधको ग्रहण किये बिना जीवोंका भव-बन्धनोंसे कभी छुटकारा हो नहीं सकता है। क्योंकि—

हरिभोग=यह संसारमें गुरुवालोग और स्त्रियों-का जबर्दस्त भुलावा महान भव-बन्धनोंमें जीव सब पड़े हैं। सद्गुणोंको हारकर दुःख भुक्त हो रहे हैं।

खानी कष्ट=एक तो खानी जालमें चार खानी चौरासी योनियोंमें अनेकों कष्ट त्रयतापादिमें सन्तप्त हो-होकर भी भग-भोगोंमें भूले पड़े हैं। और—

अपारा=दूसरा ईश्वर-ब्रह्मादिको अपार, अथाह मानकर भी उसकी प्राप्तिके लिये वाणी कल्पनासे अनेकों साधनोंके कष्टरूप दुःख पाते हुए भी भ्रमिक हो रहे हैं ॥

व्याख्या— बन्दीछोर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोध पाये बिना जीवोंका आवागमनोंसे कभी छुटकारा नहीं होता है। यह संसारमें अपार ब्रह्म वाणी जाल तथा नाना खानी जालोंके चक्रमें जीव पड़े हैं; सो गुरु-पारख पाये बिना जीव नहीं छूटते हैं ॥ ७०३ ॥

१२. दया निधान एक युक्ति सँवारी ❀ जाते फाँस कटै भव भारी ॥ ७०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दया निधान=एक युक्ति=सँवारी= दया सागर या दयाके भण्डार समान सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने शोध-बोधसे सत्यबोध देनेकी एक ऐसी युक्ति या शैली बनाये कि, सर्व साधारण मनुष्य भी सरलता वा आशानीसे समझें-बूझें।

जाते फाँस = जिस उपदेशको श्रवण करके
कटै भव भारी = धारण करनेसे बड़ा भारी भव-बन्धन खानी-वाणीके जाल सब कट जाते हैं, और बहुतोंके फाँस कट भी गये हैं॥

व्याख्या— दयानिधि सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जीवोंको मुक्ति देनेके वास्ते सत्योपदेश देनेकी एक सरल युक्ति-प्रयुक्ति बना दिये हैं। एक ही निज वा स्व-स्वरूप चैतन्य बोध जीवोंको दर्शा दिये। जिससे कि, उस युक्ति-प्रयुक्तिसे चलनेसे भवसागरकी भारी खानी-वाणीकी फाँसी भी सुगमतासे कट जाती है; जीव मुक्त हो जाता है॥ ७०४॥

१३. जो जेहि फाँस जीव अरुझाया ❀ सो समेटिके बीजक बनाया॥ ७०५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जो जेहि फाँस जीव अरुझाया = अनादि कालके जगत्में जो-जो नरजीव जिस-जिस प्रकारसे यम फाँसमें जा-जाकर अरुझे थे, और ब्रह्मादि गुरुवालोगोंसे लेकर अनेकों भ्रमिकोंने तथा स्त्रियोंने खानी-वाणी जो-जो जाल फन्दोंमें नर जीवोंको अरुझाये थे—
सो समेटिके = सो सब भागोंको समेटकर इकट्ठा करके भलीभाँतिसे सत्यन्याय निर्णय परखाकर दिखला दिये। सो कैसे? कि—
बीजक बनाया = बी = बीजरूप वासनाको वाणी-कल्पना और विषयोंको, ज = जमा करनेवाला, जगत्में जमापदरूप जीव हो सत्य है। तथा काया, माया, कल्पना, विषय और अनेक कर्मोंकी वासना, बीज अध्यास मानन्दीका संग्रहकर्त्ता सत्य चैतन्य अखण्ड स्वयं जीव है। सो भ्रमसे कोई कर्त्ता-ईश्वरादि मानकर भूल रहा है। उस भूल-भ्रमको हटाकर सत्य पारखबोध दर्शानेवाला सद्ग्रन्थ बीजक मूलको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बनाये हैं, अथवा बीजकका सत्य उपदेश मनुष्योंको दिये हैं॥

व्याख्या— नर जीवोंको अरुझायके गुरुवालोग और स्त्रियोंने वा जो कोईने जहाँपर जिसको पाये वहीं खानी-वाणीके जेलमें फँसाय रक्खे थे। सो सब प्रपञ्च कठिन जालोंको देखकर जीवोंको बचानेके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं शक्ति पारख ज्ञानके बलका प्रयोग करके फिर सो सब जालोंको समेट करके उसके नाश करनेकी युक्ति-प्रयुक्ति दर्शाकर 'बीजक' नामका सद्ग्रन्थ बना दिये हैं। उसमें समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थोंकी कसर-खोट षट् दर्शनोंके छियान्नवे (९६) पाखण्डोंका असार धोखा परखा दिये हैं॥ ७०५॥

१४. जाते सूझि परै यम फन्दा ❀ परख पाय जिव होय आनन्दा॥ ७०६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
जाते सूझि परै = जिससे कि, गुरुमुख द्वारा
यम फन्दा = बीजक सद्ग्रन्थका सत्यज्ञान समझ लेनेपर फिर- यम = मनमें जमा हुआ अध्यास या वासना और गुरुवालोग तथा नारियोंके समस्त मोटी-झीनी खानी-वाणीके फन्दे साफ-साफ देखनेमें आ जाते हैं; सब जालोंसे जीव छूट जाते हैं।
परख पाय = सद्गुरुकी दयासे बीजक ज्ञानका सत्य पारखबोध प्राप्त होने-
जिव होय = पर नरजीव सर्व दुःखोंसे छूट
आनन्दा = कर जीवन्मुक्त सुखरूप आनन्दको हासिलकर सदा सुखी हो जाते हैं॥

व्याख्या— जिससे कि, गुरुमुख द्वारा बीजक सद्ग्रन्थको पढ़कर जो जिज्ञासु मनन करेगा, उस मनुष्यको फिर सब यमका फन्दा सूझ पड़ेगा। फिर सद्गुरुकी दयासे पारखस्वरूप बोधको पायके नरजीव जीवन्मुक्त हो सदा सुखी हो जायगा। सब बन्धनोंसे छूटकर सदाके लिये मुक्त हो जायगा। अर्थात् जब नरजीव पारख बोधको पा जाता है, तब उसके प्रतापसे यमरूप कालके फन्दारूप सब मोटी-झीनी जाल देखकर उसको पहिचाननेमें आ जाता है। जिससे पारखके प्रतापसे उन सब जालोंसे छूटकर जीव सुखी हो जाता है॥ ७०६॥

१५. भय वशि जीव न गहै प्रभु वचना ❀ फाँसे फाँस विविधि यम रचना॥ ७०७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

भय वशि जीव न = सब भ्रम कल्पनाको हरण
गहै प्रभु वचना = करनेवाला, निज सत्स्वरूपको दर्शानेवाला, ऐसे यथार्थ सत्यन्याय निर्णयकी गुरुमुख वाणी प्रभु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका वचनरूप बीजक सत्यज्ञानको अबोध नरजीवलोग नारी और गुरुवाओंके डरके मारे ग्रहण करके धारण कर नहीं सके। क्योंकि, दिन-रात उन्हींके बीच घेरामें रहते थे और रह रहे हैं।

फाँसे फाँस = यमरूप गुरुवालोगोंने वेद,
विविधि यम = शास्त्र, पुराणादि नाना तरहकी
रचना = वाणी रचना करके कल्पना दृढ़ायके नाना कर्मोंकी फाँसी या फन्दोंमें अनेक तरहोंसे फँसाय रक्खे हैं। चौतरफसे जालोंका फैलावा है। अतः उन फन्दोंमें रहकर बीजक ज्ञान ले नहीं सकते हैं॥

व्याख्या— ऐसे होनेपर भी गुरुवालोग और स्त्री आदिके भयके मारे कोई मनुष्य सद्गुरुके निर्णय सद्वचनोंको ग्रहण करके धारणकर नहीं सके। क्योंकि, दिन-रात तो उन्हीं वञ्चकोंके साथ रहते थे। उन्होंके भेषादिमें होनेसे उन्हींमें रहना पड़ता था, वहाँसे निकलकर ठहरनेका ठहराव नहीं था। यमरूप गुरुवा या स्त्रियोंने विविधि प्रकारके वेदादि तथा शृङ्गारादिकी वाणी-रचना करके तथा विषय भोग रचकर उसीसे नाना फाँसमें फँसा रक्खे हैं॥ ७०७॥

१६. तासु हेतु प्रभु दीनदयाला ! * बाना भेषकी राह सँभाला ॥ ७०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
तासु हेतु प्रभु = इसवास्ते या इसकारणसे
दीनदयाला ! = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब प्रभु दीनदयालुने दया करके—

बाना भेषकी = साधुका सच्चा भेष, त्यागमार्ग-
राह सँभाला = का चिह्न धारण-ग्रहण करके कबीरपन्थी साधु भेषमें जिज्ञासु मनुष्योंको प्रवेश कराकर गिरते हुएको बचाये वा सम्हाल लिये॥

व्याख्या— इसकारण उन दीन जिज्ञासु जीवोंके कल्याण करनेके लिये दीनदयालु सद्गुरु प्रभु श्रीकबीरसाहेबने सच्चे साधु भेषका बाना पहिनकर यानी सफेद वस्त्रका लङ्गोटा, अचला, सफेद ऊर्ध्व तिलक, कण्ठी, यही चिह्न धारण करके कबीरपन्थी साधु भेष कायम किये। कुरास्तामें गिरते जाते हुए मुमुक्षुजनोंको अपनी शरणमें लेकर उपरोक्त भेष देकर त्याग मार्गको सम्हालकर सुधार लिये। जिससे गुरु-भेषमें आकर निश्चिन्त हो मुक्तिमार्गमें लग सकते हैं॥ ७०८॥

१७. राज तिलक ब्रह्माको लीन्हा * दया उरमाल विष्णुकी चीन्हा ॥ ७०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरुने रहनी सुधारनेके लिये—

राज तिलक = नासिकाग्रसे मस्तक तक
ब्रह्माको लीन्हा = खड़ा तिलक लगाये, सो सत्यन्याय निर्णयका खड़ा सद्वचन बोलनेका चिह्न है। यह ब्रह्माके शुद्ध रजोगुणको लेकर रहनीके लिये धारणकर लिये। तथा—

दया उरमाल = सूतकी मालामें एक मणका
विष्णुकी चीन्हा = कण्ठी डालकर गलेमें पहिरे, सो हृदयमें पूर्णतासे दया धारण करनेका दर्शक चिह्न है। वह विष्णुके सत्त्वगुणको शुद्ध रहनीके लिये ग्रहण किये॥

व्याख्या— अब यहाँ भेषके चिह्न लेनेके बारेमें कहते हैं। संसारमें ब्रह्मा, विष्णु, और महादेव श्रेष्ठ कहलाये। उन्हीं द्वारा त्रिविधि मार्ग चला। और वे तीन गुणोंके स्वरूप ही थे। सो त्रिगुण सब प्राणियोंमें वर्तमान है। सो उसके सुधार सार ग्रहणके वास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने विवेकसे काम लिये। सत्यवक्ता सत्यन्याय निर्णयी होकर शुद्ध रजोगुण सोई ब्रह्माके सार भागसे खड़ा तिलक ग्रहण किये। ब्रह्मा या ब्राह्मणलोग तिलक लगायके जगत्में श्रेष्ठ न्यायकर्त्ता बने और श्रेष्ठ कहलाये। परन्तु, उन्होंने जहाँ-तहाँ अन्याय ही किये हैं। निष्पक्ष धर्मसे सत्यन्याय उन्होंसे नहीं हुआ। और गलेमें कण्ठी पहननेपर छाती तरफ लटका रहता है; सो हृदयमें दया धारण करनेका विष्णुके सत्त्वगुणका चिह्न है। किन्तु, विष्णुने क्रोध करके अनेकों दानवोंका संहारकर हिंसा किया, तो उसमें दया कहाँ

रही; निर्दया आनेसे उसकी दया नष्ट हुई, परन्तु, दयाकी रहनीके लिये सद्गुरुने कण्ठी धारण कर लिये ॥ ७०९ ॥

१८. यतिके लङ्गोट शम्भुके मारी ❀ अजादि बाना कफनि गरे डारी ॥ ७१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

यतिके लङ्गोट = सदाके लिये मैथुन कर्मका
शम्भुके मारी = त्याग करके त्यागी साधु होनेका चिह्न लङ्गोटी लगा लिये। सच्चे विषय त्यागी साधु भये। और शिवके तमोगुणके भाग काम वेगको दबाकर मनको मारनेके लिये लङ्गोट ग्रहण कर लिये। यहाँ शुद्ध तमोगुणके सार भाग दृढ़ वैराग्य-को धारण कर लिये हैं।

अजादि बाना = अज ब्रह्मासे आदि = शुरूमें
कफनि गरे डारी = बाना संन्यासीका त्याग-मार्ग चला, फिर अनेक भेष खड़े हुए। परन्तु, गुरुवालोगोंमें उसकी सत्य रहनी ग्रहण नहीं हुई। और सद्गुरुश्रीकबीरसाहेब-ने त्याग भेषमें तीनों गुणोंका शुद्धगुण रहनीके लिये ले लिये, और देह रक्षाको कफनी = मेखला या अलफी गलेमें डालकर पहिन लिये; सो वैराग्यका चिह्न है ॥

व्याख्या— त्यागी ब्रह्मचारी होनेका चिह्न-लङ्गोटी पहने, सो शिवके शुद्ध तमोगुणका भाग या लक्षण वैराग्यको ग्रहण करके कामको दमन करके मारना है। परन्तु, महादेव तो मोहिनीके पीछे लगकर दिवाने कामी हुए थे, और भीलनीसे भोग किये थे। पार्वती स्त्री तो साथ ही रहती थी। इससे त्याग-वैराग्यका यथार्थ लक्षण उनमें नहीं घटा। ऐसे तिलक, कण्ठी, लङ्गोट लगानेवाले उन तीनोंका आचरण विरुद्ध या उलटा रहा। अतः उससे उन्होंका कल्याण नहीं हुआ और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने चिह्नके साथ सद्गुण-लक्षण रहनीको भी पूर्णतासे धारण किया, और वैसे ही गुण धारण करनेको आपने कहा है। ऐसे त्याग भेषका बाना-चिह्न ब्रह्मादिकोंका लेकर कफनी या अलफी गलेमें पहिनकर पूर्ण वैराग्यरूप निवृत्तिसे आप रहे ॥ ७१० ॥

१९. शाहनशाही टोपी दीन्हा ❀ सत्त रहनी सत्त भेष तब कीन्हा ॥ ७११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

शाहनशाही = सब राजाओंमें महाराजा या
टोपी दीन्हा = बादशाह बड़ा होता है, शिरपर उसके ताज रहता है। तैसे ही महाराजारूप सब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महाज्ञानी, शिरताज या शिरमौर होनेका चिह्न खड़ी लम्बी टोपी लगाये; और सब भ्रमका त्याग कर दिये।

सत्त रहनी = तब सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने
सत्त भेष = सत्यकी ही रहनी वा सत्यकी
तब कीन्हा = ही गहनी, सत्यका ही भेष बनायके सत्यका पन्थ चलाये; सत्यका ग्रहण तथा असत्यका त्याग किये और कराये हैं ॥

व्याख्या— बादशाहके शिरताजके समान खड़ी टोपी शिरपर लगाये, सो ज्ञान शिरोमणि सद्गुरु थे। इसतरह सत्यकी ही रहनी-गहनी, सत्यका ही भेष और वाणी ग्रहण किये, तब उससे नर जीवोंका हित (कल्याण वा मुक्ति) होने लगा ॥ ७११ ॥

२०. नष्ट अमङ्गल भेष दुराई ❀ दुर्मति सबकी दीन्ह लखाई ॥ ७१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

नष्ट अमङ्गल = मुक्तिपदको नष्ट करनेवाला
भेष दुराई = अमङ्गल वा अकल्याणकारी गेरु रँगाना, खाक लगाना, जटाधारी, अघोरी, दिगम्बर, नागे, कनफट्टा, त्रिशूलधारी, वाममार्गी, भैरवी इत्यादिक षट्दर्शनोंके छियान्नवे (९६) पाखण्डोंका भेष जो कि, नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला अमङ्गल है, उन सबको हटायकर त्याग किये और त्याग कराये।

दुर्मति सबकी = उन सबोंके पाखण्ड दुष्ट मति,
दीन्ह लखाई = भ्रान्तिके जञ्जाल, विज्ञानमें जीवके साक्षी ज्ञान स्वरूपपर पर्दा डालकर बुद्धि भ्रष्टकर दिये थे, सो सब लखायकर

परखा दिये। एक-एक कर समझा दिये; उसे हटा दिये हैं ॥

व्याख्या— सो जीवोंको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला, अमङ्गलकारी अशुभ भेष संन्यासी, उदासी, वैरागी आदि षट् दर्शनोंके पाखण्ड भेषोंको छोड़-छुड़ाकर शुद्ध भद्र त्याग भेष ग्रहण कर लिये। और सबोंकी दुर्मति, अनुमान, कल्पना एवं सत्यासत्य परखाकर लखाय दिये, समझाय-बुझाय दिये ॥ ७१२ ॥

२१. तब यम अपना दाव पसारा * लहै न एकौ मूढ़ पचिहारा ॥ ७१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जब कि, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सबको सत्य निर्णयका उपदेश देकरके परखाने लगे—

तब यम अपना दाव पसारा = तब यमराजके समान विकराल गुरुवालोगोंने जहाँ-तहाँ जा-जा करके अपना-अपना फन्दा, दाव-पेंच छल-कपट, कुटिलता, पाखण्ड फैला दिये।

लहै न एकौ मूढ़ पचिहारा = परन्तु, उन गुरुवाओंका प्रपञ्च दाव, कल्पनादि सद्गुरुके उपदेशिक लोगोंपर एक भी नहीं लगा, और एक भी पकड़में नहीं आये। कुछ भेद जान नहीं पाया, तो मूढ़ मूँड़ पचाकर भी हार गया, पीछे पछताने लगा॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके यथार्थ उपदेशसे अपने स्वार्थकी हानि होती हुई देख कर, तब धूर्त गुरुवालोगोंने अपना दाव-पेंच, फन्दा खूब पसारा किये; हानि करनेकी विस्तृत योजना बनाये। जब उन्होंका कुछ वश नहीं चला, कोई भी युक्तिसे पकड़नेमें नहीं आये, तब मूढ़ वञ्चक लोग माथापच्ची कर-करके पच-पचकर हार गये ॥ ७१३ ॥

२२. दया सागर अस युक्ति बनाई * बहु जीवनकी फाँस छुड़ाई ॥ ७१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

दया सागर अस युक्ति बनाई = दयाके समुद्र समान सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ऐसी सरल युक्तिसे भेष तथा उपदेशरूप बीजक सद्ग्रन्थको बना दिये कि, जिससे पारखी सद्गुरुका इशारा पाते ही सब समझने लग जाते हैं। ऐसे—

बहु जीवन की फाँस छुड़ाई = बहुतेक जिज्ञासु नर जीवोंको सत्यज्ञानका बोध देकर खानी-वाणी फन्दाओंसे छुड़ायकर बन्धनोंसे रहित कर दिये ॥

व्याख्या— दयासागर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सत्यज्ञानकी ऐसी शक्तिशालिनी सुगम युक्ति बनाय दिये कि, जिस युक्तिसे चलकर मनुष्य सब बन्धनोंसे सहज ही छूट जाते हैं। फिर आप सद्गुरुने बहुतेक मुमुक्षु नर जीवोंका फन्दा छुड़ा दिये ॥ ७१४ ॥

२३. पुनि यम आपन फन्द पसारा * नगर हरिभोग दुन्द प्रचारा ॥ ७१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पुनि यम आपन फन्द पसारा = ऐसा देख करके गुरुवालोग बहुत दुःखी भये। फिर और भी हिम्मत करके यमरूपी नारी और गुरुवालोगोंने अपना विषय और कल्पना वाणीका जाल सुखभोगोंकी लालच-रूपी दाना छिटकाकर फैला दिये वा पसाराकर दिये या चाट लगवाने लगे।

नगर हरिभोग दुन्द प्रचारा = हरिभोग नामके संसाररूप महा शहरमें सबोंकी बुद्धि हरणकर भोग-विलासोंमें भुला-भुलाकर जीवोंको झगड़ामें डाल दिये, फिर वेदादि वाणीका प्रचार किये। इसप्रकार संसारमें बड़ा दुन्द करा दिये ॥

व्याख्या— फिर जब गुरुवालोगोंने देखा कि, बहुत मनुष्य सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी ही तरफ झुकते चले जा रहे हैं, तो उन्होंने ऐसा किया कि, जैसे कालनेमिने हनुमानको फँसाने वा भुलानेके लिये कपट-मुनिका स्वाङ्ग रचा था, तैसे ही कपट भेषधारी साधु बनके आड़े रास्तोंमें डेरा डालकर, ढोंग-स्वाङ्ग दिखाकर भुलाने लगे; अपना फन्दा खूब ही फैलाये। संसारमें रोचक-भयानक वाणीका प्रचार किये। लड़ाई, झगड़ा लगादिये; और पक्षपातका जोर-शोर मचा दिये ॥ ७१५ ॥

२४. साहेब ओट निज नाम धराई * बहु मति दुविधा जीव दृढ़ाई ॥ ७१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

साहेब ओट = निज नाम = धराई = } धूर्त गुरुवालोगोंने जब देखा कि, बहुत जनें श्रीकबीरसाहेब-के मतको मानते जा रहे हैं। तब ठग गुरुवालोगोंने भी श्रीकबीरसाहेबके नामका ओट, आड़ या भ्रम-पर्दा लगायकर 'हम भी कबीरपन्थी हैं !' कहकर अपने नामसे विभिन्न पन्थ चलाये, तहाँ कल्पना, धोखेमें ही फँसाये हैं।

बहु मति = दुविधा जीव = दृढ़ाई = } जीवोंको नाना तरहोंकी मानन्दी दृढ़ाकर सन्देहमें डाले तथा नाना तरहसे मति-बुद्धि भ्रष्ट कर दिये, तो अद्वैतादि धोखा निश्चय कराये; ब्रह्मज्ञानादिमें ले जाके गाड़ दिये ॥

व्याख्या— झूठ ही कहने लगे कि, हम भी श्रीकबीरसाहेबके शिष्य हैं। ऐसा कहकर बीचमें लोगोंको फँसाने लगे; अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। श्रीकबीरसाहेबके नामकी आड़में कबीरपन्थी बनकर अपने नामसे पाखण्डका पन्थ चलाये वा चलाने लगे। साहेबके पारख सिद्धान्तको तो बिलकुल दबा दिये। भेष भी भिन्न-भिन्न किश्मके बनाये; रीति-रिवाज भी न्यारी-न्यारी ही चलाये। ऐसे साढ़े बारह-डोरी कबीरपन्थी बने। उनमें शाखा-परशाखा फूटकर अब पचीसों प्रकारके कबीरपन्थीलोग प्रख्यात हो गये हैं। उनमें सब कोई वेद, शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थोंके ही सिद्धान्तको सत्य मान रहे हैं। मिथ्या गुरुवालोगोंकी कल्पनामें खूब जकड़े हुए अविचारी पक्षपाती हुए और हो रहे हैं। बहुत प्रकारसे बुद्धि भ्रष्ट किये, तो नाना मति-बुद्धिसे जीवोंको अनुमान-कल्पना ही दृढ़ा-दृढ़ाकर दुविधामें डाल रहे हैं। बीजक सद्ग्रन्थके सत्य सिद्धान्तको वे तो जानते भी नहीं और मानते भी नहीं। ऐसे गुरुवा-लोग मूढ़-गँवार होकर भूले और भुला रहे हैं। हे जिज्ञासुजनो ! इसतरहके गुरुवा ठगोंको पहिचान कर उन्होंकी सङ्गतिमें कभी मत् पड़ो; दूर ही हो रहो ॥ ७१६ ॥

२५. नाना बानी अनमिल सबहीं * एक न एक मिले नहिं कबहीं ॥ ७१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हेसन्तो ! कबीरपन्थी कहलानेवालोंमें भी—

नाना बानी = अनमिल = सबहीं = } नाना प्रकारकी कल्पित वाणी संग्रह करके अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। सो सब ही पारखगुरुके निर्णयमें न मिलनेवाला, न ठहरनेवाला, अनमिल रचे हैं, अतः उन वाणी कल्पनासे जीवोंको मुक्ति नहीं मिल सकती है। कबीरपन्थीमें भी भ्रमिक गुरुवालोग-

एक न एक = मिले नहिं = कबहीं = } अनेक बने हैं, सो उन्होंके मत, वाक्य, ग्रन्थ सिद्धान्त एक-से-एकका मेल-मिलाप नहीं होता है। किसीसे स्वभाव नहीं मिलता है; एक-न-एक ढोंगमें वे लगे रहते हैं, कभी भी पारखी साधु-गुरुसे आके नहीं मिलते हैं; इसीसे उनका धोखा भी नहीं छूटता है ॥

व्याख्या— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता दर्शाते हैं कि, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके नामसे भी गुरुवालोगोंने ओटमें बैठकर नाना पाखण्डका पसारा किये हैं। तहाँ बिन्दवंश, नादवंश, कलावंश इत्यादि कई भेदोंसे फैले हैं। उन्होंकी नाना कल्पित वाणीके कई ग्रन्थ भी बने हैं। अनुरागसागर, बोधसागर, कबीर-कृष्ण-गीता, गोरखगोष्ठी आदि जो ग्रन्थ बनाये, सो सब बीजक सिद्धान्तसे अनमिल हैं। यानी उन ग्रन्थोंसे किसीको सत्य पारख बोध मिल नहीं सकता है। एक-न-एक धोखा कल्पना अभिमानमें सब लगे हैं, इसलिये पारखी सन्त समाजके सत्सङ्गमें आकर वे कभी भी नहीं मिलते हैं ॥ ७१७ ॥

२६. कहुँ वोहं कहुँ सोहं जापा * कहुँ ओंकार कहुँ निःअक्षर थापा ॥ ७१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कहुँ वोहं = कहुँ सोहं = जापा = जैसे अन्य मतवादी भ्रमिक हैं, तैसे कबीरपन्थी कहलानेवाले बहुतेरे भी बेपारखी भ्रमिक बने हैं, तो कहीं ॐ वा ओहं, कहीं सोहंका जाप श्वास आदिमें लक्ष्य लगाकर जपते और जपाते हैं। इसीसे कल्याण होगा, ऐसा कहते या मानते हैं। और—

कहुँ अकार = कहुँ निःअक्षर = थापा = कहींपर कोई लोग तो स्थूल आकार फोटो आदिके ध्यानमें लगे हैं। और कोई लोग कहीं निःअक्षर परमात्मा सत्पुरुष जगत्कर्त्ताकी स्थापना-कल्पना किये हैं। अथवा कहीं मस्तकमें अकार ध्वनि मानकर लक्ष्य लगाते हैं और कोई उसीको निःअक्षर स्थापे हैं॥

व्याख्या— वे बेपारखी नाममात्रके कबीरपन्थी भी दूसरे गुरुवालोगोंके समान ही भ्रमकल्पनामें पड़े हैं। इसकारण कहीं कोई वोहं या ॐकारका, कहीं सोहंका जाप जपते वा जपाते हैं। कहीं साकार फोटो-समाधिकी पूजा करते हैं, और कहीं निराकारके ध्यानमें लगे हैं। कहीं अकारका जाप वा ध्यान करते हैं, और कहीं क्षर, अक्षर, निःअक्षर ब्रह्म सिद्धान्तकी ही स्थापना करके कायम किये हैं॥ ७१८॥

२७. कहुँ ररा कहुँ नाम दृढ़ाई * कहुँ कहुँ आतमज्ञान बताई॥ ७१९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कहुँ ररा = कहुँ नाम = दृढ़ाई = कहींपर तो राम-नामका जाप जपनेमें लगे हैं, कोई रंरं ध्वनिमें ब्रह्माण्डमें लक्ष्य लगा रहे हैं। कहीं 'सत्यनाम-सत्यनाम' का जाप जपनेको दृढ़ा रहे हैं; और—

कहुँ कहुँ = आतमज्ञान बताई = कहीं-कहीं तो 'आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञानका अद्वैत सिद्धान्त ही सत्य है; यही श्रीकबीरसाहेबका सिद्धान्त है' ऐसा मिथ्या ही बतलाये और बतला रहे हैं। और बीजकके सत्य सिद्धान्तको उलटा करके मनमुखी भ्रमिक, पक्षपाती हुए वा ऐसे ही अनसमझ हो रहे हैं॥

कबीरपन्थीमें पढ़े-लिखे भ्रमिक पण्डितलोग-

व्याख्या— कहींपर कोई तो राम-नामके सुमिरनमें लगे हैं, तो कहीं ब्रह्माण्डमें 'ररंकार' ध्वनिमें लक्ष्य लगाते हैं। कहीं 'सत्यनाम'का, जाप दृढ़ाये हैं; और कहीं-कहीं तो पण्डितलोग ब्रह्मज्ञानका अद्वैत सिद्धान्त बतलाकर यही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका भी सिद्धान्त है; ऐसा कहकर लोगोंको सरासर भ्रमा रहे हैं॥ ७१९॥

२८. श्वासा उलटि काहु भटकाना * सतगुरु शब्द सोई गुरु ध्याना॥ ७२०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

श्वासा उलटि = काहु भटकाना = किसीने तो योग क्रिया साधकर श्वासको नाभिसे उलटायकर ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर समाधि लगानेको सीखकर उसीमें बहुतोंको लगाकर भटकाये-भुलाये हैं। उसीसे मुक्ति बताकर जहँड़ा रहे हैं। और—

सतगुरु शब्द = सोई गुरुध्याना = किसीने तो 'शब्दरूपीसतगुरुं' कहकर गुरुको जड़ शब्द स्वरूपी ठहराये हैं। वे शब्दको ही सद्गुरु मानकर कल्पित शब्द-चित्रको खड़ाकर उसीको गुरुका ध्यान माने हैं। कोई जड़ मूर्तिका ध्यान करनेमें लगे हैं। कोईने ब्रह्माके शब्द 'ओहं' या वेदको मानकर सोई वेद प्रमाणसे नाना प्रकारके ध्यानमें लगे। ऐसे बिना पारख सब धोखाधारमें बह रहे हैं॥

व्याख्या— किसीने तो योगाभ्यासको सीखकर श्वास वायुको ब्रह्माण्डमें उलटकर समाधि लगायी, उसीमें अपने भटककर और दूसरोंको भी भटका रहे हैं। और कोई तो जड़ शब्दको ही सद्गुरुका स्वरूप मानकर सोई शब्दके कल्पित आकारकी भावनाकर उसीको गुरुका ध्यान समझकर मानसिक ध्यान करने लगे। अथवा ब्रह्मादिके शब्द- वेदादिके प्रमाणसे गुरु-मूर्तिको साकार वा निराकार ठहराकर तहाँ कल्पनाका ध्यान करने लगे। इसप्रकार अनेकों तरहसे बहुतेरे कबीरपन्थी

भ्रमसे धोखेमें भूले पड़े हैं। और कोई तो मृतकके नामसे रखा हुआ नारीयलसे चौका-आरती करके उसे फोड़ देनेसे भी जीवकी मुक्ति मान बैठे हैं। यह सब मिथ्या प्रपञ्चकी बातें हैं। पारख गुरुके सत्य बोधको धारण किये बिना जीवोंका बन्धन छूट नहीं सकता है; ऐसा जानना चाहिये ॥ ७२० ॥

२९. प्रथम उत्पत्ति जेहि वैदक केरा * सोइ सोइ जाल रचा बहुतेरा ॥ ७२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! विवेकसे देखिये कि—

प्रथम उत्पत्ति = पहले ब्रह्मादि गुरुवा-
जेहि वैदक केरा = लोगोंने वेद, शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थ बनायकर जैसे कर्म, भक्ति, योग, ज्ञान आदिका मार्ग उत्पन्न किये थे; नाना मत-सिद्धान्त चलाये थे, पश्चात्—

सोइ सोइ = सोई-सोई वाणी कल्पना या
जाल रचा = सिद्धान्तोंको ले करके भाषामें
बहुतेरा = बहुतेरे ग्रन्थ कबीरपन्थियोंने भी रचना किये हैं, और अनेकों वाणी-खानीका जाल-फाँस रचकर फैलाये हैं। उसीमें अपने बँधे और दूसरोंको भी बाँध रहे हैं ॥

व्याख्या— प्रथमारम्भमें योगी, ज्ञानी, भक्तोंने जो कर्म, उपासनादिका उपदेश किये थे, तथा जिन्होंने वेद-शास्त्रादि ग्रन्थोंकी उत्पत्ति और षट्दर्शन मतका प्रचार किये या जो-जो जैसा-जैसा करते आये, वही बातको सीख-सिखा करके कबीरपन्थी बने हुए पारखहीन गुरुवालोगोंने भी अन्य मनुष्योंको भ्रमाने, भुलाने, मत बढ़ानेके वास्ते पुनः सोई-सोई वाणी जालोंको एकत्र संग्रह या रचनाकर भाषामें बहुत ही ग्रन्थ बना रक्खे हैं; ऐसे बहुतेरे जालोंकी रचना कर डाले हैं ॥ ७२१ ॥

३०. विविधि पन्थ साहेबके नामा * माया जाल है यमको कामा ॥ ७२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

विविधि पन्थ = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके
साहेबके नामा = नामसे कबीरपन्थी कहलाने वाले मुख्य बारह (१२) पन्थी तथा गौण अनेकों पन्थी हुए हैं और नाना पन्थ चल रहे हैं। उनमें नाना तरहकी कल्पनाएँ और कई चाल रीति-रिवाज प्रचलित हैं।

माया जाल है = सो यह सब मायाका जञ्जाल
यमको कामा = है, विषय भोग और कल्पना, में लगाकर ठगाई जो करते हैं, सो क्रूर, काल, दुष्ट, घातक, लम्पट, लबार यमका काम है। इसमें किसीका कल्याण होनेका नहीं। यह पारखी सद्गुरुका काम या उपदेश नहीं है, यानी गुरु उपदेशको तो वे जानते ही नहीं हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके नामसे अनेक पन्थ प्रचलित करके चलाये हैं। तहाँ सूरतगोपाल, धर्मदास, जागू, भागू, नारायणपन्थी, कमाली, मूलपन्थी, रामकबीर, गरीबदासी आदि भेदसे विभिन्न पन्थ 'कबीरपन्थी' नामसे प्रख्यात तथा प्रचलित हैं। तहाँ उक्त पन्थोंके अनुयायी जो वर्तमानमें हैं, उन लोगोंमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख सिद्धान्तका बोध-रहनी धारण किसीमें होता हुआ दिखाई नहीं देता है। इसकारणसे ये सब माया गुरुवालोगोंके ही महाजालका विस्तार करनेमें लगे हैं; जीवोंको ठगने, फँसाने, भुलानेका ही काम वहाँ हो रहा है। इसीसे यह काम यमरूप कालका है; सो पारखी सद्गुरुका काम नहीं है ॥ ७२२ ॥

३१. कहूँ मूल बीज दरशावै * विषय विकारमों गोता खावै ॥ ७२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कहूँ मूल = और कहींपर तो विषय
बीज दरशावै = लम्पट दुराचारी कुटिलजनोंने कबीरपन्थी नामकी आड़में वाममार्गका कुकर्म ही चला रहे हैं। तहाँ उन नरपशुओंने वीर्यको ही सबोंका मूल सत्यपुरुषका परवाना ठहराकर वीर्य खिलाते हैं, इससे मुक्ति होनेकी बात दर्शाते हैं। ऐसे महामूढ़ ही बने हैं। ऐसे पामर लोग ही सत्य पन्थको भी कलङ्कित करा देते हैं। और—

विषय विकारमों = } स्त्री-सम्भोग विषय
गोता खावै = } व्यभिचारमें भग-लम्पट हो, पशुवत् काम-क्रोधादि विकारमें गाफिल हो, नर जन्म गँवाकर फिर चौरासीयोनियों-के गर्भवासमें गोता खाते रहते हैं। ये लोग सदा नरकमें ही डूबे रहेंगे। ऐसे लोगोंका निस्तार कभी नहीं होता है ॥

व्याख्या— कहीं तो पाखण्डी वाममार्गीलोग कबीरपन्थमें गुप्तरूपसे घुसकर वाममार्ग चला रहे हैं। तहाँ वीर्यको ही सबका मूल भुक्ति-मुक्तिका कारण सब कुछ है, ऐसी धोखेकी बात दर्शाकर शिष्योंको वीर्य खिला देते हैं, फिर चौकादि विधान करके विषय व्यभिचार भग-भोगोंमें रत होते हैं। ऐसे नरपशु विषयोंके नाना विकारोंमें गोता खाकर चौरासी योनियोंके गर्भरूप नरकवासमें पड़ते हैं ॥ ७२३ ॥

३२. कपट भेष माया सो होई ❀ पारख होय तब जाने सोई ॥ ७२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
कपट भेष = } जैसे बगुलाका ध्यान और
माया सो होई = } बिल्ली, बाघोंका हिंसा न करनेका व्रत सुनकर कपटमें बहुतेरे प्राणी मारे गये। तैसे ही कपटी, कुटिल, ठग, धूर्त लोगोंने गुरुका शुद्ध भेष पहिनकर धोखा देकर जीवोंको फँसा-फँसाकर घात करने लगे। सो कपटका भेष माया गुरुवालोगों-का ही है। कालसे ही ऐसा कुकर्म होता है।
पारख होय = } जब कि, पारखी सद्गुरुके
तब जाने सोई = } शरण-सत्सङ्गसे सत्यपारख बोध उदय हो जाता है, तब ही कोई मनुष्य उन सब जालोंका मर्म जानकर उन पाखण्डोंसे न्यारा हो जाते हैं ॥

व्याख्या— कपटका भेष तो माया गुरुवालोगोंसे ही होता है। शुद्ध स्वच्छ जैसा दिखानेको भेष बनायकर अबोध भोले मनुष्योंको ठगते हैं, पथ भ्रष्ट करते हैं। पारख बिना यह पहिचाननेमें नहीं आता है। जब पूर्ण पारखका बोध हो जायगा, तब गुरुवालोगोंके पाखण्ड कसर-खोट सब जाननेमें आ जायगा। अतएव पारखी सच्चे साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके पारख बोध प्राप्त कर लेना चाहिये; तभी सबोंके हाल जाननेमें आ जायगा ॥ ७२४ ॥

साखीः— कपट भेष परपञ्च रची ❀ भोरे सकल जहान ॥
[४४] बिना प्रकाश प्रभु परखके ❀ केहि विधि होय पहिचान ॥ ७२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पहले तो सब जीव जड़ाध्यासी अज्ञानी ही बने हैं। दूसरा गुरुवालोगोंने और स्त्रियोंने वाणी कल्पना और विषयोंमें फँसा रक्खा है; उसपर तीसरा प्रपञ्चियोंने कबीरपन्थीके नामसे भी भुलाकर और भी बर्बाद कर दिये वा कर रहे हैं। इसलिये, हे जिज्ञासु जनो! उससे तुमलोग सावधान रहो! सुनो!—
कपट भेष = } कपटी कुटिल पाखण्डी
परपञ्च रची = } गुरुवालोगोंने त्यागी साधु-गुरुका स्वच्छ भेष बनाकर नाना तरहसे पञ्चकोशोंकी वाणीका प्रपञ्च तथा पञ्चविषय-भोग खानीका प्रपञ्च स्वार्थ सिद्धिके लिये अनेक जाल रचना कर लिये। और—
भोरे सकल = } चार मुक्ति, चाल फल प्राप्ति,
जहान = } सुख-ऐश्वर्य प्राप्ति, सत्य लोकादिमें पहुँचा देनेका आशा-भरोसा देकर सारे संसारके मनुष्योंको भुला दिये वा गाफिल कर दिये हैं।
बिना प्रकाश = } अब पारखी सद्गुरु प्रभु
प्रभु परखके = } श्रीकबीरसाहेबके सत्य पारख बोधका प्रकाश हृदयमें उदय हुए बिना यथार्थ सत्यासत्यको समझे-बूझे बिना—
केहि विधि = } यह कठिन कालका फन्दा
होय पहिचान = } किसप्रकार पूरी तौरसे पहिचान हो सकेगा? कभी न होवेगा। अतः हे मुमुक्षुओ! पारखी सद्गुरुका ही सत्सङ्ग करो, जिससे तुम्हें पारख बोध हो जायगा, तो फिर तुम सब जालोंको पहिचान जाओगे ॥

व्याख्या— हे भाई ! वासनावश जीव आप ही स्वयं बन्धनोंमें बन्धे ही हुए हैं; और भी सहस्र बन्धनोंमें गुरुवालोग बाँध ही रहे हैं। कहीं योगी, ज्ञानी, भक्त होकर, तो कहीं मत, पन्थ, पन्थाईके साधु होकर नरजीवोंको पकड़-पकड़कर जकड़ रहे हैं। व्याधाकी नाईं कपट भेषकी सजावट दिखलाकर नाना विषय और वाणीके प्रपञ्च-ग्रन्थ जञ्जालको खूब रचना करके सुख दिलानेकी आशा-भरोशा वा विश्वास दे-देकर सारे जगत्के मनुष्य जीवोंको गाफिल करके भुलाय दिये वा भटकाय दिये; भव-बन्धनोंमें डाल दिये हैं, सो तो जीवोंको खबर ही नहीं है। पारखी सद्गुरु प्रभुके सत्यनिर्णय पारखका प्रकाश अन्तःकरणमें उदय हुए विना, किस प्रकारसे यह जाल देखने-समझने या पहिचाननेमें आवे ? झीनीजाल पारख-दृष्टि हुए विना देखने या पहिचाननेमें नहीं आती है। इसकारण हे जिज्ञासुओ ! पारखी साधु-गुरुको पहिचानो और उन्हींके सत्सङ्ग द्वारा सब साँच-झूठको जानो, तथा अपने हित या कल्याणका प्रयत्न करो ! ॥ ७२५ ॥

सम्बन्ध— अब तीसवें खण्डमें ग्रन्थकर्त्ताने सद्ग्रन्थ बीजकके सत्यज्ञानकी विशेषता-महिमाका वर्णन किया है। तहाँ ८ चौपाई, और ५ साखी कहकर इस ग्रन्थके प्रथम (बड़ा) भागको समाप्त किया गया है; ऐसा जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ तीस खण्ड ॥ ३० ॥ ❀ ॥

१. जहाँ जेहि निष्ठा बीजक केरा * अपनी पराई करै निबेरा ॥ ७२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जहाँ जेहि निष्ठा बीजक केरा = जहाँ-जहाँपर जिस-जिस भाग्यवान् मुमुक्षु पुरुषोंको पारखी सद्गुरु मिल गये हैं, और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब विरचित सद्ग्रन्थ बीजकके सत्यज्ञानमें निष्ठा-प्रेम दृढ़तासे विश्वास हो गया है, और जिन्होंने गुरुमुखसे बीजकका सिद्धान्त, रहस्य सारको समझ गये हैं या समझेंगे—

अपनी पराई करै निबेरा = ऐसे निष्ठावन्त विवेकी नर-जीव ही अपने और दूसरेके पन्थ तथा ग्रन्थोंका कसर-खोट निर्णय करके बिलगाते हैं। फिर सब कसरको त्यागकर सारको ही ग्रहण करते हैं; तथा निज स्वरूप जीव चैतन्य और विजातीय जड़तत्त्वोंका निर्णय करके जड़ासक्तिको त्याग देते हैं ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि, जहाँ जिस जगहमें जिन-जिन मनुष्योंको पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग मिलकर बीजकका सत्य ज्ञान समझनेमें आया होवे। फिर उन्होंको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबपर तथा आपके उपदेशरूप बीजक सद्ग्रन्थपर पूर्ण निष्ठा, प्रेम, दृढ़ विश्वास हो जाता है। गुरुवालोगोंके वेद-शास्त्रोंमें जो प्रेम है, उससे बढ़कर बीजकके पारख ज्ञानमें जिज्ञासुओंका प्रेम लगा रहता है। ऐसे बीजकके पारख ज्ञानमें निष्ठावाले विवेकी मनुष्य ही सद्गुरुके पारख बलसे अपने तथा दूसरोंके मत, पन्थ, ग्रन्थोंका सारासार कसर-खोट सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय कर लेते हैं। फिर हंसवत् क्षीररूप सार भागको ग्रहण करके नीररूप असार भागको त्याग देते हैं; और जड़-चैतन्यका निर्णयकर, जड़ विजातीय विषयोंका अध्यास छोड़कर अपने चेतन स्वरूपमें शान्त, स्थिर हो रहते हैं। वही सर्व श्रेष्ठ ज्ञान शिरोमणि पारखी साधु माने जाते हैं ॥ ७२६ ॥

२. परख प्रकाश लहत भ्रम भाजा * निश्चय होय जीवको काजा ॥ ७२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

परख प्रकाश लहत भ्रम भाजा = पारखी सद्गुरुकी दयासे जिसे बीजकका सत्य सिद्धान्त हृदयमें पारख स्वरूप बोधका प्रकाश प्राप्त हो गया, तब तो पारखदृष्टि खुलते ही समस्त भ्रम, मानन्दी, पक्षपात, धोखा, कल्पना, एकदम भाग गया या भाग जाता है; भ्रम छूट जाता है, निःसन्देह हो जाता है।

निश्चय होय = } तब पारख बोधका निश्चय
जीवको काजा = } होकर स्व-स्वरूप ज्ञानमेंजिस-
की स्थिति हो गई, सोई जीवन्मुक्त पुरुष है।
और पारखी उन सद्गुरुका ज्ञान उपदेश धारण करनेवाले मनुष्योंका जीवन सफल होयके निश्चयसे कल्याणरूप गति-मुक्ति होती है, उन्होंके बन्धन छूट जाते हैं ॥

व्याख्या— ऐसे पारखी साधुके सत्सङ्ग द्वारा सद्गुरुकी दयासे जिस महाभाग्यवान् मुमुक्षु जीवको गुरुबोध पारखका प्रकाश प्राप्त हो जाता है, फिर उसका समस्त भ्रमरूप ब्रह्म, ईश्वर, देवी, देवता, भूत-प्रेतादिकी तथा विषय चाहनाकी भूल मिट जाती है। पारख प्रकाशके प्रतापसे भ्रमरूप अन्धकार तमाम मिटकर दूर होके भाग जाता है। खानी-वाणीके जड़ाध्यास पारखी सन्तका छूट जाता है। निज स्वरूपमें निश्चल स्थिति होनेसे निश्चय करके उस जीवका कल्याणरूप कार्य सिद्ध हो जाता है। ऐसे पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाकर उनके उपदेश धारण करनेवाले जीवोंका निश्चयसे हित वा कल्याण या मुक्ति हो जाती है; ऐसा जान लेना चाहिये ॥ ७२७ ॥

३. नहिं अनुमान न मुये मुक्ता ❀ परख विलास सदा सुख भुक्ता ॥ ७२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

नहिं अनुमान = } पारखी सन्त यथार्थ सत्यके
न मुये मुक्ता = } जानकार होते हैं, अतः जगत्-
कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादिका अनुमान उन्होंमें रहता ही नहीं है, मिथ्या अनुमान कल्पना-को वे मानते ही नहीं हैं। वे जीवन्मुक्त निज स्वरूप स्थितिमें रहते हैं। और मरनेपर ईश्वरादिके भरोसे वा नास्तिकोंके सदृश जड़ तत्त्वोंमें मिल जानेको मुक्ति नहीं मानते हैं; वे सब धोखासे छूटे रहते हैं।

परख विलास = } बीजक सद्ग्रन्थके निर्णय
सदा सुख भुक्ता = } पठन-पाठन जहाँपर
चलता है, वैसे सन्त समाज सत्सङ्गमें रमण, विलास करनेवाले विवेकी, पारखी सन्त सदाकाल शान्ति-सुखके उपभोक्ता होकर जगत् विषय भोगोंके अध्याससे रहित वे जीवन्मुक्त सुखी हो जाते हैं ॥

व्याख्या— ईश्वरवादी, ब्रह्मवादी, कर्त्तावादियोंके समान मिथ्या जगत्-कर्त्ताकी अनुमान-कल्पना पारखी सन्तोंमें नहीं रहती है; तथा तत्त्ववादी, देहवादी आदिके समान न वे मुये मुक्ति ही मानते हैं। सर्व जड़ाध्यासोंको पुरुषार्थ करके जीते जी हटाये या त्यागे बिना मुक्ति हो नहीं सकती है। यदि मरकर ही मुक्ति हो जाती, तो चार खानियोंमें कर्म भोग ही नहीं होता। फिर पशु-पक्षी आदि भी मर करके ही मुक्ति पा जाते, और इसतरहसे तो चार खानीका भोग समाप्त हो जाता, सो ऐसा तो नहीं होता है; अतः मरके ही मुक्ति मानना झूठा है। सो ऐसी झूठी बातको पारखी सन्त नहीं मानते हैं। पारखी सन्त सदा सत्सङ्ग विचार-विवेकमें ही विलासरूप विहार, रमण करके रहते हैं। अतः सदा सुखको भोगनेवाले जीवन्मुक्त होते हैं ॥ ७२८ ॥

४. रहनी गहनी बहुविधि फरियाई ❀ मायाजाल नहीं भरमाई ॥ ७२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

रहनी गहनी = }
बहुविधि = } हंसदेहमें सद्गुणोंके सत्यकी
फरियाई = } रहनी ग्रहण करके बहुत
प्रकारसे सारासार सत्यासत्य-का निर्णय करते-कराते रहते हैं। सत्य बोधको ही दर्शा देते हैं। और सब बातोंको न्यायसे फैसला करते हैं।

माया जाल = } मायारूप गुरुवालोग और
नहीं भरमाई = } स्त्रियोंके खानी-वाणी जालों-से आप छूटे रहते हैं; कोई भ्रम उनमें नहीं रहता है; और किसीको भी माया-जालोंमें डालकर आप भ्रमाके नहीं फँसाते हैं; पारखी सन्त जीवोंके बन्धन छुड़ानेवाले होते हैं ॥

व्याख्या— पारखी सन्त और उनके शिष्य लोग सत्यकी रहनी, सत्यकी ही गहनी, सत्य वाणी, सत्य भेष रखते हैं। फिर विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्यवान् सद्गुणी

होते हैं। सो किस रहनी-गहनीसे जीवकी मुक्ति होती है, और किससे बन्धन होता है? इसको अच्छी तरहसे जाननेवाले होते हैं। अन्य जिज्ञासु जीवोंको भी फरियायके एक-एक करके सत्य निर्णयको दर्शाय देते हैं। और पारखी सन्त स्वयं तो माया-जालोंसे छूटे हुए भ्रमसे रहित रहते हैं। तथा माया-जालोंमें अरुझायके दूसरे किसीको भी वे नहीं भ्रमाते-भुलाते हैं; भूलको ही परखा देते हैं॥७२९॥

५. सब परपञ्च छूटै भ्रमजाला ❀ सदा सुखी सो शरण दयाला ॥ ७३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सब परपञ्च = ऐसे पारखी साधु-गुरुके
छूटै भ्रम जाला = सत्सङ्ग करनेवाले मनुष्यों-
का जगत्-ब्रह्मके प्रपञ्च, पञ्च विषय या
पञ्च कोशकी वाणी कल्पनाकी उपाधि-
भ्रान्तिका जञ्जाल मोटी-झीनी फन्दा सब
छूट जाते हैं।

सदा सुखी = जो जिज्ञासु मनुष्य सत्य प्रेमसे
सो शरण = कल्याणके वास्ते पारखी सद्गुरु
दयाला = दयालुकी शरणमें आ जाते हैं,
सो पारख बोध पायके सदाकालके लिये
सुखी हो जाते हैं। उनकी मन-मानन्दीके
सब दुःख छूट जाते हैं॥

व्याख्या— ऐसे दयालु सद्गुरुकी शरणमें जो मनुष्य जाते हैं, उपदेशको ग्रहण करते हैं, सो उन्होंके सब प्रपञ्च और भ्रम जाल छूट जाते हैं, तो वे सदा सुखी हो जाते हैं, यानी जीवन्मुक्तिके अधिकारी हो जाते हैं॥ ७३०॥

६. फन्द फरफन्द न एकौ राखै ❀ निर्णय वचन सत्य सोइ भाखै ॥ ७३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

फन्द फरफन्द = एक-एक मार्गोंमें अनेक-
न एकौ राखै = अनेक बन्धन नाना कर्म,
नाना मिथ्या कल्पना जो गुरुवालोगोंने
लगा रक्खे हैं, सो सबोंको नशायके उजाड़
देते हैं। एक भी बाकी नहीं रखते हैं। ऐसे
पारखी सन्तजन—

निर्णय = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके
वचन सत्य = निर्णय वचन बीजक सद्ग्रन्थको
सोइ भाखै = गुरुमुखद्वारा पढ़, सुन, गुनकर
सत्य निर्णय यथार्थ गुरुमुख वाणीको ही
कहते हैं; जन समाजमें भी सोई सत्य वचन
कहते वा वर्णन करते हुए मनुष्योंके भ्रम
छुड़ा देते हैं॥

व्याख्या— यथार्थ वक्ता पारखी साधु खानी-वाणीके जाल, फन्दा तथा एक-एक मार्गमें अनेकों कर्म बन्धन लगा है, सो ऐसे फरफन्दको अपने पास एक भी नहीं रखते हैं; सब नष्ट किये रहते हैं। और जिज्ञासु शरणागत मनुष्यके पास भी वह फन्दा एक भी रहने नहीं देते हैं। सत्य निर्णयके वचन गुरुमुख वाणी सत्य वाक्य, सोई मुखसे बोलते हैं, सत्य बात ही समझाते हैं॥ ७३१॥

७. वचन तासु जो सुनै चितलाई ❀ ठहरिके समुझै छोड़ि कदराई ॥ ७३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

वचन तासु = ऐसे बीजकके सत्य सिद्धान्तको
जो सुनै = माननेवाले सत्य ही परखानेवाले
चितलाई = सत्यन्यायी पारखी सन्तके
यथार्थ वचन गुरुमुख वाणीके उपदेशको
जो श्रद्धालु मनुष्यलोग चित्त लगायके
एकाग्र होके सुनेंगे, तो उनको अवश्य सत्य
बोध हो जावेगा। अतएव—
मुमुक्षु मनुष्योंको चाहिये कि—

ठहरिके समुझै = सत्सङ्गमें ठहरकर पारखी
छोड़ि कदराई = सद्गुरुसे जड़-चेतनका भेद
समझ लेवे, और खानी-वाणी प्रपञ्चोंकी
तरफका लक्ष्य, अधीरता, कायरपना,
आलस्यवृत्ति, जड़ासक्ति आदिको सर्वथा
छोड़ करके शाहसी, पुरुषार्थी, विवेकी होकर
बीजकज्ञान पारख बोधको समझै तथा निज
स्थितिमें कायम हो रहै॥

व्याख्या— ऐसे यथार्थ वक्ता पारखी साधु-गुरुके वचन या उपदेशको एकाग्र हो, चित्त लगाकर जो मनुष्य सुनते हैं, मनन कर लेते हैं, उन्हींको पारख बोध हो जाता है। इसलिये ऐसे

सद्गुरुके वचन मन लगायके सुनना चाहिये। फिर अपने मनकी कमजोरी, कायरपना प्रपञ्चोंकी तरफ लक्ष्य लगनेसे अधीरता, आलस्यपना इन सबोंको या सब दुर्गुणोंको सर्वथा छोड़कर सत्सङ्ग-विचार-में मनको ठहराकर पक्ष छोड़कर सत्यासत्यको समझ लेवे। तथा मनकी चञ्चलताको छोड़कर निज सत्स्वरूपमें स्थितिका ठहराव करे; यही मनुष्योंका परम कर्त्तव्य है ॥ ७३२ ॥

८. सदा सुखारी परखके पाये ❀ फन्दा यमके तुरत बहाये ॥ ७३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सदा सुखारी = } जिन-जिन मनुष्योंने पारखी
परखके पाये = } सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके निज स्वरूपका बोध पारखदृष्टिको पा गये, सो पारखके प्रतापसे सदाके लिये भव-बन्धनों-से छूटकर, अभी देह रहते ही जीवन्मुक्ति-को पाये। फिर वे देहान्त होनेपर सदाकाल-के लिये विदेह मुक्त रहेंगे। ऐसे पारखके पायेसे जीव सदा सुखी होते हैं।

फन्दा यमके = } यम = गुरुवालोगोंकी वाणी
तुरत बहाये = } कल्पनाका फन्दा = ब्रह्म, ईश्वरादि तथा स्त्रियोंका फन्दा = पञ्च विषय भोगादि सब बन्धन पारख बोध अपरोक्ष होनेपर आप ही जीव छोड़कर तुरत ही उसे बहा देते हैं वा त्याग देते हैं। हे मनुष्यो ! तुम लोग भी पारख बोध प्राप्तकर सब यम फन्दाओंको अब तो भी तुरन्त बहा दो ॥

व्याख्या— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि, जिन्होंने सब यम फन्दाओंको शीघ्रातिशीघ्र नशाय करके बहायके छोड़कर पारखी सद्गुरुकी शरणमें आकर पारख बोध या निज स्वरूपकी बोध स्थितिको पा गये, सो सदाके लिये सुखी, जीवन्मुक्त हो गये। जो कोई सद्गुरुकी शरणमें आकर पारखबोध पा जायेंगे, सो भी तुरन्त यम फन्दाओंको बहायके सदा सुखी हो जावेंगे। अतएव हे मुमुक्षु मनुष्यो ! तुमलोग भी नरजन्मके शुभ औसरको व्यर्थ मत् गमाओ; साधु-गुरुके सत्सङ्गमें आकर सार-असार-का पारख करके सब यम फन्दाओंको तुरन्त छोड़ दो; तथा निज स्थिति परीक्षा दृष्टिको पाकर सदाके लिये सुखी हो जाओ ! उठो, प्रयत्न करो ! हिम्मत बढ़ाओ ! बन्धनोंका हटाते जाओ ! ॥ ७३३ ॥

साखीः— जहाँ आपा तहाँ आपदा ❀ जहाँ संशय तहाँ शोग ॥
[४५] सज्जन सोई सराहिये ❀ जो काटे यमका योग ॥ ७३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

जहाँ = जहाँपर जिस मनुष्यके घट या अन्तःकरणमें—

आपा = जड़ासक्ति खानी-वाणियोंकी मानन्दी, पाँच प्रकारके अहङ्कार लगे हैं, शिरपर अभिमान, काम, क्रोधादि चढ़ा रक्खा है—

तहाँ = तहाँपर उस मनुष्यको अवश्य ही—

आपदा = जगत्में नाना प्रकारके दुःख भोगके फिर जन्म-मरणादि दुःस्सह दुःख चौरासी योनियोंका भोग लगा ही रहता है; सो कभी नहीं छूटता है। और—

जहाँ संशय = जहाँपर जिन मनुष्योंमें ब्रह्म, ईश्वरादि कर्त्ता वाणी कल्पनाकी सन्देहरूप भ्रम-मानन्दी लगी है; निज स्वरूपका बोध नहीं है—

तहाँ शोग = तहाँपर तिन मनुष्योंको शोक, विरह, चिन्ता, कष्ट-क्लेश, त्रिविधि तापादि दुःख लगा ही रहता है।

सज्जन = जो सारग्राही सत्य शोधक, निज-पर हितकारी, सत्सङ्गी होवें, उनको सज्जन वा सच्चा मनुष्य कहते हैं।

सोई = जो स्व-स्वरूपमें स्थित हैं, सोई पारखी सन्त सकलको परखनेवाले सत्यज्ञानी कहलाते हैं। इसवास्ते—

जो काटे = } जो कोई ज्ञानी, यमरूप गुरुवा-
यमका = } लोगोंके योग, ज्ञान, कर्मादिकी
योग = } नाना युक्ति-कल्पना, अनुमान, भास आदिके मानन्दी-सम्बन्धको तथा स्त्रीके विषयोंके सम्बन्ध, अध्यासोंको पारखद्वारा काट-छाँटकर हटावें, सारासार-का निर्णय कर-कराके निज-पर हितकारी पारखी जो हैं, सोई—

सराहिये=प्रशंसा करने योग्य, धन्यवाद देने लायक सर्वश्रेष्ठ शूर-वीर-धीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी पारख स्वरूपी सच्चे साधु हैं ॥

व्याख्या— जहाँ देह, गेह, मतादिके जड़-मानन्दी अहङ्कारका निवास है, तहाँपर अनेकों दुःखोंके सहित आवागमनोंकी आपत्ति लगी ही रहती है। और जहाँ ईश्वर वा खुदादिकी संशय-कल्पना लगी है, तहाँ उसकी प्राप्ति, प्रसन्नतार्थ विरह, शोक, वियोग, दुःख लगा ही रहता है। जो कोई मनुष्य गुरुवा तथा स्त्रियोंकी खानी-वाणीकी युक्ति सम्बन्धोंको मन-मानन्दी जड़ाध्यासोंको परीक्षा-दृष्टिसे विवेक करके अपने पाससे काटकर हटाय देते हैं तथा परखाकर दूसरोंको भी छुड़ाय देते हैं, सोई पारखी सन्त-सज्जन सराहने योग्य हैं; उन्हींकी सराहना है ॥ ७३४ ॥

साखीः— उतते अन्धा आवही ❀ इतते अन्धा जाय ॥

[४६] अन्धेको अन्धा मिला ❀ कौन बतावै राह ? ॥ ७३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

उतते अन्धा = आवही = उधर ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना-की तरफसे पारखदृष्टिहीन अन्धे योगी, ज्ञानी, भक्त गुरुवालोग वेद, शास्त्र, पुराणादिके पोथन्ना लेकर आये, और तपस्वी, तीर्थयात्री, पण्डित बनके फिरते-फिरते आये। और—

इतते अन्धा = जाय = इधर संसारी जीव भोग-विलासमें विषयान्ध बुद्धि-विचारहीन अन्धे बने हैं। सो कभी दुःख पायके सुख प्राप्तिके वास्ते नाना इच्छा लेकर उक्त गुरुवालोगोंके पासमें जा-जाकर धायके मिले। और अपनी चाहना बतायके उनसे सुख प्राप्तिकी युक्ति पूछने लगे।

अन्धेको = अन्धा = मिला = अन्धे गुरुवा भ्रमिकलोगोंसे अन्धे विषयासक्त चेलेलोग जाके मिले, तो वहाँ 'आँधरगुथ्री' होने लगी। मन कल्पित बातें, ईश्वरकर्त्ताकी महिमा, कर्मादि साधनोंका उपदेश, वर्णाश्रमादि विभिन्न कर्मोंकी स्थापनादिमें वे दोनों मिल गये।

कौन बतावै राह ?=अब वहाँ जीवोंको मुक्तिका मार्ग कौन बतलावे ? उन भ्रमिकोंको पारख ज्ञानकी झलकमात्र भी पता नहीं है; बिना पारख मुक्ति हो नहीं सकती है। अतः पारखी सद्गुरुके बिना गुरुवालोग कोई भी कल्याणमार्ग बतानेवाले नहीं हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् उधरसे भी आनेवाला अन्धा हो, और इधरसे भी एक अन्धा ही चला गया; रास्ताके बीचमें वे दोनों मिले, तो कौन-किसको ठीक-सीधा रास्ता बतलावेगा ? दोनों ही सीधा रास्ताको नहीं जानते हैं, तो उन्होंका रास्ता बताना गलत ही है। तैसे ही, उधर पारखहीन गुरुवालोग अन्धे बगलमें वेदादि ग्रन्थ दबा करके ईश्वरका सन्देश देने आये, तो इधरसे भी संसारी विषयासक्त भक्तलोग जाकर उनसे मिले। गुरु-चेले वे दोनों अन्धे बेपारखी, दोनों अनुमान, कल्पना, विषय-भोग, संसार-प्रपञ्चोंमें एक समान होकर मिल गये। और कोई ब्रह्म-जगत्का मिलाप करके दोनों धोखेमें मिल गये। उनमेंसे कौन, किसको मुक्ति देनेवाला सत्य निर्णय पारखबोधका रास्ता दिखावे ? कोई नहीं। एक पारखी सद्गुरु ही मुक्तिमार्ग दर्शक हैं, सो जानिये! यानी उधरसे आनेवाला और इधरसे जानेवाला दोनों ही जन्मान्ध बीच मार्गमें मिले, अब सीधा रास्ता कौन-किसको बतावेगा ? तद्वत् वेद तथा कुरानके पक्षपाती गुरुवालोग पारखहीन अन्धे उधरसे आये, और इधरसे संसारी विषयासक्तलोग उनके पासमें गये, तहाँ कहिये! कौन-किसको मुक्तिका मार्ग बतावेगा ? कोई नहीं बतावेगा ॥ ७३५ ॥

साखीः— बन्धेको बन्धा मिला ❀ छूटै कौन उपाय ? ॥

[४७] कर सेवा निर्बन्धकी ❀ जो पलमें लेहि छुड़ाय ॥ ७३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बन्धेको = बन्धा = मिला = } एक तो संसारी मनुष्य माया-मोह, स्त्री, पुत्र, धनादि विषय जालोंमें लुब्ध, गृहासक्त होकर महाबन्धनमें बन्धे पड़े हैं। और उन लोगों-को उपदेशक जो गुरुवालोग मिले, सो भी घर-गृहस्थी, स्त्री, पुत्र, परिवार, धनादि खानी जाल तथा वाणी कल्पनामें पड़े हुए जड़ाध्यासी, ऐसे बन्धनोंमें बन्धे हुए ही गुरु मिले। तहाँ—

छूटै कौन = उपाय ? = } गुरु-चेले दोनों ही बन्धनोंमें पड़े हुए एक समान कैदी हैं; वासना-के वशीभूत हैं। अब कहो तो भला ! किस उपायसे कौन छूटेगा ? बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति होनेका उपाय कौन बतावेगा ? पण्डितोंको इसकी खबर ही नहीं है, तो वे क्या बतावेंगे ? इसवास्ते हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! सुनो !—

कर सेवा = निर्बन्धकी = } जो स्त्री-पुत्रादि, घर-गृहस्थी, भोग-विलाससे रहित, त्यागी साधु हों, और ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवता, भूत-प्रेतादि वाणीके भ्रम मिथ्या कल्पनासे छूटे हुए हों, जो साधु पारखी सत्यन्यायी हैं, वही सच्चे त्यागी हैं। मोटी-झीनी मायाके सर्व बन्धनोंसे वे छूटे हुए होते हैं। ऐसे निर्बन्ध साधु पारखीकी ही सेवा तुमलोग तन, मन, धन, वचनादिसे किया करो !—

जो पलमें = लेहि छुड़ाय = } जो कि, तुम ऐसे सद्गुरुके सेवा-सत्सङ्गमें लगे रहोगे, तो तुम्हें सत्य पारखबोध देके तुम्हारे समस्त भ्रम-बन्धनोंको एक पलमें अर्थात् जल्दी-से-जल्दी ही पारखी सद्गुरु छुड़ा देंगे। यानी ज्ञानप्रकाश करके अज्ञानको नशाय देंगे; तुम्हें मुक्ति स्थितिका रहस्य बताय देंगे॥

व्याख्या— इस साखीमें ग्रन्थकर्त्ताने बतलाया है कि, पारखदृष्टि न होनेसे संसारी चेले और गुरुवा-लोग दोनोंकी गति एक समान है। खानी-वाणीके बन्धनोंमें बन्धे हुए वे चौरासी योनियोंके अधिकारी हो रहे हैं; भव-बन्धनोंमें जकड़े हुए जन्म-मरणके चक्रमें पड़े हैं। बिना पारख, और कोई उपायसे बन्धन नहीं छूटता है। चेला भी गृहस्थ है, गुरु भी गृहस्थ है, वे दोनों विषयासक्त माया-मोहके बन्धनोंमें बन्धे हुए हैं, तो किस प्रकार कोई बन्धनसे छूटेंगे ? इसबारेमें एक दृष्टान्त आया है, सो यहाँपर बतलाया जाता है, सुनिये !:—

दृष्टान्तः— सुन्दरपुर नगरमें एक राजा रहता था। दान-पुण्यादि धार्मिक कार्य करनेमें उसे रुचि थी। समय-समयपर उत्सव दानादि वह किया करता था। एक समयमें राजसभामें यह प्रसङ्ग चला कि, भागवत पुराणकी कथा सुननेसे राजा परीक्षित् सात दिनमें ही बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति पा गया था या मुक्त ही हो गया था। और जो कोई मनुष्य भागवतको उसी विधिसे सुनेगा, सो भी मुक्त हो जायगा। ऐसा महात्म्य राजाके पुरोहित पण्डितने सुनाया। रोचक वाणी सुनकर उस इच्छासिंह राजाको भी कथा सुनकर मुक्त होनेकी अभिलाषा हुई। अतएव उसने पण्डितसे पूछा कि, हम भी भागवत सुनकर मुक्त होना चाहते हैं। क्या आप उसी प्रकार विधिपूर्वक हमें भागवतकी कथा सुना सकेंगे ? तब पण्डितके मनमें दान-दक्षिणा, भेंट, चढ़ोत्रि पानेका लोभ बढ़ गया; तो उसने झट कहा कि, महाराज ! जब आपकी ऐसी शुभ इच्छा प्रगट हुई है, तो हम कथा बाँचना जानते ही हैं; जरूर विधि-विधानसे भागवतकी कथा सप्ताह लगाकर हम कहके आपको सुनावेंगे। उसके लिये मण्डप और समाग्री तैय्यार करानी पड़ेगी। राजाने मन्त्रीको आज्ञा दे दी कि, ये पण्डितजी जैसे-जैसे कहें, वैसी ही पूरी तैय्यारी कराओ; कोई प्रकारसे कसर-कमी न होवे, सो ध्यान रखना। तत्पश्चात् लाखों रुपया खर्च करके कथा-भवन और सब सामग्री तैय्यार हुई। तब मन्त्रीजीने महाराजको ले जाके सब वस्तुकी तैय्यारी दिखलायी। फिर पण्डितजीके कहे मुताबिक लग्न-मुहूर्त देखकर शरीर शुद्धि उपवास, स्नानादि करके विष्णुमन्त्रकी दीक्षा देकर पुरोहितने सब विधि-विधानको पूरा करके फिर व्यासगद्दीमें बैठके राजाको भागवतकी कथा सुनाने लगा। राजा भी ध्यानपूर्वक कथा सुनता गया, क्रमशः सात रोजमें विधि पूर्वक भागवत सुनाकर समाप्त किया। कथाकी

विसर्जन हुआ। तब पुरोहितने पूछा कि, हे राजन्! अब तो आपका सन्देह मिट गया होगा? मनमें शान्ति आ गई होगी? राजाने कहा— पण्डित जी! क्या कथा पूरी खतम हो गई? हाँ! तो, आपने मुक्ति होनेका ज्ञान कुछ कहा ही नहीं। मुझे कथा सुनकर शान्ति तो कुछ नहीं हुई; भ्रान्ति तो और भी बढ़ गई। सन्देह छूटनेको क्या पूछते हो? मेरे मनमें तो और भी बहुत-सा संशय बढ़ रहा है; और कुछ सुनानेको बाकी होवे, तो सुना दीजिये! पण्डितने कहा कि, महाराज! मैंने तो सब भागवतकी लिखी हुई कथा पूरी ही विधिपूर्वक सुना दी है; अब बाकी कुछ नहीं रही। तब राजा नाराज होकर बोला— पण्डित जी! आपने तो कहा था कि, भागवत सुननेसे मुक्ति होती है। सो आपके कहे अनुसार मैंने सब कुछ किया; परन्तु, मेरी तो मुक्ति नहीं हुई। अब कहिये! भागवत झूठा है? कि आप झूठे हैं? या मेरेमें दोष है? क्या बात है? कसर किसमें है? यह बात आप मुझे बतलाइये! एक सप्ताहकी मुद्दत देता हूँ, इसके अन्दर सोच-विचारकर सातवें रोज आकर इसका उत्तर मुझे देना। यदि मेरा समाधान नहीं किया, तो तुम्हें कैदमें डाल दूँगा; सर्वस्व लुटवा दूँगा। लोगोंको धोखा देकर फँसानेका यही दण्ड होगा। इतना सुनते ही पण्डितका चेहरा उतर गया। चुपचाप उठकर घरमें चला गया। बड़ी चिन्ता-फिक्रमें पड़ गया। दक्षिणाके लोभसे झूठी बात कहा, तो अब सर्वस्व जानेकी नौबत आ गई। वह राजाका समाधान ही क्या कर सकता था? ग्रन्थ, राजा और अपने- इन तीनोंमें किसीको भी झूठा बता नहीं सकता था। बड़ी आफतमें पड़ गया, कहकर पछता रहा था। सोच-फिक्रमें ही पाँच दिन निकल गये, वह घबड़ाया हुआ था; उसे कुछ सूझता ही नहीं था कि, क्या करें? राजाको उत्तर क्या कहा जायगा? ऐसेमें उसे उसकी बड़ी पुत्रीने याद दिलायी कि, एक साधु-महात्मा ज्ञानी विचारवान् यहीं कुछ दूरमें रहते हैं। साधु दयालु होते हैं, वे आपके दुःख छूटनेका उपाय अवश्य बता देंगे। अतः हे पिताजी! अब तो आप अभिमानको छोड़कर उन्हीं महात्माकी शरणमें चले जाइये! वे ही कोई युक्तिसे आपकी रक्षा कर देंगे। ऐसा पुत्रीके वचन सुन करके उस पण्डितको भी चेत आया; और फिर कोई उपाय न देख करके वह पण्डित उसी समय उठकर वहाँ चला गया। महात्माके पास पहुँचकर उन्हें नमस्कार करके एक तरफ उदास चेहरासे बैठ गया। साधुने उससे कुशल-समाचार पूछा, फिर उदासीका कारण पूछा, तो पण्डितने आँसू टपकाकर सब हाल समाचार कह सुनाया, और 'इस दुःख-आपत्ति तथा बेइज्जतीसे छुटकारा पा जानेकी युक्तिरूप उपाय समाधान बतलाइये? मैं आपकी शरणमें आया हूँ!' ऐसा कहा। वे साधु-महात्मा सत्यासत्यके ज्ञाता विवेकी थे। सब बातोंको विचारकर उसके परिणामोंको जान गये। तब उस दुःखी पण्डितको धैर्य देकर कहते भये कि, इसका उत्तर मैं राजाको दे दूँगा, तुम चिन्ता मत् करो। परसों जाते समयमें मुझे साथ लेकर चलो! राजाके पूछनेपर मुझे बता देना, कि ये उत्तर देंगे। जाओ, शान्त रहो, ऐसा कहा। तदनन्तर पण्डित शान्त होकर घर चला गया। फिर सातवें रोज उन साधु-महात्माको साथ लेकर राज दरबारमें चला गया। राजाने कहा— कहो पण्डितजी! हमारे प्रश्नका उत्तर ले आये? पण्डितने कहा, हाँ महाराज! आपको उत्तर हमारे गुरुजी साधु-महात्मा देंगे। राजाने उन साधुसे पूछा, कहिये सन्तजी! ये पुरोहितने भागवत सुननेसे मुक्ति होनेकी बात बतायी; तो मैंने विधिपूर्वक इन्हींके मुखसे सारा भागवत सप्ताह लगाकर सुना। परन्तु, हमारी मुक्ति नहीं हुई; न मन ही स्थिर हुआ। तो अब कहिये! दोष किसका हुआ? तो साधुने पूछा कि, हे राजन्! आप जिज्ञासु भावसे उत्तर चाहते हैं कि, राजशाही भावसे चाहते हैं? राजाने कहा कि, महात्माजी! मैं अभी जिज्ञासु भावसे ही उत्तर वा उन शङ्काओंका समाधान चाहता हूँ; मुझे तो सत्य और असत्य बातोंको यथार्थ समझना है। आप कृपाकर समझाइये! साधुने कहा— ठीक है। आप बुद्धिमान् और धर्मज्ञ हैं। आपका यथार्थ समाधान हो जायगा। अब आप मुझे एक घण्टाके लिये अपनी राज्यसत्ता दे दीजिये! और आप सच्चे जिज्ञासु बन जाइये! राजाने एक कागजमें लिखकर मोहर लगाकर

महात्माको दे दिया। महात्माने कहा, अब तो मेरा हुकम चलेगा, मेरा वचन तुम सबोंको मानना पड़ेगा। राजाने कहा— आपकी आज्ञा मान्य है, कबूल है! फिर महात्माने राजा तथा पण्डित आदिको एक समीपके बगीचामें ले गये और बोले कि, अब मैं समाधान करनेकी बात करता हूँ, देखो! फिर एक आदमीसे सूतकी दो रस्सी मँगाये, एक वृक्षके साथ उस पुरोहितको कसके बाँधने लगाये। फिर सामनेके दूसरे वृक्षके साथमें राजाको भी बाँधनेको लगाये। यह तमाशा देखकर सब दर्शक लोग आश्चर्य करने लगे। राजाकी भी समझमें कुछ नहीं आया, मनमें दूसरा ही सन्देह करने लगा। पण्डितने भी लज्जाके मारे शिर नीचा कर लिया। बादमें महात्मा बोले, पहले पुरोहितके पास जाकर कहने लगे, हे पण्डितजी! आपने इन राजाके यहाँसे बहुत-सा लाभ उठाया है, बहुत दान-दक्षिणा पाया है। अब आपका काम है कि, राजाको बन्धनसे छुड़ा देना, सो जल्दी करिये, राजाके बन्धन खोल दीजिये! पण्डितने कहा, महात्माजी! मैं स्वयं तो पहलेसे ही यहाँ बन्धनमें जकड़ा पड़ा हूँ; इस हालतमें मैं कैसे राजाके बन्धन खोलकर छुड़ा सकता हूँ? मैं तो असमर्थ हूँ! तब राजाके पास जाके महात्माने कहा कि, हे महाराज! आपका कुल पुरोहित, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण पण्डित आपके सामने ही उस जगह बन्धनमें पड़ा है, सो आप उसका बन्धन छुड़ा दीजिये; उसे सुखी कीजिये! राजाने कहा— मैं भी तो इस वृक्षके साथ बन्धनमें बन्धा पड़ा हूँ। भला! मैं पण्डितको कैसे छुड़ाऊँ? जब दोनोंने ऐसा जवाब दिया तब महात्माने उन दोनोंसे कहा कि, क्या मैं आपलोग दोनोंका बन्धन खोल दूँ? उन दोनोंने कहा कि, आप समर्थ हैं, निर्बन्ध हैं; आप हमारे बन्धनको खोल दीजिये! साधुने जाके पहले राजाकी रस्सी खोल दिया। फिर पण्डितका बन्धन खोल दिया, और एक जगह बैठके समझाने लगा— हे राजन्! आपलोगोंको रस्सीसे बाँधकर मैंने एक प्रत्यक्षका दृष्टान्त दिखाया है। दृष्टान्त द्वारा सिद्धान्त जल्दी समझनेमें आ जाता है। इसलिये यह एक युक्ति मैंने दिखायी है। यही आपकी शङ्काका समाधान है। राजाने कहा— अब कृपा करके इसका पूरा भेद भी लखाइये। महात्माने कहा, सुनो! राजा परीक्षित्को मरणके भयसे दृढ़तासे मनमें वैराग्य उदय हो गया था, तथा उसका मन विषयोंकी तरफसे हट गया था, फिर राज्यका त्याग भी किया था, और उसको शुकदेव जैसे त्यागी बालब्रह्मचारी गुरु मिले थे, और उन्होंने कथाके नामसे ज्ञान-वैराग्यका ही उपदेश देते गये थे, ऐसे त्यागी ज्ञानी गुरु और त्यागी शिष्य तथा ज्ञानका बोध होनेसे सात दिन कहिये रविवारसे शनिवार तक सातवार घुमा ही करता है, उनमें किसी एक दिन ज्ञानसे अज्ञानरूपी बन्धन छूटकर शिष्यकी मुक्ति होती है। इस उद्देश्यसे परीक्षित्की मुक्तिमें, राज्यरूपी माया-का मोह हटाकर वैराग्यमें ठहराव हुआ; यही बात प्रधान थी। सो आपके यहाँपर उनमेंसे तो एक भी बात नहीं है। क्योंकि, जैसे आप राजा होकर राज, पाट, स्त्री, पुत्र, खजाना, सम्पत्ति विषय भोगोंमें तथा गृहस्थाश्रममें लिप्त बद्ध हो; आपको वैराग्यकी तो झलक मात्र भी नहीं है। वैसे ही आपका कुल-गुरु पण्डित भी स्त्री, पुत्र, धन, घरादिमें आसक्त विषयी गृहस्थाश्रमी आपके समान ही माया-मोहके बन्धनोंमें बन्धा हुआ गाफिल, ज्ञानहीन, लोभी, कामी, क्रोधी आदि विकारी है। और जो ग्रन्थ उसने कह सुनाया, सो इतिहास है; तहाँ युद्ध, विषय चरित्र, वंशावली, सृष्टि उत्पत्ति आदि व्यर्थके अज्ञानकी ही वार्ता लिखी है। सत्यज्ञानका वर्णन तो किया ही नहीं है। इसप्रकार बन्धे हुए आपको, बन्धा हुआ पण्डित गुरुवा मिला, फिर कौन उपायसे आपका छुटकारा होवे? सुनिये!— नारद पुराणमें कहा है:—

श्लोकः— "पाषाणस्य कृयते नौका, सारभारं न धारयेत्॥ गृहीगुरो न कर्त्तव्यं न तरन्ते न तारयेत्॥"

अर्थ ऐसा है— पत्थरकी नाव बनाकर उसपर लोहा भरकर नदी पार उतारकर ले जाना चाहे, तो ऐसा कभी हो सकनेका नहीं। इसलिये पत्थरकी नौकाके समान गृहस्थ गुरु हैं, लोहाके समान अज्ञानी शिष्य हैं। अतएव मुक्तिके वास्ते कभी भी गृहस्थको गुरु नहीं बनाना चाहिये। वह स्वयं बद्ध है, तो दूसरे शिष्योंको मुक्त करके क्या पार उतारेगा? इसकारणसे हे राजन्! यह पुरोहितजी स्वयं पहलेसे ही बन्धा है, माया-मोह, विषय भोगोंमें लिप्त है, तो यह आपको मुक्त कैसे

करेगा ? कभी नहीं कर सकता है। क्योंकि, पुस्तकमें लिखी हुई बात कहनेके सिवाय और सत्यज्ञान तो यह जानता ही नहीं है। फिर आपको क्या बतावेगा? सिर्फ दक्षिणाके लोभसे लोकाचारके मुताबिक आपको कथा सुना दिया। इसपर आप क्रोध न करिये, पूरी दक्षिणा देकर विदाई करिये; सिर्फ लौकिक काम इससे कराया करिये। कहिये! अब समझमें कुछ आया कि, नहीं? तब राजाने प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक कहा कि, आपकी दयासे प्रत्यक्ष युक्ति-प्रमाणसे अब हमारी समझमें आ गई कि, सत्यज्ञानसे सर्व वासना छूटे बिना जीवकी मुक्ति नहीं हो सकती है। सो सत्यज्ञान आप सरीखे त्यागी पारखी साधु-गुरु द्वारा ही मिल सकता है। अब मैं नित्य सत्सङ्ग-विचार किया करूँगा; मुझपर कृपादृष्टि बनाये रखिये! तब साधुने कहा, जो एक घण्टाके लिये राज्यसत्ता मैंने आपसे आपको ही समझानेके लिये लिया था, सो मैं अब उसे वापिस कर देता हूँ, आप अपनी राज्यसत्ता ले लीजिये! ऐसा कहकर, कागज उसे देकर बोले— धर्मपूर्वक राज्यके प्रजाजनोंका पालन करना, नित्य सत्सङ्ग करके अपना हित-कल्याणका साधन करना! अब मैं जाता हूँ, ऐसा कहकर उठके चले गये॥

इस दृष्टान्तके अनुसार खानी-वाणीमें संसारी और सब गुरुवालोग बन्धे पड़े हैं। तहाँ बन्धनमें पड़े हुएको वैसे ही दूसरे भी मिले, तो फिर छूटनेका कोई उपाय नहीं है। इसवास्ते बेपारखी योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मी, सब ही भव-बन्धनमें पड़े हैं। उनसे संसारी जीव जायके मिले, तो अब कौन उपायसे भव-बन्धन छूटेगा? उन्होंने तो बन्धनमें और भी फँसानेका उपाय बतलाये हैं। अतएव हे जिज्ञासु मनुष्यो! तुमलोग सेवा, सत्सङ्ग, शरण-ग्रहण उन्हींकी करो, जो निर्बन्ध त्यागी साधु पारखी होवें। सत्यन्यायी विवेकी सन्त सत्य पारख बोध देके तुम्हें पलमें भ्रम बन्धनोंसे छुड़ाय लेंगे। सारासारको तुम्हें लखाय देंगे। बन्दीछोर पारखी सद्गुरु ही सब बन्धन छुड़ायके मुक्तकर देनेवाले हैं। उन्हींकी सेवा, भक्ति, टहल सत्यप्रेमसे करना चाहिये॥ ७३६॥

साखीः— साधू सोई सराहिये ❀ जो चौड़े कहै बजाय॥
[४८] की छूटै की फूटै ❀ बिन कहे भर्म न जाय॥ ७३७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

साधू = तन, मन, वचनादिको साधकर जिन्होंने स्ववश कर लिया है; तथा विषय, कल्पना, भ्रमको भी त्याग दिया है, वही सच्चे साधु हैं।

सोई = सोई पारखी सन्त कहे जाते हैं; ऐसे ही साधु पारखीकी—

सराहिये = सराहना, प्रसंशा या धन्यवाद है; गुण भी उन्हींका गाइये!

जो चौड़े = कहै बजाय = } जो कि, निर्भय हो, निष्पक्षता-से संसारके चौड़े मैदानमें जो जीवोंकी कल्पनाको ठोंक-पीटकर बजा-बजाकर सत्यन्यायकी गुरुमुख वाणीसे यथार्थ उपदेश कहते हैं कि, 'सत्य चैतन्य जीव नित्य, सत्य है, तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कल्पित असत्य धोखा है!' यह कहकर प्रत्यक्ष पारखबोध देते हैं। जिससे कि, श्रोता- शिष्यलोगोंमेंसे—

की छूटै = कि, या तो जिज्ञासु मनुष्य सत्य बोधको ग्रहण-धारण करके संसारके खानी-वाणी आदि समस्त जालोंसे छूट जावेंगे, तथा गुरुपदमें आके ठहराव करेंगे। और—

की फूटै = कि ऐसा न हुआ, तो पारखी सद्गुरु-के सत्सङ्गसे विमुख होकर फूटकर जगत् जालोंमें ही चला जायगा। पक्का हुआ तो बन्धनसे छूटेगा, यदि कच्चा निकला, तो फूटकर सङ्ग ही छोड़ देगा, तब तो उपाधि ही मिट जायेगी।

बिन कहे = भर्म न जाय = } सत्यन्याय-निर्णयसे गुरुमुख वाणी निर्भय होकर कहे, सुने, गुने बिना मनुष्योंकी भ्रान्ति-भूल, धोखा छूट नहीं सकता है। गुरुज्ञानके उपदेश श्रवण किये बिना कभी सन्देहरूप भ्रम जा नहीं सकता है, अतः पारखी सन्त यथार्थ सत्यासत्यको दर्शानेका उपदेश जो कहते हैं; सो उसे ग्रहण करना चाहिये॥

व्याख्या— सोई साधु पारखीको धन्यवाद देकर सराहने योग्य है, जो कि, चौड़े मैदानरूप

संसारमें सबके सन्मुख जनसमाजके बीचमें यथार्थ साफ-साफ उपदेश कह देते हैं। गुरुमुख निर्णयकी वाणीसे 'चैतन्य जीव सत्य है और कर्त्ता ईश्वरादि असत्य या मिथ्या कल्पनामात्र है' ऐसी यथार्थ बात बजा-बजाकर या खोल-खोलकर कह देते हैं। और युक्ति प्रमाण विचारसे प्रत्यक्ष जँचाय परखाकर पारख बोध देते हैं, सोई सच्चे साधु पारखी हैं। उनके उपदेश सुनकर कि, तो जिज्ञासु जीवोंका सब भव-बन्धन छूट जायगा, मुक्तिके वे अधिकारी होवेंगे; अथवा नहीं तो पक्षपाती, अज्ञानी हठी होंगे, तब तो अपने सत्सङ्गसे फूटकर चले जायेंगे, निकल जायेंगे; हमेशाकी उपाधि ही छूट जायगी। बिना सत्य निर्णयकी वाणी स्पष्ट साफ-साफ कहे-सुने भ्रान्ति, कल्पना, विषयासक्ति कभी नरजीवोंसे जा नहीं सकती है, यानी भ्रम नहीं छूटता है। इसकारणसे पारखी सन्त यथार्थ सत्यवक्ता होते हैं; भ्रान्ति, धोखाको छुड़ा देते हैं; अतः उनके ही सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ ७३७ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक साखीका प्रमाण देकर इस ग्रन्थके प्रथम भागको समाप्त किया है; सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजककी, साखी नम्बर—१६६ ॥ ❀ ॥

साखीः— हरि हीरा जन जौहरी * सबन पसारी हाट ॥
[४९] जब आवै जन जौहरी * तब हीरोंकी साट ॥ ७३८ ॥

॥ * ॥ इति पारखनिष्ठ श्रीरामरहससाहेब कृत- मानुषविचार ग्रन्थः मूल, प्रथम भाग समाप्तः ॥ * ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्त जनो !

हरि हीरा = कोई ब्रह्मज्ञानको हीराके समान कीमती माने हैं; और कोई विष्णुको परमात्मा, कर्त्ता, शुद्ध हीरावत् माने हैं, सो उसे व्यापकरूपसे सर्व प्रकाशक ठहराये हैं।

जन = जौहरी = ब्रह्मज्ञानीजन तथा योगी, भक्त, कर्मीजन, गुरुवालोग भक्ति, ज्ञान, योगादिके व्यापारी उपदेशक जौहरी धनिक भये हैं।

सबन = पसारी = हाट = उन सब गुरुवालोगोंने संसारमें शहर-शहर गाँव-गाँवमें अपने-अपने हाट-बाजारमें दुकान लगाई है, तहाँ कथा, वार्ता, उपदेश, मूर्तिपूजा, जप, तप, व्रत, तीर्थादि तथा ब्रह्मज्ञानकी चर्चा करने-कराने लगे, यही खरीद-बिक्री हुई।

जब आवै = जन = जौहरी = रत्नके सच्चे परीक्षक जबतक नहीं आये, तबतक तो गुरुवालोगोंने मनमानी कीमत लगाकर मनुष्यों-को खूब ठगे; कल्पना, धोखामें फँसाये। परन्तु, जब कोई रत्न परीक्षक जौहरीके समान सिद्धान्त परीक्षक पारखी कोई जब आ जाते हैं या आवेंगे—

तब हीरोंकी = साट = तब ही ब्रह्म ज्ञानादिकोंके अद्वैत द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि हीरावत् कीमती माने हुए सब सिद्धान्तों-की कसर-खोटोंका पारखकर उनकी असली-नकलीकी पहिचान सच्ची कीमत होती है। यानी 'जीव चैतन्य यही सत्य है, अन्य कल्पना सब मिथ्या है' यह बोध हो जाता है ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे जौहरी लोग हाट-बाजारोंमें दुकान लगाकर हीरा, मोती, पन्ना, लाल, पुष्पराज, नीलम इत्यादि रत्नोंका व्यापार करते हैं। ग्राहकोंसे मनमानी कीमत लेकर बिक्री कर देते हैं। जो उसकी पहिचान गुण-दोषोंको नहीं जानते हैं, सो वे तो ठगाय जाते हैं। जब कोई सच्चा जौहरी आ जाता है, तब रत्नकी सच्ची कीमत बता देता है, असली-नकलीका लक्षण समझा देता है। इसीप्रकार 'हरि' कहिये ज्ञान, सो ब्रह्मज्ञानको हीराके समान शुद्ध-श्रेष्ठ माने हैं। वेदान्ती ब्रह्मज्ञानीजन उसके व्यापारी उपदेशक जौहरी बने हैं। और ज्योति-स्वरूपको परमात्मा, हीरावत् प्रकाश व्यापक योगी लोगोंने माने हैं। महाविष्णु आदि नारायणको हीरावत् शोभायमान भक्त लोगोंने माने हैं। विष्णुके दश अवतारको हीरा समान सर्वोत्तम कर्मीलोगोंने माने हैं। इसप्रकार कर्मी, भक्त, योगी, ज्ञानी सबोंने संसारमें अपनी दुकान, अड्डा, अखाड़ा लगाकर नाना वाणी कल्पनाको फैलाये और फैला रहे हैं। सोई सब अबोध लोग ग्रहण कर-करके मान रहे

हैं; नाना भ्रान्तिके साधनोंमें लगे हैं। साँच-झूठकी किसीको खबर ही नहीं लगी है। जैसा गुरुवालोग बतलाते हैं, वैसा मानते जाते हैं। जब कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी सन्तरूप जौहरीके सत्सङ्गमें आते हैं, तब सब सिद्धान्तोंके कसर-खोटोंका, सत्यासत्यको सद्गुरु परखा देते हैं। निजसत्स्वरूपको लखकर ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रम तथा जड़ मूर्ति-पूजादि पाखण्डोंको छुड़ा देते हैं। चैतन्य बोध गुरुभक्तिका फल पाकर जिज्ञासु मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। इसकारणसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें ही मनुष्योंको सदा लगे रहना चाहिये ! यही मनुष्य-विचारकी सार-शिक्षा है ॥ ७३८ ॥

॥ ❀ ॥ [टीकाकारकृत-अन्त सद्गुरु पद वन्दना ।] ॥ ❀ ॥ दोहा ॥ ❀ ॥

बन्दौं पारखी सन्त गुरु ! कबीर-पूरण देव ! ॥ रामरहस गुरु धन्य हो ! रामस्वरूप सो भेव ॥१॥

॥ ❀ ॥ अन्य दोहावली वर्णन ॥ ❀ ॥

जीव अध्यासी होयके । चौ खानी भटकान ॥ बिनु पारख मानुष नहीं । नरपशु सबहिं भुलान ॥२॥
भोग भूमि त्रय खानि है। कर्मभूमि नर आहि ॥ रूप मानुषी जगतमें । साँचा बिरले ताहि ॥३॥
मानुषके गुण लक्षण । रामरहस कहि दीन्ह ॥मानुष विचारयहिग्रन्थमें। गुरु सो निर्णय कीन्ह ॥४॥
काम क्रोध मद लोभमें । गाफिल सो पशु जान ॥ रामस्वरूप जाने नहीं । सारशब्द गुरु ज्ञान ॥५॥
षट् पक्षहिं जो ग्रहण करै । सो नर पशुहिं बखान ॥ स्त्री नर सुर वेद रु । शास्त्र पुराण बन्धान ॥६॥
खानि वाणीकी जालमें । अरुझे सो पशु होय ॥ रामस्वरूप जाने कोई । पशु मानुष गुण सोय ॥७॥
सद्गुण जामें पाइये । मानुष साँचा सोय ॥ रामस्वरूप गुरु बुद्धिते । सार असार बिलोय ॥८॥
शील दया विचार सत । धीरज गुण हिय धार ॥ गुरुभक्ति वैराग्य दृढ़ । रहनि विवेक सत सार ॥९॥
हंस स्वभाव ताको कहै । सद्गुण मानुष जान ॥ रामस्वरूप बन्धन मिटै। पारखपद पहिचान ॥१०॥
इमि विचार दरशायके । मानुषविचार निर्मान॥जानेपढ़ि गुनि रामस्वरूप । भ्रमसबधोख नशान॥११॥
रामरहस गुरुभाव जस। तस टीका दरशाय ॥रामस्वरूपव्याख्याकरी। सकलों सारलखाय ॥१२॥
मानुष होना चाहिये । गुण लक्षण हिय धार॥गुरु पारखमेंस्थिति सदा। सहजे भवते पार ॥१३॥
सकलों दोष निकारिके । धरिये सद्गुण नीक ॥ रामस्वरूप हो हंस पद। पारखपदमें टीक ॥१४॥
मानुषविचारसोग्रन्थको। नितप्रतिपढ़ुमन लाय ॥ रामस्वरूपतब बोध हो। मल विक्षेप नशाय ॥१५॥
गुरु बिन भर्म न छूटई । सद्गुरु पारखी जान ॥ रामस्वरूप गुरुकी दया। पारखपद पहिचान ॥१६॥
पारखपद सर्वोपरि । पारखी जीवन्मुक्त ॥जानिजनावैं रामस्वरूप। निर्णय गुरुमुख युक्त ॥१७॥
जगविषयन मति भूलिये। भूले ते भव धार ॥ पार चहै सतसङ्ग करु । परखो सार असार ॥१८॥
कबीर पूरण रामरहस । बन्दौं पद त्रयबार ॥ रामस्वरूपदास सदा । गुरुभक्ति मन धार ॥१९॥
युग सहस्र ऋषि सम्वत।प्रथमअषाढ़दशशुदिरवि॥उन्निसपचाससनईसवी। इतिजूनपचीसतबि॥२०॥
मानुषविचार शुभ ग्रन्थकी। टीका भौ सम्पूर्ण ॥ रामस्वरूप गुरुकी दया। भ्रमतम होगयो चूर्ण ॥२१॥

॥ * ॥ इति श्रीपारखनिष्ठ पारखीसन्त श्रीरामरहससाहेब विरचित- मूल पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थका तृतीय ग्रन्थः 'मानुषविचार' नामक ग्रन्थके प्रथम भागकी- रामस्वरूपदास अनुवादित- शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित सद्गुरुकी दयासे समाप्तम् ॥ * ॥

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

॥ अथ मानुषविचार ग्रन्थका द्वितीय भाग वर्णन प्रारम्भः ॥

॥ ❀ ॥ अथ टीकाकार कृत— सद्गुरु पद वन्दना वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ ❀ ॥

पद सरोज त्रय बन्दगी, श्रद्धा भक्तिके साथ ॥ श्रीकबीर पूरण प्रभु ! रामरहस गुरुनाथ ॥१॥
दीन्हा पारखबोध प्रभु, काल कल्पना टाल ॥ रामस्वरूप समरथ गुरु ! बन्दीछोर कृपाल ॥२॥
षट दर्शन सिद्धान्त षट, आश्रम षट छौ जाप ॥ छियानवे पाखण्ड पुनि, चार मुक्ति कहि माप ॥३॥
सो द्वितीय यहि भागमें, रामरहस दरशाय ॥ रामस्वरूप टीका करौं, सकलो भेद लखाय ॥४॥
बार बार वन्दन करौं, पारख गुरुपद स्वच्छ ॥ पारख स्थिति रामस्वरूप, गुरुकी दयासों अच्छ ॥५॥

॥ * ॥ इति टीकाकार कृत— सद्गुरु पद वन्दना समाप्तः ॥ * ॥

॥ ❀ ॥ अथ षड् दर्शनादि वर्णन प्रारम्भः ॥ ❀ ॥ षड् दर्शनोंके नाम वर्णन ॥ ❀ ॥

साखीः— योगी जङ्गम सेवड़ा * संन्यासी दर्वेश ॥
[१] छठवाँ कहिये ब्राह्मण * छौ घर छौ उपदेश ॥ १ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें जो छैः दर्शन हैं, उन्होंके नाम यहाँपर कहते हैं, सो सुनिये !:—

योगी = अष्टाङ्ग योग साधना करनेवाले योगी कहे जाते हैं। उन योगियोंमें बारह भेद माना गया है; और योग दर्शन या पातञ्जल दर्शन भी इसमें मिलाया जाता है। यह पहला दर्शन है।

जङ्गम = गलेमें शिवलिङ्गकी मूर्तिको लटकाकर धारण करनेवाले जङ्गम (शैव) कहलाते हैं। यह दूसरा दर्शन है।

सेवड़ा = जैनी लोगोंको सेवड़ा कहते हैं, इसमतके साधु मुखमें कपड़ेकी पट्टी बाँधे रहते हैं। यह तीसरा दर्शन है।

संन्यासी = दण्डी और मुण्डी दो तरहके संन्यासी होते हैं। ये गेरुवा वस्त्र पहिनते हैं, शिखा-सूत्र नहीं रखते हैं। यह चौथा दर्शन है।

दर्वेश = मुसलमान फकीरोंको दर्वेश कहते हैं। यह पाँचवाँ दर्शन है॥ और—

छठवाँ = कहिये = ब्राह्मण = छठवाँ दर्शन ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंका कहलाता है। ये छै दर्शनोंमें नाम संज्ञामात्र यहाँपर कहा गया है, और षट् शास्त्रवादीको भी षट् दर्शनोंमें जानना चाहिये।

छौ घर = योगी, जङ्गम, सेवड़ा, संन्यासी, दर्वेश और ब्राह्मण इन छवोंके मत-सिद्धान्तोंकी स्थितिके घरमें तथा षट् शास्त्रोंके घरमें भिन्न-भिन्न ही—

छौ उपदेश = छै प्रकारके उपदेश दिये हैं और दे रहे हैं। अद्वैत, द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत, चन्द्रमुक्त शिला, सात आशमान और सात स्वर्ग, माने हैं। अथवा कर्म, समय, ईश्वर, ज्योति, पुरुष-प्रकृति और ब्रह्मका उपदेश कर रहे हैं। यही छौ घरमेंका छौ उपदेश कहा जाता है॥

व्याख्या— यहाँपर छः दर्शनोंके नाम बतलाते हैं:— योगी, जङ्गम, सेवड़ा (जैन), संन्यासी, दर्वेश (मुस्लिम फकीर) और ब्राह्मण-ब्रह्मचारी इनका ही मत-पन्थ संसारमें चल रहा है। सो उन्होंके

यहाँ छः सिद्धान्तोंके छै तरहके उपदेश बतलाये हैं। तैसे ही छः दार्शनिक हुए हैं— मीमांसक, वैशेषिक, नैयायिक, पातञ्जली, सांख्यवादी और वेदान्ती सो इन्होंके षट् सिद्धान्तोंका उपदेश पण्डित लोग षट् शास्त्र द्वारा प्रचार कर रहे हैं। अथवा किसीने ऐसे भी षट् दर्शन माना है कि, बौद्ध दर्शन, नैयायिक, सांख्य, जैन, वैशेषिक और जैमिनीय; इस तरहके षट् दर्शनोंके मत, पन्थ, ग्रन्थ, उपदेश न्यारे-न्यारे संसारमें प्रचलित हुए हैं, सो सब बिना पारख भ्रम, धोखा, अनुमान, कल्पनामें ही भूले पड़े हैं। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग द्वारा विवेक करके उसे परख लेना चाहिये ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ षड् दर्शनोंका जाप वर्णन ॥ ❀ चौपाई-भाग १ ॥ ❀ ॥

१. ॐकार ब्राह्मण उपासी * सोहं ब्रह्म इष्ट संन्यासी ॥ २ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

ॐकार = ब्राह्मण = उपासी = ब्रह्मचारी ब्राह्मण लोग नित्यप्रति ॐ अक्षरको प्रणव शब्दब्रह्म मानकर जाप किया करते हैं, "ॐ-ॐ" कहकर ही सब उपासना और कर्मकाण्डादिके काम किया करते हैं; यही ॐ मन्त्र ब्राह्मणोंका जाप है।

सोहं ब्रह्म = इष्ट = संन्यासी = 'सोऽहं ब्रह्मास्मि-सोऽहं ब्रह्मामि' यह संन्यासियोंका इष्ट जाप है। इसी शब्दका बार-बार उच्चारण संन्यासी लोग प्रेमसे श्रेष्ठ समझकर किया करते हैं ॥

व्याख्या— ब्राह्मणलोग गायत्री मन्त्र जापके प्रथम ॐकारका जाप या उपासना करते हैं। और संन्यासियोंका इष्ट जाप 'सोऽहंब्रह्मास्मि' कहा है ॥ २ ॥

२. हू अल्लाहू सुफी अधारा * महींनाद योगी विस्तारा ॥ ३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

हू अल्लाहू = सुफी अधारा = 'हूँ अल्लाह हूँ' यह मुसलमान फकीरोंका जाप है, वे इसी जापको जपकर खुदाके आधारमें गाफिल रहते हैं, और "सोऽहं-हंसो" यह हिन्दू साधु फकीरोंका जाप है।

महींनाद = योगी = विस्तारा = 'नादमही-महीनाद' का विस्तार योगियोंने किये हैं। अर्थात् मही = पृथ्वीरूप स्थूल देहमें नाभिसे श्वास वायु उठकर ब्रह्माण्डमें जाती-आती है; उसमें सोहं शब्दमें लक्ष्य लगाकर नाद ध्वनि जापका विस्तार किये हैं ॥

व्याख्या— 'हूँ अल्लाह हूँ' यह फकीरोंके जापका आधार है, और 'महीं नाद' रूप 'सोऽहं' जापका विस्तार योगियोंने किया है ॥ ३ ॥

३. तत्त्वनाम सेवड़ा परवाना * नाम निरञ्जन जङ्गम ध्याना ॥ ४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

तत्त्वनाम = सेवड़ा = परवाना = 'तत्त्वनाम अरिहन्' या 'अरिहन्तारम्' यह जैनियोंका जाप जैनियोंने प्रामाणिक करके दृढ़तासे माना है।

नाम निरञ्जन = जङ्गम ध्याना = 'निरञ्जनाय' नामका जाप और निराकारका ध्यान जङ्गमलोग करते हैं। सो 'निरञ्जनाय-निरञ्जनाय' ऐसे हमेंशा जङ्गम लोग जपा करते हैं ॥

व्याख्या— 'तत्त्वनाम अरिहन्' जैनियोंने प्रामाणिक जाप माना है; और 'निरञ्जन नाम' का जाप और 'निरञ्जनका' ध्यान जङ्गम लोग करते हैं ॥ ४ ॥

४. षट दर्शन षट अङ्ग उपासी * राम नाम भक्ता अविनाशी ॥ ५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

षट दर्शन = षट अङ्ग = उपासी = ब्राह्मण-ॐ, योगी-सोहं, फकीर मुसलमान-हूँ अल्लाह हूँ, 'अहंब्रह्मामि' संन्यासी, तत्त्वनाम-जैनी और निरञ्जनाय-जङ्गम, ऐसे षट् दर्शन षट् अङ्ग या षट् भागोंका जाप मुक्तिदाता मानकर उपासना किया करते हैं। और—

राम नाम = वैरागी भक्त लोग अविनाशी
भक्ता = कोई परमात्मा मानकर उसका
अविनाशी = मुख्य नाम 'राम' समझकर 'राम-नाम'का जाप जपनेमें लगे, तहाँ उन्होंने "रमेतिरामः" कहकर सर्व व्यापक रामको ठहराये हैं ॥

व्याख्या— ऐसे षट् दर्शनोंके लोग षट् जाप या षट् अङ्गोंके उपासी हुए; और सातवाँ भक्तलोग ईश्वरको अविनाशी मानकर राम-नामका जाप करनेमें लगे हैं । भ्रमवश उसी जापसे वे लोग मुक्ति मान बैठे हैं । सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे परखकर कल्पनाको त्यागना चाहिये । अब उन्हों-की सिद्धान्त-मानन्दी भी बतलाते हैं, सुनिये !— ॥ ५ ॥

॥ ❀ ॥ षड् दर्शनोंके सिद्धान्त वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई—भाग २ ॥ ❀ ॥

१. अदेव मूल श्रवणको कहिये * अहं ब्रह्म संन्यासी लहिये ॥ ६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
अदेव = अद्वैत एक व्यापक परमात्मा है ।
मूल श्रवण- = वही सबका मूल कारणरूप
को कहिये = अधिष्ठान है । इस सिद्धान्तके मूल उपदेशक ब्रह्मचारी ब्राह्मण हैं । यही वेद-का सिद्धान्त है, ऐसा वे कहे और कहते हैं ।
अहं ब्रह्म = मैं आप स्वयं ही ब्रह्म स्वरूप हूँ,
संन्यासी = "अहंब्रह्मास्मि" यह सिद्धान्त
लहिये = संन्यासियोंका है । वेदान्तसे संन्यासियोंने यह सिद्धान्त लिया है ॥

व्याख्या— ब्रह्मचारी ब्राह्मणलोग मुख्यतया अद्वैत सिद्धान्त कहते और मानते हैं; तथा 'अहंब्रह्मास्मि' यह सिद्धान्त संन्यासियोंने पकड़ लिया है ॥ ६ ॥

२. वायु शेख योगी सो धरणी * शशी अमीरस जाने जैनी ॥ ७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
वायु शेख = वायु-में-वायु मिलाना या पवन-में-
योगी सो = पवन मिल जाना, यह फकीरोंका
धरणी = सिद्धान्त है । और योगियोंका सिद्धान्त पृथ्वी-में-पृथ्वी मिलाना है, अर्थात् पिण्डकी वायु ब्रह्माण्डमें ले जाकर वहाँ तत्त्वोंका प्रकाश देखकर आनन्दमें मग्न रहना, यही सिद्धान्त योगियोंने माने हैं ।
शशी अमीरस = आकाशके ऊपरमें चन्द्रमुक्त
जाने जैनी = शिला मानकर वहाँ अमृतरस पानकर उसके ऊपर जाय, सदैव मुक्तजीव वहाँ रहते हैं, यह जैनियोंने सिद्धान्त माने हैं ॥

व्याख्या— वायुवत् खुदाको फकीरोंने माने हैं । तथा पृथ्वीकी गन्धवत् परमात्मा योगियोंने ठहराये हैं । जैनियोंने चन्द्रमुक्त नामकी एक शिला आकाशके ऊपर प्रकाशरूप मानकर वहाँ अमृत पान करके उसीके ऊपर अधरमें जाकर मुक्त जीवोंकी सदैव स्थिति ठहराये हैं ॥ ७ ॥

३. महा अकाश जङ्गमके होई * षट सिद्धान्त जानहु सोई ॥ ८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
महा अकाश = महान् आकाशके समान कोई
जङ्गमके होई = निराकार व्यापक शिवका स्वरूप है, यह जङ्गमोंका सिद्धान्त है ।
षट सिद्धान्त = यह षट् दर्शनोंके षट् सिद्धान्त
जानहु सोई = ठहराये हैं, सो जान लीजिये कि, वे सब कल्पनामें ही पड़े हैं ॥

व्याख्या— महदाकाशवत् शिवका स्वरूप अति आनन्दरूप है, यह जङ्गमोंका सिद्धान्त है । सो यही षट् दर्शनोंके षट् सिद्धान्त हैं, ऐसा जानिये ! ॥ ८ ॥

४. पुरुष राम सब नारि स्वरूपा * यह सिद्धान्त है भक्ति अनूपा ॥ ९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
पुरुष राम = राम ही एक परम पुरुष परमात्मा सर्व व्यापक है । और देहधारी—
सब नारि = हम-तुम सब प्राणी स्त्रीरूप हैं ।
स्वरूपा = अतः भक्ति-भाव प्रेम निष्ठा बढ़ायके

उसी राम पुरुषको रिझाना चाहिये।
यह सिद्धान्त = उपासक भक्तोंका यह
है भक्ति अनूपा = उपमा रहित सिद्धान्त माना
है। अपने पुरुष होते हुए भी स्त्री बने, भ्रम धोखेमें ही पड़े हैं; ऐसे भूल रहे हैं॥

व्याख्या— सातवाँ वैरागी भक्त लोगोंका सिद्धान्त यह है कि, सब प्राणी स्त्रीके ही स्वरूप हैं, और सबका पुरुष एक राम परमात्मा है, वही परम पुरुष स्वामी है। भक्तोंने यह सिद्धान्त उपमासे रहित है, कहकर ऐसे माने हैं। यह सब सिद्धान्त मिथ्या भ्रम धोखा है। उसे परखकर भ्रम कल्पनाका त्याग करना चाहिये; और सत्य पारख सिद्धान्तको ग्रहण करना चाहिये॥ ९॥

॥ ❀ ॥ षट् आश्रम वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई—भाग ३ ॥ ❀ ॥

१. गृही वानप्रस्थ संन्यासी * ब्रह्मचर्य षट कर्म विलासी ॥ १० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!
ब्रह्मचर्य = यह प्रथम आश्रम है, यज्ञोपवीत होनेपर २५ वा ३६ वा ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रममें रहकर विद्या पढ़नेको कहा है।
गृही = फिर विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर १। २ सन्तान उत्पन्न करनेको कहा है।
वानप्रस्थ = घरमें पुत्र, नाति आदि हो गये, केश सफेद हुआ, तब गृहत्याग कर वनमें जाकर तपस्वी होकर वानप्रस्थाश्रममें रहनेको कहा है।
संन्यासी = फिर मूँड़ मुड़ायके शिखा-सूत्र त्याग कर गेरुवा वस्त्र पहिनकर मृत्यु पर्यन्त ब्रह्म विचारमें लगनेवालेको संन्यासी कहा है। ये चार आश्रम वेद प्रमाणसे हिन्दुओंमें माने हैं। और—
षट कर्म = यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन,
विलासी = दान और प्रतिग्रह, ये षट्कर्मोंका वा स्नान, सन्ध्या, पूजा, तर्पण, जप तथा होम- यह नित्य षट्कर्मोंका विलास उक्त चारों आश्रमोंमें करते हैं॥

व्याख्या— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास- ये चार आश्रम हिन्दुओंमें माने गये हैं; और वे नित्य-नैमित्तिक षट् कर्मोंके विलासमें लगे रहते हैं। मनुस्मृति आदि धर्म शास्त्रोंमें चार आश्रमोंका कर्म भिन्न-भिन्न प्रकारसे विधि पूर्वक बतलाया गया है। उसी प्रमाणसे कर्मनिष्ठ हिन्दू ब्राह्मणादि लोग षट् कर्मोंके साधना-विलासमें आजीवन लगे रहते हैं॥ १०॥

२. सिया सुनी षट इष्ट होई * अच्युत गोत्री सतयें सोई ॥ ११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
सिया सुनी = मुसलमानोंमें 'सीया' और
षट इष्ट होई = 'सुनी' ये दो आश्रम अलग ही माने हैं। और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ब्रह्म तथा महम्मद और अली उन षट् आश्रम वालोंने ये छै इष्ट माने हैं॥
अच्युत गोत्री = अच्युत गोत्री कहलानेवाले
सतयें सोई = वैरागी भक्त लोग सो वे सातवें न्यारे ही हुए हैं। कभी च्युत न होनेवाला ऐसा वैष्णव भक्त लोग अपनेको मानते हैं॥

व्याख्या— 'सीया तथा सुनी' नामसे दो आश्रम वा दो फिरके मुसलमानोंमें माने हैं। इसप्रकार उन लोगोंने षट् आश्रमोंके अनुसार इष्ट देवताएँ भी छैः माने हैं। और सातवाँ भक्त लोग अच्युत गोत्रीय वैष्णव कहलाते हैं। ये सब बिना पारख भ्रम चक्रमें ही पड़े हुए हैं॥ ११॥

॥ ❀ ॥ छियान्नवे पाखण्ड वर्णन ॥ ❀ ॥ भाग—४ ॥ ❀ ॥

साखीः— दश संन्यासी बारह योगी * चौदह शेख बखान ॥
[२] ब्राह्मण अठारह अठारह जङ्गम * चौबीस सेवड़ा परवान ॥ १२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
दश संन्यासी = शङ्कराचार्यसे स्थापित दशनामी संन्यासियोंके दश भेद प्रचलित हैं।

बारह योगी = महादेवसे निकला हुआ नवनाथ तथा अवघड़, गोसाँई और नागे, ऐसे १२ योगियोंका भेद माना है। और—

चौदह शेख = मुसलमानोंमें चौदह प्रकारके बखान = फकीर जलाली, मलाली, बानवा, जिन्दा, शाह आदि वर्णन किये हैं।

ब्राह्मण अठारह = ब्रह्मासे उत्पन्न सप्त ऋषियोंसे ब्राह्मणोंके अठारह (१८) गोत्रका प्रधान भेद माने हैं।

अठारह जङ्गम = शिव उपासक जङ्गमोंके भी अठारह (१८) भेद ठहराये हैं।

चौबीस सेवड़ा = ऋषभदेवसे महावीर तक जैनियोंमें चौवीस (२४) तीर्थङ्कर गुरु माने हैं।

परवान = यही छियान्नवे (९६) पाखण्डोंका प्रमाण माना है। वे सबोंने अपने-अपने मतको प्रमाण करके माने हैं॥

व्याख्या— दशनामी संन्यासियोंके नामः— ॥ * ॥ दोहाः— ॥ * ॥

"गिरि, पर्वत, सागर, पुरी; भारती, वन औ तीर्थ॥ आरण्यक, आश्रम, सरस्वती; दश संन्यासी प्रकीर्थ॥"

ये दश भेद शङ्कराचार्यके चारमठोंके अन्तर्गत कहलाते हैं। बारह प्रकारके योगियोंके नामः— आदि नाथ महादेवसे निकले हुए नवनाथः— मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धर, चर्पट, मङ्गल, चम्बा, प्राण, घध्यू और गोपीनाथ- ये नौ नाथ तथा अवघड़, गोसाँई और नागे-ये तीन मिलायकर बारह (१२) प्रकारके भेद योगियोंमें माने हैं। चौदह तरहके शेख फकीरोंमें जलाली, मलाली, बानवा, जिन्दा, शाह इत्यादि १४ भेद माने हैं। और आदिब्राह्मण ब्रह्माके पुत्र कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, गौतम, जमदग्नी, वशिष्ठ और विश्वामित्र- ये सप्त ऋषि तथा लोमस, च्यवन, भृगु, पराशर, अगस्ति इत्यादि ऋषि-मुनियोंसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मणोंके अठारह भेदमें पञ्च द्राविड़ तथा पञ्च गौड़, पाँड़े, पन्त, तिवारी, मिश्र, भट्ट, दीक्षित, अग्निहोत्री, उपाध्याय, ऐसे १८ प्रकारके माने हैं। जो शिव उपासक गलेमें शिव लिङ्ग बाँधके धारणकर रखते हैं, वे जङ्गम कहलाते हैं; इन्होंके भी अठारह प्रकारके भेद माने हैं। और जैनियोंमें ऋषभदेव, अजितनाथसे लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त २४ तीर्थङ्कर होनेका प्रमाण माने हैं। इसप्रकार— (१० + १२ + १४ + १८ + १८ + २४) ये सब ९६ भेद हुए, सो षट् दर्शनोंमेंसे छियान्नवे पाखण्डोंका विस्तार हुआ। वे नाना तरहके अनुमान, कल्पनाका ही प्रमाण ठहराव किये हैं, अतः वह सब पाखण्ड माना गया। बिना पारख वे सब गाफिलीमें पड़े हैं, सो सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ भेद जानना चाहिये! ॥ १२ ॥

॥ ❀ ॥ चार मुक्ति वर्णन ॥ ❀ ॥ चौपाई— भाग ४ ॥ भाग ५ ॥ ❀ ॥

१. सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायूज * चार प्रकारकी मुक्ति मनूज ॥ १३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सालोक्य = कर्मियोंने 'सालोक्य' नामकी मुक्तिको स्वर्ग लोकमें निवास करना माने हैं।

सामीप्य = उपासकोंने 'सामीप्य' नामकी मुक्तिको इष्टदेवके समीपमें रहनेको ठहराये हैं।

सारूप्य = योगियोंने 'सारूप्य' नामकी मुक्तिको इष्टवत् रूप हो जाना, कथन किये हैं।

सायूज = ज्ञानियोंने 'सायुज्य' नामकी मुक्तिको ध्येयरूप ही हो जाना, निश्चय किये हैं।

चार प्रकारकी मुक्ति मनूज = ऐसे चार प्रकारकी मुक्तिका फल चार मार्गोंकी साधनाओंसे प्राप्त होगा, कहकर गुरुवालोगोंने मनुष्योंको वाणी कल्पना दृढ़ा करके भ्रमाकर भुला रक्खे हैं॥

व्याख्या— सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य, ऐसे चार प्रकारकी मुक्तिकी कल्पना कर भ्रमिक गुरुवालोगोंने अबोध मनुष्योंको लालच दे-देकर वाणी-जालोंमें फँसाकर भटकाये हैं। एक-से-एकमें बढ़कर सुख बताकर भुला रहे हैं॥ १३ ॥

२. मुक्ति कहिये छूटेको नामा * तहाँ अनेक पावै विश्रामा ॥ १४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मुक्ति कहिये = आवागमन दुःख सदाके लिये छूटेको नामा = छूट जाय, उसीको सच्ची मुक्ति कही जाती है; परन्तु, गुरुवालोग कहते हैं कि, ईश्वरादिका नाम-स्मरण, भक्ति, योगादि करनेसे संसारके दुःखोंसे छूटकर स्वर्गादि लोकमें जायके चार मुक्तिका सुख पाओगे। और—

तहाँ अनेक = तहाँ स्वर्ग, वैकुण्ठ, पावै विश्रामा = सत्यलोकादिमें जाकर पूर्वमें अनेकों साधक मुक्त हुए और अनन्त विश्राम सुख-शान्ति फल भोगोंको पाये। तुम भी उन चार मार्गोंकी दृढ़तासे साधना करोगे, तो तहाँ अनेक-काल तक विश्राम करके सुख भोग पाओगे, ऐसा कहकर गुरुवालोगोंने भुला रक्खे हैं॥

व्याख्या— भव-बन्धन, जन्म, मरण, गर्भवाससे सदाके लिये जीव छूट जानेका नाम ही 'मुक्ति' है। फिर आना-जाना न पड़े, उसीको ही मुक्ति कहते हैं। परन्तु, गुरुवालोग तो और ही कुछ झूठ-मूठ बात कहकर मुक्तिके नामसे भुलाकर जीवोंको बन्धनोंमें ही डाल दिये और डाल रहे हैं। गुरुवालोग कहते हैं कि, तहाँ स्वर्ग लोकादिमें अनेकों मनुष्य पहले संसारसे मुक्त होकर विश्राम किये, वे सुख विलास पा रहे हैं। तुम भी हमारे कहे अनुसार चलो, तो मरनेपर तहाँ मुक्ति-धाममें पहुँचकर फिर अनन्त-काल तक विश्राम पाओगे। ऐसी-ऐसी रोचक वाणी सुनाकर मनुष्योंको धोखेमें डाल दिये; भुला-भ्रमाकर चौरासी योनियोंके ही अधिकारी जड़ाध्यासी बना दिये हैं; बिना पारख जीवकी मुक्ति हो नहीं सकती है॥ १४॥

३. सालोक्य सोई जो स्वर्ग निवासा ❀ देव योनिमों करत विलासा॥ १५॥

अर्थः— श्रीरामरहलसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अब चार मुक्तिका अर्थ बतलाते हैं, सुनिये!—

सालोक्य सोई = सालोक्य नामकी मुक्ति जो स्वर्ग निवासा = सोई कहलाती है, जो कि, यहाँ तीर्थ, व्रत, पूजा, पाठ, तपस्या, दानादि कर्मके पुण्यसे मरनेपर ऊपर सात लोक स्वर्गादिमें जायकर वह पुण्यात्मा वहाँ निवास करता है। यही पुण्यरूप कर्म मार्ग द्वारा—

देव योनिमों = स्वर्गमें जाकर देवयोनिमें करत विलासा = उत्पन्न होता है। तो इन्द्र, वरुण, कुबेर, दिक्पालादि देवता होकर सप्तलोकोंमें खूब सुख भोगोंका विलास करता है। पुष्प शैय्या, अमृतपान, अप्सराओंके सङ्ग भोग-विलास, क्रीड़ा, आनन्द वहाँ करनेको मिलता है, इत्यादि गुरुवालोगोंने कल्पनासे वर्णन किया है॥

व्याख्या— कर्म मार्गके पुण्यसे स्वर्ग लोकमें जायके निवास करना, तथा देव योनिमें नाना प्रकारसे सुख विलास करना, उसीको 'सालोक्य मुक्ति' माने हैं॥ १५॥

४. सामीप्य हजुरी दास कहावै ❀ भक्ति वजीरी युग-युग पावै॥ १६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सामीप्य हजुरी = दूसरी सामीप्य नामकी दास कहावै = मुक्ति उसीको कहते हैं कि, यहाँ भक्तलोग ईश्वरकी नवधा भक्ति, उपासना मार्गसे सगुण-निर्गुण भक्ति जो करते हैं, उसके पुण्य प्रतापसे इष्ट देवताके लोकमें जाकर उसके नजदीक हजूरिया दासके समान सदैव रहते हैं। वहाँ उनको सब सुख भोग मिल जाता है। ऐसा

गुरुवालोग कहते हैं कि—

भक्ति वजीरी = वह अनन्य भगवद् भक्त युग युग पावै = भगवान्का प्यारा होनेसे वैकुण्ठ लोकादिमें ही भक्तिसे वजीरी या मन्त्रीकी पदवी पाके युगानयुग तक वहीं रहनेको पायेगा। अथवा जन्म लेनेपर भी युगानयुग तक भक्तिकी वजीरी वह पाता ही रहेगा; ऐसी कल्पना किये हैं॥

व्याख्या— भक्ति मार्गके पुण्यसे इष्टदेवके लोक प्राप्त होकर वहाँ हुजूरी दास बनकर युगानगयु

तक भक्तिकी ही वजीरी पाना, सो 'सामीप्य मुक्ति' कहा है ॥ १६ ॥

५. भृङ्गी रङ्ग कीट जो पावै * मुक्ति सारूप्य सोई कहावै ॥ १७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

भृङ्गी रङ्ग = जैसे भृङ्गीका रङ्ग नीला होता
कीट जो पावै = है, तैसे जिस कीड़ाका रङ्ग भी वैसे ही नीला होता है, उसको तद्रूप या उसके समान कहते हैं। अथवा रङ्ग बदलने वाला कोई कीड़ा भृङ्गीके समान दिखता है। इसीप्रकार साधक लोग जो—

मुक्ति सारूप्य = योग मार्ग द्वारा अभ्यास
सोई कहावै = बढ़ायकर ब्रह्माण्डमें श्वास रोककर ज्योति स्वरूप माना हुआ परमात्मामें मिले रहते हैं। उस पुण्यके प्रतापसे मरनेपर इष्टके लोकमें जाकर विष्णु आदिके समान आकार-प्रकार रूप पा जाते हैं। वही सारूप्य मुक्ति कहलाती है, ऐसी कल्पना किये हैं ॥

व्याख्या— योग मार्गके पुण्य प्रतापसे 'कीट-भृङ्गन्याय' इष्टदेवके समान स्वरूप पा जाना, सो 'सारूप्य मुक्ति' माने हैं। तहाँ कीट स्वयं ही भृङ्गी नहीं होता है, कीट तो मर जाता है; किन्तु, भृङ्गीके अण्डोंसे बच्चे निकलकर कीड़ोंको खाकर बड़े होकर निकल जाते हैं। अतः यह दृष्टान्त गलतरूपसे माना है, सो यथार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

६. सायुज्य ज्योतिमें ज्योति मिलि जाई * मायारूप रहा जहँड़ाई ॥ १८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सायुज्य =
ज्योतिमें ज्योति = ज्ञान मार्गसे शमादि साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी निष्ठावाला ज्ञानीके शरीर छूटनेपर उसकी आत्मज्योति बाह्य ब्रह्मज्योतिमें जाकर मिल जाती है। जलतरङ्गवत् एक होकर ज्योति-में-ज्योति मिल जाती है। इसको सायुज्यमुक्ति या सार्ष्टी मुक्ति कहकर
मिलि जाई =

गुरुवालोगोंने माने हैं!

माया रूप =
रहा जहँड़ाई = सत्यन्यायसे देखिये! तो यह माया गुरुवालोगोंकी कल्पना-का ही स्वरूप है। उसीमें बिना पारख मनुष्य गाफिल होकर जहँड़ा रहे हैं। सो माया-कायाका जड़ाध्यास बीज सूक्ष्म-रूपसे रहनेसे जीव चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही बन्धा पड़ा है ॥

व्याख्या— ज्ञान मार्गके पुण्य प्रतापसे ज्योति-में-ज्योति, पानी-में-पानी मिलके एक होनेके समान ही ब्रह्ममें जीव मिलकर एक ब्रह्म ही बन जाना, सो 'सायुज्यमुक्ति' कहा है। परन्तु, माया-रूप गुरुवाकी कल्पनाका रूप तथा जड़ाध्यासमें गाफिल होकर, विना पारख मनुष्य जहँड़ा रहे हैं॥१८॥

७. मुक्ति चार सो जोइन जानो * निश्चय यमके फन्दा मानो ॥ १९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मुक्ति चार सो =
जोइन जानो = ये चार मुक्ति जो वर्णन किये, सो वास्तवमें कर्म-मार्गसे पशुयोनिमें, भक्तिसे पक्षीमें वा अण्डज आदिमें, योगसे उष्मजोंमें, और ज्ञान-की शुद्धतासे मनुष्य योनिमें— ऐसे चार खानी चौरासी योनियोंमें जानेका रास्ता या मूल बीज है, सो जानो।

निश्चय यमके =
फन्दा मानो = यह पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा निश्चय करके समझो कि, यमरूप गुरुवालोगोंकी यह तो वाणी कल्पनाका जाल है, सो नरजीवोंको बाँधने-फँसानेके लिये बनाये हैं। ऐसा परखकर जानो; उसको सत्य मत् मानो। यमके महाफन्दा ही उसे मानो ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं, ये चार मुक्ति क्या है? कि, चार खानियोंकी चार योनियों-में जानेका रास्ता है, ऐसा जानो! और निश्चयसे यह गुरुवालोगोंकी वाणी-फन्दा चौरासी योनियोंमें ही डालनेवाला है; ऐसा मानो ॥ १९ ॥

॥ ❀ ॥ मुक्ति विषय यथार्थ निर्णय-विचार वर्णन ॥ ❀ ॥

अब यहाँपर गुरुवालोगोंकी मानी हुई चार मुक्तियोंका ठीकसे विचार किया जात है। जड़ चार तत्त्वोंके विस्ताररूप ब्रह्माण्ड तथा पिण्डरूप अनन्त देहधारी चैतन्य जीव- ये स्वतःसिद्ध अनादि पदार्थ हैं। जड़ाध्यासी जीव होनेसे चारखानीका प्रवाह भी अनादि है। इसका रचयिता—जगत्कर्त्ता कोई भी युक्ति प्रमाण-विचारसे नहीं ठहरता है। जगत्कर्त्ता जो माने हैं, सो तो कल्पनामात्र है। मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज- ये चारखानी प्रत्यक्ष ही हैं। इसके सिवाय अन्य देवयोनि, भूतयोनि, सिद्धयोनि, इत्यादि मानना असम्भव कपोल कल्पना ही साबित होती है। क्योंकि, जो वस्तु सत्य होती है, उसके गुण, लक्षण, रूप आदिकी प्रतीति सबोंको होती है। इसीसे देवता, भूत-प्रेतादि माना हुआ असत्य है। सब बातोंका कथन, कर्म, भोग, सुख-दुःखादि फल तो यहींपर, इसी लोकमें चारोंखानीमें जीव पा रहे हैं। इस लोकसे भिन्न सात स्वर्गलोक ऊपर आकाशमें तथा सात पाताल लोक नीचे कहीं माने हैं, सो मिथ्या कल्पना भ्रम-भूल ही है। इस लोकके समान दूसरा स्वर्गादि लोक अधरमें तो भी कैसे ठहरेगा? यदि स्वर्गादि लोक सही है, तो वह लोक होनेका सबूत, प्रत्यक्ष अनुभवका प्रमाण क्या है? सो तो कुछ साक्षात् करा नहीं सकते हैं; फिर वाणी कल्पनाके सिवाय स्वर्गादि लोक सत्य कहाँ ठहरा? 'सालोक्य' कहिये इस लोकके समान तो आकाशमें (ऐसा लोकके समान) सात लोक एकसे ऊपर एक कहाँपर हैं? सो दिखाते क्यों नहीं? जब दिखा नहीं सकते हैं, तो उनकी कही बात गपोड़ी, झूठी हुई कि नहीं? फिर इस लोकमें तो सब जीव बद्ध हैं, दुःखोंसे मुक्त तो नहीं हैं, तब 'सालोक्य मुक्ति' यानी इस लोकके समान उस लोकमें दुःखसे छूट जाना, कहाँ-कैसा हुआ? और देवता-देवियोंके सुन्दर शरीर, घर, द्वार, बगीचा, तालाब, मैदान, फूल, फल वर्णन किये हैं कि, स्वर्गमें ये सभी पदार्थ हैं। पुष्पशैय्या, पलङ्ग, अत्तर, अमृतपान, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनकादि अप्सराओंके सङ्ग विहार भोग-विलासोंका मनमाने कथन स्वर्गमें वर्णन किये हैं। सो ये सब पदार्थ भोग तो इसी संसारकी बात हुई। यही सब चीज स्वर्गमें होनेसे मुक्ति कहाँ हुई? और ऐसा वर्णन करनेवाले गुरुवालोगोंने वहाँ जाकर क्या देख आये हैं? हकनाहक झूठी बात कहकर जीवोंकी बुद्धिमें पर्दा डालकर ललचायकर फँसाते हैं। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है कि—

शब्दः—"बैठा पण्डित पढ़ै पुराण, बिन देखेका करत बखान॥
कहहिं कबीर यह पदको जान, सोई सन्त सदा परवान॥" बीजक, शब्द॥ १०१ ॥

साखीः—"बिन देखे वह देशके * बात कहै सो कूर॥
आपुहि खारी खात है * बेंचत फिरे कपूर॥" बीजक, साखी॥ ३४ ॥

जब कि, स्वर्ग लोकादि ही सत्य निर्णयसे असिद्ध झूठा ठहरता है, तो वहाँपर इष्ट देवता ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि उस लोकमें कहाँ-कैसे रहेंगे? जब स्वामी देवताओंका ही कहीं ठिकाना न लगा, फिर भक्त हुजूरी दास या वजीर बनकर कहाँ-किसकी सेवा करेंगे? यह सब झूठी बातें क्यों बताते हैं? कि, ठगाई करनेके लिये। फिर जब स्वर्ग तथा ईश्वर ही मिथ्या है, तब सारूप्य मुक्तिमें जीव उसीके समान झूठा कैसे करके हो जायगा? यहाँ योगीलोग जो ज्योतिका प्रकाश देखते हैं, सो जड़ अग्नि तत्त्वका भास है, देखनेवाला जीव उससे भिन्न ही रहता है, उसी ज्योतिमें जाके तो कभी नहीं मिलता है। यदि उसीमें मिल जाता, तो उसे कैसे देखता? और कीट-भृङ्गीका यहाँपर जो दृष्टान्त देते हैं, सो भी सरासर झूठा है। क्योंकि, जैसा वे बतलाते हैं, तैसी बात तो नहीं होती है; क्योंकि, सुनिये! कोई कीड़ा शरीरका खोलमात्र बदलकर कभी भृङ्गी नहीं हो सकता है। चाहे वह कितना ही भृङ्गीके शब्दमें लक्ष्य लगायगा, तो भी उसी शरीरका दूसराआकार वही जीव नहीं पलट सकता है। क्योंकि, इसके बारेमें शोधकने शोध लगाकर प्रत्यक्ष अनुभव किया है; सो ऐसा है कि, भृङ्गी अपने घर बनाकर प्रथम

वहाँ छोटा-छोटा अण्डा रख देती है, जो कि, बारीक होनेसे साधारण दृष्टिसे वह दिखाई नहीं देता है, सो खुर्दबीनसे देखनेमें आता है। फिर प्राकृतिक मोह तो सब प्राणियोंमें लगा ही है। इससे अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले भावी बच्चोंकी रक्षाके लिये भृङ्गी जहाँ-तहाँसे नरम-नरम इल्ली नामक कीड़े पकड़कर डङ्क मार-मारकर अपने बीलमें लाकर रख जाती है; और कहीं वे कीड़े निकल तो नहीं गये ? इसकी चौकसी करती रहती है। फिर बीलको मिट्टीसे बन्द कर देती है। तदनन्तर समय पाकर उस पूर्वके अण्डोंमेंसे भृङ्गीके बच्चे पैदा होकर धीरे-धीरे वही कीड़ोंको खाकर बढ़ जाते हैं। खुराक समाप्त होने तक वे बलिष्ठ भी हो जाते हैं। बादमें बीलसे निकलकर उड़ जाते हैं। इसप्रकार भृङ्गीके अण्डोंसे ही भृङ्गी पैदा हुए, और कीटसे भृङ्गी पैदा नहीं हुए हैं। सो यथार्थ भेद न जानकर गुरुवाओंने भृङ्गीसे कीट भी पलटकर भृङ्गी हुआ जो बतलाये, सो वह बात मिथ्या है। जैसा दृष्टान्त मिथ्या है, तैसा सिद्धान्त भी इनका मिथ्या है। माना हुआ इष्ट देवताओंका कोई सत्य स्वरूप ही नहीं ठहरता है, फिर सत्य जीव उस मिथ्यामें जाकर कैसे एकाकार होकर समायेगा ? ऐसा तो कभी हो नहीं सकता है। और सायुज्य मुक्तिका वर्णन क्या है? कि, कार्य-कारणका मिलाप है। जैसे कार्यरूप पानीमें उठनेवाली लहर कारणरूप पानीमें ही मिली। अथवा पानीमें-पानी डालकर मिला दिया गया, तो अनेकों जलके परमाणु समूह होनेसे वह स्वजातीय तत्त्वमें मिल गया। तथा अग्निकी कार्यरूप लपटें-ज्योति कारण ज्योति समूहमें तद्रूप होकर मिलीं, तो क्या वैसे ही जीव किसीके कार्यभाग, टुकड़ा, अंश हैं ? यदि ऐसा ही मानो, तो अंशी-कारण और अंश-कार्य यह दोनों ज्ञानहीन जड़ होते हैं। इसके विपरीत जीव तो ज्ञान-गुण सहित चैतन्य दिख रहे हैं; तथा स्वरूपसे अखण्ड हैं। फिर जीवको कार्य मानना, सरासर भूलकी बात है। कार्य-कारण तो आप ही स्वभावतः मिलते-बिछुड़ते रहते हैं, उसको मिलानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। फिर जीवको सायुज्य मुक्तिमें ले जाके मिलानेकी क्या आवश्यकता हुई ? ब्रह्म-कारणसे ही जीव उत्पन्न हुए कहोगे, तो अनन्त जीव भिन्न-भिन्न होनेसे ब्रह्म स्वरूपका ही नाश हो गया। जैसे एक डली सोनेके कई टुकड़े कर डालनेसे उसके पूर्व आकारका नाश हो जाता है। तैसे ही जीवको ब्रह्मका अंश माननेसे भी यही दोष आ जाता है। अतएव यह बात गुरुवालोगोंके भ्रम मात्र ही हैं। जीवकी सायुज्य मुक्ति कभी हो ही नहीं सकती है। क्योंकि, माना हुआ ब्रह्म तो भ्रम मात्र कल्पना है, फिर सत्यजीव भी वैसे ही कैसे होगा ? अतएव ऐसे चारों मुक्ति मानना ही असत्य है ॥

कोई ऐसे कहते हैं कि, ईश्वर साकार सर्वशक्तिमान् है, अतः राजा-प्रजाके समान सम्बन्ध ईश्वर-जीवका होना, सो 'सालोक्य मुक्ति' है। तथा राजा-दीवानके समान ईश्वर और भक्तका सम्बन्ध 'सामीप्य मुक्ति' है। एवं राजा तथा उसके सगा भाईके समान ईश्वर और योगीका सम्बन्ध 'सारूप्य मुक्ति' है। और राजा तथा उसके बड़ा लड़का राज्याधिकारीके समान जीव-ब्रह्मकी एकता होना, सो 'सायुज्य मुक्ति' है ॥

सुनिये ! यह सरासर अविवेककी बात है। क्योंकि, यहाँ राजा-प्रजादि तो दोनों देहधारी एकदेशी साकार सबके लिये प्रत्यक्ष हैं। परन्तु, ईश्वरको तो निराकार देह रहित सर्वदेशी अप्रत्यक्ष माने हैं। फिर विचार करके कहो, उन दोनोंका सम्बन्ध असम्भव हुआ कि नहीं ? साकार-निराकारका सम्बन्ध ही कैसे होगा ? साकारका दृष्टान्त देकर निराकारमें मेल करना, यही तो पठित मूर्खोंका काम है। जरा भी कुछ विचार करें, तो ऐसी अयुक्त बात कैसे कह सकेंगे ? कभी विचारवान् ऐसी झूठी बात नहीं कह सकते हैं। गुरुवालोग तो अविचारी बने हैं, इसीसे आँखें मूँदकर ऐसी असत्य बातोंको भी सत्य बता-बताकर भुलाते हैं।

इसवास्ते पारखनिष्ठ ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं कि, हे जिज्ञासु मनुष्यो ! गुरुवालोगोंकी मुक्तिकी बात तुम्हें मुक्तिमें ले जानेवाली नहीं है। बल्कि चारखानी चौरासी योनियोंमें ले

जानेवाली है। वह तो चौरासी योनियोंमें जानेका ही रास्ता साफ करना है, ऐसा जानो। सो कैसे ? कि, कर्ममार्गमें नाना विषय अध्यासको ही दृढ़ करते हैं, अतः देह छूटनेपर जीव पशु आदि खानीमें ही चले जाते हैं। उपासनामार्ग द्वारा अनेक शुभाशुभ कर्माध्यास टिकाते हैं; विशेष चञ्चल वृत्तिके कारणसे भक्त जीव अण्डजादि खानीमें चले जाते हैं। योगमार्गकी साधनाद्वारा वृत्तिको शून्य करके गरगाफ अनजान बनते हैं, और ज्योति आदिमें लुब्ध होकर उसीका संस्कार टिकाते हैं; इसलिये वासनावश योगी जीव उष्मजादि खानीमें ही चले जाते हैं। और ज्ञानमार्गके अभ्याससे साक्षी दशाका संस्कार रहा, तो मनुष्य खानीमें जीव आवेंगे, नहीं तो अन्य त्रय खानीमें अध्यासवश चले जावेंगे। ऐसे चौरासी योनियोंमें जीव यही चार मार्गोंके कर्म अध्यासवश चले जाते हैं। इसीसे यह मुक्तिके बदले बन्धनदायी हो जाता है। सो पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गसे परख करके जान लीजिये ! और जिसको तुमने मुक्तिमार्ग निश्चय किये हो, सोई यमरूप गुरुवालोगोंका दृढ़ फन्दा जाल फाँस है; यह पारखी सद्गुरुकी यथार्थ बातको निश्चय करके मान लो ! और पारखपदमें ठहराव करके जीवकी सच्ची मुक्ति कर लो ! क्योंकि, मुक्तिका कहीं धाम, गाँव वा शहर नहीं है। तहाँ कहा भी है— सुनोः— श्लोकः— "मोक्षस्य न हि वासोस्ति न ग्रामान्तरमेव वा। अज्ञान हृदयग्रन्थि नाशोमोक्ष इति स्मृतः ॥"

साखीः— "कतहुँ मुक्तिको धाम नहीं * जहाँ बसत कोइ ग्राम ॥
भव बन्धनसे छूटिबो * मुक्ति तिसीको नाम ॥"

अन्तःकरणमें जो जड़ाध्यास टिका है, उसको परख-परखकर परित्यागकर आशा, वासा, चाहना, मानना, राग-द्वेषादिसे रहित हो, निज चैतन्य स्वरूपमें ठहरावकर पूर्ण वैराग्य सहित बोधमें एकरस कायम होनेपर वहाँ ही प्रत्यक्ष जीवन्मुक्ति स्थिति प्राप्त हो जाती है। फिर देहान्तमें उनके आवागमनकी धारा या बीज नाश हो जाता है। सदाके लिये निरुपाधि विदेह मुक्त हो जाते हैं। यही प्रत्यक्ष मुक्तिको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा प्राप्तकर जीवनका परम लाभ उठाना चाहिये ॥

॥ ❀ ॥ १ ॥ अथ सलोने शब्द लिख्यते ॥ चौकड़ी—भाग ६ ॥ ❀ ॥

[सरस, सुन्दर या शोभायमान् अन्योक्ति वाचक शब्दको लिखकर यहाँपर बतलाते हैं।]

१. अन्धा धोबी औघट घाट * नहिं कछु सावुन पानी पाट ॥ २० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यह सुहावना शब्द दूसरेके प्रति कहा हैः—

अन्धा धोबी = पारख-दृष्टिहीन अन्धे गुरुवालोग पाप नाशक धोबी बने हैं। परन्तु, जड़-चैतन्यमें एक समान व्यापक ब्रह्म मानन्दी करायकर धोखेमें डाल देते हैं।

औघट घाट = तहाँ न घटनेवाला ब्रह्म-परमात्मा प्राप्तिके वास्ते भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना कठिन-कठिन साधनाओंमें ले जाकर भ्रममें हुवा दिये, गाड़ दिये।

नहिं कछु = } उससे जीवोंको कुछ शुद्धता या
सावुन = } शुद्ध ब्रह्म प्राप्ति होनेकी कुछ आशा तो नहीं है। उलटा भ्रमरूप कीचड़ लगायकर जीवकी जानपना, साक्षी पदको नाश कर देते हैं। इसीसे उनमें जड़-चैतन्यका निर्णय कुछ भी नहीं है।

पानी पाट = गुरुमुख निर्णयकी वाणी तो वे जानते ही नहीं हैं। इसीसे उन्होंके मत, सिद्धान्तमें लगकर जीवोंको मुक्ति-स्थिति भी प्राप्त नहीं होती है। क्योंकि, वेदादि वाणीके प्रमाणसे अद्वैत सिद्धान्तका आधार लेकर जो गुरुवाने जीव-ब्रह्मकी एकताकी स्थिति कायम की, सो तो मिथ्या भ्रम मात्र है ॥

व्याख्या— यह सलोनेका शब्द है; देखने, सुनने, कहनेमें सुन्दर हो, शोभाका बखान हो, सो सलोना है। जैसे निमक डाला हुआ पदार्थ स्वादिष्ट मालूम होता है। वैसे ही गुरुवालोगोंने भी खूब रोचक वाणीमें जीवोंको फँसाये हैं। सो इस शब्दमें ग्रन्थकर्त्ताने दृष्टान्त-सिद्धान्त एक साथ ही बताकर परखाये हैं। पहले दृष्टान्त सुनिये ! एक बूढ़ा धोबी दोनों नेत्रहीन अन्धा था। एक समयमें

वह मैले कपड़ोंका बड़ा-सा गट्ठर लेकर धोनेके लिये नदीमें चला गया। उसे न दिखनेसे घाटके बदलेमें औघट घाटमें जाकर उतरा। और उसके पासमें साबुन तो कुछ था ही नहीं, इसीसे तो वह पानीमें डुबो-डुबोकर कपड़ोंको पत्थरपर पीटने लगा। शहरके लोगोंने भी कपड़ा धोवानेके लिये उसीके पासमें ले गये। जब कपड़ा साफ होता, तो फट-फटायके निकम्मा हो जाता। यदि कोई कपड़ा न भी फटा हुआ निकले, तो उसको मुँगरीसे पीट-पीटकर फटाय देता। फिर भट्टीकी आँचमें खौलाकर कपड़ोंको चूर-चूर कर देता; परन्तु, वह धोबी अपनी मजदूरी तो पहले ही नगदी रुपया ले जाता था। जो मैंने किया सोई सत्य है; ऐसा कहकर खूब बिरहा-गीत गाता था। वह धोबी उच्च स्वरसे खूब चिल्ला-चिल्ला कर गाता जाता था कि, मेरी करनीको कोई भी पार पानेवाला नहीं है। इसप्रकार उसके घनचक्रमें पड़कर कई मनुष्यलोगोंके कपड़े खराब हो गये॥

अब इसका सिद्धान्तमें भावार्थ सुनिये! कर्मी, भक्त, योगी, ज्ञानी ये गुरुवालोग पारखहीन होनेसे अन्धे धोबी बने हैं। और उनको सब कोई बड़े मानते हैं, अतः बूढ़े हैं। जो कि, जड़ और चैतन्यमें कहीं लक्षण घट नहीं सकता है, सो ऐसा विलक्षण, औघट=अनुमान ब्रह्म है, सो गहरी कल्पना है। भक्ति, योग, ज्ञानादिकी कठिन नाना साधनाओंको घाट बनायके उसीमें ठहरना चाहते हैं। तो उनके पासमें शुद्ध पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचाररूपी साबुन तो नहीं है। गुरुमुख वाणी भी नहीं जानते हैं। इसलिये जीवका चैतन्यपदमें ठहराव या स्थिति कुछ नहीं होती है। क्योंकि, वेद-वेदान्तादि वाणीसे व्यापक अद्वैत ब्रह्म स्थिति ग्रहण करनेसे जीवके साक्षीपनाको भी मिटाय दिये; परन्तु, वह ब्रह्म तो कुछ वस्तु नहीं है, मनका भ्रम मात्र है; ऐसा न जानकर धोखेमें भूले पड़े हैं॥ २०॥

२. लोक बासमें धोवावन जाय * निर्मल तबहीं फटे फटाय॥ २१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

लोक बासमें=संसारी अज्ञानी जीव जगत्में नाना दुःख पायके उन दुःखोंसे छूटकर स्वर्गलोक, गोलोक, सत्यलोकादि सात लोकोंमें जायके सुखभोग पानेकी वासनामें पड़े। इसीसे—

धोवावन जाय=धोबीरूप गुरुवालोगोंकी शरणमें मनके मैलरूप पाप मिटानेके लिये और अन्तःकरणरूप वस्त्र धोवाय करके शुद्ध करानेके लिये गये और जा रहे हैं। और—

निर्मल तबहीं=
फटे फटाय=
वहाँ अनेक साधनाएँ करके जब निर्मल शुद्ध 'अहंब्रह्म' पदकी मानन्दी किया। तभी जीवकी स्थितिका नाश हुआ। क्योंकि, एक ब्रह्म हुआ; परन्तु, उसीमेंसे अनेक इच्छा फूटकर निकली। ऐसे इच्छा करके चौरासी योनियोंमें आना-जाना लगा ही रहा। तब दुःख कहाँ छूटा? ब्रह्म होते ही जगत्में आकर गिरा; चौरासी योनियोंमें ही जा पड़ा॥

व्याख्या— अब संसारी मनुष्यलोग जगत् दुःखोंसे छूटकर स्वर्गादि सुख भोग प्राप्ति करनेकी वासनाको लेकर उन्हीं गुरुवालोगोंकी शरणमें गये। पाप धोकर अन्तःकरण साफ करानेके लिये, उन्हें गुरुवाओंने अनेक मार्गोंमें लगाये। आखिर ब्रह्मज्ञानका बोध देके "तत्त्वमसि" कहके एक निर्मल ब्रह्म तू ही है, ऐसा बतलाये। जब जीव ब्रह्म बना, तब ही इच्छा फूटी, फिर जगत्रूपमें फटे-फटायके चारखानीके चौरासी योनियोंमें ही छितराय गया। अतः ब्रह्मज्ञानसे किसीकी मुक्ति नहीं हुई॥ २१॥

३. रोख मजूरी भट्ठीकी आँच * बिरहा गावै सोई साँच॥ २२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

रोख मजूरी=नगदी मेहनतानाके समान शिष्योंसे तन, मन, धनादि सर्वस्व ही गुरुवालोग अपनेमें अर्पण कराय लेते हैं। तथा जीवोंको अपने वशमें करके कल्पना दृढ़ा-दृढ़ाकर—

भट्ठीकी आँच=विरह, वैराग्य, तपस्या, पञ्चाग्नि, जलशयन, धूम्रपान, दिगम्बर, चौरासीधुनी तापना इत्यादि नाना साधनोंकी आँचमें तपाकर सन्तप्त करते हैं, सोई खौलाना है। अन्तमें जड़ाध्याससे चौरासी योनियोंके

गर्भवासका दुस्सह दुःख सहते और सहाते हैं। और—

विरहा गावै= भ्रमिक गुरुवालोग नाना कल्पनाकी वाणी गा-गाकर कोई ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, देवता आदि खसम ठहराकर उसकी प्राप्तिके लिये जीवोंको विरहमें लगाते हैं। विरह उत्पन्न हो, ऐसी कल्पित वाणी गाते हैं। तथा—

सोई साँच= उसी कल्पनाको सत्य बतलाते हैं। सोई भगवान् तुम्हारे सब दुःखोंको हरण करके सच्चा सुख देगा, ऐसा बताये हैं, निर्बुद्धि भक्तोंने भी सोई बातको सत्य मान लिये हैं॥

व्याख्या— गुरुवालोग उपदेश देनेकी मजदूरीमें चेलोंसे तन, मन, धनादि अर्पण करवा लेते हैं। फिर भट्टीकी आँचरूप नाना कठिन साधनोंमें झोंक देते हैं। इससे अन्तमें गर्भवासादिका दुःख त्रिविधि तापादि आँच भी सहना पड़ता है। परन्तु, भ्रमिक गुरुवालोग कोई ईश्वर-परमात्मा जगत्का कर्त्ता है, उसकी प्राप्तिसे सर्व दुःख मिट जाता है, तुम्हारा वही मालिक है, उसीसे मिलनेका प्रयत्न करो। वही एक परमात्मा सत्य है, ऐसी-ऐसी मिथ्या विरहकी वाणी गाकर सुनाते हैं; उसीको अबोध मनुष्यलोग सच्चा मान रहे हैं, बिना विचार॥ २२॥

४. धोबिया अपार बसै कौवार * यहि विधि कबिरा भये खुवार॥ २३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

धोबिया= अपार बसै= कौवार= ज्ञानी, योगी, भक्त, गुरुवालोगोंने चिल्ला-चिल्लाकर यह उपदेश सुनाये कि, हे जीवो! वह परमतत्त्व-परमात्मा अपार है, जिसका कुछ भी वार-पार भेद, पता पाया नहीं जाता है, सोई अपार परब्रह्म है। तुम उसीके ही अंश हो, यह जानो। ब्रह्मज्ञानकी धारणासे तुम उसीमें जाकर बसोगे या उससे मिलोगे।

यहि विधि= कबिरा भये= खुवार= यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं, इसप्रकारसे गुरुवालोगोंके फन्दोंमें पड़ करके अज्ञानी नरजीव कर्म भ्रष्ट होकर मनुष्य पदसे गिरकर खराब, भ्रमिक, जड़ाध्यासी हो गये। और खानी जालमें पड़के खराब तो पहलेसे ही थे। अब वाणी जालमें आकरके भी खराब ही होकर मुक्ति पदसे गिरके बद्ध हो गये। इसलिये जीव जन्म-मरणादि नाना दुःखोंमें पड़े हुए हैं॥

व्याख्या— वञ्चक गुरुवालोग आवरण-पर्दा लगाकर ऐसे उपदेश कर-करायके सुनाने लगे, कि 'जगत्कर्त्ता परमात्मा कोई है, सो अगम, अपार, अथाह, निर्गुण, निराकार परब्रह्म है। उस ब्रह्ममें जीव मिल जानेपर जीवन्मुक्त हो जाता है।' ऐसी-ऐसी वाणीको सुन-सुन करके पारख न होनेसे इसीप्रकार सब नर जीव निजपदसे नष्ट-भ्रष्ट, खराब जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। हे मनुष्यो! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसको समझकर अपना हित-कल्याण करो!॥ २३॥

५. कौवा बाप पूत सो हंस * नाती बकुला बाढ़ो बंश॥ २४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! देखिये! कैसे विपरीत हो रहा है—

कौवा बाप= कपटी गुरुवालोग कहते हैं कि, जगत्का मालिक परब्रह्म, परमपिता, जगत्-पिता कोई सर्वशक्तिमान् जगत्कर्त्ता है, और सोई ब्रह्म स्वरूप हम हैं, इसीसे हमहीं सबोंका बाप या मालिक हैं। और—

पूत सो हंस= हंस जीव जो है, सो मुझ ब्रह्मका ही अंशरूप पुत्र है। ऐसा कहकर जड़-चैतन्य निर्णय कर्त्ता अखण्ड जीवको झूठ ही ब्रह्मका अंश बनाये हैं।

नाती बकुला= बाढ़ो बंश= अब उनके नाती नाता-गोतावाले बगुलाभगत योगी, कर्मी, उपासकलोग झूठ-मूठका ही ध्यान धरने लगे। फिर उन्होंकी शिष्य-शाखा जमात, मत-पन्थोंका वंश-परम्परासे बहुत बढ़ता गया, और बढ़ ही रहा है॥

व्याख्या— अब यहाँपर सुनिये! कौवा बापका- हंस पुत्र और बकुला नाती उत्पन्न हो, तो कितने आश्चर्यकी बात है? जगत्में तो पक्षीमें ऐसा नहीं होता है। परन्तु, गुरुवालोगोंके यहाँपर तो

ऐसा ही होता है। तात्पर्य ऐसा है कि, कौवेरूप गुरुवालोगोंने कल्पनासे एक ब्रह्मको सर्व सृष्टिका आदि कारण परमपिता परमात्मा ठहराकर उससे अंशरूपमें अनेकों हंसरूप जीवोंकी उत्पत्ति बतलाये हैं। इसीसे ब्रह्म कारण बाप बना और उसका पुत्र जीवको कार्यरूप या अंशरूपमें माने हैं। और उन्हींका ध्यान करनेवाले योगी-भक्तादि नातीरूपमें उत्पन्न हुए। आगे उनके वंश शिष्य-शाखा, मत-पन्थ; ग्रन्थ जगत्में बहुत विस्तार होकर बढ़े, और बढ़ते ही जा रहे हैं ॥ २४ ॥

६. कोय कोय करि कौवा मरै ❀ हंसा क्षीर नीर निरुवारै ॥ २५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कोय कोय = करि कौवा = मरै = कौवारूप कल्पनामें पड़े हुए भ्रमिक गुरुवालोग पुकार-पुकारकर कहते हैं कि, सुख-दुःखका दाता, विधाता कोई कर्त्ता परमेश्वर है। उनकी लीला अपरम्पार है। हर तरहसे साधना करके ईश्वरको ही प्रसन्न करना चाहिये। तभी जीवकी गति-मुक्ति होगी। ऐसा कहिके जड़ाध्यासी होके मर-मरकर चौरासी योनियोंमें गये और जा ही रहे हैं।

हंसा क्षीर = नीर निरुवारै = दूध-पानीको बिलगाना हंसका सद्गुण है। तैसे जो हंसजीव जड़-चेतनका न्यारा-न्यारा निर्णय कर पारख बोध पाये, सो बन्धनोंसे छूट गये ॥

व्याख्या— उन त्रिगुणी मनुष्योंके स्वभावोंमें बहुत ही अन्तर है। कागकी नाईं चिल्लानेवाले गुरुवालोग "कोई कर्त्ता- ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, स्वर्गादि सातलोक ऊपरमें है, ऋद्धि-सिद्धि आदि है। जो कोई हमारे उपदेश मानकर चलता है, सो वही सब पाता है" ऐसा कह-कहकर जड़ाध्यासी होकर, मर-मरकर चौरासी योनियोंमें गये और जा रहे हैं। जो कोई जिज्ञासु मनुष्य हंस जीव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें आकर यथार्थ जड़-चेतनका निर्णय करके नीररूप पाँच तत्त्वके पञ्च विषयोंका अध्यास त्याग दिये, तथा क्षीररूप निज चैतन्य पारख स्वरूपकी स्थिति ग्रहण किये, वही बन्धनोंसे छूटे हैं, और वैसे रहनीवान् सन्त ही भव-बन्धनोंसे छूटेंगे ॥ २५ ॥

७. बकुला तरै लाये बकु ध्यान ❀ औगुण गर्भ करै अभिमान ॥ २६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

बकुला = तरै लाये = बकु ध्यान = योगी, भक्त, कर्मी- बगुलाभगत बने हुए गुरुवालोग मनोकामना सिद्धकर पार उतरनेके वास्ते तथा चार फल, चार मुक्ति प्राप्तिके लिये या नर जीवोंको ठगनेके लिये जैसे बगुला मछली पकड़नेको ध्यान लगाकर ताकता रहता है, तैसे ही भ्रमिकलोग वाणी कल्पित स्वरूपका नाना तरहसे ही एकाग्रकर ध्यान लगाये हुए बैठे रहते हैं। और—

औगुण = गर्भ करै = अभिमान = देहका प्रतिबिम्ब, तेज तत्त्वका प्रकाश जो दिखाई दिया, सो उसीको निर्गुण परमेश्वरका साक्षात्कार समझकर अपने सिद्ध होनेका अहङ्कार, मत-पन्थका मिथ्या अभिमान करते हैं; उन्मत्त होते हैं। अथवा काम, क्रोधादि अवगुण भरा पड़ा होनेपर भी योगी, ध्यानी होनेका बड़ा गर्भ वा अभिमान करते हैं। इसीसे वे गर्भवासमें ही जावेंगे ॥

व्याख्या— संसारमें भ्रमिक भक्त, योगी आदि बगुले भक्त लोग जगत्से पार उतरकर मुक्ति प्राप्तिके वास्ते आसन, मुद्रादि साधनाकर नीचे दृष्टि लगाकर या आँखें मूँदकर ध्यान लगाने लगे, सो बगुलेके समान ही ध्यान लगाये। क्योंकि, उन्होंका दाव तो दूसरोंको ठगनेके लिये है। और जगत्में बहुतसे धन, और ध्यान-समाधि आदिकी प्राप्ति, बड़ाई देख-सुनकर दुर्गुण बढ़ायकर अभिमानी या अहङ्कारी हो गये। अथवा देहका भास-प्रतिबिम्ब देखकर उसीको ब्रह्म या ईश्वर मानकर अभिमानी हुए। वही अहङ्कार अध्यास उन्होंको गर्भवासमें ले जानेवाला है, यह बात वे नहीं जानते हैं ॥ २६ ॥

८. कहहिं कबीर अन्धी है गाय * मुरदा खाल देखि पन्हाय ॥ २७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

कहहिं कबीर = [यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सारशब्द निर्णयको कहते हैं कि,] हे मनुष्यो! यह गुरुवालोगोंने वेद, शास्त्र, पुराणादिकी वाणी जो गाये हैं- तहाँ ईश्वर, ब्रह्म, खुदादि कर्त्ता ठहराये हैं। इसीसे सत्य निर्णय पारखके बिना वह वाणी अन्धी है, अँधियारी है, धोखा कल्पनाका जाल है, सो जानो। परन्तु, दुनियाँ भी बेपारखी अन्धी बनी है; भोली- भाल हो रही है।

अन्धी है गाय = जैसे- अन्धी गाय मुर्दा बछड़ाके खालमें—

मुरदा खाल = देखि पन्हाय = भूसा भरा हुआ खा देखकर भी उसे सच्चा बछड़ा समझकर पन्हाकर दूध देती है। तैसे ही जड़ मुर्दावत् ब्रह्म भी कहनेमात्र ही शब्दरूपी जड़ है। और कागजमें लिखा हुआ जड़ वेदादि वाणीको देखकर तथा वही वाणी गुरुवालोगोंके मुखसे उच्चारण होता हुआ सुनकर मनुष्य सब मोहित हो गये, ब्रह्म आदि प्राप्तिकी लोभ लालचसे तन, मन, धनादि सब गुरुवाओंको अर्पण किये। अथवा जड़ तत्त्वोंका प्रकाश देखकर योगी आदि उसीमें लुब्ध हो गये॥

व्याख्या— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सार निर्णयका उपदेश कहते हैं— जैसे कोई गायका बछड़ा मर गया, तो बछड़ाके वियोगमें वह दूध नहीं देती थी। अतः मरा हुआ बछड़ाके चमड़ा निकालकर उसे सुखाकर भूसा या घास भीतर भरकर गायके पास खड़ाकर दिये, तब जाकर दूध दूहने लगे; तो वह उसको अपना सच्चा जीवित बछड़ा ही समझकर निर्बुद्धि अन्धी गाय प्रेमसे उसे चाट-चाट कर पन्हाय जाती है; यानी दूध दे देती है। वैसे ही गुरुवालोगों-की गायी हुई, वेद, शास्त्र, कुरान आदिकी वाणी कल्पनारूप अन्धी है। और पारखहीन मनुष्य भी अन्धे बने हैं। क्योंकि, वाणीकी महिमा देख-सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं। यह नहीं जानते हैं कि, ब्रह्म तो जीवका भ्रम मात्र है, और जड़ मुर्दाके समान मिथ्या शब्दका बढ़ावा मात्र है। ब्रह्मज्ञानीके मुखारविन्द-रूप खालसे निकली हुई वाणी सुन-सुन करके उसमें प्रेम, लालच बढ़ायकर बहुत लोग उन्होंके चेले हो-होकर उन्हें सर्वस्व अर्पणकर धोखामें पड़ गये, फिर चौरासी योनियोंमें चले गये और जा रहे हैं। तैसे ही जड़ मुर्दावत् तत्त्वोंका प्रकाश, ज्योति स्वरूपको ब्रह्माण्डमें देखकर अन्धे योगी गुरुवालोग भी उसे ब्रह्म साक्षात्कार हुआ, ऐसा समझकर प्रसन्न हो गये; अपनेको कृतकार्य-सिद्ध समझने लगे। बिना पारख यह धोखा जड़ासक्ति संस्कार ही जीवोंको चार खानीमें नाना देह धराता है। अतएव सत्यासत्यको परखकर सकल खानी-वाणीकी मानन्दी सुधारकर त्याग कर देना चाहिये; और निज स्वरूपमें ठहरना चाहिये॥ २७॥

९. चञ्चल राजा दहुँदिश धाय * परजाकी तहाँ फिर ले जाय ॥ २८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चञ्चल राजा = शरीरमें मन ही चञ्चल राजा बना है। और बाहर गुरुवालोग राजावत् श्रेष्ठ गुरु बनकर जीवोंको चलायमान कर रहे हैं।

दहुँदिश धाय = सो मन विषय भोगोंके वास्ते दशों इन्द्रियोंको दौड़ाय-दौड़ायकर दशों-दिशारूप संसारमें भाग चला जा रहा है। और गुरुवालोग चार वेद, छः शास्त्रोंमें धाय-धायके ईश्वरादिकी मानन्दी दृढ़ा रहे हैं।

परजाकी तहाँ = दशों इन्द्रियाँरूप प्रजाओंको

फिर ले जाय = मन घुमा-फिराकर बार-बार तहाँ विषय भोगादिकी तरफ ही ले जाकर फँसाय देता है। वैसे ही शिष्य-शाखारूप भक्तजनोंको भ्रमिक गुरुवालोग वेदादि वाणीके प्रमाणसे फिर-फिर ब्रह्म धोखाके सिद्धान्तमें ले जाकर खन्दकमें ही डाल देते हैं। फिर चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़ते हैं॥

व्याख्या— जैसे कोई राजा चञ्चल होवे, तो दशोंदिशामें जब घूमनेको जाता है, तब वह बहुत-सी प्रजाओंको भी उधर ही फिरानेको अपने साथ ले जाता है। और उनको अनेकों बेगारके काममें लगा देता

है। जो ऐसा अन्याय बहुत दिन तक होने लगा और प्रजा लोगोंने मजदूरीका दाम नहीं पाये, तो फिर सब जनें नाराज होकर आपसमें मिलकर उस राजाको ही पकड़कर मजदूरीके काममें पीट-पीटकर लगाने लगे। तब तो राजा व्याकुल, बेचैन हुआ, तब कहने लगा कि, हे भाई! अब मैं तुम सबोंकी मजदूरी चुका दूँगा, मुझे छोड़ दो, इत्यादि प्रकारसे लाखबार समझाया; परन्तु, अब तो कोई उसकी बात सुनते ही नहीं थे। उसका कहा मानते ही नहीं थे, तब तो राजा पछताने, रोने लगा। वैसे ही चञ्चल वृत्तिवाले गुरुवा योगी, ज्ञानी, भक्त लोग, चेतन जीवको भटकायकर जड़ मानन्दीमें लगानेवाले हुए हैं। सो चार वेद, षट् शास्त्रोंके पठन-पाठनमें अपने लगकर फिर शिष्यरूपी प्रजाओंको भी उसीकी पढ़ाई करानेमें लगाये हैं। कोई दशोंदिशाओंमें तीर्थ-धाम मानकर तीर्थ यात्राके लिये अपने चले गये तथा शिष्योंको भी अपने साथमें तहाँ देखाने, घुमाने, फिरानेको ले गये। और कोई वेदान्तीलोग दशोंदिशाओंमें परिपूर्ण अद्वैत ब्रह्म मानके उसी सिद्धान्तमें शिष्योंको भी ले जाकर भ्रमा दिये हैं। फिर वही अध्यास जीवोंको फिराता हुआ चारखानीमें ले जाता है। तैसे ही शरीरमें यह चञ्चल राजा मन है, सो दशोंइन्द्रियोंको सङ्गमें लेके दशोंदिशाओंमें, संसारमें विषयभोगोंके वास्ते दौड़ता फिरता है। इन्द्रियाँरूप प्रजाको, सहायतासे जहाँ कहीं भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयोंको पाता है, तहाँ ही फिर-फिरकर तनको भी ले जाता है और यथेष्ट विहार कराता है। इसीसे अध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें ही चले जाते रहते हैं ॥ २८ ॥

१०. जो नहिं परजा पावै दाम * राजहि पकरि करावै काम ॥ २९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जो नहिं = परजा = पावै दाम = देहमें इन्द्रियाँरूप प्रजाएँ जो यदि दमन या विषय भोगोंका आनन्द सुख नहीं पाती हैं, तो बेचैन हो जाती हैं। वैसे ही शिष्यलोग जो कि, साधना करके भी यदि चार फल पाकर मनोकामनाकी पूर्ति नहीं कर पाते हैं या अन्तःकरणकी शुद्धतासे ब्रह्मानन्दका दाम नहीं पाये, तब वे नाराज हो करके—

राजहि पकरि = करावै काम = उन्हीं गुरुवारूप राजाको ही पकड़-पकड़ कर साधनोंका काम कराने लगवाते हैं। फिर गुरुवालोग शिष्योंको जबरन पकड़-पकड़ांकर कर्म, उपासना, योगादिके काममें लगा देते हैं; भरोशा देते जाते हैं। तैसे ही इन्द्रियाँ भी यदि विषय भोग न पायीं, कि मनको पकड़-पकड़कर विषयोंको प्रस्तुत वा हाजिर करनेके काममें लगा देती हैं। मन भी इन्द्रियोंको घसोट-घसोट कर उसी विषयादि भोगोंके कार्यमें लगाता रहता है ॥

व्याख्या— यदि इन्द्रियाँरूप प्रजाएँ विषय विलासोंका दाम ठीकसे नहीं पाती हैं, तो मनको ही पकड़-पकड़कर जीवसे अनेकों विषयोंके लिये कर्म-कुकर्म करती-कराती हैं। फिर मन भी लाचार होकर उसीमें लग जाता है। और वाणीमें— शिष्य-शाखा, सेवकलोग नाना साधनाएँ जप, तप, व्रत, तीर्थ-पूजादि करके भी जब अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूप फलका दाम नहीं पाये, तथा मन-अन्तःकरणकी शुद्धता वा स्थिरता भी जो कि, नहीं पाये, तब फिर्याद करनेको गुरुवालोगोंके पासमें आये और उनके चरण पकड़ लिये। तहाँ गुरुवालोगोंने उनके साधनोंमें त्रुटि बतायें, फिर अपने स्वयं ही साधना करके दिखलाकर, उन्हींसे भी वही साधनाओंके काम कराने लगे ॥ २९ ॥

११. व्याकुल राजा कल नहिं परै * कुहके लाख एकौ नहिं सरै ॥ ३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

व्याकुल = राजा कल = नहिं परै = मन राजा सदा विषयानन्दके वास्ते व्याकुल हो रहता है। कभी उसकी इच्छा पूर्ति न होनेसे शान्ति प्राप्त नहीं होती है। वैसे ही राजा बने हुए गुरुवालोग कर्म, धर्म, योगादि साधना करने-करानेमें सदा व्याकुल वा चिन्तित बने रहते हैं। इसीसे उन्हें कभी शान्ति, सन्तोष, सुख-चैन प्राप्त नहीं हुआ;

इसीसे तो कभी चैन ही नहीं पड़ता है।

कुहके लाख = संसारमें लाखों तरहके वा
एकौ नहिं सरै = अनेकों सिद्धान्त प्रतिपादन करके शिक्षा, उपदेश, आदेश दिये या देते हैं। तथापि, उस कल्पनासे एक जीवका भी कल्याण सिद्ध नहीं हुआ; एककी भी मुक्तिका कार्य सफल नहीं हुआ, बेकार हुआ। वैसे मन भी लाख प्रयत्न करके भी विषयोंसे तृप्त नहीं हो सका। इसीसे चञ्चल होकर दुःखी ही बना रहा ॥

व्याख्या— तब भी शिष्य लोगोंने जब कहा कि, हमें कुछ स्थिति प्राप्ति नहीं हुई। यदि चार फल, चार मुक्ति आदिकी प्राप्ति कराओ, तो ठीक है; नहीं तो हम सब तुम्हें छोड़ देंगे, इत्यादि कहे; तब तो गुरुवालोगरूपी राजा बड़े व्याकुल हुए; अब क्या करें? कह कर उनके मनमें चैन नहीं पड़ा; बेचैन चिन्तामग्न हुए। फिर शिष्योंको लाखों तरहसे प्रलोभन दे-देकर समझाने लगे। अनेक सिद्धान्तोंका वर्णन करके उपदेश देने लगे। कितनोंने तो उनके उपदेशको मान भी लिये, तो भी लाखों बातोंमें एक बात भी पूरी नहीं हुई। एक जीवका भी कल्याण नहीं हुआ; तो निकम्मे हो चौरासी योनियाँ गामी हुए। वैसे ही मनराजा भी चाहा हुआ भोग विषयानन्द न पानेसे व्याकुल हो जाता है, तब तो उसे किसी बातसे भी चैन नहीं पड़ता है। भोगोंके लिये लाखों प्रयत्न करके रोता-तड़फता है, यही कुहकना है। प्रारब्ध कर्म भोग सन्मुख हुए बिना एक भी कार्य सिद्ध नहीं होता है। इसीसे आसक्त हो दुःखोंमें पड़ा रहता है ॥ ३० ॥

१२. कहहिं कबीर भोंदूके गाँव * लालबुझक्कर बूझै नाँव ॥ ३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

कहहिं कबीर = [सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके
भोंदूके गाँव = उपदेश यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि,] भोंदू = अज्ञानी, अविचारी, बेपारखी, निर्बुद्धिलोगोंके, गाँव = संसारमें विषय, कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञानादि अनेकों मार्ग बने हैं।

लालबुझक्कर = तहाँ भ्रमिक वञ्चक गुरुवा-
बूझै नाँव = लोग श्रेष्ठ कल्याणकर्त्ता गुरु बने हैं। परन्तु, पारखहीन तथा बुद्धिहीन होनेसे जड़-चेतनको भिन्न-भिन्न सत्य निर्णय करना तो जानते ही नहीं। बल्कि चराचरमें एक ही ब्रह्म व्यापक बतलाते हैं। अतः महामूर्ख बने हैं। उन्हीं लालबुझक्कर लोगोंसे अज्ञ जीव उपदेश बूझते हैं, तो वे कुछ-का-कुछ अण्ट-सण्ट बताय देते हैं। जैसे जीवको अंश, ईश्वर, ब्रह्म, खुदादिको जगत्का कर्त्ता, उन्हींके नाम-स्मरणसे मुक्ति या सात स्वर्गादि प्राप्ति बतलायकर सबको भुला दिये और भुला रहे हैं ॥

व्याख्या— यहाँपर श्रीरामरहससाहेब यह सब वाणीका निर्णय सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख निर्णयसे कहते हैं। सद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो! भोंदूके गाँवमें एक लालबुझक्कड़ धूर्तके नाम चला हुआ सरीखा तुम लोग गुरुवालोगोंकी मिथ्या वाणीके फन्दोंमें भूलकर मत् अरुझो। संसार यही अन्धेर नगरी है। यहाँ गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव, जहाँ-तहाँ भोंदू विषयासक्त अज्ञानी मूढ़ मनुष्य रहते हैं। उनमेंसे कोई गुरुवालोग लालबुझक्कर बने हैं। सो जब उन्होंकी समझमें कोई बात नहीं आती है, तो झूठ ही बनावटी कोई एक बात बनायके दृढ़ा देते हैं। जगत्को देखकर जगत्कर्त्ताकी मिथ्या कल्पना किये हैं। फिर उस कर्त्ताको भी निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, पूर्ण व्यापक, ब्रह्म ठहराये हैं; फिर सब जीवोंको उसीका अंश बतलाये हैं। कोई सात स्वर्गादिमें अनेक सुख भोगोंकी प्राप्ति बतलाये हैं। पाँचमार्ग सोई पाँच गाँवमें ले जानेवाला है, उसीमें सब मनुष्य भूले पड़े हैं। आगे गुरुवालोगोंने जैसा-जैसा नाम, रूप, गुण वर्णन किये हैं, उसीको सत्य मानकर बूझे, नाम-स्मरण, जाप, ध्यान, धारण करने लगे। बिना पारख सब जीव उसी खानी-वाणीके जड़ाध्यासी होकर आवागमनोंमें ही जा पड़े और पड़ ही रहे हैं॥ ३१ ॥

अब यहाँपर लालबुझक्करके बारेमें कुछ लौकिक प्रचलित दृष्टान्त भी लिख दिया जाता है, सो सुनिये!:—

(१) दृष्टान्तः— एक समयमें भोंदूलोगोंके गाँवके रास्तेसे किसी महावतने हाथी लेकर चला गया। इससे रास्तेमें हाथीके पैरोंकी निशान-छाप पड़ी हुई थी। हाथी ले जाते हुए उस समयमें वे लोग वहाँ मौजूद नहीं थे, पीछेसे जब भोंदूलोगोंने आके हाथीके पैरोंकी छाप देखा, तो वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। आपसमें कहने लगे कि, यह क्या है? किस चीजकी छाप पड़ी होगी? तो उन लोगोंकी समझमें कुछ बात भी नहीं आयी। उसी गाँवमें लालबुझक्कर नामका उन्होंका एक गुरु रहता था, उससे जाकर उन्होंने वह बात बतायी। वह भी उनके साथ वहाँ आकर देखा, तो उसकी भी समझमें भेद कुछ नहीं आया। परन्तु, अपनी विशेषता तो उन भोंदूलोगोंमें उसे दिखाना ही था; इसलिये मनगढ़न्त बात वह बोला, हे भाई लोगो! सुनो— मैं बतलाता हूँ!:—

दोहाः— "लालबुझक्कर बूझिया, और न बूझै कोय॥ पाँयन चक्की बाँधिके, हरिनी कुदा होय॥" यह बात तो मैं ही समझ सकता हूँ, तुमलोग इसके भेदको कुछ जान नहीं सकते हो। सुनो! जङ्गलसे हरिण आया होगा, और तुम्हारे घरसे चक्कीके दोनों पाट चुराकर पैरोंमें बाँधकर कूद-फाँद गया होगा; उसीकी यह बड़ी-बड़ी छाप पड़ी है, सो जानो! उन भोंदूलोगोंने भी बिना विचारे हाँ महाराज! हाँ! हाँ! ठीक! ठीक! कहकर मान लिये। किसीने भी वहाँपर सत्य बातका विचार कुछ भी नहीं किया। वैसे ही दूसरी कथा भी सुनिये!:—

(२) दृष्टान्तः— एक साल वर्षा ज्यादा हुई, तो इससे नदीमें खूब बाढ़ आ गयी। नदीके किनारेके कई गाँव-के-गाँव बह गये, इसकारण एक तेलीका कोल्हू भी बहते-बहते चला आया, और उसी भोंदूके गाँवके पास किनारेमें अटककर रह गया था। जब उस कोल्हूको भोंदू लोगोंने देखा, तो बड़े आश्चर्यमें पड़ गये कि— यह क्या चीज है? अनेकों तर्क-वितर्क किये, उलटाय, पलटायके देखे, तो भी वे कुछ समझ नहीं सके। आखिरमें सब लोगोंने सलाह करके निर्णयके वास्ते उसी लालबुझक्करको बुला लाये। उसने भी देखा, तो वह भी देखकर दङ्ग हो गया। परन्तु, अपनी बुद्धिमानी दिखानेके लिये एक कपोल कल्पित बात बनाकर उसने कही, सुनो!:—

दोहाः— "बूझनेवाला लालबुझक्कर, और न बूझै कोय॥ सुरमादानी भगवानकी, साँच ही देखी सोय॥"

अरे भाइयो! इस बातको मैं ही समझ सकता हूँ! और दूसरेलोग कोई नहीं जान सकते हैं। सुनो— जैसे हमलोगोंकी सुरमादानी होती है, सो छोटी होती है। यह उसी प्रकार बड़ी दिख रही है, इसलिये वैकुण्ठ निवासी भगवान्‌की ही यह सुरमादानी है। यह डण्डा जो है, सो सुरमा लगानेकी सलाई है। जो तुम देख रहे हो, सो स्वर्गीय वस्तु है। मैं जो कहता हूँ, सोई बात सच्ची है, ऐसा जानो। ऐसी-ऐसी गप्पकी बात सुनकर भोंदूलोग सब उसकी वाह! वाह! कह कर बड़ाई करने लगे। इसप्रकार झूठी बातको भी सच्ची ही मान लिये। ऐसे कई दृष्टान्त लालबुझक्करके बारेमें आया है। उपरोक्त तरहसे मिथ्या कथन ही उसने किया है, सो जान लीजिये!॥

सारांशः— गुरुवालोग वे ही मिथ्यावादी लालबुझक्कर बने हैं। वे अनेक तरहसे अज्ञानी मनुष्योंको भ्रमाकर मिथ्या कल्पनामें डालकर अरुझा रक्खे हैं, पारखी सद्‌गुरुकी दया बिना सो भेद यथार्थ लखनेमें नहीं आता है, इसीसे सब भूलमें ही पड़े हैं, बिना पारख॥

॥ ❀ ॥ मानुषविचार ग्रन्थकी द्वितीय भाग समाप्तिका साखी वर्णन ॥ ❀ ॥

साखीः— कबीर धूरकी यों कहै * मसहफकी सम्बाद॥
[३] मारे तेरे ना मुवा * डोलै खैराबाद॥ ३२॥

॥ * ॥ इति श्रीमारवाड़निष्ठ श्रीरामरहससाहेब विरचित— मानुषविचार ग्रन्थः द्वितीय भाग षड्दर्शनादि वर्णन मूल ग्रन्थः समाप्तम्॥ २॥ * ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

कबीर = कायावीर कबीर, सो जिसकी सत्तासे काया सुन्दर होकर चल रही है, सो चैतन्य मनुष्य जीव हैं। परन्तु, पारख बिना अबोध हैं। ऐसे अबोध लोगोंसे—

धूरकी = धूर्त, ठग, वञ्चक, पाखण्डी, गुरुवा-लोग, अनेक तरहकी रोचक-भयानक आदि वाणी सुनाते हैं। सोई धूर्तोंकी बात अबोध जीवोंको दृढ़ हो जाती है या दृढ़ हो गयी है। क्योंकि—

यों कहैं = गुरुवालोग ऐसी-ऐसी बातें बना-बनाकर कहते हैं कि— सुननेवाले उसमें फँस जाते हैं। यों कहते हैं कि, हे जीव ! तुम ईश्वरके अंश हो, मायामें मत् भूलो, ईश्वरमें चित्त लगाओ, तो उसीमें तुम मिल जाओगे, इत्यादि प्रकारसे सुनाते हैं। और—

मसहकी = } हिन्दू, मुसलमानोंने न्यारा-
सम्बाद = } न्यारा धर्म, मजहब या पन्थोंकी जमात बनाकर उसका विस्तार कर रक्खे हैं। ग्रन्थोंमें गुरु-शिष्यका सम्वाद, प्रश्नोत्तर लिख रक्खा है। और यहाँ अनेक मतोंकी वार्तालाप चल रही है। कहीं शून्य आकाशवत् घनवत् व्यापक अद्वैत ब्रह्मकी चर्चा, उपदेश हो रहा है; वही बात सुन-सुनके जीव भ्रमिक हो रहे हैं।

मारे तेरे = } ग्रन्थकर्त्ता यहाँपर कहते हैं कि,
ना मुवा = } हे मिथ्यावादी ! गुरुवालोगो ! तुम्हारे मारनेसे जीव नहीं मर सकता है, जीव तो अमर-अखण्ड है। और जो तुम जीवकी जानपना उड़ाकर भ्रमरूपी ब्रह्म बनाना चाहते हो, सो भी तुम्हारी भूल है। सत्य जीव कभी मिथ्या शून्यरूप ब्रह्म हो नहीं सकता है। तुम्हारी शक्तिभर तो तुम लोगोंने जीवोंको खूब मारा, भ्रमाया, भटकाया है। जीवके स्वरूपका तो नाश नहीं होता है, इसीसे जड़ाध्यासी होकर जीव दुःख ही पा रहे हैं। सो सुख प्राप्तिके वास्ते गुरुवालोगोंके पास जाते हैं। किन्तु—

डोलै = } तहाँ कुशल-मुक्तिरूप कल्याण-
खैराबाद = } पदकी चाहनासे जैसे-जैसे कर्म, भक्ति, योगादिका मार्ग बताये, वैसे-वैसे जीव अनेकों साधनाओंमें डोले, घूमे-फिरे; परन्तु, पारख बोध बिना सो सब व्यर्थ हुआ। मुक्ति तो जीवोंकी नहीं हुई, इसकारण जड़ाध्यासवश चारखानी चौरासी योनियोंमें जीव डोल रहे हैं। कर्म संस्कारके अनुसार फल भोग रहे हैं। जब पारखबोध जान पावेंगे, तभी आवागमनोंसे जीव बचेंगे, ऐसा जान लेना चाहिये ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता इस अन्तिम साखीमें कहते हैं कि— कबीर = नरजीवोंसे धूर्त गुरुवालोग ऐसी-ऐसी बातें बना-बनाकर कहते हैं कि, अबोध मनुष्य सुन-सुनकर उन्हींके फन्दोंमें फँस जाते हैं। और मत, मजहब, पन्थ, धर्म, सम्प्रदाय आदिकी वार्तालाप, सम्वाद बहुत तरहके हो रहे हैं। कोई जीवको शून्यरूप व्यापक ब्रह्ममें लेजाकर मिलानेकी चर्चामें लगे हैं। कोई ईश्वरके दास बनाने-की मनसूबा कर रहे हैं, इत्यादि वार्ता हो रही है। सब प्रकारसे जीवपदको मारना वा उड़ाना चाहते हैं। अतः यहाँपर श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे धूर्त गुरुवालोगो ! तुम्हारे कथनसे शून्य-रूपी ब्रह्म, आत्मा आदि बनाकर जीवको मारने-मिटानेसे भी जीव मरा या नाश नहीं हुआ, न कभी मर ही सकता है। क्योंकि, वह तो स्वरूपसे नित्य, अखण्ड है, फिर वह किसीमें जाके क्यों मिलेगा ? परन्तु, तुम्हारे फन्दोंमें पड़कर खैर-आबाद या कुशल वा मुक्त होनेकी इच्छासे जो नाना साधनाओंमें डोल रहे हैं, सो यही भ्रमरूपी जड़ाध्यासवश जन्म, मरण, गर्भवासके चक्रमें डोल रहे हैं। जब पारखी सद्गुरुकी दयासे किसी जिज्ञासु मनुष्यकी अपरोक्ष पारखबोधमें स्थिति हो जायगी, तो उसका आवागमन भी सदाके लिये मिट जायगा; वह जीवन्मुक्त हो जायगा। यही स्वरूप स्थिति बनाना मनुष्योंका मुख्य कर्त्तव्य है। ऐसा विवेक-विचार करके जान लेना चाहिये ! ॥ ३२ ॥

॥ ❀ ॥ [टीकाकार कृत— तृतीय ग्रन्थ समाप्तिका सद्गुरु पद–वन्दना वर्णन ।] ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

पारख दीन्हा बोध जिन्ह । बन्दौंपद त्रय बार ॥ कबीर पूरण रामरहस । बन्दीछोर उदार ॥ १ ॥
बड़ उपकारी सद्गुरु! पारख ज्ञान दिनेश ॥ हिय तम बन्धन नाशकरि । जीवन्मुक्त स्वदेश ॥ २ ॥
पारखी गुरु सर्वोपरि । ज्ञानिनमें सम्राट् ॥ भ्रम नशि पारखबोध करि । स्थितिस्वरूपकी ठाट ॥ ३ ॥
सद्गुरु कबीर दयानिधि । बीजक सत उपदेश ॥ बीजक ज्ञान प्रतापते । पहुँचे हंस स्वदेश ॥ ४ ॥
सद्गुरुके अनुयायि सब । पारखी बीजकनिष्ठ ॥ निजपर करिकल्याण सो । ज्ञान शिरोमणि श्रेष्ठ ॥ ५ ॥
पारखी गुरु शरणागत । रामस्वरूप सो दास ॥ बोध भई गुरुकी दया । पारख ज्ञान प्रकाश ॥ ६ ॥
सद्गुरुके गुण गाइये । ध्याइये पारख नीक ॥ हंस रहनी ठहराइये । मुक्ति मार्ग सो ठीक ॥ ७ ॥
महादरिद्री जीव सब । बोध बिना नादान ॥ मानुष घटमें आयके । भटके बहुत अयान ॥ ८ ॥
मानन्दी बहुविधि करि । जालकियो विस्तार ॥ तामें फँसी फँसावते । काल कठिन भवधार ॥ ९ ॥
मिले पारखी सद्गुरु । पारख दीन्हा दान ॥ मिटी दीनता तम नशि । निज स्वरूप पहिचान ॥ १० ॥
मानुष तन कर्तव बिनु । पशुबुद्धि जहँड़ाय ॥ गुरु बुद्धिको पायके । पारख लीन्ह छोड़ाय ॥ ११ ॥
खानि-वाणि जञ्जालबहु । अरुझे जीव भुलाय ॥ रामस्वरूप गुरुकी दया । बिरले पारख पाय ॥ १२ ॥
जड़ चेतन निर्णय करे । जड़ाध्यासको त्याग ॥ अधिकारी मानुष सोइ । रहनी दृढ़ वैराग ॥ १३ ॥
दीन्हा बीजक ज्ञान जिन्ह । सो गुरु बन्दीछोर ॥ कबीरसाहेब पारखी । परखायो सब घोर ॥ १४ ॥
बीजक भाव प्रत्यक्ष करि । टीका लिखि विस्तार ॥ पूरणसाहेब पारखी । पारख बोध दातार ॥ १५ ॥
बीजकके आधार लै । पञ्चग्रन्थी रचि दीन्ह ॥ रामरहस गुरु पारखी । पारख पदको चीन्ह ॥ १६ ॥
तृतीय ग्रन्थ मानुष– । विचार प्रथमें भाग ॥ भागद्वितीय षट्दर्शन । पाखण्ड नवषट लाग ॥ १७ ॥
मूल प्रमाण विस्तारते । व्याख्यालिखा बनाय ॥ रामस्वरूपदास यहीं । टीका समाप्त कराय ॥ १८ ॥
पारखी गुरु परसादते । मानुष विचार समाप्त ॥ टीका सरल सुबोधिनी । बोध लहो पर्याप्त ॥ १९ ॥
पारखी गुरु सतज्ञान यह । कृपा कियो भो प्राप्त ॥ रामस्वरूप पद बन्दवूँ । हियवचधारण आप्त ॥ २० ॥

(२००७) (७) (१)
युगसहस्र ऋषि सम्वत । नभ असाढ़तिथि पूनम ॥ वार गुरु मध्याह्नमें । पूर्णटीकागुरुपदनमः ॥ २१ ॥

॥ * ॥ इति श्रीपारखनिष्ठ पारखीसन्त श्रीरामरहससाहेब विरचित मूल पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थे–
तृतीय ग्रन्थः मानुषविचारान्तर्गत द्वितीय भाग— षड्दर्शनादिक वर्णनस्य—
रामस्वरूपदास, अनुवादित— शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख
रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित (सद्गुरुकी दयासे) सम्पूर्णम् ॥ ३ ॥ * ॥

श्रीसद्गुरुकी दयासे इति मानुषविचार सद्ग्रन्थकी टीका–व्याख्या सम्पूर्णम् ।

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

बन्दीछोर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी दयासे प्रकाशित— मूल बीजक सद्ग्रन्थके सत्य पारख सिद्धान्तानुसार—

साधुशिरोमणि कबीरपन्थी सन्त—महात्मा पारखनिष्ठश्रीरामरहससाहेब विरचित

सद्ग्रन्थः मूल-पञ्चग्रन्थी—सटीक ।

॥ ❀ ॥ अथ गुरुबोध नामक, चतुर्थ ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ४ ॥ ❀ ॥

[शब्दार्थ—भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ अथ टीकाकार कृत — श्रीसद्गुरु पद-वन्दना — मङ्गलाचरण प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

बार-बार बन्दन करौं । पारख ज्ञान प्रकाश ॥ कबीर पूरण रामरहस । सत्य ज्ञान तव खास ॥ १ ॥
कृपा कियो समरथ गुरु ! परखायो सब जाल ॥ चिद्स्वरूपठहरावकरि । फन्द मिटायो काल ॥ २ ॥
गुणागार अघ हरण प्रभु ! पावन पतित दयाल ॥ उपकारी हो पारखी । रामस्वरूप सम्हाल ॥ ३ ॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

नरजीव अज्ञ अबोधको । गुरुबोध दाता धन्य हो ! ॥ परम दयालू पारखी । कबीर शिरोमणिमन्य हो ! ॥
बुद्धिहीन मैं हूँ प्रभो ! मानन्दी बहुविधि अन्य हो ! ॥ गुरुबोध पुनि-पुनिदेइके दरशायसत चैतन्यहो ! ॥ ४ ॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

गुरुबल परख महान । घटना देखहु सत्य ही ॥ रामस्वरूप पहिचान । मोसम अज्ञ ही तज्ञ करै ॥ ५ ॥
मैं बालक मतिमन्द । का जानत सब भेदको ॥ गुरुकी दया स्वच्छन्द । रामस्वरूप अनुवाद भो ॥ ६ ॥

छन्दः— कीन्ह पारखी गुरु दया जब । भ्रम भूल धोखा छार भो ॥
शिष्य प्रेमसे प्रश्न करि । गुरु बोधका आधार भो ॥
हूँ कौन ? जग यह काह है ? कर्त्ता कोई है या नहीं ? ॥
इसको जनावो सद्गुरु ! कर्त्तव्य मैं जानूँ नहीं ॥ ७ ॥
इमि भाँति जन पूछत गया । गुरुदेव उत्तर जो दिये ॥
शङ्का मिटाये सार सोई । गुरुबोधमें सो कहि दिये ॥
सद्ग्रन्थ सोई यह अहै । देखि-सुनि निर्णय लहै ॥
रामस्वरूप गुरुकी दया । टीका खुलासामें कहै ॥ ८ ॥

साखीः-करन चहौं सद्भावसे । टीका गुरुमुख सार ॥ विघ्न मिटै गुरुकी दया । मन वच कर्म सुधार ॥ ९ ॥
रामस्वरूपदास हिय । बोध गुरु परकाश ॥ ताते यह गुरुबोधको । अर्थ यथार्थ प्रकाश ॥ १० ॥

॥ * ॥ इति टीकाकार कृत— श्रीसद्गुरु पद-वन्दना, मङ्गलाचरण-पद समाप्तः ॥ * ॥

सम्बन्ध— पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थमें यहाँसे "गुरुबोध" नामक चतुर्थ ग्रन्थ शुरू होता है। इस ग्रन्थमें प्रारम्भके प्रथम दोहासे लेकर 'गुरु शतकसार नाम स्तोत्र' के अन्ततकका भाग "सन्ध्यापाठ" में लिया गया है। तदनन्तर जिज्ञासु सत् शिष्यका प्रश्न चलता है। उसका यथोचित उत्तर सद्गुरुने दिया है। गुरुबोधमें १ से २३ तक क्रमशः प्रश्नोत्तर विस्तारसे वर्णन किया गया है। अन्तमें रहनीके बारेमें सद्गुरुने विशेषरूपसे उपदेश कहा है। पञ्चग्रन्थीमें यही गुरुबोध भाग मुख्य माना जाता है। इसमें सद्गुरुका निर्णय उपदेश समाधानके रूपमें कहा है। पारखी सद्गुरुकी दयासे जो मुझे बोध हुआ, वही मूलका पूर्ण भाव दरशाकर अर्थ-व्याख्यामें कहा गया है। शान्त चित्तसे उसे पठन-पाठन मनन करके पूर्ण पारखबोध प्राप्त कर लेना चाहिये। सद्ग्रन्थके सम्बन्धका यही सत्यसार ,है सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ ग्रन्थकर्त्ता कृत— मङ्गलाचरण— सद्गुरु पद-वन्दना ॥ ❀ ॥

दोहाः— नमों नमों गुरुदेव जू ! * साधु स्वरूपी देव ! ॥

[१] आदि अन्त गुण कालके * जाननहारे भेव ॥ १ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

नमों नमों = गुरुदेव जू ! = हे सद्गुरुदेवजी ! आपको मैं बारम्बार अथवा त्रयबार सिर झुका-झुकाकर बन्दगी या नमस्कार करता हूँ !—

साधु स्वरूपी = देव ! = त्यागी वैराग्यवान् साधुके भेषको धारणकर आप निज-स्वरूप बोधमें ही स्थित हो, और दिव्य सद्गुण धारण सहित आप पारख बोधके दाता हो ! और—

आदि अन्त = गुण कालके = आदिसे अन्त पर्यन्त वा जन्म-मृत्यु होकर गर्भमें जानेका कारण जगत्में अन्त = ब्रह्म आदिकी मानन्दी है। सो गुरुवालोगोंकी कल्पित वाणीका जाल है, तथा विषयोंका फन्दा है।

जाननहारे भेव = ऐसा भेदको परखकर आप अच्छी तरहसे जाननेवाले हो, और जिज्ञासु मनुष्योंको भी परखाकर सब भेद जना देनेवाले आप महान उपकारी हो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् पारखी सद्गुरु द्वारा सत्यासत्यका यथार्थ बोध होनेपर उनके उपकार, दयाको यादकर शिष्य इष्टदेव सद्गुरुकी वन्दना करता है। तहाँपर एक ही बार "नमों' कहनेसे भी तो होता था, दो बार क्यों कहा ? यह शङ्का होवे, तो सुनिये ! पारखी सद्गुरुसे सर्व संशय निवृत्त होनेसे जीवका महान् उपकार हुआ। इससे प्रेमी शिष्य गद्-गद् होकर दीनतासे दो बार "नमों-नमों" कहकर वन्दना करता है। प्रेम उद्वेगसे एक ही बात कहनेमें बार-बार या दो-तीन बार आता है। अथवा त्रिविधि तापोंसे छुटकारा पानेके लिये सत्य प्रेमसे साधु-गुरुको भक्ति पूर्वक त्रयबार बन्दगी किया जाता है। जिससे अभिमानादि दोष छूट जाते हैं। अथवा बाहर स्थूलदेहसे सद्गुरुदेवके प्रत्यक्ष चरणकमलोंकी वन्दना करते हुए भीतर सूक्ष्म देहसे यानी अन्तःकरणसे गुरुपद पारख ज्ञानकी भक्ति पूर्वक वन्दना करता हूँ ! क्योंकि, खानी-वाणी ये दो जबर्दस्त जाल हैं। बिना सद्गुरु-की दयासे कोई इससे छूट नहीं सकते हैं। इसलिये मैं पुनः-पुनः सद्गुरुदेवसे प्रार्थना करता हुआ कहता हूँ कि— हे प्रभो ! मैं फिर उन जालोंमें कभी न भूलूँ, मुझे यह शक्ति दीजिये ! गुरुमें 'गु' अन्धकार, अज्ञान, अविद्या, आवरणको कहते हैं। और 'रु' कहिये प्रकाश, ज्ञान, सद्विद्या, स्वच्छता कहलाता है। सो यहाँ तमरूप अज्ञान जड़ासक्ति स्वरूपके अबोधको सत्यज्ञान पारखका प्रकाश करके मिटाने-वाले, ऐसे समर्थ सद्गुरु धनी हैं। अथवा अतिशय श्रेष्ठ, गरुवा (वजनदार) सत्य पारखपद है। 'देव' कहिये सब देवताओंमें श्रेष्ठ देह सहित सत्य-विचारादि सर्व सद्गुणधारी शिष्योंको पारखबोध देनेवाले महान दाता होनेसे और दिव्य स्वयं ज्ञानका प्रकाशी ऐसे सद्गुरुदेवजी पारखी हैं। सो उनकी रहनीका भेष प्रत्यक्ष साधु स्वरूपी मन, वचन, इन्द्रियोंका साधके वशमें किये हुए सच्चे त्यागी

वैराग्यवान्का है। साधुभेषका चिह्न— लङ्गोटा, अचला, कण्ठी आदि संयुक्त समस्त सद्गुणोंको धारण किये हुए शान्त स्वरूपी स्व-स्वरूपके बोधदाता, ऐसे सद्गुरुदेव हमारे पूज्यपाद पारखी हैं। आप शुरूसे आखिरी तकके गुण-दोषोंके परीक्षक हैं। 'आदिसे अन्त तक' कहिये जगत्से ब्रह्म तकके अथवा खानी जालसे वाणीजाल तकके अध्यासको नरजीव सब, जन्मसे मरण तकमें संस्कार टिकाय लेते हैं। इसलिये बारम्बार आवागमनमें पड़े रहते हैं। इसीसे 'आदि' जगत्का विषयानन्द तथा 'अन्त' ब्रह्मका ब्रह्मानन्द यह दोनों ही काल=स्त्री, और गुरुवालोगोंका विषय, कल्पनाके गुण जीवोंको बन्धनदायी हैं। ऐसे समस्त भेद=मर्म बन्धन-मुक्तिको यथार्थ जाननेवाले पारखी सद्गुरु आप हैं। जिसपर आप दया करके काल-जालोंको परखाय देते हो, वह भी इन सब जालोंको परखकर बच जाता है। ऐसे साधु स्वरूपी तन, मन, और वचनोंको साधे हुए हे सद्गुरुदेवजी! आपको मैं बार-बार वन्दना करता हूँ! ॥ यह भावार्थ है ॥ १ ॥

सोरठाः— मेटेउ कालको जाल ❀ याते गुरु तव नाम यह ॥
[१] बन्दीछोर दयाल ! ❀ अशरण शरण उदार अति ॥ २ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सद्गुरो ! आपने—

मेटेउ = कालको = जाल = काल=कल्पना, गुरुवा, स्त्री और मन इनके, जाल=धोखा, भ्रम, वाणी, विषय, मानन्दी आदिको परखायकर मिटाय दिये हो, छुड़ाय दिये हो, जीवोंको सत्य पारखबोध किये हो !—

याते गुरु तव = नाम यह = इसकारणसे 'गुरु' यह नाम आपका यथार्थ ही सत्य है। क्योंकि, 'नाम' कहिये पारखबोध यह आपका ही बोध है। सो सब अज्ञान-भूलको छुड़ानेवाला है।

बन्दीछोर दयाल !=जीवोंके समस्त बन्धन छुड़ानेवाले दयालु हे बन्दीछोर ! श्रीगुरुदयाल साहेब !—

अशरण शरण = उदार अति = आप अशरण नरजीवोंको शरणमें लेकर रक्षा करनेवाले हो ! तथा अत्यन्त उदार या परमदानी पारखी हो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् जीव अनादि कालसे ही काल-जालोंमें पड़ा हुआ व्याकुल पड़ा था, कैसे कि, मन-मानन्दीमें पड़कर सुख भोगोंकी चाह होनेसे संसारमें— स्त्री, पुत्र, कुल, कुटुम्बोंके विषय भोगोंके, जालोंमें तथा गुरुवाओंकी वाणी कल्पित देवी-देवता, भूत-प्रेत, ईश्वर-ब्रह्म, खुदा आदिके भ्रम जालोंमें हम सब जीव पड़कर बेहाल हो रहे थे, उस जालको दरशाय, परखायकर बन्धनोंको आप श्रीसद्गुरुने मेट दिये, हमारे हित-कल्याण कर दिये, भ्रम, कल्पना, भूलोंको मिटाय दिये, पारखबोध दृढ़ाय दिये ! इसकारणसे हे प्रभो ! आपका 'सद्गुरु' यह नाम सत्य यथार्थ घटित होता है। और 'नाम' कहिये 'बोध' सो पारखबोध देकर तमरूप अज्ञान विनाश कर दिये हो, इससे आप सच्चे सद्गुरु हो ! ग्रन्थकर्त्ता यहाँपर अपने सद्गुरुके प्रति संकेत करके कहते हैं, कि- हे बन्दीछोर श्रीगुरुदयालसाहेब ! तथा पारखी साधु-गुरु ! आप सकल माया-मोह, खानी-वाणी आदि बन्धनोंसे छुड़ाकर जीवोंको मुक्त करनेवाले परम दयालु दयासागर हो ! और जिस नरजीवको कहींपर स्थिति-ठहराव नहीं मिलती है, तहाँ उसे शरण आनेपर अपनी शरणमें लेकर पारख स्थिति चैतन्य-पदपर ठहरानेवाले अशरण-शरण या शरणागत रक्षक आप अत्यन्त उदार स्वभावके हो ! क्योंकि, अन्न, वस्त्र, धनादिको दान देकर परोपकारमें लगानेवाले ऐसे उदार तो बहुत हैं। परन्तु, वह देह तककी ही क्षणिक उदारता है। आप नित्य, सत्य, अखण्ड, शुद्ध चैतन्यको बतानेवाले सत्य उपदेश पारखबोधके दाता तो ऐसे हो कि- भव-बन्धनको ही नशानेवाले हो ! मुक्तिदाता हो ! सो मैं आपकी धन्यता कहाँतक वर्णन करूँ ? अब सिर नवायकर गुरुपदमें त्रयबार वन्दना ही करता हूँ ! ॥ अर्थात् काल-जालको मेट दिये, इससे आपका यह 'गुरुनाम' हुआ; और बन्धन छुड़ाये, इसलिये आप बन्दीछोर दयाल कहलाये ! सो मेरे सद्गुरु हे श्रीगुरुदयालसाहेब ! आप अशरणको शरणमें लेनेवाले अत्यन्त उदार चित्तवाले हो ! ऐसे

मुख्य भाव दरशाके ग्रन्थकर्त्ताने यह सो ठामें कहा है; ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

सम्बन्ध— अब यहाँसे चौपाई १ से लेकर चौपाई २४ तक गुरुस्तुतिका स्तोत्र सौ नाम तक वर्णन किया गया है; सो जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ गुरुशतक सार नाम स्तोत्र वर्णन ॥ चौपाई १ से २४ तक है ॥ भाग— १ ॥ ❀ ॥

[सद्गुरुके सत्यबोधकी विशेषता दर्शानेमें विशेषतः सौ सार नामोंका वर्णन हुआ है ।]

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१. दीनबन्धु करुणामय सागर * हंस उद्धारण तारण आगर ॥ ३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सद्गुरो ! आपमें कैसे सद्गुण हैं कि—

दीनबन्धु = दीन-दुःखी, असहाय, गरीब, अज्ञानी शरणागत जीवोंकी रक्षा (बचाव) करनेवाले आप बन्धु-बान्धव = सगे भाईके समान आधार देनेवाले हो !

करुणामय = सागर = } हे प्रभो ! आप करुणा स्वरूपी हो ! दयाके तो समुद्र समान ही हो । और—

हंस उद्धारण = हंसरूप जिज्ञासु नरजीवोंको जड़-चैतन्यका भेद बतायकर हंस गुण-लक्षण धारण कराय, जड़ासक्ति मिटाकर भव-बन्धनोंसे उद्धारकर छुड़ानेवाले ऐसे—

तारण = आगर = } तरण-तारण सर्व श्रेष्ठ पूर्ण चतुर, खानी-वाणी जाल आवागमनोंसे बचानेवाले हो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् यहाँपर सत् शिष्यने सद्गुरुके गुण गान करके कही हुई स्तुतिमें मुख्य सौ विशेषणयुक्त नामोंका ग्रन्थकर्त्ताने वर्णन किया है । हे पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ! तथा साधु-गुरु ! आप प्रथम—(१) तो दीनबन्धु = दीन दुःखियोंके हितकर रक्षक हो । (२) करुणामय = दया स्वरूपी अत्यन्त दयालु हो । (३) सागर = सागरके समान गम्भीर दयाके सागर हो । (४) हंस = नीर-क्षीरका निवेरा करनेवाले हंसरूप पारखी हो । (५) उद्धारण = जीवोंको काल-जालोंसे उद्धार करनेवाले हो । (६) तारण = भवसागरसे पार उतारकर मुक्त करनेवाले हो । (७) आगर = पूर्ण चतुर सर्व श्रेष्ठ ऐसे आप सर्वोपरि हो ! ॥ ३ ॥

८ ९ १० ११ १२ १३ १४
२. दीनानाथ शरण सुखदाई * अभय तासु पद गुरु समराई ॥ ४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

दीनानाथ = शरण सुखदाई = } हे दीनानाथ सद्गुरो ! आपकी शरणमें जो आते हैं, उनको मुक्ति सुख देनेवाले आप सुखदाता हो !

अभय तासु पद = गुरु समराई = } (ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं-) ऐसे सद्गुरुका पद निर्भय करनेवाला है । जो-जो सद्गुरुकी शरणमें गये, उन्हें सद्गुरुने अपने समान निर्भय किये या कर देते हैं, यानी पारख पदमें श्रेष्ठ बना देनेवाले हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् (८) दीनानाथ = दीन-अनाथोंके आप नाथ हो । (९) शरण = शरणागतके रक्षक हो । (१०) सुखदाई = निवृत्ति-मुक्तिके सुख देनेवाले हो । (११) अभय = सब प्रकारके भयसे रहित हो । (१२) तासु पद = सद्गुरुका पारखपद निर्भय करनेवाला है । (१३) गुरु = अन्धकार अज्ञानको मिटाकर पारख प्रकाश करनेवाले सद्गुरु हो । (१४) समराई = राजाके समान सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ हो ! और सत् शिष्योंको अपने समान मुक्त करनेवाले हो ! ॥ ४ ॥

१५ १६ १७ १८ १९
३. बन्दीछोर ! बिरद अति तासू * हंसरूप परगट जग जासू ॥ ५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

बन्दीछोर = बिरद = अति तासू = } हे बन्दीछोर ! आप जीवोंके सब बन्धन छुड़ा देने वाले हो ! आपका भेष-बाना भी अतिपवित्र साधुरूप त्यागीका है । जिसकी रहनी-गहनी धारण कर लेनेसे जीवोंके सकल बन्धन छूट जाते हैं । तिस त्याग भेषकी महिमा अत्यन्त श्रेष्ठ है ।

हंसरूप = सफेद वस्त्र, सफेद तिलक, ऐसे
परगट = शुद्ध हंसरूप भेष तथा जड़-
जग जासू = चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय-रूप आपका सत्य पारख सिद्धान्त जगत्में प्रत्यक्ष ही है। जिसके धारण करनेसे जीव मुक्त हो जाता है॥

व्याख्या— अर्थात् (१५) बन्दीछोर = खानी-वाणीके सब बन्धनोंको छुड़ा देनेवाले हो। (१६) बिरद = त्याग भेषधारी हो। (१७) अति तासू = उस त्याग-वैराग्यमें दृढ़ अतिशय विरक्त हो। इसीसे उस भेषकी महिमा भी अति विशेष है। (१८) हंसरूप = हंसके समान शुद्ध-साफ उज्ज्वल स्वरूपमें हो! चैतन्य स्वरूपमें स्थिति किये हुए हो। (१९) परगट जग जासू = जिनका सुयश जगत्में प्रत्यक्ष है; यानी जगजाहिर ही है। जड़-चैतन्य निर्णयरूप पारखको आपने ही संसारमें प्रगट किये हैं॥ ५॥

४. अधम[२०] उद्धारण तारण[२१] स्वामी! * परवर[२२] दिगार मालिक[२३] अनुगामी[२४]॥ ६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

अधम उद्धारण = माया-मोहादिमें आसक्त,
तारण स्वामी! = ऐसे अधम जीवोंकी भी आसक्ति छुड़ाकर उद्धार करनेवाले, हे स्वामी! 'स्व' कहिये अपना, अमी = अमृत अविनाशी अखण्ड चैतन्य जीव सत्य है, यह बोध देकर तारनेवाले आप हो!

परवर दिगार = ज्ञानके गरीब जीवोंकी
मालिक अनुगामी = रक्षाकर मुक्त करनेवाले हे प्रभो! आप सब सूक्ष्म कलाके जानकार, ईश्वरादि मिथ्या कल्पनाके विनाशक हो! आप हमारे मालिक हो!॥

व्याख्या— अर्थात् (२०) अधम उद्धारण = अधम-पापी मनुष्योंको भी सत्य शिक्षा दे सुमार्गमें लगाकर उद्धार करनेवाले हो। (२१) तारण स्वामी = हे स्वामी! आप नरजीवोंको भवसागरसे पार उतारनेवाले मुक्ति दाता हो। (२२) परवर दिगार = गरीब अज्ञानी नरजीवोंको पारख ज्ञानका बोध देकर रक्षा करनेवाले हो। (२३) मालिक = आप हमारे मालिक परम माननीय पूज्य हो! (२४) अनुगामी = सूक्ष्म कलाके आप जानकार हो! अतः मैं भी आपके पथका अनुगमन करता हूँ॥६॥

५. काल जालके[२५] मेटनहारे * बिरद[२६] लाज राखन[२७] पति[२८] प्यारे॥ ७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सद्गुरुसाहेब! आप ही एक—

काल जालके = गुरुवालोग और स्त्रियाँ, इन
मेटनहारे = कालोंकी वाणी कल्पना, और विषय फन्दा आदि सब जालोंको दिखा कर मिटा देनेवाले, परखाकर-हटाकर जीवको मुक्त करदेनेवाले हो। तथा—

बिरद लाज = त्याग भेषकी लज्जा या मर्यादा-
राखन = को कायम रखनेवाले आप हम
पति प्यारे = सबके प्यारे स्वामी हो! अथवा हम भेषधारियोंकी लाजको रखनेवाले, आप सर्वश्रेष्ठ शिरमौर पति या प्रमुख परम प्यारे हो!॥

व्याख्या— अर्थात् (२५) काल जालके मेटनहारे = कालकी समस्त मोटी-झीनी जालोंको परखाकर एकदम मिटा देनेवाले हो। (२६) बिरद लाज राखन = आप अपने त्याग भेषकी लज्जाको सुरक्षित करके बनाये रखनेवाले हो। (२७) पति = ज्ञानकी महान् इज्जतवाले आप शिष्योंके स्वामी हो। (२८) प्यारे = विवेकी सन्तोंको प्रिय करनेवाले आप हमारे प्यारे प्रेमपात्र हो!॥ ७॥

६. धीरज[२९] दया[३०] तत्त्व संयुक्ता[३१] * राम भूमिका[३२] बासक युक्ता॥ ८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

धीरज दया = हे सद्गुरुसाहेब! आप
तत्त्व संयुक्ता = सत्यपुरुष सद्गुणोंके भण्डार हो, इसलिये धीरज, दया, शील, विचार, सत्य, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति इत्यादि तत्त्वोंके शुद्ध गुण-लक्षणसहित होनेसे मन, वचन,

कर्मके विकारोंसे आप रहित रहते हो; और—
राम भूमिका = } रमैया राम चैतन्य जीवको
बासक युक्ता = } पारख भूमिकामें ले जायके
युक्तिपूर्वक जगत् वासनासे रहित, जीवन्मुक्त स्वरूप स्थितिमें रहते हो। सोई उपदेश युक्तिसे देते हो, ऐसे आप बड़े युक्तिवाले हो॥

व्याख्या— अर्थात् (२९) धीरज=धैर्यवान् अडिग्ग हो। (३०) दया=सर्वाङ्ग दयाको पालन करनेवाले परम दयालु हो। (३१) तत्त्व संयुक्ता= पञ्चतत्त्वोंके शुद्ध भाग सत्य-विचारादि शुद्ध हंस देहके तत्त्व-प्रकृति सहित आप सत्पुरुष हो। (३२) राम भूमिका बासक युक्ता= पारख भूमिकामें जीवको युक्तिपूर्वक ठहरानेवाले हो! तथा पारख बोधके संयुक्त चैतन्य भूमिकामें टिके रहनेवाले हो! हे साहेब! ऐसे आप सबसे श्रेष्ठ हो!॥ ८॥

७. चिन्ता रहित अचिन्त गोसाँईं ❀ परमरूप परकाशक साँईं ॥ ९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—
चिन्ता रहित = } चिन्ता, शोच, फिक्र सब
अचिन्त गोसाँईं = } विषय भोगोंकी चाहनासे होती है। वीतराग-त्यागी होनेसे सब चिन्तासे रहित अचिन्त या निश्चिन्त पारखी सद्गुरु हैं। इसलिये 'गो'=इन्द्रियों-के दमनकर्त्ता 'साँईं'=स्वतन्त्र स्वाधीन मालिक या स्वामी ऐसे सद्गुरु हैं!—
परमरूप = } परमपारखी स्वरूपनिष्ठ
परकाशक साँईं = } पारख प्रकाशक सद्गुरु स्वामी हैं। सो सद्गुरुने पारख बोधका प्रकाश करके, "चैतन्य जीवोंके ऊपर दूसरा कोई कर्त्ता मालिक ईश्वर, ब्रह्म, खुदादि नहीं है। यह तो जीवकी कल्पनामात्र है।" ऐसे परखाये हैं। 'जीव स्वयं ही सत्य है' ऐसे ज्ञान प्रकाशक श्रेष्ठ स्वामी या साहेब आप हैं॥

व्याख्या— अर्थात् (३३) चिन्ता रहित=सब चिन्ता-शोकोंसे सर्वथा आप रहित हो। (३४) अचिन्त= निश्चिन्त, बेफिक्र होके आप रहते हो। (३५) गोसाँईं = गोस्वामी अर्थात् मन-इन्द्रियादिको दमनकर आप उन्हें निग्रह किये रहते हो, ऐसे स्वामी हो। (३६) परमरूप= सबसे श्रेष्ठ स्वरूप पारखको ठहरानेवाले हो। (३७) परकाशक= पारख ज्ञानके प्रकाश, प्रगट, जाहिर करनेवाले हो। (३८) साँईं = हे सद्गुरो! आप हमारे स्वामी, सच्चे साँईं हो!॥ ९॥

८. अखिल ब्रह्माण्डके जाननहारे ❀ कर्त्तानाम प्रगट विस्तारे ॥ १० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—
अखिल ब्रह्माण्डके = } सम्पूर्ण वेद, शास्त्र,
जाननहारे = } कुरान आदि वाणी जालोंको, तथा खानी विषय जालोंके सब कसर-खोट पिण्ड-ब्रह्माण्डके हाल पहिचानके बन्धन-मुक्तिको जाननेवाले पारखी सद्गुरु आप हैं।
कर्त्तानाम = } जगत्कर्त्ता ईश्वरादि जो
प्रगट विस्तारे = } गुरुवालोगोंने माने हैं, सो मिथ्या है। वेदादि वाणीके कर्त्ता नरजीव हैं, सो निज कर्त्तव्यमें भूल रहे हैं, ऐसा यथार्थ पारखके प्रकाशकर्त्ता पारखी सद्गुरुने नाम=सत्यबोधको प्रगट करके विस्तारसे समझाये और दरशाये हैं। अथवा वेद-शास्त्रोंमें गुरुवालोगोंने कहा है कि, सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और नाश करनेवाला जगत्कर्त्ता कोई एक है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् है, इत्यादि कल्पना प्रगट करके विस्तार किये हैं, उसे यथार्थ परखानेवाले आप पारख प्रकाशी हो!॥

व्याख्या— अर्थात् (३९) अखिल ब्रह्माण्डके जाननहारे= पिण्ड-ब्रह्माण्डके समस्त हाल-चालको जाननेवाले आप हो! अतः वाणीरूपी ब्रह्माण्डके कसर-खोट सब भेदोंको भी आप जाननेवाले परीक्षक, सत्यशोधक हो। (४०) कर्त्तानाम= नाम-रूपके बोधकर्त्ता भी आप हो! और जगत्-कर्त्ताका नाम=ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि जो गुरुवालोगोंने बतलाये हैं, उसको आपने मिथ्या कल्पनाके

रूपमें बतलाकर यथार्थ बात लखाये हो। (४१) प्रगट विस्तारे=निर्णय करके पारख बोधको संसारमें प्रगट करके आपने सत्यज्ञानको विस्तार करके फैलाये हो ! ॥ १० ॥

९. निष्कामी[४२] माया परचण्डा[४३] * ताको नाशक[४४] पूरण ब्रह्मण्डा ॥ ११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

निष्कामी माया = परचण्डा = गुरुवालोगोंने माया विकारसे रहित, निर्विकार व्यापक ब्रह्मको माने हैं। सो तीक्ष्ण तीरके समान वाणी कल्पनाका भ्रम है। सोई प्रचण्ड वेगसे मनुष्योंके मनमें बिंध गया है। यानी निष्कामी माना हुआ ब्रह्म सो तो मायाका प्रचण्ड जाल है।

ताको नाशक = पूरण ब्रह्मण्डा = सोई वाणी कल्पनाको नाश करनेवाले तथा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें परिपूर्ण व्यापक माना हुआ ब्रह्म-भ्रमको छुड़ानेवाले हे पारखी सद्गुरो! आप ही एक सर्व श्रेष्ठ समर्थ हो! जो कि, सकल मिथ्या मानन्दीको परखाकर आप छुड़ा देते हो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् (४२) निष्कामी माया परचण्डा = आप समस्त कामना, इच्छा, वासनासे रहित हो; और प्रचण्ड मायाके कामनादि विकारोंसे परे निर्विकार होकर आप शुद्ध रहते हो। (४३) ताको नाशक = उस अनुमान-कल्पनादिको जड़-मूलसे उखाड़कर विनाश करनेवाले हो। (४४) पूरण ब्रह्मण्डा = वाणीके भेदको पूर्णरूपसे जाननेवाले हो। ब्रह्माण्डमें परिपूर्ण माना हुआ ब्रह्मको आपने भ्रम धोखा बतला कर उस भ्रमका विनाश कर दिये हो ! ऐसे आप पूर्ण पारखी सद्गुरु हो ! ॥११॥

१०. मङ्गलरूप[४५] गोसाँई[४६] आपू[४७] * जगत विदित पूरण परतापू ॥ १२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

मङ्गलरूप = गोसाँई आपू = हे सद्गुरो ! आपका रूप-भेष मङ्गलमय कल्याणकारी है। आप मन-इन्द्रियादिको जीतकर वशमें किये हुए स्वामी हो! आप स्वतन्त्र स्वाधीन तन-मन विजयी जीवन हितकारी साहेब हो !

जगत विदित = पूरण परतापू = हे प्रभो ! आपके सद्गुण, सत्य-शिक्षा, सत्पुरुषार्थका प्रताप या शक्ति-सामर्थ्य संसारमें पूर्ण रीतिसे जाहिर है या प्रसिद्ध है, सो किसीसे नहीं छिपा है ॥

व्याख्या— अर्थात् (४५) मङ्गलरूप=हितकर कल्याण स्वरूप शुद्ध भेषमें आप विराजमान मङ्गलकारी हो। (४६) गोसाँई आपू= और गो= दशोंइन्द्रियोंके सहित तन-मनको स्वाधीनकर वा वशकर अपने काबूमें रखनेवाले तन-मनके विजयी आप सच्चे स्वामी हो ! इसीसे (४७) जगत विदित पूरण परतापू= आपके त्याग-वैराग्यकी प्रताप-महिमा जगत्में पूर्णरीतिसे बहुतोंको विदित हो गयी है ॥ १२ ॥

११. साहेब[४८] निर्भय[४९] पद दातारा[५०] * कर्त्ता पुरुष[५१] सबनके पारा[५२] ॥ १३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

साहेब निर्भय = पद दातारा = हे सद्गुरु साहेब ! आप तो निर्भय सत्य चैतन्य पारख-पदके बोधदाता हो, जिससे कल्पित ईश्वर, यमादिके भयसे जीव छूटकर निर्भय हो जाते हैं। और—

कर्त्ता पुरुष = सबके पारा = सबसे परे कर्त्तापुरुष जो ब्रह्मको माने हैं; इसीसे अध्यासी जीव आवागमनादि दुःखोंके भयमें पड़े रहते हैं। सो भ्रम छुड़ानेवाले पारखी सद्गुरु सत्पुरुष सब धोखासे पार पारख-पदमें रहते हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् (४८) साहेब= सर्वसे श्रेष्ठ, सर्वोपरि, ज्ञानियोंके शिरमौर आप सन्त शिरोमणि सद्गुरु साहेब हो। (४९) निर्भय पद= आपका गुरुपद पारख भी नरजीवोंको निर्भय करनेवाला श्रेष्ठ मुक्तिदायी पद है। (५०) दातारा= आप उसी निर्भयपदमें पहुँचानेवाले सत्य

उपदेशके दाता हो। (५१) कर्त्ता पुरुष = जगत्कर्त्ता कल्पित ईश्वरादिको माननेवाले पुरुष नरजीव ही श्रेष्ठ हैं; ऐसा सत्य भेद आप बतलाते हो। (५२) सबनके पारा = सब सिद्धान्तके निर्णयकर्त्ता पारखी सत्पुरुष आप सब बन्धनोंसे पार निज स्वरूप पारख स्थितिमें ही रहते हो। और सबसे पार = अपार माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि तो मिथ्या भ्रम कल्पना मात्र है। उसे माननेवाले जीव ही सत्य, श्रेष्ठ हैं; ऐसा आपने सबसे अलग पारख परखाये हो ॥ १३ ॥

१२. महामोह[५३] दल[५४] नाशक स्वामी! * हंसन[५५] नाह[५६] अपार[५७] अगामी ॥ १४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे स्वामी !

महा मोह दल = नाशक स्वामी = महा अज्ञानतासे खानीमें विषयानन्द, परिवारका मोह लगा है, और वाणीमें ब्रह्मानन्द, ईश्वरादिका मोह दृढ़ हुआ है, सो महान् भयङ्कर जबर्दस्त काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, कल्पनादिके दल-बल समूहके घेरामें जीव पड़े हैं। गुरुबोध देकर सो नाश करनेवाले स्वरूप ज्ञानदाता आप सद्गुरु स्वामी हैं। और—

हंसन नाह = अपार अगामी = हंस जिज्ञासु जीवोंके नाह = राजा या सिरताज परमपूज्य सद्गुरु हैं। पार-अपार ये दोनों ही मिथ्या मानन्दीको परखानेवाले, तथा अगम, अगोचर, अपार मानी हुई ब्रह्म-कल्पनाको भी मिटानेवाले सत्य परीक्षक, परिणामदर्शी ऐसे सद्गुरु हमारे राजा हैं, मान्य हैं। अपार धोखामें न ले जानेवाले ऐसे सद्गुरु हंसोंके मालिक हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् (५३) महा मोह दल नाशक = खानी-वाणीके महान माया-मोहके सकल सैन्य दलको विनाश करनेवाले बड़े पराक्रमी महान शूर-वीर, धीर आप हो। (५४) स्वामी = स्व = अपना, अमी = अमृतरूप अमर चैतन्य पदमें स्थिर हो ! अतः आप हमारे हितकारी सद्गुरु स्वामी हो। (५५) हंसन नाह = हंसरूप विवेकी सन्तोंके अधिपति, महाराजाके समान मान्य हो। (५६) अपार = पार पाया न जा सके, ऐसा माना हुआ अपार ब्रह्म-खुदा आदि धोखेसे रहित हो। (५७) अगामी = धोखेके मार्गसे गमन न करनेवाले, आगे-पीछे सोच-विचारकर सत्य मार्गसे ही चलनेवाले आप परिणामदर्शी या दूरदर्शी हो ! ॥ १४ ॥

१३. आनन्द[५८] सिन्धु अहंता[५९] तीता * रामरूपमय[६०] परम पुनीता[६१] ॥ १५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सद्गुरो !

आनन्द सिन्धु = अहंता तीता = सच्चिदानन्दघन सुखका सागर, समानरूपसे परिपूर्ण व्यापक माना हुआ ब्रह्मानन्दके अहङ्कार और अध्याससे रहित, जीवन्मुक्त होनेसे सर्व सुखाध्यास हन्तासे रहित, ऐसे आप पारखी सद्गुरु हैं। सो—

रामरूपमय = परम पुनीता = चैतन्य पारख स्वरूपी परम पवित्र शुद्ध ज्ञानी कल्याणकारी जैसे आप हैं। तैसे सत्य उपदेश देकर जीवोंको पवित्र या मुक्त करनेवाले आप श्रेष्ठ सद्गुरु हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् (५८) आनन्द सिन्धु = आनन्दके समुद्रके समान जीवन्मुक्त सुखी, धीरतामें सागरके समान गहिर-गम्भीर हो। परन्तु, ब्रह्मानन्दादिके मिथ्या भास मानन्दीसे रहित हो। (५९) अहंता तीता = स्थूल-सूक्ष्म सम्पूर्ण अहङ्कार, सुखाध्यास, अहंत्व, ममत्व, आनन्दकी हन्ता विकारसे सर्वथा रहित सबसे परे आप निर्बन्ध हो। (६०) रामरूपमय = रमैयाराम चैतन्य जीवके स्वरूपमें तन्मय पारख स्वरूपमें स्थितिवान् हो। (६१) परम पुनीता = परम पवित्र शुद्ध सत्य ज्ञानी आप हो ! आपके पवित्र सत्य उपदेशको पालन करनेवाले सब मनुष्योंका कल्याण ही होता है ॥ १५ ॥

१४. सत्य[६२] यथारथ[६३] अति प्रिय साधू[६४] * मन मायाको मेटेउ[६५] व्याधू ॥ १६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सत्य यथारथ = सत्य यथार्थवक्ता हे सद्गुरो !
अति प्रिय = आप विवेकी साधु स्वरूप हो !
साधू = सो साधुओंको अत्यन्त प्यार करनेवाले होनेसे आप साधु-सन्तोंके भी अतिप्यारे इष्टदेव हो !
मन मायाको = माया-कायामें मन-मानन्दीसे
मेटेउ व्याधू = अनेक प्रकारकी आधि, व्याधि, उपाधि लगी हुई है। सो सद्गुरुने पारख परखायकर मायारूपी स्त्री और गुरुवाओंके विषय-कल्पनादिकी मानन्दी हटाकर जन्म-मरणादि रोग मिटनेका मार्ग बतलादिये हैं। कितनेक उस मार्गसे चलनेवालोंकी सब जन्मृति व्याधि मिट गई; ऐसे परोपकारी सद्गुरु हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् (६२) सत्य = सत्यवक्ता, सत्य उपदेशक, सत्यन्यायी, सत्यनिष्ठ, सत्यके तो आप साक्षात् स्वरूप हो। (६३) यथारथ = जैसा-का-तैसा ही पृथक्-पृथक् जड़-चैतन्यका निर्णय करनेवाले आप यथार्थ पारखबोध दाता हो। (६४) अति प्रिय साधू = सच्चे त्यागी साधुओंको अत्यन्त प्यार या प्रेम-भाव करनेवाले हो ! इसीसे विवेकी साधुओंके समाजमें आप अतिशय प्यारे प्रेमपात्र सर्वमान्य बने हो। (६५) मन मायाको मेटेउ व्याधू = और मन-मायाके विकारसे उत्पन्न होनेवाले समस्त व्याधिरूप रोगोंके मूलको पारख महौषधिके सेवनसे आपने समूल मिटाय दिये हो ! ऐसे आप महाअनुभवी, परमार्थके सच्चे वैद्य बने हो ! ॥ १६ ॥

६६ ६७ ६८ ६९ ७०
१५. पुञ्जनिये अनुमान विनाशिक ❀ सत सुकृत परकाश प्रकाशिक ॥ १७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सद्गुरो !

पुञ्जनिये = अनुमान-कल्पनादिका बड़ा भारी
अनुमान = पुञ्ज, ढेरी, राशि या समूहवत्
विनाशिक = अनेक व्यवहार भ्रमचक्र, तिसको सत्यज्ञान द्वारा भस्म ध्वंसकर विनाश कर-देनेवाले हे प्रभो ! आप हमारे परम पूज्य शिरोमणि हो !—

सत सुकृत = सो 'सुकृत' पुण्यात्मा सत्सङ्गी
परकाश = हंसरूप मनुष्योंको सत्य निज
प्रकाशिक = चैतन्य स्वरूपका बोध लखाकर तमरूप अज्ञानको पारखके परकाश द्वारा हटानेवाले ऐसे पारख प्रकाशी आदिगुरु आप ही श्रीकबीरसाहेब हुए हो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् (६६) पुञ्जनिये = भ्रमपुञ्ज, कल्पनादिके समूहको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले आप हमारे परम पूजनीय सद्गुरु इष्टदेव हो। (६७) अनुमान विनाशिक = अनुमान, धोखा आदिको सर्वथा विनाश कर देनेवाले आप सत्य शिक्षक हो। (६८) सत सुकृत = शुभ संस्कारी धर्म परायण जिज्ञासु नरजीवोंको सत्य बोधदाता, परोपकारी सच्ची शुभ कीर्तिवाले आप हो। (६९) परकाश = पारख प्रकाशमें विराजमान बोधवान् स्वयं प्रकाश ज्ञान स्वरूप हो। (७०) प्रकाशिक = अन्य जिज्ञासु मनुष्योंके हृदयमें भी पारख ज्ञानका प्रकाश कर देनेवाले तमरूप अज्ञान विनाशक आप पारखी सद्गुरु हो ! ॥ १७ ॥

७१ ७२
१६. नाम मुनिन्द्र सबन सुखदाई ❀ बारम्बार कहौं गोहराई ॥ १८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सद्गुरो !

नाम मुनिन्द्र = शील-मनन करनेवाले ऋषि,
सबन = मुनि, ज्ञानी उन सबोंमें श्रेष्ठ
सुखदाई = इन्द्र वा राजाके समान आप पारखी सद्गुरुका 'नाम' कहिये सत्य पारखबोध सभी मुमुक्षुओंको सुख देनेवाला मुक्तिदायी है। इसलिये पारखी मुनिन्द्ररूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके ही उपदेशको लेकर अपना हित-कल्याण करो। ऐसा—

बारम्बार = हे प्यारे मनुष्यो ! मैं तुम्हें बारम्बार
कहौं = पुकार-पुकारकर कहता हूँ ! कि,
गोहराई = यह मौका मत् चूको ! सत्सङ्ग करके पारखबोध प्राप्त करो ! और बारम्बार पुकारकर सद्गुरुसे भी मैं यही प्रार्थना करताहूँ कि, हे गुरुदेव ! हमपर दया दृष्टि आप सदैव बनाये रखिये ! ॥

व्याख्या— अर्थात् (७१) नाम मुनिन्द्र=मुनियोंमें शिरमौर माननीय ! अग्रगण्य आपका एक नाम मुनिन्द्र भी है। पारख बोधमें स्थितिवान् सन्त सब मुनिन्द्ररूप ही हो जाते हैं। (७२) सबन सुखदाई=पारखी सद्गुरु सब जीवमात्रको सुख देते हैं; दुःख तो किसीको वे देते ही नहीं; और पारखबोध सब मनुष्यमात्रको सच्चा सुख और मुक्ति देता है। बारम्बार कहौं गोहराई=सो मैं बारम्बार पुकार-पुकारकर कहताहूँ कि, पारखबोध पानेवाले ही सुखी हुए और सुखी होवेंगे। अथवा मैं सद्गुरुके उपकारको याद करके बारम्बार सद्गुरुके गुणानुवाद पुकार-पुकारकर कहा करता हूँ ॥१८॥

७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८
१७. सत्य सिन्धु प्रभु दीनदयाला * नाशक अनुमय सहज कृपाला ॥ १६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सत्य सिन्धु=, प्रभु=, दीनदयाला= } हे प्रभो ! आप सत्य रहनी, सत्य वाणी, सत्य गहनी, सत्य बोधके व्यवहार, सर्वत्र सत्य निष्ठावाले सत्यके तो समुद्र समान हो ! तैसे दीन, गरीब, ज्ञानहीन दुःखी जीवोंपर दया करनेवाले दीनदयालु हो ! और—

नाशक अनुमय=, सहज कृपाला= } आकाशवत् ब्रह्म, ईश्वरादिका अनुमान, कल्पना जो गुरुवालोगोंने लगा रक्खा है, उसको सरल रीतिसे परखाकर विनाश करनेवाले हे सद्गुरो ! आप बड़े कृपालु हो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् (७३) सत्य सिन्धु=सत्यज्ञान, सत्यव्रत, सत्यटेकके तो आप समुद्रके समान अटल, गम्भीर, गुरु मर्यादमें सदा कायम रहते हो। (७४) प्रभु=सबसे बड़े महामान्य, सत्यज्ञान रहनी-रहस्यके प्रभुता सम्पन्न ऐसे आप, महाप्रभु हो। (७५) दीनदयाला=दीन, हीन, मलीन, ज्ञानबोध-हीन गरीब नरजीवोंके हितकारी, उनपर दयादृष्टि रखनेवाले आप परम दयालु हो। (७६) नाशक अनुमय=अनुमान, कल्पना, मिथ्या धोखाको परखायकर विनाश करनेवाले हो। (७७) सहज=सरल सहज स्वभाववाले हो। (७८) कृपाला=कृपाके तो अच्छा सुन्दर सम्पन्न महलके समान सुखदायी हो। अर्थात् सहजमें थोड़ेसे प्रयत्नमें ही आप प्रसन्न होकर सत्यज्ञान बोध देनेकी कृपा करते हो ॥ १६ ॥

७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५
१८. आपु जीव निष्कर्म निधाना * शब्दी अजर अकाल सम जाना ॥ २० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सद्गुरो !

आपु जीव=, निष्कर्म=, निधाना= } हे साहेब ! आप नरदेहधारी पारख ज्ञानके भण्डारी जड़ाध्यास रहित मुक्त जीव हो। आप ही हमारे मुक्तिदाता हो। जीवके सत्यस्वरूपका बोध आपने ही दिये हो। ज्ञान भण्डारसे पारखबोध देकर कर्माध्याससे छुड़ाये हो।

शब्दी अजर=, अकाल=, सम जाना= } वेदादि वाणीका कर्त्ता चैतन्य जीव अजर, अमर, सत्य, अखण्ड है। यह पारखबोध बराबर आपकी दयासे ही जानने-समझनेमें आया; इसलिये आपको बारम्बार धन्यवाद है ! ॥

व्याख्या— अर्थात् (७९) आपु जीव=आप स्वयं भी चैतन्य जीव हो ! आपने "जीव ही सत्य है, जीवके परे शिव, कोई कर्त्ता मालिक नहीं है," यह निर्णय सिद्ध करके दर्शाया है। अतः आप जीवन्मुक्त जीव हो। (८०) निष्कर्म=कर्मके अध्यास तथा कामना-चाहनादिसे रहित, शुभाशुभ कर्म सम्बन्धसे आप परे हो। (८१) निधाना=आपके हृदयमें पारख ज्ञान-धनका भण्डार भरा है, सत्यज्ञानके आप भण्डारी हो। (८२) शब्दी अजर=जिससे सब शब्द वेदादि वाणी प्रगट हुए हैं, सो शब्दी=जीव ही अविनाशी अजर=कभी जीर्ण न होनेवाला अमर, नित्य, सत्य है; आपने ही यह निर्णयबोध दिये हो। (८३) अकाल=कालरूप कल्पना, जड़ाध्यास आदिसे आप रहित हो। (८४) सम=सम और विषम सब मत-पन्थोंके सिद्धान्तको आप ठीक तरहसे जानते हो ! सबोंके परीक्षक हो। तथा (८५) जाना=ज्ञान स्वरूप सत्यासत्यके बरोबर जानकार साक्षी एकसमान-एकरस पारख स्वरूप स्थितिवाले आप हो ! ॥ २० ॥

८६ ८७ ८८ ८९
१९. साधुरूप पूरण परमाना * गरीब निवाज गहहु गुरु ज्ञाना ॥ २१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—
साधुरूप पूरण = परमाना = हे पारखी सद्गुरो ! आप तन, मन, वचनोंको साधे हुए, सत्य शुद्ध शुभ साधु भेषधारी त्याग मूर्ति साधु-गुरुके यही स्वरूपमें हो। सो पूर्ण प्रामाणिक तथा प्रख्यात वा जगजाहिर है। अतः आप जैसे सच्चे त्यागी साधुका उपदेश ही प्रमाण करके मानना चाहिये।
गरीब निवाज = गहहु गुरुज्ञाना = ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! पारखी सद्गुरुका सत्यज्ञान जीवोंकी अज्ञान अबोधरूप गरीबी-को निवारण करके दूर करनेवाला, सर्वश्रेष्ठ पारखधन देकर निहाल करनेवाला है। इसलिये सत्य निष्ठा प्रेम भक्तिसे दृढ़ता पूर्वक सद्गुरुके पारख ज्ञानको ग्रहण करो, इसतरहसे नरजन्म पानेका सफल करो ॥

व्याख्या— अर्थात् (८६) साधुरूप=साक्षात् त्यागमूर्ति विरक्तका चिह्न भेष धारण किये हुए आप सच्चे साधुस्वरूप हो। (८७) पूरण परमाना=आपके त्याग-वैराग्यका भेष प्रत्यक्ष पूर्ण प्रामाणिक है। न्याय-निर्णयके त्याग, रहनीसे ही मुक्ति होती है, यह प्रमाण करके मानने योग्य है। (८८) गरीब निवाज=सबसे बड़ी गरीबी निज स्वरूपका अबोध होना है, जिससे नाना भ्रम-भूलमें जीव पड़े हैं। ऐसे गरीब, अज्ञानी, अबोध नरजीवोंको अमूल्य पारखबोधरूपी महान धन दान देकर वह गरीबीको एकदम मिटाय देनेवाले ऐसे परोपकारी हो। (८९) गहहु गुरु ज्ञाना= हे सद्गुरो ! आप गुरुपद वा गुरुत्व (वजनदार) महाज्ञान पारखको ग्रहण किये हुए हो। जिसके प्रतापसे आप स्वयं सुखी निर्बन्ध मुक्त हो। अतः हे मुमुक्षुओ ! अपने कल्याणके लिये तुम सब लोग भी उन्हीं पारखी सद्गुरुके सत्यज्ञानको ग्रहण करो ! ॥ २१ ॥

९० ९१ ९२ ९३
२०. झाँई शब्द परखावनहारे * तारण तरण बिगत सम्भारे ॥ २२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
झाँई शब्द = परखावनहारे = तत्त्वोंका प्रकाश वा आनन्द अथवा चराचरमें व्यापक ब्रह्म मानन्दी सोई झाँई सूक्ष्म गाफिली अहङ्कार है। तथा प्रणव शब्दरूप ब्रह्म, वेद-शास्त्रादि-की वाणी इन जालोंके कसर-खोटोंको यथार्थ सत्यासत्य निर्णय करके परखानेवाले, ऐसे पारखी सद्गुरु हैं। और—
तारण = नरजीवोंको सत्य उपदेश देकर खानी-वाणी भवसागरसे पार उतारनेवाले-
तरण = तथा स्वयं भव-बन्धनोंसे छूटकर पार उतरे हुए जीवन्मुक्त स्वरूप सद्गुरु हैं।
बिगत = सम्भारे = जो कि, मुक्ति गतिसे विमुख हो दुर्गति वा अगतिमें पड़े हुए जीवों-पर दया करके परखा-परखाकर सत्यज्ञान बता-बता करके बन्धन छुड़ाकर मुक्तिपदको सम्हालनेवाले ऐसे सहायक सद्गति दाता सद्गुरु हैं ॥

व्याख्या— अर्थात् (९०) झाँई शब्द परखावनहारे = हे प्रभो ! आप झाँई = ब्रह्म-भ्रमकी गाफिली, तथा शब्द = वेदादि वाणीकी कल्पना-विषय, खानी-वाणी आदिके सकल भेद परखानेवाले पारखी हो। (९१) तारण = शरणागत नरजीवोंको सत्य शिक्षा देकर भव-बन्धनसे छुड़ाय पार उतारनेवाले, मुक्त करनेवाले हो। और (९२) तरण = आप स्वयं तो भवसागररूपी खानी-वाणीसे पार उतरे हुए जीवन्मुक्त स्वरूप हो। (९३) बिगत सम्भारे = मुक्तिरूपी सद्गतिसे विमुख हो, दुर्गति, अधोगतिमें पड़े हुए मनुष्योंको भी समझाय-बुझाय उधरसे हटाकर सुमार्गमें लगाय सम्हालने-वाले, आधार देनेवाले, मुक्तिपद प्राप्त करानेके लिये आप श्रेष्ठ सहायक हो ॥ २२ ॥

९४ ९५ ९६ ९७ ९८
२१. मन अनुमान गुमान विनाशिक * मोद प्रत्यक्ष दान निज दासिक ॥ २३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !
मन अनुमान = गुमान विनाशिक = मनकी मानन्दीरूप अनुमान ब्रह्म, कल्पित ईश्वर, भास-भ्रम, अध्यास, विषयोंके समस्त स्थूल-सूक्ष्मादि पाँचों अहङ्कार या गुमान, अभिमानको समूल विनाश करके

ध्वंस करनेवाले पारखी सद्गुरु ही एक महान हैं।

हे सद्गुरो! आप मुमुक्षु शरणागत—

मोद प्रत्यक्ष = दान निज = दासिक = } निजदासरूप त्यागी साधुओं-को सच्चा त्यागका भेद बताय-के सब राग-अध्यासको छुड़ाय-कर चेतन जीवको स्वयं स्वरूप पारख स्थितिकी सुख प्राप्ति कराय देते हो। अर्थात् प्रत्यक्ष जीवन्मुक्त सुख अनुभव करा देने-वाले आप पारखबोधदाता हो। यानी निजस्वरूपकी प्रत्यक्ष निवृत्ति स्थिति लखानेवाले ऐसे सद्गुरु हैं॥

व्याख्या— अर्थात् (९४) मन अनुमान गुमान विनाशिक = मनके अनुमानसे होनेवाले समस्त गुमान और पाँचों अभिमान तथा भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना इन सब विकारोंको जड़-मूलसे विनाशकर मिटानेवाले आप बड़े पुरुषार्थी हो। (९५) मोद = स्वरूप स्थितिमें स्थिर रहनेसे आप सदा जीवन्मुक्त महान सुखी हो। वैसे ही पारखबोध कराय, नरजीवोंको भी मोद वा सुखी कर देते हो। (९६) प्रत्यक्ष = आपका पारखज्ञान प्रत्यक्ष प्रामाणिक सत्य है। और आप स्वयं प्रत्यक्ष त्यागी साधु चैतन्य गुरु मूर्तिमें विराजमान हो। (९७) दान = आप अक्षय भण्डार अमूल्य निधि लुटानेवाले खुल्लमखुल्ला सत्यबोध उपदेशरूपी धनको देनेवाले ऐसे बड़े दानी हो! आपका दान सर्वोपरि महान है। (९८) निज दासिक = अपने शरणागत शिष्यरूप दासोंको निज स्वरूपका अपरोक्ष पारखबोध कराय, स्वरूप स्थितिमें कायम करा देनेवाले शरणरक्षक, सत्यशिक्षक महान उपकारी हो॥२३॥

२२. वेद-कुरान[९९] बुझाये यथारथ ❀ मन कर्म वचन साधुमें[१००] स्वारथ ॥ २४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

वेद कुरान = बुझाये = यथारथ = } चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार कितेबरूप कुरान इत्यादि वाणी जाल हिन्दू, और मुस्लिमोंने बनायकर ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिकी कल्पना बहुत ही बढ़ाय रखे थे, सो सबका यथार्थ सत्यन्याय-निर्णय करके वेद-कुरानादिके बनानेवाले नरजीव ही सत्य हैं; ऐसी यथार्थ बात सद्गुरुदेवने बुझायके समझाय दिये वा बुझाय देते हैं। ऐसे श्रेष्ठ पारखी सद्गुरु हैं।

मन कर्म वचन = साधुमें स्वारथ = } त्यागी पारखी साधु-गुरुमें ही मनसे, वचनसे और कर्मसे अपनी निष्ठा-भक्ति रखनेवाले सद्गुरु यही उपदेश शिष्योंको भी देते हैं कि— स्व = अपना, अर्थ = कल्याणके लिये मन, वचन, कर्मको साधु वृत्तिमें वा साधु-गुरुकी सेवामें ही लगाये रहना चाहिये॥

व्याख्या— अर्थात् (९९) वेद कुरान बुझाये यथारथ = हिन्दुओंके मुख्य ग्रन्थ वेद तथा मुस्लिमोंकी मुख्य किताब कुरानको माने हैं। इधर वेद प्रमाणसे ईश्वरादि कर्त्ता माने हैं, उधर कुरान प्रमाणसे खुदा आदिको कर्त्ता कहा है। उसीमें दोनों दोनके सम्प्रदायीलोग भूले पड़े हैं। उसमेंका सार निचोड़ यथार्थ करके पारखी सद्गुरुने ही बुझाये या समझाये हैं कि— "नरजीव ही सत्य है; वेद-कुरान आदिकी सब वाणी मनुष्योंकी ही कल्पना है; उसे परखो भ्रममें मत् भूलो!" इत्यादि उपदेश दिये हैं। (१००) मन कर्म वचन साधुमें स्वारथ = मन, वचन और कर्मसे त्यागी विवेकी साधु-गुरुमें ही स्वार्थ-परमार्थमें निष्ठा प्रेम, भक्ति, सेवादि सत्कर्ममें ही लक्ष्य लगाये रहते हो। वैसे ही जिज्ञासुओंको करनेके लिये सत्-मार्ग दरशाया करते हो! ऐसे आप शत-प्रतिशत परोपकारी सद्गुण विभूषित हो!॥ २४॥

२३. इमि शतनाम गुरु गनि आई ❀ सब वृत्तान्त गुरुमुख जो बुझाई ॥ २५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

इमि शतनाम = गुरु गनि आई = } ऐसे या इसप्रकारसे सौ विशेषणसे सद्गुण कथनकर सद्गुरुका गुणके अनुसार नाम गिनाय आये हैं। सोई तीन कालमें एकरस नित्य, सत्य, चैतन्यका 'नाम' कहिये पारखबोध है। जो सद्गुरुने मुझे बोध दिये थे, सोई गुणानुवाद मैंने यहाँ आके तुम्हें कहके वा लिखके

सुना दिया हूँ। और—

सब वृत्तान्त = गुरुमुखसे जैसे हमने सब
गुरुमुख = वृत्तान्त बात समझा था, सोई
जो बुझाई = तुम्हें समझायके कह दिया है,

सो तुम भी नित्यप्रति गुरुमुख वाणीको ही श्रवण, पठन-पाठन करते रहो, तभी सब वृतान्तका जो कुछ मर्म-रहस्य बाकी है, सो सब भी तुम्हारे समझनेमें आ जायगा ॥

व्याख्या— अर्थात् इसतरह पारखी सद्गुरुके सच्चा नाम, सच्चा गुण, सच्ची महिमाका वर्णन तो सहस्रों प्रकारसे हो सकता है। यहाँ केवल सो नाममात्र सद्गुणरूप कार्यका खुलासा वर्णन करके ऊपर गिनाय आये हैं। सत्य निजस्वरूप पारखका नाम = अपरोक्ष बोध श्रेष्ठ शिरोमणि सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने भलीभाँति समझाके कहे हैं; जो कि, बीजक सद्ग्रन्थमें वर्णन हुआ है। उसका सार निर्णय सब वृत्तान्त जो गुरुमुखसे बुझाये-समझाये हैं, सो पारखी सद्गुरुके मुखसे ही उपदेश श्रवण कर जिज्ञासु जनोंने उसे समझ-बूझ लेना चाहिये। अथवा इतना ऐसा सो नाम तक सद्गुरुकी महिमामें गिना आये हैं। इसका रहस्य समझना चाहते हो, तो पारखी सद्गुरुसे सत्सङ्ग करके समझो! वे तुम्हें सब वृत्तान्त जो कुछ है, सो गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ बुझावेंगे, सो जानो! ॥ २५ ॥

२४. साधु गुरु कबीर गोसाँई * बन्दीछोर ! नाम जपु गाई ॥ २६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

साधु गुरु = काय, वच, मनादिको साधे
कबीर गोसाँई = हुए साधु, पारख प्रकाशी,
अज्ञान विनाशी, सद्स्वरूप, इन्द्रियजीत,
पुरुषार्थी, कायावीर कल्याणकारी सद्गुरु
श्रीकबीरसाहेब तथा आपके अनुयायी
पारखी साधु-गुरु हुए और हैं।

बन्दीछोर = बन्दीछोरका गुणगान करना या
नाम जपु = स्मरण करना श्रेयस्कर है। और
गाई = पारखी सद्गुरुका गाया हुआ
उपदेश वा दिया हुआ सत्यबोधको स्मरण-
धारण करनेसे ही जीवोंके सब बन्धन छूट
जायेंगे, ऐसा जानिये! ॥

व्याख्या— अर्थात् हे जिज्ञासु मनुष्यो! यदि तुम्हें बखत-बेबखतमें कुछ पुकारा कर नाम उच्चारण करनेकी आवश्यकता पड़े, ऐसी इच्छा वा श्रद्धा हो, तो हे साधु-गुरु! हे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब! हे गुरु स्वामी! हे बन्दीछोर! हे गुरुदयाल! इत्यादि शुभ माङ्गलिक नामोंको गायके जपा करो। फिर चित्तकी विक्षेपता हटनेपर शुभ विचारमें लगा करो। सद्गुरुके नामोच्चारण-रूप जपसे प्रत्यक्ष त्याग-वैराग्य सद्गुणादिकी स्मृति होके मनकी चञ्चलता रोकनेमें सहायक होती है। और साधुरूपमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए थे। आप गोसाँई = गोस्वामी, मन-इन्द्रियादिके विजयी, शूर, वीर, धीर थे; बन्दीछोर थे। आपने नाम = पारखका बोध जो दिये, सत्य उपदेश जो कहे हैं, उसे ही जापकी तरह सदा याद करके हृदयमें धारण करना चाहिये। उसी सत्यबोध युक्त रहनीसे ही हित-कल्याण होगा, न कि, बाह्य नाम जापसे। ऐसे रहस्यको जानकर सद्गुरुके गुणानुवाद-को गाते रहना चाहिये। यही गुरु शतक सार नामका भावार्थ है, सो जानिये! ॥ २६ ॥

दोहाः— गुरुके अमृतमय वचन सुनी * शिष्य श्रवण मन देय ॥
[२] झाँई सन्धि औ काल गुण * तुरत मिटे नहिं लेय ॥ २७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जिज्ञासुओंने वा मुमुक्षुओंने प्रथम—

गुरुके अमृतमय = पारखी सद्गुरुकी शरण-
वचन सुनी = ग्रहण करके अमृतके समान
अमर चैतन्यपदके बोध देनेवाले गुरु
उपदेश या गुरुमुख वाणीको ही सुनना
चाहिये। सो किस प्रकार सुने? कि—

शिष्य श्रवण = शिष्यत्व लघुभाव रखकर
मन देय = दोनों कानोंको वाणी सुननेमें
लगावे, मन एकाग्रकर उपदेशको ध्यानपूर्वक
श्रवण करे; जो श्रवण किया है, उसे मनन
करनेमें मन लगाय देवे। ऐसे जिज्ञासु होके

एक लक्ष्यसे सद्गुरु पारखीके अमृतमय उपदेशोंको सुनना-गुनना चाहिये। इससे उसे यह फल प्राप्त होगा कि—

झाँई = चराचर व्यापक ब्रह्म विज्ञानकी सूक्ष्म अहङ्कार गाफिली, तथा—

सन्धि = ईश्वरादि कर्त्ताकी मानन्दी, धोखा—

औ काल गुण = और काल = गुरुवा तथा नारियोंके गुण = त्रिगुणरूप प्रकृतिका वा भक्ति, योग, ज्ञानका और काम, क्रोध, मोहका व्यवहार जीवको जो बन्धन है—

तुरत मिटे = } सो सब जल्दी ही मिट जायगा
नहिं लेय = } या छूट जायगा। उनमेंसे लेशमात्र भी कोई ग्रहण न करे। जो खानी-वाणीके एक भी अध्यास नहीं लेते हैं, परखकर उसे त्याग देते हैं, सो मनुष्य अवश्य जीवन्मुक्त होकर कृतार्थ हो जाते हैं। फिर उनको कोई भी जालमें फँसाके बन्धनोंमें नहीं ले जा सकते हैं, ऐसा जानना चाहिये!॥

व्याख्या— अर्थात् जो शिष्य पारखी सद्गुरुके अमृतमय वचन (अर्थात् मृत कहिये मृत्यु, नाशवान् तथा अमृत कहिये अमर, अविनाशी, ऐसे अमर चैतन्य जीवको जड़ासक्ति छुड़ाकर श्रीसद्गुरुने जो पारख स्वरूपका सत्य बोध दिया है वा देते हैं, सो यथार्थ अमृत है वा वह अमृतमय वचन कहलाता है।) सत्य उपदेश शिक्षा सुननेमें श्रद्धा-भक्ति प्रगट करके श्रवण और मनन करनेको श्रोत्र तथा मन एकाग्र करके लगा देता है, तो उसे अवश्य सत्यबोध हो जाता है। जिससे झाँई, सन्धि और कालका समस्त गुण-प्रभाव तुरन्त ही मिट जाता है। उसका लेशमात्र भी विकार, मानन्दी नहीं रह सकती है। क्योंकि, बोध होनेपर कोई भी मन-मानन्दी कल्पनादि ली जा नहीं सकती है। इसीसे वह शिष्य कृतार्थ होकर, निर्बन्ध-मुक्त हो जाता है। अतः मुमुक्षुओंको ऐसे ही सद्गुणी होना चाहिये ॥ २७ ॥

सोरठाः— ऐसे गरिब निवाज ❀ दीन उद्धारण गुरु सही ॥
[२] शिष्य देखि सुमिजाज ❀ प्रश्न करी निज बोध हित ॥ २८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

ऐसे = परम दयालु, ज्ञान शिरोमणि, पारखनिष्ठ सत्य बोधदाता, ऐसे सद्गुण धाम सद्गुरुदेव हैं।

गरिब = } जीवोंके निज स्वरूपकी अज्ञान,
निवाज = } अबोधरूप दरिद्रता गरीबीको पारख ज्ञानरूप महान् धन-ऐश्वर्य देकर उस गरीबीके दुःखोंको दूर करनेवाले भ्रमको निवारण करनेवाले सद्गुरुदेव सर्वश्रेष्ठ हैं।

दीन उद्धारण = } वे ही निश्चयसे सच्चे
गुरु सही = } सद्गुरु हैं, जो कि, दीन-दुःखी नरजीवोंको सारपद स्वरूप बोध पारख ज्ञान लखाकर भवदुःख मिटाय, उद्धार करनेवाले, आवागमनोंसे पार उतारनेवाले हैं। ऐसे पारखी सद्गुरु सच्चे हैं, उन्हींसे यथार्थ बोध प्राप्त होता है। सचमुच ही सद्गुरु दीन नरजीवोंका उद्धार करनेवाले परमदयालु हैं।

शिष्य देख = } एक समयमें कोई जिज्ञासु
सुमिजाज = } श्रद्धालु सत् शिष्य सद्गुरुका दर्शन करनेको गया। फिर बन्दगी-भाव भेंट-पूजाके पश्चात् अपना प्रश्न करनेका अधिकार, शुभ संयोग और सद्गुरुकी स्वस्थ प्रकृति, शान्त चित्त, प्रसन्नताको देख करके अच्छा मौका पाके—

प्रश्न करी = } प्रथम बन्दगी करके, फिर दीन
निज = } दास-भावसे नम्र वचन कहता
बोध हित = } हुआ जो बात अपनेको समझनेमें नहीं आयी थी, सो अपने बोधके लिये तथा निज स्वरूपका यथार्थ बोध प्राप्त करनेके लिये, बन्धनोंसे मुक्ति पानेके लिये उसने प्रश्न करना शुरू किया। उसको जो बोध सद्गुरुने दिये, सोई यह गुरुबोध नामके ग्रन्थमें वर्णन हुआ है, ऐसा जान लीजिये!॥

व्याख्या— दीन, हीन, मलीन बने हुए नरजीवोंको सत्य ज्ञान बोध देके उन्हें भवजालसे उद्धार करनेवाले पारखी सद्गुरु सच्चे हैं। सद्गुरु ऐसे गरीब निवाज हैं कि, शरणागत मनुष्योंके आधार

बनके उनकी अज्ञानतारूप गरीबीको दूर करके ज्ञान बोधके धनसे उन्हें सम्पन्न, सुखी कर देते हैं। आपकी ऐसी बड़ी महिमा है। जिज्ञासु शिष्यने एक समयमें सद्गुरुदेवको प्रसन्न, शान्त चित्तसे विराजमान देखके, मौका पाकर अपने निज स्वरूपका यथार्थ बोध प्राप्त कर हित-कल्याण प्राप्त करनेके लिये त्रयबार साहेब बन्दगी करके फिर प्रश्न करना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

सम्बन्ध— यहाँसे शिष्यके प्रश्न और सद्गुरुके उत्तरका सिलसिला चालू होता है। तहाँ अनेकों शङ्काओंका यथार्थ रीतिसे समाधान किया गया है। जिज्ञासुको अपने बोधके वास्ते प्रश्न या शङ्का करके सद्गुरुके उत्तरको समझ लेना चाहिये। तभी हित हो सकता है, अन्यथा हो नहीं सकता है। प्रश्न तीन प्रकारसे होता है:— (१) निज बोधके लिये, (२) परीक्षाके लिये और (३) वाद-विवादके लिये। इनमें प्रथम प्रकारका प्रश्न ही जिज्ञासुके लिये उत्तम है; उसीसे लाभ होता है। अन्य दोनोंसे उसे हानि ही होती है। इसकारण सद्भावनासे प्रश्न करनेको भी सीखना चाहिये, ऐसा जान लीजिये! ॥

॥ ❀ ॥ १ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा— १ ॥ खण्ड— १ ॥ ❀ ॥

छन्दः— हौं कौन? कौन यह देह पञ्च? * बखानि उत्तर दीजिये! ॥

[१] जन जानि अपनो दया करि प्रभु! * बाँह गहिके लीजिये! ॥ २९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर शिष्यका प्रश्न उपस्थित करते हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो! मैं कौन हूँ? यह देह क्या है? पञ्चतत्त्व क्या है? मुझे अपना दास जानकर इसका पूर्णरूपसे उत्तर दीजिये! इत्यादि ॥ इसका अब खुलासा अर्थ सुनिये!—

हौं कौन?=हे साहेब! मैं कौन हूँ? या मेरा स्वरूप—
कौन?=क्या है? और—
यह देह पञ्च=यह मेरा देह क्या वस्तु है? तथा पाँच तत्त्व क्या चीज है? माना हुआ पाँच देह क्या है? देहसे मेरा क्या सम्बन्ध है? सो अभी मैं कुछ नहीं जानता हूँ। अतः—
बखानि=, उत्तर=, दीजिये!= हे सद्गुरो! इसका यथार्थ भेद वर्णन करके उत्तर दीजिये! यानी मुझे यह सब बात समझा दीजिये! लखा दीजिये!
जन जानि=, अपनो दया=, करि प्रभु!= हे प्रभो! मुझे अपना दास शरणागत भक्त सेवक जानकर दया दृष्टिसे निहारिये! सन्देह मिटा दीजिये। तथा मुझपर दया करके—
बाँह गहिके=, लीजिये!= बाँह पकड़ लीजिये, यानी शरणमें लगाकर हाथ पकड़के सन्देह सागरसे खैंचके पार लगा दीजिये, मुझे उबारिये! यह मेरा दीनतासे सच्चा विनय है ॥

व्याख्या— इस छन्दमें प्रथम प्रश्न शिष्यने यह प्रगट किया कि— हे श्रीसद्गुरो! मेरा प्रश्न यही है कि— मैं कौन हूँ? यह पञ्चदेह और पञ्चतत्त्व क्या चीज हैं? इसीका पहिले वर्णन करके यथार्थ उत्तर दे दीजिये!॥ हे प्रभो! मुझे अपने चरणका शरणागत दास जान करके मेरे ऊपर दया करके मेरे हाथ पकड़ कर संशय धारासे मुझे उबार करके रक्षा कर लीजिये! ॥ २९ ॥

छन्दः— केहि विधि भयो एकते सो * अनन्त कारण जग ठयो ॥
जब एक होय सुख दुःख * केहि भाँति इस्थिरता लह्यो? ॥ ३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हेसद्गुरो!— यदि ब्रह्म एक है, तो एकसे अनन्त जगत् खड़ा होनेका क्या कारण हुआ? एकमें ही सुख-दुःख लगा है, तो स्थिर स्थिति कैसे प्राप्त होगी? इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर दीजिये! ऐसा पूछा।

केहि विधि=, भयो एकते सो= कोई एक ब्रह्मसे अनन्त जगत्की उत्पत्ति हुई कहते हैं। सो हे सद्गुरो! किस प्रकारसे या किस तरहसे एक ब्रह्मसे नाना जगत्की

उत्पत्ति हुई ? फिर सो वह—

अनन्त कारण = अनन्त जगत्का कारण
जग ठयो = कौन ठहरा ? जिस कारणसे अनन्त जगत्की उत्पत्ति हुई, सो जगत्के बिना कहाँ ठहरा था ? वह क्या वस्तु है ? फिर कैसे वह जगत्का कारण हुआ ?

जब एक होय = जब कि, ब्रह्म एक ही है, तब
सुख-दुःख = सुख-दुःख किसको-कैसे हुआ ? या किससे-किसको हुआ ? क्यों हुआ ? फिर जब एक ही सुखरूप ब्रह्म है, तो जगत्में दुःख क्यों होता है ? फिर—

केहि भाँति = जगत् बन्धनकी चञ्चलता-
इस्थिरता लह्यो = से छूटकर स्थिर भूमिका मुक्तिपद कैसे प्राप्त किया ? या जीवोंको स्थिरता वा मुक्ति किस भाँतिसे प्राप्त होगी ? सो दया करके सत्य निर्णयसे उत्तर देकर समझा दीजिये ! यह मेरी विनम्र प्रार्थना है ॥

व्याख्या— किस प्रकारसे एकसे अनन्त हुआ ? यानी ब्रह्मसे जगत् कैसे हुआ ? और जगत्में एक-अनेकका कारण मूल कौन ठहरा ? जगत् और ब्रह्मका कारण कौन ठहरा ? फिर जब एक आत्मा होनेपर भी सुख-दुःख होता ही रहता है, तो वह ऐसा क्यों होता है ? फिर किस भाँतिसे जीवको स्थिति, स्थिरता मिली या मिलेगी ? सो दया करके दर्शाइये ! ॥ ३० ॥

॥ ❀ ॥ १ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १ ॥ खण्ड-२ ॥ चौकड़ी भाग ॥ १ ॥ ❀ ॥

१. तू कहिवे मात्र सच्चिदानन्द * तू हंस स्वतः आनन्द ॥ ३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— ऐसे शिष्यका प्रश्न सुनकर पारखी सद्गुरु उत्तर देते हैं। हे शिष्य ! तुम्हारे प्रश्नका यथार्थ उत्तर जो मैं कहता हूँ, सो अब ध्यानसे सुनो !—

तू कहिवे मात्र = हे जीव ! तू तो कहने-
सच्चिदानन्द = मात्रका ही मिथ्या वाणी-के विलाससे सच्चिदानन्द ब्रह्म बना है, वास्तवमें तू ब्रह्म नहीं है। परन्तु—

तू हंस स्वतः = हे जीव ! तू तो चैतन्य स्वयं
आनन्द = स्वरूप है; नित्य, सत्य, अखण्ड, अविनाशी, एकदेशी है। स्वतः हंस चैतन्य होते हुए भी देहाध्याससे तू आनन्दरूप सुखासक्तिमें भूल रहा है। इसीसे अपनेको भ्रमसे आनन्दरूप ब्रह्म मानके भूल रहा है ॥

व्याख्या— इसप्रकार शिष्यके प्रश्न श्रवणकर सद्गुरु सत्यन्याय निर्णयसे उत्तर कहते हैं, सो सुनिये ! हे शिष्य ! तू तो स्वतः हंस वा चैतन्य जीव है; और बिना पारख कहनेमात्रके लिये वाणी-से सच्चिदानन्द ब्रह्म बनता है, सो तो तुम्हारा भ्रम है। आनन्द तो तुम्हारा स्वरूप नहीं है। सब प्रकारके आनन्द देह सम्बन्धमें प्रगट होते हैं, अतः आनन्द जड़ देहका भास है। उसका भासिक द्रष्टा चैतन्य जीव तू तो सदा न्यारा ही रहता है, इसका विचार करो ! परन्तु, जहाँ सच्चिदानन्द ब्रह्म बना, तहाँ सत्से असत्, चित्से जड़ और आनन्दसे दुःखमय जगत्की उत्पत्ति कल्पना करके धोखेमें पड़ा, फिर उसीका अधिष्ठान बना, महान् भ्रम-भूलमें पड़ा। इसीसे आवागमनमें भटका खाने लगा, सो तुम उसे परख करके जानो ! ॥ ३१ ॥

२. देह पञ्चमें ब्रह्म विकार * उपजै खपै न इस्थिर सार ॥ ३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

देह पञ्चमें = स्थूल, सूक्ष्म, कारण,
ब्रह्म बिकार = महाकारण और कैवल्य, ये पाँच देहोंमें क्रमसे तारक, दण्डक, कुण्डली, अर्धचन्द्र और बिन्दु, ये पाँच ब्रह्म जो माने हैं, सो वाणी कल्पनाका ही विकार है। उसी अध्यासवश चार खानियोंमें—

उपजै खपै न = बारम्बार नाना देह उत्पन्न
इस्थिर सार = होकर फिर कर्म भोगके देह नाश हो जाता है; और जिससे जगत्का उत्पत्ति-प्रलय होना माने हैं, सो तो स्थिर रहनेवाला सार मुक्तपद नहीं है। वह तो असार एवं आवागमनका ही कारण है, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— पाँचदेहमें जो पाँच ब्रह्म माने हैं, सो मन-कल्पनाका विकार है। पाँच तत्त्व और कार्यरूप पाँचोंदेह जड़ हैं। और पाँचोंतत्त्वोंमें व्यापक ब्रह्म माना हुआ मिथ्या वाणीका विकार है। जो उत्पन्न होता है और परिणाम बदलके नाश हो जाता है, सो चलायमान होनेसे सार पदार्थ नहीं है। और सार पदार्थ चैतन्य तो स्वरूपसे नित्य स्थिर रहता है, अतः वह किसीसे उत्पन्न भी नहीं होता है और नाश भी नहीं होता है। किन्तु, ब्रह्मको पाँचों देहोंमें व्यापक माना है, इसीसे विकारी होके पाँचों देहोंके साथ वह उत्पन्न भी होता है, और नाश भी होता है; स्थिर नहीं रहता है, इसीसे वह सत्य सार भी नहीं है, ऐसा तुम विवेक करके जानो ! ॥ ३२ ॥

३. रहट घड़ी इमि ब्रह्म अरु जीव * जीव कल्पना ब्रह्म अरु पीव ॥ ३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

रहट घड़ी = रहटमालाके समान जीवसे
इमि ब्रह्म = ब्रह्म हुआ और ब्रह्मसे जगत्
अरु जीव = हुआ, फिर जगत् ब्रह्ममें समाया और ब्रह्मसे नाना जीव उत्पन्न हुए, ऐसे आवागमन चक्रमें ही पड़ते रहे।

जीव कल्पना = यह सब नरजीवोंकी ही
ब्रह्म अरु पीव = कल्पना है। मनुष्योंने ही कल्पना करके अपने ऊपर और कोई मालिक, पियारूप परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि माने हैं, सो तो जीवोंकी कल्पना मिथ्या धोखा है॥

व्याख्या— जैसे कूएँमें पानी खींचनेके लिये लगाया हुआ रहट घड़ी एकके-पीछे-एक घूमता ही रहता है; नीचे-ऊपर आता-ही-जाता रहता है। तद्वत् रहटघड़ीके ऐसे ही ऊपर ब्रह्म और नीचे जीवका उलट-पुलट होना माने हैं। जीवसे ब्रह्म होना और ब्रह्मसे जीवकी सृष्टि करना, ऐसे कल्पनासे माने हैं; सो ऐसा तो नहीं होता है, मिथ्या ही भ्रमसे माने हैं। असलमें तो जगत् अनादि कालसे ऐसे ही चला आ रहा है; और नरजीवोंने सच्चे भेदको न जानकर कल्पना करके भ्रमसे अपने ऊपर और ही कोई एक पिया ब्रह्म वा ईश्वर आदि मान लिये हैं; वही महा भूलमें पड़े हैं, बिना विवेक ॥ ३३ ॥

४. एक ब्रह्म जग मन अरु माया * माया रहित सो ब्रह्म निकाया ॥ ३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

एक ब्रह्म जग = एक शुद्ध ब्रह्म, ईश्वर, और
मन अरु माया = अनेक जीव, जगत्में मनके अज्ञानरूप माया, तथा सबोंका सम्बन्ध और सबोंका भेद, ये षट् पदार्थ वेदान्तमें अनादि माने हैं। ऐसे एक ही ब्रह्मसे जगत्, मन और मायाकी उत्पत्ति बतलाकर फिर—

माया रहित सो = भ्रमिक गुरुवालोगोंने सो
ब्रह्म निकाया = उस ब्रह्मको मायारूप कायासे रहित, निर्विकार, निराकार, निर्गुण एक अद्वैत ठहराये हैं, यानी आप ही कल्पनासे ऐसा ब्रह्म बन गये हैं॥

व्याख्या— अथवा एक ब्रह्म जो माना है, सोई मनकी कल्पना है; और दूसरा जगत् जो है, सो मायारूपी कायाका विलास है। एक ब्रह्मसे ही जगत्, मन और माया, ये त्रिगुणरूप त्रिपुटीकी सृष्टि हुई ऐसा माने हैं। सो सृष्टिके पदार्थ सब तो दृश्य साकार हैं। परन्तु, सो उसके कर्त्ता ब्रह्मको माया वा कायासे रहित निराकार, निर्गुण, निरञ्जन मानके महान् धोखेमें पड़े हैं। यदि वह निराकार है, तो साकार जगत्की सृष्टि उत्पन्न कर ही नहीं सकता है। अरे भाई ! ब्रह्म माना हुआ तो मिथ्या मनका भ्रममात्र है। अतः ब्रह्म, जगत्का कारण भी नहीं है, एकसे अनन्त हुआ भी नहीं है। किन्तु, यहाँपर तो देहधारी जीव सदासे अनन्त ही हैं, सो जानिये ! ॥ ३४ ॥

५. ब्रह्म भये नहिं मिटिया जन्मा * देख विचार शिष्य ! इमि भरमा ॥ ३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म भये नहिं = परन्तु, विवेक करो, ऐसी
मिटिया जन्मा = कल्पनासे स्वयं ब्रह्म बनके भ्रमिक हुए, तो इससे जन्म-मरणका दुःख-रूपी चक्र कदापि मिट नहीं सकता है। बिना पारख जीव चौरासी योनियोंसे छूट

नहीं सकता है।

देख विचार = } हे जिज्ञासु शिष्य ! तुम
शिष्य ! इमि = } सत्यासत्यका पारख करो, विचार करके देखो ! इसप्रकार—
भरमा = ब्रह्म जो माना है, वह तो जीवोंका मिथ्या भ्रममात्र है; ऐसा सत्य निर्णयसे जानो ॥

व्याख्या— जो-जो ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्म हुए, सो उनका जन्म-मरण कुछ नहीं मिटा। क्योंकि, ब्रह्म होनेसे किसीका जन्म-मरण नहीं मिटता है। उत्पत्ति-प्रलय होनेकी स्वाभाविक इच्छा तो ब्रह्ममें सदा लगी ही रहती है। फिर आवागमन कैसे मिटेगा ? नहीं मिटेगा। इसलिये हे शिष्य ! तुम परीक्षा दृष्टिसे विवेक-विचार करके देखो ! ऐसे यह ब्रह्म माना हुआ महान् भ्रम-भूल धोखामात्र है, उसमें सार कुछ नहीं है; सो उस भ्रमका परित्याग करो ! ॥ ३५ ॥

६. जग चौरासी भरमहिं कहै * हंस स्वतः पद आनन्द लहै ॥ ३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जग चौरासी = } जो लोग ब्रह्मको सत्य और
भरमहिं कहै = } जगत् चौरासी योनियोंको असत्य कहते हैं, सो महा भ्रान्तिमें पड़े हैं। वे जड़ाध्यासी हो संसारमें चौरासी योनियोंमें नाना देहें धारणकर अनेक दुःख पाते रहेंगे, भटकते रहेंगे। जो जगत्को अनादि जानकर जड़ाध्याससे रहित हुए, वे मुक्त होते हैं। और—

हंस स्वतः = }
पद आनन्द = } चैतन्य जीव स्वयं स्वतन्त्र है। जो कोई देह भासका
लहै = } आनन्दरूप सोई ब्रह्म पदकी मानन्दी कर लिये, वे सब जन्म-मरणादिमें ही पड़े और पड़ते रहेंगे। जो मुमुक्षु जीव पारखी सद्गुरुके शरणागत होके स्वयं चैतन्य दृष्टि पारख पदमें ठहराव करते हैं, सो जीवन्मुक्तिको प्राप्तकर बन्धनोंसे छूट जाते हैं, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न हुआ, तथा चारखानी चौरासी योनियाँरूप जगत्में एक ही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, ऐसा जो कहा है, सो भी मनुष्योंकी मिथ्या कल्पना भ्रम-भूल ही है। और ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या कहना भी भ्रम-भूलकी ही बात है। और हंस जीव तो स्वतः चैतन्य है। यदि नरजीव मनुष्य जन्ममें पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग कर पारख पदको प्राप्त करके अध्याससे रहित हो स्थिर हुए, तो जीते ही जीवन्मुक्तिके महान सुखको भी वे पा जाते हैं। यदि ऐसा न करके ब्रह्मानन्द तथा विषयानन्द आदि प्राप्ति करनेकी आशासे इधर-उधर भटकते रहे, तो वे सब जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियों-में ही पड़के सदा भ्रमते रहेंगे। जो एक ब्रह्म होते हैं, वे सुखमें नहीं रहते हैं, दुःखमें ही पड़ा करते हैं। पारखबोध होनेपर ही जीवको मुक्ति स्थिति मिलती है; ऐसा विवेक करके निष्पक्ष होके अब तुम भी इस भेदको अच्छी तरहसे जान लो ! ॥ ३६ ॥

॥ ❀ ॥ २ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा—२ ॥ खण्ड—३ ॥ ❀ ॥

दोहाः— ऐसे सुनि गुरुके वचन * कीन्ही शङ्का शिष्य ! ॥
[३] ब्रह्म भये थिति क्यों नहीं ? * वेद कहैं बहु ऋष्य ! ॥ ३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यकी शङ्का दर्शाते हैं—

ऐसे सुनि = }
गुरुके = } पारखी सद्गुरुदेवके ऐसे
वचन = } सत्यन्याय निर्णयकी गुरुमुखवाणी सारशब्द यथार्थ चैतन्यपद लखानेवाला सत्य उपदेश सुन करके तत्पश्चात्—

कीन्हीं शङ्का = }
शिष्य ! = } उस जिज्ञासु शिष्यको जो बात समझनेमें नहीं आई, सो सद्गुरुके सन्मुख प्रगट करके शङ्का किया, अर्थात् ऐसे सद्गुरुके निर्णय वचन सुनके फिर शिष्यने शङ्का किया।

ब्रह्म भये = }
थिति क्यों नहीं ? = } हे सद्गुरुदेव ! सकल दृश्य भास माया विकारसे रहित अद्वैत ब्रह्मके बोध प्राप्त होकर जीव जब ब्रह्म स्वरूप ही हो गया, तब उसे स्थिति

या मुक्ति क्यों नहीं हुई ? या क्यों नहीं होती है ? और—

वेद कहैं = } वेदवेत्ता वेदान्तके ज्ञाता बहुतेक
बहु ऋष्य = } ऋषि, मुनि, महर्षि, पण्डितवर्ग तो यही कहते हैं कि, ब्रह्म बोधसे जीव-की स्थिति होती है, और सदाके लिये मुक्ति हो जाती है। परन्तु, आप तो स्थिति नहीं होती है, ऐसा कहते हैं। तो इसमें क्या भेद है ? सो इसका भेद दया करके दर्शाइये ? यही शङ्कारूपमें प्रश्न है ॥

व्याख्या— सत्यन्यायी सद्गुरुके ऐसे यथार्थ निर्णयके वचन सत्य उपदेशरूप उत्तरको श्रवण करके और भी बोधकी परिपुष्टिके लिये उस बीचमें जिज्ञासु शिष्यने एक शङ्का उपस्थित किया कि— हे सद्गुरु साहेब ! वेद-वेदान्त आदिके प्रमाणसे बहुतेक ऋषि-मुनियोंने अद्वैत ब्रह्मज्ञानके बारेमें बहुत कुछ विस्तार करके कहा है। तहाँ साधन चतुष्टय सम्पन्न होके 'अहं ब्रह्मास्मि' दृढ़ होनेपर उसकी मुक्ति स्थिति माने हैं। परन्तु, ब्रह्म होनेपर जीव बन्धनमें पड़ता है, ऐसा आप कहते हैं। इसका पूरा भेद मेरे समझनेमें नहीं आया। जो ज्ञानीलोग जीवसे ब्रह्म हुए, तो फिर उनकी स्थिति क्यों नहीं हुई ? किस कारणसे वे बन्धनमें पड़े ? यही बात निर्णय करके अब आप मुझे समझाइये ! ॥ ३७ ॥

॥ ❀ ॥ २ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण—२ ॥ खण्ड—४ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— हे शिष्य ! हृदय विचार ❋ ब्रह्म पदारथ प्रथम पद ॥
[३] जगको कारण सार ❋ ब्रह्म जहाँ-तहाँ भरमियाँ ॥ ३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! हृदय = } हे जिज्ञासु शिष्य ! तुम
विचार = } अपने हृदयमें यथार्थ पारख करके विचार करो, वाणी कल्पनाकी धारामें मत् बहो, ठहरके विवेक करो।

ब्रह्म पदारथ = } निर्गुण शुद्ध ब्रह्म मुक्तरूप
प्रथम पद = } नित्यतृप्त, मोक्ष नामक श्रेष्ठ चौथा पदार्थ जो माने हैं, सो मनुष्य देहका प्रथमका भास तथा कल्पना होनेसे मिथ्या भ्रममात्र है। अगर मनुष्य ब्रह्मको न माने, तो उसका कुछ अस्तित्व ही नहीं रहता है। अतः ब्रह्म तो भ्रममात्र ही है ॥

जगको = } सारा जगत्का आदि कारण,
कारण सार = } कर्त्ता सार कोई ब्रह्म है, ऐसी मिथ्या मानन्दी मनुष्योंने ही किये हैं। इसलिये वह ब्रह्म जगत्का बीजरूप कारण होकर उसका परिणाम बदला ही करता है।

ब्रह्म जहाँ-तहाँ = } इसतरह वह ब्रह्म ही बद्ध
भरमियाँ = } होकर मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मजादि चारखानीमें जहाँ-तहाँ आवागमनमें ही भरम रहा है वा भटक रहा है। यानी भ्रमिक ब्रह्म अध्यासी जीव ही चौरासी योनियोंमें घूम-फिर रहे हैं। ऐसे वह आवागमन होनेका हेतु है ॥

व्याख्या— शिष्यकी शङ्का निवृत्त करनेके लिये सद्गुरु कहते हैं— हे शिष्य ! इसके भेद समझनेके लिये प्रथम तो तुम निष्पक्ष होके अपने हृदयमें विवेक-विचार करो कि, माना हुआ वह ब्रह्म कोई साकार सत्य पदार्थ भी है कि, नहीं है ? सत्य साकार तो वह नहीं है; उसे तो निर्गुण-निराकार माना है। इसीसे ब्रह्म प्राप्ति होती है वा हुई कहना ही मिथ्या धोखा भ्रम है। और ब्रह्म तो पदरूप वाणीके अर्थसे सिद्ध होनेवाली शब्द विषयजनित मिथ्या कल्पना है। प्रथमपदरूप मनुष्योंकी मानन्दी मात्र है। परन्तु, भ्रमिकोंने उसी ब्रह्मको जगत्का मूल कारणरूप सार माने हैं। तहाँ भी कारणसे कार्य तथा कार्यसे कारण उलट-पलट होते रहनेसे वह ब्रह्म वा ब्रह्मको माननेवाले जीव ही जड़ाध्यासी होके जहाँ-तहाँ चारखानी चौरासी योनियोंमें भ्रमते ही रहते हैं। सदा आवागमनमें पड़ा करते हैं, ऐसा जानो ! ॥ ३८ ॥

सोरठाः— इच्छा मन विस्तार ❋ माया मिलि जग निर्मयो ॥
[४] सब मिटि ब्रह्म भँभार ❋ रहट ब्रह्म थिति है नहीं ॥ ३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

इच्छा मन = विस्तार = नरजीवोंने मानन्दीसे प्रथम कोई एक ब्रह्म ठहराये, फिर उसकी इच्छा या चाहना स्फुरणासे त्रिगुण-रूपी मन वा चित्त चतुष्टयका विस्तार किया या उस तरहसे विस्तार हुआ। और—

माया मिलि = जग निर्मयो = फिर मायारूप काया, सो सूक्ष्म देहको प्राप्त होके बीजसे वृक्षवत् वासना बीजरूप सूक्ष्म देहयुक्त रज-वीर्यमें मिल करके स्थूल देहरूप सर्व जगत्को उसीने बनाया, ऐसे उत्पत्ति हो करके विस्तार हुआ।

सब मिटि = ब्रह्म मँझार = फिर अन्तमें सब सृष्टि मिटकर प्रलय होके जगत् मायामें, माया मन सहित इच्छामें, इच्छा भी लय होके ब्रह्म-शून्यके बीचमें जाके समा गई। केवल एक ब्रह्म ही बाकी रहा, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है।

रहट ब्रह्म = थिति है नहीं = फिर पूर्ववत् ब्रह्मसे इच्छा माया, उससे सारे संसारकी रचना हुआ ही करती है! इसप्रकार वह ब्रह्म तो उत्पत्ति-प्रलय या जन्म-मरण चौरासी योनियोंमें भ्रमण होनेका रहटचक्र हुआ। फिर उससे जीवोंको क्या स्थिति, गति-मुक्ति हो सकती है? कुछ नहीं। उससे बन्धन छूट ही नहीं सकता है, ऐसा जान लो! ॥

व्याख्या— मनुष्य जीव जब स्वयं ब्रह्म हुए, तहाँ इच्छा-स्फुरणासे मन-मानन्दीका विस्तार किये। फिर मायारूप स्त्रीकी कायामें भोग-विलासमें मिलके नर-नारीके वा ब्रह्म-मायाके मिलापसे जगत्रूप देह चौरासी योनियोंका निर्माण वा उत्पत्ति किये। इसप्रकार उससे देह आदिकी सृष्टि हुई। फिर पश्चात् सब सृष्टि मिट-मिटायके महा प्रलयमें संहार होकर एक ब्रह्मके मध्यमें ही विलीन होके समा जाता है, ऐसा कहा है। इसप्रकारसे ब्रह्म क्या हुआ कि, रहटघड़ीवत् घनचक्र, उत्पत्ति-प्रलय होते रहनेका मूल कारण हुआ। इसीसे निर्णय करके देखो! तो ब्रह्मरूपी महा भ्रममें पड़के मुक्ति स्थिति होनेकी आशा तो है ही नहीं। अतः ब्रह्म-भ्रमको छोड़ करके प्रत्यक्ष पारख पदकी स्थितिमें ठहराव करो, तभी मुक्ति होगी, ऐसा जान लो! ॥ ३९ ॥

॥ ❀ ॥ भूलना ॥ १ ॥ ❀ ॥

१. पाँच तत्त्व तीन गुण चतुर्दश देवता * दशों इन्द्री अहै जगत बहु विस्तरा ॥ ४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! और सुनो!—

पाँच तत्त्व = तीन गुण = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच तत्त्व तथा रज, सत्त्व, तम, ये तीन गुण हैं।

चतुर्दश देवता = चौदह देवताएँ— कानके 'दिशा', त्वचाके 'वायु', आँखोंके 'सूर्य', जीभके 'वरुण', नाकके 'अश्विनी-कुमार', मुखके 'अग्नि', हाथोंके 'इन्द्र', पाँवके 'उपेन्द्र', लिङ्गके 'प्रजापति', गुदाके 'यमराज', चित्तके 'नारायण', बुद्धिके 'ब्रह्मा', मनके 'चन्द्रमा', और अहङ्कारके 'रुद्र', ऐसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें चौदह देवताएँ माने हुए हैं।

दशों इन्द्री = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलायके दश इन्द्रियाँ देहमें ठहराये हैं।

अहै जगत = बहु विस्तरा = यह पिण्डरूप चार खानीके देह सहित जगत्का बहुत ही विस्तार हुआ है ॥

व्याख्या— पाँच तत्त्व, तीन गुण, चौदह देवता, दश इन्द्रियाँ संयुक्त पिण्ड और बाह्य ब्रह्माण्ड है, सोई जगत्में बहुत विस्तार हुआ है। तहाँपर जड़ कार्य-कारणका ही फैलावा हुआ है ॥ ४० ॥

२. मन माया सोई ब्रह्म कारण खड़ा * अखिल ब्रह्माण्ड पञ्चदेह मध्ये निस्तरा ॥ ४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन माया सोई ब्रह्म कारण खड़ा = माया-कायाके सम्बन्धमें मन-मानन्दीसे माना हुआ देहका भास सोई कल्पित 'ब्रह्म' है। उसी भास-अध्यासके कारणसे जीव चार खानीमें

पड़के दुःख पा रहे हैं। परन्तु, गुरुवालोग उसी कारण ब्रह्मके आधारसे जगत् खड़ा है, ऐसा कहकर सबका अधिष्ठान ब्रह्मको कारण माने हैं। इसलिये—

अखिल ब्रह्माण्ड = समस्त पिण्ड-ब्रह्माण्ड या खानी-खानीकी रचना, स्थिति उसी ब्रह्मसे

माने हैं। और—

पञ्चदेह = मध्ये = निस्तरा = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य, ये पाँच देहके बीचमें जीवसृष्टि, ईशसृष्टि, मायासृष्टि, ब्रह्मसृष्टि सभीका विस्तार होके ठहराव हो गया है, ऐसा माने हैं॥

व्याख्या— ब्रह्म सोई कारण है, तथा मन-माया सोई उसीसे कार्य खड़ा हुआ है, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है। तहाँ सृष्टि चिन्तन ऐसा कहा है कि— एक ब्रह्म मूल कारण है। ब्रह्मसे पुरुष प्रगट हुआ। पुरुषसे प्रकृति उत्पन्न हुई। प्रकृतिसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। महत्तत्त्वसे अहङ्कार उत्पन्न हुआ। अहङ्कारसे त्रिगुण पैदा हुए। उसमेंसे सत्त्वगुणसे चौदह देवताएँ हुए। रजोगुणसे दश इन्द्रियाँ हुईं; और तमोगुणसे पञ्च महाभूत तथा उनके पञ्चविषयोंका पसारा हुआ। सोई पञ्चतत्त्व और पञ्चविषयोंसे सारी सृष्टिकी उत्पत्ति होके विस्तार हुआ इत्यादि वर्णन किया है। इसप्रकार मन-मायादि कार्यके ऊपर सोई कारण ब्रह्म खड़ा किया है। उसीसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पञ्च देहरूप पिण्डमें ही समावेश होके निस्तरा है। यानी सारा पिण्ड-ब्रह्माण्ड पञ्चदेह आदि जगत्के बीचमें ही कार्यरूपसे विस्तार हुए हैं; ऐसा माने हैं॥ ४१॥

३. ब्रह्म ही सर्वमें सर्वते न्यारा है * याहि मत वेद ऋषि शास्त्र प्रगट करा ॥४२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! ब्रह्म ही सर्वमें = सर्वते न्यारा है = फिर एक ही ब्रह्म अद्वैत भावसे सर्वत्र चराचरमें ओत-प्रोत पूर्ण व्यापक ठहराकर उसको सर्व जगत्से न्यारा अलिप्त, असङ्ग माने हैं।

याहि मत वेद = ऋषि शास्त्र = प्रगट करा = यही कल्पित मत, कर्त्तावाद अद्वैत ब्रह्मज्ञानका सिद्धान्त, वेद प्रमाणसे ऋषियोंने और शास्त्रकारोंने जगत्में प्रगट करके अनेक तरहसे प्रचार किये और कर रहे हैं। उसीमें मनुष्योंको भ्रमा रहे हैं॥

व्याख्या— प्राचीनकालके ऋषि-मुनियोंने वेद-शास्त्रादि बनायके उसके प्रमाणसे मुख्य करके यही अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तके मतको जोर-शोरसे प्रगट किये हैं। तहाँ कहा है कि— एक ब्रह्म ही सर्व स्थावर-जङ्गममें सर्वव्यापकरूपसे भरा पड़ा है। भीतर-बाहर ओत-प्रोत होकर एक ही रूपसे भरा पड़ा है। परन्तु, सर्व द्वैत भाव जगत्से वह न्यारा वा निर्लिप्त है; असङ्ग, अनन्त, अपार, अगम, अगोचर है, इत्यादि बकवाद किये हैं॥ ४२॥

४. जीव अनुमान यह ब्रह्म सृष्टि अहै * शिष्य! यह परखिले फन्द माया भरा ॥४३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! जीव अनुमान = यह ब्रह्म = सृष्टि अहै = परन्तु, नरजीवोंने अनुमान करके ब्रह्मसे सारे जगत्की जो सृष्टि माने हैं; सो मिथ्या धोखा है। क्योंकि, नरजीवके अनुमानसे ही ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्तिरूप ब्रह्मसृष्टि हुई है, इसलिये जीव सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है। अतएव—

शिष्य! यह परखिले = फन्द माया भरा = हे शिष्य! परीक्षा करके अब तुम सत्यासत्यका पारख कर लो! यह तो माया गुरुवालोगोंने वाणीका फन्दा ही फैलाये हैं। सो फन्दामें कल्पना-धोखा भरा है, सार कुछ नहीं है, यह बात अब तुम जान लो!॥

व्याख्या— हे शिष्य! वास्तवमें यह ब्रह्मसृष्टिका वर्णन तो नरजीवकी अनुमान-कल्पना ही मात्र मिथ्या धोखा है। और ब्रह्म कोई सत्य वस्तु नहीं है। इसमें तो मायाका ही फन्दा भरा पड़ा है। अर्थात् गुरुवालोगोंके वाणी जालका ही फन्दा भरा हुआ है। इसको तुम अच्छी तरहसे निर्णय करके परीक्षा कर लो! मिथ्या भ्रम-भूलको परख करके हटाओ, और सत्य-सार चैतन्य जीवको

पारखपदमें ठहराओ ॥ ४३ ॥

सोरठाः— माया ब्रह्म समाय * जगत कियो विस्तार सब ॥
[५] फूले ब्रह्म कहाय * श्रवण मनन साक्षात मत ॥ ४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! देखो ! गुरुवालोगोंके मतमें कैसी कल्पना-की वाणी कही है—

माया ब्रह्म समाय = प्रकृति-पुरुष, माया-ब्रह्म या स्त्री-पुरुषोंके परस्पर मिलाप होनेसे पुरुषकी शक्ति- प्रकृतिमें, ब्रह्मकी इच्छा-मायामें और पुरुषका वीर्य स्त्रीके रजमें जाके एकत्र होके मिलता है।

जगत कियो = तहाँ प्रथमारम्भमें ब्रह्मसे
विस्तार सब = पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, त्रिगुण, इस क्रमसे सारे संसारकी उत्पत्ति हुई। इसप्रकार आदि कारणरूप निराकार ब्रह्मसे ही साकाररूप सकल सृष्टि वा जगत्का विस्तार खड़ा हुआ। ऐसा गुरुवालोगोंने कल्पनासे वाणीका विस्तार किये हैं। और—

फूले ब्रह्म = सो वेद-वेदान्तके प्रमाणसे ब्रह्म-
कहाय = ज्ञानके भ्रमको दृढ़ करके "अहं ब्रह्मास्मि"— वह कारण ब्रह्म मैं ही हूं ! ऐसा कहके या कहलायके गुरुवालोग कुप्पे सरीखे फूल गये। दशोंदिशाओंमें व्यापक बनके अहङ्कारसे चार खानी चौरासी योनियोंमें जा पड़े।

श्रवण मनन = अब वर्तमानमें भी पारखहीन
साक्षात मत = नरजीव वेदान्तियोंका सङ्ग करके ब्रह्मज्ञानका ही उपदेश श्रवण, मनन तथा दृढ़ धारणा कर मति-बुद्धिको नष्ट करके अद्वैत ब्रह्मवादी होकर भूलमें फूलके भटक रहे हैं। सो पारख करके कल्पनाको त्याग देना चाहिये, तभी हित होगा ॥

व्याख्या— जैसे संसारमें स्त्री-पुरुष मिलके विषय सम्बन्धसे सन्तान उत्पन्न करते हैं, और घर-गृहस्थी बढ़ाते हैं। तैसे ही माया-प्रकृति और ब्रह्म दोनों एकमें सम्मिलित होके समस्त त्रिगुणी सृष्टि पिण्ड-ब्रह्माण्ड चराचरकी उत्पत्ति करके सब कुछ बढ़ायके विस्तार किये। ऐसे सबका वही आदि कारण है, ऐसा अनुमान-कल्पनासे वाणी कहके सब गुरुवालोगोंने वाणी कल्पनाका ही विस्तार किये हैं। अब उसी वेद-वेदान्तकी वाणीको फिर-फिरके श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके साक्षात्कारमें अद्वैत मतको दृढ़ निश्चय करके "एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति" "अहंब्रह्मास्मि" कह कर, अपने आप ब्रह्म अधिष्ठान कहलायके अन्धाधुन्ध गाफिलीमें पड़के कुप्पेकी नाईं फूल गये। सर्वव्यापक बनके तहाँ निज स्वरूपको भूल गये। जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ गये; बिना पारख इसप्रकारसे ब्रह्म होनेसे जीवकी स्थिति नहीं हुई, और हो भी नहीं सकती है, सो जानो ! ॥ ४४ ॥

॥ ❀ ॥ ३ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा— ३ ॥ खण्ड— ५ ॥ चौपाई भाग ॥ २ ॥ ❀ ॥

१. श्रवण मनन साक्षातहुँ जाना * मन माया सो भौ बिलगाना ॥ ४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कहते हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरुदेव !

श्रवण मनन = जब कि, मुमुक्षुने ब्रह्मनिष्ठ
साक्षातहुँ = गुरुकी शरणमें जाके वेद-
जाना = वेदान्त शास्त्रोंके विधिपूर्वक उपदेशको साधनचतुष्टय सम्पन्न होकर श्रवण किया, फिर बारम्बार मनन करते हुए दृढ़तासे अद्वैत ब्रह्मबोधको साक्षात् करके भी जान लिया, 'अहंब्रह्मास्मि' भावको पक्का किया, इसप्रकार वह ज्ञानी—

मन माया सो = मनके सङ्कल्प-विकल्प, माया-
भौ बिलगाना = कायाके विकार द्वैत भावसे छूटकर सर्वथा अलग हो गया। असङ्ग-निर्लिप्त ब्रह्म ही हो गया, तब तो मुक्त हुआ ॥

व्याख्या— ऐसा सद्गुरुका उत्तर सुनकर शिष्यने फिर शङ्कारूपमें प्रश्न प्रगट किया कि— हे सद्गुरु साहेब ! जब वेदान्तका श्रवण-मननादि करके आत्मसाक्षात्कार करके जान लिया कि, मैं ही स्वयं आत्मा वा ब्रह्म हूँ ! जिसने ऐसा अपरोक्ष करके जाना, सो तो मन-मायादिसे बिलग वा न्यारा

ही हो गया; असङ्ग, मुक्त ही हो गया, ऐसा कहा है ॥ ४५ ॥

२. बिलगे ब्रह्म सनातन स्वामी ! * सो किमि चौरासी अनुगामी ? ॥ ४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

बिलगे ब्रह्म = सनातन = स्वामी ! = हे स्वामी ! हे साहेब ! जब कि, जीव मन-मायादि उपाधिसे छूटकर या अलग हो कर सनातन ब्रह्ममें मिलके एक ब्रह्म होनेसे निरुपाधि हो गया, सब भेद-भावसे परे अभेद हो गया—

सो किमि = चौरासी = अनुगामी ? = सो फिर कैसे करके चारखानी चौरासी योनियोंमें स्थूल या सूक्ष्म रीतिसे जायगा ? कैसे जा सकेगा ? उसको आवागमनमें जानेका क्या कारण है ? क्या जरूरत है ? क्यों चौरासी योनियोंमें जायगा ? सो समझा करके कहिये ! ॥

व्याख्या— हे स्वामी ! सनातन ब्रह्म तो सनातनसे ही मायोपाधिसे बिलग ही है; भ्रान्तिसे जो कुछ लगाव हुआ था, सो भी ब्रह्मज्ञानसे मिट गया। अद्वैत ब्रह्म स्थिति हो गई। सो फिर कैसे चौरासी योनियोंमें अनुगमन करके आवागमनमें जायगा वा आयगा ? यह बात तो मेरी समझमें अभी तक नहीं आई ॥ ४६ ॥

३. चौरासी मिटि ब्रह्म जो होई * ब्रह्म भये सुख पूरण सोई ॥ ४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

चौरासी = मिटि ब्रह्म = जो होई = जगत् प्रपञ्च चौरासी योनियोंका कर्म द्वैत भाव समूल मिट जाने-पर जो कि, तभी वह जीव ब्रह्म हो जाता है। ब्रह्म होनेपर सब चौरासी योनियोंका भ्रम मिट जाता है। और— जो कोई अद्वैत ब्रह्म भावको—

ब्रह्म भये = सुख पूरण = सोई = प्राप्त हुए या होते हैं, सो स्वयं पूर्ण सुखस्वरूप सच्चिदानन्द हो जाते हैं। वहाँ तो दुःखोंका लेशमात्र भी नहीं रहता है, जो ब्रह्म भये, सो तो पूर्ण सुखमें ही मिल गये या सुखस्वरूप ही होगये, ऐसा माना है ॥

व्याख्या— आत्मज्ञानसे चौरासी योनियाँ मिट-मिटाय करके जो अद्वैत ब्रह्म हो गया, सो तो स्वयं मुक्त हो गया; और जो जीव द्वैत भाव मिटाय करके ब्रह्म हुए, तो सोई पूर्ण सुखरूप सच्चिदानन्द-पदको ही प्राप्त हो गये। इसीसे ब्रह्म होते ही पूर्ण सुखस्वरूपमें तदाकार एकता हो जाती है ; ऐसा वेदान्तियोंने वर्णन किये हैं ॥ ४७ ॥

४. सो केहि भाँति दीन प्रतिपाला * ब्रह्म भये चौरासी काला ॥ ४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

सो केहि भाँति = दीन प्रतिपाला = हे दीन जीवोंके प्रतिपालन करनेवाले प्रभो ! सो फिर किस भाँति या किस प्रकारसे दीन, दुःखी या बद्ध हुआ ? और—

ब्रह्म भये = चौरासी काला = त्रिकालाबाध्य नित्यतृप्त, नित्यमुक्त ब्रह्ममें मिलके तदाकार जो हुए, सो आवागमनसे छूट गये। परन्तु, आप तो ब्रह्म होनेपर भी चौरासी योनियोंमें जाके काल कवलित हो, जन्म-मरणादिमें पड़ता है, ऐसा कहते हो ! सो कैसे किस प्रकारसे समझमें आवे ? कृपा करके भेद लखाइये ! ॥

व्याख्या— हे दीनप्रतिपालक सद्गुरो ! फिर सो किस प्रकारसे बद्ध हुआ ? ब्रह्म काल होके कैसे चोरासी योनियोंमें आ पड़ा है ! जो ब्रह्म हुए, उनमें फिर चौरासी योनियोंकी कालिमा कहाँसे, कैसे, क्यों आई ? किस तरह जन्म-मरण चक्रमें ब्रह्म होके पड़े ? सो इसीका यथार्थ भेद लखाके सन्देह मिटाके समाधान कीजिये ! ऐसे शिष्यने प्रश्न किया ॥ ४८ ॥

॥ ❀ ॥ ३ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण—३ ॥ खण्ड—६ ॥ ❀ ॥

दोहाः— ब्रह्मकी इच्छा माया * माया मन कृत भास ॥
[४] माया मन निरसन भयो * एक ब्रह्म परकाश ॥ ४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! उसका कारण भी मैं बतलाता हूँ, ध्यान पूर्वक सुनो ! वेदान्तियोंने ऐसा माना है कि—

ब्रह्मकी = इच्छा माया = पहले निर्गुण, निरञ्जन, निराकार एक ब्रह्म था; उस ब्रह्मकी "एकोहं बहुस्याम्" रूपी स्फुरणासे इच्छारूपिणी आदिमाया उत्पन्न होती भई। तदनन्तर—

माया मन = कृत भास = मायाकी शक्तिसे सूक्ष्म मन उत्पन्न हुआ। फिर माया-मनके सङ्कल्प-विकल्प या प्रेरणासे चराचर जगत्-की सृष्टि उत्पन्न होके भासने लगी या दिखाई दी। मायाका कार्य-जगत् प्रतीति मात्र ही है, सो मिथ्या है।

माया मन = निरसन भयो = जब अन्तमें जगत् विषय सहित काया-मायामें, माया-मनमें, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार अन्तःकरणमें, वह सब ब्रह्ममें जाके लय हो जाते हैं। सो ज्ञान समाधिमें द्वैत मन-माया आप ही छूटके लय हो जाता है। तब—

एक ब्रह्म = परकाश = सर्वत्र अद्वैत एक ब्रह्मका ही प्रकाश दिखाई देता है। अथवा प्रकाशरूप एक ब्रह्म ही तब बाकी बना रहता है। ऐसा कल्पना करके माने हैं ॥

व्याख्या— तब समाधान करनेके लिये उत्तर देते हुए सद्गुरु बोले- हे शिष्य ! उसके मुख्य भेद मैं तुम्हें बतलाता हूँ सुनो ! ब्रह्मको एक अद्वैत, निराकार कहा है ? और उसी ब्रह्मकी इच्छा वा स्फुरणाको ही मायाकी उत्पत्ति माना है। फिर मायासे मन बना, मनसे तन सहित सारी सृष्टि बनके भास हुई। इसतरह कल्पनासे उत्पत्ति कथन किये हैं। पश्चात् उस माया सहित मनको 'निरसन भया' अर्थात् लय करके मिटाया, नाश किया, तब फिर एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा वाणीसे प्रकाश किया है। तहाँ सर्वत्र एक ब्रह्मका ही प्रकाश माना है, ब्रह्मको ज्योति-प्रकाशरूपमें ठहराया है ॥ ४६ ॥

सोरठाः— यह मत सबन प्रमाण * वेद ऋषीश्वर मुनि मनुज ॥
[६] दैत्यन हूँ यह जान * सत्य शौच्य दाया रहित ॥ ५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

यह मत = सबन = प्रमाण = यह कर्त्तावादका मत कि- कोई जगत्का कर्त्ता होगा; सो सभी मनुष्योंने अपनी-अपनी बुद्धिसे भिन्न-भिन्न ईश्वर-खुदादि कर्त्ता ठहरायके प्रमाण माने हैं कि, वही सत्य है, वही सब जगत्का रचयिता है।

वेद ऋषीश्वर = मुनि मनुज = वेद प्रमाणसे ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, महर्षि, मुनि, तपस्वी, पण्डित तथा साधारण मनुष्यादि सभीने भी कोई एक कर्त्ता परमात्माको माने हैं। तथा पीर, पैगम्बर, औलियोंने भी कर्त्ता खुदाको माने हैं। वे ही नहीं, वाममार्गियोंने भी जगत्कर्त्री भगवतीको माने हैं। और सब कोईने यही मतको प्रमाण करके माने हैं।

दैत्यनहूँ = यह जान = मदिरा-मांस भक्षक, कुकर्मी, विषयासक्त, हिंसक, लबार, ऐसे दैत्यलोगोंने भी पुरुषकी इच्छासे प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्तिको माने हैं, ऐसा जानो।

सत्य = सत्यस्वरूप निज चैतन्यको नहीं जानते हैं, तथा सत्यको नहीं मानते हैं, वे ही झूठे लोग हैं। सत्य पालन बिना तन-मनकी—

शौच्य = शुद्धता-पवित्रता, स्वच्छता, निर्मलता भी हो नहीं सकती है। और—

दाया रहित = जड़-चैतन्यके सत्य निर्णयको न जाननेवाले निर्दयी लोग निजदया और परदयाको नहीं जानते हैं, इसलिये क्रूर,

हिंसक, लम्पट सत्य-विचारादि सद्गुण शुद्धभाव दयादिसे रहित जो हैं, सो दैत्य-अधम प्राणी हैं। कर्त्ताकी मिथ्या कल्पनामें वे नष्ट हुए वा हो रहे हैं, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— ब्रह्मसे जगत्का उत्पति-प्रलय होना वा जगत्का कोई एक कर्त्ता मानना, यही मत कल्पित सिद्धान्त संसारमें सबोंने प्रमाण करके माने हैं, और मान रहे हैं। वेदमें भी ईश्वर, ब्रह्म आदिको जगत्का आदि कारण और कर्त्ता बताया गया है। उसी वेदके प्रमाणसे ऋषीश्वरोंने, मुनीश्वरोंने और साधारण मनुष्योंतकने भी उसी 'कर्त्तावाद' को दृढ़ निश्चय करके माने हैं। और सत्य, शौच्य- शुद्धता, निर्मलता तथा दयाधर्म विचारसे रहित ऐसे अविचारी हिंसक क्रूर दैत्योंने भी यही भ्रमको ही जाने या माने हैं, कि- कोई जगत्का रचयिता कर्त्ता या मालिक होगा। ऐसे सब लोग उसी भ्रम-भूलमें पड़े हैं, सो जानो ॥ ५० ॥

सोरठाः— ब्रह्म मिलै सुख चैन ❀ ऐसे प्रगट बखानहीं ॥
[७] देखे बिन नहिं चैन ❀ देखहि ताहि अनुमानते ॥ ५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म मिलै = ब्रह्म प्राप्ति होके ब्रह्ममें तदाकार
सुखचैन = हो, जीव मिल जानेसे ब्रह्मानन्द सुख शान्तिकी विलास-प्राप्ति होती है। इसलिये ब्रह्ममें जीव मिलनेसे ही सुख चैन मिलती है। तब सर्व मायिक दुःख छूट जाते हैं।

ऐसे प्रगट = ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती गुरुवालोग
बखानहीं = ऐसी-ऐसी कल्पित वाणी संसार-में प्रगट करके अनेक तरहसे वर्णन किये और वही बात बता रहे हैं या वर्णन कर रहे हैं। उसी वाणीको सुन-सुनके नरजीव भ्रमिक हुए, इसलिये संसारमें—

देखे बिन = बेपारखी अबोध मनुष्यलोग
नहिं चैन = ब्रह्मको प्राप्तकर देखनेके लिये लालायित हो रहे हैं। कल्पित ब्रह्मको देखे बिना बेचैन हो रहे हैं। क्षणभर भी चैन नहीं आता है। कब मिलें ? कैसे मिलें ? करके व्याकुल, अधीर, भ्रमिक हुए या हो रहे हैं।

देखहि ताहि = सद्वस्तु न होनेसे ब्रह्म तो जब
अनुमानते = कुछ दिखाई नहीं दिया, तब वेद-वेदान्त शास्त्र देखके उसके प्रमाणसे ब्रह्मको अनुमानसे देखने या मानने लगे। निर्गुण, निराकार, अगम, अपार मानके धोखेमें गाफिल हो गये, बिना पारख ॥

व्याख्या— भ्रमिक मतवादी गुरुवालोग अज्ञानीलोगोंको भ्रमायके प्रत्यक्षमें यह बात प्रगट करके बखान करते हैं कि, जीव-ब्रह्मकी एकता करके उसी ब्रह्ममें जाके मिलनेसे ही महान् सुख-चैन परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है। ऐसी-ऐसी रोचक वाणी सुना-सुनाकर भुला देते हैं। इसलिये महिमा सुन-सुनकर अज्ञानी नरजीव ब्रह्ममें मिलनेके लिये आतुर हो जाते हैं। ब्रह्मको देखे बिना वा मिले बिना उन्हें क्षणभरके लिये भी चैन-शान्ति नहीं आती है; अतः श्रवणादि करके साधन चतुष्टय साधकर अनुमान-कल्पनाके आधारसे ही उस ब्रह्मको देखते हैं वा देखना चाहते हैं। जब ब्रह्म साकार सत्य वस्तु कुछ भी नहीं है, तब क्या देखेंगे ? मिथ्या धोखेमें पड़के गाफिल हुए और भ्रमिक हो रहे हैं। बिना विवेक जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े और पड़ रहे हैं ॥ ५१ ॥

दोहाः— ब्रह्म भये पुनि इच्छा ❀ मन माया कृत भास ॥
[५] कैसे चौरासी मिटै ? ❀ सुनु शिष्य ! सुबुद्धि निवास ॥ ५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु शिष्य !

ब्रह्म भये = वेद-वेदान्तादि वाणीको श्रवण, मननादि कर साक्षात्कारमें "अहंब्रह्मास्मि" का निश्चय करके स्वयं एक अद्वैत ब्रह्म भी हुए, तो क्या हुआ ? सदाकाल शून्य वृत्ति तो रह ही नहीं सकती है, स्थिति तो नहीं होती है।

पुनि इच्छा = फिर उसमेंसे जगत् उत्पत्तिकी इच्छा या स्फुरणा प्रगट होकर वृत्ति चञ्चल

होने लग जाती है।

मन माया = कृत भास = फिर मनके सङ्कल्प-विकल्प होनेसे मायारूपी कायासे अनेक कर्त्तव्य होकर मनके भास, अध्यास, कल्पनाकेरूप आनन्द, ज्योति आदि जो भासा, सो तत्त्वोंका प्रकाश सूक्ष्म विषयोंके भाग होनेसे जड़ाध्यास ही दृढ़ होता है। उससे बन्धन तो छूट नहीं सकता है, किन्तु, उलटा भव-बन्धन ही दृढ़ हो जाता है।

कैसे = चौरासी मिटै ? = अब कहो ! जड़ाध्यासी जीवोंका चौरासी योनियाँ आवागमन कैसे मिटेगा ? ब्रह्मके भ्रम माया मनके भासमें भासिक जीव जाके भूला या अटका, तहाँ चौरासी योनियोंमें जानेका पूरा मसाला तैयार किया, जगत्का कारण बीज स्वरूप बना, तो बीज वासनासे अवश्य चारखानी चौरासी योनियोंमें ही जायगा। ब्रह्म बननेसे चौरासी योनियाँ मिट नहीं सकती हैं, फिर कैसे चौरासी योनियाँ मिटेंगी ?—

सुनु शिष्य ! = सुबुद्धि = निवास = हे शिष्य ! तुम ध्यान पूर्वक गुरुमुख निर्णयकी वाणीको सुनो, उसको गुनो, भ्रम मानन्दीरूप कचरा निकालके बुद्धिको शुद्ध करो, और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें निवास ठहरावकरो, जिससे तुम्हारी बुद्धि शुद्ध होकर पारखमें ठहर जायगी, फिर भ्रम मिट जायगा ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! तू अपनी बुद्धिको शुद्ध कर, सत्सङ्ग-विचारमें निवास कर, जो मैं निर्णय करके कहता हूँ, सो ध्यान पूर्वक सुन ! साधनचतुष्टय सम्पन्न होकर ब्रह्मनिष्ठ गुरुके वाक्यको श्रवणादिसे, निश्चय करके जो जीव अन्तमें एक निर्गुण व्यापक ब्रह्म भी हुए, 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा दृढ़ भी किये, तो उससे क्या लाभ हुआ ? कुछ भी नहीं। क्योंकि, फिर उसी ब्रह्मके भीतरसे ही जगत्-सृष्टि-विलास करनेको इच्छा उठा ही करती है। और इच्छासे मन हुआ, मनसे माया-कायाका सम्बन्ध हुआ। इस तरह सारा जगत् बना और भास हुआ तथा भास हो रहा है। फिर मन-माया कृत भासमें मिलके वही ब्रह्म जगत्रूपमें फैल गया। अब कहो, चौरासी योनियोंका चक्र उसका कैसे मिटेगा ? आवागमनसे कैसे छुटेगा ? कभी भी छूट नहीं सकता है। जबतक ब्रह्मका भ्रम लगा रहेगा, तबतक वह चौरासी योनियोंमें भटकता ही रहेगा। अतः उसे परखकर हटाओ। हे सुबुद्धे ! पारखमें निवास करो ॥ ५२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग-३ ॥ ❀ ॥

१. उपजन विनशन रहटकि खानी ❀ ब्रह्म भये नहिं कुशल बखानी ॥ ५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! और सुनो !—

उपजन विनशन = रहटकि खानी = उत्पत्ति होना और प्रलय होना, बनना-बिगड़ना, जन्मना-मरना, आना-जाना, ऐसे ब्रह्मसे जगत् होना, जगत्से ब्रह्म होकर जीव चारखानी चौरासी योनियोंमें ही रहटमाला-की नाईं आवागमनरूपी ब्रह्म-जगत्में ही पड़ा रहता है। इसकारण—

ब्रह्म भये नहिं = कुशल बखानी = एक अद्वैत व्यापक 'अहं ब्रह्म' हो करके जीवका कुशल-रूप कल्याण या मुक्ति नहीं होती है। ऐसे पारखी सद्गुरुने निर्णय करके वर्णन किये हैं। गुरुवालोगोंने ब्रह्म होनेसे जो कुशल वर्णन किये हैं, सो धोखा है ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! रहटमाला चक्रकी नाईं बारम्बार उलट-पलट होकर चराचर चार-खानी चौरासी योनियाँरूप जगत् जिस ब्रह्मसे उपजना-विनशना होता रहता है। जिसमें स्वाभाविक उत्पत्ति-प्रलय होनेकी उपाधि लगी है, सो ऐसे ब्रह्म होनेसे किसीका कुछ भी कुशल नहीं होता है। भ्रमिकोंने ब्रह्म प्राप्तिमें जो कुशल वर्णन किये हैं, सो मिथ्या धोखा है। इसीसे रहटकी खानीरूप ब्रह्म होनेसे कुशल वा मुक्ति हो नहीं सकती है। ऐसा निर्णय पारखी सद्गुरुने यथार्थ वर्णन

किये हैं; सो अब तुम भी विवेक करके जानो ॥ ५३ ॥

२. इमि सो ब्रह्म सङ्कल्प जगता * ब्रह्म मुक्त जग भरम असकता ॥ ५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

इमि सो ब्रह्म = ऐसे या इसप्रकारसे सो
सङ्कल्प जगता = ब्रह्मको अधिष्ठानरूप कारण मानकर फिर उस ब्रह्मके सङ्कल्प या स्फुरणा-से चराचर सारे जगत्की कार्य-रूपमें उत्पत्ति माने हैं। और—
बेपारखीलोग कहते हैं कि—

ब्रह्म मुक्त =
जग भरम =
असकता =
जगत्का आदि कारण होकर भी ब्रह्म नित्यमुक्त, निरञ्जन, निराकार है। और मायाका कार्यरूप दृश्य जगत् भ्रान्ति मात्र अस्तित्व-हीन, शक्तिहीन है। ऐसा अण्ट-सण्ट मानकर ब्रह्म-जगत्में आसक्त बद्ध हो रहे हैं, बिना विचार ॥

व्याख्या— इसप्रकार सो ब्रह्मके सङ्कल्पसे ही ऐसे जगत् उत्पत्तिकी-कल्पना किये हैं। और ब्रह्मके विकल्पसे जगत्का प्रलय होनेको भी कहा है। ऐसे उत्पत्ति-प्रलय होनेपर भी ब्रह्मको मुक्त माने हैं, और जगत्को भ्रममात्र शक्तिहीन वा असक्त कहे हैं। परन्तु, उसी जगत्में आसक्त होकर ब्रह्मज्ञानी भ्रम-भूलवश बद्ध हुए और अभी बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ ५४ ॥

३. ताते शिष्य! पदारथ ब्रह्म * परखो झाँईं सन्धिक भर्म ॥ ५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

ताते शिष्य = इसवास्ते हे जिज्ञासु शिष्य!
पदारथ ब्रह्म = ब्रह्म कोई सच्चा पदार्थ या वस्तु नहीं है। गुरुवालोगोंने जो मुक्तरूप पदार्थ ब्रह्मको माने हैं, सो भ्रममात्र होनेसे धोखा है। और—
परखो झाँईं = कैवल्य ब्रह्म विज्ञानपदकी
सन्धिक भर्म = गाफिली 'झाँई' है। तथा साक्षी सर्वज्ञ ईश्वरपदकी मानन्दी 'कल्पना' है। यह दोनों नरजीवकी भ्रान्तिसे बनी हैं, सो उसको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ निर्णय करके परखो; भ्रमको मिटा डालो। अर्थात् झाँईं, सन्धि दोनों भ्रम हैं। उसे परखो, भ्रम-धोखाको हटाओ ॥

व्याख्या— इसवास्ते हे शिष्य! ब्रह्म कोई सत्य मुक्त पदार्थ नहीं है। किन्तु, पदरूप वाणीका अर्थ शब्द विषयकी कल्पना मात्र है। झाँईं = ब्रह्म, विज्ञानपदकी गाफिली है। सन्धि = ईश्वर, ज्ञानपद-की मानन्दी है। यह दोनों नरजीवकी भ्रान्ति मिथ्या कल्पना ही है। उसे सत्सङ्गमें विवेक करके परखो, और भ्रमको छोड़के पारखपदमें स्थिति कायम करो ॥ ५५ ॥

४. काल सन्धि झाँईं मत आहीं * गुरुमुख कहा रमैनिन माहीं ॥ ५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

काल = कर्म, उपासना, योगमार्गकी नाना वाणी-कल्पना गुरुवालोगोंने जो बनाये हैं, सोई कालका जाल है। अथवा विषयानन्द, ब्रह्मानन्द यही जीवोंपर काल है। तथा—
सन्धि = तुरिया साक्षी घट-घट वासी 'सूत्रमणि-न्याय' आत्मा ठहराना, कर्त्ता ईश्वरको थापना, ज्ञानमार्गकी मानन्दी, यही सन्धि या दरार है। और—
झाँईं = विज्ञान कैवल्य व्यापक ब्रह्मपदकी मानन्दी करके गाफिल होना, बेभान होना, यही झाँईं है।

मत आहीं = यही गुरुवालोगोंके मत या विभिन्न सिद्धान्तोंका आधार है। सब मत-पन्थ-वाले इन्हीं तीनोंके भीतर सामिल होते हैं। सोई दृढ़ाके भूले और भुला रहे हैं। ऐसे काल, सन्धि, झाँईं के झाल हैं।

गुरुमुख कहा = सो उसका यथार्थ सत्य
रमैनिन माहीं = निर्णय सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने बीजक सद्ग्रन्थके रमैनी भागमें निर्णय करके कहा है। तथा हमने भी इस ग्रन्थके अन्तिम भाग सत्ताईस रमैनियोंमें गुरुमुख वाणीसे सार निर्णय वर्णन करके

कहा है। सो वहाँसे विशेषरूपमें समझ लेना चाहिये ! यहाँपर संक्षेपमें दर्शाया है ॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंका मत, सिद्धान्त- किसीका काल=कल्पना करके कर्म, उपासना, योगका पक्ष दृढ़ हुआ है। कोई सन्धि=मानन्दीसे ज्ञानमार्गका पक्ष पकड़े हैं। और कोई झाँई= विज्ञानमार्गमें लगके ब्रह्मपदकी गाफिलीमें पड़े हैं। इसप्रकार काल, सन्धि, झाँईका मत जो है, सो उसका निर्णय विस्तारसे बीजक सद्ग्रन्थमें रमैनी भागमें और पञ्चग्रन्थीकी सत्ताईस रमैनियोंमें भी वही गुरुमुख द्वारा यथार्थ निर्णय कहा गया है। विस्तारसे वहाँसे जान लेना चाहिये ! यहाँपर संक्षेपमें जनाया गया है, सो जानो ॥ ५६ ॥

५. नास्ति लखै सो भौ अनुमान * जथा आस्तिमें रहैं समान ॥ ५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

नास्ति लखै सो= संसारमें नाना दुःख कष्ट-
भौ अनुमान= क्लेश पाय करके दुःख मिटायके सुख पानेकी आशासे, नरजीवोंने विचार करके लखते-लखते सो कोई सुख-दुःख दाता कर्त्ता परमेश्वर है, ऐसा अनुमान कर लिये। सो कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि तो कोई चीज नहीं है। नास्ति मिथ्या धोखा है। अनुमानको न लखकर जीव भ्रमिक हुए। नास्तिको लखे, तो अनुमान दृढ़ हुआ।

जथा आस्तिमें= यथार्थ नित्य सत्य तो
रहैं समान= चैतन्य जीव ही है। परन्तु, पारख न होनेसे सत्य जीव ही मिथ्या मानन्दीमें समा रहे हैं। इसलिये नरजीवोंमें ही भ्रम अध्यास जैसा-तैसा समाया, इसीसे कोई सत्य ब्रह्म मानकर उसमें सब लग रहे हैं, बिना विचार ॥

व्याख्या— निज स्वरूपका बोध तथा स्थिति न होनेसे नरजीवोंमें अनुमान खड़ा हुआ कि—कोई एक ब्रह्म है। सो उसी नास्तिको भ्रमसे सत्य लखा वा सत्य माना। फिर जैसे भ्रम हुआ था, तैसे ही अस्ति चैतन्य नरजीवमें ही वह भ्रम धोखा समाय रहा। अथवा जैसे अस्ति जीवमें सन्देह समाय रहा, तैसे उसे भ्रमसे यथार्थ समझ करके नास्तिको लखा, तो अनुमान दृढ़ हुआ। इसीसे जीव बद्ध हुआ, बिना विवेक ॥ ५७ ॥

६. परखै शब्द जथा टकसार * सुन शिष्य ! ताको जो व्यौहार ॥ ५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

परखै शब्द= अतः पारखी साधु-गुरुके
जथा टकसार= सत्सङ्गमें रहकर बीजकके सत्य निर्णय यथार्थ सारशब्द विचारसे काल, सन्धि, झाँई और जीव, ब्रह्म, माया-मुखी सब शब्दोंकी कसरको परख लेवे, सारको धारण कर लेवे।

सुन शिष्य ताको= हे जिज्ञासु शिष्य! सत्सङ्गमें
जो व्यौहार= जड़-चेतन निर्णयके गुरु उपदेशको सुनो ! और हंसके सद्गुण ग्रहणका जो व्यवहार है, सो जान लेना चाहिये। अथवा हे शिष्य ! सद्गुरु और गुरुवाका, काल-दयालका तथा हंस, काग-का और बन्धन-मुक्तिका जो व्यवहार है या होता है, उसको पारखी सद्गुरुके सत्यन्यायसे सत्सङ्ग द्वारा सुनकर जान लो ! तभी सत्य बोध होगा ॥

व्याख्या— उस समस्त भ्रम-भूलको मिटानेके लिये सत्य शब्द टकसाररूप सद्ग्रन्थ बीजक-को सत्सङ्गमें श्रवण, मनन, करके जैसे-जैसे भेद है, तैसे-तैसे यथार्थ सारशब्द गुरुमुख वाणीको परखो, तब सद्स्वरूपका भेद जाननेमें आयगा। हे शिष्य ! सत्सङ्गरूपी टकसारका जो शुद्ध व्यवहार है, उसको जाननेके लिये तुम पारखी साधु-गुरुसे सत्य उपदेश सुना करो ! अर्थात् टकसारका यथार्थ सारशब्द जैसा है, तैसा ही निर्णयसे लखकर परखो। हे शिष्य ! तिसका जो व्यवहार है, सो भी कहता हूँ, सुनो ! इत्यादि प्रकारसे सद्गुरुने उत्तर कहकर समझाया ॥ ५८ ॥

॥ ❀ ॥ ४ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- ४ ॥ खण्ड- ७ ॥ ❀ ॥

दोहाः— परख कौन टकसारकी ? * साहेब ! देहु बताय ॥
[६] जेहि अनुरागे जीयरा * बसै हंस पद आय ॥ ५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका चौथा प्रश्न कहते हैं— शिष्य कहता है—हे सद्गुरु देव !—

परख कौन टकसारकी ?= टकसाररूप बीजकका सत्य सिद्धान्त पारखकी पहिचान कैसे होगी ? सत्सङ्ग किसको कहते हैं ? सत्यशब्द टकसारकी परख या परीक्षा कौन है ? या कौन विधिसे होगी ?—

साहेब ! देहु बताय= हे सद्गुरु साहेब ! आप कृपा करके मुझे बता दीजिये ! सो लखाकर समझा दीजिये !—

जेहि अनुरागे जीयरा= जिस सत्सङ्ग बीजक सिद्धान्तपर प्रेम निष्ठा करनेसे नरजीव कल्पित बन्धनोंसे छूट करके—

बसै हंस पद आय= जड़-चैतन्यका निर्णय जानकर सत्य चैतन्य हंस जीव हंस रहनी-युक्त पारखपदमें आयके निवास या स्थिति कर सके, सो युक्ति भेद कृपया बतलाइये ! ॥

व्याख्या— तब फिर शिष्यने यह पूछा कि— हे सद्गुरु साहेब ! टकसारकी परख कौन है ? सो मैं तो नहीं जानता हूँ ! आप कृपा करके बताय दीजिये ! जिसमें अनुरागरूपी प्रेम करनेसे नर-जीव हंसपदमें आयके निवास कर सके, सो युक्ति भेद दया करके कहिये ! ॥ ५६ ॥

दोहाः— ताकी देही कौनती ? * कौनते तत्त्व प्रकृत्ति ? ॥
[७] गुण कौन सम्बन्धते ? * रहत सदा निर्भिति ॥ ६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— शिष्य उसी प्रश्नमें और भी पूछ रहा है—

ताकी देही कौनती ?= हे साहेब ! सबका निर्णय या परीक्षा करनेवाला उस हंसका देह कौन था ? तथा निवास हंसका कहाँ-पर होता था ? उसका शरीर कैसा किस प्रकारका था ? अथवा कौन-सा उसका देह है ?

कौनते तत्त्व प्रकृत्ति ?= उस हंसके पासमें कौनसे तत्त्व और प्रकृति रहे थे ? या उसकी तत्त्व-प्रकृति कौन हैं ?

गुण कौन सम्बन्धते ?= उसके कौनसे गुण थे ? तथा वह किसके सम्बन्धमें रहता था ? जिससे कि, सर्वदा सुखी रहता था। और—

रहत सदा निर्भिति= सदाकाल हंस निडर या निर्भय होकर रहता था, आवागमनोंके भयसे रहित हंस जीवन्मुक्तिमें रहता था, सो उसके पासमें कौन-सी युक्ति या शक्ति थी ? कृपाकर सो बतला दीजिये ! अर्थात् हंसके देह, तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रियादि कौन थे ? और कौन गुणके सम्बन्धसे सदा निर्भय रहता था ? यह बात मुझे समझा दीजिये ! ॥

व्याख्या— हंसका देह कौन-सा है ? तथा हंसदेहका शुद्ध तत्त्व, प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ? फिर कौन गुणके सम्बन्ध करनेसे हंस जीव सदा निर्भय हो अचल रहता था ? या कैसे निर्भय, निर्बन्ध हो जावेगा ? सो बताय दीजिये ! ॥ ६० ॥

दोहाः— अण्ड माँहि रचना जेती * सो तो बन्धन आहिं ॥
[८] मन माया कृत जो भयो * सो सब ब्रह्महि माहिं ॥ ६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न ही कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

अण्ड माँहि रचना जेती= अण्डरूप विराट गोलाकार ॐ कार चराचर व्यापक ब्रह्म झाँईं की गाफिलीसे रज-वीर्य तथा बीजादि-से पिण्ड-ब्रह्माण्डमें जितनी भी रचनाएँ (उत्पत्ति) हो रही हैं या हुई हैं।

सो तो बन्धन आहिं= सो सबको तो आपने

विकार बन्धनकारूप ही बतलाये हैं। सो ब्रह्मकी रचना सब तो बन्धन ही है, ऐसा ठहरा, तथा सो तो बन्धन ही है; और—

मन माया = मन-माया, तन-कायासे
कृत जो भयो = निर्मित जो कुछ भी स्थूल-सूक्ष्म खानी-वाणीका विस्तार जगत्में हुआ है—

सो सब ब्रह्म- = सो. सब तो विराट ब्रह्मके
हि माहिं = भीतर ही उसीमें आ गया। ब्रह्म मिथ्या होनेसे जगत् भी मिथ्या हो गया, फिर उससे न्यारा सत्यवस्तु क्या है? सो दया करके परखाइये! लखाइये!॥

व्याख्या— अण्डरूप ॐकार ब्रह्म अथवा वीर्य, वासनादिमेंसे जितनी भी रचनाएँ हुई हैं, सो सब तो जीवको बन्धन ही हैं, ऐसा आपने कहा, सो मैंने समझ लिया हूँ! और मन-मायासे बनकर जो कुछ भी विस्तार हुआ है, जगत् आदि सो सब उपाधि तो ब्रह्ममें ही समाया हुआ ठहर गया। उससे न्यारा कुछ नहीं हुआ। इसीसे ब्रह्म भ्रम-बन्धनका कारण हुआ, सो बात मैं जान गया हूँ! अब कृपया हंस स्थिति समझाइये!॥ ६१॥

॥ ❀ ॥ ४ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- ४ ॥ खण्ड- ८ ॥ ❀ ॥

दोहाः— अण्ड निरञ्जन ब्रह्मका * मन माया परकाश ॥
[६] जीव चारि खानी परे * विकल त्रसित तेहि आश ॥ ६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब उत्तर देते हैं— हे शिष्य! उसका भेद भी मैं कहता हूँ, सुनो!—

अण्ड निरञ्जन = ॐकाररूपसे पिण्ड-ब्रह्माण्ड
ब्रह्मका = चराचरमें व्यापक निर्गुण, निरञ्जन, निराकार ब्रह्मका कथन ब्रह्मज्ञान-का उपदेश—

मन माया = मन-कल्पना या मानन्दीसे मान-
परकाश = कर माया = भ्रमिक गुरुवालोगों-ने कल्पित वाणीका प्रकाश जगत्में किये हैं। सो उन्होंने मन-मायारूप सर्व जगत्का प्रकाशी ब्रह्मको ठहराये हैं। यही जीवोंको दृढ़ करा दिये हैं। अतएव बिना पारख—

जीव चारि = चराचर व्यापक ब्रह्म गाफिलीमें
खानी परे = पड़े हुए नरजीव सब अध्यास-वश चारखानी चौरासी योनियोंमें जाकर पड़ गये और पड़ रहे हैं। परन्तु—

बिकल त्रसित = बिना विवेक, कर्त्ता ब्रह्म-
तेहि आश = ईश्वरादि मानकर उसकी प्राप्तिके लिये व्याकुल, यमलोकसे भयभीत हो, ब्रह्म आदि प्राप्तिकी आशा लगाकर नाना साधनाएँ कर रहे हैं। उसी भ्रम-जड़ासक्ति-से बद्ध होकर जन्म-मरण त्रयतापादिमें पड़-कर जीव व्याकुल वा त्रसित हो रहे हैं॥

व्याख्या— तदनन्तर सद्गुरु उत्तर देते हुए समझाते हैं कि— हे शिष्य! अण्डरूप माना हुआ ॐकार निरञ्जन ब्रह्मका कथन कल्पनासे वर्णन करके मन-माया द्वारा जगत्में प्रकाश हुआ है। अर्थात् भ्रमिक गुरुवालोगोंने मन-मानन्दीसे वाणीका प्रकाश किये, तब भ्रमसे ब्रह्मकी महिमा बढ़ी है। सर्व प्रकाशी ज्योतिस्वरूप ब्रह्मको माने हैं। परन्तु, उसीकी आशा, वासा, कल्पनासे जड़ाध्यासी होकर नरजीव विकल और त्रसित हो गये! इसीसे कर्म-कुकर्म कर-करके बद्ध हो-होकर सब जीव चारखानी चौरासी योनियोंमें जाके पड़ गये। वहाँ सब अपने-अपने कर्म भोग भोग रहे हैं, बिना विवेक॥ ६२॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने मूल बीजककी रमैनीकी साखीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये!॥

॥ ❀ ॥ बीजक मूल, रमैनीके साखी नम्बर— २७ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ ❀ ॥

(१) साखीः— एक अण्ड ॐकारते * सब जग भया पसार ॥
[१०] कहहिं कबीर सब नारि रामकी * अविचल पुरुष भ्रतार ॥ ६३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें पारखदृष्टि बिना भ्रमिक

मनुष्योंने एक ब्रह्मको जगत्कर्त्ता माने हैं, सो कैसे कि ?—

एक अण्ड ओंकारते = नरजीवोंने अनुमान या कल्पना करके एक विराट पुरुष ॐकार-को चराचर पिण्ड-ब्रह्माण्डमें व्यापक परमात्मा जगत्का कर्त्ता अधिष्ठान माने हैं। फिर उसी अण्डरूप ॐकार ब्रह्मसे—

सब जग भया पसार = समस्त चैतन्य-जड़ादि संसार या जगत्-जालका विस्तारसे पसारा या उत्पत्ति हो गयी। यानी प्रणव ब्रह्मकी इच्छासे सारा जगत्की सृष्टि होकर चार खानी आदि सबका पसारा हुआ। अब इसको वही परमात्मा धारण कर रहा है। और वही सबोंके सुख-दुःखों-का दाता भी है'। उसी ब्रह्मकी प्राप्ति होनेसे ही मुक्ति होगी, ऐसा दृढ़ किये हैं। अर्थात् एक अण्ड ॐकारसे ही सब जगत्की उत्पत्ति होकर पसारा हुआ है, ऐसा माने हैं।

कहहिं कबीर = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं- इसप्रकारसे भ्रममें पड़कर—

सब नारि रामकी = सब बेपारखी मनुष्य गुरुवालोगोंके सङ्गमें लगकर रामकी स्त्रीरूप भक्त बने, तो नवधाभक्ति करने लगे। कोई रामकी जड़ मूर्ति बनायके पूजा करने लगे, कोई निर्गुण परमात्मा रामकी ध्यान-उपासना, मानस पूजामें लगे। जिसको उन्होंने पति माना, उसका तो कहीं पता ही नहीं है, तो भी अनाड़ीलोग कल्पित भक्ति-भावनासे उसे—

अविचल पुरुष भतार = परम पुरुष परमात्मा, विश्वम्भर, अचल, अटल, अविनाशी, जगदाधार, अनुमानकर स्त्री बने हुए सब भक्तलोग उसी कल्पित पुरुषसे मिलना चाहते हैं। बिना विचार ऐसे भ्रम-चक्रमेंपड़े हैं, और चौरासी योनियोंमें गोता लगा रहे हैं॥

व्याख्या— यहाँ बीजक-रमैनी-२७ की साखीका प्रमाण दिया है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भ्रमिक गुरुवालोगोंने ऐसा कथन किये हैं कि, एक ही अण्डरूप ॐकार ब्रह्मसे सब जगत्की इच्छामात्रसे उत्पत्ति होकर पिण्ड-ब्रह्माण्ड वा चराचरका पसारा होकर विस्तार हुआ है। अतः वही सर्व समर्थ कर्त्ता पुरुष है, ऐसा माने हैं। फिर उसी कल्पित ब्रह्म वा ईश्वरको अविचल पुरुष भ्रतार वा परमपति परमात्मा मानकर सब भक्तलोग उस सगुण-निर्गुण रामकी नारी हुए। वे अनाड़ीलोग प्रेम-भावसे रामरूप पति प्राप्तिके लिये लौ लगायके नवधा भक्ति आदि साधनाएँ करने लगे। परन्तु, वह मनका कल्पित पति वा मालिक कभी उन्हें नहीं मिला। इसीसे भ्रमिक पागल होकर जहाँ-तहाँ मारा-मारा फिर रहे हैं। और जड़ाध्यासी बद्ध होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें भटक रहे हैं। निज स्वरूपको न जानके भव-बन्धनमें जहँड़े पड़े हैं, बिना पारख॥६३॥

दोहाः— जथा अनेकन लहरिते ❀ जल थिरता नहिं पाय ॥
[११] थीर जहाँ तहाँ बड़वा ❀ नीरहि शोष कराय ॥ ६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जैसे समुद्रमें एक तो अनेक तरङ्ग-लहरी वायु वेगसे उठते रहनेसे जल स्थिर होकर रहने नहीं पाता है; दूसरा जहाँ स्थिर होनेका स्थान है, तहाँ बड़वानल अग्नि पानीको शोषण करता रहता है। तैसे ही सिद्धान्तमें—

जथा = जैसे दृष्टान्त कहा, तैसे यथार्थ सत्य चैतन्य होते हुए भी नरजीव जड़ाध्यासी होनेसे—

अनेकन लहरिते = मन-मानन्दीके अनेकों तरङ्ग विषयों-की नाना लहरी तथा ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पनासे प्राप्ति करनेका विरह-लहर भ्रम तरङ्ग उठते ही रहनेसे—

जल थिरता नहिं पाय = जीवोंके मन खानी-वाणीके बीचमें पड़नेसे कभी स्थिर होने नहीं पाता है। सदा चञ्चल ही बना रहता है; जलवत् बहा करता है।

थीर जहाँ तहाँ बड़वा = और योगी, ज्ञानीलोग साधनाद्वारा जहाँ स्थिर वृत्ति

करके समाधि लगाते हैं, तहाँपर तो बड़ा भारी अहंअग्नि प्रज्ज्वलित रहता है। उसीसे इच्छा स्फुरणा हो-हो कर सदा लपट उठा करती है। और—

नीरहि शोष = मन-बुद्धिको शोषण-आकर्षण
कराय = करता ही रहता है।

इसलिये गुरुवालोगोंकी कही हुई वाणी कल्पना ही जीवोंकी मतिका शोषण करता है। इसप्रकार इच्छा, वासना, कल्पना, मानन्दी ही मनुष्योंको शोषण करके भुला रही है वा भटका रही है॥

व्याख्या— दृष्टान्तमें जैसे अनेकों लहरें उठते रहनेसे समुद्रमें जल स्थिर होकर रहने नहीं पाता है। फिर जहाँपर गहरा होनेसे स्थिर हो सकता है, तहाँपर ही बड़वाग्नि जलको शोषण करके चञ्चल किया करता है। तद्वत् सिद्धान्तमें भी अनेकों लहरीरूप सङ्कल्प-विकल्प, इच्छा-वासना उठा करनेसे जलरूप मन स्थिर होने नहीं पाता है; और जहाँपर ब्रह्म बनकर वृत्ति स्थिर करते हैं, तहाँपर ही बड़वाग्निवत् अहं इच्छा-स्फुरणा उठ-उठकर मनको शोषण करके भ्रमाती रहती है। मन, बुद्धि, वाणीसे परे ब्रह्मको मानते हैं, फिर उसीकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहते हैं। इसीसे विचारको सुखाकर बुद्धिको चञ्चल करते रहते हैं। इसतरह वाणी कल्पना जीवोंको भटकाती रहती है, बिना विवेक॥ ६४॥

दोहाः— दुहुँ प्रकार थिरता नहीं * ब्रह्महु जगत पर्यन्त॥
[१२] जीवहि दुःख दुस्सह अती * त्राहि त्राहि बिलखन्त॥ ६५॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! दुहुँ प्रकार = ऐसे दोनों प्रकारसे विषयानन्द थिरता नहीं = तथा ब्रह्मानन्दमें लगकर जीवों-को स्थिरता या मुक्ति प्राप्ति हो नहीं सकती है। क्योंकि—

ब्रह्महु = कारण ब्रह्मसे कार्य जगत् पर्यन्त
जगत = माया जालमें भव-बन्धनोंका विकार
पर्यन्त = हलाहल विष ही लगा हुआ है। ब्रह्मज्ञानादि वाणीका जाल है, और स्त्री भोगादि खानीका जाल है। सो सूक्ष्मसे स्थूल तक वही भव-बन्धालग हुआ है; वह महाविकारी है।

जीवहि दुःख = उन अध्यासोंमें बद्ध या ग्रसित
दुस्सह अती = होनेसे जीवोंको अत्यन्त दुस्सह दुःख चार खानियोंमें जन्म-मरणादि त्रिविधि ताप भोगना पड़ रहा है। ऐसे असह्य दुःख पायके—

त्राहि त्राहि = सब मनुष्यलोग रो-रोकर
बिलखन्त = व्याकुल होके कल्पित ईश्वर, देवतादिका नाम ले-लेकर 'त्राहिमाम्!-त्राहिमाम्' मुझे रक्षा करो! रक्षा करो!! बचाओ! कहकर पुकारा करते हैं। ऐसे बिलख रहे हैं। बिना पारख धोखेमें पड़े ही हैं, तो उनको कौन बचायेगा? कोई नहीं॥

व्याख्या— इसप्रकार दोनों प्रकारसे कहीं भी जीवोंको स्थिरता नहीं मिलती है। ब्रह्मसे जगत् पर्यन्त चञ्चलता चलायमान ही लगा रहता है। लहरीवत् जगत् माना है, यहाँ विषयभोगोंमें बहुतेरोंके पीछे दुःख लगे ही रहते हैं। और ब्रह्मको स्थिर होनेकी जगह कहा है; परन्तु, वहाँ भी स्वाभाविक इच्छाकी ही अग्नि लगी रहनेसे चञ्चल वृत्ति बनायके मनको शोषता ही रहता है। इससे वह जगत् दुःखोंमें घिरा रहता है। खानी जाल और वाणी जालमें पड़े हुए जीवोंको वा भ्रमिक मनुष्योंको अत्यन्त दुस्सह दुःख-सन्ताप हो रहा है। तथा त्रिविधि तापमें सन्तप्त होकर त्राहि-त्राहि चिल्लाकर हाय-हाय मचाके रो-रोकर विलाप करते हैं; बिलख कर बन्धनमें पड़े हैं। ईश्वर-खुदा, और परिवारादिको अपनी रक्षाके लिये पुकारते हैं; परन्तु, उन्हें कोई रक्षा कर नहीं सकते हैं। जैसे-जैसे कर्म अभ्यास बनाये हैं, तैसे-तैसे सब जीवोंको भोगना ही पड़ता है। अतः अभी कर्त्तव्यका सुधार करना चाहिये॥ ६५॥

दोहाः— शुद्ध होय दाया द्रवित * प्रेम साँच निज पाय ॥
[१३] स्वतः नेत्र मूँदे खुले * निज अनुमान दिखाय ॥ ६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! जो कोई शुभ संस्कारी मनुष्य होते हैं, सो पारखी सद्गुरु साधुके सत्सङ्ग करके शुद्ध हो जाते हैं। सो वैसे—

शुद्ध होय = जो कोई जिज्ञासु नरजीव बाहर-भीतरसे तन-मनकी पवित्रता साफ-सफाई या शुद्ध करके शुद्ध चैतन्य बोध प्राप्तिके अधिकारी हो जाते हैं, ऐसे शरणागत—

दाया द्रवित = शिष्यपर दया करके या दयासे बोधकी वर्षा करके सत्यज्ञानका उपदेश सद्गुरु दे देते हैं।

प्रेम साँच = } सत्य प्रेमसे गुरुभक्ति करने-
निज पाय = } वाला शिष्य निज सत्स्वरूप चैतन्य बोधको सद्गुरुकी दयासे पा जाता है। तब—

स्वतः नेत्र = } नित्य, सत्य, चैतन्य जीव ही
मूँदे खुले = } मेरा स्वरूप है, यह विवेक-दृष्टि जो ढकी पड़ी थी, सो पारखी सद्गुरुने पारखदृष्टि खोल दी, तब तो सारासार देखनेमें आ गया। और—

निज अनुमान = } प्रथमका अपना अनुमान
दिखाय = } ब्रह्म-भ्रम आदि कल्पना करनेवाला "मैं ही सत्य हूँ! मैं जीव स्वरूपसे अविनाशी, अखण्ड हूँ!" ऐसा जानकर या विवेकसे देखकर भ्रमसे न्यारा हो जाता है॥

व्याख्या— और खुलासाः— अथवा अनेकों जन्मके शुभसंस्कार उदय होयके जिस पुरुषका अन्तःकरण शुद्ध हो गया, सो अपनेको नाना बन्धनोंमें पड़ा हुआ देखके उस बन्धनोंसे छुटकारा पानेके लिये निजदयासे द्रवित होकर पिघला; यानी शुद्ध होनेसे स्वयं निजदया द्रवित हुई। प्रेमसे सत्यासत्यके विवेक करने लगा, तो सत्स्वरूप स्वयं निज चैतन्य जीवको ही सच्चा जान पाया। यानी सत्यप्रेमसे अपने जीवको ही सत्य लख पाया। इसप्रकार पूर्वमें जो स्वयं स्वरूपकी दृष्टि मूँदी पड़ी थी, सो स्वतः विवेक बलसे जब पारखदृष्टि खुली, तब निज स्वरूप जीवको ही सत्य जाना; और अपनेसे भिन्न माना हुआ कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि सब मिथ्या अनुमान-कल्पना ही देखनेमें आया। सोई सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पारख प्रकाशी आदिगुरु होकर मनुष्योंको परखाये हैं। यह दूसरा गूढ़ार्थ दिखाया गया है, ऐसा विचार करके जानिये ! ॥

अथवा जब कोई शुभ संस्कारी पुरुष निज-पर दया पालन करनेमें द्रवित हुए, तब उनका अन्तःकरण स्थिर निर्मल हुआ। और शुद्ध होयके सच्चा प्रेम प्रगट हुआ, इसीसे पारखबोध होनेसे निज सत्य स्वरूपमें ही स्थिति कर पाये। तब तो मूँदी हुई विवेकदृष्टि वा पारखदृष्टि स्वतः ही खुल गई। निज स्वरूपका अपरोक्ष बोध हो गया। और अपने पूर्वके अनुमान, कल्पना, भ्रम सब देखने-परखनेमें आ गये; सोई विवेकी हंस हुए ॥ ६६ ॥

दोहाः— सो अनुमान प्रचण्ड अस * कीन्हों ब्रह्माकार ॥
[१४] व्याप नास्ति जब ब्रह्म भये * तब जीव भये खुवार ॥ ६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

सो अनुमान = } वह मिथ्या अनुमान-कल्पना
प्रचण्ड अस = } बढ़ते-बढ़ते ऐसे प्रचण्ड तीव्र वेगवाला तीक्ष्ण हो गया कि—

कीन्हों ब्रह्माकार = सब चराचर जगत्को एक ही आकारमें खैंचके "एको ब्रह्मद्वितीयोनास्ति" ऐसे कहकर एक अद्वैत ब्रह्मका आकार यही जगत्को ही बनाया। अबोध नरजीवोंको उसीमें ले जाकर भुलाया गया। मिथ्या मानन्दीसे जब—

व्याप नास्ति = } चराचर व्यापक
जब ब्रह्म भये = } 'अहंब्रह्मास्मि' कहके नास्तिक ब्रह्मवादी भ्रमिक हुए, धोखेमें जा-जाकर पड़े, इसीकारणसे—

तब जीव = नरजीव तब तो अपने पदसे
भये खुवार = नष्ट-भ्रष्ट होकर खराब हुए। और अनेक मिथ्या साधनोंमें लग-लगाके ब्रह्म-भ्रमके चक्रमें पड़कर खराब जड़ाध्यासी बने, नरजन्मसे गिर पड़े, चौरासी योनियोंमें जाके पड़े। बिना पारख दुर्गतिमें गिर गये ॥

व्याख्या— जिन्होंने पारखबोध नहीं पाये, सो भ्रममें ही पड़े रहे। तहाँ सो अनुमान ऐसा प्रचण्ड वेगशाली हुआ कि, उसने बढ़ते-बढ़ते एक ब्रह्माकारकी कल्पना की। उसे सर्व व्यापक परिपूर्ण ठहराया। जब मनुष्योंने नास्ति=मिथ्या अनुमानसे ब्रह्मको व्यापक मानकर फिर वह ब्रह्म अपने आपको ही मान लिये। तब भ्रम धोखाके चक्रमें पड़कर वे नरजीव खराब हुए। अर्थात् जड़ाध्यासी बद्ध होकर आवागमनके अधिकारी हुए और चौरासी योनियोंके महान दुःखोंमें पड़ गये; बिना पारख ॥ ६७ ॥

दोहाः— निज झाँईं सम्भव लखै * सो अनुमान मिटाय ॥
[१५] जीव ब्रह्म माया मनहिं * देखु परख थिति पाय ॥ ६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु शिष्य !—

निज झाँईं = निज सत्य चैतन्यपदपर ठहराव न करके और जीवने निज स्वरूपको भूलकर अपनेको जो व्यापक ब्रह्म माना, सो महा गाफिली है। उसी झाँईं से ही जन्म-मरण होता रहता है। उसे उत्पत्ति-प्रलयका कारणरूप विकार लखकर त्याग दो।

सो अनुमान = अपरोक्ष पारखबोध होनेपर
मिटाय = सो अनुमान-कल्पनादि भ्रम आप ही मिट जाता है या छूट जाता है। इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें विवेक-विचार करके सो सब भ्रम-अनुमानको मिटा डालो; और निज स्वरूपमें स्थिति ठहराव करो। अपने झाँईं से ब्रह्म अनुमानकी उत्पत्ति हुआ, ऐसा लखनेसे वह अनुमान मिट सकता है।

जीव ब्रह्म = नरजीवने ही भूलसे व्यापक
माया मनहिं = एक कर्त्ता ब्रह्मको माना, फिर इच्छारूपी आदिमाया भगवतीको ठहराया, तथा मनके सङ्कल्प-विकल्प मानन्दीसे विषय जाल रचकर अरुझाया; सो ब्रह्म-भ्रम, माया-काया यह मन-मानन्दीमात्र है। उसका भेद नहीं पाया, तो अरुझाया है।

देखु परख = हे शिष्य ! तुम पारखदृष्टिको
थिति पाय = उघाड़कर देखो ! मिथ्या मानन्दीको परख कर छोड़ो, सब अध्यासों-को त्यागकर निज चैतन्य स्वरूपकी पारख स्थिति प्राप्तकर जीवन्मुक्त हो भव-बन्धनों-से छूट जाओ ! निज स्थिति पानेपर तुम्हें यथार्थ बात दिखाई देगा ॥

व्याख्या— जब नरजीव परीक्षा करके परखेंगे, लखेंगे, तब झाँईं =विज्ञान ब्रह्मपदकी गाफिली अपने जीवके ही भ्रम-भूलसे, सम्भव=उत्पन्न हुआ, ऐसा लखनेमें आ जायगा। अर्थात् निज पारख स्वरूपका बोध न होनेसे ही झाँईं खड़ी हुई। यथार्थ लख लेनेसे फिर सो वह अनुमान ब्रह्मका भ्रम मिट-मिटायके नाश हो जाता है। और जीवको अल्पज्ञ, अज्ञान मानना, ब्रह्मको सर्वज्ञ, विज्ञान मानना, और मायाको ब्रह्मकी अचिन्त्य शक्ति मानना, ये सब मनकी ही मानन्दी मिथ्या भ्रम है। ऐसे मानन्दीकर्त्ता जीव ही सत्य है; सो परख करके देखो ! और अपने भ्रमको मिटाओ; पारख स्थितिको प्राप्त करके मुक्त होओ। पारख स्थिति प्राप्त करनेपर उन सबोंके स्वरूप देखनेमें आ जाते हैं, ऐसा जानो ॥ ६८ ॥

दोहाः— निरपच्छिक जे जीयरा * ते तारण भौ सेत ॥
[१६] ब्रह्म महानिधि मन लहर * माया रतन अपोत ॥ ६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निरपच्छिक = जे जीयरा = जो जिज्ञासु नरजीव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सब पक्षपातोंको छोड़कर निष्पक्ष सत्यन्यायी पारखी हो जाते हैं। निज चैतन्यपदमें स्थिति कर लेते हैं—

ते तारण = भौ सेत = सोई प्रथम स्वयं भव-बन्धनोंसे छूटकर फिर अन्य जिज्ञासु मनुष्योंको भी भवसागरसे पार उतारनेके लिये सेतु = पुल या जहाजके समान होकर तारनेवाले होते हैं। समुद्र कौन-सा है? सो सुनिये!—

ब्रह्म = महानिधि = परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी यही महासागरके समान मन, बुद्धि, वाणीसे परे अथाह-अपार माने हैं। सो खारा कल्पित वाणीरूप पानीसे भरा पड़ा है। तहाँ—

मन लहर = मनके सङ्कल्प-विकल्प, नाना मानन्दी कल्पना यही उसमें लहरें या तरङ्गें उठा करती हैं।

माया रतन = अपोत = माया-काया, स्त्री, पुत्र, धनादि और वाणी-वेदादि नाना सिद्धान्तोंको रत्नके समान मानकर अपोत = बहुतेक नरजीव चौरासी योनियोंके चक्रमें गड्ढेमें जा-जाकर पड़े हैं। निष्पक्ष होकर पारखी सद्गुरुकी शरणमें आनेपर ही उससे बचाव होता है॥

व्याख्या— जो नरजीव विवेकी पुरुष सब पक्षपातोंको छोड़कर निष्पक्ष सत्यन्यायी हुए वा होते हैं, वे तरण-तारण हो जाते हैं। और भवसागरसे पार उतारनेवाले वे सच्चे खेवैया वा नाविक, सेतु या पुलके समान आधार ज्ञान-जहाजमें चढ़ाकर पार ले जानेवाले उपकारी होते हैं। यहाँपर महासागरके समान ब्रह्म ही भ्रम-जलसे पूर्ण सागर है। मनके सङ्कल्प-विकल्प उठना वही उसकी लहरें हैं, और माया = काया, स्त्री, गुरुवा, वाणी, विषयादिको रत्नवत् ठहराकर, अपोत = बहुत-बहुत नरजीवोंने मान रक्खे हैं। उसीमें अपने भूलकर दूसरोंको भी भुला रक्खे हैं। भवजलमें डूब-डुबा रहे हैं। ऐसे कठिन सागरसे निष्पक्ष विवेकी नरजीव ही अपने तथा दूसरे जीवोंको पार उतारनेवाले सेतुके समान हुए और हो रहे हैं। उन्हींकी शरण-ग्रहण करनेसे लाभ होता है॥ ६९॥

दोहाः— हंस स्वतः आनन्द पद ❀ सोई पद है जीव॥
[१७] सोई पदारथ सोई तन ❀ लहै कुशल निज कीव॥ ७०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

हंस स्वतः = चैतन्य जीव स्वयं स्वरूप नित्य, सत्य है। इसीसे वह हंस जीव स्वतः है। और—

आनन्द पद = सच्चिदानन्द सुखस्वरूप माना हुआ ब्रह्मपद कल्पित, असत्य, भ्रममात्र है। सो तो जीवका भास है।

सोई पद है जीव = गुरुवालोग "तुम उसी ब्रह्मका अंश हो", ऐसा बता करके जीवोंको भुला रहे हैं। वास्तवमें पारख सोई जीवका सत्यपद या भूमिका है। सोई चैतन्यपद ही जीवका स्वयं स्वरूप है; स्वतःपद चैतन्य स्वरूप ही जीव है, ऐसा जानना चाहिये। और—

सोई पदारथ = सोई तन = चौथा मुक्ति पदार्थ माना हुआ ब्रह्म, सोई जीवकी मिथ्या मानन्दी है। परन्तु, उसीको श्रेष्ठ मानकर सोई कैवल्यदेहमें जाकर जीव गाफिल हुए या हो रहे हैं।

लहै कुशल = निज कीव = अब उससे कल्याणरूप कुशल मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। किससे कि? अपनी ही मिथ्या कल्पनासे; अब कहो भाई! अपने कर्त्तव्यके अहङ्कार कल्पनादिसे कुशल कैसे होगा? क्या मिलेगा? अतः सत्यासत्यको परखो, पारख-बोधसे ही तुम्हारा कुशल होगा, सो जानो॥

व्याख्या— हे शिष्य! हंस तो स्वतः चैतन्य है, जो नीर-क्षीरका निबेरा करता है, सोई विवेकी हंस है। तथा सच्चिदानन्द जो ब्रह्मका पद माना है, सो कालका पद है, वह हंसका पद नहीं है। जो सबको परखे, सो पारखपद ही जीवका पद है। और जो पारखपदमें स्थिर रहते हैं,

वे जीवन्मुक्तिमें सुखी रहते हैं। सो जीव ही सत्य पदार्थरूप सत्य वस्तु है। और सोई हंसदेह ही मुक्तिकारी भूमिका है। जो उसे प्राप्त कर लेते हैं, सो जीव अपने सत् पुरुषार्थके शुभ कर्त्तव्यसे आप ही जीवन्मुक्तिरूप कुशलताको पा जाते हैं॥

अथवा स्वतः हंस जो है, सोई जीवका पद है। और आनन्द सोई ब्रह्मका पद माने हैं। जो जीव स्वतः पदमें नहीं ठहरे, नीचे उतरे, आनन्द पदमें भूले, सोई कैवल्य देहमें फँसे और सोई ब्रह्म-भ्रमको मुक्त पदार्थ मान लिये; सो तो नरजीवके भ्रम-भूल अहङ्कारका कर्त्तव्य हुआ। अब उसीसे कुशलरूप मुक्ति पाना चाहते हैं, तो कैसे पावेंगे? कभी नहीं पावेंगे। अतः उस भ्रमको परख करके हटा देना चाहिये; तभी कुशल होगा, सो जानो॥

अथवा जो कोई स्वतः चैतन्यपदमें स्थितिवान् पारखी हैं, सो जीवन्मुक्तपदमें निराश-निवृत्त होनेसे सुखी रहते हैं। सो पारखपद ही जीवका मुक्तिपद है। और सोई स्थितिमें ठहरावके लिये सत्पदार्थ रहनी-रहस्यके सहित टिके रहना चाहिये। सत्य, शील, विचार, दयादि सद्गुण-लक्षण, सोई हंस देहका अङ्ग है। निज कल्पनाको मिटायके निज सत्कर्त्तव्यसे हंसपदमें जो रहते हैं, सो अपने सत्पुरुषार्थसे कुशलरूप जीवन्मुक्तिपदको प्राप्त कर लेते हैं; सोई बनाना चाहिये॥ ७०॥

॥ ❀ ॥ ५ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- ५ ॥ खण्ड- ६ ॥ चौपाई भाग- ४ ॥ ❀ ॥

१. स्वतः जीव कैसे होते स्वामी! * काहे भयउ जगत अनुगामी? ॥ ७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका पाँचवाँ प्रश्न वर्णन करते हैं— शिष्य कहता है कि—

स्वतः जीव कैसे होते स्वामी!= हे स्वामी! हे सद्गुरुदेव! जीव स्वयं ही आप-ही-आप कैसे हुआ? या कैसे हो सकता है? यदि जीव स्वयं ही था, तो कैसे था? किसीके आधारमें था, कि नहीं था? और अगर जीव स्वयं था, तो फिर—

काहे भयऊ जगत अनुगामी?= संसारके पीछे आवागमनमें चलनेवाला क्यों, कैसे हुआ? जगत चौरासी योनियोंमें भटकनेकी क्या खुशी हुई? कोई भी जीव दुःख पानेकी तो इच्छा नहीं करते हैं। फिर सब जीव नाना दुःख क्यों पा रहे हैं? सो कृपा करके कहिये॥

व्याख्या— फिर शिष्यने प्रश्न किया कि— हे स्वामी! प्रथम स्वतः जीव कैसे था? अथवा कैसे हुआ? और फिर पीछे जगत्का अनुगामी क्यों हुआ? क्यों आवागमनादिमें चला गया?॥७१॥

२. झाँई सन्धि कालका फेरा * काहे परे सो करो निवेरा? ॥ ७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

झाँई=विज्ञान ब्रह्मकी गाफिली झाँईमें क्यों जीव पड़ा? तथा—

सन्धि=ईश्वर, देवतादिकी मानन्दी क्यों हुई? तैसे—

कालका फेरा=गुरुवालोगोंके कर्म, उपासना, योगादिके चक्रमें, तथा स्त्री-पुत्र, धनादिके संसार दुःख चक्रमें घिरे हुए सब जीव दुःखी हैं। यह कालका फेरा कैसे आ पड़ा है?

काहे परे सो करो निवेरा= सो उस फन्दोंमें सब जीव क्यों पड़े हैं? जीव अपने आप ही बन्धनमें पड़े हैं? या किसीने डालकर बाँध रखा है? सो हे साहेब! इसको यथार्थ सत्य निर्णयसे मुझे समझाइये! आप समर्थ हैं; सो आप ही इसका खुलासा निर्णय करके बतलाइये क्या बात है? हे दयालु समझाइये!॥

व्याख्या— काल, सन्धि, झाँई आदिका फेरा घनचक्रमें क्यों आके स्वतः जीव पड़ा? इसका पूरा निर्णय करके समझा दीजिये!॥ ७२॥

३. पुनि कैसे सो निज पद पावा? * कैसे मन माया भरमावा? ॥ ७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न वर्णन कर रहे हैं— और भी शिष्यने कहा कि—

पुनि कैसे सो= हे सद्गुरो ! फिर वह निज पद पावा ?= बन्धनों में पड़ा हुआ जीवने अपनी सत्पद-स्थिति कैसे पायी ? अथवा सो अपने निजपदको कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

कैसे मन माया= और मन-मानन्दी, कल्पना, भरमावा ?= विषय, माया-कायामें जीव कैसे, क्यों भूला ? और जीवको किसने भ्रमाया या भुलाया है ? ॥

व्याख्या— फिर सो जीवने कैसे वा किस प्रकारसे निजपदको पाया ? और अन्य जीव कैसे करके मन-मायामें भ्रमाय गये ? किसने, क्यों जीवोंको भ्रमाया ? ॥ ७३ ॥

४. एक एक निर्णय कहि दीजे ❀ निःसन्देह बुद्धि मम कीजे ॥ ७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

एक एक निर्णय= कहि दीजे= हे साहेब ! इन सब प्रश्नों-का उत्तर एक-एक करके सत्यनिर्णयसे (उत्तर कहकर) समझा दीजिये ! और सब सन्देह मिटाय करके—

निः सन्देह= बुद्धि मम = कीजे= मेरी बुद्धिको निःसन्देह निर्मलकर दीजिये ! बुद्धिका भ्रम मिटायके भ्रम रहित कर देनेकी कृपा कीजिये ! ऐसी मैं विनय पूर्वक प्रार्थना करता हूँ ! ॥

व्याख्या— इन प्रश्नोंका एक-एक निर्णय करके यथार्थ उत्तर कह दीजिये ! हे सद्गुरुदेव ! सब सन्देहोंको निवारणकर अब मेरी बुद्धिको निःसन्देह कर दीजिये ! ॥ ७४ ॥

५. निःसन्देह होय जब येहा ❀ झाँईं सम्भव मिटै सन्देहा ॥ ७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

निःसन्देह= होय जब येहा= सद्गुरुकी कृपासे सब सन्देह मिटाकर यह जीव जब निःसदेह हो जाता है, तभी सुखी या मुक्त हो सकता है। और—

झाँईं =जगत्-ब्रह्मकी गाफिलीरूपी, झाँईं की—

सम्भव मिटै= सन्देहा= भूल मिट जानेपर ही जीवका जन्म-मरण या देह उत्पत्तिका अध्यास संस्कारादि सब सन्देह मिट जाते हैं। फिर जीव नित्यमुक्त हो सकता है; यह बात आपने ही समझाये हो ! ॥

व्याख्या— झाँईं का सम्भवरूप सन्देहका नाश होकर जब भ्रम-भूल मिट जायगी, तभी यह जीव निःसन्देह मुक्त हो जायगा। अथवा जब जिस समयमें यह नरजीव निःसन्देह हो जायगा, तब ही सन्देहजनित झाँईं की उत्पत्ति भी सर्वथा मिट जायगी, यह निश्चय है ॥ ७५ ॥

६. निजपद निजदेही बलसारा ❀ पैठे गुरुमुख करै विचारा ॥ ७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

निजपद =चैतन्यका निजपद क्या है ?—
निजदेही =निजदेहीरूप हंसदेह कौन है ?—
बल सारा =हे सद्गुरो ! सो सार-असार निर्णय करनेका बल, शक्ति या सार बोधका सारा भेद मुझे लखा दीजिये !

पैठे गुरुमुख= करै विचारा= तब गुरुमुख न्याय निर्णयमें प्रवेश करके सत्यासत्यका मैं विचार कर सकूँगा। गुरुमुख वाणीके आधारसे ही जीव न्यायमें बैठकर विचार कर सकता है। इसलिये दया करके भेद बता दीजिये ! ॥

व्याख्या— निजपद-निजदेहीका सारा भेद बोध-बलसे मुझे पुष्ट कर दीजिये ! जिससे गुरुमुख न्याय निर्णयमें प्रवेश करके मैं सत्यासत्यका विचार कर सकूँ, ऐसी शक्ति कर दीजिये ! यानी गुरुमुख निर्णयमें पैठकर विचार करनेकी युक्ति कहिये ? निजपद क्या है ? निजदेही कौन है ? गुरुबलसे यह सारा भेद मैं जान सकूँ, ऐसी दया कीजिये ! ॥ ७६ ॥

॥ ❀ ॥ ५ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- ५ ॥ खण्ड- १० ॥ ❀ ॥

दोहाः— ऐसे सुनि शिष्यके वचन * विनय सहित श्रुति प्रीति ॥
[१८] विहँसिके अशरण शरण गुरु * कही यथारथ नीति ॥ ७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

ऐसे सुनि शिष्यके वचन = ऐसे जिज्ञासु सत् शिष्यका वचन प्रश्न वा शङ्का सुन करके जो कि, वचन कैसा था कि—

विनयसहित श्रुति प्रीति = भक्तिभाव नम्रता-कोमलताके सहित विनयपूर्वक कही हुई वाणी कानसे सुननेमें प्रेम लगता था, सो ऐसा कर्ण प्रिय सत्य प्रेमसे वचन शिष्यने कहा था। इसप्रकारके प्रश्न सुनकर—

विहँसिके अशरण शरण गुरु = जिसकी कहीं शरण या रक्षा नहीं होती है, ऐसे अनाथको शरणमें लेनेवाले, ऐसे अशरण-शरण पारखी सद्गुरु तब कुछ मन्द-मन्द मुसकानसे हँसकर उत्तर देने लगे।

कही यथारथ नीति = तहाँ यथार्थ सत्यन्याय-निर्णय धर्म-नीतिसे सत्यासत्यका भेद बतलायके शङ्काका समाधान करनेके लिये कहने लगे ॥

व्याख्या— जिज्ञासु प्रेमी शिष्यके वचन ऐसे थे कि— विनय सहित कहे हुए सुननेमें प्रीति उत्पन्न करनेवाले श्रोत्रप्रिय, ऐसे शिष्यके उत्तम वचन सुन करके अशरण जीवको शरणदाता सद्गुरु कुछ प्रसन्नतापूर्वक हँस करके तब यथार्थ सत्यन्याय-नीतिसे शिष्यको बोध देनेके लिये उत्तररूपमें जो उपदेश कहे, सो सुनिये ! ॥ ७७ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! उत्तम प्रश्न यह * कीन्हेंउ सब सुख दैन ॥
[१९] मन बच कर्म अनुमानको * नाश सुलभ सुख चैन ॥ ७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! उत्तम प्रश्न यह = सद्गुरु बोले— हे जिज्ञासु शिष्य ! तुम्हारा यह प्रश्न अति उत्तम है। क्योंकि, तुमने सत्यज्ञान प्राप्तकर कल्याण करनेके लिये ही यह प्रश्न किया है, इसलिये उत्तम या अच्छा है। और—

कीन्हेंउ सब सुख दैन = जो प्रश्न तुमने किया है, सो उसका उत्तर श्रवण-मनन करनेसे सभी मनुष्योंको सुख देनेवाला होगा। यानी यह सबको सुख देनेवाली बात है, सो समझ लेना चाहिये। प्रथम तुम—

मन बच कर्म अनुमानको = मन, वचन और कर्मसे सत्य-ग्राही, गुणग्राही सत्सङ्गी होकर अनुमान, कल्पना, विषय आदिको समूल—

नाश सुलभ सुख चैन = नशाय डालो या नाश करो, तभी सरलतासे सुख-चैन वा आराम पाओगे ! यानी वाणी-कल्पना, विषयादिको परखकर नशानेसे ही सहजमें सुख चैनरूप शान्ति मुक्ति स्थितिको पाओगे ॥

व्याख्या— सद्गुरु कहते हैं— हे शिष्य ! तुमने जो बात पूछा है, सो इसका भेद समझकर चलने-वाले सभी जिज्ञासु मनुष्योंके सन्देह निवृत्त करके उन्हें सुख देनेवाला है। इसलिये तुम्हारा यह प्रश्न सर्वोत्तम है। सबको सुख देनेवाला यह प्रश्न अभी जो तुमने कहा, सो अच्छा किया। इसके उत्तर समझनेपर मन, वचन, कर्मके विकार और अनुमान-कल्पनाको नाश करनेमें सुलभ वा सरल होगा। जिससे मुमुक्षु जीव निःसन्देह होनेपर सहज ही सुख-चैन पावेंगे। अब उक्त प्रश्नका उत्तर कहता हूँ, सो ध्यानपूर्वक सुनो ! ॥ ७८ ॥

दोहाः— जीव ब्रह्म दोउ सृष्टिको * कल्पित माया हं ॥
[२०] अहं ब्रह्म यह कल्पना * अखिल सृष्टि आरम्भ ॥ ७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! सुनो !—

जीव ब्रह्म दोउ= } जीवसृष्टि चारखानी है।
सृष्टिको= } और ब्रह्म सृष्टि चारवाणी है। यह दोनोंकी उत्पत्ति या सृष्टि होनेका मुख्य कारण—

कल्पित= } कायाका विषय अध्यासरूप
माया हं= } अहङ्कार तथा गुरुवा-मायाकी कल्पित वाणीके सूक्ष्म अहङ्कार, यही बीज है। इसीसे दोनों सृष्टि वृक्षाकाररूपमें उत्पन्न होते हैं।

अहं ब्रह्म='अहं ब्रह्मास्मि' यानी मैं ही ब्रह्म हूँ!—

यह कल्पना=यह ज्ञानी गुरुवालोगोंने जो माने हैं, सो मिथ्या कल्पनामात्र है। जीव ही सत्य है।

अखिल सृष्टि= } एक ही ब्रह्मसे प्रथमारम्भमें
आरम्भ= } चराचर समस्त संसारकी सृष्टि वा उत्पत्तिका शुरू हुआ है, ऐसा कहकर जो माने हैं, सो भी मिथ्या जीवोंकी कल्पना है। इसी ब्रह्म या विषयोंके अध्यासवश सम्पूर्ण चारखानीकी और चारवाणीकी उत्पत्ति हुई है और हो रही है, ऐसा जानो॥

व्याख्या— जीव और ब्रह्म यह दोनोंकी खानी-वाणीरूप जगत् सृष्टि होनेका मूल कारण माया, काया, मन आदिका कल्पित अहङ्कार ही बीज है। 'अहं ब्रह्म' ऐसा जो कहा है, सो यह नरजीवोंकी कल्पना ही है। ब्रह्मसे सम्पूर्ण सृष्टिका आरम्भ या उत्पत्ति जो माने हैं, सो भी मिथ्या कल्पना ही है। कल्पनासे ही सम्पूर्ण वाणी जालकी सृष्टि हुई है; और अध्याससे चारखानीकी उत्पत्ति हुई वा हो रही है॥ ७९॥

दोहाः— ब्रह्म सृष्टिमा जीयरा ❀ बायस जैसे जहाज॥
[२१] थिति नहीं वार पार नहीं ❀ हेर फेर रहै जहाज॥ ८०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! सुनो— जैसे जहाजमेंका काग सरीखा ब्रह्मसृष्टिमें जीव पड़े, इसमें छोटा-सा एक दृष्टान्त है— एक समयमें बम्बईसे कोई व्यापारी जहाजमें माल भरकर विलायत (इङ्गलैण्ड) को चला गया। वहाँ माल बेचकर जब वापिस आने लगा, तो कोई एक अभागा दुर्बुद्धि कौवा जहाजमें रोटीका टुकड़ा खाता हुआ एक तरफ जाके बैठ गया। ऐसेमें जहाज छूट गई, कौवा वहीं बैठा ही रह गया। रातभर जहाज चलकर बहुत दूर आ गया, सवेरा होनेपर काग उड़ा; परन्तु, कहीं बैठनेकी जगह ही नहीं पाया। झाड़, पहाड़, जमीनका तो कहीं पता ही नहीं था। चारों तरफ जल-ही-जल भरा था। इसलिये थककर उड़ता हुआ आके काग उसी जहाजपर ही बैठ गया। जब जहाजीलोगोंने कौवाको जहाजके मस्तुलपर बैठा देखा, तो उसे उड़ा दिया, फिर कहीं बैठनेकी जगह न पानेसे पुनः जहाजपर ही आकर काग बैठा। ऐसे करते-करते आखिर दिनभरमें थककर वह काग मर गया। यह तो दृष्टान्त है। अब इसका सिद्धान्तमें अर्थ सुनिये! ब्रह्म समुद्र है, काग जीव है, जहाज- जगत्, गर्भवास या देह है। इसी चक्रमें जड़ाध्यासी जीव भटकते हुए दुःख भोगते रहते हैं।

ब्रह्म सृष्टिमा= } वाणी कल्पना वेदके प्रमाणसे
जीयरा= } सर्वत्र व्यापक ब्रह्म एक माने हैं। फिर उसकी इच्छासे समस्त संसारकी सृष्टि-उत्पत्ति ठहराये हैं, फिर उलटकर "एकोब्रह्मद्वितीयो नास्ति" कहने लगे। बादमें जीव-ब्रह्मकी एकता करके "तत्त्वमसि" "अहंब्रह्मास्मि" बोले। इसप्रकार ब्रह्म-सृष्टिरूप महासागरमें पड़कर जीव भ्रमिक हुए, तो यह कैसी घटना हुई? कि-

बायस जैसे= } जहाजमें बैठनेवाला पूर्वोक्त
जहाज= } कागके समान जीवकी दुर्गति हुई। ब्रह्म समुद्रमें स्थिति पानेके लिये जगत्में ज्ञान जहाजपर आकर जीव बैठ गये। सो ब्रह्मानन्दरूपी रोटीवत् टुकड़ाके लोभसे अटके रहे। परन्तु—

थिति नहीं=कल्पित ब्रह्ममें जाकर सत्य चैतन्य जीवकी स्थिति तो कहीं नहीं होती है, इच्छारूपी खलासीके उड़ानेसे हमेशा शून्य-

वृत्ति भी बनी नहीं रहती है। और—

वार पार = नहीं = ब्रह्मसागररूप भ्रमका कहीं वार-पार जड़-चैतन्यमें पता ही नहीं लगता है; उसे तो अगम, अपार, अगोचर माने हैं।

इसवास्ते इच्छा-वासनाके उड़ानेसे—हेर फेर रहै जहाज = ठहरनेकी जगह न पाकर अध्यासी जीव जगत्में चार-खानीके गर्भवासमें ही जाकर पड़े रहते हैं। फिर उलट-पलटके देह धारण करके नाना प्रकारसे त्रयतापादि दुःख भोगते रहते हैं। सो परखकर जान लेना चाहिये ॥

व्याख्या— ब्रह्म-सृष्टिमें नरजीव ऐसे भ्रम चक्रमें पड़े कि— जैसे समुद्र बीचके जहाजमें जाके काग बैठा, और भटक-भटककर दुःख पाकर मर गया (दृष्टान्त ऊपर कह चुके हैं)। उसीप्रकार ब्रह्म समुद्रमें जगत् तथा देह आदि यही जहाज आयके किनारे लगी। उसमें आनन्दकी आशासे भ्रमिक नरजीव वा गुरुवालोग कागवत् बनकर बैठ गये। भ्रम धोखेमें बहुत दूर शून्य तक उड़ गये। फिर इच्छारूपी जहाजीने देखा, तो स्फुरणा प्रगट करके वहाँसे प्रवृत्तिमें उड़ा दिया। वहाँपर स्थिति नहीं है वा स्थिति नहीं हुई। शून्यका वा कल्पनाका वार-पार नहीं है। शून्यमें टिकाव-ठहराव नहीं हुआ। इसलिये हेर-फेरकर वा उलट-पलटकर देह और जगत् बन्धनके जहाजमें ही आ-आकर बैठते हैं। तहाँ जन्म-मरणमें पड़ा करते हैं, बिना विवेक ॥ ८० ॥

दोहाः— जीव कल्पना ब्रह्म भौ ❀ ब्रह्म सृष्टि इमि गूढ़ ॥
[२२] जीव परे तेहि सृष्टिके ❀ पञ्च देहिमा मूढ़ ॥ ८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

जीव कल्पना = ब्रह्म भौ = जब नरजीवने कल्पना करके एक ब्रह्म माना, और फिर जीव अपने ही कल्पित ब्रह्मरूप हुआ, सोई भवसागर खड़ा हुआ। यानी जीवकी कल्पनासे ही ब्रह्मकी मानन्दी हुई।

ब्रह्म सृष्टि = इमि गूढ़ = ऐसे ब्रह्मसे जगत् सृष्टि जो मानी गयी, सो इसतरह गुप्त कल्पनासे भ्रम जाल ही फैलाया गया है। और ऐसे यह ब्रह्मसृष्टि गूढ़ हुआ।

जीव परे = तेहि सृष्टिके = पारखहीन अबोध नरजीव सब उसी वाणी कल्पनासे उत्पन्न ब्रह्मसृष्टिरूप वाणी जाल, जगत् प्रपञ्चमें जा-जाकर पड़ गये, या पड़ रहे हैं।

पञ्च देहिमा = मूढ़ = मूढ़ जड़ाध्यासी होकर जीव पञ्चतत्त्व संयुक्त देह धारणकर चार खानीमें जा-जाकर पड़े और स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य, ये पाँच देहोंमें गाफिल होकर अरुझे पड़े हैं; तो उसीमें मूढ़ होकर भूले पड़े हैं ॥

व्याख्या— मनुष्य जीवकी कल्पनासे ही ब्रह्मकी मानन्दी खड़ी हुई; फिर एक ब्रह्मसे ही सारी सृष्टिकी उत्पत्तिका अनुमान किया। ऐसे ब्रह्मसृष्टि बड़ा गूढ़ धोखेकी अँधेरी गुफा हुई। फिर वाणी कल्पनासे उसी ब्रह्मसृष्टिके भ्रम-चक्रमें सब जीव भूल पड़े। इसीसे मूढ़ जीव जड़ाध्यासी होकर पञ्च-देहोंके महा बन्धनमें जाकर अरुझ गये। ऐसे आवागमनमें भटका खाये वा अभी वैसे ही भटक रहे हैं, बिना पारख ॥ ८१ ॥

दोहाः— पञ्चै पञ्चौ पञ्चधा ❀ पाये पाँचन पाँच ॥
[२३] जीव प्रपञ्चे पञ्चके ❀ कहूँ न पावै बाँच ॥ ८२ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

पञ्चै = जड़ पाँचतत्त्वोंके देहधारी होकर जीव—

पञ्चौ = पाँच विषयोंमें आसक्त हुए हैं। और फिर—

पञ्चधा = पञ्चकोशोंके पाँच-पाँचके अनेक भागों-में अरुझकर फिर जहाँ-तहाँ दौड़ने लगे—

पाये पाँचन = पाँच = तो पाँचतत्त्व या पञ्चकोशोंमें एक-एक तत्त्वके पाँच-पाँच भाग करके पाँच-पञ्चे पचीस प्रकृतियोंका विभाग किये हैं। तथा उन्हीं जञ्जालोंमें

पड़कर बहुतेक जीव दुःख पाये और पा रहे हैं।

जीव प्रपञ्चे = } इसप्रकार जड़ाध्यासी जीव
पञ्चके = } पञ्च विषय तथा पञ्चकोशोंकी वाणीके नाना प्रपञ्च झंझट, झगड़ा, उपाधियोंमें पड़ करके—

कहूँ न = } कहीं भी, कभी भी बच नहीं पाते
पावै बाँच = } हैं, सुख नहीं पाते हैं, और जन्म-मरणसे छूट नहीं पाते हैं। बिना पारखके कभी इससे मुक्ति नहीं पाते हैं, चौरासी-योनियोंमें ही पड़े रहते हैं॥

व्याख्या— पाँच देहोंके कारण सोई जड़ पाँचतत्त्व हैं। पाँचतत्त्वोंके पञ्च विषय तथा एक-एक तत्त्वकी पाँच-पाँच प्रकृतियोंके हिसाबसे सब पच्चीस प्रकृतियाँ स्थूल और सूक्ष्म देहकी हुई हैं। और पञ्चकोशमें पाँच-पाँच भागका विस्तार बहुत ही हुआ है। सोई सब खानी-वाणीके प्रपञ्च हैं। उसी पञ्च विषय और पञ्चकोशोंकी वाणी-प्रपञ्च झगड़ोंमें सब जीव पड़े हैं। उस पञ्च-प्रपञ्चके फन्दोंमें पड़कर जीव सब जगह दुःख पाय-पायके मारे जाते हैं, और कहीं भी बच नहीं पाते हैं। गुरु पारखके मिले बिना नरजीवोंका कहीं जाके भी गति-मुक्तिरूप बचाव नहीं होता है, ऐसा जानिये ! ॥ ८२ ॥

दोहाः— पञ्चाइत गुरुमुख लखै * पाँच पचीसों त्याग ॥
[२४] गुरु पञ्चाइत न्याव बिनु * यह प्रपञ्च अनुराग ॥ ८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— इसकारण हे शिष्य !

पञ्चाइत गुरुमुख लखै = तुम पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें रहकर पञ्चकोशोंके वाणी-खानी जालोंको गुरुमुख द्वारा सत्यन्याय निर्णयसे लख-पहिचान करके परित्याग करो, और—

पाँच पचीसों त्याग = पाँचतत्त्व पच्चीस प्रकृतियोंके पञ्चविषयादि पच्चीसों प्रपञ्चोंको पारख करके बन्धनोंका त्याग करो। और—

गुरु पञ्चाइत = } हे शिष्य ! जबतक पारखी
न्याय बिनु = } साधु-गुरुके टकसाररूप सत्सङ्गमें प्रेम नहीं लगाओगे, तबतक सत्यन्याय निर्णयको नहीं जानोगे; और सत्यन्यायसे पारखके बोध हुए बिना—

यह प्रपञ्च = } यह पञ्च विषय, पञ्चकोशोंकी
अनुराग = } वाणी कल्पनादिमें ही प्रेम लगाय-के रहोगे। ऐसे विषयानुरागी जीव अनन्त दुःख पा-पाकर चौरासी योनियोंके चक्र, जन्म-मरणादिमें ही पड़े रहते हैं। इसलिये इन प्रपञ्चोंके अनुरागको पहलेसे ही छोड़ दो॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर गुरुमुख द्वारा सत्य निर्णयसे इन गुरुवालोगोंके पञ्चाइत, ऊन्होंके ठहराव, सिद्धान्त आदिको अच्छी तरहसे लखना-परखना चाहिये। और पाँच देह, पञ्चविषय, पञ्चकोश, पच्चीस प्रकृतियाँ आदिके समस्त विकारोंको भीतर-बाहरसे परित्याग करना चाहिये; और निजपदमें ठहरना चाहिये। पारखी सद्गुरुके पञ्चाइतरूप सत्सङ्ग द्वारा सत्यन्यायको समझे-बूझे बिना यह खानी-वाणी प्रपञ्चका अनुराग वा प्रतीति आसक्ति नहीं छूटती है। इसीसे उसमें लगनेवाले जीव मुक्त नहीं होते हैं। अतः इन प्रपञ्चोंमें प्रेम करना छोड़कर सद्गुरुके सत्सङ्गमें प्रेम लगाना चाहिये ॥ ८३ ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ भाग—[२] ॥ ❀ ॥

१. जीव कल्पना एकोहं * सोई कहावै सच्चिद ब्रह्म ॥ ८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! ध्यानसे सुनो !—

जीव कल्पना = } नरजीवने प्रथम जो यह कल्पना
एकोहं = } किया कि, जगत्का आदि कारण जो एक अद्वैत ब्रह्म है, सो मैं ही हूँ! ब्रह्मरूपसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ, सर्वत्र मेरी प्रतीति है।

सोई कहावै = सोई अस्ति, भाति, प्रियरूपसे
सच्चिद् ब्रह्म = सच्चिदानन्द ब्रह्म कहलाया।
'अस्ति' सोई सत्, 'भाति' सोई भासता है चित्, और 'प्रिय' सोई आनन्द, ऐसे माने हैं ॥

व्याख्या— प्रथम जब मनुष्य जीवने भ्रमिक होकर कल्पना किया, तब 'एकोहं' ब्रह्म, ऐसा अहङ्कार लेकर बोला; सोई पीछेसे सच्चिदानन्द ब्रह्म कहलाया। अर्थात् सत्य, चैतन्य, आनन्दमय व्यापक ब्रह्म मैं हूँ! ऐसा भ्रमिक गुरुवालोगोंने कहा है ॥ ८४ ॥

२. आनन्द अहङ्कार सो माया * ब्रह्म बाच मातै सब जाया ॥ ८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

आनन्द = ब्रह्मानन्दका सूक्ष्म अहङ्कार जो
अहङ्कार = है, सोई मायाकारूप जड़ाध्यास-
सो माया = का आवरण-पर्दा है। सो उसी सुखाध्याससे जीव सब देहधारी हुए, और हो रहे हैं। और—

ब्रह्म बाच = उसी ब्रह्म-भ्रम वाणी-कल्पनामें
मातै सब = मस्त होकर 'अहंब्रह्मास्मि'
जाया = कहके उन्मत्त हुए, जिससे सब जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मसे मानकर सब भ्रमिक ब्रह्मज्ञानी अध्यासवश जन्म-मरण-के चक्रमें पड़े, तो चौरासी योनियोंमें उत्पन्न हो रहे हैं ॥

व्याख्या— आनन्दका अहङ्कार जो है, सोई माया है। शब्दब्रह्म ॐ कारमेंसे ही माया सहित सब चराचर जगत्की उत्पत्ति हुई; ऐसा कल्पनासे कहा है ॥ ८५ ॥

३. सूक्ष्म अहं धूनिते ॐकार * सोई सोहं ओहं ब्रह्मास्मि सार ॥ ८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

सूक्ष्म अहं = सूक्ष्म देहमेंसे सूक्ष्म स्वर जो
धूनिते = निकला 'सोहं' सोई सूक्ष्म ब्रह्मके
ॐकार = अहङ्कारने ॐकारकारूप धारण कर लिया। ऐसे श्वासके सूक्ष्म ध्वनि या नादसे अहङ्कारसंयुक्त ॐरूप ब्रह्मके आकार-की उत्पत्ति हुई; विराटरूपमें प्रगट हुआ।

सोई सोहं वोहं = सोई किसीने 'सोहं' माना।
ब्रह्मास्मि सार = कोईने 'वोहं' या 'ॐ' माने हैं, कोईने 'अहंब्रह्मास्मि'को सार सिद्धान्त ठहराकर वे लोग नाना मतवादमें पड़े हैं ॥

व्याख्या— पहिले सूक्ष्म अहङ्कार 'अहंब्रह्म' इस ध्वनिसे या भीतर श्वासरूप ध्वनि नादसे ॐकार शब्दकी उत्पत्ति हुई। तैसे ही दूसरेरूपसे श्वासवायु नाभिसे नासिकामें आते-जातेमें सोहं-सोहं' का जाप करते हैं। कोई उसी श्वासमें ॐके जगह 'वोहं-वोहं' जपा करते हैं। कोई भक्तलोग श्वासमें ही 'राम-राम' जपा करते हैं। और ब्रह्मज्ञानीलोग 'ब्रह्मास्मि-ब्रह्मास्मि' रटा करते हैं। उसीको योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मकाण्डी लोगोंने मुख्य सार माने हैं। ऐसे सूक्ष्म अहङ्कारसे ही सो सब विस्तार किये हैं ॥ ८६ ॥

४. ॐकारते निरञ्जन रूप * पाँचों देहि प्रथम अनुरूप ॥ ८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ॐकारते = ॐकारसे ही या वही ॐ को
निरञ्जन रूप = ब्रह्म निरञ्जन-निराकारका स्वरूप जगत्कर्त्ता ठहराकर मान लिये हैं। और—

पाँचों देहि = प्रथमसे ही पाँचोंदेह सूक्ष्मरूपसे
प्रथम = वैसे ही उसमें बीजरूपसे मौजूद
अनुरूप = रही। सोई मनुष्योंके पूर्व संस्कारके अनुसार स्थूल-सूक्ष्मादि पाँचों देह चौरासी योनियोंमें उत्पन्न हुए हैं ॥

व्याख्या— ॐकारको ही निरञ्जन ब्रह्मका स्वरूप माने हैं। अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, और बिन्दु, ये पाँचों मात्रा मिलायके एक ॐकार शब्द होता है। सो पाँचों मात्रा ब्रह्मके संयुक्त परिवार ही हैं। उनमें पाँचों देह प्रथमके समान ही रहा। स्थूलदेह-अकारमें, सूक्ष्मदेह-उकारमें, कारणदेह-मकारमें, महाकारणदेह-अर्धमात्रामें और कैवल्यदेह-बिन्दु मात्रामें; जैसे प्रथम रहा, तैसे ही उसीरूप-

में पीछे भी प्रगट हुआ। "बीज-वृक्ष न्याय" जगत्-ब्रह्म और ॐकार, पञ्चदेहके रूपान्तर होते ही रहते हैं। निरञ्जनरूपसे ॐकार हुआ, फिर उससे पूर्ववत् पञ्चदेहकी सृष्टि हुई, ऐसा माने हैं ॥ ८७ ॥

५. ताते माया मन उपजाय * पाँच खानी जगकी निर्माय ॥ ८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताते माया = उसीसे अज्ञानरूप आदिमाया-
मन उपजाय = के सम्बन्धसे इच्छा करके मन-मानन्दीसे सङ्कल्प-विकल्परूप वासना-को उत्पन्न किया। तत्पश्चात्—

पाँच खानी जगकी = जगत्मेंकी पाँच खानी— मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज; और स्थावर

निर्माय = इन्हें पैदा किया, अथवा पाँचवाँ जीवने ही पाँच तत्त्वोंके पञ्च विषयादि खानी-वाणीरूप जगत् बनाया। यानी चारों खानियोंमें जीव जाकर नाना देहें बनाते भये ॥

व्याख्या— अर्थात् उस ब्रह्मसे इच्छामाया प्रगट हुई, और मायासे मन उत्पन्न किया। फिर उस मन-मायासे पाँचतत्त्व और चारखानी जगत्की उत्पत्ति किया। अथवा जगत्में पञ्चविषयकी ही पाँचखानी निर्माण किया। यद्यपि खानी तो चार ही हैं, तथापि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, इन पञ्च विषयोंके द्वारा देहकी उत्पत्ति पाँचप्रकारसे होती है। उसीको जगत्की पाँच खानीका निर्माण होना माने हैं, ऐसा जानिये ! ॥ ८८ ॥

६. अदबुद सृष्टि भया विस्तार * अरुझै सबै जहाँ तहाँ कोइ डार ॥ ८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अदबुद = इसप्रकार आश्चर्यरूप विचित्र
सृष्टि भया = बेबुद्धि जगत् सृष्टिकी उत्पत्ति
विस्तार = होकर खानी और वाणी जालोंका खूब विस्तार हुआ या हो गया है।

अरुझै सबै = पारखहीन नरजीव सब कोई
जहाँ तहाँ = स्त्री, पुत्र, धनादिमें अरुझे।
कोइ डार = कोई ब्रह्म, ईश्वर, देवतादिमें, और कर्म, उपासना, योगादिमें जहाँ-तहाँ जा-जाकर अरुझने लगे। और उसीमें बहुतेक अरुझे फिर दूसरोंको भी उसी फन्दोंमें डाल-डालकर अरुझा रहे हैं। कल्पनाकी डालीमें कामनाकी रस्सीमें अरुझकर वे लटक मरे हैं। कोई मायाके डाल, पात, फल, फूलादिमें अरुझे पड़े हैं ॥

व्याख्या— इसप्रकार आश्चर्यरूपसे ब्रह्मसृष्टि, जीवसृष्टि, मायासृष्टिका संसारमें विस्तार हुआ। उसीमें सब कोई मनुष्य जहाँ-तहाँ भटक-भटकाकर अरुझे हैं। कोई वृक्षमें, कोई डाल, पात, फल, फूलादिमें अरुझे हैं; कोई ब्रह्म-ईश्वरादिमें, कोई संसार विषय स्त्री-पुत्रादिमें अरुझे पड़े हैं। बिना विचार चौरासी योनियोंके बन्धनमें ही बन्धे पड़े हैं ॥ ८९ ॥

७. माया जनित त्रिगुण तत्त्व पाँच * प्रकृति सहित पाँच तन जाँच ॥ ९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

माया जनित = अज्ञानरूप आदिमायासे
त्रिगुण = उत्पन्न हुए रज, सत्त्व, तम,
तत्त्व पाँच = ये त्रिगुण सहित पृथ्वी-जलादि पाँचों तत्त्वोंके भाग कार्यरूप यह देह बना है।

प्रकृति सहित = सो पाँचतत्त्वोंकी पचीस
पाँच तन जाँच = प्रकृतियोंके सहित नाना देहें धारण करके जीव सब त्रयतापादि दुःखोंमें जल रहे हैं, व्याकुल हो रहे हैं। पाँच देहोंके दुःखोंमें पड़े हैं; यही पाँचों तनकी जाँच है ॥

व्याख्या— पाँच तत्त्व, त्रिगुण सहित पच्चीस प्रकृतियाँ, पाँच देह, पाँच विषय, ये सब अज्ञानरूप आदिमायासे उत्पन्न हुए; ऐसा मानकर उसीके सन्तापमें सब जीव पड़े हैं ॥ ९० ॥

८. पञ्च कोशमें भौ यह जीव * अरुझै सबै ब्रह्म गहि पीव ॥ ९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

पञ्च कोशमें = अन्नमय, प्राणमय, मनोमय,
भौ यह जीव = ज्ञानमय, तथा विज्ञानमय,
इन पञ्च कोशोंमें बद्ध कल्पनाके वशीभूत यह जीव हो गये हैं।
अरुझै = इसकारणसे कोई ब्रह्म, ईश्वर,
सबै ब्रह्म = खुदा, परमात्मादि—
गहि पीव = पिया, कर्त्ता, मालिक मान-मानकर सब कोई भ्रमिक हो गये। धोखेमें पड़कर मनमाने इष्टरूप खसम कल्पना कर उसकी प्राप्तिके वास्ते नाना साधनाओंमें परेशान होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही चले जा रहे हैं, बिना विचार ॥

व्याख्या— पञ्चकोशके महाबन्धनमें यह जीव सब पड़ गये। खानी-वाणी सोई भवसागरमें डूब रहे हैं। तहाँ कोई पिया = परमात्मा मालिक ब्रह्म है, उसीकी प्राप्तिसे मुक्ति होयगी, ऐसा कह-सुनकर वही बात मानकर ब्रह्म अनुमानको पकड़कर सब साधकलोग अरुझ गये; और अभी वैसे ही वाणी जालोंमें अरुझ रहे हैं तथा अरुझा रहे हैं ॥ ९१ ॥

९. ऐसो सन्तत भयो प्रचण्ड * पिण्ड खण्ड ब्रह्माण्ड सो अण्ड ॥ ९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसो सन्तत = इसप्रकारसे संसाके उत्पत्ति-
भयो प्रचण्ड = प्रलय सदा-सर्वदासे ब्रह्म-जगत्का विस्तार तीक्ष्ण रीतिसे होता ही चला आ रहा है। यानी ऐसे नर जीवोंसे ही कल्पनासे तीक्ष्ण वाणीका विस्तार हुआ है, सो सदासे ऐसे ही हो रहा है।
पिण्ड खण्ड = पिण्डरूप चारखानीके देह तो
ब्रह्माण्ड = न्यारे-न्यारे ही हैं। और
सो अण्ड = ब्रह्माण्डमें चारतत्त्व भी न्यारे-न्यारे ही हैं। परन्तु, सबको एक गोलाकार-रूप एक अण्ड ॐकार ब्रह्ममें समेटकर सब विश्वको कल्पनासे ब्रह्मरूपमें एक माना है ॥

व्याख्या— ऐसे काल-फाँसका विस्तार सदा-सर्वदासे वा अनादिकालसे ही तीव्र गतिसे होता ही चला आ रहा है। पिण्ड भाग तो खण्ड-खण्ड या न्यारे-न्यारे जीवकी सत्तासे कर्मानुसार बनता बिगड़ता चला जा रहा है। और ब्रह्माण्डमें चार तत्त्व भिन्न-भिन्न ही अनादि हैं। परन्तु, गुरुवा-लोगोंने सो पिण्ड-खण्ड, ब्रह्माण्ड सबको एक अण्ड ॐकार ब्रह्मके स्वरूपमें माने हैं। पाँचों मात्रामें पाँच तत्त्वको घटाये हैं, सो मिथ्या कल्पना ही किये हैं ॥ ९२ ॥

१०. अण्ड सो पिण्ड ब्रह्माण्ड उपाय * पिण्ड ब्रह्माण्ड सो अण्ड समाय ॥ ९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अण्ड सो पिण्ड = एक अण्ड ॐकार ब्रह्मसे
ब्रह्माण्ड उपाय = समस्त पिण्ड-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति माने हैं, सो झूठा है। और वीर्यसे देह बनकर फिर मनुष्योंसे ही वाणी उत्पन्न हुई हैं।
पिण्ड ब्रह्माण्ड = गुरुवालोग कहते हैं कि-
सो अण्ड समाय = महा प्रलयमें सारा पिण्ड-ब्रह्माण्डरूप जगत् प्रलय होकर ॐकार ब्रह्ममें समा जाता है ॥

व्याख्या— एक अण्ड ॐकार ब्रह्मसे, प्रथम इच्छासे सारा पिण्ड-ब्रह्माण्डरूप जगत्की उत्पत्ति हुई। फिर कालान्तरमें अनिच्छासे महा प्रलय होकर तब सब पिण्ड नाश होकर बाह्य ब्रह्माण्डमें समा जाता है। और पाँचों तत्त्व सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी विनाश होकर सोई अण्डरूप ॐकारमें एक-में-एक होकर समा जाता है, ऐसा माने हैं। अथवा अण्डरूप वीर्यसे देह बना, फिर देह सम्बन्ध-से वाणी उत्पन्न हुई, सोई यहाँ ब्रह्माण्ड है। और अण्डरूप मनकी वासनामें अन्तमें पिण्ड-ब्रह्माण्ड दोनों समा जाते हैं, तो जीव आवागमनमें पड़ जाते हैं। यह सिद्धान्त यथार्थ होनेसे मानने योग्य है। पूर्वपक्षका कथन मानने लायक नहीं है ॥ ९३ ॥

११. रूप निरञ्जन अण्ड प्रमान * उपजै खपै अण्ड निर्मान ॥ ९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

रूप निरञ्जन = ओंकार ब्रह्मका सूक्ष्मरूप
अण्ड प्रमान = निर्गुण, निराकार, निरञ्जन आकाशवत् प्रमाण किये हैं। ब्रह्मको निरञ्जन प्रणवरूपमें प्रमाण करके माने हैं।
उपजै खपै = उसी ओंकार ब्रह्मसे ही जगत्की उत्पत्ति होकर फिर अन्तमेंनाश होकर उसीमें समा जाता है।
अण्ड निर्मान = ओंसे ही सारा जगत् बना और ठहर रहा है। सबका अधिष्ठान वही ओं है, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है॥

व्याख्या— अण्डरूप ओंकारका असली स्वरूप निरञ्जन, निराकार, निर्गुण ब्रह्म है, ऐसा प्रमाण किये हैं। और उसीमेंसे सब पिण्ड-ब्रह्माण्ड समय-समयपर उत्पन्न होते हैं, और फिर नाश होकर भी उसीमें मिल जाते हैं। अण्डरूप ओंकार ब्रह्मसे ही सबका निर्माण होता है, तथा उसीको जगत्का मूल कारण और कर्त्ता ठहराये हैं, सो मिथ्या भ्रम धोखामात्र है॥ ९४॥

१२. अण्ड अकाश सनातन सोय ❀ अण्डसे उपजै अण्डमें होय॥ ९५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!
अण्ड अकाश सनातन सोय = ओंकार ब्रह्मको सोई सनातन, नित्य, अनादि, अनन्त, आकाशवत् सर्वत्रव्यापक माने हैं। और—
अण्डसे उपजै = ओंकार ब्रह्मसे ही सारे जड़-चैतन्य संसार उत्पन्न हुए हैं, तथा—
अण्डमें होय = उसीओंकारमें ही सब समा रहे हैं। ओंकारसे बाहर कुछ नहीं है, ऐसा माने हैं। आदि-अन्तमें एक ओंकार ही कायम रहनेवाला ठहराये हैं॥

व्याख्या— फिर अण्डरूप ओंकार ब्रह्मको आकाशवत् शून्य निर्गुण-निराकार कहा है। सो उसको सनातन, अनादि, नित्य-सत्य माने हैं। और एक अण्ड ओंकार ब्रह्मसे ही इच्छा करके पाँच तत्त्वका विस्तार सारा जगत् चराचर उत्पन्न होता है, फिर उसी अण्डरूप ओंकारमें ही सबका टिकाव-ठहराव, स्थिति होती है। अन्तमें सब नाश होकर भी ओंकार ब्रह्ममें ही मिल जाते हैं। इसतरह अण्डको सर्वाधिष्ठान ब्रह्म माने हैं, सो गुरुवालोगोंकी मिथ्या कल्पना मात्र ही है॥ ९५॥

दोहाः— ब्रह्म ईश माया मनहीं ❀ कल्पित नाना रूप॥
[२५] जग चहुँ खानि लोक त्रय ❀ गुणन सहित अनरूप॥ ९६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! मनुष्योंका माना हुआ—
ब्रह्म ईश = एक अद्वैत ब्रह्मकी गाफिली,
माया = शक्तिमान् ईश्वरकी मानन्दी, कोई
मनहीं = आदिमायाकी कल्पना, ये सब मन-मानन्दीका विकार, अज्ञानका पर्दा, मनकी ही बाढ़ है।
कल्पित नाना रूप = सो देवी-देवता, भूत-प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि, मन्त्र-सामर्थ्य, इत्यादि नानारूप मनःकल्पित हैं। सो उस कल्पनाके तो बहुत रूप खड़ा किये हैं। और—
जग चहुँ खानि = अध्यास करके जगत्में
लोक त्रय = मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज, ये चार खानी, चार वाणी तथा स्वर्ग, मृत्यु, पाताल; अथवा कर्म, भक्ति, योग— ये तीन लोकका विस्तार कर लिये हैं।
गुणन सहित = रज, सत्त्व, तम— ये तीन गुणोंके सहित जैसे कर्म वासना टिकाये हैं,
अनरूप = वैसे ही सूक्ष्म संस्कारसे फिर पूर्ववत् वैसे ही स्थूलाकारमें प्रगट हो गये, तथा प्रथमके लोगोंके समान ही पीछे वाले भी पक्षपाती, मतवादी, जड़ाध्यासी हुए या हो रहे हैं॥

व्याख्या— एक ब्रह्म, दूसरा ईश्वर, तीसरी माया और सो इसीके नाना रूप, नाना सिद्धान्त, नाना मानन्दी सो सब मनकी ही कल्पना, मिथ्या भ्रम धोखा है। वह कल्पित होनेसे कभी सत्य हो नहीं सकता है, और जड़-चैतन्यरूप संसार तो स्वतः अनादि है। उसमें चार खानीरूप जगत्, लोक, त्रिगुणी प्राणी, ये गुण-कर्मोंके सहित उत्पन्न हुए हैं। जैसे-जैसे मनुष्य खानीमें त्रिगुणयुक्त नाना कर्म करके अध्यास-वासना टिकाये हैं, तैसे-तैसे तदनुरूप ही जगत्में मनुष्य, पशु, अण्डज,

उष्मज, ये चार खानीमें स्त्री, पुरुष, नपुंसक चिह्नवाले देहें धारण करके निज-निज कर्म फलको भोगा करते हैं। इसीसे जगत्कर्त्ता माना हुआ सो मिथ्या कल्पना ही है। जगत् अनादि कालका है, ऐसा विवेक करके जानना चाहिये ॥ ९६ ॥

दोहाः— जीव रहटमा सो परे * सूक्षम बहु छिरियाय ॥
[२६] जहाँ नास्ति पावै तहाँ * निश्चय प्रेम लगाय ॥ ९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
जीव रहटमा = इसप्रकार जड़ाध्यासी नरजीव
सो परे = अविवेकसे ब्रह्म बनकर फिर जगदाकारमें फैले, सो ब्रह्म-जगत् आवागमनके रहट चक्रमें समस्त जीव जा-जा कर पड़ गये।
सूक्षम बहु = सूक्ष्म देहमें सूक्ष्म बीज वासना
छिरियाय = अनेकों अध्यास जमा होनेसे उसके वेगसे अनेकों स्थूल देहें धारण करके चार खानीमें अनन्त जीव फैल गये। अनेकों देहोंमें छितर गये, और नाना दुःख भोग पा रहे हैं। और—
जहाँ नास्ति = जहाँपर कुछ नहीं है,
पावै तहाँ = शून्य मिथ्या धोखा है, तहाँपर आकाशवत् ब्रह्मकर्त्ता मानकर उसकी प्राप्ति करना चाहते हैं। अथवा उसीमें मिलकर स्थिति, गति-मुक्ति पाना चाहते हैं, इसीवास्ते भ्रमिकोंने—
निश्चय प्रेम लगाय = अद्वैत, द्वैतादि कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादि सिद्धान्तोंको सत्य मानकर निश्चय करके दृढ़तासे प्रेम लगाये या लगा रहे हैं। तो कहो भला? शून्यमें प्रेम लगानेसे सिवाय दुर्दशाके और क्या होगा? पारखबोध हुए विना धोखेके निश्चयसे किसीका कल्याण नहीं हो सकता है, सो जानो! ॥

व्याख्या— ऐसे जड़ाध्यासी होके सो सब जीव आवागमनके रहट चक्रमें गिर पड़े। सूक्ष्म बीज वासना बहुत ही फैल गई। इसीसे स्थूल देह धर-धरकर दुःख भोगो हुए। जहाँ विषय भोगोंमें असली सुख नहीं है, तहाँ ही सुख पानेकी आशासे निश्चयसे प्रेम लगा रहे हैं; इसीसे बन्धे पड़े हैं। अथवा ब्रह्म भ्रमके रहट चक्रमें जीव विना विचारे जा पड़े, और सूक्ष्म मनकी जगत् वासना तो बढ़ते-बढ़ते बहुत छिरिया गई। और जहाँपर कि, नास्ति = ब्रह्म कोई वस्तु ही नहीं है। उसे तो शून्य, निर्गुण, निराकार कहा है। तहाँ ही धोखेमें पड़कर परमानन्द और मुक्ति पानेकी आशासे वाणी कल्पनाको ही निश्चय करके उसीमें प्रेम लगाये और लगा रहे हैं। इसीसे जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें जा पड़े और पड़ रहे हैं ॥ ९७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- ५ ॥ ❀ ॥

१. इमि अबोध बहुते दिन बीता * दुःखहि सुख करि सबै गनीता ॥ ९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! अनादि कालके संसारमें
इमि अबोध = इसतरहसे या इसप्रकारसे
बहुते दिन बीता = स्वरूप ज्ञानके विना जीव अबोध, अज्ञानी, जड़ासक्त हो धारा प्रवाहरूप भवचक्रमें ही पड़े हैं। सो अनन्त जीव अनेकोंबार नरजन्म पाये, तो भी नाना कर्म अध्यास बना-बनाकर चौरासी योनियोंमें गये। ऐसे अबोध दशामें पड़े हुए बहुत दिन वा बहुत काल या युगानयुग व्यतीत हो गया है।
दुःखहि = तो भी जीव अचेत ही पड़े हुए
सुख करि = हैं। क्योंकि, जन्म-मरणादि
सबै गनीता = दुःखोंका मूल कारण, स्त्री-विषय भोग और ब्रह्मानन्दादि भासोंको ही सुख मान करके सब कोई ब्रह्म और विषयोंको सुखमें गिन रहे हैं। यानी दुःखको ही सुख करके गिनते हैं ॥

व्याख्या— ऐसे वा इसप्रकारसे निजस्वरूप पारखकी अबोध-अज्ञान दशामें पड़े-पड़े जीवोंको अनादि कालसे बहुत ही दिन बीत गये। अनेकोंबार ज्ञान खानी मनुष्य जन्म पाये, नरदेहमें आये।

परन्तु, उसी खानी-वाणीमें भूल-भूलकर जन्म बिताकर चले गये। तहाँ सब लोग भ्रमिक, विषयासक्त होकर दुःखदायी विषय भोग तथा ब्रह्म आदि भ्रमको ही महान सुख समझकर उसे सुखरूपमें गिनते हैं। आसक्ति-गाफिलीमें ही नरजन्म बितायके चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं। ऐसे अनन्त जन्म बीत चुके हैं; सो अभी तक अचेत ही पड़े हैं ॥ ९८ ॥

२. दुःखको मर्म न जानै मूढ़ा * दुःख भुगतै तेहि सुख करि गूढ़ा ॥ ९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

दुःखको मर्म = मूढ़, भ्रमिक, विषयासक्त
न जानै मूढ़ा = नरजीव दुःख होनेका भेद तो जानते ही नहीं हैं कि— पञ्च विषय भोगों-की आसक्ति तथा ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पनाका अध्यास, इसीसे ही जीव त्रिविधि ताप गर्भवासादि दुःख पाते हैं या पा रहे हैं। सो मर्म तो नहीं जानते हैं; इसीसे अज्ञानी मूढ़ हो रहे हैं।

दुःख भुगतै = प्रत्यक्षमें तो नाना दुःख ताप
तेहि सुख = कष्ट भोग रहे हैं; तो भी उसी
करि गूढ़ा = विषय भोग तथा ब्रह्मानन्दादि-को गूढ़, महान् गुप्त सुख मान-मानकर और दुःख भोगकर चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं, तो वहाँपर भी नाना दुःख पा रहे हैं। मेहनत-मजदूरी साधनोंका दुःख ही यहाँ पा रहे हैं। उसीको गूढ़ सुख मान करके दुःख ही भोगते रहते हैं ॥

व्याख्या— मूढ़ नरजीवको विवेक न होनेसे तमाम दुःख, जन्म, मरणादि होते रहनेका कारण उसका मर्म वा असली भेदको तो वे कुछ भी जानते ही नहीं हैं। दुःखदायीको ही धोखेसे गूढ़ सुख मान करके बारम्बार दुःख ही भुगतते रहते हैं। संसारमें स्त्री-विषयादि भोग, और परमार्थमें ध्यान-समाधि आदि प्राप्ति करनेमें नाना कष्ट-क्लेशादि पाकर प्रत्यक्षमें दुःख भोगते हुए भी मूढ़लोग उसे गूढ़ वा गुप्त सुख मान-मानकर भूले पड़े हैं ॥ ९९ ॥

३. छितरि समेटि पुनि छितरी अरुझा * अबूझहु बूझ बूझसों अबूझा ॥ १०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

छितरी = चारखानीमें अनेकों देहें
समेटि पुनि = धारण करके पूर्व वासनासे
छितरी अरुझा = जीव जहाँ-तहाँ फैले हुए हैं, सो ब्रह्मज्ञानियोंने जड़-चैतन्य सबको समेट करके एक ब्रह्म निश्चय किये हैं, फिर उसी ब्रह्मसे अनन्त जगत् विस्तार होनेकी इच्छा फूटी, तो जगत्में ही फिर नाना जीव होकर अरुझ गये। और—

अबूझहु बूझ = ब्रह्मसे जीव हुआ यह समझ-
बूझसों अबूझा = बूझ तो नरजीवको ही हुआ, परन्तु, जीव ही जान-बूझकर साक्षी रहित ब्रह्म बनता है। सोई बूझसे अबूझ हुआ ॥

व्याख्या— अथवा कर्मवासनाओंसे जीव चौरासी योनियोंमें जहाँ-तहाँ छितराये हुए कर्मफल भोग रहे हैं। यहाँ ब्रह्मज्ञानी मनुष्यने कल्पनासे उन सबको समेटकर आप ही एक अद्वैत ब्रह्म बनने-की भावना-मानन्दी किया। परन्तु, फिर उसी एक ब्रह्ममेंसे भी इच्छा निकल करके नाना जगत्की उत्पत्ति, विस्तारपूर्वक पूर्ववत् माना। तहाँ वासना छितरायके फिर जगत् जालोंमें अरुझा; और अबूझ=अनुमान-कल्पना जो है, सो नरजीवोंकी मानन्दीसे बूझरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि बना। यही बात गुरुवालोगोंसे अज्ञानीलोगोंने समझे-बूझे। किन्तु, अन्तमें बूझ-विचारको नशाय कर, जान-बूझ कर वृत्तिको जड़ बनाय, साक्षीदशा, विवेकको त्यागकर जीव फिर बूझसे अबूझ बना। जीवसे ब्रह्म हुआ, ज्ञानसे अज्ञान वा विज्ञानमें चला गया, गरगाफ हुआ। इसतरह बिना पारख, उलट-पलटकर, जगत्-ब्रह्म होकर जन्म-मरणादि चक्रमें भटक रहे हैं ॥ अर्थात् खुलासा यह है कि— पहले तो छितरा हुआ चराचरको कल्पनासे समेट करके एक अद्वैत ब्रह्म बने, फिर शून्यमें ठहराव न होनेसे इच्छा करके चौरासी योनिरूप जगत्में छितरकर फिर महा बन्धनमें अरुझ गये। और अबूझ=अनुमानरूप ब्रह्मको भी चैतन्य माने। परन्तु, जीव स्वयं ही मानन्दीसे ब्रह्म बने, तो

पहले जो विवेक, विचार, साक्षीभाव जानपना था, सो भी मिटायके गाफिल, मूढ़, पशुवत् वृत्ति बनायके अबूझ, अज्ञानी हो गये। बिना पारख उलट-पलटकर ऐसे दुर्दशाग्रस्त हो रहे हैं ॥ १०० ॥

४. इमि अन्धधुन्ध भयो परचण्डा ❀ जीवहिं विकल नहिं चैन ब्रह्मण्डा ॥ १०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु शिष्य ! सुनो !—

इमि अन्धधुन्ध = इसप्रकारसे अन्धे
भयो परचण्डा = ब्रह्मज्ञानी और अज्ञानी जीवोंका धुन, लक्ष्य, भ्रम-गाफिली, आसक्ति, तेज, वेगवान् तीक्ष्ण हो गयी या प्रचण्ड हो गयी। ऐसे अन्धाधुन्धका भ्रम प्रचण्ड हुआ। सोई भ्रम-कल्पना, विषयोंके वेगसे चोट लगनेसे—

जीवहिं विकल = समस्त जीव संसारमें
नहिं चैन = बेचैन, व्याकुल हो गये।
ब्रह्मण्डा = तो ब्रह्म-कल्पनाकी वाणी और विषयादिसे जीवोंकोसुख शान्ति या मुक्ति तो हो नहीं सकती है; क्योंकि, संसारमें देखो ! सभी इससे विकल, बेचैन, दुःखी ही हो रहे हैं ॥

व्याख्या— ऐसे अन्धाधुन्धसे भव-बन्धन प्रचण्ड-तीव्र गतिवान् दृढ़ हो गया। तहाँ पिण्ड-ब्रह्माण्डमें कहीं भी जड़ाध्यासी जीवोंके लिये नित्य सुख-चैन ही नहीं होता है। इसीसे सब जीव सदासे कष्टित, व्याकुल, दुःखी ही हो रहे हैं। अर्थात् ऐसे तीव्र जड़ाध्यासमें पड़कर सब जीव व्याकुल ही हो रहे हैं। उन्हें ब्रह्माण्डरूपी कल्पित वाणीमें पड़कर कहीं भी चैन, मुक्ति नहीं मिलती है; बन्धन नहीं छूटता है, बिना विवेक ॥ १०१ ॥

५. ब्रह्माकार माँहि नित रहै ❀ परख यथारथ नाहीं गहै ॥ १०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्माकार माँहि = कोई विषयाकारमें ही रह
नित रहै = रहे हैं, तो कोई ध्यान, धारणा, समाधि, ज्ञानादि करके अद्वैत ब्रह्म 'अहंब्रह्मास्मि' के आकारमें या कल्पनामें जीव नित्य ही रहने लगे या रह रहे हैं, भूल रहे हैं।

परख यथारथ = परन्तु, पारखी सद्गुरुके
नाहीं गहै = सत्यन्याय निर्णयका उपदेश यथार्थ पारखबोधको कोई ग्रहण नहीं करते हैं। इसलिये उनकी भ्रम-भूल भी नहीं छूटती है ॥

व्याख्या— बहुतेरे ज्ञानीलोग उधर मनसे कल्पनाको दृढ़ करके नित्य ब्रह्माकारमें एक अद्वैत व्यापक ब्रह्म कोई है वा मैं ही ब्रह्म हूँ ! ऐसी मानन्दीमें भूले पड़े रहते हैं। इसीसे वे लोग यथार्थ पारख बोधको ग्रहण ही नहीं करते हैं; अतः महाजालोंमें बन्धे पड़े रहते हैं ॥ १०२ ॥

६. बिनु परखै यह आदि कहानी ❀ ब्रह्म जीव माया सहिदानी ॥ १०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बिनु परखै = खानी-वाणीका आदि कर्त्ता
यह आदि = तो यह मनुष्यजीव ही है।
कहानी = कल्पनासे वेद वाणी, पुराणादि कहानी भी नरजीवोंने ही बनाई है। सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ परखे बिना यह आदि नरदेहकी भूल नहीं छूट सकती है।

ब्रह्म जीव माया = नरजीवने ही अज्ञानतासे
सहिदानी = ब्रह्मकी निशानी लगायके अनुमानसे वेदान्तकी वाणी कही है। सो कोई ब्रह्म है, माया है, कहना जीवका ही बेपहिचान भ्रम-धोखा मात्र है ॥

व्याख्या— इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर ठीक तरहसे एक-एक करके परखे बिना यह 'आदि कहानी' = भव-बन्धन, अज्ञानताका प्राचीन इतिहास यथार्थरूपमें किसीको भी जाननेमें नहीं आता है, और जीव, ब्रह्म, मायाका यथार्थ स्वरूप, सहिदानी = पहिचानी वा चिन्हारी भी हो नहीं सकता है। इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें निर्णय करके उसे पहिचानकर भ्रम

भूलको हटाना चाहिये। जड़ और चैतन्य स्वरूपसे अनादि हैं। अबोध अध्यास करके प्रवाहरूपसे अनादिसे ही आवागमनमें जीव पड़े हैं। जीव चैतन्य नित्य, सत्य, अखण्ड स्वरूप अनन्त हैं। ब्रह्म माना हुआ भ्रममात्र भास है। 'माया' मुख्य अज्ञान, अविद्या है। जिससे देह बन्धनोंमें जीव पड़े हैं। परखकर ऐसे जानना चाहिये ॥ १०३ ॥

७. बहुत कष्ट जीवहि जब भयऊ ❀ तब सो ब्रह्मपद बोधित ठयऊ ॥ १०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

बहुत कष्ट= / जीवहि जब= / भयऊ= } जब नरजीवोंको संसारमें त्रिविधि ताप तथा स्त्री, पुत्र, धन, घरादिके अनमिल होनेसे बहुतेक कष्ट सन्ताप हुआ, चिन्ता-फिक्र परेशानी बढ़ी, तो घर छोड़कर साधु हो गये।

तब सो ब्रह्म-= / पद बोधित= / ठयऊ= } तब गुरुवालोगोंने वाणी-कल्पनासे एक ब्रह्मपद सुख-स्वरूप सच्चिदानन्द है, ऐसा कहकर ठहराये, वही बोधको शिष्योंने ग्रहण करके मनमें कायम किये या ठहराये हैं। ब्रह्म बनकर महाभ्रममें ही पड़े हैं॥

व्याख्या— संसारी मनुष्यजीवोंको जब त्रिविधि ताप आदिमें बहुत ही कष्ट-क्लेश, दुःखका अनुभव हुआ? तब दुःख निवृत्तिके लिये गुरुवालोगोंकी शरणमें गये। तहाँ उन्होंने ब्रह्मज्ञान दृढ़ाकर बोध देकर ब्रह्मपदको अति सुख परमानन्द कहकर ठहराये, वही बात शिष्योंको दृढ़ाये। अर्थात् जब नरजीवोंको बहुत कष्ट हुआ, तब अनुमान किये कि, संसारमें इतना दुःख है, तो परमार्थमें परमानन्द परमपद महान् सुख भी होगा। फिर गुरुवालोगोंकी शरणमें गये। उन्होंने वेद-वेदान्तका बोध देकर ब्रह्मपदको सच्चिदानन्द मुक्तपद समझाकर ठहरा दिये। वही भ्रम-कल्पनाको सबोंने दृढ़ निश्चय कर लिये; महाभूलमें पड़े ॥ १०४ ॥

८. ब्रह्म भये थिति कल्पित पाई ❀ कल्पित सृष्टि कहाँ थिर भाई? ॥ १०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ब्रह्म भये थिति= / कल्पित पाई= } वेदान्तके श्रवण-मननसे अद्वैत ब्रह्म तो बने, यानी जीवसे ब्रह्म हुए; परन्तु, कल्पित ब्रह्ममें लगकर स्थिति तो कुछ नहीं हुई, तो मुक्ति कहाँसे पायेंगे? ब्रह्म होनेपर तो स्थिति नहीं मिली, वह तो कल्पना ही पाई गई।

कल्पित सृष्टि= / कहाँ थिर भाई?= } हे भाई! मनोमय वाणी-कल्पित ब्रह्ममें या शून्यमें चैतन्य जीवकी स्थिरता, ठहराव कहाँसे होगा? कहाँ ठहरेगा? इसलिये ब्रह्मसे जगत्की सृष्टि मानना भी कल्पित होनेसे झूठा है। हे भाई! पारखमें यह बात कल्पित वाणीकी सृष्टि कहाँ ठहर सकती है? ॥

व्याख्या— जब नरजीव अनुमान-कल्पनाको दृढ़ करके स्वयं ब्रह्म हुए, तब तो कल्पितमें लगकर डावाँडोलकी ही स्थिति पाये। अरे भाई! ब्रह्म माना हुआ तो कल्पित मनकी सृष्टि है। उस कल्पित सृष्टिमें लगकर कहाँ स्थिरता मिल सकती है? कहीं नहीं मिलती है। ब्रह्म, ईश्वर, जगत् आदिकी सृष्टि उत्पत्ति जो माने हैं; सो सब कल्पित भ्रम है ॥ १०५ ॥

९. अनुभव करहिं पढ़हिं तेहि गाढ़ा ❀ ईश ब्रह्मपद करि करि ठाढ़ा ॥ १०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अनुभव करहिं= / पढ़हिं तेहि गाढ़ा= } वेद-वेदान्तका विचार करके एक कर्त्ता ब्रह्म मानकर अनुमानका ही अनुभव या निश्चय करते हैं। वही वाणी पढ़ते-पढ़ाते हैं। कोई सुख-दुःखोंका देहमें अनुभव करके बाहर कर्त्ता, कोई ईश्वरकी मानन्दो करते हैं।

इसप्रकार उसी महा गाफिलीके गड्ढेमें जाके गिर पड़ते हैं, तो वहाँ गाढ़ा भ्रम कीचड़में लिप्त होते हैं।

ईश ब्रह्मपद= / करि करि ठाढ़ा= } कोई ईश्वर-कर्त्ता, कोई ब्रह्म-आनन्दपद इत्यादिको खड़ा कर-करके उसमें मिलनेसे मुक्ति मान

लिये हैं, और नाना मत खड़ा कर-कराके | भ्रम चक्रमें ही पड़े हैं ॥

व्याख्या— भ्रमसे कहीं ईश्वरपद, कहीं ब्रह्मपद आदि खड़ा कर-करके वेदादिकी वाणीके प्रमाणसे अनुमानको ही निश्चय करके अनुभव करते हैं। इसप्रकार उसी महाअज्ञानका गाढ़ा अन्धकार छाया हुआ अन्धकूपमें जाके गिर पड़ते हैं। पश्चात् चौरासी योनियोंके गर्भवासको प्राप्त होते हैं। बिना पारख उस भ्रम गढ़की कैदसे कोई छूट नहीं पाते हैं ॥ १०६ ॥

१०. इमि अनुमान बहुत दिन बीता ❀ दुःख दुःख दुःख दुस्सह नौ नीता ॥ १०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

इमि अनुमान = बहुत दिन बीता = इसप्रकारसे ऐसे अनुमान, कल्पना विषयासक्तियोंमें भटकते हुए जड़ासक्त जीवोंका अनन्त जन्म व्यतीत हो गया है, बहुत दिन वा बहुत नरजन्म ऐसे ही व्यर्थ चला गया है।

दुःख दुःख दुःख = दुस्सह नौ नीता = परन्तु, जन्म-मरण, गर्भवास; दैहिक, दैविक, भौतिक ताप; बाल, युवा, वृद्धपनमें नित्य नया-नया ही दुःख, असह्य वेदना कर्म अध्यासवश जीव सब भोग रहे हैं, दुःख पा रहे हैं ॥

व्याख्या— ऐसे नरजीवोंको अनुमान-कल्पनादि करते-कराते बहुत दिन, बहुत वर्ष या अनेकों नरजन्म व्यतीत हो चुके। परन्तु, स्थिति-ठहराव उससे कभी कहीं नहीं हुआ। बल्कि, बारम्बार त्रिविधि तापका दुःख, जन्म,मरण, गर्भवासका दुःख, तीनपनका दुःख, चारखानीका दुःख, इत्यादि प्रकारसे जहाँ-तहाँ दुःख-ही-दुःख, असह्य दुःख, नित्यप्रति नया-नया दुःख, सन्ताप, कष्ट बहुत-बहुत पाते भये। बिना पारख आज तक भी वही सब दुःख जीव सब पा रहे हैं ॥ १०७ ॥

११. एक दिना अतिशय अकुलाना ❀ सरधा होय बहुत बिलखाना ॥ १०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! ऐसे ही होते-होते फिर—

एक दिना = अतिशय = अकुलाना = कोई विरले शुभ संस्कारी जीवने नरदेह पायके सब बातोंका पूरा-पूरा विचार किया, तो शुभ संस्कार उदय होनेसे वह विवेकी मनुष्य एक दिन अत्यन्त व्याकुल हो, यह महाकष्टकारक खानी-वाणी जालोंसे कैसे छूटूँ ? ऐसा सोचकर चिन्तित हो गया।

सरधा होय = बहुत = बिलखाना = तहाँ मुक्ति होनेकी प्रबल श्रद्धा उत्पन्न होनेसे, अनन्त बन्धनोंको देखकर बहुत गम्भीर विचारमें पड़कर रोया। अथवा श्रद्धापूर्वक पारखी सद्गुरुके पासमें उनकी शरणमें जाकर बन्धनोंसे छूटनेके वास्ते बहुत विनय किया। रो-रोकर चरण पकड़ लिया ॥

व्याख्या— किसी एक समयमें ज्ञानखानी मनुष्य जन्ममें आकर शुभ संस्कारी जीवने नरदेह प्राप्त किया। तहाँ समझ बुद्धि-विचार प्रकाश होनेसे एक दिन वह जीव भव-बन्धनका विस्तार, कष्ट-क्लेशको देखकर अत्यन्त अधीर होकर अकुलाया। और मुक्ति प्राप्तिके लिये श्रद्धा-प्रेम प्रगट होनेसे बहुत बिलख कर रोया कि- मैं कैसे इन बहुत बन्धनोंसे छूटूँ ? इत्यादि सोच-विचार करने लगा ॥ १०८ ॥

१२. अशरण शरण बिरद सम्भारी ❀ साँचा होय प्रेम जीव धारी ॥ १०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अशरण शरण = बिरद सम्भारी = जिसकी कहीं शरण या रक्षा नहीं होती है, ऐसे जिज्ञासुको शरणमें लेनेवाले पारखी सद्गुरु हैं। जब सद्गुरुकी शरणमें गया, तो शरण लेकर साहेबने उसको सम्हालकर अपने साधुके भेषमें सामिल कर लिये। तब सद्गुरुका बाना लेकर दीनतासे कल्याण मार्गमें लगा। अथवा सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सच्चा त्याग भेषको सम्हालकर स्वयं ले लिये थे। और-

साँचा होय = } सत्यन्यायी पारखी होके
प्रेम जीव धारी = } प्रेमसे हंस गुण-लक्षणोंको धारण कर-कराके निज-पर जीवको मुक्त किये, कराये । अथवा जो जिज्ञासु जीव प्रेमसे गुरुभक्तिसे उपदेश रहनी-रहस्योंको धारण करके सच्चा पारखी हुआ, सो बन्धनोंसे रहित हुआ । यानी जीव ही सत्य है, यह पारख ज्ञानको जो धारणकर लिये हैं, सो सच्चे होते हैं ॥

व्याख्या— निजस्वरूपका बोध नहीं था, तबतक जीव अशरण दशामें था। जब पारख स्वरूपका बोध हो गया, तब शरण, आश्रय, ठौर, स्थिति अपने आपमें ही मिल गयी । फिर वे ही बोधवान् विवेकी स्वयं अशरण-शरण होकर देह रहे तक बर्तावके लिये शुद्ध त्याग भेषका बाना स्वीकार करके सम्हाल लिये, ग्रहणकर लिये । तब सच्चे सद्गुरुरूपमें प्रगट होयके अपने जीवपर तथा अन्य सभी जीवोंपर भी प्रेमभाव वा दयाभाव धारण कर लिये। अथवा चैतन्य जीव ही सत्य है, ऐसा सच्चा बोध प्रगट हुआ, तो देहधारी जीवोंको प्रेमसे रक्षा करने लगे, फिर अपने जीवकी कल्याण-मुक्तिके लिये त्याग-वैराग्यका भेषरूप बिरद सम्भार लिये । सोई अशरण-शरण प्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए, ऐसा जानिये ! ॥ १०९ ॥

१३. प्रेम गोहार शुद्ध मन थीरं ❀ गुरु सोइ कल्पित मिटै समीरं ॥ ११० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

प्रेम गोहार = } इसतरह सत्य प्रेमसे आन्तरिक
शुद्ध मन थीरं = } कल्याणकी पुकार या शुद्धभाव होनेसे विकार छूटकर मन शुद्ध होकर स्थिर हुआ । अथवा जिसने सत्य प्रेमसे सद्गुरुके सत्सङ्गमें जाकर भव-बन्धनोंसे छूटनेकी प्रेमसे पुकारकी, तो दयालु सद्गुरुने सत्य ज्ञान बताये । पारख बोध होनेसे मन भी शुद्ध होकर स्थिर हो गया या स्थिर हो जाता है । यानी प्रेम गोहार होनेसे मन शुद्ध होकर स्थिर हुआ ।

गुरु सोइ = } खानी-वाणीकी कल्पित वासनाएँ
कल्पित = } यह वायु वेगरूप चञ्चलता
मिटै समीरं = } जिनकी मिट गई हैं, सोई तम अज्ञान विनाशक, पारख प्रकाशक पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब 'आदिगुरु' हुए । और आपके ही सच्चे अनुयायी वैसे ही स्थितिवान् हों, सोई 'सद्गुरु' हैं । उन पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेश धारण करनेसे सकल कल्पित वाणीरूप वायुका बौंडर मिट जाता है ॥

व्याख्या— जब मन शुद्ध होकर स्थिर हो गया, सब कल्पना, अभ्यास मिट गया, तब अन्य जिज्ञासु जीवोंके कल्याणके लिये अपना निर्णय अनुभव प्रेमसे गोहार करके सुनाये, पारख बोधका उपदेश दिये। जिससे अन्य मनुष्योंका भी मन शुद्ध होकर स्थिर हुआ । और जिनके बोधसे, समीर = वाणीरूपी वायुकी बाढ़— बौंडर, तोफान, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, कर्त्ता, भूत-प्रेतादि, स्वर्ग, देवी, देवता, ऋद्धि, सिद्धि, ऐश्वर्य इत्यादि भ्रम विनाश होकर कल्पित मानन्दी सब मिट जाती है वा छूट जाती है, सोई सत्य बोधदाता पारख प्रकाशी, 'आदिगुरु' सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए हैं। तथा आपके अनुयायी पारखी सन्त भी सोई श्रेष्ठ पदवाले सद्गुरुरूपमें माने जाते हैं ॥ ११० ॥

१४. देखु दृष्टि निज कल्पित जाला ❀ निजपद द्रष्टा भये निहाला ॥ १११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

देखु दृष्टि निज = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने
कल्पित जाला = } स्वयं निज पारखदृष्टिसे सकल कल्पित ईश्वरादि वाणीजाल तथा खानी जालोंको ठीक-ठीक देख लिये, परखकर उन जालोंको त्याग किये। सो हे मुमुक्षुओ ! तुमलोग भी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें रह करके निज पारखदृष्टिको खोलकर सब कल्पित जालोंको देखके छोड़ो । फिर उन जालोंमें मत् फँसो ।

निजपद द्रष्टा = } सर्वप्रथम निज चैतन्य स्वरूप
भये निहाला = } पारखपदके द्रष्टा सत्यज्ञानी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए। आप जीवन्मुक्त हो गये। सो निज पारखपदके द्रष्टा होनेपर जीव भव-बन्धनोंसे छूटकर निहाल=परम सुखी जीवन्मुक्त हो जाता है॥

व्याख्या— फिर जब उन्होंने निज विवेकरूप पारखदृष्टिसे सम्पूर्ण कल्पित जालोंको यथार्थ रीतिसे देख लिये, तब उन सबोंको भ्रम जानकर परित्याग कर दिये। जिससे द्रष्टा चैतन्य जीव निजपद पारखमें स्थिर एकरस कायम होकर निहाल वा सुखी हुए। अर्थात् जीवन्मुक्त होकर सब दुःखोंसे सदाके लिये छूट गये॥ १११॥

१५. सोई दृष्टि निज बोधहि पाई ❀ गुरु पारख निज प्रगट जनाई॥ ११२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सोई दृष्टि निज = } सोई पारखदृष्टि निज स्वयं
बोधहि पाई = } स्वरूपका बोध सत्यज्ञान स्वयं प्राप्त करके—
गुरु पारख निज = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने
प्रगट जनाई = } गुरुपद पारखको अपनी शरणमें आये हुए नरजीवोंपर दया करके निज सत्य अनुभव पारखको प्रत्यक्ष दिखाकर जनाये या बोध किये। सो पारखी सद्गुरुकी शरणमें जो गये, उन्होंने भी सोई 'चैतन्य जीव सत्य है,' यह पारखदृष्टि अपने सत्य स्वरूपका यथार्थ बोध पाये। फिर परम्परासे सद्गुरुके पारखसे निज कल्याण होनेसे अन्यको भी प्रगट करके पारखी सन्तोंने पारखबोध जनाये॥

व्याख्या— सोई परीक्षादृष्टिसे निज स्वरूपके पारख बोधको सद्गुरुने स्वयं ही जान पाये, और फिर अपने निश्चय किया हुआ गुरुपद पारख बोधको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने उपदेश द्वारा प्रगट करके संसारमें सबोंको जना दिये हैं वा बता दिये हैं॥ ११२॥

१६. सारशब्द निर्णय जथारथ ❀ गुरुमुख सब सुख लहै न अनारथ॥ ११३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सारशब्द = }
निर्णय = } पारखी सद्गुरुका सत्य उपदेश
जथारथ = } यथार्थ जड़-चैतन्यका भेद बतानेवाला सत्य निर्णय न्यायका होनेसे सो गुरुमुख वाणी सारशब्द है। सबका सार निज चैतन्य जीव है। उसको सीधा इशारा देकर बतानेवाला गुरुबोध सोई सारशब्द है। जिससे सब कल्पित शब्दोंका पारख होता है।

गुरुमुख सब सुख = }
लहै न अनारथ = } पारखी सद्गुरुके मुखारविन्दसे निकले हुए सार उपदेशसे जीवोंकी सकल भ्रान्ति-कल्पना तथा विषय बन्धन छूट जाते हैं। इसलिये उन्हें आवागमनोंसे रहित सब सुख प्राप्ति हो जाती है। यानी जीवन्मुक्त हो अटल शान्ति सुख पा जाते हैं। और नाशवान् देहका भास-अध्यास, विषयानन्द-ब्रह्मानन्दकी अनर्थकारी आसक्ति उनकी नहीं रहती है, सब वासनाएँ छूट जाती हैं॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सत्य निर्णय बीजकका उपदेश जो है, सोई सारशब्दमें यथार्थ निर्णय है। और उसका गुरुमुख निर्णय द्वारा यथार्थ अर्थको जानकर पारखबोध लेनेवाले सबोंको निःसन्देह सुख ही प्राप्त होता है। और जो अर्थ नहीं जानते हैं, अनर्थ ही करते हैं, वे संशय ग्रसित होनेसे कभी सुख पा नहीं सकते हैं। अथवा जो यथार्थ सारशब्द निर्णयको गुरुमुख द्वारा श्रवण-मनन करके ग्रहण करते हैं, वे सब प्रत्यक्षमें निर्बन्ध होकर मुक्तिके सुखको जीते ही पा जाते हैं। फिर उनके कोई अनर्थ हो नहीं सकता है; और जो भ्रम-चक्रमें पड़े हैं, वे अनर्थमें लगकर भव-बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं, बिना पारख॥ ११३॥

१७. सोइ गुरु प्रथम शिष्य मत येहा * परख प्रताप मगन न सन्देहा ॥ ११४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! इसप्रकारसे—

सोइ गुरु प्रथम = नरदेहमें जीते ही सकल
शिष्य मत येहा = माया-मोह बन्धनोंको त्यागे हुए काया-वीर सद्गुरु श्रीकबीसाहेब सोई सर्व प्रथम पारख प्रकाशी सद्गुरु हुए। उनके यह सत्य मत पारख सिद्धान्तको ग्रहण करनेवाला वही सत् शिष्य है वा सत् शिष्य होता है।

परख प्रताप = सो गुरु पारखके प्रतापसे
मगन न = सकल सन्देह, भ्रम-कल्पनासे
सन्देहा = रहित होकर जिज्ञासु नरजीव प्रत्यक्ष जीवन्मुक्त स्थितिमें मगन = सुखी-शान्त रहते हैं। तथा पारख प्रतापी सद्गुरु तो निज स्वरूपमें मगन जीवन्मुक्त होनेसे सन्देहके रास्तोंसे न्यारे ही सदैव रहते हैं। वे कोई सुखके अध्यासको ही नहीं रखते हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य ! इसतरह स्वयं स्वरूपका बोध सर्वप्रथम जिनको हुआ, सोई 'आदिगुरु' सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब प्रसिद्ध हुए। यह अपरोक्ष पारख सिद्धान्त गुरुमत वा गुरुपद आपने ही प्रथम शिष्योंके प्रति उपदेश देकर प्रकाश किये हैं। इसको ग्रहण करनेवाले कोई बिरले ही सत् शिष्य होते हैं। गुरुबोध पक्का होनेपर फिर उनमें कोई सन्देह, संशय, भ्रम रह नहीं सकता है। पारखके प्रतापसे निजपदमें ही शान्त सुखी, मगन, जीवन्मुक्त हो जाते हैं। इसलिये कोई भी सन्देहका मार्ग, भटकना फिर उनमें रह नहीं सकता है। पारख प्रतापसे वे अचल, अटल, स्थिर हो जाते हैं॥ ११४॥

१८. बन्दीछोर ताहिको नामा * भेष साधु मङ्गल गुण धामा ॥ ११५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बन्दीछोर = उन पारखी सद्गुरु
ताहिको नामा = श्रीकबीरसाहेबका नाम ही "बन्दीछोर" है। आपने ही ताहिको = जीव ही सत्य है, यह पारखके नाम = सत्य बोध देकर खानी-वाणीके भव-बन्धनोंसे नरजीवोंको छुड़ाये, मुक्त किये या बचाये हैं। और तैसे ही अभी पारखी सद्गुरु बन्दीछोर होते हैं।

भेष साधु = तन, मन, वचनोंको वशकर साधे
मङ्गल = हुए सच्चे त्यागी भेषधारी साधु
गुण धामा = जो हैं, सो कल्याणकारी, सत्य, विचारादि सद्गुण हंस लक्षणके सहित होनेसे मङ्गल गुणोंके भवनके समान हितकारी होते हैं। यानी सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबसे निकला हुआ साधुका भेष मङ्गल-कारी गुणोंके महल समान जीवोंको बन्धनोंसे बचानेवाला सुखकारी है, ऐसा जानो !॥

व्याख्या— जिन सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पारखबोध देकर खानी-वाणी महा बन्धनसे नरजीवोंको छुड़ाये, मुक्त किये हैं, उन्हींका शुभ नाम 'बन्दीछोर' है। आपका भेष सच्चे त्यागी विरक्त साधुका रहा। आप शुभ मङ्गलकारी सद्गुणोंके धाम, जीवन्मुक्तिमें विश्राम किये रहे। सो उन्हीं बन्दीछोरके 'नाम' कहिये सत्यबोधको लेना; आपसे निकला हुआ टकसारी त्यागी साधु भेषको धारण करना, यही मङ्गलकारी सद्गुणके धाम है। ऐसा जानकर पारखी सद्गुरुसे वही बोध, शुद्ध भेष आदि याचना करके लेना चाहिये॥ ११५॥

१९. ज्ञान सोई जो यह मत जानै * भक्ति सोई गुरु साधुहि मानै ॥ ११६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ज्ञान सोई जो = सच्चा ज्ञान सोई है, जो कि,
यह मत जानै = "चैतन्य जीव सत्य है" यह सत्य पारख सिद्धान्तको जानै, तथा यह सद्गुरुका ज्ञान सत्य मतको दूसरोंको जो जनाता है, सोई सत्यज्ञानी परोपकारी है।

और—

भक्ति सोई गुरु = सच्चा गुरुभक्त, भक्तिके
साधुहि मानै = रहस्यको जाननेवाला सोई है, जो कि, पारखी साधु-गुरुको सर्वश्रेष्ठ समझकर तन, मन, धन, वचनादि गुरु-साधुमें निछावरकर साधु-गुरुका सम्मान

करता है। सोई सद्गुरुका सच्चा शिष्य है। गुरु-साधुओंको मानना, यह चैतन्य भक्ति ही सच्ची भक्ति है। यानी यह पारख मतको जाने, सोई श्रेष्ठ ज्ञान है; और पारखी साधु-गुरुको जो माने, सोई भक्तकी भक्ति श्रेष्ठ है ॥

व्याख्या— यह गुरुमत पारखको जो जानते हैं; सोई सच्चे ज्ञानवान् ज्ञानी हैं। तथा पारखी सद्गुरु एवं विवेकी साधु, सन्त, महात्माओंको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रेम-भावसे जो मानते हैं; सोई असली भक्ति करनेवाले गुरुभक्त हैं ॥ ११६ ॥

२०. थिरपद गुरुमुख साधु जहाना * ताके रहस चरित्र विधि नाना ॥ ११७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

थिरपद=
गुरुमुख=
साधु जहाना= } संसारमें जितने षट् दर्शनोंके साधु भेष हैं, वे सब कल्पनामें पड़े हुए भ्रमिक मनमुखी हैं, और जो कोई मनुष्य जगत्में गुरुमुख उपदेश सत्य निर्णयको समझकर निज चैतन्य पारखपदमें ही स्थिर अटल हो गये हैं, सोई अमूल्य रत्नवत् सच्चे साधु पारखी हैं।

ताके रहस चरित्र=
विधि नाना= } उन पारखी सच्चे त्यागी सन्त - महात्माओंकी रहनी-गहनी, सत्यन्याय, सत्य सिद्धान्तका रहस्य, पारख विचार, युक्ति-प्रयुक्ति उपदेश देनेकी शैली, नाना तरहसे विधिपूर्वक होता है। सो उन्होंके जीवनचरित्रमें ही वर्णन हुआ है। वर्तमानमें भी घटना घटित बात प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर हो रही है ॥

व्याख्या— जगत्मेंके त्यागी सम्पूर्ण साधुओंमें श्रेष्ठ शिरोमणि परमपूज्य ऐसे पारखी सद्गुरु हुए। अभी भी पारखी सन्त ही सर्वोपरि हैं। वे गुरुमुख निर्णयसे पारखबोधको जानकर गुरुपदरूप स्थिरपदमें स्थिर हुए हैं। इसीसे उनकी महिमा सबसे बढ़कर है। अथवा स्थिरपद पारखको गुरुमुखसे जगत्में जिन साधुओंने जाने हैं, वे सद्रहस्यवान् पारखी सन्त कहलाते हैं। उनके जीवनचरित्र, रहनी-रहस्यकी धारणा नाना विधिसे हुई और हो रही है। उनमें उपदेश देनेकी शैली, जीवनचरित्रकी घटनामात्र ही नाना तरहसे समय-समयपर होती है। परन्तु, बोध-विवेक, स्थितिका रहस्य तो सब पारखी सन्तोंका एक-सा ही होता है ॥ ११७ ॥

२१. तत्त्व प्रकृति कहब विस्तारा * यह देहीको जो व्यवहारा ॥ ११८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तत्त्व प्रकृति=
कहब विस्तारा= } अब हे शिष्य ! मैं तुम्हें हंस वा सच्चे मनुष्य देहके शुद्ध पाँच तत्त्व तथा पच्चीस प्रकृतियोंका विवरण विस्तारसे कहता हूँ ! सो ध्यानसे सुनो !:—

यह देहीको=
जो व्यवहारा= } यह नरदेहमें निज स्वरूपमें स्थिर पारखी सन्त जीवन्मुक्तके व्यवहार हंस देहका सद्गुण-लक्षण, बर्ताव, चाल, रीति जो-जैसा कुछ होता है, सो व्यवहारका वर्णन भी सुनाता हूं ! सुनो- ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! जीवन्मुक्तपदमें ठहरानेवाला यह हंस देह कहलाता है। यह हंसदेहके जो व्यवहार, बर्ताव, चाल, रहनी देह रहेतक जो-जैसा रहता है, सो और हंसदेहके शुद्ध पाँचतत्त्व तथा शुद्ध पच्चीस प्रकृतियाँ, शुद्ध तीन गुण आदि जो कुछ हैं, सो सब भी विस्तारसे इसी प्रकरणमें मैं तुम्हें कह कर सुनाऊँगा। तुम चित्त लगायके सुनते जाओ, जिससे पूरा बोध हो जायगा ॥ ११८ ॥

२२. निर्गुण सगुण उपमज दोई * परख जथारथ मिथ्या सोई ॥ ११९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निर्गुण सगुण=
उपमज दोई= } निर्गुण- निराकार-निरञ्जन, तथा सगुण, साकार, विराट भगवान् कोई जगत्कर्त्ता है, ऐसे दोनों प्रकारकी कल्पनाको उत्पन्न करनेवाला सत्य नरजीव है। सो द्रष्टा चैतन्य है; निर्गुण आकाश, सगुण चारतत्त्व दोनों जड़से न्यारा जीव है। यही निर्गुण-सगुणकी

वाणी-खानीकी उपाधिमें जाकर जीव पड़े हुए बद्ध हो रहे हैं।

परख जथारथ= मिथ्या सोई= इसवास्ते हे शिष्य! गुरु-ज्ञानको लेकर तुम यथार्थ सत्यासत्यको परखो, निर्णय करो। सार-असारकी पहिचान करो। तुम्हारी मानन्दी सगुण-निर्गुण कर्त्ताकी कल्पना, सो सब मिथ्या है। उसको माननेवाला तुम 'जीव' ही सत्य हो, ऐसा पारख करो। सो सब मिथ्या जाल यथार्थ परखनेसे समझनेमें आ जाता है। अतएव सत्सङ्गमें ठहरकर विचारमें लगे रहो॥

व्याख्या— निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार, ये दोनों ही कल्पनाकी उपाधियाँ हैं। ये दोनों खानी-वाणीके जाल नरजीवोंकी भ्रम-भूलसे ही उत्पन्न हुए हैं। और अबोध जीव उसी बन्धन-में अरुझे पड़े हैं। गुरु पारख बलसे उसको परखो! यथार्थ पारखबोध हो जानेपर सो मिथ्या भ्रम छूट जायगा। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म कहा हुआ दोनों मिथ्या है। यथार्थ पारख होनेपर उस जालसे जीव छूट जाते हैं। अतः पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें लगकर सब जालको परखकर त्यागना चाहिये॥ ११९॥

दोहाः— ॐ अण्ड कल्पित सोई * सो सब प्रगट लखाव॥
[२७] याकी तत्त्व प्रकृति अब * कहब जथारथ भाव॥ १२०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— [यहाँसे हंस वा सच्चा मनुष्य देहके शुद्ध पाँचतत्त्व, उनकी पच्चीस प्रकृतियाँ, तीन गुणोंकी शुद्धता, रहनीके बर्ताव आदिका वर्णन करके ग्रन्थकर्त्ताने दर्शाया है] हे शिष्य! सुनो!:—

ॐ अण्ड= कल्पित सोई= गोलाकार पिण्ड-ब्रह्माण्डमें परिपूर्ण माना हुआ ॐकार ब्रह्म जो है, सो नरजीवोंका अनुमान है, सोई मिथ्या कल्पित भ्रममात्र है, यानी वह तो मिथ्या वाणीका बढ़ावामात्र है।

सो सब= प्रगट लखाव= हे शिष्य! विस्तार पूर्वक मैंने सो सब प्रगट या प्रत्यक्ष दिखा करके लखा दिया हूँ, और जो कुछ प्रकरण कहना बाकी है, सो आगे प्रगट करके लखा देऊँगा वा बतलाऊँगा। और सो सब ब्रह्म-जगतादिको लखनेवाला सत्य चैतन्य जीव है, सो प्रत्यक्ष सबको लख-लखा ही रहा है।

याकी तत्त्व= प्रकृति अब= अब पहले मैं तुम्हें यह हंस वा नरदेहके शुद्ध पाँच तत्त्व और पच्चीस प्रकृतियोंका वर्णन करके उसके रहस्य बतलाऊँगा; यथार्थ गुण-लक्षण दर्शाऊँगा।

कहब जथारथ भाव= रहनी-रहस्यके लिये शुद्ध तत्त्व-प्रकृतियोंको हृदयमें धारण किया जाता है। सो उसका यथार्थ सच्चा भाव या मतलब समेत मैं कहता हूँ! तुम भी सद्भावनासे विचारपूर्वक ध्यान लगा कर सुनो!॥

व्याख्या— अण्डाकार वा अण्डरूप ॐकार ब्रह्म जो माने हैं, सोई नरजीवोंकी कल्पित भ्रान्ति है। सो सब भ्रमिक गुरुवालोगाने वाणीमें प्रगट करके सत्य बतलाकर लखाये हैं; परन्तु, वह वाणी कल्पना सत्य नहीं है, असत्य है। सो सब प्रथम प्रकरणमें भेद प्रगट करके मैंने तुम्हें लखा दिया हूँ। बाकीकी रही-सही बातोंको पश्चात् लखाया जायगा। अब यहाँपर पहले तुम अभी हंसदेहके निर्णयकी बात सुनो! अब इस मुक्तिदायी हंसदेहकी शुद्ध तत्त्व-प्रकृतियोंके विवरण यथार्थ सद्भावके सहित कहता हूँ! सो एकाग्र चित्तसे सुनो!॥ १२०॥

दोहाः— शुद्ध साँच सो प्रथमपद * हंस जीव कहि ताहि॥
[२८] साँच१, धीरता२, दयालता३, * शील४, विचार५, समाहि॥ १२१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! अब हंस देहका वर्णन करके कहता हूँ, सुनो!:—

शुद्ध साँच सो= प्रथम पद= मनुष्य खानी कर्म भूमिका होनेसे इसका पहला नम्बर है। सो पूर्वके शुभ संस्कार तथा वर्तमानके सत्पुरुषार्थके योगसे जिसको 'सत्य चैतन्य

जीव निजस्वरूप सत्य है', ऐसा यथार्थ बोधरूपी गुरुबोध उदय होकर मन शुद्ध हो गया, आचार-विचार शुद्ध हो गया, शुद्ध सत्य सोई प्रथम मनुष्यपद मुक्ति भूमिका है।

हंस जीव कहि ताहि=जिनकी उस भूमिकामें स्थिति है, उनको हंस जीव या नरजीव सच्चे मनुष्य, मुक्त होनेवाले चैतन्य जीव, ऐसे कहते हैं। ऐसे शुभ नाम उन्हीं सद्गुणी-मनुष्यके प्रति कहा जाता है। उनके अङ्गमें शुद्ध पाँच तत्त्वकी रहनी धारण रहता है।

साँच १=पहला, पृथ्वी तत्त्वके शुद्धगुण 'सत्य' को पूर्ण दृढ़तासे लिये रहते हैं। सत्यग्राही, सत्स्वरूपमें स्थितिवान् होते हैं।

धीरता २=दूसरा, आकाशरूप समान पवनके शुद्ध भागमें धैर्य, गम्भीरता, दृढ़ता रखते हैं। कैसी भी आपत्ति आनेपर भी वे नहीं घबड़ाते हैं।

दयालता ३=तीसरा, वायु तत्त्वके शुद्धगुण दया-को पूर्णतासे धारण करते हैं। निजदया और परदयाको पूर्णतासे रखते हैं।

शील ४=चौथा, अग्नि तत्त्वके शुद्धगुण शील, सहन शीलता, नम्रता, कोमलताका स्वभाव रखते हैं। शीलवान् सदाचारी होते हैं।

विचार ५=और पाँचवाँ, जल तत्त्वके शुद्धगुण विचारको लेकर सत्यासत्यका निर्णय करते हैं, विचारमें ही सदा कायम रहते हैं।

समाहि=ऐसे पाँचों शुद्ध तत्त्वोंका गुण-लक्षण ग्रहण हंस देह या मनुष्य देहमें जहाँ सम्मिलित रहता है, सो 'हंसजीव' है। एक समान सद्गुण धारणमें ही हंस जीव लगे रहते हैं॥

व्याख्या— शुद्ध, सत्य, अखण्ड, नित्य, चैतन्य जो एकरस बना रहता है, उसीको ही 'हंस जीव' वा 'चैतन्य जीव' कहते हैं। और शुद्ध सत्यमें ठहराव करनेकी जगह यह मनुष्य जन्मरूप नरदेहको ही सो 'प्रथमपद' कहते हैं। और विवेकी-पारखी सन्तको भी "हंस जीव" कहते हैं। वे पारखी सन्त पाँचों शुद्ध तत्त्वोंको अपनी रहनीके लिये देह रहे तक ग्रहण किये रहते हैं। उन तत्त्वोंके नाम यह हैं कि-(१) साँच (सत्य)। (२) धीरता (धैर्य)। (३) दयालता (दया)। (४) शील, और (५) विचार- यही सब शुद्ध स्वभाव उन हंसजीवमें सदा समाये रहते हैं या टिके रहते हैं। अर्थात् शुद्ध सत्य गुणवाला सोई प्रथम मनुष्य देहमें मुक्तिका पद है। जो उस पदमें स्थिर है, उसीको हंस जीव कहा जाता है। सत्य, विचार, शील, दया, धीरज ये पाँच तत्त्व उसमें समाये रहते हैं॥१२१॥

दोहाः— ई पाचों हैं तत्त्व सो ❀ सङ्गी हंसा केर॥
[२६] साधु गुरुमत गहन मन ❀ कल्पित सृष्टि हेर॥ १२२॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! ई पाचों हैं=ये ही मनुष्य देहमें मुक्तिके लिये तत्त्व सो=धारण करनेको परमावश्यक शुद्ध पाँच तत्त्व हैं। सो यह शुद्ध पाँच तत्त्व सदैव—

सङ्गी हंसा केर=हंस वा जिज्ञासु नरजीवके सङ्ग-साथमें बने रहते हैं। यही हंस जीवोंके मुक्तिदायी सहायक साथी या सङ्गी हैं; ऐसा जानना चाहिये।

साधु गुरु मत=पारखी साधु सद्गुरुके सत्य गहन मन=मतको ग्रहण करके साधु भेषधारी होकर सद्गुरुके पारख बोधको धारणकर लेनेपर सब मन-मानन्दी छूट जाती है; सोई हंस होता है। और—

कल्पित=ब्रह्म-ईश्वरादि मनःकल्पित सृष्टि हेर=वाणीकी मिथ्या सृष्टिको परीक्षा-से देखकर सब भ्रम-मानन्दी छोड़ देता है, यही हंसका लक्षण है॥

व्याख्या— सो यही उपरोक्त शुद्ध पाँचतत्त्व जो हैं, सो विवेकी हंसरूप मनुष्यके सङ्ग-साथमें लगे रहते हैं। और पारखी साधु-गुरुका सच्चामत पारख सिद्धान्तको ग्रहण करके मनःकल्पित वाणी-खानीकी सृष्टिका तमाशा द्रष्टारूपसे तटस्थ होकर देखते हुए सदा उससे न्यारे अलिप्त, निर्बन्ध हो रहते हैं। अर्थात् यही पाँच शुद्ध तत्त्व जो हैं, सोई पारखी हंस जीवके तन-मनके सङ्गी-साथी बने रहते हैं। और जगत् विषय त्यागी साधु होकर पारखी सद्गुरुके सत्य सिद्धान्त, सत्य मतको मनमें

दृढ़तासे ग्रहण कर लेते हैं। तथा मन-मानन्दीसे कल्पित वाणी-खानीकी सृष्टिको विवेकसे देखकर, उसके अध्यासको परित्याग करके आसक्तिसे रहित, सावधान पारख विचारमें ही हंस जीव सदा लगे रहते हैं; फिर वे उधर लक्ष्य नहीं लगाते हैं ॥ १२२ ॥

दोहाः— इहै कल्पना परखकी * त्रिगुण सुनहु परचार ॥
[३०] विवेक १, वैराग्य२, औ गुरुभक्ति ३, * साधु भाव उरधार ॥ १२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! और सुनो !:—

इहै कल्पना = पारखके प्रताप या गुरुबलसे
परखकी = हंस जीव यह जगत्कर्त्ता ब्रह्मा-ईश्वरादि समस्त कल्पनाकी परीक्षा करके परित्याग कर देता है। हंस ही यह कल्पनाका पारख कर सकता है; दूसरा कर नहीं सकता है; यह कल्पना पारखसे दिखाई देती है।

त्रिगुण = अब हंस देहके शुद्ध त्रिगुणका
सुनहु = लक्षण प्रचार भी प्रगट करके
परचार = दिखाकर कहता हूँ ! सो भी सुनलो ! जिनके धारणसे त्रिगुण बन्धन छूट जाते हैं, सो उनके नाम ये हैं—

विवेक१ = रजोगुणकी शुद्धकला 'विवेक' है। विचार और दयाके मेलसे ही विवेक उत्पन्न होता है। सो जड़-चैतन्य, सत्यासत्यके निर्णय करनेका नाम विवेक कहा है।

वैराग्य२ = निराशरूप तमोगुणकी शुद्धकला 'वैराग्य' है। यह धैर्यरूप स्थिर बुद्धिसे वैराग्य दृढ़ होता है। सकल रागसे रहित होना ही वैराग्य कहलाता है।

औ गुरुभक्ति३ = और सत्त्वगुणकी शुद्धकला 'गुरुभक्ति' है। सत्य और शील, यह दोनों मिलकर गुरुभक्ति उत्पन्न होती है। पारखी सद्गुरुमें निष्ठा-प्रेम उपकारकी भावना होना, सोई भक्ति है।

साधु भाव = ऐसे तीनों शुद्ध गुणोंके सहित
उरधार = हृदयमें साधुभेषकी रहनी-गहनी शुद्ध सत्य भावना धारण करनेवाला वही हंस होता है। यानी हृदयमें साधु भावको धारण करनेवाला ही हंस है। सो समस्त सद्गुण मुक्तिके लिये धारण करना चाहिये ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! यही कल्पनाको परखना-परखाना सो सद्गुरुका अपरोक्ष सत्य पारख है। परीक्षक सोई जीव है। अब त्रिगुणका प्रचार भी सुनो ! विवेक, वैराग्य और गुरुभक्ति इन्होंको साधु भावके सहित हृदयमें धारण करना चाहिये। यही शुद्ध तीन गुणका नाम है। अथवा कल्पित सृष्टि जो है, सो यह ही मनकी मिथ्या कल्पनाका बढ़ावा खानी-वाणीका जाल है। पारख बोधकी सहायतासे उसे सर्वथा हटा देना चाहिये। और यही शुद्ध तत्त्व ही कल्पनाको पारख करनेकी सहायता देता है। और त्रिगुणके शुद्ध भागका नाम भी प्रचार करके कह देता हूँ, सो सुनो ! (१) विवेक, (२) दृढ़ वैराग्य, और (३) गुरुभक्ति- ये तीन शुद्ध गुणके सहित सच्चे साधु भावको अन्तः करणमें धारण करो ! इसीसे जीव भव-बन्धनसे छूट जायगा ॥ १२३ ॥

दोहाः— अब प्रकृति पचीसको * कहौं सुनो परसङ्ग ॥
[३१] पाँच पाँचते पाँच भौ * जेहि विधि बाढ़ो अङ्ग ॥ १२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

अब प्रकृति = अब हंस देहमें वा नरदेहमें
पचीसको = पञ्चतत्त्वोंकी शुद्ध पच्चीस प्रकृतियाँ जो रहनीके लिये धारण करनी हैं, सो भी—

कहौं सुनो = मैं तुम्हें कहकर सुनाता हूँ ! सो
परसङ्ग = उसका इस प्रसङ्ग, मौका या समयमें विचार पूर्वक श्रवण करो। और फिर मनन करके उसे धारण करो।

पाँच = पृथ्वी, जल, तेज, वायु, समानवायु, ये पाँच तत्त्व चारों खानी पिण्ड-ब्रह्माण्डमें कार्य-कारणरूपसे अवस्थित हैं।

पाँचते = सो उस पाँच तत्त्वके भागसे बना हुआ यह देह कच्चा है। पाँच तत्त्वके पाँच

विषयोंकी वासनासे जीव चौरासी योनियों-में जाते हैं। इसलिये उस कच्चे भाग काम, क्रोधादिको छोड़कर मुक्ति रहनीके लिये उसके पाँचों शुद्ध भाग मात्र लेना है।

पाँच भौ=सो पृथ्वी आदिके शुद्ध भाग सत्य, शीलादि पाँच शुद्ध तत्त्व हुआ, सो उसमें एक-एक तत्त्वके पाँच-पाँच भाग होकर पाँच पञ्चे पच्चीस प्रकृतियाँ बनी हैं या निर्माण हुई हैं।

जेहि विधि= } सो जिस प्रकारसे या जिस
बाढ़ो अङ्ग= } तरहसे उन पच्चीस प्रकृतियों-का अङ्ग बढ़ा है, सो भी तुम्हें निर्णय करके बतलाता हूँ, उसे ध्यान पूर्वक सुनो!॥

व्याख्या— अब इसी प्रसङ्गमें या इसी समयमें पच्चीस शुद्ध प्रकृतियोंका प्रकरण भी वर्णन करके कहता हूँ, सो ध्यानसे सुनो! पाँच तत्त्वोंकी कच्ची प्रकृतियोंके सदृश ही शुद्ध सत्यादि पाँच तत्त्वोंके भी एक-एकमें पाँच-पाँच भाग होकर पच्चीस प्रकृतियाँ हुई हैं। सो जिस प्रकारसे उसका अङ्ग-भाग बढ़ा है, वह भी कहता हूँ सुनलो! ॥ १२४ ॥

दोहाः— साँच तत्त्व है प्रथमता ❀ ताके जाये पाँच ॥
[३२] निर्णय१, निर्बिन्द२, प्रकाश३, थीर४, ❀ क्षमा५, पाँचवें साँच ॥ १२५ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

साँच तत्त्व है= } मनुष्य देहमें पहला सत्य
प्रथमता= } तत्त्वका धारण करना है। जैसा जीव सत्य है, तैसा ही स्व-स्वरूपमें ठहरनेके लिये सत्यका ग्रहण करना है। पृथ्वी तत्त्वका शुद्धगुण यही 'सत्य' है।

ताके जाये= } उस सत्य रहनीसे पाँच शुद्ध
पाँच= } प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। सोई सत्यसे उत्पन्न पाँच प्रकृतियाँ यहाँ कहता हूँ, सुनो!—

निर्णय१=जड़तत्त्व देहादिसे भिन्न जीवको जानना, तथा जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा गुण-लक्षणोंको बिलगाकर यथार्थ सत्यन्याय निर्णय करना, सो सत्यकी पहली प्रकृति 'निर्णय' है।

निर्बिन्द२=स्त्री सम्भोगकी भोग वासनासे रहित रहना, तथा सब वासना-बीजको जलाकर निर्बन्ध रहना, यह सत्यकी दूसरी प्रकृति 'निर्बिन्द' है।

प्रकाश३=जड़ देहकी हन्तासे रहित-पद सोई पारखका प्रकाश होना है। तमरूप अज्ञानका विनाश होना, यह सत्यकी तीसरी प्रकृति 'प्रकाश' है।

थीर४=खानी-वाणियोंकी सर्व चञ्चलताएँ छूट-कर गुरुपद पारखमें सदैव शान्त, स्थिर बने रहना, यह सत्यकी चौथी प्रकृति 'स्थिर' है। और—

क्षमा५=अज्ञानी जनोंके दोषोंको माफ कर देना, शक्ति रहते हुए भी उन्हें दण्ड नहीं देना, उसे ही क्षमा कहते हैं। यह सत्यकी पाँचवीं प्रकृति 'क्षमा' है।

पाँचवें= } यह सत्य तत्त्वकी सच्ची पाँच
साँच= } प्रकृतियाँ कहलाती हैं, ऐसा जानिये॥

व्याख्या— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और समानवायुकी जगहमें शुद्ध भाग गुण ग्रहण करनेके लिये क्रमशः सत्य, विचार, शील, दया और धीरज- इन तत्त्वोंको लिया गया है। तहाँ मनुष्य देहमें शुद्ध रहनी धारण करनेके लिये प्रथम पृथ्वी तत्त्वके शुद्ध गुण-भागरूप सत्यकी पाँच प्रकृतियाँ पृथक्-पृथक् उत्पन्न की गई या बनाई गई हैं। उनके नाम- (१) निर्णय, (२) निर्बिन्द, (३) प्रकाश, (४) स्थिर और (५) क्षमा है। यही जीवोंको सत्यमें टिकानेवाली सत्यकी पाँच प्रकृतियाँ हैं। उन पाँचों प्रकृतियोंका अर्थ तो ऊपर कहा ही जा चुका है। अब यहाँ शुद्ध तत्त्वोंके परस्पर मिलापसे इन्होंकी उत्पत्ति दर्शाते हैं, सो सुनिये! (१) निर्णयः— सत्य और धीरज, यह दोनों तत्त्व मिलकर होता है। (२) निर्बिन्दः— सत्य और दया, यह दोनों मिलनेसे होता है। (३) प्रकाशः— सत्य और शील, इन दोनोंके मिलापसे होता है। (४) स्थिरः— सत्य और विचार, यह दोनोंके मिलनेसे स्थिरता होती है।

और (५) क्षमाः— पिण्ड-ब्रह्माण्डके दोनों सत्य-ही-सत्य मिलनेसे होता है। इसमें "क्षमा"-विशेष भाग सत्यका है, और चारों प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं; ऐसा निर्णयसे जानना चाहिये ॥ १२५ ॥

दोहाः— धीरज दूजे तत्त्वकी ❀ प्रकृति सुनहु मन देह ॥
[३३] मिथ्यात्यागन१, गहनमत२, ❀ निःसन्देह३, समेह ॥ १२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

धीरज दूजे = } नरदेहमें दूसरा धीरज तत्त्वको
तत्त्वकी = } धारण करना है। आकाश तत्त्व-रूप समान वायुका शुद्ध गुण यह 'धीरज' है। सो इस तत्त्वके भी पाँच भाग किये हैं।

प्रकृति सुनहु = } मन-चित्त दे करके या ध्यान
मन देह = } लगा करके उन पाँच प्रकृतियों-का निर्णय भी तुम सुनो! और मनमें मनन करके अपने स्वभावमें उसे धारण करलो।

मिथ्यात्यागन १ = असत्य भाषणको छोड़ना, तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवतादि सर्व मिथ्या कल्पना मानन्दीको परखकर त्याग करना, यह धीरज तत्त्वकी पहली प्रकृति 'मिथ्या त्यागन' है।

गहनमत २ = सत्यमत पारखी सद्गुरुका सत्यन्याय ग्रहण करना है। अर्थात् पारख रहनी, पारखकी वाणी और पारखपदका ग्रहण कर लेना है। यह धैर्य तत्त्वकी दूसरी प्रकृति 'सतमत ग्रहण' है।

निःसन्देह ३ = कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादिसे सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक भोगादि प्राप्तिके सन्देह, यम, भूत-प्रेतादिके भयसे रहित होकर जन्म-मरणादिके भयको छोड़, सन्देह या संशयसे रहित निडर या सन्देहसे रहित रहना है। यह धैर्यतत्त्वकी तीसरी प्रकृति 'निःसन्देह' है; अर्थात् निःसन्देह रहना है।

समेह = इसप्रकार सब देहधारी जीवोंपर समान दृष्टिसे देखना, रक्षा करना चाहिये। उपरोक्त प्रकृतियाँ उन तीनों समेत् एकत्र मिलायके तीन प्रकृतियाँ हुईं ॥

व्याख्या— आकाश तत्त्वरूप समान वायुका शुद्ध गुण 'धीरज' की पाँच प्रकृतियाँ हैं। यहाँ-पर धीरज तत्त्व दूसरे नम्बरमें है। उसकी पाँच प्रकृतियाँ भी मैं तुम्हें कह देता हूँ! हे शिष्य! सो मन लगायके हंस देहमेंका उस शुद्ध गुण-लक्षणको सुनलो! प्रकृतियोंके नाम ये हैं:— (१) मिथ्या-त्यागन, (२) सत मत ग्रहण, (३) निःसन्देह; इसके समेत् मिलाकर ये तीन प्रकृतियाँ हुई हैं ॥१२६॥

दोहाः— चौथे सेवन साधुके४, ❀ निरसन हन्ता ५, भाय ॥
[३४] पाँच प्रकृति यह धीरता ❀ दूजे कही गनाय ॥ १२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

चौथे = धीरज तत्त्वकी चौथी प्रकृति यह है कि—

सेवन साधुके ४ = पारखी सत्यन्यायी साधु-गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगी, चाकरी, तन, मन, धन, वचन लगायके करे, जिससे पारखबोधकी प्राप्ति होगी, तो धैर्यका पूर्णतासे ठहराव होगा। यह धैर्यतत्त्वकी चौथी प्रकृति 'साधु सेवन' है। तथा—

निरसन हन्ता ५ = गुरु सत्सङ्गसे विवेक करके निज चैतन्य बोध दृढ़ करनेके लिये बन्धनदायी विश्व, तैजसादि पाँचों स्थूल-सूक्ष्मादिके अहङ्कारोंको परित्याग या विनाशकर निरहङ्कारी होना। यह धैर्यतत्त्वकी पाँचवीं प्रकृति 'हन्तानिरसन' है।

भाय = हे भाई! इन पाँचों सद्गुणोंको सत्य भावनाके सहित धारण करो, ग्रहण करो!

पाँच प्रकृति = } धैर्य धारणकर निज स्वरूपमें
यह धीरता = } ठहरनेके लिये यह पाँच प्रकृति धीरजकी बनाई गई हैं, सो धारण करना चाहिये।

दूजे कही = } इसप्रकार यहाँ दूसरा तत्त्व
गनाय = } धीरजकी पाँच प्रकृतियोंको अलग-अलग गिनाकर या गणना करके कह दिया गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या—(४) साधु सेवन, और (५) हन्तानिरसन है। हे भाई! यह दूसरा 'धीरज' तत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंके यहाँ नाममात्र गिनाय दिया हूँ। इसका अर्थ तो ऊपर वर्णनमें आ ही चुका है। अब यहाँपर पाँचों तत्त्वोंके मिलापसे उक्त प्रकृतियोंकी उत्पत्ति सुनिये! (१) मिथ्यात्यागनः— पिण्ड-ब्रह्माण्डके दोनों धीरज-ही-धीरज तत्त्व मिलकर होता है। (२) सतमत ग्रहणः— धीरज और दया यह दोनों मिलकर होता है। (३) निःसन्देहः— धीरज और शील, यह दोनों मिलकर होता है। (४) साधु सेवनः— धीरज और विचार, यह दोनों मिलकर किया जाता है। और (५) हन्तानिरसनः— धीरज और सत्य, यह दोनों मिलकर होता है। इस धैर्यकी पाँच प्रकृतियोंमें "मिथ्यात्यागन" यह विशेष भाग है, और दूसरी प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। ऐसा गुरु निर्णयके हिसाबसे यथार्थ जानलो! यही दूसरे धैर्यकी पाँच प्रकृतियाँ हैं। उन्होंके नाम कह करके क्रमशः मैंने यहाँ गिना दिया हूँ; तुम भी उसे विवेकसे गिनलो, समझ-बूझ लो! ॥ १२७ ॥

दोहाः— दया तत्त्व तीजे सुनहू ❀ तिनके पाँचों जूत ॥
[३५] अद्रोही१, सम२, मित्र जीव३, ❀ अभय ४, नैन अद्रुत ५, ॥ १२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! अब दयाकी पाँच प्रकृतियाँ कहता हूँ, सो भी सुनो!—

दया तत्त्व = } अब तीसरे नम्बरमें चञ्चल
तीजे सुनहू = } वायु तत्त्वका शुद्ध गुण दया तत्त्वकी भी पाँच प्रकृतियाँ कहता हूँ! सो ध्यान देकर सुनलो!—

तिनके = } तिस 'दया' की पाँच प्रकृतियाँ
पाँचों जूत = } जो भिन्न-भिन्न हैं, सो यहाँ जुटायके एकत्र कहेंगे। जो एकमें-एक जुटे हैं।

अद्रोही १ = सर्व जीवोंसे क्रोध रहित रहना, द्रोह या द्वेष करके किसीका बिगाड़ वा हानि नहीं करना। यह दयाकी प्रथम प्रकृति 'अद्रोही' है।

सम २ = सबोंसे जीवभावमें स्वजातीय जानकर समदर्शी हो बरतना, और स्वभावको एक समान बराबर एकरस बनाये रखना, यह दयाकी दूसरी प्रकृति 'सम' है।

मित्र जीव ३ = सर्व देहधारी जीवमात्र स्वजातीय हैं। इसलिये सबसे मित्रताका बर्ताव करना, हितकारी होना। और अपने समान सबोंको सुख-दुःखादि होनेका जानकर सबपर सद्भावना मित्रताकी दृष्टि रखना, यह दयाकी तीसरी प्रकृति 'मित्र जीव' है।

अभय ४ = गुरुपारख बोध बलसे कल्पित ईश्वर, देवता, यमादिके भयसे रहित निर्भय होना, तथा अन्य मनुष्योंको भी निर्भय कर देना, यह दयाकी चौथी प्रकृति 'अभय' है।

नैन अद्रुत ५ = अचल पारख प्रकाश दृष्टिसे जड़ासक्त रहित चैतन्यपदपर दृढ़ रहना। दुष्ट निगाहसे किसीको भी न देखना। ऐसे दृष्टि पलटना है। यह दयाकी पाँचवीं प्रकृति 'अद्रुतनयन' है॥

व्याख्या— यहाँपर शुद्ध तत्त्व दया तीसरा है। उसकी पाँचों प्रकृतियाँ एकत्र जुटायके कहता हूँ, सो सुनोः— (१) अद्रोही, (२) सम, (३) मित्रजीव, (४) अभय, (५) अद्रुतनयन है। इसका अर्थ तो ऊपर पद्यार्थमें आ ही चुका है। अब शुद्ध पाँच तत्त्वोंके मिलापसे इनकी उत्पत्ति कहता हूँ! सो सुनिये! (१) अद्रोहीः— दया और धीरज, यह दोनों तत्त्व मिलकर होता है। (२) समः— दया पिण्डकी और ब्रह्माण्डकी दोनों दया-ही-दया 'निजदया-परदया' मिलकर यह समता या समदर्शी होता है। (३) मित्र जीवः— दया और शील, यह दोनों तत्त्व मिलकर होता है। (४) अभयः— दया और विचार, यह दोनों मिल करके होता है, और (५) अद्रुतनयनः— दया और सत्य, यह दोनों तत्त्व मिलकर होता है। इसीमें "सम" दयाका विशेष भाग है, और अन्य प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ १२८ ॥

दोहाः— चौथे शीलहि तत्त्वके * पाँच भेद गनि लेहु ॥
[३६] क्षुधा निवारण१, प्रिय वचन२, * शान्त बुद्धि३, रहु येहु ॥ १२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

चौथे शीलहि = } चौथा नम्बरमें तेजतत्त्वका
तत्त्वके = } शुद्ध गुण यही 'शील' है।

यह शुद्ध शील तत्त्वके भी यहाँपर—

पाँच भेद = } पाँच भेदसे पाँच प्रकृतियाँ हुई
गनि लेहु = } हैं। सो प्रकृतियोंके विभेद भी कहता हूँ! तुम गिन लो! यानी उसका भी हिसाब लगा लो।

क्षुधा निवारण १ = पारखी सद्गुरुकी दयासे पारखबोध होनेसे फिर अन्य ज्ञान प्राप्तिकी इच्छा तथा सर्व इच्छा या चाहनारूप भूख मिटायके इच्छारहित निराशपदमें स्थिति होना, यह शीलकी पहली प्रकृति 'क्षुधा निवारण' है।

प्रिय वचन २ = प्रिय भाषी, हितकर या प्रिय-वाणी जीवोंके कल्याणके लिये मीठे शब्दों-में गुरुमुख निर्णयके वचन कहना, यह शीलकी दूसरी प्रकृति 'प्रिय वचन' है।

शान्त बुद्धि ३ = सम्पूर्ण कल्पनाएँ छूटकर गुरु पारखपदमें बुद्धि स्थिर या शान्त हो जाना, यह शीलकी तीसरी प्रकृति 'शान्त बुद्धि' है।

रहु येहु = यही सब गुण-लक्षण, शुद्ध स्वभाव हंस जीवमें रहते हैं। सो तुम भी इसी रहनीमें रहो ॥

व्याख्या— 'शील'— यह शुद्ध तत्त्व यहाँपर चौथा है, उसकी पाँच प्रकृतियोंका भेद भी गिन लीजिये! (१) क्षुधा निवारण, (२) प्रिय वचन, (३) शान्त बुद्धि; यही तीन प्रकृतियाँ उसमेंकी हैं—॥१२९॥

दोहाः— परख प्रत्यक्ष४, सबसुख प्रगट५, * प्रथमा कही बखान ॥
[३७] अब पञ्चमकी पञ्चधा * सुनहु यथारथ मान ॥ १३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

परख प्रत्यक्ष ४ = सद्गुरुकी दयासे भास, अध्यास, अनुमान और कल्पनाएँ सर्व जड़ासक्ति मिटकर स्व-स्वरूप पारखमें प्रत्यक्ष स्थितिका हो जाना, यह शीलकी चौथी प्रकृति 'पारख प्रत्यक्ष' है।

सब सुख प्रगट ५ = आनन्द, अहङ्कारादि मायाकी आसक्तिका त्याग होनेसे सत्य चैतन्यपदमें पारख प्रकाशरूपसे स्थिरता होना; वही सर्व सुखमें बढ़कर जीवन्मुक्तिका श्रेष्ठ सुख है। यानी सर्व दुःखोंसे रहितपद है। यह शीलकी पाँचवीं प्रकृति 'सब सुख प्रगट' है।

प्रथमा = } यह मनुष्य या हंसदेहके शील
कही बखान = } तत्त्वकी पाँच प्रकृतियाँ मैंने वर्णन करके कह दिया हूँ!

अब पञ्चमकी = } अब बाकी रहा हुआ पाँचवाँ
पञ्चधा = } विचार तत्त्वकी पाँच प्रकृतियाँ भी कहता हूँ!—

सुनहु यथारथ = } सो उसके भी यथार्थ
मान = } सत्यन्याय निर्णयको सुनो! और मनमें उसे गुन करके सत्यको मान लो! असत्यको त्याग करो। इस तरह सब मानन्दीको परख करके हटाओ। यथार्थ सद्गुणोंका सम्मान करो ॥

व्याख्या— (४) पारख प्रत्यक्ष, और (५) सब सुख प्रगट है। यह हंस देहमेंके शीलकी पाँच प्रकृतियाँ वर्णन करके कहा है। अब बाकी रहे हुए पाँचवाँ विचार तत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंको भी कहता हूँ, सो उसको भी सुनो! यथार्थ बातको सम्मान पूर्वक ग्रहण करो। और इसमें कहा हुआ निर्णयको यथार्थ सत्य मानो! और प्रकृतियोंका अर्थ तो ऊपर कहा ही जा चुका है। अब शुद्ध पाँच तत्त्वोंके मिलापसे प्रकृतियोंकी उत्पत्ति कहेंगे सुनिये! (१) क्षुधा निवारणः— शील और धीरज, यह दोनों तत्त्व मिलकर होता है। (२) प्रिय वचनः— शील और दया, यह दोनों मिलकर होता है। (३) शान्त बुद्धिः— शील और शील ही मिलकर यानी पिण्ड-ब्रह्माण्डके दोनों शील भाग मिलकर होती है। (४) पारख प्रत्यक्षः— शील और विचार, यह दोनों मिलकर होता है; और (५) सब-सुख प्रगटः— शील तथा सत्य, यह दो शुद्ध तत्त्व मिलकर होता है। इसीमें 'शान्त बुद्धि' शीलका

विशेष भाग है, और दूसरी प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं, ऐसा जानिये ! ॥ १३० ॥

दोहाः— अहै विचार सो पाँचवाँ * ताते भये यह पाँच ॥
[३८] अस्ति नास्ति पद विलगान१, * अहै यथारथ साँच २, ॥ १३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अहै विचार = जल तत्त्वका शुद्ध गुण यह
सो पाँचवाँ = 'विचार' हंस देहका शुद्ध पाँचवाँ तत्त्व है; सो विचारको लेना चाहिये। और—

ताते भये = उस विचारसे यह नीचे लिखी
यह पाँच = हुई पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई या होती हैं।

अस्ति नास्ति = सत्य-असत्यका निर्णय
पद विलगान१ = करना। जैसे जड़ पञ्च तत्त्वोंके पदार्थ अनित्य हैं, तैसे ही कल्पित जगत्कर्त्ता ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि सर्व देह सम्बन्धी भास भी जड़, नास्ति या नाशवान् हैं। और चैतन्य सर्व जीव 'अस्ति' अविनाशी हैं, ऐसा सत्यन्यायसे न्यारा-न्यारा निर्णय करना या विलगाना, अलग-अलग करना, यह विचारकी पहली प्रकृति "अस्ति-नास्ति पद विलगान-निर्णय" है।

अहै यथारथ = यथार्थ सत्य तो जीव ही है।
साँच = और ब्रह्म कहिये 'शून्य-आनन्द', आत्मा सोई 'अहङ्कार' तथा ईश्वर 'अहङ्कारका कर्त्तव्य,' सोई 'पुरुषार्थ' है। यह तीनों भास और विषयाध्यास जब मिटेंगे, तब नरजीव पारख स्थिति साँच भूमिकापर ठहरेंगे, सोई 'यथार्थ साँच', है, ऐसा जानिये ! यह विचारकी दूसरी प्रकृति "यथार्थ साँच" है॥

व्याख्या— 'विचार'- यह तत्त्व यहाँपर पाँचवाँ है। उसमेंसे यही निम्न लिखित पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं:— (१) अस्ति-नास्तिपद विलगान निर्णय, (२) यथार्थ साँच, यही उसकी दो प्रकृतियाँ हैं ॥ १३१ ॥

दोहाः— व्यवहारै शुद्धता गहन३, * परख यथा टकसार४, ॥
[३९] वेद आदि बानी सबै * बोध हेतु उरधार५, ॥ १३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

व्यवहारै = कायिक, वाचिक, मानसिक- ये
शुद्धता = तीनोंके कार्य या कर्म व्यवहारोंमें
गहन ३ = शुद्ध स्वच्छता, पवित्रताका ग्रहण करना है। जल-मृत्तिकादिसे बाहरकी शुद्धि होती है। और ज्ञान, वैराग्य, भक्तिसे अन्तरकी शुद्धि करना चाहिये। ऐसे शुद्धाचरण, शुद्ध व्यवहारको लेना, यह विचारकी तीसरी प्रकृति 'शुद्ध व्यवहार' है।

परख यथा = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने
टकसार ४ = बीजकमें जैसा पारख निर्णय किया है, उसी बीजक प्रमाणसे पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग करके यथार्थ सत्य चैतन्य पदको ग्रहण करके पारखपदमें ठहरना, यह विचारकी चौथी प्रकृति— 'यथार्थ परख टकसार' है। और—

वेद आदि बानी = वेद, शास्त्र, पुराणादिकी
सबै बोध हेतु = वाणी सबोंमें कल्पना,
उरधार ५ = अनुमान, भ्रम लगाया हुआ है। सो जड़-चेतन मिश्रित व्यापक-रूप ब्रह्म स्वरूपको वेद प्रमाणसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष सिद्ध करते हैं। सो सर्व वाणी भ्रमकी मानन्दी छुड़ानेके लिये पारखी सद्गुरुसे तिन्होंका सार विचार ग्रहण करना। यानी हृदयकी मानन्दी छुड़ानेके लिये सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन करना चाहिये। सो सत्यासत्य बोधके वास्ते ही होना चाहिये। यह विचारकी पाँचवीं प्रकृति 'बोध हेतु वेदादि-वाणी ग्रहण' है ॥

व्याख्या— (३) शुद्ध व्यवहार, (४) यथार्थ परख टकसार, और (५) बोध हेतु वेदादि-

वाणी ग्रहण, ये विचारकी पाँच प्रकृतियाँ हैं। इसका अर्थ तो ऊपर आ ही चुका है। अब शुद्ध पाँच तत्त्वोंके मिलापसे इनकी उत्पत्ति बतलाते हैं, सो सुनिये!:— (१) विचार और धीरज, यह दोनों तत्त्व मिलकर "अस्ति-नास्ति पद विलगान निर्णय" होता है। (२) विचार और दया, यह दोनों तत्त्व मिलकर "यथार्थ साँच" होता है। (३) विचार और शील, यह दोनों तत्त्व मिलकर "शुद्ध व्यवहार" होता है। (४) विचार और विचार ही मिलकर, यानी बाहर-भीतरके दोनों शुद्ध भाग विचारसे "यथार्थ परख टकसार" होता है। और (५) विचार तथा सत्य, यह दोनों शुद्ध तत्त्व मिलकर "बोधहेतु वेदादि वाणीका ग्रहण" होता है। इसीमें "यथार्थ परख टकसार" विचारका विशेष भाग है; और चारों प्रकृतियाँ समान भागसे मिली हैं। ऐसे इन सद्गुणोंको या शुद्ध तत्त्व-प्रकृतियोंको मुक्तिके वास्ते हृदयमें धारण करना चाहिये ॥ १३२ ॥

दोहाः— इमि पाँचोंकी पञ्चधा * भेद प्रकृति पचीस ॥
[४०] ई देहकी तत्त्व प्रकृति * बूझो विस्वाबीस ॥ १३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

इमि पाँचोंकी = इसप्रकारसे सत्य, विचार,
पञ्चधा = शीलादि पाँचों शुद्ध तत्त्वोंके एक-एकके पाँच-पाँच भाग करके—

भेद प्रकृति = उन्होंको न्यारा-न्यारा विभेद
पचीस = करनेसे सब प्रकृतियाँ पच्चीस हुईं, सो इसका भेद ऐसा है कि—'एक-एक शुद्ध तत्त्वकी दृढ़ता होनेके लिये ही उक्त पाँच-पाँच भाग किया गया है।

ई देहकी = यही हंस देह वा नरदेहके
तत्त्व प्रकृति = शुद्ध पाँच तत्त्व और शुद्ध पच्चीस प्रकृतियोंका वर्णन किया है।

बूझो = इसीको पक्की देह वा हंस देह
विस्वाबीस = कहते हैं। सो तुम भी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे इसके भेदको बूझो, पक्का करके समझो और पक्का हो जाओ। इसी पारखको निश्चयसे सत्य जानो ॥

व्याख्या— इसतरहसे ऐसे सत्य, विचार, शील, दया और धीरज, यह पाँचों शुद्ध तत्त्वोंकी पञ्चधा=एक-एकमें पाँच-पाँच प्रकृतियोंके हिसाबसे सब पच्चीस प्रकृतियोंका न्यारा-न्यारा भेदसे वर्णन हुआ है। यही हंस देहके पाँच तत्त्व तथा पच्चीस प्रकृतियोंकी शुद्ध कला कहा है। इसको पक्की तरहसे निश्चय करके जानो, समझो-बूझो और अपनेमें धारण करो ॥ १३३ ॥

दोहाः— तीनों गुण आचरण शुभ * कहेउँ बहुत प्रकार ॥
[४१] जो विवेक ताके गुनन * जो जानै निर्धार ॥ १३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

तीनों गुण = हंसदेहके शुद्ध तीन गुण-
आचरण शुभ = विवेक, वैराग्य और गुरुभक्ति हैं। इनका धारण करना शुभ आचरण कहलाता है। और हंस वा नरदेहके सब आचरण, कर्त्तव्य या कार्य व्यवहार शुद्ध पुण्यमय होते हैं।

कहेउँ बहुत = उसका वर्णन बहुत प्रकारसे
प्रकार = पहले भी मैंने तुम्हें बहुतेक तरहसे कहा था। और संक्षेपसे अब भी यहाँ कह देता हूँ! उसको ध्यान देकर श्रवण करो!

जो विवेक = जड़-चैतन्य स्वरूपको न्यारा-
ताके गुनन = न्यारा निर्णय कर सत्य निज चैतन्य स्वरूपका ही विचार गुरु उपदेशका ही मनन करना जो है, सोई 'विवेक' है। उसका जो कोई गुणन करते हैं, सोई 'विवेकी' हैं।

जो जानै = जो जड़ पञ्चतत्त्वादिसे भिन्न निज
निर्धार = स्वरूपको पारखदृष्टिसे निश्चय करके जानते हैं, सोई सत्यके ज्ञाता सत्य निर्णयी हैं ॥

व्याख्या— हंसदेहके शुद्ध त्रिगुणको धारण करना ही शुभ आचरण कहलाता है। सो त्रिगुण-

का वर्णन पूर्वमें मैंने बहुत प्रकारसे कहा हूँ। तथापि, संक्षेपमें यहाँपर भी कह देता हूँ, सो सुनो !- जो मैंने तुम्हें सत्य उपदेश दिया है, उसका मनन करके सत्यासत्य, सारासार, जड़-चैतन्यके गुण-लक्षणोंको भिन्न-भिन्न विवेक करो ! और जो सत्य जानो, सो चैतन्य जीवको ही निश्चयसे जानो, और निर्णयको ही धारण करो। जो विवेक है उसका ही गुणन करो, ठीकसे ठहरा करके ही सत्यको जानो ! और जो जनैया जीव है, सोई सत्य है, ऐसा पहिचानो ! ॥ १३४ ॥

दोहाः— विराग हन्ता त्यागको ❀ भक्ति सत्य गुरु नेम ॥
[४२] साधु भाव त्रिगुण सहित ❀ हंसनके यह क्षेम ॥ १३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

विराग हन्ता = त्यागको = सच्चा दृढ़ वैराग्य सोई है, जिसने सम्पूर्ण सुखाध्यास जड़ विषयादिके अहङ्कारको त्याग दिया है। सो सूक्ष्म-स्थूल सब हन्ता-ममताको त्यागनेके लिये बोध संयुक्त दृढ़ वैराग्यको धारण करना चाहिये। और—

भक्ति सत्य = गुरु नेम = पारख बोधदाता सद्गुरुकी नेम-प्रेमसे सत्यनिष्ठा सहित सत्य भक्ति करनी चाहिये। जिससे सारे मन कस्मल साफ हो जाते हैं। इसलिये नियमसे सद्गुरुकी भक्ति करनेकी परम आवश्यकता है।

साधु भाव = त्रिगुण सहित = सहनशीलता, शम, दमादि संयुक्त सच्ची त्यागवृत्ति साधु भावके सहित जो कोई विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्यको धारण करते हैं, सोई—

हंसनके = यह क्षेम = हंस देहधारी मनुष्य हैं। यही हंस जीवोंके कल्याणकारी मुक्तिदायी सद्गुणका वर्णन है ॥

व्याख्या— मुक्तिके वास्ते सम्पूर्ण सुखकी हन्ता या अहङ्कारको त्याग करनेके लिये सच्चा त्याग, दृढ़ वैराग्य धारण करना चाहिये। और पारखी सद्गुरुकी सत्यनिष्ठा सहित प्रेमसे नियमपूर्वक गुरुभक्ति-को कर लेना चाहिये। ऐसे शुद्ध त्रिगुण-विवेक, वैराग्य और गुरुभक्तिके सहित साधुभाव वा बोधभावकी रहनी रखना चाहिये। यही हंसजीवोंका कल्याण करनेवाला सच्चा साथी है; ऐसा जानो ! और खुलासा ऐसा है कि— १. विवेकः— रजोगुणकी शुद्ध कला है। जलका शुद्ध गुण 'विचार' और वायुका शुद्ध गुण 'दया'— ये दोनों मिलकर "विवेक" उत्पन्न होता है। २. गुरुभक्तिः— सत्त्वगुणकी शुद्धकला है। पृथ्वी तत्त्वका शुद्ध गुण 'सत्य' और तेज तत्त्वका शुद्ध गुण 'शील', ये दोनों मिलकर "गुरुभक्ति" उत्पन्न होती है; और ३. दृढ़ वैराग्यः— निराशरूप तमोगुणकी शुद्ध कला है। आकाशरूप समान वायुका शुद्ध गुण केवल 'धीरज' रूप स्थिर बुद्धि बनाये रहनेसे "वैराग्य" सिद्ध होता है। ऐसे हंस देहमें शुद्ध पञ्चतत्त्वसे उत्पन्न तीन गुण भी शुद्ध ही हैं; सो रहनीके लिये धारण करना है। तैसे शुद्ध पञ्च विषय भी होते हैं: शब्दमें 'सारशब्द' गुरु निर्णयकी वाणीका ग्रहण है। स्पर्शमें 'गुरुसेवा' और शीत-उष्ण निवारणके लिये उचित वस्त्रोंका मात्र ग्रहण है। रूपमें 'साधु-गुरुका दर्शन' तथा सद्ग्रन्थ पढ़ना, सो ग्रहण है। रसमें 'उचित मात्रामें अन्न-जलादि शुद्ध पदार्थ सेवन' तथा गुरुभक्तिके प्रेम रसका ग्रहण है। और गन्धमें 'सुवासनाका गन्ध लेना' पारखी सन्त कहाँपर विराजमान हैं ? यह पता लगाना, सत्सङ्ग करना, यही ग्रहण है। ऐसे पञ्च विषयोंको सुधारकर शुद्ध भागोंको ही लेना चाहिये। और अकाम, अक्रोध, निर्लोभ, निर्मोह, निर्भय, ऐसे गुण प्रकृतिमें धारण करके इसीतरह सब कच्ची बन्धनदायी तत्त्व, प्रकृति, गुण, विषयोंको सुधारकर जो मनुष्य शुद्ध गुण-लक्षणोंको धारण किये वा कर लेते हैं, सोई पारखी सन्त पक्की देहवाले हंसजीव कहलाते हैं। तहाँ आवागमनोंमें ले जानेवाला कर्म कच्चा है। और भव-बन्धनों-से छुड़ानेवाला सत्कर्म पक्का है। यही हंसदेह वर्णनका मुख्य-मुख्य खुलासा है। यही यहाँपर हंसोंके 'गुण-क्षेम' कहिये कल्याणदायी-सुखदायी गुण हैं, ऐसा जानिये ! ॥ १३५ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर बीजक सद्ग्रन्थका सत्य निर्णयका वचन प्रमाण दिया है, सो जानिये ! ॥

॥ ❀ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर— २६६ ॥ ❀ ॥

(२) साखीः— साधु भया तो क्या भया? * बोलै नाहिं विचार ॥

[४३] हतै पराई आतमा * जीभ बाँधि तरवार ॥ १३६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो ! सुनो !—

साधु भया तो = } घर-गृहस्थीसे उदास होकर
क्या भया ? = } उसे त्यागकर कोई साधु हुए। जाति-पाँतिकी मर्यादा छोड़कर संन्यासी, उदासी, वनवासी, वैरागी, नागे, नाथ इत्यादि षट् दर्शनोंके भेषधारी हुए, तो इससे क्या हुआ ? क्या काम, क्रोधादि छूट गया ? उन्होंने मन-वचनादिको वश तो नहीं किये, इसलिये सिर्फ भेष ही बनानेसे कुछ काम नहीं होता है। और—

बोलै नाहिं विचार = इन षट् दर्शनोंके भेषधारियोंने जो कुछ वाणी बोले, सो सत्यका विचार करके नहीं बोले। बिना ही विचारके अनुमान, कल्पनासे मनमाने धोखेकी वाणी बोले, सो पक्षपाती लोग पक्ष लेकर बोलते हैं। वेदपक्ष, शास्त्रपक्ष, नाना ऋषियोंके पक्ष, नाना मतोंका पक्ष, सो सब बेविचारकी वाणी है। ऐसे अविचारी साधु भये, तो क्या ? गृहस्थ रहे तो क्या ? वे चौरासी योनियोंके ही मेहमान होनेवाले हैं।

हतै पराई = } क्योंकि, अब देखिये! भेषधारी
आतमा = } गुरुवाओंके दुराचार कि, कोई एक आत्मा-परमात्मा बतलायके धोखेमें डालकर जीवोंको मार रहे हैं वा मारे हैं; कोई दूसरे पशु आदि प्राणीकी जीव हिंसा जड़मूर्तिके सन्मुख कराकर मरवाये हैं वा मराते हैं। कोई व्यापक आत्मा मानकर कर्म-कुकर्म कर-कराके आत्मघात किये; यानी अपना ही घात किये। कोई नाना वाणी सुनायके मनुष्योंको भ्रमायके ज्ञानका घात कर दिये।

जीभ बाँधि तरवार = इसप्रकारसे षट् दर्शनोंके साधुलोग तो घातकी बने हैं। जिभ्यामें उन्होंने तीक्ष्ण तलवाररूपी वाणीको पकड़कर जीवोंको नाना कल्पनाओंमें बाँध-बाँधकर घात किये थे और अभी वैसे ही घात कर रहे हैं। जीभसे निकलनेवाली वाणी सोई तेज तलवार है। पशुवत् नरजीवोंको फन्दोंमें बाँध-बाँधकर काट रहे हैं। अतएव वैसोंका सङ्ग सर्वथा छोड़ ही देना चाहिये॥

व्याख्या— अर्थात् मुक्तिके लिये घर-बार छोड़कर षट् दर्शनोंके भेषधारी हो नाना तरहके मतवाले साधु हुए। सो तो पाखण्डमें ही जाकर फँसे हैं, इससे जीवका क्या भला या कल्याण हुआ ? कुछ भला नहीं हुआ। क्योंकि, सत्यासत्यका विचार करके तो वे कुछ बोलते ही नहीं हैं। मनमाने अविचारसे कल्पना, धोखेमें फँसानेकी वाणी ही बोलते हैं, ऐसे पक्षपाती हो रहे हैं। उन्होंके पासमें जिभ्या सोई तलवार है। उसमेंसे तेज धारवाली वाणी-कल्पना चमकती हुई निकलती है। उसीसे नरजीवोंकी बुद्धिको काट-काटकर मार रहे हैं। और अपनेसे भिन्न कोई कर्त्ता परमात्मा है, उसीकी प्राप्तिसे कल्याण होता है, ऐसा कहकर जीवोंका घात कर दिये हैं, तथा अपना आत्मघात भी किये हैं। और अभी गुरुवालोग वही वाणीरूप तलवारको पकड़कर नाना भ्रम चक्रमें तथा कर्म, भक्ति, योगादिमें जीवोंको बाँध-बाँधकर हत्या या हानि कर रहे हैं। इसकारणसे ऐसे दुष्ट बेपारखियोंका सङ्ग, चाहे वह साधु भी हों, तो भी नहीं करना चाहिये। यह सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्यन्यायका उपदेशको ग्रहण करना चाहिये ॥ १३६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६ ॥ ❀ ॥

१. ऐसेनि सङ्गति त्यजहु सबेरा * गहहु शरण गुरु परख उजेरा ॥ १३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ऐसेनि सङ्गति = ऐसे पक्षपाती अविचारी
त्यजहु सबेरा = भेषधारी षट् दर्शनोंके गुरुवाओंकी सङ्गति तथा विषयीजन स्त्रियोंकी विकारी कुसङ्गति, इसको जल्दी ही परखकर छोड़ दो। अभी नरदेहमें हो, अतः जल्दीसे ही कुसङ्गको त्यागो। और—

गहहु शरण = पारखी सद्गुरुकी ही शरणको
गुरु परख = ग्रहण करो, जिससे तुम्हारे
उजेरा = हृदयमें गुरु पारखका प्रकाश होगा। उसीसे तुम्हारे सब अविद्यारूप अन्धकार नाश होकर मिट जायेंगे, सो जान लो! ॥

व्याख्या— अविवेकी, भ्रमिक, दुर्बुद्धि भेषधारी और संसारी लोगोंकी ऐसे ही सङ्गति-कुसङ्गतिको, सवेरा = शीघ्र ही अभी नरदेहके प्रभातमें हो तभी सचेत हो करके त्याग कर दो। और पारखी सद्गुरुकी चरण-शरणको दृढ़तासे पकड़कर ग्रहण करो! जिससे तुम्हारे हृदयका अन्धकार मिटकर सद्गुरुके पारखका बोध, उजियालाका प्रकाश हो जायगा। फिर तुम्हें स्वयं ही सब यथार्थ दिखने लग जायगा ॥ १३७ ॥

२. अशरण शरण ताहिको नामा ※ भेष साधु मङ्गल गुण धामा ॥ १३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अशरण शरण = शरणागत रक्षक अशरणको
ताहिको नामा = शरणदाता उन्हीं पारखी सद्गुरुका शुभ नाम है, और सत्यबोध है। तथा—

भेष साधु = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबसे
मङ्गल गुण = निकला हुआ साधुका त्याग
धामा = भेष कल्याणकारक मङ्गल सद्गुणके भण्डार सुखका महलके समान है, वह मङ्गल गुणके धाम है ॥

व्याख्या— अशरण-शरण नाम उन्हीं पारखी बन्दीछोर सद्गुरुका है। तथा आपका ही सत्यबोध पारखज्ञान है। और आपके ही त्याग-वैराग्यके साधु भेष मङ्गलकारी सद्गुणोंके धाम हैं। अर्थात् सुखदायी महलवत् मुक्तिके धाम वा तीर्थ-क्षेत्र सच्चा वही सद्गुरुका पारख पद है ॥ १३८ ॥

३. बन्दीछोर सबन सुखदायक ※ दीनबन्धु हंसनके नायक ॥ १३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

बन्दीछोर सबन = भवजाल खानी-वाणीके
सुखदायक = समस्त बन्धनोंको नाशकर जीवोंको छुड़ाकर मुक्त करनेवाले सद्गुरु बन्दीछोर पारखी सद्गुरु सभी शरणागत नरजीवोंको निर्बन्धकर मुक्ति सुखको देनेवाले हैं।

दीनबन्धु = दीन-दुःखी जीवोंके आधार प्रिय
हंसनके = बन्धुके समान हंस जीवोंके
नायक = प्रधान मालिक राजावत् पारखी सद्गुरु हैं ॥

व्याख्या— बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब, तथा आपके अनुयायी पारखी सन्त वा साधु-गुरु तो ऐसे हैं कि— सभी प्राणियोंको मन, वचन, कर्मसे सुख ही देनेवाले हैं। और दीनबन्धु हंस जीवोंके पथ प्रदर्शक नायक = नेता, प्रधान अगुवारूप मान्यवर हैं ॥ १३९ ॥

४. परख प्रत्यक्ष कालको फन्दा ※ दीनदयालकी शरण आनन्दा ॥ १४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

परख प्रत्यक्ष = अभी सब कालके फन्दाओं-
कालको फन्दा = को पारख द्वारा प्रत्यक्ष परख लो! पारखबोधसे प्रत्यक्ष ही कालका फन्दा दिखेगा।

दीनदयालकी = दीनदयालु पारखी सद्गुरु-
शरण आनन्दा = देवकी शरण हो उपदेश पालन करनेसे ही अभी जीवन्मुक्त सुखका आनन्द मिलेगा, सो जानो! ॥

व्याख्या— हे शिष्य! कालरूप स्त्री और गुरुवालोगोंके सम्पूर्ण फन्दाओंको गुरु सत्सङ्गमें प्रत्यक्षरूपसे सब भेदको जान करके पारख दृष्टिसे देखकर परखकर त्यागो। और दीनदयालु

सद्गुरुकी शरणागत होकर पारखपदमें स्थिर होनेसे सब आशा-वासा, कल्पना आदिसे होनेवाला दुःखसे छूटकर जीव जीवन्मुक्त सुखी हो जाता है। ऐसे सद्गुरुकी शरण आनन्द देनेवाला है। जहाँ पारख प्रत्यक्ष होकर कालका सब फन्दा परखनेमें आ जाता है। अतः सत्सङ्ग-विचारमें ही सदा लगे रहो, इत्यादि प्रकारसे सद्गुरुने समझाये ॥ १४० ॥

॥ ❀ ॥ ६ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- ६ ॥ खण्ड- ११ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— बन्दीछोर सुजान ! * अब चीन्हा शुभरूप तव ॥
[८] मङ्गलधाम निधान ! * किञ्चित शङ्का उदय चित ॥ १४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर शिष्यका छठवाँ शङ्कारूप प्रश्न वर्णन करते हैं— शिष्य कहता है—

बन्दीछोर सुजान !=जीवोंके बन्धन छुड़ानेवाले हे बन्दीछोर ! आप सत्यके जानकार सर्व-श्रेष्ठ पारखी अच्छे शुद्ध ज्ञानवान् हो !

अब चीन्हा = ऐसा मैंने अब आपको
शुभरूप तव = पहिचाना, और आपके शुद्ध-शुभ हंसरूप सच्चा भेष या स्वरूपको चीन्ह लिया वा समझ लिया हूँ ! और—

मङ्गल धाम=आप मङ्गल=कल्याणकारी सद्गुणोंके धाम=राजमहलके समान सुसम्पन्न हो !—

निधान=ज्ञान और दयाके समुद्र समान गहिर-गम्भीर हो !

किञ्चित शङ्का = अभी मेरे हृदयमें यत्किञ्चित्
उदय चित = यानी जो थोड़ी-सी शङ्का या सन्देह उत्पन्न हो रहा है। उसको मैं निवेदन करता हूँ ! आप उसे निवारण कर देनेकी कृपा कीजिये ! ॥

व्याख्या— तत्पश्चात् शिष्यने कहा कि— हे बन्दीछोर ! आप सद्गुरु सुजान सत्यासत्यके सच्चे जानकार हो ! आपकी दयासे अब मैंने आपके शुद्ध-शुभरूप हंस स्वरूपको पहिचाना। आप ज्ञानके निधान मङ्गल धामरूप कल्याणके भवन हो ! हे प्रभो ! अब मेरे चित्तमें जो किञ्चित् शङ्का उदय हो गयी है, आप कृपा करके उसे निवारण कर दीजिये ! ॥ १४१ ॥

दोहाः— जमा एककी अपर बहू * सो प्रसङ्ग समुझाव ॥
[४४] शुद्ध भये यह तन लहै * प्रथम कौन यह आह ? ॥ १४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

जमा एककी = शङ्का यह है कि- जमा चैतन्य
अपर बहू = जीव जो है, सो एक ही है,
कि = (अथवा) और भी बहुतेक अनेक हैं ?

सो प्रसङ्ग समुझाव=सो यह प्रसङ्ग या प्रकरणके इस भागको दयादृष्टि करके मुझे अच्छी तरहसे समझा दीजिये ! मेरे सन्देह मिटा दीजिये ! और—

शुद्ध भये=संसारके सकल माया-मोह विकार-से छूटकर शुद्ध होनेपर ही—

यह तन लहै=यह हंसदेह मिला या मिल सकता है। ऐसा आपकी दयासे समझमें आया। परन्तु—

प्रथम कौन = सृष्टिके आदिमें सबसे पहले
यह आह ?= यह जीव कौन था ? कहाँ था ? फिर क्या हुआ ? वह मनुष्य कौन है ? जिससे मानुषी सृष्टि चली। सो सब बात समझा दीजिये ! मेरा समाधान कीजिये ! ॥

व्याख्या— शङ्काः- जमा जीव चैतन्य स्वरूप एक ही है कि=(अथवा) और भी बहुत नानात्व है ? इस बारेमें मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आता है, सो अब यही प्रसङ्ग दया करके समझाइये ! और शुद्ध होनेके पश्चात् जीवको यह हंसदेह मिलता है, तो फिर प्रथम यह जीव कौन देहमें था ? कौन था ? अथवा प्रथमसे यह कौन है ? सो दर्शाइये ! ॥ १४२ ॥

॥ ❀ ॥ ६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण—६ ॥ खण्ड—१२ ॥ ❀ ॥

दोहाः— जमा एक पद बहु भया * कारण हन्ता पाय ॥
[४५] हन्ता बासी जीयरा * सोई ब्रह्म कहाय ॥ १४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! यह संसार अनादिसे है । इसलिये अनन्त देहधारी चैतन्य जीव तथा जड़ चारतत्त्व भी स्वरूपसे अनादि हैं। और सुनो !—

जमा एक = पद बहु भया = चैतन्य जीव वा निजपद पारख एक ही है। और प्रत्येक देहमें जीव एक-एक ही है। स्वजातीय गुणमें सब जीव एक-से हैं। ऐसा जीव-जमा तो एक था; परन्तु, पारखपदमें स्थिति न होनेसे जड़ाध्यासी होकर चारखानीमें जाकर बहुतेक देह धारण कर लिया।

कारण = हन्ता पाय = उसका कारण बीज, विषयोंके अहङ्कार तथा "एकोहं ब्रह्म" यानी मैं ब्रह्म एक ही हूँ ! अद्वैत हूँ ! ऐसा सूक्ष्म अहन्ता-ममता दृढ़ होनेसे समय पायके नाना देह धारण कर लिया।

हन्ता बासी = जीयरा = संसारी नरजीवोंने जगत्में बहुत दुःख पाये, तब सुख प्राप्तिकी वासना इच्छासे कोई ब्रह्मज्ञानी हुए। पूर्वमें विषयानन्दकी हन्ता थी, अब ब्रह्मानन्दकी विशेष हन्ताके निवासी वे जीव भ्रमिक हुए।

सोई ब्रह्म = कहाय = सोई निजस्वरूपको भूलकर 'अहं ब्रह्मास्मि' सारा जगत्का अधिष्ठान मैं ही ब्रह्म हूँ ! मैं ब्रह्मपूर्ण व्यापक हूँ ! ऐसा कहने लगे। ऐसे भ्रमसे ब्रह्म कहलाये ॥

व्याख्या— समाधान करनेके लिये सद्गुरु बोले— वैसे जीव-जमा, स्वरूपसे अखण्ड अनेक देहधारी स्वयं अनेक हैं। परन्तु, पारखपद सबोंका एक है। तहाँ एकपद पारख स्थितिसेहीन जमारूप जीव हन्ता-ममता, जड़ाध्यासके कारण पायके चौरासी योनियोंमें जाकर बहुत देहधारी हुए हैं। और जब नरजीव हन्ताके निवासी वा सूक्ष्म अहङ्कारके वशीभूत हुए, सोई पीछेसे ब्रह्म कहलाये। मैं ब्रह्म हूँ, तू ब्रह्म है, यह सब जगत् भी ब्रह्म है, ऐसे-ऐसे कहने-कहलाने लगे। महान् भ्रम-भूलमें पड़ गये ॥ १४३ ॥

दोहाः— गुरु सम्बन्धी जीयरा * इमि देही शुभ धार ॥
[४६] बसै भूमिका रामपर * साधुरूप सुप्रकार ॥ १४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरु सम्बन्धी = जीयरा = जिन नरजीवोंने पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्गमें लगकर पारख विचारमें सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, गुरुपदमें धर्म प्रेम-का नाता लगा लिया है—

इमि देही = शुभ धार = वे लोग काम-क्रोधादि विषय और ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पनाको त्यागकर सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति और वैराग्य— ये अष्टाङ्ग संयुक्त शुभ हंस देहको धारणकर मङ्गलमय होकर सदाके लिये सुखी हुए। तथा—

बसै भूमिका = रामपर = नज चैतन्य पारख भूमिका या स्थितिपर आरामसे बसे, सोई जीवन्मुक्त हुए। वे ही राम=चैतन्य जीवकी स्थिति करनेवाले हैं। निजपदमें रहनेवाले हैं।

साधुरूप = सुप्रकार = वे मन, इन्द्रिय, वाणियोंको साधे हुए सच्चे त्यागी, साधु स्वरूपी पारखी सन्त, अच्छी तरहसे या भली प्रकारसे खानी-वाणी जालोंको परखकर त्यागे हुए निर्बन्ध मुक्त होते हैं। वे ही सर्वोपरि श्रेष्ठ साधु हैं ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गके शुभ सम्बन्धमें लगे हुए जिज्ञासु नरजीव ऐसे शुभ हंसदेहको धारण करके त्यागी-वैराग्यवान् शुभ भेष संयुक्त साधु स्वरूपमें अच्छी प्रकारसे

टिकाव करके पारख भूमिकामें बैठे रहते हैं। और चैतन्य जीवके ऊपर लगे हुए आवरणको मिटाकर शान्ति-सुखमें स्थित रहते हैं॥ १४४॥

दोहाः— एकता भयो भेद बहु * निरख एक अब नाहिं॥
[४७] काल दयालहि भेद बहु * समझहु परखहु ताहिं॥ १४५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! इसलिये—

एकता भयो = भेद बहु = पारख स्थितिके बिना ब्रह्मज्ञानसे जीव-ब्रह्मकी एकता भी किया, अद्वैत ब्रह्म मानकर तदाकर भी हुआ, तो भी तहाँ उसमें बहुत ही भेद भ्रम-धोखा ही रह गया। क्योंकि, जगत् प्रपञ्चका बहुत प्रकारके भेद तो ब्रह्मसे ही खड़े हुए हैं।

निरख एक = अब नाहिं = हे शिष्य! तू पारखदृष्टि खोलकर देख! जब एकसे नानात्व बना, तब एक तो अब नहीं रहा। तैसे ही एक ब्रह्मसे ही सारा जगत् बनकर छितराया, तब एक ब्रह्म अब कहाँ रहा? नाना टुकड़ा होनेसे एकका नाश हुआ, फिर उसकी अब एकता होनेकी आशा ही नहीं रही, अतएव संसारमें—

काल दयालहि = भेद बहु = काल गुरुवालोग, कल्पना, वाणी, विषयोंका जाल लगाने वाले हैं। और दयालु पारखी सद्गुरु उसे परखायके बन्धनसे छुड़ा देते हैं। इन दोनोंमें बहुत भेद या अन्तर है। सो कभी एक नहीं हो सकते हैं। सदैव न्यारे-न्यारे ही रहते हैं।

समझहु = परखहु ताहिं = पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग द्वारा विवेक करके इसका पृथक्-पृथक् भेद समझो! और गुरु-गुरुवाके गुण-लक्षणोंकी परीक्षा करो, उसीसे तुम्हें बन्धन-मुक्तिका भेद मालूम हो जायगा॥

व्याख्या— ब्रह्मज्ञानसे जीव-ब्रह्मकी एकता हुई, ऐसी कल्पना भी की, तो उससे क्या फायदा हुआ? उसमें तो बहुत भेद लगा ही हुआ है, अभेदका बोध कहाँ? किसको हुआ है। किसीको भी नहीं हुआ है। अब तो एक ब्रह्म किसीको दिखता ही नहीं। पारखदृष्टिसे देखो! अब सिद्धान्तमें एक अद्वैतका टिकाव-ठहराव तो कहीं भी सिद्ध नहीं होता है। पाँच जड़तत्त्व और उनके कार्य-कारण भेदसे सब अलग-ही-अलग हैं। तथा देहधारी चैतन्य जीव भी स्वरूपसे अनन्त वा असंख्य नित्य ही हैं, वे सब न्यारे-न्यारे ही हैं। यदि उसको कल्पनासे एकता भी किया, तो भी उसमें बहुत ही भेद रहता है। इसीसे काल = गुरुवालोग और दयाल = पारखी सद्गुरुके रहनी-बोधमें बहुत ही भेदरूप अन्तर है। उसे तुम भी यथार्थ परखकर समझो-बूझो! और अपने हित-कल्याणके मार्गमें लगो॥ १४५॥

दोहाः— उपजावन औ नाशन * ये गुण काल अहन्त॥
[४८] दयाल दीन उद्धारण * स्वतः हंस स्वलहन्त॥ १४६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

उपजावन = औ नाशन = काम, क्रोध, लोभ, मोह, कल्पना, भासादिको उत्पन्न करना, तथा दया, शील, सत्यादि सद्गुणोंको नाश करना, तैसे ही जगत्को ब्रह्मसे उत्पन्न बतलाकर और फिर प्रलय होकर उसीमें समा जाता है, ऐसा कहना; ऐसे उत्पत्ति-प्रलय किया करना—

ये गुण काल = अहन्त = ये दुर्गुण तो कल्पनाके तथा काल गुरुवालोगोंके हैं। वे ही नाना कल्पनाको फैलायके अहन्ता-ममता विकारको बढ़ायके जीवोंको आवागमनोंमें डालदेते हैं। और—

दयाल = इससे भिन्न परमदयालु पारखी सद्गुरु तो जीवोंके रक्षक हैं।

दीन उद्धारण = जो कोई सद्गुरुकी शरणमें दीन भावसे आये, जिज्ञासु जीव शरण हुए, उन्होंको समस्त खानी-वाणीके कसर खोटोंको परखाकर सत्य ज्ञानको बता दिये। ऐसे दीन-दुःखी जीवोंके उद्धार करनेवाले

दयालु सद्गुरु हैं।

स्वतः हंस = ऐसे सद्गुरुकी दयासे हंसजीव
स्वलहन्त = स्वयं स्वरूपका सत्य बोध पाकर जड़ाध्याससे छूटकर स्व-स्वरूप पारख स्थिति मुक्तिपदको प्राप्त हुए। वे भव-बन्धनोंसे छूट गये और छूट रहे हैं। वे स्वतः हंस जीव स्वपद पारखको प्राप्त कर लेते हैं॥

व्याख्या— उन दोनोंमें जो भेद है, सो भी कहता हूँ सुनो! जगत् बन्धनोंको उत्पन्न करना, और मुक्तिमार्गको विनाश करना, यही काल-कल्पना, गुरुवा और नारियोंका मुख्य गुण वा दुर्गुण है। और दयाल-पारखी सद्गुरु दीन-गरीब जीवोंको उद्धार करनेवाले हैं। जिनकी कृपासे हंसजीव स्वतः स्व-स्वरूपके पारख बोधको प्राप्त कर लेते हैं॥ १४६॥

दोहाः— ऐसे काल दयाल गुण * एकता कैसे होय?॥
[४९] ताते शिष्य! विचारिये * शुद्ध हंस पद जोय॥ १४७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसे काल = ऐसे या इसप्रकारसे काल = गुरुवालोग, स्त्री इन ठग धूर्तोंका जीवोंको फँसा-फँसाकर कष्टदेनेका दुर्गुण और दयालु पारखी सद्गुरुके जीवोंको बचानेका सद्गुण पृथक्-पृथक् हैं, सो बहुत ही फरक है।

एकता = कैसे होय? = फिर कहो तो भला! इन दोनोंमें एकता कैसे होगी? अनन्त जीवोंके कर्म न्यारे-न्यारे हैं, फिर उनकी एकता या ब्रह्ममें मिलाप कैसे होयगा? जीव अखण्ड हैं, वे ब्रह्ममें जाके कैसे मिलेंगे? जीव-ब्रह्मकी एकता मानना महाभूल गाफिली है।

ताते शिष्य! = विचारिये = इसवास्ते या इसकारणसे हे शिष्य! सत्यासत्यका यथार्थ सत्यन्यायसे विचार करो!—

शुद्ध हंस = पद जोय = पारखदृष्टिसे शुद्ध हंसपदको देखो! जो कोई हंसपदको प्राप्त होते हैं, सो सब विकारसे छूटकर शुद्ध हो जाते हैं॥

व्याख्या— ऐसे काल और दयालके गुण-लक्षणमें दिन और रातके समान बड़ा भारी भेद वा अन्तर है। फिर एकता वा एकत्व अभेद एक अद्वैत कैसे हो सकेगा? ऐसा कभी हो सकनेका नहीं। इसवास्ते हे शिष्य! तुम निष्पक्ष होकर निर्णयसे विचार करो। अद्वैतकी मानन्दी भ्रम-भूलका परित्याग करो। हंसपद जो है, सो शुद्ध है, उसीकी तरफ अपनी दृष्टिको फेरो; लक्ष्यको हंसपदमें टिकाकर लगाओ। विवेक-दृष्टिसे हंसपदको देखनेवाले नरजीव भी सत्पुरुषार्थसे हंसपदमें पहुँचकर सब बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। अथवा हंसपद शुद्ध है, और कालपद अशुद्ध है; उन दोनोंकी एकता कभी हो नहीं सकती है, ऐसा जानना चाहिये॥ १४७॥

दोहाः— काल अनेकन रूपते * जीवहिं रखे भुलाय॥
[५०] दयाल एकहि रूपते * साधु गुरू कहाय॥ १४८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

काल = अनेकन = रूपते = गुरुवा और स्त्रियाँ— यही 'काल' हैं। वे यमोंके अनेकोंरूप हैं। षट् दर्शनोंके नाना भेष छियान्नवे (९६) पाखण्ड नाना सिद्धान्त फैला रक्खे हैं। तथा स्त्रियोंने भी अनेकों शृङ्गार कर हाव-भाव, कटाक्षसे पुरुषोंको मोहित कर रही हैं।

जीवहिं = रखे भुलाय = ऐसे अनेक प्रकारसे अनेक रूप दिखा-दिखाकर लोभ-लालचमें सब जीवोंको भुलाय रक्खे हैं।

दयाल = एकहि = रूपते = तहाँ दयालु पारखी सद्गुरु तो एक ही हंसरूप सत्य-रहनी, सत्य-गहनीसे रहते हैं। सत्य पारखका ही बोध देते हैं, सार पारख लखाते हैं।

साधु गुरू = कहाय = इसलिये तम-अज्ञान विनाशी पारख-प्रकाशी सत्यन्यायी पारखी साधु सर्वश्रेष्ठ मुक्तिदाता सद्गुरु

कहलाते हैं या बन्दीछोर कहे जाते हैं। वे पूजनीय हैं, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— कालने तो अनेकोंरूपसे बहुरूपिया बनकर पाखण्ड फैलाकर सब अबोध नरजीवों-को भुलाये और भुला ही रक्खे हैं। सबोंको भव-बन्धनमें ही अरुझा-अरुझाकर बाँध रक्खे हैं। और दयाल=पारखी सद्गुरु तो एक ही हंसरूपसे नरजीवोंको भव-बन्धनसे छुड़ाकर मुक्त करते हैं। इसीसे आप दयालु परोपकारी, साधु-गुरु बन्दीछोर, मुक्तिदाता कहलाते हैं। इसलिये इन दोनोंमें एकता कभी हो नहीं सकती है। अतः अद्वैत सिद्धान्त मानना सरासर झूठा है। सत्यन्याय-निर्णयसे तुम भी इसका विचार करो ! ॥ १४८ ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयकी वाणी ॥ साधु-गुरुकी समानता वर्णन ॥ ❀ ॥

(३) साखीः— साधु बतावैं गुरुको * गुरु कहैं साधु पूज ॥
[५१] अर्स पर्सके खेलमें * भई अगमकी सूझ ॥ १४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

साधु बतावैं गुरुको = सच्चे त्यागी पारखी साधु मनुष्योंको उपदेश देकर बता देते हैं कि, हे सज्जनो ! यदि तुमलोग सुख-शान्ति और मुक्ति चाहते हो, तो पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करो; वे ही जीवोंके रक्षक मुक्तिदाता हैं। इसलिये गुरुभक्तिमें मनको लगाये रक्खो। और—

गुरु कहैं साधु पूज = जब पारखी सद्गुरुकी शरणमें शिष्यलोग गये, तो सद्गुरुदेव कहने लगे कि— हे मनुष्यो ! तुमलोग सकल जड़-भावना, जड़पूजा, धोखाको छोड़कर चैतन्य भक्तिमें लगो; सो पारखी साधुओंकी पूजा, सेवा, टहल, बन्दगी किया करो। जिससे तुम्हारे अन्तःकरण शुद्ध होकर पारख स्थिति होनेमें सहायता होगी।

अर्स पर्सके खेलमें = इसप्रकार आपसमें परस्पर सत्सङ्गके घेरामें ही लगे रहनेसे सब दुर्गुण, दोषोंका विनाश हो जाता है। और साधु-गुरुके सत्सङ्गमें नित्य नया-नया प्रश्नोत्तर होते रहनेसे पारखबोध हो जाता है। और—

भई अगमकी सूझ = अगम, अपार, निर्गुण ब्रह्म, ईश्वरादि माना हुआ नरजीवोंका ही धोखा, कल्पना, भ्रम है। यह सूझ, समझ, बोध हो जाता है। परीक्षा-दृष्टि हो गई, तो फिर सब भ्रम छूट जाते हैं ॥

व्याख्या— अथवा त्यागी साधु स्वरूपज्ञानवाले उपदेशकको ही साधु-गुरु बताया जाता है वा साधु-गुरु कहा जाता है। तहाँ विवेकी साधु जिज्ञासुओंके प्रति बतलाते हैं कि, ऐसे ही पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करो, और सद्गुरुके उपदेशको पालन करो ! सद्गुरु सत्सङ्गी मनुष्योंके प्रति कहते हैं कि, विवेकी साधु त्यागी, विरक्त पूज्य माननीय होते हैं। अतः जिज्ञासुओंको ऐसे सच्चे साधु तथा सद्गुरुकी सेवा, पूजा, आरती, बन्दगी प्रेमभावसे करते रहना चाहिये। ऐसे अर्स-पर्सके रूपमें परस्पर मान-सम्मान महिमा प्रगट करके सत्सङ्गके चौड़े मैदानमें विवेक-विचार, निर्णयके खेलमें लगे रहनेसे नरजीवोंकी भ्रम-भूल मिटकर अगमकी सूझ-समझ हो गई। अर्थात् अगम-अपार आदि माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि नरजीवोंकी कल्पना मिथ्या धोखा है, ऐसा बोध हो गया; और निज पारख स्वरूपकी स्थिति भी सद्गुरुकी दयासे प्राप्त हो गई ॥ १४९ ॥

दोहाः— एकरूप गुरु साधुका * दूजा कालको फन्द ॥
[५२] अशरण शरण दयाल गुरु ! * साधु सदा स्वच्छन्द ॥ १५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

एकरूप गुरु साधुका = साधु स्वरूपी सद्गुरु हैं, गुरु सोई साधु हैं। इसलिये पारखी सद्गुरु तथा पारखी सन्त इन दोनोंका भेष, रहनी-रहस्य, गुरुमुख वाणी पारख सिद्धान्त, सत्य-

न्याय यह सब एक समान ही रहता है। फरक इतना ही रहता है कि— उपदेशक सद्गुरु कहलाते हैं। उपदेश न करके सद्गुण धारण रहनी मात्रमें रहनेवाले साधु कहे जाते हैं। ऐसा साधु-गुरुका रूप एकताका है। और-

दूजा कालको फन्द = जीवसे भिन्न कोई दूसरा कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि बतलानेवाले कर्म, भक्ति, योगादिमें लगाकर जीवोंको भटकानेवाले, विषयोंमें ले जाकर फँसानेवाले नाना भेष पाखण्ड करने-करानेवाले ये सब बेपार या विजातीय दूसरा ही कालके फन्दा खानी-वाणीमें फँसानेवाले हैं। सो दूसरा कालका ही फन्दा है ॥

अशरण शरण = दयाल गुरु = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी शूर, वीर, धीर, शरणागत रक्षक या अशरण जीवोंको शरणदाता ऐसे दीनदयालु पारखी सद्गुरु हैं।

साधु सदा = स्वच्छन्द = } वे सदा साधुओंके मध्यमें सत्य रहनी-रहस्य, साधु भेष सद्वृत्तिके सहित स्वच्छन्द, निर्मल पारख स्थितिमें ही विराजमान रहते हैं। शान्त, निर्भ्रान्त रहते हैं। ऐसे साधु स्वच्छन्द, स्वतन्त्र होते हैं ॥

व्याख्या— पारखी साधु-गुरुका एकरूप, एक समान भेष, उपदेश, एक ही सिद्धान्त, स्थिति रहती है। सत्यन्यायी सद्गुरुका और पारखी साधुका पारखरूप तो एक है। कहा है:—

चौपाई:— "पारखमें हम तुम हैं एका। देह भावते भिन्न विवेका ॥"— निर्णयसार ॥

गुरुवालोग और ही इससे भिन्न दूसरा ही पाखण्ड चलाते हैं, तथा ईश्वर, खुदादि कोई अपनेसे भिन्न दूसरा ही कर्त्ता मालिक बतलाते हैं; और बहुतेरे वाणी-खानीका जाल फैलाते हैं, सो सब कालका फन्दा- गुरुवालोग और स्त्रियोंकी फाँसी है। उन सबोंको परखाकर जीवोंको छुड़ानेवाले अशरण-शरण दयालु सद्गुरु हैं। साधु पारखी सदा स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, निर्बन्ध रहते हैं। इसीसे विवेकी साधु-गुरुकी सर्वोपरि स्थिति होनेसे उनकी विशेष महिमा है; सो यथार्थ है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १५० ॥

दोहा:— बन्दीछोर कृपाल गुरु ! ❀ मर्दन काल कलेश ॥
[५३] काल अनेकन रूपते ❀ जीवहिं देत विदेश ॥ १५१ ॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बन्दीछोर कृपाल गुरु = } जीवोंके स्थूल-सूक्ष्म समस्त बन्धनोंको विनाशकर भव-बन्धनोंसे छुड़ानेवाले, बन्दीछोर ऐसे सद्गुरु कृपालु हैं। दयाके भण्डार या सागर समान हैं।

मर्दन काल कलेश = कालरूप गुरुवा और नारियोंके जाल, कल्पना विषयोंको मसलकर, रौंदकर, नष्टकर फेंक देनेवाले हैं। पञ्च क्लेशादि समस्त दुःखदायी व्याधियोंको विनाशकर जीवोंको सुखी करनेवाले परम वैद्य हैं।

काल अनेकन रूपते = कालरूप गुरुवा और स्त्रियाँ अनेकों भेष, शृङ्गारादि मोहकरूप बनाय-बनायकर उसीसे जीवोंको ठगते हैं। फँसा-फँसाकर धोखेमें डाल देते हैं। और—

जीवहिं देत विदेश = नरजीवोंको बहकायकर स्वरूप स्थिति-मुक्तिपद स्वदेशसे खैंच-खैंचकर जड़ाध्यासी, भ्रमिक बना-बनाकर विदेशरूप चार खानी चौरासी योनियोंमें ढकेलके गिराय देते हैं ॥

व्याख्या— कृपालु बन्दीछोर सद्गुरु कालको मर्दनकर मसल करके उसे दबाकर उसके सम्पूर्ण कष्ट-क्लेशको विनाशकर जीवोंको निर्बन्ध-सुखी कर देते हैं। और काल तो कुटिलतासे अनेकों रूप बना-बनाकर बहुत रूपसे नरजीवोंको ठग-ठगकर निर्धन बनाकर फिर स्वदेशसे निकालकर विदेशमें भेज देता है। अर्थात् विषय-कल्पनामें भुला-भुलाकर अभ्यासी बनाकर चौरासी योनियोंके चक्रमें डाल देता है। इसीसे उन्हें पहिचानकर पहलेसे ही उनसे न्यारे हो रहना चाहिये; तभी कल्याण होवेगा ॥ १५१ ॥

दोहाः— ताते हे शिष्य ! एकता * कैसे काल दयाल ? ॥
[५४] बन्धन गुण हैं कालके * बन्दीछोर दयाल ! ॥ १५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताते हे शिष्य एकता = इसवास्ते या इसकारण-से हे शिष्य ! तुम सत्यासत्यका निर्णय करो, गुण-दोषोंको पहिचान करो, जड़ और चैतन्य वस्तु दोनों ही विजातीय पृथक्-पृथक् हैं। वह कभी एक हो नहीं सकती है; फिर चराचरको एक ब्रह्ममें मिलाप मानकर एकता करना कितनी मूर्खताकी बात है।

कैसे काल दयाल? = फिर काल-दयालकी एकता भी कैसे हो सकती है ? विष और अमृत कभी एक हो नहीं सकते हैं। तैसे ही सत्य जीव और मिथ्या ब्रह्मकी भी एकता, मिलाप कैसे हो सकेगा ?—

बन्धन गुण = } क्योंकि, बन्धन देना, चौरासी
हैं, कालके = } योनियोंमें डालना, ये दुर्गुण काल, कल्पना, गुरुवा, विषयोंके हैं। काल-लोग सदैव त्रिगुण फन्दोंमें ही जीवोंको अरुझाये रखते हैं।

बन्दीछोर दयाल ! = उसके विपरीत सब बन्धनों-को पारखज्ञानकी अग्निसे भस्म करके नरजीवोंके बन्धन छुड़ानेवाले परम दयालु बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारखी सद्गुरु मुक्तिदाता हैं ॥

व्याख्या— इसवास्ते हे शिष्य ! काल और दयालकी एकता वा समानता कैसे हो सकती है ? कभी हो नहीं सकती है। क्योंकि, कालके गुण तो बन्धन देनेवाले, फँसानेवाले हैं। और बन्दीछोर दयालु सद्गुरुके सद्गुण तो उन सब बन्धनोंसे जीवोंको छुड़ानेके हैं। अतएव इस भेदको अच्छी तरहसे समझकर दयालु सद्गुरुके ही शरण-सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ १५२ ॥

दोहाः— जमा एक जीव स्वतः पद * बुद्धि भ्रान्तिसे काल ॥
[५५] बुद्धि भ्रान्ति परखाय मेटै * सो गुरु दीनदयाल ! ॥ १५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जमा एक जीव = } संसारमें एक जमा सत्यपद
स्वतः पद = } क्या है ? कि, जीव ही यह जमारूप सत्य है। एक देहमें एक जीवकी ही सत्ता रहती है। इसलिये जितने देह हैं, उतने ही असंख्य या अनन्त देहधारी जीव हैं। जीव स्वयं अखण्ड चैतन्य हैं। निजपद पारखबोध न होनेसे ही एक कोई कर्त्ता ईश्वरादि मानकर भूल गये, और भूल रहे हैं।

अतएव—

बुद्धि भ्रान्तिसे काल = जिन नरजीवोंकी बुद्धि भ्रमिक हो गई, सो उसीसे कल्पनामें पड़े हुए वे ही जीव गुरुवारूप काल बने हैं। कोई जीव विषयाध्याससे स्त्री बना है, जड़ाध्यासी बना है। इसतरहसे बुद्धिकी, भ्रान्ति बढ़नेसे ही जीव एक-दूसरेको फँसानेवाले काल बने हैं, फिर चौरासी योनियोंमें पड़े हुए हैं। और—

बुद्धि भ्रान्ति = } जो सद्बुद्धि देकर, परीक्षा
परखाय मेटै = } कराकर कल्पना, विषय, कुबुद्धि, भ्रम, सन्देहोंको यथार्थ पारख सत्यबोधसे परखाय, समझाय-बुझायके मेट देवें या भ्रम मिटाय देनेवाले सत्यबोध दाता जो हैं—

सो गुरु दीनदयाल ! = सोई दीनदयालु पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी बन्दीछोर हैं। पारखी सद्गुरुदेव जीवोंके रक्षक हैं; अतः सो गुरु दीनदयाल कहे जाते हैं॥

व्याख्या— वास्तवमें एक जीव जमा तो स्वतःपद है। उसमें कोई ऊँच-नीचका फरक तो नहीं है। असंख्य जीव देहधारी हैं, सो जीवमात्र स्वजातीय हैं। परन्तु, नरजीवकी समझ-बुद्धिमें कमी-बेशी होती है; और जिन-जिनकी बुद्धिमें भ्रान्ति पड़ गई, कल्पना, विषयादिकी अध्यास, आसक्ति, चाट लग गई, सोई बुद्धिकी भ्रान्तिसे वे काल बने हैं। और सो उस बुद्धिकी सम्पूर्ण भ्रान्ति,

धोखा, संशय इत्यादि विकारको जो यथार्थ सत्यन्यायसे परखाकर मिटा देते हैं, सोई दीनदयालु सद्गुरुदेव हैं, ऐसा जानो ! ॥ १५३ ॥

दोहाः— रोगी वैद्य कलेशते * छूटै भये निदान ॥
[५६] जो कलेशमें पगि रहै * सोई रोगी जान ॥ १५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

रोगी = जन्म, मरण, गर्भवासादिके रोगसे पीड़ित जड़ाध्यासी मनुष्य जीव रोगी हुए, तो उनमेंसे कोई रोग छुड़ानेके वास्ते इधर-उधर भटकके तहाँ—

वैद्य = वैद्य वा उपदेशक बने हुए गुरुवालोगोंके पास जाकर शरण हुए। परन्तु, गुरुवालोग तो और महारोगी ठहरे, उन्होंने—

कलेशते = उन नरजीवोंको ब्रह्म-ईश्वरादिकी कल्पना लगाकर सुख प्राप्तिके वास्ते नाना साधनोंके फन्दोंमें डाल दिये। और भी कष्ट-क्लेशसे व्याकुल हो गये। फिर सब दुःख छूटनेके लिये गुरुवाओंने और—

छूटै भये = निदान = आखिरमें वा अन्तमें ब्रह्मज्ञानका उपचार अद्वैत गोली देकर झूठे ही बन्धनोंसे छूटे हुए अपनेको मुक्त मान लिये। बिना पारख बन्धनोंसे वे तो नहीं छूटते हैं, यह परीक्षा नहीं हुई।

जो कलेशमें पगि रहै = क्योंकि, उत्पत्ति-प्रलय, या ब्रह्म-जगत्की उपाधि, आवागमनोंके कष्ट-क्लेश तथा ज्ञान-विज्ञानादि नाना साधनाओंके दुःख, भ्रम, कल्पना, विषयादिके क्लेशमें जो पड़े रहते हैं, गाफिल रहते हैं—

सोई रोगी जान = सोई जड़ाध्यासी चौरासी-योनियोंके अधिकारी अज्ञानी बद्ध जीव हैं। ऐसा जानो कि, यह जीव रोगीके समान दुःख पाकर जन्म-मरणमें ही पड़े रहते हैं, बिना विवेक; अतः उसी-को रोगी जान लो ! ॥

व्याख्या— जो रोगोंके कष्ट-क्लेशमें पड़े रहते हैं, सो उन्हें ही रोगी जानो ! और अनुभवी वैद्यके चिकित्सा-निदान होनेपर रोगी उस रोगके कष्ट-क्लेशसे छूट जाता है। इसीसे जो रोगको छुड़ावे, उसीको सच्चा वैद्य जानो ! और जो रोगको ज्यादा ही बढ़ा देवे, सो वैद्य नहीं है, उसे तो कुवैद्य, ठग ही जानना चाहिये। तैसे ही सिद्धान्तमें जो जीव पञ्चक्लेशमें पड़ा हुआ दुःख भोगता रहे, सोई रोगी, शोगी, भोगीको बन्धनमें पड़ा हुआ बद्ध जानो ! और जो भ्रम-कल्पना लगायके भव-बन्धनको और भी दृढ़ करके विस्तार कर देवें, वे ठग गुरुवालोगोंको काल जानो ! और उससे बचानेवाले सद्गुरु ही एक सच्चे वैद्य हैं। सत्सङ्ग-विचारमें भवरोगकी परीक्षा-निदान होनेसे सत्य उपदेशरूपी औषधि ग्रहण धरके सद्गुरुकी दयासे रोगी जीव पञ्चक्लेशके रोगादिसे छूट जाते हैं; ऐसा जानिये ! ॥ १५४ ॥

दोहाः— रोगी एकता ब्रह्म पद * सृष्टि रोग विलास ॥
[५७] सो भासो पद जीवको * रोगिन सङ्ग विलास ॥ १५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

रोगी एकता ब्रह्म पद = जड़-चैतन्य वा जीव-ब्रह्मकी एकता करके जो ब्रह्मको मुक्तपद ठहराये हैं, सोई महाभूलसे ही जीव चौरासी योनियोंमें रोगी या दुःखी होकर पड़े हैं, वहाँपर वे सन्तप्त हो रहे हैं।

सृष्टि रोग विलास = ब्रह्मकी इच्छा-विलाससे जो जगत्की सृष्टि माने हैं, सो यही तो महारोग दुःखका घर है। इसलिये ब्रह्म बनकर जीवको सुख कहाँ मिला ?—

सो भासो पद जीवको = परन्तु, नरजीवोंको पारख न होनेसे भ्रमसे सोई मिथ्या ब्रह्मपदकी मानन्दीसे सुख स्वरूपमें भास हो गया; सोई भास जीवोंको दृढ़ हो गया, इसलिये निजपद छूट गया। और—

रोगिन सङ्ग विलास = अब अज्ञानी नरजीव भ्रमिक, रोगी बनकर गुरुवालोगोंके

सङ्ग-साथसे लगकर भास-अध्यासको पकड़कर ब्रह्मानन्द-विषयानन्दादिमें रमण कर क्रीड़ा-विलास करने लगे। यही विलास ही तो आवागमनोंका बीज है। सो सत्सङ्ग-विचारके बिना जान नहीं पड़ता है॥

व्याख्या— ब्रह्मपदकी एकता मानन्दी करनेवाले भ्रमिक जड़ाध्यासी जीव ही यहाँपर बड़े रोगी हैं। तथा ब्रह्मसे जगत्की सृष्टिका कथन करके वाणी-खानीरूपी सृष्टिका विस्तार करना ही रोगका विलास है। ब्रह्मानन्द-विषयानन्द आदि विलासमें सब जीव भूले पड़े हैं। तहाँ भ्रमिक गुरुवारूपी रोगी लोगोंके सङ्ग-साथमें नित्य विलास, रमणकर कल्पित चर्चा वेद-वेदान्तादि वाणीका श्रवणादि करते रहनेसे सोई भ्रमरूप ब्रह्मपद जीवोंको सत्य भास हुआ, दृढ़ हो गया। इसीसे वाणीके महान् धोखेमें पड़कर उसीका पक्ष पकड़कर वे भव-बन्धनोंमें ही अरुझे पड़े हैं। बिना विवेक यह आवागमनादिका रोग किसीका नहीं छूटा है॥ १५५॥

दोहाः— एकता और अनेक पद ❀ इहै रोगको मूल॥
[५८] रहट खानिमों जीयरा ❀ परै न सूझे भूल॥ १५६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

एकता = अद्वैत ब्रह्मज्ञानमें जड़-चैतन्यका या जीव-ब्रह्म, ज्ञान-अज्ञान इन सबोंका एकत्व मिलाप करना या मानना—

और = } और फिर उसी ब्रह्मकी इच्छासे
अनेक पद = } पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्वादि सारा संसारकी सृष्टि विस्तार हुआ, ऐसा बतलाना, ईश्वर, ब्रह्म, देवता, भूत-प्रेतादि अनेक पदोंकी कल्पनासे भावना दृढ़ करना—

इहै रोगको = } यही भ्रम, भूल, जड़ाध्यास,
मूल = } विषयासक्ति ही जन्म-मरणादि रोगका मूल कारणरूप बीजके समान है।

रहट खानिमों = } उसी खानी-वाणीके अध्याससे
जीयरा = } बद्ध होकर सब जीव मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज— इन चार खानीके नाना योनियोंमें रहट-चक्रवत् घूम रहे हैं।

परै न = } पारखदृष्टि बिना अन्धे आसक्त
सूझे भूल = } मनुष्योंको ऐसे अपनी स्वयंकी भूल तो सूझ ही नहीं पड़ती है। पारखी सद्गुरुकी दया बिना तो किसीको भी वह भूल सूझ नहीं पड़ती है॥

व्याख्या— एक तो जगत्-जीव-ब्रह्मकी एकता कथन करना, और दूसरा अनेक पदमें नाना सिद्धान्त आदिका वर्णन करना, एकतामें ब्रह्मकी कल्पना करना; और अनेक पदमें जगत्की आसक्ति रखना, यह ही आवागमन होते रहनेका, भवरोगका मूल कारणरूप विकार है। सो महा भूल तो उन किसीको भी सूझ नहीं पड़ती है। पारख बिना यथार्थ भेद तो वे समझ ही नहीं पाते हैं। इसलिये जड़ाध्यासी होकर सब जीव रहट-खानीमें, ब्रह्म-जगत्के फेरामें, जन्म-मरणके चक्रमें पड़े हुए घूम रहे हैं; चौरासी योनियोंमें डोल रहे हैं, बिना पारख॥ १५६॥

दोहाः— सूझै भूल जो जीयरहिं ❀ शरण आवै तजि मान॥
[५९] परखि काल गुण बिलगि रहै ❀ एक अनेक अनुमान॥ १५७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु प्रेमी शिष्य!

सूझै भूल = } जो कि, यह आदिकी भूल
जो जियरहिं = } अनुमान-कल्पनाका भेद नरजीवोंको तभी सूझेगा या यथार्थ जानने, समझने, देखनेमें आयेगा, जब कि—

शरण आवै = } मान-बड़ाईका अहङ्कार,
तजि मान = } पक्षपात, स्त्री और गुरुवाओंका कुसङ्ग इन सबको छोड़कर या त्याग करके जो कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी सद्गुरुकी शरणमें आये या आवेंगे, वे ही सब मर्मको जान पाये या जान पावेंगे। इसलिये मान-को छोड़कर पारखी सद्गुरुके शरणागत होना चाहिये। तभी पारखदृष्टिसे सब

भूल दिखाई देगी। और—

परखि काल = गुण बिलगि रहै = } सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परीक्षा कर-करके नारियों-के त्रिगुण विषय विलाससे तथा गुरुवाओंके कर्म, योग, ज्ञान या 'तत्त्वमसि' आदि काल-के गुणरूप कल्पनाको यथार्थ परखकर जान लेवे कि— यही मानन्दी ही महा बन्धन है। इसलिये कालके गुण कल्पनाके चक्रसे न्यारा होकर पारख विचारमें ही स्थिर रहे ॥

एक अनेक = अनुमान = } एक अद्वैत ब्रह्म तथा अनेक देवी-देवता, भूत-प्रेत, खुदा, स्वर्गादि, जगत्- ये सब मिथ्या अनुमान-कल्पनामात्र हैं। "जीव ही सत्य है", ऐसा जानकर पारखपदमें कायम होना चाहिये। एक-अनेकके अनुमानको त्याग देना चाहिये ॥

व्याख्या— जो जिज्ञासु नरजीव हृदयसे मान, गुमान, मिथ्या मानन्दी आदिको सर्वथा परित्याग करके पारखी सद्गुरुकी शरणमें आये वा शरणमें आवेंगे, उन्हें ही यह महाभूल पारखदृष्टिसे सूझ गई वा सूझ जावेगी, और जिज्ञासुओंको भी उसी प्रकार देखनेमें आ जावेगी। अथवा जिन नरजीवों-को यह भूल सूझेगी, तो वे शीघ्र ही सद्गुरुके शरणागत होकर सब मिथ्या मानन्दीको तज देंगे। फिर सम्पूर्ण कालके गुणको परखकर एक-अनेक, ब्रह्म-जगत्के अनुमान-कल्पनादिको मिटायके उससे वे न्यारे निर्बन्ध हो रहेंगे। अतः मुमुक्षुओंको पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण कर पारखदृष्टिको खोलना चाहिये, और कालके नाम, रूप, गुणसे बिलग होकर हंसपदमें टिके रहना चाहिये ॥ १५७ ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका शब्द वर्णन ॥ शब्द— १ ॥ ❀ ॥

१. हंसा! ठहरि देखु थिति बाट * काहे भटको औघट घाट ? ॥ १५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यह सत्य निर्णयके शब्दमें सद्गुरुके सत्य सिद्धान्त वर्णन करके दर्शाते हैं— हे सन्तो! सुनिये!—

हंसा ठहरि देखु = थिति बाट = } हे हंसा! हे नरजीवो! तुम सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर निज स्थिति होनेके सत्यमार्गको देखो! विवेकदृष्टि खोल करके देखो!—

काहे भटको = औघट घाट? = } हे जीव! बिना विचारे क्यों तुम कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादिसे ब्रह्म-भ्रमादिमें भटकते हो! औघट-घाटरूप नाना सिद्धान्तमें क्यों भ्रमते हो? ॥

व्याख्या— (ग्रन्थकर्त्ताने यह शब्द प्रमाणरूपमें कहा है—) पारखी सद्गुरु जिज्ञासु मनुष्यों-के प्रति कहते हैं कि, हे हंसा! हे जीव! तुम सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरो! और स्वरूप स्थिति होनेके रास्ता सत्यमार्गको विवेकदृष्टि खोलकर देखो! तुम क्यों औघट-घाटरूप नाना कल्पित सिद्धान्तों-में लगते हो? क्यों भटकते हो? जो ब्रह्म जड़ और चैतन्यमें कहीं घटनेवाला नहीं है, सो मिथ्या भ्रममें तुम क्यों स्थिति करना चाहते हो? यही अध्यास तुम्हें गर्भवासमें ले जायगा, सो तुम अब तो भी चेतकर जान लो! ॥ १५८ ॥

२. जहाँ-जहाँ जाहु तहाँ-तहाँ दूजा * तूहि काल उपराजा ॥ १५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! तुमलोग—

जहाँ-जहाँ जाहु = तहाँ-तहाँ दूजा = } भक्त, योगी, ज्ञानी आदि जिन-जिनके मतमें जहाँ-जहाँ भी जाते हो, तहाँ-तहाँ कोई दूसरा ईश्वरादि कल्पनामें ही वे तुम्हें फँसाते हैं; तुम लोग भी उसीमें भ्रमते जाते हो। और—

तूहि काल = उपराजा = } हे नरजीव! तुमने ही कल्पना करके दूसरा राजावत् मानकर ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रमसे ठहराया है। सो वाणी, विषयरूप कालको तुमने ही उत्पन्न किया है ॥

व्याख्या— हे नरजीव! तू हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पार्सी आदि जहाँ-जहाँ, जिन-जिनके मतमें जाता है। तहाँ-तहाँपर बेपारखी लोग तेरे ऊपर दूसरा कर्त्ता, मालिक, ईश्वर, खुदा, परमात्मा, देवता इत्यादि बताकर तुझे भ्रमाय देते हैं। अरे भाई! तूने ही तो कल्पना करके दूसरा कोई कर्त्ता

ब्रह्मकी मानन्दीको उत्पन्न किया है। यदि तू कहे कि, मैंने तो नहीं किया है, तो सुन! तेरे स्वजातीय भाईरूप मनुष्योंने ही तो वाणीकी कल्पनाका विस्तार किया है, तहाँ ब्रह्म-ईश्वर कर्त्ता बताया है। सोई तुमने भी बिना विचारे मान लिया है। तू ही वाणीका पक्ष लेकर गुरुवारूप काल बनता है। तू ही स्त्रीसे फँसता है। इसतरह कालको उत्पन्न करनेवाला भी तू ही है ॥ १५९ ॥

३. कियो कल्पना जगकी आपै * चौरासीको साजा ॥ १६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

कियो कल्पना = फिर यह जीवने ही ब्रह्मसे जगकी आपै = जगत् उत्पन्न होनेकी कल्पना किया। आप उसीमें भूलकर कल्पनामें फँस गया। तब—

चौरासीको = जड़ाध्यासवश चारखानीमें साजा = चौरासी समूह नाना योनियोंको खूब सजायकर खड़ा किया; जीवने ही उसे बनाया ॥

व्याख्या— हे नरजीव ! ब्रह्मसे सारे जगत्की उत्पत्तिकी कल्पना भी तूने अपने ही भ्रम-मानन्दी-से किया है। बिना देखे, बिना सोचे-विचारे, समझे बिना ही मनमाने कोई जगत्कर्त्ता है, उसीसे यह संसार उत्पन्न हुआ, ऐसी कल्पना तूने आप ही किया है; और नाना कर्म-कुकर्म करके चौरासी योनियोंको बनाकर सजाया है। जो तू ईश्वरादि प्राप्तिके लिये अनेक साधनाएँ करता है; सोई चौरासी योनियोंमें ले जानेका साज या कारण होता है ॥ १६० ॥

४. भये अनेक दुःख बहु पाये * पुनि सो ब्रह्म कहावै ॥ १६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

भये अनेक = जब जीव अनेक देहधारी दुःख बहु पाये = हुए, तब त्रिविधि तापोंका दुःख बहुत-बहुत पाये। कोई अनेक साधना करते भये, सो तहाँ बहुत कष्ट पाये।

पुनि सो ब्रह्म = फिर वेदान्तका विचार करके कहावै = मनुष्य भ्रमिक हुए, तो सोई 'एकोहं ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' कहाये। कारणः रूप आप ही ब्रह्म बने ॥

व्याख्या— जीव जड़ाध्यासी होकर चार खानीमें अनेक दुःख पाये। त्रिविधि तापके कष्ट बहुत-बहुत पाये, तब घबड़ाकर उस दुःखको मिटानेके वास्ते मनुष्योंने गुरुवालोगोंकी शरणमें जाकर अद्वैत ब्रह्मज्ञानको दृढ़ किये। फिर क्या था, "अहं ब्रह्मास्मि, ब्रह्मैवाहमस्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"- ऐसे-ऐसे कहकर आप ही ब्रह्म कहलाते भये, झूठ-ही-मूठ भ्रमसे ब्रह्म बनके धोखेमें जा पड़े, आवागमनके अधिकारी हुए, बिना पारख ॥ १६१ ॥

५. ब्रह्म भये थिति कतहुँ न पावै * जग इच्छा रहि जावै ॥ १६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म भये थिति = इसतरहसे जीव निज स्वरूप- कतहुँ न पावै = को भूलकर ब्रह्म भी हुए, तो वहाँपर शून्यमें स्थिति भी कुछ नहीं पाये। इससे मुक्ति तो नहीं मिली, कहीं ठहराव भी नहीं हुआ।

जग इच्छा = क्योंकि, जगत् उत्पन्न होनेकी रहि जावै = इच्छा तो स्वाभाविक ब्रह्ममें ही रह जाती है। जगत् उत्पत्तिकी इच्छा सदा-काल ब्रह्ममें रहनेसे स्थिति कहीं नहीं मिलती है ॥

व्याख्या— ब्रह्म बननेसे भ्रममें पड़े, तो जीवने स्थिति कहीं नहीं पायी, अतः गाफिल हुए। शून्यमें वृत्ति नहीं ठहरी, और कहीं भी स्थिति नहीं पायी। क्योंकि, आखिरमें जगत् उत्पत्तिकी इच्छा, मायाका अध्यास उसीमें ही रह गया। इसीसे ब्रह्मसे उलटकर जगत्रूप चौरासी योनियोंको ही प्राप्त हुआ। जीव था, तो एक देहका अभिमानी था, ब्रह्म हुआ, तो सर्व जगत् चौरासी योनियोंका अभिमानी हुआ। इसलिये आवागमन चौरासी योनियोंसे छूट नहीं पाया ॥ १६२ ॥

६. ब्रह्म जगत दोउ धोखा जियरा ! ❀ कल्पित तेरो होई ॥ १६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !
ब्रह्म जगत दोउ = } हे नरजीवो ! कारण ब्रह्म,
धोखा जियरा = } कार्य जगत् मानना, यह दोनों तो तेरा धोखा मात्र है। तू ही मिथ्या धोखेमें पड़कर ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति मानता है।
कल्पित = } सो वह ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ
तेरो होई = } तो तेरी मिथ्या कल्पना मात्र है। कल्पितमें लगकर तू भ्रष्ट मत् हो ! अपने सत्य स्वरूपकी तू पहिचान कर ! ॥

व्याख्या— इसवास्ते सद्गुरु साहेब कहते हैं— हे मनुष्यो ! हे जीवो ! ब्रह्म और जगत् तथा वाणी-खानीकी मानन्दी, यह दोनों धोखा, भ्रम-भूलरूप है। पञ्च विषयादि सब नाशवान् है। तेरा कल्पना-अध्यास वही तुझे बन्धन होता है। ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति मानना, यह तेरी मिथ्या कल्पना मात्र है। जड़-चैतन्यरूप जगत् स्वतः अनादि है, यह जानो ! ॥ १६३ ॥

७. देखु दृष्टि गुरु बुद्धि परख पद ❀ तू है को ? यह कोई ? ॥ १६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !
देखु दृष्टि गुरु = } हे मनुष्यो ! पारखी सद्गुरु-
बुद्धि परखपद = } से सत्य पारखपद बोधको प्राप्त करके अपनी बुद्धिको निर्मल करो, फिर सद्गुरुके लखाये अनुसार विवेक दृष्टिसे देखो, परखो, निर्णय करो !—
तू है को ? = } तू जीव है, और कौन है ? यह
यह कोई ? = } ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या कल्पना है, और क्या है ? तू सत्य है ! तेरी कल्पना झूठी है, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— हे जिज्ञासुओ ! पारखी सद्गुरुकी शरणागत होकर सत्सङ्ग द्वारा गुरुबुद्धिसे उपदेश-को ग्रहण करके निज बुद्धिको निर्मल करो ! सार-असारका निर्णय करो, पारखदृष्टि खोलकर देखो, निज स्वरूप पारखपदमें स्थिर होओ, तब तुम्हें मालूम हो जायगा कि, तू कौन है ? यह ब्रह्म-ईश्वरादि कौन, क्या है ? सुनो ! तू सत्य चैतन्य जीव अविनाशी है; और ये खानी-वाणीके आनन्दादि, ब्रह्म-ईश्वरादि देहका भास-अध्यास विनाशी, असत्य है; ऐसा तुम विवेक करके अब जानो ! ॥ १६४ ॥

८. आतमराम स्वतःपद पूरण ❀ गुरु पारख ठहराई ॥ १६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !
आतमराम = } वेदान्ती भ्रमिक गुरुवा-
स्वतःपद पूरण = } लोगोंने चराचरमें परिपूर्ण व्यापक आत्माराम एक ठहराकर स्वयं मुक्तपद अधिष्ठान उसको माने हैं। परन्तु—
गुरु पारख = } पारखी सद्गुरुने उसको सत्य
ठहराई = } निर्णयसे परखकर, उसे धोखा, कल्पना, ठहरा दिये। तथा सबका जनैया चैतन्य जीव ही नित्य-सत्य है, ऐसा बतलाकर पारख भूमिकामें जीवको ठहराकर स्थिति कायम करा दिये हैं ॥

व्याख्या— भ्रमिक बेपारखी गुरुवालोगोंने वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे चराचर जगत् सबमें परिपूर्ण व्यापक स्वतः एक आत्माराम सर्वाधिष्ठान मुक्तपद ठहराये हैं। और पूर्ण आत्माराम स्वयं अपनेको जानने या माननेसे मुक्ति बतलाये हैं। परन्तु, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने तथा आपके अनुयायी पारखी सन्तोंने उस बातको नर जीवोंकी कल्पना ही दिखा दिये हैं। क्योंकि, एक ही वस्तु सबमें व्यापक हो ही नहीं सकता है। जड़-चैतन्यका गुण-लक्षण न्यारा-न्यारा प्रत्यक्ष ही है। सो किसी हालतमें भी एक नहीं हो सकता है। सब वस्तु एकदेशी होनेसे स्वरूपसे जड़ और चैतन्य पृथक्-पृथक् ही हैं। सबका द्रष्टा चैतन्य जीव है; ऐसी सत्यासत्यकी परीक्षाकर सद्गुरुने सर्वश्रेष्ठ पारख सिद्धान्तको सत्य ठहराये हैं। हे हंस जीव ! तुम उसी पारखमें ही ठहर जाओ ! परखकर सब मानन्दी-को त्याग दो ! ॥ १६५ ॥

९. कहहिं कबीर ठहर पद अपने ❀ दूजा काल कसाई ॥ १६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

कहहिं कबीर = ठहर पद अपने = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहना ऐसा है कि, हे मनुष्यो ! सब मानन्दीको छोड़कर अपनी मुक्तिकी भूमिका निजपद पारखमें ही ठहर जाओ ! स्थिर होकर शान्त हो जाओ !

दूजा काल = कसाई = चेतन जीवसे भिन्न और कोई दूसरा जगत्कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि माना हुआ मिथ्या कल्पनाको मालिक सत्य ठहराकर, उसमें लगने-लगानेवाले गुरुवालोग कसाईके समान घातक काल बने हैं; अतः परखकर उनसे न्यारा हो रहो, यही सद्गुरुका सत्य निर्णय है, सो जानो ! ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ऐसा कहा है कि, पारख स्थितिके हुए बिना जीवोंकी गति-मुक्ति कदापि हो नहीं सकती है, इसलिये अपने निजपद वा स्व-स्वरूप पारख-पदमें ही हे हंस जीव ! तू अभी ठहर ! स्थिति कायम कर ! उसीसे जीवन्मुक्त हो जायगा, सो जान ! और जीवसे भिन्न बतानेवाले अनुमान-कल्पना खानी-वाणी प्रपञ्च ये सब जीवोंको कसनेवाले, बन्धनोंमें बाँधनेवाले हैं। जीवोंको भटकानेवाले गुरुवालोग और स्त्रियाँ आदि सब घातक कसाई काल बने हैं। इसलिये दूसरे विजातीय भ्रमिकोंके सङ्ग-कुसङ्गको परखकर छोड़ दो ! सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही रहकर निजपदमें ठहराव करो ! यही सद्गुरुकी मुख्य सत् शिक्षा है, ऐसा जान लो ! ॥ १६६ ॥

॥ ❀ ॥ ७ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा— ७ ॥ खण्ड— १३ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— हे गुरु दीन दयाल ! * हंस स्वतः दातार पद ॥
[९] मेटन यमको जाल * मङ्गलरूप गुरु साधु हो ! ॥ १६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर जिज्ञासु शिष्यका सातवाँ प्रश्नरूप शङ्का कहते हैं— शिष्य कहता है—

हे गुरु दीनदयाल ! = हे सद्गुरो ! आप दीन दुःखी हम जीवोंपर दया करनेवाले दयाके सुन्दर स्वरूप हो ! हे दीनदयालु सद्गुरु साहेब !—

हंस स्वतः = दातार पद = मुमुक्षुओंको स्वयं स्वरूप चैतन्य पारखपदके बोधदाता आप हो !—

मेटन यम- को जाल = यमरूप गुरुवालोग और नारियों-की खानी-वाणीके सब जालोंको परखाकर मिटा देनेवाले हो ! और—

मङ्गलरूप = गुरु साधु हो ! = कल्याणकारी मङ्गलस्वरूपी पारखी सद्गुरु सच्चे साधु आप हो ! हे साधु-गुरु ! आप ही जीवोंके मङ्गलकारी हो ! आपने दया करके यथार्थ उपदेश समझाये हो ! अर्थात् हंसजीवको स्वतः पारखपदका बोध देकर यमजालको मेट देनेवाले हे गुरु दीनदयाल ! आप मङ्गल स्वरूप साधु सद्गुरु हो ! ऐसा मैंने जाना वा पहिचाना है ॥

व्याख्या— फिर प्रश्नके सिलसिलामें शिष्यने शङ्का प्रगट करके कहा कि, हे दीनदयालु सद्गुरुदेव ! आप तो हंस जीवोंको स्वतःपद पारखबोधके दान देनेवाले, ऐसे दाता हो ! और यमजालको मेटनेवाले आप स्वयं मङ्गल स्वरूप साधु-गुरु हो ! ऐसा अब मैंने आपको पहिचान पाया हूँ ! ॥ १६७ ॥

सोरठाः— शङ्का रही चित एक * सो पूछत अति सकुच मोही ॥
[१०] कहिये जथा विवेक * कैसे काल दयाल भौ ? ॥ १६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यकी शङ्का कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

शङ्का रही = चित एक = हे सद्गुरो ! मेरे चित्तमें एक शङ्का बाकी रह गई है, यानी अभी मेरे मनमें एक सन्देह उत्पन्न हो गया है ।

सो पूछत अति = सकुच मोही = सो वह शङ्का प्रगट करके आपसे पूछनेमें मुझे बड़ा

सङ्कोच हो रहा है। मैं दुविधामें पड़ा हूँ, क्या करूँ? विना पूछे सन्देह छूट भी तो नहीं सकता है। इसीसे मैं लाचारीसे पूछता हूँ; आप दया करिये!

कहिये जथा विवेक=हे सद्गुरो! यथार्थ विवेकसे सत्यबोध देकर मुझे समझाकर दया या कृपा करके यह बात जैसे विवेकसे ठहरती हो, सो बतलाइये? कहिये!

कैसे काल दयाल भो?= 'काल और दयाल' यह दो पद कैसे हुआ? अथवा, नाना कल्पनामें पड़ा हुआ जो काल था, सो उन सब कल्पनाओंसे छूटकर दयाल कैसे हो गया? वा कैसे दयाल होयगा? सो दर्शाइये॥

व्याख्या— एक शङ्का और उत्पन्न होकर सो मेरे चित्तमें अभी समाधान होनेसे बाकी ही रही हुई है। सो प्रगट करके पूछनेमें मुझे अत्यन्त सङ्कोच हो रहा है। इसलिये कि, विशेष कहने-समझानेमें आपको तकलीफ न होवे, ऐसा शोचकर मैं डर रहा हूँ। (तब सद्गुरुने उसे निःसङ्कोच होकर पूछनेकी आज्ञा दिये, तो शिष्य बोला कि—) 'काल और दयाल' यह दो भेद कैसे हुआ? अथवा, पहले जो काल कुटिल था, तो फिर पीछे वह पलटकर कैसे दयाल हो गया? विवेकसे जैसा ठहरता हो, वैसे ही यथार्थ बात समझाकर कहिये! जिससे मैं भी उसका विवेक-विचार कर सकूँ! सो भेद लखाइये!॥ १६८॥

॥ ❀ ॥ ७ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- ७ ॥ खण्ड- १४ ॥ चौपाई भाग- ७ ॥ ❀ ॥

१. कल्पित इच्छा ब्रह्म कहावा * ब्रह्मकी इच्छा माया गावा॥ १६९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! तुम्हारे प्रश्नका उत्तर शुरूसे कहता हूँ, सो ध्यान पूर्वक श्रवण करो! अनादि कालका यह संसार है; इसमें मनुष्य जीव श्रेष्ठ हैं।—

कल्पित इच्छा ब्रह्म कहावा= नरजीवोंने वेदान्तका श्रवण-मनन करके अपनी इच्छासे स्वयं कल्पित एक अद्वैत व्यापक ब्रह्म कहलाया या 'मैं ब्रह्म हूँ!' ऐसा कहने लगा।

ब्रह्मकी इच्छा माया गावा= फिर कल्पित ब्रह्मकी इच्छासे आदिमाया अष्टाङ्गीकी उत्पत्ति हुई, ऐसा कथन करके गाया या वर्णन किया है॥

व्याख्या— तब सद्गुरुने समाधान करनेके लिये उत्तर देते हुए कहा— हे शिष्य! अनादि कालके जगत्में भ्रमिक नरजीवोंने कल्पना कर-करके नाना प्रकारसे मिथ्या मानन्दी दृढ़ किये। तहाँ कल्पित इच्छासे नरजीव अपने स्वयं ही भ्रमसे ब्रह्म कहलाये और 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगे। तत्पश्चात् कल्पनाको और भी आगे बढ़ाये, तो निरञ्जन ब्रह्मकी इच्छासे ही इच्छारूपिणी आदिमाया वा महामाया या मूल प्रकृति प्रगट हुई। ऐसा वाणीसे कथन वर्णन करके गाये हैं; ब्रह्मसे मायाकी उत्पत्ति हुई, ऐसा कहा है॥ १६९॥

२. ताते त्रिगुण भये मन भाई! * मन मानै चौरासी जाई॥ १७०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ताते त्रिगुण भये मन भाई!= हे भाई! उसी ब्रह्म और मायासे त्रिगुणरूप ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी उत्पत्ति मान लिये हैं। सोई तनरूप काया-मायामें मन-मानन्दीसे अनेक तरहसे ब्रह्म-जगत्की भावना जीवसे टिकाया, वही त्रिगुणी सृष्टि उत्पन्न हुई।

मन मानै चौरासी जाई= वहाँ काम, क्रोध, मोह मनमें टिका रहा। इसप्रकार मन-मानन्दी जड़ाध्यासको लेकर जीव चारखानीकी अनेक चौरासी योनियोंमें गये और जा रहे हैं। यानी मनसे ब्रह्म और जगत्को मान-मानकर ही चौरासी योनियोंमें गये और जाते हैं॥

व्याख्या— फिर हे भाई! उससे सत्त्व, रज, तम-ये त्रिगुण सहित 'मन' उत्पन्न हो गये। उसी त्रिगुण वा त्रिदेवकी भावना बढ़ी। और तहाँ मनमाने वैसे मानन्दी-अध्यास बढ़ाय-बढ़ायके चौरासी योनियोंमें गये या ऐसी मन-मानन्दी करनेसे जीव सब चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं॥१७०॥

३. कल्पित सृष्टि भयो विस्तारा ❀ परे जीव सब ब्रह्मकी धारा ॥ १७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

कल्पित सृष्टि = सो ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरसृष्टि
भयो विस्तारा = कल्पित हैं। परन्तु, वेद, शास्त्रादि वाणी रचना करके कल्पित वाणी-का प्रचार बहुत विस्तारसे हुआ। ऐसे संसारमें भ्रमका विस्तार हो गया ❀।

परे जीव सब = तब अज्ञानी नरजीव सब
ब्रह्मकी धारा = गुरुवालोगोंके वाणी प्रमाणसे ब्रह्म-भ्रमकी धारामें आवागमनमें ही सब जा पड़े ॥

व्याख्या— इसप्रकार कल्पित ब्रह्मसृष्टिसे संसारमें वाणी-खानीका ही खूब विस्तार हुआ, और सब अबोध नरजीव ब्रह्मकी धारा वा वाणीके प्रवाहमें ही पड़ गये। तहाँ मन, बुद्धि, वाणीसे परे ब्रह्मको मानकर उसी धोखेकी धारणा करके महा भ्रम चक्रमें ही जीव जा पड़े। इसीसे जन्म-मरणकी धारामें सब बहते चले जा रहे हैं ॥ १७१ ॥

४. दुखित सुखित तेहि पद अनुरागी ❀ जगै न मोह जनित बुद्धि लागी ॥ १७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

दुखित सुखित = इधर संसारमें त्रिविधि-
तेहि पद अनुरागी = तापमें दुःखित-सन्तप्त होकर सुख प्राप्तिके वास्ते ब्रह्मपदको सुखरूप मानकर उसी पदके अनुरागी सब नरजीव हुए। जिस ब्रह्ममें इन्होंने प्रेम लगाये हैं, सो तो दुःखका ही घर है। उससे मुक्तिरूपी सुख कहाँसे होगा ?—

जगै न मोह = परन्तु, महा मोहसे उत्पन्न
जनित = आवरण-पर्दा बुद्धिमें लगी हुई
बुद्धि लागी = है या ढकी हुई है, अतः बुद्धिहीन हो रहे हैं, इसलिये गाफिलीसे नहीं जागते हैं, महा अज्ञान मोह-निद्रासे नहीं जागते हैं, और जगानेपर भी नहीं चेतते हैं ॥

व्याख्या— दुःखी-सुखी होकर भ्रमिक लोग उसी कल्पित ब्रह्मपदके अनुरागी हुए या हो रहे हैं। दुःखिया जीव सुख प्राप्तिकी इच्छा करते हैं, परन्तु, कल्पनासे किसीको सुख नहीं मिलता है। बल्कि, कष्टकर नाना साधनाओंमें लगकर और भी दुःखी हो जाते हैं। तो भी मोह जनित बुद्धिमें भ्रम लगा हुआ है, इसीसे चेताकर जगानेपर भी वे लोग चेत करके नहीं जगते हैं। गाफिलीमें मस्त होकर अचेत ही पड़े हैं, बिना विवेक ॥ १७२ ॥

५. सुख मानै चौरासी खानी ❀ भुगतै कष्ट न परै पहिचानी ॥ १७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सुख मानै = ब्रह्मानन्द और विषयानन्दोंके
चौरासी खानी = सुखके सूक्ष्म अहङ्काररूप जड़ाध्याससे ही जीव चारखानी चौरासी-योनियोंमें जा पड़े हैं। सो वहाँपर दुःखके जगहमें भी विषयादि भोगोंको सुख ही करके मान रहे हैं। उसीसे फिर-फिर चार-खानीके चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं।

और—

भुगतै कष्ट न = उसीसे वहाँपर अनेकों कष्ट-
परै पहिचानी = क्लेश त्रिविधि तापादि भुगत रहे हैं, तो भी 'यह सुख माना हुआ विषय ही हमें कष्टदायी बीज है', यह पहिचान नहीं पड़ता है; बिना पारख यह पहिचाना नहीं जाता है ॥

व्याख्या— ब्रह्मको सुख स्वरूप मानकर फिर चौरासी योनियोंके खानीमें ही जाकर जीव पड़ते हैं। तहाँ चौरासी योनियोंके खानीमें ही विषय क्रियामें सब जीव सुख मानकर आसक्तिमें पड़े हैं। जहाँ-तहाँ नाना कष्ट-क्लेशको ही भुगतते हैं। तो भी दुःख भोगनेका कारण 'भ्रम, धोखा और विषयासक्ति ही है', उन्हें यह पहिचान ही नहीं पड़ता है, बिना पारख भूलमें ही पड़े हैं ॥ १७३ ॥

❀ दोहाः—"एक ब्रह्म कारण जगत्, कारज है बहुभाँति। चतुर खानि विस्तार यह, लख चौरासी जाति ॥" ॥ शा० स० ॥

पं० प्र० टीका; ८६—

६. ऐसेहि बहुत दिवस गै बीती ❀ एकै जमा अनेकन रीती ॥ १७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!
ऐसेहि बहुत दिवस गै बीती = इसीप्रकार वा इसीतरहसे ऐसे ही बहुत जन्म, अनेकों दिन, अनेकों नरदेह, यों ही व्यतीत हो गये वा व्यर्थ चले गये। अनादि प्रवाह-रूप बन्धनमें जीव सब पड़े ही हुए हैं।
एकै जमा = जीव तो एक नरदेहमें एक ही जमापद सत्य चैतन्य है। परन्तु, एक जीवको फँसानेके वास्ते—
अनेकन रीती = अनेकों रीति-रिवाज, चाल, नाना मत, पन्थ, ग्रन्थ अनेक सिद्धान्त बने हैं। उन्हीं सबमें जाकर मनुष्य जीव फँस जाते हैं। इसलिये अनेकों तरहसे दुःख पाते हैं, बिना विचार ॥

व्याख्या— ऐसे-ही-तैसेमें इसीतरहसे बहुत दिन, बहुत वर्ष, अनेकों नरजन्म ज्ञान खानी मनुष्य देह यों ही व्यर्थमें बीत गये। कहीं कभी ठौर-ठिकाना नहीं लगा। आवागमन प्रवाह चलता ही चला आ रहा है। जीव जमा तो अपने-अपने देहमें एक-एक ही सत्य था; परन्तु, संसारमें अनेकों रीति-रिवाज प्रचलित होती चली आ रही है। वाणी-खानीके जाल अनेकों तरहसे फैले हुए हैं, सब जीव उसीमें बन्धे पड़े हैं, बिना विचार ॥ १७४ ॥

७. देखि अनेक रीति अकुलाना ❀ निज शोधन तब कियो सुजाना ॥ १७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
देखि अनेक रीति अकुलाना = अनेकों रीति, मत-मतान्तर, नाना सिद्धान्त, ग्रन्थ, पन्थ, उन सबमें अनुमान-कल्पना ही भरी हुई देख करके शुभ संस्कारी मनुष्य घबड़ायके व्याकुल हुए कि, इसतरहसे जीवका कल्याण कैसे होयगा ?—
तब = तब सब तरफ देख-सुन करके—
निज शोधन कियो सुजाना = सत्यासत्यका निर्णय करके स्वयं निज स्वरूपका शोधन किया। सच्चे जानकार पूर्ण संस्कारी होनेसे उन बुद्धिमान् नरजीवको—"मैं शुद्ध ज्ञान स्वरूप हूँ, चैतन्य जीव ही सबका स्थापक जनैया है, मैं नित्य सत्य हूँ!" ऐसा पारख बोधका ज्ञान उदय हुआ। वे ही कायावीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब प्रगट हुए ॥

व्याख्या— जब कोई विवेकी, विचारवान्, शुभ संस्कारी, परीक्षक पुरुष अनेक रीति-रिवाज, मत, पन्थ, ग्रन्थोंके वैर-विरोध देख-सुनकर अकुला गये, उस तरफसे घबड़ाकर उदास हो गये। तब उन सुजान महापुरुषने एकान्तमें बैठकर निज स्वरूपका ही यथार्थ रीतिसे शोधन किये। विवेक-विचारसे सबकी परीक्षा किये, तो अपने परीक्षक चैतन्य जीवको सत्य सबसे पृथक् स्वयमेव जान पाये ॥ १७५ ॥

८. सत्य विचार धीरता पाई ❀ दया शील उर बसो सहाई ॥ १७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
सत्य विचार धीरता पाई = फिर उन्होंने अपने सत्यकी रक्षाके वास्ते रहनीके लिये सत्य, विचार और धीरता, गम्भीरता, शूर-वीरताको प्राप्त किये या उन सद्गुणोंको अपनेमें धारण कर लिये।
दया शील उर बसो सहाई = तहाँ निजदया, परदया, सहनशीलता, नम्रता, कोमलता इत्यादि सद्गुण-लक्षण हंसदेह-की रहनी सब अन्तःकरणमें बैठाये; उसीकी सहायतासे पारखका प्रकाश किये। सो वे ही सद्गुण पारखबोध प्राप्ति करनेमें सहायक हैं ॥

व्याख्या— इसीसे उन्होंने स्वयं ही सत्यस्वरूपमें स्थितिके लिये सत्यकी रहनी लिये, गुरु विचारको हृदयमें ठहराये। धैर्य, गम्भीरताको प्राप्त किये, दयाको धारण किये। शील स्वभावको अपने पासमें रख लिये। यह पाँचों शुद्ध तत्त्व हृदयमें सहायक होकर सदाके लिये बैठ गये। अतः वे विवेकी हंस पारखी हो गये ॥ १७६ ॥

९. प्रेम गोहार स्वतः पद देखा * इन्हके लहत सब मिटै अलेखा ॥ १७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

प्रेम गोहार = स्वतः पारखपदके द्रष्टा पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर
स्वतः पद = शुभ संस्कारी मुमुक्षुने जब
देखा = प्रेम पूर्वक सत्यबोध देनेके लिये पुकारा, प्रार्थना किया, तब सद्गुरुने स्वयं चैतन्य जीवको सत्य लखाये, तो उस हंसने भी गुरुपद पारखको यथार्थ विवेकदृष्टिसे देखा।

इन्हके लहत = सो गुरुबोध पारखको प्राप्त करनेसे सब कल्पना, अनुमान
सब मिटै = अलेख ब्रह्म-ईश्वरादिकी
अलेखा = मानन्दी मिट गयी, भ्रम छूट गयी, लेख-अलेख दोनोंकी मानन्दी मिट गयी ॥

व्याख्या— पूर्वोक्त प्रकारसे जब हंसने स्वतः ही पारखपदको देखा, जाना, समझा, बूझा, तब अन्य स्वजातीय मनुष्योंमें जिज्ञासुलोगोंकी भ्रम-भूल मिटा देनेकी दया प्रगट हुई। इसीसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने प्रेमसे गुरुमुख निर्णयको पुकारा किये, सत्यन्यायको परखाये। फिर आपके पारख बोध प्राप्त होते ही सब भ्रम-भूल मिट गई। अलेख ब्रह्मकी कल्पना भी मिट गई। अर्थात् आन्तरिक सत्य प्रेमका पुकारा होनेसे दिव्य-दृष्टि खुलकर शुद्ध संस्कारी पुरुषने स्वतः पारखपदको देखा-जाना। उस बोधके मिलते ही सब अलेख, अदृश्य अनुमान, कल्पना आदि मिट गई। निज स्वरूपमें स्थिति हो गई ॥ १७७ ॥

१०. ठहरि यथारथ पारख कीन्हा * लहत प्रकाश स्वतः पद चीन्हा ॥ १७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ठहरि यथारथ = तब सत्सङ्गमें ठहरकर मन,
पारख कीन्हा = बुद्धिको स्थिर करके सद्गुरुके सत्यन्यायसे यथार्थ सत्य निर्णय कर सत्य-असत्यकी परीक्षा किये, और द्रष्टा पारख स्वयं स्वरूपको मालूम कर लिये; ऐसे पारखका बोध प्राप्त किये।

लहत प्रकाश = 'सबका जनैया जान-
स्वतः पद चीन्हा = मात्र चैतन्य जीव मैं सबसे न्यारा हूँ !' ऐसे स्वयं द्रष्टापदको गुरु पारखका प्रकाश हृदयमें उदय होते ही निजस्वरूपको पहिचान लिया। अपरोक्ष अनुभव कर लिया। यानी अनुभवसे मालूम हो गया कि, जीव ही सत्य है ॥

व्याख्या— तब विवेकमें ठहरकर यथार्थ पारख विचार किये। गुरुबोधका अपरोक्ष पारख प्रकाश प्राप्त होनेसे 'स्वतःपद वा निज स्वयं स्वरूप चैतन्य जीव ही सत्य है', ऐसे चीन्ह कर पहिचान लिये। फिर उनका सब सन्देह निवृत हो गया ॥ १७८ ॥

११. स्वतः दृष्टि जब जेहि भइ भाई ! * सोई गुरुपद ठहरे परखाई ॥ १७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

स्वतः दृष्टि = इसतरह हे भाई ! अनेकों
जब जेहि = शुभ सञ्चित ज्ञान संस्कारके
भइ भाई ! = प्रतापसे स्वयं चैतन्य जीव सत्य है, ऐसी पारखदृष्टि जब जिसको हुई या हो जाती है, जिसको पारखमें भाव हो गया, सो खानी-वाणीके सकल भव-बन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो गया या मुक्त हो जाता है।

सोई गुरुपद = सोई पारखी सन्त सद्गुरुके
ठहरे परखाई = पारखपदमें ठहरकर स्वयं निर्बन्ध, निर्भय होकर दूसरे जिज्ञासुओंको भी सकल जाल परखा देते हैं, और स्वयं जीवन्मुक्त होकर दूसरेको भी मुक्त कर देते हैं ॥

व्याख्या— हे भाई ! जब कभी ऐसे जिस किसी पुरुषको स्वयं स्वरूपकी सत्यताका बोध स्वतः पारखदृष्टि उदय हुई, सोई गुरुपदमें स्वयं ठहरे, और फिर दूसरेको भी वह बोध परखाये वा परखाने लगे, तो वे ही पारखी सद्गुरु कहलाये ॥ १७९ ॥

१२. पारखमें ठहरे बुद्धिवन्ता * देखी दशा निज नाहि न हन्ता ॥ १८० ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! पारखमें ठहरे = कोई तीव्र बुद्धिमान् निष्पक्ष बुद्धिवन्ता = मुमुक्षु ही सद्गुरुके सत्य सिद्धान्तरूप पारखपदमें ठहर सकता है; और जो कोई पारख स्वरूपमें ठहरे हैं या ठहर गये, सोई बुद्धिमान् पारखी सत्यन्यायी सन्त होते हैं।

देखी दशा निज = ऐसे पारखी सन्त नाहि न हन्ता = निरभिमानी, परिणामदर्शी परीक्षक होते हैं। इसलिये अपने शुद्ध भेष, शुद्ध वाणी, शुभाचरण, हंस गुण-लक्षणोंकी धारणा, मुक्ति स्थितिकी दशा देखकर किसी तरहकी हन्ता-ममता वे नहीं रखते हैं; उनमें कोई हन्ता नहीं रहती है ॥

व्याख्या— कोई विवेकी बुद्धिमान् सत्पुरुष ही पारखपदमें ठहरे और ठहर सकते हैं। वे परीक्षक पारखी होनेसे अपनी हंस दशा जीवन्मुक्ति स्थितिको प्रत्यक्ष देखते रहते हैं। तथापि उनमें किसी प्रकारकी हन्ता नहीं होती है, अपनी सर्वोच्च श्रेष्ठ दशा देखकर भी वे कभी अहङ्कार नहीं करते हैं; सदा नम्र, निरहङ्कारी हो रहते हैं ॥ १८० ॥

१३. मन माया कृत जे जे जाला * जीवहिं दृष्टि निज दीनदयाला ॥ १८१ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! मन माया कृत = मायारूप गुरुवालोगोंने जे जे जाला = मनकी मानन्दी कल्पनासे बनाये हुए वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि और ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, भूत-प्रेतादि जौन-जौन जितने भी झीनी जाल हैं, सो और मन-माया, तन-कायासे उत्पन्न स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब धनादि मोटी खानी जाल जो-जो विषय हैं, सो सब जीवोंको बन्धन हैं; ऐसा यथार्थ भेद बतलायके—

जीवहिं दृष्टि निज = नरजीवोंको यथार्थ दीनदयाला = पारखदृष्टि दिखा दिये, वही दीनदयालु सद्गुरु हुए। अथवा सब जाल परखनेकी निज स्वरूपका ज्ञान परीक्षादृष्टि जिनको हो गयी, वे ही दीनदयालु पारखी सद्गुरु हुए ॥

व्याख्या— जो-जो मन-मायाकृत मोटी-झीनी जाल हैं, सो-सो सब परीक्षादृष्टिसे परख-परखाकर निज-पर जीवोंको वही पारखदृष्टि दया करके लखा दिये। अथवा उन दीनदयालुने निज स्वरूपकी बोधदृष्टि जीवोंको खोलकर दिखला दिये। जिससे मन-मायाकृत सब जाल परखनेमें आ गया, और परित्याग हो गया ॥ १८१ ॥

१४. ताते नाम दयाल कहाये * जीवहिं निजुपद आपु लखाये ॥ १८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! ताते नाम = इसवास्ते वे नरजीव दयालु दयाल कहाये = पारखी सद्गुरु कहलाये। वे अपनेको बन्धनोंसे मुक्तकर दूसरोंको भी मुक्त करते हैं। इसलिये परमदयालु कहे जाते हैं।

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने—

जीवहिं निजुपद = निजपद पारखको स्वयं आपु लखाये = आप लखकर फिर अन्य मनुष्योंको भी दयादृष्टिसे लखाये। जीवन-जीव चैतन्य ही अपना पद या स्वरूप है, ऐसा आप पारखी सद्गुरुने लखाये, परखाये, समझाये हैं। अथवा आपने निज जीवको ही प्रथम पारख-पद लखाये ॥

व्याख्या— इसलिये उन विवेकी पारखी सन्तका नाम 'दयाल वा दयालु' कहा गया। वे दीनदयालु नामसे कहलाये; और अधिकारी मुमुक्षु नरजीवोंको आपने ही निजपद पारखको लखाये हैं। पारखको स्वयं जानकर अन्य जीवोंको भी निजपद लखा दिये हैं ॥ १८२ ॥

१५. लखै वचन ताके जो जीऊ * सो गुरु सो शिष्य साधु सो पीऊ ॥ १८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

लखै वचन = } जो नरजीव ऐसे पारखी
ताके जो जीऊ = } सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाकर उनके सत्यन्याय निर्णयकी गुरुमुख वाणीको लख लेते या समझ लेते हैं, सो चैतन्य जीव निज स्वरूप ही सद्वस्तु है, ऐसा जान जाते हैं।

सो गुरु = बोधवान् सत्य निर्णयके उपदेशदाता सब कल्पनाको परखानेवाले, सारासार लखानेवाले, पारख प्रकाशी पारखी होवें, सोई सद्गुरु बन्दीछोर हैं। और—

सो शिष्य = हे शिष्य ! ऐसे सद्गुरुके सत्य उपदेशको जो ग्रहण करते हैं, धारण करते हैं, आज्ञा पालन करते हैं, तन-मनादि निछावर कर गुरुपदमें दृढ़ रहते हैं, सोई सत् शिष्य मुमुक्षु मुक्तिके अधिकारी होते हैं।

साधु सो = } साधु भेष त्याग-वैराग्यमें ही
पीऊ = } पारखी सद्गुरु रहते हैं। सो सब साधुओंसे श्रेष्ठ साधुपति या स्वामी हैं। सोई साधुके पीऊ = प्यारे पिया हैं॥

व्याख्या— जो नरजीव उन पारखी सन्तके निर्णय गुरुमुख वचनको सुन-गुनकर लखते हैं, वे चैतन्य जीवको ही नित्य-सत्य जान जाते हैं। और ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पित भ्रम असत्य है, ऐसा पहिचान कर लेते हैं। सो पारख बोधदाता सद्गुरु हैं, और उपदेशको ग्रहण करनेवाले श्रद्धालु जिज्ञासु आज्ञाकारी, सोई सच्चा शिष्य है। और त्याग-वैराग्यमें प्रवीण सोई साधु-गुरु जिज्ञासुके प्रिय तथा पतको रखनेवाले पति या स्वामी हैं। सद्गुरुके वचन लखनेवाले भी उसी तरह श्रेष्ठ हो जाते हैं॥ १८३॥

१६. हंसन नाह साहेब गुरुदेवा ❀ बन्दीछोर कालको भेवा॥ १८४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

हंसन नाह = } जड़-चेतन निर्णयी हंस
साहेब गुरुदेवा = } जीवोंके मालिक या राजाके समान सर्वश्रेष्ठ सद्गुरुसाहेब हैं, वे पारख-बोधदाता परम पारखी ऐसे सद्गुरुदेव दयालु प्रभु हैं। और—

बन्दीछोर = } कालके सब भेदोंको जाननेवाले सद्गुरुदेव कालके
कालको भेवा = } बन्धनरूप जालोंसे जीवोंको छुड़ाकर मुक्त कर देते हैं, इसलिये बन्दीछोर हैं॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा आपके अनुयायी पारखी सन्त ही 'बन्दीछोर' हैं। आपने सम्पूर्ण कालका भेद परखाकर नरजीवोंको भव-बन्धनसे मुक्त किये हैं। अतः आप सद्गुरुदेव हंस जीवोंके नाह = मालिक-राजाके समान श्रेष्ठ परमपूज्य साहेब हैं। उन्हींका उपदेश ग्रहण करनेसे जीवोंका कल्याण होता है॥ १८४॥

१७. अशरण शरण ताहिको बाना ❀ दीन उद्धारण हंस सुजाना॥ १८५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अशरण शरण = } अशरण नरजीवको शरणमें
ताहिको बाना = } लेकर रक्षा करनेवाले सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबसे निकला हुआ साधुका सच्चा त्याग भेष जो है, सोई पारखी सद्गुरुका भेष बन्धन छुड़ानेवाला रक्षक है।

दीन उद्धारण = } पारखी सद्गुरु सत्यासत्यके
हंस सुजाना = } जानकार हैं। शरणमें आये हुए दीन जीवोंको उद्धारकर निजवत् हंस गुणधारी बनाकर सुजान, बोधवान् कर देते हैं॥

व्याख्या— दीन-दुःखी नरजीवोंका भ्रम मिटाकर उद्धार करनेवाले सत्यासत्यके अच्छे जानकार सुजान वे ही हंस पारखी होते हैं। उनके ही बाना = त्यागी साधुका भेष, चिह्न, रहनी-रहस्य जो है, सो अशरण = असहाय जीवोंको शरण = आश्रय देनेवाला है। अतः उन्हींका भेष, उपदेश लेना हितकारी है॥ १८५॥

१८. उग्र प्रत्यक्ष गुरु गम्भीरा ❀ सुनु शिष्य ! सो दयाल पद थीरा॥ १८६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उग्र प्रत्यक्ष = सबसे बढ़कर श्रेष्ठ सूर्यके
गुरु गम्भीरा = समान तीव्र उग्र प्रत्यक्ष
पारख सद्ज्ञानके दाता सद्गुरु गम्भीर
अतिशय धीर वीर श्रीकबीरसाहेब सद्गुरुके
अनुयायी पारख बोध दाता पारखी सन्त
प्रत्यक्ष हैं। सो सद्गुरुके ज्ञानको गम्भीर
विचारसे—

सुनु शिष्य = हे शिष्य ! तुम चित्त लगाकर
सो दयाल = सुनो ! सोई दयालु सद्गुरुका
पद थीरा = स्थिरपद पारखपद है। गुरु
उपदेशको श्रवण-मनादि करके उसी
दयालके पदरूप पारखमें तुम भी स्थिर
हो जाओ ! ॥

व्याख्या— प्रत्यक्षमें गुरुपद गम्भीर, शान्त, अचल, अटल और उग्र=बड़ा, सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ है। हे शिष्य ! सुनो, सोई दयालपद, गुरुपद वा पारखपद है। जो स्वयं सदा स्थिर है। उस पदमें पहुँचनेवाले भी स्थिर, जीवन्मुक्त हो जाते हैं; अतः उसी पदमें पहुँचनेके लिये तुम सतत प्रयत्न किया करो ॥ १८६ ॥

१९. सुन गुरु वचन ठहरे पद जोई * सो शिष्य स्थिर निज पदमें होई ॥ १८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सुन गुरु वचन = ऐसे पारखी सद्गुरुके
ठहरे पद जोई = निर्णय वचन सत्य उपदेश-
को श्रद्धासे सुनकर विचारपूर्वक निजपद
पारखमें जो कोई ठहर गये या ठहर जाते
हैं, वृत्ति स्थिर करते हैं, सार ग्रहण करते
हैं, वैसे ही—

सो शिष्य = सत् शिष्य या सोई सच्चा
स्थिर निज- = शिष्य है। सोई जिज्ञासु शिष्य
पदमें होई = निजस्वरूप चैतन्यपदमें स्थिर
होकर जीवन्मुक्त हो जाता है। उसीका
आवागमन मिट जाता है, ऐसा जान लो ! ॥

व्याख्या— जो पारखी सद्गुरुके सत्यन्याय निर्णयका वचन उपदेश सुन-गुन करके पारख-पदमें ठहर गये वा ठहर जावेंगे; हे शिष्य ! सो वे जिज्ञासुजन अवश्य ही निजपदमें स्थिर, निर्बन्ध हुए हैं; और ऐसे लोग अभी भी स्थिर होवेंगे। उनके चञ्चलतारूप सब बन्धन सर्वथा मिट जायेंगे ॥ १८७ ॥

२०. परख परखावन जीवन केरा * यह व्यवहार यथार्थ निवेरा ॥ १८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

परख परखावन = पारखी सन्त स्वयं काल,
जीवन केरा = सन्धि, झाँईं, वाणी-खानी,
जड़-चेतन, ज्ञान-अज्ञान, आदि-अनादि,
कार्य-कारण, बन्धन-मुक्तिकी परीक्षा
करके दूसरोंको भी सत्यज्ञान परखाकर
जीवोंके कल्याण करते हैं।

यह व्यवहार = यह हंसदेहका शुद्ध व्यवहार
यथार्थ निवेरा = पारखी साधु-गुरुका यथार्थ
सत्य निर्णय करनेके वास्ते रहता है।
असारका त्याग और सारका ग्रहण करते-
कराते हुए वर्तमानमें बरतना जीवन्मुक्तका
यही यथार्थ निर्णयका व्यवहार रह जाता है ॥

व्याख्या— सकल काल-जालको अपने परखना तथा सत्सङ्गमें अन्य जिज्ञासु नरजीवोंको भी परखाना। हंसवत् नीर-क्षीररूप जड़-चैतन्यका यथार्थ निवेरा या निर्णयसे परीक्षा करना। कसर-खोटको त्यागकर सत्य रहनीको लेना। पारखी सन्तोंका यही शुद्ध व्यवहार, सदाचार, शुभ बर्ताव देह रहे तक रहता है ॥ १८८ ॥

२१. सुनु शिष्य ! यह पद आहि दयाला * नाशक नष्टमई गुण काला ॥ १८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुनु शिष्य ! यह पद = हे सुबुद्धि शिष्य !
आहि दयाला = सुनो ! पारखपद
सत्य यथार्थ गुरु निर्णय यही 'दयालपद
या दयालु सद्गुरुका पद है।' जिससे सब
जीव भव-बन्धनोंसे छूट जाते हैं। और—

नाशक नष्टमई = अनुमान, कल्पना, धोखा,
गुण काला = विषयोंमें लगाकर सद्गुणों-

को विनाशकर जीवनको नष्ट करनेवाले ब्रह्म-ईश्वरादि नष्टरूपमें लगानेवाले, यही दुर्गुण कालरूप गुरुवालोगोंका रहता है। यही कालके जाल दुर्गुणको सद्गुरु विनाश कर देते हैं॥

व्याख्या— हे जिज्ञासु शिष्य! सुनो! यही पारखपद ही सद्गुरुकी स्थिति-ठहरावकी भूमिका 'दयालपद' है; और मुक्तिको नशानेवाला, भव-बन्धनमें डालनेवाला, ऐसे गुरुवालोगोंका नाशक नष्टरूप कालका काला गुण महान अज्ञान है। उसे नशायके हंसको मुक्त करनेवाले सोई सद्गुरु दयालका महान पारखपद है॥ १८९॥

२२. परख जथारथ ज्योंलों न पावै ❀ तौलों कस दयालपद पावै ?॥ १९०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

परख जथारथ = जबतक नरजीव सत्य
ज्योंलों न पावै = यथार्थ स्वरूपज्ञान पारख-बोध नहीं पाते हैं, तबतक कल्पना आदि कालके बन्धनोंसे छूट नहीं सकते हैं।

तौलों कस = फिर जबतक काल-कल्पनादि-
दयाल पद = से छूटकर पारखबोध नहीं
पावै ? = पाते हैं, वा परीक्षाकर नहीं पाते हैं, तबतक दयालपद या गुरुपदको जीव कैसे पा सकते हैं? पक्षपात और कल्पनाको परखकर छोड़े विना गुरुपदकी प्राप्ति नहीं होती है। इसीसे तबतक दयालपद कैसे पावेंगे? नहीं पा सकेंगे, ऐसा जानो!॥

व्याख्या— अरे भाई! जबतक यथार्थ पारख करनेका ढङ्ग नहीं आता है, सत्यासत्यकी पूर्ण परीक्षा बोध नहीं होता है, तबतक कोई भी जीव कैसे दयालपदको पावेगा? वा कैसे वह पद पा सकता है? कदापि नहीं पा सकता है; ऐसा जानना चाहिये॥ १९०॥

२३. काल कला ग्रन्थन बहु गाया ❀ सत्य शब्द गहि गुरु बताया॥ १९१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

काल कला = कालरूप गुरुवालोगोंने कल्पना-
ग्रन्थन = के अनेक विभाग करके नाना
बहु गाया = कला-कौशलसे वेद-शास्त्र, पुराण, कुरानादि अनेकों ग्रन्थ बनायके उन ग्रन्थोंमें बहुत प्रकारसे कल्पनाकी वाणी गाये हैं; वही वाणीका कथन करके प्रचार कर रक्खे हैं। तथा—

सत्य शब्द गहि = पारखी सद्गुरुने तो
गुरु बताया = सारशब्द यथार्थ निर्णय ग्रहण करनेको ही बतलाये हैं; और सत्य शब्दके उपदेश देकर जीव चैतन्य यही सत्य है; ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना असत्य है। ऐसा निर्णयकी गुरुमुख वाणी बतलायकर परखाये हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने एक ही बीजक सद्ग्रन्थ बनाये हैं, उसीमें यह निर्णय बतलाया है कि— "शब्द-शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजे!" इत्यादि साखीमें कहा है; सो जान लीजिये!॥

व्याख्या— कालकी कला-कल्पना बहुत प्रकारसे वर्णन करके वेद-शास्त्रादि ग्रन्थोंमें गाया गया है या कहा हुआ है। उसीमें सब लोग बिना विचारे भूल रहे हैं। और पारखी सद्गुरुने तो सत्यासत्यको निर्णय करके सारशब्दसे सत्य ठहराकर गुरुमुख निर्णयको ग्रहण करके जीव ही सत्य है, और मानन्दी असत्य है, ऐसा समझाकर सद्गुरुने पारखज्ञानको यथार्थरूपमें बतलाया है। अर्थात् काल-कला जो ग्रन्थोंमें बहुत प्रकारसे गाया है, गुरुवालोगोंने नरजीवोंको उसीमें भ्रमाकर भुला रक्खा है; और सत्य शब्दको ग्रहण करके परखकर असत्यको त्यागो! ऐसा पारखी सद्गुरुने सारग्राही होनेको बतलाया है; वैसे ही विवेक करके वर्तना चाहिये॥ १९१॥

२४. परखहु काल कला यह जीया ❀ परखि मेटो तासु गुण कीया॥ १९२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

परखहु काल = कला यह जीयाँ = } हे नरजीवो ! गुरु सत्सङ्ग में विचार करके बीजकके सत्य सिद्धान्तको ग्रहण करो ! कालने यह जीवोंपर जो कला-कल्पना डाला है, उसको परखो, अपना हृदय साफ करो। और—

परखि मेटो = तासु गुण = कीया = } उन गुरुवालोगोंका कल्पना किया हुआ भक्ति, योग, ज्ञान त्रिगुण प्रपञ्च तथा काम, क्रोध, मोहादि सबको परखकर मेट डारो या नशाय दो ! तब तुम्हारी स्थिति होयगी, सो जानो ! ॥

व्याख्या— अतएव हे जिज्ञासु जीवो ! जीते ही यह मोटी-झीनी सम्पूर्ण काल-कलाको परखो ! उसके गुप्त-प्रगट भेदको समझो-बूझो ! उस कालके त्रिगुणमें पसारा किया हुआ कर्त्तव्य और गुरुवालोग तथा स्त्रियोंकी दुर्गुण माया, मोह, आसक्ति यही तो महान् बन्धन है। उसे परख-परखकर मेटो, हटाओ, समूल विनाश करो ! और काल-जालसे बाहर निकल आओ ! सदा विवेकी सन्तोंके सत्सङ्गमें ही लगे रहो ॥ १९२ ॥

दोहाः— काल दयालके उभय गुण * कहेउँ यथार्थ प्रसङ्ग ॥
[६०] अब जो शङ्का रही चित * पूछहु शिष्य ! निःशङ्क ॥ १९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

काल = गुरुवा, स्त्री, कल्पना, विषयादि ये सब काल कहलाते हैं, यानी काल इन्हींको जानो ! वे जीवोंको दुःखदायी हो रहे हैं। और—

दयालके = दयालु सद्गुरुके सद्गुण प्रसिद्ध ही है। उन काल-जालोंको टालकर या छिन्न-भिन्न करके जीवोंको भव-बन्धनोंसे छुड़ाकर मुक्त, सुखी कर देते

उभय गुण = गुरु-गुरुवा, काल-दयाल, बन्धन-मुक्तिदायी इन दोनोंके दो प्रकारके विरोधी गुण-लक्षण हैं। सो एक-दूसरेसे भिन्न-भिन्न हैं।

कहेउँ = यथार्थ = प्रसङ्ग = } सो प्रसङ्ग प्रकरण प्रश्नके अनुसार यथार्थ लक्षण सार-असारके भेद दर्शाकर मैंने तुम्हें कहकर समझा दिया है, सो तो तुमने समझ ही लिया होगा।

अब जो शङ्का = अभी वर्तमानमें इस समयमें जो कुछ भी शङ्का, सन्देह, तर्क, दुविधा प्रश्न करनेकी—

रही चित = इच्छा तुम्हारे चित्त, मन या हृदय-अन्तःकरणमें बाकी रह गई होवे या कोई नयी ही शङ्का चित्तमें उत्पन्न हो रही हो या जो कुछ बात समझमें न आई हो—

पूछहु शिष्य ! निःशङ्क = तो हे जिज्ञासु प्रेमी शिष्य ! तुम मुझसे सङ्कोच रहित होकर पूछो ! मनमें कोई बातकी शङ्का मत् रक्खो। निःशङ्क या निडर होकर तुम्हें जो कुछ भी कहना हो, सो कहो, जो पूछना हो, सो पूछो ! उसका यथार्थ उत्तर देकर समाधान करनेका मैं प्रयत्न करूँगा ॥

व्याख्या— अर्थात् काल-कल्पना, गुरुवा, स्त्री आदि और 'दयाल' सद्गुरुके दो प्रकारके भिन्न-भिन्न गुण प्रसङ्गके अनुसार मैंने यह यथार्थ वर्णन करके कह दिया हूँ ! अब जो शङ्का चित्तमें रही हो, सो हे शिष्य ! तुम निःसङ्कोच भावसे पूछो ! जिससे तुम्हारी सकल शङ्का निवृत्त हो जायगी। ऐसा पारखी सद्गुरुने कहा। क्योंकि, प्रश्न सात (७) में शिष्यने कहा था कि, 'चित्तमें शङ्का रहते हुए भी पूछनेमें अत्यन्त सङ्कोच होता है। बिना पूछे बोध भी नहीं होता है, सो इसीवास्ते यहाँपर उत्तर पूरा करके फिर पूछनेके वास्ते सन्देह-सङ्कोच छोड़नेको सद्गुरुने शिष्यसे कहा है ॥ १९३ ॥

॥ ❀ ॥ ८ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- ८ ॥ खण्ड- १५ ॥ चौपाई भाग- ८ ॥ ❀ ॥

१. काल दयाल उभय गुण स्वामी ! * वर्णेहु जानेउँ अन्तरयामी ॥ १९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका आठवाँ प्रश्नको वर्णन करके यहाँपर कहते हैं— शिष्य कहता है—

काल दयाल = हे सद्गुरु स्वामी ! कालरूप
उभय गुण = गुरुवालोगोंके तथा दयालरूप
स्वामी ! = पारखी सद्गुरुके उन दोनोंके
विभिन्न दो प्रकारके गुण-लक्षण स्वभावको-
वर्णेहु जानेउँ = आपने जो वर्णन करके कहे हो,
सो आपकी कृपासे मैंने अच्छी तरहसे जान लिया हूँ। हे साहेब !—
अन्तरयामी = आप तो हमारे अन्तःकरणके भावको ठीकसे जाननेवाले हो ! सत्यासत्य-को ही हम आपसे जानना चाहते हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरुकी अनुमति पायके शिष्य प्रसन्नताके सहित प्रश्न प्रगट करके कहने लगा— हे स्वामी ! आप तो हमारे हृदयके भावको जाननेवाले उरअन्तरयामी हो ! आपने 'काल' और 'दयाल' उन दोनोंके गुण-लक्षण वर्णन करके जो समझाये हो, सो मैंने अब आपकी दयासे जान लिया हूँ ! ॥ १९४ ॥

२. काल जालको बहु विस्तारा ❀ तव मुख लखेऊँ यथार्थ विचारा ॥ १९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

काल जालको = नारी और गुरुवालोग इन
बहु विस्तारा = कालोंके खानी-वाणी जालों-का बहुत विस्तारका फैलाव दृढ़ बन्धन हो रहा है, सो पहले मैं नहीं जानता था, तो उसीमें भूला पड़ा था।
तव मुख = अब आपके मुखारविन्दसे निकला
हुआ यथार्थ उपदेश गुरुमुखवाणी सुनकर उसका—
लखेऊँ यथार्थ विचारा = यथार्थ विचार करके लख लिया कि, अहो ! कालका जाल बहुत बड़ा है। सो भलीभाँति परखकर जाना। अतः अब उसे त्याग भी कर दिया हूँ ॥

व्याख्या— ओ हो ! काल-जालका तो बहुत विस्तारसे फैलावा रहा। सो आपके गुरुमुखसे निकले हुए सत्य उपदेशको श्रवण-मनन करके यथार्थ विचारको मैंने भी अब बहुत कुछ लख लिया हूँ ! उसीका शोच-विचार भी मैं कर रहा हूँ ! ॥ १९५ ॥

३. औरहु जाल गुप्त बहुतेरा ❀ सो पूछब जस परै निवेरा ॥ १९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे प्रभो !

औरहु जाल = अनेकों कालका जाल गुप्त-
गुप्त बहुतेरा = प्रगट होनेसे मोटी जाल तो मैंने जान लिया हूँ, और भी झीनी जालरूप फन्दा जो बहुतेरे गुप्त हैं, जो मेरे देखनेमें अभी नहीं आया है—
सो पूछब = सो मैं आपसे पूछता जाऊँगा।
जस परै निवेरा = जैसे-जैसे आप निर्णय करते जायेंगे, तैसे-तैसे मैं समझता भी जाऊँगा ! जिससे कि, मुझे सत्य निर्णयसे पारखबोधकी प्राप्ति हो, यही मेरी अभिलाषा है। सो इसीके वास्ते मैं आपसे और भी बात पूछता हूँ ! ॥

व्याख्या— परन्तु, और भी बहुतेरे गुप्त काल-जालके भेद समझना तो अभी बाकी ही है। मोटी जालकी बात तो मेरे समझनेमें आ गयी; किन्तु, झीनी जाल तो और भी बहुतेरे बाकी पड़े हैं। अब जैसा-जैसा निर्णयसे मुझे समझ पड़ता जायगा, तैसा-तैसा सो भी मैं पूछता जाऊँगा; सो निर्णय समझनेके वास्ते ही और भी बात मैं अब आपसे पूछता हूँ ! ॥ १९६ ॥

४. अब भाखहु प्रभु ! दुइ कर भेदा ❀ साधु गुरु दुइ एक कि छेदा ? ॥ १९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

अब भाखहु = हे प्रभो ! हे सद्गुरो ! अब
प्रभु ! दुइ = कृपा करके यह बतलाइये कि,
कर भेदा = इन दोनोंका भेद क्या है ? सो कैसे समझना ? कौनसे दो ? कि—
साधु गुरु दुइ = साधु और गुरु, यह दो
एक कि छेदा ? = जो हैं, सो कहने मात्र शब्द दो हैं या वास्तवमें भी वे दो हैं। अथवा दोनों एक ही हैं या भिन्न-भिन्न (अलग-अलग) हैं ? सो कैसा है ? ॥

व्याख्या— हे प्रभो ! अब इन दोनोंका भेद वर्णन करके कहिये कि— साधु और गुरु ये दो शब्दसे जो कहा जाता है, सो एक ही रूपमें हैं ? कि = अथवा, छेदा = न्यारा-न्यारा दो पृथक् रूपमें हैं ? सो इसमें कैसे समझना चाहिये ? ॥ १६७ ॥

५. यह साहेब ! कछु जानि न जाई * कहहु यथार्थ न्याव बिलगाई ॥ १६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

यह साहेब ! = हे सद्गुरु साहेब ! यह भेद
कछु जानि = मुझसे कुछ जाना नहीं गया,
न जाई = और अपने आप यथार्थ कुछ जाना भी नहीं जा सकता है। क्योंकि, पूरा पारखबोध अभी मुझे नहीं हुआ है।

इसवास्ते—

कहहु यथार्थ = हे दयालु सद्गुरो ! यथार्थ
न्याव बिलगाई = सत्यन्यायसे भिन्न-भिन्न निर्णय करके मुझे समझाके कहिये ! परखाइये ! ॥

व्याख्या— हे साहेब ! मेरी समझसे यह बात कुछ बराबर जानी नहीं जाती है, सो आप ही सत्यन्यायसे बिलगायके न्यारा-न्यारा भेद दर्शायके यथार्थ निर्णयको कहिये ! ॥ १६८ ॥

६. हंस जीव पद दीनदयाला ! * नाशक नष्ट कालको जाला ॥ १६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

हंस जीव पद = हे दीनदयालु ! आप नरजीवों-
दीनदयाला = को हंसपदमें ठहराकर पारख पदका बोध देनेवाले हो ! और चैतन्य जीव यही 'हंस' है। सत्य, विचार, शीलादि सद्गुण उसका 'पद' है। उसके धारणसे ही बन्धन छूट सकता है, ऐसा दीन गरीब नरजीवोंको आपने दया करके परखाये हो वा समझाये हो ! और—

नाशक नष्ट = जीवनको, मुक्तिको विनष्ट
कालको जाला = करनेवाले ऐसे काल-जालों-को समूल नाशकर देनेवाले आप ही हो ! नष्ट काल-जालोंके विनाशक आपका महान् प्रताप है। और कालका जाल मुक्ति-का नाशक नष्टरूप है ॥

व्याख्या— हंस जीवोंको पारखपदकी स्थिति देनेवाले हे दीनदयालु ! आप ही एक काल-जालको विनाश करके नष्ट करनेमें समर्थ हो ! नहीं तो कालके सम्पूर्ण जाल मुक्तिपदके विनाशक नष्ट स्वरूप हैं; अतः मुझ जीवको हंसपदमें बैठा दीजिये ! ॥ १६६ ॥

॥ ❀ ॥ ८ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण—८ ॥ खण्ड— १६ ॥ ❀ ॥

दोहाः— अस्मदादि जग भेष जो * खानी मनुष्य स्वरूप ॥
[६१] ते ते रूप सो साधु हैं * सुन शिष्य ! उत्तम रूप ॥ २०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! तुमने जो पूछा है, उसका भी मैं निर्णयसे समाधान कर देता हूँ ! सो विचार पूर्वक ध्यानसे सुनो ! देहधारी जीव अनन्त हैं। चारखानीमें जीव समुदायरूपसे वा समूह-के-समूह शरीरधारी हैं। कर्मभूमिका मनुष्य खानी है। तहाँ मनुष्योंके समूह, गणना, हिसाब भी बहुतेक हैं। सब जड़ाध्यासी ही बने हुए हैं।—

अस्मदादि = जगत्में 'भेष' कहिये स्थूल
जग भेष जो = देहके स्वरूप या आकारवाले देहाभिमानी अध्यासी जीव अस्मदादि = बहुत समूह या समुदायरूपसे अनेकों हैं। जो कि, विभिन्न विचित्र भेष-भूषा, आकार-प्रकारवाले दिखाई दे रहे हैं। ऐसे जगत्में बहुत ही भेषधारी वा देहधारी जीव हैं।

जो कि—

खानी मनुष्य = वे अध्यासी जीव मनुष्य
स्वरूप = खानीमें आये हैं, सो देहके आकार मात्र ही मनुष्यके दिखाई देते हैं। नहीं तो षट् पशुधर्ममें आसक्त होनेसे पशुवत् बने हैं। उनके स्वरूपमात्र ही मनुष्य खानीके है, सब मनुष्यके आकार या रूप

मात्र ही एक-सा दिखता है। स्वभाव किसीका भी नहीं मिलता है। और—

ते ते रूप सो = जितना देह उतना ही रूप
साधु हैं = है। सो मनुष्योंमें षट्दर्शनोंके छियान्नवे पाखण्डोंसे लेकर विस्तार हुए बहुतसे साधुके भेष हैं। वे सब बेपारखी भेष मात्रके ही साधु कहलाते हैं। उन्होंने उतने ही देखने मात्रका साधुका भेष बनाये हैं।

सुन शिष्य ! = हे शिष्य ! उन साधुओंमें
उत्तम रूप = सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ पूजनीय कौन रूप है? यानी कौन भेषके साधु माननीय हैं? सो मैं तुम्हें कहता हूँ, सो ध्यानसे सुनो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् जैसे चारोंखानीके देहधारी असंख्य जीव हैं, उनके रूपकी गणना कोई कर नहीं सकते हैं, तैसे कल्पनाकृत भेष आदिका हिसाब लगाना भी मुश्किल है; और चारखानीमें प्रसिद्ध प्रथम खानी मनुष्यके स्वरूपमें है। तहाँ 'अस्मदादि' कहिये बहुत समुदायरूपसे जगत्में जो-जितने भी साधुओंके भेष हैं, सो सब मनुष्य खानीके स्वरूपमें ही प्रगट हुए और हो रहे हैं। परन्तु, बिना पारख उन्हें निज स्वरूपका बोध नहीं है; इसीसे वे जड़ाध्यासी बद्ध हो रहे हैं। अतएव वे सब उतने ही देखने मात्रको रूपमात्रके साधु बने हैं। षट्दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्डके भेषका विस्तार तो बहुत किये हैं। किन्तु, वे नाममात्रके ही साधु हैं। हे शिष्य ! उन साधुओंमें उत्तमरूप-वाले कौन हैं? सो तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ! ॥ २०० ॥

दोहाः— गुरु बोधिक निज थीरपद ❀ डोलै कतहुँ नाहिं ॥
[६२] आप सुखी औरे सुखी ❀ सद्गुरु कहिये ताहिं ॥ २०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरु बोधिक = पारखी सद्गुरुसे पारख-
निज थीरपद = बोध प्राप्त करके सत्य चैतन्य पारखपद ही मेरा स्वरूप है, ऐसा जिनको बोध हो गया है, सो निज स्वरूपमें स्थिर पारखपदमें ही अटल हो जाते हैं। और—

डोलै कतहुँ नाहिं = विषयभोग काम-क्रोधादिमें तथा कर्म, उपासना, योगादि ईश्वर-ब्रह्म कल्पनादि भ्रममें पड़कर कहीं भी वे चलायमान नहीं होते हैं; उनकी सब भटकना मिट गई रहती है। इसलिये वे कहीं डोलते-भटकते नहीं, नहीं भ्रमते हैं, सदा निजपद-में स्थिर रहते हैं।

आप सुखी = सर्व जड़ाध्याससे रहित होकर
औरे सुखी = अपने स्वयं जीवन्मुक्त सुखी हो, स्व-स्वरूपमें स्थिर, शान्त रहते हैं। तथा अन्य मुमुक्षुओंको भी पारख बोध देकर भ्रम मिटायकर सुखी कर देते हैं। काया, वाचा, मनसे जीवोंका हित ही करते हैं।

सद्गुरु = ऐसे जिनको सत्स्वरूपका
कहिये ताहिं = ज्ञान है, जो सत्य लखाकर तमरूप अज्ञान मिटा देते हैं, पारख प्रकाशी जो हैं, उन्हींको सद्गुरु पारखी कहा जाता है। यानी पारख प्रकाश करनेवाले, वे ही सद्गुरुरूप बन्दीछोर हैं ॥

व्याख्या— तमरूप अज्ञानसे रहित, बोधवान्, पारख प्रकाशी, निज स्वरूपके स्वयं बोध प्राप्त, अथवा पारखी सद्गुरु द्वारा निज स्वरूपके बोध हासिल किये हुए पारखपदमें सदा स्थिर, खानी-वाणीमें कहीं भी चञ्चल होकर नहीं डोलनेवाले और अध्याससे रहित होनेसे आप जीवन्मुक्तिमें सुखी रहते हैं। तथा और दूसरे हंस जीवोंको भी पारखबोध देकर निर्बन्ध सुखी करनेवाले, तन, मन, वचनसे प्राणियोंको रक्षाकर सुख ही देनेवाले, ऐसे शुभ सद्गुण-लक्षण जिनमें हों, उन्हें ही सद्गुरु बन्दीछोर कहते हैं; वे ही पारख प्रकाशी सद्गुरु हैं, सो जानो ! ॥ २०१ ॥

दोहाः— जाके लक्षण परख गुण ❀ सुन शिष्य ! सब विस्तार ॥
[६३] साहु चोर तोहि लखि परै ❀ ठहरिके करहु विचार ॥ २०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

जाके लक्षण= } उन साधुके और सद्गुरुके
परख गुण= } जिन्होंके कि— लक्षण, गुण, रहनी-रहस्य, विचारादिकी परीक्षा या पारख मैं तुझे बतलाता हूँ! सो पारख गुण-को अब—

सुन शिष्य!= } हे सुबुद्धि शिष्य! उसका
सब विस्तार= } सब विस्तार सहित तुम चित्त लगाकर सुनो! और विवेक करके अपने मनमें गुनो, यानी निर्णय करके देखो!

साहु चोर= } जिससे तुझे सच्चे साधु
तोहि लखि परै= } पारखी और झूठे चोर धूर्त्त लोग पहिचान पड़ेंगे। यानी पारखी 'साधु' हैं, तथा गुरुवालोग चोर हैं। इन दोनोंका लक्षण पारखसे तुझे लख पड़ेगा वा मालूम पड़ेगा।

ठहरिके= } अतएव हे शिष्य! सत्सङ्गमें
करहु विचार= } विवेक द्वारा सत्य निर्णय करके पारखमें ठहर करके सत्यासत्य, सारासार, जड़-चैतन्य, गुरु-गुरुवा, काल-दयाल, बन्धन-मुक्ति आदि इन सबोंका यथार्थ विचार करो! अपना नरजन्म सफल करो! हित करो! यही तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य है, सो जानो! ॥

व्याख्या— हे शिष्य! जिनमें परीक्षा करनेका श्रेष्ठ गुण-लक्षण मौजूद हो, वे ही सच्चे साधु-गुरु हैं। पारख गुणके लक्षण और विस्तारसे कहकर सुनाता हूँ, सो सुनो! जिसके जाननेसे सच्चे साहूरूप पारखी सद्गुरु और झूठे चोररूप गुरुवालोगोंका भेद यथार्थतः तुम्हें लख पड़ेगा, यानी लखनेमें आ जायगा। इसीसे अब तुम हंसपदमें ठहरकर सारासारका विवेक-विचार किया करो॥२०२॥

॥ ❀ ॥ तोमर छन्द, भाग- २ ॥ ❀ ॥

१. सुन साधुनके गुण लक्ष शिष्य * कहै मुनिश्वर वेद ऋष्य ॥ २०३ ॥

अर्थः— इस छन्दमें श्रीरामरहससाहेब खाली साधु भेष मात्रका तथा सद्गुण रहनी-रहस्य सहित पारखी साधुके गुण-लक्षणको दर्शा करके बतला रहे हैं। अनादि कालके जगत्में मनुष्योंमें राग-वैराग्य, त्याग-ग्रहण, साधु-गृहस्थ, साँच-झूठ इत्यादि व्यवहार भी अनादिसे प्रवाहरूपमें वैसे ही चला आ रहा है। इसका पारख आदिकालमें पारखी सद्गुरुसे हुआ; इसी बारेमें यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—

सुन साधुनके= } हे जिज्ञासु शिष्य! अब
गुण लक्ष शिष्य= } तुम सच्चे और झूठे साधुओंके गुण, स्वभाव, लक्षण, बर्ताव आदिको जो मैं कहता हूँ, सो सुनो!—

कहै मुनिश्वर=बड़े-बड़े मुनीश्वर— वेद ऋष्य=ऋषि, महर्षि, वेदवादी, पण्डित, ये भी साधु कहलानेवाले हुए हैं। उनके वचन वेद प्रमाणसे जो कह गये हैं या कहते हैं, सो भी सुनो! और वेद, ऋषि-मुनि जो बात कहते हैं, उसका भी निर्णयसे विचार करो! ॥

व्याख्या— हे शिष्य! अब मैं तुम्हें असली तथा नकली साधुओंके गुण-लक्षणके बारेमें यथार्थ निर्णय करके दर्शाता हूँ! सो ध्यानपूर्वक सुनो! और जिसके बारेमें वेदके प्रमाणसे ऋषि-मुनीश्वरोंने भी चार आश्रमके विधि-विधान ठहरा करके बहुत-बहुत प्रकारसे कहा है; सो उनकी रहनी और वाणी देख-सुनकर सत्यासत्यका विवेक करो! ॥ २०३ ॥

२. जे जे मतनमा जे जे भेष * ते रूप धरें निर्वान देख ॥ २०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

जे जे मतनमा= } संन्यासी, उदासी, वनवासी,
जे जे भेष= } वैरागी, ब्रह्मचारी, नागे, निर्वाणी इत्यादि षट् दर्शनोंके जितने-जितने भी मत-मतान्तर हुए या फैले हुए हैं, सो जौन-जौन मतोंमें जौन-जौन भेष या बाना चिह्न धारण किये हैं, उनको देखो!—

ते रूप धरें= } सो सबोंका रूप त्याग भेषका
निर्वान देख= } ही धारण किया हुआ गृह त्यागी साधुरूपमें ही देखे जाते हैं। यानी वे सब त्यागी भेषधारी ही दिखाई देते हैं।

देखो ! उन सबोंने रूप तो निर्वान=त्याग- | का ही धारण किये हैं ॥

व्याख्या— जिन-जिन मतोंमें जितने-जितने भेषधारी साधु हुए हैं, देखनेमें तो उन षट्दर्शन भेषधारी साधुलोग सबोंने निर्बन्ध होनेके लिये त्यागी-विरक्तका ही स्वरूप बाना आकार-प्रकार धारण किये हैं; सो विवेक करके देखो ! सबका भेष प्रत्यक्ष ही है ॥ २०४ ॥

३. ते रूप कहिये अस्मदादि * ते साधु रूप कहिये अनादि ॥ २०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ते रूप कहिये = सो सामुहिकरूपसे सब अस्मदादि = भेषधारी साधु कहलाते हैं। परन्तु, वे सब समूह जड़ाध्यासी बने हैं। रूप मात्रके साधु कहलाते हैं। जगत् समूहके अभिमानी वे ब्रह्म बने हैं, तो कहिये उनमें विवेक कहाँ हुआ ? अतः वह रूप 'अस्मदादि'=समूह वाचक कहलाता है।

ते साधु रूप = सो साधुका त्याग-वैराग्य कहिये अनादि = रूप या भेष अनादि ही कहा जाता है। क्योंकि, मनुष्य खानी प्रवाह-रूपसे अनादि होनेसे तहाँ त्याग-वैराग्य भी साथ-साथ ही चला आता है। इसलिये साधुरूप एक तरफ अनादि कहलाता है। यानी रागी-त्यागी दोनों ही अनादिसे होते चले आ रहे हैं ॥

व्याख्या— वे रूप भेषके स्वरूपमें अस्मदादि=साधु समूह वा साधुओंकी जमात षट् दर्शनोंकी मण्डली कहलाते हैं। तथा सो साधुका रूप त्याग-वैराग्यके चिह्नको भी परम्परासे प्रचलित प्रवाहरूप-से अनादि कहा है। रागकी अपेक्षासे वैराग्य होता है। साधुरूपको अनादि जो कहते हैं, सो भेषके सम्पूर्ण समूहरूपको ले करके ही कहा है ॥ २०५ ॥

४. काहे सो रूप प्रत्यक्ष पूज्य * तेहि रूप धरै गुरुरूप पूज्य ॥ २०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

काहे सो रूप = वह साधुरूप या भेष संसार-प्रत्यक्ष पूज्य = में प्रत्यक्ष पूजनीय, माननीय, श्रेष्ठ क्यों हुआ ? सो सुनो !—

तेहि रूप धरै = उसी त्यागरूप साधु भेषको गुरुरूप पूज्य = मुक्ति रहनीके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी धारण कर लिये थे, तथा तदनन्तर पारखी साधु-गुरु सबोंने भी साधु-भेषको ग्रहण-धारण करके सद्गुरु-के श्रेष्ठ पारख बोधको ग्रहण कर लिये, औरोंको भी पारख बोध दिये; इसलिये वे परमपूज्य हुए। इसीसे सद्गुरुके त्यागरूप भेषधारी साधु जगत्में पूज्य हो रहे हैं। परन्तु, सद्गुणके बिना तो भेष व्यर्थ ही होता है ॥

व्याख्या— साधुके स्वरूपमें भेषधारी लोग प्रत्यक्षमें पूज्य, मान्य क्यों हो रहे हैं, इसका कारण यही है कि, सत्यन्यायी सद्गुरु बन्दीछोरने भी उसी त्याग-वैराग्यका स्वरूप साधु-भेषको जीवन्मुक्ति स्थिति रहनीके लिये धारण किये थे। और आप पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पारख स्वरूपमें संसारमें परमपूज्य, सर्वश्रेष्ठ सन्त शिरोमणि हुए हैं। इसीसे त्यागी साधु भेषधारी संसारमें पूज्य हो रहे हैं, ऐसा जानो ! ॥ २०६ ॥

५. तेहि लक्षण उत्तम उत्तम गोत * जगको बेकार नाशक परोत ॥ २०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तेहि लक्षण उत्तम = जैसा भेष साधुका है, उत्तम गोत = तैसा ही त्याग, वैराग्य, विवेक, बोध, सत्य, शील, दया इत्यादि उत्तम सद्गुण-लक्षण सहित जिनके हृदयमें सर्वोत्तम रहनी धारण है, जिससे शुद्ध पवित्र गोत्र वा तन-मनादि शुद्ध हो गया है।

जगको बेकार = वे पारखी सच्चे साधु नाशक परोत = कहलाते हैं। और जगत्के 'बेकार' कहिये ब्रह्म-कल्पना, विषय-अध्यास, ये दोनोंमें जा-जाकर जीव मनुष्यपदसे नष्ट हो रहे हैं। उसको लखकर पारखी सन्त उसे विनाश करनेवाले होते

हैं। यह सब बातोंका भेद उन्हींके जाननेमें आता है ॥

व्याख्या— उन्हीं पारखी सन्तोंकी रहनीमें सद्गुण-लक्षण सर्वाङ्ग पर्याप्त मात्रामें होनेसे वे ही साधुओंमें सर्वोत्तम होते हैं; और उनके गोत=गोत्र गुरुमर्यादा अथवा गात=देह, मनादि भी शुद्ध-पवित्र उत्तम प्रकारसे रहता है। वे इन्द्रिय निग्रही, पूर्ण वैराग्यवान् होते हैं। और सबलोग तो बिना पारख जगत्के विकार ब्रह्म-भ्रम तथा विषय-आसक्तिमें लगकर हंसपदसे गिरकर विनाशको प्राप्त हुए। परन्तु, पारखी सन्त विवेकसे खानी-वाणीरूप उन दोनों जगत्के विकारको नाश करके उनसे भागकर दूर हो, निज पारख स्थितिमें ही निर्बन्ध हो रहते हैं; इसीसे वे सर्वोत्तम होते हैं ॥ २०७ ॥

६. बहु मतन माहिं जे जे लहन्त ❀ ते साधु कहावै मति महन्त ॥ २०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बहु मतन माहिं=, जे जे लहन्त= संसारके बहुतेक मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्तोंमें बहुतेक लोग भूल रहे हैं। उन बहुमतोंमेंसे कोई बिरले ही जिज्ञासु निकलते हैं। उनमें-से जिन-जिन्होंने पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-से सत्यबोध पारखको पाये हैं—

ते साधु कहावै=, मति महन्त= वे ही बुद्धिमान् श्रेष्ठ ज्ञान-बुद्धिवाले सच्चे साधु कहलाते हैं। यों तो अपने-अपने मतोंमें सब कोई चतुर बुद्धिमान् साधु या श्रेष्ठ महन्त कहलाते हैं। परन्तु, पारख न होनेसे वे श्रेष्ठ नहीं होते हैं ॥

व्याख्या— बहुत मत-पन्थोंमेंसे जिन-जिन्होंने दृढ़ वैराग्य सहित सत्य शोधनमें लगे, और जिन्हें पारखी सद्गुरुसे पारख बोध मिला, वे ही श्रेष्ठ बुद्धिवाले सच्चे साधु कहलाते हैं। और वे बुद्धिमान् श्रेष्ठ साधु ही कहीं 'महन्त' कहलाते हैं; ऐसी उनकी उच्च पदवी होती है ॥ २०८ ॥

७. तेहि माहिं परख गुरु ठहर साध ❀ आनन्द लहरिके समुद्र अगाध ॥ २०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तेहि माहिं परख=, गुरु ठहर साध= उन विचारवान् साधुओं-मेंसे जो कोई अपरोक्ष पारखमें ठहर गये, सोई पारखी सद्गुरु हैं। उन्हीं सद्गुरुके पारखबोध-विचारमें जो ठहरते हैं, सोई सच्चे साधु होते हैं। और—

आनन्द लहरिके=, समुद्र अगाध= गुरुवालोगोंने एक ब्रह्मको आनन्दके समुद्र समान गहिर-गम्भीर माना है। सो उसी ब्रह्मसे जलकी तरङ्ग वा लहरीवत् जगत्का उत्पत्ति-प्रलय ठहराये हैं। सो मिथ्या भ्रम, कल्पना मात्र है। ऐसा पारखी साधु-गुरु परखते और परखाते हैं ॥

व्याख्या— उन्हीं अनेकों भेषधारी साधुओंमें कोई बिरले ही पारखी सद्गुरु होते हैं। वे जिज्ञासु साधुओंको यथार्थ ज्ञान परखा-परखाकर गुरु पारखपदमें उन साधुओंको ठहराते हैं। उनमें जो साधु-गुरुके पारखपदमें ठहर जाते हैं, वे समस्त बन्धनोंसे छूट जाते हैं। और समुद्रवत् अगाध गहिर-गम्भीर आनन्द लहरीके अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्मको जो माने हैं, सो मिथ्या धोखा भ्रम है। आनन्द ब्रह्मसे लहरीवत् जगत् बना-बिगड़ा करना जो माने हैं, सो असत्य कल्पना है। परख करके उस कल्पनाको पारखी साधु त्याग देते हैं, और दूसरोंको भी परखाकर धोखा छुड़ा देते हैं ॥ २०९ ॥

८. ते साधु पारखी पारख युक्त ❀ उत्तम क्रिया सत्यादि युक्त ॥ २१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ते साधु पारखी=, पारख युक्त= वे पारखी साधु सत्यन्याय गुरु विचार पारख बोधके सहित निज स्वरूपमें स्थिर रहते हैं, और—

उत्तम क्रिया=देह वर्तमानकी क्रियाओंमें सर्वोत्तम निराश-निवृत्त—
सत्यादि युक्त=सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, वैराग्य, विवेक, गुरुभक्तिके सहित हंस गुणको धारण किये हुए रहते हैं ॥

व्याख्या— जो साधु पारखी हैं, वे ही पारख विचार गुरु निर्णय संयुक्त रहते हैं। तथा सत्य,

विचार, शील, दया, धैर्य आदि सद्गुण हंस रहनी संयुक्त देह रहेतक उत्तम क्रिया शुद्ध आचार-विचारमें ही वे रहते हैं; भीतर-बाहरकी साफ-सफाई रखते हैं ॥ २१० ॥

९. यहि माहिं भेद बहुते अहन्त * गुरु बुद्धि परख लहि लहहु सन्त ॥ २११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
यहि माहिं भेद = } यही षट् दर्शनोंके भेषमें
बहुते अहन्त = } और पारखी सन्तोंके भेष-में तथा वाणी, सिद्धान्त, मत, रहनी-रहस्य इत्यादिमें बहुत ही भेद या विभिन्नता वा फरक है।

गुरु बुद्धि परख = } हे सन्तो ! हे भक्तो ! तुम-
लहि लहहु सन्त = } लोग गुरु-बुद्धिरूप सत्य निर्णयसे पारखबोधको प्राप्त करके उसके सब भेदको जान लो ! यानी गुरुबुद्धि द्वारा परीक्षादृष्टि खुलनेपर ही साधु-भेषके मर्मको यथार्थ जानोगे या तभी सब भेद तुम्हारे जाननेमें आ जायगा ॥

व्याख्या— यही भेष, उपदेश और सिद्धान्तमें षट् दर्शनोंमें और पारखी सन्तोंमें बहुत ही भेद, विभिन्नता है वा बहुत अन्तर है। इसलिये हे सन्तो ! आपलोग निष्पक्ष होकर गुरु बुद्धिसे पारखबोध प्राप्तकर परख करके उन सब भेदोंको जान लीजिये ! ॥ २११ ॥

१०. बहु काल केर जे जे महन्त * ते परे नाम धारें अनन्त ॥ २१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
बहु काल केर = } अनादि कालसे या बहुत
जे जे महन्त = } वर्षोंसे काल गुरुवालोगोंमें षट् दर्शनोंके भेषवाले ऋषि, मुनि, योगी, ज्ञानी, भक्तादि जो-जो महन्त श्रेष्ठ कहलानेवाले ऐसे महन्त हुए हैं—
ते परे नाम = वे सब अनेकों नाम-रूपको—

धारें अनन्त = धारण करनेवाले बिना पारख धोखाधारमें जाकर पड़े। इसलिये परमतत्त्व परमात्मा सबसे परे अपार, अनन्त या बेअन्त मान-मानकर कोई नाम जपमें लगे, कोई 'अहंब्रह्म' बनकर कल्पित वाणी धारामें बहते हुए चौरासी योनियोंमें ही जाकर पड़े हैं ॥

व्याख्या— प्राचीन कालसे अबतकके बहुतेक जो-जो साधु, सन्त, महन्त, मत-मतान्तरोंके पक्षपाती हुए हैं, वे सब कल्पनाके दास, कालके अगुवा हो-होकर अनेकों नाम, रूप, भेष आदिको धारण किये, तो वे लोग सब धोखेमें वा कालके गालमें ही जा-जाकर पड़े और अभी वैसे ही पड़ रहे हैं। और सबसे परे अनन्त ब्रह्मका नाम कल्पनासे धारण करके भ्रमिक लोग जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंमें ही जाकर पड़े हैं। अतः परखकर उस भ्रम धोखेसे न्यारा हो रहना चाहिये ॥२१२॥

॥ ❀ ॥ ९ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- ६ ॥ खण्ड- १७ ॥ छन्द भाग- ३ ॥ ❀ ॥

१. यह सुनत शिष्य मन भई है शङ्क * तब पूछै होय आरत निःशङ्क ॥ २१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका नवम शङ्कारूप प्रश्नको दर्शाते हैं— हे सन्तो !

यह सुनत शिष्य = } ऐसा पारखी सद्गुरुके
मन भई है शङ्क = } यथार्थ निर्णयके वचन उपदेशको सुन करके पूर्ण भेद समझ न पानेसे जिज्ञासु शिष्यके मनमें पुनः शङ्का उत्पन्न हुई। उसीको प्रगट करके शिष्य कहता है। जब शङ्का हुई—

तब पूछै होय = } तब दोनों हाथोंको जोड़कर
आरत निःशङ्क = } दीनतापूर्वक नमन करके आर्त हो करके सङ्कोचको छोड़कर संशय रहित होनेके लिये निःशङ्क हो प्रश्न पूछा। शिष्य कहने लगा कि— हे सद्गुरो ! इसमें मुझे एक शङ्का होती है ॥

व्याख्या— सद्गुरुके यह उत्तर ऐसा निर्णय सुनकर उस जिज्ञासु शिष्यके मनमें कुछ शङ्का उत्पन्न हुई। तब आर्त होकर निःशङ्क होनेके लिये नम्रतासे दोनों करोंको जोड़ कर पूछा ॥ २१३ ॥

२. का भेद आहि? प्रभु दीनराय ! * सो कृपा करि दीजे लखाय ! ॥ २१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

का भेद आहि? = हे प्रभो ! हम समान दीन प्रभु दीनराय ! = दुःखियोंके आप राजा या मालिक हो ! हे सद्गुरो ! साधुमें और भेषमें क्या भेद है ? आखिरमें साधु भी तो भेषधारी ही होते हैं। फिर उनमें क्या भेद है ? यह मैं नहीं जानता हूँ ! अतएव—

सो कृपा करि = हे सद्गुरो ! सो आप दीजे लखाय ! = कृपादृष्टि करके मुझे यथार्थ भेदको लखा दीजिये ! समझा दीजिये ! कि, साधु और भेषमें कितना फरक है ? सो खुलासा करके बता दीजिये ! ॥

व्याख्या— हे दीनराय प्रभो ! उसमें क्या भेद है ? "यहि माँहि भेद बहुते अहन्त ।" ऐसा आपने कहा है। तो इसमें क्या भेद है ? साधुमें और भेषमें कौनसा भेद है ? सो मैं समझ नहीं सका। अब आप ही कृपा करके वह भेद भी लखा दीजिये ! ॥ २१४ ॥

॥ ❀ ॥ ६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- ९ ॥ खण्ड- १८ ॥ ❀ ॥

दोहाः— सुनहु शिष्य ! वृत्तान्त यह * साधु भेष बहु भेद ॥
[६४] भेष काज धारै अमित * साधु रहित जग खेद ॥ २१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुनहु शिष्य ! = हे जिज्ञासु शिष्य ! इस बातका वृत्तान्त यह = सम्पूर्ण वृत्तान्त भी मैं कहकर तुम्हें सुनाता हूँ ! तुम इसको ध्यानपूर्वक सुनो !—

साधु भेष = सच्चे साधु पारखीमें और कच्चे बहु भेद = उपाधू भेषधारी मात्रमें बहुत ही भेद, फरक या अन्तर है। और षट् दर्शनादि साधुओंका भेष, बाना, चिह्नादि-में भी बहुत ही भेद है। उन्हींसे छियान्नवे (९६ पाखण्डोंका विस्तार हुआ है, और अनेकों पाखण्ड उनमें चल ही रहे हैं।

भेष काज = अनेकों कारणोंसे अनेकों भेष धारै अमित = लोग धारण कर लेते हैं। उनमें कोई पेट पालनेको, तो कोई ठगाई करनेको, कोई हत्या करके छिपनेको, चोर-डाकू, व्यभिचारी, लबार, धूर्त आदि सब अपने-अपने कार्य सिद्धिके लिये या छिपने-के लिये नाना तरहके भेष धारण कर लेते हैं। यानी संसारी कार्य स्वार्थ पूरा करनेके वास्ते ही बहुतलोग कई तरहके भेष बना लेते हैं। और—

साधु रहित = सच्चे साधु तन, मन, वचनों-जग खेद = को साधकर गुरु मर्यादासे टकसारी शुद्ध भेष धारणकर जन्म-मरण, गर्भवासादि दुःख, जगत्का खेद नाश करनेमें ही लगे रहते हैं। ऐसे पारखी सन्त कोई बिरले ही होते हैं। वे ही साधु निज-पर हितकारी पूजनीय-माननीय होते हैं। वे तो आवागमन दुःख छुड़ानेकी ही युक्ति बतलाते हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! इस बातका सारा वृत्तान्त भी मैं कहकर तुम्हें समझाता हूँ, सो सावधानीसे सुनो ! साधुमें और भेषमें बहुत अन्तर वा भेद है। क्योंकि, संसारी कार्यमें सिद्धि, मान-बड़ाईके लिये, अथवा कहा हैः—

चौपाईः— "नारि मुई घर सम्पति नाशी। मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी ॥" रामायण ॥

इसवास्ते वा स्वर्गादि लोक, परलोकके विषय सुखोंकी आशासे इत्यादि स्वार्थके कार्यके लिये बहुत लोग मनमाने वैसे अमित=बहुत तरहके भेष, चिह्न, आकार-प्रकार धारण कर लेते हैं। इससे वे बन्धनमें ही बन्धे पड़े रहते हैं। सच्चे साधु तो सम्पूर्ण आशा-तृष्णा, रागको त्यागकर वैराग्य धारण कर लेते हैं। वे जगत्के खेदरूप जन्म-मरणादिसे छूटकर मुक्त होनेके लिये ही पारखी

सद्गुरुके शरणागत होकर टकसारी भेष धारण करते हैं। वे साधु जगत्के खेदसे रहित रहते हैं; यही इसमें मुख्य भेद है ॥ २१५ ॥

दोहाः— प्रथम कला कालके * दुःखित भये बहु जीव ॥
[६५] कल्पि बुद्धि अनुमान निजु * भेष धरै कोउ पीव ॥ २१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

प्रथम कला = कालके = प्रथम तो सब मनुष्य अज्ञानी-अबोध हैं। दूसरा अनेक तरहसे कालके गालमें पड़े हुए हैं। यानी गुरुवालोग और स्त्रियोंकी, वाणी-कल्पना और विषयोंके फन्दोंमें पड़े हुए हैरान हो रहे हैं।

दुःखित भये = बहु जीव = इसप्रकार बहुतेक वा अनेकों जीव त्रिविधि ताप, जन्म-मरणादिमें पड़कर बहुत प्रकारसे सन्तप्त व्याकुल दुःखित हो गये या हो रहे हैं। ऐसे-ऐसे दुःखित हुए, बहुतेक नरजीवोंने अपनी-अपनी समझके अनुसार—

कल्पि बुद्धि = अनुमान निजु = अनुमान करके कोई ईश्वर सुख-दुःखोंका दाता कर्त्ता पुरुष होगा, वही सबोंको कर्म फल भुगाता होगा, उसीकी दया होवे तभी कर्म बन्धनों-से छूट सकेंगे, इत्यादि अपने बुद्धि अनुसार कल्पनासे नाना वेदादि वाणी बनाकर उसीमें भूले और भुलाये हुए हैं।

भेष धरै = कोउ पीव = तब कोई परमात्माको मालिक, पिया (पति) मानकर उसकी प्राप्तिके वास्ते मनमाने वैसे शृङ्गार कर स्त्रीवत् भेष धारण किये, सो संन्यासी, वैरागी, नाथ, योगी, भक्त, नागे, जङ्गम, तपस्वी, खाकी इत्यादि अनेकों भेष बना लिये हैं। परन्तु, बिना पारख वे भेषधारी गुरुवालोग खानी-वाणीके विकट फन्दाओं-में ही अरुझकर गरगाफ हुए हैं ॥

व्याख्या— सर्व प्रथम मनुष्य जीव कालकी कला, मनकी कल्पना-विषयासक्ति आदिमें पड़कर बहुतेक दुःखी हुए। त्रयतापादिके असह्य दुःख भोगी हुए। तब उस दुःखसे छूटकर सुख पानेकी आशासे अपने स्वयं ही बुद्धिसे अनुमान-कल्पना करके कोई पिया-परमात्मा कर्त्ता पुरुष मानकर उसे रिझानेके लिये अपने देहके शृङ्गार करके नाना तरहके भेष धारण कर लिये। इसतरह कल्पनाके आधारसे भेष प्रचलित हुआ और हो रहा है ॥ २१६ ॥

दोहाः— भेष त्याग प्रापति निमित * नाना मत परकाश ॥
[६६] रूप धरहिं बहु जीयरा * भेष साधु सुबिलास ॥ २१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

भेष त्याग = प्रापति = निमित = ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, देवी, देवता, स्वर्गादिलोक, राज्यसुख, ऐश्वर्य-भोग, ऋद्धि-सिद्धि इत्यादि प्राप्तिके निमित्तसे बहुतोंने त्याग-वैराग्यका भेष बना लिये हैं। मनमें अनेक चाहनाएँ भरी हुई हैं, ऐसे गुरुवाओंका त्याग भेष मनमाने वस्तु-अवस्तु प्राप्तिके लिये ही बना हुआ है। इसलिये ही—

नाना मत = परकाश = संसारमें नाना मत, योगी, जङ्गम, जैन, संन्यासी, फकीर, ब्रह्मचारी, इन्हींका अनेकों सिद्धान्त, कल्पित वाणी जगत्में प्रकाश हुआ है या प्रचार हो रहा है। इसीसे—

रूप धरहिं = बहु जीयरा = भ्रमिक होकर स्वर्गादि सुख प्राप्तिके वास्ते बहुतेक नरजीव वही षट् दर्शनोंके छियान्नवे पाखण्डमें पड़कर बहुत प्रकारके रूप, भेष धारण किये या कर रहे हैं। सो भटका खाकर धोखेमें ही पड़े हैं। और—

भेष साधु = सुबिलास = साधु भेष धारण करके सद्गुरु-के सत्सङ्गमें शुद्ध विलास सत्य निर्णय, सार ग्रहण करनेवाले विवेकी तो कोई बिरले ही होते हैं। उन्हींको साधु कहा जाता है। नहीं तो साधु भेष लेकर भी नाना तरहसे अच्छे-अच्छे भोग-विलास-में लगे हुए लोग धूर्त बने हैं ॥

व्याख्या— चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा इत्यादि तथा लोक, परलोकमें सुख प्राप्ति-इन्हीं सबकी प्राप्तिके निमित्तसे आशा-तृष्णादि बढ़ाकर गुरुवालोगोंने नाना मत-मतान्तरके अनेकों सिद्धान्त और वाणीका प्रकाश किया है। उसीको देख-सुनकर लोभ-लालच ले करके बहुतेरे नरजीव वही भेषके नाना रूपको धारण कर लेते हैं। और नाममात्रके साधु बनकर अच्छी तरहसे भोग-विलासमें फँस जाते हैं। वे ठगलोग अपने भी बन्धनमें पड़ते हैं, और दूसरोंको भी बन्धनमें ही डाल देते हैं। परन्तु, भेषधारी सच्चे साधु सत्सङ्गके विलासमें ही लगे रहनेवाले विवेकी कोई बिरले ही होते हैं ॥ २१७ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! ठहरै साधु वह ❀ जे भेषनमें साँच ॥
[६७] दीन उद्धारण गुरु गनी ❀ तेहि रूप धरि बाँच ॥ २१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! ठहरै = } हे जिज्ञासु शिष्य ! सुनो !
साधु वह = } वही साधु कहलानेका अधिकारी है; यानी सोई साधु पदमें ठहरेगा या साधु बनके ठहर सकता है—

जे भेषनमें = } जो कि, भेषधारियोंमें सच्चे
साँच = } होते हैं। जो सच्चे कल्याणके इच्छुक होते हैं, सो सत्सङ्ग द्वारा सत्य और असत्यका यथार्थ निर्णय करके सत्य बोधको ही ग्रहण करते हैं। वे ही असली साधु-गुरु होकर पारखपदमें ठहरते हैं; सबका हित-कल्याण करते हैं। तथा—

दीन उद्धारण = } अपने जीवन्मुक्त होकर और
गुरु गनी = } शरणमें आये हुए श्रद्धालु नरजीवोंको भी खानी-वाणी जालोंसे छुड़ाकर उद्धार या पार करनेवाले सोई सद्गुरु बन्दीछोर पारखी गिने जाते हैं या माने जाते हैं।

तेहि रूप = } सद्गुरुने जिस प्रकारका रूप
धरि बाँच = } या भेष धारण किये या कराये हैं, उसी सच्चा भेषको धारण करनेसे ही भव-बन्धनोंसे बचकर मुक्त होवेंगे। क्योंकि, पारखी सद्गुरुकी शिक्षा और भेष धारण करनेवाले यमजालोंसे बच गये और बच रहे हैं। अतः बचनेके लिये वही सद्गुरु प्रदत्त भेष-रूपको धारण करो ! ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! जो भेषमें सच्चे त्यागी, वैराग्यवान्, विवेकी, बोधवान् होते हैं, वे ही सच्चे साधु पदमें ठहरते हैं, और वे ही सन्त पारखपदमें स्थिति कर पाते हैं। और दीन-दुःखीजनों-को उद्धार करनेसे वे ही सद्गुरु गिने जाते हैं। अतः वही हंसरूप सच्चे साधुका भेष, रहनी-रहस्य धारण करके नरजीव काल-जालसे बचे और बच जावेंगे ॥ २१८ ॥

दोहाः— उत्तम दशा विरक्तता ❀ प्राप्त बोधके रूप ॥
[६८] अहै प्रत्यक्ष प्रमाण जग ❀ स्वयं साधु गुरु रूप ॥ २१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उत्तम दशा = } पारखी सन्तोंकी सर्वोत्तम
विरक्तता = } स्थिति दृढ़ वैराग्य सहित रहती है। खानी-वाणीके रागसे रहित, निराश-निवृत्त हो शुद्ध देह व्यवहार रखकर हंस दशासे रहते हैं।

प्राप्त बोधके = } निज स्वरूप बोधको या पारख
रूप = } बोधको जो प्राप्त कर लिये हैं, सो वे ही साधुके सच्चे स्वरूपमें हैं। यानी स्वरूप बोध प्राप्त विरक्ति होवे, सोई उत्तम दशा है।

अहै प्रत्यक्ष = } ऐसे पारखी जीवन्मुक्त साधु
प्रमाण जग = } जगत्में प्रत्यक्ष ही प्रमाण रूपसे मौजूद हैं; पूर्वमें ऐसे हो गये हैं, प्रत्यक्षमें अभी जो हैं, वे ही उसका सही प्रमाण हैं।

स्वयं साधु = } स्वयं स्वरूप चैतन्य पारखके
गुरु रूप = } बोध स्थिति वाले साधु ही

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारख स्वरूप जीवन्मुक्त स्वयं स्वरूपकी स्थितिमें स्थित होते हैं। सद्गुरु साधुरूपमें हैं। तथा बोधवान् साधु भी गुरुरूपमें ही होते हैं। स्वयं स्वरूपका सत्य बोध होना चाहिये। तभी जीवन्मुक्त स्थिति प्राप्ति होती है॥

व्याख्या— निज स्वरूपका पारख बोध प्राप्त करके पूर्ण त्याग-वैराग्य विरक्तामें जो अटल रहते हैं, उन्हींकी उत्तम दशा हंस स्थिति होती है। ऐसे निजरूपके बोध प्राप्त स्वयं साधु सद्गुरु-रूप श्रीकबीरसाहेब हुए। तैसे ही आपके अनुयायी पारख बोध प्राप्त पारखी सन्त भी होते हैं। सो जगत्में प्रत्यक्ष ही प्रमाणरूपमें जाहिर है। अभी भी पारखी सन्त उसी प्रकारकी स्थितिमें रहे हुए हैं। सत्सङ्ग करके उनके रहनी-रहस्यको सब कोई जान सकते हैं॥ २१९॥

दोहाः— भेष साधु बहु अन्तरे ❀ द्रष्टा दृष्टि विचार॥

[६९] साधुरूपि गुरु प्रत्यक्ष हैं ❀ भेष साधुता सार॥ २२०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

भेष साधु = } खाली भेषमात्र बनाने वालोंमें
बहु अन्तरे = } और साधुके रहनी-रहस्य धारण संयुक्त सच्चे साधुमें बहुत अन्तर वा फरक या भेद है। सो कैसे कि—

द्रष्टा दृष्टि = } नेत्र और दृश्य पदार्थमें जितना
विचार = } फरक है, उतना ही उसमें भी भेद जानो! सो हे द्रष्टा चैतन्य जीव! तुम गुरुपारखकी सत्य दृष्टिसे सारासारका यथार्थ विचार करो। और—

साधुरूपि = } तन, मन, वचनोंको साधे हुए
गुरु प्रत्यक्ष हैं = } दृढ़ वैराग्यवान् पारखी सद्गुरु साधुके स्वरूपमें प्रत्यक्ष हैं। सत्यासत्यको परखा रहे हैं। अतएव—

भेष साधुता = } सद्गुण रहनी-रहस्य लेना,
सार = } साधु वृत्ति धारण करना, यही भेष लेनेका सार है। पूर्णतासे साधु-मताका ग्रहण हो गया, तो भेषका सार-सफलता है। नहीं तो निष्फल असार ही है; ऐसा विवेक करके जानो!॥

व्याख्या— केवल भेषमात्रमें तथा सच्चा साधुपदमें बहुत ही अन्तर है। सो कैसे? कि, जैसे द्रष्टा और दृश्यके विचारमें कितना फरक है? बहुत ही भेद है। तैसे ही भेष दिखानेमात्रका स्वाङ्ग, पोशाककी विचित्रता मात्र ही रहती है। और साधुमें पूरा-पूरा सद्गुण-लक्षण मौजूद रहता है। इसीसे भेष बनाना तो सहज है, किन्तु, साधु होना कठिन है। अतः हे द्रष्टा जीव! तुम पारख दृष्टिसे देखकर ही सारासारका विचार करो! साधु स्वरूपी सद्गुरु प्रत्यक्ष ही पारख बोध दाता हैं। उनके बोध लेकर साधुताका भाव अपनेमें आ जानेमें ही भेष लेनेका सार है। रहनी धारणके बिना भेष असार है, ऐसा यथार्थ समझो!॥ २२०॥

दोहाः— दीनदयाल भेष यह ❀ धारो अति प्रिय कीन्ह॥

[७०] ताते शिष्य! समुदाय यह ❀ मङ्गलमयको चीन्ह॥ २२१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

दीनदयाल = } दीन गरीब जीवोंपर दया
भेष यह = } करनेवाले दीनदयालु श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा आपके अनुयायी पारखी सद्गुरुने यह त्याग-वैराग्यकी निशानीरूप साधु भेषको ही—

धारो अति- = } मुक्ति सहायक ठहराकर
प्रिय कीन्ह = } निश्चय पूर्वक अत्यन्त प्रेम-भावसे धारण कर लिये हैं। साधु भेषको ही अतिशय प्रेमसे ग्रहण कर लिये हैं।

ताते शिष्य! = इसवास्ते हे शिष्य—

समुदाय यह = यह साधु भेषके समुदाय या समूहरूपमें भेषका संसारमें महात्म्य हो रहा है। उनमें पारखी सद्गुरुके शिष्य समुदाय मण्डलियोंका जो भेष सद्गुरुके टकसार संयुक्त है, सो यही रहनी सद्गुण

सहितका भेष ही ग्राह्य है।

मङ्गलमयको चीन्ह=नरजीवोंका कल्याणकारी यह त्याग भेष शुभ चिह्न है। मुक्तिकी पताका निशानीरूप पारखी सद्गुरुके सत्य भेषको पहिचान लो! यही मङ्गलमयका चिह्न है, ऐसा जानो!॥

व्याख्या— यही त्याग-वैराग्यके साधु भेषको हितकारी जानकर दीनदयालु सद्गुरुने भी अत्यन्त प्रिय करके धारण किये हैं। इसीवास्ते हे शिष्य! भेषमें त्याग, विरक्तता, वैराग्यके सद्गुण लक्षण यह समुदायरूपसे एकत्र होना, मङ्गलमयका वा कल्याणकारी चिह्न है। इसी शुभ चिह्नको धारण करके तुम भी अपना कल्याण करो!॥ २२१॥

दोहाः— मङ्गल मूरति साधु गुरु ❀ लक्षण लक्षित अङ्ग॥
[७१] गुरु अधिकारी वस्तुके ❀ दृष्टि है तिन सङ्ग॥ २२२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मङ्गल मूरति=साधु गुरु= पारखी सद्गुरु चैतन्य मूर्ति कल्याणकारी हैं। वे साधुके भेषमें सद्गुरुरूप हैं। ऐसे साधु-गुरुकी मण्डली मङ्गलके साक्षात् चैतन्य मूर्ति देवता होते हैं। सो उनमें—

लक्षण लक्षित अङ्ग=सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेकादि हंस गुण-लक्षणोंके सहित सर्वाङ्गमें सद्गुणोंके ही लक्षण धारण बने रहते हैं, तथा पारख लक्ष्यका अङ्ग अन्तःकरणमें लक्षित हो टिका रहता है।

गुरु अधिकारी=वस्तुके= पारख प्रकाशी सद्गुरुकी शरणमें जानेवाले नरजीव सद्वस्तु स्व-स्वरूपका ज्ञान पारख बोध प्राप्ति करनेके अधिकारी हो जाते हैं। तथा सद्वस्तुके विशेष ज्ञान होनेकी—

दृष्टि है तिन सङ्ग=पारखदृष्टि उन्हीं विवेकी साधु-गुरुके सङ्ग या पासमें रहती है। सो उन सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहनेवालेको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है। उन्हींके सङ्गमें निज स्वरूप बोधकी दृष्टि रहती है॥

व्याख्या— सद्गुणके शुभ लक्षण तन-मनादि सर्वाङ्गमें लक्षित, व्यवस्थित पूर्णतासे हंस रहनी-रहस्यका धारण होनेसे पारखी साधु-गुरु मङ्गलमूर्ति, कल्याणकारी, जीवन्मुक्त हुए हैं। उनके सङ्गमें निज स्वरूपकी अपरोक्ष पारखदृष्टि मौजूद है। उस चैतन्य वस्तुके बोध प्राप्त करनेवाले जिज्ञासु अधिकारीके प्रति वे सद्गुरुरूपसे पारखबोधका प्रकाश कर देते हैं। और विशेष करके सद्वस्तुकी गुरुदृष्टि सदा उनके सङ्गमें बनी ही रहती है; उसीसे वे मुक्ति स्थितिमें स्थिर रहते हैं॥ २२२॥

दोहाः— साधु गुरुको भेद यह ❀ भेष साधु इमि भेद॥
[७२] किञ्चित दृष्टि प्रताप गुरु ❀ बहु प्रकार कहे वेद॥ २२३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

साधु गुरुको=भेद यह= जो पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाकर गुरुमर्यादासे टकसारी भेष लिये, सो साधु हुए। सत्सङ्ग-विचार सद्गुण धारण करते-करते अपरोक्ष पारखबोध स्थितिको पहुँचकर जब वे उपदेशदाता हुए, तब सो सद्गुरु हुए। यही साधु और गुरुका भेद या असली मतलब है। और—

भेष साधु=इमि भेद= षट् दर्शनोंके भेषधारी बेपारखी होनेसे पाखण्डोंमें भूले पड़े हैं। पारखी साधु सत्य बोध प्राप्तकर निज-पर कल्याणमें ही लगे हैं। इसप्रकार भेष और साधुमें ऐसे बहुत भेद-विभेद हुआ है।

किञ्चित दृष्टि=प्रताप गुरु= पारखी सद्गुरुके कृपा प्रतापसे किञ्चित् दृष्टि वा थोड़ी मिहनतसे ही सारासार देखने-पहिचाननेमें आ जाता है। और अल्प दृष्टिवाले भेषमात्रके साधुलोग सद्गुण-लक्षणका वर्णन तो क्या करेंगे? जो वे ही नहीं जानते हैं। और—

बहु प्रकार=कहे वेद= वेदवादी गुरुवालोगोंने वेद प्रमाणसे जो बहुत प्रकारसे वाणी

कल्पनासे अनेक भेष अनेकों सिद्धान्त कहा है, सो भ्रमपूर्ण मिथ्याका पसारामात्र है। सद्गुरुकी कृपासे थोड़ी भी पारखदृष्टि होनेपर यह बात जाननेमें आ जाती है॥

व्याख्या— यही मुख्य भेद साधु और गुरुके बारेमें हैं। और भेष तथा साधुके बारेमें भी उपरोक्त प्रकारसे ऐसे बहुतसे भद हैं। जो बात वेद-शास्त्रादिमें बहुत प्रकारसे कही है; और वेदवादी बहुत तरहसे कहते हैं, सो तो भ्रम, भूल, कल्पना है, उससे तो जीवोंको सत्य बोध ही नहीं होता है। जब सद्गुरुके कृपा-प्रतापसे यत्किञ्चित् भी विवेक-पारखदृष्टि खुल जाती है, तब सबोंके भेद अच्छी तरहसे ठीक-ठीक जाननेमें आ जाता है। अतः पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही लगे रहना चाहिये॥ २२३॥

दोहाः— गुरु साधु अन्तर नहीं * एकता बहुते येह॥
[७३] साधु भेष अन्तर कछुक * द्रष्टा दृष्टि करेह॥ २२४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

गुरु साधु अन्तर नहीं = पारखी सद्गुरु तथा उनके अनुयायी, विवेकी साधुओंमें रहनी, सिद्धान्त, बोधमें कुछ अन्तर या फरक नहीं रहता है वा रह नहीं सकता है।

एकता बहुते येह = बहुत करके उन्होंमें एकता, मिलान, समान बर्ताव ही रहता है। चाहे वैसे साधु बहुत जनें ही क्यों न होवें, सद्गुरुके पारखबोध सत्यसिद्धान्त सत्यज्ञानमें सब सहमत या मिले-जुले ही रहते हैं। और—

साधु भेष अन्तर कछुक = ऐसे विवेकी सत्सङ्गी साधुओंमें तथा अविवेकी पक्षपाती कुसङ्गी खाली भेषमात्र धारण किये हुए लोगोंमें बहुतकुछ अन्तर अवश्य रहता है।

द्रष्टा दृष्टि करेह = ज्ञान और अज्ञानमें, दृश्य और द्रष्टामें, जड़ और चैतन्यमें, पारखी और बेपारखीमें, बहुत फरक रहता है। द्रष्टा चैतन्य नरजीव गुरु सत्सङ्गसे जब पारखदृष्टिको प्राप्त करेगा, तब यह भेद सब मालूम पड़ेगा। इसलिये तुम पारखदृष्टिमें लक्ष्य करो॥

व्याख्या— पारखबोध दाता सद्गुरु तथा उनके बोध प्राप्त सच्चे साधु इनके रहनी-बोध, एक ही होनेसे उनमें कोई अन्तर वा भेदका पर्दा नहीं है, बहुत ही इनमें एकता-समानता, मेल-मिलाप रहता है। और सच्चे त्यागी वैराग्यवान् साधुओंमें तथा केवल भेषधारी भ्रमिक उजड्ड लोगोंके भेष मात्रमें तो कुछ अन्तर वा भेदका पर्दा बहुत कुछ लगा रहता है। द्रष्टा और दृष्टिमें जितना फरक रहता है, विचार करके देखो! उतना ही उनमें भी बड़ा अन्तर रहता है। द्रष्टा जीव जब गुरुदृष्टिसे पारख करके देखेगा, तब यह सब भेद उसे मालूम हो जायगा, ऐसा जानलो!॥ २२४॥

दोहाः— द्रष्टा ठहरै परख गुरु * अति प्रसन्न गुरु ज्ञान॥
[७४] सङ्गी करै पाँचको * और पचीस सम जान॥ २२५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

द्रष्टा ठहरै परख गुरु = जब यह द्रष्टा-चैतन्य नरजीव सब चञ्चलताको छोड़कर सद्गुरुके पारखबोध निज स्थितिमें ठहर जाता है, तब परम सुखी निर्बन्ध हो जाता है।

अति प्रसन्न गुरु ज्ञान = गुरु ज्ञानकी स्थिति प्राप्त हो जानेसे हंस जीव अत्यन्त प्रसन्न (खुश) आरामसे रहता है। यानी जीवन्मुक्त स्थितिमें सुखी हो जाता है।

सङ्गी करै पाँचको = तहाँ सत्य, विचार, शील, दया और धैर्य- ये पाँच शुद्ध तत्त्वको ही हमेशा सङ्गी करके रहते हैं।

और पचीस सम जान = और उन पाँचों शुद्ध तत्त्वोंकी पच्चीस (२५) शुद्ध प्रकृतियाँ भी जो हैं, सो उनमें बराबर एक समान

धारण रहता है, ऐसा जानिये। (दोहा नम्बर ३२ से ४० तक उक्त पच्चीस (२५) प्रकृतियोंका वर्णन पृष्ठ ६५८ से ६६३ तक हो चुका है। वहाँसे देख लीजिये !) ॥

व्याख्या— जब द्रष्टारूप चैतन्य नरजीव सद्गुरुके गुरुपद पारखमें ठहर जाता है, तब गुरुज्ञान स्वरूप बोधके प्रतापसे अति प्रसन्न (सुखी) जीवन्मुक्त हो जाता है। तहाँ वे देह रहेतक शुद्ध रहनीके लिये सत्य, विचारादि शुद्ध पाँच तत्त्वके सद्गुणको ही अपने सङ्गी-साथी किये रहते हैं। और बरोबर उनकी पच्चीस (२५) प्रकृतियोंको भी जानते हुए उसे हृदयमें टिकाये रखते हैं। वे ही हंस पारखी कहलाते हैं, ऐसा जानो ! ॥ २२५ ॥

दोहाः— तीनों गुण आचरण शुभ ❀ औ रहस्य युत होय ॥
[७५] ठहरै रमिता भूमिपर ❀ सुनु शिष्य ! मानुष सोय ॥ २२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तीनों गुण = } विवेक, वैराग्य, और गुरुभक्ति,
आचरण शुभ = } ये शुद्ध तीन गुण सहित शुभ आचरण सत्कर्मको करते हैं। सो शुभ कर्मसे त्रिगुणके विकारको मिटा डालते हैं।

औ रहस्य = } और पारख दृष्टिके सत् रहस्य
युत होय = } निजबोधकी रहनी सहित धीर, वीर, गम्भीर, परम पुरुषार्थी होकर—

ठहरै रमिता = } जो नर चैतन्य रमैया जीवके
भूमिपर = } निजस्वरूप पारख भूमिकापर स्थिति कायम करके ठहर जाते हैं, वे निश्चल, स्थिर हो जाते हैं।

सुनु शिष्य ! = } हे शिष्य ! सुनो ! वही सच्चे
मानुष सोय = } मनुष्य साधु हैं। सोई मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाते हैं, ऐसा जानो ! वही स्थिति बनाना मनुष्योंका मुख्य कर्त्तव्य है ॥

व्याख्या— रज, सत्त्व, तम- ये त्रिगुणके विकारसे रहित उनकी जगहमें विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़ वैराग्य- ये शुद्ध तीनगुणोंकी धारणा करके शुद्ध-शुभ आचरणसे बर्तते हैं। और सब मत-मतान्तरोंके भेदको जाननेवाले हों, वाणी-खानीके विकार कसर-खोटको पहिचाननेवाले हों, हंस रहनी पारखबोधके रहस्यके सहित होवें, तथा रमिता-चैतन्य जीवकी भूमि=स्वयं स्वरूपकी स्थिति पारख भूमिकापर जो पूर्ण सत्पुरुषार्थसे ठहरे हैं वा ठहरते हैं, हे शिष्य ! सुनो, सोई ऐसे गुण-लक्षणवाले ही सच्चे मनुष्य हैं; वे ही हंस पारखी कहलाते हैं; यही उनकी पहिचान है ॥ २२६ ॥

दोहाः— मानुष बुद्धि पाये बिना ❀ मानुष कभी न होय ॥
[७६] मानुष भये बिना नहीं ❀ लहै सु पारख सोय ॥ २२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मानुष बुद्धि = } मनुष्योंको सार-असार
पाये बिना = } निर्णय करनेकी गुरुबुद्धि सत्य निर्णय सद्बोध प्राप्त हुए बिना भूल, भ्रम, आसक्ति कभी मिट नहीं सकती है। हित-अहितका ज्ञान भी हो नहीं सकता है। षट् पशुधर्मका सुधार भी नहीं होता है।

मानुष कभी = } इसीसे वह सब हुए बिना या
न होय = } गुरुबुद्धिके बिना नरजीव कभी सच्चा मनुष्य हो नहीं सकते हैं। पशुवत् षट् पशु धर्ममें आसक्त, गाफिल, पक्षपातमें रहनेवाले नरपशुमें ही गिने जाते हैं। और—

मानुष भये = } शुद्ध हंसगुण-लक्षणधारी सच्चा
बिना नहीं = } मनुष्य हुए बिना जीवको मुक्ति ठिकाना मिल ही नहीं सकता है; क्योंकि-

लहै सु = } हंस वा मनुष्य हुए बिना
पारख सोय = } जीवको शुद्ध पारख स्वरूपकी स्थिति प्राप्त हो ही नहीं सकती है। इसलिये नरजीवोंको चाहिये कि, साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके सब अवगुण विषयासक्ति तथा कल्पनाको छोड़ दे। जड़-चैतन्यका यथार्थ विवेक करे, तो

सद्गुरुकी दयासे उसीको पारखबोधकी प्राप्ति हो जायगी ॥

व्याख्या— अर्थात् जड़-चेतनके गुण-अवगुणको निर्णयकरनेकी मानुष बुद्धि वा गुरु निर्णयकी सद्बुद्धि पाये बिना वा हासिल किये बिना कोई भी नरजीव सच्चे वा असली मनुष्य कभी भी हो नहीं सकते हैं। प्रथम हंस वा सच्चे मनुष्य हुए बिना स्वयं स्वरूपकी बोध-पहिचान, शुद्ध पारखदृष्टि कदापि सो किसीको प्राप्त हो नहीं सकती है। अतः प्रथम सद्गुरुके शरणागत होकर शुद्ध आचार-विचारको लेकर हंस वा सच्चे मनुष्य होना चाहिये। तभी अपरोक्ष पारख बोधकी स्थिति प्राप्ति होवेगी ॥ २२७ ॥

दोहाः— परख लहै बिनु जीयरहिं ❀ प्रथमा दुःख न मिटाय ॥
[७७] दुःख मिटै बिनु हंस पद ❀ शिष्य ! सो कैसे कहाय ? ॥ २२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

परख लहै = बिनु जीयरहिं = सत्यासत्यकी परीक्षादृष्टि अपरोक्ष पारखबोध प्राप्त हुए बिना जीवोंकी कहीं स्थिति-ठहराव हो नहीं सकती है। इसलिये पारख मिले बिना जीवोंके—

प्रथमा दुःख = न मिटाय = पूर्व नरजन्मके संस्कार या जड़ाध्यास, जन्म, मरण, गर्भवास वा त्रिविधि तापोंके दुःख कोई भी जीवोंके मिट नहीं सकते हैं या कोई मिटा नहीं सकता है, तो पहलेके सरीखा नरजन्ममें अनेक कर्म करके चौरासी-योनियोंमें ही जा-जाकर पड़ जाते हैं। और—

दुखः मिटै = बिनु हंस पद = कल्पना, अनुमान, वाणी संशयका दुःख; कल्पित ईश्वर, ब्रह्म आदि प्राप्तिके लिये नाना साधनाओंका दुःख; स्त्री विषय भोगादिमें मेहनत, मजदूरी, चिन्ता, परेशानीका दुःख; खानी-वाणीके आसक्ति-अध्याससे चारखानीमें आवागमन होना, त्रयताप भोगनेका दुःख, ये सब बीज वासना मिटे बिना जीवकी हंसपदमें या मुक्तिपदमें स्थिति नहीं हो सकती है। अतः—

शिष्य ! सो = कैसे कहाय ? = हे शिष्य ! गुरु पारखके बोध हुए बिना सच्चा मनुष्य या साधु हंस-पद जीवन्मुक्त ऐसे कोई कैसे कहला सकेगा ? इसलिये बेपारखी गुरुवालोग बन्धनमें ही पड़े हैं, सो जानो ! ॥

व्याख्या— अपरोक्ष गुरुपारखका बोध प्राप्त हुए बिना, नरजीवोंको स्वरूप स्थितिकी प्राप्ति नहीं होती है। उसके बिना प्रथमके आवागमनका दुःख, ब्रह्म-जगत्का दुःख, नर-नारीके विषयाध्यासका दुःख और अज्ञान-अबोधसे बन्धनमें होनेवाला दुःख, वह 'प्रथमा दुःख' मिट नहीं सकता है, और वह अज्ञानकृत समस्त दुःख समूल मिटे बिना, हे शिष्य ! हंसपद वा जीवन्मुक्त स्थितिमें वह प्राप्त हुआ, सो ऐसा कोई-कैसे कहला सकता है ? कभी कहला नहीं सकता है; ऐसा जानना चाहिये ॥ २२८ ॥

दोहाः— यह प्रकार दाया सहित ❀ कहा वचन टकसार ॥
[७८] गुरु बीजक मत पौढ़ शुभ ❀ नाशक नष्ट पसार ॥ २२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

यह प्रकार = दाया सहित = इसप्रकारसे तुझे शरणागत मुमुक्षु नरजीव जानकर दयाके सहित या कृपादृष्टिसे मैंने यह गुरुबोधके प्रकरण—

कहा वचन = टकसार = सद्ग्रन्थ टकसार = बीजकमें गुरुमुख वाणीसे जो सत्य निर्णय सद्गुरुने दया करके कहा है। सोई सारशब्द निर्णयका वचन बीजक प्रमाणसे तुझे कहकर समझाया हूँ ! हंस जीवको पारखपद प्राप्तिका इशारा भी यहाँ कहा गया है।

गुरु = सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके—

बीजक मत = } बीजकका सत्य सिद्धान्त गुरुमत
प्रौढ़ शुभ = } पारखबोध न्याय-निर्णयको सत्सङ्ग द्वारा परिपुष्ट करनेसे ही जीवनका लाभ होगा। यही शुभगति या शुभ मङ्गल कल्याण करनेवाला है। ऐसे शुभ हितकारक सद्गुरु-के बीजक मतको पुष्ट करके फिर—

नाशक नष्ट = } नारी और गुरुवालोगोंके खानी-
पसार = } वाणीके प्रपञ्चका पसारा जो जीवोंको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है, उसको समूल विनाश कर डालो। पारख होनेपर आप ही उस नष्ट पसाराका विनाश हो जायगा, सो जानो! ॥

व्याख्या— इसप्रकारके यथार्थ गुरु निर्णयको सर्वप्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने दया करके कहा है, जो टकसाररूप बीजकका गुरुमुख वचन कहलाता है। हे शिष्य! मैंने भी तुम्हें दयासे बीजक प्रमाणके सहित निर्णय वचनको सत्सङ्गके रूपमें इसप्रकारसे कह दिया हूँ! सो तुम इसका विचार करो! और सद्गुरु बन्दीछोरके सद्ग्रन्थ बीजकमतरूप सत्य सिद्धान्त जीवकी सत्यताके बोधको प्रौढ़ वा परिपुष्ट करके दृढ़ निश्चय करो! वही शुभ मङ्गलकारी सत्यज्ञान है। और नाशक कालके जाल सब नष्टका पसारा है। उसे परखकर समझो-बूझो! उस नष्ट पसाराको गुरुबलसे विनाश करके निजपदमें स्थिर हो रहो! ॥ २२९ ॥

दोहाः— अशरण शरण दयाल प्रभु! ❀ बन्दीछोर कबीर ॥
[७९] मत प्रकाश शुचि विमल अति ❀ हरण कालकी पीर ॥ २३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अशरण शरण = } जिन नरजीवोंकी कहीं शरण
दयाल प्रभु! = } या रक्षा नहीं हुई या नहीं होती है, ऐसे अशरण-असहायको शरणमें लेकर रक्षा करनेवाले परमदयालु सद्गुरु प्रभु सर्वश्रेष्ठ हैं।

बन्दीछोर = } सो वे प्रभु! हमारे खानी-वाणियों-
कबीर = } की मानन्दीरूप महाबन्धनसे छुड़ानेवाले कायावीर, धीर, वीर, गम्भीर, सत्यन्यायी ऐसे बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब हुए हैं। तथा आपके अनुयायी पारखी सन्त भी उक्त बन्धनसे छुड़ानेवाले होते हैं।

सो श्रीकबीरसाहेब सद्गुरुका—

मत प्रकाश शुचि = } सच्चा मत, सच्चा
विमल अति = } सिद्धान्त है। जो पारखका प्रकाश करके तमरूप अज्ञान मानन्दीका विनाश करता है। जिनका ज्ञान अत्यन्त शुद्ध, पवित्र, स्वच्छ, निर्मल है। सोई सत्यज्ञान पारखसे जीवोंकी मुक्ति होती है। और—

हरण काल- = } कालरूप गुरुवालोग और
की पीर = } स्त्रियोंके विषय, कल्पनादिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख, कष्ट, झंझट, उपाधि, परेशानियोंको जड़-मूलके नाश करके मिटाकर हरण करनेवाला सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका एक पारखबोध ही है। ऐसा भलीभाँतिसे जान लो! ॥

व्याख्या— बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही पारख ज्ञानके प्रकाशक 'आदिगुरु' अशरण-को शरण लेनेवाले परमदयालु महाप्रभु सर्वश्रेष्ठ सत्यज्ञानी हुए हैं। आपने जो पारख सत्य सिद्धान्त-का गुरुमत प्रकाश किये, सो अत्यन्त पवित्र, निर्मल है। जिज्ञासुओंके कलिमल हरण करके उन्हें भी शुद्ध निर्मल कर देनेवाला है। और कालरूप मन, कल्पना, वाणी, विषय, गुरुवालोग एवं स्त्री इन सबके सङ्ग-कुसङ्गसे होनेवाला पीर=नित्यका महान दुःख और जन्मृति दुःखको समेत् हरण करने-वाला वही पारख बोध सुखदायी है। ऐसा जानकर बीजकके सत्यज्ञानको ही तुम अपनाओ, उसीका विवेक-विचार करके सब भ्रम-भूलको मिटाओ! ॥ २३० ॥

॥ ❀ ॥ १० ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- १० ॥ खण्ड- १६ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— हे गुरु दीनदयाल ! * तुम भाखेउ गुरु साधु गुण ॥
[११] जानेउँ सबै कृपाल ! * मर्म यथारथ उभय गुण ॥ २३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका दशम प्रश्नको दर्शाते हैं— शिष्य कहता है—

हे गुरु दीनदयाल !=दीन गरीब अबोध हम जीवोंपर दया करके सत्यबोध देनेवाले हे दीनदयालु सद्गुरो !—

तुम भाखेउ = } आपने साधुका और
गुरु साधु गुण = } सद्गुरुका गुण, लक्षण, रहनी, रहस्य, जो सत्य निर्णयसे वर्णन किये हो ! समझाये हो !—

जानेउँ सबै कृपाल !=सो सब आपकी कृपासे हे कृपालु ! मैंने अब जान लिया हूँ !—

मर्म यथारथ = } गुरु और साधु इन दोनोंके
उभय गुण = } यथार्थ गुण-लक्षणोंका मर्म या भेद भी भलीभाँति समझ लिया हूँ। यानी जो आपने समझाये हो ! सो सब तो मेरी समझमें आ गया है ॥

व्याख्या— ऐसा यथार्थ उपदेशको श्रवण करके शिष्य बोला— हे सद्गुरु दीनदयाल ! आपने गुरु और साधुओंके गुण-लक्षण तथा भेष और साधुमेंका भेद दर्शाकर न्याय-निर्णयसे जो वर्णन किये हो ! सो उन दोनोंका यथार्थ गुण-लक्षणके मर्मको अब आपकी दयासे, हे कृपालु ! सो सब मैंने जान लिया हूँ ! ॥ २३१ ॥

सोरठाः— अब कछु पूछन चाहै * मानुषके गुण लक्ष युत ॥
[१२] चौरासी केहि आहि ? * निर्णय कहहु यथार्थ शुभ ॥ २३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

अब कछु = } अब और जो बात मैं समझा
पूछन चाहै = } नहीं हूँ; सो और भी कुछ आपसे पूछना चाहता हूँ ! आज्ञा हो तो कहूँगा। (तब सद्गुरुने पूछनेकी आज्ञा दिये, तो शिष्यने निम्न शङ्का प्रगट की।)—

मानुषके गुण = } पहला, मनुष्यके वास्तविक
लक्ष युत = } गुण-लक्षण क्या है ? उसके सहित बर्ताव कैसा रहता है ? और मनुष्य-की गति क्या है ?—

चौरासी = } दूसरा, चौरासी योनियाँ क्या
केहि आहि ? = } हैं ? कैसी हैं ? चौरासी योनियाँ कहाँसे आयीं ? कैसे हो गयीं ?—

निर्णय कहहु = } हे सद्गुरो ! सो इसीका
यथार्थ शुभ = } आप शुभ निर्णय, शुद्ध यथार्थ उपदेश देकर असली बातको दया करके कहिये ! समझाइये ! यही विनय है ॥

व्याख्या— अब और जो कुछ मेरे समझनेमें नहीं आया है, सो बात और भी कुछ आपसे पूछना चाहता हूँ ! (सद्गुरुकी अनुमति पाकर शिष्यने प्रश्न कहा—) एक तो मनुष्यके गुण-लक्षण सहित सच्चा मनुष्य कैसा होता है ? सो कैसे पहिचान करना ? और दूसरा, चौरासी-योनियाँ क्या हैं ? कहाँसे, कैसे आयी हैं ? तथा सद्गुण-लक्षणवाला मनुष्य चौरासी योनियोंके भीतर रहता है कि, बाहर रहता है ? यथार्थ शुभ निर्णयसे जैसा ठहरता हो, सो वैसा ही निर्णय वर्णन करके कहिये ! ॥ २३२ ॥

॥ ❀ ॥ १० ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १० ॥ खण्ड- २० ॥ चौपाई भाग- ६ ॥ ❀ ॥

१. हे शिष्य ! सुनहु यथार्थ विचारा * चौरासीको जो व्यवहारा ॥ २३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! सुनहु = } हे जिज्ञासु शिष्य ! इसका
यथार्थ विचारा = } सत्य निर्णयसे यथार्थ विचार भी मैं तुम्हें कहकर सुनाता हूँ ! सो तुम विचारपूर्वक ध्यान देकर सुनो !—

चौरासीको = } चौरासी योनियोंका जो
जो व्यवहारा = } व्यवहार है, सो कैसा या

किसप्रकारसे हुआ ? और कैसे फैला ? | सो इसीका निर्णय बतलाता हूँ, सो सुनो ! ॥

व्याख्या— तब सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! चौरासी योनियोंका जो व्यवहार है, सो उसके यथार्थ विचार भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ, उसे तुम चित्त एकाग्र करके सुनो ! ॥ २३३ ॥

२. मन माया कृत ब्रह्म बनाया ❀ चौरासी फन्दा निर्माया ॥ २३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मन माया कृत = ब्रह्म बनाया = प्रथम तो यह जानो कि, जड़ और चैतन्य अविनाशी हैं, तथा जगत् अनादि है। इसवास्ते अनन्त अध्यासी जीव आवागमनोंमें पड़कर नरदेह धारण करनेपर त्रिविधि तापादि दुःखोंसे त्रसित होकर गुरुवाओंकी शरणमें गये। तहाँ कोई ब्रह्मकर्त्ताको 'काया-माया जगत्-का रचयिता है', ऐसे मनसे कल्पना किये, तो फिर ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते मन कल्पनासे वेदादि वाणी और खानी जाल बहुतेक बनाये; ऐसे मन-मायाकृत ब्रह्म बनाये—

चौरासी फन्दा = निर्माया = सो उसीसे चार अवस्थाओं-के चारकर्मोंमें लक्ष्य लगा कर अन्तमें एक व्यापक ब्रह्म बनाये। फिर उससे अनेक इच्छा-स्फुरणा प्रगटायके चौरासी योनियोंके फन्दा या जालोंको बनाया या उत्पन्न किया, ऐसे चौरासी-योनियाँ खड़ा किया है ॥

व्याख्या— अनादि कालके जगत्में नरजीवोंने मन-मायाकी कल्पनासे एक 'ब्रह्म' अनुमानसे बनाया। फिर उसीकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति मानन्दी की। उसी भ्रम-भूल जड़ाध्याससे जीवने चौरासी योनियोंका फन्दा वा जाल निर्माण किया। मनुष्यका देह चौरासी (८४) अंगुलका साढ़ेतीन (३½) हाथका बना है। इसीके सम्बन्धसे खानी-वाणीका विस्तारकर बाहर भी चौरासी-योनियोंके फन्दाको बनाया हुआ है ॥ २३४ ॥

३. चारि खानिमा बासा दीन्हा ❀ द्वारा चौरासीको कीन्हा ॥ २३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चारि खानिमा = बासा दीन्हा = सो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरिया- ये चार अवस्थाओंके कर्मवासनासे जीव पशु, अण्डज, उष्मज और मनुष्य- ये चार खानियोंमें जाकर चार खानीके निवासी हुए। यानी वासनाने अध्यासी जीवको चारखानीमें पहुँचा दिया।

द्वारा चौरासी-को कीन्हा = कर्म मार्गके विषय द्वारा पशु खानीकी प्राप्ति, तैसे ही उपासना, योग और ज्ञान- इन मार्गोंके अध्यास द्वारा क्रमशः अण्डज, उष्मज और मनुष्य खानीमें जीव गमन किये या गमन करते हैं। सो अध्यास द्वारा नाना चौरासी-योनियोंका व्यवहार किये या कर रहे हैं। इसी रास्तासे चौरासी योनियोंमें गये हैं ॥

व्याख्या— वासनावश जीवने चारखानीमें बासा कर दिया। उसीके द्वारा चौरासी योनियोंको खड़ा किया। तहाँ कर्म-अध्याससे पशु खानीकी प्राप्ति, उपासना-अध्याससे अण्डज खानीकी प्राप्ति, योग-अध्याससे उष्मज खानीकी प्राप्ति और ज्ञान-संस्कारसे मनुष्य खानीकी प्राप्ति होती है। उसी चारखानीके समूहको चौरासी योनियाँ कहते हैं। अध्यास द्वारा ही जीवने सो सब बनाया है ॥ २३५ ॥

४. सोई खानि चौरासी योनी ❀ जीव कोटि प्रगटे बहु छोनी ॥ २३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सोई खानि = चौरासी योनी = सोई खानी-वाणीके कर्म-वासनावश एक-एक खानी-में अनेक-अनेक योनियोंकी राशि, समूह या ढेरीके हिसाबसे चारखानीके सर्व राशि या समूह योनियोंको संक्षेपमें चौरासी-योनियाँ कहते हैं। वही भव-बन्धनोंमें सब जीव पड़े हैं।

जीव कोटि = प्रगटे बहु = छोनी = सोई जड़ाध्यासी जीव चार-खानियोंमें जा-जाकर करोड़ों या असंख्योंमें जलचर, स्थलचर,

पत्रचर वनचर नभचर इत्यादि बहुतेक आकार-प्रकारसे नाना देहें धारण करके समूह वा झुण्ड-के-झुण्ड प्रगट हुए और वैसे ही बहुत प्रगट हो रहे हैं ॥

व्याख्या— सोई चारखानियोंमें एक-एककी राशि वा ढेरी-समूहके रूपमें अनेकों योनियाँ विस्तार हुई हैं। तैसे चारोंखानियोंमेंकी बड़ी भारी राशिरूप असंख्य योनियोंको ही लक्ष्य करके थोड़ेसे शब्दमें उसे "चौ-राशि योनि" कहते हैं। सोई वास्तविक चारखानी-चौरासी योनियाँ हैं। वहाँपर अभ्यासी जीवकोटि कर्मानुसार देहें धारण करके बहुत वा असंख्य छोटे-बड़े देहधारी होकर बड़े समूहरूपमें पृथ्वी-जलादिमें प्रगटे हैं, और वहीं कर्म भोग रहे हैं ॥ २३६ ॥

५. उत्तम मध्यम गुणहु समूहा * खानि खानि बिच दीन्हेउ जूहा ॥ २३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

उत्तम मध्यम = उनमें सामुहिकरूपसे सत्त्व,
गुणहु समूहा = रज, और तम- ये तीन गुणोंके अनुसार उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ गुण-लक्षण भी प्रगट हो रहा है। और—

खानि खानि बिच = उन खानियोंके मध्यमें-

दीन्हेउ जूहा = जुदे-जुदे स्वभाववाले कोई उत्तम, कोई मध्यम और कोई अधम होते हैं। सो उन्होंका बहुत जमाव खानियोंके बीच-बीचमें रहता है। एक-दूसरेको सुख और दुःख भी वे देते रहते हैं। अदला-बदला भी करके कर्मोंका भोग होता है ॥

व्याख्या— सत्त्वगुणी— उत्तम, रजोगुणी— मध्यम, तथा तमोगुणी— अधम होते हैं। वैसे उत्तम, मध्यम गुण भी उन समूह देहधारी जीवोंमें देखे जाते हैं। और खानी-खानीके बीच-बीचमें कोई विशेष उत्तम, मध्यम, कनिष्ठकी विशेषतावाले बहुतेरे जीवोंके जमाव, झुण्ड-के-झुण्ड एकत्र भी होते हैं। उनके कर्म अभ्यास ही उन्हें ऐसा बना देता है। और वे भी एक-दूसरेको सुख-दुःख वा बदला लेते-देते रहते हैं; सो सब खानियोंमें ऐसा होता रहता है ॥ २३७ ॥

६. यहि विधि चारि खानि चौरासी * बसै जहाँ तहाँ नष्ट प्रकाशी ॥ २३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

यहि विधि = इसप्रकारसे चारखानीमें ही
चारि खानि = चौरासीके रूपमें अनन्त योनियाँ
चौरासी = विस्तार हुई हैं। सो चारखानी-की राशि कहिये ढेरी या समूह नाना योनियाँ हैं। ऐसा जानो कि, मनुष्य देहमें अनेकों संस्कार बनाकर जीव सब चारखानीके चौरासी योनियोंमें कर्मफल भोगनेको चले जाते हैं।

बसै जहाँ = जहाँ मनुष्यखानी मुक्ति होनेकी
तहाँ नष्ट = जगहमें जीव आते हैं, तहाँ
प्रकाशी = गुरुवालोग और स्त्रियोंके कुसङ्गमें जाकर निवास करते हैं। वहाँ विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दका प्रकाश करके चैतन्य जीव निजपदसे नष्ट या भ्रष्ट हो जाते हैं। उसी अभ्याससे फिर चारखानियोंमें जहाँ-तहाँ देह धर-धरकर निवास करते हैं वा निवास कर रहे हैं ॥

व्याख्या— इसप्रकारसे चारखानियोंके विस्तार समूहरूप ही चौरासी योनियाँ कही जाती हैं। नष्टरूप ब्रह्म बनकर वा विषयाध्यासी होकर समस्त चैतन्य जीव जहाँ-तहाँ जलमें, थलमें, पत्र, पुष्प, वनस्पतियोंमें, अनाजोंमें, फलोंमें इत्यादि जगहोंमें जाकर देह धर-धरकर वहाँ रह रहे हैं। जड़ देहोंको सत्ता देकर प्रकाश कर नाना क्रियाएँ प्रगट कर रहे हैं। बिना पारखके प्रकाशी = जीव नष्ट-भ्रष्ट, दुःखी हो रहे हैं, आवागमनमें पड़ रहे हैं ॥ २३८ ॥

७. पारख जीवन कष्टित देखी * खानि उग्र बोधितकै लेखी ॥ २३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

पारख जीवन = पारखनिष्ठ सत्य परीक्षक
कष्टित देखी = पारखी सद्गुरुने संसारमें समस्त जीवोंको त्रिविधि तापोंमें कष्टित-दुःखित आवागमन गर्भवासमें सन्तप्त, व्याकुल देखकर दुःख छुड़ानेके लिये कष्ट निवारणका उपाय विचारकर लिये। और—

खानि उग्र = बोधितकै लेखी = } सबसे बड़ाखानी ज्ञान होने लायक पहिला नम्बर मनुष्य खानीको ही ठहराये। क्योंकि, सत्यासत्य ज्ञानका बोध मनुष्य ही कर सकते हैं। वैखरी वाणी रहनेसे अपनी बात दूसरेको कहकर वा बतलाकर समझा सकते हैं। तैसा अन्य तीन खानियोंमें कर नहीं सकते हैं। इसलिये बोध करने-करानेकी जगह श्रेष्ठ मनुष्य खानी है, यही हिसाब निर्णयसे ठहरा करके लगाये ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुने पारख करके सब जीवोंको जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंमें पड़े हुए त्रिविधि तापमें सन्तप्त बहुत ही कष्टित देखे; और अण्डज, उष्मज, पशु तथा मनुष्य- इन चारखानीके अन्तर्गत मनुष्यरूपमात्र आ जाता है। परन्तु, मनुष्य जन्म कर्म भूमिका होनेसे यह उग्र=सबसे बड़ा बोध करने लायक वा निजस्वरूपका बोध प्राप्त करके मुक्त होनेमें समर्थ है। ऐसा विवेकसे बोध हासिल करके लख लिये ॥ २३९ ॥

८. चारि खानि द्रष्टा जब देखा ❀ निर्णय खानि मनुष्यकी पेखा ॥ २४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

चारि खानि = द्रष्टा जब देखा = } द्रष्टा चैतन्य जीवने भी जब चारोंखानी घूम-फिर कर देखा, तो कर्मभूमिका मनुष्य खानीको ही पाया। अथवा यथार्थ द्रष्टा पारखी सद्गुरुने विवेक-विचार करके जब चारों खानियोंको देखा, उनके गुण-लक्षणोंकी परीक्षा किया, तब—

निर्णय खानि = मनुष्यकी पेखा = } जड़-चेतन, सार-असार, सत्यासत्य विवेक करके सत्य निर्णय पारख होनेकी जगह कर्म-भूमिकारूप मनुष्य खानीको ही सब प्रकारसे श्रेष्ठ देखा, लखा या ठहराया ॥

व्याख्या— जब द्रष्टा जीवने चारोंखानियोंको भली प्रकारसे देखा, तब मनुष्य खानीको ही निर्णय करनेकी जगह देखा। अथवा द्रष्टा-पारखीने जब चारोंखानियोंके स्वभाव गुण-लक्षणोंको विवेकदृष्टिसे देखे, तब निर्णय खानी, मुक्तिका द्वार, कर्मक्षेत्र, सर्वोपरि मनुष्यकी खानीमें नरदेहको ही देख लिये, इसीसे आपने इसको महत्त्व दे दिये ॥ २४० ॥

९. बुद्धिवन्ता मानुष बुद्धि सारा ❀ मानुष देहको किया विचारा ॥ २४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

बुद्धिवन्ता = मानुष = बुद्धि सारा = } श्रेष्ठ परीक्षावान् गुरु बुद्धि-वाले बुद्धिमान् पारखी सद्गुरुने चारोंखानियोंका पारख करके यही निश्चय कायम किये कि, मनुष्यकी बुद्धि ही सारासारको समझ सकती है। अन्य पशु आदिकोंको सारका बोध हो नहीं सकता है। इसलिये तीव्र श्रेष्ठ बुद्धिवाले नरजीव ही सार ग्रहण कर सकते हैं।

मानुष देहको = किया विचारा = } सो मनुष्य देहमें ही पारखी सद्गुरु श्रेष्ठ हुए। आपने सत्यासत्यका विचार किया; इसमें हंसदेह-के सद्गुण दया, सत्यादि धारण करनेवाले शुद्ध प्रकाशरूप सच्चे मनुष्य हैं, ऐसा विचार किया। इसीको मुक्तिका द्वार ठहराया ॥

व्याख्या— समस्त बुद्धिमानोंमें मनुष्यकी बुद्धि वा गुरुबुद्धि सोई एक सार श्रेष्ठ है। इसलिये बुद्धिमान् विवेकी मनुष्यने गुरुबुद्धिसे सार-असारका विवेक किया। और मनुष्य देहके असली गुण लक्षणका भी पूरा-पूरा यथार्थ विचार किया ॥ २४१ ॥

१०. मानुष देह उत्तम जग खानी ❀ स्थावर मिलि चारि ठहरानी ॥ २४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मानुष देह = उत्तम जग खानी = } जगत्की चारोंखानियोंमें यही मनुष्यदेह सर्वोत्तम श्रेष्ठ कर्मभूमिकारूप मुक्ति होनेकी जगह है; तो इसीमें नाना कर्म अभ्यास बनायके जीव चौरासी योनियोंमें पड़ते हैं। इसलिये

बन्धन-मुक्ति होनेका नाका यहीं है। और-

बेपारखी मनुष्योंने ही यानी गुरुवाओंने—

स्थावर मिलि = } स्थावर, अंकुरज वृक्षादि
चारि ठहरानी = } समेत्को मिलाकर चार खानी ठहराये हैं। जैसे कि— पिण्डज, अण्डज, उष्मज, और स्थावर (उद्भिज)- ये चार प्रकारसे चारखानी माने हैं। तहाँपर स्थावर जड़ होनेसे जीवकी भोगभूमिकारूप खानी नहीं है। स्थावरको खानी मानना कल्पना भ्रममात्र है ॥

व्याख्या— जगत्में सर्वोत्तम ज्ञानखानी मनुष्यदेह ही है। मनुष्य खानीमें नरदेहसे बढ़कर और उत्तम देह कोई नहीं है। 'रूप मनुष्य' चौरासी योनियोंके भीतर होते हैं। परन्तु, 'गुण मनुष्य' हंस गुणवाले होनेसे वे सत्पुरुषार्थसे चौरासी योनियोंसे बाहर हो आवागमनसे रहित हो जाते हैं। सत्यन्यायसे चारखानीमें स्थावरको मिलाया नहीं जाता है। क्योंकि, वह जड़सृष्टि है। सिर्फ जड़-तत्त्वोंके सम्बन्धसे बीज-वृक्षादिका विस्तार होता है। परन्तु, भ्रमिकोंने उधर स्थावरको समेत् गिनतीमें मिलाकर अण्डज, पिण्डज, उष्मज, और स्थावर, ऐसे चारखानी ठहराये हैं; सो उसका यथार्थ निर्णय करना चाहिये ॥ २४२ ॥

११. अण्डज पिण्डज उष्मज खानी ❀ रूप ठहर मानुष बुद्धि जानी ॥ २४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अण्डज पिण्डज = } तीन खानियोंमें अण्डज,
उष्मज खानी = } पिण्डज, और उष्मज देहधारी अनन्त जीव हैं।

रूप ठहर = }
मानुष = } उक्त तीनों खानियोंके 'नाम'
बुद्धि जानी = } और 'रूप' को ठहरानेवाला, गुण-दोषको देखने, जानने-वाले मनुष्योंकी बुद्धि ही सर्वश्रेष्ठ जानी जाती है। और षट्पशुधर्म जाननेका ज्ञान तो सबमें एक समान है; जो मनुष्य सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा बुद्धिका प्रकाश करके निज-स्वरूप सत्य चैतन्यको जान-समझकर पारख स्वरूपकी स्थितिमें ठहर जाते हैं; वे ही सच्चे बुद्धिमान् मनुष्य हैं, सो जानिये ! ॥

व्याख्या— अण्डज, पिण्डज तथा उष्मज- ये तीन खानी 'भोग भूमिका' हैं। मनुष्यखानी 'कर्म भूमिका' है। उन तीनोंखानियोंके नाम, रूप, गुण, आदिको मनुष्यकी बुद्धिसे ही ठहराकर। जाना जाता है; यानी मनुष्य ही अपनी बुद्धिसे रूपको ठहराकर जानते हैं ॥ २४३ ॥

१२. अण्डज अण्डमाँहि जो आया ❀ पिण्डज पिण्ड प्रगट जो जाया ॥ २४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अण्डज अण्डमाँहि = }
जो आया = } प्रथम अण्डा पैदा होकर फिर समय पाकर उस अण्डेसे जो बच्चे निकलनेवाले हैं, सो पक्षी, सर्पादि अण्डज खानीके जीव हैं। और—

पिण्डज पिण्ड = }
प्रगट जो जाया = } योनि द्वारा तैय्यार देह पिण्डाकार शाल-नाल सहित जो उत्पन्न होके जन्म लेकर प्रगट होते हैं, सो मनुष्य और पशु आदि पिण्डज खानीके जीव कहलाते हैं ॥

व्याख्या— जो जीव प्रथम अण्डोंमें प्रवेश करके अण्डोंके साथ पैदा होते तथा समय पूरा होनेपर अण्डोंमेंसे ही निकलकर देह लेकर बाहर आते हैं, वे सब "अण्डज" कहलाते हैं। उसमें पक्षी, कछुवे, मछलियाँ और तिर्यग्योनि = सर्पादि अण्डज खानीमें गिने जाते हैं। और जो जीव प्रथम ही पिण्डरूप देहको गर्भमें तैय्यार करके अवधि पूरा होनेपर स्थूल देह सहित योनिसे निकलके जन्म लेकर बाहर प्रगट होते हैं, वे सब "पिण्डज" कहलाते हैं। जिनके जेर वा नाल साथमें रहते हैं, वे "जरायुज" कहे जाते हैं। मनुष्य, पशु, चूहे आदि जिनके कान बाहर दिखते हों, वे पिण्डज-खानीमें माने जाते हैं। अथवा वाणी भागमें- जो कल्पनासे एक अण्ड ॐकार ब्रह्ममें आया, सो अण्डजरूपमें हुआ। और उससे जब जगत् उत्पत्ति हुआ, जो ऐसा माना है, सोई पिण्डजमें प्रगट

हुआ, ऐसा जानिये ! ॥ २४४ ॥

१३. उषमज अण्ड पिण्ड सम्बन्धी ❀ स्थावर तत्त्व है उधमज सन्धी ॥ २४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उषमज अण्ड = पिण्ड सम्बन्धी = उष्मज खानीके जीव कीड़े-मकोड़े, जूँ, ढील, चिल्लर, खटमल आदि अण्डज, और पिण्डज दोनों खानीके सम्बन्धमें उष्णता पाकर पसीना आदि द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये अयोनिज होते हैं। वे जीव चार विषयोंकी वासनाओंसे देह धर लेते हैं। और—

स्थावर तत्त्व है = उधमज सन्धी = अठारह भार वनस्पति सब अनाज, सर्ववृक्ष, लता, गुल्म आदि स्थावर पृथ्वी-जलादि चार तत्त्वोंके मिलाप, सन्धियोंमें उत्पन्न होते हैं, इसलिये वे सब जड़ हैं ॥

व्याख्या— फिर वाणी भागमें अण्ड-पिण्डरूप जगत्-ब्रह्मके सम्बन्धमें जो फँसा, वही उष्मज बना। उधमज = भ्रम-उपाधिकी सन्धिमें जो पड़ा, सो स्थावर तत्त्वमें जहँड़ाया है। अथवा खानीमें अण्डज-पिण्डज आदिके देह सम्बन्धमें सप्तधातु और मल-मूत्र आदिसे प्रगट होनेवाले कृमि-कीटादि उष्मजखानीके जीव कहलाते हैं। और उधमज = चार जड़ तत्त्वोंके सन्धि-सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले जड़ तत्त्वोंके कार्य स्थावर वृक्ष, वनस्पति आदि सम्पूर्ण अंकुरज जड़तत्त्वोंके कार्य-भागमात्र होनेसे खास जड़ हैं ॥ २४५ ॥

१४. पाँच तत्त्वमा जासु प्रकाशू ❀ तत्त्व स्थावर सम्बन्धी बासू ॥ २४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

पाँच तत्त्वमा = जासु प्रकाशू = जिसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश, इन पाँच तत्त्वोंके ही प्रकाश नजर आते हैं, सो स्थावर स्वयं जड़ हैं। पाँच तत्त्वमें जिन पञ्च-विषयोंका प्रकाश दिखाई देता है—

तत्त्व स्थावर = सम्बन्धी बासू = सो पाँचों तत्त्व भी ज्ञान-गुण रहित जड़ हैं। उन पाँच तत्त्वोंके सम्बन्धमें स्थावर खानी बीज-वृक्षादिका ठहराव है। इसलिये जड़तत्त्वके सम्बन्ध सिवाय उसमें जीवका बासा नहीं है ॥

व्याख्या— क्योंकि, जिसमें केवल पाँचतत्त्वोंका ही जड़ प्रकाश नजर आता है, सो स्थावरका तत्त्वोंके सम्बन्धमें ही निवास है। उसमें जीव होनेका ज्ञानगुण चैतन्यताका गुण-लक्षण कहीं किसीमें भी दिखाई नहीं देता है। इसीसे स्थावर निर्जीव जड़ तत्त्वोंके कार्य हैं। सो तत्त्वोंके जड़त्व सम्बन्धमें ही टिके हैं; वही उनका रूप और स्थिति है ॥ २४६ ॥

१५. अण्डज पिण्डज उष्मज माँही ❀ चेतन तत्त्व हंसाको आही ॥ २४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अण्डज = अण्डसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी, साँप मछलियाँ आदि अण्डज खानीके देहधारी जीव हैं।

पिण्डज = मनुष्य, पशु आदियोंके बच्चे जन्मतेमें नाभिसे नाल समेत् पैदा होते हैं। इसीसे उन्हें जरायुज भी कहते हैं। ऐसे पिण्डज खानीके देहधारी जीव जिनके कान दिखाई देते हैं, सो उन्हें पिण्डज कहते हैं। और—

उष्मज = रूप, रस, गन्ध, शब्दके वासनासे अयोनी उत्पन्न होनेवाले कृमि समूह उष्मज खानीके देहधारी जीव हैं।

माँही = इन तीनों खानियोंमें रहनेवाले देहधारियोंके बीचमें—

चेतन तत्त्व = हंसाको आही = तत्त्वके सम्बन्धसे देह बनाना, तत्त्वको चेताना, सत्ता देना, ऐसे चैतन्यत्त्व ज्ञानगुण, यह हंसका या चेतन जीवका मौजूद है। यानी जानना धर्म तीन खानियोंमें चेतन जीवका दिखाई देता है, सो चेतनता केवल जड़ तत्त्वोंमें कहीं भी दिखाई नहीं देती है; इसीसे चैतन्यत्त्व धर्म स्वयं जीवका गुण है, ऐसा जान लो ! ॥

व्याख्या— अण्डज, पिण्डज तथा उष्मज- ये तीनों खानियोंमें तत्त्वको चेताने, सत्ता देनेका गुण-लक्षण चैतन्यरूप हंस जीवका ही मौजूद है। अर्थात् तीन खानियोंमें चैतन्यत्त्व गुणवाले जीवों-का ही बासा है; ऐसा जानना चाहिये ॥ २४७ ॥

१६. उष्मज जैसे दुई अधारा * तैसे स्थावर तत्त्व पसारा ॥ २४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
उष्मज जैसे = जैसे अण्डज और पिण्डज ये
दुई अधारा = दो खानियोंके अध्याससे, यानी उन दो खानियोंके देह द्वारोंसे निकलते हुए मल, मूत्र, पसीना, थूक आदिकोंमेंसे अनेक कृमि, जूँ, ढील, चिल्लर, खटमल, मच्छर आदि उष्मज खानीके जीव उसीके आधारसे देहें धरकर उत्पन्न होते हैं। यह वासना सम्बन्धसे होता है। अर्थात् दो के आधारसे जैसे उष्मज खानी-की उत्पत्ति होती है—
तैसे स्थावर = तैसे ही वृक्ष, बेलि, गुल्म,
तत्त्व पसारा = लता, तथा सब अनाज आदि वनस्पतियाँ स्थावर बीजकी शक्ति तथा चार तत्त्वोंके सम्बन्धसे समस्त स्थावर खानीका पसारा या विस्तार हुआ या हो रहा है। उनमें पृथ्वी और जल ये दो तत्त्वोंके विशेष सम्बन्ध रहते हैं ॥

व्याख्या— जैसे अण्डज-पिण्डज दो खानीके आधारसे तीसरी उष्मज खानीकी उत्पत्ति होकर फैली है। तैसे ही पृथ्वी, जल- ये दो जड़तत्त्वोंके आधार-सम्बन्धसे कार्यरूपमें उत्पन्न होकर स्थावर तत्त्वका वा अंकुरज आदिका पसारा विशेष फैलावा विस्तार हुआ है; सो प्रत्यक्ष ही दिख रहा है ॥ २४८ ॥

१७. जीवत भाव स्वतः तहाँ नाहीं * तत्त्व संयुक्त प्रकाश दिखाहीं ॥ २४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
जीवत भाव = इसलिये तहाँ स्थावर खानी
स्वतः तहाँ = वनस्पतियोंमें स्वयं चैतन्य
नाहीं = जीव होनेका भाव, गुण-लक्षण, जानपना, सुख-दुःख, तीन अवस्था, चलन क्रिया, कर्म भोग आदि कुछ भी नहीं है, इसलिये वे स्वयं जड़ पदार्थ हैं।
तत्त्व संयुक्त = सिर्फ जड़ चार तत्त्वोंके
प्रकाश दिखाहीं = सम्बन्धसे तत्त्वोंका ही प्रकाश, हरापन, फल-फूलादिमें नाना रङ्ग दिखाई देते हैं। सो जड़ दियेकी ज्योति, प्रकाशके सदृश स्थावरोंमें हरा-भरा होने-का गुण दिखता है। वह प्रकाश जड़ ही है या जड़का ही प्रकाश है। ऐसा समझना चाहिये ॥

व्याख्या— इसवास्ते तहाँ स्थावर, अंकुरज, वनस्पतियोंमें जीवित भाव=वह स्वयं ही जीव होनेका चैतन्यत्त्वका भाव, चैतन्यके गुण-लक्षण कुछ भी स्वतः उसमें नहीं है; अतएव वे सब जड़ पदार्थ हैं। पाँच तत्त्वोंके संयुक्त सम्बन्धसे हरा-भरा आदि होनेका जड़ प्रकाश दिखाई देता है वा दिख रहा है। अतः स्थावर जो है, सो चारखानीसे भिन्न जड़ है। उसे चारखानीमें मानना भ्रम-भूल है। वह चौरासी योनियोंके बाहर जड़तत्त्वका कार्य है। वह जीव सृष्टिके भीतर नहीं आता है। सिर्फ तत्त्वोंके सम्बन्धमें आता है, ऐसा जानो! ॥ २४९ ॥

१८. निर्णय वचन विचारै येहा * गुणन सहित जड़ स्थावर देहा ॥ २५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
निर्णय वचन = यह सत्यनिर्णयरूप गुरुमुख
विचारै येहा = वाणीको यथार्थ विचार करो! जो मनुष्य यह निर्णय वचनको विचार करेंगे, उनका भ्रम छूट जायगा।
गुणन सहित = जैसे 'देह' तत्त्वोंका कार्य
जड़ स्थावर देहा = जड़ है, तैसे ही जड़तत्त्वों-के कार्यरूप स्थावर-वनस्पतियाँ आदि

स्वयं जड़ हैं। उनमें जड़त्व शक्ति-गुण मौजूद है। जड़ी, बूटी, पत्र, फल, फूल आदि वनस्पतियोंमें अनेक प्रकारके गुण-रूप प्रभाव हैं। उससे रोगादि निवारण होता है। परन्तु, मनुष्य ही उनके गुण-दोषोंका परीक्षक होते हैं ॥

व्याख्या— जड़तत्त्वोंके गुण-लक्षणोंके सहित 'स्थावर' सरासर जड़का ही पसारा है। किन्तु, वह कुछ देहधारी जीव नहीं है। और कोई भी 'स्थावर' जीवके देह नहीं है। वह सिर्फ जड़तत्त्वोंके कार्य हैं। जीवके सम्बन्ध बिना ही वह स्वयं बना-बिगड़ा करता है। यद्यपि देह भी जड़ है, तथापि वह जीवकी सत्ता-सम्बन्ध पायके चार खानीमें बनता है। और जीवसे पृथक् होनेपर देह नाश हो जाता है। तैसे नियम स्थावरोंमें नहीं है; इसीसे वह केवल जड़ है। यही निर्णय वचनका विचार करना चाहिये। जो यथार्थरूपसे विचार करेंगे, उनके अज्ञान, भ्रम भी छूट जायेंगे। अतः सत्सङ्गमें विचार करके सद्रहस्यको समझ लेना चाहिये ॥ २५० ॥

दोहाः— चेतनहूँ ते गुण अधिक ❀ जड़ स्थावर विस्तार ॥
[८०] बासा चेतन ताहिमें ❀ खानी उग्र अधार ॥ २५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

चेतनहूँ ते = गुण अधिक = चैतन्य जीवमें एक ज्ञानगुण मात्र है। परन्तु, जड़ तत्त्वोंमें पाँच विषय तथा त्रिगुण हैं। इस हिसाबसे जड़में चेतनसे भी अधिक गुण दिखाई देते हैं। तथापि उन सब गुणोंका जनैया तो चैतन्य जीव ही है। चैतन्य ही उन गुणोंकी परीक्षा करके प्रगट करते हैं। इससे चैतन्य जीवका ज्ञानगुण ही विशेष करके श्रेष्ठ हुआ। और चेतनके आधारसे ही उक्त सब गुण समान-विशेषरूपसे शरीर या संसारमें प्रगट होता है या जाननेमें आता है। और—

जड़ स्थावर = विस्तार = जड़ तत्त्वोंके सम्बन्धसे उत्पन्न झाड़, पहाड़, धातु, औषधियाँ, रत्न, मणि, जड़ी, बूटी, कन्द, मूल, फल, फूल इत्यादि अनेकों पदार्थ जड़तत्त्वोंके कार्य स्थावर खानीका विस्तार है।

बासा चेतन = ताहिमें = सो जड़ाध्यासवश विषयोंकी वासनासे चेतन जीवोंने उसी चार तत्त्वोंकी भूमिकामें अपना निवास या रहनेकी जगह बनाये हैं। स्थलमें निवासी मनुष्य, पशु आदि स्थलचर हुए। वैसे ही वनचर, जलचर, नभचर आदि नाना देहें धारण करके उसी जड़ तत्त्वोंमें ही जहाँ-तहाँ निवास कर रहे हैं। "जहाँ आशा तहाँ बासा", ऐसी हाल-गति वासनासे हो रही है।

खानी उग्र अधार = चारों खानियोंमें खान-पान शरीर पोषणादिका बड़ा भारी आधार उक्त जड़तत्त्वोंसे ही हो रहा है। और मनुष्य खानी उग्र = सबसे बड़ा श्रेष्ठ है। तीव्र बुद्धिवाले कर्मभूमिका मनुष्य देहमें अनेकों कर्म अध्यास बनकर उसीके आधारसे अन्यत खानियोंमें भोग होता है या हो रहा है; यह प्रत्यक्ष है ॥

व्याख्या— अर्थात् चेतन जीवोंसे अधिक गुण जड़ स्थावरमें विस्तार करके है। उसका कारण यही है कि— सब जीवोंमें एक ही ज्ञानगुणकी विशेषता है। और जड़के कार्य-कारण पदार्थोंमें अनेकों जड़त्व गुणका विस्तार है। तो भी ज्ञानगुणके बिना जड़का गुण 'शक्तिहीन' है। स्वयं वह जड़ है, इसीसे उसकी विशेष महिमा नहीं है। उसी जड़ तत्त्वोंमें अध्यासी देहधारी समस्त चेतन जीवोंकी बासा हो रही है। और चारों खानियोंके प्राणियोंको देह निर्वाहके लिये बड़े आधार जड़तत्त्वोंके स्थावरोंके हो रहे हैं। और उग्र खानीरूप सबसे बड़ा मनुष्य है, इसीके कर्म-अध्यासके आधारसे चारतत्त्व संयुक्त भूमिकामें ही चारखानीमें चेतनकी बासा और कर्मफल भोग हो रहा है; ऐसा जानना चाहिये ॥ २५१ ॥

दोहाः— हंस बिहारन खानि जड़ ❀ उत्तम मध्यम कीन्ह ॥
[८१] बासा तामध्ये राखिके ❀ मानुष आपन पद दीन्ह ॥ २५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

हंस बिहारन = } हंसरूप चैतन्य जीव पञ्च
खानि जड़ = } विषय सुख भोगोंके वास्ते जड़ खानियोंमें विहार, क्रीड़ा करते हुए विचरण किये; तहाँ खानियोंमें शरीर तो जड़ है, और देहसे जीव भिन्न है।

उत्तम मध्यम कीन्ह = सो नरदेहमें शुद्धमार्गसे कोईने उत्तम शुभ कर्म किया, और कोईने नीच मार्गसे अशुभ, मध्यम पापकर्म किया। उसी अध्याससे उत्तम गति और नीचगति होकर सुख-दुःख फल भोग रहे हैं। और-

बासा तामध्ये = } उसी पञ्च विषयादि भोगोंके
राखिके = } बीचमें वासना रखकर सुखाध्यासमें शरीर छोड़े, इसीसे चौरासी योनियोंको प्राप्त हुए।

मानुष आपन = } इसतरह मनुष्योंने अपनी
पद दीन्ह = } आयु विषय भोगोंमें वा कर्म-कुकर्ममें लगाकर मुक्तिपद हंस गुण-लक्षणोंको खो दिये या नाश कर दिये। इसीसे चारखानीमें जाकर पड़े हैं। अर्थात् ऐसे ही मनुष्यने अपना पद भुला दिये; उसीसे चारखानीमें जाकर पड़े हैं॥

व्याख्या— जड़ चार तत्त्वोंकी भूमिका चारखानीमें उत्तम, मध्यमादि कर्म अध्यास करके हंस वा चैतन्य जीव विहारन वा विचरण कर रहे हैं। अथवा जड़ खानीमें हंसने विहार किया, तो उत्तम, मध्यम श्रेणी आदिका निर्माण किया। उसीमें आशा-बासा रख करके मनुष्यने अपनी पदरूप स्थितिको खो दिया वा भुला दिया है। क्योंकि, मनुष्य खानीमें ही चारखानियोंमें जाकर कर्म भोगनेका अध्यास बनता है। अतः मनुष्यने उसीमें अपना पद लगा दिया है; और दाव हारकर भव-बन्धनमें अरुझा पड़ा है ॥ २५२ ॥

दोहाः— निर्णय दयानिधानके ❀ खानिनके गुण देख ॥
[८२] मानुष खानीते भिन्न है ❀ भ्रमवश खानिमें लेख ॥ २५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

निर्णय दया- = } सत्यन्यायी, निर्णयी, दयाके
निधानके = } समुद्र समान पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयसे पारख कसौटीपर कसकर देखिये! तो सत्यासत्यका यथार्थ बोध हो जायगा।

खानिनके = } तहाँ कर्म मार्गकी विषयासक्ति,
गुण देख = } सो पशुखानीका गुण है। भक्ति-मार्गकी चञ्चलता, सो पक्षी खानीका गुण है। योगमार्गकी शून्यता, सो उष्मज खानीका गुण है। और ज्ञानमार्गकी साक्षीदशा, सो मनुष्य खानीका गुण है। सो विवेक करके देखिये! यही गुण-अध्याससे जीव उस-उस खानीमें जाते-आते रहते हैं।

मानुष खानी- = } उन तीन खानीसे मनुष्यखानी
ते भिन्न है = } भिन्न है। क्योंकि, यह कर्म-भूमिका है, यहीं कर्म बनता है। सत्य निर्णयी हंस मनुष्य चारोंखानीके कर्म बन्धनोंसे न्यारे होते हैं।

भ्रमवश = } परन्तु, सत्स्वरूपका ज्ञान
खानिमें लेख = } पारखबोधके बिना ब्रह्म भ्रम, विषय भ्रमके वश जीव हुए। इसलिये खानी-वाणीके अध्यासवश बेहिसाबसे चारखानीमें पड़ गये। ऐसे भ्रमवश चारखानीमें मुक्ति भूमिकारूप मनुष्यको भी गिने या गिनते हैं, भ्रमवश उसी खानीमें अपनेको भी लेखा लगाते हैं॥

व्याख्या— दयानिधानके सत्यन्याय-निर्णयसे उन खानियोंके गुण-लक्षणोंको विवेक करके देखो! असलमें सच्चा गुणवान् मनुष्य तो उन चारोंखानीके बन्धनोंसे भिन्न है। भ्रमवश चारोंखानीमें लक्ष्य लगाकर उसीमें मनुष्यकी भी लेखा लगाते हैं, उसीको लखते हैं। अतः अध्यासवश चारखानीमें ही भटकते रहते हैं ॥ २५३ ॥

दोहाः— वाणीते खानी लखै * द्रष्टा मनुष्य स्वरूप ॥
[८३] मानुष भये सुधरै सबै * निर्मल दृष्टि अनूप ॥ २५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
वाणीते = } वाणीसे ही सबकी खानी लखी
खानी लखै = } जाती है। जैसे सिंह, बाघ, सियार, बैल, भैंसे आदि पशु तथा गीद्ध, चील, काग, कोयल आदि पक्षी और मनुष्यलोग दूरसे बोलनेपर न दिखें तो भी उसकी जाति, वा खानी पहिचानी जाती है। इसी तरह नरदेहमें भी विभिन्न वाणी, चाल-चलन देख-सुनकर पारखी सन्त उसके खानीको लखते या जान लेते हैं।
द्रष्टा मनुष्य = } निज सत्स्वरूपके द्रष्टा पारखी ही
स्वरूप = } सद्गुण-लक्षणोंमें तथा आकारमें भी सच्चे मनुष्य स्वरूपी हैं। वे सबके गति-स्वरूपको देखते हैं। वाणीसे उसकी खानी बतला देते हैं। और—
मानुष भये = } पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाकर
सुधरै सबै = } सत्य, विचार, दयादि हंस गुण-लक्षणोंको धारण करके जो सच्चे मनुष्य विवेकी हुए, उन्होंके काम-क्रोधादि विकार पशु-लक्षण सब सुधर गये या उनका सुधार हो जायगा; तब सद्गुरुकी दयासे—
निर्मल दृष्टि = } अपरोक्ष पारखदृष्टि प्राप्त हो
अनूप = } जायगी, जिससे उपमासे रहित व्यापक ब्रह्म माना हुआ भ्रम सब परखनेमें आ जायगा ॥

व्याख्या— वाणीसे ही सबकी खानी लखी जाती है; और सबका द्रष्टा मनुष्यस्वरूप ही है। जब द्रष्टा परीक्षक होकर मनुष्य सबोंकी वाणीसे उनकी खानी, स्थिति, सिद्धान्तको लखेंगे, तो निजस्वरूपमें ही स्थिति-ठहराव करेंगे। और मनुष्य हंस पारखी होनेपर उनकी सब पूर्वकी गति-मति सुधर जाती है। जो सच्चे मनुष्य विवेकी हुए हैं, वे सब सुधर गये हैं। उनकी पारखदृष्टि निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध उपमासे रहित स्वयं स्वरूपमें स्थित हो जाती है। ऐसी दृष्टि जिनमें उदय हुई ? उनका कार्य सुधर गया ॥ २५४ ॥

दोहाः— दृष्टि प्रकाशी सो परखगुरु * मानुष परखिके लीन्ह ॥
[८४] मानुष पारख लहतहीं * गुरु दृष्टिहि चित दीन्ह ॥ २५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!
दृष्टि प्रकाशी = } ज्ञान, विवेक या पारखदृष्टि-
सो परखगुरु = } को प्रकाश करनेवाले सोई पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए, तथा अभी वैसे ही सद्गुरुके अनुयायी पारखी साधु-गुरु हैं।
मानुष = }
परखिके = } उन्होंने मनुष्यके सब गुण-लक्षणों-
लीन्ह = } को पारख करके जान लिये। बन्धन देनेवाले दुर्गुण और मुक्तिदायी सद्गुणोंको यथार्थ पहिचान कर लिये हैं। जो कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहेंगे। सो उनको भी यह पारखदृष्टि मिलेगी। और—
मानुष पारख = } मनुष्यको दिव्यदृष्टि सद्गुरु-
लहतहीं = } के सत्य पारखबोध प्राप्त होते ही सब सार-असारकी परीक्षा हो जाती है। अतएव—
गुरु दृष्टिहि = }
चित दीन्ह = } असार कल्पना, विषयादिको छोड़कर सद्गुरुकी पारखदृष्टि-में ही चित्त देकर या मन लगाकर निज स्वरूपकी स्थितिमें ही स्थिर हो जाते हैं। वे ही मनुष्य भव-बन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। इसलिये गुरुदृष्टिमें ही चित्तको लगा देना चाहिये ॥

व्याख्या— सो पारखदृष्टिके प्रकाशी जो हैं, सोई पारखी सद्गुरु हैं। आपने ही सच्चे मनुष्य-के गुण-लक्षणको यथार्थ पारख करके पहिचान कर लिये हैं। और अधिकारी मनुष्योंको सद्गुरुका पारखबोध प्राप्त होते ही भ्रम मिट करके दिव्यदृष्टि वा परीक्षादृष्टिमें ही चित्तको एकाग्र करके लगा

दिये हैं; यानी वे गुरुदृष्टिमें ही चित्तको एकाग्र करके लगा देते हैं ॥ २५५ ॥

दोहाः— मानुष गुरुमुख परख लही ❀ सम हंसा पद थीर ॥
[८५] औरहि परखावन लग्यो ❀ गुरुमत गुण गम्भीर ॥ २५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मानुष = गुरुमुख = परख लही = जिस भाग्यवान् उत्साही परमपुरुषार्थी जिज्ञासु मनुष्यने पारखी सद्गुरुके मुखारविन्द द्वारा सद्ग्रन्थ बीजकका सार सिद्धान्त गुरुमुख वाणीको श्रवणकर उस सदुपदेश-को मनन करके यथार्थ ज्ञान पारखबोधको प्राप्त कर लिया, सो धन्य है!—

सम हंसा = पद थीर = फिर वे पारखबोध प्राप्त हुए मनुष्य बराबर एक समान, एकरस, हंसपदके गुण-रहस्य सहित निजस्वरूप स्थितिमें स्थिर, कायम, अचल बने रहते हैं।

औरहि = परखावन = लग्यो = पश्चात् वर्तमानमें जो-जो श्रद्धालु मनुष्य सत्सङ्गमें आने लगे, शरणागत होने लगे, उन और लोगोंपरभी दयादृष्टि करके सद्गुरुके सत्य सिद्धान्त यथार्थ पारखबोध देकर औरोंको भी लखाने-परखाने लगे, भ्रम-बन्धनोंको छुड़ाने लगे, सोई पारखी सद्गुरु हुए।

गुरुमत गुण = गम्भीर = ऐसे पारखी सत्यन्यायी सद्गुरुका मत सत्य सिद्धान्त सब सद्गुणोंसे भरा हुआ बड़ा गम्भीर है। धीर-वीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी ही पारखी सद्गुरु होते हैं। अतः गुरुमतके गुण बड़े गम्भीर रहते हैं॥

व्याख्या— शुभ संस्कारी मनुष्य प्रथम गुरुमुखसे स्वयं पारखबोधको प्राप्त कर लेते हैं। फिर हंसपदमें एक समान बराबर स्थिर, निश्चल हो रहते हैं; पश्चात् और भी श्रद्धालु जिज्ञासु मनुष्यों-को गुरुमतके गम्भीर गुण पारख सत्य सिद्धान्त बताकर परखाने लग जाते हैं; वे ही दयालु पारखी सद्गुरु कहलाते हैं॥ २५६ ॥

दोहाः— मानुष देही पाँचकी ❀ दशा साधुके रूप ॥
[८६] पञ्चाइत गुरु न्याव शुभ ❀ अटल राज गुरु भूप ॥ २५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मानुष देही = पाँचकी = मनुष्यका यह देह जो है, सो पाँचों विषयोंका ग्रहण और त्याग करनेकी जगह कर्मभूमिका है। इसलिये पञ्च विषय तथा काम-क्रोधादिको छोड़कर सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, यह पाँच शुद्ध तत्त्वोंकी रहनी नरदेहमें रखनी चाहिये। और—

दशा साधुके रूप = तन, मन, वचनोंको साधकर गुरु मर्यादाके प्रमाण टकसारी भेष लेकर सच्चे साधुके स्वरूपमें शुद्ध दशा या शुद्ध बर्तावकी स्थितिमें रहना चाहिये। तथा—

पञ्चाइत गुरु- न्याव शुभ = पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गकी पञ्चाइतमें पञ्च-कोशोंकी वाणी-खानियोंका गुरुपारखसे सत्यन्याय निर्णय करे, असत्य मानन्दीको त्यागकर शुभ गुण-लक्षणको धारण करे। सद्गुरुका न्याय शुभ है, कल्याण करनेवाला है; ऐसा जाने। और—

अटल राज = गुरु भूप = निज स्वरूप पारख स्थितिमें अटल, अचल, विराजमान सद्गुरु चक्रवर्ती महाराजाके समान निर्बन्ध, जीवन्मुक्त हैं; उनके उपदेश शुभ सद्गुण रहनी त्याग-वैराग्य, बोधको धारण करनेवाले मनुष्य सच्चे साधु होकर सद्गुरुके उत्तराधिकारी हो सकते हैं; और दूसरेलोग मुक्त हो नहीं सकते हैं॥

व्याख्या— सत्य-विचारादि शुद्ध पाँच तत्त्वकी रहनी संयुक्त जो है, सोई सच्चा मनुष्यदेह

कहलाता है। उन विवेकीकी शुद्ध दशा-स्थिति साधुके स्वरूप त्याग-वैराग्ययुक्त रहती है। और गुरुन्यायसे शुभ पश्चात्तरूप सत्सङ्ग-विचारमें ही वे लगे रहते हैं। इसीसे पारख राज्यमें अटल रहनेवाले वे सद्गुरु भूप सर्वोपरि पूज्य हो जाते हैं ॥ २५७ ॥

दोहाः— परम सुउज्ज्वल धर्म है * हे शिष्य ! लिये जो जाय ॥
[८७] मानुष बचै यह जालसे * काल रहै पछताय ॥ २५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

परम = सुउज्ज्वल = धर्म है = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका उपदेश बीजकका सत्य सिद्धान्त, मानुष धर्म, पारख ज्ञान सूर्य समान परम शुद्ध प्रकाश, अज्ञान-को मिटानेवाला उज्ज्वल है। यह पारखी सद्गुरुका धर्म उपदेश है।

हे शिष्य ! = लिये जो जाय = हे मुमुक्षु शिष्य ! जो कोई नरजीवने पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाकर सत्य ज्ञानको ग्रहण कर लिये, और जिन्होंसे सत्यज्ञान लिया गया या लेंगे, उन्होंके भ्रम-बन्धन मिट गया या मिट जायगा, वे मुक्त हुए या होंगे। और—

मानुष बचै = यह जालसे = विवेकी पारखी मनुष्य ही यह गुरुवालोग तथा स्त्रियोंकी खानी-वाणीके महाजाल बन्धनोंसे छूट कर सद्गुरुकी शरणमें आकर पारखपदको ग्रहण करके बच जाते हैं। वे ही अन्यको भी बचाते हैं। कोई बिरले मनुष्य ही इस जालसे बचते हैं।

काल रहै = पछताय = अपने जालोंसे छूटा हुआ फँसाने-का दाव न लगता हुआ देखकर, कालरूपी गुरुवालोग और स्त्री-परिवारादि लोग अछताय-पछताय करके काला मुँह कर अफशोस करके रह जाते हैं। हाय ! हाय ! यह नरजीव हमारे फन्दोंमें नहीं पड़ा, कहकर पछताते हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! पारखी सद्गुरुके सत्य सिद्धान्तसे प्रतिपादित मनुष्यपद वा हंसपद परमशुद्ध उज्ज्वल सत्यधर्म सोई मानवधर्म है। जो-जिनसे यह स्वधर्म ग्रहणकर लिया जायगा वा लिया गया, तो उनका अवश्यमेव कल्याण हो गया वा हो जायगा। जो पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाकर सत्शिक्षाको धारण कर लिये, उनका बेड़ा पार हो गया, ऐसा जानो ! हंस वा मनुष्य ही यह खानी-वाणीके महाजालोंसे बच गये और बच जावेंगे। जिसे देखकर काल पछताते रह गये; कालका कुछ भी उनपर जोर नहीं चला ॥ २५८ ॥

दोहाः— काल कला मानुष लखै * पशुते लखी न जाय ॥
[८८] बोधित खानि औ वाणिमें * पशुवा रहै भुलाय ॥ २५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

काल कला = मानुष लखै = गुरुवालोगोंके वेद-कुरान आदिकी कल्पित वाणीकी कला नाना सिद्धान्त तथा स्त्रीकी विषयादि मोहक कला भोग, सो दोनों बन्धन हैं। यह बात विवेकी मनुष्य कोई-कोई ही परीक्षा करके लखते वा जानते हैं या जान पाते हैं। और—

पशुते लखी = न जाय = पक्षपाती, अविचारी, हठी, शठी, नरपशु, स्त्रीपशु, सुरपशु, पुराणपशु, शास्त्रपशु, और वेदपशु— ऐसे षट् पक्षपाती पशु बुद्धिवालोंसे काल-कलाके बन्धन लखे ही नहीं जाते हैं। वे अपने ही काल बने हैं, तो उन्हींसे फिर कैसे लखा जायगा ? कदापि नहीं लखा जा सकता है।

बोधित खानि = औ वाणिमें = गुरुवालोग और स्त्रियोंने पकड़कर कल्पना और विषय ही उन्हें समझाया, बुझाया या बोध किया, सोई दृढ़ हुआ है। इसलिये खानी और वाणीके अनेकों जालोंमें जकड़े हुए, फँसे हुए लोग—

पशुवा रहै = उक्त षट् पक्षपाती मनुष्यरूपमें
भुलाय = प्रत्यक्ष पशुगुण-लक्षणको लेकर अपने स्वयं भूल गये, और अन्यको भी भुलाकर चौरासी योनियोंमें खींच रहे हैं। बिना पारख जीवोंकी वह भूल नहीं मिटती है ॥

व्याख्या— हंसरूप पारखी मनुष्य ही इन सब काल-कलाको लखकर सकल भेदको जानकर सबसे न्यारा निर्बन्ध हो रहते हैं। और षट् पक्षपाती पशु बुद्धिवाले अविवेकी पशु बने हुए अबोध लोगोंसे यह काल-कला लखी ही नहीं जाती है। इसीसे खानी और वाणीके ही बोध ले-ले करके उसे ही परिपुष्ट करके सोई महाजालोंमें पशुवा = गुरुवालोग तथा अज्ञानी-अबोध मनुष्य सब भुलाय रहे हैं। इसीसे जड़ाध्यासी गाफिल हो-हो करके चौरासी योनियोंके आवागमन चक्रमें ही वे सब पड़े और अभी पड़ ही रहे हैं, बिना पारख ॥ २५९ ॥

॥ ❀ ॥ ११ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा— ११ ॥ खण्ड— २१ ॥ चौपाई भाग— १० ॥ ❀ ॥

१. मानुष भिन्न कहेउ कस ? स्वामी ! * खानि वाणि सो कहेउ प्रनामी ॥ २६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका ग्यारहवें प्रश्न वर्णन करते हैं—शिष्य कहता है—हे सद्गुरो !

मानुष भिन्न = हे स्वामी ! आपने
कहेउ कस ? स्वामी ! = अभी निर्णयरूपी वचन कहकर 'मनुष्य चारों खानीसे भिन्न है', ऐसा कहे हो ! सो कैसे ? किसप्रकारसे है ? वह बात मेरी समझमें नहीं आयी। और—

खानि वाणि सो = खानी-वाणी दोनों
कहेउ प्रनामी = परिणामी नाशवान् हैं, सो इनसे निर्णयी मनुष्य न्यारा रहते हैं, ऐसा आपने कहे हो ! सो उसके खुलासा प्रमाण देकर और भी समझाइये ? मैं आपको प्रणाम या वन्दना करता हूँ ! ॥

व्याख्या— सद्गुरुके उपरोक्त उत्तर सुनकर शिष्य बोला— हे स्वामी ! आपने मनुष्यको सबसे भिन्न कहे हो ! सो कैसे है ? अथवा खानी-वाणीसे मनुष्य भिन्न रहता है, ऐसा कहे हो ! सो कैसे है ? उसका मर्म क्या है ? खानी-वाणी दोनों परिणामी है, और मनुष्य उससे न्यारा कैसे हुआ ? सो कहिये ! मैं आपको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ! ॥ २६० ॥

२. कैसे भिन्न मानुष सुप्रकारा ? * निर्णय कहहु यथार्थ विचारा ॥ २६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

कैसे भिन्न = विवेकी पारखी हंसरूप
मानुष सुप्रकारा ? = मनुष्य चारखानी तथा चारवाणीसे कैसे भिन्न या न्यारा रहते हैं ? सो अच्छी प्रकारसे या भलीभाँतिसे मेरी समझमें आवे; इसतरहसे दर्शा करके—

निर्णय कहहु = सत्य निर्णय करके कहिये !
यथार्थ विचारा = जिससे मैं यथार्थ विचारको जान सकूँ या यथार्थ निर्णयका विचार होनेसे मेरे संशय निवृत्त हो जाय; सो सत्य निर्णयको दया करके कहिये ! ॥

व्याख्या— अच्छी प्रकारसे मनुष्य कैसे भिन्न हैं ? वा कैसे भिन्न रह सकेगा ? इसका यथार्थ निर्णय, विचारको प्रगट करके भेद लखाकर कहिये ! जिससे मैं उसका विचार कर सकूँ ! ॥ २६१ ॥

३. मानुष चौरासीमा थापू * कहेउ महातम आपन आपू ॥ २६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

मानुष = दूसरे लोगोंने मनुष्य
चौरासीमा थापू = खानीको तो चौरासी-योनियोंमें ही थापा है वा गिना है या माना है। फिर मनुष्यने ही चौरासी योनियोंकी कैसे स्थापना की या बनायी ?—

कहेउ महातम = महात्मा, ज्ञानियोंने मनुष्य-खानीका महात्म्य बहुत वर्णन किये हैं, और—
आपन आपू = आपने भी नरदेहकी विशेष महिमा श्रेष्ठता कथन किये हो ! और अपने ही कर्त्तव्यसे जिस मनुष्यने चौरासी योनियोंको खड़ा किया है, वह किस प्रकारसे है ? ॥

व्याख्या— सब लोगोंने तो मनुष्यको भी चौरासी योनियोंमें ही स्थापित किया है। परन्तु, मनुष्यने ही चौरासी योनियोंकी स्थापना की, ऐसा आप कहते हो! तो अपने आप स्थापना करके कैसे कोई बन्धनोंमें पड़ेगा? यह मेरी समझमें नहीं आया है, और आपने स्वयं ही मनुष्यको श्रेष्ठ बतलाकर उसके महात्म्य कहे हो! उसे कैसे समझना चाहिये? सो कहिये!॥ २६२॥

४. सो केहि भाँति भिन्न बतलावा? ❀ दीनउद्धारण देहु लखावा॥ २६३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहेहैं— शिष्य कहता है— हे प्रभो!

सो केहि-= भाँति भिन्न= बतलावा?= } सो फिर उस चौरासी-योनियोंसे किस भाँति या किसप्रकारसे भिन्न या न्यारा बतलाये हो? इसका कुछ भी भेद मेरे समझनेमें नहीं आया है।

दीनउद्धारण= देहु लखावा= } दीन-गरीब जीवोंके उद्धार करनेवाले हे प्रभो! कृपादृष्टि करके उसका यथार्थ रहस्य भी मुझे लखा दीजिये! वा समझा दीजिये! यही मेरा विनय है॥

व्याख्या— हे दीनउद्धारण! आपने मनुष्योंको किस प्रकारसे भिन्न बतलाये हो? सो उसका भेद पूरा-पूरा मुझे लखा दीजिये! जिससे मैं सन्देहसे रहित होकर यथार्थ बातको समझूँगा॥२६३॥

॥ ❀ ॥ ११ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण – ११ ॥ खण्ड– २२ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— सुनहु शिष्य! वृत्तान्त ❀ चतुर खानि निर्णय लखहु॥

[१३] वेद शास्त्र वेदान्त ❀ सन्त ऋषीश्वर मुनि मनुज॥ २६४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! उसका निर्णय भी मैं कहता हूँ, ध्यान-पूर्वक तुम सुनो! और मनमें विचार करो! पक्षपातको तो पहले ही त्याग दो!—

सुनहु शिष्य!= वृत्तान्त= } हे शिष्य! इस बातका निर्णय शुरूसे आखिरी पर्यन्तकी कथा, समाधानका वृत्तान्त, उत्तर तुम एकाग्र होकर श्रवण करो! और—

चतुर खानि= निर्णय लखहु= } तुम भी अपनी बुद्धिको तीव्र करके निर्णयसे चारों खानियोंको लखो। गुरुवालोगोंने तो निर्णयके बिना सब गोलमाल कर रक्खे हैं। इसलिये तुम गुरु निर्णयसे ही चार-खानीको लख लो!—

वेद=चारों वेदोंमें एक जगत्कर्त्ता ब्रह्मसे ही उसकी इच्छामात्रसे चारखानी जगत्की उत्पत्ति बतलाया है।

शास्त्र=षट् शास्त्र तथा स्मृतियोंमें भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे सृष्टि उत्पत्तिका वर्णन किया हुआ है। तथा—

वेदान्त=वेदान्त शास्त्रमें षट् वस्तु अनादि कहकर एक ब्रह्मको अनन्त और पाँचों वस्तुको शान्त माने हैं। मुख्य अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादन किये हैं।

सन्त ऋषीश्वर= मुनि मनुज= } वही बात या सिद्धान्त को ऋषि, मुनि, महर्षियों-ने माने हैं, तथा वैरागी सम्प्रदायी अनेक सन्त, उदासी, संन्यासी आदि सब मनुष्यों-ने भी दृढ़ निश्चय किये हैं॥

व्याख्या— तब सद्गुरु बोले— हे शिष्य! उसका वृत्तान्त भी मैं कहता हूँ! तुम सुनो!— चारों खानीके गुण-लक्षण भेदको निर्णय करके लखो! और वेद, शास्त्र तथा वेदान्त आदि ग्रन्थोंके प्रमाणसे प्राचीनकालसे लेकर अभीतकके साधु, सन्त, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सिद्ध-साधक और मनुष्य समाज सबोंने जो कुछ अनुमान-कल्पनासे माने हैं, सो उसके भी पक्षपातको छोड़कर यथार्थ रीतिसे निर्णय करो! तभी तुम्हें भी सत्यासत्यका पारख हो जायगा; और भ्रम-संशय निवृत्त हो जायगा॥ २६४॥

सोरठाः— सबन कीन्ह परमान * तेहि आचरण चलहिं सब ॥
[१४] बन्दीछोर सुजान * निर्णय कीन्ह निज परखते ॥ २६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सबन कीन्ह = इसतरह ब्रह्मादि, सनकादि, परमान = व्यासादि, शुकादि, शौनकादिसे लेकर ज्ञानी, योगी, भक्त, कर्मी, एवं समस्त संसारके मनुष्य उन सबोंने वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे जगत्कर्त्ता सुख-दुःखोंका दाता कोई एक ब्रह्म या ईश्वरादि है, ऐसा अनुमान-कल्पनासे माने हैं। और—

तेहि आचरण = उसी कर्त्ता ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते चलहिं सब = नाना कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानमार्गादिके आचरण या कर्त्तव्यमें सब कोई चले गये, अभी वैसे ही चल रहे हैं। परन्तु, सत्य पारख किसीको भी प्राप्त नहीं हुआ। और—

बन्दीछोर = इधर जड़-चैतन्य सत्यासत्यके सुजान = भेदके अच्छे जानकार पारख प्रकाशी सत्यज्ञानी खानी-वाणीके बन्धनको छुड़ानेवाले सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब एक ही ऐसे महापुरुष हुए हैं।

निर्णय कीन्ह = जिन्होंने स्वानुभव निज निज परखते = पारख बलसे निर्णय किये कि, जगत् अनादि है, नरजीव ही सत्य है, और कर्म अध्याससे जीव चारखानीमें चले जाते हैं, बिना पारख; इत्यादि निर्णय किये ॥

व्याख्या— ऋषि, मुनि, सन्त, भक्त आदि मनुष्य, उन सबोंने वेद और वेदान्त शास्त्र आदिके प्रमाणसे एक जगत्कर्त्ताकी कल्पना किये हैं। कर्त्ता पुरुषसे ही जगत्की उत्पत्ति-स्थिति माने हैं। इसीसे उसी कर्त्ता ब्रह्म प्राप्तिके लिये प्रथमके गुरुवालोगोंने जो आचरण किये, वही साधना पञ्च मार्गके आचरणसे अभीतक सब चल रहे हैं। बिना पारख महान् भ्रम चक्रमें भूले पड़े हैं। और उसी भूलको मिटाकर बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने निज पारखसे वा स्वानुभवसे एक-एक छान-बीन करके निर्णय किये। आप ही प्रथम पारख बोधके अच्छे जानकार सुजान हुए हैं। उत्पत्ति-प्रलयसे रहित जड़-चैतन्यरूप संसार स्वतः अनादि है। जीव चैतन्य अखण्ड, नित्य, सत्य है। मनुष्य खानीमें कर्म-अध्यास टिकाकर अन्य तीनखानीमें जाकर कर्म फल सुख-दुःख भोग-भोगते हैं। अतः कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या भ्रम-कल्पना है, इत्यादि निर्णय किये हैं ॥ २६५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई भाग— ११ ॥ ❀ ॥

१. चारिउ खानि निरञ्जन थापा * जमा सबनमों अपनी आपा ॥ २६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! सुनो !—

चारिउ खानि = गुरुवालोग कहते हैं— निरञ्जन थापा = सम्पूर्ण जगत् चारखानीको ब्रह्म निरञ्जनने थापा या उत्पन्न करके खड़ा किया है। परन्तु, उस कल्पना सहित चार-खानीकी स्थापना करनेवाले जीवकी मन-मानन्दीके अध्यास ही है। और मनरूप निरञ्जनने ही उसे थापा है।

जमा सबनमों = चारखानी चौरासी योनियों- अपनी आपा = में अपने आप अध्यासी जीव-जमा सभीमें मौजूद हैं। अध्यास लेकर वहाँ निवास किये हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने यह निर्णय करके कहा है ॥

व्याख्या— बन्दीछोरने जो शुभ निर्णय प्रकाश किये हैं, सो कहता हूँ, सुनो ! संसारमें चारों-खानी और चारोंवाणीकी मनुष्योंके निरञ्जनरूपी मनने कल्पना-अध्यास बढ़ाय करके स्थापना की है। और चारोंखानीकी चौरासी योनियोंमें सब जगहमें देह बनाकर जीव जमा अपने आप अध्यासी हो-हो कर बन्धनमें पड़े हैं ॥ २६६ ॥

२. मैं कर्त्ता कहि सबन भुलाई * राखेउ निज सेवा अरुझाई ॥ २६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मैं कर्त्ता कहि = "मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, सारी सृष्टि-
सबन भुलाई = का कर्त्ता हूँ, मेरी इच्छासे ही सब जगत्की उत्पत्ति हुई है, अनिच्छासे प्रलय होगा। इसलिये मैं जगत्कर्त्ता ब्रह्म सर्वाधिष्ठान हूँ !" ऐसा कहकर भ्रमिक गुरुवालोगोंने सब नरजीवोंको भुला दिये हैं। और—

राखेउ निज = अबोध मनुष्योंके तन, मन,
सेवा अरुझाई = धनादि हरणकर अपने सेवा-टहल, चाकरीमें अरुझाय रक्खे हैं, फँसा रहे हैं। ऐसे स्वार्थ-साधनमें ही लगे हुए हैं॥

व्याख्या— 'मैं कर्त्ता एक अद्वैत ब्रह्म हूँ,' ऐसा झूठ ही वचन कह-कह कर भ्रमिक गुरुवालोगोंने सभी अबोध मनुष्योंको भुला दिये हैं। और स्वार्थी लोगोंने उन सबोंको अपने स्वार्थकी सेवामें लगा-लगाकर अरुझाय रक्खे हैं; ऐसे सबोंको महाजालमें फँसाये हुए हैं ॥ २६७ ॥

३. काल बली बल अति बलवण्डा * राखेउ सबहिं स्वबल ब्रह्मण्डा ॥ २६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

काल बली बल = कालरूप गुरुवालोग तथा
अति बलवण्डा = स्त्रियाँ और मन अत्यन्त बलवान् जबर्दस्त बलशाली प्रचण्ड वेगवान् अति विकराल तीक्ष्ण बने हैं। और—

राखेउ सबहिं = अपने बल-पराक्रमसे वे
स्वबल ब्रह्मण्डा = कालने सबोंको पिण्ड और ब्रह्माण्डमें बाँध रक्खे हैं। यानी मन-मानन्दीने विषयाध्याससे जगत्में जीवको बाँध रक्खा है। स्त्रीने हाव-भाव, कटाक्षसे भग-भोगके मोहमें पुरुषको बाँध रक्खी है। तथा गुरुवालोगोंने अनेक प्रपञ्चसे पञ्च कोशोंकी वाणी-कल्पनामें ही मनुष्योंको फँसा-फँसाकर बाँध रक्खे हैं॥

व्याख्या— काल=मन, कल्पना और गुरुवालोग ऐसे बलिष्ट बने हैं कि, अति बलवण्ड प्रचण्ड तीक्ष्ण भ्रम-कल्पनाके बड़े शक्तिशाली हो गये हैं। इसीसे बाह्य ब्रह्माण्डमें चारों तरफ कल्पित वाणी-का प्रचारकर स्वबलसे उन्होंने सबोंको अपने अधीन वा वशीभूत कर रक्खे हैं। ऐसे सबोंको अपने तावेमें फँसाय कैद कर रक्खे हैं ॥ २६८ ॥

४. चारिउ खानि योनि चौरासी * जीव शीव थल नभचर बासी ॥ २६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चारिउ खानि = इसीकारणसे अध्यासी जीव
योनि चौरासी = चारखानीकी चौरासी योनियाँ आदिमें अनेक जन्म-मरणोंके चक्र-में पड़े हुए हैं।

जीव शीव थल = तहाँ स्वयं कल्याण स्वरूपी
नभचर बासी = जीवके स्वरूपकी स्थिति न होनेसे कोई शिव-परमात्मा स्वर्गादिमें मानकर नाना साधनाओंमें लगे हैं। उसी अध्यासवश वे जलचर, स्थलचर, नभचर आदिके नाना देहें धारणकर चारखानीमें निवासकर त्रिविधिताप भोगने लगे और भोग रहे हैं॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंने सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक ब्रह्म वा आत्माको विश्वरूप शिव माने हैं। परन्तु, उस कल्पनामें जीवकी स्थिति नहीं हुई। इसीसे जड़ाध्यासी जीव चार खानीकी चौरासी योनियोंमें जाकर नाना देहें धारण करके उत्पन्न हुए। तहाँ कोई जलचर, कोई स्थलचर, कोई नभचर, कोई वनचर इत्यादिरूप धारण करके कल्याणके बिना सब जीव चौरासी योनियोंके निवासी हुए। इसप्रकार मुक्तिकी आशासे महाबन्धनमें जाकर पड़े। बिना पारख निज कल्याण स्वरूप चैतन्य हंसपदको उन कोईने भी नहीं जान पाये। इसीसे खानी-वाणीके अध्यासवश चौरासी योनियोंमें ही जाकर समाये, बिना विचार ॥ २६९ ॥

५. पारख देखेउ खानि औ वाणी ❀ जीव कोटिते कर नहिं हानी ॥ २७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

पारख देखेउ = पारखी सद्गुरु श्रीकबीर-
खानी औ वाणी = साहेबने सर्व प्रथम निज पारखदृष्टिको फैलायकर देखे, तो संसारमें खानीजाल— स्त्री, पुत्रादि तथा वाणीजाल— ब्रह्म-ईश्वरादिमें बद्ध जीवोंको दुःखित आवागमनोंमें पड़े हुए देखे। फिर उन जालोंसे जीवोंको बचानेका विचार कर लिये।

जीव कोटिते = पारख न होनेसे करोड़ों—
कर नहिं हानी = नरजीवोंके जीवनकी हानि हो रही है। मनुष्य कोटिमें कोई ब्रह्म कोटिकी, कोई ईश्वर कोटि आदिकी कल्पनामें लग करके भ्रमिक हो, हानि उठा रहे हैं। जड़ाध्यासी हो, आवागमनमें पड़े हुए हैं। उससे बचनेका पुरुषार्थ तो कर ही नहीं पाते हैं। इसीसे सब प्रकारसे हानि कर रहे हैं। और हानिसे बचकर जीव कोटियोंको लाभ होनेका उपाय, पारख ज्ञान-का सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बतलाये हैं॥

व्याख्या— बन्दीछोर पारखी साधु-गुरुने खानी और वाणीका यथार्थ पारख करके देख लिये। उसके सब विकारसे आप न्यारे हो गये; और आपने जीव कोटिकी हानि होनेके कोई भी कार्य नहीं किये। किन्तु, निज-पर सब जीवोंके हित-कल्याणका लाभ ही होनेके सत्कर्म तथा सत्युक्ति प्रगट किये। पारख न होनेसे कोटानुकोटि जीवोंकी हानि ही हुई है, और सब भव-बन्धनमें जकड़े पड़े हैं; पारखबोध होनेपर ही नरजीव बन्धनोंसे छूट पाते हैं॥ २७०॥

६. लहतहिं ताहि खानि फरियाई ❀ चारिउ खानि मनुष्यते पाई ॥ २७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

लहतहिं ताहि = सो पारखी सद्गुरुके सत्य
खानि फरियाई = उपदेश द्वारा पारखबोधको प्राप्त करते ही जिज्ञासु मनुष्योंको खानी निर्णयका भेद मालूम हो गया। सब खानी-वाणी बन्धनोंका फैसला हो गया। न्यारा-न्यारा गुण-दोषको देखने लगा।

चारिउ खानि = तब कर्म भूमिकारूप मनुष्य
मनुष्यते पाई = देहमें शुभाशुभ कर्म अध्यास बनायकर फिर पशु, पक्षी, उष्मजादि चारों खानियोंमें जाकर जीव नाना फल भोग पाते हैं। अर्थात् मनुष्य जीव ही कर्म वासनासे देह छोड़-छोड़कर फिर चारों खानीमें जाकर दुःख पाते हैं। ऐसे जान पाये वा परख पाये॥

व्याख्या— पारखबोध मिलते ही सब खानी-जालकी पहिचान हो गयी। भिन्न-भिन्न भेद मालूम हो गया। उसी पारखने खानीका फैसला कर दिया। मनुष्य जन्मके कर्म अध्याससे ही चारों खानीकी उत्पत्ति, स्थिति पाई गई। अर्थात् मनुष्य खानी कर्मभूमिका है। यहाँ जैसे-जैसे शुभ-अशुभ कर्म वासना दृढ़ होती है, देह छूटनेपर तैसे-ही-तैसे जीवको चारखानीकी प्राप्ति होती है। इसीका यथार्थ रहस्य पारखी सन्तने जान पाये॥ २७१॥

७. मानुषरूप अति दुर्लभ भाई! ❀ जाते चारिउ लखै बनाई ॥ २७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मानुष रूप अति-दुर्लभ भाई! = यों तो मनुष्य जन्म पाना ही अत्यन्त दुर्लभ है। फिर मनुष्य होकर भी निजस्वरूपका ज्ञान पारखबोध प्राप्त करना तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। हे भाई! कोई महाभाग्यवान्को ही वह प्राप्त होता है।

जाते चारिउ लखै बनाई = जिससे चारखानी-चारवाणी-को बनानेवाला नरजीव ही सत्य है, यह पारखबोध होनेपर ही सब यथार्थ लखनेमें आता है, अर्थात् यथार्थ समझनेमें आता है॥

व्याख्या— हे भाई! जिससे चारखानी, चारवाणी आदि बनी हैं, और उन्हें बना-बनाकर

लखता है, वह मनुष्यरूप नरदेह, सद्बुद्धि पाना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्यसे ही चारों खानीको बनाकर निर्णयसे न्यारा-न्यारा लखा जाता है। अर्थात् मनुष्य देह छूटनेपर पुनः मनुष्य ही होना और स्वरूपज्ञान प्राप्त करना यह अत्यन्त दुर्लभ है। जिससे परीक्षा करके अच्छी तरहसे चारों खानी-वाणियोंको लखनेमें आ जाता है, सोई मनुष्यकी श्रेष्ठ सद्बुद्धि है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २७२ ॥

८. चारिउ कर लक्षण व्यवहारा * लखै मनुष्य शुभ अशुभ विचारा ॥ २७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

चारिउ कर = } उन चारों खानियोंके
लक्षण व्यवहारा = } न्यारा-न्यारा लक्षण भिन्न-भिन्न व्यवहार सबोंको मनुष्य ही लखते हैं।

लखै मनुष्य शुभ = } शुभ और अशुभ कर्मोंका
अशुभ विचारा = } विचार भी लख करके मनुष्य ही करते हैं। सब कर्मोंका संस्कार भी मनुष्य ही टिकाते हैं। इसलिये मनुष्य श्रेष्ठ हैं, ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— विवेकी मनुष्य ही शुभ कर्म और अशुभ कर्मका विचार करके उनके स्वभाव बर्तावको देखकर चारों खानियोंके गुण-लक्षण, व्यवहारोंको उसके गति-विधियोंको अच्छी तरहसे लखते हैं। मनुष्य खानीमें ही कर्त्तव्यका सुधार-बिगाड़ होता है, वे यह जानते हैं। और हितेच्छुक मनुष्य अपने जीवन सुधारके लिये सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही लगे रहते हैं ॥ २७३ ॥

९. मानुष निर्णय आश्रित जोई * मानुष बुद्धि भली विधि सोई ॥ २७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मानुष निर्णय = } पारखी सत्य निर्णयी सद्गुरु-
आश्रित जोई = } के अधीनमें सत्यन्याय निर्णयके आधारसे सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा सद्विचार जीवन सुधारमें जो कोई लगे रहते हैं, सोई सच्चे मनुष्य हैं।

मानुष बुद्धि = } भलीभाँतिसे वही मनुष्य-
भली विधि सोई = } की बुद्धिको पाते हैं या उन्हींकी बुद्धि मनुष्यकी होती है। जो गुरु निर्णयको ग्रहण कर लेते हैं, सोई अच्छी तरहसे बुद्धिमान् मनुष्य हैं या वे ही बुद्धिमान् होते हैं ॥

व्याख्या— जो मनुष्य सत्यन्याय-निर्णयके आश्रित हो, विवेकके आधारसे सत्यासत्यको ठीक तरहसे देखते हैं, सोई भली विधिसे मनुष्य बुद्धिवाले बोधवान् होते हैं। सोई मनुष्योंमें बुद्धिमान्, सत्यनिर्णयी पारखी सन्त होते हैं ॥ २७४ ॥

१०. उत्तम मध्यम घीन औ छिन्ना * पशुखानी मानुषते भिन्ना ॥ २७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

उत्तम = प्रथम, शुद्ध सत्त्वगुण साक्षी दशावाले ज्ञानीलोग उत्तम वर्गके होते हैं।

मध्यम = दूसरे, सत्त्वगुणी उपासक भक्तलोग मध्यम वर्गके होते हैं।

घीन = तीसरे, रजोगुणी कर्मकाण्डीलोग लघु या कनिष्ठ वर्गके होते हैं।

औ छिन्ना = और चौथे नम्बरमें, तमोगुणी योगीलोग निकृष्ट होते हैं।

पशु खानी = वे चारों अवस्थाओंके कर्मोंके अध्याससे पशु आदि खानीमें जाकर उक्त चार प्रकारके स्वभाववाले हों, चारों खानीमें जाकर उत्पन्न होते हैं।

मानुषते भिन्ना = उन चारोंके गुण-स्वभावसे हंस वा मनुष्यका स्वभाव, रहनी भिन्न या न्यारी ही रहती है। यानी पशुखानीसे मनुष्योंके स्वभाव पृथक् होते हैं ॥

व्याख्या— अथवा मनुष्य खानी उत्तम है। पशुखानी मध्यम है। अण्डजखानी घीन (कनिष्ठ) है, और उष्मजखानी छिन्ना (निकृष्ट वा महाकनिष्ठ) होते हैं। क्रमशः उनमें बुद्धि-विचारकी कमी होती है। वे पशुखानी मनुष्यखानीसे भिन्न ही होते हैं। ऐसे ही चार श्रेणियाँ मनुष्योंमें भी पायी जाती हैं। वे भी पशुखानीके ही अभ्यासी नरपशु बने हैं। सच्चे गुणवान् मनुष्य उन्होंसे भिन्न ही होते हैं ॥ २७५ ॥

११. मिलित खानि सब एक अनेका * एकते अधिक एक नहिं एका ॥ २७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मिलित खानि = } परन्तु, एक जड़ाध्यासके
सब एक अनेका = } कारणसे जीव अनेक खानियोंमें सम्मिलित हो रहे हैं। सो अनेक पशुखानीके गुण-लक्षण, अध्यास एक मनुष्यखानीमें भी मिला हुआ है वा अध्यास मिश्रित है। और कोई एक ब्रह्मसे अनेक जगत् सृष्टिकी उत्पत्ति मानकर फिर चार खानीमें ही मिल रहे हैं। वे ऐसे भ्रमिक बद्ध हो रहे हैं। और—

एकते अधिक = } सब जीवोंमें 'जानकला' वा
एक नहिं एका = } 'ज्ञानगुण' तो एक समान है। परन्तु, खानीके अनुसार बुद्धि कम-ज्यादा रहती है। कोई एक-से-एक बुद्धिमान् होते हैं, और कोई वैसे ही मूढ़ रहते हैं। तथापि, एक पारखज्ञान उनमें नहीं है, इसलिये बार-बार चौरासी योनियों-में ही पड़े रहते हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— अध्यासके मेल-मिलापसे ही जीव चारों खानियोंमें जाकर देहधारी हुए हैं। अनेकों योनियोंमें सब एक सरीखा ही षट् पशुधर्म, कर्म संस्कार मिलित हो रहे हैं। और मनुष्योंमें एकसे अधिक तक गुण-लक्षण वा अध्यास भरे पड़े हैं। एक-न-एक विशेष आसक्ति उनमें लगी ही हुई है। चारखानीके सूक्ष्म स्वभावकी क्रिया भी मनुष्योंमें सम्मिलित है। जो कि, कभी-कभी विचित्र-विचित्र स्वप्नरूपमें भी भास हो जाते हैं। परन्तु, एक पारख बोध उनमें नहीं है, इसीसे भव-बन्धनमें ही जहँड़े पड़े हैं ॥ २७६ ॥

१२. पशु लक्षण मानुषको रूपा * ऐसेहि आहि प्रत्यक्ष स्वरूपा ॥ २७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

पशु लक्षण = } जिसका रूप-आकारमात्र
मानुषको रूपा = } देखनेके लिये मनुष्यका है; परन्तु, छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह-ये षट् पशुधर्मके लक्षणमें ही निपुण हैं।

ऐसेहि आहि = } जिनमें निज स्वरूपका ज्ञान
प्रत्यक्ष स्वरूपा = } नहीं है, सो प्रत्यक्षमें जैसे दूसरे पशुओंकी गति है, वैसे ही उस नरपशुकी भी गति है ॥

व्याख्या— इसलिये उनमें मनुष्यका तो रूप-आकारमात्र है; परन्तु, सर्वाङ्गमें पशुका ही गुण-लक्षण धारण किये हुए हैं। इसीसे वे रूपमात्रके मनुष्य गुणके तो पशु ही बने हैं। प्रत्यक्षमें ऐसे ही उनके मिश्रित स्वरूप हैं। अतः वह तो ऐसे ही देखनेमात्रका उनका मनुष्यका स्वरूप है। नहीं तो माया-मोहमें आसक्त महापशु बनकर अज्ञान दशामें ही जीवन बिता रहे हैं ॥ २७७ ॥

१३. ऐसेहि कला विदित बहु ग्रन्था * लक्ष भक्ष बाचक मनमन्था ॥ २७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसेहि कला = } पक्षपाती, अविचारी
विदित बहु ग्रन्था = } बेपारखी ऐसे ही गुरुवा-लोगोंने नाना कला-कल्पनासे वेद, शास्त्र, कुरानादि वाणी बनाये हैं, सो संसारमें उन्हों-के बनाये हुए अनेकों ग्रन्थोंसे उनके सिद्धान्त जाहिर ही हो रहे हैं। कहीं किसीको भी पारखबोध नहीं मिला है।

लक्ष = इसलिये कोई दूसरा ईश्वर मानकर उस अनुमानमें उन भक्त और योगीलोगोंने लक्ष्य लगाकर भूले पड़े हैं।

भक्ष = कोई सर्वभक्षी वाममार्गी बनकर पञ्च मकारका सेवन करने लगे हैं।

बाचक = कोई कथा वाचक पण्डित बनकर पुराणोंकी झूठी-झूठी कथा सुनाने लगे हैं।

और—

मनमन्था = कोई कामी-विषयी हुए हैं, कोई मनमति-ब्रह्मज्ञानी बनकर भ्रमिक, गाफिल हो गये हैं ॥

व्याख्या— ऐसी ही कला-कल्पना प्राचीन कालसे गुरुवालोगोंने प्रचार कर रक्खे हैं। जो कि, वेद, कुरान आदि बहुत ग्रन्थोंमें हिन्दू-मुस्लिमोंने लिख रक्खे हैं। सो बहुतेक ग्रन्थोंसे सबोंका मत-

मजहब मानन्दी संसारमें विदित ही हो रहा है। कोई कल्पित कर्त्तामें लक्ष्य लगानेवाले भक्तलोग 'बगुला-भगत' रूप ठग बने हैं। कोई सर्वभक्षी पामर बने हैं। कोई कथा-पुराण वाचक धूर्त गप्पी बने हैं। और कोई मन्मति कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, अज्ञानी वा विज्ञानी बने हैं। जो-जो पूर्वमें हो गये, उनके हाल नाना ग्रन्थोंमें लिखे हुए विदित ही हैं। जो अभी भी मौजूद हैं, सो प्रत्यक्ष ही देखे-सुने जा रहे हैं। वे सब जड़ाध्यासी होकर आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े और पड़ रहे हैं ॥२७८॥

१४. पारख दृष्टि मनुष्यको चीन्हा * वाणि खानि फरियावन लीन्हा ॥ २७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

पारख दृष्टि= मनुष्यको चीन्हा= } मनुष्य होनेका मुख्य चिह्न या निशानी, पहिचानी तो सद्गुण धारण सहित पारख दृष्टिका होना है। पारखदृष्टिवालेको ही सच्चा मनुष्यरूपमें पहिचानिये ! जो कि—

वाणि खानि= फरियावन लीन्हा= } वाणीजाल और खानी-जालोंका यथार्थ निर्णय-से परखकर बन्धन और मुक्तिका फैसला न्यारा-न्यारा विभाग करके हंस जीवको सर्व बन्धनोंसे निकाल लेते हैं ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुकी पारखदृष्टिसे ही हंस वा मनुष्यके यथार्थ गुण-लक्षणको चीन्हा या पहिचाना। अथवा पारखदृष्टि खुलनेसे ही मनुष्यने निज सत्स्वरूपको चीन्हा और खानी-वाणीको फरियाय कर न्यारा-न्यारा निर्णय कर लिया। उसके कसर-खोटको यथार्थ रीतिसे फैसला करके जान लिया, उससे न्यारा हो गया ॥ २७९ ॥

१५. षट सम्भाव कला चहुँ धारी * मानुषरूप तेई अधिकारी ॥ २८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

षट सम्भाव=षट् पशुधर्मोंकी आसक्तिसे ही चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति होती है वा हुई है। इसलिये मैथुन, मोह, भय-ये तीन-को सर्वथा त्यागकर अन्य तीनके सुधारसे देह वर्तमानको शुद्धतासे चलाना चाहिये। तथा—

कला चहुँ धारी=चार अवस्थाओंके कर्म बन्धन-को जानकर आसक्तिका त्याग करे। फिर सत्य, विचार, शील, दया सहित पारख-दृष्टिको चित्त चतुष्टयमें धारण कर लेवे।

मानुषरूप= तेई अधिकारी= } वे ही सच्चे साधु मनुष्य-स्वरूपी जीव जीवन्मुक्त होनेके अधिकारी वा विशेष पात्र हैं। और दूसरे अनधिकारीरूप मनुष्य चौरासी-योनियोंमें जानेके अधिकारी बने हैं ॥

व्याख्या— शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध और कल्पित इच्छा, इन्हीं षट्के द्वारा चार-खानियोंमें सम्भाव=अनेकों देहोंकी उत्पत्ति हुई और हो रही है। जहाँ षट् पशुधर्मोंकी विशेषता तथा चारखानीके चहुँकला धारी सब जीव हो रहे हैं; और मनुष्यरूपमें आकर भी चार अवस्थारूप चहुँकलाको धारण करके जो षट् सम्भावरूप षट् पशुधर्मोंमें ही विशेष आसक्त हुए पड़े हैं, वे ही जीव भविष्यके लिये चौरासी योनियोंमें जानेके अधिकारी हैं। और जो मनुष्य षट् पशुधर्मोंको सुधारकर शुद्ध रहनीको अपनेमें धारणकर लेते हैं, अन्तःकरण चतुष्टयमें विवेक, विचार, ज्ञान, वैराग्यको ही धारण कर लेते हैं, मनुष्यरूपमें सद्गुण सहित होनेसे वे ही विशेष मुक्तिके अधिकारी होते हैं ॥२८०॥

१६. सो पारख बल तिन्हें परखाई * मानुषरूप अनुमान मिटाई ॥ २८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सो पारख= बल तिन्हें= परखाई= } सारग्राही जिज्ञासु मनुष्योंको सो पारखी सद्गुरुने उन्हें सब जाल पारखके बलसे परखाकर दिखा दिये, और पारख बोधमें बलिष्ट कर दिये। इसीतरह परम्परासे पारखी—

मानुषरूप= अनुमान= मिटाई= } साधु-गुरु रूप मनुष्योंके अनुमान, कल्पना, भासादिको मिटाकर निज सत्स्वरूपमें स्थिर किये या कर देते हैं। तब वह हंस जीव मुक्ति-पदको प्राप्त करता है, ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुने पारख बलसे सो सब भेदको तिन्हें = जिज्ञासु नरजीवोंको परखाये हैं। और रूप मनुष्यके भ्रम, भूल, कल्पना, अनुमानको मिटा दिये हैं। जिससे वे सद्गुणधारी सच्चे मनुष्य होकर निजपदपर ठहरे और ठहर रहे हैं; सो पारख बलका ही प्रताप है ॥ २८१ ॥

१७. जहाँ अनुमान तहाँ यमको फन्दा * परखो सन्तो ! आदिको सन्दा ॥ २८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! और सुनो !—

जहाँ अनुमान = } जगत्कर्त्ता, सुख-दुःख-
तहाँ यमको फन्दा = } का दाता कोई ईश्वर, ब्रह्म या खुदा है, ऐसी अनुमान-कल्पना जहाँ जिन मनुष्योंमें लगी है, तहाँ यम गुरुवा-लोगोंके भ्रम-फन्दामें ही जीव पड़े हैं। अतः मनके अध्याससे आवागमनमें अरुझ रहे हैं, गर्भवासमें लटक रहे हैं। अतएव—

परखो सन्तो ! = } हे सन्तो ! हे मुमुक्षुओ !
आदिको सन्दा = } तुमलोग उस आदिके ब्रह्म-भ्रमरूपी मानन्दी निजस्वरूपकी भूलको पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके यथार्थ परखो ! तथा उस भूल, मानन्दीको परित्याग करो ! हंस रहनीको ग्रहण करो ! ॥

व्याख्या— जहाँपर जिसमें अनुमान-कल्पना लगी है, तहाँपर वह यमके फन्दाओंमें ही पड़ा है। हे सन्तो ! यह आदिकी सन्धि वा प्रथम नरदेहकी भूल, मानन्दीको अच्छी तरहसे विवेक करके परखो ! और उसको मिटाओ ! प्रत्यक्ष निज पारख स्वरूप स्थितिमें स्थिर हो रहो ॥ २८२ ॥

१८. परखतरूप मानुष बुद्धिवन्ता * लहै मोद अनुमय ना सन्ता ॥ २८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

परखतरूप = }
मानुष = } रूप मनुष्यमें जो बुद्धिमान्
बुद्धिवन्ता = } श्रेष्ठ परीक्षक विवेकी होते हैं, सोई सार-असार, जड़-चैतन्य सत्य-मिथ्याको परखते हैं।

अनुमय = उन पारखी सन्तोंने अनुमान—

ना सन्ता = कल्पनाको परखकर नाशकर दिये हैं, इसलिये ब्रह्म-ईश्वरादि अनुमानका जाल उनमें नहीं रहता है।

लहै मोद = निजस्वरूपमें स्थिर रहनेसे प्रत्यक्ष जीवन्मुक्त सुखी रहते हैं या उस मोदको प्राप्त कर लेते हैं ॥

व्याख्या— मनुष्यरूपमें जो बुद्धिमान् होते हैं, वे सबोंके स्वरूपको परखते हैं। तथा उक्त अनुमान, कल्पना, अध्यास आदिको विनाश करके प्रत्यक्ष निर्बन्ध स्वरूप स्थितिका सुख प्राप्त करते हैं। पारखी सन्तोंमें अनुमान आदि विकार कुछ नहीं रहता है; इसीसे वे मोदको लहते हैं। निजरूप-पररूप सबको परखते हैं, वे ही बुद्धिमान् मनुष्य होते हैं ॥ २८३ ॥

१९. ब्रह्माकार रूप अनुमाना * मेटेउ जथारथ मनुष्य समाना ॥ २८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्माकार रूप = }
अनुमाना = } रूपमात्रके मनुष्य गुरुवालोगों-ने जो जड़-चेतन सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक ही ब्रह्म माने हैं, सो मिथ्या अनुमानका ही आकार-प्रकार है। यानी झूठका ही पसारा है।

मेटेउ जथारथ = }
मनुष्य समाना = } सत्यन्यायी पारखी सन्तोंके समागम-सत्सङ्गमें बराबर लगे रहनेसे यथार्थ सत्य जड़-चैतन्यका ज्ञान हुआ वा होता है। तो अनुमान, कल्पनाको मिटाकर हंस मनुष्य पारखमें स्थिर हुए या होते हैं। वे ही यथार्थमें मनुष्य हैं ॥

व्याख्या— ब्रह्माकारका व्यापकरूप जो माने हैं, सो मिथ्या अनुमान है। जब यथार्थ मनुष्य सद्गुण विवेकमें समाते हैं, तब बराबर पारख करके उस अनुमानको मिटाय देते हैं। अर्थात् ब्रह्माकाररूप अनुमानको मिटाय करके मनुष्य पारख-स्थितिमें समाये रहते हैं ॥ २८४ ॥

२०. मानुष बुद्धि अतिशय भारी * लखै सुलक्षण गुरुमुख वारी ॥ २८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मानुष बुद्धि = मनुष्यकी सद्बुद्धि
अतिशय भारी = सारासार विचारिणी निर्णय बुद्धि ही गुरुबुद्धि कहलाती है, सो अत्यन्त श्रेष्ठ या बड़ा भारी गरुवापद है। वही गुरुपदको प्राप्त करानेवाला है।

लखै सुलक्षण = गुरुमुख निर्णयकी वाणी
गुरुमुख वारी = श्रवण-मनन करनेवाले, शुद्ध लक्षण हंस रहनी सद्गुणोंको धारण करनेवाले कोई बिरले ही नरजीव मनुष्य बुद्धिको पाकर सारासारको लखेंगे। इसलिये शुद्ध लक्षण सहित गुरुमुख वाणीसे बन्धन-मुक्तिको लख लो ! ॥

व्याख्या— मनुष्यकी सत्यासत्य निर्णय करनेकी बुद्धि वा गुरुबुद्धि अतिशय भारी वजनदार बड़ा श्रेष्ठ है। उस शुद्ध लक्षणको गुरुमुख वाणी सारशब्द निर्णयसे लखना वा जानना चाहिये। कोई बिरले ही मनुष्य शुद्ध शुभ गुण-लक्षणवाले गुरुमुख वाणीको लख पाते हैं ॥ २८५ ॥

२१. मन मानै सङ्कल्प कहानी * मेटेउ रहटकी ऐंचातानी ॥ २८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मन मानै = रूप मनुष्यने मन-मानन्दीसे अनेक
सङ्कल्प = सङ्कल्प-विकल्प करके ब्रह्मके
कहानी = सङ्कल्पसे सारा जगत्की उत्पत्ति हुई, और विकल्पसे प्रलय होगा, ऐसी मिथ्या कहानी, इतिहास, कथा, पुराण, शास्त्र, वेदादिमें वर्णन कर गये या कर रहे हैं।

मेटेउ रहटकी = सो ब्रह्म-जगत्की रहटा तथा
ऐंचातानी = स्त्री, और गुरुवाओंकी खैंचातानी खानी-वाणीकी झकझोर आवागमन चक्रका कारण है। सोई पारखी सद्गुरुकी दयासे पारखबोध प्राप्त होकर जिज्ञासु मनुष्यकी मिट गई या मिट जाती है। वे उसे परख करके मिटाय देते हैं ॥

व्याख्या— भ्रमिकोंने मनमाने वैसे सङ्कल्प- कल्पना करके ब्रह्मसे जगत् उत्पत्ति होनेकी कहानीरूप मिथ्या वाणीका कथन कर रक्खे हैं। जिससे रहट-घड़ीकी नाईं ब्रह्म-जगत्की ऐंचातानीसे आवागमनमें जीव पड़ रहे हैं। सो पारखबोध होनेपर ब्रह्मकी भ्रम-कल्पना हंसरूप मनुष्यने मिटा दी, तो उससे होनेवाली ऐंचातानी भी मिट गई; अपने पदमें स्थिति हो गई ॥ २८६ ॥

२२. मानुष कौन? सुनहु शिष्य ! सोई * खानि वाणी निर्णय बुद्धि होई ॥ २८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मानुष कौन ?=
सुनहु शिष्य ! सोई = नरदेह पानेवालोंमें सच्चे मनुष्य कौन हैं ? सो तुझे मैं बतलाता हूँ, हे शिष्य ! तुम ध्यान देकर सो उसको सुनो !—
खानि वाणी = स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज्यादि खानी जाल है; तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि वेद, शास्त्र, कुरानादि वाणी जाल है।

निर्णय =
बुद्धि होई = जिसने इन दोनोंको विजातीय बन्धन जानकर सङ्ग छोड़ दिया है; और जिसमें जड़-चैतन्य, सत्यासत्यका यथार्थ न्याय-निर्णय करनेकी बुद्धि पारख-दृष्टि है, सोई यथार्थमें मनुष्य है ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! सुनो, सच्चा मनुष्य कौन है ? कि, खानी-जाल तथा वाणी-जाल इन दोनोंका यथार्थ निर्णय करके उसकी कसर-खोट आसक्ति आदिको परित्याग कर देनेकी शुद्ध बुद्धि जिसमें होवे, सोई असलमें हंस वा मनुष्य है; वही मुक्ति पानेका अधिकारी है ॥ २८७ ॥

२३. रूप मनुष्य जग देखहु सोई * सो जथारथते मनुष्य न होई ॥ २८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

रूप मनुष्य जग = } संसारमें मुख, हाथ, पाँव,
देखहु सोई = } अङ्ग-प्रत्यङ्ग एक समानरूप वाले जो हैं, सो रूपमात्रके मनुष्य हैं। उन्होंके रूप या आकार मात्र ही मनुष्यका दिखता है। नहीं तो गुण पशुका ही लिये हैं, ऐसोंको जो तुम जगत्में मनुष्यरूपमें देखते हो, सो वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं, किन्तु, नरपशु ही बने हैं।

सो जथारथते = } क्योंकि, उनमें गुण-लक्षण
मनुष्य न होई = } तो पशुके ही भरे पड़े हैं। इसवास्ते सो वे लोग यथार्थ न्याय-निर्णय-से मनुष्य हो नहीं सकते हैं, यानी वे सच्चे मनुष्य नहीं हैं॥

व्याख्या— जगत्में जितने भी रूपमात्रके मनुष्य देखते हो, वास्तवमें सद्गुण लक्षण जिनमें कुछ भी नहीं है, सो षट् पशुधर्ममें ही आसक्त पड़े हैं, सो वे यथार्थमें निर्णयसे सच्चे असली मनुष्य नहीं हैं वा मनुष्य हो नहीं सकते हैं, वे तो नरपशु बने हैं॥ २८८॥

२४. मानुष लक्षण मानुष खानी ❀ बिन पारख नहिं मानुष जानी॥ २८९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! इसलिये—

मानुष लक्षण = } जिनमें सत्य, विचारादि
मानुष खानी = } मनुष्यके सद्गुण-लक्षण धारण मौजूद हैं, सोई मनुष्य खानीके नरजीव हैं। और मनुष्यखानीसे आये हुएमें वैसे सद्गुण-लक्षण स्वाभाविक ही होते हैं।

बिन पारख नहिं = } गुरु पारखके बिना मनुष्य
मानुष जानी = } और पशुकी पहिचान ही नहीं होती है। जिसने पारखको नहीं जाना, सो तो पारखके बिना नरपशु ही बना है, ऐसा जानो!॥

व्याख्या— जो प्रथम भी मनुष्य देहमें हो, पश्चात् भी मनुष्य खानीमें आकर नरदेह पाया हो, ऐसे मनुष्यके गुण-लक्षण सर्वोत्तम, सात्त्विक होते हैं। ऐसे जीव छोटेपनसे ही ज्ञानमार्गमें लग जाते हैं। ऐसे शुभ संस्कारी कोई बिरले ही होते हैं। और मनुष्य खानीमें आकर मनुष्यके सद्गुण लक्षण, रहनीकी धारण करनेवाले ही सच्चे मनुष्य होते हैं। और यह मनुष्यके गुणवाला है, तथा यह पशुके गुणवाला है, ऐसी पहिचान, परीक्षा, पारखबोध प्राप्त हुए बिना कोई भी मनुष्य जान नहीं सकते हैं। पारखी सन्त ही इस भेदको जान सकते हैं, और दूसरोंको भी जना सकते हैं। और दूसरे कोई जान नहीं पाते हैं। इसीसे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके इस रहस्यको जान लेना चाहिये॥ २८९॥

सम्बन्ध— इस बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें जो बात कहा है, सो प्रमाणरूपमें यहाँ कहा जाता है, सुनिये!—

॥ ❀ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ बीजक ग्रन्थका निर्णय प्रमाण ॥ साखी नम्बर— १०९ ॥ ❀ ॥

(४) साखीः— मानुष होयके ना मुवा ❀ मुवा सो डाङ्गर ढोर॥
[८९] एकौ जीव ठौर नहिं लागा ❀ भया सो हाथी घोर॥ २९०॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्त-सज्जनो! सुनो!—

मानुष होय- = } पूर्व संस्कारसे जीवने मनुष्य
के ना मुवा = } देह धारणकर जन्म लिया है; परन्तु, यहाँपर स्त्री विषयादि कल्पना वाणी प्रपञ्चोंमें ही पड़कर जड़ाध्यासी जो हुआ, सो चौरासी योनियोंमें ही जा पड़ा। और सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति तथा वैराग्य- इन सद्गुण संयुक्त हो, जो सच्चा पारखी मनुष्य हुआ, सो तो जड़ाध्यासी होकर नहीं मरा, इसीसे तो वह जीवन्मुक्त हुआ। ऐसा जो नहीं हुआ-

मुवा सो = } तो फिर सो जीव कर्म भूमिकामें
डाङ्गर ढोर = } आकर जड़ाध्यासी ही हुआ। तहाँ मोटी-झीनी पञ्च विषयोंकी आसक्ति, ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पनामें ही जो पड़ा, सो

मूर्ख तो मनुष्यपदसे मरा या नाश हुआ। इसलिये देह छोड़कर वह जङ्गली जानवर या घरके पशु=ढोर होकर ही जन्म लेगा, और डाङ्गर ढोरवत् दुःख पाकर मरा करेगा। पहले भी पशुखानीमें वह जीव था; पशुवत् ही अभी नरतनको बिताया और फिर भी वहीं पशु आदि योनियोंमें जाकर देह धरेगा। जैसा अभ्यास होता है, तैसी ही गति होती है। यह निश्चित बात है।

एकौ जीव=ठौर नहिं=लागा= अनेकों जीवोंने कर्मानुसार मनुष्य तन धारण किये हैं। परन्तु, एक भी नरजीव निज-स्थिति हंसपद पारख ठौरमें लगनेका प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। अभी नरदेहमें एक जीव पारखस्थितिमें जो नहीं लगेगा, तो वह कभी मुक्त होनेका नहीं। एक पारखबोध स्वरूप स्थिति ही जीवका ठौर है। सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें जो नहीं लगा, सो उभय भ्रष्ट हुआ; अतः वह चौरासी योनियों-में ही जायगा। और—

भया सो=हाथी घोर= कोई ब्रह्मज्ञानी हाथीके समान उन्मत्त हो रहे हैं। हाथकी लिखी हुई वेद वाणीकी कल्पनासे ब्रह्म बने, कोई अष्टमदमें ही उन्मत्त हुए। कोई कर्म, उपासनामें घोड़ेके समान चञ्चल हुए हैं; उछल-कूद करने लगे हैं। कोई विषयान्ध हुए हैं। इन्हीं सब खानी-वाणीके अभ्याससे जीव हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल, गधे, भैंसा आदि चौरासी योनियोंमें जाकर जन्म ले लिये, सो तहाँ वे अनेकों दुःख भोग रहे हैं, बिना पारख ॥

व्याख्या— सुनो! इस बारेमें प्रमाण देता हूँ, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, साखी १०९ में कहा है— हे सन्तो! सच्चा मनुष्य होकर तो कोई नहीं मरा, बन्धनमें नहीं पड़ा। क्योंकि, सच्चा मनुष्यरूपमें हंस पारखी जीवन्मुक्त होते हैं। इसीसे वे भव-बन्धनसे रहित होकर जन्म-मृत्यु आदिसे छूटे हुए रहते हैं। पूर्व अबोध अवस्थामें बना हुआ कर्म भोग प्रारब्ध पूरा होनेपर देह तो आप ही नाश हो जाता है; किन्तु, वह उनकी बन्धनदायी मृत्यु नहीं होती है। बोध होनेके पश्चात् अभ्यास न रहनेसे गर्भमें जाकर जन्म नहीं लेते हैं, इसीसे फिर-फिर उनकी मृत्यु भी नहीं होती है। इसी हेतुसे कहा है— "मानुष होयके ना मुवा" मनुष्य होकर कोई नहीं मरा। किन्तु, सच्चा मनुष्यपदमें स्थिति होनेपर अमर जीव जीते ही मुक्त हो जाता है। और जो मुवा=जड़ाध्यासी होकर मरे, सो डाङ्गरढोरके सरीखे निकम्मा, बुद्धिहीन, पतित होकर मरे। इससे बद्ध होकर चौरासी योनियोंमें उलटकर जा पड़े। इसतरहसे असंख्य देहधारी जीवोंमें या अनेकों मनुष्योंमेंसे एक जीव भी बिना पारख निजपदकी ठौर-स्थितिमें जीवन्मुक्तिके पदमें आ कर नहीं लगा। किन्तु, हाथी-घोड़ेकी नाईं योगी, ज्ञानी, भक्त, विषयीलोग उन्मत्त गाफिल हुए। इसकारण फिर देह छूटनेपर वे जीव सब चौरासी योनियोंमें जा-जाकर हाथी, घोड़े, गदहे, सूअर, कुत्ते आदि पशु देहधारी हुए और हो रहे हैं। बिना पारख चौरासी योनियोंके चक्रसे कोई छूट नहीं पाते हैं, ऐसा जानिये! ॥ २९० ॥

दोहाः— दया क्षमा अरु शीलता ❀ पारख जथा विचार ॥
[९०] लहै चार लक्षण शुभहिं ❀ मानुष गुरुबुद्धि सार ॥ २९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

दया=अपने जीवको जड़ाध्यासोंसे बचाकर मुक्तिमार्गमें लगाते हुए अन्य जीवोंकी भी रक्षा करना, सो 'निजदया' और 'परदया' कहलाती है।

क्षमा=दूसरेके अपराधको सहनकर उसे माफ करना—यह सत्यताके अन्तर्गत 'क्षमा' आ जाती है।

अरु शीलता=और सहनशीलता, नम्रता, मृदुता, कोमलता, सरलता रखना—'शीलता' कहलाती है।

पारख जथा=विचार= फिर परीक्षासे जड़-चैतन्यका यथार्थ विवेक-विचार करना,

पारखबोधको ही धारण करना, पारख स्वरूपकी स्थितिमें रहना, सो 'विचार' कहलाता है।

लहै चार = लक्षण शुभहिं = ये चार शुद्ध हंस लक्षण शुभ हैं। इनको जो धारण करते हैं, सो शुभ कल्याणपदको ही प्राप्त कर लेते हैं। जिससे चार खानियोंके बन्धनोंसे वे छूट जाते हैं।

मानुष गुरु- = बुद्धि सार = ऐसे सार गुरुबुद्धि निर्णयवाले कोई विरले ही मनुष्य होते हैं। जिन्होंने सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा गुरुबुद्धिसे सारासारका निर्णय करके सार पारखको प्राप्त कर लिये, सोई सच्चे मनुष्य मुक्तिके अधिकारी होते हैं। वे ही सब मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ सार नररत्न होते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या—(१) दया, (२) क्षमा, (३) शीलता, और (४) यथार्थ पारख विचार हो, ये चार शुभ लक्षणको ही जिसने अपने स्वभावमें प्राप्त करके धारण कर लिया है, सोई मनुष्यमें गुरुबुद्धिका प्रकाश करनेवाला सर्वश्रेष्ठ सार पारख है। ऐसा जानकर उक्त चार शुभ लक्षणोंको ही प्रयत्न करके अपने हृदयमें धारण करना चाहिये, जिससे मनुष्य देहमें सार गुरुबुद्धिकी प्राप्ति और स्थिति हो जायगी; सोई बनाना चाहिये॥ २९१॥

दोहाः— भोजन छाजन भय सहित ❀ मैथुन निद्रा मोह॥
[९१] षट विकार चहुँखानिके ❀ मानुष लहै न कोय॥ २९२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

भोजन = आहार करना वा खुराक खाना या भोजन करना, खाना-पीना करना, यह प्रथम कर्म है।

छाजन = कपड़ेसे शरीर ढाकना, सर्दी-गर्मीसे बचना, घोंसला, खोह, और घर आदि सुरक्षित स्थानमें रहना, यह दूसरा कर्म है।

भय सहित = दुःखसे डरना, अपनेसे बलिष्ठके आक्रमणसे भयभीत होना, यह तीसरा कर्म है। ये तीन लक्षणोंके सहित—

मैथुन = फिर स्त्री-पुरुषका परस्पर सम्भोग विषय करना, यह चौथा कर्म है।

निद्रा = आँखें मूँदकर सोना, आराम करना, बेभान हो जाना, यह पाँचवाँ कर्म है। और—

मोह = अपने परिवारोंमें आसक्ति, खिंचाव, चिपकाहट, ममत्वकी अधिकता होना, यह छठवाँ कर्मका विकार है।

षट विकार = चहुँखानिके = इन्हीं षट् लक्षणोंको षट् पशु धर्म भी कहते हैं; और चारों-खानियोंके देहधारी जीवोंमें उक्त षट्-विकार जनित आसक्ति या संस्कार विशेष-रूपसे हृदयमें बना रहता है।

मानुष = लहै न = कोय = विवेकी मनुष्य उनमेंके कोई भी कर्मकी आसक्ति, अध्यासको अपने-में नहीं लेते हैं। भय, मोह, मैथुन, ये तीनको सर्वथा भीतर-बाहरसे परित्याग करके सिर्फ भोजन, छाजन, निद्राको साधारण देह गुजारा लायक सुधार पूर्वक रखकर बेगारवत् बर्तते हैं, सो पारखी सन्त षट् पशुधर्मको त्याग-सुधार करके उनमेंसे कोईका भी अध्यास बाकी नहीं रखते हैं॥

व्याख्या— छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्राके सहित और मोह करना, यह चारोंखानीके प्राणियोंका षट् विकाररूप षट् पशुधर्म कहलाता है। सब जीव इसीमें आसक्त, लिप्त होकर बन्धनमें पड़े हैं। उनमेंसे बन्धनदायी कोई भी विकार और आसक्ति सच्चे मनुष्य पारखी सन्त नहीं लेते हैं; वे विचारपूर्वक बर्तते हैं। मोह, भय, मैथुन, ये तीनको सर्वथा परित्याग करके शुद्ध आहार, गुजारा लायक वस्त्र और अल्प आवश्यक निद्राको सुधार पूर्वक लेते हैं। जिससे सद्गुण रहनी पारखबोध होनेसे मनुष्य मुक्त हो जाते हैं॥ २९२॥

पं० प्र० टीका; ९२—

दोहाः— सब आश्रित ये षटनके * बड़ खट खट षट केर ॥
[९२] खट खट षटके लखेते * पुनि खट खट नहिं फेर ॥ २९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सब आश्रित = ये षटनके = समस्त मनुष्य, पशु, पक्षी आदि शरीरधारी जितने भी जीव हैं, सो सब प्राणी यही षट् पशुधर्मके अध्यासी हुए और हो रहे हैं। इसी षट् धर्मोंके आश्रित या आसक्तिके आधारमें सब जीव पड़े हैं; इसीमें दबे पड़े हैं।

बड़ खट खट = षट केर = उस षट्के बीचमें बड़ी ही उपाधि, फसाद, झगड़ा, झंझट, टण्टा, कोलाहलकी आवाज हो रही है। उन छैःका प्रपञ्च बड़ा जबर्दस्त बलिष्ठ है। और—

खट खट = षटके = लखेते = षट् पशुधर्म, षट् ऊर्मि, षट् पशु, षट् स्त्री-पुरुष, षट् कर्म, नित्य षट् कर्म, षट्वादी, षट् दर्शन, षट् शास्त्र, षट् जाप, षट् सिद्धान्त, षट्गुण-ऐश्वर्य, षट् योग क्रिया, वेदके षट् अङ्ग इत्यादि छैः-छैः भागोंके सब विकार सब जीवोंको बन्धनरूप हैं। सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें इन षट् भागोंके खटपट-को यथार्थ रीतिसे लखकर वा परखकर जिन्होंनेपरित्याग कर दिये हैं—

पुनि खट खट = नहिं फेर = वे फिर पलटकर उधर उपाधिमें नहीं जाते हैं; उससे मुँह फेर लेते हैं। फिर आँखोंसे ताक करके भी उसे नहीं देखते हैं। ऐसे पारखी सन्त फिर आवागमनोंमें, उक्त खटपटमें नहीं पड़ते हैं, न्यारे हो रहते हैं या अलग हो जाते हैं ॥

व्याख्या— सब चारोंखानीके देहधारी प्राणीमात्र ये षट् विकारोंके आश्रित हो, अध्यासमें दबे पड़े हैं। यह षट् विकारके बड़े खट-खट, उपाधि, झंझट, झगड़ोंमें सब जीव भूले पड़े हैं। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परख करके माया प्रकृतिके षट्-षट्अङ्गका सम्पूर्ण भाग और षट् विकारोंके खट-खट उपाधिको यथार्थ लख लेनेसे उधरसे चित्त उपराम हो जायगा। फिर वह षट् विकारोंके खट-खटमें फिरनेका नहीं। उससे पृथक् होकर हंसपदमें ठहरकर निर्बन्ध मुक्त हो जावेंगे ॥ २९३ ॥

दोहाः— षट पञ्चाइत न्याव गुरु * सन्तनके सत्सङ्ग ॥
[९३] अशरण शरणकी बुद्धिते * षटको खट खट भङ्ग ॥ २९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

षट पञ्चाइत = न्याव गुरु = पारखी सद्गुरुके टकसारी सत्सङ्गमें उपरोक्त षट्-षट्के भागोंको सद्गुरुके सत्यन्यायसे परखकर जिन्होंने असली भेदको जान लिये हैं; सो उसको छोड़कर—

सन्तनके = सत्सङ्ग = विवेकी साधु-सन्त सद्गुरुके ही सत्सङ्ग निर्णय विवेक-विचार-में लगे रहते हैं। सब विजातीय मानन्दीका परित्याग कर देते हैं। और—

अशरण शरणकी बुद्धिते = अशरणको शरण देनेवाले सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी पारखी सद्गुरुकी गुरुमुख वाणीसे निज बुद्धिको प्रकाश करके पारख बोधसे जिनका भ्रम निवारण हो गया है, सो गुरुबुद्धि निर्णयके प्रतापसे—

षटको खट-खट भङ्ग = उपरोक्त समस्त छै-छै भागोंकी उपाधि, प्रपञ्चोंको नशाय देते हैं। अतएव षट् विकार और धोखेसे रहित, पारखी सन्तोंके अध्यासोंका विनाश होनेसे वे निरुपाधि जीवन्मुक्त हो गये या हो जाते हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरुके सत्यन्याय-पञ्चाइत तथा पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग द्वारा षट्-षट् भागके सम्पूर्ण भेदको जान लेना चाहिये। और षट विकारका सुधार कर लेना चाहिये। अशरण-शरण पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके गुरुबुद्धिके विचारसे विवेक करके वह षट् अङ्ग, षट् विकार

आदिसे होनेवाले समस्त खट-खट उपाधिको जड़-मूलसे भङ्ग करके विनाश कर देना चाहिये ! हंस रहनीमें ही टिके रहना चाहिये ॥ २९४ ॥

दोहाः— यह प्रकार समिता लहै * गुरु पञ्चाइत न्याव ॥
[९४] उद्वेगन आरम्भ तजी * मनन जथारथ भाव ॥ २९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

यह प्रकार = } इसप्रकारसे बराबर बोध,
समिता लहै = } स्थिरता, धीरता, गम्भीरता, शान्ति, निश्चलता, स्वरूपज्ञानकी प्राप्ति मुमुक्षुओंको तभी होयगी, जब कि—

गुरु पञ्चाइत न्याव = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें सत्यन्याय निर्णयसे जड़-चैतन्यके यथार्थ भेदको जान लेंगे। सबकी मानन्दी करनेवाला सबसे न्यारा सत्य स्वयं जीव ही है। ऐसा समझ लेनेपर सब मानन्दीको त्यागकर निजस्वरूप पारखपदमें स्थिर हो जावेंगे।

उद्वेगन = } फिर मनके सङ्कल्प-विकल्प,
आरम्भ तजी = } इच्छा, वासना, आरम्भ-परिणाम इन सब विकारके भावको तथा विषय चिन्तनको छोड़ देते हैं। और ब्रह्मकी इच्छारूप सङ्कल्पसे जगत्की उत्पत्ति आदि जो माने हैं, सो भी कल्पना जानकर सब भ्रमको छोड़ते या त्याग देते हैं।

मनन = } सत्सङ्गमें श्रवण किया हुआ
जथारथ भाव = } पारखी सद्गुरुके सत्योपदेशको ही मनन-चिन्तन विचार करके यथार्थ सद्भावसे सत्यज्ञान पारखबोधको ही धारण कर लेते हैं। जड़ासक्तिका अभाव करके सद्बोधका ही भाव बनाये रखते हैं। उसीप्रकार मुमुक्षुओंने भी यथार्थ भाव बनाये रखना चाहिये ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुकी पञ्चाइत = सत्सङ्ग द्वारा न्याय-निर्णय करके इसप्रकारसे समिता = समत्व भाव बराबर एकरस पारखबोधकी स्थिति लेवे वा लेना चाहिये। और मनकी उद्वेग चञ्चलता, सङ्कल्प-विकल्प तथा इच्छा-वासनाके आरम्भको शुरूमें ही छोड़कर यथार्थ सद्भावसे गुरुबोधको मनन करते रहना चाहिये। अर्थात् प्रथम सद्गुरुके सत्सङ्गमें जाकर सत्य उपदेशको श्रवण करे। फिर एकान्त स्थानमें बैठकर प्रथम ही विषय चिन्तनका त्याग करे, मनमें उद्वेग होने न देवे, मनोद्रष्टा बनकर सद्भावसे जड़-चैतन्य, सत्यासत्य आदिके यथार्थ बोधके लिये श्रवण किया हुआ उपदेशको स्मरण करके तहाँ मनन करे और निश्चय करे। इसप्रकारसे अभ्यास करते-करते फिर निजस्वरूपकी स्थिति, स्थिरता उसे प्राप्त हो जाती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २९५ ॥

दोहाः— वर्तमानकी भूमिका * ठहरै मनुष्यको रूप ॥
[९५] यथा वर्तै तेहि मगन मन * दुःख सुख शान्त स्वरूप ॥ २९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

वर्तमानकी भूमिका = } अभी यही मनुष्य देहरूपी कर्मभूमिकामें बन्धनोंसे छूट कर मुक्ति होनेकी साधना-सत्पुरुषार्थ हो सकता है। यही मुक्तिका द्वार है।

ठहरै मनुष्य-को रूप = } ऐसा समझकर जो नरजीव मनुष्य देहमें विवेक, वैराग्य, सत्य, दयादि हंसके सद्गुण-लक्षण रहनी-रहस्यको धारणकर निजस्वरूप पारखमें ठहर गये, स्थिर हो गये, सो महाभाग्यवान् धन्य हैं ! अन्य मनुष्यको भी उसीप्रकार निजस्वरूपमें ही ठहरना चाहिये। और—

यथा वर्तै तेहि मगन मन = } प्रारब्ध भोगोंमें यथाप्राप्त वर्तमानमें शुद्ध अन्न-जलादि ग्रहण करके निराश-निवृत्तिसे बेगारवत् बर्तना चाहिये ! उसी निजबोधमें मनको लगाकर मगन, सुखी, सन्तुष्ट रहना चाहिये; और—

दुःख सुख शान्त स्वरूप = } निजस्वरूपमें सुख-दुःखादि नहीं है। मानन्दीरूपमें प्रारब्ध वेगसे देह सम्बन्धमें सुख-दुःख होता है, ऐसा समझकर सुख-दुःखादिमें वृत्तिको शान्त रक्खे, सदा स्वरूप-स्थितिमें ही टिकारहे ॥

व्याख्या— यह वर्तमानमें प्राप्त मनुष्य देहकारूप कर्मभूमिका तथा मुक्ति क्षेत्र है। इसीसे वर्तमानकी भूमिका मनुष्यके रूपमें ही पारखबोध हासिल करके निज स्वरूपमें ठहरके स्थिर हो जाना चाहिये। और देह वर्तमानमें जैसे भी संयोग मिले वा संयोग बनि आवे, दुःख भोग उपस्थित हो वा सुख हो, उन दोनोंमें विवेक-विचार पूर्वक बरते। और पारख स्वरूपमें ही शान्त-निर्भ्रान्त रहकर उसीमें लक्ष्य स्थिरकर मनमें मगन रहे; सन्तुष्ट, सुखी हो रहे। वही जीवन्मुक्तिका स्वतन्त्र, शुद्ध, निर्विकार सुख कहलाता है ॥ २९६ ॥

दोहाः— चौरासीकी पत्रिका ❀ अहै मनुष्यको रूप ॥
[९६] मानुष ही ते सब होत है ❀ गहै अनेकन रूप ॥ २९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
चौरासीकी पत्रिका = चारखानियोंकी चौरासी योनियोंमें ले जानेके अनेकों वासना-बीज बननेका तथा वह टिके रहनेका पात्र वा वर्तन और कारखाना समान अथवा चौरासी योनियोंमें पहुँचानेका चिट्ठी-पत्र, रजिष्ट्रीके समान वा पैकबन्द पार्सलके समान वहाँ भेजानेवाला—
अहै मनुष्य-को रूप = सो यही मनुष्यरूपका देह है। यह कर्मभूमिका है। यहींपर चारखानीमें भोगनेकी समस्त कर्म-वासनाएँ बनकर तैय्यार होती हैं।
मानुष ही ते सब होत है = शुभाशुभ कर्म मनुष्यसे ही होते हैं; विधि-निषेध, त्याग-ग्रहण, पाप-पुण्य, हित-अहित, साँच-झूठ, बन्धन-मुक्ति इत्यादि सब कार्य व्यवहार मनुष्यसे ही होते हैं। मनुष्य जीव सब कर्म करनेके लिये समर्थ हैं। और—
गहै अनेकन रूप = अनेक विषय-वासना, अनेक वाणी सिद्धान्तोंके विभिन्नरूपको ग्रहण करनेवाले नरजीव ही हैं। इसलिये नरदेहमें नाना कर्म-अध्यासको पकड़कर यही जीव अनेकों देहें चौरासी योनियोंमें जाकर धारण कर लेते हैं ॥

व्याख्या— मनुष्यका रूप जो है, सो कर्मभूमिका होनेसे चौरासी योनियोंमें जानेका सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म संस्कार इसी पात्रमें रक्खे जाते हैं; और चिट्ठी, पत्र, दस्तावेजके समान कर्म-अध्यास लिखकर अङ्कित करनेका चौरासी योनियोंकी पत्रिका यही मनुष्य देहका रूप है। यहाँ जैसे-जैसे अध्यास बनते हैं, तैसे-तैसे सब जगह भोगना पड़ता है। और सब पाप-पुण्यकी वासना संस्कारका जमाव मनुष्यसे ही होता है। जैसे यहाँ अनेकों मार्ग, सिद्धान्त, आचार, विचार, रूप-रङ्गको पकड़े हैं, तैसे ही देह छूटनेपर भी जीव अध्यासके अनुसार चारासी योनियोंमें जाकर अनेकों देहोंका रूप धारण करके ग्रहण किये और ग्रहण कर ही रहे हैं। अतः अभी परखकर उन सब वासनाको मिटाना चाहिये ॥ २९७ ॥

दोहाः— यथा षटन निर्णय लखै ❀ चारिउ पद गुण खानि ॥
[९७] वाणी सुधारै चारिउ विधि ❀ होवै साँच गुरु बानि ॥ २९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
यथा षटन निर्णय लखै = यथार्थ सत्य निर्णयसे सद्गुरुके पारख बोध द्वारा षट् पशुधर्मका विकार, षट् नित्य-नैमित्तिक कर्म, षट् शास्त्रोंके मत-सिद्धान्तोंके अनुमान, कल्पना, विषयोंको बन्धनरूप लखै, परखै।
चारिउ पद गुण खानि = गुरुवालोगोंके बतलाये हुए चारों मुक्तिका पद त्रिगुण अध्यास सहित जीवको चारखानीमें ही लेजानेवाला है। इसको यथार्थ परखकर जानना चाहिये।
और—
वाणी सुधारै चारिउ विधि = विधि पूर्वक अच्छी तरहसे कसर-खोटकी परीक्षा करके चारों वेदोंकी कल्पित वाणी-जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुखके कथनोंको गुरुमुखसे निर्णय करके सुधार लेवे। तथा—

होवै साँच = साँच = जीव सत्य है, ईश्वरादि
गुरु बानि = नरजीवोंकी कल्पना असत्य है।
खानी-वाणी जालोंको जलाकर या त्यागकर सत्य, विचार, शील, दयादि सद्गुण धारण कर निजपदमें स्थिर रहो! ऐसा यथार्थ उपदेश होवे, सोई गुरुमुख वाणी निर्णय सत्य-न्यायकी है। उसीको ग्रहण करनेसे ही जीवका कल्याण होगा; भव-बन्धन छूटेगा॥

व्याख्या— जैसे भी करके बने वैसे ही सत्पुरुषार्थ तथा पारखी साधु सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके यथार्थ निर्णयसे षट् दर्शन, षट् शास्त्रोंका जाल, षट् कर्म और षट् पशुधर्म इत्यादिको छान-बीन करके लख लेवे। और चार वर्ण, चार आश्रम तथा चार मुक्तिका पद, त्रिगुण-भक्ति, योग, ज्ञान सहित गुरुवालोगोंने जो श्रेष्ठ माने हैं, सो उसका गुण-अध्यास तो जीवोंको चारखानीमें ले जानेवाला ही है; ऐसा निर्णय करके लखे। और चारों प्रकारसे विधिपूर्वक कथन किया हुआ जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख वाणीके भेदको जानकर चार वाचा, चार वेद आदिकी कल्पित वाणीको सुधार करै। और गुरुमुख वाणी सारशब्द सच्चा जो होवे, सो उसीको ही ग्रहण, धारण करना चाहिये। उसीसे जीवकी सब भ्रम-भूल छूटकर मुक्ति-स्थिति होती है॥ २९८॥

दोहाः— सत्य वचन सो साँचता ❀ दयारूप अनुहार॥
[९८] शील हंस समिता लखै ❀ जीवन केर विचार॥ २९९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सत्य वचन = निज सत्य चैतन्य पारखपदमें
सो साँचता = स्वयं स्थिति करके रहते हुए फिर अन्य जिज्ञासु मनुष्योंको भी सोई चैतन्य बोध करनेके लिये गुरुमुख न्याय-निर्णयका वचन बोले। जीव ही सत्स्वरूप है, ऐसा बतानेवाली वाणी सोई "सत्य वचन" है। ऐसे सत्य-सत्य गुणको धारण करना चाहिये।
दयारूप = तैसे अपने जीवको प्रथम सब
अनुहार = बन्धन-जड़ाध्याससे छुड़ाना, सो सूक्ष्मरूपसे 'निजदया' का स्वरूप है। और फिर सत्य उपदेश देकर अन्य नर जीवोंके अनुमान-कल्पनादि दूर कर देना, उसे हरण कर देना, सो 'परदया' का रूप है।
शील हंस = सब चैतन्य जीवोंको अपने
समिता लखै = समान स्वजातीय जानना या लखना, वैर भाव, क्रोधको छोड़ करके सबोंका हित ही करना, सो शील गुण है। शीलके सहित समत्व, शान्ति, स्थिरता रखकर हंसपदको लख लेना चाहिये।
जीवन केर = जड़-चैतन्य दोनों सत्य वस्तु
विचार = हैं। तहाँ जड़में ज्ञानगुण नहीं है। "सबका जनैया ज्ञानस्वरूप चैतन्य जीव मैं नित्य, सत्य, अखण्ड, पारखरूप हूँ!" ऐसा विवेक-विचार करके निज हंस पदमें ठहरना चाहिये॥

व्याख्या— स्वयं स्वरूप जीव ही चैतन्य नित्य-सत्य है। सो साँचतामें अपनी स्थिति ठहराव करनेके लिये और दूसरे जिज्ञासुके कल्याणके लिये सदा यथार्थ सत्य वचन गुरुमुख निर्णयको ही बोले। तथा छोटे-बड़े देहधारी जीवोंको बचाते, रक्षा करते हुए निजदया-परदयाको रखकर बरते या उसप्रकार चलना चाहिये। और शील सद्गुणको धारणकर हंस पारखी होवे, तथा चैतन्य जीव-मात्रको स्वजातीय लखकर समताका भाव रक्खे; अभिमान, वैर-विरोधका कुभाव त्याग देवे। मनुष्य जीवनमें यही मुक्तीदायी सार विचार है। और जड़-चैतन्यका यथार्थ विचार-विवेक करके समस्त जड़ासक्ति अध्यासको परित्याग कर पारख स्वरूपमें ही सदा निश्चल हो रहना चाहिये॥२९९॥

दोहाः— चारिउ विधि पूरण सोई ❀ मानुष कहिये सोय॥
[९९] षट त्यागे अनुमानता ❀ सहज वृत्तिता होय॥ ३००॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

चारिउ विधि = पूरण सोई = } जिसने विधिपूर्वक, भली-भाँतिसे सत्य, विचार, शील, दया-इन चार सद्गुणोंको धैर्य पूर्वक पूर्ण-रीतिसे धारण कर लिया है। सोई सद्गुणी हंस है।

मानुष = कहिये सोय = } उसीको सच्चा मनुष्य या पारखी सन्त भी कहते हैं। सोई मनुष्य कहला सकता है, जो कि, खानी-वाणीके बन्धनोंसे छूटा है, और दूसरोंके भी बन्धन छुड़ानेवाला होता है।

षट त्यागे = अनुमानता = } इसकारणसे पहले नरदेहमें षट विकाररूप उक्त षट् पशुधर्मको त्यागना, सुधारना चाहिये। फिर पारख विवेकसे अनुमान ब्रह्म, कल्पित ईश्वर, भ्रम-भूत वाणी प्रपञ्चको लखकर त्याग करना चाहिये। ऐसे खानी-वाणीके अध्यास-भासको त्यागकर सद्गुण रहस्य-को ही धारण करनेवाले मनुष्यकी—

सहज = वृत्तिता होय = } सहज ही चञ्चल वृत्ति, वासना शान्त हो जाती हैं। स्थिर वृत्तिसे यथाप्राप्त वर्तमानमें बरतकर निजस्वरूप-स्थिति प्राप्त होकर वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। ऐसे सहज ही वृत्ति स्थिर होती है॥

व्याख्या— सोई उपरोक्त सत्य वचन, दयारूप, शील तथा समता वा विचार यही चारोंकी विधिपूर्वक पूर्णतासे जिनमें धारणा हो, सोई हंस वा सच्चे मनुष्य कहलाते हैं। और षट् विकारके सहित जिन्होंने अनुमान, कल्पनादिको भी परखकर परित्याग कर दिये हैं, उनकी वृत्ति सहज ही शान्त, निर्भ्रान्त हो जाती है। वही सहज वृत्तिता होनेका लक्षण है। खानी-वाणीकी चञ्चलता न रहनेसे सहजमें वृत्ति स्थिर हो जाती है॥ ३००॥

दोहाः— अद्भुत रूप परिछिन्न शिष्य! * इमि मानुषके लक्ष॥

[१००] रूप मनुष्य बहु जगतके * सो मानुष यम भक्ष॥ ३०१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

अद्भुत रूप = परिछिन्न = शिष्य! = } हे शिष्य! एक ब्रह्म सर्व रूपमें पूर्ण आश्चर्यरूप विराट माना हुआ तो भ्रम-धोखा है। जड़-चैतन्य भिन्न-भिन्न हैं, आश्चर्यमय अनन्त देहधारी जीव न्यारे-न्यारे हैं? सो प्रत्यक्ष हैं। जीवसे न्यारा देह विजातीय है।

इमि मानुष-के लक्ष = } सो मनुष्य देहके लक्ष्य वासना-से ही ऐसे अनेक आकारवाले हुए हैं। ऐसे लक्षणोंसे जानना, ये मनुष्यके विवेकका लक्षण है।

रूप मनुष्य = बहु जगतके = } बुद्धि पशुके तुल्य और रूप आकार या देह मात्र ही मनुष्यके धरे हैं, ऐसे जीव तो जगत्के बीचमें बहुतेक मौजूद हैं।

सो, मानुष = यम भक्ष = } सो अविचारी, पक्षपाती, विषयी बने हुए हैं, सो ऐसे मनुष्य कालके चारा बने हैं। यानी स्त्री तथा गुरुवालोगोंकी खुराक, मनके वशीभूत सर्वभक्षी यम-भक्षक हो रहे हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य! ऐसे आश्चर्यरूप भिन्न-भिन्न अनेकों तरहके रूपवाले मनुष्य देखे जाते हैं। ऐसे मनुष्योंके गुण-लक्षण न्यारे-न्यारे तरहसे हैं। रूप मात्रके मनुष्य तो जगत्के बीचमें बहुतेक हैं। सो वे निर्बुद्धि होनेसे मनुष्य नहीं हैं, यमके भक्ष-भोज्य या खुराक होनेवाले नरपशु हैं। सो ऐसे अविचारी मनुष्यको यमरूप मन, तथा गुरुवालोग और स्त्रियाँ दनादन भक्षण कर रही हैं। कालके गालमें पड़कर मारे जा रहे हैं, बिना पारख॥ ३०१॥

दोहाः— निर्णय गुरुमुख यथा लही * सुधरै मानुष खानि॥

[१०१] दया साधु मुख साँच कही * शील दयाकी बानि॥ ३०२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

निर्णय = गुरुमुख = यथा लही = जो कोई पारखी सद्गुरुके यथार्थ सत्य निर्णयका उपदेश गुरुमुख वाणीको श्रवणकर सत्य पारखबोध कर पाते हैं वा गुरुबोधको ले लेते हैं—

सुधरै = मानुष खानि = सोई मनुष्य खानीके नरजीवका जीवन सुधार हो जाता है। सब खानी-वाणीके अध्यास मिटकर जिसका सुधार हो जाता है, सोई मनुष्य खानीके जीव पारखी सन्त होते हैं।

दया साधु = मुख साँच कही = सोई सच्चे दयालु निज-पर हितकारी पारखी साधु-गुरु होते हैं। मुखसे गुरुमुख वाणी 'जीव चैतन्य सत्य है, ईश्वरादि मिथ्या है' ऐसे मुख्य-मुख्य सत्य निर्णयकी वाणी ही कहते हैं; और-

शील = दयाकी बानि = नम्रता, कोमलतासे मीठे वचनमें जिज्ञासु नरजीवोंपर दया करके गुरुमुखका निर्णय सारशब्दकी वाणीका ही उपदेश देते हैं। सदैव वैसी ही वाणी बोलते हैं॥

व्याख्या— जैसे गुरुमुखसे पारखी सद्गुरुने यथार्थ निर्णय कहा है, तैसे ही गुरुबोधको जो प्राप्त कर लेते हैं, मनुष्य खानीमेंके सोई नरजीवोंका जीवन सुधर जाता है। फिर वे दयावन्त साधु-सन्त होकर मुखसे साँच-साँच ही निर्णयको कहेंगे, तथा शील और दयाकी रहनी सहित सत्यन्यायकी यथार्थ सत्य वाणी ही कहेंगे। और दूसरे तरहकी वाणी ही नहीं कहेंगे; यही सब सुधार उनमें हो जायगा॥ ३०२॥

दोहाः— चौरासीकी रहट सो * बाँचै हंसा सोय॥

[१०२] लहै आपन पद जीयरा! * काल देखि रहें रोय॥ ३०३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

चौरासीकी रहट सो = चारखानी चौरासी योनियोंका दुःख- जन्म, मरण, गर्भवास, त्रिविधिताप आदिके चक्रसे, ब्रह्म-जगत्, उत्पत्ति-प्रलयकी रहटासे, भ्रमणरूप भ्रम चक्रसे—

बाँचै हंसा = सोय = सोई हंस जीव बचेंगे, जो पारखी सद्गुरुकी शरण होकर सब काल-जालोंको परखकर त्याग दिये हैं। सद्गुण रहस्य रहनी पारख विचारको धारण कर लिये, फिर उन्हें कोई चौरासी योनियोंकी रहटामें डाल नहीं सकते हैं।

और—

लहै आपन = पद जीयरा! = साधु-गुरुकी दयासे सत्सङ्ग, सत्पुरुषार्थ द्वारा जिस नरजीवने अपने स्वरूपकी स्थिति पारखपदको प्राप्त कर लिया, सो भव-बन्धनसे छूट गया। अतः—

काल देखि = रहें रोय = स्त्रियाँ और गुरुवालोग ये कालरूप लोग अपने घेरासे नरजीवोंको छूटते हुए देखकर फिर फँसानेकी एक भी युक्ति न लगती हुई देखकर पछताकर हाय! हाय! करके रोये या काला मुँह करके वे रो रहे हैं॥

व्याख्या— सोई हंस पारखी चौरासी योनियोंके रहट चक्र, ब्रह्म-जगत्के फेरासे विवेक द्वारा भिन्न होकर बचेंगे, आवागमनसे छूट जावेंगे। जब नरजीव सद्गुरुकी दयासे अपने पारखपद स्वरूप स्थितिको प्राप्त होते हैं, तो वे जीवन्मुक्त, निर्बन्ध, स्वतन्त्र हो जाते हैं। ऐसा देखकर काले-कलूटे काल लोग काला-पीला मुख करके रोते, कराहते, पछताते रह जाते हैं। उन हंस जीवोंपर कालका कुछ भी जोर नहीं चलता है॥ ३०३॥

दोहाः— हे शिष्य! उत्तम खानि यह * मानुषते नहिं और॥

[१०३] मानुष भये शिष्य सुमति मति * छाड़ै कालकी दौर॥ ३०४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य !=
उत्तम=
खानि यह= } हे जिज्ञासु शिष्य ! सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ मुक्तिका द्वार, बन्धनोंसे रहित होकर छूटनेकी जगह, कर्मभूमिका यही मनुष्य खानीरूप नरदेह है।

मानुषते=
नहिं और= } मनुष्य खानीके अलावा और कोई खानी मुक्तिका द्वार नहीं है। सच्चे पारखी सद्गुरुके सिवाय और कोई नरजीवको मुक्तिदाता नहीं हैं। जीवोंको सुख-दुःख देनेवाले और कोई ईश्वरादि नहीं है। मनुष्य देहमें किया हुआ कर्मका ही फल सब जीव भोग रहे हैं; ऐसा जानो !

मानुष भये शिष्य=
सुमति मति= } हे शिष्य ! शुद्ध मति-बुद्धिसे पारखी सद्गुरुके सच्चे शिष्य होकर जिन्होंने सत्य, विचार, दयादि सद्गुण हृदयमें धारण किये हैं, सोई सच्चे मनुष्य हुए हैं या होंगे। उन्हींकी ही बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

छाड़ै काल-=
की दौर= } इसलिये काल-कल्पना विषयों-की चञ्चलता, दौड़, भ्रमादिकों-को वे सर्वथा छोड़ देते हैं। मन-मानन्दीको छोड़कर स्थिर रहते हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य ! संसारमें सर्वोत्तम ज्ञानखानी यही मनुष्य देह ही है। मनुष्यसे बढ़ करके और दूसरे कोई भी देहधारी नहीं हैं; और हे शिष्य ! सच्चे मनुष्य वा हंस पारखी होनेपर उनकी मति-बुद्धि शुद्ध स्वच्छ निर्मल सुमति हो जाती है। सबके कसर-खोटको परखने लग जाते हैं। इसवास्ते फिर वे कालकी दौड़को तो सर्वथा छोड़ ही देते हैं। फिर काल उन्हें धोखेमें डालकर दौड़ा नहीं सकते हैं॥ ३०४ ॥

दोहाः— चौरासी निर्णय सहित * मानुष करै फरियाव ॥
[१०४] कहेउँ जथारथ मति विमल * नहिं अनुमान मिलाव ॥ ३०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चौरासी=
निर्णय=
सहित= } यह देह चौरासी (८४) अंगुलों-का बना है। देहाध्यास पञ्च विषयोंकी आसक्तिसे जीव अनेकों-बार चारखानीके राशि-समूह योनियोंमें जन्म लिये और ले रहे हैं। यह निर्णय सहित चौरासी योनियोंका वर्णन करके तुमको समझाया गया है। और—

मानुष करै=
फरियाव = } मनुष्य ही अनेक प्रकारसे भिन्न-भिन्न कर्म करते हैं, वासना टिकाते हैं; और पारखी मनुष्यने सो सब बन्धन और मुक्तिका फैसला न्यारा-न्यारा कर दिये हैं।

कहेउँ जथारथ=
मति विमल= } हे शिष्य ! सद्गुरुके सत्य निर्णयको अपने बुद्धिअनुसार यथार्थ सत्य निर्मल शुद्ध ज्ञान पारख बोध-को मैंने तुमको कह दिया हूँ !—

नहिं अनुमान=
मिलाव= } सो इसमें अनुमान, भ्रम, कल्पना, धोखा कुछ भी कसर मिला हुआ नहीं है। सो तुम भी इसे विवेक-विचार करके सहर्ष ग्रहण करो। प्रमादसे जीवको अनुमान-धोखेमें ले जाकर मत् मिलाओ !॥

व्याख्या— विवेकी मनुष्य ही गुरुमुख न्याय-निर्णयके सहित विवेक-विचार करके चौरासी योनियोंके गुण-लक्षणादिका निर्णयसे फरियाव वा फैसला न्यारा-न्यारा छान-बीन करते हैं। और साढ़ेतीन (३½) हाथका चौरासी (८४) अंगुलवाला यह स्थूल देह ही चौरासी योनियोंका प्रतिरूप है। यहीं कर्म अध्यास बनाकर जीव फिर बाहर नाना योनियोंमें चले जाते हैं। विमल, शुद्ध मतिसे यथार्थ निर्णयकी बात मैंने तुम्हें कह दिया हूँ। इसमें अनुमानका मिलाव रञ्चक मात्र भी नहीं है। पारख द्वारा प्रत्यक्ष सत्य निर्णयकी बात कहा हूँ। ऐसा जानकर सो तुम भी अब निज-पर जीवको अनुमान-कल्पनामें नहीं मिलाओ ! पारख विचार करके सदा भ्रम, अनुमानादिसे न्यारे हो रहो !॥ ३०५ ॥

॥ ❀ ॥ १२ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा–१२ ॥ खण्ड–२३ ॥ गीतक छन्द, भाग–४ ॥ ❀ ॥

१. चारि चौरासीकी निर्णय भाखेउ * प्रभु ! लहेउँ तव मुख ॥ [आधा पद है ।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर शिष्यका बारहवाँ प्रश्न वर्णन करके कहते हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

चारि चौरासीकी = संसारमें चारखानीके
निर्णय भाखेउ = अन्दर ही राशि, ढेरी, समूहरूपसे चौरासीरूप अनेक योनियाँ हैं, ऐसे सत्य निर्णय करके आपने कहे हो !

प्रभु ! लहेउँ = हे प्रभो ! आपके मुखारविन्दसे
तव मुख = निकले हुए सत्योपदेश द्वारा सो बात मैंने अब जान लिया हूँ वा ऐसा समझ लिया हूँ ! ॥

व्याख्या— सद्गुरुके ऐसे उत्तरको सुनकर शिष्यने फिर प्रश्न करके कहा— हे प्रभो ! चारखानी और उसके अन्तर्गत चौरासी योनियोंका जो निर्णय आपने वर्णन करके कहे हो, सो आपके गुरुमुख उपदेश द्वारा विचार करके अब मैंने जान लिया हूँ ! ॥

२. नाशि अनुमान अभू * त्याग दोउ दुःख ॥ ३०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

नाशि अनुमान = जीवोंके मुक्तिपद स्थितिको
अभू = विनाश करनेवाला 'अभू' कहिये बहुत बड़ा काल यही ब्रह्म–ईश्वरादिके अनुमान, कल्पना, भ्रम, जड़ाध्यास ही है ।

त्याग दोउ = खानी और वाणी दोनों दुःखदायी
दुःख = हैं, जो आपने लखाये हो, सो परखकर त्याग देता हूँ या अब त्याग दिया हूँ । अथवा बड़ा अनुमानका नाश होनेपर दोनों दुःखोंका त्याग हो जाता है ॥

व्याख्या— मैंने खानी-वाणी दोनोंको दुःखदायी समझ लिया हूँ । जन्म-मरणरूप दोनों दुःखोंमें ले जानेका कारण ब्रह्म-जगत्की मानन्दी है । सो 'अभू' कहिये बड़ाभारी मिथ्या अनुमानका चक्र है, वह मुक्तिपद नाशक है । ऐसा आपकी दयासे जानकर उसे भी अब नशाय दिया वा छोड़ दिया हूँ ॥३०६॥

३. बसन पुतरी एक अनेकन * त्यागि ब्रह्म कहानियाँ ॥ [आधा पद है ।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

बसन पुतरी = जैसे एक कपड़ेसे अनेकों
एक अनेकन = गुड़ियाँ, पुतलियाँ बनाते हैं । सो सब तो कपड़ा मात्रके स्वरूप ही होता है । तैसे एक ब्रह्मकी इच्छासे ही अनेकों जगत्की उत्पत्ति हुई, ऐसा माने हैं । और—

त्यागि ब्रह्म = अन्तमें प्रलय होकर ब्रह्ममें ही
कहानियाँ = मिल जाते हैं, ऐसा ठहराये हैं । सो घर-गृहस्थी त्यागके बड़े-बड़े ऋषि-मुनि ब्रह्म बने; ब्रह्मवेत्ता कहलाये । वही कल्पनाकी कहानी वेदादिमें लिख रक्खे हैं । सो ब्रह्मज्ञानी महा गृहस्थ रागीसे भी बढ़ करके हुए; क्योंकि, वे पीछे स्वयं ब्रह्म बनकर जगत् स्वरूप ही हो गये ॥

व्याख्या— वेदान्ती गुरुवालोगोंका कथन है कि– जैसे वसन=कपड़ेकी चिन्धियोंसे पुतलियाँ बनाते हैं, सो एक ही कपड़ाकी अनेकों पुतलियाँ बनती हैं । तहाँ एक-अनेकका भाव छोड़नेपर सब वसन तो एक ही है । तैसे एक अधिष्ठान ब्रह्मसे अनेकों जगत्का सृष्टि विस्तार हुआ है । तहाँ द्वैत भाव त्यागकर अद्वैतमें एक ही ब्रह्म कहलाते हैं वा नानात्वसे रहित ब्रह्म एक ही है, ऐसा कहते हैं ॥

४. लहेउँ अम्बुज चरण राउर * अभय पद कर दानियाँ ॥ ३०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

लहेउँ अम्बुज = हे सद्गुरु साहेब ! आपके
चरण राउर = चरण-कमलोंकी कृपासे या उपदेशके आचरणसे सो ऐसी-ऐसी गूढ़ बातोंका भेद जानता भया हूँ या जान गया हूँ !

अभय पद= } आप जीवोंको निर्भय कर
कर दानियाँ= } देनेवाले अभय पारख पदके बोध दाता महादानी हो ! ॥

व्याख्या— आपके चरण-कमलोंके आश्रय, गुरुबोधके प्रतापसे ब्रह्म तो मिथ्या भ्रम मात्र धोखा ही है, ऐसा जाननेमें आया। हे सद्गुरो ! आप अभय करनेवाले पारखपदके बोधदाता हो ! आप ही अभय पदके दानियाँ=श्रेष्ठ निर्भय पदके दानी हो ! ॥ ३०७ ॥

५. निर्णय जथारथ श्रवण अमृत ❀ धार हृदय अघाइयाँ ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

निर्णय जथारथ= } हे पारखी सद्गुरो ! आपका
श्रवण अमृत= } जड़-चेतनके सत्य निर्णय लखाना यथार्थ ही बरोबर है। आपके वचनामृतको श्रवण करके मैं बड़ा सुखी हो गया हूँ ! और—

धार हृदय= } आपकी सत् शिक्षा अमृतमय
अघाइयाँ= } उपदेशको हृदयमें धारण करके मैं सन्तृप्त, शान्त, सन्तुष्ट हो गया हूँ। अब और किसीसे ज्ञान लेनेकी भूख नहीं रही, आपकी दयासे तृप्त हो गया हूँ ! ॥

व्याख्या— आपके यथार्थ गुरुमुख निर्णय वचनामृत उपदेशको श्रवण-मनन करके मैंने हृदयमें धारण कर लिया हूँ ! जिससे मेरा हृदय अब प्रथमकी शङ्काके समाधान हो जानेसे सन्तुष्ट होकर अघा गया है। उस निर्णयको मैंने अब तो समझ भी लिया हूँ ! ॥

६. अब कहहु कृपानिधान इनकर ❀ रूप कौन कहाइयाँ ? ॥ ३०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

अब कहहु कृपा= } हे कृपानिधान् ! कृपा
निधान इनकर= } करके अब यह कहिये कि-इन गुरुवालोगोंकी गति-मति क्या है ? आप ही हमें सत्य बोध देनेवाले दयालु हैं।

रूप कौन= } उन्होंके सिद्धान्त कौन-कौनसे
कहाइयाँ ?= } हैं ? और गुरुवालोग कौन रूपमें कहलाते हैं ? सो कहिये ! यानी साधारण मनुष्योंका कौन रूप कहलाता है ? सो समझाइये ! ॥

व्याख्या— अब जो रहस्य मैंने अभी समझा नहीं हूँ, सो भी समझनेके लिये आपसे पूछता हूँ ! हे कृपानिधान् ! इनका असली वा नकली स्वरूप कौन-कौन किस-किस प्रकारसे कहलाता है ? सो अब उसका भेद भी कृपा करके कहिये ! ॥ ३०८ ॥

७. बहुरूप चौरासी अहै ❀ केहि रूप मानुष जानिये ! ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

बहुरूप चौरासी अहै= } जगत्में चार खानीकी राशियाँ वा योनियोंके समूहमें तो बहुत प्रकारके रूप बने हैं। अनेकों शरीर-धारी प्राणियोंके विभिन्न आकार-प्रकार हैं। ऐसे बहुत रूप चौरासी योनियोंमें दृश्य हैं।

केहि रूप= मानुष जानिये != } उनमेंसे मनुष्यको किस रूपमें जानना चाहिये ? मनुष्यका रूप कौन-सा है ? सो जनाइये ! इसको मैं कैसे जानूँ ? ॥

व्याख्या— चौरासी योनियोंमें तो बहुत प्रकारके स्वरूप देहके भिन्न-भिन्न भेद दिखाई देते हैं। उनमेंसे मनुष्यको किस रूपमें जानना वा पहिचानना चाहिये ? ॥

८. सो कहहु दाया दीन दुःखहर ❀ भिन्न-भिन्न बखानिये ! ॥ ३०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

सो कहहु दाया= } हे दयालु ! दया करके सो
दीन दुःखहर= } उसका भेद भी कहिये ! हम दीन-दुःखी जीवोंके दुःखोंको हरण करिये, संशयको मिटा दीजिये ! तथा—

भिन्न-भिन्न = चौरासी योनियोंका रूप और बखानिये ! = मनुष्यका वास्तविकरूप या स्थितिको वर्णन करके भिन्न-भिन्न या न्यारी-न्यारी तरहसे मुझे समझा दीजिये ! सो बता दीजिये ! यही विनय है ॥

व्याख्या— सो भेद भी भिन्न-भिन्न वर्णन करके दया करके कहिये ! हे दयालु ! मुझ दीनके संशय जनित दुःखको अब हरण कर लीजिये ! समाधान कीजिये ! ॥ ३०९ ॥

दोहाः— तुम समान दुःख मेटन ❀ को है समरथ और ? ॥
[१०५] दुःखित कालके जालमें ❀ जीवहि लायउ ठौर ॥ ३१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

तुम समान = हे सद्गुरु साहेब ! आप सत्य-दुःख मेटन = बोध दाता पारखी हैं । खानी-वाणीसे होनेवाले समस्त दुःखोंको आप मिटानेवाले हो ! ऐसे आपके समान दुःखोंको मिटानेवाले—

को है समरथ और ? = और कोई समर्थ नहीं हैं । गुरुवालोग तो, 'कोई कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि है' कह कर और भी दुःखोंमें ही डालनेवाले हैं । तथा आप ही दुःख मिटानेमें समर्थवान् हो ! और दूसरे समर्थ कौन हैं ? कोई नहीं ।

दुःखित काल- = काल-कल्पना, गुरुवा, स्त्री, के जालमें = विषयादिमें पड़कर सब जीव दुःखित हो रहे हैं । ऐसे काल-जालोंमें पड़े हुए दुःखित जीवोंके सब दुःख मिटाकर—

जीवहि = नरजीवोंको कल्याणकारी लायउ ठौर = हंसपद पारख स्थितिका ठौर, किनारा, मुक्तिमें लगाय दिये हो ! अब मेरी अनसमझी बातको और समझाइये ! ॥

व्याख्या— खानी-वाणीके सकल दुःखको मेटनेवाले ! आपके समान समर्थ और कौन है ? अर्थात् और कोई नहीं हैं । आप ही सर्व समर्थ सद्गुरु हो ! क्योंकि, कालके जालमें दुःखित पड़े हुए नरजीवोंको आपने उस दुःखोंसे छुड़ाकर हंसपदमें पहुँचायके पारखकी ठौर-स्थितिका किनारा लगा दिये हो ! सो मुझे भी संशय सागरसे पार करके उसी किनाराके ठौरमें लगा दीजिये ! यही मेरा नम्र विनय है ॥ ३१० ॥

॥ ❀ ॥ १२ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १२ ॥ खण्ड- २४ ॥ चौपाई भाग- १२ ॥ ❀ ॥

१. सुनहु शिष्य ! मानुषको रूपा ❀ चौरासी मध्ये मानुष भूपा ॥ ३११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब सद्गुरुका उत्तर कहते हैं—

सुनहु शिष्य ! = हे शिष्य ! जो तुमने मनुष्यके मानुषको रूपा = रूपके बारेमें और पूछे हो, सो उसका भेद भी मैं तुम्हें और खुलासा करके बतलाता हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो ! तथा मनन-विचार करते जाओ ।

चौरासी मध्ये = चारखानी चौरासी योनियोंके बीचमें—

मानुष भूपा = मनुष्य ही श्रेष्ठ राजाके समान है । यानी मनुष्य खानी राजावत् । है अन्य पशु आदि खानी प्रजावत् हैं । और मनुष्य स्वतन्त्र है, पशु आदि सब परतन्त्र हैं । मनुष्य जन्म कर्मभूमिका हैं; अन्य भोगभूमिका हैं, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— तब सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! तुमने जो बात पूछा है, सो उसका उत्तर कहता हूँ; मन लगाकर सुनो ! मनुष्यका स्वरूप सबसे श्रेष्ठ है; चौरासी योनियोंके मध्यमें मनुष्य भूप यानी राजाके समान उच्च, सर्वमान्य ज्ञानवान् श्रेष्ठ हैं ॥ ३११ ॥

२. चारि खानी और चहुँ बानी ❀ ईश्वर ब्रह्म सृष्टि अरुझानी ॥ ३१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चारि खानी = और चहुँ बानी = इसीसे नरजीव ही भूलकर मनुष्य, पशु, अण्डज, और उष्मज—(ये ब्रह्म सृष्टि है)- ये चारखानीमें और चार वेद, चार महावाक्य तथा परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—(ये ईश्वर सृष्टि माने हैं)- ये चार वाणीके जालमें जा-जाकर पड़े हैं।

ईश्वर ब्रह्म = सृष्टि अरुझानी = तहाँ अनेक कष्ट पायके कोई जगत्कर्त्ता दुःख-सुखोंका दाता ब्रह्म-ईश्वरादिको माने और नाना वाणी कल्पनाकी सृष्टि उत्पन्न करके फिर उसीमें आप ही जीव अरुझ गये वा फँस गये, तो चौरासी योनियोंके चक्रमें जा पड़े। अथवा उक्त ईश्वर सृष्टि और ब्रह्म सृष्टिमें ही अरुझे॥

व्याख्या— चारखानी तथा चार वाणी, चारवेद, परा, पश्यन्ती आदि चारवाचा, चार महावाक्य ईश्वर सृष्टि और ब्रह्म सृष्टि इत्यादिमें मनुष्य ही सब अबोध हो-होकर अरुझे और एक-दूसरोंको अरुझा रहे हैं ॥ ३१२ ॥

३. ब्रह्म सृष्टिके जीव गनाऊँ * पञ्चदेह प्रत्यक्ष बताऊँ ॥ ३१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ब्रह्म सृष्टिके = जीव गनाऊँ = तहाँ ब्रह्मके अंशसे इच्छा द्वारा जगत्के अनन्त जीव उत्पन्न हुए, ऐसा गुरुवालोगोंने चार खानीके विस्तारको ब्रह्मसृष्टि गिनाकर बतलाये हैं, सो कल्पनामात्र है। नरजीवसे ही ब्रह्मकी मानन्दी उत्पन्न हुई; यह हिसाब बतलाता हूँ वा गिना देता हूँ। और—

पञ्चदेह = प्रत्यक्ष बताऊँ = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य, ये पाँच देहोंके भेद भी प्रत्यक्ष तुम्हें मैं बतला देता हूँ, सो श्रवण करो!॥

व्याख्या— तहाँ कौन जीव ब्रह्मसृष्टिके जालमें अरुझे हैं, सो गिनाता हूँ! उसमें स्थूल-सूक्ष्मादि पञ्चदेह भी प्रत्यक्ष करके बतलाता हूँ! सो चित्त लगाकर सुनो!॥ ३१३ ॥

४. सो पाँचनते बहु विस्तारा * पञ्चदेह पञ्चतत्त्व सम्हारा ॥ ३१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो पाँचनते = बहु विस्तारा = सो अध्यासी जीव द्वारा पञ्चकोशोंसे वाणी-खानी जालोंका विस्तार बहुत ही हुआ; और हो ही रहा है। ऐसे यह जगत् बन्धनका पसारा हुआ है। और—

पञ्च देह = पञ्च तत्त्व = पञ्च तत्त्वोंके पञ्च विषयोंके आसक्तिरूप अध्यास बीजोंसे स्थूल-सूक्ष्मादि पञ्चदेह वृक्षाकारमें पैदा हुए।

सम्हारा = सो जीवकी सत्तासे सम्हल रहा है। जीव ही उसको सम्हालकर रक्षा कर रहे हैं। और फिर गुरुवालोगोंने प्रथम ब्रह्मसे पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और तीन गुणोंकी क्रमशः उत्पत्तिकी कल्पना किये हैं। (उसके पश्चात् आगेका हाल नीचेकी चौपाईमें कहा है)॥

व्याख्या— पञ्चतत्त्वोंसे ही पञ्चदेह खड़ा करके सम्हाले हैं। तथा सो पाँचदेहसे ही पञ्च-कोशादि वाणी और चार खानी जालका बहुत ही विस्तार हुआ है॥ ३१४ ॥

५. सात्त्विक गुण देवादिक झारी * रज इन्द्री तम तत्त्व विकारी ॥ ३१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सात्त्विक गुण = देवादिक झारी = सत्त्वगुणसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, अन्तःकरण चतुष्टयके सम्पूर्ण चौदह देवताओंकी उत्पत्ति हुई, ऐसा माने हैं। यानी सब देवगणके समूहोंकी उत्पत्ति ब्रह्मके सत्त्वगुण द्वारा हुई, ऐसी कल्पना किये हैं। तथा—

रज इन्द्री = तम तत्त्व = विकारी = रजोगुण विशेषसे दश इन्द्रियोंके गोलककी उत्पत्ति और तमोगुणसे तत्त्वोंके विकाररूप पञ्च विषयोंकी उत्पत्ति माने हैं; सो कल्पित कथन है॥

व्याख्या— गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना किये हैं कि, प्रथम निराकार ब्रह्म अकेला था। फिर

उसमेंसे स्वयं ही "एकोऽहं बहुस्याम्" की इच्छा वा स्फुरणा उदय हुई। उसीसे एक सर्वशक्तिमान् पुरुष प्रगट हुआ। फिर पुरुषसे प्रकृति प्रगट हुई। प्रकृतिसे महत्तत्त्व पैदा हुआ, उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ। अहङ्कारसे तीन गुणकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् सत्त्वगुणसे सम्पूर्ण पिण्ड-ब्रह्माण्डमें चौदह देवताओंकी उत्पत्ति माने हैं। रजोगुणसे दश इन्द्रियोंके गोलकोंकी रचना हुई कहा है। और तमोगुणसे पञ्च तत्त्वोंके विकार सोई पञ्च विषयोंकी उत्पत्ति हुई, जिससे समस्त जगत्की सृष्टि विस्तार हुई, इत्यादि प्रकारसे सृष्टि उत्पत्ति क्रमकी मिथ्या कल्पना किये हुए हैं ॥ ३१५ ॥

६. मन माया कल्पित ब्रह्म जाला * ब्रह्म सृष्टिमें जीव बेहाला ॥ ३१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन माया = मनरूपी माया, तन सोई
कल्पित = कायाके सम्बन्धमें गुरुवा-
ब्रह्म जाला = लोगोंसे कल्पित ब्रह्म-भ्रमकी वाणीके जाल वेदादिकी रचना हुई है। सो ब्रह्म तो कोई वस्तु नहीं है। सिर्फ भ्रमका जञ्जाल मात्र, नरजीवोंकी कल्पना होनेसे मिथ्या है।

ब्रह्म सृष्टिमें = ऐसे ब्रह्म सृष्टिके विस्तार
जीव बेहाला = चारखानीमें पड़कर जीव सब परम दुःखी, बड़े बेहाल हो रहे हैं। तहाँ त्रिविधि ताप आदिका दुःख भोग रहे हैं॥

व्याख्या— यथार्थमें तो मन-मायासे कल्पित 'ब्रह्म' भ्रमका ही जाल-जञ्जाल है। उसी ब्रह्म सृष्टिमें पड़े हुए अबोध नरजीव बेहाल हो रहे हैं। जड़ाध्यासी होनेसे आवागमन चक्रमें पड़कर महादुःखी हुए वा अत्यन्त दुःख भोगी हो रहे हैं ॥ ३१६ ॥

७. ईश्वर सृष्टि सो अनगन खानी * चारि चौरासी मध्ये बानी ॥ ३१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ईश्वर सृष्टि सो = ईश्वरवादीने सोई चार-
अनगन खानी = खानीके अनगणित जीवोंकी उत्पत्तिको ही 'ईश्वरसृष्टि' माने हैं।

चारि चौरासी = फिर उस ब्रह्म-ईश्वरको
मध्ये बानी = चार खानी चौरासी योनियों-में ही सर्वत्र व्यापक वर्णन किये हैं। परन्तु, ईश्वर, ब्रह्म और जीव, ये तीनके मध्यमें कौन-किसमें व्यापक है? ये सब कल्पित वाणी बीच-बीचमें मनुष्योंसे बनती गई, और फैलती गई॥

व्याख्या— चार खानी चौरासी योनियोंके मध्यमें जो अनगणित वा असंख्यात खानियाँ वा योनियाँ हैं, सोई 'ईश्वरसृष्टि' है, ऐसा वर्णन किया है। और ब्रह्म-ईश्वरको उसी सृष्टिमें सर्वव्यापक भी मानते हैं। ये मध्यकी वाणी सब कपोल कल्पित असत्य है। गुरुमुख निर्णयके बिना यथार्थ भेद समझनेमें नहीं आता है ॥ ३१७ ॥

८. सो कौवार जाल गुण गूढ़ा * परहिं कहहिं मति ये अति मूढ़ा ॥ ३१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो कौवार = सो भ्रमिक गुरुवालोगोंसे
जाल गुण गूढ़ा = इसप्रकार वाणी कल्पनाका पुकारा, चिल्लाहट, उपदेश, वाणी-जाल संसारमें फैला है। त्रिगुणी मनुष्य सब उसी फाँसमें अरुझ गये हैं। विवेकहीन-लोग ब्रह्म-ईश्वरादिको गुप्त-निराकार गूढ़ है, ऐसा कहने-सुनाने लगे।

परहिं कहहिं मति = अति अविचारी मूढ़
ये अति मूढ़ा = बेपारखी गुरुवालोग ब्रह्मको मन, बुद्धि, वाणीसे परे है, ऐसे-ऐसे कहने लगे और उसकी प्राप्ति होनेको भी बतलाये हैं, सो बुद्धिहीन मूढ़ जनोंने अत्यन्त श्रद्धा, विश्वाससे मान लिये हैं, इसी भ्रम, अध्याससे बारम्बार आवागमन चौरासी योनियोंमें जीव जाकर पड़ते हैं॥

व्याख्या— सो ब्रह्मसृष्टिकी बात निर्गुण होनेसे अत्यन्त गूढ़ है। ईश्वर, वेद और गुरुकी कृपासे ही कुछ-कुछ जान पड़ता है, इत्यादि कथन पुकार-पुकारकर गुरुवालोग उपदेश करते हैं। ये अविचारीलोग भ्रमिक मतिके अति मूढ़ हैं। इसीसे नाहक धोखेमें ही पड़ते हैं। अध्यासवश चौरासी

योनियोंमें जाकर कर्मफल भोगा करते हैं ॥ ३१८ ॥

९. उत्तम मध्यम भुगते दोई * जीव परै दोउ सृष्टि बिगोई ॥ ३१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उत्तम मध्यम भुगते दोई = विज्ञानी, ज्ञानी या ज्ञानी-अज्ञानी, पुण्यात्मा-पापात्मा, नर-नारी, दोनों ही जड़ाध्यासी होकर जन्म-मरणादिके नाना दुःख भोग रहे हैं। कहीं उत्तम, कहीं मध्यम कर्मका फल भोग रहे हैं। और—

जीव परै दोउ सृष्टि बिगोई = ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरसृष्टि, ये दो की कल्पनामें जो नरजीव जाकर पड़े हैं, सो धोखेमें ही पड़े हैं। वे दोनों सृष्टि जीवनको बिगाड़नेवाली हैं। सो उसीमें लगकर विनष्ट हो रहे हैं। बिना पारख यह भेद कोई नहीं जानते हैं ॥

व्याख्या— ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरसृष्टि, ऐसे दो तरहकी कल्पित सृष्टि मानकर नरजीव मनुष्य पदको बिगाड़कर धोखेसे भ्रम-भूल जड़ाध्यासमें जकड़ पड़े। इसीसे चार खानियोंमें उत्तम और मध्यम दोनों प्रकारसे नर-नारीका देह धारणकर पाप-पुण्यका फल सुख-दुःख भोग रहे हैं वा भोगते रहेंगे ॥ ३१९ ॥

१०. सूक्ष्म अहङ्कार सम्बन्धी * खान पान व्यवहारहुँ बन्धी ॥ ३२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सूक्ष्म अहङ्कार सम्बन्धी = स्थूल देहके कर्मोंका सम्बन्ध सूक्ष्म देहके साथ लगा रहता है। जीवके साथमें सूक्ष्मदेहका सम्बन्ध ही है, इसलिये किये हुए कर्मोंके सब खानी-वाणीके सूक्ष्म अहङ्कार-अध्यास-के सम्बन्धसे तदनुसार ही चारखानीमें जाकर जीव देह धारण किये हैं।

खान पान व्यवहारहुँ बन्धी = वहाँ चौरासी योनियोंमें वैसे ही खाना-पीना, अनेक क्रियाएँ, व्यवहार करना, यह सब कर्मानुसार बन्धान बन्धा हुआ है। उसीमें जीव आसक्त हो कर बन्धे पड़े हैं ॥

व्याख्या— अहङ्कारका सूक्ष्म सम्बन्ध स्थूल देहके साथमें लगा ही हुआ है। उसीसे बाहर सब देहधारी जीव खान-पानादि व्यवहारमें भी शुभाशुभ कर्त्तव्य ही कर-करके भव-बन्धनोंमें बन्धे पड़े हैं। अहं-अध्यासका बन्धन बड़ा जबर्दस्त पड़ा हुआ है ॥ ३२० ॥

११. उग्रदशा जीव नास्ति समाना * देखन रूप ब्रह्म परवाना ॥ ३२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उग्रदशा जीव नास्ति समाना = सर्वश्रेष्ठ ज्ञान खानी नर-देहधारी जीव निज हंस दशाकी स्थिति किया हुआ न होनेसे नाशवान् विषयादि तथा मिथ्या ब्रह्म आदि मानन्दीमें समाकर चौरासी योनियोंमें बड़ी दुर्दशासे दुःख भोग रहे हैं।

देखन रूप ब्रह्म परवाना = परन्तु, गुरुवालोगोंकी वेदादि वाणीके प्रमाणसे ब्रह्मको अरूप, निर्गुण, निराकार वर्णन करके वा ऐसा अदृश्य मानकर भी उसी ब्रह्मको फिर देखना साक्षात्कार करना चाहते हैं; अब कहिये कैसे मूढ़ बने हैं ? ॥

व्याख्या— मनुष्यदेह सबसे बड़ा है। परन्तु, बिना पारख नरजीव नास्ति = मिथ्या धोखारूप ब्रह्मके भ्रममें समाये हैं। इसीसे उग्रदशा = सबसे बड़ी दुर्दशाको पाते हैं। भ्रमिकलोग वेद-वेदान्त आदिके प्रमाणसे ब्रह्मका स्वरूप देखना चाहते हैं। जब कुछ दिखाई नहीं देता है, तब तो जगत्को ही ब्रह्मके व्यापक स्वरूपमें प्रमाण करके उसे मान लेते हैं; ऐसे महा भ्रम-भूलके चक्रमें फिर रहे हैं ॥ ३२१ ॥

१२. सो अनुमान कल्पि कियो ठाढ़ा * हे शिष्य ! परे बहुत यह गाढ़ा ॥ ३२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सो अनुमान= सत्य जगत्को देखकर
कल्पि कियो ठाढ़ा= मिथ्या जगत्कर्त्ताका
अनुमान किये हैं। फिर सो अनुमित ब्रह्म कर्त्ताकी प्राप्तिके वास्ते कल्पना कर-करके अनेक वाणी जालको खड़ा किये हैं। आवरण-रूप अनेक सिद्धान्त खड़ा किये हैं। यानी सो अनुमानको कल्पना करके खड़ा किये हैं।

हे शिष्य! परे= हे शिष्य! सबसे परे अगम,
बहुत यह गाढ़ा= अपार, अथाह, ब्रह्म परमात्माको मान-मानकर बहुतेक नरजीव गाढ़ी कल्पनाके दलदलवाला महान भ्रम-रूप गड्ढामें ही जाकर गिर पड़े। उसीसे ही चौरासी योनियोंके गर्भवासके गड्ढामें जा पड़े और पड़ रहे हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य! जब गाढ़ा महा अज्ञानमें गुरुवालोग पड़े, तब बहुत लोगोंने बहुत प्रकारसे सो ब्रह्म वा ईश्वरको अनुमानसे ही कल्पना करके जगत्के कर्त्तारूपमें उसे ठहराकर खड़ा किये। यानी सो अनुमानको ही कल्पिके ठाढ़ किये। उसीसे जगत्की उत्पत्ति होनेका मिथ्या कथन किये। इसतरह बहुत मनुष्य गाढ़ी अविद्या-अन्धकारके कूएँमें गिर पड़े, तो चौरासी योनियोंके गर्भवासको प्राप्त हुए; बिना विवेक महाजालोंमें ही अरुझ गये॥ ३२२॥

१३. कल्पित कल्प नाश कियो बासा ❀ कल्पना सहित ब्रह्म विश्वासा॥ ३२३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कल्पित कल्प= ऐसे मनुष्य जीवोंने
नाश कियो बासा= कल्पित वेद-वेदान्तकी वाणी प्रमाणसे कल्पना करके कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादिको माने हैं। उसी कल्पनाने बुद्धि-को भ्रष्ट करके विनाश किया, तो शून्य स्थिति करके वासना या अध्यासवश चौरासी योनियोंमें ही जाकरके निवास किये। ऐसे जीवकी स्थितिका नाश हुआ। और—

कल्पना सहित= 'अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं
ब्रह्म विश्वासा= ब्रह्म, एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति' ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारसे कल्पनाके सहित भ्रमिक होकर मनुष्योंने एक ब्रह्मको भ्रमसे विश्वास या निश्चय किया है॥

व्याख्या— कल्पित कल्पनाने मनुष्योंकी विवेक बुद्धिका नाश किया। इसीसे धोखेमें बासा वा स्थिति किये। फिर भ्रमिकलोगोंने कल्पनाके सहित ही 'मैं ब्रह्म हूँ! ब्रह्म एक अद्वैत व्यापक है। जगत् तीन कालमें नहीं है। अधिष्ठान ब्रह्म ही सत्य है;' इत्यादि बात कल्पनाके सहित ही पूरा विश्वास करके निश्चय किये वा कर रहे हैं॥ ३२३॥

१४. ब्रह्म सहित हन्ता बुद्धि काला ❀ काल होइ बहु कला समाला॥ ३२४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ब्रह्म सहित= ब्रह्म-मानन्दीकी उस
हन्ता बुद्धि काला= कल्पनाके सहित एक अद्वैत बनकर बुद्धिमें 'एकोहं' निश्चय किये। सो ब्रह्म-जगत्का महा अहङ्कार ही जीवका कालरूप घातक हुआ। हन्तायुक्त बुद्धिसे अन्तःकरण भी मैला, काला-कुचैला हो गया।

काल होइ बहु= फिर भ्रमिक गुरुवा बनकर
कला समाला= बहुत प्रकारकी वाणी, मत, पन्थ, कला-कौशल नाना बन्धन आदिको कायम किये; सम्हाल लिये, तैय्यार किये हैं॥

व्याख्या— जिसकी बुद्धिमें ब्रह्म हन्ताके सहित काला-मैला आवरण पड़ गया, सोई मनुष्य काल धोखेबाज हो गया वा वही काल हो जाता है। फिर काल होकर उसीने बहुत-बहुत कला-कल्पना, वाणी-जाल आदिको सम्हाल लिया और फैला दिया है॥ ३२४॥

१५. अमित ग्रन्थ भाखा सो महातम ❀ ऋषि मुनि सनकादिक सो पुरातम॥ ३२५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अमित ग्रन्थ= सो जगत्कर्त्ता माना हुआ
भाखा सो= ब्रह्म-ईश्वरादिकी महिमा
महातम= बहुतेक या अनेकों ग्रन्थ वेद-वेदान्त, शास्त्र, पुराण आदियोंमें वर्णन करके उसीका महात्म्य बढ़ाये वा फैलाये हैं। और प्राचीन कालमें—

ऋषि मुनि = ब्रह्मादि त्रिदेव, सनकादि मुनि,
सनकादिक = व्यास, वशिष्ठ, दत्तात्रेय,
सो पुरातम = पराशर, याज्ञवल्क्य इत्यादि पुराने जमानेमें जो-जो पण्डित ज्ञानी, योगी, भक्त आदि हो गये हैं। उन सबोंने भी बिना पारख अनेक ग्रन्थोंमें ब्रह्मके महिमा वर्णन किये हैं॥

व्याख्या— प्राचीनकालसे पुराने अगुवेलोग ब्रह्मादि-सनकादिक सो ऋषि-मुनियोंने भी वही ब्रह्म-भ्रमकी दृढ़ मानन्दी निश्चय किये थे। सो ब्रह्मज्ञान और कर्त्ता-परमात्माका महात्म्य, विशेषतादिका कथन वेद, शास्त्र, पुराण आदि अनेकों ग्रन्थोंमें वर्णन किया हुआ है; सो सब बिना पारख भूलमें ही पड़े थे॥ ३२५॥

१६. छानि छानि बहु वाणिन बन्धा ❀ वाणिन बन्ध भया बहु अन्धा॥ ३२६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
छानि छानि बहु = सब ग्रन्थ छान-बीन करके
वाणिन बन्धा = वेद-वेदान्तको श्रेष्ठ ठहराये; उसमें भाग-त्याग-लक्षणासे छान-छानकर एक ब्रह्मको सत्य बतलाया है। ऐसे बहुत लोग वाणी जालमें बद्ध हो गये।
वाणिन बन्ध = पारख-दृष्टिसे रहित वे बहुत
भया बहु अन्धा = लोग जन्मान्धकी नाईं बहुत अन्धे होनेसे निज कल्पित वाणी-खानीमें ही बन्धायमान हुए। निज सत्स्वरूपको नहीं जाने, इसलिये भवधारामें ही भटक-भटक करके मरे; उन सबकी स्थिति नहीं हुई॥

व्याख्या— तत्पश्चात् छान-छानकर वा छान-बीन करके बहुत लोग उसी वाणियोंकी कल्पनामें बन्धायमान होकर जकड़ गये। तहाँ विवेकदृष्टिसे भी हीन वे बहुत लोग बेपारखी अन्धे जड़ाध्यासी हुए। इसतरह उन्हीं गुरुवालोगोंकी वाणी छान-छानकर वा पढ़-पढ़कर कल्पनामें बद्ध हुए। फिर वाणी-खानियोंमें बन्धायमान होकर कैदी हुए, तो बहुत लोग बुद्धिहीन अन्धे अविचारी पक्षपाती भी हुए; इसीसे चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं॥ ३२६॥

दोहाः— सृष्टि कल्पनाते भई ❀ कल्पित ब्रह्माकार॥
[१०६] कल्पि बुद्धि अनुमानके ❀ ऋषि मुये पचिहार॥ ३२७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
सृष्टि कल्पना = ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरसृष्टि,
ते भई = जगत्सृष्टिका वर्णन- ये सब वाणी नरजीवोंकी कल्पनासे ही उत्पन्न हुई है या कल्पना-अध्याससे ही चौरासी-योनियोंकी सृष्टि खड़ी हुई है। तथा—
कल्पित = चराचरमें परिपूर्ण व्यापक
ब्रह्माकार = निराकार एक ब्रह्म है, ऐसा जो माने हैं, सो कल्पनाके ही आकार-प्रकार हैं। सो कल्पित निराकार ब्रह्मसे साकार जत्की उत्पत्ति कैसे होगी?—
कल्पि बुद्धि = परन्तु, भ्रमिकोंने जगत्को
अनुमानके = देखकर जगत्कर्त्ताका अनुमान किये, फिर बुद्धिसे एक ब्रह्म या ईश्वरादि निश्चय करके नाना वाणी बनाये। ऐसे कल्पित बुद्धिसे अनुमान करके प्रथम—
ऋषि मुये = ब्रह्मादि, वशिष्ठ, व्यासादि
पचिहार = ऋषि-मुनिजन, बिना पारख जड़ाध्यासी हुए। नाना साधनाओंमें पच-पच कर दुःख भेलकर मनुष्यपदको हारकर मर गये। तहाँ चौरासी योनियोंको ही प्राप्त हुए॥

व्याख्या— इसप्रकारसे कल्पित अद्वैत व्यापक ब्रह्माकारकी सृष्टि मनुष्य जीवोंकी भूल कल्पनासे ही हुई है। फिर कल्पना बढ़ाकर उसीसे जगत् सृष्टि आदिके भी वर्णन किये हैं। बुद्धिसे कल्पना और अनुमान करके भ्रमिकोंने जगत्कर्त्ता कोई ब्रह्म आदिको ठहराये हैं। वही अनुमान-कल्पनाको दृढ़ करके पूर्वमें ब्रह्मादि, सनकादि, ऋषि-मुनि लोग भ्रममें पच-पच करके हारे, जड़ाध्यासी होकर मर गये। जब उनकी ही स्थिति नहीं हुई, तब उनके अनुयायी लोगोंकी स्थिति कहाँसे होगी? कभी नहीं होगी॥ ३२७॥

दोहाः— भेद न पाये कल्पना * को हौं हौं को होहू ? ॥
[१०७] अनुमानी अनुमान भौ * नेह कठिन दृढ़ छोहू ॥ ३२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

भेद न पाये = उन ऋषि, मुनि, योगी, ज्ञानी
कल्पना = और भक्तोंने यह भेद या मर्म तो जान ही नहीं पाये कि— कल्पना करनेवाला जीव ही सत्य है। जगत् अनादि है। ब्रह्म आदि कर्त्ता माना हुआ भ्रम मात्र है। और—
को हौं = सबका ज्ञाता जनैया जीव मैं हूँ !
हौं को = और सब तो मेरी कल्पना है। यह
होहू ? = नहीं जाने। इसलिये मैं कौन हूँ ? जगत् क्या है ? जिसको मैंने कर्त्ता ठहराया, सो कौन है ? मैं क्या अहङ्कार धारण करता हूँ ? या क्या कर रहा हूँ ? आगे मेरी गति क्या होवेगी ? यह कुछ जान ही नहीं पाये।

अनुमानी = इसकारण बिना पारख
अनुमान भौ = अनुमान करनेवाले अनुमानी नरजीव स्वयं ही भ्रमसे अनुमान, कल्पनाके स्वरूप ब्रह्म-ईश्वरादि स्थापक हो गये। फिर आप ही ब्रह्म बनकर चौरासी योनियों-में समा गये।
नेह कठिन = उसी ब्रह्मज्ञान और संसारके
दृढ़ छोहू = विषय भोगादिमें दृढ़तासे स्नेह लगाये, उसीकी प्रेम-प्रीति दृढ़ आसक्ति किये, इसीसे छूटनेको कठिन, मजबूत भव-बन्धनोंमें जीव बद्ध हो गये हैं ॥

व्याख्या— कल्पनाके भेद तो उन्होंने जान ही नहीं पाये कि, कल्पना तो मेरेसे ही होती है, अतः सो कल्पना असत्य है। मैं जीव चैतन्य ही सत्य हूँ ! और मैं कौन हूँ ? ब्रह्म बनता हूँ, सो क्या है ? क्या मुझे कुछ बनना है ? ब्रह्म हो सकता हूँ या नहीं ? इस बातको तो वे कुछ भी नहीं जानते हैं; मैं कौन हूँ ? अहङ्कार क्या है ? क्या होना है वा क्या होऊँगा ? पारख बिना इसका भेद पूरा तो किसीने जान ही नहीं पाये। इसीसे अनुमानी नरजीव भ्रमसे आप ही अनुमानरूपी ब्रह्म हुआ। तहाँ लगा हुआ स्नेह, प्रीति वा आसक्तिसे जड़ाध्यास ही दृढ़ हुआ। इसीसे जीव चौरासी योनियोंके बन्धन आवागमनसे छुटकारा नहीं पाते हैं; बिना विवेक ॥ ३२८ ॥

दोहाः— ताते हे शिष्य ! उभयता * कल्पित सृष्टि पसार ॥
[१०८] भई कल्पना जाहिते * सोई भयो खुवार ॥ ३२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताते हे शिष्य ! = इसवास्ते हे सुबुद्धि शिष्य !
उभयता = खानी-वाणीमें आसक्त जीवने संसारमें स्त्री-पुरुष दोको देखकर कल्पनासे कोई और ही प्रकृति-पुरुष जगत्कर्त्ता ठहराकर माने हुए हैं; और—
कल्पित सृष्टि = ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरसृष्टिके भ्रम-
पसार = के पसारा दो प्रकारसे किये हैं। सो संसारमें वाणी-कल्पनाके ही पसारा गुरुवालोगोंने किये हैं; और—

भई कल्पना = ऐसी कल्पना शुरूमें नरजीवसे
जाहिते = ही हुई। निज सत्स्वरूपका बोध न होनेसे भ्रम हुआ, सो जिस मनुष्यसे यह कल्पना पैदा हुई—
सोई भयो = सोई कल्पनाकर्त्ता नरजीव ही
खुवार = खराब, गन्दा, भ्रमिक, जड़ाध्यासी, चौरासी योनियोंके भोगी हुए। सो अभी भी ऐसे ही खराब होकर मनुष्य-पदसे लोग पतित हो रहे हैं ॥

व्याख्या— इसवास्ते हे शिष्य ! ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरसृष्टि यह दोनों ही मिथ्या वाणीकी कल्पित सृष्टिका ही पसारा मात्र है। और जिस मनुष्यजीवसे यह सब कल्पनाका पसारा हुआ, सोई पारख बिना अपनेको भूलकर विषयोंमें लगकर खराब, जड़ाध्यासी, बद्ध हुआ और हो रहा है। अज्ञानतासे जहाँ-तहाँ दुर्दशाको ही पा रहा है ॥ ३२९ ॥

दोहाः— ब्रह्म जीव ईश्वर जगत ❀ ई सब अनुमित सैन ॥
[१०९] निरुवारै ठहरै नहीं ❀ भासै झाँईं बैन ॥ ३३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म जीव = ईश्वर जगत = जीव-ब्रह्मकी एकता ईश्वरसे जगत्की उत्पत्ति जो माने हैं, सो भ्रम है। विज्ञान-ब्रह्म कारण, अज्ञान-जीव अंश, ज्ञान-ईश्वर सन्धि, जगत्-विषय माया, ऐसा माने हैं।

ई सब = अनुमित सैन = ऐसे-ऐसे यह सब बातें गुरुवालोगोंके अनुमानके इशारा वाणीका सैन, असत्य है। सत्य नरजीवके बिना ब्रह्म-ईश्वरादिकी अनुमान-कल्पना कौन करेगा ? इसलिये जीव सत्य है, ब्रह्म मिथ्या है। क्योंकि—

निरुवारै = ठहरै नहीं = जड़-चैतन्यका यथार्थ सत्य निर्णय करनेसे परीक्षाकी कसौटीमें ब्रह्म-ईश्वरादि कुछ वस्तु ही नहीं ठहरते हैं; किसी गुण-लक्षणसे भी वे सत्य साबित नहीं होते हैं।

भासै झाँईं = बैन = अतः सो भासमात्र है। क्योंकि, वाणी कल्पनासे ही ब्रह्मका भास हुआ। इसलिये सो कोई वस्तु नहीं है, सिर्फ मनकी मानन्दी गाफिली है ॥

व्याख्या— असिपद ब्रह्म, तत्पद ईश्वर, त्वंपद जीव, और मायारूप जगत्- यह सब मानन्दी अनुमानके ही झूठा सैन वा इशारा है, उसीमें लक्ष्य लगाये हैं। परन्तु, सत्यन्यायसे परीक्षा करके गुरुमुख द्वारा निरुवार करके यथार्थ निर्णय करनेसे एक जीव ही सत्य ठहरता है। बाकी ब्रह्म-भ्रम है। ईश्वर कल्पना मात्र है। उससे जगत् उत्पत्ति हुई, सबमें वह व्यापक है, उसीके अंश जीव हैं, इत्यादि कहना तो कुछ न्यायमें ठहरता ही नहीं है। वह तो झाँईं है, इसीसे वाणी कल्पनाके भासमात्र ही भासता है; भासिक जीव सदा उससे न्यारा ही रहते हैं। यह पारख बोध हुए बिना सब लोग धोखेमें ही भूले और भूल रहे हैं॥ ३३० ॥

दोहाः— जाको है यह भासना ❀ सोई पद सोई रूप ॥
[११०] ताके गुरु निर्णय सहित ❀ मनुष्य जथारथ भूप ॥ ३३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जाको है = यह भासना = जिस नरजीवको यह ब्रह्म-ईश्वरादि भासना भासता है, सो उस भाससे भासिक सदैव भिन्न रहता है। भास और भासिक कभी एक नहीं हो सकते हैं, न्यारा-न्यारा ही रहते हैं।

सोई पद = सोई रूप = सोई मनुष्यपद सच्चा है। जो सत्य बोधके जानकार हैं, सद्गुण-धारी परीक्षक हैं, सोई हंस स्वरूप हैं। सो वे ब्रह्मपद और जगत्रूपको परखते हैं।

ताके गुरु = निर्णय सहित = उस खानी-वाणी जालोंको पारखी सद्गुरुके सत्य-निर्णयसे लखकर अध्यासको छोड़कर सत्य निर्णयसे बोध, वैराग्य, विवेकके सहित रहनी-रहस्यवाले जो होते हैं—

मनुष्य = जथारथ = भूप = सोई संसारमें यथार्थ सच्चे मनुष्य हैं। सर्व नरदेहधारियोंमें वे राजाके समान सर्वश्रेष्ठ पारखी साधु सब ज्ञानवानोंमें उच्च राजावत् शिरोमणि होते हैं, ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— जिसको यह नाना मानन्दीसे भासना भासता है, सो द्रष्टा जीव सदैव उससे न्यारा ही रहता है। भास और भासिक दोनों कभी एक हो नहीं सकते हैं। सोई सच्चा मनुष्यपद है, सोई पारख उनका स्वरूप है; और देह रहे तक वे हंसरूपमें विवेकी होकर रहते हैं। उसको गुरु निर्णय सहित जो जानते हैं, तथा रहनी-रहस्य युक्त जो निजपदमें स्थित हैं, सोई भूपके समान सर्व श्रेष्ठ ज्ञानवान् मनुष्योंमें मान्य राजावत् यथार्थमें सच्चे मनुष्य वे ही हैं; ऐसा जानना चाहिये॥ ३३१ ॥

दोहाः— मानुषरूप शुभ प्रथमा * इन्हते चारिउ खानि ॥
[१११] अरुझै जहाँ तहाँ फन्दमें * पारख लीन्ह पहिचानि ॥ ३३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मानुषरूप = मनुष्यखानी यही पहला
शुभ प्रथमा = नम्बरमें है, कर्मभूमिका है, शुद्ध ज्ञान प्राप्त करनेयोग्य है, कर्मका सुधार होनेकी जगह यह ऐसे शुभ मङ्गलकारी यही मनुष्यका रूप शुभ प्रथम नरदेह है।

इन्हते चारिउ = मनुष्य देहसे ही चारोंखानी-
खानि = में जानेके अध्यास बनते हैं। इसीसे कर्म-अध्याससे चारोंखानीका विस्तार हुआ है। मनुष्यदेह छूटनेपर अध्यासके अनुसार जीव चारखानीमें चले जाते हैं।

अरुझै जहाँ- = सो नरजीव ही स्त्री-भोगादि,
तहाँ फन्दमें = तथा कर्म, भक्ति, योगादि, वाममार्ग-दक्षिणमार्ग, कर्म-कुकर्म जहाँ-तहाँ फन्दारूप जालोंमें जाकर अरुझे और अरुझ-अरुझकर चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं।

पारख लीन्ह = सो इसको पारखी सद्गुरु
पहिचानि = श्रीकबीरसाहेबने यथार्थ पहिचान कर लिये। सो उनकी कृपा द्वारा आपके अनुयायी पारखी सन्त भी जानते आये हैं; और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करनेवाले भी सो उसे जानेंगे ॥

व्याख्या— मनुष्यरूप ही शुभ कर्मभूमिका प्रथम खानी है। इसी मनुष्यने ही जाग्रतादि चार अवस्थाओंकी स्थितिवत् कर्मादि चार मार्गोंका अध्यास संस्कार टिका कर फिर देह छूटनेपर कर्मानुसार चार खानीमें जाकर उन खानियोंका विस्तार किया। और अपनेको भूलकर जहाँ-तहाँ वाणी-खानीके फन्दोंमें अरुझा, बन्धनमें पड़ा। उसे पारखी सद्गुरुने पारख करके पहिचान लिये; सो स्वयं पारखसे निर्बन्ध मुक्त हुए ॥ ३३२ ॥

दोहाः— सोई रूप यह जगतमें * धारे दीनदयाल ! ॥
[११२] भेष सुमङ्गल सन्त तन * निर्णय देहिं कृपाल ॥ ३३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सोई रूप यह = यह संसारमें बड़े भाग्यसे ही
जगतमें = नरजन्म मिलता है। नरदेहसे फिर नरदेह फौरन प्राप्त करनेके लिये शुभ-कर्म, ज्ञान-संस्कार होना चाहिये। तभी सोई नररूपमें यह जगत्में शरीर धारण होता है। इसी प्रकारसे—

धारे दीन दयाल != तीव्र ज्ञान-संस्कारसे दीनदयालु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी नरदेहको ही धारण किये थे। इसीसे स्वयं पारख ज्ञानको प्रकाश कर सद्गुणोंको धारण किये थे। और—

भेष सुमङ्गल = तन-मनादिकोंके विकारको
सन्त तन = शान्त करके सत्य साधनसे सच्चा त्याग भेष, साधुभेष धारण किये, जो कि, शुद्ध शुभ मङ्गलकारी है। आप नरतनधारी साधु पारखी हुए।

निर्णय = आपने ही दया करके निर्णयको
देहिं कृपाल = लखा दिये। सो पारखी सन्तों-ने भी वर्तमानमें कृपा करके सत्य निर्णयके बोध दिये या दे रहे हैं ॥

व्याख्या— यह जगत्में सोई मनुष्यरूपधारी दीनदयालु पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब एक प्रथम पारख प्रकाशी हुए। और शरीर रहेतक वर्तमान स्थिति रहनीके लिये सुमङ्गलकारी शुद्ध त्यागी साधुका भेष— कण्ठी, लङ्गोटा, अचला आदि चिह्न नरतनमें धारण किये। और आप कृपालुने पारख ज्ञान गुरुमुख निर्णयका ही सत्यबोध दिये, जो बीजक नामक सद्ग्रन्थमें लिखा है ॥ ३३३ ॥

दोहाः— ताते हे शिष्य ! रूप है * मानुष प्रथमा नाम ॥
[११३] कल्पि कल्पि मति ब्रह्मलों * बसै औरके धाम ॥ ३३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

ताते हे शिष्य != } इसवास्ते हे शिष्य ! इस
रूप है= } मनुष्यके रूपमें त्यागका
भेष सर्वश्रेष्ठ है।

मानुष= } स्वरूपज्ञानवाले मनुष्यने ही
प्रथमा नाम= } सबके नाम-रूपके गुण-लक्षणों-
को जानकर मनुष्यके नाम पहला भागमें
रक्खा। प्रथमा नाम मनुष्यका ही है, जो
सबका जानकार सबसे पहले आगे-आगे
ही होते हैं। और—

कल्पि कल्पि= } मनुष्योंने ही अपनी बुद्धिसे
मति ब्रह्मलों= } निश्चय करके मन-मानी कल्पना
कर-करके वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादि
वाणी बनाये हैं। और जगत्से ब्रह्मतककी
बातें सङ्कल्प-विकल्प करके मानन्दी करते
गये हैं।

बसै औरके= } इसतरह नरजीव ही विजातीय
धाम= } विषय, ब्रह्म-ईश्वरादि और-
औरके धाम वा जगहमें जा-जाकर बस गये
या स्थिति करके वहीं बसना चाहते हैं।
इसलिये और ही जगह चौरासी योनियोंके
धाममें चले गये। ऐसे निजपदसे विमुख
हो गये, तो चौरासी योनियोंमें ही चले गये॥

व्याख्या— इसवास्ते हे शिष्य ! मनुष्यका 'रूप' और 'नाम' प्रथम कहलाता है। उन अबोध मनुष्योंने ही मति-बुद्धिसे कल्पना कर-करके भ्रमसे ब्रह्म तक पहुँचकर और-ही-औरके धाममें जाकर बसते हैं। अपनेसे भिन्न अनुमान-कल्पनामें निवास करके चौरासी योनियोंमें जाकर भटकते रहते हैं; भूलसे दुःख ही भोगते रहते हैं॥ ३३४॥

दोहाः— चौरासी कल्पित भये * भच्छित एक अनेक॥
[११४] पुनि सो बहुत विचार करि * ब्रह्म एकका एक॥ ३३५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चौरासी= } जब कल्पितमें लगकर जीव
कल्पित भये= } जड़ाध्यासी हुए, तब चौरासी
योनियोंमें चले गये। फिर शुभ संस्कारसे जब
मनुष्य तन पाये, तब फिर वही कल्पनाके
अधीन हुए। ऐसे कल्पित ब्रह्मके भ्रमसे
चौरासी योनियोंमें चले गये।

भच्छित= } कोई सर्वभक्षी वाममार्गी हुए।
एक अनेक= } कोई एक अद्वैत ब्रह्मवादी हुए,
तो सब चराचर जगत्को खायके लयकर
अधायके एक ब्रह्म अधिष्ठान आप ही हुए।
कोई द्वैत आदि अनेक मतवादी हुए।

पुनि सो बहुत= } फिर कोई विशेष भ्रमिक हुए,
विचार करि= } तो वे फिरसे वेद-वेदान्त,
उपनिषद्, शास्त्रादिका पठन, मनन, विचार
करने लगे; खूब विचार करके आखिरमें—

ब्रह्म एक-= } भाग-त्याग-लक्षणा घटाकर
का एक= } तत्त्वमसिमें जीवको ब्रह्म बनाये,
फिर जीव-ईश्वर दोनोंको उड़ाकर ब्रह्म
एक ही अद्वैत-का-अद्वैत ही ज्यों-का-त्यों
व्यापक मान लिये॥

व्याख्या— मनुष्य ही पहले भ्रमसे कल्पित ब्रह्म हुए। तहाँ चौरासी योनियोंको कल्पित भ्रम मात्र कहने लगे। अनेक जगत् द्वैत भावको भक्षण करके एक अद्वैत ब्रह्म आप ही हुए। फिर भी इच्छा करके एकसे अनेक जगत् विस्तार हुआ। और फिर सो वेद-वेदान्तका ही बहुत-बहुत विचार करके-'ब्रह्म एक अद्वैत-का-अद्वैत ही है। द्वैत मानना मिथ्या भ्रम है' ऐसा ठहरा लिये। परन्तु, सो कल्पनाके सिवाय और कुछ भी नहीं है॥ ३३५॥

दोहाः— ब्रह्म भये चौरासी गये * चौरासी मिटि ब्रह्म॥
[११५] घायल घूमहिं जीयरा * उलटि पलटि इमि भर्म॥ ३३६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म भये= } इसप्रकार पूर्ण ब्रह्म भी हुए,
चौरासी गये= } तो क्या हुआ ? आखिरमें
व्यापक होनेसे चौरासी योनिरूप जगत्में
ही तो मिल गये ! चौरासी योनियोंके चक्र-
से तो न्यारे नहीं हुए। और—

चौरासी = मिटि ब्रह्म = } जब चौरासी योनिरूप जगत् प्रलय होकर मिट गया, तो एक ब्रह्म ही बाकी रहा, यह निश्चय हुआ, फिर ब्रह्मसे इच्छा हुई, तो जगत् पैदा हुआ, वही जगत्में ब्रह्म पूर्ण हुआ।

घायल = घूमहिं = जीयरा = } ऐसे-ऐसे धोखा तीक्ष्ण वाणीके तीर-से घायल हुए, सो भ्रमिक जड़ाध्यासी नरजीव बिना विचारे धोखेमें ही पड़े हैं। इससे ब्रह्म-जगत्के महाचक्रमें जन्म-मरण, गर्भवासमें घूम रहे हैं, चक्कर लगा रहे हैं।

उलटि पलटि = इमि भर्म = } तहाँ ब्रह्मसे जगत्, जगत्से फिर ब्रह्म, जन्मसे मरण, मरण-से फिर जन्म, ऐसे उलटा-सीधा घूम-फिर-कर इसप्रकार बेपारखी जीव महा भ्रमसे चौरासी योनियोंके भ्रमणमें ही पड़े हैं॥

व्याख्या— इसतरह जो कोई ब्रह्म हुए, सो वे व्यापक बनकर जड़ाध्यासवश सरासर चौरासी योनियोंमें ही चले गये और चले जा रहे हैं। अर्थात् ब्रह्म होकर ही चौरासी योनियाँ बनीं, फिर चौरासी योनियाँ मिटीं, तो वही ब्रह्म हुआ। इसप्रकार उलट-पलटकर भ्रममें पड़कर घायल जड़ाध्यासी होकर-के ही जीव चौरासी योनियोंके आवागमन चक्रमें घूमते हैं वा घूम रहे हैं, बिना विवेक॥ ३३६॥

दोहाः— ब्रह्म भरम माया मनहीं ❀ भये अनेकन रूप॥
[११६] याहीके अनुमान शिष्य ! ❀ ब्रह्माकार स्वरूप॥ ३३७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म भरम = माया मनहीं = } ब्रह्म क्या है? सो गुरुवा-लोगोंका भ्रममात्र ही है। माया यही काया है; मन वही मानन्दी है। या माया यही मन है, मन सोई तन है, सो जड़तत्त्वोंका कार्य भाग जीवकी सत्तासे बना है। और दूसरा ही ब्रह्म और माया मानना मनका भ्रम ही है।

भये अनेकन रूप = सो खानी-वाणीका रूप अनेक प्रकारका विस्तार है। अनेकों प्रपञ्च फैल रहे हैं। और अध्यासवश सो जीव चौरासी योनियोंमें अनेकों देहधारी हुए हैं वा हो रहे हैं।

याहीके = अनुमान = शिष्य ! = } हे शिष्य ! यही अबोध नरजीवके अनुमान-कल्पनासे अनेक मत-मतान्तर वाणी जाल नाना ग्रन्थ प्रगट हुए हैं। और मनुष्यके ही अनुमानसे—

ब्रह्माकार = स्वरूप = } चराचर वा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सर्वत्र पूर्ण व्यापक निराकार एक अद्वैत ब्रह्मका स्वरूप कल्पनासे दृढ़ हुआ है, सोई बात निश्चय करके मान रहे हैं॥

व्याख्या— मायारूप मनके ही भ्रमसे ब्रह्म हुए, तो उसीसे अनेकरूप जगत्की उत्पत्ति हुई, ऐसा भी कथन किये हैं। किन्तु, ब्रह्म तो भ्रम है। माया यह मन ही है। इसीके अनेकरूप विस्तार हुए हैं। हे शिष्य ! यही भ्रमिक मनुष्यके ही अनुमानसे वह ब्रह्माकार स्वरूप बना है। नहीं तो, ब्रह्म कोई सत्य वस्तु कहीं भी नहीं है॥ ३३७॥

दोहाः— कल्पित याको ब्रह्म भौ ❀ इच्छा माया भास॥
[११७] मन मानै मनतव्यता ❀ चौरासी कियो बास॥ ३३८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

कल्पित = याको ब्रह्म भौ = } नरजीवसे ही ब्रह्म-भ्रमकी कल्पना हुई, और वही कल्पित ब्रह्म इसी नरजीवोंको भ्रमाकर चौरासी योनियोंमें ले जानेका कारण हुआ।

इच्छा माया = भास = } फिर उसी ब्रह्मकी इच्छारूप आदिमायासे त्रिगुणरूप जगत्की उत्पत्ति होकर भास हुआ, ऐसा कहते हैं। सो जीवकी इच्छा-वासनासे ही माया-रूप कायाका भास हुआ है। इच्छा ही मायाका भास है। और—

मन मानै = मनतव्यता = } मनमें मिथ्या मानन्दी दृढ़ करके तनसे अनेक कर्त्तव्य, करतूत मनुष्योंने किये। जो मनसे माना, सोई

मनतव्यता है। फिर उसीके अध्यास-वासना दृढ़ होनेसे नरदेह छूटनेपर—

चौरासी कियो बास = अध्यासी जीव चारखानी चौरासीरूप पशु आदि योनियोंमें जाकर देह धारण करके निवास किये, और वहीं वास कर रहे हैं ॥

व्याख्या— यही मनुष्यकी कल्पनासे एक कल्पित ब्रह्मका भ्रम खड़ा हुआ है। सो अन्तःकरण-में इच्छारूपी मायासे भास हुआ। और जो मनसे मानते भये, सोई मन्तव्यता वा मनकी मिथ्या कल्पना है। उसीके अध्यासवश बन्धनमें पड़कर मनुष्य देह छूटनेपर जीव सब चौरासी योनियोंमें निवास किये और फिर भी वहीं बास कर रहे हैं ॥ ३३८ ॥

दोहाः— चौरासी चहुँ खानि मन * कल्पित माया फेर ॥
[११८] ब्रह्म ईश जड़ देह महँ * लागै निजपद हेर ॥ ३३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

चौरासी चहुँ = } मनुष्य, पशु, अण्डज और
खानि मन = } उष्मज- ये चारखानियोंके अनेक समूहरूप चौरासी योनियोंमें मन-मानन्दी अध्याससे ही सब जीव पड़े हुए हैं।

कल्पित = } सो माया गुरुवालोग कल्पनामें
माया फेर = } ही मनुष्योंको घुमा-फिरा रहे हैं। कल्पित ब्रह्मकी इच्छारूप माया यही सृष्टिचक्रको फिरानेवाली माने हैं। ऐसे कल्पित मायाके फेरामें पड़े हैं। और—

ब्रह्म ईश = } निराकार व्यापक ब्रह्म, सर्व-
जड़देह महँ = } शक्तिमान् परमेश्वर कोई कर्त्ता मानकर बाहर चारों तरफ ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कहीं भी जब पता नहीं पाये, तब हारकर इसी जड़देहमें ध्यान-समाधि, मुद्रा, धारणा लगाकर—

लागै निज- = } उसी ब्रह्म-ईश्वरादिको ही अपना
पद हेर = } मुक्तिपद दाता मानकर वा उसे ही निज स्वरूप मानकर हेरने लगे, उसे खोजने लगे, प्राप्ति करनेके लिये बड़े व्याकुल हुए। तब ध्यानमें एकाग्रतासे ज्योति आदि जो दिखने लगी, उसी भासको ही अपना स्वरूप मानकर वे भूल गये, गाफिल हो गये, बिना पारख ॥

व्याख्या— मनःकल्पित मायाके फेरामें पड़कर जीव सब चारखानी चौरासी योनियोंके घेरामें बद्ध पड़े हैं। यहाँ मनुष्य खानीमें आकर भ्रमिक नरजीव जड़देहमें बाहर-भीतर निजपदको हेरने लगे वा खोजी-तलासी करके देखने लगे। तहाँ किसीने ब्रह्मको ही निजपद माने, तो किसीने ईश्वरको निजपद कल्पना किये। फिर योगाभ्यास वा उपासना आदि साधना करके उसे जड़देहमें प्रत्यक्ष देखनेके लिये प्रयत्न करने लगे। बिना विचार तत्त्वोंका भास-प्रकाश आदि देखकर उसीमें गाफिल हो गये ॥ ३३९ ॥

दोहाः— चारिउ खानी चारिउ वाणी * चारिरूप चहुँ देह ॥
[११९] ब्रह्म ईश माया मनहूँ * चहुँ मध्ये बासा येह ॥ ३४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

चारिउ खानी = अण्डज, पिण्डजादि चारोंखानी-में ब्रह्मको व्यापक माने हैं।

चारिउ वाणी = फिर परा, पश्यन्ती आदि चारों वाचासे निर्मित वेद वाणीको शब्दरूप ईश्वर करके माने हैं। तथा—

चारिरूप = बाल, कुमार, युवा, वृद्ध- ये देहके चारपनके रूप हैं, और बाहर चार मुक्तिका स्वरूप अलग माने हैं, ये तन-मन सम्बन्धी-चार रूप हैं। और—

चहुँ देह = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण- ये चारदेह माया-कायाके जड़ भाग हैं।

ब्रह्म ईश = } उक्त प्रकारसे ब्रह्म खानी है,
माया मनहूँ = } ईश वाणी है, माया देह है, मनका रूप मानन्दीमात्र है। अथवा मन इन्हींका रूपान्तर मात्र है। इसीके मानन्दी-अध्यासके वशीभूत होकर—

चहुँ मध्ये = } यह जीव ही उन चारों-चारों
बासा येह = } भागोंके बीचमें जाकर निवास करते हैं। बारम्बार चारखानी चौरासी-

योनियोंके मध्यमें ही निवास किये और | बासा करते रहते हैं ॥

व्याख्या— चारों खानी सोई ब्रह्मका स्वरूप है। चार वाचा, चार वेद आदि चारों वाणी ही ईश्वरका स्वरूप है। चार पन, चार मुक्तिके रूप ही मायाका स्वरूप है। और चारों देहोंकी मानन्दी सोई मनका स्वरूप है। इसप्रकार ब्रह्म, ईश, माया, मनकी उन्हीं चारोंके मध्यमें बासा है, और वही उनका रूप भी माना है। इसीसे जड़ाध्यासी जीवोंकी चौरासी योनियोंका चक्र कभी नहीं मिटता है, बिना पारख ॥ ३४० ॥

दोहाः— हे शिष्य ! ब्रह्माकारको * लक्षण ई गुण होय ॥
[१२०] कैसे चौरासी मिटै ? * कैसे रूप समोय ? ॥ ३४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

हे शिष्य != } हे जिज्ञासु शिष्य ! सुनो, यह
ब्रह्माकारको = } ब्रह्म-परमात्माके आकार-प्रकारका निर्णय करके तुम्हारे प्रति कह दिया हूँ। चराचरमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मको निराकार आकाशवत् सर्वाधिष्ठान कहा है वा माना है, सो कल्पना है। और—
लक्षण ई= } इच्छा वा स्फुरणा सदैव ब्रह्ममें
गुण होय= } बनी ही रहती है, ऐसा कहा है। इसलिये जगत् उत्पन्न होकर फिर उसीमें लय भी हो जाता है। यही उसका लक्षण और निर्गुण उसका गुण है, ऐसा कहा है। विस्तारसे ऊपर कह चुके हैं।
कैसे चौरासी= } अब कहो तो भला ! बहुत
मिटै ?= } प्रयत्न करके ब्रह्मज्ञान द्वारा ब्रह्म बननेसे जीवकी चौरासी योनियाँ आवागमनका भोग कैसे मिटेगा ? और—
कैसे रूप= } अखण्ड ज्ञानाकार जीव निराकार
समोय ?= } माना हुआ मिथ्या ब्रह्मके स्वरूपमें जाकर कैसे समायेगा ? कैसे मिलेगा ? ऐसे भ्रमिकोंको निजस्वरूपकी स्थिति कैसे प्राप्त होगी ? कभी न हो सकेगी, ऐसा जानो ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! ब्रह्माकारके मुख्य गुण और लक्षण यही हैं; अब कहो, ब्रह्म बनकर चौरासी योनियाँ कैसे मिटेंगी ? ब्रह्मके रूपमें जीव कैसे समायेगा ? और कैसे मुक्त होयगा ? इसतरह अध्यासी होकर तो जीव कभी मुक्त ही नहीं होवेगा ॥ ३४१ ॥

दोहाः— ताते देखो सबनको * पारख कियो विचार ॥
[१२१] निर्णय कियो चहुँ खानिको * गुरुबुद्धि मानुष सार ॥ ३४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताते देखो= } इसवास्ते सद्गुरुके निर्णय सत्सङ्ग-
सबनको = } द्वारा विवेक करके तुम देखो ! तो मनुष्यका नाम-रूप यथार्थ जानोगे, और सभीका सार पहिचानोगे। इसीप्रकार सबोंकी खानी-वाणियोंको विवेक-दृष्टिसे देख करके—
पारख= } सर्व परीक्षक पारखी सद्गुरुने
कियो= } यथार्थ विचार किये कि, सबोंकी
विचार= } मानन्दी करनेवाला सबसे न्यारा तो चैतन्य जीव ही सत्य है। मनुष्य ही विभिन्न विचारसे बद्ध और मुक्त होते हैं। और—
निर्णय कियो= } चारों खानीका भी सत्य
चहुँ खानिको= } निर्णय ऐसा किये कि— विषयासक्त कर्मी, उपासक, योगी और ज्ञानीलोग-ये क्रमशः पशु, पक्षी, उष्मज, और मनुष्य खानीमें जानेवाले अध्यासी बने हैं।
गुरुबुद्धि= } चारोंमार्गके अध्यासोंको छोड़-
मानुष सार= } कर गुरु निर्णयसे सद्बुद्धि सद्गुण रहनी-रहस्यको धारण करनेवाले ही सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ सार सच्चे हंस मनुष्य हैं। ऐसा सार पारखको सद्गुरुने लखाये हैं ॥

व्याख्या— इसकारणसे पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सबोंको देखकर परीक्षादृष्टिसे परख करके पारखका विचार किये। और चारों खानीके गुण-लक्षणोंका निर्णय किये, तो मनुष्योंमें गुरुबुद्धिका होना ही सार ठहराये हैं। अर्थात् मनुष्योंमें गुरुबुद्धिवाले ही सर्वश्रेष्ठ सार हंस होते हैं। वे ही सब खानी-वाणी आदिका निर्णय करते हैं। और असार अनुमान, कल्पना, विषयादिको त्यागकर सारपदको ही ग्रहण करते हैं ॥ ३४२ ॥

दोहाः— रूप मनुष्य सो सब भयो ❀ चौरासी चहुँ खानि ॥
[१२२] वाणी यथार्थ विचार गुरु ❀ मानुष रूपते जानि ॥ ३४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

रूप मनुष्य = रूपमात्रके मनुष्यसे ही
सो सब भयो = खानी-वाणी आदि सब जालोंका विस्तार हुआ है। उसीने सब कर्म-अध्यासोंको बनाया और टिकाया है।

चौरासी = वही वासनावश जीव चार-
चहुँ खानि = खानीके चौरासी योनि समूह-में चले गये हैं, अनेकों देह धरते-छोड़ते कर्म फल दुःख भोग रहे हैं।

वाणी यथार्थ = यथार्थ गुरुमुख वाणी, सत्य-निर्णयको—

विचार गुरु = साधु-गुरुके सत्सङ्गमें श्रवण करके विचार करो! ऐसे गुरुमुखके यथार्थ वाणीको विचार करनेवाले ही—

मानुष रूप- ते जानि = सत्यके सच्चे जानकार विवेकी मनुष्य होते हैं। वही गुण मनुष्य और रूप मनुष्यके भेदको जानते-जनाते हैं। और मनुष्यरूपसे ही गुरु विचार जाना जाता है। पशुरूपसे जाननेमें नहीं आता है; ऐसा जान लो! ॥

व्याख्या— जड़ाध्यासी रूप मनुष्यसे ही वासना करके चारखानी और उनमेंकी चौरासी-योनियाँ इन सबका विस्तार हुआ है। और उन सबकी वाणीके यथार्थ विचारको मनुष्य स्वरूपमेंसे ही पारखी सद्गुरुने यथार्थ जाने हैं। सोई गुरु विचार यथार्थ निर्णयकी वाणी जिनमें हो, सो उन्हें ही सच्चे मनुष्य जानना चाहिये ॥ ३४३ ॥

दोहाः— ताते हे शिष्य! चारिमा ❀ मानुष प्रथमा नाम ॥
[१२३] मानुषते सब ही भयो ❀ मानुषके गुण आन ॥ ३४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस साहेब कहते हैं—

ताते हे शिष्य! चारिमा = इसवास्ते या इसकारणसे हे शिष्य! उन चारों ही खानियोंमें सबोंसे श्रेष्ठ विशेष महत्त्व रखनेवाले—

मानुष = मनुष्यखानीके ही जीव हैं।
प्रथमा नाम = पहला नाम-रूप मनुष्यका होता है। फिर दूसरोंका आता है। क्योंकि, सबका नाम भी तो मनुष्यने ही रक्खा है। वेद-कुरान आदिकी वाणी बनाकर ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिका नाम भी नरजीवोंने ही रक्खे हैं।

मानुषते = अतः मनुष्योंसे ही सब कला-
सब ही भयो = कौशल, कल्पना, वेद, शास्त्र, मत, पन्थ, इष्ट-अनिष्ट, वाममार्ग, दक्षिणमार्ग, ब्रह्म-ईश्वर, देवी-देवतादिकी स्थापना— इत्यादि सब व्यवहार हुआ, और हो ही रहा है। सोई नरजीव अपनेको भूला है।

मानुषके गुण आन = इन सब मानन्दीसे भिन्न दूसरा ही पारख गुण, ज्ञानगुण, हंस देहके सद्गुण रहनी-रहस्य पारखी साधु सच्चे मनुष्योंमें रहता है। सो सब लोगोंसे भिन्न पारखी सन्तोंका बर्ताव रहता है ॥

व्याख्या— इसलिये हे शिष्य! चारों खानियोंमें प्रथम नाम मनुष्यका ही होता है। और सब बातोंका प्रथम बोध भी आशानीसे मनुष्योंको ही होता है। मनुष्योंसे ही समस्त खानी-वाणियोंके नाम-रूप आदिका विस्तार हुआ है। सबोंके नाम, रूप, गुणको जाननेवाले मनुष्य ही

होते हैं। और मनुष्यदेहमें ही कर्म-अध्यास टिकाकर अन्य खानीमें जीव चले जाते हैं। परन्तु, मनुष्यका असली गुण-लक्षण तो और ही कुछ है। जिसे हंसगुण कहते हैं, सोई मनुष्यका खास सद्गुण सर्व श्रेष्ठ है ॥ ३४४ ॥

दोहाः— मन मायासो कल्पना * ब्रह्माकार स्वरूप ॥
[१२४] हे शिष्य! सबै अनर्थ पद * नहिं ताके ये स्वरूप ॥ ३४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन माया= सो कल्पना= सूक्ष्म-मन, स्थूल-मायारूप काया, सो इसीके सम्बन्धमें नाना व्यवहार हो रहे हैं। जब त्रिविधि तापादिके दुःख पाये, तब मनुष्योंने कल्पनासे अपनेसे भिन्न कर्त्ता-परमात्मा कोई माने हैं।

ब्रह्माकार = स्वरूप= फिर उसकी खोज करते-करते ब्रह्मज्ञानीकी शरणमें गये, उन्होंने मन-कल्पनासे एक ब्रह्मको निराकार चराचरमें परिपूर्ण व्यापक बतलाये; सोई कल्पित ब्रह्मके आकारको अपना ही स्वरूप मानकर बेपारखी नरजीव भूल गये, तो धोखेसे गाफिलीमें ही पड़े हैं। अतः—

हे शिष्य! सबै= अनर्थ पद= हे शिष्य! वह सब पद अनर्थकारक हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवतादि माननेसे कोई अर्थ वा कल्याण होनेका नहीं। सो तो झूठ होनेसे अनर्थ है, वह जीवका पद नहीं है।

नहिं ताके= ये स्वरूप= जैसा गुरुवालोगोंने उसका स्वरूप मान रक्खे हैं, तैसा तो उसका स्वरूप कुछ भी नहीं है। मिथ्या भ्रममात्र भास हुआ है। इसलिये उसको ताकनेवाले द्रष्टा जीवका ये दृश्य कल्पित स्वरूप हो नहीं सकता है। ऐसा विवेक करके जानना चाहिये ॥

व्याख्या— मन-मायासे जो कल्पना हुई, सोई ब्रह्माकार स्वरूप करके माना है। हे शिष्य! सो सब ही मन-मानन्दी मिथ्या होनेसे अनर्थका पद भ्रममात्र है। ये सब स्वरूप जीवके अपने स्वरूप नहीं हैं। द्रष्टा पारख स्वरूप ही जीवका खास स्वरूप है ॥ ३४५ ॥

दोहाः— रूप सबै अरु कछु नहीं * रूपै रूप उपाय ॥
[१२५] सङ्कल्पित यह सृष्टि है * थिरता कहूँ न पाय ॥ ३४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

रूप सबै= अरु कछु नहीं= जड़-चैतन्य सब साकार हैं, इसलिये सबका रूप साकार है। और इसके अलावा निराकार माना हुआ ब्रह्म आदि और कोई कहीं कुछ भी नहीं है। परन्तु, ब्रह्मवादी सर्व जगत्रूपको ही एक ब्रह्म ठहराकर ब्रह्मके सिवाय और कुछ भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। सो कुछ पारखमें नहीं ठहरता है। इसलिये मिथ्या धोखा मात्र है। और—

रूपै रूप= उपाय= जड़-चैतन्यके सम्बन्धसे ही सब रूप पदार्थ, देह आदि उत्पन्न हो रहे हैं। तहाँ मनुष्यरूपने ही विविधि उपाय करके अनेक सिद्धान्तोंके रूपको उत्पन्न किया है।

सङ्कल्पित यह= सृष्टि है= निराकार ब्रह्मके सङ्कल्पसे यह साकार जगत्की उत्पत्ति मानना, मिथ्या मन-कल्पनाकी ही सृष्टि है। यह जगत् तो अनादि है।

थिरता कहूँ= न पाय= इसीसे भ्रमिक जीव जड़ाध्यासी होकर कहीं भी ठौर-ठिकाना स्थिरताकी निज स्थिति नहीं पाते हैं या नहीं पाये; इसलिये चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जाकर पड़े हैं ॥

व्याख्या— साकार देहके रूपधारी चारोंखानीके जीव चैतन्य स्वरूप सत्य हैं। और ब्रह्म-ईश्वरादि निराकार माना हुआ तो कोई वस्तु ही नहीं है। शरीरधारी माता-पितादिके रूपसे ही बालकोंके देहोंका रूप बनकर उत्पन्न होता है वा उत्पन्न हो रहा है। कारणरूपसे ही कार्यरूपकी उत्पत्ति होती है। और ब्रह्म-ईश्वरादि सृष्टि यह तो मनःसङ्कल्पित होनेसे मिथ्या है। अतः

अध्यासी अविवेकी जीव कहीं स्थिरता, ठहराव, मुक्ति नहीं पाते हैं। अथवा वेदान्तीलोग कहते हैं कि— सब कुछ दृश्य-अदृश्य रूप एक अद्वैत ब्रह्मस्वरूप ही है; ब्रह्मके सिवाय और कुछ भी नहीं है। द्वैत सम्भवता ही नहीं है। ब्रह्मरूपसे ही जगत्‌रूप उत्पन्न हुआ है। यह सृष्टि जो है, सो ब्रह्मके सङ्कल्पित है, इत्यादि कथन वर्णन करके भ्रम धोखेमें पड़े हैं। इसीसे वे कहीं भी स्थिरता नहीं पाते हैं, जन्मृतिमें ही पड़े रहते हैं ॥ ३४६ ॥

दोहाः— नास्ति सनेही सब भये ❀ अस्ति नास्ति लौलीन ॥
[१२६] जीव भरोसे औरके ❀ निज पद नाहीं चीन्ह ॥ ३४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

नास्ति सनेही = संसारमें पारखहीन सब मनुष्य नाशवान् देह और विषयोंमें आसक्त होकर बिना विचार नास्ति-मिथ्या ब्रह्म, ईश्वर, देवतादिके स्नेही = प्रेम लगानेवाले भ्रमिक हुए हैं।

अस्ति नास्ति = इसीसे अस्ति = जीव अपने लौ लीन = सत्स्वरूपका विचार और स्थिति न करके मिथ्या ब्रह्मानन्द-विषयानन्दादिमें प्रेम लगाकर लौलीन, मस्त, बेभान हो गये या हो रहे हैं। सो तो नाशवान् देह सम्बन्धका भास-मानन्दी नास्ति ही है।

जीव भरोसे = सो तहाँपर अपनेसे भिन्न और के = माना हुआ और कोई परमात्मा, खुदा, देवतादिके भरोसेमें और गुरुवालोग तथा स्त्रियोंके भरोसासे नरजीव गाफिल मूढ़ हो गये हैं, भ्रष्ट हुए हैं।

निज पद = इसकारण निज मनुष्यपद वा नाहीं चीन्ह = हंसपद मुक्ति-स्थितिरूप पारखपदको कोई नहीं चीन्हते हैं ॥

व्याख्या— अविवेकी सब मनुष्यलोग नास्ति = जो वस्तुतः कुछ नहीं है, मिथ्या ही ब्रह्म मानन्दी करके वे उसीके स्नेही-प्रेमी हुए। कोई नाशवान् विषयोंमें आसक्त हुए। तहाँ अस्ति = सत्य चैतन्य जीव ही, नास्ति = ब्रह्म और विषयोंमें लवलीन, गरगाफ हुए। ऐसे भ्रमिक नरजीव निजपद पारखको तो चीन्हते-जानते नहीं हैं, और ही अनुमान-कल्पनादिके भरोसेमें मनुष्य जन्मको व्यर्थ बिता रहे हैं; इसीसे भव-बन्धनोंमें जकड़े पड़े हैं ॥ ३४७ ॥

दोहाः— होना कछु न याको हतो ❀ भये अनेकन रूप ॥
[१२७] चौरासी औ चारिमा ❀ मानुष प्रथमा रूप ॥ ३४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

होना कछु न = स्वयं चैतन्य सत्स्वरूप जीव याको हतो = है; सो नरजीवको और कुछ होना या प्राप्त करना या ब्रह्म बनना इत्यादि कुछ होनेकी तो जरूरत ही नहीं थी। यानी और कुछ होनेकी आवश्यकता ही नहीं थी; जीव स्वयं ही सत्य था।

भये अनेकन रूप = परन्तु, मन-मानन्दीसे भ्रमिक हो, कल्पना करके ब्रह्म बने हैं। कोई ज्ञानी, योगी, भक्त, षट् दर्शनोंके अनेक भेषधारी हुए, अनेकों सिद्धान्तके पक्षपाती अविचारी हुए हैं।

चौरासी औ = इसलिये एक ब्रह्मसे फिर चारिमा = अनन्त-जगत्‌रूप चारखानी चौरासी योनियोंमें आकर गिर पड़े। सो चौरासी योनियाँ पशु आदिमें तो कर्म भोग-मात्र होता है। और—

मानुष = मनुष्य खानीमें कर्म वासना प्रथमा रूप = बनती और टिकती है। अतएव प्रथम रूप मनुष्यका है, दूसरा पशु-का, तीसरा अण्डजका और चौथा उष्मज-का है। यही क्रमशः चारखानीके रूप हैं ॥

व्याख्या— जीव स्वयं सत्य है; इसको और कुछ होनेकी तो कोई आवश्यका ही नहीं थी।

हकनाहक कल्पनासे ब्रह्म-जगत् आदिके अनेकरूप हो गये हैं। इसीसे जड़ाध्यासवश जीव छोटे-बड़े देहधारी अनेकरूपमें उत्पन्न हुए हैं। तहाँ चारखानी और चौरासी योनियोंके मध्यमें मनुष्यखानी ही प्रथमरूप कर्मभूमिका है। यहाँ जैसा-जैसा कर्म करके संस्कार टिकाते हैं, तैसा-तैसा ही फल भोग अन्य खानियोंमें जाकर पाते हैं; ऐसे यह मनुष्य प्रथमरूप है ॥ ३४८ ॥

दोहाः— प्रथम रूपसे सब भयो * सो प्रथमा गौ भूल ॥
[१२८] जीव प्रपञ्चे पञ्चके * सहै घनेरी शूल ॥ ३४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

प्रथम रूपसे = ऐसे कर्मभूमिकारूप प्रथम
सब भयो = मनुष्यरूपसे ही स्त्री, पुत्र, कुल, कुटुम्ब, नाता-गोता, वेद, पुराण, कुरान आदि वाणी, ब्रह्म-ईश्वरादि अनेकों सिद्धान्त सो सब बने या उत्पन्न होकर खड़े हुए हैं। और—

सो प्रथमा = सोई नरजीव अपने कर्त्तव्यरूप
गौ भूल = उक्त खानी-वाणी महाजालों-में पड़कर निज स्वरूपको भूल गये हैं। तदाकार विषयासक्त भ्रमिक हो गये हैं, गाफिल हो गये हैं।

जीव प्रपञ्चे = तब नरजीव पञ्च विषय भोगों-
पञ्चके = के लिये और उधर ब्रह्मानन्दादि सुख प्राप्तिके लिये अनेक व्यवहारोंके प्रपञ्च तथा पञ्चकोशोंके वाणी जालोंसे पञ्चमार्गोंके साधनोंके महा प्रपञ्चमें पड़े हैं; उसीमें दोनों प्रकारसे जकड़ गये हैं।

सहै घनेरी = उसीसे महान दुस्सह दुःख
शूल = त्रयताप ज्वाला, जन्म, मरण, गर्भवासका शूल, अनेक व्याधिकी पीड़ा सह रहे हैं ॥

व्याख्या— प्रथमरूप मनुष्यदेहसे सब शुभाशुभ कर्म तथा खानी-वाणीका विस्तार हुआ; और प्रथम ही मनुष्य जीव सो निज स्वरूपको भूल गया। जिससे सब विस्तार हुआ, सो अपने आपको ही भूल गया। तहाँ पञ्च विषयोंके खानी प्रपञ्च तथा पञ्चकोशोंके वाणी प्रपञ्च, ऐसे पञ्चके प्रपञ्चमें सब जीव भूल गये। इसीसे वहाँ उद्योग-धन्धा, नाना साधनाएँ करनेमें तथा त्रिविधि ताप, आवागमनादिमें पड़कर घनेरी शूल, पीड़ा, असह्य कष्ट-क्लेश बहुत-बहुत सहे और सहते रहेंगे, बिना पारख स्थितिके हुए कभी मुक्त नहीं होवेंगे ॥ ३४९ ॥

दोहाः— हे शिष्य! देखु विचारिके * निर्णय करहु यथार्थ ॥
[१२९] सबके मत प्रत्यक्ष है * वाणीमें वेदार्थ ॥ ३५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! = इसवास्ते हे शिष्य! तुम
देखु विचारिके = इसका सत्यासत्यका विवेक-विचार करके देखो-परखो, समझो-बूझो!

और—

निर्णय करहु = पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-
यथार्थ = में बैठकर जड़-चैतन्यका सार-असारका सत्य-मिथ्याका यथार्थ सत्य निर्णयको पहिचान करो। पक्षपातको छोड़कर निर्णयको ही ग्रहण करो। और—

सबके मत = संसारमें ब्रह्मादिसे लेकर ऋषि,
प्रत्यक्ष है = मुनि, ज्ञानी, पीर, पैगम्बर, औलिया आदि गुरुवालोग जो हो गये हैं, और वर्तमानमें उनके बहुतेक जो अनुयायी हो रहे हैं। उन सबोंके मत-पन्थोंका सार सिद्धान्त प्रत्यक्ष ही ग्रन्थ-पन्थ आदिमेंसे जाहिर हो रहा है। तथा—

वाणीमें = सबोंके सिद्धान्त उन्होंके वाणी-
वेदार्थ = उपदेश उनके ग्रन्थसे मालूम हो जाता है। वेद-शास्त्रोंके अर्थ, भाष्य भी पण्डितोंने बहुत-बहुत किये हुए हैं। उसमें एक ब्रह्म-ईश्वरादिको ही कर्त्ता कारण या जगत्का अधिष्ठान ठहराये हैं। उन्हें कहीं भी किसीको पारखबोध नहीं हुआ है। यही उनकी वाणीसे जाहिर होता है ॥

व्याख्या— हे जिज्ञासु शिष्य ! संसारमें प्राचीन कालसे लेकर अर्वाचीन काल तकके सारे दार्शनिक, मतवादियोंका तथा पूर्वसे लेकर पश्चिम तकके सब साम्प्रदायिक लोगोंका, उन सबोंके मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त आदि सो प्रत्यक्ष प्रचलित हो रहे हैं। और वाणीमें वेदार्थ, भाष्य, स्मृति आदि ग्रन्थ भी लिखे हुए हैं। कुरान, बाइबिल आदि भी छापे हुए हैं। उनके अर्थ भी किये हुए हैं। ऐसे-ऐसे सबोंके मत प्रत्यक्ष ही हैं। कौन-कहाँ तक पहुँचा है, सो उसीकी वाणीसे पता लगता है। उसे सद्गुरुके सत्सङ्गमें विचार करके देखो ! और परख करके यथार्थ निर्णय करो ! तभी सबोंकी स्थितिका पता लग जायगा ॥ ३५० ॥

दोहाः— जीव सङ्कल्पे जग भयो ❀ मिटै सङ्कल्प नशाय ॥
[१३०] यह प्रमाण है वेद बुध ❀ कहैं प्रत्यक्ष लखाय ॥ ३५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जीव सङ्कल्पे = जब नरजीव भ्रमिक हुए, तब
जग भयो = इच्छारूप सङ्कल्प करके "अहंब्रह्मास्मि" बने। फिर प्रथमारम्भमें उसी ब्रह्मकी इच्छा या सङ्कल्पसे चराचर जगत् सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। ऐसा कल्पनासे मान लिये। और फिर—

मिटै सङ्कल्प = सङ्कल्पको मिटा करके
नशाय = निर्विकल्प होनेपर आवागमन नशाकर मुक्ति होनेको माने हैं। अथवा अन्तमें ब्रह्मके विकल्परूप अनिच्छासे सारा जगत् नशाके मिट जाता है, ऐसा माने हैं।

यह प्रमाण = हे शिष्य ! यह प्रमाण
है वेद बुध = विद्वान् ब्रह्मज्ञानी पण्डितोंने किये हैं। सो यही बात विस्तार करके वेद प्रमाणसे कथन वर्णन किये हैं। इसीका उपदेश कर रहे हैं। और—

कहैं प्रत्यक्ष = प्रत्यक्षमें जगत्को ही दिखाय-
लखाय = लखायके फिर आदि, मध्य, अन्तमें एक ब्रह्म ही सत्य होनेकी बात कहते हैं। सोई भ्रम-धोखा है, सत्सङ्गमें प्रत्यक्ष लखाकर यह पारख बोध तुम्हें कह दिया हूँ, सो विचार करके लख लो ! ॥

व्याख्या— प्रथम नरजीव कल्पना करके ब्रह्म बने। फिर ब्रह्मके सङ्कल्पसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ, तथा फिर उसके सङ्कल्प मिटकर विकल्प होनेसे सारा जगत् मिटकर महा प्रलयमें नशाय जायगा, तो फिर ब्रह्म ज्यों-का-त्यों ही रह जायगा; इत्यादि प्रकारसे जो कथन किये हैं, सो यही वेद-वेदान्तमें प्रमाण किया है। सो वेद प्रमाणसे बुधजन वा पण्डितलोगोंने प्रत्यक्षमें जगत्को लखाकर वही बात कहे वा कहते हैं और कह रहे हैं। ब्रह्मके सङ्कल्पसे जगत्की उत्पत्ति तथा विकल्पसे प्रलय कहनेवाले वे मिथ्यावादी अविचारी ही बने हैं ॥ ३५१ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! ऐसे मतन महँ ❀ जीवहि चैन ना होय ॥
[१३१] नष्ट सनेही नष्ट भौ ❀ भ्रष्ट कल्पना सोय ॥ ३५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! ऐसे = हे मुमुक्षु शिष्य ! सुनो ! ऐसे
मतन महँ = गुरुवालोगोंके द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैतवाद आदि असत्य मत, पन्थ, सिद्धान्तोंमें, अनुमान-कल्पनामें लगकर भ्रमिक हो करके ऐसे मतोंमें—

जीवहि = नरजीवोंको सुख-चैन, शान्ति,
चैन ना होय = आराम या कल्याणरूप मुक्ति प्राप्ति कभी हो नहीं सकती है; चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़कर बेचैन, बेहाल ही हुए और होते हैं। पारख बिना चैन नहीं होती है। और—

नष्ट सनेही = जगत् विषय, ब्रह्म विषय, ये दोनों
नष्ट भौ = ही मुक्तिपदको नष्ट करनेवाले हैं। अबोध मनुष्य उसीमें स्नेह, प्रेम-प्रीति लगाकर हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट हुए, सो भवसागरके बीचमें जाकर पड़े हैं। यानी नष्टमें स्नेह करनेवाले आप ही नष्ट हुए हैं।

भ्रष्ट कल्पना सोय = कल्पित ब्रह्म मानन्दीमें गाफिल होनेवाले उभय भ्रष्ट, पथभ्रष्ट हुए। सो जीव कल्पना तथा विषयोंमें लगकर कुसङ्गमें पड़े, तो भ्रष्ट होकर बिगड़ गये। इसलिये गर्भवासमें जाकर काल कोठरीमें सोते हैं वा सोनेको जा रहे हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! ऐसे मिथ्यावादियोंके मतोंमें वा झूठे सिद्धान्तोंमें लगकर नरजीवोंको कभी भी सुख-चैन, शान्ति-स्थिति, मुक्ति हो नहीं सकती है, और नष्ट = ब्रह्म-विषयोंका स्नेही = प्रेमी होकर नरजीव मनुष्यपदसे नष्ट हुए। फिर सोई कल्पनामें पड़कर पथ-भ्रष्ट, पतित हुए। इसीसे जन्म-मरणके चक्रमें पड़े वा पड़ रहे हैं ॥ ३५२ ॥

दोहाः— ऐसे उपदेश न समुझि * जीव अबुध पतियाय ॥
[१३२] क्षुधित पेट कहुँ नाममें * भोंदू रखै भुलाय ॥ ३५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ऐसे उपदेश = ऐसे-ऐसे गुरुवालोगोंके उपदेश
न समुझि = भक्ति, योग, ज्ञान, विज्ञानकी शिक्षा, नाना मत, नाना सिद्धान्तोंका जाल जो है, सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग निर्णयमें आकर न समझनेसे उसका भेद न पाकर उसे सच्चा ही समझ लिये; उसीमें भूल गये।

जीव अबुध = अज्ञानी, अबोध, पारखहीन,
पतियाय = बुद्धिहीन- सो ऐसे नरजीव सब गुरुवालोगोंकी रोचक-भयानक कल्पित वाणीको विश्वास करके दृढ़ प्रतीति किये और कर ही रहे हैं; पतियाय रहे हैं।

क्षुधित पेट = सो कोई भूखे लोग पेट भरनेके
कहुँ नाममें = लिये, तो कोई मान-बड़ाईसे नाम चलानेके लिये, द्रव्यादि ऐश्वर्य प्राप्तिके इच्छुक, ऐस भूखे होकर गुरुवाओंकी शरण-में गये, तो उन्हें कहीं स्वर्गादिमें ईश्वरादि बताकर, कहीं नाम-स्मरण, जप, तप, व्रत, कर्म, भक्ति, योगादिमें लगा दिये हैं। और-

भोंदू रखै = अज्ञानी जीवोंको इसप्रकारसे
भुलाय = अनेक आशा-भरोसा देकर भ्रमिक मूढ़ गुरुवालोगोंने भुला दिये या भुला रक्खे हैं ॥

व्याख्या—ऐसे-ऐसे वेद-वेदान्तके उपदेशोंको ही गुरुवालोगोंसे सुन-सुनकर समुझ-समुझकर उसे सत्य ही मानकर अबोध पारखहीन नरजीव सब विश्वास करके पतियाते हैं; उसे निश्चय करके मान लिये हैं। और मान-बड़ाई, नाम तथा ज्ञानके भूखसे व्याकुल होकर गुरुवालोगोंकी शरणमें गये। तो तहाँ भोंदू = भ्रमिक लोगोंने कहीं नाम-स्मरण-जापमें, कहीं योग, तपस्या, कीर्तन-भजनादि करनेमें अबोध मनुष्योंको लगाकर भुला रक्खे हैं। उसीसे कल्याण बताकर धोखेमें डाल रक्खे हैं। बिना पारख उनके कपट भेदको कोई नहीं समझते हैं ॥ ३५३ ॥

दोहाः— ब्रह्म राजमों माया रानी * मन वजीर तन स्थान ॥
[१३३] दुग दुग सबहिन चित्त महँ * हमको हमको आन ? ॥ ३५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म राजमों = अद्वैत ब्रह्मज्ञानीके राज्य शासन
माया रानी = उपदेशमें उनके ज्ञानके इच्छुक गुरुवा माया महारानी बने हैं वा एक ब्रह्ममें इच्छा ही माया रानी हुई—

मन वजीर = मन उसका प्रधान मन्त्री हुआ।
तन स्थान = शरीर उसकी राजधानी बनी। इतना द्वैत-उपाधि खड़ी हुई, फिर अद्वैत कहाँ रहा ? अथवा ब्रह्मज्ञानी राजाके चेले लोग रानी हुए, चतुर चञ्चल मन ही महामन्त्री बना; तब वे शरीर और जगत्में राज्य करने लगे।

दुग दुग सबहिन = उपदेश तो अद्वैत ब्रह्मका
चित्त महँ = ही देते-लेते हैं; परन्तु, जब द्वैत भासा, तभी उपदेश हुआ। जड़ और चैतन्य न्यारे-न्यारे ही दिख रहे हैं, अतएव सभी वेदान्तियोंके चित्तमें दुगदुगी, संशय,

भ्रान्ति, शङ्का तो बनी ही हुई है । सन्देह सबोंको लगा है ।

हमको = हमको भान ? = } हम कौन हैं ? हम ब्रह्म हैं, तो फिर दुःखादि भास क्यों होता है ? हम जीव हैं कि, ब्रह्म हैं ? या इन दोनों-से पृथक् अन्य ही कोई हैं कि, साकार ब्रह्म ही हैं ! ये दूसरे कौन हैं ? जो कुछ भी हो "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" बस, छुट्टी हुई, ज्यादा कौन सोच-विचार करे ? ऐसा कह कर गाफिल हुए ॥

व्याख्या— वेदान्तीके कथनसे ब्रह्मके राज्यमें अद्वैत ब्रह्म ही एक महाराजाकी जगहमें कायम हुआ । इच्छा-माया और गुरुवा-माया सो उसकी महारानीकी जगहमें ठहरती भयी। मन ही उसका वजीर वा प्रधान मन्त्रीके स्थानमें नियुक्त हुआ । और तन वा स्थूल देह सोई राजधानीका मुख्य स्थान बना है । इसप्रकार पदकी बाहर व्यवस्था तो हुई; परन्तु, सबोंके चित्तमें यह दुगदुगी तो लगी ही रही कि, हम कौन हैं ? ब्रह्म हैं कि, जीव हैं ? और वे दूसरे कौन हैं ? इत्यादि भेद न समझकर दुगदुगीमें ही वे मारे जाते हैं, बिना पारख ॥ ३५४ ॥

दोहाः— ताते हे शिष्य ! देखु तैं ❀ सो है कल्पित रूप ॥
[१३४] अनुमानी अनुमान भौ ❀ सहै घनेरी कूप ॥ ३५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

ताते हे शिष्य ! = देखु तैं = } इसवास्ते हे जिज्ञासु शिष्य ! तू इन सब बातोंकी परीक्षा करके पारख-दृष्टिसे देख ! गुरुवालोगोंका सिद्धान्त सब मिथ्या वाणी-जालका पसारा है ।

सो है कल्पित रूप = सो माना हुआ ब्रह्म-ईश्वर तो कोई वस्तु नहीं है। सिर्फ कल्पितरूप जो है, सो मिथ्या कल्पना भ्रममात्र है । सो कभी सत्य हो नहीं सकता है ।

अनुमानी = अनुमान भौ = } अनुमान-कर्त्ता नरजीव ही स्वयं अनुमानरूप व्यापक ब्रह्म हुआ; यानी जीवने ही अनुमान करके ब्रह्म-की मानन्दी किया है । परन्तु, जो लक्षण ब्रह्मका माना है, सो जीवमें घट नहीं सकता है । सत्य-मिथ्यामें बड़ा अन्तर है । सो महा अज्ञानतावश—

सहै घनेरी कूप = यहाँ नाना साधना-तपस्याका दुःख सहे, और देह छूटनेपर चौरासी योनियोंके गर्भवासरूप अन्धेरे कूएँमें पड़-कर बहुतेक कष्ट या यातनाएँ-सन्ताप सहे, और उसीप्रकार सह रहे हैं ॥

व्याख्या— इसलिये हे शिष्य ! तुम यथार्थ निर्णयसे पारख करके विचार-दृष्टिसे देखो ! सो ब्रह्म तो कल्पितरूप मनुष्यकी ही कल्पना है । बिना विवेक अनुमानी नरजीव ही भ्रमसे अनुमानरूपी ब्रह्म हुए । इसीसे अन्धकूप गर्भवास, चौरासी योनियाँ आदिमें पड़कर बहुत ही असह्य दुःख भोग सहे । और त्रिविधि तापादिके क्लेश सहते रहते हैं । बिना विचारसे भ्रमकूपसे गिरकर गर्भकूपमें ही जाकर पड़ते हैं; अतः उसे परखकर पहलेसे ही त्याग देना चाहिये ॥ ३५५ ॥

दोहाः— मानुष बिनकछु ना भयो ❀ प्रथमा मानुष नाम ॥
[१३५] मानुषते सब ही भयो ❀ ब्रह्म रूप अरु नाम ॥ ३५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मानुष बिन = कछु ना भयो = } यह जगत् तो अनादि कालका है । किसी कर्त्तासे उत्पन्न नहीं हुआ है । और सब वाणी-खानीको बनानेवाले मनुष्य जीव ही हैं । वेदादि वाणी, ब्रह्म आदि सिद्धान्त मनुष्योंने ही बनाया है । सो मनुष्यके बिना और किसीसे कुछ पैदा नहीं हुआ है। यानी ब्रह्म-ईश्वरादि मानन्दी मनुष्यसे कल्पना हुई है ।

प्रथमा = मानुष नाम = } क्योंकि, सर्व प्रथम नाम-रूपका स्थापक, संचालक मनुष्य ही

हुए हैं। इसलिये मनुष्यका नाम=बोध, बुद्धि ही पहला नम्बरका है।

मानुषते सब ही भयो = सो मनुष्य जीवसे ही खानी और वाणी दोनों जालोंका समस्त विस्तार हो-होकर फैला है। और सब जगहमें मनुष्योंने ही उसे फैलाया है।

ब्रह्म रूप अरु नाम = ब्रह्मका निराकार रूप आकाशवत् और साकाररूप समस्त जगत् माना है। 'ॐ' यही ब्रह्मका निरञ्जन नाम कहा है। और नाम-रूप, प्रकृति-पुरुष, जगत्-ब्रह्म, यह सब कहने-सुननेवाले मनुष्य ही हैं॥

व्याख्या— मनुष्य जीवके बिना तो वाणी-खानीकी रचनाका विस्तार कुछ भी और किसीसे नहीं हुआ है। इसीसे मनुष्यका नाम प्रथम है। और बोध भी मनुष्योंको अन्य प्राणियोंसे प्रथम ही होता है इसीसे ब्रह्मका 'रूप' और 'नाम' तथा 'गुण' आदिका वर्णन वह सब कथन मनुष्यसे ही हुआ है। वेदादि वाणी और ब्रह्म आदि सकल सिद्धान्तका प्रगटकर्त्ता मनुष्य ही हैं। सो निज रूपको न जान करके भ्रम-भूलमें ही पड़े हैं॥ ३५६॥

दोहाः— नाम रूप गुणमय जगत ❀ चौरासीको फेर॥
[१३६] मानुष भूले सब भयो ❀ भूल मिटे नहिं फेर॥ ३५७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

नाम रूप गुणमय जगत = 'नाम' सोई माया, 'रूप' सोई ब्रह्म, त्रिगुण मन सहित यह देह और बाह्य जगत्का यही विस्तार है। नाम, रूप, गुणके एकाकार रूप ही यह जगत् है। तहाँ ब्रह्म-जगत्को अभिन्न माना है। और—

चौरासी-को फेर = कहीं नाम, रूप, गुणसे रहित ब्रह्मको निराकार माने हैं; कहीं जगत्के भाग सहित अद्वैत माने हैं, इसी गाफिलीसे ब्रह्म-जगत्के चक्रमें पड़कर जीव चौरासी योनियोंके फेरामें पड़े हैं। यही तो चौरासी योनियोंका फेरा है।

मानुष भूले सब भयो = यह सब मनुष्यकी भूलसे ही हुआ है। निज स्वरूपको भूले हुए मनुष्योंसे ही यह सब भ्रम-कल्पना चौरासी योनियाँ पैदा हुईं। अतः मनुष्यकी भूलसे ही सब आवागमन हुआ है। और—

भूल मिटे नहिं फेर = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा जब मनुष्यकी वह भूल मिट जाती है, निज पारख स्वरूपका बोध हो जाता है, तब फिर आवागमनका फेरारूप चक्रमें जीव नहीं पड़ते हैं॥

व्याख्या— 'नाम' ब्रह्म है। 'रूप' पाँच तत्त्व हैं। 'गुण'-तीन गुण हैं। वही तीनोंका मिलाप नाम, रूप, गुणमय समष्टि एक स्वरूपको ही जगत् कहते हैं। वेदान्तीलोग उसे जगत् न कहकर अद्वैत ब्रह्म कहते हैं। सोई जगत्-ब्रह्म ही तो चौरासी योनियोंका फेरा वा चक्र है। मनुष्यने निज स्वरूपको भूलनेसे ही भ्रम-धोखेसे यह सब खड़ा हुआ है। जब मनुष्योंको सद्गुरुकी दयासे अपरोक्ष पारखबोध हो जायगा, तब वह महाभूल मिट जायगी। भूलके मिट जानेपर फिर आवागमन, ब्रह्म-जगत्का फेरा नहीं होता है, तब तो नरजीव निर्बन्ध जीवन्मुक्त हो जाते हैं॥ ३५७॥

(५) साखीः— फेर परा नहिं अङ्गमों ❀ नहिं इन्द्रियनके माँहिं॥
[१३७] फेर परा कछु बूझमें ❀ सो निरुवारेउ नाहिं॥ ३५८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

फेर परा नहिं अङ्गमों = पारखी और बेपारखी भ्रमिक अज्ञानियोंके नरदेहमें अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें तो देखनेमें समानता है। बाहरसे देखनेमें तो उसमें कुछ फेरफार नहीं पड़ा है; एक-सा ही दिखता है। और—

नहिं इन्द्रियनके माँहिं = आँख, कान, नाक, मुख, हाथ, पैर आदि दशों इन्द्रियोंमें भी कुछ असमानता, विभिन्नता

नहीं है। सब वैसे-वैसे ही मिलता-जुलता हुआ दिखाईदेता है। ऐसे मनुष्यके रूपमात्र-में तो कोई फरक नहीं दिखाई देता है।

फेर परा = कछु बूझमें = परन्तु, उन दोनोंकी खास समझमें ही फरक है। जो कुछ फरक है, सो तो समझ-बूझ, ज्ञान-अज्ञान सत्य-मिथ्या बोधमें ही फेर या फरक हुआ है। इसीसे उन दोनोंमें महान अन्तर पड़ा है।

सो निरुवारेउ = नाहिं = सो उस समझको ठीक करके जिन्होंने जड़-चैतन्यका निर्णय करके पारख किये, सो जीवन्मुक्त हुए। और जिन्होंने पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगकर जड़-चैतन्य खानी-वाणी आदिका निर्णय नहीं किये, वे अज्ञानी मनुष्य बद्ध हुए हैं। यही खास फरक है, सो उसे निरुवार नहीं किये। इसीसे बन्धनमें ही जीव पड़े हैं॥

व्याख्या— ज्ञानी-अज्ञानी, विवेकी-अविवेकी, बद्ध-मुक्त, पारखी-बेपारखी, रागी-त्यागी इत्यादि गुण-लक्षणवाले मनुष्योंके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें भी कुछ फेर-फार कमी-बेशी नहीं हुआ है। और न दश इन्द्रियाँ, चित्त चतुष्टय, स्थूल-सूक्ष्म देहोंके कुछ भागोंमें कम-ज्यादा होनेका फरक है। इन सबोंमें तो उन्हींकी समानता ही है। जीव भी ज्ञान गुणवाले सबोंके एक समान ही हैं। इसतरह-से जड़-चैतन्यके स्वरूप भागमें तो कोईके रत्तीभर भी फरक नहीं है। तो फरक किसमें पड़ा? कि, सुनो!— मुख्यतया फेरफार वा उलट-पलट, सही-गलत यह सब बातकी कसर तो सबोंकी कुछ समझ-बूझ, रहनी-रहस्य, बोध-विचारमें ही आ करके फरक पड़ा है। इसीसे समझ-संस्कारके अनुसार सब जीवोंकी गति-मति हो रही है। सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें निरुवार करके जाना, बूझा, समझा नहीं है, पारख बोध नहीं हुआ है; इसीसे बन्धनोंसे जीव नहीं छूटते हैं॥ ३५८॥

दोहाः— बूझो सन्तो! ठहरिके ❀ देखो ब्रह्माकार॥
[१३८] जीव भरोसे कौनके? ❀ बैठे करै पुकार॥ ३५९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! इसवास्ते—

बूझो सन्तो!= ठहरिके= हे सन्तो! हे भक्तो! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें लगकर पारख विवेकमें ठहरकर या कायम होकर सत्यासत्य, बन्धन-मोक्षको समझो, बूझो, परखो, जानो! और—

देखो ब्रह्माकार=परीक्षारूपी दूरबीन लगाकर भलीभाँतिसे देखो कि, जो सर्वत्र चराचरमें परिपूर्ण व्यापक निराकार ब्रह्मको बतलाये हैं, सो मिथ्या कल्पनाके सिवाय और क्या है? कुछ भी नहीं है। और—

जीव भरोसे कौनके?= हे नरजीवो! तुमलोग बिना विचारे कल्पनामें पड़े हो, धोखेमें लगे हो, तो किसके भरोसे पड़े हो? गुरुवालोग कपटी धूर्त हैं। स्त्रियाँ ठगिनी मतलबी हैं। और ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना-मात्र मिथ्या है। फिर यह जीव किसके भरोसेमें—

बैठे करै पुकार=बैठे-बैठे पुकारा, प्रार्थना, गोहार या बुलाया कर रहा है? अरे भाई! वहाँ शून्यमें तुम्हारा पुकारा सुननेवाला ही कौन बैठा है? हकनाहक कल्पनासे धोखेमें क्यों मरे पड़ते हो?॥

व्याख्या— हे सन्तो! हे जिज्ञासु मनुष्यो! तुमलोग विवेकी पारखी सन्तके सत्सङ्ग करके गुरु विचारमें ठहरकर सत्यासत्य जड़-चैतन्यके यथार्थ भेदको समझो-बूझो! और फिर विवेक करके देखो! ब्रह्माकार क्या चीज है? जीवका मिथ्या भ्रममात्र है। अबोध जीव किसके भरोसेमें बैठे-बैठे पुकारा कर रहे हैं? यदि गुरुवालोगोंका भरोसा करते हैं, तो वे स्वयं ही काल बने हैं। फिर एक दिन मरके चौरासी योनियोंमें ही जायेंगे। वेदका भरोसा है, तो वह जड़ झूठी वाणी है, सो कुछ काममें नहीं आवेगा। यदि ब्रह्म-ईश्वरादिका भरोसा करते हो, तो वह तुम्हारी कल्पना मिथ्या धोखा ही है। शून्यमें पुकारा करके कोई फायदा नहीं होता है। सो इसीके भेदको अच्छी तरहसे

सत्सङ्ग करके बूझो, भ्रम-भूलको मिटाओ ! ॥ ३५९ ॥

दोहाः— मानुष निर्णय यथाविधि * कहेउँ प्रथम है रूप ॥
[१३९] या बासै चौरासी बासा * या निरुवार स्वरूप ॥ ३६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
मानुष निर्णय = यथार्थ सत्य निर्णयसे विधि-
यथाविधि = पूर्वक मनुष्य खानीके गुण-लक्षणरूप मात्र या गुण सहित मनुष्योंका निर्णय यथाविधिसे मैंने तुझे—
कहेउँ = कह दिया हूँ, सो विस्तार
प्रथम है रूप = निर्णयसे पहले ही कह चुका हूँ !
प्रथमरूप या पहला नम्बरमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञानखानी कर्मभूमिका यह मनुष्य देह ही है।
या बासै = मनुष्योंकी वासना, जड़ाध्यास करके ही—
चौरासी बासा = चौरासी योनियोंमें जीवोंका निवास हुआ है। और वासनाके वशीभूत जीव ही चौरासी योनियोंमें निवास किये या बासा कर रहे हैं।
या निरुवार = यह मनुष्य ही निज स्वरूपका
स्वरूप = निर्णय करनेमें समर्थ है। इसलिये जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय करके निज सत्स्वरूपमें ही स्थिर होकर जड़ाध्याससे रहित होना चाहिये ॥

व्याख्या— जिस प्रकारसे मनुष्यका स्वरूप है, तैसा यथार्थ निर्णयसे विधि पूर्वक मैंने कह दिया हूँ ! निर्णयसे मनुष्यका स्वरूप प्रथम ठहरता है। इसी मनुष्यकी ही वासनारूप संस्कारसे जीवको चौरासी योनियोंका बासा होकर कर्म भोग होता है। और यहीं मनुष्यके निरुवार वा निर्णयसे छान-बीन करनेसे पारख स्वरूपकी स्थिति होती है ॥ ३६० ॥

दोहाः— बहु प्रकार वर्णन अहै * बहु प्रकारके बोध ॥
[१४०] बहु प्रकार मति कल्पिके * निज कल्पित कियो शोध ॥ ३६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं — हे शिष्य !
बहु प्रकार = संसारमें गुरुवालोगोंने वेद,
वर्णन अहै = शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि ग्रन्थोंमें कल्पित वाणीका वर्णन बहुत प्रकारसे युक्तिसे किये हुए हैं।
बहु प्रकार- = उसमेंसे अनेकों प्रकारसे
के बोध = मनुष्योंको बोध किये हैं। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, तत्त्ववाद, शून्यवाद, देहवाद, इत्यादि बहुत तरहके बोध गुरुवालोगोंने किये और कर रहे हैं। और—
बहु प्रकार = बहुत प्रकारसे अपनी-अपनी
मति कल्पिके = बुद्धिसे कल्पना कर-करके विभिन्न मत, पन्थ स्थापना किये हैं। मति विभ्रम होनेसे नाना तरहसे कल्पना बढ़ाये हैं।
निज कल्पित = फिर अकुलाकर वही निज
किये शोध = कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, नाना देवता, स्वर्गादि लोक इत्यादिका शोध या खोजी-तलाशी करने लगे। वह कोई वस्तु ही नहीं है; तो कैसे मिलेगा ? अतः उन्हें कुछ नहीं मिला ॥

व्याख्या— अनादि कालके संसारमें मनुष्योंके द्वारा मत, पन्थ, ग्रन्थोंके विस्तार वर्णन बहुत प्रकारसे हुए हैं वा हो रहे हैं। और बहुत प्रकारके नाना सिद्धान्तोंका बोध भी गुरुवालोगोंने बहुत तरहसे किये वा कर रहे हैं। तैसे ही बहुत प्रकारसे मनुष्योंने अपनी मति-बुद्धिसे कल्पना कर-करके निज कल्पितको ही भ्रमसे सत्य मानकर शोध किये। उसको ब्रह्म-शोधन कहकर गाफिलीमें पड़े और बद्ध हुए ॥ ३६१ ॥

दोहाः— रहित कल्पना ब्रह्म भौ * ब्रह्मकी इच्छा जहान ॥
[१४१] कहै कल्पना रहित भई * मिथ्या बकै अयान ॥ ३६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! जब परमात्माको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कहीं पता

नहीं पाये, तब ध्यान लगाकर वृत्ति शून्य किये, समाधि लगाये। वहाँपर—

रहित कल्पना = ब्रह्म भौ = सब वृत्ति लय होकर शून्यमें समा गई, तो कल्पनासे रहित-निर्विकल्प स्थिति हुई। उसीको निर्गुण आनन्द ब्रह्म मानन्दी करके स्वयं ही निर्विकल्प ब्रह्म बने।

ब्रह्मकी इच्छा जहान = परन्तु, वह शून्य वृत्ति हमेशा कायम रह नहीं सकी; इसलिये इच्छा-स्फुरणा उलटकर खड़ी हुई, तब जगत्को देखकर अनुमान किया कि, वही एक ब्रह्मकी इच्छारूप मायासे सारा जगत्की उत्पत्ति हुई; ऐसा मान लिये।

कहै कल्पना रहित भई = फिर कल्पनासे रहित निर्विकल्प हुए, तहाँ 'मैं ब्रह्म हो गया, कल्पनासे रहित हो गया,' ऐसा ब्रह्मज्ञानीलोग कहते हैं। परन्तु, वे विवेक तो कुछ भी नहीं करते हैं।

मिथ्या बकै अयान = इसीसे सारा जगत्की उत्पत्ति-की कल्पना करके उसीसे सब सृष्टि खड़ी हुई कहके अज्ञानी लोगवत् मिथ्या ही बकवाद करते हैं। वे ब्रह्मज्ञानी नहीं, किन्तु, महामूढ़ अज्ञानी बने हैं। क्योंकि, सारासारका विचार तो वे कुछ करते ही नहीं हैं, झूठ-मूठके बकवाद ही बकते हैं॥

व्याख्या— इसतरहसे शोधन करते-करते वृत्ति एकाग्र हुई; उसे कल्पनासे रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदकी स्थिति हुई, ऐसा माने हैं। फिर उसी ब्रह्मकी इच्छासे "एकोहं बहुस्यामेतिप्रजायेयः"-ऐसा कहकर सारा जगत्रूप जहानकी सृष्टिका विस्तार माने हैं। जिसकी इच्छासे इतने बड़े जहानका पसारा हुआ, उसे ही कल्पनासे रहित होनेपर ब्रह्म हुआ, निर्विकल्प ब्रह्म हुआ, कहते हैं। सो देखिये! अज्ञानी भ्रमिक गुरुवालोग ऐसे मिथ्या ही बकवाद करके अन्य अज्ञानी लोगोंको भुलाये और भुला रहे हैं। उसे ठीक-ठीकसे परखकर जान लेना चाहिये; ब्रह्म-भ्रमसे न्यारा हो रहना चाहिये॥३६२॥

दोहाः— उपदेशी सो नष्ट भौ ❀ भ्रष्ट जीव हैरान॥
[१४२] बन्दै चरण अबोध जीव ❀ चाहै निज कल्यान॥ ३६३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

उपदेशी सो नष्ट भौ = इसकारणसे ब्रह्मादि, व्यासादि, योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवा-लोग उपदेशक बने। वे मनुष्यपदसे नष्ट हो गये, भवधारमें पड़े। तथा उपदेशी तो नरजीव ही हुए, परन्तु, पारख न होनेसे नष्टरूप ब्रह्म बने, तो वे नष्ट ही हो गये।

भ्रष्ट जीव हैरान = इसीसे सब नरजीव खानीजाल और वाणी जालमें जाके भ्रष्ट, खराब, जड़ाध्यासी हो गये, तो अनेक साधनाएँ और त्रिविधि तापोंमें हैरान, परेशान, दुःखी हो गये और वैसे ही दुःखी हो ही रहे हैं; बिना विवेक। और—

बन्दै चरण अबोध जीव = पारखहीन अबोध अज्ञानी नरजीव उन्हीं नष्ट करनेवाले गुरुवालोगोंकी शरणमें जाकर उनके चरणों-की वन्दना करने लगे, और उन्होंके आचरण, तप, जप, व्रतादिकी प्रशंसा वन्दना करने लगे।

चाहै निज कल्यान = फिर उन्हीं भ्रमिक गुरुवालोगों-के उपदेश धारण करके ईश्वरादि प्राप्ति कर निज कल्याण करना चाहते हैं। यानी उसीसे अपनी मुक्ति करना चाहते हैं, सो कैसे होगा? उस तरहसे तो कभी जीवका कल्याण नहीं होवेगा; सो जानो!॥

व्याख्या— उपदेशी = गुरुवालोग सो तो पारख बोध बिना मनुष्यपद और मुक्तिसे नष्ट वा पतित हुए; और उन्होंके पक्षपातमें लगनेवाले सब नरजीव भी भ्रष्ट-भ्रमिक जड़ाध्यासी खराब होकर नाना साधनाएँ तथा आवागमनमें पड़कर हैरान वा बेहाल, दुःखित हुए और हो रहे हैं। अब वर्तमानके अबोध नरजीव उन्हींके शरणागत हो, चरणोंकी वन्दना करके निज कल्याणको चाहते हैं, सो उनकी आशा तो कदापि पूर्ण नहीं होती है; अभ्यासवश चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होते हैं॥ ३६३॥

दोहाः— ई नहिं जानै बावरे * मोर कल्पना आहि ॥
[१४३] हे शिष्य ! बिनु मानुष भये * चौरासी भरमाहि ॥ ३६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ई नहिं जानै बावरे = ये अविचारीलोग दिवाने, बावले, सनकाहाकी नाईं हो गये हैं। इसलिये ये पागल लोग यह बात तो जानते ही नहीं हैं कि—'सबका जनैया सत्य वस्तु तो मैं जीव ही हूँ !'—

मोर कल्पना आहि = परोक्ष-वेदादि वाणीके प्रमाणसे माना हुआ ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि, सातलोक, देवतादि सब तो मेरी ही कल्पनामात्र है। तो वह कल्पित अवस्तु मुझे क्या, कैसे मिलेगी ? मैं तो सबसे न्यारा हूँ ! यह विचार करके जानते ही नहीं हैं।

हे शिष्य ! बिनु मानुष भये = हे जिज्ञासु शिष्य ! सच्चा हंस वा मनुष्यका गुण-लक्षण धारण हुए बिना जीवकी मुक्ति नहीं होती है। और पारखबोध हुए बिना नर-जीव जड़ाध्यासी हो गये हैं।

चौरासी भरमाहि = इसीकारणसे वासनावश बारम्बार चारखानी-चौरासी योनियोंमें ही जीव भ्रमते रहते हैं। नरजन्ममें भ्रम नहीं छूटा, स्वरूप स्थिति नहीं हुई, इसीसे चौरासी योनियोंमें ही जीव भटकते रहते हैं। बिना पारख चौरासी योनियोंकी भ्रमणा नहीं छूटती है ॥

व्याख्या— ये अज्ञानी मनुष्यलोग भ्रममें पड़कर पागल हो गये हैं। इसीसे 'ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ तो मेरी ही मिथ्या कल्पना है वा मेरे समान मनुष्योंकी ही कल्पना है।' यह निर्णय बोधको तो यह बावरे लोग कोई कुछ तो जानते ही नहीं हैं। इसीसे हे शिष्य ! सच्चे मनुष्य परीक्षक हंस पारखी हुए बिना कोई भी मुक्ति स्थितिको नहीं पा सकते हैं। अतः जड़ाध्यासी होकर सब जीव चौरासी योनियोंमें ही भ्रमते-भटकते रहते हैं, सो जानो ! ॥ ३६४ ॥

॥ ❀ ॥ १३ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- १३ ॥ खण्ड- २५ ॥ छन्द भाग- ५ ॥ ❀ ॥

१. हे स्वामी ! यह निर्णय भाखेउ * अति सुख पायेऊँ ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका तेरहवाँ प्रश्न वर्णन करते हैं— शिष्य कहता है—

हे स्वामी ! यह निर्णय भाखेउ = हे सद्गुरु स्वामी ! यह सत्य निर्णयका सत्य उपदेश आपने कृपा करके जो कहे हो !—

अति सुख पायेऊँ = मनुष्यरूपके बारेमें जो आपने परखाये हो, सो प्रेमसे श्रवण करके मेरा सन्देह मिटनेसे मैंने अत्यन्त सुख-शान्तिको पाया हूँ ! आपकी दयासे अब सो भेद समझ पाया हूँ ! ॥

व्याख्या— तब शिष्यने कहा— हे स्वामीजी ! यह यथार्थ सत्य उपदेश गुरुमुखसे निर्णय वर्णन करके आपने जो कहे हो ! जिसे सुनकर-समझकर मैं अत्यन्त सन्तुष्ट सुखी हो गया हूँ ! नित्य सुखके लिये आपसे मैंने सच्चा बोध पाया हूँ ! ॥

२. जन्म जन्मकी तृषा नाशी * समुझि अमृत प्यायऊँ ॥ ३६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

जन्म जन्मकी तृषा नाशी = जन्म-जन्मान्तरोंकी तृष्णा, वासना, चाहनाकी जो प्यास मेरेमें लगी थी, सो अब आपकी दयासे नाश हुई है।

समुझि अमृत प्यायऊँ = मैंने तो यही समझा हूँ कि- सचमुचमें आपने मुझे अमृत ही पिला दिये हो ! क्योंकि, अविनाशी चैतन्य स्वरूपका समझ-बोध पारख, यही अमृत मैंने आपसे पाया हूँ, और सो उसे पीनारूप वचनामृतको ग्रहण किया हूँ ! ॥

व्याख्या— अतएव मेरे जन्म-जन्मकी तृषारूप तृष्णा-आशा, भ्रम-भूल सो इस वक्त आपकी

कृपासे नाश हो गई है। समझ-बोधरूपी पारख ज्ञानका वचनामृत आपने मुझे पिला दिये हो! आपने जो परखाये हो, सो मैंने समझ लिया हूँ! ॥ ३६५ ॥

३. अब कछु कहु दीन उद्धारण सम्रथ * मानुष लक्षण गुण जथा ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो!

अब कछु कहु = दीन उद्धारण = सम्रथ = दीन जीवोंको उद्धार करनेवाले समर्थ, बलिष्ठ हे सद्गुरु साहेब! अब और कुछ मेरे बोधके लिये दया करके कहिये! यद्यपि आपने बहुत कुछ कहे हो! तथापि मेरे बोधकी परिपुष्टिके लिये और भी कुछ कहिये कि—

मानुष लक्षण = गुण जथा = मनुष्यका यथार्थमें गुण-लक्षण क्या है? सोई मुक्तिदायी मनुष्यका सद्गुण कहिये! ॥

व्याख्या— हे दीन उद्धारण समर्थ सद्गुरो! मनुष्यके गुण-लक्षण जैसे है, तैसे यथार्थ निर्णय करके अब और भी कुछ स्पष्टीकरण करके कहिये! जिससे सत्यबोधकी परिपुष्टि हो! ॥

४. केहि विधि करिये पहिचान * मानुष भाखेउ परमारथा ॥ ३६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो!

केहि विधि करिये पहिचान = किसप्रकारसे हंस गुणोंकी पहिचान करना? और निज स्वरूपकी पहिचान किस तरहसे होगी? सो कहिये?—

मानुष भाखेउ परमारथा = परम-अर्थकल्याणरूप मुक्ति प्राप्तिके अधिकारी पारखी मनुष्यको ही आपने बतलाये हो, सो मेरे परमार्थ सुधारनेके वास्ते हंस गुणको और भी समझा कर कह दीजिये! यही विनय है ॥

व्याख्या— आपने परमार्थ-दृष्टिसे मनुष्यको सर्वश्रेष्ठ वर्णन किये हो! सो उसके लक्षणकी पूर्ण पहिचान किसप्रकारसे करनी चाहिये? सो खुलासा करके कहिये! जिससे मेरे स्वार्थ-परमार्थ दोनोंका सुधार-बनाव हो जाय, सो दया करके बतलाइये! ॥ ३६६ ॥

॥ ❀ ॥ १३ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १३ ॥ खण्ड- २६ ॥ छन्द भाग— ६ ॥ ❀ ॥

१. सुन शिष्य! सुमति अनेक विधि * याके अनेकन अङ्ग हैं ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुन शिष्य! सुमति = अनेक विधि = शुद्ध मतिवाले हे जिज्ञासु शिष्य! सुनो! अनेक प्रकारसे मैं विधिपूर्वक कहता हूँ! जो गुरुवालोगोंने अनेक विधिसे कथन किये हैं, सो भी परख लो!—

याके अनेकन = अङ्ग हैं = यह मनुष्योंके अनेकों प्रकारसे अनेकों अङ्ग-उपाङ्गके गुण हैं। विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, ऐसे गुणके अनेकों अङ्ग मनुष्योंमें विशेष रूपसे रहे हुए हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे सुमति शिष्य! सुनो! इसके अनेक विधि और अनेकों अङ्ग हैं। सो उसके अनेक प्रकारके भेदको भी अब मैं कहता हूँ, तुम उसे सुनो! ॥

२. पुनि ताहिमा जो प्रत्यक्ष गुण गन * परख बिनु कोइ ना लहै ॥ ३६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

पुनि ताहिमा = जो प्रत्यक्ष = गुन गन = पुनः नरजीवोंमें ज्ञानगुण तो विशेष ही है। फिर मनुष्योंमें गुप्त और प्रत्यक्षरूपसे अनेकों गुण समूह भी विद्यमान हैं। पारख द्वारा मनुष्योंमेंका वह लक्षण सब गुण राशि प्रत्यक्ष दिखती है।

परख बिनु = कोइ ना लहै = परन्तु, पारख बोध हुए बिना उन सद्गुणोंको कोई ग्रहण कर नहीं सकते हैं। और पारखी सद्गुरुके समझाये बिना कोई भी उन सद्गुणोंको

जानकर पा नहीं सके। यानी परीक्षा बिना कोई हंसपदको प्राप्त कर नहीं सकते हैं। | बिना पारख उन सद्गुणोंको लेकर कोई धारण करनेमें समर्थ हो नहीं सकते हैं॥

व्याख्या— फिर उसी मनुष्यमें जो गुण-समूह विद्यमान हैं, उसे पारख बिना प्रत्यक्ष करके कोई प्राप्त कर नहीं सकते हैं। पारख-दृष्टि खुलनेपर नरदेहमें सब सद्गुण समूह प्रत्यक्ष होकर रहनीके लिये वे सब प्राप्त हो जाते हैं। बिना पारखके तो कोई भी उसे पा नहीं सकते हैं वा धारण ही नहीं होता है॥ ३६७॥

३. लहै जीव जे दृढ़ सो सतगुरु मुख ❀ देख सत्य वर्णन कियो॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

लहै जीव जे = दृढ़ सो = सतगुरु मुख = } जो जिज्ञासु नरजीव दृढ़तासे गुरुमुख वाणीको श्रवण-मनन करके सत्यको जान जाते हैं, सोई समस्त सद्गुण और पारखको प्राप्त कर लेते हैं। और ब्रह्मादि गुरुवाओंकी वाणी वेदादिको लेनेवाले जो नरजीव हैं, सो भ्रमको ही लेते हुए चौरासी योनियोंको प्राप्त होते हैं।

देख सत्य = वर्णन कियो = } वेदमें एक ब्रह्म कर्त्ताको ही सत्य बतलाकर वर्णन किया है। और सो सद्ग्रन्थ बीजकमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सत्य निर्णय करके जो परखाकर दिखाये हैं, सो देखो! और सत्यासत्यका विवेक द्वारा निर्णय करके देखो! तो सब भेद तुम जानोगे॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुने गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ सत्यासत्यका वर्णन किये हैं। उसे सत्सङ्ग द्वारा देख-सुनकर जो नरजीव दृढ़ पुरुषार्थी होते हैं, सोई सद्गुण रहनी और पारख बोधको प्राप्त कर लेते हैं। और जिन मनुष्य जीवने गुरुबोधको दृढ़ता कर पाये, सो सद्गुरुके मुखसे वर्णन किया हुआ सत्य निर्णयको ही विचार-दृष्टिसे देखते हैं, और गुरुमुख वाणीको ही कहते-सुनते हैं॥

४. सो सुनहु शिष्य! यह देहके गुण ❀ जीवके गुणहू कह्यो॥ ३६८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सो सुनहु = शिष्य! यह = देहके गुण = } हे शिष्य! यह हंस देहके जो सद्गुण-लक्षण हैं, सो और भी खुलासासे सुनो! और यह नरदेहके भासरूप दुर्गुणको ही निर्गुण ब्रह्म, आनन्द या ज्योतिरूपमें माने हैं, सो परखो!—

जीवके गुणहू = कह्यो = } उसी देह-भासको ही गुरुवालोगोंने जीवके भी गुण कहा है; यानी जीवको ब्रह्मका अंश कहा है, सो भ्रम है। अब मैं हंस देहके साथ जीवके मुख्य गुण भी कहता हूँ, सो ध्यानसे सुनो!॥

व्याख्या— हे शिष्य! सो बीजक सद्ग्रन्थके सत्य ज्ञानको पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें रहके सुनो! समझो! तथा बीजक सद्ग्रन्थमें यह हंसदेहके गुण और जीवके गुण भी भिन्न-भिन्न वर्णन करके कहा है। अथवा सत्य, विचारादि शुद्ध तत्त्व-लक्षण सहित होना हंस देहके यही सद्गुण है। और काम-क्रोधादि दुर्गुण कच्चा काग देहका अशुद्ध बन्धनदायी गुण है। पञ्च विषय सो जड़ तत्त्वोंके कार्यरूप देहका ही गुण है। इसे ही भ्रमिकोंने जीवके गुण कहा है, सो भ्रम-धोखा ही है। और जीव स्वतः चैतन्य होनेसे उसके तो ज्ञान मात्र पारख ही नित्य सद्गुण है। अबोध होकर जीव बन्धनमें पड़े हैं। स्वरूप ज्ञानका बोध रहनी संयुक्त होनेसे जीव मुक्त हो जाते हैं॥ ३६८॥

दोहाः— चारि खानिका जीयरा ❀ मानुष कबी न होय॥
[१४४] जाको गुरु पारख लही ❀ मानुष कहावै सोय!॥ ३६९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! सुनो!—

चारि खानिका = } षट् पशु धर्मोंमें आसक्त
जीयरा = } चारोंखानीमें अध्यासी चैतन्य जीवोंका बासा है। वे सब भव-बन्धनोंमें पड़े हैं। और चारोंखानीमें परिपूर्ण चराचरमें व्यापक सर्वाधिष्ठान ब्रह्मको माननेवाले गुरुवालोग भी अविवेकी पशु ही बने हैं।

मानुष कधी = } इसकारणसे उन चारों खानी-
न होय = } के बद्ध जीव तथा नरपशुवत् गुरुवालोग यथार्थमें कभी भी मनुष्य हो नहीं सकते हैं। यानी उनको सच्चा मनुष्य कहा नहीं जाता है; वे मनुष्य कदापि नहीं हो सकते हैं, अतः वे पशु ही बने हैं। किसको सच्चा मनुष्य कहना! सो सुनो!

जाको गुरु = } जिस पुण्यात्मा भाग्यवान्
पारख लही = } नरजीवको पारखी सद्गुरु मिले, उनके शरणागत होकर जिसने सत्सङ्ग विचार द्वारा यथार्थ जड़-चैतन्यका भेद जानकर सत्य पारखबोध प्राप्त कर सद्गुण धारण कर लिया है, विवेकी-पारखी हो गया है—

मानुष = } सोई सच्चा मनुष्य कहलाता
कहावै सोय = } है। वही निर्णयसे मनुष्य मानने योग्य है। जिसने हंसगुणको धारण किया है, नीर-क्षीरका निर्णयकर पारखपद-में चैतन्य जीवकी स्थिति किया है, वे ही विवेकी पारखी सन्त ही सच्चे मनुष्य कहलाते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या— चारखानीके जड़ाध्यासी जीव षट् विकारोंमें आसक्त हो रहे हैं। इसीसे वे कभी भी सच्चे मनुष्य नहीं होने हैं वा वे मनुष्य नहीं हैं। पशुगुणवाले वे नरपशु ही बने हैं। और जिनको गुरुबोध पारखकी प्राप्ति हुई है, जिन्हें स्वरूपका ज्ञान हुआ है, सोई हंस वा पारखी सच्चे मनुष्य कहलाते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥ ३६९॥

दोहाः— यह लक्षण समुदायगुण * कहा वचन टकसार॥
[१४५] गुरु पूरा जो होयगा * तो शिष्य! उतारे पार॥ ३७०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

यह लक्षण = } सत्य, विचार, शील, दया,
समुदाय गुण = } धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़ वैराग्य आदि यह हंस वा मनुष्य देहके शुद्ध लक्षण, सद्गुणोंके समूह सब भलीभाँतिसे विस्तारपूर्वक परीक्षा गुणके सहित यथार्थ रीतिसे—

कहा वचन = } सद्ग्रन्थ बीजकमें सद्गुरु
टकसार = } श्रीकबीरसाहेबने गुरुमुख वाणीसे परखाकर कहा है। सोई यहाँपर सत्सङ्गरूप टकसारके निर्णयमें मैंने वही सत्य वचन कहा हूँ! और—

गुरु पूरा जो = } पूर्ण परीक्षक, सत्यासत्यके
होयगा = } विवेचक, सत्यन्यायी, यथार्थ-वक्ता, अपरोक्ष पारखी, ऐसे सद्गुणधारी जो सद्गुरु बन्दीछोर होंगे या जहाँपर ऐसे पूरे पारखी सद्गुरु हैं, वहाँपर उनकी शरणमें जो जिज्ञासु नरजीव जाते हैं—

तो शिष्य! = } तो उन जिज्ञासु शिष्योंको
उतारे पार = } सकल काल-जाल लखाकर परखाकर वाणी-खानीके महाजाल भव-बन्धनोंसे छुड़ाकर पारख जहाजमें बिठायके भवपार कर देते हैं। यानी जड़ाध्याससे रहित उस पार निज स्वरूप स्थितिमें कायम कराय देते हैं, जीवन्मुक्त कर देते हैं॥

व्याख्या— यह सद्गुण-लक्षणका समुदाय वर्णन, पशु और मनुष्यकी पहिचान खुलासा करके टकसाररूप सद्ग्रन्थ बीजकमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सत्यन्याय निर्णयका गुरुमुख वचन कहा है। सो सत्सङ्ग-विचार द्वारा जान लेना चाहिये! बीजक सद्ग्रन्थके सत्यज्ञानके मर्मज्ञ पूर्ण परीक्षक-पारखी जो ऐसे साधु-गुरु होवेंगे, तो वे अवश्य ही मुमुक्षु शिष्योंको खानी-वाणीरूप भवसागरसे पार उतार देंगे। सबका भेद बतलाकर पारखबोध लखा देंगे; जिससे मनुष्य निर्बन्ध-मुक्त हो जावेंगे॥ ३७०॥

॥ ❀ ॥ चौपाई भाग— १३ ॥ ❀ ॥

१. मानुष समुझै मानुष होई * गुण लक्षण मानुषते जोई ॥ ३७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! मनुष्यका गुण-लक्षण कहता हूँ, सो सुनो !—

मानुष समुझै = यथार्थ रीतिसे जड़-चैतन्य-मानुष होई = का भेद पारखी सद्गुरुसे समझ-बूझकर मनुष्यके रहनी-रहस्य, गुण-लक्षणको ठीक-ठीक समझकर सद्गुणको धारण करनेवाले वे ही सच्चे मनुष्य हैं। जो मनुष्य निजस्वरूपको समझते हैं, सोई सच्चे मनुष्य हैं।

गुण लक्षण = सारासार, गुण-लक्षणोंको मानुषते जोई = देखनेवाले, परखनेवाले-मनुष्य ही होते हैं; यानी मनुष्य ही निर्णय करते हैं। जड़-चेतनके गुण-लक्षणोंको न्यारा-न्यारा देखते हैं ॥

व्याख्या— सत्यासत्यका भेद मनुष्य ही समझ सकते हैं। जो मनुष्य पारख ज्ञानसे जड़-चैतन्यके भेदको समझते हैं, सोई विवेकी हंस पारखी सच्चे मनुष्य होते हैं। वे ही मनुष्य सबके गुण-लक्षणोंको विवेकदृष्टिसे देखते हैं। अपनेमें रहे हुए अवगुणोंको त्यागकर सद्गुणोंको ही धारण किये रहते हैं, ऐसा जानो ! ॥ ३७१ ॥

२. क्षमा दया सत्य धीर विचारा * मानुष लक्षण सहित निर्धारा ॥ ३७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

क्षमा दया सत्य धीर विचारा = क्षमा हो वा शीलवान् हों, दयालु हों, सत्यवादी हों, धैर्यवान् हों, विचारवान् हों, विवेकी हों, वैराग्यवान् हों, गुरुभक्तिमें प्रेम-सत्यनिष्ठा रखनेवाले हों— ऐसे अष्टाङ्ग महान् सद्-गुणोंको धारण करनेवाले हों ! और काम, क्रोध, मद, लोभादिसे रहित हों।—

मानुष लक्षण सहित निर्धारा = ऐसे गुण-लक्षणोंके सहित जो होवें, उनको ही निश्चयसे मनुष्यमें महापुरुष जानो ! पारखी सद्गुरुने यही सद्गुण-लक्षणोंको निर्णयसे बतलाये हैं ॥

व्याख्या— क्षमा, दया, सत्य, धैर्य, विचार, विवेक, शील, सन्तोष, दृढ़ वैराग्य, बोधभाव इत्यादि सद्गुण-लक्षणके सहित जिनमें पारखबोध हो, सोई निश्चयसे सच्चे मनुष्य हैं। यही मनुष्यों-के शुभ लक्षणका निर्णय है ॥ ३७२ ॥

३. सदा एक सम बुद्धि प्रकाशा * भाखै वचन न कल्पित आशा ॥ ३७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सदा एक सम बुद्धि प्रकाशा = सदा-सर्वदा एक समान बुद्धिमें जिनके पारख प्रकाश रहता है। 'मैं चैतन्य जीव सत्य हूँ,' ऐसा अटल निश्चय रहता है। तथा दया करके अन्य मनुष्योंको भी चैतन्यबोधका पारख देकर बुद्धिको प्रकाश, निर्मल कर देते हैं। और—

भाखै वचन न कल्पित आशा = सत्यन्याय-निर्णयसे गुरुमुख वाणी-वचन ही बोलते हैं ! तथा नाशवान् स्त्री, पुत्र, धन, राज्यादि प्राप्तिकी आशा वे कभी किसीको नहीं लगाते हैं। और ब्रह्म, ईश्वर, देवी, देवता, सात स्वर्ग, सिद्धि, चार मुक्ति आदि प्राप्ति ऐसी-ऐसी मिथ्या कल्पित आशामें भी वे नरजीवोंको कदापि नहीं लगाते हैं। और स्वयं आप तो उनसे न्यारे ही रहते हैं। कल्पित आशा लगाकर मिथ्या वचन वे कभी नहीं बोलते हैं ॥

व्याख्या— सदाकाल जिनकी बुद्धिमें पारख स्वरूपका यथार्थ बोध प्रकाश रहता है, 'चैतन्य जीव ही सदा एकरस बराबर नित्य, सत्य, अखण्ड है,' ऐसा निश्चयसे विवेकका प्रकाश पूर्ण रहता है। और कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिकी मिथ्या आशा-भरोसा लगायके जो ऐसे असत्य वचन

कभी भी नहीं बोलते हैं, सदा-सर्वदा सबोंको सत्य वचन ही कहकर न्याय-निर्णयका ही उपदेश देते हैं, वे ही पारखी सन्त कहलाते हैं ॥ ३७३ ॥

४. अस विवेक शिष्य ! जेहि घट आवा * सो गुण मानुष केर कहावा ॥ ३७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अस विवेक = शिष्य ! जेहि = घट आवा = } हे शिष्य ! ऐसा यथार्थ बन्धन-मुक्ति, जड़-चैतन्यका विवेक जिस नरघटधारी मनुष्यके हृदयमें प्रकाश होकर आ गया या पूर्णतासे धारण हुआ, सोई मनुष्य जीवन्मुक्तिके अधिकारी परम पुरुषार्थी होते हैं।

सो गुण = मानुष केर = कहावा = } सोई सद्गुण सत्यन्याय पारख विवेक ही मनुष्यका मुख्य गुण कहलाता है। जिन पुरुषोंमें वह गुण धारण हुआ है, वे ही यथार्थमें मनुष्य हैं। वे ज्ञानवान् साधु पारखी होते हैं। नहीं तो देखनेमात्र ही केवल नाम मात्रके सर्व मनुष्य हैं। वे अविचारी पक्षपाती जड़ासक्त तो नरपशु ही बने हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! ऐसे निर्मल शुद्ध स्वच्छ विवेक-विचार जिनके मनुष्यघटमें आया वा जिन पुरुषोंमें ऐसा विवेक-वैराग्यादि धारण हुआ, सोई सच्चे मनुष्य हुए। सोई सद्गुण-लक्षण ही मनुष्यका गुण कहलाता है। सो सद्गुणधारी हंस जीव ही सकल बन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त होते हैं। अतः उन्हीं सद्गुणोंको धारण करो ॥ ३७४ ॥

५. मानुष गुण औगुणको त्यागै * निर्णय वचन जथारथ पागै ॥ ३७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मानुष गुण = औगुणको त्यागै = } मनुष्यका खास गुण क्या है ? कि, सद्गुणोंका ग्रहण और दुर्गुणोंका त्याग करना है। सो सत्यन्यायी सद्गुणी मनुष्य पारख गुण, हंस लक्षणोंको ही ले करके और दुर्गुणरूप भ्रम, धोखा, कल्पना तथा लोभ, काम, क्रोध, आशा-तृष्णादिको त्याग कर देते हैं। और—

निर्णय वचन = जथारथ पागै = } जड़-चैतन्य आदिका निर्णय करके सारशब्द गुरु निर्णयके वचनसे यथार्थ सत्य चैतन्य बोधको लेकर स्वरूप-स्थितिको ही वे प्राप्त होते हैं। तथा जिज्ञासुको भी निर्णय वचनसे यथार्थ सत् शिक्षारूप उपदेश ही देते हैं। सत्य लखाते हैं। यथार्थ मार्गमें ही वे लगाते हैं ॥

व्याख्या— विवेकी मनुष्य हंस होकर सब सद्गुणोंको ग्रहण कर लेते हैं। और तमाम अवगुणोंको परित्याग करके अपने पासमेंसे निकाल देते हैं। और यथार्थ निर्णय वचनको ही वे कहते-सुनते हैं। यथार्थ परीक्षा करके सत्यमार्गमें ही वे चलते-चलाते हैं। ऐसी शुद्ध चाल हंस वा सच्चे मनुष्योंकी रहती है। उन्हें ही पारखी सन्त कहा जाता है ॥ ३७५ ॥

६. अनुमानी गुण काल कहन्ता * नास्ति नष्टके आदि न अन्ता ॥ ३७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अनुमानी गुण काल कहन्ता = } गुरुवालोगोंने अनुमान करके जो वेदादि प्रमाणसे एक ब्रह्म, ईश्वरादि बतलाये हैं, सो तो भ्रममात्र मिथ्या धोखा है, सो कल्पनामें लगानेवाले वे गुरुवालोग तो काल बने हैं। उनकी वाणी कल्पना कहलाती है। सो उसी कल्पनाके हन्ताको पकड़कर नरजीव दुर्गुणी काल बने हैं और वैसे ही अभी बन रहे हैं।

नास्ति नष्टके = आदि न अन्ता = } अस्ति जीव, नास्ति ब्रह्म धोखामें पड़कर निजपदसे नष्ट हो गये हैं। और आदि-अन्त उस ब्रह्मके कुछ नहीं है, तो शुरू से आखिरी तक वह वाणीका झूठा ही पसारा है ॥

व्याख्या— जो मनुष्य अनुमानी भ्रमिक बनकर मिथ्या धोखेमें पड़े हैं, अनुमान-कल्पनामें लगे हैं, सोई तो कालके गुण हैं। इसीसे ऐसे गुणवाले काल कहलाते हैं। न[illegible] = ब्रह्म, और नष्ट =

कल्पनाका आदि-अन्त कुछ भी नहीं है। उस नास्ति-नष्टके पीछे लगकर जन्मसे लेकर मरणतक भी किसीका कल्याण नहीं होता है ॥ ३७६ ॥

७. आदि अन्त जाके जानि न जाई * सो अनुमान नास्ति है भाई ! ॥ ३७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

आदि अन्त जाके = } जिसे परमात्मा जगत्कर्त्ता
जानि न जाई = } माने हैं, उसके आदिसे अन्त तक वा शुरूसे आखिरी पर्यन्त या जन्मसे लेकर मरण तक भी कुछ भेद, थाह, पता जाना नहीं जाता है या जाना नहीं गया।

सो अनुमान = } तो हे भाई ! सो मिथ्या
नास्ति है भाई ! = } अनुमान-कल्पनाके सिवाय और क्या है ? कुछ भी नहीं है। सो तुम्हारी मानन्दी नास्ति = असत्य भ्रम-धोखा मात्र है। सो उसको माननेवाले तुम जीव ही सत्य हो ! यह विवेक करके जानो, समझो, बूझो ! ॥

व्याख्या— जिसके आदि-अन्त कुछ भी जाना नहीं जाता है, अनादि, बेअन्त, अनन्त, निराकार ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा आदि शब्द कहा गया है। हे भाई ! तुम परीक्षा करो, सो असत्य नहीं है, तो क्या है ? वह अनुमानमात्र होनेसे नास्ति है; यानी मिथ्या धोखा ही है। वह कदापि सत्य हो नहीं सकता है। सो मनकी कल्पना होनेसे सरासर नास्ति है ॥ ३७७ ॥

८. सो पशुखानि मानुष बुद्धि नाहीं * धोखाधारमें गोता खाहीं ॥ ३७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सो पशु खानि = } जिसमें मनुष्यकी विवेक-
मानुष बुद्धि नाहीं = } बुद्धि निर्णय पारखज्ञान नहीं है, सोई पशु खानीके जीव हैं। पहले भी पशुखानीमें थे, अभी भी पशु लक्षण ही धारण कर रहे हैं। स्वप्नवत् नरदेह पाये हैं; अन्तमें भी पशुखानीमें ही जानेवाले हैं, इसलिये वे मनुष्य नहीं हैं।

धोखाधारमें = } धोखारूप ब्रह्म, ईश्वर, खुदा,
गोता खाहीं = } स्वर्ग, देवता, इत्यादि कल्पित वाणीकी धारामें बह करके और वाममार्गादि विषय-विकारकी खानी काम-क्रोधादिकी लहरीमें पड़कर नीचे-ऊपर गोता खाये। यानी चौरासी योनियोंके गर्भवास जन्म-मरणादिमें गोता खाने लगे, बिना पारख ॥

व्याख्या— जो कोई उस अनुमान-कल्पनाको सत्य समझते हैं, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिको कर्त्ता मानते हैं; वे अविवेकी पक्षपाती लोग नररूपधारी होनेसे भी वास्तवमें पशुखानीके जीव हैं। सद्गुरुने कहा हैः—

साखीः— "सिंहों केरी खोलरी, मेढ़ा पैठा धाय ॥ वाणीसे पहिचानिये, शब्दहिं देत लखाय ॥"
॥ बीजक, साखी—२८१ ॥

इसीसे सो पशुखानीवाला जीव होनेसे उसमें मनुष्यके विवेक-विचारसे न्याय करनेकी गुरुबुद्धि ही नहीं है। इसलिये भ्रमिक हो-होकर वाणी-कल्पनासे धोखाधारमें बहते हुए गोता खाये, और अभी भी गोता खा रहे हैं, पश्चात् भी गोता ही खायेंगे, बिना पारख ॥ ३७८ ॥

९. निर्वचनी जो ब्रह्माकारा * सो अनुमान सृष्टि विस्तारा ॥ ३७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निर्वचनी जो = } मन, बुद्धि, वाणीसे परे
ब्रह्माकारा = } अनिर्वाच्य कहके फिर जो कि, मन, बुद्धि, वाणीसे ही चराचरमें परिपूर्ण व्यापक कोई एक निराकार ब्रह्म है, ऐसा माने हैं।

सो अनुमान = सो अनुमानसे माना हुआ—
सृष्टि विस्तारा = ब्रह्मसे सारा जगत् सृष्टिका विस्तार होकर उत्पत्ति होना माने हैं, सो यह तो भ्रम मात्र है। और गुरुवालोगोंने ब्रह्म-मानन्दीसे वाणी-कल्पनाका सृष्टि-विस्तार जगत्में किये हैं, सो झूठा है। यह अनुमानकी सृष्टिका ही विस्तार है ॥

व्याख्या— जो वचनमें नहीं आता है, सो निर्वचनी मन-बुद्धिसे भी अतिपरे अवाच्य ऐसे एक ब्रह्मका आकार वा स्वरूप निराकार सर्वव्यापक जो माने हैं, सो अनुमानसे मिथ्या वाणीकी सृष्टि विस्तार किये हैं; और उस ब्रह्मको ही जगत्कर्त्ता मानकर अनुमानसे उससे जगत्-सृष्टिका विस्तार कथन किये हैं। सो सरासर झूठा, भूलकी ही वाणी है ॥ ३७९ ॥

१०. सो निर्णयते नास्ति कहावै * जो नहिं है तहाँ क्यों मन लावै ? ॥ ३८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य ! सो निर्णयते = } क्योंकि, पारखी सद्गुरुकी नास्ति कहावै = } सत्य निर्णय-परीक्षासे सो ब्रह्म-ईश्वरादि कोई वस्तु ही नहीं ठहरता है, वह तो नास्ति धोखा ही कहलाता है। मिथ्यावादियोंने जो वाणी कही है, सो नास्ति है।

जो नहिं है तहाँ = } हे मनुष्यो ! जो तुमने ब्रह्म, क्यों मन लावै ? = } ईश्वर, देवता, स्वर्गादि माने हो, सो कोई सत्य वस्तु ही नहीं है। फिर जो वस्तु ही कुछ नहीं है, निराकार-निर्गुण है, तो उस मिथ्या धोखेमें मन क्यों लगाते हो ? "जहाँ है तहाँ ले पहिचानी" यह वाक्य सद्गुरुने बीजकमें कहा है। निज स्वरूपकी ही पहिचान करलो ! भटकना छोड़ दो ! जो सार, सत्य ही नहीं है तहाँ उसमें क्यों मन लगाते हो ? धोखेमें पड़कर गाफिल क्यों होते हो ? ॥

व्याख्या— जड़-चैतन्यका निर्णय करनेसे परीक्षा दृष्टिसे- सो ब्रह्म तो नास्ति भ्रममात्र कहलाता है। पाँचतत्त्व जड़के स्वरूप अलग हैं, और उससे विजातीय अनन्त देहधारी चैतन्य जीवोंका स्वरूप अलग ही है। तहाँ जड़ और चैतन्यमें तो कहीं भी ब्रह्म नामकी वस्तु कुछ भी है ही नहीं। फिर उस मिथ्या धोखेमें क्यों मन लगाते हो ? ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा हैः—

"अ आ निग्रह सनेहू। करु निरुवार सन्देहू ॥ नहिं देखे नहिं भाजिया। परम सयान पयेहू ॥ ११ ॥ जहाँ न देखि तहाँ आपु भजाऊ। जहाँ नहीं तहाँ तन मन लाऊ ॥ जहाँ नहीं तहाँ सब कुछ जानी। जहाँ है तहाँ ले पहिचानी ॥ १२ ॥" बीजक, ज्ञानचौंतीसा ॥

अतः जो साकार सत्य वस्तु ही कुछ नहीं है, तहाँ क्यों नाहक मन लगाते हो ? उसे परखकर भ्रमको त्यागो ! और अपने चैतन्य पदमें ठहराव करो ॥ ३८० ॥

११. कञ्चन काँच बराबर लेखै * सो बुद्धिमान औरको पेखै ॥ ३८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! कञ्चन काँच = } शुद्ध सुवर्णवत् ब्रह्म, तथा बराबर लेखै = } अशुद्ध काँचवत् जगत्को जो एक समान बराबर समझते हैं। जड़-चैतन्य मिश्रण कर व्यापक ब्रह्मका लेखा बतलाते हैं; सत्यको छोड़कर मिथ्यामें धावते हैं, सो इनके समान मूढ़ और कौन हो सकता है ? परन्तु, अविचारी लोग उनकी ही प्रशंसा कर रहे हैं।

सो बुद्धिमान = } बुद्धिमान् पण्डित कहलाने- औरको पेखै = } वाले दलाल लोग दूसरेके सामनेमें उन्हीं ब्रह्मज्ञानीकी श्रेष्ठता बता-बताकर वेदादि वाणी दिखा रहे हैं। उनमें विवेक ही नहीं है। बुद्धिमान् तो सोई हैं, जो कि, जड़-चैतन्यको भिन्न-भिन्न करके अपने देखे औरको भी दिखावे। परन्तु, सो भ्रमिक लोग औरको तो बुद्धिमान् देखते-समझते ही नहीं हैं ॥

व्याख्या— जो कञ्चनरूप सुवर्ण तथा काँचका भाव बराबर एक समान लखते हैं। "टके सेर भाजी, टके सेर खाजा" उसीकी तरह अन्यायको अपनाते हैं। सो उसे बुद्धिमान् समझकर भोंदू लोगोंके सिवाय और कौन देखेगा ? कोई नहीं देखेगा। अर्थात् कञ्चनवत् ब्रह्म तथा काँचरूप जगत्को अद्वैत सिद्धान्तमें बराबर एक समान लखते हैं। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कह करके गबरगुण्ड करते हैं। उन्हें अविवेकी मूर्खलोग ही बुद्धिमान् समझते हैं। विवेकी बुद्धिमान् लोग तो उन्हें तीन कौड़ीके भी नहीं समझते हैं ॥ ३८१ ॥

१२. ताते पारख किया विचारा * कल्पित नास्ति सृष्टि व्यवहारा ॥ ३८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताते पारख = इसवास्ते पारखी सद्गुरु
किया विचारा = श्रीकबीरसाहेबने सबोंकी परीक्षा करके सत्य निर्णयसे विचार किये कि, "सबकी मानन्दी करनेवाला सबसे न्यारा चैतन्य जीव ही सत्य है।" ऐसा पारख किये। वही विचार मनुष्योंको बतलाये। और—

कल्पित नास्ति = कल्पित वेदवाणीसे वर्णित
सृष्टि व्यवहारा = ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरसृष्टि और जगत्सृष्टि मानकर कर्म, भक्ति, योगादिके जो व्यवहारमें पड़े, सो नास्ति धोखेमें लग गये; और मनुष्यपदसे विनाश हो गये। सद्गुरुने सो सब जालोंको परखाकर हंस-पदमें जिज्ञासु जीवोंको ठहराये हैं॥

व्याख्या— इसलिये पारखी सद्गुरुने निज पारखसे निर्णय करके यथार्थ विचार किये। और वाणी कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादि सृष्टिको नास्ति = मिथ्याका व्यवहार मात्र ठहराये हैं। जब ईश्वरादि ही नास्ति है, तो उसके लिये किया हुआ कर्मादि व्यवहार भी सब व्यर्थ ही होनेवाला है॥ ३८२॥

दोहाः— उभय काल गुण दोषमय * कल्पित सृष्टि हं ॥
[१४६] नाशै उपराजै बहुर * नाम क्षुधा बसी हं ॥ ३८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उभय काल = ब्रह्म सृष्टि और ईश्वर सृष्टि,
गुण दोषमय = ये दोनों ही कालरूप गुरुवा-लोगोंके कल्पनाके गुण होनेसे दोष-विकार-रूप ही हैं। अथवा स्त्री और गुरुवा, ये दोनों कालरूप हैं, इन्होंकी खानी-वाणीके त्रिगुणके कार्य विकाररूप आवागमनोंके बीज हैं।

कल्पित = उक्त कल्पित ईश्वरादि वाणीकी
सृष्टि हं = उत्पत्तिका मूल कारण अहङ्कार ही है। ब्रह्मसे जगत् सृष्टिकी उत्पत्ति हुई; ऐसा मानना मिथ्या अभिमान अहङ्कार मात्र है।

नाशै उपराजै = महाप्रलयमें सारा जगत्का
बहुर = विनाश हो करके फिर प्रारम्भमें इच्छासे सृष्टिकी उत्पत्ति हो जाती है, ऐसा माने हैं; सो मिथ्या कल्पना ही है। परन्तु, वही अध्याससे जीव सब आवागमन-में पड़े हैं, तो मर-मरकर फिर जन्म लेते हैं; चौरासी योनियोंमें ही जाते रहते हैं।

नाम क्षुधा = कोई भूख-प्यास मिटानेके लिये
बसी हं = भेषके खाँचमें पड़कर नाना भेषके अहङ्कारके वशीभूत हुए हैं, कोई मान-बड़ाईके लिये, नाम बढ़ानेके लिये भक्त हुए हैं। कल्पनासे ईश्वरादि मानकर उसके नाम-स्मरण पुकारा करने लगे, ईश्वर दर्शन-के भूखे या इच्छुक हुए हैं; सो सब अहं अध्यासके वशीभूत हुए हैं॥

व्याख्या— कालके गुण सब दोषमय हैं। अहङ्कार द्वारा ही ब्रह्म सृष्टि और ईश्वर सृष्टि, यह दोनों कल्पित सृष्टिकी मानन्दी दृढ़ हुई है। सो अहङ्कारका विकार मात्र है। नाम, मान, बड़ाई बढ़ानेकी इच्छावाले भूखे लोगोंने नामकी क्षुधा अहङ्कारके वशीभूत होकर वे काल बने। तहाँ उन्होंने अपनेको ही ब्रह्म माने, जगत्-प्रवृत्तिको प्रथम नशायके फिर उत्पत्ति किये। ब्रह्मकी इच्छासे जगत्का उत्पत्ति-प्रलय मानकर गाफिल जड़ाध्यासी हुए हैं॥ ३८३॥

दोहाः— मन सङ्कल्पते जग बहू * मन विकल्पते नाश ॥
[१४७] रहट जीव बाँचे नहीं * धोखा धार विनाश ॥ ३८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मन सङ्कल्पते = भ्रमिक नरजीवोंने मनसे
जग बहू = सङ्कल्प या कल्पना करके ब्रह्म कर्त्ताकी मानन्दी किये। फिर उस ब्रह्मकी इच्छामात्रसे ही चराचर जगत्का विस्तार बहुतरूपमें हो गया, ऐसा कहकर सो उसीकी प्राप्तिसे ही मुक्ति होगी, ऐसा

मानकर जगत्में बहुत प्रकारकी साधनाएँ करने और कराने लगे हैं। और फिर—

मन विकल्प-ते नाश= समाधिमें वृत्ति शून्य होनेसे मनोमय सृष्टिका विनाश हो गया, सो ऐसा अनुभव ले करके फिर बाहर ब्रह्मके मनमें भी विकल्प या निर्विकल्प-होकर अनिच्छासे जगत्का विनाश होकर महाप्रलय होगा, यह कल्पना किये हैं।

रहट जीव-बाँचे नहीं= ऐसे सङ्कल्प-विकल्प, ब्रह्म-जगत्, उत्पत्ति-प्रलय, जन्म-मरण, खानी-वाणी आदिके महा रहट चक्रमें पड़े हुए जड़ाध्यासी जीव कभी दुःखोंसे बचकर मुक्त हो नहीं सकते हैं, चौरासी योनियोंसे बच नहीं सकते हैं।

धोखा धार-विनाश= धोखारूप वाणी, कल्पनाकी धारा और विषयधारामें बहते हुए महा विनाशको प्राप्त हुए। यों ही नर-जन्मको बर्बाद किये; चैतन्य बोध न होनेसे मुक्तिपद वा हंसपदको विनाश किये, अतः बद्ध हुए॥

व्याख्या— ब्रह्मकी स्वाभाविक इच्छारूप मनके सङ्कल्पसे जगत्की बहुत प्रकारसे उत्पत्ति कहा है। फिर मनके विकल्पसे सम्पूर्ण जगत्का विनाशरूप महाप्रलय होनेकी कल्पना भी किया है। ऐसे रहटवत् ब्रह्म-जगत्, उत्पत्ति-प्रलयके महाचक्र आवागमनमें पड़कर जीव धोखा-धारमें पड़कर विनाश हो जाते हैं; कभी भी बच नहीं पाते हैं। बिना पारख नरजीव अभी तक कहीं बच नहीं पाये। अतः मनुष्यपदको विनाश कर रहे हैं॥ ३८४॥

दोहाः— गुण उत्तम लक्षण सहित * निर्णय वचन यथार्थ॥
[१४८] जो बर्ते सोई खरा * अनुमानी मिथ्यार्थ॥ ३८५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

गुण उत्तम-लक्षण सहित= उत्तम गुण कहिये विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़ वैराग्य, ये त्रिगुणकी शुद्ध कला लेकर और सत्य, विचार, शील, दया, धैर्यादि हंस देहके लक्षण रहनी-रहस्य धारणके सहित हो—

निर्णय-वचन-यथार्थ= 'मैं जीव सत्य चैतन्य हूँ' यह बोध हो, जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय करे। गुरु निर्णयके सत्य वचनोंको ही ग्रहण करे, और जिज्ञासुके प्रति भी यथार्थ निर्णयका वचन ही कहकर उपदेश देनेवाले होवें; सो उन्हींको सर्वोत्तम पारखी जानना चाहिये।

जो बर्ते-सोई खरा= इसप्रकार शुद्ध हंस चालसे जो पुरुष वर्तमानमें निराश-निवृत्ति-से बर्तते हैं या चलते हैं, सोई सच्चे विचारवान्-ज्ञानवान् पारखनिष्ठ साधु हैं, सच्चे मनुष्य हैं। सोई खरा मानने योग्य हैं। और—

अनुमानी-मिथ्यार्थ= नाना प्रकारके अनुमान, कल्पना, मानन्दी करनेवाले भ्रमिक रूप मनुष्यवाले नाशवान् देहकी विषयासक्ति तथा मिथ्या ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, स्वर्गादि जिसका कोई सच्चा अर्थ ही नहीं है, ऐसे अनर्थमें लगकर बर्बाद हो चौरासी-योनिगामी हुए वा हो रहे हैं, मिथ्यार्थमें लगकर किसीका कल्याण कभी नहीं हुआ, न होगा॥

व्याख्या— जिन मनुष्योंमें उत्तम गुण-विवेक, वैराग्य, गुरुभक्तिकी धारणा हो, तथा सत्य, विचारादि शुभ लक्षण सहित हंसपदमें ठहरे हुए हों; गुरुमुख निर्णयके यथार्थ सत्य वचन ही न्यायसे कहनेवाले हों; निर्णयसे यथार्थ वचनको ही ग्रहण करनेवाले हों; इसतरह जो पारखी सन्त निराश-निवृत्ति सहित वर्तमानमें बर्तते हों, सोई खरा=सच्चे मनुष्य मुक्तिके अधिकारी हैं। और जो अनुमानी नरजीव ब्रह्म आदि मिथ्यार्थकी मानन्दीमें ही भूले पड़े हैं, सो बद्ध हो चौरासी योनियोंमें ही पड़े वा पड़ रहे हैं, बिना पारख॥ ३८५॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका शब्द वर्णन ॥ शब्द भाग— २ ॥ ❀ ॥

१. सन्तो ! मानुष कोइ एक शूरा * जाहि मिले गुरु पूरा ॥ ३८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
सन्तो ! मानुष = } हे सन्तो ! हे विचारवानो !
कोइ एक शूरा = } मनुष्योंमें शूर-वीर धीर, कायावीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी पारखी ऐसे कोई एक बिरले ही हंस मनुष्य होते हैं। और—
जाहि = जिन जिज्ञासुओंको पूर्ण परीक्षक—
मिले गुरु पूरा = पारखी पारखप्रकाशी ऐसे सद्गुरु मिल जाते हैं, वे भी गुरु-ज्ञान लेकर पारखी हो जाते हैं। फिर सकल कल्पना खानी-वाणीको परख कर निज स्वरूप स्थितिमें ही कायम होते हैं। यानी जिन्हें पूरे सद्गुरु मिले, वे ही कोई एक शूर मनुष्य हुए वा शूर होते हैं॥

व्याख्या— यहाँपर एक शब्द कहा गया है, सो सुनिये! पारखी सद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! संसारमेंके अरबों-खरबों रूप मात्रके मनुष्योंमेंसे कोई एक बिरले ही शूर-वीर सच्चे सत्यन्यायी मन-इन्द्रियोंको जीतनेवाले मनुष्योंमें महापुरुष होते हैं। जिन्हें भाग्यसे पूर्ण पारखी सद्गुरु मिलते हैं, जो ऐसे सद्गुरुकी शरणागत होते हैं, तो उन्हें सकल भेदको सद्गुरु परखाय देते हैं। जिससे सब बन्धनोंसे छूटकर वे निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं। इसलिये जिसे पूरे पारखी सद्गुरु मिले, वे ही काल-को जीतनेवाले महान शूर होते हैं। ऐसे पारखी सन्त मनुष्योंमें कोई बिरले ही जीवन्मुक्त होते हैं॥३८६॥

२. बहुतक ब्रह्म धारके हंसा * बहुतक शिव गण भूता ॥ ३८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
बहुतक ब्रह्म = } हंस तो चैतन्य जीव हैं;
धारके हंसा = } परन्तु, ब्रह्मज्ञानको धारण करके बहुतेक नरजीव भ्रमिक, गाफिल हुए हैं। व्यापक ब्रह्म बनकर चौरासी योनियोंमें गये। ऐसे बहुतेक जीव ब्रह्मधारमें बह गये हैं। और—
बहुतक शिव = } बहुतेक शिव उपासक
गण भूता = } जङ्गम हुए, कोई शिवगण नन्दी, भृङ्गी, चौंसठ योगिनी, भूत-प्रेतके उपासक श्मशान साधक अघोरी आदि मूढ़ बहुतेक हुए और हो रहे हैं॥

व्याख्या— यह संसार तो कठिन बन्धनका घर ही है। यहाँ अनेकों प्रकारके भव-बन्धनोंमें असंख्यों जीव बद्ध हुए पड़े हैं। तहाँ मनुष्यरूपवालोंमें बहुतेक नरजीव तो ब्रह्म-भ्रमकी धारामें वाणी-कल्पनामें बह गये और बह रहे हैं। ब्रह्मधाराके जीव ब्रह्म बनकर चौरासी योनियोंमें डोल रहे हैं, और बहुतेरे तो ब्रह्माके भक्त बने हुए हैं। बहुतेक मनुष्य तो शिवको माननेवाले शिवभक्त हुए हैं। कोई शिवगणको ही माननेवाले गण-भक्त हुए हैं, कोई भूत, प्रेत, बेताल, मरी, मशानको माननेवाले भूत-उपासक हुए हैं। कोई बारह प्रकारके योगी सम्प्रदायवाले बने हैं। कोई गणेशके भक्त तथा कार्तिकस्वामीके भक्त इत्यादि भक्त लोग हुए और भ्रमिक हो रहे हैं॥ ३८७॥

३. बहुतक विष्णु सेई जड़ होवैं * बहुत निरञ्जन पूता ॥ ३८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
बहुतक विष्णु = } बहुतेक मनुष्य तो विष्णु
सेई जड़ होवैं = } उपासक वैरागी हुए। वे विष्णुकी जड़ प्रतिमा शालिग्राम आदिकी पूजा सेवनकर जड़ासक्त मूढ़ भ्रमिक हुए और हो रहे हैं। तथा—
बहुत निरञ्जन पूता = बहुतेक लोग तो गुरुवालोगोंके चेले हो, निरञ्जन ब्रह्मको ध्यानसे प्राप्त करना चाहते हैं। वे निरञ्जनके पुत्र बने हैं॥

व्याख्या— बहुतेक मनुष्य तो वैष्णव सम्प्रदायवाले हुए हैं। तहाँ चार आचार्योंसे चार तरहके वैष्णव सम्प्रदाय वैरागियोंमें चले हैं। उनमें बहुत लोग विष्णु, राम, कृष्ण आदिके जड़-मूर्तिकी प्रतिमाका सेवन, पूजन, आरती, चाकरी आदि करके विचारहीन मूढ़ जड़ बुद्धिवाले जड़ाभ्यासी ही हो जाते हैं। और बहुतेक ब्राह्मणलोग तथा जङ्गमलोग निरञ्जनके आत्मपुत्र वा

धर्मपुत्र बने हैं। इसीसे ॐकारका जाप वा "निरञ्जनाय-निरञ्जनाय" के रटन करनेमें लगे हैं। वे सब लोग धोखेमें ही भूले पड़े हैं ॥ ३८८ ॥

४. बहुतक शिव शक्ति औराधें * मदिरा पिये अचेता ॥ ३८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

बहुतक शिव= बहुतक शक्ति औराधें= } बहुतेक विषयासक्त मनुष्य तो शिव-शक्तिकी आराधना, उपासना करके वाममार्गी होकर भग-लिङ्गकी मूर्तिकी पूजा करते हैं। कोई भैरवीचक्र करनेवाले—

मदिरा पिये= अचेता= } शराबके कलशको बीचमें रख कर उसकी पूजा करके फिर मदिरा पी-पीकर मांस-मछली आदि खाकर, मुद्रा कर स्त्रियोंसे वहीं मनमाने मैथुन कर्म-कुकर्म करके फिर अचेत मुर्देके समान बेहोश हो जाते हैं ॥

व्याख्या— बहुतेक मूढ़ लोग तो शाक्त मतावलम्बी हुए हैं। वे लोग शिव और शक्तिकी एक साथ जोड़ी मिलाकर आराधना करते हैं। कहीं शिवके लिङ्गको भगाकार वा योनि सदृश जलहरी बनायके उसीके बीचमें भगभोग कियेकी नाईं प्रतिमा रखकर उसीकी पूजा करते-कराते हैं। कहीं वाममार्गी बनकर पञ्च मकारको खूब सेवन करते हैं। कोई भैरवीचक्र करके मदिरा पी-पीकर कुत्ते-की नाईं मांस खाकर, हड्डी चबाकर पैशाचिक कृत्यसे घोर कुकर्म करके अचेत हो रहे हैं ॥ ३८९ ॥

५. खून करें बहु पूजि भरम जड़ * रक्षा तनके हेता ॥ ३९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

खून करें बहु= पूजि भरम जड़= } कोई जड़मूर्तिकी देवी-देवता बनाकर पूजा करके उसके आगे बहुतेक बकरें, भैंसें आदि प्राणियों के खून करते हैं। हत्या करके उन्हें मार डालते हैं। खूनकी धारा बहा देते हैं। ऐसे जड़पूजक भ्रामक लोग कसाई बने हुए हैं।

रक्षा तनके हेता=अपने शरीर और पुत्र-पुत्रियोंकी रक्षा तथा सुख प्राप्तिके वास्ते देवीकी मनौती कर ऐसा घोर पाप कर्म करते हैं। सो हत्याके पापसे उनकी रक्षा कैसे होगी? रक्षाके बदले उनका सत्यानाश ही हो जायगा ॥

व्याख्या— कोई तामसी मूर्खलोग तो अपने शरीरकी रक्षा, सुख-सम्पत्ति, पुत्र-पौत्रादि प्राप्तिके वास्ते अन्धविश्वासको पकड़ करके भ्रान्तिसे बहुत प्रकारकी जड़मूर्ति— भैरव, भवानी, नवदुर्गा, महाकाली, गणेश, बैताल, चण्डिका इत्यादि नाम धरायके उनकी प्रतिमा बनाय वा कहीं लकड़ ही गाड़कर उसीमें सिन्दुर लगाय, पूजा कर-कराके बकरें-भैंसें आदि पशुओंको बाँध-बाँधकर अन्धाधुन्ध खून करते हैं। जीव हत्या करके वे महापापी काल-कसाई होते हैं वा हो रहे हैं। तथापि नाशवान् शरीरकी रक्षा किसीकी नहीं होती है, अरे! पहले तो दूसरेके शरीरका उसने नाश कर दिया, तो अब फिर उसके शरीरकी रक्षा कैसे होगी? नहीं होगी! ॥ ३९० ॥

६. षट दर्शन पाखण्ड छियानवे * अपने-अपने भावै ॥ ३९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

षट दर्शन= पाखण्ड छियानवे= } संसारमें योगी, जङ्गमादि षट् दर्शनोंकी शाखाएँ फूटकर छियान्नवे (९६) पाखण्ड मत-पन्थोंका जाल फैलाये हैं, सो उनके अनेकों मतवादी हुए हैं।

अपने-अपने भावै=ज्योति, शिवलिङ्ग, चन्द्रमुक्त-शिला आदि जो कुछ उन्होंने कल्पना दृढ़ करके सिद्धान्त मान रक्खा है, सो अपने-अपने मतपर सबोंकी पक्की भावना दृढ़ हो रही है ॥

व्याख्या— दश प्रकारके दशनामी संन्यासी बने हैं। बारह प्रकारके योगी हुए हैं। चौदह प्रकारके मुस्लिम फकीरोंमें भेद हुआ है। अठारह प्रकारके जङ्गम बने हैं। अठारह प्रकारके ब्राह्मणोंके भेद हैं। और चौबीस तरहके तीर्थङ्कर जैनियोंमें हुए हैं। यही सब मिलाकर षट् दर्शनोंमें छियान्नवे

पाखण्डोंका विस्तार किये हैं। वे लोग अलग-अलग अपनी-अपनी भावनाएँ न्यारा-न्यारा इष्ट, जाप, सिद्धान्त आदिको दृढ़ करके उसे ही अच्छा मान रहे हैं; उसीमें वे सब भूले पड़े हैं ॥ ३९१ ॥

७. सबै सराहैं निज-निज वाणी * परख कहाँते पावै ? ॥ ३९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सबै सराहैं निज-निज वाणी = वे सब कोई अपनी-अपनी वाणी वेद-शास्त्रादिकी सराहना, प्रशंसा, इष्टदेवकी महिमा कर अपने मतको ही सर्वश्रेष्ठ बता रहे हैं।

परख कहाँते पावै ? = अब कहो भाई ! निष्पक्ष होकर वे विवेक ही नहीं करते हैं, तथा पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग भी नहीं करते हैं, तो सत्यबोध पारख वे कहाँसे पावेंगे ? अतः कहींपर भी वे पारख नहीं पावेंगे ॥

व्याख्या— ब्राह्मणलोग वेदकी सराहना वा तारीफ करते हैं। तैसे ही योगी आदि लोग भी योगशास्त्र आदि अपनी-अपनी वाणी, ग्रन्थ, पन्थ, सिद्धान्त इत्यादिकी ही वे सब लोग सराहना करके महिमा बढ़ाते हैं। पक्षपात पकड़कर अन्धे हो रहे हैं। अब कहो भला ! पारख स्वरूपका सत्यबोध वे लोग कहाँसे पावेंगे ? पारखी साधु-गुरुकी शरण-सत्सङ्गमें तो वे आते ही नहीं हैं, इसीसे कहींसे भी पारखज्ञान वे नहीं पाते हैं ॥ ३९२ ॥

८. धन्दे बन्दे अन्धे भरमें * मिथ्या निजुकै थापा ॥ ३९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

धन्दे बन्दे = इसीतरह कर्मी कर्मके धन्धोंमें,
अन्धे भरमें = भक्त ईश्वरकी वन्दना नवधाभक्तिमें और अन्धे ब्रह्मज्ञानी विज्ञानमें भ्रमकर मिथ्या धोखेमें पड़े हैं।

मिथ्या निजु-कै थापा = अपनी कल्पनासे जो मिथ्या मानन्दी किये, सो उसी धोखेको ही निजस्वरूप करके स्थापना किये हैं, सो उसीमें स्थिति किये हैं ॥

व्याख्या— इसतरह अन्धे विवेकदृष्टिहीन मतवादीलोग अपने ही मिथ्या कल्पनाकी स्थापना करके उसीकी नाना धन्धारूप साधनाओंमें भरमें तो बद्ध हो गये। अथवा कर्मकी धन्धामें कर्मकाण्डी-लोग भरमें हैं। भक्तिकी साधनामें बन्दे-भक्तलोग उपासनाकाण्डमें भरमें हैं। और अन्धे ब्रह्मज्ञानी-लोग ज्ञानकाण्डमें जाकर भरमें हैं। उन लोगोंने मिथ्या देहके भास आदिको ही निजस्वरूप करके थापे हैं या माने हैं। इसीसे जड़ाध्यासी होकर भव-बन्धनोंमें ही जकड़े पड़े हैं, बिना पारख ॥ ३९३ ॥

९. कहहिं कबीर मानुष गुरुमुख लहु * मेटे काल कलापा ॥ ३९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

कहहिं कबीर मानुष गुरुमुख लहु = सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका कहना ऐसा है कि, हे मनुष्यो ! गुरुमुखसे तुमलोग पारखबोधको प्राप्त करके इन सबोंके भेदको जानो ! और परखकर सब—

मेटे काल कलापा = काल-कल्पनाको मेटो। सो मिटानेवाला सद्गुरुका पारख बोध ही है, ऐसा जान लो ! निजपदमें ही ठहरे रहो ॥

व्याख्या— (अतएव ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे शिष्य !) सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने चेतावनी देकर ऐसा कहा है कि, संसारमें जो मनुष्य पारखी सद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्ग करके गुरुमुख-से निर्णय किया हुआ पारखस्वरूपके बोधको ग्रहण कर लेते हैं, वे ही कालकी समस्त दुःखदायी कल्पना, विषयादि विकारको समूल नाश कर, मिटाकर जीवन्मुक्त, निर्बन्ध सुखी हो जाते हैं। अतः हे मनुष्यो ! तुमलोग भी गुरुमुखसे इन सबोंके मर्मको जानकर गुरुबोध पारखको प्राप्त करो ! और काल-कल्पनादिको मिटाय डालो ! निजस्वरूपमें शान्त, स्थिर हो रहो ! ॥ ३९४ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक साखीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर- १६६ ॥ ❀ ॥

(६) साखीः— मानुष तेरा गुण बड़ा * मांस न आवै काज ॥
[१४६] हाड़ न होते आभरण * त्वचा न बाजन बाज ॥ ३६५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सज्जन मनुष्यो ! सुनो !—

मानुष तेरा = हे मनुष्य जीव ! तेरा तो
गुण बड़ा = ज्ञानगुण सबसे बड़ा है। इसलिये सत्यासत्यकी परीक्षा करके सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेकादिकी शुद्ध रहनी रखकर असत्य कल्पना, विषयादिका परित्याग कर ! तभी नरदेह पानेकी तेरी बड़ाईरूप विशेषता है। नहीं तो खाली देहकी कोई बड़ाई नहीं है। क्योंकि, जैसे पशु आदिका देह सर्वाङ्ग मृतक होनेपर भी लोगोंके काममें आता है या संसारीलोग उसे उपयोगमें लेते हैं। तैसे तेरा देह मुर्दा होनेपर कोई भी काममें नहीं आता है। अर्थात् मुर्दा मनुष्य देहको कोई कुछ काममें नहीं लेते हैं।

मांस न = तहाँ मृत पशुओंके मांसको तो
आवै काज = चमार आदि लोग खा लेते हैं। तैसे तेरा मांस तो कोई काम या कुछ कार्य-में भी नहीं आता है। यानी कोई लोग भी मनुष्योंके मांसको कुछ काममें नहीं लेते हैं।

ऐसी यह निकम्मी चीज है। और—

हाड़ न होते = पशुओंकी हड्डियोंकी तो बेंट,
आभरण = बटन, किलिप और अनेकों आभूषणादि बनाते हैं। परन्तु, मनुष्यकी हड्डीके तो कोई भी पदार्थ-गहने बनाके कोई काममें ही नहीं लेते हैं, वह तो व्यर्थमें ही चला जाता है; जला देते हैं वा फेंक देते हैं। और—

त्वचा न = पशुओंके चामसे तो ढोलक, मृदङ्ग,
बाजन = खँजड़ी, तबला आदि मढ़कर
बाज = बाजे बजाते हैं; जूता, मोंट, बाक्स, सूट, बूट आदि बहुतेक काममें चमड़ा लगाते हैं। तैसे मनुष्यकी त्वचासे तो कोई बाजाएँ भी बनकर नहीं बजती हैं, बेकार ही हो जाता है। परन्तु, मनुष्यके तो गुणकी ही अधिकता है। इसलिये सद्गुणोंको ही अपना करके निज कल्याण करो, जीवन सुधार करो ! यही सत् शिक्षा है, सो जानो ! ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजककी इस साखीमें कहा है कि, हे मनुष्यो ! तुम्हारे तो सिर्फ सद्गुण-सचाई, ज्ञानगुण तथा परीक्षादृष्टि, यही सद्गुण ही सबसे बड़ा है। जिससे तुम सर्वश्रेष्ठ जिज्ञासु, मुमुक्षु, धर्मात्मा पारखपदके अधिकारी, मुक्तिके अधिकारी भी हो सकते हो। इसके अतिरिक्त रूप मात्रकी तो तुम्हारी कोई बड़ाई नहीं है। देहकी कोई विशेषता नहीं है। क्योंकि, जैसे पशुओंका मांस काममें आता है, बहुतेरे लोग मृत पशुओंके मांस खा-खाकर ही पेट भरते हैं। तैसे तुम्हारा मांस तो कहीं कोई किसीके काममें भी नहीं आता है। इसीसे लोग मुर्दाको जला करके राख कर देते हैं, अथवा गाड़ देते हैं। नदी आदिमें डुबाय देते हैं; कहीं जङ्गलमें फेंक भी देते हैं। इसतरह 'मांस न आवै काज' प्रत्यक्ष होता है। और पशुओंकी हड्डियोंका तो सब भाग अनेकों लोगोंके बहुतेरे काममें आ जाता है, कई तरहके आभूषण, नकसी भी बनाते हैं। तैसे मनुष्योंकी हड्डियोंका आभरण=गहना आदि कुछ भी नहीं बनता है; अशुभ, अशुद्ध जानकर मनुष्योंके हाड़को तो सब लोग फेंक देते हैं। और पशुओंकी चमड़ीसे तो बाजाएँ मढ़कर बजायी जाती हैं। जूते आदि बहुतेरे उपयोगकी चीजें बनाते हैं। तैसे मनुष्योंकी त्वचा नरम होनेसे कोई काममें ही नहीं आती है, किसी आदमीकी त्वचासे बाजा मढ़कर भी, बजायी नहीं जाती है। इसी तरह रोम, नाड़ी, रक्त, मल, मूत्र आदि सर्वाङ्ग पशुओंके तो यहाँपर लोगोंके काममें आ रहा है। परन्तु, मनुष्य देहमेंकी कोई चीज भी लोगोंके काममें नहीं आती है। तभी तो निरुपयोगी, निकम्मी, व्यर्थकी चीज जानकर मृतक होनेपर

मुर्दा-लाशको जलाना, गाड़ना आदि क्रिया करके सब लोग फेंक ही देते हैं। फिर ऐसे देहका अहङ्कार करना कितनी बड़ी मूर्खता है। अतः देहासक्ति छोड़कर, अवगुणोंको हटाकर, सद्गुण-लक्षणको ही धारण करना चाहिये। तभी सच्चे हंस वा मनुष्य बनकर कल्याण पदको पावेंगे। यही इसका मुख्य भावार्थ है, सो जानिये !॥ ३९५ ॥

॥ ❀ ॥ १४ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- १४ ॥ खण्ड- २७ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— बन्दीजन उद्धार * कहेउ यथारथ मनुष्य गुण ॥
[१५] लक्षण लक्ष विचार * या पारखते लहेउँ प्रभु ! ॥ ३९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका चौदहवाँ प्रश्न वर्णन करते हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

बन्दीजन = अनेक बन्धनोंमें पड़े हुए हमलोग
उद्धार = भक्त वर्ग, शिष्य-सेवकोंके उद्धार, पार, निर्बन्ध कर देनेवाले आप बन्दीछोर हो ! आपकी मैं बारम्बार वन्दना करता हूँ !

कहेउ यथारथ = आपने जो
मनुष्य गुण = मनुष्यका गुण रहनी-रहस्य वर्णन करके कहे हो, सो यथार्थ सत्य है। सो मैंने उसे अपने हृदयमें अच्छी तरहसे धारण कर लिया हूँ !—

लक्षण लक्ष = आप जैसे-जैसे कहते गये,
विचार = तैसे-तैसे मैं भी विचारपूर्वक लक्ष्य लगा करके मनन करता गया, इससे हंस वा मनुष्यके गुण-लक्षण, स्वभाव अब मेरे जाननेमें आ गया है।

या पारखते = यानी हे प्रभो ! आपके पारख-
लहेउँ प्रभु ! = दृष्टी बोधके प्रतापसे ही यह हंस देहके गुण शुभ लक्षण, शुद्ध रहनी-रहस्यका सत्य ज्ञान मैंने प्राप्त किया हूँ ! अतः कोटिशः आपको धन्यवाद है ! अब और जो शङ्का हुई है, सो भी बोधके वास्ते प्रगट करता हूँ, उसे भी दया करके समाधान करिये !॥

व्याख्या— सद्गुरुके ऐसे उपदेश सुनकर फिर शिष्य बोला— बन्दीजनको उद्धार करनेवाले हे बन्दीछोर ! आपने मनुष्यके गुण-लक्षण यथार्थ कहे हो ! हे प्रभो ! उन हंस गुण-लक्षणोंको लक्ष्य पूर्वक विचार करके यह बात मैंने आपकी दयासे पारखसे जान पाया हूँ ! सो उसका तो पारखबोध-से भेद समझ लिया हूँ !॥ ३९६ ॥

सोरठाः— मानुष प्रथमारूप * केहि कारण गुरु निर्मयो ? ॥
[१६] कैसे गुरुमत भूप ? * पाये दुःख सुख सब गयो ॥ ३९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

मानुष = मनुष्यरूप ही
प्रथमारूप = पहला नम्बरमें है। मनुष्यसे पहले ज्ञानखानी और दूसरा कोई नहीं है। ऐसा आपने कहे हो ! हे प्रभो ! इसमें मुझे यह सन्देह पैदा हुआ कि, जब मनुष्यरूप ही प्रथम है, तो वह स्वतन्त्र ठहरा। फिर—

केहि कारण = किसकारण या किसवास्ते
गुरु निर्मयो = हे सद्गुरो ! महानब्रह्मज्ञानका सिद्धान्त, वेदादि नाना वाणी क्यों खड़ा किया ? या क्यों बनाया ? अथवा चौरासी योनियोंमें दुःखरूप शरीरको क्यों उत्पन्न किया ? छोटा-बड़ा, ज्ञानी-अज्ञानी क्यों बनाया, और गुरु क्यों उत्पन्न हुए वा क्यों गुरु बने।

कैसे गुरुमत भूप = हे गुरु महाराज ! फिर गुरुमतके श्रेष्ठ पारख सिद्धान्तको सब भ्रम-से छूट करके कैसे पाये ? कैसे गुरुमत भूप हुआ ?—

पाये दुःख =
सुख सब गयो = जिसके प्राप्त करनेसे सब दुःख-सुखका नाश होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। पञ्च विषयादि त्रिविधि ताप, जगत् दुःख तथा ब्रह्मानन्दादि

सुख, ये दोनों छूट करके जीव मुक्त कैसे हो गया ? या कैसे मुक्त हो जायगा ? सो कृपा करके समझाइये ! जिससे सन्देह छूटकर सत्य बोधको परिपुष्ट कर सकूँ ! उसके लिये इसका भेद बतलाइये ! ऐसा जिज्ञासु शिष्यने पूछा ॥

व्याख्या— अब यह बात मेरे जाननेमें अभी नहीं आयी है कि- हे सद्गुरो ! मनुष्यका ही रूप प्रथममें किस कारणसे निर्माण हुआ ? और किसने उसे निर्माण किस कारणसे किया ? अथवा मनुष्य प्रथम रूपको गुरुने किस कारणसे निर्माण किया ? और गुरुमत भूपवत् श्रेष्ठ कैसे हुआ ? तथा गुरुमत पा करके दुःख-सुखादि सब विकार कैसे छूट गया ? बन्धन छूटकर मुक्तिकी प्राप्ति कैसे हुई ? सो इसका भेद कृपा करके यथार्थ दर्शा दीजिये ! ॥ ३९७ ॥

॥ ❀ ॥ १४ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १४ ॥ खण्ड- २८ ॥ ❀ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! थीर जो अस्तिपद * हंस स्वतः आनन्द ॥

[१५०] निज अकाशको भर्म भयो * एकोहं स्वच्छन्द ॥ ३९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! इसका समाधान अब शुरूसे ही वर्णन करता हूँ ! सो ध्यान लगा करके सुनो !—

हे शिष्य ! = हे जिज्ञासु शिष्य ! इसका भेद
थीर जो = ऐसा है कि- चैतन्य जीवका
अस्तिपद = स्वरूप तो अचल ही है। और नरदेह ही स्थिर हंसपद प्राप्त करनेकी भूमिका है। जो कोई पारखपदमें ठहर जाते हैं, सो सदैवके लिये स्थिर मुक्त भी हो जाते हैं। मनुष्य स्वतन्त्र हैं, इसीलिये तो जैसा चाहें वैसा कर्म कर लेते हैं, फिर कर्मानुसार ही उनकी गति होती है। जो निज पदमें स्थिर नहीं हुए, सो सब चौरासी योनियोंमें ही गये या जाते हैं। और जो थीर अस्ति-पद है, सो—

हंस स्वतः = हंस चैतन्य जीव तो सदैव ही
आनन्द = स्वतः स्वयं चैतन्यरूप ही रहता है। तीनों कालमें एकरस है। परन्तु, देह सम्बन्धमें जड़ाध्यासी होनेसे विषयानन्द, ब्रह्मानन्द आदि सुखकी इच्छा करके नाना कर्मोंमें मनुष्य लगे। तहाँ निज स्वरूपको भूल गये। इससे स्वयं स्वरूपकी स्थितिको नहीं पाये। और—

निज अकाशको = निज स्वरूपकी स्थिति न
भर्म भयो = होनेसे अवकाश या फुर्सत्-के समयमें बैठे-बैठे भ्रम उत्पन्न होनेसे नाना कल्पना खड़ी हुई। अथवा किसी ज्ञानी, योगियोंने शून्य वृत्ति करके अपनेको आकाशवत् निराकार ब्रह्म माने हैं। वहाँपर निवृत्तिमें आनन्द भासनेके भ्रमसे आनन्दरूप ब्रह्मको ठहराये। ऐसी भ्रान्ति मनुष्योंमें दृढ़ हो गई।

एकोहं = फिर जब बहिर्वृत्ति हुई, तब मैं
स्वच्छन्द = ब्रह्म एक हूँ ! शुद्ध, स्वच्छन्द, निरञ्जन, निरीह हूँ ! ऐसी कल्पना किये। उसीमें नरजीव गाफिल हुए, भ्रम चक्रमें ही जा-जाकर पड़े, बिना पारख ॥

व्याख्या— तब सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! खास बात तो ऐसी है कि, यह जड़ चैतन्यरूप जगत् स्वतः अनादि है। जो अस्तिपद=सत्य चैतन्य जीवका स्वरूप है, सो स्वरूपसे अचल, स्थिर है। और हंसजीव स्वयं स्वरूपसे स्वतः आप-ही-आप अखण्ड है। परन्तु, देहधारी जीव स्थूल-सूक्ष्मादि देहोंके सम्बन्धमें होनेसे आनन्दके अध्यास-अहङ्कारमें पड़ गये। इसीसे 'मैं स्वतः आनन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ !' ऐसी मानन्दी दृढ़ कर लिये। फिर वृत्ति शून्य होनेसे आकाशवत् शून्य निर्विकल्प स्थिति हुई। जब होशमें आये तब, 'मैं आकाशवत् निजाकाश स्वच्छन्द एक ब्रह्म हूँ !' यह भ्रमका भेद खड़ा हुआ। ऐसे मनुष्यमें प्रथम भूल-भ्रम उत्पन्न हुआ ॥ ३९८ ॥

दोहाः— व्याप महामाया जनित ❀ मन मनसा गुण नेक ॥
[१५१] गुणन कल्पना तीन गुण ❀ भयो प्रत्यक्ष विधेक ॥ ३६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

व्याप महामाया = } तदनन्तर व्यापक माना
जनित = } हुआ निराकार उस केवल ब्रह्मसे "एकोहं बहुस्यामेति प्रजायेय" ऐसी इच्छा या स्फुरणा खड़ी हुई, सोई महामाया या आदिमायाकी उत्पत्ति ब्रह्मसे मानी गई। सो माया-ब्रह्म फिर एक-में-एक व्यापक हो गये। ऐसा गुरुवालोगोंने बतलाये हैं। और—

मन मनसा = } इच्छारूप मायासे त्रिगुणरूप
गुण नेक = } मनकी उत्पत्ति हुई, उस मनसे अनेक सङ्कल्प-विकल्परूप मनसा कार्य-तरङ्ग उठने लगी। फिर तो अनेकों गुणवाला विचित्र जगत्की रचना उसीसे हो गई, ऐसा बताकर फिर भी उस ब्रह्मको भ्रमसे शुद्ध ही माने हैं। तत्पश्चात्—

गुणन कल्पना = } जिसमें कोई गुण नहीं है,
तीन गुण = } सो निर्गुण माना हुआ शुद्ध ब्रह्मसे कल्पना करके रज, सत्त्व और तम, ये तीन गुणोंकी उत्पत्ति ब्रह्मकी प्रेरणासे माया द्वारा हुई, ऐसा माने हैं।

भयो प्रत्यक्ष = } इसप्रकार विधि-विधानसे
विधेक = } एक ब्रह्मसे दूसरी महामाया, आदिशक्ति इच्छारूपसे खड़ी हुई, उससे मन सहित त्रिगुण उत्पन्न हुए। तिससे प्रत्यक्ष पाँचों तत्त्वोंके जगत् पिण्ड-ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए। जो कि, प्रत्यक्ष ही सबके सन्मुखमें विस्तार है। ऐसी-ऐसी बातें भ्रमिक गुरुवालोगोंने बतलाये हैं। सोई मान-मानकर मनुष्य बद्ध हो गये हैं॥

व्याख्या— व्यापक ब्रह्मसे व्याप्य महामाया पैदा हुई। फिर उस मायासे मनके सहित मनसा = सङ्कल्प-विकल्पके कुछ गुण विस्तार हुए, तो एकसे अनेक हुए; और मनके गुणोंसे कल्पना तथा तीन गुण उत्पन्न हुए। इसप्रकार प्रत्यक्षमें खानी-वाणीकी सृष्टि विस्तारका विधेक हुई। ऐसे गुरुवालोगों-ने कल्पना बढ़ा करके माने हैं ॥ ३६६ ॥

दोहाः— सात्त्विक जाये चारिउ ❀ अन्तः चौदह देव ॥
[१५२] रज दश इन्द्री देवकी ❀ कर्म ज्ञानके भेव ॥ ४०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! फिर तत्पश्चात् जो बात माने हैं, सो कहता हूँ, सुनो ! और उसको विचार करके परखते जाओ !—

सात्त्विक = } माया प्रकृतिके सत्त्वगुणके
जाये चारिउ = } विशेष अंशसे प्रथमारम्भमें चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कार, ये अन्तःकरण चतुष्टयकी उत्पत्ति होनेको माने हैं। फिर यह चारों अन्तःकरके सहित और—

अन्तः चौदह देव = भीतरी सूक्ष्म देवता—चित्तके वासुदेव, बुद्धिके ब्रह्मा, मनके चन्द्रमा और अहङ्कारके देवता रुद्रके सहित सब चौदह देवताएँ भी उसी सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए, ऐसा माने हैं। और—

रज दश = } श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, नासिका
इन्द्री देवकी = } तथा रसना; मुख, हाथ, पाँव, लिङ्ग और गुदा, ये दश इन्द्रियोंकी उत्पत्ति रजोगुणके विशेष अंशसे हुई। तहाँ उन इन्द्रियोंमें रहनेवाले देवताओंकी शक्तिसे ही उक्त दश (१०) इन्द्रियाँ चलती हैं। और तभी—

कर्म ज्ञानके भेव = मुखसे खानेका या बोलनेका कर्म, हाथोंसे लेन-देनका, पाँवोंसे चलने-फिरनेका- इत्यादि पाँच कर्म इन्द्रियोंसे पाँच कर्म होते हैं; और पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पाँच विषयोंको जाननेका ज्ञान शरीरमें होता है, इससे उन्हें ज्ञान-इन्द्रियाँ कहते हैं। ऐसा भेद गुरुवालोगोंने माने हैं। सो भेद को जान लो ! ॥

व्याख्या— तदनन्तर माया जनित सात्त्विक गुणसे चारों अन्तःकरण-चित्त चतुष्टयादि तथा सूक्ष्म देहके चौदह देवताएँ एक-एक करके उत्पन्न हो गये; और रजोगुणसे दश इन्द्रियोंके देवताओं-की वा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियोंके सहित मनुष्योंके शरीरमें इन्द्रिय गोलक, सोई देवताओंके रहनेका स्थान उत्पन्न होकर बना। ऐसा भेद बतलाये हैं; गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना किये हैं ॥ ४०० ॥

दोहाः— तामस गुण हङ्कार युत ❀ जाये पाँचन पाँच ॥
[१५३] पाँचोंसे पचीस भौ ❀ चौरासीको नाच ॥ ४०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तामस गुण = हङ्कार युत = } ब्रह्मके प्रधान गुण तमोगुण-से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध— ये पाँच विषयरूप गुण उत्पन्न हुए। फिर सब कर्मोंके अहङ्कारके सहित हो करके—

जाये पाँचन पाँच = पाँच तत्त्वोंसे एक-एक करके पाँच-पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुईं। अथवा पञ्च विषय सहित पाँच तत्त्व सोई पाँच प्रकारके भिन्न-भिन्न उत्पन्न हुए हैं।

पाचोंसे = पचीस भौ = } फिर पाँच तत्त्वोंके विभाग होकर देहमें पचीस प्रकृतियाँ न्यारी-न्यारी ही उत्पन्न हो गईं ! ऐसे भवसागररूप यह संसारकी उत्पत्ति माने हैं। सो भ्रमिक मनुष्योंकी कल्पना ही है।

चौरासी-को नाच = } सो वही ब्रह्म जीवरूप हो करके जगत्के पञ्च विषयोंमें आसक्त हुआ, तो एकसे अनेक होकर आप ही चौरासी योनियोंमें नाना नाच नाचने लगा। 'अधिष्ठान ब्रह्म सत्य है', यह बात जिसने जाना, सो मुक्त हुआ; ऐसी कल्पना गुरुवालोगोंने किये हैं। इसीसे वे अध्यासी जीव भव-बन्धनमें ही पड़े हैं ॥

व्याख्या— तामस गुण वा तमोगुणसे अहङ्कारके संयुक्त पाँच तत्त्व तथा उनके पञ्च विषय उत्पन्न हुए। फिर पाँच तत्त्वोंसे एकमें पाँच-पाँचके हिसाबसे पचीस प्रकृतियाँ उत्पन्न हुईं। सोई सब भाग एकत्र होकर बना हुआ यह स्थूल देहमें साढ़े तीन हाथके भीतर चौरासी (८४) अंगुलका प्रमाण होता है। अतः जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें जाकर देह धर-धर कर अनेक प्रकारसे नाच नाचने लगे। यही ब्रह्मसृष्टिके घेरासे चौरासी योनियोंके चक्र बना है। बिना विचार फिर भी वही ब्रह्म बननेकी भ्रम-भूलमें बहुत लोग लगे पड़े हैं ॥ ४०१ ॥

दोहाः— चौरासी औ चारिको ❀ कर्त्ता मानुष रूप ॥
[१५४] कोहं इच्छासे भयो ❀ कल्पित नाना रूप ॥ ४०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चौरासी = औ चारिको = } चार खानियोंमें और अनेकों चौरासी योनियोंको बनानेवाले तथा चार वाणीको एवं अनेक सिद्धान्तोंके रचयिता—

कर्त्ता मानुष रूप = खानी-वाणीके विस्तार कर्त्ता यही रूप मनुष्य ही हैं, ऐसा जान लो ! मनुष्य न होवे, तो वेदादि वाणी और विषयादि खानी जालोंको कौन बनाये ? कौन पकड़े ? कौन भूले ? और—

कोहं इच्छासे भयो = अपनेको न जानकर प्रथम मनुष्यको ही- 'मैं कौन हूँ ?' ऐसी इच्छा हुई। उसी इच्छासे विभिन्न प्रकारसे मानन्दी किये। पारखदृष्टि न होनेसे अपनेको कुछ-का-कुछ ही मान लिये।

कल्पित = नाना रूप = } तब कल्पनासे ब्रह्म, ईश्वर, अंश, आभास, देवी, देवता, देह, वीर्य, शून्य, प्राण इत्यादि मनमाने वैसे नानारूप जीवको माने हैं। इसलिये उसी अध्याससे चौरासी योनियोंमें नाना रूपको धारण कर लिये ॥

व्याख्या— चारखानी और चौरासी योनियोंमें जाकर जो कर्म भोग होते हैं, सो सब कर्मके अध्यास, वासना, संस्कार आदिको बनाने-टिकानेवाले कर्त्ता मनुष्यरूप ही हैं। क्योंकि, यही कर्म-भूमिका है। पशु आदि तीन खानी भोग-भूमिका है। जीव सब मनुष्यरूपमें कर्म करके फिर चौरासी योनियोंमें जाकर फल भोगा करते हैं। अपने चैतन्य स्वरूप पारखको न जानकर जब जीव भूले, तब 'कोहं' इच्छासे ही मनमाने वैसे कल्पित नाना स्वरूप ठहराकर अनेकों तरहकी मिथ्या मानन्दी दृढ़ कर लिये। उसीसे सब भव-बन्धनमें ही जकड़े पड़े हैं, बिना पारख ॥ ४०२ ॥

दोहाः— चारि देह पञ्चमदशा * शब्दाकार अकाश ॥
[१५५] जिमि अकाशते ही भये * चारिउ तत्त्व प्रकाश ॥ ४०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चारि देह = पञ्चम दशा = सो कोई स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण— ये चार देहोंमें अटके। कोई ये चारों देहोंको लय करके पाँचवाँ कैवल्यदेह की परमहंस जड़वत्-दशाको लेकर गाफिल हुए। कोई पञ्च विषयोंकी आसक्तिसे दुर्दशाग्रस्त हुए हैं।

शब्दाकार = अकाश = फिर कल्पनासे ॐकार शब्दको निराकार आकाशवत् ब्रह्म माने; उसी शब्दाकार परमात्मासे महाकाशकी उत्पत्ति माने हैं। और—

जिमि अकाशते = ही भयो = जमीनसे आकाश पर्यन्त सर्व जगत्की सृष्टि उसी ब्रह्मसे ही हुई, ऐसी कल्पना किये हैं। फिर जैसे आकाशसे ही क्रमानुसार अन्य तत्त्वोंकी उत्पत्ति बतलाये हैं।—

चारिउ तत्त्व = प्रकाश = सो आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे वनस्पति और समस्त प्राणी, ऐसे चार तत्त्व जड़ और अनेकों चैतन्य जीवकी सृष्टिका प्रकाश हुआ, ऐसा माने हैं ॥

व्याख्या— तहाँ बहुतेरे लोग तो चार देहोंके बन्धनमें ही बन्धे पड़े हैं। कोई चार देहोंकी चार दशाको छोड़कर पाँचवाँ कैवल्य देहकी जड़दशा विज्ञान स्थितिको धारण कर परमहंस बने, तो महान् दुर्दशामें ही पड़े हैं। शब्दाकार ॐकाररूप ब्रह्मको आकाशवत् निराकार-निर्गुण मानकर गाफिल होना, सोई पञ्चम दशा है। और जैसे आकाशसे ही चारोंतत्त्व उत्पन्न होकर प्रकाश हुआ, ऐसा कहा है। तहाँ ब्रह्मसे आकाश बना, आकाशसे वायु उत्पन्न हुई, वायुसे अग्नि प्रगट हुई, अग्निसे जल पैदा हुआ, और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। ऐसे आकाशसे पृथ्वीतककी उत्पत्तिकी मिथ्या कल्पना किये हैं, बिना विवेक ॥ ४०३ ॥

दोहाः— तैसे ब्रह्मते माया * मायाके गुण तीन ॥
[१५६] कल्पित मानुष रूपको * मन मिलि व्यवरा कीन्ह ॥ ४०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तैसे ब्रह्मते माया = जैसे आकाशसे चारतत्त्व प्रकाश हुए, तैसे ही गुरुवालोग कहते हैं कि, प्रथमारम्भमें एक ही ब्रह्म था, उसने इच्छा की, तो आदिमायारूप अष्टाङ्ग प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई। फिर उन दोनोंके सम्बन्धसे—

मायाके = गुण तीन = तहाँ माया-प्रकृतिके गर्भ द्वारा तीन गुणवाले तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सो रज, सत्त्व, तम- ये तीनों गुण कायारूप मायाके ही गुण-स्वभाव हैं। वे तीनों लड़कोंके रूपमें बाहर किसी जमानेमें ब्रह्मा, विष्णु, महेशके नामसे प्रसिद्ध हुए थे।

कल्पित = मानुष = रूपको = सो कल्पित ब्रह्मको इसप्रकार मानन्दी करनेवाला सत्य मनुष्य रूपको कोई नहीं पहिचानते हैं। ब्रह्म-ईश्वरादि तो मनुष्यरूपकी ही कल्पना है, अतः सो मिथ्या भ्रम मात्र है।

मन मिलि = } परन्तु, मन-मानन्दीसे
ब्यवरा कीन्ह = } अनुमानको सत्य मान कर भ्रममें मिल कर भक्ति, योग, ज्ञानादि ब्रह्म प्राप्तिके लिये अनेक व्यवहाररूप साधनाएँ किये, और कर रहे हैं ॥

व्याख्या— आकाशसे चारतत्त्व उत्पत्ति कथनके समान- तैसे ही प्रथम ब्रह्मको एक मूल सबका कारण माने हैं। सो ब्रह्मसे इच्छारूप माया उत्पन्न हुई। फिर मायाके द्वारा तीन गुणरूप जगत् प्रगट होकर विस्तार हुआ, ऐसा कहा है। सो कथन कल्पित है। ब्रह्म ही भ्रम है, मनुष्यरूपकी कल्पना है। उसको विवेक करके तो नहीं चीन्हते हैं, उलटा मन-मानन्दीमें मिलकर वेद आदि वाणी जालका ब्यवरा = व्यवहार विस्तार किये। कर्म आदि साधनाओंका व्यवहार कर-करायके धोखेमें ही फँसे पड़े हैं, बिना विवेक ॥ ४०४ ॥

दोहाः— याको बहु विस्तारते ❀ चारिउ पाँचों मत ॥
[१५७] कहै वेद मुनि मनुज तन ❀ ब्यवरा कियो समस्त ॥ ४०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

याको बहु = } अब यही ब्रह्म-मानन्दीको दृढ़
विस्तारते = } करके इसी ब्रह्मज्ञानरूप भ्रमको गुरुवालोगोंने बहुत विस्तारसे जगत्में बढ़ाये, फैलाये, प्रचार किये और कर रहे हैं।

चारिउ = } ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,
पाँचों मत = } और अथर्ववेद, ये चारोंवेदोंके चार मत तथा वेदान्त शास्त्रके पाँचवाँ अद्वैत मतको मनुष्योंने ही निकाले हैं। अथवा चारखानीमें पाँचवाँ वाणीके मतको मनुष्योंने ही निकाले हैं। और—

कहै वेद मुनि = } मनुष्य तनधारी ही शील-
मनुज तन = } मनन करनेसे मुनि, ऋषि हुए। उन्हीं लोगोंने निज-निज मति अनुसार वेदादि वाणी कल्पना करके कहे हैं। ईश्वर कृत वेद जो मानते हैं, सो झूठे हैं। क्योंकि, मनुष्यके बिना ऐसी-ऐसी वाणी कौन कहेंगे। इसलिये देहधारी ऋषि-मुनि, मनुष्योंने ही वेदादि वाणी कहे हैं। और—

ब्यवरा = } नरजीवोंने ही नाना वाणी
कियो समस्त = } बनायके कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादि तथा विषयादि व्यवहार सब खड़ा किये हैं या समस्त जञ्जाल उत्पन्न किये, और सो बढ़ाते गये हैं ॥

व्याख्या— इसी ब्रह्म-भ्रमको वाणी-कल्पना द्वारा बहुत विस्तारसे बढ़ाते ले गये, तो तहाँ चारों वेदोंके चार महावाक्यके चारमत स्थापित किये, तथा पाँचवाँ वेदान्तका मत कहा है। वे पाँचों मतवादी धोखेमें ही पड़े हैं। अथवा चारों वैष्णव सम्प्रदायके चारों मत हुए। उनके ऊपर संन्यासियोंका पाँचवाँ मत अद्वैत सिद्धान्त स्थापित किये हैं। अथवा कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान, ये चारों-पाँचों मतका विस्तार किये हैं। अथवा पञ्च देवता पूजाका मार्ग चलाये हैं। अथवा चारों-खानीमें पाँचों विषयोंका मत प्रचलित हो रहा है। अथवा चार वाणी पाँचवाँ अवाच्यमतको कहा है। इन्हीं सबको बहुत ही विस्तारसे फैला रक्खे हैं। सोई मनुष्य तनधारी ऋषि-मुनियोंने वेद प्रमाणसे कहा है। उसीका समस्त ब्यवरा वा व्यवहार बहुत-बहुत किये, नाना साधना किये; बिना विचार भूलमें पड़े रहे ॥ ४०५ ॥

दोहाः— अहै प्रत्यक्ष प्रमाण जग ❀ विदित ग्रन्थ बहुयेक ॥
[१५८] हे शिष्य! पाये कसर कछु ❀ सो द्रष्टा बुद्धि देख ॥ ४०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अहै प्रत्यक्ष = } सो तो जगत्में प्रत्यक्ष ही
प्रमाण जग = } प्रमाण मौजूद हैं। जीव सत्य देहधारी प्रत्यक्ष हैं। ब्रह्म निराकार अप्रत्यक्ष मिथ्या है। मनुष्य ही ज्ञानी-अज्ञानी बनते हैं; शुभाशुभ कर्म करते-कराते हैं। उसीका

अध्यास टिकाते हैं। सो प्रमाण प्रत्यक्ष है।

विदित ग्रन्थ = } बहुतेक ग्रन्थ संसारमें प्रचलित
बहुयेक = } हैं। सो ग्रन्थोंसे सबका सिद्धान्त जगजाहिर ही है। आखिरमें एक ब्रह्म मानकर सब भूले हैं।

हे शिष्य पाये ! = } इसवास्ते हे शिष्य !
कसर कछु = } उन्होंको कुछ पारख बोध नहीं हुआ। इसलिये बहुत कुछ कसर-कल्पना उनमें पायी गयी। ब्रह्मज्ञानसे जीवकी कुछ भी स्थिति नहीं हुई; और होनेकी भी नहीं; वह तो बन्धनका ही घर बना है।

सो द्रष्टा = } सो यह पारख-दृष्टिसे द्रष्टा
बुद्धि देख = } पारखी सद्गुरुने विवेक-बुद्धिसे देख लिये, तो उसमें कसर जानकर जना दिये। सो तुम भी सद्बुद्धिसे परीक्षा करके द्रष्टा चैतन्य जीवको भ्रम-भूलसे न्यारा करके देखो ! सत्यासत्यको परखो ! ॥

व्याख्या— सो सबोंके मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त सब तो जगत्में प्रत्यक्ष प्रमाणरूपसे मौजूद ही हैं। सबोंके ग्रन्थ भी बहुत-बहुत लिखे हुए और छपे हुए विदित ही हैं। सब एक ही अनुमान-कल्पनामें भूले पड़े हैं। एक ब्रह्म, ईश्वर वा खुदा कर्त्ता मान-मानकर भूले पड़े हैं। हे शिष्य ! जब द्रष्टा पारखी सन्तने अपनी गुरुबुद्धि पारख-दृष्टिसे देखा, तो उन सबोंमें बहुत कुछ कसर-खोट जान पाये। इसीसे उन सब कल्पित सिद्धान्तकी मानन्दीको परखकर त्याग दिये; और परखाकर त्याग करा रहे हैं। सो तुम भी द्रष्टा होकर गुरुबुद्धिसे उन्हें देखो ! तो उनमेंकी कसर जान पाओगे ॥४०६॥

दोहाः— सब अनुमाने ब्रह्मके ❀ सूक्ष्म हन्त जग होय ॥
[१५९] निर्णय यथा परखिके ❀ मनुष्य कल्पना सोय ॥ ४०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सब अनुमाने = } भ्रमिक गुरुवालोगोंने अनुमान
ब्रह्मके = } करके सब जगत्का उत्पत्ति कर्त्ता अधिष्ठान ब्रह्मको माने हैं, सोई सब अविवेकी मनुष्योंने भी निश्चय करके मान लिये। और वही ब्रह्मकी—

सूक्ष्म हन्त = } मानन्दीके सूक्ष्म अहङ्कार-
जग होय = } अध्याससे जगत्में जन्म-मरण जीवोंका हुआ और होता ही रहता है। वह सूक्ष्म बीजरूप है।

निर्णय यथा = } पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें
परखिके = } यथार्थ सत्यासत्यका निर्णय करके जड़-चेतनकी परीक्षादृष्टिसे परखने-पर सत्यन्यायसे—

मनुष्य = } सो ब्रह्म तो मनुष्यकी कल्पना
कल्पना सोय = } गाफिली ही ठहरा या ठहरता है। हे मनुष्यो ! निर्णयसे यथार्थ परखकर देखो ! उस कल्पनामें मत् भूलो ! कल्पना असत्य है, और कल्पनाकर्त्ता मनुष्य जीव ही सत्य है, सो जानो ! ॥

व्याख्या— पूर्वके सब भ्रमिकोंने तो यही अनुमान किये हैं कि, ब्रह्मके सूक्ष्म अहङ्कारसे "एकोहं बहुस्याम्" की स्फुरणासे जगत्की उत्पत्ति हुई है वा होती है। और उसे यथार्थ परखकर निर्णय करनेसे तो, सो वह बात मनुष्यकी मिथ्या कल्पना ही ठहरती है। जैसा कथन किये हैं, तैसा स्वरूप तो ब्रह्मका सिद्ध ही नहीं होता है। इसीसे सो कल्पना असत्य है। जीव ही नित्य-सत्य है; ऐसा जानो ! ॥ ४०७ ॥

दोहाः— काहे हे शिष्य ! ब्रह्मते ❀ इच्छा हन्ता रूप ॥
[१६०] रूप बिना व्यापै नहीं ❀ हन्ता माया कूप ॥ ४०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

काहे हे शिष्य ! = } क्योंकि, हे शिष्य ! उस
ब्रह्मते = } ब्रह्मको निराकार, निर्गुण, निरञ्जन मानकर फिर उसी व्यापक ब्रह्मसे ही प्रथमारम्भमें—

इच्छा = } इच्छा करके चराचर जगत्की
हन्ता रूप = } उत्पत्ति हुई, ऐसा माने हैं। सो सूक्ष्म अहङ्काररूप ही इच्छाका है। अहङ्कार बिना इच्छा ही नहीं होती है, और—

रूप बिना = } आकाररूप साकार देह हुए
व्यापै नहीं = } बिना अहङ्कार या इच्छा उत्पन्न हो ही नहीं सकती है। निराकारमें इच्छा विकार व्याप्त होकर फैल ही नहीं सकती है। और—

हन्ता माया = } माया-कायाके सम्बन्धमें ही
कूप = } अहन्ता-ममतारूप अज्ञानके अन्धेरे कूएँमें जीव पड़े हैं। अतएव नाना कल्पित इच्छासे अहङ्कारी-अध्यासी हो-होकर चौरासी योनियोंके गर्भ कूपमें पड़े हैं या पड़ रहे हैं, सो जानो ! ॥

व्याख्या— क्योंकि, हे शिष्य ! ब्रह्मसे स्वाभाविक इच्छा अहङ्कारकारूप प्रगट होनेको माने हैं। परन्तु, ब्रह्मको निराकार, अरूप, विदेह कहा है। और साकाररूप शरीर सम्बन्ध हुए बिना कुछ भी इच्छा अहङ्कार व्याप नहीं सकता है। यानी देहके बिना तो इच्छा उठ ही नहीं सकती है। माया-रूपी कायाके सम्बन्धमें अज्ञानरूपी अन्धकारके कूपमें पड़कर ही हन्ता-ममतादि विकार उठते हैं। जिससे अध्यासी जीव हन्ता माया कूपसे अन्ध कूप चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जाकर गिर पड़ते हैं। इसीसे माना हुआ वह ब्रह्म मिथ्या भ्रममात्र ठहरता है ॥ ४०८ ॥

दोहाः— रूप बिना इच्छा नहीं ❀ रूप बिना नहिं नाम ॥
[१६१] रूप बिना सङ्कल्पको ❀ कर्त्ता कौने ठाम ? ॥ ४०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

रूप बिना = } अरे भाई ! जरा विचार तो
इच्छा नहीं = } करो ! देहका रूप सम्बन्धमें जीव हुए बिना विदेह या निर्जीवसे कहीं भी कुछ इच्छा, चाहना या स्फुरणा हो ही नहीं सकती है। यानी निराकारमें कुछ इच्छा नहीं होती है। इच्छा तो साकार देहधारियोंमें ही होती है। और—

रूप बिना = } रूप बिना कोई नाम ही नहीं
नहिं नाम = } होता है; साकार रूपवान् वस्तु मौजूद हुए बिना नाम भी सत्य नहीं हो सकता है। यानी वस्तु ही कुछ नहीं हो, तो उसके नाममात्रसे अनुमान करके बोध तो भी कैसे होगा ? जब उपमा दिया गया, तो वह साकार ही ठहरा; सो रूपवान् पदार्थ हुआ; उपमासे रहित वह नहीं हुआ। और—

रूप बिना = } देह रूपमें जीव रहे बिना, फिर
सङ्कल्पको = } सङ्कल्प-विकल्पको कौन करेगा ? सुख-दुःखको कौन जानेगा ? जन्म-मरणमें कौन पड़ेगा ? नाना कर्म कौन करेगा ? इसकारणसे हे मनुष्यो ! विवेक करके देखो—

कर्त्ता कौने = } निराकार-आकाशवत् अरूप,
ठाम ? = } अदेह माना हुआ ब्रह्म या ईश्वरको जगत्कर्त्ता माने हैं, फिर भला ! वह कौन ठिकाने बैठकर सङ्कल्प तो भी कैसे करेगा ? उसकी ठीक स्थिति-ठिकाना तो बतलाओ ? वह कर्त्ता कौने ठाममें, कैसे रहता है ? ॥

व्याख्या— असलमें तो देहरूपके सम्बन्ध हुए बिना निराकारमें कुछ भी इच्छा हो ही नहीं सकती है। तैसे ही साकार दृश्यरूप देहादि मौजूद हुए बिना नाम भी सत्य हो नहीं सकता है। बिना रूपके भी कहीं नाम होता है ? कहीं नहीं। यदि होता है कहोगे, तो वह झूठा है। देह बिना किसी बातका बोध भी हो नहीं सकता है, और देहके साकाररूपके बिना सङ्कल्पको करनेवाला निराकार माना हुआ कर्त्ता कहो तो भला ! कौने ठाम वा किस जगहमें बैठकर सङ्कल्प-विकल्परूप इच्छा करता है ? सो बतलाओ ! यह तो असम्भव बात है। अतः निराकारसे इच्छा हो ही नहीं सकती है, ऐसा जानो ! ॥ ४०९ ॥

दोहाः— ताते कल्पित सब भयो ❀ मन माया अरु ब्रह्म ॥
[१६२] ईश गुणन संयुक्त बहु ❀ चारि चौरासी भर्म ॥ ४१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताते कल्पित = } इसवास्ते नरजीवोंसे ही
सब भयो = } कल्पना हुई। तथा कल्पित
वेदादि वाणियोंका सब अनेक सिद्धान्त
नरजीवोंसे ही खड़ा हुआ है।

मन माया = } त्रिगुणरूप सोई मन है, माया
अरु ब्रह्म = } सोई काया है, और ब्रह्म सोई
भ्रम-कल्पना मात्र है ? और—

ईश गुणन = } ज्ञान, श्री, ब्रह्माण्डता, यश,
संयुक्त बहु = } विद्या और बल- ये षट् गुणोंके
ऐश्वर्य संयुक्त जो हो, उसको ईश्वर कहा
है। ऐसे गुणोंके सहित ईश्वर, देवता आदि
बहुत प्रकारसे मानन्दी करनेवाले तो मनुष्य
ही हैं। सो साक्षी दशाके ज्ञान संयुक्त होकर
बहुतलोग विज्ञानवादी हुए।

चारि चौरासी = } वे भ्रमिक लोग चारखानी
भर्म = } चौरासी योनियोंमें ही भ्रमते
रहेंगे। क्योंकि, भ्रमसे ब्रह्मको चौरासी
योनियोंमें ही व्यापक और उसीका कर्त्ता
भी माने हैं॥

व्याख्या— इसलिये तो मैं कहता हूँ कि, मनुष्योंसे कल्पित होकर ही मन, माया और ब्रह्म- इत्यादि सब उत्पन्न हुए हैं; और षट् गुणोंके संयुक्त माना हुआ सर्व शक्तिमान् ईश्वर तथा चारखानी, चौरासी योनियोंका बहुत विस्तार ईश्वरकी सृष्टि हैं, ऐसा कहना- सो सब मिथ्या भ्रम-भूल है। यही तो वाणीका कल्पित पसारा है। इसे न जानकर भ्रमिक लोग चौरासी योनिमें पड़ रहे हैं॥ ४१०॥

दोहाः— रूप मनुष्य प्रथमा अहै ❀ रूपकी झाँईं रूप॥
[१६३] भासेउ दुतिया याहिको ❀ सोहं ब्रह्म स्वरूप॥ ४११॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

रूप मनुष्य = } अतएव चारों खानियोंमें मनुष्य-
प्रथमा अहै = } रूप या मनुष्य देह- यही कर्म-
भूमिका होनेसे प्रथम है। पहला नम्बरमें
मनुष्यरूप है।

रूपकी = } मनुष्यरूपवालेके पुरुषार्थसे ही
झाँईं रूप = } भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना
साधनाएँ हुईं। तहाँ ध्यानादिमें वृत्ति स्थिर
होनेसे जो ज्योति प्रकाश आदि देखा, उसी
झाँईं- रूपको ब्रह्म मानकर गाफिल हो तद्रूप
हो गये।

भासेउ दुतिया = } वह तत्त्वोंका प्रकाश आनन्द
याहिको = } आदि भास, वे ही साधक
मनुष्योंको अपनेसे भिन्न दूसरा ही भास
हुआ वा दिखाई दिया। सो भाससे भासिक
तो न्यारा ही रहा न ?—

सोहं ब्रह्म = } परन्तु, अविवेकी गुरुवालोगोंने
स्वरूप = } तो उसी भासको ही अपना
स्वरूप मान लिये। सो ध्यानसे उठकर
कहने लगे कि- जो मैंने देखा, सो वह प्रकाश
रूप या आनन्दमय ब्रह्म सोई मैं हूँ! वही
ब्रह्मका सत्स्वरूप है! तहाँ द्रष्टा न्यारा
होते हुए भी बिना पारख ऐसे दृश्य
भासको ही अपना स्वरूप मान लिये, सोई
गाफिली है॥

व्याख्या— इसकारणसे संसारमें ज्ञानखानी कर्म-भूमिकारूप मनुष्यरूप ही सबसे प्रथमपद ठहरता है। सो मनुष्यरूपका प्रतिबिम्ब-भास जो है, सोई झाँईं-ब्रह्मकारूप हुआ। परन्तु, झाँईं = प्रतिविम्ब तो शक्तिहीन भासमात्र असत्य होता है। तथापि वही नरजीवको अपनेसे भिन्न दूसरा ही ज्योति आदि परछाँईं दृश्य होकर भास हुआ; फिर उसे ही अविवेकसे 'सोऽहंब्रह्म स्वरूप' मान लिया। अर्थात् 'सो भास ही मेरा ब्रह्म स्वरूप है!' ऐसी कल्पना किया; भ्रमसे उसे ही दृढ़ निश्चय कर लिया। द्रष्टा-दृश्यको तो न्यारा करके परीक्षा नहीं किये। इसीसे महान धोखेमें गरगाफ हो गये। जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ गये; बिना विवेक॥ ४११॥

दोहाः— अनबनी जतन नशायके ❀ कल्पो ब्रह्माकार॥
[१६४] ब्रह्म भये बहु दीर्घ पद ❀ ताते धोखा धार॥ ४१२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अनबनी = जतन = नशायके = वेदादि वाणीके प्रमाणसे पहले तो अनेक प्रकारके यत्न, उपाय, साधनाएँ किये। जब भी कुछ हासिल नहीं हो सका, तब वह सब प्रयत्न-को छोड़करके 'यह जगत् ही भ्रमरूप मिथ्या है' ऐसा कहा। विवेक-विचारको भी नाश कर दिया, ब्रह्म बना; परन्तु, उससे जीवका कोई कल्याण नहीं बना। उसी मानन्दीमें मनुष्य भूल गये।

कल्पो ब्रह्माकार = फिर मनसे कल्पना करके चराचर सबमें परिपूर्ण व्यापक निराकार-निर्गुण एक ब्रह्मको मान लिये। इसप्रकार भ्रम चक्रमें जा करके पड़ गये।

ब्रह्म भये = बहु दीर्घ पद = नरजीव कल्पना करके ऐसे ब्रह्म हुए, तो सर्वव्यापक पूर्ण बड़ा-दीर्घ महान ब्रह्मपदकी मानन्दी दृढ़ किये। परन्तु, बिना विचार बहुत ही बड़े भ्रमिक हुए।

ताते धोखा धार = इसवास्ते मिथ्या धोखेमें पड़कर वाणी कल्पनाको धारण करके, भवधाररूप चौरासी योनियोंकी धारामें ही बह गये; धोखेमें गोता लगाकर डूब गये॥

व्याख्या— अनेक प्रकारके यत्न वा उपाय करके वेद-वेदान्तको बनाये, उसीका श्रवण-मननादि दृढ़ करने लगे। फिर विवेक बुद्धि-विचारको भी नशायके सर्व जगत् ही ब्रह्मरूप है; ऐसे ब्रह्माकारकी कल्पना किये, और उसे निराकार-निर्गुण आकाशवत् व्यापक मान लिये। सो ऐसे ब्रह्म हुए, तो वह बहुत ही दीर्घ = बड़ा, महान पद, विश्वरूप वा विराटरूप सर्वाधिष्ठान आत्मा एक अद्वैतरूपमें मान लिये। परन्तु, वह बात तो निर्णयमें कुछ भी नहीं ठहरती है। इसलिये वह वाणी कल्पनाके धोखाधार ही है। उसी धारामें बहुतेरे लोग गोता खा करके बह गये, और अभी बहुत लोग उसीमें बह-बहके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही चले जा रहे हैं, बिना पारख॥ ४१२॥

दोहाः— रूपहि रूप समोइके ❀ रूपते उतपति रूप॥

[१६५] रूपहि ते पुनि नास्ति है ❀ रूपहि रूप अरूप॥ ४१३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

रूपहि रूप = समोइके = रूप मनुष्यने ही ब्रह्म रूपकी मानन्दी की। फिर कल्पना या अध्यासमें सम्मिलित होकर ध्यान, धारणा, समाधि करने लगे। इसलिये—

रूपते = उतपति रूप = देहरूपमें नाद-बिन्दके संघर्षण-से एक ज्योति-प्रकाश उत्पन्न हुआ। उसीको ब्रह्म वा ईश्वरका स्वरूप मान करके अनेक रूपमें नाना सिद्धान्तोंकी उत्पत्ति किये। अथवा स्त्रीरूपमें अध्यास लगा करके उसी नारीरूपके गर्भमें जाकर, तहाँ नानारूपमें देहको धारण करके पैदा हुए।

रूपहि ते = पुनि नास्ति है = फिर वह कारण ब्रह्मका स्वरूप ही कुछ नहीं है, तो नास्ति-मिथ्या है। सो उसका कार्य कैसे सत्य होगा? अथवा देह ही नाशवान् है, फिर देहके विषयरूप ज्योति, आनन्दादि अविनाशी, सत्य कैसे हो सकेंगे? इसलिये वह विषय सहज ही नास्ति है।

रूपहि = रूप अरूप = इसकारणसे मनुष्यरूप जीव ही रूप-अरूप, ब्रह्म-जगत्, साकार-निराकार, ईश्वर-ब्रह्मकी कल्पना करते हैं, उसे मानते-जानते हैं। और खानी रूप तथा वाणी अरूपके जड़ाध्यासी हो-होकर देह छूटनेपर अदृश्य सूक्ष्म देह सहित चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जा करके जन्म-मरणके चक्रमें पड़ते रहते हैं॥

व्याख्या— जैसे देह रूपवाले नर-नारी विषय भोगोंमें समायके मैथुन किये। जिससे स्त्रीको गर्भ रहा। फिर माताके देहरूपसे अवधि पूर्ण होनेपर योनि द्वारा बालक रूप उत्पन्न होता है। फिर वह बालकका देहरूप भी नाशवान् है। एक दिन मृत्यु होनेपर देहका वह रूप भी नाश होकर पञ्चतत्त्वोंके कारण रूपमें मिल जाता है। फिर पूर्वका देहरूप नाश होके अरूप हो जाता है। किन्तु, जीव अध्यासी होने से चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही फिर चले जाते हैं, और पूर्ववत् आवागमन चक्रमें घूमा

करते हैं। अथवा तैसे ही वाणी भागमें- देहधारी मनुष्यरूप जीवने ही कोई एक कल्पितरूपमें लक्ष्य लगायके वाणीके रूपसे जो उत्पन्न किया, सोई भ्रमरूप ब्रह्मकारूप निश्चय हुआ। और तन-मनके रूपमें लक्ष्य लगाके मानन्दीरूपसे अनेकों सिद्धान्तोंके रूप उत्पन्न किये हैं। और नाद-विन्दके रूपमें कला समायके मनके सूक्ष्म रूपसे ही भीतर ज्योति प्रकाश, आनन्द आदिके सूक्ष्म विषयोंकी रूप-उत्पत्ति किये। किन्तु, उन सबका आधाररूप देह नाशवान् है, और ब्रह्म माना हुआ भ्रमरूप नास्ति है। फिर 'रूप-ही-रूप अरूप' होके नाश हो जायेंगे; सो ब्रह्म कहाँ रहेगा ? कहीं रहनेका ठिकाना नहीं है। इसीसे अध्यासी जीव देह छूटनेपर आवागमनमें ही पड़ते रहते हैं, बिना पारख ॥ ४१३ ॥

दोहाः— हंस स्वतः आनन्दपद ❀ सो मानुष धरि देह ॥
[१६६] ब्रह्म कल्पि जग निर्मयो ❀ चौरासी कियो गेह ॥ ४१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

हंस स्वतः = 'हंस' कहिये चैतन्य जीव, सो
आनन्द पद = स्वयं नित्य, सत्य है। इसके ऊपर कोई ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ता नहीं है। परन्तु, नरजीवने सुखाध्यासी होकर महा आनन्दपद ब्रह्मको मानके उस ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति करनेकी चाहना या इच्छा किये।

सो मानुष = सो हंस, मनुष्य देहधारी जीव
धरि देह = ही है, और कोई हंस नहीं है। दूसरा कहीं हंस होनेकी मिथ्या-कल्पना नहीं करना। सो नरजीव ही पूर्वके शुभ संस्कारसे वर्तमानमें मनुष्यका देह धारण किये हैं। सो यहाँपर जो-जो कर्म करते हैं, उसका संस्कार टिकाते जाते हैं। तदनुसार सुख-दुःखादि फल पाते रहते हैं।

ब्रह्म कल्पि = कोई वेपारखी मनुष्यने जगत्-
जग निर्मयो = को प्रत्यक्ष देखकर कोई जगत्-कर्त्ता ब्रह्मका अनुमान किया। फिर ब्रह्मसे ही यह सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति हुई होगी, ऐसी कल्पना की। और फिर नाना कर्म-अकर्म करते गये, अतएव जड़ाध्यासी बन करके—

चौरासी = वासनानुसार चौरासी
कियो गेह = योनियोंमें नाना देहें धारण किये। ऐसे जीवोंने चौरासी योनियोंमें ही घर किये हैं। अथवा ब्रह्मज्ञानियोंने व्यापक ब्रह्म बनके अपनी स्थितिका गृह चौरासी योनियोंमें ही किये हैं ॥

व्याख्या— मनुष्य देहधारी हंस जीव जो हैं, सो स्वरूपसे स्वतः वा स्वयं नित्य, सत्य, अखण्ड हैं। माना हुआ आनन्दपद सो ब्रह्मका है। जीवके स्वयं स्वरूपमें सुख-दुःखका तो लेश मात्र भी नहीं है, देह सम्बन्धमें ही विषय करके आनन्द और दुःख हुआ करता है। परन्तु, ब्रह्मको स्वयं आनन्द स्वरूप, सच्चिदानन्द माने हैं। तहाँ मनुष्य देह धारण करके भी हंस जीव स्वतः ही निज स्वरूपको भूल करके भ्रमसे गुरुवालोगोंकी वाणी सुन-सुनके सो आनन्दपदकी चाहना किये। फिर वेदान्त वाक्यको श्रवण-मननादि करके कोई एक जगत्कर्त्ता ब्रह्म-परमात्माकी कल्पना किये। फिर कल्पना द्वारा ही उस ब्रह्मसे जगत्रूप चराचरकी इच्छामात्रसे उत्पत्ति होनेको मान लिये। फिर उसी जगत्में ब्रह्मको व्यापक ठहरायके चौरासी योनियोंमें ही निवास करनेका घर बनाये। ऐसे अध्यासी हो करके चौरासी योनियोंके बन्दीगृहमें ही जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं ॥ ४१४ ॥

दोहाः— भूलो अपने रूपको ❀ सो प्रथमा गौ भूल ॥
[१६७] परेहु फन्दा कालके ❀ सहै घनेरी शूल ॥ ४१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

भूलो अपने = इसतरहसे अपने निज चैतन्य
रूपको = सत्य स्वरूपको भूलकर देहके भास-अध्यासरूप ज्योति, आनन्द, शब्द आदि स्थूल-सूक्ष्म विषयरूपको ही अपना रूप समझ करके ब्रह्म आदि मानन्दीमें जीव भूल गये; गाफिल हुए।

सो प्रथमा = } भूलनेकी और सुधार करनेकी
गौ भूल = } जगह तो मनुष्य देह ही है। सो मनुष्य ही प्रथम भास-अध्यासमें निज स्वरूपको भूला। कोई पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंके पञ्च विषयोंमें आसक्त होकर भूल गये हैं।

परेहु फन्दा = } बिना विवेक नरजीव 'काल'
कालके = } कहिये कल्पना, गुरुवा और स्त्रियोंके विषय, धोखा, भ्रमादि खानी-वाणीके महा फन्दा जालोंमें जा करके पड़ गये, उसीमें अरुझे हुए हैं।

सहै घनेरी = } इसलिये अभी अनेकों साधनाएँ
शूल = } मिहनत, उद्योगमें कष्ट, त्रिविधि तापोंका शूल सह रहे हैं। और देह छूटनेपर वासनावश नाना देहें चौरासी योनियोंमें लेकर जन्म, मरण, गर्भवास आदिका महा दुःख सहेंगे या सहते रहते हैं, बिना पारख॥

व्याख्या— ऐसे भ्रम-धोखेमें पड़ करके अपने सत्य चैतन्य स्वरूपको भूल गये। सो प्रथममें मनुष्य जीव ही अपने आपको भूल गये। तहाँ इन्द्रियोंके पञ्च विषयोंको ही स्थूल-सूक्ष्मरूपसे अपना स्वरूप मानकर बड़ीभारी भूलमें पड़ गये। स्वयं स्वरूपको भूलकर भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनामें लग गये। इसीसे कालरूपी मन, कल्पना, गुरुवालोग और स्त्री- इन्हींके महान फन्दा मानन्दी, भ्रम, धोखा और विषयादिमें जा-जाकर पड़ गये वा अरुझ गये, फँस गये। इसीसे घनेरी शूल सहने लगे। त्रयताप, गृहस्थीका दुःख, विरह, वैराग्य, तपस्या आदिका नाना दुःख देह रहे तक नाना तरहसे पाये। और देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जन्म-मरणादिका दुःख, शूल बहुत प्रकारसे सहन किये और सहन कर ही रहे हैं। अतः अभी मनुष्य देहमें ही सो भ्रम-भूलको परख करके मिटा करके जीवन सुधार करना चाहिये॥ ४१५॥

॥ ❀ ॥ १५ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- १५ ॥ खण्ड- २९ ॥ ❀ ॥

दोहाः— हंस स्वतः पद थीर जो * काहे मनुष्य स्वरूप ?॥
[१६८] सो प्रसङ्ग समझायके * कहहु सद्गुरु भूप !॥ ४१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका पन्द्रहवाँ प्रश्न वर्णन करके कहते हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

हंस स्वतः = } हंस चैतन्य जीव जो कि—
पद थीर जो = } निज स्थिरपद वा मुक्तिपद प्राप्त करनेकी भूमिका वा जगहपर था, तो फिर-

काहे मनुष्य = } किसकारणसे मनुष्यने निज
स्वरूप ? = } स्वरूपको भूला? क्यों भूला? स्वरूपज्ञान होनेकी जगह तो मनुष्यदेह ही है। फिर वह भूल-भ्रममें क्यों पड़ गया?-

सो प्रसङ्ग = } सो यह प्रसङ्ग या प्रकरण,
समझायके = } विभागका हिसाब कैसा है? सो मुझे अच्छी तरहसे समझायके वा बुझायके बता दीजिये!—

कहहु = } हे श्रेष्ठ सद्गुरो ! आप सर्व-
सद्गुरु = } ज्ञानियोंमें महाराजाके समान
भूप ! = } सर्व शिरोमणि हो! मुझ गरीबपर दयादृष्टि करके इसके भेद यथार्थ उत्तर देकर निर्णयसे कहिये? यानी हे सद्गुरु महाराज ! सो प्रसङ्ग भी अब समझा करके कहिये !॥

व्याख्या— शिष्य कहता है कि— हे सद्गुरु भूप ! स्वतः हंस चैतन्य जीव जो स्थिर पदवाला है, सो मनुष्य स्वरूपमें है, तो क्यों है ? सो मनुष्य स्वरूपमें ही क्यों ठहरा ? और अपने स्वरूपको उसने क्यों भूला ? आप-ही-आप कैसे भूला ? यह बात यहाँपर मेरे समझनेमें नहीं आयी। इसलिये दया करके अब सो प्रसङ्ग भी यथार्थ समझा करके निर्णयसे कहिये !॥ ४१६॥

॥ ❀ ॥ १५ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १५ ॥ खण्ड- ३० ॥ ❀ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! सुनहु प्रसङ्ग शुभ * भाषौं यथा प्रमान ॥
[१६९] स्वतः अस्ति आनन्द पद * जैसे भयो अयान ॥ ४१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! सुनहु = } हे शिष्य ! यह तुमने
प्रसङ्ग शुभ = } अच्छा प्रश्न किया । यह प्रसङ्गका उत्तर सुनकर भेद जाननेसे सबका शुभ या भला होगा । सो शुभ अवसरमें यह प्रसङ्गका विवरण भी मैं कहता हूँ ! एकाग्र होकर सुनो !—

भाषौं यथा = } यथार्थ निर्णयकर सत्यन्यायसे
प्रमाण = } प्रत्यक्ष प्रमाणसे मैं जो वर्णन करता हूँ वा कहता हूँ, भलीप्रकारसे उसे सुनो !—

स्वतः अस्ति = } चैतन्य जीव तो ज्ञान स्वरूप
आनन्द पद = } स्वयं ही नित्य-सत्य है । परन्तु, देहधारी होनेसे सुखाध्यासी है । इसलिये अति आनन्दरूप ब्रह्मपदको मानकर निजपदको भूला है ।

जैसे भयो = } जैसे सिंहने जलाशयमें अपनी
अयान = } परछाँईं को ही देख करके, क्रोधसे वहीं कूदकर मरा था, तैसे ही जिसप्रकारसे जीव अज्ञानी हुए, मोहमें पड़े हैं, सो भेद भी अब सुनो ! बिना पारख जीव सब भूले हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! जो बात अभी तुमने पूछा है, सो शुभ प्रसङ्ग भी जैसा है, वैसा यथार्थ प्रमाणसे वर्णन करके निर्णयसे कहता हूँ ! सो अब तुम ध्यानपूर्वक सुनो ! स्वतः अस्ति = सत्य चैतन्य जीव आनन्दरूपी ब्रह्मपदमें लगके प्रथम जैसे अज्ञान ग्रसित हुआ, जिस तरह महामोह अज्ञान-अविद्यामें लगकर अपनेको भूला, सो भेद सुनो ! ॥ ४१७ ॥

दोहाः— धीर आदि सब तत्त्वता * याके थे सब पास ॥
[१७०] प्रतिबिम्बित झाँईं लखी * अस्ति कियो तहाँ बास ॥ ४१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

धीर आदि = } धैर्य, दया, शील, विचार,
सब तत्त्वता = } सत्य आदि सब शुद्ध तत्त्वोंके गुण-लक्षण स्वभाव हंसदेहके रहनी-सत्सङ्ग इत्यादि—

याके थे = } इस नरजीवके समीप या आस-
सब पास = } पासमें ही थे । यानी साधनका धामरूप मुक्तिका द्वार होनेसे इसके आस-पासमें ही सद्गुण भी सब मौजूद थे । सत्सङ्ग भी था । परन्तु, उसको ग्रहण ही नहीं किया । यदि कभी कुछ गुणको लिया भी तो अभिमान धारण किया । और—

प्रतिबिम्बित = } कोईने ध्यान लगाये, तो
झाँईं लखी = } परछाँईं रूप तेज तत्त्वका ज्योति प्रकाश देखे, उसको ही ब्रह्म माने । कोईने स्त्रीकी सुन्दरता देखकर उसपर ही मोहित-आसक्त हुए ।

अस्ति कियो = } तब चैतन्य जीव अपने
तहाँ बास = } सत्स्वरूपकी स्थिति छोड़कर तहाँ ब्रह्मानन्द और विषयानन्दमें दृढ़तासे निवास किये । यानी वासनाको वहीं शून्यमें या भग-भोगमें दृढ़ किये ॥

व्याख्या— वैसे बाह्य ब्रह्माण्डमें पाँच जड़ तत्त्व और अनन्त देहधारी चैतन्य जीव सर्वदासे नित्य, सत्य, स्वयं अनादि हैं । यह बातको तो अच्छी तरहसे तुम समझ रखना कि, जगत्कर्त्ता कोई ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ झूठा है । अनादि वस्तुका कर्त्ता कोई नहीं होता है, यह जानना । और याके = यही मनुष्यरूप हंसजीवके पासमें ज्ञान खानी, कर्मभूमिका होनेसे प्रथमके शुभ संस्कारके बलसे धैर्य, दया आदि सब शुद्ध तत्त्व-प्रकृति सद्गुण विशेष करके आस-पासमें थे वा हृदयमें ही धारण होके टिके थे । समय पायके, एक समय सोई सद्गुण-रहनी प्रतिबिम्ब वा परछाँईं की नाईं सन्मुखमें झाँईं होकर लखनेमें आई । मनमें प्रफुल्लता, हर्षातिरेकसे आनन्द भास हुआ । तब उसीमें अस्ति चैतन्य जीवने अपना बासा कायम किया । यानी झाँईं लखकर मग्न होकर जीव झाँईं में ही ठहर गया; अपनेको भूल गया । अथवा किसीने स्त्रीकी सुन्दरताको देखकर, उसीमें सुख मानकर विषयोंमें निवास किया ॥ ४१८ ॥

दोहाः— करत बास तहाँ अस्तिके * हन्ता भई प्रकाश ॥
[१७१] दर्पण देखै प्राणि जिमि * जथा अहन्ता भास ॥ ४१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं — हे शिष्य !
करत बास = } तहाँ विजातीय विषय या
तहाँ अस्तिके = } ब्रह्मके आनन्दमें वासना दृढ़ कर निवास करनेसे अस्ति चैतन्य जीव-की स्थिति छूट गई। और अन्तःकरणमें—
हन्ता भई = } नरजीवोंको सूक्ष्म अहङ्कार
प्रकाश = } हुआ, उसीसे स्थूल देहाभिमान भी प्रकाश या प्रगट होने लगा।
दर्पण देखै = } तो तैसे दर्पण या शीशा देख
प्राणि जिमि = } कर मनुष्यादि प्राणी अपने देहके रूप-मुख आदि अङ्ग देखकर दङ्ग मोहित, प्रसन्न हो जाते हैं।
जथा अहन्ता भास = तैसे ही तत्त्वोंके प्रकाश, तत्त्वोंके भास, आनन्दादि देखकर या मालूम करके तदाकार वृत्तिसे उसी भासादिको निज स्वरूप मानकर मनसे सूक्ष्म अहङ्कार का भास या अध्यास जमा लिये हैं ॥

व्याख्या— जैसे मनुष्य प्राणी दर्पण देखकर उसमें अपने मुख आदि अङ्गकी छवि वा परछाँईं को देखकर मग्न होते हैं। तब 'मैं सुन्दर हूँ, रूपवान् हूँ, अच्छा हूँ' ऐसी भावनाकी सूक्ष्म अहन्ता-ममता भासती है। तैसे ही सिद्धान्तमें भी झाँईं रूपी आनन्दमें निवास करते ही, तहाँपर अस्ति चैतन्य जीवके मनमें एक प्रकारकी हन्ता प्रकाश हुई कि, "मैं सुखरूप ब्रह्म हूँ! जगत् मेरा ही विलास है, मैं सर्वाधिष्ठान आत्मा हूँ" ऐसे अहङ्कार अन्तःकरणमें भासा। और दर्पणवत् हृदयमें अपनी स्थिरवृत्ति सद्गुणकी छबिको देखके फिर कल्पना किया कि, "मैं ही सबका कर्त्ता ब्रह्म हूँ!" अथवा किसीने वेद-वेदान्तकी वाणीको दर्पणकी जगहमें देखकर फिर परोक्षमें-'जमीनसे आशमान तक भरा हुआ व्यापक ब्रह्म मैं हूँ!' ऐसे अहङ्कारके भासको दृढ़ किया। सो दोनों तरहसे धोखेमें पड़ करके भूल गये हैं। अथवा खानीमें— स्त्रीके भोगमें बास करते ही पुरुषके मनमें अहङ्कारका प्रकाश हुआ। फिर दर्पणवत् दूसरेरूपमें सन्तानोंको देखकर, माया-मोहमें आसक्त होकर अहन्ता-ममता, भास-अध्यासके वशीभूत बद्ध हो गये, तो वे आवागमनके चक्रमें ही पड़ गये ॥ ४१९ ॥

दोहाः— सोहं ब्रह्माकार भौ * ब्रह्म कल्पि मन माया ॥
[१७२] माया मनते सब भयो * कल्पि कल्पि बहु पाया ॥ ४२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
सोहं ब्रह्माकार भौ = फिर सो वही आनन्द स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ! ऐसा अहङ्कार दृढ़ हुआ; वही बढ़ते-बढ़ते चराचरमें पूर्ण व्यापक ब्रह्माकारका 'सोहं' मानन्दी किया, सो ब्रह्म अहङ्कारसे जगत्रूप ही हो गया। इसप्रकारसे—
ब्रह्म कल्पि = } पहले ब्रह्मकी कल्पना किया।
मन माया = } फिर ब्रह्मसे इच्छारूपी मायाकी उत्पत्ति होकर मायासे त्रिगुणरूप मनकी उत्पत्ति माने हैं। यानी मन-मायासे ही ब्रह्मकी कल्पना किये हैं।
माया मनते = } फिर तो माया और मनके
सब भयो = } सम्बन्धसे सब कल्पना-अनुमानकी वाणी वेदादिकी उत्पत्ति हुई। तथा स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धसे सब सन्तानों-की उत्पत्ति हो ही रही है। सारा जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मसे हुई, ऐसा माने हैं।
कल्पि कल्पि = } ऐसे अनेकों कल्पना कर-करके
बहु पाया = } बहुतेक नरजीवोंने धोखा पाये; अनेकों सिद्धान्त कायम किये, उसे माने। तहाँ कहीं भी स्थिति नहीं पाये। जड़ाध्यास-से बहुतेक जीव चौरासी योनियोंमें ही चले गये और वहाँपर दुःख ही पा रहे हैं ॥

व्याख्या— इसप्रकारसे भ्रमिक जीव अपने-आपको भूलकर 'सोहं' ब्रह्माकार हुआ, ब्रह्मकी कल्पनासे मन-मायाका प्रगट होना बतलाया। फिर उसी माया, मन और ब्रह्म- इन त्रिपुटीके मिलापसे

सब जगत्‌की उत्पत्ति हुई। ऐसा मानकर कल्पि-कल्पिके, तहाँपर बहुत ही धोखा पाया। भव-बन्धनमें ही वह अरुझ गया। आवागमनमें गोता लगाया; बिना पारख ऐसी वाणी-कल्पना कर-करके बहुतसे ग्रन्थ-पन्थादि उत्पन्न किये हैं, उसीमें सब भूल रहे हैं ॥ ४२० ॥

दोहाः— हे शिष्य! हंसा मनुष्यपद * रूप भरमते जान ॥
[१७३] अस्ति नास्ति मिलत ही * भयो सृष्टि निर्मान ॥ ४२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! हंसा = हे शिष्य! चैतन्य जीवको मनुष्यपद = मनुष्यपदमें ही स्थिति मिल सकती है। हंसपद या मनुष्यपद कहना दो बात नहीं है, वह एक ही बात है। हंस-पदसे ही निजपद पारखका बोध होता है। और—

रूप भरम = भ्रमसे ही ब्रह्मरूपकी कल्पना ते जान = किया या ज्योति आदि रूपको जो ईश्वर माना, सो भ्रम ही है। ऐसा तू जान करके परखले!

अस्ति नास्ति = अस्ति जीव है, नास्ति ब्रह्म, मिलत ही = ईश्वरादि कल्पना है, तथा नाशवान् विषयोंमें तदाकार होके सम्मिलित या मिश्रित होनेसे ही अनेक प्रकारके विचित्र बहुत रूपमें—

भयो सृष्टि = जगत् सृष्टि होकर चौरासी निमान = योनियोंका निर्माण या उत्पत्ति हो गयी है। तथा संसारमें अनेकों वेद, कुरानादिकी वाणी, नाना सिद्धान्त भ्रमिक मनुष्योंसे ही रचना होकर उत्पन्न हुई हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य! इसप्रकार हंसजीवके मनुष्यपदसे ही भ्रमसे एक ब्रह्मकी अनुमान-कल्पना हुई है, सो जानो। क्योंकि, मनुष्य देह ही कर्मभूमिका ज्ञानखानी है। इसीसे कल्पितरूपको ही भ्रमसे अपना रूप जाना वा मान लिया। तहाँ अस्ति = चैतन्य जीव, नास्ति = मन-मानन्दीसे ब्रह्म आदिमें मिलते ही जीवकी सत्ता पायके नाना प्रकारसे वाणी और खानीकी सृष्टिका निर्माण हुआ वा अनेक मत-पन्थ आदि उत्पन्न हुए। उसीमें सब भ्रमिक हो करके फँस गये, बिना विवेक ॥४२१॥

दोहाः— कल्पित झाँईं मा बसो * झाँईं सोई ब्रह्म ॥
[१७४] कल्पित सोई कल्पना * जगतको भयो आरम्भ ॥ ४२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कल्पित = नरजीव ही निज कल्पित ब्रह्म झाँईं मा बसो = झाँईं रूप प्रकाश, आनन्द, गाफिली विषयादिमें मन टिका करके निवास किया या वासनासे वहीं स्थिति कायम किया, तहाँ गरगाफ हो गया।

झाँईं सोई ब्रह्म = उसी गाफिलीरूप शून्य वृत्ति-को वा प्रकाश आदिको ब्रह्म माने हैं। सोई झाँईं तो ब्रह्मरूप भ्रम है। आदिकी भूल, स्वरूपका अज्ञान, महान बन्धन भी वही है। उसी झाँईं में जीव गरगाफ होकर पड़े हैं।

कल्पित सोई = ब्रह्म-ईश्वरादि सो सब नर-कल्पना = जीवोंकी मिथ्या कल्पना है। परन्तु, कल्पित वेदादि वाणीके प्रमाणसे सोई ब्रह्मसे ही जगत्-सृष्टिकी उपत्ति हुई, यही कल्पना दृढ़ किये और करा रहे हैं।

जगतको = गुरुवालोग कहते हैं कि, ब्रह्म भयो आरम्भ = या ईश्वरसे ही यह सारा जगत्‌की उत्पत्ति प्रथमारम्भमें हुई। उसी-की इच्छासे प्रलय भी होगा। ऐसी-ऐसी मिथ्या मानन्दी कर फिर उसी अध्यासवश ही जीव जन्म-मरणादिमें पड़े हुए दुःखी हुए और दुःखी हो रहे हैं॥

व्याख्या— मनुष्य जीव ही भ्रमसे अपने कल्पितरूप झाँईं में जाकर निवास वा स्थिति किया। और सोई झाँईं को ही ब्रह्म कहा। जो मनुष्योंसे ब्रह्म कल्पित हुआ, इसीसे सो झाँईं रूप ब्रह्म मनकी मिथ्या कल्पना है। उसी ब्रह्मसे जगत्‌का आरम्भ होना माने हैं। परन्तु, वह जगत्-उत्पत्तिका कथन

तो असत्य है। उसी अध्याससे जीवोंका चारखानीमें ज=जन्मना, गत=मृत्यु होके चले जाना, ऐसे आवागमनका आरम्भ और परिणाम हुआ वा होता है, और अध्यासरहेतक होता ही रहेगा ॥ ४२२ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! हंसा मनुष्य तन * ऐसे लह्यो तू जान ! ॥
[१७५] जैसे मद्यपी मद बसी * कियो अपनो बेभान ॥ ४२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! हंसा = हे शिष्य ! चैतन्य जीव मनुष्य तन = शुद्ध शुभ संस्कार उदय होनेसे ही चौरासी योनियोंके भ्रमणासे छूटकर यह मनुष्य देहको पाते हैं। फिर यहाँ जैसा-जैसा कर्म करते हैं, तैसा-तैसा फल चौरासी योनियोंमें जा-जाकर भोगते हैं।

ऐसे लह्यो = इसप्रकारसे मनुष्य खानीसे तू जान ! = चौरासी योनियोंमें जाकर फिर शुभ संस्कार सन्मुख होनेसे मनुष्य शरीरमें जीव आते हैं। ऐसा तुम विवेक करके जान लो !

जैसे मद्यपी = जैसे शराबी आदमी शराब पी-
मद बसी = करके उसके नशामें बेहोश होता जाता है, तो बकता-झकता गिरता-पड़ता हुआ दुर्दशाको प्राप्त होता है। तैसे ही—

कियो अपनो = जड़ाध्यासी नरजीव खानी-
बेभान = वाणीके मद्य पी-पीकर अष्ट मदोंमें उन्मत्त होकर विषयानन्द-ब्रह्मानन्द या प्रकाशमें मस्त, गाफिल, बेहोश हो जाते हैं। निज स्वरूपका भान ही नहीं होता है, उसी अध्याससे बारम्बार चौरासी योनियों-में पड़ते जाते हैं। बिना पारखके जीवकी स्थिति ही नहीं होती है ॥

व्याख्या— जैसे मद्यपी=मदिरा पीनेवाला अपनी खुशीसे शराबको पी-पीकर, फिर मदिराके मद=नशाके वशीभूत हो करके बेहोश हो जाते हैं, तो अपने तनोवदनकी सुधि भी उन्हें नहीं रहती है; बेभान-अचेत पड़े रहते हैं। सद्गुरुने कहा हैः—

"जैसे मदपी गाँठि अर्थ दै। घरहु कि अकिल गमाई हो ! ॥ ३ ॥
स्वादे बोद्र भरे धौं कैसे ? ओसै प्यास न जाई हो ! ॥ ४ ॥"— बीजक, कहरा-६ ॥

ऐसे अपने ही कर्त्तव्यसे अपने ही होशको बेभान किये वा करते हैं। तैसे ही नरजीवने भी वाणी-खानीके मद्य पीकर भ्रम-भूलसे अपने स्वरूपको बेभान किया, विस्मृत हुआ, जड़ाध्यासी बना। हे शिष्य ! हंस जीवने ऐसे मनुष्य शरीरमें निज रूपको भूलकर नाना अध्यास-वासनाको हृदयमें जमा कर लिया। इसीसे चारखानीमें जा-जाकर देह धारण किया। फिर संस्कार उदय होनेपर जीव कर्म करनेके लिये उलटकर मनुष्य खानीमें ही चले आते हैं। ऐसे जीवोंने मनुष्य तनको पाये हैं, सो तुम विचार करके जानो ! और इसी नर देहमें सब अध्यासोंको परख करके मिटाओ, जिससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा, सो जान लो ! ॥ ४२३ ॥

॥ ❀ ॥ १६ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- १६ ॥ खण्ड- ३१ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— साहेब ! स्वतः प्रकाश * दीनबन्धु करुणा भवन ॥
[१७] कैसेहि हंसन भास * झाँई मा वासा कियो ॥ ४२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर शिष्यका सोलहवाँ शङ्कारूप प्रश्न वर्णन करके कहते हैं—

शिष्य कहता है—

साहेब ! स्वतः = स्वयं स्वरूप चैतन्य बोध
प्रकाश = पारखके प्रकाशकर्त्ता हे सद्गुरु साहेब ! आप सर्वश्रेष्ठ ज्ञान शिरोमणि हो ! और—

दीनबन्धु = सगे भाईके समान हम सरीखे
करुणा भवन = दीन-गरीब जीवोंके दुःखोंको मिटानेवाले हे दीनबन्धु ! आप तो करुणा या दयाके राज-महलके समान सुखदायी

महान पुरुष हो! अथवा करुणा भवनमें आप विराजमान हो!

कैसेहि = हंसन भास = } स्वयं चैतन्य जीवको किस प्रकारसे आभासरूप प्रतिबिम्ब या झाँईं का भास खड़ा हुआ? दूसरा ब्रह्म-की भावना तो भी कैसे हो गयी?—

झाँईं मा = बासा कियो = } सो झाँईं रूप गाफिलीमें बासा कैसे किया? जिस कारणसे हंस जीवने झाँईं में बासा किया, सो कारण बतला दीजिये! ॥

व्याख्या— शिष्य कहता है— हे स्वतः पारख प्रकाश करनेवाले सद्गुरु साहेब! आप करुणा-के सुखदायी भवनवत् तथा दीनबन्धु सद्गुरु हो! आपने जो बात समझाये हो, उसमें मैं पूरा भेद अभी ठीकसे समझ नहीं सका हूँ! इसीसे शङ्कारूपमें प्रश्न प्रगट करता हूँ! सो यह है कि- हंस जीवोंको कैसे करके झाँईं का भास हुआ? और झाँईं को ही अपना स्वरूप निश्चय करके कैसे हंस झाँईं में जा करके बासा किया? सो बतला दीजिये! ॥ ४२४ ॥

सोरठाः— झाँईं याही केर ❀ तन बिनु झाँईं होत नहीं ॥
[१८] तन सो कौन प्रभु! तोर? ❀ जब कछु नहीं तब कल्प कस?॥ ४२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो!

झाँईं याही केर = झाँईं, मानन्दी, गाफिली तो यही हंस जीवका ही हुआ। जीव झाँईं में भूला, ऐसा आपने कहा है। अकेले स्वरूप-मात्रमें तो भूल नहीं होती है, और—

तन बिनु = झाँईं होत नहीं = } शरीर सम्बन्धके बिना झाँईं रूप प्रतिबिम्बमें पड़ना, गाफिल होना भी नहीं होता है या बिना देहके झाँईं तो हो नहीं सकती है; यह निश्चय है।

तन सो कौन = प्रभु! तोर? = } तब तो हे प्रभो! उस हंसका भी वास्तविक शरीर होना चाहिये, सो उस हंसका श्रेष्ठ शरीर कौन था? अथवा हे प्रभो! प्रथम आपका देह कौन था? यदि आप कहें कि—

जब कछु नहीं = तब कल्प कस? = } हंस विदेह था, तो और यह शङ्का होगी कि, जब हंसके पासमें देहादि कुछ सामग्री ही नहीं थी, तब कल्पना कैसे हुई? सो कहिये! ॥

व्याख्या— 'झाँईं यही हंस जीवकी है,' ऐसा आपने कहा है, फिर शरीरके बिना तो झाँईं प्रगट हो ही नहीं सकता है, प्रतिबिम्ब, सुन्दरता, गाफिली, इत्यादि वही झाँईं का रूप है। सो देह सम्बन्धमें ही होता है, देह रहितमें वह विकार हो ही नहीं सकता है; जब देहादि विकार कुछ नहीं था वा कुछ नहीं रहेगा, तब कल्पना कैसे होगी? देह रहित जीवसे कैसे कल्पना हुई? हे प्रभो! सो आपका शुद्ध शरीर कौन-कहाँपर है? सो उसे कैसे जानना? अथवा हंसजीवका वह आदिका देह कौन है? जिससे वह झाँईं में पड़ा। हे सद्गुरो! यह संशयको आप यथार्थ परखाकर तोड़ दीजिये! ॥४२५॥

सोरठाः— कहिये दीनदयाल! ❀ याके उत्तर यथा विधि ॥
[१९] हरहु कठिन उरसाल ❀ निर्णय कहहु यथार्थ शुभ ॥ ४२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

कहिये दीनदयाल!= यह शङ्काका समाधान भी दया करके कहिये! हे दीनदयालु सद्गुरो!

याके उत्तर = यथा विधि = } यथार्थ निर्णयसे जैसा हो, वैसा ही उत्तर विधिपूर्वक मेरी शङ्काको निवारण करनेके लिये कहिये! बतलाइये! और—

हरहु कठिन उरसाल = शूलकी नाईं चुभनेवाली हृदयमें दुःख वा कष्ट देनेवाली यह कठिन शङ्काको समाधान द्वारा हरण करके मिटाइये! तथा—

निर्णय कहहु = यथार्थ शुभ = } कल्याणकारी यथार्थ सत्य निर्णयको मेरे प्रति दया करके कहिये! हे प्रभो! आप हमारे मङ्गलकारी हो! ॥

व्याख्या— हे दीनदयालु ! इसका उत्तर यथार्थ जैसे हो तैसे ही निर्णयसे समझा करके विधिपूर्वक कहिये ! और मेरे हृदयमें चुभनेवाली, शूल वा काँटाकी नाईं यह कठिन पीड़ा देनेवाली सन्देहरूप शङ्काको समाधानसे निकाल करके दुःखको हरण कर दीजिये ! यथार्थ गुरुमुख वाणीसे शुभ मङ्गल करनेवाला सत्य निर्णयको कृपा करके कहिये ! ॥ ४२६ ॥

॥ ❀ ॥ १६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १६ ॥ खण्ड- ३२ ॥ चौपाई भाग- १४ ॥ ❀ ॥

१. हे शिष्य ! सुमति यथार्थ सुनीजे ! * याके उत्तर चित्त महँ दीजे ॥ ४२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! सुमति = यथार्थ सुनीजे ! = } शुद्धमति या श्रेष्ठ बुद्धि-वाले हे जिज्ञासु शिष्य ! यथार्थ सत्य निर्णयकी गुरुमुख वाणीको ध्यान पूर्वक श्रवण कर लो !

याके उत्तर = यह जो तुमने प्रश्न किया है, उसीका उत्तर सत्यन्यायसे मैं अब कहता हूँ—

चित्त महँ दीजे = मेरे शब्दमें चित्त लगा दीजिये ! यानी इसका उत्तर जो मैं देता हूँ, उसको चित्तमें ठहराकर ग्रहण करके मनन कर लीजिये ! और चञ्चलताको छोड़ ही दीजिये ! ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले — हे सुबुद्धि शिष्य ! इसका उत्तर मैं यथार्थ ही कहता हूँ ! सो उसे तुम चित्त लगा करके सुनो ! और यथार्थ निर्णयको चित्तमें टिका करके धारण करो, तभी तुम्हारे सब सन्देह, अबोध निवृत्त हो जायेंगे ॥ ४२७ ॥

२. हंस स्वतः पद नहिं कछु लेशा * हंसन देह न गेह कलेशा ॥ ४२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

हंस स्वतः = पद नहिं = कछु लेशा = } चैतन्य जीव तो स्वयं स्वरूप ही है। जीव किसीका कार्य-कारण नहीं है। किसीने हंसको नहीं बनाया है, तो कोई उसे बिगाड़ भी नहीं सकते हैं। यदि निजपदमें स्थिर होवे, तो फिर बन्धनोंका लेशमात्र भी विकार नहीं रहेगा। जड़ विकारके तो कुछ लेश भर भी हंस स्वरूपमें नहीं है। सो पारखी सन्तमें कल्पनाका कुछ लेश भी नहीं रहता है।

हंसन देह = न गेह कलेशा = } हंसदेहका गुण-लक्षण पूर्णतासे धारण करनेपर नरजीवोंको शरीर, घर, धनादिमें ममता-मोहजनित कष्ट-क्लेश सब नाश हो जाते हैं। इसलिये देह-गेहकी जड़ासक्ति उनमें रहती ही नहीं है, तो उसके दुःख-क्लेश भी वे नहीं मानते हैं। अथवा हंस जीवके स्वरूपमें कोई जड़देह घर आदि नहीं है। इससे उनके सम्बन्धसे होनेवाला क्लेश भी चैतन्य स्वरूपमें नहीं है ॥

व्याख्या— हंस जीवका चैतन्यपद वा स्वरूप तो स्वतः नित्य, सत्य, अखण्ड, एकरस ही है। और चैतन्य स्वरूपमें विकारका कुछ लेशमात्र भी नहीं है; और वह किसीमें चिपका हुआ लिप्त भी नहीं है। जीव तो जड़के स्वरूपसे सदा न्यारा ही है। जीवोंके सत् स्वरूपमें जड़ देहकी स्थिति नहीं है। और जड़तत्त्व निर्मित देह सो चैतन्यका स्वरूप नहीं है। जीवका कोई विशेष वासस्थानरूप घर भी नहीं है। इसलिये जीवके स्वरूप मात्रमें पञ्चक्लेश आदिके दुःख, कष्टकी जगह भी नहीं है। चैतन्य जीवका तो शुद्ध ज्ञान स्वरूपमात्र है ॥ ४२८ ॥

३. आदि अस्तिपद थीर यथारथ * निर्णयरूप प्रकाश प्रकाशक ॥ ४२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

आदि अस्तिपद = थीर यथारथ = } सर्व खानी-वाणीके आदि सब सिद्धान्तके प्रगट कर्त्ता नरजीव हैं। सो स्व-स्वरूपसे सत्य, अविनाशी, अचल ही हैं। निजपदमें स्थिर न होनेसे ही आवागमनोंमें पड़े हैं। और जब निजपदमें स्थिर हो जाते हैं, तब यथार्थ ही बन्धनसे रहित हो जाते हैं। यथार्थमें अचलपद जीवका है।

निर्णयरूप = प्रकाश प्रकाशक = } सबरूप, सर्वसिद्धान्त, सब वस्तुका जनैया, ज्ञानस्वरूपी प्रकाश, जड़ देहादिके प्रकाशी,

ऐसे निर्णयसे जीवका ही स्वयं स्वरूप ठहरता है। सो पारखी सद्गुरुने पारखका प्रकाश करके जड़-चैतन्यका भेद स्वरूप न्यारा-न्यारा निर्णय करके बतलाये हैं॥

व्याख्या— अर्थात् यहाँ जगत् अनादि है, और मुक्त जीव किसी कारणसे भी बन्धनमें पड़ नहीं सकते हैं; यह निश्चय है। इसलिये अनादिसे अनन्त जीव अध्यासयुक्त देह-बन्धनोंमें पड़े ही हुए हैं। आवागमनका प्रवाह लगा ही हुआ है। और आदिकालरूप मनुष्य देहमें आये हुए कोई शुभ संस्कारी जीव ज्ञानी पुरुष अस्तिपद=जीवके निज चैतन्य सत्यपदमें यथार्थरूपसे स्थिर हुए। सोई निर्णयरूपसे ज्ञान प्रकाशको प्रकाश करनेवाले प्रकाशक ज्ञानी हुए। कोई बिरले ही प्रथम ऐसे शुभ संस्कारी पुरुष हो गये॥ ४२९॥

४. धीरज आदि तत्त्व तेहि सङ्गा ❀ अहै प्रकाश विहार सुसङ्गा॥ ४३०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

धीरज आदि तत्त्व तेहि सङ्गा= नरदेहमें जीव धैर्य, दया, सत्यादि सद्गुण शुद्ध तत्त्वादि प्राप्त करनेकी जगहमें है। उसके सङ्गमें सब सद्गुण रहते हैं। और—

अहै प्रकाश= ज्ञानप्रकाशी तो स्वयं जीव ही है। उसका सत्यबोध सत्य निर्णयका प्रकाश करनेवाले पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग भी संसारमें मौजूद है।

विहार सुसङ्गा= जो कोई सत्सङ्गमें विहार वा रमण करते हैं, तो उनके हृदयमें सत्यबोधका प्रकाश हो जाता है॥

व्याख्या— हंसरूप मनुष्य देहधारी जीवके साथमें पूर्वके ज्ञान संस्कारके प्रतापसे धीरज, दया, शील आदि शुद्ध तत्त्वके शुद्ध स्वभाव उनके सङ्गमें रहा। और बाहर सुसङ्ग, सज्जनोंके सङ्ग-साथमें रहके सत्सङ्ग-विचार करते रहनेसे उनका हृदयमें भी साफ प्रकाश होता रहा। अथवा शुभ सत्सङ्ग-के विहारमें लगे रहनेसे ज्ञानका ही प्रकाश उनमें रहता है। ज्ञानवान् पुरुषोंमें ऐसा शुभ सद्गुण-लक्षणयुक्त अच्छे स्वभाव शुद्ध रहनीकी धारणा होती है॥ ४३०॥

५. भास प्रकाश बिम्ब अनुकूला ❀ रूप भासते झाँईं भूला॥ ४३१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

भास प्रकाश= नरदेहके सर्वाङ्ग अवयवकी

बिम्ब अनुकूला= पूर्णतासे जीवको सुभीता या अनुकूलता हुई। पाँचों विषयोंको ग्रहण करनेमें आशानी वा सहज हुआ, तो देहादिकी सुन्दरताका तथा ध्यानादिमें मानन्दितरूपके ज्योति-प्रकाशका भास प्रकाशित हुआ।

रूप भासते= फिर रूपवान् पदार्थ और

झाँईं भूला= नारीका रूप बाहरमें और ज्योति आदि स्वरूप भीतरमें भास होते ही उसको देखकर पुरुष मगन-मस्त हो गये। उसी झाँईं=गाफिलीमें अपने स्वरूपको जीव भूले या भूल गये॥

व्याख्या— ऊपर कहे हुए मुताबिक बिम्बरूप नरदेहमें धैर्यादि शुद्ध गुणकी अनुकूलतासे आनन्दमग्न-मस्तीरूप भास तहाँ प्रकाश वा प्रगट हुआ। ऐसे अपने देहरूपके जड़भाससे झाँईं= गाफिली हुई। उसीमें तभी जीवने अपने आपको एकदम भूला। स्वरूपकी स्मृति जाती रही। सन्मुख भासमें वृत्ति एकाग्र होकर तदाकार हो गई। आदिमें ऐसे ही भूल हो गई॥ ४३१॥

६. स्वतः थीर पद झाँईं बासा ❀ भयो प्रत्यक्ष तहाँ फुरि आशा॥ ४३२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

स्वतः थीर पद= इसप्रकारसे स्वयं चैतन्य

झाँईं बासा= जीव अचल मुक्तपद प्राप्त करनेकी जगह नरदेहमें होकर भी पारखबोध न होनेसे शून्यवृत्तिमें गाफिल, विषयोंमें मोहित होनेसे झाँईं में निवास किया, भ्रममें स्थिति किया; कहीं ब्रह्म बना।

भयो प्रत्यक्ष= शून्यवृत्ति छूट करके जब

तहाँ फुरि आशा= जाग्रत् हुआ, होशमें

आया, तब प्रत्यक्ष जगत्में विषयादि नाना पदार्थ देखकर तहाँ उन्हींके अन्तःकरणमें उसको भोगनेकी आसक्ति, वासना, इच्छा, स्फुरणाकी आशा उत्पन्न हुई ॥

व्याख्या— तब जीव स्वतः ही स्थिरपदसे नीचे उतर करके झाँई, गाफिलीके आनन्दमें बासा किया। वही झाँई मुक्ति-स्थितिका विनाशक हुई। फिर कुछ काल तक शून्य बेभान रहनेके पश्चात् तहाँ स्फुरणा वा इच्छा प्रगट हुई। और सोई स्फुरणा आशारूपमें बदलकर हृदयमें आके प्रत्यक्ष हुई। तब तो वृत्ति बहुत ही चञ्चल हो गई। किसी तरह भी आनन्द प्राप्त करनेकी चाहना बलिष्ठ हुई। फिर बाह्य विषयोंको प्रत्यक्ष ग्रहण करके तदासक्त होकर भूले ॥ ४३२ ॥

७. आशा कोहं कल्पना भयऊ ❀ होत ज्ञान मन इच्छा ठयऊ ॥ ४३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

आशा कोहं = कल्पना भयऊ = } फिर उस आसक्ति-आशाके वश होनेसे मनमें सन्देह हुआ कि, 'मैं कौन हूँ? यह जगत् क्या है? कैसे उत्पन्न हुआ?' फिर कल्पनासे कुछ-का-कुछ ठहरा लिया। उसी कल्पनामें ही भ्रमिक हो गया। और—

होत ज्ञान मन = इच्छा ठयऊ = } 'मैं ब्रह्म हूँ!' ऐसी कल्पनासे ज्ञान होते ही जो कुछ पूर्वका वासना-अध्यास मनमें ठहरा था, सो नाना इच्छारूपमें प्रगट होने लगा; सुख भोगकी चाहनाएँ प्रगट हुईं ॥

व्याख्या— फिर उसी स्फुरणाकी आशासे 'कोहं' ऐसी कल्पना हो गयी। और 'मैं ब्रह्म हूँ'! ऐसा ज्ञान होते ही मनमें इच्छा ठहर गयी। 'मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ' यही ज्ञान हुआ। जिससे मनमें और भी इच्छा उठके खड़ी हुई। वही ब्रह्म ही इच्छा उठनेका स्थान ठहरा ॥ ४३३ ॥

८. इच्छाशक्ति सो माया नामा ❀ माया मध्य सो मनको धामा ॥ ४३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

इच्छाशक्ति = सो माया नामा = } उसी इच्छारूप सूक्ष्म शक्तिका नाम ही माया है। सो उसीको ही आदिमाया, इच्छाशक्ति, आदिशक्ति, जगत्कर्त्री नामसे कहते हैं। वह ब्रह्मकी शक्ति मानी गई है। और—

माया मध्य सो = मनको धामा = } मायाके बीचमें मनका घर बनाया है। यानी सोई माया-रूप कायाके मध्य भागरूप अन्तःकरणमें मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारके घेराके घर बने हैं। हृदयमें ही सब प्रकारकी मानन्दी, चिन्तनादि होते रहते हैं ॥

व्याख्या— सोई इच्छाशक्तिका नाम माया हुआ। उसे कोई महामाया-मूलप्रकृति भी कहते हैं। उसी माया-प्रकृतिसे निर्मित कायाके मध्यमें मन-मानन्दी ठहरनेका धाम बना है। अन्तःकरणमें मनका वासस्थान है। वहीं मायाके मध्यमें मनका धाम कहलाता है ॥ ४३४ ॥

९. मन माया दोउ युक्ति विचारी ❀ कर्म विस्तारी थूल सञ्चारी ॥ ४३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन माया दोउ = युक्ति विचारी = } सूक्ष्म मन, स्थूल माया-काया, ये दोनोंके सम्बन्धसे नाना विचार करके युक्ति-प्रयुक्तिसे अनेक सिद्धान्त, मत, पन्थ, ग्रन्थ निकाले हैं। उसीका ही विचार मन-मानन्दीसे सब कोई करने लगे। ऐसी युक्ति विचारकर फिर—

कर्म विस्तारी = थूल सञ्चारी = } नाना कर्म-वासनाओंको सूक्ष्म रीतिसे विस्तार करके चलाये। अन्तमें सब कर्म अध्यासका विस्तार सूक्ष्म देहमें टिका रहा। सोई सूक्ष्म देहको लेकर जीव गर्भवासमें चला गया ॥

व्याख्या— मन तथा माया, यह दोनों मिल करके दो तरहकी खानी-वाणीका युक्ति-विचार किये। जिससे और भी अनेकों युक्ति विचार करके अनेकों कर्म-जालका विस्तार किये। तहाँ प्रथम चित्त-चतुष्टयोंका सूक्ष्म रीतिसे चलन गतिका सञ्चार हुआ। सूक्ष्म गतिसे चित्त, बुद्धि, मन, अहङ्कार चलने लगे, तो कर्मका भी खूब विस्तार होके पसारा हो गया ॥ ४३५ ॥

१०. ताते भया स्थूल पसारा ❀ कर्म जालको बहु विस्तारा ॥ ४३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताते भया = } उसी सूक्ष्म देहमेंकी सामग्रीसे
स्थूल पसारा = } ही नौ महीना आदि अवधि पूर्ण होनेपर स्थूलदेह लेकर फिर मनुष्य खानीमें जन्म लिया। उसीसे ऐसे स्थूल शरीरका पसारा हुआ। चौरासी योनियाँ घूमकर नरदेहमें जीव आये। फिर क्रमशः वासनाओंका पसारा किये।

कर्म जालको = } संसारमें मनुष्योंने नाना कर्म-
बहु विस्तारा = } काण्डके जालोंका बहुत तरहसे विस्तार किये हैं। और कर्म जालका ही विस्तार अभी भी कर ही रहे हैं। जिसमें सब मनुष्य बद्ध हो रहे हैं॥

व्याख्या— फिर उसी सूक्ष्म बीजसे स्थूल देह वृक्षाकाररूपमें प्रगट हुआ। और उससे स्थूल विषयोंका बहुत पसारा हो गया। तहाँ विषय भोगोंके वास्ते और भी कर्म मार्गके जालका जञ्जाल बहुत-बहुत ही विस्तार होता ही गया। सब जीव कर्म-कुकर्मके जालोंमें ही अरुझ गये॥ ४३६॥

११. हे शिष्य ! झाँईं प्रथम बेकारा ❀ ताते अस्ति नास्ति अनुसारा ॥ ४३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! झाँईं = } हे शिष्य ! इन सब बन्धनों-
प्रथम बेकारा = } का कारण तो वही नरदेह-की, पहलेकी गाफिली है। जिससे झाँईं में पड़कर यह सब विकार खड़ा हुआ है। सो ब्रह्म ही सब विकारोंका मूल, झाँईं है। सोई शुरूकी भूल है।

ताते अस्ति नास्ति = } इसवास्ते सत्य जीव भी
अनुसारा = } नाशवान् जड़ देहके साथमें उसी अनुसार बाल्य, युवा, वृद्धादिके मुताबिक नाना कर्म करके मृत्यु, जन्म, गर्भवासादिमें पड़ा करते हैं। सो जीव ही ब्रह्मानन्दीके अनुसार भ्रम मार्गसे चले हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य ! इसप्रकारसे देखो ! तो वही झाँईं रूप ब्रह्मानन्दका गाफिली-भ्रम ही प्रथमके मनुष्य देहके विकारका मूल है। उसीसे अस्ति चैतन्य जीव नास्ति ब्रह्म बनके कर्म-अध्यासके अनुसार ही आवागमनमें फिरने लगे। नास्तिके पीछे-पीछे जहाँ-तहाँ भटकने लगे। अतः जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें जा-जा करके घूम रहे हैं॥ ४३७॥

१२. अस्ति नास्ति सम्बन्धी भयऊ ❀ हे शिष्य ! ताते जग निर्मयऊ ॥ ४३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

अस्ति नास्ति = } जब अस्ति चैतन्य जीवने ही
सम्बन्धी = } 'नास्ति' ब्रह्म-ईश्वरादिको
भयऊ = } माने तथा नाशवान् विषयादि भोगोंमें सम्बन्ध किये; उसीसे वासनावश जड़ाध्यासी हुए—

हे शिष्य ! ताते = इसवास्ते हे शिष्य !—

जग निर्मयऊ = उसी भ्रम-भूल वासना-अध्यासकेवश होकर ही जीवोंने चारखानीमें अनन्तों शरीर धारणकर चौरासी योनियोंका निर्माण किये। यानी उसी कारणसे जगत्में जीवोंसे अनेकों शरीर उत्पन्न हुए हैं। इसप्रकारसे यह जीव-सृष्टि-रूप जगत्की उत्पत्ति हुई है, सो जानो !॥

व्याख्या— हे शिष्य ! जब अस्ति = जीव अपनेको भूल करके, नास्ति = मिथ्या धोखारूप कल्पित ब्रह्ममें मानन्दीका सम्बन्ध लगाया। तो उसी ब्रह्मकी इच्छामात्रसे ही सब जगत्की उत्पत्ति मान लिया। सो तो कल्पना ही किये हैं। परन्तु, अध्यासी जीवोंकी सत्तासे चारखानी चौरासी योनियोंमें नाना देहें उत्पन्न हो रहे हैं; यही जगत्का निर्माण हुआ है॥ ४३८॥

१३. प्रथमा पदमों भयो विकारा ❀ ताते ब्रह्म पदारथ सारा ॥ ४३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

प्रथमा पदमों = } मनुष्य देह यही प्रथमपद है।
भयो विकारा = } सो नरदेहधारी जीवसे ही यह भूल-भ्रम विस्तार हुआ; उसीसे काम, क्रोध, लोभ, मोहादिका नाना जगत्-विकार उत्पन्न हुआ है।

ताते ब्रह्म= पदारथ सारा= } इसवास्ते सार माना हुआ वह ब्रह्म पदार्थ भी कल्पना होनेसे सारा-का-सारा ही मिथ्या धोखा, भ्रम मात्र है। ब्रह्म मुक्तरूप नहीं है; किन्तु, महा बन्धनका ही रूप है। वह कोई पदार्थ ही नहीं है, अपदार्थ होनेसे शून्य है॥

व्याख्या— मनुष्य देहरूप प्रथमपदमें जब भ्रम-भूलका विकार पुष्ट हो गया, तब उसीसे कल्पित ब्रह्मको ही सार पदार्थ समझ करके भ्रमिक लोग सबोंने मान लिये हैं। वह तो पद=वाणीके मिथ्या अर्थसे शब्दमें पदार्थ ॐकारको ब्रह्म सार माने हैं, सो भ्रममात्र होनेसे झूठा, असार है॥४३६॥

१४. ब्रह्म भये ताते सुख नाहीं * नास्ति पदारथ नास्तिहि माहीं ॥ ४४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

ब्रह्म भये= ताते सुख नाहीं= } इसवास्ते जगत्को लय मानके एक ब्रह्म ही बननेसे भी जीवको मुक्तिका सुख नहीं मिलता है। क्योंकि, व्यापक बननेसे चौरासी योनियोंसे न्यारा तो ब्रह्म नहीं हुआ। फिर सुख कहाँसे होगा? कहीं नहीं होगा।

नास्ति पदारथ= नास्तिहि माहीं= } मिथ्या वस्तु मिथ्या धोखेमें ही प्रतीत होता है। इसलिये माना हुआ ब्रह्म पदार्थ असत्य है। परन्तु, उसी मिथ्या ब्रह्म-मानन्दीमें ही भ्रमिक मनुष्य लोग पड़े हैं, सो देहके साथ वह ब्रह्म भी छूट जाता है। किन्तु, अध्यासी जीव बद्ध हो जाते हैं॥

व्याख्या— इसवास्ते मानन्दीसे ब्रह्म हो करके भी जीवोंको नित्य-सुखरूप मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। चौरासी योनियोंमें पड़कर व्यापक बनकर दुःख ही भोगते रहते हैं। नास्ति=असत्य माना हुआ ब्रह्म पदार्थ सिर्फ नास्ति=मनकी कल्पनामें ही टिका रहता है। यानी झूठ तो झूठोंमें ही रहता है; तथा सत्य, सत्यवादीमें ही रहता है। तैसे नास्ति-अपदार्थ भी नास्तिमें ही रहता है। जीव अध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े रहते हैं। इसीसे ब्रह्म हुए, तो भी सुख नहीं होता है॥४४०॥

१५. सो प्रत्यक्ष शिष्य! जान विकारा * ब्रह्माकार नास्ति अधारा ॥ ४४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सो प्रत्यक्ष= शिष्य! जान= विकारा= } हे शिष्य! सो माना हुआ ब्रह्म तो प्रत्यक्ष जगत्का ही विकार, कल्पना, भ्रमरूप है, ऐसा जानो! प्रत्यक्षमें वह कोई सत्य वस्तु ही नहीं है। मनके विकार मात्र ही उसे जानो! चराचरमें पूर्ण व्यापक—

ब्रह्माकार= नास्ति= अधारा= } एक निराकार ब्रह्म है। ऐसा गुरुवालोगोंने जो ब्रह्मका आकार ठहराये हैं, सो नास्ति=मिथ्या भ्रम-धोखा है। परन्तु, अविवेकी भ्रमिकोंने उसीके ही आधार पकड़े हैं। सब जगत्को ब्रह्मके आधारमें टिका हुआ बतलाये हैं, सो कल्पना मात्र ही है॥

व्याख्या— हे शिष्य! सो ब्रह्म तो प्रत्यक्षमें भ्रमका विकार वा जगत्का विकार ही है, ऐसा तुम विवेक करके जानो! और सर्वत्र व्यापक ब्रह्माकारके आकारकी कल्पना करके, उसके जो आधार पकड़े हैं, तथा ब्रह्म अधिष्ठानके ही आधारमें सकल विश्वको स्थित जो माने हैं, सो भी नास्ति है। क्योंकि, जड़-चैतन्य अनादि नित्य-सत्य वस्तु होनेसे वे स्वयं अपने-अपने स्वरूपसे अखण्ड, निराधार ही हैं। ब्रह्माकार ही नास्ति है, तो फिर उसका आधार मानना असम्भव है; ऐसा जानना चाहिये॥४४१॥

१६. कल्पना बासा सो सब माहीं * मन बासे चौरासी जाहीं ॥ ४४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

कल्पना बासा= सो सब माहीं= } इसप्रकार मनुष्योंने स्वयं स्वरूपकी तरफ लक्ष्य न दे करके कल्पनासे एक महान ब्रह्म मानकर उसीमें बासा या स्थिति कायम किये। फिर सबमें परिपूर्ण व्यापक अद्वैतरूपमें ब्रह्मको माने, सो ऐसी-ऐसी वाणी-कल्पनाको सभी मनुष्योंने माने हैं।

मन बासे= चौरासी जाहीं= } सो मन-मानन्दीकी वासना खानी-वाणीके अध्यासके वशीभूत हो करके सब जीव नरदेहको छोड़कर चौरासी योनियोंमें ही चले जाते

हैं। वहाँ कर्म भोगते हुए आवागमनोंमें ही पड़े रहते हैं; बिना विचार ॥

व्याख्या— अविवेकी, भ्रमिक मनुष्य सो उन सबोंमें कल्पनाका ही बासा हुआ है। इसीसे उन्होंने मिथ्या कल्पनासे सर्वत्र व्यापकरूपसे ब्रह्मका निवास मान लिये हैं। उसी मनके वासना-जड़ाध्यासमें बद्ध हो करके जीव सब चारखानी चौरासी योनियोंमें ही गये और जाते हैं; तथा आवागमनमें जा ही रहे हैं। वही मनकी वासना ही जीवोंको दुःख दे रही है ॥ ४४२ ॥

१७. अनबनि जतन नास्तिको फाँसा * नास्ति सनेही नास्तिहि बासा ॥ ४४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

अनबनि जतन = नास्तिको फाँसा = कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादि अनेक प्रकारके यत्न-उपाय आदि गुरुवालोगोंने ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्तिके वास्ते कर-करायके लोगोंको फँसाये हैं। सो उससे जीवोंका कुछ भी कल्याण बननेवाला तो नहीं है। वह तो मिथ्या धोखेका फन्दा है। वह सब प्रयत्न तो फँसाने ही वाला है।

नास्ति सनेही = नास्तिहि बासा = इसीसे असत्य ब्रह्म-ईश्वरादि और नाशवान् देह-विषयादिमें स्नेह, मोह, प्रीति लगाने-वाले मनुष्य उसी नास्ति विषय और ब्रह्मके आनन्दमें वासना लगाके असत्यमें ही स्थिति किये। इसलिये वे नाशवान् देह बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं ॥

व्याख्या— ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके लिये अनेकों यत्न, उपाय, नाना साधनाएँ करते-कराते हैं, सो उससे कुछ भी कल्याण बननेवाला नहीं है। वह तो नास्ति-मिथ्या कल्पनाकी वाणीका जाल फाँस है। इसीसे नास्ति— ब्रह्म, विषयादिमें स्नेह, मोह, आसक्ति लगानेवाले जीव नास्ति धोखेमें ही निवास करते हैं। भव-बन्धनमें पड़के चारखानियोंमें ही बासा करते रहते हैं। कभी भी वे बन्धनों-से छूट नहीं पाते हैं ॥ ४४३ ॥

१८. हे शिष्य ! हंसा भरम भुलाना * झाँईं मा बासा तेहि ठाना ॥ ४४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! हंसा भरम भुलाना = हे शिष्य ! हंसरूप चैतन्य जीवने या मनुष्यने निज सत्स्वरूपको भूलकर भ्रान्तिसे ही मिथ्या ब्रह्मको अपना स्वरूप मान लिया। उस भ्रममें वे भूलते ही गये। अन्तमें—

झाँईं मा बासा तेहि ठाना = झाँईं = गाफिलीमें ही उसने अपना बासा या स्थिति ठान लिया। यानी निश्चय करके ठहराव कायम कर लिया। 'अहं ब्रह्मास्मि' को दृढ़ करके, अपनेको कृतकृत्य माने। परन्तु, यह नहीं जाने कि, मैं तो महा बन्धनमें आ पड़ा हूँ! व्यापक हो करके चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़े, बिना विवेक ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! इसप्रकारसे प्रथम मनुष्य देहमें हंस-चैतन्य जीव भ्रमिक हो करके निजस्वरूपको भूल गया। तो उसीने आनन्द, सुन्दरता, अनुकूलतासे मग्न हो करके झाँईं = गाफिलीमें जाके अपना बासा ठान लिया वा उसीमें स्थिति कर लिया ॥ ४४४ ॥

१९. ताते यह पद नाहिं न थीरा * कल्पि कल्पि चौरासी फीरा ॥ ४४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ताते यह पद = नाहिं न थीरा = इसवास्ते गुरुवालोगोंने सर्व-श्रेष्ठ माना हुआ 'ब्रह्मपद' यह स्थिर, अचल या मुक्तपद नहीं है। किन्तु, महाबन्धनका चञ्चल-बद्धपद है।

कल्पि कल्पि = चौरासी फीरा = उसी कल्पनाकी मानन्दी कर-करके भ्रमिक जड़ाध्यासी हो-हो करके जीव सब चारखानीकी चौरासी योनियोंमें जन्म-मरण आदिमें ही घूम-फिर रहे हैं। उनका कहीं भी ठहराव नहीं होता है ॥

व्याख्या— इसलिये यह ब्रह्मपद झाँईं वा गाफिली, भूलकी भूमिका होनेसे, स्थिर मुक्ति होनेकी

जगह तो वह है ही नहीं। कभी वह स्थिरपद भी नहीं हो सकता है। सो तो चञ्चल भव-चक्रका ही पद है। इसीसे अबोध नरजीव कल्पि-कल्पिके वाणी-कल्पनाका विस्तार कर-करके जड़ाध्यासी हो-हो करके चौरासी योनियोंके ही महान चक्रमें फिरे, और अभी वैसे ही खानी-वाणीका अध्यास ले-ले करके, देह छोड़कर चौरासी योनियोंमें ही फिर रहे हैं, बिना पारख ॥ ४४५ ॥

२०. हे शिष्य ! प्रथम देह हंसाकी ❀ तेहि देहते झाँईं झाँकी ॥ ४४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! प्रथम = हे जिज्ञासु शिष्य ! सुनो !
देह हंसाकी = यह नरदेह ही सर्वप्रथम 'हंस' कहिये चैतन्य जीवके कर्मउपार्जन करनेकी भूमिका है। जगत् अनादि होनेसे सदैवसे जीव देहधारी हैं। बद्ध और मुक्त होनेकी जगह मनुष्य देह है।

तेहि देहते = उसी हंस या नरदेहमेंसे कोई-
झाँईं झाँकी = ने सर्वाङ्ग सुन्दरताकी झाँईं झाँकी और कोईने ध्यान-समाधिमें ज्योति-प्रकाश, आनन्द आदिको देखा, तो उसीको अपना ब्रह्मस्वरूप मान करके वे गाफिल, मूढ़ हुए ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! हंसरूप चैतन्य जीवका प्रथम देह, सो इसी मनुष्य देहको ही जानो ! नरदेह ही हंसका प्रथम देह है। क्योंकि, ज्ञानखानी, कर्मभूमिका, बन्धन और मुक्तिमें जानेके पुरुषार्थ करनेका नाका वा जङ्कशनके समान यह मनुष्य जन्म है। इसलिये प्रथम नरजीवने उसी मनुष्य देह-से वृत्ति एकाग्र करके झाँईं को झाँका। अर्थात् बाह्यरूपकी सुन्दरताको देखकर कोई मोहित हुए। कोई आन्तरिक सद्गुण धारणकी शोभा देख करके अहङ्कारसे प्रसन्न होके भूले। कोई ज्ञान, ध्यान, योगादि द्वारा वृत्ति शून्य करके गाफिल हुए। कोई ज्योति प्रकाश देखके उसे अपना वा ब्रह्मका स्वरूप मान लिये। तैसे अनहद नाद सुनके और आनन्दित होके कोई भूले; इत्यादि प्रकारसे देहके प्रतिबिम्ब-भासरूप उसी झाँईं को ही झाँक-झाँक करके वा भीतर-बाहरसे भासको ही देख-देखकर भ्रमिक जीव निजस्वरूपको एकदम भूल गये ॥ ४४६ ॥

२१. झाँईं बिम्ब देहकी आभा ❀ बसे तहाँ कोहंकी दाभा ॥ ४४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

झाँईं बिम्ब = बिम्बरूप साकार मनुष्यदेह-
देहकी आभा = के प्रतिबिम्बरूप तत्त्वोंका ज्योति-प्रकाश, ध्यानकी एकाग्रतासे दिखाई दिया। सो उसीको ब्रह्मका स्वरूप मानके भूले हैं, सो देहके प्रकाश तत्त्वोंकी भास और आनन्दको ही अपना ब्रह्म स्वरूप मानके उसी झाँईं की गाफिलीमें ही पड़ गये।

बसे तहाँ = जब ध्यानसे वृत्ति बहिर्गत
कोहंकी दाभा = हुई, तब इच्छा करके, "मैं कौन हूँ ?" कहा; तो गुरुवालोगोंने उसको वेदादि प्रमाणसे 'तू ब्रह्म है !' 'तत्त्वमसि, एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति' ऐसा कहकर कल्पित वाणीके महान आवरणरूप पर्दासे ढाँक दिये। इसलिये उसीको निश्चय करके, ब्रह्म-भ्रममें ही दब करके बस गये ॥

व्याख्या— वह झाँईं क्या चीज है ? कि, बिम्बरूप साकार चार तत्त्वोंसे निर्मित स्थूल-सूक्ष्म देहोंके सम्बन्धमें उसी देहके प्रतिबिम्ब वा परछाँईं रूप आभा = तत्त्वोंका जड़-प्रकाश, आनन्द, अनहद आदि सूक्ष्म विषय भोग हैं। उसीमें अबोध नरजीव 'कोहं' का दावा करके, तहाँ ही अपनी स्थिति मानके दृढ़ निश्चय करके बैठ गये। तब गुरुवालोगोंने 'तू ब्रह्म है', ऐसा कहकर जोरसे उन्हें दबाके वाणी कल्पनाकी कैदमें डाल दिये। तहाँ 'शिवोहं'-'अहं ब्रह्मास्मि' आदिके कथनमें दबे हुए अभी-तक सब भ्रमिक लोग धोखेमें ही पड़े हैं ॥ ४४७ ॥

२२. बिम्बाकार भयो परचण्डा ❀ इच्छाते कीन्हों ब्रह्मण्डा ॥ ४४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बिम्बाकार = ऐसे कल्पित ब्रह्मकी
भयो परचण्डा = मानन्दीसे तदाकार, ब्रह्माकार, निराकार, व्यापक स्वरूपका निश्चय हुआ; सो तीव्र-तीक्ष्ण धारवाला बाणके समान वाणी-कल्पना हृदयमें धँस गई, दृढ़ होके घुस गई। उसके बादमें फिर—

इच्छाते कीन्हों = अनेक प्रकारकी इच्छा-
ब्रह्मण्डा = चाहना, स्फुरणा करके वेद-शास्त्रादिकी वाणी भिन्न-भिन्न रूपमें बनाई गई, और खानी जालोंको भी बढ़ाये। तथा ब्रह्मकी इच्छासे समस्त पिण्ड-ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्तिकी कल्पना की गई, बिना विचार ॥

व्याख्या— फिर सोई बिम्बाकार देहके आकारका प्रतिबिम्ब तत्त्वोंका भास, प्रकाश आदि ही मेरा स्वरूप ब्रह्म है, यह मानन्दी प्रचण्ड वा तीक्ष्ण रीतिसे दृढ़ हो गयी। अपने-आपको निर्गुण ब्रह्म मान लिये। फिर इच्छासे अपनी महिमा बढ़ायके विशेषता प्रसिद्धि करनेके लिये ब्रह्माण्डरूप मस्तिष्क वा खोपड़ीसे कल्पना कर-करके वेद-शास्त्र आदि अनेकों वाणी जालोंकी रचना करके विस्तार किये। तहाँ "सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म मैं ही हूँ, जगत् मेरा क्रीड़ा-विलास मात्र है, मैं ब्रह्म ही सत्य हूँ, व्यापक हूँ", इत्यादि झूठा कथन करके, वही बात ग्रन्थोंमें लिख रक्खे हैं। उसे परख करके भेद जानना चाहिये ॥ ४४८ ॥

२३. हे शिष्य ! याते ब्रह्माकारा * हंस देहको प्रथम विकारा ॥ ४४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! याते = हे सुबुद्धि शिष्य ! इसी-
ब्रह्माकारा = कारणसे मैं तुझे बारम्बार चेताकर कहता हूँ कि, चराचरमें परिपूर्ण निराकार ब्रह्म माना हुआ भ्रममात्र है, वह तो धोखा है। सोई सब जगत् विकारका मूल कारण है।

हंस देहको = हंसका गुण-लक्षण, त्याग-
प्रथम विकारा = ग्रहण, सार-असारका विवेक न होनेसे प्रथम मनुष्य देहमें काम, क्रोध, मोहादि, आशा, तृष्णा, अहङ्कारादि विकार उठा; उसीमें सम्मिलित होके भ्रम-से ब्रह्म बने हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! इसीसे मैं बारम्बार कहता हूँ, कि— हंसरूप मनुष्य देहका प्रथम विकार ही व्यापक माना हुआ ब्रह्माकार झाँईं रूप ब्रह्म सो तो भासमात्र है; वह कोई सत्य वस्तु नहीं है। मिथ्या कल्पनाका पसारासे निकला हुआ वह तो बड़ा भारी विकार-बन्धनका मूल है ॥ ४४९ ॥

२४. सो प्रथमा पद मिथ्या झाँईं * कैसे हंस दशाको पाई ? ॥ ४५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सो प्रथमापद = सो चारखानियोंमें प्रथम
मिथ्या झाँईं = जेष्ठ-श्रेष्ठ मनुष्यने ही निज हंसपदको भूलकर, ब्रह्म व्यापकपदको मान-कर मिथ्या झाँईं की गाफिलीमें पड़े। सो उसीमें ही लग करके अबतक लोग भ्रमिक हो रहे हैं। तो कहो भला !—

कैसे हंस = अब पारखी सद्गुरुकी शरण-
दशाको पाई ? = ग्रहण सत्सङ्ग विचारके किये बिना हंसदशा सद्गुण रहनी संयुक्त पारख-पदको कैसे पायेंगे ? कैसे मुक्त होवेंगे ? इसप्रकारसे तो कभी हंसदशाको नहीं पा सकेंगे ॥

व्याख्या— सो ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा क्या है ? कि, प्रथमपदरूप मनुष्य देहकी भूल, मिथ्या झाँईं की मानन्दी भास मात्र होनेसे असत्य है। अब उस मिथ्या झाँईं में लगनेवाले नरजीव कहो तो भला ! कैसे हंसदशा वा मुक्ति स्थितिको पायेंगे ? कभी भी नहीं पा सकेंगे। क्योंकि, हंसदशा पानेके लिये उस मिथ्या झाँईं आदिको त्याग करके पारखी सद्गुरुका शरणागत हो सत्सङ्ग करके पारखबोध प्राप्त करना चाहिये। तभी जड़-चैतन्यका निर्णय करके सकल भेदको जानकर सम्पूर्ण जड़ाध्याससे रहित हंसदशाको पायके जीवन्मुक्त हो जाते हैं। इसीसे गुरुपदमें प्रवेश किये बिना कोई हंसदशाको

पा नहीं सकते हैं, सो जानो ! अतः गुरुपदमें प्रविष्ट होओ ! ॥ ४५० ॥

॥ ❀ ॥ १७ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- १७ ॥ खण्ड- ३३ ॥ ❀ ॥

दोहाः— ऐसे अमृतमय वचन सुनी * शिष्य अति सुख पाय ॥
[१७६] बोले हो गुरु ! मर्म सब * जानेउँ तव प्रभाय ॥ ४५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका सत्रहवाँ प्रश्नरूप शङ्काको वर्णन करके कहते हैं— शिष्य कहता है— हे प्रभो !

ऐसे अमृतमय = } अमृतके समान सुखदायी,
वचन सुनी = } संशय दुःखको मिटानेवाला, ऐसे पारखी सद्गुरुके अमृत तुल्य निर्णय सत्य उपदेशके वचन गुरुमुख वाणीको सुन करके और उसका मनन करके—

शिष्य अति = } जिज्ञासु, श्रद्धालु सत् शिष्यने
सुखपाय = } अत्यन्त सुख-शान्ति पाया। सन्देह निवारण होनेसे बड़ा प्रसन्न, सुखी हुआ।

बोले हो गुरु ! = } तब दोनों हाथोंको जोड़कर
मर्म सब = } वह कहने लगा कि, हे सद्गुरो ! आपने दया करके जो उपदेश उत्तर देकर बोले हो ! निर्णय कहके समझाये हो ! सो उसका सब मर्म या भेद-रहस्यको ठीक रीतिसे—

जानेउँ = } आपकी सत् शिक्षाके प्रभाव
तव प्रभाय = } गुरुबलसे मैंने अच्छी तरहसे अब वह जान लिया हूँ ! यानी आपके कृपा प्रसादके प्रभावसे पूर्वके सब प्रश्नोंके उत्तर जो कहे हो, सो भेद तो मैं अब समझ गया हूँ ! ॥

व्याख्या— ऐसे सद्गुरुके अमृतमय वचन सत्य निर्णयके उपदेशका वचनामृत श्रवण करके जिज्ञासु शिष्यके सन्देह निवारण होनेसे शिष्यने अत्यन्त शान्ति, सन्तोषयुक्त सुखको पाया। तब शिष्य कहता है कि— हे सद्गुरुदेव ! आपने जो निर्णय वचन बोले हो, जो बात समझाये हो, सो आपकी कृपाके प्रभावसे मैंने भी अब उसका भेद सब जान लिया हूँ ! प्रथमके प्रश्नका तो मेरा समाधान हो गया है ॥ ४५१ ॥

दोहाः— अब साहेब ! कछु शङ्का भई * कहो दीनप्रतिपाल ! ॥
[१७७] हंस देहकी बिम्बते * झाँईं सन्धि औ काल ॥ ४५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका शङ्कारूप प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

अब साहेब ! = } अब हे सद्गुरु साहेब ! कुछ
कछु शङ्का भई = } नयी ही एक शङ्का मेरे मनमें उत्पन्न हो गई है, सो उसका भी समाधान मैं चाहता हूँ !

कहो दीनप्रतिपाल ! = हे दीन जीवोंके प्रतिपालन वा रक्षा करनेवाले सद्गुरो ! आपकी आज्ञा हो, तो मैं शङ्का प्रगट करके कहूँ ! फिर आप उसका यथार्थ समाधान करके कहिये समझाइये ! (तब सद्गुरुने शङ्का प्रगट करके कहनेको कहा; सद्गुरुकी आज्ञा होनेपर शिष्य कहने लगा कि-)—

हंस देहकी = } पहले आपने कहा था कि, हंस
बिम्बते = } वा मनुष्यके देहका बिम्बरूप किरण-प्रकाश समूहकी शोभासे ही क्रमशः—

झाँईं सन्धि = } विज्ञान-ब्रह्मकी गाफिली झाँईं,
औ काल = } ज्ञान-ईश्वरकी मानन्दी सन्धि, और अज्ञान-जीवोंकी नाना कल्पनारूप काल उत्पन्न हुआ। सोई "तत्त्वमसि" सिद्धान्त कायम हुआ। पाँच मार्गोंमें जीव भूल गया, इत्यादि कहे हो ! (अब इसमें निम्न शङ्का होती है कि—) ॥

व्याख्या— अब हे सद्गुरु साहेब ! मेरे मनमें अभी विचार करते-करते कुछ नयी ही एक शङ्का उत्पन्न हुई है। हे दीन प्रतिपालक ! कहिये ? आपकी आज्ञा हो, तो अभी वह शङ्का कहूँ ! (सद्गुरुने

कहनेके लिये आज्ञा दिये। तब शिष्यने कहा कि-) अभी प्रथम आपने कहा था कि, हंसरूप मनुष्य देहके बिम्बसे प्रतिबिम्बरूप झाँईं = ब्रह्म, सन्धि = ईश्वरकी मानन्दी और काल = नाना कल्पना, इन्हीं सबोंका विस्तार हुआ है, सोई बन्धन है ॥ ४५२ ॥

दोहाः— जेहि देहिकी बिम्बते * येतो भयो उपाध ॥
[१७८] सो अस्ति कैसे भयो ? * कहहु यथारथ साध ॥ ४५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका शङ्कारूप प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

जेहि देहिकी = हे प्रभो ! जिस हंसरूप मनुष्य बिम्बते = देहके तत्त्व या गुणोंके प्रकाशसे या जिसके देहके बिम्बसे ही—
येतो भयो = इतनी सारी उपाधि, महान उपाध = बन्धन, ब्रह्म-जगत्के विस्तार, चारखानीकी चौरासी योनियाँ खड़ी हुईं, वह तो सब उपाधि विस्तार करनेका घर ही ठहरा। फिर—
सो अस्ति = सो हंसदेह सच्ची मुक्ति देने-
कैसे भयो ? = वाला कैसे हुआ ? सो चैतन्य-की सत्य-स्थिति प्राप्त करनेकी भूमिका कैसे हुई ? यह बात मेरे समझनेमें नहीं आती है।
कहहु = हे साधु पारखी सद्गुरु !
यथारथ साध = इसका उत्तर कहकर जैसा निर्णयसे ठहरता हो, वैसा ही यथार्थ सत्य-निर्णयसे समाधान कीजिये ! दयादृष्टि करके मुझ दासको समझाइये ! सन्देह निवारण कर दीजिये ! यही मेरा नम्र विनय है ॥

व्याख्या— उसमें मुझे ऐसी शङ्का होती है कि, जिस मनुष्य देहके बिम्बसे तत्त्वोंका भास-प्रकाश होकर, फिर इतनी सारी उपाधि भव-बन्धनका विस्तार हुआ। तब फिर सो हंसदेह सच्चा, श्रेष्ठ, अस्ति, मुक्तिकी भूमिका तो भी कैसे हुआ ? इसमें तो मुझे कुछ भी समझनेमें नहीं आया। अतः बड़ा सन्देहमें पड़ गया हूँ ! हे साधु-गुरु ! इसका भी आप अब यथार्थ निर्णय दर्शा करके कहिये ! यही प्रार्थना है ॥ ४५३ ॥

॥ ❀ ॥ १७ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण-१७ ॥ खण्ड-३४ ॥ ❀ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! अतिहि उपाधि जो * झाँईं ते परकाश ॥
[१७९] दुतिया भासो याहिको * रूप बिम्बकी आश ॥ ४५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! अतिहि = हे शिष्य ! चैतन्य स्वरूप
उपाधि जो = में तो कोई उपाधि नहीं है। परन्तु, ज्ञान, अज्ञान, विज्ञानादि भेदसे अत्यन्त जो कुछ भी उपाधियाँ खड़ी हुई हैं, सो अविवेकसे ही हुई हैं। और—
झाँईं ते = ज्योति-प्रकाश, आनन्द और देहों-
परकाश = की सुन्दरता देखकर मोहित, गाफिल होनेसे ही— उसी झाँईं से तमाम उपाधियाँ बढ़ती गई हैं। यानी झाँईं से ही उपाधियाँ प्रकाश हुई हैं।
दुतिया भासो = संसारमें इसी पुरुषको ही
याहिको = अपनेसे भिन्न दूसरी विजातीय स्त्रीका सुन्दर रूप भासा, तथा तत्त्वोंके प्रकाश ज्योति आदिका भीतर भास हुआ, उसी झाँईं को ब्रह्म ठहरा करके माना।
रूप बिम्ब- = इसलिये मनुष्य रूपके हंस-
की आश = गुणको छोड़कर ज्योति प्रकाश आदिको अपना रूप मानकर उसीमें मिलके ब्रह्म होनेकी आशा किये। तदासक्त जड़ाध्यासी हो गये ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! सुनो ! उपाधिका विकार चैतन्य जीवके स्वरूपमें भी नहीं है, और हंसके शुद्ध सद्गुणमें भी नहीं है। वह उपाधि तो अहङ्कारको लेकर ही खड़ी हुई है। इसलिये जो बन्धनका अति ही उपाधि-विस्तार हुआ, सो झाँईं = गाफिली सुखका सूक्ष्म अहङ्कार,

उन्मत्तता करके ही प्रकाश हुआ है, ऐसा जानो! और जो झाँईं का प्रकाश हुआ, सो तो अपनेसे भिन्न दूसरा ही स्वरूपमें भास हुआ। सोई बिम्बरूपकी वा प्रतिबिम्बकी आशा-आसक्तिमें पड़कर ही जीव बड़ी भारी भूलमें पड़ गया। तहाँ विवेक जाता रहा। दृश्य भासको ही निज स्वरूप मानकर भूला ॥ ४५४ ॥

दोहाः— रूप है सो प्रतिबिम्ब नहीं * बसो सोई प्रतिबिम्ब ॥
[१८०] ताते हे शिष्य ! रूपको * नाशिवन्त है कीव ॥ ४५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

रूप है सो = प्रतिबिम्ब नहीं = } मनुष्यरूप वा हंसरूप जो है, सो तो सत्य है। परन्तु, सो वह जो छायारूप ज्योति-प्रकाश देखनेमें आया, सो प्रतिबिम्बको ही ब्रह्म माना है, सो सत्य नहीं है, मिथ्या भास मात्र है।

बसो सोई = प्रतिबिम्ब = } परन्तु, सोई परछाँईं या प्रतिबिम्बरूप ज्योति-प्रकाश आदि जो देखा, सो उसीको ब्रह्मरूप मानकर उसी धोखेमें जीव ठहर गया वा बैठ गया। वह प्रतिबिम्ब ही मनुष्योंके हृदयमें बैठ गया।

ताते हे शिष्य ! = रूपको = } इसवास्ते हे शिष्य ! स्वरूपकी स्थिति छूट गयी; निजरूपको न पहिचानकर जीव जड़ाध्यासी हो गये। इसलिये मनुष्यरूपकी—

नाशिवन्त = है कीव = } की हुई कल्पना मिथ्या है। देह तो नाशवान् ही है, और देह सम्बन्धमें मानन्दी की हुई ब्रह्म-ईश्वरादि सब भी मिथ्या नाशवान् है, सो जानो ! ॥

व्याख्या— हंसरूप जो है, सो प्रतिबिम्ब नहीं है। वह तो उससे न्यारा है। और प्रतिबिम्ब भास जो है, सो सत्य हंसरूप नहीं है। परन्तु, परीक्षादृष्टि न होनेसे उसीमें जीव भूल करके सोई दृश्य प्रतिबिम्ब-भास झाँईं में स्थिति करके बैठ गया। सोई भ्रमिक मनुष्योंके मनमें दृढ़ होके बैठा है। इसवास्ते हे शिष्य ! रूपकी परछाईं माना हुआ कैवल्य ब्रह्म नाशवान् देहका भास, अध्यास होनेसे वह भी नाशवन्त है ! क्योंकि, उसे ब्रह्म मानना ही कल्पना है। यानी नाशवान् रूपका प्रतिबिम्ब क्या है ? सो भी नाशवान् धोखा है; ऐसा परखकर जान लो ! ॥ ४५५ ॥

॥ ❀ ॥ अरिल छन्द, भाग- [७] ॥ ❀ ॥

१. अस्ति हंस नास्तिरूप * उधमज प्रतिबिम्ब अहै ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! तुम विवेक करो ! सुनो !—

अस्ति हंस = नास्ति रूप = } चैतन्य ज्ञान-प्रकाशरूप शुद्ध स्वयं स्वरूप जीव ही हंस है, सो नित्य-सत्य है। और देहादि सङ्घात तत्त्व सम्बन्धमें बना हुआ है, इसलिये स्थूलादि शरीरका रूप सदा न रहनेवाला, नाशवान् होनेसे ही नास्ति है; अनित्य, क्षणभंगुर है।

उधमज = प्रतिबिम्ब अहै = } इन दोनों जड़-चैतन्यरूप देह और जीवके सम्बन्धके बीचमें उत्पन्न हुई परछाँईं या प्रतिबिम्ब जो है, सो मिथ्या देखने मात्रका (प्रकाश) भ्रम धोखा है। इसलिये ब्रह्म माना हुआ नास्ति है ॥

व्याख्या— अब यहाँपर अरिल छन्दका अर्थ खुलासा करके कहता हूँ ! सो सुनिये ! हंस चैतन्य जीव जो है, सो शुद्ध ज्ञान स्वरूप अस्ति = नित्य-सत्य है; अखण्ड, एकरस है। और ब्रह्मका रूप झाँईं = भासमात्र होनेसे नास्ति वा असत्य है। और देह आदि जड़ कार्य पदार्थ नाशवान् हैं। और वह रूप उधमज = पाँच तत्त्वोंके सम्बन्धमें उत्पन्न होनेवाले प्रतिबिम्ब वा जड़ परछाँईं मात्र तत्त्वोंके प्रकाशसे होनेवाला भास है। उसे ब्रह्म-ईश्वरादि मानना मिथ्या धोखा, भूल है ॥

२. झाँईं सन्धि काल लै सो * ब्रह्मको प्रकाश भौ ॥ ४५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

झाँईं सन्धि = काल लै सो = } असिपद विज्ञान झाँईं, तत्पद ज्ञान सन्धि, और त्वंपद अज्ञान काल- यही गाफिली, मानन्दी, कल्पनाको एकत्र, लय-विलय वा मिश्रित किये, सोई भ्रमिक मनुष्योंने वेदादि वाणीके प्रमाण लेके वा देके—

ब्रह्मको प्रकाश भौ = } संसारमें ब्रह्मज्ञानका प्रकाश करके प्रचार किये हैं। जड़-चैतन्य सबमें पूर्ण भरा हुआ व्यापक एक ही ब्रह्म है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"-ऐसी कल्पनाका प्रकाश हुआ; सो गुरुवालोगोंने कल्पना करके वाणी-रूपमें ब्रह्मका प्रकाश किये हैं॥

व्याख्या— फिर वही झाँईं = गाफिली, सन्धि = मानन्दी, और काल = कल्पना, इसीको लेके विवेक-विचारको लय वा नाश करके तब गुरुवालोगोंसे संसारमें ब्रह्मज्ञानका प्रकाश हुआ। तहाँ जड़-चैतन्य सबमें सर्वत्र सम-समान व्यापक ब्रह्मका प्रकाश माने हैं, सो मिथ्या कल्पना ही किये हैं॥ ४५६॥

३. ब्रह्मते विस्तार जगत् ❀ शिष्य ! सब जानहू तुम॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्मते = विस्तार = जगत् = } फिर गुरुवालोग कहने लगे कि, प्रथमारम्भमें ब्रह्मसे जगत् उत्पत्ति- कि—"एकोहंबहुस्याम्" की इच्छा हुई, तब सारा चराचर जगत्की विस्तार-रूपसे उत्पत्ति हुई। इसलिये सारा जगत्का कर्त्ता ब्रह्म है। फिर अन्तमें प्रलय होकर भी उसीमें समा जायगा, ऐसा कहा है।

शिष्य ! सब = हे शिष्य ! यह सब गुरुवालोगोंकी मिथ्या कल्पना ही है।

जानहू तुम = सो उन सबको तुम अच्छी तरह-से जान लो ! और जड़-चैतन्यका यथार्थ भेद सत्सङ्गमें परखकर तुम जानो, भ्रमको छोड़ दो !॥

व्याख्या— हे शिष्य ! वेद-वेदान्तके प्रमाणसे वेदान्तीलोग कहते हैं कि, ब्रह्मसे प्रथम इच्छा प्रगट हो करके पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, तीनगुण सहित पाँचतत्त्वकी उत्पत्ति हो करके फिर सारा चराचर जगत् उत्पन्न होकर विस्तार हुआ है। और उसी जगत्में ब्रह्म व्यापकरूपसे भरा भी है। इत्यादि मिथ्या कथन गुरुवालोगोंने किया है। सो सबको सत्य निर्णयसे यथार्थ परख करके तुम जान लो ! वह तो सरासर असार कल्पना ही किये हैं। जगत् स्वतः अनादि है, ऐसा जानो !॥

४. अस्ति बस्यो नास्ति माँहि ❀ ताते उजबास भौ॥ ४५७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अस्ति बस्यो = नास्ति माँहि = } अस्तिरूप चैतन्य जीव बिना पारख विषयादि वासना-अध्यासवश नाशवान् देह-गेहमें निवास किया है। सो यहाँ भी नास्तिरूप खानी-वाणीमें ही वासना लगाके बैठा, वही अध्यास मनमें टिका लिया है।

ताते उजबास भौ = इसीकारणसे वासनानुसार चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति हुई है। और वैसे भ्रमिक मनुष्योंसे ही पूर्वमें वेदादि वाणी, ब्रह्म-ईश्वरादि अनेक सिद्धान्तोंकी उत्पत्ति हुई है। वही सबोंने विश्वास करके मान लिये हैं या मान रहे हैं। इसप्रकार नरजीवोंकी मानन्दीसे ही नास्तिक ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति हुई। बिना विचारे उसी-को ही सत्य मान-मानकर मनुष्यपदको उजाड़ कर दिये। इसलिये भव-बन्धनोंमें ही जीव पड़े हैं॥

व्याख्या— अस्ति = जीव ही अपने स्वरूपको भूलकर, नास्ति = ब्रह्मके भ्रममें स्थिति कायम करके बैठ गया। कोई नास्ति विषयोंमें आसक्ति, वासना टिका करके बैठ गये। इसवास्ते उजबास हुए। यानी अभ्यासी हो करके आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रमें जाकर पड़ गये। ऐसे भ्रमसे ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति हुई है। वासनासे चारखानियोंमें नाना देहें उत्पन्न हुए और हो रहे हैं॥ ४५७॥

५. बिम्ब नास्ति झाँईं नास्ति * सन्धि काल जगत नास्ति ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बिम्ब नास्ति = इसवास्ते यथार्थ निर्णयसे झाँईं नास्ति = जीवके अलावा सब ही असत्य है। बिम्बरूप शरीर तथा तेज तत्त्वका प्रकाश-भास भी अनित्य, नाशवान्, असत्य है। तथा विज्ञान असिपद ब्रह्म, झाँईं भी शून्य गाफिली होनेसे नास्ति या मिथ्या है; वह कोई वस्तु नहीं है।

सन्धि काल = ज्ञान साक्षी ईश्वरकी मानन्दी जगत नास्ति = सन्धि तत्पद है। तथा अज्ञान, कल्पना, त्वंपद, कर्म, भक्ति, योग, गुरुवालोग और स्त्री ये ही काल हैं। और जगत्के पञ्च विषय, त्रिगुण, काम, क्रोध, मोहादिके प्रपञ्च विस्तार यह सब ही असत्य है, कोई नाशवान्, कोई मिथ्या धोखा ही है ॥

व्याख्या— तहाँ जीव ही एक सत्य है; और कोई असत्य है, तो कोई नाशवान्, अनित्य है। अतः बिम्बरूप स्थूल-सूक्ष्म देह भी नास्ति=अनित्य नाशवान् है। झाँईं=प्रतिबिम्बरूप ब्रह्मकी गाफिली, भ्रम भी नास्ति असत्य है। सन्धि=ईश्वरादिकी मानन्दी मनका मेल-मिलाप, यह भी नास्ति है। काल=गुरुवालोगोंकी कल्पना, सो भी नास्ति है। और जगत्के विषय भोग, काम, क्रोधादि विकार भी नास्ति हैं; ऐसे वह सब नास्तिका ही पसारा है ॥

६. आदि मध्य अन्त सर्व * नास्तिको तमास भौ ॥ ४५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

आदि मध्य = शुरूमें देह लेके जन्म लिया। अन्त सर्व = बीच जवानीमें अनेकों कर्म-कुकर्म किया। आखिर बुढ़ापेमें मरकर चौरासी योनियोंमें ही चला गया। अथवा जगत् अनादि होते हुए भी कल्पनासे प्रथमारम्भमें जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मसे माने। मध्यमें ब्रह्म प्राप्तिके लिये अनेक साधनाएँ किये, और अन्तमें सर्व जगत्को उसी ब्रह्ममें ही प्रलय होना मान करके मिलाये।

नास्तिको = ऐसे बाजीगरके तमाशावत् तमास भौ = गुरुवालोगोंके भेष, साधनादिका खेल-तमाशा भी असत्य या मिथ्या होनेसे ही बेकार हुआ। कोई सार नहीं निकला; आवागमन नहीं छूटा ॥

व्याख्या— अर्थात् आदि=उत्पत्ति, मध्य=बीचमें स्थिति, अन्त=आखिरीमें प्रलय, ऐसे एक ब्रह्मसे जगत्का आदि, मध्य, अन्त होते रहनेको जो कहा है, सो सर्व वाणी-कल्पनासे नास्तिका ही तमाशा किया हुआ है; सो यही भवसागर है। प्रथम अज्ञानी बनते हैं, बीचमें ज्ञानी ईश्वर होते हैं, फिर अन्तमें विज्ञानी एक अद्वैत ब्रह्म अधिष्ठान बनते हैं। इसप्रकार नास्ति मिथ्या धोखेका खेल नाच-तमाशा हुआ और हो ही रहा है। बिना विचार भ्रमिक लोग भव-बन्धनमें ही बन्धे पड़े हैं। उनकी साधनाएँ सब झूठी, व्यर्थ ही हुई हैं ॥ ४५८ ॥

७. आशा बासा कल्पना * सोऊ नास्ति जानहू तुम ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

आशा बासा कल्पना = जगत्में धन, स्त्री, पुत्र, राज्य प्राप्ति आदिकी आशा, तथा चार मुक्ति, चार फलादि प्राप्तिकी आशा, जीव-ब्रह्मकी एकता करनेकी आशाकी वासनासे अनेकों कल्पना करके ब्रह्ममें बास करना चाहते हैं। कोई देवता, भूत-प्रेतादि, ऋद्धि-सिद्धि स्वर्गादिकी कल्पना कर उससे सुख प्राप्त करना चाहते हैं।

सोऊ नास्ति = सो सबोंको भी तुम असत्य जानहु तुम = जानो ! और सबको जाननेमाननेवाले तुम चैतन्य जीव ही सत्य हो ! यह परख करके जानो ! ॥

व्याख्या— लोक-परलोककी आशा, ब्रह्मानन्द-विषयानन्द आदि सुख भोगोंकी वासना, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, खुदा, भूत, प्रेत, स्वर्गादिकी कल्पना इत्यादि, सो सबोंको भी मतु

नास्ति = असत्य, भ्रम-भूल ही जानो। उससे भिन्न तुम्हारा द्रष्टा स्वरूप है, ऐसा समझो ! ॥

८. सुबुद्धि शिष्य ! तेरी आशा बासामें * तूहि निराश भौ ॥ ४५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुबुद्धि शिष्य ! = हे शिष्य ! तुम अपनी
तेरी आशा बासामें = बुद्धि, समझको शुद्ध करो ! तभी सुबुद्धि शिष्य होओगे। तेरी आशामें तू ही निवास करता है। यानी ब्रह्म आदि प्राप्तिमें तुमने वासना लगायी, वाणी-कल्पनामें स्थिति की; और—
तूहि निराश भौ = तूने ही अनेक प्रकारकी मिथ्या मानन्दी की। परन्तु, उससे जीवको कुछ गति-मुक्ति भी नहीं हुई। नरदेह भी छूट गया। कोई ईश्वरादि भी नहीं मिले। इसलिये तू जीव आप ही निराश वा असहाय जड़ाध्यासी वासनावश हो करके फिर चौरासी योनियोंके गर्भमें ही गया वा जावेगा, सो जानो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् हे सुबुद्धि शिष्य ! तुम निष्पक्ष होकर विवेकदृष्टिसे देखकर विवेक करो ! तुम्हारी ही भूलके कर्त्तव्यसे वह आशा, बासा, कल्पनाएँ आदि विस्तार हुईं। फिर उससे तुम जीव स्वयं ही बन्धनमें पड़े हो ! और तुम्हारी झूठी आशा, बासामें पड़कर अविचारसे अन्तमें तुम ही निराश होकर पछताते हो ! जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें ही पड़-पड़कर नाना दुःख भोगते रहते हो ! इसलिये ऐसे धोखेमें क्यों पड़ते हो ? अभी सत्सङ्गमें उसे यथार्थ परख कर त्यागो ! और कल्पित आशा-बासासे रहित हो करके स्वयं ही निराश-निवृत्त हो जाओ ! निज पारखपदमें स्थिति करो ! जिससे निर्बन्ध मुक्त हो जाओगे ॥ ४५९ ॥

॥ ❀ ॥ कवित्त- छन्द, भाग- [८] ॥ ❀ ॥

१. समुझि देखु चित्त त्यागि * नास्ति सुख जो अनित्य पागि ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु शिष्य ! अथवा हे मुमुक्षु जीवो ! सुनो !—

समुझि देखु = सबका जनैया चैतन्य जीव
चित्त त्यागि = सब दृश्य भाससे न्यारा है। सोई द्रष्टा निज स्वरूप है, ऐसा तुम समझो, विवेकदृष्टिसे देखो ! चित्तकी चञ्चलता और पक्षपात हठको त्याग दो ! तथा त्यागो साधु पारखीका सत्सङ्ग-विचार करके सत्यासत्यको समझकर पारख करके देखो ! असत्य-कल्पनादिको चित्तसे त्याग दो ! और—
नास्ति सुख जो = जीवसे भिन्नकी मानन्दी
अनित्य पागि = सब असत्य है। विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दादि जो कुछ भी सुख माना है, सो सब जड़ देहके सम्बन्धमें वृत्तिकी स्थिरतासे होनेवाला होनेसे वह अनित्य, असत्य, नाशवान् ही है; उसमें तुम मत् पड़ो ! जो उसमें पड़े, सो पागलकी नाईं उन्मत्त, भ्रमिक, मूढ़ हुए या हो रहे हैं। इसलिये नास्ति सुखकी लालचमें मत् पड़ो ॥

व्याख्या— अब कवित्त छन्द जो कहा है, उसका भावार्थ सुनिये !— अर्थात् हे शिष्य ! तुम मेरे सत्य निर्णयके उपदेशको ठीक-ठीकसे समझकर, विचार करके देखो ! ज्ञान स्वरूप चैतन्य जीव ही सत्य है, ऐसा जानो ! और चित्तकी चञ्चलता, विक्षेपको त्यागकर स्थिर होओ ! और ब्रह्म वा विषय सम्बन्धी जितने भी सुख तुमने माने हो, सो सब देह सम्बन्धमें प्रगट होनेवाले होनेसे नास्ति सुख हैं। अतः अनित्य रास्तेमें तुम मत् लगो। यानी अब तो भी तुम जो नास्ति सुख अनित्यमें पड़े हो, सो उसे चित्तसे त्यागकर सत्य और असत्य, सारासार, बन्धन और मुक्तिके भेदको परखकर, समझ करके देखो ! जिससे तुम्हारे भव-बन्धनकी निवृत्ति हो जावेगी; ऐसा अभी सत्पुरुषार्थमें तुम लगो ! ॥

२. गुरु चरणन करु सङ्गति * सन्त साधुकी ! ॥ ४६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरु चरणन = } सदा पारखी सद्गुरुके चरण-
करु सङ्गति = } कमलोंका सेवा-सत्सङ्ग करते रहो, तथा उनके आचरण उपदेशोंको भी धारण-ग्रहण करो !
सन्त साधुकी ! = पारखी सन्त साधु-गुरुके ही नित्यका सत्सङ्ग, सत्यन्याय-निर्णयके बोधसे ही तुम्हें शान्ति, सद्गुण सहित मुक्ति मिलेगी। अतएव उन्हींकी सङ्गतिमें ही लगे रहो ! और सब कुसङ्गको छोड़ दो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् प्रपञ्ची गुरुवालोग, विषयीलोग और स्त्रियाँ आदिके कुसङ्गको सर्वथा परित्याग करके पारखी सद्गुरुके चरणोंकी शरण-ग्रहण करो ! और विवेकी साधु-सन्तोंका सत्सङ्ग नित्यप्रति किया करो। उन्हीं साधु-गुरुकी ही सेवा, टहल, बन्दगी, सत्योपदेश श्रवण-मनन, सद्ग्रन्थ पठन-पाठनमें सदा लगे रहो। उसीसे तुम्हारी शान्ति, स्थिति और मुक्ति होवेगी, ऐसा जान लो ! ॥ ४६० ॥

३. हो मिस्कीन ❀ राखु निश्चय आकीन ॥ [आधा पद है।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

हो मिस्कीन = सब प्रकारके अभिमान, दम्भ, पाखण्डको छोड़कर दीनता, लीनता, नम्रता सहित मिस्कीन = दीन, गुरुभक्त होओ ! या सेवक बनो। और—
राखु निश्चय = } पारखी सद्गुरुपर पूर्ण
आकीन = } भरोशा या विश्वास रक्खो; वे तुम्हारे हित-कल्याण ही करेंगे। सद्ग्रन्थ बीजककी सत्य सिद्धान्त गुरुमुख-वाणीको ही निश्चयसे ग्रहण करो। उसीसे तुम्हारी सर्व भ्रान्ति छूटेगी। सद्गुरुके उपदेशको ही मनन करो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् हृदयसे ही मिस्कीन = गरीब, विरक्त, गुरुभक्त हो जाओ ! मोटी-झीनी माया, दम्भ, अभिमानादि सब दुर्गुणोंको त्याग दो ! पारखी सद्गुरु बन्दीछोर हैं, ऐसा पूर्ण विश्वाससे निश्चय रक्खो। उनपर भरोसा रक्खो, वे तुम्हें कल्याणके ही मार्गमें लगावेंगे ॥

४. तू तो जमापद बाकी ❀ खर्च काहे अबादकी ? ॥ ४६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तू तो जमापद = } हे नरजीव ! संसारमें जो
बाकी = } कुछ भी सत्य जमापद है, सो तो तू ही है। अविनाशी, अखण्ड, जमापद तो तू ही जीव है। और बाकीके सब खर्च, नाशवान्, अनित्य हैं। आखिरमें शेष या बाकी बचनेवाला तो सर्वश्रेष्ठ चैतन्य जीव ही है। और—
खर्च काहे = } जड़, अनित्य देह, गेह, पदार्थ,
अबादकी ? = } और कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि, विषयादि सुख-ये सब तो खर्चके भाग हैं। इसलिये इनमें लगके जीवकी स्थिति काहेको होगी ? उनमें लगके स्थिति कभी नहीं होती है। बिना पारख कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादिको क्यों आबाद या अविनाशी सत्य मान रहे हो ? वह सब तो बाद या खर्च है। फिर क्यों उसे कल्याणकारी, अबाद या सुखरूप तथा रक्षक सुखदाता आनन्दरूपकी कल्पना कर रहे हो ? ॥

व्याख्या— अर्थात् हे मनुष्य ! तू ही तो जमापद चैतन्य जीव नित्य, सत्य, अखण्ड, अविनाशी है। जीवसे भिन्न बाकीके सब तो खर्च- असत्य, क्षणिक, नाशवान् हैं। शेषमें जीव ही सर्वश्रेष्ठ है। जीवको छोड़कर बाकी सब खर्च हैं। ब्रह्म-ईश्वरादि वाणी-कल्पनाका खर्च है। पञ्चविषयादि खानी भागमें नाशवान् होनेसे खर्च है। इसीसे वह अबाद = सदा बना रहनेवाला नित्य सुखदायी काहेको हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता है। फिर उसे अबाद मान करके क्यों भूलते हो ? अतः चेतो, परखो, खर्च भागको त्यागकर जमापदमें स्थिर हो रहो ! ॥ ४६१ ॥

५. मन मनसा दोऊ * लौंडि निकारि डारो ॥ [आधा पद है ।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मन मनसा दोऊ=मन=सोई खानी जाल है, तथा मनसा=सोई वाणी जाल है। अथवा स्त्री-गुरुवा, जगत्-ब्रह्म, सङ्कल्प-विकल्प, अनुमान-कल्पना— ये सब जीवोंको बन्धन देनेवाले हैं। इसलिये मन तथा मानन्दी, विषयोंकी तरङ्गोंको एवं मिथ्या कल्पनाओंको हटाओ ! ये दोनों ही मन-मनसा—

लौंडि निकारि डारो=तुम्हारे घटमें रहनेवाली बाँदी, चेरी, नौकरानीके समान लौंडि, तुच्छ, नीच होते हुए भी घररूप घटमें बड़ी भारी उपाधि-कोलाहल मचा रही हैं। इसलिये विषय और ब्रह्मकी सुख-इच्छारूप लौंडियोंको पीट-पीटकर बाहर निकाल डालो ! और हृदयकी किवाड़ (पट) बन्द करके रक्खो ! फिर उन्होंको कभी घटमें घुसने ही मत् दो !॥

व्याख्या— अर्थात् मनकी मानन्दी तथा मनकी मनसा सोई चाहना, कामना, इच्छा, सङ्कल्प-विकल्प आदिके रूपमें प्रगट होती हैं। ये दोनों जीवके अधीन अपना-अपना विषय विस्तार करके घटमें कुहराम मचा रही हैं। नाना उपाधि बढ़ाकर खानी-वाणी जालोंमें जीवोंको फँसा रही हैं। अतः हे मुमुक्षुओ ! यदि तुम लोग निरुपाधि शान्ति-स्थितिको शीघ्र पाना चाहते हो, तो सुनो ! मन और मनसा यही दोनों उपाधिखोरिन कर्कशा लौंडियोंको झटपट विवेक दण्डोंसे मार-मारकर हृदयसे बाहर निकाल डालो। उन राँड़ोंको फिर कभी घटमें वापिस आने मत् दो ! वैराग्यरूपी फाटक मजबूतीसे लगाये रक्खो, और सदा सावधान होकर रहा करो !॥

६. मारो अहङ्कार तृष्णा * कुबुद्धि कुवादकी ॥ ४६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मारो अहङ्कार तृष्णा=तैसे ही पञ्च अभिमान, जाति, कुल, वर्ण, आश्रम, भेष, बल, विद्या, बुद्धिके जो कुछ भी अहङ्कार मान-गुमान हैं, उन सबोंको नाश करके मार डालो, तथा धनादिकी तृष्णा पिशाचिनीको भी मार-मारकर अन्त कर दो; इनके जड़-मूल ही उखाड़कर फेंक दो ! और—

कुबुद्धि= } बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाली कुबुद्धि-
कुवादकी = } दुर्बुद्धि स्त्रियाँ वा गुरुवाओंके विषय भोगका वाद, वाममार्ग, चार्वाक, वीर्य, तत्त्व, देह, शून्यादिक वाद एवं अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैतादि वाद, एक-अनेकके जितने भी वाद-विवाद हैं, सो सब कुबुद्धियोंके कुवादके जाल हैं। सो सबोंको परखकर ध्वंसकर डालो; उन किसीके भी वादमें मत् पड़ो !॥

व्याख्या— अर्थात् देखो ! उन लौंडियोंका पति अहङ्कार बड़ा बलिष्ठ है। वह मौका पायेगा, तो तुम्हें बहुत सतायेगा। और तृष्णा उनकी सहेली है। कुबुद्धि-कुवाद उनका दलबल है। सो छल-कपटसे तुमपर घात लगा रहे हैं। इससे तुम पहले ही अपने गुरुबलकी सहायतासे उनपर आक्रमण कर दो; उन्हें सुषुप्त अवस्थामें ही जाके कुचल डालो। अहङ्कारको पकड़कर मारो, उसे खतम करो। देखना, जरा भी उसका दम रहने न पावे। फिर तृष्णाको छिन्न-भिन्न कर डालो; अचाह हो रहो, और कुबुद्धि-कुवादकी पण्डालमें ज्ञानाग्नि लगा करके जला दो, उन्हें भस्म कर दो ! वाद-विवादसे रहित होकर निवृत्त-शान्त हो रहो !॥ ४६२ ॥

७. रूप हंस धार * ठहर कीजिये विचार ॥ [आधा पद है ।]

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

रूप हंस धार=हे मनुष्यो ! यदि तुम कल्याण या मुक्ति चाहते हो, तो सच्चा हंसस्वरूपको धारण करो। सो कैसे ? कि, प्रथम पारखी सद्गुरुकी शरणागत होना, टकसारी शुद्ध

त्यागी-साधु भेषको धारण करना, तथा सत्य, विचार, शील, दया, धीरज आदि सद्गुण हृदयमें धारण करके नीर-क्षीरका निवेरा करना, जड़ाध्यासको छोड़ करके पारखपद स्वरूपमें स्थिति कायम करना चाहिये। ऐसे हंसरूपको धारण करके—

ठहर कीजिये = } सत्सङ्गमें सत्यन्याय निर्णयसे
विचार = } बुद्धिको स्थिर करके, ठहर-कर सब पक्षपातको छोड़कर, सारासार, सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा परीक्षा द्वारा सत्यका विचार कीजिये! फिर असार, असत्य, जड़-मानन्दी, आसक्तिको छोड़ करके पारख स्वरूपमें ठहरिये!॥

व्याख्या— अर्थात् इतना बाह्य पुरुषार्थ करनेके उपरान्त अपने जीवकी स्थिति-ठहरावके लिये, हे जिज्ञासु मनुष्यो! सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर अपने पूर्वके काल-जालके भीतरके नाम-रूपको परित्याग करके, सद्गुरु प्रदत्त टकसारी शुभ त्याग भेषके संयुक्त हंसरूपको धारण करो। श्वेत वस्त्र, अचला, लङ्गोटी, कण्ठी, तिलक, सो बाह्य भेषका चिह्न धारण करो! और सत्य-विचारादि सद्गुण, नीर-क्षीरके निवेरा करनेके शुभ सद्गुणोंको भीतरसे धारण करो! और साधु-गुरुके सत्सङ्गमें जा करके सत्यन्याय-निर्णयमें ठहरके सब बातोंका विवेक-विचार करो। फिर सत्यसारको ग्रहण करके असत्य-असारको परित्याग कर दो!॥

८. यार बफादार दीनानाथ! ❀ दीनबन्धु गुरु साधुकी॥ ४६३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

यार बफादार = } तुम्हारे सच्चे हितैषी यार वा
दीनानाथ! = } मित्र तो, दीन-अनाथोंके नाथ सद्गुरु दीनानाथ ही हैं। उनके परम उपकारमें लक्ष्य लगा करके तुम ईमानदार सच्चे हो रहो! सो दीन शिष्योंको निवाहनेवाले—

दीनबन्धु = } मुक्तिदाता वे ही पारखी
गुरु साधुकी = } सद्गुरु हैं। दीन, दुःखी, बद्ध मनुष्योंके सहायक दीनबन्धु, सच्चे साधु पारखी सद्गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगी, सत्सङ्गमें ही जीवनको लगाये रहो। उसीसे तुम्हारी मुक्ति होगी, सो जानो!॥

व्याख्या— अर्थात् दीन=अनाथोंके नाथ ऐसे दीनानाथ, दीनबन्धु साधु-गुरुकी ही शरण सत्सङ्गके घेरामें जीवन भर लगे रहो। सद्गुरु ही तुम्हारे सच्चे यार-मुक्ति देनेवाले हितकारी मित्र हैं। अतः साधु-गुरुसे मित्रता करके उनके न्याय-निर्णयके अनुसार तुम बफादार=सच्चा, विश्वासी, ईमानदार, सच्चा मुमुक्षु होकर उन्हीं पारखी साधु-गुरुकी ही सेवा, बन्दगी करनेमें अपनेको लगाओ, उसीमें जीवन बिताओ। मुक्ति प्राप्त करनेका यही एक सत् साधन है। गुरुभक्तिकी विशेषतासे ही ज्ञान-वैराग्य परिपुष्ट होते हैं, ऐसा जान लो!॥ ४६३॥

दोहाः— शिष्य! ब्रह्म सिद्धान्त मत ❀ वेद बखाने सोय॥
[१८१] वेद मते जग सब चले ❀ भले बुरे गुण जोय॥ ४६४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

शिष्य! ब्रह्म = } हे शिष्य! यह अद्वैतवाद
सिद्धान्त मत = } वेदान्त मतके ब्रह्म सिद्धान्त-को ब्रह्मज्ञानियोंने अपनाया है। उसीको सर्वश्रेष्ठ माने हैं। उस भ्रमिक मतके पक्षपाती होकर वे उन्मत्त हुए और हो रहे हैं। और—

वेद बखाने सोय=वेद-वेदान्त, उपनिषदोंमें उसी ब्रह्मज्ञानका वर्णन बहुत प्रकारसे विस्तार करके कहा है। उस मानन्दीमें पड़े हुए लोग भ्रमिक अचेत हुए या हो रहे हैं।

वेद मते = } अब उसी वेदको सत्य मान-
जग सब चले = } कर वेद-वाणीके प्रमाणसे कर्म, भक्ति, ज्ञान- ये त्रिकाण्डोंके त्रिविधि मार्गोंसे जगत्के सब नरजीव चले गये, तथा अभी वैसे ही चले जा रहे हैं।

भले बुरे = गुण जोय = कोई गृहस्थाश्रमको भला मानकर विषयभोग कर्मादि करनेमें प्रवृत्तहुए हैं। कोई उसको बुरा मानकर साधु हो करके नाना साधनाओंसे ईश्वरादिको ढूँढ़ने-देखने लगे हैं। दक्षिणमार्ग वा वाममार्ग— यह भी भला-बुरा चलाये हैं। और कहीं द्वैतको निषेध करके अद्वैत ब्रह्मको भला, जगत्को बुरा बतलाये हैं। परन्तु, वह निर्गुण होनेसे विचारदृष्टिसे देखो! तो वही चौरासी योनियोंमें ले जानेका कारण होनेसे सो बुरा है, ऐसा जानो!॥

व्याख्या— हे शिष्य! ब्रह्म सिद्धान्त कथनका अद्वैत मतको सोई वेदवादियोंने चार वेदोंके भीतर प्रथम वर्णन किये हैं। फिर उपनिषदमें (जिसे वेदान्त कहते हैं) भी वही ब्रह्मज्ञानका बखान हुआ है। और भले-बुरे गुणको न्यारा-न्यारा देख-देख करके भी आखें मूँदकर "एकोब्रह्माद्वितीयोनास्ति" कहकर ब्रह्मज्ञानके पक्षपाती बनकर जगत्में सब ज्ञानीलोग वेदके मत प्रमाणसे ही अनुमान-कल्पनाको पकड़ करके धोखेमें ही चले गये और चले जा रहे हैं। वेदके तीन काण्डके भिन्न-भिन्न मार्गमें ही सब जगत्के नरजीव चले वा चले जा रहे हैं। अच्छे और बुरे गुण जो-जिसको जैसा भाया, तैसा ही अन्धान्धुध उसे ही पकड़कर चले जा रहे हैं, बिना विचार ॥ ४६४ ॥

दोहाः— भलो होत है भलो लही ❀ ब्रह्माअस्मि स्वरूप ॥
[१८२] हे शिष्य! देखु विचारिके ❀ बिम्बते हन्ता रूप ॥ ४६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

भलो होत है = भलो लही = गुरुवालोगोंने सर्वश्रेष्ठ एक ब्रह्मको सबसे अच्छा या भला माने हैं। इसलिये वे कहते हैं कि, श्रेष्ठ ब्रह्म बोधको प्राप्त करके, उसे लेकर ही जीवकी भलाईरूप मुक्ति होती है। तो हे मनुष्यो! तुमलोग ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करो!

ब्रह्माअस्मि = स्वरूप = तुम्हारा खास स्वरूप तो ब्रह्म ही है। क्योंकि, ब्रह्मांश जीवमें और कारण ब्रह्ममें तो कोई भेद ही नहीं है। तो तुम अपनेको ब्रह्म जानके "अहं ब्रह्मास्मि" का मनन करो! यह गुरुवालोगोंने कहा है। "मैं ब्रह्म हूँ!" ऐसा मिथ्या ब्रह्म स्वरूपका अहङ्कार धारण किये हैं।

हे शिष्य! देखु विचारिके = हे शिष्य! तुम सत्य निर्णय से विवेक-विचार करके देखो! वह तो मिथ्या धोखेका ही अभिमान नरजीवोंने धारण किये हैं। बिना विचार भ्रम-खाँचमें गिर पड़े हैं।

बिम्बते = हन्ता रूप = सो शरीर सम्बन्धसे तत्त्वोंके प्रकाशका जो भास हुआ, उसीकी सूक्ष्म-स्थूल हन्ता-ममता ले लिया, तो निज स्वरूपको वहीं भूल गया, कल्पित रूपके अहन्ताके अध्याससे चौरासी योनियोंमें नानारूप धरता गया। ऐसे बिम्बसे हन्ताका रूप खड़ा हुआ। उसीमें वे जीव भूल गये, बिना विचार॥

व्याख्या— अच्छाको लेकर अच्छा ही होता है; खराबको लेकर बुरा ही होता है। तहाँ अच्छाको लेकर बुरा और बुराको लेकर अच्छा तो कभी हो ही नहीं सकता है, इसीसे पारखबोधको लेकर ही जीवोंकी भलाई हो सकती है। और ब्रह्मास्मि स्वरूपको कल्पनासे पकड़कर तो जीवोंकी भलाई वा गति-मुक्ति कभी हो ही नहीं सकती है। क्योंकि, वह तो मिथ्या भ्रम ही है। इसलिये हे शिष्य! तुम सत्यन्यायसे विचार करके देखो! बिम्बरूप जड़ शरीरसे हन्ता सहित जो रूप भासा, सो प्रतिबिम्ब झाँईं मिथ्या है। अहङ्कारसे उसे ही अपना स्वरूप मानना, सो बड़ी भारी भूल है। परखकर सो भूलको मिटाओ ॥ ४६५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- १५ ॥ ❀ ॥

१. झाँईं सन्धि कालका फेरा ❀ बसै जीव निज नाहिंन हेरा ॥ ४६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

झाँई सन्धि = कालका फेरा = } निज स्वरूपको भूल करके नरजीव तहाँ विज्ञान असिपदकी ब्रह्म गाफिली, झाँईं में गिर पड़ा, फिर ज्ञान तत्पद साक्षी ईश्वरकी मानन्दीरूप सन्धिमें लगा। और अज्ञान त्वंपद अल्पज्ञ जीवकी कल्पनारूप काल बना। इसी तीनोंके फेरारूप घनचक्रमें जीव फिरने लगे। बिना विचार कुछ समझ ही नहीं पड़ी।

बसै जीव = निज नाहिंन हेरा = } उसी त्रिविधि घेरामें भूल-भुलाय करके नरजीव बैठ गये। तो कोई विषयोंमें ही बासा किये; और कोई ब्रह्म आदि कल्पनामें बैठ गये। निजपद पारख स्वरूपको विवेकदृष्टिसे कभी कोई हेरते ही नहीं हैं। न कभी सत्सङ्गमें ही पारख विचार करते हैं। तो मुक्ति स्थिति कैसे होगी? कभी भी नहीं होगी। अर्थात् झाँईं, सन्धि, कालके फेरा-में जीव जा-जाके बसे। इसीसे निजपदको कोईने भी नहीं हेरा ॥

व्याख्या— नरजीव निजस्वरूपसे विमुख होकर भ्रम-भूलमें पड़े, तो कोई झाँईं = देहके भासको ही ब्रह्म मानकर मग्न हुए। कोई सन्धि = ईश्वरादिकी नाना मानन्दीमें फिरने लगे। और कोई काल = कल्पनासे कर्म, उपासना, योगादिके फेरा, घनचक्रमें घूमने लगे। उसी तरफ ज्ञान, अज्ञान, विज्ञानमें ही स्थिति बनायके बैठ गये। निज स्वरूप द्रष्टाकी तरफ लक्ष्य घुमा करके पारख दृष्टिसे कोईने भी नहीं देखे। और वे निजपदको हेरते ही नहीं हैं। इसीसे वे आवागमनसे नहीं छूटे और छूटते भी नहीं हैं, बिना पारख ॥ ४६६ ॥

२. मन मनसाके फन्दे अरुझा * किञ्चित बिम्ब भाससों ना सुरझा ॥४६७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

मन मनसाके = फन्दे अरुझा = } पहले तो पुरुष स्त्रीके विषय फन्दोंमें अरुझा हुआ है। दूसरा मन सोई मानन्दी है। 'मनसा' कहिये कल्पना, अनुमानसे ब्रह्म, ईश्वर, देवता आदि मानके वाणी-जालकी अनेक साधनाओंमें अरुझकर फँस गये; जकड़ गये हैं। ऐसे मन-मनसाके फन्दोंमें अरुझे।

किञ्चित बिम्ब = सो उसमें थोड़ा-सा रूप, रस, स्पर्शादिका, विषय-सुख और ध्यान-समाधिमें वृत्ति स्थिर होनेसे थोड़ी देर तक ज्योति-प्रकाश या आनन्द आदि हुआ।

भाससों ना सुरझा = सो देहका भास, तत्त्वोंके प्रकाश आदिको ही अपना स्वरूप मानकर जीव अरुझे हैं। सो बिना पारख कोई नहीं सुलझा। बन्धन नहीं छूटा; किञ्चित् भी बिम्बका भास उसके नहीं सुरझा वा बन्धसे जीव नहीं छूटा ॥

व्याख्या— फिर भ्रमिक जीव सब मन और मनसाके फन्दोंमें फँसके खानी-वाणीके महान जालोंमें खूब अरुझे वा जकड़ गये। बिम्बके भाससे वे किञ्चित् भी नहीं सुरझे। अर्थात् संसारमें स्त्री देहकी सुन्दरताका भास- हाव, भाव, कटाक्षका मोह, विषयोंकी आसक्ति बढ़ती ही गई; थोड़ी भी कम नहीं हुई। और वाणीमें बिम्बरूप देहका किञ्चित् भास, ज्योति-प्रकाश, आनन्द आदि झाँईं की गाफिली, भ्रम-भूल किञ्चित् भी नहीं मिटी। दोनों तरफसे काल-जालमें जीव अरुझे हुए चौरासी-योनियोंके चक्रमें पड़े हुए हैं, बिना विवेक ॥ ४६७ ॥

दोहाः— भासो जीव रूप तेही * बिम्बते अनबनि रूप ॥
[१८३] हे शिष्य! प्रथमा चरण * नास्ति ब्रह्म सो भूप ॥ ४६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

भासो जीव = रूप तेही = } हे शिष्य! चैतन्य जीव तथा जड़ देहका रूप सम्बन्धित-वाला जो है, सो मनुष्यरूपको वही खानी-वाणीके विभिन्न रूपका भास हुआ।

क्योंकि, सो भास जीवरूपसे उसीको ही भास हुआ। और—

बिम्बते = अनबनिरूप = सो शरीररूप बिम्बसे ही रूप, रस, स्पर्शादि अनेक विषयोंका भोग हुआ। तथा देह सम्बन्धसे जो ज्योति आदि प्रकाश देखे हैं, उसीसे अनेक कल्पित सिद्धान्तकारूप प्रगट किये। उससे जीवकी कुछ मुक्ति तो नहीं बनी, बल्कि चौरासी योनियोंमें जा करके अनेक देह बनाये।

हे शिष्य ! = प्रथमा चरण = हे शिष्य ! यह मनुष्य देह—'प्रथमपद' है। कर्म-भूमिका होनेसे शुभाशुभका आचरण करनेकी जगह है। परन्तु, प्रथम ही जीवने चञ्चलता की, तो जीव विषय-कल्पनामें ही अग्रसर हुआ। अतएव महा बन्धनमें जा पड़ा। और—

नास्ति = ब्रह्म सो भूप = चारोंखानीमें राजावत् बने हुए श्रेष्ठ मनुष्य हैं। परन्तु, निजरूपको भुलायके एक ब्रह्मको सर्वश्रेष्ठ भूमण्डलादिका कर्त्ता, मालिक, भूप माने हैं। सो ब्रह्म तो मिथ्या धोखा होनेसे नास्ति है। उसी ब्रह्मके अध्याससे चौरासी-योनियोंके अनेक रूपमें जीव पड़ते हैं। तहाँ नाना दुःख भोगा करते हैं॥

व्याख्या— मनुष्य देहधारी जीवरूपके सत्ता-सम्बन्धसे बिम्बरूप शरीरसे अनेक प्रकारके रूप, नाना सिद्धान्त प्रगट हुए, सो मनुष्योंको ही भासा और दृढ़ हुआ। परन्तु, उससे जीवोंके कल्याणका बनाव तो कुछ होनेवाला ही नहीं है, जड़ाध्यास ही दृढ़ होनेवाला है। हे शिष्य ! प्रथम चरणमें मनुष्यकी भूलसे ही नास्ति ब्रह्मकी कल्पना हुई। फिर उसीको भ्रमसे सर्वेश्वर भूप= महाराजावत् महामान्य समझकर बड़ी महिमा करके मान लिये। परन्तु, वस्तुतः ब्रह्म कुछ भी नहीं है, नास्ति मिथ्या धोखा ही है। बिना पारख यह भेद कोई नहीं जानते हैं॥ ४६८॥

दोहाः— प्रत्यक्ष गमनन्त यह ❀ नास्ति सनेही नास्ति॥
[१८४] बन्दनिये सब जालके ❀ हंस प्रगट पद आस्ति॥ ४६९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

प्रत्यक्ष = गमनन्त यह = प्रत्यक्षमें तो स्वयं जीव ही सत्य है। परन्तु, स्वयं प्रत्यक्ष निजस्वरूपके विचारको छोड़कर कोई ब्रह्म-ईश्वरादिको प्रत्यक्ष करनेके लिये कल्पनामें दौड़े। सो यह नहीं जाने कि, मैं जिसके लिये तीर्थ, व्रत, योग, जपादिमें दौड़-दौड़कर नाना साधनाओंमें चल रहा हूँ, सो झाँई कोई वस्तु ही नहीं है, भ्रम कल्पना मात्र ही है।

नास्ति = सनेही = नास्ति = सो मिथ्या ब्रह्म और विषयादिमें प्रेम, प्रीति, स्नेह लगायके ही जीव जड़ाध्यासी हुए हैं। देह तो नाशवान् होनेसे छूट गया। किन्तु, बारम्बार आवागमनोंके फन्दोंमें ही वे नास्तिक लोग पड़ रहे हैं। जो नास्तिमें स्नेह लगाया, सो धोखेमें पड़ करके नाश हुआ।

बन्दनिये = सब जालके = सब कोई अबोध मनुष्यलोग गुरुवालोगोंकी प्रशंसा और वन्दना करके वाणी जालोंमें ही अरुझे पड़े हैं। परन्तु, खानी-वाणी सब जालोंको परखानेवाले जो पारखी सन्त हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ होते हैं। वे ही वन्दना करने योग्य हैं। उन्हींकी वन्दना करनी चाहिये।

हंस प्रगट = पद आस्ति = प्रत्यक्षमें सत्य चैतन्य हंसपद-को पारखसे प्रगट करके दिखानेवाले उनको ही पारखी सद्गुरु जानना। उसी सत्य हंसपद पारखमें स्थिति होनेसे ही प्रत्यक्ष जीवन्मुक्ति होती है। और प्रगटमें हंसपद ही अस्ति वा सत्य है, ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या— देखिये ! स्वयं प्रत्यक्ष जीव द्रष्टा ज्ञानाकार अपना स्वरूप है। विचारसे निजपदमें स्थिर होना छोड़कर भ्रमिक जीव यह मिथ्या धोखा नास्ति ब्रह्म, ईश्वर, विषयादिकी तरफ लक्ष्य लगा करके नाना मार्गोंमें गमन करते हैं, दौड़-दौड़कर उधर ही चले जाते हैं। तो नास्तिमें स्नेह करके

वे अपने ही नास्तिक होते हैं। जिसमें स्नेह लगाये, वह वस्तु ही कुछ नहीं है, तो उन्हें मिलेगी क्या ? कुछ नहीं मिलेगी। नास्तिमें खूब स्नेह भी किया, तो भी हरहालतमें वह नास्ति=असत्य ही रहेगा। प्रत्यक्षमें जड़ाध्यासी होनेसे जीव आवागमनमें ही पड़े रहते हैं। बेपारखीलोग सबोंने तो कालकी ही वन्दना करके उन्हींके जालोंमें जाकर बन्धे पड़े हैं। और जो सब काल-जालको परखाकर हंस चैतन्य नरजीवोंको अस्तिपद सत्य पारखको प्रगट करके लखाते हैं, सत्य बोध देते हैं, सोई पारखी सद्गुरु बन्दीछोर बन्दनिये=वन्दना करने लायक, मानने योग्य सर्वश्रेष्ठ मुक्तिदाता हैं। ऐसा जानकर अस्तिपदमें ही स्थिर होना चाहिये ॥ ४६९ ॥

सोरठाः— हे शिष्य ! अस्ति स्वरूप ❀ नास्तिरूप गुणमय जगत ॥
[२०] छितराने सब रूप ❀ ब्रह्म सनेही जीयरा ॥ ४७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य !=
अस्ति स्वरूप= } हे शिष्य ! निजस्वरूप चैतन्य जीवको ही तुम सत्य अविनाशी जानो, सो निजस्वरूपका बोध हो, अपरोक्ष पारख स्वरूपमें स्थिति होनेसे ही मुक्ति होती है। ऐसा विवेकसे पहिचानो। और—

नास्तिरूप=
गुणमय जगत= } ब्रह्म-ईश्वरादिका कोई रूप ही नहीं है, इसलिये वह नास्ति है। निराकार-निर्गुण माना हुआ ब्रह्मसे त्रिगुणमय साकार जगत् उत्पन्न हुआ, ऐसा बताना असम्भव मिथ्या कथन है। इसलिये जड़-चैतन्यरूप जगत् पाँच तत्त्व, तीन गुणोंको अनादि ही पहिचानो। तहाँ कार्य पदार्थ नाशवान् होनेसे बनते-बिगड़ते रहते हैं। और—

छितराने= } सब ठिकाने पञ्च विषय तथा
सब रूप= } जड़ तत्त्वोंके अनेकों कार्य बनते-बिगड़ते हुए, फैले हुए छितरे पड़े हैं। सो किसीने उन सब रूपको कल्पनासे समेट कर एक ब्रह्मरूप बनाया, तो भी उसमें इच्छा होनेसे चौरासी योनियोंके सब रूपमें वही छितरा गया।

ब्रह्म सनेही=
जीयरा= } इसप्रकार ब्रह्ममें प्रेम या स्नेह लगानेवाले नरजीवोंकी कभी भी स्थिति-मुक्ति नहीं होती है, भ्रम-भूल अध्यासवश आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रमें ही वे पड़े रहते हैं। इसकारणसे खानी और वाणी उन दोनोंको अच्छी तरहसे परखकर उनके सब विकार आसिक्त, कल्पनाको त्याग करना चाहिये ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! अस्ति स्वरूप तो अपना ही चैतन्य जीव है। उसे न समझकर, न जानकर ही मनुष्य भूलमें पड़े हैं। और ब्रह्म आदिका कल्पित रूप नास्ति है। पञ्च तत्त्वका पसारा जगत् त्रिगुणमय जड़ है। नरजीव अबोध दशामें ब्रह्म आदिमें स्नेहसे अन्ध विश्वासका प्रेम कर-करके भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए। इसीसे मानन्दीसे सर्वरूप जगत्में ब्रह्म आप ही छितरा गया। उधर देह छूटनेपर अध्यासवश जीव आप ही चारखानी चौरासी योनियोंमें नाना देहें धरके छितरा गये; ऐसे आवागमनमें भूलसे ही पड़े हैं। अतः उस भूलको अभी परख करके त्याग देना चाहिये, सो जानो ! ॥ ४७० ॥

॥ ❀ ॥ १८ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा-१८ ॥ खण्ड-३५ ॥ ❀ ॥

दोहाः— साहेब दीनदयाल प्रभु ! ❀ मैं जानेउँ तव भेव ॥
[१८५] बिम्ब प्रगट झाँईं भई ❀ झाँईं ते ब्रह्मदेव ॥ ४७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका अठारहवाँ प्रश्न दर्शाते हैं— जिज्ञासु शिष्य कहता है—

साहेब दीन-दयाल प्रभु !=
दीनदयालु हो !— } हे साहेब ! हे प्रभो ! आप हम दीन जीवोंपर दया करनेवाले

मैं जानेउँ=
तव भेव= } आपकी कृपाके प्रसादसे मैंने हे सद्गुरो ! इसका भेद अच्छी तरहसे जान लिया हूँ ! आपके कहनेका

भेद मैं अब समझ गया हूँ !

बिम्ब प्रगट = नरदेहके बिम्ब-प्रकासे ही
झाँईं भई = झाँईं रूप गाफिली प्रगट हुई,
सोई ज्योति आदि भास हुई।

झाँईं ते = फिर भ्रमसे उसी झाँईं को ही
ब्रह्मदेव = परब्रह्म-परमेश्वर देवता मान लिये;
अथवा झाँईं सोई ब्रह्मदेव हुआ। ऐसा जो
आपने बतलाये हो, सो बात यथार्थ है, मैंने
ऐसा समझ लिया हूँ ! ॥

व्याख्या— शिष्य कहता है— हे प्रभो ! दीनदयालु साहेब ! आपकी सत शिक्षाका भेद आपकी दयासे अब मैंने जान लिया हूँ ! प्रथम मनुष्य देहके बिम्बसे झाँईं प्रगट हुई; और झाँईं से ही ब्रह्मदेव-की कल्पना हुई। भ्रमसे सो झाँईं को ही ब्रह्मस्वरूप करके गुरुवालोगोंने माने हैं। इसप्रकारका भेद मेरे समझनेमें आ गया है ॥ ४७१ ॥

दोहाः— करुणारवन कृपाल तन ❀ जानि परी मोहि येह ॥
[१८६] हंसरूप जानेउँ भले ❀ मिथ्या मनको नेह ॥ ४७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

करुणारवन = करुणाके समुद्र समान और
कृपाल तन = दयामें ही रमण करनेवाले
कृपाके तो प्रत्यक्ष शरीर धारण किये हुए,
हे कृपामूर्ति प्रभो !—

जानि परी = इस प्रकरणका उत्तर जो आपने
मोहि येह = दिये हो, सो भलीभाँतिसे मेरे
जाननेमें आ गया है। आपकी दयासे मुझे
यह शङ्काका तो समाधान होकर यथार्थ
बात जान पड़ी है। और—

हंसरूप = सत्य, विचारादि सद्गुण
जानेउँ भले = संयुक्त मनुष्यरूपमें ही शुद्ध
हंसका गुण-रूप रहता है। सो भी भली
प्रकारसे जान लिया कि, विवेकी नरजीवको
ही हंस कहा है। और—

मिथ्या मन = मनके मानन्दी-स्नेह या प्रेम-
को नेह = से माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि
तथा विषय, यह सब मिथ्या है। यह बात
भी जाननेमें आई है ॥

व्याख्या— हे करुणार्णव ! कृपामूर्ति सद्गुरो ! यह बात तो आपके कृपा-प्रसादसे मुझे अब यथार्थ जाननेमें आ गयी है; और मनके नेह, मानन्दी, ब्रह्म और विषयादि मिथ्या है, तथा हंसरूप चैतन्य जीव सत्य है। सद्गुण रहनी धारण करके हंसरूपसे मुक्ति होती है। यह बात भी मैंने भलीभाँतिसे जान लिया हूँ ! इसका तो पूर्ण समाधान हो गया है ॥ ४७२ ॥

दोहाः— अब कहिये प्रभु ! हंसको ❀ प्रथमारूप विहार ॥
[१८७] खानी वाणी कौनसी ? ❀ कौनसी वस्तु अहार ? ॥ ४७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

अब कहिये = हे प्रभो ! अब कृपा करके यह
प्रभु ! हंसको = कहिये कि, हंसरूप पारखी
साधुका जगत्में बर्ताव कैसा रहता है ?—

प्रथमारूप = मनुष्य देहमें किसरूपमें प्रथम
विहार = व्यवहार करते हैं। उन्होंके चाल-
चलनका विहार कैसा रहता है ? और—

खानी वाणी = वे क्या वस्तु खाते-पीते हैं ?
कौनसी ? = कौन चीज नहीं खाते-पीते हैं ?
कौनसे हिसाबसे वाणी कैसी बोलते हैं ?
खानी सम्बन्धी और भेषधारियोंमें कैसे
रहते है ? और—

कौनसी वस्तु = आहार-विहारमें सेवन-
अहार ? = ग्रहण कौन-सी वस्तुका करते
हैं ? और कौन वस्तुका त्याग करते हैं ?
सो दर्शाइये ! यही मेरा प्रश्न है ॥

व्याख्या— हे प्रभो ! अब यह कहिये कि, हंस-चैतन्य जीवके बोधवान् पारखी हंसरूपके प्रथमरूप मनुष्य देहमें विहार-बर्ताव वा शुद्ध व्यवहार कैसा रहता है ? और उनकी खानी तथा वाणी

कौन-सी वा कैसी होती है ? तथा कौन-सी वस्तुका आहार कितनी मात्रामें करते हैं ? कौन-कौन-सी वस्तुका त्याग करते हैं ? सो सब निर्णयसे बतला दीजिये ! ॥ ४७३ ॥

॥ ❀ ॥ १८ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण-१८ ॥ खण्ड-३६ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— सुन शिष्य ! हंसा देह * जीवरूप धीरता युक्त ॥
[२१] ताको व्यवरा येह * अहै यथा अनुक्रम युक्त ॥ ४७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—
सुन शिष्य ! = हे प्रेमी शिष्य ! सुनो ! हंसदेह-
हंसा देह = की बात-रीति, शुद्ध चाल
आदि भी निर्णय करके कहता हूँ !
जीवरूप = दया, सत्य, शील, धीरता
धीरता युक्त = आदि सद्गुण रहनी-रहस्य
संयुक्त नरदेहधारी जीवरूप मनुष्य ही हंस
है। पारखीको ही हंस कहा जाता है।
ताको व्यवरा = उसका हिसाब या निर्णयका
येह = व्यवहार व्यौरेवार यही है कि,
सो अभी कहता हूँ, सुनो !—
अहै यथा = यथा अनुक्रमयुक्त रहनीवान्
अनुक्रम = पारखी सन्त होते हैं। जो यथार्थ
युक्त = सत्य निर्णयकी बात है, जैसा-
है-तैसा ही क्रमानुसार युक्तिपूर्वक एक-
एक करके कहता हूँ, सो चित्त लगा
करके तुम सुनो ! ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! हंसदेहके आहार-विहार, बर्ताव आदिके बारेमें अभी तुमने जो पूछा है, सो उसका निर्णय भी मैं कहता हूँ ! सो तुम ध्यान पूर्वक सुनो ! हंस देहमें सद्गुण रहनी-रहस्य सहित जीव शुद्ध सच्चे मनुष्यरूपमें धीरतादि गुण संयुक्त रहते हैं। जैसे क्रमानुसार सद्गुण संयुक्त यथार्थ निजरूपमें स्थिर रहते हैं, तैसे उसका व्यौरेवार वर्णन यही है कि-"यथा नाम तथा गुण"का बर्ताव उनमें होता है। खुलासा नीचेके और दोहोंके अर्थमें कहा है; वहाँसे विस्तार समझनेमें आयेगा ॥ ४७४ ॥

दोहाः— हंस अस्तिता निज मर्म * रूप तद्रस्याकार ॥
[१८८] सेवक एक अनेकको * नहीं तहाँ सञ्चार ॥ ४७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
हंस अस्तिता = इसका भेद ऐसा है कि- सत्य
निज मर्म = चैतन्य अविनाशी हंस जीव
ही निज स्वरूप है, सो उसका मर्म
समझकर—
रूप तद्रस्याकार = हंस गुण रहनी-रहस्य सहित
स्व-स्वरूप पारखपदमें तदाकार हो प्रत्यक्ष
शुद्ध आदर्शसे रहनेवाले वे ही स्थितिवान्
पारखी सन्त होते हैं। और—
सेवक एक = एक ब्रह्म तथा अनेक जगत्के
अनेकको = दासातनमें वे नहीं रहते हैं। एक-
अनेक माननेवाले भ्रमिकोंकी सेवा वे नहीं
करते हैं, और एक-अनेकके फन्दोंमें वे
नहीं रहते हैं।
नहीं तहाँ = सच्चेपारखी सन्तोंके हृदयमें खानी-
सञ्चार = वाणी आदिका अध्यास ग्रहण
ही नहीं होता है। उनमें धोखेका प्रवेश भी
नहीं होता है, भ्रम नहीं रहता है, इसीसे
उनका आवागमन नहीं होता है ॥

व्याख्या— हंस जीव ही अस्ति वा सत्य है, ऐसा निजस्वरूपके मर्मको जाननेवाले पारखी कहलाते हैं। वे पारख स्वरूपमें तदाकार होके रहनी-रहस्यके सहित शान्त, निर्भ्रान्त, स्थिर रहते हैं। इसीसे एक ब्रह्म और अनेक जगत् विषयोंके दास वा सेवक बने हुए भ्रमिक लोगोंकी वहाँपर पहुँच नहीं होती है, पारख स्थितिमें वे पहुँच ही नहीं पाते हैं, और पारखी सन्त भी वहाँ भ्रममें सञ्चार करके एक-अनेकके अधीन हो सेवक कभी नहीं होते हैं; वे तो सबसे न्यारे हो करके निज हंस-स्थितिमें ही सदा टिके रहते हैं ॥ ४७५ ॥

दोहाः— हंस अस्ति जो जमा विधि * जमा हंस पद थीर ॥
[१८६] तेहि पद प्रेम प्रवाहते * तारण गुरुमत धीर ॥ ४७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

हंस अस्ति जो = हंसरूप चैतन्य जीव ही सत्य
जमा विधि = है। ऐसा जानकर जो हंस गुण शुद्ध लक्षणोंको ही विधिपूर्वक जमा, ग्रहण संग्रह करते हैं। और—

जमा हंस = सब शुद्ध सद्गुणोंको जमा वा
पद थीर = एकत्र करके सत्य जमापदमें स्थितिके लिये हंस रहनीमें ही जो स्थिर होते हैं; वे हंसरूप चैतन्य पदको ही जमापद जान लेते हैं।

तेहि पद प्रेम = उसी निजपद हंस रहनी-गहनी-
प्रवाहते = का धारण शुद्ध प्रेमकी धारा-प्रवाह, एक-सा विवेक बहते रहनेसे, उसीसे उनके सब विकार, मानन्दी, विषयोंके अध्यास नाश होकर हृदय शुद्ध-निर्मल हो जाता है।

तारण = सो ऐसे पारखी सन्त धीर-
गुरुमत धीर = वीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब-के सच्चे अनुयायी परम पुरुषार्थी होनेसे स्वयं भव-बन्धनोंसे प्रथम छूटकर पार उतरकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। और फिर जिज्ञासुओंको भी वही पारखी सद्गुरुका सच्चा मत सत्य सिद्धान्तका उपदेश देकर पार उतार देते हैं, अर्थात् मुक्त कर देते हैं। इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशको ग्रहण कर धैर्यादि सद्गुणोंको धारण करो ! ॥

व्याख्या— हंस चैतन्य जीव ही अस्ति = सत्य है। जो ऐसे जीव जमाको विधिपूर्वक अच्छी तरहसे जानते हैं, सो जमारूप हंसपदमें ही सद्गुण रहनी-रहस्य संयुक्त स्थिर हो रहते हैं। और उसी हंसपदमें ही अखण्ड प्रेम-प्रवाह चालू होनेसे गुरुमत पारख बोधको प्राप्त करके धीर, वीर, गम्भीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब स्वयं ऐसे महान प्रतापी तरण-तारण हो गये। तैसे ही उस पदमें प्रेम-प्रवाह होनेसे धीर मनुष्य उन्हीं पारखी सद्गुरुके अनुयायी होकर गुरुमतको प्राप्त करके तरण-तारण हो जाते हैं ॥ ४७६ ॥

दोहाः— जमा हंस अब्वल सो थीर * बिम्बसे भासै और ॥
[१९०] और भासते ठौर गई * भूलि भटकि बहु दौर ॥ ४७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जमा हंस = सबका मानन्दीकर्त्ता नरजीव
अब्वल = उन सबोंका सो आदि है। सर्व
सो थीर = प्रथम श्रेष्ठ जमा हंसरूप सत्य चैतन्य ही है; उसकी स्थिति पारखमें होती है।

बिम्बसे = परन्तु, जीव देहधारी होनेसे
भासै और = शरीर सम्बन्धसे विजातीय और अनेक पदार्थ विषयादिका भास सन्मुखमें भासने लगा। बिम्बसे और ही कुछ भासा, तो—

और भासते = तहाँ ज्योति, आनन्द, ध्वनि
ठौर गई = आदि और विषयादिके भासमें मानन्दी दृढ़ होनेसे निज स्वरूपकी स्थिति-ठौर पारखसे जीवका लक्ष्य छूट गया। ऐसे ठौर चला गया।

भूलि भटकि = तब फिर निज स्वरूपको भूल-
बहु दौर = कर अनेकों मत-सिद्धान्तोंमें दौड़-दौड़कर भटका खाया, सोई अध्याससे चौरासी योनियोंमें दौड़-दौड़के भटक रहे हैं। ऐसे बहुत दौड़में पड़े हैं ॥

व्याख्या— अब्वल = प्रथम दर्जा मनुष्यदेहमें जमा हंस जीव सो स्वयं स्वरूपसे तो स्थिर ही रहता है। परन्तु, बिम्बरूप नर देहसे मन-मानन्दीके विशेष सम्बन्ध होनेसे और-ही-और स्थूल-सूक्ष्म विषयोंका ही नाना रूपमें भास होता है। स्थिर वृत्तिमें विवेकसे उतरनेवाले नरजीव उसी भासमें गाफिल होके फँस जाते हैं। और भासरूप, झाँई, सन्धि, ज्योति, आनन्दादि विषयोंमें

लग जानेसे हंसपदकी परीक्षा करनेकी ठौर-स्थिति चली गई; भ्रम उत्पन्न हो गया। इसीसे तो जीव अपनेको भूल करके खानी-वाणीमें भटक-भटककर बहुत-बहुत दौड़-धूपमें पड़ गये। जड़ाध्यासी होके फिर चौरासी योनियोंमें दौड़ने लगे ॥ ४७७ ॥

दोहाः— सो नाशक है कल्पना * कल्पित नाना जाल ॥
[१९१] जाल मध्ये बेहाल जीव * भये अनेकन हाल ॥ ४७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
सो नाशक = } स्वरूप स्थिति मुक्तिको विनाश
है कल्पना = } करनेवाला सोई कल्पना-विषयादिका भास-अध्यास ही सो नाशक है।
कल्पित = } वेद-कुरानादिकी कल्पित
नाना जाल = } वाणीका जाल और विषयका जञ्जाल नाना प्रकारसे संसारमें वही जाल चौतरफ फैला हुआ है।
जाल मध्ये = } उसी वाणी और खानी जाल-
बेहाल जीव = } के मध्यमें फँसे हुए नरजीव मनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अनेक साधनाएँ और नाना मिहनत-मजदूरी करनेमें बड़े दुःखी हो रहे हैं।
भये अनेकन हाल = सो अभी भी बहुत दुर्दशामें कष्ट सह रहे हैं। फिर भी चौरासी योनियों-में अनेक देहें धरके दुःख ही पावेंगे या दुःख पा ही रहे हैं ॥

व्याख्या— सो जीवोंके हंसपद मुक्ति-स्थितिको नाश करनेवाली कल्पना ही नाशक-काल है। और कल्पित सृष्टिसे ही वाणी-खानीके नाना जाल-जञ्जाल संसारमें विस्तार किये हैं। जड़ाध्यासी जीव भ्रमिक होकर उसी जालके मध्यमें पड़कर बेहाल हुए, तो अभी तक नाना तरहके अनेकों दुःख भोग ही रहे हैं। जहाँ-तहाँ भटक-भटक कर बेहाल हो रहे हैं ॥ ४७८ ॥

दोहाः— जाल मध्ये बहुते जीया * त्राहि त्राहि बिलखन्त ॥
[१९२] सो गुरु पारख लहत ही * नाशक नास्ति लहन्त ॥ ४७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं — हे शिष्य!
जाल मध्ये = } अनादि कालसे संसारमें
बहुते जीया = } अनन्तों जीव खानी-वाणी जालोंके बीचमें फँसकर, वे बहुत वर्षोंसे अध्यास रहे तक जीते, मरते, जन्मते ही रहते हैं। तहाँ दुःख-ही-दुःख भोग रहे हैं।
त्राहि त्राहि = } ऐसे त्रयतापोंका कष्ट पा करके
बिलखन्त = } अबोध मनुष्यलोग गुरुवा-लोगोंके पासमें जाके बिलाप करके रोते हैं। 'त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!' मुझे रक्षा करो, बचाओ, कहके पुकारते हैं। परन्तु, उन्हें कोई रक्षक नहीं मिलते हैं।
सो गुरु पारख = } सो जो कोई जिज्ञासु
लहत ही = } नरजीव पारखी सद्गुरुकी शरणमें आये, उन्होंको सद्गुरुने सब सार-असार फन्दोंको परखा दिये, सो उन्होंको सद्गुरुसे पारख बोध प्राप्त होते ही सब हाल मालूम हुआ।
नाशक = } फिर ब्रह्म-ईश्वरादि मानन्दी सब
नास्ति = } असत्य मिथ्या है। कल्पना, विषयों-
लहन्त = } में लगानेवाले गुरुवा और स्त्रियाँ वे मुक्तिपदको नाश कर देनेवाले नाशक काल बने हैं। ऐसा जानकर उन्होंके बन्धनोंसे छूटकर गुरुबोधके प्रतापसे मुक्तिपदको पा जाते हैं ॥

व्याख्या— मोटी-झीनी मायाके जालोंमें पड़े हुए बहुतेक अबोध मनुष्य जीव उन जालोंसे छूटनेकी युक्ति न जानकर असह्य दुःख पाकर, तहाँ रो-रोके 'त्राहि-त्राहि' मचाकर बिलख रहे हैं। और इष्ट माने हुए ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिके नाम ले-लेकर सहायताके लिये 'त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!' पुकार रहे हैं। सो सद्गुरुके ज्ञान पारखबोध प्राप्त होते ही नाशक-कालके नास्ति भेद जिज्ञासुको जाननेमें आ जाता है। अर्थात् बहुतेक अध्यासी जीव तो उसी मायाजालके बीचमें ही फँस करके

बेहाल, दुःखी, लाचार हुए। चौरासी योनियोंमें त्रिविधि तापादि अनेकों हाल=दुःख, कष्ट, क्लेश पाये। जब मनुष्य खानीमें आये, तो भी कर्म भोगनेमें अनेकों दुःख पा रहे हैं। और गुरुवालोगोंने असह्य कष्ट भोग होनेकी कठिन-कठिन साधनाओंमें लगा दिये हैं। तहाँ बहुत पीड़ित होकर त्राहि-त्राहि चिल्लाके बिलख रहे हैं। दुःखोंसे बचावा चाहते हैं। परन्तु, कोई उन्हें दुःखोंसे छुड़ानेवाले नहीं मिलते हैं, वैसे ही मरते चौरासी योनियोंमें जाते रहते हैं। जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी सद्गुरुकी शरणमें आते हैं, सो उन्हें सद्गुरु सब भेद परखाकर काल-जालोंसे बचा देते हैं। सो सद्गुरुके पारखबोध मिलते ही नाशक=गुरुवालोगोंके, नास्ति=ब्रह्मज्ञान आदिका धोखा छूटकर विनाश हो जाता है, और जीव मुक्त हो जाते हैं॥ ४७९ ॥

॥ ❀ ॥ सवैया- छन्द, भाग- [९] ॥ ❀ ॥

१. आनन्द महल अबास सोहावन * भौन साधु समाज विहारा ॥ ४८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! हंसके विहार, आचार, विचार, आहार खानी-वाणीके बारेमें तुम्हारे प्रश्नका उत्तर यहाँ कहता हूँ, सुनो !—

आनन्द महल= विषयानन्द-ब्रह्मानन्दादि
अबास सोहावन= सम्पूर्ण सुखाध्यास मानन्दीसे रहित जो हुए, सोई प्रत्यक्ष शरीररूपी महलमें जीवन्मुक्त सुखी हो सदा शुद्ध आनन्दमें रहते हैं। परन्तु, किसीप्रकारका नवीन वासना-अध्यास उनमें नहीं रहता है। वासनासे रहित ही वे रहते हैं। किसी रूप आदिकी सुन्दरतामें लुब्ध नहीं होते हैं। वे स्वयं पारख प्रकाशमें स्थिर होनेसे शोभायमान् अच्छे रहते हैं। और—

भौन साधु= पारखी साधु समाज जहाँपर
समाज= विराजमान रहते हैं, वहाँ ही
विहारा= ज्ञान-भवन या सत्सङ्ग-भवनमें जड़-चैतन्य सत्यासत्य निर्णयकी क्रीड़ामें ही सदा वे विहार करते रहते हैं। यानी विवेकमें ही वे विहार करके सत्सङ्गमें रमण करते रहते हैं॥

व्याख्या— अब यहाँपर सवैया-छन्दका भावार्थ कहा जाता है, सुनिये !— हंस देहधारी जीव नीर-क्षीरके निर्णय कर्त्ता पारखी होते हैं। वे सबके गुण-लक्षणोंके परीक्षक होते हैं। इसीसे गुरुवालोगोंने परम सोहावन, परमानन्दका महल सच्चिदानन्द माना हुआ ब्रह्मानन्द, योगानन्द आदिक कालके महलमें अबास=सुखकी वासनासे बद्ध होके पारखी सन्त कदापि निवास नहीं करते हैं। पूर्ण त्यागी होनेसे उस स्थानको प्रथम ही परखकर त्याग देते हैं। तैसे ही संसारके विषयानन्दके महल, स्त्री, पुत्र, धन, घर-गृहस्थी, राज, काज, राजमहलोंका निवास इत्यादि आनन्दके महलमें भी विवेकी सन्त कभी बास करके नहीं रहते हैं, उससे सदा दूर ही रहते हैं। वह आनन्दका महल तो देखने मात्रका सोहावन कालका महाजाल है। उससे परे हो, साधु-समाजके भवन, कुटी, झोपड़ी वा गुरुस्थान आदि सन्तोंके मण्डलमें ही सदा सत्सङ्गके विहारमें लगे रहते हैं। मुख्य विवेक-विचारका ही विहार उनका रहता है। इसीसे उनके हृदयरूपी महल नवीन वासना-चाहनादि विकारसे रहित नित्य स्वरूप स्थितिमें सुखी सर्वाङ्ग सद्गुणोंसे युक्त जीवन्मुक्तिकी निवृत्तिके आनन्दमें रहते हैं, इसीसे परम सुन्दर, शोभायमान् होते हैं। वे साधु-समाजमें बिहरते रहते हैं॥ ४८० ॥

२. प्रेम प्रत्यक्ष सो स्वच्छ अलंकृत * धीरज दया अरु शील विचारा ॥ ४८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

प्रेम प्रत्यक्ष= प्रत्यक्ष पारखी साधु-समाजोंमें
सो स्वच्छ= ही वे अटूट सत्य प्रेम बनाये
अलंकृत= रखते हैं। सो वे अपने भी पारखी हंसरूप स्वच्छ, शुद्ध, पवित्र रहते हैं। सर्व सद्गुण-लक्षणरूपी इन आभूषणोंको भीतर-बाहरमें धारण किये हुए वे सद्गुण-भूषणसे अलंकृत बड़े सुन्दर, शोभायमान मालूम पड़ते हैं। उनके गहनोंके

नाम यही हैं कि—

धीरज दया अरु शील विचारा = धीरज = स्वधर्म पालन करनेमें कैसे भी कष्ट पड़े, तो भी वे नहीं घबड़ाते हैं, धैर्य रखते हैं। निज-दया और परदयाको पूर्णतासे पालन करते हैं। और नम्रता-कोमलतादि शील स्वभाव-को रखते हैं। सत्यासत्य, हिताहितका विचार वे सदा करते रहते हैं। गुरुमुख वाणीको ही वे बोलते हैं। ऐसा शुद्ध आचार-विचार हंसरूप पारखीमें रहता है॥

व्याख्या— प्रत्यक्ष विवेकी साधु-सन्तोंमें सत्य प्रेमका भाव उनका रहता है। तथा धीरज, दया, शील, विचार और सत्य, एवं विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्य, इन सद्गुण-लक्षणोंके आभूषणोंसे सर्वाङ्गमें अलंकृत, सुन्दर और भीतर-बाहरसे स्वच्छ, शुद्ध, पवित्रतासे पारखी सन्त रहते हैं। आचार, विचार, तन, मन, वचनादि उनका साफ सच्चा शुद्ध रहता है॥ ४८१॥

३. वीर स्वभावसों नष्ट प्रमाण सो ❀ बासक राम सो भूमि अधारा॥ ४८२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

वीर स्वभावसों नष्ट प्रमाण सो = फिर शूर-वीर, धीर, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके वीर स्वभावको धारण करके निर्भय हो जाते हैं। और प्रत्यक्ष गुरु पारखके प्रमाण-से ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि भूत-प्रेत इत्यादि कल्पित गुरुवालोगोंके नष्ट वाणी जाल हैं; ऐसा समझकर परख करके उसको विनष्ट करके त्याग देते हैं। और—

बासक राम सो भूमि अधारा = सर्व जड़ासक्ति, वासनासे रहित हो, राम = निज चैतन्य जीवको पारख भूमिकाके आधारमें ठहराकर स्व-स्वरूपकी स्थितिमें ही सदा निवास करते हैं। और दूसरा कोई आधार उनके नहीं रहता है। निराधार स्वयं परीक्षक बने रहते हैं॥

व्याख्या— फिर काम-क्रोधादि विकारको जीतनेके लिये उनके स्वभावमें वीरता रहती है। शूर-वीर रणधीरकी नाईं निजपदमें स्थिर अडिग्ग रहते हैं। निर्भय होकर कालको ललकारके सब भाँतिसे उसे परास्त कर देते हैं। और वेदादि प्रमाणसे जगत्कर्त्ता ईश्वर-ब्रह्म आदि जो माने हैं, सो तो नष्ट कल्पना ही है। उसी वाणी जालमें गुरुवालोगोंने मनुष्योंको फँसा-फँसा करके मनुष्यपदको नष्ट-भ्रष्ट कर-करा रहे हैं। उसे पारखी सन्त परख करके प्रत्यक्ष प्रमाणसे 'जीव ही सत्य है', ऐसा ठहराकर अनुमान-कल्पनादिको समूल नष्ट कर देते हैं। और एक आत्माराम अधिष्ठानके आधारमें पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व चराचरका निवास जो माने हैं, सो तो मिथ्या कल्पना ही है। परन्तु, पारखी सन्त रमैयारामरूप चैतन्य जीवको सब वासना-अध्याससे छुड़ाकर, पारख भूमिकाके आधारमें ही टिका करके स्वरूप स्थितिमें ही सदा निवास किये रहते हैं। और सब तरफसे निराधार, निवृत्त, शान्त हो रहते हैं॥ ४८२॥

४. ये गुण लक्षण लक्षित तेही ❀ गुरुपद श्रेष्ठ न आन अचारा॥ ४८३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ये गुण लक्षण लक्षित तेही = ये ऊपर कहे हुए सद्गुणोंके शुभ लक्षण रहनी-रहस्य सर्वाङ्ग सहित जिनको धारण हो गया है या जिनमें ये उपरोक्त सद्गुण पाये जाते हैं, वे ही जीवन्मुक्तिके अधिकारी सर्वोच्च महापुरुष पारखी साधु सच्चे हंस मनुष्य होते हैं। और—

गुरुपद श्रेष्ठ न आन अचारा = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका दर्शाया हुआ पारखपदरूप गुरुपद सर्व श्रेष्ठ है। उसमें कोई कल्पनाका मिथ्या आचरण नहीं रहता है। श्रेष्ठ गुरुपद-में पारख रहस्यका ही आचार-विचार निर्णय गुरुमुखकी वाणी, हंसदेहकी खानी, शुद्ध अन्न-जलादिके आहार, सत्सङ्गका शुभ विहार, सत्यका ग्रहण, असत्यका त्याग, ऐसे नीर-क्षीरका निवेरा हंस पारखीसे होता है। सोई सद्गुणोंको ग्रहण करके और सब दुर्गुणरूप हन्ताको परित्याग करो।

ऐसे गुरुपद ही एक श्रेष्ठ है । उसमें अन्य | आचार नहीं रहता है, सो जानो ! ॥

व्याख्या— यही उपरोक्त सद्गुण शुभ लक्षणोंसे जो लक्षित हैं, यानी उन्हीं हंसगुण लक्षणों-को जिन्होंने पूर्णतासे धारण किया है, वे ही पारखी सन्त सर्वश्रेष्ठ गुरुपदमें ठहरे हुए होते हैं, ऐसा जानना चाहिये । और दूसरा भ्रम, कल्पनाका आचार वा आचरण कुछ भी विकार उनमें नहीं होता है । गुरुपदसे बढ़कर और कोई पद श्रेष्ठ नहीं है । अतएव उसी श्रेष्ठ गुरुपदके शुभ आचार, सत्य-विचारमें ही तुम भी लगे रहो ॥ ४८३ ॥

दोहा:— ताहि जमामों थीर पद ❀ बिम्बते भिन्नाकार ॥

[१९३] बोध सोई पद गुरु है ❀ अबोध शिष्य सो विहार ॥ ४८४ ॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताहि जमामों = उसी चैतन्य जीव-जमाके
थीर पद = पारखपदमें सद्रहस्य, सद्गुणयुक्त जो स्थिर रहते हैं, सोई पारखी साधु हंस कहलाते हैं । सो उसी जमामें ही स्थिर पद है ।

बिम्बते = वे शरीरादि विषय, कर्त्ता, ब्रह्म-
भिन्नाकार = कल्पनादिसे भिन्न या न्यारे ही जड़ाध्यासोंसे रहित, पारख स्वरूपकी स्थितिमें कायम रहते हैं । अपनेसे भिन्न विजातीय किसी भी आकारका अध्यास वे नहीं रखते हैं । सो देहके बिम्बसे चेतनका आकार भिन्न है ।

बोध सोई = पारख बोध सोई 'गुरुपद' है ।
पद गुरु है = इसलिये पारख प्रकाशी सत्य-ज्ञानके बोधदाता जो साधु हैं, सोई सद्गुरु बन्दीछोर कहे जाते हैं । और—

अबोध शिष्य ! = निज स्वरूपका बोध
सो विहार = जिनको नहीं है, बेपारखी सोई लघुपद या शिष्यपद है । तहाँ गुरुवा-लोगोंकी कल्पना ब्रह्म और स्त्रियोंके विषयादिमें बहुत जन विहार वा रमणमें पड़े हैं । उनमें जो कोई शिष्य जिज्ञासु भावसे आते हैं, उन्होंको सद्गुरु सत्सङ्गके विहारमें यथार्थ भेद परखा देते हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! जीव जमा उसी हंसपदमें रहकर ही स्थिरपद वा पारखपदको प्राप्त करता है । कहा है:— "परखत परखत हंसको। ला भूमिकाको पाय !" ॥ २७ ॥ बीजक अन्त स्तुति ॥ उसी जमारूप हंसमें ही पारखपद स्थिर रहता है। वह पद वा निजस्वरूपका आकार-प्रकार यह बिम्ब-रूप स्थूल-सूक्ष्मादि देहके जड़ आकारसे भिन्न ज्ञानाकार रहता है। सोई स्वयं स्वरूपका पारखबोध प्राप्त करके स्थिति करना, सर्वोच्च-सर्वश्रेष्ठ गुरुपद है । यानी पारख बोध सोई गुरुका पद है । और निज स्वरूपकी अबोध दशा, सोई शिष्यका पद है । जिसे लघुपद भी कहते हैं । अबोध लोग जहाँ-तहाँ विहार करते हैं; वे बन्धनमें ही पड़ते हैं । और जब पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें वे विहार करते हैं, तब बोध पा करके बन्धनोंसे छूट जाते हैं, तब वे भी गुरुपदमें ही पहुँच जाते हैं ॥ ४८४ ॥

दोहा:— गुरु शिष्य बोधित बोधना ❀ हंसन दुःख मिटाव ॥

[१९४] हंस लहै शिष्य ! सुख जोई ❀ सुनिये सोई प्रभाव ॥ ४८५ ॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरु शिष्य = संक्षेपमें बोधवान् पारख
बोधित बोधना = बोधदाता सो सद्गुरु हैं । और जिसको पारखका बोध नहीं है, बोध ग्रहण करनेवाला जो है, सो शिष्य है । ऐसे शिष्यको पारखी सद्गुरु सद्बोध कर देते हैं । सद्शिष्य गुरुबोधको लेता है ।

हंसन दुःख = जीवोंकी खानी-वाणीकी भ्रम-
मिटाव = मानन्दीके सब दुःख मिटाय देते हैं । इसलिये तुम भी हंस बनके सब दुःखोंको परख करके मिटाय डालो । और—

हंस लहै = हे शिष्य ! सद्गुण रहनी
शिष्य ! सुख जोई = धारण कर हंस पारखी

होनेपर फिर उसको प्रत्यक्ष जीवन्मुक्तिका सुख प्राप्त हो जाता है। सत्य निर्णयसे उसे विवेक करके देखो! तो तुम्हें भी पूरा मालूम हो जायगा।

सुनिये सोई = सो उस पारख निर्णय बोधका प्रभाव = प्रभाव कैसे पड़ता है? इसका रीति-हिसाब, न्याय भी मैं तुम्हें वर्णन करके सुनाता हूँ! सो अब एकाग्र चित्तसे सुन लो! ॥

व्याख्या— जिनको स्वरूपज्ञान पारखबोध हो गया है, सोई सद्गुरु होते हैं। और जो अज्ञान दशामें अबोध पड़े हैं, उन्हें सीखनेवाले शिष्य कहा जाता है। जब सद्गुरु और सद्शिष्य संयोगसे मिलते हैं, तब सद्गुरु उन्हें सत्य निर्णय परखाय-परखायकर सकल भेदको दर्शायके पारखका बोध कर देते हैं। और शिष्यलोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उसी सत्य बोधको ग्रहण करके हृदयमें धारण कर लेते हैं। इसप्रकार हंसोंके काल-जालोंके सकल दुःखोंका मिटाव वा छुटकारा हो जाता है। तुम भी इसीतरह सब दुःखोंका मिटाव वा अन्त करो! तदनन्तर निवृत्तिसे जीवन्मुक्ति-स्थितिमें वह हंस विवेकी शिष्यको जैसे सुख प्राप्त होता है वा प्राप्त करता है, सोई उसका प्रभाव भी मैं वर्णन करके कह देता हूँ! अब तुम उसी बातको सुनो! अर्थात् हे शिष्य! हंसपदको लेनेपर नरजीवको जैसा सुख मिलता है; तैसा उसका प्रभावके बारेमें कहता हूँ, सोई तुम सुनो! और मनमें मनन करके सद्रहस्यको जान लो! ॥ ४८५ ॥

दोहाः— अस्ति आत्माराम यह ❀ नास्ति सनेही दीन ॥
[१९५] गुरुमुख मिटै सो दीनता ❀ काल कला होय छीन ॥ ४८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अस्ति आत्मा-राम यह = सत्य चैतन्य रमैया राम तो यह जीव ही स्वयं है। परन्तु, गुरुवालोगोंने एक व्यापक आत्माराम कोई जो सत्य बतलाये हैं, सो मिथ्या धोखा मानन्दी मात्र है। और—

नास्ति सनेही दीन = हिन्दू, तुरुक दोनों दीन ईश्वर-खुदादि नास्ति-कल्पनामें ही प्रेम वा स्नेह लगा करके दीन, हीन, मलीन हुए। जीवसे भिन्न नास्ति अनुमानमें वा विषयोंमें आसक्त होकर प्रेम लगा करके जीव सब दीन, दुःखी, बद्ध हुए वा हो रहे हैं।

गुरुमुख मिटै सो दीनता = पारखी सद्गुरुके मुखारविन्दसे निकले हुए सत्य उपदेश सुनकर जड़-चैतन्य निर्णयका पारख बोध हो जानेसे ही सो भ्रम-अज्ञानकी मान्यता, दीनता सब मिट जाती है। तब सब अबोध मिट जायगा। और—

काल कला होय छीन = गुरुबोधके प्रतापसे काल = स्त्री और गुरुवाओंके विषय और भ्रम-कल्पनादिकी कला मन-मानन्दी आदि सब विनाश होकर छिन्न-विच्छिन्न, गायब हो जाती हैं। यानी दीनता मिट जानेपर कालकी सब कला क्षीण हो जाती है॥

व्याख्या— चैतन्य जीव तो स्वरूपसे सत्य है। परन्तु, अपनेसे भिन्न कोई एक आत्माराम सर्व व्यापक परिपूर्ण है, वही सत्य है, जगदाधार है इत्यादि, ऐसा कल्पनासे जो माने हैं, सो यह तो नास्ति-मिथ्या धोखा है। परन्तु, उसी नास्तिमें स्नेही, मोही, आसक्त हो करके नरजीव सब दीन, हीन, जड़ाध्यासी होकर दुःखी हुए और दुःखी हो ही रहे हैं। और मनुष्योंको जब गुरुमुखसे यथार्थ निर्णयका बोध हो जायगा, तब कालकी खानी-वाणीकी कला सब क्षीण, नष्ट, ध्वस्त होकर, वह दीनताका भाव भव-बन्धन सब मिट जावेगा। यानी गुरुमुखसे पारख बोध होनेपर सो अबोध-दशाकी दीनता मिटेगी। फिर उसके लिये काल-कला भी नाश हो जायगी ॥ ४८६ ॥

दोहाः— कला काल छूटे जो सुख ❀ सो सुख हंस विहार ॥
[१९६] गुरु शिष्यको सम्वाद शुभ ❀ सोई वाक्य विचार ॥ ४८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कला काल = छूटे जो सुख = काल-जाल भीतरके जितने सुखके आभास हैं, सो अनित्य और बन्धनरूप हैं। गुरुवा और नारियों-की खानी-वाणीका जाल, कल्पना-विषयादि-से जो छूट गये, वे ही जीवन्मुक्त नित्यसुख-में सदाके लिये सुखी हो गये।

सो सुख = हंस विहार = सोई शुद्ध निर्मल सुखमें हंस पारखी पारखदृष्टिसे विवेक युक्त विहार वा रमण करते हैं। सोई हंस-का सत्सङ्ग-विहारका सच्चा सुख है। जो कि, फिर कभी दुःखमें नहीं पड़ते हैं। और—

गुरु शिष्यको = सम्वाद शुभ = पारखी सद्गुरु तथा जिज्ञासु सद्शिष्यका प्रश्नोत्तर जड़-चैतन्यका निर्णय, सत्यासत्यको पहिचान करानेवाला वार्तालाप अच्छा, शुभ है, कल्याणकारी है। भ्रमको मिटानेवाला होता है। इससे—

सोई वाक्य = विचार = हे शिष्य! वही गुरुमुख निर्णय वाक्यको वा सारशब्दको सदा विचार करो, मनन करो! धारण-ग्रहण करो!॥

व्याख्या— कालकी कला मोटी-झीनी जालोंसे छूटनेपर मनुष्योंको जो निर्बन्ध-निवृत्तिके सुखका अनुभव होता है, सोई सच्चा सुखमें हंस पारखी विहार करते हैं। सत्सङ्गमें विहार करके विचारमें लगे रहनेवालोंको सोई मुक्तिका सुख प्रत्यक्ष मिल जाता है। इसलिये उसे प्राप्ति करनेके लिये, तुम भी सद्गुरु तथा सद्शिष्यके सम्वादमें वर्णन किया हुआ निर्णय, सोई गुरुमुख सार-शब्दरूपी शुभ वाक्यका ही विचार करते रहो। विवेकी गुरु-शिष्यके सम्वाद शुभ मङ्गलकारी होते हैं। सोई निर्णय वाक्यका ही सदा विचार करते रहना चाहिये॥ ४८७॥

दोहाः— गुरु सेवा अरु साधुकी ❀ देहे शिष्य! तेहि होय॥
[१९७] सोई कृपा विहार है ❀ शिष्य! लेहु भल जोय॥ ४८८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं — हे शिष्य!

गुरु सेवा = अरु साधुकी = ऐसे सत्यबोध पारखज्ञान प्राप्त करनेके लिये, शिष्यको चाहिये कि— पारखी सद्गुरु और वैसे ही विवेकी सन्त-महात्माओंकी सच्ची सेवा तन, मन, धनादिको अर्पण करके निज कर्त्तव्य समझ करके करे, उसमें प्रमाद न करे।

देहे शिष्य! = तेहि होय = हे शिष्य! देह, मनादि लगा करके जो कार्य तुम करोगे, उसीका फल तुम्हें मिलेगा। देह नाशवान् है; इसका अहङ्कार छोड़कर साधु-गुरुकी ही सेवा, बन्दगी, टहलमें इसे लगाना चाहिये। क्योंकि, यह सब देहसे ही होता है। देहसे किया हुआ सत्कर्मका असर मनमें पड़ता है। फिर वैसी ही मति-गति होती है। तो देह रहे तक साधु-गुरुकी सेवा करो!

सोई कृपा = विहार है = पारखी सद्गुरु सत्यन्याय-निर्णयका उपदेश शिष्योंके प्रति जो देते हैं, सोई उनकी कृपादृष्टि, सत्सङ्ग, सत्यबोधका विहार है। उसीमें रमण करना चाहिये।

शिष्य! लेहु = भल जोय = हे शिष्य! सद्गुरुके सत्यन्यायको तुम ग्रहण कर लो! भलीभाँतिसे सत्सङ्गमें लगकर सत्य निर्णयको विवेक दृष्टिसे देख लो! फिर तुम्हें सार-असार, बन्धन-मुक्तिकी पहिचान हो जायगी॥

व्याख्या— सत्य बोधदाता सद्गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगी करनी चाहिये। और विवेकी साधुओंकी भी सेवा, सत्सङ्ग-विचार जिज्ञासुने करते रहना चाहिये। हे शिष्य! यह सत्कर्त्तव्य मनुष्य देहसे ही होता है। अतः देह रहे तक मर्यादा पालन करके साधु-गुरुका सेवा-सत्सङ्ग करते रहना चाहिये। अभी जिस तरफ तुम तन-मन लगा देओगे, तैसी ही तुम्हारी गति-मति होयगी! हे शिष्य! सत्सङ्गमें सत्य उपदेशका बोध मिलना, सोई सद्गुरुकी कृपाका विहार है। सो तुम भलीभाँति विवेकदृष्टि खोलकर देख लो! हंसपदमें ही ठहरे रहो॥ ४८८॥

दोहाः— साधु समागम प्रेम विधि * कथन गुणन समूह ॥
[१९८] निछावर करु कल्पना * ब्रह्म अहन्ता जूह ॥ ४८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

साधु समागम = } सब मन-इन्द्रियादिको
प्रेम विधि = } साधे हुए पारखी सत्य-निर्णयी साधुओंके समाजमें सम्मिलित होकर सत्य प्रेमसे, भाव-भक्तिसे विधिपूर्वक सत्सङ्ग करना चाहिये; और—

कथन = } सद्गुरुके कथन सत्यनिर्णयकी वाणी
गुणन = } उपदेशको हृदयमें मनन करके
समूह = } सद्गुण, रहनी-रहस्य हंसगुण-लक्षणोंको सर्वाङ्ग समूह सब ही अपनेमें ले करके धारण करना चाहिये। और—

निछावर = } बन्धनकारी सब दुर्गुणरूप
करु कल्पना = } कल्पना, मानन्दी, भ्रम, विषयासक्ति आदि सबोंको परित्याग कर दो! यामी तन, मन, धनादि सद्गुरु देवको अर्पणकर आसक्ति त्यागो; सद्गुणोंको ही ग्रहण करो। और—

ब्रह्म अहन्ता जूह = ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पनासे लेकर स्त्री, पुत्रादि जगत् पर्यन्तकी समस्त अहन्ता, ममता, अध्यास, भास, विषयादि बन्धनोंको जो है, सो परित्याग करके पारख-पदमें स्थिर हो रहो ॥

व्याख्या— विधि पूर्वक सत्य प्रेमसे ऐसे विवेकी साधुओंके सत्सङ्गका समागम करके गुरुमुख निर्णय कथन समूहोंको सदा गुणन = मनन, विचार करते रहना चाहिये। और फिर ब्रह्म-जगत्की अहन्ता, मत-मतान्तर वा परिवारोंकी ममता, अनुमान-कल्पना आदि जो बहुत-बहुत बन्धनके कारण हैं, उन सबोंको भी सद्गुरुके चरणोंमें निछावर करके परित्याग कर दो! कल्पनाको छोड़ दो! तन, मन, धनके अहङ्कारको गुरु-अर्पण कर दो; सब तरफसे न्यारे हो रहो! ॥ ४८९ ॥

दोहाः— ऐसे आहि तहाँ हंस गुरु * भाखत हंसन ज्ञान ॥
[१९९] सो विहार गुरु शिष्यको * प्रत्यक्ष कियो बखान ॥ ४९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसे आहि = } ऐसे सत्य निर्णयी पारख
तहाँ हंस गुरु = } प्रकाशी जो पारखी हैं, सोई तहाँ संसारमें हंसपति चैतन्य बोध-दाता सद्गुरु हैं। वे जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिके भेद एक-एक ऐसे-ऐसे इसप्रकारसे हैं, कह कर दिखाय देते हैं। ऐसे वे परम दयालु हैं।

भाखत = } जिज्ञासु मनुष्योंको सत्यज्ञान
हंसन ज्ञान = } वर्णन करके बताय देते हैं। सब शङ्काओंका समाधान करके सत्यबोध कर देते हैं। वे ही पारखज्ञानके बोधदाता सद्गुरु हैं।

सो विहार = } सोई सद्गुरु तथा सत्शिष्य-
गुरु शिष्यको = } का समागम, सत्सङ्गका हंस विहार विवेक, बोध, वैराग्य, गुरुभक्ति आदिका प्रकाश करके बन्धन छुड़ानेवाला है।

प्रत्यक्ष = } साक्षात् प्रत्यक्ष सत्य चैतन्य जीव
कियो = } ही है। और जीवकी मानन्दी-
बखान = } कल्पना मिथ्या है। यह स्पष्ट वर्णन सद्गुरुने किया है। सोई यहाँ भी मैंने प्रत्यक्ष भेद प्रगट करके पारखज्ञान वर्णन करके तुम्हें सुनाया हूँ! सो जानो! ॥

व्याख्या— तहाँ हंस पारखी सद्गुरु ऐसे सर्वश्रेष्ठ सन्त शिरोमणि हैं; और आप जिज्ञासु हंसरूप नरजीवोंको कल्याणकारी सत्यज्ञान ही वर्णन करके यथार्थ उपदेश देते हैं। मनुष्योंके सब भ्रम-भूल छुड़ाकर सत्यबोध करा देते हैं। सोई सद्गुरु और सत् शिष्योंके सत्सङ्गका प्रत्यक्ष शुद्ध विहार वा बर्ताव है। सो यहाँ प्रत्यक्ष यथार्थ बखान किया गया है, ऐसा जानो! ॥ ४९० ॥

दोहाः— मन माया कृत गुण गणन * श्वान विष्टवत त्याग ॥
[२००] अप्रमेय सुख ब्रह्ममें * भूलि न इन्ह अनुराग ॥ ४९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन माया = मन-मायासे बने हुए स्त्रियोंके
कृत गुण = सङ्ग पञ्च विषयानन्द भोग तथा
गणन = त्रिगुण कृत गुरुवालोगोंके ब्रह्मानन्द, योगानन्द, प्रेमानन्दादि तथा कल्पित स्वर्गादिके समस्त सुख समूहोंकी परीक्षा करो! ये तो दुःखोंके तथा आवागमनोंके ही बीज हैं, ऐसा जानो!

श्वान = जैसे कुकुरके मैला = विष्ठा अतीव
विष्ठवत = तुच्छ होता है। तैसे ही उन सब
त्याग = ही मन-माया कृत गुण मानन्दित सुख समूहोंको भी श्वानके विष्ठावत् तुच्छ, दुःखोंके बीज समझकर उस मानन्दीको परखकर त्याग दो! और—

अप्रमेय = कितनेक गुरुवालोगोंने हद्पदार्थ
सुख = रहित, माया विकारसे रहित, ऐसा
ब्रह्ममें = ब्रह्मानन्द सुखको अप्रमेय मानके जगत्-विषय छोड़कर उस ब्रह्म विषयमें गाफिल हुए हैं। सो भी तो जगत् चौरासी योनियोंके दुखोंका ही बीज है। इसलिये वह अप्रमेय माना हुआ ब्रह्म-सुखमें भी मत् पड़ो।

भूलि न इन्ह = हे शिष्य! इन सब प्रपञ्चोंकी
अनुराग = बातोंमें, कल्पनामें प्रेम लगाकर तुम मत् भूलो! कभी भूल करके भी ब्रह्म वा विषयादिमें प्रेम न करो!॥

व्याख्या— अर्थात् हे शिष्य! यदि तुम मुक्ति चाहते हो, तो मुमुक्षु बनके सद्गुणोंको ही धारण करो! और मन-माया कृत त्रिगुण और उसके कार्य पञ्च विषय भोगोंको एकदम तुच्छ कुत्तेके विष्ठावत् निकृष्ट समझकर भीतर-बाहरसे सर्वथा विषयासक्तिको परित्याग करो। क्योंकि, मनुष्यादिके विष्ठाको तो कुत्ते-सूअर आदि चावसे ग्रहण करते हैं। कुत्ते आदिके विष्ठाको तो कोई भी ग्रहण नहीं करते हैं। तैसे ही खानी-वाणीके गुण समूहोंको भी विकारी समझकर त्याग दो! और अप्रमेय शुद्ध माना हुआ ब्रह्मानन्द सुखमें भी मत् भूलो। यह भी उसीके समान विकारी है। विषयानन्दसे लेकर ब्रह्मानन्दतक माना हुआ इन सुखोंमें कभी भूल करके भी अनुराग मत् करो। इन्हें कालका फन्दा बन्धनका मूल कारण जानकर सर्वथा परित्याग करो! निराशवर्तमानमें स्थिर रहो॥४९१॥

दोहाः— हे शिष्य! साधु समाजमों ❀ अहै प्रत्यक्ष विहार॥
[२०१] अनुमानी बहु नास्ति मत ❀ बहे घोर अन्धार॥ ४९२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! साधु = हे कल्याणेच्छुक शिष्य!
समाजमों = यहाँ ही पारखी सन्त समाजमें ही सबसे श्रेष्ठ सुख है। सब बातोंका सत्य निर्णय होता है। पारख बोधकी प्राप्ति होती है, भ्रम छूटता है।

अहै प्रत्यक्ष = इसवास्ते प्रत्यक्ष ही सन्देह
विहार = रहित होनेसे शान्तिसे निवृत्ति सुखका विहार होता है। सो प्रत्यक्ष विहार है। और जीवन्मुक्ति सुखमें विहार करनेवाले प्रत्यक्ष सद्गुरुका नित्य दर्शन होता है।

अनुमानी = सो ऐसे सत्सङ्गको छोड़
बहु नास्ति मत = करके भ्रमिकलोग विषय, स्वर्ग, ब्रह्म आदिमें सुख अनुमान करके बहुतेक लोग अनुमानी नास्तिक बने; झूठे मत-पन्थोंके पक्षमें गिर पड़े।

बहे घोर = इसीसे वे ब्रह्म वा विषयोंकी धारामें
अन्धार = बहकर महा अज्ञानी मूढ़, भ्रमिक हुए। फिर चौरासी योनियोंके गर्भवासके खाँचमें जा पड़े, बहुत दुःख भोगी हुए॥

व्याख्या— हे शिष्य! पारखी साधु-समाजमें सत्सङ्ग-विचार करके रहनेमें ही प्रत्यक्ष शान्ति, निवृत्तिका सुख विहार है। इसे छोड़कर भ्रमिकलोग अनुमानी होके बहुत ही नास्ति-असत्य वा मिथ्या धोखाके मत-मतान्तरमें लगे। तहाँ घोर अन्धकार, महाअज्ञान, अविद्या ग्रसित हो करके पक्षपात पकड़-पकड़ कर वाणी-खानीके समुद्रमें गिरके बह गये; तो चौरासी योनियोंमें गोता लगाये, सो अभी तक वहीं डूबे पड़े हैं; बिना पारख निस्तार हो नहीं सकता है॥ ४९२॥

दोहाः— शिष्य ! अस्तिपद प्रगट यह * गुरुमुख जानहु सोय ॥
[२०२] ध्यान अनुमाने ब्रह्म सुख * कहवे मात्रित होय ॥ ४९३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

शिष्य अस्ति-पद प्रगट यह = हे शिष्य ! यह चैतन्य जीव तो प्रत्यक्ष ही है। उसके सत्य पारखपद बोधको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने प्रगट या प्रकाश किये हैं। सो यह सर्वोच्च सत्यज्ञान है।

गुरुमुख = जानहु सोय = सो तुम पारखी सद्गुरुके मुखसे निकले हुए सत्य उपदेशको श्रवण करके सत्यासत्यका निर्णय छान-बीन करके, सोई स्व-स्वरूपका ज्ञान अपरोक्ष पारखबोधको यथार्थ जान लो ! और सकल मानन्दी गाफिलीको त्यागकर स्वरूपमें ठहरो ! अर्थात् सो उसको तुम गुरुमुख द्वारा ठीकसे जानो ! और—

ध्यान अनुमाने = ब्रह्म सुख = गुरुवालोगोंने उधर जो ध्यान, धारणा, समाधि लगा करके वृत्ति स्थिर होनेसे जो कुछ अल्प सुख मालूम हुआ, सो उसीको अनुमानसे ब्रह्म मानकर ब्रह्मको सुख स्वरूप व्यापक ठहराये हैं, सो यथार्थ नहीं है, कल्पना मात्र है।

कहबे = मात्रित होय = तहाँ द्रष्टा जीव सो सबसे न्यारा ही रहता है। व्यापक तो कोई पदार्थ नहीं है। फिर देहके भास, तत्त्वोंके प्रकाशको देख करके कहने मात्रका मिथ्या ही तद्रूप सुखमें ब्रह्म-जीवकी एकता होती है। सो मानन्दी झूठी ही है। बिना पारख उसीमें जीव भूले पड़े हैं॥

व्याख्या— अर्थात् हे शिष्य ! अस्ति-सत्य चैतन्य जीवका सत्यपद तो यह प्रत्यक्ष पारखपद ही है। इसके अतिरिक्त और कोई सत्यपद नहीं है। सो यह भेदको तुम गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ अच्छी तरहसे जानो ! और अनुमानसे कोई एक निर्गुण ब्रह्म मानकर ध्यानकी अनुमान-कल्पनासे ब्रह्मको बड़ा भारी सुख स्वरूप परमानन्द वा सच्चिदानन्द जो माने हैं, सो तो कहनेमात्रका मिथ्या धोखा है। ब्रह्म सुख तो कहनेमात्रका सुख है। असलमें वह सत्य कोई वस्तु ही नहीं है। उसका अध्यास ही जीवको चौरासी योनियोंमें ले जानेवाला है, ऐसा जानो ! ॥ ४९३ ॥

दोहाः— मङ्गल मूरति साधु गुरु * सो सब सुखकी खान ॥
[२०३] ताहि त्याग बहुतक बहे * ब्रह्मसिन्धु सुख मान ॥ ४९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मङ्गल मूरति = साधु गुरु = सत्यन्यायी, यथार्थ वक्ता, पारखी साधु सद्गुरु तो प्रत्यक्ष चैतन्य सत्य मूर्ति, मङ्गलकारी हैं। शरणमें आनेवाले सभीके वे हित-कल्याण या मङ्गल ही कर देते हैं॥

सो सब = सुखकी खान = सो सब बन्धनोंसे रहित, जीवन्मुक्त सब सुखकी खान ही हैं। तथा अपने समान मुमुक्षुओंको भी सब सुख मुक्तिपदके दाता हैं। सभी प्राणियोंको वे सुख ही देते हैं।

ताहि त्याग = बहुतक बहे = ऐसे उपकारी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाना छोड़ करके, उनके सत्य उपदेशको त्यागकर बहुतेक भ्रमिक, अभागे, अविचारी, अन्धे, मूढ़ बन करके खानी-वाणीकी धारामें खुशीसे बह गये। और आगे—

ब्रह्मसिन्धु सुख मान = ब्रह्मको समुद्रके समान सुखका-सागर ब्रह्मानन्दको सबसे बड़ा मान-मान करके भ्रम-धोखेमें ही गाफिल हुए हैं। फिर अध्यासवश व्यापक बनकर चौरासी योनियोंमें ही दुःख भोगनेको चले गये। और अभी बहुतेरे उसी रास्तेमें ही चले जा रहे हैं; बिना विवेक॥

व्याख्या— अर्थात् साक्षात् प्रत्यक्षमें मङ्गलमूर्ति, कल्याणकारी, बन्दीछोर, सत्यबोधदाता ऐसे

पारखी साधु-गुरु हैं। सो वे सब प्रकारसे सुखकी खानी हैं। सब मनुष्योंको सत्यज्ञान देकर सुख ही देते हैं। निवृत्ति, निर्भ्रान्ति, शान्ति कराके सब तरहसे सुखी कर देते हैं। आप तो जीवन्मुक्तिके सुखमें सन्तुष्ट होकर विराजमान हैं। ऐसे पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण सत्सङ्ग करके सत्यज्ञान लेकर कल्याण मार्गमें लगना त्याग करके बहुतेरे अभागे, दुर्बुद्धि मनुष्य भ्रमिक हुए, तो एक कल्पित ब्रह्मको ही सुखके सिन्धु परमानन्दस्वरूप मानके वाणी-कल्पनामें बह गये। और व्यापक ब्रह्म बनके जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंकी धारामें ही बह गये। और अभी भी बहुतेरे बेपारखी लोग उसी कल्पनाकी धारामें बह रहे हैं। भव-बन्धनोंमें जकड़े पड़े हैं ॥ ४९४ ॥

दोहाः— ये नहिं जानहि जीयरा ❀ हौं को ? को यह आहि ? ॥
[२०४] साधु समागम त्यागिके ❀ परे चौरासी माँहि ॥ ४९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ये नहिं = जानहि = जीयरा = पारखदृष्टिहीन अन्धे नरजीव सार-असार, जड़-चैतन्यके भेदको तो कुछ जानते ही नहीं हैं और भ्रमिक मनुष्य जीव यह भी नहीं जानते हैं कि-

हौं को ? = को यह = आहि ? = मैं कौन हूँ ? और यह मैंने माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि क्या है ? जगत् क्या है ? जड़से मेरा सम्बन्ध क्या, कैसा है ? ये सब बात तो वे कुछ समझते ही नहीं है। और समझ लेनेकी कोशीश तथा सत्सङ्ग भी नहीं करते हैं।

साधु समागम = त्यागिके = पारखी साधु-गुरुकेसत्सङ्गमें ये सब बातोंका सत्य निर्णय होता है; जीव चैतन्य सत्य है। ब्रह्म-भ्रम मिथ्या है। मानन्दी-अध्यास बन्धन है। पारख स्थिति मुक्ति है इत्यादि। परन्तु, गुरु-साधुका समागम करना ही छोड़ दिये। और सत्सङ्गमें ही नहीं आते हैं, तो क्या समझेंगे ? कुछ नहीं।

परे चौरासी माँहि = इसीसे मुक्तिमार्ग सत्सङ्गको त्याग करके जीव सब महा बन्धनमें अरुझे, तो फिर नरदेह छूटनेपर चारखानीकी चौरासी योनियोंमें ही जा करके पड़े और पड़ रहे हैं। वहाँ दुस्सह दुःख सह रहे हैं, बिना पारख ॥

व्याख्या— ये भ्रमिक नरजीव यह भेदको तो कुछ भी नहीं जानते हैं कि— मैं कौन हूँ ? मेरा यह अहङ्कार क्या है ? यह ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि क्या चीज है ? ये कहाँसे आये ? जगत्का स्वरूप क्या है ? वास्तवमें जगत् आदि है, कि अनादि है ? इत्यादिका रहस्य वे कुछ भी नहीं जानते हैं। और उसे जाननेका प्रयत्न भी नहीं करते हैं, इसीसे विवेकी पारखी सन्त साधु-गुरुके समागम सत्सङ्ग-विचारको दूरसे ही त्याग करके खानी-वाणी जालोंमें जा पड़े, तो विषयासक्ति और कल्पनामें गाफिल हो-हो करके मरते हैं, इसीसे तो वे सब चौरासी योनियोंमें ही जा करके पड़े वा पड़ते हैं। ऐसे ही दुःख भोगा करते हैं, बिना विवेक ॥ ४९५ ॥

दोहाः— अनबनि जतन नशायके ❀ संग्रह ब्रह्म करेह ॥
[२०५] मन माया संयुक्त मिली ❀ धरे अनेकन देह ॥ ४९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अनबनि = जतन = नशायके = कोई तो अनेकों कर्म-उपासनादि यत्न-साधना करने लगे, और कोई उन सब अनेकों यत्नोंको छोड़के या नाश करके परमहंस विज्ञानी हुए; विधि-निषेध छोड़ दिये।

संग्रह = ब्रह्म करेह = परन्तु, ब्रह्म-कल्पनाका एकत्र संग्रह किये। यानी वेदान्तकी वाणीका संग्रह करके एक सर्वाधिष्ठान आत्मा माने; उसमें समस्त जगत्का संग्रह कर लिये।

मन माया = संयुक्त मिली = मनकी कल्पना, चाहना, इच्छा, वासना तथा माया-रूप कायाका विषयभोग नाना कर्म-कुकर्म, इसी जड़ अध्यासके संयुक्त जीव सम्मिलित होके स्थूल देह छोड़के सूक्ष्म देह सहित

चौरासी योनियोंमें जाते हैं।

धरे अनेकन देह = तहाँ जैसा संस्कार-वासना सन्मुख हो जाती है, तैसे ही पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि नाना देहें धारण करके कर्मानुसार फल भोग लेते हैं। ऐसे अनेकों देहें धारण किये हैं॥

व्याख्या— अर्थात् अनेकों प्रकारसे यत्न-प्रयत्न करके कल्पनासे वाणीका संग्रह कर वेद-वेदान्तका ग्रन्थ बनाये। तहाँ विस्तारसे, विशेषरूपमें ब्रह्मज्ञानका कथन किये हैं। प्रथम साधन चतुष्टय आदिका वर्णन करके, फिर अन्तमें अद्वैत सिद्धान्त स्थापित करनेके लिये सब विवेक-विचारको नशायके विधि-निषेधसे परे ठहराके परमहंस हुए, तो मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य ब्रह्मको मानके गरगाफ हुए। यानी अनेक यत्नको नशायके सर्वव्यापक एक ब्रह्म है, ऐसा वाणी-का संग्रह किये। तहाँ त्याग-वैराग्य छोड़ करके महारागी-जड़ाध्यासी हुए। फिर मन-माया संयुक्त मिलके अध्यासी जीव गर्भवासमें चले गये। तहाँ चार खानियोंमें अनेकों देहें धारण करके पैदा हुए; और अभी वैसे ही पैदा हो रहे हैं। अपने-अपने कर्मका फल सब जीव भोग रहे हैं। चौरासी योनियोंमें डोल रहे हैं॥ ४९६॥

दोहाः— ऐसो मत जग विदित है * बहु निर्णय यहिकेर॥

[२०६] लखै जो गुरुमुख धीर धरि * मिटै चौरासी फेर॥ ४९७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसो मत जग = विदित है = ऐसे-ऐसे भ्रमिक गुरुवा-लोगोंके नाना मत, नाना सिद्धान्त ब्रह्मज्ञानादि जगत्में जाहिर वा प्रचार हो ही रहा है। उनके मतलब सबको मालूम ही हैं।

बहु निर्णय = यहिकेर = यही ब्रह्मज्ञान अद्वैत-द्वैतादि मतोंकी मानन्दीके निर्णय = फैसला, ठहराव गुरुवालोगोंने बहुत किये हैं। और पारखी सद्गुरुने भी बहुत प्रकार-से उन सबका सत्यन्यायसे निर्णय किये हैं।

लखै जो = गुरुमुख = धीर धरि = जो कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें गुरुमुखके यथार्थ वाणी-निर्णयको पक्ष छोड़कर धैर्य धारण करके लखता है या लख लिया होगा, तब—

मिटै चौरासी फेर = पारख बोधके प्रतापसे फिर उसका अध्यास नाश होनेसे चौरासी योनियोंके आवागमनका फेरा भी मिट गया या जन्मृतिका चक्र मिट जायगा, मुक्त हो जायगा॥

व्याख्या— ऐसे-ऐसे मनुष्योंको भुलानेवाले गुरुवालोगोंका अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदिका मत-मतान्तर जगत्में सबको विदित वा जाहिर ही है। इसका निर्णय भी बहुत-बहुत है। जो मुमुक्षु मनुष्य सब पक्षपातको छोड़कर हृदयमें धैर्य धारण करके सत्यग्राही, सत्य शोधक बनके गुरुमुखसे परीक्षा करके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ बातको लखते हैं; सो उन्हें ही सबका कसर-खोट समझनेमें आ जाता है। और वे विवेकी पुरुष खानी-वाणीके आसक्ति-अध्याससे रहित हो जाते हैं। इसीसे उनका फिर चौरासी योनियोंका फेरा आवागमनका चक्र मिट जाता है। निजस्वरूपकी पारख-स्थितिमें रहनेसे वे जीते ही बन्धनोंसे रहित, जीवन्मुक्त हो जाते हैं॥ ४९७॥

दोहाः— हंस विहार सो साधु सङ्ग * गुरु निर्णय लौलीन॥

[२०७] कला काल लागै नहीं * पारख दृष्टि प्रवीन॥ ४९८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

हंस विहार = सो साधु सङ्ग = पारखी हंस मनुष्योंका विहार, व्यवहार, बैठक सो तो सदा ही साधु पारखियोंके सत्सङ्ग-में ही रहता है। जिससे सद्विचार, सद्बोध, सत्यज्ञानका ही प्रकाश होकर शुद्ध निर्मल हृदय बना रहता है। और—

गुरु निर्णय = } एकाग्र लक्ष्य सद्गुरुके सत्य
लौलीन = } निर्णयमें ही लगा रहता है। निर्णय गुरुज्ञान धारणमें ही लवलीन या तल्लीन होनेसे और भ्रम-धोखा उनमें प्रवेश कर नहीं सकता है।

कला काल = } इसवास्ते विषय, वाणी-
लागै नहीं = } कल्पनाओंकी नाना कला, कालरूप मुरुवालोग और स्त्रियोंके दाव, उनको एक भी नहीं लगता है। तथा मनकी मानन्दीकी कला भी उन्हें लग नहीं सकती है।

पारख दृष्टि = } क्योंकि, उनके पासमें पारख-
प्रवीन = } दृष्टि वा परीक्षादृष्टि रहती है। वे निजबोधमें प्रवीण, पूर्ण चतुर सावधान रहते हैं। सब भ्रमको परखकर मिटा चुके हैं, इसलिये वे निर्बन्ध मुक्त होते हैं॥

व्याख्या— अर्थात् जो हंस वा मनुष्य पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गके विहारमें लगके विचार करते हैं। सो फिर सद्गुरुके सत्यन्याय-निर्णयमें ही प्रेम लगाकर उसी रहनीमें लौलीन हो लगे रहते हैं। इसलिये वे विवेकी होकर पारखदृष्टिमें प्रवीण वा चतुर, सब रहस्यके जानकार हो जाते हैं। अतः कालकी गुप्त-प्रगट कला एक भी उनपर लग नहीं सकती है। कालकी कलाको छिन्न-भिन्न करके वे आगे बढ़ जाते हैं; मुक्ति-स्थितिमें पहुँच जाते हैं॥ ४९८॥

दोहाः— मन वच कर्म गुरु साधुकी ❀ आज्ञामा समुहाय॥
[२०८] द्रव्य जुरै रक्षै तिन्हें ❀ वस्त्र अन्न जल प्याय॥ ४९९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन वच कर्म = } अपने कल्याणके वास्ते ऐसे
गुरु साधुकी = } पारखी साधु-गुरुके ही शरणागत होकर मनसे, वचनसे और कर्मसे उन्हींकी सेवा, टहल, बन्दगी करनी चाहिये। और पारखी सद्गुरु-साधुके ही शिष्य होकर—

आज्ञामा = } सर्वस्व अर्पण करके सद्गुरुके
समुहाय = } आज्ञा पालन करे; उपदेश धारण करे। सब प्रकारसे पारखी सद्गुरुके अनुकूल होके उनसे मिला रहे। यानी आज्ञाके अनुकूल चले, बोले, सद्गुणोंको धारण करे।

द्रव्य जुरै = } यदि कहींसे कभी द्रव्य = धन-
रक्षै तिन्हें = } सम्पत्ति मिल गयी; रुपया-पैसा जुट गया वा आ गया, तो उसको पारखी साधु-गुरुकी सेवामें लगा करके सफल करे; सद्गुरुकी रक्षा करे, बचाव करे। कैसे? कि—

वस्त्र अन्न = } वस्त्र या कपड़ादिकी आवश्यकता
जल प्याय = } होवे, तो खरीदकर लाके देवे। अन्न-जलादि उत्तम पदार्थ मँगा करके खिलावे-पिलावे। ऐसे पालन-पोषण करे, सत्सङ्गमें ही सदा लगा रहे॥

व्याख्या— हितेच्छुक सब मनुष्योंको करनेका यही शुद्ध शुभ कर्त्तव्य है कि, मन, वचन, और कर्मसे पारखी सद्गुरु तथा विवेकी साधुओंकी वा साधु-गुरुकी आज्ञा मानके, उनके सत्य उपदेशके मुताबिक ही चले। सब तरहसे गुरुज्ञानमें मिला रहे। आज्ञा पालन करनेमें तत्पर रहे। श्रद्धा-भक्तिमें निपुण रहे। यदि सत्यधर्मकी कमाईसे और अयाचितरूपसे भेंट-पूजा आदिसे द्रव्य = रुपया, पैसा, धन, सम्पत्ति, सामग्री आदि जुट गयी, इकट्ठा-जमा हो गयी, तो उससे अन्न-भोजन कराके, जल पिलाके, वस्त्र पहिराके और भी यथाआवश्यक कार्यमें द्रव्य लगाके, उन्हीं पारखी साधु-गुरुकी रक्षा करके सेवा-टहल करनी चाहिये। ऐसे सत्कर्म शुभ मार्गमें द्रव्य खर्च करके लगाना चाहिये; सोई सफल होता है। और फुर्सतके समयमें उनके ही सत्सङ्ग-विचार करना, और गुणगान, सद्ग्रन्थ पठनादि करनेमें लगे रहना चाहिये॥ ४९९॥

दोहाः— हे शिष्य! उत्तम शिष्य यह ❀ जिन्ह कीन्हा परमान॥
[२०९] भक्ति सोई अधिकारपद ❀ मानुष सो बुद्धिमान॥ ५००॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! उत्तम = } हे प्रेमी शिष्य ! यही
शिष्य यह = } उत्तम शिष्योंका मुख्य कर्त्तव्य या लक्षण है। ऐसे ही सत्कर्त्तव्य करनेवाले उत्तम, श्रेष्ठ शिष्य होते हैं। यही चैतन्य भक्ति है। इसे ही पूर्णतासे करनी चाहिये।

जिन्ह कीन्हा = } प्रत्यक्ष प्रमाणसे निश्चय
परमान = } करके जिसने इसप्रकार पारखी साधु-गुरुकी सेवा की, सोई सर्वोत्तम मनुष्यमें सत्शिष्य होता है। इसमें गुरुवाक्य-विवेक ही सत्य प्रमाण है।

भक्ति सोई = } सोई चैतन्य सत्य भक्ति
अधिकारपद = } करनेवाला गुरुभक्त है। वही पारखपद स्वरूपज्ञान प्राप्त करनेका अधिकारी है या हो जाता है। वही निजपदकी स्थिति कर पाता है।

मानुष सो = } सोई सब रूप मनुष्योंमें सच्चा
बुद्धिमान = } मनुष्य-हंस है। सोई सत्यासत्यका ज्ञाता, निजस्वरूपका बोधवाला नरजीव परम बुद्धिमान् विवेकी है। वही पारखी कहलाता है या वह पारखी हो जाता है। वही धन्यवादका पात्र है॥

व्याख्या— हे शिष्य ! जिसने यह गुरु निर्णयके प्रमाणसे ऊपर कहे मुताबिक साधु-गुरुकी सेवा-भक्ति आदि किया वा जो ऐसा करते हैं, सोई शिष्योंमें सर्वोत्तम हैं। ज्ञान और मुक्तिके वे ही अधिकारी होते हैं। और पारखपदको प्राप्त करानेवाला, सोई गुरुभक्ति ही अधिकारीका पद है। ऐसे निष्कपट भावसे शुद्ध प्रेमसे जो पुरुष गुरुभक्ति करते हैं, सोई मनुष्योंमें बुद्धिमान् मनुष्य हैं। वे ही फिर सद्गुरुकी दयासे पारखस्वरूपमें स्थिर हो जाते हैं॥ ५०० ॥

दोहाः— हमहूँ हे शिष्य ! यह कर्म ❀ कीन्हों गुरु अभ्यास ॥
[२१०] सो तोहि ब्यवरा भाखेउँ ❀ हती वस्तु जो पास ॥ ५०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हमहूँ हे शिष्य ! = } हे शिष्य ! हमने भी यह
यह कर्म = } सत्कर्म सद्गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगीको श्रद्धा-भक्तिके सहित किया। आज्ञा-पालन पूर्णतासे किया। और—

कीन्हों = } सद्गुरुके चरण-शरणमें रहके
गुरु अभ्यास = } विवेक, वैराग्य आदि सत्साधनाका अभ्यास भी अच्छी तरहसे किया। सत्पुरुषार्थ, प्रयत्न किया। गुरुसेवामें शीत-उष्णादि दुःखोंको दृढ़तासे सहन किया।

सो तोहि = } सो सब ब्यौरेवार यथार्थ
ब्यवरा = } निर्णयका सद्व्यवहार
भाखेउँ = } एक-एक करके तुम्हारे कल्याणके वास्ते मैंने वर्णन करके कह दिया, दरशा दिया हूँ ! सब हिसाब तुम्हें समझा दिया हूँ ! और—

हती वस्तु = } हंसके पासमें या साथमें पूर्वमें
जो पास = } जो वस्तु थी सो और हमारे पासमें जो वस्तु थी या है, सो युक्ति बोध दया करके तुम्हें कहके दर्शा दिया वा बता दिया हूँ ! सो जान लो !॥

व्याख्या— हे शिष्य ! सद्गुरुका शरणागत होकर प्रथम हमने भी यह सब सत्कर्म, गुरुसेवा करके आज्ञा पालन किया। और सद्गुरुके सत्सङ्गमें रहके विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति आदि करनेका पूर्ण अभ्यास किया था। सत्य साधना दृढ़तासे किया था। जो कि, अब हमें वही काम दे रहा है। उसीके प्रतापसे हम निजपदमें स्थिर हो सके हैं। प्रत्येक साधक मुमुक्षुके लिये यह गुरु-अभ्यास करना अनिवार्य है। इसके बिना तो कोई भी स्थिति प्राप्त कर नहीं सकते हैं, मेरे पास-में जो युक्ति, उपाय, मुक्ति साधना और सत्यज्ञानका बोध था, सो सब ब्यौरेवार वर्णन करके मैंने तुम्हें खुलासासे बतला दिया हूँ ! क्रमशः उसके लक्षण भी दर्शा दिया हूँ ! सो तुमने भी समझा ही होगा। इसीप्रकार देह रहे तक बर्तो तो कल्याणरूप मुक्ति अवश्य होगी॥ ५०१ ॥

दोहाः— बन्दन चरणामृत गहन * महाप्रसादी पाय ॥
[२११] मिष्ट वचन आनन्द युत * पोषण विधि सब लाय ॥ ५०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

बन्दन = } बोधकी दृढ़तासे टिकावके
चरणामृत = } लिये नित्यप्रति पारखी
गहन = } साधु-गुरुकी ही वन्दना या त्रयबार बन्दगी करो! और चरणोंकी सेवा करके अमृतरूप सत्य चैतन्य बोधको प्राप्त कर ग्रहण करो! और चरण धो करके उस अमृतरूप जलको भी पान करो। सद्गुरुके सत्य आचरणको, निर्णय वाणीको अमृत जानकर ग्रहण करो। और—

महाप्रसादी = } महान कृपाका प्रसाद सत्य
पाय = } उपदेशको जानके धारण करो। तथा बाहरसे सद्गुरुके महाप्रसादको भी पाओ; यह भक्तिका चिह्न है।

मिष्ट वचन = } फिर मीठे, मधुर वचनोंसे
आनन्द युत = } आनन्दके सहित प्रसन्न होकर सद्गुरुके गुण स्तुतिको गाओ, प्रार्थना करो! सद्गुरुके वचन अति मीठे शान्ति आनन्द संयुक्त मुक्तिदायी होते हैं।

पोषण विधि = } सो सत्यज्ञानको परिपुष्ट
सब लाय = } करके सब प्रकारसे विधि पूर्वक साधु-गुरुकी सेवामें चित्त लगाके सत्यतासे सद्गुरु बोधदाताको पोषण करो। वे तुम्हें भव-बन्धनोंसे छुड़ा करके पार-मुक्त करेंगे; ऐसा जानो! अथवा सब प्रकारसे चित्त लगा करके सद्गुरुका पालन-पोषण किया करो! ॥

व्याख्या— गुरुबोधको स्थायी, पुष्ट करके रखनेके लिये प्रेमी सेवक और साधुओंको चाहिये कि, जब पारखी साधु-गुरु सत्य बोधदाता मिलें वा जब-जब दर्शन हो, तब-तब प्रथम तो सत्य श्रद्धा-भक्तिके साथ सिर नवाय करके त्रयबार 'साहेब बन्दगी!' करे। फिर सद्गुरुके चरण धो करके चरणामृत उतारकर प्रसन्नतासे अलग बैठकर पान करे। और साधु-गुरुको अपनी तरफसे यथाशक्ति भोजन पवायके श्रद्धासे महाप्रसाद माँगकर (यदि सद्गुरु प्रसन्नता पूर्वक देवें तो) उसे सहर्ष पावे। (यदि न दें तो हठ न करे) पाकर सद्गुरुके उठ जानेपर बचा हुआ प्रसाद लेकर पावे। और सब प्रकारसे चित्त लगा करके उदार होकर साधु-गुरुके पालन-पोषणमें ही तन, मन, धनादिको लगावे, सद्गुरुके दर्शन सत्सङ्ग करनेका सौभाग्य मिलनेपर आनन्दके सहित प्रसन्नता व्यक्त करते हुए, मीठे वचन बोले। नम्र, मधुर वचनमें ही प्रश्न पूछे; और साधु-गुरुके समझाये हुए वाक्यको मनन करके धारण करे। इसप्रकारसे शुभ-सरल व्यवहार-सत्कर्म करते हुए मनुष्य जन्मको सफल करना चाहिये ॥ ५०२ ॥

॥ ❀ ॥ १९ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा— १६ ॥ खण्ड— ३७ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— हे साहेब! अशरण शरण * कहेउ यथारथ भेव ॥
[२२] हंस कीन्ह तारण तरण * हंस विहारको मर्म सब ॥ ५०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका उन्नीसवाँ प्रश्न वर्णन करके कहते हैं— शिष्य कहता है—

हे साहेब! = } हे बन्दीछोर! सद्गुरु साहेब!
अशरण शरण = } जिस नरजीवका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं लगता है; कहीं शरण या रक्षा नहीं होती है, उनको भी अपनी शरणमें लेकर रक्षा, बचाव करनेवाले आप अशरणके शरणदाता हो!

कहेउ = } हंसकी रहनी-गहनीके बारेमें
यथारथ भेव = } यथार्थ सत्य निर्णयसे भेद दर्शा करके आपने कहे हो! सो आपका उपदेश यथार्थ सत्य है; सब भ्रमको मिटानेवाला है। और—

हंस कीन्ह = } आप स्वयं भव-बन्धनोंसे
तारण तरण = } पार उतरे हुए, जीवन्मुक्त हो! तथा शरणागत नरजीवोंको भी सत्य चैतन्य बोध देकर खानी-वाणीरूप भवसागरसे पार उतारके मुक्त करनेवाले

हो ! तथा—

हंस विहार-को मर्म सब = हंस जीवके विहारके बारेमें, जो मैंने पूछा था, उसका सब ही मर्म आपने दर्शाये हो ! सो सब ही हंस विहारके भेदको अच्छी तरहसे मैंने अब जान लिया हूँ ! ॥

व्याख्या— शिष्य कहता है— हे साहेब ! आप सर्वश्रेष्ठ अशरणको शरणदाता हो ! आपने कृपा करके यथार्थ भेदको कहे हो ! हंस जीवके सत्सङ्ग-विहारके सब मर्मको आपने निर्णय करके कहे हो ! सो आपकी दयासे अब मुझे भी वह सब बात समझनेमें आ गयी है । आप तो स्वयं ही सद्गुरुरूप जीवन्मुक्त हो ! और पारखबोध देकर अन्य मुमुक्षु नर जीवोंको भी भवसागरसे पार उतार दिये हो ! और पार उतार ही रहे हो ! आपने हंसको तारण-तरण कर दिये हो ! मैं आपको त्रयबार बन्दगी करता हूँ ! ॥ ५०३ ॥

सोरठाः— अब गुरु ! कहिये विचार * हंस दृष्टिका मोहि प्रति ॥
[२३] कैसे लक्ष सञ्चार ? * प्रगट पुहुमी गुरुरूप प्रभु ! ॥ ५०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

अब गुरु ! कहिये विचार = अब हे सद्गुरो ! वही सत्य निर्णयके सद्विचारको मैं अपनेमें कैसे धारण कर सकूँगा ? सोई युक्तिको विस्तारसे कहिये !—

हंस दृष्टिका मोहि प्रति = हंसका पारखदृष्टिमें ठहराव होनेकी दिव्यदृष्टि या उपाय मेरे प्रति दयादृष्टि करके कहिये ! हंसकी दृष्टि कैसी रहती है ? उस रहस्यको खुलासासे मेरे प्रति कहिये ! और—

कैसे लक्ष सञ्चार ? = जीवका लक्ष्य कैसे अपनेसे भिन्न पदार्थादिमें चला गया ? तथा पारखमें फिर लक्ष्य कैसे प्रवेश हुआ ? या किस प्रकारसे पारखमें लक्ष्य जायगा या ठहरेगा ? सो दया करके कहिये !

प्रगट पुहुमी गुरुरूप प्रभु ! = हे प्रभो ! पृथ्वी मण्डलमें अभी आप ही साक्षात् या प्रत्यक्ष सद्गुरु स्वरूपमें पारख बोधदाता हो ! सो यह युक्ति भी आप बतला दीजिये ! ॥

व्याख्या— अब हे गुरुवर ! हंसदृष्टिके शुभ सद्विचारको भी मेरे प्रति दया करके लखा करके कहिये ! हे प्रभो ! पृथ्वीमें प्रत्यक्षरूपसे आप अभी सद्गुरुरूपमें प्रगट हो ! बन्दीछोर हो ! हंसका लक्ष्य कैसे चलता है ? पृथ्वीमें देह सहित अभी पारखीका कैसे बर्ताव रहता है ? और हे प्रभो ! पृथ्वीमें सद्गुरुका रूप कैसे प्रगट हुआ ? सो भेद दर्शाइये ! ॥ ५०४ ॥

सोरठाः— मो सम दीन न कोय * तुम समान साहेब गनी ॥
[२४] करहु कृपा चित सोय * जाते पारख प्रौढ़ लही ॥ ५०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

मो सम दीन न कोय = मेरे समान दीन, गरीब, दुःखी बन्धनोंसे छूटनेकी इच्छा करनेवाला तो अभी, इस समयमें दूसरा कोई दिखाई नहीं देता है वा मेरे समान दीन तो कोई नहीं है । और—

तुम समान साहेब गनी = आपके समान सत्य ज्ञानदाता, महादानी सर्वश्रेष्ठ ज्ञान धनके पति, ऐसे हे साहेब ! आप ही एक सद्गुरु हो ! दूसरा कोई नहीं है । इससे अब संयोग भी अच्छा आ मिला है ।

करहु कृपा चित सोय = इसकारणसे आप ऐसी कृपादृष्टि कीजिये ! चित्तसे मुझ जीवके प्रति दया करिये कि, स्व-स्वरूपमें मेरी भी सोई आपके समान स्थिति हो जाय वा ठहराव हो जाय !

जाते पारख प्रौढ़ लही = जिससे मैं भी पारखबोध पाकर उसे परिपुष्ट दृढ़ कर सकूँ ! पारखज्ञान मेरेमें पुष्ट हो; जिससे कि, मैं सबको परख करके खानी-वाणी जालोंसे छूट जाऊँ । सोई हंसमार्ग कृपा करके बतलाइये ! ॥

व्याख्या— हे सद्गुरु साहेब ! आपके समान ज्ञानरूपी ऐश्वर्य से सम्पन्न धनवान्, दानी दूसरे कोई और हैं भी नहीं; और मेरे समान अभी दीन, याचक भिक्षुक दूसरे कोई नहीं हैं। उपयुक्त अवसरमें यह तो अच्छा सम्बन्ध ही मिल गया है। इसलिये आप चित्तसे ऐसी कृपा कीजिये कि, मैं जाग्रत् हो जाऊँ ! और जिससे सोई आपकी कृपाके आधारसे पारखबोध अपरोक्ष करके परिपुष्ट कर सकूँ ! पारखकी प्रौढ़ता पाके निर्बन्ध हो सकूँ ! सो दया करके समझाइये ! ॥ ५०५ ॥

॥ ❀ ॥ १९ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- १९ ॥ खण्ड- ३८ ॥ ❀ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! उत्तम प्रश्न यह * मैं बहु हिये सुखमान ॥
[२१२] गुरु सङ्गतके कियेते * फल प्रगट भये हिये आन ॥ ५०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य !=
उत्तम=
प्रश्न यह =
हे प्रेमी शिष्य ! यह तुम्हारा प्रश्न मुक्तिके बारेमें होनेसे अच्छा या उत्तम है। इसका अर्थ या मतलब तुम उत्तम रीतिसे समझ सकोगे, ऐसा जानकर—

मैं बहु हिये=
सुख मान=
मैं हृदयमें अत्यन्त प्रसन्न होकर सन्तोषसे बड़ा सुख माना, और यह बात समझनेसे सबको सुख ही होगा; ऐसा मैं समझता हूँ !

गुरु सङ्गतके=
कियेते=
नित्यप्रति पारखी साधु सद्गुरुके ही सत्सङ्ग-विचार करते रहनेसे ही—

फल प्रगट=
भये हिये आन=
सो आज तुम्हारा विचार सफल हुआ। उपदेशरूपी बीज जो तुम्हारे हृदयमें बोया गया था, सो उसीका यह अच्छा फल सद्बुद्धि, मुक्तिकी प्रबल इच्छा तुम्हारे हृदयमें आ करके प्रगट हुई; अतः नरजन्म पाया हुआ फलीभूत हुआ है ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! यह आज जो प्रश्न तुमने किया है, सो पहिले रोजके अन्य प्रश्नोंसे यह प्रश्न उत्तम है। तुम्हारे सद्भावसे कहा हुआ प्रश्न सुनके मैंने हृदयमें प्रसन्नतासे बहुत सुख सन्तोष मान लिया हूँ ! साधु-सद्गुरुके सत्सङ्ग करते रहनेसे तुम्हारा जीवन सुधर गया। सद्गुरुकी सत्सङ्गतिके करनेसे यह शुभ फल तुम्हारेमें प्रगट हुआ। तुम्हारेमें शुद्ध जिज्ञासुभाव आ गया। तुम्हारे हृदयमें मुक्ति प्राप्ति करनेका विवेक-विचाररूपी फल प्रगट होके आ गया है। सत्यबोध प्राप्त करनेका तुम्हारा विचार उत्तम है ॥ ५०६ ॥

दोहाः— तोर मर्म जानेउँ भले * अति प्रसन्न सुन शिष्य ! ॥
[२१३] वेद मते बहु कल्पते * पै निर्णय सो दीख ॥ ५०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तोर मर्म=
जानेउँ भले=
तुम्हारे प्रश्न करनेके मतलब, आशय या भेदको मैं अच्छी तरहसे जान गया या जानता हूँ ! निज-पर हितके वास्ते ही यह प्रश्न तुमने किया है, सो बहुत ही अच्छा है; अच्छी बात पूछे हो !—

अति प्रसन्न=
सुन शिष्य !=
हे शिष्य ! मैं तुम्हारेसे अत्यन्त प्रसन्न या खुश हूँ ! सो इसका उत्तर तुम भी प्रसन्नतासे सुनो ! और उसे मनन करके सुखी हो जाओ ! अब उत्तर सुनो !—

वेद मते=
बहु कल्पते=
संसारमें पूर्वमें किसी मनुष्यने वेद-वाणीको कल्पनासे बनाया। फिर सो उसी वेद प्रमाणसे नाना कल्पना करके बहुत ही मत, पन्थ, ग्रन्थादि अनेकों जाल फैला दिये। खानी-वाणीका ही सर्वत्र पसारा हुआ है।

पै निर्णय=
सो दीख=
परन्तु, हंसकी नाईं नीर-क्षीर-का निवेरा करके सार-असार, सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय करनेसे सबों-का कसर-खोट पारख कसौटीमें कसके सो देखनेमें आ जाता है; पहिचान हो जाता है ॥

व्याख्या— तुम्हारा प्रश्न करनेका मर्म मैंने भलीभाँतिसे जान लिया हूँ ! अपनी भलाई वा कल्याण करनेके लिये ही तुम मुझसे पूछ रहे हो, सो अच्छा है। मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ ! हे शिष्य ! तुम भी अति प्रसन्नतासे इसका यथार्थ उत्तर सुनो ! गुरुवालोगोंने वेद मतसे नाना सिद्धान्तोंका बहुत कल्पना-विस्तार किया है। सो वेदके मतोंसे बहुत-बहुत कल्पना करते हैं। परन्तु, गुरु निर्णयसे सो सबोंके कसर-खोट देखनेमें आ जाते हैं। जैसे हंस पानी और पय (दूध) मिश्रितका छान-बीन करता है, तो दूधको ही वह ग्रहण करता है, पानीको छोड़ देता है। तैसे तुम भी हंस बन करके यथार्थ निर्णय करके सबकी मानन्दीको देखकर परखो ! ॥ ५०७ ॥

दोहाः— अनुमानी आसक्तको * कौन मतो परमान ? ॥
[२१४] लखेउ यथारथ गुरु सुमुख * कहौं सुनो धरि कान ॥ ५०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अनुमानी = भ्रमिक, अनुमानी हुए नरजीव
आसक्तको = तो वाणी, कल्पना, ब्रह्म-भ्रम कर्त्तादि तथा खानी विषय भोगोंमें तदासक्त जड़ाध्यासी, गाफिल, बद्ध हुए और हो रहे हैं; भूले ही पड़े हैं।
कौन मतो = इसवास्ते उनके कोई मतका
परमान ? = प्रमाण हो नहीं सकता है। भ्रमिक लोग किसी एक ही बातमें तो ठहरे ही नहीं हैं, अनेकों कल्पना मनमें ले रहे हैं। फिर उनके मतका कौन प्रमाण ? कोई प्रामाणिक नहीं हैं।

लखेउ = पारखी सद्गुरुसे शुद्ध यथार्थ
यथारथ = गुरुमुखकी वाणी द्वारा मैंने जो
गुरु सुमुख = सद्वस्तु या सार लखा हूँ वा जाना हूँ, सोई बात मैं तुम्हें लखा देता हूँ ! मेरे सन्मुखमें तुम भी उसे लख लो; जान-बूझकर समझ लो !
कहौं सुनो = सो सत्य निर्णयका उपदेश मैं
धरि कान = कहता हूँ ! कान लगा करके चित्त एकाग्र कर तुम उसे सुनो ! फिर हृदयमें धारण करो ! जिससे स्थिति प्राप्त करनेमें तुम्हें सहायता मिलेगी ॥

व्याख्या— अर्थात् अनुमानी संसारी, भ्रमिक विषयासक्त और कल्पनामें आसक्त, ऐसे लोगोंके मतोंका कौन प्रमाण है ? कोई प्रमाण हो नहीं सकता है। कौन सच्चाई है ? कोई सच्चाई नहीं है। वे तो नाना प्रकारसे धोखेसे भव-बन्धनमें ही पड़े हैं। वेदादि मत सब त्याज्य हैं, ऐसा जानो ! और पारखी सद्गुरुके सन्मुखमें रहकर अच्छी तरहसे जो बात यथार्थ निर्णयसे मैंने लखा हूँ ! सोई बात तुम्हारे प्रति मैं कहता हूँ ! सो तुम भी मेरे वचनोंमें कान लगाय करके चित्त एकाग्र कर उस निर्णयको सुनो ! फिर अच्छी तरहसे गुरुमुख यथार्थ बातको लख लो ! समझ लो ! ॥५०८॥

दोहाः— मन मायाको फेर बहु * मण्डो जाल अति गूढ़ ॥
[२१५] सो प्रपञ्चते भले लहू * जानि त्यागि तेहि मूढ़ ॥ ५०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मन मायाको = मनकी कल्पनाकी तरङ्ग
फेर बहु = तथा माया-कायाका पञ्च विषय, यानी खानी-वाणीका फन्दा जाल बहुत जबर्दस्त अनेकों प्रकारके बन्धन जीवोंके ऊपर पड़े हैं। उसी चक्रमें जीव घूम रहे हैं।
मण्डो जाल = वाणी-कल्पनाका ब्रह्म-जाल
अति गूढ़ = तथा विषय-जाल अनेकों मत-मतान्तरके रूपमें भूमण्डलमें मण्डन ग्रहण हो-होके फैल गया है। अध्यास अत्यन्त गूढ़ वा गुप्त होके हृदयमें टिक रहा है।
सो प्रपञ्चते = सो गुरुवालोग भ्रमिक हैं।
भले लहू = उन्होंने प्रपञ्चसे पञ्च कोशोंकी वाणी पञ्च विषयादि फैलाय-फैलायके और भी जीवोंको बाँध रहे हैं। उसको अच्छी तरहसे परखकर तुम पहले जान लो,

समझ लो ! और—

जानि त्यागि = } त्यागी, वैरागी, संन्यासी
तेहि मूढ़ = } बने हुए योगी, ज्ञानी, भक्त और संसारी गृहस्थ-विषयीलोग पक्षपाती बेपारखी होनेसे, उन्हें मूढ़, धूर्त जानकर उनका सङ्ग छोड़ो ! ॥

व्याख्या— मन-मायाका फेरा, भव चक्र बहुत जबर्दस्त है। खानी-वाणीकी मोटी-झीनी जाल सब संसारमें मण्डान होके बिखरी हुई फैल रही है। उसका रहस्य अत्यन्त गूढ़ है। बन्धन सबके समझनेमें नहीं आता है, वासना-अध्यास अति गुप्त होकर जाल फैला रहा है। और जो उस प्रपञ्चको अच्छी तरहसे जान करके सर्वथा परित्याग कर देते हैं, सो अच्छे हैं; चौरासी योनियोंसे वे छूट जाते हैं। और जो उसे ठीकसे जानकर त्याग नहीं करते हैं, वे मूढ़ हैं। वे चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े रहते हैं। अतः सो प्रपञ्चसे अलग होओ ! भले पारख बोधको प्राप्त करके उसे जानो ! और उसीमें लगने-लगानेवाले मूढ़ोंके सङ्गको त्याग करो ! सत्य और असत्यका निर्णय करो ! ॥५०९॥

दोहाः— हे शिष्य ! दृष्टि हंसकी ❀ पारख सबहीं केर ॥
[२१६] ठहरै रमिता भूमि पर ❀ तजि चौरासी फेर ॥ ५१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! = } हे जिज्ञासु शिष्य ! जड़-
दृष्टि हंसकी = } चैतन्य निर्णय करनेवालेको 'हंस' कहते हैं। सो हंसकी दृष्टि तीव्र, निर्मल, दूरदर्शी और महान होती है। सो कैसे ? कि—

पारख = } काल, सन्धि, झाँई, तत्त्वमस्यादि
सबहीं केर = } वाणी जाल और विषय जाल सब नीर भागको परित्याग करके सत्य चैतन्य द्रष्टा जीव-क्षीररूप बोध भागको ग्रहण करते हैं। यानी सबोंकी परीक्षा कर, आप पारखरूप न्यारा हो रहते हैं, ऐसेको पारखी कहते हैं।

ठहरै रमिता = } वे रमिता जीवको निज
भूमिपर = } स्वरूप स्थिति पारख बोध-की भूमिकापर ले जाके ठहरते-ठहराते हैं। सर्व अध्यास-वासनासे रहित हो जाते हैं। अतएव—

तजि = } फिर चौरासी योनियोंमें
चौरासी फेर = } जानेका बीज, आवागमनोंमें घूमनेका कारण जड़ाध्यास या ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी जो है, सो गुरुबोधसे ठीकसे जान करके छोड़ दो ! पारख स्वरूप-में ही अटल हो रहो ! इसतरहसे मुक्त हो जाओ ! ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! जैसे नीर-क्षीरके निवेरा करनेकी दृष्टि हंसकी स्वयं होती है। तैसे जड़-चैतन्यके निर्णय करनेकी पारखदृष्टि पारखी सन्तोंकी होती है। वे सब बातोंका, सब सिद्धान्तोंका पारख करते हैं; और पारख स्वरूपकी भूमिकापर रमैया-जीवको स्थिर करके ठहराये रखते हैं। चौरासी योनियोंके फेराको तजके निज स्थितिमें ही रहते हैं। तैसे तुम भी अब हंसकी विवेक-दृष्टिको ग्रहण करो ! और सबोंका पारख करके निर्णय करो, तथा चौरासी योनियोंके फेराको तज करके रमिता भूमिपर, निज स्वरूपमें ही सदा ठहरे रहो ! तब जीवन्मुक्त हो जाओगे ॥५१०॥

दोहाः— पारख सबकी थीरपद ❀ ठहरि रहै सतसङ्ग ॥
[२१७] मन माया कृत गुणनको ❀ देखै मिथ्या भङ्ग ॥ ५११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

पारख = } पारखी सद्गुरु सबोंकी कसर-
सबकी = } खोट परखाते हैं। सबको परखने-
थीरपद = } वाला पारख निश्चल, अटल, स्थिरपद या मुक्तपद है। सर्वोपरि पारख-पद है; सोई निजपद है।

ठहरि रहै = } इसवास्ते जो पारखी साधु-
सतसङ्ग = } गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें ठहरि रहेगा, वही पारख बोधको प्राप्त करेगा।

तो तुम भी ऐसे सत्सङ्गमें वृत्तिको ठहरा करके शान्त हो रहो !

मन माया= कृत गुणनको= } गुरुवालोगोंने कल्पना करके जो निर्गुण ब्रह्म-ईश्वरादि बतलाये हैं, सो मनका भ्रम है। और मन तथा शरीरसे जितने त्रिगुणादिके कर्त्तव्य हुए या बने हैं—

देखै मिथ्या भङ्ग=सो सब विवेकदृष्टिसे देखो ! शरीरादि नाशवान्-क्षणभंगुर है। ब्रह्म आदि मिथ्या धोखा ही है। यह कोई सत्य वस्तु नहीं है, परीक्षा दृष्टिसे ही यह दिखाई देगा ॥

व्याख्या— सर्वोपरि वा सर्वोच्च सबोंकी स्थितिके ऊपर पारखपद है। वही पारख स्थिति ही जीवन्मुक्तिका स्थिर पद है। अतः पारखी साधु-सद्गुरुके सत्सङ्गमें सबोंकी परीक्षासे निर्णय करके भ्रम-भूलको त्यागकर उसी पारखपदमें ही अटल होकर, ठहरके स्थिर रहो ! तब मन-माया-कृत गुणोंका सब जञ्जाल देखोगे। जब उसे मिथ्या जानोगे, तब वह भी स्वप्नवत् भङ्ग हो जायगा। जैसे भाँगकी नशामें कुछ-का-कुछ मिथ्या तमाशा मालूम पड़ता है। तैसे ही वाणी-खानीकी नशामें भी मिथ्या बात ही सत्यवत् मालूम हो रही है; सो उसके भेद जाननेसे सब धोखा देखमें आ जायगा ॥ ५११ ॥

दोहाः— गुरुमुख साधु समाज महँ * निर्णय लखै बनाय ॥
[२१८] द्रष्टा हंसा परख लही * सतसङ्गति बल पाय ॥ ५१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरुमुख साधु= समाज महँ= } सच्चे पारखी साधुओंके समाज-मण्डलके बीचमें परम पारखी श्रेष्ठ सद्गुरुके मुखारविन्दसे निकलते हुए यथार्थ सत्य न्यायके उपदेश-को सुनना चाहिये। फिर सुनकर उसे मनन करना चाहिये।

निर्णय= लखै बनाय= } फिर सत्यासत्यका निर्णय जड़-चैतन्यके भेदको ठीकसे परख करके लखै तथा काग कुमतिको सर्वथा त्याग करके हंस सद्गुणधारी सच्चा मनुष्य अपनेको बनावे, कर्त्तव्यको सुधार करे।

द्रष्टा हंसा= परख लही= } तब जड़ पदार्थ दृश्यका द्रष्टा चैतन्य जीव हंसपदमें पहुँचने-से पारखबोधकी दृष्टिको प्राप्त किया या प्राप्त करेगा ? फिर वह सब बन्धनोंसे छूट जायगा।

सतसङ्गति= बल पाय= } यह सब शक्ति या महान बल पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गके प्रतापसे ही पाया या पायेगा। बिना साधु-गुरुके सत्सङ्गके, यह बल पाया नहीं जा सकता है ॥

व्याख्या— इसलिये विवेकी-पारखी साधुओंके समाजमें, सत्सङ्गमें रहकर अच्छी तरहसे बुद्धिको स्थिर करके गुरुमुख निर्णयको बनायके लखना चाहिये। तभी सत्सङ्ग द्वारा गुरुबोधका बल पा करके हंसजीव द्रष्टा, परीक्षक, साक्षी हो करके अपरोक्ष पारखको जान पावेंगे। अतः नित्य साधु-गुरुके ही सत्सङ्ग-विचारमें लगे रहना चाहिये ॥ ५१२ ॥

दोहाः— मैं मेरी सङ्कल्प यह * सोई दुःखकी खान ॥
[२१९] ताहि त्याग गुरु परख लहै * द्रष्टा सोई सुजान ॥ ५१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

मैं मेरी= सङ्कल्प यह= } मैं ब्रह्म हूँ ! मेरी इच्छासे ही यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं ही जगत्का कर्त्ता हूँ ! और मैं सिद्ध योगी, संन्यासी, परमहंस हूँ ! मेरा सिद्धान्त वा मत ही श्रेष्ठ है। तथा मैं ब्राह्मणादि हूँ ! मेरे पुत्र, धनादि वा राज्यादि हैं। उसका स्वामी मैं हूँ ! इत्यादि यह सङ्कल्प ही मिथ्या अभिमान है।

सोई दुःख-= की खान = } सोई ममता, अहङ्कार, वासना अध्यास ही तो महा दुःखकी खान=चारखानी चौरासो योनियोंमें

अनेक दुःख भोगनेका कारण या बीजरूप है।

ताहि त्याग = } उस ममता, अहङ्कार,
गुरु परख लहै = } इच्छा, वासनाओंको सर्वथा परित्याग करके खानी-वाणीकी सब मानन्दीको छोड़कर जिन्होंने सद्गुरुके पारखदृष्टि सत्य बोधको प्राप्त कर लिया या गुरुबोधसे पारखज्ञान ले लिया है—

द्रष्टा सोई = } सोई सत्यके द्रष्टा परम पारखी
सुजान = } सत्यज्ञानी स्व-स्वरूपके जानकार प्रवीण साधु हैं। यानी सोई सच्चे सत्यके जानकार हैं, जो द्रष्टा चैतन्यको न्यारा जानते हैं, सोई पारखी सन्त सर्व श्रेष्ठ हैं॥

व्याख्या— 'मैं' कहना अहङ्कार है। 'मेरी' कहना ममता-मोह है। यही 'मैं-मेरी' का सङ्कल्प ही सब प्रकारसे दुःखोंकी खान है। तहाँ मैं ब्रह्म हूँ! मेरे सङ्कल्पसे ही यह जगत् सृष्टि हुई है। ऐसा भी माने, तो सोई चौरासी योनियोंमें दुःखोंकी खान ही हुए हैं। तैसे विषयादिसे ले करके सब मत, पन्थोंकी तरफके और जाति, कुल, आश्रमादिकी तरफके भी समस्त 'मैं-मेरी'के सङ्कल्प दुःखोंकी खान ही है। ऐसा विवेक द्वारा ठीक-ठीकसे जानकर, उस ममता, अहङ्कार, इच्छा आदि सारे विकारोंको त्यागकर जो गुरुबोध-पारखको प्राप्त कर लेते हैं, सोई सुजान = अच्छे जानकार द्रष्टा पारखी होते हैं। वे ही सब बन्धनोंसे छूटकर जीते ही मुक्त हो जाते हैं, ऐसा जानो! ॥ ५१३ ॥

दोहाः— पारखदृष्टि प्रताप बल ❀ पायो द्रष्टा दृष्ट ॥
[२२०] श्रेष्ठ दुःख बल परखते ❀ होवै त्याग कनिष्ट ॥ ५१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

पारख दृष्टि = } पारखी साधु सद्गुरुकी
प्रताप बल = } कृपादृष्टि उपदेशके प्रतापसे ज्ञानका बोध बल या शक्ति जिज्ञासुको प्राप्त हुई। जिससे हृदयका पटल खुल गया, पारखदृष्टि उदय हुई। स्वयं स्वरूप मालूम हुआ। उसी परम प्रतापके गुरुबलसे—

पायो द्रष्टा दृष्ट = द्रष्टा चैतन्य जीव कोई भाग्यवान् मनुष्यने निज पारखदृष्टिको अनन्त कालके बादमें प्राप्त किया, सबकी परीक्षा कर लिया।

श्रेष्ठ दुःख = } ब्रह्मको श्रेष्ठ सुखपद माना है,
बल परखते = } परन्तु, वह चौरासी योनियोंके-रूप जगत्मय होनेसे दुःखरूप है या दुःखका कारण है। यह गुरु पारख बोधके बलसे जान लिया—

होवै त्याग कनिष्ट = तब कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादि-की मिथ्या मानन्दी तथा विषय भोगादिके अध्यासको तुच्छ, कनिष्ठ, निकृष्ट मलवत् खराब, निकम्मा जान-बूझ-समझकर त्याग हुआ या उसे त्याग कर दिया, तो सुखी हुआ॥

व्याख्या—पारखदृष्टिके प्रतापसे- द्रष्टा = चैतन्य जीवने निजपद बोध गुरुदृष्टिके महान बल-पराक्रमकी शक्ति पाया। जिससे सबोंकी पहुँच स्थिति साफ दिखाई दिया। और गुरु पारखके बलसे श्रेष्ठ माना हुआ ब्रह्म तो भ्रम चौरासी योनियोंके दुःखका घर ही समझनेमें आया। तब उसे कनिष्ठ कल्पना ही जानकर त्याग हुआ। अर्थात् पारख बलसे श्रेष्ठ दुःख ब्रह्म आदिका तथा कनिष्ठ दुःख जगत् विषय भोग आदिका, दोनों ही जीवोंको बन्धन हैं, ऐसा जाननेमें आनेसे वह दोनों का ही त्याग होता है। तब जीव सबसे न्यारा होकर स्वच्छन्द, सुखी हो जाता है॥ ५१४ ॥

दोहाः— सङ्कल्पे जग है भयो ❀ मिटै सङ्कल्प नशाय ॥
[२२१] एक अनेककी रहट यह ❀ देखु दृष्टि बल पाय ॥ ५१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सङ्कल्पे जग = } भ्रमिक गुरुवालोग कहते हैं
है भयो = } कि, परब्रह्मके इच्छारूप सङ्कल्प-से ही प्रथमारम्भमें सारा चराचर जगत् उत्पन्न हुआ, और उसीके महद् सङ्कल्पसे ही अभी सब विश्व ठहरा है। और—

मिटै सङ्कल्प = } ब्रह्मकी इच्छारूप सङ्कल्पका
नशाय = } नाश हो करके विकल्प होनेसे

सारा पिण्ड-ब्रह्माण्ड आदि जगत् मिट करके महाप्रलयमें नाश हो जायगा। सबके विनाश होनेपर एक परब्रह्म ही ज्यों-का-त्यों स्थिर रहेगा।

एक अनेककी रहट यह = एक ब्रह्म तथा अनेक जगत्-का रहट चक्र कभी मिटनेवाला नहीं है। यह तो कारण-कार्यकी नाईं बनते-बिगड़ते रहनेवाला है। ब्रह्म कोई वस्तु ही नहीं है, तो उससे जगत् क्या बनेगा-बिगड़ेगा ?—

देखु दृष्टि बल पाय = सो सब गुरुवालोगोंकी मिथ्या कल्पना भ्रम मात्र है। पारख-दृष्टिको प्राप्त करके फिर उसके बल या परीक्षा-शक्तिसे यथार्थ देखो कि, यह जगत् अनादि है। जीव अध्यासवश भव-बन्धनों में पड़ा है, सो जानो ! ॥

व्याख्या— जीवके सङ्कल्परूपी कल्पनासे खानी-वाणीका विस्तार हुआ है। वह सङ्कल्प मिटनेसे उसका विकार अध्यास भी नाश हो जाता है। एक अध्याससे अनेकों देह चौरासी योनियोंके भोग, आवागमन होनेकी रहटमाला घनचक्र चला ही हुआ है। पारखदृष्टिका बल पा करके उसे अच्छी तरहसे देखो ! और प्रयत्न करके अध्यासको मिटाओ, तभी स्थिति होवेगी। अथवा ब्रह्मके प्रथम सङ्कल्परूप स्फुरणासे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। फिर उसके सङ्कल्प मिटके विकल्प होनेसे जगत् नाश हो करके महाप्रलय हो जाता है, तो सब उसीमें लय हो जाता है। ऐसा एक ब्रह्मसे अनेक जगत् होते-मिटते रहनेका यह रहट चक्र तो गुरुवालोगोंकी मिथ्या कल्पना ही मात्र है। सो गुरुबलसे पारखदृष्टिको पायके देखो ! भ्रम-भूलको हटाओ ! ॥ ५१५ ॥

दोहाः— चौरासीके मध्यमें ❀ चारिउ खानि प्रचण्ड ॥
[२२२] तेहिमा मानुष रूपको ❀ राखै दृष्टि अखण्ड ॥ ५१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चौरासीके मध्यमें = चार प्रकारकी ढेरी-समूहरूप चौरासी योनियोंके बीचमें अध्यासी जीव नाना देहें धारण करके छितराये पड़े हैं। सो उसमें—

चारिउ खानि प्रचण्ड = मनुष्य खानी, पशु, अण्डज और उष्मज- ये चार खानीका कार्य-व्यवहार प्रचण्ड=तीव्र गतिसे अति तीक्ष्ण हो रहा है। कर्म भोगोंकी प्रचण्डता तो चारों खानियोंमें बराबर हो रही है।

तेहिमा मानुष रूपको = उन खानियोंमेंसे मनुष्यरूपकी विशेषता है। क्योंकि, यह ज्ञानखानी है। मनुष्यको सबके रूपका ज्ञान हो सकता है। इससे स्वरूपज्ञान मनुष्य ही कर सकते हैं।

राखै दृष्टि अखण्ड = अतएव जैसे जीव स्वरूपसे अखण्ड है, तैसे ही पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा पारखदृष्टिको अखण्ड, अटल, बनाये रखना चाहिये। 'मैं जीव स्वरूपसे सत्य हूँ,' ऐसी बोधदृष्टिको रख लेवे; एकरस रहनीमें रहे ॥

व्याख्या— चौरासी योनियोंके मध्यमें चारों खानियोंकी गति, चाल, व्यवहार तीव्र-प्रचण्ड रीतिसे हो रही है, उसीप्रकार चल रही है। सब जीव कर्मानुसार छोटे-बड़े देह धारण करके कर्मका फल भोग रहे हैं। उसमें अभी मनुष्य देहकारूप पा करके निजस्वरूपका ज्ञान यथार्थ प्राप्त कर लेना चाहिये। उसके लिये अखण्ड पारखदृष्टिकी धारणा एकरस बनाये रखना चाहिये ॥ ५१६ ॥

दोहाः— सो प्रकाश प्रभुके लखेते ❀ मानुष बुद्धि फरियाय ॥
[२२३] मानुषते सब होत है ❀ द्रष्टा मनुष्य पद पाय ॥ ५१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सो प्रकाश प्रभुके लखेते = परम प्रभु सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सो पारखके प्रकाशको पारखी सद्गुरु द्वारा लख लेना चाहिये। सो पारखदृष्टिके प्रकाशमें यथार्थ सत्यासत्यको

लख लेनेसे—

मानुष बुद्धि = फरियाय = मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध-निर्मल हो जाती है। सारासारका विचार करनेकी बुद्धि हो जाती है। सो मनुष्य बुद्धिसे जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा फैसला, बिलछान हो जाता है।

मानुषते सब = होत है = सब कर्म, सब सिद्धान्त, खानी-वाणीका विस्तार, सब ही यह मनुष्य द्वारा ही होता है। और बन्धनों-से छूट करके मुक्ति होनेका पुरुषार्थ सब भी मनुष्योंसे ही होता है।

द्रष्टा मनुष्य = पद पाय = जब द्रष्टा जीव मनुष्यका पद सत्य, विचार, शील, दयादि संयुक्त हंस गुण-लक्षणोंको धारण कर लेता है, तब पारखपदको पा करके फिर भव-बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब महा प्रभुके सो पारख प्रकाशको पारखी सद्गुरुके शरणागत होके लख लेनेसे मनुष्यकी बुद्धि साफ शुद्ध होके विवेक करनेकी शक्ति आ जाती है। फिर सबका छान-बीन करनेसे फैसला होके यथार्थ देखनेमें आ जाता है। मनुष्यसे ही सब कर्त्तव्य होता है। बन्धन और मुक्ति होनेके पुरुषार्थ सब मनुष्योंसे ही होते हैं। और द्रष्टा पारखी मनुष्य ही कोई पारखपदको पा करके मुक्त होते हैं; निजपदमें ठहर करके स्थिर सुखी होते हैं॥ ५१७॥

दोहाः— ऐसे उज्ज्वल दृष्टि बल ❀ मानुष रूपहि जान॥
[२२४] ताते पारख सुबुद्धि तव ❀ होय यथारथ भान॥ ५१८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसे उज्ज्वल दृष्टि बल = ऐसे परम प्रकाश शुद्ध पारख-के उजियाला होनेसे हृदयके सब अन्धकार मिट जाते हैं। गुरुज्ञानके बलसे पारखदृष्टि खुल जाती है। तब सब यथार्थ दिखलाई देता है। और—

मानुष रूपहि जान = सद्गुरुके सत्सङ्गकी शक्तिसे वह मनुष्य अपने स्वरूपको जान लेता है कि, "मैं द्रष्टा चैतन्य जीव सब-से न्यारा हूँ! मनुष्यरूपसे ही सब बन्धन हुआ है। यहाँ ही मुक्ति भी हो सकती है," ऐसा बोध हो जाता है।

ताते पारख सुबुद्धि तव = इसवास्ते हे शिष्य! जब तुम पारखबोधको ग्रहण करोगे, तब ही तुम्हारी बुद्धि परिशुद्ध स्वच्छ हो जायगी। सबका परीक्षक पारख ही तुम्हारा स्वरूप है, यह बोध धारण करो!

होय यथारथ भान = जैसे सूर्यके प्रकाशमें वस्तुकी यथार्थ पहिचान होती है। तैसे ही पारख बोधका उदय होनेसे सबका जनैया जीवके स्वरूप तथा विजातीय जड़के स्वरूपकी यथार्थ पहिचानका ज्ञान हो जाता है॥

व्याख्या— ऐसे परिशुद्ध परम उज्ज्वल पारखदृष्टिका बल जिनमें हो जाता है, उन्हें सच्चे मनुष्य हंस पारखीके रूपमें ही जानो! इसलिये हे शिष्य! पारख बोध होनेपर ही बुद्धि शुद्ध होती है। तब यथार्थ स्वरूपका वास्तविक भान होकर साक्षात्कार होता है। इसवास्ते तुम सुबुद्धिसे पारख करो! जब पारख करोगे, तब तुम्हें भी यथार्थ भान हो जायगा॥ ५१८॥

दोहाः— लखै दृष्टि बल परखते ❀ मानुषरूप सो होय॥
[२२५] बन्दनिये जेहि पद सोई ❀ निश्चल घर सम सोय॥ ५१९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

लखै दृष्टि बल परखते = पारखी सद्गुरुकी कृपादृष्टि सत्यज्ञानके बलसे पारखदृष्टि-को पायके जिसने जड़-चैतन्यका भेद निर्णय-से बन्धन और मुक्तिको यथार्थ लख लिया है, सो—

मानुषरूप सो होय = मनुष्यरूपमें ही सद्गुण रहनी-रहस्यको धारण करके स्व-स्वरूपके स्थितिवान् बन्धन रहित मुक्त हुए और हो जाते हैं। सो हंसरूप मनुष्य

ही श्रेष्ठ हैं।

बन्दनिये जेहि = } जिसको निजपद पारखके
पद सोई = } बोधसे स्थिति प्राप्त हो गयी है; सोई पारखी साधु वन्दना करने योग्य, परमपूज्य, ज्ञानशिरोमणि, सर्वोपरि होते हैं। सोई गुरुपदके बोधदाता होते हैं।

निश्चल घर = } उनकी स्थिति बराबर एकरस,
सम सोय = } अचल, अटल, रहती है। एक-समान पारख प्रकाशमें बुद्धि स्थिर रहती है। सोई प्रत्यक्षमें जीवन्मुक्तके आदर्श होते हैं। ऐसा निश्चयसे जान लो! सोई सब साज सम्पन्न घरके समान अचल होते हैं॥

व्याख्या— जो पुरुष विवेकदृष्टि गुरुबलके पारखसे सत्यासत्यको लख लेते हैं, सो मनुष्यरूपमें हंस पारखी होते हैं। जो पारखपद है, सोई निश्चल घरके समान स्थिति करनेकी भूमिका है। जो उस भूमिकामें पहुँचकर निश्चल, निवृत्त, शान्त हो गये हैं, वे ही पारखी सन्त हैं। उनके ही चरण वन्दना करने योग्य हैं; वे ही परमपूज्य हैं, ऐसा जानो! ॥ ५१९ ॥

दोहाः— हंस द्रष्टा पद थीर लही * परखाये सब जाल ॥
[२२६] सदा सुखारी पारखी * नजरे नजर निहाल ॥ ५२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

हंस द्रष्टा पद = } द्रष्टा जीव हंसपदको प्राप्त
थीर लही = } करके ही स्थिरपद पारखमें पहुँचते हैं। सोई पारखी सन्त सत्यासत्यके द्रष्टा गुण-दोषोंके निर्णयी हंस होके निज स्वरूप स्थितिमें विश्राम पाये हैं।

परखाये = } फिर उनके शरण-सत्सङ्गमें जो
सब जाल = } जिज्ञासु आये, उनपर दया करके खानी-वाणीके विकट फन्दाके सब प्रपञ्चियों-के जाल एक-एक करके निर्णयसे यथार्थ परखा दिये हैं।

सदा सुखारी = } ऐसे पारखी साधु सर्व
पारखी = } वासना, चाहना, अध्यासादि-से रहित होकर सदा सुखी जीवन्मुक्त हुए और होते हैं। सब उपाधिगत दुःखोंसे रहित वे सदाकाल सुखी रहते हैं।

नजरे नजर = } जीव तो अजर, अमर, अखण्ड,
निहाल = } नित्य, सत्य है। अध्याससे आवागमनमें पड़ा था, सो पारखदृष्टिसे स्वरूप स्थिति होनेसे अध्यास छूट कर पारखी सन्त जीवन्मुक्त, शान्त सुखी हुए। और शरणमें आये हुए नर जीवोंपर भी कृपादृष्टिसे पारखज्ञानका बोध दे करके उन्हें भी सुखी कर देते हैं॥

व्याख्या— प्रथम शुभ संस्कारी हंस नरजीवने द्रष्टा-पारखी होकर पारखपदको प्राप्त किया; जिससे सब चञ्चलता छूट कर अटल, अचल, स्थिरता स्वरूप स्थितिको पाया। फिर शरण-सत्सङ्गमें आनेवाले अन्य श्रद्धालु मनुष्योंको भी दया करके सब खानी-वाणी जालोंको एक-एक करके परखा दिये और परखा ही रहे हैं। ऐसे विवेकी सत्यन्यायी पारखी सन्त नजरे=न जरनेवाला अजर, अमर, नित्य, सत्य अपने ही स्वरूप जीवको यथार्थ जानकर फिर नजर=पारखदृष्टिसे निज स्वरूपकी तरफ लक्ष्यसे देखकर दिव्यदृष्टि खुलनेसे भ्रम-सन्देहोंसे रहित निहाल=हालरूप मानसिक दुखोंसे निवृत्त परमसुखी हो जाते हैं। ऐसे वे सदा सुखारी=जीवन्मुक्त सदाके लिये सुखी हो जाते हैं; सत्यका ही उपदेश देते हैं ॥ ५२० ॥

दोहाः— हे शिष्य! ऐसे मत कहै * गुरु पारख बल थीर ॥
[२२७] सत्य शब्द टकसार विधि * पारख कहहिं कबीर ॥ ५२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! ऐसे = } हे प्रेमी शिष्य! ऐसा सत्य
मत कहै = } सिद्धान्तको पारखी सन्तोंने कहा है। अभी जो पारखी हैं, वे भी ऐसे ही गुरुमतको कहते हैं।

गुरु पारख = } वे पारखी सद्गुरुके बोध पारख
बल थीर = } बलसे निजपद स्वरूपमें ही स्थिर रहते हैं; और अन्यको भी वैसे ही

थीर होनेका बल देते हैं। और—

सत्य शब्द = टकसार विधि = } विधिपूर्वक बीजक सद्ग्रन्थमें यथार्थ सत्य निर्णयसे सार-असारको दर्शाया है। सारशब्द द्वारा जीवको ही सत्य बताया है। सत्सङ्गकी विधि भी परखाया है। त्याग-ग्रहण करनेका रहस्य भी दिखलाया है।

पारख = कहहिं = कबीर = } सो सर्वप्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ही पारखज्ञानको प्रकाश करके सत्य उपदेश कहा है। फिर परम्परासे पारखी सन्त उसी पारखज्ञानको कहते ही आ रहे हैं। तथा वर्तमानमें भी पारखी सन्त उसी बीजक ज्ञानका उपदेश दे रहे हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य! गुरु पारखके बलसे निजस्वरूपमें स्थिर-शान्त, निर्भ्रान्त होके ही तब कहीं ऐसा सच्चा मत, सत्य सिद्धान्त पारख बोधको पारखी साधु सद्गुरुने कहा है। और सबसे प्रथम बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पारखज्ञानको प्रकाश करके कहा है। जो 'सत्यशब्द टकसार' कहिये सद्ग्रन्थ मूल बीजकमें विधिपूर्वक गुरुमुख निर्णयसे पारख सिद्धान्तको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने नरजीवोंके प्रति उपदेश देकर कहा है। विधि-विधानसे सारासारका निर्णय करके बतलाया है; सो उसे गुरुमुखसे पढ़कर सब भेदको जान लो!॥ ५२१॥

दोहाः— सो पारखके लहेते ❀ सब दुःख तुरित मिटाय॥
[२२८] अनुमानी अनुमान महँ ❀ बहुतक गये बौराय॥ ५२२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो पारखके लहेते = } वही स्वरूपज्ञान पारख बोधको प्राप्त करलो! क्योंकि, वही पारखको लेके धारण करनेसे ही—

सब दुःख तुरित मिटाय = } समस्त चौरासी योनियोंके भव-बन्धनोंके दुःख, आवागमनादिके दुःख, ऐसे सब दुःख तुरन्त ही मिट जाते हैं। खानी-वाणीके अध्यास मिट जानेसे यहाँ ही सब दुःखोंका अन्त वा क्षय हो गया, फिर कोई दुःख हो नहीं सकता है। और—

अनुमानी = अनुमान महँ = } बेपारखी भ्रमिक नरजीव अनुमानी हुए, तो ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्ग, देवतादि अनेकों मिथ्या अनुमान-कल्पनामें ही भूल गये या भूल रहे हैं।

बहुतक = गये बौराय = } ऐसे बहुतेक या अनन्त नरजीव उसीमें बौरा करके पागल हुए हैं। मनमाने कर्म-कुकर्म करके, वे पशु आदि योनियोंमें चले गये वा चले जा रहे हैं॥

व्याख्या— सोई गुरुपारख बोधको अपरोक्ष रीतिसे प्राप्त कर लेनेपर ही खानी-वाणीकी आसक्ति अध्याससे होनेवाला सब मानसिक दुःख तुरन्त ही मिट-मिटाय करके नाश हो जाता है। जीव निर्बन्ध सुखी हो जाते हैं। और पारखहीन भ्रमिक मनुष्य अनुमानी हो करके अनुमान-कल्पनाओंमें ही पड़के गाफिल हुए; ऐसे बहुतेक नरजीव बौरायके धोखाधारमें ही पड़ गये। वैसे लोग जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही चले गये और जा रहे हैं॥ ५२२॥

दोहाः— मानुष द्रष्टा पारखी ❀ सबके पारख कीन्ह॥
[२२९] जमा आपनी राखिके ❀ पारख बल गुरु चीन्ह॥ ५२३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मानुष = द्रष्टा पारखी = } कोई बिरले ही मनुष्य सत्य चैतन्यके यथार्थ द्रष्टा-पारखी हुए या होते हैं। ऐसे सत्यके द्रष्टा साक्षी हंस पारखी मनुष्यने—

सबके = पारख कीन्ह = } कल्पना, अनुमान, भास, अध्यास, काल, सन्धि, झाँई, तथा पञ्चविषयादि समस्त जालोंका पारख किये, तो द्रष्टा हंसको उन सबोंसे न्यारा पाये। फिर तो उन सबोंसे वे न्यारा ही हो रहे।

जमा आपनी = राखिके = } तहाँ जीव जमाके पासमें अपनी स्थिति-मुक्तिके लिये

सत्य, शील, दया, विवेक, वैराग्य आदि सद्गुण पासमें रखकर और सब दुर्गुण आसक्ति, कल्पनादिको निकालकर फेंक दिये वा हटा दिये। और—

पारख बल = गुरु चीन्ह = पारखी सद्गुरुके महान बल-पराक्रमसे निज स्वरूप पारख-पदको पहिचान लिये। अपनी तरफ दृष्टि उलटा करके विवेक किये कि, "मैं ही नाना मानन्दी करके भव-बन्धनोंमें पड़ा था," सो ऐसा जानकर उस मानन्दीको छोड़ दिये, तो सद्गुरुकी दयासे निज बोध स्वरूपमें ही ठहराव किये ॥

व्याख्या— द्रष्टा-पारखी मनुष्यने ही सबोंके मत-मतान्तर खानी-वाणी आदिके कसर-खोटका विचार करके यथार्थ निर्णयसे पारख किये। सार-असारको न्यारा-न्यारा विवेक किये। सद्गुरुके पारख ज्ञानके बलसे गुरु और गुरुवाओंको चीन्ह लिये। काल-दयालको भी पहिचान लिये। बन्धन-मुक्तिको भी जान लिये। फिर अपने जमा चैतन्य जीवकी स्थितिके लिये हंस रहनी-रहस्य सद्गुणोंकी धारणाको अपने पासमें रखकर और सब मानन्दीको त्याग कर दिये। इसरीतिसे बन्धनोंसे छूटकर मुक्तिपदमें पहुँचे हैं ॥ ५२३ ॥

दोहाः— सब जीवनके मर्मको ❀ जानै द्रष्टा सोय ॥
[२३०] सोई दृष्टि गुरु परख लही ❀ सुधरै मानुष जोय ॥ ५२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! सब जीवनके मर्मको = चैतन्य जीव सब सुखाध्यासी होकर विजातीय विषय वा ब्रह्मानन्दमें भूले हैं। ऐसा यथार्थ भेदको परखकर निर्णयसे—

जानै द्रष्टा सोय = जो जानते, पहिचानते-परखते हैं, सोई द्रष्टा साक्षी पारखी हैं। सो वे जीवको गाफिलीसे न्यारे करते हैं, वे ही सत्यके ज्ञाता हैं।

सोई दृष्टि गुरु परख लही = पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जा करके सोई दिव्य-दृष्टि पारख बोधको जिन्होंने प्राप्त किये, सो उसी गुरुदृष्टिको लेकर ही—

सुधरै मानुष जोय = मनुष्योंका सुधार हो जाता है, उस दृष्टिको लेनेवालोंका सुधार हो भी गया है, और जो लेंगे उन्हींका सुधार हो भी जायगा। परन्तु, यथार्थ ही दृष्टि खोलकर देखना चाहिये ॥

व्याख्या— सोई द्रष्टा पारखी सन्त ही परीक्षक होनेसे सब जीवोंके मर्मको यथार्थ रीतिसे जानते हैं। जीव स्वरूपसे अखण्ड, अनादि, अनन्त हैं। जड़ाध्यासी हो-हो कर ही देह बन्धनोंमें पड़े हुए हैं। सुखकी इच्छा तो सब जीव करते हैं; किन्तु, दुःखदायी कर्म-कुकर्म करके दुःख ही भोग रहे हैं। और पारखबोध होनेपर ही जीवोंकी सो अबोध दशाका दुःख सब मिट जाता है। सो यह सम्पूर्ण हालको द्रष्टारूप पारखी ही जानते हैं। और सोई दिव्यदृष्टि सद्गुरुका पारखबोध पा करके तब ही जो बुद्धिमान् मनुष्य हैं, सो उनके गति, मति, जीवनका सुधार हो जाता है। अतः अभी तुम मनुष्य देहमें हो, तो सोई दिव्य-दृष्टिसे देखकर पारख बोधको प्राप्तकर अपना सुधार करो! ॥ ५२४ ॥

दोहाः— हन्तामा सब ही परे ❀ हन्ता देखै साध ॥
[२३१] हन्तासे न्यारा रहै ❀ गुरुमुख दृष्टि अबाध ॥ ५२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

हन्तामा सब ही परे = योगी, ज्ञानी, भक्त और विषयी-ये सब लोग विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्म, निरञ्जनादि अनेकों हन्ता, ममता, मानन्दी आदिमें पड़े हैं।

हन्ता देखै साध = षट्दर्शनोंके भेषधारी साधु नाना कल्पकर साधनाएँ साधके कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादिको देखना चाहते हैं। ऐसे धोखेमें ही वे पड़े हैं। इन अहङ्कारोंको बन्धनरूपमें कोई विरले पारखी साधु ही न्यारे होकर देखते हैं। और—

हन्तासे न्यारा रहै = खानी-वाणीकी समस्त हन्ता-ममतासे वे न्यारा परीक्षक हो रहते हैं। तुम भी सब हन्तासे न्यारा हो

रहो। और—

गुरुमुख = } गुरुमुख द्वारा पारखदृष्टि
दृष्टि अबाध = } प्राप्त कर स्वयं अबाध=सत्य अनन्य निजस्वरूपमें ही स्थिर हो रहो। तभी आवागमनोंसे तुम रहित होकर मुक्त हो जाओगे ॥

व्याख्या— संसारमें सब कोई मोटी-झीनी मायाकी हन्ता-ममता, काम-क्रोधादि विकार, पञ्च अभिमान इत्यादिमें रागी-त्यागी सब कोई मनुष्य बन्धे पड़े हैं। उन सब हन्ताको कोई बिरले ही साधु पारखी विवेकदृष्टिसे देखते हैं, और उनसे वे न्यारे हो रहते हैं। अबाध-एकरस, अखण्ड पारख-दृष्टि गुरुमुखसे अपरोक्ष स्वरूप बोध होनेसे, वे पारखी सन्त सम्पूर्ण हन्ता-ममतादिसे पृथक् वा न्यारे हो करके निजपदमें ही जाग्रत् सावधान हो रहते हैं ॥ ५२५ ॥

दोहाः— देखन है बहु भाँतिका ❀ तामें निर्णय येह ॥
[२३२] एक देखत है जगत सब ❀ एक ब्रह्म सुख नेह ॥ ५२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

देखन है = } द्रष्टा चैतन्य जीव तो सत्य है।
बहु भाँतिका = } परन्तु, सबकी दृष्टि एक-सी नहीं है। बहुत प्रकारसे समझ-बुद्धि रखते हैं; इसलिये बहुत तरहके सिद्धान्तोंको भिन्न-भिन्न रूपसे देखते हैं। देखना भी बहुत भाँतिका होता है।

तामें निर्णय येह = उन सब मत-मतान्तरोंमें सत्य निर्णय तो यही एक पारखज्ञान है। जिससे जड़-चैतन्यका निर्णय भिन्न-भिन्न होता है; सार लखाया जाता है। और बेपारखियोंका मुख्य निर्णय तो यही है कि, द्वैत या अद्वैत सिद्धान्त ठहराते हैं।

एक देखत है = } उनमें एक जीव तो अज्ञानी
जगत सब = } विषयी बना है; सो तो जगत्-में माता, पिता, धन, स्त्री, पुत्रादिमें आसक्त हो नश्वर पदार्थ विषयादिको ही सत्य देखता है या असत्यको ही सत्य समझता है। कोई तो पञ्चतत्त्वको ही ईश्वर मानते हैं। सब जगत्के विषयी लोगोंकी यही मिथ्या-दृष्टि है। और दूसरी तरफ वेदान्ती लोग—

एक ब्रह्म = } एक ब्रह्मको परिपूर्ण व्यापक
सुख नेह = } सुख स्वरूप मानकर उसी धोखेमें प्रेम लगाये हैं। ऐसे विषयानन्द-ब्रह्मानन्दादि-के नेहसे चौरासी योनियोंमें जाते हैं। बिना पारख भूलकर वे धोखेमें ही पड़े हैं ॥

व्याख्या— देखो! मनुष्योंके देखने-देखनेमें भी बहुत फरक है; नाना भाँतिका देखना होता है। बुद्धि भेदसे अनेकों समझ हुई और हो रही है। अनेकों मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त आदि बने हैं। उनमें-से सबोंके निर्णय, ठहराव यही हुआ है कि, एक तो सब जगत्को भिन्न-भिन्न देखता है। जगत्में पञ्च विषय भोगोंका आनन्द सब कोई चाहते हैं। कोई पञ्चतत्त्वोंको ही सब कुछ मानते हैं। तत्त्वोंसे परे दूसरा भिन्न चैतन्य तो वे मानते ही नहीं हैं, वे जीवको भी जड़तत्त्वोंका ही कार्य बतलाते हैं; इत्यादि प्रकारसे एक तरफ जगत् दृष्टिवालोंका मिथ्या पक्षपात हो रहा है। और दूसरी तरफ एक ब्रह्मवादी अद्वैत मतका कथन करते हैं। जगत् तीन कालमें ही नहीं है; मिथ्या भासमात्र भास रहा है, सो भ्रम है; ऐसा कहते हैं। और ब्रह्मानन्दको महान सुख मानकर उसी धोखेमें नेह लगा रहे हैं। बिना विचार ऐसे खानी-वाणीमें नाना दृष्टि करके भूले पड़े हैं। इसीसे अध्यासी होकर आवागमन-के चक्रमें ही जीव पड़े हुए हैं। अतः अपनी दृष्टिको सुधार लेना चाहिये ॥ ५२६ ॥

दोहाः— जग सुख अनित्य विचार बुद्धि ❀ ब्रह्म सुखहि लौलीन ॥
[२३३] द्रष्टा दोऊ सुखनको ❀ मिथ्या जानहु लीन ॥ ५२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

जग सुख अनित्य = } वेदान्ती गुरुवालोगोंने
विचार बुद्धि = } जगत्के पञ्च विषय भोगादि सुखको अनित्यरूप क्षणिक नाशवान् समझ करके छोड़ दिये, फिर बुद्धिसे विचारकर नित्य सुखको ढूँढ़े—

ब्रह्म सुखहि = } तो अनुमानसे ब्रह्मको सुखरूप
लौलीन = } मानकर उसी ब्रह्मसुखमें हो

लवलीन, मस्त, गाफिल हुए; ऐसे धोखेमें ही जाके पड़े।

द्रष्टा दोऊ = यथार्थ द्रष्टा पारखी जो हैं, सो
सुखनको = जड़-चैतन्यका निर्णय करके खानी-वाणी सम्बन्धी-दोनों सुखोंको बन्धन ही जानते हैं।

मिथ्या जानहु लीन = ब्रह्मानन्दादिको मिथ्या मानन्दी, भ्रमरूप जानते हैं। इसलिये उसमें वे लीन नहीं होते हैं। सदा पारख-विचार-में ही लक्ष्य स्थिर रखते हैं। तैसे ही तुम्हें भी होना चाहिये। उन दोनों सुखोंको नाशवान् वा मिथ्या ही जानो! ॥

व्याख्या— कोई संसारीलोग तो जगत्में पञ्चविषय भोगोंको ही सुख मानकर आसक्त होकर भूले पड़े हैं। कोई परमार्थी साधक लोग जगत्के समस्त सुखोंको बुद्धिसे विचारकर अनित्य, क्षणिक ठहराकर त्याग दिये। फिर कल्पनासे ब्रह्मानन्द सुखको नित्य, स्थायी मानकर उसी धोखेमें ही लवलीन हो गये। परन्तु, जैसे विषयानन्द बन्धनरूप है, तैसे ही ब्रह्मानन्द भी बन्धनका ही कारण है; यह वे लोग नहीं जानते हैं। इसीसे भूलमें ही बन्धे पड़े हैं। और द्रष्टा पारखी पारख करके जगत्के सुख तथा ब्रह्मानन्दके सुख इन दोनों सुखोंको असत्य मानन्दी मात्र ही जान लेते हैं। इसीसे वे वह मिथ्या सुखोंमें कदापि लीन नहीं होते हैं। परखकर वे सदा उससे पृथक् विवेक-वैराग्यकी रहनीमें ही लगे रहते हैं ॥ ५२७ ॥

दोहाः— अपनी दृष्टि प्रताप बल ❀ गुरु उपदेश विशेष ॥
[२३४] सत्सङ्गति सुख नित्यप्रति ❀ द्रष्टा पारखी देख ॥ ५२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अपनी दृष्टि = प्रथम अपनी दृष्टि घुमा करके
प्रताप बल = निजस्वरूपपर लक्ष्य करो। सद्गुरुके ज्ञान बोध-बलके महाप्रतापसे अपने हृदयकी विवेकदृष्टिको खोलकर पारखस्वरूपमें नजर करो।

गुरु उपदेश = इसमें पारखी सद्गुरुके सत्य
विशेष = उपदेशका ही महत्त्व विशेष है। सद्गुरुके उपदेशमें विशेषरूपसे लक्ष्य लगानेसे ही पारखदृष्टि खुलती है।

सत्सङ्गति सुख = रोज-ही-रोज सदा जो
नित्य प्रति = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहते हैं; सो नित्यप्रति सुख-शान्तिको पाते हैं, सब दुःखोंसे वे छूट जाते हैं।

द्रष्टा पारखी देख = नित्य सुखी या जीवन्मुक्त ऐसे प्रत्यक्षमें द्रष्टा पारखी साधु मौजूद हैं। उनको ही देख लो! और जो नरजीव पारखी सद्गुरुके बोध लेकर चैतन्यको सत्य देखते हैं, सो पारखी होते हैं ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुके उपदेश न्याय-निर्णय बोधके विशेष बल पा करके अपनी बुद्धिकी शक्ति बढ़ायके फिर अपने भी विवेक-दृष्टिका प्रताप-पुरुषार्थ बढ़ावे, और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें नित्यप्रति लगा रहे, तो उन सत्सङ्गी जनोंको नित्यप्रति शान्ति-सन्तोषादि हो करके सुख ही होता रहता है। द्रष्टा पारखी स्वयं विवेकदृष्टिसे देखते रहते हैं। अथवा एक तो नरजीव-की अपनी बुद्धिसे विवेकदृष्टि हो; दूसरा, सद्गुरुके उपदेश श्रवण-मननादिकी विशेषतासे गुरुबलका प्रताप बोधकी शक्ति हो; और तीसरा, पारखी सन्तोंकी सत्सङ्गतिमें निवास हो; ऐसे तीनों शुभ संयोग जहाँ मिलते रहते हैं, तहाँ नित्यप्रति सुख ही होता है। निवृत्ति त्याग-वैराग्य, मनकी स्थिरतासे सदा जीवको सुख ही होता है। और सत्सङ्गमें लगे रहनेवालोंको नित्यप्रति संशय निवृत्ति बोधकी परिपुष्टिसे सुख ही होता है। तहाँ प्रत्यक्ष प्रमाणके लिये द्रष्टा पारखीकी रहनी-स्थितिको ही देख लीजिये! पारखी सन्त सबके द्रष्टा होकर सबसे न्यारा ही रहते हैं। अथवा, उपरोक्त तीनों बात द्रष्टा पारखीमें पूर्णतासे देखनेमें आती है। अतः वे नित्यप्रति सन्तुष्ट प्रत्यक्ष सुखी ही बने रहते हैं। ऐसे यथार्थ भेदको विचार करके जान लेना चाहिये ॥ ५२८ ॥

दोहाः— सोई पारख प्रगट गुरु * जहाँ नहीं अनुमान ॥
[२३५] सुख प्रत्यक्ष पूरण अमल * रहै यथारथ जान ॥ ५२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सोई पारख = } पारखके प्रकाशकर्त्ता प्रत्यक्षमें
प्रगट गुरु = } सद्गुरु सोई श्रीकबीरसाहेब हुए। तथा अभी सोई पारखबोधको प्रगट करके दर्शानेवाले जो हैं, सो सद्गुरुरूपमें प्रत्यक्ष हैं।

जहाँ नहीं = } जहाँपर कि, उनके हृदयमें और
अनुमान = } उपदेशमें लेशमात्र भी अनुमान-कल्पनादिकी मानन्दी नहीं रहती है—

सुख प्रत्यक्ष = } अतएव पूर्ण ब्रह्म आदिके
पूरण अमल = } भ्रमसे रहित खानी-वाणीके सर्व मल-विकारसे छूटे हुए निर्मल पूर्ण स्थितिवान् पूरे साधु पारखी प्रत्यक्ष ही जीवन्मुक्त सुखी शान्त रहते हैं।

रहै यथारथ = } "जान या ज्ञानमात्र चैतन्य
जान = } अविनाशी, नित्य, सत्य, चिरञ्जीव, अखण्ड जीव स्वरूप मेरा है।" ऐसा यथार्थ जानकर सब मानन्दीसे रहित स्वरूपमें ही शान्त-स्थिर हो रहते हैं। ऐसा तुम भी विवेक करके अब जान लो! यथार्थ भेदको जानकर स्वयं स्वरूपकी स्थितिमें स्थिर रहो ॥

व्याख्या— सोई पारख बोधको प्रथम प्रगट करनेवाले पारखी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीर-साहेब हुए थे। और आपके ही अनुयायी पारखी सन्त भी सोई पारखको प्रगट करनेवाले सद्गुरु हैं। जहाँपर अनुमान-कल्पना आदि विकारका लेशमात्र भी बाकी नहीं रहता है, वे यथार्थ पारखपदको जान करके स्वरूप स्थितिमें ही रहते हैं। इसीसे प्रत्यक्षमें निराश-निवृत्ति करके पूर्णता-से स्वच्छ निर्मल जीवन्मुक्तिके सुखमें ही स्थित रहते हैं। सो तुम यथार्थ करके जान लो! महान प्रयत्न करो, तो तुम भी उसी पदमें पहुँच सकोगे ॥ ५२९ ॥

दोहाः— हे शिष्य! ऐसे हंसकी * दृष्टि स्वतः आनन्द ॥
[२३६] ते आनन्दकी प्राप्तिको * द्रष्टा लहै स्वच्छन्द ॥ ५३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! = } हे जिज्ञासु शिष्य! ऐसे या
ऐसे हंसकी = } इसप्रकारसे जड़-चैतन्यके निर्णयी, सारग्राही, सत्य शोधक, हंसरूप नरजीवकी गति-मति हंसके समान स्वच्छ शुद्ध रहती है।

दृष्टि स्वतः = } इसलिये आनन्दादिकी अहं
आनन्द = } इच्छासे रहित स्वयं स्वरूपकी दिव्य पारख दृष्टि रहती है। तो वहाँपर दुःख न होनेसे आनन्द ही रहता है।

ते आनन्दकी = } उस जीवन्मुक्तिके सुखकी
प्राप्तिको = } प्राप्ति तो कोई विरले ही करते हैं। उस आनन्दको वही प्राप्त कर सकेंगे, जो कि—

द्रष्टा लहै = } सत्यनिष्ठासे पारखी सद्गुरुके
स्वच्छन्द = } उपदेशको ग्रहण करते हैं, वे सर्व बन्धनोंसे छूट करके निर्बन्ध, स्वच्छन्द, शुद्ध, निज-स्थितिके द्रष्टा होकर प्राप्त कर लेते हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य! ऐसे विवेकी हंस पारखीकी दिव्यदृष्टि, लक्ष्य स्वतः ही निजस्वरूपके ऊपर लगा रहता है। वे किसी प्रकारके आनन्दकी चाहना नहीं करते हैं। जहाँ आनन्दकी इच्छा हुई, तहाँ दुःखका भोग भी साथ ही लगा रहता है। सुख-दुःख दोनों विषय जड़ सम्बन्धमें होते हैं। आनन्दकी चाहसे रहित निजस्वरूपकी स्थितिमें मात्र निवृत्तिका शुद्ध सुख रहता है। उसी निवृत्ति स्थिति जीवन्मुक्तिके आनन्दको द्रष्टा पारखी स्वयं स्वच्छन्दसे प्राप्त कर लेते हैं। उस आनन्दकी प्राप्तिको जब नरजीव पा जाते हैं, तब वे भी स्वच्छन्द वा स्वतन्त्र द्रष्टा निर्बन्ध नित्य मुक्त हो जाते हैं; सोई बनाना चाहिये ॥ ५३० ॥

दोहाः— ताते हे शिष्य ! साधुको * सङ्ग करहु निष्काम ॥
[२३७] गुरुमुख निर्णयके लखै * धोखा मिटै तमाम ॥ ५३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

ताते हे शिष्य ! = इसवास्ते हे प्रेमी शिष्य !
साधुको = तन, मन, वचनादिको साधे हुए सत्यन्यायी ऐसे पारखी साधुओंकी सेवा-शरणमें ही रहके—
सङ्ग करहु = हमेशा सत्सङ्ग करते रहो।
निष्काम = परन्तु, मनसे पञ्च विषय, स्त्री भोगादि प्राप्ति या स्वर्गादि सुख, ईश्वरादि प्राप्तिकी कामना, इच्छा या चाहनाको पहले ही त्याग करो।
गुरुमुख = पारखी साधु-गुरुके
निर्णयके लखै = मुखारविन्द द्वारा जब सत्य निर्णयका उपदेश श्रवण करके सत्यासत्यको यथार्थ लखोगे वा जानोगे—
धोखा मिटै = तब तुम्हारा भ्रम-ब्रह्म, ईश्वर,
तमाम = देवता, स्वर्ग, भूत इत्यादि तमाम धोखा-कल्पना मिट जायगी ॥

व्याख्या— इसवास्ते हे मुमुक्षु शिष्य ! ऐसे विवेकी-पारखी साधु सद्गुरुका सत्सङ्ग वा सङ्ग-साथ नित्यप्रति किया करो ! और मनकी आशा, तृष्णा, कामना, चाहना, विषय भोगादिकी इच्छा इत्यादि सम्पूर्णको मिटाय करके निष्काम होकर ही सत्सङ्ग करो। तथा अपना मुख्य कर्त्तव्य समझकर सेवा करो। सत्सङ्ग-विचार द्वारा गुरुमुख निर्णयको यथार्थ रीतिसे लख लेनेपर फिर तमाम भ्रम, धोखा, भूल एकदमसे समूल नाश होकर मिट जायगी। जिससे पारख स्वरूपमें स्थिर होकर मुक्ति प्राप्ति भी हो जायगी, सो जान लो ! ॥ ५३१ ॥

दोहाः— काल कला ब्रह्मास्मि जे * महावाक्य वेदान्त ॥
[२३८] समुझहु बहुमत वेद विधि * नाशकके यह भ्रान्त ॥ ५३२ ॥

अथः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

काल कला = ब्रह्मज्ञानी गुरुवालोगोंने
ब्रह्मास्मि जे = कल्पना करके 'अहंब्रह्मास्मि' जो कहा या माना है, सो—
महावाक्य = वेदान्तियोंने वेदान्त ग्रन्थोंके
वेदान्त = प्रमाणसे उसको 'महावाक्य' कहा है। "प्रज्ञानंब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि, अयमात्माब्रह्म, और तत्त्वमसि"—वेदान्तमें ये चार महावाक्य मुख्यरूपसे कहा है। और बारह अवान्तर वाक्य इसीमेंसे विभक्त करके न्यारे-न्यारे माने हैं।
समुझहु = वेदके विधि-विधान प्रमाणसे
बहुमत = संसारमें जो बहुतेक मत-
वेद विधि = मतान्तर चले हैं, उसको सद्गुरुके सत्सङ्गमें निर्णय करके विधि-पूर्वक अच्छी तरहसे समझकर परखो !—
नाशकके = यह तो गुरुवालोगोंकी भ्रान्ति
यह भ्रान्त = मुक्तिपदको नाश करनेवाला है। ब्रह्म-ईश्वरादिकी कल्पना हंसपदका नाशक भ्रममात्र है। यह सब समझ-बूझकर उसे परित्यागकर सत्यज्ञानको ही ग्रहण करो ! ॥

व्याख्या— वेदान्तके महावाक्य जो 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि कहा है, सो कालकी कला गुरुवालोगोंकी मिथ्या कल्पना ही है। ब्रह्मज्ञानियोंने— "मैं ब्रह्म हूँ, यह जीवात्मा ही ब्रह्म है, तू ही वह ब्रह्म है, ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है", ऐसे जो कहा है, सो उसीको वेदान्तमें चार महावाक्य कहा है। उसकी बहुत महिमा बढ़ाये हैं। वेद प्रमाणसे बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक कथनकी हुई यह सब वाणी नाशक=गुरुवालोगोंकी मिथ्या भ्रान्ति, धोखा-कल्पनाका पसारा ही मात्र है। ऐसा तुम यथार्थ निर्णयसे समझो-बूझो ! और भ्रम मिटा करके सत्यग्राही बनो ! ॥ ५३२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- १६ ॥ ❀ ॥

१. काल कला बहुतक प्रचण्डा * जाकी डर कम्पै ब्रह्मण्डा ॥ ५३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

काल कला = } कालरूप गुरुवा और
बहुतक प्रचण्डा = } स्त्रियोंकी कलारूप कल्पित वाणीके सिद्धान्त तथा विषय भोगोंका विलास, यानी खानी-वाणीका जाल बहुतेक विस्तार है; छूटनेको अत्यन्त कठिन, तीक्ष्ण धारवाला है।

जाकी डर = } जिन स्त्री और गुरुवाओंके
करपै ब्रह्मण्डा = } डरके मारे ब्रह्माण्ड या संसार भरके नरजीव थर-थर काँप रहे हैं; भयभीत हो रहे हैं। उनके विरुद्ध होनेसे सुखमें बाधा होगा, ऐसा सोचकर डर रहे हैं॥

व्याख्या— संसारमें कालकी कला=कल्पना, विषय आदिके भाग खानी-वाणीका जाल बहुतेक ही प्रचण्ड-तीव्र,तीक्ष्ण होके फैल रहा है। जिस भयङ्कर कालके डरसे ब्रह्माण्डरूप सारे संसारके मनुष्य भयभीत होकर थर-थर काँप रहे हैं। अथवा ब्रह्माण्डरूपी भयानक वाणी सुन-सुनकर जिसके डरसे सब काँप रहे हैं। ईश्वर, यमराज आदिके मिथ्या भयसे त्रसित हो रहे हैं। बिना विचार काल-जालके फन्दोंमें ही बन्धे पड़े हैं॥ ५३३॥

२. सो गुरु पारख लहत नशाई ❀ पारख लहै दृष्टि फरियाई॥ ५३४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो गुरु पारख = } सो पारखी सद्गुरुकी
लहत नशाई = } दयासे पारखका सत्यबोध प्राप्त होते ही वह खानी-वाणीका समस्त जाल, भय, लोभादि नाश हो जाता है। स्व-स्वरूप चैतन्यका बोध पक्का होनेसे निर्भय हो जाता है।

पारख लहै = } क्योंकि, पारख बोधके प्राप्त
दृष्टि फरियाई = } होनेसे मनुष्योंकी विवेक-दृष्टि वा परीक्षादृष्टि खुल जाती है। जिससे सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका निर्णयसे फैसला कर लेते हैं॥

व्याख्या— अर्थात् सद्गुरुकी कृपासे पारख बोध प्राप्त होते ही सो समस्त काल-जालका बन्धन नाश हो जाता है। पारखज्ञान मिलते ही दृष्टि-दोष दूर होकर साफ-साफ नजर आ जाती है। जिससे सार-असारके निर्णय करके सत्यन्यायका फैसला हो जाता है॥ ५३४॥

३. अनबनि जतन करें यमराजा ❀ मन माया प्रेरे करि साजा॥ ५३५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अनबनि = }
जतन करें = } गुरुवालोग यमराज या धर्मके
यमराजा = } ठेकेदारके समान बने हैं। इसलिये अनेकों प्रयत्न, उपाय करके मनुष्योंको भ्रम, कल्पना, धोखेमें डाले हैं। और मन अनेक दाव-पेंच करके विषयोंकी तरफ जीवको ले जाता है। कोई ईश्वरको राजा मानकर उसकी प्राप्तिके लिये अनेक साधनाएँ करते-कराते हैं।

मन माया = } सबसे परे ब्रह्मको बतला करके
प्रेरे करि = } गुरुवालोगोंने प्रेरणा करके
साजा = } मन-कल्पनाकी साधनाओंमें सजायके लगाये हैं। और स्त्री मायाने भी शृङ्गार सजायके पुरुषोंके मनको प्रेरणा करके अपनी तरफ आकर्षणकर भोगोंमें लगा रही हैं॥

व्याख्या— मनुष्योंको फँसानेके लिये, जीवोंको भटकानेके लिये यमराजरूप गुरुवालोग नाना प्रकारके यत्न, उपाय, छल, कपट, प्रपञ्चका फैलावा करते हैं। जिससे जीवोंके हित-कल्याणका बनाव कुछ नहीं बने, ऐसे धोखेके जालोंमें अरुझाते हैं; स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वाणी और विषयोंका नाना साज सजायके मन-मायाको प्रेरणा करके भुला-भुलाकर काल-जालोंमें फँसाते हैं। सब प्रकारसे तन, मन, धनादिका हरण कर हानि ही करते हैं॥ ५३५॥

४. नाना मति करि भोरे जीवा ❀ राखें सेवा निज बसि कीवा॥ ५३६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

नाना मति = }
करि भोरे जीवा = } इसतरहसे नाना प्रकारके प्रपञ्च फैला करके मति-बुद्धिको भ्रष्ट करके नारी और गुरुवाओंने सब नरजीवोंको भुला करके गाफिल किये और कर रहे हैं।

राखें सेवा = निज बसि कीवा = } तहाँ हाव-भाव-कटाक्ष-से रोचक-भयानक वाणी दिखाय-सुनायके मनुष्योंको अपने वशीभूत कर दास बना करके अपनी सेवा-टहलमें लगा करके ऐश-आराम कर रहे हैं। अब कैसे जीवोंका भला होगा ? कभी न होगा ॥

व्याख्या— षट् दर्शनोंके छियान्नवे (९६) पाखण्ड नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार करके बुद्धिमें नाना तरहसे भ्रम उत्पन्न कराके नरजीवोंको भुलाये और भुला रहे हैं। इसतरह अपनेवश करके कैदी बनाकर अपनी ही सेवा-टहलमें मनुष्योंको लगा रक्खे हैं। अपने तो मौज लूटते हैं, और जीवोंको परेशान करते हैं; ऐसे काल अन्यायी हुए हैं ॥ ५३६ ॥

५. सो द्रष्टा गुरु पारख पाई * तेहिके निकट भरम नहिं जाई ॥ ५३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सो द्रष्टा गुरु = पारख पाई = } सो जो कोई जिज्ञासु मनुष्य-को पारखी सद्गुरु मिले और उनकी शरणमें जाकर गुरुपद पारखका बोध पाये हैं, सो बड़े भाग्यवान् हैं।

तेहिके निकट = उन्हीं परीक्षक साधु पारखियोंके नजदीकमें—

भरम नहिं जाई = वे भ्रमिक गुरुवालोग नहीं जाते हैं। और बोधवान् सन्तोंके पासमें भ्रम-कल्पनादि तो कुछ रहती ही नहीं है। अतः वे भी कभी भ्रमिकोंके निकटमें नहीं जाते हैं। सदा सबसे न्यारा ही हो रहते हैं ॥

व्याख्या— सो जो कोई जिज्ञासु नर जीव द्रष्टा-पारखी सद्गुरुके दर्शन पा जाते हैं, तो उन्हें सद्गुरुकी दयासे 'जीव ही सत्य है'— यह पारख बोध प्राप्त हो जाता है। फिर द्रष्टा जीवने जब सो सद्गुरुके पारख बोधको पाये वा पा जाते हैं, तब तो उनके निकटमें भी कभी भ्रम नहीं जाता है वा उनके पासमें भ्रम जा नहीं सकता है; अतः वे सन्देह रहित निःसन्देह होते हैं ॥ ५३७ ॥

६. तेहि जालते बाँचे साधू * मन माया कल्पित मेटे व्याधू ॥ ५३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तेहि जालते = बाँचे साधू = } उस कठिन जबर्दस्त महाजालों-से वा खानी-वाणीके बन्धनोंसे वे विवेकी पारखी साधु ही बचे हैं। नहीं तो और कोई नहीं बचे हैं। सिर्फ पारखी साधु ही बच सके हैं।

मन माया = कल्पित = मेटे व्याधू = } साधु पारखी ही ऐसे समर्थ हुए कि, जिन्होंने मन-मायासे होनेवाली कल्पित आधि, व्याधि, उपाधि आदि भव-बन्धनोंको मिटाये और मिटानेवाले हैं, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— उसी कठिन जाल-जञ्जालोंसे विवेकी-पारखी साधु-महात्मा ही बचे हैं; और ऐसे ही साधु बच पाते हैं। वे अपनी पारखदृष्टिसे मन-मायासे कल्पित समस्त आधि, व्याधि, उपाधि आदिको सर्वथा मिटाय देते हैं वा मेट भी दिये हैं, और अभी उसे मेट रहे हैं; इसीसे वे निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं ॥ ५३८ ॥

७. सुधरे गुरुसेवा शिष्य होई * परख लहै दृष्टि पारखी सोई ॥ ५३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुधरे गुरु सेवा = शिष्य होई = } हे शिष्य ! जो कोई तन, मन, धनादि अर्पण कर पारखी श्रीसद्गुरुकी सत्य सेवा-भक्ति करनेवाले सच्चे सेवक या शिष्य होते हैं; उन्हींका जीवन सुधर जाता है।

परख लहै दृष्टि = पारखी सोई = } फिर सेवा-सत्सङ्ग करते-करते जिसे सद्गुरुकी कृपासे पारख बोध प्राप्त हुआ, दृष्टि निज-स्वरूपमें स्थिर हुई, सोई पारखी सन्त हुए, तो वे औरको भी सत्यबोध देने लगे ॥

व्याख्या— बन्दीछोर पारखी साधु-गुरुकी शरणागत हो, उनके आज्ञाकारी शिष्य होकर जो ऐसे साधु-सद्गुरुकी सेवा करनेमें लगे हैं, और सेवा कर रहे हैं; वे सब मनुष्य सुधर गये और सुधर रहे हैं। जिनको पारखदृष्टि अपरोक्षरूपसे प्राप्त हुई वा होती है, सोई सच्चे त्यागी, वैराग्यवान्

साधु परीक्षक पारखी हुए हैं वा वे ही पारखी होते हैं। ऐसे ही पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है ॥ ५३९ ॥

८. पारख गुरु प्रताप पुनि जाना * ते पुनि द्रष्टा परख समाना ॥ ५४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

पारख गुरु = } तब ही पारखी सद्गुरुके
प्रताप पुनि जाना = } ज्ञानका प्रताप जाननेमें आया कि, सद्गुरुकी कृपाका प्रताप महान है। फिर ऐसे प्रेमी नरजीवोंको सद्गुरुके पारखका प्रताप जाननेमें कोई देरी नहीं लगती है, शीघ्र ही जान लेते हैं।

ते पुनि द्रष्टा = } फिर वैसे ही सत्सङ्गी नर-
परख समाना = } जीव 'सर्वका द्रष्टा सत्य जीव ही है'— ऐसे जानकर एकरस पारख स्थितिमें अपरोक्षरूपसे बराबर कायम रहते हैं या पारखमें एकसमान हो रहते हैं ॥

व्याख्या— फिर वे पारखी सन्त पारखी सद्गुरुके प्रतापसे सब खानी-वाणीके भेदको अच्छी-तरहसे जान जाते हैं। फिर वे ही द्रष्टा-पारखी समान रीतिसे एकरस पारख स्वरूपकी स्थितिमें ही स्थिर रहते हैं। फिर उन्हींका जीव सब बन्धनोंसे छूट कर पारखरूप मुक्त हो जाता है ॥ ५४० ॥

९. ते द्रष्टा ते गुरुपद थीरा * ते द्रष्टा गुरु प्रगट शरीरा ॥ ५४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ते द्रष्टा ते = } वे ही सर्वका द्रष्टा चैतन्य
गुरुपद थीरा = } नरजीव जब गुरुपद पारख-को प्राप्त कर लेते हैं, तब वे ही सब बन्धनोंकी चञ्चलतासे छूटकर मुक्त, स्थिर हो जाते हैं।

ते द्रष्टा गुरु = } मनुष्य शरीरमें वे ही जीव
प्रगट शरीरा = } निज स्वरूपका द्रष्टा पारखी होनेसे प्रत्यक्ष नरदेहधारी गुरुबोध पारखका प्रगट कर्त्ता बन्दीछोर सद्गुरु हुए। वैसे पारखी सद्गुरु मनुष्यरूपमें देह सहित प्रत्यक्ष ही हैं ॥

व्याख्या— वे ही द्रष्टा=चैतन्य जीव, जिसने निजस्वरूपको जान लिया, सो पारखी होते हैं। वे ही पारखी सन्त 'गुरुपद' पारखमें स्थिर होते हैं। और वे ही द्रष्टा-पारखी प्रत्यक्षमें मनुष्य शरीरधारी सद्गुरुरूपमें प्रगट हुए। अभी ऐसे ही द्रष्टा पारखी मनुष्य शरीर सहित सद्गुरुरूपमें सत्यबोध दाता प्रगट वा प्रत्यक्ष ही हैं ॥ ५४१ ॥

१०. ते द्रष्टा साधू जग मुक्ता * ते द्रष्टा शिष्य गुरुमुख युक्ता ॥ ५४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ते द्रष्टा साधू = } वे ही सत्यासत्यके यथार्थ
जग मुक्ता = } द्रष्टा पारखी साधु जगत्में देह रहते हुए ही जीवन्मुक्त हुए और अभी हैं। पारखी साधु जगत्-बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं।

ते द्रष्टा शिष्य = } वे ही चैतन्य जीवरूप मनुष्य
गुरुमुख युक्ता = } पारखी सद्गुरुकी शरणमें शिष्य भावसे आकर जब गुरुमुख निर्णयको युक्ति पूर्वक जानकर हंस-गुणके सहित पारखी होते हैं, तब काल-जालोंसे छूट कर मुक्त होते हैं। हे शिष्य! वे ही गुरुमुखयुक्त द्रष्टा हैं, ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— वे स्वयं स्वरूपके बोधवान् द्रष्टा-पारखी साधु जगत्में रहते हुए जगत् जाल बन्धनोंसे रहित जीवन्मुक्त हुए हैं। और अभी वैसे द्रष्टा साधु-पारखी जगत्से मुक्त होकर न्यारा, निजपदमें ही रह रहे हैं; और हे शिष्य! वे ही द्रष्टा नरजीव कोई जिज्ञासु शिष्य होकर जब सद्गुरुकी शरणमें आते हैं, तब सद्गुरुके उपदेशको श्रवण-मनन करके गुरुमुख बोधसेयुक्त सच्ची युक्ति-प्रयुक्तिके जानकार हो जाते हैं। इसीसे वे द्रष्टा साधु-पारखी जगत् बन्धनोंसे छूट कर जीते ही मुक्त हो जाते हैं ॥ ५४२ ॥

११. हे शिष्य! गुरु पारख अपनावो * जाते ठहरि हंसपद पावो ॥ ५४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

हे शिष्य! गुरु = } हे प्रेमी शिष्य! इसकारण-
पारख अपनावो = } से अब तुम शीघ्रतासे सद्गुरुके पारखबोधको अपने हृदयमें धारण करो! गुरुज्ञानको ही अपना करके ग्रहण करो! और सब फन्दाओंको एकदम

छोड़ दो ! विवेकी सारग्राही बनो।

जाते ठहरि = } जिससे सद्गुरुके सत्सङ्गमें
हंसपद पावो = } तुम्हारे मनका ठहराव होने-से दया, क्षमा, सत्य, विचारादि संयुक्त हंस होकर निजपद चैतन्य-स्थितिको तुम पाओगे। इसलिये पारखपदमें ही ठहरो !॥

व्याख्या— इसलिये मैं तुम्हारे हित-कल्याणके लिये कहता हूँ कि, हे शिष्य ! तुम भी सद्गुरु बन्दीछोरके गुरुपद पारख बोधको अपनाओ। उसे ही दृढ़तासे हृदयमें धारण करो। जिससे तुम भी अभी इसी नरदेहमें हंसपदमें स्थिति-ठहराव करके जीवन्मुक्तिके महानपदको भी पा जाओगे। और सदाके लिये सब भव-बन्धनोंसे छूट जाओगे ॥ ५४३ ॥

१२. एक अनेक त्यागि ब्रह्म झाँईं * रहहु ठहरि पारख गुरु माहीं ॥ ५४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

एक अनेक = } एक ब्रह्मका भ्रम तथा अनेक
त्यागि ब्रह्म = } जगत्का प्रपञ्च पञ्च विषय,
झाँईं = } कर्म, भक्ति, देवता, स्वर्गादि लोक, ईश्वर, ब्रह्म, जगत्कर्त्तादि जो माने हैं, सो झाँईं की गाफिली है। उसे परखकर त्याग दो ! छोड़ दो ! हटा दो ! और—

रहहु ठहरि = } तुम तो पारखी सद्गुरुके
पारख गुरु = } शरण-सत्सङ्गमें ही सदा ठहरे
माहीं = } रहो। उसीसे सद्गुरुके पारख-का बोध-प्रकाश हृदयमें होगा, सो जानो !॥

व्याख्या— अतएव एक ब्रह्म झाँईं कल्पित मानन्दी, और दूसरा अनेक जगत् विषयोंका अध्यास, इन सबको सर्वथा परित्याग करके दिलसे हटा दो ! और गुरुपारखमें ही तुम सर्वदा ठहरे रहो। त्याग, वैराग, विवेक-विचारादि सद्गुणोंको साथ लिये रहो; और परीक्षा कर-करके सब वासना, चाहनाओंको त्याग करो। गुरुपदरूप पारखमें ही अचल हो करके ठहराव करो; यही सत् पुरुषार्थमें लगे रहो ! ॥ ५४४ ॥

१३. सुनहु यथारथ गुरुमुख वाणी * देखु दृष्टि निर्णय समुहानी ॥ ५४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सुनहु यथारथ = } कल्पित वाणीको सुनना
गुरुमुख वाणी = } छोड़कर तुम तो सर्वदा यथार्थ सत्यनिर्णयकी गुरुमुखवाणी उपदेश-को ही श्रवण करो। जगत् अनादि है, जगत्-का कर्त्ता कोई नहीं है। जीव कर्मानुसार देह धारण करके दुःख भोग रहे हैं। अभी पारखबोध प्राप्त करनेसे मुक्ति होगी; इसीका निर्णय सुनो ! और—

देखु दृष्टि = } पारखदृष्टिसे जड़-चैतन्य, बन्धन-
निर्णय = } मोक्षका सत्य निर्णय करके
समुहानी = } देखो ! बिना पारख समस्त जीवों-की हानि हो रही है। सब जीव जड़ाध्यास-में ही समाय रहे हैं। सो निर्णय-दृष्टिसे देख करके सब अध्यासको मिटाओ !॥

व्याख्या— हे शिष्य ! तुम यथार्थ गुरुमुख वाणीको ही सुनो ! जड़-चैतन्य दोनों ही स्वरूपसे स्वतः अनादि हैं। जगत्का कर्त्ता कोई नहीं है। ब्रह्म-ईश्वरादिको कर्त्ता जो माने हैं, सो मिथ्या है। जीव अपने ही कर्मानुसार चौरासी योनियोंमें पड़ करके दुःख-सुखादि फल भोग पा रहे हैं, इत्यादि गुरुमुख निर्णयकी वाणी है। और सम्पूर्ण मतको निर्णय करके पारखदृष्टिसे देखो ! बिना पारख सब जीव समूहकी हानि हो रही है; सो यथार्थ जानकर हानि मिटाकर लाभको ग्रहण करो ! ॥ ५४५ ॥

१४. निर्णय यथा जीवके सङ्गा * होखै तबहीं काल गुण भङ्गा ॥ ५४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निर्णय यथा = } नरजीवोंको यथार्थ-वक्ता
जीवके सङ्गा = } सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें सदा लगे रहना चाहिये। और जीवके सङ्ग-साथमें या हृदयमें यथार्थ पारख निर्णयकी ही धारणा होनी चाहिये।

होखै तबहीं = } ऐसे पारख बोध होवे,
काल गुण भङ्गा = } तब ही कालरूप नारी और गुरुवाओंके विषय और ब्रह्म मानन्दी, भक्ति, योग, ज्ञानके तथा काम, क्रोध, मोह,

ये त्रिगुणका फन्दा नाश हो जायगा वा छिन्न-भिन्न हो जायगा ॥

व्याख्या— जब जीवके सङ्ग-साथमें यथार्थ गुरु निर्णयका ग्रहण हो जाता है, तब ही कालके सब गुण वा दुर्गुणोंका भङ्ग=विनाश हो जाता है। फिर उनके गुणोंका असर उन पर कुछ भी नहीं होता है। सब विकार मिट जाता है, ऐसा सत्य निर्णयका प्रताप है ॥ ५४६ ॥

१५. काल सन्धि झाँईं का फेरा ❀ मिटै लखै गुरुमुखहिं सबेरा ॥ ५४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

काल सन्धि= } तत्त्वमसिरूप कल्पना काल-
झाँईं का फेरा= } का, मानन्दीरूप सन्धिका और गाफिलीरूप झाँईं का चक्र आवागमनों-का फेरा सब तब ही तुरन्त मिट जायगा।

गुरुमुखहिं सबेरा=जब कि, नरदेहमें जीव जल्दी ही चेतकर गुरुमुखसे निर्णयकर सब कसर-खोटोंको परख लेंगे। तो फिर—

मिटै लखै=असत्य भ्रम-कल्पनाको छोड़कर सत्य स्वरूपको लख लेंगे। अध्यास छूटनेपर आवागमन भी मिट जायगा; ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— गुरुमुख निर्णयसे सबके भेदको जानकर जो यथार्थ लखते हैं, सो उनके नर जन्म-में सबेरा=प्रातःकालके समान शीघ्र ही पारख बोधका प्रकाश होकर काल=कल्पना, सन्धि=मानन्दी, झाँईं=भ्रम, गाफिली आदिका फेरा, आवागमनका चक्र, सब चञ्चलताएँ मिट जाती हैं। अतः गुरुमुखसे सब निर्णयको शीघ्रातिशीघ्र लख लेना चाहिये ॥ ५४७ ॥

१६. दीनबन्धु गुरु दीनदयाला ❀ ताकी कृपा दृष्टि लखु जाला ॥ ५४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

दीनबन्धु= } अतएव पारखी सद्गुरु
गुरु दीनदयाला= } ही एक दीनबन्धु, दीनदयालु, सर्वश्रेष्ठ शरणागत रक्षक, ज्ञानहीन गरीब-अज्ञानी मनुष्योंको ज्ञान बोध दाता हैं।

ताकी कृपा दृष्टि= } ऐसे सद्गुरुका सेवा-
लखु जाला= } सत्सङ्ग करो; उनकी कृपासे ही तुम पारखदृष्टि पाओगे। जिससे सब जाल देखनेमें आयगा। इसलिये गुरु-कृपासे परीक्षादृष्टिको प्राप्त कर, सब खानी-वाणीके जालोंको लखो! और उससे न्यारा हो रहो! उसे अच्छी तरहसे पहिचानो! ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरु दीनबन्धु प्रभु दीनदयालु हैं। उन्हीं सद्गुरुकी कृपादृष्टिसे कालके सब जालोंको लखो, जानो, परखो! और उससे सदा दूर रहकर न्यारे हो रहो! ॥ ५४८ ॥

१७. लखै जाल सो थीर पद पावै ❀ फेर मिटै ना जुइनि भरमावै ॥ ५४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

लखै जाल सो= } जो नरजीव गुरुवालोग और
थीर पद पावै= } स्त्रियोंके जालोंको प्रत्यक्ष बन्धनरूप जानकर सब जालोंको लखकर त्याग देते हैं, सोई थीरपद निजस्वरूपकी स्थितिकर निश्चल पारखको पाते हैं। इसकारणसे—

फेर मिटै= } उनके सब भ्रम मिट जाते हैं।
ना जुइनि= } फिर वे किसीको भी नहीं भ्रमाते
भरमावै= } हैं; और अध्यासके मिट जानेसे चारखानीके चौरासी योनियोंमें वे फिर भ्रमण नहीं करते हैं, जन्म-मरणका फेरा भी उनका मिट जाता है ॥

व्याख्या— जो कोई मनुष्य पारखदृष्टिसे काल-जालको अच्छी तरहसे लखते हैं, सोई हंस स्थिरपद स्वयं स्वरूपकी स्थिति, जीवन्मुक्तिको पा जाते हैं। इसलिये वे फिर चारखानी चौरासी योनियोंमें नहीं भ्रमते हैं। उनका आवागमनका फेरा सदाके लिये मिट जाता है; और वे ब्रह्म-जगत्के फेरामें भी नहीं पड़ते हैं, उनमें भ्रम ही नहीं रहता है ॥ ५४९ ॥

१८. ताते पारख शरण सुखाला ❀ लखहु सुलक्षण होहु निहाला ॥ ५५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ताते पारख = शरण सुखाला = } इसवास्ते पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करनेसे आला-दर्जेका श्रेष्ठ सुख मिलता है। यानी पारखपद मुक्तिको देनेवाला है। इसके अलावा सब दुःखदायी हैं। ऐसा जानकर हे शिष्य! गुरुवालोगोंके—

लखहु सुलक्षण = होहु निहाला = } सङ्ग-कुसङ्ग छोड़कर पारखी साधु-गुरुकी सत्सङ्ग शरण-में लगे रहो! और शुद्ध हंस गुण-लक्षणोंको सर्वाङ्ग ग्रहण करके निहाल होओ! यानी सबको लखकर सुलक्षणसे परमशान्त सुखी जीवन्मुक्त हो जाओ! सो लख लो!॥

व्याख्या— इसलिये पारखबोधदाता पारखी सद्गुरुका शरणागत होना सुखदायक है। पारखकी शरण ही सुखाला है। अर्थात् आला=अच्छा, परम उत्तम वही सुख है। इससे हंसदेहके शुद्ध गुण-लक्षणको सर्वाङ्गमें धारण करके सत्यासत्यको ठीकसे लखो! जिससे निर्णयके प्रतापसे तुम निहाल=परम सुखी होओगे। अतः तुम शुद्ध सद्गुण-लक्षणधारी होओ!॥ ५५०॥

१९. मन मनसा सङ्कल्प मिटावो * काल कला लखि गुरु अपनावो॥ ५५१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

मन मनसा = सङ्कल्प मिटावो = } मनकी मानन्दीरूप ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता, स्वर्गादि सुखोंकी कल्पना, सङ्कल्प-विकल्प, विषय भोगोंकी चाहना, ये सबोंको विवेक-वैराग्यसे परखकर मिटाओ, मनको स्थिर करो। और—

काल कला = लखि गुरु = अपनाओ = } गुरुबोधको अपनेमें धारण करके जब परीक्षा करोगे, तब सब काल-कला कल्पनादिको बन्धनका मूल लख पाओगे; इसीलिये काल-की जबर्दस्त कला देखकर, उससे छूटनेके लिये गुरु पारखको अपनाओ; तथा परखकर कल्पनाको परित्याग करो!॥

व्याख्या— अर्थात् मन तथा मनसाकी सम्पूर्ण सङ्कल्प-कल्पनाको परख करके मिटाओ! और फिर काल-कला खानी-वाणीको महाबन्धनका जाल लखकर उसे त्याग करो! और गुरुबोध पारखपदको ही सब प्रकारसे अपनाओ वा! ग्रहण करो!॥ ५५१॥

२०. हे शिष्य! हंसदृष्टि तब होई * गुरुमुख ठहरै हंस पद जोई॥ ५५२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! हंस = दृष्टि तब होई = } हे शिष्य! इस नरजीवको नीर-क्षीर निर्णय करनेकी हंसदृष्टि या पारखदृष्टि तब ही उदय होयगी; जब कि—

गुरुमुख ठहरै = हंस पद जोई = } गुरुमुखसे निर्णयका उपदेश श्रवणकर बोधमें ठहरेंगे। तभी हंस अपना पारखपदको देखेगा, फिर पारखदृष्टिसे निज पदमें ही ठहर जायगा॥

व्याख्या— हे शिष्य! जब गुरुमुखसे सब भेदको जानकर हंसपदको देखकर जो कोई मनुष्य उस पदमें ठहरेंगे, तब ही हंसकी दृष्टि निर्मल होकर पारखका प्रकाश हो जाता है। अथवा, हे शिष्य! तुम्हें हंस दृष्टिकी प्राप्ति, अपरोक्षबोध तब होयगा, जब कि, गुरुमुख निर्णयसे हंसपदको ठीक तरहसे देख करके उस पदमें निश्चल होकर ठहर जाओगे। फिर पारख भूमिकामें पहुँचकर सदाके लिये तुम मुक्त हो जाओगे; अतः हंसपदमें ही स्थिति-ठहराव करो!॥ ५५२॥

॥ ❀ ॥ २० ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा— २० ॥ खण्ड— ३९ ॥ ❀ ॥

दोहाः— सुनि गुरु बानी अति सुहृदय * कहै शिष्य कर जोर॥
[२३९] साहेब दीनदयाल प्रभु! * भाखेउ यथारथ ठौर॥ ५५३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर शिष्यका बीसवाँ प्रश्न वर्णन कर दर्शाते हैं— शिष्य कहता है—

सुनि गुरु बानी = अति सुहृदय = } पारखी सद्गुरुके उपदेश-की निर्णय वाणी सुन करके

जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध, सरल, निर्मल हो गया है, ऐसा—

कहै शिष्य= } प्रेमी शिष्य दोनों हाथोंको
कर जोर= } जोड़कर नम्रता सहित गुरु शिक्षाको ग्रहणकर, फिर शोध-बोधकी पुष्टिके लिये कहने लगा कि—

साहेब दीन-= } ज्ञान शिरोमणि हे सद्गुरु
दयाल प्रभु!= } साहेब ! आप दीनदयालु शरणागत रक्षक हो ! हे सद्गुरु प्रभो !—

भाखेउ= } आपने जो सत्शिक्षा दिये
यथारथ ठौर= } हो, सो यथार्थ सत्य है। जीवको पारख ठौर या स्थिति देनेवाली है। आप सच्चे पारखी साधु हो ! ॥

व्याख्या— तदनन्तर सद्गुरुके निर्णय उपदेश गुरुमुख वाणीको उपरोक्त प्रकारसे श्रवण करके जिज्ञासु शिष्यका हृदय अत्यन्त शुद्ध, पवित्र, निर्मल हुआ। तब सुहृदय शिष्य दोनों हाथोंको जोड़कर नमस्कार करता हुआ कहने लगा कि, हे सद्गुरु साहेब ! आप तो हमारे प्रभु, दीनदयालु हो ! आपने यथार्थ निर्णय वर्णन करके हंसकी स्थिति बतलाये हो ! ॥ ५५३ ॥

दोहाः— मैं आयेउँ राउर शरण * दीन गरीब निवाज ॥
[२४०] शिष्य आहि लघौतपद * कैसे गुरुपद आज ? ॥ ५५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

मैं आयेउँ= } हे प्रभो ! मैं तो सब प्रकारसे
राउर शरण= } आपके ही शरणागत हूँ ! यानी दृढ़तासे आपकी शरणमें आया हुआ हूँ !—

दीन गरीब= } दीन-दुःखी गरीब जनोंको ज्ञान-
निवाज= } धन पारख बोध देकर दुःख मिटानेवाले आप गरीब निवाज दीन प्रतिपालक, रक्षक ऐसे हितकारी हो !

शिष्य आहि= } हे सद्गुरो ! शिष्यका पद
लघौतपद= } तो लघुपद वा छोटा पद है; शिष्य भाव, दीनता, दासातन, लघुताका है। यानी शिष्य अज्ञान, अल्पज्ञतासे लघु हो रहा है।

कैसे गुरु-= } सो आज मनुष्य देहमें या सद्गुरु-
पद आज?= } के सामनेमें कैसे करके गुरुपद श्रेष्ठ, ऊँचा पदको पायेगा ? कैसे मुक्त होगा ? या कैसे गुरुपदमें कायम हो सकेगा ? ॥

व्याख्या— इसीसे तो मैं अपने कल्याणके वास्ते आपकी शरणमें आया हुआ हूँ ! आप दीन-दुःखी गरीब जीवोंको पारखबोध ज्ञानरूपी अविनाशी धन देकर, उनकी अज्ञानतारूपी गरीबीको मिटा देनेवाले हो ! शरणागत रक्षक हो ! गरीब निवाज हो ! अब मुझे यही शङ्का होती है कि, शिष्यका पद तो सब प्रकारसे 'लघुपद' है। अज्ञान-अबोध दशामें शिष्य रहता है। यह लघुपद मिटा करके आज वर्तमानके समय मनुष्य देहमें वह कैसे गुरुपदको प्राप्त कर सकेगा ? लघुत्व भाव छोड़कर गुरुत्व भाव कैसे उसमें आ जायेगा ? ॥ ५५४ ॥

दोहाः— हंस पदारथ सार सो * कैसे पावै येह ? ॥
[२४१] शिष्य भाव सादर्श होय * पद अछिन्न होय नेह ॥ ५५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे प्रभो !

हंस पदारथ= } जीव हंस हो करके सार
सार सो= } पदार्थ पारख सत्य सिद्धान्त निर्णयका सार निजपद स्थितिको यह दास—

कैसे पावै येह ?= कैसे करके या किस प्रकारसे पावेगा ? या कैसे प्राप्त कर सकेगा ? यह युक्ति पूर्वक बता दीजिये ! और—

शिष्य भाव= } शिष्यत्व-भावसे भक्ति-भाव,
सादर्श होय= } श्रद्धा, प्रेम, गुरुबोधका भाव एकरस, सदाकाल सत्य आदर्शयुक्त हमारेमें होवे; एक-सा सादर्श भक्ति-भाव होकर—

पद अछिन्न= } गुरुपद पारखमें कभी प्रेम
होय नेह= } छिन्न-भिन्न न होवे, अटूट, अटल, सत्य-प्रेम या स्नेह होवे, ऐसी अवस्था मैं कैसे पाऊँगा ? ॥

व्याख्या— अर्थात् यह लघुपदवाला शिष्य हंस-पारखी बनकर सार मुक्त पदार्थको सो कैसे करके पावेगा ? और साथ ही शिष्यत्व-भाव भी बना रहे, शिष्य-भावमें तो आदर्श होवे, फिर गुरुपदमें नेह श्रद्धा भी अछिन्न वा अटूट होवे, सो किस प्रकारसे होवेगा ? यह मेरे समझनेमें नहीं आया, सो इसका भेद भी कृपा करके समझा दीजिये ! ॥ ५५५ ॥

दोहाः— जाते साहेब ! धर्मता * सिखापन न मिटाय ॥
[२४२] रहै राउरी टहलते * हंस थीरता पाय ॥ ५५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

जाते साहेब ! = जिससे हे सद्गुरु साहेब !
धर्मता = 'गुरु' और 'शिष्यत्व' का धर्म बना रहे। न्याय-नीतिमें बाधा न होवे; धर्मकी मर्यादा बनी रहे। और—
सिखापन = सद्गुरुका उपदेश-सिखापन
न मिटाय = कभी मिटने न पावे, इसीवास्ते मैं पूछ रहा हूँ ! आपकी शिक्षाको धारण-कर सकूँ; गुरु उपदेशका सिलसिला भी नहीं मिटे, शिष्य भावसे कल्याण हो, यह ही मैं चाहता हूँ ! और—
रहै राउरी = आप साधु-गुरुकी सेवा, टहल,
टहलते = चाकरी, भक्ति-भावमें लगे रहते हुए, मैं जीवन बिताऊँ ! उसीसे-
हंस थीरता पाय = हंस गुण-लक्षण धारण करके स्वरूप स्थिति प्राप्त कर सकूँ; हंस स्थिरता पा जाय, सो युक्ति दया करके बतलाइये ! ॥

व्याख्या— हे सद्गुरु साहेब ! गुरु मर्यादा छूटने न पावे, उसके लिये मैं यहाँ डर रहा हूँ ! जिससे गुरु-शिष्यकी धर्म-मर्यादा बनी रहे। सद्गुरुके सिखापन वा उपदेश मिटने न पावे। आप सद्गुरुकी सेवा-टहलमें ही लगे रहते हुए हंस जीव निजपदमें पहुँचकर स्थिरता पा जाय; मुक्त हो जाय, ऐसी युक्ति मैं जानना चाहता हूँ ! ॥ ५५६ ॥

दोहाः— यह अनुक्रम यथाविधि * दीजै मोहि बताय ॥
[२४३] जाते मार्ग प्रत्यक्ष तव * हन्ता नहिं समुहाय ॥ ५५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

यह अनुक्रम = क्रमानुसार एक-एक करके
यथाविधि = यह सब बात जैसी होवे, तैसी ही यथार्थ विधिपूर्वक निर्णय दर्शा करके—
दीजे मोहि बताय = हे बन्दीछोर ! मेरे प्रति कृपादृष्टि करके बताकर दर्शा दीजिये ! मालूम करा दीजिये !—
जाते मार्ग = जिससे आपके सत्सङ्गमें शुद्ध
प्रत्यक्ष तव = ज्ञानमार्गका प्रत्यक्ष बोध होवे, सबके कसर-खोट जाननेमें आवे, और—
हन्ता नहिं = पाँचों प्रकारके अहङ्कारोंको
समुहाय = परख करके छोड़ सकें। उनमें से कोई भी हन्ता समूह हमारेमें समा न सकें, वैसा मार्ग बतलाइये ! ॥

व्याख्या— हे सद्गुरुदेव ! अब यही बातका भेद क्रमानुसार जैसा-हो-तैसा यथार्थ विधिपूर्वक मुझे समझाके बतला दीजिये ! जिससे आपका सत्यमार्ग मुझे भी प्रत्यक्ष मालूम हो जाय; सम्पूर्ण हन्ता-ममता मेरेमें कोई भी समा न सकें, ऐसी युक्ति बतलाइये ! ॥ ५५७ ॥

दोहाः— शिष्य गुरुपद नेहता * दिन दिन बढ़ै दयाल ! ॥
[२४४] सहज ही बन्धन मिटै * युक्ति कहो ततकाल ॥ ५५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे प्रभो !

शिष्य गुरु = हम शिष्यवर्गोंको आपके
पद नेहता = गुरुपद पारखमें सच्चा प्रेम, स्नेह दृढ़तासे लगे; तथा—
दिन दिन = हे दयालु ! दिनोंदिन गुरुपदमें
बढ़ै दयाल ! = प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, बोध, वैराग्य, विवेक बढ़ता जाय, ऐसी कृपा

कीजिये ! और—

सहज ही = } खानी-वाणीके महाबन्धन
बन्धन मिटै = } जन्म-मरणादि रोग सहजमें विशेष कष्ट न करते हुए, सुगम, सरलतासे ही मिटके नाश हो जाय—

युक्ति कहो = } ऐसी परीक्षाकी युक्ति तुरन्त
ततकाल = } ही अब कह दीजिये ! देर मत् कीजिये ! महौषधि पारखबोध दे दीजिये ! ॥

व्याख्या— हे दयालु ! मुझ सरीखा शिष्यका सत्य श्रद्धा, भक्ति, स्नेह, गुरुपदमें प्रेम दिनोंदिन विशेष-विशेष ही बढ़ता जावे। नित्यप्रति ज्ञानका प्रकाश ही बढ़े। सद्गुरुकी कृपासे सहजमें ही सकल बन्धन मिट जायें। उसके लिये साधनाका विशेष भार परिश्रम आदिका दुःख सहना न पड़े। ऐसे सहज युक्ति-प्रयुक्ति जो हैं, सोई अब तत्काल=तुरन्त, इसी समयमें ही कृपा करके कहिये ! जिससे मेरी भी स्थिति हो जाय, सो उत्तम युक्ति बतलाइये ॥ ५५८ ॥

दोहाः— स्वामी ! भाव मोरे हृदयते ❀ कबहुँ न होय अभाव ॥
[२४५] युक्ति बतावो तौनसी ❀ लहै न कालको दाव ॥ ५५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

स्वामी ! भाव = } हे सद्गुरु स्वामी ! मेरे हृदय-
मोरे हृदयते = } में सदा प्रेम भक्तिके भाव, गुरुबोधका भाव, सेवा भाव, यही दृढ़ होकर बना रहे; इससे विपरीत न होवे।—

कबहुँ न = } वह सद्भाव मेरे अन्तःकरण-
होय अभाव = } से कभी भी अभाव न होवे। अभाव होनेका कोई कारण ही उपस्थित न होवे; बोध दृढ़ रहे।

युक्ति बतावो = } मुझ शरणागत दासपर दया
तौनसी = } दृष्टि करके अब वही युक्ति-प्रयुक्ति बतलाइये ! जो मैं समझ करके स्थिति प्राप्त कर सकूँ; मुक्ति पदको पा सकूँ। और—

लहै न = } मन, गुरुवालोग और स्त्री- इन
कालको = } कालोंके दाव-पेंच, बन्धन-जाल
दाव = } मुझपर लग नहीं सकें; एक भी कालका वश न चले। अब तौन-सी युक्ति दरशाइये ! आपके अमृतमय उपदेश सुन-कर मेरी तृप्ति नहीं होती है, दया करके परखाइये, यही अर्ज है ॥

व्याख्या— हे स्वामी ! मेरे हृदयसे गुरुमर्यादाके बोध-भाव गुरुभक्ति कभी भी अभाव न होवे, अहंभाव आने न पावे, शिष्यत्व भाव पूरा बना रहे, और भव-बन्धनोंसे छूट कर मुक्ति भी मिल जावे, तथा कालके कोई भी दाव-पेंच, छल-कपट, जाल मेरे ऊपर लगने न पावे; और मनरूपी कालके दबाव भी प्राप्त न होवे, तौन-सी सर्वोत्तम युक्ति, 'विजयमन्त्र' अब मुझ दासपर दया करके बतलाइये-समझाइये ! मेरे इस संशयका समाधान कीजिये; यथार्थ निर्णयसे जैसा ठहरता हो, वैसा युक्तिपूर्वक कहिये ! यही विनय है ॥ ५५९ ॥

॥ ❀ ॥ २० ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- २० ॥ खण्ड- ४० ॥ ❀ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! उत्तम बुद्धि तव ❀ भल सो पूछो मोहि ॥
[२४६] कहौं यथारथ साधु मत ❀ प्रगट देखावों तोहि ॥ ५६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! उत्तम = } हे प्रेमी जिज्ञासु शिष्य !
बुद्धि तव = } तुम्हारी बुद्धि श्रेष्ठ, शुद्ध, उत्तम हुई है। उत्तम ज्ञान पारख बोधको समझने लायक हो गयी है।

भल सो = } तुमने अपनी भलाईके लिये
पूछो मोहि = } अच्छी बात मुझसे पूछा है, सो मैं तुम्हारी भलाई ही चाहता हूँ ! भले आज तुमने यह बात पूछा है !

कहौं यथारथ = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब
साधु मत = } कथित सत्य उपदेश पारखी साधुओंके मत, सत्य सिद्धान्त जो यथार्थ सत्य निर्णयके हैं, सोई मैं तुम्हें कहता हूँ !

प्रगट देखावों = } और पारख ज्ञानको प्रगट
तोहि = } करके सार-असार, सत्या-सत्यकी पहिचान कराता हूँ ! सो तुम्हें अब

सबकी कसर प्रगट करके दिखलाता हूँ ! | मेरे वाक्यमें तुम लक्ष्य लगाओ ! ॥

व्याख्या— ऐसा शिष्यका प्रश्न सुनकर सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! तुम्हारी समझ-बुद्धि उत्तम है । जो तुमने अभी मुझसे पूछे हो, सो भला वा अच्छा है । तुमने अपने भलाई-कल्याणके वास्ते ही यह बात मुझसे पूछा, सो ठीक है; ऐसा ही पूछना चाहिये । अब मैं यथार्थ निर्णयसे कहकर साधु-मतको प्रगट करके तुम्हें दिखलाता हूँ ! तहाँ पारखी साधुओंका मत सत्य सिद्धान्त ही यथार्थ है । सत्यन्यायसे उसीको मैं कहता हूँ ! उसके रहस्यको भी प्रगट करके तुमको दिखा देता हूँ ! सो तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो ! ॥ ५६० ॥

दोहाः— साँच कही हन्ता लहै ❀ जीवरूप विनशाय ॥
[२४७] विनशे चौरासी भये ❀ ब्रह्म अस्मि कहाय ॥ ५६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

साँच कही = हन्ता लहै = मैं सत्यन्यायसे साँच ही कहता हूँ कि, जो भ्रमिकोंने देह, विषय तथा देहका भासरूप प्रकाश, आनन्द, शब्दादिको सत्य ईश्वर, ब्रह्म, आत्मादि जो कहे हैं या कहते हैं, सो मिथ्या है । किन्तु, उसीके पञ्च अहङ्कारको लिये या ले रहे हैं । यानी मिथ्याको सत्य कहनेसे हन्ता-अध्यासका ही ग्रहण होता है । इसलिये हन्ताको लेकर—

जीवरूप विनशाय = नरजीव अपनी स्वरूप स्थिति-से विनाशको प्राप्त हुआ । सो मनुष्यने ही अपने पदका विनाश किया वा हंसरूपका नाश किया । और—

विनशे चौरासी भये = मुक्तिमार्ग सद्गुण-लक्षणका जब विनाश हुआ, तो जड़ाध्यासी होकर जीव चौरासी योनियों-में ही चले गये । तहाँ नाना देहें धारण करके दुःख भोगे और अभी वैसे ही दुःख भोग रहे हैं ।

ब्रह्म अस्मि कहाय = अब कोई ब्रह्मज्ञानी बन करके कल्पनासे 'अहं ब्रह्मास्मि' यानी 'मैं ब्रह्म हूँ !'— ऐसा कह करके धोखेमें पड़े हैं । व्यापकपनाकी हन्ता, अध्यास रहनेसे, वे जीव देह छूटनेपर फिर भी चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं ॥

व्याख्या— मैं निर्णयसे सत्य-सत्य ही कहता हूँ कि, हन्ताको लेकर अभिमान-जड़ाध्यासको प्राप्त होनेसे जीवरूपका मनुष्यपद और मुक्ति विनाश हो जाता है । जीव भव-बन्धनोंमें ही पड़ जाते हैं; और झूठाको साँच कहनेसे भी अहङ्कारकी ही प्राप्ति होती है । तब सद्गुणोंका विनाश हो जाता है । जब इसतरहसे मुक्ति मार्गसे विनशे, तब 'अहं ब्रह्मास्मि'— कहकर वा कहाकर नष्ट-भ्रष्ट हुए; तो जड़ाध्यासी होकर वे जीव चौरासी योनियोंमें ही चले गये । इसलिये 'ब्रह्मास्मि' कहना बन्धनका मूल कारण ही है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५६१ ॥

दोहाः— एक एक वर्णन करौं ❀ सुन शिष्य ! सावध होय ॥
[२४८] निर्णय शिष्य ! यथार्थ लहु ❀ भरम त्यागि है सोय ॥ ५६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

एक एक वर्णन करौं = एक शरीरमें जीव एक ही है । परन्तु, अनुमानसे एक व्यापक ब्रह्म है, ऐसा वर्णन किये हैं । सो मैं एक-एकका निर्णय करके यहाँपर वर्णन करता हूँ ! खुलासा कहता हूँ !—

सुन शिष्य ! = सावध होय = इसलिये हे शिष्य ! तुम सावधान होकर चित्तको एकाग्र कर जो मैं कहता हूँ, उस बातको सुनो ! तथा मनमें गुनो !—

निर्णय शिष्य ! = यथार्थ लहु = जो शिष्य पारखी सद्गुरु-के सत्य निर्णयसे जड़-चैतन्यके यथार्थ पारख बोधको लेंगे, सो कल्पनासे छूट जायेंगे; अतः हे शिष्य ! तुम यथार्थ निर्णयको ग्रहण करो !

भरम त्यागि = है सोय = जो पारख बोधमें पक्के हो जाते हैं, सोई कर्त्ता ब्रह्म-

ईश्वरादिके भ्रम, मिथ्या मानन्दीको परित्याग करनेवाले होते हैं। सोई सच्चे त्यागी साधु पारखी हो जाते हैं। इसलिये तुम भी यथार्थ निर्णय करके पारख बोधको ही लेओ! उसे हृदयमें धारण करो! ॥

व्याख्या— गुरुमुख सत्यन्याय-निर्णयको ही एक-एक समझा करके क्रमानुसार वर्णन करके मैं कह देता हूँ! सो हे शिष्य! अब तुम सावधान होकर एकाग्रतासे सुनो! हे शिष्य! तुम यथार्थ निर्णयको ही जान करके ग्रहण वा धारण करो! जो यथार्थ गुरु निर्णयको जान पाते हैं, सो वे ही भ्रम-भूलको त्यागेंगे। अतः उसी मुताबिक तुम भी शीघ्र भ्रमको त्याग दो! ॥ ५६२ ॥

दोहाः— प्रथमा पदमों नेकता ❀ भयो यथाविधि सोय ॥
[२४९] सो सब तुम जानेहु भले ❀ लखेहु आपनो लोय ॥ ५६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

प्रथमा = पदमों = नेकता = प्रथम मनुष्यपदमेंसे ही शुद्ध ब्रह्मकी मानन्दी कुछ हुई। उसीको सर्वश्रेष्ठ नेक=शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन-ब्रह्म ठहराया है।

भयो यथा-= विधि सोय = फिर क्रमशः गाफिल होते हुए भ्रमसे वही अनेक हुआ। सो जैसी कल्पना बढ़ी, तैसी बात तो आगे मैं कह चुका हूँ! सो यथार्थ विधि पूर्वक निर्णयकी समझ तो तुम्हें हुई ही होगी, और-

सो सब तुम = जानेहु भले = सो सब बातोंको, कसर-खोटोंको परख करके तुम भली प्रकारसे जान लेओ। कुछ तो तुमने जान भी लिये होंगे या जान ही लिये हो!—

लखेहु आपनो लोय = सो सारासारको बिलोयके लखो, परखो, फिर अपने सद्गुण भाग सारको लेलो! और असारको छोड़ दो; यही त्याग-ग्रहण करना हंसका अपना गुण है, सो जानो! ॥

व्याख्या— प्रथमपद-मनुष्य देहधारी जीवोंमें जैसे भूल हुई, कुछ ही गाफिलीसे जैसे पतन हुआ। एक शुद्ध ब्रह्म मानकर फिर उसीसे अनेकताका जैसे विस्तार हुआ। सो जैसे-जैसे जिस-जिस विधिसे हुआ है वा जैसे उस प्रकारसे कुछ ही कारणसे प्रथमपदसे बन्धन खड़ा हो गया, सो सबको तो तुमने भले ही जान लिये हो! और अपना लोग तथा पराया लोगोंके गुण-लक्षणोंको भी तुमने लख ही लिये हो! तहाँ अब तुम हंस देहके सद्गुणोंको ही अपना लो! निजपद पारखको ही अपरोक्ष करके लख लो! समझ लो! ॥ ५६३ ॥

दोहाः— कारण बढ़वत बहु बढ़ो ❀ भये अनेकन रूप ॥
[२५०] सो अनेकता एकमों ❀ पुनि अनेक स्वरूप ॥ ५६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कारण = बढ़वत = बहु बढ़ो = जगत्का कारण ब्रह्मको माना है, तो चौरासी योनियोंका कारण जड़ाध्यास है। सो मनसे कल्पना, मानन्दी बढ़ाते-बढ़ाते बहुत भ्रम बढ़ाये, तो एक कारण ब्रह्म बना।

भये अनेकनरूप = फिर उसीसे इच्छा फूटकर अनेकों जगत्रूपमें प्रगट हो गया, तो अध्यासवश चौरासी योनियोंमें जाकर अनेकों देहरूप धारण करके जीव पैदा हुए हैं। ऐसे एकसे अनेकरूपमें हो गये हैं।

सो अनेकता = एकमों = और सो अनेक घटाध्यास संस्कारजैसे एक अन्तःकरणमें ही गुप्त बीज-वासनारूपसे बना रहता है; तैसेही जगत्की अनेकता एक ब्रह्ममें ही तो हो रही है।

पुनि अनेक = स्वरूप = जब ब्रह्मज्ञानसे एक केवल ब्रह्म आत्मा भी बना, तो फिर भी इच्छासे फूटकर अनेक जगत् चौरासी योनियोंके स्वरूपमें फैलेगा ही। अध्यासी जीव फिर अनेकों देहें धारण करेंगे ही। भूलसे मनुष्य जीव बहुरूपिया होकर नाना मतोंको मान रहे हैं॥

व्याख्या— आवागमन चौरासी योनियोंमें पड़नेके मूल कारण बीज-वासना, अध्यास, अनुमान-

कल्पना, भ्रम, भूल ही हैं। वह ब्रह्म जगत् तथा खानी-वाणीमें बढ़ते-बढ़ते बहुत ही विस्तार होकर बढ़ गया। तहाँ एकसे अनेकों रूपका निर्माण हो गया। और सो अनेकताका भेद भाव मिटा करके एक मनसे एक ही ब्रह्ममें सबोंका लय मान लिये। परन्तु, फिर भी पूर्ववत् इच्छा वा स्फुरणा उठा करके अनेक स्वरूप जगत् वा चौरासी योनियोंमें ही पड़ा करते हैं। बिना पारख वह महा चक्रमेंसे कोई भी छूट नहीं पाये और छूट भी नहीं सकते हैं ॥ ५६४ ॥

दोहाः— बहै सो ब्रह्म अनेक होय * रचो जाल विस्तार ॥
[२५१] पुनि सो आपै एक होय * करै अनेक संहार ॥ ५६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

बहै सो ब्रह्म = सो ऐसे मनुष्य ही ब्रह्म बनकर
अनेक होय = एक-अनेककी भ्रम-कल्पनामें बह गये। सोई चौरासी योनियोंमें अनेक देहधारी हुए हैं।

रचो जाल = वे ही भ्रमिकोंने वेदादि वाणी
विस्तार = तथा विषय जालोंकी रचना करके बहुत विस्तार करके फैलाये हैं। जिसमें सब अरुझे पड़े हैं।

पुनि सो आपै = फिर अपने-आप सत्य जीव
एक होय = स्वरूपको भूलकर सबको लय करके, अपनेमें मिला करके एक ही पूर्ण ब्रह्म हुए, ऐसी कल्पना दृढ़ किये।

करै अनेक = अनेक द्वैतरूप जगत्का संहार
संहार = विनाश वा महा प्रलय करके एक अद्वैत ब्रह्मकी मानन्दी दृढ़ किये हैं। परन्तु, सो सब भ्रम-भूल कल्पनामें ही पड़े हैं ॥

व्याख्या— वेदान्ती भ्रमिक नरजीव सो एक ब्रह्म बन करके भ्रम, धोखेमें बह गये, और बह रहे हैं। तहाँ वही एक ब्रह्म ही अनेक जगत्रूपमें परिणत हुआ। तब अनेक हो करके फिर अनेकों जगत्-जाल वाणी कल्पनाकी रचना करके विस्तार किया। फिर कल्पनासे ही अनेक जगत्का संहार करते हैं। तहाँ द्वैत भावको मिटा करके, अद्वैत भाव ही दृढ़ करते हैं, और सो आप ही एक अधिष्ठान ब्रह्म बनते हैं। एक हो करके अनेकका नाश करते हैं। इसतरह रहटमालाके चक्रवत् सदा आवागमनके चक्रमें ही अध्यासी जीव फिरा करते हैं ॥ ५६५ ॥

दोहाः— तेहि जालमें जीयरा * परे पाय दुःख भूरी ॥
[२५२] जीव भरोसे चैनके * पर परी आँखिमें धूरी ॥ ५६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

तेहि जालमें = स्त्री, पुत्र, कुटुम्बियोंके खानी-
जीयरा = जालोंमें और ईश्वर, ब्रह्म, देवतादि कल्पनाके वाणीजालोंमें, सो इसी एक-अनेकके जाल-महाजञ्जालोंमें ही जा-जा करके जीव सब पड़े हैं।

परे पाय = तहाँ त्रिविधि ताप आवागमनादि
दुःख भूरी = बड़ा भारी दुःख पा करके चौरासी योनियोंमें पड़े हैं। कोई तो सबसे परे ब्रह्म मानकर साधनाओंके नाना दुःख पा रहे हैं।

जीव भरोसे = भ्रमिक नरजीव सुख-चैन,
चैनके = भक्ति ब्रह्मानन्द-विषयानन्दादि प्राप्तिकी आशासे नारी और गुरुवालोग तथा ईश्वरादिके भरोसे धोखेमें पड़े हैं।

पर परी = परन्तु, उन्हें कुछ सूझता ही
आँखिमें धूरी = नहीं है; क्योंकि, हृदयके विवेक-नेत्रमें भ्रम-आसक्तिरूपी धूर पड़ी है। इसलिये मिथ्याको ही सत्य मान-मान कर भूले पड़े हैं ॥

व्याख्या— उसी वाणी कल्पनाके जाल और विषयोंके जालमें सब मनुष्य जीव जकड़ पड़े। तहाँपर भूरी=बहुत बड़ा भारी असह्य दुःख भोग पाये, और कठिन कष्ट-क्लेश पा ही रहे हैं। तथापि चैनरूपी ब्रह्मानन्द और विषयानन्द आदि सुख प्राप्ति, आराम होनेके भरोशा, स्त्री, और गुरुवालोग तथा ईश्वरादिका विश्वास, आशाके भरोशेमें भूले पड़े हैं। परन्तु, उनके हृदयके नेत्र विवेक-विचारमें भ्रम, कल्पना, आसक्तिरूपी धूर ही पड़ गई है। जिससे उनकी आँखें फूट गई हैं;

अन्धे बन गये हैं। तभी तो धोखेके भरोशेमें भूलकर गाफिल पड़े हैं। उससे सुखके बदले और भी महान दुःख ही भोगेंगे ॥ ५६६ ॥

दोहाः— दुःखित भये अकुलायके * ढूँढ़े निज कल्यान ॥
[२५३] साँच धीरता उर बस्यो * देख्यो पद परवान ॥ ५६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

दुःखित भये = अकुलायके = संसारमें अनेक कष्ट-क्लेश पाकर-के उस दुःखसे छूटनेकी इच्छा हुई, तो योगी, भक्त, ज्ञानियोंकी शरणमें आये। उन्होंने अनेकों साधनाओंमें लगा दिये, तो भी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। तब तो साधनाओंमें भी व्याकुल, दुःखित होकर घबड़ा गये।

ढूँढ़े निज = कल्यान = तब कोई जिज्ञासु नरजीव निज कल्याणको ढूँढ़ते हुए अनेकों साधुओंके सत्सङ्ग करते-करते पारखी साधु सद्गुरुकी शरणमें पहुँच गये। सत्सङ्ग सुने; सत्योपदेशसे बोध भी हो गया।

साँच धीरता = उर बस्यो = इसीसे सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य— ये हंस गुण हृदयमें धारण हुए। नीर-क्षीरका निवेरा किये; भ्रम-मानन्दीको त्याग दिये।

देख्यो पद = परवान = तब स्वयं स्वरूप सर्वश्रेष्ठ पारखपदको सद्गुरुकी दयासे देखे या समझ लिये। इसलिये पारखके स्वयं प्रमाणसे सब जालोंको देख करके उससे न्यारे-निर्बन्ध हो गये ॥

व्याख्या— इसप्रकार अनादि कालके जगत्में जीव सब अपने-अपने कर्मानुसार ही भव-बन्धनोंमें पड़े हुए हैं। निजस्वरूपकी भूलसे खानी-वाणीके जाल-जञ्जालोंमें पड़कर सारे जीव दुःखित हुए। तहाँ कोई शुभ संस्कारी मनुष्य वैसे दुःखित हुए, तो दुःखोंसे अकुला करके वा घबड़ा करके उस दुःखकी निवृत्तिके लिये निज कल्याणके मार्गको ढूँढ़े। सत्पुरुषार्थ करके सन्तोंका सत्सङ्ग-विचार विवेकदृष्टि कर लिये। तब उनके हृदयमें सत्य, धैर्य आदि सद्गुणोंका टिकाव वा निवास हुआ; और जीव चैतन्य ही नित्य-सत्य स्वरूप है। जीवको छोड़कर और कोई सत् स्वरूप नहीं है। ऐसा स्वरूपबोध हृदयमें प्रकाश हुआ। फिर उसे पारख करके देखे, तो वही गुरुपद वा निजपद अपरोक्ष प्रत्यक्ष प्रमाणसे ठहरा। अतः वही पारख ही गुरुपद प्रामाणिक हुआ, जिससे पारखके प्रतापसे बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति स्थितिमें पहुँच गये, सो जानो ! ॥ ५६७ ॥

दोहाः— सो प्रमाण पद हंसको * एकोहं ब्रह्म जाल ॥
[२५४] आनन्दित भौ साँचमों * शिष्य ! सो प्रथम दयाल ॥ ५६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सो प्रमाण = पद हंसको = सो गुरु निर्णयके प्रमाणसे पारख ही हंसका पद है। जड़-चेतनका निर्णय करना हंसका गुण है। स्वयं प्रत्यक्ष चैतन्य जीव है। और—

एकोहं ब्रह्म जाल = हंसपदसे उलटा चलनेवाले कागपदमें जाके 'सोहं' मानन्दी किये। तो 'मैं एक ही अद्वैत ब्रह्म हूँ !' ऐसा कहने लगे। सोई वाणी-कल्पनाके महाजालोंमें जीव भ्रमसे पड़ गये हैं। और—

आनन्दित = भौ साँचमों = जो साँच जीव शून्य वृत्तिमें लय होकर आनन्दित हुआ, सोई कालरूप गुरुवा बना, बद्ध हुआ। तथा जो सत्य जीवको जान करके सत्य रहनीमें ही टिके रहे, सबका परीक्षक हुए, वे—

शिष्य ! सो = प्रथम दयाल = सोई हे शिष्य ! प्रथम नर देहमें दयालु या सद्गुरु हुए। सर्व प्रथम जिनने पारखको प्रकाश किये, सोई सच्चे हंस मनुष्य सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब हुए। आप परम पारखी साधु शिरोमणि हुए ॥

व्याख्या— 'एकोहं ब्रह्म जाल,' यही भ्रमरूप वाणी कल्पनाका जाल है। ऐसा जब हंसको पारख

बोध हुआ, तब सम्पूर्ण भ्रम-भूल मिट गई। सोई प्रत्यक्ष प्रमाणसे हंसको गुरुबोध-प्राप्ति हुई; सोई निजपद हंस जीवने पाया। तब सम्पूर्ण दुःख-सन्ताप आदिसे छूटकर साँच भूमिकामें ही स्थित होकर आनन्दित हुए; जीवन्मुक्त होकर सुखी हुए। हे शिष्य! सोई सर्व प्रथम मनुष्योंमें दयालु पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हो गये। पश्चात् आपकी दयासे पारख बोध पा करके सब पारखी सन्त आप सद्गुरुदेवके अनुयायीरूपमें सद्गुरु दयालुरूप बन्दीछोर ही हुए हैं ॥ ५६८ ॥

दोहाः— दुःखिया सो सुखिया भयो * सो पद शिष्य! तव आय ॥
[२५५] बोधेउँ हंस जानि निजु * पद सो गुरु कहाय ॥ ५६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

दुःखिया सो = बिना पारख जीव प्रथम
सुखिया भयो = अनेकों दुःख त्रिविधि ताप सहते हुए भव-बन्धनोंमें पड़े थे। सोई मनुष्य जब पारखी सद्गुरुके बोध द्वारा सब भ्रम-कल्पना, अध्यास छूटनेसे शान्त, सुखी, मुक्त हुए या होते हैं। तब सुखिया हुए।

सो पद शिष्य! = हे शिष्य! वही चैतन्य
तव आय = पारखपद तुम्हारा स्वरूप है। पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आ करके विवेक करो! फिर सोई निजपदमें तुम्हारी भी स्थिति हो जायगी। सब भव-बन्धन छूट जायेंगे।

बोधेउँ हंस = शरणमें आया हुआ स्वजातीय
जानि निजु = चैतन्य नरजीव अधिकारी जान करके, मैंने तुम्हें हंसकी रहनी पारख-दृष्टि बतला दिया हूँ। हे हंस! सो तुम भी निज बोधस्वरूप पारखको जो मैंने तुम्हें बोध किया हूँ, उसको अब जान लो!

पद सो गुरु = पारखपदका बोध देनेवाले सोई
कहाय = सद्गुरु कहलाते हैं। इसलिये बोध ही 'गुरुपद' है। बोध पानेपर, वही बोध पानेवाला बोध देनेवालेको सद्गुरु कहता है या सद्गुरु मानता है। इसमें कोई हन्ता-ममता रह नहीं सकती है, सो जानो! ॥

व्याख्या— इसप्रकार अबोध दुःखिया जीव सो स्वयं स्वरूपका बोध पारख पा करके सुखिया हुए; यानी जीते ही मुक्त होकर सुखी हुए। हे शिष्य! सोई हंसपदकी स्थिति पारख ही तुम्हारा स्वरूप है; सोई तुम्हारा मुख्य पद है। और मैंने भी तुम्हें अपना स्वजातीय हंस जीव अधिकारी जानकर पारख स्वरूपका बोध कर दिया हूँ! सो बोध करना, यही गुरुका पद कहलाता है; और बोध लेना ही शिष्यका पद होता है। तहाँ पारखबोध ही सो खास गुरुपद कहलाता है, ऐसा जानो! ॥ ५६९ ॥

दोहाः— मन माया सङ्कल्पको * निरसन भया अपार ॥
[२५६] बोध हेतु दुःख मिटनको * गुरुमत प्रगट विचार ॥ ५७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन माया = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग
सङ्कल्पको = द्वारा मनकी मानन्दी मायाका विषय भोगादि खानी-वाणीके सङ्कल्प-विकल्पकी बाढ़ सब इधर ही—

निरसन = पारखरूपी बाँध बना होनेसे
भया अपार = इसी तरफसे रुक गई, लौट गई या नाश हो गई। अपार माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादिका भ्रम भी छूट गया। इसप्रकार सब भव-बन्धनोंका नाश हो गया।

बोध हेतु दुःख = इसवास्ते हे शिष्य!
मिटनको = आवागमनादि सर्व दुःख, भ्रम, सन्तापोंको मिटानेके लिये निज स्वरूपके अपरोक्ष पारखका बोध होना चाहिये। उसके लिये सत्सङ्ग करो, विचार करो।

गुरुमत = पारखी सद्गुरुके मत बीजकके
प्रगट विचार = सत्य सिद्धान्तका प्रत्यक्ष विचार करो! तब पारख प्रकाश होगा। सद्ग्रन्थ पठन-पाठनसे गुरुमतके विचारको प्रगट या प्रत्यक्ष करो! ॥

व्याख्या— पारखबोधके प्रतापसे मन-मायाके सङ्कल्प-विकल्प, कल्पना, चाहनादि विकार सब छूट गये वा नाश हो गये। अपार ब्रह्मका भ्रम भी मिट गया। अथवा मन-मायासे सङ्कल्पका जो अपार पसारा हुआ था, सो पारखसे निरसन वा विनाश हो गया। इसलिये आवागमनादि सकल दुःख मिटानेके लिये इसी हेतुसे पारख बोधको प्राप्तकर गुरुमतको ही प्रगटरूपमें विचार करते रहो। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सच्चा मत आपके पारख सिद्धान्तको गुरुमुख द्वारा बीजक सद्ग्रन्थको ही प्रत्यक्ष विचार करके जान लेना चाहिये, सो जानो! ॥ ५७० ॥

दोहाः— गुरुमत लखै सो शिष्य है * बोधे सो गुरुदेव ॥
[२५७] तारण तरण सो आपु ही * एकै हंसा भेव ॥ ५७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
गुरुमत लखै = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके
सो शिष्य है = } पारख मत बीजकके सत्य सिद्धान्तको जो भलीभाँतिसे लखते या जानते हैं, सोई सत् शिष्य हैं। और—
बोधे सो = } सत्यशब्द टकसारके निर्णय
गुरुदेव = } गुरुबोध पारखको जो लखाते, परखाते, बोध देते हैं, सोई पारखी सद्गुरुदेव बन्दीछोर हैं।
तारण तरण = } अपने जीवको भवसागररूप
सो आपु ही = } खानी-वाणीके सब धारोंसे पार उतारकर जीवन्मुक्त हुए, सो आप ही पारखी सन्त तरण-तारण होते हैं। इसलिये शरणागत नर जीवोंको भी भव पार उतार देते हैं।
एकै हंसा भेव = चैतन्य जीव मात्र सब स्वजातीय हैं; और हंस रहनीवाले पारखियोंकी स्थिति भी एक समान रहती है। उसमें भेद इतना है कि, गुरुभाव देह रहे तक शिष्य रखता है। पारख बोधमें समान रहता है; तथा पारखी सद्गुरु और शिष्य हंस जीवोंको एक ही सत्य भेद बतलाते हैं। अतः बोधमें समानता ही रहती है, ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— इसतरह गुरुमत पारख सिद्धान्तको जो भलीभाँति जान-बूझ, समझकर लख लेते हैं, सोई सच्चे शिष्य होते हैं। और जो यथार्थ निर्णयसे पारखका बोध कराय देते हैं, सो वे ही पारखी सद्गुरुदेव बन्दीछोर हैं। प्रथम अपने जीवको बन्धनोंसे छुड़ा करके भवसागरसे पार उतर गये; सो 'तरण' हुए। फिर शरणागत मनुष्योंको भी यथार्थ परखा करके भवजलसे पार उतार दिये, तो आप 'तारण' हुए। ऐसे पारखी सन्त सा आप ही 'तरण-तारण' हुए हैं। हंस जीव स्वयं निज स्वरूप एक ही सत्य है; और मानन्दी सब मिथ्या है। ऐसा एक ही पारख बोध देकर हंस जीवको सद्गुरु सब भेद लखा देते हैं। ऐसे आप मुक्त स्वरूप पारख बोधदाता वा मुक्तिदाता एक ही हैं ॥ ५७१ ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका शब्द, भाग-३ ॥ ❀ ॥

१. हंसा ऐसो गुरुमत भारी ॥ टेक ॥ ५७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! गुरुमतके महात्म्यको इस शब्द द्वारा कहता हूँ, सो सुनो!—
हंसा ऐसो = } हे हंसा! हे जिज्ञासु नर
गुरुमत भारी = } जीव! सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका पारख मत या सत्य सिद्धान्त ऐसा बड़ा भारी श्रेष्ठ सर्वोच्च है कि, उसको प्राप्त करनेसे सब दीनता, बन्धन जीवोंके छूट जाते हैं। भव-बन्धन चाहे कितना ही बड़ाभारी क्यों न हो? पारखके प्रतापसे वह चूर्ण हो छिन्न-छिन्न हो जाता है। ऐसे गुरुमत बड़ाभारी है, सो जानो! ॥

व्याख्या— अब यहाँपर एक सत्य निर्णयका शब्द कहता हूँ, सो तुम सुनो! और विचार करो। हे हंसा! हे मनुष्यो! गुरुमत पारख सिद्धान्त ऐसा है कि, वह बड़ा भारी मुक्ति देनेवाला सर्वोच्च पद है। इससे बढ़कर श्रेष्ठ और कोई मत ही नहीं है। यह बात निश्चय करके जानो! ॥५७२॥

२. लखेते भवमें आवत नाहीं ❀ भवके बहोत बेगारी ॥ ५७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

लखेते भवमें = पारखी सद्गुरुके मुख द्वारा
आवत नाहीं = पारख बोध प्राप्त करके खानी-वाणी जालोंको अच्छी तरहसे लखकर जिसने छोड़ दिया है, वह भ्रम-भूल अध्याससे रहित हुआ, सो मुक्त हो गया, इसलिये फिर वह हंस भवसागरके चक्र आवागमनोंमें नहीं आता-जाता है; निश्चल हो जाता है। और—

भवके = बेपारखी भ्रमिक लोग तो सब
बहोत = खानी-वाणी, यही भवचक्रमें ही
बेगारी = पड़े हैं। जबरन बेगारीमें खिंचे जा रहे हैं। ऐसे बहुत या अनेकोंलोग गुरुवा-लोग और स्त्रियोंके कर्म-कुकर्मकी बेगारीमें पकड़े गये हैं। सब विकारी हो करके नष्ट-भ्रष्ट पतित हुए और हो रहे हैं। इसकारण चौरासी योनियोंमें जाकर पड़े हैं ॥

व्याख्या— इधर भवसागररूप संसारमें बेगारी पकड़कर जबर्दस्ती बन्धनमें डालनेवाले कालके दलाल तो बहुत-बहुत लोग हैं। सब जगह गुरुवालोग और स्त्रियाँ पुरुषोंको बहुत तरहसे बेगारीमें पकड़-पकड़कर चौरासी योनियोंमें ही ले जा रहे हैं। और जो कोई मुमुक्षु पुरुष पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर गुरुमुखसे, उस गुरुमत पारखको लख लेते हैं, वे काल-जालोंसे छूट जाते हैं। इसीसे वे भव-बन्धनमें फिर नहीं आते हैं; सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं ॥ ५७३ ॥

३. शिष्य सिखापन गुरुकी माने ❀ गुरु साधुनके आज्ञाकारी ॥ ५७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

शिष्य सिखापन = हे शिष्य ! जो कोई मनुष्य
गुरुकी माने = मुक्त होना चाहे, तो उसे चाहिये कि, दीन-दासातन भक्ति-भावसे प्रथम पारखी सद्गुरुका शरणागत हो करके शिष्य बने। फिर सद्गुरुके शिक्षा-उपदेशको भलीप्रकार निश्चयसे दृढ़ करके मान लेवे। सत्य निर्णयको माने वा प्रतीत करे।

गुरु साधुनके = पारखी सद्गुरु तथा विवेकी
आज्ञाकारी = साधु इन्होंकी आज्ञाको सदा सावधानीसे पालन करे। विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति तथा दया, सत्य, धैर्यादि हंस रहनीको धारण करे। सद्गुरुका आज्ञाकारी होकर खानी-वाणीके सब अध्यास, आदत, लगावको छोड़ देवे; शुद्धतासे वर्तमानमें रहे ॥

व्याख्या— इसलिये प्रथम तो मुमुक्षु शिष्योंको चाहिये कि, पारखी सद्गुरुका सिखापन=सत्य उपदेशको अच्छी तरहसे माने। और पारखबोधदाता सद्गुरु तथा विवेकी साधुओंका आज्ञाकारी=त्याग तथा ग्रहण करनेको बतायी हुई आज्ञाको पूर्णतासे पालन करने-वाला होवे। सद्गुरुकी आज्ञाके विपरीत कभी न चले; दृढ़तासे वचनको पालन करे ॥ ५७४ ॥

४. तेई मुक्ति पदारथ पावै ❀ यमते रहनि निन्यारी ॥ ५७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तेई मुक्ति = ऐसे सर्व जड़ासक्तिसे छूटा
पदारथ पावै = हुआ गुरु आज्ञाकारी मुमुक्षु जो है, सो वही जीते ही मुक्ति पाकर सत्पदार्थरूप निजस्वरूपमें स्थिर होनेसे जीवन्मुक्तिरूप महद् सार पदार्थको प्राप्त कर लिया; तब तो वह कृतकृत्य हो जायगा। और—

यमते रहनि = जगत्कर्त्ता प्राप्तिकी कल्पना
निन्यारी = लगा करके अनेकों कर्म बन्धनोंमें फँसानेवाले गुरुवालोग तथा विषय भोगादिमें फँसानेवाली मुख्य स्त्रियाँ, ये ही 'यम' हैं। इन यमोंसे वह हंस न्यारा होकर शुद्ध रहनीमें रहता है। उन्होंकी रहनीमें इसकी रहनी नहीं मिलती है, सर्वथा भिन्न वा पृथक् ही हंसकी रहनी रहती है ॥

व्याख्या— तब उसकी रहनी कालकी रहनीसे न्यारी ही होती है। बाहर यमरूप गुरुवालोग तथा नारियाँ हैं। और भीतर मनमें जमा हुआ अध्यास भी यमरूप काल है। उनके घेरामें, कुपन्थमें, कुलक्षणमें, कुसङ्गमें- विवेकी हंस पुरुष कभी नहीं रहते हैं, उनसे भिन्न होनेपर हंस जीवकी सत्य रहनी न्यारी ही होती है। वे हंसजीव ही पारख बोधके प्रतापसे मुक्तिरूपी सत्य पदार्थको जीते ही पा जाते हैं। अर्थात् वे ही जीवन्मुक्त होकर भव-बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥ ५७५ ॥

५. सत्य भेष सत्य रहनि साधुकी ❀ सन्त दरश अविकारी ॥ ५७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सत्य भेष= सत्य रहनि= साधुकी= } पारखी साधुओंका भेष भी सच्चा त्याग-वैराग्यका रहता है। झूठ प्रपञ्चोंसे रहित होकर सत्य जीवको जानकर विचार, शील, दया, धैर्यादि शुद्ध रहनीको ही रखते हैं। और षट् दर्शनोंके साधुओंसे उनकी रहनी न्यारी ही रहती है।

सन्त दरश= अविकारी= } मन-मानन्दीके विकारसे रहित शान्तवृत्ति किये हुए पारखी सन्त त्याग-वैराग्यके आदर्श होते हैं। ऐसे सन्तोंके दर्शन सब विकारोंको नशानेवाला, हृदयको निर्मल करनेवाला, निर्विकारी होता है। और पारखी सन्तोंके दर्शन करके वे भी निर्विकारी होते हैं ॥

व्याख्या— सच्चे त्यागी, वैराग्यवान् पारखी साधुओंका सत्य ही भेषका चिह्न रहता है। और रहनी-रहस्य भी सत्यका ही रहता है। अर्थात् सत्यकी रहनी, सत्यकी गहनी, सत्यकी कहनी, सत्यगुरुमुखकी वाणी, सत्य, शुद्ध, साफ पवित्रताकी खान, सत्यभेष, सत्य उपदेश, सत्य चाल-चलन, बर्ताव सब सत्य-ही-सत्यकी धारणा रहती है। इसलिये ऐसे अविकारी निर्मल, स्वच्छ सन्त-महात्मा पूज्य, दर्शनीय होते हैं। ऐसे सन्तोंके दर्शन करनेसे जिज्ञासुमें अविकारी भाव आ जाते हैं। वे स्वयं भी निर्विकारी पारखी सन्तोंके दर्शन-पर्शनमें लगे रहते हैं; ऐसे शुद्ध रहनीमें रहते हैं ॥ ५७६ ॥

६. ते अधिकारी गुरु पारखके ❀ निर्जिव धोख निवारी ॥ ५७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ते अधिकारी= गुरु पारखके= } वे ही जिज्ञासु मनुष्य पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण कर शिष्य हुए, वे पारखबोध प्राप्तकर मुक्ति-स्थितिके अधिकारी हुए या होते हैं।

निर्जिव धोख निवारी= चेतन जीवको छोड़कर और जितने भी ब्रह्म, ईश्वर, देवता, भूत-प्रेतादि तथा जड़ अष्ट प्रतिमा, जड़ देहके भास, प्रकाशादि, विषयादि हैं, वे समस्त निर्जीव धोखा हैं। परखकर इन सब धोखाको निवारणकर लेने पर ही गुरु पारखपद पर ठहराव होता है ॥

व्याख्या— जो निर्जीव धोखा ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी भ्रम-कल्पना आदिको विवेक-विचार करके निवारणकर हटाते हैं, सो वे ही पुरुष विशेष करके गुरुबोधसे अपरोक्ष पारखपदको प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं। और वे ही जीवन्मुक्त होनेके भी अधिकारी विशेष पुरुषार्थी शक्तिशाली होते हैं। और जो उनके सत्सङ्गमें जाते हैं, उन्हें यथार्थ परखा करके वे निर्जीव धोखेका निवारण कर देते हैं ॥ ५७७ ॥

७. गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद ❀ बसै आनन्द अटारी ॥ ५७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

गुरुमुख सुख= अनुमान-= रहित पद= } पारखी सद्गुरुके मुख द्वारा सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय करके लखे और अनुमानसे ब्रह्मपदको जो सुख माना है, उस धोखेसे तथा विषयादि सुखासक्तिसे, जो रहित हो जाते हैं, सो जीवन्मुक्तिके प्रत्यक्ष पारखपद-में सुखी रहते हैं।

बसै आनन्द= अटारी= } काल, कल्पना, ब्रह्म, विषयोंके सुख-दुःखोंकी मानन्दीसे अलग

होकर सत्सङ्ग बोधमें ही अटल, अचल होकर सर्वोपरि जीवन्मुक्त स्थितिमें शान्त-सुखी रहते हैं; सो यही आनन्दकी ऊँची अटारीमें रहना है ॥

व्याख्या— इसतरह गुरुमुखसे स्वयं स्वरूपका अपरोक्ष बोध होनेपर सन्देह रहित प्रत्यक्ष सुख, शान्ति, सन्तोषकी प्राप्ति होती है। पारख जो है, सो स्वयं प्रत्यक्ष होनेसे वह अनुमान आदिके पदसे रहित शुद्ध निर्विकार रहता है। बेपारखी सब कोई तो विकारी बन्धनदायी विषयानन्द-ब्रह्मानन्दादिकी अटारीमें ही बैठकर बद्ध हो रहे हैं। और पारखी सन्त जीवन्मुक्तिके ऊँचे पदरूप शान्त अटारीमें चढ़कर अचल सुखी होकर निजपदमें ही स्थिति किये रहते हैं; अतः वे तरण-तारण होते हैं ॥ ५७८ ॥

८. प्रेम भाव साधुन सेवकाई ❀ कहहिं कबीर पुकारी ॥ ५७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

प्रेम भाव = इसवास्ते उस पदकी प्राप्ति
साधुन = करनेके लिये सर्व प्रथमसे ही
सेवकाई = सदा-सर्वदा सत्य प्रेमसे भाव, भक्ति, श्रद्धापूर्वक पारखी साधु-गुरु इन्होंकी सेवकाई, दासातनसे सेवा, टहल, बन्दगी, पूजा, सम्मान करना चाहिये।

कहहिं कबीर = (ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—)
पुकारी = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पुकार करके चेताकर कह गये हैं कि, हे मनुष्यो! तुम सब पाखण्ड, कल्पना, विषयोंको छोड़कर निज स्वरूपमें स्थिति करो। उसके लिये पारखी सद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्गमें सत्यासत्यका विवेक करो। नरजीवनको आज सफल करो। इसी-को मुख्य कर्त्तव्य जानो, इत्यादि पुकार-पुकार करके कहा है, उसे सुनो! और मनमें मनन करो! ॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे शिष्य! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पुकार करके कहा है कि, गुरुपदको प्राप्तकर मुक्त होनेके लिये हे मनुष्यो! तुम लोग सत्य-प्रेमके साथ सद्भावसे ऐसे पारखी साधु-सन्तोंकी निष्कपट हो शुद्ध भावसे तन, मन, धनादि लगा करके सेवकाई करो, सत्सङ्ग करो। अर्थात् प्रथम तो आन्तरिक शुद्ध प्रेम-भाव होना चाहिये। दूसरा, कर्त्तव्य पालन करके पारखी साधु-गुरुकी और सन्तोंकी सेवा-चाकरी, टहल, बन्दगी करके सत्सङ्ग-विचार करते रहना चाहिये। गुरुभक्ति सहित सेवासे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है; विक्षेप दोषका नाश होता है। जिससे पश्चात् सत्यन्याय-निर्णयको समझ करके उसके हृदयमें गुरु ज्ञानका प्रकाश हो जायगा। फिर वह जीव मुक्त हो जायगा। इत्यादि पुकारा करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जिज्ञासु मनुष्योंको सुनाया है। सो इसी मुताबिक चलकर तुम भी अपना कल्याण करो! ॥ ५७९ ॥

दोहाः— हे शिष्य! निर्णय जो लखै ❀ तेही भया निहाल ॥
[२५८] तेई गुरु तेई शिष्य गुरु ❀ तेई साधु दयाल ॥ ५८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! = हे प्रेमी शिष्य!
निर्णय जो लखै = जो कोई मनुष्य पारखी सद्गुरुसे सत्सङ्ग द्वारा जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिको यथार्थ निर्णयसे परखकर जो लखेंगे कि, 'जीव ही सत्य है।' फिर सब भ्रम कल्पना-को वे ही छोड़ देते हैं।

तेही भया = सो वे ही परम सुखी, शान्त,
निहाल = सन्तुष्ट होते हैं। वे ही भव-बन्धनोंसे छूटकर निहाल हो गये। इसलिये निर्णयको लखनेवाले ही सत्य बोधसे निहाल हुए या वैसे होते हैं। और—

तेई गुरु = तमरूप अज्ञानको विनाश करके सत्य पारखबोधको प्रकाश करनेवाले वे ही तो पारखी सद्गुरु बन्दीछोर हैं। उनके ही शरणागत होना चाहिये।

तेई शिष्य गुरु = वही सद्शिष्य है, जो गुरुपदपर कायम रहता है। सद्गुरुके वचन, उपदेश, आज्ञाको मानता है, आज्ञा पालन करता है। वही गुरुपदका अधिकारी महान हो जाता

है। फिर वही सत्य उपदेश अन्यको देने लगता है, तो वह सद्गुरु माना जाता है।

तेई साधु = दयाल = जो निजदया-परदयाको पूर्णता-से पालन करते हैं, सो दयालु हैं। मन-इन्द्रियोंको साध करके स्ववश जिन्होंने किये हैं, सोई सच्चे साधु हैं। वे पारखी साधु ही सद्गुरुरूप दयाल हैं, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! गुरुमुख निर्णयको जो अच्छी तरहसे लख लिये वा सत्सङ्ग-विचार करके लख लेते हैं। फिर सकल माया-जालके दुःखोंसे छूटकर वे ही हंस जीव निहाल हुए वा वैसे ही मनुष्य सुखी होवेंगे; निर्बन्ध होकर मुक्त भी वे ही होंगे। जो पारखबोध देते हैं, वे ही पारखी सद्गुरु हैं। और जो गुरुबोध पारखको समझ-बूझ लेते हैं, वे ही शिष्य बड़े भाग्यवान् हैं। शिष्यपद-में रहनेवाले वे ही बड़े हैं। पश्चात् अन्य जिज्ञासुओंको पारख बोध देनेमें समर्थ होकर, वे ही फिर सद्गुरु हो जाते हैं। वे ही विवेकी साधु पारखी होकर दयाल = सद्गुरुके पदमें पहुँचकर 'गुरुदयाल' हो जाते हैं; ऐसे पदकी वृद्धि होती है ॥ ५८० ॥

दोहाः— निर्णय यथा प्रमाण जिन ❀ लहै दृष्टि निजु सोय ॥
[२५९] ते शिष्य ! हन्ता क्यों परै ? ❀ रहै अपन पद जोय ॥ ५८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निर्णय यथा = प्रमाण जिन = जिन सत्सङ्गी मनुष्योंने गुरुमुख निर्णयके यथार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणसे सबका जनैया-मनैया जीवको सत्य जान लिये हैं, जड़ भास-अध्याससे जो न्यारा हो गये हैं;—

लहै दृष्टि = निजु सोय = सोई निज दिव्य-दृष्टि पारख स्व-स्वरूपका बोध प्राप्त करते हैं। निजपदमें स्थिर हो जाते हैं। अपने हिताहितको जानकर अहितसे हट जाते हैं, बोधवान् होते हैं।

ते शिष्य ! = हन्ता क्यों परे ? = हे शिष्य ! वे परीक्षक फिर किसी प्रकारके अहङ्कारमें क्यों पड़ेंगे ? जिसने विश्वसे निरञ्जन तकके समस्त अभिमानोंको परखकर छोड़ दिये हैं, फिर कोई हन्ता-ममतादिमें वे क्यों पड़ेंगे ? हंस रहनी सहित गुरुबोधमें जो टिक गये हैं, गुरुमुख वाणी ही जिज्ञासुओं-को सुनाते हैं, गुरुभक्ति बोधभावमें अटल रहते हैं, तब वे हे शिष्य ! हन्तामें क्यों पड़ेंगे ? वे तो निरभिमान ही रहते हैं।

रहै अपन पद जोय = सदाकाल वे तो अपने पारख पदको ही देखते हुए, लक्ष्य निजपदमें ही लगाये रहते हैं। इसलिये वे सब भव-बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— जिन विवेकी पुरुषोंने यथार्थ गुरु निर्णयके प्रत्यक्ष प्रमाणसे निज स्वयं स्वरूपको जानकर अपरोक्ष पारखदृष्टिको प्राप्त कर लिये हैं वा निजदृष्टिको प्राप्त कर लेंगे, फिर हे शिष्य ! वे हन्ता-ममतादि विकारोंमें क्यों पड़ेंगे ? कभी नहीं पड़ेंगे। वे तो सदा जाग्रत् हो विवेकदृष्टिसे अपना स्वरूप पारखपदको ही देखते रहेंगे; कभी गाफिलीमें नहीं पड़ेंगे। इसलिये उनमें किसी प्रकार भी कोई पदका अहङ्कार हो नहीं सकता है, सो जानो ! ॥ ५८१ ॥

दोहाः— गुरुमत जाके उरबस्यो ❀ निश्चल भयो सो जीव ॥
[२६०] हे शिष्य ! अधिकारी अहै ❀ साधुनके गुरु पीव ॥ ५८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरुमत जाके = उरबस्यो = जिस श्रद्धालु शिष्यके हृदय-में सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्यमत पारख सिद्धान्तका बोध हुआ है, उसके हृदयसे सब भ्रम मिट कर, गुरुज्ञान ही दृढ़ हो करके बैठ जाता है। ऐसा होनेपर, फिर—

निश्चल भयो = सो जीव = वह नरजीवकी चञ्चलतासे होनेवाली भ्रमणा जन्ममृति आदि छूट करके निज स्वरूपमें ही अचल-अटल मुक्ति स्थिति हुई या निश्चयसे मुक्त हुए या हो जाते हैं।

हे शिष्य !=
अधिकारी अहै =
हे शिष्य ! सर्वोपरि विशेषता या अधिकता तो पारखी सद्गुरुकी ही है। जो पुरुष ऐसे पारखी सन्त सद्गुरुकी शरणमें जाकर शिष्य होते हैं, वे भी हंस गुणधारी हो, पारख बोध, मुक्तिपदके अधिकारी हो जाते हैं।

साधुनके =
गुरु पीव =
विवेकी सन्त-समाजके मध्यमें जो स्थितिवान् पारखी सद्गुरु हैं, वे ही शिष्यके इष्टदेव, परमपूज्य, मालिक पिया, स्वामी, साहेब करके श्रेष्ठ माने जाते हैं; साधुओंके प्यारे तो सद्गुरु ही होते हैं। वे गुरुपदमें अटल प्रेम लगाये रहते हैं॥

व्याख्या— गुरुमत पारख सिद्धान्तका बोध जिसके हृदयमें पक्का निश्चय होकर बैठ गया सो हंस जीवकी सकल चञ्चलतादि छूटकर स्थिर, निश्चलता हो गयी वा ऐसा ही स्थिर हो जायगा। हे शिष्य ! विशेष करके वे ही पुरुष जीवन्मुक्त होनेके अधिकारी हैं। और विवेकी साधुओंके तो सत्यबोध दाता सद्गुरु ही इष्टदेव, पीव, मालिक, मान्य होते हैं। वे तो देह रहे तक गुरुभक्तिके बोधभावको ही लिये रहते हैं। अतः उनमें कोई पदके अभिमानका ग्रहण नहीं होता है। वे निरहङ्कारी ही बने रहते हैं॥ ५८२॥

दोहाः— गुरु साधुहिं सन्मानही ❀ मिथ्या जालहि त्याग॥
[२६१] साँच हृदय दाया सहित ❀ निज सुख गुरु अनुराग॥ ५८३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरु साधुहिं =
सन्मानही =
मुमुक्षुलोग श्रद्धा-भक्तिसे पारखी सद्गुरु तथा साधुओंको हार्दिक सम्मान, सेवा, पूजा, आदर, सत्कार पूर्णतासे करते हैं। सो तो अपना कर्त्तव्य समझ करके ही करते हैं। और—

मिथ्या जालहि त्याग = सत्सङ्ग द्वारा परखनेमें आया हुआ, मिथ्या वाणी जाल तथा खानी जालोंको वे त्याग देते हैं। जड़मूर्ति पूजा, ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दीको भी वे नहीं करते हैं, मिथ्या भ्रम-जाल समझकर, उसको त्याग करके हंस होते है। और—

साँच हृदय =
दाया सहित =
सत्य, विचार, शील, दया, धैर्यादि सद्गुणोंके सहित 'हंस चैतन्य जीव मैं सत्य हूँ !' यह बोधको ही हृदयमें दृढ़ बनाये रखते हैं। अतएव—

निज सुख =
गुरु अनुराग =
गुरुपदमें विशेष प्रेम-प्रीति, अनुरागकी दृढ़ता होनेसे सद्गुरुकी कृपासे अपने पदमें वे ही हंस सुखी शान्त स्थिर हो रहते हैं। इस अवस्थामें उन्हें नित्य सुखी कहा जाता है। वे निज स्वरूपमें ही स्थिर रहते हैं॥

व्याख्या— विवेकी सन्त परीक्षा कर-करके मिथ्या खानी-वाणीके जाल-जञ्जालोंको भीतर-बाहरसे त्याग ही कर देते हैं। और देह रहे तक मन, वचन, कर्मसे पारखी सद्गुरु तथा विवेकी साधु-सन्तोंको सम्मान, आदर, सत्कार करते हुए यथाउचित धर्म मर्यादाको ही पालन करते रहते हैं। तथा हृदयमें सत्य, विचार, शील, दया सहित धैर्यादि सद्गुणोंको ही धारण किये रहते हैं 'जीव ही सच्चा है, जीवसे परे कोई और सत्य वस्तु नहीं है,' ऐसे बोधको हृदयमें टिकाये रहते हैं। और गुरुभक्तिमें अनुराग वा सत्य प्रेम लगाये रहते हैं। इसतरह निज स्वयं स्वरूपमें लक्ष्य स्थिर कर निज-पदकी स्थितिमें वे सदा सुखी रहते हैं। अथवा उनका निज सुख गुरुभक्तिके अनुरागमें ही रहता है। अतएव वे जीते ही मुक्त हो जाते हैं; ऐसा विवेक करके जान लो !॥ ५८३॥

दोहाः— दीनदयालको मत लखै ❀ शिष्य ! स्वतः पद थीर॥
[२६२] साधुन गुरु सम जानिके ❀ सेवहिं मन वच धीर॥ ५८४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

दीनदयालको मत लखै =
जबतक जड़ाध्यासी बने रहते हैं, तबतक जीव दीन, हीन, मलीन बने रहते हैं। जब दीनदयालु सद्गुरुके सत्य मत पारखको लेकर सत्यासत्यको यथार्थ निर्णय करके लख लेते हैं, तब मनुष्य हंस हो जाते हैं।

शिष्य! स्वतः = पद थीर = } तब तो हे शिष्य! वे ही सत्-शिष्य होनेसे स्वयं चैतन्य निज पदमें ही स्थिर शान्त हो जाते हैं। उनकी सब पूर्वकी चञ्चलताएँ छूट जाती हैं; स्थिरता आ जाती है।

साधुन गुरु = सम जानिके = } इसलिये पारखी सद्गुरुके समान सत्यबोध देनेवाले सत्य निर्णयको ही लखानेवाले, ऐसे साधु महात्माओंको भी सद्गुरुके समान ही जानकर भाव-भक्ति, श्रद्धा, निष्ठा रखते हैं। सो तुम्हें भी ऐसा सद्भाव रखना चाहिये। और—

सेवहिं मन = वच धीर = } मनसे, वचनसे, शरीरसे सब प्रकार जाग्रत् हो करके, देह रहे पर्यन्त गुरुबोधकी भाव-भक्ति अटल रखनेके लिये धैर्यादि सद्गुण धारण करके धैर्यपूर्वक पारखी साधु-गुरुकी ही सेवा, टहल, बन्दगीमें लगे रहना चाहिये। धैर्यवान् पुरुष ऐसी ही सेवा करनेमें लगे रहते हैं।

व्याख्या— हे शिष्य! जो पुरुष दीनदयालु, सद्गुरुके सत्यमत पारख सिद्धान्तको लख लेते हैं, सो वैसे सत्शिष्य स्वतःपद निजस्वरूपमें ही स्थिर, शान्त, निर्भ्रान्त हो जाते हैं। और धैर्य धारण करके धीर, वीर, सत्पुरुषार्थी होकर पारखी स्थितिवान् साधुओंको पारखी सद्गुरुके समान ही बन्दीछोर जान करके उनकी ही सदा मन, वचन, कर्मसे सेवा किया करते हैं। अर्थात् जबतक सद्गुरु जीवित रहते हैं, तबतक तो सद्गुरुकी सेवा साधुओंके सत्सङ्गमें ही लगे रहते हैं। फिर सद्गुरुके देह न रहनेपर पारखी साधुओंको ही गुरुके समान जानकर सब प्रकारसे मन-वचनादिको लगा करके सेवा करते रहते हैं, ऐसे धीर होते हैं॥ ५८४॥

दोहाः— साधु भेष जग विदित है ❀ तेई रूप गुरु कीन्ह॥
[२६३] सो प्रत्यक्ष पद छाड़िके ❀ अनुमय काल अधीन॥ ५८५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

साधु भेष जग = विदित है = } संसारमें साधुओंका त्याग-वैराग्यका भेष तो जग-जाहिर ही है। विषयादिको त्यागकर साधु हुए बिना कोई मुक्त हो नहीं सकते हैं।

तेई रूप = गुरु कीन्ह = } इसवास्ते उसी त्याग भेषका सच्चारूप लङ्गोटा, अचला, कण्ठी, तिलक— ये चिह्न पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने धारण किये थे। इसीसे कि, मुक्ति सहायक होनेसे पारख कर सद्गुरुने ग्रहण किये; यह विशेषता हुई।

सो प्रत्यक्ष = पद छाड़िके = } सो वर्तमानमें भी पारखी साधु द्वारा प्रत्यक्ष ही शुद्ध त्याग भेष धारण हो रहा है। स्वयं प्रत्यक्ष चैतन्य जीव है। परन्तु, पारखपदको छोड़ करके भूलसे भ्रमिक हुए, ऐसे मनुष्य सब-

अनुमय = काल = अधीन = } गुरुवालोगोंके अधीन होकर अनुमानसे कोई ब्रह्म बने। कोई ईश्वर, खुदा, कल्पनादिके तथा विषय भोगोंके वशीभूत हो करके परवश हुए। इसलिये चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जाकर पड़े। अनुमयमें जो लगे, सो कालके अधीन हुए॥

व्याख्या— साधुओंके त्याग-वैराग्यका भेष जगत्में सबको विदित ही है कि, साधु त्यागी होकर विरक्त, निस्पृह रहते हैं। मुक्तिके लिये साधु भेषमें आना ही अत्यावश्यक है। इसलिये सारग्राही सत्य परीक्षक सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी वही गुरुत्व भेष वैराग्यकी रहनी धारणकर लिये हैं। यानी वही त्याग रूपको सद्गुरुने भी स्वीकार करके ग्रहण किये हैं। सो प्रत्यक्ष पदको प्राप्त करनेवाले सब बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। सोई प्रत्यक्ष त्याग-वैराग्य और पारखपद वा गुरुपदको छोड़-छाड़ करके जो अनुमान, कल्पना, विषयादिमें लगे वा लगते हैं, सो वे कालके अधीन रहनेवाले दास वा कैदी बने और ऐसे ही कैदी बनेंगे; महाजालमें फँसेंगे। अतः सावधान-सचेत हो रहना चाहिये॥ ५८५॥

दोहाः— साधुनको जल अन्नते * वस्त्र सहित करु रच्छ ॥
[२६४] शक्ये यथार्थ अनुक्रमना * गुरु सेवक शिष्य स्वच्छ ॥ ५८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस्यसाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

साधुनको = पारखी साधुओंकी सेवा हर-
जल अन्नते = प्रकारसे करो। तहाँ जल भरके लाकर पिलाओ। यदि पासमें अन्न है, तो भोजन बना करके खिला करके पारखी सन्तोंका पालन-पोषण करो। और—

वस्त्र सहित = यदि द्रव्य पासमें है, तो वस्त्र
करु रच्छ = आदि उन्हें जरूरतकी चीज खरीदकर दे देओ; इत्यादि सर्वाङ्ग सहित साधुकी सेवा करके उन्हें रक्षा, बचाव, हिफाजत किया करो। उनकी रक्षा होनेसे ही तुम्हें ज्ञान मिलेगा।

शक्ये यथार्थ = अपनी शक्ति-अनुसारसे
अनुक्रमना = यथार्थ रीतिसे क्रमानुसार जो कुछ सेवा बन पड़े या होवे, सो सब एक-एक करके समय-समय पर—

गुरु सेवक = साधु-गुरुकी सेवा-बन्दगी
शिष्य स्वच्छ = करते रहना चाहिये। इसप्रकार गुरु-साधुकी सेवा करनेवाला प्रेमी सेवक, भक्त भी होवे, तो उसके चित्त शुद्ध निर्मल होकर, फिर वह भेष लेकर साधुरूप सच्चा शिष्य होकर स्वच्छ हंस हो जायगा॥

व्याख्या— इसलिये भक्ति-भावको टिकानेके लिये यदि तुम्हारे पासमें द्रव्य और अन्न, वस्त्रादि होवे, तो उसे शक्ति-अनुसार साधु-गुरुके सेवामें लगाते रहो। ऐसे पारखी साधुओंको नित्यप्रति अन्न-भोजनादि खिला करके, जल पिला करके तृप्त करो! और वस्त्र चढ़ाय, पहिरा करके शीत-उष्णसे बचा करके सर्वाङ्ग आवश्यकीय वस्तुओंके सहित अर्पण करके उन्होंकी रक्षा, बचाव करो; उन्हें आराम पहुँचाओ। इसतरह क्रमानुसार शक्ति मुताबिक यथार्थ रीतिसे जो साधु-गुरुकी सेवा करते रहते हैं, सो ऐसे गुरु सेवक शिष्यत्व भावमें रह करके ही स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल हृदयवाले हो जाते हैं, ऐसा जान लो! ॥ ५८६ ॥

दोहाः— गुरु साधु पद दीर्घ जग * हे शिष्य ! सबन प्रमान ॥
[२६५] त्रिविधि ताहि सेवन करै * आपु दास पद मान ॥ ५८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

गुरु साधु = पारखी सद्गुरु तथा विवेकी
पद दीर्घ जग = साधुओंकी पदवी जगत्में बड़ी दीर्घ है। यानी महान सर्वश्रेष्ठ त्याग-वैराग्ययुक्त गुरुपद जगत्में बड़ा भारी है।

हे शिष्य ! = हे शिष्य ! त्याग और बोध-
सबन प्रमान = पद बड़ा है, ऐसा सभी ज्ञानी बुद्धिमानोंने भी प्रमाण किये हैं। सबके प्रमाणोंको निर्णय करके सद्गुरुने भी सत्य प्रमाणसे गुरुपदको बड़ा ही मान कर ठहराये हैं।

त्रिविधि ताहि = इसीसे उन विवेकी
सेवन करै = सत्यन्यायी साधुओंकी सेवा तन, मन, धन या वचन, तीनों लगा करके या अर्पण करके प्रेमसे सेवा, टहल, बन्दगी करो! यानी अन्न, जल, वस्त्रादि- तीनों लगा करके यथायोग्य उचित सेवा किया करो।

आपु दास- = अपनेको दासपदमें सेवक
पद मान = समझकर वा दास मानकर गुरु-साधुकी सब प्रकारसे सेवा करनी चाहिये। परन्तु, सेवाका भी अभिमान कभी न लेवे॥

व्याख्या— हे शिष्य ! संसारमें साधु-गुरुका पद वा गुरु-साधुका पद दीर्घ=सबसे बड़ा भारी, अतिशय गरुवा, सर्वोच्च पद है। सभी विवेकियोंने ऐसे ही इसको प्रमाण करके माना है। इसलिये मुमुक्षु सेवक और साधु भेषधारियोंने अपने शक्ति अनुसार तन, मन, धन लगा करके अन्न, जल, वस्त्रादि दे करके, ऐसे त्रिविधि प्रकारसे उन्हीं पारखी साधु-सद्गुरुकी सेवा करते रहना

चाहिये। अपनेको सदा दास पदमें ही मानते रहना चाहिये। अर्थात् अपनेको लघु दासपदमें मानकर उन्हींकी त्रिविधि सेवाओंको करते रहे। उसे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझना चाहिये ॥ ५८७ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! जे दासातने ❀ हन्ताते ते भिन्न ॥
[२६६] तेई गुरु पारख लहै ❀ हन्त कल्पना कीन्ह ॥ ५८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! जे = दासातने = } हे प्रेमी शिष्य ! जो मन, वचन, कर्मसे वा तन-मनसे दासत्वभाव गुरुभक्ति सत्यप्रेम निष्ठासे करते हैं या भक्तिभाव रखते हैं।

हन्ताते = ते भिन्न = } उन नरजीवोंमें कभी अहंपना नहीं आ सकती है; हन्ता-ममतासे तो वे सर्वदा भिन्न वा न्यारे ही रहते हैं। पाँचों अभिमानसे वे रहित होते हैं।

तेई गुरु = पारख लहै = } वे ही शुद्ध अन्तःकरणवाले शिष्य सद्गुरुसे पारखबोध प्राप्त कर लेते हैं। वे ही गुरुबोध पारखको हृदयमें धारण कर लेते हैं।

हन्त कल्पना कीन्ह = अतएव समस्त खानी-वाणीके अहङ्कार, कल्पना, विषयादि बीज-को जला करके नाश कर देते हैं। मानन्दी-अध्यासोंको भी विनाश करके छोड़ देते हैं॥

व्याख्या— हे शिष्य ! जो पुरुष साधु-गुरुकी दासत्व भाव ले करके तन, मन, वचनसे दासातनसे भक्ति करते हैं, वे अहङ्कार, दम्भ, अभिमानादि विकारोंसे रहित, सर्वदा भिन्न ही रहते हैं। वे तो सदैव हन्ता-ममतासे न्यारे हो रहते हैं। और जो अहङ्कार, कल्पना आदिको नहीं करते हैं, तथा विवेक करके कल्पना, विषयादिकी सूक्ष्म हन्ताको भी नाश कर देते हैं; सो वे ही अधिकारी होकर गुरु पारख बोधको प्राप्त करके दृढ़ अपरोक्ष कर लेते हैं ॥ ५८८ ॥

दोहाः— तेई उत्तम पारखी ❀ गुरुमतके अधिकार ॥
[२६७] हन्ता नाशै शिष्य जो ❀ हंस थीर पद सार ॥ ५८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तेई उत्तम = पारखी = } वे ही सर्वोत्तम पारखी सन्त हैं, जिन्होंने काल, सन्धि, झाँईं को परख करके त्याग किये हैं, हंसपदमें ठहरे हैं; असत्य, भ्रमसे रहित हैं; वे साधु शिरोमणि पारखी हैं।

गुरुमतके = अधिकार = } सद्गुरुके बीजकमतके वे पूर्ण अधिकारी विशेष जानकार होते हैं। पारखबोध करने-करानेका सब अधिकार उन्हें ही रहता है। मुक्तिके अधिकारी उन्हें ही पहिचानिये।

हन्ता नाशै = शिष्य जो = } हे शिष्य ! उन पारखी सद्गुरु-के शिष्य होकर जो कोई पुरुष स्थूल-सूक्ष्मादि पाँचों अहङ्कारोंको समूल अभी नाश कर देते हैं या जड़ाध्यासको मिटा डालते हैं—

हंस थीर = पद सार = } सो हंस चैतन्य निजपद पारख स्वरूपमें स्थिर हो जाते हैं। सारग्राही उस हंसका जीवन सफल हो गया जानो। यानी सत्यसार पारखबोधको पा करके ही हंस स्थिर हो जाते हैं॥

व्याख्या— फिर वे ही पुरुष गुरुमतके अधिकार प्राप्त सर्वोत्तम पारखी सबके परीक्षक हो जाते हैं। इसतरह जो विवेकी शिष्य मोटी-झीनी हन्ता-ममता, अभिमानादिको परख करके नाश कर देते हैं, सोई हंस होकर सार स्थिरपदको पा जाते हैं। और पारखपदमें एकरस स्थिति करके जीवन्मुक्त भी हो जाते हैं; ऐसे गुरुपदके प्रताप महान है ॥ ५८९ ॥

दोहाः— दास भाव सेवा सहित ❀ भक्ति साधु गुरु केर ॥
[२६८] यह प्रकार हंसा बसै ❀ सेवकको नहिं फेर ॥ ५९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

दास भाव = सेवा सहित = } शुद्ध प्रेम भक्तिसे पारखी सद्गुरुका दास बन करके दासत्व भावको ही बनाये रक्खो ! तथा सेवा, टहल, बन्दगीके सहित—

भक्ति साधु = गुरु केर = } साधु-सद्गुरुकी सत्य चैतन्य-भक्ति भलीभाँतिसे करो। पूजा, आरती, बन्दगी किया करो। नवधा-भक्ति सद्गुरुके प्रति करना उचित है। सदा सत्सङ्ग-विचार किया करो।

यह प्रकार = हंसा बसै = } इसप्रकार हंस-स्थितिके निर्णय-में जो मनुष्य कायम होते हैं, सो हंस पारख भूमिकामें ही ठहर जाते हैं।

सेवकको = नहिं फेर = } ऐसे पारखी सद्गुरुके सेवक वा शिष्यको कोई भ्रम चक्रका फेरा हो नहीं सकता है। फिर भव-बन्धनोंसे छूट जानेसे उसे आवागमनका फेरा नहीं रहता है, मुक्त हो जाता है, ऐसा जानो !॥

व्याख्या— इसलिये एक तो मनमें दास भावका टिकाव हो, दूसरा मन, वचन, कर्मसे साधु-गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगीके सहित रहते हों, तीसरा पारखी साधु-गुरुकी ही सर्वाङ्ग विधिसे नवधा भक्ति करते हों, और आज्ञा पालन करके बर्तते हों। यही प्रकारसे नरजीव निज हंस पदके रहनी-रहस्यमें ही जो दृढ़ निश्चल होकर बसे हैं वा स्थित होते हैं, उस सद्गुरुके सेवकरूप शिष्यको फिर काल-जालका फेरा आवागमनका चक्र नहीं होता है। सब फेरासे छूटकर निर्बन्ध, जीवन्मुक्त हो जाते हैं; सोई बनाना चाहिये ॥ ५९० ॥

सम्बन्ध— ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर बीजक सद्ग्रन्थका प्रमाण दे करके समझाया है, सो सुनिये ! ॥

॥❀॥ सत्य शब्द टकसार, शब्द भाग- ४ ॥ बीजक मूलके निर्णय सत्य शब्द नम्बर- ११२ ॥❀॥

१. झगरा एक बढ़ो राजाराम ❀ जो निरुवारै सो निर्वान ॥ ५९१ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि— हे मनुष्यो ! सुनो ! अनादि कालके जगत्में जीव सब अध्यासवश चारखानीमें पड़े हैं। तहाँ मनुष्य नाना मत-मतान्तर आदिके विस्तारकर झगड़ा करने लगे हैं।

झगरा एक = बढ़ो राजाराम = } पूर्व कर्मानुसार मनुष्य देह पा करके भी दैहिक, दैविक, भौतिकादि नाना दुःख-सन्ताप जीव पाने लगे; बहुत व्याकुल हुए। तब सबोंने मिल करके अनुमान किया कि, एक जगत्कर्त्ता दुःख-सुखोंका दाता हमारे राजा ईश्वर होगा। तब निराकार-साकार शक्ति, शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश इत्यादि, विभिन्न इष्ट देवताओंको ही ईश्वर मानकर परस्पर वेद-शास्त्र, कुरान आदिके पक्ष पकड़ करके मतवादी बनकर पक्षपातीलोग लड़ने-झगड़ने लगे। तहाँ षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्डोंका झगड़ा बढ़ा। उसी बन्धनोंमें मर मिटे; और झगड़ा = जगत्-जीव त्वंपदार्थ, एकराजा = ईश्वर तत्पदार्थ, राम = एकता आत्मा असिपद सर्वत्र व्यापक अद्वैतरूप मानकर महान झगड़ासे आगे बढ़े, तो चौरासी योनियोंमें गिर पड़े। राजा माना हुआ ईश्वरने भी किसीकी रक्षा नहीं की।

जो निरुवारै = सो निर्वान = } जो ज्ञानी हुए, उन्होंने वेद प्रमाणसे ऐसा निर्णय किया कि, 'पिण्ड और ब्रह्माण्डमें व्यापक चैतन्य आत्मा एक है। नानारूप उपाधि मिथ्या है। एक आत्मा सत्य है। समुद्र, कूप, तालाबोंमें जैसा जल एक है, तैसा ही ईश्वर-जीवमें भी आत्मा एक ही है, सो सत्य है।' इस प्रकार निरुवार करके सो निर्वान वा निर्बन्ध आत्मा बने, सो भी आवागमनके झगड़ेमें ही पड़े हैं। इसको परखनेवाले पारखी सब झगड़ोंसे छूटकर न्यारे रहते हैं, सो निर्बन्ध हो जाते हैं ॥

व्याख्या— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने प्रमाणरूपमें बीजक मूलका शब्द नम्बर ११२ लिखा है। उसमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है कि, संसारमें एक बड़ा भारी झगड़ा मचा। उस झगड़ाके अगुवा तीन खानीके राजा रमैयाराम चैतन्य जीव मनुष्य लोग ही हुए हैं। अध्यासवश सब जीव तीन ताप-

दैहिक, दैविक और भौतिक सम्बन्धसे होनेवाला दुःख-सन्तापमें पड़े हैं। उसीको अध्यात्म, अधिभूत, और अधिदैव नामसे चौदह (१४) देवताओंकी जगह, दश इन्द्रियाँ चित्त चतुष्टयमें विषय सहित क्रमानुसार घटाये हैं; सो यह कर्मभोगोंका झगड़ा है। फिर अनुमान-कल्पनासे कर्त्ता, ईश्वर आदिको मान लिये, और वेदादि वाणी बना करके भ्रमसे ब्रह्म-जगत्के झगड़ोंमें जा पड़े। कोई अज्ञानी द्वैतवादी, ईश्वरवादी हुए, सो उन्होंने ईश्वरको ही मालिक मान लिये। तहाँ पञ्च देवताओंके न्यारे-न्यारे उपासक हुए। षट्दर्शन-छियान्नवे (९६) पाखण्डोंका विस्तार किये। सो वे एक-को-एक दोष लगा करके लड़ने-झगड़ने लगे; ऐसे महाबन्धनोंमें ही सब जीव पड़े। मनुष्य जीव झगड़ालू हुए। उनके झगड़ा, पक्षपात, वेद-शास्त्रादिके नाना मत नाना सिद्धान्त बने हैं। एक सबसे बड़ा ब्रह्मको माने हैं। 'राजा' सर्व शक्तिमान् कोई ईश्वरको माने हैं। और 'राम'-सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक आत्माको कहा है। फिर जब निरुवार किये, तब सो 'निर्वान' एक आत्माको ही ठहराये हैं। सो कैसे? कि, ब्रह्माण्डमें व्यापक जो है, सो भी चैतन्य है, और पिण्डाण्डमें व्यापक जो है, सो भी चैतन्य है। नाम-रूप न्यारे-न्यारे उपाधि मिथ्या है, एक चैतन्य आत्मा सत्य है। इसतरहसे जो निरुवारा किये, सो निर्वाण आत्मा बने। परन्तु, सो वे व्यापक मानन्दी करके जड़ाध्यासी होकर आवागमन चौरासी योनियोंके झगड़ामें गिर पड़े। यह पारख उनको नहीं हुआ। और जो पारखी सन्त, झगड़ा=जगत् जीव त्वं पथार्थ, एक राजा=ईश्वर तत्पदार्थ, राम=एकता असि पदार्थ, आत्मा निर्वाण अधिष्ठान, ऐसे गुरुवालोगोंके कल्पित कथनको परख करके देखते हैं, वे सब भ्रम-कल्पना-से न्यारा होकर निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं। फिर वे किसी मतके झगड़ोंमें नहीं पड़ते हैं ॥ ५९१ ॥

२. ब्रह्म बड़ा कि? जहाँसे आया ❀ वेद बड़ा कि? जिन उपजाया ॥ ५९२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

ब्रह्म बड़ा कि?= जहाँसे आया = वेद-वेदान्तसे भाग, त्याग, लक्षणा घटा करके इसप्रकार-से सच्चिदानन्द ब्रह्म जो माने हो, सो बड़ा है कि, जहाँसे यह कल्पना उत्पन्न होकर आयी, वह जीव बड़ा है? सो विचार करो! सबका जनैया जीव तो सत्य प्रत्यक्ष है। दश इन्द्रियोंको सत्ता देनेवाला, पञ्च विषयों-को ग्रहण करके स्थूल-सूक्ष्मको चलानेवाला सो तो जीव ही है। निर्विकल्प-सहविकल्प, सङ्कल्प-विकल्प, जैसे-का-तैसा अहंकर्त्तृत-रूप ही माना हुआ व्यापक ब्रह्म बड़ा है कि, इन सब बातोंका प्रगटकर्त्ता जीव बड़ा है? विवेक करो! नर जीवके बिना ये ब्रह्म-ज्ञान कहाँसे आयगा? इसलिये अनुमान ब्रह्म मिथ्या है; और जहाँसे वह मानन्दी आयी, सो जीव ही नित्य सत्य है। (वेदमें ब्रह्मको बड़ा जीवको अल्पज्ञरूप छोटा कहा है। फिर वेद विरुद्ध कैसे मानना? यह शङ्का किया, उसका उत्तर कहते हैं)—

वेद बड़ा कि?= जिन उपजाया = हे भाई! जिस वेदको तुम बड़ा मानते हो, सो कहाँसे आया? वेद आकाशसे गिरकर तो नीचे भी नहीं आया और पातालसे उछल करके ऊपर भी नहीं आया। निर्जीवसे कुछ वेद वाणी नहीं बनी है, और बन भी नहीं सकती है। नरजीवोंने ही वाणी-कल्पना करके वेद बनाये हैं। इसलिये जिसने वेद वाणीको बना करके उत्पन्न किया, वही जीव सत्य है। कल्पित वेदादि वाणी असत्य वा कल्पनारूप होनेसे नास्ति है, ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— अब हे जिज्ञासु मनुष्यो! निष्पक्ष होकर तुम लोग विचार करो कि, गुरुवालोगोंने कल्पना किया हुआ एक ब्रह्म अनुमान बड़ा है कि, जहाँसे वह अनुमान-कल्पना प्रगट होकर आयी, सो मनुष्य जीव बड़ा है? यहाँ तो नरजीव ही उससे बड़ा है। पाँच तत्त्व, दश इन्द्रियोंको चेताकर पञ्च विषयोंके आनन्दको ग्रहण करनेवाला जीव तो स्वयं प्रत्यक्ष है। तैसे ब्रह्मका तो कहीं पता ही नहीं है, भ्रम ही मात्र कथन है। और माना हुआ निर्विकल्प, अन्तःकरणका विषय है। सहविकल्प,

चित्तका विषय है। जैसे-का-तैसा, बुद्धिका विषय है। सङ्कल्प-विकल्प, मनका विषय है। अहंपना, अहङ्कारका विषय है। इन्हीं विषयोंको ही ब्रह्म मानना, सो मिथ्या भ्रम है। अतः जीव सत्य है, और ब्रह्म आदि अनुमान मिथ्या है, ऐसा जानना चाहिये। वेद प्रमाण सर्व मान्य है, वेदमें ब्रह्मको ही बड़ा और जीवको छोटा अज्ञानवश कहा है, फिर हम वेद प्रमाणको कैसे न मानें? ऐसा वेदवादीने शङ्का प्रगट किया। उसके उत्तरमें कहा है कि-"वेद बड़ा कि? जिन उपजाया?" विचार करो! जड़ वेद वाणी बड़ी है कि, जिसने वेद आदि सम्पूर्ण वाणीको बना करके उत्पन्न किया, लिखा, ग्रन्थोंको बनाया वह बड़ा है? वेद वाणी कहाँसे आई? निर्जीवसे कहीं वेद और अन्य वाणी उत्पन्न नहीं होती है, मनुष्य जीवसे ही सम्पूर्ण वाणी बनी हैं, और मनुष्य जीव ही वाणियोंको बाँचते हैं, तथा नर जीव ही वाणियोंका विचार करते हैं, और परोक्ष-अपरोक्ष वाणीके आधारसे ब्रह्मको मानते हैं। इसीसे तो मैं कहता हूँ कि, जीव ही सत्य है और ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना असत्य है, ऐसा जानो! (प्रथम ब्रह्मादि, सनकादि बड़े-बड़े लोगोंने वेदोंको प्रमाण करके माने हैं, सो हम लोग उसको प्रमाण करके नहीं मानेंगे, तो दोष होगा कि नहीं? यह शङ्का अबोध मनुष्योंको हुई, उसका समाधान नीचेके पदमें सद्गुरुने किया है।) ॥ ५९२ ॥

३. ई मन बड़ा कि? जेहि मन माना * राम बड़ा कि? रामहि जाना ॥ ५९३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

ई मन बड़ा कि?= } (समाधान—) सुनो! यह
जेहि मन माना= } मन बड़ा है कि? मनकी मानन्दी करनेवाला बड़ा है? विचार करो! सब ब्रह्म-ईश्वरादिको माननेवाला, मनको चलानेवाला नरजीव ही सबसे बड़ा है। निज-निज बुद्धि अनुसार ही भिन्न-भिन्न मानन्दी किये हैं; उसको परखना चाहिये। अभी तो तुम ही उसको माननेवाले बड़े हो, नाहक क्यों धोखेमें भूलते हो? (सबका हर्त्ता, कर्त्ता, सर्वाधिष्ठान एक आत्माराम है। ये अनुभवी लोगोंका प्रमाण है, सो कैसे न मानें? यह शङ्का।)—

राम बड़ा कि?= } (समाधान—) तुम भूलो
रामहि जाना= } मत्, विवेक करो! राम सच्चिदानन्द बड़ा है कि, जिसने ऐसा जाना, माना, स्थापना किया सो जीव बड़ा है, नरजीव न होवे, नहीं माने, तो सच्चिदानन्द आत्माराम कोई वस्तु ही नहीं ठहरेगा। इसलिये रामको मान करके रमनेवाला जीव ही बड़ा है। हर्त्ता, कर्त्ता, अधिष्ठान रामको मानना, सो तो मिथ्या कल्पना मात्र है; ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— फिर जिज्ञासु कहता है- वाणी जीवकी कल्पना ठहरी, सो तो ठीक है। परन्तु, 'वेद-शास्त्रादिकी वाणीको प्रथमके पूर्वाचार्य बड़े-बड़े समर्थ ऋषि-मुनि सनकादि ज्ञानियोंने भी प्रमाण करके माना है। यदि आपके कहे मुताबिक हमलोग उस प्रमाणको न मानें तो कोई दोष तो नहीं होवेगा न? दोष होनेकी बात हम करना नहीं चाहते हैं', यह शङ्का हुई। समाधान— "ई मन बड़ा कि? जेहि मन माना"— यह मन-मानन्दी बड़ी है कि? जिसने मानन्दीको प्रमाण करके माना, सो बड़ा है? झूठ माननेवालोंको ही दोष होता है; किन्तु, सत्य यथार्थ बातको माननेवालेको कोई दोष हो नहीं सकता है। जिसने ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा आदि सबको कल्पना करके माना या मानते हैं, सो मनुष्य जीव ही सबसे बड़ा है। यदि नर जीव न माने, तो वह मानन्दी कोई वस्तु ही नहीं है। अतः मानन्दी मिथ्या है; उसे माननेवाले जीव ही सत्य हैं। तुम उसे परख करके मिथ्या पक्षपात छोड़ दो! पक्ष पकड़ करके मिथ्यावादी मत् बनो, विवेक करो! 'सर्वाधिष्ठान कर्त्ता परमात्मा रामको अनुभवी लोगोंने प्रमाण करके माना है; इसको कैसे न मानना? उसे तो मानना ही पड़ेगा', यह शङ्का हुई।

समाधान—"राम बड़ा कि? रामहि जाना"— सच्चिदानन्द माना हुआ राम बड़ा है कि? जिसने उसे जाना और माना, सो जीव बड़ा है? जनैया जीव न हो और उसे जान करके न माने, तो

राम सच्चिदानन्द कोई वस्तु ही नहीं ठहरता है। फिर उस मिथ्या धोखाको मान करके जीवोंका क्या कल्याण होगा ? कुछ नहीं होगा। अतः उसे परख करके पहिचानो, भ्रमको त्यागो ! ॥ ५९३ ॥

४. भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास * तीर्थ बड़ा कि ? तीर्थका दास ॥ ५९४ ॥

अर्थः- सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं- हे सन्तो !

भ्रमि भ्रमि कबिरा = इसप्रकार 'कबिरा' कहिये नरजीव भ्रमिक
फिरे उदास = हो-हो करके जगत् कर्त्ता ईश्वरादि कल्पनासे मानकर उसकी प्राप्तिके वास्ते घर-बार छोड़ कर उदासी, संन्यासी, वनवासी आदि बहुरूपिया बनकर चारों दिशाओंमें जिधर-तिधर धाम-क्षेत्रोंमें ईश्वरको ढूँढ़ते फिरने लगे। बड़े विरही भक्त हुए, बिना विचार।

तीर्थ बड़ा कि ? = देखो ! मनुष्य ही ऋषि-
तीर्थका दास = मुनि आदि होकर जगह-जगहमें तीर्थस्थान गङ्गा, यमुना, सरयू, गोदावरी आदिकी महिमा बढ़ाये हैं, जड़मूर्ति स्थापना किये हैं। उसकी पूजा-परिकमा किये-कराये हैं; अपने दास बने हैं। तीर्थका दास होनेवाले मनुष्य न हों, तो फिर तीर्थ कोई चीज नहीं ठहरती है। जिस नदीको स्थापना करके मनुष्य सङ्ग मिलके जाएँ, तो वही महातीर्थ होता है। न माने तो गङ्गादि भी व्यर्थ है। इसलिये तीर्थ बड़ा नहीं है, तीर्थके दास मनुष्य ही सबसे बड़े हैं। ऐसा जान करके झगड़ा छोड़ो ! परख करके सत्य चैतन्य जीवके स्वरूपको जानो ! भूलको मिटाओ ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— संसारमें कबिरा = अबोध मनुष्य जीव भ्रमिक हो-होकर भूल-भूलकर धोखेमें पड़ करके विरही उदास होकर भटकने लगे। और चार दिशाओंमें जा करके भ्रमिकोंने चारधामकी स्थापना की। तथा चौंसठ (६४) स्थानोंमें जा करके उतने ही तीर्थ स्थापित किये। तहाँ भ्रमके मारे उदास हो करके गङ्गादि तीर्थोंकी स्थापना करते-फिरते हैं। और आप अपने-को भूल करके उसी तीर्थ-मूर्ति, पानी-पत्थरके दास बन रहे हैं। विचार करो ! सो तीर्थ बड़ा है कि ? तीर्थोंका दास मनुष्य बड़ा है ? तीर्थोंके दास होनेवाले मनुष्य न हों, तो तीर्थ कोई वस्तु ही नहीं ठहरता है। महिमा बढ़ानेवाले तो नर जीव ही हैं। जिस नदीको सब मनुष्य जीव मिलकर स्थापना कर देवें, जावें, सोई महान् तीर्थ कहलावे। और कोई गङ्गा आदिकको भी नहीं मानें, मेला करने न जावें, तब साधारण नदी-नालाके समान ही वह भी ठहरेगी। महिमा की हुई मिथ्या ही होगी। इसलिये पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग-विचार करके यथार्थ सत्य निर्णयको जानो; झूठ-मूठका झगड़ा छोड़कर शान्त हो जाओ ! पारखपदको प्राप्तकर अपना कल्याण करो ! ॥ यही भावार्थ है ॥ ५९४ ॥

दोहाः— यह दृष्टान्त अनुक्रम * है व्यवहार विचार ॥
[२६६] हन्ता मिटै तो दास पद * भिन्न आहि व्यवहार ॥ ५९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

यह दृष्टान्त = यह मैंने तुम्हें बीजक सद्ग्रन्थके
अनुक्रम = प्रमाणसे दृष्टान्त सहित क्रमानुसार सत्य सिद्धान्त समझा दिया है; सो एक-एक करके तुम समझ लो !

है व्यवहार = इसमें साथ-साथ व्यवहारमें
विचार = हानि-लाभादि भी कहा गया है। सो यथार्थरूपसे विचार कर लो ! और गुरुवालोगोंका व्यवहार तो जीवोंको फँसाकर धोखेमें लगानेका ही हुआ है। धोखा मिटानेका सद्ज्ञान सद्गुरुका है। इसका निर्णय करके विचार करो ! और—

हन्ता मिटै = ऊपर कहे अनुसार विचार
तो दास पद = करनेवालेकी खानी-वाणीसे सम्बन्धित हन्ता-ममता सब मिट जायगी। जब अहङ्कार मिट गया, तब तो शिष्य सद्गुरुदेवके दास पदवीमें ही रह करके पक्का हंस हो जाते हैं। पारखपदको पा जाते हैं।

भिन्न आहि = फिर उसका हंस देहका
व्यवहार = व्यवहार संसारी तथा

भेषधारी प्रपञ्चियोंसे भिन्न ही विलक्षण, शुद्ध रहता है। साधु-गुरुके सेवा-सत्सङ्ग करना, शङ्का-समाधान, विवेक-वैराग्य लेना, यही उनका शुद्ध व्यवहार देहमें रहता है। पारख बोध संयुक्त ही सब कार्य होते हैं॥

व्याख्या— यही उपरोक्त दृष्टान्तके क्रमानुसार उसके सिद्धान्तको भी निर्णय करके जान लेना चाहिये। जैसे दृष्टान्तका अनुक्रम है, तैसे मनुष्य देहके व्यवहारमें शुद्धताका विचार करना चाहिये। विचार पूर्वक ही सब कार्य व्यवहार करे। जब हन्ता मिट जाती है, तब तो उस दासपदका व्यवहार बर्ताव सबसे भिन्न ही रहता है। दासपदमें हन्ता मिट जाती है। इसीसे तो वह जीव निरहङ्कारी हंस हो जाता है। और उसके हंसपदके शुद्ध व्यवहार संसारके सब लोगोंके व्यवहारोंसे भिन्न ही होता है, तथा वे न्यारे रहते हैं। इसतरह दासपदका रहनी-रहस्य भी सब तुमको समझा दिया है, सो जानो! इसप्रकार हे शिष्य! तुम्हारे प्रश्नका उत्तर पूर्ण हो गया है; अब जो पूछना हो, सो पूछो!॥५९५॥

॥ ❀ ॥ पर उपदेश रीति जिज्ञासा॥ २१ ॥ शिष्य प्रश्न॥ सितारा— २१ ॥ खण्ड— ४१ ॥ ❀ ॥

दोहाः— हे प्रभु! कृपानिधान गुरु! * जानेउँ यह सब रीति ॥

[२७०] अब कहिये मत विमल निजु * गुरु उपदेश सम्प्रीति ॥ ५९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यहाँपर शिष्यका एकइसवाँ प्रश्न वर्णन करके दर्शाते हैं— शिष्य कहता है—

हे प्रभु! कृपा-निधान गुरु!= हे प्रभो! आप तो कृपाके समुद्रके समान बड़ा स्थान या स्थितिवाले सद्गुरु हो! हृदयान्धकार-को दूर करके पारख प्रकाश करनेवाले हो!

जानेउँ यह सब रीति = आपकी दयासे लघुपद-गुरुपद यह सबके मर्म सब प्रकारसे अब मैं जान गया हूँ, समझ गया हूँ! सो उसका तो समाधान हो गया है।

अब कहिये मत विमल निजु= हे सद्गुरु साहेब! अब यह बात कहके समझाइये कि, मल, विक्षेप, आवरणमें तो सब जीव पड़े ही हैं। वैसोंको आपका निर्मल शुद्ध सत्य मत या पारख निज बोधको कैसे कहना? सो 'निजु विमल मत' को कहिये।

गुरु उपदेश सम्प्रीति= गुरु उपदेश देकर अपने समान पारखी हंस स्वरूप बनानेवाले हे सद्गुरो! अन्य मनुष्योंको यह आपका उपदेश किस प्रकारसे करना? सो मुझपर बराबर दयारूपी प्रेम करके कहिये! समझाइये!॥

व्याख्या— शिष्य कहता है— हे प्रभो! आप सद्गुरु कृपानिधान हो! यह बात आपने जो बतलाये हो, सो सब रीतिसे मैंने जान लिया हूँ! अब आपके निज विमल मतको जिज्ञासुओंमें प्रकाश करनेके लिये युक्ति-प्रयुक्ति गुरु उपदेश देनेकी शैली, सम्पूर्ण कृपा करके प्रीतिके सहित कहिये! जिससे सत्यज्ञानका प्रचार होवे॥ ५९६ ॥

दोहाः— गुरु पद जानेउँ नीकि विधि * अनुक्रम कहु उपदेश ॥

[२७१] जाते तव पद प्रीति अति * दिन दिन सरस सुहेत ॥ ५९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो!

गुरु पद जानेउँ= सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि गुरुपद नीकि विधि= पारख है, यह मैंने विधि-पूर्वक अच्छी तरहसे अब आपकी कृपासे जान लिया हूँ! लघुतासे ही गुरुपद कैसे मिलता है? यह बात ठीकसे मैं जान गया हूँ!—

अनुक्रम= अब मनुष्योंको उपदेश देने-कहु उपदेश= का हिसाब, नियम, शैली किसप्रकारसे है? सो भी एक-एक करके क्रमानुसार दया करके कह दीजिये!

जाते तव पद= जिससे हम सबोंकी प्रेम-प्रीति अति= प्रीति, श्रद्धा-भक्ति आपके

चरण या गुरुपद आचरणमें ही अत्यन्त दृढ़तासे लग जावे, विशेष प्रेम बढ़ता जाय। दिन दिन = } दिन-प्रतिदिन ज्ञान-गुण बोध सरस सुहेत = } बढ़ता जाय। विशेष करके रसके सहित निजके कल्याणमें सब मनुष्य अच्छी तरहसे लगें, ऐसा उपाय दया करके बतलाइये ! ॥

व्याख्या— आपकी दयासे गुरुपदको तो अब मैंने अच्छी तरहसे विधिपूर्वक जान लिया हूँ ! अब अन्य मनुष्योंको उपदेश देनेका अनुक्रम भी एक-एक करके क्रमशः कहिये ! जिससे आपके पारख-पदमें मनुष्योंकी अत्यन्त प्रीति बढ़े। दिनोंदिन गुरुज्ञानमें सबोंकी रुचि बढ़े, सरस जानकर कल्याणमें अच्छी तरहसे लग जावें। कैसी प्रकृतिके मनुष्योंको किस-किस प्रकारसे उपदेश देना चाहिये ? जिससे उनका जीवन सुधार होकर हित हो ! सो युक्ति भेद खुलाशा करके दर्शा दीजिये ! यही विनय है ॥ ५९७ ॥

॥ ❀ ॥ सद्गुरु उपदेश रीति शैली वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ २१ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- २१ ॥ खण्ड-४२ ॥ चौपाई भाग- १७ ॥ ❀ ॥

१. सुन शिष्य ! सावधान मत येहा * गुरुपद लखहु दीर्घ न सन्देहा ॥ ५९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुन शिष्य ! = } हे प्रेमी-जिज्ञासु शिष्य ! तुम सावधान = } सावधान हो करके अपने मत येहा = } प्रश्नका उत्तर सुनो ! मैं तुम्हें यहाँपर अब सद्गुरुका मत सत्य-सिद्धान्तकी रीति बतलाऊँगा। जिससे सब मतलब तुम समझ जाओगे। चित्त एकाग्र करके सुनो !—

गुरुपद लखहु = } सद्गुरुका पारखपद जो दीर्घ न सन्देहा = } है, सो सब मतके कसर-खोटोंको लखानेवाला महान्, बड़ा भारी पद है। जिसको जाननेसे फिर कोई सन्देह ही नहीं रहता है, उसको तुम प्रथम अच्छी तरहसे लखकर या जानकर निःसन्देह होओ ! ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! सावधान हो करके सुनो ! यह मतके बारेमें भी मैं तुम्हें यथार्थ बात कह करके समझाता हूँ ! जिसमें कोई भी सन्देहका नामोनिशान नहीं रहेगा, सो सद्गुरुका पारखपद निःसन्देह दीर्घ = सबसे बड़ा है, ऐसा जानो ! गुरुपदसे बढ़ करके तो और कोई पद ही नहीं है ! सो तुम उसे लखो, तो फिर बड़े-से-बड़े सन्देह भी आप-ही-आप सद्गुरुकी दयासे निवृत्त हो जायेंगे; सब युक्ति मालूम हो जावेगी ॥ ५९८ ॥

२. जो भाखेउँ तैं नीके जाना * साधु गुरु चरित्र विधि नाना ॥ ५९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

जो भाखेउँ तैं = } पहले मैंने जो-जो बात नीके जाना = } शिक्षा देकर वर्णन करके कहा था, सो तुमने अच्छी तरहसे जानकर समझ लिया है, यह देखकर मैं खुश हूँ !

साधु गुरु चरित्र = } पारखी साधु-गुरुके विधि नाना = } जीवनमें अनेक घटनाएँ घटित हुई हैं। जैसा मौका आया, उसी प्रकार उपदेश दिये हैं; जीवोंको चेताये हैं। सो उपदेश देनेकी शैली अनेकों प्रकारसे हैं। वह तो साधु-गुरुके जीवनचरित्रमें नाना तरसे हुआ है। रहनी-रहस्यकी बात तो कह ही चुका हूँ ! ॥

व्याख्या— मैंने जो-जो बात अभी तक उपदेश वर्णन करके कहा था, सो तुमने श्रवण-मनन करके अच्छी तरहसे जान लिया, उसके लिये तुम्हें शाबासी है ! और सत्यन्यायी साधु-गुरु पारखी सन्तोंके जीवनचरित्रमें नानाप्रकारसे विधिपूर्वक उपदेश देकर मनुष्योंको समयानुसार चेतानेकी युक्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे हुई हैं। सो सब विस्तार वर्णन तो उनके चरित्र वर्णनके भागमें ही

आया है। यहाँ तो सारांश संक्षेपमें ही युक्तिपूर्वक दर्शाऊँगा। अथवा अभी तक साधु-गुरुके उपदेश नाना विधिके शुभ चरित्र जो मैंने कहा था, सो तुमने भी नीके विधिसे जान लिया है, सो ठीक है ॥ ५९९ ॥

३. अब सुन गुरु उपदेश बताऊँ * आपन रूप लखि कृपा कराऊँ ॥ ६०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!

अब सुन = अब हे शिष्य! तुम्हारे प्रश्न-
गुरु उपदेश = का उत्तर गुरु उपदेश देनेकी
बताऊँ = मुख्य-मुख्य शैली-रीति यहाँ-पर मैं तुम्हें बतलाता हूँ! सो ध्यानपूर्वक मन लगा करके सुनो! पारखी सद्गुरु किस प्रकार उपदेश देते हैं? कि—

आपन रूप लखि = अपने स्वजातीय चैतन्य
कृपा कराऊँ = जीव जानकर जीवोंपर कृपा करते हैं, तैसे मैंने भी तुम्हारे ऊपर कृपा किया हूँ! वैसे ही अबोध मनुष्योंपर कृपा-दृष्टि करना चाहिये। क्योंकि, सब जीवमात्र स्वजातीय हैं। कर्मानुसार दुःख पा रहे हैं, सो जानो!॥

व्याख्या— अब मैं तुम्हें अपना स्वजातीय जीव हंसरूप शरणागत अधिकारी शिष्य जान करके अपना भेषधारीरूप लख करके कृपा करता हूँ! इसीसे गुप्त भेदको खोलकर गुरु उपदेश देनेकी युक्ति मार्ग भी बतला देता हूँ! उसे तुम चित्त एकाग्र करके ध्यानपूर्वक सुनो! फिर मैं जैसे हिसाब-से बतलाता हूँ, तैसी रीतिसे नरजीवोंको स्वजातीय जानकर कृपा करके उपदेश देकर चेताना, तथा कल्याणकारी मार्गमें लगना-लगाना चाहिये। जिससे उपदेशका असर मनुष्योंपर पड़ेगा; सो जानो! ॥ ६०० ॥

४. शिष्य वासना जहाँ-जहाँ होई * तहाँ-तहाँ सहित यथारथ जोई ॥ ६०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

शिष्य वासना = हे शिष्य! सिखारू मनुष्य
जहाँ-जहाँ होई = या शिष्योंकी वासनाएँ कहाँपर लगी हैं, सो जाने। फिर जहाँ-जहाँपर जिन-जिनकी वासना लगी है, उसके कारणकी पहिचान करे।

तहाँ-तहाँ सहित = यथार्थ रीतिसे युक्तिके
यथारथ जोई = सहित तहाँ-तहाँपर उन्हींके ध्येयको वा मतलब-मानन्दीको विवेक-दृष्टिसे देखकर जान लेवे या मालूम कर लेवे ॥

व्याख्या— हे शिष्य! उपदेशकको प्रथम द्रष्टा-पारखी होना चाहिये। अपनी पूर्ण रीतिसे सद्गुण-लक्षणको धारण कर निजपदमें स्थिति कर लेनी चाहिये। अपनेमें जो बात धारण-पालन नहीं किया है, सो बात उपदेश देनेपर भी दूसरोंको नहीं लगती है; धारण करके बतायी हुई बात-का असर जल्दी ही पड़ जाता है। अतः प्रथम अपना सुधार करके फिर अन्य जिज्ञासुओंको उपदेश देना चाहिये! उसमें श्रोता-शिष्योंकी वासना, चाहना, आशा-तृष्णादि जहाँ-जहाँपर भी लगी होवे, तहाँ-तहाँपर किस कारणसे, कैसे लगी है? सो उसके हेतुको पूछताछ करके यथार्थ निर्णयसे विवेकके सहित देखना चाहिये। किस तरहसे, कहाँ उसकी वासना लगी है, सो देखना चाहिये। इसतरह प्रथम परीक्षा कर लेवे ॥ ६०१ ॥

५. ऐसन विधि तेहि पारख देई * चित नहिं दुःखै नीक करि लेई ॥ ६०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसन विधि = फिर इसप्रकारसे विधि-
तेहि पारख देई = पूर्वक प्रेम भावसे सीधी सरलतासे उन मनुष्योंको पारखका उपदेश बतलाकर परीक्षा करा देवे कि, जिससे—

चित नहिं दुःखै = एकाएक श्रोताओंके चित्त
नीक करि लेई = दुःखने भी न पावे। प्रथम खण्डनकी बात न होनेसे उनके चित्त भी नहीं दुःखेगा, सुननेमें प्रेम भी लगेगा, तब वे लोग अच्छा हितकारी समझकर प्रेमसे उपदेशको ग्रहण करेंगे, फिर सत्सङ्ग होते-होते कुछ दिनके बादमें यथार्थ ही भेद समझ जायेंगे ॥

व्याख्या— तदनन्तर इसतरहसे उसे पारखबोध करा देवे कि, उपदेश सुनकर उसका चित्त नहीं दुःखे। बल्कि, प्रसन्न होकर अच्छा मान लेवे; नीक समझ करके ग्रहण कर लेवे। उसके लिये उसकी मानन्दीको प्रथम ही खण्डन करके कटु वचनसे दिल नहीं दुःखावे। सत् शिक्षा ही जैसे वह समझता हो, वैसे विधिपूर्वक उसे समझाना चाहिये। तभी वे लोग भी अच्छा समझ करके स्वीकार कर लेंगे; रोज सत्सङ्गमें आने लगेंगे ॥ ६०२ ॥

६. पहिले जहाँ बन्धावा होई ❀ ताहि सराहि मिले भल सोई ॥ ६०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! उपदेशकको यह याद रखना चाहिये कि—

पहिले जहाँ = } उपदेश देनेके पहिले यह देखे
बन्धावा होई = } कि, शिष्य किस मार्गमें— कर्म, भक्ति, योगादि वा विषयादिमें बन्धा हुआ है ? जहाँपर वह बन्धा हुआ है, सो जान लेवे।

ताहि सराहि = } एकदम उसका खण्डन न
मिले भल सोई = } करे; परन्तु, उसकी तारीफ करके सराहना करे, बढ़ावा देवे। इसप्रकार मिलनेपर ही उसकी भलाई हो सकती है। सोई प्रेमसे मिलकर भलाई करे ॥

व्याख्या— जब पहिले शुरू-शुरूमें मनुष्यलोग सत्सङ्गमें उपदेश सुननेको आवें, तब वे किस मत, पन्थ, सिद्धान्तमें लगे हैं, सो बात पूछ-पुछा करके ठीक तरहसे जान लेवे। फिर कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादिमार्गमें वा खाली संसारी कार्यमें ही, वे पहिलेसे जहाँपर भी बन्धे हुए होवें, उसे ठीक-ठीकसे जानकर फिर उन मनुष्योंकी सराहना वा तारीफ करके हितकर बनकर उनसे अच्छी तरहसे मिले। सब जीव स्वभावतः मान-बड़ाईके भूखे बने हैं, इसीसे प्रथम मान देकर सराहना करनेसे उनका झुकाव भी अच्छी तरहसे होता है। सो उन्होंकी भलाईका मार्ग इसी तरहसे खुलता है; तभी वे आगे बढ़ सकते हैं ॥ ६०३ ॥

७. जब ताकर मत होय प्रऊढ़ा ❀ मिलिके पारख लावै ऊढ़ा ॥ ६०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जब ताकर मत होय प्रऊढ़ा = } जब कि, द्वैत-अद्वैतादि उस मनुष्यका मत पहले कहते-सुनतेमें परिपुष्ट हो करके प्रतिपादन हो जावे, तब ही—

मिलिके पारख लावै ऊढ़ा = } उस शिष्यसे ठीक तरहसे मेल-मिलाप करके पारख निर्णयको परखा करके उसकी मानन्दीको उड़ाय दो ! खण्डन कर दो ! उचटा करके कल्पनामें चित्त लगने न दो, ऐसा बोध करो ! ॥

व्याख्या— अर्थात् नित्यप्रतिका सत्सङ्ग समागम करते-करते जब उन मनुष्योंकी मत मानन्दी द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि साकार-निराकारकी भावना, ईश्वर, ब्रह्म इत्यादि मतवाद परिपुष्ट होवे; उनके मतका कथन-प्रतिपादन हो जावे, तब उसीके सिद्धान्तमें मिलकर उसे उलटा दो ! पारख निर्णयमें उसे धीरे-धीरे लगाओ ! नहीं घबड़ाना। पारखमें लगाते-लगाते फिर उसके मत वा सिद्धान्तमें कल्पना दिखा करके उड़ाय दो ! भ्रम-भूलसे उसका मन उपराम वा उचाट कर दो ! जिससे उसे विवेक करनेका समय मिले; ऐसी रीतिसे समझाते जाओ ! ॥ ६०४ ॥

८. जब परखै तब आप उचाटा ❀ उड़ै थिति नहिं पावै बाटा ॥ ६०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जब परखै तब = } जब वे जिज्ञासु शिष्य ठीक
आप उचाटा = } रीतिसे सत्यासत्यको परख लेंगे या समझ लेंगे, तब अपने आप ही उनका मन धोखेसे उचाट हो जायगा; भ्रम छोड़ देंगे। क्योंकि—

उड़ै थिति नहिं = } ब्रह्मस्थिति और जगत्
पावै बाटा = } स्थिति दोनों ही परखनेपर जब उड़ जायगा, नाश हो जायगा, मिथ्या ठहर जायगा, आगे स्थितिमें पहुँचनेका कोई मार्ग भी नहीं पावेंगे, तो घबड़ा जायेंगे; और उस तरफसे उनका मन पलट जायगा ॥

व्याख्या— फिर जब वे सत्सङ्गी मनुष्य भी विवेक करके परखेंगे, तब अपने-आप ही उनके मन भी भ्रम-भूलकी तरफसे उचाट, उदास, विरक्त हो जायगा। ब्रह्म-ईश्वरादि मानी हुई स्थितिको कल्पना जानकर जब वह स्थिति ही उड़ जाती है, तब उससे आगे ठहराव करनेका रास्ता ही वे नहीं पाते हैं, स्थिति उड़ गई, तो फिर घाट-बाट भी कुछ नहीं पावेंगे। फिर आप ही घबड़ा करके उस मार्गको छोड़कर, शरणागत होकर जिज्ञासु बनेंगे ॥ ६०५ ॥

९. थकित भये पछ छूटै तासू * तब निज मत पारख परकाशू ॥ ६०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

थकित भये = इधर-उधर डावाँडोल
पछ छूटै तासू = होकर जब वह थक जायगा, अशक्त हो जायगा, तब फिर उसके सब पक्षपात, हठ-शठता भी छूट जायगा। फिर कुछ समझने-बूझने लगेगा।

तब निज मत = तब उसको धैर्य देकर
पारख परकाशू = अपना सच्चामत जड़-चैतन्यका निर्णय पारख बोधका प्रकाश करै; सब जालोंको परखा देवे, परीक्षा बताय देवे ॥

व्याख्या— इसप्रकारसे उपदेशका प्रभाव पड़नेपर वे मनुष्य आगे समझ बुद्धि न पहुँचनेसे थकित, सुस्त, निर्बल, शान्त हो जावेंगे। और उन्होंका सब मिथ्या पक्षपात भी छूट जायगा। कुछ समझने-बूझने लग जावेंगे। तब ऐसी अवस्थामें अपना मत पारख ज्ञानका प्रकाश करके उन्हें दिखाना चाहिये। अबोध अज्ञानतारूप अन्धकारको मिटा देना चाहिये। सत्य पारखका बोध करा देना चाहिये ॥ ६०६ ॥

१०. निर्णय भूमि ताहि ठहराई * पारख दृष्टिकै ताहि बुझाई ॥ ६०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निर्णय भूमि = सत्यासत्य, सारासारका
ताहि ठहराई = निर्णय समझा करके हंसदेह-की पारख भूमिकामें उस मनुष्यको ले जाकर ठहरावे, स्थिति करा देवे, स्वरूपमें कायम करा देवे।

पारख दृष्टिकै = ढकी हुई आवरण-मानन्दीको
ताहि बुझाई = हटाकर, पारखदृष्टि खोला-कर सब कल्पना, अनुमान उसे दिखा देवे। जीव चैतन्य ही नित्य-सत्य है; और ईश्वर-ब्रह्म आदि मिथ्या मानन्दी है। ऐसा निर्णय बता करके समझा देना चाहिये ॥

व्याख्या— अर्थात् गुरुमुख निर्णयसे कसर-खोटको बतलाकर हंस भूमिकामें उसे ठहरावे ! जड़-चैतन्यका भेद निर्णयसे लखावे। और पारख-दृष्टिको खोलकर दिखा करके उन मनुष्योंको यथार्थ समझाना-बुझाना चाहिये। जीव ही सत्य है और सब जीवकी कल्पना मिथ्या है, यह भेद अच्छी तरहसे बता देना चाहिये, जिससे उसे पारखका बोध हो जावे ॥ ६०७ ॥

११. बूझत कछु जो कसर रहाई * पुनि सो जीव काल मुख जाई ॥ ६०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बूझत कछु जो = अगर उसकी समझ उलटी
कसर रहाई = हो गई, कुछ-का-कुछ विपरीत समझ लिया, यथार्थ पारखका बोध नहीं हुआ, कुछ भी भ्रम, मानन्दी बाकी रह गई, ऐसे बूझनेमें, जो कुछ भी कसर रह गयी, तो फिर—

पुनि सो जीव = वह जीव सो तुम्हारे ज्ञान-
काल मुख जाई = को छोड़कर, फिरकर या उलट करके पुनः कालरूप नारी या गुरुवा-लोगोंके मुखरूप विषय और कल्पनाके घेरा वा जालमें ही चले जावेंगे ॥

व्याख्या— यदि समझने-बूझनेमें कुछ कसर रह गया, यथार्थ बोध उसे नहीं हुआ वा उसका मिथ्या पक्ष नहीं छूटा, उलटी ही समझ हुई, तो फिर सत्सङ्गसे उठ जानेपर, समयान्तरमें वह मनुष्य मन्मति, दम्भी, अभिमानी, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, इत्यादि कुवृत्तिवाला होकर कालके मुखमें ही चला जाता है। अर्थात् वह जीव गुरु-सीढ़ीसे उतर करके कुबुद्धि हो करके कोई तो स्त्रियोंके

भग-भोगादिमें ही लग करके काला मुँख कर लेते हैं। और कोई गुरुवालोगोंके भ्रम, अनुमान, कल्पना, धोखादिमें ही उलट करके चले जाते हैं। फिर उन्होंका कदापि निस्तार हो नहीं सकता है। सद्गुरुने कहा हैः—

"गुरु सीढ़ीते ऊतरे। शब्द बिमूखा होय ॥ ताको काल घसीटि हैं। राखि सकै नहिं कोय ॥"

॥ बीजक, साखी— २८६ ॥

अतः बूझनेमें जो कसर रहेगा, तो वह जीव कालके मुखमें चला जायगा वा चला जाता है ॥६०८॥

१२. काल कला तेहि नीकि दर्शावै ❀ कसर खोट तेहि नीकि बतावै ॥ ६०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

काल कला तेहि = इसवास्ते बोध पक्का कर
नीकि दर्शावै = देना चाहिये। नारी और गुरुवाओंकी खानी-वाणीके जाल-फाँस कला, कल्पना, भ्रमादिको, उस शिष्यको अच्छी तरहसे उनके कसर-खोटोंको दिखा देना चाहिये। सब भेद दर्शा देना चाहिये।

कसर खोट तेहि = सब मत-मतान्तरोंकी
नीकि बतावै = कसर ब्रह्म-ईश्वरादि सिद्धान्त खोटा है, विषयादि बन्धन उसको अच्छी तरहसे खोल-खोलकर बता देना चाहिये वा दर्शा देना चाहिये। जिससे सब भ्रम उसका मिट जायगा ॥

व्याख्या— इसलिये उन शिष्योंको काल कला = खानी-वाणीके सब जाल, गुरुवालोग और स्त्रियोंके दाव-पेंच, उनकी गुप्त-प्रगट कला अच्छी तरहसे दर्शा देवे। सब भेद एक-एक करके उसे बता देवे। और ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदादि तथा विषयादिक सभी तरफके कसर-खोट उन्हें अच्छी तरहसे बता देना चाहिये। जिससे वह सावधान होकर काल-जालोंसे दूर होकर बचे रहेंगे; नीकी भेद बता देना चाहिये ॥ ६०९ ॥

१३. रती रती दर्शाव करावै ❀ अबुधके सङ्ग अबुध होय जावै ॥ ६१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

रती रती = झीनी-मोटी मायाका प्रपञ्च ब्रह्म,
दर्शाव = ईश्वर, देवताओंकी मिथ्या
करावै = मानन्दी, और विषयोंके जञ्जाल जितने बन्धन हैं, सो सब रत्ती-रत्ती भर परखानेमें कसर न रक्खे। सबोंके कसर-खोट दर्शाव करा देवे। परन्तु—

अबुधके = सावधान रहना चाहिये कि,
सङ्ग अबुध = कहीं अबुद्धोंके सङ्गसे अपनी भी
होय जावै = हानि न हो जावे। क्योंकि, विशेषरूपमें होनेपर सङ्ग-दोष लग जाता है। इसलिये सचेत बना रहे। अबुद्ध-अज्ञानी जीव तो स्त्री और गुरुवालोगोंके सङ्ग-कुसङ्गमें आते-ही-जाते रहते हैं, इसलिये मूढ़ जड़ाध्यासी हो-होकर चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं। अथवा जिज्ञासुको यह बात समझा करके चेता देना चाहिये कि, देखो! बुद्धिहीन अबुद्धोंके कुसङ्गमें लगने-वालोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। फिर वह भी वैसे ही अबुद्ध वा मूर्ख हो जाता है। इससे कुसङ्गसे दूर हो करके बचे रहो। इत्यादि बात बताकर रत्ती-रत्ती निरुवार कर देना चाहिये ॥

व्याख्या— खानी-वाणी जालका जितना भी विस्तार है, सो सबका निर्णय करके सब मत, पन्थ, सिद्धान्तोंकी बात तथा विषय बन्धनोंके भेदको एक-एक करके रत्ती-रत्ती भर भी दर्शाव करा देवे। सब बात उसे समझा देवे। फिर कुसङ्गसे तो दूर ही रहनेको चेता देवे, सावधानी करा देवे। कहा हैः—

चौपाईः— "को न कुसङ्गति पाय नशाई। रहे न नीच मते चतुराई ॥
कैसहु चतुर होय किन कोऊ। नीच सङ्ग करि बिगरत सोऊ ॥" रामायण ॥

इसलिये बारम्बार अबुद्ध-अज्ञानी, मूर्ख, स्त्री, गुरुवालोगोंके सङ्ग-कुसङ्ग करनेवाले भी वैसे ही अबुद्ध भ्रमिक, जड़ाध्यासी हुए और हो जाते हैं। अतः उन्होंके सङ्ग-साथ न करे, यही ठीक तरहसे समझा देना चाहिये। अर्थात् सत्यन्याय-निर्णयकी बात एक-एक रत्ती-रत्तीतक भी दर्शा देना चाहिये। छोटे-बड़े नियम पालनकी बात भी सब उसे समझा देना चाहिये। और सङ्ग-दोष कुसङ्गसे हानि जो होती है, सो दृष्टान्त घटना दिखाकर भी चेता देना चाहिये। जैसे किसीने कहा भी है:- दोहाः— "लघुता लघुजन सङ्ग करि, गुरुता गुरुजन सङ्ग॥ बाल सङ्ग मति ना रहै, नारि सङ्ग तप भङ्ग॥"

अज्ञानी कुसङ्गियोंके सङ्गमें लगे रहनेवाले भी ऐसे ही अबुद्ध-मूर्ख हो जाते हैं। इसीसे वैसोंका सङ्ग-साथ ही नहीं करना चाहिये। इसी बारेमें रत्ती-रत्तीभर बोध करा देवे। और अपने स्वयं तो जाग्रत्-सावधान ही हो रहे। अश्रद्धालु, अनाड़ी, मूर्ख, अविश्वासी, कुकर्मी आदि लोगोंको तो उपदेश ही नहीं सुनावे। क्योंकि, उन्हें शिक्षा ग्रहण ही नहीं होती है। तो हकनाहक क्यों माथा पच्ची करना? श्रद्धालु मनुष्योंको ही उपदेश देना चाहिये। सद्गुरुने कहा है—

साखीः— "पानी पियावत क्या फिरो?, घर घर सायर बारि॥ तृषावन्त जो होयगा, पीवैगा झक मारि॥"
॥ बीजक, साखी ॥ १२ ॥

अतः अधिकारीके प्रति ही रत्ती-रत्ती दर्शाव कराके बोध करना चाहिये ॥ ६१० ॥

१४. ऐसे जानि आपन पद भाई ! * शिष्यहि लेइ आपन अपनाई ॥ ६११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसे जानि = हे भाई! पहले अपना हित-अहितको ठीकसे जाने, फिर
आपन = अपना पदमें स्वयं ठहरते हुए
पद भाई! = कोई मनुष्य भाव-भक्तिसे शरणमें आवें, तो ऐसे ही अपना पद जनाय देवे। नरजीवोंको अपनी जातिका (स्वजाति) जाने।

शिष्यहि लेइ = इसप्रकार श्रद्धालु शिष्योंको
आपन अपनाई = अपना स्वजातीय जीव जान करके दयादृष्टि कर सर्व जालोंको परखा करके सत्य लखा करके पारखी सद्गुरु अपनाय लेते हैं, ऐसा जानो!॥

व्याख्या— हे भाई! प्रथम अपने हंस पदको ऐसे अच्छी तरहसे जान करके फिर अपने पदमें लेने योग्य वह पात्र वा अधिकारी है कि, नहीं? ऐसा पहिचान करके यदि भाव-भक्तिवाला योग्य पुरुष होवे, तो फिर उसे अपनी शरणमें ले करके शिष्य बनाय लेवे। और उन शिष्योंको ही अपना गुरुबोध दे करके अपनाय लेवे। सब बात क्रमशः उन्हें समझाय देवे ॥ ६११ ॥

१५. कर्म जालको बहु विस्तारा * ताहिं भली विधि देई विचारा ॥ ६१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कर्म जालको = संसारमें विषयीलोग तथा
बहु विस्तारा = कर्ममार्गियोंके कर्मकाण्डके जालोंका बहुत ही विस्तार हो करके फैलाव हुआ या हो रहा है।

ताहिं भली विधि = सो शरणागत शिष्यको
देई विचारा = भली प्रकारसे विधिपूर्वक उससे होनेवाली हानि-लाभका यथार्थ विचार बताय देवे। कर्म-भ्रममें कभी न भूलो! कहके चेताय देवे। गुरुभक्ति बताय देवे॥

व्याख्या— कर्मी गुरुवालोगोंने संसारमें कर्ममार्गका जाल-जञ्जालोंको बहुत ही विस्तार कर रक्खे हैं। पूजा, पाठ, होम, श्राद्ध, तर्पण, जप, तप, व्रत, उपवास इत्यादि, सब कर्म-जालके भीतर ही आ जाते हैं। वह सब नर जीवोंको धोखेमें डाल करके बाँधनेवाले हैं। सो उनका भेद उन शिष्योंको भलीविधिसे बता करके विचार करा देवे। अच्छी तरहसे उसे विचार करनेको लगाना चाहिये। जिससे कर्मकी कसरको वे जान जायें ॥ ६१२ ॥

१६. कर्महिं माँहिं घीन अरु ऊँचा * ऊँचहु ऊँच नीच सो नीचा ॥ ६१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कर्महिं माँहिं = कर्मदो प्रकारके होते हैं।
घीन अरु ऊँचा = एक घीन = निकृष्ट, अशुभ, पापकर्म, वाममार्गादि होते हैं। दूसरा ऊँचा = उत्तम, शुभ, पुण्यकर्म, दक्षिण-मार्गादि होते हैं। उसमें गुरुवालोग कहते हैं—

ऊँचहु ऊँच = पुण्यकर्मसे सबसे ऊँचे
नीच सो नीचा = स्वर्गादि सात लोककी प्राप्ति होती है। और वेद-विरुद्ध हो पाप कर्म करनेसे नीचसे नीच अधोलोक नरकको जाते हैं। अथवा वे शुभाशुभ कर्मानुसार ऊँच-नीच गति पाते हैं॥

व्याख्या— कर्मकाण्डमें भी घीन (नीचा) और ऊँचा, ऐसे दो भेदके कर्म होते हैं। जिसे 'पापकर्म' और 'पुण्यकर्म' कहते हैं। उसीको शुभाशुभ कर्म भी कहा है। उनमें अशुभ वाममार्ग तथा शुभ दक्षिणमार्ग चलाये हैं। और ऊँचसे भी ऊँच कर्म होते हैं और नीचसे भी नीच कर्म होते हैं। पैशाचिक कृत्य महानीच कर्म है। दया, दान, धर्मादि श्रेष्ठ उच्च कर्म हैं। कर्मानुसार ही जीवोंकी गति-मति भी होती है। ऊँची समझ-बुद्धिवाले मनुष्य उच्च शुभ कर्म ही करते हैं। जिससे वे ऊँची पदवीको प्राप्त होते हैं। और नीच बुद्धिवाले मनुष्योंके कर्म भी नीच पाप कर्म ही होते हैं। अतः वे नीच, पापी माने जाते हैं। फिर देह छूटनेपर भी वैसी ही योनियोंको प्राप्त होते हैं। इसीसे कर्त्तव्यका सुधार करना चाहिये॥ ६१३॥

१७. भली भाँति लखै कर्म कहानी ❀ मान महातम भरम निशानी॥ ६१४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!
भली भाँति लखै = सो उस कर्ममार्गको
कर्म कहानी = अच्छी तरहसे निर्णयसे लख करके फिर औरोंको भी लखावे। पौराणिक लोगोंने पुराण-इतिहास, कथा द्वारा कर्ममार्ग बहुत कथन किये हैं। रोचक-भयानक वाणी वर्णन किये हैं।

मान महातम = अनेक झूठ-मूठके देवता-
भरम निशानी = ईश्वरादि मानकर उनकी तथा स्वर्गादि भोगोंकी बड़ी महिमा या महात्म्य किये हैं। जिसका कहीं ठिकाना ही नहीं है। बिना देखे ही बड़ाई किये हैं; इसलिये वह भ्रमकी निशानी मिथ्या बकवाद ही जानो! इसीको आवागमनकी निशानी समझो!॥

व्याख्या— इसलिये कर्मकी कहानीको भलीभाँतिसे परख करके लख लेना चाहिये। और जो कि, गुरुवालोगोंने ईश्वर, देवताएँ, भूत-प्रेतादि, सात स्वर्गादि लोक इत्यादि मान-मानकर उन्होंके महिमा-महात्म्य जो बढ़ाये हैं, सो सरासर झूठी भ्रमकी निशानी है। मिथ्या रोचक-भयानक वाणी भी भ्रमका ही चिह्न है। अतः उसे परखकर हटाना चाहिये॥ ६१४॥

१८. ऐसे भाँति सो कर्म छुड़ावै ❀ कर्म जालसों जीव बचावै॥ ६१५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
ऐसे भाँति सो = इसप्रकासे उन सब कर्मोंको
कर्म छुड़ावै = एक-एक करके हानि-लाभ दिखा करके परखा करके इसभाँतिसे कर्म जालसे जीवोंको छुड़ावे या बचावे;

कर्म जालसों = खानी-वाणी सम्बन्धी जितने
जीव बचावै = भी विषयादि कर्म-कुकर्मोंके जञ्जाल हैं, उन सबसे नर जीवको खैंच करके सत्सङ्गमें लगा करके बचाय लेवे, सुधार करा लेवे॥

व्याख्या— सो कर्मजालको इसप्रकारसे छुड़ावे कि, शिष्यलोग कर्म मार्गमें कसर बन्धन समझ लेवें और उसे छोड़ देवें। ऐसी भाँतिसे कर्म-कुकर्मको छुड़ा देवे। अनेकों कर्मके जाल-जञ्जालोंसे नरजीवोंको बाहर निकाल करके बचा लेवे। जीव रक्षा, दया, परोपकार आदि सत्कर्म करनेकी शिक्षा देवे। कालके जालसे छुड़ा लेवे, ऐसे बचाव करे॥ ६१५॥

१९. कर्म जालके बासी जीयरा ❀ कर्म मिटै तो धर्म घनेरा॥ ६१६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कर्म जालके = बासी जीयरा = ऐसे संसारमें सब मनुष्य कर्म-कुकर्मकी वासना लेकर उन्हीं कर्मोंके नाना जालोंमें ही अरुझे पड़े हैं। इसी वासनाके वश चौरासी योनियोंके निवासी जीव हुए और हो रहे हैं।

कर्म मिटै तो = धर्म घनेरा = यदि कोई मनुष्यका कर्म मिटा, यानी कर्मकाण्ड छोड़ करके आगे बढ़े, तो उपासना काण्डमें जा करके जकड़ जाते हैं। वहाँ भक्ति मार्ग और योग मार्गको धर्म मान करके बहुतेरे फँस गये और फँसे जा रहे हैं॥

व्याख्या— इसप्रकार प्रथम तो सब जीव कर्म जालके ही निवासी हुए, और हो रहे हैं। और कर्म अध्यास करके ही चौरासी योनियोंमें निवास कर रहे हैं। पहलेसे ही कर्म-जालके घेरेमें जीव पड़े ही हैं। तहाँ नाना प्रकारसे शुभाशुभ कर्म कर रहे हैं। अगर किसी प्रकार कर्म मिट भी गया, कर्म-मार्गको उन्होंने छोड़ भी दिया, तो वहाँ गुरुवालोगोंकी कल्पित उपासना मार्गका फन्दा उनपर पड़ जाता है। बहुतेरे लोग धर्मके नामसे पाखण्डोंमें लगे और लग रहे हैं। ऐसे घनेरा धर्मके भ्रममें भूल करके अरुझे पड़े हैं॥ ६१६॥

२०. धर्म साधिको बहु विस्तारा ❀ धर्म रहट जीवन बहु मारा॥ ६१७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य! धर्म साधिको = बहु विस्तारा = तहाँ धर्मके नामसे साधना-जप, तप, व्रत, उपवास, नाम-स्मरण, सगुण-निर्गुण भक्ति, मानस-ध्यान और अष्टाङ्गयोग इत्यादि भक्ति-योग सम्मिश्रित साधनाओंका विस्तार बहुत ही किये हैं।

धर्म रहट जीवन = बहु मारा = ऐसे नवधा भक्ति, अष्टाङ्गयोगादि-को धर्ममार्ग मान करके गुरुवालोगोंने बहुतेरे नरजीवोंको उसी रहटमें डाल करके बहुत प्रकारसे मारे; गाफिल, भ्रमिक, जड़ासक्त मूढ़ किये-कराये; फिर मर-मरायके वे चौरासी योनियोंमें ही चले गये या जा रहे हैं॥

व्याख्या— भ्रमिक लोगोंने धर्मके नामसे नाना तरहकी साधनाएँ बनाकर उसका बहुत विस्तार किये हैं। और धर्मरूपी भक्ति, योगादि मार्गके रहट वा महान चक्रमें नर जीवोंको बहुत प्रकारसे ढकेल-ढकेल करके बहुतेक नरजीवोंको मारे, जड़ाध्यासी बनाये। अनेकों प्रकारसे दुःख दिये और दुःख दे ही रहे हैं। इसीसे चौरासी योनियोंके रहटमें ही सब जीव पड़े हैं॥ ६१७॥

२१. धर्म अङ्ग बहु योग कमावै ❀ थिति पावै सामीप रहावै॥ ६१८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! धर्म अङ्ग = बहु योग = कमावै = धर्म अङ्गके नामसे उपासना काण्डके ही अङ्ग या दूसरे भागमें योग मार्गकी साधनाएँ बहुत करते हैं। नेती, धोती आदि खेचरी, भूचरी आदि हठ, राज योगादियोंके अभ्यासकी कमाई करते हैं।

थिति पावै = सामीप = रहावै = गुरुवालोग कहते हैं-हे भक्तो! हमारे समीप रह करके भक्ति, योगादिकी साधना करो, तो तुम्हें यहाँपर भी स्थिति मिलेगी और वहाँ स्वर्गलोकमें भी सामीप्य मुक्ति पाओगे॥

व्याख्या— तहाँ उनके धर्मके अङ्गमें उपासना करके फिर बहुत प्रकारसे अष्टाङ्गयोग साधना-की कमाई करते हैं। यहाँ भक्ति और योगाभ्यास करते-करते जो स्थिति पा जाते हैं, वे धर्मात्मा जीव यहाँपर भी परमात्माके समीपमें ही रहते हैं; फिर देह छूटनेपर वहाँ स्वर्गादि लोकोंमें भी जा करके अपने इष्ट देवता भगवान्के सन्मुखमें हजूरियादास हो करके सामीप्य मुक्तिमें ही रहेंगे; इत्यादि कल्पनाकी बात गुरुवालोगोंने कहा है। इसीसे बहुत लोग योग-अभ्यास कमाते हैं। पञ्च क्रियासे देहकी सफाई तो वे करते हैं; परन्तु, मन जड़ाध्याससे मलिन गन्दा ही बना रहता है। इसीसे वे भव-बन्धनमें ही बन्धे पड़े रहते हैं, बिना विवेक॥ ६१८॥

२२. तीरथ व्रत सेवा बहु लावै * ऋद्धि सिद्धि करामात मनावै ॥ ६१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तीरथ व्रत = } चौंसठ (६४) तीर्थोंका
सेवा बहु लावै = } स्नान, परिक्रमा तथा पन्द्रह दिनोंका (१५) व्रत, जड़मूर्तिकी सेवा, तथा अपने सेवा-टहलोंमें ही बहुत प्रकारसे, सब लोगोंका गुरुवालोगोंने लगाये हैं।

ऋद्धि सिद्धि = } नवनिद्धि वही 'ऋद्धि' है,
करामात मनावै = } तथा अष्ट सिद्धि नाना चमत्कार मन्त्र-सामर्थ्य करामात बाजीगरी तमाशावत् झूठा खेल दिखा करके लोगोंको खुश करना; ऐसी चालाकी पानेके लिये मनौती करते-कराते रहते हैं ॥

व्याख्या— वे भ्रमिक उपासकलोग कोई अठसठ तीर्थोंकी यात्रा, परिक्रमा करते हैं, और कोई पन्द्रहों तिथियोंके व्रत, चान्द्रायणादि व्रत करते हैं। जड़मूर्तिकी सेवा-टहल वा गुरुवालोगोंकी सेवा-चाकरी इत्यादि करने-करानेमें ही बहुत लोगोंने मन लगाये और मन लगा रहे हैं। और योग साधनाएँ सिद्ध करके अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, षट्गुण ऐश्वर्य प्राप्ति कर लोगोंको करामात, बाजीगरी तमाशा दिखानेके लिये नाना तरहसे धोखेकी साधनाओंमें मन लगा रहे हैं। उसीके लिये इष्टदेवताको मनाते हैं। इच्छापूर्ण करनेकी मनौती करते-कराते हैं; ऐसे भूले पड़े हैं ॥ ६१९ ॥

२३. संयम नियम प्राण आकर्षण * योग धारणा हठ आकर्षण ॥ ६२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

संयम नियम = } कोई संयम करते हैं।
प्राण आकर्षण = } अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह— ये पाँच (५) सो यममें कहा है। शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, इष्टध्यान— ये पाँच (५) नियममें कहा है। और प्राणरूप श्वास वायुको खैंच करके पूरक, रेचक और कुम्भक करना, ये प्राणायाम विधिसे प्राण आकर्षण करते हैं। और—

योग धारणा = } राजयोग या हठयोग
हठ आकर्षण = } साधनाओंसे धारणा, ध्यान करके समाधि लगाते हैं। हठपूर्वक षट्चक्र बेधन करके प्राणादि पाँचों वायुओंको खैंच-करके ब्रह्माण्डमें चढ़ाते हैं ॥

व्याख्या— कोई संयमका पालन करते हैं; सो युक्ताहार-विहार, पत्थ्य-परहेज करना, कम खाना, कम सोना, कम बोलना, इत्यादि प्रकारसे संयम किया करते हैं। और कोई योग साधना करनेके लिये यम-नियमादिको भी हिसाबसे पालते रहते हैं। कोई प्राणको आकर्षण करके त्रिविधि प्राणायाम करते हैं। और कोई मन-पवनको आकर्षण करके हठयोगकी धारणा करते हैं। हठ करके सब साधनाएँ करते हैं। शून्य समाधि लगाकर गाफिलीमें पड़े रहते हैं, बिना विचार ॥ ६२० ॥

२४. अनबनि चाल अनेक प्रकारा * धर्म जालको जो अधिकारा ॥ ६२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

अनबनि चाल = } जिससे जीवोंका कुछ
अनेक प्रकारा = } कल्याण-हित बननेका नहीं, ऐसे अनेकों प्रकारसे अनेकों चाल भक्ति, योगादिका विस्तार किये हैं और कर रहे हैं।

धर्म जालको = } विशेषरूपसे अधिक ही
जो अधिकारा = } महिमा बढ़ा करके उपासना योगको धर्म बता करके, उन जालोंमें जीवों-को फँसाये हैं। जो कोई आवें, उन्हें अपने अधिकारमें कर लेते हैं; अर्थात् चेला बना लेते हैं ॥

व्याख्या— ऐसे इस-इसतरहसे अनेकों चाल अनेकों प्रकारसे साधनाएँ करते-कराते हैं। जिससे नरजीवोंका कल्याण तो कुछ नहीं बनता है, उसीमें ही सब लग रहे हैं। धर्म जालका जो कुछ अधिकार है, सो उपासना वा योगमार्गकी ही विशेषता बखान किये हैं। उसीमें ही सबोंको लगा करके बाँध रहे हैं; धोखा दे-देकर भटका रहे हैं ॥ ६२१ ॥

२५. आपु नशै पुनि और नशावै * नाटक चाटक विद्या लावै ॥ ६२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

आपु नशै पुनि = और नशावै = अपने तो गुरुवालोग मुक्ति-पदसे नष्ट-भ्रष्ट हुए ही हैं; और-और मनुष्योंको भी लुब्ध करके रोचक-भयानक वाणी सुनाय-सुनाय कर ईश्वरादि प्राप्तिकी धोखेमें लगा करके सत्यानाश कर देते हैं। घुमा-फिरा करके बार-बार चौरासी योनियोंमें ही डाल देते हैं। और—

नाटक चाटक = विद्या लावै = नाच, तमाशा, कुआदत, इन्द्रजाल, बाजीगरी, मेस्मेरिज्म, कल्पित भूत-प्रेतादि बेताल साधनाएँ जारण-मारणादि कुविद्याओंमें अपने लगके दूसरोंको भी उसीमें लगाते हैं। ऐसा गुरुवालोग निज-पर हानि ही कर रहे हैं ॥

व्याख्या— भ्रमिक भक्त और योगीलोग अपने तो स्वयं ही हंसपदसे गिरकर नाश हुए, जड़ाध्यासी हुए, भव-बन्धनमें बन्धे पड़े हैं। फिर अबोध मनुष्योंको भी भ्रमा-भ्रमा करके और बहुत प्रकारसे जीवनका विनाश करा रहे हैं; औरोंको भी नशाते फिर रहे हैं। तथा नाटक-चाटक दिखा-बता करके कुविद्याओंमें ही मनको लगा रहे हैं। नाच, तमाशा, चतुराई, ठगाई, हाथोंकी सफाई, बाजीगरीखेल, कुकर्मोंकी चाट इत्यादि सीख-सिखा करके उसी नष्ट विद्याओंमें लौ लगाते हैं। दूसरोंको भी उसीमें लगा करके बिगाड़ देते हैं; ऐसे काल ही बने हैं ॥ ६२२ ॥

२६. पुरुष राम सबहीं है नारी * ऐसो कहै रहै कहि भारी ॥ ६२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

पुरुष राम = सबहीं है नारी = भ्रमिक भक्तलोग कहते हैं कि, समस्त संसारमें सर्वेश्वर पुरुष तो एक परम पुरुष परमात्मा राम ही हैं, और सब जीव तो अनाड़ी हैं, इसलिये रामकी स्त्री वा भक्त हैं वा नारी हैं। अथवा पुरुष राम है, और सब जीव नारीरूप प्रकृति हैं।

ऐसो कहै = रहै कहि भारी = इसलिये परम पुरुषके प्रसन्नतार्थ भक्तिका शृङ्गार करो ! ऐसा भक्त गुरुवालोग कहते हैं कि, परमेश्वर ही एक बड़ा भारी है। अतः रामका नाम स्मरण करो, ऐसा कह कर धोखेमें ही पड़े रहते हैं ,।

व्याख्या— वैरागी भक्तलोग पागलवत् होकर बोलते हैं कि, संसारमें एक सर्वशक्तिमान् पुरुष तो रामचन्द्र भगवान् परमेश्वर ही हैं। और सब जीव तो प्रकृतिवश होनेसे अज्ञानी हैं; सो रामके अंश होनेसे सब ही जीव रामकी नारी ही हैं। और भक्त तो उनकी खास महारानी हैं; ऐसे-ऐसे कल्पित कथन कहते हैं, और रामको ही बड़ा भारी कर्त्ता पुरुष कह करके मिथ्या धोखेमें ही पड़े रहते हैं; बिना विवेक कल्पित नाम-स्मरण आदिमें लगे रहते हैं ॥ ६२३ ॥

२७. गुप्त कहानी हरिकी कहई * प्रत्यक्ष साधु गुरु मत न आचरई ॥ ६२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुप्त कहानी = हरिकी कहई = विष्णुके गुप्त-प्रगट होनेके दश अवतारोंकी कथा पुराणोंमेंका कहते हैं। कोई उसे निर्गुण, निराकार गुप्त कथन करते हैं। कहते हैं कि, उसी महा विष्णुसे जगत् उत्पन्न हुआ; परन्तु, वह तो गुप्त ही है।

प्रत्यक्ष साधु गुरु = मत न आचरई = ऐसे मूढ़, पक्षपाती बने हैं कि, प्रत्यक्षमें पारखी साधु सद्गुरु सत्य उपदेश दे रहे हैं, सो लेते ही नहीं हैं। सत्य मतको लेकर शुद्ध आचरण भी नहीं करते हैं। दुराचरणमें ही पड़े या पड़ रहे हैं ॥

व्याख्या— भक्त लोग विष्णुकी गुप्त कहानी कहते हैं। पुराण आदि ग्रन्थ बाँच करके चौबीस (२४) अवतारोंकी लीलाका वर्णन करते हैं। कहा हैः—

चौपाईः— "अगुण अरूप अलख अज जोई। भक्त प्रेम वश परगट होई ॥"—रामायण ॥

ऐसा हरिको निर्गुण बताकर उसके गुप्त-प्रगट होनेकी कहानी बना करके कहते हैं। और प्रत्यक्ष-में विवेकी साधु-गुरुका मत जो कि, मुक्ति देनेवाला है, उसके आचरण, आचार-विचारको तो पालन ही नहीं करते हैं; ऐसे वे अन्यायी, अविचारी बने हैं। प्रत्यक्ष सद्गुरुके पारखपदको छोड़ करके कल्पनामें भूले पड़े हैं ॥ ६२४ ॥

२८. तेहिको पारख निजुकै जानै ❀ तेहि सेवकसों प्रीति जो ठानै ॥ ६२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तेहिको पारख = वैसे लोगोंकी रीति-रहनी
निजुकै जानै = आदिका पूर्ण पारख करके अपने पहले ही जान लेवे। यानी निज तरफसे ठीक-ठीक पारखदृष्टिसे परीक्षा करके उसका हाल जान लेना चाहिये।

तेहि सेवकसों = ऐसे सब सेवकोंको
प्रीति जो ठानै = परखानेके वास्ते उनसे प्रेम-प्रीति ही लगानी चाहिये। जो उन्होंसे प्रीति करते हैं, वे ही चेता भी सकते हैं ॥

व्याख्या— ऐसे भ्रमिक लोगोंके मतको अपने स्वयं ही पारख करके उसके हाल-चालको अच्छी तरहसे जान लेना चाहिये। उसे परखानेके वास्ते प्रथम उसे अपनाय करके भेद जान लेवे। उन भक्त सेवकोंसे जो प्रेम-प्रीति ठान लेते हैं, उन्हींसे वे लोग भी अपना हितकर समझ करके प्रेम-करने लग जाते हैं; और फिर उपदेश भी सुनने लगते हैं। तब उन्हें चेताया जा सकता है ॥ ६२५ ॥

२९. ठान प्रीति ताहि सम होई ❀ सखी सैन लखी सखी समोई ॥ ६२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ठान प्रीति = फिर प्रेम-प्रीति लगा करके या
ताहि सम होई = प्रेम करके उन सेवक-भक्तों-से घुल-मिल जाय, समता रक्खे, बराबर सत्य शिक्षा दे, हितकारी होवे, उसको समान रीतिसे समझावे, तो ही उसे बोध होगा; सो समझ लो !

सखी सैन लखी = जैसे एक सखीके इशारा-
सखी समोई = को दूसरी सखी समझ जाती है। तैसे ही भक्तोंकी वाणीके इशारामें अबोध भक्त समा करके नाच रहे हैं। सो उनका मित्र बन करके धीरे-धीरे इशारासे समझाना चाहिये, तभी समझेंगे ॥

व्याख्या— सेवकोंसे प्रीति लगा करके प्रेमसे उपदेश देवे, प्रीति ठान देनेसे वह भी बराबर प्रेम करनेवाला होयगा। समताके प्रभावसे कुछ दिनोंमें उसे भी बोध हो जावेगा। जैसे एक सखी वा सहेलीके सैन-बैनको दूसरी सखी भी लख करके झट उस इशाराको समझ जाती है। फिर उसी मुताबिक चलती है। तैसे ही भक्तलोग भक्तिमार्गकी नारी=सखियाँ बने हैं। उनके ही ग्रन्थोंका प्रमाण दे करके उनका मित्र बनकर समझानेसे फिर वे लोग भी क्रमशः समझने लग जाते हैं ॥६२६॥

३०. सैन बैन एकान्त करि पावै ❀ कसर देखाय सुमति प्रगटावै ॥ ६२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सैन बैन = जब सैन-बैनमें एकता होवे,
एकान्त = उसका अन्त भेद पता पा जावें,
करि पावै = तब वह भक्त जब अकेला होवे, तो एकान्तमें पहले इशारासे, फिर स्पष्ट वाणीसे उसे उपदेश समझाना चाहिये।

कसर देखाय = फिर उसकी मानन्दी किया
सुमति प्रगटावै = हुआ मतमें, साधनामें, मार्गमें, रहनी-रहस्यमें जो कुछ भी कसर-खोट है, सो प्रगट करके देखावे। शुद्ध मति-बुद्धि-को उसमें प्रगट करावे, सत्य बोध कर देवे ॥

व्याख्या— फिर मेल-मिलापके रूपमें ही पहले तो उन्होंको इशारा-ही-इशारासे वाणी कह करके समझावे। पीछे जब सैन-बैनमें एकान्त कर पावे, तब अकेला होवे, उस वक्त स्पष्ट-खुलासा-से भेद बतला करके उसके मत, पन्थ, सिद्धान्तमें कसर-खोट दिखला करके बोध करे। शुद्ध मति-बुद्धिको प्रगट करावे। यथार्थ निर्णयको बतला करके लखा देवे, तो फिर वे भी लख लेंगे ॥ ६२७ ॥

३१. जबते जाइ कसर ठहराई * छोड़ै तुरित न नेरे जाई ॥ ६२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जबते जाइ = कसर ठहराई = जबसे उसकी समझमें भी कसर-खोट ठहर जायगा कि, झूठी ही साधना है, ऐसा समझ जायगा, तब फिर—

छोड़े तुरित = न नेरे जाई = उस मत, पक्ष, धोखेको वह भक्त छोड़ देगा। तुरन्त ही त्याग देगा। फिर उसके नजदीकमें भी नहीं जायगा; न्यारा होवेगा ॥

व्याख्या— जबसे विवेक करके उसकी मत-मानन्दीमें कसर, भ्रम, कल्पना ठहर जायगी; वह भक्त भी विचार करके कसर ठहरायेगा, उसके समझमें आ जायगी, तब तो तुरन्त ही उस धोखेको वह छोड़ देगा। फिर छोड़ देनेपर उस अनुमान-पाखण्डोंके नजदीकमें भी वह भक्त नहीं जावेगा। समझ-बूझ करके उस तरफसे निकल आवेगा, फिर उनके निकट भी होनेको नहीं जावेगा ॥ ६२८ ॥

३२. तब पारख निज मत प्रगटावै * ताको रूप प्रत्यक्ष लखावै ॥ ६२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तब पारख निज मत प्रगटावै = पारखी सद्गुरु तभी ही अपना पारख सिद्धान्त सत्य मतको प्रगट करके बतलाते हैं। तब उसको बोध लगता भी है। इसलिये तभी निज पारख मतको उसके सन्मुखमें प्रगट करे। और—

ताको रूप = प्रत्यक्ष = लखावै = ऐसे शुभ अवसरमें ही उस भक्तको जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा भेद, सत्यासत्य, सारासारका वास्तविकरूप निर्णय द्वारा प्रत्यक्ष कराके लखा देवे ॥

व्याख्या— तब ऐसे अधिकारी होनेपर ही निजमत पारख सत्य सिद्धान्त प्रगट करके उसे बता देना चाहिये। उसको चैतन्य जीवका स्वरूप प्रत्यक्ष करके लखा देवे। जीवसे परे और कोई भी सत्य वस्तु नहीं है। जीवका स्वयं स्वरूप पारख है। ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाणसे स्वरूप ज्ञान करा देवे। जीव स्वयं प्रत्यक्ष है; जड़ तत्त्वका संसार भी अनादि है, इत्यादि बोध करा देना चाहिये ॥ ६२९ ॥

३३. लखै रूप रूपसो होई * ठहर रहै आपन पद जोई ॥ ६३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

लखै रूप = रूपसो होई = जब वह सेवक सत्स्वरूप चैतन्य जीवको सबसे न्यारा अपना रूप लखेगा या जानेगा। और मानन्दीको भ्रम समझेगा, तो वह भी सोई बोधरूपमें या पारख स्वरूपमें ही ठहरेगा, यानी सोई पारख स्वरूपमें कायम होगा।

ठहर रहै = आपन = पद जोई = फिर तो अपना पारखपद सबसे भिन्न या न्यारा जानकर या विवेकसे देखकर निजपदमें ही ठहर करके स्थिर हो रहेगा। भ्रम-कल्पना आदिसे छूट जायगा ॥

व्याख्या— जब वह निज स्वरूपको विवेक करके लख लेगा, तब फिर सो वह भी हंसरूप ही हो जावेगा। फिर तो अपना सर्वोच्च पारख पदको ही देख करके स्वरूप स्थितिमें ही ठहरकर स्थिर हो रहेगा। सब चञ्चलताएँ उसकी छूट जायेंगी; निजपदमें स्थिर हो जायगा ॥ ६३० ॥

३४. लखै सुलक्षण आदि कहानी * जाते जीव होय निजु खानी ॥ ६३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

लखै सुलक्षण आदि कहानी = फिर गुरुबोध होनेसे शुद्ध लक्षण दया, सत्य, विचारादि-को धारण कर लेंगे। हंस होकर ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ताकी कहानी कल्पित कथाको भ्रम बन्धन लख लेंगे वा जान लेंगे।

जाते जीव होय = निजु खानी = जिससे वह नरजीव पशु खानीसे छूट करके मनुष्यखानीमें आकर हंस हो करके निजस्वरूपमें स्थिर होकर आवागमनोंसे मुक्त हो जाते हैं; अभी वे सच्चे मनुष्य बन जाते हैं ॥

व्याख्या— फिर हंस देहके शुद्ध गुण-लक्षणोंको धारण करके आदि कहानी = प्रथम मनुष्य

देहकी अपनी भूल-भ्रमको वह भी अच्छी तरहसे लख लेगा। किस प्रकार ब्रह्म-भ्रमकी भूलमें पड़कर जीव भव-बन्धनोंमें पड़ा, सो भी जान लेगा। जिससे वह नरजीव मनुष्य देहमें ही निजु-खानी=सच्चा विवेकी हंस देहधारी हो जायगा। और खानी-वाणीसे न्यारा निज स्वरूपको समझकर निर्बन्ध हो जायगा; स्वतन्त्र हो रहेगा ॥ ६३१ ॥

३५. हे शिष्य ! धर्म जालको भाऊ ❀ कहेउँ यथा उपदेश प्रभाऊ ॥ ६३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! धर्म=जालको भाऊ= हे प्रेमी शिष्य ! धर्म जाल-जालको भाऊ=में भक्तिमार्ग और योगमार्ग ये दो भेद हैं। इनमें पड़े हुए मनुष्योंका सुधार करनेकी युक्ति-प्रयुक्ति आदिके भेद तुम्हें मैंने बता दिया हूँ ! और—

कहेउँ यथा उपदेश प्रभाऊ= उन्हें जैसे उपदेश देना चाहिये, वैसी विधि यथार्थ रीतिसे निर्णय करके मैंने तुम्हें कह दिया हूँ ! इसी प्रकार उपदेश देनेसे ही उन्हें प्रभाव पड़ेगा, सो जानो ! ॥

व्याख्या— इसप्रकार हे शिष्य ! धर्म जालके बन्धन, भक्ति, योगमार्गके फन्दा गुरुवालोगोंका जञ्जाल जो कुछ भी है, उसका संक्षेपमें सम्पूर्ण भेद दिखला करके, तुमको बता दिया हूँ ! जैसे जिस-जिस तरहसे उन लोगोंको यथार्थ उपदेश युक्तिपूर्वक देना चाहिये, सो उपदेश देनेकी रीतिका प्रभाव सब भी मैंने तुमको कहके सुना दिया हूँ ! सो इसीप्रकार अपना प्रभाव जमाकर सत्य उपदेश देना चाहिये; तभी उनपर प्रभाव भी पड़ सकता है ॥ ६३२ ॥

३६. येहूते अति ज्ञानि प्रचण्डा ❀ तेहु सुनहु शिष्य ! प्रगट ब्रह्मण्डा ॥ ६३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

येहूते अति ज्ञानि प्रचण्डा= इन भक्त, योगियोंसे भी अत्यन्त कठिन बड़े पक्षपाती भ्रमिक ज्ञानीलोग होते हैं। वे तो बड़ी तीव्र-तीक्ष्ण कल्पनामें पड़े हैं। जल्दी, सहजमें उनका पक्ष नहीं छूटता है।

तेहु सुनहु शिष्य !=हे शिष्य ! वह भी सुनो ! संसारमें वे—

प्रगट ब्रह्मण्डा=ज्ञानीलोग भी बाहर ब्रह्माण्डमें विचरण कर रहे हैं। और उन्होंके सिद्धान्तकी वाणी वेद-वेदान्तादि ग्रन्थोंके रूपमें प्रगट वा जाहिर है। उन्होंको चेतानेकी युक्ति भी मैं प्रगट करके तुम्हें कहता हूँ, सो सुनो ! प्रथम उनके सिद्धान्त सुनो ! ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! इन उपासक भक्त और योगीलोग धर्म मार्गियोंसे भी अति प्रचण्ड ज्ञानीलोग होते हैं। उन्हें जल्दी किसीका उपदेश ही नहीं लगता है; क्योंकि, वे दूसरेकी बातको सुन करके मानते ही नहीं हैं; बड़े अभिमानी होते हैं। वे भी ब्रह्माण्डरूप संसारमें अपना मत प्रगटरूपमें प्रचार करके फिर रहे हैं। उन्हें चेतानेकी युक्ति भी मैं अब प्रगट करके कहता हूँ, सो ध्यानसे सुन लो ! ॥६३३॥

दोहाः— धर्म त्यागि बहु जीयरा ❀ ज्ञानी स्वयं प्रकाश ॥
[२७२] ज्ञान मते मत प्रगट है ❀ ब्रह्मास्मि पै बास ॥ ६३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

धर्म त्यागि बहु जीयरा= बहुतेक नरजीव या कई मनुष्य तो कर्म, उपासना, योग, भक्ति आदिके धर्म मार्गको त्याग करके आगे बढ़ गये।

ज्ञानी स्वयं प्रकाश= तो वे ब्रह्मज्ञानी हो गये। फिर ब्रह्मको स्वयं प्रकाश, सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक मान लिये। कोई ज्योति प्रकाशरूप भासको ही ब्रह्म सच्चिदानन्द मान लिये।

ज्ञान मते मत प्रगट है= वे ब्रह्मज्ञानी परमहंस दशामें उन्मत्त गाफिल हुए। सो—ब्रह्मज्ञानका अद्वैत मत संसारमें प्रगट वा जाहिर ही है। उन भ्रमिकोंने ही खूब प्रगट किये हैं और विस्तार कर रहे हैं।

ब्रह्मास्मि पै बास= तहाँ "अहंब्रह्मास्मि,

सर्वं खल्विदंब्रह्म, एकोब्रह्माद्वितीयोनास्ति" ऐसा कह कर व्यापक ब्रह्म हुए। उसमें बासा किये। परन्तु, उन भ्रमिकोंकी स्थिति कुछ भी नहीं हुई। इसलिये उसी जगत् वासना-से पै=परन्तु, उसी चौरासी योनियोंमें ही पैदा हुए। वहीं उन्होंका निवास हुआ॥

व्याख्या— बहुत नर जीव तो धर्मकी साधना भक्ति, योगादिको भी त्याग करके आगे बढ़े, तो वे ब्रह्मज्ञानी हुए। तहाँ द्वैत मार्गको भ्रम जान करके त्याग दिये और अद्वैत सिद्धान्तको सत्य मान करके पकड़ लिये। उन ज्ञानियोंने ब्रह्मको स्वयं प्रकाश मान लिये हैं। कोई ब्रह्म ज्योतिका प्रकाश स्वयं है। कहते हैं; वे ज्ञानमार्गके अद्वैतमतमें जा करके पक्षपाती होकर उन्मत्त हुए। वह मत वेदान्त शास्त्रमें प्रगट करके कहा है। 'अहंब्रह्मास्मि' कहकर उसी कल्पनाके ऊपर निवास किये हैं। परन्तु, जीवकी उसमें कुछ भी स्थिति नहीं होती है, जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें ही निवास करते हैं॥ ६३४॥

दोहाः— ऐसो खानि कलेशता ❀ पाये बहुतक जीव॥
[२७३] स्वयं अस्मि हन्ता सहित ❀ बसै और करि पीव॥ ६३५॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसो खानि= ऐसे या इसप्रकारसे ब्रह्मको
कलेशता= सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक माननेसे चारखानीके जन्मृतिसे न्यारे नहीं हुए। किन्तु, उसी चार खानियोंमें ही जा-जा करके त्रिविधि तापादिके दुःख कष्ट-क्लेशको भोगे और भोग रहे हैं।

पाये बहुतक जीव=यद्यपि जीव अनन्त हैं, तो भी एक ब्रह्म हो करके वा मान करके अनन्त चौरासी योनियोंके खानीमें जा-जा करके अनन्त जीव अनेक तरहसे बहुतेक दुःख ही पाये या पा रहे हैं; तो भी वे नहीं चेतते हैं।

कयोंकि—

स्वयं अस्मि= "मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं जगत्में
हन्ता सहित= व्यापक हूँ! मेरा ही खेल यह जगत् सृष्टि है।" ऐसा मानकर अपने स्वयं सत्य स्वरूपको भूल करके पञ्च अहङ्कारके सहित जड़ाध्यासी हुए।

बसै और= इसीसे कोई ब्रह्म बने, कोई अपने-
करि पीव= से भिन्न और ही कोई ईश्वर पति वा पिया मानकर धोखेमें पड़ रहे हैं! और उसी वासनासे चौरासी योनियोंमें ही बसे हैं और बैठ रहे हैं, भूल रहे हैं॥

व्याख्या— ऐसे ब्रह्मके भ्रममें पड़ करके चारखानी-चौरासी योनियोंके कष्ट-क्लेश त्रिविधिताप आवागमनादिके अनेकों दुःख बहुतेक जीवोंने पाये और दुःख पा ही रहे हैं। वे लोग 'मैं स्वयं ब्रह्म हूँ!' 'स्वयं अस्मि'-ऐसी हन्ताके सहित भ्रमिक होकर धोखेमें बैठ गये। और ही मिथ्या कल्पनाको प्रिय करके ब्रह्मको अपना पीव मान लिये; फिर अपने ही ब्रह्म बने। इसतरहसे जीवने अपनेको भूलकर और ही ब्रह्मको पीव मान लिया। फिर अहङ्कारके सहित 'मैं स्वयं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा कह कर भव-बन्धनमें ही पड़े; वहीं बैठ गये। इसीसे चारखानीमें जाकर निवास किये हैं॥ ६३५॥

दोहाः— तेहि उपदेशन कौन विधि ❀ सुनहु शिष्य! दै कान॥
[२७४] ताही मत बासीनको ❀ थापै गुरुके समान॥ ६३६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

तेहि उपदेशन= उन ज्ञानी या ब्रह्मज्ञानियों-
कौन विधि= को उपदेश देकर चेतानेकी विधि-रीति कौन है? कि—

सुनहु शिष्य!= हे प्रेमी शिष्य! अब तुम मेरे
दै कान= उपदेशको कान और चित्त लगा करके सुनो! प्रबल युक्तिसे ही वे चेत सकते हैं। इसलिये प्रथम तो उनके उपदेशको सुनो!

ताही मत= फिर उस ब्रह्मज्ञानके मतमें
बासीनको= निवास करनेवाले ज्ञानियोंको मान, सम्मान, प्रतिष्ठा दे करके—

थापै गुरुके समान=गुरुके समान स्थापना करे। यानी श्रोता या शिष्यरूपमें बनकर उनके उपदेशको ही पहले सुनता जाय। उनको बड़प्पन देकर कुछ टहल भी कर देवे॥

व्याख्या— हे शिष्य ! तुम कान लगा करके मेरे वचनोंमें लक्ष्य दे कर सुनो ! ऐसे ब्रह्मज्ञानियों-को उपदेश कौन प्रकारसे देना चाहिये ? सो उन्हें उपदेश देनेकी विधिमें प्रथम भूमिका ऐसा करे कि, वेदान्तके सिद्धान्त ज्ञानमार्गके मतको माननेवाले उन ज्ञानी ज्ञानमतके निवासियोंको प्रथम तो गुरुके समान थापै; आदर-सत्कार दे करके मानै, बड़ा बना देवे ॥ ६३६ ॥

दोहाः— शिष्य! जानि मत देइ वह ❀ अन्तस अपनो रूप ॥
[२७५] मेल परस्पर कियेते ❀ देखै मत सो अनूप ॥ ६३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

शिष्य! जानि = हे शिष्य ! फिर तो वह
मत देइ वह = ज्ञानी अपने ही शिष्य होनेको आया होगा, ऐसा जान करके तुम्हें शिष्य समझ करके अपनी मत-मानन्दीके वेदान्त सिद्धान्तको तुम्हें बता देंगे। वह जो बात कहें, बतावें उसे तुम ध्यानमें रखना।

अन्तस = आखिरमें अन्तःकरणमें उसने
अपनो रूप = जो निश्चय किया है, सोई सिद्धान्त तो बतावेंगे। अपना और तेरा रूपको एक ब्रह्म ही बतावेंगे, अद्वैत कथन करेंगे। फिर हृदयमें तो अपना स्वरूप वैसा ही रहता है। और—

मेल परस्पर = आपसमें मेल-मिलाप, प्रेम-
कियेते = प्रीति करके परस्परमें मेल बढ़ाते ले जानेसे उसकी सब बातोंको जान जाओगे। और—

देखै मत = उसका माना हुआ उपमासे
सो अनूप = रहित निर्गुण-निराकार एक निरञ्जन ब्रह्मका अनूप अद्वैत मत सब तरहसे भ्रमरूप देखनेमें आ जायगा। उसे परखकर विवेकदृष्टिसे निज स्वरूपको ही सत्य देखे, कभी असावधान न होवे ॥

व्याख्या— ऐसा करनेसे वह ज्ञानी गुरुवालोग शिष्य वा सिखारू जान करके तुम्हें उपदेश देकर अपना मत बता देवेंगे, अन्तःकरण खोल करके अपना स्वरूप भी दिखा देवेंगे। अर्थात् जैसा उन्हें अन्तःकरणमें अपना स्वरूपके बारेमें निश्चय है, तैसा रूप दिखा करके अपना मत वा सिद्धान्त तुम्हें कह देवेंगे। ऐसे परस्पर मेल-मिलाप करनेसे सो उनका अनूप माना हुआ अद्वैतमत देखनेमें आ जायगा। फिर उसे देखे, तो निर्णय करके परखे-परखावे; धोखाको उन्हें दिखावे ॥ ६३७ ॥

दोहाः— देई बहुत स्याबासता ❀ ताहि हर्ष बहुतेश ॥
[२७६] पुनि शङ्का तापर करै ❀ ताहि मताके देश ॥ ६३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

देई बहुत स्याबासता = उनके चित्त प्रसन्न करनेके वास्ते कुछ बड़ाई भी कर देवे। धन्य हो महाराज ! आप बड़े प्रवीण ज्ञानी हो, कह देवे, श्याबासी देकर बहुत प्रशंसा करनेसे वे भी तुम्हें श्याबासी देंगे, बहुत अच्छा मानेंगे।

ताहि हर्ष बहुतेश = ऐसे होनेसे उस ज्ञानीको तुम्हें देख करके और तुम्हारी प्रशंसा सुन करके बहुत ही हर्ष, खुशी वा प्रसन्नता हो जायगी। वह तो गद्-गद् हो जायगा।

पुनि शङ्का तापर करै = तदनन्तर फिर समय पा करके योग्य समयमें जब वे प्रसन्न बैठे हों, तब ब्रह्मज्ञानके सिद्धान्तमें शङ्का करे, तो फिर शङ्का करता ही जाय।

ताहि मताके देश = उनकी मत-मान्यता या आदेश, उपदेशके ही अनुसार असिद्धता दोष, असम्भव बात दिखा करके उन ब्रह्मज्ञानीसे शङ्का-समाधान करे। ब्रह्मज्ञानमें उन्हें कसर बतावे, निर्णय करै ॥

व्याख्या— फिर उन्हें बहुत श्याबासी देवे; बड़ाई, प्रसंसा कर देवे कि, आप बड़े विद्वान् हो, वेदान्त शास्त्रके सिद्धान्तके जानकार हो, आपकी बड़ी तीव्र बुद्धि है, अनोखी सूझ-बूझ आपमें है, ब्रह्मज्ञानमें तो आप बड़े प्रवीण हो, धन्य हो महाराज ! मुझे भी आप अपना ज्ञान बोध कर देने-की कृपा करें तो अच्छा हो। आपकी दया होनी चाहिये, इत्यादि कह करके श्याबासता देवे। तब तो

तुम्हारी बड़ाई सुन करके उन्हें बहुत ही हर्ष-प्रसन्नता होगी। फिर वे समझाते जावेंगे, तो उसपर अपनी शङ्का प्रगट कर देना। उनके मत-सिद्धान्तके देशमें उन्हींके आदेश, कथन, उपदेशमें असम्भव बात बतलाकर दोष दिखा देना। फिर उनकी बातपर शङ्का ही प्रगट करते जाना ॥ ६३८ ॥

दोहाः— शङ्का जौन प्रकारकी ❀ ब्रह्म एक बहु जीव ॥
[२७७] एक ब्रह्मते जीव बहु ❀ काहे भयऊ ? को कीव ?॥ ६३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! सुनो !—

शङ्का जौन प्रकारकी = जिसप्रकार ब्रह्मज्ञानीसे शङ्का करनेकी है, उसका नमूना वा रीति ऐसी है कि, इसप्रकार शङ्का प्रगट करे कि, हे ब्रह्मज्ञानीजी ! यह बतलाइये कि—

ब्रह्म एक बहु जीव = आपने ब्रह्मको एक ही अद्वैत कहा है, यहाँ तो जीव बहुतेक वा अनन्त-असंख्य दिखाई दे रहे हैं, सो यह कैसी बात है ? बहुत क्यों दिखते हैं ?—

एक ब्रह्मते जीव बहु = फिर एक ब्रह्मसे ही बहुत जीव पैदा हुए, ऐसा कहना, तो वह बात भी नहीं सम्भवती है। क्योंकि, बहुत होनेसे अद्वैत मतका खण्डन हुआ। बनी हुई वस्तु बिगड़ती ही है; जीव तो अखण्ड है। फिर भी एक ब्रह्मसे ही बहुत जीव उत्पन्न हुए, ऐसे कैसे कहोगे ?—

काहे भयऊ ? को कीव = तो कहो भला ! ऐसा क्यों हुआ ? एक ब्रह्ममें कौन-सा विकार उत्पन्न हुआ ? जिससे वह फूटा ? किसने ऐसा किया ? और क्यों किया ? सो कहिये ! ॥

व्याख्या— उनसे जिसप्रकारकी शङ्का करनी चाहिये, उसका नमूना ऐसा है कि, ब्रह्म एक है, तो जीव बहुत कैसे हुए ? जीव तो बहुत हैं, सो प्रत्यक्ष ही हैं, फिर एक अद्वैत ब्रह्म सत्य कैसे हुआ ? और यदि ब्रह्म एक ही सत्य है, तो एक ब्रह्मसे बहुतेक वा अनन्त जीव क्यों उत्पन्न हुए ? और किसने किसलिये ऐसा किया ? जीवको किसने ऐसा किया ? सो समझा करके कहिये ! ॥ ६३९ ॥

दोहाः— आप स्वतः प्रकाशमें ❀ ब्रह्म हन्त कर्तार ॥
[२७८] जीव सृष्टि कौने किया ? ❀ दुःख सुखको दातार ॥ ६४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! ब्रह्मज्ञानियोंसे इसप्रकार पूछना कि—

आप स्वतः प्रकाशमें = आपने तो कहा है कि, ब्रह्म स्वयं प्रकाशमें निर्विकार पूर्ण रहता है। दूसरा मायाका विकार अज्ञान अन्धकार उसमें नहीं है।

ब्रह्म हन्त कर्तार = फिर उस ब्रह्ममें 'एकोहं बहुस्याम्, अहंब्रह्मास्मि' ये अहङ्कार कहाँसे आया ? जगत्कर्त्ता कैसे हुआ ? यह सब बात कहने-माननेवाले तो आप ही हो ! आप ही ब्रह्महन्ताको लेते हो ! और—

जीव सृष्टि कौने किया ? = जड़ तथा चैतन्य जीवरूप संसारकी सृष्टि पहले नहीं थी, तो फिर किसने जीवकी सृष्टि किया ? क्यों किया ? कैसे किया ? कहाँसे लाके सृष्टि किया ? और—

दुःख सुख को दातार = दुःख-सुख जो हो रहा है, सो बिना कर्म-कारणसे हो रहा है ? कि, कारणसे ? जीवोंको दुःख-सुख देनेवाला कौन है ? कहाँ रहके देता है ? सो बतलाइये ? इत्यादि यही शङ्का उनसे करे ॥

व्याख्या— अर्थात् आप-ही-आप स्वतः प्रकाशमें ब्रह्म अकेला ही था, तो फिर अहङ्कार लेकर जगत्का कर्त्ता क्यों बना ? यदि ब्रह्ममें अहङ्कार नहीं है, तो वह कर्तार भी हो नहीं सकता है। फिर ऐसी हालतमें जीव सृष्टि, जगत् सृष्टिको किसने उत्पन्न किया ? जीवको दुःख-सुख देनेवाला कौन है ? सो बिना ही कारणके वह दुःख-सुख देता है ? कि, कारण करके देता है ? जीव प्रथम नहीं थे, तो बिना ही कर्म अभ्यासके देहधारी तो भी कैसे हुए ? सो यथार्थ बात कहिये ? इत्यादि प्रकार-से शङ्का करे। जो कुछ वे समझावेंगे, फिर उसमें और भी निर्णयसे शङ्का करते जावे ॥ ६४० ॥

दोहाः— दुःख सुख ब्रह्महि नहिं कहै * शिष्य ! कहहु तेहि पाहि ॥
[२७९] जीव भूलते है सही * परसि ब्रह्मपद आहि ॥ ६४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

दुःख सुख ब्रह्महि नहिं कहै = तब तो ब्रह्मवादी कहेंगे कि, ब्रह्ममें तो कोई दुःख-सुख ही नहीं है। अरे ! यह तो मिथ्या भ्रान्ति है। ब्रह्म एक है, द्वैत मानना ही भ्रम है।

शिष्य ! कहहु तेहि पाहि = तब हे शिष्य ! फिर उनके प्रति कहो, पूछो कि, यह भ्रम किसको हुआ ? अद्वैतमें तो ऐसा भ्रम होना नहीं सम्भवता है।

जीव भूलते है सही = हे नर ! यह जीव ही वास्तवमें सत्य है। मनुष्यने ही अपने सत्य स्वरूपको भूल कर कल्पनासे कोई ब्रह्मको सत्य माना है। और वह जीवकी भूल सच्ची है कि, मिथ्या है ?—

परसि ब्रह्मपद आहि = उस माना हुआ ब्रह्म पदको क्यों प्राप्त करना चाहते हैं ? कोई अपनेसे भिन्न ब्रह्मको मुक्तपद माने हैं। तहाँ जीव-ब्रह्मकी एकता करना चाहते हैं। कोई जीव-ब्रह्ममें अभेद बतलाते हैं। 'अहंब्रह्मास्मि' कहते हैं, जीवकी भूलसे ही कोई ब्रह्मपद है, वह प्राप्त होता है; ऐसी मानन्दी हुई। ऐसे-ऐसे भ्रममें पड़े हैं ॥

व्याख्या— शङ्काके उत्तरमें वे कहेंगे कि, दुःख और सुख सो तो ब्रह्ममें है ही नहीं। ब्रह्म तो सुख-दुःखसे परे शुद्ध है। फिर हे शिष्य ! तुम उसी बातको उलटकर उनके प्रति कहो कि, यदि ब्रह्ममें दुःख-सुख नहीं है, तो फिर दुःख-सुख किसमें है ? किसको होता है ? क्यों होता है ? वे कहेंगे कि, जीवके भूलसे ही भ्रम करके वह दुःख-सुखादि होता है, सो असत्य है। और सत्य तो एक ब्रह्म ही है। जब सहीरूपसे जीव उस ब्रह्मपदको परसेंगे वा प्राप्त करेंगे, तब वह भ्रम भी मिट जायगा; इत्यादि कहेंगे। सो उनसे कहो कि, जब जीव भूलते हैं, तो द्वैत ही सत्य है। अद्वैत मिथ्या है। दोके सम्बन्ध हुए बिना तो कहीं एकमें भूल ही नहीं होती है। ब्रह्मपद है, वह प्राप्त होता है, ऐसा कहते हो, तो उसे प्राप्त करनेवाला दूसरा जीव भिन्न हुआ कि, नहीं ? सरासर भिन्न ही हुआ ? इसी भूलसे जीव बद्ध हुए हैं ॥ ६४१ ॥

दोहाः— भयो जीव यहि ब्रह्मते * पुनि ब्रह्महि लौलीन ॥
[२८०] तिमि उपाधि सब मेटिके * जल अधार जस मीन ॥ ६४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

भयो जीव यहि ब्रह्मते = वेदान्ती कहते हैं— यह अनन्त जीव सब तो अंशरूपसे ब्रह्म अधिष्ठानसे ही उत्पन्न हुए हैं। इसलिये जीवके ठहरावकी भूमिका ब्रह्म ही है। इसीसे—

पुनि ब्रह्महि लौलीन = फिर अन्तमें भी ब्रह्ममें ही लय हो जायेंगे। इसलिये लक्ष्य एकत्र करके ब्रह्म स्वरूपमें लवलीन होनेसे परमानन्द पाते हैं।

तिमि उपाधि सब मेटिके = तैसे ही मायोपाधिरूप द्वैत जगत् भ्रमको ब्रह्मज्ञानसे सब मिटा करके अद्वैत निष्ठामें ही दृढ़ हो रहे। कैसे ? कि—

जल अधार जस मीन = जैसे मछली पानीके आधारमें सुखी रहती है। इसीतरह जीव भी अधिष्ठान ब्रह्मके ही आधारमें टिके रहते हैं। ब्रह्म बोध होनेसे सुखी मुक्त होते हैं; ऐसा कहा है। किन्तु, एक ब्रह्ममें दूसरी माया उपाधि कहाँसे आई ? ऐसा क्यों हुआ ? सो तो बतलाते ही नहीं हैं ॥

व्याख्या— ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि, यह संसार और जीव सब तो प्रथमारम्भमें ब्रह्मसे ही उत्पन्न हो करके आये हैं; और फिर महाप्रलयमें उसी कारणरूप ब्रह्ममें ही लवलीन होकर वह सब समा जावेंगे। यह भिन्नता तो बीचकी भ्रान्ति मात्र है। द्वैत भासना, तो मायाके उपाधि-भ्रम-

मात्र है। जैसे जलके आधारसे मछलीका जीवन है, जलमें ही वह सुखी रहती है। तैसे ही सब मायाकी उपाधि मेट करके जो ब्रह्मज्ञानमें लवलीन होकर सन्देह रहित हो रहते हैं; वे ही परमानन्दमें मग्न सुखी हो जाते हैं, इत्यादि कल्पित कथन समझावेंगे। तब निर्णयसे उसमें शङ्का उपस्थित करो कि, यदि ब्रह्मसे जगत् जीवकी उत्पत्ति हुई है, तब तो ब्रह्मकी अखण्डताका नाश ही हुआ; वह निराकार भी सिद्ध नहीं हुआ। फिर आप-ही-आप ब्रह्ममें लवलीन तो भी कैसे होगा? स्वरूपसे जड़ और चैतन्यकी उत्पत्ति और नाश मानना, तो मिथ्या भ्रम ही है। दृष्टान्तमें जल जड़ है, मछली जीव चैतन्य है, जड़-चैतन्य दोनोंका सम्बन्ध लगा है, उससे तो द्वैत ही सत्य सिद्ध होता है। उपाधि स्वयं लगी, तो कैसे मिटेगी? सुख-दुःख भी उसमें साबित ही हुआ; अतः एक ब्रह्म माना हुआ ही भ्रम-कल्पना ठहरता है ॥ ६४२ ॥

दोहाः— हे शिष्य! अनन्त दृष्टान्तते ❀ मिलि बोधै तेहि फेर ॥
[२८१] झाँईं दृष्टि मिटै जब ❀ स्वयं स्वरूप लखि हेर ॥ ६४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य!= हे प्रेमी शिष्य! वे अनेकों दृष्टान्त
अनन्त= देकर तुम्हें ब्रह्मज्ञान कहेंगे।
दृष्टान्तते= तुम भी अनन्तों दृष्टान्त देकर उनके मतको काट देना।

मिलि बोधै= ऐसे उनसे मेल-मिलाप करके
तेहि फेर= शान्तिपूर्वक प्रेमसे उन ज्ञानियों-को बार-बार कह-सुनकर बोध करना चाहिये। कल्पनासे हटा करके वा फिरा करके सत्य बोध कर देवे।

झाँईं दृष्टि= ऐसे समझाते-समझाते जब
मिटै जब= उनकी विवेक-दृष्टि हो जायगी, तब ब्रह्म गाफीलीकी दृष्टि मिट जायगी, भ्रम छूट जायगा; और जब झाँईं की दृष्टि मिटैगी—

स्वयं स्वरूप= स्वयं सत्य चैतन्य स्वरूपको
लखि हेर= लख करके हेरेंगे, तब उन्हें भी पारख बोध हो जायगा। 'मैं चैतन्य जीव ही स्वयं सत्य स्वरूप हूँ!' ऐसा जान जायेंगे ॥

व्याख्या— हे शिष्य! वे ब्रह्मज्ञानी अपना सिद्धान्त बतानेके लिये दृष्टान्तः— "मृग-जलवत्, रज्जु-सर्पवत्, खपुष्पवत्, शशाश्रृङ्गवत्, चन्द्रवत्, सूर्यवत्, सूत्रमणि न्याय, बसन पुतरी न्याय, मकड़ी-तारवत्, कछुवावत्, सीपी-रजतवत् और पाँच तत्त्वोंके न्याय" इत्यादि अनन्त दृष्टान्तसे अनमिल सिद्धान्त कथनकर ब्रह्मज्ञानका बोध करेंगे। तहाँ फिर तुम्हें भी उनकी ही बातमें मिलकर दृष्टान्त-सिद्धान्तको उलटा करके उसे पछाड़कर, उन्हें समझा करके बोध करना चाहिये। जब उनकी झाँईं-की दृष्टि मिट जायगी, तब ठहरकर वे स्वयं स्वरूपको लख करके हेरेंगे, विवेकदृष्टि करके देखेंगे। अर्थात् उनके दृष्टान्त-सिद्धान्त कट जानेसे जब मेल-मिलापसे उन्हें अपने पक्षमें कसर मालूम हो जायगा, तो प्रथमकी ब्रह्म मानन्दी झाँईं की दृष्टि पक्षपात मिट जायगा; और स्वयं चैतन्य जीव ही सत्य है, इसके परे कोई ब्रह्म-ईश्वरादि नहीं है, ऐसा लख करके देखेंगे; सो पारख बोधकी तरफ ही टकटकी लगा करके हेरेंगे। जिससे उन्हें भी सत्स्वरूपका बोध सत्सङ्ग द्वारा हो जायगा ॥ ६४३ ॥

दोहाः— जब सो थकै निज कसर लखी ❀ धोखा सब मिटि जाय ॥
[२८२] होय उचाट ब्रह्म जालते ❀ हन्ता कल्पित भाय ॥ ६४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

जब सो थकै= शङ्का-समाधान करते-
निज कसर लखी= करते जब सो ब्रह्मज्ञानी थक जायेंगे, तब अपना मतका ही कसर-खोट कल्पनाको स्पष्ट लखकर जान जायेंगे, तब कायल होंगे।

धोखा सब= फिर ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पनाके
मिटि जाय= धोखादि भ्रम सब उनके मनसे मिट जायेंगे।

होय उचाट= तब उन ज्ञानीको सत्यासत्यका
ब्रह्म जालते= विचार होनेसे फिर वाणी जालकी कल्पित मानन्दी ब्रह्म-भ्रमसे उचाट

वा उदास, अमन हो जायगा, सो फिर त्याग होगा।

हन्ता कल्पित भाय = निरञ्जन ब्रह्मके अभिमान तो मेरे मनकी भावना, मानन्दी, कल्पना-मात्र होनेसे मिथ्या है। "मैं ही मानन्दी करनेवाला जीव सत्य हूँ!" ऐसा जान जायेंगे। तब फिर सब हन्ता कल्पित भावनाको वे छोड़ देंगे॥

व्याख्या— इसप्रकार सत्सङ्ग-विचारमें खण्डन-मण्डन, प्रश्नोत्तर करते-करते जब वे ब्रह्मज्ञानी थक जायेंगे, उनकी युक्ति कटकर सिद्धान्त उड़ जायगा, तब विचार-विवेक करनेसे अपने मत ब्रह्मज्ञानमें ही कसर लखकर देख लेंगे। फिर तो सब धोखा उनके मनसे मिट जायगा। तहाँ 'अहंब्रह्म' की भावना कल्पित ही तो है। इसलिये उसे व्यर्थ जान करके ब्रह्म जाल वाणी-कल्पनासे उच्चाट, उपराम हो जायेंगे। कल्पित भावनाकी हन्ताको वे तब छोड़ देवेंगे; विवेकी हो जावेंगे॥ ६४४॥

दोहाः— हे शिष्य! तीनिउ जाल यह ❀ तोहि कहेउँ उपदेश॥
[२८३] मिलि हिलि निज मत प्रगट करि ❀ मेटै काल कलेश॥ ६४५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! = हे प्रेमी शिष्य! कर्म, उपासना
तीनिउ = और ज्ञान— ये तीनों जीवोंको
जाल यह = फँसानेवाले महाजाल हैं। इन जालोंमें पड़े हुए मनुष्योंको किसप्रकारसे चेतानेसे उन्हें बोध होता है। और—

तोहि कहेउँ = कैसे गुरु उपदेश लग सकता
उपदेश = है, यह बात उपदेश देनेकी रीति, मैंने तुम्हें कह करके बता दिया, युक्ति दर्शा दिया हूँ! इसी प्रकारसे—

मिलि हिलि = यदि उन्हें चतानेका विचार
निज मत = होवे, तो पहिले उन्होंके
प्रगट करि = सिद्धान्तमें प्रवेश करके मेल-मिलापसे प्रेमसे हिल-मिलकर सब भेद और उनके स्वभावको जानकर फिर अधिकारी हों, तो अपना सत्य मत प्रगट करो।

मेटै काल = गुरुवालोग और स्त्रीकी दुःखदायी
कलेश = कल्पना, भ्रम, धोखा, विषयादि काल-जालोंको मिटा करके आवागमन क्लेशसे जीवोंको बचाओ!॥

व्याख्या— हे अधिकारी शिष्य! कर्म मार्गका जाल, धर्म मार्गका जाल और ज्ञान मार्गका जाल, यही तीनों जालोंमें ज्ञानी, योगी, भक्त आदि सब बन्धे पड़े हैं। उन जाल-जञ्जालोंमें फँसे पड़े हुए गुरुवा लोगोंको प्रसङ्ग पड़नेपर कैसे उपदेश दे करके चेताना चाहिये? कैसे उन्हें बोध करना चाहिये? सो हिसाब युक्ति-प्रयुक्ति संक्षेपमें उपदेश देनेका तरीका तुम्हें समझा करके मैंने कह दिया हूँ! समझदारको इशारा ही काफी होता है। अतः इतनेमें ही तुम बहुत कुछ जान सकते हो! उन मतवादी भ्रमिक लोगोंसे भी प्रेम पूर्वक हिलमिलकर निज सत्यमतको प्रगट करके उनकी भ्रम-कल्पनाको छुड़ा करके काल कलेश = पञ्च क्लेशादि मिटा देना चाहिये; काल = गुरुवालोग और स्त्रियोंके फन्दा तथा दुःखोंसे बचा देवे। उनमेंसे जो बुद्धिमान लोग होते हैं, सो समझ लेनेपर काल-जालको त्याग करके न्यारा हो जावेंगे॥ ६४५॥

दोहाः— इन्ह तीनहुँ जालनते अधिक ❀ परमहंस मत आहि॥
[२८४] तेहि अनुरागी जीयरा ❀ मन वच ब्रह्म कहाहि॥ ६४६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

इन्ह तीनहुँ = कर्म, उपासना तथा ज्ञानमार्गमें
जालनते = लगनेवाले कर्मी, भक्त, योगी
अधिक = और साक्षीदशावाले ज्ञानी— इन तीनोंसे भी बढ़ करके महा भ्रमिक ज्यादे ही धोखेमें पड़े हुए—

परमहंस मत आहि = ब्रह्मज्ञानियोंके विज्ञान मार्गका परमहंस मत है। वे बाल, मूक, जड़वत् वृत्ति बना लेते हैं। मनमौजी चाल-वाले होते हैं।

तेहि अनुरागी = उस विज्ञानमार्गमें अनुराग
जीयरा = या प्रेम-प्रीति करनेवाले नरजीव सब निजस्वरूपको भूलकर, गाफिल होकर—

मन वच = } मनसे और वचनसे आप ही
ब्रह्म कहाहि = } 'मैं ब्रह्म हूँ।' ऐसा कहते हैं; और
ब्रह्म कहलाते हैं । फिर 'अहंब्रह्मास्मि'
निश्चय कर लिये हैं, दृढ़तासे ब्रह्मको ही सत्य मानते हैं ॥

व्याख्या— प्रथमके इन तीनों जालोंसे भी अधिक जहँड़े हुए महान भ्रम धोखेमें गाफिल पड़े हुए, ब्रह्मज्ञानमें-विज्ञानमार्गमें लगे हुए परमहंस विज्ञानी कहलानेवालोंका मत है। उस परमहंस मतके अनुरागी नरजीव मन और वचनसे स्वयं ही ब्रह्म कहते-कहलाते हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि' 'शिवोऽहं-शिवोऽहं, हंशिवो-हंशिवो,' रटन करते हुए चिल्लाते हैं, मनमें भी वही मानन्दी दृढ़ किये रहते हैं। 'मैं परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म हूँ' ऐसी धारणा किये रहते हैं। वे अद्वैत सिद्धान्तके पूर्ण पक्षपाती होते हैं ॥ ६४६ ॥

दोहाः— ब्रह्म भरम ईश्वरहु भरम ❀ जीव भ्रम बसि जोय ॥
[२८५] ज्योंका त्यों बतलावहीं ❀ व्याप नास्ति पद सोय ॥ ६४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
ब्रह्म भरम = } कभी तो वे ही ऐसा कहते
ईश्वरहु भरम = } हैं कि, ब्रह्म अवाच्य है, वाणी-से परोक्षमें ब्रह्म शब्द कहना, सो भी भ्रम है। ईश्वर न्यारा द्वैत कहना, सो भी भ्रम है। कहना-सुनना सब ही भ्रम है। देखना भी भ्रम है।
जीव भ्रम = } जो जीव भ्रमके वशीभूत हैं,
बसि जोय = } सोई एक ब्रह्ममें नानात्त्व करके देखते हैं, भूलते हैं। अरे भाई ! जीव कहना भी भ्रम ही है। सिद्धान्तमें परमात्मा 'निःअक्षर' है।
ज्योंका त्यों = } जैसा-का-तैसा, निराकार,
बतलावहीं = } निर्विकार, निर्गुण, निरीह ब्रह्म है; ऐसा विज्ञानी लोग बतलाते हैं। और—
व्याप नास्ति = } चराचरमें पूर्ण व्यापक मुक्त
पद सोय = } पद ब्रह्मको जो माने हैं, सो तो महान नास्ति, असत्य, धोखाका ही पद है। उसको माननेवाले वे बड़े नास्तिक हैं। उसीमें वे गरगाफ हुए और गाफिल हो रहते हैं। ऐसे-ऐसे भ्रमिक हो, संसारमें नाच रहे हैं। जड़ासक्त हो गये हैं ॥

व्याख्या— कभी बातचीत करनेका प्रसङ्ग पड़नेपर वे बैठिकानकी बात करते हैं। ब्रह्मज्ञानका उपदेश कीजिये ! कहनेपर वे कहते हैं— वाणी-विलास सब भ्रम है। अवाच्य ब्रह्म है, फिर वाणीसे कैसे ज्ञानकथन करें ? तुम परोक्षमें जो 'ब्रह्म' कहते हो, सो परोक्ष ब्रह्म भी भ्रम है। ईश्वर भी भ्रम है। जीव सब भ्रमके ही वशीभूत हो रहे हैं। देखो ! संसारमें सब तरफ भ्रम ही फैला हुआ है। आत्मा तो ज्यों-का-त्यों ही आकाशवत् निराकार व्यापक सर्वत्र परिपूर्ण है; एक अद्वैत है। कहो ! फिर उसके बारेमें क्या कहना ? क्या सुनना ? ऐसा परमहंस लोग बतलाते हैं। परन्तु, वह व्यापक माना हुआ आत्मा सो भी तो नास्ति पद, जीवकी कल्पना मिथ्या है। पारख न होनेसे उसीमें भूलकर गाफिल हुए और हो रहे हैं, सो जानो ! ॥ ६४७ ॥

दोहाः— सुखमें बासा जानिके ❀ गये जीव तहाँ फूल ॥
[२८६] ताको उपदेशन कठिन ❀ वचन रचन कहै भूल ॥ ६४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
सुखमें बासा = } परमानन्द, ब्रह्मानन्द,
जानिके = } सच्चिदानन्द महान सुखमें निवास होकर मुक्त होंगे, ऐसा नर जीवोंने जानकर या कल्पनासे ऐसा मानकर—
गये जीव = } आप ही ब्रह्म कहलायके धोखेमें
तहाँ फूल = } जीव फूल गये । तहाँ पुष्पित वाणीके फूलकी सुगन्ध लेने लगे। कल्पना-से व्यापक ब्रह्म बन करके फूले, तो चौरासी योनियोंके अधिकारी हुए।
ताको उपदेशन = } ऐसे परमहंस-दशावाले
कठिन = } विज्ञानीको उपदेश देना, सत्य मार्गमें लगाना अत्यन्त कठिन काम

है। उनको समझाना बड़ा ही मुश्किल है।

वचन रचन = कहै भूल = क्योंकि, वह तो सत्सङ्गकी वाणीकी रचनाको, जगत्को और कहना, सुनना, परखना-परखाना सबको भूल-भ्रम है, ब्रह्म ही सत्य है, कहकर मौन हो जाते हैं, वे मनमुखी होते हैं ॥

व्याख्या— ब्रह्मानन्दमें नित्य सुख, नित्य मुक्त, नित्यतृप्त होनेकी महिमा सुन करके लुब्ध हुए। सो उसमें सदा सुखमें बासा होगा, ऐसा जानकर वा अनुमान करके तहाँ ही धोखेमें जाकर नरजीव भ्रमिक हो करके फूल गये। अपने ही ब्रह्म बन करके वाणी कल्पनामें फूलते-फूलते कुप्पेकी नाईं हुए। तो दशों दिशाओंमें भरा हुआ व्यापक ब्रह्म मानन्दीवाले हो गये। उनमें बाल, पिशाच, मूक, उन्मत्त, जड़वत् दशाको धारण किये हुए परमहंसलोग महामूढ़, महान पशुवत् ही बन जाते हैं! इसलिये उन्होंको उपदेश देना, समझाना, शुद्धमार्गमें लगाकर मनुष्य बनाना, तो अत्यन्त कठिन, कष्टसाध्य है, कोई तो असाध्य भी होते हैं। कोई महान पागलवत् दुर्दशाग्रस्त होते हैं। कोई होशमें रहनेवाले तो वचनकी सम्पूर्ण रचनाको भूल-भ्रम है, ऐसा कहते हैं। वेदके विधि-निषेधसे भी वे परे हो जाते हैं, उसको भी वे नहीं मानते हैं। कहना-सुनना ही भूल है, ब्रह्म 'निःअक्षर' है, ऐसा कहकर गुम-सुम हो जाते हैं। किसीकी बात सुनकर विचार भी नहीं करते हैं, इसीसे उन्हें उपदेश भी नहीं लगता है। बीजक-साखी १७८ में सद्गुरुने कहा है:—

"ऊपरकी दोऊ गई। हियहुकी गई हेराय ॥ कहहिं कबीर जाकी चारिउ गई। ताको काह उपाय ॥"

इसलिये ऐसे लोगोंको समझानेके पीछे नहीं लगना ही अच्छा है ॥ ६४८ ॥

दोहाः— हे शिष्य! ताके शिष्यता ❀ दासातन करु नीत ॥
[२८७] कृपा करै निज मत कहै ❀ ताहि देखु अति हीत ॥ ६४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! ताके = शिष्यता = हे शिष्य! उन सब मतवादी गुरुवाओंकी कसरको जाननेके लिये पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर शिष्यत्वभाव प्रेम-भक्तिको धारण करो! और—

दासातन = करु नीत = दास हो करके शरीरादिसे नित्य साधु-गुरुके सेवा-सत्सङ्ग किया करो, नित्य विवेक करो!—

कृपा करै = पारखी सद्गुरु कृपा करेंगे— निजमत कहै = तो अपना-पराया सबके मतका सार-असारकी परीक्षा तुझे कहेंगे, वा समझायेंगे।

ताहि देखु = अति हीत = उस निर्णय सद्गुरुकी सत शिक्षाको मनन करके विवेकसे देखो! उसे अति हितकारी जानो! और यदि विज्ञानीको चेतानेकी इच्छा हो, तो उनके भी शिष्यवत् बनकर सेवा करनेसे वे कृपा करके निजमत कहेंगे, उसे हितकी दृष्टिसे देखकर सुनना चाहिये ॥

व्याख्या— अथवा हे शिष्य! कभी तुम्हें परमहंस लोगोंके सङ्ग रहनेका मौका पड़े, और उन्हें चेतानेकी अभिलाषा हो, झंझट सहन करनेकी शक्ति हो, दीनता होनेका सामर्थ्य हो, तो ऐसा करना पड़ेगा कि, उन विज्ञानियोंमें जो शुद्ध सात्त्विक वृत्तिसे रहते हैं, शुद्ध आचार-विचारसे बर्तते हैं। वे समयपर साथमें रहनेवालोंको कुछ उपदेश भी कर देते हैं। इसलिये उनके निकटमें शिष्यत्व-सिखारू भावसे रहकर नित्य दासातनसे यथाउचित सेवा करनी चाहिये। फिर वे विज्ञानी प्रसन्न होकर कृपा करेंगे, तो उनके निजमत कहेंगे। जो उनकी दृढ़ मानन्दी है, सो बतलावेंगे। उसे प्रेमसे सुन करके अति हितपूर्वक देखो! अथवा उनके हितकारी सुहृद बनकर अपनी तरफसे कृपा करके उन्हें देखो कि, वे कैसे भ्रममें पड़े हैं? ॥ ६४९ ॥

दोहाः— हितके सेवा कियेते ❀ सो हृदया न दुराव ॥
[२८८] दूरै न तोरी दृष्टिते ❀ पर उपदेश स्वभाव ॥ ६५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

हितके सेवा = } हितकारी होकर सेवा-सत्कार
कियेते = } करनेसे सब कोई अपने वशमें हो जाते हैं; इसलिये वे भी खुश होंगे।

सो हृदया = } सो वे विज्ञानी परमहंस भी
न दुराव = } तुम्हें उस हालतमें हृदयसे प्रेम ही करेंगे, दूर नहीं करेंगे। अभाव नहीं करेंगे, भाव ही करेंगे।

दूरै न तोरी = } फिर एक-एक करके अपने
दृष्टिते = } मतको तुझसे प्रगट करेंगे, गुप्त करके नहीं रक्खेंगे। तो तुम्हें उनकी दृष्टि सब जाननेमें आ जायगी। तुम्हारी दृष्टिसे वे फिर पृथक् नहीं होंगे या नहीं रहेंगे।

पर उपदेश = } दूसरेको उपदेश देतेमें
स्वभाव = } स्वाभाविक ही आकर्षण हो जाता है। इसलिये अन्तःकरणकी मुख्य बात वाणीसे प्रगट हो जाती है। सो जानकर उसी मुताबिक उपदेश दूसरोंको देना चाहिये। यह परायेको उपदेश देनेकी रीति है वा यही पर-उपदेशका गुण-स्वभाव है॥

व्याख्या— हित करके उनकी यथोचित सेवा करनेसे वे भी तुमसे प्रसन्न हो जायेंगे। इसीसे सो वे परमहंस भी अपने हृदयसे तुम्हें दुराव वा दुर्भाव नहीं करेंगे। सेवा करके रहनेसे वे कुछ बोझा वा भार भी नहीं मानेंगे; तो अपने सङ्ग-साथसे दूर भी नहीं करेंगे। यानी 'जाओ' कहकर नहीं हटायेंगे। दूर न होनेसे तुम भी अपनी दृष्टिसे पूर्ण परीक्षा करके उनके मतको जान सकोगे। वे अपनी दृष्टिसे उनके सिद्धान्तको बतायेंगे। पर उपदेशके स्वभावसे वे हृदय खोलकर सब बात समझावेंगे, उसे समझते जाना। और अन्य मतवादियोंको उपदेश करनेके पहिले उनके गुण-स्वभावको ठीक तरहसे जान लेना चाहिये। यदि कुछ विचारवान् हों, तो ही उन्हें समझानेका प्रयत्न करे; नहीं तो व्यर्थकी उपाधिसे दूर ही रहना ही अच्छा है॥ ६५०॥

दोहाः— जब ताको निज मत लखै * शङ्का करै तेहि माँहि॥
[२८९] वह शङ्का मानै नहीं * निज मत अति तेहि आहि॥ ६५१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

जब ताको = } जब उन ब्रह्मज्ञानीके सिद्धान्त
निज मत लखै = } अपने लखनेमें आ जाय, तब अपने स्वयंके मत निर्णयसे उसे लखानेके लिये—

शङ्का करै = } उस ब्रह्मज्ञान उनके सिद्धान्तमें
तेहि माँहि = } दृढ़तासे शङ्का उपस्थित करे। अनमिलताको दिखा करके खण्डन कर देवे। बराबर शङ्का करता रहे।

वह शङ्का = } पहले तो वह विज्ञानी तुम्हारी
मानै नहीं = } शङ्काको कुछ भी मानेंगे ही नहीं कुछ समझेंगे ही नहीं।

निज मत अति = } क्योंकि, उनको ब्रह्मज्ञानका
तेहि आहि = } अद्वैतवाद निजमत ही अत्यन्त दृढ़तासे प्रिय हो गया है, वह मनमें ठस गया है। अतः उससे भिन्न निज स्वरूपको वे नहीं लख सकते हैं॥

व्याख्या— जब कि, उन परमहंसके निजमत अद्वैत सिद्धान्तको अच्छी तरहसे लखे वा जाने। वे किसप्रकारसे मानते हैं? सो पहिचाने, तब उसीमें समय पा करके युक्तियुक्त असली शङ्का प्रगट कर देवे। परन्तु, वे विज्ञानी तो तुम्हारी शङ्काओंको कुछ भी नहीं मानेंगे। शङ्कासे परे अशङ्क ब्रह्म बने हैं न! इसीसे वे शङ्काको शुरू-शुरूमें मानेंगे ही नहीं। क्योंकि, निजमत अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त ही उन्हें अत्यन्त प्रिय है। उसमें वे किसी प्रकारसे भी कसर ही नहीं समझते हैं, तुम्हें ही अबोध जानकर हँस देंगे और समझायेंगे॥ ६५१॥

दोहाः— निर्वचनी पद थीरता * सोहं हंसा एक॥
[२९०] सो अनेक कैसे भयो? * पुनि कैसे सो एक?॥ ६५२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

निर्वचनी पद थीरता = इसलिये उनसे ऐसी शङ्का करे कि— हे विज्ञानीजी ! आपने ब्रह्मपदको स्थिर स्थिति मुक्तरूप, मन, बुद्धि, वाणीसे परे निःअक्षर या अवाच्य वर्णन किये हो ! इसमें सन्देह यह हुआ कि—

सोहं हंसा एक = सो वह ब्रह्म मैं हूँ, तो यह हंस जीव कौन है ? जीव-ब्रह्म एक होनेका प्रमाण क्या है ? दो हुए बिना तो जानना वा जना देना नहीं होता है, अगर 'सोहं हंसा' प्रथम एक ही स्थिरपदमें कायम था, तो फिर दो कैसे हुआ ? और—

सो अनेक कैसे भयो ? = ब्रह्म एक ही था, तो फिर सो अनेक कैसे, किस कारणसे हुआ ? क्यों हुआ ? अनेकताको भ्रम कहोगे, तो भ्रम किसको हुआ ? क्यों हुआ ?—

पुनि कैसे सो एक ? = जब अनन्त जगत्का विस्तार हो गया है, तब एक ब्रह्मका नाश हो गया कि, नहीं ? फिर चराचरका नाश हो करके एक कैसे होगा ? एक होकर कहाँ रहेगा ? ऐसा हुआ, तो कौन देखेगा ? कौन जानेगा ? इसलिये जड़-चैतन्य सदैवसे न्यारा-न्यारा हैं, वैसे ही रहेंगे, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— जब वे समझावें, तब इसप्रकारसे उनसे शङ्का कहे कि, हे स्वामीजी ! यदि ब्रह्म-पद अवाच्य, निःअक्षर स्थिर है, सोहं ब्रह्म और हंस जीव एक ही है, परमार्थमें अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा आप जो कहते हो, यदि उसे ही ठीक मान लिया जाय, तो सो वह एक अखण्ड ब्रह्म अनेक चराचर जगत्में विभक्त होकर कैसे खण्ड-खण्ड हो गया ? फिर जड़-चैतन्यकी प्रत्यक्ष अनेकता वा नानात्व मिट करके सो एक ही ब्रह्म अद्वैत कैसे हुआ ? कहाँ हुआ वा कैसे होगा ? यह असम्भव बात कैसे सम्भव हो सकती है ? सो आपने कैसे जाना है ? वही भेद अच्छी तरहसे समझाइये ! इत्यादि कहना चाहिये ॥ ६५२ ॥

दोहाः— याके बहु उत्तर करै ❀ समुझावै पुनि सोय ॥
[२९१] हे शिष्य ! ते जानै भले ❀ उत्तर प्रश्न समोय ॥ ६५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

याके बहु उत्तर करै = इन प्रश्नोंका उत्तर युक्तिपूर्वक वेदादिका प्रमाण देकर ब्रह्मज्ञानी समझावेंगे अनेक वाणी कहेंगे ।

समुझावै पुनि सोय = फिर वही पूर्वकी भ्रम-कल्पना-की बात कहकर तुझे समझावेंगे । उसे और युक्तिसे काटकर उन्हींको ही फिरसे समझा देना चाहिये ।

हे शिष्य ! ते जानै भले = हे शिष्य ! तू तो उनके कसर-खोटोंको अच्छी तरहसे जानता ही है । तथापि सावधान रहना, उनके भाव, मतलबको ठीक-ठीकसे जान लेना । यदि तुम्हारा निर्णय वे जान लेंगे, तो उनका हित ही होगा ।

उत्तर प्रश्न समोय = अतएव उनके मतमें मिले सरीखा हो करके ही प्रश्न और उत्तर करते रहना । यदि वे प्रश्न करें, तो अपने उत्तर दे करके समाधान कर देना । नहीं तो प्रश्न करके उन्हें पकड़ लेना, बराबर प्रश्नोत्तर करते जाना; उनके उत्तरमें अपना प्रश्न लगाते जाना ॥

व्याख्या— इन शङ्कारूप प्रश्नोंका उत्तर वेदान्त प्रमाणसे वे ब्रह्मज्ञानी बहुत प्रकारसे कथन वर्णन करेंगे । फिर घुमा-फिरा करके वही प्रथमकी कल्पना, धोखा, अनुमानकी ही बात तुम्हें समझावेंगे । बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, ज्ञानियोंके वचन प्रमाण बतावेंगे । उसको भी निर्णय करके नम्रता-से खण्डन कर देना । उन्हें ही विचार करनेके लिये फिर भी समझा देना । हे शिष्य ! तुम अपने प्रश्नको और उनके उत्तरको अच्छी तरहसे जान करके याद रखना । फिर उत्तर और प्रश्नको मिला करके निर्णयसे विचार करना; तुम तो उनके कसर-खोटको भलीभाँतिसे जानते ही हो । अतः उन्हें प्रश्नोत्तरमें पकड़ करके सीधा करना ॥ ६५३ ॥

पं० ग्र० टीका; ११३—

दोहाः— उत्तर प्रश्न अनेक विधि ❀ निर्णय सहित यथार्थ ॥
[२९२] उपदेशै तेहि मेल विधि ❀ लखै आपनो अर्थ ॥ ६५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उत्तर प्रश्न = अनेक विधि = ऐसे विधिपूर्वक अनेकों तरहसे प्रश्नका उत्तर करे, तथा अन्यके उत्तरमें अपना प्रश्न करे; ऐसे अनेक विधिसे प्रश्नोत्तर करनेसे श्रोता-वक्ताके मत प्रगट हो जाते हैं।

निर्णय = सहित = यथार्थ = परन्तु, गुरु निर्णयके सहित बात, सम्वाद होनेसे ही यथार्थ सत्यका बोध होता है। वितण्डावादसे तो हानि ही होती है, सो जाने।

उपदेशै तेहि = मेल विधि = इसवास्ते मेल-मिलाप, प्रेम ही रखकर उन मतवादियोंको विधिपूर्वक युक्तिसे सत्य उपदेश देवे, यही उपदेश देनेकी रीति या विधि है। और—

लखै आपनो = अर्थ = सब अवस्थामें अपना ही कल्याणका अर्थ या दयाका मतलब मुख्य देखना चाहिये। तथा अपना हित कायम रखते हुए स्वजातीय मनुष्योंको सत्य बोध देना चाहिये; यही अपना कर्त्तव्य है ॥

व्याख्या— इसप्रकारसे उत्तर करे, तो प्रश्न करना; और प्रश्न करे, तो उत्तर देना। ऐसे उत्तर और प्रश्न अनेक तरहसे विधिपूर्वक करना। निर्णय सहित यथार्थ कहकर उन्हें परखाना। व्यर्थके वाद-विवाद कभी नहीं करना। यदि पूछनेपर वा समझानेपर नाराज-दुःखी हो जायें, तो उन्हें अनधिकारी जानकर कहना-सुनना छोड़कर सङ्ग भी त्याग देना। यथार्थ निर्णयकी बात ही कहना। इसरीतिसे मेल-मिलापकी विधिसे उन्हें उपदेश करे, समझावे। अपना मुख्य अर्थ तो निज-पर जीवोंका सब प्रकारसे हित-कल्याण ही करना है। सो उसी अपना अर्थको ही सदा लखे वा जाने। अपने हितमें हानि होनेका कार्य कभी न करे। अपनी स्थितिमें कायम रहते हुए ही अधिकारी मनुष्योंको बोध करना चाहिये ॥ ६५४ ॥

दोहाः— काहेते शिष्य ! मेल विधि ❀ उचटै नहीं सो जीव ॥
[२९३] वह तू जमा सो एक ही ❀ ताते मेलहु कीव ॥ ६५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

काहेते शिष्य ! = मेल-मेल विधि = क्योंकि, हे शिष्य ! मेल-मिलापकी विधि या प्रेमकी रीतिसे चलने, बर्तनेसे सब अपने प्रेमी हो जाते हैं।

उचटै नहीं = सो जीव = जीवका मन न उखड़नेसे विरोधी भी नहीं होगा। मेली होते-होते उचाट न होनेसे सो जीव अपने सिद्धान्तमें भी आ जायगा। और—

वह तू जमा = सो एक ही = वह परमहंस विज्ञानीलोग और तुम हंस पारख ज्ञानी, दोनोंके जमा चैतन्य जीवपदकी दृष्टिसे तो एक स्वजातीय ही हो ! दोनों जीवके ज्ञानगुणमें तो एक समान ही गुण हैं। सिर्फ मानन्दी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा जान करके—

ताते मेलहु कीव = सब मनुष्योंसे इसवास्ते भी मेल करना चाहिये कि, उनका भी हित-कल्याण हो। मेल करनेसे बहुतोंको समझाकर उपदेश दे सकते हो ! अतः उसमें उनसे मेल ही करो ! ॥

व्याख्या— क्योंकि, हे शिष्य ! मेल-मिलाप समताकी विधिसे सत्सङ्गकी वार्ता कहने-सुननेसे सो कोई भी नरजीव एकाएक रुष्ट, क्रोधित होकर नहीं उचटते हैं, यानी द्वेषी नहीं होते हैं, मेल करनेसे उनके मनमें चोट लग करके उखड़ नहीं पड़ता है। कभी प्यारसे कही हुई गाली भी अच्छी ही लगती है। तैसे मेलीजनकी कही हुई खण्डनकी बात भी अरुचिकर नहीं होती है। इसलिये समय, योग्यता देखकर ही कहना-सुनना चाहिये। जीवको उचाट करके छोड़ नहीं देना चाहिये। निर्णयसे तो वह अज्ञानी, ज्ञानी, विज्ञानीलोग और तुम विवेकी हंस पारखी सन्तजन उनमें जमा

चैतन्य जीवके पद स्वजातीय भावसे सो एक ही है। अर्थात् ज्ञानगुण चैतन्यत्व सब जीवोंका एक-सा ही है। उसमें तो कोई फरक नहीं है। सिर्फ कर्मानुसार जीव सब भव-बन्धनोंमें पड़े हैं। समझ-बोधमें फरक हो रहा है। इसीसे सबसे मेल ही करना चाहिये। मेल-मिलाप करके समझानेसे ही बहुतोंकी भलाई हो सकती है; ऐसा जानकर विचारपूर्वक मेलका ही बर्ताव करो! ॥ ६५५ ॥

दोहाः— मिलि लखेते उचटै नहीं ❀ एकता सुखकी खानि ॥
[२९४] सत्य शब्द टकसार विधि ❀ निर्णय कही बखानि ॥ ६५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मिलि लखेते = सब मनुष्योंको मेल-मिलापसे प्रेमपूर्वक उपदेश देकर लखने-लखानेसे वे उचाट नहीं होंगे, मन नहीं उखड़ेगा, तो विरोधी भी वे नहीं होंगे। कोई अरुचि नहीं करेंगे।

उचटै नहीं =

एकता = मनुष्य खानीमें समानता, एकता,
सुखकी = सद्गुणोंकी धारणा, यह सुखदायी
खानि = सुखकी खानी है। इसलिये सत्सङ्ग निर्णयमें एकता, स्वजातीय जीव-दृष्टि रक्खो।

सत्य शब्द = तहाँ सद्ग्रन्थ बीजकके
टकसार विधि = प्रमाणसे सारशब्द द्वारा सत्यासत्यका—

निर्णय कही = निर्णय करके, यह उपदेश
बखानि = देनेकी रीति मैंने वर्णन करके कहा हूँ, सो जान लो! ॥

व्याख्या— उनके मत, मानन्दी, मनसाको जान करके फिर समतासे मिलकर, उन्होंके सिद्धान्तको लख करके उसमें निर्णय द्वारा कसर लखा देनेसे मनुष्योंके मन उचाट नहीं होवेगा। और वे द्वेषी, विरोधी भी नहीं होंगे; इसीसे उपदेशको भी विचार करके ग्रहण करेंगे। अतः एकता, मेल-मिलापका बर्ताव सबोंके लिये सुखकी खान है। जीव दया, सद्गुण रहनी धारण करना सबके लिये सुखदायी है। यह बात मैंने तुम्हें 'सत्य शब्द टकसार' कहते हैं, सद्ग्रन्थ मूल बीजकको जिसमें गुरुमुख शब्दसे सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय किया है, सो उसी बीजक सद्ग्रन्थके प्रमाणसे सत्सङ्गमें विधिपूर्वक निर्णय वर्णन करके कह दिया हूँ! और भी बीजक सद्ग्रन्थमें जो निर्णय बखान किया है, सो प्रमाण भी कह देता हूँ, सुनो! उसके अर्थको गुरुमुखसे लखोगे, तो पूरा-पूरा भाव समझनेमें आ जायगा ॥ ६५६ ॥

सम्बन्ध— अब यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक सद्ग्रन्थका निर्णय प्रमाण दिया है, सो सुनिये! ॥

॥ ❀ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ ❀ ॥ मूल बीजक, साखी नम्बर- ३२२ ॥ ❀ ॥

(७) साखीः— दादा भाई बाप कै लेखो ❀ चरणन होइहौं बन्दा ॥
[२९५] अबकी पुरिया जो निरुवारे ❀ सो जन सदा आनन्दा ॥ ६५७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने इस साखीमें मायामुखसे गुरुवालोगोंके अभिप्राय कहा है— हे सन्तो!

दादा = ब्रह्मादिक बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, महात्मा-लोग दादाकी नाईं प्रथम हो गये हैं।

भाई = ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवालोग उन्होंके भाई या गुरुभाई हुए हैं। और—

बाप = गुरु बने हुए गुरुवालोगोंने एक ब्रह्मको वा ईश्वरको परमपिता परमात्मा जगत्पिता बतलाया है।

कै लेखो = नाना कल्पना करके मनगढ़न्त लेखा लगाये हैं। जगत्के कर्त्ता कोई ईश्वरादि बतला करके लखाये हैं, ऐसे नाता सम्बन्ध लगाये हैं।

चरणन = गुरुवालोग कहते हैं— हे मनुष्यो!
होइहौं = हम-तुम सब परमेश्वरके चरणों-
बन्दा = के दास हैं। उनके चरणकी भक्ति, वन्दना, प्रार्थना करनेसे ही सब बन्धन छूट जायगा। इसवास्ते देखो! हम

ईश्वरके दास हो करके भक्ति, योगादि करते हैं। तैसे तुम भी करो, तो बन्धनोंसे छूट जाओगे, इत्यादि कहा। और कोईने अहंब्रह्मके अहङ्कारको ही धारण कर लिये हैं।

अबकी पुरिया = जो निरुवारे = गुरुवालोग ही कहते हैं कि— अबकी बार परमेश्वरकी बड़ी दया हुई, जिससे तुमने मनुष्य जन्म पाये हो! तो निरुवार करो कि, माया जाल—स्त्री, पुत्र, परिवारादि नाशवान् स्वप्नकी नाईं हैं; एक परमात्मा ही अविनाशी हैं। ऐसा जान करके भगवद् भजन, भक्ति, नाम-स्मरण आदि किया करो! अथवा ज्ञानमार्गसे 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' का निरुवार करो; परमहंस हो जाओ! जो ऐसा निरुवार करेंगे—

सो जन सदा = आनन्दा = सो भक्त, योगी, ज्ञानी, परमेश्वरकी भक्ति-भावना या अद्वैत भावनामें ही रहनेसे, वे सदा-सर्वदा सुखी होंगे और परमानन्दको वे पा जायेंगे या ईश्वरमें ही मिल जायेंगे। ऐसा गुरुवाओंने बतलाया है॥

व्याख्या— अथवा दूसरी तरहसे अर्थ यह है कि, भ्रमिक गुरुवालोगोंने नाना तरहसे उपदेश दिया। परन्तु, सब कोईने उनके उपदेश ग्रहण नहीं किये या अन्तःकरणमें उनकी शिक्षा नहीं ठहरी, तो उनके कहे अनुसार भी लोग नहीं चले। तब तो वैसोंको अपनी तरफ आकर्षण करनेके वास्ते मोहक वचन कहने लगे। जैसे पिता-मातादि पुत्रोंको अनुचित मार्गोंमें लगनेपर नाना तरहसे प्यार-दुलारका सम्बोधन करके समझाते हैं। तैसे ही गुरुवालोग भी बर्ताव करने लगे कि— हे दादा! सुनो! हे बाबा! आओ! हे पिताजी! हे बापू! बैठो! हे भाई! हमारे वचनको मानो! हे बन्धु! भगवद् भक्तिमें प्रेम लगाओ, इत्यादि अनेक नाता-गोताका सम्बन्धके लेखा लगा करके मोहक वाणी-से सम्बोधन कर अपने-अपने मतोंमें खैंचते हैं। तब भी जो कोई नहीं मानते हैं, तो उन्होंसे वे कहते हैं कि, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ, तुम भगवान्की भक्तिसे विमुख मत् होओ! कोई-कोई तो लोगोंके चरणोंमें वन्दना करके भी समझाते हैं। कहते हैं कि, अबकी मौकाको मत् चूको! नरजन्म तो भगवान्की दयासे ही मिला है। जो मनुष्य एक ईश्वर सत्य, और सब झूठा, ऐसा निरुवार करके भक्ति, योग, ज्ञानमार्गमें ही लगेंगे, संसारके नाता, पदार्थ, कुल-कुटुम्बोंको क्षण-भंगुर जानकर भगवद् भक्तिमें ही एकाग्रतासे लगेंगे, सो प्रेमी भक्त सदा आनन्दको पायेंगे। यानी जहाँ सदाकाल आनन्द-ही-आनन्द है, सो परमधामको जायेंगे। इसलिये हमारे कहे अनुसार चलो, ऐसा गुरुवालोग कहते हैं॥

अथवा गुरुमुखके द्वारा अपने मतमें घटाकर कहा जाय, तो उस अर्थमें इसको इसप्रकार समझ सकते हैं कि— दादाके समान बड़े सद्गुरु हुए, बापके समान अपने बोधदाता गुरुदेव हैं और भाई-के समान गुरुके या अपने गुरुभाई जो पारखी साधु-गुरुकी श्रेणीके परम्परागत हैं, वे सर्वश्रेष्ठ होते हैं। उन्होंके सत्य निर्णयको ही अच्छी तरहसे हे मनुष्यो! तुमलोग लखो वा जानो! और ऐसे पारखी साधु-गुरुके ही चरण कमलोंकी वन्दना करो! 'हौं' कहिये सब अहङ्कारको मिटा करके दासातनसे गुरुभक्ति करो! उसीसे तुम्हारे सब बन्धन छूटेंगे। और किसी गुरुवालोग दादा-भाईकी गुलामी करनेसे खानी-वाणीके बन्धन मिटनेका नहीं, और बन्धन बढ़ेगा, नहीं घटेगा, सो जानो! हे मनुष्यो! इसीतरह जड़ाध्यासी होनेसे अनन्तों जन्म जीवोंका व्यतीत हो चुका है। अभी शुभ संस्कारसे नरजन्म पाये हो, सो अबकी बार मनुष्य देह पा करके जो मनुष्य पारखी सद्गुरुके शरणागत हो सत्सङ्ग द्वारा जड़-चैतन्य, सत्यासत्यका यथार्थ हंसवत् सत्य निर्णय करेंगे, और असत्य विषय-कल्पनाको छोड़ कर सत्यबोधको धारण करेंगे, सो गुरुभक्त सब दुःखोंसे छूट कर सदाके लिये आनन्दित सुखी, शान्त, स्थिर मुक्त हो जायेंगे। और वे अन्य मनुष्योंको भी शान्तिसे प्रेमपूर्वक सत्य उपदेश देकर सुधार ही करेंगे, सो जानो!॥ ६५७॥

दोहाः— ऐसी उपदेशन युक्ति * दीन्हीं तोहि बताय ॥
[२९६] जाते उचटै नहीं सो * लहै हंस पद आय ॥ ६५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं – हे शिष्य !

ऐसी उपदेशन युक्ति = इसप्रकारसे युक्ति पूर्वक अन्य मतवादी लोगोंको भी सत्य उपदेश देनेकी ऐसी युक्तियोंकी विधि, हिसाब, रीति-रिवाज है।

दीन्हीं तोहि = सो मैंने तुम्हें सब बतला बताय = दिया हूँ, समझा दिया हूँ ! इसीतरहसे बर्तना चाहिये।

जाते उचटै = जिससे सो तुमसे वे मतवादी नहीं सो = मनुष्य उचाट नहीं होवेंगे। अरुचि, अप्रीति नहीं होगी। सो फिर वे अपना पक्षको छोड़ देंगे।

लहै हंस-= फिर जड़-चैतन्यके निर्णय करके पद आय = सद्गुण रहनीको लेकर पारखी सद्गुरुकी शरणमें आ करके हंस-पदको प्राप्त कर लेंगे, तो बोध हो जायगा ॥

व्याख्या— साधारण मनुष्योंको और मतवादियोंको उपदेश देनेकी ऐसी युक्ति-प्रयुक्ति, लक्षण, हिसाब, शैली, सब तुम्हें मैंने अच्छी तरहसे बतला दिया हूँ ? यदि तुम भी उसी प्रकारसे चल करके उपदेश देओगे, रहनी, रहस्यको धारण करोगे, तो अपने कार्यमें अवश्य सफल ही होओगे। जिससे सो अबोध भ्रमिक मनुष्य पहिले ही एकदमसे नहीं उचटेंगे, द्वेष भाव उनके मनमें उत्पन्न नहीं होगा, तो प्रेम-भावसे सत्सङ्ग-विचार करके सत्य सारको ही ग्रहण करेंगे। और तुम्हारी ही शरणमें आकर हंसपदको प्राप्त कर लेंगे। वे भी विवेकी सारग्राही होकर जड़-चैतन्यके सत्य निर्णय भेदको समझ जायेंगे ॥ ६५८ ॥

दोहाः— ठहरावै तेहि पद निजु * सो कृपाल गुरुदेव ! ॥
[२९७] अनुमानी सङ्कल्पना * नाश लहै बिनु भेव ॥ ६५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ठहरावै तेहि = अपनी तरफसे दया करके पद निजु = सत्य बोध देकर उन भ्रमिक मनुष्योंका भ्रम छुड़ा करके निज हंसपद या पारख पदमें ठहरानेवाले—

सो कृपाल = जो हैं सोई कृपालु पारखी गुरुदेव ! = सद्गुरुदेव हैं। वे ही नर-जीवोंको निजपदमें ठहरा देते हैं। इसलिये परमदयालु, परमपूज्य, सत्य बोधदाता पारखी सद्गुरुदेव हैं ! और—

अनुमानी = अनुमानी भ्रमिक जीव, जो कि, सङ्कल्पना = ब्रह्म-ईश्वरादि कुछ वस्तु नहीं है, उसीका सङ्कल्प-विकल्पसे वा अनुमान-कल्पनासे मान करके—

नाश लहै = सत्यासत्यका भेद जाने बिना बिनु भेव = पारख न होनेसे नाशको ही प्राप्त हुए। नाशवान् वस्तुको पाना चाहते हैं। कोई धोखेको सत्य मानकर मनुष्य पदसे नाश हुए वा हो रहे हैं ॥

व्याख्या— उसी निजपद पारखमें जो नर जीवोंको बोध करके ठहराते हैं, सोई कृपालु पारखी सद्गुरुदेव हैं। और अनुमानी भ्रमिक लोग सङ्कल्प-विकल्प, कल्पनामें पड़ करके यथार्थ भेदको जाने बिना जड़ाध्यासी बद्ध हो करके विनाशको प्राप्त होते हैं। मनुष्यपदसे नष्ट-भ्रष्ट होकर चौरासी योनियोंमें ही गये और जा रहे हैं। अतः अधिकारी मनुष्योंपर ही कृपा करके, उन्हें यथार्थ भेद परखा करके निज हंसपदमें ठहरा देना चाहिये; यही कर्त्तव्य सद्गुरुका है ॥ ६५९ ॥

दोहाः— गुरु उपदेशन अनुक्रम * तोकह दिये बताय ॥
[२९८] इहि अनुरागी जीयरा * निज पदमा ठहराय ॥ ६६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गुरु उपदेशन = पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेश- अनुक्रम = को विषयी, कर्मी, भक्त, योगी, ज्ञानी और विज्ञानी, इन्होंको कैसे देना चाहिये ? सो रीति क्रमानुसारसे वर्णन करके

युक्ति-प्रयुक्ति सहित—

तोकह = दिये बताय = } तुमको मैंने ठीक तरहसे बतला दिया हूँ ! अब तो तुम्हारा समाधान होकर भेद समझनेमें आ गया होगा । नहीं तो कहो ? और बतला दूँगा । मुख्य सार बात तो तुमको बता ही दिया हूँ !

इहि अनुरागी = जीयरा = } सो पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग न्याय-निर्णयके बोध-विचारमें सो इसमें इसी तरह सत्य प्रेमसे अनुराग करनेवाले नर जीव या मनुष्य ही हंस हो करके—

निज पदमा = ठहराय = } निज स्वरूप पारखपदमें ठहर करके स्थिर हो जावेंगे । फिर वे भ्रमकी चञ्चलतामें नहीं पड़ेंगे । निज स्थितिमें दृढ़ कायम होंगे । अथवा वैसी रीतिसे नरजीवको निजपदमें ही ठहरा देना चाहिये; यही तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥

व्याख्या— मनुष्योंको उनके अधिकारके मुताबिक सद्गुरुके सत्यज्ञान पारख निर्णय सत्य उपदेशोंको उन्हें क्रमानुसार देना चाहिये । सो सद्गुरुके उपदेशोंको कहनेका अनुक्रम भलीभाँतिसे मैंने तुमको बतला दिया हूँ ! इस गुरुपदमें अनुराग करनेवाले नरजीवोंको निजपद पारखमें ठहरा देना चाहिये । और इसमें प्रेम करनेवाले नरजीव भी भ्रम-भूलसे छूटकर निजपदमें ही ठहर जावेंगे । इनकी सब चञ्चलताएँ छूट जावेंगी; निर्बन्ध मुक्त हो जावेंगे ॥ ६६० ॥

दोहाः— सुन शिष्य ! गुरुमत प्रगट यह * कहै सो बन्दीछोर ॥
[२९९] दुःखित जीव व्याकुल लखै * किये कृपा निज ओर ॥ ६६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुन शिष्य ! = गुरुमत = प्रगट यह = } हे शिष्य ! सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका यह सत्यमत पारख सिद्धान्त है । सो सद्गुरुके सारशब्दको तुम सुनो ! और उसे गुनो ! फिर अन्य श्रद्धालु मनुष्योंको भी सुनाओ । प्रत्यक्षमें परखाओ, तारो, हित करो ! और यह गुरुमतको प्रगट करके—

कहै सो = बन्दीछोर = } सर्व प्रथम सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने ही यह उपदेश कह करके खानी-वाणीके बन्धनोंसे नरजीवको छुड़ाये, सो बन्दीछोर हुए । अभी वैसा निर्णय जो कहते हैं, सो पारखी सन्त भी उन्हीं सद्गुरु-के अनुयायी बन्दीछोर हैं ।

दुःखित जीव = व्याकुल लखै = } त्रयताप जन्मृतिमें जीवोंको दुःखित, व्याकुल, कम्पित देखकर, बन्धनोंमें फँसे हुए लख करके—

किये कृपा = निज ओर = } अपनी तरफसे ही बड़ी भारी कृपादृष्टि किये । सब खानी-वाणीके जालोंको परखाकर छुड़ा दिये । निज चैतन्य स्वरूपकी तरफ जीवोंके लक्ष्य लगा दिये; पारख बोध करा दिये ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! सुनो ! यह गुरुमत पारख ज्ञानको प्रगट करके जो कहते हैं, सोई बन्दीछोर हैं । प्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने इस गुरुमतको प्रगट करके कहा है, अतः सो आप ही सर्वप्रथम बन्दीछोर प्रसिद्ध हुए हैं । और आपके अनुयायी पारखी सन्त भी बन्दीछोर कहलाते हैं । आप पारखी सद्गुरुने सकल जीवोंको अध्यासवश दुःखित, त्रिविधितापोंमें पड़े हुए व्याकुल, त्रसित लख लिये । बिना पारख सबको दुर्दशाग्रस्त देखे । इसलिये आपने निज ओरसे ही मनुष्योंपर महान कृपा किये । अपनी तरफसे ही कष्ट उठा करके भी मनुष्योंको चेताये; पारखबोध परखाये, भ्रम, भूल, धोखेको छुड़ाये; ऐसे परोपकारी परमदयालु हुए । तैसे ही सद्गुरुके अनुयायी पारखी सन्तोंमें भी वही सद्गुण-लक्षण होते हैं ॥ ६६१ ॥

दोहाः— ऐसी विधि उपदेशकी * परिपाटी यह आहिं ॥
[३००] गुरुमत करहु प्रत्यक्ष तुम * काल कलाके माहिं ॥ ६६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ऐसी विधि = } इसप्रकारसे ऐसे विधिपूर्वक
उपदेशकी = } सद्गुरुके सत्य निर्णयके उपदेश
देनेकी रीतिकी विधि है।

परिपाटी = } सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबसे
यह आहिं = } निकल करके परम्परागत यह गुरु
उपदेशकी परिपाटी या चाल आज पर्यन्त
चली ही आ रही है, और चलती ही रहेगी।
इसलिये इसरीतिसे तुम्हें भी चलना
चाहिये।

गुरुमत करहु = } इसवास्ते हे शिष्य! सद्गुरु-
प्रत्यक्ष तुम = } का सत्य मत, पारख
सिद्धान्तको पहले तो तुम अपने साक्षात्
दृढ़, अपरोक्ष अनुभव कर लो! फिर अन्य
मनुष्योंको भी प्रत्यक्ष लखा करके बतलाओ।

काल कला- = } सब मनुष्य गुरुवालोग और
के माहिं = } स्त्रियोंकी विषय तथा कल्पनादि-
में ही फँसे पड़े हैं। उन्होंको चेता करके काल-
जालोंसे छुड़ाओ, बचाओ अपने भी बचे रहो! ॥

व्याख्या— इसप्रकारसे उपदेश देनेका ऐसा विधि-विधान जो है, सो प्रथम सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबसे ही प्रचलित हो करके परम्परागत परिपाटी, शैली, चाल, रीति-रिवाज और मर्यादारूपमें यह चली ही आ रही है। यही पारखी सन्तोंकी, अन्य मनुष्योंको उपदेश देनेकी परीपाटी है। इसलिये इसी विधिसे काल-कलाके महाजालोंमें पड़े हुए मनुष्योंको ठीक तरहसे चेता करके तुम उन्हें गुरुमत पारख बोधका प्रत्यक्ष समझ-बोध करो-कराओ! प्रथम तो स्वयं ही गुरुमतका अपरोक्ष बोध प्राप्त कर लो! काल-कलामेंसे बाहर निकलो! फिर उसी प्रकार और अधिकारी मनुष्योंको भी गुरुमत प्रत्यक्ष करा करके समस्त काल-कलाके जालोंसे बाहर निकालो! बन्धनसे छुड़ाकर मुक्त करो! इसी सत्पुरुषार्थमें लगे रहो ॥ ६६२ ॥

दोहाः— निर्णय मत अनुमान हत ❀ लहै जीव सुख चैन ॥
[३०१] ब्रह्म ईश माया मनहू ❀ बसै न इनकी ऐन ॥ ६६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

निर्णय मत = } जड़-चैतन्य, सत्य-मिथ्याका
अनुमान हत = } यथार्थ सत्य निर्णय सत्यन्याय-
से सब मत-मतान्तरोंके अनुमान, कल्पना,
भ्रमादिका नाश हो जाता है। यानी जब
निर्णय मतसे अनुमान हत हो जाता है—

लहै जीव = } तब विवेकी नरजीव सब दुःख,
सुख चैन = } चिन्तादिसे छूट करके सुख-चैन
पा जाते हैं। यानी मुक्ति स्थितिको प्राप्त
कर शान्त, सुखी हो जाते हैं।

ब्रह्म ईश = } इसवास्ते विज्ञान, ज्ञान,
माया मनहू = } अज्ञान; असि, तत्, त्वं; झाँईं,
सन्धि, काल; ब्रह्म, ईश, माया; मनहूँके
इत्यादि मनःकल्पित त्रिगुणी जाल नारी
और गुरुवाओंके फन्दोंसे छूटकर न्यारा हो
जाते हैं।

बसै न = } फिर कदापि उनके ऐन = कानूनके
इनकी = } घेरा, जञ्जालोंके भीतर जा करके
ऐन = } बन्धनोंमें वे नहीं बैठते हैं, सदा
निर्बन्ध हो रहते हैं ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुका निर्णय किया हुआ सत्यमत पारख सिद्धान्तको ग्रहण करनेसे अनुमान-कल्पना आदि विकारका नाश हो जाता है। तब नरजीव भव-बन्धनोंके दुःखोंसे छूट करके जीते ही मुक्त होकर सुख-चैन, विश्रान्ति पा जाते हैं। इसलिये दुःखोंका घर, मूल कारणरूप ब्रह्मका भ्रम, ईश्वरकी कल्पना, मायाका विकार मनहूँकी मानन्दी- इन्होंका ऐन = कानून, महाजालोंके घेराके भीतर वे कभी नहीं रहते हैं, भूलकर भी उन चारोंके ऐनमें वे नहीं बसते हैं। उससे न्यारा हो करके निज स्थितिमें ही रहते हैं, ऐसा जानो! ॥ ६६३ ॥

दोहाः— गुरु अनुरागी जीयरा ❀ तारण तरण उदार ॥
[३०२] भोंदू काल जञ्जालके ❀ सकलों सेवनहार ॥ ६६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

गुरु अनुरागी = } पारखी सद्गुरुके सत्यपदमें
जीयरा = } अनुराग या प्रेम लगानेवाले जो नर जीव हैं, सो पारखके प्रतापसे स्वतन्त्र होते हैं।

तारण तरण = } अपने स्वयं भवसागरसे
उदार = } पार उतर करके फिर अन्य बद्ध मनुष्योंपर भी उदारतासे दया करके सत्य उपदेशोंका दान देकर उन्हें भी भवपार उतार देते हैं। ऐसे गुरुज्ञानका प्रताप है; और वे ऐसे तारण-तरण उदार होते हैं। उधर—

भोंदू काल = } भ्रमिक गुरुवालोग काल बन
जञ्जालके = } करके अनेकों जञ्जाल खानी-वाणीके प्रपञ्चोंमें सब मूढ़ मनुष्योंको फँसाये हैं; वे भी भोंदूके जालोंमें खुशीसे बन्धे पड़े हैं, वे भोंदू मूढ़ बने हैं।

सकलों = } वेपारखी सकल मनुष्य
सेवनहार = } गुरुवालोग और नारियोंके ही विषरूप विषयोंको ही सेवन करनेवाले हुए हैं। उनकी ही सेवा करके विषय और कल्पनाको ग्रहण कर नर-जन्मको व्यर्थमें ही हार दिये वा खो दिये। इसलिये बन्धनमें ही बन्धे पड़े हैं॥

व्याख्या— इसप्रकार गुरुपदके अनुरागी नरजीव अपने स्वयं भवसागरकी धारासे पार उतर कर और उदारतासे सत्य उपदेशका दान देकर अन्य मुमुक्षु मनुष्योंको भी पार उतार देते हैं। वे यथार्थतः तारण-तरण उदार होते हैं; और जो गुरुपदके प्रेमी नहीं हैं, ऐसे भोंदू=भ्रमिक अज्ञानी मनुष्य कालके क्रीत दासवत् होकर उनके खानी-वाणी जञ्जालोंके भीतर प्रविष्ट होकर वे सकल प्रकारसे सब लोग कालकी ही सेवा करनेवाले और विषयभोग तथा अनुमान-कल्पनादिके ही सेवन करनेवाले बद्ध हुए और हो रहे हैं। ऐसे दुर्बुद्धि पक्षपाती लोगोंका कभी भी हित-कल्याण हो नहीं सकता है॥ ६६४॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- १८ ॥ ❀ ॥

१. काल कला सब गुरु समुझावैं * निर्भय हंस परमपद पावैं ॥ ६६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

काल कला = } एक पारखी सद्गुरु ही ऐसे
सब गुरु = } हैं, जो सब कालकी कला,
समुझावैं = } गुरुवालोग और स्त्रियोंके पञ्च विषय, तथा पञ्चकोशोंके महाजालोंको यथार्थ निर्णय करके समझाते हैं।

निर्भय हंस = } तब सद्गुरुकी दयासे सब
परमपद पावैं = } भ्रमरूप भयोंसे छूट करके नरजीव निर्भय हंस होकर कोई परमपारखी हुए, सो परमपदरूप जीवन्मुक्त पारख स्थितिको भी पा जाते हैं या पा गये हैं॥

व्याख्या— जब मुमुक्षु नरजीव सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आते हैं, तब उन्हें पारखी सद्गुरु सब काल-कलाके कसर-खोट एक-एक निर्णय करके यथार्थ समझा देते हैं। तब जीव विवेकी हंस पारखी हो करके निर्भय हो जाते हैं; और परमपदरूप पारखपदका अपरोक्ष बोध होनेसे जीवन्मुक्ति-स्थितिको भी प्रत्यक्ष ही पा जाते हैं; निःसन्देह हो जाते हैं॥ ६६५॥

२. दृष्टि परै तब कालको जाला * सदा सुखारी परख निहाला ॥ ६६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

दृष्टि परै तब = }
कालको जाला = } तब तो उनको पारख-दृष्टिसे कालके समस्त झीनी-मोटी जाल-फन्दा देखनेमें आ जाता है। इसलिये उस काल-जालसे अपने बचकर दूसरोंको भी बचाते हैं।

सदा सुखारी = } वे पारखी सन्त भव-
परख निहाला = } बन्धनोंके दुःख-द्वन्द्वोंसे छूटकर सदा-सर्वदा निज चैतन्य पारख पदमें ही स्थिर होकर जीवन्मुक्तिमें परम सुखी रहते हैं। जीवको सुख ही देते हैं। और बन्धनदायी सुखोंके तो वे अरि ही होते हैं॥

व्याख्या— तब तो उन पारखी सन्तको सद्गुरुकी कृपासे पारखदृष्टि खुल जाती है। जिससे सब कालका जाल-जञ्जाल उनकी दृष्टिमें देखनेमें आ जाता है। अतः उस काल-जालको विध्वंस, छिन्न-भिन्न करके निज स्थितिमें पहुँचते हैं। वे पारखपदमें निहाल हो करके सदा सुखी जीवन्मुक्त होते हैं; और विषयानन्द-ब्रह्मानन्दादि सुखोंकी इच्छासे रहित उसके विरोधी होते हैं। निराश-वर्तमानमें नित्य सुखी, सन्तुष्ट रहते हैं ॥ ६६६ ॥

दोहाः— अशरण शरण उपदेशते ❀ होवै मानुष येह ॥
[३०३] मानुष गुरु उपदेशते ❀ देखै सबकी देह ॥ ६६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अशरण शरण = } जिसकी कहीं शरण वा
उपदेशते = } बचाव नहीं है, वैसे मनुष्यों-को शरणमें ले करके रक्षा करनेवाले पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेश श्रवण करके ग्रहण, धारण करनेसे—

होवै मानुष येह = यह जीव चौरासी योनियोंके बन्धनोंके पशु गुण-लक्षणोंको छोड़कर सच्चा मनुष्य या मुक्तिके अधिकारी हंस-रूप मनुष्य हो जाते हैं। और—

मानुष गुरु = } सद्गुण रहनी-रहस्यधारी
उपदेशते = } पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णय-के यथार्थ उपदेश बोधके प्रभावसे ही कोई हंस-दृष्टिसे मनुष्य होते हैं, फिर—

देखै सब-की देह = } सबोंके स्वरूप, आकार, स्थिति, सिद्धान्तोंको देख लेते हैं। तथा पाँचों देहोंके बन्धनोंको भी देख लेते हैं। चौरासी योनियोंमें जीव कैसे पड़े हैं? सो भी देख करके जान जाते हैं ॥

व्याख्या— अशरण-शरणदाता, दीन रक्षक ऐसे पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशसे स्वरूप-ज्ञान होनेपर ही यह नरजीव सच्चा मनुष्य वा हंसरूप पारखी होता है। सो उन्हीं सद्गुरुके उपदेशसे ही जिज्ञासु मनुष्योंकी अन्तरदृष्टि खुलती है। जिससे सबोंके देहरूप असली-नकली स्वरूपको वे देख लेते हैं; और सबोंकी स्थितिको बन्धनके भीतर देखकर उनसे न्यारा हो स्वयं निज मुक्त-स्थिति पारखपदमें ही रहते हैं ॥ ६६७ ॥

दोहाः— सो प्रकाश पूरण अमल ❀ गुरुमुख पावै सार ॥
[३०४] तेही कर्म उपदेश शिष्य ! ❀ महाजाल निरुवार ॥ ६६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो प्रकाश = } सो पारख-ज्ञानका प्रकाश
पूरण अमल = } पूर्णरीतिसे निर्मल रहता है; मल, विक्षेप, आवरणसे रहित स्वयं प्रकाश चैतन्यके स्वरूपको लखानेवाला पारख है।

गुरुमुख = } उस सार सिद्धान्तका निर्णय
पावै सार = } बोध गुरुमुखके सारशब्द द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

तेही कर्म उपदेश शिष्य ! = हे शिष्य ! पूर्वोक्त कहे क्रमानुसार अन्य शिष्योंको सारशब्द गुरुमुख वाणीका उपदेश दे करके कर्मादि जालोंसे छुड़ाना चाहिये। और—

महाजाल = } जड़-चैतन्यका भिन्न-भिन्न
निरुवार = } निर्णय करके भेद लखा कर, भ्रम हटा कर, महान जाल ब्रह्म, और विषयादिसे जीवोंको अलग करा करके बचाना चाहिये; ऐसे बोधमें ठहरावे ॥

व्याख्या— सो गुरुज्ञानका प्रकाश पारखपद पूर्ण रीतिसे निर्मल रहता है। गुरुमुख द्वारा ही उस सारपदकी प्राप्ति होती है। और पूर्ण अमलमें वा कार्य, व्यवहार, पुरुषार्थमें सो पारख प्रकाशका सार गुरुमुखसे ही मिलता है। इसलिये हे शिष्य ! वही सत्कर्म, सत्य उपदेशकी शिक्षा देना; पूर्वोक्त क्रमानुसार ही जिज्ञासु शिष्योंको बोध करना। और खानी-वाणीके महान जालोंको निर्णयसे निरुवार करके जीवोंको बन्धनसे बचाना वा छुड़ाना चाहिये ॥ ६६८ ॥

दोहाः— जाकी बुद्धि जहाँ मँड़ी * तहाँ पावै विश्राम ॥
[३०५] सो याके चित्तते उठै * उपदेशीको काम ॥ ६६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

जाकी बुद्धि = जिन-जिन अबोध मनुष्योंकी
जहाँ मँड़ी = बुद्धि विषय, कर्म, उपासनादि नास्तिक, आस्तिक मत-मान्यतामें जहाँ-जहाँपर दृढ़तासे लग गई, निश्चय हो गई है—

तहाँ पावै = सो तहाँ-तहाँपर ही उसी-उसी
विश्राम = मतोंमें, चाहे वह मिथ्या ही क्यों न हो, बुद्धि टिका करके विश्राम कर सुख पाना चाहते हैं। कुछ-न-कुछ मानन्दी-से तहाँ विश्राम भी थोड़ा-बहुत पा जाते हैं; गाफिल होते हैं।

सो याके = सो भ्रम, मानन्दी, अध्यास,
चित्तते उठै = धोखा इन नरजीवोंके चित्त, बुद्धि आदिसे उठ जाय, नाश हो जाय, परखनेमें आ जाय, निकल जाय—

उपदेशी- = सोई युक्ति-प्रयुक्ति, शिक्षा, बोध
को काम = करना उपदेशी सद्गुरुका मुख्य काम है। कल्याण-हित करना, सोई काम है। काल लोग बन्धनोंमें डालते हैं, और दयाल मुक्त करते हैं, यही काम है ॥

व्याख्या— संसारमें जिन-जिन मनुष्योंकी बुद्धि जहाँ-जहाँपर मँड़ी वा मँड़ गई है, दृढ़ हो करके लग गई है, सो जीव तहाँपर ही मानन्दी, पक्षपात, भ्रम, धोखेसे विश्राम करके ठहर जाते हैं। उनके मनकी खुराक तहाँपर ही मिलती है। चाहे वह झूठा धोखा भी हो, तो भी उनकी बुद्धि उसीमें लगी है, इसीसे तहाँ ही विश्राम पाते हैं। जैसे नर्कका कीड़ा, मैलाको ही अच्छा मानता है; तैसे विषय भोग और कल्पनाको ही वे लोग प्रिय मानते हैं। कहा हैः—

"नीम कीट जस नीम पियारा। विषको अमृत कहत गँवारा ॥" बीजक, रमैनी ॥ ११ ॥
"नरक रचै नरकका कीड़ा। चन्दन ताहि न भावै जू ॥" ज्ञा० स० ॥ "जैसी मति तैसी गति ॥"

अतः उपदेश देनेवाले उपदेशी सद्गुरुका यही मुख्य काम है कि—सो उन्होंकी मिथ्या मानन्दी उन्होंके चित्तसे उठ जाय, भूल मिट जाय। पारखदृष्टि हो जाय, तो चित्तकी चञ्चलता विपरीत बुद्धि मिटकर उन्होंको सत्य बोध हो जायगा। फिर प्रथमका अज्ञान उनका छूट जायगा। जीवोंका कल्याण करना, बन्धनोंसे मुक्त करना, यही उपदेशी सद्गुरुका मुख्य काम है। अतः उसी कार्यमें तुम भी अच्छी तरहसे लगो; यही सत् शिक्षा है, सो जानो ! ॥ ६६९ ॥

दोहाः— ताको कहिये पारखी * बन्दीछोर दयाल ! ॥
[३०६] तेई साधु तेई गुरु गनी * तेई शिष्य सो निहाल ॥ ६७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ताको कहिये = सकल खानी-वाणी जालोंको
पारखी = यथार्थ परखा करके बता देनेवाले अपरोक्ष पारख बोध दाता हों, उन्हींको पारखी सद्गुरु कायावीर श्रीकबीरसाहेब कहते हैं।

बन्दीछोर = दया करके आपने सब बन्धनों-
दयाल ! = से छुड़ाये, जीवोंको मुक्त किये। इसलिये आप बन्दीछोर दयालु कहलाये हैं। आपके ही अनुयायी पारखी सन्त अभी भी वैसे ही सद्गुणधारी बन्दीछोर हैं।

तेई साधु = वे ही सच्चे साधु पारखी
तेई गुरु गनी = हैं। वे ही सत्य बोध दाता सद्गुरु सब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गिने गये हैं। वे ही ज्ञानमें सबसे बढ़ करके धनवान् हैं।

तेई शिष्य = ऐसे पारखी सद्गुरुके
सो निहाल = शरणागत होनेवाले वे ही सत् शिष्य होते हैं। सो वैसे ही शिष्य सद्गुरु-की दयासे पारख बोध पा करके भव-बन्धन दुःखोंसे छूटकर निहाल, सुखी, जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥

व्याख्या— जो सकल काल-जाल खानी-वाणीको अच्छी तरहसे एक-एक निर्णय करके

परखा देते हैं, सो उन्हींको पारखी कहते हैं। जो दया करके जीवोंको भव-बन्धनोंसे छुड़ाते हैं, मुक्त कर देते हैं, उनको ही बन्दीछोर दयाल कहते हैं। हे शिष्य ! वे ही तन, मन, वचनोंको साधे हुए सच्चे साधु हैं। वे ही पारख ज्ञानके धनी पारखी सद्गुरु गिने जाते हैं। सो वे ही अपने शरणागत शिष्योंको सत्यज्ञान देकर निहाल कर देते हैं। संशय बन्धन मिटा करके सुखी कर देते हैं। और वैसे सद्गुरुके ही बोध लेनेवाले सत् शिष्य कहलाते हैं। वे ही सद्गुरुकी कृपासे सदा सुखी होते हैं ॥ ६७० ॥

दोहाः— सेवा लावै साधु गुरु * पूजै आठौं याम ॥
[३०७] तीरथ चरणामृत गहन * वीरा अचल मुकाम ॥ ६७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

सेवा लावै = साधु गुरु = मुमुक्षुओंको चाहिये कि, ऐसे ही पारखी सत्य बोध दाता साधु-गुरुकी सेवामें अपने तन, मन, धनादि नाशवान् पदार्थोंको यथोचित लगावे। त्याग-वैराग्यमें आयुको लगावे; जीवन-सुधारमें ही मनको लगावे।

पूजै आठौं याम = फिर विधिपूर्वक उनकी ही पूजा, भेंट, आरती आदि किया करे। और आठों प्रहर-चौंसठ घड़ियोंमें गुरु आज्ञाका पालन ही करके रहे।

तीरथ = चरणामृत = गहन = वैसे सद्गुरुके चरणामृतका महात्म्य महान तीर्थ-जलके समान वा उसमें भी बढ़कर समझके ग्रहण करे या उनके आचरणको ग्रहण करे; अविनाशी सत्य जीव स्वरूपको जाने। और—

वीरा अचल = मुकाम = महा प्रसादरूप सत्यज्ञानको लेकर शूर, वीर, धीर हो करके कायावीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी होकर पारख स्वरूपकी स्थितिमें निश्चल होकर कायम होवे ॥

व्याख्या— इसलिये गुरुभक्तिकी शुभ मर्यादाको पूर्णतासे पालन करने-करानेके लिये प्रथम अपने स्वयं ही साधु-गुरु पारखी सन्तकी सेवा करनेमें तन, मन, धन लगावे। फिर जिज्ञासु शिष्योंको भी सत्यन्यायी विवेकी साधु-गुरुकी ही सेवा, टहल, बन्दगी करनेमें उन्हें लगावें, सिखावे। और साधु-गुरुकी ही पूजा, आरती, भेंट, प्रार्थना करे-करावे। तथा आठोंयाम वा दिन-रातके आठों प्रहरमें गुरु उपदेशरूप आज्ञाको ही पूर्णतासे पालन करे। और तीर्थरूप चरणामृत जलको ही प्रेमसे ग्रहण करके पान करे, तथा यथाप्राप्त प्रसादको ले करके उसे पाकर उत्साही, शूर-वीर बने। अथवा, जीवोंको भ्रमसे पार उतारनेवाला सत्सङ्गरूप तीर्थमें प्रवेश करके गुरुबोधको लेकर शुभ आचरणसे वर्ते। अमृतरूप चैतन्य जीव ही अमर है, ऐसा जान करके पारखबोधको ग्रहण करे। और पराक्रमी वीर बन करके गुरु उपदेशरूप महा प्रसादको प्राप्तकर निज स्वरूप स्थितिमें अचल होकर मुकाम करे वा ठहराव कर लेवे ॥ ६७१ ॥

दोहाः— बाना दीनदयालको * छाप तिलक उरमाल ॥
[३०८] उपदेशे जीवन सदा * धारे रूप सो हाल ॥ ६७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बाना दीन- दयालको = दीन, गरीब, बद्ध, मुमुक्षु मनुष्योंको चाहिये कि, दीनदयालु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबसे निकला हुआ त्यागी साधुके शुद्ध भेषको पारखी सद्गुरुसे टकसारी विधिसे ग्रहण करना चाहिये।

छाप = त्याग भेषका मुख्य छापारूप चिह्न पारखी सन्ताका यही रहता है कि, सद्गुरुके आज्ञा-उपदेशको पालन करके भीतर-बाहरसे विषयासक्ति त्याग करना। यही ज्ञानबोध-का छाप रहता है। और दूसरा कोई छापसे प्रयोजन नहीं रहता है।

तिलक = नासिकाग्रसे शिर तक ऊर्ध्व, खड़ा सीधा तिलक जैसे सद्गुरु लगा देते हैं, वैसे ही तिलक लगाते रहना।

उर माल = कण्ठी या एक मणकारूप हीराको सूतकी मालामें डालकर गलेमें पहिरना; जो हृदयकी तरफ लटका रहता है। और बहुत माला पहिरनेका कोई काम नहीं है। सद्गुरुका पहनाया हुआ कण्ठी ही भेषका चिह्न है। और सफेद वस्त्रका लङ्गोटा, अचला रखते हैं।

उपदेशे = जीवन = सदा = ऐसे टकसारी सद्गुरु प्रदत्त सत्य भेषको अपने धारण करके और अधिकारी मनुष्योंको भी धारण करावे और नर जीवोंको सदा-सर्वदा सत्य-ज्ञान पारखका उपदेश ही देवे, सत्य ही समझावे।

धारे रूप = सो हाल = वर्तमानमें उसी त्याग भेषका गुण रहनी सहित धारण करे, करावे। यह हंसरूप अत्यन्त सुन्दर मुक्ति देनेवाला है। यह सद्गुरुके भेष त्यागरूप-को धारण करनेवाले मनुष्य सो अभी हालमें ही सब दुःखोंसे छूटते हैं॥

व्याख्या— दीनदयालु पारखी सद्गुरुके बाना = त्याग भेषका चिह्न देह रहे तक धारण करता रहे। सो ग्राह्य टकसारी चिह्न यही है कि, सद्गुरुकी आज्ञाका पालन पारख बोधका पक्का छापा हृदयमें लगावे; और बाहर यहाँ कोई छाप लगानेका काम नहीं है। कल्पनामें भूल करके भी न पड़े। और तिलक कबीरपन्थमें प्रचलित, नासिकाग्रसे कपाल तक सीधा वा खड़ा एक ही तिलक लगावे। कान, आँख, गला आदिमें द्वादश तिलक लगानेका पाखण्ड-ढोंग न करे। उसमें कोई सार नहीं है। और उरमाल = सूतकी मालामें एक कण्ठी डालकर गलेमें पहिरे। वह हृदय तक लटकता है, सो दया रखनेका चिह्न है। और विशेष माला पहिरनेका भी यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। साधु भेषमें अचला, लङ्गोटा-अड़बन्द, कण्ठी, तिलक— बस, इतना ही त्यागी साधुओंके टकसारी भेषका चिह्न रहता है। सो ऐसे भेषके रूपको धारण किये हुए पारखी सन्त हाल = वर्तमानमें भी प्रत्यक्ष मौजूद ही हैं। पूर्वमें जैसे साधु-गुरु हो गये, वैसे सत्यन्यायमें ही वे चले रहे। सदा नरजीवोंको वे सत्य उपदेश ही देते रहे। वही भेष धारण कराके मुमुक्षुओंके दुःखोंको हरण करते हैं। अतः तुम भी वही सद्गुरुका दिया हुआ बाना, त्याग भेषकारूप धारण करके सदा नरजीवोंको सत्य उपदेश करो! और अज्ञानता-से होनेवाले उन्हींके दुःखोंको मिटाओ। यही हाल-खबर भेषके बारेमें है, सो जानो!॥ ६७२॥

दोहाः— दीन उद्धारण अस्ति पद ❀ साधु गुरु प्रत्यक्ष॥
[३०९] श्रवण करै ताके वचन ❀ मनन निजुकै गुरु लक्ष॥ ६७३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

दीन उद्धारण = अस्तिपद = भव दुःखोंमें दुःखित दीन नर जीवोंको उद्धार, पार, मुक्त करनेवाले पारखी सद्गुरु हैं। वे ही सत्य चैतन्य पारखपद लखा करके जड़ाध्यास छुड़ा करके दीनोद्धारण करते हैं। उनका पद सत्य है।

साधु गुरु = प्रत्यक्ष = सो बन्दीछोर पारखी सद्गुरु शुद्ध त्याग भेषधारी साधु स्वरूपी प्रत्यक्ष नजर आते हैं। सो गुरु-साधुके गुण, रहनीको प्रत्यक्षमें प्रगट करके बतलाते वा समझाते हैं।

श्रवण करै = ताके वचन = ऐसे पारखी साधु-गुरुके यथार्थ सत्यन्याय निर्णयके उपदेश-को श्रद्धा-भक्ति प्रेमके सहित चित्त लगा करके सद्गुरुके वचनको श्रवण करे, उपदेश सुनतेमें अपना लक्ष्य-नजर सद्गुरुकी तरफ ही लगावे।

मनन = निजुकै = गुरु लक्ष = फिर उस सुना हुआ गुरुवाक्यको अपने अतःकरणमें दृढ़तासे ठहरा करके एकान्तमें बैठकर उसीको बराबर मनन-चिन्तन किया करै। अपने लक्ष्यको सद्गुरुके ज्ञानमें ही एकाग्र करै। जब हृदयस्थ अज्ञान अन्धकारको दूर करके गुरुज्ञानसे पारखका प्रकाश होगा, तब सत्यासत्य स्वयमेव जाननेमें आ जायगा। लक्ष्य स्थिर हो जायगा, ऐसा जानो!॥

व्याख्या— अस्तिपद=चैतन्य नर जीवोंको सत्य पारखपद लखानेवाले दीन उद्धारण, तरण-तारण, पारखी साधु-गुरु प्रत्यक्ष हैं। वे प्रत्यक्षमें पारखबोध दे रहे हैं। जीव ही सत्य है; ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना मिथ्या है, ऐसा बतला रहे हैं। कल्याणेच्छुक मनुष्योंने उन्हींके सत्यन्याय, निर्णय-के वचन, उपदेशको श्रवण करना चाहिये। प्रथम तो उनके वचन श्रवण करै। फिर गुरु निर्णयमें अपना बड़ा भारी लक्ष्य एकाग्र करके लगावे। और उसीकी स्मृति करके एकान्तमें बैठकर मनन करै। गुरुलक्ष्यमें अपना लक्ष्य टिका करके स्थिर करना चाहिये ॥ ६७३ ॥

दोहाः— अध्यासन साक्षातता ❀ निर्णय यथा प्रमान ॥
[३१०] साक्षातहु साक्षातता ❀ अहै यथारथ ज्ञान ॥ ६७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

अध्यासन= / साक्षातता= — फिर मनन किया हुआ सद्गुरु-के पारख बोधको बारम्बार निदिध्यासन करै, इससे साक्षात् अपरोक्ष पारख स्वरूपका बोध हो जायगा; सकल भ्रम छूट जायगा।

निर्णय= / यथा प्रमान= — जैसा यथार्थ है, तैसा सत्स्वरूपके निर्णय करनेमें सद्गुरु वाक्य विवेकको ही प्रमाण करै। तब यथार्थ सत्यासत्यका ज्ञान प्रत्यक्ष हो जायगा। और—

साक्षातहु= / साक्षातता= — स्वयं प्रत्यक्ष चैतन्य जीवको ही पारख बोधसे साक्षात् अपरोक्ष करने-करानेवाले पारखी सद्गुरु होते हैं। अतः सो साक्षात्के भी साक्षात् कहिये जीव-को पारखपदमें ठहरानेवाले सद्गुरु देव हैं।

अहै यथारथ ज्ञान=सकल कलिमल कल्पना गुरुवालोग और स्त्रियोंके आवरण नशा करके सूर्यवत् प्रकाशक पारख बोध जो है, सोई यथार्थ सत्यज्ञान है। तमरूप अज्ञानका विनाश होकर स्वयं स्वरूपका बोध उदय होना, इसीको साक्षात् यथार्थ ज्ञान कहते हैं॥

व्याख्या— तदनन्तर निदिध्यासन करै; बारम्बार दृढ़तासे उसे याद करके धारण करै। जिससे जैसा यथार्थ निर्णयका प्रमाण है, तैसे ही साक्षात्कार हो करके अपरोक्ष बोध हो जायगा। और साक्षात् प्रत्यक्ष नित्य, सत्य, चैतन्य जीवके स्वरूपको जानकर जीवको पारख स्थितिमें ठहराना; अटल, अचल स्वयं प्रत्यक्ष होना। सोई साक्षात्कारके ऊपर भी महान साक्षात्कार यथार्थ अपरोक्ष सत्यज्ञान पारख है। ऐसा विवेक करके जानना चाहिये ॥ ६७४ ॥

दोहाः— भेद त्यागि इमि भक्ति गुरु ❀ करै सोई जिज्ञास ॥
[३११] पावै शिष्य ! सो शान्त पद ❀ ठहरै गुरुमत ध्यास ॥ ६७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

भेद त्यागि= / इमि भक्ति गुरु= — इसप्रकारकी बोध प्राप्तिके लिये नाना मतोंकी मानन्दी तथा जाति, वर्ण, कुल, आश्रमोंके पक्ष, भेद-भाव त्याग करके शुद्ध हृदयसे पारखी सद्गुरुकी ही गुरुभक्ति करनी चाहिये। और—

करै सोई= / जिज्ञास= — सत्य प्रेम निष्ठासे वैसे सद्गुरुके भक्तिभाव करनेवाला वही जिज्ञासु सत्शिष्य होता है।

पावै शिष्य != / सो शान्त पद= — हे शिष्य ! निजपदकी स्थिति सुख-शान्तिका पारखपद वही सत्शिष्य प्राप्त करता है।

ठहरै= / गुरुमत= / ध्यास= — जो कि, गुरुमतके तख्तपर ठहर करके बोध, वैराग्य, विवेक बढ़ानेका अभ्यास करता रहता है। सकल माया-मोहके अध्यासोंको छोड़कर सो फिर सद्गुरुके सत्यमत चैतन्यपदमें ही ठहर जाता है ॥

व्याख्या— इसप्रकारसे झूठे भेदभाव अहङ्कार, काम, क्रोधादि विकारको त्यागकर शुद्ध भावसे जो पारखी सद्गुरुकी भक्ति करते हैं, सोई जिज्ञासु मनुष्य सत्शिष्य होते हैं। वे ही सत्यज्ञान प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं। हे शिष्य ! फिर सोई जिज्ञासु शिष्य सद्गुरुकी कृपासे शान्तपद,

निर्भ्रान्त, निर्बन्ध, निजस्वरूपकी स्थिति मुक्तपदको भी पा जाते हैं। इसलिये गुरु मतमें अभ्यास, निदिध्यासन करते-करते ठहर जाना चाहिये। और सब अभ्यासको त्यागकर सद्गुरुके ज्ञानमें ही ठहर रहै। उसी सत्पुरुषार्थमें ही लगे रहना चाहिये ॥ ६७५ ॥

दोहाः— उपदेशनकी युक्तिता * गुरु शिष्य केर सन्देश ॥
[३१२] इमि उपदेशै शिष्य ! जग * सत्य शब्द उपदेश ॥ ६७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उपदेशनकी युक्तिता = इसप्रकारसे जैसे मनुष्य मिलें, वैसी ही रीतिसे उन्हें उपदेश देनेकी सत्यमार्गमें लगानेकी युक्ति-प्रयुक्तिके सम्पूर्ण भेद तुम्हें बता दिया हूँ! और—

गुरु शिष्य केर सन्देश = गुरु तथा शिष्यके बर्ताव, रहनी, कर्त्तव्य, व्यवहार इत्यादिका हाल-खबर, सन्देश, पहिचान भी तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें मैंने कह चुका हूँ, सब परखा दियाहूँ !—

इमि उपदेशै शिष्य ! जग = हे शिष्य ! जगत्में विचरण करतेमें वा कहीं रहतेमें कोई जिज्ञासु शिष्य मिलै, तो उन्हें इसी प्रकारसे ही गुरु उपदेशको देना चाहिये।

सत्य शब्द उपदेश = तहाँ बीजक सद्ग्रन्थके सिद्धान्तके अनुसार ही जड़-चेतन, सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यशब्दसे उपदेश दो ! तथा चैतन्य जीव सत्य है, यह समझो और समझाओ ॥

व्याख्या— गुरु और शिष्यके गुण-लक्षण सहित सद्गुरुका सच्चा सन्देश और सद्गुरुने शिष्योंको किसप्रकारसे सन्देश बतला करके उपदेश देना चाहिये; सो उसकी उपदेश देनेकी युक्ति-प्रयुक्ति, भिन्न-भिन्न शैली, गुरु और शिष्यका सन्देश भी भिन्न-भिन्न निर्णय करके सो एक-एककर मैंने तुमको सब भेद बतला दिया हूँ ! सो तुमने भी समझ ही लिया होगा। हे शिष्य ! जगत्में जिज्ञासु अधिकारी शिष्योंके प्रति सत्यशब्दसे निर्णयका उपदेश इसीप्रकारसे कह करके ऐसे ही उपदेश देना चाहिये। सो समय पड़नेपर तुमने भी ऐसे ही सत्यन्याय-निर्णयसे गुरुज्ञानका उपदेश करना। भ्रम-भूलको मिटाकर पारखपदमें ही निज-पर जीवोंको टिकाना; इसतरह कल्याण मार्गमें ही लगे रहना ॥ ६७६ ॥

॥ ❀ ॥ २२ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा- २२ ॥ खण्ड- ४३ ॥ ❀ ॥

दोहाः— हे प्रभु ! दीन्हीं सीख तुम * उपदेशनकी चाल ॥
[३१३] सो मैं नीके ही लह्यौं * साहेब दीनदयाल ! ॥ ६७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका बाईसवाँ प्रश्न दर्शाते हैं— शिष्य कहता है—

हे प्रभु दीन्हीं सीख तुम = हे पारखी सद्गुरु प्रभो ! आपने मुझे अच्छी रीतिसे सत्य शिक्षा सिखापन दिये हो !

उपदेशनकी चाल = अन्य मतावलम्बी मनुष्योंको वा संसारी नरजीवोंको उपदेश देनेकी चाल, रीति-रिवाज भी यथार्थ समझाये हो ! एक-एक करके दर्शाये हो !—

सो मैं नीके ही लह्यौं = आपकी कृपासे सो सब युक्ति-प्रयुक्तिको मैंने भी अब अच्छी तरहसे जान लिया, सब भेद समझ करके धारण भी कर लिया हूँ !

साहेब दीनदयाल ! = हे सद्गुरु साहेब ! आप परम दयालु हो ! हम दीन-हीन जीवोंपर दया करनेवाले हे दीनदयालु ! आपको धन्य है ! धन्य है ! ॥

व्याख्या— शिष्य कहता है— हे सद्गुरु प्रभो ! मनुष्योंको उपदेश देनेकी चाल, चलन, रीति, शैली अच्छी तरहसे स्पष्ट बतला करके आपने मुझे अच्छी तरह सत् शिक्षा दिये हो ! सो मैंने भी आपकी दयासे अब अच्छी तरहसे उसे जान लिया हूँ ! और हे दीनदयाल साहेब ! सो आपकी

आज्ञाको मैंने शिरोधार्य करके ग्रहण कर लिया हूँ ! उसीप्रकार चलनेका प्रयत्न किया करूँगा ॥६७७॥

दोहाः— अब कहिये करुणा रवन * थीर कौन पद आहि ? ॥

[३१४] स्वतः हंस आनन्द पद * पावै केहि पद माँहि ? ॥ ६७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

अब कहिये = करुणामें ही रमण-विहार करनेवाले
करुणा रवन = करुणाके 'अर्णव' कहिये समुद्र समान गम्भीर हे दयासागर ! सद्गुरो ! अब यह कहिये कि—

थीर कौन = अविचल स्थिरपद मुक्तिपद
पद आहि ? = कौन-सा है ? किस पदको प्राप्त करनेसे स्थिरता होती है ? सो थीर-पद कौन है ? कहाँपर है ?—

स्वतः हंस आनन्द पद = स्वतः हंसमें और आनन्दपदमें कितना अन्तर है ? कि, एक है ? हंस जीव स्वयं स्वरूपमें स्थिर होकर जीवन्मुक्तिपदको—

पावै केहि = कैसे पाते हैं ? तथा उस पदमें
पद माँहि ? = कैसे रहते हैं ? और किस पद-के बीचमेंसे जीव मुक्ति पदको पावेंगे ? सो दया करके दर्शा दीजिये ! स्वतः हंस आनन्द पदको किस पदमें रह करके जान पावेंगे ? ॥

व्याख्या— हे करुणार्णव सद्गुरुदेव ! अब कृपा करके यही कहिये कि, कौन-सा पद स्थिर है ? और किसको स्थिर मुक्तिपद कहते हैं ? और स्वतः हंसजीव जीवन्मुक्तिके आनन्दपदको किस पदमें पहुँच कर प्राप्त कर सकता है ? सो कैसे पावेगा ? यह बात पूर्णरीतिसे मेरे समझनेमें अभी तक नहीं आयी; अतः सो उसका पूर्ण भेद भी दया करके समझा दीजिये ! ॥ ६७८ ॥

दोहाः— केहि पद पाये कृपानिधि * एक अनेकको भाव ॥

[३१५] मिटै रहै ठहराय सुथिर * परख दृष्टिको पाव ॥ ६७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

केहि पद पाये = हे कृपानिधि ! जीवका पद
कृपानिधि = क्या है ? किस पदको पानेसे सब भ्रम मानन्दी छूटेगी ?—

एक अनेक- = एक ब्रह्म, अनेक जगत् विषयों-
को भाव = का भाव, वासना सब कैसे छूटेगी ? कैसे जाननेमें आयेगा कि, एक-अनेकका भाव मिटा ?—

मिटै रहै = सो ब्रह्म जगत्का भाव अध्यास मिट करके—

ठहराय सुथिर = शुद्ध, स्वयं स्वरूपमें स्थिर हो
पारख पदमें ठहर करके नरजीव कैसे रहेंगे ? ठीकसे ठहराव कैसे होगा ?—

परख दृष्टि- = कैसे पारखदृष्टि पाऊँगा ?
को पाव = सो जिस प्रकारसे मुझे अपरोक्ष पारखदृष्टिकी प्राप्ति होवे, वैसी ही कृपा कीजिये ! ॥

व्याख्या— हे कृपानिधि ! किस पदको पानेपर एक ब्रह्म और अनेक जगत्का भाव मिटेगा ? फिर कैसे पारखदृष्टिको प्राप्त करके निजपदमें सुथिर होकर अच्छी तरहसे ठहर करके रहेंगे ? वह युक्ति मुझे बतला दीजिये ! जिससे मैं अपरोक्ष पारख बोधको प्राप्त कर सकूँ ! ॥ ६७९ ॥

दोहाः— सो साहेब विस्तार युत * कहिये यथा प्रमाण ॥

[३१६] निर्णय सहित सो भाखिये * जाते होय कल्याण ॥ ६८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

सो साहेब = हे सद्गुरु साहेब ! सो
विस्तार युत = सब बात खुलासा करके विस्तारके सहित मुझे समझाइये ! मैं मतिमन्द हूँ !—

कहिये = अतएव यथार्थ सत्य निर्णयको
यथा प्रमाण = प्रत्यक्ष प्रमाणसे कहिये ! बतलाइये ? मैं आपके चरणकी शरणमें पड़ा हूँ ! मेरा उद्धार कीजिये ! और—

निर्णय सहित = सारशब्द टकसारके प्रमाण सहित सो गुरुमुख निर्णयकी सो भाखिये = वाणी उपदेश वर्णन कीजिये !—

जाते होय = जिससे कि, हम सब शिष्य कल्याण = वर्गोंका कल्याण, हित, मङ्गल होवे। तथा अन्य मनुष्य लोग भी यथार्थ सत्य निर्णयको जानकर कल्याण पथगामी हो सकें ! सो सत्शिक्षा दया करके कह दीजिये ! दर्शाइये ! जिससे हमारा कल्याण हो, सो भाखिये ! ॥

व्याख्या— हे सद्गुरु साहेब ! सो उपरोक्त मेरे प्रश्नोंका उत्तर विस्तारके सहित यथार्थ प्रमाणसे जैसा है, सो वैसा ही निर्णयसे समझा करके कहिये ! और गुरुमुख निर्णयके सहित सो भेद बतला करके वर्णन कीजिये ! जिससे मेरा कल्याण, गति-मुक्ति शीघ्र ही हो जावे; और साथ ही अन्य मनुष्योंका भी कल्याण हो, सोई दया करके कहिये ! यही विनय है ॥ ६८० ॥

॥ ❀ ॥ २२ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण- २२ ॥ खण्ड- ४४ ॥ ❀ ॥

दोहाः— सुन शिष्य ! हंसको थीर पद * जैसे जलको सेत ॥
[३१७] सो कोई सिन्धु कोई सरिता * बापी कूप घट प्रोत ॥ ६८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुन शिष्य ! = हे शिष्य ! तुम ध्यानसे सुनो !
हंसको = हंस जीवका कभी नाश न
थीर पद = होनेवाला, सदा कायमका चैतन्यत्त्व ज्ञानगुण पारखपद, सो यही थीरपद है, नित्यपद है।

जैसे जल- = जैसे कि, जलका सफेद शुद्ध,
को सेत = श्वेत रङ्ग ही वास्तविक रङ्ग है। तैसे जीव भी शुद्ध ज्ञानस्वरूप देहादिकका साक्षी चैतन्य है। तीनकालमें जीव एकरस नित्य, सत्य, अखण्ड है, देहका प्रकाशी है।

सो कोई सिन्धु =
कोई सरिता =
बापी कूप घट प्रोत = अब देखो ! पानी एक होते हुए भी उसके रहनेकी जगह कितनेक हैं, कोई तो महासागर है, कोई नदी, नाला, बावड़ी (सीढ़ीवाला कूआँ), साधारण कूआँ, घड़ादि बर्तनोंमें भरा हुआ जल है। ऐसे अनेक बाह्य भेद होते हुए भी उन सब स्थानोंके जलोंमेंके श्वेतरङ्ग एक ही कायम है। तैसे ही ब्रह्मज्ञानी, ज्ञानी, योगी, भक्त, कर्मी, तथा चारोंखानियोंके जीवोंमें ज्ञानगुण वा जानपना एक समान ही कायम है; जीव अखण्ड है ॥

व्याख्या— सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! इसका रहस्य भी मैं तुम्हें समझा करके कहता हूँ, तुम चित्त लगा करके सुनो ! वास्तवमें हंस जीवका पद स्वरूप ही स्थिरपद है। पारख बोधको पानेपर ही वे स्थिर होते हैं। बिना पारख अध्यासवश जीव चञ्चल बने हैं। दृष्टान्तमें जैसे जलका रङ्ग स्वरूपसे सफेद है। दूसरे रङ्ग तो मिलावट करके होते हैं। तहाँ रङ्गीन जलको भी कुछ उछालनेपर कुछ-कुछ सफेद ही दिखता है। सो जलके रहनेके स्थानके कई भेद हैं। जैसे कोई एक तो बड़ा भारी स्थान महासागर है, खाड़ी है, कोई सरिता = बड़ी-बड़ी नदियाँ दूर-दूर तक बह रही हैं। कोई तो छोटी-छोटी नदियाँ, नाला, सहायक नदी हैं। कोई तालाब बनाये हैं, तो कोई बावड़ी और कूआँ जगह-जगह बनवाये हुए हैं; और बहुतोंने तो घरमें घड़ा आदि बर्तनोंमें ही पानी ओत-प्रोत करके लबालब भर रक्खे हैं। इसतरह उन सब स्थानोंमें पानी एक सदृश ही तो भरा है। अर्थात् उन सब जगहोंके पानीका रूप-रङ्ग और शीतगुण तो एक-सा ही है। तैसे ही सिद्धान्तमें जीवका ज्ञानस्वरूप शुद्ध है। जीव देहके साक्षी नित्य-सत्य है। तहाँ कर्मानुसार कोई मनुष्य, कोई पशु, कोई अण्डज, और कोई उष्मज खानीको प्राप्त हुए हैं। परन्तु, जीव असंख्य होनेपर भी वे स्वजाति हैं। ज्ञानगुणमें सबोंमें समानता है। और मनुष्योंमें भी कोई 'सिन्धुवत्' ब्रह्मज्ञानी परमहंस बने हैं। कोई 'सरितावत्' ज्ञानी बने हैं। कोई 'बापीवत्' योगी बने हैं। योगियोंमें षट्चक्र भेदनकी सीढ़ी लगी है। कोई 'कूपवत्' भक्त, कर्मीलोग बने हैं। और कोई 'घट-प्रोतवत्' चौरासी योनियोंमें अनन्त घटरूप देहधारी जीव हैं। वे

सब अपने-अपने कर्मानुसार फल भोग रहे हैं। इतना होनेपर भी जानपना, चैतन्यरूपी ज्ञानगुण सब जीवोंमें एक-सा ही है। जीवका स्वरूप तो शुद्ध ही रहता है। अथवा वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिकी कल्पित वाणी और मनुष्योंके घटकी वाणी-कल्पनाका रूप एक ही है ॥ ६८१ ॥

दोहाः— समुद्र खार सुतरङ्गयुत ❀ मेघ करे सो पान ॥
[३१८] बुन्द होय वर्षे धरणि ❀ नदिन सहित समान ॥ ६८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

समुद्र खार = तहाँ समुद्रका जल खारा
सुतरङ्गयुत = वा नमकीन होता है।
मेघ करे सो पान = बहुत तरङ्ग वा हिलोरा सहित चलता रहता है। सूर्यकी किरणोंसे वायुके आकर्षण द्वारा समुद्रसे जल खैंच करके भाफ उड़ा करके ले जाता है, सो बादल बन जाता है। तैसे ही ब्रह्मज्ञानीमें वाणीकी खारा-कल्पना ही भरी रहती है। अनेक इच्छाओंके तरङ्ग सहित चञ्चल बने रहते हैं। मन-मानन्दी शोषण करता रहता है, इसलिये भ्रमिक हो करके उड़ते हैं, जहाँ-तहाँ भटकते रहते हैं। और उधर—

बुन्द होय वर्षे धरणि = फिर आकाशमें चढ़ा
नदिन सहित समान = हुआ जलरूप मेघ मण्डल समय पा करके प्रेरक वायुसे पिघल-कर अनन्त बून्दरूपमें परिणत होकर जल वर्षा हो करके पृथ्वीमें गिरता है। वह जल तो नाले खोलेमें होते हुए नदियोंमें मिल करके पुनः समुद्रमें नदी सहित समा जाता है। तैसे ही अधिष्ठान ब्रह्मसे स्फुरणा प्रगट हो करके जगत्की उत्पत्ति होना माने हैं, इसीसे तो अनेक चौरासी योनियोंमें जा पड़े; और ज्ञानी-अज्ञानी सहित जगत्को लय करके विज्ञानी फिर ब्रह्म कल्पनामें ही समा रहे हैं ॥

व्याख्या— उनमेंसे समुद्रका जल तो खारा-निमक मिला हुआ रहता है। तथा खूब तरङ्ग संयुक्त समुद्र बड़ा भारी विस्तारवाला होता है। उसमें हिलोरें, लहरी उठा ही करती हैं। सो समुद्रके जलको मेघमण्डल पान करके आकर्षण वायुकी और सूर्य किरणोंकी सहायतासे शोषण किया करता है। आठ महीनों तक समुद्र आदिमेंका जलका शोषण होता है, सो मेघमण्डलमें जा करके जमा होता है। फिर वर्षाकालमें प्रेरक वायुकी शक्तिसे पिघल करके असंख्य बून्दरूपमें प्रगट होके पानी वर्षा हो करके पृथ्वीमें गिरते हैं। चौमासा तक पानीकी वर्षा होती रहती है। फिर पृथ्वीमें पड़ा हुआ पानी ढालू जगहमेंसे बहते हुए नाले-नदियोंमें मिलते हैं; और नदियोंके सहित वह जल फिर समुद्रमें ही जा करके समा जाता है। ऐसे चक्र वा चक्कर लगाया करता है। तैसे ही सिद्धान्तमें समुद्र-वत् बड़े बने हुए ब्रह्मज्ञानियोंमें उनके हृदयमें खारा वाणी कल्पनाका मिथ्या धोखा ही भरा हुआ है। इच्छा-वासनाकी नाना तरङ्गोंके सहित वे खूब चञ्चल बने रहते हैं। बेठिकानके अण्ट-सण्ट वाणी बोलते हैं। मनकी मानन्दीको ही वे मेघकी जगहमें पान किया करते हैं। भ्रमरूपी वायु अहङ्कारकी किरण उनकी बुद्धिको शोषण किया करती है। इसीसे अध्यासवश जहाँ-तहाँ भटक करके उड़ते हुए चले जाते हैं। फिर शब्दके बून्दरूपमें वाणीके उपदेशकी वर्षा पृथ्वीके मनुष्योंके ऊपर करते हैं। फिर चित्त चतुष्टयकी नदियोंके सहित शून्यमें जा करके समा जाते हैं, गाफिल होते हैं। अथवा केवल ब्रह्म बने; तहाँ उनमेंसे स्फुरणा, बून्दरूपमें प्रगट हो करके आई, तो उसीसे पृथ्वी आदि चराचर जगत्-उत्पत्तिकी कल्पना किये। फिर नदीरूपी ज्ञानियोंके सहित अज्ञानी, विज्ञानी सब धोखेमें ही समाये। इसीसे जड़ाध्यासवश वे सब चौरासी योनियोंमें ही जा-जा करके समाये और समा रहे हैं ॥ ६८२ ॥

दोहाः— ठौर ठौर सों समेटिकै ❀ बसै सो सागर खार ॥
[३१९] तैसे हंसा ब्रह्ममें ❀ उपजै जीव विहार ॥ ६८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ठौर ठौर सो समेटिकै = जैसे वर्षाका पानी
बसै सो सागर खार = पहाड़, टीला, नाला, खोला, खाँच इत्यादिक जगह-जगहसे समेट-समिटा करके नदीमें जाकर मिलता है, फिर नदी द्वारा समुद्रमें जाकर मिलता है। तो वहाँ जल खारा हो जाता है। इसी-तरह चौरासी योनियाँ भोगते हुए शुभ संस्कारसे समेटके मनुष्य जन्ममें देह धारण हुआ, तहाँ व्यापक ब्रह्म बनकर यहाँ भ्रम धोखा कल्पनामें ही जा पड़ा, बद्ध ही हुआ।

तैसे हंसा = तैसे ही हंस नरजीव भी मिथ्या
ब्रह्ममें = ब्रह्मकी मानन्दीमें पड़ करके भ्रम अध्यासवश चौरासी योनियोंके चक्रमें घूम रहे हैं। कभी स्थिति नहीं पाते हैं।
उपजै जीव = ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न हुआ, फिर
विहार = प्रलयमें नाश होनेपर ब्रह्ममें ही लय होंगे। ब्रह्मकी क्रीड़ासे जगत् जीव उत्पन्न हुए, ऐसा मानकर भ्रमिक नरजीव ब्रह्म अनुमानमें ही विहार = खेल-क्रीड़ा करने लगे; भूलमें जा पड़े हैं॥

व्याख्या— बाहर जैसे वर्षा होनेपर पानी नीचेकी तरफ बहता हुआ नालोंमें, छोटी-बड़ी नदियोंमें मिल जाता है। ठौर-ठौरसे सिमिट-सिमिटा करके एकत्र हुआ पानी नदियोंके द्वारा समुद्रमें ही जाकर मिल जाता है। फिर सो सब पानी सागरमें रहते-रहते खारा हो जाता है। इसीप्रकार जगह-जगह चौरासी योनियोंके भोग, भोग करके संस्कार एकत्र होनेपर जीव मनुष्य देहमें आकर बास किये। परन्तु, ब्रह्मज्ञानरूपी सागरमें रहते-रहते फिर भी भ्रमिक खारा जड़ाध्यासी ही हुए। तैसे ही हंस जीव उधर ब्रह्मके भ्रममें पड़ गये। उसीमें कल्पनाका विहार करने लगे; तो आवागमनके चक्रमें जा पड़े। बारम्बार देह धारण करके उपजते, देह छोड़ करके विनशते रहते हैं। और ब्रह्मसे जगत्के उत्पत्ति-प्रलय होनेकी भी कल्पना किये हैं॥ ६८३॥

दोहाः— पुनि सो प्रापत ब्रह्म जीव ❀ जैसे सागर नीर॥
[३२०] रहट खानि यह फेर है ❀ ठहरै नहिं सो नीर॥ ६८४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
पुनि सो प्रापत = फिर अज्ञानीजीव गुरुवा-
ब्रह्म जीव = लोगोंकी वाणी सुन करके ब्रह्मानन्दको प्राप्त करना चाहते हैं; जीव-ब्रह्मकी एकता करना चाहते हैं या कोई तो 'अहं ब्रह्मास्मि' के भ्रमको प्राप्त हुए। परन्तु-
जैसे सागर नीर = जैसे समुद्रके पानीका ठहराव-में अखण्डता नहीं है; तैसे ही ब्रह्मज्ञानकी वाणी-कल्पनासे जीवकी स्थिति-ठहराव भी नहीं होती है। इच्छा वा स्फुरणा होनेपर जगत् चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़ते हैं।

अतएव—
रहट खानि = यह तो रहटमालाकी नाईं
यह फेर है = चारखानी चौरासी योनियोंमें जाने-आनेका, जन्म-मरण, गर्भवासमें पड़नेका फेरा या चक्रमें ही घूमते रहते हैं।
ठहरै नहिं = जैसे समुद्रके पानीका सदा एक
सो नीर = समान ठहराव नहीं होता है। तैसे ही खानी-वाणीके जड़ाध्यासी जीव भी स्वरूप स्थितिमें ठहर नहीं पाते हैं। ब्रह्म-जगत्, पिण्ड-ब्रह्माड, स्वर्ग-नरक, ऊँच-नीचमें फिरा करते हैं, बिना विवेक॥

व्याख्या— दृष्टान्तमें जैसे पानी घूम-फिरकरके समुद्रमें ही जाकर मिला वा मिलता है। तैसे ही सिद्धान्तमें ब्रह्मकी इच्छासे माया आदिके द्वारा सृष्टिका विस्तार होते-होते जगत् चारखानी उत्पन्न होनेका कथन किये हैं। फिर अन्तमें महाप्रलय होकर सब चराचर जगत्का विनाश होकर उसी ब्रह्म अधिष्ठानमें ही जा करके मिल जानेको बतलाते हैं। प्रथम सो ब्रह्मके अध्याससे ही चौरासी योनियों-के चक्रमें ही जीव पड़े थे, अब मनुष्य जन्ममें आकर फिर भी भ्रम-भूलमें पड़कर नर जीव उसी कल्पित ब्रह्मको प्राप्त करना चाहते हैं। और वेदान्तकी वाणीके प्रमाणसे जब ब्रह्म मानन्दी करते हैं, तो समुद्रवत् महान बन करके धोखेमें मिल जाते हैं। जैसे पानीका कहीं ठहराव नहीं होता है। तैसे ही यह ब्रह्मज्ञानकी वाणी मन-मानन्दीमें पड़े हुए जीवोंकी भी कहीं स्थिति-ठहराव नहीं

होती है; यह ब्रह्म-जगत् होनेका तो रहट खानीके फेरा है। नीचे-ऊपर, भीतर-बाहर, स्थूल-सूक्ष्म, मनुष्य-पशु आदिकी रहटमाला, उलट-फेर चला ही करता है। अध्यासी जीव कभी मुक्तिपदमें नहीं ठहरते हैं; अतः उसे अच्छी तरहसे जान-बूझकर भ्रम-धोखेको हटा देना चाहिये, तभी स्थिति होवेगी ॥ ६८४ ॥

दोहाः— स्वाति नीर किञ्चित अहै * मिष्ट सुरस अरु शीत ॥
[३२१] सो नहिं सागर मिलत है * नहिं मेघनकी भीत ॥ ६८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

स्वाति नीर = जैसे कि, झीरा वा स्रोत
किञ्चित अहै = (सोता) में रहनेवाला जल
मिष्ट सुरस = कभी नहीं सूखता है। अथवा
अरु शीत = स्वाती नक्षत्रका जल देखनेमें तो बहुत थोड़ा रहता है। परन्तु, उसमें बड़ा गुण रहता है। मीठा, स्वादिष्ट और शीतल-ठण्ढा रहता है। तैसे ही गुरुमुख निर्णयकी वाणी स्व-स्वरूप लखानेवाली सुखदायी, शान्तिकारी त्रयतापोंको मिटानेवाली होती है। सारशब्द तो थोड़ा ही होता है। और—

सो नहिं सागर = सीपीमें पड़नेपर स्वाती
मिलत है, नहिं = जलका मोती बन जाता है,
मेघनकी भीत = फिर वह खारा समुद्रके जलमें भी नहीं मिल सकता है, और मेघोंके शोषण करनेका डर भी उसे नहीं रहता है। तद्वत् यहाँपर गुरुपारख बोध प्राप्त हुए नर-जीव ब्रह्म-भ्रममें नहीं मिल सकते हैं, तथा मन-मानन्दी, अध्यास न रहनेसे उन्हें जन्मृतिका भय भी नहीं रहता है ॥

व्याख्या— एक तो स्रोत, झीरा, पहाड़ी स्थान, उद्गमस्थलमें जो जल रहता है, यद्यपि वह नीर किञ्चित रहता है, तथापि उसीमें गुण विशेष होता है। वह जल मीठा, सुरस और शीतल होता है। वह बहि-बहिके सागरमें भी नहीं मिलता है, और मेघोंके द्वारा सुखानेका भय भी उसमें नहीं रहता है। क्योंकि, सोतामेंसे जल निकला ही करता है, इसीसे वह नहीं सूखता है। अथवा 'स्वाति' नामके नक्षत्रका जल किञ्चित होता है, और उसमें मीठा, सुरस और शीतलताका बहुत गुण होता है। और वह स्वाति नीर सागरमें भी नहीं मिलता है, तथा उसे मेघोंके सुखानेका भय भी नहीं होता है। सीपीमें पड़ करके मोती बननेपर वह विलक्षण गुणवाला बड़ा कीमती, गुणकारी हो जाता है। उसी-प्रकार सिद्धान्तमें स्रोत नीरवत् सद्ग्रन्थोंके निर्णयकी वाणी सारशब्द किञ्चित् ही होता है। तो भी वह मिष्ट-सुखदायी, सुरस-सद्भावसे सम्पन्न और शीत = हृदयको ठण्ढा करनेवाला भ्रम मिटाने वाला है।

अथवा सद्गुरुके प्रत्यक्ष मुखारविन्दसे निकले हुए उपदेश 'स्वाति नीरवत्' सत्यन्याय निर्णयकी गुरुमुख वाणी सुननेमें तो थोड़ी-सी ही होती है; परन्तु, वही जीवोंके हित-कल्याणकारी होती है। सो गुरुमुख वाणी मुमुक्षुके कानसे हृदयमें पड़नेपर वे भ्रमसे रहित मोतीरूप जीवन्मुक्त हो जाते हैं। इसीसे वे खानी-वाणीके भवसागर तथा ब्रह्मज्ञानकी मिथ्या वाणी, ब्रह्म-भ्रमके धोखेमें कभी नहीं मिलते हैं; और मनरूपी मेघका भी उन्हें कुछ डर नहीं रहता है। मन-मानन्दीसे रहित निज स्वरूपमें ही वे स्थिति किये रहते हैं; अतः स्थिर रहते हैं ॥ ६८५ ॥

दोहाः— तैसे हे शिष्य ! ठहर पद * अहै येह सब रूप ॥
[३२२] द्रष्टा होवै सबन कर * हङ्कार तजि स्वरूप ॥ ६८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

तैसे हे शिष्य ! = तैसे ही हे शिष्य ! ब्रह्म,
ठहर पद = ईश्वर, खुदादि सबको ठहरानेवाला सत्य चैतन्य ही तुम्हारा हंस-पद है। उसी जीवके पारखपदमें तुम ठहरो ! मानन्दी-कल्पनाको तुम छोड़ दो ! निजपदमें ही ठहरे रहो !—

अहै येह = अनेक सिद्धान्त, मत-मतान्तरोंको
सब रूप = माननेवाले ये सब मनुष्यरूपमें भ्रमिक जीव हैं। सो जीव सत्य है, और

कल्पितरूप मिथ्या है।

द्रष्टा होवै = } अतः तन-मनादि विजातीय सब
सबन कर = } पदार्थोंके सिद्धान्तोंका द्रष्टा साक्षी-परीक्षक हो करके परखो! किसीमें लिप्त, विकारी न होओ!—

हङ्कार = } झीनी-मोटी पाँचों अहङ्कारोंको
तजि = } और विषयाध्यासोंको सर्वथा
स्वरूप = } परित्याग करके छोड़ दो! और अवशिष्ट-श्रेष्ठ स्व-स्वरूपमें शान्त-स्थिर हो रहो! लक्ष्य निज स्वरूपमें ही रक्खो! ॥

व्याख्या— हे शिष्य! तैसे ही दृष्टान्त-सिद्धान्तके सब भेदोंको जानकर निजस्वरूपको लख करके हंसपदमें ही ठहरो! और यह सबरूप सब सिद्धान्त तो मनुष्य जीवोंकी रचना कल्पना ही है। खानी-वाणीके यही सब रूप बनावटी नकली हैं। उसे बनानेवाले जीव ही असली सच्चे हैं। इसलिये अहङ्कारके स्वरूप ब्रह्म-ईश्वरादि, मिथ्या मानन्दीको परित्यागकर उन सबोंका द्रष्टा होओ। परीक्षक-पारखी बनो! अहन्ता-ममताको त्यागो! निज सत्स्वरूपमें ही स्थिर हो रहो! और वृत्तिको समेट करके रक्खो! तभी स्थिरता होगी ॥ ६८६ ॥

दोहाः— वचन सतगुरु यथाविधि * कहैं सुमारग चाल ॥
[३२३] अस्ति आत्माराम यह * कोहं कोहं जाल ॥ ६८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

वचन सतगुरु = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने
यथाविधि = } ब्रह्मादि गुरुवालोगोंके वेदादि वाणीका कसर-खोट यथार्थ निर्णयसे विधिपूर्वक बीजकमें दर्शा करके कहा है। सो पारखी सद्गुरु उसी तरहसे गुरुमुख वाणी कह करके परखाते हैं।

कहैं सुमारग चाल = ऐसे सद्गुरुके सद्वचनको मानो, ग्रहण करो। जैसे सद्गुरुने कहा है, वैसे ही शुद्धमार्गमें अग्रसर हो करके हंस रहनी-रहस्य सहित चलो, हंसकी चाल या रीतिसे चलनेपर ही कल्याण वा मुक्ति होगी; और—

अस्ति आत्माराम यह = नित्य, सत्य, चैतन्य तो यह जीव ही है। सर्वत्र रमा हुआ व्यापक आत्माराम जो माने हैं, सो यह धोखा मिथ्या कल्पनामात्र है। सबसे न्यारा जीव एकदेशी है। और सर्वदेशी माना हुआ आत्मा कोई नहीं है। और—

कोहं कोहं जाल = मैं कोई आत्मा हूँ, कोई ब्रह्म हूँ या कौन हूँ? जीव हूँ! कि, शिव हूँ! इत्यादि मन-कल्पनाका जाल वेदादि वाणीका जाल यही बन्धन है, ऐसा जानो! ॥

व्याख्या— ब्रह्मादि गुरुवालोगोंकी वेदादि वाणीका कसर निर्णय करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है, जो बीजक सद्ग्रन्थमें लिखा है। सो जिस विधिसे पारखी सद्गुरु यथार्थ न्याय-निर्णयका वचन गुरुमुख वाणीसे कहते हैं, सत्य उपदेश देते हैं, तैसे ही उसे लक्ष्यपूर्वक श्रवण-मनन करके शुद्ध शुभ मार्गसे चलो-चलाओ। हंसकी चालसे बर्तो। सत्य तो चैतन्य जीव ही है। जीवको छोड़कर और दूसरा ही कोई अत्माराम मानना, वह सरासर मिथ्या है। और यह जीवको ही आत्माराम माननेका कोई काम ही नहीं है। क्योंकि, आत्मारामका व्यापकादि गुण जीवमें घटता ही नहीं है। इसीसे वह कल्पना है। और कोईने तो आत्माराम सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है, ऐसा कह करके इसीको 'अस्ति' कहा है। कोई तो "कोऽहं-कोऽहं, शिवोऽहं, अनामयोऽहं, ब्रह्मोऽहं" इत्यादि सङ्कल्प-विकल्प करके महाजालमें अरुझे पड़े हैं। यथार्थ परख करके सो उस भ्रम जालसे बाहर निकल आना चाहिये ॥ ६८७ ॥

दोहाः— मन माया पद देखिके * पारख द्रष्टा होय ॥
[३२४] निर्णय यथा प्रमाण गुरु * लखहु ठहर पद सोय ॥ ६८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन माया= मन और तनसे ले करके
पद देखिके= जितने भी ब्रह्म-जगत् विषयादि मानन्दीका पद है। सो सबको हंसदृष्टिसे देख करके सत्य निर्णय करो! छान-बीन करो! तथा—

पारख= सबके कसर-विकारको त्यागकर
द्रष्टा होय= द्रष्टा साक्षी हंस पारखी होते हैं। तैसे तुम भी पारखी होओ!

निर्णय यथा= सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके
प्रमाण गुरु= यथार्थ निर्णय सत्य बोधरूप बीजक सद्ग्रन्थके प्रमाणसे जड़-चैतन्यका तुम निर्णय करो! गुरु पारखसे सब भ्रम-मानन्दीको विनाश करो!

लखहु ठहर= हृदयको प्रकाश करो, सबको
पद सोय= लख करके परीक्षा करके जो बाकी रह जाता है, सोई तुम्हारा स्वरूप पारखपद है, उसीमें ठहरो। यानी सबको लखो, स्वयं निजपदमें स्थिर हो जाओ!॥

व्याख्या— मन-मायाका पद वाणी-खानी जालोंको अच्छी तरहसे देखकर उसके कसर-खोटोंको निर्णय कर पारखदृष्टिवाले द्रष्टा-पारखी होओ। पारख करनेवाले ही द्रष्टा होते हैं। जैसा गुरु-निर्णयका प्रमाण है, तैसा यथार्थ सत्य निर्णयसे सार-असारको लखो! और सोई पारखपदमें ठहरो! वही जीवकी स्थिति-ठहराव करनेका मुक्तिका पद है॥ ६८८॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका शब्द- भाग- ५ ॥ ❀ ॥

१. सन्तो! ठहरिके करहु विचार * ठौर निज सुखदाई॥ ६८९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! मैं यहाँपर एक निर्णयका शब्द कहता हूँ, सुनो!—

सन्तो! ठहरिके= हे साधु! सन्त! सज्जनो!
करहु विचार= पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-में ठहर करके जड़-चैतन्य, सत्यासत्य आदिका यथार्थ निर्णयसे विचार करो! बिना विचारे सार-असारका तुम्हें मालूम ही नहीं होगा। और भ्रम चक्रमें पड़नेसे हानि ही होगी। इसलिये सद्विचार किया करो! और—

ठौर निज= पारखी सद्गुरु जीवोंको निज
सुखदाई= ठौर-स्थितिमें पहुँचा करके सुख देनेवाले हैं; और स्व-स्वरूप स्थिति पारख बोध जो है, सो मुक्तिदायी होनेसे सुखदायी-कल्याणदायी है। इसलिये दृढ़ प्रयत्न करके निज ठौर-स्थितिको प्राप्त होओ! आगे बढ़ो-चलो! तभी निज ठौरमें पहुँचोगे॥

व्याख्या— यहाँपर एक निर्णयका शब्द जो कहा है, सो उसका भावार्थ सुनिये! सद्गुरु कहते हैं कि— हे सन्तो! निजपद हंस स्थितिमें ठहर करके आपलोग सत्यासत्यका विचार करो! संसार-में नित्य-सत्य वस्तु तो स्वयं जीव ही है। ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ तो असत्य है। इसीका गुरु निर्णयसे विचार करो! और निज ठौर पारखपदमें ही स्थिति-ठहराव करो! सो निज ठौरकी पारख स्थिति ही भव-बन्धनोंके सकल दुःखोंसे बचानेवाला सुखदायी है?॥ ६८९॥

२. बिना विचार सकल जग जहँड़े * थिति कहु कौन कहाँ पाई?॥ ६९०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

बिना विचार= भ्रमिक गुरुवालोग तथा
सकल= विषयी संसारीलोगोंको
जग जहँड़े= पारखका विचार-विवेक तो नहीं है। इसीसे बिना परिणाम-फलको विचारे ही मनमाने कल्पना, धोखा, विषयादिमें पड़ करके सकल जीव ब्रह्मानन्द, और विषयानन्दादिके जड़ाभ्यासी हुए; उसी प्रपञ्चोंमें नाना तरहसे बद्ध हुए फँसे हैं। चौरासी योनियोंमें जन्म-मरणोंके चक्रमें जड़ाभ्यासी जीव पड़े हैं।

थिति कहु= अब कहो तो भला? उन
कौन कहाँ पाई?= बेपारखी भ्रमिक योगी, ज्ञानी, भक्त, विज्ञानी और विषयी, कर्मियों-ने कौन, किसने, कहाँपर स्थिति, गति-

मुक्ति पायी है ? उनके नाम तो कहो, फिर मैं तुम्हें निर्णयसे उनके हाल दर्शाऊँगा। | पारख ज्ञान बिना किसीको स्वरूप स्थिति नहीं हुई है, और हो भी नहीं सकती है ॥

व्याख्या— गुरु विचार पारख बोधके बिना तो सकल संसारके सब जड़ाध्यासी जीव जहँड़े हुए हैं। खानी-वाणी जालोंमें फँस करके जड़ाध्यासी होकर वे भव-बन्धनोंमें ही बन्धे पड़े हैं। अब कहो तो भला ? कौन-कौन किस-किसने मुक्तिकी स्थिति कहाँ-कहाँपर कैसे-कैसे पायी ? दो-चारके नाम तो गिना करके बताओ ? फिर उन्होंने असली स्थिति पायी थी कि नहीं; उसके बारे-में निर्णय करके दर्शाऊँगा ? अरे भाई ! बिना पारख किसीने भी कहीं मुक्ति-स्थिति नहीं पायी, सो विवेक करके जानो ! ॥ ६९० ॥

३. माथे व्याप सन्धिके घेरा ❀ विष बौराने समुदाई ॥ ६९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! माथे व्याप = देखिये ! सन्धिके घेरा = उन्होंकी मानन्दी वाणी उनके ग्रन्थोंमें लिखी हुई जाहिर है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंने एक परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मको श्रेष्ठ शिरमौर मान करके उसी कल्पनाको शिरोधार्य किये। तथा कर्त्ता ईश्वरादि मानन्दीके घेरामें अपने जाकर पड़े, औरोंको भी उसी जालोंमें घेर लिये हैं।

विष बौराने = इसीसे अरबों-खरबों मनुष्य समुदाई = नरजीवोंके समुदाय, अनन्त जीव समूह विषपान करके बौरा गये, बेहोश हो गये। यानी ब्रह्मानन्दसे लेकर विषयानन्द तककी सुखासक्तिमें पड़ करके दिवाने हुए; इसलिये पशुवत् कर्माचरणमें प्रवृत्त हुए, और अभी वैसे ही विष खा करके पागल हो रहे हैं। एक-दोकी बात नहीं है, सब-के-सब बौरा ही रहे हैं ॥

व्याख्या— वेद-शास्त्रादि ग्रन्थ जो उन्होंने बनाये हैं, उसे देख करके निर्णय करनेपर यही मालूम होता है कि, भ्रमिक मतवादी लोग सन्धि = ब्रह्म-ईश्वरादि मानन्दी, जोड़, मिलानके घेरा-में पड़ करके माथेमें व्यापक ब्रह्मको सर्वोपरि मान कर कल्पनाका बोझा चढ़ा करके उसे ढोये रहे। और वाणी-खानीके विषय, ब्रह्मानन्द-विषयानन्दरूप हलाहल जहरको ही भ्रमसे अच्छा स्वादिष्ट मान-मान करके विषपान कर-करा करके बौराय गये। समस्त जीव समुदाय वा मनुष्य समूह सब-के-सब पागल बन करके जड़ाध्यासी बद्ध हुए। पारख स्वरूपका विचार न होनेसे असंख्य प्राणियोंमें कोईने भी पारख स्थिति नहीं पाये ॥ ६९१ ॥

४. ज्ञानी भक्त योगी कहलावै ❀ मर्म महातम भरमाई ॥ ६९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य ! ज्ञानी भक्त = सनकादि, दत्तात्रेय, योगी कहलावै = शुकदेवादि ज्ञानी वा ब्रह्मज्ञानी हुए। नारद, अम्बरीष, हनुमानादि भक्त हुए। और गोरखनाथादि नवनाथ योगी कहलाये, अभी उनके नामसे उनके अनुयायी लोग वैसे ही कहला रहे हैं। कोई ज्ञानी, कोई भक्त, कोई योगी कहलाते हैं वा कहला रहे हैं।

मर्म महातम = सो नवधा भक्ति, मानस पूजा, भरमाई = सगुण-निर्गुण ध्यानसे ईश्वर प्राप्ति होनेको भक्त लोगोंने माना है, अष्टाङ्ग योगकी साधना द्वारा समाधिसे ज्योति-स्वरूप परमात्माका दर्शन योगी लोगोंने माना है। श्रवण-मननादिसे ब्रह्मज्ञान द्वारा 'अहंब्रह्मास्मि' ज्ञानी लोगोंने माना है, ऐसे मर्म या भेदसे बड़ा महात्म्य बढ़ा करके भ्रमिकलोग भ्रमा रहे हैं ॥

व्याख्या— उन भ्रमिकलोगोंमें प्राचीनकालसे ले करके अभी तक कोई तो ज्ञानी, विज्ञानी वा ब्रह्मज्ञानी कहलाये वा कहला रहे हैं। कोई भक्त, प्रेमी, उपासक, दास कहलाये; और कोई योगी, राजयोगी, हठयोगी, सांख्ययोगी, कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, वियोगी, संयोगी, इत्यादि कहलाये और कहला ही रहे हैं। कर्मी आदि भी अलग कहला रहे हैं। परन्तु, उन्होंने निजस्वरूपका असली मर्म तो

पारख न होनेसे कुछ जान ही नहीं पाये। इसीसे ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, तैंतीसकोटि देवता, सात स्वर्ग, अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, इत्यादिकी झूठी महिमा, महात्म्य बढ़ा-बढ़ा करके भ्रमा गये। और वही बात बता करके दूसरोंको भी भ्रमा रहे हैं। सच्चा भेद न जानकर झूठ-मूठके धोखेमें भूले और दूसरोंको भी भुला रहे हैं, बिना विचार ॥ ६९२ ॥

५. त्रिदेवा अधिकारि जगतके ❀ त्रिविधि भेष मन कुटिलाई ॥ ६९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

त्रिदेवा = विशेष करके संसारमें ब्रह्मा, अधिकारि = विष्णु, महादेव— ये तीनों जगतके = देवताके नामसे प्रख्यात हुए। सबसे आगे कर्म, उपासना, योगादि मार्ग दिखानेवाले ये ही तीन हुए हैं। जगत्के लोगोंने इन्हें ही कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता माने हैं। इन्हींके ही मत विशेषरूपसे संसारमें चल रहा है।

त्रिविधि = तहाँ संन्यासी परमहंसोंका भेष, भेष मन = वैरागी भक्तोंका भेष और नागे, कुटिलाई = निर्वाणी, नाथ, योगियोंका भेष बना करके कर्मी, उपासक, ज्ञानियोंने द्वैत, अद्वैत, विशिष्टा द्वैत- ये त्रिविधि मतको चलाये हैं। सो त्रिदेवोंका ही चलाया हुआ त्रिविधि भेष है। उनके मनमें तो बहुत ही कुटिलता, धोखा-कल्पना भरी पड़ी है। उसीमें अपने भी फँसे और दूसरोंको भी फँसाये हैं, तथा फँसा रहे हैं ॥

व्याख्या— प्राचीनकालमें जगत्के मध्यमें विशेष करके प्रख्यात त्रिदेव=ब्रह्मदेव, विष्णुदेव और महादेव, यही तीनों गुरुवालोग कर्म मार्ग, उपासना मार्ग, योगादि मार्गके प्रचारक अधिकारी हुए; और जगत्के अविवेकी लोगोंने तो उन्हें ही कर्त्ता पुरुष माना है। उन्होंने योगी, ज्ञानी, भक्तोंका त्रिविधि भेष प्रचलित किये। परन्तु, मनमें तो कुटिलताई रखे रहे। छल-कपटसे लोगोंको फँसाकर उन्होंने अपना स्वार्थ ही सिद्ध किये थे। अभी उनके अनुयायी लोग त्रिविधि भेषके स्वाङ्ग बना करके मन कुटिलाईसे ठगाई कर रहे हैं; वे तो घातक काल ही बने हैं ॥ ६९३ ॥

६. चीन्ह न परी घात मनुवाके ❀ मृतक भये नर बौराई ॥ ६९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चीन्ह न परी = बेपारखी मनुष्योंको इन घात मनुवाके = कपटी गुरुवालोगोंके घात, दाव-पेंच कुछ चीन्ह नहीं पड़ा। इसलिये उन्होंने जैसे-जैसे बतलाये, तैसे-तैसे चल करके सब मनुष्य मन-कल्पना, विषयादिमें ही उलट-पलट कर अरुझे, निजपदसे गिर पड़े। उज्ज्वल भेष देख कर भूल गये।

मृतक भये = इसलिये विचार-बुद्धिको भ्रष्ट नर बौराई = करके पागल हुए। तो वे जड़ाध्यासी हो करके मनमाते आँव-बाँव बकने-झकने लगे। ऐसे नरजीव जीतेजी बौराय गये, फिर मर करके अध्यासवश चौरासी योनियोंमें ही चले गये और अभी वैसे ही चले जा रहे हैं ॥

व्याख्या— उन गुरुवालोगोंके घात, दाव-पेंच, छल-कपट अबोध मनुष्योंको पहिचान नहीं पड़ा; और मनकी लोभ-लालचादिका घात भी चीन्ह नहीं पड़ा। उसीसे सब नरजीव बौराय-बौराय करके भ्रमिक, जड़ाध्यासी हुए, ऐसे मृतक हुए। तहाँ मर-मर कर चौरासी योनियोंमें ही चले गये। बौरे लोगोंने पन्थोंमें बहुतसी अटपट चाल चला रक्खे हैं ॥ ६९४ ॥

७. निर्णय तिलक लिलाट विराजै ❀ राज काज विधि युक्ताई ॥ ६९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निर्णय तिलक = सो उन्होंके कपट जालका लिलाट विराजै = शुरूसे निर्णय सुनिये ! ललाट या मस्तकमें भस्म, श्रीखण्ड, चन्दनादिके त्रिपुण्ड् आदि तिलक लगा करके न्यायासनकी गद्दीमें जा करके विराजमान हुए। देखनेमें तो ये सब बातोंके निर्णय

करनेवाले होंगे जैसी सजावट दिखाई देती है।

राज काज = } परन्तु, निर्णय तो वे कुछ
विधि युक्ताई = } करते ही नहीं हैं। सब बातोंको गोलमाल करके छोड़ देते हैं। तहाँ ब्रह्माने तो युक्तिपूर्वक संसारमें राज्य शासन करनेके लिये कर्मकाण्डका काज ही विधि-विधानसे चलाया। सोई कर्ममार्ग ब्राह्मणलोग अभी चला रहे हैं॥

व्याख्या— प्रथम ब्रह्माने अपना कर्ममार्गका पन्थ चलाया। तहाँ ललाट वा मस्तकमें लम्बा-चौड़ा तिलक लगा करके न्याय-निर्णय करनेके लिये न्यायकी गद्दी वा राजगद्दीमें जा करके विराजमान हुआ। परन्तु, सत्यासत्यके न्याय-निर्णय तो उसने कुछ भी नहीं किया। सिर्फ राज-काज बढ़ानेमें ही ब्रह्माने अपनी चतुराई दिखलायी। और विधि-विधानसे कर्म राज्यका कार्य ही करता-कराता रहा। देखने मात्रके लिये निर्णयकर्त्ताका भेषरूप चिह्न तिलक ललाटमें विराजमान रहा। जड़-चैतन्य, सारासार, सत्य-असत्यके बारेमें कुछ भी निर्णय उसने नहीं किया। किन्तु, गोलमाल करके ही छोड़ दिया॥ ६९५॥

८. सो प्रपञ्च विदित है जगमें ❀ जहँड़े औरन जहँड़ाई॥ ६९६॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो प्रपञ्च = } सो ब्रह्मा तो कामान्ध होकर
विदित है = } अपनी ही लड़कीके साथ विषय
जगमें = } भोगके कुकर्ममें लगा और उस कुकर्मको छिपानेके लिये ही अनेक कर्म साधनोंका प्रपञ्च, पाखण्ड विस्तार किया। वेदादि वाणीका पसारा किया। सो सब बात तो पुराणादिसे संसारमें जाहिर ही हुई है।

जहँड़े = } ऐसे प्रथम ब्रह्मा, जिसको विधाता
औरन = } माने हैं, वह स्वयं ही विषयादि
जहँड़ाई = } कर्ममार्गमें भूल करके जड़ासक्त बद्ध हुआ। और भी बहुत लोगोंको अनेक तरहोंसे कर्ममार्गमें बाँधकर जड़ासक्त बद्ध कर दिया, सो ब्राह्मण लोग अभी वैसे ही जहँड़ा रहे हैं॥

व्याख्या— ब्रह्मा और ब्राह्मणोंके कर्ममार्गकी वाणीका प्रपञ्च जगत्में सो सबको विदित वा जाहिर ही है। वे स्वयं कर्म जालमें अपने जहँड़े, फँसे, बद्ध हुए। फिर और दूसरे बहुतसे लोगोंको भी जहँड़ाये, फँसाये, भव-बन्धनमें जकड़ करके बाँध दिये हैं॥ ६९६॥

९. विष्णु दयाके रूप कहावैं ❀ कण्ठी कण्ठे दिखलाई॥ ६९७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब पहलेके शब्दके सिलसिलामें ही कह रहे हैं— हे शिष्य!

विष्णु दयाके = } दूसरे विष्णुजी तो दयालु
रूप कहावैं = } कहलाते थे, और रूप आकार-प्रकार भेष भी दयाधारीका जैसा ही बनाते थे, सो दयाके स्वरूप ही कहाते थे। अभी भक्तलोग उनकी ही उपासना करते हैं; छाप-तिलक लगा करके विष्णुको दयालु कहते हैं।

कण्ठी कण्ठे = } फर दयाधारीके चिह्नके रूपमें
दिखलाई = } गलेमें तुलसीकी कण्ठी-माला पहिन करके सबको दिखलाये थे कि, देखो! मैं दया व्रतको ही धारण करनेवाला हूँ! सो वैरागी भक्तलोग विष्णु उपासक उनके बाना पहिर करके आज भी गलेमें कण्ठी पहिर करके दिखलाते हैं॥

व्याख्या— दूसरा, विष्णु तो दयाके स्वरूपके चिह्न धारण करके दयालु ही कहलाते रहे। और विष्णुके भक्त तो उनको साक्षात् दयाकीमूर्ति ही कहते हैं। सो विष्णुने भी कण्ठ वा गलामें तुलसीकी माला, कण्ठी पहिर करके दिखलाया था कि, देखो! मैं इस कण्ठीके चीह्नरूपसे अपने कण्ठ और हृदयमें दयाको धारण करके पालन करता हूँ! इसीसे विष्णु दयारूपी कहलाते रहे। सो वैष्णव लोग भी कण्ठी पहिर करके दयावान् कहलाते हैं॥ ६९७॥

१०. सो विख्यात प्रगट हुये जगमें ❀ विषय बैर सङ्ग कुशलाई॥ ६९८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो विख्यात = } सो विष्णु आदि नारायण,
प्रगट हुये जगमें = } क्षीरसागर निवासी, महाविष्णु, पालनकर्त्ता इत्यादि नामोंसे जगत्में विख्यात या जाहिर हुए। फिर वे ही मुख्य दश अवतार लेकर संसारमें प्रगट हुए, ऐसा गुरुवालोगोंने कल्पनासे प्रगट किये हैं, बहुत महिमा बढ़ाये हैं।

विषय बैर = } परन्तु, दयाका कोई अङ्ग भी
सङ्ग कुशलाई = } विष्णुमें नहीं था क्योंकि, बृन्दासे विषय भोग करके उसके सत्यको हरण किया। अनेकों दैत्योंसे वैर-विरोध करके घात किया, उन्हें मार गिराया। और कृष्णादि अवतारोंमें विषय भोगादिके लिये वैर-विरोध, सङ्ग-कुसङ्ग इसीकी कुशलता, चतुराई, धूर्ताई विशेष रही। अब कहो भला? कहाँ दयाका पालन हुआ? सो उनके चरित्र तो जगत्में विख्यात ही है॥

व्याख्या— अरे भाई! सो विष्णुका चरित्र तो पुराणोंमें लिखा हुआ प्रसिद्ध ही है कि, विषय भोगोंके लिये छल-कपट करना, स्वार्थ सिद्धिके लिये वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, मार-काट करना, सङ्ग-कुसङ्ग करना, इत्यादि कुकर्म करनेमें ही तो विष्णुकी कुशलताई, चतुराई वा चालाकी रही; सो उस करनीसे जगत्में विख्यात होकर विष्णु प्रगट हुए हैं। उनकी विषय-लीला पुराण पढ़नेवाले लोग जानते ही हैं; विशेष क्या लिखना? दयाका पालन तो उनमें नहीं रहा॥ ६९८॥

११. जतिको डिम्भ जो हरको देखा * कामारी दृढ़ फैलाई॥ ६९९॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

जतिको डिम्भ = } त्यागी, ब्रह्मचारी,
जो हरको देखा = } लङ्गोटधारी परम वैराग्यवान् होनेका नकल, स्वाङ्ग, पाखण्ड, अभिमानकी विशेषता तो जो कि, महादेवने दिखाया था; परन्तु, विवेकदृष्टिसे देखो! तो ये सब बात झूठी थी। अभी निर्णय करनेसे तुम्हें असलियत दिखाई देगी या जान जाओगे कि, कैसा था?—

कामारी = } गुरुवालोगोंने ऐसी महिमा
दृढ़ फैलाई = } बढ़ाये हैं कि, शिवजी तो कामके पूरे शत्रु थे। उन्होंने कामदेवको भस्म करके जला दिया था। एक बार ध्यान स्थितिमें शिव बैठे थे, तो कामदेव सदेह छलनेको आया था, तब तीसरा नेत्र खोल करके महेशने देखा, तो कामदेव भस्मकी ढेरी हो गया, ऐसी-ऐसी बात दृढ़ा करके फैलाये हैं। परन्तु, पुराणोंमें ही उनके कुकर्मोंकी बात भी लिखी है कि, वे बड़े कामी विषयासक्त रहे॥

व्याख्या— तीसरा, महादेवकी तरफ लक्ष्य लगाकर देखो! उन्होंने दिखानेको तो बाहर यति = विषय त्यागी, विरक्त होनेका स्वाङ्ग बना करके दम्भ, छल, कपटको ही दिखाया था। जो तुमने हरको यतिके रूपमें देखा, सो तो झूठी डिम्भ ही मात्र तमाशा दिखलाया था। परन्तु, शिवभक्त लोगोंने महादेव कामारि हैं, उन्होंने काम शत्रुको जला करके भस्म कर दिया है, इत्यादि झूठ-मूठकी महिमा अज्ञानी लोगोंको दृढ़ा करके फैला दिया है। असल बातको छिपा करके झूठी प्रशंसा ही विस्तार किया है; सो उसमें कुछ भी सत्य नहीं है॥ ६९९॥

१२. खुली काँछ कामके माते * कहत न लागे सकुचाई॥ ७००॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

खुली काँछ = } पहले सतीदेवी स्त्री महेशकी
कामके माते = } पत्नी रही; वह मरी, तो पार्वती-से विवाह किया; वह साथ ही रहती रही। एक समय मोहिनीके रूपको देख करके वे काममें मदोन्मत्त हुए, कामान्ध बने, तब लङ्गोटी खोलकर मोहिनीके पीछे लग पड़े। वह भागी, तो वीर्य पतन करके दुःखित हुए। ऐसे निर्लज्ज पशुवत् चलते रहे।

कहत न लागे = } ऐसे साथमें स्त्री होते हुए भी
सकुचाई = } व्यभिचारमें रत रहनेवाले कामासक्तको त्यागी, कामको जीते हुए कामारि कहतेमें झूठ-मूठकी महिमा गातेमें,

इन अविचारी शिव भक्तोंको कुछ सङ्कोच, लज्जा-शरम भी नहीं लगती है। बैल ही बने हैं॥

व्याख्या— क्योंकि, पुराणोंमें ही उनके चरित्र वर्णन करते हुए एक जगह लिखा है कि, जब विष्णुने मोहिनी स्त्रीके कपट रूपको दिखाया, तब महेश कामान्ध होकर सुध-बुध खोकर पासमें खड़ी विवाहिता स्त्री पार्वतीकी भी पर्वाह न करके निर्लज्ज पशुवत् होकर धोती-लङ्गोटी खोलकर ठण्ठनाते हुए मोहिनी स्त्रीको पकड़नेके लिये उसीके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। परन्तु, वह भाग गई, हाथ न आई, तो कामके वेगसे रास्तेमें ही वीर्यपात कर बैठे। ऐसे कामके मदमें मातके काँछ खुली, वीर्य गिर पड़ा, तब बड़े दुःखी हुए। उधरसे पार्वतीको ढूँढ़ती हुई आती देखकर लज्जाके मारे शिर नीचा हुआ, पछताया। एक दफे भिलनी स्त्रीसे विषयमें फँसा था। एक दफे अन्य मनुष्योंकी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियोंको देखकर कामासक्त होकर उन्हें फुसला करके व्यभिचार किया था। तब भी पार्वतीने ही उनको छुड़ा लायी थी। ऐसे कई बार पशुवत् दुराचारमें लगे थे; ऐसा शिव चरित्र जाहिर है। तब भी शिव-भक्त लोगोंको झूठी महिमा बढ़ाकर महादेवको कामारी, कामविजयी, यति कहनेमें कुछ भी सङ्कोच, लाज-शरम उन्हें नहीं लगती है। सच है, बैलके भाई वे महाबैल बुद्धिहीन नरपशु ही बने हैं। तभी तो झूठी प्रशंसा करके मिथ्यावादी बने हैं, सो जानिये ! ॥ ७०० ॥

१३. जैसा कहै करै पुनि तैसा ❀ सत्य शब्दसों अटलाई ॥ ७०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जैसा कहै = करै पुनि तैसा = इसवास्ते हे मनुष्यो ! जैसा मुखसे कहना, तैसा कर्त्तव्य-से भी करना चाहिये, तभी प्रमाण होता है। ब्रह्मादिकोंने तो कहा कुछ और किया कुछ ही। इसलिये वे गुरुवालोग काल बने। इससे उन्होंके पक्ष छोड़कर जैसा पारखी सद्गुरु कहते हैं, वैसे ही अपने न्याय-निर्णयसे सुधार करो, फिर वैसे कहो भी, और करो भी, जिससे कल्याण हो जायगा। और—

सत्य शब्दसों = अटलाई = गुरुमुख सारशब्दकी वाणी-से 'मैं जीव नित्य-सत्य हूँ !' ऐसा जान करके हंस रहनी-रहस्य संयुक्त हो, पारखपद निज स्वरूपमें ही अटल, अचल दृढ़ होना चाहिये। सो सत्य शब्दके मननसे अटल होओगे॥

व्याख्या— इसलिये हे मुमुक्षुओ ! तुम लोग उन ब्रह्मादि त्रिदेवोंके पक्षपातको छोड़ दो ! हितेच्छुकोंको चाहिये कि, जैसी बात, कथन मुखसे कहै, फिर तैसा ही पालन कर्त्तव्यसे भी करै; तब ही कल्याण होता है। परन्तु, त्रिदेवोंने कहा कुछ और किया कुछ ही। इसीसे वे धूर्त, ठग, बन्धनदायी ही बने थे, और जैसा गुरुमुखसे न्याय-निर्णय कहा है, फिर तैसा ही पालन भी करै। सत्य शब्द टकसारसे सब बातोंकी छान-बीन करके पारखपदमें ही स्थिति करके अटल, अचल, स्थिर होना चाहिये ॥ ७०१ ॥

१४. फन्दा टूटै तब जीव छूटै ❀ बिन गुरु जाल न दर्शाई ॥ ७०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

फन्दा टूटै = तब जीव छूटै = खानी जाल तथा वाणी जाल, ये ही दो महान फन्दा जीवोंपर पड़ा हुआ है। पारख बोधसे ही विषय-कल्पनादिका फन्दा टूट करके छिन्न-भिन्न हो जायगा। तभी जीव भव-बन्धनोंसे छूट करके सर्वदाके लिये मुक्त हो जायगा।

बिन गुरु जाल = न दर्शाई = परन्तु, हे भाई ! पारखी सद्गुरु मिले बिना और उनके शरणागत होकर विवेक-दृष्टि खोले बिना ये महाजाल है, तो भी आप ही अपने-को दिखाई नहीं देगा। जब सद्गुरु दया करके परखाकर दर्शायेंगे, तभी दिखाई देगा। इसलिये सद्गुरुका सत्सङ्ग करते रहो॥

व्याख्या— सद्गुरुके पारख बोधसे काल-जालका मोटी-झीनी फन्दा जब टूट जायगा, वह छिन्न-भिन्न होकर नाश हो जायगा, तब ही नरजीव महान कठिन भव-बन्धनोंसे छूटेंगे। यानी

फन्दाके टूटनेपर ही जीव मुक्त होकर दुःखोंसे छूट जावेंगे। परन्तु, पारखी सद्गुरुकी कृपा हुए बिना किसीको भी कभी पारख बोध नहीं होता है, और पूर्ण पारख बोध हुए बिना वह काल-जाल किसीको भी दिखाई नहीं देता है, इसीसे धोखेमें पड़कर बद्ध हो चौरासी योनियोंके चक्रमें ही सब जीव पड़े हैं, और पड़े ही रहते हैं, बिना सत्सङ्ग ॥ ७०२ ॥

१५. सन्त सदा सोई परमाणिक ❀ जिन निजु घरकी सुधि पाई ॥ ७०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सन्त सदा सोई = हे सन्तो ! सदा-सर्वदा
परमाणिक = विवेक-विचार करके मन इन्द्रियादिके विकारोंको शान्त, स्थिर करो! वे ही पारखी सन्त सम्माननीय, परम पूजनीय, मानने योग्य प्रमाणिक हैं, जो पारख बोध दाता, भ्रम निवारक होते हैं। और—

जिन निजु घरकी = जिन्होंने अपना स्वयं
सुधि पाई = स्वरूप अखण्ड, चैतन्य, पारख स्थितिरूप अविचल घरका पता पा गये हैं। अतएव सब मन-मायाके प्रपञ्चोंसे न्यारे होकर विवेक-वैराग्यादि सद्गुण रहनी-रहस्य संयुक्त पारखपदमें स्थिति किये रहते हैं। उन्होंके वचन प्रमाण करने योग्य हैं। उसी प्रमाणसे चलना चाहिये! ॥

व्याख्या— हे मनुष्यो! पारखी सन्त तो सदा निज स्वरूप पारख स्थितिमें ही स्थिर रहते हैं, सोई सच्चे प्रामाणिक हैं। अतः उनके सत्य उपदेश ही प्रमाण करके मानने योग्य हैं। जिन्होंने निज घर=स्वयंस्वरूप पारखपदकी घेरामें ठहराव करनेकी युक्ति सुधि-बुद्धि, विवेक-विचारको साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके जान पाये हैं, शान्ति, सन्तोष, दया, क्षमादि सद्गुण रहनी-रहस्य संयुक्त निजपदमें ही ठहराव किये हैं, वे ही निर्बन्ध होते हैं, और जीवोंको भी बन्धनोंसे छुड़ाते हैं। ऐसे ही पारखी सन्तोंका उपदेश प्रामाणिक होता है। ऐसा जान करके उनके ही सत्सङ्गमें मुमुक्षुओं-ने लगे रहना चाहिये; उन्हींसे हित-कल्याण होगा ॥ ७०३ ॥

१६. कहहिं कबीर चेतु नर बौरे ! ❀ हो हुशियार दुःख बिलगाई ॥ ७०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कहहिं कबीर = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने
चेतु नर बौरे! = ऐसा कहकर सारासार लखा कर चेताये हैं कि, हे नर दिवाने! या हे बौरे मनुष्य! अभी तू चेत जा! यह नरदेह सुधार करनेकी जगह मुक्ति होनेकी भूमिका है। अभी चेत-चेत करके जागो!—
हो हुशियार = सावधान हो जाओ!—

दुःख बिलगाई = तेरे पीछे बहुतसे चोर-लुटेरों-का घेरा पड़ा है। गुरुवा और स्त्रियाँ ये सब दुःखदायी ही हैं, इन्होंके सङ्गमें मत् भूलो! आवागमन दुःखोंके कारण जड़ विषयाध्यासोंसे जीवको अलग करके पारखपदमें ठहराना चाहिये। तभी नर तन पाया हुआ सफल होगा! अतः दुःख बिलगा करके हुशियार हो रहो! ॥

व्याख्या— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है कि— हे नर बौरे! अजहूँ = अब तो भी तुमलोग चेत जाओ! सावधान, जाग्रत् होओ! बिना विचारे क्यों तुम-लोग गाफिलीमें पड़े हुए हो? खानी-वाणीमें अन्धाधुन्ध क्यों बन्धे पड़े हो? और षट् प्रकारके पक्षपात पकड़ करके नाहक क्यों षट्पशु बन रहे हो? पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग-विचार करके अब तो भी चेत करो! यह हाथका शुभ अवसर मनुष्य जन्मको व्यर्थमें मत् खोओ! विवेकी बन करके हुशियार होओ! दुःखदायी विषयासक्ति और अनुमान, कल्पना, भ्रम, भूलको परखकर बिलगा करके छोड़ दो! और कुसङ्गीलोग, गुरुवालोग, स्त्रियाँ इन्होंका सङ्ग-साथ भी सदाके लिये त्याग दो! हंस पारखी होकर सदा सावधान बने रहो! तभी सब बन्धनोंसे छूटकर स्वतन्त्र होकर तुम सदाके लिये सुखी मुक्त हो जाओगे। ऐसा जानकर अपने हितके लिये सत्पुरुषार्थमें ही सदा लगे रहो! यही भावार्थ है ॥ ७०४ ॥

दोहाः— बन्दीछोर कबीर गुरु * कहा वचन टकसार ॥
[३२५] तेहि मत प्रगट पुनीत मन * राखै दुन्द निवार ॥ ७०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !
बन्दीछोर = } खानी-वाणी आदिके समस्त
कबीर गुरु = } बन्धनोंसे जीवको छुड़ानेवाले पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही एक बन्दीछोर महापुरुष हुए हैं।
कहा वचन = } सद्ग्रन्थ बीजकमें आपने दया
टकसार = } करके यथार्थ सत्य निर्णयको खोल-खोलकर कहा है। सोई सद्वचन सत्सङ्गमें पारखी सन्त कह रहे हैं। वही सार बात यहाँ भी कही गयी है।
तेहि मत प्रगट = } उसी पारख सिद्धान्त सत्य
पुनीत मन = } बीजकके मतको सद्गुरु द्वारा प्रगट करके प्रत्यक्ष हृदयमें धारण करे, तो सब विकार नाश होकर मन पवित्र शुद्ध हो जायगा।
राखै दुन्द = } मनमें जितने मानन्दी, कल्पना,
निवार = } विषय रखे हो, उसको मिटा करके गुरुमत पारखको मनमें टिका रक्खो, तो आवागमनादि होनेका दुन्दरूप सब झगड़ा मिटेगा ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने दया करके मनुष्योंके प्रति कहा हुआ यथार्थ गुरुमुख सत्यन्याय निर्णयका वचन टकसाररूप सद्ग्रन्थ मूल बीजकमें लिखा हुआ प्रगट है। उसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचार द्वारा श्रवण-मनन करके उसके भावको पूर्ण रीतिसे समझ लेना चाहिये। और फिर खानी-वाणीके दुन्दरूप मिथ्या मानन्दी, पक्षपात, हठ, दुराग्रह, झगड़ा-फसाद आदिको निवारण करके उसी पारख सिद्धान्तके सत्यमतको ही प्रगटमें मनको पवित्र स्वच्छ करके हृदयमें धारण करते हुए रखना चाहिये। उसीसे ही नर जीवोंका यथार्थमें कल्याण होगा ॥ ७०५ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! यह क्रमते करै * याको सदा विचार ॥
[३२६] अस्ति आत्मा राम है * नास्ति जगत विस्तार ॥ ७०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—
हे शिष्य ! यह = } हे प्रेमी शिष्य ! क्रमानुसार
क्रमते करै = } नित्यप्रति सत्सङ्ग करो, और क्रम-क्रमसे मोटी-झीनी बन्धनोंको परित्याग करो ! यही करो कि—
याको सदा = } जीवको बन्धन किसप्रकारसे
विचार = } हुआ है ? और छूटेगा कैसे ? इसीका निर्णय, विवेक-विचार सदा करो !—
अस्ति आत्मा = } आत्मा-परमात्मा, राम
राम है = } आदिको ठहरा करके माननेवाला यह जीव ही सत्य है। वह निज मानन्दीमें रम रहा है। इसलिये चेतन ही 'राम' है, सो 'अस्ति' है। और—
नास्ति जगत = } ब्रह्मसे जगत् उत्पत्तिका
विस्तार = } विस्तार जो माना है, सो नास्ति मिथ्या धोखा है। संसारमें जीवने ही नास्ति वाणी-खानीका विस्तार किया है ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! इसका यही क्रमसे सदा-सर्वदा विचार-विवेक करते रहो। पारखी साधु-गुरुके ही सत्सङ्गमें रहकर सारासारका सदा विचार करो। असारको त्याग करके सारको ही ग्रहण करो। असलमें नित्य, सत्य, अखण्ड, अविनाशी, एकरस, ऐसा तो चैतन्य जीव ही है। जीवको छोड़ करके दूसरा कोई सत्य वस्तु नहीं है। परन्तु, भ्रमिक गुरुवालोगोंने तो एक आत्माराम अस्ति है, जगत्का विस्तार नास्ति है, ऐसा कल्पना किये है; सो यथार्थ नहीं है। व्यापक माना हुआ आत्माराम कोई वस्तु ही नहीं है, तो वह सत्य कैसे होगा ? और जड़-चैतन्यरूप जगत्का विस्तार अनादि होनेसे वास्तवमें वह नास्ति नहीं है। परन्तु, तहाँ जगत्में वाणी-कल्पना और विषयोंकी मानन्दी नास्ति है, सो ऐसा जानना चाहिये ॥ ७०६ ॥

दोहाः— नास्ति माँहि ये अस्ति जो * लागे तेहू नास्ति ॥
[३२७] याकी पारख ठहरिके * गुरुमुख लखै सो आस्ति ॥ ७०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

नास्ति माँहि = } जीव ही जड़ाध्यासी होकर
ये अस्ति जो = } आवागमनोंमें पड़े हैं। सत्य जीवने जो-जो शरीर धारण किया है, सो भी नाशवान् जड़तत्त्वोंके कार्यरूप हैं।

लागे तेहू = } जीवसे भिन्न निर्जीव विषय,
नास्ति = } ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पनाओंमें जो-जो लगे, सो-सो धोखेमें पड़े, उनके देह तो नाश हुआ; किन्तु, हृदयमें अध्यास बना रहा, इसलिये चौरासी योनियोंमें पड़ करके विनाशको प्राप्त हो गये।

याकी पारख = } जो पारखी सद्गुरुके
ठहरिके = } सत्सङ्गमें ठहर करके बन्ध-मुक्ति, सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका पारख करते हैं, सो सब भव-बन्धनोंसे छूट जाते हैं। निज पारखपदमें स्थिर हो जाते हैं।

गुरुमुख लखै = } सोई पारखी सद्गुरुके मुखके
सो आस्ति = } निर्णयसे निज सत्य चैतन्य जीवको सबसे न्यारा लखते और लखाते हैं। सोई सच्चे सत्यके जानकार सद्गुरुरूप पारखी होते हैं ॥

व्याख्या— विचार करो ! यह 'अस्ति जीव' मिथ्या मानन्दीको दृढ़ करके जो नास्तिमें लगा है, तो क्या भ्रम, भूल, धोखेमें जीवके लगने मात्रसे ही विषय भोगोंके सुख आदि और ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना कभी सत्य हो सकता है ? किन्तु, वह तो कभी सत्य नहीं होगा। जिसमें लगा है, तेहू = वह विषय और ब्रह्म आदि भी तो नास्ति असत्य मानन्दीकृत भासमात्र है। किन्तु, उसी भास-अध्यासादिके कारणसे जीव भव-बन्धनोंमें पड़े और पड़ते हैं। अतः सत्सङ्ग-विचार द्वारा इसका पारख गुरुमुख निर्णयमें ठहर करके लखना चाहिये। तब गुरुमुखसे लखने-लखानेवाला हंसजीव ही अस्ति = सत्य है, ऐसा जाननेमें आ जायगा। इसप्रकार समझ-बूझकर पारखपदमें ही ठहराव कर लेना चाहिये; सोई चैतन्य जीव ही अस्ति पद है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ७०७ ॥

दोहाः— सङ्कल्पे जग है भयो * मिटै सङ्कल्प नशाय ॥
[३२८] दोऊकी पारख करै * ठहरै दोऊ न कहाय ॥ ७०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सङ्कल्पे जग = } नरजीवने ही मनसे सङ्कल्प
है भयो = } करके जगत्को देखकर फिर जगत्कर्त्ताकी कल्पना किया कि, कोई परब्रह्मकी इच्छासे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ होगा ? या सृष्टि विस्तार हुई होगी ?—

मिटै सङ्कल्प = } फिर जब अपना सङ्कल्प मिट
नशाय = } गया, तो सोई लक्षण ब्रह्मके ऊपर भी लगाया कि, परमात्मा जब सङ्कल्पको मिटा देता है, तब साथ ही सारा चराचर जगत् भी विनाश होकर महाप्रलय हो जाता है; तब एक ब्रह्म ही रहता है। ऐसी कल्पना किया है।

दोऊकी = } उक्त सङ्कल्प-विकल्प, उत्पत्ति-
पारख करै = } प्रलय उन दोनोंका, अथवा खानी और वाणी यह दोनोंका ठीकसे निर्णय करके पारख करो कि, उन दोनोंको परखनेवाला दोनोंसे ही न्यारा है। ऐसी परीक्षा करो। और—

ठहरै दोऊ = } मिथ्या, भ्रान्ति, धोखा, जड़
न कहाय = } नाशवान् परिणामी ऐसा ब्रह्म और जगत् है। इसलिये वे दोनों तुम मत् कहलाओ, दोनों भाससे रहित होकर पारख पदमें ही ठहरो ! ॥

व्याख्या— मनुष्योंने मनके सङ्कल्प द्वारा कल्पना करके वेदादि वाणी और ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि कर्त्ताकी मानन्दी करके कल्पित सृष्टिकी रचना किये हैं, फिर उसी कर्त्ताके सङ्कल्परूप इच्छासे चराचर जगत्की उत्पत्ति हुई, और ब्रह्मका सङ्कल्प मिटके निर्विकल्प होनेपर महाप्रलयमें जगत् मिट करके नाश हो जायगा, इत्यादि मिथ्या कथन किये हैं। उसीसे अध्यासी जीव बद्ध

होकर चौरासी योनियोंमें देह धारण करके उत्पन्न हो रहे हैं। परीक्षा होनेपर वह भ्रम-भूलका सङ्कल्प भी नाश होकर मिट जायगा, तब जीव बन्धनोंसे छूटेंगे। और उन दोनों बातका पारख करके भ्रम मिटाकर पारखपदमें ही ठहर रहे। और ब्रह्मवादी तथा जगत्वादी दोनों भी नहीं कहलावे; और खानी-वाणीकी मानन्दी करके दोनों तरफके मिथ्या अभिमानके पद लेकर कुछ नहीं कहलावे। स्वरूप स्थितिमें ही स्थिर हो रहे! और कुछ कहलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ कहलाया कि, धोखा खाया, सो जानो! ॥ ७०८ ॥

दोहाः— अस्तिसे देखे नास्तिको ❀ व्यष्टि समष्ट्याकार ॥
[३२९] समष्टि व्यष्टि दोऊ मेटै ❀ गुरुमुख सो तदाकार ॥ ७०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अस्तिसे देखे = } तहाँ हंस-दृष्टिसे ब्रह्म-
नास्तिको = } जगत्को अपनेसे भिन्न, मिथ्या नाशवान् देखो! परखो! उनमें मत् मिलो, द्रष्टाको न्यारा जानो! और—

व्यष्टि = } भिन्न-भिन्न कार्यरूप जगत्
समष्ट्याकार = } सो व्यष्टि है। और उन सब चराचर जगत्को एकमें समेट करके विराटरूपमें व्यापक ब्रह्माकार कल्पना किये हैं।—

समष्टि व्यष्टि = } वह ब्रह्म-जगत्के कल्पना,
दोऊ मेटै = } और विषय दोनोंको परख करके मिटाय डालो, एक-अनेककी उपाधिमें मत् पड़ो। समष्टि और व्यष्टि दोनोंको मेट देओ।

गुरुमुख सो = } उन जगत्-ब्रह्मके आकारका
तदाकार = } अध्यास छोड़ करके गुरुमुख निर्णयसे पारखदृष्टि करके स्व-स्वरूपमें स्थिर एकाग्र हो रहो। स्वरूप स्थितिमें तदाकार होओ ॥

व्याख्या— व्यष्टि=नाना रूपवाला जगत् है। समष्ट्याकारमें सब चराचरको समेट करके एक ही ब्रह्म निराकार व्यापक सर्वत्र परिपूर्ण है, ऐसा ब्रह्मज्ञानीने अद्वैत मतमें माना है; सो नास्ति धोखा है। उसे अस्तिसे पारख करके देखै, परखै। उसे कल्पना जान करके त्यागै। फिर समष्टिमें ब्रह्म कल्पनाकी मानन्दी और व्यष्टिमें नाना जगत् विषयोंका अध्यास इन दोनोंको विवेक करके मेट देवे। फिर गुरुमुख निर्णयसे स्वयं सिद्ध स्व-स्वरूप पारखपदमें तदाकार हो, अपरोक्ष स्थितिमें निश्चल हो रहै ॥ ७०९ ॥

दोहाः— तदाकार सो अस्ति पद ❀ सोई है कर्त्तार ॥
[३३०] कर्त्ता कल्पै सब भयो ❀ ब्रह्म सृष्टि जग झार ॥ ७१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

तदाकार सो = } स्वयं स्वरूप जीव ही
अस्ति पद = } सत्य है। पारखपद ही जीवकी स्थितिका पद है। पारखदृष्टिसे तदाकार जो हैं; सो मुक्त हो जाते हैं।

सोई है = } सोई पारखके प्रकाशकर्त्ता पारखी
कर्त्तार = } सद्गुरु बन्दीछोर हैं। और जगत्कर्त्ता ईश्वर, वेदादि वाणीकी कल्पना करनेवाला नरजीव ही श्रेष्ठ सत्य कर्त्ता है। ऐसा पारखी सद्गुरुने बतलाया है।

कर्त्ता कल्पै = } अतः वेदादि वाणीका कर्त्ता
सब भयो = } मनुष्योंने ही जब कल्पना किया, तब नाना मत, पन्थ, ग्रन्थ, ईश्वर, खुदा आदि सब जालोंका विस्तार किया गया।

ब्रह्म सृष्टि = } ब्रह्म, ईश्वर, जीवकी सृष्टिसे
जगझार = } लेकर सम्पूर्ण जगत्का प्रपञ्च पञ्च विषयादि फैलाया है। कोई ब्रह्मसे ही सारा जगत्-सृष्टिकी उत्पत्तिकी कल्पना किये हैं। यह सब नरजीवके कर्त्तव्यसे ही हुआ है ॥

व्याख्या— उसमें तदाकार होनेवाला सोई अस्तिपद नित्य, सत्य, चैतन्य जीव स्वयं स्वरूप है। सोई नरजीव ही वाणी और खानीके कर्त्तार हैं। परन्तु, जीवोंने निज स्वरूपको भूले, तो

और ही कोई दूसरा ब्रह्म-ईश्वरादि जगत्का कर्त्ता होगा, ऐसी कल्पना करके माने और भ्रमिक हुए हैं। सो कर्त्तारूप मनुष्य जीवके ही कल्पनाका विस्तार करनेसे सब भव-बन्धन अनेक प्रकारसे खड़ा हुआ है। तहाँ ब्रह्मसे लेकर सम्पूर्ण जगत् सृष्टिका वा ब्रह्मसृष्टि आदिका विस्तार भी मनुष्योंकी कल्पनासे ही हुआ है। परन्तु, यह भेद न जानकर सब मनुष्य भ्रमिक जड़ाध्यासी बनकर बद्ध होकर आवागमन चक्रमें ही पड़े हैं, बिना पारख ॥ ७१० ॥

दोहाः— ब्रह्म अस्ति हन्ता सोई * नास्ति रूपकी खानि ॥
[३३१] त्यागै गुरुमुख परख लही * परखै खानि औ बानि ॥ ७११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ब्रह्म अस्ति = हन्ता सोई = बेपारखी नरजीवोंने निज सत्स्वरूपको भूलकर एक ब्रह्मको सत्य मानकर सोई अहङ्कार-अध्यासको धारण किया।

नास्ति रूप-की खानि = अरे भाई ! वह ब्रह्म तो मिथ्या वा नास्ति है। व्यापक बननेसे चौरासी योनियोंके चार खानी जगत्का ही स्वरूप ठहरता है। और तो कोई उसका रूप नहीं है, नास्ति है।

त्यागै गुरुमुख = परख लही = हे शिष्य ! गुरुमुख निर्णयके सत्यज्ञानसे पारखदृष्टिको प्राप्त करके उस मिथ्या धोखेको तुम त्याग करो, मिथ्या पक्षको छोड़ दो !

परखै खानि = औ बानि = खानी सोई जगत् जाल है, और वाणी सोई ब्रह्म-भ्रमका जाल है। ये दोनोंको ही पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठीकसे परख करके जड़ाध्यासको परित्याग करो ! न्यारा हो रहो ! ॥

व्याख्या— अस्ति माना हुआ ब्रह्म तो सत्य नहीं है। परन्तु, सो सत्य नरजीवोंकी ही हन्ता मात्र है। और सोई हन्ता नास्तिरूप जगत्की खानी बना है। चारखानी चौरासी योनियोंका मूल कारण है। सो उस रूपकी खानी मानन्दी ही नास्ति है, तो फिर कल्पित ब्रह्म कहाँ, कैसे अस्ति हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता है। इसलिये गुरुमुख निर्णयसे पारख बोध प्राप्तकर उस मानन्दीको त्याग कर देना चाहिये। और बन्धनरूप खानी जाल तथा वाणी जालोंको भी अच्छी तरहसे परख करके त्याग देना चाहिये। पारख करके सत्यासत्यको लखै, और असत्य मानन्दी अध्यास विषयादि विकारोंको सर्वथा हटा देवे, सबका परीक्षक होकर सबसे पृथक् रहै ॥७११॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग-१९ ॥ ❀ ॥

१. हे शिष्य ! हंसन निश्चय येहा * ठहरै गुरुपद सहित सनेहा ॥ ७१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! हंसन निश्चय येहा = हे प्रेमी शिष्य ! विवेकी हंस नरजीवोंका यही निश्चय रहता है कि, चैतन्य जीव ही स्वयं स्वरूप नित्य, सत्य, निश्चयसे अखण्ड है, सोई मेरा स्वरूप है। यह देह तो जड़ तत्त्वोंका कार्य होनेसे नाशवान् है, इत्यादि-

ठहरै गुरुपद सहित सनेहा = ऐसा यथार्थ जान करके सत्यबोध दाता पारखी साधु सद्गुरुमें सत्य प्रेम भक्ति भाव स्नेह या प्रीति पूर्वक रहनी-रहस्य सहित गुरुपद पारखमें निश्चल होकर ठहर जाते हैं वा स्थिर होते हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! हंस जीवोंकी परीक्षादृष्टि खुलनेपर यही पारखपद सत्य है, ऐसा पक्का निश्चय हो जाता है। इसीसे वे पारखी बन करके गुरुपदमें ही सत्य श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, विश्वास शुद्ध स्नेहके सहित रहनी-रहस्यको धारण करके ठहरे रहते हैं वा ठहर जाते हैं ॥ ७१२ ॥

२. बुरी बात जो दृष्टि समाई * तुरितहि त्यागे पक्ष ना करई ॥ ७१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

बुरी बात जो = काम, क्रोधादि विषय,
दृष्टि समाई = कल्पना, ब्रह्म, ईश्वरादि
धोखा, हिंसा, छल-कपट, प्रपञ्च, व्यभिचार पाखण्ड इत्यादि बुरी या खराब बातोंको हंस-दृष्टिसे देख लेते हैं कि, ये महान हानिकारक हैं। और जो कुछ भी अपनेमें कसर दिखाई देता है, उसको निकालनेका प्रयत्न करते हैं।

तुरितहि त्यागै = फिर उन बुराईकी बात,
पक्ष ना करई = दूषित कार्य, मत-पन्थोंकी
मिथ्या मानन्दी आदि इन सबोंको परख करके तुरन्त ही परित्याग कर देते हैं। वे खानी-वाणीका पक्षपात, हठ, कभी करते ही नहीं हैं, निष्पक्ष होकर हंस-दृष्टिसे निर्णयको ग्रहण करते हैं। और बुरी बातको तुरन्त ही त्याग कर देते हैं॥

व्याख्या— उन्हें जो कुछ भी बुरी बात, खराब आदत, झूठी बात विवेक-दृष्टिमें समा जाती है, अर्थात् परखनेपर जो बात बुरी, धोखेकी निकम्मी, और अनुचित, अनर्थ देखनेमें आ जाती है, तो फिर उसे तुरन्त ही भीतर-बाहरसे त्याग कर देते हैं। वे किसी बातका, किसी तरफका भी पक्षपात, हठ, दुराग्रह नहीं करते हैं; सत्य बात होगी, तो अन्य मतवादियोंकी हो, तो भी उसे सत्य ही कहेंगे। और मिथ्या बात होगी, तो उसे निर्णय करके मिथ्या ही कहेंगे। किसी मतके भी वे मिथ्या पक्ष नहीं करेंगे; इसीसे वे सत्यन्यायी कहलाते हैं॥ ७१३॥

३. निर्णय आश्रित जो जीव भयऊ * सो जीव निर्णय यथारथ ठयऊ॥ ७१४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

निर्णय आश्रित = जो नरजीव पारखी
जो जीव भयऊ = सत्यन्यायी सत्यनिर्णयी सद्गुरु बन्दीछोरके चरण-शरण हो करके गुरुपद निर्णयके आश्रित हुए, यानी गुरुज्ञानके आधारमें जो जीव रह गये हैं—
सो जीव = सोई जीवरूप मनुष्य—

निर्णय यथारथ ठयऊ = जड़-चैतन्यके गुण-लक्षण आदि-अनादिके भेद, बन्धन-मुक्तिके हेतु, एक-अनेकादिका यथार्थ सत्यासत्यका निर्णय गुरुमुखसे ठहराकर, फिर सत्य, चैतन्य निज पारखपदमें ही सो ठहर जाते हैं; बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं॥

व्याख्या— इसप्रकार जो विवेकी नरजीव सद्गुरुके सत्यन्याय निर्णयके आश्रित = आधारमें रहनेवाले हुए वा होते हैं, सोई हंस नरजीव यथार्थ निर्णयसे पारखपदमें ठहर गये वा ऐसे ही निर्णयसे निजपदमें ठहर जावेंगे। उन्होंने ही जीव चैतन्य सत्य है, और ब्रह्म-ईश्वरादि अनुमान मिथ्या है; ऐसा यथार्थ निर्णयसे ठहराये हैं॥ ७१४॥

४. अनुमानी अनुमान अहन्ता * परे काल मुख लहे न समता॥ ७१५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अनुमानी = जो कोई भ्रम तरङ्गमें पड़े हैं;
अनुमान = सो जीव अनुमानी होकर सत्य-
अहन्ता = मिथ्याको मिलाकर अनेक तरह-से मानन्दी किये, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवता, स्वर्गादिका अनुमान कर अनेकों मत-पन्थोंके अभिमानी हुए, सो पञ्च अहङ्कारमें ग्रसित हुए, जड़ाध्यासी हो गये हैं।

परे काल मुख = इसीसे वे जीव गुरुवालोग
लहे न समता = और स्त्रियोंके मुखमें पड़कर वाणी-खानीमें झुलस रहे हैं वा जल रहे हैं, और जन्मृतिमें पड़े हैं। इसलिये कभी उन्हें शान्ति, सुख, स्थिति, समता नहीं मिलती है। बिना पारख चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं। जो कालके मुखमें पड़े हैं, वे कभी समता-को नहीं पाते हैं। अतः वे मुक्त नहीं होते हैं॥

व्याख्या— योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मी आदि मतवादी भ्रमिक लोग अनुमानी होकर अनुमान-कल्पनादि धोखेमें ही टिके हैं। तहाँ उसीकी हन्ता-ममतादि लेकर जड़ाध्यासी होकर बद्ध हो रहे हैं। इसीसे वे सब लोग काल-कलपना, विषय आदिके मुखमें जा-जा करके पड़े, तो बहुत ही दुःख-सन्ताप पाये। परन्तु, अभीतक भी उन्हें समतारूप बराबर निजस्वरूपकी स्थिति प्राप्त नहीं हुई।

अतः भव-बन्धनोंमें ही पड़े हुए अध्यासी जीव दुःख भोग रहे हैं ॥ ७१५ ॥

दोहाः— निश्चय पदके अनुक्रम * तो कहँ दियो बताय ॥
[३३२] गुरुमुख निर्णय अस्तिकी * जहाँको तहाँ ठहराय ॥ ७१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

निश्चय पदके = तुमने थीरपदके बारेमें
अनुक्रम = निश्चय करनेके लिये जो बात पूछा था, सो क्रमानुसार विधिपूर्वक कह चुका हूँ! निश्चयसे पारखपद ही स्थिरपद है। गुरुपद अचल-अटल है। सो जिन हंसने निजपदपर स्थिति की, सोई मुक्तिपदको पाये या पावेंगे। मेरे कहे अनुसार जो क्रमशः चलेंगे, सो निश्चयसे गुरुपदको प्राप्त करेंगे।

तो कहँ = विस्तारसे इस प्रकरणका
दियो बताय = उत्तर या समाधान सत्य निर्णयसे मैंने तुझे बता दिया हूँ! सो तुम इसीको मनन करके निश्चय करो! तो तुम्हें भी पारखपदकी स्थिति हो जायगी, सो जानो!

गुरुमुख = पारखी सद्गुरुके मुखारविन्दसे—

निर्णय = सारशब्दके यथार्थ निर्णयसे सत्य
अस्तिकी = चैतन्य जीवके स्वरूपका जो पारख प्रकाश हुआ है, सोई जानकर निज स्वरूपमें तुम स्थिति करो! इसीप्रकार गुरुमुख निर्णयकी वाणी कहो, सुनो, जिससे सत्य बोध होगा।

जहाँको तहाँ = जैसे पञ्चतत्त्वोंके पञ्च विषय
ठहराय = और कार्य पदार्थ जो जहाँका होता है, सो आखिर उसी कारण तत्त्वमें ही जाकर ठहर जाता है। तैसे जीव किसीके कार्य वा कारण नहीं है, इसलिये जड़में जीवका ठहराव नहीं है। जड़ भागकी मानन्दीको छोड़ करके, तहाँ पारखपदपर ही चैतन्य जीवको ठहराओ, अभी तुम सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरो! पारखपदमें ठहराव करो! ॥

व्याख्या— निजपदके बारेमें विवेक-दृष्टिसे निश्चय करके पारखपदमें स्थिर, शान्त, अटल होनेकी युक्ति यथार्थ रीतिसे क्रमानुसार तुमको मैंने सम्पूर्ण भेद बता दिया हूँ! गुरुपदमें स्थिति करनेके लिये गुरुमुख निर्णयके सत्यन्यायसे अस्ति-नास्तिका यथार्थ पारख करना चाहिये। फिर 'अस्ति' चैतन्य जीवका भ्रम, भास, अध्यास आदि मिटाकर जहाँपर जीव स्वयं स्वरूप है, तहाँपर ही एकाग्र वृत्तिसे लक्ष्य लगाकर जीवको अपरोक्ष पारखपदमें ही ठहराना चाहिये। सो गुरुमुख निर्णयके बोधसे ही अस्ति = चैतन्य जीवका ठहराव 'जहाँके तहाँ' निज स्वरूपमें ही हो जाता है। इसलिये गुरुबोध पारखको ही तुम सब प्रकारसे परिपुष्ट करो, सत्य निर्णयको ग्रहण करो! ॥ ७१६ ॥

सोरठाः— अब कछु शङ्का होय * सो पूछहु शिष्य! प्रसन्न चित ॥
[२५] कहौं यथाविधि सोय * निर्णय सहित यथार्थ सुपद ॥ ७१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अब कछु = इसप्रकार तुम्हारे पूर्वके सब
शङ्का होय = प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर मैं दे चुका हूँ! सो सब तो तुम समझ ही गया होगा। अब यदि तुम्हें उनमें कोई बात समझनेमें न आयी हो, अथवा कोई नयी ही शङ्का उत्पन्न हुई हो, तो—

सो पूछहु शिष्य! = हे शिष्य! सो भी प्रसन्नता-
प्रसन्न चित = से चित्तको सन्तुष्ट करके अभी पूछो? क्योंकि, इसवक्त मेरी देहादि प्रकृति भी ठीक है, फुर्सत भी है, और चित्त भी स्वस्थ प्रसन्न है। यानी तुमसे मैं चित्तसे ही प्रसन्न हूँ। इसलिये जो कुछ पूछना है, सो पूछो!—

कहौं यथा- = सो उसका भी यथार्थ रीतिसे
विधि सोय = विधिपूर्वक उत्तर या समाधान कहूँगा! तुम्हें सब विधिसे न्यायकी बात ही समझाऊँगा।

निर्णय सहित = पारखी सद्गुरुके सत्य
यथार्थ सुपद = निर्णय बोध रहनी-रहस्यके सहित शुद्ध रीतिसे यथार्थ पारखपदपर ही स्थिति करनी चाहिये। उसके लिये

यथार्थ सत्य निर्णयको ही समझना चाहिये! अब सब शङ्काओंका समाधान करके मैं तुम्हें निर्णय सहित यथार्थ रीतिसे निज-पदमें ठहरनेकी बात बतलाऊँगा, सो जानो!

व्याख्या— ऐसा समझानेके पश्चात् फिर सद्गुरु बोले— अबतकके तुम्हारे सब प्रश्न और शङ्काओंका तो समाधान पूर्ण हो चुका है। इस प्रश्नका उत्तर भी यहाँपर समाप्त हो गया है। हे शिष्य! अब और कुछ शङ्का तुम्हारे मनमें बाकी हो, उसे भी समझनेकी विशेष अभिलाषा हो, तो आज तुम प्रसन्न चित्तसे पूछ लो! आज सब बातकी अनुकूलता है, मेरी देहादि प्रकृति ठीक होनेके साथ ही तुम्हारे सद्गुणसे चित्त भी प्रसन्न है। अतः जो कुछ पूछना चाहो, सो और पूछो! निर्णयके सहित यथार्थ गुरुबोधको सो उसीप्रकारसे विधिपूर्वक जैसा रहस्य है, वैसा ही कहूँगा! जिससे शुद्ध निजपद पारखमें हंस जीवकी स्थिति-ठहराव सुगमतासे होनेमें सहायक होगा, सो जानो! ॥ ७१७ ॥

॥ ❀ ॥ हंस मनुष्योंके शुद्ध व्यवहारकी जिज्ञासा ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ २३ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ सितारा— २३ ॥ खण्ड— ४५ ॥ ❀ ॥

सोरठाः— साहेब! गरीबनिवाज * भाखेहु यथाविधि मोहिसों ॥
[२६] बलिजाउँ ये आवाज * जानेउँ अनुग्रह मैं सकल ॥ ७१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब गुरुबोधमें शिष्यका अन्तिम तेईसवाँ प्रश्न यहाँपर वर्णन करके दर्शाते हैं— शिष्य कहता है—

साहेब! गरीबनिवाज=हे सद्गुरु साहेब! आप ज्ञानके महान् धनी हो! हम गरीब जीवोंके अज्ञानरूप गरीबीको मिटा करके धनी बनाकर सुखी कर देनेवाले आप गरीब रक्षक हो!

भाखेउ यथा-विधि मोहिसों= यथार्थ विधिपूर्वक सत्य रीतिसे मुझे समझा करके मेरे प्रति दया करके जो उपदेश आपने वर्णन किये हो या कहे हो, सो सत्य है।

बलिजाउँ ये आवाज = मैं आपकी बलिहारी हूँ! आपको धन्य है! धन्य है! आपके ये उपदेश सत्य निर्णयकी वाणीके ऊपर मेरा सर्वस्व निछावर या समर्पण है। यह आपकी सत्य शिक्षा मुक्तिदायी है, भ्रमको मिटानेवाली है।

जानेउँ अनुग्रह मैं सकल= आपकी महान कृपादृष्टिसे 'हंस पदकी' और 'काल पदकी' स्थिति जैसे-जैसे आप बतलाये हो, सो सकल मैंने अब जान लिया हूँ वा समझ गया हूँ! ॥

व्याख्या— तब विचार करके शिष्य कहता है— हे सद्गुरु सत्य साहेब! आपको धन्य है! धन्य है! आप तो गरीबनिवाज हो! सत्यज्ञान बोधरूपी अविनाशी धन देकर अज्ञानतारूपी गरीबी वा दरिद्रताको मिटानेवाले हो! और यथार्थ विधिपूर्वक जैसा गुरु निर्णय है, सो उसीप्रकारसे वर्णन करके आपने मुझको समझाये हो! सो आपकी दयासे अब मुझे वह सब बात समझनेमें आ गयी है। आपकी बलिहारी है! ये गुरुबोध न्याय-निर्णयकी आवाज, सारशब्दके ऊपर मेरी तरफसे तो तन, मन, धनादि सर्वस्व सद्गुरुके चरणोंमें समर्पण है। ये मुक्तिदायी आवाजपर मैं बारम्बार बलिहारी हूँ! हे बन्दीछोर! आपके असीम अनुग्रहसे अबतकके सकल प्रश्नोंका उत्तर मैंने भी अच्छी तरहसे जान लिया हूँ! ॥ ७१८ ॥

सोरठाः— अब कहु बन्दीछोर! * लक्षण प्राप्ति मनुष्यके ॥
[२७] काल कलाके ओर * कैसे आद्रसन रहै? ॥ ७१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

अब कहु बन्दीछोर!= भव-बन्धन छुड़ानेवाले हे बन्दीछोर सद्गुरो! आपकी आज्ञा है, तो उसीप्रकार दया करके अब यही कहिये कि—

लक्षण प्राप्ति = मनुष्यके = मनुष्योंको हंस गुण-लक्षण-की कैसे प्राप्त होगी ? और शुभ लक्षण प्राप्त करनेमें कौन-सी रुकावट है ? सो कैसे मिटेगी ? और सद्गुण-लक्षणकी प्राप्ति होनेपर मनुष्य कैसे रहते हैं ? या कैसे रहना चाहिये ? अब यही बातका निर्णय करके कहिये ! और—

काल कला-के ओर = कालरूप स्त्री तथा गुरुवा-लोगोंके विषय, कल्पना, मानन्दी आदिकी तरफसे कैसे अभाव होवे ? यानी काल-कलाकी तरफसे कैसे बचाव हो ?—

कैसे आद्रसन रहे ? = फिर कालके फन्दाओंसे छूटकर शुद्धतासे निवृत्ति मार्गमें हंसजीव कैसे आदर्श भावसे निर्मल होकर निवृत्तिरूप शुद्ध हो रहेंगे ? सो हे दयालु ! बतलाइये ! ॥

व्याख्या— हे बन्दीछोर ! आपकी प्रसन्नतारूप सद्गुरुकी दया ही हमारा कल्याणकारक है। आपको बार-बार बोलनेके लिये हररोज ज्यादा कष्ट देना तो मैं नहीं चाहता था। बहुत-सी बात तो मैं आपसे पूछ चुका हूँ ! तो भी कुछ पूछनेके लिये आपने आज्ञा दिये हो, इसीसे सहर्ष वा प्रसन्नतासे सद्गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य करके पूछता हूँ ! सद्गुण-लक्षण, हंस रहनी-रहस्यको प्राप्त किये हुए विवेकी मनुष्योंका बर्ताव संसारमें कैसा रहता है ? और काल-कलाकी तरफसे अभाव करके उससे न्यारा होकर कैसे आद्रसन = निवृत्तिरूप शुद्ध होकर रहते हैं ? यानी प्रत्यक्षमें आदर्श हंस-रूपसे कैसे स्थिर रहते हैं ? अब यही बातका निर्णय दया करके कहिये ! ॥ ७१९ ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ भाग- [३] ॥ ❀ ॥

१. सब जानेउँ विधि पूर्व * ते सत साहेब धूर्व ॥ ७२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है—

सब जानेउँ = विधि पूर्व = हे सद्गुरो ! पहले मैंने जो-जो प्रश्न किया था, उसका विधिपूर्वक आपने उत्तर समझा दिया है, सो आपकी कृपासे सब प्रकारसे निश्चय करके मैंने जान लिया वा समझ भी लिया हूँ !

ते सत साहेब धूर्व = हे सद्गुरु साहेब ! सो आपका उपदेश अक्षरशः सत्य है। पारख-पद ही सर्वश्रेष्ठ सत्य, अटल, अचल है। यानी आपका ही गुरुपद निश्चल है। ध्रुव = अटल सत्य है ॥

व्याख्या— हे सद्गुरु सत्य साहेब ! जो बात प्रथम आपने विधिपूर्वक निर्णयसे दर्शा करके बतलाये हो ! वह सब ध्रुव = निश्चय करके अटल, सत्य है। सो मैंने भी आपकी दयासे सब विधिपूर्वक जान लिया हूँ ! उसमें मैं निःसन्देह हो गया हूँ ! ॥ ७२० ॥

२. निर्णय कहहु व्यौहार * जेहि होय भरम सङ्गार ॥ ७२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब शिष्यका प्रश्न कह रहे हैं— शिष्य कहता है— हे सद्गुरो !

निर्णय = कहहु = व्यौहार = अब वर्तमान व्यवहारमें हमें किस प्रकार बर्तना चाहिये ? सब प्रकारके आदमी मिलते हैं, तहाँ कैसे चलना चाहिये ? व्यवहारमें भी सत्य निर्णयको कायम रखनेका उपाय समझा-कर कहिये ?—

जेहि होय = भरम सङ्गार = जिससे सब भ्रम-भूलका नाश या संहार होकर सब बाधाएँ छूट जायँ, जीव निजपद स्थितिमें ही रहे, सो युक्ति परखा दीजिये ! यही मेरा अन्तिम विनय आपसे है। सो व्यवहार सुधार करनेके बारेमें निर्णयसे कहिये ! ॥

व्याख्या— अब देह रहेतक बर्तनेका हंस पारखीके वर्तमान व्यवहारके बारेमें निर्णयसे खुलासा करके कहिये ? जिससे रहे-सहे भ्रम-भूलका भी समूल संहार हो जावे। फिर कदापि भ्रम प्रगट न हो सके। अर्थात् जिस तरहसे भ्रम, धोखा, भूलका संहार वा अन्त सदाके लिये हो जावे। फिर किसी कारणसे भी भ्रम न होवे, और देह रहेतक किस तरह, कैसे देह व्यवहारको चलाते हुए

कौन-सा व्यवहारमें हंस मनुष्योंने लगे रहना चाहिये ? क्योंकि, देह है, जबतक कुछ-न-कुछ कर्त्तव्य तो होता ही रहेगा। इससे इसबारेमें मैं पूर्णरीतिसे जानना चाहता हूँ ! सो हंस देहके शुद्ध व्यवहार और अन्य मनुष्योंसे निर्लिप्त होकर कैसे वर्तना चाहिये ? मेरा अब यही अन्तिम प्रश्न यहाँपर है; सो दासपर कृपा करके इसका सब भेद भी समझा दीजिये ! ॥ ७२१ ॥

॥ ❀ ॥ हंस गुणधारी मनुष्योंका शुद्ध व्यवहार वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ २३ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ किरण-२३ ॥ खण्ड-४६ ॥ गीतक छन्द, भाग-[१०] ॥ ❀ ॥

१. सुन शिष्य ! याके लक्ष जो * प्राप्त मनुष्य तन थीरके ॥ ७२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुन शिष्य ! = हे जिज्ञासु शिष्य ! इसका
याके लक्ष जो = भेद भी जो मैं कहता हूँ, उस पर लक्ष्य लगा करके एकाग्र होकर सुनो ! उपदेश सुनतेमें लक्ष्यको सन्मुख रक्खो ! इसका लक्षण ऐसा है कि—

प्राप्त मनुष्य = इसी मनुष्य देहमें ही हंस देह-
तन थीरके = की रहनी प्राप्त होकर फिर पारखपदमें स्थिर स्थिति प्राप्त होती है। जो कोई मनुष्य तनमें स्थिरपदको प्राप्त हुए हैं, उनका गुण-लक्षण स्वभाव बर्ताव भी स्थिर ही होता है, सो कहता हूँ, सुनो ! ॥

व्याख्या— ऐसे शिष्यका प्रश्न सुन करके सद्गुरु बोले— हे शिष्य ! इसका उत्तर मैं जो कहता हूँ, सो उसपर लक्ष्य लगाकर सुनो ! मनुष्य शरीरमें जिन्होंने सद्गुण-लक्षणको प्राप्त कर लिये हैं, सो वे मन-बुद्धिको स्थिर करके रहते हैं। उनकी सब चञ्चलताएँ मिट जाती हैं। हंसपदकी स्थितिमें ही स्थिरताको प्राप्त कर लेते हैं; और पूर्णतासे सद्गुणोंको धारण किये रहते हैं ॥ ७२२ ॥

२. जो अस्ति नास्ति विचार गहै * सत्य हंस जानहु हीरके ॥ ७२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जो अस्ति नास्ति = जो सत्य वस्तु है, सो
विचार गहै = चैतन्य जीव ही है, और ब्रह्म, ईश्वर, देवता, भूत-प्रेतादि मिथ्या भ्रम मात्र धोखा है। देहादि जड़ पदार्थ नाशवान् कार्य है। ऐसा यथार्थ सत्यासत्य निर्णय कर पारख विचारको ग्रहण करनेवाले सोई विचारवान् पारखी सन्त होते हैं; और—

सत्य हंस = त्रिकालाबाध्य नित्य, सत्य,
जानहु = अखण्ड, सच्चा हीरावत् चैतन्य
हीरके = जीवको ही वे पारखी सन्त जानते-पहिचानते हैं। सोई दूसरोंको भी जनाय देते हैं। ब्रह्म तो खाँड़के हीरावत् मिथ्या भ्रम है। सबको देखने, सुनने, जाननेवाला ज्ञान प्रकाशी स्वयं जीव ही सत्य है, ऐसा जान लो ! ॥

व्याख्या— जो 'अस्ति' तथा 'नास्ति'का यथार्थ रीतिसे विचार करते हैं; और अस्ति चैतन्य जीवको ही निजस्वरूप जानकर पारख बोधको ग्रहण करते हैं; तथा नास्ति ब्रह्म-ईश्वरादिको मिथ्या धोखा ही समझ करके त्याग देते हैं। वे ही सत्य हंस पारखी सच्चे हीराके समान निर्मल शुद्ध होते हैं, ऐसा विवेक करके जानो ! अर्थात् अस्ति-नास्तिका विचार ग्रहण करके तहाँ हंसको ही सत्य हीरावत् जानते हैं ! तुम भी पारख करके इसके रहस्यको भलीभाँतिसे जानो ! ॥ ७२३ ॥

३. मानुष भये ते ठहरहिं * निज ठौर सह तदबीरके ॥ ७२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मानुष = सच्चा हीराके समान शुद्ध गुणधारी
भये ते = जो मनुष्य हुए, सो सत्य, विचार,
ठहरहिं = शील, दयादिको हृदयमें धारणकर निजस्वरूपपर ठहर जाते हैं। उनके ऊपर कितने ही गुरुवा लोगोंके चोट, तर्क, आक्षेप पड़े; परन्तु, अपने बोधसे वे विचलित नहीं होते हैं, अडिग्ग हो ठहरे रहते हैं ॥

निज ठौर सह = गुरुज्ञानके शक्तिरूप उपायसे
तदबीरके = युक्ति-प्रयुक्ति, विवेक, वैराग्य, बोधभावरूप तदबीरके सहित स्व-स्वरूपकी स्थितिमें ही वे हमेशा कायम सावधान हो रहते हैं। कभी माया-मोहमें नहीं भूलते हैं ॥

व्याख्या— इसतरहसे जो सच्चे विवेकी हंस गुणधारी मनुष्य हुए वा ऐसे मनुष्य जो होते हैं, वे तद्वीर=सत्पुरुषार्थसे दृढ़ताके सहित निज सत्स्वरूप पारखपदके ठौर-ठिकानामें ठहर गये वा सदाके लिये स्थिर होके ठहर जाते हैं। कभी वे उस पदसे विचलित नहीं होते हैं ॥ ७२४ ॥

४. जे सुनहिं गुरुमत निरखि निर्णय * वचन साहेब कबीरके ॥ ७२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जे सुनहिं गुरुमत= } जो कोई जिज्ञासु नरजीव
निरखि निर्णय= } पारखी सद्गुरुके मुखसे सत्यन्यायका उपदेश सुनते हैं, वे भी सद्गुरुके सत्यमतको जान करके सारासार निर्णयको विवेक-दृष्टिसे देखते हैं वा पहिचानते हैं। और—

वचन साहेब= } सब ज्ञानियोंमें शिरोमणि
कबीरके= } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य वचन 'बीजक सद्ग्रन्थ' के ज्ञान ही मनुष्योंको पारख बोध देनेवाला है। इसी सद्ग्रन्थ बीजकको पारखी सद्गुरुके मुखसे जो सुनते हैं, सो उनके भ्रम छूट करके सच्चे हंसरूप मनुष्य बन जाते हैं। जो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य वचन बीजकके उपदेशको ध्यानसे सुनेंगे, सो गुरुमतके निर्णयको भलीभाँतिसे देखेंगे ॥

व्याख्या— ऐसे हंसपदको प्राप्त करनेके लिये पारखी सद्गुरुके उपदेशको ही श्रवण करके धारण कर लेना चाहिये। जो कोई मनुष्य पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें जा करके पारख प्रकाशी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबके सत्यन्याय-निर्णयका वचन सत्यशब्द टकसाररूप बीजक मूल सद्ग्रन्थके अर्थको गुरुमुख द्वारा सुनेंगे, और गुरुमतके सत्य सिद्धान्तको, गुरु निर्णय द्वारा समझ करके विवेक-दृष्टिसे देखेंगे, उनको ही निज सत्य स्वरूपका पारख बोध अपरोक्ष हो जायगा। तब वे ही स्थिरताको पाकर जीवन्मुक्त हो जावेंगे, उसके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके निर्णय वचन ही सच्चा प्रमाण है। उसे जो श्रद्धासे सुनेंगे, निर्णयको निरखेंगे, वे ही गुरुमतको यथार्थ रीतिसे जान पावेंगे, सो फिर स्थिर होवेंगे ॥ ७२५ ॥

॥ ❀ ॥ तोमर छन्द, भाग-[११] ॥ ❀ ॥

१. सुनु शिष्य ! कहौं समुझाय * तोहिं ठौर देहुँ बताय ॥ ७२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुनु शिष्य != } हे प्रेमी शिष्य ! मैं तुम्हें सत्य
कहौं समुझाय= } निर्णयसे हंसदेहके रहनी-रहस्य सहित कर्त्तव्यके बारेमें समझा करके कहता हूँ, उसको तुम सावधान होकर सुनो ! साथ ही मनन भी करते जाओ।

तोहिं ठौर= } सभीके ठहरावकी भूमिका भी
देहुँ बताय= } मैं तुम्हें बतला देता हूँ ! फिर हंसके ठहरनेकी पारख स्थिति भी बतला करके लखा देता हूँ ! ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! तुमको मैं अब सबोंके ठौर-स्थितिका भेद बतला देता हूँ ! और देह रहे तक हंस रहनीमें रहकर बर्तनेका व्यवहार भी सब खुलासासे समझाकर कह देता हूँ ! सो उसे तुम अब मन लगाकर सुनो, गुनो, और उसी प्रकारसे बर्तो, तो कोई विघ्न नहीं होगा ॥ ७२६ ॥

२. तन लखहु मानुष येह * नहिं प्रापति दूजो देह ॥ ७२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

तन लखहु= } यह मनुष्य देह तो बड़े सौभाग्य-
मानुष येह= } से ही जीवको मिलता है। यह कर्मभूमिका होनेसे मुक्तिके द्वारवत् है। इसको तुम अच्छी तरहसे लखो कि, सत्यासत्यका ज्ञान यह मनुष्योंमें ही होता है।

नहिं प्रापति= } यही मनुष्य देहमें ही पारख
दूजी देह= } बोधकी प्राप्ति और निज स्वरूपकी स्थिति होती है, और दूसरे पशु आदि त्रय खानियोंके देहोंसे तो हंसदेहके गुण-लक्षण पारख बोधकी प्राप्ति नहीं होती है, तो उनकी मुक्ति भी नहीं होती है ॥

व्याख्या— इस मनुष्य तनको तुम अच्छी तरहसे लखो ! और मनुष्यके गुण-लक्षणोंको भी

तुम इसीमें लखो ! यही तो मुक्त होनेका स्थान है; और दूसरे तीन खानीके पशु आदि देहोंमें जीवोंको स्वरूपज्ञान और मुक्तिकी प्राप्ति किसीको भी हो नहीं सकती है; क्योंकि, वे सब भोग भूमिका हैं। इसीसे वहाँपर कल्याण-प्राप्ति नहीं होती है ॥ ७२७ ॥

दोहाः— देह अस्ति पद प्राप्तिको * मानुष तन अधिकार ॥
[३३३] मनुष्य लक्षण ते सुनहु * सुन याको जो विचार ॥ ७२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

देह अस्ति = पद प्राप्तिको = } चारोंखानियोंके देह धारियों-में रहनेवाले जीव तो सत्य ही हैं। परन्तु, सत्य चैतन्यपदकी बोध प्राप्ति तो उन पशु आदि देहसे तो नहीं होती है, और सत्य पारख बोधकी प्राप्तिको तो—

मानुष तन = अधिकार = } विशेष अधिकार मनुष्य देह-वालोंको ही है। यानी नर-देहधारी जीव ही सत्सङ्ग करके विवेक-वैराग्य बोधको लेनेके अधिकारी होते हैं।

मनुष्य लक्षण = ते सुनहु = } मनुष्योंमें भी कोई बिरले ही गुणवान् हंसमनुष्य होते हैं। सो उनके शुद्ध गुण-लक्षण वर्णन तो प्रथम तुमने सुन ही चुके हो ! और भी सुनोगे, तो सुनो ! सत्य, विचार, शील, दयादि गुण-लक्षणवाले हंस नरजीव होते हैं।

सुन याको = जो विचार = } अब सच्चे मनुष्य पारखी सन्त-का जैसा आचार, विचार, व्यवहार रहता है, सो कहता हूँ ! इसको तुम विचार पूर्वक श्रवण करो। और ठीकसे मनन करके धारण करो ! ॥

व्याख्या— अस्ति = चैतन्य पदमें स्थिति, गति, मुक्ति प्राप्त करनेका स्थान हंस देहका स्वरूप है। सो मनुष्य शरीर ही विशेष करके उस पदको प्राप्त करानेवाला अधिकारकी जगह है। मनुष्य देहधारी ही मुक्तिके अधिकारी होते हैं। और सत् शिष्य पारख बोध प्राप्त करनेवाले वे ही सद्गुरुके उत्तराधिकारी होते हैं। अस्तिपद प्राप्ति करनेको मनुष्य तनधारीका अधिकार है। और उनमें सच्चे मनुष्योंके गुण-लक्षण जो हैं, सो सुनो ! और इस हंस मनुष्यका जो विचार है, सो भी सुनो ! और समझते जाओ ॥ ७२८ ॥

॥ ❀ ॥ गीतक छन्द, भाग-[१२] ॥ ❀ ॥

१. जे भये प्राप्ति मनुष्य तन * अब सुनहु लक्षण तासुके ॥ ७२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जे भये प्राप्ति = मनुष्य तन = } चौरासी योनियोंमें घूम-फिर करके जीव मनुष्य खानीमें आये; सो यहाँ बिरलेको ही हंसदेहके स्वभाव पारख बोधकी प्राप्ति हुई। जिन्हों-को मनुष्य देहमें सत्य बोधकी प्राप्ति हुई है—

अब सुनहु = लक्षण तासुके = } अब उन पारखी सन्तोंके तथा बेपारखियोंके गुण-लक्षण भिन्न-भिन्न सुनो ! काल, सन्धि, झाँईं, विषयादिमें जो पड़े हुए हैं, वे गुरुवालोग बगुलेवत् हैं, और सत्य-विचारादि सद्गुण संयुक्त निर्णयी सच्चे हंस मनुष्य हैं ॥

व्याख्या— जो नरजीव शुभ संस्कारसे मनुष्य तनमें आकर प्राप्त हुए हैं, सो उनमें वास्तवमें मनुष्यपदका गुण-लक्षण है कि, नहीं ? सो तो उन्होंके स्वभावसे ही जाहिर होता है। अब उन्होंके गुण-लक्षणके बारेमें और कुछ परीक्षाकी बात कहता हूँ, सो सुनो ! ॥ ७२९ ॥

२. वाणी सबनकी अहै प्रत्यक्ष * देखु प्रथमा भासके ॥ ७३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

वाणी सबनकी = अहै प्रत्यक्ष = } सो ब्रह्मादिसे लेकर आज पर्यन्त जितने भी योगी, ज्ञानी, भक्तादि हुए हैं, उन सबोंके सिद्धान्त वेदादि वाणी तो प्रत्यक्ष ही जग जाहिर हैं; उसमें सबकी गति-मति लिखी है।

देखु प्रथमा = भासके } पारखदृष्टिसे निर्णय करके देखो ! ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि जो मनुष्य देहके मिथ्या भास-अध्यास हैं,

वहीं तक ही सब पहुँचे हैं। भाससे भासिक जीवको न्यारा पारख किसीने भी नहीं किया। देखो! प्रथम भासके नाकेमें ही जा करके सब लोग अटके, और अटक रहे हैं॥

व्याख्या— मनुष्य खानीमें प्रथम जो-जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आदि हो गये और अभी वर्तमानमें जो मौजूद हैं, उन सबोंकी वाणी, मानन्दीका कथन वर्णन वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल इत्यादि ग्रन्थोंमें लिखा हुआ, और छपा हुआ प्रत्यक्ष ही जगजाहिर है। उसे पारख करके देखो! सब कोई प्रथम मनुष्य देहके भास, अध्यास आदिके निकट तक पहुँच करके वहीं अरुझे अटके पड़े हैं। तहाँ वाणीसे उन्होंकी खानीकी पहिचान होती है। बिना पारख बोधके कोई भी सच्चे मनुष्य हो नहीं सके हैं ॥ ७३० ॥

३. सो सबनमा मत कहेउँ बहु विधि * परख ताहि यथार्थ हो ! ॥ ७३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सो सबनमा = सो उन्होंने भ्रमसे सर्वत्र
मत कहेउँ = व्यापक ब्रह्मको माना है, तहाँ
बहु विधि = तो झाँई, सन्धि, कालके जालमें ही पड़े हैं, उन भ्रमिक गुरुवालोगोंके मत-पन्थका विचार तो बहुत प्रकारसे पहले ही कह चुका हूँ। सो सबोंमें मत बहुविधि जो कहा है—

परख ताहि = उन षट् दर्शन, छियान्नवे
यथार्थ हो ! = पाखण्डोंको तुम यथार्थ दृष्टिसे देख करके परखो, निर्णय करो; किसीमें भी सार सत्यका बोध नहीं है। मिथ्या जालमें ही सब अरुझे पड़े हैं॥

व्याख्या— सो वे लोग तो भ्रमिक हो करके एक ब्रह्मको ही सबोंमें व्यापक भरा हुआ मानते हैं। ज्ञानी, योगी, भक्त, कर्मी आदि सबोंके मतमें भ्रम-धोखा ही लगा हुआ है। उन्होंके मत, पन्थ, सिद्धान्तोंका निर्णय करके प्रथम ही बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक तुम्हें समझा करके कह चुका हूँ! सो उसे तुम यथार्थ रीतिसे निर्णय करके परखो! कसर-खोटका न्यायसे बिलछान करो! परखनेसे ही यथार्थ बात मालूम होगी ॥ ७३१ ॥

४. केहि हेतु भटकेहु अनेक धारन * बके क्यों वेदार्थ हो ? ॥ ७३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

केहि हेतु भटकेहु = कोई तो कल्याणकर्त्ता
अनेक धारन = ईश्वर मान करके कल्पनाको धारण करके नाना जप-तपादि, भक्ति-योगादिमें भटके, कोई "अहं ब्रह्मास्मि" बने। कोई अनेकों वाणी-खानी धारोंमें भटकते हुए बह गये। परन्तु, उन किसी जीवोंकी मुक्तिका कार्य सिद्ध नहीं हुआ।

बके क्यों = जब एक ब्रह्म है, तो वेदादिका
वेदार्थ हो? = नाना अर्थ करके क्यों बकवाद करते हो? क्यों अनेक वेदार्थका बकने-झकने वाला यह जीवको निज सत्यस्वरूपके विचारमें लगाना छोड़कर मिथ्यामें लगाते हो? अब भी विवेक करो! भ्रमचक्रमें लग करके क्यों भटकते हो?॥

व्याख्या— यदि उन्हें हंस-दृष्टिसे पारख बोध प्राप्त होता, तो भ्रम-धोखेमें ही क्यों पड़ते? वेदार्थसे ब्रह्मज्ञानादिको क्यों बके हैं? किस कारणसे वे लोग वाणी-खानीकी अनेकों धाराओंमें मिथ्या मानन्दीको धारण करके बहे हैं? किस हेतुसे जहाँ-तहाँ भटके हैं? इसलिये वे सद्गुणधारी मनुष्य नहीं हुए; रूप मात्रके मनुष्य होकर भव-बन्धनोंमें ही बन्धे पड़े हैं। अतः उसे परीक्षा करके असली भेदको जानो! और गुणवान् सच्चे हंस वा मनुष्य बनो! ॥ ७३२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- २० ॥ ❀ ॥

१. सारशब्द गुरु निर्णय जोई * लखै दृष्टि निज अनुभय खोई ॥ ७३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

सारशब्द गुरु = जो मनुष्य पारखी सद्गुरुके निर्णय जोई = शरणागत होकर सारशब्द-रूप बीजक सद्ग्रन्थको देखते-पढ़ते, सुनते-गुनते हैं, वे सद्गुरुके सत्य निर्णयको जान जाते हैं। सार-असार शब्दको पहिचान जाते हैं। और—

लखै दृष्टि निज = सद्गुरुकी कृपासे पारख-अनुमय खोई = दृष्टि खुलनेपर निज स्वरूपको ही सत्य लख लेते हैं; तथा समस्त ब्रह्म-ईश्वरादिके मिथ्या अनुमान, मानन्दी-को खो करके मिटा देते हैं ॥

व्याख्या— जो मनुष्य सारशब्द गुरु निर्णयको ही ठहर करके विवेकदृष्टिसे देखते हैं; फिर वे निज दिव्यदृष्टिरूप पारख बोधसे सार-असार, जड़-चैतन्य आदि सबोंके गुण-लक्षणको लख लेते हैं। निज स्वरूप चैतन्य जीव ही सत्य है, ऐसा जानकर भ्रमसे उत्पन्न हुए अनुमान-कल्पना आदि विकारोंको खो करके मिटा देते हैं; भूलको हटा देते हैं ॥ ७३३ ॥

२. होय जो विरक्त मति धीरा ❀ होय निर्बन्ध लखै पद थीरा ॥ ७३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

होय जो = विरक्त = मति धीरा = उन सत्सङ्गी जिज्ञासु पुरुषोंमें-से जो नरजीव विशेष वैराग्यवान् होकर गृहस्थीको त्यागकर पूर्ण त्यागी विरक्त हो जाते हैं, वे परम बुद्धिमान् धीर, वीर, गम्भीर पारखी साधु सर्वश्रेष्ठ हो जाते हैं।

होय निर्बन्ध = तब खानी-वाणी बन्धनोंसे लखै पद थीरा = यथार्थतः छूट करके सब पदोंको लखकर द्रष्टा निजपद पारखमें ही स्थिर, शान्त, निर्भ्रान्त, निर्बन्ध, जीवन्मुक्त हो जाते हैं, सो तुम जान लो ! ऐसे स्थिरपदकी प्राप्ति होती है ॥

व्याख्या— जो विवेकी मनुष्य गुरुवालोगोंके प्रपञ्च और स्त्रियोंके विषय जाल-जञ्जालोंको विकारी, दुःखदायी जान करके उस तरफसे उपराम, विरक्त, सच्चेत्यागी होते हैं, वे बुद्धिमान्, धीर, वीर, गम्भीर मतिके होते हैं। वे ही परीक्षक हो करके स्थिरपदरूप पारखको निज स्वरूप लखकर, सकल अध्यासोंको मिटाकर सदाके लिये निर्बन्ध जीवन्मुक्त, स्वतन्त्र हो जाते हैं; वैसे ही लखकर स्थिर पदको जानो ! ॥ ७३४ ॥

दोहाः— जो मानुष गृहि धर्म युत ❀ राखै शील विचार ॥
[३३४] गुरुमुख वाणी साधु सङ्ग ❀ मन वच सेवा सार ॥ ७३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

जो मानुष = गृहि धर्म युत = जो मनुष्य गृहस्थाश्रमी होवे, स्त्री, कुटुम्ब आदि संयुक्त होवे, तो उसे भी धर्मका पालन करना चाहिये। पारखी सद्गुरुका सेवक होकर सद्धर्म पालक सद्गृहस्थ होना चाहिये। अथवा जो साधु पुरुष मठ, मकान, मन्दिरको ग्रहण किये हुए हैं, मठधारी होवें, उन्हें भी साधु-गुरुके धर्म सहित रहना चाहिये।

राखै शील = विचार = मठधारी और गृहस्थ दोनों ही श्रेणीके लोगोंने नम्रता, कोमलता, दीनता, दासभाव, ऐसे शील तथा जड़-चैतन्यका निर्णय, हिताहितका विचार निज-पर हित-कल्याणका कर्त्तव्य पालन ऐसे ये सद्गुण विचारादि हृदयमें रखना चाहिये। और—

गुरुमुख वाणी = साधु सङ्ग = पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयकी वाणी सद्ग्रन्थको ही पढ़े, सुनै, गुनै, मनन करै, कहै, तथा हमेशा पारखी साधुओंका सत्सङ्ग किया करै। वैसे निर्णयी साधुओंके सङ्गमें ही रहा करै। सन्तोंको अपने घर वा मठमें ठिकाया करै।

मन वच = सेवा सार = फिर मनसे गुरु आज्ञाको पालन करै, वचनसे गुण गान, स्तुति-पाठ प्रार्थना किया करै; और तन, मन, धन, वचन लगा करके पारखी साधु-गुरुकी सेवा ही किया करै। यही घरादिमें रहनेका सार-सफलता है। उसीसे सार सत्यबोधकी दृढ़ता होवेगी ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें लगे हुऐ जो जिज्ञासु मनुष्य सेवक होकर घर-गृहस्थीके बीचमें रहते हैं, उन्हें भी सच्चे होना चाहिये। तहाँ गृहस्थ धर्ममें सचाईके सहित यथोचित धर्म पालन करता रहै। उसके लिये शील-सन्तोष और विचारको हृदयमें धारण करके रक्खे; और गुरुमुख निर्णयकी वाणीको ही सदा कहै, सुनै। विवेकी साधुओंका सत्सङ्ग नित्यप्रति कुछ घड़ी फुर्सत् निकाल करके किया करै। तन, मन, धन, और वचनसे उन्हीं पारखी साधु-गुरुकी सेवा किया करै। यही गृहस्थ धर्ममें रहनेवालोंके लिये सार सत्कर्म है। उससे ही सबका सार पारखका बोध भी उन्हें समयपर सद्गुरुकी दयासे हो जायगा। ऐसे ही विचारपूर्वक मठधारियोंने भी स्वधर्म पालन करके सार ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ ७३५ ॥

दोहाः— सेवक भाव सादर्श रहै * अहं न आनै चीत ॥
[३३५] निर्णय लखै यथार्थ विधि * साधुनको करै मीत ॥ ७३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
सेवक भाव = } पारखी सद्गुरु साधुकी सेवा,
सादर्श रहै = } भक्ति करते हुए सदाकाल मनमें सेवक भाव, भक्ति भाव या दासत्व भाव शुद्ध भाव बनाये रक्खे। निर्मल दर्पणके समान गुरुभक्तिका सद्भाव आदर्श बनाये रखना चाहिये। ऐसे होनेपर भी—
अहं न आनै चीत = चित्तमें किसी प्रकारका भी अहङ्कार लाना न चाहिये। रूप, गुण, धन, बल, महान ऐश्वर्य, वर्ण, आश्रमका, सेवा, भक्ति, भेष, देशादिका कोई भी अहङ्कार चित्तमें न लावे या अभिमान, दम्भ, कपटादि कभी आने न देवे। सावधान कर्त्तव्य परायण हो रहै।
निर्णय लखै = } नित्यप्रति सद्गुरुके सत्सङ्गमें
यथार्थ विधि = } रहकर विधिपूर्वक यथार्थ रीतिसे सत्यासत्य, सारासार, जड़-चैतन्यका भेद निर्णयसे लखना, जानना-पहिचानना चाहिये। जिससे यथार्थ सत्य स्वरूपका बोध होवे। इसलिये गुरु निर्णयको ही लखे पहिचाने। और—
साधुनको = } त्यागी, सत्यन्यायी, विवेकी
करै मीत = } पारखी ऐसे साधु महात्माओंमें ही अधिक प्रेम करै, घनिष्ट मित्रताका भाव करे। उनको अपने घरमें तथा मठ-स्थानोंमें अनुकूलतासे टिकावे। उनकी शिक्षाको पालन करे। ऐसे पारखी साधु हों, वहाँपर जा करके भी दर्शन करे, सत्य प्रीति रक्खे ॥

व्याख्या— उन शिष्य, सेवक, भक्तोंको चाहिये कि, पारखी साधु-गुरुकी सेवा, भक्ति, और सेवक-भावमें आदर्श हो रहै। अर्थात् दर्पणके समान निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध, निष्कपट होकर भक्ति-भाव करता रहै। चित्तमें कभी किसी बातका भी अहंभाव वा अहङ्कार आने न देवे। मैं बड़ा सेवा करता हूँ ! मेरे समान वा बढ़ करके भी दूसरे कोई सेवक नहीं हैं। ऐसा कभी मुखसे कहना तो दूर रहा; परन्तु, ऐसा अहंभाव चित्तमें भी आने न देवे, अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ करके ही सद्गुरुकी सेवा करै; वही सच्चा उत्तम सेवक है। और अन्य मत-पन्थोंकी मानन्दीको त्यागकर विधिपूर्वक गुरु निर्णयको ही यथार्थ रीतिसे लखे। भ्रम-सन्देहोंको मिटावे; और पारखी साधुओंसे ही जीवन भर सच्ची मित्रता किया करै। उनको घरमें निमन्त्रण देकर बुलाकर समय-समय पर भण्डारा, भेंट, पूजा चढ़ा करके सम्मान करता रहै; उनको ही हितकारी सच्चा मित्र समझै ॥ ७३६ ॥

दोहाः— सत्य शील दया सहित * वर्तै जग व्यवहार ॥
[३३६] गुरु साधुनके आश्रिता * दीन वचन उच्चार ॥ ६३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !
सत्य = वाणीसे सत्य बोले, कर्म भी सत्य करै, मनसे निज चैतन्य जीवको ही सत्य जानै।
शील = नम्रता, कोमलता, दीनता, रक्खे। कठोरताका परित्याग कर सहज सरल होवे।
दया = हिंसा, घात, वैर-विरोध न करै, सबपर दयादृष्टि रक्खे, अपनेपर भी निजदया करै, सच्चे दयालु होवे।

सहित=उन तीनोंके सहित धैर्य, गुरुभक्ति आदि सब सद्गुणोंको धारण करै।

बर्तै जग= व्यवहार= } भक्त और सन्तोंने घर-गृहस्थीमें तथा मठादियोंमें रह करके भी उन्हीं सद्गुणोंके सहित होकर जगत्के सब कार्य व्यवहारोंमें बर्तै। यानी जगत्में वर्तमान व्यवहारमें विचार सहित चलना चाहिये। और—

गुरु साधुन-के आश्रिता= } सर्वश्रेष्ठ पारखी सद्गुरु तथा विवेकी-वैराग्यवान् साधुओंका पूर्ण आधार लेकर उन्हींकी ही अधीनता दासतामें सदा-सर्वदा लगे रहना चाहिये। और—

दीन वचन उचार= } साधु-गुरुसे बोलतेमें नम्र, कोमल, दीनताके वचनोंको ही कहै। सदा सत्य वचनोंको उच्चारण करना चाहिये। हे प्रभो! हे बन्दीछोर! सद्गुरो! दासको सत्यज्ञान देकर भव-बन्धनोंसे छुड़ाइये! ऐसी दीनतासे कहना-पुकार करना चाहिये॥

व्याख्या— जगत्के व्यवहार और घरके कारोबारमें भी उन सेवकोंने सत्य पालन, शील तथा दयादि शुभ सद्गुण धारण करै। सत्य, शील, दया आदिके सहित ही सचाईसे गुरु धर्म पूर्वक वर्तमानके व्यवहारोंमें बर्ता करै। और पारखी सद्गुरु तथा विवेकी साधुओंका पूर्ण आधार लेकर रहे। साधु-गुरुके आश्रित होकर दीनतासे नम्र, कोमल वचन उच्चारण करना चाहिये। जान-बूझकर कभी झूठ न बोले। सत्य वचन ही दीनतासे उच्चारण करै। मान-सम्मान सूचक शब्द बोलै॥ ७३७॥

दोहाः— बहु संग्रह विषयानको ❀ चित्त न आवहिं ताहि॥
[३३७] मधुकर यों सब जगतमें ❀ घटि बढ़ि लखि बर्ताहि॥ ७३८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

बहु संग्रह विषयानको= } संसारमें धन, धान्य, पञ्च विषयादि अनेकों पदार्थोंको संग्रह या इकट्ठा करके जितना भी बढ़ाया जाता है, सो सब दुःखदायी बन्धन-कारक ही हो जाता है। इसलिये बहुत संग्रह करके विषयादि पदार्थोंको न बढ़ावे। देह गुजारा माफिक साधारण संग्रह करै। विषयोंको त्यागकर शुद्ध भाग मात्र ग्रहण किया करै।

चित्त न आवहिं ताहि= } चित्तमें चेत रक्खे; बहुत पदार्थ भी बढ़ाया, तो भी साथमें कुछ नहीं जाता है, नाहक दुःख बढ़ा करके वासनामें क्यों पड़ना? देहादि सब वस्तुओंको नाशवान् देखते ही हो। इसलिये बहुत चाहना, विषय वासना, आशा-तृष्णादिको चित्तमें आने ही नहीं देना, परखकर त्याग देना, सावधान रहना चाहिये।

मधुकर यों सब जगतमें= } हे हितेच्छुको! संसारमें रहकर भौंरेके समान सारग्राही होओ! देह निर्वाहके लिये मात्र थोड़ी-थोड़ी शुद्ध वस्तु ग्रहण करो! और सब संसारी लोग तो मधुमक्खीके समान विषयादिमें लुब्ध होकर अन्तमें मारे जा रहे हैं; वैसा तुम मत् होओ!

घटि बढ़ि लखि बर्ताहि= } सब पदार्थ परिणामी हैं। घटते-बढ़ते, बनते-बिगड़ते ही रहते हैं। विषय भोगोंमें लगे हुए मनुष्योंकी आयु तो घटती ही जाती है, और वासना आसक्ति तो मनमें बढ़ती ही गयी। तो मर करके चौरासी योनियोंमें कर्म फल भोगना ही बढ़ गया। ऐसा लख करके हंस चालसे बर्तना चाहिये॥

व्याख्या— उन सद्गृहस्थ जिज्ञासु सेवकोंने परिवारोंका पालन-पोषण हो, गुजारा चले, उतनी ही मिहनत करके कमाई करनी चाहिये। बहुत धन इकट्ठा करनेके पीछे अन्धाधुन्ध लगकर सदा दिन-रात हाय-हाय! करते हुए भाड़ेके टट्टूवत् हो करके नहीं रहना चाहिये। बाल-बच्चोंके लिये भी शोच-फिक्र करनेका कोई काम नहीं है। उनके प्रारब्ध भोग वे अपने ही पूरा करेंगे,

उनके कर्म इनके साथ ही हैं। ऐसा समझ करके मनमें धीरज रक्खे। विषय भोग, पदार्थ, धन-सम्पत्ति आदिका संग्रह अन्याय-अनीतिसे कभी भी नहीं करै। उत्तम सेवकोंके चित्तमें तो विषय पदार्थोंका बहुत संग्रह करके इकट्ठा करनेकी इच्छा भी कभी नहीं आती है; फिर बाहर संग्रह करना तो दूर रहा। वे साधारण स्थितिमें ही धर्मपूर्वक रहते हैं। और विवेकसे सब जगत्‌मेंके कार्य पदार्थ जितने भी उत्पन्न हुए हैं, सो सब देह, आयु, अवस्था, विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम, रूप, धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्रादि परिवारोंका सम्बन्ध, सुख-दुःख इत्यादि निज-निज कर्मानुसार घटी-बढ़ी होते रहते हैं, उसे विचार करके यथार्थ लखकर फिर भौंरेके समान सबका थोड़ा-थोड़ा सार लेकर यथाप्राप्त वा यथालाभमें सन्तोष रख करके जगत्‌के वर्तमानमें शुद्ध आचार-विचार सहित समझदार होकर वर्तते हैं। समयानुसार ही कार्य करते रहते हैं। और मधुमक्खीके समान धन कमा कर लुब्ध होकर नष्ट नहीं होते हैं। ऐसा ही बर्ताव हित चाहनेवाले सब सेवकोंने रखना चाहिये; यही सत्‌शिक्षा है ॥ ७३८ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- २१ ॥ ❀ ॥

१. प्रीति सदा गुरु पारख करई * सङ्गति सदा साधु आचरई ॥ ७३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

प्रीति सदा गुरु = पारख करई = मुमुक्षु मनुष्य, सदा-सर्वदा पारखी सद्‌गुरुके सत्य निर्णयमें ही लक्ष्य लगाकर गुरुभक्तिमें प्रेम-प्रीति करते हैं। तैसे तुम भी गुरु पारखमें ही सदा प्रीति करो ! और—

सङ्गति सदा = साधु आचरई = विवेकी साधुओंके ही सत्सङ्ग करके सदाकाल शुभ आचरण विवेक, वैराग्य, सत्य-विचारादि संयुक्त वर्तते हैं। सो तुम भी पारखी साधुका सत्सङ्ग करके सदा शुभ आचरणसे बर्ता करो ! विवेक पूर्वक चलो, विचरो ! अथवा जहाँ कहीं भी रहो, विवेक पूर्वक ही रहो ॥

व्याख्या— सत् शिष्य वर्ग सदा-सर्वदा शुद्ध प्रीति पारखी सद्‌गुरुमें तथा सद्‌गुरुके पारख बोधमें ही करते रहते हैं; और सदा विवेकी साधुओंके सत्सङ्गमें लगे रहनेका ही उन्होंका शुद्ध आचार-विचार और शुभ आचरण होता है। वैसी ही रहनीमें अन्य सेवकोंने भी दृढ़तासे लग जाना चाहिये वा लगे रहना चाहिये ॥ ७३९ ॥

२. उत्तम मध्यम जग व्यवहारा * निर्णय सहित करै अनुसारा ॥ ७४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

उत्तम मध्यम जग व्यवहारा = जगत्‌में व्यवहार दो प्रकार-का होता है। १. वेद रीति, २. लोक रीति। शुभ-अशुभ, हित-अहित, ज्ञान-अज्ञान, बन्धन-मुक्ति आदि उत्तम, मध्यम नाना व्यवहार संसारमें हो रहे हैं या होते जाते हैं।

निर्णय सहित करै अनुसारा = उनमें हंसवत् निवेरा या निर्णय करै, हितकारी, मुक्तिदायी, उत्तम शुभ कर्मोंको प्रेमके सहित किया करै। गुरु निर्णयके अनुसार ही निष्पक्ष सारग्राही होकर वर्तता रहै, ऐसे शुभ चालसे चलै ॥

व्याख्या— जगत्‌के व्यवहारोंमें उत्तम वा मध्यम कर्म जो कुछ भी करनेका अवसर आवे, तब सद्‌गुरुके बोध न्याय, सद्‌ग्रन्थोंके प्रमाण अनुसार ही गुरु निर्णयके सहित उसके परिणामको ठहरा करके, निश्चय करके सबोंके हित हों, वैसी ही रीतिसे सत्कर्म करते हुए कार्य करै। और सत्यनिर्णयके विपरीत हानिकारक हो, तो फिर उसे कभी न करै; दृढ़तासे समयको टाल देवे ॥७४०॥

दोहाः— गृही धर्म बड़ खटपटी * तामहँ रहै हुशियार ॥
[३३८] लोक वेदकी रीति सब * करै सहित सो विचार ॥ ७४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गृही धर्म = } संसारमें गृहस्थियोंके पीछे
बड़ खटपटी = } बड़े उपाधि, झंझट, विघ्न-बाधाएँ आक्षेप-विक्षेप इत्यादि लगे रहते हैं। इसलिये सत्धर्म पालन करनेमें उन्हें बड़ी कठिनाई होती है। जल्दी वह खटपट नहीं मिटता है—

तामहँ रहै = } इसवास्ते गृहस्थ भक्तोंको
हुशियार = } और मठधारी सन्तोंको भी अपनी-अपनी जगहमें धर्म पालन करनेको सदा होशियारीसे सावधान रहना चाहिये। मठधारियोंके विशेष सम्बन्ध गृहस्थियोंसे रहता है। अतः सावधानी न रहनेसे रहनी बिगड़नेकी सम्भावना रहती है। इसीसे होशियारीसे रहै।

लोक वेदकी = } लोकरीति, वेदरीतिके सब
रीति सब = } शुद्ध कर्म तो समयानुसार गृहस्थियोंने करना चाहिये। परन्तु, अशुद्ध कर्म कदापि नहीं करना चाहिये।

करै सहित = } सो यथार्थ गुरु निर्णयके
सो विचार = } विचार-विवेकसे ही सत्सङ्ग द्वारा जाने। साधुओंकी सेवा, पूजा, भण्डारा करे। उसमें भी विचारके सहित ही सब कार्य करे। निर्णय वाणी ही कहे, सुने॥

व्याख्या— हे शिष्य! गृहस्थाश्रममें रहनेवाले भक्त-सेवकोंको गृहस्थीका धर्म और गुरु धर्मको शुद्ध सचाईसे पालन करनेके लिये प्रथम बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि, गृहस्थ धर्ममें बड़ी खटपटी लगी ही रहती है। उपाधि, नाना झंझट वहाँ होता ही रहता है। विघ्न, राग-द्वेष, कष्ट, क्लेश, चिन्ता, परेशानी गृहस्थियोंमें हुआ करती है। वह खटपट झटपट नहीं छूटती है, महाजञ्जाल-का स्थान घर-गृहस्थी है। इसलिये वहाँ रहनेवाले संसारी सेवकोंको बड़ी होशियारी वा सावधानीसे रहना चाहिये। जरा भी चूका कि, बड़ी आपत्तिमें पड़ जाना पड़ता है। इसीसे सदा चेत करके रहना चाहिये। तहाँ स्त्री, पुत्र, पुत्री, नाते-गोते, सगेशाई इत्यादिका सम्बन्ध देन-लेनका व्यवहार लगा रहता है। इसलिये लोक रीतिके कर्म और वेद रीतिके कर्म जो समय-समयपर करनेका अवसर आता है, उसमें मनुष्योंको खिलाना-पिलाना, दान-पुण्य करना अच्छे कार्यमें सहायता देना, जीव रक्षा करना, भोज-भण्डारा देना, उत्तम वस्तु बाँटना इत्यादि सत्कर्मोंको विचारके सहित करना चाहिये। परन्तु, उसमें भी अपनी वा परायी हानि होनेका काम कभी भूल करके भी न करै॥ ७४१॥

दोहाः— जीव घात आदिक कर्म ❀ करै न कबहूँ भूल॥
[३३९] सो रच्छा जीवन करै ❀ प्रेम सहित अनुकूल॥ ७४२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

जीव घात = } बलिदान, जीव हिंसा, घात,
आदिक कर्म = } चोरी, व्यभिचारी, धूर्ताई, लबारी, ठगाई, इत्यादि कुकर्म, कुसङ्ग तो-

करै न = } कभी भी भूल करके भी न करै।
कबहूँ भूल = } और वैसे कर्म करनेवालोंके सङ्गमें भी भूलकर भी कभी न पड़े, न लगै। क्योंकि, इससे तो तुरन्त ही धर्म-की हानि वा बिगाड़ हो जाती है। अतः गुरुज्ञानको कभी न भूलै।

सो रच्छा } सब जीव मात्र स्वजातीय हैं।
जीवन करै = } ऐसा जानकर सो उन छोटे-बड़े देहधारी जीवोंकी भरसक रक्षा, बचाव, पालन किया करै, निज-पर जीवों-की रक्षा करै।

प्रेम सहित = } प्रेमसे दया, हितकारी भावके
अनुकूल = } सहित यथाशक्ति सभी जीवोंके रक्षक होकर सबके अनुकूल प्रेमी मित्र बनकर रहना चाहिये। यानी मैत्रीभावनाको ही मनमें रक्खे॥

व्याख्या— फिर जीवघात, मार-काट, मद्यपान, वेश्यागमन, चोरी, ठगाई, मिथ्या भाषण व्यभिचार, अतिलोभ, विषयासक्ति, इत्यादि निषिद्धकर्म-कुकर्म जान-बूझ करके करना तो अलग रहा; परन्तु, कभी भूल करके भी ऐसा खराब कर्म न करै; ऐसा करनेवाले नीच, पापी, दुष्ट होते हैं।

अतः कुसङ्ग और कुकर्म कभी भी न करै। परन्तु, प्रेमके सहित हितकर कार्य करके सबोंके अनुकूल रहना चाहिये। सो तन, मन, वचन और धनसे सब जीवोंकी शक्ति अनुसार रक्षा करके बचाव ही करना चाहिये। सब जीव ज्ञान स्वरूप होनेसे स्वजातीय हैं, ऐसा समझकर दिलसे मैत्रीभाव रखना चाहिये; अनुकूलतासे बर्तना चाहिये ! ॥ ७४२ ॥

दोहाः— वाणी अप्रिय कहै नहीं * कहै सबन उपकार ॥
[३४०] ठहरै पद बोधित गुरु * लावै भक्ति गोहार ॥ ७४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

वाणी अप्रिय = कठोर, कर्कश, चुभनेवाली
कहै नहीं = अप्रिय वाणी, छल, कपट, धोखेकी वाणी, अनुमान, कल्पना, विषयकी वाणी, ऐसे-ऐसे वचन कभी न कहै या कहना नहीं चाहिये।

कहै सबन = बोलनेका अवसर आवे, तो ही
उपकार = मीठे वचनसे गुरुमुख वाणी ही कहै। जिससे निज-पर सबोंका उपकार होवेगा; सबोंका उपकार हो, ऐसा सबसे कहै। तथा—

ठहरै पद = पारखी सद्गुरुने जो पारखका
बोधित गुरु = सत्य बोध दिये हैं। उसी निजपद चैतन्य भूमिकामें स्थिर होकर सदा ठहराव करै या वहीं ठहरै।

लावै भक्ति = सत्य-प्रेम संयुक्त गुरुभक्ति
गोहार = करै। भक्तिकी सहायतासे ही मुक्ति होती है। सद्गुरुके उपदेशके पुकारामें मन लगावे। इन्द्रियोंके विषयोंमें मन न लगावे, हिम्मतको न हारै, भक्तिसे सद्गुरुकी स्तुतिका पुकारा करै ॥

व्याख्या— सबोंको अप्रिय लगनेवाला कठोर-कर्कश वचन कभी मुखसे न कहै। और प्रिय लगने वाली हो, चिकनी, चुपड़ी, झूठी बात हो, तो ऐसी वाणी कभी भूल करके भी न बोलै, सत्य वचनको ही नम्रतापूर्वक कहै। और सब मनुष्योंका उपकार हो, ऐसे सत्यन्याय-निर्णयके वचन कहै। और गुरुभक्ति करनेमें मनको लगावे। भक्तिपूर्वक सद्गुरुकी स्तुतिको ही गोहार=पुकारा, प्रार्थना, विनय करनेमें लगै, लगावे। और पारखी सद्गुरुने जो पारखका बोध दिया है, उसी पदमें ठहर करके स्थिर हो रहै; भक्तिमार्गमें लगा रहै ॥ ७४३ ॥

दोहाः— चारि खानि बहु जीयरहिं * दुःखदाई जो होय ॥
[३४१] जुरै तो रच्छै जीव कहँ * असक रहै चुप सोय ॥ ७४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

चारि खानि = मनुष्य, पशु, अण्डज, और
बहु जीयरहिं = उष्मज— इन चारखानियोंमें अनन्त देहधारी जीव स्वयं कर्मानुसार ही बहुतेक दुःख पा रहे हैं।

दुःखदाई = फिर उन्हें दुःख होनेवाला कार्य
जो होय = अपनेसे कभी भूल करके भी न करना। यदि हिंसक प्राणी कभी दुःखदायी हो जावें, तो भी यथाशक्ति उन्हें बचाते ही रहना।

जुरै तो रच्छै = क्षुधा, तृषा, शीतोष्णसे सब
जीव कहँ = प्राणी दुःखी रहते हैं। शक्ति हो, तो अन्न, जल, वस्त्र और ज्ञान उपदेश यथायोग्य देकर जीवोंकी रक्षा करै। तथा जीवोंकी हत्या, घात, हिंसा करनेको कोई जुटे हों, तो सकभर उन्हें समझाकर जीवकी रक्षा करके बचावे दुःख निवारण करै, छुड़ावे।

असक रहै = अगर अपनी शक्तिके बाहर कोई
चुप सोय = जीव दुःखी है या कोई उन्हें दुःख दे रहा है; किन्तु, अपना वश ही नहीं चलता है, शक्ति नहीं चलती है; तो, उस हालतमें चुप होकर वहाँसे हट जावे। सो अपनी तरफसे जान-बूझ कर तो किसीको दुःख न देवे। अनजानका दोष नहीं लगता है। सब जीव अपने-अपने कर्म फल भोग रहे हैं ॥

व्याख्या— फिर चारखानीमें पड़े हुए अनन्त जीवोंको बहुत प्रकारसे वहाँ जो उन्हें दुःखदायी हो रहा है; सो सब जीव कर्मोंके चूकीसे अपने-अपने कर्मोंका फल दण्ड दुःख ही पा रहे हैं। ऐसे

विचार करके देखे, जाने; और अपने कर्त्तव्योंका सुधार करे। यदि अपनी शक्ति-सामर्थ्यसे अन्न, जल, वस्त्र, द्रव्य आदि पदार्थ जुट गया, तो प्राणियोंको वह पदार्थ आवश्यकतानुसार देकर क्षुधा, तृषा, शीतोष्ण आदि निवारण करके जीवोंकी रक्षा करे, बचावे। यदि अपनी शक्ति उसमें नहीं पहुँचती है, शक्तिसे परेकी बात है; उनके दुःख मिटानेमें अपने असमर्थ हैं, तो फिर चुप, शान्त हो रहे; उस जगहसे दूर हो जावे। सो जीव सब उनके कर्मानुसार ही दुःख-सुख पाते हैं और पा रहे हैं। जान-बूझकर जीवोंको सताना नहीं चाहिये; बने वहाँतक रक्षा ही करनी चाहिये ॥ ७४४ ॥

दोहाः— यह प्रकार गृहि धर्मके * लक्षण दिये बताय ॥
[३४२] अब शिष्य ! विरक्त धर्मके * लक्षण सुनहु बनाय ॥ ७४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

यह प्रकार = } इसप्रकारसे गृहस्थाश्रमियोंके
गृहि धर्मके = } धर्म, और मठधारियोंके धर्म, जिज्ञासु भक्तोंके धर्म और जिज्ञासु सन्तोंके धर्म, इत्यादि—

लक्षण दिये = } सबोंके गुण-लक्षण न्यारा-
बताय = } न्यारा तुम्हें बतला दिया हूँ! गृहस्थ भक्तोंमें स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी आदि माया-मोहका बन्धन विशेष रहता है। अतः उन्हें दान-पुण्य, शुभ कर्माचरण विशेष करते रहना चाहिये। और गृहस्थों-से श्रेष्ठ स्थानधारी सन्त, साधु मार्गमें होने-से उनसे वे ऊँचे दर्जेमें रहते हैं। उन्हें भी सत्कर्म-सत्सङ्ग विशेषरूपसे करते रहना चाहिये।

अब शिष्य ! = } अब हे शिष्य ! वीतरागी,
विरक्त धर्मके = } त्यागी, दृढ़ वैराग्यवान् संसारसे विरक्त पारखी साधुओंके धर्म, स्वभाव रहनी-रहस्य, जगत्में बर्ताव आदि-के बारेमें कहता हूँ !—

लक्षण = }
सुनहु = } सो विरक्त साधुओंके गुण-लक्षण
बनाय = } भी यहाँ वर्णन करके कह देता हूँ, सो तुम श्रवण करो ! और उसी प्रकारसे गुण-लक्षणको धारण करके स्वभाव-को शुद्ध बनाकर अपने कल्याणको बनाओ !॥

व्याख्या— इसप्रकारसे गृहस्थ सेवकोंने गृहस्थ धर्मके सहित ही धर्म पालन करके धर्मात्मा, सज्ञान होकरके घरमें रहना चाहिये। साधुओंकी सेवा, दान-सम्मान, परोपकार, शुद्ध आचार-विचार, गुरुभक्त-धर्मपरायण होकर रहना चाहिये। गृहस्थ भक्तोंने सत्सङ्गी होकर संसारमें किस तरह रहना-बर्तना चाहिये, सो उनके शुभ गुण-लक्षण सब ऊपर तुम्हें बतला दिया हूँ! ऐसे ही सत् शिक्षा देकर सेवकोंको सुधार करनेमें लगाना। अब हे शिष्य ! विरक्त-धर्मके लक्षण साधुओंके बर्ताव, रहनी, टकसार कैसे होना चाहिये ? सो उसके बारेमें कहता हूँ, चित्त एकाग्र बना करके सुनो ! ॥७४५॥

दोहाः— विरक्त बोधै देह निजु * मैथुन त्यागे अष्ट ॥
[३४३] ठहरै रमिता भूमिपर * बोधि कालता कष्ट ॥ ७४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

विरक्त बोधै = } संसार गृहस्थाश्रममें बड़ी
देह निजु = } झंझट, कलह, अशान्ति ही लगी रहती है। अतः त्यागी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ सत्य बोध पानेसे स्त्री, पुत्र, घर, धनादि बन्धन उपाधिरूप जान-कर परित्याग किये, वे सद्गुरुकी शरणमें आ करके साधु भेष धारण किये। सो विरक्त या परम वैराग्यवान् बनकर निज मनको बोधसे पक्का कर लेते हैं। सत्य, विचार, दयादि हंसदेहके लक्षण नरदेहमें धारण करके निजपदको प्राप्त होते हैं। और—

मैथुन = }
त्यागे अष्ट = } १. विषय भावसे स्त्रियोंको देखना, २. विषय कथा सुनना, ३. गुप्तवार्ता, ४. स्त्रियोंसे खेलना, ५. विषयका ध्यान, ६. दृढ़ सङ्कल्प, ७. प्रयत्न, ८. स्त्री-सम्भोग- ये अष्ट प्रकारके मैथुन विकारोंको भीतर-बाहरसे त्यागे हुए पारखी सन्त निर्विकार रहते हैं। अथवा विरक्तोंने अष्ट

मैथुनोंको सर्वथा त्याग करना चाहिये। तथा—

ठहरै रमिता = चैतन्य जीवको खानी-वाणी-भूमिपर = की रमण-आसक्तिसे हटा-करके निजपद पारख भूमिकाकी स्वरूप स्थितिपर ही शान्त, निर्भ्रान्त होकर सदा ठहरे रहते हैं। यानी ऐसे ही रमिता भूमिमें सन्तोंने ठहरना चाहिये। तभी साधु-भावमें ठहराव होता है।

बोधि कालता कष्ट = यदि स्त्री विषयादिमें आसक्ति रही, तो बार-बार चौरासी योनियों में ही जा-जा करके जन्म, मरण, गर्भवास आदिका दुःख, नाना कष्ट सहना पड़ेगा। यह बात दृढ़तासे मनमें बोध करै। और गुरुवालोगोंकी कल्पनासे ईश्वरादि प्राप्तिके लिये जो कष्ट साधना करते हैं, सो भी भ्रम, धोखा मात्र है। सत्सङ्ग करके इन काल-कष्टोंसे प्रथम ही न्यारा हो रहते हैं, अथवा वैसे ही न्यारा हो रहना चाहिये॥

व्याख्या— तहाँ बहुत वर्षोंसे साधु-गुरुके सत्सङ्गसे पक्का बोध होनेपर घर-गृहस्थीको त्यागकर विरक्त, त्यागी, टकसारी साधु बनै। फिर उन विरक्तोंने मनको अच्छी तरहसे बोधै = बोध विचारसे परिपुष्ट करै। अपने-निज हंस देहके गुण-लक्षणोंको धारण करै। और स्त्री-पुरुषके देह संसर्गसे होनेवाले अष्ट मैथुनोंके विकारको भीतर-बाहरसे सर्वथा परित्याग करै। अष्ट मैथुनोंके नाम इसप्रकार कहा है:—

दोहा:—"श्रवण सुमिरण कीर्तन, चितवन बात इकन्त॥ दृढ़ सङ्कल्प प्रयत्न पुनि, प्रापति अष्ट कहन्त॥"

यह मैथुन भोगका अध्यास ही जीवोंको बारम्बार चौरासी योनियोंमें ले जाता रहता है। अतः दृढ़तासे उपरामताको धारण करके मैथुन भोगकी आसक्ति समूल मिटा देनी चाहिये। और संसारमें काल-जालोंके घेरामें होनेवाला महान् कष्ट-क्लेशको देखकर पारख बोधको परिपुष्ट कर फिर रमिता = चैतन्य जीवकी, भूमि = स्वरूप स्थितिमें एक-सा कायम हो करके निजपदमें ही ठहरे रहे। उससे कभी विचलित न होवे॥ ७४६॥

दोहा:— कष्ट करै विषयानको ❀ नष्ट न कतहूँ होय॥
[३४४] भ्रष्ट बुद्धि त्यागे भले ❀ अष्ट याम लखु जोय॥ ७४७॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

कष्ट करै = विषयानको = विषय भोगोंके लिये ही प्रयत्न वा कष्ट करनेवाले तो मुक्ति-पदसे नष्ट-भ्रष्ट होकर चौरासी योनियोंमें ही जाकर पड़ते हैं। ऐसा समझकर विषयासक्तिको जीतनेके लिये विवेक-वैराग्यादिमें ही लग करके सत्पुरुषार्थ बढ़ा करके कष्ट सहन करै या आसक्त न होनेका विचार करै। और—

नष्ट न = कतहूँ होय = विषयानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ब्रह्मानन्दादिकी चाहनासे जो स्त्री और गुरुवाओंके फन्दोंमें पड़े, सो जहाँ-तहाँ नष्ट ही हुए। इसलिये सावधान होकर सब आनन्दोंकी इच्छाको त्याग कर खानी-वाणीमें कहीं भी जा करके नष्ट न होवे।

भ्रष्ट बुद्धि = त्यागे भले = तथा बुद्धि भ्रष्ट करके ही पुरुषों ने "श्वान-हाड़ न्याय" स्त्री-भोगादिमें ही सुख मान रक्खा है। इसलिये बुद्धि समझको शुद्ध करके भ्रष्ट बुद्धिवाले कुसङ्गियोंको त्याग करनेसे ही भलाई वा कल्याण होता है। अतः भलीभाँति सो उन्हें त्याग कर देवे; और—

अष्ट याम = लखु जोय = आठों प्रहरमें निर्णयसे अपने हानि-लाभको ही देखता रहे। अष्ट मैथुनोंमें सिवाय हानिके और कुछ भी लाभ नहीं है, विवेक करनेसे यह प्रत्यक्ष दिखाई देगा। इसलिये निजस्थितिको ही लखो! देखो!॥

व्याख्या— विषयोंकी आसक्ति कुवासनाको हटाकर मनको जीतनेके लिये विवेक, वैराग्य, विचार, गुरुभक्ति आदि बढ़ाते हुए सत्साधनाओंमें लगै। कष्ट करके भी न्यारा हो रहै। वैराग्य पक्का

करनेके लिये कष्ट करै। सब विषय भोगोंको त्याग करै। विषय भोगोंमें लगकर चूक करके कहीं भी जा करके नष्ट-भ्रष्ट न होवे; सावधान हो रहै। और स्वार्थ सम्बन्धी भ्रष्ट बुद्धिको त्यागे। अथवा बुद्धि भ्रष्ट करनेवाली स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंके सङ्गको एकदम अच्छी तरहसे त्याग देवे। उस भ्रष्ट बुद्धिको त्याग देनेसे ही भलाई होती है, ऐसा जाने। और आठों प्रहर अपने मन-इन्द्रियोंकी चालको ही देख करके हित-अहितको लखते रहना चाहिये। तथा हंसपदमें ही कायम हो रहना, अष्ट सद्गुणों-को ही देखना चाहिये ॥ ७४७ ॥

दोहाः— अहङ्कार आनै नहीं * मैं उत्तम यह नीच ॥
[३४५] एकत्व सबहीं सम लखै * मानुष खानिके बीच ॥ ७४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

अहङ्कार = आनै नहीं = } फिर यदि तुम विषय त्यागी दृढ़ वैराग्यवान् भी हो जाओ, तो भी किसी प्रकारके अहङ्कारको हृदयमें आने मत् दो ! क्योंकि, अहङ्कार आनेपर स्थिति बिगड़ जाती है; राग बढ़ जाता है। इसलिये अहङ्कारीलोग भव-बन्धनमें ही पड़ जाते हैं। अतः—

मैं उत्तम = यह नीच = } दूसरे साधक साधुओंको देखकर ऐसे अभिमान कभी मत् करो कि, मैं उत्तम हूँ ! त्यागी हूँ, विरक्त रमता हूँ, और ये दूसरे मठमें रहनेवाले साधु नीच हैं, बद्ध हैं, आसक्त हैं, अबोध हैं, ऐसा मत्-सोचो ! घूमते रहनेसे त्यागी भी नहीं होते, और एक जगह रहने मात्रसे वे रागी भी नहीं होते हैं, सो तो उनके समझ-बोध पर ही आधारित रहता है। तथा—

एकत्व = सबहीं = सम लखै = } स्वजाति जीव-भावसे तो सबको एक समान ही देखो ! और मनुष्य देहके रूपमें भी सब एक समान हैं। सद्गुरुके बोध, भेषमें आनेपर वे सब एक-सा ही होते हैं। अतः अपने समान सब साधुओंको जाने, पारख बोधको ही लखे, लखावे, सुधरे-सुधरावे। और—

मानुष = खानिके बीच = } चारोंखानीके बीचमें मनुष्य खानी ही सर्वश्रेष्ठ है। और मनुष्य खानीके बीचमें सब कोई जीव सद्गुरुसे पारख बोधको प्राप्त करके मुक्त हो सकते हैं। अतएव त्याग-वैराग्य, गुरुभक्ति बोध बढ़ाकर स्वयं अभिमानसे रहित हो जाना चाहिये ! सदा परखते रहना चाहिये ॥

व्याख्या— विरक्त साधुओंने सदा निरहङ्कारी नम्र होकर रहना चाहिये। थोड़ा-बहुत त्याग-वैराग करके कुछ वाणी-वचन सीख करके फूलकर, मैं उत्तम साधु हूँ, बड़ा जानकार हूँ, बहुश्रुत हूँ, वक्ता हूँ, श्रेष्ठ हूँ ! और ये दूसरे लोग नीच हैं, अनाड़ी, अज्ञानी हैं, गृहस्थ हैं, बन्धनमें पड़े हैं, मेरी बराबरी ये नीच लोग क्या करेंगे ? ये लोग तो तुच्छ बुद्धिवाले हैं, इत्यादि प्रकारसे पदके अहङ्कार, मान, गुमान वा पञ्च अभिमान, दम्भ, कभी भी मनमें और मुखमें लाना नहीं चाहिये, यदि ऐसा अहङ्कार आया, तो साधुपदसे उसका सत्यानाश ही हुआ समझो ! अतः कदापि अहङ्कार नहीं लावे। अपनेको ऊँच, और दूसरेको नीच नहीं समझे। परन्तु, विवेक-विचार करके मनुष्य खानीके बीचमें सबोंका दर्जा बराबरी ही समझो ! सब मनुष्योंको एकत्व जीव भावसे स्वजातीय एक समान लखना चाहिये। फिर उनके कर्म चाहे कैसे भी हों, अहङ्कार लेकर वृथा अपनी हानि क्यों करना ? मनुष्य खानीके बीचमें सब मुक्तिके अधिकारी हैं। जो पारख बोधको प्राप्त कर लेते हैं, सो निर्बन्ध हो जाते हैं। अतः सदा अपने गुण-लक्षणोंको ही लखते रहना चाहिये ॥ ७४८ ॥

सम्बन्ध— ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर मूल बीजक सद्ग्रन्थके शब्दका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ शब्द भाग-६ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नम्बर-३२ ॥ ❀ ॥

१. हंसा हो ! चित चेतु सकेरा * इन्ह परपञ्च कैल बहुतेरा ॥ ७४९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो ! सुनो !—

हंसा हो ! चित = } हे जीव ! तुम तो हंस है,
चेतु सकेरा = } चैतन्य ज्ञान स्वरूप है।
फिर अपनी स्वरूप स्थिति न करके ब्रह्म-जगत्में क्यों भूल रहे हो ? अभी नरदेहमें मुक्तिको जगहपर हो, इससे चित्तमें जल्दी ही चेत करो ! नर जन्मको व्यर्थ मत् गमाओ ! चेतो-चेतो ! जागो-जागो ! इसी नर जन्मके प्रभातमें ही चेत करके कल्याण करो ! और—

इन्ह परपञ्च = } जिन्होंको तुम मुक्ति
कैल बहुतेरा = } सुखदाता मान रहे हो, वे ही गुरुवालोग और स्त्रियाँ ही तो बन्धनदाता काल बने हैं। इन्होंने पञ्चकोशोंके बहुतेरे वाणी जाल तथा पञ्चविषयोंके अनेकों खानी जाल तुम्हें फँसानेके लिये ही फैला रक्खे हैं। सो तुम उसे अच्छी तरहसे जानो ! उन कालके प्रपञ्चोंमें मत् पड़ो, काल-जालसे निकल आओ ! ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका निर्णय वचन बीजक मूल शब्द ३२ का प्रमाण कहता हूँ, सुनो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे हंसा हो ! हे मनुष्यो ! तुम तो ज्ञानस्वरूप चैतन्य हो, फिर अभी अचेत-गाफिल कैसे हो रहे हो ? उठो ! अभी कर्मभूमिकामें हो, सकेरा = जल्दीसे नर-देहके प्रभातमें जाग्रत् होकर अपने चित्तमें चेत करो ! विचार करो, अपने कर्त्तव्यकी याद करो ! देखो ! इन गुरुवालोगोंने और स्त्रियोंने संसारमें खानी-वाणीका जाल, प्रपञ्च बहुत ही विस्तार किया है। वे ही तो काल हैं, तुम्हें फँसानेके लिये नाना तरहके दाव-पेंच चला रहे हैं, घात लगा रहे हैं। सो उसे तुम ठीक तरहसे जानो ! चेत करके न्यारा हो रहो ! ॥ ७४९ ॥

२. पाखण्डरूप रच्यो इन्ह त्रिगुण ❀ तेहि पाखण्ड भूलल संसारा ॥ ७५० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

पाखण्डरूप = } इन्हीं त्रिगुणी ब्रह्मा,
रच्यो इन्ह त्रिगुण = } विष्णु, महेशके इशारा-से उनके अनुयायी ज्ञानी, भक्त, योगी और कर्मियोंने षड्दर्शनोंमें छियान्नवे (९६) पाखण्डकी रचना की है, तहाँ द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैतादि सिद्धान्त कल्पना किये हैं। और काम, क्रोध, मोहके रूपसे अनेकों पाखण्ड इन त्रिगुणियोंने रचा है।

तेहि पाखण्ड = } अबोध संसारी नरजीव
भूलल संसारा = } विषय और ब्रह्मकी आनन्द प्राप्तिके वास्ते स्त्री और गुरुवा-लोगोंके उसी खानी-वाणीके पाखण्ड जालोंमें फँसकर भूल गये या भूल रहे हैं; भ्रमिक हो रहे हैं। उसी पाखण्डमें सारा संसार भूल रहा है ॥

व्याख्या— रजोगुण प्रधान ब्रह्माने कर्म और ज्ञानकी वाणी रचना की। अद्वैत मत तथा कामका विलास फैलाया। सत्त्वगुण प्रधान विष्णुने उपासना-भक्तिकी वाणी रचना कर, द्वैत मत तथा मोहका जाल पसारा किया। तमोगुण प्रधान महेशने योगमार्गकी वाणीकी रचना कर, विशिष्टाद्वैत मत तथा क्रोधका नृत्य चलाया। इसप्रकार इन त्रिगुणी लोगोंने सत्यका खण्डन करके पाखण्ड भेषका नानारूप नाना वाणी रचना की। जिसमेंसे षट्दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्डोंके अनेकों मत-मतान्तर निकले। उसी पाखण्डोंमें सारे संसारके मनुष्य भूले और भूल रहे हैं, बिना पारख ॥७५०॥

३. घरके खसम बधिक वै राजा ❀ परजा क्या धौं करें विचारा ? ॥ ७५१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

घरके खसम = } जैसे घरमें स्त्रीका रक्षक
बधिक वै राजा = } पति होता है; और देशका रक्षक राजा होता है। यदि वे ही दुष्ट, दुःखदायी हों, तो मरण वा अधिक दुःख ही होता है। तैसे ही घरोंघरमें उपदेशक गुरुवालोग मालिक गुरु तथा वे ही श्रेष्ठ राजावत् बनकर बधिककी नाईं जीवोंको धोखा, कल्पना, भ्रममें डाल करके मारे हैं, और अभी वैसे मार ही रहे हैं, सबोंको भुला रहे हैं।

परजा क्या धौं = } अब विचार करो ? ऐसे
करें विचारा ? = } शैतान पति वा दुष्ट राजाके पाले पड़ी हुई प्रजाकी क्या रक्षा होगी ?

भला ! तैसे ही उन्होंके अनुयायी शिष्यलोग सत्यासत्यका तो निर्णय-विचार क्या करेंगे भला ? वे गाफिलीमें पड़े हैं, चौरासी योनियोंसे कैसे छूटेंगे ? कभी नहीं छूटेंगे ॥

व्याख्या— जैसे घरका खसम स्त्रीको मारे, सतावे, तथा देशका राजा बधिक होवे, तब बेचारे दुःखी, अनाथ प्रजाजन क्या करेंगे भला ? कैसे सुख पावेंगे ? कभी सुख न पावेंगे। तैसे ही मत-मतान्तर सिद्धान्तरूप घरके खसम बने हुए भ्रमिक गुरुवालोग घरोंघरमें जाकर उपदेश देकर स्वामी बने हैं; सब चेले उन्होंके स्त्रीवत् भक्त बने हैं। तन, मन, धन लूटकर धोखा देकर उनका नाश कर रहे हैं। और वे ही राजा भी बने हैं; अन्यायी, बधिक होकर जीवोंका बध कर रहे हैं। प्रजा=अज्ञानी शिष्य लोग बेचारे दीन-दुःखी अविचारी होकर उनके ही जालोंमें फँसे हैं। अब वे पारखका विचार क्या करेंगे ? कुछ नहीं; बन्धनमें ही पड़े रहेंगे ॥ ७५१ ॥

४. भक्ति न जानै भक्त कहावै ❀ तजि अमृत विषकै लिन सारा ॥ ७५२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

भक्ति न जानै = स्त्री और गुरुवालोग आदिके
भक्त कहावै = विषय, कल्पना, माया प्रपञ्चोंसे भागकर, उसे त्याग करके पारखी सद्गुरुके सत्य चैतन्य भक्ति करना, सो तो जानते ही नहीं हैं। झूठ-मूठ ही पाखण्डीलोग बड़े भक्त कहलाते फिरते हैं; जड़ मूर्तिके भक्त बने हैं। और—

तजि अमृत = अविनाशी सत्य चैतन्य
विषकै लिन सारा = जीवका अमृतरूप पारख बोध सद्गुरुसे लेना छोड़कर कोई ब्रह्म-ईश्वरादि, कल्पना करके उसको सार मान लिये, कोईने पञ्च विषयोंको ही सार समझ लिये, ऐसे मूढ़ हुए। सो वे लोग बन्धनोंमें ही पड़े और पड़ रहे हैं ॥

व्याख्या— भक्तिके असली अर्थको तो वे लोग कुछ जानते ही नहीं हैं, झूठ-ही-मूठमें भक्त कहला रहे हैं। स्त्री आदि मायासे भागना, भ्रमिक गुरुवालोगोंसे बचना, विषय-कल्पना आदिको त्यागना, सोई सच्ची 'भक्ति' है। जो कि, सत्य बोधदाता पारखी सद्गुरुकी गुरुभक्ति की जाती है, सो मुक्तिदायी होनेसे श्रेष्ठ है, ऐसे गुरुभक्ति करना तो वे जानते ही नहीं हैं। राम-कृष्णादि दश अवतार और निराकार ईश्वरादिकी भक्ति करके झूठे ही भक्त कहलाते हैं, वे धोखेमें ही पड़े हैं। और अजर-अमर चैतन्य जीवका अमृतरूप पारख बोध लेना छोड़ करके तथा सद्गुरुके सत्सङ्गको त्यागकर विषरूप कल्पित ब्रह्म और विषयादिको ही सार मान करके ग्रहण कर लिये; इसीसे जड़ाध्यासी होकर भव-बन्धनोंमें ही पड़े हैं ॥ ७५२ ॥

५. आगे बड़े ऐसेहि बूड़े ❀ तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥ ७५३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

आगे बड़े = पूर्वमें ब्रह्मादि, सनकादि जो
ऐसेहि बूड़े = बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हुए, वे तो भ्रमिक बेपारखी ही थे। अभी मेरे सामने ही आगेमें भी ऐसे ही खानी-वाणीमें जीव डूब रहे हैं। क्योंकि, वे पक्षपाती बने हैं; आगेकी कल्पित वाणीका ही प्रमाण करते हैं। आगे-आगे बढ़ते गये, तो शून्य धोखेमें ही डूबे वा गड़ गये।

तिनहुँ न = योगी, ज्ञानी, भक्त— ये तीनों
मानल = ही बड़े अविवेकी पक्षपाती
कहा हमारा = बने हैं। इसलिये उन्होंने भी हमारी कही हुई यथार्थ सत्य निर्णयकी वाणी पारख बोधको नहीं माना, तो अपनी ही हानि किया। यदि तुमलोग भी निर्णय वचनको नहीं मानोगे, तो अपनी ही हानि करोगे; अतः चेत करो ! ॥

व्याख्या— आगे पूर्वमें और वर्तमानमें हमारे आगे-सन्मुखमें ही बड़े कहलानेवाले योगी, ज्ञानी, भक्त आदि मतवादीलोग ऐसे-ही-तैसेमें भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर अनुमान, कल्पना, विषग्रादि सागरमें जा-जाकर डूब गये और डूब ही रहे हैं। उन्हें मैं मना करता हूँ, डूबनेसे रोकता हूँ,

तो भी वे लोग कुछ मानते ही नहीं हैं। उन त्रिगुणी पक्षपाती लोगोंने हमारा कहा सारशब्द पारख ज्ञानको नहीं माना। अतः भ्रम चक्रसे भी वे लोग बच नहीं पाये। अब तुम लोग भी हठ पकड़ करके सारशब्दको नहीं मानोगे, तो चौरासी योनियोंमें ही पड़ करके गोता खाओगे, सो जानो! ॥ ७५३ ॥

६. कहा हमार गाँठि दृढ़ बाधो ❀ निशि बासर रहियो हुशियारा ॥ ७५४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! इसलिये—

कहा हमार = हमारा कहा सत्यन्यायके
गाँठि दृढ़ = उपदेशको मानो! तुम चैतन्य
बाँधो = जीव ही स्वयं सत्य हो, सो जानो! और हृदयमें जो तुमने ब्रह्म, ईश्वर, विषयादिको सत्य मान-मान करके जो दृढ़ गाँठि बाँधे हो, उसको छोड़ो! और हमारा पारख बोधको ही पक्का दृढ़ करके गाँठि बाँधो! अब भी हमारा कहा हुआ उपदेशको मानो! और—

निशि बासर = दिनमें गुरुवालोग, और रात्रिमें
रहियो = स्त्रियाँ ये ही लुटेरे लोग
हुशियारा = जीवन धनको लूटते हैं, सद्गुणोंको चुराते हैं। इसलिये दिन-रातमें गुरुवा लोग और स्त्रियोंसे तथा ज्ञानी-अज्ञानीलोगोंसे, वाणी-खानीके जालोंसे हुशियार या सावधान होकर बचे रहो! कभी कहीं भूलकर भी गाफिल मत् होओ! उस तरफसे बेपर्वाह मत् रहो! ॥

व्याख्या— हे मुमुक्षुओ! यदि तुम लोग कल्याण चाहते हो, तो हमारा कहा हुआ सत्य उपदेशको मानो! पारख बोधको ग्रहण करो! मनमें जो तुम लोगोंने विषय, कल्पना आदि विकार-की गाँठी बाँध रक्खे हो, उसे खोल करके दूर फेंक दो! चैतन्य बोधको ही दृढ़तासे गाँठीमें बाँधो, और दिन-रात जाग्रत् हुशियार हो रहो। ज्ञानी-अज्ञानी तथा गुरुवालोग और स्त्रियोंके फन्दोंमें मत् पड़ो। वे दिन-रात तुम्हें फँसानेके पीछे पड़े हैं, सावधान होकर बचे रहो! ॥ ७५४ ॥

७. ये कलि गुरु बड़े परपञ्ची ❀ डारि ठगौरी सब जग मारा ॥ ७५५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

ये कलि गुरु = संसारमें ये गुरुवालोग ही
बड़े परपञ्ची = कलियुगके अवतारी कलि-रूप गुरु बने हैं। वे बड़े प्रपञ्ची, ठग, धूर्त, लम्पट, लबार गुरुवालोग अनेक तरहसे विषय और वाणीमें मोहित, आकर्षित करके धोखा देते फिरते हैं। बहुतोंको फँसाकर विनाश किये, सो तुम्हारे पीछे भी पड़े हैं।

ये कलियुगी गुरु बड़े प्रपञ्ची पाखण्डी हैं।
डारि ठगौरी = वाणीरूपी ठगौरी कल्पना-
सब जग मारा = के जाल डालकर काल-रूप गुरुवालोगोंने और विषय-विलासका हाव-भाव कटाक्षका जाल डालकर नारियों-ने सब जगत्के नरजीवोंको जड़ाध्यासी, आसक्त बना करके मुक्तिमार्गसे खैंच-खैंचकर मार डाले हैं, चौरासी योनियोंमें डाले हैं॥

व्याख्या— कलिरूपी संसारमें ये 'कलिगुरु' कालरूपी गुरुवालोग बड़े प्रपञ्ची ठग वा धूर्त बने हैं। कलियुगमें कलिकालके दो जीवित रूप प्रगट हुए हैं। एक तो स्त्रियाँ माया-मोहिनीके रूपमें बनठन कर बैठी हैं। दूसरा, गुरुवालोग धूर्त, धोखेबाज, कपटी भेषधारी बने हैं। वे दोनों ही बड़े प्रपञ्ची हैं। उन्होंने ठगौरी=वाणी कल्पना और विषयोंका जाल पुरुषोंके ऊपर संसारमें डाल करके बाँध-बाँध कर सब जगत्के मनुष्योंको जड़ाध्यासी बना करके मार डाले। बिना विचार कोई उन्होंके महाजाल-जञ्जालसे बच नहीं पाये ॥ ७५५ ॥

८. वेद कितेब दोउ फन्द पसारा ❀ तेहि फन्दे परु आप विचारा ॥ ७५६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

वेद कितेब दोउ = चार वेद, चार कितेबके
फन्द पसारा = कुरान, ये ही जबर्दस्त फन्दारूपी जाल हिन्दुओंके ऋषिलोग और मुसलमानोंके पैगम्बरोंने दुनियामें पसार करके फैला दिये हैं। सो महान् जालका विस्तार है। दोनोंने फन्दा ही पसार दिया है।

तेहि फन्दे परु आप विचारा = उसी वाणी-

खानीके फन्दाओंमें दूसरोंको फँसाते हुए अपने आप नरजीव भी गुरुवा बनकर भ्रममें फँस गये, जकड़ गये, धोखेमें पड़ गये, तो लाचार होकर चौरासी योनियोंमें ही चले गये और चले जा रहे हैं। अब विचार करिये! जो जैसा करते हैं, सो वैसे ही फल भी पाते हैं। दूसरोंको बन्धन देनेवाले आप ही पहले बद्ध हो जाते हैं॥

व्याख्या— हिन्दुओंके ब्रह्मादि गुरुवालोगोंने चार वेद, वेदान्त शास्त्र आदिकी वाणीका फन्दा पसारा किया है। और मुस्लिमोंके आदम, महम्मद आदिकोंने अरबी भाषामें चार किताब आदि नाना वाणी बना करके वही फन्दा मुसलमानोंके समाजमें पसारा किया है। और वे गुरुवालोग आप स्वयं भी अविचारसे उसी फन्दाओंमें गिर पड़े, अरुझ-अरुझ कर अध्यासी होकर मरे। और नरजीव अपने आपको न जानकर बिना विचार "जालोंमें पड़ी हुई मछलीवत्, दीपकमें पतङ्गीकी नाईं" अपने आप ही खुशीसे जा-जाकर जालोंमें फँस कर मरे और मर रहे हैं। इस बातको अच्छी तरहसे परखकर विचार करो! उन जालोंसे बाहर निकलो!॥ ७५६॥

९. कहहिं कबीर ते हंस न बिसरे * जेहिमा मिले छुड़ावनहारा॥ ७५७॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो!

कहहिं कबीर= } अभी ही चेतो, परखो,
ते हंस न बिसरे= } निज हित-कल्याण करो।
वे ही नरजीव हंस होंगे, निजपदको नहीं भूलेंगे या नहीं बिसारेंगे कि, "मैं हंस जीव सत्य हूँ! ब्रह्म-भ्रम मिथ्या है।" जो ऐसा जानेंगे, वे भूलसे पार हो जावेंगे। और—

जेहिमा मिले= } जो मनुष्य पारखी सद्गुरुसे
छुड़ावनहारा= } जा करके मिल गये, अथवा खानी-वाणी भव-बन्धनोंसे छुड़ानेवाले सद्गुरु पारखी, जिन्हें मिल गये हैं; सो वे फिर पारख बोध पा करके भूल मिटा करके जीवन्मुक्त होते हैं। फिर वे नहीं भ्रमते हैं, सावधान रहते हैं॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि— वे ही हंस चैतन्य नरजीव उस काल-जालरूपी खानी-वाणीकी भूल-भुलैया, तमाशा, महाबन्धनोंमें पड़कर निजपदको नहीं बिसरेंगे वा नहीं भूलेंगे। जिनमें जहाँ, जिन्होंको भव-बन्धनोंसे छुड़ानेवाले पारखी सद्गुरु मिल गये; सो वे ही सकल काल-जालको परख करके उससे न्यारे हो जाते हैं। और सदाके लिये निज स्वरूप पारखपदमें ही स्थिति करके निर्बन्ध जीवन्मुक्त हो जाते हैं। अतः बन्दीछोर पारखी सद्गुरुके ही शरण-सत्सङ्गमें सदा लगे रहना चाहिये; यही मुमुक्षुओंका मुख्य कर्त्तव्य है॥ ७५७॥

सम्बन्ध— बीजक मूल ग्रन्थके ही शब्दका प्रमाण और भी यहाँपर दिया है, सो सुनिये!॥

॥ ❀ ॥ शब्द भाग-७ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नम्बर— ८०॥ ❀ ॥

१. बन्दे करिले आपु निबेरा॥ ७५८॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—

बन्दे करिले= } हे बन्दे! हे नरजीव! तुम
आपु निबेरा= } हकनाहक अनेक भव-बन्धनोंमें क्यों पड़ा है? और क्यों स्त्री तथा गुरुवालोगोंके गुलाम हो रहा है? तुम अपने आप ही नाना प्रकारसे खानी-वाणीके बन्धनोंमें पड़ा है, सो उसको छोड़ दो! अपने पारख पद पर ठहरो! हंस होकर जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय करो! जड़-से भिन्न सत्य अपने स्वरूपको जानकर ऐसा निबेरा करो कि, जड़ाध्याससे अपने आपको निकाल लो!॥

व्याख्या— और भी प्रमाण बीजक मूल शब्द ८० का यहाँ पर दिया गया है, सो उसका अर्थ सुनिये:— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने नरजीवोंको चेतावनी देते हुए कहा है कि, हे बन्दे! तुम व्यर्थ ही नाना तरहके काल-जालोंमें फँस करके जगत्में कालके गुलाम क्यों हो रहा है? लोभ-लालचमें फँसकर क्यों बन्धायमान हो रहा है? अब तो भी चेतो! विवेक करके अपना स्वरूप और जड़के स्वरूपका

निर्णय करके भिन्न-भिन्न निबेरा कर लो ! सकल विजातीय बन्धनोंको परखकर त्याग कर दो ! गुरुज्ञानका विचार करके अपना ही निबेरा कर लो ! भ्रम-भूलको त्याग दो ! ॥ ७५८ ॥

२. आपु जीयत लखु आप ठौर करु * मुये कहाँ घर तेरा ? ॥ ७५९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो ! आपु जीयत लखु = हे नरजीव ! तुम आप आप ठौर करु = ही नित्य, सत्य, अविनाशी चिरञ्जीव है। सो अभी जीते जी यानी मनुष्य शरीर साबूत है, तभी ही अपने वास्तविक स्वरूपको लखो ! ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि मन-मानन्दीको मिटाकर, विषय वासनाको हटाकर अपने आप पारख स्वरूपमें ठौर या स्थिति कायम करो ! इस तरह अभी जीवन्मुक्त हो जाओ ! यही मुख्य कर्त्तव्य है।

मुये कहाँ = जो ऐसी स्थिति न करके घर तेरा ? = जड़ाध्यासी होकर पशुवत् मर जाओगे; तो फिर हे मूढ़ ! मृत्यु होनेपर तेरी स्थितिका घर कहाँ होगा ? शरीर नाश होनेपर यहाँकी घर-सम्पत्ति तो सब छूट ही जायगी। कर्मोंका जो-जो संस्कार टिकाया है, उसीसे जीव चौरासी योनियोंमें नाना तन धारण करके दुःख भोगेंगे या भोग रहे हैं। अतः मरनेपर फिर तेरा घर यहाँ कहाँ रहेगा ? चौरासी योनियोंमें ही जाना पड़ेगा, सो जानो ! ॥

व्याख्या— हे मुमुक्षु नरजीवो ! मनुष्य देहमें आयु रहते ही, जीते ही, जवानी रहते ही, स्मृतिको जाग्रत् करके सत्यासत्य, जड़-चैतन्यको यथार्थ निर्णय करके लखो ! तुम अपने आप अविनाशी अखण्ड स्वरूप चैतन्य जीव सत्य हो, ऐसा लखो ! फिर सब मानन्दीको त्यागकर हंस पारखी होकर अपने पारखपदमें पहुँच करके ठौर-स्थिति कायम करो ! अभी अध्याससे रहित होकर मुक्त होओ ! यदि चेत करके अभी ऐसे सत्पुरुषार्थ नहीं करोगे, और जड़ाध्यासी होकर आयु बिताकर मर जाओगे, तब तुम्हारा घर वा स्थिति-ठहराव कहाँ होगा ? वासनाके अनुसार चौरासी योनियोंके गर्भवासमें और भव-बन्धनोंमें ही होगा। यहाँकी घर-सम्पत्ति सो कोई किसीकी नहीं होती है। देह छूटनेपर जीवके कोई भी काम नहीं आते हैं; सो तो प्रत्यक्ष ही है ॥ ७५९ ॥

३. यह औसर नहिं चेतहु प्राणी ! * अन्त कोई नहिं तेरा ॥ ७६० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो ! यह औसर नहिं = हे प्राणी ! यह शुभ अवसर, चेतहु प्राणी ! = मौका, तुम्हें बड़े भाग्यसे मिला हुआ है। अभी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके विवेक, वैराग्य, बोधभाव धारण करोगे, तो मुक्त ही हो जाओगे। यदि इसवक्त तुम नहीं चेतोगे, अपना जीवन सुधार करनेका कुछ सत्पुरुषार्थ नहीं करोगे, तो नरजन्म व्यर्थ हो जायगा।

अन्त कोई = फिर जिन स्त्री-पुत्रादिके लिये नहिं तेरा = हाय ! हाय ! करके दुःख झेलते हो, अनेक पाप कर्म-कुकर्म करते हो, वे और जिन देवी-देवताओंके नामसे खून करते हो, पूजा-पाठ, होम-हवन करते हो, ब्रह्म-ईश्वरादिको कर्त्ता मानते हो, सो कोई भी देहान्तमें तुम्हारे साथी, रक्षक वा बचानेवाले नहीं होंगे। तुम्हें अकेले ही चौरासी योनियोंमें जाकर नाना दुःख भोगना पड़ेगा, सो जानो ! ॥

व्याख्या— हे प्राणी ! हे मनुष्यो ! यह सर्वोत्तम अवसर ज्ञानखानी कर्मभूमिका, मनुष्य देह पाकर सद्गुरुके सत्सङ्ग करनेका अवसर मिलकर भी तुम लोग नहीं चेतोगे, कुछ सत्सङ्ग-विचार करके जीवनका सुधार नहीं करोगे, तो तुम्हारे समान अभागे और कौन होंगे ? और जिन स्त्री-पुत्र परिवारोंको पालन-पोषन करनेके लिये धन कमानेमें, विषय भोगनेमें हाय-हाय ! करके तुमने जीवन बिता दिया है, सो वे कोई भी अन्तमें तुम्हारे साथी दुःखको बटानेवाले नहीं होवेंगे। और कल्पित ईश्वर, देवतादि जो माने हो, जिनके भक्ति-भजनमें तुम लोगोंने जन्म बिता दिया है, सो वे कोई भी

अन्तमें तुम्हारे दुःख दूर करने वाले नहीं होवेंगे। अकेले जीवको ही कर्मोंका फल नाना दुःख चौरासी योनियोंमें जाकर भोगना पड़ेगा। सो ऐसा विवेक करके जानो, और अब तो भी चेत करो! भूल मिटाओ! ॥ ७६० ॥

४. कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! * कठिन कालको घेरा ॥ ७६१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु चेतावनी देते हुए समझाते हैं— हे मनुष्यो!

कहहिं कबीर = सुनो हो सन्तो! = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— उन विषयासक्त गृहस्थ लोगोंको तो मैं क्या कहूँ? वे अनधिकारी हैं। हे साधु-सन्तो! तुम लोग ही हमारी शिक्षाके पात्ररूप अधिकारी हो, अतः जो मैं कहता हूँ, सो ध्यानपूर्वक सुनो! और उसे गुनो!—

कठिन = कालको घेरा = } अभी अमूल्य नर देह पाये हो, तो सदा पारख विचारमें ही मन लगाये रहो! एकघड़ी भी व्यर्थ मत् खोओ! गुरुवालोगोंके वाणी-कल्पना, आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर आदिके घेरासे तथा स्त्रीके विषय आदिके घेरासे बिना पारख कोई भी नरजीव नहीं छूटे हैं, और छूट भी नहीं सकते हैं। यही तो मजबूत जबर्दस्त कालका घेरा है। इससे मैं तुम्हें चेताता हूँ कि, गुरुपारखपदमें ही सदा स्थिर हो रहो! सावधान रहो! उन कालके घेराकी तरफ कभी भूल करके भी मत् जाओ! ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे साधु-सन्तो! मैं जो सत्य निर्णयकी बात कहता हूँ, और प्रथम जो कहा हूँ, उसे मन लगा करके सुनो, समझो, मनन करो! यह कालके घेरा महाजालसे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है। बिना पारख इस घेरासे कोई नहीं छूटे, और छूट भी नहीं सकते हैं। तहाँ एक तो वाणी जालमें कल्पना कर-करके ब्रह्म-ईश्वर, आत्मा-परमात्मा, देवी-देवता, भूत-प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि इत्यादि जो मान-मानकर मिथ्या महिमा बढ़ा रक्खे हैं, सो झीनी माया कालरूप गुरुवालोगोंका घेरा है। दूसरा खानी जालमें अध्यास बढ़ा-बढ़ा करके स्त्री, पुत्र, धन, घर, माता-पिता, परिवार राज, काज, जाति, वर्ण, कुल, आश्रम, विषय भोग इत्यादि जो फैला रक्खे हैं, सो मोटी मायारूप कालका घेरा है। सब कोई इन्हीं घेरामें घिरे पड़े हैं। उनसे छूटना कठिन हो गया है। उन्हींके अध्यासवश नाना तरहके दुःख अनेकों बार भोगे, और भोग रहे हैं। इसलिये अभी तुम लोग चेतो! पारखी सद्गुरुके आधारसे कालके घेरासे बाहर निकलो! फिर मिथ्या मानन्दा और अध्यासको त्यागकर निजपद पारखमें ही स्थिर हो रहो! जीते ही निर्बन्ध होकर मुक्त हो जाओ! ॥ ७६१ ॥

दोहाः— मन्मथ बुद्धिको ज्ञान जो * काल जाल परचण्ड ॥
[३४६] ताहि लखै गुरु बुद्धिते * नहीं विरक्त गृहि दण्ड ॥ ७६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

मन्मथ = बुद्धिको = ज्ञान जो = } मन्मति गुरुवालोगोंने मनको मथन या सङ्कल्प-विकल्परूप मानन्दी करके बुद्धिसे मन-कल्पितको ही निश्चय करके जो वेद-वेदान्तादिका ज्ञान, ब्रह्मज्ञान और अनेक मत-मतान्तर निकाले हैं, सो सब कैदखाना हैं।

काल जाल = परचण्ड = } गुरुवालोग और स्त्रियोंकी वाणी-खानीके महाजाल अत्यन्त तीक्ष्ण, तीव्र, कठिन भव-बन्धन हैं। समस्त जीव इसी जालोंमें अरुझे हुए कालके गालमें पड़े हुए चबाये जा रहे हैं।

ताहि लखै = गुरु बुद्धिते = } पारखी सद्गुरुके सद्बोधसे सारासार, सत्य-मिथ्या, जड़-चैतन्य, बन्धन-मोक्षादिके मर्मको गुरुबुद्धिसे निजबुद्धिको प्रकाश करके उस काल-जालको अच्छी तरहसे लख करके जानना चाहिये।

नहीं विरक्त = गृहि दण्ड = } जो त्यागी, वैराग्यवान् होकर गुरुबोधको धारण

किये हैं, उस पुरुषको तो झीनी-मोटी दोनों बन्धनोंका दण्ड, कष्ट, क्लेश, दुःख कुछ नहीं रहता है, और जो विरक्त नहीं हो सके, गृहस्थीमें ही रहकर गुरुउपदेशका पालन करते हैं, वे गुरुवालोगोंके दण्डसे तो बच जाते हैं; किन्तु, संस्कारके अनुसार गतिको पाते हैं, यही गृही दण्ड है ॥

व्याख्या— जो कुछ मन्मति स्वार्थ बुद्धिका ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, योग, भक्ति, कर्मादि मार्गोंका गुरुवालोगोंने विस्तार किये हैं, सोई तो प्रचण्ड, तीक्ष्ण, विकराल कालका महाजाल है। और काम-भोग विषय बुद्धिका ज्ञान, षट् पशु धर्म जाननेका ज्ञान जो है, सो भी प्रचण्ड काल-जाल है। उसे गुरुबुद्धिसे यथार्थ निर्णय करके लख लेना चाहिये। जो पुरुष गुरु-बुद्धिसे पारखदृष्टि करके उसे लखते हैं, वे सबसे न्यारा हो जाते हैं। अतः वैसे विरक्त साधु और नाम मात्रके गृही जिज्ञासु सेवक जो सद्गुरुके आश्रयमें रहते हैं, उन्हें कालका दण्ड लग नहीं सकता है। अथवा विरक्त साधुको गृही-दण्ड नहीं होता है, और पाखण्डोंसे तो वे न्यारे ही रहते हैं। इसीसे बन्धनोंसे छूट कर वे मुक्त होते हैं। अथवा जो विरक्त हो नहीं सके, घर-गृहस्थीमें ही रहते हैं, वे वाणी जालसे छूटनेपर भी खानी जालके अध्याससे कर्मानुसार दण्ड-दुःख सहा करते हैं; गृहस्थाश्रम दण्ड भोगनेकी जगह ही है; ऐसा जान लेना चाहिये ॥ ७६२ ॥

दोहाः— दोय प्रकार मन्मथ धर्म ❀ गृहस्थाश्रम अरु साध ॥
[३४७] दोउनको लाजीम है ❀ गुरुमुख होहु अबाध ॥ ७६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
दोय प्रकार = मन्मति गुरुवाओंने दो
मन्मथ धर्म = प्रकारसे मन-मानन्दी द्वारा मनको मथन करके निकाला हुआ मार्ग या धर्म दो प्रकारसे जगत्में प्रचलित हैं। जिसका बहुत विस्तार हो चुका है।
गृहस्थाश्रम = सो एक तो भोगी गृहस्थ
अरु साध = कहे जाते हैं। दूसरे त्यागी साधु कहलाते हैं। बिना पारख दोनों ही मन्मति पथभ्रष्ट हो रहे हैं। क्योंकि, गृहस्थाश्रमी लोगोंने विषयासक्त होकर गुरुभक्ति सत्सङ्ग करना छोड़ दिये हैं, और साधु लोग ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिकी नाना साधनाओंमें भूले पड़े हैं।
दोउनको = तहाँ नरदेह पा करके ऐसा
लाजीम है = भूलना तो उन दोनोंके लिये लज्जाकी ही बात है। गृहस्थ और साधु दोनोंको लाजीम = उचित तो यही है कि, करना ऐसा चाहिये कि, नर जन्म पाया हुआ सफल हो, व्यर्थ न हो।
गुरुमुख = अतएव हे मनुष्यो! पारखी
होहु अबाध = सद्गुरुके मुखारविन्दसे निकले हुए सत्य उपदेशको श्रवण-मनन करके ग्रहण-धारण करो। गुरु निर्णयसे सत्यासत्यको लखकर फिर सत्य पर ही ठहरो! हंस रहनीको लेकर खानी-वाणी बन्धनोंसे रहित हो, निर्बन्ध होकर मुक्त हो जाओ! ॥

व्याख्या— इसतरह संसारमें दो प्रकारके मार्ग, दो तरहके ,मन्मतियोंके धर्म हैं। सो दोनों ही मन-मानन्दी द्वारा स्थापित किया हुआ है। उनमें एक धर्म तो गृहस्थाश्रम कहलाता है; और दूसरा साधु धर्म कहलाता है। बिना पारख वे दोनों मन्मति, भ्रमिक, विषयाध्यासी होकर बन्धनोंमें पड़ करके चौरासी योनियोंके ही अधिकारी हुए और हो रहे हैं। मन्मति लोगोंका कभी कल्याण हो नहीं सकता है; क्योंकि, दोनों ही खानी-वाणी जालोंमें भूले पड़े हैं। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार करते ही नहीं, तो गुरुबुद्धि कहाँसे आवे? और अपना हित-कल्याण, गति-मुक्ति न चाहनेवाले गृहस्थी सेवक-भक्तलोगोंको और त्यागी भेषधारी साधु विरक्तलोगोंकी उन दोनोंको ही पशुवत् व्यर्थमें मनुष्य जन्म बर्बाद करके बिताना तो बड़ी लज्जाकी बात है, और हितेच्छुक उन दोनों आश्रमी लोगोंको लाजीम है=उचित कर्त्तव्य तो यही है कि, पारखी साधु-गुरुका शरणागत

होकर सत्सङ्ग-विचार करके अपना कल्याण कर लेवें। और गुरुमुख न्याय-निर्णयको अच्छी तरहसे जान, बूझ, समझ करके हंस देहके सद्गुण-लक्षणोंको धारण कर अबाध=बाधा-बन्धनोंसे रहित सत्य निर्बन्ध हो जाना चाहिये। सो तुम भी गुरुमुखसे पारखबोधको जानकर सब अध्यासोंको त्यागकर जीवन्मुक्त हो जाओ! यही तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य है, सो जानो! ॥ ७६३ ॥

सम्बन्ध— ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर और भी सद्ग्रन्थ बीजकके शब्दका ही प्रमाण दिया है, सो जानिये! ॥

॥ ❀ ॥ शब्द भाग- ८ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नम्बर- ५६ ॥ ❀ ॥

१. नरको नहिं परतीत हमारी ॥ ७६४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! सुनो!—

नरको नहिं = संसारी-विषयासक्त तथा
परतीत हमारी = भ्रमिक मतवादी अभिमानी, पाखण्डी नरजीवोंका हमें विश्वास नहीं होता है, और हमारी कही हुई सत्यशिक्षा पारख ज्ञानका बोध यथार्थ निर्णयका प्रतीत या विश्वास भी उन्होंको नहीं होता है या हो नहीं सकता है; क्योंकि, वे पक्षपाती हठी लोग कुछ विचार ही नहीं करते हैं, तो कैसे बोध हो सकता है? कभी नहीं हो सकता है ॥

व्याख्या— बीजक मूल शब्द ५६ में सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जो निर्णय वर्णन करके कहा है, सोई यहाँपर तुम्हें समझानेके लिये प्रमाण देता हूँ, सो सुनो! उसीका अर्थ विस्तारसे प्रकाश करके मैं यहाँपर लिखता हूँ, उसे लक्ष्यपूर्वक पढ़कर भावार्थको समझ लीजिये! सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब कहते हैं— हे सन्तो! ये बेपारखी भ्रमिक अविचारी नरजीवोंकी समझका तो हमें कुछ भी भरोशा वा विश्वास नहीं होता है। वे लोग बड़े धोखेबाज मिथ्यावादी होते हैं। उनके वचनोंकी कोई प्रतीति नहीं है। झूठ-मूठके जञ्जालोंमें लगे पड़े हैं। और मनुष्योंके कल्याणके लिये हम सारासार निर्णय करके विवेक-विचारसे यथार्थ बात बतलाते हैं, तो वे पक्षपाती भ्रमिक अन्यायी बने हुए मतवादी लोग और संसारीलोगोंको हमारे निर्णय पारख ज्ञानकी प्रतीति वा विश्वास भी कुछ नहीं होता है। अतः वे लोग तो महाजालमें ही अरुझे पड़े हैं, और अरुझ रहे हैं। वे लोग अभिमानी और अविचारी बने हैं, इसीसे हमारे सत्य निर्णयकी बातकी भी उनको प्रतीति नहीं होती है। खानी-वाणीमें आसक्त होकर चौरासी योनियोंमें जानेके ही अधिकारी बने हैं ॥ ७६४ ॥

२. झूठा बनिज कियो झूठे सो * पूँजि सबन मिलि हारी ॥ ७६५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

झूठा बनिज = ब्रह्म, ईश्वर, देवता,
कियो झूठे सो = स्वर्गादि झूठा है। उसको सत्य वस्तु मानकर उसकी प्राप्तिके लिये झूठे गुरुवालोगोंके चेले होकर उन्होंके कहे मुताबिक अनेक साधनाओंका व्यापार किये, तहाँ मुक्तिका मुनाफा तो किसीके हाथोंमें नहीं आया।
पूँजि सबन = उलटा नर जीवोंने अपनी
मिलि हारी = पूँजीरूपी आयु हंस गुण-लक्षण सबोंको धोखेमें मिलकर हार गये। और व्यापक ब्रह्म अनुमानमें मिलकर सबोंने साक्षी पदको हार दिये; निर्गुण ब्रह्म बने ॥

व्याख्या— अब देखिये! झूठेसे मिलकर उनलोगोंने झूठे ही व्यापार किये; तो तहाँपर फायदा तो कुछ भी नहीं हुआ; उलटा सबोंने धोखेमें मिलकर पूँजीरूपी जमा भी हार दिये, बर्बाद कर दिये। इसीसे तो उन्होंका मुझे विश्वास नहीं होता है, तैसे ही पक्के झूठे गुरुवालोग हैं; वे झूठा सिद्धान्त-को ही मानते हैं। सो उन्हीं गुरुवालोगोंके सङ्ग-साथ करके अबोध मनुष्योंने झूठा बनिज किये। अर्थात् अनुमान-कल्पनासे ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, तैंतीस कोटि देवता, भूत, प्रेत, सात स्वर्गादि अनेकों वस्तु मानकर उसकी प्राप्तिके लिये तन, मन, धनादि कीमत चुका करके नाना साधनाओंका सौदा किये। उपदेश लेन-देनके खूब व्यापार किये। परन्तु, उससे मुक्तिका नफा तो किसीको भी नहीं

मिला। बल्कि, सबोंने मिथ्या धोखेमें मिल करके भ्रममें सामिल होकर बुद्धि, विचार, साक्षीपद, सद्गुण और आयु, यह पूँजी, जो कुछ भी उनके पासमें जमा थी, सो सबको व्यर्थ ही हार दिये वा खो दिये। ब्रह्म बनकर निर्गुणिया हो बुद्धिको नष्ट-भ्रष्ट कर दिये, बिना विवेक ॥ ७६५ ॥

३. षट दर्शन मिलि पन्थ चलायो * त्रिदेवा अधिकारी ॥ ७६६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

षट दर्शन मिलि = फिर षट् शास्त्री और
पन्थ चलायो = योगी-जङ्गमादि षड्-दर्शनोंके लोग हुए, वे सब भी बिना पारख धोखा, अनुमान, कल्पनादिमें ही मिल करके छियान्नवे (९६) पाखण्ड अनेक मत, पन्थ, ग्रन्थ, चलाये; उसे प्रचार करके फैलाये।

त्रिदेवा = उन्होंमें विशेष करके ब्रह्मा,
अधिकारी = विष्णु, महेश— ये त्रिदेव ही सबसे बड़े अधिकारी हुए। त्रिकाण्ड वेदका उपदेश उन्होंने ही दिये। वे बड़े गुरु बने थे; परन्तु, खूब भ्रमिक हुए रहे ॥

व्याख्या— उसी अनुमान-कल्पनामें मिल करके गुरुवालोगोंने संसारमें षट्दर्शन और छियान्नवे (९६) पाखण्डोंका विभिन्न मत, पन्थ चलाये हैं। उनमेंसे मुख्य अग्रगण्य विशेष करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश— ये त्रिदेव मुखिया, प्रधान अधिकारी हुए। वेद प्रमाणसे भक्ति, योग, ज्ञानका उपदेश उन्होंने ही दिया है। आदिमें वे ही त्रिदेव सब मतवादियोंके गुरु बने ब्रह्मादिके चेले सनकादि, नारदादि हुए। उनके चेले वशिष्ठ व्यासादि हुए। तदनन्तर मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातञ्जल, सांख्य और वेदान्त नामसे षट्शास्त्र बने। उसी वेद और शास्त्रों-के आधारसे भ्रममें मिल-मिल कर अनेकों मत, पन्थ चले। उनमेंसे योगी सम्प्रदाय, जङ्गम मत, जैन मत, संन्यासी मत, फकीरोंका मत, और ब्राह्मणोंका मत; ऐसे षट् दर्शन प्रगट हुए। उन सबोंने वाणी-कल्पनामें मिल-मिलकर ही नाना पन्थ चलाये। अन्तमें घूम-फिर करके उन पन्थोंके मान्य अधिकारी त्रिदेव ही ठहराये गये हैं। बिना पारख सब कोई अन्धाधुन्ध भ्रम चक्रमें ही फिर रहे हैं; उसी जालोंमें जाकर अरुझ रहे हैं; बिना विचार ॥ ७६६ ॥

४. राजा देश बड़ो परपञ्ची * रैयत रहत उजारी ॥ ७६७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

राजा देश = ब्रह्मज्ञानी राजा बने, व्यापक
बड़ो परपञ्ची = ब्रह्म मानकर सब देशमें अधिकार जमा लिये। बहुत कल्पना बढ़ी, पञ्च कोशोंकी वाणी-कल्पनाके प्रपञ्च खूब बढ़ाये। प्रपञ्ची गुरुवालोग संसारमें बड़े कहलाये, ब्रह्मदेशका भ्रम ही देशमें उपदेश दे करके फैलाये हैं।

रैयत = उन्होंके शिष्यवर्गः रैयत, प्रजा
रहत = हुए। वे ब्रह्ममानन्दी करके शून्य
उजारी = मिथ्या धोखेमें पड़े रहे, तो अध्यास-वश फिर शून्य स्थान गर्भवासमें ही जा करके अकेले रहे। नरजन्म उजाड़ हो गया। चौरासी योनियोंमें रहने लगे, बिना पारख ॥

व्याख्या— इस देशरूप संसारमें मत-पन्थोंके राजा, गुरु महाराज, तो वे ही ज्ञानी, योगी, भक्तादि गुरुवालोग अज्ञानी मनुष्य समाजमें राजा हुए; और ब्रह्मको सब देशमें व्यापक बतलाकर घेरा डाल दिये। वे बड़े प्रपञ्ची, धूर्त, ठग बने हैं। पञ्चकोशोंकी वाणीके प्रपञ्चमें सबोंको भुला दिये और भुला ही रहे हैं। और रैयतके समान शिष्यलोग सब उनकी प्रजा हुए। साधना तो किये थे, कल्याण प्राप्तकर आबाद होनेके लिये। परन्तु, निर्गुण-निराकार ब्रह्मको मानकर सब शून्य उजाड़में जाकर मिथ्या धोखेमें पड़े; इसीसे बर्बाद हुए। आत्मा वा ब्रह्म तो कहलाये; परन्तु, उसीमें विवेक-विचार नाश होकर उजाड़ हो गया। फिर देह छूटनेपर अध्यासवश शून्य स्थान गर्भवास चौरासी योनियोंको ही प्राप्त हो गये ॥ ७६७ ॥

५. इतते उत उतते इत रहहू * यमकी साँड़ सवारी ॥ ७६८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

इतते उत = उतते इत = रहहू = इधर जगत् लय करके उधर ब्रह्ममें रहे। फिर स्फुरणा हो करके ब्रह्मसे आकर जगत्की चौरासी योनियोंमें ही रहे, तैसे पिण्डसे ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डसे पिण्ड, स्वर्गसे नरक, बाहरसे गर्भवास, और गर्भवाससे बाहर इसतरहसे जन्म-मरणमें ही पड़े रहते हैं।

यमकी = साँड़ = सवारी = यमरूपी गुरुवालोग और स्त्रीकी साँड़ = उपदेश और विषय कर्मोंमें आरूढ़ हो करके साँड़की सवारी किये, तो उन्मत्त साँड़ उन्हें जिधर-तिधर ले गया; जगत् जङ्गलमें भटका करके महान खाँचरूप गर्भवासमें ले जा करके गिरा दिया ॥

व्याख्या— जैसे यमके साँड़में सवारी करनेवाले इधरसे उधर और उधरसे इधर आकर घन चक्रमें पड़कर भटकते रहते हैं। तैसे ही यमरूप गुरुवालोगोंके साँड़रूप उपदेशमें नरजीव आरूढ़ होकर सवारी किये, तहाँ नाना साधनाएँ करने लगे। और दूसरी यमरूपी स्त्रीका साँड़रूप भग-भोगादि विषयोंमें पुरुष सब सवारी करने लगे। जिससे खानी-वाणीमें इधर-उधरकी भटकना करके महा धोखेके चक्रमें पड़ गये। सो कैसे कि, एक तो इधर जगत्से चारों देहोंके निर्णय करके लय किया, तो कैवल्य ब्रह्म हुआ। और श्रवणादिसे निश्चय करके ब्रह्म साक्षात्कार किया, अद्वैत माना, तो स्थूल जगत्रूप ही ब्रह्म ठहरा। ऐसे जगत्से ब्रह्म और ब्रह्मसे जगत् होकर चौरासी योनियाँरूप ही आप हुआ। फिर योगीलोग योग साधनासे पिण्डसे ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डसे पिण्डमें चक्कर लगाया करते हैं। उसी अध्याससे जीव सब बाहरसे गर्भवासमें जाते हैं, और गर्भसे बाहर आते हैं। मनुष्य देह छोड़ करके पशु आदि देहमें जाते हैं और उधरसे उलट कर कभी मनुष्य देहमें भी आ जाते हैं। स्वर्ग, नरककी जगहमें यहाँ जीव कर्मानुसार सुख-दुःख पा रहे हैं। जन्मसे मरण और मरणसे जन्म होता ही रहता है। और ब्रह्मकी स्फुरणासे जगत्की उत्पत्ति और फिर महाप्रलय होनेपर जगत् सब उसीमें लय हो जाता है; ऐसी भी कल्पना किया है। तथा अध्यासी जीव स्त्रीसे पुरुष और पुरुषसे स्त्री भी पुनर्जन्ममें हुआ करता है। इसप्रकार "इतते उत, उतते इत" हो रहा है। सब जीव अज्ञानतासे यमके साँड़ वा भाड़ेके टट्टूवत् निर्बुद्धि पशु ही बने हैं। उनपर यमरूप माया मनमाने सवारी करके जहाँ-तहाँ दौड़ा-फिरा रहे हैं। सो कोई समझते तो नहीं हैं; इसीसे भव-बन्धनमें पड़े हुए नाना तरहसे दुःख भोग रहे हैं ॥ ७६८ ॥

६. ज्यों कपि डोर बाँधु बाजीगर ❀ अपनी खुशी परारी ॥ ७६९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो! ज्यों कपि डोर = बाँधु बाजीगर = जैसे बाजीगर गलेमें रस्सी बाँधकर बन्दरको नचाता है। तैसे ही स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंके फन्दोंमें नरजीव बद्ध हुए, अन्तःकरणमें आसक्ति-मानन्दी बँध गई। अब जैसे-जैसे नारी और गुरुवालोग नचाते हैं, तैसे ही तैसे—

अपनी = खुशी = परारी = पुरुष अपनी खुशीसे हाथ पसार-पसार करके नाचते हैं। मूढ़ नर-जीव स्वयं ही अपनी खुशीसे दौड़-दौड़ करके भागकर इस कैदरूप बन्धनोंमें पड़े हैं और पड़ ही रहे हैं। तो फिर चौरासी योनियोंमें भी नाच रहे हैं ॥

व्याख्या— जैसे उधर बाजीगर वा कलन्दर बन्दरोंको फँसा करके पीट-पीटकर नाचनेको सिखाता है, तहाँ बन्दरके गलेमें सूतकी डोर वा रस्सी बाँधकर डमरु बजाय-बजाय करके रस्सी तान-तानके इशारेसे नचाते हैं, तो वह भी अपनी खुशीसे भाग-भाग कर नाच दिखाता रहता है। उसी बन्धनमें वह मर जाता है। तैसे ही अज्ञानी मनुष्य घर-गृस्थीमें जो पड़े हैं, सो उनके मनमें विषयासक्ति की डोरी बन्धी पड़ी है। स्त्री बाजीगर बनी है, उसने कामकी डोरी पुरुषोंके गलेमें बाध दी है। और हाव, भाव, कटाक्ष आदिसे उन्हें अपने वश करके नाना कर्म-कुकर्ममें पुरुषोंको नचा रही है। वे भी उल्लू बनकर अपनी खुशीसे ही नाना कष्ट सहन करके स्त्रीको राजी रखनेके लिये बन्दरवत्

नाच रहे हैं। स्त्रीकी आज्ञा मानकर चल रहे हैं; अतः दुःख भोग रहे हैं। उसीप्रकार बाजीगरवत् गुरुवालोगोंने बन्दरवत् अबोध मनुष्योंको फँसाकर भ्रमा-भुला करके रोचक-भयानकादि वाणीकी डोरीमें बाँध दिये। फिर ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्तिकी आशा लगा दिये। तब अपनी खुशीसे ही नाना साधनाओंके कष्ट सहन करके भक्ति, योग, ज्ञानादिमें खूब नाच रहे हैं। चारधाम चौंसठ तीर्थादिमें कोई तो भाग-दौड़कर रहे हैं। इसतरह सब नरजीव जड़ाध्यासी होकर चारखानियोंमें नाना देहें धारणकर अपनी ही खुशीसे नाच रहे हैं ॥ ७६९ ॥

७. इहै पेड़ उतपति परलयका * विषया सबै विकारी ॥ ७७० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

इहै पेड़ = यही वाणी कल्पना, ब्रह्म मानन्दी
उतपति = और भगमुखी स्त्री, जगत्में
परलयका = जन्म-मरण करानेका, चौरासी योनियोंमें जाने-आनेका, देह धारण करानेका उत्पत्ति-प्रलयका कारण वासना बीजके वृक्षवत् है।

विषया सबै = इसवास्ते ज्ञान, योग, विज्ञानके
विकारी = आनन्द या ब्रह्मानन्दसे लेकर स्त्रीके विषयानन्द तक समस्त आनन्द पञ्च विषय विकारयुक्त बन्धनका बीज महा विकारी है ॥

व्याख्या— उत्पत्ति-प्रलयका कारण एक ब्रह्म अधिष्ठानको वृक्षवत् जो माना है, सो तो मिथ्या भ्रम है। परन्तु, ब्रह्म = झाँईं रूप गाफिली आदिकी भूल जो है, सो यही चारखानीकी उत्पत्ति वा जन्म और प्रलयरूप मरण होते रहनेका मुख्य पेड़ है। जिससे जीव निजपदसे भ्रष्ट हुए, भ्रम धोखेमें पड़नेसे नष्ट हुए; जगत्-जालमें अरुझ गये। अथवा यही स्त्री ही प्राणियोंका उत्पत्ति-प्रलय वा जन्म-मरण होते रहनेकी जगह पेड़रूप है। देह छोड़कर जीव स्त्रीके पेटरूप गर्भवासमें जाकर निवास करते हैं। और फिर समय पूर्ण होनेपर देह धारण करके योनि द्वारा बाहर निकल आते हैं। पश्चात् देह छूटनेपर भी वासनावश भग द्वारा गर्भवासको ही प्राप्त होते हैं। ऐसे स्त्री पेड़ है, सन्तान उसका फल है, वासना जड़-मूल है। इसलिये विषयानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ज्ञानानन्द, ब्रह्मानन्द, परमानन्द, सच्चिदानन्द, अद्वैतानन्द, जगदानन्द, भोगानन्द इत्यादि समस्त विषय आनन्द आदि खानी-वाणीमें जो कुछ भी माना है, वह सब महा विकारी है; आवागमन होनेका मूल कारण है। ऐसा जान करके उन्हें त्याग देना चाहिये; कभी भूलकर भी उस विकारमें न लगना चाहिये ॥ ७७० ॥

८. जैसे श्वान अपावन राजी * त्यों लागी संसारी ॥ ७७१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

जैसे श्वान = फिर जैसे कुत्ता सूखी हड्डी
अपावन राजी = चबानेमें राजी होता है। तहाँ अपना ही मसूड़ाके रक्त चाट करके खुश होता है। तैसे ही स्वाङ्गी गुरुवालोग अपवित्र जगत्को ही ब्रह्म मानकर बड़ा खुश होते हैं। आप ही जगत्रूप बन जाते हैं। कोई ध्यानादिमें ज्योति देखकर राजी हो जाते हैं, भ्रममें पड़ जाते हैं।

त्यों लागी = तैसे ही संसारी विषयासक्त
संसारी = पुरुष लोग भी स्त्रीके भग-भोगमें लगकर राजी वा खुशी हो जाते हैं। मुक्तिकी हानि सिवाय उसमें कोई लाभ नहीं है, सो नहीं जानते हैं ॥

व्याख्या— जैसे श्वान = कुत्ता, अपावन = अपवित्र हड्डी आदि मलिन वस्तु पाकर उसे खानेमें और चाबते रहनेमें खूब राजी-खुशी रहता है। बड़ी प्रसन्नतासे सूखी हाड़को जोर-जोरसे चबाता रहता है। उसमें तो कुछ रस नहीं होता है; परन्तु, हाड़की नोक कुत्तेके दाँत, मुख, मसूड़ा आदिमें लगनेसे रक्त निकल आता है, उसीको चाटकर मूर्ख श्वान उस स्वादको हाड़मेंसे आया हुआ समझता है। फिर ज्यादा खून निकलनेसे दुःख ही भोगता है। तैसे ही संसारी विषयासक्त पुरुष भी सब विषय भोगनेमें पशुवत् लगे हैं; तहाँ वे पुरुष श्वानवत् बने हैं। हाड़-मांसकी पुतली, मल-मूत्रादिकी पेटारी स्त्रीका देह महामलीन अपवित्र है। सो उसे ही पकड़-पकड़कर चाट-चूटकर

विषय भोगनेमें राजी हो मस्त पड़े हैं; फिर भग-भोगमें अपने देहका सार कीमती वीर्यको भी नष्ट करके भ्रमसे उसे सुख मानकर भूले हैं। और ज्यादा वीर्यपात होनेपर शक्तिहीन होकर अनेकों तरहके दुःख ही पाते रहते हैं; तो भी चेत नहीं करते हैं। विषय भोगनेको नहीं छोड़ते हैं, ऐसे महामूढ़ बने हैं। और दूसरी तरफ नाना स्वाङ्ग बनाये हुए गुरुवालोग श्वानके भाई स्वाङ्गी बने हुए हैं, वे स्वामी कहलाते हैं, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी बने हैं। वेदादि वाणीकी पूँछ हिला-हिलाकर अपवित्र चौरासी योनियोंका घर जगत्को ही अपने मुखमें पकड़े उसे, एक अद्वैत ब्रह्म वा विराट परमात्माका स्वरूप मान-मानकर खूब राजी-खुशी हो रहे हैं। फिर कोई ईश्वरादि प्राप्तिके लिये भक्ति, योग, ज्ञान, ध्यानादिकी अनेकों साधनाएँ करने-कराने लगे। तो तत्त्वोंका भास, ज्योति प्रकाश, आनन्द आदि वृत्तिकी स्थिरतासे भास हुआ। उसे ही अपना स्वरूप मानकर मग्नमस्त हुए। कोई परमहंस हुए, तो संसारमें पशुवत् आचरण करके चलने लगे। इसतरह सब लोग संसारी होकर मूर्खतासे विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिमें लगकर बन्धे पड़े हैं, बिना पारख ॥ ७७१ ॥

९. कहहिं कबीर यह अद्बुद ज्ञाना * को मानै बात हमारी ? ॥ ७७२ ॥

अर्थः— (श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!)

कहहिं कबीर यह = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब
अद्बुद ज्ञाना = कहते हैं— बुद्धिहीन लोगोंने ही ब्रह्मज्ञान और भोग ज्ञानको श्रेष्ठ कहकर उसे माना है। यह आश्चर्य है कि, सबका जनैया ज्ञान स्वरूप जीवको तो सबोंने भुला-भटका ही दिये हैं।

को मानै = सब पागल हुए हैं; तो अब
बात हमारी = हमारे पारख बोधको ये भ्रमिक लोग कौन मानेंगे? कोई-कोई बिरले जिज्ञासु ही मानेंगे। ब्रह्मानन्द-विषयानन्दमें ही सब भूले हैं। हम उसे खण्डन करते हैं, इसलिये वे विरुद्ध होते हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— यह गुरुवालोगोंके ज्ञान, विज्ञान, ब्रह्मज्ञानका अद्वैत कथन आश्चर्यमय बेबुद्धिकी मिथ्या अनुमान-कल्पना ही है। सो उसका सत्यनिर्णयसे खण्डन करके यथार्थ बातको परखाकर जो मैं समझाता हूँ; तो ये पक्षपाती-अविचारी लोग हमारी बात पारख ज्ञानको कौन मानते हैं? दुराग्रही लोग तो कोई भी नहीं मानते हैं; क्योंकि, उन्होंको "श्वान-हाड़ न्याय" विषय भोग और ब्रह्मका भ्रम, अनुमान, कल्पना आदि अपना-अपना पक्ष ही प्रिय लगा हुआ है। उसे त्याग करनेके लिये मैं कहता हूँ, तो कोई नहीं मानते हैं, मकोड़ावत् जालमें ही घुसे पड़े हैं। और जो कोई विचारवान् मुमुक्षु होते हैं, सो वे ही हमारे निर्णय बातको मान करके अपने कल्याण मार्गमें लगते हैं। उन्हींके लिये यथार्थ बात परखाकर मैंने यह बीजकका सत्यज्ञान कहा भी हूँ! सुधरनेवाले तो बिरले ही होते हैं ॥ ७७२ ॥

१०. अजहूँ लेहुँ छुड़ाय कालसों * जो करै सुरति संभारी ॥ ७७३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! हे मनुष्यो! ध्यान पूर्वक सुनो!

अजहूँ लेहुँ = कल तककी बातको तो जाने दो, आज अभी नरजन्ममें हो, अभी भी मेरे वचनको मानो, पारख ज्ञानको ग्रहण करो, तो कालरूप गुरुवालोग और नारियोंकी खानी-वाणियोंसे
छुड़ाय कालसों = छुड़ा करके निज शरणमें लेकर मैं—तुम्हें मुक्तिका मार्ग बताऊँगा, भवपार करूँगा।

जो करै = जो कोई मनुष्य लक्ष्यको समेटकर
सुरति = पारख बोधमें सुरति लगावेंगे, सो
संभारी = नरजीव सुधर जायेंगे। इसलिये अपनेको सम्हाल करके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लक्ष्य, प्रेमको लगाओ, जीवन सुधार करो! ॥

व्याख्या— हे सन्तो! अब तक जो बीत गया, सो तो हाथके बाहर हो चुका है; यदि अभी भी जो कोई जिज्ञासु मनुष्य अपना हित-कल्याणके लिये इच्छुक होकर मेरी शरणमें आवेंगे,

सत्सङ्गमें ठहरकर विचार करेंगे, कहा हुआ निर्णय वचनको समझेंगे-बूझेंगे और प्रेम-प्रीति प्रतीतिसे मेरे पारखकी तरफ देखेंगे, तथा अपने सुरति वा लक्ष्यको खानी-वाणीकी तरफसे हटा करके सम्हालेंगे, सुधारेंगे, वैसे अधिकारी पुरुषोंको मैं अभी भी निजबोध लखा करके कालके महाजाल-जञ्जालोंसे छुड़ा लेता हूँ! अर्थात् कालरूप गुरुवालोंगोंके चक्र ब्रह्मज्ञानादि धोखेसे और स्त्रियोंके विषय भोगादि जालोंसे उन्हें छुड़ाकर सत्यन्यायसे परखा करके पारख बोध देकर स्वरूप स्थितिमें ही स्थिर कर देता हूँ! परन्तु, सुरतिको समेटकर अपनेको सम्हाले रहे, तभी नरजीव काल-जालोंसे छूट सकते हैं। मैं तो अधिकारी पुरुषोंको पारख ज्ञान बताकर उन्हें अभी मुक्त करनेको तैय्यार हूँ! तहाँ उनका भी यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि, जो सुरति, आदत, चाट, वासना आदि प्रथमसे विषय भोगोंकी तरफ और ब्रह्म-ईश्वरादि वाणी कल्पना, मानन्दीकी तरफ लगी हुई है, सो उस तरफसे हटाकर अपनी वृत्तिको सम्हालें और निज पारख स्वरूपकी तरफ लक्ष्य लगावें और सद्गुण, रहनी धारण करनेमें मन लगावें, तो इसी नरजन्ममें सब बन्धनोंका अन्त होकर सदाके लिये मुक्ति प्राप्त हो जायगी। ऐसा जान करके पारखपदमें स्थिर हो रहो! यह भावार्थ है ॥ ७७३ ॥

दोहाः— अस विचार गुरुबोधको * जा घट होय प्रकाश ॥
[३४८] ते गृही गुरुरूप है * तरै तारु अन्यास ॥ ७७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
अस विचार = } ऐसा संसारमें सब ज्ञानियोंके
गुरु बोधको = } ज्ञानसे बढ़ करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका पारख बोध है। सो सबसे बढ़कर सर्वश्रेष्ठ सर्वोच्चपद है। ऐसे गुरुबोधका विचार पारखी सन्त किया करते हैं; उपदेश दिया करते हैं। और—
जा घट होय = } जिस पुरुषके अन्तःकरणमें
प्रकाश = } गुरु पारखका बोध प्रकाश हो जाता है; उसके समस्त तमरूप अज्ञानान्धकार मानन्दी सदाके लिये दूर हो जाती है। अपरोक्ष पारख बोध होनेपर भव-बन्धनोंसे जीव छूट जाता है।
ते गृही = फिर वह पुरुष गृहस्थीके जञ्जाल, कीचड़में कभी रह ही नहीं सकता है, घर-गृहस्थीको छोड़कर साधु-गुरुकी शरणमें ही आ जाता है।
गुरुरूप है = उसे पारखी सद्गुरु अपने रूप = साधु भेषका चिह्न दे देते हैं। फिर वह सद्गुरुके अनुयायी त्यागी भेषधारी साधु हो जाता है। फिर वे ही मठ, मन्दिर, स्थानमें कहीं एक जगह भी रहें, तो पारख बोध होनेसे वे सद्गुरुरूपमें ही होते हैं या गुरुरूपमें उन्हें माना जाता है।
तरै तारु = } वैसे पारखी साधु अपने स्वयं
अन्यास = } भवसागरसे तर करके जीवन्मुक्त होकर अन्य मुमुक्षुओंको भी बिना परिश्रमके सत्यबोध देकर भव-बन्धन छुड़ा करके भवपार उतार देते हैं; परम दयालु होते हैं; निज-पर कल्याणकारी होते हैं॥

व्याख्या— ऐसे गुरुबोधका विचार अपरोक्ष पूर्ण पारखदृष्टि जिस पुरुषके घटमें सद्गुरुकी दयासे प्रकाश हो जाता है; फिर वह पुरुष विरक्त साधु ही हो जाता है, और वह किसी कारणसे भी घर-गृहस्थीके बन्धनमें रह नहीं सकता है। क्योंकि, सांसारिक कार्य-व्यवहारोंमें फिर उन बोधवान्का मन ही नहीं लगता है। सेवक-भावमें घरमें रहते हुए ही सत्सङ्ग-विचार करके सब बातके भेदको पूरा समझ चुके होते हैं। कैसे ही विचार अनुकूलतासे रहनेपर भी घर-गृहस्थीमें विक्षेप, ममता, आसक्ति आदिका विकार बहुत कुछ लगा ही रहता है। इसका वे पूर्णतासे अनुभव किये हुए होते हैं। इसलिये कई वर्षोंके प्रयत्न, विवेक-विचारसे दृढ़ वैराग्य होते ही तृणवत् घर-बारको सहज ही त्याग करके सद्गुरुकी चरण-शरणके समीपमें ही आ जाते हैं। फिर उन्हें उत्तम अधिकारी जानकर पारखी सद्गुरु अपने रूप = टकसारी भेष विधि पूर्वक त्याग भेषका चिह्न दे देते

हैं। ऐसे वे भी सद्गुरुरूपमें त्यागी पूर्ण वैराग्यवान् हो जाते हैं। फिर वे प्रथम अपने सत्पुरुषार्थ-से भवसागरकी धारासे पार उतर करके जीवन्मुक्त हो जाते हैं। और फिर वैसे ही अधिकारी अन्य मनुष्योंको भी पारखबोध देकर अनायास ही भव पार उतार देते हैं। ऐसे समर्थ जीवन हितकारी होते हैं। अतः पारखी साधु-गुरुके ही सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ ७७४ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २२ ॥ ❀ ॥

१. गृहीको है लाजीम सेवा * साधूको है त्यागको लेवा ॥ ७७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

गृहीको है= } भक्त, सद्गृहस्थ सज्जन
लाजीम सेवा= } सेवक इन्होंको चाहिये कि, साधु-गुरुके सदा प्रेम पूर्वक तन, मन, धन लगा करके सेवा सत्कार करता रहे। गृहस्थीके लिये सेवा करना ही उचित सत्कर्म है, सो सदा करना चाहिये। तैसे ही उचित रीतिसे मठधारियोंने भी साधु-सन्तोंकी सेवा करते रहना चाहिये। और—

साधुको है= } साधुका कर्त्तव्य है कि,
त्यागको लेवा= } हंस रहनी-रहस्य, त्याग-का ही गुण-लक्षण पूर्णतासे लेकर अपनेमें धारण करना चाहिये। सत्य उपदेश लेना-देना चाहिये। अच्छी तरहसे त्याग-वैराग्यको दृढ़तासे सदा पालन करना, निष्काम रहना चाहिये ॥

व्याख्या— संक्षेपमें सारांश अब यही है कि, गृहस्थाश्रममें रहने वाले सद्गृहस्थ, नेमी, प्रेमी, सज्जन, सेवक, भक्तजनोंको चाहिये कि, तन, मन, धन लगा करके पारखी साधु सद्गुरुकी ही सेवा, बन्दगी, भक्ति किया करै। सो उनके लिये सब प्रकारसे सेवा करना ही 'लाजीम' कहिये उचित है। सेवा बिना गृहस्थ दोषके भागी होते हैं। चाहे कितना भी बोध-विचार उनमें हो, तो भी निरभिमानी होकर साधु-गुरुकी सेवा करते ही रहना चाहिये। और उधर साधुओंके लिये भी दृढ़तासे त्याग-वैराग्यको लेना, सद्गुणोंको धारण करना ही मुख्य कर्त्तव्य है। सच्चा त्यागसे ही साधुकी पदवी बड़ी मानी जाती है। वैराग्यकी रहनी बिना साधु दोषी होते हैं। इसीसे साधुओंने पूर्णतासे त्याग-वैराग्यको ही अपना करके लेना चाहिये ॥ ७७५ ॥

२. गृही सेवै गुरु औ साधू * दोहूँनको है धर्म अबाधू ॥ ७७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गृही सेवै= } गृहस्थीमें रहने वालोंको
गुरु औ साधू= } चाहिये कि, पारखी सद्गुरु और साधुओंके निष्कपट प्रेम भावसे सेवा-सत्कार किया करै। तथा साधु-गुरु-की सेवा मठधारियोंने भी करना चाहिये। साधुओंने भी सद्गुरु वा साधुओंकी ही सेवा-बन्दगीमें लगे रहना चाहिये।

दोहूँनको है= } साधु और सेवक दोनोंने अपने-
धर्म अबाधू= } अपने कर्त्तव्य सद्धर्मको दृढ़ता-से पालन करना चाहिये। धर्मपालन करने-में किसी प्रकारकी रुकावट, बाधा न करै। सेवा धर्म, त्याग-वैराग्य धर्म, बाधा रहित होनेसे ये दोनों कल्याण मार्गसे ले जाते हैं, इसलिये सदा धर्म ही पालन करता रहै ॥

व्याख्या— गृहस्थी सेवकोंने मद, मत्सर, दम्भ, छल, कपट, काम, क्रोधादि विकारोंको छोड़कर पारखी सद्गुरु और विवेकी साधुओंकी सेवा काया, वाचा, मन, और धनसे सब प्रकारसे अन्न, जल, वस्त्र आदि आवश्यकीय पदार्थ अर्पण करके सदा सेवा करै, टहल, बन्दगी भी किया करै। तैसे ही साधुओंने भी अयाचक, निर्लोभी, चाहनासे रहित हो करके सेवकोंको सत्य उपदेश ही दिया करै, हानि, लाभ, गुण-दोष दर्शाया करै। सब सिद्धान्तोंके भेद समयानुसार बता दिया करै, सन्देह मिटाया करै। इसतरहसे बर्तनेवाले गृहस्थ सेवक और त्यागी विरक्त साधु इन दोनोंके ही सेवा करनेके धर्म और वैराग्य दृढ़ रखकर सत्य उपदेश देनेके धर्ममें दोष, विकार, बाधासे रहित हो अबाध धर्म-सत्य धर्मका ही पूर्णतासे पालन होगा। वही गुरुनिर्णयका धर्म अबाध=

सत्य, निर्दोष है। जिसके पालन करनेसे उन दोनोंका ही हितकी उन्नति हो कल्याण होवेगा। अतः अपने-अपने धर्मको सेवक और साधुओंने सजगतासे पालन करते रहना चाहिये ॥ ७७६ ॥

३. निर्णय जो गुरुमुखहिं सूना ❀ ताहि मनन साक्षातहु गूना ॥ ७७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

निर्णय जो = पहले तो सज्जनोंको चाहिये
गुरुमुखहिं सूना = कि, पारखी सद्गुरुसे मुख्य-मुख्य सत्य निर्णयको श्रवण करे। फिर गुरुमुखसे जो बीजक सिद्धान्त सत्य निर्णयका उपदेश सुना गया है—

ताहि मनन साक्षातहु गूना = उस बातको मनमें मनन, चिन्तन करके गुणन करे। अधिक-अधिक विचार-विवेकको बढ़ाता ले जाय। तब, 'स्वयं स्वरूप मैं चैतन्य जीव सत्य हूँ! और मेरे अलावा ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना मिथ्या है।' यह साक्षात्कार होकर बोध हो जायगा। तब वह पक्का हो जायगा ॥

व्याख्या— इसलिये जो गुरुमुख निर्णय जड़-चैतन्यका भेद है, सो पारखी सद्गुरुके मुख-द्वारा ही प्रथम तो सत्य उपदेशोंको चित्त लगा करके सुनना चाहिये। फिर उसे दुबारा मनन-चिन्तन करके विचार करना चाहिये। फिर तीसरी बार उसे निदिध्यासन द्वारा परिपुष्ट करना चाहिये। तदनन्तर वह चौथी बारमें शुद्ध होनेपर साक्षात्कार होकर अपरोक्ष बोध हो जायगा। 'जीव ही सत्य है, और इसकी सब मानन्दी भ्रम होनेसे असत्य है' ऐसा मालूम हो जावेगा। अतः जो निर्णय गुरुमुखसे सुनो, उसे गुनते हुए मनन, निदिध्यासन करनेसे साक्षात्कार हो जायगा ॥७७७॥

४. प्रेम लगावै अस्ति पद माँहीं ❀ ठहरै पञ्चाइत गुरु पाँहीं ॥ ७७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

प्रेम लगावै = फिर मिथ्या धोखेके पदसे
अस्तिपद माँहीं = प्रेम हटा करके सत्य चैतन्य निजपद, गुरुपद पारखमें ही सत्य प्रेम-प्रीतिको लगावे या पारखी सत्यबोध-दाता सद्गुरुकी सेवामें ही प्रेम लगावे।

ठहरै पञ्चाइत = सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर
गुरु पाँहीं = इधर गुरुवालोगोंके जितने पञ्चाइतरूप पञ्चकोशोंकी वाणी, पञ्चविषयोंकी खानी प्रपञ्चोंका विस्तार है, उनको परीक्षा करा-करके यथार्थ निर्णयसे जो सत्य सिद्धान्त ठहरै, उसीको पारखी सद्गुरुके पाससे सत्य पारखको लेकर निज स्थितिमें ही सदा ठहरे रहना चाहिये ॥

व्याख्या— फिर अच्छी तरहसे गुरुबोधको प्राप्तकर अस्तिपद=जीवका सत्य चैतन्य पद पारख-गुरुपदमें ही सत्यप्रेम, दृढ़ निश्चय, पूर्ण विश्वासको रखकर मनको उसीमें ही लगाना चाहिये। और पारखी सद्गुरुके पञ्चाइत साधु समाज, सत्सङ्गके पासमें निकट ही सदा-सर्वदा ठहरे रहना चाहिये। सद्गुरुके नियम, घेराके भीतर ही टिके रहना चाहिये। नहीं तो संसारमें कालरूप स्त्रियोंका और गुरुवालोगोंका पञ्चाइत सब जगह लगा हुआ है। वे मौका पाते ही अनेक दाव, पेंच-से फँसा करके नष्ट-भ्रष्ट ही कर देते हैं। बहुतेरे मन्मति अहङ्कारी लोगोंका पतन, विनाश भी हो चुका है। वह जिस-जिस प्रकारसे हुआ, सो घटना संसारमें जाहिर ही है। सद्गुरुके सत्सङ्गमें सद्गुरुकी आज्ञामें, नियम, मर्यादामें न ठहरनेसे ही उन सबोंकी हानि हुई है। वे कालके जाल-जञ्जालमें पड़कर बेहाल हुए और हो रहे हैं। अतः अस्तिपदमें प्रेम लगा करके सद्गुरुके सत्सङ्गके घेरामें ही जीवन पर्यन्त ठहरे रहना चाहिये ॥ ७७८ ॥

दोहाः— पञ्चाइत गुरु न्यावकी ❀ याको होय सहाय ॥
[३४९] तब कछु ग्रहण साधुपद ❀ सोई गुरुपद आय ॥ ७७९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

पञ्चाइत = पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा ही सद्गुरुके सत्यन्यायकी कसौटीमें कसकर समस्त सिद्धान्तोंका कसर-खोट या गुण-दोष जाननेमें आ जाता है। गुरुवालोगोंके पञ्चाइत नाना मतोंके भेद खुल जाता है। सत्यासत्य-का यथार्थ बोध हो जाता है।

याको होय = सहाय = मुमुक्षु नरजीवोंको हंसपदमें पहुँचा करके मुक्ति करानेमें यही गुरु पारख निर्णय ही सहायता या आधार पहुँचाता है। यही सद्गुरुके न्यायकी सहायतासे ही सब बन्धनोंसे छूटकर जीव मुक्त हो जाते हैं।

तब कछु ग्रहण = साधु पद = जब सद्गुरुके सत्सङ्गमें परखते-परखते खानी-वाणीकी मानन्दी छूट जायगी, तब ही जो कोई जितना कुछ पुरुषार्थ करेंगे, उतना ही साधुपद वा हंसदेहकी रहनी गुण-लक्षणों-का ग्रहण होगा। तब कुछ भी बन्धनोंका ग्रहण नहीं होगा। निर्बन्ध साधुपदमें पहुँचेंगे।

सोई गुरुपद आय = सोई परम पुरुषार्थी पारखी सद्गुरुके पारखपदके प्रकाशी हो जाते हैं; अभी वर्तमानमें हैं। गुरुपद सोई मुक्ति-पद है। जिसको पा करके नरजीव हंस होकर मुक्त हो जाते हैं, ऐसा तुम जान लो!॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुका सत्यन्याय-निर्णय, तथा साधु-गुरुका पञ्चाइतरूप सत्सङ्ग-विचारका विशेष ठहराव होनेपर ही जिज्ञासु वा मुमुक्षुओंको आगे बढ़नेमें वही सहायक वा आधार हो जाता है। और जबतक सत्सङ्ग द्वारा गुरुन्यायका बोध नहीं होता है, तबतक त्याग-वैराग्यमें लगकर मुक्तिमार्गमें बढ़नेके लिये उन्हें कोई भी भीतर-बाहरकी सहायता नहीं मिलती है। फिर असहाय लोग अधबीचमें ही पथभ्रष्ट होकर नष्ट हो जाते हैं। फिर उलट-पलटकर भव-बन्धनोंमें ही बद्ध हो जाते हैं। जब गुरुन्यायका बोध सत्सङ्गसे इस पुरुषको हो जाता है, तब तो संसारका बन्धन, रुकावट कुछ भी नहीं रहता है, फिर साधुपदको ग्रहण करनेके लिये भी उनको कुछ देर नहीं लगती है, और साधुपद=त्याग, वैराग्य, निराश, निवृत्तिको पूर्णता, दृढ़तासे ग्रहण करके रहनी-रहस्यको सर्वाङ्ग अपने हृदयमें धारण कर लेते हैं। तब कुछ भी पूर्वकी मानन्दी उनमें बाकी नहीं रहती है, वे तो पूर्ण परीक्षक होकर पारखपदमें ही अपनी स्थिति कायम कर लेते हैं। साधुपद-से प्राप्त सोई पारखपद ही 'गुरुपद' है। उस पदमें पहुँचनेवाले नरजीव सदाके लिये जीवन्मुक्त हो जाते हैं। ऐसा जानकर गुरुपदमें ही स्थिति-ठहराव करना चाहिये, सो जानो!॥ ७७९॥

सम्बन्ध— ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर बीजकके रमैनीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये!॥

॥ ❀ ॥ १ ॥ रमैनी—शब्द भागमें—९ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ मूल बीजक, रमैनी नम्बर—८४ ॥ ❀ ॥

१. ये जियरा तैं अपने दुःखहि सम्हार ❀ जेहि दुःख व्यापि रहा संसार ॥ ७८० ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! सुनो!

ये जियरा तैं अपने दुःखहि सम्हार = हे नरजीवो! तुम अपने सत्य स्वरूपको जानो! देहादिको अपना स्वरूप मत् मानो, खानी और वाणी महा दुःखदायी जाल है। अपनेको दुःखके बीजरूप विषय और कल्पनासे सम्हाले रक्खो! तुम ही कर्म-कुकर्म करके दुःखोंको उत्पन्न करके बढ़ाते फैलाते हो! अब तो भी उसको समेट लो! सम्हार लो, बच जाओ!—

जेहि दुःख व्यापि रहा संसार = जिसको तुमने संसार-में व्यापक ब्रह्म माना है, सो तो कल्पना ही है और दुःखदायी चौरासी योनियोंका बीज है। और जिस कारणसे संसारमें दुःख व्याप्त हो रहा है, सो भी भोगासक्ति विषयवासनासे ही हो रहा है। अब तो भी उसको मिटा दो, पारख करो!॥

व्याख्या— हे शिष्य! यहाँपर बीजक, रमैनी ८४ का प्रमाण देकर कहता हूँ! सो उसके भावार्थ सुनो! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने मनुष्योंको चेतावनी देते हुए कहा है— हे नरजीवो! अभी तुमने

मनुष्य देह पाये हो, सो यहाँपर अभी ही सत्सङ्ग द्वारा विवेक-विचार करके निज सत्स्वरूपको जान लो ! और सत्पुरुषार्थ करके अपनी अज्ञानतासे होनेवाले दुःखोंसे सम्हलो ! यानी अपनेको जगत् दुःखोंसे बचा करके आवागमनसे छुड़ाकर सम्हार लेओ ! निज स्वरूपको न जाननेसे ही देह आदि-को ही अपना स्वरूप मानकर भ्रम-भूलसे विषयादिमें आसक्त, कल्पनामें व्यस्त होनेसे जीवोंको दुःख-ही-दुःख होता है। और जो दुःख संसारमें त्रिविधि ताप तथा आधि, व्याधि, उपाधि; जन्म, मरण, गर्भवास; ईर्षा, द्वेष, शोक इत्यादिके रूपमें व्याप्त होकर फैल रहा है। उसका मूल कारण-व्यापक ब्रह्मकी भ्रम-मानन्दी, ईश्वरादिकी कल्पना और स्त्री भोगादि विषय, सो यही बीज है। उसे अच्छी तरहसे जानकर अपने दुःखोंके बीजको मिटाओ, उसे नाश करो! यदि अबकी बार भी चूकोगे तो फिर अनन्त जन्मतक दुःख पाओगे; सो जान लो ! ॥ ७८० ॥

२. माया मोह बन्धा सब लोई * अल्प लाभ मूल गौ खोई ॥ ७८१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !
माया मोह = } स्त्रीके शृङ्गाररूप शब्द,
बन्धा सब लोई = } स्पर्शादिके विषयासक्ति मोहमें और गुरुवालोगोंके नाना भेष, रोचक वाणी, चार फल, चार मुक्ति प्राप्ति-की महिमा सुनकर मुग्ध हुए हैं। बिना पारख, ऐसे सब लोग माया-मोहमें बन्धायमान होकर फँसे पड़े हैं।

अल्प लाभ = } तहाँ स्त्री भोगसे होनेवाला
मूल गौ खोई = } सुखका लाभ तो बहुत ही थोड़ा है। परन्तु, उसीमें मूल = नरजन्म, तन, मन, धनादि नष्ट कर देते हैं। और योगानन्द, ब्रह्मानन्दादिसे होनेवाला समाधिके सुखका लाभ भी अल्पकाल तक वृत्ति स्थिर होनेतकमें भास होता है। परन्तु, वहाँपर मूल साक्षीपद मनुष्यपदको खो करके नष्ट करनेसे बद्ध हो जाते हैं ॥

व्याख्या— हे सन्तो ! संसारमें सब लोग अविचारसे मायाके मोहमें पड़कर बन्धायमान हो रहे हैं। एक मोटी माया— स्त्री, पुत्र, पुत्री, घर, धन, जमीन, राज, काज, पञ्च विषय भोग, नाच, राग, रङ्ग इत्यादिके मोह, प्रेम, स्नेह, चिपकाहट, आसक्तिमें सारे संसारी गृहस्थलोग बन्धे ही पड़े हैं। तहाँ लाभ = मनकी सन्तुष्टि, सुखका आभास, विषयानन्दादिका टिकाव तो, अल्प = अत्यन्त थोड़ा, बहुत ही कमती, कहनेमात्र वा नाममात्रका ही होता है। परन्तु, उसीकी आसक्ति, अध्यासों-में पड़कर मूल = मनुष्यपदको खो देते हैं। इन्द्रियोंके क्षणिक विषय सुखमें लगनेसे मूल = हंसदेहकी रहनी और मुक्तिपद खो गया वा नाश हो जाता है; उससे जीव बद्ध होते हैं। आवागमनोंमें पड़ते हैं। और दूसरी झीनी माया— गुरुवालोग, वेद, शास्त्रादि वाणी, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, खुदा, चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग इत्यादिकी महिमा सुन-सुनकर अनेकों भेष बनाय-बनायकर सब अविवेकी लोग उसीमें आकर्षित, मोहित हो-होकर वाणी जालोंमें बद्ध हो गये वा फँस गये। और योगानन्द, समाधिके सुख, ब्रह्मानन्द इत्यादि जो लाभ माना है, सो तो बहुत ही अल्प है। वृत्तिकी निरोधरूप स्थिरता तक ही थोड़ी देर सुख भासता है, फिर वृत्ति बहिर्गत होते ही चञ्चलतासे नाना दुःख ही होता रहता है। उस अल्प लाभमें लगकर उन्होंने अपने मूल हंसपद, जमापद पारखपदको ही भुला दिये, आयुको व्यर्थ ही खो दिये; उनका मूल विवेक ही नष्ट हो गया। इसीसे भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े हैं ॥ ७८१ ॥

३. मोर तोरमें सबै बिगूर्चा * जननी गर्भ वोद्रमा सूता ॥ ७८२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !
मोर तोरमें = } हमारे जाति, वर्ण, कुल,
सबै बिगूर्चा = } आश्रम, मत, पन्थ, सिद्धान्त बड़े हैं; और तुम्हारे छोटे हैं। हम ऊँच हैं, तुम नीच हो। ऐसी-ऐसी अहंता-ममता लेकर सब मनुष्य धोखेमें पड़कर नरजन्म-से बिगड़ गये; मर-मरकर चौरासी योनियों-में चले गये।

जननी गर्भ= } अध्यासी जीव माताके
बोद्रमा सूता= } गर्भाशयमें जाकर बेभान
होकर सोये वा सोनेकी तैय्यारी कर रहे हैं। स्त्रीके पेट (गर्भ) में सोनेवाले महान् दुःख जठराग्नि आदिकी ज्वाला सहते हैं, वही तो नरकवास है, सो जानिये ! ॥

व्याख्या— मैं-ममता सबको लगी है। मेरा-तेराके अभिमानसे सब धोखेमें पड़े हैं। अर्थात् मैं और मेरी जाति बड़ी है; और तेरी जाति छोटी है। तैसे ही मेरे वर्ण, कुल, आश्रमादि भी बड़े हैं, हमारा खानदान बड़ा ऊँचा है, और तुम्हारा नीचा है। फिर हमारी बराबरी तुम कैसे करोगे ? चल, हट ! नीच कहींके, आया है बराबरी करने ! तेरा बाप तो हमारे यहाँपर एक नौकर था, तू क्या शेखी करता है ? अरे मूर्ख ! तुम यह बात नहीं समझता है; जाति बड़ी होती है ? इत्यादि संसारीलोग कहते हैं। सो वे सब धोखेमें ही भूले पड़े हैं; विषयासक्त हो रहे हैं। और उधर भेषधारी लोगोंकी लीला भी वैसी ही विचित्र है। कोई कहते हैं, हमारा संन्यास मत सबसे बड़ा है, यह ब्रह्मासे वा महादेवसे निकला है। उनमें नागे, निर्वाणी, दिगम्बर लोग सम्मिलित होते हैं। चढ़ावमें प्रथम स्नान करनेके लिये वे लोग लड़-झगड़कर कट-कटा करके मरते-मारते भी थे। अब तो राजकीय व्यवस्थासे ऐसा होने नहीं पाता है। और कोई भक्त-वैरागीलोग उनके मत, विष्णुसे निकला हुआ कहकर बड़ा बतलाते हैं और दूसरोंको वे छोटा बतलाते हैं। कोई ब्रह्मासे निकला हुआ ब्राह्मण-ब्रह्मचारियोंका मत है, यही बड़ा है, कहते हैं। इसप्रकारसे षट् दर्शनोंके लोग अपने-अपने पन्थको बड़ा और दूसरोंके पन्थको छोटा बतलाकर मेरा-तेरामें भूलकर वे सब महाधोखेमें पड़े हैं; जड़ाध्यासी हो रहे हैं। इसलिये मुक्तिमार्ग उनके बिगड़ गये। फिर देह छूटनेपर जीव वासनावश जननी=जन्म देनेवाली स्त्रीरूप माताके गर्भवासरूप बोद्र=नीचेका पेट अँधियारी गुफामें जाकर गाफिल होकर सूते; और वहीं सोनेके लिये बहुतेरे जीव जा रहे हैं। प्रत्यक्ष नरकवासका दुःख वहाँपर वे जीव पा रहे हैं; ऐसे बन्धे पड़े हैं ॥ ७८२ ॥

४. बहुतक खेल खेलें बहुरूपा * जन भँवरा अस गये बहूता ॥ ७८३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !
बहुतक खेल= } नरदेह है, तबतक तो
खेलें बहुरूपा= } मदोन्मत्त भ्रमिक हो-होकर
बहुरूपिया मनुष्य गुण्डे बनकर या षड्-दर्शनोंके बहुरूपी भेष धारण करके विषयका खेल, और साधनाओंका खेल बहुतेक लोगोंने खेले। और—

जन भँवरा= } स्त्रीके गुलाम होकर विषयी-
अस गये= } जन तथा भक्त, योगी, ज्ञानी
बहूता= } आदि भँवरेकी नाईं ब्रह्मानन्द और विषयानन्दादि सुगन्ध-दुर्गन्धमें लुब्ध, आसक्त होकर बहुतेक ऐसे ही नर तनको खोकर गर्भवासमें चले गये, और इसीप्रकार चले जा रहे हैं ॥

व्याख्या— संसारमें आकर मनुष्य देह पा करके देह रहे तक तो बहुत लोगोंने बहुरूपिया बनकर पञ्च विषय भोगोंके खेल, क्रीड़ा, तमाशा, स्त्रियोंके साथ भोग-विलास इत्यादि बहुत किये, नाना तरहका खेल खेले; और कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादिकी साधनाओंका खेल अभ्यास भी बहुत लोगोंने बहुत-बहुत किये। परन्तु, पारख बिना किसी जीवकी भी कहीं स्थिति नहीं हुई। खानी-वाणीमें पड़े हुए सब लोग जड़ाध्यासी हुए। ऐसे विषयीजन भौंरेवत् होकर स्त्रियोंसे भोगकर भग कमलके रस लेते-लेते बहुत ही बुरी तरहसे मारे गये। वे सब-के-सब चौरासी योनियोंमें चले गये। और भक्त, योगी, ज्ञानी आदि जन मानसिक हृदय कमल, सहस्रदल कमल और ब्रह्म कमलके रस लेनेवाले भौंरे हुए वा भावुक हुए; निज स्वरूपको भूल गये। ऐसे बहुत साधक लोग भी भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर मर-मरकर चौरासी योनियोंमें ही चले गये और जा रहे हैं ॥ ७८३ ॥

५. उपजि विनशि फिरि जुइनी आवै * सुखको लेश सपनेहु नहिं पावै ॥ ७८४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

उपजि विनशि= } जड़ाध्यासी जीव
फिरि जुहनी आवै= } चौरासी योनियोंमें जा करके नाना देहें धारण कर उत्पन्न हुए, भोग पूर्ण होनेपर फिर मर गये देह विनाश हो गया, ऐसे त्रय खानीमें घूम-फिर करके शुभ संस्कार उदय होनेपर जीव मनुष्य योनिमें आकर जन्म लेते हैं और अभी उसीप्रकार जन्म लिये वा ले रहे हैं।

सुखको लेश= } फिर भी स्त्री और गुरुवालोगोंके
सपनेहु= } फन्दोंमें पड़कर वैसे ही चक्करमें
नहिं पावै= } पड़कर दुःख पाते हैं, पारखी सद्गुरु मिले बिना मुक्ति सुखका तो लेश-मात्र भी जाग्रत् या स्वप्नमें कभी नहीं पाते हैं या स्वप्नवत् जरा-सा भी सुख नहीं पाते हैं। परन्तु, उलटा दुःख ही पाते हैं॥

व्याख्या— चारखानीके अन्तर्गत चारोंकी राशि वा समूह नाना योनियोंमें कर्मानुसार उपजते=देह धारण करके पैदा होते, फिर विनशते=देह छोड़कर मृत्युको प्राप्त होते हुए अनेकों बार वैसे जन्म-मरणको बिताकर उधरके भोग पूर्ण होनेपर जीव फिर उलट कर फिर-फिरा करके इस कर्म भूमिकारूप मनुष्य जन्ममें आये वा मनुष्य योनिमें आते हैं। परन्तु, फिर भी पूर्ववत् स्त्रियोंके विषय-जाल, और गुरुवालोगोंके वाणी-जालोंमें ही लगकर आयुको व्यर्थ ही बिता देते हैं। तहाँ सुखका लेशमात्र भी स्वप्नवत् थोड़ी देर भी कहीं कोई नहीं पाते हैं। शान्ति-सन्तोषादिसे निवृत्तिका सुख वा जीवन्मुक्तिका सुख तो वे लोग कभी लेश मात्र स्वप्नमें भी नहीं पाते हैं, सदा अध्यासवश चञ्चल होकर दुःख ही पाते रहते हैं। सब जगह दुःख ही भोगते रहते हैं॥ ७८४॥

६. दुःख सन्ताप कष्ट बहु पावै ❀ सो न मिला जो जरत बुझावै॥ ७८५॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

दुःख सन्ताप= } जन्म, मृत्यु, गर्भवासका
कष्ट बहु पावै= } दुःख, त्रिविधि तापोंका सन्ताप, अनेकों मिहनत, साधनादिका नाना कष्ट, बहुत प्रकारसे पाये और कष्ट पा ही रहे हैं।

सो न मिला जो= } परन्तु, सो ब्रह्म-ईश्वरादि
जरत बुझावै= } भी नहीं मिला; किन्तु, विरह व्यथामें भ्रमिकलोग जल रहे हैं। और इस ज्वालाको बुझानेवाले पारखी सद्गुरुसे जाकर सो नरजीव भी नहीं मिलते हैं, जो कि, इसी कारणसे जड़र ज्वालामें पड़कर जलते रहते हैं, तो कौन उसे बुझावे?॥

व्याख्या— अध्यासी जीव वासनावश आवागमनमें पड़कर जन्मते-मरते, गर्भवासमें जाते हुए असह्य दुःख ही पाते रहते हैं। देह रहते हुए भी अनेकों प्रकारसे दुःख पा रहे हैं। और दैहिक, दैविक, भौतिक, ये तीन तापोंके सन्ताप पाते हैं वा पा ही रहे हैं। और बहुत प्रकारके कष्ट-क्लेश भुगत रहे हैं। मिहनत-मजदूरी आदि करनेमें व्यवहारमें कष्ट उठा रहे हैं। कोई पञ्चाग्नि, जलशयनादिके कष्ट, योग साधनाओंका कष्ट, भक्ति, कर्म, ज्ञानादिका नाना कष्ट बहुत-बहुत प्रकारसे पाये और अभी वैसे ही कष्ट पा रहे हैं। जिसके लिये उन्होंने इतना सारा कष्ट सहा, सो मनोकामना तो उनकी पूर्ण नहीं हुई। अतः चाहना की हुई कोई वस्तु भी उनको नहीं मिली। और ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, देवतागण इत्यादि भी सो किसीको नहीं मिला। परन्तु, जीव सब तो खानी-वाणीकी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालामें जलने लगे। वैसे जलते हुएको समझाने-बुझानेवाले मानसिक तापोंको शान्त कर देनेवाले पारख बोधदाता सद्गुरु भी उन्हें नहीं मिले। पारखी सन्त कहीं भटकते नहीं फिरते हैं, बिना पूछे कुछ भी नहीं बतलाते हैं; और जिज्ञासु भावसे मनुष्य उनके शरणमें जाकर नहीं मिलते हैं, इसीसे भव-बन्धनोंमें पड़े-पड़े जला करते हैं। बिना पारख वह दुःख नहीं छूटता है॥ ७८५॥

७. मोर तोरमें जरै जग सारा ❀ धृग स्वारथ झूठा हङ्कारा॥ ७८६॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

मोर तोरमें = } मेरा वैदिक मत बड़ा है,
जैरे जग सारा = } तेरा मत छोटा है। हम योगी, ज्ञानी, भक्त बड़े हैं; तुम अज्ञानी जीव छोटे हो! इत्यादि मेरा-तेराकी ममता, राग-द्वेषकी अग्निमें सारा जगत्के नरजीव जले-जलाय रहे हैं।

धृग स्वारथ = } इन स्वार्थी विषयी लोगोंको
झूठा हङ्कारा = } धिक्कार है! मिथ्या अहङ्कारी गुरुवालोगोंको भी धिक्कार है! ब्रह्म-जगत्का स्वार्थ, अहङ्कार झूठा है, सो नहीं जाने॥

व्याख्या— अरे भाई! सारा जगत्के जीव तो मोर-तोरमें ही जल-भुन रहे हैं। मेरा मत, पन्थ, ग्रन्थ बड़ा है, तेरा तो सब छोटा है। मेरा जात, पाँत, कुल, गोत्र, कुटुम्ब बड़ा है, और तेरा तो मेरेसे हरहालतमें वह छोटा है। मेरा हिन्दू धर्म, वेद, ईश्वर बड़ा है! तेरा मुस्लिम धर्म, कुरान आदि छोटा है। नहीं जी! खुदासे निकला हुआ मेरा इस्लाम धर्म ही बड़ा है, और सब तो हमसे छोटे हैं। और हमारा अद्वैत ज्ञान बड़ा उत्तम है; तुम्हार द्वैतमत मध्यम, छोटा, तुच्छ है; इत्यादि प्रकारसे पक्ष पकड़कर लड़-झगड़ करके सारा जगत्के मनुष्य राग-द्वेष, कलह-कल्पनामें जल रहे हैं, सन्तप्त हो रहे हैं। उन स्वार्थी लोगोंको शत-शत बार धिक्कार है! उन्होंके स्वार्थका अहङ्कार, मद, अभिमान किया हुआ सब सरासर झूठा है। झूठा अहङ्कार करनेवाले स्वार्थी गुरुवालोग और विषयी-पामर लोग वे सब धिक्कारके ही पात्र तुच्छ, अनधिकारी कुबुद्धिवाले बने हैं। उनसे दूर ही रहना चाहिये ॥ ७८६ ॥

८. झूँठी आश रहा जग लागी * इन्हते भागि बहुरि पुनि आगी ॥ ७८७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

झूठी आश = } हे भाई! जगत्में स्त्री-
रहा जग लागी = } विषयादि सुखकी आशा तथा सातस्वर्ग प्राप्ति, चार मुक्ति प्राप्ति आदिकी सब आशाएँ झूठी ही हैं। बिना विचार सब जगत्के नरजीव उसीमें लग रहे हैं। और—

इन्हते भागि = } कोई स्त्री-पुत्रादिको
बहुरि पुनि आगी = } झूठा जानकर घर-बार छोड़कर भागे, तो गुरुवालोगोंके शरण हुए, उन्होंने आगे परमात्मा प्राप्तिकी आशा देकर फिर उन्हें विरह, वैराग्य, तप, साधनादिकी अग्निमें खूब जला दिये, आगे फिर गर्भाग्निमें ही जलनेको गिर पड़े॥

व्याख्या— एक तो संसारी विषयासक्त लोग विषय भोगोंसे तृप्त-सुखी होनेकी झूठी आशाओं-में लगे और लग रहे हैं। मृगजलवत् सो मिथ्या भ्रममें ही पड़े हैं। विषय भोग करके कभी किसीकी इच्छाकी तृप्ति हो नहीं सकती है; और जब संसार घर-गृहस्थीमें रहते-रहते किसीको बहुत दुःख हुआ, और गुरुवालोगोंने रोचक-भयानक वाणी सुनाये, तो इधरके घर-गृहस्थीको छोड़-छाड़कर परिवारोंको त्यागकर भागे। कहीं जाकर षड् दर्शनोंमेंके किसी पन्थमें जाकर भेष धारण किये, साधु हुए। तो फिर भी वहाँ ईश्वर, ब्रह्म, सिद्धि, चार मुक्ति, चार फल आदि प्राप्तिकी झूठी आशा लगा करके नाना तरहसे कठिन-कठिन साधनाएँ करने लगे। पञ्चाग्नि तापना, भूखों मरना, तपस्या करना, तीर्थाटन करना इत्यादि प्रकारसे पुनः कल्पनारूपी दावानल अग्निमें जल-जलकर मर गये। फिर अभ्यासवश गर्भाग्निमें जा पहुँचे, तो वहीं चारखानीकी गर्भाग्निमें ही जलने लगे वा जल रहे हैं॥७८७॥

९. जेहि हितके राखेउ सब लोई * सो सयान बाँचा नहिं कोई ॥ ७८८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

जेहि हितके = } जिसे ज्ञानी, योगी, भक्तादि
राखेउ = } सब गुरुवालोगोंने प्रेमसे
सब लोई = } ईश्वर प्राप्तिसे मुक्ति सुखादि-का भरोशा दे रक्खे हैं, सोई सब लोगोंने हितकारी मान रक्खे हैं।

सो सयान = } सो सब तो मिथ्या धोखा
बाँचा नहिं कोई = } भ्रम हैं। अतएव सद्गुरुके पारखके बिना सो सयाने, चतुर गुरुवा-लोग और अयाने मूढ़ चेलेलोग सब कोई बद्ध होकर चौरासी योनियोंके गर्भमें चले गये, कोई नहीं बचे। कोई पारखी नरजीव ही बचे हैं॥

व्याख्या— जिस ब्रह्मानन्द और विषयानन्द तथा स्त्री-पुत्रादि परिवार और मतवादी गुरुवालोग एवं ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि सिद्धान्त और धन-सम्पत्ति इत्यादिकोंको जिन्होंने हितकर, सुखदायी, मुक्तिदाता, कल्याणकर्त्ता मान करके अति गाढ़ा प्रेम करके भीतर-बाहर सङ्ग-साथ करके सब लोगोंने पकड़ रक्खे हैं; सो उनमेंके सयान वा अयान कोई भी जीव भव-बन्धनोंसे बच नहीं पाये वा कोई नहीं बचे। अर्थात् जिसको हित मान करके सब लोगोंने ग्रहण करके हृदयमें टिका रक्खे हैं, सो श्रेष्ठ सयान माना हुआ ब्रह्म तो भ्रम धोखा है। अतः बड़े-बड़े सयाने ब्रह्मवादीलोग भी आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रसे कोई नहीं बचे, तो अबके भ्रमिकलोग कैसे बचेंगे? बिना पारख सब मनुष्य काल-जालमें अरुझ करके मरे, तो चौरासी योनियोंमें ही चले गये और जा ही रहे हैं। अतः अपरोक्ष पारखबोध होनेपर ही जीवकी बचाव होकर मुक्ति होती है, सो जानिये! ॥ ७८८ ॥

॥ ❀ ॥ मूल बीजक, रमैनी- ८४ की अन्तिम साखी ॥ ❀ ॥

(८) साखीः— आपु आपु चेते नहीं * कहौं तो रुसवा होय ॥
[३५०] कहहिं कबीर जो आपु न जागै * निरास्ति अस्ति न होय ॥ ७८९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो!

आपु आपु चेते नहीं = आपु=चैतन्य जीव स्वयं अखण्ड सत्यस्वरूप है। परन्तु, बिना पारख अपने आपको भूला है। इसलिये अपने ऊपर कोई एक जगत्कर्त्ता ईश्वरादि-को मानकर मनुष्योंने अपने आप ही विभिन्न मत, पन्थ, ग्रन्थ सिद्धान्त आदि बनाकर उसमें अपने चले और दूसरेको भी चलाये हैं। फिर उसी कल्पनामें भूले-भुलाये हैं। अतएव भ्रमिक नरजीव स्वयं अपने आप विवेक करके तो चेत नहीं सकते हैं या नहीं चेतते हैं; नहीं समझते हैं।

कहौं तो रुसवा होय = अब उन्होंके कल्याणके वास्ते जो मैं यथार्थ सत्यन्यायकी शिक्षा कहता हूँ कि, "हे नरजीव! ब्रह्म-ईश्वरादि सब तुम्हारी कल्पना मिथ्या है! पञ्चविषयादि भी धोखा बन्धन है। इसलिये खानी-वाणीकी मानन्दीको त्यागो! हे जीव! तू ही सत्य है! सद्गुरुके पारख बोधमें तुम ठहरो! जागो-जागो! चेतो-चेतो!" तब तो ऐसे उपदेश सुन करके वे रुष्ट, क्रोधित, नाराज हो गुस्सा करते हैं। और पक्षपातीलोग यथार्थ गुरुमुख निर्णयकी वाणी सुनकर तिलमिला जाते हैं। विरोधी हो जाते हैं। हे भाई! मैं तो सत्य ही कहता हूँ, चाहे तुम उसे ग्रहण करो या न करो!

कहहिं कबीर जो आपु न जागे = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! मैं और कहता हूँ सुनो! जो अपने स्वरूपको जाग करके जानोगे, तो तुम्हारा कल्याण होगा; जो सत्सङ्ग करके नहीं जागोगे, तो तुम ही चौरासी योनियोंके आवागमन-में पड़ोगे; अनेक दुःख सहा करोगे।

निरास्ति अस्ति न होय = फिर चाहे कितने ही उपाय क्यों न करो, असत्य कभी सत्य हो नहीं सकता है। इसलिये जो तुमने केवल शुद्ध सत्य ब्रह्मको व्यापक अपना स्वरूप माने हो, सो तो मिथ्या धोखा है। सो ब्रह्म तो जीवकी कल्पना है। तो जीव भ्रमरूप ब्रह्म कैसे हो सकता है? इसलिये नाशवान् देह, विषय, ब्रह्म, आनन्दादिसे भिन्न जीवका स्वरूप सत्य है। सो सद्गुरु-के पारख द्वारा जानकर स्थिर हो जाओ। निरास्ति कभी अस्ति नहीं होता है, सो जानो! ॥

व्याख्या— सद्गुरुने इस साखीमें कहा है कि, हे सन्तो! आप अपने स्वयं ही विवेक-विचार करके तो कोई नहीं चेते और कोई चेतते भी नहीं हैं। जीव स्वरूपसे नित्य, सत्य, अखण्ड है। परन्तु, निजस्वरूपकी बोध-स्थिति न होनेसे सब जीव अध्यासी होकर भव-बन्धनोंमें पड़े हैं। तहाँ कोई संसारी विषयासक्त हो भग-भोगादिमें फँसे पड़े हैं; और कोई ज्ञानी, योगी, भक्त आदि बनकर अनुमान-

कल्पनादिमें भूलकर गाफिलीमें पड़े हैं। आप अपने चैतन्य स्वरूपको सबसे न्यारा समझकर वे चेत नहीं करते हैं, खानी-वाणी जालोंसे अलग नहीं होते हैं, और यदि मैं उन्हें दया करके चेताता हूँ! यथार्थ गुरुमुख निर्णय सारशब्दको परखा करके सत्य उपदेश कहता हूँ, "जीव ही सत्य है, ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या जीवकी कल्पना है, और विषयोंका भोग भी विकारी है, जीवोंको बन्धन है।" ऐसी सच्ची बात मैं कहता हूँ, तो पक्षपाती, अविचारी लोग रुसवा होते हैं, हमसे बड़े नाराज होते हैं। उनके मतका खण्डन करनेवाला समझकर विरोध करके क्रोध करते हैं। यही तो मूर्खोंका लक्षण है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— जो अभी नरदेहमें जाग्रत् हो करके निज स्वरूपको नहीं जानते हैं, पारख स्वरूपमें स्थिति नहीं करते हैं, वे महाबन्धनमें जकड़ करके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिर पड़ते हैं। फिर चाहे कितने भी प्रयत्न करो, उनकी मुक्ति नहीं होती है। क्योंकि, निरास्ति=असत्य, ब्रह्म-ईश्वरादि और विषयादि नास्ति-मिथ्या धोखा है। इसीसे वह अस्ति=सत्य हो नहीं सकता है। चैतन्य जीव ही सत्य है, सो कभी भ्रमरूप ब्रह्म हो नहीं सकता है; परन्तु, पारख बिना भ्रमिक, जड़ाध्यासी हो करके जैसे सदासे बन्धनोंमें पड़े हैं, वैसे ही बद्ध ही होकर आवागमन चक्रमें पड़े रहेंगे। अतः अब तो भी पारख बोधको ग्रहण करो, जिससे सब बन्धनोंसे छूट-कर मुक्त हो जाओगे ॥ ७८९ ॥

दोहाः— अब सुनु शिष्य! समान चित ❀ निर्णय युत गुरुज्ञान ॥
[३५१] उपदेशै जीवन सदा ❀ आपु न हन्ता मान ॥ ७९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

अब सुनु शिष्य!= } हे शिष्य! अब चित्तको
समान चित= } बराबर सावधान करके एकाग्र लक्ष्यसे जो मैं कहता हूँ, सो सुनो! उसे मनन करते जाओ!—

निर्णय युत= } सत्य निर्णय द्वारा सबोंके
गुरुज्ञान= } कसर-खोटोंको परखानेवाला पारखी सद्गुरुका ही सत्यज्ञान है। सो यही सत्य निर्णय सहित गुरुज्ञानको अपनी दृढ़तासे धारण करो! और—

उपदेशै= } वही सत्य ज्ञानका उपदेश
जीवन सदा= } सदा नित्यप्रति श्रद्धालु नर-जीवोंके प्रति किया करो! परखाया करो!

आपु न= } परन्तु, उपदेश देकर अपनेमें
हन्ता मान= } किसी प्रकारकी विपरीत मानन्दी, मान-बड़ाईके अहङ्कार, हन्ता, ममता रञ्चक मात्र भी न रखना। अपने सदा स्वच्छ निर्मल ही रहना चाहिये ॥

व्याख्या— हे शिष्य! अब और भी निर्णयका उपदेश जो कुछ मैं अभी कहता हूँ, सो निर्णय सहित गुरुज्ञानको तुम चित्तको एक समान स्थिर करके ध्यानपूर्वक सुनो! जिस प्रकार मैंने तुमको क्रमानुसार सत्यज्ञानका उपदेश दिया है, सो इसी तरह सदा-सर्वदा श्रद्धालु जिज्ञासु नरजीवोंको गुरुज्ञानका उपदेश विचारपूर्वक देते रहना चाहिये। परन्तु, गुरु बनकर किसी प्रकारका भी आप अपनेमें हन्ता-अहङ्कार वा अभिमान और मान-बड़ाई वा मिथ्या मानन्दी आदि विकारोंको हृदयमें कभी लेशमात्र भी न रक्खे; शुद्ध निर्मल बुद्धिको बनाये रखना चाहिये ॥ ७९० ॥

दोहाः— प्राप्ति जीव इच्छा नहीं ❀ केवल हन्त छुड़ाव ॥
[३५२] निज स्वरूप लखि दया युत ❀ दीन जानि अपनाव ॥ ७९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

प्राप्ति जीव= } जीवको कोई वस्तु प्राप्ति करने-
इच्छा नहीं= } की या ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्ति, चार फल, चार मुक्ति आदि प्राप्ति करनेकी तो इच्छा करने-करानेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है, सब अवस्था और सब समयमें चैतन्य जीव स्वयं प्राप्त ही है।

केवल हन्त= } तहाँ सिर्फ कैवल्य ब्रह्म और
छुड़ाव= } विषयोंकी मानन्दी, अध्यास, हन्ता-ममता इन विकारोंको ही परखकर छोड़ना-छुड़ाना है; और निज स्वरूपको तो प्राप्त नहीं करना है।

निज स्वरूप = } अपने समान स्वजाति
लखि दया युत = } जीवको बन्धनोंमें पड़े हुए मुक्ति चाहनेवाले मुमुक्षु देखकर या श्रद्धालु लखकर दयादृष्टिके सहित हो—

दीन जानि = } दीन-गरीब शरणागत, ज्ञानके
अपनाव = } अधिकारी जान करके जिज्ञासु मनुष्योंको अपना उपदेश समझाकर भ्रम छुड़ाओ ! उन्हें अपनाओ ! ॥

व्याख्या— नित्य, सत्य, अखण्ड, अविनाशी, एकरस, चैतन्य जीवका स्वरूप स्वयं है। इसीसे जीवको नित्य प्राप्त निजस्वरूपको पुनः किसी प्रकार प्राप्त करनेकी इच्छा करनेका तो तहाँ कोई प्रयोजन ही नहीं है। स्वयं स्वरूपको फिर प्राप्त ही क्या, कैसे करना ? और जीवको अभी स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ है, स्वरूप प्राप्त करना चाहिये। अथवा ब्रह्म-ईश्वरादि जीवका स्वरूप है, सो उसे प्राप्त करना चाहिये, ऐसे-ऐसे कहनेवाले वे लोग अबोध अज्ञानी ही हैं। स्वरूप प्राप्त करनेकी इच्छा करनेकी तो कुछ आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु, पारख बोध प्राप्त करनेकी मात्र ही आवश्यकता है। ब्रह्म-ईश्वरादि मानन्दी कल्पना मिथ्या धोखा है; वह कुछ प्राप्त होनेवाला सत्य वस्तु ही नहीं है। अतः मुक्तिके लिये तो जीवको किसी बातकी कुछ भी इच्छा करनी ही नहीं चाहिये। हरहालतमें इच्छा-वासनाको समन करके हटाये ही रखना चाहिये। और पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशको श्रवण-मनन करके केवल हृदयमें जो हन्तारूप खानी-वाणीका जड़ाध्यास लगा है, उसे ही विवेक, वैराग्य, बोधको परिपुष्ट करके अपने छोड़ना और दूसरोंसे छुड़ाना है। तथा अपने समान पूर्वकी दशा और निज स्वरूपको लखकर स्वजाति जीव मुमुक्षु जानकर तथा दीन-दुःखी, लाचार शरणागत जानकर दयाके सहित सत्य उपदेश देकर पुरुषोंको अधिकारी देख करके शरणमें लेकर अपनाओ ! अपने सामन बोध उनको भी कर दो ! उपदेशी पारखी सद्गुरुका यही कर्त्तव्य है कि, जीवोंकी इच्छा मिटावे, कोई भी चीज प्राप्त करनेकी इच्छामें जीवको न लगावे। केवल हन्ता, ममता, अध्यासको छुड़ावे। दयाके सहित निज स्वरूप लख करके दीन जानकर जिज्ञासुओंको अपनावे, पारख बोध कर देवे ॥ ७९१ ॥

दोहाः— हे शिष्य ! जीव अबोध बहु * परे कालके जाल ॥
[३५३] तेहि दया निज ओर करि * बोधे सो दीनदयाल ॥ ७९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य ! जीव = } हे प्रेमी शिष्य ! पारखज्ञानके
अबोध बहु = } बिना नरजीव बहुत ही अबोध हो अज्ञान दशामें जहाँ-तहाँ भ्रमते हुए भटक रहे हैं।

परे कालके जाल = कोई तो विषय खाँचमें पड़े हैं, कोई सबसे परे ब्रह्म-ईश्वरादि मानकर कालरूप गुरुवाओंके वाणीजालमें पड़े हैं।

तेहि दया = } ऐसे खानी-वाणीमें बद्ध
निज ओर करि = } पड़े हुए अबोध नरजीवोंपर दया करके अपने सत्यज्ञानकी तरफ उन्हें लगाकर भ्रम-भूलको छुड़ा देवे, निज ओर-से दया करके—

बोधे सो = } उन्हें चैतन्य पारख बोध जो
दीनदयाल = } कर देते हैं, सोई दीनदयालु बोधदाता सद्गुरु कहलाते हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! तमाम नरजीव बहुत ही अबोध, अज्ञानतामें पड़े हैं। ऐसे समस्त मनुष्य बहुत प्रकारसे कालके महाजालोंमें ही सदासे बन्धे पड़े हैं। उन्हें अपनी तरफसे ही अहेतुकी दयादृष्टि करके जो जिज्ञासुओंको यथार्थ पारख बोध करा देते हैं, सोई दीनदयालु सद्गुरु बन्दीछोर होते हैं; वे दयाके स्वरूप पारखी सद्गुरु ही मुक्तिदाता होते हैं ॥ ७९२ ॥

दोहाः— गृहि साधु गुण लक्ष युत * काल कलाकी फाँस ॥
[३५४] बाँचै जेहि उपदेश करि * गृहि विरक्त भ्रम नाश ॥ ७९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

गृहि साधु = गुण लक्ष युत = } गृहस्थलोग खानीमें और साधुलोग वाणीमें पशुगुण-लक्षणोंके सहित बिना पारख भटकनामें पड़े हैं। सो मनुष्यके गुण-लक्षणके बिना—

काल कला- की फाँस = } नाना कल्पना, भ्रम, विषयादि-में आसक्त-गाफिल होकर स्त्री और गुरुवाओंकी फाँसीमें जा-जाकर लटके और लटक-लटक करके नाहक मर रहे हैं। वह काल कलाकी फाँसी बड़ी जबर्दस्त है।

बाँचै जेहि = उपदेश करि = } जिनके सत्य उपदेशसे नर-जीव इन समस्त काल फाँसी-से, भव-बन्धनोंसे बचे वा बचेंगे, सो उनको पारखी सद्गुरु जानो ! और—

गृहि विरक्त = भ्रम नाश = } गृहस्थ लोगोंके और त्यागी साधुओंके, इन दोनोंके भ्रम, भूल, मानन्दीको पारखी सद्गुरु ही परखा करके विनाश कर देते हैं, जीवोंका उद्धार कर देते हैं ॥

व्याख्या— जिन सद्गुरुके सत्य उपदेश सत्यन्याय-निर्णयको जान पा करके सब भेदोंको समझकर काल-कलाका फाँसरूप खानी-वाणीके महाजालोंसे जिज्ञासु मनुष्य बच जाते हैं। और गृहस्थ सेवक सेवा-भाव भक्ति सहित सद्गृहस्थके उत्तम गुण-लक्षणयुक्त रहते हैं। तथा साधु भी त्याग-वैराग्य सद्गुणोंमें निपुण होकर सच्ची विरक्तिसे हंसदेहके सद्गुण-लक्षणयुक्त विवेक-बिचारमें लगे रहते हैं। उन दोनों आश्रमोंमें रहनेवाले गृहस्थ सेवकोंकी और विरक्त साधुओंकी गुरु-बोधके प्रतापसे मिथ्या भ्रम-भूल नाश हो जाती है। और भ्रम-भूलका विनाश होनेपर बोध-वैराग्यकी परिपुष्टिसे गृहस्थ सेवक लोग भी घर-गृहस्थीको त्यागकर सद्गुरुकी शरणमें आ करके भेष लेकर विरक्त साधु हो जाते हैं। फिर वे मोटी-झीनी सब काल-कलाके जालोंसे बच जाते हैं ॥ ७९३ ॥

दोहाः— प्राप्ति पदारथ कारने ❀ गृही कोई कोई साध ॥
[३५५] गुरुमुख प्राप्ति भयो जहाँ ❀ ठहरे तेहि अबाद ॥ ७९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

प्राप्ति = पदारथ = कारने = } स्वयं प्राप्त चैतन्य जीव स्वयं ही सत्य स्वरूप है। परन्तु, गुरुवा-लोगोंने मनुष्योंको भ्रमा दिये हैं। सत्य पदार्थ ब्रह्म-ईश्वरादि कोई अलग ही बतला करके उसकी प्राप्ति होनेसे मुक्ति होगी, ऐसा समझाये हैं। इसलिये चार पदार्थ, चार मुक्ति, ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्तिके वास्ते इसी कारणसे नरजीव अनेकों साधनाएँ जप, तप, भक्ति, योगादि करने लगे।

गृही कोई = कोई साध = } कोई गृहस्थ स्त्री-पुत्रादि परिवारोंमें ही रह करके सब मिलकर या अकेले ही जड़ मूर्ति, पूजादि करके कर्मी, भक्तादि हुए। कोई गृहस्थीको त्यागकर साधु होकर षट् दर्शनोंके कोई एक भेष बना लिये। ब्रह्म या स्वर्गादि प्राप्तिके वास्ते योग-ज्ञानादिकी अनेक कष्ट-कर साधनाएँ साधने लगे। ऐसे गृहस्थ और साधु दोनों ही कोई एक कर्त्ता ईश्वरादि मान-मानकर भूले पड़े हैं।

गुरुमुख प्राप्ति = भयो जहाँ = } संसारमें जहाँ जिन लोगों-को पारखी सद्गुरुके गुरुमुख निर्णयसे मुख्य निज स्वरूपका बोध पारखकी प्राप्ति हो गयी है, फिर उनका भूल-भ्रम समस्त मिट गया।

ठहरे = तेहि = अबाद = } वही बोधवान् पारखी साधु, गृहस्थ और भेष दोनोंके पक्ष, कसर, विकारोंको छोड़कर निज पारख बोधमें ही ठहरे रहते हैं। वे ही वाणी-खानीके बन्धनोंसे छूटकर मुक्त होते हैं। और वाद-विवादरूप झगड़ा जगत् प्रपञ्च कल्पना-से रहित होकर वे सुखी, शान्त हो रहते हैं ॥

व्याख्या— संसारमें स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज, इज्जत-आबरू और विषयानन्द सुख, ऐश-आराम इत्यादि मोटी मायाका संग्रह पदार्थ विषयादि प्राप्तिके कारणसे कोई गृहस्थ हुए। वे भोगी

सब लोग माया-मोहमें ही फँसकर खूब विषयासक्त हो रहे हैं। और किसीको संसारमें दुःख हुआ, स्त्री-पुत्र आदि परिवारके लोग मर गये; धन-सम्पत्तिका नाश हुआ, तो क्षणिक विषय वैराग्य चढ़ा। गुरुवालोगोंने उन्हें स्वर्ग लोकादिमें मरे हुए परिवारोंसे मुलाकात होनेकी और खूब सुख मिलनेकी झूठी महिमा सुना दिये। चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग, ईश्वर, ब्रह्म आदि प्राप्ति होनेकी आशा लगा दिये। और फिर यहाँ ही अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, षट्गुण-ऐश्वर्य आदि मिलनेकी बात बता दिये। बस, इन्हीं सब पदार्थ प्राप्तिकी आशाके कारणसे कोई बहुतेरे षट् दर्शनोंमें जाकर भेषधारी साधु हुए, भ्रमिक होकर धोखेमें पड़े। इसतरहसे वे साधु और गृहस्थ दोनों ही तरफके लोग भवबन्धनोंमें पड़ गये। और जहाँपर गुरुमुख निर्णय करके पारख बोध प्राप्त हो गया, वहाँपर मनुष्योंकी सब भ्रम-भूल छूट गयी, वा छूट जाती है। जो पारखपदमें ठहरे वा ठहरते हैं वे ही अबाद= विघ्न-बाधाओंसे रहित आबाद, सच्चे ही निर्बन्ध मुक्त हुए वा मुक्त हो जाते हैं। अतः निज स्वरूप स्थितिको ही प्राप्त कर लेना चाहिये ॥ ७९४ ॥

दोहाः— सुन शिष्य ! गुरुमत विमल अति * पावै गुरु सम होय ॥
[३५६] गृहि बाधा तेहि ना करै * रहै अपन पद जोय ॥ ७९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुन शिष्य !=
गुरुमत =
विमल अति =
} हे प्रेमी शिष्य ! सत्यन्यायके निर्णय उपदेशको तुम ध्यानसे सुना करो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सत्य सिद्धान्त पारखमत बीजक ज्ञान अत्यन्त निर्मल है। सो मल, विक्षेप, आवरणको नशानेवाला शुद्ध सत्यज्ञान है, ऐसा जानो !—

पावै गुरु =
सम होय =
} जिस अधिकारी पुरुषने पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर पारख बोधको जान पाया, बोध अपरोक्ष कर लिया, सो सद्गुरुके अनुयायी बनकर हंस रहनी-रहस्य संयुक्त पारखी हो जाता है।

गृहि बाधा तेहि ना करै = फिर वह घर-गृहस्थीके जञ्जालोंमें कदापि रह नहीं सकता है। माता-पिता, स्त्री, पुत्रादि कोई भी बाधक क्यों न हों, तो भी वह तो साधु ही बन जाता है। किसीकी बाधा उसे लग नहीं सकती है। अथवा कहीं मठ, मन्दिर, कुटीमें रहनेवाले पारखी सन्तोंको वह मठादि कुछ बाधा नहीं कर सकता है, बाँध नहीं सकता है; क्योंकि, वे सबको परखा करते हैं। और—

रहै अपन =
पद जोय =
} वे विवेक-दृष्टिसे अपनी स्थिति, गति-विधि हंसपदको ही देखा, परखा करते हैं। सदा सावधान पारखनिष्ठ हो रहते हैं। इसलिये मठादिमें वे बद्ध नहीं होते हैं ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! सुनो ! गुरुमत-पारख सिद्धान्त ही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके बीजक सद्ग्रन्थका सत्य सिद्धान्त है। वह अत्यन्त ही निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध है। मल, विक्षेप और आवरणसे रहित, सब विकारोंको निवारण करनेवाला वही गुरुमत है। सद्गुरुकी कृपासे जिन सत्पुरुषार्थी पुरुषोंने उसे अपरोक्ष करके जान पाया, पारखबोधसे स्वरूप स्थिति कर पाया, वे फिर गुरुपदमें पहुँचकर सद्गुरुके अनुयायी होकर निर्बन्ध हो जाते हैं। अतः वे पारखी पुरुष घरमें गृहस्थ होकर स्त्री, पुत्र, परिवारादिके साथमें कभी नहीं रहते हैं; बोध-वैराग्य पक्का होते ही घर-बारको छोड़कर त्यागी विरक्त साधु ही हो जाते हैं। उन्हें त्यागी होनेमें घर-गृहस्थीके लोग सब बाधक होकर विघ्न बाधा करके भी कोई रोक नहीं सकते हैं। आखिरमें वे साधु ही हो जाते हैं। फिर रहनी-रहस्यको धारणकर देह रहे तक निराश वर्तमानमें अपने पदको देखकर पारखपदमें ही स्थिर निवृत्त, शान्त हो रहते हैं, ऐसा जानो ! ॥ ७९५ ॥

दोहाः— और विरक्त बुद्धिमान जो * पाये गुरुमत स्वच्छ ॥
[३५७] ताहिं न माया लूटि हैं * पारखमें सब लच्छ ॥ ७९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

और विरक्त = } और जो कोई भक्त गृहस्थ
बुद्धिमान जो = } सत्सङ्गी, बुद्धिमान्, विचारवान् होते हैं, सो संसारके परिणाम कर्मका भोग, नर जन्मके मुख्य कर्त्तव्यादि-पर लक्ष्य लगा करके फिर संसारके आसक्ति-भोगोंसे विरक्त हो जाते हैं। वैराग्य-बोधको दृढ़कर, वे पारखी सद्गुरु-के शरणागत होकर त्यागी-साधु हो जाते हैं। सोई परम मतिमान हैं।

पाये गुरुमत = } अथवा अन्य मतके विरक्त
स्वच्छ = } साधु भी हों, जब वे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार द्वारा पारखबोध-को पा जाते हैं, तब उन्हींके हृदय स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल हो जाता है। ऐसे जिन-जिन्होंने गुरुमत पारखको जान पाये, वे सब स्वच्छ हो गये, और हो रहे हैं।

ताहिं न माया = } ऐसे गुरुबोध प्राप्त किये हुए
लूटि हैं = } विरक्त पुरुषोंको माया-स्त्री आदि कामासक्त करके उन्हें नहीं लूट सकती हैं। विवेक-वैराग्यादि सद्गुणोंको हरण नहीं कर सकती हैं। और गुरुवालोग भी वाणी-कल्पनादिमें फँसा करके उन्हें लूट नहीं सकते हैं; वे अपने ही हार जाते हैं।

पारखमें = } क्योंकि, उन वैराग्यवान्
सब लच्छ = } पारखी साधुओंका सर्वदा, सबदिन या हमेशा ही पारख ज्ञानमें ही लक्ष्य अटल, कायम बना रहता है। अन्य मानन्दीमें वे लक्ष्य ही नहीं लगाते हैं। इसलिये उनपर नारी और गुरुवालोगोंका कुछ वश या प्रभाव नहीं चलता है॥

व्याख्या— जो बुद्धिमान् विवेकी सत्सङ्गी जिज्ञासु पुरुषोंने स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल गुरुमत-पारख रहस्यको पारखी सद्गुरुकी कृपासे जान पाये, वे परम विरक्त, वैराग्यवान् त्यागी होकर टकसारी विधिसे भेषधारी साधु हो जाते हैं। फिर सच्चे त्याग-वैराग्यकी रहनीमें ही जीवनको बिता देते हैं। गुरुबोधके नियमानुसार ही वे बर्तते हैं। अथवा जो बुद्धिमान् विरक्त होते हैं, वे ही स्वच्छ गुरुमतको अपरोक्ष करके जान पाते हैं। तब उनके हृदय निर्मल विकार रहित साफ हो जाता है। इसलिये उन्हें मोटी माया और झीनी माया किसी प्रकार भी फँसा नहीं सकती हैं। और उनके सद्गुण, रहनी, बोधरूपी धनको माया कभी कदापि किसीतरह लूट नहीं सकती है; छीन नहीं सकती है। उनके महान प्रताप देख करके माया आप ही हारकर लजाकर भाग जाती है। और विरक्त पारखी सन्तोंका लक्ष्य सब समयमें हमेशा ही पारख स्वरूपकी स्थितिमें ही स्थिर, शान्त रहता है। दूसरी तरफ वे लक्ष्य नहीं लगाते हैं। इसीसे वे सर्वजीत होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं; तुम्हें भी ऐसे ही होना चाहिये॥ ७९६॥

दोहाः— अनुमानी दोऊ दिशा ❀ चौरासी बसै नित्त॥
[३५८] ब्रह्म रहट सङ्कल्पना ❀ परे सोई छिन चित्त॥ ७९७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

अनुमानी = } भ्रमिक अनुमानी नरजीव
दोऊ दिशा = } दोनों तरफकी दिशाओंमें लूटे जाते हैं। दुर्दशाको प्राप्त होते हैं। घरमें स्त्रियाँ दनादन लूटती हैं; और बाहर गुरुवा-लोग खूब लूटते हैं। बेपारखी गृही हों या साधु हों, दोनों दिशाओंमें नष्ट, भ्रष्ट, पतित ही हो जाते हैं। कर्म-कुकर्म करके जड़ाध्यासी होते हैं।

चौरासी = } अतएव जड़ाध्यासी जीव नित्य
बसै नित्त = } या हमेशा ही चौरासी योनियों-में देह धरकर वहीं पड़े ही रहते हैं। मनुष्य हुए हैं, तब भी अपनेको व्यापक ब्रह्म मान-कर चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं। देह छूटा, तब भी आवागमनमें ही पड़े रहते हैं।

ब्रह्म रहट = } हे शिष्य! यह ब्रह्म मानन्दी ही
सङ्कल्पना = } तो भ्रमका रहटा है। मनसे सङ्कल्प करके 'एकोहं ब्रह्म' माना, इच्छासे जगत् विस्तार हुआ, जगत्में व्यापक हुए, फिर सबका विकल्पसे लय करके शून्यमें

समा गये हैं।

परे सोई = तभी तो उसी क्षण पलटकर
छिन चित्त = चौरासी योनियोंमें समा गये।

ऐसे रहटचक्रमें पड़े, और क्षणिक विषय सुख तथा ब्रह्मके अध्यास चित्तमें टिका करके चित्ता खाकर जीव सब कोई सोई आवागमन चक्रमें जाकर पड़े और पड़ रहे है, बिना पारख ॥

व्याख्या— बेपारखी अनुमानी नरजीव चाहे गृहस्थ हों, चाहे षट्दर्शनोंके भेषधारी साधु हों, उन दोनों दिशाओंके दो आश्रमोंकी दशामें पड़े हुए लोग दुर्दशाग्रस्त ही हो रहे हैं। तहाँ एक तो विषयासक्त हैं, दूसरे वाणी कल्पनामें लगे हुए बद्ध पड़े हैं। सब प्रकारसे वे जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं, इसीसे नित्य जीव नित्य ही चारखानी चौरासी योनियोंमें जा-जा करके बसते रहते हैं। और बहुतेरे जीव चौरासी योनियोंमें ही बसे हुए हैं; वे देह बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं। मनुष्य होनेपर भी उन्हें विवेक नहीं होता है। जब भ्रमसे ब्रह्म हुए, तो उसी क्षण धोखेमें उनके चित्त चित्ता खाकर पलट गया। सो ब्रह्म ही आवागमन होते रहनेकी रहटमाला बना है। मनसे सङ्कल्प-विकल्प द्वारा कल्पना करके ब्रह्म अधिष्ठानके रहटमें जीव पड़े और 'अहंब्रह्मास्मि' कहा, तब सोई क्षणमें चित्त हंसपदसे पलट गया, जड़ाध्यास दृढ़ हो गया। उसीसे देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जा करके नाना योनियोंमें निवास किये हैं। अतः उस भ्रमको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें परख करके मिटा देना चाहिये, सो जानो ! ॥ ७९७ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक सद्ग्रन्थके शब्दका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ शब्द भाग- १० ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ मूल बीजक, शब्द नम्बर- ९४ ॥ ❀ ॥

१. कहो हो ! निरञ्जन कौने बानी ? ॥ ७९८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो ! सुनो !—

कहो हो ! निरञ्जन = कौने बानी ? = हे ब्रह्मज्ञानी ! जो तुम लोग ब्रह्मको निरञ्जन, निराकार, निर्गुण, निरीह, गुणातीत, ऐसे-ऐसे लक्षण कहकर वर्णन करते हो ! फिर मन, बुद्धि, वाणीसे परे भी उसे कहते हो ! तब कहो तो भला ? एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं था, तो निरञ्जन ब्रह्म है, ऐसा किसने कैसे वर्णन किया ? किसके प्रति वर्णन किया ? सो कहो ! ॥

व्याख्या— बीजक शब्द ९४. में सद्गुरुने जो कहा है, वह प्रमाण ब्रह्मज्ञानियोंपर लागू होता है। कहो निरञ्जनको माननेवाले लोगो ! निरञ्जनकी बात क्या है ? वह क्या वस्तु है ? कहाँ है ? कैसा है ? तुमने उसको कैसे जाना ? निरञ्जन ही ब्रह्म है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ? उसकी महिमा किसने वर्णन किया ? यह तो कहो, जो तुम निरञ्जन कहते हो, सो कौन वाणी है ? अर्थपर भी विचार करो, मिथ्या शब्दके धोखेमें ही मत् पड़ो ! ॥ ७९८ ॥

२. हाथ पाँव मुख श्रवण जिभ्या नहीं * का कहि जपहु हो प्रानी ? ॥ ७९९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो !

हाथ पाँव = मुख श्रवण = जिभ्या नहीं = जिस ब्रह्मको जगत्कर्त्ता माने हो, उसका न हाथ है, न हद है; न पाँव है, न पहुँच या प्राप्ति ही होती है; न मुख है, न मुख्य जड़-चेतनरूप कोई वस्तु ही ठहरता है; न उसके कान है, न कोई दिशामें वह मिलता है; न कोई जात, वर्ण है, और न उसके जिभ्या है; न उसमें जीव-चेतनता संयुक्त देह है। ये सब तो उस निरञ्जन, निराकार परमात्मामें कुछ भी नहीं है; तुम उस वस्तुको ब्रह्ममें मानते भी नहीं हो—

का कहि = जपहु = हो प्राणी ? = हे प्राणी ! हे नरजीव ! तब तुम उसे क्या कहिके, कैसे जाप, स्मरण, पुकारा करते हो ? सो कहो ? बिना रूपका नाम नहीं है, और बिना नामका जाप नहीं होता है। इसलिये तुम्हारा जाप करना मिथ्या धोखा है ॥

व्याख्या— जिसके हाथ, पाँव, मुख, कान, जिभ्या आदि दश इन्द्रियाँ स्थूल-सूक्ष्म देहका कहीं ठिकाना ही नहीं है। जिसे विदेह, निराकार ब्रह्म निर्गुण माना है; फिर हे प्राणी! तुम लोग उसको क्या कहके कैसे जपोगे? कैसे नाम-स्मरण करोगे? जो बेहद है, अपार है, निराकार है, निर्गुण है, शून्य नीरस है, निर्जीव है, सो वही ब्रह्म-परमात्मा है, ऐसा कहते हो, सो तो अनर्थ मिथ्या धोखा ही है। रूपके बिना नाम सत्य नहीं होता है, फिर तुम जाप तो भी क्या कहके करोगे? तुम्हारा जाप और रटन, स्मरण, सब झूठा हो रहा है; नाहक भूलमें पड़े हो! ॥ ७९९ ॥

३. ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये ❀ ज्योति कौन सहिदानी ? ॥ ८०० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

ज्योतिहि = यदि तुम कोई ज्योति स्वरूपवाले-को ही परमतत्त्व-परमात्मा मान करके—

ज्योति = उसमें तुमने अपने लक्ष्य वा सुरति ज्योतिको जोत दी, गड़ा दी या बाँधी, एकाग्र की—

ज्योति जो = कहिये = } तहाँ तेज तत्त्वका प्रकाश जो दिखाई दिया, उसीको तुमने ब्रह्म ज्योति कहकर जो प्रमाण किया है, सो तुम्हारा मिथ्या भ्रम मात्र ही है।

ज्योति कौन = सहिदानी ? = } क्योंकि, ज्योति-प्रकाश आदि तो तेज तत्त्वादिका भाग दृश्य जड़ है। वह जगत्कर्त्ता नहीं हो सकता है। यदि ज्योतिको ही कर्त्ता मानते हो, तो उसकी क्या निशानी या पहिचान है? क्या प्रमाण है? तुम द्रष्टा जीव दृश्यसे न्यारे होकर क्यों धोखेमें भूल करके पड़ते हो? ज्योतिकी कौन सच्ची सहिदानी है, सो कहो? सत्यासत्यकी पहिचान करो! ॥

व्याख्या— ब्रह्म-परमात्मा ज्योति स्वरूप है, ऐसा कहकर जो तुमने उसमें अपने सुरतिरूपी ज्योति जोत दी, मनको मानन्दीमें गड़ा करके बाँध दिये हो, और तेज तत्त्वके प्रकाशको ही जो ब्रह्म कहते हो, सोई तुम्हारी कल्पना, काल है। नहीं तो ज्योतिकी कौन सहिदानी? क्या निशानी है? वही प्रकाश ही ब्रह्म है, ऐसा पहिचान करनेका चिह्न क्या है? कुछ भी नहीं है। झूठी कल्पना ही मात्र है। द्रष्टा जीव, दृश्य जड़ ज्योति स्वरूप कैसे हो सकता है? ऐसा तो कभी नहीं होता है ॥ ८०० ॥

४. ज्योतिहि ज्योति ज्योतिदै मारै ❀ तब कहु ज्योति कहाँ समानी ? ॥ ८०१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

ज्योतिहि = ध्यानमें दिखाई देनेवाला ज्योति-प्रकाश सो तेज तत्त्वके ही भाग है, जो देखनेमें आवे, सो 'ज्योति' है।

ज्योति = जाते देखनेमें आवे, सो 'तद्योति' है। सो देहादि साधन प्रत्यक्ष है। और—

ज्योति दै = जाके देखनेमें आवे, सोई 'स्वयंज्योति' है। देहमें चित्त चतुष्टयादिको स्थिर करके जीव ही सब प्रकारसे तत्त्वोंका प्रकाश देखता है।

मारै = उसी कल्पनाके मार चपेटामें नरजीव भूले हैं; जब शरीर छूट जायगा, मृत्यु हो जायगी—

तब कहु = ज्योति कहाँ = समानी ? = } तब हे योगी! ज्ञानी लोगो! यह बताओ कि, वह दिखाई दिया हुआ ज्योति-प्रकाश कहाँ जा करके रहेगा? वा कहाँ रहता है? कहाँ जा करके समा जाता है? देह मुर्दा क्यों हो गया? वह ज्योति कहाँ गायब हुई? सबमें ब्रह्म है, तो देह छूट करके सड़ता वा गलता क्यों है? निर्णय करके इसका खुलासा बात बतलाओ! ॥

व्याख्या— "ज्योति, तद्योति और स्वयंज्योति" जो कहा है, उसका अर्थ यही है कि, जैसे सूर्य 'स्वयंज्योति' है। क्योंकि, वह स्वयं प्रकाश है। चन्द्रमा तद्योति है। क्योंकि, वह पर-प्रकाशित है। सूर्यकी किरणरूप प्रकाशके सम्बन्धसे ही चन्द्रमा प्रकाशित होता है, यह बात सिद्ध है। और अग्नि, दीपक, बिजली तथा ध्यानमें दिखाई देनेवाला प्रकाश कार्यरूपमें 'ज्योति' है। वह दृश्य-अदृश्य होकर बनते-बिगड़ते रहते हैं। अथवा जो देखनेमें आवे, सो

रूपवान् पदार्थ 'ज्योति' है। जाते वा जिससे देखनेमें आवे, नेत्र और सूर्य प्रकाशका सम्बन्ध, सो 'तद्योति' है। और जाके देखनेमें आवे, द्रष्टा सोई 'स्वयंज्योति' है। वह स्वयं शक्तिसे ज्योति आदि पञ्च विषयोंको देखकर जीव ही जानता और मानता है। देह धारण करके ही नरजीवोंने ब्रह्म सच्चिदानन्द, तत्त्वमसि आदि बहुत सिद्धान्त कथन किया है। कल्पनाके चपेटासे मारे गये, तो बहुत ही भ्रमिक हुए। धोखेमें ही बुद्धिको लगा दिये। जब शरीर छूट जायगा वा मृत्यु हो जायगी, तब कहो तो भला! वह ज्योति-प्रकाश, ब्रह्म, सुरति, फिर कहाँ समा जाती है? जीव तो चैतन्य विजातीय होनेसे उस जड़ ज्योति आदिमें जाकर नहीं समायेगा। परन्तु, अध्यासवश गर्भवासमें ही जा करके समायेगा। तब फिर तुम्हारी ब्रह्मज्योति कहाँ जाकर समायेगी? कहाँ रहेगी? यदि तुमको पता हो, तो कहो, खुलासा करके बतलाओ?॥ ८०१ ॥

५. चारि वेद ब्रह्मा जो कहिया ❀ उनहुँ न या गति जानी ॥ ८०२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो!

चारि वेद = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और
ब्रह्मा जो = अथर्ववेद— ये चार वेदोंको
कहिया = ब्रह्माने प्रकाश करके कहा।
तत्त्वमस्यादि चार महावाक्य, सच्चिदानन्दादि ब्रह्म सिद्धान्तको अनेक तरहसे कहा, उसीने ज्योतिस्वरूप ब्रह्मको ठहराया, वही प्रमाण सब ऋषि-मुनियोंने मानते चले गये।

उनहुँ न = परन्तु, उन ब्रह्मादिकोंने
या गति जानी = भी इस धोखा-कल्पनाकी गति वा भेदको नहीं जाने। असि आनन्द, तत्त्वोंके भास-प्रकाशको ही ब्रह्म मानकर बिना पारख भूल गये। उनके पीछे सब लोग भूले, तो भ्रममें ही वे सब चले गये॥

व्याख्या— प्रथम ब्रह्माने जो चार वेदोंकी वाणी कहा; तो उपरोक्त प्रकारसे ज्योति-स्वरूप ब्रह्म-परमात्मा ही सत्य है, ऐसा कल्पनासे कथन करके ठहराया। उसने भी इस बातकी गति-विधि-भेदको कुछ नहीं जाना। यह भास, अनुमान, कल्पना, मिथ्या धोखा है; उसमें लगनेवाले जीव ही सत्य हैं; यह विवेक करके नहीं जाना, अतः वह भ्रम-भूलमें ही पड़ा रहा॥ ८०२ ॥

६. कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! ❀ बूझो पण्डित ज्ञानी! ॥ ८०३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरुने चेतावनी देकर समझाया है—

कहहिं कबीर = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब
सुनो हो सन्तो! = कहते हैं— हे सन्तो!
सुनो! यथार्थ सत्य निर्णयसे परखो! विवेक करो, छानबीन करो—

बूझो = ब्रह्मादि पण्डित और शिवादि
पण्डित = ज्ञानियोंने योगादि साधनाओंसे
ज्ञानी! = तत्त्वोंका भास, ज्योति प्रकाशको ही ब्रह्म-परमात्मादि जो माना, समझा, बूझा, सो अबूझ है, देहका विकार है, तत्त्वोंका स्वभाव है, देहके साथ ही वह सब छूटनेवाला है। उसको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा समझो, बूझो, पारख करो! धोखेमें मत् पड़ो; जीवको न्यारा जानो! चैतन्य जीव सत्य है और सब मिथ्या है, ऐसा बूझो!॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— मैं जो सत्य निर्णयकी बात कहता हूँ वा कहा हूँ, सो हे सन्तो! तुम लोग मेरे वचनोंको ध्यानपूर्वक सुनो! और सबोंके रहस्यको समझो-बूझो! तो तुमलोग ही सच्चे पडित वा ज्ञानी हो जाओगे। और प्रथम पण्डित = ब्रह्मादि तथा ज्ञानी = शिवादिने जो बात समझा-बूझा, सो देह और मनका विकार तत्त्वोंका प्रकाश, भास नाशवान् है; वह सब देहके साथ ही छूट जायगा। अध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें चला जायगा। वे सब बिना पारख धोखेमें ही पड़े थे, उसे तुम अच्छी तरहसे बूझो!॥ ८०३ ॥

दोहाः— बन्दीछोर सुजान गुरु * अशरण शरण दयाल ॥
[३५९] गुरु हंसन उद्धार हित * भाखेउ स्वपद कृपाल ॥ ८०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

बन्दीछोर = } ब्रह्म-जगत्के जबर्दस्त महान्
सुजान गुरु = } बन्धन, खानी-वाणी जालोंसे नर जीवोंको छुड़ाकर मुक्त करनेवाले सत्यासत्य, जड़-चैतन्यके भेदको यथार्थ जाननेवाले अच्छे जानकार सद्गुरु पारखी बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब ही एक महापुरुष हुए। आप ही एक सुजान प्रथम पारखी सद्गुरु हुए।

अशरण = } आपने दया करके सकल जालोंको
शरण = } दिखाकर परखाये। जिनकी
दयाल = } कहीं रक्षा, ठौर-स्थिति नहीं थी, ऐसे नरजीवोंको शरणमें लेकर बचाये, रक्षा किये। ऐसे आप अशरण-शरण शरणागत रक्षक दयालु हो गये। और—

गुरु हंसन = } सर्व प्रथम सद्गुरु
उद्धार हित = } श्रीकबीरसाहेबजीने ही पारख बोधका आविष्कार या प्रकाश किया। उन्हीं सद्गुरुने नरजीवोंको हंस गुण, रहनी-रहस्य बतला करके संसारसे उद्धार वा पार करनेके वास्ते हितकारी शिक्षा दिया है। तथा—

भाखेउ = } कृपालु सद्गुरुने कृपादृष्टि
स्वपद = } करके निजपद पारखमें स्थिर
कृपाल = } होनेका उपदेश वर्णन किये। बीजक सद्ग्रन्थका उपदेश दिये। गुरुमुख द्वारा बीजकके सत्यज्ञानका श्रवण, मनन करनेवाले मनुष्य स्वपद पारखमें ठहर जाते हैं॥

व्याख्या— प्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही बन्दीछोर एक महापुरुष ऐसे सुजान हुए, जिन्होंने सब मत, पन्थ, ग्रन्थोंके सारासारको निर्णय करके सबोंके कसर-खोटोंको पहिचान लिये। वही बात आपने अधिकारी मनुष्योंके प्रति दर्शाकर परखा दिये। और आप अशरण-शरण दयाल शरण रक्षक हुए। उन पारखी सद्गुरुने हंस चैतन्य जीवोंके उद्धारके लिये ही, हित-कल्याण-कारक स्वपद पारख बोधको कृपालुने कृपा करके वर्णन किये। सद्ग्रन्थ बीजकके सत्य ज्ञानका उपदेश दिये। तभीसे जिज्ञासुओंको यथार्थ सत्यज्ञानका बोध होता आ रहा है॥ ८०४॥

दोहाः— ऐसी रहनी जो रहैं * तेई साधु गुरु रूप ॥
[३६०] आप तरे तारै और * क्या विरक्त गृहि भूप ॥ ८०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ऐसी रहनी = } सद्ग्रन्थ बीजक सिद्धान्तानुसार
जो रहैं = } सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्य, बोधभाव सहित ऐसी शुद्ध हंस रहनीमें जो पुरुष रहते हैं, सोई पारखी स्थितिवान् हो जाते हैं। और—

तेई साधु = } प्रत्यक्षमें सच्चे त्यागी, वे ही
गुरु रूप = } सत् साधन सम्पन्न पारखनिष्ठ साधु हैं। जो पारख बोधदाता हों, वे ही साधु सद्गुरुके स्वरूप माननीय साक्षात् परम पूज्य होते हैं।

आप तरे = } वे अपने तो स्वयं ही पार उतर
तारै और = } चुके हैं। काल, सन्धि, झाँईं तथा विषयादि खानी-वाणी सागरसे पार उतरकर पारख स्वरूपमें शान्त हैं। और शरणागत नरजीवोंको भी भवधारसे पार उतार देते हैं।

क्या विरक्त = } पारखी सद्गुरुकी शरणमें
गृहि भूप = } चाहे जो आवें, अन्यमतके वैरागी, संन्यासी आदि विरक्त आवें, चाहे संसारी गृहस्थ आवें, चाहे राजा और रङ्क आवें, सबको वे सत्य शिक्षाका ही बोध देते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ भूपवत् महाज्ञानी पारखी सन्त होते हैं॥

व्याख्या— इसप्रकार पारख बोध प्राप्त करके ऐसे हंस रहनी-रहस्य, सद्गुण-लक्षणको

धारण करके जो स्वरूप स्थितिमें टिके रहते हैं, वे ही पारखी त्यागी विरक्त साधु गुरुरूपमें श्रेष्ठ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पूर्ण परीक्षक होनेसे ही मान्य, पूज्य, सर्वोपरि होते हैं। वे आप तो स्वयं भव-बन्धन खानी-वाणीरूप भवसागरसे तरके पार उतर जाते हैं, जीवन्मुक्त होते हैं। और जो कोई अधिकारी पुरुष शरणागत होकर उनके सत्सङ्गमें आते हैं, उन्हें भी पारख बोध देकर पार उतारकर मुक्त कर देते हैं। चाहे तो विरक्त मनुष्य शरणमें आवें, चाहे गृहस्थ सेवक लोग शरणमें आवें, राजा-प्रजा, धनी-निर्धनी, रागी-वैरागी, विरक्त-गृही आदि चाहे कोई भी हों, पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आनेपर उन्हें सद्गुरु सत्य उपदेश ही देते हैं। उसे पालन करने वालोंका हित-कल्याण हो जाता है। फिर गृही-भूप भी विरक्त शिष्य बन करके तर जाते हैं ॥ ८०५ ॥

दोहाः— गृहि विरक्त दोउ रूप है ❀ निर्णयते एकै आहि ॥
[३६१] गुरुमत अदल प्रकाशको ❀ है प्रगट जेहि माँहि ॥ ८०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!
गृहि विरक्त = संसारमें राग-वैराग्य, त्याग-ग्रहण, गृहस्थ-विरक्त, खानी-वाणी, ऐसे दो-दो प्रकारके रूप, आकार, भेष, व्यवहार हैं। वही भिन्न-भिन्न दिखाई दे रहे हैं। परन्तु—
निर्णयते = सत्य निर्णयसे देखिये! तो वे
एकै आहि = मोटी-झीनी माया, अनुमान, कल्पना, विषयादिमें एक-एक करके नरजीव एक ही तरहसे बद्ध हो रहे हैं। जीव तो एक स्वजातीय हैं, तहाँ बन्धनोंमें एक-दूसरेको बाँध रहे हैं, बिना पारख। और—
गुरुमत = सद्गुरुके सत्यमत, सत्य-
अदल = न्याय निर्णयकी हंस चालसे
प्रकाशको = पारखी सद्गुरुकी अदल-शिक्षा, कायदा, नियममें जो चलते हैं, उनके हृदयमें पारखका प्रकाश होनेसे तमरूप अविद्या अन्धकार दूर हो जाता है। अज्ञान-का लेश भी नहीं रहता है। तथा—
है प्रगट = वर्तमानमें भी जिनमें
जेहि माँहि = न्यायकी चाल पारखका प्रकाश प्रगट दिखाई देता है, वे भी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके ही अनुयायी पारखी सद्गुरु बन्दीछोर माने जाते हैं ॥

व्याख्या— संसारमें एक तो गृहस्थाश्रमका रूप है। दूसरा विरक्त वा वैराग्यवान् साधुओंका भेषका रूप है। ऐसे रूप तो दो हैं; परन्तु, निर्णयसे देखिये! तो एक ही अनुमान, कल्पना, भास, जड़ाध्यास, माया-मोहकी आसक्ति उन सबोंमें लगी हुई है। और जीव चैतन्यदृष्टिसे स्वजातीय होनेसे सबोंमें ज्ञानगुण भी एक-सा ही है। अथवा निर्णयसे सद्गुरुका पारख बोध तो एक है। उसे ग्रहण करनेवाले अधिकारी मनुष्योंके गृहस्थ और विरक्त, ऐसे दो रूप प्रगट हैं। उनमें गुरुमत-पारख बोधका अदल-शासन, नियम, कायदासे चल करके जिसमें पारख ज्ञानका प्रकाश प्रगट होकर अपरोक्ष हो जाता है, वैसे विरक्त साधु ही मुक्त हो जाते हैं। और शुद्ध चालसे चलनेवाले गृहस्थ बारम्बार मनुष्य जन्म लेते-लेते फिर कभी विरक्त साधु पारखी होकर मुक्त हो जावेंगे। पारखी सन्तोंका दर्जा सबसे ऊँचा है, ऐसा जानो! ॥ ८०६ ॥

दोहाः— तेई हंस प्रमाण युत ❀ दीनबन्धु निर्धार ॥
[३६२] बन्दनिये ताके चरण ❀ सुन शिष्य! सहित विचार ॥ ८०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य!
तेई हंस = जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा
प्रमाण युत = निर्णय करनेवाले हंस रहनी-रहस्य संयुक्त पारख प्रकाशी जो हैं, सोई प्रत्यक्ष बीजक प्रमाणसे श्रेष्ठ पारखी हंस-रूप मनुष्य हैं। प्रेमसे श्रद्धा-भक्तिके सहित उनके ही उपदेशको श्रवण करके ग्रहण करना चाहिये।
दीनबन्धु = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे
निर्धार = अनुयायी वे होते हैं, अतः

उन्हें ही निश्चयसे मानना चाहिये। क्योंकि, दीनबन्धु श्रीसद्गुरुने वही पारख निर्णयको निश्चय किये-कराये थे। इसलिये पारख बोधदाता सद्गुरु निश्चयसे बन्दीछोर होते हैं।

वन्दनिये = } चैतन्य पारख बोधके प्रकाश
ताके चरण = } करने वाले वे ही सद्गुरु हैं। उन्हींके चरण कमलोंमें वन्दना, साष्टाङ्ग दण्डवत् या त्रयबार बन्दगी करनी चाहिये। और उन्हींके उपदेश पालन करके शुभ आचरणमें चलना चाहिये।

सुन शिष्य ! = } हे शिष्य ! नित्यप्रति ऐसे
सहित विचार = } ही पारखी सन्तकी सत्य शिक्षाको तुम श्रद्धा-भक्तिके सहित विचार-पूर्वक सुनो, गुनो, ग्रहण करो ! उसीसे कल्याण होगा, सो जानो ! ॥

व्याख्या— प्रत्यक्ष प्रमाण संयुक्त वे ही हंसरूप पारखी सन्त चैतन्य स्वरूपको जाननेवाले निश्चयसे दीनबन्धु होते हैं। उन्होंने सत्य निर्णयसे जो सिद्धान्त ठहराया है, सोई यथार्थ प्रमाण सहित बीजक सद्ग्रन्थका सत्य सिद्धान्त है। उसे ग्रहण करनेवाले ही हंस होते हैं। हे शिष्य ! तुम विचारके सहित सुनो ! उन्हीं पारखी साधु-गुरुके चरण-कमलोंको नित्यप्रति भक्ति पूर्वकवन्दना वा त्रयबार बन्दगी करनी चाहिये; चरणोंमें शिर झुकाना चाहिये। शुद्ध आचरणसे चलना चाहिये। और सद्गुरुके उपदेशको श्रद्धासे विचारके सहित श्रवण करके हृदयङ्गम करना चाहिये; यही हितकर सत्साधना है ॥ ८०७ ॥

दोहाः— सत्य भेष सत्पद सहित ❀ ठहरै अस्ति स्वरूप ॥
[३६३] ते अधिकारी पारखी ❀ साँचे गुरुमत भूप ॥ ८०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे शिष्य !

सत्यभेष = } पारखी सद्गुरुका साधु भेष
सत्पद = } सच्चा है। सत्य रहनी-रहस्य
सहित = } सहित सद्गुरुसे टकसारी साधु भेषको धारण कर सत्पद पारखमें ही सत्यनिष्ठा दृढ़ता संयुक्त हो—

ठहरै = } निज अविनाशी चैतन्य जीवके
अस्ति = } सत्स्वरूपमें ही सब प्रकारकी
स्वरूप = } चञ्चलताको छोड़कर ठहरना चाहिये। जो ऐसे स्वयं स्वरूपमें ठहरे हुए स्वरूप स्थितिमें स्थिर हैं—

ते अधिकारी पारखी = वे ही पारखी साधु संसार भरमें सर्वोपरि, सर्वोच्च सर्वश्रेष्ठ महाज्ञानी हैं। वे जीवन्मुक्तिके अधिकारी हैं। वे ही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायीरूपमें परम्परागत शिष्य, पारखज्ञानके उत्तराधिकारी, पारख प्रकाशी पारखी होते हैं।

साँचे = } सच्चे ही वे पारखी सन्त कबीर
गुरुमत = } पन्थ भरमें सम्राट् महाराजाके
भूप = } समान सर्वश्रेष्ठ होते हैं। सद्गुरुके सत्यमत पारखबोध होनेपर जीव सत्य ही ज्ञानमार्गके राजावत् सर्वश्रेष्ठ, स्वतन्त्र मुक्त होते हैं ॥

व्याख्या— जो विवेकी पुरुष टकसारी विधिसे पारखी सद्गुरुसे भेष धारण करके सच्चे त्यागी होते हैं। वे सत्यभेष तथा सत्पद-हंसपद रहनी-रहस्यके सहित होकर अस्ति = सत्य चैतन्य निज स्वरूप पारख भूमिकामें ही अटल-अचल होकर ठहर जाते हैं। वे ही सबसे विशेष सर्वोत्तम जीवन्मुक्तिके अधिकारी पारखी सन्त होते हैं। वे ही गुरुमत-सत्य सिद्धान्तके शासक ज्ञानियोंमें सच्चे राजा हैं। वे ही स्वतन्त्र, निर्बन्ध होते हैं। पारखी सन्त ही गुरुमतके सच्चे भूप हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८०८ ॥

दोहाः— रहनि गहनि सत्य भेषके ❀ हंस दशा शुद्ध होय ॥
[३६४] गुरु वाणी निर्णय सहित ❀ लखै अपन पद जोय ॥ ८०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

रहनि गहनि = } इसवास्ते मुक्तिके लिये सत्य भेषके = } सत्यकी रहनी, सत्यका ही ग्रहण, सत्यका ही भेष, सत्यकी ही चाल-चलन, रीति-भाँति, शुद्ध हंस देहका व्यवहार धारण कर—

हंस दशा = } असारको त्यागकर, सारको ही शुद्ध होय = } लेनेवाले हंस गतिकी चालसे चलनेसे वर्तमानमें उनकी दशा वा स्थिति परिशुद्ध, स्वच्छ, निर्मल, अदाग हो जाती है।

पूर्वोक्त प्रकारसे खानीका सुधार होनेपर—

गुरु वाणी = } वाणी-जालका भी सुधार निर्णय = } गुरुमुख सत्य निर्णकी वाणी सहित = } सारशब्द के विवेक सहित गुरुबोध दृढ़ होनेपर हो जाता है। इसलिये निर्णय गुरु उपदेशको श्रद्धाके सहित ग्रहण करो!

लखै अपन = } उसी सत्य निर्णयके आधारसे पद जोय = } अपना मुख्य चैतन्य पदको पारखदृष्टि उघाड़कर देखो, लखो, जानो, पहिचानो! और सब मानन्दी विषय अध्यास आदिको परित्याग करके सदा अपने द्रष्टा पारखपद पर ही स्थिर, शान्त, अटल हो रहो!॥

व्याख्या— मुमुक्षुओंको चाहिये कि, सत्यकी रहनी रक्खे। सत्यन्यायका ही गहनी वा ग्रहण करे। सत्य भेषके मर्यादा-नियमके सहित रहे। इसतरह शुद्ध हंसदशाकी अवस्थामें कायम होकर जाग्रत् रहना चाहिये। फिर गुरुमुख निर्णयकी वाणी सारशब्दसे सबका निर्णय करके छान-बीन करे; और पारख बोधके सहित अपने पदको विवेकदृष्टिसे देखकर लखे, "जीव चैतन्य ही सत्य वस्तु है; ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या है" ऐसा लखकर जानें। सब भ्रम मानन्दीको मिटाकर निजस्वरूपमें ही शान्त, स्थिर हो रहे॥ ८०९॥

दोहाः— ब्रह्म ईश माया जनित ❀ मन उपाधि गुण खान॥

[३६५] ते उपाधि हन्ता सहित ❀ हे शिष्य! लेहु पहिचान॥ ८१०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

ब्रह्म ईश = } ब्रह्म, ईश्वर, देवी, देवता, माया जनित = } स्वर्गादि मन-मायासे कल्पना करके गुरुवालोगोंने वाणी उत्पन्न किया है। सो मनुष्योंके भ्रमसे ही पैदा हुआ है।

मन उपाधि = } त्रिगुण उपाधि प्रगट होनेका गुण खान = } खदान तो मन ही है। मनसे जितने विषय, कल्पनाकी उपाधि खड़ी हुई, सो ब्रह्म-जगत्के अध्यास चार खानी चौरासी योनियोंमें ले जानेका ही गुण है। उसमें तो महा विकार ही भरा हुआ है।

ते उपाधि = } वह सब उपाधि, प्रपञ्च, हन्ता सहित = } झंझट, पञ्च अहङ्कार, विषयासक्ति, ब्रह्मसुख मानन्दी संयुक्त ही होता रहता है। यानी अहङ्कार सहित होकर उपाधि होती है।

हे शिष्य! लेहु = } हे सुबुद्धि शिष्य! तुम पहिचान = } सद्गुरुके पारख बलसे सत्य निर्णय करके खानी-वाणीका अध्यास ही आवागमनका कारण है, ऐसा पहिचान लो!॥

व्याख्या— ब्रह्म, ईश्वर, मायासे लेकर जितनी भी वाणी-कल्पना उत्पन्न हुई है, सो माया-जनित मनकी उपाधि, त्रिगुणके विकार बन्धनकी खानी चारखानीमें ले जानेवाला है। वह सम्पूर्ण उपाधि मन-मानन्दीसे अहङ्कारके सहित ही उत्पन्न होकर विस्तार होती है। हे शिष्य! तुम उसे अच्छी तरहसे परख करके पहिचान लो! उसी हन्ता-ममतादि अध्यास करके जीव चौरासी योनियोंमें पड़ते हैं; अतः उसे समूल नाश करके मिटाओ!॥ ८१०॥

दोहाः— प्राप्ति मत प्रगट सुयह ❀ गुरु गम होवै नेर॥

[३६६] ब्रह्म जगत संशय सबै ❀ मिटै चौरासी फेर॥ ८११॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!

प्राप्ति मत = प्रगट सुयह = संसारमें सबोंका मत प्रगट है। तहाँ कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके धोखेमें सब लोग भूले पड़े हैं। इन सबको अच्छी तरहसे पारखी सद्गुरु ही लखाते हैं। यही पारखज्ञान सद्गुरुके मतका सत्यज्ञान प्रत्यक्ष शुद्ध है। पारखबोधकी प्राप्ति होनेसे सो सब मत जो यहाँ संसारमें प्रगट हैं, उन सबोंकी मानन्दी—

गुरुगम = होवै नेर = वाणी-कल्पनाका निर्णय गुरुगम-से पहिचान हो जाता है। पारखी सद्गुरुके बोधरूप गमसे ही पारखदृष्टि खुलती है। फिर न्यायरूपी दूरबीनसे सबोंका हाल नजदीकमें ही देखकर जाना जाता है।

ब्रह्म जगत = संशय सबै = ब्रह्म- भ्रम है, जगत्- जड़ तत्त्व विषय परिणामी हैं। और ब्रह्म, तथा विषयोंका सुख क्षणिक मानन्दी मात्र ही है। ब्रह्मसे जगत्की उपत्ति मानना, मिथ्या सन्देह है। सो सब ब्रह्मसे जगत् पर्यन्तके जितने भीसंशय हैं, सद्गुरुके पारख बोधसे नाश हो जाते हैं।

मिटै = चौरासी = फेर = उक्त सन्देह, भ्रान्ति, विषय-वासनादि समस्त मिट जानेसे हंस जीव मुक्त हो जाते हैं। इसलिये फिर सदाके लिये चौरासी योनियोंमें जन्मृति होनेका चक्र मिट जाता है॥

व्याख्या— गुरुबोधको प्राप्त कर लेनेसे अच्छी तरहसे यह सबोंका मत-मतान्तर प्रगटरूपमें लखने वा परखनेमें आ जाता है। गुरुवालोगोंने तो ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिकी मिथ्या आशा लगाकर जीवोंको बहुत दूर कर दिये हैं। ईश्वरादिको बहुत दूर बतला करके भ्रमा रक्खे हैं। सो यह सब भेद जान करके गुरुगम पानेपर सत्सङ्गमें नजदीक ही सब बात जाननेमें आ जाती है। और ब्रह्मसे जगत् पर्यन्त सम्पूर्ण संशय, दुविधा तथा चौरासी योनियोंका फेरा वह सब भी मिट जाता है। मोटी-झीनी-बन्धन नाश हो जाता है॥ ८११॥

दोहाः— सुन शिष्य! मानुषतने तू * अतिशय हेतु बढ़ाव॥
[३६७] यही रूपते सिद्धता * प्राप्ति होत ठहराव॥ ८१२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

सुन शिष्य ! मानुषतने तू = हे प्रेमी शिष्य! तुम सत्य शिक्षाको सुनो! तुमने अभी नरदेह पाया है, सो सत्य, विचार, दयादि सद्गुणोंको इसी मनुष्य देहमें रहते ही मनमें धारण किया करो! मनुष्यका शुद्ध स्वभाव सार ग्रहण करो! और—

अतिशय हेतु बढ़ाव = हंस रहनी, गुण-लक्षणोंको अपनेमें धारण करके पारखी सद्गुरुकी सेवा, सत्सङ्ग-विचार करनेमें अत्यन्त प्रेम, श्रद्धा, भक्तिको बढ़ाओ! यही आगे तुम्हें मुक्तिमें ले जानेका हेतु होगा।

यही रूपते सिद्धता = दयादि सद्गुण संयुक्त मनुष्य ही शुद्ध, हंस हो जाते हैं। सो इसी हंसदेहके रूप-गुण सर्वाङ्ग धारण होनेसे ही पारख ज्ञान द्वारा नरजीवोंकी मुक्तिका कार्य सिद्ध हो जाता है, सफल होता है।

प्राप्ति होत ठहराव = तब सब विषय कल्पनादिकी चञ्चलता, आवरण छूटकर अपरोक्ष पारख बोधकी प्राप्ति होनेसे अभी जीवन्मुक्त होकर निजस्वरूपमें ही स्थिति ठहराव हो जाता है; सोई बनाना चाहिये॥

व्याख्या— इसलिये हे शिष्य! सुनो! इसी मनुष्य देहमें सत्पुरुषार्थ करके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार करनेमें अतिशय प्रेम बढ़ाओ। मुक्तिके लिये गुरुभक्ति करनेमें विशेष प्रेम-प्रीति बढ़ाओ। और इसी मनुष्य देहमें सद्गुण-लक्षण रहनी-रहस्य धारण करके हंसरूपसे अपने कल्याण-की कार्य-सिद्धि, कर्त्तव्य पूर्ण होकर जीवन्मुक्ति स्थितिका ठहराव भी प्राप्त हो जाता है। और दूसरेरूपसे मुक्ति हो नहीं सकती है। सो यही नरदेहमें हंसरूपसे ही सिद्धता प्राप्त होती है। और निज स्वरूपमें ठहराव होनेसे जीव सदाके लिये मुक्त हो जाता है॥ ८१२॥

दोहाः— ठहरै बुन्द समुद्रता * दुई उपाधि मिटि जाय ॥
[३६८] गुरुमत न्याव प्रत्यक्ष शिष्य ! * निर्णय लखहु बनाय ॥ ८१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

ठहरै बुन्द = जैसे स्वाती जलके बुन्द सीपीमें
समुद्रता = पड़ करके मोती बनकर समुद्रमें रहता है—

दुई उपाधि = तो भी वह समुद्रकी तरङ्ग
मिटि जाय = और बादलमें जाना, वर्षाके रूपमें आना, ये दोनों उपाधि उसकी मिट जाती है। तैसे ही नरजीव पारखपदमें ठहरनेसे संसारमें होनेवाली ब्रह्म-जगत्, जन्म-मरण ये दोनों उपाधियाँ उनकी मिट जाती हैं वा छूट जाती हैं। निरुपाधि निज स्वरूपकी स्थितिमें ही वे कायम रहते हैं।

अतएव—

गुरुमत न्याव = हे शिष्य ! सद्गुरुके सत्यमत
प्रत्यक्ष शिष्य ! = पारख बोधसे सत्यन्याय निर्णयको प्रत्यक्ष करो, उसे सीखो ! फिर सत् शिष्योंको यही प्रत्यक्ष करा-करके सिखाओ !

और—

निर्णय = जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिके कारण-
लखहु = को यथार्थ सत्य निर्णय करके विवेक-
बनाय = दृष्टिसे लखो ! जानो ! ऐसे अपने-को हंस बना करके तैसे ही सत्सङ्गियोंको भी हंस बनाओ, पारख बोध लखाओ ! ॥

व्याख्या— जैसे स्वातीके जल और सीपीके सम्बन्धसे मोती बन जानेसे सदाके लिये भ्रमणा छूटकर मोतीरूपमें ही वह ठहर जाता है। फिर उसको बून्द होना और समुद्रमें मिलना, अथवा बादल होना, फिर वर्षना यह दोनों उपाधि उसकी मिट जाती है। उसीप्रकार स्वयं स्वरूप पारख-पदकी सीपीमें जलरूप मन स्थित हो जानेसे मोतीरूप जीवन्मुक्ति हो जाती है। उसी पारख स्थिति-में जीवका ठहराव हो जाता है। फिर बुन्द = केवल ब्रह्म, और समुद्रवत् जगत्-विषय सम्बन्धी दोनों उपाधियाँ उनकी मिट जाती हैं। आवागमन भी छूट जाता है। इसलिये हे शिष्य ! गुरुमतके न्यायको प्रत्यक्ष बना करके गुरुमुख निर्णयको तुम लखो ! इसीप्रकारसे अपने जीवनको सफल करके कल्याणमय बनाओ ! ॥ ८१३ ॥

दोहाः— या रहस्य युत जे जिया * ते उर दया लहन्त ॥
[३६९] धीर विचार औ शील गुण * हंसहि बोध करन्त ॥ ८१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

या रहस्य- = जो नर जीव विवेक, वैराग्य,
युत जे जिया = गुरुभक्ति सद्गुण रहनीके यह रहस्य संयुक्त सद्गुरुके पारख बोध-को पा जाते हैं वा ग्रहण करते हैं—

ते उर दया = उनके हृदयमें 'निज दया' और
लहन्त = 'पर दया' लहराता हुआ हरा-भरा रहता है। यानी दयाका निवास उनके हृदयमें पूर्णरूपसे रहता है।

धीर विचार = तैसे ही धैर्य, विचार, सत्य
औ शील गुण = और शील-सन्तोषादि सद्गुण भी पूर्णतासे धारण किये रहते हैं; वे सद्गुणोंकी साक्षात् प्रत्यक्ष मूर्ति ही होते हैं, सो वे साधु पारखी होते हैं।

हंसहि = सो अन्य श्रद्धालु मनुष्योंको भी
बोध = हंसगुण रहनी-रहस्य, चैतन्य
करन्त = पारखका बोध सत्य उपदेश देकर सचेत करते रहते हैं। सत् शिक्षा देते रहते हैं॥

व्याख्या— इसी पारख रहस्य संयुक्त जो अधिकारी नरजीव होते हैं, सो उनके हृदयमें पूर्णतासे दयाकी धारणा होती है। वे 'निज दया' और 'पर दया'को पूर्णतासे पालन कर लेते हैं। उसके साथ-साथ ही धैर्य, विचार, सत्य और शीलका सद्गुण तथा विवेक, वैराग्य, गुरुभक्तिको भी अच्छी तरहसे अपनेमें धारण करके हंस चैतन्य जीवको पारख बोध करते रहते हैं। और दूसरे अधिकारी मनुष्योंके प्रति भी उक्त हंस रहनी धारण करनेका बोध करते हैं। नरजीवोंको पारख स्वरूपका ही बोध करते रहते हैं; ऐसे परोपकारी होते हैं ॥ ८१४ ॥

दोहाः— साधुनके बहु भेषता ❀ गृहिनके बहु चाल ॥
[३७०] गुरुमत एक अदल है ❀ करैं सो उभय निहाल ॥ ८१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

साधुनके = बहु भेषता = संसारमें संन्यासी, वैरागी, नागे, उदासी, नाथ, निरञ्जनी इत्यादि षड्दर्शनोंके साधुओंके भेष प्रपञ्च बहुतेक हैं। और—

गृहिनके = बहु चाल = गृहस्थियोंकी चाल, रीति-रिवाज, आचार-विचार, नाना कर्म-उपासनादिकी चाल, तथा वर्ण-आश्रमादिका व्यवहार भी बहुत प्रकारसे हो रहा है। परन्तु, वे दोनों बिना पारख खानी-वाणीके महाजालोंमें ही बद्ध पड़े हैं।

गुरुमत एक = अदल है = पारखी सद्गुरुका सत्यमत ही एक ऐसा है, जो चैतन्य बोध पारखपद परखानेवाला सत्यन्याय, निर्णयका कायदामें चलानेवाला है।

करैं सो = उभय = निहाल = सो पारखी सद्गुरु ही सत्य उपदेश दे करके सेवक और साधु, इन दोनोंको सुखी कर देते हैं। सद्गुरुके सत् शिक्षाके अनुसार बर्ताव करनेवाले मनुष्य सब दुःखोंसे छूटकर निहाल=शान्त परम सुखी हो जाते हैं॥

व्याख्या— जगत्में साधुओंके भेषोंमें षट्दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्डोंकारूप बहुत प्रकारसे बनाये हुए हैं। उनमें सफेद, लाल, हरा, पीला, काला, गेरुवा और नवरङ्गी कपड़ा पहिरनेवाले लोग होते हैं। जटाधारी, मुण्डी, दण्डी, कनफट्टा, नागे, दिगम्बरी, बाघम्बरी, उर्ध्वबाहु, मौनी इत्यादि बहुरूपिया विचित्र भेषधारी होते हैं। इनका पाखण्ड, मत, पन्थ, ग्रन्थ बहुत ही विस्ताररूपसे फैला हुआ है। तैसे ही इधर संसारी गृहस्थियोंके चाल-चलन भी बहुत प्रकारसे चलाये हुए हैं। सोलह संस्कार सम्पन्न करानेकी चाल ब्राह्मणोंने चला रक्खे हैं। नाता, गोता, कुल, कुटुम्ब, जाति, वर्ण, आश्रम, रीति-रिवाज, कर्म-कुकर्म इत्यादि बहुत तरहसे चलते हैं। सो तहाँ उन दोनों ही खानी-वाणीमें जड़ासक्त जीव भव-बन्धनोंमें ही पड़े और पड़ रहे हैं। उन दोनोंसे न्यारा गुरुमत पारख सिद्धान्त ही एक अदल है। जिसे कोई दल-मलके नशा नहीं सकते हैं, सत्यन्यायका शासन, धर्मनीतिका मुक्तिदायी कायदा-कानून है। सो गुरुमत उन दोनों तरफके मनुष्योंको सत्यमार्ग बतलाकर भ्रम-भूलको मिटाकर निहाल, निर्बन्ध सुखी कर देता है। पारखी सद्गुरुके उपदेश लेकर उसे पालन करनेवाले साधु और सेवक दोनों ही सुखी होते हैं॥ ८१५ ॥

दोहाः— पारख गुरु टकसारकी ❀ निर्णय कही तमाम ॥
[३७१] गुरु अभ्यासन जो करै ❀ भाखेउँ सो विश्राम ॥ ८१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

पारख गुरु = टकसारकी = पारखी सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके पारख सिद्धान्त दर्शक सद्ग्रन्थ बीजकके प्रमाणसे इस सत्सङ्गरूप टकसारमें सारासार बातोंकी यथार्थ परीक्षा कर-कराके—

निर्णय कही = तमाम = हे शिष्य ! तुम्हें मैंने समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थोंके कसर-खोटोंका विचार तमाम निर्णय करके सो कह करके बता दिया हूँ, सो सब वर्णन करके सुना दिया हूँ ! और—

गुरु अभ्यासन = जो करै = सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा अभ्यास करके पारख न करनेवालोंकी दुर्गति भी बता दिया हूँ। तथा विवेकियोंकी सद्गति भी कह दिया हूँ ! अब जो कोई मुमुक्षु नरजीव पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें रह करके सत्य रहनीयुक्त पारख ज्ञानका अभ्यास करेंगे—

भाखेउँ सो = विश्राम = सो वे भी सद्गुरुके समान जीवन्मुक्त स्थितिमें विश्राम करेंगे। यह प्रकरण पूर्णरीतिसे तुम्हें समझा करके यहाँपर गुरुबोध सद्ग्रन्थमें वर्णन करके कह दिया हूँ !॥

व्याख्या— टकसार= बीजक सद्ग्रन्थका सत्य सिद्धान्त सद्गुरुका पारख बोधको 'टकसार' कहते हैं। उसीके आधारसे निर्णय करके तमाम=सम्पूर्ण भेदको कहकर मैंने तुमको बतला दिया हूँ! उपदेश देनेकी शैली और देह रहे तक बर्तनेकी रीति भी सब एक-एक करके बता दिया हूँ! और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें रहकर सत्साधना, सच्चा अभ्यास विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति आदि ग्रहण-धारण जो कुछ करनेका है, वह भी सब बता दिया हूँ! और उससे होनेवाला अन्तिम फल पारख स्वरूपमें स्थिर स्थिति-मुक्ति होनेका सो अचल विश्राम भी वर्णन करके समझा दिया हूँ! सो अब तुम भी उसीप्रकारसे सत्मार्गसे चल करके पारखपदमें विश्राम करो! ॥ ८१६ ॥

दोहाः— जो रहस्य गुरुबोधकी ❀ जानै ठहरै जीव ॥
[३७२] सोई गुरु पारख लहै ❀ पञ्चाइत गुरु कीव ॥ ८१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
जो रहस्य = } जीवन्मुक्तिका जो रहनी-
गुरुबोधकी = } रहस्य, भेद, गुण-लक्षण है, सोई गुरुबोध पारखकी स्थिति है। जो कोई जिज्ञासु नरजीव इस गुरुबोधके सद्-रहस्यको—
जानै = } गुरुमुख निर्णय द्वारा भलीभाँति जान
ठहरै = } जायेंगे, सो निज स्वरूप जीवको ही
जीव = } सत्य पहिचान करके सब भ्रम-मानन्दीको छोड़कर पारखपद निज स्वरूप स्थितिमें ही ठहर जायेंगे।
सोई गुरु = } सोई गुरुबोधके अपरोक्ष पारख-
पारख लहै = } को प्राप्त करेंगे। फिर सद्गुरुके समान पूर्ण पारखी होकर सत्यासत्यको परखते-परखाते रहेंगे; सो पारख बोधकी प्राप्ति सद्गुरुसे ही होती है। इसवास्ते—
पञ्चाइत = } हे शिष्य! सदा नित्यप्रति पारखी
गुरुकीव = } साधु-गुरुके ही सत्सङ्ग किया करो! सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही लगे रहनेवालोंकी पञ्चकोश, पञ्च विषयोंकी सब कल्पना-आसक्ति छूट जाती है, पूर्ण पारख-का प्रकाश हो जाता है ॥

व्याख्या— गुरुबोधका जो रहस्य वा गुप्त भेद है, सो उसे पारखी सद्गुरुके शरणागत हो करके जो नरजीव पूर्ण रीतिसे यथार्थ मर्मको जानेंगे, सो फिर निज स्वरूपमें ही स्थिर हो करके ठहरेंगे। और जिन्होंने सद्रहस्यको जान गये, वे निजपदमें ही ठहर गये; और जो जिज्ञासु मनुष्य पारखी साधु-गुरुकी पञ्चाइतरूप सत्सङ्गको सदा करते रहते हैं, अथवा सत्सङ्ग किये हैं, सोई पुरुष सद्गुरुके पारख बोधको ठीक रीतिसे प्राप्त करते हैं। फिर पारख बोधको पा करके स्वच्छन्द, निर्बन्ध, मुक्त हो जाते हैं। अतः सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही सदा लगे रहो! ॥ ८१७ ॥

दोहाः— गुरु शिष्य सम्भाषण अहै ❀ युक्ति धरिया रीति ॥
[३७३] कहन्ताको सुनन्ता मिलै ❀ तबहीं वचन लागे प्रीति ॥ ८१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य!
गुरु शिष्य = } जिज्ञासु शिष्यका प्रश्नोंके
सम्भाषण अहै = } उत्तर पारखी सद्गुरुने यथार्थ रीतिसे परखा करके जो कहा है, सोई गुरु-शिष्यका वार्तालाप सत्सङ्ग बोल-चालरूप यह 'गुरुबोध' नामक सद्ग्रन्थ बना है।
युक्ति धरिया रीति = इसमें युक्ति-प्रयुक्तिसे हंसगुण, रहनी-रहस्य यथार्थ रीतिसे धारण कर मुक्तिमार्गमें चलनेके लिये कहा गया है। उस रीतिसे जो युक्तिपूर्वक सद्-बोधको धारण करेंगे, सो भव-बन्धनोंसे छूट जायेंगे।
कहन्ताको = } यथार्थवक्ता सत्य उपदेशक
सुनन्ता मिलै = } पारखी सद्गुरुसे जब सच्चे श्रोता, जिज्ञासु, श्रद्धालु शिष्य मिल जाते हैं, तब कहना-सुनना सफल होता है। श्रोताओंको पारख बोध होता है; मेल-मिलाप होता है।
तबहीं वचन = } तभी कहने-सुननेवालोंमें प्रेम-
लागे प्रीति = } प्रीति लगती है; और जब

नरजीवोंमें मुमुक्षुता आती है, तब ही सद्गुरुके सत्य उपदेश सारशब्द निर्णय वचनोंमें प्रीति, श्रद्धा लगती है, तभी सत्योपदेश ग्रहण भी होता है ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुसे जिज्ञासु सत् शिष्यने प्रश्न और शङ्का करके नाना तरहसे पूछा। उसे विविधि प्रकारसे उत्तर देकर सद्गुरुने समाधान किये। सो वही गुरु-शिष्यका सम्भाषणरूप वार्तालापमें यह 'गुरुबोध' नामक ग्रन्थ बना है। इसमें उसी भाषणका सार निर्णय युक्ति-प्रयुक्तिसे अच्छी रीतिसे यथास्थान उपयुक्त युक्ति रक्खी गयी है। सो इसे अपनेमें इसी तरहकी बोध-रहनीको धारण करना चाहिये। और सत्य उपदेश कहनेवाले सद्गुरुको चित्त लगाकर श्रद्धा-भक्तिसे सुनने-समझनेवाले सत् शिष्य जिज्ञासु मिलें, तब ही वचन कहने-सुननेमें भी प्रेम-प्रीति लगती है। और कहा-सुना हुआ भी सार सफल होता है। उसके विपरीत होनेपर कहा हुआ असफल ही होता है। अतः अधिकारी देख करके ही श्रद्धालु हो, तो उसे उपदेश देना चाहिये ॥ ८१८ ॥

दोहाः— निर्णय पञ्चाइत सुमत ❀ जमा यथार्थ निबेर ॥
[३७४] शिष्य ठहरावै सर्वमें ❀ गुरु सम कल्पनाके नेर ॥ ८१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

निर्णय = पञ्चाइत = सुमत = पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें जड़-चेतनादिका सत्य निर्णय करके शुद्ध मतको ग्रहण करे। पञ्चकोश, पञ्च विषयादि अशुद्ध पर-मतको त्याग करके स्वमतको ही लेना चाहिये। और—

जमा यथार्थ = निबेर = यथार्थ रीतिसे निबेरा, छान-बीन करके, 'मैं जीव जमा सत्य हूँ ! और ब्रह्म आदि खर्च मिथ्या है।' ऐसा जान लेना चाहिये। और—

शिष्य ठहरावै = सर्वमें = हे शिष्य ! गुरुवालोग तो सर्वमें व्यापक एक ब्रह्म ठहराते हैं, सो मिथ्यावादी हैं। तथा अबोध शिष्य भी प्रथम अपनेको ब्रह्म मान करके सर्व व्यापक ठहराता है, सो भूलमें ही पड़ा रहता है। और—

गुरु सम = कल्पनाके नेर = जब पारखी सद्गुरुके सन्मुखमें वा शरणमें आ करके बराबर यथार्थ परीक्षा हो जाती है, तब वह फिर कल्पनाके नजदीकमें भी कभी नहीं जाता है। निर्णय द्वारा भ्रम-कल्पना-से रहित हो जाता है। ब्रह्म-ईश्वरादिको कल्पना ही जान जाता है ॥

व्याख्या— इसलिये विवेकी साधु-गुरुका समाज, उनकी पञ्चाइतरूपी सत्सङ्गमें निर्णय करके प्रथम स्वमत-परमत वा शुद्धमत, अशुद्धमत सबोंका भेद, कसर-खोटको एक-एक करके जान लेना चाहिये। फिर स्वमतमें निर्णयसे निबेरा वा छान-बीन करके यथार्थ जमापद चैतन्य जीवके स्वरूपको ही अच्छी तरहसे जान लेना चाहिये। फिर हे शिष्य ! सब तरफसे मनको खैंच करके जमा पदमें ही ठहरावे। कल्पनाके नजदीकमें भी न जावे, सद्गुरुके उपदेशमें एक समान दृढ़ पुरुषार्थी होकर लगे रहे ! अथवा शुद्धमतमें गुरु पञ्चाइतके निर्णयसे यथार्थ निबेरा करके जीव जमा एकदेशी ठहराया है। और अबोध शिष्य तथा भ्रमिक गुरुवालोगोंने तो ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा आदिको सर्वमें व्यापक ठहराया है। परन्तु, पारखी सद्गुरुके समीप सत्सङ्ग-विचारमें वह बराबर परखनेपर कल्पनाके विस्तार वाणी जाल ही ठहरता है। अतः उसे परख करके त्याग देना चाहिये। भ्रम कल्पनाके तो निकटमें भी नहीं जाना चाहिये ! शिष्यको इसका भेद अच्छी तरहसे समझा देना चाहिये ॥ ८१९ ॥

दोहाः— मर्यादा जेहि जौन विधि ❀ बर्तें तौन प्रमान ॥
[३७५] जमा माँहि कछु फेर नहीं ❀ उज्ज्वल धर्म अरु ज्ञान ॥ ८२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

मर्यादा जेहि = } देखिये ! जड़ तत्त्वोंमें भी
जौन विधि = } जिसकी जैसी मर्यादा शक्ति, गुण, धर्म है, सो उसीके हद्द प्रमाण बर्ताव अनुसार कार्य हो रहा है। तैसे ही चारों खानियोंमें भी भोगका बर्ताव हो रहा है। अतएव मर्यादा भङ्ग कभी भी नहीं करना चाहिये।

बर्ते तौन = } जिसकी जैसी मर्यादा है, उसी
प्रमान = } विधिसे बर्तना चाहिये। तहाँ गृहस्थीमें स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्रादिकी मर्यादा पालै, और साधुओंमें गुरु-शिष्य, स्वामी-दास, सेव्य-सेवककी मर्यादा रख करके उसी प्रमाणसे बर्तना चाहिये। और-

जमा माँहि = } गुरु शिष्यकी भिन्न-भिन्न
कछु फेर नहीं = } जीव जमामें तो कुछ फेर-फार, अदल-बदल, कमी-बेशी कभी नहीं होता है; जीव तो सदा एकरस, अखण्ड, नित्य, सत्य है। परन्तु, बोध-अबोधपनाका ही फरक है। इससे—

उज्ज्वल = } मर्यादाको पालन करके
धर्म अरु ज्ञान = } सद्गुरुकी सेवा टहल, बन्दगी, भक्ति करते रहनेसे मनुष्य धर्ममें शिष्यकी उज्ज्वलता होकर धर्म और ज्ञानका प्रकाश ही होता है, ऐसा जानो ! ॥

व्याख्या— जड़ चारों तत्त्वोंके कार्य-कारणोंमें और चारखानीके अनन्त देहधारी जीवोंमें भी जहाँ-जहाँपर जिस-जिसकी जैसी-जैसी मर्यादा, हद्द, नियम, प्राकृतिक कार्य, और स्वभाव लगा है, तहाँ-तहाँपर वैसे-ही-वैसे प्रमाणसे बर्तमानमें मर्यादा, कायदा-कानून, नियमके अनुसार ही सब स्वभावतः बरत रहे हैं वा चल रहे हैं, वैसे ही कार्य हो रहा है; सो तो प्रत्यक्ष ही है। इसलिये यहाँपर मनुष्योंने भी सामाजिक नियम धर्म-मर्यादा और नीति-मर्यादाको तोड़ करके वा छोड़ करके मनमाने बेमर्यादासे कदापि कभी कहीं नहीं चलना चाहिये। उससे सबको सब तरफ हानि ही उठानी पड़ेगी। इसलिये जिसकी जैसी मर्यादा है, उसी प्रमाणसे स्वार्थरूप गृहस्थाश्रममें और परमार्थरूप साधु आश्रममें भी बर्तना चाहिये। माता-पिताकी अदब-आज्ञा मान करके पुत्रोंने और पुत्रियोंने चलना चाहिये। परिवारोंमें बड़ोंकी मान-मर्यादा रखनी चाहिये। स्त्री-पुरुषोंको अपनी-अपनी मर्यादामें रहना चाहिये। दासने स्वामीको माने, विद्यार्थियोंने शिक्षक गुरुको माने; और गृहस्थोंने साधु-गुरुको श्रेष्ठ करके माने, शिष्योंने गुरुकी आज्ञाको पालन करै, अदब रक्खे इत्यादि प्रकारसे अपनी-अपनी मर्यादाको सबोंने पालन करते हुए चलना चाहिये। व्यवहारमें शुद्ध चालसे बर्तना चाहिये। मर्यादा पालन करनेसे सबोंको लाभ ही होता है। यद्यपि जीव जमामें तो किसीकी भी कुछ फेरफार घटी-बढ़ी नहीं है और ऐसा कभी होता भी नहीं है; जीव तो तीन कालमें एकरस नित्य, सत्य, अखण्ड है, और वैसा ही सदा रहता भी है। तथापि मनुष्य समाजमें नीति और धर्मकी मर्यादा पालन करनेसे मनुष्योंके धर्म और ज्ञानकी उज्ज्वलताकी वृद्धि होकर हृदय निर्मल हो जाता है। फिर सद्गुरुकी दयासे सत् शिष्योंको पारख बोध होकर सब भव-बन्धन भी छूट जाते हैं। अतः गुरु-शिष्यकी धर्म मर्यादाको देह रहे तक पूर्णतासे पालन करते रहना चाहिये ॥ ८२० ॥

दोहाः— सारशब्द निर्णय सहित ❀ गुरुमुख मत सुप्रमान ॥
[३७६] अहै यथार्थ सम्वाद शुभ ❀ है विलासकी खान ॥ ८२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य !

सारशब्द = } पारखी सद्गुरुने सारशब्द द्वारा
निर्णय = } सत्य निर्णय करके सबका सार
सहित = } जनैया चैतन्य जीवको ही सत्य ठहराये हैं, सोई निर्णयको सद्भावसे पारख दृष्टिके सहित यथार्थ समझ करके सर्वोपरि जानना चाहिये।

गुरुमुख मत = } सो गुरुमुख सारशब्दसे सच्चा
सुप्रमान = } मत पारख सिद्धान्तको ही शुद्ध, प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानना चाहिये। पारखी सद्गुरुका मत ही अच्छी तरहसे

प्रमाण करके मानने योग्य है।

भई यथार्थ = पारखी सद्गुरु और शिष्यका
सम्वाद शुभ = प्रश्नोत्तररूप वार्तालाप यथार्थ सत्यासत्यका निर्णय निष्पक्ष होनेसे, सो सम्वाद शुभ है, यानी कल्याणकारी है। सोई प्रकरण इसमें वर्णन किया गया है।

है विलास— = सद्गुरुके सत्सङ्गका बोध जो
की खान = है, सो नरजीवोंको चारोंखानी-से मुक्त करानेवाला शान्ति, निवृत्ति, निराश जीवन्मुक्तिके सुख या विवेक-विलासरूप सुखकी खानमें पहुँचानेवाला है; ऐसा जानना चाहिये॥

व्याख्या— गुरुमुखसे अच्छी तरह प्रमाण किया हुआ मत सोई पारख सिद्धान्त शुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणवाला सच्चा है। वही सारशब्दके निर्णय सहित यहाँ वर्णन किया गया है। सो यह गुरु-शिष्यके सम्वाद शुभ और यथार्थ निर्णयका है। सत्सङ्गका विलास सुखकी खान है। सद्गुरुके सत्सङ्गमें जो मनुष्य विलास करते हैं, सो वे खानी-वाणीके सब जालोंसे छूट जाते हैं। अतः सत्सङ्ग-विचारमें ही सदा लगे रहना चाहिये॥ ८२१॥

दोहाः— हे शिष्य! तुम गुरु साधुमा ❀ अधिक प्रेम करु सङ्ग॥
[३७७] विमल बुद्धि सूझै तुझे ❀ मन माया को रङ्ग॥ ८२२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! तुम = हे शिष्य! अब मैं तुम्हें
गुरु साधुमा = अन्तकी शिक्षा दे रहा हूँ, सो ध्यान रक्खो! पारखी सद्गुरु और विवेकी साधु-महात्माओंके घेरामें ही सदा रहा करो! और उन्हीं साधु-गुरुमें ही—

अधिक प्रेम = अत्यन्त विशेष प्रेम-प्रीतिके
करु सङ्ग = साथ सत्सङ्ग, टहल, सेवा, भक्ति, जीवन पर्यन्त किया करो! साधु समाजमें ही रहा करो! तब—

विमल बुद्धि सूझै तुझे = सत्सङ्गके प्रतापसे ही मल, विक्षेप, आवरण छूट करके तुम्हारी बुद्धि निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध हो जायगी। फिर तुम्हें सब बात यथार्थतः देखने वा जाननेमें आ जायगी। और—

मन माया- = मनःकल्पित ब्रह्म, आत्मा,
को रङ्ग = ईश्वरादि, तथा वेदादि वाणी गुरुवालोगोंकी कल्पनाका रङ्ग है; तथा स्त्री, पुत्र, धनादि विषयोंका रङ्ग है। ये वाणी-खानी ही महान् नशीली जहर हैं। यह जान करके हटोगे, तो फिर इसका रङ्ग तुम्हें कदापि नहीं लगेगा॥

व्याख्या— इसलिये हे प्रेमी शिष्य! अब तुम जीवन पर्यन्त पारखी साधु-गुरुमें ही सत्य श्रद्धा, भक्ति, अधिक प्रेम लगा करके सन्तोंके सङ्ग-साथमें रहकर सत्सङ्ग ही करते रहो। उसीके प्रतापसे मल, विक्षेप और आवरणसे रहित होकर तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो जायगी। फिर तुम्हें पारखदृष्टिसे मन-मायाके रङ्ग, चाल-ढाल, वासनाकी नशा आदि सब सूझ करके यथार्थ देखनेमें आ जायगा। फिर उसे त्याग करके सबसे न्यारा होकर निजपद पारख स्थितिमें ही असङ्ग, निर्विकार होकर रहना चाहिये॥ ८२२॥

दोहाः— हे शिष्य! गाफिल ना रहो ❀ हन्त कल्प ना लेव॥
[३७८] सदा दृष्टि निर्मल करो ❀ साधुन गुरुपद सेव॥ ८२३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—

हे शिष्य! = हे शिष्य! विषय और ब्रह्मके
गाफिल = आनन्दोंमें आसक्त होकर तुम
ना रहो = कभी गाफिल, बेहोश या बेभान-में मत् रहो! पारख विचार छूटनेपर गाफिली होती है। इसलिये पारख विचार-को कभी मत् छोड़ो, सावधान हो रहो।

और—

हन्त कल्प = विश्व-तैजसादि पाँच अहङ्कार,
ना लेव = ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना, विषय भोगादि अध्यास, इनको एकदमसे छोड़ दो! कभी किसी हालतमें भी हन्ता-ममता मत् लेना, निरहङ्कारी बन करके शिष्य भावमें ही रहो! और—

सदा दृष्टि = निर्मल करो = सदाकाल समझ-बोधसे मनकी दृष्टिको निर्मल, शुद्ध, साफ किया करो ! मनमें मानन्दीकी कचरा कभी लगने न पावे, सो ध्यान, रक्खा करो ! अपने गुण-अवगुणको देखा करो !

साधुन = गुरुपद सेव = साधु समाजमें रह करके पारखी साधु-गुरुकी सेवा, सत्कार, बन्दगी, चाकरी करते हुए जीवन सफल करो ! गुरुपद पारखमें अटल हो रहो ! ॥

व्याख्या— हे शिष्य ! तुम्हें मेरा अब अन्तिम उपदेश यही है कि, कभी किसी समयमें भी विचारसे उतर करके गाफिल होकर मत् रहो। ब्रह्म-जगत्में आसक्ति करके मोहित मत् होओ। पञ्च विषय और पञ्च अभिमानका अहङ्कार तथा भ्रम-कल्पना आदि विकारोंको भी कभी ग्रहण मत् करो। भूल करके भी मिथ्या हन्ता-ममता आदिको मत् लेओ। निज बोध विवेक-दृष्टिको सदा निर्मल शुद्ध, साफ करो ! और साधुओंकी तथा गुरुपदकी सेवा करते रहो। शक्ति रहते हुए सेवा-पदसे कभी विमुख मत् होओ। सदा सहर्ष गुरुपदका ही सेवन करो। इसतरह तुम भी अपना कल्याण करके जीते ही इसी नर जन्ममें मुक्त हो जाओ ! यही सत्य उपदेश अन्य श्रद्धालु मनुष्यों-को भी देओ ! ॥ ८२३ ॥

दोहाः— गुरु बोधित गुरुबोध यह * पाये शिष्य विश्राम ॥
[३७९] रामरहस गुरुकी दया * भौ गुरुबोध तमाम ॥ ८२४ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो !

गुरु बोधित = गुरुबोध यह = प्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने प्रकाश किया हुआ पारख बोध जो है, सो पारखी श्रीसद्गुरुदेवने सत्-शिष्योंको जो बोध किये वा बोध दिये, सोई यह 'गुरुबोध' सद्ग्रन्थ मैंने कहा हूँ !—

पाये शिष्य = विश्राम = यथार्थ सत्य पारखका उपदेश स्वरूपका बोध पा करके जिज्ञासु शिष्योंने अन्तमें पारखबोधके प्रतापसे विश्राम, स्थिति, शान्ति, जीवन्मुक्तिपदको भी पाये या उस पदको प्राप्त हो गये। तब वे सदाके लिये काल-जालोंसे छूट गये।

रामरहस = गुरुकी दया = यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहस साहेब कहते हैं— बन्दीछोर पारखी सद्गुरुकी दयासे सत्य चैतन्य जीवको पारख रहस्यका बोध दृढ़ हुआ; अटल-अचल स्थिति प्राप्त हुई।

भौ गुरुबोध = तमाम = सो सद्गुरु और शिष्यका सम्वाद या प्रश्नोत्तररूपमें लिखित यह सद्ग्रन्थ 'गुरुबोध'भी यहाँपर आकर सम्पूर्णरूपसे समाप्त भी हो गया है। अर्थात् सद्गुरुकी दयासे यह चतुर्थ सद्ग्रन्थ सम्पूर्ण हो गया है ॥

व्याख्या— पारखी सद्गुरुका बोध किया हुआ इस 'गुरुबोध' का सार पारख बोध पा करके सत् शिष्यने भी निस्सन्देह होकर निजस्वरूप स्थितिके विश्रामको सद्गुरुकी दयासे प्राप्त कर लिया। स्वयं पारख स्वरूपमें अटल, अचल, शान्त, स्थिर होकर जीवन्मुक्त हो गया। शिष्यका पूर्ण समाधान हो गया। सद्गुरुको त्रयबार बन्दगी करके शिष्य विदा हुआ। यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— पारखी श्रीसद्गुरुदेवकी ही दयासे यह सद्ग्रन्थ लिखा गया, सो यहाँपर आकर अब यह 'गुरुबोध' सद्ग्रन्थ भी सम्पूर्ण (समाप्त) हो गया है। साथ ही प्रश्नोत्तर भी तमाम = पूरा हो गया है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ ८२४ ॥

दोहाः— गुरु शिष्यको सम्वाद यह * बहु विधि कहा विचार ॥
[३८०] याकी पूरण परख करी * यथा भक्ति उरधार ॥ ८२५ ॥

॥ * ॥ इति श्री पारखनिष्ठ श्रीरामरहससाहेब विरचित— पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थे—
चतुर्थ ग्रन्थः गुरुबोध पारख विचार मूलग्रन्थः प्रथम भाग समाप्तः ॥ ४ ॥ * ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!
गुरु शिष्यको = जो-जो प्रश्न शिष्यने करता
सम्वाद यह = गया, सो उस-उस प्रश्नका यथार्थ उत्तर देकर सद्गुरुने समाधान किये, ऐसे गुरु-शिष्यके परस्पर वार्तालाप-रूपमें यह सद्ग्रन्थ बना है।
बहु विधि = बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक
कहा विचार = सार सिद्धान्तका पारख विचार इसमें कहा गया है, सो इसीको सदा विचार-विवेक करते रहो।
याकी पूरण = सो इसी गुरुबोध सद्ग्रन्थकी
परख करी = सहायतासे खानी-वाणीकी पूर्ण परीक्षा करके ब्रह्म, कल्पना, भ्रम और विषयोंका परित्याग करके पारख बोधको धारण करो! अपने जीवको बन्धनोंसे मुक्त करो! और—
यथा भक्ति = सत्यबोधदाता पारखी साधु-
उरधार = गुरुके यथार्थ बोधभाव, गुरु-भक्ति, प्रेमनिष्ठा श्रद्धासे सेवा, दासत्व भाव सहित देह रहेतक सेवा-भक्ति पूर्णरूपसे करते हुए गुरु-उपदेशरूप आज्ञाको पालन करो! पारख बोधको अन्तःकरणमें धारण करो! ऐसे इस नरजन्मको सफल करो! महान लाभको प्राप्त करो! ॥

व्याख्या— पारखी श्रीसद्गुरु और जिज्ञासु शिष्यके सम्वाद वा वार्तालाप, प्रश्नोत्तर और शङ्का-समाधानके रूपमें यह सद्ग्रन्थकी रचना हुई है। बहुतप्रकारसे विधिपूर्वक सद्गुरुके सत्य निर्णय-का विचार इसमें वर्णन करके कहा गया है। सो इसे अच्छी तरहसे बारम्बार विचार-विवेक करके समझ-बूझ लेना चाहिये। और इसीका पूर्ण पारख करके सम्पूर्ण ही सद्रहस्यको जान लेना चाहिये। भ्रम-भूलको मिटाकर सत्य चैतन्य जीवके स्वरूपको अपरोक्ष करके जान लेना चाहिये। और कल्पना तथा विषयादि बन्धनके हेतुका परित्याग कर सत्य-विचार आदि हंसदेहकी शुद्ध रहनीको अपनेमें पूर्णरूपसे धारण कर लेना चाहिये। और यथार्थ सत्य, पारख बोधदाता श्रीसद्गुरुकी भक्ति भाव-को यथार्थ रीतिसे देह रहेतक हृदयमें बोध-भावके साथ धारण किये रहना चाहिये। और अन्त-तक सद्गुरुके आज्ञारूप उपदेशको पालन करते रहना चाहिये। इसीप्रकारसे करनेसे सबोंका हित-कल्याण होगा; ऐसा जान लेना चाहिये। श्रीसद्गुरुदेवकी दयासे गुरुबोध सद्ग्रन्थकी व्याख्यारूप खुलासा भावार्थ भी सम्पूर्णरूपसे यहाँपर आकर समाप्त हो गया है, सो जान लीजिये! ॥ ८२५ ॥

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत— चतुर्थ ग्रन्थ समाप्तिकी सद्गुरु पद वन्दना ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

सत्य प्रेम भक्ति सहित। गुरु पद बन्दौं आज ॥ सद्गुरु कबीरसाहेब! पारख धाम विराज ॥१॥
पूरणसाहेब पारखी। हमरे प्रथमाचार्य ॥ रामरहस त्रय बन्दगी। रामस्वरूप हिय धार्य ॥२॥
ज्ञानशिरोमणि पारखी। सन्त शिरोमणि भूप ॥ सद्गुरु बन्दीछोर हैं। बोध्यो परख स्वरूप ॥३॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

पारख बिना गति है नहीं, गति मुक्ति ठौर ठिकान है ॥ निजरूपमें स्थिति हो जहाँ, जीवन्मुक्ति प्रमाण है ॥
चौमुक्ति स्वर्गादि सभी, ब्रह्म ईश्वर कल्पना ॥ गुरुबोध पाये रामस्वरूप, भ्रम भूल मिटिगो जल्पना ॥४॥

॥ ❀ ॥ कवित्तः— ॥ ❀ ॥

गुरुजीसे पायो जब, पारखको भेद तब। खानि वाणि परखके, त्याग किन्हों सब ही ॥
मानन्दी मिटाय दियो, भ्रमको छुड़ाय लियो। धोखाहुँ निवारि करि, हंस स्थिति तब ही ॥
विषयके चाह सब, परखिके त्याग दिन्हों। जन्मृतिके हेतु लखि, भिन्न रह्यो भव ही ॥
माया मोह जाल दृश्य, द्रष्टा दृष्टि भिन्न करि। रामस्वरूपदास आज, जीवन्मुक्ति अब ही ॥५॥

॥ ❀ ॥ सवैयाः— ॥ ❀ ॥

गुरुबोध पाये बन्ध मिटि सब, पारख करि करि धोख छुटै ॥
पारखि गुरु शरणागति सङ्गत, पारख मिलि सब भर्म टुटै ॥

स्वयंप्रत्यक्षज्ञानउदयजब,तमअज्ञानआवर्णमिटै ॥ रामस्वरूपदास ठहर पद,सर्वोपरिगुरुबोधभिटै ६

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

ऐसा यह गुरुबोध । रामरहस साहेब कह्यो ॥ लिखा ग्रन्थ सब शोध । टीका सम्पूरण भयो ॥७॥
साँचे सोई मूल । तैसा लिखिया अर्थ सब ॥ निज सिद्धान्त अनुकूल । रामस्वरूप टीका सकल ॥८॥
अवलोकन युत लक्ष । सो समझे सब भेदको ॥ पारख दिव्य सुरक्ष । रामस्वरूप सो सर्वदा ॥९॥
चार खानि बन्धान । गुरु पारख बिन जीव सब ॥ जगमें ऐंचातान । गुरुवा नारी चौ तरफ ॥१०॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

लीजिये गुरुबोधको, गुरुबोध जगमें है बड़ा ॥ जाननेमें आवता, एक अनेक वाणी मड़ा ॥
ब्रह्म ईश औ आतमा, मानि-मानि खुदा लड़ा ॥ भेद पाये रामस्वरूप, गुरुकी दया मुक्ति चढ़ा ॥११॥

॥ ❀ ॥ गुरुबोध सद्ग्रन्थमें शिष्य प्रश्नका क्रमशः तालिका वर्णन ॥ ❀ ॥ साखीः—॥ ❀ ॥

प्रथममें शिष्य अबोध । प्रश्न कियो गुरु बोध हित ॥ निजस्वरूप औ देह पुनि । एक अनेक विचार चित ॥१२॥
ब्रह्म भये थिति क्यों नहीं ? शङ्का प्रश्न सो दोय ॥ ब्रह्म भये चौरासि कस ? तीसर प्रश्न है सोय ॥१३॥
परख कौन टकसारकी ? स्वतः जीव कैसे हता ॥ जमा एक पूछत भया । चार पाँच षट सो कहता ॥१४॥
काल दयाल कैसे भया ? साधु गुरु दुई भेद ॥ भेद सुनी शङ्का भया । सात आठ नव छेद ॥१५॥
गुण लक्षण चौरासी केहि ? मानुष भिन्न सो कैसे ?॥ मानुषरूप कौने अहै । दशते बारह ऐसे ॥१६॥
कस लक्षण पहिचानिये ? मानुष प्रथमारूप कस ?॥ काहे थिरपद मनुष्य स्वतः । तेरते पन्द्रह प्रश्न अस ॥१७॥
हंसन झाँईं भास कस ? कैसे अस्ति हंस तन ?॥ हंस विहार प्रथमा कहु । सोल-अठारह याहि गन ॥१८॥
हंस लक्ष सञ्चार कस ? लघुपदते गुरु प्राप्त कस ? सिखापन धर्म सो प्रौढ़ रहै । उन्नीस, बीससो प्रश्न अस १९
गुरुउपदेश अनुक्रम । पूछा शिष्य प्रवीन ॥ सद्गुरु समझाये सकल । युक्ति निर्णय चीन ॥२०॥
पूछा बाइस प्रश्नमें । थिरपद आहि कौन ?॥ हंस स्वतः पद प्राप्ति हो । गुरु बताये तौन ॥२१॥
तेईस प्रश्न सो अन्तिम । लक्षण प्राप्ति व्यौहार ॥ देह रहे तक हंसके । वर्तमान कहु सार ॥२२॥
काल कलासे बिलगिके । निजपद कैसे हंस ?॥ भेद बताये साहेब ! निर्णय बोध्यो हंस ॥२३॥
सद्ग्रन्थ गुरुबोधमें । प्रश्न तेईसके सार ॥ एक एक निर्णय करि । गुरु पारख उजियार ॥२४॥
रहनि लखाई भ्रम नशि । बन्दीछोर कबीर ॥ पारखी गुरु गुरुबोध दै ! मेट्यो कालके पीर ॥२५॥
गुरुकी दयाते आज यहीं । ग्रन्थ हुआ सो समाप्त ॥ रामस्वरूप टीकासहित । बोध लहो पर्याप्त ॥२६॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

पारखी गुरुके शरण हो । शिष्य कीन्ह सन्देह ॥ सब दुविधाको मिटाइया । सो गुरुबोध है येह ॥२७॥
सत्य असत्य लखायके । रहनि हंस ठहराय ॥ गुरु बताये उपदेश विधि । जाते पारख पाय ॥२८॥
रामरहस गुरु साहेब । कह्यो गुरुबोध तमाम ॥ अष्ट शत पचीस पद । पूर्णग्रन्थ यहि ठाम ॥२९॥
श्रीकबीर मत पारख । बीजक ज्ञान अगाध ॥ सो प्रमाण करि पारखी । सत उपदेशैं साध ॥३०॥
गुरुमुख पढ़ि गुनि यथाविधि । बोध हुआ जो मोहि ॥ रामस्वरूप दास सोई । हित विचारि लिखि वोहि ॥
यथा भाव पढ़ि मूलते । सबको बोध न होय ॥ याते यह टीका कियो । बिन प्रयास समझोय ॥३२॥
पद अनुसार यथार्थ ही । अर्थ लिखा है सोय ॥ जो पढ़िहैं सत बोध तिन्हें । होय न संशय कोय ॥३३॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

सद्गुरु मङ्गल धाम । सबहिनके हितकारि प्रभु ! ॥ बार बार प्रणाम । गुरु चरणनमें शीश धरि ॥३४॥
रामस्वरूप हौं दास । साहेब ज्ञान शिरोमणि ॥ मोको और न आश । निज-पर हित हो गुरु दया ॥३५॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

गुरुके गुण नित गाइये । शिक्षा धरि हिय माँहि ॥ रामस्वरूप गुरुबोधते । जन्म सफल हो जाँहि ॥३६॥
युगसहस्र ऋषि सम्वत । श्रावण मङ्गल दश तिथि ॥ एक नौ पचास ईसवी । माह अष्ट दिन बाइस इति ३७

॥ ❀ ॥ इति श्रीपारखनिष्ठ पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेब विरचित—मूल पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थका—चतुर्थ ग्रन्थः 'गुरुबोध' नामक ग्रन्थके प्रथम भागकी—रामस्वरूपदास, अनुवादित—शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

॥ ❀ ॥ पारखनिष्ठ श्रीरामरहससाहेबकृतः— ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ गुरुबोध सद्ग्रन्थके द्वितीय भागरूप मूल "सारशब्द निर्णय" सद्ग्रन्थकी— ॥ ❀ ॥

[शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ अथ "सारशब्द निर्णय" नामक, सद्ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

॥❀॥ अथ टीकाकार कृत— श्रीसद्गुरु पद वन्दना— मङ्गलाचरण प्रारम्भः ॥❀॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

हो कबीर पारखी गुरु। त्रिविधि शब्द करि छीन॥ सारशब्द निर्णय कियो। वन्दौं राम प्रवीन॥१॥
रामरहस गुरु साहेब। रामस्वरूप हूँ दास॥ जैसे भाव है आपके। तैसे करौं प्रकाश॥२॥
बोध सोई गुरु आप हो! अबोध हम सब दास॥ सारशब्द परखाय कर। मेटो यमका त्रास॥३॥
द्वितीय भाग गुरुबोधका। सारशब्द सद्ग्रन्थ॥ गुरुमुख निर्णय वर्णन। सारसमग्र सुपन्थ॥४॥
रामस्वरूप टीका लिखौं। गुरुकी दयाते आज॥ सद्गुरु पद त्रय बन्दगी। पारख हृदय विराज॥५॥

॥ ❀ ॥ इति टीकाकार कृत— श्रीसद्गुरु पद वन्दना—मङ्गलाचरण समाप्तः ॥ ❀ ॥

॥❀॥ अथ ग्रन्थकर्त्ताकृत-मूल सारशब्दनिर्णय सद्ग्रन्थः सटीक प्रारम्भः ॥❀॥

साखीः— सारशब्द पाये बिना * जीवहिं चैन न होय॥
[१] फन्द काल जाते लखि परै * सारशब्द कहिये सोय॥ १ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो! हे सन्तो! सुनो!—

सारशब्द= पाये बिना= पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयका उपदेश गुरुमुख द्वारा सत् शिक्षा पाये बिना 'मैं चैतन्य-जीव, ही सत्य हूँ!' यह यथार्थ पारख बोध नहीं होता है। सारासार शब्दोंका भेद जाना नहीं जाता है। इसलिये—

जीवहिं= चैन न होय= नरजीवोंको शान्ति-स्थिति, सुख-आराम और जीवन्मुक्ति भी पारख बोधके बिना कभी नहीं हो सकती है। इसीकारणसे सर्वप्रथम सद्गुरुका सत्सङ्ग करके सारशब्द निर्णयको जान करके सत्यका ग्रहण कर लेना चाहिये।

फन्द काल जाते लखि परै= जिस गुरुमुख वाणीसे कालरूप गुरुवालोग और नारियोंके फन्दारूप वेद वाणी, ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि तथा पञ्च विषयोंके भोग, नाना ऐश-आराम, आसक्ति महान् बन्धनका कारण, जिससे लख करके जानने-पहिचाननेमें आवे—

सारशब्द= कहिये सोय= सोई पारख निर्णयकी वाणी ही "सारशब्द" कहलाती है या वही सारशब्द कही जाती है। उसीसे सबका सार निज चैतन्य स्वरूपको जाना जाता है। सद्गुरुने शब्द द्वारा जो सबका सार पारख बोध कहा और परखाया है, उस पारखको ही अपना सत्स्वरूप जानो॥

व्याख्या— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'सारशब्द' कहिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सत्य उपदेश सद्ग्रन्थ बीजककी गुरुमुख वाणीको जान पाये बिना वा उसे समझे-बूझे बिना नरजीवोंको कभी चैन = शान्ति, सुख, सन्तोष एवं सन्देह रहित हो करके मुक्तिरूपी आराम हो नहीं होता है। सबका सार तो 'मैं चैतन्य जीव ही सत्य हूँ !' ऐसा ठीकसे जाने बिना चैन कहाँसे और कैसे होगा ? कभी असार धोखेके शब्दमें लगे हुएको चैन हो ही नहीं सकता है; और कालका फन्दा-रूप खानी जाल तथा वाणी जाल जिस गुरुमुख निर्णयकी वाणीसे लख पड़ता है वा उसका यथार्थ भेद जाननेमें आ जाता है, सो उसे ही 'सारशब्द' कहते हैं। बीजक सिद्धान्तके अनुकूल यथार्थ निर्णयके सद्वचन ही सारशब्द कहलाते हैं। जिससे सार पारखबोध पा करके नरजीव सब भ्रम-भूलके फन्दाओंसे छूटकर निर्बन्ध होकर मुक्त हो जाते हैं, सोई 'सारशब्द' है। ऐसा जान लीजिये ! ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

१. सारशब्द निर्णयको नाम * जाते होय जीवको काम ॥ २ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! सुनो !—

सारशब्द निर्णयको नाम = जिससे जड़ और चैतन्य-का यथार्थ निर्णय परीक्षा हो करके सत्यासत्य, सारासारका बोध हो, उस वाणी या शब्दका नाम 'सारशब्द निर्णय' है। उसको गुरुमुख वाणी भी कहते हैं। उसीसे नाम, रूप, गुण, सत्य-मिथ्या-का सच्चा बोध हो जाता है।

जाते होय जीवको काम = जिससे खानी-वाणी आदि सर्व बन्धनोंसे निवृत्त होकर नरजीवका मुख्य कल्याणरूप कार्य पूर्ण हो जाता है। सद्गुरुके पारखबोधमें स्थिति होनेसे जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिका काम भी सिद्ध समाप्त और पूर्ण हो जाता है ॥

व्याख्या— उसका और खुलासा यही है कि, सत्य निर्णयका दूसरा नाम ही 'सारशब्द' है। जिसके द्वारा जड़-चैतन्यका यथार्थ रीतिसे निर्णय होता है। 'नाम' कहिये पारखबोधकी प्राप्ति होती है। सार-असार, सत्य-असत्य, बन्धन-मुक्ति, हानि-लाभ इत्यादिके समस्त भेद मालूम हो जाते हैं; तथा मोटी-झीनी मायाके जालोंके फन्दाओंसे छूटकर मुमुक्षु नरजीवोंके हित-कल्याण-रूप मुक्तिके काम वा कार्य सिद्ध हो जाते हैं। जीवके स्वधर्म पालन करनेका काम पूर्ण हो जाता है। पारख बोध प्रत्यक्ष होकर सब सुख प्रगट हो जाता है ॥ २ ॥

२. सारशब्द कहिये टकसार * त्रिविधि शब्दको परख विचार ॥ ३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

सारशब्द कहिये टकसार = बीजक सद्ग्रन्थकी निर्णय-वाणीको ही 'सारशब्द टकसार' कहते हैं। सोई पारखदृष्टि सत्सङ्गमें पारखी सद्गुरु कह करके समझाते हैं; और 'टकसार' कहिये सच्चा-सार तो पारख ही है। सो सत्य शब्दसे सबका सार सत्स्वरूप जीवको परखाते हैं। जीव ही सत्य है, ऐसा बतलाये हैं।

त्रिविधि शब्दको परख विचार = जीवमुख, मायामुख, और ब्रह्ममुखकी वाणी; द्वैत, अद्वैत, तथा विशिष्टाद्वैतके सिद्धान्त; कर्म, उपासना, और ज्ञानका मार्ग; काम, क्रोध, और मोहके जाल; काल, सन्धि, और झाँईं का चक्र इत्यादि तीन-तीन प्रकारके शब्दोंकी परीक्षाका यथार्थ विचार बीजक-सद्ग्रन्थमें किया है। सो सत्सङ्गमें ठहर करके पारख विचार करना चाहिये ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य वचन टकसाररूप बीजकका, खरा-खोटाकी पहिचान करानेवाला गुरुमुख निर्णय जो है, सोई 'सारशब्द' कहलाता है। और टकसाररूप बीजकमें गुरुमुख वाणीको सारशब्द ही कहा है। सो सत्सङ्गरूपी टकसारमें पारखी सन्त अच्छी तरहसे

परखा करके सारशब्दको ही कहते हैं। पारख बोधको समझा देते हैं। जिससे पारख द्वारा त्रिविधि शब्दोंकी परीक्षा करके सारासारका विचार होता है। अर्थात् तत्, त्वं, असि; काल, सन्धि, झाँई; कर्मादि तीन, द्वैतादि तीन, क्रोधादि तीन, इत्यादि सो जीवमुख, मायामुख और ब्रह्ममुखकी बाणी त्रिविधि शब्द कहलाता है। सो उसको परख करके भ्रम मिटाकर— 'जनैया चैतन्य जीव ही सत्य है; ऐसा विचार पारख करनेसे हो जाता है ॥ ३ ॥

३. सारशब्दको अङ्ग विचार * दूजे शील तीजे दृढ़ सार ॥ ४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

सारशब्दको = सर्वाङ्गसे सारशब्दको ही
अङ्ग विचार = ग्रहण और धारण करना चाहिये। तहाँ सारशब्दके सर्वाङ्ग भागोंका वर्णनमें पूरा-पूरा चार भाग हैं। उसका विचार सुनिये! 'जीव ही सत्य सार है', ऐसा समझना, पहला विचाका भाग है।

दूजे शील = दूसरा भाग शील-सन्तोष
तीजे दृढ़ सार = धारण करनेका है। तीसरा भाग दृढ़ता, धीर, वीर, गम्भीरता धारण करके सारभागको लेकर असारका परित्याग करना है ॥

व्याख्या— तहाँ सारशब्दका मुख्य अङ्ग-स्वरूप, गुरु-विचार है। उसे सर्वाङ्गसे विचार पूर्वक ग्रहण करना चाहिये। प्रथम अङ्गमें सारासार, नित्य-अनित्य, साँच-झूठ, ग्राह्य-त्याज्य, हानि-लाभ, हित-अहित इत्यादिका सत्सङ्गमें ठहर करके यथार्थ विचार करै, और जीव सत्य है, ब्रह्म-ईश्वरादि असत्य है। ऐसा गुरु-विचारसे निश्चय करके जाने। दूसरा अपनेमें शील=नम्र, मृदु, कोमल, सरल, शान्त, सन्तुष्ट, सुशील ऐसे शुभ सद्गुणोंको धारण करे। तीसरा अपनेमें दृढ़ता, गम्भीरता, शूर-वीरता, हिम्मत, पुरुषार्थ, निर्भयता धारणकर निजपदमें मजबूत रहै। यही नर जीवनमें सार है, हितकर है। अतः सद्गुणोंके सार भागोंको ही सम्पूर्ण ग्रहण करके उसे धारणकर लेना चाहिये ॥ ४ ॥

४. चौथे दया धरै चित्त माँहिं * बिना दया कारज कछु नाहिं ॥ ५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चौथे दया = चौथे भागमें 'निज दया'
धरै चित्त माँहिं = और 'पर दया' को ठीक रीतिसे पालन करते हुए हमेशा चित्तमें दयाको ही धारण करै।

बिना दया = हे भाई! दयाको लिये बिना तो
कारज = धर्म और मुक्तिका कार्य वह
कछु नाहिं = तो किसी हालतमें भी किसीकी कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकती है। अतएव शक्ति अनुसार छोटे-बड़े देहधारी प्राणियों-को बचाते हुए अपने कल्याणके लिये भीतर-बाहरसे पूर्णदयाका पालन करना चाहिये। [इसके बारेमें विशेष व्याख्या मानुष विचारके चौपाई १९में की गई है, वहाँपर देखिये!] ॥

व्याख्या— मनुष्योंमें चौथा सार भाग 'दया' है। अतः मुमुक्षुओंने चित्तमें पूर्णतासे दयाधर्मको ही धारण कर लेना चाहिये। अपने जीवपर दया रख करके भव-बन्धनोंसे छुड़ानेका सत्पुरुषार्थ करै। और काया, वाचा तथा मनसे दूसरे सब जीवोंको दुःख न दे करके रक्षा करते हुए पर दयाका पालन करना चाहिये। बिना दयाके तो कल्याणरूप मुक्तिका कार्य कुछ भी पूर्ण हो ही नहीं सकता है। इसीसे शक्ति अनुसार देह रहेतक दयाधर्मको हृदयमें धारण किये ही रहना चाहिये ॥ ५ ॥

५. पहिले त्यागै पशुवत धर्म * जाते मिटै त्रिविधिको भर्म ॥ ६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

पहिले त्यागै = सर्व प्रथम मनुष्य देहमें षट्
पशुवत धर्म = पशुधर्मः— छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह, इनकी आसक्ति-को त्यागै, दया धर्मको पालन करै, स्वभावको सुधारै, पशुवत् आचरण न करै, धर्माचरण करै, पूर्वके पशु लक्षण सब त्यागै। उसमें भय, मोह, तथा मैथुनको एकदम त्याग करके

फिर काम, क्रोध, मोह-ममताको भी मिटाओ !

जाते मिटै = त्रिविधि-को भर्म = जिससे पशु, अण्डज, और उष्मज-ये तीन खानीके चौरासी योनियोंका भ्रमणा जन्म-मरण, गर्भवाससे छूट जाओगे। और त्रिगुण खानी जाल तथा तत्त्वमसि आदि वाणी जालोंके भ्रम, कल्पना, अध्यासको मिटानेके लिये जो सद्गुरुके शरणमें जाते हैं, उनके ये सब भ्रम सद्गुरुकी दयासे मिट जाते हैं ॥

व्याख्या— प्रथम नर देहमें सच्चा मनुष्य वा सद्गुणधारी हंस होनेके लिये पशुवत् धर्ममें छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह, इन षट् पशुधर्मोंके विकारको त्याग करै। तहाँ मैथुन, भय, मोहका तो सर्वथा परित्याग करै; और छाजन, भोजन, निद्रामें अशुद्ध भागको त्याग करके शुद्ध भागको उचित मात्रामें ग्रहण करना चाहिये। जिससे त्रिविधि खानी-वाणीकी भ्रम-भूल मिट जाय, भ्रमसे रहित हों, वैसा सत्पुरुषार्थ करै। अर्थात् विषयासक्तिका त्याग होनेसे तीन खानीकी भ्रमणा मिट जाती है। अतः त्रिगुण 'तत्त्वमसि' आदिके भ्रमको भी विवेक करके मिटाना चाहिये ॥ ६ ॥

६. पहिले आहि विचारको अङ्ग * सो सुनि लेहु यथार्थ प्रसङ्ग ॥ ७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पहिले आहि विचारको अङ्ग = सबसे पहिले मनुष्यको विचारके अङ्गका अन्तःकरणमें धारण करना चाहिये। यहाँ विचारका अङ्ग या भाग पहला है। उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी खुलाशा करके कहता हूँ—

सो सुनि लेहु यथार्थ प्रसङ्ग = सो भी यथार्थ रीतिसे यहाँ-पर, प्रसङ्ग या प्रकरणके अनुसार सुन लीजिये ! विचार कर लीजिये ! और वास्तविक स्वरूपको जान लीजिये ! ॥

व्याख्या— हंस वा मनुष्य देहमें शुद्ध रहनीके लिये प्रथम अङ्गमें विचारको धारण करना चाहिये। सद्गुणोंमें प्रथम निजस्वरूपका विचार करनेका है। सो इस प्रसङ्गमें उसका निर्णय भी यथार्थ रीतिसे सुन लीजिये ! तहाँ कोई कार्य करनेके पहिले उसके आदि-अन्तके फलको विचार कर लेना चाहिये। हृदयमें पूर्ण विचार करनेसे जब निश्चय होवे कि, यह कार्य अच्छा है, हितकर है, तभी उसे करना चाहिये। समय-समयपर विवेकी, विचारवानोंके सत्सङ्गके प्रसङ्गमें जाकर, सो उनके सत्य निर्णके उपदेशको चित्त लगा करके श्रवणकर लेना चाहिये। फिर उसी मुताबिक मनन करके सत्यासत्यका विचार करते रहना चाहिये ॥ ७ ॥

७. साँच झूठ जो है संसार * साँच आतमा झूँठ पसार ॥ ८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

साँच झूँठ जो है संसार = संसारमें एक 'सच्चा' है, दूसरा 'झूठा' है। तहाँ जड़ चार तत्त्व और अनन्त चैतन्य जीव सत्य हैं; जगत्कर्त्ता ईश्वरादि माना हुआ झूठा, धोखामात्र है। जो है सो सबोंको मानन्दी करनेवाला यह अपना स्वरूप जीव ही सत्य है। परन्तु, निज स्वरूपका बोध न होनेसे सन्देहसे भ्रमिक हो रहे हैं, बिना विचार। और—

साँच आतमा झूँठ पसार = गुरुवालोगोंने एक ब्रह्म या आत्माको सत्य ठहरा करके और समस्त जगत्के पसारा चराचरको झूठा मृगजलवत् प्रतीतिमात्र कहा है। सो तो वाणी-कल्पना होनेसे झूठका ही पसारा है। यानी जीव ही सत्य है और आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि माना हुआ झूठेका पसारा वा कल्पनाका विस्तार है, सो जानिये ! ॥

व्याख्या— वैसे तो संसारमें साँच और झूठ जो है, सो भिन्न-भिन्न ही है। परन्तु, भ्रमिक गुरुवालोगोंने उसका सत्यन्याय-निर्णयसे कुछ भी विचार न करके 'एक आत्मा ही सत्य है और सब जगत्का पसारा झूठा है', ऐसा कल्पना करके कहा है, सो कथन असत्य है। क्योंकि, संसार तो

स्वतः अनादि है। तहाँ अनन्त चैतन्य जीव और चार जड़तत्त्वोंके कार्य-कारण भाग प्रत्यक्ष सत्य ही हैं। और माना हुआ जगत्कर्त्ता, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि तथा आकाश शून्य होनेसे, ये सब अपदार्थ झूठ ही हैं। अतः एक आत्मा वा ब्रह्म सत्य जो माना है, सो भी झूठी वाणी-कल्पनाका ही पसारा है। गुरुवालोगोंने सोई भ्रमका पसारा किया है। उसे पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ परख करके जान लेना चाहिये। सत्य-असत्यका मिश्रण जो है, सोई संसार है। हंस वा पारखी होकर नीर-क्षीररूप सत्यासत्यका न्यारा-न्यारा निर्णयसे विचार करना चाहिये ॥ ८ ॥

८. साँच कियो झूठा महँ बास ❀ क्रम क्रम त्यागै झूँठकी आश ॥ ९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

साँच कियो = सो सत्य चैतन्य नरजीव ही भ्रमिक हुए, तो कल्पना करके कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि झूठामें वासना-रूप लक्ष्य लगाये तथा विषयादिमें वासना लगा करके झूठे गुरुवा कालरूप बने, शून्यमें स्थिति किये, इसीसे चौरासी योनियोंमें ही निवास किये।

झूँठा महँ बास =

क्रम क्रम त्यागै = जो तुम कल्याण चाहते हो,

झूठकी आश = तो हे नरजीवो! झूठा ब्रह्मानन्द, ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्तिकी आशा तथा स्त्री, पुत्र, धन प्राप्ति राज्यादि प्राप्ति कर सुख भोगकी आशा-आसक्ति इत्यादि समस्त झूठकी आशा या वासनाको परख करके क्रमशः एक-एक करके परित्याग करो, उन सबोंको हटा दो! ॥

व्याख्या— फिर भ्रम अध्यासवश साँच=मनुष्य जीव ही अपने सत्स्वरूपको भूल करके झूठामें निवास किया। तहाँ देह, गेह, पञ्च विषय, भोग-विलास, स्त्री-पुत्रादि परिवारोंमें तथा ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा इत्यादि मिथ्या धोखेमें बासा किया। तहाँ खानी-वाणीके महाबन्धनोंमें जकड़ गया। ऐसे साँच जीव ही झूठा=ब्रह्म-जगत्में बास किया, इसीसे बद्ध हुआ है। अतः मुमुक्षुओंको चाहिये कि, पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग-विचार करके क्रम-क्रमसे एक-एक करके झूठकी आशा ब्रह्मानन्द-विषयानन्द आदिकी आसक्ति त्यागे वा उसे त्याग देना चाहिये। प्रथम मोटी मायाकी आशा तथा आसक्तिको छोड़े। फिर झीनी मायाकी आशाको त्यागे। कोई भी आशा, बासा, कल्पनाको मनमें नहीं रक्खे। निराश-निवृत्त हो करके हंसपदमें ही स्थिर हो रहै ॥ ९ ॥

९. जीव अजीवको करै विचार ❀ खान पान उत्तम व्यवहार ॥ १० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! हे सन्तो! सुनो!—

जीव अजीवको = फिर चैतन्य जीव देहधारी अनन्त हैं। पाँच तत्त्व जड़ कारण-कार्यरूपसे हैं। ये दोनों ही स्वयं अनादि हैं। इनको उत्पत्ति-प्रलय करने-वाला कोई कर्त्ता नहीं है। इच्छा, क्रिया, अवस्था, ज्ञान और अमरता, इन लक्षणों वाले चैतन्य जीव हैं, और इन लक्षणोंसे रहित जो हैं, सो अजीव वा निर्जीव जड़ हैं। इसीको यथार्थ निर्णयसे विचार किया

करै विचार =

करै। और—

खान पान = खानी-वाणीके जड़ाध्याससे रहित होनेके लिये देहके

उत्तम = वर्तमान व्यवहारको भी उत्तम

व्यवहार = रीतिसे शुद्धतापूर्वक करै। नशीले, पदार्थसे रहित अंकुरजमात्र अमनियाँ करके हिंसा बचा करके जल छान करके खान-पान शुद्धतासे करना चाहिये ॥

व्याख्या— जीव चैतन्य तथा अजीव=जड़, निर्जीवके गुण-लक्षणोंका यथार्थ विचार करै, तथा जड़ासक्तिको परित्याग करै। फिर नित्यप्रतिके देह गुजारा आदिके व्यवहारमें विचार-पूर्वक खान-पानको उत्तम, शुद्ध, अहिंसक, नशीले पदार्थोंसे रहित रक्खे। क्योंकि, जैसा आहार-विहार होता है, तैसा ही बुद्धिपर भी असर पड़ जाता है। इसीसे अंकुरजमात्र छान-बीन करके शुद्ध अन्न-जलका सेवन करके धर्मका उत्तम व्यवहार रखना चाहिये ॥ १० ॥

१०. अस्ति नास्तिका निर्णय करै * पक्का सौदा हृदय धरै ॥ ११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

अस्ति नास्तिका निर्णय करै = सबोंकी मानन्दी करने वाले चैतन्य जीव ही अस्ति = सत्य हैं। और ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कल्पित नास्ति = मिथ्या धोखा मात्र है। ऐसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे यथार्थ सत्यासत्यका निर्णय करे।

पक्का सौदा हृदय धरै = सद्गुरुके उपदेश द्वारा न्याय-निर्णयसे जो पक्का वा सच्चा ठहरे, सोई सारपदार्थको ग्रहण करके पारख बोधको हृदयमें धारण किया करै। और ब्रह्म आदिकी प्राप्ति होगी, कहने वालोंके कच्चा = झूठे उपदेशको कभी भूल करके भी न लेवे ॥

व्याख्या— पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें ठहर करके अस्ति = चैतन्य जीव ही सत्य है; और ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवता इत्यादि नरजीवकी कल्पना नास्ति = असत्य, मिथ्या-धोखामात्र है। तथा विषय-भोगादि भी नाशवान् एवं असत्य ही हैं। इसीकी आशा, वासनासे जीव बन्धनोंमें पड़ते हैं। इसे विवेक-विचार करके अच्छी तरहसे निर्णय करै। फिर नास्ति = असत्यकी मानन्दी त्यागकर अस्तिपदमें स्थिति-ठहराव करै। और पक्की हंस देहकी रहनी लेवे, तथा सौदारूप उपदेश भी पक्का ही हो, सो सत्यन्यायका ही लेवे। "जीव ही सत्य है, और अनुमान, कल्पना, विषयादि मिथ्या है", ऐसा जानकर पारख बोधको ही हृदयमें धारण करै। इसप्रकारसे विचार करके सम्पूर्ण अङ्गोंको हृदयङ्गम करके ग्रहण और धारण करना चाहिये ॥ ११ ॥

११. दूजे शीलको वर्णन गूने * कर्कश वचन कहे ना सूने ॥ १२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

दूजे शीलको वर्णन गूने = सारशब्दके वर्णनमें दूसरा भाग शील, सदाचारका है। नम्रता, कोमलता, दीनता, धारण करके पारखी सद्गुरुके सद्उपदेशको श्रवण करै। फिर उसीको मनमें गुनै = मनन करै। विवेक किया करै, शीलवान् होवे। और—

कर्कश वचन कहे ना सूने = कड़वी बात, कठोर वचन, कल्पित वाक्य, बिना विचार-की बोली, धोखेकी वाणी कभी भी अपने मुखसे न कहे और दूसरोंकी कही हुई मिथ्या बात भी न सुने, चित्तमें उसे न लेवे। शून्य मिथ्या-ब्रह्मज्ञानको भी ग्रहण न करै ॥

व्याख्या— हंसदेहमें दूसरा शुद्ध तत्त्व शील है। अब शील गुणका लक्षण वर्णन करके जो मैं कहता हूँ, उसको मनन करके गुणन कर लेओ। तहाँ कर्कश = कठोर वचन, चिड़चिड़ा बात, व्यङ्ग वचन तथा झूठी वाणीको कभी अपने मुखसे भी नहीं कहे; और कोई दूसरे लोग ऐसे वचन कहें, तो उसे भी नहीं सुने। सदा सत्य वचन ही नम्रतापूर्वक कहे, और ऐसे ही सत्यन्यायके उपदेशको मन लगा करके सुनै; उसीसे ही हित होगा। ऐसे शीलको ग्रहण करै ॥ १२ ॥

१२. जामें होय जीव सुख काज * सोई करै होय निरब्याज ॥ १३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जामें होय जीव सुख काज = अभी तुम नरतनमें हो, इसवास्ते अपने और दूसरों-के जीवको भी सुख हो, कल्याण हो, जीवन सफल हो, सो ऐसा ही कार्य तथा सत्कर्म किया करो। जिससे कि, कार्य पूर्ण होकर जीवन्मुक्ति सुख प्राप्त होवे, ऐसा त्याग, वैराग्य, बोध धारण करो! ऐसे शुद्ध रहनी होना चाहिये।

सोई करै होय निरब्याज = जीव जमारूप मूल धनकी रक्षा करै और जीव जमाको छोड़कर बाकी जड़ हन्ता-ममता ब्याज सब नाशवान् हैं; उसकी मानन्दीसे रहित होकर सोई स्वयं स्वरूपकी स्थिति करै, जिससे जन्मृतिसे रहित हो; और कोई ब्याज लगने न पावे, जीव अभी मुक्त हो जावे, सोई करै ॥

व्याख्या— जिसमें निज-पर जीवोंको सुख-शान्ति और कल्याण प्राप्तिका शुभ काज, मुक्ति सहायक होवे, सोई सत्कर्त्तव्य बन्धनोंके व्याज वा अध्यासके व्याजसे रहित निर्व्याजरूपसे निर्बन्ध हो करके करै; सत्पुरुषार्थ करै। और सोई प्रयत्न सदा करै, जिससे जीवका भव-बन्धन छूटे, तथा कार्यकी सफलता होकर जीवन्मुक्ति सुखकी प्राप्ति होवे। मूल धनरूप जीव जमामें वा हंसपदमें खानी-वाणीका अध्यासरूपी बट्टा, व्याज लगने न पावे, सो उसका पूर्णतासे ध्यान रक्खे; इसतरहसे शील, सन्तोषयुक्त सदाचारसे बर्तना चाहिये ॥ १३ ॥

१३. बिना शील कछु बनै न काज ❀ शील बिना कालको साज ॥ १४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

बिना शील कछु = शील, सन्तोष, सदाचार, बनै न काज = गुरुभक्ति, कोमलतादि सद्गुणोंके बिना तो जीवोंके कल्याणका कार्य कुछ भी सफल हो नहीं सकता है; हितकर कार्य शील बिना किसीका कुछ नहीं बन सकता है। अतः शीलको अवश्य हृदयमें टिकाये रखना चाहिये।

शील बिना = शीलके बिना तो कालके ही कालको साज = स्वरूप होता है। सब शोभा सुन्दरता, साज-बाज व्यर्थ हो जाते हैं। सो कुशील नर कालका चारा बन जाते हैं। गुरुवालोग और स्त्री उसको नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। अतः हे हितेच्छुक मनुष्यो! शील सद्गुणको कभी मत् भूलो! ॥

व्याख्या— शीलके बिना तो न स्वार्थरूप संसारके ही अच्छे काम बनते हैं, और न परमार्थके ही धर्मके काम बनते हैं। हितकारी, सुखदायी कार्य, बिना शीलके आये कुछ भी नहीं बनता है; और शीलके ग्रहण किये बिना किया हुआ सब कर्म कालके ही बन्धनका साज होता है। कुशीलतासे सजे-सजाये होनेवाले, कालके ही रूप होते हैं। वे कल्पना और विषय भोगोंमें फँसते और फँसाते तथा काल-जालोंको ही सजाते हैं; वे कालके ही मुखमें पड़ जाते हैं ॥ १४ ॥

१४. मैं मेरीमें सब जग भूल ❀ खानी क्लेश शील बिन फूल ॥ १५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

मैं मेरीमें = शील-विचार न होनेसे सब जग भूल = सब जगत्के मनुष्य ममता-मोहमें भूले और भूल रहे हैं। तहाँ मैं ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा हूँ! ब्राह्मणादि वर्ण-आश्रम-वाला श्रेष्ठ हूँ! मेरा मत, पन्थ, ग्रन्थ बड़ा है! इत्यादि ब्रह्म-जगत्में सब नरजीव बिना पारख, भूल गये और भूल रहे हैं।

खानी क्लेश शील = तहाँ बिना शीलके योगी, बिन फूल = ज्ञानी, भक्त तथा विषयी-लोग भ्रम, मानन्दी, धोखेमें फूल गये। इसलिये उसी फूलरूपी वासनासे चार-खानियोंमें त्रिविधि ताप जन्मृति कष्ट-क्लेश सहन करना पड़ा, यही फल लगा। अतएव खानी क्लेशसे बचनेके लिये शील सद्गुणको धारण करो! ॥

व्याख्या— सब जगत्के मनुष्य अज्ञानी, ज्ञानी, विज्ञानी हो करके मैं-मेरीकी ममतामें भूले और भूल रहे हैं। मैं बड़ा हूँ, मेरी जाति बड़ी है, मैं योगी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं ध्यानी हूँ, मेरा मत, पन्थ और ग्रन्थ बड़ा है! मैं ब्रह्म हूँ, मेरा स्वरूप सर्वत्र व्यापक विराट है, इत्यादि प्रकारसे जगत्-ब्रह्मके बीचमें ममता बाँध करके सब जीव भूल रहे हैं। और शीलके बिना वाणी-कल्पना तथा विषयोंमें फूल करके उन्मत्त गाफिल, जड़ाध्यासी हो रहे हैं। इसीसे चारखानी चौरासी योनियोंमें पड़कर जीव सब उसी खानीमें नाना तरहसे कष्ट-क्लेश, असह्य दुःख ही पा रहे हैं। कुशीलतासे कुकर्म होते हैं, उससे पाँच तरहसे क्लेश ही होता है। अतः असहनशीलता, कुशीलता, कठोरता आदि दुर्गुणोंको त्यागकर शील सहित सद्गुणोंको हृदयमें धारण करना चाहिये ॥ १५ ॥

१५. तीजे दृढ़ता धारे चित्त ❀ आतम सत्य सब जगत अनित्य ॥ १६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

तीजे दृढ़ता = तीसरा त्रिगुण, काम, क्रोध, धारे चित्त = मोह, तत्त्वमस्यादिकी चञ्चलता तथा कल्पनाको छोड़कर दृढ़ता एवं धैर्य स्वभावको चित्तमें धारण करै। शूर-वीरकी नाईं मुक्तिमार्गमें डट जावे। कभी घबड़ा करके पीछे न हटै।

आतम सत्य सब = भ्रमिक वेदान्तियोंने तो जगत अनित्य = एक आत्माको व्यापक, सर्वाधिष्ठान, सत्य, और सारा चराचर जगत्को असत्य, अनित्य माना है। परन्तु, सो मिथ्या धोखा है। दृढ़तापूर्वक गुरु-पारखके बलसे इसे परखकर त्याग देना चाहिये॥

व्याख्या— हंसदेहमें तीसरा शुद्ध तत्त्व धैर्य है; सो दृढ़ता, शूर-वीरता, धीर-गम्भीरताको चित्तमें मजबूतीसे धारण करै। कैसे भी आपत्ति आनेपर भी घबड़ा करके निजपदसे विचलित न होवे। चञ्चल होकर त्रिगुण विकारमें न पड़े; हंस मार्गको न छोड़े। और गुरुवालोगोंने जो एक आत्मा सर्वाधिष्ठान सत्य है, अथा अनेक जगत् सब अनात्मा प्रतिकूल होनेसे अनित्य, असत्य है, ऐसा कथन किया है; सो भ्रम, मिथ्या धोखाका जाल है। उसे धैर्यपूर्वक परख करके सब भेदको जान लेवे। वास्तवमें तो चैतन्य जीव ही नित्य, सत्य, अखण्ड है, और देह आदि कार्य पदार्थ अनित्य वा नाशवान् है, ऐसा जाने॥ १६॥

१६. पक्का होयके सौदा लेय ❀ धोखाधारमें चित्त न देय॥ १७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पक्का होयके = फिर जो बोध-विचारमें पक्के सौदा लेय = विवेकी पारखी होवें, उन्हीं श्रीसद्गुरुकी शरणमें जा करके सत्य निर्णय-का उपदेश लेकर पक्का हंस या मनुष्य होना चाहिये। और सौदा=सार वस्तुको भी पक्का बोधवान् होकर लेवे। और—

धोखा धारमें = ईश्वर, ब्रह्म, देवता, स्वर्गादि चित्त न देय = कल्पित वाणीकी धारा तथा विषयोंकी धारामें बहकर धोखेमें चित्तको कभी देना न चाहिये। सदा सावधान होकर गुरुबोध रहनी-रहस्यमें ही लगे रहना चाहिये॥

व्याख्या— इसप्रकार विवेक-विचारमें प्रवीण होकर सत्यके रहनी-रहस्यमें पक्का हो करके पारखी सद्गुरुके सत्य उपदेशको श्रवण-मनन कर सौदा=सारवस्तु पारख बोधको ग्रहण कर लेना चाहिये। और धोखारूप वाणी-खानीकी धारामें कभी चित्तको बहने नहीं देना चाहिये। और ब्रह्म-ईश्वरादि कोई सत्य वस्तु नहीं है, मिथ्या धोखा मात्र है। तैसे ही विषयजन्य भोगोंका सुख भी धोखा ही है। उसको चित्तमें धरनेवाले जड़ाध्यासी जीव बद्ध होकर चौरासी योनियोंकी कैदमें ही पड़ जाते हैं और सदा दुःख ही भोगा करते हैं। अतः उस धोखेकी धारामें कभी चित्तको जाने न देवे! सदा जाग्रत् और निराश होकर स्थिर रहै॥ १७॥

१७. काल कलाते डरै न सोय ❀ मिथ्या जानि आपन पद जोय॥ १८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! हे जिज्ञासुओ! सुनो!—

काल कलाते = जिसने पारखी सद्गुरुके डरै न सोय = शरणागत होकर यथार्थ पारख बोधको पाया है, सोई कालरूप नारी और गुरुवाओंके विषयकी कला तथा कल्पना, अनुमान, भयानक वाणी नरकलोक यम, ईश्वरादिके भ्रमसे नहीं डरता है। भ्रम-भूतसे कभी वह भयभीत नहीं होता है। क्योंकि, सो उन सबोंको तो—

मिथ्या जानि = मिथ्या मानन्दी भूल, भ्रम-आपन पद जोय = मात्र जानकर पहिचान ही लिया है, फिर उससे क्योंकर डरेगा? गुरुवालोगोंकी वाणी ब्रह्म-ईश्वरादिको मिथ्या जानकर, उधरसे लक्ष्य हटाकर अपने नित्य-सत्य पारखपद चैतन्य स्वरूप-को ही देखता रहता है, इसलिये कोई काल-कलासे वह विवेकी नहीं डरता है॥

व्याख्या— स्त्रियोंकी तथा गुरुवालोगोंकी सो वह काल कलासे नहीं डरे; भयानक वाणीको सुन-सुन करके कभी भयभीत नहीं होवे। कालकी सभी कला-कल्पनाओंको तथा विषयादि प्रपञ्चों-को मिथ्या जान-पहिचानकर अपने सत्यपद पारखको ही हंस-दृष्टिसे देखे। अपना पद जोयके उसीमें स्थिर होवे। मान-मानन्दीसे न्यारा हो जावे; निर्भय हो रहै ॥ १८ ॥

१८. वीर सरिस निजपद महँ लीन ❀ शाहनशाही तखत नशीन ॥ १९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

वीर सरिस = जैसे शूर-वीर सेनापति युद्ध-
निज पद- = के मोर्चामें सन्मुख शत्रुसे
महँ लीन = डटकर मुकाबिला करता रहता है। तैसे ही पारखी साधु वीर, धीर, गम्भीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारखी सन्तके सदृश ही सद्गुण रहनी-रहस्य संयुक्त हो, काम-क्रोधादि तथा नारी और गुरुवालोगरूपी शत्रु सैन्य-को परास्त करके निजस्वरूप पारखपदमें ही लीन अडिग्ग हो जाते हैं।

शाहनशाही = फिर चक्रवर्ती बादशाहके
तखत नशीन = गद्दीके समान पारखी सद्गुरु ज्ञानियोंमें सम्राट् हैं। सब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, सर्वोच्च सत्यज्ञान एक ही है। सोई चैतन्य पारख बोध है। उसी बोधरूप तख्त या महान गद्दीपर पारखी सद्गुरु विराजमान हुए हैं। मनुष्यको उसी पदका अधिकारी होना चाहिये। इसलिये धीर, वीर तथा साहसी बनो! ॥

व्याख्या— महारथी, परम शूर-वीर, महा प्रतापी, समर विजयी, निर्भय योद्धाके समान ही महापराक्रमी, धीर हो करके मन-इन्द्रियादि शत्रु-सैन्य समूहोंसे डटकर मुकाबिला करे। फिर अपनी शक्तिसे उन्हें परास्तकर अरिदलको कैद करके स्वाधीन करे। तदनन्तर अकंटक स्वराज्यको प्राप्त करके निज हंसपदमें ही तल्लीन वा लवलीन हो रहे। तहाँपर राजा-महाराजाओंसे भी बढ़ करके शाहनशाही तखत=बादशाही गद्दी वा सम्राट्-राजराजेश्वर, चक्रवर्तीके राज्य सिंहासनपर विराजमान होनेके समान पारखपदकी स्थिर स्थिति जीवन्मुक्तिपदमें आरूढ़, गद्दी नशीन, सर्व शिरोमणि, ज्ञानियोंमें सम्राट् सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख गुरुपदमें पहुँचकर अटल, अचल, स्थिर, शान्त हो जाना चाहिये। ऐसे धैर्य धारण करके गुरुपदके योग्य अधिकारी होना चाहिये ॥१९॥

१९. चौथे दयाको निर्णय येह ❀ करै विचार अदेही देह ॥ २० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

चौथे दयाको = सारशब्दमें चौथा भाग दया-
निर्णय येह = का जो कहा है, सो उसका निर्णय येह अर्थात् इसप्रकार है कि, दयाका पूर्ण पालन करनेके वास्ते पहले इसीका निर्णय ठीकसे करे कि—

करै विचार = देहधारी चैतन्य जीव ही चार
अदेही देह = खानियोंमें अनन्त नित्य, सत्य हैं; और स्थावर-वृक्षादि इन जड़ पदार्थों-का जीव संयुक्त कोई देह नहीं है। इसलिये वे अदेही अर्थात् जड़ हैं। उनमें ज्ञान धर्म कुछ भी नहीं है। अतः सब प्रकारसे देहधारी जीवोंकी ही रक्षा करनेका विचार सदैव किया करे। तथा बने तहाँ तक जीवोंकी रक्षा करता रहे ॥

व्याख्या— हंस देहमें शुद्ध तत्त्व चौथा दयाका निर्णय यही है कि, जड़ और चैतन्य दो वस्तुएँ हैं। अदेही=जिनके देह नहीं हैं, सो निर्जीव जड़ चारतत्त्व हैं; और दूसरे देहधारी अनेकों चैतन्य जीव, सजीव देह सहित चारीखानी तथा चौरासी योनियोंके प्राणी हैं। इनके गुण-लक्षण न्यारे-न्यारे हैं, सो उन सबोंको सत्यन्यायसे यथार्थ विचार करे। तहाँ जिनमें इच्छाशक्ति हो, देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन आदि हों; उनको अनुकूल-प्रतिकूल क्रिया हो, तीन अवस्थाएँ हों, षट् पशुधर्मोंको जाननेका ज्ञान हो, और स्वयं स्वरूपसे अखण्ड, एकरस, अमर हों; इन लक्षणोंवाले हों, सो वे ही देहधारी जीव हैं, ऐसा जानना चाहिये। और उक्त गुण-लक्षण जिनमें न हों, सो पाँचतत्त्वोंके कार्य-कारण पदार्थ स्थावर,

वृक्ष-वनस्पति, पाषाण, अंकुरज आदि भी स्वयं जड़, निर्जीव तथा देह रहित हैं। ऐसा समझकर जीवको जड़ाध्यासके बन्धनोंसे निकालनेके लिये सदा पारख विचार ही करते रहना चाहिये। देहकी आसक्तिसे भी रहित हो जाना चाहिये ॥ २० ॥

२०. आत्मा सब महँ एक निहार * मन वच कर्म प्रतिपाल विचार ॥ २१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

आत्मा सब महँ = } गुरुवालोग तो सर्वत्र सबों-
एक निहार = } में व्यापक एक आत्मा ही देखते हैं या ऐसे देखनेको कहते हैं। इसलिये वे मिथ्यावादीलोग दयादि सद्गुणोंको कुछ धारण नहीं करते हैं। परन्तु, जड़-चैतन्यको न्यारा-न्यारा देखकर सब जीवोंको स्वजातीय जानना चाहिये। तैसे ही—

मन वच कर्म = } जैसे अपनेको सुख-दुःख
प्रतिपाल विचार = } होता है, तैसे सब प्राणी मात्रको होता है। जड़से जीव भिन्न वा अलग है; तभी तो सुख-दुःखादि होता है। ऐसा विचार करके मन, वचन और कर्मसे दया धारणकर, जीवोंकी प्रतिपालन एवं रक्षा करनी चाहिये ॥

व्याख्या— जो चराचरमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक ही आत्मा वा ब्रह्मको कल्पनासे देखते हैं, वे कैसे, किस पर, क्या दया रक्खेंगे? अद्वैत कथनमें दया करना वा न करना कुछ भी नहीं बनता है; इसलिये वे अविचारी भ्रमिक निर्दयी ही होते हैं। यदि सबमें आत्मा एक है, तो दूसरा उससे भिन्न कोई न होनेसे उसे कोई देख भी नहीं सकेंगे। और द्रष्टा-दृश्य कभी एक ही हो नहीं सकता है; जड़ और चैतन्य जीव, दोनों न्यारे-न्यारे ही हैं। इसीसे व्यापक आत्माकी कल्पनाको छोड़कर सब देहधारी जीवोंको स्वजातीय जानना चाहिये। अपने समान सबोंको दयाकी दृष्टिसे देखना चाहिये; और सब देहधारियोंको सुख-दुःखका अनुभव एक-सा होता है, ऐसा जानकर मनसे, वचनसे और कर्मसे जीवोंके प्रतिपालन करनेका ही शुभविचार करते हुए छोटे-बड़े देहधारी प्राणियोंकी शक्ति अनुसार बचाकर रक्षा ही करते रहना चाहिये। यही मनुष्योंका धर्म और कर्त्तव्य है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २१ ॥

२१. काल जालते जीव उबार * दया धरै चित दया अधार ॥ २२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

काल जालते = } काल = गुरुवालोग, स्त्री और
जीव उबार = } मन कल्पनादिके खानी-वाणी महाजालोंसे नरजीवोंको परखा करके उबारने या पार करने वाले, वे ही सद्गुरु बन्दीछोर कहे जाते हैं। पहले सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही ऐसे हुए।

दया धरै चित = } आपने चित्तमें पूर्णतासे
दया अधार = } दयाको धारण किये। सो आज आप ही सद्गुरुकी दयासे पारखज्ञानका प्रकाश हुआ है। इसलिये सद्गुरुकी कृपाके आधारमें रहते हुए, चित्तमें 'निज दया' और 'पर दया'को अच्छी तरहसे धारण करो! ॥

व्याख्या— चित्तमें 'निज दया' तथा 'पर दया' धारण करके उसी दया धर्मके आधारसे काल-जालसे निज-पर जीवोंको उबारना वा पार करना चाहिये। कालरूपी मन, गुरुवालोग और स्त्रियोंके खानी-वाणी जालोंका विस्तार बहुत है। मान्यदी, कल्पना और विषय भोगादिके घेरामें सब जीवोंको उन्होंने बाँध रक्खा है। तहाँ पारख बोध ले-दे करके जीवोंको छुड़ाकर उबार करै। दया धारण करनेसे चित्तमें एक दयाका ही पूर्ण आधार रहता है; इसीसे दयाधारीकी ही मुक्ति हो सकती है ॥२२॥

२२. नाम दयाल कहाये सोय * दया धरै चित ऐसे होय ॥ २३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

नाम दयाल = } पूर्ण दयाको धारण करनेसे
कहाये सोय = } सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब जन-समाजमें परम दयालु बन्दीछोर पारखी नामसे कहलाये हैं। सोई उन सद्गुरुका बोध जो लिये या लेते हैं, सो भी दयालु

कहलाये और दयालु हुए हैं।

दया धरै= / चित ऐसे होय= } इसलिये चित्तमें दयाको धारण करनेसे ही ऐसे महान श्रेष्ठ हुए और जीवन्मुक्त हुए। अतएव हे नर जीवो! तुमलोग भी चित्तमें दृढ़तासे 'निज दया' तथा 'पर दया'को धारण करो; तो तुमलोग भी ऐसे ही भव-बन्धनोंसे छूट कर मुक्त हो जाओगे, सो जानो! ॥

व्याख्या— जो सर्वाङ्ग पूर्णतासे दया धर्मको धारण करते हैं, सो उन्हींका नाम 'गुरुदयाल' कहलाता है। चित्तमें दया धारण करनेसे ऐसी ही श्रेष्ठता होती है। प्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब सोई 'दयाल' नामसे कहलाये हैं। और चित्तमें सच्ची दयाको धारण किये, तो आप ऐसे महापुरुष पारख प्रकाशी, सत्यबोधदाता बन्दीछोर हुए; सो दया धर्मका ही प्रताप है। अतः मुमुक्षु मनुष्योंको भी गुरुबोध और दयाधर्मको ही हृदयमें धारण करना चाहिये ॥ २३ ॥

२३. पशुवत धर्मको करिये त्याग ❀ करै विचार सहित अनुराग ॥ २४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

पशुवत धर्मको करिये त्याग= नर जन्मको सफलकर मुक्ति प्राप्त करनेके वास्ते पहले मनुष्यको चाहिये कि, पशुके समान बर्ताव कराने वाले जितने भी धर्म, कर्म, लक्षण, गुण, अविचार, अनाचार, भ्रष्टाचार आदि हैं, उनको सर्वथा भीतर-बाहरसे त्याग कर देवे। और—

करै विचार सहित अनुराग= विचार-विवेकके सहित ही सब कार्य करै। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें विशेष अनुराग या प्रेम-प्रीति रक्खै। तथा तन, मन और धन सद्गुरुको अर्पणकर सेवा, बन्दगी, पूजा, आरती किया करै ॥

व्याख्या— हे हितेच्छुक मनुष्यो! नरजन्म सफल करनेके लिये सबसे पहले तुमलोग छाजन,भोजन, निद्रा, भय, मैथुन और मोह— इन षट् विकारोंमें आसक्ति-अविचार, पशुवत् धर्म तथा मनुष्योंमें होनेवाले अधर्म दुषित पापकर्म, चोरी, हिंसा, व्यभिचार, झूठ, छल, कपट बैर-घात इत्यादि कुकर्मोंको सर्वथा त्याग करो। पशुवृतिको बाहर-भीतरसे छोड़ ही दो! विकारको अपनेमें न धरो, और विचारके सहित बर्ताव करो। तहाँ अपने हानि-लाभका विचार करो! और अनुरागके सहित पारखी साधु-सद्गुरुका सत्सङ्ग-विचार किया करो। जिससे पशु स्वभाव छूटकर, मनुष्यका गुण-लक्षण तथा शुभ स्वभाव आ जायगा। फिर जीवन सुधार होकर हित-कल्याण भी हो जायगा। अतः प्रेमसे सत्सङ्ग-विचार करनेमें ही सदा लगे रहना चाहिये, सो जानो! ॥ २४ ॥

२४. छाजन भोजन मैथुन येह ❀ भय निद्रा मोह षट देह ॥ २५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

छाजन=शरीरको कपड़ेसे ढकना या शीतोष्ण-से बचाना, छायामें रहना। उसे आच्छादन कहते हैं। यह प्रथम कर्म है।

भोजन=आहार, खुराक या भोजन करके पेट भरना, भूख मिटाना। यह दूसरा कर्म है।

मैथुन= / येह= } स्त्री-पुरुष मिलकर परस्पर भगभोग करना, सन्तान उत्पन्न करना, इसीमें तदासक्त गाफिल हो रहना। यह तीसरा कर्म है। ये तीन पशु धर्मके लक्षण हुए।

भय=दुःख या मृत्युसे डरना; यह चौथा कर्म है।

निद्रा=नींद ले करके आरामसे सो जाना। यह पाँचवाँ कर्म है। और—

मोह=स्त्री-पुत्रादिमें ममता-अभिमान रखकर मोहित एवं आकर्षित हो जाना। यह छठवाँ कर्म है।

षट= / देह= } देहके सम्बन्धमें ये षट् पशुधर्म या षट् लक्षणोंके विस्तार देहधारी सबों-में एक समान है। सो उनमें मैथुन, भय, मोहको त्यागकर बाकी तीन छाजन, भोजन, निद्राका सुधार करना चाहिये ॥

व्याख्या— देहधारियोंमें देहके धर्म स्वाभाविक छैः प्रकारके गुण लगे हैं। तहाँ— (१) छाजन=आच्छादन, देह ढकनेके लिये कपड़ा आदि और मकान, गुफा, माँद, घोंसला, बील, छिद्र

इत्यादि रहनेका स्थान बनाये हुए हैं; वहीं चारखानीके प्राणी छिपे रहते हैं; शीतोष्णका बचाव करते हैं। (२) भोजन=अन्न, जल, फल, फूल, तृण, चारा, पत्र इत्यादिका आहार सब प्राणी खानियोंके स्वभाव अनुसार भिन्न-भिन्न तरहसे करते हैं। (३) मैथुन=स्त्री-पुरुष मिलकर भग-भोग करना, सो मनुष्य, पशु, पक्षी आदि तीन खानीके प्राणी मैथुन कर्म द्वारा सन्तानोंकी उत्पत्ति करते ही रहते हैं। (४) भय=दुख, आपत्ति, मृत्यु आदिसे सभी प्राणी डरते ही हैं। (५) निद्रा=आँखें मूँदकर आरामसे सभी जीव सोते भी हैं। और (६) मोह=निकट सम्बन्धी, सङ्गी-साथी, नर-नारी तथा बासस्थान, धन आदि पदार्थोंमें आसक्ति, प्रेम, चिपकाहट होनेका मोह भी सभी जीवोंको स्वाभाविक रीतिसे होता ही है। यही देहके षट् विकार या षट् पशुधर्म कहलाते हैं। इसका अध्यास वा संस्कारका खिंचाव चारोंखानीके जीवोंमें लगा है, उक्त षट् पशु धर्मोंमें तीनका त्याग और तीनका सुधार करना चाहिये ॥ २५ ॥

२५. यह षट् अंशी जगत उपाय * पशु मानुष एकै सम आय ॥ २६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

यह षट् अंशी जगत उपाय=यह=पहले जो षट् पशुधर्म कहे गये हैं, उसी षट्के जड़ाध्यासी होकर जगत्में, समस्त जीव चारखानीमें देहधारी हुए, और देहधारी होकर उत्पन्न हो रहे हैं। अथवा ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, ये तीनों पुरुष; और सावित्री, लक्ष्मी, पार्वती, ये तीनों स्त्रियाँ; इन्हीं छवोंके अंशसे जगत्में सब त्रिगुणी प्राणी उत्पन्न हुए, ऐसा माना है।

पशु मानुष एकै सम आय=पशु खानीमें और मनुष्य खानीमें, यह षट्धर्म तो एक समान बरत रहा है। इसमें आसक्त रहनेवाले सच्चे मनुष्य नहीं हैं, वे तो पशु ही बने हैं। और उक्त षट् स्त्री-पुरुषोंने षट् अंशसे षट् पशुधर्मका ही विस्तार किया है। इसलिये वे मनुष्य भी पशुवत् एक-एक करके आवागमनमें पड़े और पड़ रहे हैं ॥

व्याख्या— जीवोंने सो यही छाजनादि षट् पशुधर्मोंके अंशरूप अध्यासको अन्तःकरणमें टिकाकर धारण कर लिये, तो वे जड़ाध्यासी हुए। उसी अध्याससे जगत्में चारखानी चौरासी योनियोंके देहोंकी उत्पत्ति हुई है, और उसीप्रकार उत्पत्ति हो ही रही है। विवेकदृष्टिसे देखिये! तो मनुष्य और पशु आदि सभी प्राणी एक समान ही भोजनादि षट् धर्ममें लगे हुए हैं। षट् कर्मोंका व्यवहार तो सबोंमें एक-सा ही हो रहा है। इसीसे सब जीव जड़ाध्यासी तथा बद्ध हो रहे हैं। इन्हीं षट्-अंशियोंसे जगत्में सबोंका देह उत्पन्न हुआ है। उक्त कर्ममें तो पशु-मनुष्य सब एक समान ही हैं, और एक समान हो रहे हैं ॥ २६ ॥

२६. है आसक्त षट् मध्ये सोय * पशु आसक्त मानुष ले जोय ॥ २७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो!

है आसक्त षट् मध्ये सोय=निद्रा, मैथुन, मोहादि षट् पशुधर्म स्वार्थ साधनके बीचमें ही जो आसक्त हो करके गाफिल पड़े हैं, सोई 'नरपशु' महापशु ही बने हैं। क्योंकि—

पशु आसक्त मानुष ले जोय=पशुके समान कर्म-कुकर्म करके विषयासक्त, कल्पनामें आसक्त जो रहते हैं, सो नरदेहमें होते हुए भी बड़े दुष्ट पशुवत् ही बने हैं। कोई विवेकी पुरुष ही सद्बुद्धिको लेकर ठीक-ठीकसे अपने गुणोंको देखकर सद्गुणधारी सच्चे मनुष्य होते हैं ॥

व्याख्या— जो कोई उक्त षट् पशुधर्म मध्यमें ही आसक्त हो पड़े हैं, सोई तो पशुरूपमें अबोध हैं। अर्थात् मनुष्यका शरीर ले करके भी जो विषयासक्त हैं, षट् धर्मोंमें विशेष आसक्त होकर फँसे हैं, वे प्रत्यक्षमें सींग-पूँछके बिना भी नरपशु ही बने हैं। रूप मनुष्यके और स्वभाव पशुके धारण किये हैं। इसीसे वे अविचारी मूर्ख, पशु ही बने हैं। मनुष्य-बुद्धिको लेनेवाले अपने गुण-

लक्षणोंको देखनेवाले विवेकी पुरुष तो कोई विरले ही होते हैं। उनका ही जीवन सफल होता है ॥२७॥

२७. पशुवत धर्मको करै विचार * सो मानुष बुद्धि गुरुमुख सार ॥ २८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

पशुवत् = धर्मकोकरै = विचार = इसलिये निष्पक्ष हो करके विचार कर लीजिये कि, अपनेमें पशुवत् धर्मकी आसक्ति कितनी है ? फिर उन्हें एक-एक करके त्याग और सुधार करिये ! भोजन, वस्त्र, और निद्रा, देह निर्वाहके लिये ही अल्प और शुद्धरूपमें लीजिये ! तथा मैथुन, मोह और भयको एकदम त्याग कीजिये और मनुष्य धर्मका विचार करिये !

सो मानुष बुद्धि = गुरुमुख सार = इसप्रकार वर्तनेवाला सत्सङ्गी ही यथार्थमें मनुष्य है। मनुष्यकी बुद्धि सारासारका निर्णय करनेवाली होती है। पारखी सद्गुरुके गुरुमुखसे सत्योपदेश श्रवण कर सार जीवको मुख्य जानकर बुद्धिका प्रकाश कर स्थिर करना चाहिये ॥

व्याख्या— जो पुरुष अपने दोषोंको देखते हैं, तथा पशुवत् धर्म या अधर्मसे होनेवाले हानि-लाभका यथार्थ रीतिसे विचार करते हैं, और हानि करनेवाले कर्मोंका त्यागकर हितकर शुद्ध कर्म ही करते हैं, उन्हीं मनुष्योंमें गुरुबुद्धि शुद्ध सार है, ऐसा जानना चाहिये। अतः गुरुमुख निर्णयसे सत्यसार चैतन्य जीवको जानकर, मनुष्योंको अपने हृदयमें गुरुबुद्धिको ही धारण कर लेना चाहिये। यही मनुष्य देह पानेका मुख्य सार है; इसीसे पूरा लाभ होता है ॥ २८ ॥

२८. भेष अमङ्गल काल दुराय * नष्ट ज्ञान नहिं ताहि समाय ॥ २९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो !

भेष अमङ्गल = काल दुराय = षट् दर्शनियोंने जो-जो भेष बनाये हैं; जैसे— संन्यासी, उदासी, वैरागी, खाकी, नाथ, नागे इत्यादि छियान्नवे (९६) पाखण्ड मनुष्योंको कल्पना, धोखा, भ्रममें डालकर दूर परमेश्वरकी आशामें लगाकर नष्ट-भ्रष्ट करके अमङ्गल, अहित, अकल्याण करनेवाले गुरुवालोगोंके जितने भी जाल हैं, उन सबोंको छोड़ दो !

नष्ट ज्ञान नहिं = ताहि समाय = ब्रह्मज्ञानादि गुरुवालोगोंका नाना मत जीवोंकी मुक्तिका नाश करनेवाला है। हे नरजीवो ! उसमें तुम मत लगो ! पारखी सद्गुरुके त्याग भेष ही शुभ मङ्गलकारी है। गुरुपारखका बोध हो जानेपर उस धोखेमें जीव नहीं समाते हैं, अर्थात् उसमें नहीं लगते हैं ॥

व्याख्या— मनुष्योंको सत्सङ्गी जिज्ञासु हो करके, सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़ वैराग्यादि हंसदेहकी शुद्ध रहनीको अपनेमें, धारण कर लेना चाहिये। तथा कालके अमङ्गल भेषको दूर करके हटा देना चाहिये। अर्थात् बड़ी-बड़ी जटाको न बढ़ावे; खाक, धूर गधेकी नाईं देहमें न लगावे, कान न फड़ावे, नाक न छेदावे, लङ्गोटी लगाना भी छोड़ करके पशुवत् नङ्गा न होवे, भगवा (गेरुवा) वस्त्र, नीला, पीला, लाल रङ्गोंसे रङ्गाया हुआ कपड़ा न पहिरे; साफ सफेद ही कपड़ा पहिरे। द्वादश तिलक, त्रिपुण्ड्र, उर्ध्वपुण्ड्र, बिन्दी आदि न लगावे। रुद्राक्ष आदि मालाका बोझ न लादे, बड़ी-बड़ी मालाएँ न पहिरे; बाघ, सिंह, हिरण, बकरा, भैंसा आदिके चमड़े बिछाकर न बैठे। ढोंग, पाखण्ड, दम्भ, वैद्यई, ज्योतिषी, इन्द्रजाल, ठगाई इत्यादि कर्मोंको न करे। ये सब तो अमङ्गल, अभद्र, भयङ्कर, अशुभ, अहितकर एवं कालरूप गुरुवालोगोंके भेष हैं। उसमें लगनेसे हंसपद दूर हो जाता है। अतः परखकर उसको दूर हटा देवें, कदापि उसे ग्रहण न करे। और उन प्रपञ्ची गुरुवालोगोंके नष्टज्ञान = ब्रह्मज्ञान, योग, भक्ति, कर्मादि मार्गमें भी न लगे; क्योंकि, वह तो ज्ञानस्वरूप जीवको भ्रमा करके नष्ट तथा पथभ्रष्ट करनेवाला है। इसलिये उस नष्टज्ञानमें कभी भी जाकर न समावे, भ्रम धोखेमें न मिले। उनसे पृथक् होकर शुभ-मङ्गलकारी पारखी सद्गुरुका

उपदेश, सच्चा त्याग, वैराग्य, तथा टकसारी भेष ही लेवे; सत्य पारखज्ञानको पकड़कर उसीमें मन लगावे। इसतरहसे मनुष्योंको अपना सुधार तथा कल्याण करना चाहिये ॥ २९ ॥

२९. गुरु पूजा सन्तन सनमान * गुरु सन्त एकै सम जान ॥ ३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

गुरु पूजा = हे हितेच्छुक मनुष्यो! सकल
सन्तन = काल जालोंको परखाकर
सनमान = सत्स्वरूप पारखको लखानेवाले जो सद्गुरु हैं, उनकी ही विधिपूर्वक पूजा, आरती, भेंटमें तन, मन, और धन अर्पणकर सेवा करते रहो। और त्यागी पारखी सन्तोंकी सेवा, सम्मान, आदर-सत्कार भी प्रेमसे किया करो। इसीसे तुम्हारा हित होगा।

गुरु सन्त = पारखी बन्दीछोर सद्गुरु
एकै सम जान = और आपके अनुयायी त्यागी साधु-सन्तोंमें हंस स्वभाव, भेष, गुण-लक्षण, रहनी-रहस्य, पारख बोध एक समान ही धारण रहता है। ऐसे साधु-गुरुको एक समान ही बोधदाता वा मुक्तिदाता जान लो! ॥

व्याख्या— सत्सङ्गी गृहस्थ शिष्य-सेवकोंको तथा मुमुक्षु साधुओंको जड़ मानन्दी, जड़ पूजाक सर्वथा छोड़कर जड़ कल्पित भावना भ्रमका त्याग कर पारखी साधु-गुरुकी पूजा, आरती, भेंट, बन्दगी करनी चाहिये। वैसे ही विवेकी त्यागी, सन्त-महात्मा, साधुओंका भी श्रद्धा भक्ति प्रेम-पूर्वक सम्मान आदर, सत्कार प्रेमसे करे। उन्हें भोजन करावे, उचित सेवा करे, तन, मन, धनादि नाशवान् पदार्थ अर्पण करके आज्ञामें रहे। पारखी सद्गुरु और उनके अनुयायी विवेकी सन्तोंमें भेष, बोध, रहनी-रहस्य एक समान ही होता है। अतः साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके पारख बोधको अपने भी जान लेना चाहिये। फिर सद्गुरु और पारखी सन्तको एक समान जान करके सन्तोंका सम्मान तथा सद्गुरुकी पूजा प्रतिदिन करते रहना चाहिये ॥ ३० ॥

३०. प्रत्यक्ष देव सन्त गुरु मान * मान महातम भरम भुलान ॥ ३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

प्रत्यक्ष देव = स्वयं प्रत्यक्ष चैतन्य नरजीव-
सन्त गुरु मान = को स्वरूपज्ञान पारखबोध लखा देनेवाले जो साधु सद्गुरु हैं, सो वे परमपूज्य प्रत्यक्ष श्रेष्ठ इष्टदेव हैं। सद्गुरु-देव ही सब मानन्दियोंको छुड़ा देते हैं। इसलिये पारखी सद्गुरुको ही प्रत्यक्ष देवता मानो वा जानो! और—

मान महातम = बेपारखी गुरुवालोगोंने तो
भरम भुलान = ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, अनेक देवता, भूत-प्रेतादियोंको कल्पनासे मानन्दी कर-कराके उनके महिमा-माहात्म्य खूब बढ़ाये हैं। उन्हींको सुखदाता, मुक्तिदाता मान-मान करके भ्रान्तिमें भूले और भुला रहे हैं! उक्त प्रपञ्च, भ्रम खानी-बाणी जालोंको पारखी सद्गुरु ही परखाकर छुड़ाते हैं, इसलिये आप सर्वश्रेष्ठ हैं ॥

व्याख्या— प्रत्यक्षमें इष्टदेवता सन्त सद्गुरुको ही मानना चाहिये। वे ही स्वयं प्रत्यक्ष जीवको पारखबोध दाता हैं। चैतन्यमूर्ति, प्रत्यक्षमें मुक्ति देनेवाले देवता, सद्गुणधाम, बन्दीछोर ऐसे पारखी सन्त सद्गुरुदेव ही हैं। सब प्रकारसे उनको ही मानकर आज्ञा पालन करना चाहिये। और उन्हें छोड़कर मिथ्या मानन्दीके माहात्म्यमें जो लगे, वे सब लोग भ्रममें पड़कर भूल गये। वे चैतन्य जीवके सत्य स्वरूपको तो जानते ही नहीं हैं; किन्तु, कल्पना करके जगत्कर्त्ता, सुख-दुःखोंका दाता कोई एक ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिको मान-मानकर उन्होंकी झूठ-मूठकी महिमा बढ़ाकर निराकार, निर्गुण, सर्व शक्तिमान् बतलाकर भ्रान्तिसे धोखेमें पड़कर योगी, ज्ञानी, भक्त आदि सब लोग उसीमें भूल गये; और दूसरोंको भी उन लोगोंने भुलाये, भटकाये। प्रत्यक्ष पारखी सन्त सद्गुरुको न मानकर वे जड़ाध्यासी हुए, इसलिये देह छोड़-छोड़कर चौरासी योनियोंमें ही चले गये, और अभी वैसे ही

चौरासी योनियोंमें चले जा रहे हैं। अर्थात् उसीप्रकार बिना पारख अभी भी जड़ाध्यासी हो, जीव आवागमनमें पड़ रहे हैं ॥ ३१ ॥

३१. जा मुख निर्णय लखै विशेष * ते गुरु सम न और कोई लेख ॥ ३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

जा मुख निर्णय = संसारमें योगी, ज्ञानी, लखै विशेष = भक्त, भेषधारी साधु तो बहुत पड़े हैं; परन्तु, उनसे न्यारे पारखी सद्गुरु कोई बिरले ही होते हैं। जिनके मुखारविन्दके उपदेशोंमें जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय, बन्धन-मुक्तिका भेद, सारासारका विवेक होवे, सबसे मुख्य पारख स्वरूपका ज्ञान होवे, निर्णयसे सब लखनेमें आवे, सो उनको ही सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ जानो !—

ते गुरु सम = उन पारखी सद्गुरुके समान न और = और दूसरे कोई भी नहीं हो कोई लेख = सकते हैं। विवेकदृष्टि खोलकर देखो ! तो तुम्हें भी इसका हिसाब भेद मालूम होगा। क्योंकि, गुरुवालोग तो और ही कोई ब्रह्म-ईश्वरादि मानकर धोखेमें पड़े हैं। इसलिये वे भ्रमिक काल बने हैं। अतः वे गुरु माननेके योग्य नहीं हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥

व्याख्या— जिनके मुखारविन्दसे निकले हुए सत्यन्याय निर्णयके उपदेश द्वारा विशेष करके गुरुमुख पारखका बोध प्राप्त हो, सब सत्यासत्यके भेद लखनेमें आ जावें "चैतन्य जीव ही स्वरूपसे सत्य है। अध्यासवश आवागमनमें पड़ा है। अध्यास छूटनेपर पारखबोधसे मुक्ति होती है। जगत् स्वतः अनादि है। जगत्का कर्त्ता कोई नहीं है। ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या कल्पना है," इत्यादि विशेष निर्णय जिनसे लखनेमें आ जावे, वे ही पारखी सद्गुरु हैं। आप बन्दीछोर सर्वोपरि मुक्तिदाता हैं। उन पारखी सद्गुरुके समान सत्यबोध लखानेवाले और कोई भी नहीं हैं। अतः योगी, ज्ञानी, भक्त आदि सब भ्रमिकोंको किसीको भी उन सद्गुरुके समान न समझे, न जाने। अविवेक करके सबको एक समान न लखे। गुण-लक्षणोंको न्यारा-न्यारा पहिचाने ॥ ३२ ॥

३२. साहेब गुरु दास शिष्य होय * भक्ति तेई अधिकारी सोय ॥ ३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

साहेब गुरु = सर्वश्रेष्ठ परम माननीय दास शिष्य होय = सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी ही पारखी सद्गुरु होते हैं। जो कोई आपके दास भावसे शिष्य होते हैं, वे ही पारख ज्ञानको पाते हैं। 'साहेब' स्वामी, श्रेष्ठ सद्गुरुका पद है, और 'दास' लघु, भक्त शिष्यका पद है। इसप्रकार मर्यादापूर्वक—

भक्ति तेई = जो शिष्य श्रद्धा, प्रेमके अधिकारी सोय = सहित पारखी सद्गुरुकी सत्य भक्ति करते हैं, वे ही पारख बोधको पाकर जीवन्मुक्तिके अधिकारी हो जाते हैं। फिर वे ही गुरुपदकी श्रेष्ठ स्थितिको पा जाते हैं ॥

व्याख्या— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी अपरोक्ष पारखबोधवाले पारखी साधु-गुरु सर्वश्रेष्ठ, परमपूज्य, मान्यवर सन्त शिरोमणि, सद्गुरु 'साहेब' होते हैं। आप ही मालिक, नेता, ज्ञानके राजा तथा सर्वोपरि हैं। इसीसे आप सद्गुरु ही हमारे 'साहेब' हैं। ऐसा समझकर शिष्योंको सब प्रकारसे आज्ञाकारी हो सद्गुरुका ही 'दास' होना चाहिये; और सर्वस्व अर्पण करके शिष्योंको निरभिमानी होना चाहिये। ऐसे गुरुभक्ति करनेवाले सत् शिष्य ही विशेषरूपसे भक्तिकी अधिकतासे पारख बोधको अपरोक्ष रीतिसे प्राप्तकर सब भव-बन्धनोंसे छूट करके फिर सोई जीवन्मुक्त स्थितिमें पहुँचनेके अधिकारी हो जाते हैं। फिर वे ही पारखी बन्दीछोर हो जाते हैं! ऐसा यथार्थ भेद जान लेना चाहिये ॥ ३३ ॥

साखी:— धन्य धन्य सोई जीव है * जिन परखा संसार ॥
[२] तेई बन्दीछोर हैं * तारण तरण उदार ॥ ३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब यह ग्रन्थ समाप्तिकी तीन साखीमें जो कहते हैं, सो हे सन्तो ! ध्यानपूर्वक सुनिये !—

धन्य धन्य सोई जीव है = यों तो संसारमें नर देहधारी आदि जीव बहुत हैं; परन्तु, वे सब जड़ासक्त, विषयाध्यासी होनेसे आवागमनमें ही पड़े हैं। उनकी तो कोई विशेषता नहीं है। और पारखी सद्गुरुके ज्ञानसे जीवको ही स्वयं सत्य स्वरूप जिन्होंने जान लिये, निज स्वरूप स्थितिको जो प्राप्त हुए उन नरजीवको बारम्बार धन्य है ! धन्य है !! उन्हें अनेकों धन्यवाद है ! उनकी ही प्रशंसा होती है; उन्हींकी विशेषता और महत्ता है। और—

जिन परखा संसार = जिन्होंने संसारमें प्रचलित मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त, काल, सन्धि, झाँईं, आस्तिक-नास्तिक, खानी-वाणी समस्त जालोंको एक-एक करके परख लिया है, सारासार, सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका यथार्थ पारख कर लिये हैं, वे ही सकल भास, अध्याससे अपनेको छुड़ाकर अन्य मनुष्योंको भी सत्य पारखबोध परखा देते हैं। उन्हें ही बारम्बार धन्यवाद है !—

तेई बन्दीछोर हैं = वे ही मोटी-झीनी, ब्रह्म-जगत्, खानी-वाणीके महान भव-बन्धनोंसे छुड़ानेवाले बन्दीछोर धीर-वीर गम्भीर कायावीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हो गये हैं। आपके ही सच्चे अनुयायी पारखी सद्गुरु भी बन्दीछोर हैं या होते हैं।

तारण तरण उदार = प्रथम तो वे अपने ही गुरु पारखके महान बलके आधारसे भवसागरको पारकर सब जालोंसे मुक्त हो जाते हैं। स्वरूप-स्थितिको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे अपने पार उतर करके फिर सत्सङ्गरूप जहाजमें अन्य श्रद्धालु मनुष्योंको भी बैठाकर सकल काल-जालोंको परखा करके मुक्त कर देते हैं। ऐसे परम उदार सच्चे ज्ञानके महादानी पारखी सद्गुरु ही महाप्रभु हैं ॥

व्याख्या— जिन्होंने सकल संसारमें प्रचलित मत, पन्थ, ग्रन्थोंके मूलभूत खानीजाल और वाणीजालोंको देख, सुन, समझकर गुरुमुख निर्णयसे उसे यथार्थ परखा है; उसके कसर-खोटोंको जानकर परित्याग कर दिया है, निज स्वयं स्वरूप पारखमें ही स्थिति कायम कर ली है; सोई परम-पुरुषार्थी नरजीवको धन्य है ! धन्य है !! धन्य है !!! लाखोंबार उन बन्दीछोरको धन्यवाद है। आपकी बलिहारी है ! आपके चरणोंमें सब बड़ाई निछावर है। आपकी जितनी भी प्रशंसा करो, उतनी ही थोड़ी है। जन्मभर सद्गुरुका गुणानुवाद गावे, स्तुति करे, और लिखते रहे, तो भी समाप्त नहीं होती है। सोई जीवन्मुक्त जीवकी वा सद्गुरु सत्पुरुषकी महिमा है ! बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब प्रथम स्वयं अनुभव स्वयं पुरुषार्थसे तरण-तारण उदार हुए हैं। तैसे ही वर्तमानमें भी आपके पारख ज्ञानके अनुयायी पारखी सन्त, भवसागररूप संसारके सकल बन्धनोंसे छूटकर 'तरण' होकर पार उतर गये; और फिर शरणागत मुमुक्षुओंके प्रति दयादृष्टि करके उदारतासे सत्य उपदेशका दान देकर, मोटी-झीनी मायाके जालको परखाकर स्वरूप ज्ञान पारखबोध समझाकर तारण=भव-बन्धनोंसे मुक्तकर पार उतार देते हैं। इसलिये वे ही बन्धनोंसे जीवोंको छुड़ानेवाले 'बन्दीछोर' कहलाते हैं। हितेच्छुकोंको वैसे पारखी साधु-गुरुकी ही शरणागत होकर सत्सङ्गमें ही लगे रहना चाहिये ॥ ३४ ॥

साखी: — रामरहस गुरु परख लही * केते सुधरे जीव ॥
[३] काल कला नहिं तेहि लगै * सत्सङ्गति गुरु कीव ॥ ३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो !

रामरहस गुरु = पारखनिष्ठ श्रीरामरहस-
परख लहीं = साहेब यहाँपर कहते हैं कि, ऐसे सद्गुरुकी शरणमें आ करके जड़-चैतन्यकी यथार्थ परीक्षा करके चैतन्य जीवके सद्रहस्य रहनी संयुक्त पारखका प्रकाश होनेपर सब अविद्यारूप तम मिट जाते हैं।

केते सुधरे = जिन-जिनने गुरु पारखको
जीव = प्राप्त कर लिये; ऐसे कितने ही जिज्ञासु मनुष्य नरदेहमें सद्गुण विचारको धारण करके खानी-वाणीके प्रपञ्चोंसे छूट-कर सुधर गये। जीवनके परम लाभको पा गये। जीवको बन्धनोंसे छुड़ा लिये।

काल कला = अब उन सुधरे हुए नरजीवों-
नहिं तेहि लगै = को कोई कालकी कला नहीं लग सकती है। यानी स्त्रीके हाव, भाव, कटाक्ष विषयाकर्षणकी कला सांसारिक मोह-ममता, तृष्णा, आशा, काम, क्रोधादि और गुरुवाओंकी वाणीकी कला-कल्पना सात स्वर्गादिकी सुख इच्छा, चार फल, चार मुक्तिकी चाहना मानन्दी धोखेकी साधना ब्रह्म-ईश्वरादिका भ्रम, पारखीको कभी नहीं लग सकता है।

सत्सङ्गति = सदा सत्सङ्ग करके गुरुबोधका
गुरु कीव = मनन गुरुपारखबोधपर दृष्टि किया करते हैं। इसलिये पारखी साधुपर कोई काल-कला नहीं लगती है। अतएव हे मुमुक्षु मनुष्यो! तुमलोग भी नित्यप्रति सर्वदा, साधु-गुरुकी सत्सङ्गति किया करो। कुसङ्ग-से सावधान रहो। गुरु उपदेशके अनुसार ही बर्ताव करके जीवनको सफल करो। यही सद्गुरुकी सत् शिक्षाका सार है॥

व्याख्या— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पारखनिष्ठ श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर रमैयाराम चैतन्य जीवके रहस्य=स्वरूपके सच्चे भेदको जानकर सद्गुरुसे पारखबोध प्राप्तकर भ्रमभूलको मिटाकर बहुतेरे जिज्ञासु कितनेक पुरुषार्थी नरजीव सुधर गये। बिगाड़के मार्गको त्याग देनेसे उन सबोंका जीवन सुधर गया। कागकी मतिसे पलटकर वे हंस हो गये। बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति पाये। कुबुद्धि पलट गई, तो सुबुद्धि आ गई। कुसङ्गसे हटकर सत्सङ्गमें लग गये। दुर्गुणोंको त्याग-कर सद्गुणोंको धारण कर लिये। अज्ञान-अबोध मिटाकर ज्ञानी बोधवान् हो गये। इसतरहसे बहुत मनुष्य जीवोंका सुधार हो गया। ऐसे पुरुष नित्यप्रति पारखी साधु-गुरुके ही घेरामें रहकर सत्सङ्ग-विचार करते रहते हैं। सद्गुरु उन्हें चेताते, समझाते रहते हैं। वे भी जाग्रत्, सावधान होकर रहते हैं; इसलिये फिर उन्हें कालकी एक भी कला कल्पना, विषयादि जाल माया-मोहका चोट और आकर्षण लग ही नहीं सकता है, वे सबसे परे होकर निज स्वरूप स्थितिमें ही शान्त हो रहते हैं; जीते ही मुक्त हो जाते हैं। अतः हंसपदमें ठहरकर मुक्त होनेके लिये हे मनुष्यो! तुमलोग भी नित्यप्रति नियमसे ऐसे ही पारखी साधु-गुरुका ही सत्सङ्ग-विचार करते रहो! तथा नर जन्मका सुधार करो!॥ ३५॥

साखीः— सारशब्दको निर्णय ❀ देखु सन्त चितलाय॥
[४] जेहि अनुरागे जीव जग ❀ परख लहै दुःख जाय॥ ३६॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीपारखनिष्ठ श्रीरामरहससाहेब विरचित-'गुरुबोध' अन्तर्गत—
द्वितीय भाग 'सारशब्द निर्णय' मूल ग्रन्थः सम्पूर्णम्॥ ❀ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो!

सारशब्दको = जीवमुख 'काल' शब्द है;
निर्णय = मायामुख 'सन्धि' शब्द है;
ब्रह्ममुख 'झाँई' शब्द है; इन तीनोंका यथार्थ निर्णय गुरुमुख 'सारशब्द' से किया जाता है। सोई 'सारशब्द' है, जिससे सत्स्वरूपका स्वच्छ बोध हो जाता है। जीवका सब फन्दा छूट जाता है। यह खुलाशा 'सारशब्द-निर्णय' नामक इस ग्रन्थमें बता दिया गया है।

देखु सन्त = सो हे सन्तो! इस ग्रन्थको
चित लाय = चित्त लगाकर देखिये! और

सारका ग्रहण करिये ! सद्ग्रन्थ बीजकको तथा उसके सार सिद्धान्तको पुष्ट करनेवाले पारखी सन्तोंके अन्य ग्रन्थोंका भी पठन-पाठन करते रहिये! जिससे चित्त गुरुनिर्णय-से त्याग-वैराग्यमें ही लगा रहेगा। सद्भावमें ही मन लगाइये ! और—

जेहि अनुरागे = } जिसमें अनुराग या प्रेम
जीव जग = } प्रीति लगानेसे जगत् जालों-

से जीव छूट जाते हैं; ऐसा पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग-विचार ही एक मात्र बचनेकी जगह है। इसलिये जगत्में रहते हुए नर-जीवोंको सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही प्रेम लगाना चाहिये।

परख लहै = } जब यथार्थपारखबोध अपरोक्ष-
दुःख जाय = } रूपसे प्राप्त होगा, तब निज स्वरूपकी स्थिति होनेसे सब खानी-वाणी-की अध्यास आसक्ति छूट जायगी, फिर सकल दुःख आवागमनादि देहके साथमें ही नाश हो जायँगे। देह रहते ही पारखी साधु जीवन्मुक्त हो जाते हैं। पारखबोध मिला, तो फिर सब अध्यासजन्य दुःख छूट गया वा छूट जायगा ऐसा जानिये ! ॥

व्याख्या— हे सन्तो ! आपलोग भी चित्त लगाकर सारशब्दके निर्णयको विवेक-दृष्टिसे देख लीजिये ! और उसी नामके इस ग्रन्थको भी विचारपूर्वक मन लगाकर देख लीजिये ! मुख्य सारासारको बतानेवाला सद्ग्रन्थ-'बीजक-मूल' तथा सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबकृत त्रिजारूप टीकाको भी ध्यानसे देख लीजिये ! और गुरुमुख द्वारा बीजकका अर्थ श्रवण करके मननकर सबोंके भेदको जान लीजिये ! जिससे सब शब्द जालोंका सारासार आपलोगोंको भी समझनेमें आ जायगा। तीनों मुखकी वाणीका कसर गुरुमुख सारशब्दसे जाननेमें आवेगा; जिससे अपरोक्ष गुरुपारखकी प्राप्ति हो जायगी। और जिसमें अनुराग वा सत्य प्रेम-प्रीति लगानेसे जगत्के जिज्ञासु नरजीवोंको भी वही शुद्ध निर्विकार मुक्तिदायी सद्गुरुका पारखबोध मिल जायगा। जिसके प्रतापसे सम्पूर्ण भव-बन्धनोंका दुःख, सन्ताप, कष्ट-क्लेश सदाके लिये मिट जायगा। इसी नरदेहमें स्वरूप स्थिति होकर आवागमनादि सब दुःखोंका अन्त हो जायगा। 'सारशब्दको' हृदयमें धारण करनेसे ही यह अपूर्व लाभ, अमर-फल मिल जायगा। अतएव हे सन्तो ! सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहर करके चित्तको शान्तकर उसी सारशब्द निर्णयके भेदको सम्पूर्णरूपसे जान लीजिये ! जन्मभर गुरुपदमें ही दृढ़तासे प्रेम लगाये रहिये ! गुरु नियमके प्रमाणसे ही चलिये। फिर शुद्ध पारख स्वरूपका बोध मिलकर सद्गुरुकी दयासे सब दुःखोंसे जीव छूट जायेगा। जन्म-मरणादि रोग भी तब मिट जायँगे, ऐसा निश्चय करके जान लीजिये ! सो उसी प्रकारसे निज स्वरूपकी स्थिति बनाना चाहिये। इसप्रकार यह 'सारशब्द निर्णय' नामक छोटे ग्रन्थकी व्याख्यारूप भावार्थ भी सद्गुरुकी दयासे सम्पूर्ण (समाप्त) हो गया है; सो जान लीजिये ! ॥ ३६ ॥

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत— ग्रन्थ समाप्तिकी सद्गुरु पद वन्दना वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

इष्टदेव गुरुपद नमों । शीश धरी त्रयबार ॥ कबीर पूरण रामरहस । गुरु तव चरण आधार ॥१॥
पारख ज्ञान प्रकाशक । सद्गुरु कबीर महान ॥ जीवन बन्ध मिटाइया । बीजक ज्ञान बखान ॥२॥
बीजकके सत बोधको । टीका कीन्ह प्रकाश ॥ पूरण साहेब पारखी । नास्यो धोखा भास ॥३॥
रामरहस गुरु पारखी । परखायो सब जाल ॥ पञ्चग्रन्थी निर्माणकरि । काल जालको टाल ॥४॥
सद्गुरु वर प्रसादते । पारख भो विस्तार ॥ रामस्वरूप गुरुकीदया । बोधते हिय उजियार ॥५॥
परम्पराके पारखी । सब बन्दगी करजोर ॥ गुरुकी दयातेभ्रममिटी । पारख ज्ञान सुभोर ॥६॥
श्रीकाशीसाहेब तथा । श्रीगुरु साहेब लाल ॥ बालकसाहेब चरणमें । त्रय बन्दगी करूँ बाल ॥७॥

दया कीन्ह गुरुदेवजी । दीन्हा पारख बोध ॥ रामस्वरूप निश्चय भया । जोगुरु कीन्ह प्रबोध॥८॥
हित दृष्टि सबके लखी । अर्थ लिखा विस्तार ॥ सारशब्द निर्णयसहित । इति गुरुबोध सुधार ॥९॥
पञ्चग्रन्थीके मध्यमें । है चतुर्थ गुरुबोध ॥ रामस्वरूप टीका सकल । लेख पूर्णभो शोध ॥१०॥
जानैसन्त सुजान सब । अनजाने लखु टीका ॥ याहीके आधारते । पढ़ि समझैते नीका ॥११॥
रामस्वरूपदास सोई । साधु गुरु पद लीन ॥ यहिविधिलिखिटीकातहाँ । सन्तनसेवाकीन्ह ॥१२॥
सेवा परम पुनीत यही । अहंभाव नहिं कोय ॥ साधु गुरुके दास हौं । लीजे सार बिलोय ॥१३॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

पूर्णभ यो गुरुकी दया । सारशब्द सद्ग्रन्थ ॥ निर्णय जैसा याहिका । टीका प्रगट सुपन्थ॥१४॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

नहिं आदि अन्त अनादि जड़ चिद, है स्वयं प्रत्यक्ष ही ॥
नर जीव नाना कर्म करि करि, दुःख सुख लहैं देहै मही ॥
समझो नहीं कछु भेदको, अनुमान कर्त्ताको कही ॥
भटक रहा था, जाल महँ सो, ठौर गुरु बोधै लही ॥ १५ ॥

॥ ❀ ॥ कवित्तः— ॥ ❀ ॥

गुरु बोध जिन्ह दियो, तिन्हहिको धन्य ! धन्य ! ॥ भ्रम तम नाश कियो, मतवाद अन्य अन्य ॥
वेद औ कुरान आदि, वाणि बहु बन्य बन्य ॥ खाई और कन्टकादि, झूरमुट रन्य रन्य ॥
ताको करै नाश आश, सोई गुरुदेव मन्य ॥ बन्दीछोर काल भास, मेटि सत पहिचान्य ॥
कहै रामस्वरूपदास, पारखी ते धन्य ! धन्य ! ॥ काल जालकोविनाश, मुक्ति पथ विचरन्य॥१६॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

रामरहस गुरु पारखी, गुरुबोधनिर्णय कहि दियो ॥ सन्देह मिटिया शिष्यके, पारखहृदयमेंजबलियो ॥
रहनि गहनि दृढ़ करि, उपदेश पर याचत भयो ॥ रामस्वरूप दयालुगुरुवर, भेदपुनिसबभाखियो१७॥

॥ ❀ ॥ सवैयाः— ॥ ❀ ॥

ग्रन्थ चतुर्थ यही गुरुबोधके, भाग उभय इति भो या माहिं ॥
बन्धरु मुक्ति रहस्य यथा विधि, निर्णय साङ्गोपाङ्ग भो याहिं ॥
शब्द भाव युत अर्थ प्रगट करि, भाषा टीका युत कियो ताहिं ॥
रामस्वरूप सोई यह लेख है, गुरुमुख पढ़ि सुनि गुनि मन माहिं ॥ १८ ॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

पारख ज्ञान गुरुदेव ! राउर गुरुपद शरणमें ॥ मोंको आश्रय देव । ठौर ठिकाना और नहीं ॥१९॥
आप ज्ञान प्रकाश । कियोकृपाकरियाहिघट ॥ नामरूपयहभास । सत्य अहै तव बोध ही ॥२०॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

पञ्च तत्त्व ब्रह्माण्ड जड़ । विषय अध्यासी होय ॥ जीव परे सो पिण्डमें । चारखानि है सोय॥२१॥
पञ्चकोश परपञ्चकी । ग्रन्थी पड़ी मन माहिं ॥ सोइ विवर्ण निर्णयकिये । पञ्चग्रन्थीकहिताहिं॥२२॥

रामरहस कवि पारखी । पद्य कियो निर्माण ॥ कसर खोट दर्शायके । परखायो निर्वाण ॥२३॥
सब समझे नहिं मूलते । साधुन अर्थ पढ़ाय ॥ पारख पायो गुरु दया । गुरुपद शीश चढ़ाय॥२४॥
अर्थ पढ़ाई जस हता । तस टीका लिख दीन्ह ॥ रामस्वरूपपढ़ियेसुजन । जन्मसफलनिजकीन्ह॥२५॥
युगसहस्र ऋषि सम्वत । शुक्र श्रावण सुदितेर ॥ उन्निस पचास ईसवी । अगस्त पचीस दिन घेर॥२६॥
यह टीका भो पूर्ण ही । गुरुकी दयाते आज ॥ रामस्वरूप समर्पण । गुरुभक्तिते काज ॥२७॥

॥ * ॥ इति श्रीपारखनिष्ठ श्रीरामरहससाहेब विरचित— मूल पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थे चतुर्थ ग्रन्थः गुरुबोधान्तर्गत द्वितीय भाग— सारशब्द निर्णय ग्रन्थस्य रामस्वरूपदास, अनुवादित— "शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका" सद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ४ ॥ * ॥

श्रीसद्गुरुकी दयासे इति गुरुबोधसद्ग्रन्थकी टीका-व्याख्या सम्पूर्णम्।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ मध्य भूमिका वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

सबते बड़े गुरु पारखी, सत्य लखावनहार ॥ रामस्वरूप बन्दन करौं, गुरुभक्ति मनधार॥१॥
कृपा कियो गुरु साहेब, पारख ज्ञान प्रकाश ॥ हिय तम भ्रमहि मिटाइया, मानन्दीको नाश ॥२॥
कबीर बीजक सागर, पञ्चग्रन्थी महानदी ॥ दृढ़ बाँध टीका करि, याते सब हित सर्वदी॥३॥
पहुँच भयो सो मध्यमें, भूमि कियो ठहराव ॥ उभय सम्बन्ध बना रहे, मन मनसाको दुराव॥४॥
रामस्वरूपदास कहै, सुन सज्जन दै कान ॥ गुरु शिक्षा हितकारि है, मन वच कर्मते मान ॥५॥

प्रिय साधु-सज्जनो! तथा प्रेमी भक्तजनो! अब इस मध्य भूमिकामें इसी ग्रन्थके सम्बन्धमें विशेष बातोंका प्रकाश किया जाता है, सो सुनिये!—

श्रीरामरहससाहेब परम पारखी, पारखनिष्ठ पूर्ण विद्वान् रहे। आपने पद्यरूपमें पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थ बनाया; उसमें:— (१) पञ्चकोश, (२) समष्टिसार, (३) मानुष विचार दोनों भाग, (४) गुरुबोध दोनों भाग, और (५) सत्यशब्द टकसार है। ये पाँचों ग्रन्थ भिन्न-भिन्न रूपमें बने, उनको ही एकत्रित करके ग्रन्थके रूपके अनुसार ही नाम भी 'पञ्चग्रन्थी' रक्खा है। सो 'यथा नाम तथा गुण' प्रत्यक्षमें प्रगट है। तहाँ क्रमशः पश्चात्-पश्चात् वाले ग्रन्थ पूर्व-पूर्व वाले ग्रन्थकी अपेक्षामें बड़े आकारमें लिखे हुए हैं। उनमें गुरुमुख निर्णय भी विशेषरूपसे दर्शाकर वर्णन किया गया है।

(१) पञ्चकोशमेंः— अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, ज्ञानमय कोश और विज्ञानमय कोश इन्हींका विधिपूर्वक सब भागोंको दर्शाकर वर्णन किया है।

(२) समष्टिसारमेंः— व्यष्टि-समष्टि, जगत्-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्ति, इत्यादि द्विविध भागोंको दर्शाकर सबोंके सिद्धान्तोंको समेट करके उनके निर्णयका सार भाग बतलाकर वर्णन किया है।।

(३) मानुषविचारमेंः— मनुष्य और पशुके गुण-लक्षण, रहनी-रहस्य, हानि-लाभ, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, विचार-अविचार, त्याग-ग्रहण करनेकी इन सब बातोंका विस्तारसे समझाकर वर्णन किया गया है। इसके दूसरे छोटे भागमें षड्दर्शनोंके नाम, जाप, सिद्धान्त, आश्रम, छियान्नवे (९६) पाखण्ड, चार मुक्ति आदिकोंका खुलासासे वर्णन किया गया है।

(४) गुरुबोधमेंः— गुरु-शिष्यके प्रश्नोत्तर (सम्वाद) रूपमें— मैं कौन हूँ ? यह पञ्चदेह क्या है ? इसतरह इस पहिला प्रश्नसे शुरू करके और कई प्रकारसे ब्रह्म बोधमें शङ्का-समाधान करते हुए फिर अन्य मतवालोंको चेतानेके तरीके भी भलीभाँतिसे दर्शाया है। आखिरमें मनुष्योंको शुद्ध व्यवहारसे जीवन पर्यन्त रहनेके बारेमें शिष्यने जो तेईसवाँ प्रश्न किया है, उसको भी विधि-पूर्वक सद्गुरुने यथार्थ उत्तर देकर समझाया है। इसप्रकारसे कुल तेईस (२३) प्रश्न तकमें 'गुरुबोध' ग्रन्थका प्रथम भाग समाप्त हुआ है। पुनः गुरुबोधमें ही द्वितीय भागके रूपमें 'सारशब्द निर्णय' वर्णन हुआ है। तहाँ सार-असार शब्दोंका सत्य निर्णय प्रदर्शित किया गया है। काल, सन्धि, झाँईं रूप जीवमुख, मायामुख, और ब्रह्ममुखके शब्द जालोंको गुरुमुख सारशब्दसे निर्णय करके परखाया है। और—

(५) पाँचवाँ ग्रन्थ टकसारका वर्णन आगे होगा। इसतरहसे यहाँ तक पञ्चग्रन्थीके चार ग्रन्थोंकी सरल टीका भी विस्तारपूर्वक लिखकर समाप्त हो गयी है॥

अब टीका करनेके बारेमें मुख्य हेतु सुनिये !—

"श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, स्थान- नागझिरी, बुरहानपुरमें प्रथमसे ही परम्परासे पारखी साधु-गुरु द्वारा 'बीजक मूल'की और 'पञ्चग्रन्थी मूल'की अर्थ पढ़ाई साधुवर्गोंमें नियमितरूपसे होती ही चली आ रही है। यहाँ स्थानमें आकर कई सहस्र कबीरपन्थी सन्त-महात्माओंने उक्त सद्ग्रन्थ समयानुसार पढ़-पढ़कर अबतक जा चुके हैं। और वि० सं० १९८५ से १९८७ तक लगभग दो साल श्रीभगवान्-साहेब, श्रीलालसाहेब तथा श्रीगुरु छोटेबालकसाहेबजीके समयमें, उन सद्गुरुसे काशी 'कबीरचौरा' के एक साधु महाराजदासजी उर्फ राघवदासजी भी यहाँ स्थानमें आकर 'पञ्चग्रन्थी' और 'बीजकमूल' का अर्थ, गुरुमुखसे पढ़कर गये थे। वैसे ही बिहार, यू० पी०, सी० पी०, गुजरात आदि कई प्रान्तोंसे और भी साधुलोग यहाँ स्थानमें आकर अर्थ पढ़-पढ़ कर गये; और अभी वर्तमानमें भी वैसे ही सन्तवर्ग 'बीजक और पञ्चग्रन्थी'का अर्थ यहाँ बुरहानपुर स्थानमें आकर पढ़ ही रहे हैं। सर्वदा मनन न होनेसे वा मनन होते न रहनेसे सबको यथार्थ अर्थ बोधका प्रकाश हृदयमें बराबर कायम रह नहीं सकता है। अथवा कोई-कोई तो राग-द्वेषमें पड़कर अर्थ-का-अनर्थ ही कर बैठते हैं। उससे नर जीवोंकी हानि ही होती है। खैंचातानीमें पड़कर सारका ग्रहण नहीं होता है, और असली गुरुमुख अर्थका बोध लुप्त हो जाता है। ऐसी ही विघ्नकी कई बातें हो जाती हैं, सो प्रगटरूपसे जाहिर ही हो रही है।

श्रीगुरुवर आचार्य सद्गुरु श्रीलालसाहेबजीने असीम कृपादृष्टि करके अन्तमें मुझे (रामस्वरूपदासको) ही बीजक मूल तथा पञ्चग्रन्थीका सम्पूर्ण अर्थ सुनाकर क्रमशः भलीभाँतिसे विधिपूर्वक गुरुमुखसे पाठ देते-लेते हुए पढ़ाकर समाप्त कर दिये थे; और उसी प्रकार अन्य साधुओंको भी पढ़ानेका उत्तराधिकाररूप आज्ञा प्रदान किये थे। अतः सद्गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य

करके निज-पर हितके लिये ही बीजक तथा पञ्चग्रन्थीके उसीप्रकार अर्थ पढ़ानेका कार्य सद्गुरु श्रीलालसाहेबजीके समयसे ही मैं करने लगा। [अब तो सद्गुरु श्रीलालसाहेबजीका देह नहीं रहा, आप देह छोड़कर विदेहमुक्तिमें स्थित हो चुके हैं। परन्तु, आपका पारख ज्ञान सत् शिक्षा हमारे सन्मुखमें सदा जाग्रत्रूपमें विद्यमान है और रहेगा।]॥

इस साल ई० सन् १९४९ में साधुवर्गोंमें जब पञ्चग्रन्थीकी अर्थ पढ़ाई चलायी गयी, तब विचार हुआ कि, देह तो अनित्य, क्षणभंगुर रोगोंकी खानी ही है। अतः देहकी प्रकृति ठीक रहते ही अच्छे समयमें साधु-गुरुकी सेवा जो कुछ बन सके, सो करनी चाहिये। इसीप्रकार सद्ग्रन्थ पढ़ाईका गुरुमुख अर्थ भी स्थायी रहना चाहिये। सो तो लिखितरूपसे ग्रन्थ बनकर रहनेसे ही हो सकेगा इत्यादि; ऐसा सोच-विचार कर और उस समय स्थानमें मौजूद साधु वर्गोंकी भी ऐसे ही सद्इच्छा (सलाह) होनेसे इस सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी मूलकी, स्थान बुरहानपुर, नागझिरी कबीरपन्थ गद्दीमें चालू अर्थ पढ़ाईके मुताबिक ही खुलासेवार "शब्दार्थ-भावार्थ सत्य निर्णय यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी सरल टीका सहित" लिखना शुरू किया गया। तब वि० सं० २००६ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष ११, गुरुवार, तदनुसार तारीख १। १२। १९४९ ई० के रोजसे 'पञ्चग्रन्थी' मूलकी टीका लिखना प्रारम्भ हुआ, तो शब्दार्थ-भावार्थ तथा व्याख्या सहित 'पञ्चकोश मूल' प्रथम ग्रन्थकी टीका ता० २२। १२। १९४९ को लिख करके पूर्ण हुआ। फिर दूसरे रोजसे 'समष्टिसार मूल' का शब्दार्थ-भावार्थ और व्याख्या सहित अर्थ लिखने लगा था, सो ता० ३०। १। १९५० को टीका लिखकर पूर्ण किया। फिर उसके दूसरे रोजसे ही 'मानुषविचार' का अर्थ लिखनेमें लगा था, सो 'मानुषविचार मूल' का भी शब्दार्थ-भावार्थ तथा व्याख्या सहित ही विस्तारसे टीका लिख कर ता० २९। ६। १९५० ई० को दोनों भाग समाप्त किया। इस बीचमें विशेष कार्यसे दो महीना करीब लिखाई बन्द पड़ी थी। पुनः तारीख-३०। ६। १९५० ई० से 'गुरुबोध ग्रन्थ' का अर्थ लिखना शुरू किया; इसमें प्रथम तो शब्दार्थ और भावार्थ टीका मूल और बगलमें अर्थ भर लिखा था, व्याख्या लिखना छोड़ दिया गया था, सो उस रूपमें ता० २५। ८। १९५० ई० को 'गुरुबोध'दोनों भागोंकी टीका लिखना समाप्त हो गया था, और जब पीछे संशोधन करने बैठा, तब फिर 'गुरुबोध'की भी सम्पूर्ण ही व्याख्या होनेकी आवश्यकता मालूम हुई। अतः सोच-विचारकर ता० २८। ४। १९५२ ई० के रोज पुनः व्याख्या लिखनेको बैठकर शुरू किया था, सो ता० १०। ६। १९५२ ई० को संशोधन सहित गुरुबोधके दोनों भागोंकी व्याख्या भी लिखकर समाप्त की गयी है, सो जानिये ! ॥

अब टकसार ग्रन्थकी टीका लिखना बाकी रहा है, जो सबसे बड़ा ग्रन्थ है। लिखनेमें समय ज्यादा लगेगा। ग्रन्थके पृष्ठ ज्यादा न बढ़ें, इस उद्देश्यसे दोहरा मूल लिखकर टीका लिखनेकी क्रम-शैली यहाँसे बदलकर ऊपर मूल पद मात्र लिखकर उसके नीचे ही सीधी लाईनमें अर्थ पूर्ण लिख दिया जायगा। वहाँपर शब्दार्थ-भावार्थ और व्याख्या एक साथ ही रहेगी। अर्थ तो पूर्ण हो आ जायगा, केवल मूलपद एकहरारूपमें रहेगा।

श्रीसद्गुरुकी दयासे 'टकसार' सद्ग्रन्थकी टीका भी पूर्ण निर्विघ्नतासे लिखकर और छपकर समाप्त होवे, यही साधु सद्गुरुसे विनय और सद्भावना है। जैसा होगा, सो तो भविष्यमें मालूम ही पड़ेगा। किन्तु, जो प्राप्त है, उसीसे पारखबोध लेकर लाभ उठाते हुए यह नर जन्म पानेका सफल कर लीजिये ! सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन करके सार ग्रहण कर लीजिये ! पक्षपात और राग-द्वेषको हटाकर दृढ़ वैराग्य धारण कर लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरुकी दयासे— शान्ति है ! मङ्गल हो ! कल्याण हो !!! ॥ ❀ ॥

॥ * ॥ इति पञ्चग्रन्थी टीकाकी मध्य भूमिका वर्णनम् समाप्तम् ॥ * ॥

लेखकः— रामस्वरूपदास। श्रीकबीर [illegible] मन्दिर, स्थान- नागझिरी, बुरहानपुर ॥

[दिनाङ्क २७। ८। १९५० ईसवी सन् ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवेनमः ॥ ❀ ॥

बन्दीछोर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी दयासे प्रकाशित– मूल बीजक सद्ग्रन्थके सत्य पारख सिद्धान्तानुसार—

साधुशिरोमणि कबीरपन्थी सन्त–महात्मा पारखनिष्ठश्रीरामरहससाहेब विरचित

सद्ग्रन्थः मूल-पञ्चग्रन्थी–सटीक ।

॥ ❀ ॥ अथ टकसार नामक पञ्चम सद्ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ५ ॥ ❀ ॥

[शब्दार्थ–भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ अथ टीकाकारकृत— श्रीसद्गुरुपद-वन्दन ।— मङ्गलाचरण प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

श्रीकबीरसाहेब गुरु । पूरणसाहेब सन्त ॥ रामस्वरूप पद बन्दवूँ । कर शीश धरी अनन्त ॥१॥
साहेबको त्रयबन्दगी । चरणकमल शिरनाय ॥ पारख ज्ञान प्रकाशिया । भ्रम तम सबहिं नशाय ॥२॥
बन्दीछोर पारखी गुरु । हितकर दीनानाथ ॥ रामस्वरूप सत् ज्ञान दै । मोंको कीन्ह सनाथ ॥३॥
अनन्त वाणी जालमें । जीव रहा अरुझाय ॥ सो परखाये टकसारमें । रामरहस समुझाय ॥४॥
सत्य निर्णयी पारखी । रामरहस गुरुदेव ॥ रामस्वरूप टीका करौं । टकसार सार सुलेव ॥५॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

टकसार गुरुकी अदल है, सतसङ्गति पहिचानिये ॥ पारख रहस्य बतावता, सत शब्द निर्णय मानिये ॥
चैतन्य जड़के भेदको, न्यारा किया सो जानिये । रामस्वरूप स्थिति कीजिये, टकसार गुरुपद आनिये ॥६

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

बृहद् ग्रन्थ टकसार यह । रामरहस निर्माण ॥ रामस्वरूप सिद्धान्त सब । सारासार बखान ॥७॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

बिनु गुरुके टकसार । मतवादी सब भूलिया ॥ भटक रहे भव धार । गुरुवा नारी सङ्गमें ॥८॥
कोटि करे जो कोय । पारख बिन निस्तार नहीं ॥ जानै पारखी सोय । रामस्वरूप सब भेदको ॥९॥
बिरल जिज्ञासु कोइ । जो आये गुरु शरणमें ॥ काल जाल बचे सोइ । और परे भवचक्रमें ॥१०॥
अहै अथाह भवचक्र । गहिर भँवर बहुविधि पुनि ॥ महा कठिन सो वक्र । बाँचे पारखी गुरु दया ॥११॥

॥ ❀ ॥ कवित्तः— ॥ ❀ ॥

सार औ असार जौन, जौन आहि विश्वमाहिं ॥ ज्ञानबीन करि तौन, पारख सो परखाहिं ॥
सोई सब एक एक, निर्णय दिखाय ताहिं ॥ टकसार कहे तौन, भेद सब समझाहिं ॥
सतसङ्ग सार लखु, नित्य सत्य जीव आहि ॥ ब्रह्म, ईश आदि सब, निर्जीव भूल माहिं ॥
गुरुमुख पढ़ि सुनि, सार रखु हिय माहिं ॥ रामस्वरूप भास आस, असार सो त्याग ताहिं ॥ १२ ॥

सवैयाः— परम पारखी रामरहस गुरु, ज्ञान-बीन टकसार बनायो ॥
पद्य सरल भाषा महिं है पुनि, भाव गूढ़ सब समुझ न पायो ॥
ज्ञाता पारखी गुरुमुखते सुनि, यथार्थ निर्णयको प्रगटायो ॥
रामस्वरूपदास सबके हित, यहि टीका लिखने मन लायो ॥ १३ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

दया कीन्ह पारखी गुरु । बोध कियो परकाश ॥ रामस्वरूप हियतम मिटी । सकलों भास विनाश ॥ १४ ॥
टीका सरल सुबोधिनी । शब्द भाव समुदाय ॥ बिन प्रयास आसानते । श्रद्धालु लखि पाय ॥ १५ ॥
गुरुमुखवाक्य प्रमाणको । सुनिगुनिधरि हिय माहिं ॥ रामस्वरूप टीका लिखा । अर्थ यथार्थ प्रगटाहिं ॥ १६
भाद्र वदीके प्रतिपदा । चन्द्रवार सुप्रभात ॥ प्रारम्भः गुरुकी दया । दो हजार औ सात ॥ १७ ॥
दया गुरुकी लेख लिखि । निर्विघ्न पूर्ण हो येह ॥ गुरुपारखकी भरोश है । नाशमान यह देह ॥ १८ ॥
गुरु साधुनको बन्दगी । प्रेम भक्तिके साथ ॥ रामस्वरूपदास अब । करु सहाय गुरुनाथ ! ॥ १९ ॥
साहेबके परसाद है । टीका सो यह लेख ॥ रामस्वरूप तजि पक्षको । विचार दृष्टिसे देख ॥ २० ॥
सत निर्णय सो जौन है । गुरु पारखीके आहि ॥ रामस्वरूप श्रद्धायुत । सो गहि धरु मनमाहिं ॥ २१ ॥

॥ ❀ ॥ इति टीकाकार कृत— श्रीसद्गुरु पद-वन्दना, मङ्गलाचरण-पद समाप्तः ॥ ❀ ॥

सम्बन्ध— पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थमें यहाँसे "सत्य शब्द परख विलास— टकसार" नामक पञ्चम ग्रन्थ शुरू होता है । दोहा १ से ९ तक श्रीरामरहससाहेब कृत— मूल मङ्गलाचरणके रूपमें वर्णन हुआ है । शब्द १ से ग्रन्थका प्रकरण वर्णन किया गया है । चौपाई भाग १०३ तकमें खानी-वाणी जालोंका विस्तारूपसे निर्णय करके परखाया गया है । प्रसङ्गानुसार दरशा करके विविधि प्रकरणोंका वर्णन किया हुआ है । पद्य संख्या १९७८ तकमें टकसार ग्रन्थका प्रथम भाग समाप्त होता है । तत्पश्चात् द्वितीय भागमें सत्ताईस रमैनी वर्णन किया है । इसप्रकार विस्तारूपमें मूल टकसार ग्रन्थ बना है । इसका अर्थ— व्याख्या भी उसीप्रकार सम्पूर्ण भाव दर्शाकर विस्तारसे लिखा गया है । विचारपूर्वक अवलोकन कर पक्षपातको त्यागकर जिज्ञासुजनोंने सत्यसार पारख बोधको प्राप्तकर सद्ग्रन्थ द्वारा बोधको परिपुष्ट कर लेना चाहिये ॥

॥ ❀ ॥ अथ-ग्रन्थकर्त्ता विरचित-सत्य शब्द परखविलास-टकसारसद्ग्रन्थः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ मङ्गलाचरण पद- दोहा ॥ [दोहा १ से ९ तक है] ॥ ❀ ॥

दोहाः— साहेब दीनदयाल गुरु * सो पर और न कोय ॥
[१] शरण आय यमसों बचै * आवागमन न होय ॥ १ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे मुमुक्षुओ ! सद्गुरु श्रीकबीर-

साहेब तथा आपके सच्चे अनुयायी पारखी सन्त ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान शिरोमणि हैं। दीन, हीन, मलीन, जड़ाध्यासी हो आवागमनमें पड़कर दुःख पानेवाले मनुष्य जीव जब आपकी शरणमें आते हैं, तब उनपर महान दयादृष्टि करके पारख बोध देकर तमरूप अज्ञानको मिटानेवाले, ऐसे दीन दयालु परोपकारी सद्गुरु जो हैं, सोई 'साहेब' हैं; आप परमपूज्य हैं। सो उन पारखी सद्गुरुसे परे और दूसरे कोई जीवोंको मुक्तिदाता नहीं हैं। बल्कि गुरुवालोग तो बन्धन दाता ही बने हैं। और वे गुरुवालोग तो जीवसे परे कोई कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि बताकर मनुष्योंको भुला रहे हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ही कहा है कि:—

साखी:— "जो जानहु जग जीवना। जो जानहु सो जीव॥
पानि पखावहु आपना। तो पानी माँगि न पीव॥" ॥ बीजक, साखी ॥ ११ ॥

"जीवसे परे और कोई सत्य वस्तु नहीं है; और संसारमें सत्य वस्तु जो है, सो जीव ही है।" ऐसे पारख बोधदाता हे मेरे सद्गुरु गुरुदयालसाहेब! हे दीन दयालु! आपकी ही शरणमें मैं आया हुआ हूँ! क्योंकि, आपकी शरणमें जो आये, वे यम जालोंसे बच गये; अर्थात् मुक्त हो गये। इसी आशासे मैं भी आपकी शरणमें आ पड़ा हूँ! फिर यहाँ ग्रन्थकर्त्ता जिज्ञासुओंके प्रति लक्ष्य करके कहते हैं कि, हे जिज्ञासु मनुष्यो! पारख बोध लखानेवाले ही सर्वश्रेष्ठ सद्गुरु हैं। उनसे बढ़कर और कोई नहीं हैं। पारखपदको पाये बिना और दूसरे किसी उपायसे भी जीव भव-बन्धनोंसे छूट नहीं सकते हैं। और जो कोई जिज्ञासु नरजीव ऐसे सद्गुरुकी शरणमें आये, तो उन्हें सद्गुरुदेवने यम= स्त्री और गुरुवाओंके फन्दा=खानी-वाणी जालोंको एक-एक करके लखा दिये, परखा दिये। इसलिये वे यमसे बचकर जड़ाध्यासोंसे छूट गये, जीवन्मुक्त हो गये। अतएव उनको फिर आवागमन हो नहीं सकता है। इसलिये तुमलोग भी पारखी सद्गुरुकी शरणमें आकर आवागमनोंसे बच जाओ! ॥१॥

दोहा:— दया करन औगुण हरण ❀ तारण तरण उदार॥
[२] अशरण शरण बन्दौं चरण ❀ तुम बिन नहिं निस्तार॥ २॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे पारखी सद्गुरो! आप नरजीवोंपर महान दया करनेवाले हो! निःस्वार्थ भावसे आप अपनी तरफसे ही दयादृष्टि करके सत्य पारख बोध देकर अवगुण=कल्पना, अनुमान, भ्रम, तथा काम, क्रोध, तृष्णा, आशा, मोहादि समस्त विकार, दुर्गुणोंको हरण करके विनाश कर मनुष्योंको भवपार करनेवाले हो! जिज्ञासुओंको शुद्ध, निर्मल, निर्विकार कर पार उतारनेवाले वा मुक्त करनेवाले हो! हे प्रभो! आप तो सत्य उपदेशके दाता परमदानीरूप उदार हो! आप तो स्वयं पारख स्वरूप तथा जड़ाध्यासोंसे रहित आवागमनसे पार उतरे हुए जीवन्मुक्तरूप हो! और जो नरजीव कहीं भी शरण-रक्षाका ठौर न पाकर भूले-भटके हुए आपके चरणकी शरणमें आ जाते हैं, उन अनाथोंको शरणमें लेकर रक्षा करनेवाले अशरण-शरण हे सद्गुरो! मैं दीनतासे आपके पवित्र चरणकमलोंमें शिर नवाकर त्रयबार वन्दना करता हूँ! हे साहेब! आपके आधार, दयादृष्टि, पारखबोधके बिना हम अज्ञानी जीवोंको खानी-वाणी जालोंसे छुटकारा या मुक्ति (निस्तार) नहीं हो सकती है। अतएव आपकी दयादृष्टि ही सदैव हम चाहते हैं, सो दासको शरणमें लगाये रखिये!॥ २॥

दोहा:— देखि अधमता आपनी ❀ परवश यमके हाथ॥
[३] त्रसित गहेउँ साहेब! शरण ❀ भव भय हारि सनाथ॥ ३॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे प्रभो! आपके सत्योपदेश श्रवणके प्रभावसे मैं कुछ विचार करने लगा हूँ, तो अपनी अधमता, नीचता देखकर शर्माता हूँ! पछताता हूँ! देखिये! मेरी नीचता, कुटिलता, अधमपनाका हद ही हो गया! अपने कल्याणका तो मैं अभी तक ख्याल

ही नहीं करता था। आशा-तृष्णामें बँधा हुआ मिथ्या माया-मोह, विषय कामनाके वशीभूत हो इधर यमरूपी स्त्रीके हाथ=घेरामें पड़कर बन्दरके समान नाचा। विषय जालोंमें अभी तक फँसा पड़ा हूँ! और उधर गुरुवाओंके फन्दाओंमें पड़कर नटवत् नाना कर्मादिमें नाचा; ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्ग, सिद्धि आदि कल्पित कामना तथा वाणी जालोंमें फँसा हुआ दुःख पा रहा हूँ! हे साहेब! मैं तो परवश-ऐसे यमोंके हाथोंमें पड़कर बहुत घबड़ा रहा हूँ! और गर्भवासादि महादुःख त्रय तापादिकोंको देख-सुन करके त्रसित=भयभीत हो रहा हूँ! "त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!" हे सद्गुरु साहेब! मैं अब आपकी शरणमें बचाव वा मुक्तिके लिये आया हुआ हूँ! दृढ़तासे सद्गुरु चरणोंकी शरण-ग्रहण करता हूँ! विकराल खानी-वाणी जाल, जन्म-मरणादि भव-भयको हरण करके मुझ अनाथको आप अब सनाथ कीजिये! ॥ ३ ॥

दोहाः— प्रभु! सब लायक पारखी ❀ हौं भरमिक अज्ञान ॥
[४] लोहा कनक पारस करै ❀ साहेब शरण समान ॥ ४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे प्रभो! हे सद्गुरो! आप तो त्याग, वैराग्य, विवेक, बोधादि सर्व सद्गुण निधान होनेसे सब प्रकारसे लायक, परम पारखी जीवन्मुक्त हो! आप ऐसे परीक्षक हो कि- काल, सन्धि, झाँईं, तत्त्वमसि, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, वेद, शास्त्र, कुरान आदिके समस्त वाणी-सिद्धान्तोंको पारख करके सत्य निर्णय द्वारा सबके कसर-खोट असार-सारको अलग-अलगकर सत्य पारखका प्रकाश किये हो! ऐसे आप पारखी सद्गुरु सब लायक हो! और मैं या हम लोग तो पञ्च विषयाभिमानी संसारी, अज्ञानी, जड़ाध्यासी, पामर अनेक प्रकारके कल्पित भ्रम संशयोंमें भूले हुए भ्रमिक, पञ्च अहङ्कारमें ग्रसित हो रहे हैं, सो मैं अबोध हूँ! और आपके सत्य बोध द्वारा अपना कल्याण करना चाहता हूँ! संसारमें लोग कहते हैं, सो सुननेमें भी आता है कि— "यदि पारस नामके मणिको लोहामें एकतासे छुवा देवे, तो लोहाके सब विकार तुरन्त ही नष्ट हो करके पारस मणिके गुणसे वह लोहा तत्काल सुवर्ण होकर चमकने लग जाता है।" परन्तु, हमें तो आज तक ऐसा देखनेमें नहीं आया; अस्तु! तथापि दृष्टान्तमें पारसमणि लोहाको सोना मात्र करता है; परन्तु, पारस ही कर देनेकी शक्ति तो उसमें भी नहीं है। तहाँ कहा भी है:—

दोहाः— "पारसमें और गुरुमें। बड़ो अन्तरो जान॥ वह लोहा कञ्चन करै। यह करैं आप समान॥"

अतएव सद्गुरु ही सर्व श्रेष्ठ हैं। हे सद्गुरु साहेब! आपकी शरणमें निष्कपट शिष्यभावसे जो नरजीव आते हैं, उन्हें सत्य पारख बोध देकर आप स्व-स्वरूप पारखनिष्ठ तथा अपने समान निर्बन्ध, जीवन्मुक्त बना देते हो! यह आपकी विशेषता, सर्वोपरि श्रेष्ठताकी महिमा है! अतएव मैं यही विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि, मुझे भी आप अपने समान कीजिये! ॥ ४ ॥

दोहाः— बन्दौं चरण सब दुःख हरण ❀ प्रभु प्रसाद दुःख भूरि ॥
[५] दया करी दुःख सब हरी ❀ संसृत शूल भौ दूरि ॥ ५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सद्गुरु प्रभो! आपके चरण कमलोंमें मैं त्रयबार या बारम्बार वन्दना करता हूँ! आपका आचरण, रहनी-रहस्य सत्यशिक्षा समस्त दुःखोंको हरण करनेवाला और शान्ति-स्थितिको देनेवाला है। सो आपने कृपा करके हमारे चिन्ता, शोक, राग, द्वेष, जन्मृति आदि सर्व भयानक दुःखोंको पारख बोध देकर हरण कर लिये हो! और हे प्रभो! आपके कृपाप्रसादसे भूरि=बड़े-बड़े दुःख, खानी-वाणी सम्बन्धी तमाम कष्ट भी निवारण हो जाते हैं। सो दुःख तो आपने नष्ट ही कर दिये हो! तथा हम लोगोंके ऊपर आपने असीम दया-दृष्टि करके स्थूल-सूक्ष्म दुःखोंके कारण कल्पना, मन-मानन्दीको भी हरण करके हटा दिये हो! इसवास्ते

संसृतिरूप जड़ाध्यास समूल नष्ट होकर दूर हो जानेसे भव-बन्धन छूट गया। आपने महान कष्ट, शूल, पीड़ारूप जन्म, मरण, गर्भवास त्रिविधि तापोंके बीजको दूर कर दिये हो! ऐसे मुक्तिदाता हे बन्दीछोर! आपके चरण कमल या गुरुपदमें मैं नम्रतापूर्वक शिर नवाकर त्रयबार साहेब बन्दगी करता हूँ! आपके उपकारको महान मानता हूँ! ॥ ५ ॥

दोहाः— बहे बहाये जात थे ❀ भवसागरके माँहिं ॥
[६] दया करी परखाय सब ❀ शरण आये गहि बाँहिं ॥ ६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सद्गुरुदेव! जब तक आप नहीं मिले थे, तब तक हम सब अबोध जीव विषय-कल्पनामें बह रहे थे; स्त्रियाँ और गुरुवालोग जिधर-जिधर चाहते थे, उधर-उधर ही नाना प्रपञ्चोंमें हमें बहाते, भ्रमाते, भुलाते हुए ले जा रहे थे। हम भी आसक्तिवश खानी-वाणीरूप भवसागरके मध्यधारोंमें बहते हुए गोते लगाते जा रहे थे। हे परम दयालु सद्गुरु साहेब! आपने ही दया करके सब जालोंको परखाकर छुड़ा दिये हो, और हाथ पकड़कर किनारेमें खींचकर हम आर्त जीवोंको शरणमें लगा लिये हो; तथा निज पारखपदका आश्रय देकर बचा लिये हो! ऐसे परम उपकारी आपको कोटिशः धन्यवाद है ॥ ६ ॥

दोहाः— सन्तत अभय गुरुके चरण ❀ सदा परख परकाश ॥
[७] शमन सबै भव जाल तम ❀ रामरहस सुख बास ॥ ७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! श्रीसद्गुरुदेवके चरण-शरणके आश्रयमें रहनेवाले नरजीवोंको निर्भय पारखपदकी प्राप्ति हो जाती है। और गुरुपदमें सन्तत=हरहमेशा अभय रहता है; सो ब्रह्म, ईश्वर, कर्त्ता, यमराज, भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस, देवी, देवता आदिको मिथ्या कल्पित जान लेनेपर उस तरफके मिथ्या भय छूट जाते हैं। सदा-सर्वदा सत्य पारखका प्रकाश हृदयमें बने रहनेसे मृत्यु आदिका भी भय नहीं रहता है। सो गुरु पारखके प्रतापसे भवसागरके जितने खानी-वाणीकी मोटी-झीनी मायाके जाल हैं, सो सब शान्त या नष्ट हो जाते हैं। अब यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब अपने नामके संकेतसे कहते हैं कि, 'राम' अर्थात् चैतन्य जीव, 'रहस्य' अर्थात् सद्गुण पारख बोधका भेद पाकर मेरी सब वासनाएँ और बन्धन छूट गये, तो मैं स्वरूप स्थितिकी शान्तिरूप सुखमें निवास किया। ऐसे जीवन्मुक्ति सुखका बास पारखी सद्गुरुकी दयासे ही प्राप्त हुआ या प्राप्त होता है, ऐसा जानिये! ॥ ७ ॥

दोहाः— सर्वोपरि गुरुके चरण ❀ जो हारी भव खेद ॥
[८] परम उदार सागर दया ❀ थाह न पावै वेद ॥ ८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा आपके अनुयायी पारखी साधु-गुरुका पद सर्वोपरि है। और सद्गुरुके चरण कमल, शुभाचरण या पारख सिद्धान्त संसारमें ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी, ज्ञानी, भक्त, संन्यासी, उदासी, वैरागी, विज्ञानी आदि सर्वके सिद्धान्तोंके ऊपर परीक्षक होनेसे सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपरि एवं शिरमौर हैं। जो कि, भव दुःखोंमें पड़े हुए मनुष्य जब सद्गुरुके पारखबोधको पा जाते हैं, तो फिर समस्त भव दुःख उनके हरण होकर नष्ट हो जाते हैं। जन्म, मरण, गर्भयातनादिसे भी वे छूट जाते हैं। इसलिये पारखपद सबसे बड़ा है। परम दयालु दयाके समुद्र समान सत्य ज्ञान बोध दाता परम उदार पारखी सद्गुरुकी दयासे ही सबका भेद लखनेमें आता है। केवल वेद ही पढ़नेसे सत्यका मर्म जाननेमें नहीं आता है। इसलिये केवल वेद पढ़कर मुक्ति भी नहीं होती है। कर्मी, उपासक, ज्ञानी आदि वेदवादी पक्षपाती बने हैं। अतः उन्हें पारखका पता ही नहीं है। इसीसे वेद प्रमाण द्वारा अथाह, निर्गुण, निराकार, व्यापक, अवाच्य ब्रह्म-परमात्मा मानकर उसको वेद भी नहीं जान सकता है, ऐसा बताकर

कल्पनासे "नेति-नेति श्रुतिः" ऐसा कहकर महाभूलमें ही पड़े हैं। ऐसे भ्रमिक वेदवादी गुरुवा-लोग गुरु पारखका थाह या पता वा भेद नहीं जान पाते हैं। सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें तो वे आते ही नहीं हैं, फिर थाह तो भी कैसे पावेंगे? इसलिये बेपारखी मतवादी, वेदवादी, और विषयी लोग सब जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही भटकते रह जाते हैं; अतः सद्गुरुके सत्सङ्गमें आकर सबका पारख करना चाहिये ॥ ८ ॥

दोहाः— चारिवेद जग विदित है ❀ ब्रह्मा कीन्ह प्रकाश ॥
[९] चारिरूप सो जानिये ❀ चारि अवस्था भास ॥ ९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! हे मनुष्यो! सुनो! "ब्रह्माने चार वेदोंका प्रकाश किया", ऐसा संसारमें विदित या जाहिर हुआ है। सो कोई मनुष्य पूर्वमें रजोगुणी कर्मकाण्डी पण्डित संस्कृतज्ञ ब्राह्मण था, वही ब्रह्मा माना गया है। उसीने वाणीकी नाना तरहसे कल्पना करके— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदकी रचना करके उसे बनाया और जगत्में प्रकाश किया; तथा "वेद ईश्वरकृत ज्ञान है," ऐसा जाहिर या प्रख्यात कर दिया; वही बात पण्डितोंने विदित किये हैं। सो चारदेहोंके रूपकी ही चार अवस्थाओंके भाससे चार सिद्धान्त, चार मार्ग आदि प्रगट किये हैं। सो नरजीवोंका भास असत्य ही है, ऐसा जानिये! अब इसकी विशेष व्याख्या सुनिये!—

ब्रह्मवेत्ता कहाने वाले ब्राह्मण ऋषियोंने नादरूप श्वास वायुको कल्पनासे निराकार भगवान् ठहराकर, चारों वाचाओंसे चारोंवेद निकाला है। इसीसे मुख्यतया ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको ही निरञ्जन ब्रह्म वा चतुराननरूप ब्रह्मा माना है। पहला, 'स्थूल' देहकी 'जाग्रत्' अवस्थाके भाससे 'सामवेद' बना। सो पृथ्वीतत्त्व— 'वैखरी वाचा' द्वारा "तत्त्वमसि" सिद्धान्त मानकर जीव-ब्रह्मकी एकता, व्यापकता ठहराकर वहाँ 'कर्ममार्ग' चलाया है। दूसरा, 'सूक्ष्म' देहकी 'स्वप्न' अवस्थाके भाससे 'यजुर्वेद' बना। सो जलतत्त्व— 'मध्यमा वाचा' को लेकर एकने "अहं ब्रह्मास्मि" माना; दूसरेने "स्वरूपं सगुणं ब्रह्म" ऐसा सिद्धान्त मानकर उपास्य (इष्ट) देव चौबीस अवतारोंको ठहराया; वहाँ 'उपासना मार्ग', चलाया है। तीसरा, 'कारण' देहकी 'सुषुप्ति' अवस्थाके अध्याससे 'अथर्ववेद' बना। सो तेजतत्त्व— 'पश्यन्ती वाचा' को लेकर "अयमात्मा ब्रह्म" या "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ऐसा सिद्धान्त मानकर समस्त चराचर विश्वको ही पूर्ण ब्रह्म ठहराया है। तहाँ 'योगमार्ग' यहींसे चला या चलाया है। चौथा, 'महाकारण' देहकी 'तुरिया', अवस्थाके भाससे 'ऋग्वेद' बना। सो वायुतत्त्व— 'परा वाचा' को लेकर "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" ऐसा सिद्धान्त मानकर निर्गुण, निराकार सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक अद्वैत ब्रह्म ठहराया है। तहाँ 'ज्ञानमार्ग' यहींसे चलाये हुए हैं। इसप्रकार चारवाचाओंसे चार वेद, चार देहोंकी चार अवस्थानुसार बने। सोई यहाँ बुद्धिरूपी ब्रह्माने चारों वाचारूप चारमुखसे चार वेद गाया। तहाँ भास, अध्यास, अनुमान और कल्पना, यही चारप्रकारके सिद्धान्त ठहराया है। बिना पारख भ्रमिक, जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। चार वेदोंके इन सिद्धान्तोंसे नर जीवोंकी कदापि मुक्ति नहीं हो सकती है; क्योंकि, वह तो नरजीवोंकी भ्रमपूर्ण मिथ्या कल्पना है। इसीके अध्याससे जीव चारखानीके आवागमनमें जाते-आते रहते हैं। इसवास्ते पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें इसको परखकर भ्रमको परित्याग करना चाहिये। नीचेके शब्दमें इसीका खुलासा करके ग्रन्थकर्त्ताने स्वयं वर्णन किया है; सो सुनिये! ॥ ९ ॥ ❀ ॥ इति मङ्गलाचरण पद समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका शब्द ॥ भाग-१ ॥ [चौपाई १ से १६ तक है] ॥ ❀ ॥

१. सन्तो दुबिधा कहाँते आया? ॥ १० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! हे सज्जन साधुओ! सुनो! दुविधा = भ्रम,

सन्देहसे जो तुम लोगोंने एक जगत्कर्त्ता सुख-दुःखोंका दाता कोई एक परमेश्वर माने हो, सो कहाँ है ? और कहाँसे आया ? यानी अपनेसे भिन्न दूसरा जगत्कर्त्ता जो मानते हो, सो कहाँसे आया ? जगत् पहले नहीं था, तो फिर जगत् कहाँसे, कैसे आया ? इसका सत्यनिर्णयसे विचार करो, धोखेमें मत् पड़ो ! ॥ १० ॥

२. नाना भाँति विचार करत हो ! * कौने मति बौराया ? ॥ ११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तुमलोग जो नाना तरहसे जगत्का कर्त्ता होनेका विचार करते हो; कहीं सगुण, कहीं निर्गुण, कहीं जैसे-का-तैसा, कहीं विश्वरूप, कहीं एक-अनेक, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, नाना मतवाद, भाँति-भाँतिके विचार जो कर रहे हो, सो उस कल्पनाको छोड़कर अपने सत्स्वरूपका विचार क्यों नहीं करते हो ? तुम्हारी मति-बुद्धिको किसने भ्रष्ट करके बिगाड़ दिया है ? हक-नाहक क्यों बौराते हो ? पागलकी तरह बकवाद मत् करो ! सत्यासत्यका विवेक सत्सङ्गमें ठहरकर करो ! सद्गुरु साहेबके ऐसे उन्हें चेताकर पूछनेपर भ्रमिक मतवादीलोग चार वेदोंके सिद्धान्तको प्रगट करके बतलाते हैं— और कहते हैं कि, देखिये ! इसप्रकार वेद प्रमाणसे हम मानते हैं, सो सुनिये ! ॥ ११ ॥

॥ ❀ ॥ तुरियारूप ऋग्वेदका सिद्धान्त ॥ तुरिया अवस्थाका भास वर्णन ॥ ❀ ॥

३. ऋग् कहै निराकार निर्लेपित * अगम अगोचर साँई ॥ १२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऋग्वेदमें महावाक्य कहा है कि— "प्रज्ञानं ब्रह्म" (१) ❀ वह जगदाधार, जगत्कर्त्ता, परमात्मा निराकार है। वह किसीमें लिप्त नहीं है; इसलिये निर्लिप्त है। मन, बुद्धि, वाणीसे परे होनेसे अगम है। निर्विषय होनेसे दशों इन्द्रियोंसे देखा, सुना तथा प्राप्त किया भी नहीं जा सकता है, अतः अगोचर है। वही साँई = सब जगत्का मालिकरूप स्वामी है। वह अन्तर्यामी सब घटमें व्यापक ब्रह्म है; ऐसा ऋग्वेदमें विस्तारसे वर्णन करके ब्रह्मको निराकार कहा है ॥ १२ ॥

---

(१) ❀ टिप्पणीः— ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यकमें दूसरे आरण्यकके चौथे, पाँचवें और छठे अध्यायोंको ऐतरेय-उपनिषद्के नामसे कहा गया है। उसमें लिखा हैः—

"प्रज्ञानं ब्रह्म ॥"— प्रज्ञान ही ब्रह्म है ॥ [ऐतरेयोपनिषद्, अध्याय ३ । मन्त्र ३ ॥]

"ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किंचन मिषत् ॥"

[ऐतरेयोपनिषद्, अध्याय १ । खण्ड १ । मन्त्र १ ॥]

— यह जगत् पहले एकमात्र परमात्मा ही था; उसके सिवा दूसरा कोई भी चेष्टा करनेवाला नहीं था ॥

"आत्मा आप्नोतेरत्तेर्वा परः सर्वज्ञः सर्वशक्तिरशनायादिसर्वसंसारधर्मवर्जितो नित्यशुद्ध-बुद्धमुक्तस्वभावोऽजोऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयोऽद्वयो वै; इदं यदुक्तं नामरूपकर्मभेदभिन्नं जगदात्मैवै-कोऽग्रे जगतः सृष्टेः प्रागासीत्" ॥ शाङ्कर भाष्यार्थ ॥

—[व्याप्तिबोधक] 'आप्' [भक्षणार्थक] 'अद्' अथवा [सतत गमन बोधक] 'अत्' धातुसे 'आत्मा' शब्द निष्पन्न हुआ है। यह जो नाम, रूप और कर्मके भेदसे विविधरूप प्रतीत होनेवाला जगत् कहा गया है, वह पहले यानी संसारकी सृष्टिसे पूर्व सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, क्षुधा-पिपासा आदि सम्पूर्ण सांसारिक धर्मोंसे रहित, नित्य शुद्ध-बुद्ध, मुक्त स्वभाव, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत, अभय और अद्वयरूप आत्मा ही था ॥

"निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥ अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥"

[श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय ६ । मन्त्र १९ ॥]

—कलाओंसे रहित, क्रिया रहित, सर्वथा शान्त, निर्दोष, निर्मल, अमृतके परम सेतुरूप तथा जले हुए ईन्धनसे युक्त अग्निकी भाँति शुद्ध निराकार ब्रह्म है ॥

४. आवै न जाय मरै नहिं जीवै * रूप वरण कछु नाहीं ॥ १३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अतएव वह परमात्मा जगत् विकार जन्म-मरणमें कभी आता भी नहीं है और जाता भी नहीं है। उसका तीन कालमें कभी नाश नहीं होता है; मरना-जीना भी उसको नहीं है। उत्पत्ति-प्रलयमें भी वह नहीं पड़ता है; स्थूल-सूक्ष्मादि कोई भी रूप उसका नहीं है; रूप, रङ्ग, आकार, भेद, वर्ण, आश्रमादि कुछ भी निराकार ब्रह्ममें नहीं सम्भवता है। ऐसा ऋग्वेदके प्रमाणसे ज्ञान मार्ग, तुरिया अवस्था, नाभिस्थान, वायुतत्त्व, परावाचा, प्रत्यगात्म अभिमानसे कोई साक्षी, कोई विज्ञानमें शून्य स्थिति करके गाफिल हुए हैं। उसीसे "सायुज्य मुक्ति" की प्राप्तिके भ्रममें ज्ञानीलोग भूले पड़े हैं ॥ १३ ॥

॥ ❀ ॥ सुषुप्तिरूप अथर्व वेदका सिद्धान्त ॥ सुषुप्ति अवस्थाका भास वर्णन ॥ ❀ ॥

५. अथर्वण कहै प्रपञ्चहि दीसै * सत्य पदारथ नाहीं ॥ १४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अथर्व नामके वेदमें महावाक्य कहा है कि— "अयमात्मा ब्रह्म" (२) ❀ यह विश्व या संसारमें जो कुछ प्रपञ्च दिख रहा है, सोई पाँच तत्त्वका पसारा सत्य है। सो पाँच तत्त्वरूप ही ब्रह्म है। इसीका प्रकाश सर्वत्र छाया हुआ है। जहाँ भी जो कुछ देखते हो, सो सब पदार्थमें पञ्चतत्त्व है, इसलिये यह विश्व ही सत्य है। इससे पृथक् तो कोई दूसरा सत्य पदार्थ नहीं है और हो भी नहीं सकता है ॥ १४ ॥

"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥" [श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय ६ । मन्त्र ११ ॥]

—सबका साक्षी, चेतन स्वरूप, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत (निर्गुण) है ॥

महावाक्य चार हैं, यथाः— ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ १ ॥ ॐ अहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥ ॐ तत्त्वमसि ॥ ३ ॥ ॐ अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥ [कृष्णयजुर्वेदीय-शुकरहस्योपनिषद्, द्वितीय खण्ड ॥]

निराकार ब्रह्म प्रतिपादनमें ऋग्वेदका प्रमाणः—

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ॥
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गंभीरम् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ॥
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ २ ॥

[ऋग्वेदः मण्डल १० । अष्टक ८ । अध्याय ७ । व० १७ । अनुवाक ११ । सूक्त १२९ ।]

अर्थः— तदानीं = महाप्रलय कालमें, असत् = अपरा माया, न = नहीं थी; सत् = जीव, नो = नहीं, आसीत् = था; रजः = रजोगुण, न = नहीं, आसीत् = था; यत् = जो, व्योम = आकाश तमोगुण, अपरः = सत्त्वगुण; नो = नहीं था; कुहकस्य = इन्द्रजालरूप, शर्मन् = ब्रह्माण्डके चारों ओर जो, आवरीवः = तत्त्वसमूहका आवरण होता है, तत् किं = "न किमासीत्" वह भी नहीं था; गहनं गंभीरम् = गहन गम्भीर, अम्भः = जल, किम् आसीत् = क्या था, अर्थात् नहीं था ॥

तर्हि = तिस समय, मृत्युः = मौत, न = नहीं, आसीत् = थी; अमृतम् = जीव, न = नहीं, आसीत् = था; रात्र्याः = रात, अह्नः = दिनका, प्रकेतः = ज्ञान, न आसीत् = नहीं था; अवातं = प्राण रहित, स्वधया = अपनी पराशक्तिसे, एकम् = अभिन्न एक, तत् = ब्रह्म ही, आसीत् = था; तस्मात् ह = उस सर्वशक्तिमानसे, अन्यत् = अन्य, किंच = और कुछ भी, न = नहीं, आस = था ॥

[पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत टीका, दयानन्दतिमिरभास्कर (वि० सं० १९७०) पृष्ठ २१०] ॥

(२) ❀ टिप्पणीः— अथर्ववेदीय ब्राह्मण भागके अन्तर्गत माण्डूक्योपनिषद् आता है। उसमें लिखा हैः—

"सर्वं ह्येतद् ब्रह्म । अयमात्मा ब्रह्म ॥" [माण्डूक्योपनिषद्, आगमप्रकरण, मन्त्र २ ॥]

६. जो उठि जाय बहुरि न आवै * मरि मरि कहाँ समाहीं ॥ १५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! उसी वेदके प्रमाणसे गुरुवालोग कहते हैं कि— जो कोई हम-तुम शरीर छोड़कर मर जाते हैं, तब पाँचतत्त्वमें जाकर ही समा जाते हैं। इसलिये फिर उलटकर शरीरमें नहीं आते हैं। जो मर गया उसके लिये फिर आवागमन नहीं रहता है; अरे भाई ! पहले जो मर-मर कर गये, सो कहाँ समाये ? आखिरमें सब पाँचतत्त्वमें ही तो समा गये ! जो उठ गया, सो फिर नहीं आता है; यह सब देखते ही हो ! इसीसे "सर्वं खल्विदं-

---

— यह सब-का-सब ब्रह्म है। यह आत्मा (जो इस दृश्य-जगत्में परिपूर्ण है) ही ब्रह्म है ॥

"स वा अयमात्मा ब्रह्म ॥" [बृ० उ० अध्याय ४ । ब्रा० ४ । मन्त्र ५ ॥]— वह यह आत्मा ब्रह्म है ॥ सर्वमय है ॥

"स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति । तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥" [मुण्डकोपनिषद्, तृतीय मुण्डक । द्वितीय खण्ड, मन्त्र ९ ॥]

— निश्चय ही जो कोई भी उस परब्रह्म-परमात्माको जान लेता है, वह महात्मा ब्रह्म ही हो जाता है। इसके कुलमें ब्रह्मको न जाननेवाला नहीं होता, वह शोकसे पार हो जाता है, पाप-समुदायसे तर जाता है, हृदयकी गाँठोंसे सर्वथा छूटकर अमर हो जाता है ॥ ९ ॥

"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥ अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥" ११ ॥ [मुण्डकोपनिषद्, द्वितीय मुण्डक । द्वितीय खण्ड, मन्त्र ११ ॥]

— यह अमृतस्वरूप परब्रह्म ही सामने है; ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं ओर तथा बायीं ओर, नीचेकी ओर तथा ऊपरकी ओर भी फैला हुआ है; यह जो सम्पूर्ण जगत् है, यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है ॥

[मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेदकी शौनकी शाखामें आया है ।]

"तं होवाच पितामहः किं ब्रह्मस्वरूपमिति ॥" [नारदपरिव्राजकोपनिषद्, नवम उपदेश, १ ॥]

— तब ब्रह्माजीने उनसे कहा— 'वत्स ! ब्रह्म और क्या है, अपना स्वरूप ही तो है—(यह आत्मा ब्रह्म ही है— सब कुछ ब्रह्म ही है, ब्रह्मके सिवा कुछ नहीं है) ॥

"वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ॥
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥ १ ॥"

[अथर्ववेद काण्ड २ । सूक्त १ । मन्त्र १ ॥]

अर्थः— ज्ञानी भक्त ही उसको देखता है, जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोड़कर एक रूप हो जाता है। इसकी शक्तिको प्रकृति खींचती है और जन्म लेनेवाले पदार्थ पैदा करती है। इसलिये आत्मज्ञानी व्रत पालन करनेवाले भक्त उस आत्माका ही गुण गान करते हैं ॥ १ ॥

"विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ॥" [अथर्ववेद काण्ड २ । सूक्त ३४ । मन्त्र ४ ॥]

भावार्थः— विश्वमें दिखाई देनेवाले रूप विविध प्रकारके रूप होनेपर भी वे बहुत प्रकारसे एक रूप ही हैं ॥

"यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ॥
यदश्नन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैनु ॥ १ ॥"

[अथर्ववेद काण्ड ७ । सूक्त [६६ (६८)], मन्त्र १ ॥]

अर्थः— यदि अन्तरिक्षमें और यदि वायुमें, यदि वृक्षोंमें, अथवा यदि घासमें आप देखेंगे तो उसमें जो सदा रहता है, जो प्राणियोंमें सोता है, वह प्रकट होनेवाला ब्रह्म पुनः हमें प्राप्त होता है ॥ १ ॥

ब्रह्म"— यह समस्त विश्व ही ब्रह्म है। ऐसा अथर्व वेदके प्रमाणसे मानकर योगमार्ग, सुषुप्ति अवस्था, हृदयस्थान, अग्नितत्त्व, पश्यन्ती वाचा, प्राज्ञअभिमानसे ज्योति स्वरूप परमात्माको जगत् प्रपञ्च स्वरूपमें ही माना है। योगमार्गसे "सारूप्यमुक्ति" की प्राप्ति मानकर योगीलोग उसी भासरूप शून्य गाफिलीमें भूले पड़े हैं ॥ १५ ॥

॥ ❀ ॥ स्वप्नरूप यजुर्वेदका सिद्धान्त ॥ स्वप्न अवस्थाका भास वर्णन ॥ ❀ ॥

७. यजुर कहै सगुण परमेश्वर * दश औतार धराया ॥ १६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यजुर्वेदमें महावाक्य कहा है कि— "अहं ब्रह्मास्मि" (३) ❀ वा 'सगुणं ब्रह्म'— सो परमेश्वरका स्वरूप सगुण-साकार, क्षीरसागर निवासी

(३) ❀ टिप्पणीः— शुक्ल यजुर्वेदकी काण्वी शाखाके वाजसनेयि ब्राह्मणके अन्तर्गत बृहदारण्यक उपनिषद् आता है। उसमें लिखा हैः—

"आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्तोऽहंनामा भवत् ॥" [बृहदारण्यकोपनिषद्, अध्याय १ । ब्राह्मण ४ । मन्त्र १ ॥]

—पहले यह पुरुषाकार आत्मा ही था। उसने आलोचना करनेपर अपनेसे भिन्न और कोई न देखा। उसने आरम्भमें "अहमस्मि" ऐसा कहा, इसलिये वह 'अहम्' नामवाला हुआ ॥

"ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेत्। अहं ब्रह्मास्मीति। तस्मात्तत् सर्वमभवत् ॥"

[बृहदारण्यकोपनिषद्, अध्याय १ । ब्राह्मण ४ । मन्त्र १० ॥]

— पहले यह ब्रह्म ही था; उसने अपनेको ही जाना कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। अतः वह सर्व हो गया ॥

"नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। य एवं वेद स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति। एतद्यजुर्वेदशिरोऽधीते ॥" [(कृष्णयजुर्वेदीय) नारायणोपनिषद्, मन्त्र २ ॥]

अर्थः— जो कुछ हो चुका है तथा जो कुछ हो रहा है और होनेवाला है, यह सब नारायण ही हैं। एकमात्र नारायण ही निष्कलङ्क, निरञ्जन, निर्विकल्प, अनिर्वचनीय एवं विशुद्ध देव हैं; उनके सिवा दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार जानता है, वह विष्णु ही हो जाता है, वह विष्णु ही हो जाता है। यह यजुर्वेदीय उपनिषद्का प्रतिपादन है ॥ २ ॥

"अथ च रामकृष्णाद्यवतारेष्वद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः परमतत्त्वपरमविभवानुसंधानं स्वीयत्वेन श्रूयते सर्वत्र। सर्वपरिपूर्णस्याद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणस्तु किं वक्तव्यम्। अन्यथा सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थतः साकारं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवल-निराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जड़त्वमापद्येत। तस्मात्परब्रह्मणः परमार्थतः साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ ॥ १३ ॥ [त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्, द्वितीय अध्याय, मन्त्र-१३ ॥]

अर्थः— और जब श्रीराम-श्रीकृष्णादि अवतारस्वरूपोंमें अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्मके परमतत्त्व एवं परमैश्वर्यकी स्मृति सर्वत्र स्वाभाविकरूपसे ही विद्यमान सुनी जाती है, तब अद्वैत परमानन्दस्वरूप, सब प्रकारसे परिपूर्ण परब्रह्मके विषयमें क्या कहा जाय। अन्यथा यदि सर्व परिपूर्ण परब्रह्मका साकार रहित केवल निराकार स्वरूप ही वास्तवमें अभिप्रेत हो, तब तो केवल निराकार आकाशके समान परब्रह्ममें भी जड़ता आ जायगी। इसलिये परमार्थतः परब्रह्मके साकार एवं निराकार दोनों रूप स्वभावतः सिद्ध हैं ॥ १३ ॥

"एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्म तारकम्। रामएव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ॥
रामएव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥" [रामरहस्योपनिषद् ६ ॥]

अर्थः— इन सब (वेदादिकों) में परमतत्त्व ब्रह्मस्वरूप तारक ही है। राम ही परम ब्रह्म हैं। राम ही परम तपः स्वरूप हैं। राम ही परम तत्त्व हैं। वे श्रीराम ही तारकब्रह्म हैं ॥ ६ ॥

"यो रामः कृष्णतामेत्य सर्वात्म्यं प्राप्य लीलया ॥"

आदिनारायण या महाविष्णुको कर्त्ता ठहराया है। और संसारमें जब-जब धर्मकी हानि तथा पापकी वृद्धि होती है, तो नारायण स्वयं ही अवतार धारण करके धर्म स्थापन करते हैं। उसी-प्रकार मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बौद्ध और निःकलङ्की, ऐसे मुख्य दश अवतारोंको भगवान्ने धारण किया; और चौदह (१४) अवतार सामान्य हुए। सब चौबीस (२४) अवतार लेकर पापका नाश किया; ऐसा कहा है ॥ १६ ॥

८. गोपिनके सङ्ग रहस रम्यो है * बहु प्रकारसे गाया ॥ १७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं— द्वापरमें कृष्णने प्रेमी भक्त गोपिकाओंके प्रेममें मस्त होकर, उन स्त्रियोंके सङ्ग-साथमें विषय क्रीड़ा किया, रास-खेलकी रचना किया। उन सब प्रेमिकाओंको भक्तिमें लगाकर भोग-विलासमें खूब रमण किया और अन्तमें सबोंको मुक्त किया, इत्यादि बहुत प्रकारसे अवतारोंका महात्म्य, नवधा भक्ति आदिको गाये हैं वा कथन किये हैं। ऐसा यजुर्वेदके प्रमाणसे सगुण ईश्वर मानकर उपासनामार्ग स्वप्न अवस्था, कण्ठस्थान, जलतत्त्व, मध्यमावाचा, तैजस अभिमानसे मनःकल्पित कोई एक रूपका ध्यान, मानसिक पूजा आदिसे "सामीप्य मुक्ति" मानकर भक्तलोग धोखेके भासमें भूले पड़े हैं ॥१७॥

"गोपरूपो हरिः साक्षान्मायाविग्रह धारणः। दुर्बोधं कुहकं तस्य मायया मोहितं जगत् ॥१०॥"
[श्रीकृष्णोपनिषद्, श्लोक १। १० ॥]

अर्थः— सर्वात्मरूप परमात्मा ही स्व-लीलासे सगुण अवतार कृष्ण भगवान् प्रगट हुए ॥

— गोपरूपमें साक्षात् श्रीहरि ही लीला-विग्रह धारण किये हुए हैं। यह जगत् मायासे मोहित है, अतः उसके लिये उनकी लीलाका रहस्य समझना बहुत कठिन है ॥ १० ॥

"मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥"
[कैवल्योपनिषद्, श्लोक १९ ॥]

— मुझमें ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, मुझमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है, मुझमें ही सब लयको प्राप्त होता है, वह अद्वय ब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
(ऋग्वेद अनुवाक ८३। ऋ० मं० १०। १२१) [ऋ० अ० ८। अ० ७। व० ३। मं० १]

अर्थः— सृष्टिके प्रारम्भमें हिरण्यगर्भ प्रगट हुआ। यही सब विश्वका एक स्वामी बना था। उसीने पृथ्वी और इस द्युलोकका धारण किया था। उस सुखमय प्रभुकी अपने अर्पणसे हम सब पूजा करेंगे ॥ १ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥
[ऋग्वेद, मन्त्र १०। ९०]

अर्थः— सहस्रों मस्तकोंसे युक्त [सहस्रों बाहुओंसे युक्त] सहस्रों आखोंसे युक्त और सहस्रों पावोंसे युक्त यह विराट् पुरुष है ॥

यह विराट् पुरुष चारों ओरसे भूमिको घेरकर उस दश इन्द्रियोंके क्षेत्रपर अधिष्ठाता होकर रहा है ॥ १ ॥

जो भूत कालमें था, जो भविष्यकालमें होगा, तथा जो यह सब [वर्तमानकालमें] है, वह सब यह विराट् पुरुष [का ही रूप] है। और यह अमृतत्त्वका स्वामी है, जो [अमृतत्त्व] अन्नसे [प्राप्त होनेवाले सुखसे] बहुत ही ऊँचा है ॥२॥

॥ ❀ ॥ जागृतिरूप सामवेदका सिद्धान्त ॥ जाग्रत् अवस्थाका भास वर्णन ॥ ❀ ॥

९. साम कहै यह ब्रह्म अखण्डित ❀ दुतिया और न कोई ॥ १८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सामवेदमें महावाक्य कहा है कि— "तत्त्वमसि" (४) ❀ अर्थात् हे जीव ! तू वही अखण्ड ब्रह्म है ! इससे यह ब्रह्म अद्वैत है । उसका खण्ड वा न्यारा-न्यारा टुकड़ा कभी हो नहीं सकता है । क्योंकि, ब्रह्म अखण्ड है । इसवास्ते और दूसरा कोई नहीं है, सो द्वैतका भाव कुछ भी नहीं है ॥ १८ ॥

साकार ब्रह्म प्रतिपादनमें यजुर्वेदका प्रमाणः—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ॥
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १९ ॥
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ॥ पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

[वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल-यजुर्वेद, अध्याय ३१, मन्त्र १९-२० ॥]

अर्थः— प्रजापालक यह पुरुष गर्भके अन्दर संचार करता है । न जन्म लेनेवाला अनेक प्रकारसे जन्म लेता है । ज्ञानी उसकी उत्पत्तिको देखते हैं । उसमें निश्चयसे सब भुवन रहते हैं ॥ १९ ॥ जो देवोंके लिये तपता है, जो देवोंका अगुआ है । जो देवोंके पहिले प्रकट हुआ था । इस प्रकाशमय ब्रह्मके लिये हमारा प्रणाम है ॥ २० ॥

अथवा— [पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर कृत टीका, वेदभाष्य ॥]

"प्रजापतिः = परमेश्वर, गर्भे अन्तः = गर्भके मध्यमें, चरति = प्राप्त होता है, अजायमानः = नहीं जन्म धारण करता हुआ, बहुधा = देवता, मनुष्य, राम-कृष्णादिरूपोंमें, विजायत = प्रगट होता है; धीराः = ज्ञानी महात्मा सत्त्वगुणप्रधान पुरुष, तस्य = उस परमात्माके, योनिम् = स्थान वा कारणको, परिपश्यन्ति = ज्ञानसे सब ओरसे देखते हैं (अज्ञानियोंको उसका भेद नहीं विदित होता है), यस्मिन् = जिस परमेश्वरमें ही, ह विश्वा भुवनानि = सब ब्रह्माण्ड, तस्थुः = स्थित हैं ॥"

[यजुर्वेद अध्याय ३१ । मन्त्र १९ ॥]

[पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत टीका, दयानन्दतिमिरभास्कर (वि० सं० १९७०) पृष्ठ २०२ ॥]

(४) ❀ टिप्पणीः— सामवेदकी तलवकार शाखाके अन्तर्गत छान्दोग्य ब्राह्मणका भाग है । छान्दोग्य ब्राह्मणमें कुल दस अध्याय हैं, उनमेंसे पहले और दूसरे अध्यायोंको छोड़कर शेष आठ अध्यायोंका नाम "छान्दोग्योपनिषद्" है । उसमें लिखा हैः—

"तत्सत्यं स आत्मा । "तत्त्वमसि" श्वेतकेतो ॥" [छान्दोग्य उपनिषद्, (प्रपाठक) अध्याय ६ । खण्ड ८ । मन्त्र ७ ॥]

— वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! "वही तू है" ॥

[उद्दालक नामसे प्रसिद्ध अरुणके पुत्रने अपने पुत्र श्वेतकेतुसे जो आत्मज्ञानका उपदेश कहा, सो छान्दोग्योपनिषद्में प्रपाठक वा अध्याय ६ में अष्टम खण्डसे षोड़श खण्डके समाप्ति तक उपरोक्त प्रकारसे विधिपूर्वक "तत्त्वमसि" का उपदेश नौ बार तक कहा गया है । अतः सामवेदका वही महावाक्य माना गया है ॥]

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ॥" [छान्दोग्योपनिषद्, अध्याय ६ । खण्ड २ । मन्त्र १ ॥]

— सोम्य ! आरम्भमें यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था ॥

"सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥"

[छान्दोग्योपनिषद्, अध्याय ६ । खण्ड ८ । मन्त्र ४ ॥]

— सोम्य ! इस प्रकार यह सारी प्रजा सन्मूलक है तथा सत् ही इसका आश्रय है और सत् ही प्रतिष्ठा है ॥

॥ * ॥ इति चार वेदोंका चार महावाक्य वर्णन टिप्पणी दिग्दर्शन समाप्तः ॥ * ॥

१०. आपै आप रमै परमेश्वर * सत्य पदारथ सोई ॥ १६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं कि— अणु, रेणु, परमाणु, चराचर सब जगत्में एक आत्माराम ही रम रहा है; वह आप-ही-आप है। वही परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है। सोई नित्य मुक्त, नित्य तृप्त, सत्य पदार्थ परब्रह्म है। ऐसा सामवेदके प्रमाणसे जीव-ब्रह्मको एक ठहराकर कर्ममार्ग, जाग्रत् अवस्था, नेत्रस्थान, पृथ्वीतत्त्व, वैखरी वाचा, विश्वअभिमानसे सूक्ष्म और स्थूल पञ्चविषयाध्यासी ही जीव बने हैं। अष्ट प्रतिमा, जड़-पूजादि अनेक कर्म मार्गमें प्रवृत्त होकर उससे "सालोक्यमुक्ति" प्राप्तिके भ्रम, कल्पना, भासमें कर्मीलोग भूले पड़े हैं। इसप्रकार चार वेदोंसे चार सिद्धान्त प्रगट करके गुरुवालोग अपने भूले और दूसरे मनुष्योंको भी वही भ्रम दृढ़ा-दृढ़ाकर भुला दिये हैं; तथा अभी वैसे ही भूल ही रहे हैं। जिज्ञासुओं-को चाहिये कि, इन सब मानन्दियोंको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें अच्छी तरहसे परख करके सत्यासत्यको यथार्थ पहिचान लेवे ॥ १९ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यवेदका निर्णय, मसला भाग— १ ॥ ❀ ॥

११. यह प्रमाण सबन मिलि कीन्हा * ज्यों अन्धरेकी हाथी ॥ २० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार यह चार वेदोंसे चार प्रकारका प्रमाण करके चार सिद्धान्त सब भ्रमिक मनुष्योंने अनुमान-कल्पनामें मिलकर कायम किया है। जैसे पाँच अन्धोंने हाथी देखा था, तैसे ही इनके सिद्धान्तमें भी झगड़ा ही खड़ा हुआ। इसके बारेमें एक छोटा-सा दृष्टान्त आया है, सो सुनिये ! एक समयमें एक राजाके राजमहलके मार्गसे पाँच अन्धे इकट्ठे होकर चले जा रहे थे। बातचीतके प्रसङ्गमें उन्हें देखकर राजाने उन्हें बुलाकर पूछा कि— "सूरदासजी ! तुम लोगोंने कभी हाथी भी देखा है, कि नहीं ?" तब अन्धे बोले—"सरकार ! हमने तो आजतक तो कभी हाथी नहीं देखा है कि, हाथी कैसा होता है ? क्या होता है ? आपके दर्बारमें आ पहुँचे हैं, सो कृपा करके हमें हाथी दिखा दीजिये !" तब राजा ! उन्हें हाथीशालामें ले गया और उन पाँचों अन्धोंको क्रमशः कान, दाँत, पैर, पूँछ और पीठ, यही हाथीके पाँचों अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको पकड़ा दिया, तो उन्होंने भी खूब उस एक ही अङ्गको टो-टोकर देखा या जाना। बादमें उन्हें बुला-कर राजाने पूछा— "कहो सूरदासजी ! तुम लोगोंने अब तो हाथी देख लिये हो न ? बताओ, हाथी कैसा था ?"। "हाँ ! सरकार ! अब तो हमलोगोंने हाथी देख लिया है।" फिर पहला अन्धा बोला— "महाराज ! हाथी सूप जैसा था।" उसने कान पकड़ा था, तो सूप जैसा बतलाया। दूसरा बोला— "अबे ! हट ! तैंने हाथी नहीं देखा है; अरे ! हाथी तो मूसल जैसा था।" तीसरा बोला— "झूठ क्यों बोलता है रे ? अरे ! हाथी तो थम्भा सरीखा था; मैंने अच्छी तरहसे देखा था।" चौथा बोला— "तू क्या देखेगा हाथी, झूठ ही बकता है, मैंने खूब पकड़कर देखा, तो हाथी तो नाग या रस्सीके सरीखा लम्बा-लम्बा था।" तब पाँचवाँ अन्धा बोला— "हाय ! हाय ! तुम चारोंने हाथी नहीं देखा है, कुछ और ही चीज देखा है। हाथीको तो मैंने ही ठीक-ठीकसे देखा है; सुनो ! हाथी तो महान पहाड़के टीलाके समान था।" ऐसा कहते-कहते पाँचों लड़ने-झगड़ने लग गये। एक-दूसरेको झूठा ठहराने लगे; फिर उनमें आँधर सींटा भी चलने लगा। बड़ी मुश्किलसे उन्हें काबूमें करके— "तुम अन्धेलोग सचमुचमें मूर्ख ही हो !" कहकर राजाने उन्हें निकलवा दिया। तब भी वे झगड़ते ही चले गये, कोई किसीकी बात माने ही नहीं; यह तो दृष्टान्त हुआ। इसीप्रकार सिद्धान्तमें- पारखी सन्तोंकी सभामें एक समयमें विवेकहीन पक्के अविवेकी अन्धे पाँच मतवादी एकत्र हुए। तहाँ राजावत् सत्यन्यायी पारखी सन्तने उनसे सत्य वस्तुके बोधके बारेमें पूछा, तो उन्होंने अपने-अपने मत, पन्थको टो-टोकर बतलाया। कर्मीने कानकी नाईं कर्म काण्डको सत्य कहा और उसीसे कल्याण होनेको बतलाया; तथा भक्तोंने उपासना काण्डको, योगीने योग काण्डको, ज्ञानीने ज्ञान काण्डको और

विज्ञानीने अद्वैत ब्रह्मज्ञानको सत्य बतलाकर और सबको मिथ्या कहा। इसप्रकार सभी मतवादी लड़ने-झगड़ने लगे; वे समझानेपर भी नहीं समझते थे। इसवास्ते उन पक्षपातीरूप अन्धोंको मूर्ख जानकर पारखी सद्गुरुने सत्सङ्ग सभासे निकाल दिये वा हटा दिये, तब भी वे झगड़ते ही चले गये; और अभी तक झगड़ ही रहे हैं ॥

अर्थात् कल्पनामें मिलकर गुरुवालोग सबोंने यही प्रमाण किया कि, जगत्कर्त्ता एक परमेश्वर या खुदा है। वह निराकार या साकार एकदेशी अवतार या सर्वदेशी ब्रह्म है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत इत्यादि अन्धोंके हाथी देखनेके समान मतवाद कायम किये। 'अन्धे' गुरुवालोग हैं और 'हाथी' कहिये हाथसे लिखी हुई वेदादि वाणी है। जिसको देख-कर या पढ़कर नाना मानन्दी दृढ़ कर लिये हैं ॥ २० ॥

१२. आदि बापको मर्म न जाने ❀ पूत होत नहिं साखी ॥ २१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जगत् = जड़-चैतन्यरूप स्वतः अनादि है। तहाँ सबकी कल्पना करनेवाला जीव ही सत्य 'आदि बाप' है। यानी सब सिद्धान्तकी स्थापना करनेवाले नरजीव ही हैं, सो अपने सत्स्वरूपका मर्म या भेद तो वे जानते ही नहीं हैं; और पूत = नर-जीवोंसे कल्पना द्वारा पैदा हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि कभी जीवका मालिक हो नहीं सकता है। ईश्वरको पिता और जीवको पुत्र जो माना है, सो वह कल्पनाके सिवाय इसमें कोई सच्चा साक्षी या प्रमाण लागू नहीं होता है। अतएव ब्रह्म-खुदादि माना हुआ कभी सत्य हो नहीं सकता है ॥ २१ ॥

१३. अन्धरेके हाथी साँच है ❀ साँचे हैं सगरे ॥ २२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे दृष्टान्तमेंके अन्धे लोग, हाथी तथा हाथी-के अवयव सब तो सच्चे ही थे; परन्तु, नेत्र न होनेसे अन्धेलोग हाथका टोया हुआ एक अङ्गको ही सत्य मानकर और उसे सत्य कहकर भ्रममें पड़े; एक-दूसरेसे लड़े तैसे ही यहाँपर जड़-चैतन्यमय संसार तो सत्य ही है। भ्रमिक होनेवाले जीव भी सत्य हैं। चारों तत्त्व कार्य-कारणरूप प्रत्यक्ष हैं, यह सब सत्य ही हैं ॥ २२ ॥

१४. हाथनकी टोई कहैं ❀ आँखिनके अन्धरे ॥ २३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! परन्तु, हाथके लिखे हुए वेदादि ग्रन्थोंको ही पढ़-पढ़कर उसीको निश्चय करके टोये और मिथ्या कल्पनाको ही सत्य मान लिये। क्या करें ? बेचारे पारखदृष्टिसे हीन जन्मके अन्धे विवेकहीन, हठी, शठी, पक्षपाती, मूढ़ बने हैं। पारखी साधु-सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारके बिना किसीको भी यथार्थ पारख बोध नहीं होता है। बिना पारख सभी भ्रमसे भटकने लगे, वेद-कुरान आदिके रगड़ा-झगड़ामें पड़े हैं; सो परखकर परित्याग करना चाहिये। यहीं यहाँपर वेदके सत्यासत्यका निर्णय सत्यन्यायके मसला, चुटकुला, कहावत द्वारा दृष्टान्त-सिद्धान्त परखाकर समझाया गया है; सो उपरोक्त प्रकारसे जान लीजिये ! ॥ २३ ॥

॥ ❀ ॥ निर्णय मसला भाग- २ ॥ ❀ ॥

१५. शब्दातीत शब्दते पाइन ❀ बूझै बिरला कोई ॥ २४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! देखिये ! वेदान्ती ब्रह्मज्ञानीलोग कहते हैं कि, ब्रह्म 'प्रणव' रूप है; परन्तु, सब प्रकारके बोल-चालके शब्द, वैखरी वाणीसे वह अत्यन्त ही परे है। मन, बुद्धि, वाणीसे परे जो है, सोई ब्रह्म-परमात्मा है। क्षर-अक्षरसे परे वही निःअक्षर है। परन्तु, ब्रह्मनिष्ठ गुरुके वाक्य उपदेश, वेद-वाणीके प्रमाणसे श्रवण-मनन द्वारा ही ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। जिन-जिनने आत्मज्ञानी गुरुसे उपदेश द्वारा ब्रह्म बोधको पाये, उन्होंने ही शब्दातीत ब्रह्मको लक्ष्यसे जान पाये। कोई बिरले ही अद्वैत, अभेद ब्रह्मज्ञानको समझेंगे-बूझेंगे। सद्गुरु कहते हैं— इस धोखेकी भ्रम-कल्पनाको कोई बिरले ही मनुष्य पारखी सद्गुरुसे बूझेंगे, तो

फिर उसे परखकर छोड़ देंगे ॥ २४ ॥

१६. कहैं कबीर सतगुरुकी सैना * आप मिटै तब वोई ॥ २५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यहाँपर गुरुवालोग ब्रह्मज्ञानीजन कहते हैं कि, हे कबीर ! हे नरजीवो ! सत्गुरु ब्रह्मादिका सैन=वेदका इशारा ऐसा है कि, जीवकी अपनी अल्पज्ञता, द्वैत-भाव, पञ्च विषयोंका अहङ्कार, यह अपनापन या भेद-भाव जब गुरुके महावाक्यके मननसे मिट जायगा, कुछ लेश भी उसका न रह जायगा; तब तो यह जीव उस केवल ब्रह्ममें ही मिल जायगा। फिर एक शुद्ध ब्रह्म ही रह जायगा। तब यह जीव वही ब्रह्म हो जायगा, ऐसा जानिये! इत्यादि कथन करके मनुष्योंको भुलाये और अपने भी भ्रम-भूलसे धोखेमें पड़े हैं, बिना पारख ॥ २५ ॥

साखीः— ब्रह्मादिक सनकादि ले * मुनिवर आदि पर्यन्त ॥

[१०] बिन गुरु मोह निशा शयन * सुख सपने न लहन्त ॥ २६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रथम सर्वश्रेष्ठ कहलाये वा वे गुरु बने थे। और उनके चेले सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारसे ले करके नारद, वशिष्ठ, पराशर, गौतम, भृगु, कश्यप, भरद्वाज, व्यासादि बड़े-बड़े श्रेष्ठ धुरन्धर विद्वान् हुए; अनादि-कालके जगत्में ऋषि-मुनि, तपस्वी, कवि, कोविद, इत्यादि भूतकालसे लेकर वर्तमानमें आज पर्यन्त जो हुए हैं, उन सबोंको भ्रम-धोखेने खा लिया। पारखी सद्गुरु उन्हें नहीं मिले। और तम-रूप अज्ञान विनाशी अतिशय गरुवा, वजनदार गुरुपद पारखबोधको पाये बिना, वे सब योगी, ज्ञानी, भक्त, विषयी आदि कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादिके लोभ, चार फलोंके मोह, आकर्षण और विषयासक्ति, स्त्री-पुत्रादिकी ममता, माया-मोहकी महारात्रिरूप अज्ञानान्धकारमें बेभान (गाफिल) होकर सो गये, महाभूलमें पड़ गये; और उसी अध्याससे गर्भवासमें शयन करनेको चले गये। जीव-की स्थिति न होनेसे स्वप्नमें भी जीवन्मुक्तिका सुख थोड़ा-सा भी नहीं पाते हैं। जाग्रत्में जा दृढ़ किया है, सोई स्वप्नमें भास होता है; सो जड़ाध्यासी जीव आवागमनोंमें पड़े हैं। तहाँ वे स्वप्नवत् क्षण भरके लिये भी मुक्तिपदका सुख पा नहीं सकते हैं। बिना पारख चौरासी योनियोंमें पड़े; अतः जन्म-मरणसे कोई छूटे भी नहीं, और छूट भी नहीं सकते हैं ॥ २६ ॥

साखीः— गुरुके गुण गावैं सभी * सत्य सही बिनु लक्ष ॥

[११] मायाके उपदेश अज * हरि हर कालके भक्ष ॥ २७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यों तो अपने-अपने गुरुके मत-पन्थकी श्रेष्ठताके गुण तो सभी कोई बढ़ा-चढ़ाकर गाते हैं, कहते-सुनते हैं। अपने-अपने सिद्धान्तको सब कोई सच्चा ही कहते हैं। परन्तु, उनमें सद्गुरुके सत्य सिद्धान्तका लक्षण कहाँ दिखता है? सत्य लक्षण और सत्य गुणके बिना उन्हें सत्य कैसे मानना? सत्यासत्यका गुण-लक्षण देखकर ही पारखी सन्त परीक्षा करते हैं। स्वयं सत्य सही-सलामत जीव ही प्रत्यक्ष सच्चा है। यह निश्चय पारखबोधके बिना गुरुवा-लोगोंको लक्ष्य ही नहीं होता है; और अलक्ष्य ब्रह्म मानकर वे सब तो भ्रमचक्रमें ही पड़े हैं। और आदिमाया (अष्टाङ्गी) माताके उपदेश, शिक्षा-दीक्षासे ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी कालके भक्ष्य वा चारा ही हुए। यानी विषयानन्द-ब्रह्मानन्दादिको यथेष्ट भक्षण वा ग्रहण करके जड़ाध्यासी हो मरकर आवागमनमें ही पड़े; बिना पारख ॥ २७ ॥

साखीः— कर्म धर्म मति तीनिले * अज हरि हर समुदाय ॥

[१२] गावहिं ध्यावहिं ताहि कहँ * जेहि सब जीव नशाय ॥ २८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्म, उपासना, योग— ये तीन मार्ग वेदके त्रिकाण्ड-रूप कर्म, उपासना, ज्ञानसे अगल-अलग निकाल लिये। सोई कर्म मार्गको ब्रह्माने लिया, उपासना मार्गको

विष्णुने लिया और योगमार्गको महेशने ले लिया। फिर उन्हींके अनुयायी होकर समस्त संसारियों-ने उन्हीं त्रिकाण्डोंको पकड़ लिया। समुदाय या बहुत समूहरूपसे वही मत जगत्में फैला। वेद-वेदान्तादि शास्त्रोंको गायन करके उसी अनुमानरूप ब्रह्म-ईश्वरादिकी प्राप्तिके लिये ध्यान, धारणा, समाधि किये या करने लगे। सो अभी भी उन्हींके गुण गा रहे हैं, ध्यान कर रहे हैं, एवं उसीकी महिमा बढ़ा रहे हैं। जिससे सब नरजीव अबोध होकर साक्षी भाव परीक्षादृष्टिको नशाकर जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। जिसको इन्होंने ब्रह्म-परमात्मा माना है, सोई कल्पना-भ्रमने सब नर जीवोंके विवेकादि सब सद्गुणोंका नाश कर दिया। और जिन गुरुवालोगोंको गुरु मानकर गुण गाये, वे ही सब नरजीवोंको भ्रमाकर नष्ट करके बन्धनोंमें डाले और डाल रहे हैं। बिना पारख यह भेद सबको जाननेमें नहीं आता है ॥ २८ ॥

साखीः— कहनेको चूके नहीं * जेती जिसकी दौर ॥
[१३] सबै शब्द सहिदान है * परख शब्दसों ठौर ॥ २९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे जिज्ञासुओ ! संसारमें कोई भी मतवादी कल्पित वाणी बढ़ाकर कहने-सुनानेमें नहीं चूके, नहीं पिछड़े, नहीं हारे; जिसकी जहाँतक दौड़ वा पहुँच हो सकी, वहाँतक दौड़ते हुए आगे-आगे ही बढ़ते गये। जहाँपर थक गये, वहाँपर ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा आदि निश्चय करके ठहर गये। मनमाने उपदेश देनेमें कोई थककर नहीं चूके। अपनी-अपनी मानन्दी सबोंने बतलाया है। ब्रह्म-ईश्वरादि वर्णन तो मिथ्या कथन मात्र वाणीकी कल्पना है। वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि उन सबोंके शब्दकी पहिचान ग्रन्थरूपमें निशानी जगत्में पड़ी ही हुई है। और श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका उपदेश बीजकका सत्य ज्ञान भी मौजूद ही है। उसे मिलाकर देखिये ! पारख कसौटीपर कसिये, तो सारासार आपको भी मालूम पड़ेगा। पारखी सद्गुरुके सत्य शब्दसे ही भ्रम छूटकर जीवकी स्थिति होती है वा मुक्ति होती है। अन्य काल, सन्धि, झाँईं के शब्द बन्धनरूप हैं, ऐसा जानिये ! ॥ २९ ॥

साखीः— षट शास्त्र षट मुनि कहैं * शाखा मूल सो वेद ॥
[१४] बहुत भाँति झगरन लगे * बिन गुरु पाये न भेद ॥ ३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उधर मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातञ्जल, सांख्य और वेदान्त, इन षट् शास्त्रोंको क्रमशः जैमिनी, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, कपिल तथा व्यास, इन षट् मुनियोंने भिन्न-भिन्नरूपमें कहा है। ये षट् शास्त्र बड़ी-बड़ी डालियाँ या शाखाओंके समान कथन किया है। इन षट् शास्त्रोंका मूल (जड़) या वृक्षके समान सो वेदको माना है। और वेदका मूल परब्रह्मको माना है। कोई तो वेदको ही भगवान् कहते हैं। और प्रणवको ही वेदका मूल स्वरूप कहते हैं। चारोंवेदोंसे षट्शास्त्र प्रगट करके भ्रमिकलोग बहुत तरहसे वाद-विवादरूप झगड़ा करने लगे। अपना मत ही सत्य बतलाकर अन्यका खण्डन करने लगे। परन्तु, पारखी सद्गुरुके पारख बोधको पाये बिना चैतन्य-जड़, सार-असार, सत्य-मिथ्याका यथार्थ भेद वा गूढ़ मतलब कोई जान नहीं पाये। इसीसे वे अपने भूले तथा औरको भी भुलाये वा भटकाये। उन्हींका मत नीचेकी भूलनामें दर्शाया गया है, सो देखिये वा सुनिये ! ॥ ३० ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका भूलना वर्णन ॥ भाग- १ ॥ ❀ ॥

१. मिमांसा कहै सब कर्महीं है * वैशेषिक समयको ध्यावता है ॥ ३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! (१) पहला, जैमिनी ऋषिने 'मीमांसा' नामक शास्त्र बनाया। वे कहते हैं कि, "कर्म ही ब्रह्म है" क्योंकि, सब कुछ कर्मसे ही सिद्ध होता है। कर्मसे ही उत्पत्ति, पालन, प्रलय होता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि ये सब कर्म करके ही महान्

हुए हैं। सुखी-दुःखी, धनी-निर्धन, मूर्ख-विद्वान्, इत्यादि सब कर्मसे ही होते हैं। इसलिये सब जीवोंका मुख्य अधिष्ठान कर्म ही है, इत्यादि प्रकारसे कर्मको श्रेष्ठ बतलाये हैं। (२) दूसरा, कणाद मुनिने 'वैशेषिक' नामक शास्त्र बनाकर कहा है कि, "काल वा समय ही प्रधान है।" समयके बिना कोई कर्म लग नहीं सकता है। असमयमें किया हुआ कर्म निष्फल हो जाता है, इसलिये कर्मसे बड़ा समय है। समय पाकर ही उत्पत्ति, पालन, और प्रलय होता रहता है। समय पाकर ही जन्म, बाल, युवा, वृद्ध, मृत्यु आदि होता है। समय पाकर ही अनेक अवतार होते हैं। ब्रह्मादि भी समय पाकर ही प्रगट होते हैं। इसलिये महाकाल सर्वाधिष्ठान समय ही ब्रह्म है। ऐसे वे समयको ही ध्यावते या ध्यान वा चिन्तन करते हैं ॥ ३१ ॥

२. न्यायवादी कर्तार ठानै ❀ पातञ्जली योग बखानता है ॥ ३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! (३) तीसरे, गौतम ऋषिने 'न्याय' नामक शास्त्र या तर्कशास्त्र बनाया है। वे अपने ग्रन्थमें ईश्वरवादको कायम करते हैं। कहते हैं कि— ईश्वर ही एक स्वतन्त्र कर्त्ता है। कर्म और काल ये दोनों ईश्वराधीन परतन्त्र हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, जो चाहे सो कर सकता है। क्षण भरमें उत्पत्ति-प्रलय कर सकता है। जैसे—

"बज्रहुते तृण खिनमें होई। तृणते बज्र करै पुनि सोई॥" बीजक-रमैनी २९॥ राजा-रङ्क, ज्ञानी-अज्ञानी, सुखी-दुःखी आदिको उलटा सकता है। असम्भवको भी ईश्वर सम्भव बना देता है। ईश्वरके लिये कोई बात असम्भव नहीं है, ऐसा जगत्कर्त्ता ईश्वरको श्रेष्ठ माना है। (४) चौथे, पतञ्जलि ऋषिने 'योग-शास्त्र' बनाकर वर्णन किया है कि, ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार प्रत्यक्ष ज्योतिस्वरूपका दर्शन तो योग साधना, ध्यान-समाधिसे ही होता है। तुम जड़ मूर्तिके पूजैया ईश्वरको क्या जान सकते हो ? बिना प्रत्यक्षके अनुभव हुए अनुमान असत्य होता है। तुमने कभी ईश्वरका दर्शन भी किया है ? नहीं किया है। इसलिये तुम्हारा कथन मिथ्या है और हमारा योग मार्ग ही सत्य है; ऐसा पतञ्जलिने वर्णन किया है ॥ ३२ ॥

३. सांख्यवादी नित्यानित्य कहै ❀ वेदान्ती ब्रह्म अनुमानता है ॥ ३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! (५) पाँचवाँ, कपिलमुनिने 'सांख्य' नामक शास्त्र बनाकर यह वाद प्रतिपादन किया है कि, खास करके नित्यानित्यका विवेक करना चाहिये। तहाँ योगादि ज्ञान एकदेशीय प्रकृति जनित अनित्य हैं; सो योगमार्ग कल्पित-असत्य है। प्रकृतिसे ही सारे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हो रही है। परिणामिनी प्रकृति अनित्य है; और सर्वाधार साक्षी, विभु, परमपुरुष परमात्मा, शुद्ध, असङ्ग, अलिप्त एवं नित्य है। विवेक द्वारा प्रकृतिके विकृति भावको हटा करके पुरुषके आत्मभावमें स्थिति होनेसे मुक्ति होती है। ऐसा माना है। और (६) छठवाँ, व्यासजीने 'वेदान्त शास्त्र' बनाकर अनुमानसे एक अद्वैत ब्रह्मको ही सत्य माना है। वे कहते हैं— "एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"— वास्तवमें ब्रह्म तो एक ही परिपूर्ण व्यापक है। और दूसरा कुछ भी नहीं है। फिर कर्म, समय, ईश्वर, योग, तथा प्रकृति-पुरुष, ये कहाँ सत्य हो सकते हैं ? एक ब्रह्म ही सब कुछ है और कुछ नहीं है। नाम, रूप, उपाधि, इन त्रिपुटियोंसे रहित अस्ति, भाति, प्रियरूप सच्चिदानन्द ब्रह्मको ही सर्वाधिष्ठान नित्य, सत्य माना है। इसप्रकार वेदान्तियोंने 'एक ब्रह्म' का ही दृढ़तासे अनुमान किया है ॥ ३३ ॥

४. कहहिं कबीर ये दुन्द चहुँदिश मची ❀ सो दुन्द ही को सब गावता है ॥ ३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे चार वेद तथा षट् शास्त्रोंके न्यारे-न्यारे मानन्दी, खैंचातानी, खण्डन-मण्डनके झगड़ारूप दुन्दसे संसारकी चारों दिशाओंमें कोलाहल मची। चारोंवर्ण, चारोंआश्रम, चारोंसम्प्रदायके लोग सब सो उसी झगड़ेकी कल्पित वाणीको ही गाते, कहते, सुनते हुए भूलमें पड़े हैं। कोई सत्यासत्यका विचार नहीं करते हैं। इसका सत्य निर्णय तो सद्गुरु

श्रीकबीरसाहेबने ही बीजकमें कहकर यथार्थ रीतिसे परखाये हैं। सबकी मानन्दी करनेवाला 'जीव' सबसे न्यारा है, यह भेद बतलाये हैं; आपने ही ये दुन्दको परखाकर दिखलाये हैं। ऐसा जानकर चार वेद और षट् शास्त्रोंके पक्ष, झगड़ासे न्यारे होकर पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें जिज्ञासुओंने लगे रहना चाहिये ॥ ३४ ॥

साखीः— भरम जाल जो जगतके * ताके अङ्ग अनेक ॥
[१५] एक एक अङ्ग दृढ़ इष्टकै * गावहिं निज निज टेक ॥ ३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्-ब्रह्मकी वाणी-खानीका जो कुछ जाल है, सो सब भ्रम धोखेका जञ्जाल है। जगत् जीवोंको फँसानेके वास्ते भ्रमिकोंने भ्रम जाल फैला रक्खा है। उस ब्रह्म और विषय जालोंके अङ्ग-उपाङ्गरूप भाग तो अनेकों प्रकारके हैं। उनमेंसे एक-एक अङ्ग या भागमेंसे कोई खानीको तथा कोई वाणीको दृढ़तासे पकड़कर इष्ट मानकर अपने-अपने टेक, हठ, पक्षको पकड़कर मनमाने उसका गुणानुवाद गाये और गा रहे हैं। षट् शास्त्र, तथा चार वेदादिमेंसे जिसको जो भाया, उसीको बड़ा बताकर उसके गुण गाये हैं; टेक पकड़े हैं, सो भ्रम चक्रमें ही नाच रहे हैं; बिना विचार ॥ ३५ ॥

साखीः— चिदाकाश महाशून्य जो * लोक वेद परवान ॥
[१६] माया खानि तासु गुण * जीव विवश हैरान ॥ ३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'चिदाकाश' कहिये प्रकाशरूप आत्मा आकाशवत् व्यापक चैतन्य जो है, सो महान निर्विकार, महान शून्य, चराचरका आधार वह परब्रह्म है। ऐसा संसारमें भ्रमिक गुरुवालोगोंने वेदके प्रमाणसे अज्ञानी लोगोंको बतलाये, उपदेश दिये कि, उसी परमात्माको ही सत्य मानो; उसे घटघटका निवासी जानो ! फिर गुरुवालोग ही कहते हैं, कि उस ब्रह्मकी स्वभाविक इच्छासे प्रथम आदिमाया उत्पन्न हुई, सो उस मायासे तीन गुणोंके सहित चार खानियोंका विस्तार हुआ ! तो भी "ब्रह्म व्यापक एक सत्य है"—ऐसा मानकर उस भ्रम जड़ाध्यासोंके वशीभूत हो करके चारखानी चौरासी योनियोंमें परम दुःखी जीव विवश, हैरान हो रहे हैं; बिना पारख जीवोंका यह दुःख नहीं छूटता है ॥ ३६ ॥

साखीः— त्रिगुणमत संसारके * परमारथ स्वारथ ज्ञान ॥
[१७] यथारथ बिनु पारख नहीं * परखै मान अमान ॥ ३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें गुरुवालोगोंके मत-सिद्धान्त रज, सत्त्व और तम, ये तीन गुणोंके अनुसार "तत्त्वमसि" भक्ति, योग, ज्ञान और काम, क्रोध, मोह करके विस्तार हुआ है। उसीमें 'तत्पद' सोई परमार्थ, ज्ञान, सत्त्वगुण, भक्तिमार्गमें लगकर उपासकलोग मोहित हुए हैं। 'त्वंपद' सोई स्वार्थ, अज्ञान, रजोगुण, कर्म वा योगमार्गमें लगकर कर्मी वा योगीलोग अहंकरतूतमें पड़े हैं, तथा कोई कामासक्त हुए हैं; और 'असिपद' सोई ज्ञानरूप वा विज्ञान, तमोगुण, ज्ञानमार्गके निरञ्जन अभिमानमें ज्ञानीजन गाफिल पड़े हैं। सो उन्हें सद्गुरुके पारखबोध न होनेसे यथार्थ सत् स्वरूपका बोध नहीं है; इसलिये जड़ाध्यासी होकर आवागमनमें ही पड़े हैं। पारखदृष्टि खुले बिना सत्य चैतन्य निज स्वरूपमें यथार्थ स्थिति नहीं होती है। मान=जगत् विषय, तथा अमान=ब्रह्म कल्पनाको परखकर जो त्याग करें, सोई पारखी हैं। उन्हींका सत्सङ्ग करके जगत्-ब्रह्मकी भ्रम-आसक्ति छोड़ देनी चाहिये; तभी मुक्ति होगी ॥ ३७ ॥

साखीः— परमारथ पतिवर्त वत * स्वारथ निज संसार ॥
[१८] ज्ञान असि एकता जबै * चिदाकाश निर्धार ॥ ३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! परमार्थमें 'तत्पद' ईश्वरको एक परमपति मानकर

उससे सुख, कल्याणरूप मुक्तिकी चाहनासे स्त्रीभाव धारण करके भक्तलोग पतिव्रताके समान अनन्य प्रेमलक्षणा भक्ति, और नवधा भक्तिके ही आचरणमें रहते हैं। स्वार्थमें अपने सुखके लिये स्त्री, पुत्र, धनादिका संग्रह संसारी विषयीलोग कर रहे हैं; और कोई स्वर्गादि सुख प्राप्तिके लिये नाना कर्म साधनाएँ करनेमें लगे हैं, सो जीव 'त्वंपद' के अभिमानी बने हैं। और ज्ञान 'असिपद' ब्रह्ममें जब एकता करते हैं, तब तत्-त्वंका कार्य-भाव मिटा देते हैं। उसी गाफिलीको चिदाकाश परमानन्द व्यापक चेतन प्रकाश अहंब्रह्म निश्चय किये वा करते हैं; यही ब्रह्मज्ञानियोंका निश्चय है ॥ ३८ ॥

साखीः— चिदाकाश युग पद मिलै * सन्धि न सूझै सोय ॥
[१६] परखावै संसार यह * जो गुरु पूरा होय ॥ ३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आकाशवत् व्यापक चैतन्य ब्रह्म सोई चिदाकाशमें जीव-ईश्वर, त्वं-तत्, अज्ञान-ज्ञान, नारी-पुरुष, क्षर-अक्षर इत्यादि, दोनों पद मिलकर एक ब्रह्म, असि, विज्ञान, निःअक्षर हो जाता है। सोई ज्ञान-अज्ञानादिकी एकता सन्धि या मानन्दी महाअज्ञान चौरासी योनियोंकी जन्ममृतिका कारण है। यह सन्धि गुरुवालोगोंको नहीं सूझी या बिना पारख यह सन्धि वे समझकर देख नहीं सकते हैं; संसारमें यही भ्रम, सन्देह, धोखा सबपर पड़ा है। जो कोई पूरे परीक्षक सत्यन्यायी परोपकारी पारखी साधु-गुरु होते हैं या उन पारखी सद्गुरुके जो शरणागत होते हैं, उन्हें सब यथार्थ कसर-खोटोंको सद्गुरु परखाकर दिखला देते हैं, पूर्णपारखी सद्गुरु ही इन सब संसारके खानी-वाणी जालोंको परखा देते हैं। तभी जीव भव-बन्धनोंसे छूट सकते हैं ॥ ३९ ॥

॥ ❀ ॥ अष्ट गुरु लक्षण वर्णन ॥ निर्णय पद ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग—१ ॥ [चौपाई ७ । साखी २८ । रमैनी ३ है] ॥ ❀ ॥

१. पहिला गुरु हैं माता पीता * रक्त बिन्दके जो हैं दाता ॥ ४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें मुख्यतया सात प्रकारके प्रपञ्ची गुरु माने गये हैं। सो उनका नाम और गुण यहाँपर बतलाया जाता है, सुनिये ! मनुष्य देहमें जब जीव आता है, तब प्रथम वासनानुसार पितारूप पुरुषके वीर्यमें सम्मिलित हो जाता है; सो वीर्यको पुरुष स्त्री [रूप माता] की योनिमें वा गर्भमें स्थापित करके डाल देता है। तहाँ स्त्रीके रजरूप रक्तमें वीर्य सम्बद्ध होकर गर्भमें जीव ठहर जाता है। इसप्रकार जीवको देह बनानेके लिये रज और वीर्यका संयोग मिला देनेवाले जो माता-पिता हैं, सो देहके नातामें पहला गुरु माने जाते हैं ॥ ४० ॥

२. दूजे गुरु है मनकी दाई * गर्भ माँहि जिन युक्ति बनाई ॥ ४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर बच्चा पैदा करते समयमें माताको जो दुःख होता है, उसके बारेमें तन-मनके हालको पूरा-पूरा जाननेवाली दाई वा धाई तथा डाक्टरनी वा नर्स होती है। गर्भवती स्त्रीरूप जच्चाके पासमें बच्चा जन्म लेतेवक्त दाई मौजूद रहती है, तो वह युक्ति-प्रयुक्तिसे अङ्गोंको ठीकठाककर दाबदबाकर मसलकर बालकको गर्भमेंसे बाहर आनेमें सहायता करके आसानी कर देती है। बालक पैदा होनेपर उसके नाक, कान, आँखें, मुख आदि अङ्गोंको धो-पोंछकर साफ करती है। फिर बाल्यावस्था तक दूध पिलाकर सब प्रकारसे रक्षा करनेवाली होती है। इसलिये देहके नातामें दाई या धाईको दूसरा गुरु माना है ॥ ४१ ॥

३. तीजे गुरु जिन्ह धरिया नाऊँ * ले ले नाम पुकारत गाऊँ ॥ ४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बालकका नाम रखनेवाला ब्राह्मण-पुरोहित कुलगुरुको सो तीसरा गुरु माना है। जो कि लग्न, मुहूर्त, तिथि, वार, नक्षत्र, राशि आदि शोधनकर

ज्यौतिषके मुताबिक कोई एक नामको कल्पना करके रख देता है। उसी नामको ले-ले कर गाँव, जन्मभूमि, शहर, बस्तीके लोग पुकारा करते हैं। मरनेपर भी बहुत दिन तक वही नाम लोगोंमें चलता ही रहता है। यह नामकरणकर्त्ता देहके नातामें तीसरा गुरु माना है ॥ ४२ ॥

४. चौथे गुरु जिन विद्या दीन्हा ❀ जगत प्रमाण रीति सो कीन्हा ॥ ४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पाँचवर्षकी अवस्थासे अक्षरारम्भ कराके नाना विद्याओंको पढ़ादेनेवाले जो हैं, सो देहके नातामें चौथे गुरु माने गये हैं। जगत्में उसी पढ़े हुए वेदादि विद्याओंके प्रमाणसे जैसे-जैसे गुरुने सिखाया है, वैसे-वैसे लोकाचार, कुलाचार, वेदरीति, लोकरीतिसे सब लोग कर्म कर रहे हैं। अपने-अपने मजहबकी रीति-रिवाजसे सब चले और चल रहे हैं ॥ ४३ ॥

५. पँचयें गुरु जिन दीक्षा दीन्हा ❀ राम कृष्णको सुमिरण कीन्हा ॥ ४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिसने दीक्षा मन्त्र दिया, गायत्री मन्त्र कानमें सुनाया; अथवा ॐ, श्रीं, ह्रीं, क्लीं आदि दीक्षा मन्त्र सुना दिया; और "ॐ रामाय नमः; ॐशिवाय नमः, ॐ नमो भगवतेवासुदेवाय, श्रीकृष्णाय नमः, हरे राम, हरे कृष्ण" इत्यादि अनेकों मन्त्रोंमेंसे कोई एक मन्त्र कानमें फूँक दिया। सिताराम या राधेश्यामकी भक्ति, सुमिरण, जाप, ध्यानादि करनेमें लगा दिया। उसीसे सब कार्य सिद्ध होगा, ऐसा बतानेवालेको देहके नातामें पाँचवाँ गुरु माना है ॥ ४४ ॥

६. छठयें गुरु जिन भ्रम गढ़ तोरा ❀ सबसों तोरि एक सों जोरा ॥ ४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिसने कर्मरूपी भ्रम गढ़को तोड़ा, सो ईश्वरवादी कहता है कि, अरे भाई ! कर्मकी कीचड़में क्या पड़े हो ? वहाँसे निकलो ! नाना कर्मकाण्डका विस्तार जो है, सो सब भ्रम है, इस किलेको तोड़कर उपासनाकाण्डके अनुसार साधनाकर अनन्य भक्तिमें चलो, तब निर्मल होओगे; इत्यादि कहकर कर्म-भ्रमकी किलाको तोड़ दिया और सब तरफसे लक्ष्य हटवाकर एक कल्पित ईश्वरकी भक्ति, ध्यान, धारणामें ही लक्ष्यको जोड़ दिया वा लक्ष्य लगा दिया; सो गुरुवा देहके नातामें ही छठवाँ गुरु हुआ है ॥ ४५ ॥

७. सतयें गुरु जिन सत्य लखाया ❀ जहाँको था तहाँ पहुँचाया ॥ ४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सातवाँ गुरु वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी हैं। जिन्होंने एक ब्रह्मको सत्य, अद्वैत कहकर जगत्को मिथ्या, द्वैत लखाया है। जड़-चैतन्य मिश्रित एक आत्मा ठहराकर गाफिल होकर वे भूले हैं। इसलिये उन्होंने सत्यको मिथ्या और मिथ्याको सत्य लखाया है; जीवोंको कल्पनामें भुलाया, भटकाया है। जगत्में चारखानी चौरासी योनियोंमें जहाँ पहलेसे जड़ाध्यासी जीव पड़ा था, आखिरमें व्यापक ब्रह्म बोध देकर शून्य जड़वृत्ति कर-कराके अध्यासवश वहीं गर्भवासके शून्य अन्धेरी कोठरीमें ही जीवको पहुँचाया, आवागमनमें डोलाया है। देहके नातामें ये ही सात गुरु संसारमें हुए हैं। ये चौरासी योनियोंमें ही डालनेवाले बन्धनकारक गुरुवालोग हैं। वे तो स्वयं बद्ध हैं, दूसरे किसीको मुक्त भी वे कर नहीं सकते हैं। मुक्ति देनेवाले पारखी सद्गुरु बन्दीछोर तो सर्वश्रेष्ठ हैं, वे इन सबोंसे न्यारे ही रहते हैं; ऐसा जान लीजिये ! ॥ ४६ ॥

साखीः— येते गुरु जहानमें ❀ चेला सब संसार ॥
[२०] गुरु सदा सो बन्दिये ❀ जो सन्धि परखावनहार ॥ ४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे जिज्ञासुओ ! सुनो ! विचार करके देखो ! समस्त संसारमें उपरोक्त इन सात गुरुवाओंका ही बोलबाला, प्रभाव, दबाव, विस्तार हुआ है। संसारमें समस्त मनुष्य समूह उन्हींके चेले, शिष्य, अनुयायी, पार्टी, मजहबी, भक्त, मतवादी हुए वा हो रहे हैं। परन्तु, वे सब गुरुवालोग जीवोंको फँसानेवाले वा बाँधनेवाले काल ही बने हैं।

इन लोगोंसे कल्याण होनेकी कुछ आशा नहीं है; और आठवाँ उनसे पृथक् बन्दीछोर श्रीसद्गुरु हैं; सो यथार्थ सत्यनिर्णयसे पारखबोधकी निर्मल दृष्टिको देकर नरजीवोंको सर्व पिण्ड-ब्रह्माण्डोंकी जड़ कला, कल्पना-विषयोंसे छुड़ाकर जड़देह और जगत् बन्धनोंसे जीते ही मुक्त करनेवाले, सब सन्धि, कसर-खोट, मानन्दियोंको परखाने वाले हैं, सोई सर्वोपरि श्रेष्ठ मुक्तिदाता सद्गुरु हैं। उन्हींकी बन्दगी, सेवा, पूजा, आरती, शिक्षा-दीक्षा लेना, सत्सङ्ग करना उचित है, वे ही वन्दना करने योग्य परम पूज्य माननीय हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

साखीः— सन्धि मिटावै जीवकी ❀ काटै यमका फन्द ॥
[२१] साहेब दीनदयाल सो ❀ संशय खण्डै दुन्द ॥ ४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने नरजीवोंके ऊपर जितनी भी सन्धिरूपी मानन्दी, भास, कल्पना, धोखा, भ्रम लगाया है, सो सबोंको परखाकर मिटानेवाले, यमकी वाणी-खानीके सब फन्दारूप जालोंको काटकर विनष्ट कर देनेवाले जो हैं, सोई सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब साधु-रूप दीनदयालु पारखी सद्गुरु हुए हैं। जगत्-ब्रह्मके संशय, मोटी-झीनी मायाके सन्देह, गुरुवालोग और नारियोंकी उपाधि, झगड़ा ऐसे दोनों प्रकारके दुन्द या द्वन्द्वको दयालु पारखी सद्गुरु ही विनाश वा खण्डन करके चूर्ण-चूर्णकर देते हैं; और किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है; अर्थात् हे सद्गुरु साहेब ! आप जिज्ञासु जीवोंके सम्पूर्ण भास और सन्धिको मिटाकर यमरूप मन, स्त्री और गुरुवालोगोंके सब फन्दाओंको काटकर अलग कर देते हो ! फिर संशयसे होनेवाले सब दुन्द=झगड़ाओंको खण्डन करके दूर कर देते हो ! हे साहेब ! ऐसे महान उपकारी आप दीनदयालु सद्गुरु बन्दीछोर हो ! ॥ ४८ ॥

साखीः— सात गुरु जो जगतमें ❀ नष्ट सबनको ज्ञान ॥
[२२] धोखा ताप न जेहि रहै ❀ सो परख प्रकाश गुरु जान ॥ ४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्में माने गये सात गुरुः—(१) माता-पिता, (२) दाई, (३) नाम धरानेवाला ब्राह्मण, (४) विद्या पढ़ानेवाला पण्डित, (५) मन्त्र-दीक्षा देनेवाला, (६) एक ईश्वरकी भक्तिमें लगानेवाला, और (७) एक अद्वैत ब्रह्म ठहरानेवाला; ये जो हैं, सो पारखहीन भ्रमिक हैं। इसलिये इन सबोंके ज्ञान, समझ, बोध जीवोंको मनुष्यपदसे नष्ट-भ्रष्ट, पतित करके चौरासी योनियोंमें ही डालनेवाला है। धोखेका ही उनका ज्ञान है। अतएव उसमें लगकर जिज्ञासुको जीवन बर्बाद नहीं करना चाहिये। जिसमें कष्ट-क्लेश, धोखा, ब्रह्म-ईश्वरादि, ताप, तपस्या, विरह, त्रयतापादि जहाँ एक भी नहीं ठहरे, जिनके उपदेशसे ये एक भी नहीं रहें, सब धोखेके ताप मिट जावें; सोई पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारखी सद्गुरुको मुक्तिदाता जानिये ! पारखका प्रकाश करके तमरूप भ्रम मानन्दीको मिटाकर वे ही नरजीवोंको मुक्तिस्थितिमें पहुँचाते हैं, ऐसा जानिये ! ॥ ४९ ॥

साखीः— निज स्वभाव ठहरै नहीं ❀ नास्ति होय किमि सार ? ॥
[२३] सत्य शरण पारख बिना ❀ बहै धार अन्धार ॥ ५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ये भ्रमिक नरजीव निज (स्वयं) स्वरूपमें तो नहीं ठहरते हैं। कोई मन-मानन्दीके स्वभावमें, कोई विषयोंमें, कोई ब्रह्ममें, कोई कल्पनामें भागे जाते हैं और उसीमें गचपच होते हैं। विषयानन्द और ब्रह्मानन्दको सबका सार निजस्वरूप करके जो उन्होंने ठहराये हैं, सो परीक्षा करनेपर पारखमें नहीं ठहरता है। क्योंकि, नास्ति ब्रह्म मिथ्या धोखा है; देह, विषय आदि नाशवान् जड़ कार्य हैं। इससे वे सार चैतन्य सत्य स्वरूप कैसे हो सकते हैं ? तथा नास्तिमें गाफिल होनेवालोंकी मुक्ति भी नहीं हो सकती है। और पारखमें मनादिक प्रकृतिके स्वभाव ठहर नहीं सकते हैं। नास्ति=अनुमान-कल्पना सारपद कैसे होगा भला ? अर्थात्

वह कभी सार नहीं हो सकता है। सत्यन्यायी सत्यनिर्णयी पारख बोधदाता पारखी सद्गुरुके शरणागत हुए बिना, मनुष्योंको कभी सत्स्वरूपका यथार्थ ज्ञान या बोध हो नहीं सकता है। अतएव घनघोर कल्पना, अनुमान तथा विषयादि बादलोंकी महान वर्षा होनेसे उसी वाणी-खानीरूप महानदीकी प्रचण्ड धारामें बहते हुए अनेक कष्ट सहते हुए महा अज्ञान या विज्ञानकी खाईमें गिरकर मरे, तो अँधियारी कोठरीरूप गर्भवासमें जाकर कैदमें पड़ गये; फिर कर्मानुसार जीव दुःख भोगने लगे। अतएव पारखी सद्गुरुकी शरणमें जाकर जीवन सफल करना चाहिये ॥ ५० ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक मूल रमैनीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ रमैनी भाग—१॥ मूल बीजक, रमैनी नम्बर—४४ ॥ ❀ ॥

१. कबहुँ न भयउ सङ्ग औ साथा * ऐसेहि जन्म गमायउ आछा ॥ ५१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, हे मनुष्यो ! सुनो ! हे नरजीवो ! तुम जिसके पीछे पड़कर जीवनको बर्बाद वा खराब कर रहे हो, सो स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धनादि संसारके पदार्थ और गुरुवालोग तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता, ऋद्धि-सिद्धि, इत्यादि कल्पना, अनुमान, ये सब कभी भी तुम्हारे सङ्ग नहीं हुए, न सङ्ग होंगे और न साथ ही जायेंगे। तुम्हारे साथमें कोई जानेवाले नहीं हैं। हकनाहक ऐसे ही व्यर्थमें सर्वोत्तम वा सबसे अच्छा यह नरजन्म कर्मभूमिकाको तुमलोगोंने विषय भोग और कल्पनाके पीछे लगकर खो दिये हो ! आयुको स्त्री-पुत्रादिके लालन-पालनमें, मजदूरी, भोगादिमें और नाना कष्टकर मिथ्या साधनाओंमें लगकर गमा दिये हो ! किन्तु, अन्तमें धन, परिवार भी साथमें नहीं गये; तथा ईश्वरादि भी नहीं मिला। बेकार नर जन्मको तुमने गमा दिया है। अब तुम्हें दुर्गतिके सिवाय और क्या हाथ आ सकता है ? अभी भी चेतकर सावधान हो जाओ ! तो भी ठीक है, यदि नहीं चेतोगे, तो शरीर छूट ही जायगा, फिर अध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें ही चला जायगा, सो जानो ! ॥ ५१ ॥

२. बहुरि न पैहो ऐसो थाना * साधु सङ्गति तुम नहिं पहिचाना ॥ ५२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे भूले हुए मनुष्यो ! यह नरदेह छूटनेके बाद तुरन्त ही फिर ऐसे उत्तम ठिकाना ज्ञानखानी मुक्तिका द्वाररूप मनुष्य जन्म तुम नहीं पाओगे। यानी जड़ाध्यासवश पशु आदि चौरासी योनियोंमें चले जाओगे, तो फिर मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ हो जायगा। यह नरदेहका स्थान ऐसा है कि, मुक्ति और बन्धनोंके सारे कर्म यहीं बन जाते हैं। शुभाशुभ किये हुए सब कर्मोंके संस्कार मनमें टिक जाते हैं। फिर जो संस्कार अन्तमें जीवके सन्मुख होता है, उसीके मुताबिक जीवकी गति होती है। यदि अभी तुम चूकोगे, तो फिर शीघ्र तुम्हें मनुष्य तन नहीं मिलेगा। अरे भाई ! तुम कितने मूढ़-अविचारी हो गये हो ? जो वस्तु साथ जानेकी नहीं, उसीके पीछे हाय ! हाय ! करते हुए दिन-रात पड़े हो। अपने कल्याणकी तो कुछ खबर ही नहीं करते हो ! साधु भी हुए, तो तुम पाखण्डी ही हो गये। और सच्चे पारखी साधुका सत्सङ्ग करके जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा यथार्थ सत्य निर्णय करके निजपारख स्वरूपको तुमने नहीं पहिचाना; निज स्वरूपकी स्थिति नहीं की, इधर विषयासक्त हो रहे हो, और उधर कल्पित व्यापक ब्रह्मकी गाफिलीमें पड़े हो। इसीकारणसे मनुष्यपदसे गिरकर तुम पशुपद चौरासी योनियोंमें ही चले जाओगे ॥ ५२ ॥

३. अब तोर होई हैं नर्क महँ बासा * निशिदिन बसेउ लबारके पासा ॥ ५३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे नरजीवो ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारको छोड़ करके तुमलोग रात-दिन झूठे कुसङ्गी मिथ्यावादी ज्ञानी-अज्ञानी स्त्री तथा गुरुवालोगरूपी लबारके पासमें बैठ रहे हो ! उन्हींके साथमें कर्म-कुकर्म करके जीवनको बिता दिये हो ! इसीकारणसे अब तुम्हारा भी बुढ़ापेका समय आ गया है, आयु भी क्षीण हो गयी है, अब तो मरनेकी ही

तैय्यारीमें हो ! एक दिन तो मरोगे ही । फिर शरीर छूटनेपर कुवासनासे तुम्हारा बास नरकमें होगा । यानी चौरासी योनियोंके गर्भवासरूप नरक-कुण्डमें ही तुम्हारा बास होगा । नरकके कीड़ावत् होकर जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं, सो इस बातको जानो, समझो और जीवनका सुधार करो ! ॥ ५३ ॥

साखीः— जात सबन कहँ देखिया * कहहिं कबीर पुकार ॥
[२४] चेतवा होय तो चेति ले * नहिं तो दिवस परतु है धार ॥ ५४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— पुकारकर गोहराकर जिज्ञासु नर जीवोंको सुनाकर चेताते हैं— हे मनुष्यो ! मैं पुकार-पुकारकर कहता हूँ, सो सुनो ! मैंने अपनी पारखदृष्टि खोलकर देखा ! तो समस्त संसारी विषयी मनुष्य और कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी तथा विज्ञानी, इन सबोंको नाना सिद्धान्त मान-मान करके अनुमान, कल्पना, भास, अध्यास, धोखा, भ्रममें पड़कर काल-जालोंमें घिरे हुए बारम्बार जन्म, मरण, गर्भवास चौरासीकी नाना योनियोंमें ही (सबोंको) जाते हुए देखा या देख रहा हूँ । सो पारखबोधके हुए बिना महान दुर्गतिको प्राप्त हो रहे हैं । और भी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुनः ऊँचे स्वरसे पुकारकर कहते हैं कि— हे नरजीवो ! तुम लोग अभी नर तनमें हो; चेतने, सुधारने, समझने, बूझने और मुक्त होनेकी जगह पर हो; चेतना है, मुक्त होना है, तो अभी चेत करलो ! तुम ही चैतन्य जीव नित्य-सत्यस्वरूप हो ! पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके अपने स्वरूपको जान लो ! सकल खानी-वाणी अध्यासोंको परित्याग कर पारख स्वरूपकी स्थिति कर लो ! यदि ऐसा नहीं करोगे ? तो देखो ! तुम्हारे यहाँ दिनमें ही डाका पड़ जायगा । अर्थात् दिनरूप ज्ञानखानी नरजन्ममें ही स्त्री और गुरुवालोग, ये डाकू अनेक रूप धारण करके 'धार' कहिये डाका डालेंगे, तो बल, वीर्य, ज्ञान, बुद्धि, सत्य, दया, विचारादि सद्गुण सम्पत्तिको लूट लेंगे । ये जीवोंको जड़ाध्यासी बनाकर मार डालेंगे । ऐसे सत्यानाश कर-कराके जीवकी दुर्गति कर रहे हैं; दिनमें ही डाका डाल रहे हैं । अतएव चेतो ! जागो ! देर न करो ! जीवन सुधार करके सफल करो ! ॥ ५४ ॥

सम्बन्धः— और भी मूल बीजककी रमैनीका ही प्रमाण यहाँपर दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ रमैनी भाग-२ ॥ बीजक मूल, रमैनी नम्बर-७५ ॥ ❀ ॥

१. तेहि साहेबके लागहु साथा * दुइ दुःख मेटिके होहु सनाथा ॥ ५५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सुनो ! सच्चे साहेबको न जानकर झूठेको साहेब माननेवाले हे भूले हुए मनुष्यो ! जिनको तुमलोग साहेब मान रहे हो, सो तो साहेब नहीं है, मिथ्या कल्पनाका पसारा धोखा मात्र है । सत्सङ्ग द्वारा विवेक करो ! परखो ! जानो ! जो सत्य-असत्य, सार-असार, जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिका यथार्थ निर्णय करके पारख बोधको लखावें, परखावें, भ्रम-कल्पनाको छुड़ाकर सत्यज्ञान देते हैं, सोई सर्वश्रेष्ठ ज्ञानशिरोमणि बन्दीछोर पारखी सद्गुरु परमपूज्य साहेब हैं । हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! उन्हीं पारखी सद्गुरु साहेबके साथ, शरण-सत्सङ्गमें तुम लगो ! वे पारखी सद्गुरु ही तुम्हें खानी-वाणीके सब जालोंको परखायेंगे, तो जगत्-ब्रह्म दोनोंकी उपाधि, दुःख, भ्रम, मानन्दी मिटाकर अनाथसे सनाथ कर देंगे । तब तुम स्वतन्त्र, निर्बन्ध एवं मुक्त हो जाओगे । जिससे आगामी जन्म-मरण सम्बन्धी समस्त कष्ट वा महान दुःख मिट जायेंगे । ये दो दुःख मिटनेपर ही तुम सनाथ होकर जीवन्मुक्त स्थितिको प्राप्त कर सकोगे । अतएव उन्हीं परमदयालु पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें ही सदा लगे रहो ! ॥५५॥

२. दशरथ कुल अवतरि नहिं आया * नहिं लङ्काके राव सताया ॥ ५६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! सूर्यवंशी राजा दशरथके कुलमें रानी कौशल्याके गर्भसे जो जन्म लेकर आया, रामचन्द्र नामसे अवतारी पुरुष जो कहलाया, सो श्रेष्ठ साहेब

मुक्तिदाता नहीं है। क्योंकि, रामचन्द्रने लङ्कामें जाकर वहाँके राजा रावणकी ससैन्य प्रजाको सताकर घोर युद्ध करके हजारों प्राणियोंको मार डाला था। इसलिये उनके दिलमें कुछ दया धर्म धारण नहीं था। क्रोध, हिंसा, विषयासक्तिसे कर्म-कुकर्म किया, इन्हीं कारणोंसे वे "साहेब" नहीं हैं। साहेब तो दशरथके कुलमें उत्पन्न होकर नहीं आते हैं और लङ्काके राजाको भी नहीं सताते हैं। यह काम तो मायाका है ॥ ५६ ॥

३. नहिं देवकीके गर्भहि आया * नहीं यशोदा गोद खेलाया ॥ ५७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! वसुदेवकी स्त्री देवकीके गर्भसे जो जन्म लेकर आया, सो कृष्ण भी तो पारखी श्रेष्ठ 'साहेब' नहीं है। तथा जिस कृष्णको और बलदेवको बाल्यकालमें यशोदा (नन्दकी स्त्री) ने गोदमें लेकर खेलाया, नचाया उनमें विषयासक्तिके सिवाय पारखबोध नहीं था। देवकीके गर्भसे "साहेब" जन्म लेकर भी नहीं आते हैं, और उनको यशोदा गोदमें खेला भी नहीं सकती है। इसलिये वह साहेब मानने योग्य नहीं है, वह तो मायाका ही एक रूप था ॥५७॥

४. पृथिवी रवन धवन नहिं करिया * पैठि पताल नहिं बलि छलिया ॥ ५८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जिन क्षत्रिय राजपुत्रोंने पृथ्वीका एकछत्र राज्य करनेकी अभिलाषासे अनेकों राजाओंसे लड़ाई या महायुद्ध करके रणस्थलमें बहुतोंको रौंद करके मार गिराया; जहाँ-तहाँ धावा बोल दिया, लूट-खसोट तथा मार-काट किया। विजयी होकर अयोध्या, द्वारका, काशी, काञ्ची, अवन्तिका आदि राजधानी बनाया; अपने नामसे सातधाम बसाया; लोगोंको कल्पनामें लगाया। ऐसे कुकर्म करनेवाले कभी "साहेब" नहीं होते हैं। श्रेष्ठ पारखी तो ऐसे काम कभी नहीं करते हैं। और दान करते हुए बलिराजाको कपटसे छलकर वामनने दानमें सर्वस्व सङ्कल्प करा लिया, वाचा बद्ध करके बहानेसे कपट, छल-छिद्र करके राजा बलिको बाँधकर पातालके देशमें भगा दिया; उसके राज्य हरण कर लिया। सो ऐसे छल करनेवाला वामन अवतार भी कभी "साहेब" नहीं हो सकता है ॥ ५८ ॥

५. नहिं बलिराजा सो माँडल रारी * नहिं हरणाकुश बधल पछारी ॥ ५९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! बानरोंका राजा बालि पम्पापुरमें रहता था। वनवासके समयमें रामने सुग्रीवसे मित्रता करके राजा बालिसे झगड़ा किया। रामने शत्रुता करके छिपकर बालिको मार भी डाला। साहेबको किसीसे तकरार, झगड़ा, युद्ध करनेका क्या काम ? इसलिये वे श्रेष्ठ साहेब नहीं थे, और किसीने कपटसे आधा भाग सिंहका तथा आधा भाग नरका, ऐसे नृसिंह अर्थात् नरपशुका रूप बना करके मौकेपर धोखा देकर हिरण्यकशिपुको पछाड़कर पेटमें नाखून वा छुरा भोंककर वध किया, ऐसे उसे मार डाला। गुरुवाओंने उसकी बड़ी महिमा बढ़ाई है, सो झूठी है। वह नृसिंह कभी श्रेष्ठ "साहेब" हो नहीं सकता है। ऐसा काम "साहेब" कभी नहीं करते हैं ॥ ५९ ॥

६. वराहरूप धरणी नहिं धरिया * क्षत्री मारि निःक्षत्री नहिं करिया ॥ ६० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! पुराणोंमें लिखा है— हिरण्याक्ष दैत्यने पृथ्वीको उठा करके ले जाकर पातालमें अपने विष्ठाके कोटमें छिपा दिया था। तब विष्णुने वराह (जङ्गली सूअर) का रूप धारण करके पातालसे पृथ्वीको निकाला; पृथ्वीको लाकर दाढ़में धारण किया। यह तो मिथ्या गपोड़ा ही लिखा है। सो वह "साहेब" का काम नहीं है। ऐसा कर्म "साहेब" कभी नहीं करते हैं। और परशुरामने पिताकी हत्याके क्रोधावेशमें आकर ससैन्य सहस्रार्जुनको मारकर फिर अन्य क्षत्रियोंको भी मारते-मारते एकईस बार तक पृथ्वीको घूम-घूमकर निःक्षत्रिय यानी क्षत्रियोंसे रहित किया; ऐसा लिखा है। यह महा हिंसक, क्रूर कर्म दयालु साहेब कभी नहीं कर सकतेहैं, इसीसे वह परशुराम "साहेब" नहीं है ॥ ६० ॥

७. नहिं गोवर्धन कर गहि धरिया * नहिं ग्वालन सङ्ग बन बन फिरिया ॥ ६१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! भागवतादिमें लिखा है— ग्वालबालोंके साथमें गौएँ चरानेके लिए कृष्ण, बलराम वन-वन जङ्गलों और पहाड़ोंमें फिरे थे। एक समय अधिक वर्षासे त्रस्त ग्वालोंकी रक्षाके लिये कृष्णने गोवर्धनको हाथमें पकड़कर धारण किया था; अथवा कहीं गुफामें ले जाकर छिपा दिया था, इत्यादि यह काम "साहेब" नहीं करते हैं। किसीको तमाशा भी वे नहीं दिखलाते हैं। इसीसे वे कृष्ण "साहेब" मानने योग्य नहीं हैं ॥ ६१ ॥

८. गण्डुकी शालिग्राम नहिं कूला * मच्छ कच्छ होय नहिं जल डोला ॥ ६२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गण्डुकी नदी या कृष्णागण्डकीमें पहाड़ोंसे काला-काला पत्थर बहकर आनेमें घिस जानेसे गोल-गोल चिकना काला पत्थर उस नदीके किनारोंमें मिलते हैं। उसको शालिग्रामरूपमें विष्णुका स्वरूप माना है, सो "साहेब" नहीं है। और मत्स्य अवतार शङ्खासुरको मारनेके लिये हुआ। कच्छप अवतार मन्दराचल पर्वतको थामकर समुद्र मथनेके लिये हुआ; ऐसा माना है। सो मछली और कछुवे होकर जलमें डोलनेवाले भी "साहेब" नहीं हैं। वे तो चौरासी योनियोंके पाप भोगी जीव हैं; सो श्रेष्ठ हो नहीं सकते हैं ॥ ६२ ॥

९. द्वारावती शरीर नहिं छाड़ा * ले जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा ॥ ६३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! द्वारकापुरीके प्रभास-पट्टन क्षेत्रमें यादव कुलका विनाश होनेपर 'जरा' नामक व्याधाके तीर लगनेसे उसी निमित्तसे कृष्णका द्वारिकामें शरीर छूटा। पश्चात् उनके भक्तोंने कृष्णके मृत शरीररूपी पिण्डको जगन्नाथपुरीमें ले जाकर गाड़ दिया था, अर्थात् समाधि कर दिया था। ऐसी-ऐसी करतूत जिन-जिनकी हुई, वे कोई भी श्रेष्ठ पारखी मुक्तिदाता "साहेब" नहीं हैं। यह सब तो काल गुरुवालोगोंके प्रपञ्चका पसारा है। अतएव वे दशों अवतार मायाके ही नानारूप और नाम हैं। उनमें किसीको भी पारखका बोध नहीं हुआ, इसलिये वे "साहेब" मानने योग्य नहीं हैं। हे मुमुक्षुओ ! विवेक करो ! सार सद्गुणोंको ग्रहण करनेसे ही कल्याण होवेगा। गुरुवालोगोंके झूठे बहकावेमें मत् पड़ो। सत्सङ्गमें ठहरकर पारख करो ! तब यथार्थ सत्यासत्यका भेद मालूम पड़ेगा ॥ ६३ ॥

साखीः— कहहिं कबीर पुकारिके * वै पन्थे मति भूल ॥
[२५] जेहि राखेउ अनुमानकै * सो थूल नहिं अस्थूल ॥ ६४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुकार-पुकारकर ऊँचे स्वरसे सबको सुनाकर कहते हैं कि— हे मनुष्यो ! बिना विचारे गुरुवालोग तो भूलमें पड़े हैं। सो तुमलोग उस भूल-भुलैयाके मत, पन्थोंमें जा-जा करके मत् भूलो ! सत्यासत्यका विवेक करो ! अनुमान करके जिसको ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा मान रक्खे हो, सो सब तो कल्पना होनेसे मिथ्या है। दश अवतार तो माया-कायाकी दुर्दशा है। जिसको तुम जगत्कर्त्ता सुख-दुःखोंका दाता ठहराये हो, सो अनुमान है। उसका सूक्ष्म और स्थूल कोई आकार नहीं है, वह कोई पदार्थ नहीं है, शून्य धोखामात्र है। तुम धोखेके पन्थमें मत् भूलो ! पारख करो ! पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर सार, सत्य, चैतन्य बोधको हासिल करो ! बोधवान् पारखी साधु ही सत्य साहेबरूप बन्दीछोर दयालु हैं; ऐसा निश्चयसे जानो ! अर्थात् सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पुकारकर कहा है कि, उन धोखेके पन्थोंमें मत् भूलो ! जिसको तुमने अनुमान करके निश्चय कर रक्खा है, सो मिथ्या भ्रम है। इसीसे सो थूल = सूक्ष्म पदार्थ भी नहीं है और अस्थूल = दृश्य स्थूल पदार्थ भी नहीं है; अनुमान-कल्पना मात्र होनेसे वह असत्य है, ऐसा जानो ! ॥ ६४ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ रमैनी भाग—३ ॥ बीजक मूल, रमैनी नम्बर—२३ ॥ ❀ ॥

१. अल्प सुख दुःख आदिउ अन्ता * मन भुलान मैगर मैमन्ता ॥ ६५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! सुनो ! जगत्से ब्रह्म पर्यन्त जो

सुख माना है, सो सुख तो आनन्दीरूप अल्पकालका भासमात्र ही है; परन्तु, शुरूसे आखिरी तक उसमें दुःख-ही-दुःख भरा है। जैसे उन्मत्त जङ्गली हाथी कागजकी नकली हथिनीको देखकर बिना विचारे कामासक्त होकर आखिरमें गड्ढेमें ही जाकर गिर पड़ता है। फिर जन्मभर दुःख ही पाता रहता है। तैसे ही चामकी पुतली, मल-मूत्रादिकी पेटारीरूप स्त्रीकी सुन्दरता तथा उसके हाव, भाव, कटाक्ष देखकर पुरुष कामासक्त, उन्मत्त एवं मोहित होकर भूल जाते हैं। फिर विवाहादि करके गृहस्थीके कूपमें गिर पड़ते हैं। सो स्त्री-पुरुषोंके सम्भोगका सुख तो अल्पकाल तक वीर्य पतन होनेसे कुछ भास भ्रमसे मालूम होता है। परन्तु, उसी अभ्यासके कारणसे जन्मभर आदिसे अन्त तक नाना दुःख ही सहा करते हैं। मेहनत, मजदूरी आदिका दुःख भोगते हैं। फिर जन्मसे मरण तक, मरणसे जन्म तक असह्य दुःख भोगा करते हैं; तथापि चेत नहीं होता है। विषय-वासना छोड़ी नहीं जाती है। उस भोगमें ही पुरुषोंका मन भूल गया है। उन्मत्त हाथीके समान वे मस्त मदोन्मत्त हुए या हो रहे हैं। इसीसे देह छूटनेपर गर्भकूपमें जाकर गिर पड़ते हैं। और वाणी भागमें अर्थ सुनिये! गुरुवालोगोंका माना हुआ प्रेमानन्द, योगानन्द, ब्रह्मानन्दादि सुख तो अल्प काल तक वृत्ति निरोध होनेसे स्थिरतामें वह आनन्द मालूम होता है। परन्तु, वह स्थायी नहीं रहता है। पुनः शीघ्र ही वृत्ति चञ्चल हो जाती है। पहले भी अनेक हठयोगादि साधनाएँ करनेमें वे नाना दुःख उठाते हैं। पीछे वृत्ति बहिर्गत होनेपर भी बड़ी घबराहट और दुःख मालूम पड़ता है। ऐसे आदिसे अन्त या ब्रह्मसे जगत् पर्यन्त वा जन्मसे मरण तक दुःख-ही-दुःख पाते हैं। ज्ञानी, योगी, भक्तोंका मन उसीमें भूल गया। अन्तमें "अहं ब्रह्मास्मि" कहकर गाफिल होते हैं ॥ ६५ ॥

२. सुख बिसराय मुक्ति कहाँ पावै ? ❀ परिहरि साँच झूँठ निज धावै ॥ ६६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें चैतन्य पारख बोध प्राप्त होनेसे ही शान्ति स्थिति जीवन्मुक्तिका सुख मिल सकता है। उसको तो बिसराय दिये वा भूल गये और ब्रह्म-ईश्वरादिकी कल्पना करके उसे प्राप्त कर मुक्त होना चाहते हैं, तो कहो भला ? जो वस्तु ही कुछ नहीं है, फिर सो कहाँसे पायेंगे ? इन सबोंकी मुक्ति तो भी कैसे होगी ? क्योंकि, सच्चे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गको छोड़ दिये; झूठे गुरुवालोगोंके पीछे दौड़े जाते हैं। और नित्य-सत्य चैतन्य जीवको छोड़कर झूठ ही ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिको जगत्कर्त्ता मुक्तिदाता मानकर मिथ्या साधनाओंमें दौड़ रहे हैं; कुछ विवेक ही नहीं करते हैं ॥ ६६ ॥

३. अनल ज्योति डाहै एक सङ्गा ❀ नैन नेह जस जरै पतङ्गा ॥ ६७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! जैसे अग्निकी ज्योति, दीपकका लपट, जलता हुआ प्रकाश देखकर नेत्रोंके रूप विषयमें आसक्त होकर पतङ्गी, पुतलियाँ कूद-कूदकर जल मरती हैं। तैसे ही सुन्दर रूपवाली स्त्रीके रूपमें मोहित, आकर्षित होकर एकसाथ सङ्ग-साथकर सम्भोग करके काम विषयमें पुरुष जल मरते हैं। थोड़ा-सा नेत्रके रूप देखनेसे उसी स्त्रीके प्रेममें पतङ्गीकी नाईं ज्ञान, क्रियादि भीतरके दश गुणोंको जला करके भस्म कर देते हैं। कामासक्त पुरुष सो स्त्रीके चाहे जैसे रूप वा कुरूप हों, तो भी उसे सुन्दर समझकर जल जाते हैं; नष्ट-भ्रष्ट, पतित हो जाते हैं। इसीप्रकार योगीलोग भी ध्यानमें अग्नितत्त्वके ज्योति प्रकाशको देख करके उसीको अपना या ईश्वरका स्वरूप मानकर जड़ाध्यासी, भ्रमिक हो जाते हैं। नेत्रसे देखे हुए तेजतत्त्वके ज्योति प्रकाश-में प्रेम लगाकर मोहित हुए, योगी, ध्यानी पतङ्गीकी नाईं कल्पनामें जल मरते हैं। जड़-चैतन्यका कुछ विचार ही नहीं करते हैं ॥ ६७ ॥

४. करहु विचार जो सब दुःख जाई ❀ परिहरि झूठा केर सगाई ॥ ६८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— इसवास्ते हे मुमुक्षु लोगो! तुम सत्यासत्यका यथार्थ विचार करो! द्रष्टा-दृश्य सदैव न्यारे-न्यारे रहते हैं। दृश्य रूप आदि विषयको अपना स्वरूप मत् मानो!

और तेजतत्त्व आदिका प्रकाश, भास वह तो जड़ है। तुम चैतन्य जीव उससे न्यारा हो! तथा स्त्रीका देह तो नर्कका कुण्ड है; विचार करो! उसमें कोई अच्छी चीज नहीं भरी है! दशोंद्वारोंमें नर्करूप गन्दी चीज ही भरी है। नाहक तुम भूलकर धोखेमें पड़ते हो! गुरुवालोग और स्त्रियाँ तो झूठे हैं; उनके भुलावेमें मत् पड़ो! झूठे कुसङ्गियोंके सङ्गको छोड़ो! और देवी, देवता, भूत, प्रेत, स्वर्गादि तथा ब्रह्म-ईश्वरादि झूठा है, वाणी-जालकी सगाई, प्रेम-प्रीति जो किये हो, सो भी छोड़ दो! और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें आकर यथार्थ सत्य निर्णयसे विचार करो! जिससे तुम्हारा सब दुःख मिट जायगा। पारख स्वरूपकी स्थिति होनेपर आवागमनके दुःखोंसे भी छूट जाओगे ॥ ६८ ॥

५. लालच लागी जन्म सिराई ❀ जरा मरण नियरायल आई ॥ ६९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! अबोध मनुष्य विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादि सुख, चार मुक्ति, चार फल, सात स्वर्ग, धन-धान्य, ऐश्वर्य प्राप्ति इत्यादिकी लालचमें पड़कर स्त्री, पुत्र, परिवारोंके सङ्गमें नाना मेहनत, मजदूरी आदि करनेमें और गुरुवालोगोंके साथमें जप, तप, व्रत, योगादि नाना साधनाएँ करने-करानेमें लगे हैं। उसीमें मनुष्य जन्मकी सारी आयु बिता दिये। वृद्धावस्थामें पहुँचे, तो अब इधर-ऊधर आगे-पीछे करते-ही-करतेमें मरनेका समय नजदीक आ गया, रोगादिने घेर लिया, ऊर्ध्व श्वास चलने लगा, ब्रह्म-जगत्की आसक्ति लेकर मृत्यु भी हो गई। तब जो संस्कार सन्मुखमें आया, उसी मुताबिक चौरासी योनियोंको जीव प्राप्त होकर कर्म फल भोगने लगे या भोग रहे हैं ॥ ६९ ॥

साखीः— भरमका बाँधाई जग ❀ यहि विधि आवै जाय ॥
[२६] मानुष जन्म पायके ❀ नर काहेको जहँड़ाय ? ॥ ७० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ये सारे जगत्के नरजीव भ्रमिक हुए, तो भ्रमसे ही जगत् विषय और ब्रह्म विषयमें पड़कर खानी-वाणीके महाजालोंमें बद्ध हुए या बाँधे गये। ब्रह्म कोई वस्तु नहीं है, तो भी उसे भ्रमसे सच्चिदानन्द जगत्कर्त्ता मान रहे हैं; मनःकल्पनामें जीवको बाँध रहे हैं। और स्त्री विषयादिमें भी कोई सच्चा सुख नहीं है, तो भी भ्रमसे झूठ-मूठ ही सुख मानकर भूल रहे हैं। अतएव झीनी-मोटी मायाके जालोंमें बँधे हुए जीव इसीप्रकारसे जड़ाध्यासी हो करके मरकर गर्भवासमें जाते हैं। फिर जन्म लेकर बाहर आते हैं। शुभ संस्कार उदय होनेसे मनुष्य देहमें आते हैं। यहाँ नाना कर्म वासना जमा करके फिर चौरासी योनियोंमें पशु आदि खानीमें चले जाते हैं। ऐसे ब्रह्म-जगत्के रहटामें पड़े रहते हैं। श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे नरजीव! अभी बड़े भाग्यसे तुमने मनुष्यका जन्म पाया है। यही मुक्तिका द्वार है; कर्मभूमिका है। सावधान होओ! इसे सफल करो! सत्यज्ञानको प्राप्त करो, मुक्ति प्राप्तिका लाभ उठाओ, प्रयत्न करो, उठो! जागो! ऐसे उत्तम मनुष्य जन्म पाकर भी हे नरजीव! तुम क्यों जहँड़ाते हो? क्यों जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके भव-बन्धनमें पड़ते हो? अब जितना समय बाकी है, उतना ही सही, अब तो चेतकर जीवन सुधार करो! ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा, सो जानो! ॥ ७० ॥

॥ ❀ ॥ यथार्थ निर्णयकी साखियाँ ॥ ❀ ॥

साखीः— साँचा शब्द कबीरका ❀ प्रगट कहा जग माँहि ॥
[२७] जैसेको तैसा कहै ❀ सो तो निन्दा नाहिं ॥ ७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी सत्य वाणी "सद्ग्रन्थ बीजक" है। सब शब्दोंके कसर-खोट दिखलाकर उसमें सत्य निर्णय परखाया गया है। जगत्में जितने भी मत, पन्थ, ग्रन्थोंके सार सिद्धान्त हैं, उन सबके बारेमें निर्णय करके बीजकमें कहा गया है। "जीव ही सत्य चैतन्य है; ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मादि सब निर्जीव, कल्पना,

झूठा है।" और एक ॐकार ब्रह्मको ही— 'समस्त जगत्का कर्त्ता आधार है' ऐसा जगत्में गुरुवालोगोंने प्रगट करके कहा है, सो तो मिथ्या कल्पना मात्र है। मनुष्योंने ही वेदादि वाणीको बनाकर नाना सिद्धान्त कायम किया है। अपने भूले हैं और दूसरोंको भी भुला रहे हैं। जीव सत्य है, और ब्रह्म मिथ्या है। स्त्री और गुरुवालोग 'काल' हैं। पारखी सद्गुरु 'दयाल' हैं। जो वस्तु जैसा है, उसको तैसा ही कहनेमें वह निन्दा नहीं होती है; बात यथार्थ कहा है, तब निन्दा कैसी ? जैसा-को-तैसा कहे, सो तो निन्दा नहीं होती है; बात कुछ और है, कहे कुछ और ही, सो वही निन्दा तथा असत्य भाषण कहलाता है। मिथ्यावादी गुरुवालोग ही 'निन्दक' बने हैं। पारखी सद्गुरु तो यथार्थवक्ता होते हैं, ऐसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे शब्द बीजकके प्रमाणसे मैंने यहाँपर जो कहा है, सो उसे विचार करके समझिये ! ॥ ७१ ॥

साखीः— मूढ़ सबै ज्ञानी भये ❀ आपै ब्रह्म कहाय ॥
[२८] ब्रह्मादि सनकादिलों ❀ सुर नर मुनि समुदाय ॥ ७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें सब विषयासक्त मनुष्य मूढ़, अज्ञानी बने हैं। जब ब्रह्मज्ञानीके पासमें जाकर वेदान्तका श्रवण-मननादि किये, तब वे ही मूढ़ सब लोग ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती अद्वैत ब्रह्मवादी हुए। तहाँ भाग, त्याग, लक्षणासे घटाकर अपने-आप स्वयं ब्रह्म कहलाये। चराचरमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म जगदाधिष्ठान हुए— "अहं ब्रह्मास्मि" कहने लगे। वे ही झूठे या मिथ्यावादी हुए; अपने ऊपर कल्पना लाद लिये। हे भाई ! यह धोखा तो शुरूसे ही चलता-फैलता आ रहा है। पहले ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि उस धोखेमें पड़े। उनके द्वारा सनकादि, वशिष्ठ, व्यास, नारद, शुकादि, शौनकादि, देवता, मनुष्य, ऋषि, मुनि, तपस्वी, त्रिगुणी मनुष्य समुदायसे लेकर वर्तमानमें योगी, ज्ञानी, भक्त पर्यन्त बिना पारख उस अनुमान, कल्पना, ब्रह्म-भ्रम, कर्त्ता कल्पनाके मिथ्यावादमें पड़े और पड़ रहे हैं। उस कल्पनाको परख कर न्यारा होना चाहिये ॥ ७२ ॥

साखीः— ब्रह्म होय शीतल भये ❀ शीतल तृप्ती रूप ॥
[२९] अनल समानी ताहि जल ❀ परे भरम तम कूप ॥ ७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! साधन चतुष्टयसे सम्पन्न हो करके पहले तो साधक अवस्थामें खूब साधनाएँ किये। ध्यान, धारणा, समाधि लगाये और सब बहिर्वृत्तिको शान्त किये। "सर्वंवाहमस्मि"— कहकर आप ही ब्रह्मादि, सनकादि स्वयं ब्रह्म हुए। चराचरमें व्यापक ब्रह्म अपनेको मान लिये। ऐसे ब्रह्म हो करके ज्ञानीलोग शीतल, शान्त, निरान्त, शून्य वृत्तिको धारण कर लिये। शीतलका रूप तो तृप्ति होना होता है। इससे समाधि अवस्थामें कुछ काल तक निवृत्ति, निरिच्छ, निर्गुण बने रहे। इसी अनुभवसे ब्रह्मको नित्यतृप्त, नित्यमुक्त, शान्त, शीतल, निराकाररूपमें मान लिये। परन्तु, पारख निर्णयसे देखिये ! तो उसी जलमें अग्नि समाई हुई है, तो शीतल कैसे होगा ? यानी जल या पानी कहिये वेद-वेदान्त आदि वाणीके प्रमाणसे एक अधिष्ठान ब्रह्म जो मान लिये हैं, उसीमें ही तो जगत् उत्पन्न करनेकी अग्निरूप इच्छा 'निरञ्जनसे विश्व' तक अभिमान समाया हुआ है। क्योंकि, ब्रह्मकी इच्छासे ही माया सहित जगत्की उत्पत्ति उन्होंने ही माना है। वही ब्रह्म मायोपाधिवश अज्ञानी जीव नानात्व होकर भ्रमकूपमें पड़ा, ऐसा कहते हैं। तब सब विकारका खदान ब्रह्म हुआ, कि नहीं ? अरे भाई ! मनुष्यके भ्रमसे ही ब्रह्म बना है। और वह कोई वस्तु नहीं है। उसी महा अज्ञान भ्रम-अध्यासवश जीव अँधियारी कूपवत् गर्भवासमें जाकर पड़े हैं; और चौरासी योनियोंमें ही जा रहे हैं, बिना विवेक ॥ ७३ ॥

साखीः— निर्विकार माया परे ❀ तेहि कहैं वेद पुरान ॥
[३०] पुनि प्रपञ्च सब ताहिके ❀ उदकहि आगि समान ॥ ७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, आवागमनादि समस्त

मायाके विकारसे रहित, ऐसा निर्विकार तथा माया कहिये कायासे परे निराकार, निर्गुण, निरञ्जन जो है, सोई ब्रह्मका स्वरूप है। वही पुराणपुरुष पुरुषोत्तम है! ऐसा महात्म्य चार वेद और पुराणोंमें ब्रह्मादि-व्यासादि गुरुवालोगोंने कहा है वा वर्णन किया है। फिर दूसरी जगह कहते हैं कि, यह समस्त विश्व प्रपञ्च चराचर जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब उसी ब्रह्म-परमात्माकी इच्छासे होता है। उसकी इच्छा बिना तो एक पत्ता भी नहीं डोल सकता है। अब विवेक करिये कि, जिसमें इतनी सारी उपाधि इच्छा लगी है, वह निर्विकार कैसे हो सकता है? समुद्रमें बड़वाग्नि रहनेके समान वा गरम पानीमें अग्निके परमाणु रहनेके समान ही वह ब्रह्म विकारी हुआ, कि नहीं? अवश्य विकारी हुआ। क्योंकि, जलरूप ब्रह्मके भीतरमें ही अग्निरूप इच्छा, अहङ्कारका करतूत समायी हुई है; वह शोषण करती रहती है। इसलिये ब्रह्म होनेसे जीवको कोई फायदा नहीं होता है; सो परखकर कल्पनाको छोड़ देना चाहिये ॥ ७४ ॥

साखीः— जीव विवश व्याकुल फिरै * चाहै निज कल्यान ॥
[३१] कहै अकाम अनन्य होहु * बिन पारख पिसिमान ॥ ७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर अबोध नरजीव विषय वासनासे विवश लाचार होकर पहले से ही अनेक तरहसे त्रिविधि तापादि दुःख भोगकर आकुल-व्याकुल हैरान हो घबड़ाकर जिधर-तिधर फिर रहे हैं। ऐसे दुःखी जीव तहाँ सदा सुख प्राप्ति कल्याण-मुक्तिकी चाहना करते हैं। कितनेक श्रद्धालु नरजीव कल्याणकी चाहनासे योगी, ज्ञानी, भक्त, विज्ञानी आदि गुरुवालोगोंकी शरणमें गये; प्रार्थना किये, तो उन गुरुवालोगोंने उन्हें उपदेश दिया कि, एक तो भक्तिमार्गसे परमेश्वर जगत्कर्त्ताको इष्ट परमपति मानकर सर्वस्व उसको अर्पण करके अनन्य भक्ति करो, उसीकी भक्तिमें ही डूबे रहो! दूसरा, सब कामनासे रहित होकर अपने ही ब्रह्म बनो! निष्काम कर्मयोग साधना करो, तो जीव-ईश्वरकी एकता हो जायगी! बस, यही कल्याणका मार्ग है! ऐसा कहकर भुला दिये। बिना अपरोक्ष पारखबोधके पाये सत्य निर्णय न होनेसे भ्रमिक नरजीव अनेक मानन्दिमें पीसे गये और पीसे जा रहे हैं ॥ ७५ ॥

साखीः— लखि न परै तेहि बसि परे * छिन छिन भ्रम मत देत ॥
[३२] अज्ञानी ज्ञानी करै * ज्ञानिहिं करै अचेत ॥ ७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अबोध मनुष्य बेपारखी होनेसे सत्यासत्यका निर्णय, सार-असार, जड़-चैतन्यका भेद उन्हें स्वयं तो लखने, जाननेमें नहीं आता है, कुछ समझ नहीं पड़ती है; इसलिये भूले-भटके हुए अज्ञानी लोग उन्हीं ठग गुरुवालोग और नारियोंके वशमें पड़े हैं और पड़ रहे हैं। खानी-वाणियोंमें ऐसे जकड़ गये कि, अब छूटना दुस्तर हो गया है। क्षण-क्षणमें वा घड़ी-घड़ीमें गुरुवालोग मनुष्योंको भ्रमाकर निज-निज मतका भ्रमरूपी उपदेश दृढ़ा दिये, और दृढ़ा दे रहे हैं। बुद्धिमें ऐसे पर्दा डाल दिये कि, ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि कल्पित कुछ दिखाई नहीं देता है, तो भी उसे ही सत्य मानकर दूसरोंको भी मानने लगा रहे हैं। पल-पलमें भ्रमका मत ही निश्चय किये-कराये हैं। अज्ञानी त्वंपदको वे लोग तत्पद ज्ञानी करते हैं; तथा तत्पद ज्ञानीको और असिपद विज्ञानी करके अचेत, मूढ़, गाफिल कर देते हैं; और अज्ञानी अबोध संसारी मनुष्योंको वेदादि वाणी समझाकर, ज्ञानी समझदार बनाकर नाना साधनाओंमें लगाते हैं। फिर ज्ञानीलोग ब्रह्मवादी बनकर सब साधनाओंको छोड़कर शून्यवृत्ति धारण करके अचेत होते हैं। कोई बाल, पिशाच, मूक, जड़वत् हो जाते हैं। ऐसे गुरुवालोग उभय भ्रष्ट करते-कराते हैं ॥ ७६ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण–मूल बीजककी, साखी नम्बर— ३२६ ॥ ❀ ॥

साखीः— पैठा है घट भीतरे * बैठा है साचेत ॥
[३३] जब जैसी गति चाहै * तब तैसी मति देत ॥ ७७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ! जड़ाध्यासी जीव देहधारी होकर अन्तःकरणके भीतर हृदयमें घुसा पड़ा है; और जीव तो सदा–सर्वदा चैतन्य ही रहता है। सो जीवके बैठनेसे यह जड़ देह भी साचेत=जीवित, सुन्दर मालूम पड़ रहा है। और जीव जब–जब जैसी–जैसी चाहना करके क्रिया करता है, तब–तब बुद्धि भी वैसे–वैसे ही निश्चय करके नाना कर्त्तव्यमें प्रवृत्त हो जाती है। फिर उसी मुताबिक संस्कार दृढ़ होकर आगे जीवोंको वैसी ही गति भी प्राप्त हो जाती है। बिना पारख किसीकी मुक्ति नहीं होती है ॥

अथवा दूसरे अर्थमें श्रीसद्गुरु कहते हैं— संसारमें भ्रमिक गुरुवालोगोंकी कल्पित मानन्दीरूपी वेदादि वाणीके शब्द, उपदेश नरजीवोंके घट या हृदयमें दृढ़ होकर घुसा पड़ा है, सोई पैठा है। भ्रमकी मानन्दी ही साचेत= हुशियार वा स्मृतिरूप होकर मनमें बैठा है। फिर जब जैसी गतिको या स्थितिकी चाहना करते हैं; तब तैसी ही कल्पना करके बुद्धिमें प्रेरणासे निश्चय कर देता है। अनेक प्रकारकी मानन्दी करा देता है ॥

अथवा नरजीव गुरुवा लोगोंके पासमें जाकर जब–जब जैसी–जैसी चाहनाएँ करते हैं; स्त्री, पुत्र, धन, घरादि, स्वर्गादि, सात लोक, चार फल, चार मुक्ति, ऋद्धि–सिद्धि आदि प्राप्ति करनेकी इच्छा प्रगट करते हैं तब–तब गुरुवालोग उन्हें भ्रमा–भ्रमा कर "हाँ! हमारे कहे अनुसार करो, तो सो सब तुम्हें मिल जायगा" ऐसा कहकर कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान आदि नाना मत–पन्थोंकी मानन्दी तथा उपदेश बुद्धिमें निश्चय करा देते हैं। सो उसी मतिको लेकर बिना विचार भूलसे बन्धनोंमें जीव पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ ७७ ॥

साखीः— स्वभाव जीव जीवै सही * यम सन्तत रस लेत ॥
[३४] ज्ञानरूप विलसै सोई * हंस दुस्सह दुःख देत ॥ ७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जीवका नित्य स्वभाव 'जानना' है। सो चैतन्य ज्ञानाकार या ज्ञान स्वरूपमात्र सदा–सर्वदा जीते रहनेवाला यानी कभी नाश न होनेवाला अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्यादि लक्षण युक्त जो है, सोई स्वाभाविक एकरस जीव है; सो जीव ही स्वयं सत्य है। वह देहधारी जो है, सो इसीसे मनमें जड़ाध्यास जमा पड़ा है। इससे सदा विषयोंकी तरफ ही लक्ष्य लगाकर मनसे रस लेता रहता है; तो यहाँ स्त्रियाँ और गुरुवालोग 'यम' बनकर ब्रह्म और विषय रस सुखकी लालच दिखा–दिखाकर पुरुषोंके रस चूस लेते हैं; तन, मन, धनादि हरण कर लेते हैं। सदासे यमका यही दाव–घात लगा है या लग रहा है। जीव तो ज्ञान स्वरूप है; परन्तु, पारख स्वरूपकी स्थिति करना छोड़कर, सोई यमरूप स्त्री और गुरुवाओंके सङ्गमें विलास–खेल एवं क्रीड़ा करते हैं। ब्रह्मानन्द–विषयानन्दमें मस्त, बेभान रहते हैं। नाना कर्म–कुकर्म करते हैं। इसलिये वही जड़ासक्ति–मानन्दी यहाँ चैतन्य हंस जीवोंको अनेकों असह्य कष्ट, चिन्ता, परेशानी आदि दुःख देती रहती है। फिर देह छूटनेपर भी जन्म–मरण, गर्भवासादिका दुस्सह दुःख भोगता रहता है! अतएव सावधान होकर नारी और गुरुवाओंके कुसङ्गोंको छोड़कर जड़ाध्याससे रहित होना चाहिये ॥ ७८ ॥

साखीः— महासन्धि धोखा सोई * झाँई आपा ओट ॥
[३५] लहतहिं दुन्दज ज्ञान भौ * पूरण संशय खोट ॥ ७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! असन्धि सबमें परिपूर्ण भरा हुआ व्यापक ब्रह्म या

ईश्वरकी महान मानन्दी सोई महासन्धिका धोखा, भ्रम-भूल है। अपने ऊपर पाँच अभिमानकी आपा लादकर 'मैं ब्रह्म हूँ !' ऐसा जो माना है, सोई झाँई = विज्ञानकी गाफिली, निरञ्जन अभिमानकी ओट [आड़, पर्दा] में जीव छिप गये। अहङ्कार-अध्यासादिका पर्दा, भ्रम पड़ते ही खानी-वाणीके झगड़ारूप ज्ञान, अज्ञान, विज्ञानमें जीव पड़ गये। अपनेसे भिन्न दूसरा कोई ब्रह्म-ईश्वरादि जो माना है, सो भी खोटा है; और स्वयं सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म जो माना है, सो भी खोटा है। सन्देह, कल्पना पूर्ण-तौरसे खोटा अर्थात् असत्य है। पारख करनेपर यह कोई भी नहीं ठहरता है। सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे जान लेना चाहिये ॥ ७९ ॥

साखीः— इच्छा कर्म स्थूल ले ❀ प्रगटे जग समुदाय ॥
[३६] विविधि रूप बहु कष्टमय ❀ रहा सन्तत जहँड़ाय ॥ ८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मनमें विषय-वासनासे सुख भोगादिकी इच्छा होनेपर चित्तचतुष्टयका सञ्चालन होकर स्थूलदेहमें दशों इन्द्रियोंसे कर्म होते हैं। फिर सोई स्थूल कर्मोंकी सहायता लेकर जगत्में चारों खानियोंमें नाना देहें समुदाय उत्पन्न होकर प्रगट हुए हैं। चौरासी योनियोंमें अध्यासी जीव नाना देहोंके आकार, रूप धारण कर सर्वदासे जड़ाध्यासी बद्ध हो रहे हैं। और ब्रह्मवादीके कथनसे निराकार ब्रह्मसे ही साकार जगत् उत्पत्तिकी स्फुरणा या इच्छा प्रगट हुई। सोई इच्छारूप माया द्वारा सूक्ष्म और स्थूल कर्मको लेकर समस्त चराचर जगत् समुदाय उत्पन्न होकर प्रगट हुआ है। फिर नाना रूपमें जीव भूले, उस भूलको छुड़ानेके लिये योग, यज्ञ, जप, तप, भक्ति, ज्ञानके अनेकोंरूप, अनेकों सिद्धान्त, अनन्त साधनाओंके कष्टमें लगाकर गुरुवालोग अन्तमें फिर आप ब्रह्म बने और अन्य जीवको भी ब्रह्म बनाये। दुःखरूप जगत्का अधिष्ठान स्वरूप ही ब्रह्म बने। इसप्रकार महान गाफिली भूलमें पड़ करके जीव अनादि कालसे ही सर्वदा जड़ाध्यासी हो जहँड़ा रहे हैं। यानी बिना पारख भव-बन्धनोंमें ही सदैवसे पड़े हुए हैं॥ ८०॥

साखीः— नाना मत उदवेगके ❀ सब घट करैं कलोल ॥
[३७] जीव भरोसे चैनके ❀ पचहिं सो डामाडोल ॥ ८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिकोंने नाना सङ्कल्प-विकल्प करके षड्दर्शन छियाञ्चवे (९६) पाखण्ड बनाया है। उनमें नाना मत, पन्थ, ग्रन्थ बनाया है। अनेकों सिद्धान्त स्थापना करके विस्तार किया है। अब वही विषय, कल्पना, अनुमान सबके घटोंघटमें बैठ करके किलोल = क्रीड़ा एवं आनन्द कर रहा है। उसीमें सब सुख मान रहे हैं। अबोध नरजीव तो गुरुवालोगोंके बतलाये वेदादि वाणीके विश्वाससे एक जगत्कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वर या खुदा आदिको मानकर उसीके भरोसे मुक्ति, सुख-चैन होनेका निश्चय कर लिये हैं। इसीवास्ते ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नाना कष्ट कर-करके साधनाओंमें ही पच-पचकर मर रहे हैं। इधर-उधर भटककर स्थिति पाये बिना दुःखी होते हैं, फिर चौरासी योनियोंके चक्रमें वा आवागमनोंमें ही डोला करते हैं, डावाँडोल हो रहते हैं॥ ८१ ॥

साखीः— विषके माते जीयरा ❀ विकल चहै दुःख जाय ॥
[३८] बिन गुरु तापर औषधी ❀ विषहर डसि डसि जाय ॥ ८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विषयासक्तिमें उन्मत्त होकर नरजीव अन्धाधुन्ध कर्म-कुकर्म कर रहे हैं। तो भी किसीकी इच्छा पूर्ण नहीं होती है, मनके चाहे जैसा सुख नहीं होता है; उलटा दुःख-ही-दुःख आ-आ करके पड़ता रहता है। तब व्याकुल होकर घबड़ाते हैं; दुःखोंसे छूट जाना चाहते हैं। पारखी सद्गुरुकी शरणमें तो वे आते ही नहीं है, तो सत्य उपदेश वे कहाँसे पायेंगे ? यानी पारखी सद्गुरुके मिले बिना पारखरूपी महौषधि कहीं नहीं मिलती है। यह तो ऐसा हुआ-कि, किसीने उन्मत्त होकर जहर या विषको खा लिया; उसकी नशा चढ़ी, तो दाह बढ़नेसे

व्याकुल हुआ। वह तो चाहता है कि, यह दुःख छूट जाय; परन्तु, वैद्यके पासमें गया, तो उसने और जहरीले साँपसे उसे कटा दिया। अब कहो तो भला! वह असह्य दुःखके सिवाय सुख कहाँसे पायेगा? उसीमें वह मर जायगा। इसीतरह संसारमें खानी-वाणीके दुःखोंसे व्याकुल जीव मुक्तिका सुख पानेके लिये योगी, ज्ञानी, भक्त आदि गुरुवालोगरूपी विषहरकी शरणमें चले गये, तो गुरुवालोगोंने कल्पना और धोखाके उपदेश सुना-सुना करके खूब डसे, काटखाये। जीवोंको भ्रम आवरण-में डाल दिये। इसीसे जड़ाध्यासी होकर जीव पुनः-पुनः चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही चले जाते हैं। पारखी सद्गुरुसे मिले बिना उन रोगियोंको सच्ची औषधिरूप उपदेशकी प्राप्ति नहीं होती है॥ ८२॥

साखीः— अव्यक्तरूप सोई ज्ञान है ❀ माया गुण विख्यात॥

[३९] पञ्चकोश परपञ्च सब ❀ महा कठिन यम घात॥ ८३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! 'अव्यक्त' कहिये व्यक्तिगतसे रहित, गुप्त, निर्गुण, निराकार, परमतत्त्व परमात्माका स्वरूप पूर्ण व्यापक माना है। सोई ब्रह्मज्ञानका अद्वैत सिद्धान्त है। मायारूप गुरुवालोगोंने संसारमें ब्रह्मकी गुण-महिमा ऐसा जाहिर या विख्यात किया है कि, ब्रह्म अव्यक्त, गुप्त, चैतन्य है। उसकी इच्छारूप मायासे ही त्रिगुणरूप जगत् उत्पन्न होकर उसका गुण विख्यात होता है। ऐसे यह जगत् व्यक्त या प्रगट हुआ है, ऐसा कहकर गुरुवालोगोंने अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय, ये पञ्चकोशोंकी अनेक वाणीका प्रपञ्च, नाना सिद्धान्त और जगत् खानी पञ्च विषयोंका प्रपञ्च सब जगहोंमें जा-जाकर फैलाया है। यही यमरूप गुरुवालोगोंका घात दाव-पेंच जीवोंको फँसाकर नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है। यह छूटनेको बड़ा कठिन हो गया है। वह तो महाजाल है, सहजमें यमका घात नहीं छूटता है। बड़ी कठिनाईसे बिरले ही कोई विवेकी छूट पाते हैं॥ ८३॥

साखीः— ब्रह्म जीव ईश्वर जगत ❀ ई सब अनमिल सैन॥

[४०] निरुवारै ठहरै नहीं ❀ भासे झाँई बैन॥ ८४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भ्रमिक गुरुवालोग कहते हैं—"ब्रह्म-जीवमें और ईश्वर-जगत्में एकता है; कोई भेदभाव नहीं है। भाग, त्याग, लक्षणासे त्वंपदकी अल्पज्ञता और तत्पदकी सर्वज्ञता मिटाकर असिपदमें लक्ष्य करनेसे जीव-ईश्वर दोनों ही एक ब्रह्ममें मिल जाते हैं। फिर ब्रह्म ही एक अद्वैत सत्य ठहरता है, और द्वैत जगत् तीन कालमें नहीं है।" ऐसे ब्रह्म, जीव, ईश्वर और जगत्-चारोंको एकता कर खिचड़ी खा-खा कर मर-मर गये। बौराकर महा खाँचमें गिर पड़े। हे मुमुक्षु मनुष्यो! सत्सङ्ग द्वारा विवेक करो! चारतत्त्व कार्य-कारणरूप ब्रह्माण्ड तथा अनन्त देहधारी जीव स्वतः सिद्ध अनादि सत्य पदार्थ हैं। ब्रह्म तो मनुष्योंकी भ्रम गाफिलीरूप 'झाँई' है। ईश्वर तो मनुष्योंकी मानन्दी अनुमान-कल्पनारूप 'सन्धि' है। 'जीव' नित्य, सत्य, देहधारी प्राणी है। और 'जगत्' बाहरकी दुनियाँ आवागमन होनेकी जगह है। जगत्कर्त्ता कोई ब्रह्म-ईश्वरादि मानना, ये सब गुरुवालोगोंकी वाणी कल्पना, मिथ्या अनुमानका इशारा है। यह गुरुवालोगोंकी वाणीकी सैन एक-से-एक न मिलनेवाला विरुद्ध है। अरे भाई! मिथ्या-सत्यका मिलाप कैसे हो सकता है? ब्रह्म-ईश्वर कोई वस्तु ही नहीं ठहरता है, तो फिर जीवोंको कैसे मिल सकता है? कदापि मिल नहीं सकता है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विवेक द्वारा अलग-अलग जड़-चेतनके गुण-लक्षणोंको बिलगाकर हंसवत् निर्णयसे छान-बीन करनेपर ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या धोखाके सिवाय और कुछ ठहरता ही नहीं है। सिर्फ कल्पित वाणी मात्र भास होता है। इसलिये ब्रह्मका भ्रम तो झाँई, गाफिली, धोखा है; ऐसा जानकर भ्रमको त्यागो! सत्य पारख स्वरूपमें स्थिति करो! तभी कल्याण होगा॥ ८४॥

साखीः— आदि अन्त ये कहत हौं ❀ शिष्य! मुख्य है अनुहार॥

[४१] जेहि अनुरागे जीव जग ❀ परख होय टकसार॥ ८५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे शिष्य! मैं तुम्हें समझाकर यथार्थ गुरु निर्णयकी

बात कहता हूँ कि, आदि=जगत्से, अन्त=ब्रह्मतक समस्त खानी-वाणीकी मानन्दी-कल्पना तथा अध्यासादि यही जीवोंका मुख्य बन्धन है। अतएव हे प्रेमी शिष्य! मुख्य करके जगत्-ब्रह्मके स्वरूप, विषय, कल्पना, अनुमान, मानन्दीको दूर करो! थोड़ा भी सूक्ष्म अध्यास न रक्खो। मुख्यरूपसे बन्धन नाश करनेके लिये पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये। जिन पारखी साधु सद्गुरुसे अनुराग प्रेम-प्रीति, निष्ठा, श्रद्धा-भक्तिसे सत्सङ्ग करनेसे जगत्में नर-जीवोंकी सब भ्रम-भूल एवं जड़ाध्यास मिट जाते हैं। उन सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके टकसारी सत्सङ्गमें बीजक सद्ग्रन्थका सत्य सिद्धान्त पारख बोध हो जाता है; तब पारख कसौटीमें कसनेसे सब सार-असारकी पहिचान हो जाती है। जिससे असारका परित्याग कर सार ग्रहण करनेसे मुक्ति भी हो जाती है ॥ ८५ ॥

साखीः— जिन परखा संसार यह ❀ तिन कहँ नहिं अन्देश ॥
[४२] महाकठिन भ्रम जालके ❀ अरुझनहार उपदेश ॥ ८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिन्होंने पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके गुरुमुख न्यायसे यह संसारकी खानी-वाणीके सब जालोंको यथार्थ रीतिसे परख लिया है, उन्हें फिर कोई बातका सन्देह, भ्रम, कल्पना तथा दुविधा नहीं रहती है। अपनेसे भिन्न ब्रह्म-ईश्वर आदिकी मानन्दी भी नहीं रहती है। यह संसार जड़-चैतन्य अनादि स्वयं सिद्ध है; ऐसा जिन्होंने परख लिया है, उन्हें फिर जगत्कर्त्ताका भ्रम, अन्देश कुछ भी नहीं रहता है; वे तो निज स्वरूपकी स्थितिमें ही कायम रहते हैं। और गुरुवालोगोंका उपदेश तो रोचक-भयानक वाणी सुना-सुनाकर भवजालोंमें ही अरुझानेवाला है। पारखी सद्गुरुके सत्यबोधके बिना तो यह भ्रम जालके बन्धन खानी-वाणीके जञ्जालोंसे छूटना तो महान् कठिन है। भव-बन्धन छूटनेको अत्यन्त कठिन हो गया है। क्योंकि, भ्रमिक गुरुवालोग अनेक तरहसे भ्रमके ही उपदेश दे-देकर भ्रमा करके वाणी जालोंमें अरुझा रहे हैं ॥ ८६ ॥

साखीः— आदि अन्त है जगतके ❀ परखहु मान अमान ॥
[४३] भटका है परिचय बिना ❀ देश ज्ञान विज्ञान ॥ ८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जगत्के पदार्थका तो आदि तथा अन्त होता ही रहता है। यानी बनी हुई वस्तु बिगड़ जाती है। कार्य पदार्थ बिगड़कर कारणमें समा जाता है। अध्यासी जीवोंका भी शरीर बनता ही बिगड़ता रहता है। परन्तु, जीव अखण्ड, अविनाशी है। तथापि गुरुवालोगोंने तो सब चराचर जगत्में एक ब्रह्मको ही परिपूर्ण व्यापक माना है। ब्रह्मसे ही जगत्के उत्पत्ति-प्रलय होनेको ठहराया है। मान=जगत्को कार्य तथा अमान=ईश्वर या ब्रह्मको कर्त्ता-कारण दोनों माना है। इस अन्याय, धोखा-कल्पनाको हे सन्तो! तुम लोग अच्छी तरहसे परखो! गुरुवालोगोंके बकवादमें मत् भूलो। यथार्थ पारख गुरुबोधके परिचय या पहिचान हुए बिना नरजीव सब अबोध अज्ञान दशामें ही भटक रहे हैं। कोई स्वदेश=अर्थात् खानी जालोंमें ही भटक रहे हैं। तो कोई विदेश=अर्थात् वाणी जालोंमें ही भटक रहे हैं। तहाँपर ज्ञान=साक्षी तत्पद ईश्वरकी मानन्दीमें तथा विज्ञान=निर्विकल्प असिपद ब्रह्मकी गाफिलीमें पड़कर बिना पारख चार खानीके देश-विदेशमें भटके और भटक रहे हैं ॥ ८७ ॥

साखीः— अधिष्ठान जे ज्ञानके ❀ महासन्धि माकाश ॥
[४४] सोई ब्रह्म विज्ञानमय ❀ ज्ञान उपजै चिदाकाश ॥ ८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी स्थापना करनेवाले जो-जो बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी हुए, उन्होंने ब्रह्मको सर्वाधिष्ठान सर्वाधार सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक अद्वैत माना है। सोई ज्ञानका अध्यास है। यानी जो ज्ञानको अधिष्ठाता मानकर ज्ञानकी स्थापना

करनेवाले हुए, तिन्होंने महासन्धि=महान मानन्दी करके ब्रह्म या ईश्वरकी 'माकाश' कहिये महा आकाशवत् निराकार भीतर-बाहर सर्वत्र व्यापक कल्पना किया है। सोई ब्रह्मको विज्ञानमय= विशेष ज्ञानस्वरूप शुद्ध निर्विकार कथन किया है। चिदाकाश=उसी आकाशवत् शुद्ध चैतन्यसे ईश्वर पुरुष विशेष ज्ञानकी उत्पत्ति होकर उसकी प्रेरणासे चित्तमें चैतन्यता तथा ज्ञानकी उत्पत्ति होना माना है। यानी जहाँसे सब विश्वका ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे चिदाकाश ठहराया है। यह तो सरासर मिथ्या कल्पना मात्र की गई है ॥ ८८ ॥

साखीः— इच्छा तेहि अज्ञान कही ❀ त्रिगुण जाल समुदाय ॥

[४५] अस विचार गावै तेही ❀ मान अमान दृढ़ाय ॥ ८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उसी ब्रह्मकी इच्छाको माया, अज्ञान, अविद्या, अपराशक्ति आदि नामोंसे गुरुवालोगोंने कहा है; ग्रन्थोंमें वर्णन किया है कि, प्रथमारम्भमें ब्रह्मकी इच्छारूप मायासे अज्ञानता संयुक्त ही रज, सत्त्व, तम, इन त्रिगुणोंके महाजाल समस्त चराचर जगत्की सृष्टि उत्पन्न हुई। सो समुदायरूप नानात्त्व होनेपर भी ब्रह्म व्यापक होनेसे सबमें एक ही है। ऐसा समझाकर गुरुवालोग उसी कल्पित ब्रह्म-ईश्वर कर्त्ताके ही गुणानुवाद, कीर्तन, महिमा गाते हैं। ऐसे ही विचार करते-कराते हैं। और मान=यह जगत्का आदि कारण या कर्त्ता कोई एक अमानरूप ब्रह्म या ईश्वर ही सत्य है, ऐसा कहा है। अथवा जगत् सब ब्रह्मरूप ही अभेद है। ऐसी-ऐसी मिथ्या धोखेकी वाणी दृढ़ाये और दृढ़ा रहे हैं। वही कल्पना मनमें दृढ़ किये हैं; सो उसको परखकर त्याग देना चाहिये। भ्रम धोखेमें कभी न पड़ना चाहिये ॥ ८९ ॥

साखीः— अस्ति यह चिद आतमा ❀ नास्ति सोई माकाश ॥

[४६] मिलतहिं धोखा सन्धिके ❀ महाजाल भौ बास ॥ ९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! नित्य, सत्य, अविनाशी, अखण्ड तो यह चैतन्य जीव ही है। अपने ऐसे सत्य स्वरूपको न समझ कर कोई एक सर्व व्यापक निराकार आत्मा-परमात्माको चैतन्य, सत्य मानकर भ्रम-धोखेमें पड़े हैं। अरे भाई! जो महा आकाशवत् चराचरमें भरा हुआ परब्रह्म माने हो, सोई नास्ति=असत्य या मिथ्या कल्पना है। परन्तु, अबोध मनुष्य यद्यपि ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या धोखा है, तथापि उसीको सत्य मानन्दी करके उसकी प्राप्तिकी चाहनासे भ्रमिक गुरुवालोगोंसे जा-जाकर मिले, तो उन्होंने इन्हें धोखा-सन्धिके चक्रमें ही डाल दिया। ऐसे सत्य जीव असत्यसे मिलते ही भ्रमिक हो गये। इसीसे खानी-वाणीके महान जालोंमें जाकर निवास किये। सो उसी जड़ाध्यास वासनासे भवजाल चौरासी योनियोंके महा जञ्जालोंमें बासा किये या गर्भवासको प्राप्त हुए ॥ ९० ॥

साखीः— दुन्दज सत्य असत्यके ❀ जहाँ नहीं कछु लेश ॥

[४७] सो प्रकाश गुरु परख है ❀ मेटत सकल कलेश ॥ ९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने ब्रह्मको सत्य और जगत्को असत्य माना है। उसी मतकी स्थापना करनेके झगड़ा-दुन्दजोंमें-पक्षपात, हठतामें वे सब पड़े हैं। ब्रह्म-जगत् सत्य-असत्य, खानी-वाणी आदिका रगड़ा-झगड़ा संसारमें हो रहा है। और जहाँपर सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु विराजमान हैं; वहाँपर उनके पारखबोध धारण करनेवालेके हृदयमें कुछ लेश मात्र-(रञ्चकमात्र वा जरासा) भी ब्रह्म-जगत्का दुन्द या झगड़ा नहीं रहता है या रह नहीं सकता है। सो वे विवेकी सन्त तो सद्गुरुके पारख प्रकाशमें शान्त, स्थिर रहते हैं। पारखी सद्गुरु स्वयं सत्य स्वरूपका पारख प्रकाश कर देते हैं। अतएव सम्पूर्ण खानी-वाणी आदिके कष्ट-क्लेश, चिन्ता, दुःखको मिटा देते हैं। सो उनके आवागमनादि सब दुःख क्लेश भी मिट जाते

हैं। सो पारखी सद्गुरुके पारखबोधका प्रकाश सकल पञ्चक्लेशोंको मिटानेवाला है। अतः सोई गुरुबोधको ही हृदयमें धारण करना चाहिये ॥ ९१ ॥

॥ ❀ ॥ चौकड़ी ॥ भाग— १ ॥ ❀ ॥

॥❀॥ [चौपाई–१४ । साखी–४३ । रमैनी–२ । पञ्चकोश–५ । छन्द–१ । शब्द–१ है]॥❀॥

१. साहेब सो जो आवै न जाय * सदा सनातन नहिं विनशाय ॥ ९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! आवागमनको समूल मिटानेवाले सत्यन्यायी पारख बोधदाता पारखी साधु जो हैं, सोई सर्वश्रेष्ठ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी होनेसे आप सद्गुरु मानने योग्य हैं। "साहेब" कहते हैं श्रेष्ठ, उच्च, महान् पुरुषको, सो यहाँ "साहेब" वे ही हैं, जो पारखीसन्त जीवन्मुक्त हो गये हैं। उन्हें आना-जानारूप जन्म-मरणकी उपाधि नहीं रहती है। और जीव तो शुद्ध चैतन्य, सदा-सर्वदासे सनातन, अविनाशी, एकरस है। त्रिकालमें जीवका नाश नहीं होता है। जड़ाध्याससे जन्म-मरण होता था, सो सम्पूर्ण अध्यासको मिटाकर पारख स्वरूपमें स्थित हो गये हैं। उन साहेबको अब कोई विचलित करके नशा नहीं सकते हैं। वे ही सत्य बोध दाता होते हैं। और वे काल-जालोंमें भी नहीं आते-जाते हैं। सदा सनातन पारख स्वरूपमें अटल रहते हैं। कभी उनकी स्थितिका विनाश नहीं होता है। वे ही सच्चे "साहेब" हैं, ऐसा जानिये ! ॥ ९२ ॥

२. स्वर्ग पताल नहीं दिग बोध * वार पार बुद्धि सन्धिक शोध ॥ ९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऊपर सात स्वर्गमें देवताओंका निवास तथा नीचे सात पताल और नरकोंमें दानवोंका तथा पापियोंका निवास माना है। फिर दश दिशाओंमें दश दिग्देवता एवं वारापारसे रहित कोई एक अपार ब्रह्म-ईश्वरादिका बोध बुद्धिमें निश्चय करके गुरुवालोगोंने मानन्दी किया है। वे भ्रमिक हैं, अतः श्रेष्ठ साहेब या पारखी वे नहीं हैं। पारखी सद्गुरु तो उस कल्पनाको नहीं मानते हैं। यह सब बुद्धिकी मानन्दीको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें शोधन या निर्णय करके जानना चाहिये। अथवा स्वर्गरूप ब्रह्माण्डमें तथा पातालरूप पिण्डाण्डमें कोई परमेश्वरका बासा मानकर ध्यान-धारणसे या नाभिसे मस्तकमें श्वासको चढ़ा करके समाधि लगाकर जो ईश्वर-ब्रह्मको खोजते हैं; सो वहाँपर कोई ईश्वर-ब्रह्म तो बैठा नहीं है। अतः कुछ मिलनेवाला नहीं है; जो दिखाई देता है, सो तत्त्वोंका भास वा प्रकाश एक सूक्ष्म विषय ही है। दशों इन्द्रियोंको या दशों द्वारोंको बन्द करके वायुको रोक रखनेपर भी सत्यका कुछ बोध नहीं होता है। वार=इधर जड़ पाँच तत्त्वोंमें, पार=उधर अनन्त चैतन्य जीवोंमें, इन दोनों किनारोंमें चराचरमें ठसाठस भराहुआ आकाशवत् व्यापक अपार परमतत्त्व परमात्माको वार-पारसे रहित, ऐसा बुद्धिसे निश्चय या मानन्दी दृढ़ करके गुरुवालोग उसीका शोध या खोज करने-कराने लगे। परन्तु, वह मनका भ्रम-धोखा होनेसे किसीको आज तक भी नहीं मिला। बिना पारखी सद्गुरुसे मिले यह भ्रम कदापि मिट नहीं सकता है। इसीकारणसे ही नाना मत-पन्थोंका पाखण्ड फैला, तो किसीने मस्तकमें स्वर्ग मानकर समाधि लगाकर वृत्ति लय करके शून्य हो गये। कोई तो नाभिमें पाताल मानकर कुण्डलिनी नाड़ीमें लक्ष्यको लगाये। कोई दश इन्द्रियोंसे विषय भोग नाना तरहसे करने लगे। कोई योग साधना करके दशों द्वारोंको मूँदने लगे। कोई दक्षिणमार्ग और वाम मार्गोंका भिन्न-भिन्न आचरण करने लगे। कोई वार=इधर खानी जालमें ही भोग करने लगे हैं। कोई पार=सबसे परे परमात्मा ठहराकर वाणी जालोंमें अरुझे पड़े हैं। बुद्धिमें जिन-जिनको जैसा-जैसा दृढ़ निश्चय हुआ, उसी प्रकारकी मानन्दी कर कराके मिथ्या सन्धिका ही शोध करने-कराने लगे। बिना विचार ऐसे धोखाधारमें ही वे सब पड़े हैं। सद्गुरुके पारखसे विमुख हो रहे हैं। इनके सब कसर-खोटोंको यथार्थ दर्शाकर सत्यका शोध-बोध देनेवाले पारखी सद्गुरु ही सर्वश्रेष्ठ मुक्तिदाता बन्दीछोर हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ९३ ॥

३. परख प्रकाश स्वभाव असन्ध * बिनु तेहि जीव परे हैं बन्ध ॥ ९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखनिष्ठ सद्गुरु स्व-स्वरूपके भाव या चैतन्य स्वरूपकी स्थितिमें रहते हैं; पारखका ही प्रकाश करते हैं। इसलिये स्वाभाविक पारख प्रकाशमें ही सब प्रकारकी मानन्दियोंसे रहित रहनेवाले पारखी साधु-गुरुके स्वभावमें और किसी प्रकारकी मानन्दी नहीं रहती है। वे तो सद्बोधमें असन्ध=मानन्दीसे रहित होकर ठहरे रहते हैं। वही पारखका प्रकाश गुरुबोधको पाये बिना समस्त जीव खानी-वाणीके महाबन्धनोंमें पड़े या पड़ रहे हैं। चारखानीमें कर्मानुसार नाना दुस्सह दुःख पा रहे हैं ॥ ९४ ॥

४. हंसा अस्ति स्वभाविक जान * आपा ओट नास्ति पहिचान ॥ ९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हंसरूप चैतन्य जीव तो स्वाभाविक ज्ञान स्वरूप नित्य, सत्य, अखण्ड है। और पञ्च अभिमानोंके पर्दा या आड़में छिप करके अपने ऊपरमें ब्रह्म-ईश्वरादि या देहादिका जो अहङ्कार करते हैं, सो मिथ्या धोखा ही है, ऐसा पहिचानो ! जड़-चैतन्य, सार-असार सत्य-असत्यादिका यथार्थ सत्य निर्णय करना यह स्वभाव हंस या पारखीका होता है, सो जानिये ! और "मैं पूर्ण व्यापक ब्रह्म हूँ !" कहकर गोलमाल करना, आवरण पर्दाके भ्रममें जीवको छिपाना, यह स्वभाव कागरूप गुरुवालोगोंका होता है, ऐसा पहिचानिये। हंसके स्वभावसे सत्यका बोध होता है। कागके गुण अहङ्कारकी आड़में ब्रह्म बनते हैं, सो नास्ति=असत्यका चिह्न या पहिचान है ॥९५॥

५. धोखा नास्ति भया अध्यास * हंसा उलटै सोहं वास ॥ ९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! धोखा खाकर या धोखेमें पड़कर नरजीव जड़ाध्यासी वा जगत्के अध्यासी हुए, तब असत्य, नास्ति ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी दृढ़ हुई। सोई अध्यासने हंस जीवको मुक्तिपदसे उलटा करके बन्धनमें लेजाकर डाला है। और 'हंस' उलटा तो 'सोहं' में बासा किया, यानी जीव उलटकर कल्पनासे ब्रह्म बना; तो कहने लगा-"अहं ब्रह्मास्मि"- वह कोई जो ब्रह्म है, सो मैं ही हूँ ! मैं ही सर्व अणु-परमाणुमें भरा हुआ व्यापक हूँ ! मैं ही सर्वाधिष्ठान आत्मा हूँ ! ऐसे सोहंमें निवास करके हंस नरजीव मुक्ति पदरूप मनुष्य जन्मसे उलटकर चौरासी योनियोंमें निवास करने लगे ॥ ९६ ॥

६. एकोहं बहुस्यामि उद्वेग * सन्धि एक सो भया अनेक ॥ ९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! क्योंकि, "एकोहं बहुस्यामेतिप्रजायेय"-इस प्रमाणसे जब मैं एक ही अद्वैत ब्रह्म हूँ, तो 'एकोहं' कहा। तहाँ बहुत कालतक शून्यवृत्ति तो नहीं रही। अकेला रहते-रहते घबड़ा गया, तब 'बहुस्यामि'=मैं एकसे बदलकर बहुतरूपमें प्रगट हो जाऊँ, ऐसा उद्वेग=सङ्कल्प-विकल्प करके इच्छा करने लग गया। तो उसी इच्छाकी सन्धि=दृढ़ मानन्दी-से सो एक ब्रह्म ही अनेक जगत्रूपमें प्रगट हुआ। यह गुरुवालोगोंका प्रमाण है। मिथ्या मानन्दीसे बिना विचारे एक-अनेकके चक्रमें जीव पड़ गये ॥ ९७ ॥

७. चाहै चैन न सूझै सन्ध * जतन सोई जो दोहरी बन्ध ॥ ९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब यहाँ संसारमें तो त्रिविधि तापादि दुःख सभी कोई जीव कर्मानुसार भोग रहे हैं। बहुत दुःख पाकर नरजीव सुख, शान्ति, चैन, आराम और मुक्ति पाना चाहते हैं। परन्तु, पारखी सद्गुरुसे तो नहीं मिलते हैं, इसलिये सन्धिरूप मानन्दीका भेद इन्हें कुछ सूझता ही नहीं है। "मेरी मानन्दी-कल्पना ही मुझे दुःख दे रही है"— यह मर्म उन्हें देखने या समझनेमें नहीं आता है। मुक्ति-सुख प्राप्तिके लिये नाना प्रयत्न, कर्म-उपासनादि साधना योग, तपस्यादि उपाय, अभ्यास तो बहुत-बहुत ही किये। परन्तु, जो-जो यत्न किये, सोई-सोई दोहरा भव-बन्धनोंमें डालनेवाला ही हुआ, सो मजबूत दुगुना [डबल] बन्धनमेंही पड़ते गये। जगत् दुःख मिटानेके लिये ब्रह्म बने, तो वही पुनः जगत्में लाकर डालनेवाला काल हुआ। उलट-पलट करके रहट-

मालाकी नाईं खानीसे छूटे, तो वाणीमें बँधे, और वाणीसे फिर खानीमें ही आये, ऐसे दोहरा करके बद्ध हो रहे हैं; बिना पारख ऐसे ही होता रहता है ॥ ९८ ॥

८. अधिष्ठाता सोई सन्धि निवास ❀ ज्ञान अज्ञान उद्वेग विलास ॥ ९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मज्ञानी लोगोंने सर्व जड़-चैतन्य जगत्का मूल आधार या अधिष्ठान स्वरूप एक परब्रह्मको ही माना है। सोई मानन्दीमें जीवने निवास किया या स्थिति कायम किया। सुखकी इच्छासे ही ज्ञानको नष्ट करके अज्ञानमें पड़ा है। ब्रह्मके उद्वेगरूप सङ्कल्पसे ईश्वर-जीव, ज्ञान-अज्ञान, जड़-चैतन्य आदि माया सम्बन्धमें क्रीड़ा विलासके लिये यह सब उत्पन्न हुए और होते ही रहते हैं; ऐसा कहा है। यह सब तो जीवकी अज्ञानतासे होनेवाली स्फुरणाका विलास मात्र है ॥ ९९ ॥

९. कर्म स्थूल भया परचण्ड ❀ नाना पिण्ड खण्ड ब्रह्मण्ड ॥ १०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जगत्-ब्रह्म सम्बन्धी आनन्द, सुख भोगनेकी इच्छा जब प्रबल हुई, तब मनुष्योंने स्थूल देहसे स्थूल कर्मादि तीक्ष्ण वा प्रचण्ड रीतिसे किये वा करने लगे। नाना प्रकारसे पिण्डमें योग और भोगके लिये चौरासी (८४) आसनादि करने लगे। और खण्ड=न्यारे-न्यारे वेदादि ब्रह्माण्डरूपी वाणीके प्रमाणसे बाहर तीर्थादि, जप, तप आदि साधनाएँ करने लगे ॥ १०० ॥

१०. ब्रह्माण्ड समष्टि ईश परवान ❀ देह अभिमानी व्यष्टि बखान ॥ १०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! बाहर ब्रह्माण्डमें जड़-चैतन्यादि सबको एकमें समेट करके समष्टि ब्रह्माण्डके अभिमान करनेवालेको सर्वशक्तिमान् ईश्वरके रूपमें प्रमाण किया है। और देहाभिमानी, अल्पशक्तिमान्, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न वा व्यष्टि=अनन्त देहधारी अनेक जीवोंको बद्ध वर्णन किया है कि, यह ईश्वर या ब्रह्मके अंश है। ऐसे समष्टि=ईश्वर एक है, व्यष्टि=जीव नाना हैं। देह रहित ईश्वर है; देहधारी जीव है। और समष्टि अभिमानी ईश्वरको तथा व्यष्टि अभिमानी जीवको माना है। ब्रह्मको उन दोनोंका अधिष्ठान या ठहराव होनेकी जगह वर्णन किया है। यह सब गुरुवालोगोंकी वाणीका जाल है, ऐसा जानिये! ॥ १०१ ॥

११. ईश्वर अंश दुहुँ मिटे मिटाय ❀ अधिष्ठाता माकाश रहाय ॥ १०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पूर्व कहे हुए समष्टिरूप ईश्वर और व्यष्टि-रूप ईश्वरांश जीव, ये दोनोंकी उपाधि मिटानेसे मिट जाती है; सो ईश्वरकी सर्वज्ञता, और जीवकी अल्पज्ञता, दोनोंको छोड़ देना; एक चेतनपर लक्ष्य करना, तो वही अधिष्ठाता ब्रह्म है। वह महा-आकाशवत् निरुपाधि सबमें परिपूर्ण ज्यों-का-त्यों रह जाता है। महान् आकाशवत् अधिष्ठान ब्रह्ममें स्थिति हो जानेपर ईश्वरभाव और अंशरूप जीवभाव ज्ञान-अज्ञान दोनों ही मिट-मिटा जाता है। केवल ब्रह्म ज्यों-का-त्यों रह जाता है। ऐसा मानकर गुरुवालोगोंने "अहं ब्रह्मास्मि, शिवोहं, सोहं ब्रह्म" की कल्पना किया है। सो उसी गाफिलीमें वे बिना पारख पड़े और पड़ रहे हैं ॥१०२॥

१२. सोहं उलटै हंसा होय ❀ पावै पारख पारखि सोय ॥ १०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पहले अज्ञान दशामें था, तब कहा कि, 'कोहं'-मैं कौन हूँ? यह जगत् क्या है? जगत्कर्त्ता कौन है? फिर वेद-वेदान्तका श्रवण-मननादि कर वेद प्रमाणसे कहा कि, 'सोहं'-सो कोई ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ! ज्ञान दशामें "वोऽहं, सोऽहं, शिवोऽहं" कहा। उससे आगे विज्ञान दशामें बढ़ा, तो "अनामयोऽहं, निरञ्जनोऽहं" ऐसा कहकर गरगाफ हुआ। जीव तो हंस चैतन्य है; परन्तु, निजपदसे पलटकर 'सोहं ब्रह्म' बना है। जब वह सोहंको उलटेगा, तभी यथार्थरूपमें हंस होगा। जिसने जड़-चैतन्यके न्यारा-न्यारा गुण-लक्षणोंका सत्य निर्णय करके पारखी साधु-गुरु द्वारा यथार्थ पारबोधको प्राप्त कर लिया है, सोई पारखी इसके भेदको जान पायेंगे। सद्गुण रहनी-रहस्यको धारणकर ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना और विषयादिको परखकर जो हंस भूमिकामें

ठहरे हैं, सोई पारखी सद्गुरु पारख बोधको जाननेवाले हुए या होते हैं ॥ १०३ ॥

१३. सो दयाल साहेब गुरुदेव * भक्तक भोंदू सोहं भेव ॥ १०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सकल काल-जालोंको विनाशकर निज पारखस्वरूप-में स्थिति किये हुए जो हैं, सोई परम दयालु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए। आपके सच्चे अनुयायी अभी जो साधु पारखी बोधवान् हैं, सो वे भी सद्गुरुदेव बन्दीछोर दयालु साहेब होते हैं। वे ही भास, अध्यासादिको मिटाकर जीवोंको मुक्त करते हैं। और बेपारखी भोंदू=मूढ़, पक्षपाती, अविचारी, मिथ्यावादी गुरुवालोग 'सोहं ब्रह्म' बनते-बनाते हैं। इनके भेद न पाकर बहुत लोग कालके गालमें समा गये। भक्षक=जीवन धनको हरण करके खाने-चबानेवाले वे काल ही बने हैं। भोंदूने सब विचारको नष्ट-भ्रष्ट करके खाकर, गटककर सोहंके भ्रममें डाला है। सो यथार्थ परख-कर त्याग करना चाहिये ॥ १०४ ॥

१४. पावै परख झाँई मिटि जाय * नास्ति ज्ञान नहिं ताहि समाय ॥ १०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब श्रद्धालु, मनुष्य पारखी सद्गुरुकी शरणमें आकर सत्सङ्ग-विचार करने लगते हैं, तब सद्गुरुकी दयासे उसे पारख बोधकी प्राप्ति हो जाती है। पारखबोध को पाते ही सब झाँईं, सन्धि, काल, मानन्दी, कल्पना, गाफिली, भ्रम, धोखा उसके मिट जाते हैं। फिर नास्तिक गुरुवालोगोंका ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान उसमें समा नहीं सकता है। जो वस्तु कुछ है ही नहीं, मिथ्या धोखा मात्र ब्रह्म-ईश्वरादि माना है, सो भ्रम पारखीमें कभी समा नहीं सकता है। वे तो सब भ्रमसे छूट जाते हैं। और दूसरेको भी परखा देते हैं। इससे पारख पानेपर गाफिली मिटकर नरजीव सब भूल बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं, सो जानिये ! ॥ १०५ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक सद्ग्रन्थका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, साखी नम्बर-५७ ॥ ❀ ॥

साखीः— पारसरूपी जीव है * लोह रूप संसार ॥

[४८] पारसते पारस भया * परख भया टकसार ॥ १०६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! 'पारस' कहिये पारख चैतन्यरूप जीव है। यानी जनैया, ज्ञान, चैतन्य, पारख ही जीवका सत्य या वास्तविक स्वरूप है। लोह=अज्ञान, जड़, अचेतन स्वरूप संसारके पाँच तत्त्वोंका है। ऐसे जड़-चैतन्य दोनों पदार्थ अनादि हैं। इनका कर्त्ता कोई नहीं है। जड़से कार्य पदार्थोंकी सृष्टि और जड़ाध्यास-वासनासे चारखानीमें नाना देहोंकी सृष्टि हुई और हो रही है। इसप्रकार जड़-चेतनमय जगत्में अध्यासी जीवोंसे चौरासी योनियोंमें नाना देहोंकी उत्पत्ति हुई और हो रही है। यही "पारसते पारस भया" है; अध्यासी जीव सब आवागमनमें ही पड़े हुए हैं। अब टकसाररूप बीजकके सत्य सिद्धान्त पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ परखकर जड़-चैतन्यके निर्णय भेदको जानकर जगत्कर्त्ताके मिथ्या अनुमान, कल्पना, भ्रमको त्यागकर विषयासक्ति विकारोंसे जो न्यारा या रहित हुए, उन्हींको यथार्थ पारखबोध हुआ, ऐसा जानिये ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा ही बीजकके सत्य सिद्धान्त पारखका बोध हुआ या होता है। सब खानी-वाणीकी परीक्षा करके अध्यासोंको परित्याग करनेसे नरजीवोंकी मुक्ति होती है। इसप्रकार जीव स्वयं अध्यासवश बन्धनोंमें पड़े हैं; और गुरु पारख बोधकी स्थिति होनेपर मुक्त हो जाते हैं। यही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके कहनेका अभिप्राय है। सो यहाँपर पञ्चग्रन्थीमें श्रीरामरहससाहेबने थोड़ा पाठ भेदसे जो लिखा है; सो मूल सहित अर्थ सुनियेः—

साखीः— "साहेब पारसरूप हैं। लोहरूप संसार ॥ पारससो पारस भया। परख भया टकसार ॥"

पारखनिष्ठ सर्वश्रेष्ठ जो हैं, सोई सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु साहेब साक्षात् शुद्ध पारख या पारस स्वरूपी हैं। और संसारी अबोध अज्ञानी संशयमें ग्रसित लोहाके रूपमें हैं। जड़ाध्यासी हो, जड़-

खाकर दुःख भोग रहे हैं। जब कोई अज्ञानी नरजीव पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आजाते हैं; तब वे भी शुद्ध सुवर्णकी नाईं हो जाते हैं। और गुरुउपदेशको धारण-ग्रहण करनेसे उनका सब भ्रम छूट जाता है। सो उन्हें भी पारखका बोध हो जाता है। टकसार=बीजकके सत्यन्याय पारखको सद्गुरुके सत्सङ्गसे जानकर फिर वे भव-बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। इसप्रकार सोहं ब्रह्म कल्पनासे छूटकर सद्गुरुकी दयासे नरजीवको हंसपदकी प्राप्ति हो जाती है; फिर वे तरण-तारण हो जाते हैं। ऐसा जानना चाहिये ॥ १०६ ॥

साखीः— गुरु प्रकाश निज ओटते ❀ झाँईं सदा झहराय ॥
[४९] अन्तर दुविधा सन्धि सो ❀ बिन पारख बिलटाय ॥ १०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जब तक नरजीव पारखी सद्गुरुकी शरण-में नहीं आते हैं, तब तक उनका मन सदा विषय वासना वा ब्रह्मके भ्रम-पर्दासे ढँका रहता है। और जब जिज्ञासुजन पारखी सद्गुरुकी शरणमें आये, तो गुरुपारखके प्रकाशसे निज स्वरूपकी स्थिति-को पा गये। फिर अज्ञान, अविद्याकी आड़-ओट या आवरण-पर्दासे झाँईं=ब्रह्म, जगत्की गाफिली जो सदासे लगी आ रही थी, सो झ=झगड़ा, हराय=नाश हो जाता है वा झड़ जाता है, गिरके बिला जाता है। सब अध्यास नष्ट हो जाते हैं। यदि अच्छी तरहसे बोध नहीं हुआ, अन्तःकरणमें कुछ दुविधा-संशय बना रहा, तो सोई ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादिकी सन्धि या नाना मानन्दीमें पड़कर बिना पारख योग, जप, तपादिके कठिन-कठिन साधनाओंमें दुःख पाते रहते हैं। वही जगत्-ब्रह्मके अध्याससे फिर चौरासी योनियोंमें जाकर 'बिलटाय' कहिये बहुतेक दुःख भोगते रहते हैं ॥ १०७ ॥

साखीः— चिदवशिष्ट नित्य सत्य है ❀ चितवत धोखा ओर ॥
[५०] भ्रमिक भये माकाशमें ❀ सो स्वभाव कहै मोर ॥ १०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्वयं चैतन्य जीव ही अवशिष्ट=बाकी, जमापद नित्य, सत्य, अजर, अखण्ड, एकरस है। परन्तु, पारख बोध न होनेसे कल्पना करके "चिदवशिष्ट" कहिये चैतन्य ब्रह्म प्रकाशरूप व्यापक एक सबसे श्रेष्ठ कोई नित्य-सत्य परमात्मा है या होगा, ऐसा मानकर धोखेकी तरफ ही लक्ष्य लगाकर चिन्तन करने लगे। ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्त करनेके लिये भक्ति, योग, ज्ञानादिकी अनेक साधनाएँ करने लगे। उनमेंसे ब्रह्मज्ञानी बहुत भ्रमिक हुए, तो कहने लगे कि, महाकाशवत् मैं सर्वत्र भरा हुआ हूँ! मैं तो महाकाशमें रहनेवाला ब्रह्म हूँ! मेरी स्वाभाविक इच्छा या स्फुरणासे ही सारे जगत्की उत्पत्ति-स्थिति हो रही है। जगत् तो मेरा स्थूल स्वरूप है, सृष्टि स्वाभाविक खेलमात्र है। परन्तु, मैं सदा असङ्ग, निर्विकार रहता हूँ! ऐसे कहकर मिथ्यावादी हुए और हो रहे हैं ॥ १०८ ॥

साखीः— बहु इच्छा उद्वेग तेही ❀ सोई शक्ति परवान ॥
[५१] तीनि सुवन तेहि अङ्गमें ❀ नाम रूप गुण जान ॥ १०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उस ब्रह्ममें वा ब्रह्मज्ञानीमें जब बहुत प्रकारकी इच्छा "एकसे अनेक हो जाऊँ !" ऐसी नाना स्फुरणाएँ एवं सङ्कल्प-विकल्प हुए; तिसीको मायाकी उत्पत्ति मान करके सोई इच्छाको ही आदिशक्ति आदिमाया अर्धाङ्गिनी, जगत्-जननी, ब्रह्मकी मुख्य शक्ति प्रमाण किया है। उसी महामाया शक्तिके अङ्गरूप देहमेंसे प्रथम त्रिगुणी तीन सुवन=तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सो 'नाम' रजोगुणी ब्रह्मा हुआ; 'रूप' सत्त्वगुणी विष्णु हुआ; और 'गुण' तमोगुणी महेश हुआ। ये तीनोंने जन्म लिये, ऐसा जनाये हैं। अथवा अन्तःकरणमेंसे रज, सत्त्व, तम— ये तीन गुणोंकी उत्पत्ति हुई, सो जानिये ! ॥ १०९ ॥

साखीः— नाम रूप गुणमय जगत ❀ धरिया विविध स्वरूप ॥
[५२] छितराने जहाँ तहाँ सोई ❀ सबै दास वै भूप ॥ ११० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं— सोई परब्रह्म ही अपनी

कलासे ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपसे जगत्में उत्पन्न हुए। वे ही सृष्टि, स्थिति, और लय करनेके अधिकारी हुए। तीन गुणके रूपमें बहुत तरहसे स्वरूप धारण किये या बहुत प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न किये। और ब्रह्म ही नाम, रूप, तथा गुणमय होकर जगत्में आकर प्रगट हुआ है, तो क्रीड़ाके लिये बहुत किश्मका स्वरूप धारण किया, नाना खेल खेलने लगा। इसप्रकार भ्रमसे कल्पना करके ब्रह्मको अन्तिम स्थिति माना है; और उसकी प्राप्तिके लिये नाना मत-पन्थका विभिन्न नाम रखकर कर्मीलोग रजोगुणसे कर्ममार्गके साधना करने लगे। फिर अनेक भेष वा रूप को बनाकर इष्टके कोई साकार-निराकार रूपकी कल्पना करके उपासकलोग सत्त्वगुणसे सगुण-निर्गुण ध्यान, भक्ति आदि करने लगे; और तमोगुणसे योग साधनाकर वृत्तिको शून्य करने लगे। उसीमें षट् दर्शनोंके छियान्नवे (९६) पाखण्ड आदि विविधि स्वरूपको धारण किये। ऐसे जहाँ-तहाँ अनुमान, कल्पना भ्रम, विषयादिमें छितराये वा फैल गये। सब अबोध मनुष्य दास, गुलाम, शिष्य, सेवक हुए; और वे भ्रमिक गुरुवालोग राजावत् बड़े मालिक, स्वामी, गुरु महाराज बने वा कहलाये। और ईश्वरको मालिक जीवको दास बनाये हैं। इसप्रकार बिना पारख भूल-भुलैयामें पड़े और पड़ते ही जा रहे हैं। सो पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परखकर यथार्थ भेदको जानना चाहिये। और उनसे पृथक् हो रहना चाहिये॥ ११०॥

साखीः— अहङ्कार मद राज बल ❀ बहुत कलेश अपार॥
[५३] सबै भुलावा अंश कही ❀ शून्य होय तदाकार॥ १११॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! विश्व, तैजसादि पञ्च अभिमान, जाति, वर्ण, कुल, आश्रम, विद्या, गुरुवाईका अहङ्कार, अष्टमद, राज्य-बलका घमण्ड, ब्रह्मज्ञानके राज-अधिकारकी वाणी कल्पनासे केवल ब्रह्म मानना; ऐसी-ऐसी मानन्दीमें जीव बहुत दुःखी होकर अनेकों कष्ट-क्लेश सहे और सह रहे हैं। कोई अनुमानसे एक अपार ब्रह्म परमतत्त्व-परमात्मा मानकर उससे मिलनेके लिये ज्ञान, योग, भक्ति आदि करनेमें बहुत क्लेश सह रहे हैं। इसी खानी-वाणी अध्यासके कारणसे चौरासी योनियोंमें असह्य दुःख सह रहे हैं। बेचारे जीव दुःखी होकर मुक्तिके लिये गुरुवालोगोंकी शरणमें जाते हैं, तो उन सबोंको "तुम ईश्वर या ब्रह्मके अंश हो या दास हो; उस अंशी मालिकसे मिलोगे, तभी सुखी होओगे!" इत्यादि रोचक-भयानक वाणी कह-कह करके सब नर-जीवोंको भुला दिये। शून्यमें तदाकार, एकलक्ष्य करके जीव-ब्रह्मकी एकता होनेको मुक्ति मान लिये हैं। यही शून्य होनेका उपदेश देकर गुरुवालोग भुलाये और भुला रहे हैं। और उसी अध्याससे चारखानीके गर्भवासमें जाकर तदाकार होते रहते हैं॥ १११॥

साखीः— इन्हमें जो गुरु परख लही ❀ मेटेउ झाँई त्रास॥
[५४] पारखमें सो स्वभाव सुख ❀ अचल अशङ्क विलास॥ ११२॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इनमेंसे जो कोई जिज्ञासु मनुष्य सचेत होकर पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आ गये, वे विवेक-विचार द्वारा सत्यासत्यको परखने लग गये; सद्गुरुने सब कसर-खोटको परखा दिया, सद्गुरुकी कृपासे जिन्होंने सत्य पारख बोधको पा लिया, तो फिर उनका काल, सन्धि, झाँईं का त्रास तथा ब्रह्म, ईश्वर, यमराज आदिका कल्पित भय एवं भ्रम-गाफिली सब मिट गयी वा मिट जाती है, यानी सद्गुरुने वह सब त्रास मिटा दिये। सो वे स्व-स्वरूपके भाव स्वाभाविक पारखबोध-दृष्टिमें स्थिर रहनेसे जीवन्मुक्त, सदा सुखी रहते हैं। सब शङ्का-दुविधाओंसे रहित अशङ्क, अचल, अटल, स्थिर, निजपदमें कायम रहते हैं। सत्सङ्ग-विचारमें ही वे विलास करते रहते हैं॥ ११२॥

साखीः— जाहि दया गुरु परख लही ❀ मेटै सब भव जाल॥
[५५] रक्षक बन्दीछोर सो ❀ साहेब दीनदयाल॥ ११३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिस भाग्यवान् मुमुक्षु पुरुषका श्रीसद्गुरुकी

दयासे पारखस्वरूपका बोध प्राप्त हो गया है या जो पारख पा जाता है, फिर गुरुबलके प्रतापसे भवसागररूप संसारकी खानी-वाणीके समस्त जाल, फाँस, बन्धन उसके समूल मिट जाते हैं। क्योंकि, सद्गुरु ही परखाकर उसके सब बन्धन छुड़ा देते हैं। शरणागत-रक्षक बन्दीछोर दीनदयालु सोई सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए। पारखी, पारख बोधदाताको भी पारखप्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायीके रूपमें मानना चाहिये। वे पारखी सद्गुरुसाहेब ही दीन अबोध नरजीवोंपर दयादृष्टि करके सत्य उपदेश देते हैं ॥ ११३ ॥

साखीः— आपु दुःखी परजा दुःखी ❀ भक्तक भोंदू काल ॥
[५६] नष्ट सनेही भ्रष्ट ह ❀ कष्ट सबै भव जाल ॥ ११४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ये भ्रमिक नाना मतवादी गुरुवालोग अपने भी नाना कल्पनामें पड़कर ब्रह्म-ईश्वरादि मान-मानकर उसकी प्राप्तिके लिये मौनी, दिगम्बरादि होकर पञ्चाग्नि, जलशयनादि कष्टकर साधनाएँ करनमें परम बेहाल, दुःखी, जड़ाध्यासी हो रहे ह, और अन्य मनुष्यलोग वा परजा=शिष्य-शाखाओंको भी उसी धोखाके साधनाओंमें अनेक प्रकारसे लगाकर परम दुःखी किये या दुःखीकर रहे हैं। अतएव विवेकादि सद्गुणोंको भक्षणकर मनुष्योंको भुलानेवाले योगी, ज्ञानी, भक्तलोग बेपारखी होनेसे भोंदू=मूढ़, काल, भक्षक और दुष्ट बने हैं। हंसपदको नाश कर देनेवाले, अनुमान ब्रह्म-ईश्वरादिको दृढ़ानेवाले नष्टरूप गुरुवालोगोंसे ही प्रेम-प्रीति लगा करके नरजीव मनुष्यपद मुक्तिमार्गसे भ्रष्ट (खराब) हो गये; पतित होकर गिर पड़े हैं। अब जो कोई वाममार्ग-दक्षिणमार्गादि षड्दर्शन, छियान्नवे (९६) पाखण्डादिमें लगे हैं, अनेकों साधनाएँ कर रहे हैं। वे सब बिना पारख खानी-वाणीके भवजालोंमें ही अरुझकर चौरासी योनियोंमें सबै कष्ट=त्रिविधि ताप, जन्म-मरणादिका दुःख अनेक तरहसे सह रहे हैं ॥ ११४ ॥

साखीः— चाहै सुख भव जालमें ❀ सूझै नहिं निज भूल ॥
[५७] विविधि फन्द फरफन्द रचि ❀ रहा जाल मद फूल ॥ ११५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सब प्राणी अध्यासवश संसाररूप भव-जालकी चौरासी योनियोंमें पड़कर दुःख पा रहे हैं। सब जीव सुख चाहते हैं, और सब मनुष्य मुक्ति तथा शान्ति-स्थिति चाहते तो हैं; परन्तु, स्त्री, पुत्र, धनादि खानीजाल तथा कर्म, उपासना, योगादि वाणी-जालोंमें ही आसक्त होकर अनेक तरहसे भव-जालोंमें बद्ध होकर पड़े हैं। उन्हें अपनी-अपनी भूल, आसक्ति, मानन्दी, कल्पनादिका बन्धन तो कुछ दिखाई ही नहीं देता है। अपनी भूल तो वे कुछ देखते ही नहीं हैं। पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण तो करते ही नहीं हैं, तब सुख कैसे होगा ? परन्तु, वे गुरुवालोग तो विविधि प्रकारके विषय और कल्पनाकी रचना करके एक-एकमें अनेक-अनेक फरफन्दाका जाल फैला रक्खे हैं। उसीमें अपने फँसकर सबको फँसा रहे हैं। स्वयं तो मोटी-झीनी मायाके जाल-जञ्जालोंमें फँसे हुए ही वहाँ रह रहे हैं। मतोंकी मानन्दी तथा अष्टमदोंकी नशामें फूले न समाते हैं। कोई व्यापक ब्रह्म स्वयं बनकर फूले, कोई विषयोंमें फूले, इसी तरह वे चौरासी योनियोंमें झूले वा झूल रहे हैं, बिना पारख ॥ ११५ ॥

साखीः— परख समाधि लहै बिना ❀ धोखेहि रहै समाय ॥
[५८] कर्म धर्म मत तीनि ले ❀ भोंदू रखें भुलाय ॥ ११६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सब कल्पना, भास, अध्यास, अनुमान, विषय-वासनाओंको मिटाकर निज स्वयं स्वरूप पारखमें सदा लक्ष्य स्थिर बनाये रखना; ऐसी पारख समाधि लगानेको जाने बिना या गुरुबोध पाये बिना सब नरजीव धोखेमें ही समा रहे हैं। ब्रह्म-भ्रम विषयादिके चक्रमें ही फिर रहे हैं। कहीं शून्यमें समा रहे हैं, कहीं भोगोंमें समा रहे हैं। क्योंकि भोंदू=ठग गुरुवा लोगोंने मनुष्योंको तीन तरहसे पकड़कर भुलाये और भुला रहे हैं।

सो कर्मकाण्डके तीर्थ, व्रत, उपवास, होम, हवन, यज्ञ-यागादिमें कर्मी ब्राह्मणलोग भूले और भुला रहे हैं। धर्म=उपासनाकाण्डके सगुण-निर्गुण भक्ति, नाम-स्मरण, पूजा-पाठ, मानसिक ध्यान-धारणामें वैरागी भक्तलोग भूले और भुला रहे हैं। और 'मत' कहिये योगमार्गकी साधनामें नेती, धोती आदि क्रिया, षट् चक्र वेधन, दश मुद्रा, अष्टाङ्ग योगादि अभ्यासमें योगीवर्ग भूले और भुला रहे हैं। यही तीन जाल लेकर गुरुवालोगोंने मनुष्योंको फँसाया है। इधर काम, क्रोध और मोह, ये तीन जाल लेकर स्त्री, पुरुषोंको फँसा रही है। बिना विचार काल-जालोंमें सब फँसे ही पड़े हैं॥ ११६॥

साखीः— धर्म समाधि तत् है ❀ कर्म समाधि त्वं॥
[५६] सहज समाधि असि लहै ❀ तत्त्वमसि तिहुँ अङ्ग॥ ११७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! धर्मरूप उपासनामार्गमें 'तत्'=वह पद एक कोई सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मानकर नवधा भक्ति आदि साधनाओंसे उसी ईश्वरमें वृत्तिको लगाकर स्थिर हो जाना, यही "धर्म समाधि" भक्तोंने माना है। यानी उपासनारूप भक्ति करते-करते शून्य हो जाना, माना है। तथा 'त्वंपद' अज्ञानी बने हुए जीवोंने "कर्म समाधि" को अपनाया है। तहाँ कर्मकाण्डकी साधना करते-करते स्थिरतासे शून्यवृत्तिकर सुखको प्राप्त करना माना है; और योगी वा ज्ञानियोंने "सहज समाधि" को पकड़ा है। योग साधना करके ब्रह्माण्डमें वृत्तिको स्थिर करके सहज-ही-सहज आकाशवत् शून्य समाधि लगाकर 'असिपद' ब्रह्ममें मिल जाना, माना है। सोई "तत्त्वमसि" के तीनों अङ्ग या भागका एकत्र मिलान किया है। तत्पद वाच्य ईश्वर, ज्ञान साक्षीपदमें "धर्म समाधि" कहा है। त्वंपद वाच्य जीव, अज्ञान या अविद्यापदमें "कर्म समाधि" माना है; और असिपद अवाच्य ब्रह्म, विज्ञान, आनन्दपदमें "सहज समाधि" वर्णन किया है। जीव-ईश्वरका वाच्यांश छोड़कर लक्ष्यांशमें एकता करनेसे ही ब्रह्म स्थितिकी प्राप्ति होती है; ऐसा माना है॥ ११७॥

साखीः— शब्द ब्रह्म अज जानिये ❀ सगुण ब्रह्म हरि होय॥
[६०] हर सों शून्य समाधि है ❀ नाम रूप गुण सोय॥ ११८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अज=ब्रह्माका सिद्धान्त, शब्द ब्रह्म=प्रणवरूप ॐकार ब्रह्मको ही जानिये! हरि=विष्णुका सिद्धान्त, सगुण ब्रह्म=आदि नारायणको साकार परमात्मा माना है। और हर=महादेवका सिद्धान्त, श्वासको ब्रह्माण्डमें लय करके शून्य समाधि लगाना, सोई शून्य निर्गुण ब्रह्म ठहराया है। ॐकार नाम है। सगुण आकार 'रूप' है। निर्गुण-निराकार 'गुण' है। सो यही ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी स्थितिकी पहुँच है। बिना पारख कल्पित नाम, नाशवान्रूप तथा विकारी दुर्गुणोंमें वे तीनों जड़ाध्यासी बद्ध हुए; अभी उनके अनुयायी वैसे ही अविचारी होकर बद्ध हो रहे हैं॥ ११८॥

साखीः— नाम रूप गुण लीन होय ❀ महाकाल ज्यों त्यों लहे॥
[६१] बिनु पारख छूटै नहीं ❀ उदय अस्त धोखे रहे॥ ११९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसके आगे वे बढ़े, तो त्रिगुणके साथमें नाम, रूप और गुणको भी लय किये। रजोगुण नामको, रूप सत्त्वगुणमें और उसे तमोगुण शून्यमें लय किये। जब तीनों लय हुआ, तो जैसा-तैसा करके महाकालमें पहुँचे। सब त्रिकालको ग्रास करके सर्वमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म जैसे-का-तैसा या ज्यों-का-त्यों मानकर गाफिलीको प्राप्त हुए। पारखी सद्गुरुके सत्यबोध पारखदृष्टिको पाये बिना कोई भी भव-बन्धनोंसे नहीं छूटे। पारख हुए बिना तो अध्यासका नाश नहीं होता है। बेपारखियोंका भ्रम नहीं छूटा। इसलिये चौरासी योनियोंके गर्भवास आदि दुखोंसे भी वे नहीं छूटे। "जगत्को उदय=उत्पन्न करनेवाला कोई परमेश्वर है, उसीके आधारमें सब रह रहे हैं। अन्तमें सब जगत्को अस्त करके महाप्रलयमें वह अपनेमें ही मिला लेता है। उसी परमात्मासे मिलना चाहिये।" ऐसे-ऐसे भ्रमसे कल्पना,

अनुमान कर-कराके उदयाचलसे अस्ताचल तकके मानव समाज, गुरु पारखको पाये बिना जन्मोदयसे लेकर मरणरूप अस्त पर्यन्त धोखेमें ही भूले पड़े रहे और भूल रहे हैं। अतएव अध्यासी जीव कभी आवागमनोंसे भी नहीं छूटे और छूट भी नहीं सकते हैं। धोखेबाज गुरुवालोग धोखेमें ही डाल रहे हैं, जीवोंको भुला रहे हैं। सो किस प्रकार रोचक-भयानक वाणी सुना-सुना कर धोखा देकर भ्रमाते हैं; इसके बारेमें ग्रन्थकर्त्ताने बीजक रमैनी मूलका यहाँपर प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥ ११९ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ भाग-४ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, रमैनी नम्बर-२९ । ❀ ॥

१. बज्रहुते तृण खिनमें होई * तृणते बज्र करै पुनि सोई ॥ १२० ॥

अर्थः— इस रमैनीमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने मायामुखका तात्पर्य वर्णन करके दरशाया है— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं कि- सुनो ! हे भक्तजनो ! परमतत्त्व-परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, वह जो चाहे सो कर सकता है। इसलिये वह बज्र = पहाड़ चट्टानादि कठोर या महान् पदार्थोंको भी क्षणभरमें ही इच्छामात्रसे तृण = घास-फूस, छोटा, हलका, नरम बना सकता है। और फिर वही परमात्मा अपनी शक्तिसे तृणको भी बज्र बना सकता है। दिनको रात तथा रातको दिन कर दे सकता है। राजाको रङ्क और रङ्कको राजा कर देवे, जड़को चेतन, और चेतनको जड़ कर देवे, भुनगाको इन्द्र और इन्द्रको भुनगा कर देवे; उस ईश्वरके लिये कोई बात असम्भव या कठिन नहीं है; वह जो चाहे सो कर सकता है। देखो ! उसने किया भी है। बज्रके समान कठोर हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कंशादिको तृणके समान उखाड़कर अर्थात् मारकर क्षणमें धूरमें मिला दिया। और तृणवत् गरीब हनुमान्, सुग्रीव, विभीषणादिको महान् शक्तिशाली राजा बना दिया है। अतएव सब बातको छोड़कर उसी परमतत्त्व-परमात्माकी ही अनन्य प्रेमलक्षणा भावसे भक्ति किया करो ! इसीमें भलाई है ॥ १२० ॥

२. निझरु नीरु जानि परिहरिया * कर्मका बाँधा लालच करिया ॥ १२१ ॥

अर्थः— अब यहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब अपनी तरफसे कहते हैं। [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! 'निझरु' कहिये न झरनेवाला अविनाशी ब्रह्मको निराकार, निर्विकार, शुद्ध मान लिये हैं। और 'नीरु' कहिये जगत्को पानीकी नाईं झरनेवाला क्षणभंगुर विनाशी, विकारी जानकर 'परिहरिया' यानी छोड़ दिया, परित्याग कर दिया। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवोब्रह्मैवनापरः" ऐसा कहकर गुरुवा-लोग धोखेमें पड़े, भ्रमिक हुए। तब कोई तो संसारमें विषयसुख प्राप्ति, स्वर्गादि प्राप्ति, चार फल, चार मुक्ति आदि प्राप्तिकी लोभ-लालच आशा-तृष्णा करके नाना कर्म मार्गके जालोंमें बद्ध हुए। कोई शून्य निर्विकल्प समाधि प्राप्ति, ब्रह्म-आत्मादिकी एकता प्राप्ति, सच्चिदानन्दमें तदाकार होनेकी लालच करके नाना साधनाओंके कर्ममें, कल्पनामें बद्ध हुए। इसप्रकार खानी-वाणीमें दोनों प्रकारसे लालचमें बाँधे गये, बिना विवेक ॥ १२१ ॥

३. कर्म धर्म मत बुद्धि परिहरिया * झूँठा नाम साँच ले धरिया ॥ १२२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! सत्यन्यायी पारखी साधुके सत्सङ्गमें बैठकर सत्यासत्यका पारख करना छोड़कर विवेक-विचार करनेकी सद्बुद्धिको परित्याग करके ये मूँढ़ मनुष्य लोग सब कोई कर्म मार्ग ब्रह्माके जालमें पड़े, कोई धर्म = उपासना भक्तिमार्ग विष्णुके जालमें पड़े, कोई मत = योगमार्ग महेशके जालमें अरुझे पड़े हैं; तथा पक्षपाती होकर बुद्धि भ्रष्टकर बँधुए हुए हैं। झूठे गुरुवालोगोंने एक झूठा ही नाम कल्पना करके ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, ॐकार इत्यादिकी महिमा बता दिये या झूठ-मूठके कल्पित नाना मन्त्र, नाम-स्मरणमें लगा दिये, उसीसे मनोकामना सिद्ध होनेको समझा दिये। इसीसे उसीको सच्चा मानकर दृढ़ निश्चय करके हृदयमें धारण कर लिये हैं। सत्य निज स्वरूपको तो नहीं जानते हैं, झूठा नामको ही साँच मानकर धारण

कर लिये हैं; इसीसे दुर्गतिको पा रहे हैं ॥ १२२ ॥

४. रजगति त्रिविधि कीन्ह प्रकाशा * कर्म धर्म बुद्धिकेर विनाशा ॥ १२३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! रज, सत्त्व, तमोगुणकी गति-विधिके उसी चालसे ब्रह्मा, विष्णु और महेशने कर्म, उपासना, योग, यही त्रिविधि मार्गोंका संसारमें प्रकाश किया है। नाना कल्पित कर्मोंको ही धर्म मानकर सत्य निर्णय करनेकी बुद्धिको विनाश किये-कराये हैं। और ब्रह्मज्ञानियोंने "रज्जु-सर्प" का दृष्टान्त देकर "तत्त्वमसि" सिद्धान्तका प्रकाश किया है। तहाँ कहा है कि, जैसे 'रज्जुमें सर्प' मिथ्या भ्रान्तिमात्र है; न होते हुए भी भ्रमसे भासता है। किन्तु, अधिष्ठान रज्जु ही सत्य है, सर्प मिथ्या है। इसीतरह यहाँ ब्रह्ममें जगत् जो भासता है, सो मिथ्या प्रतीतिमात्र है, अधिष्ठान ब्रह्म ही एक सत्य है। जगत् त्रिकालमें नहीं है; मिथ्या ही भासमात्र होता है। सो जीव-ईश्वरका द्वैत भी कुछ नहीं है, असिपद ब्रह्म एक ही अद्वैत सच्चिदानन्द है। ऐसा ब्रह्मज्ञानका प्रकाश किया है। उसी ब्रह्मबोधमें ठहरनेके लिये साधन चतुष्टयादिके नाना कर्म-धर्मादि कर-करा कर बुद्धिका विनाश किये हैं। धोखाको ही दृढ़ किये हैं; बिना पारख ॥ १२३ ॥

५. रविके उदय तारा भौ छीना * चर बीहर दूनोंमें लीना ॥ १२४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! [ब्रह्ममुखः—] यहाँपर ब्रह्मज्ञानी लोगोंने अपना सिद्धान्त बतलाकर कहा है कि, हे भाई ! ब्रह्मज्ञान तो सूर्यके समान है। सो दृष्टान्तमें जैसा सूर्यके उदय होनेपर महान तेज-पुञ्जका प्रकाश सर्वत्र फैल जाता है। तहाँ तारागणोंका अल्प प्रकाश मन्द होनेसे क्षीण, गुप्त, गायब हो जाता है। दिनमें तारागण दिखाई नहीं देते हैं। इसीप्रकारसे सूर्यके प्रकाशवत् ब्रह्मज्ञानका उदय हृदयाकाशमें जब हो जाता है, तब सारे द्वैत-भावसे होनेवाले कर्म, जप, तप, पूजा, पाठ, तपस्या, विषय-क्रीड़ा, राग-द्वेष, भक्ति, योगादि तारागणोंकी नाईं क्षीण, निस्तेज, लुप्त हो जाते हैं। अरे भाई ! सुनो ! चारों खानीके समस्त चैतन्य जीव-'चर' हैं। और अचल स्थावर खानी आदि पाँचों तत्त्व जड़ 'बीहर'='अचर' हैं। उन दोनों चराचरमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ओत-प्रोत असन्धिरूपसे भरा हुआ लीन तो एक ही अद्वैत ब्रह्म है। ऐसे ब्रह्म बोधके उदय होनेपर सब विधि-निषेध क्षीण हो जाते हैं। ब्रह्ममें ही वह जीव समा जाता है, इत्यादि कहा है ॥ १२४ ॥

६. विषके खाये विष नहिं जावै * गारुड़ सो जो मरत जियावै ॥ १२५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! (गुरुमुखः—) [इसपर सत्य निर्णय करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैंः—] अरे भाई ! जैसे विष खाये हुएको विष ही खिला देनेसे क्या वह जीयेगा ? विषका असर जायगा ? और एक साँपका काटे हुएको दूसरा सर्पसे भी कटा देनेसे क्या फायदा होगा ? कदापि नहीं होगा। तैसे ही संसारमें सब जीव विषरूप पञ्चविषयोंको खा करके या ग्रहण करके विषयाध्यासी हो-होकर नाना दुःख पा रहे हैं। त्रिविधि तापोंमें बेहाल, खानीजालमें सन्तप्त हो रहे हैं। उन्हें गुरुवालोगोंने और भी वाणी कल्पनारूपी हलाहल विष खिलाये हैं और अपने भी अनुमान-कल्पनाको ग्रहण करके नाना भ्रम सिद्धान्तोंको दृढ़ किये हैं। आखिरमें व्यापक ब्रह्म हुए, तो सरासर चौरासी योनियोंमें चले गये या उसीका रूप ही हुए। इसीसे कौनसा फायदा वा हित-कल्याण हुआ ? कुछ भी नहीं हुआ। हकनाहक धोखेमें पड़कर अधोगतिको ही प्राप्त हुए। और गारुड़रूपी सच्चा वैद्य तो वही माना जाता है, जो दुःखमें मरते हुएको असली औषधि देकर जिला देवे वा बचा देवे; तैसे ही पारखी सन्त ही एक सच्चे गारुड़ी हैं। खानी-वाणीमें जड़ाध्यासी होकर मरते हुए, दुःख पाते हुएको सत्यासत्यका भेद परखा करके पारख बोध देकर निर्बन्ध, जीवन्मुक्त कर देते हैं। उन्हीं पारखी सद्गुरुकी ही शरण-ग्रहण करना चाहिये ॥ १२५ ॥

साखीः— अलख जो लागी पलकमें * पलकहिमें डसिजाय ॥
[६२] विषहर मन्त्र न माने * तो गारुड़ काह कराय ? ॥ १२६ ॥

अर्थः—श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! 'अलख' कहिये जो मन, बुद्धि, वाणी, चित्त आदिसे लखनेमें न आवे, सो ब्रह्म अनुमानमें जिन-जिनका मन लगा, सो उन्हें भ्रमकी ही दृढ़ता हुई। जैसे किसीको साँपने काट खाया, अँधेरामें सर्प नहीं दिखा, तो भी जहर तो चढ़ ही जायगा। और विष उतारने-वाले वैद्यका कहा न माने कि, इसे सर्प काटेका जैसा लक्षण है, हमारे कहे अनुसार इलाज करो। तो कहे कि, सर्पको काटते हुए हमने नहीं देखा, फिर हम आपका कहा कैसे सत्य मानें? तो कहो, समझानेके सिवाय गारुड़ और क्या करेंगे? बात नहीं माननेसे वह आप ही दुःख पा कर मरेगा। इसीप्रकार गुरुवालोगोंने अलख माना हुआ ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते बहुत विधिसे साधना करते हुए अलक्ष्य मुद्राको लगाया। बाह्य दशों इन्द्रियोंको बन्द करके लक्ष्यको ब्रह्माण्डमें लगाया। आँखें मूँदकर त्रिकुटीमें ध्यान लगाया; तब लक्ष्य एकाग्र हुआ। ब्रह्माण्डमें पित्त चढ़ा, पलकोंके भीतरमें चम-चम चिम-चिम प्रकाश देखते हुए ऐसे ज्योति प्रकाशको देखे, उसी पलककी झलकमें ज्योति, आनन्द, शून्यमें ही डस गये, गाफिल वा मूर्च्छित हो गये। जब होश आया, तो उसी तत्त्वोंके प्रकाश-भासको ही अपना वा परमात्माका स्वरूप दृढ़ करके मान लिये। उनको पारखी सद्गुरु समझाते हुए चेताते है कि, हे भाई! वह तो जड़ तत्त्वोंका प्रकाश है, तुम वह दृश्य रूप, आनन्द, शून्य कैसे हो सकते हो? द्रष्टा, दृश्यसे न्यारा रहता है, सो पारख करो! वाणी और खानीके जालोंमें मत् अरुझो! जगत्-ब्रह्म मानन्दीका जो विष तुम्हें चढ़ा है, उसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके निकाल डालो! सार ग्रहण करके असारका त्याग करो! तभी नरजन्म पाना तुम्हारा सफल होगा, इत्यादि सत्य उपदेश सोई विष-हरण करनेका महामन्त्ररूप सलाह या सत् शिक्षा है। सो पारखी सद्गुरुके सत्योपदेशरूप मन्त्रको तो वे पक्षपाती, अविचारी लोग मानते ही नहीं हैं; और हाय! हाय! करके चिल्लाते, रोते-कराहते कल्पित ईश्वरादिको ही पुकारते रहते हैं। तब ऐसी हालतमें गारुड़ी=पारखी सन्त समझानेके सिवाय और क्या करेंगे! वे नहीं मानते हैं और नहीं समझते हैं, तो अपने कर्मका फल भोगेंगे, और पारखी विवेकी सन्त तो अपने हित-कल्याणमें ही लगे रहते हैं, सो जानिये! ॥ १२६ ॥

सम्बन्धः— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने और भी बीजक रमैनीका ही प्रमाण दिया है, सो सुनिये! ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ भाग-५ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, रमैनी नम्बर-८२ ॥ ❀ ॥

१. सुखके वृक्ष एक जगत्र उपाया * समुझि न परिलि विषय कछु माया ॥ १२७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जगत्में अनेक प्रकारसे दुःख पाकर कष्ट सन्तापकी ज्वालासे छूटकर शान्त होनेके लिये भ्रमिक मनुष्योंने प्रथम अनुमान किया कि, कोई एक मूल सुखका अधिष्ठान, सुखके वृक्ष समान परब्रह्म-परमात्मा होगा। जिसने यह सारा चराचर जगत्को उत्पन्न किया, वही जीवको मुक्त करके सुख दे सकता है। ऐसी-ऐसी कल्पना करके वेद-शास्त्रादि वाणीको बनाये। वही सब संसारमें गुरुवालोगोंने फैलाया, प्रचार किया है और जीवोंको भ्रमाया है। परन्तु, अबोध मनुष्योंको यह कुछ समझनेमें नहीं आया कि, मायाके सब विषय विकारी बन्धन हैं। 'माया' कहिये काया तथा बाहर सम्बन्धित गुरुवालोग एवं स्त्री, परिवारादि, ये सब माया हैं। इनके जाल=भग-भोगादि पञ्च विषय खानीमें और ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, शून्य-समाधि, परमानन्दादि विषय, सात स्वर्गादि सुख विषय, कल्पना वाणीमें- जीवोंको जकड़ानेवाले महा बन्धन हैं। परन्तु, पारखबोध न होनेसे यह किसीको समझनेमें नही आया कि, हमारी मानन्दी कल्पना और विषयोंसे ही हमें बन्धन होता है; यह कुछ समझ नहीं पड़ी। इसीसे ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति मानकर ब्रह्मको कल्पनासे सुखका वृक्ष गुरुवालोगोंने माना है। और स्त्रीको सुखका वृक्ष विषयी लोगोंने माना है, उसीसे अनेक सन्तान तथा वाणीकी उत्पत्ति जगत्में किये हैं। ये मायिक लोगोंके

जाल बिना पारख किसीको समझ नहीं पड़ी। इसलिये उसीमें अरुझकर आवागमनमें पड़े; चौरासी योनियोंमें नाना देहें धारणकर उत्पन्न हुए और हो रहे हैं ॥ १२७ ॥

२. छौ क्षत्री पत्री युग चारी * फल दुई पाप-पुण्य अधिकारी ॥ १२८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें विशेषरूपसे प्रख्यात प्रतापी चक्रवर्ती छौः महाराजे क्षत्रिय कुलमें हुए। उनके नामः— (१) मान्धाता, (२) नहुष, (३) मरुत, (४) शिवि, (५) सुहोत्र और (६) पृथु, ये चक्रवर्ती क्षत्रिय महाराजे मुख्य छैः ही गिने गये हैं। इन्होंने समस्त भूमण्डलका राज्य एकछत्र एकाधिपत्य रूपमें किया था। बाहर सब लोगोंको दमन किया था; परन्तु, मन-इन्द्रियादिके दास बनकर खानी-वाणीके बँधुवे होनेसे आखिर आवागमन चक्रमें ही जा पड़े, तो उनका सब पराक्रम धूरमें मिल गया। और ब्रह्मादि ब्राह्मणोंने वेद, शास्त्रादि पत्र-पत्रिका पुस्तकोंकी रचना करके कल्पनासे चार युगोंके नाना इतिहास झूठ-फुर वाणी सुनाये। तहाँ 'युग' कहते हैं दो को, तो युग चारीमें चार दुने आठ हुआ। सो पत्री वेदादिके प्रमाणसे कर्म मार्गकी अष्ट प्रतिमा जड़पूजा करनेमें लगाये। उपासनामें नवधाभक्तिको दृढ़ाये। योगमें अष्टाङ्ग योगको फैलाये। ज्ञानमें साधन चतुष्टय तथा सप्त ज्ञानभूमिकाको बताये। विषयोंमें अष्ट मैथुनोंमें फँसाये। इसप्रकार पुरोहित, ब्राह्मणादि गुरुवालोगोंने चार वेदादिके प्रमाणसे चार युगादिकी कल्पना करके नाना जालोंमें छौ क्षत्रिय महाराजोंके सहित सब स्त्री-पुरुषोंको भ्रमाये, भुलाये, फँसाये हैं। तहाँ अधिकारियों-को दो (दुई) फलका वर्णन करके सुनाये। वेद विहित कर्म-आचरणसे पुण्य या धर्म होगा; जिससे स्वर्गादि सुख मिलेगा; और वेद विरुद्ध कुकर्म करनेसे पाप या अधर्म होगा; उसका फल एकईस (२१) नरकादिमें नाना दुःख भोगना होगा। पाप-पुण्य कर्मके अनुसार विशेष करके दुःख-सुख फल भोग होता है, ऐसा बतलाया है। और पापमें जगत् जीवको विकारी कहा है। पुण्यमें ईश्वरको निर्विकारी माना है। विषयानन्द पाप है, ब्रह्मानन्द पुण्य है; ऐसा कहकर विशेष-रूपसे दो फल बतलाया है। जो जैसे अधिकारी होते हैं, सो तैसे ही खानी भागमें पापफल और वाणी भागमें पुण्यफल ये ही दोनोंमें लुब्ध, बद्ध हुए हैं, और बद्ध हो रहे हैं, बिना विचार ॥ १२८ ॥

३. स्वाद अनन्त कछु वर्णि न जाई * करि चरित्र सो ताहि समाई ॥ १२९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! सो वह दो फल चखनेवाले कहने लगे कि, हे भाई ! इसके स्वादका अन्त नहीं है; कुछ वाणीसे वर्णन किया नहीं जाता है। स्त्री भोगादि विषयोंके स्वादको तो भोगने वाले ही विषयानन्द सुखको जान सकते हैं। कुछ वर्णन करके बतलाया जा नहीं सकता है; ऐसा विषयी लोग कहते हैं। और प्रेमानन्द, योगानन्द, ब्रह्मानन्दादि सुखोंके स्वादका भी कुछ वर्णन किया नहीं जा सकता है। ब्रह्म-परमात्मा अनन्त, बेअन्त, मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य है। जो ध्यान, धारणा, समाधि लगानेका अभ्यास करते हैं, सोई उस स्वादको जानते हैं। ऐसा भक्त, योगी, ज्ञानीलोग कहते हैं; और उसी स्वादको लेनेके लिये नाना प्रकारके चरित्र, क्रीड़ा, खेल-तमाशा, कर्म-कुकर्म तथा अनेक प्रकारकी साधनाएँ, विरह, वैराग्य, तपस्या कर-कराके सो उसी विषयादि भोग एवं शून्य-समाधिमें, कल्पना, धोखेमें जा-जाकर समाये, मिले, गाफिल हुए और हो रहे हैं। उसी अध्यासवश फिर देह छोड़कर शून्य गर्भवासमें जाकर समाते रहते हैं ॥१२९॥

४. जो नटवट साज साजिया * जो खेलै सो देखै बाजिया ॥ १३० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे नट लोग साज-बाज सजाकर देहको बटकर तमाशा दिखा करके लोगोंको लुब्धकर फँसाकर धन हरण कर लेते हैं। तैसे ही नटवत् स्त्रीरूप मायाने सोलहों शृङ्गार साज सजाकर आयी; हाव-भाव-कटाक्षका प्रयोग करके कहती है कि- जो मेरे साथमें मेरे कहे मुताबिक खेल खेलेंगे, सोई विषयानन्दका मजा पायेंगे, अच्छी तरहसे विषय सुखको देखेंगे वा जानेंगे। तब पुरुष मोहासक्त होकर सब सुखका सामान इकट्ठा करके पशुवत् चौरासी

आसनादि करके भग-भोगके विषय भोगोंमें खेले वा खेलने लगे। सो सब उसीमें अरुझ गये; अध्यासमें बद्ध होकर फँस गये। और उधर वाणीमें गुरुवालोग नटके समान चौरासी योगासन कर-कराके योग साधनादिको खूब सजे-सजाये। जो योग, ज्ञान, भक्ति आदिमें खेलेंगे, सो परमात्माका साक्षात् दर्शन कर पायेंगे, ऐसा कहकर भुलाये हैं। सो जो-जो उसमें खेले, वे सब कल्पना, धोखा भ्रममें पड़कर बद्ध हुए; चौरासी योनियोंमें ही जा करके फँसे तथा असह्य दुःख भोगोंमें जा पड़े ॥ १३० ॥

५. मोहा बापुरा युक्ति न देखा * शिव शक्ति विरञ्चि नहिं पेखा ॥ १३१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! बेचारे बेपारखी अबोध नरजीव रोचक वाणी सुनकर नारी और गुरुवाओंके नाना खेल-तमाशा देखकर मोहित, लुब्ध, आकर्षित वा आसक्त हो गये या वैसे हो रहे हैं। उन मायाका प्रपञ्च तो सब मनुष्योंको फँसाने, अरुझानेवाला है। इसीवास्ते नारी और गुरुवालोग अनेक युक्ति-प्रयुक्ति कर रहे हैं। विवेक-दृष्टिहीन अन्धे पुरुषोंको यह कुछ भी दिखाई नहीं देती है। उनकी युक्ति सब प्रकारसे नष्टकारी है; ये तो देखते ही नहीं हैं। मोहित होकर खानी-वाणीमें ही फँसे और फँसाये गये तथा नष्ट-भ्रष्ट हो गये। पहले संसारमें आदि मायासे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक ये त्रिगुणी मनुष्य पैदा हुए थे। उन्होंने भी पारख करके नहीं देखा कि, यह खानी-वाणी दोनों ही जाल जीवोंके बन्धनरूप हैं। परन्तु, वे ही उन दोनों जालोंमें अच्छी तरहसे जकड़कर फँस गये थे। स्त्री भोग तथा वाणी कल्पनामें मोहित आसक्त होगये थे। कर्म, उपासना, योगादि मार्गोंको उन्होंने ही अपने-अपने शक्ति-पुरुषार्थसे चलाये, फैलाये तथा तीन तरहके मतकी स्थापना किये हैं। अब उनके अनुयायी कर्मी, भक्त, योगी आदि लोग ब्रह्मादिको ही कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, परमेश्वर करके मान रहे हैं। यथार्थ पारख विचार करके कोई देखते तो नहीं हैं; जगत् जड़-चैतन्यरूप अनादि सत्य वस्तु है, इसका कोई कर्त्तादि नहीं है, जीव अपने ही कर्मानुसार फल भोग रहे हैं। मनुष्य जीव अपनी ही आसक्ति, मानन्दीसे अध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें जाकर पड़ते हैं। पूर्ण पारख स्वरूपका बोध होनेसे ही मुक्त हो सकते हैं। ऐसा विवेक करके किसीने नहीं देखा, तथा दिखानेपर भी नहीं देखते हैं। इसीकारण भव-बन्धनोंसे जीव नहीं छूटते हैं; बिना पारख आवागमन चक्रमें ही सब पड़े हैं ॥ १३१ ॥

साखीः— परदे परदे चलि गई * समुझि परी नहिं बानि ॥
[६३] जो जाने सो बाँचि हैं * नहिं तो होत सकलकी हानि ॥ १३२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! परदे-परदे यानी आड़, ओट, अन्तर या ढकन पड़ जानेसे घटोंघटमें एक घटसे दूसरे घटमें होते-फैलते हुए विषयोंकी जड़ासक्ति और वाणी कल्पना, अनुमान, धोखा, भ्रम सुदूर पूर्वसे पश्चिम तक चली गई, और बड़े प्रचण्ड वेगसे दक्षिणसे उत्तर तक भी गई और जा ही रही है; चारों दिशाओंमें फैली हुई है। वाणी-खानी ये ही जीवोंको मुख्य बन्धन है। नारी और गुरुवालोग ये ही काल हैं। उनकी वाणी सुन-सुनकर सब मोहित हुए हैं। यह मोहिनी वाणी हमें सुख देनेवाली नहीं है; किन्तु, चौरासी योनियोंमें फँसानेवाली है। बिना पारख ऐसी किसीको समझ नहीं पड़ी या यह बात समझनेमें नहीं आई। अब जो मनुष्य पारखी साधु सद्गुरुका सत्सङ्ग करके मोटी-झीनी मायाके जालको अच्छी तरहसे जान गये; सद्गुरुके पारख बोधको पा गये या जानेंगे, सोई मनुष्य काल-जालोंसे बचकर आवागमनसे छूट जायेंगे। नहीं तो नरजन्म पाकर भी कुसङ्गमें लगनेसे मुक्तिके साधन— सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्यादि सद्गुण लक्षणोंकी हानि करके मनुष्यपदसे पतित होंगे, नष्ट-भ्रष्ट होंगे। इसीप्रकार पारखहीन सकल नरजीवोंके मुक्तिपदकी हानि हुई, और हो रही है। अनजानेमें ही सकल प्रकारसे हानि होती है। अतएव हे मुमुक्षुओ ! पारखी साधु सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगकर

हानि-लाभ, बन्धन-मुक्तिके हेतुको भलीप्रकारसे जानकर कर्त्तव्यका सुधारकर नर जन्म पानेका लाभ उठाओ ! ॥ १३२ ॥

साखीः— काल चक्र घुमत सदा * जीवहिं चैन न देत ॥
[६४] पञ्चकोश होय जीवके * जीवन धन हरि लेत ॥ १३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! दिन-रातरूपी समयका चक्र तो सदा-सर्वदा अनादि कालसे ही चलता ही आ रहा है और चलता ही जायगा। पल, घड़ी, घण्टा, प्रहर, दिन, रात, हफ्ता, पक्ष, मास, वर्षके हिसाबसे सदा उसी प्रकारसे घूम-फिर रहा है। ये तो जड़ हैं; ये किसीको जानकर सुख-दुःख क्या देंगे ? इसके बीचमें जीवोंके किये हुए कर्म ही सुख-दुःखादिके कारण हो जाते हैं। यहाँपर 'काल'=गुरुवालोग और स्त्री हैं। इनके वाणी कल्पना भ्रम तथा विषय भोगादिका चक्र सदा-सर्वदासे ऐसे ही जीवोंके पीछे घूम-फिर रहा है। सो कभी जीवोंको चैन, आराम, शान्ति और मुक्ति नहीं लेने देता है। भाड़ेके टट्टूवत् जोतकर दुःखोंमें बेचैन करके फिराता ही रहता है। अनेक चिन्ता, शोकसे ग्रसित करता रहता है। और अन्नमयादि पञ्च कोशोंकी नाना कल्पित वाणी, पाँच मार्ग, पाँच ब्रह्मके सिद्धान्त, नाना भेष प्रपञ्च षड्दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्डादि अनेक प्रकारसे ठग हो करके गुरुवालोग जीवोंके पीछे पड़े। ठगते-ठगते सारा जीवन धन— सद्गुण, विचार बुद्धि, विवेक, पारख धनको समेत् हरण कर लिये; भ्रमा करके धोखा देकर सर्वस्व छीन लिये। तन, मन, धनादि सहित मुक्तिपदको लूट करके हरण कर लिये हैं। और खानीमें स्त्रियाँ पञ्च विषयोंमें नाना रूपमें प्रगट होकर नरजीवोंके पीछे पड़ी, तो, उन्हें भोगोंमें फँसाकर मुक्तिके समाज दशगुणोंको हरण कर जीवनधनरूपी आयुको समेत् लूटकर चौपटकर बन्धनोंमें डाल दी वा डाल ही रही हैं ॥ १३३ ॥

साखीः— काल चक्र चक्की चलै * सदा दिवस औ रात ॥
[६५] सगुण अगुण दुई पाटला * तामें जीव पिसात ॥ १३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! महाकालके चक्रमें जबर्दस्त पनचक्की चल रही है। आजसे नहीं, ये तो अनादिकालसे सदा-सर्वदासे ही दिन और रातके रूपमें एकके पीछे एक उलट-पलटकर घूम ही रही है। दिन गया तो रात हुई और रात बीती तो दिन आया। उसीके बीचमें आवागमन चक्रमें सब जीव कर्मानुसार पड़े ही हुए हैं। और कालरूप गुरुवालोगोंके भ्रमचक्रमें पड़े हुए ज्ञानी कहलानेवाले लोग— कर्म, उपासना, योग, ज्ञानादिकी चक्कीको दिन-रात चलाकर सगुण-निर्गुण ब्रह्मकी मन-मानन्दीमें ज्ञानी जीव पीसे जा रहे हैं। और कालरूप स्त्रीके भोग चक्रमें पञ्च विषयोंकी चक्की दिन-रात चलने लगी। तहाँ सुरूप-कुरूप, ये ही दो तरहकी स्त्रीके पाटमें अज्ञानी जीव सब पीसे जा रहे हैं। ऐसे ज्ञानी-अज्ञानी, सोई दिन और रातमें सदा कल्पना और विषयोंकी चक्की चला-चलाकर साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, सुन्दर-असुन्दर, अच्छा-बुरा इत्यादि बनकर उसीमें पिसा करके पिसान हुए और पीसे जा रहे हैं; [इसके बारेमें बीजक मूल-साखी १२९ की टीकामें विशेषरूपसे वर्णन किया है; सो बीजक त्रिजामें देख लीजिये !] ॥ १३४ ॥

साखीः— चक्की चलती देखिके * दिया कबीरा रोय ॥
[६६] दुइ पाट भीतर आयके * साबूत गया न कोय ॥ १३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! खानी-वाणीसे होनेवाली जीवोंकी दुर्दशा, आवागमन चक्र जगत्की चक्कीको दनादन चलते हुए देखकर मुझे अफशोस होता है। नारी और गुरुवाओंने तान-तान करके चपेटा देकर सब नरजीवोंको रुला दिया, व्याकुल, परेशान, विवश कर दिया। सब अपनी-अपनी चाहनाएँ पूर्ण न होनेसे रो रहे हैं। हे भाई ! 'दुइपाट' कहिये पृथ्वी-आकाश,

स्त्री-पुरुष, साकार-निराकार, दिन-रात, ज्ञान-अज्ञान, सगुण-निर्गुण, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, तत्-त्वं, नित्य-अनित्य, कर्म-कुकर्म इत्यादि दोनों पाटके भीतरमें आ-आकर सब लोग चकनाचूर होकर पीसे गये। पारख न होनेसे सावूत=हंसदेहके रहनी-रहस्यको प्राप्त नहीं कर सके, इसलिये बेपारखी योगी, ज्ञानी, भक्त कोई भी जीवन्मुक्त होकर सावूत नहीं गये। जड़ाध्यासी होकर पिसकर आवागमन चौरासी योनियोंमें ही चले गये। कोई बिरले ही पारखी सन्त इससे बचे। वे ही दूसरोंको भी बचाने वाले होते हैं॥ इसके बारेमें सद्गुरुने बीजक, साखी १२९ में कहा है:—

साखी:—"चक्की चलती देखिके। मेरे नैनन आया रोय॥ दुइ पाट भीतर आयके। सावूतगया न कोय॥"

अर्थात् खानी-वाणीके वेगसे आवागमनकी चक्की चलती हुई देख करके मेरा हृदय द्रवीत होता है, नर-नारीरूप दो घटके दो पाटके भीतर आकर पारख बोध न होनेसे कोई भी सावूत= मुक्त होकर नहीं गये। पारख बोध पानेवाले ही मुक्त हो सकते हैं, सो जान लीजिये!॥ १३५॥

॥ ❀ ॥ अथ आकार काल चक्रका पञ्चकोशयुक्त वर्णन ॥ अंश पृथ्वी ॥ १ ॥ ❀ ॥

अर्थः— यहाँपर कालके चक्रका मोटा-मोटा आकार, भाग, पञ्चकोशोंके सहित कहा जाता है। पहला पृथ्वीके अंशसे बना हुआ स्थूल देहका जाल दर्शाया गया है॥

पिण्ड। विश्व अभिमान। अवस्था जागृति॥
विलास स्थूल। भूमिका छिप्रा। मुक्ति सालोक॥ १३६॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! 'पिण्ड' कहिये शरीर यह विशेष करके पृथ्वी तत्त्वका भाग लेकर स्थूलाकारमें साढ़ेतीन हाथका बना है। इसी जड़, पिण्ड देहको अपना स्वरूप मानकर अबोध मनुष्य सब भूलमें पड़े हैं। इसी कारण 'विश्व' कहिये संसारमें शरीरके जाति, वर्ण, कुल, आश्रम, रूप, धन, घर, राज्य, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब इत्यादिमें 'मैं-मेरा' भाव ममता टिका करके अभिमान, मान-गुमान या अहङ्कार करते हैं। "मेरे समान दूसरा कोई नहीं है; मैं सबसे बड़ा हूँ!" इत्यादि प्रकारसे अहङ्कार करते हैं, तथा पञ्चविषयोंको ले करके विश्व अभिमान करते हैं। और स्थूल देहकी मुख्य जाग्रत् अवस्था है। इसमें देखना, सुनना, नाना कर्म करना इत्यादि चौबीस (२४) तत्त्वोंसे कार्य होता रहता है। स्थूल पाँचों विषयोंके भोग-विलासका विषयानन्द ही इसमें होता रहता है। 'क्षिप्रा भूमिका' कहिये सोई कर्मभूमिका कर्ममार्ग है। यहाँ नर देहमें ही शुभाशुभ कर्म होते हैं। उसके संस्कार पृथ्वीमें बीजवत् अन्तःकरणमें छिपे रहते हैं। सो समय पा करके फौरन ही प्रगट हो जाते हैं। जल्दी-जल्दी सङ्कल्प-विकल्प होता ही रहता है। तथा संसारमें नाना दुःख पा करके सुखके वास्ते नाना तरहके कर्म आचरणमें लगे हैं। षट् नित्य-नैमित्तिकादि कर्म जप, तप, पूजा, तीर्थ, व्रत, दान-पुण्यादि कर्ममार्गकी साधनाओंको ही कर्मीलोग अनेक तरहसे करते-कराते रहते हैं। फिर पुण्यकर्मके प्रतापसे सालोक्य मुक्तिकी प्राप्ति अर्थात् सात स्वर्गादि लोकोंमें पहुँचकर सुख प्राप्ति होगी, वहाँ जाकर सुखमें निवास होगा, इत्यादि माना है। यही सब अन्नमयकोशके भीतरका पहला काल चक्रका जाल है, ऐसा जान लीजिये!॥ १३६॥

॥ ❀ ॥ अंश चौरासी ॥ २ ॥ ❀ ॥

हिरण्यगर्भ। तैजस अभिमान। अवस्था स्वप्न॥
विलास सूक्ष्म। भूमिका गतागत। मुक्ति सामीप॥ १३७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जल तत्त्वका अंश इसभागमें विशेष रहता है। प्राणमय-कोश सूक्ष्म देहमें सब वासना बीजका अंश रहता है। जीव इसीको लेकर चौरासी योनियोंमें जाते हैं। और सूक्ष्मरीतिसे परमात्माको सुवर्णवत् प्रकाशवान् शुद्ध, ऐसा हिरण्यगर्भ माना है। उसको प्राप्त करानेके लिये गुरुवालोगोंने उपासना मार्गका प्रचार किया है। अंगुष्ठ आकार सूक्ष्म देहका माना है। "अन्तःकरण पञ्चकको सचेत करके चेतानेवाला, मैं तेजस्वरूप अंगुष्ठ ईश्वर हूँ!" ऐसा

माननेवाला सोई तैजस अभिमान है। और मुख्य करके सूक्ष्मदेहकी स्वप्न अवस्था रहती है। देखे, सुने और भोगे हुएका अर्ध निद्रामें भास होकर वैसे ही कार्यका भान होना, वही स्वप्न कहलाता है। वहाँ पञ्च विषय और अन्तःकरण चतुष्टय, ये ही नौ तत्त्व बने रहते हैं। सूक्ष्म भावनासे आनन्दका भोग-विलास मालूम होना, ध्यानादिमें सुख भासना, यही सूक्ष्म विलास है। और 'गतागत भूमिका' कहिये विषयाध्यास वासना बीज लेकर स्थूलदेह छूटनेपर गर्भमें जाना, फिर देह बनाकर जन्म लेकर बाहर आना, यह शक्ति सूक्ष्मदेहकी भूमिकामें रहती है। कोई ईश्वर और वायुरूप देवतादिके दर्शन प्राप्तिके लिये उपासनाकाण्डमें नाम-स्मरण, ध्यान किया करते हैं। अन्तमें भक्तिके प्रतापसे सामीप्य मुक्ति=इष्टदेवता ईश्वरके नजदीकमें हजूरी दासवत् रहनेकी प्राप्ति माना है। यही सब प्राणमय कोशके भीतरका दूसरा काल चक्रका जाल है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ १३७ ॥

॥ ❀ ॥ अंश मूल प्रकृति ॥ ३ ॥ ❀ ॥

शून्य अज्ञान । प्राज्ञ अभिमान । अवस्था सुषुप्ति ॥
विलास आनन्द । भूमिका सौलेष्टता । मुक्ति सारूप ॥ १३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अग्नि तत्त्वका अंश या भागरूप मनोमयकोश, कारण-देह, योगमार्ग है। सब प्रकृतियाँ अन्तःकरणमें लय हो कर शून्य हो रहती हैं। सो मूल प्रकृति अज्ञानरूप माया है। सब वृत्तियाँ वहाँ लय हो जानेसे शून्यमें बेभान अज्ञान रहता है। और 'प्राज्ञ अभिमान' कहिये योगीलोगोंने समाधिके आनन्दमें मस्त, समानता रहनेको विशेष जाननेका ज्ञान माना है। परन्तु, वही विशेष अज्ञानता अभिमानका मूल है। तथा जाग्रत् और स्वप्न दोनों अवस्थाओंके व्यवहार इन्द्रियाँ सब लय होकर गाढ़ी निद्रामें शून्य (बेभान) हो जाना, सोई सुषुप्ति अवस्था है। तहाँ शून्य निर्विकल्पवत् स्थिति होकर सर्व स्थूल-सूक्ष्मके बीजरूप वासना या अध्यास अन्तःकरणमें रह जाते हैं। पञ्च प्राण और पञ्च विषय, पञ्च तत्त्वमें समाकर या लय होकर हृदयमें टिके रहे, सोई गाढ़ी निद्रा कारणदेहकी अज्ञान-सुषुप्ति है। ऐसी स्थिति योगियोंकी समाधि-में भी रहती है; और वहाँका भोग-विलास आनन्द या सुखका भास होना है। जगत्का अभाव और अपना भाव रहनेसे आनन्द मालूम पड़ता है। 'सौलेष्टता भूमिका' कहिये सबका जहाँपर लय हो जाता है; अभावमें अध्यास मात्र रहता है। योगियोंका देखा हुआ परमतत्त्वका प्रकाश देहके साथ छूटनेवाली मिथ्या आशा मात्र ही है। और योगादि साधना करके सारूप्यमुक्तिकी आशा लगाते हैं। सो विष्णु, शिव आदि इष्ट देवताके समान भेष वा रूप धारण करके उन्हींके लोकोंमें रहना सारूप्य मुक्ति माना है, यही सब मनोमय कोशके भीतरका तीसरा कालचक्रका जाल है, ऐसा जान लीजिये ! ॥१३८॥

॥ ❀ ॥ अंश सर्व साक्षिणी ॥ ४ ॥ ❀ ॥

ज्ञान । अवस्था तुरिया । प्रत्यगात्मा अभिमान ॥
भोग आनन्दाभास । भूमिका सुलीनता । मुक्ति सायुज्य ॥ १३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वायुतत्त्वका अंशरूप ज्ञानमयकोश माना है। तीन अवस्था, तीनोंदेह सहित सर्व जगत्का साक्षी महाकारणदेह ईश्वरपदको माना है। तहाँ सर्वज्ञता-का ज्ञान तत्पदकी पूर्णता ठहराया है। और तुरियाको साक्षी अवस्था, परमप्रकाश आनन्द स्थिति माना है। "सूत्रमणिन्याय"—'मैं आत्मा सर्वाधार व्यापक हूँ; परन्तु, सबसे न्यारा हूँ ! सब रूप मेरा ही है।' यह प्रत्यगात्मा अभिमान उत्पत्तिका बीज है। पहले लय करके फिर 'एकोहं' इच्छासे सर्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड कला प्रगट करनेका अहङ्कार है। और आनन्दाभास भोगमें सहस्रदल कमलका अथवा नाभि कमलका, गन्ध और स्पर्शका अथवा निवृत्तिके सुखाभास होनेका भोग माना है। तथा 'सुलीन भूमिका' कहिये तीनों देहादि सारा जगत् जहाँ लीन या लय हो गया; त्रिगुणी माया जालों-का अभाव हो गया। सोई साक्षीरूपमें शुद्ध ज्ञान भूमिका माना है। और ज्ञानीलोग विवेक-वैराग्य,

मुमुक्षुता, शमादि षट् सम्पत्ति साधना-अभ्यास करके आत्मज्ञानकी दृढ़ता होनेसे उनके सायुज्यमुक्ति = जीव-ब्रह्मकी एकता, जलतरङ्गन्याय, ज्योति-में-ज्योति मिल जाना; इसी प्रकार वे परमतत्त्वमें ही मिल जाते हैं; ऐसा सायुज्यमुक्ति माना है । यही सब ज्ञानमय कोशके भीतरका चौथा काल चक्रका जाल है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ १३९ ॥

॥ ❀ ॥ अंश सन्धि महाकाश ॥ ५ ॥ ❀ ॥

तुरियातीत । मान अमान रहित । अभिमानहीन ॥
भूमिकाहीन । आरोपहीन । सो जीवन्मुक्ति कहा है ॥ १४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आकाशतत्त्वरूप समानवायुका अंश विज्ञानमय-कोश है । कैवल्यदेह, महान आकाशवत् निराकार, निर्लेप, चराचर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक परब्रह्मकी मानन्दी ब्रह्मज्ञानियोंने की है । तहाँ तुरियाके परे हो जानेसे साक्षी-भाव भी कुछ उनमें नहीं रहता है । विज्ञानदशा सोई 'ज्ञानसुषुप्ति' है । और 'मान' कहिये दृश्य जगत् तथा 'अमान' रूप ईश्वर, इन दोनोंसे रहित वह तत्-त्वं दोनोंसे परे 'असिपद' ब्रह्म माना है । वहाँ कोई अभिमान नहीं रहता है; वह अभिमानसे हीन है, ऐसा कह कर निरञ्जन अभिमान पकड़ते हैं; और उसमें कोई स्थितिकी भूमिका भी नहीं है, इसीसे तो अभाव भूमिका सबसे हीन या परे आकाशवत् कहा है । इसलिये आरोप-हीन कहिये कुछ सिद्ध करके वर्णन करनेमें नहीं आता है; तो मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य ब्रह्म है । ऐसा जानकर जा देहादिकी विस्मृति करते या बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़-अजगरवत् ऐसी परमहंसदशा धारण करनेवालेको सो गुरुवालोगोंने जीवन्मुक्त महात्मा कहकर माना है । परन्तु, उसीमें सब जगत्के जड़ाध्यासरूप बीज ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं । अतएव वह महाअज्ञानताकी स्थिति है । उससे बारम्बार चौरासी योनियोंमें आवागमनमें पड़कर नाना दुःख भोगते ही रहना पड़ता है । अतः परीक्षा करके इस धोखेको त्यागना चाहिये । कभी इस भूलमें पड़ना नहीं चाहिये । यही सब विज्ञानमयकोशके भीतरका पाँचवाँ काल-चक्रका जाल है; ऐसा जान लीजिये ! इन पाँचोंजालोंको परख करके छोड़ देवे; सदा इन विकारोंसे न्यारा हो रहना चाहिये ॥ १४० ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका पद ॥ छन्द-१ ॥ ❀ ॥

छन्दः— अन्नमय अरु प्राणमय * तीजे मनोमय जानिये ! ॥
[१] ज्ञानमय विज्ञानमय * सोई पञ्चकोश बखानिये ! ॥
तत् त्वं असि त्रिविधि बानि * सबै पहिचानिये ! ॥
कठिन सो त्रिदोष कारण * परमपद किमि मानिये ? ॥ १४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! (१) अन्नमय, (२) प्राणमय, (३)-मनोमय, (४) ज्ञानमय और (५) विज्ञानमय, यही पाँच कोशोंकी वाणीका विस्तार करके गुरुवा-लोगोंने बहुत प्रकारसे वर्णन किया है । यह पञ्चकोश जीवोंपर ढक्कन या पाँच प्रकारका आवरण (पर्दा) पड़ा है । सो संक्षेपमें स्थूल देह ही अन्नसे उत्पन्न हुए रज-वीर्यसे बना है । शरीर पोषणकी चतुराई, पेट पालनेका नाना धन्धा, व्यवहार, स्त्री-भोगादि पञ्चविषयासक्ति, पुत्र, कुल, कुटुम्ब, धनादिका संग्रह, वर्ण, कर्म, आश्रमादिका आवरण सो पहला "अन्नमयकोश" में रहता है । वहाँ कर्ममार्ग है । और दूसरा "प्राणमयकोश" में श्वासवायुमें लक्ष्य लगाकर पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सात स्वर्गों-का अनुमानकर वायुरूप देहधारी अनेक देवताओंकी कल्पना करके उनकी प्राप्तिसे सुख, मनोकामना सिद्ध होना मानकर उपासक भक्तलोग यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र साधना, मानसिक पूजा, सगुण-निर्गुण-भक्तिके आवरणमें ढँके पड़े हैं । तहाँ उपासनामार्ग है । तीसरा "मनोमयकोश" को ऐसा जानिये कि, सूक्ष्मदेहमें मन-मानन्दीसे कोई एक जगत्कर्त्ता परमेश्वर कल्पना करके उसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें गुप्त-

प्रगट ज्योति-प्रकाश स्वरूप ठहराये हैं। फिर उसके साक्षात्कार करनेके लिये हठयोग, राजयोगादि अष्टाङ्ग योग साधना, मुद्रा, धारणा, ध्यान और समाधि लगाते हैं। योगीलोग इसी आवरणमें ढँके पड़े हैं। यहाँ योगमार्ग है। चौथा "ज्ञानमयकोश"में ज्ञानीलोगोंने सर्वज्ञ ज्ञान स्वरूप साक्षी परमात्माको ठहराकर अन्तमें व्यापक ही माना है। ईश्वर साक्षात्कार या तदाकार प्राप्तिके लिये सप्तज्ञान भूमिका, परोक्ष-अपरोक्ष ज्ञान साधना सब प्रकारसे साधते जाते हैं। अन्तमें भ्रम-चक्रमें घूमकर धोखेमें गोता लगाते हैं। यही आवरणने ज्ञानियोंको ढँका है। वहाँ ज्ञानमार्ग है। और पाँचवाँ "विज्ञानमयकोश"-में चराचरमें परमात्माको परिपूर्ण व्यापक, अद्वैत मानकर वाच्यांश छोड़कर लक्ष्यांश ग्रहण किये, तो परमहंस दशाको प्राप्त हुए। उसे विशेष ज्ञान माना है। परन्तु, वह तो विशेष अज्ञानका घर बना है। महागाफिलीके आवरणने ब्रह्मज्ञानियोंको ढँका है। सो तहाँ विज्ञानमार्ग है। सोई "पञ्चकोश" कहिये पञ्चतत्त्व, पञ्चदेह, पञ्चविषय, पञ्चमार्ग, पञ्चस्थिति=कर्म, वासना, आशा, इच्छा और आनन्द, इसी सबका ढकन, पर्दा, आवरण जीवोंपर पड़ा है। उसीको भ्रमिक मतवादियोंने अपना स्वरूप वर्णन किया है; वे भूल-भुलैयामें ही पड़े हैं। प्रथम तीन कोशोंका भोक्ता त्वंपद अज्ञानविशिष्ट जीवको माना है। चौथा कोशका भोक्ता तत्पदवाच्य ईश्वर साक्षी ज्ञानविशिष्टको माना है। और पाँचवाँ कोशका भोक्ता असिपद लक्ष्य ब्रह्म विज्ञानीको माना है। ऐसे तीन प्रकारसे तत्, त्वं, असि; ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान; जीव, माया और ब्रह्ममुखकी समस्त वाणी कल्पना आदि गुरुमुख वाणी श्रवण-मनन करके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें विचार करके सबोंके भेदको यथार्थ सत्य निर्णयसे पहिचान लीजिये! और सन्निपात रोगमें रोगकी कठिनता-असाध्यताके समान "तत्त्वमसि" सिद्धान्तकी मानन्दी कठिन भव-बन्धन है। जबर्दस्त आवागमन चौरासी योनियोंमें ले जानेका कारणरूप बीज त्रिदोष है। अब हे भाई! परीक्षा द्वारा सद्गुरुकी दयासे ऐसा यथार्थ जानने-परखनेमें आया, तब उसको परमपद या श्रेष्ठ मुक्तिपददायी कैसे माना जायगा? हर्गिज नहीं माना जायगा! किन्तु, बन्धनदायी तुच्छ पद ही माना जायगा। निर्णयसे सत्यको ही लिया जायगा, सो जानिये! [इसका अर्थ विस्तारसे प्रथम ग्रन्थके शुरूमें हो चुका है, सो वहाँसे देख लीजिये!] ॥ १४१ ॥

साखीः— पशुवा लोक अरु वेदके ❀ मोह अन्ध संसार ॥
[६७] वह लादै खेदै आपको ❀ यह अपनी चहत उबार ॥ १४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! लोक और वेदके पक्षपाती, अविचारी गुरुबुद्धिहीन मनुष्य गुण-लक्षणके बिना नरजीव जड़ाध्यासी नरपशु ही बने हैं। तहाँ— स्त्री-पशु, नर-पशु, सुर-पशु, ये तीनों खानी जालमें हैं, तथा वेद-पशु, शास्त्र-पशु, और पुराण-पशु, ये तीनों वाणीजालमें पक्ष लेनेवाले महापशु बने हैं। वे संसारमें बिना पारख विषय, कल्पना, संशय, धोखामें ग्रसित हो-होकर उसीके मोह-ममता, पक्ष, दुराग्रहमें पड़कर अन्धे, विवेक-दृष्टिहीन हुए हैं। अतएव वह नारी और वे गुरुवालोग अपने-अपने स्वार्थके लिये खानी-वाणीका बोझा अबोध नरजीवोंके शिरपर लाद दिये हैं। अपने-अपने मत-पन्थोंकी तरफ खींचने लगे; और विषय, धोखा, कल्पनामें पुरुषोंको खेदने वा भगाने लगे। यह मूढ़ नरजीव भी उसीमें दौड़-दौड़कर अपने दुःखोंसे बचावा, हित, सुख, कल्याण, भवसागरसे पार हो, उबरना या मुक्त होना चाहते हैं। भला! पारख स्थिति हुए बिना यह कैसे हो सकता है? कभी नहीं! जड़ाध्यासवश उबारके बदले चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही डूब गये और डूब रहे हैं। इसलिये यथार्थ पारखबोध प्राप्त करना चाहिये। [इस छन्द और साखीकी विशेष व्याख्या दृष्टान्त आदिके सहित ग्रन्थके प्रथमारम्भमें लिखी है; वहाँसे देख लीजिये!] ॥ १४२ ॥

साखीः— भरम चक्र यम जाल सो ❀ बिन गुरु कैसे लखाय? ॥
[६८] पारख पाये जानिये! ❀ आदि अन्त समुदाय ॥ १४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पञ्चकोशोंके वाणी प्रपञ्च तथा पञ्चविषयोंके

खानी प्रपञ्च, यह यम = गुरुवालोग और स्त्रीका महाजाल-जञ्जाल ब्रह्मके भ्रमचक्र और स्त्रीके भगचक्रमें घुमाकर आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रमें डालने वाला है। पारखी सद्गुरुके सत्यबोध मिले बिना किसीको भी अपने-आप यह लखनेमें नहीं आता है। उसीमें गरगाफ पड़े हैं, तो फिर कैसे लखनेमें आवे ? कैसे पहिचान होवे ? पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर जिस जिज्ञासुने यथार्थ सत्य निर्णयको पहिचानकर पारखबोधको प्राप्त कर लिया, तो जान लीजिये कि, वही आदि = जगत्से, अन्त = ब्रह्म पर्यन्त समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थोंके समुदायका कसर-खोट, भव-बन्धनोंको परखकर यथार्थ जान जाता है; फिर उसे त्यागकर पारखमें स्थिर होता है ॥ १४३ ॥

साखीः— प्रभु सुखदायी पारखी ❀ दुष्ट दुस्सह दुःख खान ॥
[६६] परवश जीव विकल फिरै ❀ पारख बिना अयान ॥ १४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सर्वश्रेष्ठ सत्यन्यायी सद्गुरु प्रभु ही परम पारखी होनेसे बन्दीछोर जीवन सुखदायी मुक्ति देने वाले हैं। आप ही हमारे स्वामी प्रभु साहेब हैं। सब सिद्धान्तोंको एक-एक परखाकर जिज्ञासु साधुओंको अपने समान पारखी बोधवान् कर देनेवाले हैं। और भ्रमिक गुरुवालोग बेपारखी दुष्ट स्वभाववाले खानी-वाणीकी नाना झंझट और दुःखोंमें फँसाकर दुस्सह दुःख भोगानेवाले चारखानीमें गिराकर असह्य त्रिविधि तापके दुःखोंमें डालदेनेवाले हैं; इसीकारण वे दुष्ट हैं। पारखी सद्गुरुकी शरणमें आये बिना अज्ञानी पक्षपाती मनुष्य बिना पारख नारी और गुरुवाओं-के परवश या वशीभूत होकर विषय और कल्पना आदिमें लगकर व्याकुल हो भटकते-फिरते हैं। फिर देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें अध्यासवश फिरते हुए व्याकुल बड़े दुःखी होते रहते हैं। पारखबोध हुए बिना अज्ञानता नहीं छूटती है ॥ १४४ ॥

साखीः— जो जीव पावै पारख ❀ सो लहै अचल विश्राम ॥
[७०] प्रीति प्रतीति अनुछिन बढ़ै ❀ धोखा मिटै तमाम ॥ १४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई मुमुक्षु मनुष्यने पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे विवेक करके यह जान पाया कि, संसारमें सत्य वस्तु जो है, सो यही स्वयं स्वरूपी जीव ही है। और ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवतादि मिथ्या भ्रम-धोखा, असत्य है। ब्रह्म-जगत्की आसक्ति ही जीवको मुख्य बन्धन है। ऐसा यथार्थ समझ-बोध होनेसे सकल जड़ासक्तिको छोड़कर, सो पारख स्वरूपमें ही अचल, अटल, स्थिर होकर वासनासे रहित जीवन्मुक्तिमें विश्राम पा जाता है। ऐसे ही पारखी सद्गुरुके पदमें सत्य प्रेम-भक्ति, विश्वास, श्रद्धा सहित जो मुमुक्षु मनुष्य शरणागत होते हैं, सो उनको एकरस पारखबोधका निश्चय, प्रतीति, प्रेम-प्रीति, गुरुभक्ति बोधभाव बढ़नेसे तमाम मिथ्या धोखा— ब्रह्म, खुदा, भूत, प्रेत, देवता, विषय, दुर्वासना इत्यादि सत्य बोधके प्रतापसे मिट जाते हैं वा छिन्न-भिन्न हो नष्ट हो जाते हैं। अतएव वे भी निर्बन्ध जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १४५ ॥

साखीः— रामरहस गुरु पारखमें ❀ सदा विलास भ्रम नाश ॥
[७१] चहुँ प्रलय सन्धिक कला ❀ रहा न ताके गाँस ॥ १४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु जनो ! सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके "श्रीकबीर निर्णय मन्दिर" में सदा = नित्यप्रति सद्ग्रन्थका ही पठन-पाठन होता है। सत्सङ्गमें जड़-चैतन्य, सार-असार, बन्धन-मुक्तिका ही यथार्थ गुरुमुखसे निर्णय होता है, जिससे सब भ्रम, कल्पना, देह-बुद्धि, कर्त्तावाद, अनुमान, अध्यासादि नाश होकर चैतन्य जीव पारख रहस्य-में ही स्थिर, सुखी सदा सद्गुणोंके ही विलासमें रहते हैं। अतएव उन पारखी सन्तोंके पासमें ईश्वरकी मानन्दी, जगत्के उत्पत्ति-प्रलय, चार प्रकारके प्रलय— नित्य-प्रलय, नैमित्य-प्रलय, विश्व-प्रलय और महा-प्रलय इनकी कल्पना, गाँस-फाँस, अध्यास-भासादि बन्धन उनके कुछ भी नहीं रहते हैं ॥ १४६ ॥

साखीः— चार अवस्था फन्द है * फन्द बीच बहु फन्द ॥
[७२] बिनु पारख छूटै नहीं * काल जाल मति मन्द ॥ १४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया— ये चार अवस्थाओंके चार कर्मोंके अध्याससे नरजीव फन्दोंमें अरुझे पड़े हैं ! अरे भाई ! एक-एक मार्ग, अवस्था-कर्मादिमें बहुत-बहुत तरहके जाल-बन्धन जीवोंपर पड़े हैं । उसीमें नाना भाँतिसे सब मनुष्य फँसे पड़े हैं । चार मार्ग, चार धाम, चार मुक्ति, चार फल, चार वेद, इत्यादिमें चारों दिशाओंके मनुष्य फन्द-फरफन्द=एकके बीचमें अनेक जाल बना-बनाकर बद्ध हुए और हो रहे हैं । मति मन्द=दुर्बुद्धि, अनाड़ी लोग तो काल=स्त्री और गुरुवाओंके जालोंसे कभी छूट ही नहीं सकते हैं । और बुद्धिमान् कहानेवाले ज्ञानी भी बिना यथार्थ गुरु पारखके अपरोक्ष बोध दृढ़ हुए काल-कल्पना, विषयोंके जाल-जञ्जालोंसे कदापि छूट नहीं सकते हैं । मतिमन्द लोग ठग, गुरुवा बनकर काल-जालोंमें ही फँसते-फँसाते रहते हैं । इसलिये सदा पारखी सद्गुरुकी शरण-सेवा सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ १४७ ॥

साखीः— जीव दुःखी चाहै छूटन * चीन्है नाहीं काल ॥
[७३] आशा देवै निवृत्तिका * भोरे भवके जाल ॥ १४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जड़ाध्यासी जीव त्रिविधि तापमें पापकर्म भोगकर परम दुःखी हुए । आधि, व्याधि, उपाधिमें बेहाल, परेशान, व्याकुल, कष्टित, चिन्तित हुए । सब जीव दुःखोंसे छूटकर सुख, शान्ति, मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं । उसके लिये अनेक प्रयत्न, सङ्ग-कुसङ्ग भी कर रहे हैं । परन्तु, जिनको सुखदायी समझकर इन्होंने आधार लिया है, वे नारी और गुरुवालोग ही काल हैं । उनको चीन्हते-पहिचानते तो नहीं हैं । बड़ा आशा-भरोसासे उनके घेरामें पड़े हैं । क्योंकि, वे भ्रमिक गुरुवालोग मनुष्योंको भ्रमाकर भव-बन्धन निवृत्ति होनेकी, कल्पित ब्रह्म, ईश्वर इत्यादि प्राप्त होनेकी, मुक्ति प्राप्त होनेकी आशा तथा भरोसा दिये और दे रहे हैं । बस !, उसी आशारूपी फाँसमें फँसाकर भवसागर=खानी-वाणीके जालोंमें भुला करके जकड़ाकर डुबो दिये । इसीप्रकार काल-कवलमें पड़ करके नष्ट-भ्रष्ट हुए हैं; और भूले-भुला करके मनुष्यपदसे नष्ट हो रहे हैं, बिना पारख ॥१४८॥

साखीः— त्रिविधि भेष बनायके * कीन्ह कपट उतपात ॥
[७४] बाना गही उबारने * लाई कला यम घात ॥ १४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने मनुष्योंको आकर्षित करके फँसानेके लिये तीन प्रकारके भेष बनाया है । तिलकधारी ब्रह्माने कर्मकाण्डका भेष बनाया । कण्ठीधारी विष्णुने उपासनाकाण्डरूप भक्तिमार्गका भेष बनाया; और लङ्गोटधारी महादेवने योगियोंका भेष बनाया । सोई उनके अनुयायी ब्रह्मचारी, वैरागी, योगी, संन्यासी बनकर त्रिविधि भेष बना करके कपट जालोंमें लोगोंको घेरकर बड़ी उपाधि किये वा उपद्रव मचाये; झंझट, झगड़े, प्रपञ्च फैलाये । भेषरूप त्यागका बाना तो इन्होंने उबारने या मुक्ति करने-करानेके वास्ते ग्रहण किया-कराया । परन्तु, सबको फँसाकर डुबानेका यम=गुरुवाओंने ऐसी सफाईसे कला-कौशल लगाया कि, वह कसर किसीको कुछ भी समझनेमें ही नहीं आया । नारी और गुरुवाओंके दाव-घातमें पड़ करके मारे गये; सद्गुरुके पारख बोध हुए बिना कोई नहीं बच पाये ॥ १४९ ॥

साखीः— यतिके चिह्न लङ्गोट है * दया चिह्न उरमाल ॥
[७५] राज तिलक है अदलका * शोभै परगट भाल ॥ १५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अष्ट मैथुनोंको भीतर-बाहरसे त्यागकर पूर्ण वैराग्यवान् विरक्त, त्यागी होनेका लक्षण बाह्य चिह्न लङ्गोट या कौपीनका पहिरना है । इसीवास्ते त्यागी, वैराग्यवान् पारखी साधु लङ्गोटी पहिरते हैं । सो यति=त्याग भेषका चिह्न है । तथा गलेमें तुलसीकी

माला या कण्ठी=एक मणकारूप हीरा छातीकी तरफ लटकाकर पहिरना, सो दया रखनेका चिह्न है। इसलिये पारखी सन्त भी कण्ठी=एक मणकारूप हीरा सदा गलेमें पहने रहते हैं। काया, वाचा, और मनसे सर्व जीवोंपर पूर्ण दया रखकर निर्वैर रहनेका यह बाह्य चिह्न है। और जिसप्रकार राज-तिलक=ऊर्ध्व टीका लगाकर गद्दीमें बिठाकर राज्यका न्याय शासनका भार राजाओंको सौंपा जाता है। इसीप्रकारसे भेषमें भी चन्दनका खड़ा-सफेद तिलक पारखी सन्त नासिकाग्रसे शिरतक भाल या कपालमें लगाते हैं। सो सत्यन्यायसे यथार्थ निर्णयका ही उपदेश देते हैं। इसलिये उन्हें भूषणरूपमें खड़ा तिलक लगाना शोभा देता है। यह राजतिलक सत्यन्यायी पारखी सन्तोंका बहिरङ्ग चिह्न है। प्रत्यक्ष सद्गुण रहनी-रहस्य संयुक्त होनेसे उन्हें वे चिह्न सब भलीभाँति शोभा देते हैं ॥ १५० ॥

साखीः— महा दुष्ट जीवहिं ठगे ❀ भेष कपट किये काल ॥
[७६] भेष देखि निवृत्तिका ❀ अपनाये सो दयाल ॥ १५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोग महादुष्ट दुर्बुद्धि बने हैं। अनेकों तरहसे जीवोंको षट्दर्शन-छियान्नवे पाखण्डोंमें लगा करके ठगे और ठगकर सर्वस्व हरण कर रहे हैं। मनमें काला कपटका लक्ष्य रखकर कालने बाहर दिखानेको तो भेष खूब बनाया, उसीसे लोगोंको आकर्षण किया। वैरागी, संन्यासी, उदासी इत्यादि त्यागी भेष बना करके दिखलाया; किन्तु, कपटसे उसके विपरीत चला। ब्राह्मणलोग अन्यायी हुए, वैरागीलोग निर्दयी हुए और योगीलोग विषयी, भोगी हुए। इन्होंने भेषको दुषित (काला-मैला) कर दिया। तब सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने विवेक करके देखा कि, यह त्यागका भेष तो निवृत्तिमार्गका है। इसमें तो मुक्ति करने-करानेवालेका अधिकार है। ऐसा पारखदृष्टिसे देखकर आपने उसी त्याग भेषको ही ग्रहण करके अपना लिया। यानी अपने (स्वयं) ही सद्गुण सहित भेषको धारण कर लिया। इसलिये वे ही परम दयालु, सत्यन्यायी सच्चे त्यागी पारख प्रकाशी हुए हैं ॥ १५१ ॥

साखीः— भेष अमङ्गल नष्ट गुण ❀ जेते त्रिविधि फाँस ॥
[७७] अदल चलाई कालपर ❀ सो त्रिदोषहि नाश ॥ १५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! 'अमङ्गल भेष' कहिये जटाधारी, खाकी, काषायधारी, कनफट्टे, नागे, निर्वाणी इत्यादि षट् दर्शनोंके प्रचलित नाना तरहके बनावटी भेष, सो सब जीवोंके अकल्याण ही करनेवाले अहितकारी हैं। क्योंकि, उनमें सद्गुण तो कुछ भी नहीं है, दुर्गुणोंसे ही भरे पड़े हैं। अतः कालके भेष मुक्तिपदको नष्ट-भ्रष्ट करने वाले हैं। भक्ति, योग, ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान, तत्त्वमस्यादि जितने भी सिद्धान्त हैं, सो सूक्ष्म-स्थूल, काम, क्रोध, मोहादिके फन्दोंमें जीवको फँसाने वाले हैं। इसलिये बेपारखियोंके सब भेष बन्धनरूप ही हैं। सो काल, सन्धि, झाँई, त्रिदोष विकारोंको नाश करके पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कालके ऊपर अपना शासन सत्यन्यायकी अदल-हुकूमत, सत्य रहनीका भेष पारख सिद्धान्तको चलाये हैं ॥ १५२ ॥

साखीः— अदल चलाई सत्यका ❀ साहेब बन्दीछोर ॥
[७८] पारख छोरै जीवको ❀ यमके हाथ मरोर ॥ १५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! खानी-वाणीरूपी बन्धन महाजालोंसे जिज्ञासु नरजीवोंको छुड़ाकर मुक्त करनेवाले सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही एक प्रथम बन्दीछोर नामसे प्रख्यात हुए हैं। उन्हींने सत्यका अदल, न्याय-निर्णयका हुकूमत चलाया। तहाँ "जीव ही सत्य है; और माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या है"— इस न्याय-निर्णयका प्रचार किया। संसारमें सत्य पन्थको चलाया; इसलिये वे सर्वश्रेष्ठ साहेब बन्दीछोर कहलाये। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ही सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका भेद यथार्थ परखाकर कसर-खोट दिखलाकर यमरूपी नारी और गुरुवाओंका हाथ

मरोड़कर उनके घेराको छिन्न-भिन्न करके नरजीवोंको बन्धनोंसे छुड़ाया है। सो वही सद्गुरुका पारखबोध देकर अभी भी पारखी सन्त यमके हाथ मरोड़कर मुमुक्षु नरजीवोंको भव-बन्धनोंसे छुड़ा रहे हैं। पारखबोध ही मनुष्य जीवोंका बन्धन छुड़ा सकता है। इसलिये हे मुमुक्षुओ! तुम लोग पारखी सद्गुरुके पदको ही अपनाओ! ॥ १५३ ॥

साखीः— रीति प्रीति सोइ सत्य है ❀ सही सत्य सो भेष ॥
[७९] झूठेको शोभे नहीं ❀ निर्णय करिके देख ॥ १५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हंस रहनी-रहस्यके सद्गुण-लक्षणकी रीति, चाल-चलन होना चाहिये। पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्ग गुरुभक्तिमें सत्यप्रीति भाव होना चाहिये। सोई फिर सत्य स्वयं स्वरूपका पारखबोध पाते हैं। सत्यपदको प्राप्त करानेवाला ही गुरुपदकी रीति-प्रीति है; इसलिये वह भी सत्य है। निश्चय करके उन पारखी सद्गुरुका त्याग भेष भी सच्चा है। सत्यमें ही कायम करानेवाला सो भेषका शुद्ध रहनी सही है। अतएव सारग्राही सत्यन्यायी मुमुक्षुओंको ही वह सच्चा भेष शोभा देता है; और मनमति पाखण्डी, झूठे, कपटी गुरुवालोगोंको त्याग-वैराग्यका भेष कुछ शोभा नहीं देता है। सत्य निर्णय करके देखिये! उनमें भेषके जैसा गुण-लक्षण रहनी तो नहीं है; इसलिये झूठेका भेष भी झूठा है। गधेके शृङ्गार सरीखा बिना रहनीका भेष कुछ शोभा नहीं देता है, अतः रहनीके बिना तो भेष किसीको भी शोभा नहीं देता है ॥ १५४ ॥

साखीः— शीत प्रसाद क्षुधा हरै ❀ चरणोदक हरै प्यास ॥
[८०] बीरा पान दयालका ❀ मेटत यमके त्रास ॥ १५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! शीत=शीतल, शान्त करनेवाला पारखी सद्गुरुके कृपा-प्रसादसे प्राप्त सत्योपदेश पारखबोध जीवोंको तृप्त करके भूखरूप इच्छा ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, स्वर्गादि प्राप्तिकी, ऋद्धि-सिद्धि, कल्पना, अनुमान, धोखा, चार फल, चार मुक्तिकी समस्त आशाओंको हरण करके नाशकर देता है। और उनके कहे आचरणमें चलकर सत्य शिक्षारूप गुरुमुख वाणीके जलको पीनेसे प्यासरूप समस्त तृष्णा, स्त्री, पुत्र, धन, घर, कुटुम्ब वृद्धि, राजप्राप्ति, पञ्च-विषय भोगादिकी चाहनारूप तृष्णा हरण होकर मिट जाती है। और दयालु पारखी सद्गुरुके अमृतरूपी ज्ञान-गुणको प्राप्त करके पीनेसे या धारण करनेसे शूरता, वीरता, धीरता, गम्भीरतादि सद्गुण परिपुष्ट हो जाते हैं। यही सत्यरहनी, सत्यज्ञान, सद्गुण, सत्यन्याय, सत्यबोध यमके त्रासरूप गुरुवालोग और नारियोंके तथा मन-मानन्दीसे उत्पन्न जड़ाध्यास आवागमनादिके महाभयको मिटा देता है; जीवोंको निर्भय सुखी कर देता है। अतएव भक्ति अङ्गको स्थायी रखनेके लिये बाहर भी पारखी सद्गुरुके शीतप्रसाद वा महाप्रसाद, चरणामृत, और अन्य दिया हुआ फल-बतासा आदि प्रसाद सत्यप्रेमसे लेना और पाना चाहिये ॥ १५५ ॥

साखीः— बन्दे सन्मुख पारखी ❀ शीश भेंट धरु हाथ ॥
[८१] वचन उचारो बन्दगी ❀ सत्य प्रेमके साथ ॥ १५६ ॥

अर्थः— हे सन्तो! इस साखीमें श्रीरामरहससाहेबने अपने ऊपर तथा अन्य जिज्ञासु शिष्योंके ऊपर लक्ष्य देकर निज-पर दोनोंके प्रति कहनेका भाव व्यक्त किया है; ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— सत्यन्यायी, परोपकारी, जड़-चैतन्यादिके सब भेद, बन्धन-मुक्तिके हेतुको यथार्थ परखानेवाले त्यागी साधु, पारखी श्रीसद्गुरुदेवके सन्मुख या सामने जा करके दोनों हाथोंको मिला करके सम्पुट सरीखा पात्र बनाकर, उसीपर शिरको नवाते हुए रखकर तन, मन, धनादिकी मानन्दी अर्पणकर यही भेंटरूपमें चढ़ाकर अथवा यथाप्राप्त द्रव्य, पत्र, पुष्प, फलादि निवेदनकर, वस्तुओंके अभावमें शिरको ही भेंटरूपमें हाथोंमें रखकर, सत्यप्रेमसे

भक्ति-भावके साथ श्रद्धासे "साहेब बन्दगी ! साहेब बन्दगी !! साहेब बन्दगी !!!" कहकर ऐसे वचनका उच्चारण करते हुए "मैं साधुरूप श्रीसद्गुरुदेवको त्रयवार वन्दना करता हूँ ! अर्थात् साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामके समान ही मैं 'साहेब बन्दगी' करता हूँ !" और हे सन्तो ! हे भक्तो ! तुम लोग भी पारखी सद्गुरु वा सन्तोंके सन्मुखमें जाकर ऐसी ही रीतिसे वन्दना करो ! जिज्ञासुओंको याद रहे कि, सर्वदा ऐसी ही रीतिसे साधु-गुरुकी वन्दना करनी चाहिये। सन्मुखमें पारखी साधु-गुरु हों, तो उक्त प्रकारसे ही वन्दना करे, यदि साधु-गुरु सन्मुखमें न हों, तो उनके उपकारकी स्मृतिकर स्तुति, प्रार्थना, सन्ध्यापाठादि विनय उच्चारण मात्र ही किया करे। सद्गुरुकी भक्ति ही मुक्तिका एक बलिष्ठ साधन है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १५६ ॥

साखीः— दया दयाल पारख लहै ❀ सुधरै सब भ्रम जाल ॥
[८२] अदल चलै तब सत्यका ❀ शिर धुनि रोवै काल ॥ १५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे दयालु परम पारखी सद्गुरुकी दयादृष्टिसे जब पारख बोधकी प्राप्ति हो जाती है, तब सब भ्रम, मानन्दी, धोखेका जाल, खानी-वाणीके प्रपञ्चोंसे छूट करके मनुष्योंका नरजीवन सुधर जाता है। फिर तो सब भ्रम जालोंसे अलग हो जाते हैं। 'निजदया' और 'परदया' को धारण करके सुखी हो जाते हैं। तब तो सत्यन्यायी सद्गुरुके ही अदलरूप शासन, कायदा, कानून, हुकूमत उपदेशके मुताविक जिज्ञासुलोग चलने लग जाते हैं। तो सत्यके ही रहनी-रहस्य संयुक्त हंसकी चालसे चलनेपर जीव काल-जालोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। ऐसा देखकर अपनी शक्तिरूप पराक्रम व्यर्थ गया जानकर कालरूप स्त्रियाँ और गुरुवालोग-" हाय ! यह पुरुष हमारे बन्धनके घेरासे निकल गया ! क्या करें ? कुछ वश चलता ही नहीं है।" ऐसा कह-कह कर शिर पीट-पीटकर रोते, चिल्लाते, कलपते, पछताते, पुकारते, शिर धुन-धुन कर रह जाते हैं॥१५७॥

साखीः— प्रथमें शब्द सुधारिके ❀ टारै त्रिविधि जाल ॥
[८३] झाँईं मेटत सन्धिको ❀ ऐसो शरण दयाल ॥ १५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो जिज्ञासु मनुष्य पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आते हैं, उन्हें सर्व प्रथम मनुष्य गुण-लक्षणोंको समझाकर षट् पशु धर्म, शब्द-स्पर्शादि पञ्चविषयोंको सुधार करनेकी शिक्षा सद्गुरु देते हैं। फिर वाणी जालोंको परखा देते हैं। तहाँ ॐकार ब्रह्म, वेदादिकी शब्द-कल्पनाको त्यागकर समझको सुधारनेको बतलाते हैं। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत; कर्म, उपासना, योग; काम, क्रोध, मोह— इन त्रिविधि जालोंको टारकर विनष्ट वा ध्वंस कर देते हैं। और झाँईं=ब्रह्म-भ्रमकी गाफिलीको भी मिटा देते हैं। ईश्वर कर्त्ताकी मानन्दीरूप सन्धि, तथा सन्देहको भी चूर्ण-चूर्ण करके उड़ा देते हैं। और पारख स्वरूपकी स्थितिमें कायम करा देते हैं। परम दयालु पारखी सद्गुरुकी शरणागत होनेका फल ऐसे महान लाभको देनेवाला, जीवन्मुक्तिमें पहुँचाने वाला होता है ॥ १५८ ॥

साखीः— पारख गुरु सुख बास है ❀ जहाँ न फन्दा काल ॥
[८४] सो बिनु जीव विनाश है ❀ चौरासीके जाल ॥ १५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरुके पारखबोधको प्राप्त करनेपर मनुष्य जीव निश्चल होकर सुखमें निवास करता है। पारखी सद्गुरु तो निज स्थितिमें शान्त, सुखी, वासनासे रहित जीवन्मुक्तपदपर रहते हैं। जहाँपर कोई कालके फन्दोंकी पहुँच ही नहीं होती है; तहाँ पहुँच जानेपर मुमुक्षु नरजीव गुरुपारखकी भूमिकामें ठहरे रहते हैं। फिर काल=नारी और गुरुवाओंकी विषय-कल्पनादिका फन्दा उसे नहीं लग सकता है। सो पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गको पाये बिना नरजीवोंकी आयु, बुद्धि, बलादिका विनाश हो रहा है। स्त्री और गुरुवाओंके अधीन होकर

नष्ट-भ्रष्ट एवं पतित हुए और हो रहे हैं। खानी-वाणीके जाल वासनामें बँधे हुए चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं। चौरासी योनियोंके जालोंमें ही वे सब अरुझे पड़े हैं, बिना विचार ॥ १५९ ॥

साखीः— साहेब साँचा पाइके * नहिं कीन्हों दृढ़ नेह ॥
[८५] काल फन्द भुगतै सोई * चौरासीके खेह ॥ १६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! ऐसा सर्वोत्तम श्रेष्ठ नरदेह बड़े भाग्यसे पाये हो ! और सत्यन्यायी सच्चे साहेब पारखी सद्गुरुके दर्शन उपदेश श्रवण करनेका थोड़ा-बहुत अवसर तुममेंसे कितने लोगोंको मिला ही होगा। यदि किसीको न मिला हो, तो प्रयत्न करो, अवश्य मिलेगा। परन्तु, चूक तो तुम्हारी यही हो जाती है कि, सच्चे पारख बोधदाता सद्गुरु साहेबके दर्शन पाकर भी उनके सत्सङ्ग श्रवण-मनन करनेमें दृढ़तासे सत्य श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, नेह या प्रेम-प्रीति तुमने नहीं किया, अथवा तुम करते ही नहीं हो। इसीसे बड़े ही अभागी हो रहे हो ! और सोई दुष्टोंका सङ्ग करके दुष्ट, अपराधी, पापी एवं दुराचारी हो जाते हैं। जड़देह नाशवान् होनेसे एक दिन छूट जाता है। सो जीव कालके फन्दारूप विषयाध्यास, जड़ासक्तिमें बद्ध होकर चारखानी चौरासी योनियोंमें त्रिविधि तापादि अनेक असह्य दुःख भोगते रहते हैं; आवागमन चक्रमें ही बारम्बार पड़े रहते हैं ॥ १६० ॥

साखीः— नारी पुरुषके भाव तजि * साहेब साँचा सेइये ॥
[८६] लाज कपट सब छाड़िके * अभय परमपद पाइये ॥ १६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— इसकारणसे हे मुमुक्षु मनुष्यो ! जड़ देहकी विषय आसक्ति, स्त्री-पुरुषकी विकारी कुभावना, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि कुवृत्तियोंको छोड़कर निज कल्याण वा मुक्तिके वास्ते सच्चे दिलसे श्रद्धा-भक्ति सहित सत्यबोधदाता पारखी सद्गुरु साहेबका सेवा-सत्कार निष्कपट होकर करिये ! सेवा, टहल, बन्दगी किया करिये ! सत्सङ्ग करनेमें, प्रश्नोत्तर कहने-सुननेमें व्यर्थकी लाज-शरम न करिये ! और कपट, छल-छिद्र, चुगली, निन्दादि सब विकारोंको छोड़ दीजिये ! इसप्रकार सत्सङ्ग, सेवा, भक्ति किया करिये ! और "ईश्वर एक पुरुष हैं; भक्तजन सब नारी हैं" ऐसी कल्पित भावना गुरुवालोगोंने की है। इस भ्रम दुर्भावनाको भी छोड़कर विवेक करो ! और सत्य चैतन्य निजपद पारखपदपर ठहरो ! तब सब मिथ्या भयसे छूटकर अभय, परमपद स्वरूप स्थिति जीवन्मुक्तपदको भी पाओगे। इसीको प्राप्त करना ही मनुष्योंका मुख्य परम कर्त्तव्य है, सो जानिये ! ऐसे परमपदको पा जाइये ॥ १६१ ॥

साखीः— जो रहस्य युत पारखी * साहेब साँचा सोय ॥
[८७] तरे तारे भवजाल सोई * काल देखि रहै रोय ॥ १६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई साधु सद्रहस्य स्वरूपके यथार्थ मर्म या भेदको भलीभाँतिसे जानकर अपरोक्ष पारखबोधको प्राप्त कर लेते हैं, सो सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़ वैराग्य, ऐसे सद्गुण रहनी-रहस्यके सहित रहते हैं। सो सर्वके परीक्षक सच्चे पारखी होते हैं। सोई सत्यपारख बोधदाता सच्चे सद्गुरु श्रेष्ठ "साहेब" होते हैं। सो उन्हें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायीके रूपमें ही जानना और श्रेष्ठ मानना चाहिये। अपरोक्ष पारखनिष्ठको शास्त्र ज्ञान हो या न हो, उससे उन्हें कोई मतलब नहीं रहता है। यहाँपर रहस्यका तात्पर्य सत्स्वरूप पारखका भेद वा बोध प्राप्त करना ही है, ऐसा जानिये ! सो पारखी सद्गुरु स्वयं जीवन्मुक्त होकर खानी-वाणीरूप भवसागरसे पार उतरे हुए हैं, और शरणागत मुमुक्षुओंको भी सत्यासत्यका भेद परखाकर भव जालोंसे छुड़ाकर पार उतार देते हैं; सोई जीवन्मुक्त स्थितिमें पहुँचा देते हैं। ऐसा उनका परम पराक्रम देखकर उनकी पारख ज्ञानरूप शक्तिके आगे हार मानकर काल=स्त्री और गुरुवालोग रो-रोकर पछता करके विलाप कर रहे हैं। "हाय ! हाय ! इसने

तो इन पुरुषोंको हमारे जालोंसे छुड़ा दिया, अब हम क्या करें?" ऐसा कह-कहकर रो रहे हैं ॥१६२॥

साखीः— दृढ़ पारख जे जन भये ❀ काल फन्द सब देख ॥
[८८] सत्य स्वरूप सोई सदा ❀ रीति सत्य सत भेष ॥ १६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो मुमुक्षुजन पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर पारखबोधको दृढ़ करके पारखनिष्ठ हुए या ऐसे होते हैं, सो काल = गुरुवालोगोंकी वाणी-कल्पनाके फन्दारूप ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि, धोखाको परखकर देखते हैं, तो सब झूठा ही दिखाई देता है। और स्त्रीका विषय फन्दा भी सब विकारी बन्धन ही देखकर त्याग देते हैं। सोई विवेकी पुरुष सदा निज सत्य चैतन्य स्वरूपमें स्थिर हो रहते हैं। उनकी चाल, रीति-रिवाज हंसवत् सारग्राही रहती है। वे सत्यकी रीतिमें रहते हैं; इसलिये उनके त्याग भेष भी सच्चे हैं। वे साधु सत्य भेष सद्गुणधारी होते हैं। उस रीतिसे जो चलते हैं, वे नरजीव मुक्त हो जाते हैं ॥ १६३ ॥

साखीः— धन्य ! धन्य ! सो जीव है ❀ काल जाल सब टाल ॥
[८९] झाँई सन्धि मिटावहीं ❀ नजरे नजर निहाल ॥ १६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई परम पुरुषार्थी सत्यन्यायी नरजीवको बारम्बार अनन्तबार धन्य ! धन्य है ! पुनः पुनः धन्यवाद है ! जिन्होंने यथार्थ रीतिसे सत्य-असत्य, सार-असार जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिको निर्णय द्वारा परख करके काल = कल्पना, अनुमान, भ्रम, धोखा, गुरुवालोग और स्त्रीकी वाणी तथा विषय सम्बन्धी समस्त मोटी-झीनी मायाके जालोंको टाल दिये हैं; यानी सब जालोंको विध्वंस कर दिये हैं। और झाँई = व्यापक ब्रह्मपदकी गाफिली, भूल, तथा सन्धि = ईश्वर कर्त्ताकी मिथ्या मानन्दी, इन दोनोंको भी समूल मिटा करके नष्ट कर दिये हैं। अतएव वे सत्यन्यायी पारखी नजरे = कभी न जरनेवाला अजर, अमर, अखण्ड, अविनाशी जीवको जानकर फिर उस पर नजर रख करके पारखरूप दिव्यदृष्टिमें स्थिति कायम करके सदाके लिये निहाल = परमसुखी जीवन्मुक्त हो जाते हैं या ऐसा निहाल कर देते हैं। पारखबोधमें जो टिके रहे, सो जीव सदाके लिये सुखी या मुक्त हुए, ऐसा जानिये ! ॥ १६४ ॥

॥ ❀ ॥ सत्य निर्णयका शब्द ॥ भाग— २ ॥ ❀ ॥

१. सन्तो ! ठहरिके करहु विचार ❀ ठौर निज सुखदाई ॥ १६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मुमुक्षु सन्तो ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर यथार्थ सत्यनिर्णयसे जड़-चैतन्य, सत्यासत्य आदिका भलीभाँतिसे विचार-विवेक करो ! "विचारंपरमं ज्ञानं" ऐसा कहा है, तो विचार करनेसे ही परम पारखका ज्ञान तुम्हें प्राप्त होगा। हानि-लाभ मालूम पड़ेगा। इससे सदा गुरु-विचारको धारण किया करो। निज पारखपद स्व-स्वरूपकी स्थिति-ठौर ही एक मात्र सुखदायी है; और पारखी सद्गुरु उसी ठौर-स्थितिमें जीवोंको पहुँचाकर सुख देनेवाले हैं। पारख स्वरूपकी स्थिति ही मुक्ति सुखदायी, कल्याणदायी है। अतएव दृढ़ प्रयत्न करके भी उस ठौरको प्राप्त करना चाहिये ॥ १६५ ॥

२. बिना विचार सकल जग जहँड़े ❀ स्थिति कहु कौन कहाँ पाई ? ॥ १६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारी सकल विषयीलोग तथा भ्रमिक गुरुवालोग ये सब तो गुरुपारखके विचार किये बिना जड़ासक्त गाफिल हो कर जगत् जालोंमें ही जहँड़े, अर्थात् बद्ध हुए। मनमाने कल्पना-धोखा, विषय-भोगादिमें पड़कर समस्त मनुष्य जीव विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिके जड़ाध्यासी हो, उन प्रपञ्चोंमें ही नाना तरहसे फँसे। चौरासी योनियोंमें आवागमनके चक्रमें जा पड़े और पड़ रहे हैं। अब कहो तो भला ! भ्रमिक कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी, तथा विषयी लोगोंने कहाँ, कौन, किसने पारखस्थिति और गति-मुक्ति पाई है ! सबकी मानन्दीका

सिद्धान्त तो ग्रन्थोंमें लिखा ही हुआ है, तो भी यदि तुम गुरुवालोगोंमें स्थिति पाये हुए किसीको मानते हो, तो उनका नाम कहो, फिर मैं तुम्हें उनका हाल यथार्थ निर्णय करके दर्शाऊँगा। बिना पारख किसीको भी स्वरूप स्थिति नहीं हुई तथा हो भी नहीं सकती है ॥ १६६ ॥

३. माथे व्याप सन्धिके घेरा * विष बौराने समुदाई ॥ १६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वे क्या मानते थे, सो बात तो वेद-शास्त्रोंमें लिखी हुई जाहिर ही है। सो देखिये ! ब्रह्मादिसे लेकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हुए; उन्होंने सर्वोपरि परिपूर्ण व्यापक कोई एक ब्रह्मको ही मानकर उस कल्पनाको सबोंने माथेपर या शिरपर रक्खे या शिरपर चढ़ाये। उसी ब्रह्म-ईश्वरादिको जगत्कर्त्ता मानन्दी कर-कराके उस सन्धिके घेरारूप वाणी जालमें अपने घिरे और दूसरोंको भी घेर लिये; घेरामें डाल दिये। कल्पना, अनुमान, धोखा, विषयादि हलाहल विषपान करके सब मानव समुदाय या नर समूह अनन्त जीव समूह बौराकर पागल वा भ्रमिक हो गये। कोई विषय भोगोंको और कोई योग वा ब्रह्मानन्दादिको सच्चा मान-मानकर दिवाने जड़ासक्त हुए। पशुवत् कर्म करने लगे; अभी वैसे ही विष खाकर मनुष्य बौरा रहे हैं, बिना पारख ॥ १६७ ॥

४. ज्ञानी भक्त योगी कहलावै * मर्म महातम भरमाई ॥ १६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानीमें सनकादि, दत्तात्रेय, शुकदेव, वामदेवादि ब्रह्मज्ञानी हुए। भक्तमें नारद, हनुमान, मोरध्वज, अम्बरीष आदि हुए हैं। योगीमें शिव, गोरखनाथादि नवनाथ हुए; ये लोग बड़े सिद्ध कहलाये। उनके अनुयायियोंने उनकी महिमा बहुत कर रक्खी है। परन्तु, उन्होंने भी पारखका भेद नहीं पाया। इसीसे भ्रमिक होकर ब्रह्म-ईश्वरादिकी महिमा, भक्ति, योग, ज्ञानका महात्म्य बढ़ा करके मनुष्योंको भ्रमा दिया। ईश्वर प्राप्तिके लिये नवधाभक्ति, सगुण-निर्गुण ध्यान, मानसिक पूजादि भक्त लोग करने लगे। अष्टाङ्ग योग, शून्य-समाधिमें ज्योति स्वरूप ईश्वरके दर्शनके लिये योगी लोग लगे। और "अहं ब्रह्मास्मि" अद्वैत सिद्धान्तको ज्ञानीलोगोंने दृढ़ किया। इसी धोखेके मर्मसे महात्म्य बढ़ा-बढ़ाकर लोगोंको भ्रमा दिये और भ्रमा रहे हैं ॥ १६८ ॥

५. त्रिदेवा अधिकारि जगतके * त्रिविधि भेष मन कुटिलाई ॥ १६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, ये त्रिदेव विशेष करके जगत्में भक्ति, योग, तथा ज्ञानमार्गके अधिकारी, प्रमुख, श्रेष्ठ कहलाने वाले गुरुवा हुए। जगत्के त्रिगुणी मनुष्योंको अधिकारके मुताबिक ज्ञान या कर्ममार्गका उपदेश ब्रह्माने दिया। भक्तिमार्गको विष्णुने कहा, योगमार्गका उपदेश महेशने दिया। इसलिये जगत्के लोगोंने इन्हें ही कर्त्ता, धर्ता, हर्ता मान लिया है। उन्होंने ही मनमें कुटिलता वा कपट रखकर नरजीवोंको फँसानेके लिये त्रिविधि भेष निकाला तथा प्रचार किया है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और संन्यासीका परमहंस भेष ब्रह्मासे चला है। वैरागी, भक्त, उपासकोंका भेष विष्णुसे चला है। योगी, नाथ, निर्वाणी, नागे, दिगम्बरी, अथवा संन्यासीका भी भेष महादेवसे चला है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, ये तीन सिद्धान्त उन्होंने ही कायम किया था। अच्छा भेष दिखा करके लोगोंके तन, मन, धनादि ठगकर, धोखेमें डाल दिया था; ये कुटिलाई उनमें भरी पड़ी थी। अभी ऐसी ही कुटिलाई, ठगाई, कल्पना गुरुवाओं-में भरी-पड़ी है ॥ १६९ ॥

६. चीन्ह न परी घात मनुवाके * मृतुक भये नर बौराई ॥ १७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इन ठग गुरुवालोगोंके घात, दाव, पेंच, ताके बेपारखी मनुष्योंको कुछ भी नहीं चीन्ह पड़ा, पहिचाननेमें नहीं आया। इसीसे जैसे-जैसे उन्होंने बतलाया, तैसे-तैसे चलकर मनुष्यपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये। कल्पना-विषयादिमें ही उलट-पलटकर अरुझे, निजपदसे गिर पड़े। उज्ज्वल भेष देखकर ही भूल गये। अतएव ऐसे नरजीव बौराकर मृतक हुए;

यानी विचार-बुद्धिको नष्ट-भ्रष्ट करके पागल हुए। जड़ाध्यासी भ्रमिक होकर बौराये, तो बकवाद करके बकने-झकने लगे। जीते तक दिवाने होकर रहे। फिर मरनेपर जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें जाकर कर्म फल दुःख भोग करके दुःखी हो गये वा दुःखी हो रहे हैं॥ १७०॥

७. निर्णय तिलक लिलाट विराजै * राज काज विधि युक्ताई ॥ १७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अब शुरूसे ही चले हुए उनके कपट जालोंके बारेमें सुनिये! ललाट या मस्तकमें ऊर्ध्व पुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, बिन्दी, चपटा, लम्बा, तिरछा, ऐसे भिन्न-भिन्न आकारमें भस्म तथा चन्दनादिके तिलक लगाकर न्यायकर्त्ता बनकर आसन, गद्दीपर जाकर विराजमान हुए; ऊपरकी सजावटसे तो ऐसे दिखाई देते हैं कि, ये निर्णय-न्याय करनेवाले होंगे। परन्तु, भीतर उनमें कपट भरा है। कोई बातका यथार्थ निर्णय, सत्यासत्यका विचार वे कुछ भी करते ही नहीं हैं। गोलमाल करके छोड़ देते हैं। यही तो ब्रह्माने किया। युक्तिपूर्वक संसारमें राज्य शासन करनेके लिये कर्मकाण्डका नाना काज=कार्य वा कर्म ही विधि-विधानसे चलाया, सो अभी ब्राह्मण लोग वैसे ही स्वयं चलकर दूसरोंको भी उसी प्रकार चला रहे हैं॥ १७१॥

८. सो परपञ्च विदित है जगमें * जहँड़े औरन जहँड़ाई ॥ १७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो ब्रह्मा एक समयमें कामान्ध-मूढ़ होकर अपनी ही पुत्री सरस्वतीके साथ विषय भोगके कुकर्म करनेमें फँस गया था। उस कलङ्कको छिपानेके लिये जगत्में अनेक प्रकारके कर्म मार्गकी साधना वाणी प्रपञ्च पाखण्डका विस्तार किया। सो वेदादि वाणीका पसारा और उनका चरित्र पुराणोंसे जगत्में जाहिर वा प्रख्यात ही हुआ है। जिसको ब्रह्मा वा विधाता कहते हैं, वही ऐसे अनुचित विषयादि कर्म-कुकर्ममें भूलकर स्वयं ही जड़ासक्त बद्ध हुआ था; और भी अनेक लोगोंको भ्रमाकर कर्म-जालोंमें ही जहँड़ाकर बद्ध कर चौरासी योनिगामी कर दिया। सो अभी ब्राह्मण लोग ऐसे ही अपने जहँड़ाकर दूसरोंको भी जहँड़ा रहे हैं॥१७२॥

९. विष्णु दयाके रूप कहावैं * कण्ठी कण्ठे दिखलाई ॥ १७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! दूसरे भाई विष्णु तो दयाके रूप बनानेसे दयालु ही कहलाते थे; दयाधारी जैसा ही भेष, स्वाङ्ग भी बनाये थे। गलेमें कण्ठी=तुलसीकी माला पहनकर यह दिखलाते थे कि— "हम अहिंसक, दया व्रतधारी, दयालु हैं!" यही लक्षण वैरागी भक्तलोग भी अभी दिखला रहे हैं कि, "हम कण्ठी पहनकर दया रखते हैं" ऐसा वे लोग कहते हैं॥१७३॥

१०. जत्त सत्त सब टार बहाई * विषय विकार सो कुशलाई ॥ १७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो विष्णुका भी चरित्र पुराणोंमें जाहिर करके लिखा है। आदिनारायणादि नामोंसे विष्णुकी महिमा प्रगट करके भक्तोंने संसारमें विख्यात किया है। उन्हीं-का चौबीस अवतारके रूपमें प्रगट होनेकी कल्पना की है। विचार करके देखिये! तो दयाका कोई अङ्ग भी विष्णुमें पाया नहीं जाता है या दिखाई नहीं देता है। विषय भोग बैर-विरोधमें ही उनकी कुशलाई दिखती है। क्योंकि, पतिव्रता वृन्दाको छलकर उसका सत्य हरण करके विष्णुने विषय भोग किया। अनेकों लोगोंको दैत्य-विरोधी, मानकर बैर-विरोध होनेसे घातकर मार गिराया। और कृष्णादिमें तो विषय भोग, बैर-विरोध, युद्ध कर्म, कुसङ्गकी बहुत ही विशेषता रही। भोग, हिंसा, घात, स्वार्थसिद्धि आदि करनेमें ही उनकी कुशलाई, चतुराई, धूर्ताई ज्यादा रही। रञ्चकमात्र भी दयाका पालन उनसे नहीं हुआ। और जत्त=यति, त्यागी, वैरागीको कहते हैं। सत्त=सत्यवादी, सती, सच्चेको कहते हैं। सो जत्त-सत्त उन्होंने दोनोंको ही टारकर वा मिटाकर, नाशकर बहा दिया। विषय विकारमें पड़नेसे उनकी सच्ची कुशलाई, कल्याण नहीं हुआ; जड़ाध्यासी होकर बद्ध ही हुए॥१७४॥

११. यतिके डिम्भ जो हरको देखा * कामारी दृढ़ फैलाई ॥ १७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अब तीसरे छोटे भाई महादेवका भी हाल देख सुन

लीजिये ! महेश बड़े दम्भी अहङ्कारी थे। यति कहते हैं त्यागी साधुको, सो महादेवने बाहर तो परमत्यागी जैसा स्वाङ्ग बना करके दम्भसे कौपीन धारण करके दिखलाया था। वे नकल तो लङ्गोटबन्द योगीका करते वा दिखलाते थे; और "कामके पक्के शत्रु या कामको जीतनेवाले ऐसे कामारी, शिव हैं !" उनके भक्तोंने ऐसे दृढ़ा करके झूठी ही महिमा फैला दिया है ॥ १७५ ॥

१२. खुली काँछ कामके माते * कहत न लागै सकुचाई ॥ १७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पुराणोंमें तो लिखा है कि, दक्षप्रजापतिकी पुत्री सतीदेवी महादेवकी प्रथम पत्नी रही। जब वह मरी, तो मोहसे मूढ़ होकर उसकी लाशको कन्धेपर उठाकर पागलकी नाईं भटकते फिरे। फिर पीछे पार्वतीसे विवाह किया। और एक समयमें साथमें पार्वती रहते हुए भी मोहिनीके सुन्दर कपटरूपको देखकर महेश विशेष मोहित हुए, तब कामासक्त मदोन्मत्त होकर लङ्गोटी खोलकर उसके पीछे दौड़ पड़े। वह भाग गयी, हाथमें नहीं आयी, तो रास्तामें ही वीर्य पतन करके परम दुःखी हुए, इत्यादि पशुवत् निर्लज्ज, व्यभिचारी काममें उन्मत्त रहते रहे। साथमें पार्वती स्त्री रहते हुए भी व्यभिचारमें रत, कामासक्त ऐसे कुकर्मीको त्यागी, कामारी, योगी तथा ज्ञानी कहनेमें झूठ ही महिमा बढ़ानेमें इन शिव भक्तोंको कुछ सङ्कोच, लज्जा-शरम भी नहीं लगती है; जैसा उनका देव तैसा भक्त भी मूढ़ निर्लज्ज ही बने हैं ॥ १७६ ॥

१३. जैसा कहै करै तैसा जो * सत्य शब्दसों अटलाई ॥ १७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! जैसा मुखसे कहना, तैसा ही कर्त्तव्यसे भी करना चाहिये। तभी प्रमाण करके मानने योग्य होता है। उन ब्रह्मादिकोंने तो जैसा कहा, वैसा नहीं किया, इससे वे गुरुवा ठग, काल बने थे। अतएव उन लोगोंके पक्षको छोड़ देना चाहिये। और गुरुमुखसे जैसा पारखी साधु-गुरु निर्णय करके कहते हैं, वैसे सत्यन्यायसे अपना सुधार कर लेना चाहिये। जैसा कहो, वैसे ही करो वा करके भी दिखलाओ, जिससे कल्याणपदको पाओगे ! जीवका सत्य स्वरूप लखानेवाला निर्णयकी वाणी सोई सत्य शब्द है। उसी गुरुमुख सारशब्दसे -"मैं जीव ही सत्य हूँ" ऐसा जान-समझकर हंस रहनी पारख रहस्य संयुक्त होकर निजस्वरूपमें ही दृढ़ तथा अटल-अचल होना चाहिये। सो सत्य शब्दके श्रवण-मननसे ही अटलाई = स्थिरता होती है ॥ १७७ ॥

१४. फन्दा टूटै तब जीव छूटै * बिन गुरु जाल न दरशाई ॥ १७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब संसारमें खानी-वाणी जालोंका महा फन्दा छिन्न-भिन्न होकर टूट जायगा, तभी जीव भव-बन्धन आवागमनसे छूट कर जीवन्मुक्त हो जायगा। परन्तु, सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु मिले बिना, यह भव-जाल आप ही देखनेमें नहीं आता है। शरणागत नरजीवको जब कृपा करके सद्गुरु पारख परखा देते हैं, तब ही मोटी-झीनी मायाका सब जाल बन्धनके रूपमें देखनेमें आ सकता है ॥ १७८ ॥

१५. सन्त सदा सोई परमाणिक * जिन निज घरकी सुधि पाई ॥ १७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे साधक सन्तो ! पारखबोधदाता, भ्रम निवारण करनेवाले, वे ही परमपूज्य मान्य पारखी सन्त हैं। उनके सत्य उपदेशको ही प्रमाण करके मानना चाहिये। सोई गुरुबोधको लेकर सदा-सर्वदा विवेक किया करो। मन-इन्द्रियादिके विकारोंको हटाकर शान्त, स्थिर करो ! जिन्होंने अपना घर या स्थिति, निजस्वरूप पारख, अखण्ड चैतन्यपदका पता पा गये हैं, सोई सब दुःखोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। वे सब मन-मायाके प्रपञ्चोंसे न्यारे होकर सद्गुण-लक्षण सहित जीवन्मुक्त स्थिति करने-करानेवाले होते हैं। इसलिये उन्हींके वचनोंको सत्य प्रमाण मानना चाहिये ॥ १७९ ॥

१६. कहहिं कबीर चेत नर बौरे ! * हो हुशियार दुःख बिलगाई ॥ १८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता बतलाते हैं कि— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ऐसा कहकर परखाया है—

हे नर ! तुम क्यों बौरे = दिवाने सरीखे होते हो ? इस उत्तम नरतनरूप कर्म-भूमिकामें आये हो, तो चेत क्यों नहीं करते हो ? अभी भी मैं कहता हूँ कि, तुम चेत करो ! सारासारको लखो ! बन्धन-मुक्तिके भेदको पहिचानो ! चेत करके सावधान या हुशियार हो जाओ । तुम्हारे पीछे बहुतसे चोर-लुटेरे ठगोंका घेरा पड़ा है । स्त्री और गुरुवालोग ये ही दुःखदायी काल हैं । इनमें कभी मत् भूलो ! खानी-वाणीकी आसक्ति तथा जड़ाध्यास, यही चौरासी योनियोंके आवागमनमें ले जाकर दुःख भोगानेके कारण हैं । उससे जीवको न्यारा या अलग करके पारख स्वरूपपर ठहरे रहो ! तभी सब दुःखोंसे छूटकर सुखी जीवन्मुक्त हो जाओगे । अतएव दुःखको बिलगाकर हुशियार हो जाओ !॥१८०॥

साखीः— साधु साधु सबहीं बड़े ❀ अपनी अपनी ठौर ॥
[९०] शब्द विवेकी पारखी ❀ ते माथेके मौर ॥ १८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! योगी, जङ्गम, जैन, संन्यासी, परमहंस, फकीर, ब्रह्मचारी, उदासी, वैरागी, भक्त, नागे, निर्वाणी, नाथ, निरञ्जनी, बौद्ध भिक्षु आदि, ये सब षड्दर्शनोंके साधु सब ही अपने-अपने मत, मान-मर्यादा, विभिन्न सिद्धान्त, मठ-मन्दिरोंमें बड़े, अपने अनुयायियोंमें श्रेष्ठ बने हैं; यानी बड़े कहलाते हैं । वे सब कोई भी साधु ही कहलाते हैं । अपने-अपने ठिकानेमें बड़े भी माने जाते हैं । परन्तु, यथार्थ सत्य निर्णय करके देखिये ! तो उन किसीको भी पारख बोध नहीं हुआ । जगत्कर्त्ता कोई ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदि मानकर जड़तत्त्वोंके भास, अध्यास, शून्य, धोखेमें ही भूले पड़े हैं । कोई बिरले ही शब्द विवेकी साधु पारखी होते हैं । जो काल, सन्धि, झाँई, तत्त्वमस्यादि वाणी जाल, जीव, माया, ब्रह्ममुख शब्दके कसर-खोटोंको गुरुमुख सारशब्दसे विवेक करके निर्णयकर हंसवत् सारको ग्रहण और असारको त्याग कर देते हैं । जड़ाध्यास मानन्दीसे रहित निज चैतन्य स्व-स्वरूपनिष्ठ जीवन्मुक्त स्थितिमें पारखी सन्त रहते हैं । वे ही शिरके मुकुट, ताजके समान उन सब साधुओंसे बड़े सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्चपद प्राप्त शिरमौर सद्गुरु बन्दीछोर परमपूज्य हैं । उनकी ही शरण-ग्रहण करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है ॥ १८१ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग-२ ॥ [चौपाई-११ । साखी-४ । लगनियाँ ४ है] ॥ ❀ ॥

१. बन्दीछोर शरण सुखदाता ❀ मेटनहार मोह जिव त्राता ॥ १८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ही सत्य चैतन्य पारख बोधको देकर खानी-वाणीके समस्त बन्धनोंको एक-एक करके लखाकर शरणागत नरजीवोंके सब भव-बन्धनोंको छुड़ाकर सुखी कर दिये ! वर्तमानमें भी आप सद्गुरुके अनुयायी पारखबोधदाता पारखी साधु-गुरु बन्दीछोर हैं । जो उनकी शरणमें जाते हैं, उन जिज्ञासुओंके सकल भ्रम, कल्पना, धोखा जनित दुखोंको नाश करके पारख बोध देकर सुखी कर देते हैं; वे ही मुक्ति सुखके दाता हैं । संसारमें स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादिका मोह तथा देवी, देवता, अवतारी, स्वर्गादिका मोह एवं ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कर्त्ता कल्पनाका महामोह तमरूप अन्धकार, भ्रम, आसक्तिको पारखबोध प्रकाशकर मिटानेवाले बन्धनोंको हरण कर शरणागत नरजीवोंको भवसागरसे पार उतारनेवाले, रक्षक सुखदायी, ऐसे पारखी सद्गुरु बन्दीछोर हैं ॥ १८२ ॥

२. महाकठिन यम जाल मिटाई ❀ अपनाये न तो जात नशाई ॥ १८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने तथा आपके अनुयायी पारखनिष्ठ साधु सद्गुरुने छूटनेको अत्यन्त कठिन जबर्दस्त मजबूत यम जाल महामोहादि स्त्रीका विषय जाल तथा ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पित भक्ति, योग, ज्ञानादि गुरुवालोगोंकी वाणी भ्रम जालोंको अपने गुरुबलसे मिटाकर जिज्ञासु नरजीवोंको शरणमें लेकर अपनाये, अपने सरीखे निर्बन्ध किये वा करा दिये । यदि सद्गुरुकी ऐसी महान दयादृष्टि न होती, तब तो हमारा जीवन नष्ट ही हो जाता । जीव मनुष्यपदसे नष्ट-भ्रष्ट होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही चले जाते । परम दयालु प्रभुने मुझे और बहुतोंको

बचा लिये; सद्गुरुकी दयासे ही सब काल-जालोंकी भयङ्करता देखनेमें आई ॥ १८३ ॥

३. परवश काल जीव सब रोवैं ❀ दुस्सह दरेर दुःख जीवन खोवैं ॥ १८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देखिये ! पारख गुरुबोध न होनेसे सब मनुष्य जीव काल=मन-मानन्दी, नारी और गुरुवाओंकी कल्पना और विषयोंके वश विवश, लाचार, परवश होकर दुस्सह दुःख पाकर व्याकुल होकर रो रहे हैं, विलाप कर रहे हैं। परिवार पालनेके लिये सहनेको कठिन ऐसी ठण्ढी-गर्मी आदिमें असह्य मिहनत, मजदूरी आदिके दुःख भोगकर व्यर्थ ही आयुको खो रहे हैं। और ईश्वर, देवता, स्वर्गादि प्राप्तिकी कल्पनासे पञ्चाग्नि, जलशयन, उर्ध्वबाहु, तप, व्रत, उपवास आदि अनेक कर्मोंके दरेरमें पीसे जाकर असह्य दुःख भोगकर नर जन्मको व्यर्थ ही बर्बाद करके खो देते हैं; ऐसे अमूल्य जीवनको नाहक खो दिये या खो रहे हैं ॥ १८४ ॥

४. आपु अव्यक्त उपरौटा लाई ❀ इच्छा सगुण तरौटा बनाई ॥ १८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—[यहाँपर चक्कीका दृष्टान्त देकर सिद्धान्त समझाया गया है।] हे सन्तो ! जैसे कि, चक्कीमें ऊपर-नीचेका दो पाट, बीचमें एक कीला, छिद्र और हथड़ा होता है। उसीके आधारसे अनाज आदि पीसा जाता है। तैसे ही यहाँपर सिद्धान्तमें भी घटाकर कहते हैं, सो सुनिये ! आप परब्रह्म-परमात्मा व्यक्तिगतसे रहित गुप्त एक व्यापक, निराकार, निर्गुण, अव्यक्त, निर्विकल्प जो है, सोई ऊपरका पाट माना है, और उसीकी इच्छा मायारूप साकार, सगुण, अवतारी, ईश्वर नीचेका पाट है, जिसने सारी-सृष्टिको बनाया। ऐसा मानकर हृदयरूप भूमिकामें यह कल्पनारूपी चक्कीकी स्थापना करके लगाये। यही भ्रम-धोखा नरजीवोंमें लगाया है ॥ १८५ ॥

५. कीला एकता सुमेर अखण्डू ❀ छिद्र तरौटा लाइ प्रचण्डू ॥ १८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ जीव-ब्रह्मकी एकता, सगुण-निर्गुणकी एकता, जड़-चेतनकी एकता, साकार-निराकार, माया-ब्रह्म, इन सबकी एकता करके मिलान करानेवाला कीला एक अखण्ड परमतत्त्व-परमात्माको माना है। उसीमें अखण्ड सुरति या लक्ष्य लगाये रखना, सोई ऊपरका सुमेर या स्मरण करना है। और तरौटारूपी सगुण आदिमायामें ही नाना प्रकारके छल-छिद्र बने हैं। सो ब्रह्मकी प्रचण्ड इच्छा, यही तरौटामेंका छिद्र माना है। गुरुवा-लोगोंने तीक्ष्ण रीतिसे कल्पना करके तहाँ जीवोंको फँसाया है। अथवा स्त्रीने भग-भोगमें भुलाई है। ऊपरका पाट पुरुष बना और नीचेका पाट स्त्री बनी, कीला लिङ्ग हुआ, विषय वासना सुमेर है। सो अखण्ड नरजीव तरौटारूपी स्त्रीके छिद्र=भगमें लक्ष्य लगाकर सम्भोग करके तीव्र बन्धनमें जकड़े पड़े हैं; वह छिद्र बड़ा प्रचण्ड है ॥ १८६ ॥

६. हथरा तीन मेख जड़ दीन्हा ❀ चकी चलत निशि बासर कीन्हा ॥ १८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हथरा=हाथमें पकड़नेका खूँटा, मेख कहिये खीला है। यहाँ तीन खीला या खूँटा और ठोंक दिये हैं। सो कर्म, उपासना, ज्ञानके साधनाओंमें लगे वा लगाकर जीवोंने जड़वत् वृत्ति कर लिये वा करा दिये। वही भ्रम-कल्पनाको दृढ़ करके ठोंक लिये और काम, क्रोध, मोह यही हथड़ाको मजबूतीसे जड़ लिये। इसतरह संसारमें खानी-वाणीकी चक्की ज्ञानी-अज्ञानियों-में रात-दिन चलने लगी या चल रही है। उसीमें अनेक प्रकारके कर्म-कुकर्म करके सब जीव बद्ध हुए पड़े हैं। उस त्रिविधि चक्रको छोड़कर कोई भी नहीं निकलते हैं। वह घनचक्र ही उन्हें प्रिय हो रहा है। अभी यह हाथके नरजन्मको बिना पारख सुधारनेके बदले बिगाड़ दिये हैं। जड़ाभ्यासी होकर चौरासी योनियोंके भवचक्रमें ही जा-जाकर पड़ते हैं, बिना विवेक ॥ १८७ ॥

७. पीसत सन्तत जीवहिं डारी ❀ भोग करत यम जीव खुवारी ॥ १८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! उसी महाचक्कीके भीतर नरजीवोंको डालकर सदा-सर्वदासे खूब पीसकर पिसान बना रहे हैं। परवश, विवश काबू करके यमरूप

गुरुवालोग और स्त्रियोंने अपना-अपना स्वार्थ-सिद्ध करके भोगकर मौज (मजा, आराम) कर रहे हैं। उधर नरजीव खराब, जड़ाध्यासी होकर मनुष्यपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। कालकी खुराक, बलिपशुके समान मूढ़, बेभान, मस्त हो रहे हैं। अरे भाई! जगचक्र खानी-वाणीकी पिसाईमें सुख ही कहाँपर है? दुःखोंमें ही पीसे जा रहे हैं॥ १८८॥

८. छिन छिन जीव विकल तेहि माहीं ❀ रक्षक जानि कीला तर जाहीं॥ १८९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! छिन-छिन, घड़ी-घड़ी, पल-पलमें नरजीव उसी खानी-वाणीके महा चक्रमें पड़कर व्याकुल, दुःखी, परम कष्टित, बेहाल हुए और हो रहे हैं। उलट-पलटकर उसी दुःखमें ही पड़े हुए हैं; बेचैन हो रहे हैं। तब इन दुःखोंसे रक्षा करनेवाला कोई रक्षक परमात्मा कीलारूप सर्वाधार होगा, ऐसा जानकर या अनुमान करके उसी ब्रह्मके तरे अर्थात् आश्रयमें चले जाते हैं; ब्रह्मज्ञानको दृढ़ कर लेते हैं। कोई स्त्रीको ही आधार मानकर रक्षक समझने लगे, उसीके पासमें गये और जा रहे हैं॥ १८९॥

९. तहवाँ आदि पतनको रन्धू ❀ जीवहिं चीन्ह परे नहिं सन्धू॥ १९०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! परन्तु, वहाँ तो आदिसे ही पतन होनेका रन्धू=छिद्र पड़ा हुआ है। पहले भी विषय वासनासे मनुष्यपदसे पतन होकर गर्भवासी हुए, सो योनिसे ही जन्म ले करके आये; अभी भी वहीं भूलते हैं, तो फिर भी पतित हो जायेंगे। और उस ब्रह्ममें आदि= जगत् चौरासी योनियोंमें पतन=उत्पन्न होकर गिरनेकी रन्धू=इच्छा, स्फुरणा सर्वदासे लगी है, तो ब्रह्म होनेपर भी जगत्की इच्छा उठा ही करती है। इसकारणसे चौरासी योनियोंसे बचावा नहीं होता है। यह सन्धिरूप मानन्दी भ्रमिक नरजीवोंको कुछ भी चीन्ह नहीं पड़ी। बिना चीन्हे ही पारखहीन मनुष्य जीव उसी मन-मानन्दीके ही धोखेमें पड़े हैं, इसीसे तो पीसे ही जा रहे हैं॥ १९०॥

१०. कारण कीला पिसवै केरा ❀ चक्की घुरमत ताहिं दरेरा॥ १९१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिसको ब्रह्म-परमात्मा माना है, वही तो जगत् उत्पत्ति-प्रलय होते रहनेका कारण है। कीलाके कारणसे ही तो पीसना-पिसाना होता है। तैसे ही ब्रह्मकी इच्छासे ही तो जगत् बनता-बिगड़ता है। फिर ब्रह्म भी हुआ, तो आवागमन कहाँ मिटा? जैसे कीलाके आधारसे चक्की अनाजको घूम-घुमाकर पीसती-दलती है। तैसे ही ब्रह्मका एक आधार पकड़ाकर गुरुवालोग घूम-घुमाकर भक्ति, योग, ज्ञानादि कल्पनाकी चक्कीमें मनुष्योंको पीसते-दलते, मलते चूर्ण-चूर्ण कर डालते हैं। और विषय अभ्यासके कारणसे ही चौरासी योनियोंमें जीव पड़े हैं। तो भी उसी स्त्रीमें नेह लगाकर घूम-घूमकर भोगोंमें पीसे जाते हैं। नारियाँ सबको दल-मल ही रही हैं, पुरुषोंको दबा रही हैं, सब उसीमें अचेत पड़े हैं॥ १९१॥

११. बिनु रक्षक को लेइ बचाई ❀ कीला चक्की सब बिलगाई॥ १९२॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ऐसे दो प्रकारकी चक्कियोंके महाचक्रसे बचानेवाले रक्षक, परम दयालु, बन्दीछोर पारखी सद्गुरु ही एक मुक्तिदाता हैं। उनके बिना और कौन बचा ले सकते हैं? कोई नहीं। खानी-वाणीकी इन दो चक्कियोंमें ब्रह्म और विषय, ये दो कीले लगे हुए हैं। इसीमें ज्ञानी-अज्ञानी पीस-पिसाकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। सो सबको बिलगाकर न्यारे-न्यारे भेद दिखा-समझाकर भवचक्रसे बचालेनेवाले रक्षक पारखी सद्गुरु ही हैं। उनके बिना और बचा लेनेवाले कोई भी नहीं हैं॥ १९२॥

साखीः— चक्की कठिन संसार जो ❀ सदा रहै घुरमाय॥
[९१] निज झाँई भरमायके ❀ चूर भया समुदाय॥ १९३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें संशय, भ्रान्ति, कल्पना, अभ्यास,

भास, विषय, ब्रह्म, जगत् इत्यादि, इन चक्रियोंके महाचक्रसे छूटना अत्यन्त कठिन या मुश्किल हो गया है। जो कि, अनादि कालसे जीव जड़ाध्यासवश उसी चक्रमें सदा-सर्वदासे घूम रहे हैं। सदासे आवागमनमें ही पड़े हुए हैं। छुटकारा होनेकी जगह नरदेहमें जब आते हैं, तब निज स्वरूपकी स्थिति तो कुछ करते ही नहीं हैं; उलटा भ्रमिक होकर मन-मानन्दी, देहकी परछाईं, झाँईं-रूप गाफिलीको ही अपना सत्स्वरूप समझकर देहके भासमें भूले हैं। फिर अन्यको भी भरमाकर उसी ब्रह्मज्ञानकी झाँईंमें डाल दिये हैं। इसप्रकार ज्ञानी, योगी, भक्त सब मानव समुदाय धोखेकी नशामें चूर हुए वा बेहोश हुए। अतएव मुक्तिपदसे चूर्ण-चूर्ण नष्ट-भ्रष्ट होकर चौरासी योनियोंमें ही जाकर गिर पड़े ॥ १९३ ॥

साखीः— एक अनन्त निज भूलमें ❀ कारण सन्धि न सूझ ॥
[९२] शब्दातीत चिद गावहीं ❀ परख बिना नहिं बूझ ॥ १९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! महाभूलमें पड़कर निज पारख स्वरूपको तो उन लोगोंने जाना ही नहीं। इसलिये कहीं एक ब्रह्म कर्त्ताके अनुमानसे अद्वैतमत खड़ा किया। कहीं जगत्में अनेक मत-पन्थोंका पाखण्ड विस्तार किया है। एक-अनन्तका जञ्जाल बढ़ता ही गया। निज स्वरूपको भूलनेमें कारण प्रतिबन्ध यही ब्रह्म-जगत्के भ्रम, कल्पना और विषय अध्यास ही हैं। वह आवागमनका कारण सन्धिरूप मानन्दी तो किसीको सूझ-समझ नहीं पड़ी। यथार्थ विवेक न होनेसे सन्धि देखनेमें नहीं आई। परन्तु, मन-मानन्दी करके गुरुवालोग कहने लगे कि, वह ब्रह्म-परमात्मा तो चैतन्य परिपूर्ण व्यापक होनेसे 'शब्दातीत' है। यानी अवाच्य, मन, बुद्धि, वाणीसे परे है; ऐसा वेद-शास्त्रोंमें गायन किये। सोई बात अभी गा रहे हैं। परन्तु, सद्गुरुके पारख बोध निर्णयको जाने बिना यह धोखा, भ्रम, कल्पना समझने-बूझनेमें नहीं आती है। जो उन्होंने बूझा है, सो सत्य नहीं है, मिथ्या भ्रममात्र है। पारख बोध होनेपर यह बात यथार्थ बूझने-समझनेमें आती है ॥ १९४ ॥

साखीः— सो प्रकाश जो कसर नहीं ❀ धोखा काहि समाय ॥
[९३] चिदानन्द अनुमान नहीं ❀ बिन गुरु नहीं बुझाय ॥ १९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिनमें रत्तीभर भी कोई कसर नहीं है, सोई गुरु पारखके सत्यज्ञानका प्रकाश है। वह पारख जिन जिज्ञासुओंको प्राप्त हो जाता है, सद्गुरुकी दयासे फिर उनके हृदयमें कोई कसर-खोट रह नहीं सकता है। पारख प्रकाशके सन्मुखमें जो आ गया, तब तमरूप अज्ञान, अन्धकार, अविद्या, खानी-वाणीका कसर फिर कोई ठहर नहीं सकता है। वे फिर ब्रह्म और विषयोंके धोखेमें क्यों समायेंगे ? बेपारखीको ही धोखा समाता है। जब ब्रह्म-ईश्वरादि कोई वस्तु ही नहीं है, तब पारखीमें धोखा क्यों समायगा ? सच्चिदानन्द ब्रह्मकी अनुमान-कल्पना, यह कोई पारखीमें नहीं रहती है। चैतन्य आनन्द स्वरूप व्यापक ब्रह्म जो माना है, वह तो कोई वस्तु ही नहीं है। वह न स्थूल है और न सूक्ष्म है; सिर्फ अनुमानसे उसे ठहराते हैं, इसलिये वह मिथ्या है। पारखी सद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ पारख बोध हुए बिना यह धोखा भ्रम बूझ नहीं पड़ता है या समझनेमें-पहिचाननेमें नहीं आता है; अतएव पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके इसके सारे भेदको समझ-बूझ लेना चाहिये ॥ १९५ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यनिर्णयका पद ॥ जतसारीरूप लगनियाँ वर्णन ॥ भाग- ॥ १ ॥ ❀ ॥

[गुरुवालोगोंने जगत्में एक सारपदार्थ ईश्वर-ब्रह्म आदि बतलाकर नरजीवोंका लगन-प्रेम उस धोखेमें लगा दिया है, सोई इसमें परखाया गया है ॥]

१. धरती अकाश बनल दोनों जतवा ❀ किलवा सुमेरु बिच लागलरेकी ॥ १९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— जैसे चक्कीमें नीचे-ऊपर दो-

पाट और बीचमें एक लोहेका कीला लगा होता है ॥ भावार्थः— तैसे ही इसका सिद्धान्तिक भाव-अर्थ अब सुनिये ! यहाँ धरतीरूप स्त्री नीचेका पाट है, आकाशरूप पुरुष ऊपरका पाट है; और जैसे आकाशसे वर्षा होनेपर पृथ्वीमें अंकुरज उत्पन्न होते हैं, तैसे ही पुरुषसे वीर्य गिरकर स्त्रीके गर्भमें जाकर टिका रहता है; वहाँसे समय पूर्ण होनेपर बालक पैदा होता है। यही दोनों नीचे-ऊपरके पाटरूप नारी-पुरुष मिलकर एक जतवारूप संसार चक्की बनी हुई है। इसीमें स्त्री-पुरुषके देहपर या भग-भोगपर जो सुरति या लक्ष्य लगा है, सोई सुमेरुकी जगह पर है। और 'किलवा' कहिये देह तथा जगत् वही ब्रह्मकी भावना है। देहादिको ही अपना स्वरूप मानना, इस भावनाको ही किलवाकी जगहपर जानना। सो खेल, क्रीड़ा, विषय भोगादिमें ही सब जीव लगे हुए हैं। उसी अध्याससे गर्भवासके बीचमें आते-ही-जाते रहते हैं। आवागमन चक्रमें फिरते हुए ही पीसे जा रहे हैं, बिना पारख ॥ अब और वाणी भागमें इसका अर्थ सुनिये ! 'वाममार्ग' धरती, नीचेका पाट है। 'दक्षिणमार्ग' आकाश, ऊपरका पाट है। 'किलवा'=नाना कर्त्तव्यमें सुरति लगाना, सोई बीचमें सुमेरुमें सुरति लगा रहे हैं। अथवा 'सगुण-साकार' दश अवतारादिकी उपासना तथा नवधा भक्ति, यह नीचेका पाट है। और 'निर्गुण-निराकार' ब्रह्मकी उपासना, भक्ति-भावना ऊपरका पाट है। 'किलवा'=इष्टदेवको जगत्कर्त्ताके रूपमें भावना करना, 'सुमेरु'=उसपर ऊँची श्रद्धा दृढ़ रखना, यही बीचमें लगा हुआ है। अथवा 'हठयोग' नीचेका पाट है, 'राजयोग' ऊपरका पाट है, और 'किलवा'='श्वास वायु' है। उसमें लक्ष्य एकाग्र रखना, यही बीचमें 'सुमेरु' लगा हुआ है। अथवा 'वाच्यांश विज्ञान' नीचेका पाट है, और 'लक्ष्यांश विज्ञान' परमहंस दशाकी धारणा ऊपरका पाट है। तिसमें किलवा=केवल ब्रह्मकी मानन्दी है, तथा शून्य स्थिति बीचमें सुमेरु लगा हुआ है। अथवा 'प्रकृति अनित्य-परिणामिनी' नीचेका पाट है, और 'पुरुष ब्रह्म नित्य-सत्य एकरस' ऊपरका पाट है तहाँ 'प्रेरणा' किलवा है। सुख-दुःखोंका भास बीचमें 'सुमेरु' लगा हुआ है। अथवा 'माया' नीचेका पाट है, 'ब्रह्म' ऊपरका पाट है, 'कल्पना' किलवा है, 'अनुमान' सुमेरु बीचमें लगा हुआ है। इसप्रकारसे ऐसी-ऐसी चक्कियाँ संसारमें घूमती-फिरती चली ही आ रही हैं। इसीमें खानी भागमें— स्त्री आदि पञ्च विषय भोग हैं; और वाणी भागमें— कर्ममार्ग, उपासनामार्ग, योगमार्ग, ज्ञानमार्ग तथा विज्ञानमार्गसे चलनेवाली, यही दोनों मिलाकर सब छैः चक्कियाँ मुख्यरूपसे चल रही हैं। इसीमें 'किलवा' सो परमात्मा है, और 'सुमेरु' सोई सुरति है। अपना लक्ष्यरूप सुरति कल्पित परमात्मापर लगाकर योगी, ज्ञानी, और भक्त नाना कर्मादि साधनाएँ कर रहे हैं। कल्पनासे ही सो सब कर्म हो रहे हैं ॥ १९६ ॥

२. केहु दिहल गेहुँवा ? केहुरे दौरिया ? ❀ केहुरे पठावल जतसारिरेकी ॥ १९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— यहाँपर एक सखी दूसरी सखीसे पूछती है कि, टोकरी भरकर गेहूँ और टोकरी किसने तुमको दिया है ? पीसनेको किसने तुमको भेजा ? ऐसा पूछा ॥ भावार्थः— ऊपर चक्कीके बारेमें खुलासा हो चुका है; अब गेहूँ पिसाई आदिके बारेमें कहा जाता है, सो सुनिये ! एक जिज्ञासुने प्रश्न किया कि, हे सद्गुरो ! यह बतलाइये कि, जगत्में सार वस्तु क्या है ? कोई 'गेहुँवा' कहिये मन-इन्द्रियादिसे परे एक परमात्माको ही "सार वस्तु है !" ऐसा कहते हैं। उसीके गुण गानेको कहते हैं, सो क्या है ? उस परमात्मापर लक्ष्य कौन किसने लगाया ? वा लगवाया ? और 'दौरिया' कहिये प्रेमरूपी टोकरी या डलिया, सो परमात्मापर अनन्य प्रेमरूप भक्ति किसने उत्पन्न की ? वा करायी ? और 'जतसारी' कहिये कर्म, सो नाना कर्म साधना करनेको जीवको संसारमें किसने भेजा है ? इन सारी बातोंका सार निर्णय करके बतला दीजिये ! ऐसी शङ्का शिष्यने उत्पन्न किया; सद्गुरुसे पूछा। सद्गुरुका उत्तर नीचे कहा है- ॥ १९७ ॥

३. सासु दिहल गेहुँवा ननदी दिहल दौरिया * गोतनो पठावल जतसारिरेकी ॥ १९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसा शिष्यका प्रश्न सुनकर पारखी सद्गुरु उत्तर देते हैं; शब्दार्थः— सासुने गेहूँ निकालकर दिया, ननदने टोकरी रखनेको दिया और जेठानीने आटा पिसनेको भेजा ॥ इसका भावार्थः— तैसे ही 'सासु' कहिये जीवोंको संशय, अनुमान, कल्पना, भ्रममें लगानेवाले भ्रमिक गुरुवालोग हैं। उन गुरुवालोगोंने ही तुम अबोध नरजीवोंको भ्रमाया है। "तुम्हारे ऊपर कोई परमेश्वर कर्त्ता मालिक है। वही सुख-दुःख बन्धन मुक्तिका दाता है। इसीसे वही जगत्में सर्वश्रेष्ठ 'गेहुँवा'=सार वस्तु, परमतत्त्व-परमात्मा है। उसीकी प्राप्तिसे ही कल्याण होता है।" ऐसे-ऐसे कल्पित उपदेश उन्होंने कहा और बतलाया है। तथा 'ननदी' कहिये जिनका प्रेम या नेह उसी अनुमित परमात्मापर पहलेसे ही लगा है, उन भक्त लोगोंने 'दौरियारूप' प्रेमकी टोकरी हृदयमें प्रगट किया है। सोई नवधा वा दशधा भक्ति, प्रेम मार्गका उपदेश संसारमें प्रचार कर दिये हैं। तथा 'गोतनी' कहिये नाता-गोता, कुल-कुटुम्बवाले सब संसारी सात्त्विक मनुष्य लोग, इन्होंने भी कहा कि, अपने-अपने कुल, जातिके अनुसार सब कोई शुद्ध कर्म करते चलो, तभी तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा, और स्वर्गादिककी तथा चार फलादिककी प्राप्ति होगी। और शुद्ध अन्तःकरण होनेसे परमात्माका दर्शन भी होगा। ऐसे-ऐसे रोचक उपदेश दे करके 'जतसारि' कहिये कर्ममार्गके चारधाम, चौंसठ तीर्थादि परिक्रमा करनेमें और अनेक उपाधिमें डालकर फँसा दिये हैं ॥ १९८ ॥

४. चोखे चलु जतुवा झमकि लेहु झिकवा * देवरा भुखल भैया पाहुनरेकी ॥ १९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— जतुवा या चक्कीको जल्दी-जल्दीसे चलाकर फुर्ती-फुर्तीसे अनाजके घान या झींक डारो। देखो ! जल्दी आटा पीसकर लाओ, घरमें तुम्हारे देवर और भाई पाहुने आये हैं; वे भूखे हैं। ऐसा कहकर जेठानीने पीसनेको भेजा। भावार्थः— [मायामुखः—] यहाँपर कर्मी गुरुवालोग जीवोंको उपदेश करते हैं कि, हे मनुष्यो ! शुद्धतासे ही तुम सब वर्णाश्रम कर्मका पालन करो ! जतुवा=जगत्में, चोखे चलु=शुद्ध रीतिसे चलो ! दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत, जप-तप, होम-हवन, इत्यादि शुद्ध, शुभ कर्म शुद्ध चालसे किया करो ! और 'झिकवा' कहिये सब अशुद्ध कर्म-कुकर्म, (पाप कर्म) चोरी, हिंसा, व्यभिचार, मद्य-मांसादि भक्षण, जुवारी, लबारी आदि जग निन्दित अशुभ पाप कर्म, झमकि लेहु=निकाल डालो, परित्याग करो; उसे कभी मत् करो ! देवरा=तैंतीस कोटि देवताओंके मालिक परमेश्वर देवता तो घट-घट वासी हैं। भुखल भैया=हे भाई ! वे भगवान् तो शुद्ध भावके भूखे हैं। वे और कुछ नहीं चाहते हैं, तुम्हारा सच्चा भाव, निष्ठा, प्रेम चाहते हैं। भैया पाहुनरेकी=अतएव हे भैय्या ! तुम अभी पाहुना या मेहमानके सरीखा मनुष्य देहमें आये हो; अच्छा शुभ अवसरको पाये हो, तो वेदोक्त कर्ममार्गका आचरण करके जल्दीसे जीवन सुधार करो ! जब तुम शुद्ध होओगे, तभी सालोक्यादि मुक्तिको प्राप्त कर सकोगे, इत्यादि उपदेश कर्ममार्गियोंने कहा है ॥ ॥ १९९ ॥

५. जतवो न चलई मकरीवो न रवई * हथड़ा धईले कामिनि रोवैरेकी ॥ २०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— जो नारी आटा पीसनेको गई थी, वह कहती है— चक्की भारी है, मुझसे चलती भी नहीं है, और मकरी भी नहीं गड़ती है; मैं कैसे आटा पीसूँ ? ऐसा कहकर हथड़ा=खूँटा पकड़कर वह स्त्री रोने लगी ॥ भावार्थः— जब गुरुवालोगोंने ऊपर कर्ममार्गकी साधना बतलाया, तब उनके शिष्यवर्ग कहने लगे कि- [जीवमुखः—] अबोध नरजीव अपने-अपने गुरुवाओंसे कहने लगे कि- हे गुरु ! आपके कहे मुताबिक तो कड़ाकड़ीसे, जतवो न चलई=संसारमें घर-गृहस्थाश्रममें रहनेवाले हमसे तो ऐसी कठिन साधनासे चला नहीं जाता है। उस तरह हम लोगोंसे शुद्ध कर्म भी कुछ नहीं बनता है; मकरीवो न रवई=जैसे चक्कीमें मकरी गाड़

देते हैं; तैसे मक्रतारवत् एक समान हमारा लक्ष्य कभी कर्ममें ठहरा भी नहीं रहता है, सदा चित्तमें चञ्चलता बनी ही रहती है। और हथड़ारूप ये नाना प्रकारकी कठिन कर्ममार्गकी साधनाओंको ही, धइले=पकड़कर ग्रहण करके, कामिनी=स्वर्गादि सुखकी कामना-चाहनासे हम आपके भक्त-शिष्य बने हैं; परन्तु, नाना कर्मोंके कष्टमें ही हमें रोते रहना पड़ता है; दुःख ही भोगना पड़ रहा है। आपके सेवक-शिष्य बनकर भी अभी तक कर्ममें ही हम रोते पड़े हैं ॥ २०० ॥

६. घोड़वा चढ़ल रामा करहिं पुछरिया * केकरि तिरिया रोवै जतसारिरेकी ॥ २०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— उस वक्तमें एक आदमी घोड़ापर चढ़कर कहीं जा रहा था, उस नारीका रोना सुनकर यह किसकी स्त्री रो रही है ? क्यों रो रही है ? कहकर उसने आकर पूछताछ किया, यही जतसारीकी बात है ॥ भावार्थः— इसतरहसे शिष्योंके रो-रोकर पुकारा करनेपर फिर गुरुवालोग कहते हैं। [मायामुखः—] कर्मरूप घोड़ापर चढ़के भ्रमपर सवार हुए कर्मी गुरुवालोग उन दुःखी शिष्योंके रामा=आराम, कुशल-समाचार, हाल-खबरको उन्होंसे, पुछरिया=पूछते हैं कि, केकरि तिरिया=तुमलोग किसके भक्त हो ? किसके शिष्य-सेवक हो ? रोवै=क्यों रोते-गाते हो ? जतसारिरेकी=तुमलोग सम्पूर्ण सारे कौनसे कर्म करते हो ? कैसे करते हो ? सो हमें बतलाओ ! फिर हम विचार करेंगे कि, क्या कारणसे तुम्हें दुःख होता है ? क्या त्रुटि-कसर रह गई है, सो समझायेंगे। त्रुटिके बिना तो कर्ममार्गमें दुःख कभी नहीं हो सकता है, सो कहो ? ॥ २०१ ॥

७. जाँघ तोर थाकेउ बहियाँ घुन लागेउ * तोहरे अछत रोवै कामिनिरेकी ॥ २०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— स्त्री कहती है— तुम्हारे न होनेसे यह मिहनत-मजदूरी करतेमें मेरी जाँघ भी थक गयी, हाथ भी ढीला पड़ गया, दुखने लग गया। तुम हमारे पति होते हुए भी बहुत दिन परदेशमें रहनेसे अब पहिचानते भी नहीं हो ! तुम्हारे नामको हम स्त्री असहाय होकर यहाँ रो रही हैं ॥ भावार्थः— तब वे सेवक मनुष्य कर्मी जीव कहते हैं कि-'जाँघ' कहिये सब जगह पूर्ण भरा हुआ कोई परमात्मा अधिष्ठान जगत्कर्त्ता, सुख-दुःखोंका दाता है। ऐसा हमने शुरूसे वेद-शास्त्रों द्वारा सुना था। तब उस परमात्माकी प्राप्ति-के लिये वेद प्रमाणसे नाना कर्ममार्गकी साधनाएँ भी हमने की; सो आज तक कर्म करते-करते हम तो थक भी गये, हैरान हो गये। परन्तु, कुछ भी हाथ न लगा। ईश्वर भी नहीं मिला; सुख भी नहीं मिला। इससे हमारा उत्साह जाता रहा; अब तो हम थकित हो गये। और 'बहियाँ' कहिये गुरु आपके उपदेशका बल, सो भी निर्बल हो गया। क्योंकि, घुन लागेउ=उसमें भी शोकरूपी घुन लग गया; निकम्मा, खोखला हो गया। कारण कि, कर्मका बल पा करके भी कुछ भी लाभ नहीं हुआ; यानी हमें लाभ तो कुछ भी नहीं दिखता है। कर्म करते हुए भी रोग-शोगादि दुःख तो हमारे कुछ भी नहीं छूटे; सब कर्म निष्फल हो गये। अब कहिये, हे गुरुमहाराज ! आप तो हमारे कुलगुरु हो, विद्वान् गुरु हो ! हमारे दुःखको आप क्यों नहीं छुड़ाते हो ? आप गुरुके प्रत्यक्ष सन्मुखमें हाजिर होते हुए भी आपके सामने हम लोग देह छूटे तक यह कर्ममें ही पचते रहें कि, और कुछ ठिकानमें लगाते हो ? तोहरे=तुम्हारे, अछत=मौजूद होते हुए भी, रोवै कामिनिरेकी=हम सुखकी कामना करनेवाले शिष्य-भक्तलोग ऐसे ही कर्ममें पड़े-पड़े रोते रहें कि, और कुछ उपाय बतलाओगे ? सो दुःख छूटनेका और कोई उपाय हो, तो बतलाइये ! ऐसा सेवकोंने पूछा ॥ २०२ ॥

८. घोड़वासे उतरि रामा जँघिया बइठाबल * अपने पटुकवा लोरवा पोछहिरेकी ॥ २०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— तब सवारको मालूम हुआ कि, यह तो मेरी ही स्त्री है। तब तो घोड़ेपरसे उतर करके उसने उस नारीको गोदमें बैठाया और अपने पटुका= कमरबन्द वा दुपट्टाके छोरसे उसके आँसू पोंछ देने लगा, धैर्य देने लगा, समझाने लगा ॥ भावार्थः—

तब उन कर्मी गुरुवालोगोंने उन घबड़ाये हुए शिष्योंको ढाढ़स दिया; और कर्मरूपी घोड़ेपरसे उन्होंको उतार लिया। फिर कहा कि— हे शिष्यो! कर्म साधना करते-करते तुम्हारा अन्तःकरण अब शुद्ध हो गया है। अब तुम, जँधिया=जहानके मालिक सुखका धाम वह परमात्मामें निज आत्माको मिलाकरके एकतामें स्थित होकर बैठो! आत्मा सो परमात्मा; इसलिये तुम ही परमात्मा स्वरूप हो! ऐसा ठहरा दिया। ऐसी बातें जमा करके धोखेमें बैठा दिया कि, तुम्हारे सिवाय अन्य कोई नहीं है, तुम ही अधिष्ठान ब्रह्मरूप हो! यह निश्चय करो! अपने पटुकवा लोरवा=अपने अचला या दुपट्टाके छोरसे वा कमरमें बाँधा हुआ कपड़ासे, पोंछहिरेकी=शिष्योंकी आँसू पोंछने लगा; नाना वाणी कल्पनासे जीवोंको समझाकर गुरुवालोग कहने लगे कि, परब्रह्म-परमात्मा और तुम एक हो! अंश-अंशीके गुणमें कोई फरक नहीं है; इसलिये तुम ही ब्रह्म-परमात्मा हो! अब ऐसा जानकर स्थिर सुखी हो जाओ! ऐसा कहकर समझाया ॥ २०३ ॥

९. तोहरा पटुकवा प्रभू! दरदरवरिया ❀ हमरे अचलवा लोरवा पोछहुरेकी ॥ २०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! शब्दार्थः— आँसू पोंछते हुए पुरुषसे नारी कहती है— हे प्रभु! तुम्हारे पटुका वा दुपट्टा तो मोटा खरखरा है। इसलिये चुभता है। हमारी साड़ी नरम है, सो इसीके छोरसे आँसू पोंछ दीजिये! ॥ भावार्थः— तदनन्तर भावुक शिष्य गुरुवालोगोंसे कहने लगे कि, हे प्रभो! हे गुरु महाराज! आप तो पहुँचे हुए महात्मा हो! परमेश्वरके दरबारमें ईश्वरके नजदीक ही हाजिर-हुजूर आप रहते हो वा वहाँपर रहनेवाले हो! आपकी पहुँच परमपदमें है; यह मैं समझ गया हूँ! आपका वचन सत्य है। आप भगवान्के दरबारमें पहुँचानेवाले हैं। परन्तु, मैं तो अभी ऐसा आप सरीखा नहीं हुआ हूँ न! इसलिये, हमरे=हमारे ऊपर ऐसी कृपा दृष्टि कीजिये कि, अचलवा=उस परमात्मामें मिल करके हम भी अचल, अटल, स्थिर हो जायें। लोरवा पोछहुरेकी=हमारे इधरके दुःख अबोधपना सब पोंछके मिटा दिजिये! "मैं परमात्मा हूँ" ऐसा ब्रह्म बोध हमेशा कायम रहे, ऐसी दया कीजिये! सब भवसागरके दुःख विनाश कर दीजिये! हमें परमपदमें पहुँचा दीजिये! इत्यादि कहा ॥ २०४ ॥

१०. दास कबीर यह गावल लगनियाँ ❀ बहुरि न आइब जतसारिरेकी ॥ २०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! शब्दार्थः— अनाड़ी जीवोंने यह विषयोंमें लगन लगा करके गीत गाया; पुरुषको पा करके फिर यह कठिन कर्म मिहनत करनेको, भारी चक्की पीसनेको हम नहीं आयेंगी, ऐसा कहकर स्त्री घरमें खुशीसे चली गई ॥ भावार्थः— इसप्रकारसे दासकबीर=कर्मके दास या कर्मके गुलाम बने हुए कर्मी गुरुवालोगोंने यह लगनियाँको खूब लगन लगा करके गाया, तो अज्ञानी नरजीवोंको कर्ममार्गमें ही लगन=प्रेम-प्रीति लगा दिये। कर्म करते-करते अन्तमें परमपदकी प्राप्ति होगी, ऐसा बतला करके कल्पित परमात्मामें लगन लगाये। बहुतेक मनुष्योंकी इस मार्गमें लगन-प्रीति लगी। यही कल्पना दृढ़ करनेवाले नरजीव परस्पर कहने लगे कि, हे भाई! अब तो हम इसी कर्ममार्ग द्वारा परमात्माके परमपदमें मिल जायेंगे। फिर जतसारिरेकी=संसारमें नाना कर्म करनेके लिये और दुःख भोगनेके लिये अब फिर हम उलट करके नहीं आवेंगे। हम परमात्मामें ही मिल करके मुक्त होंगे, जन्म-मरणोंसे रहित हो जावेंगे। ऐसा कह-सुन करके बिना पारख कर्मीलोग भ्रम चक्रमें पड़े। तहाँ जड़ाध्यासी होनेसे चारखानी चौरासी योनियोंके आवागमन चक्रमें ही जाकर पड़े और पड़ ही रहे हैं ॥ २०५ ॥

॥ ❀ ॥ जतसारीरूप लगनियाँ, भाग-॥ २ ॥ ❀ ॥

१. रुइया ओटि ओटि कइले गुनावन ❀ घर नहिं खरचि दोबरी धुनावन ॥ २०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पहले कर्ममार्गका निर्णय हो चुका। अब इसमें उपासना मार्गके कथनको निर्णय करके दिखलाया जाता है ॥ शब्दार्थः— कोई रूईको

धुननेवाला धुनियाँ मजदूर रूईको चुन-चुनकर धुनकर इकट्ठा कर-करके मनमें चिन्तन करता है कि, घरमें खर्च करनेको पैसा नहीं है; कल फिर दुबारा ऐसे ही धुननेको जाना पड़ेगा इत्यादि ॥ भावार्थः— उपासक गुरुवालोग कहते हैं कि— हे भक्तो ! रुइया=वाणी, तो वह प्रेम लक्षणाकी वाणीको और नवधा भक्तिकी वाणीको, ओटि-ओटि=श्रवण कर-करके पढ़ो और पढ़-पढ़ करके, कइले गुनावन=उसीको नित्यप्रति मनमें मनन, गुनन, चिन्तन किया करो ! उसीसे तुम्हें परमात्माकी साक्षात्कार होकर प्राप्ति होगी, ऐसा बतलाया। तहाँ ग्रन्थकर्त्ता अपनी तरफसे कहते हैं— जिसको नरजीवोंने परमात्मा माना है, सो घर नहिं=उसमें कोई स्थिति-ठहरावका घर नहीं है। परन्तु, उसीकी भावनासे ही भक्तिमें घर कर लिये। खरचि=खर्च करनेका रुपया-पैसादिकी नाईं, यहाँ अन्तःकरणकी शुद्धता है; उसके लिये अनेक तरहसे भक्ति करने लगे। तथापि जब भक्ति करके भी अन्तःकरणकी कुछ शुद्धता, स्थिरता नहीं प्राप्त हुई, तब दोबरी धुनावन=दुबारा सगुण-निर्गुण उपासना-भक्तिका विशेष गुप्त भेद जाननेके लिये उलट करके उपासक गुरुवालोगोंके पास जा करके भक्त जीव फिर भी उनके शरणागत हो गये, शिर धुन-धुनकर गुरुवालोगोंकी सेवामें लग गये ॥ २०६ ॥

२. कैसेकै लुगरवा पहिरब ❀ कैसेकै दिन खेपबरेकी ॥ २०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— पैसा न आयेगा, तो कपड़ा कैसे पहिरेंगे? पुराना वस्त्र फट गया है, तो नया खरीदकर लाना पड़ेगा ! ऐसा दुःखके समयमें दिन कैसे काटेंगे ? कैसे जन्म बितायेंगे ? ऐसे गरीब मजदूर शोच करता जाता है ॥ भावार्थः— फिर समय पा करके भक्त जीव उपासक प्रवीण गुरुवालोगोंसे पूछकर कहने लगे कि— हे गुरुमहाराज ! कैसेकै लुगरवा पहिरब= यह प्रेमरूपी लुगड़ा वा साड़ी कपड़ाको हमलोग किस प्रकारसे पहिरें ? कैसे पहिरेंगे, तो अच्छा सुन्दर दिखाई देगा ? और हमारा लक्ष्य एकाग्र होकर प्रेमसे सर्वदा ईश्वरपर ही कैसे लगा रहेगा ? वह विधि बतला दीजिये कि, प्रेम भक्तिकी साड़ी, शृङ्गार सजा करके परमपति परमेश्वरको हम कैसे प्रसन्न कर सकेंगे ? कैसेकै=कैसे करके या किस प्रकारसे, दिन=ज्ञानखानी मनुष्य जन्मके प्रकाशमें ही, खेपबरेकी=सब कर्त्तव्यको पूर्ण करते हुए परमात्मामें ही मिल करके हम मुक्त कैसे होवेंगे या किस प्रकारसे उस पदवीको पावेंगे ? ऐसे भक्तोंने विनय करके पूछा है। इसका उत्तर गुरुवालोगोंने जो दिया है, सो नीचेके चौपाईमें कहा है ॥ २०७ ॥

३. एक टकाके चरखा बनावल ❀ ढेगुवहि टेकुवा चमरख लावल ॥ २०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— दो पैसा वा एक रुपयाको एक टका कहते हैं। सो एक टका खर्च करके एक चरखा बनाया; और एक पैसाकी सूत कातनेका लोहेका बड़ा सूजा लाया। फिर चमड़ेके जो मोटे-मोटे टुकड़ोंमें टेकुवाको पक्का बैठाया वा लगया ॥ भावार्थः— ऐसे शिष्योंके प्रश्न सुनकर उपासक गुरुवालोग कहने लगे— हे भक्तो ! परमेश्वर तो एक ही है। एक टकामें दो पैसा होता है। ऐसे ही जल और थल, ये दोनोंमें सब जगह भीतर-बाहरसे वह परमेश्वर परिपूर्ण व्यापक है। खलकमें खालिक भरा है। उसीने चराचरको उत्पन्न किया है। वही सबका पालन कर रहा है। चरखा बनावल=ऐसे वाणी कल्पनारूपी चरखा बनाया; और ढेगुवा=एक पैसाको कहते हैं। तैसे कर्त्ता मालिक ईश्वर एक है। टेकुवा=बड़ा लोहेका सूजा या तकली उसपर सूत काता जाता है ! तैसे यहाँपर ईश्वर भक्तिके टेक वा आधारसे सुरति बढ़ाना और भक्तिरूपी वाणीका वर्णन-कथन करना है। चमरख=चमड़ाके मोटे-मोटे दो टुकड़ोंमें वहाँपर टेकुवाको पक्का मजबूतीसे बैठाते हैं। इसीप्रकार यहाँपर विरह और प्रेम, यही दोनों भावको दृढ़तासे लेकर परमेश्वर-भगवान्‌की भक्तिकी टेकमें ही विरह तथा प्रेम लगाये रखना। इसको छोड़कर मन दूसरी तरफ जाने न पावे, उसका ध्यान रखना ! इसप्रकार प्रेम-भक्तिरूपी साड़ीको पहिरो ! तब पियारूप परमात्मा तुमसे प्रसन्न होंगे; ऐसा दृढ़ा करके उपदेश किया है ॥ २०८ ॥

४. एक अधेलाके धुनामल्हे * माजवरेकी ॥ २०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो ! शब्दार्थः— एक अधेलाका धुनकनेका तथा माँजनेका अन्य सामान भी खरीद लाया ॥ भावार्थः— दूसरे तरीकेसे नाम-स्मरण निरन्तर किया करना। पहला, मुखसे उच्चारण करके नाम जपना। दूसरा, मनसे जाप करते रहना। तीसरा, श्वासके साथ लक्ष्य लगाकर हरिनामका जाप करते रहना। यही पीछेवाला सर्वोत्तम है। अतएव एक अधेला= यहाँपर अर्धमात्रारूप श्वास है। सब तरफसे चित्तको समेटकर श्वास वायुपर ही एक साथ लक्ष्य लगाकर दिन-रात, माजवरेकी=परमेश्वरके नाम-स्मरण, रामनाम, ओहं-सोहं धुनमें अपना धुन लगाये रहना। इससे अन्तःकरणके सब मल, विक्षेप, आवरण, विकार सब मल-मला करके निर्मल साफ हो जायगा। तब परमात्माका साक्षात्कार दर्शन भी हो जायगा, इत्यादि उपदेश गुरुवालोगोंने भक्तोंको दृढ़ाया है ॥ २०९ ॥

५. उलटि पलटि धनी रुइया धुनावल * सहज स्वरूपी पिउरी बटावल ॥ २१० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! शब्दार्थः— धनिक लोगोंने रूई धुनकने लगाये, तो उलटाय-पलटाय करके कपासको धुनक दिया। फिर सहज ही एक बालिस्त लम्बा गोल-गोल पिउरी स्वरूपको बटा दिया वा बना दिया ॥ भावार्थः— धनी=वाणी कल्पनाके धनी उपासक गुरुवालोगोंने वहाँ जैसी-जैसी साधना बतलायी, तैसी-तैसी ही भक्त लोगोंने भी उलटि-पलटि= सीधा-उलटा वा उलटाय-पलटाय कर श्वास वायुके साथ लक्ष्य लगाकर रुइया=रामनाम, ओहं, सोहं आदि जाप जपना या स्मरण करना शुरू किया। धुनावल=इसप्रकार उसमें लक्ष्यरूपी धुन लगाये। तदुपरान्त मानसिक पूजा, इष्टमूर्तिकी ध्यान-धारणा प्रेमपूर्वक करनेको बतलाये। उसीप्रकार ध्यान-भावना करते-करते जब लक्ष्य एकाग्रतासे स्थिर हुआ, तब सहज स्वरूपी=आप ही आप सहज-ही-सहज मनमें भावना किया हुआ कल्पित स्वरूप, पिउरी=एक प्रकाशरूप इष्टमूर्ति सन्मुखमें दिख पड़ी। उसीको ही, बटावल=पिउरीरूप परमात्मा, पिया बनाये, तिसमें लक्ष्यको बटाये; उसी भासको दृढ़ करके धारण किये। उसीका उपदेश बाँटने लगे, दृढ़ करने-कराने लगे ॥ २१० ॥

६. चुटकी सँवारि सूत कातल * ऐठनौ न लागलरेकी ॥ २११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— फिर उसी पिउरीको बाँया हाथमें पकड़ करके दाहिना हाथकी चुटकी सँवारकर बारीक-बारीक सूत-तागा काता। उसमें ऐठनरूप गाँठ एक भी लगने नहीं दिया, हाथमें उसे लपेटता गया ॥ भावार्थः— चुटकी=चित्त चतुष्टय, मन-इन्द्रियादिकोंको, सँवारि=बाह्य विषयोंसे हटाकर सुधार करके अच्छी तरहसे बना करके बड़े प्रेमसे इसीप्रकार, सूत कातल=जीवको ध्यान-धारणामें मन लगाये, और उसी अनुभवसे अनेक वाणीका भी कथन किये, चुटकी सँवारके नाना ग्रन्थ भी लिखे। ऐसे ध्यानमें लगनेवालेको, ऐठनौ=जगत् विषयादिका अहङ्कार, अकड़पना, अभिमान, न लागलरेकी=नहीं लग सकता है। किन्तु, सावधान रहे कि, कोई अहङ्कार खड़ा न हो जाय, अहङ्कार-गुमानमें कभी नहीं लगना चाहिये। ऐसा उपासकोंने भलीभाँति समझाया है ॥ २११ ॥

७. एक तगवा नौला दूसर गैल टूटी * चिलरे काटल उठल टिहूकी ॥ २१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— कपड़ा बिनतेमें एक नया तागा जोड़तेमें दूसरा पुराना तागा टूट गया। उसी समयमें चिल्लर, जूँ, कीड़ोंने भी शरीरमें जोरसे काट दिया, उससे चमक उठा, तो धक्का लगनेसे और भी तागा टूट गया ॥ भावार्थः— जैसे गुरुवाओंने समझाया, तैसे ही शिष्योंने भी ध्यान किया। तब, एक तगवा नौलो=नवीन मूर्ति एक इष्टदेवता भावनानुसार मनकी एकाग्रतासे दिखाई देने लगा। जैसे-जैसे मनमें कल्पना की थी, वैसे-वैसे ही भास स्वप्नवत् दिखाई दी। और, दूसर गैल टूटी=दूसरा जगत्की भावना उस समय मिट गई।

कर्म, विषयादि दूसरा चिन्तन तहाँ टूट गया। तब तो बड़ा आनन्दरूप सुख मालूम हुआ। चिलरे काटल उठल टिह्नकी=पसीना आदिसे कपड़ेमें सफेद जूँ, चिल्लर आदि जीव पैदा हो जाते हैं। जब वे काटते हैं, तब शरीरमें चमक उठती है। इसीप्रकार यहाँ पूर्व संस्कारसे स्फुरणा हुई, तो ध्यान-धारणा छूट गई; तो फिर काम, क्रोध, लोभ, मोहादि जगत् विषयोंमें वासनावश लक्ष्य चला गया, उन्होंने काटा, तो मनमें चाहनाकी चमक उठी। इसीकारण नवीन दिखाई देती हुई मूर्ति अब दिखाई नहीं दी, छिप गई या अस्त, अदृश्य हो गई। फिर पूर्ववत् वृत्ति चञ्चल हो गई ॥ २१२ ॥

८. तब धुनियहि गरियावल * मोरि रुइया काचलरेकी ॥ २१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— तब धुनकनेवालेको वह गाली देने लगा कि, तुमने मेरे रूईको कच्चा ही रख दिया है; जिससे यह तागा टूटता ही जा रहा है ॥ भावार्थः—तब धुनियहि गरियावल=तब तो वे भक्तलोग बड़े नाराज हो गये। जिन्होंने उन्हें उपदेश दिया था, उन गुरुवालोगोंके पास जाकर झगड़ा करने लगे। फटकारकर गाली सुनाने लगे। क्यों, क्या कारणसे ऐसी गाली देते हो ? ऐसा पूछनेपर वे साधक लोग कहते हैं कि, मोरि रुइया काचलरेकी=हमें आपने जो-जो उपदेश दिया था, सो कच्चा रहा, वह व्यर्थ गया, निदानमें वह कच्चा ही निकला। क्योंकि, उससे जैसा हम चाहते थे, वैसी पूर्ण स्थिति तो हमारी नहीं हुई; हम कच्चे ही रह गये। सदाकाल ध्यानमें वृत्ति जम करके नहीं रहती है। उलट-उलट करके जगत् विषयोंमें ही मन चली जाती है। यदि आपके उपदेशमें पूर्ण शक्ति होती, तो हमारी ऐसी दुर्दशा न होती। अब क्या करें ? हाय ! हमें रास्ता बतलाइये ! ठिकाने लगाइये, इत्यादि कहने लगे ॥२१३॥

९. एक तूहि नारि अलप सुकुमारी * चिलरे डिलवा सो रचल धमारी ॥ २१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— वह धुनकैया कहता है— एक तो तू ही अनाड़ी है वा तू नारी अल्प बुद्धिवाली सुकुमारी आलसी है। तू तो अपनी मस्तीसे खेल-विलासमें ही लगी रहती है। कपड़ा साफ नहीं रखती है, तो गन्दे कपड़ोंमें चिल्लर, ढील, जूँ पड़ ही जाते हैं; यह सब दोष तुम्हारा ही है ॥ भावार्थः— शिष्योंकी ऐसी नाराजी तकरार, विरोधी बात देख-सुन करके उन्हें शान्तकर दबानेके लिये उपासक गुरुवालोग कहने लगे कि, पहले तुमलोग बात सुनो ! नहीं घबड़ाओ; एक तूहि नारि=एक तो तुम अनाड़ी हो, पूरे भेदको जानते भी नहीं हो ! भक्त हो, तो भी संसारी विषयासक्त हो ! अल्प=दूसरे तुम अल्पज्ञ, अज्ञानी, अल्पशक्तिमान् हो ! सुकुमारी=तीसरे आरामतलबी बन करके साधना करनेमें आलस्य करते हो। जैसा बताया गया है, तैसा शीतोष्ण सह करके साधना भी ठीक-ठीकसे नहीं करते हो ! और चिल्लररूपी विषय-वासनाको तुमने हृदयमें बहुत इकट्ठा कर रक्खा है। और ढिलवा=मन-इन्द्रियाँ सहित जीवको विषयोंमें ही ढीले छोड़ देते हो, रोक करके तो रखते ही नहीं हो। फिर रचल धमारी=विषय भोगोंकी ही नाना विधिसे रचना, चाहना करके तुमने उसीमें खूब धूमधाम मचा रक्खा है। होलीकी नाईं भीड़-भाड़ मनमें विकारका उधम लगा रक्खा है। अब कहो तो भला ! ऐसी हालतमें निर्मल परमेश्वरका पूर्ण दर्शन तो भी कैसे होगा ? विषयोंसे मन-इन्द्रियोंको रोके बिना ईश्वरकी दर्शन-प्राप्ति कभी किसीको नहीं हो सकती है ॥ २१४ ॥

१०. अपनी रहनिया नहिं चेतहु * केहि गारी पारहुरेकी ॥ २१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— अपनी रहनीको ठीक नहीं रखती है। चेत तो कुछ भी नहीं करती है; यह सब दोष तो तेरा ही है। अब किसको क्या गाली देती है ? बात क्या सुनाती है ? भागजा यहाँसे ! तेरे दोषको मैं मिटा नहीं सकता हूँ ! ॥ भावार्थः— अपनी रहनिया नहिं चेतहु=तुमलोग ही अचेत होते हो, कुछ भी चेत तो करते ही नहीं हो, अपनी रहनी-गहनीको ठीकसे रखते भी नहीं हो ! और जैसे हमने तुम्हेंमानसिक पूजा, ध्यान, धारणा करनेको बतलाया था, उसी

प्रमाणसे ठीक-ठीकसे तो कुछ करते ही नहीं हो ! मनको बराबर एकाग्र करके स्थिर रखना, सो भी नहीं करते हो ! यह सारा कसूर वा दोष तो तुम्हारा स्वयंका ही हुआ । केहि गारी पारहुरेकी = अब गाली किसको देते हो ? दोष तो भी किसको लगाते हो ? अभी भी चेतो, समझो ! अपनी गलतीको सुधारो, ठीक तरहसे भक्ति, ध्यान करो, तो अवश्य ही भगवान्का दर्शन पाओगे ! यही बात निश्चय है, इत्यादि बतलाया ॥ २१५ ॥

११. दास कबीर यह लगनी गावल * साधु सन्त सबके मन भावल ॥ २१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— दासकबीररूप भक्तने यह लगनियाँ गाया, सो साधु-सन्त सबके मनमें भाया वा अच्छा लगा ॥ भावार्थः— दासकबीर = उपासना-मार्गसे नवधा भक्तिको दृढ़ानेवाले भक्त गुरुवालोगोंने लगनी = एक कल्पित ईश्वरमें लगन, प्रेम-प्रीति लगा करके, गावल = उसकी महिमा तथा अनेक प्रकारसे गुणानुवाद गाया वा वर्णन किया । नरजीवोंके लगन-लक्ष्य-प्रेमको भक्तिमार्गमें लगाया, वही बात दृढ़ाया । नवधा भक्तिकी भावना जगाया । ईश्वर प्राप्त होनेसे सब सुख प्राप्ति बतलाया । इसतरहकी रोचक वाणी सुना-सुनाकर कल्पनाको ही परिपुष्ट किया । इसकारण पारखहीन षड्दर्शनोंके साधु-सन्त, वैरागी, उपासक, श्रद्धालु, गृहस्थ, त्यागी, सबोंके मनमें एक कर्त्ता मालिक परमेश्वरकी भावना पूर्ण तरहसे दृढ़ होकर बैठ गई है । उसी भावनासे गुरुवालोगोंने अनेक प्रकारका भेष पाखण्ड प्रचार किया या कर रहे हैं ॥ २१६ ॥

१२. अहो साधो ! लेहु न विचारी * परमपद पावलरेकी ॥ २१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— शब्दार्थः— अहो, हे साधो ! इसको विचार करके ही लेना, परमपद प्राप्त होनेके लिये विचारको ही लेना चाहिये ॥ भावार्थः— अहो ! यह भक्त लोग तो बड़ी ही मिथ्या कल्पनामें पड़े हैं । जिसकी प्राप्तिके लिये ये अनेक तरहसे साधनाएँ कर रहे हैं, वह ईश्वर तो कोई वस्तु ही नहीं है । भ्रमचक्रमें ही गोता खा रहे हैं । हे साधु-सज्जनो ! आपलोग विवेक करिये ! सत्यन्यायी विवेकी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ निर्णय करके देखिये ! ईश्वर भक्तिसे परमपदरूप मुक्ति प्राप्ति होनेको जो माना है, सो बात सत्य नहीं है; भ्रम कल्पना मात्र है । आपलोग इसीकी पूर्ण परीक्षा करके सत्य विचार करिये ! भक्तोंने जो प्रकाशरूपमूर्ति देखी है, जिसे ईश्वररूपमें माना है, सो तो जड़ तत्त्वोंका भास तेज तत्त्वका प्रकाश है; वह भास तो स्वप्नवत् मिथ्या है । सो देहकी अवस्थाके साथ ही छूट जाती है या छूट जायगी । परन्तु, जीव जड़ाध्यासी हो करके जन्म-मरणके चक्रमें ही जा-जाकर पड़ेंगे या पड़ रहे हैं । अतएव जड़ भक्तिको छोड़कर, चैतन्य सत्य बोधदाता सद्गुरुकी यथार्थ चैतन्य भक्ति करनी चाहिये । उसीसे परमपदरूप मुक्तिकी प्राप्ति होयगी, सो जानिये ! ॥ २१७ ॥

॥ ❀ ॥ जतसारीरूप लगनियाँ, भाग-॥ ३ ॥ ❀ ॥

१. राम नामके इहै जतसरिया * अहो सजनी ! पीसि लेहु बाटकी साँभररेकी ॥ २१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पहले लगनियाँमें कर्ममार्ग कहा, दूसरेमें उपासना मार्गका वर्णन हुआ । अब इस तीसरेमें योगमार्गका वर्णन किया जाता है, सो सुनिये ! ॥ शब्दार्थः— एक सखी दूसरी सखीसे कहती है कि, अहो सजनी ! राम नामके इहै जतसरिया गाओ ! और बर्तन भरका अनाज पीस लो ! जो कि, तुम्हें रास्तेमें काम आयगा ॥ भावार्थः— यहाँपर योगी गुरुवालोग कहते हैं— राम नामके = रामका सच्चा नाम 'सोहं' शब्द है । इहै = इसीको 'अजपा जाप' भी कहते हैं । जतसरिया = इसका पूरा-पूरा भेद बतानेवाला यही योगमार्ग है । जगत् भरमें एक सार वस्तु जो परमात्मा है; सो उसकी प्राप्ति योग साधनासे हो जाती है । अहो सजनी = हे सखी ! अथवा अहो ! साधक साधु लोगो ! और सब उपाय छोड़ करके पीसि लेहु = श्वास वायुके साथ-साथमें 'सोहं-सोहं' या 'राम-राम' के रटनमें लक्ष्यको लगाओ ! बहिर्लक्ष्यको छोड़ करके अन्तर्लक्ष्य करो ! जिससे

आगे तुम्हें बाट=ब्रह्माण्डरूप भ्रमरगुफामें जानेके लिये मार्गकी, साँभररेकी=श्वासवायुका मार्ग साफ स्थिर करके समाधि लगानेको सुलभ या सुगम सरल हो जायगा। इससे पहले सब विघ्नोंसे सम्हलकर सावधानीसे योगमार्गका अभ्यास बढ़ाते ले जाओ ॥ २१८ ॥

२. तन करु जतवा मन करु किलवा * गुरुके शब्द करु हाथड़रेकी ॥ २१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— तनको जतवा करो, मनको किलवा बनाओ, तथा गुरुके शब्दको हथड़ा बना करके मजबूतीसे पकड़े रहो ॥ भावार्थः— योगीने कहा कि, सुनो ! तन करु जतवा=शरीरको ही दो पाटवाली जाँतो (जतवा) या चक्की बनाओ; तहाँ, मन करु किलवा=मनको ही चक्कीके बीचमें रहनेवाला कीला या केन्द्र बनाओ, और गुरुके शब्द=योगी गुरुके उपदेशका सार 'सोहं' शब्द, इसको ही लक्ष्यसे पकड़नेका, करु हाथड़रेकी=हथड़ारूप खूँटाकी जगह पर करो या हथड़ा बनाओ! अरे भाई ! इसको छोड़ करके और किसी तरफ भी मत् जाओ ! इसका अभिप्राय ऐसा है कि, श्वासमें लक्ष्य लगा करके 'सोहं' शब्दका जाप-स्मरण करते-करते तनके बाह्य सब दशों इन्द्रियोंको मनमें ले जाकर लय करो, फिर मनको भी विलय करके श्वासमें मिला दो ! इसतरह मन-पवनकी गाँठी बाँधकर उन्मुनरूप समाधिस्थ हो रहो ! फिर तो परमानन्दकी तुम्हें प्राप्ति हो जायगी ॥ २१९ ॥

३. चित्त करु गेहुँवा प्रेमकी दौरिया * समुझि समुझि झिकवा नावहुरेकी ॥ २२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— सखी कहती है— चित्तको गेहुँवा बनाओ, प्रेमकी टोकरी=दौरियामें उसे रक्खो; और समुझ-समुझ करके झिकवा=घान डालो ॥ भावार्थः— योगी गुरुवालोग बता रहे हैं कि, हे साधको ! चित्तको ही गेहूँके दानाकी जगह बनाओ, तथा प्रेमकी उमदा टोकरी बना करके उसमें चित्त सहित गेहूँरूप सार परमात्माको स्थापित करो ! और श्वास-श्वासमें प्रेमसे चित्त लगा करके 'सोहं-सोहं' अजपा जापको जपा करो। समुझ-समुझ कर लक्ष्य लगा-लगा करके संसारमें बाह्य तरफसे चित्तको खैंचकर भीतर 'सोहं' सुरतिमें ही लगाकर डाल दो ! ऐसे प्रत्येक श्वासमें उत्तम झींक या धानी डालते जाओ ! ॥ २२० ॥

४. अररि दररि जो पिसलेगे सजनी * अहो सजनी ! होयबेहु पियाकीसोहागिनीरेकी ॥२२१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— घुमा-फिरा करके अररि-दररि करके हे सजनी ! जो तुम अनाज पीस लोगी, तो अहो सजनी ! फिर तुम पियाकी सोहागिनी होओगी ॥ भावार्थः— योगीलोग ही कह रहे हैं— अररि दररि=चाहे कोई प्रकारसे हो, उलटा हो या सीधा हो, मोटा-बारीक कैसे भी हो, हे साधको ! श्वासवायुके साथ-साथमें सोहं-सोहं शब्दको जपा करो ! कैसी भी रीतिसे जपोगे, तो भी लक्ष्य स्थिर होगा। 'पीसना' सो यहाँपर अजपा जाप करना है। फिर कोई एक समय श्वासवायु नाभिस्थानमें कुलकुण्डलिनीमें लय हो जायगी, तब तो अहो प्यारे साधको ! पिया=परमात्मा परमपतिकी तुम सोहागिनी=अत्यन्त प्रिय-प्यारे हो जाओगे या प्रेमी बनोगे। अथवा दूसरी विधिमें हठयोग साधनासे नेती, धोती आदि पञ्चक्रिया साध करके षट्चक्र भेदन करके श्वास सहित पञ्च प्राणवायुको मस्तकके भीतर ब्रह्माण्डरूप भ्रमरगुफामें ले जा करके ठहरा कर शून्य समाधि लगाओगे, तब भी स्थिर स्थिति प्राप्त होकर तुम परमतत्त्व-परमात्माके प्यारे नजदीकी बनोगे। फिर तो साक्षात् परमेश्वरका तुम्हें तुरन्त दर्शन प्राप्त हो जायगा। तब कृतार्थ हो जाओगे। अहो ! मित्र ! फिर तो तुम परमात्मा पियाके प्रेमी बननेसे बड़े भाग्यवान् हो जाओगे, ऐसा समझो ! इत्यादि कहा है ॥ २२१ ॥

५. मन भर पिसलेहु सहज उठावलेहु * गुरुके शब्द करु चालनरेकी ॥ २२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— सखी कहती है— दिनभरमें एक मनभर गेहूँ पीस लो ! फिर पिसानको बटोर करके सहज ही उठाय लो ! और गुरुके शब्द जपते

हुए चलनीसे चाल कर साफ करके रक्खो ॥ भावार्थः— योगीलोग ही बतला रहे हैं कि, मन भर-भरकर पीसो=कहिये मनमें परमात्मा दर्शनकी दृढ़ भावना भरके सुरतिको निरतमें लगा कर अजपा जाप जपते-जपते मनको खूब पीस करके पिसान बना डालो; मनको मार करके उन्मुन कर दो, फिर सहज-ही-सहज आकाशवत् निर्गुण, निराकार, निर्मल ज्योतिस्वरूप परमात्मा प्रगट होंगे, उसीको अपने उठा करके एकत्व भाव कर लेना ! वही सबका सार है, उसीको उठा लेना चाहिये । हे भाई ! इसके लिये पहले योगी गुरुके उपदेशके अनुसार चलना चाहिये । सो कैसे कि, गुरुने जो 'सोहं', शब्द कहा है, उसी "सोहं-सोहं" शब्दके जापमें दिन-रात चलते रहो । और खूब मन लगा करके जपो, तो मन उन्मुन होकर पिसाय जायगा । तब उसे ज्ञानकी चलनीसे चाल करके सब प्रवृत्तिरूप कचराको फेंक देना वा हटा देना । फिर सहज स्वरूपी परमेश्वरका साक्षात्कार दर्शन तुम पाओगे । फिर तो तुम्हारी सब मनोकामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी ॥ २२२ ॥

६. दास कबीर यह गावल लगनियाँ ❀ अहो सजनी ! गुरुके चरण चित लावहुरेकी ॥ २२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— दास कबीरने यह लगनियाँ गाया, तुम भी इसे गाते हुए अहो सजनो ! गुरुके चरणकमलोंमें ही चित्तको सदा लगाये रहो ! ॥ भावार्थः— इसतरहसे दासकबीर=कल्पनाके दास बने हुए योगी गुरुवालोगोंने नरजीवोंकी लगन जड़ तत्त्वोंके भासरूप कल्पित परमतत्त्व-परमात्मामें लगाया । तब श्रद्धालु भावुक साधक नरजीव आपसमें परस्पर एक-दूसरेसे इसप्रकार कहने लगे कि, अहो गुरुभाई लोगो ! अपने बड़े भाग्यसे ही, ऐसे योगीराज गुरु मिल वा ऐसे गुरु पासके हैं । अब अहो मित्रो ! गुरुके चरणकमलोंमें ही चित्तका लगाये रहना चाहिये; और अपने गुरुमहाराज योगेश्वर महात्माने जैसी-जैसी शिक्षा विधि योग साधना बतलाये हैं या बतलाते हैं, उसी माफिक परमेश्वर प्राप्ति करनेके लिये योग-युक्तिसे पूरा-पूरा लक्ष्य लगाना ही चाहिये । गुरु और परमेश्वरके चरणोंमें चित्त लगानेसे ही तभी हम-तुम सब लोग मुक्त होंगे या मुक्त हो सकेंगे; इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है । ऐसे कह-सुन करके बहुतेरे लोग योगमार्गके जालमें जा-जा कर अरुझे वा अरुझ पड़े हैं और अभी ऐसे ही अरुझ रहे हैं, बिना पारख ॥ २२३ ॥

॥ ❀ ॥ जतसारीरूप लगनियाँ, भाग-॥ ४ ॥ ❀ ॥

१. सुरत मकरिया गाड़लेगे सजनी ! ❀ अहो सजनी ! दूनोंरेनैन ज्योतिया लावहुरेकी ॥ २२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथमकी तीन लगनियाँमें क्रमशः कर्म, उपासना, योग, ये तीन मार्गका वर्णन कर चुके हैं, अब इसमें ज्ञानमार्ग दर्शा करके वर्णन करते हैं । ज्ञानी गुरुवालोग कहते हैं कि, हे सज्जनो ! मित्रो ! पहले तो साधनचतुष्टय सम्पन्न जिज्ञासु अधिकारी होना चाहिये । सो कैसे कि—(१) विवेक, (२) वैराग्य, १. शम, २. दम, ३. उपरति, ४. तितिक्षा, ५. श्रद्धा, और ६. समाधान, ये (३) षट् सम्पत्ति सहित और (४) मुमुक्षुता दशाको धारण करना चाहिये ! ऐसे चारों साधन सम्पन्न हो करके "मैं सबका द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ ! और जगत् सब दृश्य इन्द्रजालवत् भ्रममात्र अनात्मा मिथ्या है ।" ऐसा ठीक तरहसे जानकर सुरतरूपी मकरियाको मजबूतीसे ठोंक करके गाड़ दो । परमतत्त्व-परमात्मामें ही लक्ष्यको दृढ़ करके लगा दो या दृढ़ रक्खो । अहो सज्जनो ! हे ज्ञानके साधको ! विवेक और विचार ये दोनों भीतरी नेत्रोंको ज्योतिया=ज्ञानस्वरूप या ज्योतिस्वरूप परब्रह्मकी दर्शन-झाँकी करनेमें ही लगाओ । यानी विवेक-विचारसे "मैं सबका साक्षी, सर्वाधार, सर्वव्यापक, परब्रह्म-परमात्मा हूँ !" यह निश्चय वेदान्त प्रमाणसे हो जायगा । उसीको दृढ़तासे निश्चय करो ! फिर तुम्हारा सब द्वैत भ्रम छूट जायगा; तुम स्वयं ब्रह्म रूप हो जाओगे ! ॥ २२४ ॥

२. मनघुर मनघुर मनघुर सजनी ! * अहो सजनी ! एकदिन चान्द छिपावलरेकी ॥ २२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानी कहते हैं— हे सज्जन जिज्ञासुओ ! सुनो ! तुम अपनी गति-विधिको देखो ! मन यह अत्यन्त चञ्चल होनेसे जहाँ-तहाँ घूमा, नाचा, दौड़ा ही करता है। सो देहमें मन कभी आप ही स्थिर नहीं रहता है। मनघुर=कभी तो मन रजोगुणमें राग-रङ्गमें घूमने जाता है; वहाँसे लौटा तो कभी तमोगुण— प्रमाद, आलस्य, निद्रा, हिंसादिमें घूमने लगता है; और कभी-कभी मन घूमते-घूमते सत्त्वगुण शुभ कर्ममें भी आ करके प्रवृत्त हो जाता है। ऐसे रज, सत्त्व और तम, ये त्रिगुणोंमें ही मन घूमता रहता है; सो ज्ञान साधनासे उक्त त्रिगुणोंसे मनको हटा करके या खैंच करके शुद्धसत्त्वगुणरूप तुरिया अवस्था साक्षी पदमें लगा करके ज्ञान दशाको धारण करो ! जब ऐसा करोगे, तो अहो सज्जनो ! तब तो एक दिन आप-ही-आप चान्दरूप यह मन सो, छिपायलरेकी=छिप करके गायब हो जायगा; निस्तेज, स्थिर हो जायगा। यानी मनकी सब चञ्चलता मिट जायगी। उसकी शक्ति सब नष्ट हो जायगी; तुम्हारे काबूमें या वशमें मन शान्त, स्थिर होकर रहेगा, ऐसा जानो ! ॥ २२५ ॥

३. सङ्गहि अछत पिया भरम भुलैलू * अहो सजनी ! मोरे लेखे पिया परदेशहिंरेकी ॥ २२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञान उपदेशको दृढ़ करनेके बाद वे साधक ज्ञानी लोग अपना-अपना अनुभव आपसमें एक-दूसरेको कहकर सुनाते हैं— हे भाई ! हम लोग कैसे भ्रम, भूल, अज्ञानमें पहले पड़े हुए थे, देखो तो हम ऐसे जानते या मानते रहे कि, पिया=परमपति-परमात्मा कोई और जगह आकाश-पातालमें या वैकुण्ठ लोकादिमें कहीं रहते होंगे या कहीं अज्ञात जगहमें विराजमान होंगे या हैं। किन्तु, अब तो ज्ञानी गुरुकी कृपासे यह जाननेमें आया कि, वह परमात्मा जीवके सङ्गमें ही है, यानी अपने हृदयमें ही रहता है; अथवा "मैं ही ब्रह्मरूप हूँ !" परन्तु, ऐसे एकत्व एक सङ्गमें "मैं ब्रह्ममें और ब्रह्म मुझमें" रहते हुए भी मैं भ्रममें भूल रहा था। अथवा मैं ही परमात्मा हूँ या मेरे पासमें ही परमेश्वर था वा है। यह न जान करके ब्रह्मज्ञानके बिना नाना कर्म जालोंमें भ्रमसे भूल रहे थे। इससे अहो मित्रो ! हमारे अज्ञानताके हिसाबसे तो परमपुरुष पिया परमात्मा दूर परदेशमें रहनेके समान ही अज्ञात था और अप्राप्त था। उन ज्ञानी गुरुको धन्य है ! जिन्होंने आत्मज्ञान बतला करके यह भ्रमको मिटा दिया है; ऐसी प्रशंसा किये वा कर रहे हैं ॥ २२६ ॥

४. दिन दश रजनी सुख करु सजनी ! * अहो सजनी ! ऐसन समैया नहिं पायबरेकी ॥२२७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे भावुक जिज्ञासुओंके प्रति वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी गुरु और भी उपदेश देकर समझा करके कहते हैं कि, हे सज्जन मुमुक्षुओ !, दिन दश=देहमें पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ और पाँच कर्मकी इन्द्रियाँ मिला करके दश इन्द्रियाँ जब तक साबूत हैं, आयु बाकी है, शक्ति सम्पन्न है, ज्ञानका प्रकाश है, युवा अवस्था है, तब तक, रजनी=अँधियारी रात्रिरूप अज्ञान जनित विषयोंकी आसक्ति देहकी हन्ता-ममता, काम-क्रोधादि सब मायिक विकारोंको परित्याग करके अपने ब्रह्मज्ञान, तुरिया अवस्था साक्षी दशामें पहुँचकर सुखी रहना चाहिये। हे मित्रो ! देह रहे तक ऐसे आत्मज्ञानसे खूब सुख प्राप्त करो। यदि देह छूट जायगा, तो फिर कुछ हो नहीं सकेगा। अहो सज्जनो ! ऐसन समैया=साधन धाम मुक्तिका द्वाररूप ऐसा शुभ अवसर मनुष्य देह बारम्बार जीवको प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि, चौरासी योनियाँ जो बनी हैं, वहाँ ही कर्म भोगनेको जीव चले जाते हैं। फिर ऐसा मौका मिलना कठिन हो जाता है। अतएव ऐसा समय बड़े भाग्यसे पाये हो, अब तो आत्मज्ञानमें ही खूब तल्लीन हो रहो ! ॥२२७॥

५. नौ दश नदियाँ अगम बहै सोतिया * अहो सजनी ! बीचमें पुरइन दहलागलरेकी ॥२२८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें अनेक वाणी कल्पनासे नाना

ग्रन्थ बने हैं, उसीको सुना-सुना करके गुरुवालोग जीवोंको भ्रमा रहे हैं। तहाँ नौ व्याकरण= १ सारस्वत, २ कौमुदि, ३ चन्द्रिका, ४ मनोरमा, ५ भाष्य, ६ भूषण, ७ शेषर, ८ मंजूषा, ९ शब्दरत्न, इन नामोंसे बनाये हैं। दश=चार वेद, षट् शास्त्र अलग-अलग ही दश तरहसे बनाये हैं। आगे यही वाणीकी विभिन्न नदियाँ जोर-शोरसे बह रही हैं। अगम=जिसका गम किसी प्रकारसे भी नहीं लगता है; मन, बुद्धि, वाणीके गमसे परे, ऐसे कोई अगम, अपार, अथाह, परमतत्त्व-परमात्मा कोई जगत् कर्त्ता है, ऐसा वेद-शास्त्रोंमें वर्णन हुआ है। बहै=उसी भ्रम तरङ्गके चक्रमें सब बह गये और बह रहे हैं। सोतिया=सोता, नाला, छोटी-छोटी नदीके समान सोई अठारह (१८) पुराण, महाभारतादि इतिहास इत्यादि अनेक वाणी ग्रन्थ बने हैं। सो सबमें कल्पना-अनुमान ही भरा है। ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि, सात लोक, ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्तिके लिये अनेक उपाय साधना वर्णन किया है। परन्तु, वह कोई भी सत्य वस्तु नहीं है, मनकी कल्पना मात्र है; तो फिर क्या मिलेगा? कुछ नहीं। अहो सज्जन जिज्ञासुओ! उसी वाणी-कल्पना भ्रम-धोखाके ही बीचमें पड़ करके, पुरइन=पुराण पुरुष यह जीव सब मनुष्य बिना पारख भ्रमिक हो गये वा भूल गये हैं। दहलागलरेकी=उसीमें मन लगा करके परम सुखी या सुखरूप ब्रह्म मान रहे हैं। मिथ्या मानन्दीसे सुख मानकर गाफिल हो रहे हैं। कोई तो वाणीको छोड़कर अनिर्वाच्य ब्रह्म विचारमें लग करके भ्रमिक हो रहे हैं। ऐसे सब बीच-ही-बीचमें भूल-भुलैयामें पड़े हैं॥ २२८॥

६. फूल एक फुलल अनूप फूल है सजनी! ❀ अहो सजनी! तेहि फूल भँवरा लोभायलरेकी ॥२२९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मज्ञानी लोग यहाँपर कहते हैं कि, सजनी= हे सज्जन मनुष्यो! फूल एक=ब्रह्म एक ही सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। फूलरूप ब्रह्म सिद्धान्त महान है। फुलल=यह चराचर सारा संसार उसी ब्रह्मसे उत्पन्न होकर हरा-भरा प्रफुल्लित हो रहा है। सब शोभा उसी परमात्माकी है। साक्षीरूप ब्रह्मका सिद्धान्त कैसा है कि, अनूप=वास्तवमें कोई उपमा देने लायक नहीं है, तो उसे आकाशवत् ही समझ लो! स्वजाति, विजाति, स्वगतादि भेदसे रहित होनेसे ही वह उपमासे रहित अनूपम है। अहो जिज्ञासु सज्जनो! तेहि फूल=उसी अनूपम ब्रह्म सिद्धान्तमें ही भँवरारूप बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी व्यास, वशिष्ठ, दत्त, शङ्करादि प्रेमसे मग्न मस्त हुए। वैसे ही ब्रह्मज्ञानी भौंरेवत् बनकर ब्रह्मके प्रेममें ही मग्न रहते हैं। उसीमें तुम भी लुब्ध हो करके मग्न हो रहो; ऐसे वेदान्तियोंने कहा है॥ २२९॥

७. सब सखिया मिलि एक घर जायब ❀ अहो सजनी! समुद्रके लहरि समायबरेकी ॥२३०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मवादी गुरुवालोगोंका ही यह कथन है कि, हे मुमुक्षुओ! तुम सब सखी=साधक लोग मिलकर फिर एक घर=एक अद्वैत ब्रह्म बोधकी स्थितिमें ही सामिल होकर मिल जाओ। और देहमें पाँचतत्त्व, पचीस प्रकृतियाँ, दश इन्द्रियाँ, पाँच प्राण आदि इन सब सखियोंको अनन्त ब्रह्ममें ही लय या अन्त करके मिला दो। फिर एक आनन्द घरमें ही सब मिल-मिल करके जाओ! उसी परमानन्दमें अपने भी मिल जाओ। अन्तमें तो सब चराचर एक अद्वैत ब्रह्ममें ही मिल जायगा। इससे पहसे ही अद्वैत ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके स्वयमेव ब्रह्ममें मिल जाना चाहिये। जैसे समुद्रसे लहरें उठती हैं, फिर उसीमें समा जाती हैं; समुद्रसे लहरें कभी भिन्न ही नहीं रहती हैं। देखने मात्रको लहर न्यारा दिखती हैं; गुण-स्वरूप तो एक ही रहता है। तैसे ही अहो सज्जनो! समुद्र=ब्रह्मसे लहरीरूप अनेकों जीव उत्पन्न हुए हैं। परन्तु, ब्रह्मसे जीव कुछ न्यारे नहीं हैं। जीव-ब्रह्म तो वास्तवमें एक ही है। बीचमें जो द्वैत भ्रान्ति मिथ्या मायोपाधिसे हुई है, इसको ब्रह्मज्ञानका मनन करके मिटा देनेपर वास्तविक जीव-ब्रह्मकी एकता हो करके तुम सब सहज ही मुक्त हो जाओगे। अतएव अद्वैत ब्रह्मज्ञानको ही सदा श्रवण, मनन, निदिध्यासन किया करो! ऐसी शिक्षा गुरुवालोगोंने दी॥ २३०॥

८. दास कबीर यह गावल लगनियाँ * अहो सजनी ! कबधौं पिया घर जायबरेकी ॥ २३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दास कबीर = ब्रह्मज्ञानी गुरुवालोगोंने इसप्रकार अबोध मनुष्योंको कल्पनाका दास अपने अधीन भ्रमिक बनाया है। गावल लगनियाँ = वेद, शास्त्रादिको गा-गा करके सुनाये हैं। नरजीवोंकी लगन या प्रेम ब्रह्म अनुमानसे लगाये, अनेक तरहसे भ्रमाये हैं। तब मनुष्य भ्रमिक हो करके कहने लगे कि, अहो सजनी ! हे प्यारे सखा ! हे भाइयो ! जैसा ब्रह्मज्ञानी गुरुमहाराजने अद्वैत ब्रह्म स्थिति परमानन्द प्राप्ति बतलाये या बतलाते हैं; ऐसे ही हमारी भी स्थिति परमहंस वृत्ति हो करके हम कब पिया = परब्रह्मके, घर = घेरामें सम्मिलित होकर एकमेएक हो जावेंगे ? अर्थात् हम स्वयं ब्रह्मस्वरूप ही होना चाहते हैं; सो कब हो जावेंगे ? द्वैत भ्रम छूटे बिना तो अद्वैत ब्रह्म स्थिति नहीं होती है। अरे भाई ! सब विचार चिन्ताको छोड़ करके सब मिल करके बोलो "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूँ, तू ब्रह्म है, वह ब्रह्म है, सब ब्रह्म है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" बस ! अब हो गया अद्वैत ब्रह्म। इसप्रकारकी वार्तामें भूल करके बिना पारख धोखाधारमें बह रहे हैं। उसे पारख निर्णयसे परखकर उसके भेदको जानकर सो भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ॥ २३१ ॥

साखीः— लगनियाँ गावहिं साधु जन * अपनी खबरि न जान ॥
[६४] कूट छाँट कोई अनकुटे * सब जीव भये पिसान ॥ २३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, ये बेपारखी साधु लोग तथा भक्तजन इसीप्रकारसे अनेक महात्म्य बढ़ाय-चढ़ायके संसारमें कर्म, उपासना, योग और ज्ञान मार्गसे चलकर कल्पित ईश्वर-ब्रह्मसे लगन = प्रेम लगा करके बहुत तरहसे लगनियाँ = गुणानुवाद गाये और गा रहे हैं। सब नरजीवोंको भुला-भ्रमाकर उसीमें फँसाये या फँसा ही रहे हैं। परन्तु, अपने स्वयं सत्स्वरूपकी खबर तो वे लोग कुछ जानते ही नहीं हैं। "मैं जीव सत्य त्रिकालमें एकरस नित्य, अखण्ड सब दृश्य भासका भासिक सबसे न्यारा हूँ ! और यह ज्योति, आनन्द, अनहदादि मेरा भास असत्य, अनुमान, कल्पना है, तो मैं वह भासरूप ब्रह्म आदि कैसे हो सकता हूँ ? मुझे ब्रह्म होनेकी और ईश्वरादि प्राप्ति करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है; पारख स्वरूपमें ही स्थिर होनेकी आवश्यकता है !" ऐसे अपने हितकी खबर तो वे लोग जानते ही नहीं हैं। पारखी सद्गुरुकी कृपा और सत्सङ्ग विचारके बिना यह किसीको जानने-समझनेमें भी नहीं आता है, अतएव मुक्तिपदसे सब चकनाचूर हुए या हो रहे हैं। तहाँ कूट = कर्मी, उपासक, योगीलोग कालकूटकी नाईं जहरीली नशामें मस्त हुए, काल-जालोंमें वे कूटे गये। अनेक जड़ाध्यासका मूर्चा लगाके कपटी हुए। छाँट = ज्ञानीलोग अन्ट-सन्ट ज्ञानकी बात छाँटने लगे। छाँट-छाँट करके सारको तो फेंक दिये और असार ब्रह्म-अनुमान भ्रमको ही ग्रहण करके बैठ गये। अनकुटे = विषयी-पामर अज्ञानी जीव, ये तो कहीं कूटे-छाँटे नहीं गये, तो मोटा छिलकासे ढँका हुआ धानके समान विषयासक्ति-जड़ाध्यासमें घिरे हुए चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े हैं। इसप्रकार अज्ञानी, ज्ञानी, विज्ञानी, समस्त संसारके नरजीव गुरुपारखके बोध पाये बिना अनेक वासना, मानन्दी, कल्पनादिके वश बद्ध हो-होकर नाना साधनाएँ और त्रिविधि तापोंके दुःखोंमें पीसे जा रहे हैं। अनेक वासनासे घूम-फिरकर बारम्बार चारखानियोंमें नाना देहें धारण करते हुए दुःखमें डोल रहे हैं, तहाँ पिसानवत् चूर्ण हो रहे हैं, बिना विवेक ॥ २३२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- ३ ॥ [चौपाई- ६ । साखी- २ । छन्द- २ है] ॥ ❀ ॥

१. अस जतसारि विकट सो चाला * जीव विकल तेहि मध्य बेहाला ॥ २३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकारसे ऐसे-ऐसे सारे जगत्में चार तरहसे कर्म, उपासना, योग और ज्ञान, इसी मार्गसे चलकर आगे सार परमात्मा की प्राप्ति होगी, ऐसा कहकर गुरुवालोगोंने नाना पन्थ चलाये हैं, सो नानारूपमें चल ही रहे हैं। परन्तु, उनकी चाल

बड़ी विकट हैं, कठिन भव-बन्धनोंमें ही डालनेवाली है। बेपारखी सर्व नरजीव उसी कल्पनाके बीचमें पड़ करके व्याकुल, परम दुःखी हुए और हो रहे हैं। दुःख सहकर भी उसी मनकी मिथ्या भावनाको पूर्ण करना चाहते हैं, सो तो पूर्ण नहीं होती है, उलटे गर्भवासके मध्यमें पहुँच करके दुस्सह दुःख सहकर विकल=बेहाल होते रहते हैं ॥ २३३ ॥

२. परख यथारथ प्रभू प्रकाशू * कठिन महातम काल विनाशू ॥ २३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरु प्रभुने ही यथार्थ सत्यन्याय निर्णयसे अपरोक्ष गुरुपारखका जगत्में प्रकाश किया है। और सकल खानी-वाणीको ठीकसे परखकर काल=गुरुवालोगोंने झूठ-मूठका ईश्वरादिके महात्म्य बढ़ा करके छूटनेको अति कठिन ऐसे बन्धनरूप-जाल फैलाकर नरजीवोंको बाँध रक्खा था, सो उसको पारखके द्वारा विनाश करके हटा दिये; छिन्न-भिन्न कर दिये हैं। पारखी सद्गुरु प्रभुकी कृपासे अभी वर्तमानमें भी जिन्होंके हृदयमें पारखज्ञान-का यथार्थ प्रकाश हो जाता है, फिर कालके महात्म्य-कठिन जाल सब विनाश हो जाते हैं; सब भ्रमसे नरजीव छूट जाते हैं ॥ २३४ ॥

३. काल चक्र चकी कठिनाई * पारख पाये जात बिलाई ॥ २३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! काल=गुरुवालोगोंकी कल्पनाके चक्र ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके लिये पञ्चकोशोंकी नाना वाणीसे अनेकों साधनाओंमें घुमा-फिरा करके इसी चक्कीमें नरजीवोंको पीस डाले या पीस रहे हैं। और तैसे ही स्त्रीके विषय चक्रकी चक्कीमें पीसे जा रहे हैं। इससे मुक्ति पाना नरजीवोंके लिये कठिन हो गया है। पूर्वोक्त षट् प्रकारके वह काल-चक्रकी चक्की बड़ी कठिन दुःखदायी है। जब कोई शुभ संस्कारी नरजीव सत्यन्यायी सद्गुरुकी शरणमें आकर शरण हो करके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ पारख बोधको पा जाते हैं या जिन्होंने पारखदृष्टिको पा लिया है, फिर उनके सन्मुखमें यह काल-जाल टिक नहीं सकता है, बिला करके विनष्ट हो जाता है। जैसे सूर्यकी किरणसे ओस बिलाय जाता है, तैसे पारखके प्रकाशसे काल कल्पना-विषयादि भी बिलाय जाते हैं ॥ २३५ ॥

४. पारख बल बहियाँ भौ जेही * सब विधि चीन्ह परा खल द्रोही ॥ २३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरुकी सहायतारूप कृपादृष्टि-से जिन मुमुक्षु नरजीवोंको भीतर-बाहर पारखका महान गुरुबल प्राप्त हो गया है या प्राप्त हो जाता है। तब तो उन्हें पारखके प्रतापसे सब तरहसे विधिपूर्वक वे मूढ़ गुरुद्रोही, मन्मुखी, जीवद्रोही, सत्यन्यायके विरोधी, दुष्ट, खल नारी और गुरुवालोगोंका प्रपञ्च चीन्ह पड़ता है। उनकी चाल-चलाकी, गाँस-फाँस सब पहिचाननेमें आ जाता है या बन्धन-मुक्तिके हालको जान जाते हैं ॥ २३६ ॥

५. सुरत समान रही जेहि फाँसा * उचटत ताहिं मिटत यम त्रासा ॥ २३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिस-जिस फाँसमें जीवोंकी सुरति या लक्ष्य-वृत्ति समा करके लग रही है। पारखदृष्टिसे देखकर उसमें कसर बन्धन जाननेपर उस तरफसे मन उचाट, उदास, हतोत्साह होकर उस जालको छोड़ देता है। तब यम=मन, गुरुवा, नारी, काल, मृत्यु आदिका मिथ्या त्रास वा भय सब मिट जाता है। फिर तो पारखबोधसे निर्भय, स्थिर हो जाते हैं। सद्गुरुके पारखबोधको पानेपर ही यह यमत्रास मिटता है ॥ २३७ ॥

६. शरणागत प्रभु आये जोई * काल चक्रते बाँचे सोई ॥ २३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुके शरणागत हुए, सत्सङ्ग-विचारमें आये; उनपर प्रभु सद्गुरुदेव कृपादृष्टिसे देखते हैं। सब खानी-वाणीके कसर-खोटोंको यथार्थ परखा देते हैं, सद्गुरुकी कृपासे अपरोक्ष पारखबोध-

को प्राप्त करके सोई मनुष्य यह कालचक्ररूप नारी और गुरुवाओंकी विषय और कल्पनाके चक्र तथा आवागमन घनचक्रसे बच जाते हैं वा छूट जाते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं ॥ २३८ ॥

७. महाशून्य शून्य औ श्वासा ❀ धरती सो सब काल विलासा ॥ २३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें तो बिना पारख सब प्रकारसे जीव जड़ाध्यासी ही हो रहे हैं। कोई महाशून्य=तुरिया अवस्थामें ज्ञानदशाकी धारणा करके महाकाशवत् सर्वशून्य परब्रह्मकी भावना करते हैं। सहविकल्प-निर्विकल्प समाधि लगाते हैं; सो ज्ञानमार्गकी स्थिति है। कोई शून्यवृत्ति करके ध्यानस्थ रहते हैं, शून्य समाधिमें स्थिति करते हैं; तत्त्वोंके भास, ज्योति प्रकाश, आनन्दादिमें ठहराव करते हैं; सो योगमार्गकी शून्य स्थिति है। कोई श्वासवायुमें लक्ष्य लगा करके, कोई एक नामका कल्पना करके स्मरण करते हैं। सगुण-निर्गुण भक्ति ध्यान करते हैं, सोई उपासनामार्ग है। कोई पृथ्वीको ही ईश्वर, देवतादिके रूपमें मानकर अष्ट प्रतिमा पूजा, तीर्थ परिक्रमा, व्रत, होम, यज्ञ-यागादि करते-कराते हैं; सोई कर्ममार्ग है। इसी चार मार्गकी विलास=साधनाओंमें सब मनुष्य लगे हैं, सो काल-कल्पना, गुरुवालोगोंके भ्रमका खेल, विलास है। सुख और मुक्ति तो सब कोई चाहते हैं; परन्तु, कालके फन्दामें पड़ करके कभी सुख और मुक्ति मिल नहीं सकती है। बिना पारख सब उसीमें अरुझे पड़े हैं ॥ २३९ ॥

८. चीन्हहु अंश अवस्था चारी ❀ तुरियातीत कला सो भारी ॥ २४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! उस चार मार्गको तुम चार अवस्थाके अंशरूपमें विकारी ही चीन्हो वा पहिचानो ! सो कैसे कि, जाग्रत् अवस्थाके अंश, कर्ममार्ग, स्थूल देहसे धरतीमें स्थूल विषयादिका विलास होता है। स्वप्न अवस्थाके अंश, उपासना मार्ग सूक्ष्म देहसे श्वासका विलास करते हैं। सुषुप्ति अवस्थाके अंश योगमार्ग, कारण देहसे शून्यका विलास होता है। और तुरिया अवस्थाके अंश ज्ञानमार्ग, महाकारण देहसे, महाशून्यका विलास माना है। और फिर इन चारोंको लय करनेपर पाँचवाँ तुरियातीत अवस्थाके अंशमें विज्ञानमार्ग, कैवल्यदेह, सर्वशून्यका विलास ब्रह्मपदको बड़ाभारी बतलाया है। आखिरमें सोई भारी भ्रम, कल्पना, धोखामें पहुँचा करके गाफिल करते-कराते हैं; सो कल्पित कलाको परख कर त्यागना चाहिये ॥ २४० ॥

९. तत्त्वमसि ले बारह बानी ❀ ग्रासन हेतु काल सहिदानी ॥ २४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोगोंने-"तत्त्वमसि"—वह ब्रह्म तू है ! ये सामवेदके महावाक्य समेत्को ले करके मुख्य चार महा वाक्यसे द्वादश अवान्तर वाक्यकी कल्पनासे रचना किया है। सो क्षर, अक्षर, निःअक्षर (३)। जहद्, अजहद्, जहदाजहद् (६)। तत्, त्वं, असि (९)। जीव, ईश्वर, ब्रह्म (१२)। यही बारह (१२) भागको बारह वाणी या द्वादश वाक्य सिद्ध किया है। सो सब काल=गुरुवालोगोंकी कल्पनाकी निशानी वा पहिचानी है, नरजीवोंको भ्रमा करके ग्रास करनेके वास्ते या तन,मन, धनादि हड़पकर निगलने, चबाने, खानेके वास्ते, फँसानेके लिये ही यह सब कारण उपस्थित किया है। ऐसा यथार्थ परख करके कालकी सहिदानीको चीन्हके उससे न्यारे हो रहो ॥ २४१ ॥

साखीः— पृथिवी श्वासा शून्य जो ❀ महाशून्य मन मान ॥
[६५] फँसे जीव व्याकुल फिरैं ❀ पुनि पुनि सोई परवान ॥ २४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पृथिवी=कर्ममार्ग है, श्वासा=उपासना-मार्ग है। शून्य=योगमार्ग है, महाशून्य=ज्ञानमार्ग है। यह जो कुछ बनाया है, सो सब मनकी मिथ्या मानन्दी-कल्पनासे एक कर्त्ता-परमात्मा मानकर उसमें मिलनेके लिये या ब्रह्म प्राप्तिके लिये ही सब साधनाएँ हो रही हैं। अथवा उक्त साधना करके चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्गादिके सुख भोगादिकी

लालचसे अनेक कर्म हो रहे हैं। कर्मश्रुति, फलश्रुति महिमा सुन-सुनकर सब जीव गुरुवालोगोंके उक्त चार फन्दोंमें जा-जा करके फँसे हैं। साधनाओंमें अनेक कष्ट पा करके व्याकुल होकर जिधर-तिधर फिर रहे हैं। मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है। मनवाञ्छित फल भी नहीं मिला, तो घबड़ा करके फिरने लगे। पुनः-पुनः घूम-फिरकर फिर भी उलट-उलटकर उसीको प्रमाणकर सच्चा मान करके पकड़ लेते हैं। फिर दुःख पा करके व्याकुल होकर फिरते हैं। ऐसे करते-करते मर जाते हैं। जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंमें दुःख पाते रहते हैं। और अबोध नरजीव उसीको बारम्बार वा पुनः-पुनः प्रमाण करके फँसते जाते हैं॥ २४२॥

साखीः— बिनु शरणागत परख गुरु ❀ नहिं जीवन निस्तार॥
[९६] सर्वोपर गुरु परख है ❀ लहै तो होय उबार॥ २४३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसवास्ते पारखी सत्यन्यायी सद्गुरु बन्दीछोरके शरणागत हुए बिना किसीको भी पारखज्ञान गुरुबोध नहीं मिलता है; और गुरु पारखके बोध हुए बिना नरजीवोंका भव-बन्धनोंसे निस्तार=छुटकारा, मुक्ति, बचाव भी नहीं होता है। सर्वोपर=सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च, सब पदके ऊपर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका पारखपद है। पारखी सद्गुरुकी शरणमें आकर उस गुरु पारखपदको जिस जिज्ञासु नरजीवने प्राप्त कर लिया वा ग्रहण कर लिया, उसी जीवका उबार, कल्याण, भवपार, जीवन्मुक्ति हो जाती है। सद्गुरुके पारखबोध प्राप्त करनेपर ही मुक्ति होती है। क्योंकि, पारखपद सर्वोपरि है। पारख बोधकी स्थितिमें रहनेपर तो सहज ही मुक्ति या उबार हो जाती है। अतएव पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके पारख बोधको ही हासिल कर लेना चाहिये॥ २४३॥

॥ ❀ ॥ छन्द-भाग [२] ॥ ❀ ॥

भव पार सब उतरन चहै ❀ पुनि पुनि गहै यम जाल हो!॥
सुरती समानी जाहि तेरी ❀ सोई परगट काल हो!॥ २४४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! यह संसाररूप भवसागरकी नाना दुःख तरङ्गोंसे छूटकर पार उतर करके आराम, सुख, कल्याण, मुक्तिपाना तो सब कोई मनुष्य चाहते हैं। परन्तु, पारख ज्ञानरूप जहाजमें बैठना, पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार, विवेक निर्णयको ग्रहण करना छोड़ ही दिये। फिर पार तो भी कैसे उतरेंगे? शुद्ध सत्कर्म करके एक तरफ किनारेमें भी नहीं ठहरते हैं। मच्छीमार (धीवर) के ढकोसलारूप जालमें बैठकर भवपार होनेको चले, सो थोड़ी दूर भी नहीं गये कि, गहरे जलमें जाकर डूब गये; यमने बचानेको जाल डाला, तब तक तो खारा पानी पी-पीकर वे मर चुके थे या कोई अधमरे हुए थे, तो यमने उन्हें फिर सागरमें ही डाल दिया, तब जलजन्तु आ करके नोच-नोच कर खा लिया। इसीप्रकार संसारमें नाना त्रिविधि तापादि दुःख पा करके उससे उतरना या छूटना तो सब जीव चाहते हैं; परन्तु, पुनः-पुनः या बारम्बार जा-जाकर यमजालको ही ग्रहण करके पकड़ते हैं। खानीमें यमरूप स्त्रीके विषय भोगादि जञ्जालोंको सुखके लिये पकड़े, तो उससे दुःख ही पाये या दुःख पा रहे हैं। तथा वाणीमें— ब्रह्म, ईश्वर, देवता, ऋद्धि-सिद्धि, सात स्वर्गादि प्राप्तिके लिये यम=गुरुवालोगोंकी कल्पित वाणीके जालरूप षड्-दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्डादि बहुविधि जालोंको ही पकड़े हुए फँसे पड़े हैं। अतएव श्रीपारखी सद्गुरु चेताते हुए कहते हैं कि— हे नरजीवो! जिन गुरुवालोग और स्त्रीकी कल्पना और विषयोंसे ब्रह्मानन्द और विषयानन्दादिमें जहाँ-जहाँ तुम्हारी सुरति या लक्ष्य, वृत्ति वा मन लगा है या समाया हुआ है, सोई प्रत्यक्षमें विनाश करनेवाला काल है। सो उसीमेंसे कालरूपी जड़ाध्यास प्रगट होकर वही तुम्हारे मुक्तिपदको नष्ट-भ्रष्ट कर चौरासी योनियोंमें ले जाकर जीवको डाल देता है; सो तुम अब तो भी जानो! और उससे अलग होओ!॥ २४४॥

विश्वरूप निरञ्जन दुःखद * खानी दुष्ट कराल हो ! ॥
महाशून्य शून्य औ श्वासा * पृथिवी कठिन फन्दा काल हो ! ॥ २४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिसे तुम लोग विराटरूप परमात्मा या विश्वरूप भगवान् चराचर सबमें परिपूर्ण व्यापक निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निरीह, सच्चिदानन्द, परब्रह्म, सुखस्वरूप मान रहे हो। वेदादिके प्रमाणसे भ्रमिक गुरुवालोगोंने जिसकी बहुतेरी महिमा गायी है, सो क्या है ? यथार्थ पारख करो, वह तो भ्रम-कल्पना मात्र है। वही जड़ाध्यास जीवोंको चारखानी चौरासी योनियोंमें ले जा करके विकराल या भयङ्कर दुःख देता रहता है। गुरुवालोग तो स्वभावसे ही दुष्ट हैं; अनेक कल्पना, वाणी भ्रमका ही बोध दृढ़ कर-कराके जीवोंको दुःख ही भुगता देते हैं। तहाँ महाशून्य = ब्रह्मज्ञान है। शून्य = योग है। श्वासा = उपासना है, और पृथ्वी = कर्म मार्ग है, ये चारोंकालका जबर्दस्त फँसानेका फन्दा या जाल है। इससे छूटना जीवोंको अत्यन्त कठिन हो गया है। सद्गुरुके पारखबोधके बिना उसी कालके फन्दामें ही सब पड़े और पड़ ही रहे हैं; सो उसे ठीक-ठीकसे जान लेना चाहिये ॥ २४५ ॥

॥ ❀ ॥ छन्द—भाग [३] ॥ ❀ ॥

बहु फन्द अवस्था चारि पन * चहुँ पहर चहुँ युगमें फँसा ॥
नाना विकट बन्धन तेहि है * समुझ तेरो दृढ़ गँसा ॥ २४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! कालका फन्दा एक-दो ही नहीं, बहुतेक हैं। गुरुवालोगोंने तथा नारियोंने बहुत-बहुत फन्दा बना करके फैला रक्खे हैं। मकोड़ेके जालकी तरह चौतरफ तान रक्खे हैं। जो उसमें आया कि, घेर-घार कर काबूमें करके खुराक बना लेते हैं। तहाँ अनादि कालसे जड़ाध्यासी जीव देह धारणकर चार पनमें और चार अवस्थाओंके कर्ममें दिन-रात चार प्रहरमें करके उसी वासनासे चार खानीमें स्त्री-पुरुषोंके दो प्रकारके देह ले-ले करके फँसे पड़े हैं। चार अवस्था = जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरिया है। चारि पन = बाल, कुमार, तरुण और वृद्ध है। चार प्रहर = तीन घण्टोंका एक प्रहरके हिसाबसे बारह (१२) घण्टोंका चार प्रहर होता है। सवेरे ६ बजेसे ९ तक प्रथम प्रहर, १० से १२ तक, दूसरा प्रहर, १ से ३ तक तीसरा प्रहर और ४ से ६ तक चौथा प्रहर माना है। चार युग = सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग नामसे बाहर समयकी कल्पना किया है। कोई उसे क्रमसे चार प्रहरमें ही घटाते हैं। अथवा कोई चारपनमें बाल्यपनको सत्ययुग मानकर क्रमशः कुमारमें त्रेता, युवामें द्वापर और वृद्धमें कलिको घटाते हैं। अथवा चारयुगमें चार दुने आठ होता है; सो अष्ट मैथुन, अष्ट प्रतिमा पूजा, अष्टाङ्गयोग, नवधा भक्ति आदिमें बिना पारख यह काल-फाँसके भीतर ही सब जीव फँसे या फँस ही रहे हैं। संसारमें नाना तरहके मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त फैले-फैलाये हुए हैं। वे ही तो जीवोंको बाँधनेके जबर्दस्त विकट बन्धन हैं। उन विकट जालोंसे छूटना अत्यन्त कठिन वा मुश्किल हो गया है। हे नरजीव ! तेरी अनसमझ, मोह-ममता, आसक्तिके कारणसे ही यह फन्दा दृढ़ हो-होकर तुझे ही मजबूतीसे गँसा या कसके बाँध रहा है। और तेरी खुशी बिना किसीने तुझे नहीं बाँधा है, तेरी उलटी समझ बेपारखने ही तुझे बाँध रक्खा है ॥ २४६ ॥

चाहै छूटन तो परखिले * यम जालकी जैसी दशा ॥
सब मूरचा भरम खोइकै * शुद्ध होय जब संशय नशा ॥ २४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग इन महाबन्धनोंसे छूटकर मुक्त होना चाहते हो, तो पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करो ! और सत्सङ्ग द्वारा परीक्षादृष्टि उघाड़कर सब खानी-वाणीजालोंको यथार्थ सत्य निर्णयसे पारख कर लो ! यमजालकी जैसी

दुर्दशा है, सो सब सद्गुरुकी कृपासे देखने, जाननेमें आ जायगी। सो यमरूप गुरुवालोग और स्त्रियोंकी कल्पना और विषयोंकी वासनाके जालमें जैसे-जैसे जीव फँसते वा बँधते जाते हैं, तेसे-तैसे ही चौरासी योनियोंमें अनेक तरहसे दुर्दशाग्रस्त होकर दुःख पाते जाते हैं। यह सब दशा पारख करनेपर तुझे मालूम हो जायगी। और भ्रमरूपी मूर्चा=कालिमा, काई, धुन अन्तःकरणमें जो लगा हुआ है, सो सबको खो करके पारख द्वारा मिटा दो ! ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, खुदा, देवता, स्वर्गादि सुख इत्यादि, ये सब कपोल कल्पित मिथ्या भ्रम मात्र हैं। और विषयोंमें सुख भी भ्रमसे ही निश्चय हुआ है। उन सब भ्रम-मूर्चाओंको खो करके संशय, दुविधा, कल्पना, अनुमान, भास, अध्यासोंको समूल विनाश करो, मिटा डालो ! और हंस देहके शुद्ध गुण-लक्षण, रहनी-रहस्यको पूर्णतासे धारण करो ! जब हृदय शुद्ध हो जायगा, तब एकरस पारख स्वरूपकी स्थिति होनेसे तुम जीवन्मुक्त भी हो जाओगे ॥ २४७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- ४ ॥ [चौपाई-१७ । साखी- १ है] ॥ ❀ ॥

१. प्रभु ! प्रसाद पारख दृढ़ पाये * विकट कला यम जाल छोड़ाये ॥ २४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बन्दीछोर सद्गुरु प्रभु श्रीकबीरसाहेबके कृपा प्रसादसे ही सत्य चैतन्य पारख बोधकी प्राप्ति हुई है। सोई जिन्होंने पारखी सद्गुरु प्रभुसे दृढ़तासे अपरोक्ष पारखका बोध पाये, वे नरजीव सब यम जालके बन्धनोंसे छूट गये। उन्हें दयालु सद्गुरुने ही यम=गुरुवालोग और स्त्रियोंके जाल=वाणी कल्पना, भ्रम तथा विषयादिके जाल, विकट कला=छूटनेको अति कठिन उन भागोंको परखा करके छुड़ा दिये हैं। सो मैंने भी सद्गुरु प्रभुके कृपा प्रसादसे पारख बोध पा करके दृढ़ किया। सद्गुरुकी दयासे यमजालके विकट कला=विकारको छोड़ा, सोई निर्णयसे जिज्ञासुओंको भी कहकर छोड़ाय देता हूँ ! पारखी सन्त अपने स्वयं जालोंसे प्रथम छूटकर फिर दूसरोंको भी यमजालोंसे छुड़ाय देते हैं ॥ २४८ ॥

२. एक एक परखायब फाँसा * सो संक्षेप करौं परकाशा ॥ २४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे श्रद्धालु जिज्ञासुजनो ! अब एक-एक करके सत्यन्याय निर्णयसे खानी-वाणीका जाल, काल-फाँस पारखी सद्गुरु साहेबने जैसे मुझे परखा दिया है, वैसे ही मैं भी तुम्हें परखा देता हूँ ! वैसे तो काल-जालका विस्तार बहुत है। वह सब विस्तारसे कहनेमें तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जायगा; और कहने-सुनने, लिखने-पढ़नेमें समय भी अधिक लगेगा। इससे मैं तुम्हें यहाँपर टकसारमें मुख्य-मुख्य बात संक्षेपमें वा थोड़ेमें ही कहूँगा। उसके सार-असारका प्रकाश करके कसरको परखाऊँगा। फिर तुम भी उसी संक्षेप मूलसे विस्तार टीकारूपमें अथवा सत्सङ्गमें प्रकाश करके कहना-सुनना, सारको ग्रहण करके असारको त्याग कर देना ॥ २४९ ॥

३. सो जीव बाँचि-बाँचि यम त्रासा * शरणागत दृढ़ परख विलासा ॥ २५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे नरजीवो ! अभी नरतनमें ही रहतेमें जीते जी काल-जालरूप खानी-वाणी यम=नारी और गुरुवाओंके त्राससे बचो ! बचो ! फिर देह छूटनेपर तुम बच नहीं सकोगे। जो मनुष्य पारखी सद्गुरुकी शरणमें आ करके दृढ़तासे पारख बोधको ग्रहण कर पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विलासमें ही लगे रहते हैं, सोई नरजीव अवश्य ही यमत्रास= ब्रह्म, ईश्वर, मृत्यु आदिके डरसे बच करके दूसरोंको भी बचावेंगे ॥ २५० ॥

४. भक्ति भाव प्रेम अधिकाई * परख लहत बल काल नशाई ॥ २५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विशेषरूपसे पारखी सद्गुरुमें सत्य भक्ति बोध-भाव, सत्य प्रेम लगानेवाला गुरुभक्ति करनेवाला सत् शिष्य ही पारखपद पानेका अधिकारी होता है। सो विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति सहित गुरुपदमें प्रेमकी अधिकता, श्रद्धा भाव होनेपर पारखबोधकी प्राप्ति होती है। फिर पारखके प्रतापसे काल=नारी, गुरुवालोग, और कल्पनाकी सब शक्ति या

बलका नाश हो जाता है। निर्बल होकर काल समूल नष्ट हो जाता है। सद्गुरुके सत्सङ्गकी विशेषता-से कालरूप मनकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है ॥ २५१ ॥

५. काल कला लहिं पावै ताके ❀ भक्ति भाव गुरु पारख जाके ॥ २५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिसके हृदयमें गुरुभक्ति बोधभावसे पारखका प्रकाश अटल हो गया है, गुरुभूमिका पारखपदमें जाकर स्थिर हो गया है। तथा भक्ति-भावके सहित गुरु मर्यादाका जो पालन करते हैं, उन विवेकी साधुको काल=नारी और गुरुवाओंकी कला=विषय-कल्पनाके कोई भागसे भी पकड़ नहीं पाते हैं। उनके पासतक काल-कलाकी पहुँच ही नहीं होती है; वे निर्बन्ध, स्वच्छन्द रहते हैं ॥ २५२ ॥

६. जाते उचाट होय घिन जानी ❀ सुरति न जाय ताहि पहिचानी ॥ २५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिससे यथार्थ परीक्षादृष्टिसे देखनेमें आया कि, विषय अति निकृष्ट, तुच्छ मलवत् नर्कका कुण्ड है, तथा कष्टदायी है। और ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित भ्रम, धोखा अनर्थ भव-दुःखदायी है। ऐसे असलियतको ठीक-ठीकसे जान लेनेपर उससे घृणा, मनमुटाव, उच्चाट, उदासीनता, त्याग, वैराग्य हो जाता है। फिर उस विषय और ब्रह्ममें कभी सुरति या लक्ष्य नहीं जाता है या जा नहीं सकता है। क्योंकि, उसे अच्छी तरहसे पहिचान लिया है, तो फिर उसमें सुरति नहीं जायगी ॥ २५३ ॥

७. होय विराग फाँस यम देखी ❀ प्रभुके पद दृढ़ प्रेम विशेषी ॥ २५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! यमरूप मन, स्त्री और गुरुवालोगोंके फाँस=चाहना, विषय प्रपञ्च, वाणी कल्पना नाना जाल-जञ्जालोंको पारखदृष्टिसे दुःखदायी देख कर उसके आदि, अन्त और मध्यमें विकार पहिचान कर उपरामता, दृढ़ वैराग्य, आसक्ति रहित हो जाता है। तब उससे निकल कर पारखी सद्गुरु प्रभुके ही गुरुपद चरणकमलोंमें या पारखपदमें ही विशेष-रूपसे दृढ़तासे सत्य प्रेम लगाये रहते हैं। इसलिये उनके हृदयमें दृढ़तासे विशेष पारखका प्रकाश ही सदा हो रहता है ॥ २५४ ॥

८. परम पारखी जीवन्मुक्ता ❀ नहिं पावै तेहि कालके उक्ता ॥ २५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! काल, सन्धि, झाँईं, तत्त्वमस्यादि वाणीजाल, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना काम, क्रोधादि खानीजाल, इन सबोंको अच्छी तरहसे जिन्होंने परख लिया है। जड़ाध्यासोंसे चैतन्य जीवको छुड़ा करके निज स्वरूपमें स्थितिवान् धीर, गम्भीर, सद्गुण विवेक, वैराग्यादिसे सुशोभित हंसन नायक सोई परम पारखी जीवन्मुक्त हैं। जीते जी सकल माया-मोह विकारोंसे छूटे हुए आप मुक्त हैं। जिज्ञासुओंको भी मुक्त करनेवाले पारखी हैं। अतएव काल=गुरुवालोगोंकी वाणी-कल्पनाकी उक्ति=कथन और नाना असत्य सिद्धान्तोंमें लगने-वाले उस स्थितिको कभी नहीं पा सकते हैं वा उनको कालके कल्पनाकी वाणी नहीं पा सकती है या उनके पासमें कल्पित उक्ति नहीं पाओगे ॥ २५५ ॥

९. काल स्वभाव फन्द विस्तारा ❀ पकरत खात हंसन बेचारा ॥ २५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! काल=गुरुवालोगोंके तथा स्त्रियोंके स्वभावमें बहुत ही कुटिलता, छल, कपट, दम्भ, पाखण्ड भरा हुआ है! बधिककी नाईं जाल=फन्दा, विषय, कल्पनादि फैला करके ताकते हुए सज्जन सरीखा ढोंग किये बैठे हैं। हाव, भाव, लालच, मोहरूप चारा छिड़क कर बेचारे अबोध हंस नरजीवोंको फँसा करके पकड़-पकड़कर तन, मन, धनादि हरणकर खा जाते हैं या खा रहे हैं। बिना विचार हंस नरजीव भी जड़ाध्यासी हो रहे हैं। विवेकको नष्टकर बद्ध हुए वा हो रहे हैं ॥ २५६ ॥

१०. अपनी भक्ति अरु ज्ञान दृढ़ाई * दुष्ट सोई साहेब कहलाई ॥ २५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दुष्ट स्वभाववाले भ्रमिक दुष्ट गुरुवालोगोंने अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये ज्ञान और भक्तिकी आड़में मनुष्योंको लूटे वा लूट मचा रहे हैं। कहने लगे कि, "हमारे कहे अनुसार भगवान्‌की नवधा भक्ति करो ! अपना हित चाहते हो, तो हमारी सेवा, टहल करो !" इत्यादि रोचक-भयानक वाणी कहकर और उसपर ब्रह्मज्ञान दृढ़ा दिये। जो दुष्ट हैं, सोई साहेब, श्रेष्ठ, स्वामी, गुरु कहलाये हैं। मनुष्योंको दास, गुलाम बनाये हैं। इसप्रकार गुरुवालोगोंने जो जाल फैलाया, वही अभी भी उनके अनुयायी लोग प्रचार कर रहे हैं ॥ २५७ ॥

११. वेद किताब कुरान पुराना * अनबनि भाँति रहा जहँड़ाना ॥ २५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चार वेद तथा षट् शास्त्र, अठारह पुराण एवं चार किताब मिलकर एक कुरान और बाइबिल-इञ्जील, इत्यादि बहुत कल्पित वाणीके अनेकों ग्रन्थ गुरुवालोगोंने बनाया है। जिससे मनुष्योंका कुछ कल्याण-हित तो बननेवाला नहीं है। उसी ब्रह्म, खुदा आदिकी भावनामें अनेक तरहसे नरजीव भूले-भुला करके जड़ाध्यासी हुए या हो रहे हैं। सोई भाँति-भाँतिसे जीव जहँड़ा रहे हैं या बद्ध हो रहे हैं ॥ २५८ ॥

१२. मृत्यु सनेही मृत्यु स्वरूपा * महा जाल मद भूप अनूपा ॥ २५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! क्योंकि, मृत्युरूप जड़, धोखेमें ही प्रेम लगानेवाले तद्वत् जड़ाध्यासी मूढ़ जड़वृत्ति वाले हो जाते हैं। जिसमें चैतन्य जीव नहीं है, सो मृत्यु=जड़, पीतर, पाथर, अष्ट प्रतिमा तथा जड़ पञ्च विषय और ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवतादिमें स्नेह=प्रेम करनेवाले उसीको अपना इष्ट स्वरूप मानकर जड़ाध्यासी गाफिल हो जाते हैं। तथा बाल, पिशाचादि जड़वत् दशाको धारणकर ब्रह्म स्वरूप बनते हैं। यही वाणी कल्पना महाजाल है; और उपमासे रहित अनूपम ब्रह्म, राजाके समान श्रेष्ठ आप ही बन करके उसी ब्रह्मज्ञानका मद पी-पीकर उन्मत्त, गाफिल हुए, तो महाजालमें अरुझकर चौरासी योनियोंमें ही चले गये ॥ २५९ ॥

१३. जीवन जीवन्हि निशिदिन हरहीं * त्रिविधि राज सदा सो करहीं ॥ २६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नरजीवोंके जीवन धन=आयु, बुद्धि, बल, वीर्य विवेकादि सद्‌गुणोंको दिन-रात नारी और गुरुवालोग हरण करके छीन लेते हैं। कहीं अज्ञानी, कहीं ज्ञानी बनाते हैं। त्रिगुणी जीवोंको भक्ति, योग, ज्ञान, दृढ़ा करके सो तीनप्रकारसे ठग गुरुवालोग सदासे राज करते वा शासन करते आये या कर ही रहे हैं। विषयी जन, काम, क्रोध, मोहमें सदा राज कर रहे हैं। सोई चौरासी योनियोंके चक्र जन्म, मरण और गर्भमें अध्यासवश जा-आ रहे हैं ॥२६०॥

१४. व्यष्टि समष्टि नहीं कछु भेदा * अंश ईश्वर धोखा है वेदा ॥ २६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! व्यष्टि=जगत्‌को न्यारा-न्यारा अनन्तरूपमें भिन्न-भिन्न किसीने माना है, और समष्टि=सब चराचरको एकमें समेट करके व्यापक एक ब्रह्म किसीने माना है, कोई विभेद बताते हैं। कोई कुछ भेद नहीं अभेद ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं। और वेद प्रमाणसे ईश्वर वा ब्रह्मका अंशरूपमें जीवको परिछिन्न ठहराते हैं। ईश्वर अंशीका अंश जीव है, सो दोनोंमें कुछ भेद नहीं है। असिपदमें ब्रह्म एक निराकार, निर्गुण, निर्मल है, ऐसा कहते हैं। सो सब गुरुवालोगोंके धोखा, भ्रम, कल्पना मात्र है; उनमें सार कुछ भी नहीं है ॥ २६१ ॥

१५. एकै जथा रहा जहँड़ाई * व्यष्टि समष्टि पद होय बिलगाई ॥ २६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चैतन्य जीव तो अनन्त देहधारी होनेसे एक देहमें एक ही जीव था वा है; सो जीव ही यथार्थमें सत्य है। परन्तु, पारख स्थिति न होनेसे जड़ाध्यासी हो करके बद्ध हो रहे हैं। इसीसे कहीं व्यष्टि=भिन्न-भिन्न जगत् विषयोंकी आसक्ति, तथा कहीं

समष्टि=एक ब्रह्म व्यापककी मानन्दीमें ग्रसित हो करके निजपद पारख या मुक्तिसे बिलगा गये या छूट गये। जीव ही एक-अनेककी मानन्दीके अध्यासमें पड़कर नाना तरहसे भव-बन्धनोंमें बँधे पड़े हैं ॥ २६२ ॥

१६. कहूँ ब्रह्म कहूँ ईश कहावै * कहूँ जीव होयके पछतावै ॥ २६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कहींपर तो वेदान्ती लोगोंने असिपद विज्ञान, अद्वैत ब्रह्मको अधिष्ठान माना है। कहीं ईश्वरको जगत्कर्त्ता तत्पद ज्ञान, घट-घटके बासी कहते हैं। और कहींपर तो अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् त्वंपद अज्ञानविशिष्ट जीवको मान करके द्वैत भासनेसे पछताते दुःखी होते हैं। सो जीव ही भ्रमसे ईश्वर-ब्रह्मको मानकर साधनाओंमें नाना तरहसे दुःखी हो रहे हैं; और बिना पारख चौरासी योनियोंमें जाकर अनेक दुःख भोग रहे हैं ॥ २६३ ॥

१७. जाहि बेकारते होहु अनेका * दुर्मति सोइ जो करै विवेका ॥ २६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिस खानी-वाणीके विकार-अध्यास करके ही जीव एक नरदेह छोड़कर अनेक पशु देहें धारण करनेको जाते हैं, उसको अभी परख करके छोड़ो ! जिसको एक ब्रह्म माने हो, उसीकी इच्छारूप माया विकारसे ही अनेक जगत् विकार उत्पन्न हुआ है, ऐसा माना है। फिर भ्रमसे तुम वही ब्रह्म क्यों होते हो ? तुम ही इच्छासे अनेक विकारमें प्रगट होओगे। जीवोंकी मति-बुद्धिको दूर कल्पनामें लगा करके नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले सोई गुरुवालोग दुर्मति=दुष्ट हैं। जो कि, एक अनुमानरूप ब्रह्मका ही विवेक करते-कराते हैं। जो सद्बुद्धिको दूर करे, सोई दुर्मति है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें जड़-चैतन्यका यथार्थ विवेक करके सत्यासत्यको जानना, समझना, निर्णय करना चाहिये ॥ २६४ ॥

साखीः— आपु बेकारी मूल जग * निर्विकार पुनि आप ॥

[९७] जीव भुलावै अंश कही * भोजन करै मिलाप ॥ २६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! देखिये ! गुरुवालोग कितने भ्रमिक, धोखेबाज हैं; आप ब्रह्मकी इच्छासे ही माया तथा विकाररूप जगत् चराचर उत्पन्न हुआ, तो सब विकार मायामें है; ब्रह्ममें कोई विकार नहीं है, ऐसा कहते हैं। तो विकाररूप सारा जगत्का मूल आदि कारण वही परमात्माको ही माना है। फिर मूल कारण होते हुए भी आप परब्रह्म निर्लिप्त-निर्विकार, निराधार, निराकार है, ऐसा माना है। कभी माया विकारी हो आप ही जीव अज्ञानी बनते हैं, कभी जगत्का मूल कारण ज्ञानी 'ईश्वर' मानते हैं। कभी दोनोंको छोड़कर आप ही निर्विकार ब्रह्म बन जाते हैं। फिर अज्ञानी नरजीवोंको "तुम ईश्वर या ब्रह्मका अंश हो, उसकी प्राप्ति होनेसे ही तुम्हारी मुक्ति होगी" ऐसा कहकर अनेक प्रकारसे धोखा देकर मनुष्य जीवोंको भुला दिये हैं। फिर लोगोंसे मेल-मिलाप करके भरपेट रोज-रोज भोजन करने लगे, स्वार्थ सिद्ध करके ठगने, माल उड़ाने लगे। द्वैत जगत्को कल्पनाके मुखमें डालकर उसे खा करके जीव-ब्रह्मकी एकता, मिलाप, अद्वैत निश्चय कर पाँव पसारकर गाफिल हो करके सो गये वा गर्भ कोठरीमें जा करके सोने लगे, बिना पारख ॥ २६५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- ५ ॥ [चौपाई २१ । साखी १ है] ॥ ❀ ॥

१. महाशून्य सो धुन्द अँधेरा * कारण लहत न सूझत पारा ॥ २६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सबका लय करते-करते आखिरमें ब्रह्मको महाशून्य, कैवल्य, सच्चिदानन्दघन, ओत-प्रोत, अद्वैत, परमपद माना है। सो धुन्द अँधेरावत् महाअज्ञान, गाढ़ी गाफिली, ज्ञान सुषुप्तिकी मूढ़ता है। उसमें विवेकका प्रकाश कुछ रहता ही नहीं है। सब जगत्का आदि कारण अपार, अगम, अगोचर, ब्रह्मको ही माना है। वह न तो दिखाई

देता है, न प्राप्त ही होता है, मिथ्या कल्पनाके भ्रम चक्रमें पड़ करके उसी जड़ाध्यासके कारणसे चौरासी योनियोंमें जाकर जीव दुःख भोगी हुए और दुःख भोगी हो ही रहे हैं। इस महारोगका कारण जाने बिना भवपार जानेकी युक्ति किसीको नहीं सूझती है ॥ २६६ ॥

२. रोगी रोग विवश अकुलाई * सुखके जतन चाह अधिकाई ॥ २६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! रोगी = जीव एक तो आवागमनोंके रोगसे विवश हैं। दूसरा, चिन्ता, शोक, परेशानीमें पड़े हैं। तीसरा, तीन ताप भोगनेमें कर्माधीन आकुल-व्याकुल हो गये हैं। इन सब रोग जनित दुःखोंसे छूटकर सुख-सम्पति वा मुक्तिपदको प्राप्त करना चाहते हैं। तो वैद्यरूपी गुरुवालोगोंकी शरण हुए, उन्होंने भक्ति, योग, ज्ञान, जप-तपादि अनेक साधनाओं-के यत्न-उपायमें लगा दिये। तहाँ और भी ज्यादा दुःख पा करके मरे और मर रहे हैं। अधिक-अधिक चाहनासे बहुविधि भव-बन्धनोंमें ही जाकर गिर पड़े हैं। इसलिये मुक्तिका सुख नहीं मिलता है ॥ २६७ ॥

३. परपञ्ची दुःखमय सो भूपा * परजन कष्ट अनेक स्वरूपा ॥ २६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रपञ्ची = झंझटिया अनेक तरहसे जालोंमें अरुझाने-वाले वे ही गुरुवालोग संसारमें श्रेष्ठ राजा या गुरुमहाराज बने बैठे हैं। उन्होंको ही राजावत् मान रहे हैं, सो वे तो और भी दुःखमय धोखेमें ही डाल देते हैं। कर्म-कुकर्ममें लगा देते हैं। परजारूप शिष्य-शाखाओंको अनेक साधनाओंके कष्ट भोगा करके फिर अनेक स्वरूप अनेक सिद्धान्त, मत-पन्थोंके पाखण्डमें ही फँसा देते हैं। इससे पारखी सद्गुरुकी शरण हुए बिना नरजीव कहीं भी सुख नहीं पाते हैं ॥ २६८ ॥

४. खेति करै यम देश बनाई * तीन लोक चौथे सो राई ॥ २६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें अपने-अपने मत-पन्थोंका प्रचार करनेके लिये आदेश-उपदेश, शिक्षा-दीक्षा दे-देकर देश-विदेशमें जा-जाकर चेले-चाटी बना करके किसानवत् गुरुवालोग खेती करने लगे। यम = गुरुवालोगोंने एक महादेशकी नाईं ब्रह्मको बनाया वा मानन्दीसे स्थापना किया। उसके चारखण्ड या भाग करके चारलोक बनाया। चौथेमें राजा रहा, तीन लोकमें प्रजा रही। स्वर्ग, मृत्यु और पातालमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा भक्ति, योग, ज्ञान, ये तीन लोकके ऊपर राजा ब्रह्मज्ञानी साक्षीदशा तुरिया अवस्थामें जाकर रहने लगे। शिष्योंसे तीनों लोकमें उपदेश देनारूप खेती कराने लगे ॥ २६९ ॥

५. जोति बोई उपराजै पाली * काटि मीजि कोठीमें घाली ॥ २७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! किसान लोगोंकी तरह ही गुरुवालोग भी कार्य करने लगे। पहले अनेक साधना कर-कराके कर्ममार्गमें मनुष्योंको जोते। फिर मन्त्र उपदेशरूप बीज कानके छिद्रसे अन्तःकरणरूपी भूमिकामें डालकर बोये; उपासनामार्गमें लगाये। उसी बातको निश्चय कर-कराके आज्ञापालनसे परिपुष्ट किये। तब अनेक मानन्दी मत-पन्थका अंकुर फूटा; योगादि मार्गसे उसका प्रतिपालन या रक्षा किया। फिर ब्रह्मज्ञानसे द्वैत मार्गको काट दिया, सब द्वैत छुड़ा दिया; चराचरको एक ब्रह्ममें मिला करके मींज दिया। तब हृदयरूपी कोठीमें "अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति" ऐसा कहकर परमहंस बना, जड़ादि दशामें डाल दिया, सबका सत्यानाश कर दिया ॥ २७० ॥

६. बिहनहार अंश जुक्तावै * औसर पाय ताहि उपजावै ॥ २७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ बिहनहार = बीज बोनेवाले किसानवत् वेदान्ती गुरुवालोगोंने एक ब्रह्म पुरुषसे लगन वा प्रेम लगाया। युक्ति पूर्वक "जीव ब्रह्मका अंश है"— यह कल्पनाका बीज पेटमें छिपा करके रक्खा, सोई गर्भ रहा। फिर समय पा करके स्त्रीवत् ब्रह्मकी

इच्छासे पुनः जगत्रूप बालक या शिष्यवर्गोंकी उत्पत्ति कर देते हैं। फिर पूर्ववत् उत्पत्ति-प्रलय वा जन्म-मरणादि चक्रमें फिरते-फिराते ही रहते हैं; धोखेमें ही डालते हैं ॥ २७१ ॥

७. जीव विकल वश कालके फन्दा * सेवहिं परख बिना तेहि अन्धा ॥ २७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु जनो! अबोध नरजीव सब काल=स्त्री और गुरुवाओंके अधीन, वशीभूत हो करके विषय जाल तथा कल्पित वाणीके जाल-फन्दाओंमें अरुझकर परमदुःखी व्याकुल हुए और हो रहे हैं। तथापि सुख प्राप्ति, विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादि भोगके लिये उसीके ही सेवन, सेवा-टहल या साधना अनेक प्रकारसे कर-करा रहे हैं। परीक्षादृष्टि न होनेसे ज्ञानी-अज्ञानी अन्धे हुए वा अविवेकी हुए, बिना पारख उसी कालकी ही सेवामें खुशीसे लगे हैं। जिनको पारखबोध नहीं है, वे ही पक्के अन्धे अन्यायी बने हैं ॥ २७२ ॥

८. दीनदयाल दयानिधि साँई * सर्व ऊपर जेहि सन्धि नशाई ॥ २७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ऐसे दीन, गरीब, अबोध नरजीवोंपर महान दया करनेवाले, दयाके समुद्रवत् सोई दीनदयालु, दयासिन्धु, सर्वश्रेष्ठ मालिक, स्वामी या सद्गुरु साहेब हैं। उनका बोध पारखपद सर्वोपरि, सर्वोच्च है। जिस पारखबोधकी प्राप्ति होनेसे सन्धिरूप ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवतादि मिथ्या मानन्दी सब नाश हो जाते हैं। जिसको सबके ऊपर कर्त्ता-परमात्मा माना है, सो तो भ्रम कल्पनाकी मानन्दी है। पारखबोध होनेपर वह भ्रम नाश हो जाता है। सब धोखाको सद्गुरु परखा देते हैं ॥ २७३ ॥

९. आवत परख प्रकाश आनन्दा * नाशत सकल कालके फन्दा ॥ २७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मुमुक्षु नरजीवोंके हृदयमें सद्गुरुके पारखबोधका प्रकाश आते ही सकल अविद्या अन्धकार, अज्ञानजनित दुःख निवृत्त हो जाता है। इसलिये वे सुखी रहते हैं और जीवन्मुक्त पदको पहुँच जाते हैं; और सुखाध्यास विषयसे लेकर ब्रह्मानन्द तककी हन्ता-ममता, वासना-चाहना, आशा-तृष्णा, मद-मत्सरादि सकल कालके फन्दा मोटी-झीनी मायाके जालोंका नाश हो जाता है या नाश कर डालते हैं ॥ २७४ ॥

१०. पञ्चकोश जिन लाँघा जाई * दुगदुग अन्तर रहा समाई ॥ २७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिन्होंने ब्रह्मज्ञानीके शरणमें जाकर वेद-वेदान्त वाक्यका श्रवण-मननादि किया, उसने भ्रमसे एक अद्वैत ब्रह्मका निश्चय करके अन्नमयादि पाँचोंकोश, कर्म, उपासना आदि पञ्चकर्म, पञ्चविषय, पञ्च साधनादिको पार करके लाँघकर या सब विधि-निषेधको छोड़ करके उसपार अनुमानसे परब्रह्ममें जा पहुँचे। तथापि अन्तःकरणमें तो दुगदुगी, सन्देह या भ्रम, संशय समा करके ही बैठ रहा। मैं ब्रह्म हूँ कि, जीव हूँ? द्वैत है कि, अद्वैत है? एक है कि, अनेक है? इसका पूर्ण समाधान कभी उन्हें नहीं हुआ और न हो ही सकता है। धुक-पुक समाया ही रहता है ॥ २७५ ॥

११. छूटै न रोग रहा ठहराई * साँचा होय प्रेम गोहराई ॥ २७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मज्ञानकी मानन्दीसे जीवका आवागमनादि कठिन रोग एक भी नहीं छूटा; और छूटनेवाला भी नहीं है। बल्कि, उलटा जड़ाध्यासादिमें बद्ध होकर चौरासी योनियोंमें ही पड़ रहे हैं। ब्रह्म बनकर जन्मृतिका रोग वैसे ही पूर्ववत् ठहर रहा है। जिसको ब्रह्म ठहराये हो, वही तो भ्रम-भूलरूप रोगोंका मूल है। और जीवकी सचमुच स्थिति गति-मुक्ति तो तभी होगी, जब कि, सत्योपदेशी पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आ करके प्रेमसे निज हितके लिये पुकारा, विनय, जिज्ञासा करेंगे। तब तो पारखी सद्गुरु उन्हें सब जाल परखा-कर साँच पारखपदका बोध कर देंगे। तभी कोई जिज्ञासु प्रेमी नरजीव सच्चे सद्गुणधारी हंस हो जावे हैं या हंस हो जायेंगे, सो जानो! ॥ २७६ ॥

१२. प्रेम पुकार उलटि सो देखा * प्रकाश लहत निज मूलहि पेखा ॥ २७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब जिज्ञासु मनुष्यने पारखी सद्गुरुकी शरणमें आ करके सत्य प्रेमसे पुकारा किया कि, हे प्रभो ! मुझे सत्यज्ञान लखाइये ! तब पारखी सद्गुरुदेवने जड़-चैतन्य, सारासारका भेद यथार्थ परखा दिया। पारखदृष्टिसे उसने साफ देखा, समझा कि, गुरुवालोगोंकी मानन्दी सब उलटी है; विपरीत, असत्य, कल्पना है। हंसको 'सोहं ब्रह्म' बना रहे हैं और भुला रहे हैं। बोध होनेपर जिज्ञासुने सोहंको उलटा करके हंसपदमें लाया, कल्पना छोड़कर सत्य विवेक किया। सद्गुरुके पारख बोधरूप रविका प्रकाश हृदयमें होते ही निज सत्य चैतन्य स्वरूपको यथार्थतः देखा या जाना; समझ लिया। तब पूर्वका भूल-भ्रम सब छूट गया। मूल हंसपदमें सबका परीक्षा त्याग-ग्रहण करके निज स्व-स्वरूपमें ही स्थिर हो गया ॥ २७७ ॥

१३. झाँईं सन्धि सब गई बिलाई * फन्दा काल सबै लखि पाई ॥ २७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब तो उन हंस जीवोंके पाससे ब्रह्मके भ्रम झाँईं भूलकी गाफिली तथा ईश्वरकी मानन्दी-कल्पना, अनुमान तथा जगत्के भास, अध्यास सब आन्तरिक विकार नष्ट-भ्रष्ट होकर बिलाय गये वा नाश हो गये। और काल=गुरुवालोग तथा नारियोंके फन्दा भी सब लख पाया वा जाननेमें आ गया ॥ २७८ ॥

१४. निज पद जानि दया सो कीन्हा * बन्धन जीव छोड़ावै लीन्हा ॥ २७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! परम दयालु पारखी सद्गुरु हैं। उनको ही अनन्त धन्यवाद है ! नरजीवोंको अपना स्वजाति दुःखी जानकर पारखी सद्गुरुदेवने अपने ही दयादृष्टि करके पारखपदका बोध किया। सब खानी-वाणी बन्धनोंसे जिज्ञासु नरजीवोंको छुड़ा लिया। सबका कसर-खोट परखा करके भवजालोंसे बचा लिया। जिन-जिन जालोंमें जीव फँसे हैं, उन सबका यथार्थ भेद लखा करके बन्धनोंसे जीवोंको छुड़ा लिया। निजपदको स्वयं जान करके दूसरोंको भी वैसे ही दया करके जना दिया। निज-पर जीवोंको निर्बन्ध, मुक्त कर दिया या कर देते हैं ॥ २७९ ॥

१५. देखि दुस्सह दुःख जीवन केरी * दया कीन्ह पारख प्रभु प्रेरी ॥ २८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जीवोंकी भूलसे मनुष्यपदसे पतित हो कर चार खानियोंमें असह्य दुःख, कष्ट, सन्ताप, जन्म-मरणादिमें पड़े हुए देख करके और भ्रमसे ईश्वरादि मानकर उसकी प्राप्तिके लिये नाना साधनाओंमें दुस्सह दुःख पाते हुए, जीवोंको दुःखी देखकर परम दयालु पारखी सद्गुरु प्रभु दयासे द्रवित हुए, तो नरजीवोंको प्रेरणा करके बुलाकर सत्यज्ञान उपदेशका दान किये; दयासे पारख बोध दिये; सत्यप्रेमसे सार-असारका पहिचान कराये; ऐसे परम उदार प्रभु पारखी सद्गुरुदेव श्रेष्ठ हैं ॥ २८० ॥

१६. पारख उदय भया तेहि पासा * सन्धि जीव परपञ्च न आशा ॥ २८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वही सद्गुरुका निर्मल पारख ज्ञानरूप भानु जिसके हृदयमें उदय या प्रकाश हो गया है; फिर उस बोधवान्के पास वा नजदीकमें भी काल-की पहुँच नहीं होती है। इसलिये उस पारखी हंस जीवके पासमें ईश्वर-ब्रह्म आदिकी मानन्दी-रूप सन्धि, पञ्चकोश, पञ्चविषयोंके वाणी-खानीके प्रपञ्चकी आशा-बासा, कल्पना, आसक्तिरूप अध्यास-विकार फिर कोई कालिमा (तम) नहीं रहती है। वे तो निर्मल पारख स्थितिमें शान्त, निर्विकार हो ठहरे रहते हैं ॥ २८१ ॥

१७. उपजै सबै बेकारके प्रेरे * परख लहै न रहै यम घेरे ॥ २८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नारी और गुरुवाओंके सङ्ग-कुसङ्गके प्रेरणा-प्रभाव, दबावसे ही काम, क्रोध, लोभ, मोहादि तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदा देवतादि यह सब विकार कलिमल उत्पन्न हो करके बढ़ता जाता था, सो उसी विकार-वासनाके खिंचावसे सब जीव बारम्बार

चौरासी योनियोंमें नाना तन धारणकर उपज रहे हैं। पूर्ण अपरोक्ष पारख बोध प्राप्त होनेपर फिर यम=मन, नारी, गुरुवालोग और अध्यास आदिका, कोई घेरा, बन्धन रह नहीं सकता है; तभी यमके घेरासे छूटकर पारखी सन्त जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ २८२ ॥

१८. सन्मुख प्रभुके आज्ञाकारी ❀ पारख गुरु तेई अधिकारी ॥ २८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी हितैषी साधु-गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो ! अभी सन्मुख नरदेहमें हो, तो अपने कल्याणके लिये पारखी सद्गुरु प्रभुके शरणागत होकर उनके सन्मुख रहकर सत्य उपदेश श्रवण करो ! और आज्ञाकारी होकर सत्सङ्गमें ही लगे रहो। कुसङ्गका त्याग करो ! पारखी सद्गुरु प्रभुकी आज्ञाको पालन करनेवाले, सेवा-बन्दगीमें हाजिर रहनेवाले, ऐसे उत्साही नरजीव जो होते हैं, वे ही सद्गुरुके पारख बोधको यथार्थ प्राप्त करनेके अधिकारी हैं; सत्यज्ञानके ग्राहक हैं, वे ही सब प्रकारसे मुक्तिके भी अधिकारी हैं या हो जाते हैं ॥ २८३ ॥

१९. जो परपञ्चहि करई प्रऊढ़ा ❀ काल स्वरूप सो जानहु मूढ़ा ॥ २८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई मनुष्यलोग प्रपञ्चरूप पञ्चकोशकी वाणी कल्पना, भ्रम, धोखा तथा पञ्च विषयोंकी खानी जालोंको ही सब प्रकारसे परिपुष्ट वा मजबूत करते हैं, उसीका पक्ष लेते हैं; नरजीवोंको प्रपञ्च, उपाधिमें ही सब प्रकारसे फँसाते हैं, सो उन्हींको काल स्वरूपमें जानो ! तथा उनको महामूढ़, महा अज्ञानी, प्रपञ्ची, यमराज, महाकाल ही जानो ! उन्होंने बहुतेरे मूढ़ लोगोंको फँसाया है; उन्हें नरकरूप चौरासी योनियोंके ही अधिकारी जानना चाहिये ॥ २८४ ॥

२०. एक माते विष रहा तमाई ❀ अन्धकार तेहि रहा समाई ॥ २८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक तो पहलेसे ही जीव विषयोन्मत्त होकर विषरूप विषय भोगोंकी नशामें चूर, बेभान, गाफिल हो रहे हैं। दूसरा, एक अद्वैत ब्रह्म-भ्रम विषका प्याला पी-पिलाकर गुरुवाने अन्धेरी कूआँमें ले जाकर उसे डाल दिया है। अब कहिये ! कौन-सा हित या फायदा हुआ ? खानीजालोंसे छूटा, तो वाणीजालोंमें जाकर फँसा। संसार विषय छोड़ा, तो ब्रह्म विषय खाया। ऐसे ज्ञानी-अज्ञानी जगत्-ब्रह्मका विषपान करके माते, उन्मत्त हुए; तो नशामें गाफिल हो गये। इसलिये महा अज्ञान अन्धकाररूप जड़ाध्यासमें समा करके चौरासी योनियोंके गर्भवासके अन्धकारमें ही जा-जाकर समा रहे हैं, बिना पारख ॥ २८५ ॥

२१. पारखी सोई दीनदयाला ❀ मेटत तुरित सबै भव जाला ॥ २८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो सब महान भवजाल खानी-वाणीके चक्रको मिटा देनेवाले, शरणागतकी रक्षा करनेवाले जो हैं, सो वे ही पारखी दीनदयालु सद्गुरु प्रभु हैं। वे ही एकमात्र मुक्तिदाता हैं। शरणमें आये हुए जिज्ञासुओंके भवजाल वे तुरन्त ही पारखबोध देकर या परखा करके सब बन्धन मिटाकर नाश कर देते हैं। स्वरूप ज्ञानकी समझ कराके हृदयसे सब भ्रमको निवारण या नाश कर देते हैं ॥ २८६ ॥

साखीः— सर्वरूप जग जीव जत ❀ देही देह समान ॥
[९८] अधिकारी सो पारखी ❀ परम उदार सुजान ॥ २८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जहाँपर जड़ और चैतन्यका सम्बन्ध है, सो उसीको जगत् या संसार कहते हैं। जड़-चैतन्यका रूप, आकार-प्रकार, गुण, धर्म, शक्ति आदि भिन्न-भिन्न ही सब ठिकाने दिखलाई देता है। सो पञ्च विषयादि जड़ाध्यासके कारणसे ही चारखानी चौरासी योनियोंमें नाना देहें धारण करके देही=जीव समाये हुए हैं। कर्म भोगनेमें सब एक समान दुःखी हैं। ऐसी विभिन्नता तथा भेद होते हुए भी ब्रह्मज्ञानी गुरुवालोग कहते हैं कि, जगत्के सर्वरूप जीव-अजीव वा जड़-चैतन्य, स्थावर-जङ्गम जितने भी जो कुछ हैं, उन सबोंमें एक समान आकाशवत्

चराचरमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म असन्धिरूपसे भरा है; अद्वैत अभेद एक ही ब्रह्म परमतत्त्व है। ऐसा वर्णन करते हैं। वे बेपारखी मुक्तिके अनधिकारी भ्रमिक हैं। अपने भूल करके दूसरोंको भी भुला रहे हैं। उनकी कोई विशेषता नहीं है। वे तो और महा अज्ञानी हुए हैं॥

अथवा जगत्में छोटे-बड़े देहधारी जितने भी जीव हैं, उन सबका ज्ञान स्वरूप तो एक-सा ही है। जीवकोटि अनन्त, असंख्य हैं। वे स्वरूपसे ही अखण्ड, न्यारे-न्यारे हैं। चेतनत्त्व धर्म सबमें एक समान है; इसलिये जीव मात्र स्वजातीय हैं। देही=जीव जड़-अध्यासोंके कारणसे ही नाना देहमें समाकर देहधारी हो रहे हैं। पाँच तत्त्वोंके भागसे देह बना है, सो खानी-खानीमें देहका आकार-प्रकार भी एक समान ही दिखाई दे रहा है। अन्तमें जड़ देह मुर्दा होकर उक्त तत्त्वोंमें ही समाकर मिल जाते हैं। जड़ पाँच तत्त्वोंसे चैतन्य जीव न्यारे हैं। अजर, अमर, अखण्ड, नित्य, सत्य, जीवस्वयं है। ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रम कल्पना मात्र मिथ्या है। ऐसी परीक्षा करके सद्गुरुके निर्णयसे यथार्थ परखनेवाले सत्य परीक्षक सोई परम पारखी सच्चे जानकार हैं। हंस रहनी-रहस्य सद्गुण-लक्षण संयुक्त निज स्वरूपकी स्थितिमें वे रहते हैं। सब जड़ाध्यास उनके नष्ट हो गये हैं। इसलिये वे ही विशेष करके जीवन्मुक्तिके अधिकारी हैं। सकल काल-जालोंको परखने-परखानेवाले पारखी हैं। कोई मुमुक्षु अधिकारी जो उनकी शरणमें आ जाते हैं, उन्हें भी सत्यज्ञान बोध उपदेशका दान देकर निहाल कर देनेवाले पारखी सन्त ही परम उदार सुजान=सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी, सर्वोपरि विशेषज्ञ हैं॥ २८७॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग—६ ॥ [चौपाई १६। साखी-२। शब्द १ है] ॥ ❀ ॥

१. जब प्रगटै पारख प्रभु आई * काल फाँस सब तुरित लखाई॥ २८८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! पारखी सद्गुरु प्रभुकी शरणमें जब नरजीव आते हैं या आये हैं, तब उन्हीं प्रभुकी कृपासे सत्यज्ञान पारख बोधका प्रगट या प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है। हृदयमें सद्गुरुके पारखका बोध आ जानेसे विवेकदृष्टि खुल जाती है। तब तो नारी और गुरुवाओंके जाल काल-फाँस सब तुरन्त या शीघ्रातिशीघ्र लखनेमें आ जाता है। और फौरन काल-जालको जला करके मुमुक्षु नरजीव न्यारे हो जाते हैं वा मुक्त हो जाते हैं॥ २८८॥

२. करि न सकै परपञ्च प्रवेशू * मिटा विकट यम जाल कलेशू॥ २८९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर उन विवेकी नरजीवके हृदयमें पञ्च कोशकी वाणी कल्पना तथा पञ्च विषयोंकी आसक्ति-वासना आदि कोई भी प्रपञ्च उपाधि प्रवेश करके घुस नहीं सकती हैं। यम जालोंमेंसे छूटना अत्यन्त कठिन है। वहाँ बहुतेरे कष्ट-क्लेश भोगते ही रहना पड़ता है। सो सद्गुरुके पारख बलके प्रतापसे विकट यमका जाल-जञ्जाल छिन्न-भिन्न हो करके पञ्च क्लेश=अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश, ये सब दुःख मिट गये वा मिट जाते हैं। ऐसा पारखका बल महान है॥ २८९॥

३. विकट कलेश जीवनके देखी * कीन्ह प्रकाश सो परख विशेखी॥ २९०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अबोध जीवोंके पीछे महाभयङ्कर कष्ट-क्लेशोंका खतरा देख करके तथा उसीमें रचे-पचे हाय! हाय! करके डूबते, कराहते, व्याकुल होते हुए पुनः-पुनः खानी-वाणीके महा विकट क्लेशमें पड़ करके तड़फते हुए जीवोंकी दुःख-दुर्दशा देख करके परम दयालु परम पारखी बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने विशेष परिश्रमसे शोधन, छान-बीन करते-करते विशेषरूपसे स्व-स्वरूपका बोध, पारखका प्रकाश प्रगट किया। उसी पारख प्रकाश द्वारा निज-पर हित-मुक्ति कर लिया॥ २९०॥

४. केतिक पारख प्रभुके पाये * जरा-मरण यम जाल मिटाये॥ २९१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! यही पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी सबसे विशेषता वा महानता हुई; आप ज्ञानियोंमें शिरोमणि हुए। आपने ही बन्द पड़ा हुआ मुक्तिमार्ग-

को खोल दिया या सुगम बना दिया। और फिर तो पारखी सद्गुरु प्रभुके शरणागत हो-होकर परम्परा द्वारा कितनेक मुमुक्षु हंस मनुष्योंने भी पारखबोधको गुरुमुखसे जान पाया। और अपरोक्ष पारखनिष्ठ स्वरूपस्थिति भी कर पाया। इसलिये पारखबोधसे ही जीवन्मुक्त पदको भी पाया। जिससे यम=मन, नारी और गुरुवाओंके जाल अध्यासोंको मिटा करके बारम्बार होनेवाले जरा-मरणके दुःखोंसे सदाके लिये छूट गया। जीते तक वे जीवन्मुक्त-स्थितिमें रहे। फिर देह छूटनेपर विदेह-मुक्तिमें स्थित हो गये ॥ २९१ ॥

५. यहि विधि हंस छुड़ाय अनेका ❀ बधिक कला नहिं लागै एका ॥ २९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसीप्रकारसे विधिपूर्वक सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने तथा आपके अनुयायी पारखनिष्ठ आपके पारखज्ञान सत्यबोधदाता पारखीसन्त सद्गुरुने हंस नरजीवों-को पारख रहस्य सत्य शिक्षा ज्ञान-बोध देकर हंस रहनीमें ठहराकर अनेकों मुमुक्षु मनुष्याको शरणमें लेकर सब यम जाल भव-बन्धनोंसे छुड़ा दिया है। पारखी सद्गुरुका सत्य बोध जिन्हें दृढ़ हो गया है, उनपर बधिक=घातक गुरुवालोग तथा नारियोंकी कला-कल्पना, धोखा, भ्रम, विषय-प्रपञ्च, ये सब एक भी नहीं लगे और कभी वह लग भी नहीं सकेगा; वे तो निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं ॥ २९२ ॥

६. बधिक निराश धुनहिं शिर अपना ❀ हंस छुटत तेहि होत कल्पना ॥ २९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अपने जालमें आयी हुई चिड़िया फँसनेके बजाय जाल तोड़कर छूट जावे, हाथमें पकड़नेमें न आवे, तो व्याधा निराश हो शिर पीटकर अफशोस करता है। फिर फँसानेके लिये नाना यत्न-कल्पना करता है। तैसे ही बधिक=बझानेवाले व्याधा वा कसाई धीवरके समान नारी और गुरुवालोगोंने देखा कि, उनके कपट जालोंसे विवेकी पुरुष निकले जा रहे हैं। और अपना पराक्रम व्यर्थ गया देखकर निराश हो गये। चिन्ताके मारे अपना-अपना शिर धुनने लगे। यानी शिर कूटकर या पीटकर हाय! हाय! करने लगे। हंस नरजीवको विषयजाल तथा वाणी-कल्पनासे छूटते हुए देखकर, उन नारी और गुरुवाओंको बड़ा पछतावा (पश्चात्ताप) कल्पना, शोच-फिक्र होता है। उनके जालसे जीव निकले, तो वे बहुत कलपते रहते हैं ॥ २९३ ॥

७. ममता राज मोह दल भारी ❀ छाड़े अधम न होय सुखारी ॥ २९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उन वञ्चक गुरुवालोगोंको मत, पन्थ, ग्रन्थ, अपने-अपने सिद्धान्तकी मद-ममता लगी है। 'गुरु महाराज' या 'स्वामीजी' होनेका अभिमान चढ़ा है। शिष्य-शाखाओंको मूड़-मुड़ा करके बड़ाभारी सैन्य दलकी नाईं जमात बढ़ा लिये या बड़े दल साज लिये हैं। उसी अपना दल-बलको, चेले-चाटियोंको देखकर मोहासक्त हो गये हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि भी बड़ी भारी मात्रामें उनमें भरे पड़े हैं। जहाँ तक उनकी शक्ति चलती है, वे अधम, दुष्ट, ठग गुरुवालोग जीवोंको नहीं छोड़ते हैं, फँसा ही लेते हैं। उन अधमोंका सङ्ग-घेराको छोड़े बिना, उनके साथ रहकर जीव कभी भी सुखी या मुक्त हो नहीं सकते हैं। अतएव अधम जनोंके घेराको छोड़ ही देना चाहिये ॥ २९४ ॥

८. आपु नष्ट पुनि सबहिं नशावै ❀ भरमका राज विलास बढ़ावै ॥ २९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अपने आप तो ये विषयीजन तथा भ्रमिक गुरुवा-लोग मनुष्यपद, मुक्तिमार्गसे दूर होकर नष्ट-भ्रष्ट, पतित, बद्ध हुए या हो रहे हैं। फिर सद्गुण विवेक-विचारादि सबको भी नाश कर-कराके उनके आश्रित अन्य सब मनुष्योंके जीवनको भी नशा करके बर्बाद कर देते हैं। ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि प्राप्तिकी भ्रम-कल्पना लगा करके अपने राज्य-शासनमें प्रेमसे सुख-विलास, मौज-मजा मनमानी चाल-कुचाल बढ़ाये या बढ़ाते रहते हैं ॥२९५॥

९. इन्ह परपञ्च जे छूटन चहहीं ❀ तापर राज दण्ड बहु करहीं ॥ २९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके कोई जिज्ञासु मनुष्य इन गुरुवालोगोंके मत, पन्थरूप पाँच कर्म, पञ्चकोशोंकी वाणी कल्पना, उपाधि-प्रपञ्चोंसे जो छूट गये वा छूटना चाहते हैं, उनसे तो बड़े नाराज हो जाते हैं। उसपर राजद्रोही, गुरुद्रोही, वेद-ईश्वरादिके द्रोही, षड्यन्त्र करनेका अपराध लगा करके सत्यानाश होनेका शाप, नरकमें पड़नेका शाप और भी अनेक भयङ्कर शाप, कसनी, दण्ड, ताड़ना बहुत प्रकारसे करते हैं। डरवा-धमका करके मत प्रचार करते हैं ॥ २९६ ॥

१०. जिन्ह जिव परख लहै प्रभु केरा ❀ महा जाल यम जाल निबेरा ॥ २९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरु प्रभुका शरणागत होकर जिन जिज्ञासु नरजीवोंने यथार्थ सत्य चैतन्य पारखबोध प्राप्त कर लिया या कर लेते हैं, सो हंसवत् सार-असार, सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका सत्य निर्णय करके सत्यको लेकर असत्यका परित्याग कर देते हैं। वे ही यमरूप गुरुवालोग और स्त्रियोंकी कल्पना और विषयादिके महाजाल-जञ्जालको निबेरा करके छोड़ देते हैं; अर्थात् परखकर त्याग कर देते हैं ॥ २९७ ॥

११. आपु छुटे पुनि और छुड़ावै ❀ देखि सो हंस काल पछितावै ॥ २९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अपने आप काल-जालोंसे छूटकर जब वे हंसजीव निर्बन्ध हो जाते हैं, तब वे पारखी होकर फिर और जिज्ञासुओंको भी परखा-परखा करके जालोंसे छुड़ा लेते हैं। इसप्रकार एक-एक करके हंस जीव जालोंसे छूटकर स्वतन्त्र मुक्त होते हुए देखकर काल=गुरुवा-लोग और नारियाँ हाय ! हाय ! टाँय-टाँयकर शिर पटक करके पछताते, हाथ मलते, बकवाद करते, जहाँ-के-तहाँ शिर पीट-पीट कर रह जाते हैं ॥ २९८ ॥

१२. तब यम बहुत प्रपञ्च पसारा ❀ धोखा टाटि मध्यमें डारा ॥ २९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब उनमेंसे जो जबर्दस्त यमराजके समान भयङ्कर दुष्ट, चालाक होते हैं, वे ठगिनी स्त्रियाँ तथा गुरुवालोगोंने बहुत प्रकारसे छल, बल, कपटसे और भी प्रपञ्चका पसारा किया है। पञ्च विषयोंके नाना विलास तथा पञ्च कोशोंके सिद्धान्त, कर्म, वाणी, इसीका विस्तार करके फैलाया है। विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिकी आड़ देकर धोखारूप पर्दामें लपेट करके मध्य=चौरासी योनियोंके गर्भमें ही डाल दिया है; धोखा देकर ब्रह्म-ईश्वरादि टाटीकी ओटमें जीवोंको कल्पनामें ही डाल दिया है ॥ २९९ ॥

१३. शर बहु भाँति कर्मके लाई ❀ आशा काँपमा लसा बनाई ॥ ३०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भक्ति, योग, ज्ञान, विषयादिकी वाणी वही तीक्ष्ण शर या बाण बनाये हैं, उसीका असर बहुत प्रकारसे पञ्च कर्मोंमें जीवोंको लगा करके तीर चुभाये हैं। और तीन लकड़ी लगा हुआ यन्त्रको 'काँप' कहते हैं। उसीमें लाशा, गोंद वा गाद, चिकट वस्तु लगा करके चिड़ियोंको फँसाते हैं। तैसे यहाँपर ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि सुख प्राप्तिकी आशारूपी काँपमें लालच लगा करके नाना तरहसे मनुष्योंको जालोंमें फँसा-फँसाकर दुःख देकर मार डाले हैं; और वैसे ही मार ही रहे हैं ॥ ३०० ॥

१४. छिन छिन जीवन लेत बझाई ❀ पारख मिलै तो परे लराई ॥ ३०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकारसे कपटी व्याधारूप गुरुवालोग जाल-फाँस पसारके उसीमें छिन-छिन, पल-पल, घड़ी-घड़ी, नाना दाव-पेंचसे बारम्बार नर-नारी जीवोंको बझा करके फन्दोंमें डालकर पकड़ लेते हैं। फिर जो मनमें आवे, सो स्वार्थ अभिलाषा पूर्ण करते हैं, जीवन धनको हरण कर लेते हैं। यदि कभी पारखी साधु-गुरु मौकेसे

उन्हें मिल गये, तो उन्हें अपने कर्ममें बाधक समझने लड़ाई करके झगड़ा करनेको उतारू हो जाते हैं या लड़ भी पड़ते हैं। परन्तु, वश कुछ नहीं चलता है, तो फिर हार करके भाग जाते हैं ॥३०१॥

१५. जे अजान नहिं जानहिं फन्दा * लेत बझाय जाल सो गन्दा ॥ ३०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो अबोध, सीधे-सादे मनुष्य हैं, वे तो गुरुवालोगोंके फन्दा-जालका हाल कुछ भी नहीं जानते हैं। इसलिये हितकर समझकर उनके पासमें चले जाते हैं। उन्हें तो वे खूब अच्छी तरहसे बझाय-फँसायकर बाँध ही लेते हैं; सो उनका जाल बड़ा गन्दा है। चराचर परिपूर्ण व्यापक बन-बना करके जीवोंको भी गन्दा=जड़ाध्यासी कर देते हैं; और कोई गन्दा=भग भोग विषय जालोंमें फँस-फँसा करके नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ३०२ ॥

१६. पछ दुइ तोरि आँखि दोउ सीया * जीवहिं बधिक झोरिमों लीया ॥ ३०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब वेदान्तीरूप व्याधाने मनुष्यरूप पक्षीको पकड़कर वश कर पाया, तब उनके दो पङ्खरूप द्वैतका पक्ष, निवृत्ति-प्रवृत्ति, सगुण-निर्गुण, कर्म-भक्ति, जीव-ईश, ये दोनोंको तोड़कर या निषेध करके और फिर विवेक-विचार, ये दो नेत्रोंको भी फोड़ दिया या सीकर बन्द कर दिया; शून्य विर्विकल्प होनेको कह दिया। फिर जीवोंकी जानीवपना, साक्षीदशाको भी मिटाकर या जीवभावको मिटाकर बधिकरूप ब्रह्मज्ञानीने अद्वैत चराचर सर्वत्र व्यापक ब्रह्म सिद्धान्तकी विज्ञान परमहंस स्थितिरूपी एक गहिरी झोलीमें डाल करके दबा लिया। ऐसे जड़ाध्यासी होकर मरे और दूसरोंको भी मार डाले बिना विचार चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जा करके पड़े ॥ ३०३ ॥

साखीः— जिन जिन पारख पाये * तिन तिन लागि न फाँस ॥
[९९] अज्ञ जीव परवश परे * समुझि परी नहिं गाँस ॥ ३०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरुदेवके शरण-सत्सङ्गमें आ करके जिन-जिन जिज्ञासु मनुष्योंने सत्य चैतन्य पारखके बोधको अपरोक्ष कर पाया वा परोक्षमें भी जिन्होंने पारख ज्ञानको समझ पाया है। फिर उन-उन्होंको वा तिन लोगोंको काल=कल्पना, अनुमान, वाणी, विषयादिका कोई भी जाल-फाँस नहीं लगा या लग नहीं सकता है। वे सब बन्धनोंसे छूटकर न्यारा हो जाते हैं। और अज्ञ=अज्ञानी, अबोध, पारख बोधसे रहित, ऐसे नरजीव स्त्री और गुरुवालोगोंके जालोंमें अरुझकर विषय और कल्पनाके अधीन, परवश, लाचार, जड़ाध्यासी होकर उन्होंके घेरामें जा करके पड़े और पड़ रहे हैं। उन्हें तो यह बन्धन गाँसने-अरुझानेवाला है, यह कुछ भी समझ नहीं पड़ी। पारखी सद्गुरुकी कृपासे जिन्हें समझ पड़ी, वे ही उस जालसे निकल कर भाग जाते हैं; फिर उसमें आकर कभी गाँसमें नहीं पड़ते हैं ॥ ३०४ ॥

साखीः— ज्यों ज्यों लसा छोड़ावहीं * त्यों त्यों लपटत जाय ॥
[१००] अधम बधिक सब हंसना * पकरि बझाये खाय ॥ ३०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे शहदकी मक्खी, और दलदलमें फँसे हुए प्राणीके समान लेाशा छुड़ानेको फड़फड़ातेमें पक्षी दुगुना फँस जाते हैं, फिर व्याधा सहजमें ही उन्हें पकड़ करके मारकर खा जाता है। इसीप्रकार जैसे-जैसे संसार विषयोंकी लालच छोड़ने-छोड़ानेको गुरुवालोग कहते हैं, तैसे-तैसे कर्म, भक्ति, योगादिमें लपेटते-लिपटाते चले जाते हैं। वेद प्रमाणसे नाना कर्मादि साधनाएँ कर-कराके चार फल, चार मुक्ति, स्वर्गादि सुख-प्राप्तिकी मिथ्या लालचमें फँसते जाते हैं। खानी-वाणी दोनोंमें चिपकते जाते हैं। अधम, दुष्ट, कपटी, पापी, स्वार्थी बधिक गुरुवालोग हुए हैं। वे सब हंसरूप मनुष्य जीवोंको नाना तरहसे पकड़-पकड़ा करके वाणी कल्पनाके जालमें बझाकर, फँसा करके, उनके तन, मन, धनको हरण करके खा जाते हैं, और खा ही रहे हैं; जीवनधनको लूट करके उड़ा रहे हैं ॥ ३०५ ॥

॥ ❀ ॥ निर्णय शब्द ॥ अज्ञानी हंस नरजीवका विलाप ॥ शब्द, भाग–॥ ३ ॥ ❀ ॥

१. चल मोरे नैहर हंसा ! अमरापुर बासी * टटियाके ओटवे व्याधा ! लगवलेगले फाँसी॥३०६॥
२. पर दूनों तोरे व्याधा ! सीयले दूनों आँखी * मोरे लेखे अहो व्याधा ! दिनवा भई राती॥३०७॥
३. मैं तोहिं पूछों रे व्याधा ! कहहु सत्य मोही * कौनि नगरिया व्याधा ! बेचवेले मोही॥३०८॥
४. अमरापुर पट्टन हंसा ! बसत निरमोही * वोहि रे नगरिया हंसा ! बेचवोंले तोही॥३०९॥
५. कहहिं कबीर हंसा ! सुनहु नर लोई ! * ऐसे व्याधाके वशि हंसा ! परहु मति कोई॥३१०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेबने इस शब्दमें एक दृष्टान्त द्वारा सिद्धान्त दर्शाया है। सो पहले इसकी दृष्टान्तरूप कथा सम्पूर्ण सुनिये ! फिर सिद्धान्त समझनेमें ठीकसे आयगा, तथा उसी हिसाबसे समझाया भी जायगा। तब ही अज्ञ हंसका विलाप मालूम होगा। दृष्टान्तः—प्रथम किसी जमानेमें अमरापुर नामके शहर-राजधानीमें निर्मोही सिंह नामका एक राजा राज्य करता हुआ रहता था। किसी समयमें वह अचानक बिमार पड़ गया, रोग ग्रसित हुआ; उसे वात व्याधि लग गई थी। उसका इलाज बहुतेरे नामी वैद्य, हकीम, महावैद्य आयुर्वेदाचार्योंने किया-कराया। परन्तु, रोग मिटनेके बदले बढ़ता ही गया—"ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया।" दर्दके दुःखोंसे राजा बहुत व्याकुल-परेशान हो गया। दूर-दूरसे भी कई वैद्य बुलाये गये; सबोंने चिकित्सा-उपचार किया, तो भी रोग नहीं छूटा। ऐसे कईएक दिनके बाद एक वात व्याधिका जानकार अनुभवी वृद्ध वैद्य कहींसे आया, उसने राजाको देखा। फिर उसके पूर्वापर पूछताछ करके रोगको ठहराया। रोगका निदान निश्चय होनेपर वृद्ध वैद्यने राजासे कहा—"हे महाराज ! आपके रोगको मैं जान गया हूँ, यह अच्छा हो सकता है। इसकी दवा करना तो मैं जानता हूँ ! परन्तु, वह सामान सब मुझे मिलना चाहिये। वस्तु सहजमें मिलनेकी मुझे उम्मेद नहीं है। जो वस्तु दवामें पड़ती है, उसका मिलना कठिन दिखता है। राजाने पूछा— आप बतलाइये, मैं तलाश कराने लगाऊँगा। वैद्यने कहा—"दवाई बनानेके लिये मानसरोवर निवासी तीन हंस पक्षी मुझे मिलना चाहिये। फिर उसके द्वारा मैं सर्वाङ्ग वातहर तेल बनाऊँगा; उस तेलके मालिश करनेसे तीन ही दिनमें आपका रोग अवश्य अच्छा हो जायगा, यह मुझे निश्चय है।" राजाने कहा—"उसकी तलाशके लिये मैं अपने आदमियोंको भेजता हूँ ! हे वैद्यराज ! आप यहीं राजमहलमें निवास कर लीजिये !" फिर राजाने प्रधानमन्त्रीको हंस मगानेके लिये कहा। मन्त्रीने जल्लाद वा व्याधाओंको बुलाकर हंस पकड़ करके लानेके लिये सख्त ताकीद कर दी और कहा—"जल्दी-से-जल्दी जाकर तीन हंस लाकर हाजिर करो ! उससे ज्यादा मिलें, उतने हंस जिन्दे लाओ ! हंस लानेपर तुम्हें भरपूर रकम-इनाम दिया जायगा और यदि हंस नहीं लाया, तो तुम सबोंको फाँसी होगी और सर्वस्व लुटा दिया जायगा, समझा ? जाओ !" ऐसा कहकर यथेष्ठ पूर्ण खर्च देकर भेजा। वे व्याधा लोग अपनी टोली इकट्ठी करके जाल, तीर-कमान आदि सब सामान लेकर उसी वक्त मानसरोवरके लिये रवाना हुए। कठिन रास्ताको पार करके कुछ दिनमें हंसके धाम मानसरोवरमें जा पहुँचे। उधर हंस पक्षियोंने जब देखा कि, ये विचित्ररूपमें हिंसक व्याधा लोग आये हैं, तो सब कोई सचेत हो करके वहाँसे भाग गये, उड़ कर दूर कहीं टापूमें जाकर बैठे। तब व्याधा लोग हंस पकड़नेकी आशामें तीन दिन तक वहीं बैठे रहे, तो भी कोई एक भी हंस नहीं आये। तब तो वे लोग बड़े उदास-निराश हुए। कठोर राजदण्डको याद कर डरसे काँपने लगे। फिर पासके नजदीकके गाँवमें जाकर अपने-अपने दुःखकी कहानी कहकर रोने लगे। उस गाँवमें भी एक बूढ़ा जल्लाद (व्याधा) रहता था, उसको यह बात मालूम पड़ी, तो वह आ करके उन्हें ढाढ़स बँधाया; और हंस पकड़नेकी युक्ति इसप्रकार बताने लगा—"सुनो ! यह पवित्र धर्म स्थान

मानसरोवर है। भेष देख कर ही हंस लोग पापी और धर्मीकी पहिचान कर लेते हैं। तुम लोग व्याधाके भेषमें गये थे, इससे तुमसे डर करके हंस सब भाग गये; और साधुका भेष देखनेसे वे नहीं भागते हैं, आस-पासमें ही बैठे रहते हैं। अतएव तुमलोग कपटसे शुद्ध पवित्र साधुका भेष बना करके छल-कपट करके जाओ, तो तुम अवश्य हंस पकड़ पाओगे। ऐसी युक्ति वहाँके बूढ़े व्याधाने बतला दी। तब वे उसे धन्यवाद देकर कपटी साधुका भेष बनाकर मानसरोवर चले गये। सर्वाङ्गमें भस्म लेपन किये, चन्दन लगाये। गलेमें माला डाले, हाथमें सुमिरणी, कमण्डलु तथा खड़ाऊँ पहिर करके जटाजूट आदि नकली भेष धारण करके मानसरोवरमें जाकर जाल फैला करके बैठ गये। तदनन्तर दयालु सज्जन महात्मा समझकर हंस उन्हें देखकर नहीं भागे। उड़ते-फिरते पासमें आ गये, और उनके जालोंमें कईयेक हंस फँस भी गये, अरुझ गये। तब झटपट व्याधाओंने उन्हें पकड़ लिया। फिर व्याधा लोग खुशीके मारे नाच-नाचकर कहने लगेः— "हे हंसा! अब तो तू हमारे नैहर=घर, अमरापुरमें चल!" उज्ज्वल भेषकी आड़=ओट-पर्दामें धोखा देकर हंसोंके गलेमें फाँसी लगाये; यानी हंसोंको फँसा करके पकड़ लिये। तो फिरव्याधोंने हंसके दोनों पङ्ख तोड़कर आँखोंको भी ढँक दिया। तब उस हंसके लिये दिनमें ही रातके समान अँधेरा हो गया। इसतरह पिञ्जड़ा वा झोलीमें डाल कर ले जाते हुए व्याधासे हंसने पूछा वा चिल्लाकर आवाज किया कि— "हे व्याधा! मैं तुझसे पूछता हूँ, सो सत्य-सत्य बता कि, मुझे धोखेमें पकड़कर जो तू ले जा रहा है, तो अब कौन नगरमें पहुँचायगा? कहाँ बेचेगा?" तब व्याधा कहता है— "हे हंसा! कहाँ-कहाँ करके तू मत चिल्ला। सुन! अमरापुर शहरमें निर्मोही राजा रहता है, उसी शहरमें तुम्हें मैं पहुँचाऊँगा; राजाके हाथोंमें बेचूँगा। तेरा दर्शन करके राजा-रानी खुश हो जायेंगे, तो भरपूर इनाम लेकर हम भी प्रसन्न, सुखी हो जायेंगे।" ऐसा कहते हुए व्याधाओंने हंसोंको पकड़कर ले गये। परवश होकर हंस विलाप करने लगे; और दूसरे साथी बाहरके हंसोंको "आगे फिर भेष देख करके साधु समझकर भी कभी विश्वास करके मत् भूलो!" ऐसा कहते हुए चेतावनी देते गये। यह शब्दार्थ सहित यहाँपर दृष्टान्त समाप्त हो गया है। अब इसीका सिद्धान्त सहित भावार्थ सुनिये!॥

१. चल मोरे नैहर हंसा! अमरापुर बासी ❀ टटियाके ओटवे व्याधा लगवले गले फाँसी ॥३०६॥

सिद्धान्तिक भावार्थः— श्रीरामरहससाहेब समझा कर कहते हैं— "चल मोरे नैहर हंसा! अमरापुर बासी॥" हे सन्तो! देखिये! गुरुवालोगोंने मनुष्योंको कैसे धोखा देकर भुला रक्खा है। अमरावती या ब्रह्मपुरके भ्रममें निवासी ब्रह्मज्ञानी राजाको असाध्य मनःकल्पनाका रोग लग गया; सुखेच्छाओंसे वे पीड़ित हुए। विद्वान्, वेद-शास्त्रज्ञ पण्डित सोई वैद्य इनके इलाज या मन बहलाव करनेको आये। उन्हें तो वाणी कल्पनाका ही रोग लगा था; पण्डितोंने देखकर कहा कि, मानसरोवररूप सुखके धाम संसारमें रहनेवाले अबोध हंस नर-नारी मिलें, तो उन्हें महाराजकी सेवामें लगाया जाय, तब तो उन्माद रोग, छूटकर उनके विलाससे राजा चङ्गे हो जायेंगे। तब ब्रह्मज्ञानीने मनरूपी मन्त्री, प्रधान अनुयायीको आज्ञा दे दी। उसने योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मी, इन गुरुवालोगोंको बुला करके हुकुम दे दिया कि, संसाररूप मानसरोवरमेंसे हंसरूप अबोध मनुष्योंको किसी तरहसे भी ढोङ्ग पाखण्ड फैलाकर धोखा देकर फुसलाकर ले आओ! उनसे राजाका स्वार्थ सिद्ध करना है। व्याधारूप उन गुरुवाओंको बड़े-बड़े अधिकार, खिताब, खिलअत देकर भेजा। पहले तो वे सादा गृहस्थके भेषमें आये, तो कोई आकर्षित नहीं हुए। तब एक वृद्ध गुरुवाने बतलाया कि, हे भाई! साधुका निर्मल भेष बना करके संसारमें घूमो, तो बहुतेक मनुष्य नाना लालचसे तुम्हारे पासमें आयेंगे, फिर सहज ही वश होवेंगे। तब उन्होंने वैसा ही किया। षट् दर्शनोंके चमकीले नाना भेष, ढोंग रचना करके बहुत प्रकारसे हंसरूप मनुष्योंको जाल-फाँसमें बझाय लिया, उन्हें पकड़

करके स्ववश किया। अब यहाँसे शब्दका भावार्थ शुरू होता है। अमर सत्य हंसरूप मनुष्य जीवोंको जब वाणी जालमें फँसाये, तब भ्रमिक गुरुवालोग कहते हैं कि—हे हंसा! हे प्यारे भक्तो! तुमलोग यहाँ संसारमें हकनाहक दुःख क्यों भोग रहे हो? तुम्हारा-हमारा नैहर=जन्मस्थान तो अमरापुरमें है। तुम-हम सब परमात्माके अंश हैं। सो परमेश्वरके लोकमें ही सब प्रकारके सुख हैं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, स्वर्ग, वैकुण्ठादि सात लोक, सत्यलोक, ईश्वरलोक—यही अमरापुर हैं। सबसे ऊँचेके लोकमें परमेश्वरका निवास है। अन्य लोकोंमें उनके भक्तगण, देवगणादि निवास कर रहे हैं। वहाँपर महान सुख है। भगवान्ने तुम्हारे ऊपर दया करके तुम्हें बुला लानेके वास्ते हमें भेजा है। अब तुम लोग यहाँके स्त्री, पुत्र, धन, घरादिकी मोह-ममता छोड़कर हमारे साथ साधु बनकर चलो; भगवान्में नेह-प्रेम प्रीति लगाओ! इसतरह हमारे सङ्ग नैहरमें चलो! सात आकाशके ऊपर वह अमरापुर है; सबकी शोभा दिखाते हुए तुम्हें वहाँ ले चलेंगे। हे हंसा! जब तुम भगवान्से मिलोगे, तब अपार आनन्द होगा। फिर सदा वहीं निवास करोगे। इत्यादि रोचक वाणी सुनकर सब अबोध मनुष्य गुरुवालोगोंके अधीन शिष्य बनकर भक्त हुए वा हो रहे हैं॥

"टटियाके ओटवे व्याधा! लगवले गले फाँसी॥"—भावार्थः—तब व्याधा=वञ्चक, ठग, गुरुवालोगोंने धोखारूप पर्दा वेदादि वाणीकी आड़में ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्ति बतला कर तन, मन, धनादि हरणकर भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना साधना—पञ्चाग्नि तापना, जल शयन करना, अरण्य निवास, तीर्थ-व्रतादिमें लगाकर चार फल, चार मुक्ति प्राप्तिकी आशारूप फाँसी गलेमें लगा दिया; उसीमें सब गल-गलके मर गये और बहुत लोग उसीमें लटक रहे हैं मरणासन्न हो रहे हैं॥ ३०६॥

२. पर दूनों तोरे व्याधा! सीयले दूनों आँखी * मोरे लेखे अहो व्याधा! दिनवा भई राती॥३०७॥

भावार्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—"पर दूनों तोरे व्याधा, सीयले दूनों आँखी॥"—हे सन्तो! व्याधा=गुरुवालोगोंने किसीको सगुण उपासनामें लगाया है, किसीको निर्गुण उपासनामें लगाया है। और किसीको वह दोनोंसे छुड़ाकर "सबसे परे परब्रह्म जो है, सो तू ही है!" ऐसा बतलाया है। फिर विधि-निषेध ये दोनोंसे परे होकर शुभ-अशुभ ये दोनों पङ्खको तोड़ दिया; और विवेक-विचाररूप दोनों नेत्रोंको भी सीकर या ढँककर बन्द कर दिया। ब्रह्म जैसे-का-तैसा है। विवेक-विचार करनेका कोई काम नहीं है, तू-मैं छोड़कर सब ब्रह्म-ही-ब्रह्म है, यही निश्चय करके कहने लगा॥

"मोरे लेखे अहो व्याधा! दिनवा भई राती॥"—भावार्थः—तब जिज्ञासु हंस जीव कहने लगे कि—अहो गुरुजी! हम तो आपके पास त्रयताप, व्याधि, संसारके दुःख हरण करनेके वास्ते आये थे, सो तो कुछ नहीं हुआ। और आपने हमारा रास्ता भी बन्द कर दिया। संसारमें जो सुख मिलता था, सो भी छुड़ा दिया, बुद्धिरूपी आँखें भी ढाँक दिया। अब हमारे लिये तो ज्ञानरूप दिनमें ही अज्ञानरूपी रात्रि छा गई है। जिसको आप महान प्रकाशरूप ब्रह्म कहते हैं, सो तो हमें कुछ भी देखनेमें नहीं आता है। जीवको अंश बतलाकर और भी भ्रममें हमें डाल दिया है। मेरे हिसाबमें तो सत्यासत्यका कुछ न्यारा-न्यारा निर्णय आपसे समझनेमें नहीं आया; अतः बीचमें ही मैं पड़ गया हूँ॥ ३०७॥

३. मैं तोहिं पूछौंरे व्याधा! कहहु सत्य मोही * कौनि नगरिया व्याधा! बेचवेले मोही॥३०८॥

भावार्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—"मैं तोहिं पूछौंरे व्याधा! कहहु सत्य मोही॥"—हे सन्तो! तत्पश्चात् जिज्ञासु जीव कहता है कि, हे गुरुजी! मैं आपसे अपने कल्याणके वास्ते जो कुछ पूछता हूँ! सो अब तो भी उसका उत्तर मेरे प्रति सत्य-सत्य कहिये? मुझे भ्रममें मत् डालिये!॥

"कौनि नगरिया व्याधा! बेचवेले मोही॥"—भावार्थः—हे व्याधा! हे गुरु! यह तो

बताओ कि, अब मुझे कौन शहरमें ले जाकर बेचोगे ? यानी कौन-सा लोकमें ले जाकर मुझे पहुँचाओगे ? उस लोकका नाम, रूप, ठिकाना पूर्ण पता मुझे ठीक-ठीकसे समझाकर बतलाइये ! वहाँ जाकर क्या मुझे सुख होगा ? कि, ऐसी ही दुर्दशाका दुःख वहाँ भी भोगते रहना पड़ेगा ? किस राजा वा देवताके देशमें ले जा रहे हैं ? सो उसका नाम भी बतलाइये ! ॥ ३०८ ॥

४. अमरापुर पट्टन हंसा ! बसत निरमोही ❀ वोहिरे नगरिया हंसा ! बेचवोंले तोही ॥ ३०९ ॥

भावार्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— "अमरापुर पट्टन हंसा ! बसत निरमोही ॥"— हे सन्तो ! ऐसा शिष्योंका प्रश्न सुनकर गुरुवालोग उत्तर देते हैं कि— हे हंसा ! हे जिज्ञासु जीव ! अनन्त योजनोंके ऊपरमें अमरापुर नामक एक बड़ा भारी सुख समृद्धि सम्पन्न शहर है। उसको सत्यलोक, ब्रह्मलोक, लोकालोक अलौकिकलोक भी कहते हैं। उसी पट्टन=राजधानीमें चक्रवर्ती महाराजा निर्मोही रहते हैं। उसे ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, परमपुरुष, सच्चिदानन्द भी कहते हैं। वह काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सब विकारोंसे रहित निर्विकार रहता है। इसलिये उस राजाका नाम निर्मोही पड़ा है। उसमें 'यथा नाम तथा गुण' है। उसका दर्शन करनेवाला भी वैसा ही निर्विकार हो जाता है, यह उसकी खूबी या विशेषता है, ऐसा जान लो ! ॥

"वोहिरे नगरिया हंसा ! बेचवोंले तोही ॥"— भावार्थः— हे हंसा ! हे प्यारे भक्तो ! तुम्हें मैं उसी महा नगरी सात स्वर्ग लोकके ऊपर ईश्वरलोक, ब्रह्मलोकादिमें ले जाकर पहुँचाऊँगा। मेरे कहे अनुसार साधना करते हुए आगे बढ़ते चलो ! निश्चय करके तुम सब उस महालोक परमपदमें पहुँच जाओगे। यहाँकी चीज वहाँ ले जाकर बेचोगे, तो बड़ी आमदनी होगी; सुखका लाभ उठाओगे। यानी जीवरूपी चीज ब्रह्म नगरमें बेचोगे, तो परमानन्द होगा। हम ही तुम सबको वहाँ ले जाकर पहुँचावेंगे। तुम लोग निश्चिन्त होकर चले चलो, इत्यादि कहकर फुसलाते हुए गुरुवालोगोंने जीवोंको भुला दिया और भुला ही रहे हैं ॥ ३०९ ॥

५. कहहिं कबीर हंसा ! सुनहु नर लोई ! ❀ ऐसे व्याधाके वशि हंसा ! परहु मति कोई ॥ ३१० ॥

भावार्थः— ग्रन्थकर्त्ता चेतावनी देते हुए कहते हैं—"कहहिं कबीर हंसा ! सुनहु नर लोई ॥"— हे हंसा ! हे जिज्ञासु मनुष्य लोगो ! सुनो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने काल-जालको परखाते हुए मनुष्योंको बहुत चेतावनी दिया है। हे नर लोगो ! पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके सत्यन्याय-निर्णयको समझो, बूझो ! जीव ही सत्य चैतन्य हंस हैं। अपने स्वरूपको पहिचानो ! सद्गुण रहनी धारण करके सच्चे जड़-चैतन्य निर्णयी हंस पारखी बनो ! सद्गुरुसे सत्यन्यायके उपदेश सुनो ! सारका ग्रहण और असारका त्याग करो ! ॥

"ऐसे व्याधाके वशि हंसा ! परहु मति कोई ॥"— भावार्थः— सद्गुरु जिज्ञासुओंको सावधान करते हैं कि— हे हंस मनुष्यो ! ऐसे छली, कपटी, धोखेबाज, पाखण्डी षट् दर्शनोंके भेषधारी प्रपञ्ची गुरुवालोग व्याधावत् हैं। वेद-पुराणादिकी वाणी उनके जाल, तीर आदिके समान हैं। वे बड़े कुटिल, ठग, स्वार्थी होते हैं। ऐसे उन्हींके गुण-लक्षण स्वभावको अच्छी तरहसे जानकर तुम लोग कोई भी उनके वश होकर धोखेमें मत् पड़ो ! यदि तुम लोग मुक्ति चाहते हो, तो नारी और गुरुवालोग इन कोईके भी फन्दोंमें मत् पड़ो ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे खानी-वाणीका यथार्थ पारख करके परित्याग करो ! और स्व-स्वरूप चैतन्य, निज पारखपदमें स्थिर हो रहो ! तभी तुम्हारा जीवन सफल होगा, सो जानो ! ॥ ३१० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ७ ॥ [चौपाई-१० । साखी- ३ । शब्द-३ है] ॥ ❀ ॥

१. काल कला विदित संसारा ❀ बिरले जन कोई बाँचनहारा ॥ ३११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! काल=गुरुवालोगोंकी अनेक वाणी-कल्पनाओंकी चौंसठ (६४) कला तथा स्त्रियोंके विषय प्रपञ्चकी आकर्षक मोहनी कला संसारमें

विदित ही है या जगत्में जाहिर-प्रसिद्ध ही है। पारखी साधु-सज्जन कोई बिरले ही इन जालोंसे बचने-बचानेवाले प्रवीण विवेकी होते हैं। नहीं तो सब कोई उसी मोटी-झीनी काल-कलाओंमें ही नष्ट-भ्रष्ट हुए या हो रहे हैं ॥ ३११ ॥

२. आपु गुप्त टाटीके ओटा * गुण माया सो जग विख्याता ॥ ३१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने अपने ऊपर जगत्कर्त्ता परमेश्वर अनुमान करके उसे गुप्त, निराकार ठहराकर माना है। उन्होंने वेद-शास्त्रादि वाणीसे पञ्च कर्मादि-की आड़, ओट, धोखारूप पर्दामें आप जीवको तो छिपा दिया; और वे उसी ओटमें शिकार करने लगे। सर्वमें परिपूर्ण गुप्त ब्रह्म-भ्रमके ओटमें रक्खे हैं। उसीकी इच्छासे मायासे त्रिगुणरूपमें जगत् प्रगट होकर विख्यात हुआ, ऐसा कहकर ब्रह्म प्राप्तिके लिये सोई त्रिगुण साधनाओंमें लगे और लगाये हैं। सो सब प्रपञ्च भी जगत्में विख्यात या जाहिर ही है ॥ ३१२ ॥

३. तीनि काँप शर माँह लगाई * तामें आशा लासा लाई ॥ ३१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो गुरुवालोगोंने भक्ति, योग और ज्ञान, ये तीन 'काँप' या तीन काण्डमें मनुष्योंको सरासर लगाया, कल्पित वाणीरूपी बाण हृदयमें घुसा दिया। उसमें चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग, ईश्वरादि प्राप्तिकी आशा ही लाशा-गोंदके समान चिपकाहट लालचमें लगा दिया वा गाड़ दिया है ॥ ३१३ ॥

४. राति दिवस यम घात लगावै * पकरि हंस बहु नाच नचावै ॥ ३१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दिन-रात ज्ञानी-अज्ञानियोंके ऊपर गुरुवालोग तथा स्त्रियाँ यमरूप होकर घात, ताक, दाव-पेंच लगा रही हैं। हंसरूप नरजीवोंको पकड़-पड़ककर बहुत प्रकारसे उन्हें विषय तथा भेष साधनादिमें अनेक तरहसे नाच नचाये या नचा ही रहे हैं। बाजीगरके बन्दरकी नाईं उनके इशारेमें नाना स्वाङ्ग बना करके नाचनेमें लगे हैं। फिर वही जमी हुई वासना जीवको चौरासी योनियोंमें ले जाकर नाच नचाती है ॥ ३१४ ॥

५. जिन चतुरा परखा यम जाला * चहै बचावन हंस बेहाला ॥ ३१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई होशियार, चतुर-चालाक होते हैं, वे पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाकर यम=नारी और गुरुवाओंकी खानी-वाणीके समस्त जालोंके कसर-खोटोंको ठीक तरहसे परख लेते हैं। अपने स्वयं तो उन जालोंसे छूटकर मुक्त ही होते हैं। और बचनेको चाहनेवाले बेहाल दुःखी हंस-जिज्ञासु नरजीवोंको भी परखाकर बचा देते हैं। जिज्ञासुओंका कल्याण, मुक्ति, बचावा करना चाहते हैं और कर भी देते हैं ॥ ३१५ ॥

६. हंस सो देखि बधिक अकुलाई * करि न सकै कछु निज प्रभुताई ॥ ३१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! दूध-पानी मिला हुआको राजहंस छानकर दूधको ही ग्रहण कर लेता है। सो तैसे ही जिज्ञासु हंस नरजीव भी पारखी सद्गुरुकी शरमें आकर जड़-चैतन्य, सार-असारको न्यारा-न्यारा निर्णय करके सार चैतन्य पारखबोधको ग्रहण करके असार-मिथ्या ब्रह्म-ईश्वरादिका पक्ष त्याग देते हैं। सो ऐसे पारखी सत्यन्यायी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे हुए हंस मनुष्योंको देखकर बधिक=दुष्ट, गुरुवालोग क्रोधके मारे तिलमिला जाते हैं। अकुला करके आपेसे बाहर हो जाते हैं। परन्तु, वे उन्होंका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते हैं। उनकी प्रभुता, शक्ति, बल, लोभ-लालच, शापादिका भय दिखलाकर भी उन्हें नहीं डिगा सकते हैं। काल अपना जोर-जुल्म कुछ भी पारखीके ऊपर नहीं कर सकता है या कालका कुछ भी जोर ही नहीं लगता है ॥ ३१६ ॥

७. अनेकहि कला ताहि पर डारे * सकभरि दुष्ट लरे पुनि हारे ॥ ३१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तो भी मूढ़ गुरुवालोग अपने दुष्ट स्वभावसे पारखी

सद्गुरुके शरणागत हंस जीवोंपर अनेक कला-कल्पना, निन्दा, कलङ्क, जाल-प्रपञ्च नाना तरहसे फँसानेके लिये डाले या डाल रहे हैं। अपनी शक्तिभर तो दुष्ट लोग लड़ाई, झगड़ा, गाली-गलौज करनेमें भी नहीं चूके। जबतक उनका जोर चला, तबतक खूब लड़े। परन्तु, फिर आखिरमें वे ही लोग थककर हार गये। शान्ति ढाल, पारख कवचपर उनका एक भी तीर-तलवार नहीं लग सका, तब काल काला मुँह करके छिप गये ॥ ३१७ ॥

८. पारख बल नहिं पावै सोई * प्रीति प्रतीति अभयपद जोई ॥ ३१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरुकी कृपासे पारखका महान बल-पराक्रम जिसने पा लिया है, फिर उसे तीन लोकमें कोई नहीं जीत सकता है। क्योंकि, सत्यन्यायी पारखी पारख बोधदाता सद्गुरुके भक्ति-भावमें अटूट प्रेम-प्रीति लगा है, उसको गुरुमुख निर्णयमें दृढ़ निश्चय पक्का विश्वास हो गया है। निर्भय निज पारखपदकी दिव्यदृष्टि ही सदा खुली रहती है। अतएव कल्पित भयसे रहित अभयपदमें ही द्रष्टा हंसजीव स्थिर हो रहते हैं। इसीसे कालकी पहुँच वहाँ तक नहीं है; किसी प्रकार भी काल उनके पास नहीं जा सकता है ॥ ३१८ ॥

९. जहाँ कछु सन्धि अपनी पावै * तो यम पकरि ताहि अपनावै ॥ ३१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कालरूप नारी और गुरुवालोग जहाँ जिन मनुष्यों-में भी अपनी तरफ मिलाप, लक्ष्य, प्रेम, सन्धि=मानन्दी जरा-सी बीजमात्र भी देख पाते हैं या जान पाते हैं, तब तो उसे अनेक तरहसे छल, बल, कल-कपट करके पकड़कर अपने अधीन अपना दास या गुलाम बना लेते हैं। यम=नारी और गुरुवालोग उसे अपना करके बड़ा भारी झूठ-मूठका प्रेम दिखलाते हैं। घात पाते ही जड़ाध्यासी बनाकर मनुष्योंको पतित कर देते हैं॥३१९॥

१०. जग यमदेश लहि जीव ठेकाना * नाहक भटकत रहत अयाना ॥ ३२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्में यम=स्त्री और गुरुवाओंके देश=खानी-वाणीमें रहकर कल्पना तथा विषयाध्यासको ही प्राप्त हुए। इसीसे नर देह पाकर भी मनुष्य जीवोंकी मुक्ति स्थिति नहीं हुई। अज्ञानी बेपारखी मनुष्य ब्रह्मानन्द और विषयानन्दादि प्राप्तिके लिये नाना प्रयत्न करके हकनाहक देश-विदेशमें मारा-मारा भटकते रहते हैं। परन्तु, कहीं इसे शान्तिका ठौर-ठिकाना ही नहीं मिलता है। नाहकमें नरतनको पशुवत् अज्ञानतामें बिता करके जड़ाध्यासवश जीव बिना पारख चौरासी योनियोंमें ही भटक रहे हैं ॥ ३२० ॥

साखीः— जो चाहो कल्याण निजु * गहहु परख टकसार ॥

[१०१] सुरति सम्हारि अडिग होय * तजहू यम विस्तार ॥ ३२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मुमुक्षु मनुष्यो ! जो तुमलोग अपना हित-कल्याण, सुख, शान्ति, जीवन्मुक्ति प्राप्तकर नरजन्मको सफल करना चाहते हो ! अपने जीवको बन्धनोंसे छुड़ाना चाहते हो, तो और सब बातको छोड़ करके पहले सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण करो ! फिर उनके सत्सङ्गमें रह करके सद्गुरुके अदल=बीजक सद्ग्रन्थके सत्य सिद्धान्त टकसारका सत्यनिर्णय पारखबोध हासिलकर परिपुष्टकर दृढ़ करो ! पारखपदको ही ग्रहण करके धारण करो ! और सुरति या लक्ष्य-मनोवृत्तिको सब तरफसे समेट करके सम्हालकर निजस्वरूपमें ही अडिग या निश्चल-स्थिर हो रहो। वृत्ति चलायमान होकर विषय-कल्पनामें जाने न पावे, यह ध्यान रक्खो, लक्ष्य एकाग्र रक्खो ! और मन-मानन्दीसे बढ़नेवाला यम=नारी और गुरुवाओंकी खानी-वाणियोंका विस्तार फैलाव, सङ्ग-कुसङ्ग इसको सर्वथा परित्याग करके पहलेसे ही छोड़ दो ! जिससे फिर तुम स्वरूप स्थितिमें निरुपाधिसे रह सकोगे ॥ ३२१ ॥

साखीः— सुरति सम्हारि परख ले ❀ रक्षक भक्षक भाव ॥
[१०२] दृढ़ प्रेम बहियाँ गहै ❀ काटै यमके दाव ॥ ३२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा लक्ष्य या समझको सुधार करके सत्यासत्यका पारख कर लो ! तथा रक्षक-भक्षकके यथार्थ भावको भी अच्छी तरहसे जान लो ! जिन नारी और गुरुवाओंको तुम, सुखदायी, रक्षक, प्रतिपालक समझ रहे हो, सो भूल है । वे तो ज्ञान-गुण, बल, वीर्य, साक्षीपद मुक्ति तकके भक्षक, उसे नष्ट-भ्रष्ट कर चौरासी योनियोंमें डालनेवाले हैं ! बिल्ली, साँप चीताके समान घातक दुष्टभाव उनमें रहा है । अतएव उन्होंका सङ्ग सर्वथा छोड़कर जीवोंके रक्षक, काल-कल्पनादिके भक्षक पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें दृढ़तासे सत्य प्रेम लगाओ ! सद्गुरुको ही अपने हाथ पकड़ाओ ! पारखी सद्गुरु जब तुम्हारी बाँह गहेंगे, तब यमके सब दाव काट देंगे । तथा ऐसी युक्ति बतला देंगे, जिससे तुम अपने भी यम=नारी और गुरुवालोग, मनादिके दाव-पेंच काट सकोगे इसलिये गुरुपदको ही दृढ़तासे पकड़े रहो ॥ ३२२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द भाग—॥ ४ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण बीजकमूल— शब्द, नम्बर— ३२ ॥ ❀ ॥

१. हंसा हो ! चित्त चेतु सकेरा ❀ इन्ह परपञ्च कैल बहुतेरा ॥ ३२३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे हंस ! हे जिज्ञासु नरजीव ! तू तो चैतन्य है । क्यों अचेत होता है ? अभी नरदेहमें है, तो सकेरा=जल्दी ही चित्तमें चेतकर ! तुझे फँसानेके वास्ते ये स्त्री और गुरुवालोगने बहुतेरे प्रपञ्च, पञ्च विषय तथा पञ्च कोशोंकी वाणी-कल्पनाका फैलावाकर रक्खा है । अब तो भी तू शीघ्र सावधान हो जा ! नहीं तो तू लूटा जायगा, कैद होगा, सो जानो ! ॥ ३२३ ॥

२. पाखण्डरूप रच्यो इन्ह त्रिगुण ❀ तेहि पाखण्ड भूलल संसारा ॥ ३२४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! इन त्रिगुणी मनुष्योंको फँसानेके वास्ते पाखण्डी लोगोंने नाना पाखण्डोंकी रचना कर रक्खी है । तहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिवने कर्म, उपासना और योगकी रचना की । द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तका प्रचार किया । उसीसे षड्दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्डका विस्तार हुआ । और स्त्रीसे काम, क्रोध तथा मोह जालकी रचना हुई । अब उसी पाखण्ड, असत्य, कल्पना, विषय प्रपञ्चोंमें सारे संसारके मनुष्य भूले और भूल रहे हैं या भूले पड़े हैं ॥ ३२४ ॥

३. घरके खसम बधिक वै राजा ❀ परजा क्या धौं करै विचारा ॥ ३२५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ घरमेंके मालिक और देशमेंके राजावत् गुरुवालोग बने हैं । किन्तु, वे ही तो बधिक=व्याधाके समान जीवोंको फँसाकर मार रहे हैं । तन, मन, धन अर्पणकर उनके जालोंमें ही सब नरजीव भी फँसते जा रहे हैं । तो गुरुवाओंने एक कल्पित ईश्वरको खसम=घट-घटका वासी, सब सृष्टिका मालिक बतला दिया । उसीकी आड़में खूब लूट मचाये हैं । अब बेचारी अबोध शिष्य-शाखारूप प्रजाएँ जिन्हें कुछ विवेक ही नहीं है, वे क्या करेंगी भला ? नाहक धोखेके भरोसेमें वे शिष्यवर्ग मारे गये या मारे जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ३२५ ॥

४. भक्ति न जानै भक्त कहावै ❀ तजि अमृत विषकै लिन सारा ॥ ३२६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! स्त्री, गुरुवा, विषय और कल्पनादिसे भाग करके सच्चा भक्ति-भाव विवेक करना, तो वे कुछ जानते ही नहीं हैं । चैतन्य गुरुभक्ति करना भी नहीं जानते हैं । ऐसे भक्तिका भेद तो कुछ जानते-समझते ही नहीं हैं । झूठ-मूठमें बड़े भक्त कहलाते या स्वाङ्ग किया करते हैं; भक्तिकी आड़में कपटी बने हैं । और अमृत अविनाशीरूप चैतन्य जीवकी

स्वरूप स्थिति करना छोड़कर विष=विषय, ब्रह्म, कल्पनादिको ही सार मानकर उन्होंने ग्रहण कर लिया है। पारखी सद्गुरुके अमृतमय उपदेश पारख बोधको त्यागकर गुरुवालोगोंके कल्पित जहररूप उपदेशको ही सार मान करके सारे लोगोंने ले लिया, तो भलाई कैसे होगी ? कभी न होगी ॥ ३२६ ॥

५. आगे बड़े ऐसेहि बूड़े * तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥ ३२७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वमें जो ब्रह्मादिक हुए, सो बेपारखी होनेसे ऐसे-तैसेमें ही जड़ाध्यासी हो-होकर डूब गये थे। तैसे ही अभी हमारे आगे सामनेमें भी योगी, ज्ञानी, भक्त, विषयीलोग सब हठी, पक्षपाती बनकर जड़ाध्यासी हो भवधारमें डूबे या डूब ही रहे हैं। हमारा कहा हुआ पारख बोधको उन्होंने वा उन त्रिगुणियोंने ध्यान दे करके नहीं सुना, कुछ भी नहीं माना। वे लोग सत्य बातको भी कुछ, नहीं मानते हैं; इसीसे उनका हित-कल्याण भी नहीं होता है ॥ ३२७ ॥

६. कहा हमार गाँठी दृढ़ बाँधो * निशि बासर रहियो हुशियारा ॥ ३२८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मुमुक्षुओ ! हम तो तुम्हारे हितके लिये ही सत्य बात कहते हैं, सारासार परखाते हैं। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो हमारा कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रवण-मनन करके पारख स्वरूपका बोध ही हृदयमें दृढ़तासे गाँठी बाँधो या पारखबोध पक्का करो ! और दिन-रात हुशियार होकर निजपदमें ही डटे रहो ! ज्ञानी-अज्ञानी, स्त्री, और गुरुवालोगोंके विषय और कल्पनादि जालोंमें कभी भूलकर भी मत् पड़ो ! सावधान हो रहो ! ॥ ३२८ ॥

७. ये कलि गुरु बड़े परपञ्ची * डारि ठगौरी सब जग मारा ॥ ३२९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— अरे भाई ! ये कपटी-धूर्त गुरुवालोग ही प्रत्यक्ष कलि वा कालके स्वरूप हैं। संसारमें उन्होंने बड़े-बड़े प्रपञ्च-जालोंको फैला रक्खा है। वे तो बड़े ही प्रपञ्ची ठग हैं। ठगौरी=वाणी-कल्पनाका जाल डाल करके धीवरवत् सब जगत्-जीवोंको मार डाले, जड़ाध्यासी किये हैं, तथा दुःखमें ही फँसा डाले हैं ॥ ३२९ ॥

८. वेद कितेब दोउ फन्द पसारा * तेहि फन्दे परु आप विचारा ॥ ३३० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! चार वेद हिन्दुओंने तथा चार कितेबरूप कुरान मुसलमानोंने, भिन्न-भिन्न दोनोंने दोनों तरफ फन्दा या महाजाल फैलाया है। कल्पना, धोखा, भ्रम, अनुमान, विषयादिके उसी फन्दोंमें ब्रह्मादि और मुहम्मदादि अपने आप भी पड़े, बद्ध हुए; और अविचारी, अज्ञ अन्य मनुष्योंको भी बहुत प्रकारसे उसी जालोंमें खैंच-खैंचकर अरुझनमें डाल दिये। अब बेचारे अज्ञानी तो आप ही भेड़ियाधसानकी नाईं खुशीसे धोखेमें ही पड़ रहे हैं ॥ ३३० ॥

९. कहहिं कबीर ते हंस न बिसरै * जेहिमा मिले छुड़ावनहारा ॥ ३३१ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो ! वे ही हंस पारखी विवेकी उस धोखेके जालमें कभी नहीं भूलेंगे वा नहीं फँसेंगे, अपने बोध विचारको नहीं बिसारेंगे, जिसमें कि, उन्हें छुड़ानेवाले बन्दीछोर यथार्थ अनुभवी सत्य परीक्षक पारखी सद्गुरु मिल गये हैं। सकल काल-जाल फाँसको पारखी सद्गुरु एक-एक करके दिखाय-परखायकर छुड़ा देते हैं। अपरोक्ष पारखबोध होनेपर हंसजीव कभी उन जालोंमें भूल नहीं सकते हैं; सदा न्यारा हो स्वरूप स्थितिमें ही कायम रहते हैं ॥ ३३१ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द, भाग- ॥ ५ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण बीजक मूल-शब्द, नम्बर-५६ ॥ ❀ ॥

१. नरको नहिं परतीत हमारी ॥ ३३२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अबोध भ्रमिक नरजीव बेपारखी

बने हैं। इसलिये हमारे पारख बोधका प्रतीत उन्हें सहजमें नहीं होता है। उन मूढ़ पक्षपाती अविचारी नरको कभी सत्य बोध होगा, इसका तो हमें विश्वास नहीं होता है ॥ ३३२ ॥

२. झूठा बनिज कियो झूठे सों * पूँजी सबन मिलि हारी ॥ ३३३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! क्योंकि, झूठे गुरुवालोगोंसे मिल करके उन्हें हितकर मान कर ये मनुष्योंने झूठा ही ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि प्राप्तिके लिये अनेक योग, जप, तपादिकी व्यापार साधना की। किन्तु, उसीमें पूँजीरूपी मनुष्यपद, सद्गुण-लक्षण, साक्षीदशा सबोंने धोखा शून्य अनुमान-कल्पना, ब्रह्म-भ्रमादिमें मिलकर हार दिया; नर जन्म व्यर्थ खो दिया ॥ ३३३ ॥

३. षट दर्शन मिलि पन्थ चलायो * त्रिदेवा अधिकारी ॥ ३३४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! तहाँ योगी-जङ्गमादि षड्दर्शन, षट्शास्त्री, मतवादी लोग अनुमान-कल्पनामें ही मिल करके ईश्वर-खुदादि प्राप्तिके लिये नाना मत, पन्थ, छियाञ्चवे (९६) पाखण्ड आदि खूब-चलाये; जगत्में प्रचार किये। उनके अग्रणी विशेष करके ब्रह्मा, विष्णु, और महेश— ये त्रिदेव हुए। किन्तु, वे तो ज्यादे ही खानी-वाणीमें जड़ासक्त हुए। उन्हींके उत्तराधिकारी योगी, ज्ञानी और भक्त होते ही आ रहे हैं। वे सब बिना पारख चौरासी योनियोंके अधिकारी बने हैं ॥ ३३४ ॥

४. राजा देश बड़ो परपञ्ची * रैयत रहत उजारी ॥ ३३५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मज्ञानी गुरुवालोग राजा हुए। वे अद्वैत सिद्धान्तके देशमें रहकर संसारमें ब्रह्मज्ञानादिका उपदेश कर रहे हैं। ये बड़े ही प्रपञ्ची उपाधि लगानेवाले ठग-धूर्त निकले हैं। सब नरजीवोंके सर्वस्व विवेकादि हरण कर लिये। इसलिये रैयत=शिष्यवर्ग प्रजाजन, उजार=शून्य, मिथ्या धोखेमें रहने लगे। आकाशवत् ब्रह्म मान करके अन्तमें हंसपदसे उजाड़ हो, गर्भवासमें ही जाते रहते हैं ॥ ३३५ ॥

५. इतते उत उतते इत रहहु * यमकी साँड़ सवारी ॥ ३३६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! फिर इधर घरबार छोड़ करके नाना साधनाकर उधर एक ब्रह्म बने, फिर इच्छा प्रगट होनेसे, उत=ब्रह्मसे, इत=जगत् चौरासी योनियोंमें ही चले आये। जगत्से ब्रह्म, ब्रह्मसे जगत् हुए; जीवसे शिव, शिवसे जीव; मनुष्यसे पशु, पशु योनियोंसे मनुष्य; बाहरसे गर्भवास, गर्भवाससे बाहर; जन्मसे मरण, मरणसे जन्म— इसतरहसे यम=गुरुवालोग और स्त्रीके साँड़=सङ्गमें ब्रह्म मानन्दी और विषय भोगोंकी सवारी करके चढ़ने, आरूढ़ होनेसे इत-उतका भटकना आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रमें जीव सब पड़े हुए हैं; नरजीवोंपर यम सवारी कर रहे हैं ॥ ३३६ ॥

६. ज्यों कपि डोर बाँधु बाजीगर * अपनी खुशी परारी ॥ ३३७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! जैसे बन्दरके गलेमें रस्सी बाँधकर बाजीगर उसे नचाता है। तैसे ही सब नरजीवोंको गुरुवालोग और स्त्रियोंने ब्रह्म-जगत्की विषय-कल्पना, आशा-तृष्णाकी डोरमें बाँध लिया, तो ये ही मोहासक्त होकर बन्दरवत् अपनी खुशीसे ही नाचने उन्हें रिझाने लगे। कमाई-धन्धा और साधनाओंमें नाना तरहसे पड़े नाच रहे हैं। फिर चारखानीमें जाकर नाच रहे हैं ॥ ३३७ ॥

७. इहै पेड़ उतपति परलयका * विषया सबै विकारी ॥ ३३८ ॥

अर्थः— श्रीद्सगुरु कहते हैं— हे भाई! यही स्त्री ही तो उत्पत्ति=जन्म लेनेका और प्रलय=देह छोड़कर गर्भवासमें चले जानेका मूल पेड़ या कारण है। अनेक सन्तानरूपी फलसे लदी है। और यही ब्रह्म ही तो जगत् उत्पत्ति-प्रलय होनेका कारण अधिष्ठान पेड़रूप माना है। अतएव

विषयानन्दसे लेकर ब्रह्मानन्द तक जितने भी विषय हैं, सो सब ही विकारयुक्त जीवको बाँधनेवाले भव-बन्धनके हेतु हैं ॥ ३३८ ॥

८. जैसे श्वान अपावन राजी ❀ त्यों लागी संसारी ॥ ३३९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कुत्ता अपवित्र हाड़ चबानेमें राजी होता है। नीरस हाड़में ही स्वाद मानकर भूल जाता है। तैसे ही संसारी विषयासक्त पुरुषोंकी भी दुर्गति है। सूखी हड्डीवत् स्त्रीका देह हाड़-मांस, मल-मूत्रादि अपवित्र पदार्थोंसे ही भरा है। विषयी बावरे कुत्तेवत् बन करके स्त्रीको पकड़ करके विषय भोगमें सुख मानकर नक भोगनेमें लगे हैं। अथवा और गुरुवालोग वेदादिको पकड़कर संशयसे ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नाना मिथ्या साधनाएँ करनेमें लगे हैं, बिना विवेक ॥ ३३९ ॥

९. कहहिं कबीर यह अदबुद ज्ञाना ❀ को मानै बात हमारी ? ॥ ३४० ॥

अर्थः— सत्यपरीक्षक पारख प्रकाशी स्वानुभवी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यह आश्चर्य तो देखिये ! जिसे गुरुवालोग ज्ञान, विज्ञान कहते हैं, सो तो भ्रम कल्पनायुक्त महा आश्चर्यमय अज्ञान ही है। जड़-चैतन्यको एकमें गोलमाल करके मिला करके बुद्धिको भ्रष्ट कर लिये हैं, कुछ भी विवेक नहीं किये। और मैं सत्य निर्णयसे परखा करके पारख करनको कहता हूँ ! तो वे कोई हमारी बातको नहीं मानते हैं। कोई-कोई बिरले ही मुमुक्षुजन विचार करके हमारा सत्य उपदेशको मानते हैं ॥ ३४० ॥

१०. अजहूँ लेहुँ छुड़ाय कालसों ❀ जो करै सुरति संभारी ॥ ३४१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो ! जड़ाध्यासोंके हेतुसे तुम्हारे अनन्त जन्म बीत चुके हैं, अभीतक बन्धन वैसा ही पड़ा है। अभी भी चेतो ! नरदेहमें हो, सत्यासत्य निर्णयकर पारख बोधको लेओ ! मैं तो अभी भी तुम्हें काल-जालोंसे छुड़ा लेनेको तैय्यार हूँ ! जो जिज्ञासु नरजीव मेरे पारख बोधकी तरफ लक्ष्य करेंगे, उन्हें मैं काल-जालोंसे छुड़ाय लेता हूँ ! खानी-वाणीसे नारी और गुरुवाओंकी तरफसे अपनी सुरति या मनोवृत्तिको खींचकर सम्हार लेवेंगे। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-बोधमें ही लक्ष्यको लगाये रखेंगे, वे अवश्य काल-जालोंसे छूटकर मुक्त हो जावेंगे ॥३४१॥

॥ ❀ ॥ शब्द, भाग- ॥ ६ ॥ अष्टपदी शब्द ॥ १ ॥ श्रीसद्गुरु स्तुति ॥ ❀ ॥

१. प्रभुजी ! तुम बिन कौन छुड़ावै ? ॥ ३४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे प्रभुजी ! हे पारख प्रकाशी ! हे बन्दीछोर सद्गुरो ! आपको बारम्बार अथवा अनन्त बार धन्य है ! धन्य है ! आपने सत्य पारखका बोध देकर नरजीवोंको भव-बन्धनोंसे छुड़ाया है। आपके बिना और दूसरे कोई यह विकट भवसागरसे छुड़ानेवाले दिखाई नहीं देते हैं। विकराल-दुस्तर खानी-वाणी बन्धन, आवागमनोंसे आपके बिना और कोई छुड़ानेवाले नहीं हैं। आपके बिना मुक्तिदाता और कौन हैं ? अर्थात् कोई नहीं हैं। पारखी सद्गुरुके बिना और कोई बन्धनोंसे छुड़ा करके मुक्त करनेमें समर्थ नहीं हैं। इसलिये हे प्रभो ! मैं आपके शरणागत हूँ ! मुझे भव-बन्धनोंसे छुड़ाइये ! ॥ ३४२ ॥

२. महा कठिन यम जाल फाँस है ❀ तासों कौन बचावै ? ॥ ३४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें जीवोंको छूटनेके लिये अत्यन्त मुश्किल महान कठिनतर ऐसे यमरूप स्त्री और गुरुवाओंकी खानी-वाणीका जाल महान फाँसीके समान फन्दा लगा हुआ है। गृहस्थ तथा साधु उसी मोटी-झीनी यमजालोंके फाँसमें फँसे हुए दूसरोंको भी अनेक तरहसे उसीमें फँसा ही रहे हैं। हे सद्गुरो ! आपके बिना उन विषय और कल्पना आदि कष्टसाध्य रोगोंसे और कौन बचावेंगे ? अर्थात् कोई भी बचानेवाले नहीं हैं ॥ ३४३ ॥

३. नाना फाँस फँसाय जीवको * आपनरूप छिपावै ॥ ३४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पञ्च विषय पञ्चकर्म, लोक-वेदोंका प्रपञ्च, वर्ण, आश्रम, कुल, धर्म, जात-पाँत, मान-मर्यादा, जप, तप, व्रत, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र इत्यादि नाना प्रकारकी वाणी-कल्पना तथा विषय सम्बन्धी जाल या फाँसोंमें फँसाय, अरुझा करके सब मनुष्य जीवोंको जकड़ा करके बद्ध कर दिये हैं। कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादिका स्वरूप मानन्दी प्रगटकर जीवका अपना निज स्वरूप सत्य चैतन्यपदको छिपा करके माया-मोह, भ्रमके महान आवरणरूप पर्दासे ढाँक दिये हैं। ऐसे धोखेमें जीवका अपना स्वरूपको छिपा करके ढाँक रहे हैं ॥ ३४४ ॥

४. पञ्चकोश होय परगट ग्रासै * तेहिको कौन लखावै ? ॥ ३४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय, और विज्ञानमय, यह पञ्चकोशोंमें भ्रमिक हो करके जीव भूले हैं। तहाँ कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और ब्रह्मज्ञानका पाँच मार्ग प्रगट करके अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धिके लिये सब मनुष्योंको उसीमें ग्रास किये या ग्रास रहे हैं। कहीं भग मुखसे और कहीं भ्रम मुखसे पकड़-पकड़कर निगल रहे हैं। मनुष्यपदसे नष्ट-भ्रष्ट कर-करा रहे हैं। उन कुटिलोंके कपट, गुप्त-प्रगट बन्धनोंको हे प्रभो ! आपके बिना और कौन लखावेंगे ? और कोई लखानेवाले नहीं हैं। आप ही यथार्थ सत्य निर्णयसे पारखको लखानेवाले परम उपकारी हो ! ॥ ३४५ ॥

५. आपुहि एक अनेक कहावै * त्रिविधि रूप बनावै ॥ ३४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोग अपने आप ही बद्ध-जड़ाभ्यासी बने हैं, फिर वे किसीको क्या मुक्त करेंगे ? उन्होंने ही जीवोंको भुलाया-भटकाया है। जीव आप-ही-आप स्वयं सत्य है। परन्तु, अपने आपको न जानकर आप ही जीवने निज स्वरूपको भूलकर भ्रमवश एक ब्रह्मकी कल्पना की। फिर आप ही एक ब्रह्म व्यापक बना, ब्रह्म कहा-कहलाया। किन्तु, ब्रह्ममें स्थिति नहीं हुई, तो कल्पनासे "एकोहं बहुस्याम्"-ऐसी इच्छा करके अनेक जगत्की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहने लगा। फिर अनेकको एक ब्रह्ममें लय किया; ब्रह्मसे जगत् और जगत्से ब्रह्म, ऐसे एक-अनेक कहलाते हैं। एक जीवपर अनेक बन्धन लाद दिया। त्रिविधि रूपमें— द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत, यह तीन सिद्धान्त वेद प्रमाणसे कायमकर यही तीनों मतका भेष, उपदेश देकर वाणी बना करके गुरुवालोगोंने अनेक चेले बनाये हैं। अद्वैत मतमें एक ही ब्रह्म सत्य माना है। द्वैत मतमें जीव और ईश्वर, दो को सत्य माना है; तथा विशिष्टाद्वैत मतमें जीव, ईश्वर और मायारूप प्रकृति— इन तीनोंको सत्य माना है। ऐसे त्रिविधि सिद्धान्तोंका रूप बनाया है। अथवा योगी, ज्ञानी, भक्त— यह तीनों रूप बनाकर भ्रमिक जीव आप ही एक वा अनेक कहलाता है ॥३४६॥

६. सैन पाट होय दुष्ट नष्ट सो * परलय अन्त दिखावै ॥ ३४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! कुटिल स्वभाववाले मतवादी वञ्चकोंने जीवकी ज्ञान दृष्टिको पाट करके उसे मूँद दिया। भ्रमके इशारेसे वे ब्रह्म हुए वा ब्रह्म बना दिये, सो दुर्बुद्धिरूप गुरुवालोग दुष्ट बने हैं; वे स्वयं धोखेमें लगे औरोंको भी धोखेमें लगाकर नाहक नरजन्म नष्ट किये-कराये हैं। अन्तमें सब चराचरको लय करके साक्षीपदको भी लय करके सबसे परे परब्रह्म निर्विकल्प एक रहा, ऐसा कल्पनासे दिखलाये हैं। फिर शास्त्र प्रमाणसे—

"चतुर्युग सहस्राणि दिनमेकं पितामहः"— कहते हैं कि, चारों युगोंके हजार वक्त व्यतीत होनेपर ब्रह्माका एक दिन तथा उतने ही समयकी रात्रि भी होती है, ऐसा माना है। ब्रह्माजी भी ऐसी सौवर्षकी आयु व्यतात होनेपर, अन्तके महाप्रलयमें उसी परब्रह्ममें समा जाते हैं। अतः वही ब्रह्म सत्य है, ऐसा गुरुवालोगोंने कल्पनाकी वाणी दिखाये या दिखाते हैं; और पारखी सद्गुरुके बिना इसका निर्णय कौन करेगा ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ३४७ ॥

७. विषय विकार जगत अरुझावै * जहाँ तहाँ भटकावै ॥ ३४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! फिर जगत्के विषयी जीव तो काम, क्रोध, लोभादि संयुक्त होकर पञ्च विषयोंके विकारोंमें ही अरुझ रहे हैं। किन्तु, गुरुवालोग उसी सूक्ष्म विषयोंके विकार ज्योति, आनन्द आदिको ही परमेश्वरका स्वरूप बतला करके और भी जगत् जीवोंको अरुझा दिये हैं वा अरुझा रहे हैं। इसीसे जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंमें जहाँ-तहाँ भटका खा रहे हैं। ऐसे खानी-वाणीके विषय-विकारोंमें ही जगत्के सब जीव अरुझे और अरुझा रहे हैं; जड़ाध्यासी होकर जहाँ-तहाँ भटके और भटका रहे हैं ॥ ३४८ ॥

८. योग ध्यान बिगुर्चन भारी * ताहि सुरति अटकावै ॥ ३४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अष्टाङ्ग योग, ध्यान, समाधि आदि, यह सब भी भारी बिगुर्चा=धोखा ही खड़ा किये हैं। इसीकी आड़में साधकलोग भूल करके उसी शून्य परब्रह्म-परमात्मामें सुरति अटका देते हैं। ऐसे-ऐसे बड़ा भारी धोखेमें पड़कर उसीमें लक्ष्यको अटकाते हैं, जीवोंको भटकाते हैं, बन्धनमें डालते हैं। बिना पारख जड़ाध्यासी जीव आवागमनमें ही पड़े रहते हैं ॥ ३४९ ॥

९. आश नाम नौका बैठावै * भवके धार बहावै ॥ ३५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्के दुःखी मनुष्योंको विषय-सुख, चार फल, स्वर्ग, ईश्वरादि प्राप्तिकी आशा देकर 'राम-नाम' रूपी नौका या 'ॐ' 'सोहं' जाप, नाम-स्मरणमें बैठाते हैं। कहनेको तो उन्हें भवसागरसे पार उतर जाओगे, प्रेमसे नाम-स्मरण करो, यह 'राम-नाम' का जहाज तुम्हें अवश्य भव पार उतार देगा, इत्यादि कहकर विश्वासमें बैठा दिये हैं। परन्तु, भवसागररूप संसारकी बीच धारारूप कल्पना और विषयादिमें बहा करके उस नाव सहित जीवोंको डुबा दिये हैं, तो अध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें जन्म, मरण, गर्भवासमें ही गोता लगाने लगे; पारखी सद्गुरु मिले बिना यह धोखेसे कोई छुड़ा नहीं सकते हैं ॥ ३५० ॥

१०. तत्त्वमसि कहि ताहि डुबावै * अन्त कोई नहिं पावै ॥ ३५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मी, योगी और भक्तोंने राम-नामरूपी जहाजको कल्पनामें बैठा करके भवधारामें ही बहाया था। परन्तु, ब्रह्मज्ञानियोंने तो "तत्त्वमसि"-कहकर तारपीटरसे छेद करके उस जहाज सहितको ही बीचमें ले जाकर डुबा दिया। सामवेदके महावाक्यमें "तत्त्वमसि" ऐसा कहा है। सो उसका यह अर्थ है कि, त्वं=अल्पज्ञ जीव, तत्=सर्वज्ञ ईश्वर, और उन दोनोंकी एकता असि=ब्रह्म एक है, सच्चिदानन्द कहा है। हे जीव ! तू वही ब्रह्म है ! व्यापक परमानन्दरूप ब्रह्म तू ही है ! ऐसा-ऐसा उपदेश कहकर कल्पित वाणी समुद्रके अगाध भ्रमचक्रमें जीवोंको डुबा दिया है। ब्रह्म-भ्रमका अन्त तो उन किसीने भी नहीं पाया। वेद भी 'नेति-नेति' कहकर हारा। बेअन्त, अगम, अगोचर, अपार ऐसा कह-कहकर सब डूब जाते हैं। हे सद्गुरु साहेब ! ऐसे कठिन भ्रम जालका अन्त या यथार्थ पता आपने ही लगाये हो ! आपके बिना दूसरे किसीने भी पता नहीं पाया। कोई अन्त पा नहीं सकते हैं; अतः आप मुझे इससे किनारा लगा दीजिये ! ॥ ३५१ ॥

११. चार मुक्ति जोइनि चौरासी * तेहि मिलि हेतु बढ़ावै ॥ ३५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चार खानीके दुःखोंसे पीड़ित होकर मनुष्य सुख प्राप्तिके लिये गुरुवालोगोंकी शरणमें गये, तो उन्होंने चार मुक्तिकी महिमा सुना करके उनकी प्राप्तिके लिये चार मार्ग बतलाया। सो कर्म मार्गसे सालोक्य मुक्ति=स्वर्गादि लोकमें निवास बतलाया है। उपासना मार्गसे सामीप्यमुक्ति=इष्टदेवता वा ईश्वरके नजदीक हजूरी दासवत् समीपमें रहोगे, ऐसा कहा है। योग मार्गसे सारूप्यमुक्ति=ईश्वरके सदृश या एक समान होओगे, ऐसा बतलाया है; और ज्ञान मार्गसे सायुज्यमुक्ति=ब्रह्ममें ही मिल जाओगे, ऐसा कहते हैं।

इसप्रकारसे जो इन्हें गुरुवालोगोंने मुक्ति बतलाया है, उसीकी प्राप्तिकी चाहनासे उसी अमुमान-कल्पना, भ्रममें मिल करके मनुष्योंने प्रेम-प्रीति साधना तो बहुत बढ़ाया; परन्तु, उससे कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ। वही अध्यास ही चारखानी, चौरासी योनियोंमें ले जानेका बीज कारण हुआ। सो उसी अध्यास-वासनावश चौरासी योनियोंमें ही जीव गये और जा रहे हैं, बिना पारख ॥ ३५२ ॥

१२. नेम धर्म पूजा औ संयम ❀ बहु विधि लाग लगावै ॥ ३५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारी भ्रमिक नरजीव भुक्ति-मुक्ति, सुख-ऐश्वर्यादि प्राप्तिकी चाहनासे गुरुवालोगोंके बहकावेमें लगकर अनेक प्रकारसे साधनाएँ करने लगे। तहाँ कोई नित्य नियमसे जप-तप, होम-हवन, गङ्गा स्नानादि करने लगे। कोई धर्म, कर्म, तीर्थ, देवादि दर्शन, दान-दक्षिणा, श्राद्ध, सदाव्रतादिको पुण्य कार्य मान करके करने लगे। कोई शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और भगवती, ये पाञ्चायन देवताओंकी विधिवत् पूजा करने लगे; और कोई योगमार्गमें देह, इन्द्रियादि निरोध करनेकी साधनाओंके संयममें लगे। ऐसे-ऐसे बहुत तरहसे टेक, आधारकी लाग लगाये। भक्ति आदिकी टेक, ईश्वरका आधार मानकर धोखेमें मन लगाये या लगा रहे हैं ॥३५३॥

१३. भेष अलेख करे को पावै ? ❀ जीवहिं चैन न आवै ॥ ३५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अलेख=जिसका लेखा, हिसाब किया नहीं जा सकता है; जो लिखने-कहनेमें नहीं आता है, सो निःअक्षर, अवाच्य कोई परब्रह्म कर्त्तापुरुष है। ऐसी मन गढ़न्त अनुमान-कल्पना करके गुरुवालोगोंने भेष वा रूप बेहिसाबसे बनाया है। संन्यासी, उदासी, वनवासी, वैरागी, नागे, निर्वाणी, फकीर आदि षड्दर्शनोंमें छियान्नवे पाखण्डोंका प्रचार किया है, इत्यादि प्रकारसे नाना भेष तो किये-कराये; परन्तु, मन, बुद्धि, वाणीसे परे माना हुआ परमेश्वरको कौन पावेगा? किसीने उसे कुछ जान नहीं पाया, तो अपार, अगम कहकर रह गये। कल्पना-भ्रमसे नरजीवोंको कहीं भी चैन नहीं आया। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे विमुख मनुष्योंको सुख-शान्ति, मुक्ति-कल्याणरूप चैन कभी नहीं आया; न कभी चैन आवेगा। अतः उन्हें चैन ही नहीं आता है, बेचैन बने हैं ॥ ३५४ ॥

१४. चारि वेद षट् अष्ट दशों लै ❀ शून्यहि शून्य समावै ॥ ३५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! चार वेद=ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद है। षट्शास्त्र— मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त है; अष्टादशरूप अठारह पुराण— मार्कण्डेय, ब्रह्म, पद्म, शिव, विष्णु पुराणादि और अष्टाङ्ग योग, दश मुद्रा, यम-नियमादि दश (१०) इत्यादि जहाँ तक भी ग्रन्थ-पन्थादि हैं; उन सबोंने आखिरमें "दशों दिशाओंमें परिपूर्ण व्यापक आकाशवत् महाशून्य परमात्मा निरञ्जन, निराकार, निर्गुण है"; ऐसा कहकर ठहराये हैं। फिर ध्यान, योग-समाधि लगा करके वृत्तिको शून्य कर उसी शून्य-ही-शून्यमें ही जाकर समाये। सो उसी शून्यके अध्याससे फिर शून्य स्थान गर्भवासमें ही जा करके समाते हैं॥ ३५५ ॥

१५. काल चक्र वशि उत्पति परलय ❀ जीव दुस्सह दुःख पावै ॥ ३५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! काल चक्र=गुरुवालोग और स्त्री तथा मनके फेरारूप मानन्दी, विषयासक्ति, वाणी कल्पनाके भ्रम, जड़ाध्यासके वशीभूत होकर जीव नाना देहोंकी उत्पत्तिरूप जन्म और प्रलयरूप मरण, एवं गर्भवास— इसी आवागमन चक्रमें ही पड़कर जड़ाध्यासी जीव सब अनादि कालसे ही दुस्सह दुःख, अत्यन्त कठिन कष्ट-क्लेश पाये और क्लेश पा ही रहे हैं। पारख बिना बारम्बार काल चक्रमें ही पड़कर दुःखित हो रहे हैं ॥ ३५६ ॥

१६. साहेब दया कीन्ह परखाये ❀ रामरहस गुण गावै ॥ ३५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पारख प्रकाशी परम दयालु सद्गुरु

श्रीकबीरसाहेबने दयादृष्टि करके सब काल-जाल, खानी-वाणी भव-बन्धनोंको सर्व प्रथम परखा दिया है। तैसे ही मुझ अबोधको महान दयादृष्टिसे श्रीगुरुदयालसाहेबने पारखबोध करा दिया है। सब जालोंको एक-एक करके परखा दिया है, समझा दिया है। काल-जालोंसे मुझे दयालु सद्गुरु साहेबने छुड़ा दिया है; महान उपकार किया है। आपके उसी उपकारकी याद करके बारम्बार धन्यवादरूप आपके गुणानुवादको मैं 'रामरहसदास' स्तुति-प्रार्थनाके रूपमें आप सद्गुरुके सद्गुणोंका गायन, कीर्तन करके वर्णण करता हूँ! अथवा मैंने आपका यह गुण गायन किया हूँ! ऐसा ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेबका कथन प्रकाश हुआ है, सो जान लीजिये! ॥ ३५७ ॥

साखीः— कपट चतुरता काल वशी ❀ सन्मुख प्रभुके नहिं होय ॥
[१०३] भ्रमहारी साहेब शरण ❀ निश्चय भया बिलोय ॥ ३५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! छल, कपट, प्रपञ्च, चतुराई, पाखण्ड, विषय, कल्पनादि विकारोंसे भरे हुए स्त्री और गुरुवालोग यही 'काल' हैं। जो इनके वशीभूत होकर उनके गुलाम हुए, वे दुर्बुद्धि कालके वश होकर नष्ट-भ्रष्ट होते हैं। ऐसे लोग पारखी सद्गुरु प्रभुके सन्मुख आकर सत्सङ्गमें कभी उपस्थित नहीं होते हैं। क्योंकि, प्रभुके सन्मुखमें कपट, चतुरता, कल्पना इत्यादि कुछ नहीं होती है या कुछ विकार नहीं ठहर सकता है। पारखी सद्गुरु साहेब तो सब भ्रम-भूलको हरण करनेवाले हैं। जो उनकी शरणमें गये, उन जिज्ञासुओंकी सब भ्रम-कल्पना सद्गुरुसाहेबने हरण कर दिया। यथार्थ सत्य निर्णय परखा करके पारखबोध लखा दिया। सत्सङ्गमें सारासारको बिलो करके या मथनकर जड़-चैतन्यका निर्णय करनेपर पारख बोधसे "जीव ही सत्य है!" यह निश्चय हो गया। तब निज स्वरूपकी स्थिति होनेसे अध्याससे छूटकर निश्चयसे वे जीवन्मुक्त हो गये या मुक्त हो जाते हैं। अतएव पारखी सद्गुरुको शरणको ही ग्रहण करना चाहिये ॥ ३५८ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८ ॥ [चौपाई- १२ । साखी-२ । शब्द-१ है] ॥ ❀ ॥

१. सदा काल निज जाल पसारा ❀ नित्यप्रलय परलय विस्तारा ॥ ३५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालके जगत्में सदा-सर्वदासे काल=स्त्री और गुरुवालोग अपनी खानी-वाणी आदिकोंके महाजालोंको बहुत प्रकारसे पसारा किये फैलाये तथा फैला ही रहे हैं। नित्यप्रति उत्पत्ति और प्रलय किया ही करते हैं। नित्य ही जीवोंको बझा करके नष्ट-भ्रष्ट किया ही करते हैं। जन्म-मरणादिके फेरामें नित्य जीव पड़ा ही करते हैं। वाणी कल्पनासे गुरुवालोगोंने 'नित्यप्रलय' आदि चार प्रलयोंका कथन विस्तार किया है॥३५९॥

२. लेत सकेलि जाल एक बारा ❀ महाप्रलय सो विदित संसारा ॥ ३६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सब माया जालको एक ही वक्तमें समेट करके लयकर एक ही ब्रह्माकार वृत्तिमें शून्य रहना, सो उसीको गुरुवालोगोंने संसारमें महाप्रलयके नामसे जाहिर किया है। अथवा परमेश्वर अपनी शक्तिसे एकबार ऐसा करेगा कि, सब चराचर जगत् विस्तारको समेट लेगा, तो समस्त पृथ्वी जलमें डूबेगी, जलको प्रलयाग्नि सुखा देगी, अग्निको महानवायु नाश करके आकाशमें वायु समा जायगी, फिर आकाश सहित विश्व भी परब्रह्ममें लय हो जायगा, सो उसीको 'महाप्रलय' कहते हैं। ऐसा पण्डितोंने कल्पनाकी वाणी संसारमें विदित या जाहिर कर रक्खा है, सो मिथ्या भ्रम मात्र है ॥ ३६० ॥

३. पिण्ड ब्रह्माण्डके एक स्वभाऊ ❀ प्रलय चार सो कालके दाऊ ॥ ३६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पिण्डरूप शरीरका और ब्रह्माण्डरूप बाहरके चार तत्त्वोंके कार्य-कारणके स्वभाव (प्रकृति) का एक-सा ही मिलान होता है। सो यही देखकर बाहर

भी जो चार प्रलय माना है, सो गुरुवालोगोंकी मिथ्या कल्पनाका ही दाव-पेंच है। और दो प्रलय पिण्डमें, तथा दो प्रलय ब्रह्माडमें माना है। चार अवस्थाओंके भावमें उत्पत्ति तथा अभावमें प्रलय माना है। विचार करके देखिये! तो पिण्ड-ब्रह्माण्डके तत्त्व, प्रकृति, गुण, विषयादिका स्वभाव एक-सा है। चार प्रलय माना हुआ गुरुवालोगोंका मिथ्या दाव मात्र है॥ ३६१॥

४. नित्य प्रलय सो नित पर बीते * प्रलय मरण जलामय कीते॥ ३६२॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! रोज ही निद्रा लगना सुषुप्तिमें जाग्रत्का सब व्यवहार लय होकर शून्य हो जाना, सोई 'नित्यप्रलय' कहा है। नित्य ही जागनेपर वह बीत जाता है या खतम हो जाता है। तथा मृत्यु होकर देह छूट जानेको, देहमें फूल करके जल-ही-जल हो जानेको ही कितनेक लोगोंने 'जलामय प्रलय' के नामसे निश्चय किये हुए हैं। जैसे यहाँपर मनुष्योंमें अवस्थाका बदलाव होता है, तैसे वहाँपर बाहरमें भी अनुमान करके ब्रह्माके अवस्थाभेदमें 'नित्य प्रलय' और और 'जलामय प्रलय' होता है; ऐसी कल्पना किया है॥ ३६२॥

५. एकान्तिक प्रलय ब्रह्मज्ञाना * महाप्रलय महाशून्य समाना॥ ३६३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मज्ञानके अद्वैत निश्चयसे एक ब्रह्ममें ही सब दृश्य द्वैतको विलय कर देना, अन्तमें एक ही "अहं ब्रह्मास्मि" में ठहरना, इसीको एकान्तिक प्रलयके नामसे माना है। और महाशून्यवत् परब्रह्ममें समरस हो परमहंस दशा धारणकर जड़वत् पड़े रहते हैं। उन्हें जगत् भासता ही नहीं, वही महाप्रलय है, ऐसा कहकर माना है। अथवा समस्त सृष्टिका विनाश होकर महाशून्यमें समा जाना, महदाकाशवत् एक निरञ्जन ब्रह्म ही ज्यों-का-त्यों बने रहना, सो महाप्रलय है; गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना की है॥ ३६३॥

६. अत्यन्ता नहिं मान अमाना * चहुँ प्रलय महाकाल समाना॥ ३६४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जहाँपर मान=जगत् तथा अमान=सृष्टिकर्त्ता ईश्वर, ये दोनोंका अस्तित्व ही नहीं रह जाता; भेदाभेद विवर्जित, ऐसा परमात्मापद माना है। वहाँ अत्यन्ताभाव है, ये तो चारों प्रलयोंसे भी बढ़ करके पाँचवाँ है। उसी महाकाल निरञ्जन ब्रह्ममें ही जाकर उपरोक्त चारों प्रलय भी एक-एक करके समा जाते हैं। वही सर्वाधिष्ठान, सर्वाधार, महाकाल, विराट् पुरुष है। उसीसे विश्व उत्पन्न होता है, फिर सब उसीमें ही जाकर समा करके विलय या प्रलय हो जाता है। ऐसा वेदादि प्रमाणसे भ्रमिक गुरुवालोगोंने माना है; सो मिथ्या कल्पना भ्रम मात्र है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसे परखकर यथार्थ जानना चाहिये॥३६४॥

७. अस बाजी बाजीगर केरा * सोई कलन्दर बन्दर जियरा॥ ३६५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ऐसे वेद-कुरानादिके उत्पत्ति-प्रलय कथनकी नाना वाणी जो है, सो बाजीगर=ब्रह्मादि गुरुवालोगोंके मनःकल्पनाकी रचना बाजीरूपी मिथ्या तमाशा है। सोई वाणी कल्पनामें कलन्दररूप [बन्दरको नचानेवाले मदारीको कलन्दर कहते हैं।] नाटक करानेवाले गुरुवालोग जीवरूप बन्दरको पकड़-पकड़ करके भटका रहे हैं। चार अवस्थारूप चार मार्गके उत्पत्ति-प्रलयमें नाना तमाशा विस्तार कर रहे हैं॥ ३६५॥

८. बाजी झूठ बाजीगर साँचा * परवश जीव विकल भौ नाचा॥ ३६६॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तहाँ बाजीरूप तमाशा-खेल झूठा है, तथा खेल दिखलानेवाला बाजीगर सच्चा होता है। इसी हिसाबको ले करके गुरुवालोगोंने भी भ्रमसे जगत्को झूठा कहा, और "जगत् कर्त्ता ईश्वर, परमात्मा कोई सच्चा है" इस कल्पनामें लगे और लगाये हैं। किन्तु, वह वाणी कल्पना सरासर झूठी है; जनैया-मनैया जीव ही सत्य है। यह न समझ करके गुरुवालोग और स्त्रीकी वाणी कल्पना और विषयादिमें आसक्त परवश होकर जीव सब उसी कर्मादि साधना— तीर्थ,

व्रत, तपस्यादिमें और मेहनत-मजदूरी आदिमें नाना तरहसे नाच-नाच कर व्याकुल, दुःखी हुए, तथा चौरासी योनियोंके जन्म-मरणादिमें नाच करके और भी दुःखी हो रहे हैं ॥ ३६६ ॥

९. बाजीगर बड़ चतुर सयाना ❀ ठगि ठगि जीव सेवा निज ठाना ॥ ३६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग बड़े चतुर सयाने=योगी, ज्ञानी, भक्त, पण्डित बन करके नर-नारी जीवोंको भुला-भुलाकर फँसाये हैं। बाजीगरके समान वे धूर्त-ठगलोग चतुराईसे जीवोंको फँसा ही रहे हैं। तन, मन, धनादि सर्वस्व मनुष्योंकी बुद्धि तथा सद्गुण-लक्षणादि सबको ठगाई कर-करके हरण कर लिये हैं। शिष्योंको अनेक तरहसे लोभ-लालच दे-दे करके रोचक-भयानक वाणी सुनाय-सुनाय अपनी सेवा-टहलमें लगा रक्खे हैं। ठग-ठग करके स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। जीवोंसे नाना प्रकारकी सेवा कराकर अपने मौज उड़ा रहे हैं ॥ ३६७ ॥

१०. जेहि जेहि भाँति चहै सो नचावै ❀ मोह डोरि बहु फेर घुमावै ॥ ३६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! धूर्त गुरुवालोग तथा स्त्रियाँ जिस-जिस भाँतिसे नचानेकी उन्होंकी इच्छा होती है, उसी-उसी प्रकारसे पुरुषोंको नाच नचाते हैं। हाव, भाव, कटाक्ष-नखरासे विषयोंकी डोरी मोहाकर्षण पुरुषोंके गलेमें स्त्रीने डाली है। बहुत प्रकारसे उसीके चक्रमें घुमाई और घुमा ही रही है। और अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, स्वर्गादि सुख प्राप्तिका मोह, आशाकी फाँसी, यही डोरी बाँधकर गुरुवालोग पञ्चाग्नि, जलशयन, ऊर्ध्वबाहु, तीर्थपरिक्रमादिके चक्रमें बहुत दफे घुमाये और घुमा ही रहे हैं ॥ ३६८ ॥

११. साटी नर्क डेराई डेराई ❀ लोभ स्वर्ग चारा देखलाई ॥ ३६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यदि किसीने गुरुवालोगोंके कहे अनुसार नहीं किया, तो उन्हें ताड़नाकी लाठीसे ठोंककर पीटते हैं। शापका भय, यम दण्डका भय, भयङ्कर नरकमें पड़ोगे, यमदूत कोल्हूमें तुम्हें पेरेंगे। तेलकी खौलती कड़ाहीमें डालेंगे चूर-चूर करेंगे, इत्यादि नरकवासका विशद् वर्णन सुनाय-सुनाय, डरवाय-डरवाय निज-निज मतमें नचाते हैं। तहाँ सात स्वर्गादिका सुख वर्णन, अमृत पान, पुष्प शैय्या, अप्सराओंसे क्रीड़ा-भोग आदि कल्पित स्वर्गके चारा पानेका लोभ देकर भुला देते हैं। उसके लिये वेद, शास्त्र, पुराणादिका प्रमाण दिखला करके सब तरहसे काबू करके अपने वशमें करते हैं ॥ ३६९ ॥

१२. जीवहि नाच नचावत काला ❀ भाव अनेक कठिन जञ्जाला ॥ ३७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार अबोध नरजीवोंको काले-कलूटे, कपटी, धूर्त गुरुवालोग तथा नारियाँ सदाकालसे काल बन करके खानी-वाणीमें तरह-तरहके स्वाङ्ग कराके नाच नचाये और नचा ही रहे हैं। अनेक भाव-कुभाव, छल-कपट करके कठिन जञ्जालोंमें ही मनुष्योंको फँसाये हैं। चालाकीसे उपदेश दे करके पञ्च कोशोंके प्रपञ्च जञ्जालोंमें ही बद्ध किये, भुला दिये हैं। यथार्थ गुरुपारखके बोध हुए बिना भव-जालोंसे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है ॥ ३७० ॥

साखीः— नाच नचावै यम सदा ❀ भाँति भाँतिके भाव ॥

[१०४] कबहुँ चढ़ावै पोहनी ❀ जब जैसी सो दाव ॥ ३७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे बाजीगर (कलन्दर) बन्दरको नचाता है; तहाँ अनेक भाव बतलाता है। फिर कभी पोहनी=एक लकड़ीके मोढ़ा या छोटा पीढ़ापर बन्दरको चढ़ा करके बैठा देता है। जब जैसा चाहता है, तैसा दावसे नचा करके जीविका चलाता है। तैसे ही यमरूप नारी तथा गुरुवालोग भाँति-भाँतिके हाव, भाव, कटाक्षका प्रयोगकर कर्म, उपासना, योगकी भिन्न-भिन्न भावनासे नाच, तमाशा, खेल, साधना, क्रीड़ा, भोग, धन्धाओंमें सदा-सर्वदासे फिरा-फिरा करके नचा ही रहे हैं। स्त्री कभी विषयोंमें ऊपर चढ़ा देती है, कभी

गर्भमें बैठा देती है। और गुरुवालोग कभी विधि करके कर्मादिमें चढ़ा देते हैं, कभी निषेध करके पोहनीरूप परब्रह्म अद्वैत सिद्धान्तमें ठहराकर बैठा देते हैं। जब जैसे मनुष्य मिलते हैं, तब तैसे ही अपना दाव-घात, पेंचका प्रयोग करते हैं। वेद प्रमाणसे अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैतादि कथन करते हैं। सब प्रकारसे धोखेमें ही डालनेका उनका दाव है। जिससे चौरासी योनियोंमें ही जीव पड़े रहते हैं ॥ ३७१ ॥

साखीः— भूषण बहुत पहिनायके * बहुरि लेत छिटकाय ॥
[१०५] बाजीगरके विलासमें * जीव बन्दर पछताय ॥ ३७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे बन्दरको सिखाय-सधायके नचानेके लिये आभूषण=हाथ, पैर, कमर, नाक, कान आदिमें भिन्न-भिन्न गहना पहिराकर कलन्दर या बाजीगर बन्दरको नाच नचाता है। पीछेसे वह सब गहना उतारकर झोलीमें डालकर चल देता है। इसीप्रकार बाजीगररूप ठग गुरुवालोग पहले तो सबको रुचे, ऐसा उपदेश देते हैं। भूषणरूप सत्य, दया, शील, विवेक, वैराग्य, शम, दमादि धारण करनेको कहते हैं। विधिपूर्वक पहिराते ग्रहण करते-कराते हैं। बादमें जब अद्वैत ब्रह्मज्ञानका निश्चय हो जाता है, तब द्वैत हटानेके बहाने सब सद्गुणोंको भी छिटका करके छोड़ देते हैं। गुरु और वेदादिको भी मिथ्या कहने लग जाते हैं। सबका निषेध करके जड़-अजगरादिवत् दुर्दशाको धारण कर लेते हैं। इसतरह भ्रमिक, धूर्त, ठग गुरुवालोगोंके सङ्ग, खेल-विलासके घेरामें पड़कर जीवरूप बन्दर बारम्बार पछता करके दुःखी-जड़ाध्यासी हुए या हो रहे हैं। बिना पारख यह धोखा समझनेमें नहीं आता है। इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके पारखबोधसे सब भ्रम-भूलको निवारण करके परखकर छोड़ देना चाहिये ॥ ३७२ ॥

सम्बन्ध— इसके बारेमें यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक सद्ग्रन्थका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥
॥ ❀ ॥ शब्द, भाग- ॥ ७ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, शब्द नम्बर- ७८ ॥ ❀ ॥

१. अब हम जानिया हो ! * हरिबाजीको खेल ॥ ३७३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— अहो मुमुक्षुओ ! हे सन्तो ! अब तो अपरोक्ष निज पारख बलसे हमने इन हरिबाजीरूप मायाके खेलको अच्छी तरहसे जान लिया कि, इनका सब खेल-तमाशा झूठा है। ज्ञान गुण, मुक्तिको हरणकर ठगनेवाला नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है। हरि='माया' स्त्री, काया, कल्पना है। सो पारखसे हमने यह जान लिया कि, देहधारी मनुष्यसे ही वेद, शास्त्र, पुराणादि सब वाणी कल्पना पैदा हुई है। उसी वाणीके तमाशामें सब मनुष्य अरुझे पड़े हैं। और हरि=गुरुवालोगोंने एक कोई हरि=परमात्मा वाणी कल्पनासे दृढ़ा करके बुद्धि-विवेक, विचारको हरणकर अनेक साधनाओंके खेल खेलने-खेलाने लगे। और हरि=मायारूपी स्त्रीने दशगुणोंको हरण करके विषय भोगादि क्रीड़ाका खेल खेलने-नाचने लगी, बन्दरवत् पुरुषोंको पशु बनायी। सब प्रकारसे स्त्री और गुरुवालोग बन्धनदायी हैं, ऐसा जान करके उनके फन्दोंमें मत् पड़ो ! यदि पड़े हो, तो अब झटपट निकल भागो ! ॥ ३७३ ॥

२. डङ्क बजाय देखाय तमाशा * बहुरी लेत सकेल ॥ ३७४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे बाजीगर डङ्केकी चोटसे ढिंढोरा पीट-पीट-कर या डमरू बजा-बजा करके अपनीत रफ लोगोंका ध्यान आकर्षित करता है। फिर तमाशा दिखा करके पैसा लूटकर, तब फिर खेलको समेटकर चल देता है। तैसे ही वेद-कुरानादि पुस्तकोंको हाथोंमें लेकर रोचक-भयानकादि वाणीका उपदेश लोगोंको सुना-सुना करके जप, तप, व्रत, उपवास, भक्ति, योगादिका तमाशा दिखलाते हैं। फिर ब्रह्मज्ञानमें पहुँचा करके जीवके सद्गुण साक्षीधन लूटकर बहुरि=फिर सब साधनाओंको समेट लेते हैं। अद्वैत ब्रह्मके भ्रममें पड़कर चल

देते हैं। और उधर स्त्री भी गाल बजाय-बजाय करके मीठी-मीठी वाणी सुना करके हाव, भाव, कटाक्ष शृङ्गारादिका तमाशा दिखाकर, बल, वीर्य, बुद्धिको पुरुषोंसे लूट लेती है। फिर सब समेटकर गर्भमें छिपा करके चल देती है ॥ ३७४ ॥

३. हरिबाजी सुर नर मुनि जहँड़े * माया चाटक लाया ॥ ३७५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! इन हरिबाजीरूप गुरुवालोग और स्त्रियोंकी वाणी-कल्पनादिके चक्रमें पड़ करके त्रिगुणी मनुष्य देव-दानव, ऋषि-मुनि, सिद्ध-साधक, ज्ञानी-अज्ञानी, सुर-नरादि सब कोई जहँड़े वा जड़ाध्यासी होकर भूले, खराब हुए, मुक्तिमार्गसे बर्बाद हुए। क्योंकि, माया=नारी और गुरुवाओंने उन्हें अनेक चाट लगा दिया है। स्त्रीने विषय भोगादिका चाट लगा दिया है। और भ्रमिकोंने ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, सात स्वर्ग, देवता, ऋद्धि-सिद्धि आदिके चाटमें लगाया है। कहीं जीव-ब्रह्मकी एकतासे परमानन्द स्थिति होनेका चाट लगाया है। इसी चाट=स्वाद, आसक्तिसे ही जीव बद्ध हुए या हो रहे हैं ॥ ३७५ ॥

४. घरमें डारि सकल भरमाया * हृदया ज्ञान न आया ॥ ३७६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे चिड़िया चारा खानेकी लालचसे जालमें फँसकर पिञ्जड़ामें पड़ जाती है। तैसे खानी-वाणीमें ब्रह्मानन्द-विषयानन्दादिके चाट, लोभ-लालचसे स्त्री और गुरुवालोगोंके फन्दाओंमें मनुष्य जा करके पड़े। तो मायाने अपने घेराके भीतर कैदमें डालकर उन सबोंको भ्रमाया-भुलाया; चक्कर खिलाया। गृहस्थाश्रम विषय प्रपञ्चके घरमें स्त्रीने पुरुषोंको डाल करके भ्रमाया है। तथा नाना सिद्धान्तोंके घरमें साधक शिष्योंको डाल करके गुरुवालोगोंने भ्रमाया है। अतएव सत्य चैतन्य जीवका पारख ज्ञान उन किसीके भी हृदयमें समझमें नहीं आया। हृदयस्थ ज्ञान स्वरूप जीव ही नित्य-सत्य स्वरूप है। यह बोध उन भ्रमिकोंको समझनेमें ही नहीं आया। इसलिये कोई ईश्वरादिकी कल्पनामें भूले और भुलाये हैं ॥ ३७६ ॥

५. बाजी झूठ बाजीगर साँचा * साधुनकी मति ऐसी ॥ ३७७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! षट् दर्शनोंके साधुओंने अनुमान-कल्पनासे विचार किया कि, बाजी=संसार यह तो मायाका खेल होनेसे झूठा है; और मायापति परमेश्वर, जगत्कर्त्ता कोई जो है, सोई बाजीगरकी नाईं, सच्चा है। वही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डका नायक, प्रेरक, रचयिता, कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता है। इसलिये वही परमात्मा सत्य है, ऐसा जान करके वा मान करके उसकी आराधना वा भक्ति-भाव किया करो। तैसे ही ब्रह्मज्ञानी कहते हैं— यह जगत् मिथ्या है, एक ब्रह्म ही सत्य है। मन, बुद्धि, वाणी— यह भी मिथ्या है, उससे परे परब्रह्म निःअक्षर सत्य है। बिना पारख षट् दर्शनोंके साधुओंकी मति-बुद्धि भी ऐसी भ्रष्ट हो गयी कि, देखनेमें आता हुआ जगत्, जड़-चैतन्यको तो मिथ्या कहते हैं; और जो देखनेमें ही नहीं आता है, सो असत्य ब्रह्मको सत्य ठहराते हैं। ऐसी विपरीत मति साधु-गुरुवाओंकी हुई; उसीमें अपने भी भूले, अन्य-को भी भुला रहे हैं ॥ ३७७ ॥

६. कहहिं कबीर जिन जैसी समुझी * ताकी गति भई तैसी ॥ ३७८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! योगी, ज्ञानी, भक्त, संसारी आदि बेपारखी लोग जिन-जिन्होंने जैसे-जैसे मानन्दी, कल्पना, अनुमान, विषय-भावनादिकोंका दृढ़ निश्चय किया, तैसे-तैसे ही उन्होंकी समझ हुई। वैसी ही गति-मति, चाल-चलन, रहनी-गहनी, स्थिति तथा अध्यास दृढ़ हुआ। फिर जैसी संस्कार-वासना मनमें रही, तैसी ही चारखानीमें सुगति वा दुर्गति भी हो गयी। कर्मानुसार आवागमन, गर्भवासको प्राप्त होकर दुःख भोगे और भोग ही रहे हैं ॥ ३७८ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. डोरी मोह न छूटै सोई * यम वशि जीव सदा रहै रोई ॥ ३७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मोह-ममता, वासना, यही डोरीमें सब जीव बन्धे पड़े हैं। यह भव-बन्धन सहजमें छूटनेवाला नहीं है। स्त्री विषय तथा स्वर्गादि प्राप्तिके पुष्पित वाणीमें सब मोहित हो रहे हैं। बिना पारख इस मोह फन्दासे छूट नहीं सकते हैं। अतएव पूर्वकी मनमें जमी हुई वासना तथा अभी गुरुवालोग और स्त्री, इन यमके वशीभूत क्रीतदासके समान पराधीन होकर नरजीव महान दुःख पा करके सदासे रो रहे हैं; व्याकुल हो रहे हैं। जब तक सद्गुरुके पारख बोधको जान नहीं पायेंगे, तब तक चौरासी योनियोंमें पड़े-पड़े रोते ही रहेंगे ॥ ३७९ ॥

२. बाजी बनाय देखाय तमासा * लेत सकेलि सो करत विलासा ॥ ३८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने वेद, पुराण, शास्त्रादिकै नाना वाणी जालोंको बना करके भक्ति, योग, कर्म, ज्ञानादिके खेल अनेकों तमाशा दिखलाये। कर्म श्रुति, फल-श्रुति दिखला करके लुब्ध किये। तो मनुष्योंके तन, मन, धनादि हरणकर अपने आराम, ऐश-विलास करने लगे। उसीमें बहुतोंको भ्रमा करके समेट लिये हैं, फँसा दिये हैं। तैसे ही सोलह शृङ्गार बना करके स्त्रीने भी नखरासे विषयोंका खेल दिखलाया; सब पुरुषोंको समेटकर अपना गुलाम बनाया, भोग-विलास करने लगी। उसके कपट जालमें पड़ करके पुरुष हैरान दुःखी हुए या हो रहे हैं ॥ ३८० ॥

३. जाके स्वभाव दया सो दयाला * देखि सके नहिं जीव बेहाला ॥ ३८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिनमें स्वाभाविक दया है, सत्य, विचार, शील, दयादि सद्गुण ही जिनके स्वभावमें भरा है, सो परम दयालु, बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने इसतरह जीवोंको खानी-वाणीमें अति दुःखी बेहाल होते हुए देखा; तो वे उसे सहन कर नहीं सके, दयासे प्रेरित हुए; आपने सोचा, अपने-आप तो ये अबोध नरजीव बन्धन नहीं देख सकेंगे। तब उन्हें पारखसे परखाकर जिज्ञासुओंको सत्य बोध देकर सुखी किये; मुक्तिका मार्ग प्रगट कर दिये ॥ ३८१ ॥

४. जब जब बाजी काल पसारे * तब तब प्रभु पारख विस्तारे ॥ ३८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब-जब भी काल=गुरुवालोग और स्त्रियोंने सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके रहतेमें जिज्ञासु नरजीवोंपर बाजी=वाणी-कल्पना, विषयादि खेलका पसारा किया, तब-तब सद्गुरु प्रभु श्रीकबीरसाहेबजीने अपना सत्य पारख बोधका विस्तार करके काल-जालको नष्ट, विध्वंस कर दिया। तबसे उन प्रभुके पारख प्रतापको ही विस्तारसे पारखी सन्तोंने प्रचार करके फैलाया; यथार्थ सत्य बोधको ही दृढ़ किया-कराया; और अभी वैसे ही पारख ज्ञानका प्रचार कर ही रहे हैं ॥ ३८२ ॥

५. होय उदय यम जाल छोड़ावै * अभय अच्युत पारख शरणावै ॥ ३८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब नरजीवोंका भाग्य उदय होता है, तब पारखी सद्गुरु उन्हें मिल जाते हैं। फिर तो सब यम जालोंको परखा करके पारखी सद्गुरु छुड़ा देते हैं। सद्गुरुकी कृपासे पारख बोधरूप रविका उदय हृदयमें हो जाता है। जो कोई यथार्थ रीतिसे पारखी सद्गुरुकी शरणमें आते हैं, उन्हें शरणमें लेकर पारख ज्ञानका प्रकाश सद्गुरु कर देते हैं। तब जीव निर्भय अटल जीवन्मुक्त हो, अभय-अच्युत हो जाते हैं ॥ ३८३ ॥

६. जब जीव पारख प्रभुके पावै * डोरि मोह सो तुरित तोरावै ॥ ३८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आ करके

जब मुमुक्षु नरजीव अपरोक्ष गुरु पारखको पा जाते हैं; तब तो मोह-ममतादिकी डोरीको वे तुरन्त ही उसी वक्त तोड़ करके फेंक देते हैं। काल-जालोंको छिन्न-भिन्न कर देते हैं। और ब्रह्म-ईश्वरादि तथा स्त्री विषयादिमें उन्हें कोई मोह-आसक्ति रञ्चक मात्र भी नहीं रहती है। निज-पर हित-कल्याणकी साधनामें ही वे लगे रहते हैं ॥ ३८४ ॥

७. प्रभु शरणागत रहत समाई ❀ काल डरत तेहि निकट न जाई ॥ ३८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरु प्रभुके शरणागत होकर जो पुरुष साधु-गुरुके ही सत्सङ्ग-विचारमें समाये रहते हैं या सत्सङ्गमें लगे रहते हैं, वे अजेय शूर-वीर, धीर हो जाते हैं। फिर तो उन्हें देखकर काल=नारी और गुरुवालोग भी डरने लग जाते हैं। कहीं अनिष्ट-हानि न कर डालें, यह सोचकर दूर-दूर ही वे छिपे रहते हैं। प्रगट हो करके पारखीके नजदीकमें वे कभी नहीं जाते हैं। कभी संयोगसे निकट-सन्मुखमें पड़ गये, तो डरके मारे सरक करै भाग जाते हैं ॥ ३८५ ॥

८. यहि विधि जीव परमपद पावै ❀ देखि काल तेहि बहु पछतावै ॥ ३८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इस प्रकारसे विधिपूर्वक पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्ग विवेकमें जो नरजीव लगे रहते हैं, सो हंस पारखपदकी अटल स्थितिमें पहुँचकर परमपदरूप जीवन्मुक्त दशाको पा जाते हैं। ऐसा अपनेजालोंसे छूट करके मुक्त होते हुए हंसको देखकर काल= व्याधारूप स्त्री और गुरुवालोग हाय ! हाय ! यह हमारे फन्दोंसे छूट गया। अब तो और बहुतोंको भी वह ऐसे ही छुड़ा देगा, ऐसा सोचकर बहुत दुःखी होकर पछताते रहते हैं ॥ ३८६ ॥

९. सकभरि चहत बझावै सोई ❀ ऐसा अधम मूढ़ यम जोई ॥ ३८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तो भी गुप्त-प्रगट रूपसे छल-कपट, प्रपञ्चादिका जाल फैला करके अपनी शक्तिभर जी तोड़ प्रयत्न करके काल उन मुक्त हंस पारखीको भी बझाना, फँसाना, अरुझाना, पकड़ना चाहता है। अपने घेरासे बाहर, शक्तिसे पार पारखी हंस हो गये हैं, यह देखता भी है, अपनी कमजोरीको भी जानता है, तो भी यम मूढ़ ऐसा दुष्ट, अधम है कि, अपनी कुटिलता, कुचेष्टा दिखलानेमें बाज नहीं आता है; पापी लोग पाप ही बढ़ाते हैं। आगे-पीछे कुछ भी नहीं देखते हैं, यही यमकी मूढ़ता है ॥ ३८७ ॥

१०. जो पारख यम जाल मिटावै ❀ तापर काल कला किमि पावै ॥ ३८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो सद्गुरुका पारखबोध है, सो तो समस्त यम जालको मिटानेवाला है; विषय, कल्पना, धोखा, भ्रमको छुड़ानेवाला है; मन-कस्मलको दूर करनेवाला है। हृदयान्धकारको मिटानेमें सूर्यवत् पारख ज्ञान महान सुउज्ज्वल है। ऐसे पारखी सद्गुरुके सत्यबोध जीवको मुक्ति स्थितिमें पहुँचा देता है। फिर उस महान पराक्रमी पारखीके ऊपर कालकी कला-कल्पना, प्रयत्न, विषयादि कैसे लगेगा ? नारी और गुरुवालोग उन्हें पकड़ना चाहते हैं, तो कैसे पावेंगे ? कभी किसी तरहसे भी वे पारखीको पकड़ पा नहीं सकते हैं, तो भी मूढ़ व्यर्थ प्रयासमें लगे रहते हैं; फिर आप ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८८ ॥

साखीः— पारख तोरे भरमगढ़ ❀ खीजे काल कराल ॥
[१०६] करि न सकै कछु प्रभुता ❀ ऐसो शरण दयाल ॥ ३८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते— हे सन्तो ! वेद, कुरान आदि वाणी कल्पनाका घेरा लगाकर ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि भ्रमका गढ़ वा किला गुरुवालोगोंने बड़ी मजबूतीसे बनाया, मानन्दी दृढ़ किया-कराया है। उसी लोह आवरणरूप पर्दाकी आड़में भयङ्कर अत्याचार जीवोंकी दुर्दशा किये या कर रहे हैं। उसको पारखी सद्गुरुने सत्पुरुषार्थ, सत्यन्याय निर्णयसे यथार्थ पारख बोध परखाकर

गुरुमुखके सत्य उपदेशरूपी बमगोला या वज्रास्त्रका प्रहार करके क्षण भरमें भ्रमके गढ़रूप धोखेको तोड़कर गिरा दिये, छिन्न-भिन्न कर दिये हैं। कैदमें पड़े हुए नरजीवोंको बाहर निकाल करके मुक्त कर दिये हैं। ऐसा देखकर काल=योगी, ज्ञानी, भक्त पक्षपाती गुरुवालोग खीज करके बहुत क्रोधित हुए। तब तो बिकराल हो मुख फाड़कर भयङ्कररूप बना करके काटनेको, मारने-नोचनेको दौड़ पड़े। परन्तु, पारखी सद्गुरुको ऊपर विमानमें बैठे होनेसे वे नीचे रहनेवाले दुष्ट काल कुछ भी कर नहीं सके। उनकी प्रभुता, शक्ति, जोर-जुल्म कुछ भी नहीं लग सकी। पारखीपर वे अपना प्रभुत्व प्रदर्शन कुछ भी नहीं कर सकते हैं, तब तो डरकर भाग जाते हैं। परमदयालु बन्दीछोर सद्गुरुकी शरणमें आनेका ऐसा प्रत्यक्ष लाभ हित-मुक्ति हो जाती है ॥ ३८९ ॥

साखीः— सत्य शरण प्रभु पावते * टूटि मोहकी डोर ॥
[१०७] अभय भक्त पारख सदा * कला न लागै चोर ॥ ३९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखी सद्गुरु परम प्रभु जीवन हितकारी हैं। ऐसे प्रभुकी शरणमें सत्य प्रेम निष्ठासे जो प्राप्त होते हैं या जो शरणमें आते हैं, वे सद्गुरुकी दयासे पारख बोधको अपरोक्ष दृढ़ निश्चय कर पाते हैं। तब उनकी समस्त मोह-ममताकी डोरी खानी-वाणीकी वासना, आशा-तृष्णादि छूट जाती है या टूट जाती है। स्त्री विषयादिकी मोह-आसक्ति तथा ब्रह्म, ईश्वर, देवता मत-पन्थादिका मोह, पक्ष, हठ, दुराग्रहादिकी फन्दा-डोरी टूटकर टुकड़ा-टुकड़ा होकर निकम्मी हो जाती है। चोर=जीवन धन चुराने-हरण करनेवाले कपटी, धूर्त गुरुवालोग और स्त्रियाँ काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारोंका प्रभाव कोई कला, कल्पना, विषयादि उसपर लग नहीं सकता है। पारखी सद्गुरुका भक्त=शिष्य चैतन्य साधु-गुरुकी भक्ति, उपासना करते हुए यमके सब भयोंसे छूटकर निर्भय निजपद पारख स्व-स्वरूप स्थितिमें ही सदा-सर्वदा स्थिर रहते हैं ॥ ३९० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १० ॥ [चौपाई- १६ । साखी- १ है] ॥ ❀ ॥

१. रचना आदि जाल सो कहऊँ * प्रभु पारख प्रसाद सो लहऊँ ॥ ३९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु सन्तो! अब मैं संसारमें खानी-वाणी जालोंकी रचना नरजीवोंसे किस प्रकारसे हुई? कैसे फैली? सो बात शुरूसे ही यहाँपर कहता हूँ! पारखी सद्गुरुके कृपा-प्रसादसे मैंने पारख बोध पाकर जो इसके भेदको जान पाया हूँ! सो आप लोगोंको भी जना देता हूँ! सो उसका पूर्ण पारखबोध तो पारखनिष्ठ सद्गुरुके कृपा-प्रसादसे ही मिलेगा। यह मेरा कथन भी आप लोगोंको पारख बोध प्राप्त करानेमें सहायक होगा। सद्गुरु प्रभुके कृपा-प्रसादसे जो-जो बातका पारख मैंने कर पाया हूँ, सो आपलोगोंके हितके लिये यहाँ "टकसार"में कह देता हूँ! ॥ ३९१ ॥

२. सुनहु सभन भवचक्र कहानी * आदि अन्त परे पहिचानी ॥ ३९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! श्रद्धालु, जिज्ञासु, हे मनुष्यो! आप सब एकाग्रचित्तसे मेरी बातको सुनिये! भवचक्ररूप खानी-वाणीके चक्र, आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रमें जीव कैसे पड़े हैं या कैसे पड़ रहे हैं! इसकी कहानी, कथा, पुराण, इतिहासके समान पुरानी बातोंका वर्णन जन्मृति बन्धनके आदि कारणादि दिखला करके जो मैं परखाकर निर्णयसे कहता हूँ, सो उसे ध्यानपूर्वक सुन लीजिये! जिससे आप लोगोंको आदि=शुरूसे, अन्त=आखिरी तक वा जन्मसे मरण तक, जगत्से ब्रह्म तक, खानीसे वाणी तक, स्त्री मायासे गुरुवा माया तक, समस्त बातोंका कसर-खोट, सारासार, सत्यासत्य जान पड़ेगा या पहिचाननेमें आ जायगा। वार और पार दोनोंका भेद समझ पड़ेगा, सब भेदकी जानकारी हो जायगी ॥ ३९२ ॥

३. महा अस्ति परकाशक सारा * महानास्ति सो दुन्दाकारा ॥ ३९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें सत्य वस्तु तो जीव ही है। देह, गेह, प्राण, मन, इन्द्रियाँ, वाणी-खानी, इन सबोंको प्रकाश करनेवाला सत्य चैतन्य महानपद जीव ही यथार्थमें 'महा अस्ति' है। परन्तु, निजस्वरूप सारपदको भूलकर मनुष्य अनेक मिथ्या मानन्दीमें पड़े, सो भ्रमिक गुरुवा हुए। और फिर ऐसे कल्पना किये कि, सारा चराचर जगत्को उत्पन्नकर प्रकाश करनेवाला सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक कोईएक महाअस्ति=ब्रह्मपद या परमेश्वर सत्य है। उसी अनुमान-कल्पनामें ही सारे मनुष्य भ्रमिक हो धोखेमें पड़े हैं। हे भाई ! वह ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवता, स्वर्गादि जो माने हो, सो तो मिथ्या धोखा महानास्ति वा महान असत्य है। वाहियातके झगड़ा, बेकारके दुन्द तर्क-वितर्क अनुमानका मिथ्या आकार मात्र है। सो उस दुन्दाकार कल्पनासे जीवकी हानिके सिवाय और कुछ लाभ नहीं होता है ॥ ३९३ ॥

४. दुन्दाकार कछु वस्तु न भाई ! * झाँई अस्ति भास दृढ़ पाई ॥ ३९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे भाई साधुओ ! दुन्दाकार=झगड़ा, भ्रम, सन्देहरूप ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदादि कल्पना मात्र है, सो कोई सत्य वस्तु वह नहीं है। यही जीव ही सत्य वस्तु है। सत्य चैतन्य अस्ति नरजीवने भासको दृढ़ किया, तब झाँई महागाफिलीमें पड़कर ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रमको प्राप्त हुआ। और उसी भासको सत्य ब्रह्म मान लिया। वही भास-अध्यासकी दृढ़तासे चारखानी चौरासी योनियोंको पहुँच गया ॥ ३९४ ॥

५. भास अध्यास होत अकुलाई * ज्ञानहिं मँह अज्ञान समाई ॥ ३९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! साधकको जो ब्रह्म मानन्दीका भास हुआ था, उसीसे जगत्का नाना अध्यास सन्मुख हुआ, तब ऐसे विपरीत होते ही वह साधक अकुला गया, व्याकुल-दुःखित हो गया। तब फिर उस अभ्यासको मिटानेके लिये भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना साधना खूब किया तो, अभ्यास करनेमें भी दुःखित-व्याकुल हो गया। अन्तमें मनकी भावनासे जो भास भासा, उसीमें अध्यास टिका लिया। इसप्रकारसे ब्रह्मज्ञानमें ही महाअज्ञान गाफिली समा गयी है। ब्रह्ममें ही जगत् समा गया, तो ज्ञान स्वरूप जीव ही अज्ञान, मानन्दी, भूल, भ्रममें समा गया, बिना विवेक ॥ ३९५ ॥

६. इच्छा सुख दुःख सूझत नाहीं * कर्म द्रव्य बहु विधि प्रगटाहीं ॥ ३९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सब जीव सुख प्राप्ति करनेकी ही सदैव इच्छा किया करते हैं। परिणामका दुःख उन्हें दिखाई नहीं पड़ता है। सुख भोगके लिये ही स्त्री-विषयादि-में लिप्त-आसक्त होते हैं। सो उससे होनेवाला जन्म-मरणादिका दुःख सूझ-समझ नहीं पड़ता है। स्त्री, पुत्र, द्रव्यादि प्राप्तिके लिये नाना कर्म प्रगट करके बहुत प्रकारसे बद्ध हुए या हो रहे हैं; और ब्रह्मको, सुख स्वरूप मानकर उसको प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु, उसी ब्रह्मसे इच्छा हो करके दुःखरूप जगत्का विस्तार उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा है; सो बात तो बेपारखियोंको कुछ भी सूझ-समझ ही नहीं पड़ती है; कसर ही नहीं देखते हैं। इसीसे कोई कर्ममार्गमें, कोई द्रव्य=उपासनारूप भक्ति मार्गादिमें बहुत विधिसे कल्पना प्रगट करके ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि सुख प्राप्तिके लिये बहुतेरे लगे और लग ही रहे हैं ॥ ३९६ ॥

७. एक अनेक सोई परवाना * नीचानीच कर्म लपटाना ॥ ३९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने एक ब्रह्म-परमात्माको अनेक विश्व जगत्रूपमें ही विराट् भगवान् कहकर प्रमाणकर लिया है। सोई बात वेद-शास्त्रोंमें लिखी है, सो वही एक-अनेक, ब्रह्म-जगत्का प्रमाण सब कोईन कर लिया है। सुख भोगनेके लिये नीचातिनीच, महानीच कर्म करनेमें भी नहीं रुके। नीच गुरुवालोग कर्म-कुकर्म, वाममार्गादि पशुकर्म दुराचारमें

भी लपटा गये हैं; तदासक्त नरपशु हुए हैं। जगत्में उसीका प्रचार किये हैं। हिंसा, व्यभिचार, छल-कपट, प्रपञ्चोंमें लपटे, दूसरोंको भी लपटाये बद्ध हुए हैं ॥ ३९७ ॥

८. तेई निरञ्जन अटपट चाला * सुखके जतन महा जञ्जाला ॥ ३९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई निरञ्जन देहमें मनको जानिये ! बाहर गुरुवालोग और परब्रह्म-परमात्मा निरञ्जनको कल्पना ही मानिये। इनके चाल=गति, हिसाब व्यवहार बड़ा अटपटरूप उलटा-सीधा, कठिन बन्धन उपाधिरूप है। विषयोंसे ब्रह्मानन्द तक सुख प्राप्तिके लिये जो कुछ यत्न-प्रयत्न, साधना, उपाय, पुरुषार्थ, उद्योग-धन्धा हो रहा है, सो महा जञ्जाल भव-बन्धनका कारण होकर जीवोंको दोनों तरफसे चौरासी योनियोंमें आवागमन, गर्भवासमें ही डाले और डाल ही रहे हैं। गुरुज्ञान पारखबोधको पाये बिना जीव महा जञ्जाल बन्धनोंसे छूट नहीं सकते हैं। सुखके लिये जतन वा यत्न करके अटपटी चालसे महा बन्धनमें ही पड़ रहे हैं ॥ ३९८ ॥

९. अनबनि चाल रहा जहँड़ाई * भूल स्वभाविक आपै साँई ॥ ३९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञानादि अनेक प्रकारके मार्ग, चाल-चलन, रीति-रिवाज बना करके उसीकी नाना साधनाओंमें मनुष्य लगे या लग रहे हैं। परन्तु, उससे जीवोंका कुछ भी कल्याण बननेवाला नहीं है। क्योंकि, ईश्वरादि माना हुआ सिद्धान्त सब तो कल्पित हैं। उससे क्या हित होगा ? सबसे श्रेष्ठ स्वयं स्वरूप तो जीव अपने आप ही है। परन्तु, अपने स्वरूपको भूलकर प्रकृति, स्वभाव, कल्पनामें लग करके अपने ऊपर कोई मालिक कर्त्ता परमेश्वर परब्रह्मको आप-ही-आप सर्वशक्तिमान् समर्थ मानकर उसी भ्रम, धोखा, गाफिलीमें जहँड़ा गये; यानी जड़ाध्यासी बने, बद्ध हो गये, दुःखी हुए हैं। जिसे ब्रह्म कहते हैं, उसमें तो स्वाभाविक भूल-इच्छा लगी ही है। वही तो चौरासी योनियोंका कारण वा मूल बीज है; बिना पारख यह भेद कोई समझते ही नहीं हैं ॥ ३९९ ॥

१०. कर्म द्रव्य इच्छा अरु ज्ञाना * मेटि मिटाय लहै विज्ञाना ॥ ४०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अद्वैतवादी ब्रह्मज्ञानीलोग कर्ममार्ग, द्रव्य= उपासनामार्ग, इच्छा=योगमार्ग, और ज्ञानमार्गकी साधना, "यह सबको द्वैत भ्रम है" ऐसा कह करके उसे मेटकर "एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति" ऐसा कहकर सब कर्त्तव्यको मिटा करके विधि-निषेध छोड़कर विज्ञानपद परमहंस स्थितिको प्राप्त हुए। तहाँ भक्षाभक्ष, कर्त्तव्याकर्त्तव्य सबका विचार छोड़ दिये; बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़-अजगरवत् दुर्दशाको धारण करके जड़ाध्यासी हुए। उसीको विज्ञान, कैवल्य स्थितिकी प्राप्ति हुई, ऐसा मान लिये हैं ॥ ४०० ॥

११. आपु अनन्त सो परजा भाई ! * एक सो मायापति अन्याई ॥ ४०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हे भाई मुमुक्षुओ ! ये गुरुवालोग बड़े भ्रमिक धोखेबाज हैं। देखो ! आप तो एक ब्रह्म राजा सबसे बड़े जगत्के अधिष्ठान, सर्वाधार, अनन्त, बेअन्त, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन बने, यहाँ गुरु बने और अनेकों मनुष्योंको मूड़-मूड़ करके शिष्य-शाखारूप अनन्त प्रजा बनाये हैं। उनपर हुकूमत चला करके शासन करने लगे। अनेक तरहसे ठगाई करने लगे। अन्यायी गुरुवालोगोंने सब मनुष्योंको मायारूप वाणी जालमें फँसा करके दास बनाया। एक मायापति कोई तुम्हारा मालिक, परमेश्वर है, उसीका भजन, कीर्तन, नाम-स्मरण करो, तभी मायासे बच सकोगे, ऐसी-ऐसी बात सुना करके अन्यायी पक्षपाती लोगोंने अबोध मनुष्योंको भुला दिया है; और नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है ॥ ४०१ ॥

१२. आपै चोर साहु सो आपै * भरमिक भरम विवश तेहि थापै ॥ ४०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर आपै-गुरुवालोग चोर बने, तो निज-पर सबके

जीवन-धन सद्गुण-विवेकादिको चुराकर नाश कर दिये। परन्तु, उन गुप्त चोरोंने प्रत्यक्षमें भेष तो साहु सरीखा वा साधु त्यागी, वैरागी, संन्यासी, उदासी आदिका स्वाङ्ग बना करके धोखा दे-देकर आप ही चोर बन कर तन, मन और धनादिको चुरा लिया। कहनेको तो साधु-बाबाजी बने हैं, परन्तु, करनीमें पक्के ठग, चोर बने हैं। भ्रमिक भूले हुए मनुष्योंने भ्रम-भूल, धोखेसे उन गुरुवालोगोंकी बड़ी महिमा-स्थापना कर रक्खी है। वे भ्रमिक गुरुवालोगोंने कोई एक परमेश्वर कर्त्ता कल्पनाकी स्थापना करके जड़मूर्ति, मन्दिरादिकी महिमा बढ़ा रक्खा है। इसतरह मिथ्याको सत्य और सत्यका मिथ्यारूपमें थाप रहे हैं ॥ ४०२ ॥

१३. ममता राज अधिक अधिकाई * विविध भर्मकी लागी काई ॥ ४०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! राज्य, धन, सम्पत्ति, कुल-कुटुम्बोंकी ममता संसारियोंमें लगी है। तैसे ही महन्ती गद्दी, मठ, मन्दिर, जागीर, अधिकार और बड़े गुरुवा बन करके चेला-चाटी, मत-पन्थ नाना सिद्धान्तोंका ममता-मोह, आसक्ति, अभिमान, ज्यादे-ही-ज्यादे अधिक-अधिक गुरुवालोंगोंको लगा हुआ है। तथा विविध प्रकारकी भ्रान्ति सन्देह, विषय-विकारकी काईरूप जड़ाध्यास आवरण-पर्दा भी उनमें विशेष ही लगी हुई है ॥ ४०३ ॥

१४. सन्मुख सन्धि रहा लौलाई * आपा ओट नाहिं परखाई ॥ ४०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सन्मुख=प्रत्यक्ष सामनेमें दृष्टि गोचर हुआ, सो पञ्च विषयादिकी आसक्ति और कल्पित ईश्वरादिकी मानन्दीरूप सन्धिमें लौ लगा रहे हैं। विजातीय वस्तु या अनुमानमें प्रेम लगा करके भवसागरमें ही पड़ रहे हैं। आपा=पञ्च अभिमानकी, ओट=आड़, पर्दामें पड़ करके हंसपदसे गिरकर पतित हुए। सत्यासत्यका पारख तो उन्हें कुछ नहीं हुआ। अभिमानके ओटमें पड़े, इसलिये मनुष्यपदसे गिरे, तो चौरासी योनियोंमें जा पड़े। पारखी सद्गुरुकी शरण ग्रहण करके सत्सङ्ग किये बिना यह बात परखनेमें नहीं आती है ॥ ४०४ ॥

१५. पलकहि भरि जो प्रभुपद हेरे * तुरतहि झाँईं सन्धि निवेरे ॥ ४०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई मुमुक्षु नरजीव पारखी सद्गुरु प्रभुकी शरणमें आ करके विवेक-दृष्टि एकटक लगाकर या आँखें गड़ाकर एकाग्र होकर जो कोईने प्रभुके पारखपदको हेरे, जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णयको समझ गये, सब भेदको जान गये। तब तो तुरन्त वा क्षण मात्रमें ही झाँईं=ब्रह्मकी गाफिली निर्विकल्पपद और सन्धि=एक ईश्वरादिकी मानन्दी, अनुमानका मिलाप सहविकल्पपद आदि सब पारख निर्णयसे हंसवत् बिलछान करके भ्रमका परित्याग हो जाता है। तब निज सत्स्वरूपमें ही अचल स्थिति हो जाती है ॥ ४०५ ॥

१६. जो सहि सन्मुख प्रभुके न होई * चाहै भल पै शून्य बिगोई ॥ ४०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो मनुष्य सहीरूपसे या सच्चेदिल सद्भावनासे पारखी सद्गुरु प्रभुके सन्मुख आकर शरणागत अधीन होकर जिज्ञासु-शिष्य नहीं होते हैं, पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें भी कभी सन्मुख नहीं होते हैं। प्रत्यक्षमें साधु-गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगी भी नहीं करते हैं। कोई संसारी घर-गृहस्थीके व्यवहार विषय भोगोंमें ही लगे रहते हैं; कोई साधु बन करके अष्टप्रतिमा पूजा, नवधा भक्ति, अष्टाङ्गयोग, ब्रह्मज्ञानादिकी साधना, प्रयत्न करनेमें लगे हैं। उसीसे वे अपनी भलाई, कल्याण, गति-मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु, उन्हें तो सद्गुरुके पारखका बोध नहीं है, फिर मुक्ति कहाँसे पायेंगे ? शून्य भग-भोगमें और शून्य योग समाधिमें और शून्य-आकाशवत् ब्रह्ममें वृत्ति लगा-लगाकर मनुष्यपद वा मुक्तिपदसे पहले ही बिगड़ गये, नष्ट-भ्रष्ट हुए। शून्यके जड़ाध्याससे गर्भवासमें ही चले गये या चले जायेंगे ॥ ४०६ ॥

साखीः— एक बातकी बात है * बहुविधि कहा बनाय ॥
[१०८] भारी परदा बीचका * ताते लखा न जाय ॥ ४०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें एक अविनाशी सत्य-चैतन्य जीव अजर, अमर, अखण्ड, देहधारी, अनन्त स्वरूप हैं। जड़-चैतन्य दोनों अनादि सत्य हैं। यही एक बात यथार्थ गुरुमुख निर्णयको मानने योग्य है। अनादि जगत्का कोई कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि नहीं हैं। जड़-चैतन्य दोनोंमें स्वयं शक्ति, गुण, धर्म, क्रियादि मौजूद हैं। उसीसे सब कार्य हो रहा है। निज-निज कर्मानुसार ही प्राणी, सुख-दुःखादि पा रहे हैं। यह लाख बातकी सार एक बात सत्य निर्णयकी है। नरजीवने ही अनुमान, कल्पना करके एक ब्रह्म-ईश्वरादिको माना है। वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि वाणी वा बात बहुत प्रकारसे बनाया है। तिसमें नाना सिद्धान्त कथन करके कहा है। षट् दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्ड बनाया है, अनेक मानन्दी किया है। बात-ही-बातमें सब भ्रमिक हुए हैं। उसके बीचमें भारी पर्दा पड़ा हुआ है। शुरूमें मनुष्योंने ही वेदादि वाणी बनाया है। तब बीचमें ईश्वर, खुदा आदिका भ्रम-पर्दा जीवोंपर पड़ा है। जड़ और चैतन्य जीवके सम्बन्धसे बीचमें ही भ्रम-भूल, धोखा-अध्यासादिका आवरण-रूप पर्दा पड़ा है। खानी-वाणीकी जड़ासक्तिके मध्यमें मोहित होकर जीव सब पड़े हैं। इसीकारण सत्यासत्यका भेद पारखदृष्टि न होनेसे लखा या देखा नहीं जाता है। सद्गुरुके पारख बोध पाये बिना निज सत्स्वरूपकी पहिचान नहीं होती है। इसीसे आवागमन भवचक्रके दुःखोंमें ही जीव पड़े हुए हैं, बिना पारख ॥ ४०७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ११ ॥ [चौपाई- ७ । साखी- १ है] ॥ ❀ ॥

१. निर्विकारके करनि बेकारा * दुर्मति राज न सूझै पारा ॥ ४०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! निर्विकार, निर्लिप्त, निराकार, शुद्ध परब्रह्मको निरञ्जन माना है। परन्तु, उसकी करनीमें तो महान विकार भरा है। इच्छारूप कर्त्तव्यसे माया विकाररूप जगत् सृष्टिको करनेवाला वही ब्रह्म होनेसे, मूलमें ही विकार साबित हुआ। फिर वह निर्विकार कैसे रहा ? इतना सारा जगत् आडम्बर विकार रचकर निर्विकार कैसे रह सकेगा ? सदैव इच्छा-विकार तो उसीमें रहा ही करता है। मति-बुद्धिको भ्रष्टकर दूर करनेवाले, नरजीवसे दूसरा ब्रह्म-ईश्वरादि बतलानेवाले गुरुवालोगोंके राज्य-शासनके घेरामें पड़नेसे मनुष्योंको यथार्थ सत्यासत्य कुछ नहीं सूझता है। परमेश्वरको सबसे पार, अपार, अगम, अगोचर माना है; परन्तु, ऐसी तो कोई चीज दिखाई ही नहीं देती है। तथापि दुर्बुद्धि मूढ़ बेपारखीलोग उसीको सत्य मान रहे हैं। इसलिये सत्स्वरूप उन्हें सूझता ही नहीं है ॥ ४०८ ॥

२. एक अनन्त जीव बिलखाई * अटपट चाल दो विधि जहँड़ाई ॥ ४०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक ब्रह्मसे अनन्त जगत् पैदा हुआ, ऐसा मान-मानकर अनेकों नरजीव ब्रह्म-ईश्वरादिकी प्राप्ति करनेके वास्ते अनेकों साधनाओंमें बिलखा करके परम दुःखित, बेहाल हुए या हो रहे हैं। और अनेक मानन्दी, कल्पना, चाहनादि करके ज्ञान-अज्ञान सम्मिश्रणकी अटपटी चालसे खानी-वाणीमें ज्ञानी-अज्ञानी दोनों प्रकारसे विधिपूर्वक ब्रह्म-जगत्का सुख मान-मान करके जहँड़ा गये, यानी जड़ाध्यासी होकर बद्ध हुए या हो रहे हैं। और दोनों प्रकारसे एक-दूसरोंको बाँध रहे हैं ॥ ४०९ ॥

३. प्रथमा सोई स्वरूप विराजै * सन्धि स्वरूप चहुँविधि गाजै ॥ ४१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम मनुष्य देहमें नरजीव ही सोई आँई रूप मानन्दी-से ब्रह्म स्वरूपमें विराजमान होकर गाफिल हुए। उसी ब्रह्मसे ही एक पुरुष परमेश्वर सर्वशक्तिमान्

होकर प्रगट हुआ। फिर उसीने अपने स्वरूपसे माया प्रकृतिको निकालकर मायासे सन्धिरूप मिलाप, समागम, सम्बन्ध स्थापित किया; तो चारखानी, चारतत्त्व, चारदिशा, चारवेद, सब विधिपूर्वकसे सृष्टि उत्पन्न हो गई। तो फिर सबमें ईश्वर व्यापक होकर गाज रहा है। ऐसा ईश्वर स्वरूपकी मानन्दी कर्मी, भक्त, योगी और ज्ञानी, ये चारोंने विधिवत् वाणी कल्पनाका गर्जन किया है। चार अभिमानको ही जीवके ऊपर लादे हैं, और लाद रहे हैं। बिना विचार धोखेमें ही पड़े हैं ॥ ४१० ॥

४. दूजे विविधि भरम सोई जाला * घट घट ज्ञान होय बैठे काला ॥ ४११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दूसरा कर्त्ता मालिक अपने ऊपर होगा, ऐसा जो मनुष्योंने माना है, सो इसीसे अनेकों प्रकारके भ्रम, भूल, संशय फैल गये। सोई कर्त्ता प्राप्तिके वास्ते कर्म-उपासनादि नाना वाणी जालोंमें भ्रमिक होकर अरुझ गये। तहाँ ब्रह्मज्ञानीका हृदय तो और भी काला-मैला हो गया है। अविवेकी हो करके कहने लगे कि— "मैं एक ब्रह्म घट-घटमें भरा हुआ पूर्ण व्यापक अद्वैत हूँ !" ऐसा मान-मानकर धोखेमें ही बैठे; चैतन्य स्वरूपके ज्ञान-विचारमें पर्दा डाल दिये हैं। गुरुवालोगोंके ज्ञान=अद्वैत, द्वैतादि सब भ्रम कालके ही जाल हैं ॥४११॥

५. सन्धि ज्ञान सो भोंदू रचना * राज हेतु जीव विविध कल्पना ॥ ४१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बेपारखी भोंदू ठग गुरुवालोगोंने मनुष्यको भुलानेके वास्ते सो कल्पनासे अनेकों मानन्दी कर-करके सन्धि-ज्ञानरूप ब्रह्मज्ञानादिकी रचना की है। वेद-वेदान्तादि बनाया है। मत-पन्थोंका प्रचारकर राज्य-शासन करनेके वास्ते हुकूमत चलानेके लिये नरजीवोंको भुला-भुलाकर फँसानेके लिये इसीकारणसे ही विविध कल्पनाकर नरजीवोंको भ्रम-कल्पनामें अनेक तरहसे लगाये, ठगे और ठग ही रहे हैं ॥ ४१२ ॥

६. पारख प्रभु भवजाल छोड़ावै * झाँईं सन्धि सब तुरित मिटावै ॥ ४१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरु प्रभु ही जिज्ञासुओंको खानी-वाणी भवजालोंसे छुड़ाते हैं। झाँईं रूप ब्रह्म गाफिली, सन्धिरूप ईश्वरादिकी मानन्दी सब कसर-खोटको परखा करके पारखदृष्टिसे दिखा करके सब भ्रम धोखाको तुरन्त ही मिटा देते हैं; निजपदकी स्थिति करा देते हैं ॥ ४१३ ॥

७. रक्षक भक्षक जेहि लखि परहीं * बिन परिश्रम भव सरिता तरहीं ॥ ४१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरु ही जीवोंके रक्षक=मुक्तिदाता बन्दीछोर शरणरक्षक, जीवन प्रतिपालक हैं, और स्त्री तथा गुरुवालोग तन, मन, धनादिके भक्षक, राक्षसके समान क्रूर, सद्गुणोंको हरण करके बुद्धि भ्रष्टकर चौरासी योनियोंमें डालनेवाले हैं। जो जिज्ञासु ऐसे रक्षक-भक्षकको यथार्थ रीतिसे अच्छी तरहसे जानकर रक्षक सद्गुरुके आश्रयमें ठहरे रहेंगे, सो योग, जप, तपादि व्यर्थके परिश्रम और साधना किये बिना ही गुरुज्ञानरूप पोतके आधार वा प्रतापसे आसानीसे ही भवसागरकी धारासे पार उतरकर मुक्त हो गये और बिना परिश्रम पार होकर मुक्त हो जाते हैं। अतएव पारखी साधु-गुरुकी शरण और सत्सङ्ग-विचारमें ही मुमुक्षुओंने सदा लगे रहना चाहिये ॥ ४१४ ॥

साखीः— गुरु तो ऐसा चाहिये * ज्यों सिकलीगर होय ॥
[१०६] जन्म जन्मका मूरचा * गुरु पलमें डारे खोय ॥ ४१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे मुमुक्षुओ ! मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये गुरु कैसा होना चाहिये ? तहाँ सुनो ! जैसे सिकलीगर=लोहार, कारीगर, वर्षोंसे जङ्ग, काई या मूर्चा चढ़ा हुआ हथियार-तलवार, खड्ग, खुकुरी आदिकको सिकलीके चक्का ऊपरमें चढ़ा करके रगड़-

रगड़कर मूर्चा छुड़ाकर चमचमाता हुआ झकाझक निर्मल, साफ, तेज धारवाला कर देता है। ऐसे ही सद्गुरुके भी लक्षण होना चाहिये। सर्वपरीक्षक, सत्यन्यायी पारखी हों, सत्य निर्णयके सिकलीमें रखकर नकल-सकलकी पहिचान बतला करके बोध-सत्सङ्गकी रगड़ लगाकर जन्म-जन्मान्तरोंके मूर्चारूप जड़ाध्यास, अबोध, अज्ञान, अविद्या, हृदयान्धकार, मन-मानन्दीके विकाररूप काईको मिटाकर सत्यज्ञान पारख स्वरूपका बोध प्रकाश कर देते हैं। ऐसे पारखी सद्गुरु शिष्यके सन्देहोंको पलमें ही खोय डारते हैं। काल, सन्धि, झाँईं आदिको क्षणमें ही मिटा देते हैं। पारखी सद्गुरु ही सच्चे होते हैं। ऐसे ही सद्गुरुका शिष्य होना चाहिये। उन्हींसे जीवका कल्याण होता है, ऐसा जानना चाहिये। तहाँ प्रमाण सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक साखीमें ऐसे ही कहा है सो, सुनिये!

साखीः-गुरु सिकलीगर कीजिये! मनहि मस्कला देय॥ शब्द छोलना छोलिके। चितदर्पण करि लेय॥ १६०॥

पारखी सन्तको सद्गुरु करके मानना चाहिये। जो मनको विवेककी मस्कला देकर सारशब्दके छोलनासे छोल करके चैतन्य जीवके कसर-विकार, मैल, अध्यासकी मूर्चा सब निकाल डाले; और चैतन्य जीवको शुद्ध दर्पणवत् साफ करके पारख प्रकाश करके स्थिर कर लेवे। निज स्वरूपमें स्थिति करा देवें, ऐसे सद्गुरु कीजिये! उन्हें ही इष्ट मानिये, इत्यादि॥ ४१५॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १२ ॥ [चौपाई- ८ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. सर्व परे प्रभु दीनदयाला * नीचे नीच सो काल कराला ॥ ४१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पारखी सद्गुरु महाप्रभु सर्व काल-जालोंसे परे धोखा, अनुमान, कल्पना, जड़ाध्यासादि विकार, इन सबसे परे, न्यारा रहते हैं। शरणागत दीन गरीब मनुष्योंको भी काल-जालोंसे छुड़ा करके पृथक्, परे कर देते हैं। ऐसे दीनदयालु सद्गुरु प्रभु बन्दीछोर हैं। काल=गुरुवालोग तो सबसे परे एक परमात्मा बता करके उसकी प्राप्तिकी अनेक साधनाएँ कर-कराके नीचसे-नीच कर्म-कुकर्म वाममार्ग, दक्षिणमार्गमें फिराकर पतितकर कराल=भयङ्कर चौरासी योनियोंके बन्धनोंमें डाल देते हैं॥ ४१६॥

२. जीवै जीव मध्य सो बासा * बिनु पारख सो काल गरासा ॥ ४१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जीव तो जीते रहनेवाला है, जिसका कभी तीन कालमें नाश नहीं होता है, ऐसा एकरस, अखण्ड, नित्य, सत्य है, वही जीव है। परन्तु, स्वरूप-स्थिति न होनेसे जड़ाध्यासी होकर ही आवागमन गर्भवासमें संसारके मध्यमें निवास कर रहे हैं। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गके बीचमें रहकर पारखमें जिसने बासा कर लिया है, सो नरजीव बन्धनोंसे छूटकर सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं। वे ही जी गये; बच गये और सब मर गये। स्व-स्वरूपकी स्थिति सद्गुरुके पारख बोधके बिना, सो जीवित जीवको ही काल=मन-मानन्दी, स्त्री विषय और गुरुवालोग कल्पनादिमें फँसाकर ग्रास, कवलित किये या कर रहे हैं॥ ४१७॥

३. दया स्वभाव दया प्रभु केरा * परख प्रकाश न लेश अन्धेरा ॥ ४१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— अतः हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो! दया, शील, सत्य-विचारादि सद्गुण ही जिनके स्वभावमें पूर्णतासे रहनी-रहस्य धारण हुआ है, ऐसे पारखी सद्गुरु प्रभुजीकी शरणको ही दृढ़तासे ग्रहण करो! उन प्रभुकी दयादृष्टि हो जानेपर तुम्हारे हृदयमें भी पारख बोधका प्रकाश हो जायगा। फिर तो अबोध अविद्या सम्बन्धी अन्धकारका लेशमात्र भी हृदयमें नहीं रह जायगा। पारख बोधसे जीव निर्मल, निर्विकार हो जायगा। फिर अध्यासका लवलेश तक भी बाकी नहीं रहेगा॥ ४१८॥

४. सो बिनु पारख जीव नशाना * काल कला घट ताहि समाना ॥ ४१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई गुरु पारखका बोध न होनेसे जीव मुक्तिपदसे

नशा गये हैं, जड़ाध्यासी पतित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। तैसे अभी जीव जीवनसे नशा रहे हैं। उन नरजीवोंके घटरूप अन्तःकरणमें काल=मन, स्त्री और गुरुवालोग आदिकी कल्पना, विषय-मानन्दीकी कला=विकार, आसक्ति समा गयी है। इसीसे वे निजपद स्थितिसे नशा गये हैं या भ्रष्ट हो रहे हैं ॥ ४१९ ॥

५. काल कराल सो दुष्ट स्वभाऊ * महाजाल भव ताके दाऊ ॥ ४२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भयङ्कर वा विकराल, प्रचण्ड दुष्टतासे भरा हुआ सो कालका स्वभाव बड़ा दुःखदायी है। उसी कुस्वभाव काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सैन्य सहित कराल काल=नारीने पुरुषोंपर आक्रमण कर रक्खा है। तथा नाना मत-पन्थोंका जाल-आशा, तृष्णा, छल, कपट, ,दम्भ पाखण्ड फैला करके विकराल काल=गुरुवालोगोंने मनुष्योंको वश कर रक्खा है। ताक-ताककर खानी-वाणी आदि महाजालोंमें फँसाकर चकनाचूर कर देनेका ही दाव-पेंच उन कालका घात लगा हुआ है। सब प्रकारसे अबोध पुरुषोंको सता करके नष्टकर स्वार्थ पूर्ण करनेका ही दाव लगा रहे हैं ॥ ४२० ॥

६. तामस तम स्वरूप विराजै * सदा दुष्ट महा दुर्मत छाजै ॥ ४२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तामस=मन, बुद्धि, वाणीसे परे निरञ्जन ब्रह्म-परमात्माको जो माना है, सो तमोगुण, महाअज्ञान, तम, अन्धकाररूप आवरण-पर्दा ही जीवके स्वरूपपर पड़ा है। और माना हुआ ब्रह्म स्वरूपके भीतर ही तमरूप इच्छा माया सदा विराजमान रहती है। यानी माया सदा ब्रह्ममें मौजूद ही रहती है। वह माया महादुष्टा है; ब्रह्मपर अपना जाल आच्छादन करके ब्रह्म सहित जीवोंको घसीट करके चौरासी योनियोंमें लाती है। अब कहो भला ! ब्रह्म होकर क्या फायदा हुआ ? गुरुवालोग दुष्टतासे जीवोंकी बुद्धिको हरणकर या दूरकर उसी कल्पित ब्रह्मके ही कथनसे शोभा, महिमा बढ़ा रहे हैं। महादुष्ट दुर्मति हैं, धोखा खड़ा करके उसकी आड़में सदासे जीवोंको भुलाये या भुला रक्खे हैं ॥ ४२१ ॥

७. मूल पेड़ फल तीनि फलाई * पञ्च रङ्ग पल्लव फूल फुलाई ॥ ४२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने सर्वाधिष्ठान जगत्का मूल आदि कारण पेड़ या वृक्षरूप परब्रह्मको माना है। उसी निर्गुणमेंसे रज, सत्त्व और तम, ये तीन गुण फल लगे। तो अर्थ, धर्म, काम, ये तीन फलकी प्राप्तिके लिये कर्म, उपासना, योगादि साधनामें ब्रह्मा, विष्णु, शिव और उनके मतवादी अनुयायियोंने उसमें अपने लगकर और दूसरोंको भी लगाया। और पाँच तत्त्वके पाँचरङ्ग,पाँचविषय, पञ्चकोशोंके प्रपञ्चरूप अनेक वाणी-कल्पना सोई उसमें पत्ता लगा करके हरा-भरा किया। वेद, शास्त्र, कुरान आदिकी वाणी पढ़-पढ़ा करके पञ्च अभिमानके भिन्न-भिन्न पत्तेमें ही वे लटके हैं। उसमें नाना प्रकारके सिद्धान्त कायम किये, सोई चित्र-विचित्रके फूल फूले हैं। फिर आखिरमें सात स्वर्गलोक चार मुक्ति आदिके फल फलाये हैं। उस फलको तोड़नेके लिये आशासे झाड़पर चढ़े, तो डाली टूटकर गिर पड़ी, तो मर गये; फिर चौरासी योनियोंके चक्रमें जाकर दुःख फल ही चाखने लगे हैं ॥ ४२२ ॥

८. कटु अरु मीठ चुवै रस ताही * भँवर होय जिव लुब्धै जाही ॥ ४२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उस ब्रह्म वृक्षसे संसारमें दो तरहके रस चूने लगे। एक कटु=जगत् भोग विलासका रस, दूसरा मीठा=ब्रह्मानन्द सुखका रस माना है। सोई ज्ञानी-अज्ञानी, ब्रह्म-जगत्, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, कटु-मीठा, दुःख-सुखादिका अनुभव लेने लगे। उसीका वर्णन-उपदेशरूप रस चुवाने लगे। सारे मनुष्य जीव भँवरेकी नाईं होकर उसीमें जा-जाकर लुब्ध, मोहित, आसक्त, अध्यासी, गाफिल हुए; भवचक्रमें ही पड़े हैं, बिना पारख ॥४२३॥

साखीः— अव्यक्त मूल जग पेड़ सो * तामसरूप दुःख खान ॥
[११०] लासा मोह विकट तेही * पर हंसन अरुझान ॥ ४२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो प्रगट नहीं है, गुप्त है, उसे 'अव्यक्त' कहते हैं। यहाँपर निराकार, निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्म ही अव्यक्त है। जगत्रूप वृक्षका मूल, आदि कारण, जड़, आधार गुरुवालोगोंने उसी अव्यक्त ब्रह्मको माना है। परन्तु, विवेक करके देखिये ! तो सो ब्रह्म ही तामसरूप समस्त विकारोंसे भरा हुआ चौरासी योनियोंके दुःखोंकी खान, जन्म-मरणादि चारखानीके दुःख-चक्रमें ही घुमानेवाला है। परन्तु, आवरण, वाणी-कल्पनारूप लोह पर्दा लगा करके गुरुवालोगोंने उसे सुख स्वरूप मुक्तरूप वर्णन किया है। वेद-वेदान्तोंकी वाणी देख-सुन करके भावुक लोगोंको ब्रह्म साक्षात्कार करनेकी या जीव-ब्रह्म एकताकर परमानन्द प्राप्त करनेकी लालसा, इच्छा, मोह, आसक्ति प्रबलतासे दृढ़ हुई। इसलिये उसी विकट=छूटनेको अत्यन्त कठिन ऐसे लासा=चिकट धोखेमें चिपक गये, भ्रमिक हुए। उसीमें हंस नरजीवोंकी पङ्खरूप विवेक-विचारादि पर अरुझ गया वा फँस गया, गचपच होकर इकट्ठा हुआ। फिर अध्यासरूप कालने मार-मारकर छिन्न-भिन्न करके चौरासी योनियोंमें ही गिरा दिया। अतएव परखकर ब्रह्म-भ्रमको सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ ४२४ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक सद्ग्रन्थका प्रमाण देकर परखाया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, साखी नम्बर— १४४ ॥ ❀ ॥

साखीः— तामस केरे तीन गुण * भँवर लेइ तहाँ बास ॥
[१११] एकै डारी तीनि फल * भाँटा ऊँख कपास ॥ ४२५ ॥

अर्थः— [गुरुमुखः—] सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! एक निर्गुण ब्रह्म तामसमेंसे तीनगुणरूपी माया जगत्की उत्पत्ति माना है। और तामस=मनके तीन गुण=रज, सत्त्व और तम हैं। तथा तामस ब्रह्मके तीन गुण=भक्ति, योग और ज्ञान हैं। त्रिगुणी मनुष्य योगी, ज्ञानी और भक्तजन भँवरे=भावुक बन करके तहाँ संसारमें ब्रह्म और विषयोंका सुवास या रस लिये वा लेने लगे। एकै डारी=माया-काया, उसमें तीन तरहके फल लगे। भाँटा=तमोगुणमें 'अर्थ' नामका फल लगा। ऊँख=सत्त्वगुणमें 'धर्म' नामका फल लगा। कपास=रजोगुणमें 'काम' नामका फल लगा। तब ज्ञानियोंने आत्मधर्मको ग्रहण किया। भक्तोंने स्वर्गादिक कामको चुन लिया। योगी लोगोंने अष्ट सिद्धि आदिकी चाहना किया, सो अर्थ प्राप्तिके पीछे पड़े ॥ अथवा तामस=ब्रह्मसे, तीन गुण=तत्, त्वं, असि निकला। तहाँ ब्रह्मज्ञानी भँवरे बन करके वेदान्तरूप फूलमें सुवास लेने लगे। तुरिया-माया एक डारी हुई, उसमें ज्ञान, अज्ञान और विज्ञान, ये तीन फल लगे। सो साधक, सिद्ध, परमहंसोंने तीन फल बाँट करके ले लिया ॥ अथवा तामस=मनके तीन गुण=रज, सत्त्व, तमोगुण संयुक्त विषयी जीव भौंरे बन करके तहाँ विषयोंमें सुवास लेने लगे। एक डारी=मायारूप स्त्रीसे ही त्रिगुणी सन्तानके रूपमें तीन फल लगे। कामी, क्रोधी और मोही लोगोंने सो फल बाँट करके ले लिया वा उसे खा लिया। और त्रिगुणकी गतिके बारेमें गीतामें कहा हैः—

श्लोकः— "ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ॥
जघन्य गुण वृत्तिस्था, अधोगच्छन्ति तामसाः ॥" भगवद्गीता, अध्याय-१४। श्लोक-१८ ॥

अर्थ ऐसा है कि, सत्त्वगुणी साधक लोग ऊर्ध्व लोकको जाते हैं, सो उत्तम नरजन्मको पाते हैं। रजोगुणी मध्य लोकमें ही रहते हैं। भयङ्कर तमोगुणी वृत्तिवाले अधमके पापलोक नरक चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं ॥

इसप्रकार त्रिगुणके कर्मानुसार चारखानीमें ऊँच और नीच गति जीवोंकी हो रही है। कल्पित वाणीकी डारी या डालीसे मनःकल्पित तीनोंगुणोंसे अध्यासरूपी तीनों फलको ढढ़ाया

है। उसीमें आसक्त होकर जीव बिना पारख त्रिविधि ताप तथा चौरासी योनियोंके दुःख भोगे या भोग रहे हैं ॥ ४२५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग—१३ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. प्रथम निरञ्जन शून्य स्वरूपा * जेहि विधि रचा महा भव कूपा ॥ ४२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम मनुष्यदेहमें कर्त्तावादीने वेद प्रमाणसे ऐसी कल्पना किया कि, पहले तो योग समाधि लगाया, मनको शून्य करके विलय किया। उसी निर्विकल्प शून्यको ही निरञ्जन-परमात्माका स्वरूप निश्चय किया। फिर उस ब्रह्म कल्पनाको ही विस्तारसे बढ़ा करके जिस प्रकारसे गुरुवालोगोंने महा भवकूपरूप वाणी-खानी जालोंकी रचना किया, जिससे चौरासी योनियोंमें अन्धकूप बना, वही सब रचनाका कारण बीज भी बना, सोई बात यहाँ निर्णय करके कहता हूँ, उसे सुन लीजिये ! ॥ ४२६ ॥

२. जीवन जीव देखि ललचाना * सन्धि अबुध ताहि लपटाना ॥ ४२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जीवन कला वही ज्ञानगुण है। जिसमें सो जाग्रत् जीवनजीव, सजीव, जिन्दाजीव, चैतन्य नरदेहधारी जीवोंने काया-माया, पञ्च विषय सुख भोग, वेद-शास्त्रादिकी रोचक वाणी देख-सुन करके सुख भोग पानेकी चाहनासे उसीमें लालची होकर ललचा गये। अबोध, अज्ञानी मनुष्य स्त्री आदिसे सम्बन्ध वा मिलाप करके और गुरुवालोगोंसे मिल करके ईश्वर, ब्रह्म, खुदा इत्यादि मानन्दी दृढ़ करके उसी खानी-वाणीमें लपटा गये। शहदमें चिपकी हुई मक्खीकी तरह उसीमें ही चिपके-चिपकाके फँस गये; बिना विचार ॥ ४२७ ॥

३. ज्ञानरूप सो अन्तर बासा * जीव स्वभाव जीवन परकाशा ॥ ४२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानरूप या ज्ञानाकार तो चैतन्य जीव स्वयं ही सत्य है। परन्तु, स्व-स्वरूपका पारखबोध न होनेसे मनुष्योंके अन्तर या भीतर अन्तःकरणमें अनेक वासनाएँ खड़ी हुईं। तहाँ गुरुवालोगोंने ज्ञानरूप चैतन्य कोई परब्रह्म कर्त्ता पुरुष है, ऐसा कहा। सोई कल्पनाकी बात मनुष्योंके अन्तरमें दृढ़ होकर बसी, सोई आवरणरूप पर्दाकी आड़ लगी। स्वाभाविक ज्ञान स्वरूप चैतन्य जीव है; जानीवपना, ज्ञान-गुणका प्रकाश तन-मनादिमें सदैव हो ही रहा है। परन्तु, निज स्वरूपकी स्थितिपर कायम न होनेसे बहिर्लक्ष्य करके अनेक मानन्दीमें पड़े हैं। प्रकृति, तत्त्वोंका स्वभावसे जो ध्यान, धारणा और समाधिमें ज्योति-प्रकाश, आनन्दादि भास हुआ, उसीको 'ब्रह्म-ईश्वरादि' है, ऐसा कहकर गुरुवालोगोंने दृढ़ाया है। उसका यथार्थ निर्णय करके पारखी सद्गुरुने पारखबोधका प्रकाश किया। जिसमें ज्ञानकला है, उस चैतन्य जीवको ही सत्य बतला कर लखाये हैं। जीवने ही ब्रह्म आदि कल्पनाका प्रकाश किया है, यह बतलाये हैं ॥ ४२८ ॥

४. एक अनन्त होय करै परकाशा * काल कराल पलहि पल ग्रासा ॥ ४२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक ब्रह्मसे अनन्त जगत्का प्रकाश उत्पन्न हुआ या ब्रह्मकी इच्छासे ही चराचर सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। कल्पनासे भ्रमिक लोग ऐसी-ऐसी असम्भव बात प्रकाश किये या करते हैं; अथवा कर ही रहे हैं। भयङ्कर दुष्ट स्वभाववाले काल मन-कल्पनामें लगा-लगाकर पल-ही-पलमें वा क्षण-ही-क्षणमें अबोध मनुष्योंको ग्रास करके भ्रमा देते हैं। घड़ी-घड़ीमें विकराल मुख फाड़-फाड़कर झपटकर ग्रास लिये हैं, पकड़ करके नोंच-नोंचकर तन, मन, धनादि खा रहे हैं ॥ ४२९ ॥

५. सो बन्धन जीव सुनहु अपाना * अनन्त रूप होयके अरुझाना ॥ ४३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! अपना सद्गुण रहनीको छोड़कर हंस जीव मनुष्यपदसे पतित होकर नरजीव कैसे महान भव-बन्धनोंमें जकड़े पड़े हैं ? उस अपने बन्धनको

ब्यौरेवारसे ध्यानपूर्वक सुनो ! और उस बन्धनसे निकलनेका प्रयत्न करो ! जड़ाध्यासी हो करके चौरासी योनियोंमें अनन्तरूप धारण करके जीव अरुझ गये हैं। अथवा एक ब्रह्मसे अनन्त जगत् रूप उत्पन्न हो करके वह आप ही अरुझाया हुआ है; इसका यथार्थ पारख करो ! ॥ ४३० ॥

६. कारण विश्व अव्यक्त बेकारी * जीवन हरै सोई जाल पसारी ॥ ४३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिसको तुमने विश्वरूप चराचर जगत्का आदि कारण जगत्कर्त्ता अव्यक्त-गुप्त, निरञ्जन, निराकार परमात्मा माने हो, सोई महा विकारी चौरासी योनियोंमें ले जानेका कारण है। सो वाणी कल्पना भ्रमका विकार है। परन्तु, भ्रमिक गुरुवालोग सोई वेदादि वाणीका जाल पसार-पसार करके वही भ्रम दृढ़ा-दृढ़ा कर नरजीवोंके जीवनधन, बुद्धि-विवेक, ज्ञानकला, साक्षीपदको हरण करके शून्यमें गाफिल कराके नष्ट-भ्रष्ट कर दिये या कर रहे हैं ॥ ४३१ ॥

७. तामसरूप निरञ्जन राया * सोई अगुण सगुण होय आया ॥ ४३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! महाअज्ञान, तमोगुण, घनघोर अन्धकार छाया हुआ तामसका मूल स्वरूप ब्रह्मको निरञ्जन, निराकार, निरीह, परमात्मा, सब जगत्का मालिक, सर्वश्रेष्ठ, महाराज कर्त्ता, धर्ता, हर्ता सर्वाधिष्ठान है; ऐसा भ्रमसे माना है। फिर कल्पना करके गुरुवालोग कहते हैं कि, सोई अगुण=गुणातीत, निगुण ब्रह्म ही निज इच्छासे सगुण=समस्त गुण संयुक्त-सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके रूपमें प्रगट होता है। ईश्वरकी सृष्टिमें माया-कायारूप जगत् बन करके आया। फिर अंशरूपसे अनेक जीवोंको भी उसीने प्रगटाया वा अपने स्वयं ही जीवरूप होकर जगत्के मध्यमें आया। फिर समयान्तरमें निर्गुण ब्रह्म ही सगुण अवतारी हो करके चौबीस (२४) अवतार धारण करके समय-समयपर जगत्में आया। लीला विस्तार करके फिर निर्गुण-रूपमें ही जा करके समा गया है, ऐसा कहा है ॥ ४३२ ॥

८. थाना चारि आपु निर्माई * कला अनन्त जीव भरमाई ॥ ४३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जीवोंको चार मुक्ति देनेके लिये चार वेद, चार मार्गको स्वयं परमेश्वरने आप ही बना गये हैं, ऐसा गुरुवालोग कहते हैं। गुरुवाओंने अपने ही चार वेद बनाया तथा उससे चार मार्ग बतलाया है। चार मुक्ति प्राप्तिकी आशा लगाकर चौंसठ कला आदिसे लेकर अनन्त कला-कल्पनाओंमें फँसा करके नरजीवोंको अनेक तरहसे भ्रमा दिये हैं, और अभी वैसे ही भ्रमा ही रहे हैं। कर्म, उपासना, योग और ज्ञानमें भी लगे; परन्तु, पारख बोध हुए बिना भ्रमिक जड़ाध्यासी ही होकर बद्ध हो गये या बद्ध हो रहे हैं ॥ ४३३ ॥

९. प्रथमें तुरिया ज्ञान कहावै * दूजे शून्य सुषोप्ति धावै ॥ ४३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम मनुष्योंको ज्ञानियोंने ज्ञानमार्ग कहा, तहाँ सायुज्यमुक्तिकी आशा लगाया हैं। तुरिया अवस्था साक्षी दशा ज्ञानका संस्कार रखकर जीव मनुष्य खानीको प्राप्त हुए वा होते है। दूसरा योगियोंने योगमार्ग कहा है; तहाँ सारूप्य-मुक्तिकी आशा दिया है। शून्य सुषुप्ति अवस्थावत् समाधिमें शून्यवृत्तिका अभ्यास रखकर देह छूटनेपर जीव उष्मजादि खानियोंमें दौड़े चले जाते हैं ॥ ४३४ ॥

१०. तीजे श्वासा स्वपन बनाई * चौथे पृथिवी जग बिटमाई ॥ ४३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तीसरा उपासकोंने भक्ति-उपासना मार्ग बताया है। तहाँ सामीप्य मुक्तिकी लालच लगाया है। स्वप्नावस्थावत् ध्यानाकार वृत्ति एकाग्र बनाये, तो श्वासके साथ नाम-स्मरण करके मानसिक कल्पित मूर्ति बनाये; उसी भावनामें वे जड़ाध्यासी होकर अण्डजादि खानियोंको प्राप्त हुए। और चौथे कर्मकाण्डियोंने कर्ममार्गकी साधना

विषय भोगादिका विस्तार किया है। तहाँ सालोक्य मुक्ति— स्वर्ग लोकादि प्राप्तिकी आशा लगाये हैं। स्थूल देहकी जाग्रत् अवस्थासे पृथ्वीमें अनेक कर्म-कुकर्म किये, उसीके अध्यासवश पशु आदि खानीमें गये। इसतरह संसारमें चारखानीका निर्माण हुआ। उसीके अन्दरमें कर्मानुसार विभिन्न चौरासी योनियाँ बनी हैं। बिना पारख नाना कर्माध्यास बना करके आवागमनमें ही सब जीव पड़े हुए हैं ॥ ४३५ ॥

साखीः— जीव फँसे तेहि जालमें ❀ सूझे वार न पार ॥
[११२] त्राहित्राहि निशि दिन करै ❀ साहेब ! लेहु उबार ॥ ४३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अबोध नरजीव सुख अध्यासी विषयासक्त होकर उसी खानी-वाणीके महाजालोंमें जा-जाकर फँसे, षट् दर्शन छियान्नवे पाखण्डके जालोंमें फँसे; चार मार्गकी साधनाके कर्ममें फँसे हैं। जिसे उन्होंने मुक्तिदाता परमेश्वर करके माना है, उसका तो वारापार, ओर-छोर कुछ भी नहीं सूझता है। जड़ और चैतन्य जीवको छोड़ करके ईश्वरका गुण-लक्षण तो कहीं दिखाई ही नहीं देता है। "अन्ध गोलांगुलन्याय" वा "भेड़ियाधसानवत्" सब उसके पीछे पड़े हैं। परन्तु, भव-बन्धन-दुःखका अन्त होता हुआ तो दिखता ही नहीं है। अतएव दिन-रात ज्ञानी-अज्ञानी लोग नाना साधनाएँ, मिहनत, त्रयतापादि दुःखोंसे सन्तप्त, परम दुःखी होकर "त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् ! रक्षः ! रक्षः ! ऐसा पुकारा करते हैं कि, हे साहेब ! हे गुरो ! हे भगवान् ! हे परमात्मा ! हे जगत्के मालिक ! हे परमेश्वर ! मुझे उबारो ! बचाओ ! अब तो भी भवसागरसे पार करो ! हे स्वामीजी ! मैं आपकी शरण हूँ ! मुझे दुःखोंसे छुड़ाओ ! अबकी बार दया करके उबार लो ! फिर वैकुण्ठमें निवास देना, इत्यादि कामना करके प्रार्थना या विनय किया करते हैं; बिना विवेक धोखेमें ही पड़े हुए हैं ॥ ४३६ ॥

साखीः— साहेबको जाने नहीं ❀ हाकिम चोर प्रचण्ड ॥
[११३] यम ठाकुर यम देशमें ❀ खण्ड पिण्ड ब्रह्माण्ड ॥ ४३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सच्चे साहेब, सर्वश्रेष्ठ, पारख प्रकाशी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब हुए। और आपके पारख सिद्धान्तके अनुयायी सत्यन्यायी पारखी सन्त अभी मौजूद हैं। कल्याणकारी ऐसे श्रेष्ठ साहेबको तो ये पक्षपाती अविचारी लोग जानते-पहिचानते ही नहीं हैं। उनके सत्सङ्गमें आकर सत्यासत्यको जाननेकी कोशीश भी नहीं करते हैं। जो प्रचण्ड-तीक्ष्ण, पक्के चोर हैं, उन गुरुवालोगोंको ही हाकिम=आफिसर, स्वामी, श्रेष्ठ, हितकर, न्यायकारी मानकर उनके भरोसेमें पड़े हैं। जब चोर ही कचहरीका हाकिम बना है, तब यथार्थ न्याय कहाँसे होगा ? कौन न्याय करेगा ? मामलाको उलटा करके मिथ्याको ही सत्य बतलाते हैं। सारा देश-विदेशमें यमराजरूप गुरुवालोग ही ठाकुर=राजा, मालिक या गुरुमहाराज बने हैं। और यमदेश=गुरुवालोगोंके अनेक सिद्धान्तोंमें सब जीव फँसे पड़े हैं। तहाँ खण्ड वा न्यारे-न्यारे पिण्ड=शरीर संरक्षणके लिये कर्म, उपासना, योगादि साधनाएँ पिण्डमें करने लगे। तथा ब्रह्माण्ड=वाणीके प्रमाणसे बाहर ज्ञान-विज्ञानका कथन करने लगे। वही पिण्ड-ब्रह्माण्डोंकी वासनासे चौरासी योनियोंके देशमें अनेक देहें धारण करके जीव बद्ध पड़े हैं; बिना पारख ॥ ४३७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १४ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. जीवहि ग्रासि एक तन भयऊ ❀ दुविधा कला तबै निर्मयऊ ॥ ४३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! वेदान्तियोंने सबको लय करते-करते बाहर चराचरको भी कल्पनासे ग्रासकर लय किया। और देह भीतर तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रियाँ, विषयादि सबको विलय करके जीवको भी ग्रास लिया। साक्षीपनाको मिटा दिया। मन उन्मुन

करके कैवल्य देहमें जीव-ब्रह्मकी एकता मानकर शून्यवृत्तिको धारण कर लिया। देहमें ही थोड़ी देरके लिये निर्विकल्प स्थितिको प्राप्त कर लिया। एकान्तिक प्रलय करके कल्पनासे एक ब्रह्म हो गये। तब वहींसे ही स्फुरणा होकर दुविधा=सन्देह, कल्पना खड़ी हो गयी। फिर वेदादि अनेक वाणीका निर्माण करके पसारा किया ॥ ४३८ ॥

२. कारण पुरुष एक रूप सँवारी ❀ इच्छा दुतिया कारण नारी ॥ ४३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदि कारण परमतत्त्व परमात्मा निरञ्जन ब्रह्म तो एक अद्वैत चराचर व्यापक ही पहले रहा। जब उसे क्रीड़ा वा लीला करनेकी इच्छा हुई, तब अपने आप एक सर्वशक्तिमान् पुरुषरूपमें प्रगट हुआ। फिर उसने अपने अनुरूप एक दूसरे रूपको भी बनाया। सोई इच्छा=माया, ब्रह्मकी दूसरी कला, जगत्का कारण, प्रकृति, स्त्रीरूपको भी बनाया। सोई इच्छारूप माया ब्रह्मकी जो दूसरी कला है, जगत्का कारण, प्रकृति, स्त्रीरूपको स्वयं धारणकर लिया। तदनन्तर नारी-पुरुषका मिलाप, संयोग-सम्बन्ध स्थापित हो गया; जिससे समस्त जगत् सृष्टिका विस्तार हो गया। गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना की है ॥ ४३९ ॥

३. चिदाकाश सो पुरुष स्वरूपा ❀ शक्ति सगुण मायाके रूपा ॥ ४४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो परम पुरुष परमात्माके मूल वास्तविक स्वरूप चिदाकाश है। सो चैतन्य ब्रह्म आकाशवत् निराकार, निराधार, निर्गुण स्वरूपमें ही सदा रहता है। तथा आदिशक्ति महामाया सगुण=साकार, अष्टाङ्गी पाँच तत्त्व, तीन गुणके प्रत्यक्षरूपमें रहती है। इच्छा प्रगट होना, सो मायाका रूप है; तथा गुप्त होना ब्रह्मका रूप माना है ॥ ४४० ॥

४. अर्धङ्गी सोइ नारि कहावै ❀ मेल मिलाप परस्पर भावै ॥ ४४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई आदिमाया अष्टाङ्गी प्रकृति अर्धाङ्गिनी नारी पतिरूप परमात्माकी प्यारी कहलाती है प्रकृति-पुरुष, सगुण-निर्गुण, माया-ब्रह्म, साकार-निराकार, पति-पत्नीरूपमें इन दोनोंका मेल-मिलाप परस्पर सम्बन्ध खूब प्रेम-भावसे प्रीति-पूर्वक सदासे होता ही चला आता है। उनके भावसे ही जगत्का सब कार्य चल रहा है। अभाव होनेपर सब जगत्का प्रलय हो जायगा; गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना की है ॥ ४४१ ॥

५. पवन थीर अन्धेरी झाँई ❀ सदा विलास भर्म तेहि माँई ॥ ४४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वासनारूप पवनसे प्रेरित हो ब्रह्म-पुरुष, इच्छा-मायारूप थीर योनिमें ठहरता है, उससे सम्बन्ध करता है, तो अन्धेरी महा अज्ञानता अविद्यासे मूर्च्छित हो झाँईं में गाफिल हो जाता है। तो भी उसी मायाके साथमें सदा भोग-विलास क्रीड़ा करनेमें लगा रहता है। भ्रमसे उसी मायाके विलासमें ही परमानन्द मान-मानकर स्वरूप स्थितिसे भूल जाता है। अतएव प्रकृति-पुरुषमें भ्रम ही सदा लगा रहता है ॥ ४४२ ॥

६. एक जीव दुई रूप समाना ❀ बिनु पारख न परे पहिचाना ॥ ४४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चैतन्य जीव तो स्वरूपसे अखण्ड ही है। परन्तु, एक पारख बोधके बिना जड़ाध्यासी भ्रमिक हो, एक अध्यासी जीवने स्त्री और पुरुषका दो रूप बनाकर देहमें समाया है। तथा एक ही मनुष्य जीव ब्रह्म और माया, ये दो रूपकी भिन्न-भिन्न कल्पना करके भ्रमसे उसीमें समाया। खानी-वाणी, नारी-पुरुष, माया-ब्रह्म, ये दोनोंकी मानन्दी एक समान जीवको बन्धन है। सद्गुरुके पारख बोधको प्राप्त हुए बिना मोटी-झीनी मायाका जाल भव-बन्धन जीवोंको पहिचाननेमें नहीं आया; और सद्गुरुके पारखके बोध हुए बिना कभी पहिचान भी नहीं पड़ती है ॥ ४४३ ॥

७. नारि पुरुष दोउ कीन्ह मिलापा ❀ शून्य स्वरूप सुषुप्ति व्यापा ॥ ४४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्त्री-पुरुष, माया-ब्रह्मका खेल एक सरीखा है।

जैसे नारी-पुरुष परस्पर सम्भोग-मैथुन कर्ममें मिलाप करते हैं, तो वीर्य पतन होनेपर वृत्ति शून्य होकर अल्पकाल तक मूर्च्छा व्याप जाती है; उसीको विषयानन्द माना है। तैसे ही माया-पुरुष वा ब्रह्मकी जब एकतारूप मिलाप हो जाती है, तब स्वरूपकी स्थिति शून्य होकर वृत्ति लय होनेसे सुषुप्तिके समान अभाव हो जाता है। उसीको व्यापक ब्रह्मकी परमानन्द स्थिति माना है। परन्तु, वह महा अज्ञानता गाफिली चौरासी योनियोंमें ले जानेका बीज है, ऐसा जानना चाहिये ॥४४४॥

८. चिदाकाश दूजे थीर पौना ❀ युगल शरीर मिला जिव तौना ॥ ४४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तहाँ पहला आकाशवत् परिपूर्ण चैतन्य मान करके उसे परमतत्त्व-परमात्मा, परमपुरुष करके ठहराये हैं। दूसरा आदिमायाको थीर पौन, आदिशक्ति, प्रकृति, जगत्कर्त्री माना है। उन्हीं दोनोंके अंश या भागसे यहाँ स्त्री और पुरुषका यह दो शरीर जीवको मिला, ऐसा कहते हैं। अथवा जीव जो है, सो तो परम पुरुष परमेश्वरका अंश है, और शरीर जो है, सो प्रकृतिके अंशसे बना है। इसप्रकार शरीर तथा जीव, ये दोनों प्रकृति-पुरुषके अंशसे बने हुए प्रगट उनका दो देह है। अन्तमें दोनों उन्हींमें जा करके मिल जाते हैं; ऐसी कल्पना की है। परन्तु, विषयाध्यासके कारणसे ही स्त्री-पुरुषका दो शरीर जीवोंको मिला है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४४५ ॥

९. कारण युगल खानि सोइ कीन्हा ❀ प्रगटत पिण्डज अंकुरज चीन्हा ॥ ४४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मूल कारणरूप प्रकृति-पुरुष, ये दोनोंको ही चराचर जगत् उत्पन्न करनेमें कारण माना है। सो उन्होंने ही चारखानी पिण्डजकी और स्थावर जड़ खानी अंकुरजोंकी उत्पत्ति करके प्रगट किया। अंकुरजादि जड़ मायाका चिह्न है, और पिण्डजादि चैतन्य पुरुषका चिह्न है, ऐसा माना है। अथवा नरजीवने यहाँ जो कर्म अध्यासको इकट्ठा किया है, सोई चार खानीमें ले जानेका कारण तथा स्त्री-पुरुषके दो देह बनानेका हेतु हुआ है। सो जीवोंने जो कर्म किया है, उसी संस्कारसे कोई पिण्डज खानीमें आ करके प्रगट हुए, तो शरीरमें जो रोम उत्पन्न हुआ, वही अंकुरजकी तरह सूक्ष्म चिह्न है वा कोई अंकुरजोंमें कीड़ोंकेरूपसे देह धरके बाहर प्रगट हुए हैं ॥ ४४६ ॥

१०. कारण अनन्त ताहि बिटमाया ❀ मध्य मध्य तेहि जीव समाया ॥ ४४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सबका कारण एक ब्रह्म मानकर गुरुवालोगोंने जगत्में अनन्त वाणी कल्पना, वेद-शास्त्रादिको बनाया है। उसीके बीच-बीचमें अनेक सिद्धान्त कायम करके भ्रम धोखेमें ही नरजीव समाये या समा रहे हैं॥ अथवा प्रकृति-पुरुषको जगत्का मूल कारण मानकर उन्हींसे अनन्त जगत् उत्पत्तिकी कल्पना किये हैं। उसी अनुमान-कल्पनाके बीच-बीचमें जीव समाये हैं। वही खानी-वाणीकी आसक्ति, जड़ाध्यासोंके ही कारणसे उसी अध्यासी जीवोंने चारों खानीमें अनन्त देहें बनाया है; और बीचमें मनुष्य जन्ममें आये, तो भी विषयासक्तिको ही बढ़ा करके फिर मध्य गर्भवास चौरासी योनियोंमें ही जा करके समाये हैं और समा ही रहे हैं। पारख स्वरूपकी स्थिति हुए बिना कदापि आवागमन चक्रसे जीव नहीं छूटते हैं ॥ ४४७ ॥

साखीः— नारि पुरुषके मिलापते ❀ अद्बुद बीज उपाय ॥
[११४] पृथक पृथक बहुरूप सो ❀ प्रगट भये समुदाय ॥ ४४८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! स्त्री-पुरुषके मिलापसे मैथुनरूप सम्भोग होनेसे आश्चर्यमय तरीकेसे नारीको गर्भकी स्थापना होती है। तहाँ कहा है—"एक रात्रिमें रज-वीर्यके संयोगसे 'कलल' बनता है। सात रातमें वह 'बुदबुदा' बनता है। एक पक्षमें उसका 'पिण्ड' स्थूल आकार बनता है। वह एक महीनेमें कठिन या कड़ा-'कठोर' होता है। दो महीनोंमें वह 'शिरसे युक्त' होता है वा तब शिर बन जाता है। तीन महीनोंमें 'पैर' बनते हैं। तत्पश्चात् चौथे

महीनोंमें 'गुल्फ-पैरकी घुट्टियाँ-पेट तथा कटि प्रदेश' तैय्यार हो जाते हैं। पाँचवें महीनेमें 'पीठकी रीढ़' तैय्यार होती है। छठे महीनेमें 'मुख, नासिका, नेत्र और कान' बन जाते हैं। सातवें महीनेमें 'जीवको स्वप्नवत् स्थिति संयुक्त भास' होने लग जाता है। और आठवें महीनेमें सर्वाङ्ग लक्षणोंसे पूर्ण हो जाता है।" फिर अवधि पूर्ण होनेपर वह बालकरूपमें पैदा हो जाता है। इसमें आश्चर्य यही है कि, सजीव वीर्यकी बून्द गर्भमें पड़नेसे अङ्ग-प्रत्यङ्ग, सर्वाङ्ग आप-ही-आप कर्म अध्यासके अनुसार बन जाते हैं। तहाँ नारी, पुरुष, नपुंसकका रूप लेकर बालक उत्पन्न हो जाते हैं। इसप्रकार न्यारे-न्यारे बहुतरूप शरीर धारण करके चारखानियोंमें अनेक जीव समुदाय या समूहरूप अनेक तरहसे प्रगट हुए या हो रहे हैं। मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मजादि पृथक्-पृथक् नानारूप-रङ्गसे सारे समुदाय कर्मानुसार ही जहाँ-तहाँ प्रगट हुए हैं, वे कर्मभोग भोग रहे हैं ॥ ४४८ ॥

साखीः— चिदाकाश सो पुरुष है ❀ नारी सो थिर पौन ॥
[११५] बीज परे उपजै सोई ❀ खेत अन्धेरी जौन ॥ ४४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आकाशवत् निर्मल, अलिप्त, निराकार, निर्गुण ब्रह्मको चैतन्य परम पुरुष माना है। नारी-प्रकृति सोई तहाँ थीरपवन, आदिशक्ति महामाया स्त्रीरूपमें माना है। खेत अन्धेरी=स्त्रीकी गर्भ-योनि पृथ्वीक्षेत्रके खेती-बारीके गर्भके समान है। सो थीर पवनरूप अन्धेरा खेतमें जौन-जौन बीज जिस-जिस वासनासे पड़ता है, उसी प्रकारसे पौधावत् शरीर विभिन्न आकार-प्रकारसे उत्पन्न होते हैं। जैसे पृथ्वीके खेत मिट्टीके भीतर सब प्रकारके बीज छिपे रहते हैं। फिर वर्षा होनेपर समय पा करके जैसे बीज हैं, वैसे ही अङ्कुर फूटकर बढ़ने लग जाते हैं। तैसे ही चारखानियोंमें भी स्त्रीका गर्भ अन्धेरी कोठरी वही खेत है। तहाँ उक्त बाह्य खानियोंके अनुसार ही पुरुषोंका वीर्य पड़नेसे समय पा करके जीवके पासमें जैसे वासना-अध्यास हैं, तैसे ही देह लेकर उसी योनिसे उत्पन्न हो जाते हैं। गुरुवालोग कहते हैं कि, 'चिदाकाश' सोई पुरुष है। 'थीरपवन' सोई नारी है। उसी अन्धेरे खेतमें या प्रकृतिमें जौन-जौन संस्कार रखकर जीव पूर्व कल्पमें लय हुए थे, ईश्वर पुरुषकी प्रेरणासे वे सब बीज फूट पड़े, तो अभी भी वे पूर्ववत् ही उत्पन्न हुए हैं ॥ इसके बारेमें प्रमाण वेदमें कहा है, सो भी सुनियेः—

"सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥"
॥ ऋग्वेद मण्डल-१०। सूक्त-१९०। मन्त्र-३ ॥

अर्थः— सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पृथ्वी, वायु, जल इत्यादिकोंको धारण करनेवाले परमेश्वरने प्रथम कल्पमें वह जैसा था, तैसा ही रच दिया है ॥

यही बात ऊपर साखीमें बता दिया है, सो नरजीवोंकी कल्पना ही है, ऐसा जानिये ! ॥ ४४९ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १५ ॥ [चौपाई- १०। साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. करत मिलाप आकर्षण जोई ❀ तेज अंश उतपानी सोई ॥ ४५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चिदाकाशरूप ब्रह्म तथा थीरपवनरूप आदिमाया, इन दोनोंका एक-दूसरेपर आकर्षण-खींचाव जो प्रचण्ड हुआ, तो पीछेसे परस्पर मेल-मिलाप कर लिये। मिलाप करतेमें प्रकृतिने विशेष आकर्षण किया, तो उसकी चञ्चलतासे अंशरूपमें सोई तेजतत्त्व वा अग्नितत्त्व उत्पन्न हुआ, गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना की है। वास्तवमें स्त्री-पुरुष दोनोंका मिलाप होनेसे प्रेमसे आकर्षण तथा खींचाव होता है। तब तन-मनके मेलसे सम्बन्ध हो भोग होता है। स्त्री-पुरुष दोनोंके शरीर सङ्घर्षणसे तेजका अंश उष्णतारूप गर्मी ज्यादा उत्पन्न होती है। तन-मनादिकी चञ्चलता, विशेष बढ़ जाती है ॥ ४५० ॥

२. प्रेरिक बीज पाय बपुधारी ❀ रचना नेह जल तत्त्व सँवारी ॥ ४५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर कामाग्निकी प्रेरणा पा करके वीर्य पिघलकर

उसके वासस्थानसे स्खलित होकर पतन होता है। सोई प्रेरिक वीर्य स्त्रीकी योनिमें पड़नेसे रजके सम्बन्ध पा करके गर्भाशयमें जाकर ठहर जाता है। उसीसे खानीके अनुसार शरीर बनकर जीव शरीरधारी होते हैं। देह रचनामें अङ्ग-प्रत्यङ्ग बननेमें जलतत्त्वका भाग विशेष करके रहता है, स्नेह=द्रव होनेसे चिकना जल तत्त्वके द्वारा स्नेहाकर्षण शक्तिसे इसीप्रकार देहकी रचना करके जीवकी सत्तासे काया बना देता है वा बन जाता है ॥ ४५१ ॥

३. शक्ति अंश पृथिवी परवाना * आपन रूप शून्य परधाना ॥ ४५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने कहा है— मुख्य करके यहाँ महामाया आदि शक्तिके अंश=भागसे पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न हुआ है। सो माया पृथ्वीरूपमें ही ठहर रही है, ऐसा प्रमाण किया है। तथा निरञ्जन परमात्माने अपने अंशसे ही शून्य महाकाशको बनाया है, यह प्रधान है। मुख्य शून्य आकाशरूपमें आप ही निरञ्जन परमात्मा विराजमान है। और पृथ्वीरूपमें आदिमायाको माना है, ऐसा जानिये! ॥ ४५२ ॥

४. उपजी थीर पौन भई श्वासा * पाँच कला पाँचों परकाशा ॥ ४५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर इन्हीं दोनोंसे सारी सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। थीरपवनरूप माया जब-जब आकाशरूप पुरुषमें मिली वा मिलती है, तब-तब श्वासरूप सूक्ष्म चञ्चलवायुकी उत्पत्ति हुई वा होती है। फिर सूक्ष्मसे स्थूल हुई, तो बाहर पाँच तत्त्वोंकी पाँच कला, पाँच विषय, पाँच देहादिकी सृष्टि प्रकाश हो करके देखनेमें आई, ऐसा माना है। अथवा गर्भमें बालक रहता है, तब उसका प्राण प्रगटरूपसे नहीं चलता है, स्थिर रहता है। और माताके प्राणके साथ ही जुटा हुआ सूक्ष्म नाड़ीसे उसका भी कार्य चलता है। जब स्त्रीके गर्भसे योनि द्वारा बालक बाहर उत्पन्न होता है, तब स्थिर रही हुई प्राणवायु उसमें चलने लगती है। सोई श्वासवायु-के रूपमें प्रगट होती है। सूक्ष्म देहमें भी पाँचों तत्त्वोंकी कला पाँचों विषयोंका प्रकाश रहता है। सो स्वप्न और ध्यानादिमें दिखाई देता है ॥ ४५३ ॥

५. गगन समीर अनल जल धरती * पाँचों पाँच रङ्ग होय बरती ॥ ४५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पाँचतत्त्वों-के पाँच रङ्ग, आकार-प्रकार न्यारे-न्यारे हैं। पिण्ड और ब्रह्माण्डमें कार्य-कारणरूप हो करके पाँचों पाँच रङ्ग, चाल, गुण, शक्ति, क्रियादिमें वरत रहे हैं या उसीसे वर्तमान कार्य चल रही है ॥ ४५४ ॥

६. गगन श्याम आप वपु धारी * हरा पवन सा हर अधिकारी ॥ ४५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने ब्रह्म-परमात्मासे ही पाँचों तत्त्वोंकी रचना होनेकी कल्पना करके पुनः पाँच तत्त्वोंको ही पञ्च देवताओंके रूपमें माना है। सोई बात यहाँ बतलाया जाता है, सुनिये! आकाशतत्त्व, श्यामवर्णवाला यानी नीला वा काला रङ्गवाला अपने आप स्वयं निराकार-निर्गुण, निरञ्जन, परमात्माका रूप है। सो आकाश ही उसका देह है। उसीके अंशसे साकार रूप धारण करके उसके एक मायारूप स्त्री और तीन लड़के उत्पन्न हुए, वे देहधारी उसप्रकारसे हुए, अथवा सब देहधारियोंमें वे समाये हुए हैं। और हरा रङ्ग वायुका माना है, सोई तमोगुणी हर या महादेव पवनके विशेष अधिकारी हुए हैं। अष्टाङ्गयोग साधनामें प्राणरूप पवनको निरोधकर वश करनेवाले हुए, अथवा पवनको ही महादेवके रूपमें माना है ॥ ४५५ ॥

७. अनल लाल विष्णु गुण गाजै * श्वेत नीर ब्रह्माको छाजै ॥ ४५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अग्नितत्त्वका रङ्ग लाल है। विष्णुको उसके देवता माना है, सत्त्वगुणकी गर्जनासे अग्निकी सहायतासे सृष्टिका पालन करते हैं। अथवा अग्निको ही विष्णुके रूपमें कहीं-कहीं माना है। जलतत्त्वका रङ्ग सफेद है, इसके देवता ब्रह्माको रजोगुणमें कहा है; उसे राग-रङ्ग ही शोभा देता है, ऐसा कहा है। सो ब्रह्मा जलरूप वीर्यसे सृष्टिकी उत्पत्ति

करता है, ऐसा माना है; अथवा जलतत्त्वको ही ब्रह्मके स्वरूपमें माना है। सो विषयादिका महान पर्दा ही सबोंपर लगाया हुआ है ॥ ४५६ ॥

८. पृथिवी पीत शक्ति होय आई * पाँचों पाँच कला निर्माई ॥ ४५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे ही पृथ्वीतत्त्वका रङ्ग पीला है। इसकी अधिष्ठात्री देवी आदिशक्ति महामाया प्रचण्ड हो करके जगत्में आई। उसीने गुरुवालोगोंसे यह सब कल्पना करायी। पाँचतत्त्वोंकी पाँच कलाके रूपमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच विषय अलग-अलग निर्माण हुए या देह बनकर पैदा होनेपर उक्त विषय प्रगट हो गये ॥ ४५७ ॥

९. न्यारे न्यारे चाल स्वभाऊ * बैर परस्पर कालके दाऊ ॥ ४५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन पाँचों तत्त्वोंके चाल-स्वभाव भी न्यारे-न्यारे ही हैं। गति वा क्रियाको 'चाल' कहते हैं। प्रकृतिके धर्मको 'स्वभाव' कहते हैं। तहाँ आकाश निराकार होनेसे अचल शून्य पोल मात्र है। इससे उसकी कोई चाल-क्रिया नहीं है, अक्रिय है। तिरछी गमन वा गति वायुतत्त्वकी है। ऊर्ध्व गमन वा गति अग्नि तत्त्वकी रहती है। अर्ध गमन वा गति जलतत्त्वकी है; सदा नीचेकी तरफ ही पानी बहा करता है। और खड़ी चाक=पहियाके समान सूर्यके चौतरफ भ्रमण करनेकी गति पृथ्वी तत्त्वकी हो रही है। और शून्य अभावरूप आकाशका है। कोमलत्त्व स्वभाव वायुका है। उष्णत्त्व धर्म अग्निका है। द्रवत्त्व वा शीतलत्त्व स्वभाव जलका है। कठिनत्त्व धर्म पृथ्वीतत्त्वका है। उक्त चारोंतत्त्व परस्पर मिले हैं। यदि वहाँपर कोई एक तत्त्व अधिक या विशेष हो गया, तो एक-दूसरेके बैरी-विरोधी होकर समय पा करके अन्य तत्त्वोंको दबा देते हैं ॥

अथवा कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी, इन्होंका चाल-स्वभाव न्यारा-न्यारा हो रहा है। परस्पर बैर-विरोध करके मनुष्योंको भटका रहे हैं। वे सब काल= गुरुवालोगोंके दाव-घात जीवोंको फँसानेके लिये ही हो रहे हैं ॥ ४५८ ॥

१०. एकन एक सोई रखवारा * पुनि सो एकन एक सङ्घारा ॥ ४५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई भ्रमिक मतवादी गुरुवालोग मनुष्योंको अपने घेरा जालमें डाल करके एक-न-एक लोग रखवारी, चौकसी किया करते हैं। जिसमें कोई मनुष्य उनके जालसे निकलकर भाग न जावें, सो इसीके लिये पहरा भी देते हैं। फिर धोखेमें डालकर वेद-कुरानादिकी आड़से शिकार खेल करके एक-एक करके सबोंको सङ्घारकर नष्ट-भ्रष्टकर डालते हैं; सद्गुणोंका नाश कर देते हैं; अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करनेमें लगे हैं ॥

अथवा कार्य-कारणरूप मुख्य चारतत्त्व समानरूपसे सोई एक-दूसरेका रखवाररूप रक्षक हो जाते हैं। ठीक मात्रामें अन्न-जलादिके भोजन होनेसे शरीरकी रक्षा होती है। फिर वही आहार विशेष होनेसे अपच होकर घातक भी हो जाता है। और बाहर जो तत्त्व ज्यादा बढ़ जाता है, सो दूसरे तत्त्वोंको ढाँक देता है। उसके गुणको संहार करके अपने गुण दिखा देता है। ऐसे तत्त्वोंमें समान-विशेष अनुकूल-प्रतिकूलता होनेसे रक्षण तथा विनाश सदैवसे होता ही चला आ रहा है। इस कार्यको करानेवाला ईश्वरादि कोई कर्त्ता नहीं है। तत्त्वोंमें अनादिकालसे ही स्वयं गुण, शक्ति, क्रिया, धर्म, आकार और सम्बन्ध, यह षट् भेद नित्यतासे ही रह रहा है। अतएव ईश्वरादि कर्त्ताकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। जगत्कर्त्ता मानना तो मिथ्या नरजीवोंकी कल्पना मात्र ही है। इसीको दर्शाने-समझानेके लिये ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर यह प्रकरण बतलाया है। जिज्ञासुओंने पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा विवेक करके यथार्थ रहस्यरूप भेदको जान लेना चाहिये ॥ ४५९ ॥

साखीः— बैरभाव सो पाँचमें * पुनि एक भाव मिलाप ॥
[११६] दुःख सुख कारण विदित सो * अगम बुद्धि परताप ॥ ४६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऊपर कहे अनुसार सो पाँच तत्त्वोंमें सम-

विषम या कम-ज्यादा मात्रा बढ़ जानेसे उन पाँचोंमें बैरभाव विरोधीपना हो जाता है। जैसे ज्यादा जल बढ़ा, तो पृथ्वी आदिको डुबा देता है। समुद्रादिमें कहीं नया टापू निकला, तो जलको हटा करके दबा देता है। ज्यादा अग्नि बढ़नेसे सबको जला देती है वा शोषण करके सुखा देती है। अगर वायुका जोर ज्यादा बढ़ा, प्रचण्ड आँधी आई, तो सबको छिन्न-भिन्नकर उड़ा ले जाती है। पुनः समान होकर जब एक भावमें बराबर आ जाते हैं, तब परस्पर मेल-मिलाप हो जाता है। चारों तत्त्व एक-दूसरेमें कभी एक समान होकर मिल जाते हैं। पिण्ड-ब्रह्माण्डमें चारों तत्त्व जब समानरूपसे मिले रहते हैं, तब समस्त प्राणियोंको आराम-चैन या सुख देनेके कारण हो जाते हैं। तैसे ही जब वे विरोधी होते हैं, तब भूकम्प, बाढ़, आग लगना, तूफान-आँधी आना, एवं वात, पित्त, कफादि त्रिदोष कुपित होकर सारेजीवोंको दुःख भोगानेके कारण हो जाते हैं। यह बाहरी बात तो संसारमें जाहिर ही है। परन्तु, यह बातका गम या पता सबको नहीं है कि, जड़-चैतन्यरूप जगत् अनादि है। इसका रचयिता कोई कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि नहीं है। जिसे अगम, परमात्मा कहते हैं, सो मनुष्योंकी अनुमान-कल्पना ही है। सब जीव अपने-अपने कर्मानुसार ही सुख-दुःखादि फल भोग पा रहे हैं। अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सब मनुष्य नाना मानन्दीमें पड़े हैं। जीव ही नित्य, सत्य है। यह गुरुबुद्धि पारख बोधके प्रतापसे जानकर जो नरजीव जड़ाध्याससे रहित हुए या रहित होते हैं, सोई कोई बिरले पारखी सन्त मुक्त हो जाते हैं ॥ ४६० ॥

साखीः— रङ्ग वर्ण सो पाँचके ❀ न्यारे न्यारे चाल ॥
[११७] भाग पाँच सो पाँच गुण ❀ महा विकट यम जाल ॥ ४६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच तत्त्वोंके पाँच रङ्ग— पीला, सफेद, लाल, हरा, और काला— यह जैसे बाहर दिखाई देता है, तैसे चारों खानीके प्राणियोंमें भी अध्यासयुक्त देहमें वर्ण-भेद, रङ्ग-भेदादि देखनेमें आता है; और उन्होंकी चाल भी न्यारी-न्यारी ही हो रही है। भिन्न-भिन्न सुख-दुःख भी पा रहे हैं। गुण-स्वभाव भी सबमें पृथक्-पृथक् हैं। और पाँचतत्त्वोंके विषयरूप पाँच गुणोंके भागमें आसक्त होकर संसारी जीव कठिन यमजाल=स्त्री, पुत्रादि विषयोंमें फँसे पड़े हैं। और यम=गुरुवालोगोंने कल्पित वेदादि वाणी जाल फैला करके गन्धवत् परमात्मा व्यापक है, ऐसा कहकर अष्ट प्रतिमाकी जड़ पूजामें लगे और लगाये हैं। तैसे रसवत् ईश्वर मानकर तीर्थ, नदी-स्नान, परिक्रमादिमें लगे और लगाये हैं। ज्योति स्वरूप परमेश्वर मानकर अष्टाङ्ग योगमें लगे और लगाये हैं, प्राणरूप ब्रह्म मानकर श्वासकी साधनामें लगे और लगाये हैं; और आकाशवत् ब्रह्म मानकर विज्ञानमें लगे और लगाये हैं। पञ्च कोशोंके पाँच भागोंमें पाँच मार्गोंके विषयरूप गुण विस्तार किये हैं। यह कल्पनाके जालोंसे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है। बिना पारख महा विकट यम जालोंसे कोई नहीं छूटे; दोनों प्रकारसे जीव जड़ाध्यासी हुए या हो रहे हैं। पारखी सद्गुरुसे सत्सङ्ग करके इन यम जालोंसे छूट जाना चाहिये ॥ ४६१ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १६ ॥ [चौपाई-१० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. तीनि पौन तिनि नाड़ि बनाई ❀ माया अंश सोई प्रगटाई ॥ ४६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पिण्ड-ब्रह्माण्डका हाल जैसा गुरुवालोगोंने माना है, तैसा ही यहाँपर परखाया जाता है, सो सुनिये ! बाहर पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्ति माना था, सो देह भीतर भी घटा करके दिखलाते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध, ये तीन पवनसे तीन नाड़ियाँ बनाकर माया-प्रकृतिने अपने अंशसे ब्रह्माण्डमें प्रगटाई थी; सोई मायारूप काया, यह तो नर-नारीके अंशरूप रज-वीर्यसे बनकर प्रगट हुई, तो देहमें प्राणवायु नासिकाके दायाँ, बायाँ और बीचसे निकली, वही तीन पवनसे वात नाड़ी, पित्त नाड़ी और कफ नाड़ी, ये तीन नाड़ियाँ बनाई गई हैं। सोई महामायाके अंशसे कायामें प्रगट हुई हैं, ऐसा माना है ॥ ४६२ ॥

२. इङ्गला पिङ्गला सुषमना सोई * अज हरि हर तेहि मध्य समोई ॥ ४६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ इङ्गला नाड़ी नासिकाके बाँया छिद्रसे चलनेवाली वायु है; इससे श्वासको खींचते हैं, उसे 'पूरक— क्रिया' कहते हैं। इसके बीचमें ब्रह्माका बासा तथा उत्पत्ति कार्य माना है। पिङ्गला नाड़ी नासिकाके दाहिना छिद्रसे चलनेवाली वायु है। खींचा हुआ श्वासको इसी तरफसे छोड़ते हैं, उसको 'रेचक-क्रिया' कहते हैं। इसीके मध्यमें विष्णुका बासा तथा पालन कार्य होना माना है। और सुषुम्ना नाड़ी नासिकाके दोनों छिद्रोंसे बराबर श्वास चलता है, सो है। ऊपर श्वासको खींच कर इसीमें रोक रखते हैं, उसे 'कुम्भक-क्रिया' कहते हैं। इसके मध्यमें ही महेशका बासा, संहार कार्य होना माना है; ये ब्रह्माण्डकी तीन नाड़ियाँ हैं ॥ ४६३ ॥

३. नाशक नेह सुषमना कीन्हा * श्वासा नेह पिङ्गला रचि लीन्हा ॥ ४६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नाश करनेका स्नेह, प्रीति, आकर्षण, सुषुम्ना नाड़ीसे किये या करते हैं। योगीलोग सब कार्यको नाश करके समाधि लगाते हैं। सुषुम्नामें ही स्नेह करते हैं। इसीसे महादेव संहार किया करते हैं, ऐसा कहा है। और श्वाससे स्नेह-आकर्षण होकर पिङ्गला नाड़ीकी रचना कर लिया है। उपासक लोग श्वासके साथ नाम-स्मरणादि करते हैं। मानसिक मूर्तिकी रचना कर लेते हैं। इसके द्वारा विष्णु पालन करते हैं, ऐसा माना है ॥ ४६४ ॥

४. इङ्गला अपनी अंश उपाई * त्रिविधि होय माया प्रगटाई ॥ ४६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्माने अपने अंशसे इङ्गला या ईड़ा नाड़ीको उत्पन्न कर उसीसे सारे जगत् सृष्टिकी उत्पत्ति किया है, ऐसा मानकर कर्मीलोग नाना कर्मकाण्डकी साधना-कल्पनामें पड़े हैं। इसप्रकारसे तीन तरहसे भिन्न-भिन्न विभक्त हो करके मायारूप कायामें तीन पिण्डकी और तीन ब्रह्माण्डकी नाड़ियाँ प्रगट हुई हैं। उसीके सहारासे त्रिगुणी सन्तान नारी-रूप मायाने प्रगट करके उत्पन्न किया है; और त्रिकाण्ड वेद, तीन मार्ग, मत-पन्थ, गुरुवारूप मायाने कल्पना कर-करके प्रगटाया है। उसीमें अपने भी भूले तथा अन्य मनुष्योंको भी भुलाये हैं। और भी इसीका वर्णन किया है। वह भी परखाया जाता है, सो सुनिये ! ॥ ४६५ ॥

५. चन्दा रजगुण अज हितकारी * पालन सूर्य विष्णु अधिकारी ॥ ४६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चन्द्रनाड़ी=इङ्गला, रजोगुणी ब्रह्माका स्वरूप प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेमें हितकारी माना है। सूर्यनाड़ी=पिङ्गला, सत्त्वगुणी विष्णुका स्वरूप जीवोंके पालन करनेका अधिकारी माना है। कर्मकाण्डी तथा उपासकोंने उसे अपनाया है ॥४६६॥

६. सुषमना परलय शम्भु निवासा * त्रिगुण होय शक्ति तेहि फाँसा ॥ ४६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! राहु नाड़ी=सुषुम्ना, तमोगुणी शम्भुका स्वरूप वा उसमें निवास कहा है, तथा इसे प्रलय करनेवाला माना है। यह योगीलोगोंने अपनाया है। ऐसे त्रिगुण हो करके मायाशक्तिने त्रिदेवोंको अपने फाँसमें फँसाई है। फिर उन तीनों ब्रह्मादिकोंने भ्रमिक हो करके अपनी-अपनी शक्तिसे अबोध मनुष्योंको खूब फँसाये हैं। वही जाल पकड़कर गुरुवालोग अभी उसी फाँसमें फँसे वा फँसा रहे हैं। चैतन्य स्वरूपका विचार छोड़कर धोखेमें पड़े हैं ॥ ४६७ ॥

७. उपजा खेत श्वास तरु पौधा * कला अनन्त तेहि भीतर शोधा ॥ ४६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे खेतमें बाहर बटवृक्ष उत्पन्न होता है, तो उसके ऊपरसे भी बरोह जड़ लटकते हुए नीचे आकर पृथ्वीमें जड़ पकड़ लेता है। तैसे ही जब स्त्रीके खेतरूप गर्भसे बालक उत्पन्न हुआ, तब उसके मनुष्य देहरूप खेत (क्षेत्र) में भी श्वासरूप जड़ बटवृक्षके जैसे ब्रह्माण्डसे नीचे लटकती हुई आई, तब उन पेड़की चलन-गति प्रगटरूपसे उत्पन्न हुई। उस श्वासरूप तरुमें बटके लटकते हुए मूल बरोहके समान तीन नाड़ीरूप पौधा और उत्पन्न हुई। सो ऊपर

ब्रह्माण्डसे लटकते हुए नीचे नाभि स्थानमें आ करके जड़ पकड़ लिया है। उसी तीन नाड़ीरूप श्वासवायुके सहारे योगीलोग ऊपर ब्रह्माण्डमें चढ़ जाते हैं। परन्तु, उसका टिकाव तरे या नीचे होनेसे फिर उतर करके नीचे ही आ जाते हैं। उसी प्राणरूप श्वासवायुके भीतर लक्ष्य लगा करके योगी, ज्ञानी और भक्तलोग ज्ञानस्वरोदयवाले कई साधक लोगोंने अनन्त कला, कल्पना उसीके भीतरमें शोधन वा परीक्षा, अनुभव किये और कर ही रहे हैं ॥ ४६८ ॥

८. पाँच श्वास तिहुँ नाड़ि समाई * भिन्न-भिन्न सो अदल चलाई ॥ ४६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पिण्डके पाँच वायुः— व्यान, समान, उदान, प्राण और अपान ये हैं; अथवा ब्रह्माण्डके पाँच वायुः— धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग और देवदत्त, यही पाँच वायु पाँच श्वासके रूपमें सूक्ष्म रूपसे इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन नाड़ीमें समा गई वा लय हुई हैं। सो फिर समय पा करके अपने-अपने कार्य, बल, शक्तिरूप अदल भिन्न-भिन्न चलाके कार्य दिखलाती है; यानी न्यारी-न्यारी अपनी शक्ति चलाया ही करती है ॥ ४६९ ॥

९. श्वासा बास जीव भये जबहीं * चञ्चलता बहु उपजी तबहीं ॥ ४७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वासनावश सूक्ष्मदेह सहित जीव गर्भमें जाकर बासा किया, तो अध्यासके मुताबिक उनके शरीर बने; उसमें निवास किये। फिर पैदा होनेपर प्रगटरूपमें श्वासवायु चलने लगी, तब ही जीवोंमें बहुत ही चञ्चलता व्यापी; अनेक विकार उत्पन्न हुए। पञ्च विषय भोगोंकी चञ्चलतामें संसारी विषयी लोग लगे हैं। और जब गुरुवालोगोंके सङ्गमें गये, तब उन्होंने श्वासकी साधनामें नरजीवोंको लगा दिया। सूक्ष्म-स्थूल कल्पनामें लगा दिया। जब ही नरजीवोंने श्वासमें अपनी स्थिति मानकर निवास किया, तब ही बहुत चञ्चलता उनमें उत्पन्न हुई। प्राणायाम, नाम-स्मरण, धारणा, ध्यान, समाधि तथा कर्म-उपासनादि नाना साधनाओंमें लगे और लगाये हैं। कहीं भी स्थिर स्थिति नरजीवोंको नहीं मिली है ॥ ४७० ॥

१०. तीन शरीर जीव तब पाई * तुर्या सुषुप्ति स्वपन अरुझाई ॥ ४७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जबतक मनुष्य शरीर रहा, तबतक तो भक्ति, योग, ज्ञानादिमें ही भ्रमिक हो अरुझते-अरुझाते रहे। अन्तमें बिना पारख जड़ाध्यासी होकर शरीर छोड़े, तो तुरिया अवस्थाके अध्यासी ज्ञानी जीव मुख्य पिण्डज शरीरको प्राप्त हुए। सुषुप्ति-रूप योगमार्गके अध्याससे उष्मजादि शरीरको पाये। और स्वप्नरूप भक्तिमार्गके अध्याससे अण्डजादि शरीरको पाये। वासना रहित हो निज स्वरूपकी स्थिति नहीं हुई, इसीसे अध्यासी जीवोंने तब तीन शरीरको पाये। स्थूल, सूक्ष्म और कारणमें बद्ध होकर तीन अवस्थाओंकी साधना वासनासे कर्मानुसार अरुझते हुए तीन खानीमें गये और जा रहे हैं ॥ ४७१ ॥

साखीः— तुर्या सुषुप्ती स्वपन ले * पाये तीन शरीर ॥
[११८] ज्ञान अन्धेरी चञ्चलता * काल फाँस गम्भीर ॥ ४७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! तुरिया अवस्था, ज्ञानमार्ग, साक्षीपदमें शुद्ध हिसाबसे रहने वाले ज्ञानीजन महाकारण देहयुक्त शुभ संस्कार उदय हुआ, तो मनुष्य देहमें पुनरपि आ जाते हैं। सुषुप्ति अवस्था, योगमार्ग, साक्षी रहित, शून्यवृत्ति, समाधि, कारण देहका अध्यास लेकर उष्मजादि शरीरको प्राप्त होते हैं। और स्वप्न अवस्था, उपासना मार्ग, मन-कल्पनाकी दृढ़ता, सूक्ष्मदेहके अध्यासको लेकर अण्डजादि शरीरको धारण करते हैं। ऐसी तीन अवस्थाओंके संस्कार अध्यासोंको ही लेकर जीव तीन खानीमें जा करके नाना शरीरको प्राप्त कर लेते हैं। जीव तो ज्ञान स्वरूप चैतन्य है; परन्तु, पारख बोध न होनेसे चञ्चलता करके ब्रह्मज्ञान, भक्ति, योग, कर्मादिमें जाकर अन्धेरी कोठरीमें कैद हो जाते हैं। ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी करके गाफिलीमें फँस जाते हैं। मल, विक्षेप, तथा आवरण दोष छूटनेके बदले और दुगुना बढ़ा लेते हैं। कालका जाल-

फाँस बड़ा गहरा, भयङ्कर, जबर्दस्त है। नारी और गुरुवालोगोंने दोनों तरफसे खानी-वाणी जाल फैलाकर उसीमें सबोंको समेटकर फँसाये वा फँसा ही रहे हैं। पारखी सद्गुरुकी दयासे कोई बिरले ही अन्धेरी-चञ्चलता, काल-फाँससे बच पाये हैं, तथा बच पावेंगे, ऐसा जानिये! ॥ ४७२ ॥

साखीः— कारण उष्मज खानिके * सोई कीन्ह प्रकाश ॥
[११६] आशा सोई कहावई * बासा जहाँ विलास ॥ ४७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! उष्मज खानीमें ले जानेका मूल कारण शून्य सुषप्ति अवस्था योगमार्गकी आशा ही मात्र है। सोई गुरुवालोगोंने तत्त्वोंका भास ज्योति-प्रकाशको ही परमतत्त्व-परमात्मा बतलाया है। सोई कल्पित वाणीका प्रकाश वा प्रचार गुरुवालोगोंने जगत्में किया है। जहाँ सुख विलास स्वर्गादि लोकोंमें बासा, चार फल, चार मुक्ति आदिकी रोचक वाणी वर्णन किया है। तहाँ जीवोंको वह तो कुछ प्राप्त ही नहीं होता है; सोई आशा ही अध्यास कहलाता है। वह भ्रम-भूल अध्यास ही जीवोंको चारखानी चौरासी योनियोंमें ले जाता है। जहाँ सुख विलासका आशा वा आसक्ति करते हैं, वहीं महान दुःखका भोग पाते हैं। बिना पारख वही आशा-बासामें बद्ध हो गये और बद्ध हो रहे हैं ॥ ४७३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १७ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. सोई श्वास लिङ्गम तनधारी * तैंतिस कोटि योनि विस्तारी ॥ ४७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जैसे प्राणी पिण्डमें श्वासोच्छ्वासगति संयुक्त देहधारी प्रत्यक्ष, दृश्य हैं। सोई किश्मसे गुरुवालोगोंने कल्पना किया है कि, लिङ्गमरूप बाहर ब्रह्माण्डमें श्वासवायुके समान सूक्ष्म देहधारी गुप्त-प्रगट कला संयुक्त पवन विहारी, शक्तिशाली, तैंतीस करोड़ देवयोनियोंका विस्तार बहुतरूपसे हुआ है। वे अपनी इच्छा मात्रसे ही जहाँ चाहे वहाँ पहुँच जाते हैं। भक्तोंका दुःख हरण करके सुख देते हैं, इत्यादि भ्रमसे माना है ॥ ४७४ ॥

२. खानी तीन लिङ्गम प्रति कीन्हा * पिण्डज अंकुरज उष्मज दीन्हा ॥ ४७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! बाहर ब्रह्माण्डमें देव, सिद्ध और भूत, ये तीन खानी भिन्न-भिन्न ही कल्पना किया है। वे प्रत्येक विशेष करके सूक्ष्म देहमें ही गुप्त रहते हैं। कभी-कभी स्थूल रूपमें भी प्रगट होकर फिर अदृश्य हो जाते हैं, ऐसा माना है। अथवा और जैसे-जैसे अध्यास सूक्ष्म देहमें दृढ़ हो करके रहा है, तैसे-तैसे ही जीव तीन खानीमें गमन किये वा गमन करते हैं। तहाँ पिण्डजमें कोई मनुष्य और पशु आदि हुए। अंकुरजमें रहनेवाले अण्डाकार कीड़े-मकोड़े हुए। क्योंकि, अंकुरज-संयुक्त वनस्पति कोई जीव खानी नहीं है, वह तो जड़ खानी है। बीजसे उत्पन्न होते हैं। तहाँ अलगसे अध्यासी कीड़े जीव होते हैं। कोई उष्मज खानीमें जा करके छोटे-छोटे कृमि विशेषरूपसे पैदा हुए। अध्यास ही उन्हें वहाँपर पहुँचा देता है ॥ ४७५ ॥

३. पाँच तत्त्व त्रिगुण सञ्चारी * नारी पुरुष दुई रूप सँवारी ॥ ४७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच तत्त्व तथा सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुण, ये त्रिगुण पञ्च विषयोंके अध्यास ले करके ही जीवोंका आवागमन हो रहा है। तदनुसार घटाध्यास विशेषसे ही स्त्री और पुरुषके— ये दो रूप चिह्न, आकार-प्रकार स्वभाव वैसे ही तीन-खानीमें बने हैं वा बनते हैं। अथवा भूत तथा देवगण पाँचतत्त्व तीन गुणकी कला सूक्ष्म देहसे स्त्री-पुरुषके दो रूप बना करके जहाँ उनके मनमें आवे, वहाँपर घूमते रहते हैं, ऐसी गुरुवालोगोंने कल्पना की है ॥ ४७६ ॥

४. सात स्वर्ग श्वासा बिच कीन्हा * तैंतिस कोटि बासा तहाँ दीन्हा ॥ ४७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, जनलोक, तपलोक,

महर्लोक और सत्यलोक, ये सात स्वर्ग बाहर सात आकाशके बीचमें ब्रह्माण्डमें कल्पना करके उन सातों लोकोंमें तैंतीस कोटि देवगण सब निवास कर रहे हैं। तहाँपर बड़ा सुख भोग, आनन्द-ही-आनन्द होता है। यहाँ पुण्य कर्म करनेसे वहाँ जा करके सुख भोगनेको मिलता है। ऐसी रोचक बातें भ्रमिक गुरुवालोगोंने मनुष्योंको दृढ़ा दिया है वा दृढ़ा रहे हैं। और दूसरे योगी लोग कहते हैं कि, पिण्डमें भी सात स्वर्ग हैं। वह श्वासके बीचमें ही बना हुआ है। षट्चक्र भेदन साधना-क्रिया द्वारा उन लोकोंमें पहुँच होती है। चक्र सहित लोकोंके नाम ऐसे निम्नप्रकारसे बताया है किः— १. मूलाधार चक्रः— गुदास्थान, देवलोक, गणेश देवता, 'व, श, ष, स,' ये चार अक्षरोंकी उत्पत्ति वहींसे कहा है। २. स्वाधिष्ठान चक्रः— पेडूस्थान, ब्रह्मलोक, ब्रह्मा देवता, 'ब से ल' तक छः अक्षरोंकी उत्पत्ति। ३. मणिपूर चक्रः— नाभिस्थान, वैकुण्ठलोक, विष्णु देवता, 'ड से फ' तक दश अक्षरोंकी उत्पत्ति। ४. अनहद चक्रः— हृदयस्थान, कैलाशलोक, महादेव देवता, 'क से ठ' तक बारह अक्षरोंकी उत्पत्ति। ५. विशुद्धि चक्रः— कण्ठस्थान, सत्यलोक, सरस्वती देवी-देवता, 'अ से अः' तक सोलह अक्षरोंकी उत्पत्ति। ६. अग्नि चक्रः— त्रिकुटीस्थान, स्वर्गलोक, महाविष्णु देवता, 'हं-क्षं' ये दो अक्षरोंकी उत्पत्ति। और ७. सहस्रदलकमल चक्रः— ब्रह्माण्ड-मस्तक स्थान, निराधार लोक, परमात्मा देवता, ॐकारसे ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति। इसप्रकारसे श्वासके बीचमें ही सात स्वर्गकी कल्पना करके तहाँपर तैंतीस करोड़ देवताओंका बासा मानन्दी किया है; सो मिथ्या कल्पना मात्र है ॥ ४७७ ॥

५. सो रचना विस्तार बनाई ❀ जोतिष दृष्टि सब परे लखाई ॥ ४७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो अनुमान करके वाणी कल्पना ग्रन्थ-पन्थोंकी रचना विस्तारसे गुरुवालोगोंने खूब बनाया है। और ज्यौतिषके हिसाबसे सूक्ष्म दृष्टि करनेपर ब्रह्माण्डका हाल ग्रहणादिके लक्षण समान सब प्रत्यक्ष लखनेमें आता है या लख पड़ता है। ऐसी महिमा कही है या कहते हैं ॥ ४७८ ॥

६. जोतिष श्वास ब्रह्माण्ड दरशावै ❀ श्वास पिण्ड सरोदै गावै ॥ ४७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ज्यौतिष विद्याके अभ्यास द्वारा सूक्ष्म रीतिसे ब्रह्माण्डकी हाल सब बात दर्शाते हैं; और स्वरोदय ज्ञानसे श्वासमें लक्ष्य लगानेवाले पिण्ड= शरीरका हाल कथन करके गाये, वर्णन किये या कथन करते हैं; अर्थात् सच्चे ज्योतिषी गणितज्ञ लोग ज्यौतिष विद्याका विचारसे मनन करके 'श्वास' कहिये सूक्ष्म ब्रह्माण्डमें बाहर होनेवाली बात घटना पहलेसे दर्शा देते हैं। तथा ज्ञान स्वरोदयके अभ्यासमें परिपक्व योगी लोग पिण्डमें होनेवाली अनेक बातोंको पहलेसे ही कह देते हैं; वे सिद्ध होते हैं। ऐसी महिमा गुरुवालोगोंने गायी है। उनमें बहुतसी बातें विपरीत, असत्य भी पाई जाती हैं। इसलिये वह महिमा किया हुआ यथार्थ नहीं है ॥ ४७९ ॥

७. सोई थूल ब्रह्माण्ड अरु पिण्डा ❀ अगम कला बुद्धि परचण्डा ॥ ४८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सोई सूक्ष्म रीतिसे ब्रह्माण्डके बाहरी हाल और पिण्डाण्डके भीतरी हाल हैं। सूक्ष्म होनेसे सर्व साधारणके गममें वे नहीं आते हैं। तथापि प्रचण्ड=तीक्ष्ण वा तीव्र सूक्ष्म बुद्धिकी कलासे वह अगम कलाकी सब बात भी जानी जाती है। ऐसा मतवादियोंने कहकर माना है। गुरुबुद्धिके प्रतापसे पारखी सन्त अगम कलारूप ब्रह्म कल्पनादिको परख करके अच्छी तरहसे जानते हैं। मिथ्या-सत्यको ठीकसे पहिचानते हैं। उनसे ही यथार्थ पिण्ड-ब्रह्माण्डका भेद जाननेमें आता है। सत्सङ्गसे बुद्धि, तीव्र होकर सब कलाका पारख हो जाता है ॥ ४८० ॥

८. सो सब कला कहब कछु आगे * परख प्रताप जगाये जागे ॥ ४८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुप्त-प्रगट जितनी भी गुरुवालोगोंकी कला-कल्पनाएँ हैं, सो सब कलाओंको प्रगटमें निर्णय करके दर्शाते हुए कुछ आगे बढ़नेपर वहाँ आगेके प्रकरणमें मैं कहूँगा। प्रथम तो मैं भी उसीको सत्य मानकर अचेत होकर सो रहा था, भाग्य उदय होनेसे पारखी सद्गुरु मिले; कृपादृष्टि करके मुझे सद्गुरुने जगाया, मोह निद्राको छुड़ाया। पारखी सद्गुरुकी कृपाके प्रताप गुरुबलसे जगानेपर हम जाग गये, तो सारासार, सत्यासत्यका मर्म (रहस्य) यथार्थ समझ पाया। सोई निर्णय यहाँपर मैं आप लोगोंके हितार्थ लेखरूपमें प्रगट कर रहा हूँ। पारखके प्रतापसे आप लोग भी जागकर दूसरोंको भी जगाइये ! ॥ ४८१ ॥

९. कारण सब सूक्षम यम जाला * प्रगट लखाये दीनदयाला ॥ ४८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे भाई साधु जनो ! जन्म, मरण, गर्भवास, चौरासी योनियोंमें जाने-आनेका मुख्य कारण सब जीवोंके लिये सूक्ष्म देहमें टिका हुआ वा जमा हुआ जड़ाध्यास तथा यमरूप स्त्री और गुरुवाओंकी खानी-वाणीके जाल-विषय-कल्पनादि ही महाबन्धन हैं। बिना विवेक आसक्त होकर सब जीव उसी सूक्ष्म-स्थूल यम जालोंमें बद्ध हुए वा हो रहे हैं। ऐसा यथार्थ सत्यनिर्णय करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने तथा आपके अनुयायी पारखी सद्गुरु दीनदयालु सद्गुरु साहेब बन्दीछोरने प्रगट करके प्रत्यक्षमें सब बातका कसर-खोट लखाये हैं वा समझाये हैं। उन्हीं सद्गुरुकी दयासे ही सब भेद जाननेमें आया। तथा मैंने भी सद्गुरुकी दयासे ही सब भेद जान पाया हूँ ! ॥ ४८२ ॥

१०. महा अन्ध तम कर्मकी खाई * नाचत हते प्रभु लीन्ह छोड़ाई ॥ ४८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखदृष्टिके बिना प्रथम महान अन्धकार, तमरूप अज्ञान अबोधमें पड़ करके विवेकदृष्टिको ढँककर अन्धेके समान नाना कर्म-कुकर्म करके वाणी-खानीके बीचमें जीव नाच रहा था, मन-मानन्दीको यथेष्ट खा रहा था, भटक रहा था, गोता खा रहा था; कर्ममार्गादिको ही हितकर समझकर उसीकी खाई = खाँचरूप गड्ढेमें ही गिर रहा था। मैं भी वैसी ही महान दुर्दशाको झेल रहा था, नाना दुःख पा रहा था; स्त्री और गुरुवालोगोंके सामने उनकी मर्जीके मुताबिक नाना तरहसे नाच रहा था; परेशान हो रहा था। ऐसे मुझपर दयादृष्टिसे देखकर पारखी सद्गुरु प्रभुने उक्त सब भव-जालोंसे अब मुझे छुड़ा लिये हैं। अब मैं मुक्त होकर मुक्तकण्ठसे उन बन्दीछोरके गुणानुवाद गा रहा हूँ ! सद्गुरुकी आज्ञासे आप सबोंको भी यमजाल परखा रहा हूँ ! सो निर्णयको ग्रहण करके सत्यासत्यको जान जाइये ! ॥ ४८३ ॥

साखीः— रामरहस गुरुके दया * छूटा कठिन भ्रम जाल ॥
[१२०] भये अशङ्क शङ्का नहीं * पारख मिले दयाल ॥ ४८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बन्दीछोर सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुकी महान दयाके प्रतापसे राम = सत्य चैतन्य जीव रमैया रामके रहस = यथार्थ रहस्य पारख स्वरूपका बोध, बन्धन-मुक्तिका मर्म अच्छी तरहसे जान पाकर सद्गुरुके कहे अनुसार हंस देहके सद्गुण रहनी-रहस्य धारणकर मन-मानन्दी, विषयासक्ति, कल्पनादिको छोड़ दिया हूँ ! छूटनेको अत्यन्त कठिन भ्रमरूप यह खानी-वाणीका महाजाल बड़ा जबर्दस्त कठोर या अत्यन्त कठिन भव-बन्धन है। सो पारखी सद्गुरुकी दयासे ही मुझ "रामरहसदास" के सब भ्रम-जालरूप कठिन बन्धन अब छूट गया है। पारखनिष्ठ परम दयालु बन्दीछोर श्रीगुरुदयालसाहेब सद्गुरु मुझे मिले हैं; आपने सब बातके भेद यथार्थ परखा दिये हैं। आप सद्गुरुकी दयासे अपरोक्ष पारख बोध मुझे मिला है। अब कोई भ्रम ब्रह्म-ईश्वरादि जगत्कर्त्ताकी शङ्का = सन्देह,

आवागमनादिका हेतु अध्यास कुछ भी नहीं रहा। निर्भय, अशङ्क, निश्चय, जीवन्मुक्त स्व-स्वरूप-की स्थितिमें प्राप्त हो गया है। देह चाहे जब छूटे अथवा जब तक रहे, अब तो जन्मृतिसे सदाके लिये फुर्सत वा छुट्टी हो गई है ॥ ४८४ ॥

साखीः— पिण्ड जाल वर्णन करौं ❀ सुनो सन्त! चितलाय ॥
[१२१] लोक वेद विख्यात है ❀ बिरले परख लखाय ॥ ४८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे साधु सन्तो! आप लोग चित्त लगा करके सुनिये! सद्गुरु-से पिण्ड जालका भेद जैसे मैंने जान पाया हूँ, सोई आप लोगोंके हितके लिये यहाँपर वही बात अब मैं पिण्ड जालका वर्णन करके कहता हूँ! लोकाचार, कुलाचार और वेदाचार इसरीतिसे संसारमें लोक और वेद दो भागोंसे पिण्ड जाल ही विख्यात या जग जाहिर हो रहा है। परन्तु, उसका सत्य भेद यथार्थ पारख तो कोई बिरले पारखी ही लखते और लखा पाते हैं। पारख बोधसे बिरलेको हो सो भेद लखनेमें आता है ॥ ४८५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १८ ॥ [चौपाई- १४ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. श्वासा गरजि घटा होय आया ❀ पूरण जल स्थूल उपाया ॥ ४८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! काम वासनासे नारी-पुरुषोंके श्वासरूप सूक्ष्म देहमें गर्जना, चञ्चलता, अकुलाहट, बेचैनी होकर जोर-जोरसे श्वासोच्छ्वास चलने लग जाती है, तब बादलके घटावत् अज्ञानरूप आवरण, मोहकी घटा गाढ़ी हो करके आयी, कामकी प्रेरणा विशेष हुई, तो स्त्री-पुरुष एक-दूसरेके पास चले आये। परस्पर क्रीड़ा-मैथुन कर्ममें प्रवृत्त हुए। तब सप्त धातु मथन होकर कामाग्निके तेजसे पिघला, वही पूर्ण रीतिसे जलरूप वीर्य योनिमें आकर गिरा, रजका सम्बन्ध करके उसीसे जीवकी सत्तासे गर्भमें स्थूल देह बना और समय पा करके वह स्थूल देह उत्पन्न हुआ वा उत्पन्न होता है। अथवा बाहर वायुके आकर्षणसे बादल इकट्ठे हो जाते हैं, परस्पर रगड़ होनेसे मेघ गर्जना होती है। उष्णतासे जल पूर्णरीतिसे पिघलकर बून्दरूपसे वर्षा होती है। तब पृथ्वीमें स्थूलरूपसे अंकुरज-वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं ॥ ४८६ ॥

२. सो जल अण्ड अकार प्रमाना ❀ त्रिगुण पाँचों तत्त्व समाना ॥ ४८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो जलरूप पुरुषके वीर्यका आकार गोल अण्डाकाररूप-में प्रमाण किया है। त्रिगुण पाँचों तत्त्वोंका सूक्ष्म भाग भी वीर्यमें समाया रहता है। सूक्ष्मदेहयुक्त अध्यासी जीव आ करके प्रथम वीर्यमें सम्मिलित होते हैं, तब उससे देह बनता है। त्रिगुण सहित पाँच तत्त्वोंका सामान देह बननेमें लगता है। अथवा बाहर वर्षा होता हुआ जल बून्दके आकारका प्रमाण भी गोल-गोल रहता है। उसमें भी तीन गुण पाँचों तत्त्वोंके भाग परमाणुसमूह सम्मिलित रहते हैं ॥४८७॥

३. फोकचा मध्ये कमल दल साजा ❀ ताहि कमल एक रूप उपराजा ॥ ४८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! 'फोकचा' कहिये गर्भाशय, जहाँपर स्त्रियोंका गर्भस्थापन होता है, सो गर्भ रहनेकी जगह, पहले तो सिकुड़ी रहती है। परन्तु, जब योनि कमलमें वीर्य प्रवेश होता है, तब फोकचारूप गर्भाशय खुल जाता है। उसी गर्भ कमलके मध्यमें सम्पुटित कमलदलवत् अण्डाकार वीर्य बुद्बुदा स्थापित रह जाता है। विभिन्न खानियोंके अनुसार उसी गर्भ कमलमेंसे एक बालकका रूप बनकर तैय्यार होता है, और अवधि पूर्ण होनेपर बालक उत्पन्न होता है। अथवा योगियोंने 'फोकचा' रूप ब्रह्माण्डमें एक कल्पनासे सहस्रदल कमल सजाया। उसीमें एक कल्पित रूप भी उत्पन्न किया। और तालाब आदिके बीचमें जहाँ कमलकी जड़ रहती है, उसमेंसे एक कमलका फूल भी उत्पन्न होता है, तैसे ही सिद्धान्तमें भी माना है ॥ ४८८ ॥

४. अण्ड फूटि अस्थूल उपाना * चारि अवस्थामें प्रगटाना ॥ ४८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सजीव अण्ड=वीर्य गर्भके गोल घेरामें रहकर क्रमानुसार बढ़ता हुआ देहके अवयवादि बनाता जाता है। आठ महीनों तक सर्वाङ्ग बनकर पूर्ण हो जाता है। फिर समय पूर्ण होनेपर गर्भपर प्रसूती वायुका दबाव और आकर्षण होने लग जाता है। पश्चात् गर्भ अण्डकी झिल्ली फूट जाती है। उसमेंसे चिकना-चिकना पानी योनि द्वारसे बाहर निकलने लगता है। उसीके साथ-साथ फिसल करके बालकका स्थूलदेह भी बाहर उत्पन्न हो करके आ जाता है। फिर क्रमानुसार बढ़ते हुए जीव चार अवस्थाओंमें प्रगट हो जाते हैं। अथवा बाहर बीज फूटकर अंकुर निकलकर फिर स्थूल वृक्ष उत्पन्न होते हैं। सो चारों प्रहरोंकी बाह्य अवस्थामें प्रगट दिखाई देते हैं ॥ ४८९ ॥

५. जैसे श्वासा लिङ्गम भयऊ * वैसेहि पिण्ड जाल रचि दियऊ ॥ ४९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे प्राणरूप श्वासवायु सूक्ष्म है, तैसे अतःकरण चतुष्टय, पञ्च विषय युक्त सूक्ष्मदेहका भी सूक्ष्म स्वरूप है। जैसे-जैसे अध्यास, वासना, संस्कार बना करके मनुष्योंने रक्खे हैं, वही सब अन्तमें सूक्ष्मदेहमें रह करके जीवके साथ जाता है। तो जैसे जीव जड़ाध्यासी हुए हैं, वैसे ही संस्काररयुक्त चारखानीके गर्भमें प्राप्त होते हैं। वहाँ उसी तरहसे घटाध्याससे पिण्ड-जाल शरीरादिकी रचनाका कार्य आप ही हो जाता है। जैसा अध्यास है, तैसा ही शरीरकी रचना करा देता है। जैसा बीज, तैसा ही वृक्षकी उत्पत्ति भी कर देता है, वैसा ही फल-फूलादि भी प्रगट होने लग जाता है ॥ ४९० ॥

६. नाड़ी तीनि श्वासामें राजै * तैसेहि तीन पिण्डमें गाजै ॥ ४९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इङ्गला, पिङ्गला तथा सुषुम्ना, ब्रह्माण्डकी कला, ये तीन नाड़ियाँ श्वासवायुमें विराजमान रहती हैं, ऐसा माना है। तैसे ही पिण्डकी कला तीन नाड़ियाँ— वात, पित्त और कफकी गर्जना, वेग, बल पिण्ड=शरीरमें दिखाई दे रहा है। पिण्ड-ब्रह्माण्डकी नाड़ियोंका परस्पर एक-दूसरेसे सम्बन्ध भी बना रहता है। सो कैसे कि, नीचे कहा है— ॥ ४९१ ॥

७. वात पित्त कफ तीहुँमें धावै * त्रिविधि अपनी राज जनावै ॥ ४९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वातका सम्बन्ध इङ्गलासे है, पित्तका सम्बन्ध पिङ्गलासे है, और कफका सम्बन्ध सुषुम्नासे है; ऐसे सम्बन्ध तीनोंमें होता है, तो ये तीनों श्वासके साथ भी दौड़ती है। और जैसे इङ्गलादि श्वासमें हैं, तैसे ही शरीरमें बात व्याधि, पित्त व्याधि, कफ व्याधि, ये त्रिदोषके रूपमें तीनों नाड़ियाँ भिन्न-भिन्न अपनी सत्ता बल-पराक्रम एवं अपनी राज-विशेषता जनाती हैं। तीनों विकार सम्मिलित होकर तीनोंमें दौड़ती रहती हैं। उन तीनोंका जोर एक समान होनेपर सन्निपातका गुण नाशक हो जाता है ॥ ४९२ ॥

८. पाँच तत्त्व ले पिण्ड प्रकाशा * पाँचों पाँच अंश सुख बासा ॥ ४९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्माण्डकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश-तत्त्वरूप समानवायु, ये पाँच तत्त्वोंके भाग ले करके यह पिण्ड=शरीर बनकर प्रकाश हुआ है। सो उन्हीं तत्त्वोंके प्रकाश वा सहायतासे पिण्डकी रक्षा भी हो रही है। सो पाँचों तत्त्वोंके अंशरूप पाँच विषयोंमें सुख मानकर नरजीवोंने अध्यासका बासा मनमें कर लिये हैं। पञ्च देवता अपने-अपने अंशसे यहाँ देहमें ही आकर सुखपूर्वक निवासकर रहे हैं, यह भी कल्पना किये हैं। तथा सुखमें बास करनेके लिये पाँच अंशोंसे बने हुए पाँच मार्गोंके साधनाओंमें और भोगोंमें बहुतेरे मनुष्य लगे पड़े हैं; पारख बिना भ्रमिक हो रहे हैं ॥ ४९३ ॥

९. आपु हरि हर ब्रह्मा माया * त्रिगुण शक्ति बनी सो काया ॥ ४९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने ऐसे माना है कि, अपने आप निरञ्जन-परमात्मा आकाशतत्त्वके रूपमें है, विष्णु अग्नितत्त्वके रूपमें, महादेव वायुतत्त्वके रूपमें, ब्रह्मा जलतत्त्वके रूपमें और आदिमाया पृथ्वीतत्त्वके रूपमें आ करके देहमें निवास कर रही हैं। सत्त्व, रज और तम ये तीन गुणोंकी विशेष शक्तिसे ही सो सब प्राणियोंकी काया बनी है। ब्रह्म निर्गुण है, माया शुद्धसत्त्वगुण है, ऐसा कहा है। तीनों ब्रह्मादि लड़कोंके त्रिगुण हैं; इन्हींकी शक्तिसे काया तथा पिण्ड-ब्रह्माण्ड बना-बनाया हुआ है, सो वे ही सबके कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता हैं; ऐसा कल्पनासे माना है ॥ ४९४ ॥

१०. पिण्ड शक्तिको अंश बनाई * रूप कला होय आपु समाई ॥ ४९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पिण्डरूप स्थूल शरीर माया-शक्तिरूप स्त्रीके अंश विशेष रज लेकर बनाया गया है। उसमें वीर्यरूप सुन्दर कलामें जीवरूप हो करके आप ही स्वयं निरञ्जन ब्रह्म प्रवेश करके समाया है। प्रत्यक्ष सुन्दर रूप कला ब्रह्मकी है, तथा स्थूल भद्दा भाग मायाका माना है। ऐसे शरीरमें ही माया-ब्रह्म आदिको कल्पनासे ठहराया है। और माया-ब्रह्मके मिलापसे ही चराचरकी उत्पत्तिकी कल्पना किया है ॥ ४९५ ॥

११. पन सोई चार अवस्था कीन्हा * चारों लक्ष चहुँ बीच दीन्हा ॥ ४९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाल, कुमार, युवा तथा वृद्ध, ये चार पनको जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया, ये चार अवस्थामें पृथक्-पृथक् करके बटवारा किया है। कर्म, उपासना, योग और ज्ञान, ये चारों मार्गमें अनुमानमें तथा विषयोंमें लक्ष्य लगा करके जड़ाध्यासी हो गये हैं। तो वही अध्यास जीवोंको मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज, ये चारों खानियोंमें गर्भवासके बीचमें पहुँचा दिया वा पहुँचा देता है। इसीसे आवागमनोंमें ही जीव घूमते रहते हैं ॥ ४९६ ॥

१२. बालापन तुरियाके रूपा * चेरिक भरमिक शून्य स्वरूपा ॥ ४९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ ज्ञानीलोग तुरिया अवस्थामें बालकवत् स्वभाव बना लेते हैं। सो यहाँ जन्मसे लेकर दो वर्षकी अवस्था तक बाल्यपनको तुरियाके रूप साक्षीदशामें माना गया है। योगीलोग भ्रमिक हो करके शून्यको ही अपना स्वरूप मान लिये हैं। समाधि लगा करके शून्य स्वरूपमें ही गाफिल पड़े रहते हैं। यहाँ चेरिक=तीन वर्षसे दश वर्षकी अवस्था तक कुमारपनको भ्रमिक भूल-भुलैयामें रहनेवाला माना है ॥ ४९७ ॥

१३. चञ्चल युवा श्वास अधिकारी * पृथिवी बिरधाई सञ्चारी ॥ ४९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उपासक लोग नाम-स्मरणमें विशेष चञ्चलता रखते हैं। कोई श्वासमें राम-नामादिका रटन करते हैं। स्वप्न अवस्थाके समान ध्यान, धारणा, मानसिक पूजादिमें लगे रहते हैं। मनःकल्पित रूपको ही स्वप्नवत् देखते रहते हैं। तैसे ही यहाँपर युवा अवस्था— १६ वर्षसे ४८ वर्ष तक मनकी कल्पना, नाना चाहनाके स्वप्नमें ही शेखचिल्लीकी तरह डूबे रहते हैं। युवकोंमें अधिक चञ्चलता विषय वासनासे बनी रहती है। और कर्मकाण्डी लोग कर्म साधनाओंमें ही बड़े-बूढ़ेके रास्ता पकड़कर लगे रहते हैं। पृथ्वीमें तीर्थाटन, चारधामादि करते हुए कष्ट भोग करके मरे और मर जाते हैं। यहाँ वृद्धावस्थामें जाग्रत् अवस्था विशेषमें देखे, सुने, भोगे हुएका वासना-संस्कार स्मृति हो-होकर अध्यास जाग्रत् होता रहता है। फिर मर जानेपर उसी अध्यासवश चौरासी योनियोंमें जीव चले जाते हैं ॥ ४९८ ॥

१४. जन्म शक्ति सो आदि जनावै * मरण शक्ति सो ब्रह्म कहावै ॥ ४९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदि=शुरूमें चराचर जगत्की उत्पत्ति होना,

मध्यमें प्राणियोंका जन्म होना, देह धारण करना, यह आदिमायाकी मूल शक्तिसे हुआ या होता है, ऐसा जनाये हैं। और अन्तमें मृत्यु हो जाना, चराचरका विनाश हो जाना, महाप्रलय होना, ऐसी मरणशक्ति सो स्वयं ही निरञ्जन ब्रह्मकी तरफसे प्रगट होता है। तहाँ माया उत्पत्ति करती है, ब्रह्म प्रलय करता है। बीच-बीचमें दोनोंकी भोग-क्रीड़ा होती रहती है, ऐसा गुरुवालोगोंने वर्णन करके कहा है; अनेक प्रकारसे मनुष्योंको भ्रमा रक्खा है ॥ ४९९ ॥

साखीः— तीन अंश महा शून्यके * अज हरि हर बपु धार ॥

[१२२] मायाके गुण तीन सो * नारी पुरुष विचार ॥ ५०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! महाशून्यके अंशसे अर्ध शून्य, ऊर्ध्व शून्य, और मध्य शून्य हुआ। महाशून्यरूप आकाशवत् व्यापक माना हुआ निरञ्जन ब्रह्मके मुख्य अंशरूप वीर्यकी अधिकतासे ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामके ये तीन पुत्र देह धारण करके आदिमायाकी कोखसे जन्म लिये। पश्चात् पूरक, कुम्भक, रेचक, ये तीन क्रियाओंको ही महाशून्यके तीन अंश या भाग उन्होंने बतलाया है। तैसे ही अष्टाङ्गी मायाके रजकी विशेषतासे तीन पुत्रियाँ— लक्ष्मी, पार्वती और सावित्री, ये अंशरूपसे पैदा या उत्पन्न हुईं; उन्होंने इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन भागको ग्रहण किया। मायाके गुणसे सो तीन मुख्य नारियाँ उत्पन्न हुईं। और पुरुषके गुणसे सो तान पुत्र मुख्य पुरुषरूपमें हुए। उन दोनोंके मध्य भागमें सातवाँ एक नपुंसक पैदा हुआ। उसने नारी-पुरुषको एकमें ही लाकर मिला दिया। कोई भौतिकवादी नारी = प्रकृतिके ही भोग-विलासके विचारमें लगे हैं। कोई ईश्वर कर्त्तावादी एक कल्पित परमपुरुषके विचार करनेमें लग रहे हैं। बाकी रहे ब्रह्मज्ञानी, सो उन्होंने प्रकृति-पुरुषको एकमें मिला करके एक व्यापक नपुंसक निर्गुण ब्रह्म निश्चय करके अलमस्त हुए। ऐसे बिना पारख सब धोखेमें तथा विषयाध्यासमें ही पड़कर बर्बाद हुए और हो रहे हैं ॥ ५०० ॥

साखीः— त्रिगुण फाँस बहु भाँतिके * मध्य किया परकाश ॥

[१२३] आदिरूप माया भई * अन्त आपु सो नाश ॥ ५०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारके मध्यमें गुरुवालोगोंने बहुत भाँतिकी कल्पना करके त्रिगुण फाँसका प्रकाश किया है। योगी, ज्ञानी तथा भक्तोंने रज, सत्त्व और तमोगुणके अनुसार कर्म, भक्ति, योग मार्गादिका प्रकाश करके समस्त संसारी मनुष्योंको उसीमें फाँस लिये वा बाँध लिये हैं। बहुत तरहसे वह त्रिगुणका फन्दा खानी-वाणीमें फैलाये हैं। स्त्री, पुरुष, नपुंसकोंमें काम, क्रोध और मोह लगा है। सात्त्विक देवता, राजस मनुष्य, तामसी राक्षस बने हैं। वात, पित्त और कफका विकार भी देहमें लगा है। पूर्व कर्मानुसार दैहिक, दैविक, और भौतिक तीन तापोंके दुःख सब जीव भोग रहे हैं। योगीलोग ईड़ा, पिङ्गला और सुषुम्नाके विचारमें लगे हैं। ज्ञानीलोग क्षर, अक्षर और निःअक्षरादिके विचारमें लगे हैं। तथा विज्ञानीलोग तत्त्वमसिकी एकतामें लगे हैं। ध्याता, ध्यान, ध्येय, यह जीवकी त्रिपुटी कहा है। ज्ञाता, ज्ञान, और ज्ञेय, यह ईश्वरकी भिन्न-भिन्न त्रिपुटी माना है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैतादि मतोंका प्रचार कर रहे हैं। नाद, बिन्दु, कलामें भूलकर झाँईं, सन्धि और कालके गालमें सब पड़ रहे हैं। जीव, ईश्वर, और ब्रह्म मुखकी वाणी-कल्पना तथा विषयाध्यासी होकर सब जीव जन्म, मरण, गर्भवासके चक्रमें ही पड़े हुए हैं। इसप्रकार माया-प्रकृतिके तीन-तीन अङ्गोंका त्रिगुण जाल बहुत भाँतिके बने हैं। जगत्के मध्यमें उन्हींका प्रकाश किया है। आदि = जगत्के मूलरूप उत्पत्ति करनेवाली महामाया आद्याशक्ति हुई। फिर अन्तमें सो सब चराचर जगत्का विनाश करके महा प्रलयकर अपने आप स्वयं निरञ्जन ब्रह्म, निर्गुण, निराकार, महाशून्य होकर रह जाता है। ऐसी मानन्दी-कल्पना भ्रमिक गुरुवाओंने की है। उसीसे अपने हंसपदका भी नाश करके जड़ाध्यासी बद्ध हुए वा बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ ५०१ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १६ ॥ [चौपाई–११ । साखी– २ है] ॥ ❀ ॥

१. पाँच तत्त्व अस्थान विशेषा ❀ पृथक पृथक त्रिगुणके लेखा ॥ ५०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पञ्च तत्त्वोंके कार्यरूप स्थूल देहमें पाँच तत्त्वोंके रहनेका मुख्य-मुख्य विशेष करके पाँच स्थान माना है। तैसे ही उन्होंके द्वार, आहार, रङ्ग, कार्य आदि भी पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। त्रिगुण लेखाके हिसाबमें ही सो सब आ जाता है। त्रिगुणी गुरुवालोगोंने उसका लेखा जैसा लगाया है, सो भी परखानेके वास्ते मैं यहाँ वर्णन करके लिख देता हूँ, सुनिये ! और उसका निर्णय करिये ! ॥ ५०२ ॥

२. मेरु शिखर पर आपु विराजे ❀ शब्द अनाहद बहु विधि बाजे ॥ ५०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहरके सुमेरु पहाड़के उच्च शिखरवत् यहाँ देहमें मेरुदण्डके शिखर ऊपर ब्रह्माण्डमें शिखा स्थान, भ्रमरगुफा मानकर वहाँपर अपने आप स्वयं निरञ्जन परमात्मा विन्दु ब्रह्म 'ॐकार' स्वरूपसे विराजमान रहते हैं। इसीसे वहाँ आकाश तत्त्वका विशेष वासा है। अतएव बेहद्द, शब्दरूप ब्रह्मके ठिकाने मधुर-मधुर सङ्गीत ध्वनिसे दुन्दुभी, भेरी, घन्टा, शङ्ख, मृदङ्ग, झाँझ, वीणा, सितार, सहनाई और बाँसुरी, ये दशनाद अनाहदका शब्द बहुत प्रकारसे मनोहर ध्वनिवाला बाजा बजता ही रहता है। कानके छिद्रको बन्द करके योगीलोग लक्ष्य लगाकर उसीको सुननेमें तल्लीन हो रहते हैं; कान द्वार है, शब्द सुनना इसका आहार है ॥ ५०३ ॥

३. धरति कलेजा मुख जेहि द्वारा ❀ खान पान सोइ करै अहारा ॥ ५०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पृथ्वीतत्त्वमें आदिमाया रहती है। सो पृथ्वीका देहमें मुख्य वासस्थान हृदयमें कलेजापर ठहराया है। जिसका द्वार मुख है। लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, पेय, ये चार प्रकारके भोजन अन्न-जलका ग्रहण, खान-पान सो मुख द्वारासे ही सब प्राणी आहार करते हैं। और उसका रस कलेजामें बराबर पहुँचते रहनेसे कलेजा पुष्ट रहता है। जैसा आहार प्राणी करते हैं, तैसा ही उसका प्रभाव भी तन, मन, बुद्धि, विचार और सन्तानपर भी पड़ जाता है। अतएव शुद्ध सात्त्विक भोजनका आहार करना चाहिये ॥ ५०४ ॥

४. लिङ्ग द्वार जल भाल निवासी ❀ मैथुन अहार सोइ सुखबासी ॥ ५०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जल तत्त्वमें ब्रह्माका बासा माना है। सो जलका देहमें मुख्य निवास स्थान भाल या कपाल=मस्तकपर कहा है। उसके निकलनेका द्वार लिङ्ग है। मूत्र त्यागना और मैथुन करना, ये दो कार्य लिङ्गसे होते हैं। स्त्री-पुरुषके मैथुन कर्मको उसका आहार माना है। सोई विषयानन्द सुखकी वासनामें जीव सब बद्ध हो रहे हैं। रसरूप जलका सार ही जमा हुआ वीर्यरूप धातु है। सप्तधातु मथन होकर सो वीर्य बनता है। अतः वीर्यकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ५०५ ॥

५. पावक विष्णु पित्त सो बासा ❀ द्वारा नैन रूपको आशा ॥ ५०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे ही अग्नितत्त्वमें विष्णुका बासा माना है। सो देहमें अग्निका मुख्य वासस्थान पित्तकी थैलीरूप पित्तकी घड़ियाँमें बायाँ तरफकी कोठीमें ठहराये हैं। नेत्र द्वारोंसे देखकर लोभ-मोहका आहार करते हैं। आखें ही उसका मुख्य द्वार है। पित्तकी शक्तिसे ही नेत्रोंमें ज्योति बढ़ती है। काला, पीला, लाल, सफेद, हरा, विचित्र रूपोंको देखकर उसमें आशारूप आसक्ति टिका करके प्राणी बद्ध हो रहे हैं ॥ ५०६ ॥

६. पवन नाभि शिव बास कराई ❀ नासा द्वार गन्ध सो लहई ॥ ५०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वायुतत्त्वमें शिवका बासा माना है। सो वायुका विशेष वासस्थान देहमें नाभिपर ठहराया है। जहाँ बहत्तर हजार नाड़ियोंकी गाँठें बँधी हैं, ऐसा कहा है। नासिका उसके निकलनेका द्वार बना है। श्वास वायुके साथमें गन्ध-दुर्गन्ध, सुगन्ध लेना

या जानना यह आहार होता है। शिवरूप योगीलोग श्वास वायुको लय करके या वैसे भी लक्ष्य लगा करके नाभिमें बासा या स्थिति करते रहते हैं। परन्तु, उससे जीवका कोई कल्याण नहीं होता है। देहके साथमें सब क्रिया-साधनाएँ छूट जाती हैं; जीव सोई अध्यासमें बद्ध हो चारखानीमें ही चले जाते हैं ॥ ५०७ ॥

७. बायें कोठी अनल बनाई ❀ दहिने जल कोठी निर्माई ॥ ५०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बायें=बायाँ अङ्ग मायारूप स्त्रीका है, और दक्षिण अङ्ग पुरुषका माना है। तैसे ही शरीरमें अग्नि रहनेकी कोठी या कोठरी कोखके बाँया भागमें बनी है, तथा जल रहनेकी कोठी दाहिना कोखके भागमें बनी हुई है। वहींसे सारे शरीरभरमें क्रमशः उष्णता और रस पहुँचा करता है, तो उसीसे देह प्रफुल्लित-सुखी रहता है। उसमें कसर हो करके कुछ रुकावट होनेसे रोगरूप दुःख उत्पन्न हो जाता है ॥ ५०८ ॥

८. बाइ गिरह नाभी बिच दीन्हा ❀ तीन कला मायाको कीन्हा ॥ ५०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देह भरकी वायु नस-नाड़ियोंकी गिरहरूप गाँठी बीचोंबीच नाभिमें बना दिया है। यानी सब वायुकी गाँठी, जोड़ नाभिके मध्यमें आकर बनी है। उसी श्वासरूप एक वायुसे मायारूप कायाकी मजबूतीके लिये तीन कला वा तीन हिस्सा (भाग) किया है। सो इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन कलाएँ मायाकी की हुई माना है ॥ ५०९ ॥

९. आपु निरञ्जन मन होय आये ❀ तीन अंश तहवाँ निर्माये ॥ ५१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब परब्रह्म, निरञ्जन-निर्गुण पुरुष आप-ही-आप स्वयं मनके रूपमें प्रगट हो करके अन्तःकरण मध्यमें चले आये। तो ब्रह्म पुरुषने अपने अंशके पराक्रमसे तहाँ अन्तःकरण या हृदयमें भी तीन पुत्ररूप साथी चित्त, बुद्धि, अहङ्कारको निर्माण करके उत्पन्न कर लिया; सो उनके नाम भी सुनिये ! ॥ ५१० ॥

१०. चित्त बुद्धि अहं अज हरि हर रूपा ❀ अन्तःकरण शक्ति अनुरूपा ॥ ५११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बड़ा लड़का ब्रह्मा, सो बुद्धिके रूपमें हृदयमें उत्पन्न हुआ। मझोला पुत्र विष्णु सो चित्तरूप धारण करके पैदा हुआ, और छोटा पुत्र महेश सो अहङ्कारका रूप लेकर प्रगट हुआ; और आदिशक्ति स्त्रीरूप महामाया तो सूक्ष्मरूपसे तदनुरूपसे अन्तःकरणरूपी भूमिका वा क्षेत्र ही बन गई। मनरूप पुरुषकी प्रेरणासे अन्तःकरण द्वारा चित्त, बुद्धि, अहङ्कार, ये तीन वृत्तियाँ उत्पन्न हो गयीं, ऐसा माना है ॥ ५११ ॥

११. पाँच पाँच पुनि पाँच उपाना ❀ एकनि एक बैर विधि नाना ॥ ५१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच तत्त्वोंसे पाँच देह बना, फिर उस देहमें एक-एक तत्त्वकी पाँच-पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुईं। तो पाँच-पञ्चे पच्चीस प्रकृतियोंकी उत्पत्ति शरीरमें हुई है। समानरूपसे तत्त्व-प्रकृतियोंका मिलाप रहते हुए भी विशेषरूपमें तहाँ नाना प्रकारसे एक-से-एक बैर-विरोध लगे रहते हैं। एक-एकका एक-न-एक बैरी-विरोधी होते रहते हैं। इसीप्रकार गुरुवालोग पञ्च कोशोंकी वाणी-कल्पना बढ़ाकर पच्चीसों मत फैला कर नाना प्रकारसे एक-दूसरेके बैर-विरोध करनेमें लगे हैं। पारख बिना कहीं जीवका कल्याण नहीं होता है ॥ ५१२ ॥

साखीः— पाँचसे पुनि पचीस भौ ❀ भिन्न भिन्न सो दाव ॥
[१२४] विवश परे तेहि जालमें ❀ जीव दुस्सह दुःख पाव ॥ ५१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच तत्त्व जड़ और अनन्त चैतन्य जीव तो अनादि नित्य-सत्य पदार्थ हैं। परन्तु, गुरुवालोगोंने एक ब्रह्मसे पाँच तत्त्वादि जगत् उत्पत्तिका कथन जो किया, सो मिथ्या कल्पना ही किया है। जीवकी सत्तासे यहाँ पाँच तत्त्वोंका कार्य भाग

लेकर शरीर बना है। फिर शरीरमें भिन्न-भिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गके रूपमें पाँच तत्त्वोंसे पचीस प्रकृतियाँ बन करके उत्पन्न हुई हैं। सो उनके दाव-पेंच, खींचाव न्यारे-ही-न्यारे हो रहे हैं। बाहर एक कोशसे पाँच कोश बनाये, फिर पाँच कोशोंके अन्तर्गत पचीस मत-पन्थ विस्तार किये; उसे बढ़ाते हुए अनेकों पाखण्ड फैलाये हैं। भिन्न-भिन्न मतवादी अपने ही दाव-पेंचमें मनुष्योंको फँसा रहे हैं। इसतरह आदिमाया=स्त्रीके खानी-जालमें तथा अन्तमाया=गुरुवाओंके वाणी-जालोंमें पड़कर सब जीव परवश=विवश, लाचार, बद्ध हुए, उसीसे तो दुस्सह दुःख जीवोंने यहाँ भी पाया; तथा साधना, मिहनतादिमें दुःखी हुए, और देह छोड़कर भी चौरासी योनियोंमें असह्य दुःख पा रहे हैं; बिना पारख आवागमन चक्रमें पड़े हैं ॥ ५१३ ॥

साखीः— वर्णन गुण प्रकृति सो ❀ सुनिये सन्त सुजान ! ॥
[१२५] रामरहस गुरु परखते ❀ मेटा सब अज्ञान ॥ ५१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे जिज्ञासु सन्तो ! हे बुद्धिमानो ! पाँच तत्त्वोंके गुणसे जिसप्रकार पचीस प्रकृतियोंकी उत्पत्ति माना है, सो उसका भी निर्णयसे वर्णन करके अब मैं आप लोगोंको सुनाता-समझाता हूँ ! उसे आप लोग ध्यानपूर्वक चित्त लगा करके सुनिये ! पुनः ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— सद्गुरु पारखी सन्त दयालुकी कृपादृष्टिसे चैतन्य स्वरूपका सत्य रहस्य तथा जड़ तत्त्वोंका भेद जाननेमें आया, यथार्थ पारख बोध प्राप्त हुआ। जिससे अज्ञान, मानन्दी, भ्रम, कल्पना, अध्यास, भास आदि समस्त विकार बन्दीछोर सद्गुरुने मिटा दिये। सद्गुरुकी कृपासे अब मेरा तो सब अज्ञान मिट गया है। स्व-स्वरूप पारखपर कायम हो गया हूँ, इसलिये मुझे तो अब कोई बातका सन्देह नहीं है। मैं जो कहता हूँ, सो आप लोगोंके हित-कल्याणके लिये ही कह रहा हूँ वा लिख रहा हूँ ! सच्चे जानकार पारखी साधु सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगकर सत्यासत्यका निर्णय करके आप लोग भी अपना-अपना अज्ञान, भ्रम, मानन्दी, आसक्ति आदिको मिटाइये ! अब मनुष्य देहमें रहते ही अपना हित-कल्याणका कार्य कर लीजिये ! पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर निज पारख बोधको प्राप्त कर लीजिये ! यह अमूल्य अवसरका लाभ उठाइये ! व्यर्थ समयको मत् खोइये ! अब प्रकृतिका वर्णन सुनिये ! ॥ ५१४ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २० ॥ [चौपाई— ११ । साखी— १ है] ॥ ❀ ॥

१. पाँच पचीस कीन्ह विस्तारा ❀ तीन शक्ति नौ रूप सँवारा ॥ ५१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! देहमें पाँच तत्त्वोंसे उत्पन्न हुई पचीस प्रकृतियोंका विस्ताररूपसे गुरुवालोगोंने वर्णन किया है। अध्यासवश त्रिगुणकी शक्तिसे चारखानी-में जाकर जीव नये-नये देहोंका ही रूप उत्पन्न करते हैं। देहमें तीन गुणसे नौ खण्ड, नौ कोशादि भिन्न-भिन्न रूप बनाये हैं। अथवा इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन नाड़ियोंकी शक्तिसे एक नाड़ीके अंशसे तीन-तीन भाग करके फिर तीनतियें नौ भाग करके नौ नाड़ियोंका भिन्न-भिन्न रूप बनाया है या वर्णन किया है ॥ ५१५ ॥

२. नाड़ी चाम हाड़ कच मासू ❀ पृथिवी प्रकृति पाँच सो वासू ॥ ५१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ शरीरमें पृथ्वीतत्त्वकी पाँच प्रकृतियाँ जो उत्पन्न हुईं, सो १. नाड़ी=नसोंका फैला हुआ जाल है। २. चाम=शरीरभरकी चमड़ीको त्वचा भी कहते हैं। ३. हाड़=देहभरकी हड्डियाँ हैं; ४. कच=देहमेंके सब बाल या रोम समूह हैं। और ५. मासू=शरीरमेंके सब मांस भाग हैं; ये पृथ्वीतत्त्वमेंके कठिन भागसे उत्पन्न होकर पाँच (५) तरहसे देहमें रहती हैं; इन्हें ही पृथ्वीकी पाँच प्रकृतियाँ कहते हैं। देह छूटनेपर मुर्दामें भी ये भाग बाकी रहते हैं। सो फिर कारणरूप बाहरके पृथ्वीतत्त्वमें ही नाश होकर मिल जाते हैं। [पाँच तत्त्वोंके मिलापसे पृथ्वी तत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंकी उत्पत्तिका विस्तारसे वर्णन समष्टिसारके

चौपाई नम्बर— २०२ से २०५ तककी टीकामें (पृष्ठ १९१ से १९२ तक) हो चुका है; वहाँसे देख लीजिये!] जीवकी सहायता वा सत्तासे ही ये प्रकृतियाँ सुन्दर दिख रही हैं। जीवके न रहनेपर निकम्मी हो जाती हैं। परन्तु, भ्रमिक गुरुवालोग कहते हैं कि, उन पाँच प्रकृतियोंमें पाँच देवताओंका निवास है। इसीसे देह शोभायमान् दिखता है। किनमें कौन देवताका निवास है? सो नीचे कहा है— ॥ ५१६ ॥

३. माया नाड़ी शिव रोम निवासी ❀ चाम विष्णु अज मासु प्रकाशी ॥ ५१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पृथ्वीतत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंमें विशेष भाग 'हाड़' है। इससे हड्डियोंमें निरञ्जन-परमात्मा आप ही आकर निवास किया है, ऐसा कहा है। तथा नस-नाड़ियोंमें आकर आदिमायाने निवास किया है, रोममें शिवजीका निवास है, ऐसा माना है। चाम या त्वचामें विष्णु रहते हैं। ब्रह्माजी मांसमें निवास करके उसे प्रकाशित करते हैं। यही पाँच देवता देहमें प्रकृतियोंके प्रकाशक हैं। ऐसी कल्पनाका प्रकाश वा प्रचार गुरुवालोगोंने किया है ॥ ५१७ ॥

४. हाड़ निरञ्जन आपु कहावै ❀ अनन्त फाँस जीवहि भरमावै ॥ ५१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! और हाड़में आप निरञ्जनका बासा कहा है। अपने-आप जीवको भूलकर वही मिथ्या बात कहकर दूसरोंको भटकाते हैं। अनेकों वाणी-खानीके जाल-फाँसमें फँसा करके नरजीवोंको भ्रमाये और भ्रमा ही रहे हैं; सो यम जाल बड़ा कठिन बन्धन है ॥५१८॥

५. रक्त पित्त कफ बिन्द पसेवा ❀ जल प्रकृति सोई पाँच उपेवा ॥ ५१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तैसे ही जल तत्त्वसे भी पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। उनके नाम ये हैः— १. रक्त=शरीरभरमें फैली हुई खून या लोहू वह जलका ही भाग है। २. पित्त=पित्तकी घड़ियाँ या पित्त रहनेकी थैली अथवा लार, यह जलकी दूसरी प्रकृति है। ३. कफ=खकार, थूक अथवा मूत्र यह जलकी तीसरी प्रकृति है। ४. बिन्द=वीर्य, शुक्र, ओज, धातु भी उसे कहते हैं। जिससे शरीरमें शक्ति रहती है। यह जलकी चौथी प्रकृति है। और ५. पसेवा=पसीना वा स्वेदकण भी कहते हैं। सो गर्मी पा करके रोम-रोमसे निकलता है। यह जलकी पाँचवीं प्रकृति है। जीवकी सत्तासे ही प्रफुल्लित हो करके ये प्रकृतियाँ चलती हैं। परन्तु, गुरुवालोग इन पाँचोंमें भी पाँच देवताओंका निवास मानकर उन देवताओंको ही कर्त्ता मानते हैं ॥ ५१९ ॥

६. रक्त शक्ति मायाको छाजै ❀ पित्त विष्णुके अंश विराजै ॥ ५२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो उसमें देवता इसप्रकार कहा है— रक्तमें आदिमायारूप मूलशक्तिका निवास है; मायाकी शोभा अद्भुत है। उसको सब सुन्दरता शोभा देती है। देहमें रक्त होनेसे ही सुन्दरताकी शोभा हो रही है। और विष्णुजी पित्तके अंश भागमें विराजमान हो रहते हैं, वे ही लार को भी प्रगट करते हैं। विष्णुके अंशसे ही शरीरमें पित्त यथास्थान रह रहा है, ऐसा माना है ॥ ५२० ॥

७. कफ ब्रह्माके अंश उपाई ❀ शम्भु पसेव बिन्द सो राई ॥ ५२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्माजीके अंशसे ही कफ और मूत्र उत्पन्न होता है। कफस्थानमें ही ब्रह्मा निवास करके रहते हैं, तथा वातस्थानमें शम्भुजी रहते हैं। इसलिये महेशके अंशसे ही देहमें पसीना निकलता है। और सबके राजा निरञ्जन-परमात्मा सो तो बिन्द या वीर्यमें ही निवास करके रहते हैं। उसीसे शरीरमें बल, ताकत, स्फूर्ति, साहस बना रहता है ऐसा माना है। [जल तत्त्वके पाँच प्रकृतियोंका मिलाप समष्टिसारके चौपाई— १९८ से २०१ तक-की टीकामें (पृष्ठ १९० से १९१ तक) देख लीजिये! वहाँ विस्तारसे लिखा है; यहाँ तो पाँच देवताओंका निवास मात्र ही दर्शा दिया है, सो जानिये!]॥ ५२१ ॥

८. भूँख प्यास आलस जम्भुवाई * निद्रा पाँच अनल उपाई ॥ ५२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अग्नितत्त्वसे पिण्डमें पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। उनके नाम ये हैंः— १. भूँख=जठराग्निसे खाया हुआ अन्न हजम होनेसे पेट खाली होकर भूख लगती है। २. प्यास=तैसे ही पानीकी मात्रा देहमें कम होनेसे उष्णता बढ़ करके प्यास लगती है। ३. आलस=अन्न-जलकी नशासे या थकावटसे आलस्य-सुस्तीपना आ जाती है। ४. जम्भुवाई=बार-बार मुखसे हाई-हाई या जम्भाई आना, हिचकी चलना, आलस्यके कारणसे ही होता है। अथवा कामकी प्रबलतासे मैथुन कर्ममें भी नर-नारी प्रवृत्त होते हैं; और ५. निद्रा=आँखें मूँदकर सो जाना, नींद लेना। ऐसे पाँच भागरूप पाँच प्रकृतियाँ तेजतत्त्व करके पैदा होती हैं। चैतन्य जीवकी सत्तासे वे सब कार्य मालूम होते हैं। जीव निकल जानेपर ये कार्य मुर्दामें कुछ भी नहीं होते हैं। द्रष्टा जीव जड़ तत्त्वोंसे सदैव न्यारा रहता है। ऐसा जान-समझकर जड़ासक्तिसे रहित होना चाहिये। [तेजतत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंकी उत्पत्तिमें पाँच तत्त्वोंके मिलाप समष्टिसारके चौपाई— १९४ से १९७ तककी टीकामें (पृष्ठ १८८ से १८९ तक) लिखा है, देख लीजिये !] ॥ ५२२ ॥

९. ते पाँचों सोइ पाँच कहावै * भूँख शक्ति माया देखलावै ॥ ५२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उस अग्निकी पाँच प्रकृतियोंमें भी सोई पाँच देवताओंका निवास कल्पनासे कथन किया है। कहा है कि, वह पाँच उसीका स्वरूप ही कहलाता है। सो कैसे कि, पेटमें जो भूख लगती है, सो आदिमाया अपनी शक्तिसे दिखलाती है। सो क्षुधामें मायाका बासा रहता है, ऐसा कहा है। मायाका रूप यही काया है। कायामें खुराक कम होनेसे माया भीतरसे भूख लगा करके दिखला देती है, भोजन खाना चाहती है; आहार पाकर फिर शान्त होती है ॥५२३॥

१०. तृषा शक्ति ब्रह्माको शोभा * आलस लक्ष विष्णुको आभा ॥ ५२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तृषा या प्यास लगना, यह ब्रह्माकी शक्तिसे होता है। प्यास ही ब्रह्माकी शोभा या स्वरूप है। उसीमें ब्रह्मा निवास भी किया करता है। और शरीरमें आलस्य होनेका लक्षण प्रकाश करके दिखलाना, यही विष्णुके निवासका लक्षण है। विष्णुकी शक्तिसे ही आलस्य प्रगट होता है। तो उसीमें वह रहता भी है, ऐसा माना है ॥ ५२४ ॥

११. जम्भुवाई शिवके विस्तारी * नीन्द निरञ्जन आपु सँवारी ॥ ५२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'जम्भुवाई' जिसे जृम्भण, जम्भाई भी कहा है; सो मुख खुल करके आना, तथा मैथुन भोग होना, ये महेशकी शक्तिसे विस्तार होता है; तो शिवने ही उसे विस्तार किया है। उसीमें शिवका बासा भी माना है। और निरञ्जन-परमात्माने अपने आप निद्राको सँवार करके बनाया, तो निद्रामें आकर निरञ्जनने बासा किया। इसीसे सोनेपर आनन्द-का भान, परमानन्दवत् होता है। ऐसो अनुमान-कल्पना गुरुवालोगोंने की है; उसीमें भ्रमिक हुए और भ्रमा रहे हैं, बिना पारख ॥ ५२५ ॥

साखीः— अस प्रपञ्च सब कालके * भटका रहत अयान ॥
[१२६] बिनु शरणागत पारखी * किमि पावै कल्यान ? ॥ ५२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसी वाणी-कल्पनाके प्रपञ्च, पञ्च कोशोंके प्रपञ्च, तथा पञ्च विषयोंके प्रपञ्च, रोचक-भयानक जाल भुलौवा काल=गुरुवालोग और स्त्रियोंके मोटी-झीनी जञ्जाल फन्दा है। अविवेकी अज्ञानी मनुष्य उसीमें भटकते ठोकरें खाते हुए चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े रहते हैं। अज्ञानताके कारण गुरुवाओंके पीछे लग करके भ्रममें ही भटकते रहते हैं। बिना पारख सब अज्ञान धोखेमें पड़े हुए हैं। और सत्यन्यायी, सत्य शोधक, सत्यवक्ता पारखी सद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्गमें निर्णयसे विवेक-विचार तो कुछ भी नहीं

करते हैं। तब सत्स्वरूपको कैसे जानेंगे? पारखी सद्गुरुके शरणागत हुए बिना पारख बोध नहीं होता है। पारखके बिना नरजीव निज कल्याणरूप मुक्ति कैसे पावेंगे? कभी नहीं पावेंगे। जप, तप, व्रत, भक्ति-योगादि चाहे कितने भी करें, पारख बोधके बिना किसीकी कभी मुक्ति या कल्याण हो नहीं सकता है। अतएव पारखी साधु-गुरुके शरणागत होकर सत्यबोध प्राप्त कर निज-पर कल्याण, जीवन सुधार करना चाहिये। तभी मनुष्य जन्म पाना सफल होगा, ऐसा जानिये! ॥ ५२६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २१ ॥ [चौपाई- १५ । साखी- २ । छन्द- २ है] ॥ ❀ ॥

१. बोलन धावन बल परधाना * पसारन सङ्कोच वायु परवाना ॥ ५२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! वायु तत्त्वसे देहमें पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं, ऐसा प्रमाण किया है। उनके नाम ये हैंः— १. बोलन=बोलना, कहना, शब्द उच्चारण करना, बातें करना इत्यादि पहली प्रकृति है। २. धावन=दौड़ना, चलना, फिरना, कूदना, शीघ्र गमन करना इत्यादि दूसरी प्रकृति है। ३. बलन=बल करना, जोर लगाना, चञ्चलता करना, शक्ति दिखाना, पराक्रमका काम करना इत्यादि तीसरी प्रकृति है। इन सबमें वायु तत्त्वकी ही प्रधानता वा विशेषता रहती है। ४. पसारन=फैलाना, पसारना, चौड़ा करना इत्यादि चौथी प्रकृति है। और ५. सङ्कोच=समेटना, सिकुड़ाना, लपेटना, छोटा करना, खींचना इत्यादि पाँचवीं प्रकृति है। चैतन्य जीवकी सत्तासे ही यह सब कार्य देहमें होते हैं। वायुतत्त्व जड़ है, यह प्रत्यक्ष प्रमाणसे साबित है। [वायु तत्त्वकी पाँच प्रकृतियोंकी उत्पत्तिमें पाँच तत्त्वोंके मिलाप समष्टिसारके चौपाई— १९० से १९३ तककी टीकामें लिखा है, वहाँपर (पृष्ठ १८७ से १८८ तक) देख लीजिये!] ॥ ५२७ ॥

२. सोई पाँच पुनि पाँच कहावै * बोलन शक्ति माया देखलावै ॥ ५२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई वायुकी पाँच प्रकृतियोंमें भी निम्नोक्त पाँच देवताओं-का निवास गुरुवालोगोंने कहा है। पुनः पाँच प्रकृतियाँ उन्हीं देवताओंकी शक्तिसे बनी हैं; सो कैसे कि, बोलना आदिमायाकी शक्तिसे ही दिखलाता है; घट-घटमें माया ही बोलती है। पुरुष तो अबोल-अडोल है। ज्यादा बातें बोलकर दिखलाना, यह मुख्य मायाकी शक्ति है। वाणीमें ही मायाका निवास कहा है ॥ ५२८ ॥

३. बल सो विष्णु पसारन अजके * धावन शम्भु सङ्कोच सहजके ॥ ५२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! बल=शक्ति, जोर, ताकत करना या चलना, सो विष्णुकी शक्तिसे होता है। इसलिये बलमें ही विष्णुका बासा है। तथा पसारना आदि क्रिया ब्रह्माकी शक्तिसे होती है। इससे पसारनमें ही ब्रह्माका बासा है। धावन आदि क्रिया शम्भुकी शक्तिसे होता है। इसलिये महेशका बासा धावनमें रहता है; और सङ्कोचन करना, यह सहज-आकाशरूप निरञ्जन ब्रह्मकी शक्तिसे होता है। इसलिये सङ्कोचनमें ही निरञ्जन परमात्माका बासा कहा है। इसतरह वायुकी पाँच प्रकृतियोंमें पञ्च देवताओंका निवास माना है, सो मिथ्या कल्पना ही किया है ॥ ५२९ ॥

४. काम क्रोध लोभ मद मोहा * पाँच प्रकृति गगनके सोहा ॥ ५३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! देहमें आकाशतत्त्वरूप समानवायुकी कलासे पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। सो उनके नाम इसप्रकार हैंः— १.काम=विषय भोगकी इच्छा, कामना, चाहना, यह पहली प्रकृति है। २. क्रोध=गुस्सा, तामस, जलन, वह क्रोधका ही लक्षण है, सो यह दूसरी प्रकृति है। ३. लोभ=दूसरेकी वस्तु देखकर ललचाना, हड़पनेकी इरादा रखना, कंजूसपना आदि सो सब लक्षण लोभसे होता है, यह तीसरी प्रकृति है। ४. मद=उन्मत्त होना, भयभीत होना, बेहोशी, कम्पकम्पी आदि मदसे ही होता है, मदमें भय भी मिला हुआ है; यह चौथी प्रकृति है। और ५. मोह=मोहित, आसक्त, तल्लीन, आकर्षित इत्यादि होना मोह है। यह पाँचवीं प्रकृति है।

हृदयाकाशसे उठकर स्थूल देहमें यह सब विकार प्रगट होते हैं। [पाँच तत्त्वोंके मिलापसे आकाश-तत्त्वरूप समान वायुकी इन पाँच प्रकृतियोंकी उत्पत्तिका वर्णन समष्टिसारके चौपाई— १८६ से १८९ तककी टीकामें लिखा है; (पृष्ठ १८६ से १८७ तक) वहाँसे देख लीजिये !] पाँचों तत्त्व जड़ हैं, जीवकी सत्ता-सबन्धसे ही सब प्रकृतियाँ चलती हैं। जीवके बिना निर्जीव पड़ा हुआ मुर्दामें कोई प्रकृतियोंसे कार्य नहीं होता है; प्रकृतियोंसे नाना कर्त्तव्य करके जीव ही जड़ाध्यासी होते हैं ॥ ५३० ॥

५. तहाँ मोह मायाके रूपा ❀ हरी काम अज लोभ स्वरूपा ॥ ५३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ उक्त आकाशतत्त्वरूप समान वायुकी पाँच प्रकृतियोंमें भी पाँच देवताओंका निवास माना है। सो इसप्रकार कहा है:— आदिमायाका खास स्वरूप 'मोह' है। सर्वशक्ति सहित माया सुन्दर, मोहकरूपमें निवास करती है। माया-मोह लगा करके सबको अपनी तरफ खींचा करती है। और विष्णु 'काम कला'में निवास करता है, विष्णुकी शक्तिसे ही कामोद्वेग खड़ा होता है, सो काम ही विष्णु है। तथा 'लोभ'का स्वरूप ही ब्रह्मा है। ब्रह्माकी शक्तिसे ही लोभ होता है। उसीमें ब्रह्माका निवास रहता है, ऐसा माना है ॥ ५३१ ॥

६. क्रोध महादेव मद सो आपू ❀ कला अनेक काल परतापू ॥ ५३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'क्रोध'— यही महादेवका स्वरूप है, सो क्रोधमें ही महेशका निवास है। शिवकी शक्तिसे ही क्रोध उत्पन्न होता है। तथा 'मद वा भय' सोई आप निरञ्जन ब्रह्मका स्वरूप है। आपका निवास मदमें ही रहता है। निरञ्जनकी खास शक्तिसे ही मद पैदा होता है। इसप्रकार अनेक वाणी-कलामें कल्पना करके काल=गुरुवालोगोंने प्रचार किया है। अज्ञानी-लोगोंको धोखेमें डालकर भ्रमा रक्खा है। सद्गुरुके पारख बोधके प्रताप बिना यह काल-कला, अनन्त जाल पहिचाननेमें नहीं आता है। संसारमें कालका ही प्रताप अनन्त कलाके रूपमें छाया हुआ है ॥ ५३२ ॥

७. तीनि शक्ति नौ नाड़ी कीन्हा ❀ इङ्गला पिङ्गला सुषुमना चीन्हा ॥ ५३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाकी कला तीन शक्तिसे एक-एकमें तीन-तीन भाग करके नौ नाड़ीकी संख्या या गिनती किया है। उसमें इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन नाड़ी ही तीन शक्ति मायाके मुख्य चिह्न, लक्षण या पहिचान बतलाया है, सो चीन्ह लीजिये ! ॥ ५३३ ॥

८. शिव सनकादिक दण्ड रचि धारी ❀ गणेशनि पयस्विनि मूल सँवारी ॥ ५३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! महादेवादि तीनों भाई गुरुवालोग तथा सनकादि ऋषि, मुनि, साधक लोगोंने योगदण्डकी रचना करके अष्टाङ्गयोग बनाया है। उसमें योग क्रिया साधनेके लिये तीन नाड़ीसे नौ नाड़ियोंकी देहमें रचना करके कल्पनासे धारण किये हैं। सिद्धियोंके मोह-मदमें वे भूले रहे, और अभी भी बहुतेरे योग मार्गादिमें ही भूले पड़े हैं वा भूल रहे हैं। नौ नाड़ियोंके नाम तथा स्थान देहमें ऐसे माना है:— १. गणेशनी नाड़ी— बायें हाथके मध्यमें रहती है। २. पयस्विनी नाड़ी— दहिने कानके मूलमें रहती है। उसीसे क्रमसे हाथोंसे लेन-देन तथा कानोंसे सुननेका काम होता है, ऐसी वाणीको बनाया है ॥ ५३४ ॥

९. हस्तिनी पुहुखा पचयें गन्धारी ❀ इमि सन्तन नाड़ी निरधारी ॥ ५३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ३. हस्तिनी नाड़ी— दाहिने नेत्रके मध्यभागमें रहती है। ४. पुहुखा नाड़ी— बायें कानके मूलमें रहती है। तथा पाँचवींका नाम ५. गन्धारी नाड़ी है। यह बायें नेत्रके मध्यमें रहती है। इसी नाड़ी द्वारा देखने आदिका काम होता है। ऐसे या इसप्रकारसे योगी, ज्ञानी आदि सन्तोंने इन्द्रियस्थ नाड़ियोंके नाम निर्णयरूप निश्चय करके वर्णन किया है; अथवा निर्धार करके धारणा किया है ॥ ५३५ ॥

१०. अलम्बुखा अरु कुहू कहावै ❀ वारुनि शङ्खिनि यहि नौ गावै ॥ ५३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ६. अलम्बुखा नाड़ी— मुखस्थानमें समा करके रहती है। ७. कुहू नाड़ी— लिङ्ग स्थानके मूलमें रहती है; ऐसा वर्णन करके कहा है। ८. वारुणी नाड़ी— दाहिने हाथके मध्यमें रहती है। और ९. शङ्खिनी नाड़ी— गुदा स्थानके मूलमें रहती है। इसप्रकार यही नौ नाड़ियाँ नौ स्थानोंमें रहकर अपना-अपना कार्य कर रही हैं, ऐसा गुरुवालोगोंने गा करके वर्णन किया है ॥ ५३६ ॥

११. तेहि नेह नौ द्वार उपानी ❀ त्रिविधि होय माया प्रगटानी ॥ ५३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन्हीं नौ नाड़ियोंके नेह या स्नेह, आकर्षण, प्रेम-प्रीतिसे देहमें उनके वासस्थान नौ इन्द्रियाँ और नौ द्वारः— दो कानोंके छिद्र, दो नेत्रोंके द्वार, दो नासिकाके छिद्र, ये छः हुए, तथा मुख, लिङ्ग और गुदा, ये तीन और मिला करके नौ द्वार देहमें बने हैं। उन नौ नाड़ियोंके जरिये ही नौ द्वार उत्पन्न हुए, ऐसा माना है। तथा स्त्रीरूप, पुरुषरूप, और नपुंसकरूप, यही त्रिविधिरूप हो करके माया वा काया उत्पन्न हो करके प्रत्यक्षमें प्रगट हुई है। फिर उन्हींसे त्रिगुणी सन्तानकी सृष्टि उत्पत्ति हुई या हो रही है। बिना पारख यह त्रिविधि माया-जालोंसे कोई नहीं छूटे हैं। सब कोई उसीमें जकड़-जकड़ा करके चारखानी चौरासी योनियोंको प्राप्त हुए। अतएव इसका पारख करके कसर-खोटको परित्याग करना चाहिये ॥ ५३७ ॥

१२. दशयें भग माया होय आई ❀ लिङ्ग रूप निरञ्जन राई ॥ ५३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! नौ द्वारोंके उपरान्त दशवाँद्वार नारियोंमें भग द्वार है, जिसे उपस्थ वा योनि भी कहते हैं। पुरुषोंमें भ्रमर गुफाको दशम द्वार ठहराया है। तहाँ माया महारानी आप ही भगाकार चिह्न लेकर स्त्री बन करके शरीरमें आई। तब तो महाराजा निरञ्जन परमात्माने भी उसीके समान नरदेहमें लिङ्गरूप चिह्न बनाकर पुरुष होकर शरीरमें आये, ऐसा माना है। जैसे सूर्यकी स्त्री घोड़ी बनी, तो सूर्य भी घोड़ा बन करके आया और घोड़ीसे समागम किया, तो उससे अश्विनीकुमार पैदा हुए, ऐसा लिखा है। इसीतरह माया भगवती हुई, तो निरञ्जन भी लिङ्गेश्वररूप होकर आया, ऐसा कहा है। अथवा दशधा-भक्तिकी धारणा सुन्दर भगाकार तिलक लगाकर भक्त बनकर माया आई, तो लिङ्गाकार योगको ले करके निरञ्जन राजा योगी होकर आये, उन दोनोंका परस्पर मिलाप हो गया, तहाँ वे दोनों भ्रमिक साबित हुए हैं ॥ ५३८ ॥

१३. पुरुष अंश बीज होय धावै ❀ अष्टाङ्गी रज अंश मिलावै ॥ ५३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निरञ्जन परमपुरुषका अंशरूप बीजसे फिर सब जीव उत्पन्न हुए हैं। तो वह निरञ्जन अपना अंश पुरुषोंमें मूल बीज लेकर दौड़ा आया, तहाँ वीर्यरूप हो करके रहा। और मायाके अंशसे अष्टधा-प्रकृतिरूप जड़ जगत् सब उत्पन्न होकर बना है; तो अपना अंश स्त्री देहमें रजरूप हो करके माया आ करके रही है। जब पुरुषका अंश बीज या वीर्य उधरसे धायके आया, तब इधरसे स्त्रीरूप अष्टाङ्गी मायाने भी अपना अंश रज उसीमें मिला करके इकट्ठा गोला करदी। अर्थात् स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे वीर्य-रजका एकत्र सम्बन्ध सम्मिलित होता है, तो उसीसे स्त्रीको गर्भ रह जाता है ॥ ५३९ ॥

१४. पाँच तत्त्व त्रिगुण होय आई ❀ अष्टाङ्गी तेहि भाँति बनाई ॥ ५४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! माया-ब्रह्मके मिलापसे प्रथमारम्भमें पाँचतत्त्व और त्रिगुण उत्पन्न हो करके समस्त ब्रह्माण्ड प्रगट हो करके आया। उसीप्रकारसे यहाँपर नारी-पुरुष दोनों सम्भोगमें मिले, तो रज-वीर्यमें पाँच तत्त्व, तीन गुणके भाग सूक्ष्मरूप हो करके गर्भमें आया। उसीसे आठों अङ्ग सहितकी काया अध्यासके अनुसार किश्म-किश्मकी बन गई। तेहि=उसी भाँतिसे अष्टाङ्गीने काया-माया, जगत्-जालको नानारूपमें बनाई और फैलाई, ऐसा माना है ॥ ५४० ॥

१५. अष्ट अङ्ग तेहि नेह उपाना * नारि पुरुष होयके अरुझाना ॥ ५४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर पाँच तत्त्व, तीन गुणसे बने हुए स्थूल पदार्थ-स्थूल देहादिमें स्नेह, प्रेम, आसक्ति उत्पन्न हुई; और स्त्री देहके अष्ट अङ्ग=भाल, गाल, दोनों नेत्र, मुख, दोनों स्तन और भग, इसीमें पुरुष स्नेह लगा करके आसक्त हुए। तैसे ही पुरुष देहके अष्ट-अङ्ग— मस्तक, कपोल, दोनों नेत्र, मुख, दोनों हाथ और लिङ्ग, इसीमें प्रेम उत्पन्न करके स्त्री मोहित हुई। उसी स्त्री-पुरुषोंकी भोगासक्ति करके ही आठों अङ्ग सहित बालक शरीर उत्पन्न हुआ। तो अध्यासवश उस शिशुको भी स्त्री-पुरुषका चिह्न भग-लिङ्ग हो करके आया। फिर जवान होकर परस्पर एक-दूसरेके नखरा, हाव, भाव, कटाक्षादि जालोंमें अरुझे और अरुझा रहे हैं। जड़ देहके विषयोंमें ही नारी-पुरुष आसक्त होकर बद्ध हो गये हैं। चैतन्य स्वरूपकी विचार-स्थिति नहीं किये बिना पारख चौरासी योनियोंके भवधारमें ही गोता लगा रहे हैं ॥ ५४१ ॥

साखीः— नारि समानी पुरुषमें * पुरुष समाना नारि ॥

[१२७] युगल अंश षट लायके * रचा जाल विस्तारि ॥ ५४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! माया समायी ब्रह्ममें और ब्रह्म समाया मायारूप जगत्में। तथा प्रकृति समायी पुरुषमें और पुरुष समाया उसी प्रकृतिमें। अज्ञान समाया ज्ञानमें, पुनः ज्ञान उलट करके समाया उसी अज्ञानमें। जीव समाया ब्रह्ममें, पुनः ब्रह्म समाया उसी जीवमें। तो इसप्रकारसे दोनों प्रकृति-पुरुषके अंशसे षट् दर्शन, षट् आचार्य, षट् शास्त्र, षट् अङ्गयुक्त वेद, षट् गुण ऐश्वर्य, षट् सम्पत्ति, षट् वादी, षट् कर्म, नित्य षट् कर्म, षट् प्रमाण इत्यादि कल्पना, भ्रम लगा करके पञ्च कोशोंके वाणी जालकी रचना करके उस जालका महान विस्तार किये हैं और कर रहे हैं; उसीमें फँसे और फँसा रहे हैं ॥

अथवा खानीमें— नारी अष्टाङ्गी आदिमाया और निरञ्जन पुरुष परस्पर एक-दूसरेमें आसक्त होकर सम्भोगमें समाये तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, पुरुषके विशेष अंशसे ये तीन जन्मे। तथा लक्ष्मी, पार्वती, सावित्री, ये तीन स्त्रीके अंशसे पैदा हुईं। तो ब्रह्मा-सावित्रीसे, विष्णु-लक्ष्मीसे, महादेव-पार्वतीसे सम्बन्ध लगा करके विषय भोग करके अनेक खानी-वाणी जगत्-जालकी रचना करके विस्तार किये हैं ॥

अथवा संसारमें सब स्त्रियाँ विषय भोगरूप स्वाथ पूर्ण करनेके लिये ही पुरुषोंमें प्रेम लगा करके घुल-मिलकर उनमें समा रही हैं; और पुरुष भी भग-भोगादिमें आसक्त हो करके स्त्रीके रूप, हाव, भाव, कटाक्षमें मोहित होकर दासवत् होकर स्त्रियोंमें ही समा रहे हैं। अध्यासी जीव गर्भमें समा रहे हैं। तो स्त्री-पुरुष दोनोंके रज-वीर्यके अंशसे देह बना है, तहाँ छः प्रकारकी स्त्री और छः प्रकारके पुरुष तथा एक प्रकारका नपुंसक, ऐसे भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके बने; वे षट् पशु धर्ममें तदासक्त जड़ाध्यासी हो रहे हैं। षट् उर्मी, षट् धातु, षट् विकार, षट् ऋतु, षट् राग इत्यादि अनेक संसारके खटपट, झंझटमें मन लगा-लगा करके काम क्रीड़ा करनेमें कोकशास्त्र, चौरासी मैथुनोंके आसनादि अनन्त विषय जाल, छल-कपटादिकी रचना कर-करके उसीका विषयी लोगोंने विस्तार किया है; और विस्तार कर रहे हैं। कोई पारखी सन्त ही इन सब जालोंसे बच पाते हैं, वे ही निज-पर हितका कार्य करते हैं ॥ ५४२ ॥

॥ ❀ ॥ छन्द, भाग — [४] ॥ ❀ ॥

१. परपञ्च पाँच पचीस भौ * अनभिल सबै निज दावको ॥ ५४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पञ्चकोशोंके वाणी प्रपञ्च निकालकर गुरुवा-लोगोंने कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान, ये पाँच मार्गोंमें पचीसों किश्मसे भुलाया है। एक-

एकमें चार-चार तरीके मिला करके पाँच मार्गके पच्चीस भेद किया है। जैसे कर्ममें अन्य उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान, इन चारोंका भी मिलाप किया है। तैसे ही और सबोंमें भी समझना चाहिये। वही भवसागररूपमें खड़ा हुआ है। जिस ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिसे मिलना-मिलाना चाहते हैं, वह तो कुछ नहीं मिलता है। परन्तु, सब अपने दाव-पेंच, जाल, मत-पन्थ, ग्रन्थ फैला करके जीवोंको खींच रहे हैं। एक-से-एकका मेल-मिलाप नहीं होता है; सब लोग दाव-घात लगा रहे हैं। अथवा पाँच तत्त्वोंकी पच्चीस प्रकृतियाँ देहमें पैदा हुईं। खानी-विषय प्रपञ्च फैलानेमें ही सब कोई अग्रसर होकर लग रहे हैं। एक-एकका स्वभाव, गुण, लक्षण विरोधी बना हुआ होनेसे किसीसे स्वभाव नहीं मिलता है। सब कोई अपने-अपने विषय भोग-भोगने स्वार्थ पूर्ण करनेके दाव-घातको देख रहे हैं; मौका पा करके घात कर रहे हैं ॥ ५४३ ॥

२. सङ्ग एकन्हि एकमें * उतपात अनेकन्हि ताहि सो ॥ ५४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देह, तत्त्व, प्रकृति और स्त्रियाँ तथा गुरुवालोग, ये सब लोग एक-से-एक प्रचण्ड विरोधी होकर कोई किसीके सङ्गमें सदा मिले नहीं रहते हैं। सो उसीसे अनेक उत्पात, उपाधि, झगड़ा, टन्टा, फसाद, शोक, आपत्ति, परेशानी पा करके जीव महा दुःखमें ही पड़े रहते हैं। विषय सम्बन्धी अनेक उत्पातमें संसारी लोग पड़े हैं; और ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पनाकी उपाधिमें परमार्थी बने हुए लोग पड़े हैं ॥ ५४४ ॥

३. बहुरोग शूल देखाय जीवहि * चैन नहिं एक छिन दियो ॥ ५४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! विषयभोगी संसारीलोग बहुत प्रकारके रोगसे पीड़ित हुए वा हो रहे हैं। शूल, दमा, खाँसी, ज्वर, आम, वातादि नाना रोग देखे और भोगे हैं। उससे रोगने घेरा तो जीवको एक क्षणके लिये भी चैन-आराम लेने नहीं दिया। संसारमें उनका जीवन रोग-शोकमें ही व्यतीत हो गया। उधर गुरुवालोगोंने संसारके बहुत कष्ट रोग, शूल आदि दिखला करके तथा नरकोंके दुःखोंका भयङ्कर डर बतलाकर मनुष्य जीवोंको ईश्वरादि प्राप्तिसे सुख होनेकी आशा लगा दिये हैं। तहाँ साधनाओंके और भी कठिन-कठिन दुःखोंमें डाल दिये हैं। पञ्चाग्नि, जलशयन, ठाढ़ेश्वरी, दिगम्बर इत्यादि बनकर अनेक कष्ट सहने लगे। कल्पना, भ्रम, विषयोंके फेरामें पड़े हुए जीवोंको एकक्षणभरके लिये भी कभी चैन=सुख, शान्ति नहीं मिलती है, चैन होने ही नहीं देता है; मन सदा बेचैन ही बनाये रखता है ॥ ५४५ ॥

४. नित घुर्म घुर्मित काल चक्र * दरेरि तेहि घायल कियो ॥ ५४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! काल=समयका चक्र सो तो नित्य ही प्रबल वेगसे घरघराते हुए घूम ही रहा है। इसी बीचमें कर्म भोगते हुए घूमते-फिरते जीव मनुष्य खानीमें आये, यहाँ फिर स्त्रीके भगचक्र विषयकी चक्कीमें गिर पड़े। और कोई वाणी-कल्पनाके चक्र मेषकी चक्कीमें जो पड़े, तो खानी-वाणी दोनोंमें दरेरीके खूब पिसाय गये; घायल, जड़ाध्यासी हुए हैं। ऐसे ही अन्य जीवोंको भी घायल-दुःखी कर दिये हैं। फिर आवागमनमें नित्य ही जीव पड़कर चौरासी योनियोंमें घूमने लगे हैं ॥ ५४६ ॥

॥ ❀ ॥ छन्द, भाग—[५]॥ ❀ ॥

५. बहु व्याधि खानि सो पिण्ड औ * ब्रह्माण्ड पिञ्जरमों बसो ॥ ५४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अध्यासी जीव चारखानीमें देह धारण करके बहुत रोग, त्रयताप भोगने लगे। सो कोई पिण्डमें घर-गृहस्थीमें बहुत आधि, व्याधि, और उपाधि देख करके उसे छोड़ दिये, तो खानीको छोड़ करके वाणी जालमें जाकर फँसे। तहाँ वेद, शास्त्र, कुरान आदिके वाणी प्रमाणसे अनेक साधनाओंके पिञ्जड़ामें जा करके बसे हैं। योगीलोग ब्रह्माण्ड=भ्रमरगुफाके

पिञ्जड़ामें जा करके बसे । ज्ञानी-विज्ञानी ब्रह्म मानन्दीके पिञ्जरमें जा करके बसे हैं। मुक्तिके बदले उसी भास, अध्यास, मानन्दीमें जकड़कर बद्ध हुए हैं ॥ ५४७ ॥

६. प्रीति औ प्रतीति सो दिन दिन * जाल यमसों दृढ़ गसो ॥ ५४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ ज्ञानी-अज्ञानी दोनोंने विषय विलासमें और ब्रह्मानन्द सुखमें प्रेम-प्रीति और निश्चय वा प्रतीति या विश्वास दृढ़ कर लिया है। सोई दिन-दिन नित्यप्रति बढ़ाने लगे। इसतरह खानी जालमें स्त्री, पुत्र, परिवारादिसे तथा वाणी जालमें ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवतादिसे या भ्रमिक गुरुवालोगरूप यमसे दृढ़ प्रेमकी गाँठी लगाये। दोनों तरहसे बन्धन ही दृढ़ हुआ वा जीव कसा गया है ॥ ५४८ ॥

७. हंस चहै आनन्द तेही सो * फन्द है जिसमें फँसो ॥ ५४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हंस नरजीव आन्दरूप सुख प्राप्ति करना तो चाहते हैं, परन्तु, जिससे हंस आनन्द पाना चाहते हैं, वही तो दुःखोंका खदान है। सो पारखदृष्टि न होनेसे स्वयं स्वरूपको तो नहीं समझते हैं; जिसे इन्होंने पकड़ा है, वही तो बलिष्ठ कालका फन्दा है। अनादिकालसे विषयासक्ति, मानन्दी, अध्यास ले करके ही जिसमें जीव फँसते आये हैं; अभी वर्तमानमें भी उसीमें जाकर स्वयं ही फँसे पड़े हैं। अपने कर्ममें जीव आप ही बद्ध हुए या हो रहे हैं। फन्दोंमें पड़ करके उससे आनन्द पाना चाहते हैं, सो देखिये ! इनकी कितनी निबुद्धि, भोलापना है ॥५४९॥

८. व्याधा शरण सब ताकहीं * बुद्धि देखि पारखी हँसो ॥ ५५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उतना ही नहीं, संसारके दुःखोंसे छूटनेके लिये सब कोई ताक-ताक करके व्याधाकी शरणमें ही जा रहे हैं। यहाँ एक तो व्याधारूप स्त्री, ज्ञानगुण, मुक्तिका विनाश करनेवाली है। उसी नारीको देख-देखकर स्त्रीके आधाररूप शरणमें ही गृहस्थलोग रह रहे हैं; और उधर संसारमें बहुत दुःख पाये, तो दूसरे व्याधारूप गुरुवालोगोंकी शरणमें गये, तो तन, मन, धनादि उन्होंने लूट लिया। सुखदाता कोई ईश्वरादि मानकर ऊपर ताकने लगे; धोखेमें जा करके पड़े हैं। जीवन धनको नाश किये। मनुष्योंकी अज्ञानता विपरीत बुद्धि देखकर पारखी साधु सद्गुरु उन्हें समझाते हैं; तो वे और विरोधी होकर खूब अकड़-जकड़ जाते हैं। ऐसा देख करके पारखी सन्त हँसने लगे। ये अबोध पक्षपाती नरजीव अपने हित-अहित करने वालेको भी नहीं पहिचानते हैं; वचन भी नहीं समझते हैं; ऐसे उन्होंकी निबुद्धि देख करके पारखी सद्गुरु मुसकुराते हैं। अतः उन्हें अनसमझ देखकर उनसे न्यारे हो रहते हैं ॥ ५५० ॥

साखीः— परवश हाथ बधिकके * हंस चहै आनन्द ॥
[१२८] हेत अटल पारख सोई * उचटि जाय यम फन्द ॥ ५५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे व्याधाके हाथोंमें पड़कर हंस पक्षी आनन्द चाहै, तो कैसे मिलेगा ? कभी नहीं मिलेगा। व्याधा तो उसे दुःख दे करके ही मारेगा। तैसे ही बधिकके समान स्त्री तथा गुरुवालोग हैं। उनके हाथ=हाता, घेरा, विषय, वाणी-कल्पनादिके घेरामें वा जालोंमें परवश या वशीभूत होकर हंस नरजीव विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दादि सुख भोगना, उससे तृप्त होना चाहते हैं, तो वह आशा कभी पूर्ण न होगी। क्योंकि, आनन्द ही जीवके लिये काल-जञ्जाल और बन्धन है। क्षणिक आनन्दके भासमें वा लालचमें पड़ करके हंसजीव महा फन्दोंमें अरुझे तो दुःख ही पाये हैं और दुःख पा रहे हैं। जब हंस नरजीव पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्ग-विचार द्वारा गुरुपदमें सत्य प्रेम लगाते हैं; तब उन्हें यथार्थ सद्गुरुके पारखका बोध प्राप्त हो जाता है। सब यम फन्दा उनके मनसे उचट करके उखड़ जाते हैं। खानी-वाणीके यमफन्दा ध्वस्त, नष्ट हो जाते हैं। निज पारख स्वरूपमें ही वे अटल-अचल हो जाते हैं; वे ही सदाके लिये निर्बन्ध जीवन्मुक्त हो जाते हैं। अतएव सोई सद्गुरुके पारख बोधको प्राप्त करके अटल होना चाहिये॥ ५५१ ॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— २२ ॥ षट् चक्रादि वर्णन ॥ [चौपाई–१५ । साखी–२ है] ॥❀॥

१. सात कमल औ सायर साता * पिण्ड ब्रह्माण्ड एक सम बाता ॥ ५५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! (४) चार दल, (६) छः दल, (१०) दश दल, (१२) बारह दल, (१६) सोलह दल, (२) दो दल और (१०००) सहस्र दल, ऐसे सात प्रकारके कमल चक्र शरीरमें माना है। तथा मीठा, लोण, दधि, घृत, मदिरा, अमृत और दूध, ऐसे सात नामके समुद्र भी देहमें कहा है। पिण्ड और ब्रह्माण्डमें एक समान मिला करके गुरुवालोगोंने वाणी कल्पनाकी अनेक बात कथनकर रक्खा है। सो यहाँपर दर्शा करके परखाया जाता है, सो श्रवण करिये! ॥ ५५२ ॥

२. सात स्वर्ग श्वासा अनुसारा * घेरा सात सायरके डारा ॥ ५५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भूर्लोक, भुवर्लोकादि ऊपर सात स्वर्ग लोककी कल्पना बाहरमें किया है। उसीके अनुसार देहमें षट् चक्रमें श्वासकी गाँठ पड़ी, उसी ठिकाने सात स्वर्ग माना गया है। बाहर सात द्वीपः— जम्बू, शङ्ख, कुश, श्वेत, पुष्कर, शाल्मलि और क्रौञ्च, ऐसा मानकर उन सातों द्वीपोंको घेर करके सात समुद्र रहा है, ऐसा कहा है। तैसे ही पिण्डमें योगी लोगोंने भी श्वास वायुमें ही सातस्वर्ग लोकोंका सुख भोग मान करके तथा उसीके अनुसार ऐसा सात चक्रोंमें सात समुद्रका चौगिर्द घेरा डाले हैं। वीर्य, मल-मूत्र, खकार, पोटा, पित्त, लार और दूध, यही पिण्डमें सात समुद्रके ठिकानेमें माना है। सो इसीमें— हाड़, मज्जा, रोम, नाड़ी, त्वचा, मांस और शिर— इन्हीं सात द्वीपोंको घेरा डाला है। ऐसी कई प्रकारसे मानन्दी किये हैं ॥ ५५३ ॥

३. स्वर्ग सात सायरको आशा * कमल प्रबन्ध पिण्ड परकाशा ॥ ५५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उपरोक्त सात स्वर्गलोकोंमें जा करके सात समुद्रमें नहाकर क्रीड़ा, विलास करके आनन्द भोगनेकी आशासे कर्मी, उपासकलोग यहाँ नाना प्रकारके कर्म, भक्ति आदिकी साधनाएँ करके मिथ्या धोखेमें आसक्त पड़े हैं। तैसे ही योगीलोगोंने पिण्डरूप शरीरमें ही सात कमलका प्रबन्ध या बन्दोवस्त करके योगमार्गका प्रकाश किया है। तहाँ नेती, धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जल क्रिया साधना करके दश मुद्रा लगाकर, ज्योति प्रकाश देख, उसीमें लक्ष्य लगाये हैं; उसीमें जीव बाँधे गये हैं। वह प्रबन्ध ही जीवोंको बन्धन हुआ, बिना पारख योगियोंको इसकी खबर ही नहीं हुई है ॥ ५५४ ॥

४. दल सहस्र एक कमल उपाई * मेरु शिखर ऊपर उरमाई ॥ ५५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अब पिण्डमें सात कमलका विवरण सुनिये! एक सहस्रदलके कमलकी उत्पत्ति भ्रमरगुफा मस्तक या ब्रह्माण्ड स्थानमें माना है। मेरुदण्डके ऊपरी शिखर या चोटीमें शिखा स्थान है, तिसमें आप-ही-आप एक हजार पत्रका कमल उत्पन्न हुआ, उससे बादमें छः चक्र क्रमशः नीचे बनते आये, ऐसा माना है ॥ ५५५ ॥

५. सहस्र श्वासा तेहि माँह विलासा * आपु निरञ्जन कीन्हा बासा ॥ ५५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! एक हजार श्वास उच्छ्वासका उपभोग या जापका आनन्द विलास उसी ब्रह्माण्डमें भ्रमरगुफाके मध्य, कमलके बीचमें होता रहता है। आप-ही-आप स्वयं निरञ्जन परमात्मा ॐकाररूपसे वहाँ निवास करते हैं। योगी लोग उनसे तदाकार होकर परमानन्दको पाते हैं, ऐसा कथन किया है ॥ ५५६ ॥

६. दुई दल त्रिकुटी माँह बनाई * सहस्र श्वास ज्योति फैलाई ॥ ५५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! दो दलका कमल, अग्निचक्र, त्रिकुटी (दोनों भौंहोंके बीचके स्थान) में बनाये हैं। तहाँ भी एक हजार श्वासोंका जाप कहा है, 'हं-क्षं' दो अक्षरकी उत्पत्ति, महाविष्णु देवता ज्योतिस्वरूपमें रहते हैं, ऐसी अनुमित वाणीको फैलाया है। वहाँपर एक

सहस्र श्वास तक उपभोगका आनन्द साधकोंको मिलता है, ऐसा कहा है। और चौतरफ ज्योति-प्रकाश ही सदा फैला रहता है, ऐसी-ऐसी कथनकर कल्पनाको फैलाया है ॥ ५५७ ॥

७. सहस्र श्वास शारदा नेहा ❀ कमल षोड़श दल कण्ठ उरेहा ॥ ५५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विशुद्धिचक्र, सत्यलोक, कण्ठ स्थानमें शारदा देवी रहती है। उसके स्नेहसे वहीं एक हजार श्वासका जाप तक आनन्द होता है। कण्ठ स्थानसे "अ से अः" तक सोलह (१६) स्वर उत्पन्न हुए, सोई षोड़श दलका कमल माना गया है। सोलह अक्षरको ही सोलह पत्रवाला कमल अनुमान किया है। इसीप्रकार कल्पना बढ़ाते हुए नीचे तक वर्णन करते हुए ले गये हैं। सो सब यहाँपर दर्शा दिया जाता है। पढ़ते-गुनते विचार करते जाइये, तब सब बातका भेद मालूम होता जायगा ॥ ५५८ ॥

८. द्वादश दल हृदय अस्थाना ❀ अनहद चक्र श्वेत परमाना ॥ ५५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अनहद चक्र, कैलाश लोक, हृदय स्थानमें बारह दलका कमलः— "क, ख, ग, घ, ङ; च, छ, ज, झ, ञ; ट और ठ," ये बारह (१२) अक्षरोंकी उत्पत्ति वहींसे माना है। उस द्वादश दल कमलका रङ्ग सफेद है, ऐसा योगियोंने प्रमाण किया है। ध्यान लगा करके भीतर श्वेत रङ्ग देखकर ऐसा अनुमान किया है ॥ ५५९ ॥

९. षट सहस्र श्वासा बन्धाना ❀ पारवती शम्भूके थाना ॥ ५६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वहाँपर छः हजार श्वासोंका जाप होता है; ऐसा हिसाब बाँधे हैं। श्वासके साथ लक्ष्यका बन्धान करते हैं। इस हृदय स्थानमें महादेव और पार्वती दोनोंका निवास तथा उनके भोग-विलासका आनन्द कथन किया है ॥ ५६० ॥

१०. दश दल कमल नील रङ्ग कीन्हा ❀ कमला विष्णुको बासा दीन्हा ॥ ५६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मणिपूर चक्र, वैकुण्ठ लोक, नाभि स्थानमें दश दलका कमलः—"ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ," ये दश (१०) अक्षरोंकी उत्पत्ति यहींसे हुई, ऐसा कहा है। ध्यानमें नीला रङ्ग देखकर दश दल कमलका रङ्ग भी नीला है, ऐसा अनुमान किया है। यहाँपर लक्ष्मी सहित विष्णुका बासा तथा उनका भोग-विलास रहता है। ऐसा कहकर उसमें गुरुवालोगोंने मन लगा दिया है या दृढ़ा दिया है ॥ ५६१ ॥

११. षट सहस्र श्वासा अनुहारी ❀ विलस दोय पुरुष औ नारी ॥ ५६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वहाँपर सूक्ष्म रीतिसे छः हजार श्वासोंका जाप जपनेका आनन्द अनुमान किया है। जैसे यहाँ स्त्री-पुरुष भोग करते हैं, तैसे वहाँपर भी प्रकृति-पुरुष दोनों ही क्रीड़ा-विलास करते रहते हैं। लक्ष्मी नारी, विष्णु पुरुष, इन दोनोंका वहाँ सदा सम्बन्ध विलास हुआ करता है, ऐसा कहा है ॥ ५६२ ॥

१२. षष्ठ कमल दल पीत सँवारी ❀ पेडू नाभी तले पसारी ॥ ५६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्वाधिष्ठान चक्र, ब्रह्मलोक, पेडू स्थानमें (नाभिके छः अङ्गुल तले) छः दलका कमल—"ब, भ, म, य, र, ल" ये छः अक्षरोंकी उत्पत्ति यहींसे माना है। षट् दल कमलका रङ्ग पीला है, ऐसा ध्यानमें देखकर वाणी पसारा किया है। वही मानन्दी दुनियाँमें फैलाया है ॥ ५६३ ॥

१३. षट सहस्र श्वासा सञ्चारी ❀ अज सावित्री बास विचारी ॥ ५६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वहाँपर छः हजार श्वासोंका जाप चलता रहता है। पेडू स्थानमें ही ब्रह्मा और उसकी स्त्री (सावित्री सहित) निवास करके वहाँ भोग-विलासका आनन्द किया करते हैं। योगीलोग भी उसीमें सामिल होकर सुखी, आनन्दित हो जाते हैं। ऐसे कल्पनासे विचार किया है या ऐसा माना है ॥ ५६४ ॥

१४. मूल चक्र कमल दल चारी * तेहि बिच गणपति बास सँवारी ॥ ५६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मूलाधार चक्र, देवलोक, गुदा स्थानमें चार दलका कमलः—"व, श, ष, स" ये चार अक्षरोंकी उत्पत्ति यहींसे माना है। उसी गुदा द्वारके कमलके बीचमें देवगणोंके सेनापति गणेशजी सदा बासा करते रहते हैं। आनन्दका सब साज वहींपर बना करके तैय्यार करते हैं, ऐसा कहा है। गणपतिका वासस्थान वहीं गुदामें बनाया है ॥ ५६५ ॥

१५. लाल रङ्ग तहाँ छौ सै श्वासा * सात स्वर्ग सोई पिण्ड प्रकाशा ॥ ५६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चतुर्दल कमलका रङ्ग गहरा लाल है, सो ध्यानमें लाल रङ्ग दिखाई देता है। तहाँपर छौ सै श्वासोंका जाप होता है; बड़ा आनन्द आता है, ऐसा माना है। जैसे पण्डितोंने बाहर ब्रह्माण्डमें सात स्वर्गादि लोकोंका वर्णन किया है, वैसे ही पिण्डरूप शरीरमें भी सात चक्रोंके स्थानमें सोई सात स्वर्गोंकी कल्पना करके योग मार्गकी वाणीको जगत्में योगी गुरुवालोगोंने प्रकाश या प्रचार किया है; सो सब मिथ्या भ्रम कल्पना मात्र है। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग-द्वारा पारख प्रकाश करके भ्रम-भूलको त्याग देना चाहिये ॥ ५६६ ॥

साखीः— प्रति प्रति कमल गाँठि दृढ़ * सोई पहाड़ रचि लीन्ह ॥
[१२९] तेहि पास सागर रचा * भिन्न भिन्न गुण कीन्ह ॥ ५६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! प्रत्येक कमलके बीचमें षट्चक्रपर वायु और नस-नाड़ियोंकी गाँठी दृढ़=मजबूत होकर बन्धी हुई है। सोई नाड़ी-वायुकी गाँठीको ही पहाड़की जगहमें ठहरा करके वाणीकी रचना कर लिये हैं। सात गाँठीको ही सात द्वीपके पहाड़ मानकर उसी गाँठीके पासमें सात समुद्र होनेकी मानन्दीसे वाणीकी रचना मिथ्या भावना कर लिये हैं। उसका गुण गुरुवालोगोंने भिन्न-भिन्न ही वर्णन किया है। सो सब कल्पनाके ही गुणसे वेद-शास्त्रादि वाणी नाना मत, पन्थ बना है ॥ ५६७ ॥

साखीः— कारण सब सूक्षम भये * कारज है विस्तार ॥
[१३०] प्रगट अवनी और पिण्डमें * बिरला समुझनहार ॥ ५६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सब कल्पनाका कारणरूप मन तो सूक्ष्म हुआ; उसका कार्य वाणी, मत, पन्थ, स्थूलरूपसे जगत्में विस्तार हुआ या हो रहा है। उसी सूक्ष्म अदृश्य जड़ाध्यासोंके कारणसे ही चारखानियोंमें अनेकों स्थूल देहोंका विस्तार हुआ है। सो सब पृथ्वीमें प्रगटरूपसे प्रत्यक्ष ही हैं। और पिण्ड=शरीरमें सारी ब्रह्माण्डकी चीज कल्पनासे घटा करके योगी, ज्ञानी आदि गुरुवालोग भूले हैं; और विषयोंमें सब संसारी लोग भूले हैं। वही पिण्ड-ब्रह्माण्डके जड़ाध्यासमें जीव बद्ध हुए हैं। कोई बिरले पारखी सन्त ही जड़-चैतन्यके भेदको यथार्थ समझने-वाले होते हैं। वे ही जीवको अध्याससे न्यारा करके पारखपदको समझकर मुक्त होते हैं। अर्थात् सब प्रकारसे कारण तो सूक्ष्म ही हुए, और कार्य सब स्थूलरूपमें ही विस्तार हो रहे हैं। सो दोनों ही बाहर पृथ्वीमें तथा भीतर पिण्डरूप शरीरमें प्रगट ही हो रहा है। सो विषय तथा कल्पनाके कार्य-कारण दोनों ही अध्यास जीवोंको बन्धनरूप हैं। इसका भेद समझनेवाले कोई बिरले ही पारखी सन्त होते हैं; वे ही सबसे न्यारे हो रहते हैं ॥ ५६८ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २३ ॥ [चौपाई-१३ । साखी-२ है] ॥ ❀ ॥

१. कमल सात सोई सात पहारा * गाँठि कटोरी घेरा डारा ॥ ५६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! योगियोंने शरीरमें सात कमल, सात पहाड़, सात समुद्र, सात लोक, सात द्वीप आदि कई किश्मसे माना है। सो उनकी मानन्दी यहाँपर वर्णन करके दर्शा दिया जाता है। सहस्रदलसे लेकर मूलाधार तकके सात कमल जो हैं, सोई उसीको वा

उसी ठिकाने सात बड़े-बड़े पहाड़ भी माना है। वहाँ नस-नाड़ियोंकी गाँठी कटोरीके समान गहरा गोल घेरामें पड़ा हुआ है। घेरा डाली हुई वही सप्त गाँठियाँ ही सात पहाड़ या सात पर्वतका घेरारूप हद्द है, ऐसा योगाभ्यासियोंने कल्पना करके कहा है ॥ ५६९ ॥

२. सोई प्रति कमल पहाड़ कहावै * देव पारचक्र वैकुण्ठ बतावै ॥ ५७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पिण्डमें सोई प्रत्येक कमलचक्र ही प्रत्येक पहाड़ कहलाता है। सात चक्रमें सात पहाड़ बतलाया गया है। पहले उन पर्वतोंका नाम सुन लीजिये ! फिर उनके निवासस्थान बतलाया जायगा। सात पहाड़ोंके नाम ये हैंः— १. देव पर्वत। २. पारचक्र पर्वत। ३. वैकुण्ठ पर्वत, ये तीन पर्वतके नाम इस चौपाईमें बतलाया है, बाकीके और नीचेकी चौपाईमें निम्न प्रकारसे बतलाया है ॥ ५७० ॥

३. कैलाश हेमवान हेमवन्त सुमेरा * सायर सात तेहिके घेरा ॥ ५७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ४. कैलाश पर्वत। ५. हेमवान पर्वत। ६. हेमवन्त पर्वत। और ७. सुमेरु पर्वत। ये ही सात पहाड़ पिण्ड और ब्रह्माण्डमें माना है। फिर सात समुद्र उसी सात पर्वतोंको या सात द्वीपोंको चौगिर्द घेरकर रही है। चारों तरफ समुद्रका घेरा पड़ा है, बीचमें वह पहाड़का द्वीप है, ऐसा कहा है ॥ ५७१ ॥

४. लोन अपछ औ क्षीर सुधारा * मदिरा घृत दधि जल धारा ॥ ५७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँपर सात समुद्रोंके नाम इसप्रकार बतलाया हैः— १. लोण या क्षार समुद्र। २. अपछ या मीठा समुद्र। ३. शुद्ध सफेद दूधके धारावाला क्षीरसागर। ४. मदिरा भरा हुआ समुद्र। ५. घृतसे पूर्ण समुद्र। ६. दहीका समुद्र। और ७. शुद्ध जलकी धारावाला अमृत समुद्र; ये सात समुद्रोंको पिण्ड-ब्रह्माण्डमें गुरुवालोगोंने माना है ॥ ५७२ ॥

५. शिखर सुमेर शुद्ध जल जोई * जोगी अमिरस चाखैं सोई ॥ ५७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब उक्त द्वीपरूप पहाड़ तथा समुद्रोंका स्थान पिण्डरूप शरीरमें जो बतलाया है, सो सुनिये ! ऊपर शिरमें क्रौञ्च नामक द्वीप मानकर भ्रमर-गुफाके शिखरमें चोटी स्थानपर या ब्रह्माण्डमें सुमेरु पहाड़ माना है। वहाँ ही सहस्र दलका कमल भी कहा है; और शुद्ध जलरूप अमृतका समुद्र वहाँ भरा है, उस जलने सुमेरुको घेरकर रहा है। ध्यान-समाधि द्वारा सो दिखाई देता है। और योगीलोग लम्बिका योग साधना करके दोहन क्रियासे जिभ्याको बढ़ाकर, पड़जिभ्याको ऊपर ले जा करके ऊर्ध्वद्वारमें रखकर ब्रह्माण्डसे झरता हुआ लार-मज्जाका उस रसको ही शुद्ध जल या अमृत रस मानकर सोई लारको चाखते हैं; वही स्वाद लेकर वे मग्न-मस्त पड़े रहते हैं ॥ ५७३ ॥

६. घृत सायर हेमवन्त निवासा * दुइ दल कमल ज्योति परकाशा ॥ ५७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिकुटीके अग्निचक्रमें हेमवन्त पहाड़का निवास कहा है। शङ्खद्वीपको मज्जाके स्थानमें माना है। तहाँ घृत समुद्र=नाकसे बहता हुआ गाढ़ा जल, सिगान, पोटाका घेरा चौतरफ लगा रहता है। 'हं-क्षं' ये ही दो दलका कमल है, एक हजार श्वासके गतिरूप जाप पूर्ण होनेपर वहाँ परमतत्त्व परमात्माका महान प्रकाश ज्योति स्वरूपमें दर्शन होता है, ऐसा माना है ॥ ५७४ ॥

७. हेमवान दल षोड़श कहिये * सायर दधि ताहि ढिग लहिये ॥ ५७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कण्ठमें विशुद्धि चक्रके ठिकाने हेमवान पहाड़ रहता है। कोई उसे ही कुशद्वीप— मांसकी जगहपर कहते हैं। तहाँपर षोड़श दलका कमल 'अ से अः' तक सोलह (१६) स्वरको ही कहा है। उसी द्वीप-पर्वतके नजदीक वा पासमें चौतरफ घेरा

करके दधि समुद्र=खकार, थूक वगैरह बहुतायतसे भरा रहता है। वहींसे खकार बनकर आता है, फिर बाहर निकलकर दृष्टिगोचर होता है, ऐसा कहा है ॥ ५७५ ॥

८. द्वादश कमल कैलाश उरमाई * सुरा समुद्र तेहि तीर बनाई ॥ ५७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हृदयस्थानमें अनाहद चक्रके ठिकाने कैलाश पर्वत खड़ा है। उसीके धवल शृङ्गमेंसे द्वादश दलका कमल— 'क से ठ' तकके अक्षररूप पत्र हृदयमेंसे आ करके उत्पन्न हुआ है। वही शाल्मलि द्वीप त्वचाकी जगहमें माना है। उसीके तीर=किनारेकी चारों तरफ सुरा या मदिरारूप समुद्र पित्तकी घड़ियोंने घेर रक्खा है। ऐसा वाणी कल्पनासे कथन बना करके गुरुवालोगोंने कहा है ॥ ५७६ ॥

९. दश दल सोई वैकुण्ठ कहावै * सायर क्षीर तहाँ उपजावै ॥ ५७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! नाभि स्थानमें मणिपूर चक्रके ठिकानेपर वैकुण्ठ पहाड़का निवास कहलाता है। उसीके गिरिशृङ्गमेंसे दश दलका कमल— 'ड से फ' तकके अक्षर सोई दश पत्र उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा है। तहाँ ही पुष्कर द्वीप=नाभिकी जगहमें माना है; उसीके चौतरफ क्षीरसागरका घेरा कहा है। सो स्त्रीके कण्ठकी नाड़ियाँ नाभितक बढ़कर सन्तान उत्पन्न होनेपर स्तनरूप कुचोंमें दूध उत्पन्न होता है। सो यही देखकर वहाँ दूधका समुद्र है; वहाँसे ही दूध उत्पन्न होता है, ऐसा माना है ॥ ५७७ ॥

१०. पारचक्र षष्ठ दल सोई * सायर अपछ ताहि ढिग होई ॥ ५७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पेडू स्थानमें स्वाधिष्ठान चक्रके ठिकानेपर पारचक्र नामका पहाड़ है। उस पर्वतके शिखरसे छैः दलका कमल—'ब से ल' तक अक्षररूप पत्र उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा है। सोई ठिकानेमें श्वेतद्वीप=रोम समूहकी जगहमें माना है। उसीकी चारों तरफ मीठा समुद्र भरा हुआ घेरा पड़ा है। उसीके पासमें भग-लिङ्गका स्थान है। सायर अपछ= कहिये स्त्री सम्भोगके विषयानन्द सुखको मीठा समुद्रवत् माना है। अथवा मल सफा गिरनेसे सर्व साधारणको होनेवाला सुखको भी 'अपछ' कहते हैं ॥ ५७८ ॥

११. कमल चारिदल मुग्ध बनाई * सायर लोन तहाँ निर्माई ॥ ५७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुदास्थानमें मूलाधार चक्रके ठिकानेपर देवलोकका पर्वत कहा है। उस पहाड़के ऊपरसे चार दलका कमल— 'व, श, ष, स' ये चार अक्षर पत्रकी नाईं उत्पन्न हुए। उसमें गुदाके मुख भी बना है, और उसी ठिकानेमें जम्बुद्वीप=कठिन हाड़की जगहपर माना है। वहाँ ही थैलीमें मूत्र बना रहता है। वही लोणसमुद्रका घेरा उसकी चारों तरफ बना हुआ है; इत्यादि कल्पित वाणी बना-बना करके गुरुवालोग अपने मोहित मूढ़ हुए, और रोचक वाणी सुना-सुना करके दूसरोंको भी मुग्ध=आकर्षित-मोहित मूढ़ ही बनाये वा मूढ़ बना रहे हैं ॥ ५७९ ॥

१२. हाड़ तीनसै साठ उपराजा * कसनी बहत्तर कोठी साजा ॥ ५८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तदनन्तर स्थूल शरीरमें शिरसे पैर तककी सब हड्डियोंकी गिनती हुई, तो तीन सौ साठ टुकड़ा हाड़ोंका भाग उत्पन्न हुआ, ऐसा हिसाब जोड़ किया है। उन्हीं सब हाड़ोंको नस-नाड़ियोंने बहत्तर हजार बन्धनोंसे बाँध कर नाड़ियोंसे हाड़ोंको कसकर पिण्डमें सजा करके सात कोठी बना करके तैय्यार किये हैं, सोई उपरोक्त सात चक्रोंमें बास या मानन्दी कर लिये हैं ॥ ५८० ॥

१३. सोई प्रति कमल कला अनुहारी * नाड़ी सङ्गम कोठि सँवारी ॥ ५८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! योगी लोगोंने कल्पना करके सोई प्रत्येक भागके कमलमें भिन्न-भिन्न कला, द्वीप, समुद्र, लोक, पहाड़ आदि मानन्दी करके सूक्ष्म रीतिसे कथनकर

उसे ही दृढ़ किया है। विभिन्न तरफसे आई हुई नाड़ियोंके स्थान विशेषमें सङ्गम या मिलान ,जोड़, इकट्ठा गाँठी बँध जानेसे वहाँपर कोठीवत् घेरा, बन गया। उसे ही स्थिति करनेका भवन या घरकी कोठीवत् योगियोंने बनाया। उसी मन-मानन्दीमें गुरुवालोग भूले-भुलाये, और भटके-भटकाये हैं, विना पारख ॥ ५८१ ॥

साखीः— रग जो बहत्तर सहस्र ले ❀ मेल जहाँ तहाँ कीन्ह ॥
[१३१] कोठी बहत्तर विदित सो ❀ हंस अरुझावन दीन्ह ॥ ५८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शरीरमें रग=नस-नाड़ियाँ सब बहत्तर हजार होनेकी गणना किया है। उन सबका गाँठ मूल नाभिस्थानमें कहा है। वहाँसे आधी नाड़ी ऊपरकी तरफ गई है और आधी नाड़ी नीची तरफ फैलती हुई गई हैं; तथा तीन सै साठ हाड़का कङ्काल जो है, सो उसे बहत्तर सहस्र नाड़ियोंने अपने कब्जेमें ले कर कस-कसा करके बाँध रक्खा है। जहाँ-तहाँ अङ्ग-प्रत्यङ्गमें उन नस-नाड़ियोंने मेल-मिलाप करके खूब मजबूतीसे देह पिञ्जरको जकड़ रक्खा है। जगह-जगह नसोंने मेल किया है। एक कोठीमें एक हजार नाड़ियाँ जुटी हैं। इसतरह बहत्तर हजार नाड़ियोंके सम्बन्ध-मिलानसे शरीरमें सब बहत्तर कोठियाँ बनी हैं। यह बात संसारमें योगी गुरुवालोगोंने जाहिर करके प्रसिद्ध या विदित किया है। सो कल्पना या नाना प्रकारकी मानन्दीमें हंसरूप मनुष्य जीवोंको फँसा करके अरुझा दिये हैं। नाहक मिथ्या धोखेमें डालकर भ्रमिक जड़ाभ्यासी, गाफिल कर दिये हैं। इसे परख करके भ्रमको त्याग देना चाहिये ॥ ५८२ ॥

साखीः— और अनेकनि जाल जो ❀ सबै सुनहु बिलगाय ॥
[१३२] दश औ तीन प्रकारके ❀ वायु सो तहाँ उपाय ॥ ५८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! और अनेक प्रकारसे गुरुवालोगोंने वाणी कथन करके वाणी जाल बना रक्खा है। जो कुछ उन्होंकी मानन्दी है, सो सब भी श्रीसद्गुरुकी दयासे भिन्न-भिन्न बिलगा करके अलग-अलग करके मैं तुम्हें कहकर सुनाता हूँ ! हे जिज्ञासु नरजीवो ! तुम सब जने चित्त लगा करके सुनो ! और मनमें गुनो ! तथा निर्णयको ग्रहण करो ! भ्रमको त्याग करो ! तहाँ पिण्ड=शरीरमें मुख्य एक वायुसे ही इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन प्रकारकी नाड़ियाँ हुईं वे ही तीन वायु मानी गई हैं; और व्यान, समानादि पाँच पिण्डकी वायु तथा धनञ्जय, कृकलादि पाँच ब्रह्माण्डकी वायु, यह दोनों मिला करके दश वायु हुईं, उसमें और तीन नाड़ियाँ मिला करके सब तेरह प्रकारकी वायु तहाँ उत्पन्न किया है। इन्हीं सबको साधना करके समाधि लगानेके लिये योग मार्गादि साधना निकाला है; सो तो महाजाल उपाधि ही है। उससे जीवका कोई कल्याण नहीं होता है। इसलिये उसका यथार्थ भेद जानकर उस कल्पनाको छोड़ देना चाहिये ॥ ५८३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २४ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. दश वायु दश बाजा बाजै ❀ शब्द अनाहद सोई गाजै ॥ ५८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अपान, समान आदि पिण्ड कलाकी पाँच वायु और देवदत्त, नाग आदि ब्रह्माण्ड कलाकी पाँच वायु, यह दोनों मिला करके दश तरहकी वायु हुईं। इन्हींके वेगसे भ्रमरगुफा ब्रह्माण्ड मध्यमें दश प्रकारकी बाजाएँ बज रही हैं। मधुर-मधुर ध्वनियोंसे दुन्दुभी, भेरी, घण्टा, शङ्ख, मृदङ्ग, झाँझ, सहनाई, वीणा, सितार और बाँसुरीके समान अपने-आप दश बजाएँ बज रही हैं। सोई गर्जन गुप्त-ध्वनिको अनाहद् शब्द कहते हैं। कोई उसे ही बेहद शब्द ब्रह्म करके भी मानते हैं। योगीलोग कानको ठेड़ियोंसे बन्द करके वा अंगुलियोंसे मूँदकर लक्ष्य लगा करके उसी ध्वनिको सुनकर मस्त रहते हैं। वह जड़ वायु-का ध्वनि सूक्ष्म शब्द है। उसे ही सार मानकर योगीलोग जड़ाभ्यासी बद्ध हुए हैं। कोई 'अहं ब्रह्मास्मि' वा 'प्रणवोऽहं' कहकर गर्जनाकर धोखेमें भूले पड़े हैं ॥ ५८४ ॥

२. झीनी पाँच सो पुरुष सनेही * मोटी पाँच मायाकी देही ॥ ५८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पुरुष=ब्रह्मके स्नेहरूप अंश भागसे धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग और देवदत्त, सो यही पाँच झीनी वायुकी उत्पत्ति माना है। उसीप्रकार देहमें व्यान, समानादि पाँचों मोटी वायु मायाकी देहीका अंशरूप मोटी मायाके भागमें माना है ॥ ५८५ ॥

३. प्राण अपान औ व्यान समाना * पचयें वायु है सोइ उदाना ॥ ५८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यहाँ देहमें पिण्डकी कला पाँच वायुका नाम बतलाया जाता हैः— १. प्राण। २. अपान। ३. व्यान। ४. समान। और ५. पचयें वायु उदान है; सो यही वायु पिण्डकी स्थूल शरीरमें रह करके पाँच कार्यको सदैव किया करती हैं। अब उन्होंके स्थान तथा कार्य विवरण भी कहा जाता है, सो सुनिये ! ॥ ५८६ ॥

४. हृदय प्राण है गुदा अपाना * नाभि समान कण्ठ उदाना ॥ ५८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कहा भी हैः— श्लोकः— "हृदेप्राण गुदेपान समानो-नाभिमण्डलेः ॥ उदानकण्ठदेशस्यात् व्यानः सर्व शरीरगः ॥"—अमरकोश ॥— अर्थात् प्रथम हृदयस्थान-के मध्यमें प्राणवायु रहती है। प्राणको ही निरञ्जन या उसका अंशरूपमें माना है। दिन-रात चौबीसों घण्टोंमें इकईस हजार छः सौ श्वास उच्छ्वासकी गतिसे प्राणवायु चलती रहती है, ऐसा अनुमान या अन्दाजा किया है। दूसरी गुदास्थानमें अपानवायु रहती है, इसे ब्रह्माका अंश माना है। मल-मूत्र-का त्याग कराना इसका कर्म है। अपानवायु भङ्गीके समान मलको साफ करती रहती है। तीसरी नाभिस्थानमें समानवायु रहती है, इसे महेशका अंश माना है। इसका कार्य खाया हुआ अन्न-जलादिको नाभिमें कोल्हूवत् दबा कर औंटा करके उसका रसरूप रक्त नव नाड़ियों द्वारा सर्व शरीरभरके अन्य नाड़ियों तक फैला कर पहुँचा देना है। जिससे शरीर प्रफुल्लित बना रहता है। मालीके समान यह वायु कार्य करती रहती है। जैसे माली विरुवा वा वृक्षोंको सींच करके सर्व झाड़ोंको हरा-प्रफुल्लित रखता है। तैसे ही समानवायु नाड़ियोंको सींचकर बलिष्ठ रखती है। और चौथी कण्ठस्थानमें उदानवायुका निवास रहता है; इसे विष्णुका अंश माना है। इसका कार्य एक-साथ खाया हुआ अन्न-जलको भी कण्ठमेंकी नाड़ियों द्वारा छान-छान करके अन्नको बायीं तरफ तथा जलको दाहिनी तरफके कोठी-अङ्गमें पहुँचा देना है। हितानाड़ी द्वारा स्वप्नादि दिखानेमें भी मदद देती रहती है। ऐसी चारवायुओंका ऊपर वर्णन हुआ है ॥ ५८७ ॥

५. सर्व शरीर व्यापै सो व्याना * पाँचों पाँच तहाँ परधाना ॥ ५८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पाँचवाँ व्यानवायु सर्व शरीरमें फैली हुई ही रहती है। इसको मायाका अंश माना है। सर्व शरीर भरके नसोंमें दौड़ती हुई देहके सब जोड़ोंको फिरा करके पैरसे शिरतक रक्त लेकर दौड़ते रहना, वह यही कार्य करती है। इसप्रकार पाँचों वायु तहाँ पिण्ड=शरीरमें प्रधान या मुख्यरूपसे पाँच कार्य पाँच स्थान विशेषमें रहकर कर रही हैं। उनमें सत्ता चैतन्य जीवकी रहती है। जीवके बिना तो दशों वायु जड़ हैं, कोई कार्य मुर्दा देहमें वे वायु नहीं कर सकती हैं। अतएव वायुकी मानन्दी छोड़कर चैतन्य जीव स्वरूपकी स्थिति करनी चाहिये ॥ ५८८ ॥

६. अज अपान है हरि उदाना * शिव समान माया सो व्याना ॥ ५८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन्हीं पाँच वायुको गुरुवालोगोंने पाँच देवताओंके रूपमें भी माना है। सो इसप्रकार हैः— ब्रह्मा अपानवायुके स्वरूपमें है, अथवा उसीमें वह निवास करता है। विष्णु उदानवायुके स्वरूपमें है, अथवा उसीमें वह निवास करता है। महादेव समानवायुके स्वरूपमें है, अथवा उसीमें वह निवास करता है। मायाशक्ति सो व्यानवायुके स्वरूपमें है, अथवा उसीमें वह निवास किया करती है ॥ ५८९ ॥

७. प्राण निरञ्जन आपु कहावै * पाँच थूल वायु निरमावै ॥ ५९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पाँचवाँ प्राणवायु तो अपने-आप स्वयं निरञ्जन-परमात्माका स्वरूप कहलाती है, अथवा निरञ्जन प्राणमें ही निवास करता रहता है। इसके पश्चात् इसीतरह सूक्ष्म देहमें भी सूक्ष्म पाँच वायु भिन्न-भिन्न उत्पन्न हुई हैं, अथवा सूक्ष्म पाँच वायु उसीसे उत्पन्न होती हैं। सो भी स्थूल देहमें आ करके ही प्रगट होती हैं, तब अपना-अपना कार्य करने लगती हैं ॥ ५९० ॥

८. कूर्म नाग किङ्किरा धनञ्जै * देवदत्त सोई पाँच भनीजै ॥ ५९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देहमें ब्रह्माण्ड कलाकी पाँच वायुके नाम यहाँ पहले बता करते फिर उनके कार्य आदि बतलाया जाता हैः— १. धनञ्जयवायु। २. कृकल या किङ्किरा वायु। ३. कूर्मवायु। ४. नागवायु। और ५. देवदत्त वायु; ये ही ब्रह्माण्डकी झीनी पाँच वायु कहलाती हैं। अब इन्होंका देहमें वासस्थान तथा उनसे होनेवाला काम और उनमें भी पाँच देवताओंके बासा जो-जो गुरुवालोगोंने माना है, सो नीचेकी चौपाइयोंमें वर्णन करके परखाया है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा जड़-चैतन्यका भेद सत्यासत्यका निर्णय करके यथार्थ जान लेना चाहिये ॥ ५९१ ॥

९. वायु नाग उदगार स्वभाऊ * वायु कूर्म नेत्रके दाऊ ॥ ५९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! नागवायुके स्वाभाविक कर्मसे ही उदगार या डकार आती है। जलतत्त्वका अंश इस वायुमें ज्यादा मिला रहता है। कण्ठके ऊपरी भागमें यह निवास करती रहती है। कभी हिचकी भी कराती है। और कूर्मवायुकी स्वाभाविक शक्तिसे ही नेत्रोंकी दोनों पलकें बराबर आप-ही-आप खुलती और ढकती रहती हैं। विशेष करके अग्नि-तत्त्वका अंश इस वायुमें मिला रहता है। नेत्रोंके भीतरी भागमें पलकोंके पास यह कूर्मवायु रहती है। नेत्रोंको साफ रखना ही इसका दाव है। कभी-कभी आँसू भी गिरा देती है। नेत्रोंके मध्यसे कचरा आदिको हटा करके बगल कर देती है ॥ ५९२ ॥

१०. किङ्किरा सो चमकावन करई * देवदत्त जेहि बल पगु धरई ॥ ५९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! किङ्किरा या कृकलवायुकी शक्ति स्वाभाविक वेगसे ही शरीरमें चमक उठती है, छींक आती है। सो वायु नासिकाके भीतरी भागमें रहती है। समय-समयपर चमकावन करती रहती है। इस वायुमें चञ्चलवायु तत्त्वका विशेष अंश मौजूद रहता है। कभी शरीरमें झन-झन भी कराती है। और देवदत्तवायुकी शक्तिसे पैर बलिष्ठ रहते हैं। जिससे पैरमें चलने-फिरनेका बल या ताकत रखती है। और इसीकी स्वाभाविक शक्तिसे ही जम्भाई भी आती है। इसवायुमें पृथ्वीतत्त्वका अंश विशेष करके रहता है। पैर और मुख स्थानमें देवदत्तवायु रहती है। बोलने और चलनेमें भी यह मदद करती रहती है ॥ ५९३ ॥

११. धनञ्जय बल साधनके पावै * काया बिगुर्चन बहुविधि लावै ॥ ५९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! धनञ्जयवायुकी शक्तिसे ही शरीर बलवान् रहता है, तथा योग साधनाएँ ध्यान, धारणा करनेमें और समाधि लगानेमें भी इस वायुसे बल प्राप्त होता है। साधना पा करके इसमें और भी बल बढ़ जाता है; यह वायु शक्ति देती है। यह धनञ्जयवायु आकाशतत्त्वरूप समान वायुका अंश है। शरीरभरमें समानरूपसे ही रहती है। इसके स्वभावसे सूजन होती है, तथा मृत्यु होनेपर बादमें सारे शरीरको फुलाकर तब वह निकल जाती है। इसतरहसे झीनी पञ्चवायु देहमें भिन्न-भिन्न ही कार्य कर रही हैं। यह काया क्या है ? एक प्रकारके बिगुर्चा=धोखेकी टट्टी, बनावटी, नकली पुतला है, बिगड़नेवाली है। सो क्षण-क्षणमें बिगड़ भी रही है। परन्तु, ज्ञानी-अज्ञानियोंने उसी काया-माया, वाणी, विषयादिमें प्रेम, आसक्ति लगा करके बहुत प्रकारसे धोखेमें

ही मन लगा रहे हैं। लौ लगा करके बहुत-बहुत योगादि साधनाओंमें लगे वा लगा रहे हैं। परन्तु, चैतन्य स्वरूपकी स्थिति न होनेसे सब भवधारामें गोता खा रहे हैं ॥ ५९४ ॥

साखीः— बल विशेष सब साधना * आपु धनञ्जय सोय ॥
[१३३] जतन विविधि तेहि लाइके * योग अभ्यासी होय ॥ ५९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यम-नियमादि रख करके शम-दमादि सम्पन्न होकर बराबर योग साधना करनेवालोंको सोई धनञ्जय वायु आप ही योग साधनामें विशेष बल देती हैं, स्फूर्ति देकर शक्ति बढ़ाती है। योगानन्द प्राप्ति करनेमें समानरूपसे सहायता करती है। ऐसा मान करके योगी लोग अनेक प्रकारसे प्रयत्न करने लगे, तहाँ-नेती, धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जलादि क्रिया साधना करनेमें विविधि प्रकारसे मन, लक्ष्य लगा करके अष्टाङ्ग योगके अभ्यासी साधक-सिद्ध हुए और हो रहे हैं। बिना पारख उसी शून्यमें गाफिल हुए या शून्य गाफिल होते जा रहे हैं॥ ५९५ ॥

साखीः— बड़ उतपात उत्पातिके * कला लखैं नहिं जीव ॥
[१३४] सदा रहें लौलीन तेहि * कबधौं मिलहिंगे पीव ॥ ५९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बड़े उपद्रवी या उपाधिखोर इन भ्रमिक गुरुवा-लोगोंने संसारमें बड़ा उत्पात, धूम, झंझट, उपाधि, प्रपञ्च, मत, पन्थ, ग्रन्थादिके पाखण्ड उत्पन्न करके फैलाकर सब मनुष्योंको उसमें फँसा दिये हैं। जीव तो सब पहलेसे ही अज्ञानी, मूढ़ बने हैं। उन्हें सत्यासत्यका कुछ बोध तो नहीं है। इससे खानी-वाणी बन्धनकी कला अबोध नरजीव सो कुछ नहीं लखते हैं, जानते-समझते भी नहीं हैं। कोई तो उसी विषय प्रपञ्च भोगमें ही तल्लीन हो रहे हैं। कोई सदा-सर्वदा भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना साधनाएँ करके उसी अनुमान, कल्पना, धोखेमें ही लक्ष्य लगाकर लौलीन हुए या हो रहे हैं। कल्पनासे अपने ऊपर ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि कोई एक मालिक, पिया, पति, परमात्मादिको मानकर उस तरफ लक्ष्य लगा करके- "हमारा कब भाग खुलेगा ? भला ! कब पिया परमेश्वर मिलेंगे ? हमें दर्शन देकर कब अपनेमें मिलायेंगे ? " इत्यादि आशा, वासना लगाकर भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए और हो ही रहे हैं। पिया-पिया, ईश्वर-ईश्वरका रटन करके धोखेमें पड़े भटक रहे हैं; बिना पारख दुर्दशा ग्रस्त हो रहे हैं॥५९६॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग—२५ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. आपन आपन भाग देखावै * जहाँ तहाँ पाँच कला होय धावै ॥ ५९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच तत्त्वका एक भाग ब्रह्माण्डमें, दूसरा कार्य भाग पिण्डमें देखनेमें आता है। कारणरूपसे ब्रह्माण्ड और कार्यरूपसे पिण्ड बना है। तहाँ भीतर-बाहर स्थूल-सूक्ष्मरूपसे तत्त्व-प्रकृति अपने-अपने भागको ही प्रगट करके दिखलाते हैं। जहाँ-तहाँ देहके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें वही पाँच कला, कार्य, विषय होकर दौड़ लगाते रहते हैं। अथवा गुरुवालोग अपने-अपने मत-पन्थके भागको ही श्रेष्ठ कहकर दिखलाते हैं। जहाँ-तहाँ दौड़े जाते हैं। पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सब ठिकाने पाँच देवताओंके वासाकी कलाको ही कल्पना करके बतलाते हैं। सो यहाँ भी पाँच झीनी वायुको पाँच देवताओंके रूपमें माना है। सो उसका प्रकार नीचे वर्णन किया है—॥ ५९७ ॥

२. ब्रह्मा नाग हरि कूर्म होई * किङ्किरा हर चमकावै सोई ॥ ५९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नागवायु जो है, सो ब्रह्माका रूप है। इससे वेदका योग मार्ग प्रगट हुआ, ऐसा कहा है। इसी वायुके आधारसे जीभ उलटा करके योगीजन लारको अमृत मानकर चाखते हैं; उसे ही अमृतपान करना मानकर रस विषयमें बन्धे हैं। और कूर्म वायुको विष्णुका स्वरूप माना है। वेदसे उपासनामार्ग इसीसे प्रगट हुआ है, ऐसा कहा है। ब्रह्माण्डमें

ज्योति प्रकाश देखकर उसे परमतत्त्व-परमात्मा मानकर योगी लोग रूप विषयमें भी भूले हैं। और किङ्किरा वायुको महादेवके रूपमें माना है। इससे वेदका ज्ञानमार्ग प्रगट हुआ, ऐसा कहा है। मस्तकमें श्वास चढ़ा करके योगी लोग वहाँ कमल स्पर्शके आनन्दमें गाफिल हो स्पर्श विषयाध्यासी होते हैं। और जैसे कृकल वायुसे चमक या छींक आती है। तैसे ही योगीलोग वाणी कल्पना आदिको ही चमकाते रहते हैं॥ ५९८॥

३. देवदत्त माया परधाना * धनञ्जयरूप आपु भगवाना॥ ५९९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देवदत्त वायुको प्रधान करके माया शक्तिके रूपमें माना है। वेदका कर्ममार्ग इसीसे प्रगटा, ऐसा कहा है। इसी वायुके सङ्ग करके योगीजन सहस्र-दल कमलकी सुगन्धमें भँवरावत् लुब्ध, अन्धाधुन्ध गन्ध विषयमें गाफिल पड़े रहते हैं। और धनञ्जय वायुको तो आप ही भगवान्का स्वरूप निरञ्जन परमात्मा करके माना है। इससे वेदका विज्ञानमार्ग प्रगटा, ऐसा कहा है। इसी वायुमें मिल करके मस्तकमें श्वास चढ़ा कर दश नाद अनहद ध्वनि योगी लोग सुनते हैं; सो शब्द विषयमें आसक्त होकर भूले हैं॥ ५९९॥

४. तीन शक्तिकी अंशी बाई * पूरक रेचक कुम्भक लाई॥ ६००॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उक्त दश (१०) वायुके अथवा माया शक्तिके तीन अंशसे देहमें त्रिविधि वायु और बनीं, सो इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन नाड़ीके रूपमें प्रगट हुईं। उसीमें मन लगा करके प्राणायामकी तीन क्रिया निकाला है; सो पूरक, कुम्भक और रेचक अभ्यास करनेमें गुरुवालोग आप भी लगे तथा और को भी लगा रहे हैं॥ ६००॥

५. लेत कछु पूरक गहि लेई * अज हितकारी कहावै तेई॥ ६०१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! नासापुटको हाथसे पकड़ करके दाहिना छिद्रको दबाकर बायाँ छिद्रसे इङ्गला नाड़ीको कुछ धीरे-धीरे पकड़ करके श्वासको खींचकर ऊपर चढ़ा लेना; इसको पूरक क्रिया कहते हैं। पूरकके देवता ब्रह्मा, सृष्टि उत्पन्न कर्त्ता सबके हितकारी कहलाते हैं। उन्हें देहका हित करनेवाला सुखदायी भी कहा है॥ ६०१॥

६. रेचक सो जो छोड़े बाई * विष्णु आप तेहि माँह समाई॥ ६०२॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! रेचक क्रिया सोई है— जो पहले खींची हुई श्वास वायुको बायाँ छिद्र दबा करके दहिना छिद्र द्वारा धीरे-धीरे बाहर छोड़े; पिङ्गला वायुको बाहर निकाल देवे। उसी रेचकमें विष्णु आप ही आकर समा करके रहता है। तथा उसके सबका पालन करता रहता है; उसीसे देहकी भी रक्षा हो रही है। उसीमें सत्त्वगुण समाया है, ऐसा कहा है॥ ६०२॥

७. कुम्भक सो जो गहिके रहई * सुषुमना अंश शङ्कर सो लहई॥ ६०३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कुम्भक क्रिया सोई है या उसीको कहते हैं कि, जो श्वास खींच लेवें, तब ईड़ा-पिङ्गला दोनों नाड़ियोंको पकड़कर सुषुम्नामें तराजूवत् बीचमें गहिके रोक रक्खे। नाकके दोनों छिद्र दबा करके बन्द करके वायुको ऊपर ही ठहरा रखना, इसीको कुम्भक कहा है। इसके देवता महादेवको सृष्टिका विनाशकर्त्ता माना है। शङ्करका अंश सुषुम्ना नाड़ी है, सो इसके चलते रहनेसे देह भी विनाशको प्राप्त होता है। इसलिये पहलेसे ही रुकावट कर रखना चाहिये, ऐसा माना है॥ ६०३॥

८. चहत कहत पुनि ताहि नशावै * होत प्रगट तेहि तहाँ छुपावै॥ ६०४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! योगी लोग कहते हैं— हे भक्तो! यदि तुम लोग परमानन्द चाहते हो, तो फिर योग विधिसे बाह्य लक्ष्य और श्वासको लय करके नशा दो। यदि कभी बाहर लक्ष्य प्रगट हुआ, तो उसको तहाँ भीतर ब्रह्माण्डमें ले जाकर छिपा दो; गुप्त या लय कर दो। तब योगानन्द चाहनेवाले लोग ॐ, सोहं आदि नाम-स्मरण करते हुए फिर उसे भी

अन्तमें नशा करके शून्य होते हैं। यदि कभी वृत्ति बाहर प्रगट हुई, तो फिर उसी तरह ब्रह्माण्डमें उसे छिपा करके शून्य वृत्ति कर लेते हैं ॥ ६०४ ॥

९. प्रगटत पालन अन्त नशावै ❀ तीन तीन अंश युगल देखावै ॥ ६०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उत्पत्ति, पालन करके अन्तमें प्रलय करके नशा देते हैं। इङ्गलादि तीन मायाके अंशसे हुईं, और पूरकादि तीन पुरुषके अंशसे हुए, एक श्वासमें ही स्त्री-पुरुष दोनोंके तीन-तीन अंश मिला करके छः अंश प्रगट हुए, ऐसे कल्पनासे दिखलाया है। ब्रह्मादि तीन उत्पत्ति, पालनादि करके अन्तमें सब-सृष्टिको नशा देते हैं, ऐसा बतलाया है ॥ ६०५ ॥

१०. षट सो कला जगत परचारी ❀ तीनि तीनि अंश पुरुष औ नारी ॥ ६०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकारसे गुरुवालोगोंने सोई षट् भागकी षट् कला कल्पना करके जगत्में प्रचार कर फैला रक्खा है। तहाँ रज, सत्त्व और तम, ये तीन भाग पुरुषके अंशसे प्रगट हुए; काम, क्रोध, और मोह, ये तीन स्त्रीके अंशसे बने। अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन पुरुषोंके अंशसे देहमें पूरक, रेचक और कुम्भक क्रमशः प्रगट होते हैं। उसमें तीन गुण साथ ही लगा रहता है। और उन्हीं ब्रह्मादिकी मुख्य तीन स्त्रियाँ सावित्री, लक्ष्मी, और पार्वती इनके तीनअंशसे क्रमशः इङ्गला, पिङ्गला, और सुषुम्ना, ये तीन नाड़ियाँ उत्पन्न हुई हैं। सोई षट्कला मिल करके जगत्की उत्पत्ति, पालन, और प्रलय होता रहता है; इत्यादि कल्पनाके कथन गुरुवालोगोंने संसारमें प्रचार किया है। उसे परख करके जानना चाहिये। इसी तरह तीन नाड़ी, तीन प्राणायाम, तीन लिङ्ग आदि भी त्रिदेव और त्रिदेवी वे ही नारी-पुरुषोंके तीन-तीन-अंशसे उत्पन्न हुए, ऐसा कहकर षड्दर्शनोंने अनेक कला-कल्पनाका प्रचार कर रक्खा है; धोखेमें ही डाल रक्खा है ॥ ६०६ ॥

साखीः— षट ऊर्मी षट रस पुनी ❀ षट दर्शन षट कर्म ॥

[१३५] षट शास्त्र षट ऋतु सो ❀ षट ब्रह्माके धर्म ॥ ६०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! नारी-पुरुषके तीन-तीन अंश मिलकर छैः भाग हुए हैं, ऐसा जो ऊपर कहा है, सोई माया प्रकृतिके षट्-षट् अङ्गोंका वर्णन अब यहाँपर दिखलाया जाता है। देह सम्बन्धसे होनेवाले छैः विकारको ही षट्ऊर्मि कहते हैं। तहाँ जन्म और मरण, ये दो ऊर्मि स्थूल देहके विकार हैं। भूख-प्यास, ये दो ऊर्मि प्राणरूप सूक्ष्म देहके विकार हैं। और शोक-मोह, ये दो ऊर्मि मनरूप कारण देहके विकार हैं। इसमें जन्म, भूख, मोह, ये तीन मायाके अंशसे होते हैं, तथा मरण, प्यास, शोक, ये तीन पुरुषके अंशसे माना है। षट् रसमें— खट्टा, मीठा, कड़ुवा, तीखा, कषाय और खारा होते हैं। तिसमें जलका मुख्य मधुर रस है। बाकी अन्य तत्त्वोंसे मिश्रित होनेसे होता है। इसमें पहलेके तीन नारीके अंशसे, पीछेके तीन पुरुषके अंशसे कहा है। और षट्रसमें षड्दर्शनोंके षट् जाप भी माना है; फिर तैसे ही षट् दर्शन भी हुए है। योगी, जङ्गम, जैन, संन्यासी, दर्वेश या फकीर और ब्रह्मचारी ब्राह्मण, ये उन्होंके नाम हैं। इनमें भी प्रथम तीन मायाके अंशमें और पीछेके तीन पुरुषके अंशमें कहा है। ब्राह्मणोंका मुख्य षट्कर्मोंके अधिकार माना है, सोः— यजन (यज्ञ करना), याजन (यज्ञ कराना), अध्ययन (वेद पढ़ना), अध्यापन (त्रिवर्णको वेद पढ़ाना), दान देना और प्रतिग्रह (दान लेना), यही षट् कर्मोंका प्रचार कर रक्खे हैं। इसमें- यजन, अध्ययन, दान, ये तीन मायाके अंशसे, बाकीके तीन पुरुषके अंशसे कहा है। और षट् शास्त्रमेंः— मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त बना करके फैलाये हैं। उनमें भी पहलेके तीन मायाके भागमें हैं, पीछेके तीन पुरुषके भागमें कहा है। एक वर्षमें छः ऋतु होते हैं, एक ऋतुमें दो महीना माना है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर, सो ये ही षट् ऋतुओंके नाम हैं। और ब्रह्मारूप ब्राह्मणोंका नित्य करनेके षट्कर्मरूप धर्म ऐसा कहा हैः— स्नान, सन्ध्या, तर्पण, जप, पूजा और होम, सदा करते रहना चाहिये, इसीसे स्वधर्मका

पालन होता है, ऐसा ब्राह्मणोंने कहा है कि, ब्रह्माने ही धर्मके लिये यह छः सीढ़ी लगाया है। इससे चलने वा चढ़नेवाला धर्मात्मा होता है, ऐसा बतलाया है ॥ ६०७ ॥

साखीः— षट दक्षिणायन सोई कला * उत्तरायण षट मास ॥
[१३६] षट सब भेषहि जानिये * युगल अंश परकाश ॥ ६०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसीप्रकार विद्वान् ज्योतिषियोंने सोई ज्यौतिष विद्याका कला-कौशल शोध-बोध विचार द्वारा ग्रह, नक्षत्रोंकी गणित करके यह बात निश्चय किया है कि, एक वर्षके बारह महीनोंमें सूर्य छः महीनों तक दक्षिणायन तरफ रहता है। सो आधे श्रावणसे या कर्कट राशिसे आधे माघ तकके छः महीनों तक सूर्य दक्षिणमुख रहता है। और फिर आधे माघसे आधे श्रावण महीना तक सूर्य मकर राशिसे बढ़ते हुए छः महीनों तक उत्तरायणकी तरफ रहता है। तहाँ पृथ्वीके घूमनेका प्रथम दिन ईसवीसन्के तारीख २२ मार्चसे हरवर्ष प्रारम्भ होता है, ऐसा अनुमान लगाया गया है। [इस बारेमें विशेष जाननेके लिये "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन ग्रन्थ" देखना चाहिये।] और संसारमें सब मनुष्योंके भेष भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास, ये चार आश्रम हिन्दुओंमें माना है। सुनी और शिया, ऐसे दो आश्रम मुस्लिमोंमें मानकर दोनों मिलाकर षट् आश्रमोंके रूपमें ही प्रगट हुआ है। अथवा षट् दर्शनोंका षट् भेष प्रसिद्ध ही है। और षट् सिद्धान्त, षट् प्रमाण, षट् ऐश्वर्य, षट् राग, षट् पशु धर्म इत्यादि सब षट्-षट् प्रकारकी माया छैः-छैः अङ्गोंसे प्रकृति और पुरुष दोनोंकी तीन-तीन कलाएँ मिला करके अनेक ही भेदसे हुई हैं। सोई गुरुवालोगोंने युगल अंशोंका प्रकाश करके माया जालोंमें मनुष्योंको भुला रक्खा है। और षट् प्रकारकी स्त्रियाँ तथा षट् प्रकारके पुरुषोंके भेद भी माना हुआ है। यह सब ही जञ्जाल नरजीवोंको महाबन्धन ही दे रहा है। सो उसे परख करके निरुवार कर लेना चाहिये; और सबसे न्यारा हो निज चैतन्य स्वरूपमें स्थिति करनी चाहिये। स्त्री-पुरुषोंके षट् जालोंमें कभी बन्धा नहीं रहना चाहिये, परख-कर पृथक् होना चाहिये ॥ ६०८ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २६ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. बड़ खट खट सोई षटके होई * परखै छूटै बिरला कोई ॥ ६०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सो वही षट् प्रकारके वाणी-खानी, माया जालोंके मध्यमें बड़ा ही खट्-खट्, झंझट, उपाधि, रगड़ा-झगड़ा, प्रपञ्च, परेशानी, महान जञ्जाल-का बन्धन ही दृढ़ होता रहता है। छूटनेको वह अत्यन्त कठिन हो गया है। सहजमें कोई छूट नहीं पाते हैं। कोई बिरले ही जिज्ञासु पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर सकल काल-जालोंको परखकर सद्गुरुकी दयासे पारख बोध पाकर उस षट्के खट्-खट्से छूट गये या छूट जावेंगे। पारखी सन्त सब बन्धनोंसे छूटे हुए हैं; वे ही सब भेदको परखते-परखाते हैं ॥ ६०९ ॥

२. बहु परपञ्च पिण्ड ब्रह्मण्डा * नहिं सुख, दुःख कलेश प्रचण्डा ॥ ६१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पञ्चविषयोंके बहुत प्रपञ्च— स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज, काज, नाता, गोता इत्यादि पिण्ड=स्थूलदेह सम्बन्धी खानी जाल है, और ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवता, स्वर्गादि ऋद्धि-सिद्धि करामात वाणी-कल्पना, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि ब्रह्माण्डरूप पञ्चकोशोंका वाणीजाल प्रपञ्चका विस्तार बहुत हो गया है। उसमें वास्तवमें सच्चा सुख तो कुछ भी नहीं है। परन्तु, विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिको सुख, आनन्द मान-मानकर तदासक्त हुए हैं। और उसी आनन्द भोगकी चाहनासे नाना मिहनत-मजदूरीका दुःख और योग, जप, तपादि साधनाओंका दुःख, कष्ट-क्लेश ही प्रचण्ड=तीव्र या तीक्ष्णतासे पाये हैं। फिर अभ्यासवश चौरासी योनियोंमें जाकर प्रचण्ड क्लेश त्रिविधि तापादिमें दुःख ही भोगे तथा दुःख भोग ही रहे हैं; तथापि उसे नहीं छोड़ते हैं ॥ ६१० ॥

३. रचि अस्थूल कला बहु भारी * अष्ट अङ्गको भेद सँवारी ॥ ६११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्थूलदेहमें स्थूल कलाकी कल्पना भी बड़ी भारी रचना करके टिका रक्खे हैं। जिससे बार-बार स्थूलकी ही रचना कलाका ही विस्तार होता रहता है। देहमें मुख्य बाह्य आठ अङ्गोंका भेद या विभेद न्यारा-न्यारा करके बनाया है या माना है। सो यह है कि:— शिर, हृदय, पीठ, हाथ, नाभि, लिङ्ग, गुदा और पैर, ये आठ अङ्ग पसार करके पृथ्वीमें लम्बा दण्डके समान होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं। ऐसे अष्ट अङ्गोंका भेद बना रक्खे हैं ॥ ६११ ॥

४. मस्तक आप निरञ्जन राया * अङ्ग सात सोई प्रति माया ॥ ६१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसमें मस्तकरूप शिरका भाग आप महाराज निरञ्जन-परमात्माके हिस्सामें माना है; और बाकीके सात अङ्ग सब ही महारानी आदि मायाके प्रति हिस्सामें आया, ऐसा वर्णन या प्रतिपादन किया है ॥ ६१२ ॥

५. अतल वितल सुतल निर्माई * तलातल रसातल तल प्रगटाई ॥ ६१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब सात पातालोंके नाम सुनियेः— १. अतल। २. वितल। ३. सुतल। इन तीनोंको बनाकर या बनानेके बादमें फिर ४. तलातल। ५. रसातल। ६. तल; ऐसे नामके और तीन लोकको नीचे बनाकर प्रगट किया या उत्पन्न किया है ॥ ६१३ ॥

६. सतयें सो पाताल बनाई * पारवती मारग उरमाई ॥ ६१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सतयें सो आखीरमें सबसे नीचे ७. पाताल नामक लोकको बनाया है। यह सात पाताल पिण्ड तथा ब्रह्माण्डमें एक समान कल्पना करके माना है। कहते हैं, ये सात पातालोंको गमन या भेदन करके आगे बढ़नेके योगमार्गको पार्वतीने साधना करके पहले उत्पन्न की है। फिर पार्वतीसे गणेश उत्पन्न हुआ, तो वह युक्ति उसने गणेशको सिखा दी। बादमें गणेश क्रियाके नामसे वह प्रसिद्ध हुई। उन सप्त पातालोंको पिण्डमें जिस प्रकार माना है, सो सुनिये ! गुदास्थानमें पाताल लोक कहा है; वहाँ गणेशजी ससैन्य निवास करते रहते हैं, ऐसा माना है ॥ ६१४ ॥

७. शङ्कर पीठ तेहि तल नामा * नारी पुरुष दोउ ढिग विश्रामा ॥ ६१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे ही तल नामका लोक पीठ स्थानमें कहा है; तेहि=उस जगहपर शङ्करजी परिवार सहित रहते हैं। और उसीके नजदीक या पास-पासमें नारी=पार्वती तथा पुरुष=शिवजी ये दोनों भोग-विलास करते हुए सदा विश्राम करते रहते हैं, ऐसा माना है ॥ ६१५ ॥

८. अतल हरि सो बाहु कहावै * तलातल पगु लक्ष्मीको धावै ॥ ६१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'अतल' नामका लोक शरीरमें बाहु या हस्त स्थानमें कहलाता है। वहाँपर हरिरूप विष्णुका निवास माना है। तथा 'तलातल' नामका लोक देहमें पैर या पग स्थानपर जहाँ लक्ष्मी देवीका निवास कहा है। इसीसे पैर सब शरीरका बोझा उठा करके चलता-फिरता, दौड़ता है, वह लक्ष्मीकी शक्ति है; इन दोनोंका सदा सम्बन्ध बना रहता है, ऐसा माना है ॥ ६१६ ॥

९. छाती वितल सो अज परवाना * पेट सुतल सावित्री थाना ॥ ६१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'वितल' नामका लोक कायामें छाती स्थानमें ठहराकर सो वहाँपर ब्रह्माका बासा होनेका प्रमाण किया है, तथा 'सुतल' नामका लोक देहमें पेटके ठिकाने जठर स्थानमें अनुमान करके वहाँपर सावित्री देवीका निवास माना है। और इन दोनोंका सदाकाल सम्बन्ध-मिलाप रहता है, ऐसा कहा है ॥ ६१७ ॥

१०. पेडु रसातल आदि भवानी * पृथिवी सात सोई परवानी ॥ ६१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'रसातल' नामके लोक देहमें पेडूस्थानके ठिकाने भग वा लिङ्गके स्थानमें ठहराकर वहाँपर आदिभवानी, भगवती, महामायारूपिणी आदिशक्तिका निवास माना है, यहाँ सदा शिव-शक्ति दोनोंकी सम्बन्ध-मिलाप होता रहता है, ऐसा कहा है। इसप्रकार पृथ्वीके नीचे सात पाताल बाहरमें कहा है; तथा स्थूल देहमें शिर-कण्ठके नीचे ही सात अङ्गोंमें सात पाताल ठहरा करके सोई गुरुवालोगोंने प्रमाण किया है। तैसे ही सात द्वीप आदि सात पृथ्वीके भागको मृत्युलोक भी माना है। देहान्त होनेपर यह सब तो छूट ही जाते हैं; परन्तु, अध्यासवश जीव गर्भवासमें ही चला जाता है। कोई भी लोक और देवता मानो, सो सब तो कल्पित हैं, अतः वे कोई भी जीवोंके रक्षक-सहायक नहीं होते हैं। क्योंकि, लोक, देवता, ब्रह्म-ईश्वरादि सब कल्पित भ्रम हैं। उनसे जीवोंका कुछ हित, मुक्ति, कल्याण नहीं होता है। अतः पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके सब कल्पनादिको त्याग कर देना चाहिये ॥ ६१८ ॥

साखीः— पेडू रसातल ताहिमें * लिङ्ग पुरुष परधान ॥
[१३७] नारि विशेषन मोहनी * भग अकार निर्मान ॥ ६१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! देहमें 'रसातल लोक' जहाँसे रस, मूत्र, रज, वीर्य नीचे गिरता रहता है, वह पेडू स्थानमें है, ऐसा ऊपर जो कहा है, सो उसीमें लिङ्ग स्थान पुरुष देहमें प्रधान या मुख्यरूपसे बना है। और मन-मोहिनी स्त्रीके मोहक अङ्ग-प्रत्यङ्ग बननेके साथ-साथमें विशेषरूपसे उनमें भग या योनिके आकारमें नारीका चिह्न बना हुआ है। उसीको देख करके और स्पर्श या भोग करके स्त्रीके रूपमें ही पामर-विषयी विषयासक्त पुरुषलोग विशेष करके मोहित हो चामके कीड़ेवत् हो जाते हैं। सदा भौंरेवत् स्त्री देहके विषयमें लुब्ध हो रहे हैं। फिर अध्याससे योनि द्वारा गर्भमें ही जाकर देह बनाकर पुनः भग द्वारा ही उत्पन्न होकर आते हैं। आसक्ति छूटना बड़ा कठिन हो गया है ॥ ६१९ ॥

साखीः— नारी मोहै पुरुषको * पुरुष वशी सो होय ॥
[१३८] बड़ी परस्पर लाग है * जीव विकल रहै रोय ॥ ६२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पुरुषोंको हरतरहसे स्त्री मोहित करती है। हाव, भाव, कटाक्ष दिखा करके, नखरा करके, रो करके, गा करके, हँस करके, नाच करके, डाँट-डपट धमकी बता करके, कोप-भवनमें प्रवेश करके, माया-जाल फैला करके, लिपट-झपट करके, सोलहों शृङ्गार बना करके, सुन्दरी मोहिनीका रूप धारण करके, अनेकों किश्मसे सब प्रकारसे पुरुषोंको अपनी तरफ खींच-खींचकर मोहनी लगाकर तन, मन, धन, बल, वीर्य, बुद्धि हरण करके इसप्रकार-से नारी पुरुषोंको मोहती है कि, जिससे विषयी पुरुष उस स्त्रीके सामने कुत्तेके समान वशीभूत लट्टू आसक्त हो जाते हैं। उल्लू बना करके पुरुषोंको विषय भोगके पिञ्जड़ामें डालती है, और नारी ही बन्दा बना करके पुरुषोंको अपने वशमें रख लेती है। नरपशु, स्त्रीपशु जन भी नारीके हुकम तामील करनेको क्रीतदासकी नाईं खड़े हाजिर रहते हैं। स्त्रीको ही प्रसन्न करनेके लिये अनेकों पाप कर्म भी कर लेते हैं। माता-पिता, गुरुजनोंको भी त्यागकर, अपमानकर स्त्रीको लेकर पुरुष अलग रहने लग जाते हैं। विषयी लोगोंकी इष्ट-देवी भगवती स्त्री ही बनी है। सुन्दर-सुन्दर कीमती वस्त्र, आभूषणादि उसी स्त्रीको पहनाकर मेवा-मिष्टान्न खिला-पिलाकर बन्दरवत् अपने उसके सन्मुख नाच करके नर्क कुण्डमें ही रचे-पचे हुए डूबे पड़े हैं। इसप्रकार नारी-पुरुषोंमें परस्पर बड़ा ही दृढ़ स्नेह, विषयोंका प्रेम, लौ लगी हुई है। एकके बिना दूसरेको क्षण भर भी चैन नहीं आता आता है। स्त्रीके विरह-वियोगकी व्यथामें व्याकुल हो करके पुरुष जीव रो रहे हैं। हाय प्रिये ! हाय प्राण-प्यारी ! हाय ! हाय ! करके चिल्लाकर कराह रहे हैं। तैसे ही पुरुषके बिना भी स्त्रीकी

दुर्गति हो रही है। तथा परिवारोंके पेट पालन गुजारा करनेके लिये मिहनत-मजदूरी, उद्योग-धन्धा करनेमें छल-कपटकर धन कमानेमें हैरान होकर रो रहे हैं। उसी विषयाध्यासवश देह छूटनेपर फिर चौरासी योनियोंमें जा करके जीव नाना दुःख पा करके व्याकुल हो रो रहे हैं; छटपटा रहे हैं। अतएव आयु रहते ही मनुष्य देहमें इस जहरीली स्त्री-सङ्ग विषयासक्तिको त्याग कर देना चाहिये। अथवा भक्तलोग गुरुवालोगोंको मोहित करते हैं, गुरुवालोग भी सो उनके ही वश होते हैं। उन दोनोंको परस्परमें बड़े प्रेमकी लाग=लगन लगी है। परन्तु, अध्यासी जीव दुःख पा करके विकल होकर रो रहे हैं; बिना पारख ॥ ६२० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २७ ॥ [चौपाई-१० । साखी-३ है] ॥ ❀ ॥

१. नारी होय पुरुष लौ लावै * पुरुष सदा नारीको धावै ॥ ६२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वके अतिशय ज्यादा विषय वासनावश जीव नारी हुए, सो स्त्रीका चोला धारण किये, तो फिर भी भोग करनेके लिये स्त्री, पुरुषमें लौ लगाती हैं, प्रेम आसक्ति प्रगट करती हैं। तैसे ही पुरुष भी भग-भोग करनेके लिये ही सदा-सर्वदा स्त्री को चाहते हैं, उसीका ध्यान करते हैं। स्त्रीके पीछे ही धाय-धाय करके दौड़े जाते हैं। अथवा वाणीमें नरजीव अनाड़ी हो करके कल्पनासे ईश्वरादि कोई पुरुष मानकर उसीमें लौ लगाते हैं, भक्त बनते हैं। जीव तो चैतन्य पुरुष है; परन्तु, कल्पनासे सदा वेदादि नारीरूपी वाणीको पकड़-पकड़कर धोखेका ध्यान करते हुए भ्रममें दौड़ते रहते हैं ॥ ६२१ ॥

२. मिलहिं परस्पर सुख अनुमानी * कठिन कलेश परे नहिं जानी ॥ ६२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें स्त्री-पुरुष जब परस्पर सम्भोग करके मिलते हैं, तब तो बड़े सुखका अनुमान या आनन्दका अनुभव करते हैं। परन्तु, उसी विषयाध्यासके कारण आगे छूटनेको अत्यन्त कठिन परिवारादिका महा क्लेश, कष्ट सहना पड़ेगा, यह परिणामको तो वे कुछ जानते ही नहीं हैं, और देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जन्मृतिका कठिन क्लेश भी भोगना ही पड़ेगा, सो भी उन्हें जान नहीं पड़ता है। अथवा गुरु-चेला दोनों भ्रमिकलोग जब अनुमान-कल्पनामें परस्पर मिलते हैं, तब ब्रह्म-ईश्वरादिको सच्चिदानन्द सुखरूप अनुमान करके भूलते हैं। किन्तु, कठिन साधनाका क्लेश सहकर भी सत्यासत्यका भेद कुछ जान नहीं पड़ा। आगे यही अध्यास जीवको कठिन जन्म-मरणादिका क्लेश भोगायगा, यह भी गुरुवालोगोंको बिना पारख नहीं जान पड़ा ॥६२२॥

३. गाँस भास दृढ़ रूप समाई * दुर्मति छिन छिन जीव बिलखाई ॥ ६२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्थूलदेहका जो रूप भासा वा दिखा, उसीमें नर-नारीकी विषय वासना दृढ़ होकर विषयरूपमें समायी, सोई अन्तःकरणमें बन्धनकी गाँठी पड़ी। उसीसे सुमति या सद्बुद्धिको दूर करके दुर्मति लोग अपने-पराये जीवोंको छिन-छिनमें बिलखाते, रुलाते, कष्ट देते और कष्ट पाते रहते हैं। अथवा और देहके भाव-अभावसे तत्त्वोंका भास, ज्योति प्रकाश, मानसिक मूर्ति, कल्पित रूप-रङ्ग, आकार-प्रकारमें मनको गाँस करके वा जोड़ करके या गाँठी बाँध करके दृढ़तासे उक्त रूपमें साधक भक्त, योगीलोग समाये हैं। दुर्मति=गुरुवालोगोंने बुद्धिको भ्रष्ट कर-कराके उसीको परमेश्वरकी निश्चय मानन्दी किये वा कराये हैं। बुद्धि भ्रष्ट करके दूर धोखेमें फँसाकर क्षण-क्षणमें जीवोंको बिलखाये हैं, भ्रमाय-भ्रमायकर नाना दुःख खिलाये हैं; उसीमें पड़ करके जीव रो रहे हैं ॥ ६२३ ॥

४. विरह वियोग सतावै भारी * कोउ बिन पुरुष कोउ बिन नारी ॥ ६२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें विषय भोगी पुरुषके बिना स्त्रियोंको और स्त्रीके बिना पुरुषोंको बड़ाभारी विरह, वियोग सता रहा है। कोई स्त्री तो पुरुषके बिना व्याकुल रहती है। कोई पुरुष भी स्त्री न पा करके अधीर दुःखी हो रहे हैं। किसीकी स्त्री वा पुरुष मर जानेसे या

कई अन्य कारणोंसे भी दुःखी रहते हैं। अथवा तैसे ही माना हुआ ईश्वर पुरुषकी महिमा सुन-सुन करके उससे मिलनेकी चाह बढ़ी, तो भक्तोंको बड़ा भारी विरह-वियोगका दुःख सताने लगा। वैरागी बनकर रामके वियोगमें व्याकुल हो रहे हैं। कल्पनासे कोईने परम पुरुष पति जो माना, सो रूप-रेखा बिना शून्य है, तो उसकी प्राप्तिके बिना भक्त साधक लोग दुःखी बने हैं। कोई ब्रह्मज्ञानी तो मन, बुद्धि, वाणीके परे ब्रह्मको बता करके धोखेमें दुःखित पड़े हैं; और कोई गुरुके बिना, तो कोई चेलाके बिना भी दुःखी-सन्तप्त हो रहे हैं; बिना विचार वाणी धारामें बह रहे हैं ॥ ६२४ ॥

५. पुरुष चहै अपने वशि नारी ❀ नारी अपनी दाव विचारी ॥ ६२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें विषयासक्त कामी पुरुष लोग तो यही चाहते हैं कि, हमारे ही वशमें स्त्री सदा रहे। जैसा हम चाहें, तैसा ही स्त्री किया करे। स्त्रीको अपने वश काबूमें कर दासी बना करके रखना चाहते हैं, उसके लिये नाना प्रयत्न करते हैं। तैसे ही स्त्री भी पुरुषोंसे क्या कम है ? वह पीछे क्यों हटेगी ? नारी भी तो अनेक दाव-पेंच, छल-कपट करके माया जाल स्त्रिया चरित्र फैला करके पुरुषोंको अपने वशमें करके रखनेका, दास बनानेका ही विचार करती है। तैसे ही कार्य टोना-प्रपञ्च भी करती हैं। अथवा और गुरुवालोग पुरुष बनकर अनाड़ी भक्त-शिष्योंको अपने वशमें करके स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। तथा नारीके समान भक्तलोग भी नवधा भक्तिका शृङ्गार करके अनेक दावसे गुरुवालोगोंको और भगवान् पुरुषको वश करना चाहते हैं। उसीका विचार किया करते हैं। इसतरह खानी-वाणी जालोंमें ही अरुझ करके सब नरजीव भूले पड़े हैं ॥ ६२५ ॥

६. कठिन उतपात अनेकन्हि भाँती ❀ परखहु ताहि नहीं कुशलाती ॥ ६२६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे हितेच्छुक मनुष्यो ! खानी विषयके जालमें स्त्री-पुरुषकी देह भावना करके और वाणी जालमें प्रकृति-पुरुष या ब्रह्म-माया, गुरु-चेलाकी मानन्दी दृढ़ कर-कराके अनेकों भाँतिसे उत्पात, उपाधि मचाये हैं; भव-बन्धन बढ़ाये हैं। अब उससे छूटना अत्यन्त ही कठिन हो गया है। उसमें कुछ भी जीवोंको कुशलता-कल्याण होनेवाला तो नहीं है। पारखी साधु सद्गुरुका सत्सङ्ग करके उस खानी-वाणीको अच्छी तरहसे परखो ! परित्याग करो ! ॥ ६२६ ॥

७. नारी पुरुष होय कौन समाना ? ❀ परखहु तेहि सुनु सन्त सुजाना ! ॥ ६२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हे जिज्ञासुओ ! यह तो विचार करके बताओ कि, स्त्री और पुरुषोंके स्थूल आकारमें प्रगट हो करके शरीरमें कौन समाया है ? रज-वीर्यसे बना हुआ देह तो यहाँ ही नाश हो जाता है। अगर तुम्हारा स्वरूप नारी वा पुरुषका देह ही होता, तो वह मुर्दा होकर नाश न होता। देह नाश होनेपर फिर कौन जन्म लेता है ? इसलिये जीव देहसे भिन्न है। जीव ही अध्यासी हो करके स्त्री वा पुरुषोंके घटमें समाया हुआ है। हे मुमुक्षुओ ! सुनो ! यथार्थ सत्यासत्यके भेद जाननेके लिये अच्छे जानकार सुजान, पारखी सन्त साधु-गुरुके शरण-ग्रहण करके सत्सङ्गमें रहकर उनके गुरुमुख निर्णयके सत्य उपदेशको सुनो ! जड़-चैतन्यके भेदको जानकर पारखसे सब जालोंको अच्छी तरहसे परखो ! और निजस्वरूप पारखमें ही स्थिर हो रहो ! ॥६२७॥

८. नारी पुरुषके भाव मेटाई ❀ सकुच चतुरता कपट नशाई ॥ ६२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हे सज्जनो ! अपने कल्याणके वास्ते प्रथमसे भावना-को साफ शुद्ध करो ! स्त्री, पुरुष, नपुंसक देहकी भावना विषयासक्तिको विवेकसे मिटा करके छोड़ दो ! तुम अपनेको देह ही मान रहे हो, इससे यह कुभावना-विकार तुम्हारेमें समा रहा है। देहसे न्यारा जीव है, इसका विचार करो, और कुभावना कुवृत्तिको मिटा डालो ! फिर सङ्कोच, चतुराई, छल, कपट, मान, बड़ाई, ये सब मुक्तिमार्गके विनाशकारक हैं। इसलिये तुम ही इन्हें नशा करके

दूर करो या छोड़ दो ! साधु-गुरुके सत्सङ्ग श्रवण करके निज हित करनेमें किसी प्रकारका सङ्कोच, लाज, शरम, पर्दा मत् करो ! यदि इसमें भी तुम सङ्कोच करोगे, तो भला ! तुम्हारा हित-कल्याण ही कैसे होगा ? अतएव स्त्री-पुरुष देहकी झूठी भावना मिटा करके सङ्कोच, चतुराई, कपटादिको नशा करके क्या करो कि, सुनो !— ॥ ६२८ ॥

९. शरणागत प्रभुके दृढ़ गहहू * पारख पाय अभयपद लहहू ॥ ६२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सद्गुरु प्रभु बन्दीछोरके दृढ़तासे शरणागत हो जाओ ! उन सद्गुरुके उपदेशोंको ही दृढ़ करके ग्रहण करो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार करते-करते हंस रहनी-रहस्य सद्गुणोंको धारणा करके जब तुम्हें अपरोक्ष पारख बोधकी प्राप्ति हो जायगी, तब सब काल-जालोंसे छूटकर निर्भय, निर्बन्ध स्व-स्वरूप पारखपदमें अचल स्थिति करके जीवन्मुक्त पदको पा जाओगे। फिर सदाके लिये अभय हो जाओगे। ऐसा अभय पदको प्राप्त करलो ! सो जानो ! ॥ ६२९ ॥

१०. बिरला जे साहेब अनुरागी * मोह नींद सोवत उठि जागी ॥ ६३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके गुरुपद पारखमें निष्ठा-प्रेम रखनेवाले तथा पारखी सद्गुरु साहेबके उपदेशमें अनुराग रखनेवाले ऐसे कोई बिरले ही विवेकी होते हैं। जो कोई श्रद्धालु नरजीव पारखनिष्ठ सद्गुरु साहेबके शरणमें आ करके सत्सङ्ग करनेमें श्रद्धा-भक्ति, प्रेम लगाते हैं, वे फिर जाग्रत् होकर उठ जाते हैं। निज कल्याणके लिये सावधान, तत्पर हो जाते हैं। स्त्रीका मोह और पुत्र, धन, घरादिकी आसक्ति, अज्ञानता तथा वेद-वाणीसे ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी, मोह, मत-पन्थोंकी ममता, पक्षपात, आवरणरूप पर्दा, गाफिली, इत्यादि खानी-वाणी जनित मोहके निद्रा, अबोधपनामें जो पहले सोये पड़े थे, मस्त बेफहम हो रहे थे, सो सब मोहरूप निद्रा उचट गई वा भाग गई; सद्गुरुकी कृपासे विवेक-विचारकी आँखें खुल गईं। पारख ज्ञानरूप रविके प्रकाशमें सब कसर-खोट देखनेमें आ गया। जब जागे, तो अपने हित-मुक्तिके मार्गमें ही लागे। चित्तसे सब अध्यास उठ गया वा छूट गया। निज स्वरूपकी स्थिति पा गये। ऐसे सद्गुरु तथा सत् शिष्य संसारमें कोई बिरले ही होते हैं। वे सबोंका हित ही हो, ऐसे बर्तावसे बरतते हैं ॥ ६३० ॥

साखीः— हंस न नारी पुरुष है * ये सब कालको फन्द ॥

[१३६] गाँस भास सो मेटिके * साहेब शरण आनन्द ॥ ६३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! 'हंस' जो चैतन्य जीव है, सो स्त्री और पुरुषका चिह्नवाला नहीं है। यह नर-नारी तो काल=अध्यासमें फन्दा हुआ है वा बद्ध है। इसीसे नारी, पुरुष और नपुंसक, ये देहके तीन लिङ्ग या चिह्नयुक्त शरीरधारी हो रहे हैं। शरीरमें ही स्त्री-पुरुषका विकारके सम्बन्ध हो रहा है। जीवके स्वरूपमें नर-नारीपनाका कोई भाग नहीं है। ये सब विषय अध्यासका ही फन्दा है। स्त्री देहमें पुरुषका लक्ष्य तथा पुरुष देहमें स्त्रीका लक्ष्य विषय भोगके विकारयुक्त लगा है। उसी वासनासे बद्ध होकर जीव चौरासी योनियोंमें जाकर नारी-पुरुषका देह बना करके किलोल करने लगते हैं। विवेक करके देखिये ! तो नारी-पुरुषका लक्षण स्थूल देहादि तक ही सिमित है। और गुरुवालोगोंने जीवको कहीं नारी, परा-प्रकृति, ईश्वरका अंश, भक्त बतला करके तथा कोई एक परमेश्वर परमपुरुष मालिक कथन किया है। माया-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष, अज्ञान-ज्ञान, अंश-अंशी, सेव्य-सेवक, पति-पत्नी, स्वामी-दास, इत्यादि सम्बन्ध जीव-ईश्वरमें कल्पना करके लगाये हैं। ये सब तो काल=गुरुवालोगोंकी मिथ्या वाणीका महाफन्दा या जाल है। उसीमें सब मनुष्योंको भुला करके बाँध रक्खे हैं। इन सबसे जनैया चैतन्य जीव भिन्न है। अतएव पारखी सद्गुरु साहेबके शरणागत होकर जो कोई मुमुक्षुजीव इन कालरूप नारी और गुरुवाओंके

स्नेह-सङ्गको त्यागकर खानी-वाणीकी गाँस या गाँठी खोलकर, भास=देह, रूप, विषय, प्रकाश आदिकी मिथ्या भावना, अध्यास, अनुमान, कल्पनादि सबको मिटा करके नाश करेंगे, सो पारख स्वरूपर स्थिर, अचल, अटल हो जावेंगे। तब विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिके भाव, सङ्ग, आसक्ति रहित, वासना रहित जीवन्मुक्तिमें सुखी हो जाते हैं। अतएव हंस जीव स्वरूपसे तो नारी-पुरुष नहीं है; ये सब-कालका फन्दा है, ऐसा समझ करके उनके गाँस, भास, फाँस सो सबोंको मिटा करके पारखी सद्गुरु साहेबके शरण-ग्रहण करके आनन्द, सुखी हो जाना चाहिये ॥ ६३१ ॥

सम्बन्ध— इसके बारेमें ग्रन्थकर्त्ताने सद्ग्रन्थ मूल बीजकका प्रमाण दिया है, सो भी सुनिये !:—

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, रमैनीकी साखी नम्बर— ५० ॥ ❀ ॥

साखीः— नारी रचन्ते पुरुषा * पुरुष रचन्ते नार ॥

[१४०] पुरुषै पुरुषा जो रचै * ते बिरले संसार ॥ ६३२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! मायामुखके अर्थमें गुरुवालोग ऐसा कहते हैं कि, विषय भोगमें लुब्ध हो करके स्त्री सदा पुरुषोंका ही चिन्तन, चाहना या पुरुषोंसे भग-भोगानेकी इच्छा, माया-जालोंकी रचना, छल-प्रपञ्च सहित स्त्रियाचरित्र किया करती है। तैसे ही पुरुष भी— "श्वान-हाड़न्याय"- स्त्रीमें आसक्त होकर सदाकाल स्त्रीसे मिलन, भोगादिकी ही रचना, चाहना, सङ्कल्प, प्रयत्न, युक्ति अनेक प्रपञ्च किया करते हैं। इसतरह माया-जालमें ही नारी-पुरुष फँसे पड़े हैं। और उक्त द्वैत भावको मिटा करके एक परब्रह्म-परमपुरुष परमात्मा ही सबमें परिपूर्ण अद्वैत निर्विकार भरा है; सो आत्मा-ही-आत्मा है। सबमें ब्रह्म-ही-ब्रह्मकी शुद्ध भावना, रचना, दृष्टि सो रखते हैं, ऐसा जो विचार करते हैं, सो परहंस विज्ञानी महात्मा हो जाते हैं। परन्तु, हे भाई! संसारमें ऐसे महात्मा बहुत नहीं मिलते हैं; करोड़ोंमें कोई एक बिरले ही होते हैं। वे मायासे परे मुक्त हो जाते हैं, इत्यादि कहते हैं ॥

अथवा इस साखीमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके निर्णयसे गुरुमुखसे तात्पर्य ऐसा निकलता है कि, ये तो सब कोई जानते हैं कि, अध्यासी विषयासक्तजन स्वार्थ सिद्धिके लिये ही जहाँ-तहाँ लगे हैं, तहाँ नारियाँ तो पुरुषोंकी रचना-चाहना करती हैं, तथा पुरुषवर्ग भी स्त्रीकी ही रचना-चाहना, भोगोंके लिये ही नाना प्रकारसे प्रयत्न करते रहते हैं। इसीकारणसे जड़ाध्यासी हो-हो करके चारखानी चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ा करते हैं। और सब देहधारियोंमें जीवदृष्टि रखकर सबमें स्वजातीयरूपमें जीव-ही-जीव देखनेवाले नारी-पुरुषकी देहदृष्टि विषयासक्तिको परित्याग करके मनमें शुद्ध विवेक-विचारकी ही रचना करके सद्गुण रहनी-रहस्य युक्त पारखबोधको जो प्राप्त होते हैं, वैसे पारखी सन्त तो संसारमें कोई बिरले ही होते हैं, ऐसा जानिये ! ॥ ६३२ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, साखी नम्बर— २९८ ॥ ❀ ॥

साखीः— जो तू चाहै मुझको * छाड़ सकलकी आस ॥

[१४१] मुझहि ऐसा होय रहो * सब सुख तेरे पास ॥ ६३३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मुमुक्षु मनुष्यो! सुनो! जो तुमलोग मुझको चाहते हो, और मेरे पारखबोध गुरुपदको प्राप्त करना चाहते हो, तथा भव-बन्धनोंके दुःखोंसे छूटकर नित्य-सुख, नित्य-तृप्त, नित्य-मुक्त होकर स्व-स्वरूप स्थितिमें कायम हो जाना चाहते हो, तो मैं तुम्हें जो सत्य उपदेश देता हूँ! उसे अच्छी तरहसे श्रवण-मननादि करके पालन करो! सत्यशब्द-टकसारके निर्णयको ग्रहण करके धारण करो! मेरा उपदेश या मेरी शिक्षा यह है कि— "छाड़ सकलकी आश" अर्थात् देह-विषयोंकी आशामें माता-पिता, भाई-कुटुम्ब, स्त्री-पुत्र, जात-पाँत, नाता-गोता, लोक, कुल, घर-गृहस्थी, राज-काज, नाज, धन-जन, मान-बड़ाई आदिकी आशा-आसक्ति

खानी भागमें इसको छोड़ो ! और वाणी भागमें वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, भक्ति, योग, ज्ञान, स्वर्गादि, देवता, ऋद्धि-सिद्धि, मन्त्र, सामर्थ्य, ईश्वर, खुदा, लोक-परलोक, सात स्वर्ग, चार मुक्ति चार फल आदिकी प्राप्ति, आत्मा-परमात्मा, परब्रह्म, कैवल्यमुक्ति प्राप्ति तककी इत्यादि सब आशा, वासा, कल्पना जीवको बन्धन हैं। अतएव इनमेंसे किसीकी आशा-तृष्णा, ममता-मोह, आसक्ति मत् करो ! उन सम्पूर्णकी आशारूप आसक्ति अध्यासको बन्धन जान करके एकदम दिलसे छोड़ दो ! आशाको छोड़नेवाला ही मुझको वा मेरे पारख बोधको पायेंगे। इसकारणसे उपरोक्त सकलकी आशा या अध्यासोंको सर्वथा छोड़कर मेरे सरीखा ही त्यागी बनो ! त्याग-वैराग्य, सद्गुण रहनी-रहस्य, निजस्वरूपकी पारख स्थिति लेकर जैसा मैं निराश, निवृत्त, पारखनिष्ठ वर्तमानमें जीवन्मुक्त निर्बन्ध हो गया हूँ ! ऐसे मेरे सरीखा ही बर्ताव करो ! वैसे ही चलो ! सद्गुण रहनी-रहस्य संयुक्त निराश होकर निज चैतन्यस्वरूपमें ही सदा स्थिर हो रहो। तब फिर तुम्हें कोई सुखकी चाहना करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। जबतक कोई सुखकी चाहना करोगे, तबतक तुम्हें नाना दुःख होता ही रहेगा। सुख-आसक्ति, चाहना या इच्छाको छोड़कर जब निज स्वरूपकी स्थिति करोगे, तब तो सब सुख तुम्हारे स्वयंके पासमें ही प्राप्त हो जायगा; अर्थात् जीवन्मुक्तपदमें प्रविष्ट होकर कायम हो जानेसे जन्म-मरणादि भविष्यके सब दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होकर सर्वोत्कृष्ट जीवन्मुक्त, स्वच्छन्द, निराश-वर्तमानमें सब प्रकारसे तुम सुखी हो जाओगे। अतएव अभी नरदेह पाये हो, और सुखी होना चाहते हो, तो पारखी साधु सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहो ! मेरे कहे अनुसार रहनी-रहस्य जब तुम्हारेमें आ जायगा, तब हंस देहके पासमें ही तुम्हें नित्यमुक्तिका सुख मिलेगा, ऐसा जानो ! ॥ ६३३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २८ ॥ [चौपाई -१० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. सुनहु काल कला बहु तेरा * जीवन जीव लुटै तेहि घेरा ॥ ६३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! ध्यान लगा करके सुनो ! काल = गुरुवालोग और स्त्रियोंके कला = विषय, कल्पनादिका फैलावा बहुतेरा = अनेकों रूपमें कर रक्खे हैं। सो तुम्हें परखानेके वास्ते यहाँ निर्णय करके मैं वह भी कह देता हूँ ! विकराल काल अपनी मोटी-झीनी मजबूत जाल फैला करके उसीके घेरामें सब जीवोंको घेर-घार करके अरुझाकर जीवोंके जीवनधन लूट रहे हैं। बुद्धि-विचार, बल-वीर्य, साक्षीपदको भी हरण करके गाफिल किये या कर रहे हैं ॥ ६३४ ॥

२. पुनि अस्थूल दुई कला प्रकाशा * नारी पुरुष दोय अङ्ग निवासा ॥ ६३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर उन काल = गुरुवालोगोंने स्थूल शरीरमें ही सबोंके पासमें दो-दो भागकी कलाएँ मौजूद हैं; कहकर ऐसी वाणीका प्रकाश किया है कि, एक ही देहमें दुई = दो कलाएँ रहती हैं। सो एक नारीकी कला है, और दूसरी पुरुषकी कला है; दो तरफके दो अङ्गमें उक्त दोनों कलाका निवास सम्मिलितरूपसे हो रहा है, ऐसा कहा है ॥ ६३५ ॥

३. दहिने पुरुष बायें सो नारी * विविधि भाँति यम जाल पसारी ॥ ६३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ देहमें दक्षिण या दाहिनी तरफके अङ्गका भाग पुरुषरूप परमात्माका है। और शरीरमें दूसरा उत्तर या बायीं तरफके बाँया अङ्गका भाग, वामाङ्गी स्त्री, आदिमायाका भाग माना है। इसीप्रकार अनेकों अनुमान, कल्पनादि करके विविधि भाँतिसे यम = नारी और गुरुवाओंने अपने जाल खानी-वाणीका प्रपञ्च संसारमें पसारा करके फैला रक्खा है ॥ ६३६ ॥

४. रेखा लक्षण रचि रचि दीन्हा * चिह्न चक्र सोई छापा कीन्हा ॥ ६३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! और भी शरीरमें हाथोंकी रेखा, पैरोंकी रेखा, मस्तक

वा लिलाटकी रेखा देखकर मनुष्य, पशु आदिके गुण-लक्षण, स्वभाव देख-देख करके कल्पनासे त्रिकाल-में होनेवाला फलकी रचना कर-करके अन्दाजसे रेखाका फल बतला देते हैं। सामुद्रिक विद्या, ज्यौतिष विद्यादि अनेकों वाणी रच-रचकर वही भ्रम सबको दृढ़ा दिये हैं; तथा सामुद्रिकके प्रमाणसे हस्त रेखादिका चिह्न, अंगुलियोंमें शङ्ख, चक्र सदृश रेखाका आकार-प्रकार देख-दिखला करके लक्षण घटाकर होने वाले फलकी भी कल्पनासे वर्णन कर सोई बातकी छापा मनमें दृढ़ किये वा कराये हैं; और कागजोंमें भी उसी हाथके अंगुठेकी छाप लगवा करके उसे सही-छाप कहते हैं। एवं भगचक्रका चिह्न स्त्री देहका है, और लिङ्गचक्रका चिह्न पुरुष देहका है। सो देख-दिखा करके सोई विषयासक्तिकी छाप अन्तःकरणमें दृढ़ किये या कर रहे हैं ॥ ६३७ ॥

५. तेहि बिच कला अनन्त सँवारी ❀ लेखा कर्म धर्म अनुहारी ॥ ६३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी नर-नारीके शरीरके बीचमें दृष्टिपात करके खानी-वाणीकी अनन्तों कलाएँ सँवारकर बना करके उत्पन्न किये हैं। कोई एक श्लोक पढ़कर उसके प्रमाणसे अर्थ-अनर्थका लेखा, सुख-दुःखोंका लेखा, कर्म-धर्मोंका लेखा वा हिसाब, लगाकर आगे होने-वाले कर्मका अच्छा-बुरा फल, पाप-पुण्य या धर्म-अधर्मका लक्षण, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ कर्मका विधान आदि उसीप्रकार सूक्ष्म-स्थूल रीतिसे उसके स्वरूपका वर्णन किया है, अनुमान किया है, और कल्पना कर ही रहे हैं; उसीमें भूले और भुला रहे हैं ॥ ६३८ ॥

६. कर्म भोग जीवहिं भुगतावै ❀ पल पल सो सब लेखा लावै ॥ ६३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चित्रगुप्त पटवारी यमलोकमें बैठकर सब जीवोंके कर्म पल-पल, घड़ी-घड़ीका हिसाब भी दिव्यदृष्टिसे देखकर बही-खातामें लिखता रहता है। उसी मुताबिक खाता देखकर जीवोंको स्वर्ग वा नरकमें डाल करके यमराज सबोंको कर्मोंका भोग भुगताते हैं। ऐसा कहकर गुरुवालोगोंने मनुष्योंको भ्रमाकर नाहक कठिन-कठिन दुःख साधनाके भोग भोगाये हैं। कहीं तो चूक त्रुटि बतला करके प्रायश्चित्त, उपवास, चान्द्रायण, कृच्छ्र चान्द्रायण आदि कराके कष्ट भोगाये हैं। तथा पल-पल, घड़ी-घड़ी, प्रहर, दिन-मानके हिसाबसे सो पण्डितोंने अनेक प्रपञ्चोंका ही लेखा लगा रक्खे हैं; उसीमें प्रेम लगाकर फँसे और फँसा रक्खे हैं ॥ ६३९ ॥

७. तासु लक्ष सामुद्रिक कीन्हा ❀ विद्या रची प्रगटकै दीन्हा ॥ ६४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नारी-पुरुषोंके देहोंकी रेखा आदि लक्षण देख करके उस लक्षणके फल बतानेके वास्ते सामुद्रिक नामकी हस्त रेखा देखकर फल बतानेवाली विद्या कल्पनासे निर्माण किया है वा बनाया है। उसी विद्याकी रचना हुई, तो फिर अनेक फल प्रगट करके प्रत्यक्षमें अपना जञ्जाल ही प्रगट कराके फैला दिये हैं, मनुष्योंको भुला दिये हैं; सो जीवोंको धोखेमें ही डाल दिये हैं ॥ ६४० ॥

८. बहुत भाँतिके कर्म बौराई ❀ दुर्मति शुभ अरु अशुभ बनाई ॥ ६४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दुर्मति=गुरुवालोगोंने सद्बुद्धि, सद्विचारको दूर कर-कराके शुभ और अशुभ नामसे दो प्रकारके कर्ममार्ग बनाया है। तिसमें अशुभ=वाममार्ग आदिके अनाचार पाप कर्मोंमें तथा शुभ=दक्षिण मार्गादिके आचार-विचारके पुण्य कर्मोंमें बहुत प्रकारसे लगे और लगा करके उसी कर्म-अकर्मको करते-करते ही बौरा गये। पागलके समान उनकी विचित्र गति हुई। अभी वैसे ही कर्म-कुकर्म कर-कराके दिवाने हो रहे हैं। किसीका होश ठिकानेमें नहीं है ॥ ६४१ ॥

९. आपै बहु विधि नाच नचावै ❀ दोष लगाय जीवहिं सतावै ॥ ६४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कृष्णने पहले आप ही आगे होकर पाण्डवोंको महाभारतके युद्धमें बहुत विधिसे नाच नचाया था। फिर पीछे कुलघात, सगोत्र, बन्धु-बान्धवोंकी

हत्या होनेका दोष लगा करके उन्हें सताया; अश्वमेध-यज्ञादि प्रायश्चित्त कराया । अन्तमें पाण्डवोंको सता करके हिमालयमें जाकर गलकर मरनेको बतलाया था । तैसे ही दुष्ट दुर्मति= गुरुवालोग पहले तो आप ही वेद-शास्त्रादिका प्रमाण देकर कर्म, उपासना, योगादिमें और जगत् प्रपञ्चोंमें बहुत प्रकारसे विधि-विधान करके मनुष्योंको बन्दरवत् नाच नचाया और भुला दिया । और उधर नारीने भी पुरुषोंको विषयोंमें खूब नाच नचाया । फिर पीछेसे कोई एक दोष-अपराध चूक होनेके बहानासे पाप लगा करके नरजीवोंको और भी विशेष सताने लगे । कठिन-कठिन साधना प्रायश्चित्तके नामसे कराने लगे । कोई सब कर्मादिकोंका निषेध करके दोष लगा करके मायाको छोड़कर ब्रह्म बने । परन्तु, भ्रमिक जड़ाध्यासी बना करके जीवोंको खूब सताये या सता रहे हैं ॥ ६४२ ॥

१०. कबहूँ अकर्म सो वै रीझै ❀ कबहूँ सुकर्म करत बहु खीझै ॥ ६४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कभी तो वे ढोंगी, पाखण्डी गुरुवालोग हिंसा, बलिदान आदि अकर्म, क्रूरकर्म, अश्वमेध, अजमेध, गोमेध, नरमेधादिमें घोड़ा, बकरा, बैल, आदमी आदिको जबर्दस्ती जानसे मारकर, होम करके, बलि चढ़ा करके बहुत प्रसन्न वा खुश, आनन्द होते हैं । ऐसा करनेवाले यजमानसे पण्डित, पुरोहित लोग रीझ जाते हैं वा खुशी हो जाते हैं । कभी वे ही मूढ़ गुरुवालोग दया करनेवाले सत्कर्म, सद्धर्मसे चलनेवाले, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति सहित पारखी साधु-गुरुकी सेवा, सत्सङ्ग करनेवाले परमार्थी, सज्जन सुकर्मीको शुभ कर्म करते हुए देख-सुनकर वे धूर्त लोग बहुत ही खीझ कर नाराज, रुष्ट, क्रोधित हो जाते हैं । उन्हें ही प्रत्यक्ष कालरूपमें जान करके कुसङ्गी समझकर सर्वथा एकदमसे उन्हें त्याग देना चाहिये । तभी ठीक तरहसे कल्याण साधनोंमें लग सकेंगे; ऐसा अच्छी तरहसे जान लीजिये ! ॥ ६४३ ॥

साखीः— बहुत कुकर्मी राज दै ❀ धर्मिकको दुःख भूरि ॥
[१४२] कर्म सुकर्म मिलायके ❀ अन्त मिलावै धूरि ॥ ६४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कुकर्मी तामसी दुर्योधन, कंश, रावणादिको राज्य दिया गया, तो राज्य पा करके वे और भी बहुत कुकर्म करने लगे । उन्होंने धार्मिक लोगोंको बहुत बड़ा-बड़ा दुःख दिया । तैसे ही गुरुवालोग भी बहुत कुकर्मी लोगोंको तो राज्य-सत्ता देकर सुखी कर देते हैं, और धर्मात्मा, सत्सङ्गियोंको बड़ा भारी दुःख देते हैं । स्वर्गादि सुख, ऐश्वर्य, राज्यादि प्राप्तिकी लोभ-लालच देकर बहुत-बहुत कर्म-कुकर्म करने-कराने लगते हैं । और पारखी साधु-गुरुके शिष्य लोग धार्मिक सत्यन्यायी विवेकी होनेसे उनके कल्पित उपदेशोंको नहीं मानते हैं, तो उन्हें हरप्रकारसे बड़े-बड़े दुःख वा कष्ट देते हैं । फिर गोलमाल करके पाप-पुण्य, कुकर्म-सुकर्म, अच्छा-बुरा, शुभाशुभको एकमें मिला करके अन्तमें एक अद्वैत ब्रह्मज्ञानका प्रकाश कर सब जीवोंको धूरी=ऊँची आत्मामें मिला करके नष्ट-भ्रष्ट, पतित कर देते हैं । तो भ्रमरूप धूर फाँक करके चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़कर चूर्ण-चूर्ण धूरवत् दुःखी हो-हो करके भटकते ही रहते हैं ॥ ६४४ ॥

साखीः— राजा कुटिल प्रपञ्ची रानी ❀ दुष्ट भाव सब फौज ॥
[१४३] चैन न परजा जीवको ❀ सब चाहैं अपनी मौज ॥ ६४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! राजा बने हुए गुरुवालोग मन-मानन्दीमें पड़कर बड़े कुटिल, कपटी, धूर्त, पाखण्डी हुए हैं । उनकी रानीरूप कल्पित वाणी भी बड़ी झूठी, छली, प्रपञ्ची, रोचक-भयानकादि शब्द सुना-सुनाकर भुलानेवाली है । फिर उनकी सब फौज=नाना युक्ति-प्रयुक्ति, नाना सिद्धान्त, भक्ति, योग, ज्ञानादिकी अनेकों साधनाएँ उन सबोंमें दुष्टताके कुभाव, दाव-घात, पेंच, दबाव भरे पड़े हैं । अथवा कुटिल राजा=मनकी, प्रपञ्ची रानी=मनसा-

विषय वासनादि है। इन्द्रियाँ, काम, क्रोधादि सब दुष्ट भाववाले फौजोंके घेरामें सब प्राणी पड़े हैं। तहाँ प्रजारूप मनुष्य जीव, शिष्योंको इनके राज्यरूप घेरामें रहकर कभी भी चैन=सुख-शान्ति, गति-मुक्ति नहीं मिलती है या नहीं होती है। क्योंकि, वे सब तो अपने-अपने मौज, आनन्द, स्वार्थ सिद्धि, विषय भोग ही करना चाहते हैं। इससे नरजीव साधकोंको खूब दबा करके परेशान, जड़ाध्यासी कर दिये हैं। इसीसे जीवको कभी चैन नहीं होता है। अथवा राजा=ब्रह्म-परमात्मा जो माना है, सो तो बड़ा ही कुटिल-जटिल मिथ्या कल्पना है। और उस राजाकी रानी=ब्रह्मवादी वेदान्ती लोग बड़े ही प्रपञ्ची धोखेबाज बने हैं। और उनकी फौज=वेदान्त मतके अनुयायी सब गुरुवालोगोंमें भी बड़ी ही दुष्टताका भाव, धूर्तपना ही भरी है। सो उन्हींके घेरामें फँसे हुए प्रजारूप अबोध मनुष्योंको तो कभी चैनरूप सुख-शान्तिकी प्राप्ति तो होती ही नहीं है। वे सब अपनी-अपनी तरफ खींच खींचकर मौज=विलास करना चाहते हैं। उसीमें पड़ करके नरजीव हैरान वा दुःखी होकर बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ ६४५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— २६ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. घट घट काल करे घनघोरा * मारे लुटे खाय चहुँ ओरा ॥ ६४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! घटोंघटमें या सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें बैठकर काल=निरञ्जनरूप यही मन घनघोर उपाधि, सङ्कल्प-विकल्प किया करता है। सद्विचार, विवेक-वैराग्यादिको मार करके बल, बुद्धि, वीर्यको लूटकर खा लिया। चारों तरफसे विषयोंका घेरा डालकर फँसा लिया, जीवको स्त्री-पुत्रादि जालमें बाँध दिया है, चारों तरफसे काम, क्रोध, लाभ, मोह आदिने आकर मुक्तिके समाज सद्गुणोंको खाकर मार-मार करके नष्ट कर दिया है। और काल=स्त्रीका विषय भी घट-घटमें घनघोर चञ्चलता उत्पन्न कर रही है। चारों तरफसे लूट-मार करके स्त्रीने पुरुषोंको खा गयी, नष्ट-भ्रष्ट कर गयी। अथवा काल=गुरुवालोगोंकी वाणी-कल्पना, भ्रम घट-घटमें भारी मेघकी नाईं घोर गर्जना करके अनुमानकी वर्षा कर रही है। मनुष्योंके तन, मन, धनादि सब लूट-लूट करके लुटेरे गुरुवालोगोंने खा लिया, हड़प लिया। दण्डोंसे मार-मारकर खूब साधना कराये हैं। चहुँओरमें चारवेद और चार कितेब, चार अवस्थाओंके नाना कर्म फैलाया है। उसीमें लगा करके मनुष्योंको मारे, जड़ाध्यासी किये; गाफिल किये और गाफिल ही कर रहे हैं ॥ ६४६ ॥

२. उपजी खेती अनबनि भाँती * भाव जीव ग्रासे उतपाती ॥ ६४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें किसानवत् गुरुवालोंगोंने अनेक तरहसे उपदेशरूप बीज बो करके खेती किया, तो अनेक सिद्धान्तोंके अंकुर फूटकर अनेक शिष्य-शाखाएँरूप फसल उत्पन्न हुई। अनेक भावना सगुण-निर्गुणकी मानन्दीमें भावुक साधक जीव ग्रसित हुए हैं। भक्ति, योग, ज्ञानमार्गादिकी नाना उत्पात-उपाधि पैदा करके सबको ग्रासे, पकड़े, फँसाये हैं। मन-मानन्दीसे भ्रममें बहुतेक लोग फँसे भी हैं। परन्तु, उससे जीवका कुछ कल्याण नहीं बना, और बननेवाला भी नहीं है; हक-नाहक मिथ्या भावना करके बद्ध हुए या बद्ध हो रहे हैं ॥६४७॥

३. चारि खानि सोइ आपु बिराजे * सम्मक कला सबहीको साजे ॥ ६४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चारों दिशाओंमें परिपूर्ण व्यापक आप कोई परमात्माको मानन्दी करके उसी अध्याससे जीव आप-ही-आप निज कर्ममें बद्ध होकर मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज, सोई चार खानियोंमें जा करके स्वयं विराजमान होते हैं। तहाँ नाना देह धारण करके रहते हैं। सम्मक=अच्छी प्रकारसे या समानरूपसे कल्पना, विषय, जड़ाध्यास आदिकके सब भाग कलाके साज-बाज पूरे ही सब जीवोंके सूक्ष्म देहमें रहते हैं, उन्हींको लेकर चौरासी योनियोंमें नाना देहें बनाते हैं। अथवा कोई कहते हैं कि, आप ही परमात्मा सोई

चारखानियोंमें सर्वत्र विराजमान है! पूर्ण ईश्वरीय कलासे सब ही चराचरको साजकर वा सजाकर उसीने प्रगट किया है। सम्यक=बराबर समानकला वा सोलहों कलासे पूर्ण परमेश्वर है। इसलिये सबको ही वही सजाता है या बनाता है। ऐसे-ऐसे कल्पनासे अध्यास टिका करके जीव सब चारखानियोंमें अपने आप ही जाते हैं॥ ६४८ ॥

४. चारि खानि जेहि भाँति उपाई * चार कला सो प्रगट देखाई ॥ ६४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उक्त चार खानियाँ जिस प्रकारसे उत्पन्न हुई या होती हैं, सो उसका कारण चार अवस्थाओंके कर्म-अध्यासका ही कला भाग है। सो यहाँपर प्रगट करके निर्णयसे दिखला देता हूँ! अथवा चार कला द्वारा जिस भाँतिसे चारखानी उत्पन्न हुई, उसका भेद अब प्रगट करके दिखला देता हूँ! सो ध्यानसे सुनिये! ॥ ६४९ ॥

५. पिण्डज तुर्याके अंश स्वरूपा * अंकुरज सो है शून्य स्वरूपा ॥ ६५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तुरियाके अंशसे पिण्डज खानीमें मनुष्य देहका स्वरूप उत्पन्न हुआ या होता है। क्योंकि, ज्ञानखानी कर्मभूमिका यह मनुष्य देह है। तुरियामें साक्षी ज्ञानका दृढ़ संस्कार टिके रहनेसे पुनः वह जीव मनुष्य खानीमें आता है। और अंकुरज वनस्पति, वृक्षादि जो हैं, सो तो जड़ हैं। उनमें ज्ञाता चैतन्य जीव नहीं है,, इसलिये शून्य जड़ स्वरूप ही हैं। परन्तु, अंकुरजोंमें उत्पन्न होकर वहीं रहनेवाले कीड़े-मकोड़े आदि जीव अलग हैं। सो सुषुप्ति अवस्थाके अध्याससे वे जीव अंकुरज खानीमें चले जाते हैं। क्योंकि, योगीलोग शून्यवृत्ति करके गाफिल होकर निज स्वरूपको भूल ही जाते हैं; ज्योति आदिमें लुब्ध रहते हैं, इसलिये वे अंकुरज निवासी उष्मजादि खानीमें चले जाते हैं ॥ ६५० ॥

६. श्वासा नेह उखमज उत्पानी * पृथिवी सनेही अण्डज खानी ॥ ६५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! स्वप्न अवस्थाके अध्याससे मुख्य किटाणु उष्मज खानीकी उत्पत्ति कही गई है। साधक भक्तलोग श्वास वायुमें नाम-स्मरण, ध्यानादि करनेमें स्वप्नके समान मानसिक कल्पित सृष्टिका विस्तार करके अध्यासी होते हैं। इसलिये वे पुनः उष्मजादि खानीमें उत्पन्न होनेको चले जाते हैं। पृथ्वीरूप स्थूल देहके स्नेहरूप अध्याससे जीव अण्डजादि खानीमें प्रथम जाते हैं। फिर अन्य खानीमें भी भ्रमण करते रहते हैं। विषयी कर्मीलोग स्थूल देहके विषय भोगोंमें ही प्रेम, स्नेह लगाये रहते हैं। उसीसे वे पुनः अण्डज खानीमें चले जाते हैं। इसप्रकार कर्म अध्यासोंको लेकर अवस्था भेदसे जीव चारखानी चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं ॥ ६५१ ॥

७. पिण्डज आपु अधार उपावै * जड़ता शून्य स्वरूप बनावै ॥ ६५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंकी मानन्दी ऐसी है कि, स्वयं निरञ्जन ब्रह्मके आधाररूप अंशसे पिण्डजमें मनुष्य खानीकी उत्पत्ति होती है। तैसे ही मायाके अंशसे स्थावर खानीकी रचना होती है। महेशके अंशसे उष्मज खानीकी सृष्टि होती है। विष्णुके अंशसे अण्डज खानीके उत्पत्ति हुई; और ब्रह्माके अंशसे पृथ्वीमें पशुखानीकी उत्पत्ति हुई या होती है; ऐसी कल्पना करके माना है। जड़-चैतन्य युक्त चारोंखानियाँ अनादि हैं। जीव ही जड़ाध्यासी होकर उक्त खानीमें जा करके उत्पन्न होते हैं। सो चारखानीमें जानेका मुख्य कारण यहाँपर सत्य निर्णयसे बतलाते हैं। भ्रम, कल्पना, पक्ष छोड़कर इसको विचार करिये! मनुष्य देहधारी जीव अपने ही शक्ति या आधारसे चार अवस्थाओंमें चार प्रकारके कर्म अध्यास दृढ़ करके फिर उसीके अनुसार चारखानीमें जाकर देह धारण करते हैं। अतएव तुरिया साक्षी अवस्थामें रहनेवाले ज्ञानी-लोग ज्ञान संस्कारके आधारसे देह छोड़कर फिर भी तुरन्त ही पिण्डज खानीमें आकर मनुष्य-देहको धारण करते हैं। ऐसे अपने ज्ञानरूप चैतन्य शक्तिके आधारसे पिण्ड उत्पन्न करते हैं। तथा योगीलोग जाग्रत्में ही जड़वत् वृत्ति शून्य करके बेभान दशा बनाते हैं, स्व-स्वरूपपर आवरण

डाल देते हैं। सुषुप्ति अवस्थावत् समाधिमें भी शून्य गरगाफ हो रहते हैं। इस अभ्याससे अंकुरयुक्त उष्मजादि खानीमें जा करके वैसे ही देह बना लेते हैं ॥ ६५२ ॥

८. श्वासा चञ्चलता अधिकारी ❀ आशा धरती अण्ड सँवारी ॥ ६५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उपासक भक्तलोग श्वासमें लक्ष्य लगा करके सूक्ष्म रीतिसे या मुखसे ही नाम रटन करनेमें तथा मानसिक पूजा, ध्यान, नवधा भक्ति-भावमें मन लगानेमें विशेष ही चञ्चलता उनमें बनी रहती है। इसीसे स्वप्नावस्थाकी वासनायुक्त जीव उष्मज= कीट-पतङ्गादिमें जानेके अधिकारी होते हैं; ज्यादातर उसी खानीमें जाते भी हैं। तथा कर्ममार्गी और विषयी लोग विषय भोगकी आशा तथा स्वर्गादि सुखोंकी आशा लगा करके जाग्रत् अवस्थामें अनेक कर्म-कुकर्मको करते हैं। बहुत वासनाके अण्ड या गोला बनाकर तैय्यार करते हैं। वही वासना, आशा, आसक्ति ही उन्हें अण्डजखानीमें पहुँचा देती है; इसीसे अण्डजोंका देह बनता है ॥ ६५३ ॥

९. आशा उतपति कारण जाना ❀ सोई अधिकार चाल विधि नाना ॥ ६५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसतरह चारखानीमें जा करके नाना देहें धारण कर उत्पन्न होनेका मूल कारण वही चार अवस्थाओंके कर्म अभ्यास, चार फल, चार मुक्ति आदिकी आशा पञ्च विषयोंकी आसक्ति मानन्दी, जड़ाध्यास यही देह धरानेमें कारण है, ऐसा यथार्थ निर्णय करके जानिये ! सोई चार मार्गोंके विशेष अधिकार, नाना चाल, अनेक विधि-विधान, अनेकों रीति-रिवाज संसारमें प्रचलित होकर फैली हुई हैं। वही कर्म वासनाको ज्यादा-ज्यादा ही बढ़ा करके जीव उसी तरह चारखानी चौरासी योनियोंमें जानेके अधिकारी ही हुए हैं। उन सब चालोंको परखकर छोड़े बिना नरजीव कभी मुक्तिके अधिकारी हो ही नहीं सकते हैं ॥ ६५४ ॥

१०. बासा चारि खानि परवाना ❀ ताकर भेद सुनु सन्त सुजाना ! ॥ ६५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वासना, आसक्ति, अभ्यास करके ही चारखानियों-में जा करके जीवोंका बासा या निवास होता है। इसके बारेमें सत्यनिर्णयके प्रमाण सहित उसका यथार्थ भेद मैं यहाँपर और भी वर्णन करके कहता हूँ ! हे जिज्ञासु सन्तो ! आप लोग ध्यान लगा करके इसे सुनिये ! जिससे सत्यासत्यके अच्छे जानकार पारखी आप लोग भी हो सकोगे। अतः हे सन्त सुजान ! सद्गुरुके निर्णयको श्रवण करिये ! ॥ ६५५ ॥

साखीः— आशा पिण्डज तुरिया ❀ धरती जान विलास ॥
[१४४] जर लागी महाशून्यमें ❀ जड़ता दीन्ह नेवास ॥ ६५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ ज्ञानीलोग सायुज्य मुक्ति या मोक्षफल प्राप्तिकी आशासे अथवा जीव-ब्रह्मकी एकता करनेकी आशासे साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर ज्ञान साधना करते-करते सहविकल्प स्थिति, तुरिया अवस्थाको प्राप्त होकर धरतीरूपी शरीरमें नाभि-पर लक्ष्य टिका करके आनन्द-सुख, भोग-विलास करते हैं। उसमें श्वासरूपी वृक्षकी जड़ ब्रह्माण्डमें लगी है। "सोहं ब्रह्मास्मि" में जिनका लक्ष्य लगा हुआ है, भ्रमरगुफापर महाशून्य परब्रह्म मान करके वहाँपर लक्ष्य लगा करके जानिव जीवको जड़ता, मूढ़ता, गाफिलीमें ले जाकर निवास या स्थिति कायमकर दिये हैं। महाशून्यमें सोहं ब्रह्मका ध्यान लगा करके अन्तमें जड़वत् वृत्ति बनाकर धोखेमें बासा करते हैं। उसी अभ्याससे वे यदि तुरिया अवस्थामें शरीर छोड़े, तो पिण्डज खानीमें आ करके फिर भी मनुष्य जन्म लेते हैं। तहाँ पृथ्वीमें कर्मानुसार वे जीव विलास करते हैं॥६५६॥

साखीः— अंकुरज कारण थीर पौन ❀ पृथिवी प्रगटे आय ॥
[१४५] जुगल शून्य जड़ रूप सो ❀ चेतनता न लखाय ॥ ६५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अंकुरज-वनस्पतियोंमें फल, फूल, पत्र, मूलादिके

भीतर जा करके कीट-भृङ्ग, पतङ्गादिके शरीर धारण करानेके मुख्य कारण, योगीलोग प्राणवायुको प्राणायाम करके योग विधिसे नाभि या मस्तकमें स्थिर करके रोके रखते हैं। उससे ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्तिकी चाहना, अर्थफल प्राप्तिकी इच्छा, तथा सारूप्यमुक्ति पानेकी आशा रख कर शून्य समाधिमें गरगाफ हो रहते हैं। इसी अध्याससे शरीर छूटनेपर फिर भी वे पृथ्वीमें आ करके कीट-पतङ्गादिके शरीर लेकर प्रगट होते हैं; वैसे ही फल भोगते हैं। जैसे सुषुप्तिमें स्थूल-सूक्ष्म दोनों देह कारणमें लय होकर शून्य हो जाता है। सो गाढ़ी निद्रामें जड़वत् अचेत पड़े रहते हैं। तैसे ही योग समाधिकी अवस्थामें भी युगल=जाग्रत् तथा स्वप्न, ये दोनोंके सब व्यवहार शून्यमें लय हो करके कुछ भान नहीं रहता है। सिर्फ एक शून्य ही जड़स्वरूप करके सो अभाव वृत्ति रहती है। उस अवस्थामें चेतनता कुछ भी नहीं लखाती है। परन्तु, सारा जड़ाध्यास बीज वहाँ एकत्र होकर टिका रहता है। वही अध्यास उन्हें चौरासी योनियोंमें घसीट करके ले जाता है। वैसे ही खानीमें पहुँचा करके भोग भोगाता है। इसलिये जाग्रत्में ही शुभ वासनाको मनमें टिकाये रखना चाहिये ॥६५७॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३० ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. लिङ्गम कारण उखमज केरा * उपजन अनल अस्थूल सबेरा ॥ ६५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पूर्व प्रकरणसे ही इसका सिलसिला चला आ रहा है। उष्मजखानीमें उत्पन्न होनेका मुख्य कारण यह है कि, उपासक लोग धर्म फलकी प्राप्ति तथा सामीप्यमुक्तिकी आशा-वासा, कल्पना-चाहनासे अनेक प्रकारसे भक्तिमार्गकी साधना किया करते हैं। ब्रह्माण्डमें सात स्वर्गादिमें जानेकी आशा, सूक्ष्म बीज वासनासे बद्ध होकर, इच्छारूप अग्निकी उष्णतासे स्थूल शरीर छूटनेपर पुनः जल्दी ही वे जीव उष्मज खानीकी स्थूल देह धारण करके उत्पन्न हो जाते हैं; और कर्मानुसार वहाँ फल भोगते रहते हैं ॥ ६५८ ॥

२. पवन विलास आश तेहि आगी * तेहिते खानि कछुक सो जागी ॥ ६५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वासनारूप पवनमें विलास करके आगे स्वर्गादि लोकोंमें जानेकी आशा भक्तोंको लगी रहती है। इसीसे योगियोंसे भक्तोंमें चञ्चलता ज्यादा रहती है। योगीलोग प्राणवायुको ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर शून्यके विलासमें लगे रहते हैं। सबको छोड़कर आगे शून्य होने तककी ही उनकी आशा रहती है, शून्य जड़वत् हो रहते हैं। इन योगियोंसे उपासकोंमें कुछ ज्यादा जाग्रत्भाव रहता है। इसीतरह अंकुरजादि वनस्पतियोंमें कुछ भी चेतनपना और क्रिया नहीं रहती है। वायुके हिलानेपर ही हिलते हैं, और उससे अंकुरज खानीके उष्मज देहधारी प्राणियोंमें कुछ विशेष चञ्चलता, जाग्रत्भाव रहता है, इसलिये वे जीव स्वयं अपने देहकी क्रिया तथा भाव प्रगट करते हैं, ऐसा दिखाई देता है ॥ ६५९ ॥

३. भ्रमित स्वभाव विशेष बनाई * उपजी नाश बहु देर न लाई ॥ ६६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भक्त लोग ज्यादे ही भ्रमिक होते हैं। विचित्र स्वभाव बना करके विशेष करके पागलकी नाईं वे भूले ही रहते हैं। विशेष करके जैसे उन्होंने यहाँ-पर अध्याससे स्वभाव बनाया है, वैसे ही आवागमनोंमें भी पड़े हैं; तो उष्मजादि खानीको प्राप्त हुए हैं। परन्तु, उष्मज देहमें उत्पन्न होकर नाश होनेमें कुछ देर नहीं लगती है। बहुत जल्दी-जल्दीसे ही जन्मते-मरते रहते हैं। अध्यासी जीवोंके जन्म-मृत्यु होनेका कुछ हिसाब ही नहीं रहता है ॥ ६६० ॥

४. अण्डज कारण धरती कीन्हा * पवन विलास मनोरम दीन्हा ॥ ६६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पक्षी आदि अण्डज खानीमें जानेका मुख्य कारण-रूप बीज जड़ाध्यास कर्म मार्गका है। पृथ्वीमें विषयासक्त विषयी लोग और कर्मी लोग स्त्री, पुत्र, धनादिकी अभिलाषासे नाना कर्म किया करते हैं। और कामफलकी प्राप्ति, देवलोक, सालोक्य-मुक्तिकी आशासे यहाँ पूजा-पाठ, तीर्थ-व्रत, मन्त्र, जप, तप, अनुष्ठानादि अनेक काम्य कर्म कर-

कराके उसीके अभ्यास सहित मानसिक राज्यमें रमण करके शरीर छोड़कर, अण्डज खानीमें चले जाते हैं। तहाँपर पक्षीगण मनमाने जिधर-तिधर पङ्ख फैला करके उड़ जाते हैं। सुन्दररूप बना करके पवन विलासमें जन्म बिता देते हैं ॥ ६६१ ॥

५. उखमजते चेतन अधिकाई * अण्डज श्वास विलास बनाई ॥ ६६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उष्मज खानीके प्राणियोंसे बढ़ करके विशेष चञ्चलता अण्डज खानीके प्राणियोंमें रहती है। देह भी बड़ा या मोटा रहता है। तथा चेतनतारूप जाग्रत्-व्यवहार भी अधिक मात्रामें रहता है। श्वास चलता हुआ भी प्रत्यक्ष दिखाई देता है। वायुमें विलास करके उड़ते हुए नजर आते हैं। तैसे ही भक्तोंसे ज्यादा स्थूल चञ्चलपना जाग्रत् भाव कर्मियोंमें रहता है। कोई अण्डरूप प्रणवको ही श्वासके साथ जाप करते हैं। कोई अण्डरूप शालिग्रामादि पत्थरको ही विष्णुके रूपमें मान करके विश्वास दृढ़ करके पूजा करनेका विलास-खेल बनाये हैं। इसीप्रकार कई तरहकी वासनासे बद्ध हो चौरासी योनियोंमें चले गये या चले जाते हैं ॥६६२॥

६. उलटि पलटिकै रची उपाधा * महा कठिन उतपात वियाधा ॥ ६६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसार विषयोंको उलटा करके कर्म, उपासना, योग और ज्ञान ये चार वाणीमें चार मार्गोंकी रचना किये हैं। फिर उसमेंसे पलटे तो पञ्च विषय भोगोंकी ही रचना किये हैं। उलट-पलट करके खानी-वाणीकी उपाधि, झंझट, बन्धनोंकी ही रचना करके जगत्में महान उत्पात मचा दिये हैं। नारी और गुरुवाओंने सब जीवोंको जहँड़ा दिये हैं वा फँसा दिये हैं, गाड़ दिये हैं। इसीसे जन्म, मरण और गर्भवास, ये महारोगसे छूटना महान कठिन असक्य, दुस्तर हो गया है। कोई बिरले ही पारखी सन्त इस कठिन उत्पातसे अपने बच करके औरको भी बचा पाते हैं ॥ ६६३ ॥

७. चारि खानि जोइनि परवाना * लख चौरासी किया बन्धाना ॥ ६६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरिया, ये चार अवस्थाओंके कर्म अभ्याससे मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज, ये चारखानी बनी हैं। उसमें एक-एक खानीमें भी अनेक-अनेक योनियाँ बनी हैं। विषयादिमें लक्ष्य लगा करके जो अनेक वासना दृढ़ हुई, उसी चारकी राशि, ढेरी, समूह अनेक योनियोंमें जीव बद्ध हुए हैं। परन्तु, गुरुवालोगोंने वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे चारखानीमें चौरासी लाख योनियाँ होनेका हिसाब बन्धान किया है, सो तो कल्पना ही मात्र है ॥ ६६४ ॥

८. बिच बिच कला अनेक पसारा * नारि पुरुष दुइ रूप सँवारा ॥ ६६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! एक-एक खानीके बीच-बीचमें अनेक-अनेक भागसे कला, विषय, काम, क्रोधादिका पसारा, फैलावा हुआ है या हो ही रहा है। सब ठिकाने चारों खानियोंमें स्त्री और पुरुष, ये दो का रूप, गुण, आकार, प्रकार, स्वभाव वैसे ही भिन्न-भिन्न रूपसे बना हुआ है। नारी-पुरुषोंके बीचमें वैसे ही आकार, देहका रूप बना करके पुत्र-पुत्री पैदा भी हो रही है। खानी-वाणीके बीच-बीचमें अनेकों कला पसार करके नारी-पुरुष दोनों ही भव-बन्धनोंमें ही पड़े हैं ॥ ६६५ ॥

९. जेहि विधि चारि खानि निर्माई * प्रति प्रति खानि साइ चारि समाई ॥ ६६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर जिस प्रकारसे बाहरमें चार अवस्थाओंके चार कर्मोंका अभ्यास लेकर उपरोक्त चारखानियोंका निर्माण या बनाव हुआ है; उसी प्रकारसे भिन्न-भिन्न प्रत्येक चारखानीके मध्यमें एक-ही-एक खानीमें वा एक ही देहमें भी सो उसी किस्मसे वे चारों खानियाँ मौजूद हैं, विशेष अभ्यासी जीव आ-आ करके तहाँ समाये हुए हैं ॥ ६६६ ॥

१०. जुई ढील अण्डज उपराजा * अंकुरज रोम सो पिण्ड विराजा ॥ ६६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो उसका लक्षण इसप्रकारसे प्रगट होता है, सुनिये ! यही आपकी स्थूल शरीर जो है, सो एक पिण्डज खानीका भाग हुआ। इस पिण्डरूप देहमें जूँ, चिल्लर, ढील आदि जो पड़ जाते हैं, वे अण्डाकार उत्पन्न होते हैं, अतः उन्हें यहाँ-पर अण्डज खानीके जीववत् अण्डजरूपमें उत्पन्न हुए, ऐसा जानना। और शरीरभरमें जितने रोम या बाल उत्पन्न हुए हैं, सो अंकुरजके ठिकाने समझना। वास्तवमें रोम तो जड़ घास-फूसके समान ही हैं। उस रोममें अलग-अलग चेतन जीव नहीं है। देह सम्बन्धमें रोम उत्पन्न हुआ है। यहाँपर तो गुरुवालोगोंकी मानन्दी ही परखा रहे हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ६६७ ॥

साखीः— कीड़ा उखमज लादमें * अनेकन भाँति स्वरूप ॥

[१४६] पिण्डज भाव उतपति भये * विलग विलग गुण रूप ॥ ६६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वोक्त प्रकरणमें ही मिला करके कह रहे हैं कि, देहमें लादी या मल-मूत्र रहनेकी जगहको लाद या पेट, उदर कहते हैं। सो पेटके अन्दरमें कृमि, कीट वा बारीक-बारीक कीड़े पड़ करके जो रहते हैं, वे यहाँपर उष्मज खानीके जीव हैं। उनके स्वरूप अनेक तरहके रहते हैं। लम्बे-लम्बे, गोल-गोल, चपटे, छोटे, मोटे, पतले, ऐसे लादमें रहनेवाले कीड़ोंके अनेक भाँतिके स्वरूप होते हैं। इसप्रकार चारों खानियोंके भाव अध्यास लेकर वे यह पिण्डज शरीरमें ही आ करके अन्य तीन खानीके जीव भी वैसे ही रूप लेकर उत्पन्न हुए हैं। उन सबोंके गुण, रूप, आकार, और स्वभाव न्यारे-न्यारे वा भिन्न-भिन्न ही बने हुए हैं। विभिन्न रूपसे निज-निज कर्म ही वहाँपर वे भोग रहे हैं ॥ ६६८ ॥

साखीः— देखहु फन्द सो कालके * प्रगट कहौं परचार ॥

[१४७] रामरहस गुरुके शरण * परख शब्द टकसार ॥ ६६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सज्जनो ! ऐसी-ऐसी बात सब देखो ! सुनो, गुनो, विवेक-विचार करो ! अरे भाई ! यह खानी-वाणीका विस्तार तो कालकी कठिन फन्दा ही है। सो उसे परीक्षा-दृष्टिसे देखो ! जो-जो बातें गुरुवालोगोंने प्रगटकर प्रचार करके कही है, सोई सब बात तुम्हें सत्यासत्य परखाने वा लखानेके वास्ते ही मैंने यहाँपर प्रगट करके कहा हूँ, तुम्हें परिचय कराया हूँ। (ग्रन्थकर्त्ता—) श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरुकी शरणमें आ करके मैंने इन सबोंके भेदको जाना हूँ; सारशब्द टकसारके पारख बोधको जान पाया हूँ। गुरुकृपाके प्रतापसे तुम्हें भी वह भेद परखाया हूँ ! राम=सत्य चैतन्य जीवका, रहस=रहस्य, भेद, बोध जाननेके लिये आप लोग भी पारखी सद्गुरुके शरणागत हो जाइये ! और सत्सङ्गसे गुरुमुख द्वारा सत्यशब्द टकसाररूप सद्ग्रन्थ बीजक सिद्धान्तका यथार्थ निर्णय सारशब्दसे पारख बोधको प्राप्तकर लीजिये ! जिससे काल, सन्धि, झाँई और तत्त्वमस्यादि खानी-वाणीकी आसक्ति, भ्रम, धोखासे छूटकर पारख स्वरूपमें स्थिति कर निर्बन्ध, जीवन्मुक्त हो जाइये ! तभी नर जन्म पाना सफल होगा, सो जानिये ! ॥ ६६९ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३१ ॥ [चौपाई— १० । साखी— २ है] ॥ ❀ ॥

१. रचि खानी बहु कला सँवारी * कला कालको भेद निवारी ॥ ६७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! विषयासक्ति जड़ाध्यासके ही कारणसे पिण्डज, अण्डज, उष्मजादि चारखानीकी संसारमें रचना हुई है। सो चौखानीकी रचना होनेसे उनमें बहुतेक कला, भाग, विभाग, मानन्दी, कल्पना करके नाना कला बनाकर तैय्यार किये हैं। नाम, रूप, गुण, भेद, आकार, प्रकार, रङ्ग-ढङ्ग, ऐसे अनेकों कला सजा करके बनाये हैं। सो

कालरूप नारी और गुरुवा, मन, तन, समय, विषय, कल्पना इत्यादिकोंके कला-कौशल, जाल-फाँस, भव-बन्धनोंका भेद यथार्थ सत्य निर्णयसे पारखी सद्गुरुके गुरुमुख उपदेश श्रवण, मननादि करके अच्छी तरहसे जानना चाहिये। और समस्त काल-कलाको जानकर उससे न्यारा हो जाना चाहिये ॥ ६७० ॥

२. उत्तम मध्यम लघुता कीन्हा ❀ निकृष्ट चारि खानिमें दीन्हा ॥ ६७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई तो उसमें भी उत्तम=सबसे श्रेष्ठ बने हैं। कोई मध्यम=बीच दर्जेवाले बने हैं। कोई लघुता या कनिष्ठ=नीचे दर्जेवाले बने हैं। और कोई तो उन तीनोंसे गये-बीते पतित, अधम, निकृष्ट महानीच बने हैं। जैसे मनुष्य उत्तम, पशु मध्यम, पक्षी कनिष्ठ और उष्मज निकृष्ट दर्जेमें माने जाते हैं। तैसे ही एक-एक खानीमें भी वही चार-चार दर्जा भी है। सो चारों खानियोंमें उक्त चारों प्रकारके भेद बना दिये हैं। एक ही प्राणीमें भी उक्त चार प्रकारके स्वभाव दिखाई देते हैं ॥ ६७१ ॥

३. एक एकसे उत्तम होई ❀ एक एकसो मध्यम सोई ॥ ६७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्राणियोंमें एक-से-एक बढ़ करके बल, बुद्धि, रूप, गुण, ऐश्वर्य, जन, धन सम्पन्न, श्रेष्ठ-उत्तम हैं; वे चतुर-चालाक होते हैं। तथा दूसरे नम्बरमें सोई घट करके एक-से-एक मध्यमवर्गके लोग भी बहुत हैं; बहुत प्राणी मध्यम स्थितिमें भी रह रहे हैं ॥ ६७२ ॥

४. पुनि लघुता एकन सो एका ❀ एकते एक निकृष्ट विशेषा ॥ ६७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे ही फिर उससे भी घट करके या नीचे उतर करके एक-से-एक लघुत्व, दीन, हीन, मलीन, गरीब हो रहे हैं। बहुतेरे तो कनिष्ट स्थितिमें ही रह रहे हैं। और चौथे नम्बरमें एकदम नीचे गिर करके एक-से-एक विशेषरूपमें निकृष्ट भी हो रहे हैं। अत्यन्त दयनीय स्थितिमें बहुत लोग दुर्दशाग्रस्त हो रहे हैं। ऐसे चारों खानीके प्रत्येक जीवोंमें उक्त चारों दर्जा समान-विशेषरूपसे लगे हैं, सो प्रगट ही दिखाई दे रहे हैं ॥ ६७३ ॥

५. नारी चारी पुरुष सो चारी ❀ चार खान सो कला पसारी ॥ ६७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी तरहसे चार प्रकारकी स्त्रियाँ भी भिन्न-भिन्न भेदसे बनी हैं। और चार प्रकारके पुरुषोंके लक्षणोंका भेद भी सोई चारखानीमें भिन्न-भिन्न भागसे गुण, कला, कल्पनासे वर्णन करके पसारा किया है ॥ ६७४ ॥

६. पदमिनि चित्रिनि शङ्खिनि कीन्हा ❀ हस्तिनी चौथे रचिकै दीन्हा ॥ ६७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चार प्रकारकी स्त्रियोंके नाम इसतरह कहा हैः— १. पद्मिनी=कमलके समान कोमल मुख, हंसके समान धीमी चालवाली स्त्रीको ही 'पद्मिनी' बतलाया है वा लक्ष्मी सदृश सुन्दरी कथन किया है। २. चित्रिनी=चीताके समान तीव्र नेत्रवाली, चित्र-विचित्र शृङ्गारसे युक्त चञ्चल गतिवाली स्त्रीको ही 'चित्रिणी' नामसे कहा है। ३. शङ्खिनी=शङ्खके समान सफेद रूप तथा दाँतवाली क्रोधी विषम चालवाली बहुत बोलनेवाली स्त्रीको ही 'शङ्खिनी' नामसे बतलाया है। ये तीन भाग करके और ४. हस्तिनी= क्रूर स्वभाववाली मदमत्त वा उन्मत्त चालसे लापरवाही करके मत्त हथिनीकी तरह चलनेवाली मोटी स्थूलकाय स्त्रीको ही 'हस्तिनी' नामसे वर्णन किया है। ये चार तरहकी स्त्रियोंका भेद विषयी पण्डितोंने रचना कर दिया है। और दो रूप सम्मिलितमें 'नागिनी' तथा 'डङ्किनी' माना है। तहाँ पद्मिनी-चित्रिणी, ये दो रूप मिलित हों, सो 'नागिनी' कहा है; और हस्तिनी-शङ्खिनी, ये दो रूप मिलित हों, सो उसे 'डङ्किनी' नामसे बतलाया है ॥ ६७५ ॥

७. भेद चाल गुण न्यारे न्यारे ❀ भोग भावको कलोल पसारे ॥ ६७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन छहों स्त्रियोंके भेद, चाल-चलन, गुण-लक्षण,

रङ्ग-रूप, स्वभाव आदि सब न्यारा-न्यारा ही कोकशास्त्रमें पण्डितोंने वर्णन कर रक्खा है। भोगके वास्ते अनेक प्रकारसे सब भाव-कुभाव विषय-विलासका किलोल पसारा करके उसीमें रच-पचकर गड़ रहे हैं। परन्तु, पामर और विषयी लोग तो "नर्क कीट न्याय" उसीमें सुख मान रहे हैं ॥६७६॥

८. शशा मृग घोड़ा खर राचा ❀ चारि कला सो पुरुषमें साँचा ॥ ६७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैसे ही चार प्रकारके उनके सदृश पुरुषकी भी चार जाति माना है। उनके नाम ये हैः— १. शशा=खरगोश या चौगोड़ाके सदृश दब्बू चालवाला पुरुष कहा है। सो शशा स्वभाववालेको ही पद्मिनी स्त्रीका पुरुष माना है। २. मृगा=हिरणके समान तीव्र चञ्चल गतिवाला पुरुष कहा है। सो मृग स्वभाववालेको ही चित्रिणी स्त्रीका पुरुष कहा है। ३. घोड़ा या तुरङ्गके समान वेगवाला पुरुष तुरङ्ग कहलाता है। सो घोड़ाके स्वभाववालेको ही नागिनी स्त्रीका पुरुष ठहराया है। ४. खर=गदहाके समान स्वभाववाला पुरुष कहा है। सो खर या गदहाकी तरह गुणवालेको ही शङ्खिनी स्त्रीका पुरुष कथन किया है। यही चार कलाके साँचा वा मशीन-पुर्जा विशेष करके पुरुषोंमें भी बना है, ऐसा माना है। और हस्तिनीका पुरुष बैल प्रकृतिवाला है, तथा डङ्किनीका पुरुष भैंसा स्वभाववाला बतलाया है। इसप्रकारसे षट् स्त्रियोंके षट् पुरुष पृथक्-पृथक् भेदसे माना है ॥ ६७७ ॥

९. आसन बहुविधि काम प्रसङ्गा ❀ व्यापि रहा बहु रङ्ग तरङ्गा ॥ ६७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! काम प्रसङ्ग या स्त्री-सम्भोग-मैथुन कर्म करनेके भी बहुत प्रकारके आसन निकाला है। तहाँ चौरासी लाख योनियोंकी तरह मनुष्योंमें भी भोग करनेके नाना आसन बतलाया है। उनमें मुख्य करके चौरासी तरहके नारी-सम्भोगोंके आसन बनाया है। तहाँ पशु, पक्षी, साँप, कूकर, शूकरादिकी तरह रति क्रीड़ामें लगे वा लगा रहे हैं। वही देख, सुन, और भोग करके पञ्च विषयोंका रङ्ग, कामकी प्रबल तरङ्ग सब प्राणियोंके तन-मनादिमें व्याप्त हो सर्वाङ्गमें विषयोंका विकार छा रहा है। उसीसे सब जीव बेहोश, उन्मत्त बावलेकी नाईं कामान्ध हो नर्क कुण्डमें ही गिरे या गिर रहे हैं ॥ ६७८ ॥

१०. अनेकन्हि जतन सो कला पसारी ❀ विद्या कोक लत्त सो डारी ॥ ६७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनेक प्रकारसे जतन या प्रयत्न, चतुराई कर-करके पामर, भगलम्पट, विषयी पण्डितादि लोगोंने सोई काम-कलाको बहुत विस्तार करके संसारमें पसारकर फैला दिया है। तहाँ उन्होंने कोकविद्या या काम-शास्त्रकी रचनाका खूब ही विस्तार कर डाला है। उसमें स्त्रीके शृङ्गार, रूप, गुण, शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस, मैथुनके चौरासी आसन, हाव, भाव, कटाक्ष, स्त्रीको वश करनेकी बातें, औषध प्रयोग कर्म-कुकर्म पशुवत् विषय-व्यभिचार करनेमें बड़ा आनन्द वर्णन करके उसीमें सबका लक्ष्य लगा दिया है। सो चारखानी-चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही डालनेका मार्ग है। यह न जान करके विषयी लोग सब-के-सब मनुष्यपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। उसी खाँचमें अन्यको भी डाले और डाल ही रहे हैं। सो इसजालसे विवेक-वैराग्य दृढ़ करके बचना चाहिये ॥ ६७९ ॥

साखीः— विद्या कोक परगट किये ❀ मानुष उत्तम होय ॥
[१४८] भोग होत बहु भाँति सो ❀ चले अपन पौ खोय ॥ ६८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मनुष्य अन्य पशु आदि खानियोंसे तो उत्तम हैं। परन्तु, सद्गुण रहनी-रहस्य पारखबोधके बिना कुकर्मी, महापापी, नीचसे-भी-महानीच नरपशु ही हो रहे हैं। उत्तम मनुष्य होकर त्यागी होनेकी तो उन्हें कुछ खबर ही नहीं है। विषयी जड़ाध्यासी भगलम्पट-चामके कीड़े ही बने हुए पण्डितोंने अविद्यारूप कोकशास्त्र नामक विद्या, कामशास्त्र संस्कृत तथा भाषामें ग्रन्थ बना करके प्रगट किया है। उसी प्रमाणसे काम क्रीड़ा भग-

भोग बहुत भाँति-भाँतिसे पशु सदृश लीला ही कर-करके विषय विलासका भोग हुआ है या हो रहा है। उसीमें आसक्त होकर अपने हंसपद-मुक्तिपदको खो करके नर जन्मसे हारकर पतित, नष्ट-भ्रष्ट होकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही चले गये और चले जा रहे हैं ॥ ६८० ॥

साखीः— जो नहिं जानहिं कोक विधि * पशुवा ताहि बखान ॥

[१४६] अपने उत्तम मानिके * ऐसो अधम अज्ञान ॥ ६८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वे विषय भोगी लोग कोक विधिके ज्ञाता बनकर स्वयं ही नरपशु काग, कुत्ते, शूकरवत् बने हैं; वे नर्कके कीड़े नीच ही बने हैं। तो भी अपनेको वे बड़ा बुद्धिमान् समझ करके कहते हैं कि, हे भाइयो ! कोकशास्त्रमें बतलाये अनुसार ही विधिपूर्वक जो काम-कलाको भोगना नहीं जानते हैं, कोकविधि जाने बिना ही सीधा-सादा रीतिसे जो भग-भोग करते हैं, वे पशुके समान हैं। उन्हें विधि-निषेधका कुछ ज्ञान ही नहीं रहता है, इत्यादि कहकर उन्हें पशुवत् वर्णन करते हैं। अपनेको कोकशास्त्रकी विधिसे काम-कलाको जाननेवाला उत्तम, श्रेष्ठ, अच्छी तरहसे भोग करनेवाला मनुष्य मान करके अहङ्कारमें फूले न समाते हैं। ऐसे वे धूर्त, अधम, पापी, कुटिल, पाजी, महाअज्ञानी, निर्दयी, स्वार्थी, ठग ही बने हैं। अपने विषयासक्त होकर अन्यको भी वे पतित कर रहे हैं। भूलकर भी ऐसे दुष्टोंके सङ्गमें कभी लगना न चाहिये॥ ६८१ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३२ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. रङ्ग रूप कोई गोरा श्यामा * गोहमन कारो चार परमाना ॥ ६८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अध्यासी प्राणियोंके स्थूल देहके रङ्ग-रूप बहुत किश्मके दिखाई देते हैं। उनमें मुख्य चारप्रकारके रङ्ग नारी-पुरुषोंके देह रूपमें देख करके प्रमाण किया है, सो कोई तो अत्यन्त गोरा रङ्गके होते है। जैसे अंग्रेज लोग गोरे होते हैं। कोई श्याम वर्णवाले होते हैं। जैसे दक्षिण-पश्चिमके निवासी मद्रासी आदि लोग होते हैं। कोई गोहमन=गेहूँके समान पीले रङ्गवाले या गेहूँ-गोरा होते हैं। जैसे नेपाली तथा चीनदेश आदिके लोग होते हैं। और कोई तो ज्यादे ही काले रङ्गवाले होते हैं। जैसे दक्षिणी मद्रासी लोग अधिकतर काले ही होते हैं। पश्चिम देशमें गोरे, पूर्वदेश-में श्याम, उत्तर देशमें गोहमन और दक्षिण देशमें काले, ऐसे चार रङ्गके लोग विशेष करके चार दिशाओंमें रहते हैं, यह प्रमाण माना है। अथवा गोरारूपमें शङ्करको कहा है। श्यामरूपमें विष्णु, राम-कृष्ण आदिको माना है। गोहमन रूपमें ब्रह्माको ठहराया है। तथा काला रङ्ग ब्रह्मका ही प्रमाण किया है, ऐसा जानिये ! ॥ ६८२ ॥

२. बवना नाटा और मझोला * लम्बा सोई चार प्रतिकूला ॥ ६८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे देहके माप, परिमाण या लम्बाईका हिसाब भी चार प्रकारसे किया है। तहाँ कोई तो बवना=बौना या बावन अंगुलवाला लम्बा इतना ही नापवाला छोटा दिखाई देता है। कोई नाटा=उससे कुछ बड़ा; परन्तु, ठिंगना होता है। कोई मझोला=मध्यम मापवाला, ठिंगनासे बड़ा और लम्बासे छोटा, बीचके मापमें होता है; और कोई लम्बा=ऊँचा-पूरा लम्बा देहवाले होते हैं। सो चारों एक-दूसरोंसे प्रतिकूल यानी विरोधी मापवाले देखे जाते हैं। तहाँ बौने लोग कम मात्रामें सब देशोंमें होते ही हैं। जापानके लोग ज्यादातर नाटे कदके होते हैं। भारत, मङ्गोल आदिके लोग ज्यादा करके मझोले दिखाई देते हैं। और अरब, यूरोप आदिके लोग ज्यादातर लम्बे होते हैं। और सिद्धान्तमें बौनामें वामन अवतार हुए, फिर वे ही पीछेसे पग बढ़ा करके लम्बे भी हुए थे, ऐसा कहा है। गणेश नाटा हुए। चारोंभाई रामादि मझोल रहे। ऐसे चार अनमिल वा प्रतिकूल बातें वर्णन किया है ॥ ६८३ ॥

३. गढ़न अस्थूल भेद सो चारी * बहु सुन्दर सम शुद्ध सँवारी ॥ ६८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो चार प्रकारके स्थूल शरीरके गढ़न या आकार-

प्रकारके भेद कहा है। उनमें कोई तो बहुत ही सुन्दर, सुघर, शुद्ध-साफ रूप-रङ्गवाले बने या बनाये हैं; और कोई समान बीचके रूपवाले बनाये हैं। कोई अशुद्ध, नीच कुरूपवाले बने हुए हैं; ऐसे रूप सँवारे हुए हैं ॥ ६८४ ॥

४. मध्यम निर्घिन कीन्हा सोई * अनन्त कला तेहि मध्य समोई ॥ ६८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोईके रूप-रङ्ग सुन्दरता उत्तम है, तो कोईके मध्यम भागमें दिखाई देता है, तथा कोई तो निर्घिन=देखनेमें भी अत्यन्त खराब डरावनी भयङ्कर सूरतवाले होते हैं। सोई सुन्दरतामें भी कोई बहुत सुन्दर हैं, कोई सामान्य सुन्दर बने हैं। कोई मध्यमरूपके हैं, और कोई निर्घिन वा कुरूप बने हैं; ऐसे चार प्रकारसे वर्णन किया है। उसीके बीच-बीचमें अनन्त कला=बहुतेक भाग-विभागका भेद समाया हुआ है; जिसका कोई हिसाब लगाया जा नहीं सकता है ॥ ६८५ ॥

५. देखिये सुन्दर एकते एका * एक देखि एक लागत फीका ॥ ६८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चारों खानियोंमें नजर फैला करके देखिये ! वहाँपर एक-से-एक बढ़कर सर्वाङ्ग सुन्दर रूप, गुण, धन, बल, बुद्धि सम्पन्न उत्तम कुल जातिवाले भी दिखाई देते हैं। वैसे ही एक सुन्दर शोभावाले प्राणीको देख करके उसके सामने एक दूसरा फीका शोभाहीन, कुरूप भी लगता है। शक्तिहीन प्राणी शक्तिमानके सामने बड़ा ही फीका नगण्य लगता है ॥ ६८६ ॥

६. जेती कला काल प्रगटावै * अवस्था चारि सो जुगत देखावै ॥ ६८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसतरहसे संसारमें जितने भी कला-कौशल, रूप-रङ्ग, आकार, गढ़न आदिके भेद त्रिकालमें होता है, सो जड़ाध्यास सम्बन्ध पा करके नर-नारीके रूपमें चारों खानियोंमें प्रगट या उत्पन्न होकर प्रत्यक्ष दृश्य होता है। सो सब चार अवस्थाओंकी कर्म-भावना, शुभाशुभ वासना, संस्कार जुट करके ही युक्तिपूर्वक दिखलाई देता है; सो विवेककी युक्तिसे देख लीजिये ! ॥ ६८७ ॥

७. जहाँ जहाँ चारि कीन्ह विस्तारा * चारि अवस्था कारण सारा ॥ ६८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्में जहाँ-जहाँपर भी चार खानी, चार वाणी, चार देह, चार जात, चार नारी, चार पुरुष, चार रङ्ग और चार माप इत्यादि जहाँ चार-चारके भेद-विभेद करके जहाँतक भी विस्तार किया है या बढ़ाया है, सो सारे प्रपञ्चोंका मुख्य कारण ये चार अवस्थाओंके कर्म अध्यास ही हैं; ऐसा विचार करके जानिये ! ॥ ६८८ ॥

८. कारण एक कारज सो अनेका * परखहु सन्त ! जीव करहु विवेका ॥ ६८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कारणरूप एक बीजसे वृक्ष उत्पन्न होकर सो उससे कार्यरूपमें अनेकों पत्तियाँ, फूल, फल, शाखा-प्रशाखाएँ हो जाती हैं। इसीतरहसे भग-भोग पञ्च विषयासक्ति कारण खानीमें है, और ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना भ्रम वाणीमें कारण है, यही बीज वासना अध्यास एकके कारणसे प्रत्येक जीव बद्ध हो-हो करके सो चौरासी योनियोंमें अनेकों देह धारण करके उत्पन्न हुए या हो रहे हैं। तो वहाँपर अनेकों चाल हो रही हैं। तथापि ब्रह्म एक सबका कारण है, सो उसीसे अनन्त जगत् कार्यरूपमें उत्पन्न हुआ है, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है। हे जिज्ञासु सन्तो ! इसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें निर्णय करके परख लीजिये ! चैतन्य जीव और जड़ स्वरूपको यथार्थ विवेक करके सर्व अध्यास-मानन्दीसे जीवको छुड़ाकर पारख स्वरूपपर स्थिर हो रहिये ! ॥६८९॥

९. जस जस परखहु फीका होई * व्यापै न काल कला पुनि सोई ॥ ६९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी साधु-गुरुकी सत्सङ्ग सभामें ठहरकर जैसे-जैसे काल, सन्धि, झाँई एवं विषयादि खानी-वाणीको परखोगे या परखते जाओगे, तैसे-ही-तैसे

उसकी नशा, भ्रम-भूल छूट करके फीकी, नीरस, निकम्मी होती जायगी। दिलसे उसका दाग मिटता जायगा। पूर्ण परीक्षादृष्टि होकर सब मानन्दी-आसक्ति जब छूट जायगी, तब फिर सो वह काल=नारी और गुरुवाओंकी कला, विषय-कल्पनाओंके विकार तुम्हारे हृदयमें कभी नहीं व्यापेंगे; कभी आसक्ति चिपककर नहीं रह सकेगी, सो जानलो ! ॥ ६९० ॥

१०. पारख पाय कला नहिं लागे ❀ ऐसी शरण न गहहिं अभागे ॥ ६९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मुमुक्षुओ ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख बोधसे जब तुम भी अपरोक्ष पारख-दृष्टिको प्राप्त करोगे, तब सद्गुरुकी दयासे तुम्हें एक भी कालकी कला नहीं लगेगी। सब बन्धनोंसे छूट जाओगे। पारखबोध पानेपर फिर कालकी कोई कला लग ही नहीं सकती है। पारख-के प्रतापसे नरजीव अभय जीवन्मुक्त हो जाते हैं। ऐसे पारखी सद्गुरु बन्दीछोरकी शरण-ग्रहण करनेका सर्वोत्तम फल मिलता है। परन्तु, नरदेह पा करके भी अपने हित-कल्याणकी तरफ लगकर ऐसे भव-भय हारी पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर सत्य निर्णयके उपदेशको जो मनुष्य ग्रहण नहीं करते हैं या ग्रहण करनेका प्रयत्न भी कुछ नहीं करते हैं, वे अभागे या भाग्य फूटे हुए कुलाङ्गार दुष्ट हैं। उन हतभाग्य, कङ्गाल, मूढ़, जड़ाध्यासी, पतितजनोंका उद्धार फिर कभी नहीं हो सकेगा। ऐसा जानकर भाग्यसे अभी नर जन्म पाये हो, तो पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणको ग्रहण करके जीवन सफल करो ! यही अपना मुख्य कर्त्तव्य है। अतः जागो ! उठो ! निज हित-कल्याण मार्गमें ही लगो ! ॥ ६९१ ॥

साखीः— पारख पाय फीका परे ❀ उचटि जाय यम जाल ॥
[१५०] भक्ति भाव दृढ़ शरण जो ❀ सोई सदा खुशियाल ॥ ६९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबने जो निज स्वरूपका शोधन करके पारख बोध पाये हैं; सोई पारख दिव्यदृष्टिको जिससे पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्ग-द्वारा जान पाया, तब उसे अन्य मत, पन्थ, ग्रन्थोंका सिद्धान्त सब फीका, तेजहीन, असार, बेकार जान पड़ेगा। इससे उस तरफकी मानन्दी मनसे उखड़ जायगी; उचाट होकर दृढ़ वैराग्य हो मन उपराम हो जायगा। अतएव यम जाल=स्त्रीके विषय भोगादि जञ्जाल तथा गुरुवाओंके-भक्ति, योग, ज्ञान, ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पित वाणी-जाल, सब भस्म हो नष्ट होकर उड़ गये, विनष्ट हो गये। जीवोंको ऐसे-ऐसे बन्धनोंसे छुड़ानेवाले सर्व शिरोमणि जो पारखी सद्गुरु हैं, उन्हींका शरणागत हो करके तन, मन, धनादिके अभिमानको गुरु चरणोंमें अर्पण कर गुरुभक्ति-बोध-भावको जो दृढ़ कर लेते हैं; गुरु आज्ञा उपदेशको पालन करके हंस रहनी, सद्गुण-लक्षण, रहस्य संयुक्त रहनेवाले सोई विवेकी सन्त पारखी सत्यन्यायी सारग्राही हो जाते हैं। वे निराश वर्तमानमें सदा प्रसन्न, निज स्वरूपमें अटल, जीवन्मुक्त हो जाते हैं। सोई सदा-सर्वदा खुशियालीमें शान्त रहते हैं ॥ ६९२ ॥

साखीः— कला काल सब परख ले ❀ जेते हैं सब फाँस ॥
[१५१] बिन पारख सोई बीज है ❀ जन्म मरणके गाँस ॥ ६९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यदि तुमलोग मुक्ति पाना चाहते हो, तो हे जिज्ञासुओ ! कालकी सब कलाको परख लो ! जितने भी खानी-वाणीके जाल-फाँस हैं, उन सबको तोड़-फोड़ करके विनष्ट कर जरा-बरा करके उड़ा दो ! अरे भाई ! तुम जिस विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिको सुख स्वरूप करके मान रहे हो, वह वैसा नहीं है। सो तो दुःखरूप आवागमनोंमें ले जानेका बीज-मूल कारण है। यदि बिना पारख तुमने उस बीज वासनाको बढ़ा लिया, तो जन्म, मरण और गर्भवासके खाँचमें ही गिर जाओगे। चौरासी योनियोंमें गिरकर गाँसे जाओगे, ऐसा समझो ! अतएव पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके सत्सङ्ग द्वारा स्त्री और गुरुवालोग ये कालके जालरूप विषय और कल्पनादिकी कलाको परीक्षा करके यथार्थ जान लेना चाहिये। मोटी-झीनी जितने भी फन्दा हैं, सो सबोंको परखकर त्याग करना चाहिये, तभी जीव जीते ही मुक्ति पायेगा। नहीं तो यथार्थ सद्गुरुके

पारख बोध हुए बिना सोई बीज=वासना दृढ़ हो रही है। वही अध्यासकी गाँठी जन्म-मरणके बीच गर्भवासमें ले जाकर जीवको डाल देती है; गाँस करके फँसा देती है, ऐसा जान लीजिये ॥ ६९३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३३ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. काल फन्द रचा बहुताई * फन्द बीच बहु फन्द उपाई ॥ ६९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! काल=मन, स्त्री और गुरुवालोगोंने विषय, काम, क्रोध, लोभ, मोहादिके जाल तथा वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादिके फन्दा बहुत तरहसे रचना करके विस्तार कर रक्खे हैं। फिर अनेकों उपाय करके एक-एक खानी-वाणी फन्दाओंके बीच-बीचमें छोटी-मोटी अनेक-अनेक बहुविधि फन्दाओंको और भी उत्पन्न करके बना रक्खे हैं। संसारमें काम-क्रीड़ा, भोग-विलासमें भुला करके फँसाये हैं; परमार्थमें— जप, तप, योग, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, पूजादिमें लगा करके बाँध रक्खे हैं। सो वही अध्यास लेकर जीव विविधि प्रकारके देह धारण कर रहे हैं ॥ ६९४ ॥

२. बहिरा अन्धा काना गूँगा * नकबैठा लूला औ पङ्गा ॥ ६९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्माध्यासके अनुसार कितनेक जीवोंके अङ्ग-भङ्ग उत्पन्न होकर पापका फल भोगते हैं, और भोग ही रहे हैं। तहाँ कोई बहिरे होकर कानसे ही नहीं सुनते हैं; और सत्य उपदेश, हित वाक्यको न सुननेवाले सो भी बहिरे बने हैं। कोई अन्धे होकर दोनों नेत्रोंसे ही नहीं देखते हैं, और जड़-चैतन्यको भिन्न-भिन्न न देखनेवाले, एक ब्रह्मको व्यापक माननेवाले वे भी अन्धे बने हैं। किसीकी एक आँख फूट करके काने या काणे होते हैं; और पारखी सन्तोंको टेढ़ी नजरसे देखनेवाले और तत्त्ववादी भी काने बने हैं। और किसीकी पड़जिभ्यामें विकार होनेसे गूँगे ही हो जाते हैं; वे वाणीसे शब्द बोल ही नहीं पाते हैं। तथा मौनी बाबाजी और हित वाणीको न कहनेवाले ये दोनों भी गूँगे ही बने हैं। और किसीकी नाक चपटी हो करके बैठ जाती है; उसे नकबैठा कहते हैं। तैसे ही सत्सङ्गका सुगन्ध न लेनेवाले तथा प्राणायाममें ही भूले हुए, वे लोग भी नकबैठा बने हैं। और कोई लूला होते हैं, उनका हाथ ढीला होकर झूल जाता है। तैसे ही सो साधु-महात्मा आदिको हाथोंसे सेवा करके कुछ भी दान न देनेवाले वे भी लूले ही बने हैं। और किसीका एक पैर टूट जानेपर लङ्गड़ा होता है, तथा दोनों पैर जिसके नहीं होते हैं या टूट जाते हैं; उसे पङ्गा कहते हैं। सो तैसे ही सत्सङ्गमें साधु-गुरुके दर्शन तथा हित-कार्यमें आगे पैर न बढ़ानेवाले आलसी मूढ़ वे भी लङ्गड़ा और पङ्गा ही बने हैं ॥ ६९५ ॥

३. कुबजा अष्टावक्र बनाई * आपु घीन पुनि आपु घिनाई ॥ ६९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे ही किसीकी पीठसे रीढ़-हाड़ बिगड़ करके झुक जानेसे कुब्जा या कूबरा वा कूबरी हो जाते हैं। वैसे ही कुकर्मी, व्यभिचारी, हिंसक लोग पाप कर्म करके नरकमें जानेके लिये पापमें झुके रहते हैं; इसलिये वे भी कुब्जा बने हैं। और किसीका आठों-अङ्ग टेढ़ा-मेढ़ा होता है, तो उसे अष्टावक्र कहते हैं। तैसे ही उधर उटपटाङ्ग चालवाला=लुच्चा, लम्पट, धूर्त, लबार, कपटी, छली, हिंसक, और बटमार (डाकू), ये आठों दुर्गुणवाले सो वे भी अष्टावक्र बने हैं। और ऐसे-ऐसे अङ्ग-भङ्ग, जन्म लेकर या बादमें किसी कारणसे बिगड़कर कोढ़ी आदि अपाहिज हो जाते हैं, कोई डूँडा भी होते हैं। सो सब पाप कर्मके प्रभावसे ही ऐसा देह बन जाता है वा बनाया जाता है। जीव अपने ही दुष्कर्मके फलसे ऐसे अङ्ग-उपाङ्गहीन, घृणित शरीर बना करके जन्म लेते हैं। फिर अपने शरीरको कुरूप, रोगी, अङ्गहीन देखकर आप स्वयं भी घिना जाते हैं। अछताय-पछतायके दुःखित होते हैं। परन्तु, फिर-फिर भी वैसे ही घृणित पाप कर्म करते जाते हैं, तो पुनः-पुनः चौरासी योनियोंमें ही पड़ करके ऐसे-ऐसे अङ्गहीन शरीर पाकर तुच्छ हो करके घीन-घिनाते और मक्खी भिन-भिनाते रहते हैं ॥ ६९६ ॥

४. जाल प्रतिजाल न्यारे न्यारे * तामें विकल रहे जीव विचारे ॥ ६९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक खानी जालमें अनेकों विषय जाल लगे हैं। तथा एक वाणी जालमें भी अनेकों कल्पनाके जाल बहुत प्रकारसे लगे हुए हैं। न्यारा-न्यारा किश्मसे प्रत्येक जालमें नरजीव अरुझे ही पड़े हैं। सद्गुरुने बीजक, साखी २११ में कहा है:—

साखीः— "बहु बन्धनसे बाँधिया, एक विचारा जीव ॥ की बल छूटे आपने। कीरे छुड़ावे पीव ॥"

इसतरह उस बन्धनरूपी अनेकों जाल-जञ्जालोंमें अरुझ करके बेचारे जीव बिना पारख अविचारी होकर उसीमें व्याकुल, दुःखित, लाचार, बद्ध हो-होकर महान कष्ट भोग रहे हैं ॥ ६९७ ॥

५. उतपति पालन औ सङ्हारा * त्रिगुण जहाँ तहाँ सोई विस्तारा ॥ ६९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! रज, सत्त्व, तम; काम, क्रोध, मोह; तत्, त्वं, असि; ऐसे-ऐसे त्रिगुण फन्दाओंमें घिर करके चारों खानियोंमें नाना देहोंको उत्पन्न किये हैं। फिर कर्म भोगने तक पालन हुआ और फिर भोग पूरा होनेपर अन्तमें संहार होकर देहका विनाश हुआ, फिर भी अभ्यासी जीव वही जन्मृति चक्रमें ही पड़े हैं। जहाँ-तहाँ वही तीन गुणवाली मायाके जालका ही विस्तारसे प्रचार हुआ है। उत्पत्ति, पालन और देह आदिका संहार भी सदा हो ही रहा है। खानी और वाणीजाल सर्वत्र सोई त्रिगुणका ही विस्तार है, ऐसा जानना चाहिये ॥६९८॥

६. खानि रोगके पूरण अङ्गा * बहुत भाँति उपजावै शोगा ॥ ६९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जन्म-मरणादि रोग होनेका घर, ठिकाना, सो यही चारखानियाँ हैं; और इधर खानीरूप देहमें सर्वाङ्ग पूर्ण या अपूर्ण विकार जमा होनेसे नाना रोगों-की उत्पत्ति होती है। तथा पूर्णब्रह्मके अङ्गसे ही चारखानीरूप रोगोंकी उत्पत्ति हुई, ऐसा कहा है। यही खानी-वाणी ही बहुत प्रकारसे शोक, सन्ताप, कष्ट, जन्मृति आदि दुःखोंको बारम्बार उत्पन्न कराती ही रहती है; कभी निश्चिन्त सुखी होने नहीं देती है ॥ ६९९ ॥

७. केहु निहारे तन सुन्दरताई * केहु देखि मन बहु पछिताई ॥ ७०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें कोई तो देहासक्त हो करके अपना-पराया नारी-पुरुषोंके देहोंकी सुन्दरता चमक-दमक देखनेमें लुब्ध-मोहित हो रहे हैं। कोई अपना या दूसरेका भद्दा शरीर, कुरूप देख और दिखा करके मनमें बड़ा दुःखी होकर घृणा करके पछताते हैं। हमारा शरीर सुन्दर क्यों नहीं हुआ ? हाय ! हाय ! पुकार करके अफशोस करते हैं ॥ ७०० ॥

८. रहै न सुन्दरता अरु घीना * छिन छिन औरहि औरे कीन्हा ॥ ७०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! परिणामी काया छिन-छिन, घड़ी-घड़ी, दिन-दिन करते-करते बदलता ही जा रहा है। जन्मसे ही देहका भाग बदलते-बदलते जवान और वृद्ध होकर अन्तमें मर करके नाश हो जाता है। सदा कायमकी न सुन्दरता ही रहती है और न घीन कुरूपता ही रहती है; दोनों ही नहीं रहती है। क्षणभरमें ही परिणाम बदलकर और-का-तौर हो जाता है। मृत्यु होनेपर क्षणभरमें ही और कुछ-का-कुछ ही भयङ्कर हो जाता है। फिर चितामें जला करके थोड़ी देरमें ही और-का-और ही बदलकर भस्म वा राखकी ढेरी कर देते हैं ॥ ७०१ ॥

९. धूरि मिलावै राखै नहिं चीन्हा * ताहि मगन पछतावन दीन्हा ॥ ७०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अरे ! उस शरीरकी कुछ भी चिह्न-पहिचानी तब नहीं रहती है या नहीं रखते हैं। मृत्यु होनेपर सब धूरमें, मिट्टीमें, पानीमें, और अग्निमें ही मिला देते हैं। "तनगति नित कीर्म विष्ट है। नातर खाक उडै हैं॥ कहाँ वह नैन ? कहाँ वह शोभा ? कहाँ वह रूप दिखै हैं?॥"

ऐसे नाशवान् देहके रूप विषयोंमें आसक्त होकर कोई तो देहके विषयोंमें मग्न-मोहित हो रहे हैं। कोई चाहना पूर्ण न होनेसे मनमें बड़ा ही पछतावा करके दुःखी हो मन उसी विषय सुख प्राप्तिमें लगा दिये हैं या लगा देते हैं ॥ ७०२ ॥

१०. घात परस्पर जोइन सोई * एकन्हि एक जहाँ तहाँ खोई ॥ ७०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विषय भोगोंमें स्वार्थ पूर्ण करनेके लिये चारों-खानियोंमें एक-दूसरेपर घात, दाव-पेंच लगाकर बलवान् लोग निर्बलको दबा रहे हैं। स्वार्थमें रुकावट विघ्न होनेपर फिर वही जहाँ-तहाँ एक-दूसरेको मार भी डालते हैं। एक-दूसरेको नाश करके जहाँ-तहाँ मिटा भी देते हैं; नामों-निशानको खो देते हैं। स्त्रियोंका घात तो पुरुषोंपर लगता है, तथा पुरुषोंका घात स्त्रियोंपर सदासे लगा ही आ रहा है। परस्पर घात करके जो अध्यास टिकाते हैं, सोई उन्हें चौरासी योनियोंके समूह गर्भमें पहुँचा करके डाल देता है ॥ ७०३ ॥

११. जीवन हान करै जिव केरा * परखहु बाँचहु हंस सबेरा ॥ ७०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जीव ही दुष्ट काल बन करके दूसरे जीवोंको छल-बल, कपटसे जालोंमें फँसाकर जीवनधन, आयु, बल, बुद्धि, वीर्य, साक्षीपद आदि स्वरूप ज्ञानसे भी गिरा करके नारी और गुरुवालोग काल होकर जीवोंकी बड़ी ही हानि, नुकशान, पतित करते-कराते हैं। अतएव हे हंस मुमुक्षुओ ! पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें आकर इन सब काल-जालों-को परखो, समझो, जानो, त्यागो ! यह नर-देहरूप प्रभातके सबेरा बेलामें शीघ्रातिशीघ्र सत्पुरुषार्थ करके बचो, पारख भूमिकापर ठहर जाओ ! ॥ ७०४ ॥

साखीः— प्रभुके शरण सहाय बिनु * कैसे होय उबार ? ॥

[१५२] अधम काल ग्रासै सबै * अपनी जाल पसार ॥ ७०५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! पारखी सद्गुरु प्रभुके शरणागत होकर सद्गुरुके कृपासे सत्य उपदेशकी सहायता हुए बिना सत्स्वरूपका बोध किसीको भी नहीं होता है। और सद्गुरुके पारखके बोध पाये बिना किसीका भवधारासे कैसे उबार होगा भला ? पारख ज्ञानके जहाजमें चढ़े बिना संसाररूप सागरसे उबार या पार कोई जा नहीं सकते हैं। योग, जप, तप, भक्ति, तीर्थ, व्रतादि करके उछलना, कूदना, तैरना, भवसागर पार होनेके लिये व्यर्थ है। वे तो थक-थका करके अन्तमें मरकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही डूब जाते हैं। सद्गुरुके पारख बोधकी सहायता हुए बिना प्रबल खानी-वाणीसे उबार, पार या मुक्ति तो भी कैसे होगी भला ? क्योंकि, अधम, दुष्ट, कपटी, नीच काल=मन, नारी और गुरुवालोग सब प्राणियोंको ग्रास रहे हैं; पकड़-पकड़कर दबा रहे हैं। अपने-अपने विषय, वाणी, कल्पनादिका महाजाल पसार कर उसीमें सबको अरुझा-अरुझा करके मार रहे हैं; जड़ाध्यासी पतित बनाये और बना रहे हैं ॥७०५॥

साखीः— और अनेकन जो कला * कीन्हा काल परचण्ड ॥

[१५३] बझै जीव बहुभाँति सो * थूल अस्थूल ब्रह्मण्ड ॥ ७०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अभी ऊपर जितना कह आये हैं, इतनेमें ही काल-जाल खतम नहीं होता है। इसके अलावा और भी अनेकों तरहकी कला-कल्पना, जाल-जञ्जाल बनाये या बना रक्खे हैं वा बना रहे हैं। जो कि, उन विविधि कलाओंको काल=मन, स्त्री-और गुरुवाओं-ने प्रचण्ड=तीव्र, तीक्ष्ण धारवाली कर रक्खा है; बहुत उलझन पैदा कर दिया है। उसीमें ज्ञानी और अज्ञानी सब मनुष्य जीव बहुत प्रकार या भाँति-भाँतिसे बझै=अरुझे फँसे पड़े हैं या अरुझते ही जा रहे हैं। थूल=सूक्ष्म जाल तथा स्थूल जाल पिण्ड या ब्रह्माण्डमें भीतर-बाहरमें खानी-वाणीमें कल्पना विषयादि महाजालोंमें ही बहुत तरहसे सब जीव फँसे या फँस रहे हैं। बिनापारख वह जालरूप कैदसे जीव कदापि छूट नहीं सकते हैं ॥ ७०६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३४ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. भूत प्रेत जोइन विस्तारी * थूल अस्थूल मध्य तेहि डारी ॥ ७०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सुनिये ! मिथ्यावादी गुरुवालोगोंने कैसी-

कैसी मानन्दी, कल्पना दृढ़ कर-कराके मनुष्योंको भ्रमा रक्खा है। सो यहाँपर भूतखानीके बारेमें दर्शाया गया है। वास्तवमें तो भूत-प्रेत नामकी कोई खानी ही नहीं है। भूत=पञ्चमहाभूत, पाँच तत्त्वोंको ही कहते हैं। और प्रेत=मुर्दा जड़ शरीरको कहते हैं; यह दोनों ही जड़ कार्य-कारण हैं। और कोई जीवयुक्त भूत-प्रेतादिकी खानी कहीं कुछ भी नहीं है। परन्तु, गुरुवालोगोंने झूठे ही "भूत-प्रेतादि पाप भोगनेकी योनियाँ हैं!" ऐसा कहकर उसके बारेमें बहुत वाणी कल्पनाका विस्तार कर रक्खा है। कहा है कि— "स्थूल शरीर छूटनेपर मनुष्य खानीके जीव पहले तो सब कोई प्रेत हो जाते हैं। यहाँ मृत्युकी क्रिया-कर्म कर देनेसे ही उनकी प्रेतयोनि छूटती है; और विशेष पापात्मा मरकर भूत हो जाते हैं। अपने दुःख भोग करके दूसरोंको भी वे दुःख पहुँचाते हैं। सूक्ष्म और स्थूल शरीरके बीच भागमें ही भूत-प्रेतोंका देह बना होता है। इसीसे वे मनचाहे रूप बना सकते हैं। गुप्त-प्रगट होनेकी कला या सामर्थ्य भी उनमें रहता है। कभी स्थूलरूप बना लेते हैं, तो कभी अदृश्य सूक्ष्म हो जाते हैं। स्थूल-सूक्ष्मके मध्यमें भूत-प्रेतोंको ईश्वरने डाला है।" ऐसी-ऐसी कपोल कल्पित बातें कह करके सुनाकर सब मनुष्य जीवोंको भ्रम चक्रमें डाल दिये हैं वा भुला दिये हैं। कहा है:—

शब्दः— "ये भ्रम भूत सकल जग खाया। जिन-जिन पूजा ते जहँड़ाया॥"—

इत्यादि निर्णय बीजक, शब्द १०५ में श्रीसद्गुरुने परखाया है। अतएव भूत-प्रेत, देवी-देवता ब्रह्म आदि माना हुआ मनुष्योंकी भ्रम मात्र है, ऐसा जानना चाहिये॥ ७०७॥

२. घोर कष्ट सो जोइन कीन्हा ❀ दुइके सङ्गमें बासा दीन्हा॥ ७०८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! परन्तु, गुरुवालोगोंका कथन तो ऐसा है कि, भूत-प्रेतादिक योनिमें जो इन जीवोंने यहाँ पाप कर्म किया है, उसीका फल वहाँ भूत-प्रेत हो करके सो उन्हें घोर कष्ट वा घनघोर दुःख होता है; वे अत्यन्त महान दुःख भोग करते हैं। उन्हें खाने-पीनेको भी नहीं मिलता है। पेट तो बड़ा घड़ाके समान होता है, और मुख तो सुईके छिद्र समान छोटा रहता है। इससे भूखों-प्यासों तलमलाय-तलमलाय करके कष्ट भोगते हैं, ऐसा वर्णन किया है। स्थूल और सूक्ष्म, ये दो देहके बीचमें नर-नारीके सङ्गमें वासनायुक्त जहाँ-तहाँ मलिन स्थानमें बासा या निवास करते रहते हैं। यमराज उन्हें वैसी जगहमें ही बैठने देते हैं। ऐसा कथन सुना करके भ्रमिकोंने मनुष्योंको भ्रमा करके धोखेमें पहुँचा दिया है; नरकमें डाल दिया है॥ ७०८॥

३. पाँच तीन झीना औ स्थूला ❀ अष्ट वायु सो जोइन मूला॥ ७०९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पाँच तत्त्व, तीन गुणोंके झीना=बारीक सूक्ष्म भाग, और मोटा=स्थूल भागका मुख्य अंश लेकर अष्टाङ्ग युक्त वायुस्वरूपी ही सो भूत-प्रेतादि योनियोंमें, मूल शरीर बना रहता है। और धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग, देवदत्त, इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये ब्रह्माण्ड कलाकी अष्ट वायु उस योनिके देहमें सूक्ष्म मूल या मुख्यरूपमें रहता है; तथा पञ्च विषय, त्रिगुणके बीज सहित स्थूल देहके व्यान, समान, उदान, प्राण, अपान, वात, पित्त और कफ, ये आठोंका दूसरा भाग भी सो योनिके मूलमें रहता है, इसप्रकार झीनी-मोटी दोनों भाग मिला करके अष्ट वायुका शरीर भूत-प्रेतादिका होता है, ऐसी कल्पना किया है। परन्तु, स्थूल देहके बिना कार्य हो नहीं सकता है, सो जानना चाहिये॥ ७०९॥

४. आपु काल समय बनि आवै ❀ आपुहि बीचै माँह नशावै॥ ७१०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आप ही जीवने अपने ऊपर एक मालिक ईश्वर, काल या महाकाल निरञ्जन-परमात्मा कल्पना करके माना है। फिर त्रिकालरूप समय भी उसीने बनाया या वहींसे बन करके आया, ऐसा कहा है। प्रथम जो सृष्टि उत्पन्न किया था, सो परमेश्वरकी इच्छासे आप-ही-आप बीचमें ही नाश हो जाता है, तो प्रलय हो जाता है। फिर समय पा करके आपसे ही जगत् पैदा भी हो आता है। ऐसा वर्णन आप ही नरजीवोंने कल्पना करके कहा है। मनुष्य जन्मके

समयमें काल=गुरुवा बन करके धोखेमें आ गये हैं। आयुभर दुर्गुण, विषय, कल्पनामें लग करके सद्गुण-विचारको उन्होंने उसी बीचमें ही नाश कर दिया है, उसीसे वे गर्भवासके बीचमें ही जा पड़े हैं, वासनावश नाना देहधारी हुए हैं। माना हुआ भूत-प्रेतादि तो कुछ वस्तु ही नहीं है; झूठी भ्रम-कल्पनाका शब्द चित्र मात्र ही खड़ा किया है ॥ ७१० ॥

५. मृत्यु अकाल विनाशे देही ❀ प्रेत जुईनमों राखहि तेही ॥ ७११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भूत-प्रेतादि होनेके और वहाँ जानेके कारण गुरुवालोगों-ने ऐसे बतलाया है कि, मनुष्योंकी आयुका पूर्ण प्रमाण सौ वर्षका है। तहाँ आयु पूर्ण भोगे बिना ही कोई अचानक बाल और युवामें ही मर गये और कोई विष खा करके मरे, आत्महत्या करके मरे, नदीमें, कूएँ आदिमें डूब करके मरे, आगमें जलकर मरे, पहाड़से गिरकर वा फिसलकर मरे, हिंसक जन्तु बाघ आदि द्वारा मारे गये; ऐसे-ऐसे भौतिक ताप तथा दैविक तापमें मर करके जिनका शरीर विनाश होकर छूट जाता है, उन सबकी अकाल मृत्यु हुई, ऐसा वर्णन किया है। सो अकालमें ही जिनकी मृत्यु होती है, दुर्घटनासे शरीर छूटनेपर उन जीवोंको यमराज प्रेत योनियोंमें ले जा करके रखते हैं। फिर वहाँ असह्य कष्ट भोगाते हैं: ऐसा कथन किया है। परन्तु, निर्णय करनेपर यह बात बिलकुल असत्य या सरासर झूठी ही ठहरती है। क्योंकि, अकालमें तो किसीकी मृत्यु ही नहीं होती है, और मृत्यु होनेपर अकाल ही नहीं होता है, काल वा समय नहीं आया है, भोग पूर्ण नहीं हुआ है, आयु खतम नहीं हुई है, तो भला! किसीकी मृत्यु क्यों करके होगी? और तीन ताप द्वारा ही शरीर छूटनेका नियम है। जिसने जैसा संस्कार बनाया है, वैसे ही एक-एक तापसे ही देह छूटेगा। जब कि, किसी तरहसे भी देह छूट गया या मृत्यु हो ही गयी, तो वहाँ अकाल ही कैसे हुआ? अकाल और मृत्यु यह शब्द परस्पर विरोधी होनेसे व्याघात दोष आ जाता है, एक शब्द दूसरेको खण्डन करता है। अतएव विवेक-दृष्टिसे तो किसीकी भी कभी अकाल मृत्यु नहीं हुई है, न होगी। सबोंकी मृत्यु सब अवस्थाओंमें कालमें ही होती है; ऐसा जानना चाहिये, प्रेतयोनि मानना भी गलत बात है ॥ ७११ ॥

६. भूत प्रेत आशा उपजावै ❀ जोइन भूत ताहि भरमावै ॥ ७१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! आशा, बासा, कल्पनासे भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षस, चुडैल, वीर, वेताल, शङ्करके नन्दी-भृङ्गी और चौंसठ (६४) गणादि वर्णन करके भयानक वाणी उत्पन्न किये या बनाये हैं। सो भूत-प्रेत, वीर-वेताल वश होनेसे मनोकामना पूर्ण हो जायगी। चाहे सो करने-करानेकी शक्ति आ जायगी, ऐसी-ऐसी आशा उपजा करके मिथ्या धोखेमें पड़े हैं। उसी भूतादि योनिको सच्चा बता करके गुरुवालोगोंने अबोध भावुक मनुष्योंको भ्रमाये और भ्रमा ही रहे हैं ॥ ७१२ ॥

७. सो जोइनिके हेतु प्रपञ्चू ❀ बहुत कलेश जीवहिने सञ्चू ॥ ७१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो चौरासी योनियोंमें जानेका कारण पञ्च-विषयासक्ति विषय प्रपञ्च तथा पञ्च कोशोंके वाणी-प्रपञ्चोंका प्रेम जड़ाध्यास ही है। मनुष्य जीवोंने ही नाना कर्म-कुकर्म करके वासना, अध्यास, संस्कार, बहुत-बहुत सञ्चय या जमा किया है। भ्रमिक हो नाना देह भावनाको खड़ा करके बहुतेक कष्ट-क्लेश जन्म-मरणादिके दुःख भोगने या सहने लगे। सो भूत-प्रेतादि योनि मानन्दीके कारणसे बहुत क्लेश जीव ही भोगने लगे, यह सब भ्रम नरजीवोंने ही खड़ा किया है। इसलिये जड़ाध्यासी जीव कभी चैन नहीं पाते हैं ॥ ७१३ ॥

८. तेहि जोइन सो कला प्रकाशा ❀ विनशै देह आशा सोई बासा ॥ ७१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देवयोनि और सो भूत-प्रेतादि योनियोंमें गुप्त और प्रगट होनेकी कला, शक्ति-सामर्थ्य बहुत ही रहता है। उनके उपासना सफल होनेपर साधकोंमें सिद्धि कला आ जाती है। फिर तो गुप्त-गुप्त पदार्थको भी वह प्रकाश कर सकता है, इत्यादि कह करके

गुरुवालोगोंने ऐसी बहुतेक कल्पित वाणीका प्रकाश किया है। भूत आराधना, प्रेत साधनादि मन्त्र जाप, पूजा, अनुष्ठान वगैरह कितनेक पाखण्ड प्रकाश किया है। देह रहेतक उसी कुमार्गमें लगे रहते हैं, एक दिन शरीर तो नाश हो ही जाता है। परन्तु, उसी आशा-तृष्णा अध्यासके वशीभूत होकर सोई चारखानी निकृष्ट चौरासी योनियोंमें जा करके निवास करते हैं; दुःख भोगा करते हैं ॥७१४॥

९. साबर मन्त्र यन्त्र उपराजा * प्रेत लच्च ताहि बिच साजा ॥ ७१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तमोगुणी पाखण्डी विषयी वाममार्गी चतुर गुरुवालोगोंने "साबर" नामके शाक्त मतका बीजमन्त्र-"क्लीं ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा"-"चं चामुण्डाय विच्चै" इत्यादि अनेक मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, विष्णुयामल तन्त्र, रुद्रयामल तन्त्र, शिवयामल तन्त्रादि ग्रन्थ, पन्थोंकी उत्पत्ति करके भूत-प्रेतादिमें लक्ष्य लगाकर उसीके बीचमें अनेकों साधना, प्रयोगादिकी बहु विधि साज सजाये हैं। उसी लक्ष्य-वासनासे वे उष्मजादि खानीमें चले जाते हैं। और तन्त्र शास्त्रोंमें भूत-प्रेतादि योनियोंके लक्षण नाना तरहसे साजके वर्णन करके बना रक्खे हैं; सो सब कुमार्गका असत्य जाल है ॥७१५॥

१०. तामस गुण सो शिव अधिकारी * विद्या धनी पुरुष औ नारी ॥ ७१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तामसी, दुर्गुणी, वाममार्गी, तान्त्रिक, भूत-प्रेत-गणोंकी उपासना करनेवाले सो वे सब उपासकलोग महादेवको ही अपना आचार्य इष्ट देवता करके मानते हैं। क्योंकि, विशेष करके शङ्करने ही तामस गुणके अधिकारी होकर वैसे ही तामसी अधिकारी लोगोंमें यह कुमार्ग प्रचार करके चलाया है। साबर विद्या और जारण, मारण, मोहन, आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन और स्तम्भन, ये सात कुविद्या बनाये हैं। इसविद्याके धनी=मालिक शिव-शक्ति या महादेव-पार्वती, ये दोनों ही स्त्री-पुरुष माने गये हैं। इस कुमार्ग कुविद्यादिमें कभी लगना नहीं चाहिये ॥ ७१६ ॥

साखीः— बहु प्रकारके रूप धरि * काल करे घनघोर ॥
[१५४] सोई ठाकुर सब जीवके * जे स्वतः कुटिलता चोर ॥ ७१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जड़ाध्यासी जीव सब स्त्री, पुरुष, नपुंसक बने हैं; और कोई योगी, ज्ञानी, भक्त, चार वर्ण, चार आश्रम, षट् दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्ड, दक्षिणमार्गी, वाममार्गी, शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, स्मार्त, वैष्णव इत्यादि बहुत प्रकारके रूप, आकार-प्रकार, हाव, भाव, कटाक्ष, साज-शृङ्गारको धारण करके काल=स्त्री और गुरुवालोग खानी-वाणीके बादल, आवरण जीवोंपर छा करके घनघोर गर्जना, वज्रपात, उत्पात, भयङ्कर विनाश, जीवोंका सत्यानाश कर रहे हैं। सोई नारी और गुरुवालोग वा विषय और कल्पना सब जीवोंके यहाँ ठाकुर, मालिक, रक्षक, पहरेदार, सहायक, इष्टदेव होकर अड्डा जमा करके बैठे हैं। जो कि, उन्हें स्वतः चैतन्य स्वरूपका बोध तो नहीं है। स्वयं ही कुटिल, कपटी, दगावाज, चोर, ठग या डाकू बने हैं। तो भला, इनसे किसीकी क्या भलाई होवेगी। गुप्त-प्रगट दोनों तरहसे जीवन-धनको चुरा करके या जबरन लूट-खसोट करके मारकर भी स्वार्थ सिद्ध करनेमें लगे हैं। अतएव सद्गुरु तथा गुरुवालोगोंका भेद अच्छी तरहसे पहिचान करके उन कालके कुसङ्गसे सदा दूर ही हो रहना चाहिये। एवं साधु पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥७१७॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने सद्ग्रन्थ बीजक, मूलके साखीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये! ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, साखी नम्बर— १८१ ॥ ❀ ॥

साखीः— साहेब साहेब सब कहैं * मोहि अन्देशा और ॥
[१५५] साहेबसे परिचय नहीं * बैठोगे केहि ठौर ? ॥ ७१८ ॥

अर्थः— [गुरुमुखः-] सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! देखिये! कहनेको तो सब कोई

साहेब-साहेबकी पुकार, रटना ही कर रहे हैं। परन्तु, सच्चा साहेब सो कौन है? साहेब किसको कहना चाहिये? इस तरफ तो कोई विचार ही नहीं करते हैं। वाणी-खानीमें मोहित, आसक्त होकर सन्देहसे और-का-तौर ही मानन्दी करके ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता, भूत-प्रेतादि कल्पितको ही अनुमानसे श्रेष्ठ, साहेब सुख तथा मुक्तिदाता सब लोग कह रहे हैं और मान रहे हैं। हे ईश्वर! हे भगवान्! हे हरिः! या खुदा! ओ अल्लाह! इत्यादि कह-कह करके पुकारा कर रहे हैं। और फिर गुरुवालोगोंको महात्मा, सिद्ध, श्रेष्ठ, योगी, ज्ञानी, भक्त, कल्याणकर्त्ता मानकर सब लोग उन्हींके चेले बनकर महिमा गा रहे हैं। वही बातको सुन-सुन करके एक-दूसरेपर मोहित, लुब्ध, बद्ध हो रहे हैं। वे भ्रमिक लोग मुझे तो और ही कुछ समझ करके सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं; और मेरे सत्यनिर्णयके ऊपर तो कुछ ध्यान ही नहीं देते हैं। ऐसा विपरीत हाल देख करके मुझे तो और ही अन्देशा=सन्देह, समवेदना, शोच-फिक्र हो रही है कि, ये लोग धोखेमें पड़े हैं, तो बड़े दुर्दशाग्रस्त होवेंगे! क्योंकि, सच्चे साहेबसे तो इन्हें कुछ परिचय ही नहीं है, जिसे ब्रह्म-ईश्वरादि श्रेष्ठ कर्त्ता करके माना है, सो कल्पना ही मात्र है। उसके खास स्वरूपको तो कोई जानते-पहिचानते ही नहीं हैं। वेद भी "नेति-नेति" कहके हारा। स्वर्गादिमें जाकर जगह देख करके भी कोई नहीं आये हैं, तब फिर मरकर किस ठिकानेमें जाकर बैठोगे? सबका स्थापना करनेवाले ज्ञाता चैतन्य जीव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जड़को चेता करके सत्ता देनेवाले चैतन्य जीव जड़ पदार्थसे अतीव श्रेष्ठ नित्य, सत्य, अखण्ड है। ऐसे पारख ज्ञानका प्रकाश करके अध्यासको छुड़ा करके मुक्त करनेवाले पारखी सद्गुरु साहेबसे तो पचिय=जानकारी, चिन्हारी, शरण-ग्रहण तो करते ही नहीं हैं। फिर निज सत्स्व-स्वरूपके पारखबोध जीते जी प्राप्त नहीं किये, तब देह छूटनेपर किस ठौरमें जाकर बैठोगे? जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासमें पहुँचोगे, वहीं ठहरोगे। पारख बोध बिना नाम-स्मरणादि किया-कराया हुआ सब निष्फल हो जाता है, सो जानो! ॥ ७१८ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३५ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. और सुनहु ब्रह्माण्ड पसारा * सूक्ष्म पिण्ड सो है विस्तारा ॥ ७१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो! पूर्व प्रकरणमें पिण्ड भागका पसारा कह करके सुनाया हूँ! अब यहाँपर ब्रह्माण्ड वा वाणी भागके बाह्य पसाराके बारेमें कहता हूँ, सो और भी चित्त लगा करके सुन लीजिये! पाँच तत्त्व, तीन गुणके भाग लेकर विराट्-रूप समस्त ब्रह्माण्डका पसारा सो सूक्ष्म पिण्डके ठिकानेमें भी हुआ है; और उसी कारणसे कार्यरूप पिण्ड, चारखानीकी देह पैदा हो गया है। सोई सूक्ष्म पिण्डसे स्थूल पिण्डकी उत्पत्ति हो करके विस्तार हुआ है ॥ ७१९ ॥

२. जेहि विधि लिङ्गम पिण्ड सँवारा * सम सोई कला ब्रह्माण्ड प्रचारा ॥ ७२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिसप्रकारसे विधिपूर्वक सूक्ष्म देहके एकत्र मसाला, अध्याससे पिण्डरूप नर-नारियोंका शरीर बना है या बन करके उत्पन्न हुआ है, सूक्ष्म देहके पिण्डसे ही स्थूल कायाको तैय्यार किया है। उसीके समान बराबर सोई कला-कौशलसे अनुमान-कल्पना करके बाहर ब्रह्माण्डकी भी उत्पत्ति हुई, ऐसा कहकर गुरुवालोगोंने वेद-शास्त्रादिकी वाणी संसारमें प्रचार किया है और प्रचार कर रहे हैं। उसको निर्णयसे परखकर जानना चाहिये; भ्रम कल्पनाको त्याग देना चाहिये ॥ ७२० ॥

३. पिण्ड ब्रह्माण्ड भाव नहिं दूजा * अण्डरूप सब होय उपजा ॥ ७२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे यहाँपर पिण्डरूप शरीर चारखानियोंमें उत्पन्न हो रही है; सो यही भाव लेकर बाहर ब्रह्माण्डमें पाँच तत्त्वकी भी उत्पत्ति दूसरा ईश्वर आदि कर्त्तासे माना है; सो यथार्थ बात नहीं है। परन्तु, गुरुवालोग कहते हैं कि, पिण्ड तथा ब्रह्माण्डका

भाव एक है; दूसरा भेद भाव तो कुछ भी नहीं है। क्योंकि, जैसे एक अण्डरूप ॐकार परमात्माके स्वरूपसे इच्छा द्वारा सब ही चराचर ब्रह्माण्ड विस्तार हो करके उत्पन्न हुआ है। तैसे ही पिण्डमें भी अण्डरूप वीर्यसे ही नर-नारी सबोंका देह बनकर उत्पन्न हुआ वा होता है, ऐसा बतलाते हैं॥७२१॥

४. गोल अकार चक्र है जोई ❀ सर्व रूप सोई परगट होई ॥ ७२२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पिण्ड-ब्रह्माण्डकी रचनाके बारेमें गुरुवा-लोगोंकी मानन्दी यहाँपर दिखलाया जा रहा है। बाहर चराचरका उत्पत्ति स्थान एक गोल आकारका चक्र 'ॐ' को माना है। और पिण्डमें गोल आकर वाला भगचक्र जो है, सोई सन्तान उत्पन्न होनेका स्थान द्वारकी जगह दिखता है। तहाँ गोल बिन्दुरूप वीर्य भगचक्रमें पड़ करके उससे स्थूलाकारमें बालक पैदा होता हुआ दिखाई देता है। भगचक्रसे ही तीन खानीके प्राणियोंके सर्वरूप देह बनकर प्रगट होते हैं। यही देखकर अनुमान किया है कि, एक गोल आकारवाला ॐकाररूप परब्रह्म अधिष्ठानसे ही यह सारा संसार-चक्र या ब्रह्माण्डका सृष्टिचक्र भी बनकर उत्पन्न हुआ होगा। पाँचोंतत्त्व, जड़-चैतन्य, समस्त विश्वरूपको सोई 'ॐकार' ब्रह्मने ही आरम्भमें प्रगट या निर्माण किया है। उसीसे सब सृष्टिका नाना रूप प्रगट हुआ है, सबोंका आदि मूल कारण वही है; ऐसी कल्पना विस्तार किया है ॥ ७२२ ॥

५. सोई अण्ड ब्रह्माण्ड कहावै ❀ सर्व बीज सोई रूप उपजावै ॥ ७२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई अण्डरूप ॐकार ब्रह्मका विराट् स्वरूप ही यह पाँचोंतत्त्वका विस्तार ब्रह्माण्ड कहलाता है। वही सब जगत्का मूल कारणरूप बीज है। सोई प्रणव-ब्रह्मसे ही चराचररूप समस्त, संसारकी उत्पत्ति होती है। इच्छारूप बीजसे वही सब रूपको उपजाता है, ऐसा माना है। अथवा सोई अण्डरूप वीर्य मस्तकमें रहता है, इससे देहमें वीर्य ही अण्डरूप ब्रह्माण्ड कहलाता है। सो त्रय खानीके पुरुषोंके वीर्यसे मनुष्य, पशु, पक्षी आदिका सर्वरूप देह उपजाता है, यानी उसीसे सबके देह बन करके उत्पन्न होते हैं ॥ ७२३ ॥

६. पृथक पृथक ब्रह्माण्ड नियारा ❀ गनत गनत कोइ पावै न पारा ॥ ७२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशका स्वरूप तो अनादिसे भिन्न-भिन्न ही है। ब्रह्माण्डमें भी पाँचोंतत्त्व स्वरूपसे न्यारे-न्यारे ही हैं. तथा जड़-चैतन्य दोनों न्यारे-न्यारे ही हैं। जड़ तत्त्वोंके कार्य पदार्थ अनेकों हैं, और देहधारी जीव भी असंख्य वा अनन्त हैं। कोई इसकी गणना कर नहीं सकते हैं। कोई गिनती करना भी चाहें, तो जन्मभर गिनते-गिनते भी पार नहीं पायेंगे। तैसे ही अनादि कालके जगत्में पृथक्-पृथक् मनुष्योंने ब्रह्माण्ड-रूप वाणी कह, सुन तथा लिखकर बना गये हैं। सो न्यारे-ही-न्यारे हुए हैं। वह वाणी कल्पनाको भी कोई गणना करके पार पा नहीं सकते हैं, तो अपार ब्रह्म मान करके धोखेमें ही गोता खाते रहते हैं ॥ ७२४ ॥

७. ओर छोर महाशून्य है जाके ❀ खोजि बेअन्त बतावहिं ताके ॥ ७२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! माना हुआ जगत्का आदि कारण ओर=विराट् ब्रह्मका, छोर=हद, अन्त, पता वाणी-विचारसे कुछ नहीं लगा। जिसका कुछ ठौर-ठिकाना ही नहीं है, ऐसा आकाशवत् महाशून्य उस ब्रह्मको माना है। ओर=ब्रह्मका, छोर=शरीरमें भी खोज किये, तो भी कुछ पता नहीं लगा; महाशून्य, निर्विकल्पमें जा करके गरगाफ हुए। खोज करते-करते वार-पार जड़-चैतन्यमें कहीं भी परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं हुई, और उसका कुछ लक्षण भी मालूम नहीं पड़ा, तब हार मान करके बेअन्त, मन, बुद्धि, वाणीसे परे अगम, अपार, अथाह, अगोचर उसे बतलाते हैं। ऐसे बता करके भी फिर उस ब्रह्मको ही देखनेके लिये ताकते हैं। तो देखिये! इनकी समझमें कितना फरक है, निर्बुद्धि ही बने हैं ॥ ७२५ ॥

८. ब्रह्माण्ड रचना विस्तारा * प्रगट पिण्ड ताके आधारा ॥ ७२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर ब्रह्माण्डरूप संसारकी रचना उत्पत्तिकी बात तो झूठ-मूठ ही गुरुवालोगोंने कही है, सो सत्य नहीं है। उसी सिलसिलेमें ब्रह्माण्डरूप वाणी वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदिकी अनेकों तरहसे रचना कर-कराके संसारमें विस्तार किया है। उनमें वही कल्पनादिका विस्तारसे वर्णन किया है। तथा चारखानीके पिण्डरूप शरीर तो जगत्में जो है, सो प्रगट या प्रत्यक्ष ही है; सो उसी पञ्चतत्त्वादिके तथा जीवके आधारसे बन करके पालन-पोषणादि हो रहा है। ब्रह्माण्डमें चारोंतत्त्व निराधार अनादि स्वयं शक्तियुक्त कार्य-कारण भागसे विस्तार हैं। उसीके आधार और जीवकी सत्तासे पिण्डके कार्य चल रहे हैं, सो प्रगट ही है ॥ ७२६ ॥

९. चिदाकाश सोई पुरुष कहाई * ताके मध्य शून्य निर्माई ॥ ७२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चिदाकाश=आकाशवत् व्यापक, निराकार, चैतन्य ब्रह्म कहा है, सोई चिदाकाशको ब्रह्म-पुरुष कहा है। उस चिदाकाशके मध्यमें शून्य महाकाशका निर्माण हुआ, ऐसा कहा है। सो चैतन्य नरजीव आप ही चिदाकाशकी कल्पना करके स्वयं ब्रह्म पुरुष कहलाता है या कहता है। तो उसीके हृदय मध्यमें सब वृत्ति लय हो करके शून्य सुषुप्ति वा समाधि अवस्थाका बनाव हुआ। बीजरूपसे तहाँ अज्ञान एकत्र रह गया। अथवा चिदाकाशमें विज्ञान मार्ग है और मध्य शून्यमें योग मार्गको बनाया है, सो जान लेना चाहिये ! ॥ ७२७ ॥

१०. शून्य मध्य श्वासा उपराजा * श्वासा बीच धरतिको साजा ॥ ७२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम ब्रह्मसे आकाश उत्पन्न हुआ, तथा उस शून्यके बीचसे वायु उत्पन्न हुई। फिर वायुसे बीचमें ही अग्नि, जल सहित पृथ्वी तत्त्वकी, साज=सम्पूर्ण उत्पत्ति हुई, ऐसा ब्रह्माण्डमें कल्पनासे उत्पत्ति माना है; और पिण्डमें शून्य हृदयके मध्यमें प्राणरूप श्वास वायुकी उत्पत्ति हुई, तथा सूक्ष्म देहके बीचमेंसे ही श्वासवायुके सहित स्थूल देह बनकर जीवकी सत्तासे खड़ा हुआ है। तब शून्य सुषुप्तिसे मध्य कण्ठ स्थानमें आकर स्वप्न हुआ, सो बाहर उपासना मार्ग बनाया है; और आगे श्वास बढ़ा, तो स्वप्नको छोड़कर बीचमें त्रिकुटी स्थानमें आकर जाग्रत् अवस्थाको प्राप्त हुआ; सो जाग्रत्में धरतीरूप स्थूल देहसे कर्म मार्गको सजाया वा फैलाया। ऐसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें पाँच तत्त्व, पाँच स्थान, पाँच अवस्था, पाँच कर्मादिकी उत्पत्ति कल्पना करके क्रमशः माना है। सत्सङ्गद्वारा उसे ठीकसे समझकर यथार्थ परखना चाहिये; भ्रमिकोंके फन्दोंमें पड़ करके भूलना नहीं चाहिये ॥ ७२८ ॥

११. चिदाकाश सो तुरिया झाँईं * सुषुप्ति सोई शून्य परछाँईं ॥ ७२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चिदाकाश=आकाशके समान निराकार, चैतन्य ब्रह्म जो ठहराया है, सो तुरिया अवस्थाके ज्ञान मार्गका अनुभव भाससे माना है। वह झाँईं भ्रमरूप गाफिली ही है। उससे नीचे उतरे, तो सुषुप्ति अवस्थामें आये। सोई शून्य वृत्तिकी भास यहाँ भी रहा; सो शून्य ब्रह्मकी परछाहीं मायाका स्वरूप वर्णन किया है। तुरिया ज्ञान चिदाकाश सोई झाँईं है, और शून्य सुषुप्ति अज्ञान सो उसीकी परछाहीं या प्रतिबिम्ब माया वा कायामें पड़ा है, ऐसा कहकर पिण्डमें ज्ञानकी छाया योगको माना है ॥ ७२९ ॥

१२. झाँईं श्वासा सपन कहावै * छाया पृथिवी जागृत लावै ॥ ७३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! झाँईं तुरियासे शून्य सुषुप्तिमें आकर फिर उससे श्वास=सूक्ष्म देहमें आया, तो तहाँ स्वप्न अवस्था कहलाया। फिर स्वप्नकी छायारूप प्रतिबिम्ब उलट गया, तो सोई पृथ्वीरूप स्थूलदेहके जाग्रत् अवस्थामें ले आया। इसीतरह तुरिया ज्ञान सुषुप्तिसे अज्ञान सुषुप्ति योगमें आया, फिर वहाँसे पीछे हटा, तो स्वप्नरूप उपासनामें जाकर

भक्त कहलाया। बादमें जाग्रत् हुआ, तो विषय भोगादिमें लक्ष्य लगाया। किसीने पृथ्वीमें तीर्थ-व्रतादि करनेके अनेक कर्म मार्गमें लौ लगाया है। इसतरह वे सब परोक्ष भ्रम कल्पनादिमें ही भूल गये, बिना विवेक ॥ ७३० ॥

साखीः— ब्रह्माण्ड विस्तार सो * पिण्ड अंश आधार ॥
[१५६] गाँस भास सोई चारिके * अवस्था लखहु विचार ॥ ७३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! बाहर ब्रह्माण्डमें पाँच तत्त्वोंका पसारा जितना भी विस्तार हुआ है, सो सब तो अनादि ही है। उसकी उत्पत्ति तो किसीसे नहीं हुई है। इसलिये कोई जगत्कर्त्ता मानना भ्रम-भूल है। और सब वाणी कल्पनाका विस्तार सो तो मनुष्योंसे ही हुआ है। तहाँ बाह्य कारणरूप तत्त्वोंके अंश भागसे कार्यरूप पिण्ड चार खानियोंके शरीर जीवकी सत्ता वासनासे बने हैं। कारणके आधारसे कार्य ठहर रहा है। तैसे तत्त्वोंके अंशरूप आधारसे देहका गुजारा भी चल रहा है। परन्तु, विचार करके लखिये, तो चार अवस्थाओंके चार भासादिमें ही समस्त मनुष्य ग्रसित होकर भव-बन्धनोंमें ही पड़े हुए हैं। सो कैसे कि, तुरियाका भास पिण्डज खानीमें ले जाकर जीवोंको गाँसता है। सुषुप्तिका अध्यास उष्मज खानीमें ले जाकर बाँधता है। स्वप्नका अनुमान अण्डज खानीमें ले जाकर डालता है। और जाग्रत्की कल्पना पशु आदि खानीमें जीवको पहुँचा करके बाँधता है। सोई चार अवस्थाओंके ही गाँस-भास सब जीवोंको चारखानी चौरासी यानियोंमें डोला रहे हैं। पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके इसको पारख विचारसे परखकर यथार्थ लखिये! जड़ाध्यासोंको छोड़ दीजिये ॥ ७३१ ॥

साखीः— तुर्यातीत एकता जबै * भेद बुद्धि नहिं चार ॥
[१५७] पँचयें आपै आप सो * ग्रसै जीव परचार ॥ ७३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उन चारों मार्गोंसे जब आगे बढ़े, तो वहाँ विज्ञान मार्गकी तुरियातीत अवस्थामें साक्षी भावनासे भी रहित हुए। जब जीव-ब्रह्मकी एकता करके असिपद अद्वैत ब्रह्मकी मानन्दी दृढ़ हुई, तब चार अवस्थाओंके चार मार्गादिका भेद छोड़ दिये, बुद्धि आदि चतुष्टयकी कार्य-भावनासे रहित हुए। तहाँ उक्त चारोंकी भेद बुद्धि कुछ भी नहीं रहती है, ऐसा कहा है। पचयें आप-ही-आप सो कैवल्य ब्रह्म निरञ्जन परमात्मा स्वयं ज्यों-का-त्यों बना रहता है। वही परमानन्द स्थिति, कैवल्य मुक्ति है; यह सबसे बड़ा माना है। वही ब्रह्मज्ञानका उपदेश प्रचार करके अबोध नरजीवोंको गुरुवालोगोंने भ्रमा-भुला करके ग्रसित-जड़ाध्यासी, बद्ध कर रक्खा है, बिना विवेक ॥ ७३२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३६ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. महाकारण सो आपुहि राई * दोय स्वरूप तहाँ प्रगटाई ॥ ७३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! समस्त चराचर जगत्का महान आदि कारण सोई महाकारणरूप आप-ही-आप विश्वात्मा महाराजा स्वयं निरञ्जन ब्रह्मको माना है। तहाँ निर्विकल्प, निराकार ब्रह्ममेंसे ही दूसरी एक इच्छा प्रगट होकर आई। तब तो माया और ब्रह्म या प्रकृति-पुरुष, ये दो स्वरूपमें तहाँ प्रगट हुए। सो यहाँ भी स्त्री और पुरुष, ये दोके रूप प्रगटमें उत्पन्न किया वा दो रूप प्रगट हो गया, ऐसा माना है ॥ ७३३ ॥

२. इच्छा शक्ति सो माया छाजै * पुरुष ब्रह्म आपु होय गाजै ॥ ७३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई ब्रह्मसे इच्छाशक्तिरूप माया सुन्दर शोभाकी खानी उत्पन्न हुई, तब उस स्त्रीरूप मायाने मोहरूप आवरण-पर्दासे ब्रह्मको आच्छादन कर दी, यानी ढँक दी। फिर सबल ब्रह्म हो करके मायाकी गोदमें लिप्त होकर आप ही निरञ्जन

पुरुष 'अहं ब्रह्मास्मि' की गर्जना करने लगा। इच्छाशक्ति सोई माया स्त्री हुई। आप ब्रह्म ही पुरुष रूपमें खड़ा हुआ, इसतरहसे दोनोंकी खैंचा-खैंचीमें गर्जना हो करके जगत् निर्माण हुआ, ऐसा कथन किया है ॥ ७३४ ॥

३. दुतिया सोई शून्य विस्तारा ❀ तासु नाम कारण परचारा ॥ ७३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक निरञ्जन ब्रह्मने अपनी स्वयं शक्तिसे इच्छारूप दुतिया आदिमायाको खड़ा किया है। सोई मायामेंसे फिर शून्य आकाश सहित पाँच तत्त्वोंके ब्रह्माण्डको बनाकर विस्तार किया है। इसीसे उस माया-शक्तिका नाम जगत्का आदि-कारण आद्याशक्ति कहकर प्रचार हुआ। सबका कारण माया-ब्रह्म है। यही बात गुरुवालोगोंने उपदेश देकर प्रचार किया है। अथवा कैवल्य ब्रह्मसे महाकारण और कारण, यह दो रूप प्रगट हुआ। एक तो इच्छाशक्ति हुई, दूसरा शून्य कारण हुआ, ऐसा प्रचार किया है ॥ ७३५ ॥

४. करत मिलाप पुरुष औ नारी ❀ कारण अनेक रूप विस्तारी ॥ ७३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर पुरुषरूप निरञ्जन ब्रह्म और नारीरूप इच्छा-अष्टाङ्गी माया, ये दोनोंका प्रेम-आकर्षणसे मिलाप हुआ। उनके मिलाप, संयोग वा समागम करते ही उनके रज-वीर्य सम्बन्ध एकत्र होकर मिल गये। उसी कारणरूप बीजसे कार्यरूपमें अनेकों ब्रह्माण्ड और पिण्डोंका नाना रूप आकार-प्रकार, वस्तु तथा देहादिकी उत्पत्ति होकर विस्तार हो गया। सो भ्रमिक नरजीवोंने ही ऐसी-ऐसी खानी और वाणीका विस्तार किया है ॥ ७३६ ॥

५. बीज अनेक पुरुषके अंशा ❀ उपजी दुतिया खेत भौ बंशा ॥ ७३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्म-पुरुषके अंशसे अनेक जगत्का बीज नाना कर्म उत्पन्न हुआ, और दुतिया इच्छा मायारूपी खेतसे संसारमें सो बीज स्थापित हुआ, जिससे पाँच तत्त्व तीन गुण, जड़-चैतन्य समस्त, जगत्-सृष्टिका वंश बहुतायतसे उत्पन्न हो गया; ऐसा कथन कल्पनासे किया है। अथवा चार खानियोंमें वासना-बीजसे पुरुषोंके वीर्य (बीज) भी अनेक तरहके बने हैं; सो स्त्रियाँ खेतरूप हैं, उनमें पुरुषका वीर्य स्त्रीकी योनिसे गर्भरूप खेतमें स्थापित होकर उसीसे अनेकों सन्तानरूप वंश उत्पन्न हुए या हो रहे हैं ॥ ७३७ ॥

६. पाँच तत्त्वके कारण कीन्हा ❀ पाँच श्वास उपजाई लीन्हा ॥ ७३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कारण ब्रह्म द्वारा बाहर पाँचों तत्त्वोंकी मायासे उत्पत्ति माना है, सो तो कल्पना ही किया है। फिर पाँच तत्त्वोंको ही कारण बना करके उससे पाँच श्वास कार्यरूपमें उत्पन्न कर लिया है। सो यह कि, आकाशसे स्थिर पवन, वायुसे चञ्चल पवन, अग्निसे आकर्षक पवन, जलसे शोषक पवन और पृथ्वीसे प्रेरक पवनको पैदा कर लिया है। अथवा धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग और देवदत्त, ये पाँच सूक्ष्म ब्रह्माण्डकी वायुको उत्पन्न कर लिया। अथवा तहाँ पञ्च विषयोंकी आसक्ति तथा पञ्च कर्मोंके अध्यासवश सूक्ष्म देहमें पाँचों तत्त्वोंके भाग, पञ्च प्राणके अंश सहित जीव गर्भवासमें जाता है। उसीसे स्थूल देहोंकी उत्पत्ति कर लेता है ॥ ७३८ ॥

७. मिलत आकर्षण अनल प्रकाशी ❀ रचना हेतु बीज जल राशी ॥ ७३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आकाशमें समान और चञ्चल, ये दोनों वायुके मिलाप आकर्षण, परस्पर सङ्घर्षण, टक्कर, रगड़ होनेसे उष्णता पा करके बिजलीरूप अग्निकी उत्पत्ति हो करके प्रकाश हुआ; उस अग्निसे बादल पिघलकर जल उत्पन्न होकर वर्षा हुई वा होती है। उस जलसे पृथ्वीमें अंकुरजादि सर्व वनस्पतियोंकी उत्पत्ति हुई वा होती है। यही देखकर पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्तिकी भी कल्पना की गई है। अथवा खानी भागमें स्त्री-पुरुषमें कामकी प्रबलतासे परस्पर खिंचाव आकर्षण हुआ, तो दोनों आपसमें मैथुन कर्ममें प्रवृत्त होकर मिले। तहाँ इन्द्रियोंकी रगड़ होनेसे कामाग्निका प्रकाश होकर गर्मी बढ़ी, उसने रज-वीर्यको पिघला करके पतन कर दिया। उसी जलकी

राशिरूप वीर्यसे रजके सम्बन्ध पा करके शरीरकी रचना किया। जीवयुक्त वीर्य गर्भमें स्थापना होनेके कारणसे ही देहकी रचना होती है ॥ ७३९ ॥

८. प्रेरिक बल सब कारण धाई * दुतिया खेतमें रहा समाई ॥ ७४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्म पुरुषकी प्रेरणारूपी महान बलसे खिंचाव होनेपर जगत् उत्पत्ति होनेमें लगनेवाले सब सामान— उपादान, निमित्त और साधारण, ये सब कारण दौड़-दौड़ करके उस परम पुरुषके पासमें आ जाते हैं। फिर दुतिया=आदिमायाके गर्भरूप खेतमें वह बीज डाल देता है। तदनन्तर कुछ काल तक बीज मायामें ही समा करके रहती है। समय पूर्ण होनेपर फिर जगत्रूप वृक्ष प्रगट होकर आता है; ऐसा कल्पनासे माना है। अथवा वासनाकी प्रेरणासे विषयोंके बलसे प्रेरक आदि पाँचोंवायु धायकर सब कारणरूप वीर्यमें मिल जाते हैं। अध्यासी जीव भी सूक्ष्म देहयुक्त वीर्यमें सम्मलित होता है। और दुतिया=स्त्रीके खेतरूपी योनिसे गर्भ कमलमें भोग द्वारा पहुँच करके समा रहता है। फिर अवधि पूर्ण होनेपर बालक पैदा हो जाता है ॥ ७४० ॥

९. सोई कारण वायू केरे * तीनों पुत्र रायके चेरे ॥ ७४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई प्रेरक वायुरूप माया तथा ब्रह्म, दोनोंके सम्बन्ध-रूप कारण करके वायुके गर्भमेंसे अग्नि, जल और पृथ्वी— ये तीन कार्य पुत्र अंशरूपमें पैदा हो गये। तहाँ आकाशरूप निरञ्जन राजाकी वायुरूपी माया स्त्री द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, ये तीनों पुत्र ही पृथ्वी, जल और अग्नि तत्त्वके रूपमें प्रगट हुए हैं। वे तो ब्रह्मके ही चेरे या अंश हैं। ऐसी कल्पना किया है। अथवा सोई वासनारूप वायुके कारणसे ही पुरुषरूप राजाकी स्त्री द्वारा त्रिगुणी पुत्र वा सन्तान उत्पन्न होती चली आ रही हैं ॥ ७४१ ॥

१०. आपुहि कारण शून्य स्वभाऊ * पृथिवी थीर पवनके दाऊ ॥ ७४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आकाशवत् व्यापक परमतत्त्व-परमात्मा आप ही निरञ्जन ब्रह्म सब चराचर जगत्का मूल कारण अधिष्ठान है। ब्रह्मके स्वाभाविक गुण, स्वभाव, लक्षण तो कुछ भी नहीं है; शून्य निर्गुण, निराकार है। तथापि सब सृष्टिका मूल कारण-बीजरूप वही है। थीरपवनरूप आदिमायाका सम्बन्ध करके पृथ्वी-जलादि सब कार्यकी उत्पत्ति हुई। माया-की कला-थीरपवनके दाव-पेंचसे ही पृथ्वी और आकाशके बीचमें ब्रह्माण्ड-पिण्डादि सकल सृष्टिका पसारा-विस्तार हुआ है। ऐसी कल्पना गुरुवालोगोंने दृढ़ाया है। अथवा आप ही जीव कहीं शून्य स्वभावके कारणसे और कहीं विषय वासनाके कारणसे अध्यासके दावमें पड़ करके पृथ्वीरूप नाना देहोंको धारण किया करते हैं; आवागमनोंमें ही डोला करते हैं। सो उसे परख करके सब आसक्तिको छोड़ देना चाहिये ॥ ७४२ ॥

साखीः— कारण शून्य है श्वासके * महाकारण सो आप ॥
[१५८] अनल आकर्षण बीज जल * प्रेरिक वायू थाप ॥ ७४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! श्वासरूप सूक्ष्मदेहकी उत्पत्ति और लय होनेका कारण अधिष्ठान भूमिका कारणदेह, हृदयस्थान, शून्य सुषुप्ति है। इसीको आदिमाया जगत् या देह उत्पत्तिका मूल कारण अविद्या या अज्ञान शून्य श्वासके रूपमें माना है। और महाकारण स्वरूपमें सो निरञ्जन परमात्मा आप-ही-आप स्वयं है। क्योंकि, मायाका भी आदिकारण उसे ही माना है। निमित्तोपादान कारण होनेसे परमेश्वर ही महाकारण है। केवल उपादान कारणरूप मायाको कहा है। जब परमेश्वर पुरुषकी इच्छारूप अग्नि प्रचण्ड हुई, तो उसने मायाको आकर्षण या खिंचाव करके सङ्घर्षण किया। तब उसमेंसे अग्नि प्रगट हुई। अग्निसे जल पैदा हुआ, फिर सब जलको अग्निने शोषण किया, बीजरूपमें जल जमा, घटाकार हुआ था, सो पिघला। उस बीजरूप

जलको प्रेरक वायुने उड़ा करके पृथ्वीमें जहाँ-तहाँ ले जा करके थाप दिया वा टिका दिया, वर्षा दिया। अथवा शरीर बननेका कारण शून्य अज्ञानरूप अध्यास है। सो श्वासरूप सूक्ष्म देहके साथ रहता है। उसका निमित्त कारण या कर्त्ता सो जीव आप ही है। देह छूटनेपर वासनारूप प्रेरकवायु उड़ा करके उसे ले जाती है। जहाँका अध्यास सन्मुख होता है; वहाँ ही आकर्षण होकर चला जाता है। फिर पुरुषके वीर्यमें समा करके मैथुन होनेपर जलरूप रजमें मिल करके गर्भमें ठहर जाता है। प्रेरिक वायुके थाप=थपेड़ा खा करके ऐसे बारम्बार आवागमन होता रहता है॥७४३॥

साखीः— कारण पृथिवी खेत सो ❀ थीर पवन विख्यात ॥

[१५६] पाँचतत्त्व कारज भये ❀ परगट बड़ उतपात ॥ ७४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जगत् उत्पत्तिका मूल कारण पृथ्वीरूप क्षेत्र=खेतके समान यहाँपर स्त्री ही आदिमाया है। उसका नाम ब्रह्माण्डमें 'थीरपवन' कह करके विख्यात या जाहिर, प्रसिद्ध किया है। क्योंकि, सब बीज आ करके उसीके गर्भमें ठहरते हैं। तदनन्तर पृथ्वी, जलादि पाँचोंतत्त्व, तीन गुणादि सारा चराचर जगत् कार्यरूपमें उत्पन्न होकर प्रगट हुए हैं; ऐसा वर्णन करके गुरुवालोगोंने प्रत्यक्षमें बड़ा उत्पात=उपाधि मचाते हैं। सबको भुला करके धोखेमें डाले या डाल रहे हैं। अथवा यह बात संसारमें विख्यात है कि, जिसकी जहाँपर आशा वा आसक्ति लगी है; स्थूल देह छोड़नेपर भी वासनासे वह जीव उसी भूमिकामें जा करके ठहरता है। कारणरूप पृथ्वीवत् खेत सो स्त्री ही है। पाँचतत्त्वोंका कार्यरूप बालकका शरीर गर्भमें बन करके तैय्यार हुआ। सो स्त्रीके योनिसे बच्चे उत्पन्न होकर प्रगट हुए, बादमें वे बड़े हो करके विषय भोग कर्म-कुकर्म करनेमें वे ही बड़ा उत्पात=उपद्रव किये या कर रहे हैं। बिना सद्गुरुके पारख बोध हुए कभी भी जीव इन उपाधियोंसे छूट नहीं सकते हैं, सो जानिये! ॥ ७४४ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३७ ॥ [चौपाई- १४। साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. पाँच कला जो कारण साजा ❀ पाँच श्वास लिङ्गम उपराजा ॥ ७४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! एक कारण ब्रह्मने पाँच कलारूप पाँचतत्त्व सहित पिण्ड-ब्रह्माण्डको जो साजा=बनाया या उत्पन्न किया है, सो उसीमें और पाँच श्वासको सूक्ष्म-रूपमें उत्पन्न या पैदा किया, सो १. थीर पवन, २. चञ्चल पवन, ३. आकर्षक पवन, ४. शोषक पवन और ५. प्रेरक पवन, ये पाँचों श्वास ब्रह्माण्डमें उत्पन्न किया। धनञ्जय, कृकल, कूर्म, नाग और देवदत्त, ये पाँच वायु ब्रह्माण्ड कलाका सूक्ष्म भाग लेकर पिण्डमें ला करके उपराजा या पैदा किया, ऐसी मानन्दी किया है ॥ ७४५ ॥

२. आपुहि शून्य निरञ्जन धाये ❀ पृथिवी महाशक्ति निर्माये ॥ ७४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! बाहर निरञ्जन परमात्मा आप स्वयं ही शून्य आकाशस्वरूप हो रहे हैं। देहमें धनञ्जयवायु होकर धायके आये, तो तहाँपर दौड़ने लगे, और आदिमायामहाशक्ति भगवती बाहर पृथ्वी स्वरूप बनी है, तथा देहमें देवदत्तवायुका स्वरूप बना करके रहने लगी है। इन दोनोंका परस्पर सदा सम्बन्ध बना रहता है, और इन्हीं दोनोंकी शक्तिसे सारी सृष्टिका निर्माण हुआ या होता है, ऐसा माना है ॥ ७४६ ॥

३. प्रेरिक बल अंशी सो बाई ❀ अनल आकर्षण सो उपजाई ॥ ७४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मकी प्रेरणारूप इच्छाशक्तिका बल पा करके सो थीरपवनरूप माया दशों वायुओंका अंशी=मूल कारण हुई है। उसीसे अन्य वायु भी अंश वा कार्यरूपमें उत्पन्न हुए हैं। सो अंशी वायुमें प्रेरिकका बड़ा बल रहता है। उसी अंशी वायुरूप थीरपवनमें ब्रह्मने आकर्षण=खिंचाव या रगड़ किया, तो उसीसे बाहर अग्नि तत्त्वकी उत्पत्ति

हुई। देहमें कूर्म वायुको उपजाया है, ऐसा कहा है। अथवा थीरवायु तथा प्रेरक वायुके सम्बन्धसे आकर्षक वायुकी उत्पत्ति हुई है। उससे अनलरूप उष्णत्व=गर्मी पैदा हो जाती है ॥ ७४७ ॥

४. उत्पत्ति कारज रचना चीन्हा ❀ एकन एक आश सो दीन्हा ॥ ७४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वह जब तक कारणरूपमें रहती है, तब तक तो कुछ पहिचाननेमें नहीं आती है। जब कार्यकी रचना होकर उत्पत्ति होती है, तब उन्होंके गुण-लक्षण सब चीन्हने, पहिचाननेमें आ जाते हैं। एक-न-एक तत्त्वोंके आशरूप आधार सो कारण-कार्य होता ही रहता है ॥

अथवा सो गुरुवालोगोंने मनुष्योंको निरञ्जन, आदिमाया, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि एक-न-एककी आशा, भरोसा, धोखेमें लगा दिया है, भ्रमा करके जहँड़ा दिया है। उसीसे नाना कर्म, कार्य-की रचना करके जगत्की उत्पत्ति आदि मानकर ब्रह्मको चीन्हना चाहते हैं। यही भ्रम, अभ्यास चौरासी योनियोंमें ले जानेकी निशानी है। नाना कार्यरूप देह धरानेका हेतु है ॥ ७४८ ॥

५. रचना नेह जल सो कीन्हा ❀ उपजै खेत सब कारण चीन्हा ॥ ७४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वृक्ष, गुल्म, लतादि तथा देहकी रचना बनावट होनेमें सो सब जगह जलतत्त्वके स्नेहाकर्षण शक्ति वा रसायनाकर्षण शक्ति द्वारा होती है। जलमें स्नेह, चिकना, नरम करनेकी गुण स्वयं शक्ति है। इसलिये सो जल ही अंकुरज तथा देहादिकी रचना कराता है; यानी उसीसे रचना होती है। जब खेतरूप पृथ्वी वा गर्भवासमेंसे देहधारी जीव और वनस्पति तथा प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। तब उनके मूल कारण बीज और जाति आदिकी पहिचान होती है। एवं आकर्षक वायुसे शोषकवायु उत्पन्न होकर जलको सुखाकर कारणरूपमें ही रख देती है। यही उसका चिह्न, लक्षण या निशानी है। अर्थात् जैसे वनस्पति उत्पन्न होनेमें मुख्य करके जलके स्नेहाकर्षण शक्तिसे रचना होती है; और सब कारणके चिह्न सहित कार्य खेतमें उत्पन्न होते हैं, तब पहिचाननेमें आती हैं। उसीतरह देहकी रचना भी जीवोंकी अध्यास और रज-वीर्यरूप जलसे होता है। फिर गर्भरूप खेतसे उत्पन्न होनेपर खानियोंके मुताबिक सब चिह्न प्रगट होते हैं, पहिचानमें आते हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ ७४९ ॥

६. कारज प्रगट भये विस्तारा ❀ पाँचहु चाल न्यारा न्यारा ॥ ७५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने कहा है कि, कारणरूप एक परब्रह्मसे ही कार्यरूप पाँच तत्त्व प्रगट होकर विस्तार हुआ है। तहाँ आकाशका शून्य होकर लय होनेकी चाल तथा शब्द गुण है। वायुकी तिरछी गतिसे चञ्चल होनेकी चाल तथा स्पर्श गुण है। अग्निकी ऊर्ध्व गति दाहक वा प्रकाश करनेकी चाल तथा रूप गुण है। जलकी अर्ध गतिकी चाल तथा रस गुण है; और पृथ्वीकी खड़ी चाकवत् भ्रमण गतिकी चाल तथा गन्ध गुण है। ऐसे पाँचों तत्त्वोंकी चाल न्यारी-न्यारी ही हुई है। अथवा ब्रह्माण्डरूप कारणके अंशसे पिण्डरूप कार्यमें चारों खानियाँ प्रगट होकर विस्तार हुई हैं, सो शरीरमें भी पाँचों तत्त्व, पाँचों वायुओंकी चाल, गुण, स्वभाव न्यारे-न्यारे या भिन्न-भिन्न ही रीतिसे हो रही है ॥ ७५० ॥

७. तीन पुत्र दोइ पितु अरु माता ❀ बैर विरोध परस्पर घाता ॥ ७५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निरञ्जन पिता और आदिमाया माताके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महादेव नामके, ये तीन पुत्र पैदा हुए। इन्हींको पाँचतत्त्वोंमें भी घटाया गया है। इनके पाँच प्रकारके अनमिल स्वभाव होनेसे विरोध होनेपर एक-दूसरेको दबा करके घात वा नाश भी कर डालते हैं। परस्पर घातक विरोधी बैरी बन गये हैं। इसलिये उन तीन पुत्र और दोनों माता-पितामें कभी बनाव नहीं बनता है ॥ ७५१ ॥

८. पुरुष अंश सो तीन उपाये * तीन अंश माया प्रगटाये ॥ ७५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निरञ्जनरूप ब्रह्म पुरुषके अंश=विशेष वीर्यके भागसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश, सो ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ब्रह्माण्डमें वर्षा, शिशिर और धूप, ये तीन मौसम उपजाये। पिण्डमें रज, सत्त्व और तम, ये तीन गुण होकर आये। अथवा पूरक, कुम्भक और रेचक, ये तीन क्रियाको बनाये। तथा मायाके रज-अंशका भाग विशेष होनेसे तीन कन्याएँ उसने भी प्रगट की। सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती, ये तीन पुत्री मायाकी पैदा हुईं। बाहर भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीन काल माना है। देहमें इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन नाड़ी कल्पना किया है॥ ७५२॥

९. अंशी पुरुष तीनि सो छौना * माया कला तीनि घर पौना ॥ ७५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निरञ्जन पुरुषरूप अंशी या कारणसे सो 'छौना'= कहिये तीन पुत्र जो उत्पन्न हुए, सो ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामसे अंशरूपमें प्रसिद्ध हुए। फिर उन्होंने प्राणायामकी तीन क्रियाओंका प्रचार आंशिकरूपमें किया। अज्ञानीरूप सब छोकड़ोंको और भी उन्होंने भुला दिया। तैसे ही मायाकी कलासे भी तीन घर=नासिकाके दायाँ, बायाँ और बीचके घेरामें तीन पौन=इङ्गला, पिङ्गला तथा सुषुम्ना, ये तीन नाड़ीका अनुमान लगाया है। उसीमें मायाके अंशसे उत्पन्न सावित्री, लक्ष्मी तथा पार्वतीकी निवास भी माना है॥ ७५३॥

१०. तीनिहुँ घर सो नाड़ि बनाई * चन्द्र सूर्य तेहि मध्य समाई ॥ ७५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बायाँ नासिकाके छिद्ररूप घरसे चलनेवाली वायुको इङ्गला नाड़ी कहा या बनाया है। उसे चन्द्रनाड़ी भी कहते हैं। दाहिना नासिकाके छिद्ररूप घरसे जो वायु चलती है, उसे पिङ्गला नाड़ी कहा या बनाया है। तिसको सूर्यनाड़ी भी कहते हैं; और दोनों नाकके छिद्रसे बराबर बीचसे चलनेवाली वायुको सुषुम्ना नाड़ीका घर बनाया है। उसे राहुनाड़ी भी कहते हैं। इसप्रकार सो तीनों घरमें तीन नाड़ी कल्पनासे बना करके उसके बीचमें ही चन्द्र, सूर्यका भी निवास कथन किया है। अन्तमें सुषुम्नाके बीचमें ही समा करके सब विलय हो जाते हैं; ऐसा माना है॥ ७५४॥

११. सुषमना तहाँ राहु सञ्चारी * अज हरि हर सोई बपु धारी ॥ ७५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँपर सुषुम्ना नाड़ीके मध्यमें राहु चला-फिरा करता है वा सुषुम्नामें राहुका सञ्चार माना है। वहीं उसका निवास करनेका घर है। इसीसे सुषुम्ना चलनेपर दोनों नाड़ीकी शक्ति क्षीण हो जाती है। चन्द्र-सूर्य दोनोंको राहु ग्रासकर लेता है, तो ग्रहण लग जाता है। यहाँ योगियोंको समाधिरूपी ग्रहण लग जाती है, ऐसा माना है। सोई त्रिदेवने भी देहमें तीन नाड़ियोंके रूप धारण किया है। तहाँ इङ्गलामें रजोगुणी ब्रह्मा, सावित्रीके सहित रहता है। पिङ्गलामें सत्त्वगुणी विष्णु, लक्ष्मीके साथ रहता है; और सुषुम्नामें तमोगुणी महेश, पार्वतीके साथ रहता है। सो वे सब देहधारियामें रहते हैं; ऐसी कल्पना किया है॥ ७५५॥

१२. तीनों तीन कला विस्तारी * समय तीन सोई अनुहारी ॥ ७५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन तीनों देव-देवियोंने शरीरमें— बाल, युवा, वृद्ध, ये तीन कलारूप तीन पनको प्रगट किया; स्त्री, पुरुष और नपुंसक, ये तीन चिह्न विषय-व्यवहारका विस्तार किया है। सो त्रिगुण खानी-वाणीका जाल ही फैलाया है। उसी रीतिसे ब्रह्माण्डमें वर्षाका समय, ठण्ढीका समय और गर्मीका समय सोई तीनोंमें घटा करके अनुमानसे उसी तीन स्वरूपको निहारने लगे। वर्षा ब्रह्मा, शिशिर विष्णु और धूप महादेवके रूपमें कल्पना करके झीनी-मोटी जालोंमें नरजीव फँसे हैं और दूसरोंको भी फँसाये हैं॥ ७५६॥

१३. दक्षिणायन उत्तरायण जोई * इङ्गला पिङ्गला बिलसे सोई ॥ ७५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर सूर्य छः महीना तक दक्षिणायनके तरफ

रहता है। तथा छः महीना तक उत्तरायणमें रहता है। तैसे ही शरीरमें छः घड़ी तक दक्षिण स्वरसे श्वास चलता है, सो पिङ्गलामें दक्षिणायन रहता है; और छः घड़ी तक श्वास बायाँ स्वरसे चलता है, सो इङ्गलामें उत्तरायणका समय रहता है। ऐसा मान करके श्वासमें स्वरको देखकर योगीलोग सो उसीमें विलास करते रहते हैं ॥ ७५७ ॥

१४. कबहुँ सूर्य घर चन्दा जाही * चन्दा कबहुँ सूर्य घर माँही ॥ ७५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कभी सूर्य-नाड़ीरूप पिङ्गला आगे बढ़कर चन्द्र-नाड़ीरूप इङ्गलाके घर या घेरामें भी चली जाती है। फिर उलटकर पीछे अपना घरमें आती है। तैसे ही कभी चन्द्रनाड़ी भी सूर्यनाड़ीके घर या घेराके भीतर घूमते-घूमते चली जाती है; ठोकर खा करके रुकनेपर फिर उलटकर निज घरमें चली आती है। ऐसे दोनों नाड़ियाँ उलट-पलट एक-दूसरेके घेरातक पहुँच करके चला करती हैं; और बाहर भी चन्द्रमा भ्रमण करते-करते कभी-कभी सूर्यके भीतरी घेरातक जाकर फिर क्रमशः पूर्व स्थानमें आ जाता है। ऐसा योगी और ज्योतिषियोंने प्रमाण माना है ॥ ७५८ ॥

साखीः— जस जस चन्दा सूर्य घर * तस तस होवै छीन ॥

[१६०] जस जस बल घर आपना * बढ़ै कला होय पीन ॥ ७५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शरीरमें जैसे-जैसे चन्द्रनाड़ी सूर्यनाड़ीके घर या घेरामें बढ़ती हुई आगे प्रवेश करती जाती है, तैसे-तैसे ही वह क्षीण या लीन होती हुई बिलाती जाती है। अगर पूर्ण ही घुस गयी, तो उसका निशान ही मिट जाता है। सूर्यनाड़ी ही प्रबल होकर चलने लग जाती है; और जैसे-जैसे फिर उलटकर चन्द्रनाड़ी अपने घर बाँयीं तरफके घेरामें आ जाती है, तैसे-तैसे ही उसका बल बढ़ता ही जाता है; सब कला पूर्ण हो करके मध्य भागमें आकर पुष्ट प्रकाश हो जाता है, ऐसा कहा है। अथवा जैसे-जैसे चन्द्ररूप योगीलोग सूर्य कहिये ब्रह्मज्ञानके घर ब्रह्म-स्थितिमें बढ़ते जाते हैं, तैसे-ही-तैसे उनकी योग साधना छूटकर क्षीण होती जाती है। ब्रह्मज्ञानमें प्रविष्ट होनेपर सब योग साधनाएँ छूट जाती हैं; और जैसे-जैसे अपने योग घरमें लौटकर फिर बढ़ते आते हैं, तो शून्य समाधि लगानेका कला-कौशल भी बढ़ जाता है। साधनामें परिपुष्ट हो करके ध्यान-समाधि लगानेपर उन्हें पूर्ण चन्द्रके समान शुभ्र प्रकाशवाला ज्योतिका दर्शन हो जाता है। उसे परमात्माका स्वरूप मान करके कल्पनामें भूल जाते हैं। अथवा सूर्य एक महान तेजोमय अग्नि-पुञ्ज विशाल पदार्थ अनादि कालसे बाहर ब्रह्माण्डमें स्वयंशक्तिसे स्थित है। वास्तवमें सूर्य अचल है। बीच केन्द्रमें अपने कीलपर ही भँवरावत् घूमता हुआ ठहरा हुआ है। पृथ्वी सहित सब ग्रह अपने-अपने कक्षके मार्गसे सूर्यके चौतरफ परिक्रमा कर रहे हैं। पृथ्वी सूर्यमण्डलके चारों तरफ अनादि स्वयंशक्तिसे सदा घूमा ही करती है। और चन्द्रमा भी पृथ्वीके घेराके भीतर रहकर पृथ्वीकी ही परिक्रमा किया करता है। सो पृथ्वीके साथ-साथ चन्द्रमा भी सूर्यके चौतरफ घूमता हुआ ही फिर रहा है। इसप्रकार भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा जैसे-जैसे आगे बढ़ करके सूर्यमण्डलके घेराके भीतर चला जाता है, तैसे-ही-तैसे चन्द्रमाका प्रकाश क्षीण होता जाता है। क्योंकि, चन्द्रमामें स्वयं प्रकाश होनेकी शक्ति नहीं है। बर्फसे ढका हुआ गिरिशृङ्ग हिमालय पहाड़ या काँचके पहाड़ स्फटिक शिलाके समान स्वयं प्रकाशसेहीन ऐसे ही चन्द्रमा भी पहाड़ समूह स्वतः ज्योतिहीन जड़ पदार्थ है। और सूर्यकी किरण पड़नेसे काँच वा हिमालय आदि कैसे चमचमा जाते हैं; तैसे ही सूर्यकी किरण उसपर पड़ करके चन्द्रमा भी उज्ज्वल प्रकाश-युक्त हो जाता है। अतएव सूर्यके घेरा भीतरके नजदीकमें घूमते हुए जब चन्द्रमा पहुँच जाता है, तब सूर्यकी किरण उसके ऊपरी भागमें ही पड़ जाती है। नीचले भागमें प्रकाश क्षीण होकर छाया पड़ करके काला-सा दिखाई देता है। फिर वहाँसे उलटकर जैसे-जैसे अपने घेरारूप घरमें चन्द्रमा

आ जाता है, तैसे-तैसे नीचले अर्ध भागमें सूर्यकी किरण पड़ जानेसे प्रकाश होता जाता है। इसतरहसे पूर्णिमाकी रात्रिमें चन्द्रके अर्ध भागमें सूर्यकी पूर्ण रोशनी या प्रकाश पड़ जानेसे हम लोगोंको पूर्ण प्रकाशयुक्त चन्द्रमा दिखाई देता है। पूर्णिमामें चन्द्रकी सोलहों कलाका भाग बढ़कर परिपुष्ट पूर्ण प्रकाशयुक्त दिखाई देता है। परन्तु, वह प्रकाश सदा वैसा ही बना नहीं रहता है, क्योंकि, भ्रमण-गति तो लगी ही हुई है; फिर जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है, तैसे-तैसे नीचला भागमें छाया पड़ती ही जाती है। सो सबको दिखाई देता ही है। चन्द्र, सूर्यादि जड़ पदार्थ अनादि कालसे वैसे ही बने हैं। उन्हें किसीने नहीं बनाया है, और कोई बिगाड़ भी नहीं सकते हैं, ऐसा जानिये ! ॥७५९॥

साखीः— पन्द्रह तिथि परवान सो * अपने अपने पच्छ ॥

[१६१] जब जब तीनिहुँ एक घर * करै काल सो भच्छ ॥ ७६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! परिवा वा प्रतिपदा, द्वितिया, तृतियासे लेकर पूर्णिमा तककी पन्द्रह तिथियोंको या पन्द्रह दिनोंको "शुक्लपक्ष" कहते हैं। क्योंकि, इन दिनोंमें चन्द्रकी कलाका प्रकाश बढ़ता ही जाता है। प्रतिदिन सीधेमें जितने भागपर सूर्यकी किरण पड़ा, उतने ही भागमें प्रकाश दिखाता जाता है; और पूर्णिमामें पूर्ण भाग प्रकाशित हो जाता है। फिर प्रतिपदासे अमावास्या तक क्रमशः प्रतिदिन चन्द्रकी कला घटती ही जाती है। उसको "कृष्णपक्ष" कहते हैं। अमावास्यामें पहुँचनेपर चन्द्रका पृथ्वी तरफका अर्ध भाग बिलकुल काला अप्रकाशित हो जाता है। चन्द्र तो वैसे ही रहता है; परन्तु, उसकी ऊपरी भागमें ही सूर्यकी किरण रुक जानेसे नीचेके अर्धभागमें छाया पड़कर अँधियारी रह जाती है। फिर पूर्ववत् चन्द्रमा घूमता ही रहता है। यहाँ शुक्लपक्ष चन्द्रमाके भागमें और कृष्णपक्ष सूर्यके भागमें माना है। पन्द्रह दिनोंके शुक्लपक्ष तक चन्द्र अपने घरमें रहता है, और पन्द्रह दिनोंके कृष्णपक्षमें सूर्यके घरमें रहता है; सो अपने-अपने पक्षमें बलिष्ठ रहते हैं, यही प्रमाण किया है। जब-जब सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी, ये तीनों ग्रह सीधी एक रेखाके घेरामें घूमते-घूमते आ जाते हैं। तब-तब सूर्य और चन्द्रको राहुरूप पृथ्वीकी छाया पड़ जानेसे उस कालमें उसकी प्रकाश रोककर आड़में आ जाता है, तो यहाँपर ग्रहण लग जाता है; यह ज्यौतिषका प्रमाण है। परन्तु, ठग गुरुवालोग काल बन करके और ही कुछ कल्पना बता करके ग्रहणमें बड़े-बड़े दान कराने लगा करके भोले लोगोंको लूटकर खा जाते हैं। अथवा जब-जब त्रिदोष वात, पित्त कफ इकट्ठा हो जाता है, तो सन्निपात हो जाता है; अथवा जब इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ते तीनों एक ही घरमें आ जाते हैं, तब ऊर्ध्व श्वास चलकर काल=मृत्यु होनेके समय आकर आयुको खा जाता है, सो तब यहाँपर मरण होकर देह छूट जाता है। इसलिये समाधि लगा करके कालको जीतनेके लिये योगीलोग ब्रह्माण्डमें छिपे रहते हैं, तो भी समय आनेपर वे भी मर ही जाते हैं॥७६०॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३८ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. अपने घर चन्दा बल पावै * तहवाँ ताहि राहु सतावै ॥ ७६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अपने घररूप घेरामें ही रहनेसे चन्द्रमाको प्रकाशित होनेका बल प्राप्त होता है। पूर्णिमाके रातको पूर्ण प्रकाशयुक्त हो जाता है। परन्तु, कभी-कभी पूर्णिमाकी रात्रिमें राहु आ करके चन्द्रमाको सताता है, ऐसा कहा है। अर्थात् सीधी रेखामें आनेसे पृथ्वीकी छाया चन्द्रमापर पड़ जाती है, उसे ही ग्रहण लगा कहते हैं। और गुरुवालोग— "राहु डोमने चन्द्रको सता करके ग्रासा है।" ऐसा कहते हैं; सो बात तो मिथ्या कल्पना है। अथवा योगीलोग अपने योग घरकी साधनामें टिके रहते हैं। तो वहाँ चन्द्रनाड़ीसे बल पाते हैं; तहाँपर उन्हें राहुरूपी काम या कामना आ करके सताती है, उससे परेशान रहते हैं ॥ ७६१ ॥

२. अपने घर सूरज बलवाना * केतु होय यम तहाँ समाना ॥ ७६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे ही सूर्य भी अपने घर या घेरामें ही सदा रहता

है। इसलिये अपने घेरामें सूर्य बहुत बलिष्ठ या बलवान्, अत्यन्त उष्ण, प्रकाश बलवाला रहता है। पृथ्वी वा चन्द्र भ्रमण करते हुए कभी-कभी अमावास्याके दिनमें सूर्यकी सीधी रेखामें सन्मुखमें आ जाते हैं। तब तहाँपर केतुरूप चन्द्रकी परछाहीं सीधे भागमें सूर्यकी किरणको पृथ्वीमें आनेसे रोक देता है। उसे सूर्य ग्रहण लगा कहते हैं। गुरुवालोग कहते हैं— केतु=(राहुके धड़) दानव केतु काल हो करके तहाँ सूर्यमें समाया, सूर्यको पकड़ करके ग्रासा, बड़ा अनिष्ट हुआ, ऐसा कहते हैं; सो मिथ्या कल्पना है। और चन्द्र ग्रहण पूर्णिमाकी रातको ही लगता है, दूसरे समयमें नहीं लगता है। तथा सूर्य-ग्रहण अमावास्याके दिनमें ही कभी-कभी लगता है; और दूसरे दिनोंमें ग्रहण कभी नहीं लगता है, हर पूर्णिमा और अमावास्याको भी उक्त ग्रहण नहीं लगता है। क्योंकि, पृथ्वी तथा चन्द्र घूमते-घूमते अगल-बगल होकर निकल जाते हैं। किसी-किसी वक्त ही सीधी रेखामें आ पहुँचनेसे उनमें एककी छाया दूसरेपर पड़ जाती है। फिर कुछ देरमें भ्रमण गतिसे आगे निकल जानेसे ग्रहण भी छूट जाता है। यही अनुभव की हुई बात प्रामाणिक होनेसे सच्ची मानने योग्य है। अथवा सूर्यरूप ब्रह्मज्ञानी अपने सिद्धान्तके घरमें रहनेसे ब्रह्म मानन्दीके बलमें बलवान् परिपुष्ट रहते हैं। तहाँपर यमरूपी मन=केतु बन करके भ्रम-कल्पनारूप होकर समाया हुआ है। इसीसे सम-समान परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म मानकर भूलमें भुला रहे हैं ॥ ७६२ ॥

३. औसर आप आप जो गावै ❀ तीनिहुँ तीन कला होय धावै ॥ ७६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार अपना-अपना पक्ष पकड़कर औसर या समय पानेपर भिन्न-भिन्न नाना सिद्धान्त बहु विधिसे वर्णन करके, जो कि, गुरुवालोगोंने गाया है, सोई वाणी अभी सब कोई गाते हैं या गा रहे हैं। आप अपना स्वरूपको न जानकर पारखबोधके बिना अपने ऊपर कर्त्ता ईश्वरादि स्वामी, रक्षक समझते हैं। ज्ञानी, योगी और भक्त, ये तीनों भ्रमिक हो करके कल्पित कलाके पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनोंने तीन मार्गोंकी कलामें प्रवीण हो करके ब्रह्म प्राप्तिके भ्रममें दौड़ पड़े थे। उनके अनुयायी लोग अभी वैसे ही धाय रहे हैं। तीनू नाड़ी साधकर प्राणायामादि करनेमें मन लगा रहे हैं ॥ ७६३ ॥

४. उपजन पोषण अन्त नशाना ❀ लिङ्गम ब्रह्माण्ड सोई परवाना ॥ ७६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इङ्गलासे श्वासकी उत्पत्ति करना, पिङ्गलासे पालन करना और अन्तमें सुषुम्नामें ले जा करके नशा देते हैं, शून्य वृत्ति कर लेते हैं। सोई सूक्ष्म ब्रह्माण्ड-की कला है; ऐसा प्रमाण किया है। अथवा ब्रह्माने रजोगुणसे उत्पन्न किया। उसे विष्णुने सत्त्वगुण-से पालन किया, और महादेवने तमोगुणसे अन्तमें सृष्टिको नाश कर दिया या नाश करेंगे। यही ब्रह्माण्डमें सूक्ष्म-स्थूल रीतिसे बाह्य क्रिया सोई कल्पनासे प्रमाण किया है। अथवा ईश्वरीय कलासे ही जगत्का उत्पत्ति-पालन होकर अन्तमें नाश हो जाता है। सोई सूक्ष्म ब्रह्माण्डका कार्य है, ऐसा गुरुवालोगोंने अनुमान-प्रमाण किया है ॥ ७६४ ॥

५. तीनि नाड़ि नौ रूप बनाई ❀ सोई नौ ग्रह होय प्रगटाई ॥ ७६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देहमें इङ्गलासे— पुहुखा, गन्धारी, गणेशनी, ये तीन नाड़ियाँ बनीं। पिङ्गलासे— पयस्विनी, हस्तिनी, वारुणी, ये तीन नाड़ियाँ बनीं। और सुषुम्नासे— अलम्बुषा, कूहू, शङ्खिनी, ये तीन नाड़ियाँ बनीं। ऐसी तीन नाड़ियोंमेंसे एक-एकके तीन-तीन भाग करके नौ रूपमें नौ नाड़ियाँ बनाये हैं; और सोई ब्रह्माण्डमें भी सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनीश्चर, राहु और केतु, ये नव ग्रहका रूप हो करके ब्रह्माण्डकी नौ नाड़ियोंको ही प्रगट कराये हैं। भ्रमिक हो करके ऐसी कल्पना प्रगटाये हैं। सो सब गुरुवालोगोंकी मानन्दी है, निर्णयसे परखानेके लिये यहाँपर दरशा रहे हैं ॥ ७६५ ॥

६. तैंतीस कोटि योनि विस्तारा * सोई तारागण औतारा ॥ ७६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने पुराणादि कल्पित वाणी बना करके उसके प्रमाणसे तैंतीस करोड़ सब देव योनियाँ ऊपर आकाशके स्वर्गादि लोकोंमें निवास कर रही हैं; ऐसा कहा है, वाणी कल्पनाका ही विस्तार किया है। बाहर तारागणोंको दिखला करके कहा है कि, तारागण सोई देवगणोंके अवतार हैं, अधरमें लटके हुए सोई देवलोकके निवासी ठहराये हैं। उन तारागणोंको ही तैंतीस (३३) कोटि देव योनियोंमें माना है ॥ ७६६ ॥

७. सात स्वर्ग तिनके अस्थाना * तामें अनेक कला विधि नाना ॥ ७६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन तैंतीस कोटि देवताओंके रहनेका वासस्थान ऊपरमें— भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, जनलोक, तपलोक, महर्लोक और सत्यलोक, ये सात स्वर्गके ठिकानोंमें माना है। और उन देवगण तथा सात लोकोंमें अनेकों प्रकारके कला-कौशल, अमृतपान, पुष्पशैय्या, अप्सराओंसे क्रीड़ा-विहार आदि अनेकों कल्पित कला नाना विधिसे वर्णन कर रक्खे हैं। सोई गुरुवालोग बढ़ा-चढ़ाकर नाना तरहसे रोचक वाणी सुनाकर भुला रहे हैं ॥ ७६७ ॥

८. आपु अपवर्ग सातके मूला * सोई श्वास लिङ्गम प्रतिकूला ॥ ७६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आप निरञ्जन-परमात्मा तो सात लोकोंके ऊपर मूल स्थानमें सबोंके जड़ या कारण स्वरूपी मुख्य करके अपवर्ग या मोक्षधाममें सदा विराजमान रहता है। सातके मूलमें वह आप ही अपवर्ग=मुक्तिरूपी है, ऐसा कहा है। सोई देहमें स्थूल भागके विपरीत या प्रतिकूल होकर सूक्ष्म श्वास प्राणरूपमें परमेश्वर रह रहे हैं। यहाँ ब्रह्माण्डरूप मस्तकमें परमात्माका निवास है। उसके प्रतिकूल षट् चक्रके स्थानमें सूक्ष्म श्वासपर सात स्वर्गकी कलपना किया है। ये सब ही गुरुवालोगोंने मनुष्योंको भुला-भटकाकर मुक्तिके विपरीत भव-बन्धनोंमें डालनेका, झीनी-मोटी मायाका जाल ही बनाया है ॥ ७६८ ॥

९. नवयें थीर पवन ब्रह्मण्डा * कारण उतपति प्रलय प्रचण्डा ॥ ७६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नवमें ब्रह्माण्डमें थीर पवन सोई माया है, तथा पिण्डमें चञ्चल पवनको ही आदिमाया, जगज्जननी, ब्रह्मकी मूलशक्ति इच्छारूपिणी माना है। ऐसे पिण्ड-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति तथा प्रलय करनेवाली प्रचण्ड मूल कारण तीव्र या तीक्ष्ण वेगवाली उसी आदिमायाको कल्पनासे श्रेष्ठ ठहराया है। अथवा नौ द्वारोंको रोक कर ब्रह्माण्ड या भ्रमरगुफामें श्वास वायुको स्थिर करके उसे ही योगी लोगोंने ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति तथा जगत् बन्धनोंका तीक्ष्ण वा प्रचण्डरूपसे प्रलय होनेका मुख्य कारण माना है ॥ ७६९ ॥

१०. नारि पुरुष दुइ रूप परवाना * देव योनि सो कला निर्माना ॥ ७७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देवयोनि, सिद्धयोनि, गन्धर्व-यक्षयोनि, भूतयोनि और मनुष्यादि चारखानी चौरासी योनियोंमें स्त्री तथा पुरुष, ये दोनोंरूप प्रत्येकमें बने हैं। ऐसा प्रमाण गुरुवालोगोंने किया है। अपनी कलासे ही क्रीड़ाके लिये नारी-पुरुषका रूप देवयोनिवाले आप ही जब चाहे तब बना लेते हैं, ऐसा भी कल्पनासे माना है। अथवा ईश्वरीय कलासे देवयोनि आदि सब योनियोंमें तथा चराचर सर्वत्रमें ही प्रकृति-पुरुषके दो रूप निर्माण होकर बने हैं। यही गुरुवाओंने नाना प्रकारसे प्रमाण किया है ॥ ७७० ॥

साखीः— पाँच श्वास गुण तीन ले * श्वास लिङ्ग ब्रह्मण्ड ॥

[१६२] सात स्वर्ग अपवर्गके * भिन्न भिन्न सो खण्ड ॥ ७७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच तत्त्व, तीन गुण यह अष्ट भाग ले करके बाहर स्थूल ब्रह्माण्डका विराट् स्वरूप माना है। तैसे ही उसका सार— धनञ्जय, कूकल, कूर्म, नाग

और देवदत्त, ये पाँच वायु तथा इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन गुणको लेकर आठों भाग मिला कर श्वासवायु सूक्ष्म देहके साथमें ही सूक्ष्म ब्रह्माण्डका चिह्न ठहर रहा है; ऐसा कथन किया है। और बाहर सात स्वर्ग आठवाँ अपवर्गरूप मोक्ष धाम ऊपर आकाशके महाशून्यमें कल्पनासे जैसे माना है, तैसे ही देहमें भी सात स्वर्ग सोई सात चक्रपर और अपवर्ग भ्रमरगुफाके मध्यमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे सो 'खण्ड' कहिये न्यारा-न्यारा देहकी जगहपर भी गुरुवालोगोंने कल्पना करके माना और दृढ़ाया है ॥ ७७१ ॥

साखीः— रूप अनेकन ताहिमें ❀ तारागण परवान ॥
[१६३] सोई सब देव कहावहीं ❀ ब्रह्माण्ड थूल है जान ॥ ७७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पौराणिकोंने अनेकों चित्र-विचित्र स्वरूप या नाना रूपधारी अनेकों प्रकारके आकार-प्रकारवाले देवता तथा देवियाँ ऊपर सात स्वर्गमें अदृश्य तैंतीस करोड़ देवगण माना है। वहाँपर एक मुख तथा चार हाथोंके विष्णु हैं। दो मुख, दो हाथोंके अग्नि हैं। तीन मुख, दो हाथवाले दत्तात्रेयको कहा है। चार मुख तथा चार हाथोंके ब्रह्मा हैं। पाँच मुख, चार हाथोंके शङ्कर हैं। छः मुख, बारह हाथोंके कार्तिकेय हैं। सात मुखका सूर्यका घोड़ा है। अष्ट वसु, नव ग्रह, दश मुखका रावण, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य इत्यादि कहा है; और एक मुख तथा आठ या सोलह भुजावाली भगवती है तथा सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र, अनेकों हाथ-पैरादिवाला विराट् पुरुष है, इत्यादि अनेकों रूप ब्रह्माण्डमें कल्पनासे गुरुवालोगोंने ठहराया है। अथवा और दूसरे प्रकारसे दृश्य अनन्त रूपवाले वही देवगण ऊपर अधर आकाशरूप खगोलमें लटके हुए तारागण समूहोंको ही देवताओंके रूपमें स्वर्ग निवासी कहकर प्रमाण किया है। सोई सब तारा समूह ही देवगण कहलाते हैं या कहे जाते हैं। यही सूक्ष्म मानन्दी ब्रह्माण्ड कलाकी है, सो ऐसे वाणी कल्पना-का विस्तार किया है; सो मिथ्या भ्रम है, उसे परख करके यथार्थ निर्णयसे जानिये! ॥

अथवा पिण्डमें सात चक्रमें अनेकों देवरूप कथन करके बाहर शरीरमें रोम कूपको तारागणके समान प्रमाण किया है। सोई सब रोम-रोममें देवगणोंका बासा कहलाता है, ऐसा कहा है। यह स्थूल-सूक्ष्म देहके पिण्ड-ब्रह्माण्ड, वाणी-खानीके स्वरूप हैं; इसी मिथ्या मानन्दीमें सब मनुष्य बन्धे पड़े हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ सत्यासत्य, जड़-चैतन्यकी निर्णयसे परीक्षा करके भ्रम, कल्पना तथा विषयासक्तिका परित्याग करिये! और निज सत्स्वरूप पारखको जानकर पारख स्थितिमें ही ठहरकर मुक्त हो जाइये! यही परखानेका सार मतलब है, ऐसा जान लीजिये! ॥ ७७२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ३६ ॥ [चौपाई- १३ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. राति दिवस जो पलक न माना ❀ लगत अँधेरी खुलत जग भाना ॥ ७७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना करके दृढ़ाया है कि, दिन-रात जो होती है, सो उसका कारण विराट् स्वरूप परमात्माके नेत्रोंकी पलकें लगने और खुलनेसे होती है। जब परमात्माके नेत्रोंकी पलकें लग जाती हैं, तब सारा संसारमें अँधियारा छा जाता है, सोई रातका समय है; तथा जब पलकें खुल जाती हैं, तब जगत्का भान होता है; सूर्योदय होकर सर्वत्र प्रकाश छा जाता है; सोई दिनका समय है। और विराट् ब्रह्म जब शयन करता है, तब प्रलय हो जाता है; तथा उसके जागनेपर सृष्टिकी उत्पत्ति हो जाती है, ऐसा कल्पना करके गुरुवालोगोंने माना है ॥ ७७३ ॥

२. परकाशिक सब घट पट रूपा ❀ थीर पवन झाँई तम कूपा ॥ ७७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देहादिकोंका प्रकाशी तो जीव है। परन्तु, उसे छोड़ करके भ्रमिक लोगोंने तो ब्रह्मको ही सब घट, पट, मठादिका प्रकाशी सर्वरूप व्यापक माना है। सूर्य, चन्द्र, तारागणादि सब ब्रह्मके प्रकाशसे ही प्रकाशित हो रहे हैं; स्वयंप्रकाशी ब्रह्म है,

ऐसा माना है। और थीरपवन=आदिमाया, झाँईं=ब्रह्मके आश्रयमें रहनेवाली, तम=अज्ञान, अविद्या, अन्धकारको फैलानेवाली गहरे कुआँकी नाईं है; सो माया अज्ञानके कूप या कुण्डवत् है। उसी मानन्दीकी गाफिलीसे चौरासी योनियोंके गर्भकूपमें सब जीव पड़े वा पड़ रहे हैं ॥ ७७४ ॥

३. चन्दादिक परकाशिक थूला * जागृत सूर्य देखि जिव भूला ॥ ७७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्माण्डमें अनेकों नक्षत्र, तारागणादि समूह सहित चन्द्रमा आदि खगोल पिण्ड और प्रज्ज्वलित धधकता हुआ सूर्य, अग्नि, सूक्ष्म वायु, पतला-जल, मोटी-पृथ्वी इत्यादिक अनेक कार्य-कारण पदार्थ तत्त्वोंके गुण-लक्षणोंसे प्रकाशिक सूक्ष्म और स्थूलरूपमें वे पदार्थ देख करके आश्चर्य चकित होकर तत्त्वोंके यथार्थ भेद न जाननेसे जागृत-सूर्य=ज्ञान स्वरूप अखण्ड अविनाशी चैतन्य जीव ब्रह्माण्डकी कला देख और दिखाकर निज स्वरूपको भूल गया है। कोई जगत्कर्त्ता परमतत्त्व-परमात्मा सूक्ष्मरूपसे सबका प्रकाशी व्यापक जगदाधार होगा, ऐसा मानकर उसकी प्राप्तिके लिये अनेकों साधनाओंमें लगकर वा लगाकर जीव भूला पड़ा है। बिना पारख यह भूल नहीं मिटती है ॥ ७७५ ॥

४. राति दिवस सोई परवाना * एक नारि एक पुरुष कहाना ॥ ७७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार ब्रह्मकी पलकें लगने और खुलनेको ही रात-दिन होनेका प्रमाण किया है। साधक जब तक ब्रह्म विचारमें रहते हैं, तब तक दिनमें रहते हैं, और जगत् विचारमें लगे रहनेपर रातमें रहते हैं, ऐसा कहा है। उसमें एक नारी प्रकृति आदिमायाके भागमें है, एक पुरुष ब्रह्मके भागमें कहलाता है। सो रात नारी है; दिन पुरुष है, ऐसा कहा है। अज्ञान रात है तथा ज्ञान दिन है, इत्यादि बतलाया गया है ॥ ७७६ ॥

५. तेहिमें तीन कला निर्माया * संझा तीनि तेहि प्रगटाया ॥ ७७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दिन-रातके बीच-बीचके जोड़में वा उसीमें तीन कला या तीन भागका निर्माण किया है। सो तेहिमें=उसीमें तीन काल या तीन सन्ध्या=सवेरे, शाम और दोपहरको ठहरा करके उसवक्त करनेके नाना कर्ममार्ग प्रगट किया है। अतः ब्राह्मणादिलोग त्रिकाल सन्ध्या-वन्दन करते और कराते हैं ॥ ७७७ ॥

६. आदि अन्त एक मध्य प्रमाना * ता बिच लगन कला विधि नाना ॥ ७७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ सबेरा होनेपर दिनका आदि या शुरू होता है। प्रातःकालमें प्रातःसन्ध्या-वन्दनादि क्रिया-कर्म करते हैं। मध्य दिन वा दोपहरको मध्याह्नकाल कहते हैं, तब मध्याह्न सन्ध्या करते हैं। अन्तमें शामको सायंकालका सायंसन्ध्या करते हैं। आदि, मध्य और अन्तमें त्रिकाल सन्ध्या होनेका प्रमाण किया है। तथा भूत, भविष्य और वर्तमान, ये तीन काल और वह तीन सन्ध्या इसीके बीचमें लग्न, मुहूर्त, नक्षत्र शोध करके कल्पनासे नाना कला-कौशल बहुविधिसे प्रगट किया है और लग्न आदि नाना प्रपञ्च धोखा लगा ही रहे हैं ॥ ७७८ ॥

७. दश द्वारा दश दिशा बनाई * अष्टाङ्गी तेहि माँह समाई ॥ ७७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दश द्वार या दश इन्द्रियाँ शरीरमें बनी हैं। बाहर दश दिशाएँ बनाये हैं— सो पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ईशान्य, वायव्य, आग्नेय, नैऋत्य, अर्ध, और ऊर्ध्व, ऐसे दश ठिकानोंपर दश दिशा माना गया है; तथा दश कर्म पद्धति आदि दश मार्ग भी बनाया है। पाँच तत्त्व, तीन गुण मिल करके अष्टाङ्गी माया उसी शरीरमें समायी हुई है। तैसे ही अष्टाङ्गी माया-प्रकृति बाहर भी दशों दिशाओंमें समायी हुई है। यानी पञ्च विषय और तीन गुणोंके कार्य पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सबदूर ही समाये हुए हैं। उसीको परमेश्वरकी शक्ति मान-मानकर बिना विवेक जड़ाध्यासी हो, सब जीव भूले पड़े हैं। पारखी श्रीसद्गुरुसे सत्सङ्ग द्वारा परख करके सो भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ॥ ७७९ ॥

८. योगिनी होय बहु कला देखावै * सन्मुख दहिने ग्रासन धावै ॥ ७८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने ऐसा माना है कि, महामाया देवी जब योगिनी, सिद्धिनी भूतिनी हो जाती है, तब नाना रूपमें प्रगट हो करके फिर बहुत-बहुत कला-अनेक कार्य करके दिखलाती है। कहीं सुख देती है, कहीं दुःख देती है; कहीं हानि कर देती है, कहीं लाभ करा देती है, ऐसे अनेक कला दिखला देती है। तहाँ यदि वह योगिनी देवी मनुष्योंके सन्मुखमें आ गई वा दाहिनी तरफ रह गई, तो उस प्राणिको ग्रास करनेको धावती है वा दौड़ करके ग्रास कर ही लेती है; और अनेकों तरहसे उसे पीड़ितकर दुःखमें फँसा देती है, ऐसा कहा है, सो वाणी कल्पनासे गुरुवालोग मनुष्योंको ग्रास कर रहे हैं ॥ ७८० ॥

९. पाछे बायें रक्षक सोई * ज्योतिष दृष्टि लक्षण सब होई ॥ ७८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अगर वही योगिनी देवी मनुष्योंके पाछे=पीठ तरफमें रही हो वा बायें हाथकी तरफमें बैठी हो, तब तो फिर सो वही उसका रक्षक हो जाती है। उस प्राणीका सब प्रकारसे सर्वाङ्गकी रक्षा करती है; ऐसा ज्योतिषीलोगोंने कहा है। ज्यौतिष विद्याकी दृष्टिसे उसका सब लक्षण दिखाई देता है। किस वक्त कहाँ रहती है ? यह हिसाब भी ज्योतिषियोंने अनुमानसे कथन किया है। उससे होनेवाला सब लक्षण, फल ज्योतिष-दृष्टिसे मालूम हो जाता है। वैसे विचार करके चलनेसे सब आपदासे बचाव हो जाता है, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है ॥ ७८१ ॥

१०. परिवा नौमी पूरब वासा * उत्तर दुतिया दशमि नेवासा ॥ ७८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब यहाँपर पन्द्रह तिथियोंमें योगिनी देवीके रहनेकी दिशा बतलाया जाता है, सो सुनिये ! परिवा या प्रतिपदा और नवमी इन दो तिथियोंको योगिनी देवी पूर्व दिशाके सामनेमें निवास करती है। दूसरे दिन वहाँसे उठ जाती है, तो द्वितीया और दशमी तिथिके रोज उत्तर दिशाकी तरफ जा करके निवास करती है। ऐसा जानकर सन्मुख और दाहिनी तरफ योगिनी न आने पावे; इसको बचा करके चलना चाहिये। ऐसा ज्योतिषी लोगोंने कहा है। ऐसे ही सब तिथियोंमें उसके भिन्न-भिन्न निवासस्थान बतलाया गया है ॥ ७८२ ॥

११. तीज एकादशि आग्नेय रहाई * वायव्य चौथ द्वादशी धाई ॥ ७८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तृतीया और एकादशी इन दो तिथियोंमें योगिनी देवी पूर्व-दक्षिणका कोना, आग्नेय दिशामें जाकर रहती है। फिर चतुर्थी और द्वादशी, इन दो तिथियोंमें पश्चिम-उत्तरके कोना, वायव्य दिशामें दौड़कर चली जाती है। उन दिनोंमें वहीं रहती है, ऐसा माना है ॥ ७८३ ॥

१२. पञ्चमी त्रयोदशि दक्षिण विराजै * षष्ठी चतुर्दशी पश्चिम गाजै ॥ ७८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैसे ही पञ्चमी तथा त्रयोदशी इन दो तिथियोंमें दक्षिण दिशामें जाकर योगिनी देवी विराजमान होती है। फिर षष्ठी और चतुर्दशी इन दो तिथियोंमें पश्चिम दिशामें निवास करके खूब गरजती रहती है। ऐसी वाणी कल्पनाका गर्जना ज्योतिषियोंने किया है॥७८४॥

१३. सप्तमी पूर्णिमा नैऋत्य रहई * अष्टमी अमावस ईशान्य विहरई ॥ ७८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सप्तमी और पूर्णिमा इन दो तिथियोंमें दक्षिण-पश्चिमके कोना नैऋत्य दिशामें जाकर योगिनी देवी रहती है; और अष्टमी तथा अमावास्या इन दो तिथियोंमें पूर्व-उत्तरके कोना ईशान्य दिशामें जाकर योगिनी देवीका विहार होता रहता है, सो उधर ही घूमती रहती है। ऐसा जान करके योगिनी देवीके सन्मुख कभी कदापि न जावे; उसे पीछे वा बायें करके चले, तो लाभ ही होगा। ऐसी अनेकों वाणी कल्पनामें लगाकर मनुष्योंको पण्डित गुरुवालोग ठग रहे हैं वा भुला रहे हैं ॥ ७८५ ॥

साखीः— जब सो चाल चलावै * चले विविधि सो चाल ॥
[१६४] न्यारे न्यारे दोष गुण * विदित कला है काल ॥ ७८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग जब चाहे तब मनमाने सो वैसे कल्पित चालको संसारमें चलाते हैं। उन्हींके कथन अनुसार ग्रह, लग्न, मुहूर्त, योगिनी, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करणसे शुभ-अशुभ विचार, नाना सिद्धान्तोंके विविधि चाल दुनियाँमें खूब चल रही हैं। उन सबोंका गुण तथा दोष न्यारा-ही-न्यारा वर्णनकर रक्खे हैं। तीर्थयात्रा या कहीं परदेशादिमें जानेको हुआ, तो इन ज्योतिषियोंसे पूछना पड़े, मुहूर्त देखना पड़े, योगिनी-देवी कहाँ बैठी है, सो देखकर चलना पड़े। ऐसी-ऐसी उपाधि ये काल=गुरुवालोगोंने लगा रक्खी है, सो संसारमें कालकी नाना कला विदित या जाहिर ही है, उस धोखेको परख करके त्याग देना चाहिये ॥ ७८६ ॥

साखीः— दशा सबै सो थूलके * जोतिष दृष्टि लखाय ॥
[१६५] रचना है ब्रह्माण्डका * बहु पसार समुदाय ॥ ७८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो सब दशा या गति, स्थिति सूक्ष्म वाणी कल्पनाकी है। ज्यौतिष विद्याकी दृष्टिसे ही लखाती है। बाह्य खगोल और भूगोल ब्रह्माण्डकी जड़ रचनामें तो प्राकृतिक अनादि कार्य-कारण समुदायका ही पसारा बहुत है। परन्तु, ब्रह्माण्ड कलाका वर्णन करके गुरुवालोगोंने बहुत-सी ज्योतिषादि वाणीरूप ब्रह्माण्डकी रचना की है, और उन्होंने वाणीका विस्तार भी खूब करके रक्खा है। गुरुवालोगोंने परम्पराके समुदायरूपसे वाणी जालका पसारा बहुत जबर्दस्त कर रक्खा है। सर्व साधारण लोगोंके लिये वह महाजालोंसे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है। कोई बिरले ही पारखी सन्त इन जालोंसे बच पाते हैं; फिर वे ही दूसरोंको भी बचाते हैं ॥ ७८७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४० ॥ [चौपाई- १३ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. सात स्वर्गके सात बन्धाना * सोई पहाड़ लिङ्गम परवाना ॥ ७८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मी पण्डित गुरुवालोगोंने बाहर सात स्वर्गकी जो कल्पना की है, सोई योगीलोगोंने शरीरके सात चक्रोंमें सात स्वर्गोंका बन्धान किया है। सात चक्रोंमें जो हड्डियाँ हैं, सोई सात स्वर्ग रहनेकी पहाड़रूप सूक्ष्म भूमिका होनेका चिह्न प्रमाण किया है। पीठ पीछेकी रीढ़की हड्डी चौकोर आकारकी चौगुरियाँ इक्कीस मणकाको ही एकईस ब्रह्माण्ड माना है। उसीप्रकार लिङ्गम=सूक्ष्म सात पहाड़ोंका योगीजनोंने शरीरमें ही प्रमाण करके माना है ॥ ७८८ ॥

२. सायर सात सातके पासा * सोई सूक्ष्म कारण परकाशा ॥ ७८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी सात पहाड़ोंके आस-पासमें— मीठा, लोण, दधि, घृत, मदिरा, अमृत और दूध नामके सात समुद्र पिण्ड और ब्रह्माण्डमें कल्पनासे माना है। सोई सूक्ष्म भाग देहमें और स्थूल कारण भाग ब्रह्माण्डमें रह रहा है; ऐसा गुरुवालोगोंने प्रकाश किया है ॥ ७८९ ॥

३. धरती सो अस्थूल कहाई * तेहिमें कारज होय प्रगटाई ॥ ७९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर भूगोल पिण्ड पृथ्वी जो है, सो स्थूलाकार कारण कहलाती है। उसी पृथ्वीमें अनेकों पदार्थ कार्यरूपमें प्रगट होते हैं। सो कार्य-कारणका सम्बन्ध अनादि ही है। स्वाभाविक तहाँ अनेकों कार्य बन करके बिगड़ते ही रहते हैं; उसका कर्त्ता कोई नहीं है। और यह धरतीरूप शरीर सोई स्थूल देह कहलाता है। इसी शरीरमें भी अनेकों कार्य हो-होकर प्रगट होते हैं; देहका कर्त्ता जीव है। तहाँ कर्मानुसार ही देह बन करके प्रगट होता है ॥ ७९० ॥

४. पुरुष अंश होय जल सोई धाई * लिङ्ग मथी सोई बीज उपाई ॥ ७९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पुरुषके अंशसे उत्पन्न होनेवाला जल ही वीर्य हो करके धावता है। जैसे दही मथनेसे मक्खन निकलता है, तैसे ही लिङ्गरूप मथानीको भगरूप बर्तनमें मथनेसे या मैथुन-समागमकी रगड़ या सङ्घर्षण करनेसे सोई देह बननेका कारण बीजरूप वीर्य उत्पन्न होता है वा उसी क्रियासे वीर्य बन करके पतन होता है ॥ ७९१ ॥

५. पूरण प्रथमें अण्ड परवाना * सो फोकचा ब्रह्माण्ड बखाना ॥ ७९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पुरुषके अंशरूप प्रधान वीर्यकी विशेषतासे पुरुषरूप पुत्रका देह बनता है, सो प्रथम अवस्थामें नरम वीर्य परिपुष्टताको प्राप्त होता है। पूर्णरूपसे प्रथम वीर्य अण्डरूपमें रहता है; सो वीर्य रहनेके स्थानको 'फोकचा' कहते हैं। देहके ब्रह्माण्डमें भालकी जगहमें कपारके कमल मध्यमें वीर्य रहता है, ऐसा वर्णन किया है। अथवा प्रथमारम्भमें पूर्ण अण्डरूप व्यापक ॐकार परमात्मासे सारे चराचर जगत्की उत्पत्ति हुई, फिर वही अण्ड फूट करके एकसे अनेक हुआ; यह प्रमाण गुरुवालोगोंने किया है। सो ॐकार ही 'फोकचा' है, वह ब्रह्माण्डभरका गर्भाशयवत् आधाररूप अधिष्ठान है, ऐसा वर्णन किया है ॥ ७९२ ॥

६. फोकचा पृथिवी सोई ब्रह्मण्डा * तामें बहुविधि रूप प्रचण्डा ॥ ७९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर पृथ्वी सोई ब्रह्माण्डका फोकचा=कारखाना, गर्भस्थान है। उसी पृथ्वीमें बहुत प्रकारके विविधि रूपवाले सात प्रकारके धातु हैं; सप्त रङ्ग, अठारह भार वनस्पतियाँ गुल्म, बेली, लताएँ, वृक्षादि प्रचण्डरूपसे चराचर समूह उत्पन्न हुए और हो रहे हैं, ऐसा कहा है। तैसे ही पिण्डका 'फोकचा' कहिये स्त्री-देहका गर्भाशय है। सो उसी तीन खानीके गर्भमेंसे बहुत प्रकारके देहोंके रूप कर्मानुसार तीक्ष्ण रीतिसे बन-बनकर उत्पन्न हो रहे हैं॥७९३॥

७. अन्तरूप सब धूरि मिलाई * देखि देखि जीव बहु पछताई ॥ ७९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमें जो-जो रूप, वस्तु, आकार-प्रकार, देह, पदार्थ इत्यादि उत्पन्न हुए थे, समय पा करके सो सब रूप अन्तमें नाश होकर धूरमें वा कारणरूप पाँच तत्त्वोंमें मिल जाते हैं; नाश हो जाते हैं। ऐसा देख-देख करके जड़ासक्त जीव मोहके मारे व्याकुल होकर बहुत-बहुत पछताते, रोते-कराहते और विलाप करते रहते हैं; तो भी बनी हुई वस्तु बिगड़ ही जाती है ॥ ७९४ ॥

८. जोई बीज पुनि सोई रज होई * दुई देह धरि प्रगटे सोई ॥ ७९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर मृत्यु समयमें जैसी वासनाका बीज जीवके पास रहा, तैसी ही भूमिकाको वह प्राप्त हुआ। तहाँ मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जिस खानीके जो बीज पुरुषका है, सोई खानीके स्त्रीकी रज भी एक-सा ही मिल जाता है, तब तो स्त्रीको गर्भ रहता है, वैसा नहीं हुआ, तो फिर गर्भ नहीं रहता है। जो जैसा बीज है, फिर सोई तैसा रज भी मिला, तब अध्यासके अनुसार ही स्त्री और पुरुषकी ये दो देहें धारण करके सोई अध्यासी जीव जा करके चारों खानियोंमें प्रगट होते हैं वा प्रगट हो रहे हैं ॥ ७९५ ॥

९. पाँच तत्त्व सोई कारज रूपा * रहा समाय सो सबै स्वरूपा ॥ ७९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पृथ्वी, जलादि पाँच तत्त्वोंसे सोई पिण्ड-ब्रह्माण्डमें अनेकों कार्यरूप पदार्थ देहादि बहुविधिसे उत्पन्न हुए या हो रहे हैं। सो सबोंके सूक्ष्म कारण पाँच तत्त्व ही हैं। पाँचों विषयोंका स्वरूप तत्त्वोंमें ही समा रहा है; और विषयाध्यासी हो करके सब जीव जड़ तत्त्वोंमें ही लक्ष्य लगा करके समा रहे हैं वा मिल रहे हैं। वासनावश स्त्रीके गर्भमें समा करके चौरासी योनियोंके स्वरूपमें नाना देहें धारण करके प्रगट हो रहे हैं ॥ ७९६ ॥

१०. एक एक व्यापिक सब ठौरा * इन्ह परपञ्च जीव भौ बौरा ॥ ७९७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच तत्त्वोंके त्रसरेणु, अणु, परमाणुरूपसे सब जगह वे सम्मिश्रण होकर मिल रहे हैं। एक-एक तत्त्वोंका भाग सब ठौरमें फैल रहा है; सो परस्पर चारों तत्त्व चारोंमें मिले हुए हैं। ऐसा देख करके गुरुवालोगोंने वस्तु व्यापक होनेकी कल्पना की है; तो सब अणु-परमाणुओंमें ब्रह्मको एक ही व्यापक माना है। सो ब्रह्म भी व्यापक है, माया भी व्यापक है और पाँच तत्त्व भी व्यापक है; ऐसे एक-एक सब ठौरमें व्यापक ठहराया है। यही माया प्रपञ्च वाणी कल्पना और विषयोंके प्रपञ्चोंमें पड़ करके अबोध नरजीव दिवाने हुए वा बौरा गये, गाफिल-जड़ाध्यासी, भ्रमिक हो गये हैं ॥ ७९७ ॥

११. तीनि नाड़ि त्रिवेनी कीन्हा * गङ्गा यमुना सरस्वति रचि लीन्हा ॥ ७९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिकुटी स्थानमें इङ्गला, पिङ्गला तथा सुषुम्ना, ये तीन नाड़ियोंको एकत्र करके त्रिवेणी बनाये हैं। जैसे बाहर गङ्गा, यमुना और सरस्वती इन तीन नदियोंकी धारा एकमें मिली हुई जगहको प्रयागमें त्रिवेणी घाट कहा है। तैसे ही शरीरमें भी तीनों नदीकी कल्पनासे तीन नाड़ीकी रचना कर लिया है। सो इङ्गला नाड़ी गङ्गा है, पिङ्गला नाड़ी यमुना है, तथा सुषुम्ना नाड़ीको सरस्वती कह करके उसी नाड़ीके बीचमें माना है। तीनों नदीरूप नाड़ियाँ तीन तरफसे बह करके त्रिकुटीमें आकर मिली हैं, सोई त्रिवेणी घाट हुई, ऐसा मानकर योग मार्गकी नाना रचना कर लिये हैं ॥ ७९८ ॥

१२. शिखर सुमेर सो प्रगटी धारा * तीनों तीन लोक परचारा ॥ ७९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे बाहर सुमेरु नामक हिमालय पहाड़के शिखर या पर्वतकी चोटीसे तीनों नदियोंकी धाराएँ प्रगट हुई हैं। वहाँसे बहती हुई गङ्गा स्वर्ग लोकमें गई, यमुना मृत्युलोकमें आई, और सरस्वती पाताललोकको चली गई; ऐसा बाहरमें कल्पनाका प्रचार किया है। तैसे ही शरीरमें भी मस्तक या ब्रह्माण्ड स्थानके सुमेरु शिखरमेंसे तीनों नाड़ियोंकी धाराएँ फूटकर बाहर प्रगट हुई हैं। सो तीनों इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना नाड़ी अर्ध, ऊर्ध्व और मध्य, यही तीनों लोकोंमें चली गईं, ऐसा योगी लोगोंने प्रचार किया है ॥ ७९९ ॥

१३. दीप दीप प्रति सङ्गम कीन्हा * पुनि सो भिन्न भिन्न कै दीन्हा ॥ ८०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब हिमगिरीके सुमेरु शिखरसे नदी उद्गम होकर नीचे बही, तब पर्वतों, नदियों, नाले, खोलेके बीच-बीचमें मिलान होता हुआ द्वीप-द्वीप घाटी-घाटीमें सङ्गम करती हुई चली आई हैं। फिर आगे बढ़ करके भिन्न-भिन्न रास्तोंसे फूट गईं, तो जिधर-तिधर छितरा गईं। फिर सङ्गममें आ करके मिलीं। जम्बू, शङ्ख, कुश, श्वेत, पुष्कर, शाल्मली और क्रौञ्च, ये बाहरके सात द्वीपमें हरएकमें सङ्गम करके फिर नदियाँ अलग-अलग रास्तोंसे निकल करके बहती हुई चली गई हैं, फिर अन्तमें समुद्रमें जाकर समा जाती हैं। तैसे ही देहमें मस्तक या ब्रह्माण्डसे निकली हुई तीन नाड़ियाँ त्रिकुटी, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्ग, गुदा, घुँटना आदिमें प्रत्येक जोड़में सङ्गम या मिलान करके देहके सात द्वीप— हाड़, मज्जा, नाभि, त्वचा, मांस, रोम और शिर, इन सब जगहोंमें घूम रही हैं। फिर जगह-जगह मिलकर भिन्न-भिन्न करके नाड़ियाँ देहके आगे भागमें चली गई हैं। योगीलोग नाड़ियोंको मिला करके अलग-अलग भी कर देते हैं। उसी योग साधनामें लगे रहते हैं, ऐसा कहा है ॥ ८०० ॥

साखीः— प्रति प्रति दीप सङ्गम करी * पुनि तेहि दीन्ह छिटकाय ॥

[१६६] सो त्रिवेनीराज है * प्रजा नदी समुदाय ॥ ८०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर सातों द्वीपोंके प्रत्येक स्थान, नाकामें

नदियाँ सङ्गम या मिलान करके फिर वहाँसे छिटका करके अलग-अलग होकर बह गई हैं। सो गङ्गा, यमुना और सरस्वती जहाँ आकर मिली हैं, वहाँ त्रिवेणीराज या प्रयागराज कहा है; और सब नदी समूहोंको प्रजारूपमें माना है। तैसे ही देहमें शिरसे नाड़ियाँ निकल करके, नेत्र, कान, कण्ठ, हृदयादि प्रत्येक या हरएक स्थानके द्वीपोंमें समागम या मिलान करके फिर वे नाड़ियाँ वहाँसे आगे अलग-अलग भी हो गई हैं। ऐसे नाड़ियाँ देहमें छिटकाई हुई हैं। और त्रिकुटी स्थानमें तीनों नाड़ियाँ आकर मिल करके एक होती हैं, इसलिये सो 'त्रिवेणी' राजाके समान बड़ी है। और छोटी-छोटी अनेकों नसें प्रजा समुदायकी तरह बड़ी नाड़ीके आधारमें चलती हैं, ऐसा माना है॥८०१॥

साखीः— जब जब करै जलामयी * गड़बड़ सम्यक होय ॥
[१६७] सूक्ष्म हेतु जो गावहीं * बहुरि प्रगटत है सोय ॥ ८०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं— जब-जब परमेश्वर संसारका महाप्रलय करते हैं, तब-तब तो बड़ा गड़बड़ हो जाता है। समुद्रका पानी बढ़ करके सर्वत्र जलामय वा बराबर पानी-ही-पानी हो जाता है। जगत्का कारण सूक्ष्मरूपसे माया सहित उसी ब्रह्ममें लय होकर बीजमात्र सुरक्षित रहता है। फिर ब्रह्मकी इच्छासे ही समय पा करके पूर्ववत् सृष्टि प्रगट हो जाती है, ऐसा कहा है। अथवा इसी तरह जब-जब शरीर छूटनेको होता है, तब-तब पवन-प्राणकी गाँठ नाभि और हृदयसे खुल जाती है। वात, पित्त और कफकी गड़बड़ी हो जाती है। सन्निपात होनेपर बराबर शरीरके कार्य नहीं होते हैं, नसें टूट जाती हैं; तो प्राण छूट करके मृत्यु भी हो जाती है। तब देह फूलकर मुर्दा देहमें जलामयी हो जाता है; और सूक्ष्म देहमें स्थूल देह बननेकी बीज जमा रहता है। उसीसे अध्यासवश जीव चौरासी योनियोंमें जा करके नाना देहें फिर भी प्रगट कर लेते हैं। उसी वासना बीजको ही परख करके जलाना चाहिये ॥ ८०२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४१ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. नदी जहाँ तहाँ सङ्गम कोठा * पारख बिना भये सब खोटा ॥ ८०३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर बड़ी-छोटी नदियोंका जहाँ-जहाँपर मिलान हुआ है, तहाँ-तहाँपर दोआब, त्रिवेणी, ज़ल-संयोग नदी-सङ्गम आदि नामसे कहा गया है। उसे बड़ा तीर्थ स्थान मानकर महिमा किया है। तैसे ही शरीरमें भी बड़ी-छोटी नाड़ियाँ सब बहत्तर हजार गिने हैं। तहाँ एक हजार नाड़ियाँ घिरकर एक कोठा बना है। इस हिसाबसे शरीर-भरमें सब बहत्तर कोठा माना गया है। परस्पर नाड़ियोंकी गाँठें बँधी हैं, सोई उसीको 'सङ्गम-कोठा' कहा है। सत्यासत्यके विचार करके निजस्वरूपकी पहिचानकर यथार्थ सद्गुरुके पारखका बोध हुए बिना सब मनुष्य भ्रमिक हुए हैं। खोटा=मिथ्या ब्रह्म-ईश्वरादिके पीछे लगकर सब नरजीव खोटे बेपारखी पक्षपाती होकर बद्ध हुए हैं ॥ ८०३ ॥

२. सायर सात सोई परवाना * नौ नाड़ी नौ खण्ड निशाना ॥ ८०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सात समुद्र और सात द्वीप सोई पिण्ड-ब्रह्माण्ड-में प्रमाण किया है। देहमें सात चक्र, सात कमलके पासमें ही सात प्रकारके समुद्र माना है। फिर बाहरमें नौ खण्ड पृथ्वीके निशानमें ब्रह्मखण्ड, सौम्य, गभस्ति, नाग, वरुण, इन्द्र, कसेरु, भरत और ताम्रखण्ड, ऐसे नामसे कहा है। शरीरमें कान, त्वचा, नेत्र, नाक, जिभ्या, हाथ, पाँव, लिङ्ग और गुदाके ठिकाने क्रमशः उक्त नौ खण्ड माना है। और इङ्गलादि तीन नाड़ी पुहुखादि छः नाड़ी मिला करके नौ नाड़ियाँ शरीरमें मुख्य गिना है; बाहर बड़ी-बड़ी नौ नदियाँ वर्णन किया है; यही निशानी बताया गया है ॥ ८०४ ॥

३. सात पहाड़ सात सोई दीपा * सोई पहाड़ अस्थिके रूपा ॥ ८०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सात पहाड़ः— देव, पारचक्र, वैकुण्ठ, कैलाश,

हेमवान, हेमवन्त और सुमेरु नामके सात पर्वतको ब्रह्माण्डमें सोई सात द्वीपके ठिकाने माना है। देहमें षट्चक्र और शिरकी जगहमें ही सात पहाड़ बतलाया गया है। तहाँ जम्बू, शङ्खादि सात द्वीप ठहराया है। बाहर पहाड़में बड़े-बड़े पत्थर और चट्टाने होती हैं, सोई देहमें हड्डियोंके रूपमें ही पहाड़ माना है; हाड़को ही पहाड़रूपमें कहा है ॥ ८०५ ॥

४. धरती मासु रक्त सो नीरा * अंकुरज रोम सो है शरीरा ॥ ८०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसीप्रकार बाहर पृथ्वीके भागमें मिट्टी दिखाई देती है। सो शरीरमें मांस ही पृथ्वीके मुख्य भागमें माना है। बाहर नदियोंमें पानी बहता हुआ दिखाई देता है। सोई शरीरमें रक्त नाड़ियोंमें बह रहा है; वही पानीका मुख्य भाग है। और अठारह भार वनस्पति अंकुरज बाहर देखनेमें आते हैं। सोई शरीरमें रोम जो हैं, सो सब अंकुरजोंकी जगहमें उत्पन्न हो करके शोभा दे रहे हैं; ऐसे भीतर-बाहर एक-सा बात घटाया गया है ॥ ८०६ ॥

५. दीपबन्द खण्ड ब्रह्माण्ड सँवारी * रचनामें रचना विस्तारी ॥ ८०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर सात द्वीपोंका हद्द, बन्धान करके न्यारा-न्यारा पिण्ड और ब्रह्माण्डोंका खण्ड-खण्ड भाग बनाया है। एक रचनाके बीचमें अनेक रचनाका विस्तार किया है। सात द्वीप, नौ खण्ड, एकईस ब्रह्माण्डको तैय्यार करके उत्पन्न किया है, उसी जगत् रचनामें पुनः वाणी कल्पनासे ब्रह्मकी रचनाका विस्तार करके सबोंको फँसाये हैं ॥ ८०७ ॥

६. सो अस्थूल ब्रह्माण्ड कहावै * अष्टाङ्गी होयके दिखलावै ॥ ८०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो स्थूल शरीर पिण्डमें हुआ, और विराट्रूप स्थूलाकार ब्रह्माण्डमें कहलाया। तहाँ पाँच तत्त्व, तीन गुण, ये ही आठ अङ्गोंसे ही पिण्ड बना है, सोई अष्टाङ्गी माया ब्रह्माण्डमें भी प्रगट हो करके कार्य दिखला रही है। सोई स्थूल ब्रह्माण्डका पसारा कहलाता है। भ्रमिक हो करके गुरुवालोग अष्टाङ्गी मायाको ही जगत्का मूल कारण और ब्रह्मको कर्त्ताके रूपमें दिखलाते हैं; सो वे लोग बिना पारख भूले पड़े हैं ॥ ८०८ ॥

७. एक सुमेर सो शीश बनाई * सात अङ्ग धरती निर्माई ॥ ८०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! एक लाख योजन बड़ा एक सुमेरु पर्वत बाहर कहीं होनेकी कल्पना किया है; और शरीरमें शिरको ही सुमेरुकी जगहमें बनाया है या शिरको ही सुमेरु बतलाया गया है। तथा सात अङ्गोंवाली पृथ्वी बाहर निर्माण किया है। तैसे ही शरीरमें भी शिरके नीचे— गला, पीठ, छाती, दोनों हाथ, दोनों पैर आदि सात अङ्गोंकी धरती बनाया है या ऐसा मान लिया है ॥ ८०९ ॥

८. सोई सात धरती परवाना * ऊँचा नीचा अङ्ग ठेकाना ॥ ८१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई सात द्वीपको ही सात धरती होनेका प्रमाण किया है। टीला, पहाड़, शिखर, खाँच, तराई, ऐसे ऊँची-नीची बेडौलका ठिकाना जमीनमें बना है। तैसे ही सोई सात यहाँपर हाड़, मज्जा, नाड़ी आदि सप्त धातुओंके शरीरको ही सात धरतीकी जगहमें प्रमाण किया है। शिर ऊँचा है, तो पैर नीचा है; ऐसे अङ्ग-प्रत्यङ्गमें ऊँचा-नीचा भाग बना है। सब ठिकाने अङ्गोंका यही भेद हुआ है ॥ ८१० ॥

९. रचि ब्रह्माण्ड कला बहु भारी * सोई अंश सब पिण्ड सँवारी ॥ ८११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पाँच तत्त्वरूप ब्रह्माण्ड कलाकी रचना बड़ी भारी स्वयमेव हो गयी है। सोई ब्रह्माण्डके पाँच तत्त्वोंके भाग ले करके अंशरूपसे चारखानीमें सब पिण्डरूप शरीर जीवकी सत्तासे बहुविधिसे बना है। अथवा ब्रह्माण्ड कहिये वाणी, सो गुरुवा-लोगोंने वेदादि वाणीकी कला-कल्पना बड़ा भारी विस्तार करके रचना किया है। सोई कल्पित ईश्वरादिके अंशसे ही सारे पिण्ड बन करके उत्पन्न हुए, ऐसे कहकर भ्रम खड़ा किया है ॥ ८११ ॥

१०. उत्पत्ति आदि प्रलय सो अन्ता * मध्य मध्य तेहि कला अनन्ता ॥ ८१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमें आदिमायासे पिण्ड-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति मानकर फिर अन्तमें परब्रह्मसे सारे जगत्का अन्त वा प्रलय हो जायगा, ऐसा कहा है। सो उसी आदि-अन्तके मध्य वा बीच भागमें मध्य-मध्यका अनन्त कला-कौशल, कल्पना, चतुराई, मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त षड्दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्ड इत्यादि अनेकों कला यह सब उसीके बीचमें ही प्रगट करके सब जीवोंको भुला और झुला रहे हैं। तहाँ माया-ब्रह्म, अर्ध-ऊर्ध्व, प्रकृति-पुरुष, शुभ-अशुभ इत्यादि चक्रमें पड़ करके जन्म-मरण और गर्भवासमें डोल रहे हैं। बिना पारख यह आवागमनकी रहटा नहीं छूटती है ॥ ८१२ ॥

साखीः— अष्ट धातु बहु खानिके * उपजा जग विस्तार ॥
[१६८] नितप्रति पालन नाशन * रहै न एक करार ॥ ८१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच तत्त्व और तीन गुण, यही अष्टधातुसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सबकी उत्पत्ति हुई है या होती है; और रज-वीर्यसे हाड़, मज्जा, नाड़ी, रक्त, मांस, त्वचा तथा रोम, ये सप्त धातुके शरीर चारखानियोंमें बहुत प्रकारसे बनकर उपजे हैं, ऐसे यह जगत्का विस्तार विशेषरूपसे हुआ है। बाहर पृथ्वीके गर्भसे खदानमेंसेः—१. सोना, २. चाँदी, ३. ताँबा, ४. जस्ता, ५. लोहा, ६. राँगा, ७. शीशा, ८. काँसा, (पीतल और काँसा यह दोनों उपधातु माना है), ऐसे अष्ट धातु बहुत प्रकारसे खानीके भागसे उत्पन्न होकर जगत्में विस्तार हुए हैं। चारखानी चौरासी योनियोंमें बहुत प्रकारकी वासनाओंसे अनेकों शरीर धारण करके उत्पन्न होकर जगत्में जीव सृष्टिका विस्तार हो गया है। अपने-अपने शरीरको नित्यप्रति या रोज-रोज पालन= रक्षा करके बढ़ा रहे हैं। तो भी भोग पूर्ण होनेपर एक दिन शरीर नाश होकर छूट ही जाता है। देहादि पदार्थ परिणामी होनेसे कभी भी एकरस होकर रह ही नहीं सकते हैं; एक-सा नित्य स्थितिमें देहादि कभी नहीं रहता है। जीव तो एकरस नित्य ही है; परन्तु, निज स्वरूपकी स्थितिमें वा पारखबोधपर टिके न रहनेसे जड़ाध्यासी हो आवागमनादिमें पड़कर दुःख ही पाते रहते हैं ॥ ८१३ ॥

साखीः— नित उपजै अरु नित खपै * निश्चय नष्ट सो मूल ॥
[१६९] परखहु काल कला सबै * देखि जगत मति भूल ॥ ८१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कि, यह जगत् तथा देह कार्यरूप होनेसे सदा नित्य अविनाशी होकर नहीं रहता है, वह तो नित्य ही बनता है, नित्य ही उत्पन्न होता है, तथा नित्य ही परिणाम बदलता रहता है, और नित्य ही क्षीण हो करके नाश भी होता रहता है। अतएव इसी स्थूल देहको ही अपना स्वरूप समझना बड़ी भारी भूल है। निश्चय करके इस देहका तो मूल कारण पाँच तत्त्व है, सो नष्ट=कार्य-कारणवाला है। इसीसे देहोंका परिणाम भी बदला करता है। यदि जगत्का उत्पत्ति-प्रलय नित्य ही होता रहता है, तो उसका मूल आदिकारण माना हुआ ब्रह्म भी निश्चयसे ही नष्ट वा मिथ्या धोखा है। ब्रह्म बन करके किसीकी भी मुक्ति नहीं होती है। हे मुमुक्षुओ ! कालरूप गुरुवालोगोंकी वाणी कल्पनाके कला तथा स्त्रीके विषयोंके कला उन सबोंको पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर यथार्थ परखो ! जगत्में स्त्री और गुरुवालोगोंके नखरा माया जालको देखकर उसमें मत् भूलो ! वे सब तुम्हें फँसाकर नाना दुःख वा कष्ट ही देनेवाले हैं। उन्हें ठीक तरहसे पहिचानो ! उनके सङ्ग-साथको छोड़ दो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग करके अपना कल्याण हासिल करो ! यानी नित्यप्रति बनते-बिगड़ते रहनेवालेका मूल ही नष्ट है, ऐसा निश्चय करके जानो ! जगत्को देख करके मत् भूलो ! सब काल-कलाओंको परखकर उनसे न्यारे हो रहो ! निज हंसपदमें ही स्थिति किये रहो ! ॥ ८१४ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४२ ॥ [चौपाई- १०। साखी- २। हिण्डोला- १ है] ॥ ❀ ॥

१. चलै नित्य सो जगत कहावै * ठहरै नहिं नित नव प्रगटावै ॥ ८१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! नित्य एकरस नहीं रहे और नित्य ही चला करे, बदला करे, सोई जगत् कहलाता है। 'ज' = कहिये उत्पत्ति या जन्म होते रहना, तथा 'गत' = कहिये जाना, प्रलय, मृत्यु या विनाश हो जाना। ऐसे परिवर्तनशील, आवागमन चक्रको ही 'जगत्' कहते हैं। नित्य चला ही करता है, सो जगत् कभी एक-सा ठहरा नहीं रहता है, नित्य बिगड़कर फिर नया-ही-नया नानारूपमें प्रगट होता रहता है। जगत् वा संसारका अर्थ एक ही है। जाना-आना, बनना-बिगड़ना होना, पुराना बिगड़कर नित्य नया पदार्थ और नया देह जगत्रूप चौरासी योनियोंमें प्रगट हो रहा है। उस चक्रमें पड़ करके जीव कभी मुक्तिपदमें नहीं ठहरे या ठहर नहीं पाये, इसलिये जन्मृतिमें ही पड़े हुए हैं ॥ ८१५ ॥

२. अस्थिरता अपना ले जीवा * अस्ति ताहिमें भास बनीवा ॥ ८१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निज स्वरूपमें स्थिर न होकर बाह्य पञ्च विषय और नाना मानन्दीमें अपनी स्थिति मानकर जीवोंने उसीमें अपनी वृत्ति स्थिर करके मन टिका लिया है। अस्ति = सत्य चैतन्य जीव भासक स्वयं न्यारा होते हुए भी बिना पारख अपने आप मानन्दीसे भास स्वरूप बना है। उसीमें कहीं स्थूल देहको ही अपना स्वरूप माना है। कहीं "शब्द-ब्रह्म, सच्चिदानन्द ब्रह्म, ज्योति स्वरूप परमेश्वर, अमृत रसरूप आत्मा, गन्धवत् परमात्मा", ऐसे-ऐसे सूक्ष्म-स्थूल विषयरूप भासको ही अपना वा परमात्माका स्वरूप मानन्दी करके जड़ाध्यासी बना है। देहके मिथ्या भासमें ही भ्रमिक बन करके नरजीव भूले या भूल रहे हैं ॥ ८१६ ॥

३. चलायमान सब पिण्ड ब्रह्मण्डू * बड़ अचरज हिण्डोल प्रचण्डू ॥ ८१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चारखानी और अनन्त योनियोंका पिण्ड तथा चारतत्त्व अनन्त कार्य-कारण पदार्थोंका ब्रह्माण्ड, ये सब चलायमान, बिगड़ते रहनेवाले, क्षणभंगुर, चञ्चल, आगमापाई, विनश्वर हैं। बड़ाभारी आश्चर्य तो यही है कि, ऐसे होते हुए भी बड़ी तीव्र-प्रचण्ड गतिसे यह संसारका हिण्डोला वेगसे चल ही रहा है। आवागमन चक्रमें जीव सब पड़े हुए नीच-ऊँच गतिको प्राप्त हो रहे हैं। तथापि मुक्त होनेकी तीव्र इच्छा कोई नहीं करते हैं, यही बड़ाभारी आश्चर्य है। बन्धनोंमें रहनेमें ही सब राजी हो रहे हैं ॥ ८१७ ॥

४. आवत जात गहै पै ताहीं * बैठि जीव डोरी गहि माहीं ॥ ८१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मानुसार जीव चारखानीमें आ करके जन्म लेते हैं। भोग पूर्ण होनेपर फिर मरकर वा देह छोड़कर दूसरी योनिमें चले जाते हैं। परन्तु, उसी बन्धन फन्दोंको ही सुख निश्चय करके ग्रहणकर पकड़ करके दृढ़ करते हैं। माया-मोहकी डोरी बड़ी मजबूत जबर्दस्त है। ज्ञानी-अज्ञानीने वाणी-खानीके मोहकी डोरी पकड़ लिया है, वे जीव नाना मानन्दीमें ही बैठ गये हैं। ब्रह्म-जगत्में जाते-आतेमें वाममार्ग-दक्षिणमार्ग, पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, इसी दो डोरीको प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों हाथोंसे पकड़कर समस्त मनुष्य उसी कठिन झूलामें ही झूल रहे हैं ॥ ८१८ ॥

५. परम अधार हिण्डोला ताके * महाशून्य नाशक गुण जाके ॥ ८१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हिण्डोलामें पड़े हुए मनुष्योंने अनुमानसे एक ब्रह्मको परमानन्दरूप मानकर उसे ताके = देखने लगे; उसी ब्रह्मको परम आधार मान करके मानन्दीसे पकड़ लिये। परन्तु, उसीमें ही उत्पत्ति-प्रलय लगा है, यह नहीं जानते हैं; निरञ्जन ब्रह्म जिसका गुण ही कुछ नहीं है, जिसे निर्गुण-निराकार माना है, सो सब सद्गुण और मुक्तिका नाशक है।

महाशून्य=खाली आकाशवत् बड़ा-सा पोल है। उस धोखेमें जा करके गाफिल हो भ्रमरूप हिण्डोलामें डोला करते हैं, बिना विवेक ॥ ८१९ ॥

६. पाप पुण्य खम्भा दोइ लाई ❀ कर्म पटरी सब जीव बैठाई ॥ ८२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब यहाँपर संसार झूलाकी सामग्री बतलाया जाता है, सुनिये ! पाप=अशुभ, वेद विरुद्ध कर्म और पुण्य=शुभ, वेद प्रमाणसे प्रतिपादित हो, सो धर्म, यही दोनों खम्भा बना करके गाड़ दिया है। पापका फल नरक वासमें दुःख भोग होगा, और पुण्यका फल स्वर्गवास सुख भोग होनेकी लालच और नरकोंका भय लगा दिया है। विषय भोगादिक कर्म तथा पाँच प्रकारके साधना-मार्गोंका नाना कर्म यही पटरी वा पाटके आधारमें समस्त मनुष्य जीवोंको दृढ़ करके बैठा दिये हैं या बैठा ही रहे हैं ॥ ८२० ॥

७. माया मोह जेवरि दृढ़ बाँधी ❀ दण्डी सुख दुःख परम अगाधी ॥ ८२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नारी तथा गुरुवालोगोंने संसारमें धन, जन, परिवारादिकी माया-मोह एवं वेद वाणी, सात स्वर्ग, देवी, देवता, चार फल, चार मुक्ति इत्यादि कल्पनाके पक्ष वाणी जालका माया-मोह यही रस्सीको दृढ़, मजबूत, पक्का करके कसकर बाँध दिया वा जकड़ा दिया है। फिर सुख-दुःख फल भोग दाता एक कर्त्ता अगाधी=समुद्रवत् गहरा कोई परमतत्त्व-परमात्मा मानकर डण्डीवत् उसे आधार बना लिया है। सद्गुरुके पारख बोध पाये बिना सब उसी फन्दोंमें ही फँस गये हैं ॥ ८२१ ॥

८. भरमिक भरम दिवस औ राती ❀ केहि विधि कहहु जीव कुशलाती ॥ ८२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोग अपने स्वयं ही भ्रममें पड़कर दूसरोंको भी भ्रमा-भुला रहे हैं। दिन-रात, ज्ञानी-अज्ञानीको प्रवृत्ति-निवृत्ति ब्रह्म-जगत्के प्रपञ्चोंमें लगा करके भ्रमाकर सब मनुष्योंको नष्ट-भ्रष्ट, बद्ध कर-करा रहे हैं। अब हे विचारवानो ! कहो तो भला ! उसमें पड़े हुए जीवोंकी किस प्रकारसे कुशलतारूप गति-मुक्ति होवेगी ? कैसे कल्याण होगा ? कभी न होवेगा ॥ ८२२ ॥

९. तजी आश निज पारख पाये ❀ भूला बहुरि न ताहिं भुलाये ॥ ८२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिन पारखी सन्तोंने सब खानी-वाणीकी आशा या आशक्तिको सर्वथा परित्याग करके पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्ग करके विवेक द्वारा निज स्वरूपका अपरोक्ष पारखबोध प्राप्त कर लिया है। अथवा पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आकर जो सब आशा-आसक्तिको छोड़ देते हैं, सो पारखबोधको पा जाते हैं। फिर उन्हें वह भूला कदापि झुला नहीं सकता है। सर्व अध्यासोंसे रहित होकर फिर वे पारखी सन्त जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ ८२३ ॥

१०. तजहु आश यहि भूला केरा ❀ गहहु परख प्रभु ! शरण सबेरा ॥ ८२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हे मुमुक्षु मनुष्यो ! जन्म-मरणमें झुलानेवाला यह ब्रह्म-जगत्, नारी और गुरुवालोगोंके विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दादिकी आशारूप आसक्ति, मोह-ममताको अभी दिलसे छोड़ दो ! यह भूलाकी आशामें पड़कर नरदेहको व्यर्थ बर्बाद मत् करो ! जल्दीसे पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुके शरणागत होकर यह नर जन्मके शुभ प्रभातमें सबेरे-सबेरे उठकर शीघ्र ही निज स्वरूपके पारखबोधको ग्रहण करके धारण करो ! यह शुभ अवसर पानेका लाभ उठाओ ! मुक्ति द्वारमें आये हो, सो अभी सत्पुरुषार्थ करके जीवन्मुक्त हो जाओ ! उठो ! जागो ! सचेत हो जाओ ! ॥ ८२४ ॥

साखीः— बिरले बाँचहि सुजन जन ❀ जाहि परी पहिचान ॥

[१७०] साहेबके परचय बिना ❀ भूला सबै भुलान ॥ ८२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! लाखों-करोड़ों असंख्यों मनुष्योंमेंसे कोई

एक-दो बिरले सज्जन, बुद्धिमान् नरजीव ही पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर पारखी सद्गुरु-के शिष्य गुरुभक्त होते हैं। उन्हें ही खानी-वाणी भव-बन्धनोंकी पहिचान और निज सत्स्वरूपका परिचय हो जाता है। पारखी सद्गुरुकी कृपासे पारखबोधके प्रतापसे जिसे भूलाकी गति-विधिकी यथार्थ पहिचान हुई या हो जाती है। वैसे ही कोई बिरले सुजन जन=पारखी यह ब्रह्म-जगत् आवागमनके चक्ररूप भूलासे बँचे या बँच जाते हैं। नहीं तो उनके अलावा सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधके परिचय या मालूम हुए बिना चारखानीके जन्म, मरण, गर्भवासादिके भूलामें सब कोई जीव चौरासी योनियोंमें भूले हैं, और भूल ही रहे हैं। क्योंकि, बन्धन-मुक्तिका परिचय तो उन्हें कुछ भी नहीं है, ब्रह्म-ईश्वरादिको ही श्रेष्ठ मान-मान करके सब आवागमनके भूलामें भूल रहे हैं, बिना पारख ॥ ८२५ ॥

साखीः— भूला भूलत कल नहीं * विकल दिवस औ रैन ॥
[१७१] आश हिण्डोला गायके * चहहिं जीव सुख चैन ॥ ८२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! विषयादि भोगोंके कर्म-कुकर्मोंमें संसारी विषयी लोगोंको कल=चैन कभी नहीं पड़ता है, दिन-रात व्याकुल, दुःखित हो रहे हैं। तो भी विषयोंके प्रशंसाके ही गीत गा-गाकर भूल-भूलकर जीव सुख-चैन चाहते हैं; और कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी और विज्ञानी, ये लोग पाँच मार्गोंके भूलेमें भूल रहे हैं, तो उन्हें अपनी-अपनी साधनाओंमें कभी स्थिति-ठहराव तो नहीं मिलती है। सन्तोष, शान्ति, कल्याण भी कभी नहीं होता है। नाना चाहना-चिन्तामें पड़ करके ज्ञानी-अज्ञानी दिन-रात परेशान, व्याकुल हो रहे हैं। कल्पनासे कोई एक ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि मान-मानकर उसके गुणानुवाद गा करके परमात्माके आशा-भरोसामें पड़े हुए हिण्डोलामें ही भूल-भूलकर सब जीव सुख, मुक्ति, आनन्द, चैन प्राप्त करना चाहते हैं। जिसकी आशा करते हैं, सोई मिथ्या धोखा है, तो भला! उससे क्या सुख होगा? हिण्डोलामें बैठकर भी कहीं चैन मिलता है? कभी नहीं मिल सकता है, जन्म-मरणादि हिण्डोला ही तो दुःखोंका घर है। उसमें रह करके सुख चाहना तो मूर्खता ही है। बिना पारख महान आवागमन चक्रमें सब जीव पड़े हैं। इस बारेमें यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने बीजक सद्ग्रन्थका प्रमाण दिया है, सो सुनिये! जिससे हिण्डोलाका पूर्ण मर्म समझनेमें आ जायगा ॥ ८२६ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ बीजक मूल, हिण्डोला, नम्बर— १ ॥ ❀ ॥

१. भरम हिण्डोला भूले सब जग आय ॥ ८२७ ॥

अर्थः— [गुरुमुखः—] सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मके भ्रमरूपी हिण्डोलामें सकल संसारके नरजीव आय-आय करके भूले वा भूल रहे हैं। ब्रह्म मानन्दी कर-कराके आवागमन चौरासी योनियोंमें ही सब जगत्के जीव भूल रहे हैं। क्योंकि, जगत्का कारण तो ब्रह्मको माना है। उसीसे सारा चराचर जगत्की उत्पत्तिका कथन किया है। सो क्रमानुसार सृष्टि उत्पत्ति इसप्रकार कहा है। प्रथम एक ब्रह्म निर्गुण-निराकार, निरञ्जनरूपमें व्यापक था, तब उसने "एकोहं बहुस्याम्" होनेकी इच्छा प्रगट किया, जिससे सर्वशक्तिमान् एक पुरुष विशेष उत्पन्न हुआ। फिर उसने प्रकृति-की रचना की। उस प्रकृतिसे महत्तत्त्व पैदा हुआ, उससे अहङ्कार खड़ा हुआ, तो उससे त्रिगुणकी सृष्टि हुई। सो समस्त संसार त्रिगुणीमायामें फैल गया। तहाँ सत्त्वगुणसे चौदह देवताएँ उत्पन्न हुए। फिर रजोगुणसे दश इन्द्रियाँ खड़ी हुईं; और तमोगुणसे पञ्च विषय उत्पन्न हुए। पञ्च विषयोंसे सारा संसार पैदा हुआ है। इसप्रकार एक ब्रह्मकी परम्परासे समस्त जगत्की रचना, सृष्टि-उत्पत्ति होना बताकर फिर अन्तमें लय भी उसी तरहसे कहा है। सो कैसे कि? संसार विषय पञ्चकोंमें लय हुआ, विषयोंको तमोगुणमें लय किया; तमोगुण इन्द्रियोंमें, इन्द्रियोंको रजोगुणमें लय किया। रजोगुण देवताओंमें, देवताओंको सत्त्वगुणमें लय किया; सत्त्वगुण जगत् सहित अहङ्कारमें, वह

महत्तत्त्वमें लय हुआ; महत्तत्त्वको प्रकृति खा गई, फिर प्रकृति जा करके पुरुषमें मिली और पुरुष एक उसी ब्रह्ममें ही लय हुआ। फिर पूर्ववत् ब्रह्मसे पुरुष-प्रकृति मायासे त्रिगुणादि सब जगत् बना, ऐसा कहा है। परन्तु, सो ब्रह्म तो कुछ वस्तु ही नहीं है, मिथ्या वाणीका भ्रममात्र है, तो जीवकी तहाँ स्थिति कैसे होवे? इसीसे भ्रम-भूलवश जीव आवागमनोंमें ही पड़े हैं। इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, बारम्बार ब्रह्मरूपी भ्रम हिण्डोलामें पड़ करके सब जगत्के जीव ब्रह्मसे जगत् और जगत्से ब्रह्म हो-होकर भूल रहे हैं। बिना विचार आ-आकर धोखेमें पड़कर गरगाफ हो रहे हैं; और कोई भ्रमसे विषयोंको सुख मान-मानकर विषयी जीव स्त्रीके भग-भोगमें आ-आकर भूले, तो उसी अध्यासवश गर्भवासको ही प्राप्त हुए ॥ ८२७ ॥

२. पाप पुण्यके खम्बा दोऊ ❀ मेरू माया माँहि ॥ ८२८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! जैसे जमीनमें मजबूत दो खम्भा गाड़ करके उसके ऊपर बीचमें डण्डी रखकर डण्डीमें दो रस्सी बाँध देते हैं; नीचे रस्सीमें पटरी डालकर उसमें बैठकर झूला झूलते हैं। तैसे ही यहाँपर गुरुवालोगोंने 'पाप' और 'पुण्य' यही दोनों खम्भा बनाया है। पाप=कुकर्ममें जगत्के जीव लगे हैं, तथा पुण्य=सुकर्ममें वा ईश्वर भक्तिमें ज्ञानीलोग लगे हैं। ये दोनों खम्भाको संसारमें गाड़ दिया है। खम्भेके ऊपरकी डाँड़ी सोई मेरु माया तुरिया साक्षी अवस्थामें ज्ञानीलोगोंने लक्ष्य लगाया है; और संसारी लोगोंमें पाप=सोई परस्त्री, और पुण्य=सोई अपनी विवाहिता पत्नी, यही दोनों खम्भा हुई। दोनों प्रकारकी स्त्रियोंके रूप और शृङ्गारादि सोई माया-खम्भाके ऊपरकी डाँड़ी बनी; उसी स्त्री मायामें भोगी पुरुष जीव सब लिपटा गये हैं ॥ ८२८ ॥

३. लोभ भँवरा विषय मरुवा ❀ काम कीला ठानि ॥ ८२९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! विषय सोई मरुवादिक फूल फूला, उसमें विषय वासनाकी सुगन्ध उठी; विषय लोभी पुरुष सोई भँवरे होकर विषय वासनाके सुवासमें लुब्ध हुए। तहाँ कामका कीला, खूँटी मारकर ठोंका; मनमें कामका कीला खूब मारा वा दृढ़ किया, उसीसे तो विषयीजन सब बेहोश हो गये। अथवा मुमुक्षु लोग ब्रह्मप्राप्तिके लोभी भँवरे हुए। समाधिमें कमल-की गन्ध विषय सोई सुगन्धरूप मरुवा हुआ, उसमें योगी भँवरा लुब्ध हो रहे हैं। अष्ट सिद्धि, नव निद्धिकी कामना वा चाहना, जीव-ब्रह्म एकता करनेकी इच्छा, सोई कीला ठोंका। इसतरह वाणी कल्पनाको मजबूत किये हैं ॥ ८२९ ॥

४. शुभ अशुभ बनाये डाँड़ी ❀ गहै दूनों पानि ॥ ८३० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! ज्ञानकी इच्छा करना शुभ है, तथा भोगकी इच्छा करना अशुभ है। सोई सव्य-अपसव्य दोनों डाँड़ीकी रस्सी दायीं-बायीं दो तरफ लगाये हैं। शुभाशुभ, धर्म-अधर्म, दोनोंमें लटके हुए ज्ञानीने शुभ पकड़ा है, और अज्ञानीलोग अशुभमें लटके हुए जकड़े हैं। वे दोनोंने कल्पित वाणीको ही ग्रहण कर लिया; अतः उसीमें वे दोनों भूले पड़े हैं। अथवा कोई ऊँच कुल वा शुभ घरकी स्त्रीसे लुब्ध हुए, और कोई नीच कुल अशुभ घरकी परस्त्रीमें लुब्ध हुए हैं। उन दोनोंसे गमन करना, ये ही दोनों डोरी डाँड़ीमें लगाये हैं। यही डोरीको सङ्कल्प-विकल्पात्मक कर्मी-अकर्मी लोग उन दोनोंने दो हाथोंसे पकड़ लिया, सो नारी-पुरुष दोनों प्राणियोंने मनमाने विषय भोगोंको ग्रहण करके पकड़ा, तो उसीमें फँस गये, और अभी वैसे ही उसमें फँसे पड़े हैं ॥ ८३० ॥

५. कर्म पटरिया बैठिके ❀ को को न भूले आनि ॥ ८३१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! विषयी लोगोंने मैथुन, चुम्बन, आसनादि और आलिङ्गनादि विषय कर्म, सोई पटरिया बनाया है, उसीपर बैठ करके सब कोई विषयरूपी झूलामें झूले हैं और झूल ही रहे हैं। बिना पारख संसारमें आ करके विषय चक्रसे कोई नहीं बचे हैं। कोई बिरले ही पारखी सन्त इस नारीकी विषय भोगसे बच पाते हैं। बाकी सब तो आय-आय करके भग-

भोगमें ही भूल रहे हैं। अथवा जगत्में नाना साधनाओंके कर्म सोई पटरिया बनाये हैं। तहाँ कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान मार्गोंका कर्म भिन्न-भिन्न बनाया है। वर्णाश्रम, विषय कर्मादि नाना कर्म यही पटरियापर सब आरूढ़ हो करके बैठ गये हैं, सो सब कोई अध्यासी जीव आवागमनोंके भूलामें भूले या भूल ही रहे हैं। कोई-कोई विरले ही पारखी सन्त ये भूलासे छूट पाते हैं, नहीं तो सब कोई घूम-फिरकर आ करके भूलते ही रहते हैं ॥ ८३१ ॥

६. भूलत गण गन्धर्व मुनिवर ❀ भूलत सुरपति इन्द्र ॥ ८३२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! यह आवागमनोंके भूलनासे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है। अनन्त जन्म व्यतीत हो गये, तो भी आज तक शुभाशुभ कर्म फल भोगनेमें ही जीव लगे पड़े हैं। ऊँच-नीच देहधारी हो करके निज-निज कर्मका फल भोगे या भोगते ही जा रहे हैं। असंख्य जीव, गण=समूह चौरासी योनियोंमें कर्मानुसार भूल रहे हैं। अनेकों मानव गण, षट् दर्शन भेषधारियोंके समूह भी जड़ाध्यासी भ्रमिक ही हो रहे हैं। तथा गन्धर्व=कीर्तन करनेवाले गवैये, हरिदास, भक्त, सङ्गीत मण्डलीके लोग भी उसीमें गा-गाकर भूल रहे हैं। मुनिवर=बड़े-बड़े श्रेष्ठ मुनि कहलानेवाले मननशील तपश्वी विश्वामित्र, पराशर, च्यवन आदि भी वाणी-खानीमें ही खूब भूले थे; और सौ अश्वमेध करनेवाला देवताओंके राजा इन्द्रकी पदवीको पाता है, ऐसा कहा है। सो देवराज इन्द्र भी भग-भोग विषयोंमें तथा वाणी कल्पनाके चक्रमें पड़ा ही था, तो देवताओंके सहित इन्द्र भी चौरासी योनियोंके चक्रमें जा-जा करके कई बार भूला। बिना पारख सुर, नर, मुनि सब जीव जन्मृतिमें भूले और भूल ही रहे हैं ॥ ८३२ ॥

७. भूलत नारद शारदा ❀ भूलत व्यास फणिन्द्र ॥ ८३३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! देखिये ! वेदका प्रमाण तो ऐसा है कि, महाप्रलयमें सब जगत् विनाश हो करके ब्रह्ममें मिल जाते हैं। फिर सृष्टिके आरम्भमें सब ब्रह्मसे उत्पन्न हो जाते हैं; ऐसे भूलना सदासे लगा ही हुआ है। तहाँ वाणी कल्पना और विषयोंमें सब कोई आसक्त होकर जन्म-मरणादिमें भूल रहे हैं। नारदजी भक्त हुए, कल्पनाकी भक्तिमें वे भूले और विषय वासनाके चक्रमें भी पड़ करके गोता खाया था, बन्दरका जैसा मुख बनाया था; और नारदी-स्त्री बनकर साठ पुत्र जन्मायी थी, यह सब बात देवीभागवत आदि पुराणोंमें लिखी है। ऐसे जगत्की भूलामें नारद भी भूले हैं। शारदा=सरस्वती ब्रह्माकी पुत्री रही, सो वाणी-कल्पना, भ्रममें तो पड़ी ही थी; एक समय ब्रह्माके ही साथ विषय भोगमें भी बिगड़ गई थी, ऐसा पुराणोंमें वर्णन हुआ है। ऐसे खानी-वाणीमें सरस्वती भी भूली। और व्यासजी मुनिवृत्तिसे तपस्या करते रहे, एक समय मछलियोंकी मैथुन क्रीड़ा देखकर कामसक्त हुए। तब विवाह करके विषय भोगोंमें गाफिल पड़े; उनके प्रथम पुत्र शुकदेव पैदा हुआ, तो व्यासको बड़ा मोहने घेर लिया; और वेदान्त सूत्र बना करके व्यासने अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त-को कायम किया। ऐसे ब्रह्म-भ्रम तथा जगत् विषयोंमें आसक्त होकर व्यास भूलते रहे। और 'फणीन्द्र' कहते हैं, नागोंके राजाको, सो नागराज और शेष अवतार माने गये पतञ्जलि ऋषि तथा लक्ष्मण वे लोग भी कोई योगमें तो कोई भोगमें, संयोग-वियोगमें पिण्ड-ब्रह्माण्डमें ब्रह्म-जगत्में ही भूलते-भूलते मर-मर गये। उन किसीको भी सत्य चैतन्य स्वयं स्वरूपका पारखबोध नहीं हुआ। अतएव आवागमनके भूलामें ही वे जड़ाध्यासी होकर जा पड़े हैं ॥ ८३३ ॥

८. भूलत विरञ्चि महेश शुक मुनि ❀ भूलत सूरज चन्द ॥ ८३४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! 'विरञ्चि' कहिये ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता कहलाया; परन्तु, वह भी स्त्री विषय भोगमें तथा वाणी कल्पनाके महा भूलामें भूलता रहा। उसी भूलामें पालनकर्त्ता कहलानेवाला विष्णु भी भूलता रहा; और महादेव संहारकर्त्ता हुआ, सो भी योग तथा भोग विषयोंमें खूब भूला; महामुनि शुकदेव त्यागी अवधूत या परमहंस हुए, वे तो एक अद्वैत ब्रह्म

अधिष्ठान आप ही बन करके पुनः-पुनः ब्रह्म-जगत्के झूलामें ही झूले वा झूलते हुए आवागमनमें पड़ गये। बिना पारख वह त्याग भी बेकाम हो गया; मुक्ति प्राप्त हो नहीं सकी। और सूर्य=कर्म संन्यासी ज्ञानीलोग तथा चन्द्र=कर्मयोगी साधक लोग, ये दोनों ही ज्ञान और योगके नाना साधनाओंमें बिना पारख झूले। अथवा सूर्यवंशी राजे लोग तथा चन्द्रवंशी राजे लोग वे सब भी काम, क्रोध विषयादिमें आसक्त जड़ाध्यासी हो करके चौरासी योनियोंके चक्रमें जा-जा करके झूले, और वेदमें ऐसा वर्णन हुआ है कि, जब-जब महाप्रलय हो जाता है, तब-तब सूर्य-चन्द्रादि सहित सब सृष्टि का विनाश हो जाता है। ब्रह्मादि भी महाप्रलयमें मर जाते हैं। सृष्टिके आदिमें फिर सब जन्म लेकर उत्पन्न होते हैं। अनेक बार ऐसे ही अनेक ब्रह्मा, विष्णु और महेश हुए हैं। अनेकों इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, मनु आदि हुए हैं। अनेक बार राम-कृष्णादिके जन्म या अवतार हुए; ऐसे आवागमनके झूलामें सदासे सब जीव झूल रहे हैं। पारख बोध होकर समूल अध्यास नाश हुए बिना कोई मुक्त हो नहीं सकते हैं ॥ ८३४ ॥

९. आप निर्गुण सगुण होय ❀ झूलीया गोविन्द ॥ ८३५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! मैं कहाँ तक कहूँ, जिसको आप निर्गुण-निराकार परब्रह्म कहते हो ! वह भी निर्गुणसे सगुण जगत्रूपमें या अवतारी हो करके आता-जाता ही रहता है, सो सच्चिदानन्द या गोविन्द माना हुआ ब्रह्म भी आवागमनमें ही बारम्बार सदासे झूल ही रहा है। कोई सगुण देहमें ही अपने आपको निर्गुण ब्रह्म मानकर भ्रमिक जड़ाध्यासी होते हैं। कोई निर्गुण ब्रह्म कृष्णको मानते हैं और सगुण ब्रह्म रामको मानते हैं; तो वे लोग उनके अनुयायी हो करके लीला-चरित्र भी वैसे ही किया करते हैं। तहाँ गो=कहिये इन्द्रियोंके बिन्द=कहिये वीर्य, सो विषय भोगोंमें बद्ध हो करके चौरासी योनियोंमें ही जा-जा करके झूलते हैं या झूले और झूल ही रहे हैं। ऐसे आप जीव ही निर्गुण ब्रह्म कल्पना तथा सगुण जगत् जालमें पड़ कर जड़ाध्यासी हो करके इन्द्रियोंके विषयरूप भग-भोगोंमें झूल रहे हैं ॥ ८३५ ॥

१०. छौ चारि चौदह सात एकईस ❀ तीनिउ लोक बनाय ॥ ८३६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! छामें षट् शास्त्रवादीः— कणभक्षी सोई जैमिनी, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, कपिल और व्यास, ये षट्शास्त्री, षट्दर्शनी मतवादी हुए हैं; और चारमेंः— सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, ये ज्ञानी हुए रहे, तथा चतुर्वेदी, चार वर्ण, चार आश्रमवाले हुए हैं। स्वायम्भुव आदि चौदह मनु, चौदह लोक, चौदह देवता, सप्त ऋषि, सात स्वर्ग निवासी इक्कीस गणपति, एकईस ब्रह्माण्ड, स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीन लोकमें त्रिदेवोंने और त्रिगुणी मनुष्योंने अनेकों कल्पित वाणीकी सृष्टि बनाया है। सृष्टिके आरम्भमें जो कुछ बनाया था, सो सम्पूर्ण प्रलयमें नाश हो जाते हैं; यह वेदवादियोंका प्रमाण है। इसतरहसे अनेकों प्रपञ्च मत, पन्थ, ग्रन्थ बना-बना करके धोखेमें भूले तथा भुलाकर सब चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़कर झूल रहे हैं ॥ ८३६ ॥

११. खानी बानी खोजि देखहु ❀ इस्थिर कोई न रहाय ॥ ८३७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मुमुक्षुओ ! पारख बिना चार खानी और चार वाणीके बन्धनोंसे छूटना असम्भव है। ऊपर जितने भी वर्णन कर आये हैं, वे सब कोई खानी-वाणीके महाबन्धनोंमें पड़े हैं। उनकी वाणी चार वेद, षट् शास्त्रादि ग्रन्थ, तथा खानीरूप मत-पन्थोंके अनुयायी संसारमें मौजूद हैं, उसमें खोज करके देखो ! छान-बीन करके यथार्थ निर्णय करो, कहीं किसीको भी पारखबोध मिला हुआ नहीं दिखाई देता है। पारख बिना जीवन्मुक्त हो, स्वरूप स्थितिमें स्थिर शान्त होकर कोई रह नहीं सके। जड़ाध्यासमें लगकर चञ्चल होकर कल्पना तथा विषयोंमें ही वे सब गिर पड़े हैं। इसलिये सब आवागमनके झूलेमें पड़े हैं ॥ ८३७ ॥

१२. खण्ड ब्रह्माण्ड खोजि देखहु * छूटत कितहूँ नाहिं ॥ ८३८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! सात द्वीप, नौ खण्ड पृथ्वीमें तथा इकईस ब्रह्माण्ड पर्यन्त खोज-तलास करके देखो ! कहीं कोई भी विषय अध्यास तथा मोटी मायासे और वाणी कल्पनारूपी झीनी मायासे छूटे हुए नहीं मिलते हैं। सब जगह भिन्न-भिन्न खानी जाल और वाणी जालोंको ही बहुतायतसे बनाकर उसे ही जहाँ-तहाँ फैलाकर सबोंको फँसा रहे हैं। जीव कहीं भी जाकर माया-जालोंसे छूट नहीं पाते हैं, योग और भोगमें चाहे कहीं रहें, आवागमनसे छुटकारा वा बचाव नहीं होता है; जड़ अध्यासको ही दृढ़ कर रक्खे हैं। तो भला ! फिर दुःखोंसे छुटकारा कैसे होगा ? इसीसे कहीं भी जा करके जीवोंकी छुटकारारूप गति-मुक्ति नहीं होती है ॥ ८३८ ॥

१३. साधु सङ्गति खोजि देखहु * जीव निस्तरि कित जाहिं ॥ ८३९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मुमुक्षु नरजीवो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें निर्णय करके खोज-तलास करके देखो ! यथार्थ सारासारको परखो, तब ही तुम्हें सत्यासत्यका पारखबोध मिलेगा। हे साधु ! पारखी सत्यन्यायी सन्तोंकी सङ्गतिमें लगकर खोज करके देखो ! पारखके बिना षड्दर्शनोंके साधुलोग तो सब पक्षपाती, अविचारी, हठी ही बने हैं। उनके कुसङ्गमें मत् पड़ो। जीव सब खानी-वाणीके जड़ाध्यासी बने हैं, तो वे चौरासी योनियाँ आवागमनसे छूट करके मुक्तिमें कहाँ जा सकते हैं ? अध्यासी जीवोंका कभी निस्तार वा छुटकारा नहीं होता है, तो जन्म, मरण, गर्भवाससे छूटकर कहाँ जायेंगे ? चाहे ब्रह्म बनो कि, आत्मा बनो, गर्भवासमें ही घूम-फिरकर आयेंगे। पारख स्वरूपकी स्थिति हुए बिना जीवका निस्तार कभी कहीं नहीं होता है। अतएव हे मनुष्यो ! पारखी साधु सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सद्गुरुके शरणागत होकर पारख-विचारमें लगो ! विवेकसे खोज करो ! भ्रमको छोड़कर अपना कल्याण करो, जीवन सुधार करो ! यही सद्गुरुकी सत्शिक्षा है ॥ ८३९ ॥

१४. शशि सूर रैनि शारदी * तहाँ तत्त्व परलय नाहिं ॥ ८४० ॥

अर्थः— [मायामुखः—] सद्गुरुने यहाँपर गुरुवालोगोंका कथन दर्शाया है, सो ऐसा है कि, परमतत्त्व-परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। देहमें ब्रह्माण्डरूप भ्रमरगुफामें परब्रह्मका निवास है। इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना— इन तीनों नाड़ियोंसे परमात्मा परे हैं। वहाँ चन्द्र, सूर्यकी भी पहुँच नहीं है; दिन-रात भी कभी वहाँपर नहीं होती है। दिन, मास, पक्ष, ऋतु, काल वा समय भी वहाँपर नहीं होता है। तहाँपर पाँच तत्त्वकी उत्पत्ति, प्रलय और स्थिति भी कुछ नहीं होती है। वहीं परमात्मा गुणातीत वा त्रिगुणसे रहित तत्त्वमसि आदि लक्ष्य द्वारा जानने योग्य है ॥ ८४० ॥

१५. काल अकाल परलय नहीं * तहाँ सन्त बिरले जाहिं ॥ ८४१ ॥

अर्थः— [मायामुखः—] गुरुवालोग कहते हैं— भूत, भविष्य और वर्तमान, ये तीन कालका वहाँ गम्य नहीं है। अकाल = दुष्काल, कुसमय यह भी वहाँपर कभी नहीं होता है। ब्रह्मस्वरूपमें प्रलय, महाप्रलय भी कुछ नहीं होता है, बनना-बिगड़ना मायामें होता है। वह परब्रह्म तो मायोपाधि विकारसे रहित सबसे परे है। तहाँ परब्रह्मके परमधाममें ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी, परमहंस, योगी साधना सम्पन्न सन्त कोई बिरले ही मनको उन्मुन करके पहुँचते हैं या वे वहाँ जाते हैं, तो कोई-कोई सन्त ही पहुँच पाते हैं। "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"— ब्रह्मके ज्ञाता जो हैं, सो ब्रह्मस्वरूप ही निर्गुण मुक्त हो जाते हैं; ऐसे कोई बिरले ही जानकार होते हैं ॥ ८४१ ॥

१६. तहाँके बिछुरे बहु कल्प बीते * भूमि परे भुलाय ॥ ८४२ ॥

अर्थः— [मायामुखः—] गुरुवालोग कहते हैं— हे नरजीवो ! तुमलोग मायामें लुब्ध हो रहे हो ! तुम्हें कुछ खबर ही नहीं है। तहाँ ब्रह्मस्वरूपके ठिकानेसे बिछुड़ करके भवजालमें पड़े हुए तुम्हें बहुत कल्प-कल्पान्तर व्यतीत हो चुके हैं; आज पर्यन्त तुम ब्रह्मसे बिछुड़े ही हुए हो ! पृथ्वीमें

आकर स्थूल देह धारण करके माया-मोहमें भूले पड़े हो ! मायाके वश हो करके ब्रह्मस्वरूपको तुमने बिलकुल भुला दिया है। सबसे परे परमात्माको तुम ख्याल ही नहीं करते हो, इसी कारण तुम्हारी दुर्गति हो रही है। यदि अपनी मुक्ति पाना चाहते हो, तो ब्रह्मनिष्ठ गुरुके शरणागत होकर अद्वैत ब्रह्मको निश्चय करके जानो, तभी तुम्हारी गति-मुक्ति होगी। इसके सिवाय निस्तार होनेका और मार्ग नहीं है। ऐसा-ऐसा समझा करके मनुष्योंको नाना तरहसे भ्रमा-भुला रहे हैं ॥८४२॥

१७. साधु सङ्गति खोजि देखहु * बहुरि न उलटि समाय ॥ ८४३ ॥

अर्थः— [गुरुमुखः—] सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे साधु ! सन्त, सज्जनो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें सत्यशब्द टकसार द्वारा सारा-असारकी खोज करके देखिये ! मनुष्य जीवने ही ब्रह्म, ईश्वर, आत्माको कल्पनासे जगत्का कारण मान रक्खा है। ब्रह्मसे जगत् कार्यरूपमें उत्पन्न होकर अन्तमें फिर कारण ब्रह्ममें ही कार्य जगत् लय होकर समा जाता है, ऐसा माना है। फिर जो साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर भी ब्रह्ममें मिले या ब्रह्म ही बन गये, तो भी क्या फायदा हुआ ? फिर वह उलट करके जगत् चौरासी योनियोंमें आकर ही तो समायगा ! अतएव भ्रम मानन्दीसे कभी ब्रह्म बनना नहीं चाहिये, अरे भाई ! ब्रह्म तो कोई वस्तु ही नहीं है, विवेकसे खोज करके देखो ! वह तो तुम्हारी ही मिथ्या कल्पना मात्र है। तुम जीव ही सत्य हो ! फिर कभी उलटकर धोखेमें मत् समाओ, पारखपदपर ठहरे रहो ॥ ८४३ ॥

१८. ये भूलबेकी भय नहीं * जो होय सन्त सुजान ! ॥ ८४४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो करके सकल काल-जाल तत्त्वमस्यादि धोखेको परखकर छोड़ देते हैं; तथा स्त्री विषयादि आसक्ति अभ्यासको भी परित्याग करके निज चैतन्य सत्स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं। सच्चे पारखके जानकार पारखी सन्त सुजान जो हो जाते हैं, फिर उन्हें ये ब्रह्म-जगत् खानी-वाणीमें भूलनेका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं, इसलिये जन्म, मरण और गर्भवासमें जानेका उन्हें कोई भय नहीं रहता है; वे तो निर्भय पारखपदमें ही सदा स्थिर रहते हैं ॥ ८४४ ॥

१९. कहहिं कबीर सत सुकृत मिले * तो बहुरि न भूलै आन ॥ ८४५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सत्य=पारखपदकी प्राप्तिके लिये सच्चे पारखी सद्गुरुकी शरणमें आ करके, सुकृत=जो पुण्यात्मा धार्मिक नरजीव मिलते हैं, उन्हें श्रीसद्गुरुकी दयासे यथार्थ अपरोक्ष सत्य पारखबोध मिल जाता है। जिससे सब उनकी अध्यास-कल्पना तुरन्त ही मिट जाती हैं। निज स्वरूप पारखपदमें सदाके लिये अटल, अचल, स्थिर हो जाते हैं। तब तो वे जीते ही मुक्त हो जाते हैं। अतएव फिर कभी आवागमन भूलामें भूलनेको वे नहीं आते हैं; फिर भूलामें वे कभी नहीं चढ़ते वा नहीं पड़ते हैं ॥ ८४५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४३ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. पुनि परपञ्च जो जग परचारा * सुनहु सन्त ! सो सब विस्तारा ॥ ८४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! इससे आगे और फिर गुरुवालोगोंने जो-जो वाणी-खानीका और प्रपञ्च पञ्च कोश, पञ्च विषयादिका जाल जगत्में नाना तरहसे प्रचार करके फैलाया है, सो सब विस्तार भी मैं तुम्हें परखानेके लिये यहाँपर कह देता हूँ ! हे सन्तो ! चित्त एकाग्र करके शान्तिपूर्वक सो सब विस्तारको सुनो ! ॥ ८४६ ॥

२. अनन्त रूप आपुहि बिटमाई * एक विशेष दूसर होय आई ॥ ८४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम आप अपनेको भूलकर मनुष्य जीवोंने ही कल्पना करके एक ब्रह्मसे अनन्त दुःखमय संसार बहुविधिसे उत्पन्न हुआ, ऐसा माना है। यानी

ब्रह्मने ही सारा संसार बनाया, ऐसा अनुमान करके आप ही जीवरूप मनुष्योंने अनन्तरूपमें वाणीको बनाया है। तहाँ एक ब्रह्मको विशेष ठहराया है, और दूसरी मायाको सामान्यरूपमें बतलाया है। फिर अनन्त सिद्धान्तोंको खड़ा किया। एक-से-एक विशेष माना है, दूसरा गौण हो करके आया। अथवा एक ब्रह्म ही विशेष होते हुए भी दूसरा जगत्में समान रूपसे वह व्यापक होकर आया है या सबमें वही छाया हुआ है, ऐसा माना है ॥ ८४७ ॥

३. धर्मराय सो थूल स्वरूपा * दुतिया नारी अर्धङ्ग अनूपा ॥ ८४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सब धर्मोंके राजा माना हुआ धर्मराज निरञ्जन परमात्मा जो है, सो उसे सूक्ष्म स्वरूपमें सर्वत्र माना है; तथा दूसरी उसकी अर्धाङ्गिनी आदिमाया स्त्रीरूप मूल-प्रकृतिको उपमासे रहित जगत् सुन्दरी, भगवती कथन किया है। जिसके वशमें निरञ्जन ब्रह्म भी मोहित होकर रहता है, तो भला ! उसकी उपमा ही क्या दे सकते हैं ? कुछ नहीं ॥ ८४८ ॥

४. जो विशेष लिङ्गम निर्माई * सोई कला अस्थूल बनाई ॥ ८४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो ब्रह्मको निर्गुण-निराकार माना है, सो उसीने विशेष करके लिङ्गम=सूक्ष्म सृष्टिको निर्माण किया या सूक्ष्म जगत्को बनाया है। सोई सब कला बीज भागको ले करके फिर मायाने वृक्षाकाररूपमें जगत्के स्थूल सृष्टि, स्थूल देह, मोटा-मोटा पसारा करके बना दी है। ऐसे सूक्ष्मसे स्थूल भाग ब्रह्म-माया मिल करके बनाया गया; ऐसा कथन किया है ॥ ८४९ ॥

५. धर्म केल करै सङ्ग नारी * रचना कछुक और विस्तारी ॥ ८५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! धर्मराज माना हुआ निरञ्जन ब्रह्मने जब आदिमाया स्त्रीके सङ्गमें भोग-विलास केलि=क्रीड़ा किया, तो और भी बहुत कुछ रचना होकर जगत् सृष्टिका विस्तार हुआ या सृष्टि बढ़ाया है; ऐसा कहा है। अथवा नारीरूप वाणी कल्पना इच्छाके साथमें निरञ्जनरूप मन जब सङ्कल्प-विकल्पसे केलि-क्रीड़ा या आनन्द करता है या करने लगा, उससे और भी कछुक रचना मनोमय वाणी-सृष्टिका विस्तार हुआ; कल्पना आगे बढ़ती गई ॥ ८५० ॥

६. कर्त्ता आपु श्वास गहि लीन्हा * मुख माया अर्धङ्गी दीन्हा ॥ ८५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ नरजीवोंने भ्रमसे अपने ऊपर एक ब्रह्म कर्त्ता माना है। शरीरमें श्वासवायुमें लक्ष्य लगा करके श्वासको ही चिदाकाश कर्त्ता पुरुष मानकर ग्रहण कर लिया है। आप कर्त्ता पुरुष परमात्मा सोई श्वासरूपमें प्रगट हुए हैं, ऐसी मानन्दी ग्रहण कर लिया वा पकड़ लिया; और जो अक्षर मुखसे निकलकर बाहर आया, सोई मुख्य अर्धङ्गी माया ब्रह्म-की स्त्री है; ऐसा कहकर ठहरा दिया। श्वासरूप पुरुषकी अर्धङ्गी माया, सो मुख द्वारा शब्दोच्चारण होकर निकलनेवाली वाणीको कह दिया है कि, यही आदिमायाका मुख्य रूप है ॥ ८५१ ॥

७ अक्षर चौंतिस कीन्ह पसारा * एक शून्य सबहीं ते न्यारा ॥ ८५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'क से क्ष' तक चौंतीस अक्षर मुख द्वारा निकले, सोई मायाने अपना जाल फैला करके पसारा किया है। एक शून्य ब्रह्म श्वासरूपमें सबसे न्यारा ही रहता है। सो अलग निःअक्षररूपमें निर्लिप्त होनेसे सभी अक्षरादिसे पृथक् रहता है। शून्यरूप न्यारा रहनेवाला ब्रह्म एक है। अक्षर मिलनेवाले चौंतीस हैं, ऐसा माना है ॥ ८५२ ॥

८. शून्याशून्य निरञ्जन नेही * चौंतिस सो मायाके देही ॥ ८५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शून्य-ही-शून्यमें निरञ्जन ब्रह्मका प्रेम लगा रहता है। इसलिये जहाँ-जहाँपर शून्य आया, सो सब निरञ्जन ब्रह्मका भाग कहलाता है। और श्वासरूप ब्रह्म तथा मुखरूप मायाका प्रेमसे सम्बन्ध बना रहता है। श्वास-मुखके तथा शून्यरूप ब्रह्मके नेह

मायापर पड़नेसे चौंतीस अक्षर जो प्रगट हुए, सो मायाके देही है; अर्थात् माया-प्रकृतिके देहसे उत्पन्न हुई सन्तान हैं। चौंतीस (३४) अक्षरोंको मायाकी स्थूल कायाका भाग माना है। शून्य भागमें निरञ्जनको माना है, और चौंतीस अक्षरके भागमें मायाको ठहराया है ॥ ८५३ ॥

९. चिदाकाश श्वासा अनुमाना ❀ दुतिया कण्ठ खेत परवाना ॥ ८५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर भ्रमिक मनुष्योंने आकाशवत् चैतन्य परमात्मा समझ करके प्राणरूप श्वास वायुको ही चिदाकाश परमपुरुष माननेका अनुमान-कल्पना किया है। यानी श्वासको चिदाकाश स्वरूपमें माना है। दूसरा आदिमायाको कण्ठ स्थानमें खेत वा भूमिका अक्षर उत्पन्न होनेका क्षेत्ररूपमें प्रमाण किया है। श्वास 'चिदाकाश' है, और दुतिया इच्छारूप माया कण्ठमें खेतरूप बन करके रही है; ऐसा माना है ॥ ८५४ ॥

१०. परत बीज तहाँ उपजी बानी ❀ अक्षर थूल भई सहिदानी ॥ ८५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! श्वासरूप ब्रह्मके कण्ठ-मुखरूपी मायासे सम्बन्ध होकर जब वहाँपर वासना वा स्फुरणाका बीज पड़ा, तब वहाँपर बीज पड़ते ही परा, पश्यन्ती, मध्यमासे उमड़ करके वैखरी वाणीरूप सुन्दरी रानी उत्पन्न हुई। सो प्रथम चौंतीस अक्षर सूक्ष्माकार-रूपमें ही बन गये। बादमें वे स्थूलाकाररूपमें प्रगट हुए हैं। सोई वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि बननेकी सहिदानी या निशानी-पहिचानी जगत्में हो रही है। अर्थात् हृदय या कण्ठमें वासना बीज पड़ते ही चार वाचारूप वाणी उपजी, सोई सूक्ष्म अक्षर बननेकी निशानी वा छापा बन गई। इत्यादि प्रकारसे मानन्दी किया है ॥ ८५५ ॥

साखीः— चिदाकाश श्वासा भया ❀ कण्ठ सो दुतिया खेत ॥
[१७२] उपजै अक्षर थूल सो ❀ अपनी कला सचेत ॥ ८५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चैतन्य ब्रह्म आकाशवत् निराकार माना हुआ जो है, सो शरीरमें प्राणरूप श्वास वायुको ही चिदाकाश निरञ्जन ब्रह्म मान लिया है। दूसरी उसकी अर्धाङ्गिनी माया आदिशक्तिको देहमें दूसरा कण्ठ स्थान खेतरूप भूमिकामें आदिमायाका निवास ठहराया है या कण्ठको ही खेतरूप माया करके माना है। सोलह स्वर तथा सूक्ष्म चौंतीस अक्षर सो सब कण्ठस्थान द्वारा ही सूक्ष्मरूपसे उत्पन्न हुए हैं। परन्तु, ये सब मनुष्य जीवने अपनी कला-कल्पना, कौशलसे सचेतन अवस्थामें चेतनत्त्व शक्ति करके वाणी पैदा किया है या पैदा करते हैं। यदि चैतन्य जीव शरीरमें न होवे, तब श्वास आदिकी चलन-गति कुछ भी न होती। जड़ देह तो मुर्दा होनेपर अकड जाता है। फिर कण्ठसे कोई सूक्ष्म-स्थूल अक्षर भी मुर्दामेंसे बन नहीं सकताहै। नरजीवकी अपनी कलासे ही वाणी-खानी सचेत होते हैं, बनते और चलते फैलते हैं। जीवकी सत्ता बिना तो अक्षर, वाणी, श्वास और शरीर आदि सब अचेत, जड़, निकम्मा हो जाते हैं, उनमें स्वतन्त्र चलनेकी शक्ति नहीं है। अतएव भ्रम-कल्पनाको छोड़कर चैतन्य स्वयं स्वरूपमें ही स्थिति कायम करना चाहिये ॥ ८५६ ॥

साखीः— सात स्वर्ग सो खेतमों ❀ खण्ड खण्ड परवान ॥
[१७३] पाँच तत्त्व गुण तीन ले ❀ अक्षर सब प्रगटान ॥ ८५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नरजीवोंकी सत्ता-सहायता तथा मानन्दीसे माया-प्रकृतिका घर या स्वरूप माना हुआ खेतरूप कण्ठ स्थानमेंसे सात स्वर्ग सोई सात वर्ग 'क वर्ग' से लेकर 'श वर्ग' तक न्यारे-न्यारे उत्पन्न हुए हैं। एक-एक वर्गमें पृथक्-पृथक् पाँच-पाँच अक्षर लगे रहते हैं। सिर्फ 'य वर्ग' में चार अक्षर माना है। इसप्रकार सात वर्गमें चौंतीस (३४) अक्षरें बन करके प्रगट हुए हैं, यह प्रमाण किया है। मनुष्योंने पाँच तत्त्व, तीन गुणके भाग अष्टाङ्गको लेकर शरीर और मनके सम्बन्धमें देवनागरीमें सब बावन (५२) अक्षरोंको प्रगट किया है। तहाँ अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दुमात्रा, ये पाँच मात्राएँ पाँच तत्त्वोंकी जगहमें कहा है; और स्त्री,

पुरुष तथा नपुंसक, ये तीन लिङ्ग या चिह्नरूप त्रिगुणोंको लेकर एकमें मिलाकर सारे अक्षर समूह वेदादि नाना ग्रन्थ बनाकर प्रगट किया है। उसीमें ॐकारको एक ब्रह्म कर्त्ता बताकर सब मनुष्योंको भुलाये हैं या भ्रमा करके भुला ही रहे हैं; उसे परखकर जान लेना चाहिये ॥ ८५७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४४ ॥ [चौपाई- १७ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. अवर्ग कवर्ग चवर्ग टवर्गा * तवर्ग पवर्ग यवर्ग शवर्गा ॥ ८५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अक्षरोंमेंसे आठ वर्ग या भाग कैसे बनाया है, सो बात यहाँपर दिखलाया गया है। १. अ वर्गमें सोलह अक्षर हैं— "अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः," इसीको सोलह स्वर भी कहते हैं। पाँच अक्षरोंका २. 'क वर्ग' है; सो क, ख, ग, घ, ङ, मिला करके हुआ है। ३. च, छ, ज, झ, ञ— ये पाँच अक्षरोंको 'च वर्ग' कहा है। ४. ट, ठ, ड, ढ, ण— ये पाँच अक्षरोंका 'ट वर्ग' हुआ है। ५. त, थ, द, ध, न— ये पाँच अक्षरोंका 'त वर्ग' माना है। ६. प, फ, ब, भ, म— ये पाँच अक्षर मिल करके 'प वर्ग' कहा है। ७. य, र, ल, व— ये चार अक्षरोंका ही 'य वर्ग' बतलाया है। ८. श, ष, स, ह, क्ष— ये पाँच अक्षरोंको लेकर 'श वर्ग' हुआ कहा है। ऐसे सब पचास (५०) अक्षरोंका आठ वर्गोंमें विभाग किया है ॥ ८५८ ॥

२. सात स्वर्ग अपवर्ग स्वर मानो * षोड़श कला ताहि पहिचानो ॥ ८५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तिसमें सात स्वर्गरूप चौंतीस (३४) अक्षरोंका जो सात वर्ग (क, च, ट, त, प, य, श,) उत्पन्न हुआ है, सो मायाका अङ्ग या भाग है और आठवाँ अपवर्ग=सोलह स्वर 'अ से अः' तक जो माना है, सो मोक्षरूप ब्रह्मके अङ्ग या भागमें बतलाया है। सोलह अक्षर यही षोड़श कला संयुक्त उस परब्रह्मको पूर्ण माना है। मायाकी चौंतीस (३४) कलाएँ हैं; किन्तु, वह बन्धनमें डालनेवाली है। ब्रह्मकी सोलह कलाएँ 'अपवर्ग' मुक्तिदाता हैं, ऐसी कल्पना किया है। इसे परखकर जानिये! भ्रमरूपमें ही गुरुवालोग पड़े हैं, सो यथार्थ परख करके पहिचानिये! ॥ ८५९ ॥

३. अठवें आठ कला विस्तारा * दो विध कला नर नारि सँवारा ॥ ८६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंके उपरोक्त आठ वर्गकी आठ कला कल्पनाकी वाणीका विस्तार किया है। उसीमें फिर दो प्रकारकी कला या विभाग किया है। नर=ब्रह्म वा पुरुषकी कलासे अ वर्गके सोलह स्वर बने हैं; और नारी=माया वा स्त्रीकी कलासे सात वर्गके चौंतीस अक्षर बने हैं। नर-नारी मिल करके ऐसे दो-विधि कलाको बनाये, ऐसा कहा है। अथवा अठवें अ वर्गके ही सोलह अक्षरोंमेंसे आठ-आठ अक्षरोंका दो भागमें यही आठ कलाका विस्तार किया है। उसमें दो विध कला नर-नारी या माया-ब्रह्म सम्मिलित होकर बन गये हैं। 'ह्रस्व' या छोटे आठ अक्षर नारीरूप मायाकी कलासे बने हैं, और 'दीर्घ' या बड़े आठ अक्षरोंको नर=ब्रह्मकी कलासे बनाया है; ऐसी कल्पना किया है ॥ ८६० ॥

४. नवयें श्वास अर्धचन्द्र देखावै * दशयें निःअक्षर आपु कहावै ॥ ८६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! नवयें श्वासके साथ नाभि स्थानमें अर्धचन्द्राकार अर्धमात्रा या ईकार मात्राको माया-प्रकृतिके स्वरूपमें दिखलाया है; और दशयें निःअक्षर बिन्दु मात्रा मस्तक स्थानमें आप ही निरञ्जन परब्रह्म-परमात्मा कहलाता है, ऐसा कहा है। अथवा एक अङ्कसे नौ अङ्क तककी गिनतीमें जो आता है, सो (१-९) श्वासके सङ्ग सूक्ष्म अर्धचन्द्ररूप आदिमायाके अङ्गमें उसे दिखलाया है; एवं जहाँ कोई अक्षर या अङ्क नहीं रहता तहाँ (०) शून्य लिख देते हैं; सोई बिन्दु ब्रह्म आप ही निःअक्षर निरञ्जन कहलाता है; ऐसा वर्णन किया है ॥ ८६१ ॥

५. शून्याशून्य निःअक्षर माना * अक्षर श्वासा अर्ध बखाना ॥ ८६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! शून्य-ही-शून्य अभावको निःअक्षर, निर्गुण,

निराकार, निरञ्जन ब्रह्म आकाशवत् माना है। सो जहाँ-जहाँपर शून्य गोल बिन्दु (०) का भाग आता है, तहाँ-तहाँपर निःअक्षर ब्रह्म परमात्मा माना है; और जहाँ-जहाँपर अक्षर-अङ्क आदिका भाग आया, है तहाँ-तहाँ मायाका अङ्ग बखाना है। शरीरमें भी पोल भाग ब्रह्मका है, तथा अक्षर वा श्वास वायुका भाग अर्धचन्द्र मायाका अङ्ग वर्णन किया है। नाभिमें अर्धमात्रा चञ्चल श्वासकारूप मायाका है, तथा मस्तकमें स्थिर वायु प्राण निःअक्षर बिन्दु मात्रारूपमें ब्रह्म विराजमान है। ऐसी मानन्दी करके गुरुवालोगोंने वर्णन किया है ॥ ८६२ ॥

६. छव बानी छव भास शरीरा ❀ पारस अमी कहावै नीरा ॥ ८६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! स्थूल-सूक्ष्म शरीरके छैःप्रकारके भाससे जो छैः वाणी बनी, सोई षट् प्रमाण कहलाया। १. प्रत्यक्ष प्रमाण, २. अनुमान प्रमाण, ३. उपमेय प्रमाण, ४. शब्द प्रमाण, ५. अर्थापत्ति प्रमाण और ६. अनुपलब्धि (अभाव) प्रमाण, यह षट् प्रमाणकी वाणी बना करके षट् प्रकारके जो सिद्धान्त कायम किया है, सो सब शरीरका ही भास मिथ्या मानन्दी मात्र है। उक्त षट् प्रमाणसे प्रतिपादन करके जो परमात्माको पारसमणिके समान तथा अमृत तुल्य कथन किया है। सो तो केवल नीरा=पानी या वाणी मात्र मिथ्या कल्पना ही कहलाता है। अर्थात् शरीरके भासको ही षट् प्रमाणसे अमृतमय पारस परमात्मा सच्चिदानन्द ज्योति स्वरूपादि-में जो वर्णन किया है, सो तो सिर्फ वाणी कल्पनाकी भ्रम-मानन्दी मात्र है, वह सत्य वस्तु नहीं है; ऐसा जानकर उस कल्पनाको त्याग देना चाहिये। अथवा श्वासको लय करके उसी शून्यको ही पारस अमीरूप परमात्माका स्वरूप वर्णन किया है, सो भी मिथ्या कल्पना मात्र है ॥ ८६३ ॥

७. आकाश सातके लक्ष बनाई ❀ भिन्न भिन्न कै प्रगट देखाई ॥ ८६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आकाशवत् परमात्माको 'अपवर्ग' मानकर उसपर लक्ष्य लगाये रहना चाहिये, ऐसा कहा है। तैसे ही 'अ वर्ग' आकाशरूप ब्रह्मके लक्ष्यसे बना है; और अन्य क वर्गादि सात वर्गके लक्षण मायाने बनाई है। सो भिन्न-भिन्न करके प्रत्यक्षमें प्रगट ही दिखला दिया है। अथवा ऊपर सात आकाशमें सात स्वर्गलोक मानकर वहाँ जानेके लिये वैसे ही लक्ष्य साधना बना करके कल्पनासे पृथक्-पृथक् लोक मानकर प्रगटमें ध्यान अनुमानमें दिखलाया है। उसी भ्रममें सबके लक्ष्य लगाये और लगा रहे हैं; बिना विचार ॥ ८६४ ॥

८. नासा कण्ठ अरु सुलभ उचारा ❀ ऊर्ध तालबन्ध दन्त विस्तारा ॥ ८६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अब यहाँपर सात स्थानोंसे उच्चारण होनेवाले वर्ण या अक्षरोंकी गिनती बतलाते हैं। नासिका द्वारा— "ङ, ञ, ण, न, म," ये पाँच अक्षरोंका उच्चारण होता है। कण्ठ स्थानसे— "क, ख, ग, घ," ये चार अक्षर निकलते हैं; और सुलभ कहिये सहज-ही-सहज बिना कठिनाईसे मध्य स्थानसे— "य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष," ये नौ अक्षर सुलभतासे उच्चारण होते हैं। ऊर्ध्व स्थानसे— "ट, ठ, ड, ढ," ये चार अक्षरोंका उच्चारण होता है। तालबन्ध या तालु स्थानसे— "च, छ, ज, झ," ये चार अक्षर कहे जाते हैं; और दन्त स्थानसे— "त, थ, द, ध" ये चार अक्षरोंका उच्चारण होता है। ये छैः स्थानोंके अक्षरोंका विस्तार कहा गया है ॥ ८६५ ॥

९. ओठ समेत सो सात कहावै ❀ अष्टम निःअक्षर श्वास देखावै ॥ ८६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सातवाँ ओष्ठ स्थानसे— "प, फ, ब, भ," ये चार अक्षरोंका उच्चारण होता है। सो इसप्रकारसे सात स्थानोंसे सब चौंतीस (३४) अक्षरोंका उच्चारण उपरोक्त प्रकारसे होता है। सो सातों अङ्ग मायाके भागमें कहलाता है। और आठवाँ निःअक्षर ब्रह्म-पुरुष सो श्वास ही है। श्वासको ब्रह्माण्डमें लय करनेपर ज्योति स्वरूप परमात्माका दर्शन दिखाई देता है। इसलिये श्वास ही निःअक्षर ब्रह्म पुरुष है। ऐसा गुरुवालोगोंने कल्पनासे दिखलाया है ॥ ८६६ ॥

१०. तीन अवस्था तेहि विस्तारा * तुरिया सुषुप्ति थूल सँवारा ॥ ८६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर प्राणरूप श्वासवायु और चौंतीस (३४) अक्षररूप माया तिसीके बीचमें तीन शरीरकी तीन अवस्थाओंका क्रमानुसार विस्तार किया है, तहाँ महाकारण देहकी साधना विशेषसे होनेवाली चतुर्थ तुरिया अवस्था है। कारण देहकी तृतीय शून्य सुषुप्ति अवस्था है। तथा सूक्ष्म देहकी द्वितीय स्वप्न अवस्था है। उसी तीन अवस्थाके अनुसार तीन मार्ग तीन कर्म भी बना लिया है ॥ ८६७ ॥

११. तुरिया श्वासा नासा शूँन * कण्ठ इत्यादिक लिङ्गम धून ॥ ८६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानमार्गकी तुरिया अवस्थामें सहविकल्प समाधि रहती है। आनन्दका भास कुछ साक्षीपना रहता है। श्वासमें वृत्ति स्थिर करके तुरियावस्थामें ज्ञानीलोग स्थिर रहते हैं। यहाँ श्वासवायुको ही तुरियाकी जगहमें माना है। शून्य सुषुप्तिमें सब भावका नाश होकर अभाव या प्रलय होता है। तद्वत् योगीलोग निर्विकल्प शून्य समाधिमें सुषुप्तिवत् गरगाफ होकर पड़े रहते हैं। शून्यमें सर्वका नाश हो जाता है, कण्ठस्थानमें चित्त-चतुष्टय, विषय पञ्चक इत्यादिक सामग्रियाँ सूक्ष्म देहमें मौजूद रहती हैं। उसी ओंकारकी धूनसे सब कार्य स्वप्नमें हो जाता है। तैसे ही भक्त लोग मानसिक पूजा नाम-स्मरणादिके धूनमें स्वप्नवत् लगे रहते हैं ॥ ८६८ ॥

१२. परा पश्यन्ती मध्यमा बानी * चारि अवस्था वेद बखानी ॥ ८६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तुरिया अवस्थाकी परावाचासे ऋग्वेद बना है। सुषुप्ति अवस्थाकी पश्यन्ती वाचासे अथर्ववेद बना है। स्वप्न अवस्थाकी मध्यमा वाचासे यजुर्वेद बना है; और जाग्रत् अवस्थाकी वैखरी वाचासे सामवेद बना है। ऐसे नाभि, हृदय, कण्ठ और मुख, ये चार स्थानोंमें चार वाचा मानकर उससे चार अवस्थाओंके क्रमसे चार वेद बन गये; ऐसा गुरुवा-लोगोंने वेद आदि ग्रन्थोंमें वर्णन किया है, सो जानिये ! ॥ ८६९ ॥

१३. रूप सँवारी मात्रा लाई * अनबनि बानि तहाँ प्रगटाई ॥ ८७० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चार अवस्था द्वारा चार वाणीका सूक्ष्मरूप बनाकर उससे चौंतीस अक्षरोंका भिन्न-भिन्न रूप तैय्यार करके बनाये, जब अक्षरोंको खड़ा किये, तब फिर अ, उ, म, अर्धमात्रा और बिन्दु, ये पाँच मात्रा उसमें लगा करके एक अक्षरको बारह रूपमें विभक्त करके सजाये। जैसेः— "क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः।" फिर स्वर, व्यञ्जन, मात्रा, लिङ्ग, वर्ण आदि लगा करके चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराण, चार कितेबके कुरान आदि अनेकों प्रकारकी वाणीके ग्रन्थ बना करके तहाँ संसारमें प्रगट किया है। कल्पित ईश्वर-खुदा आदिके पीछे सब भ्रमिक हुए, वह वाणी आदिसे किसीका कल्याण वा हित-मुक्ति कुछ नहीं बनी। नाहक जड़ाध्यासी हो, बिना पारख चौरासी योनियोंके खाँचमें जा करके पड़े हैं ॥ ८७० ॥

१४. अक्षर पाँच पाँच प्रति स्वर्गा * सात स्वर्ग आपु अपवर्गा ॥ ८७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! "क से ङ" तक पाँच अक्षर क वर्गमें हैं। "च से ञ" तक पाँच अक्षर च वर्गमें हैं। "ट से ण" तक पाँच अक्षर ट वर्गमें हैं। इसीप्रकार सातों स्वर्गरूप वर्ग भागमें हरएकमें पाँच-पाँच अक्षरोंकी गणना किया है। सो पिण्डमें प्रत्येक भाग एक-एक स्वर्गकी जगहमें है। सो सातों स्वर्ग या वर्गमें महारानी माया देवीका विलास है; और आप महाराज निरञ्जन परमात्मा अपवर्गरूप मोक्षके धाम ब्रह्माण्डमें रहते हैं। पिण्डमें सोलह स्वर अ वर्गके ठिकाने आप ब्रह्मको माना है ॥ ८७१ ॥

१५. सोई अक्षर प्रगटे चौंतीसा * आपुहि शून्य भये पैंतीसा ॥ ८७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई सब मिला करके चौंतीस (३४) अक्षर मायारूप

काया द्वारा बन करके प्रगट हुए हैं। इसीसे वह माया-प्रकृतिकी मुख्य कलाके भागमें कहलाया। चौंतीसके ऊपर शून्य निःअक्षर है, पैंतीसवाँ सो आप-ही-आप निरञ्जन परमात्मा ही प्रगट हो गये। इसतरह चौंतीस (३४) अक्षर आदिमायाके भागसे प्रगट हुए। और पैंतीसवाँ शून्य विन्दु भाग स्वयं ॐकार ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ, ऐसी कल्पना किया है ॥ ८७२ ॥

१६. सुनहु सो अक्षर महा प्रपञ्चू * रचना कला काल सब कञ्चू ॥ ८७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! पारखी साधु-गुरुसे यथार्थ निर्णय-के उपदेशको सुनो ! सब वाणी-खानी जालोंको परख करके त्यागो ! सो यह बावन (५२) अक्षरों-का, पञ्च कोशोंका वाणी जाल महा जञ्जाल, भव-बन्धन गुरुवालोगोंके महान प्रपञ्च यम पासका ही पसारा है। वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, चौदह (१४) विद्याएँ, चौंसठ (६४) कलाएँ आदि जितने भी कला-कौशल काल=गुरुवालोगोंने किया है या प्रचार कर रक्खा है। सो सब सद्गुरुके पारखसे परख करके देखो ! वह तो कच्ची कल्पनाका जाल जीवोंको फँसानेके लिये ही बना है। उन काल-कला-की रचनाको छिन्न-भिन्न करके त्याग दो, सत्य पारखको ही ग्रहण करो ! ॥ ८७३ ॥

१७. श्वासा आपु एकला राई * बीच सातके भाग देखाई ॥ ८७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर सर्वाधिष्ठान सर्वशक्तिमान् एक छत्र महाराज निरञ्जन परमेश्वरको माना है, सोई शरीरमें आप स्वयं श्वासरूप प्राण पुरुष एक ही शक्तिमान् राजा परमात्मा है; और आदिमायासे स्थूल देहके बीचमें जो सात भाग करके सात वर्णादि देखाया गया है, सो अन्तमें नाश होकर श्वासरूप ब्रह्ममें ही मिल जाते हैं। तथा सात स्वर्ग ब्रह्माण्डके बीचमें सात भाग करके जो दिखलाये हैं, सो पुण्य भोगनेकी जगह हैं। भोग पूर्ण होनेपर फिर वहाँसे मृत्यु लोकमें ही आकर जन्मेंगे, ऐसा कहा है। ब्रह्ममें मिलनेपर मोक्ष होना बतलाया, है सो भी मिथ्या कल्पना है; और श्वास ही एक आप राजा ब्रह्म है। बीचके सात अङ्गोंका भाग माया-जनित प्रजाका रूप है, ऐसी मानन्दी करके दिखलाया है; सो मिथ्या नरजीवकी कल्पना ही है ॥८७४॥

साखीः— अपनी अपनी भाग ले * करहीं सबै विलास ॥
[१७४] एकनि एक मिलायके * अन्त करै सो नाश ॥ ८७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ओष्ठ, दन्त, तालु, कण्ठ, नासिकादि अपने-अपने विभिन्न भागसे अक्षर-मात्रादि समेट करके ले करके सब मनुष्य बोल-चाल करके कह-सुन करके परस्पर आनन्द-विलास कर रहे हैं। योगी, ज्ञानी और भक्तोंने भी अपने-अपने मत-पन्थोंकी भावनासे भाग-विभाग, कल्पना, अनुमान ले-ले करके अनेकों ग्रन्थ-पन्थ बढ़ाया है। उसीकी कथा, कीर्तन, पाठ, उपदेश कर-कराके श्रोता-वक्ता सब कोई भोग-विलास, ऐश-आराम, मन बहलाव कर रहे हैं। स्वार्थके लिये एक-न-एकमें मेल-मिलाप, समता भी कर लेते हैं। फिर अन्तमें एक ही ब्रह्ममें सबको मिलाकर लय करके निर्विकल्प कर सब वाणी-वचनको भी नाश कर देते हैं। मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य ब्रह्म ठहरा करके बुद्धि-विचारको विनाश कर जड़ाभ्यासी भ्रमिक हो जाते हैं ॥ ८७५ ॥

साखीः— श्वासासों स्वर ऊपजे * स्वरसे होय चौंतीस ॥
[१७५] तेहि अक्षर बहु बानी कनी * शून्याशून्य पैंतीस ॥ ८७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! श्वासरूप प्राणवायुसे ॐ या सोहंकी ध्वनि उत्पन्न हुई, सो ध्वनि कण्ठ स्थानमें आई, जहाँसे सोलह स्वर 'अ से अः' तक उपजा। फिर सोलह स्वर मुख स्थानसे बाहर निकल करके आया, तहाँ सात जगह सम्बन्ध करके उससे चौंतीस (३४) अक्षर बना। उक्त स्वर और वर्णमें पाँच मात्रा, तीन लिङ्गादिका मिलान करके के ही बावन (५२) अक्षरोंसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि मनमाने बहुतेक वाणी जाल बना करके विस्तार

किया हुआ है। वही मत, पन्थ, संसारमें गुरुवालोगोंने चलाया है, तहाँ कर्त्ता ब्रह्म परमात्माको आकाशवत् शून्य-ही-शून्य पैंतीसवाँ महाशून्य ठहरा करके सब मनुष्योंको ब्रह्म प्राप्तिकी आशा देकर शून्यमें गाफिल किया है; जहँड़ाया गया है, बिना पारख ॥ ८७६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४५ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. नासा आलम्भन शून्य कीन्हा * ओठ भाग माया तेहि दीन्हा ॥ ८७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अब यहाँपर अक्षरोंमें पाँच देवताओंका बासा तथा देवताओंके हिस्सेमें आनेवाले अक्षरोंका भाग बतलाया जाता है; यानी अक्षरोंका बटवारा किसप्रकार किया है, सो वर्णन करके दर्शाया जाता है। नासिकासे "ङ, ञ, ण, न, म," ये पाँच अक्षर 'आलम्भन' = कहिये ग्रहण वा उच्चारण होता है; यानी नाककी आवाजसे वे पाँचों अक्षर बोले जाते हैं। सो उसके देवता शून्य आकाशमें निवासी निरञ्जन परमात्माको माना है। ब्रह्मने ही वे पाँचों अक्षर शून्य स्थानसे प्रगट किया है। इसीसे नासिकाके आधारसे उक्त पाँच अक्षर बने हैं, ऐसा कथन किया है; और मायाके भागसे दोनों ओठोंका मिलान वा सम्बन्ध होकर "प, फ, ब, भ, म," ये पाँच अक्षर उच्चारण होते हैं। इसलिये वे अक्षर मायाके हिस्सामें ही लगा दिया है। यानी ओठ भागके तेहि = उन पाँच अक्षरोंको मायाने बना दी है, ऐसा कहा है ॥८७७॥

२. सुलभ अस्थान विशेष सनेही * नौ अक्षरमें थूल उरेही ॥ ८७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सुलभ स्थान = शून्य आकाशमें विशेष करके ब्रह्मका स्नेह-प्रीतिपूर्वक निवास रहता है। इसीसे निरञ्जन ब्रह्म सहजमें ही नौ अक्षरोंके रूपमें सूक्ष्म ब्रह्माण्डको उत्पन्न कर देता है। तहाँः— "य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष," ये नौ अक्षरोंमें ही सूक्ष्म सृष्टिकी उत्पत्ति करता है। इसलिये सहजमें ये अक्षर बोले जाते हैं। नौ तत्त्वोंके लिङ्ग-शरीरसे जैसे स्थूलकी सृष्टि हो जाती है; तैसे ही इन नौ अक्षरोंके सूक्ष्म अङ्गसे और सब स्थूल अक्षरोंकी भी उत्पत्ति हो जाती है, तहाँ नौ अक्षर कारण हैं; अन्य पचीस अक्षरोंकी कार्यरूपमें उत्पत्ति होती है, ऐसा माना है। अथवा सुलभ = नभ वा ब्रह्माण्ड स्थानमें विशेष करके ब्रह्मानन्दीमें स्नेह करनेवाले जीव देह छूटनेपर अध्यासवश सूक्ष्म देह युक्त स्थूल देह उत्पन्न करके जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा करते हैं; स्थिति कभी नहीं पाते हैं ॥ ८७८ ॥

३. ब्रह्मा कण्ठ शम्भु दन्तारी * हरिके ऊर्ध अस्थान सँवारी ॥ ८७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कण्ठ स्थानमें ब्रह्माका बासा मानकरः— "क, ख, ग, घ, ङ," ये पाँच अक्षर ब्रह्माके अंशसे बनकर कण्ठसे निकले, ऐसा कहा है। शम्भुके अंशसेः— "त, थ, द, ध, न," ये पाँच अक्षर दन्तारी स्थानसे बनकर निकले, ऐसा माना है; तथा विष्णुके अंशसेः— "ट, ठ, ड, ढ, ण," ये पाँच अक्षर ऊर्ध्व स्थानसे बनकर निकलते हैं, ऐसा कहा है। वे ही देवता उस-उस स्थानमें रहकर उक्त अक्षरोंको बनाकर बाहर प्रगट करते हैं। ऐसी कल्पना गुरुवालोगोंने खड़ी की है ॥ ८७९ ॥

४. तालबन्ध अक्षर माया प्रतिकूला * सो तालु सबहिनके मूला ॥ ८८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाके अंशसेः— "च, छ, ज, झ, ञ," ये पाँच अक्षर तालबन्ध स्थानसे बनकर उत्पन्न होते हैं। तहाँ ब्रह्मके प्रतिकूल या विरुद्ध होकर माया दश (१०) अक्षरोंको उत्पन्न करती है। पाँच ओठसे और पाँच दन्तालीसे दोनों मिला करके दश अक्षर मायाके भागमें कहा है; तथा 'य से क्ष' तक नौ अक्षर ब्रह्मके भागमें माना है। माया सदैव ब्रह्मके प्रतिकूल वा विपरीत रहती है। सो तालु ही सब अक्षरोंका मूल = जड़ या कारण है। परन्तु, उन सबका मूल कारण तो वही निरञ्जन ब्रह्म ॐकार ही है, ऐसा माना है ॥ ८८० ॥

५. कला युक्ति अक्षर उचारा * अक्षर चौंतिस एक नियारा ॥ ८८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मन-मायारूप कायाकी कला और चैतन्य जीवकी युक्ति-प्रयुक्तिसे अक्षर समूह बना करके मुख द्वारा सप्त स्थानोंका सम्बन्ध लेकर वाणी उच्चारण किये । फिर कल्पनाकी कला, चतुराईकी युक्तिसे अनेकों प्रकारके ग्रन्थ, वाणी, उपदेश समूह उच्चारण किया है । सो सब चौंतीस अक्षरोंकी वाणी मायाजाल है । जीव चैतन्य तो शरीरमें एक ही है, और वह वाणीरूप अक्षरोंसे न्यारा ही रहता है । उसके पारख बिना कल्पनामें ही सब भूले पड़े हैं । तहाँ चौंतीस अक्षर माया-प्रकृतिसे, और एक ॐकार ब्रह्म निरञ्जनको न्यारा ही निःअक्षररूपमें माना है ॥ ८८१ ॥

६. अक्षर पचीस समाना जाई * बासा पाँच तहाँ निर्माई ॥ ८८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'क से म' तक यही पच्चीस अक्षर कार्य स्थूलरूपसे उत्पन्न हुए हैं; सो पच्चीसों अक्षर कारणरूप नौ अक्षररूप ब्रह्ममें ही जाकर समाये रहते हैं । समयपर सूक्ष्मसे ही स्थूल होकर प्रगट होते हैं । और उक्त पच्चीस अक्षरोंमें भी पञ्च देवताओंके बासा तहाँपर निर्माण किया है । जैसे कि— क वर्गमें ब्रह्माका बासा है । च वर्गमें विष्णुका बासा है । ट वर्गमें महेशका बासा है । त वर्गमें मायाका बासा माना है; और प वर्गमें मायाके सङ्गमें ही ब्रह्माका भी बासा कथन किया है । ऐसे पच्चीस अक्षरोंमें पाँच देवताओंकी बासा-स्थिति मानकर भ्रमिक गुरुवालोग धोखेमें ही जा-जा कर समा रहे हैं, बिना पारख ॥ ८८२ ॥

७. पाँच पाँच होय सोई प्रगटाना * पुनि सोई शून्या माँहि समाना ॥ ८८३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सो एक-एक वर्गमें पाँच-पाँच अक्षर जो बनाया है; सोई पाँच देवताओंमें हरएकने पाँच-पाँच अक्षर प्रगट किया है । फिर सब सोई शून्य ब्रह्ममें जाकर समा गये, ऐसा कहा है । गुरुवालोग कहते हैं— सोई ॐकार एक ब्रह्मसे माया तीन पुत्र सहित पाँच रूपमें प्रगट हुई । उन्होंने शरीरमें आ करके पाँच स्थानोंमें निवास करके प्रत्येकने पाँच-पाँच अक्षरोंको प्रगट किया या यों कहिये, वे ही पाँच-पाँच अक्षरोंके वर्ग हो करके प्रगट हुए हैं । सब जगत्का कार्य विस्तार करके फिर प्रलयमें सब शून्य ब्रह्ममें ही जाकर एक समान निराकार होकर बिन्दुमें समा गये हैं वा समा जावेंगे; ऐसी मानन्दी किया है ॥ ८८३ ॥

८. प्रथम अज दूजे हरि आया * तीजे शम्भु चौथे सो माया ॥ ८८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन पाँच वर्गमें पाँचों देवता निम्न प्रकारसे रहते हैं, ऐसा कहा है । प्रथम वर्ग 'क से ङ' तक ब्रह्माका घेरा है । दूसरा वर्ग 'च से ञ' तक विष्णुका घेरा या घर बनाया है । तीसरा वर्ग 'ट से ण' तक शम्भुका घेरामें पड़ा है; और चौथा वर्ग 'त से न' तक सोई मायाके घरका घेरा बना है । ऐसे एक माया स्त्री और तीन पुत्रोंने चार वर्गमें बीस (२०) अक्षरोंका घेरा बनाया है ॥ ८८४ ॥

९. पचयें आपु निरञ्जन राया * पाँच पाँच यह विधि निर्माया ॥ ८८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तदनन्तर पँचयें वर्गमें 'प से म' तक आप ही निरञ्जन राजाने आकर घेरा डाला । इसप्रकारसे एक-एकने पाँच-पाँच अक्षरोंको निर्माण किया; पाँचोंने मिल करके पच्चीस (२५) अक्षरोंको बनाया है । परन्तु, वह पाँचों देवताएँ पाँच वर्ग पच्चीस (२५) वर्ण सब तो मनुष्य जीवोंने ही कल्पना करके बनाया है । यह भेद कोई बिरले पारखीने ही जान पाया है, बाकीके सब लोग तो भ्रममें पड़ करके गोता खाये हैं; उसीमें भूल रहे हैं ॥ ८८५ ॥

१०. छठयें सुलभ नौ अक्षर नेहा * सोइ नौ तत्त्व लिङ्गमके देहा ॥ ८८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! छठयें वर्गमें 'य से क्ष' तक नौ अक्षरको सुलभ मान करके उसीमें स्नेह या प्रेम लगाये हैं । सुलभ सोई सहज आकाशवत् है, सो ब्रह्म सिद्धान्त

जगत्का सूक्ष्म कारण है। सोई पिण्डमें पञ्च विषय और अन्तःकरण चतुष्टय संयुक्त यही नौ तत्त्व-वाला सूक्ष्म देह कहलाता है। जैसा वासना-अध्यास सूक्ष्म देहमें रहता है, तैसा ही स्थूल देह बनकर प्रगट होता है। इसीप्रकार प्रणव ब्रह्मके सूक्ष्म देहमें सुलभ नौ अक्षर ही नौ तत्त्व रूपमें रहते हैं। और उसके स्थूल देहमेंसे पचीस (२५) अक्षर बन करके आते हैं। वेद ही विराट् भगवान्की अक्षरमयी काया है। जगत् उसकी मायाकी छाया है; ऐसा माना है ॥ ८८६ ॥

११. पचीस कारज अक्षर अस्थूला ❀ नौ सो कारण परगट थूला ॥ ८८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर कहा है कि, 'क से म' तकके पच्चीस अक्षर पाँचों वर्ग ये मायाके कार्य स्थूलाकार मोटे भागमें हैं। सो उसका मूल कारण 'य से क्ष' तकके नौ अक्षर यही सूक्ष्मरूपसे माना है। सो सूक्ष्म और कारणरूप नौ अक्षरसे ही उत्पन्न या प्रगट होकर कार्यरूप पच्चीस (२५) अक्षर स्थूलाकारको धारण करते हैं, ऐसा कथन किया है ॥ ८८७ ॥

१२. शून्याशून्य होय सबै बिलाना ❀ पुनि सो चौंतिसके उतपाना ॥ ८८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिस वक्त सुषुप्ति वा समाधि अवस्था होती है, तिस वक्त सब अक्षर और जगत् व्यवहार शून्य-ही-शून्य होकर महाशून्यमें हृदयाकाशमें जाकर बिला जाते हैं। उन सबोंका वहाँपर नामोनिशान भी बाकी नहीं रहता है। शून्य निरञ्जन ब्रह्ममें निर्गुण हो करके सब मन, बुद्धि, वाणी वर्ण समूह भी बिला करके लय हो जाते हैं। फिर वह प्रणव ब्रह्म जब जगत् सृष्टिकी इच्छा या स्फुरणा चालू करता है, तब क्रमशः पूर्वोक्त प्रकारसे सारी सृष्टि सहित चौंतीस अक्षरोंकी वाणी-खानीको उत्पन्न करके विस्तार करता है। ऐसे ब्रह्मसे जगत् और जगत्से ब्रह्म तथा ॐकारसे चौंतीस (३४) अक्षरोंका उत्पत्ति-प्रलय मान करके महान भ्रम-चक्रमें गाफिल हुए हैं। बिना पारख धोखाधारमें ही बहे जा रहे हैं ॥ ८८८ ॥

साखीः— उपजावै खपावै अक्षर ❀ अनेकन्हि बानि प्रकाश ॥
[१७६] परा पश्यन्ती मध्यमा ❀ चारि अवस्था भास ॥ ८८९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम मनुष्य जीव स्फुरणा करके बावन (५२) अक्षरोंको उत्पन्न करके बनाता है। फिर निवृत्ति या शून्य वृत्तिमें उक्त अक्षरोंको खपा करके प्रलय या विनाश कर डालता है। अक्षरोंको लिखकर फिर मिटा भी डालता है। ॐकार तथा बावन (५२) वर्णोंकी रचना कर्त्ता नरजीव ही है। भ्रमसे कल्पना कर-करके मनुष्योंने ही अनेकों वाणीका जगत्में प्रकाश किया है। वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि अनेकों वाणी समूहोंकी रचना और संग्रह कर-कराके बहुतसे ग्रन्थ बना रक्खे हैं। उसमें सारे चराचर जगत्को उत्पन्न करके विनाश करनेवाला कोई जगत्कर्त्ता अविनाशी एक परमेश्वर या खुदा आदि है; ऐसा कहकर उसकी प्राप्तिके निमित्त अनेकों वाणी मत-पन्थोंको बना करके पाखण्डोंका प्रकाश किये और कर रहे हैं; और परा-पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी, ये चार वाचाएँ मनुष्योंकी चार अवस्थाओंके भाससे ही बनी हैं। सोई भासमें भासिक नरजीव भूलकर जड़ाध्यासी होकर बद्ध हो गये हैं, बिना पारख ॥ ८८९ ॥

साखीः— नाभि परा पश्यन्ती हृदय ❀ कण्ठ मध्यमा सोय ॥
[१७७] उच्चारे सोइ वैखरी ❀ स्वर आलम्भ सो होय ॥ ८९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ नाभि स्थानमें परा वाचा, तुरिया अवस्थाके भाससे आनन्द स्वरूप ब्रह्मको माना है। हृदय स्थानमें पश्यन्ती वाचा, सुषुप्ति अवस्थाके भाससे परमानन्द ज्योतिस्वरूप परमात्मा ठहराया है। कण्ठ स्थानमें मध्यमा वाचा, स्वप्न अवस्थाके भाससे सगुण ब्रह्मकी कल्पना किया है; और नेत्र स्थानमें या मुखमें वैखरी वाचा, जाग्रत् अवस्थाके भाससे विराट्रूप भगवान्का वर्णन किया है। सो सब मिथ्या मानन्दीका ही ग्रहण किया है। अथवा प्रथम कोई बातकी स्फुरणाका चित्तसे चिन्तन हुआ, सो परा वाचा नाभिमें खड़ा हुई। वही

हृदयमें आ करके बुद्धिसे निश्चय हुई, पश्यन्ती वाचाके रूपमें बदल गयी; फिर सो कण्ठमें आ करके मनसे सङ्कल्प-विकल्प करने लगी, सोई मध्यमा वाचा हुई। आखिरमें वही अहंकर्त्तृत सहित मुखमें आ करके वर्ण-शब्दरूपको धारण करके उच्चारण हुआ, सोई वैखरी वाणीकी विस्तार हुआ; सो वैखरीमें सोलह स्वरका ग्रहण चौंतीस अक्षरोंके साथ-साथ ही होता रहता है। ऐसे बावन (५२) वर्णको प्रगट करके नरजीव सब उसी कल्पनामें भूल गये हैं, बिना विवेक ॥ ८९० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४६ ॥ [चौपाई- २२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. अक्षर रचि कन्या प्रगटाई * प्रथमें सोहं शब्द बनाई ॥ ८९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वोक्त प्रकारसे बावन (५२) अक्षरोंको नरजीवोंने रचना करके बनाया है। उसी अक्षरसे रचित कार्यरूप वाणी सोई कन्या=पुत्रीरूपमें अंश भागसे प्रगट हुई है। जैसे—

रमैनीः— "वेदकी पुत्री सुमृति भाई ! सो जेवरी कर लेतहि आई ॥" बीजक, रमैनी- ३३ ॥ चौंतीस (३४) अक्षर स्त्री हैं तथा सोलह (१६) स्वर पुरुष हैं, ये दोनोंके सम्बन्धसे वेद-शास्त्रादिकों-की अनेकों वाणी कन्या=सन्तानरूपमें प्रगट या उत्पन्न किया है। उसीके रूपको देख करके सारे संसारके पुरुष मोहित हुए हैं। तदुपरान्त उसी अक्षरसे रचना करके तीन कन्या वा तीन शब्द प्रगट किया है। पहले 'सोहं' शब्दको बनाया, फिर 'वोहं' वा 'ॐ' को बनाया, तथा 'राम' शब्दको भी बादमें कल्पना करके गुरुवालोग योगी, ज्ञानी और भक्तोंने बना करके प्रचार किया है। सर्व प्रथम मनुष्य देहमें कोई योगी श्वासमें लक्ष्य लगा करके 'सोहं' शब्दको बना करके तथा उसको अजपा जाप कहकर बड़ी महिमा बढ़ाया है ॥ ८९१ ॥

२. सोहं शब्दको सुनहु प्रकारा * जाहि भाँतिसे तेहि उच्चारा ॥ ८९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिस प्रकारसे 'सोहं' शब्दकी मानन्दीसे उत्पत्ति हुई, तथा जिसतरह तिस 'सोहं' शब्दका उच्चारण हुआ या होता है। सो उसकी व्याख्या मैं यहाँ-पर वर्णन करके तुम्हें परखाता हूँ ! सो ध्यानसे सुनो ! और परखो ! यानी 'सोहं' शब्द उत्पन्न होनेका प्रकार तथा जिस भाँतिसे सोहंका उच्चारण होता है, सो विवरण सुनो ! उसीके बारेमें मैं यहाँपर निर्णय करके कहता हूँ ! ॥ ८९२ ॥

३. श्वासा आपुहि खैंची जबहीं * सकार अक्षर अनुमानी तबहीं ॥ ८९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आप ही मनुष्य जीव योगी बन करके जब प्राणरूप श्वासवायुको नाभिसे खींच करके ऊपर मस्तकमें चढ़ाते हुए ले गया, तब ही उसवक्त 'सों-सों' आवाज मालूम हुई। उसीको सकार या 'सो' अक्षरके रूपमें अनुमान किया है। यानी नासिकासे श्वास ऊपरको जब-जब खींचते हैं, तब-तब उसमें 'सो' अक्षर या वैसी ध्वनिका अनुमान करते हैं॥ ८९३॥

४. तीन कला तेहि मध्य निवासा * ससा अकार तीजे सो श्वासा ॥ ८९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी श्वास वायुके मध्यमें तीन कला या तीन भागका निवास माना है। सो यह निर्णय किया है कि, एक तो 'सो' शब्द है, दूसरा अकारमें 'रूप' है, और तीसरा सोई 'श्वास वायु' है। उसको नाम, रूप और गुण ही समझ लीजिये ! नाममें 'सो' है, रूपमें 'अकार' है और गुणमें 'श्वास' को ही जानिये ! सोई त्रिगुणकी तीन कलाओंका सूक्ष्म निवास उनके बीचमें हुआ है; और 'ससा' सत्त्वगुण है, 'अकार' रजोगुण है; तीसरा 'श्वासा' सोई तमोगुणमें पहिचानिये ! ॥ ८९४ ॥

५. श्वासा अर्धचन्द्र अनुहारी * सूर अकार मात्रा विस्तारी ॥ ८९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! श्वासवायुको ही योगी लोगोंने चिदाकाश परमतत्त्व-परमात्मा ठहरा करके माना है। तथा नाभिमें सूक्ष्मरूपसे अर्धचन्द्राकार अर्धमात्रा

कुण्डलिनीके मध्यमें माना है। तैसे ही हृदयमें मकार मात्रा, कण्ठमें उकार मात्रा, त्रिकुटीमें अकार मात्रा, और मस्तक या शिरमें बिन्दु मात्राका विस्तार करके श्वासमें ही 'वोहं या ॐ' शब्द-की भी मानन्दी किया है। अथवा श्वास जब अर्धचन्द्राकार तिरछी गतिसे चलता है, तब सूर्यके समान प्रकाशरूपमें 'सोहं' शब्दका विस्तार होता है। अकारमें—"स-ह" आया। मात्रामें—"े-०-" लिया गया, उसको एकत्र मिलानेपर— "सोहं" बना; ऐसी कल्पनाका विस्तार किया है। अथवा श्वासरूप ब्रह्म पुरुषके सङ्गमें ही अर्धचन्द्र (ॅ) आदिमाया सूक्ष्मरूपसे रहती है। तहाँ सूर ब्रह्म (०) बिन्दुरूपमें प्रकाशमान् है, तथा अर्धमात्रा माया चन्द्ररूपमें अप्रकाशी अज्ञानमें रहती है। ऐसी-ऐसी अनेक मानन्दीका विस्तार किया है ॥ ८९५ ॥

६. ससा गूँज एकरूप सँवारी ❀ तीन कला ले सो उचारी ॥ ८९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! योगीलोग जब ध्यानस्थ होकर श्वासपर लक्ष्य एकाग्र करके लगाते हैं। तब श्वासका गुञ्जार ध्वनि उठ करके एक 'सो' शब्दका रूप पूर्ण होकर बनता है . तहाँ 'सो' शब्द, सूक्ष्म आकारका रूप, एवं श्वास वायु, ये तीन कला एकत्र मिलानमें ले करके तब बाहर 'सो' अक्षरका उच्चारण करते हैं। प्रथम लक्ष्य लगातेमें श्वासका गुञ्जार होकर साधकको घबराहट वा थर्राहट चञ्चलता होती है। पीछे एक कल्पित भावनाका रूप खड़ा करके शान्त हो जाते हैं। ध्यानसे उतर करके सोई अनुभवका शोर, हल्ला, गुञ्जार योगीलोग खूब प्रचार करते हैं वा प्रचार किये हैं। उसकी महिमा सुनाकर मनुष्योंको भुलाते हैं ॥ ८९६ ॥

७. आपु श्वास सुर इच्छा गाजै ❀ ससा सोई संसार विराजै ॥ ८९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अपने आप चैतन्य स्वरूपको भूलकर भ्रमिक योगीलोगोंने श्वासको ही अपना स्वरूप मान लिया है। अथवा आप निरञ्जन परमात्मा सोई श्वासको माना है; और त्रिकुटीसे नाभितक चलनेवाला सोई सुर या स्वररूपमें इच्छारूप मायाकी गर्जना हो रही है, ऐसा कहा है। माया सहित 'सोहं ब्रह्म' सोई सारे संसारमें परिपूर्ण व्यापक होकर विराजमान हो रहा है। ऐसी वाणीका सन्देह सबके हृदयमें बैठा दिया गया है ॥ ८९७ ॥

८. सोई आदि उतपति परवाना ❀ परलय अन्त दूजा सन्धाना ॥ ८९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई सृष्टिके आदिमें या प्रथमारम्भमें 'सो' अक्षर स्वयं ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है। उसी 'सो' से सकल चराचरकी उत्पत्ति आदिमें किया, ऐसा योगियोंने प्रमाण किया है। अन्तमें परमात्माने ही जगत्को प्रलय करनेके लिये दूसरा 'हं' अक्षर भी खड़ा किया, ऐसा मान कर श्वासके बैठान होतेमें लक्ष्य लगा करके 'हं' शब्दकी कल्पना किया है। आदिमें 'सो' की उत्पत्ति हुई। अन्तमें 'सो' का प्रलय हुआ, तो दूसरा 'हं' हङ्कार खड़ा हुआ; ऐसे 'सोहं' शब्दकी मानन्दी दृढ़ किया है ॥ ८९८ ॥

९. छोड़त श्वास बिलानी जबहीं ❀ हं अक्षर उपराजी तबहीं ॥ ८९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पहले श्वासको जो ऊपर चढ़ाया था, सो उसको नीचे उतार करके जब बाहर छोड़ देते हैं; तब 'सो' ध्वनि श्वासवायुके साथमें आकर नाभिमें बिला गयी या लय हो गयी। जब ही श्वास नीचे आने लगता है, तब ही 'हं' यह अक्षर उत्पन्न होता है। यानी जब नासिकासे श्वासको बाहर छोड़ दिया गया, तब 'सो' शब्द बिला करके दूसरा 'हं' अक्षरको उत्पन्न किया है। ऐसे अनुमानसे 'सोहं' शब्दको योगियोंने मान लिया है॥ ८९९ ॥

१०. हङ्कार अक्षर अस्थूल सनेहा ❀ अन्त नास्ति शून्या अस्नेहा ॥ ९०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'हं' अक्षरमें माया-कायाका अहङ्कार लगा ही रहता है। 'सो ब्रह्म मैं ही हूँ !' ऐसा भी कहा, तो भी तहाँ स्थूल-विराट्का विश्व अभिमान तथा विषयोंमें स्नेह लगा ही रहा। वे स्थूलदेहमें ही मोह-ममता रखते हैं, और ब्रह्मका अहङ्कार धारण

करते हैं। सोई स्थूलका स्नेह, अध्यास 'हं' की मानन्दी अन्तमें जन्म-मरणादिमें ले जानेका कारण बीज हो जाता है। शून्य आकाश तो खाली पोल है, अन्तमें सबका नाश होता है, तो शून्य ही वहाँ रहता है। उसी श्वासमें सब कार्यका लय करके 'सोहं' शब्दमें प्रेम करनेवाले उसीमें लक्ष्य लगाकर अन्तमें नास्ति-शून्य मिथ्या धोखेमें गरगाफ हो जाते हैं। शून्यमें स्नेह लगा करके फिर शून्य स्थान गर्भवासमें ही चले जाते हैं ॥ ९०० ॥

११. हङ्कार अक्षर प्रगट अस्थूला ❀ नाना स्वभाविक नष्ट सो मूला ॥ ९०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रत्यक्षमें हङ्कार अक्षरका स्वरूप स्थूल है। यही हङ्कार बारम्बार स्थूल देहादिको प्रगट वा उत्पन्न कराता है। स्वरूपमें आवरणरूप पर्दा डाल देता है। काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक नाना प्रकारके कुस्वभाव प्रगट कराता है; सो हङ्कारका मूल ही मुक्तिपदको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है। अथवा 'हङ्कार' अक्षर यही स्थूल विषयोंको प्रगट करता है। पूर्वका 'सो' मूलको नष्ट करके देहमेंसे नाना स्वाभाविक कार्य कराके जीवनको नष्ट करता है। उसका मूल कारण ब्रह्म जो माना है, सो कल्पना होनेसे जीवोंके हंस पदको नष्ट करनेवाला है॥९०१ ॥

१२. थूल सकार अस्थूल हङ्कारा ❀ शून्याशून्य परलय तर डारा ॥ ९०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सकारमें ! 'सो' को सूक्ष्म ब्रह्म और हङ्कारमें 'हं' को स्थूल मायाके रूपमें माना है; और अन्तमें जगत् सहित 'हङ्कार' को 'सो' में मिला दिया है। 'सो' को श्वासमें लय किया, फिर श्वासको प्रलय करके ब्रह्माण्डमें ले जाकर डाल दिया। तहाँ शून्य-ही-शून्य निरञ्जन ब्रह्म महाशून्यमें गाफिल हो रहे हैं। इसप्रकार योगी लोगोंने चैतन्य जीवके ज्ञानगुणको विनाश करके अन्तमें सबको प्रलयकर शून्य धोखेमें ले जाकर डाल दिया है। इसी अध्याससे जीव जहाँ-तहाँ शून्य स्थान गर्भवास में ही पड़ा करते हैं, बिना विवेक ॥ ९०२ ॥

१३. उतपति पालन परलय कीन्हा ❀ पाँच कला तीन गुण सब दीन्हा ॥ ९०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'सो' शब्दसे उत्पत्ति और 'हं' शब्दसे पालन करके फिर शून्यमें ले जाकर दोनोंको प्रलय किया। 'सोहं'में पाँच कला ऐसी निर्माण किया कि, "स-ा-ो-ह-म।" ये पाँचों भागोंको इकट्ठे मिला करके "सोहं" बनाया है। तिसमें नाम, रूप और गुण, ये त्रिगुणके भाग भी सब मिला दिया है। पाँच तत्त्वकी पाँच कलाएँ, पाँच मात्राएँ तथा तीन गुणकी तीन कलाएँ आदि, अन्त और मध्य, ये सब सामग्रियाँ उसी 'सोहं' में मिला दिया है, ऐसा माना है ॥ ९०३ ॥

१४. आदि अन्तसों करहिं विचारा ❀ सोहं शब्द उठै गुञ्जारा ॥ ९०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर आदि=शुरूमें 'सो' अक्षरसे उत्पत्ति हुई है, तथा अन्त=आखिरीमें 'हं' अक्षरसे प्रलय होता है। यही माया-ब्रह्म संयुक्त स्वरूप है। यही मुक्ति देनेवाला 'सोहं' या 'अजपा जाप' है; महामन्त्र है। ऐसा मानकर अधिकांश योगीजन 'सोहं' शब्दमें आदि 'सो' से अन्त 'हं' तकका ही जाप, विचार करनेमें लगे हैं। श्वासमें लक्ष्य लगानेपर 'सोहं' शब्दकी गुञ्जार-ध्वनि उठती है। उसीमें वृत्ति लय होनेपर आनन्द मालूम होता है। ज्योति-प्रकाश देखना, नाद-शब्द सुनना भी भास होता है। उसीको परमेश्वर करके माना है। सोई 'सोहं' शब्दका गुञ्जार, हल्ला जगत्में महिमा विख्यात या प्रचार योगी लोगोंने कर रक्खा है। बिना पारख उसीमें जीव भूले और भुला रहे हैं ॥ ९०४ ॥

१५. दुई रूप तेहि माँहि प्रकाशा ❀ नारी अङ्ग पुरुष सोई श्वासा ॥ ९०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने उसी 'सोहं' शब्दमें भी दो रूप या दो भागका प्रकाश किया है। 'सो' अंश पुरुषरूप ब्रह्मका है, तथा 'हं' अंश नारीरूप मायाका माना है। और 'सोहं' अक्षर यह तो नारीरूप प्रकृतिका अङ्ग है, तथा परब्रह्मरूप पुरुष सोई श्वास ही स्वरूप है, ऐसा भी कथन किया है। उसीमें माया-प्रकृति तथा ब्रह्म-पुरुषका प्रकाश बतलाया है।

स्थूलाकार शरीर अक्षर आदि स्त्रीरूप मायाके अङ्गमें है। सूक्ष्माकार प्राणरूप श्वास निःअक्षर सोई परम पुरुष-परमात्मा है, ऐसा कल्पनासे माना है ॥ ६०५ ॥

१६. यहि विधि सोहं शब्द बनाई * उपजन विनशन रहटा लाई ॥ ६०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यही विधि या इसप्रकारसे विधिपूर्वक "सोहं" यह शब्दको श्वास वायुमें कल्पना करके योगी, ध्यानी लोगोंने बनाया है। सदाकाल 'सोहं' ध्वनिमें ही लक्ष्य लगाये रखना। यह उपदेश दिया है। इसीके आधारसे राजयोग, ध्यानयोग, अमनस्कयोग आदि अनेकों साधनाओंका मार्ग योगियोंने बना रक्खा है। वे उसीमें अपने लगकर अन्य मनुष्योंको भी अनेक तरहसे लालच देकर लगा रहे हैं। परन्तु, उस 'सोहं' के जापसे चैतन्य स्वरूपकी स्थिति मुक्ति किसीकी नहीं हुई और नहीं होती है; पारख बिना सूक्ष्म विषय शून्य आनन्दादिके जड़ाध्यासी होकर जीव जन्म, मरण और गर्भवासके रहटा, चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े रहते हैं। उत्पन्न-विनाशके रहटा 'सोहं' जापकको लगा ही रहता है। इसका और भी पूर्ण भेद पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा निर्णयसे जान लीजिये ! ॥ ६०६ ॥

१७. सो सोहं नाशकके बैना * अजपा जपहिं शम्भु अनुमाना ॥ ६०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सो 'सोहं' शब्द नाशक=योगी गुरुवा-लोगोंका कल्पित वाणी जाल है। वही दृढ़ा करके नरजीवोंके ज्ञान-गुणका विनाश कर रहे हैं। प्रथम महादेव आदिने अनुमानसे 'सोहं' को अजपा जाप मानकर जपा वा धारण किया था। परम्परासे तबसे आज पर्यन्त योगी लोग शम्भुके अनुमानको सत्य मानकर अजपा जाप जपते ही जा रहे हैं। बिना पारख जीवके साक्षीपदको नाश करनेवाली नाशक वाणीको ही पकड़ लिये हैं। सद्गुणोंका नाशक, तमोगुणका प्रकाशक, यह 'सोहं' जापको शम्भु आदिकोंने जपा तथा उनके अनुयायीलोग अभी उसे जप ही रहे हैं, बिना पारख भूले पड़े हैं ॥ ६०७ ॥

१८. सो परचित बोला औ चाला * शून्या तजि सहज प्रतिपाला ॥ ६०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई 'सोहं' शब्दको अनुमानसे जब पहिचान किया। तब वही बात महिमा बढ़ा करके बोला; शिष्य-शाखाओंको उपदेश दिया, दृढ़ाया, और अपने उस मार्गमें चल करके दूसरे लोगोंको भी गुरुवालोगोंने चलाया है। वही मार्गकी वाणीका प्रचार करके विशेषरूपसे फैला दिया है; बहुविधि वाणी बोले हैं। छान-बीनसे निश्चय करके उसी सिद्धान्तपर वे लोग चले और चलाये हैं। मत-सिद्धान्त प्रचार करनेके वास्ते शून्य स्थिति योग समाधि-से उतर करके शून्य वृत्तिको छोड़कर प्रवृतिमें आये हैं। सहज आकाशवत् व्यापक ब्रह्म सिद्धान्त कथनकर उसकी ही परिपुष्टि या रक्षा किये हैं। फिर परमहंस होकर सहज आकाशवत् व्यापक ब्रह्म मानन्दी करके जड़वत् दशाको धारण कर लिये हैं। निवृत्ति-प्रवृत्ति दोनोंमें रहने लगे हैं। उस हालतमें श्रद्धालु लोग शिष्यवर्ग या भक्त संसारी लोग उन योगियोंकी प्रतिपालना या रक्षा किये वा करने लगे या रक्षा कर रहे हैं। इसप्रकार शून्यको तजे, तो महाशून्यमें जाकर गाफिल हुए हैं। उसीका पालन-पोषण, रक्षण करने-कराने लगे; बिना पारख महा भ्रममें ही जहँड़ा गये हैं ॥ ६०८ ॥

१९. जो उलटि पलटाये बानी * परमहंस अजपा अनुमानी ॥ ६०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ जगत् खानीसे उलट करके योगीलोग वाणी जालमें जा करके पड़े हैं। तहाँ अनुमानसे श्वासमें 'सोहं' शब्द ठहराकर उसे अजपा जाप मानकर जपने लगे। कोई बाल, पिशाच, मूक, उन्मत्त, जड़वत् दशाको धारण करके परमहंस हुए, सब विधि-निषेधको छोड़ दिये हैं। जगत्में उलटी चालसे चलने लगे। वाणी भी पलटा करके विपरीत बोलने लगे। अथवा जो 'सोहं' जाप जपते थे, रटन करते-करते उसीको उलटा करके वाणीका क्रम पलट दिये। तहाँ 'हंसो-हंसो' जपने लगे। 'हं' से उठा करके 'सो' में बैठाये। उसीको

परमहंसने अनुमानसे 'अजपा जाप' मान लिया है। 'हंस' जीवको उलटा करके 'सोहं ब्रह्म' बने हैं; फिर 'सोहं' को पलटा करके 'हंसो' कहा, और पशुवत् आचरणमें लगे, तो परमहंस कहला करके धोखेमें पड़े हैं, बिना विवेक ॥ ६०६ ॥

२०. श्वासा खैंचि मिलाये मूला ❀ नाभी अर्ध अङ्ग प्रतिकूला ॥ ६१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! श्वास वायुको नाभि-नासिकासे ऊपर खींच करके लक्ष्यको सोहंमें मिला करके मूल-ब्रह्माण्डरूप मस्तमें ले जाकर या ऊपर चढ़ा करके शून्यमें मिलाये, भ्रमरगुफामें स्थिर किये। नाभिमें अर्धमात्रारूप मायाके अंशमें पहले श्वास था, बादमें उसके प्रतिकूल या विपरीत मस्तकमें श्वास चढ़ाया, तो वहाँ बिन्दुमात्रा शून्य निर्विकल्प समाधि लगाकर रहने लगे। इसप्रकारसे नाभि अर्ध अङ्गके विरुद्ध श्वासको खींचकर ब्रह्माण्डमें ले जा करके शून्यमें मिलाये, तहाँ मूल=ब्रह्म होकर रहने लगे ॥ ॥६१०॥

२१. लै जो पावै शून्य रहि जाई ❀ परमहंसके चाल दृढ़ाई ॥ ६११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नाभि और मस्तकमें यदि श्वास लय हो गया, तब बाह्य जगत् आदिकी भावना सब छूटकर योगीको सहविकल्प या निर्विकल्प स्थिति प्राप्त हो जाती है। जो कोई श्वास लय करनेकी युक्तिको पा जाते हैं, सो समाधि लगा करके शून्यमें ही जाकर रह जाते हैं। योगी लोगोंने इसीको परमहंसकी चाल सहजमें परमात्माकी प्राप्ति करनेका यह मार्ग है, ऐसा कहकर मनुष्योंको इसी योग मार्गकी भ्रम-कल्पनाको दृढ़ा दिया है ॥ ६११ ॥

२२. बन्ध मोक्षके चाल दिखावै ❀ दुहुँ विधि शून्यहि माँहि समावै ॥ ६१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने जगत्को बन्धनरूपमें, तथा ब्रह्मको मोक्ष स्वरूपमें बतलाकर योग और ज्ञानका मार्ग दो प्रकारकी चाल दिखलाया है। योगसे भी शून्य समाधिमें ही समाते हैं; और ब्रह्मज्ञानसे भी शून्य आकाशवत् ब्रह्ममें ही समाते हैं। सो दोनों प्रकारसे जीवकी स्थिति ही नहीं होती है। शून्य धोखेमें ही समा जाते हैं। अथवा यह 'सोहं' जाप ऐसा है कि, बन्धनको काट करके मोक्ष करनेकी मुख्य चाल है, ऐसा दिखलाते हैं। अथवा प्रवृत्ति सहविकल्प अवस्था बन्धन है, और निवृत्ति निर्विकल्प स्थिति मोक्षपद है। ऐसी दो प्रकारकी चाल दिखलाये हैं। खानी और वाणी सो दोनोंमें अथवा शून्य भगमें तथा ब्रह्म कल्पनामें ही जीव समा जाते हैं वा समा रहे हैं। अतएव जड़ाध्यासी होकर ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही शून्य स्थान गर्भवासमें ही जा करके समाते हैं। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परख करके सो इसे अच्छी तरहसे जानकर उस भ्रम धोखेको त्यागना चाहिये, और पारख बोधको ही ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ ६१२ ॥

साखीः— सोहं अजपा जाप है ❀ शम्भु रहै लौलाय ॥

[१७८] अर्थ विचारत आपुही ❀ प्रगटे सब घट आय ॥ ६१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! श्वास वायुमें 'सोहं' शब्दकी मानन्दी करके उसे अजपा जाप=बिना जपे आप-ही-आप ध्वनि हो रही है। घट-घटमें ब्रह्मका प्रकाश हो रहा है। उसीके इशारासे 'सोहं' शब्द बता देता है कि, 'सो वह ब्रह्म मैं ही हूँ!' यह ऐसा जीव कह रहा है। सोई 'सोहं-सोहं' अजपा जाप घटमें हो रहा है, ऐसा गुरुवालोग कहते हैं। उसी 'सोहं-सोहं' का जाप रटनेमें महादेव जन्म भर लौ लगा करके रहे; तथा उनके अनुयायी तबसे अभीतक अजपा जापमें ही प्रेम-प्रीति या लौ लगा रहे हैं। उस शब्दका अर्थ विचार किया, तो आप ही ब्रह्म बना। 'कोई ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ' यह अर्थ लगाया; और 'सोहं' रूपसे आ करके सब घटोंघटमें प्रगट हुए। ब्रह्म ही सब घटमें आ करके श्वासरूपमें प्रगट हुआ, ऐसा कहा है। सो आप ही नरजीव निज सत्यस्वरूपको भुला करके सोहंकी कल्पना करके उसका अर्थ विचारकर आप ही निर्गुण ब्रह्म हुए। व्यापक बनकर आत्मरूपसे सब घटमें आ करके प्रगटे। परन्तु, उससे जीवोंकी

कुछ भी स्थिति नहीं हुई। अतएव जड़ाध्यासी होकर चारीखानीके नाना घटमें आ करके जन्म लिये हैं। विविधिरूपमें प्रगट हो करके कर्म फल भोग रहे हैं ॥ ६१३ ॥

साखीः— सोहं अस्मि वाक्य है * सो त्रिदोषक जान ॥
[१७६] ग्रासहिं परलय रूप होय * सोई विदित ब्रह्मज्ञान ॥ ६१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने वेद प्रमाणसे चार महावाक्य कहा है, उसमेंसे— "अहं ब्रह्मास्मि" यह एक महावाक्य कहा है। सोहं अस्मिका अर्थ=सो ब्रह्म मैं ही हूँ ! यह यजुर्वेदका महावाक्य है। "प्रज्ञानं ब्रह्म"— यह ऋग्वेदका महावाक्य है। "अयमात्मा ब्रह्म"—यह अथर्व वेदका महावाक्य है। "तत्त्वमसि"—यह सामवेदका महावाक्य है। ऐसे चार वेदोंका चार महावाक्य कहा है। तहाँ जीव, ईश्वर और ब्रह्मकी एकता करके ज्ञान, अज्ञान और विज्ञानको एकमें गड़बड़ वा गवड़ करके मिला देते हैं। इसीसे सो वात, पित्त और कफ मिश्रित सन्निपात त्रिदोषके समान ही दोषसे भरा हुआ है, ऐसा जानिये ! कफ=अज्ञानरूप जीव है, पित्त=ज्ञानरूप ईश्वरमें मिलाकर उसे वात=विज्ञानरूप ब्रह्ममें लय करके एकता करते हैं। सोई ब्रह्म-जगत्का अधिष्ठान आवागमनादिका मूल कारण हो जाता है। इसकारणसे सो उसे महा विकारी त्रिदोषरूपमें ही जान लीजिये ! ब्रह्मरूप हो करके सब जगत्का प्रलय करके या सब सद्गुणोंका विनाश कर भ्रमिक नष्ट-भ्रष्ट जड़ाध्यासी बद्ध हो जाते हैं। सोई ब्रह्मज्ञानका अद्वैत सिद्धान्त संसारमें विदित है या जगजाहिर है। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा इस भ्रम-कल्पनाको परख करके त्याग देना चाहिये ॥ ६१४ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४७ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. रचना सोहं बहु विधि कीन्हा * ॐकार दूजे रचि लीन्हा ॥ ६१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने 'सोहं' शब्दकी रचनामें बहुत प्रकारकी कल्पना जो किया है या बहुविधि मन-मानन्दीसे 'सोहं' शब्दकी रचना जिस तरहसे किये वा कर रहे हैं, सो विवरण ऊपर भलीभाँतिसे कर चुका हूँ ! अब यहाँपर कर्मी लोगोंने दूसरा 'ॐकार' शब्दके बारेमें जिस प्रकारसे रचना कर लिया है, सो बात निर्णय करके परखाता हूँ ! सुनिये ! योगियोंने जैसे श्वासमें सोहंकी कल्पना किया है, तैसे ही कर्मकाण्डियोंने भी श्वासमें ही 'वोहं-वोहं' या 'ॐ' शब्दकी मानन्दी किया है। सो दूसरे ही प्रकारसे ॐकारकी रचना भी श्वासमें ही कर लिये हैं ॥ ६१५ ॥

२. तेहिमें पाँचों कला सँवारी * शून्य अर्धचन्द्र अनुहारी ॥ ६१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी ॐकार या प्रणवमें पाँच कलारूप पाँच मात्राका भाग भी भिन्न-भिन्न बना करके खड़ा किया है। तहाँ श्वास ऊपर आनेपर "वो" और नीचे उतर जानेपर "हं" ध्वनि होती है। वही सूक्ष्म रीतिसे ॐ शब्द माना है। तहाँ मस्तकमें श्वास ठहरा, सोई शून्य निरञ्जनरूप बिन्दुब्रह्म माना है। फिर श्वास नाभिमें आया, तहाँ अर्धचन्द्र या अर्धमात्रारूप आदिमायाका बासा सूक्ष्म ही रूपसे ठहराया है ॥ ६१६ ॥

३. अ उ म अज हरि हर रूपा * ॐ अङ्ग पाँच कला अनुरूपा ॥ ६१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! श्वास नाभिसे ऊपर हृदयमें आया, तहाँ मकार मात्रा बनी, सोई महादेवका रूप खड़ा हुआ। कण्ठ स्थानमें श्वास आया, तहाँ उकार मात्रामें विष्णुका रूप प्रगट हुआ; और श्वास त्रिकुटी स्थानमें आया, वहाँ अकार मात्रा बनकर ब्रह्माका रूप खड़ा हुआ। इसतरह एक ॐकारके अङ्गमें ही पाँच प्रकारकी कलारूप पाँच मात्राके सूक्ष्म भाग उत्पन्न हुए हैं। "अ, उ, म, ˘, ०," ये पाँच मात्राएँ मिलकर एक ॐकार बना। (ा) यह अकार है। (ु) यह उकार है। (ं) यह मकार है। (◡) यह इकार या अर्धमात्रा है। (०) यह बिन्दु मात्रा है। ये ही पाँच मात्रा संयुक्त एकत्र जहाँ मिलाया, सोई ॐकारके आकार स्थूलरूपमें बन गया है ॥ ६१७ ॥

४. तीनि शक्ति सोई प्रगटाई * उतपति पालन अन्त देखाई ॥ ६१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्म तथा माया दोनोंके संयुक्त शक्तिसे ही और तीन पुत्र-पुत्री रूपमें तीन-तीन शक्ति उत्पन्न करके प्रगट किया है। ॐकारमें सोई तीन मात्रा प्रगट किया है। तहाँपर ब्रह्मा 'अकार' मात्रामें रहकर जगत्की उत्पत्ति करता है। विष्णु 'उकार' मात्रामें रहकर सृष्टिको पालन करता है; और आखिरमें महादेव 'मकार' मात्रमें रहकर सारे जगत्का अन्त वा प्रलय कर देता है। तब केवल ब्रह्म ही सर्वत्र दिखाई देता है। ऐसी कल्पना करके गुरुवालोगोंने दिखलाया है। तीन शक्ति ॐकार ब्रह्मसे प्रगटा करके उत्पत्ति, पालन और संहार करनेका कार्य वर्णन करके दिखलाया है; सो मिथ्या भ्रमसे अनुमान किया है। उसे परख करके जानना चाहिये ॥६१८॥

५. दुई भागके रूप दरशाया * ॐ सो पुरुष अङ्ग सो माया ॥ ६१६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने एक ॐकारमें ही दो-दो भाग करके दो रूपमें उसे दरशाया है। ॐकारमें जो बिन्दु है, सोई परम पुरुष परमात्मा निरञ्जन ब्रह्मका भाग या रूप है; और बाकीके चारों अङ्ग चारों मात्राएँ सो सब आदिमायाके भाग या रूपमें माना है। अथवा दो भागके दो रूप यों दरशाया है कि, ॐ में सूक्ष्मरूप श्वास, सो ब्रह्म-पुरुष है, तथा अक्षरका मोटा भाग स्थूल देहका अङ्ग, काया-माया, सो प्रकृतिरूप स्त्रीका रूप है। ऐसा गुरुवालोगोंने कथन किया है ॥ ६१६ ॥

६. सो ॐकार जाप है अजके * जागृत नेही कला सहजके ॥ ६२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मा और ब्राह्मणोंके मूल मन्त्रका जाप सोई ॐकार अक्षर या प्रणव शब्द है। जाग्रत् अवस्थामें कर्ममार्ग द्वारा वेद वाणी आदिकी कला कल्पनामें स्नेह या प्रेम लगा करके सहज आकाशवत् परिपूर्ण ब्रह्मकी मानन्दी ॐकारमें ही करके ब्रह्मा या ब्राह्मणलोग शून्य धोखेमें ही भूल गये हैं। जाग्रत्रूप चैतन्य जीवका विवेक छोड़कर सहज शून्यकी कलामें प्रेम लगा करके जड़ाध्यासी हुए या हो रहे हैं ॥ ६२० ॥

७. महाकारण सोई शून्य विराजै * अर्धचन्द्र कारण होय गाजै ॥ ६२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो ! चराचर जगत् उत्पत्ति करनेमें महाकारणरूप निरञ्जन ब्रह्म सोई शून्य आकाशमें निराकार-निर्गुणरूपसे विराजमान सर्वव्यापक है। सोई ॐकारमें भी ऊपर शून्य बिन्दु मात्रा हो करके ब्रह्म विराजमान है; तथा अर्धचन्द्राकार अर्धमात्रा माया-प्रकृति ही सृष्टि उत्पत्तिमें कारण हो करके गर्जना करती है। आदिशक्ति बाहर कभी वायु हो करके गरजती है। गुरुवालोगोंने ऐसी वाणीकी गर्जना किया है ॥ ६२१ ॥

८. तीन पुत्र त्रिगुणमय नारी * सोई षट अंशी सृष्टि पसारी ॥ ६२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निरञ्जन ब्रह्म और आदिमायारूप स्त्रीके सम्बन्धसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव, ये तीन पुत्र पैदा हुए। फिर सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती, ये तीन पुत्री या नारी भी त्रिगुणरूपमें ही उत्पन्न हुईं। उन्होंकी परस्पर शादी या विवाह हुई; ब्रह्मा-सावित्रीसे, विष्णु-लक्ष्मीसे और महेश-पार्वतीसे, ये त्रिगुणमय नारी-पुरुषकी जोड़ी मिली। सोई षट् अंशी तीन पुरुष और तीन स्त्री मिल करके सारी त्रिगुणी सृष्टि-उत्पत्तिका पसारा किया है। यानी भक्ति, योग और ज्ञान, तथा काम क्रोध और मोह, ये खानी-वाणी सृष्टिका विस्तार किया है ॥ ६२२ ॥

६. अर्थ विचारहिं ताहि समाहीं * करत कलोल काल मुख जाई ॥ ६२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार वोहं या ॐ शब्दकी कल्पना श्वासमें वा शरीरमें करके उसके अर्थ विचार करने लगे, तो 'वह ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ ! या वही मैं हूँ !' उसका यह अर्थ निकला। फिर स्वयं ब्रह्म बन करके उसी शून्य धोखेमें जाकर समाये, गाफिल हुए; वाणी कल्पना, कर्मकाण्ड, जप-तपादिमें कलोल=क्रीड़ा, साधना, ऐश-आनन्द विषयादि

भोग करते हुए कालरूप निरञ्जन वा मृत्युके मुखमें ही चले गये। अथवा काल=नारी और गुरुवाओं-के मुख या मुख्य-मुख्य वाणी कल्पना तथा विषय-जालरूप भव-बन्धनोंमें ही चले गये और चौरासी योनियोंमें ही जा रहे हैं ॥ ६२३ ॥

१०. उलटि पलटिके राह चलावै * सगुण अगुणके भास दृढ़ावै ॥ ६२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मीलोगोंने कभी 'वोहं' तो कभी 'हंवो' ऐसे शब्दको उलटा-पलटा करके कर्म मार्गको चलाया है, कभी सगुण-साकार अष्ट प्रतिमा पूजामें लगते और लगाते हैं। कभी निर्गुण-निराकार निरञ्जनके ध्यानमें लगते और लगाते हैं। जिसको जैसा भास होता है, उसीको सच्चा बता करके दृढ़ करते और कराते हैं। अथवा चैतन्य जीवको उलटकर ब्रह्मका अंश, अल्पज्ञ बतलाते हैं। फिर इधर-उधर घुमा-फिरा करके विचारको पलट करके जीवको ही ब्रह्म ठहराते हैं। तहाँ कर्म, उपासना और ज्ञानका मार्ग चलाया है। सगुण-निर्गुण, ये दोनोंके मिथ्या भासको ही सत्य परमात्मा कहकर दृढ़ाया है। ऐसे पारख बोध बिना सब चकनाचूर होकर चौरासी योनियाँ गामी हुए हैं ॥ ६२४ ॥

११. सो परणव गायत्री मूला * जपहिं जपावहिं जानु न शूला ॥ ६२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो 'प्रणव' कहिये ॐकारको वेद तथा गायत्रीके मूल=मुख्य जड़ या सार करके ब्रह्मा और ब्राह्मणोंने दृढ़ विश्वासपूर्वक माना है। सो गायत्री मन्त्र इसप्रकार कहा हैः—

मन्त्रः— "ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ॥"

यह चौबीस (२४) अक्षरोंकी ब्रह्म गायत्री है। इसके मूल या पहले दो बार 'ॐ' का उच्चारण आता है। यही गायत्री मन्त्रको ब्राह्मण लोग विधिपूर्वक निष्ठासे जपते और जपाते हैं। उसीसे कल्याण मानते हैं। पारख बोधके बिना वे यह नहीं जानते हैं कि, यह तो नरजीवकी ही कल्पना है। इसलिये जड़ाध्यासी होकर त्रयताप तथा जन्म-मरणादिका शूल=दुःख ही भोगे और भोग रहे है; सो यथार्थ भेद नहीं जानते हैं ॥ ६२५ ॥

१२. जो जानहिं जीव शूल अपाना * धोखक शब्द न करै परवाना ॥ ६२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आते हैं, वे श्रीसद्गुरुकी दयासे पारख बोधको पा करके सत्य-मिथ्याको यथार्थ जान जाते हैं। 'मैं जीव ही सत्य हूँ ! अध्यासवश आवागमनमें पड़ा हूँ ! निज कृत कर्मोंका फल भोग ही मुझे मिल रहा है। जड़ाध्यासी होकर सब जीव त्रयताप जन्मृति दुःख पा रहे हैं। जीवने ही भ्रमसे ब्रह्म-ईश्वरादिके मिथ्या मानन्दी किया है।' ऐसा जो जान जाते हैं, सो फिर धोखेके शब्दका कभी प्रमाण या विश्वास नहीं करते हैं। अर्थात् जो कोई नरजीव अपना सत्यस्वरूपको श्रीसद्गुरुकी दयासे पारख दृष्टिके प्रतापसे जान गये हैं; और जीवको आवागमन शूल=पीड़ा होनेका कारण खानी-वाणी जालको अच्छी तरहसे जानकर समझ गये हैं; फिर वे कभी धोखेबाज गुरुवालोगोंकी रोचक-भयानक वाणी तथा वेद-शास्त्रादिके असत्य शब्दको कभी हितकर समझ-कर प्रमाण करके अन्ध विश्वाससे निश्चय करके मान नहीं सकते हैं। यथार्थ निर्णयसे गुरुमुख वाणीको ही विवेकसे मानते हैं। पारखमें ठहरे बिना किसीके धोखेके शब्दोंको वे नहीं मानते हैं॥६२६॥

साखीः— प्रणव अजके जाप है * गायत्रीके मूल ॥
[१८०] पञ्चीकरण ताके कला * रहै जगतमें भूल ॥ ६२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! 'प्रणव' कहिये गोलाकार ॐकार या ॐ शब्द यही ब्रह्माजी और समस्त ब्राह्मणोंके मुख्य जाप करनेका महामन्त्र माना है। "ॐ भूर्भुवः स्वः" से लेकर जपा जानेवाला ब्रह्म गायत्री मन्त्रका तो यह मूल वा जड़ ही है। 'ॐ' उच्चारण करके ही फिर गायत्री-

मन्त्रका जाप करते हैं। इसलिये 'ॐ' अक्षर गायत्रीका मूल कारण है। पञ्चीकरणरूप पाँच मात्राकी कला-कल्पना पाँच भाग उस ॐकारमें कथन करके माना है। अथवा उपनिषद् और पञ्चीकरण नामक ग्रन्थोंमें भी उस प्रणवको ही ब्रह्म ठहरा करके ध्यान करनेकी विधि या नाना कला-कल्पनाका कई तरहसे वर्णन किया है। इसप्रकार मन-मानन्दीसे भ्रम धोखेमें पड़ करके निज चैतन्य सत्य स्वरूपको भूले और भुला करके जगत् जाल आवागमन चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जा पड़े और अभी वैसे ही जन्म-मरण चक्रमें पड़ रहे हैं; बिना विवेक ॥ ९२७ ॥

साखीः— मायामयी सब पुरुष हैं ❀ पुरुषमयी सब नारि ॥
[१८१] नितप्रति गावहिं ध्यावहिं ❀ शक्ति मता अनुसारी ॥ ९२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! माया, काया, कल्पना, गुरुवालोग और स्त्रियोंके धोखा, भ्रम, विषय, वाणी आदिमें तन्मय या तदाकार होकर सब पुरुष जीव जड़ाध्यासी बद्ध हुए या हो रहे हैं। तैसे ही परब्रह्म कोई कर्त्ता पुरुष मान करके सब अनाड़ी भक्त लोग नारी या भक्ति-भाव धारण करके पुरुषरूप ईश्वरके कल्पितरूपमें आसक्त या तदाकार हो रहे हैं। नित्यप्रति या रोज-रोज वेद-पुराणादि पढ़कर उसी ब्रह्म, ईश्वर, देवी, देवतादिकी महिमा, गुणानुवाद, कीर्तन करके उन्हींका ध्यान करके इष्टदेवको ध्यावते हैं। अपने-अपने मत, पन्थ, ग्रन्थ, कल्पनाकी दौड़में शक्तिके अनुसार नाना मत-पन्थ पाखण्डोंको फैलाये और फैला ही रहे हैं। अथवा स्त्रीरूप मायाके भोग विषयोंमें आसक्त नारीमय विषयाध्यासी सब पुरुष जड़ासक्त हुए हैं। तैसे ही विषय भोगमें स्त्री भी पुरुषवत् ही महा आसक्त हो रही है। नित्यप्रति स्त्री-पुरुषोंकी विषय लीला, रास-क्रीड़ा आदिसे विषयोंकी महिमा बढ़ा-चढ़ा करके गाते हैं; और शाक्तमत तथा वाममार्गके अनुसार शक्ति उपासना, पञ्चमकारादि सेवन, कर्म-कुकर्म बलिदानादि करके विषय भोगकी प्राप्ति करना चाहते हैं। भगवती आदि देवीका ध्यान करके और कराके चौरासी योनियोंके नरक कुण्डमें पड़ते हैं। बिना विचार शाक्तमतके प्रचारमें ही लगे हैं ॥ ९२८ ॥

साखीः— चौबीस अक्षर मिलायके ❀ गायत्री अस्थूल ॥
[१८२] विधि बहुविधि महिमा जपै ❀ परखै नहीं यम हूल ॥ ९२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्माने प्रथम बावन (५२) वर्णोंका मिलान अक्षरोंका संग्रह करके वेद बनाया। फिर वेदके भीतर चौबीस अक्षरोंका मिलान करके स्थूलाकारमें गायत्री मन्त्रको बनाया। उसमेंः— "ॐ भूर्भुवः स्वः" ये पाँच अक्षर और ज्यादा मिलाया गया है।

तथा मन्त्रः— "ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥"

यही चौबीस (२४) अक्षरोंकी ब्रह्म गायत्री स्थूलरूपमें बनी है। ब्रह्मा और ब्राह्मणोंने उस गायत्री मन्त्रकी महिमा बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक कथन किया है। उस गायत्रीको ही नित्यप्रति त्रिकाल जाप करते-कराते हैं। उसीके जापसे सुख-कल्याण या उद्धार होनेको माना है। सारासार, सत्यासत्यको तो वे पक्षपाती, हठी, शठी होकर परखते ही नहीं हैं। यम=गुरुवालोगोंने भ्रम-कल्पनाको हृदयमें हूल दिया वा ठूँस दिया या दृढ़ करा दिया है। इसलिये ब्राह्मण लोग यमरूप काल बनकर उसी वाणीको पुकार-पुकार कर उपदेश देकर हो-हल्ला मचा रहे हैं। सत्य निर्णय न करके हूल, दङ्गा, भीड़ कर रहे हैं। बेपारखी लोग उसका पारख तो कुछ भी करते और कराते नहीं हैं, "जबर्दस्तीका ठेंगा शिरपर" रख करके नर जन्मसे पतित हुए, आवागमनोंमें ही पड़े और पड़ रहे हैं; बिना विवेक ॥ ९२९ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४८ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. भू पृथ्वीसे जपै जपावै ❀ कर्म समाधि जग भरमावै ॥ ९३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! गायत्री मन्त्रमें पहले "ॐ भूः" आता है।

सो भूलोंक प्राप्तिके वास्ते पृथ्वी तत्त्वको इष्टदेव मानकर ब्रह्मा तथा ब्राह्मण लोग संसारमें पृथ्वी उपासक अष्ट प्रतिमा पूजक कर्ममार्गी हो करके "ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ महः, ॐ सत्यम्" आदि उच्चारण करके गायत्री मन्त्रका जाप प्रेमसे अपने जपते हैं; तथा अनुयायी शिष्यवर्गोंको भी वही गायत्री मन्त्रोंका जाप बता करके जपाते हैं। तहाँ वेद विहित कर्म करते-करते चित्तवृत्ति-को स्थिर करना, कर्म द्वारा ही समाधि लगा करके परमपदमें पहुँचना, स्वर्गादि तथा परमात्माकी प्राप्ति करना, यही 'कर्म समाधि' का उद्देश्य बतला कर जगत्में मनुष्योंको नाना तरहसे भ्रमा-भुला रहे हैं। वही कर्ममार्गमें लगा करके अभी सबोंको भ्रमाकर भटका रहे हैं ॥ ६३० ॥

२. रची ॐकार कला बहुभारी * राम शब्दको कला सँवारी ॥ ६३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसतरह ब्रह्मा और ब्राह्मणोंने बड़ीभारी कला-कल्पना फैला करके ॐकार शब्दकी रचना किया है। उसे पिण्डमें पाँच मात्रा, पाँच स्थान तथा ब्रह्माण्डमें पाँच तत्त्वोंमें घटा करके मिथ्या मानन्दीसे वाणी कल्पना वेदादिक बहुत प्रपञ्चोंकी रचना किया है। सो ऊपर बता करके परखाया जा चुका है। तदनन्तर विष्णु वा भक्त लोगोंने वैसे ही कल्पना करके श्वासमें और बाहर भी 'राम' यह शब्दका कला-भाग बना करके तैय्यार किये या खड़ा किये हैं। उसके बारेमें भी उनकी मानन्दी कुछ दर्शा करके आप लोगोंको परखाता हूँ, सो सुनिये ! ॥ ६३१ ॥

३. रेफ अकार मकार प्रमाना * हरि ब्रह्मा शिव सोई परधाना ॥ ६३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'राम' शब्दमें प्रधान करके त्रिदेवोंका सम्मिलित होना माना है। तीन मात्रा मिलकर 'राम' शब्द बना है। तहाँ 'रेफ' में (र) अकार वा उकार मात्रा मिलाया है। 'रा' में (ा) यह आकार या उकार मात्रा लगाया है; और मकार मात्राका (म) मिलाकर 'राम' शब्द बनाया है; और रेफका 'र' सोई 'हरि' है। पाई (ा) का अकार सोई 'ब्रह्मा' है, तथा मकारका 'म' सोई 'महेश' है। ऐसी तीन मात्रामें तीन देवोंको प्रधान या मुख्य करके गुरुवालोगोंने प्रमाण किया है ॥ ६३२ ॥

४. त्रिगुणरूप थूल अभिमानी * राम शब्द कला उतपानी ॥ ६३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिगुणकी तीनोंरूप एकमें मिला करके भक्त लोग सूक्ष्म शब्दादि विषयोंको ले कर ही अभिमानी, जड़ाध्यासी, अहङ्कारी बने हुए हैं। इसप्रकार 'राम' शब्दकी कला-कल्पना सूक्ष्म अभिमानसे प्रगट किया है; और कोई उपासकोंने श्वास वायुमें लक्ष्य लगा करके श्वास भीतर जातेमें 'रा' तथा बाहर आतेमें 'म' यह सूक्ष्म कला कल्पनासे उत्पन्न किया है। यह सब मिथ्या मानन्दी भ्रम-भूल ही है, ऐसा जानिये ॥ ६३३ ॥

५. पुनि दोइ रूप होयके बिलगाना * ररा ममा सोई प्रगटाना ॥ ६३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर और विशेष भ्रमिक हो करके उसी 'राम' शब्दमें भी दो रूप या दो भाग करके बिलगाया है; यानी न्यारा-न्यारा विभाग किया है। पहला 'ररा' तथा दूसरा 'ममा' के दो रूपमें सोई प्रगटाया है। सो 'ररा' को परब्रह्मका रूप कहा है; और 'ममा' को माया प्रकृतिके रूपमें माना है। इन्हीं दोनोंके सम्बन्धसे सारा जगत् बन करके प्रगट हुआ, ऐसा कल्पनासे कथन किया है ॥ ६३४ ॥

६. ररा अर्धचन्द्र होय धावै * ममा शून्य स्वरूप देखावै ॥ ६३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'ररा' में "रमेतीतिरामः" यह अर्थ लगा करके व्यापक ब्रह्म बने हैं। किन्तु, वहींसे इच्छा या स्फुरणा प्रगट हुई है। ऐसे सोई 'ररा' ब्रह्म ही अर्धचन्द्र माया इच्छारूपमें प्रगट हो करके आया, वह माया पुनः संसारमें दौड़ कर आयी; और 'ममा' मायारूप गुरुवालोग स्त्रीत्व या भक्ति-भाव धारण करके शून्य आकाश या ब्रह्माण्डमें परमपुरुष परमात्मा

निरञ्जनके स्वरूपको दिखलाते हैं। कोई श्वासको ही ऊपर ब्रह्माण्डमें चढ़ा करके शून्य आनन्द या ज्योति आदिको परमेश्वर पुरुषका स्वरूप बतलाकर देखते और दिखलाते हैं। अथवा 'ररा' पुरुष अर्धचन्द्र हो करके नाभिमें सहविकल्प मायारूप हो कर आया। पुनः 'ममा' मायारूप वृत्तिको ब्रह्माण्डमें लय करके शून्य निर्विकल्प स्वरूपको ही श्रेष्ठ दिखलाती है। यानी ध्यान करते-करते शून्यमें ही गाफिल हो जाते हैं ॥ ६३५ ॥

७. जबहीं कामिनी ररा होई ❀ महाशून्य ममा तहाँ सोई ॥ ६३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भक्त लोग चार फल या चार मुक्तिकी इच्छा, चाहना या कामना करके कामिनी हुए हैं। नरजीव जब ही राम-नामका रटन करके कामिनीरूप स्त्री या भक्त हुए, तब ही रटन करते-करते वृत्ति एकाग्र कर 'ममा' मायारूप गुरुवा भक्त लोग सोई महाशून्यमें लय होकर गरगाफ हुए। अथवा जब 'ररा' ब्रह्ममें इच्छा उदय हो कर जगत् सृष्टिकी कामना हुई, तो वही माया-प्रकृति बना। फिर अन्तमें महाशून्यमें मन लगा करके सोई शून्यमें विलय होकर माया ही ब्रह्म हो गई, ऐसी मानन्दी किया है ॥ ६३६ ॥

८. रेफ भाव ररा तहाँ लावै ❀ ममा शून्य होय तहाँ धावै ॥ ६३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तहाँ 'ररा' ब्रह्मरूप पुरुषने स्वयं ही इच्छारूपमें प्रगट हो करके रेफमें 'र' रमेति भावसे स्त्रीरूप मायामें रमा, प्रेम लगाया, तो जगत् स्थूलाकारको प्रगटाया। 'ममा' मायाने भी अकेले स्थूलमें स्थिति न पा करके शून्यमें ही लय होनेको तहाँ दौड़कर गई, तो शून्य ब्रह्ममें ही लौ लगाई। ऐसे उलट-पलट हुआ; ब्रह्म ही माया हुआ, पुनः माया उलट करके शून्यरूपमें ब्रह्म हुई। ऐसे 'राम' शब्दमें दो तरहकी कला-कल्पना गुरुवालोगोंने वर्णन किया है ॥६३७॥

९. आपै पुरुष आप सोइ नारी ❀ बहु अचरज यम जाल पसारी ॥ ६३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो! सुनो! यह मनुष्य जीव आप ही वाणी कल्पना करके कभी परम पुरुष ईश्वर या ब्रह्म स्वयं बनता है या मानता है; फिर इच्छा करके नारीरूप माया खड़ा करता है। और कभी आप ही भक्ति-भाव धारण करके अनाड़ीके समान दीन भक्त बनता है। अथवा वह परमेश्वर आप ही पुरुष है, और आप ही स्त्री भी है। सबोंमें व्यापक है, ऐसा कथन कर वैसा ही उपदेश करके यम=गुरुवालोगोंने बड़ा ही आश्चर्यमयी वाणी कल्पनाका जाल बहुत ही फैला करके पसारा किया है अथवा विषयाध्याससे आप ही चैतन्य जीव कभी पुरुषका देह धारण करता है, तो कभी पुनर्जन्ममें वही जीव आप ही स्त्रीका देह भी धारण कर लेता है। वासनाकी दृढ़ताके अनुसार नारी-पुरुषका देह जीव आप ही धारण कर लेता है; अरो यमरूप मन तथा स्त्री विषयादिका जो जाल पसारा हुआ है, सो बहुत ही आश्चर्यकारक महान बन्धनरूप है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ६३८ ॥

१०. ररा शब्द विष्णु सो देवा ❀ थूल अभिमानी करै सब सेवा ॥ ६३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ररासे ही राम शब्द बना है; इसका अर्थ सबमें रमनेवाला 'रमेतीति रामः' हुआ। सो 'र रा' शब्दसे प्रतिपादित विष्णुको ही सबका मालिक देवता या भगवान्के रूपमें श्रेष्ठ मान करके सूक्ष्म उपासनाके अभिमानी सब भक्त उपासक लोग अपनेमें स्त्रीकी भावना या दीनतासे भक्ति-भाव धारण करके उसी विष्णु देवताकी भक्ति सेवा किये या करते हैं; अथवा विष्णुकी सेवा कर रहे हैं। यहाँ 'विष्णु' शब्दका अर्थ व्यापक ईश्वर भी होता है ॥६३९॥

११. कामिनीरूपी भक्ति दृढ़ाई ❀ भग मस्तक अपने अपनाई ॥ ६४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो भक्ति इसप्रकार दृढ़ाया है— जैसे कामिनी=पतिव्रता स्त्री पतिमें ही निष्ठा-प्रेमसे भक्तिभाव एकाग्र रखती है। तैसे ही भक्तोंको भी अनन्य एकनिष्ठ भावसे विष्णुको ही अपना मालिक, परमपति, परमात्मा मानकर 'कामिनीरूपी' कहिये स्त्रीके समान-

प्रेम-लक्षणारूप बनाकर नवधा भक्तिको मनमें दृढ़ करना चाहिये। ऐसा उपासक वैरागी लोगोंने दढ़ाया है। तहाँ वे कहते हैं कि, लिखा हैः— "भगः सकलैश्वर्य्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्।"

—जो समग्र ऐश्वर्यसे युक्त वा भजनेके योग्य है, इसलिये उस ईश्वरका नाम 'भगवान्' है।

श्लोकः— "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥"

अर्थः— सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान, तथा सम्पूर्ण वैराग्य— इन छःका नाम 'भग' है (नारदपुराण, पूर्व० ४६+१७) ॥

अर्थात् 'भग' कहिये षट्गुण ऐश्वर्यके मुख्य भाग उपरोक्त सम्पूर्ण भगवान् विष्णुमें मौजूद हैं। सो भगवान्को अपने शिर या माथेपर चढ़ाना और प्रेम-भक्तिसे रिझाना चाहिये। अतएव अपने मस्तक या भालमें भगाकारके समान तिलक बना करके सुन्दर रीतिसे लगाना चाहिये। जिसको देख करके भगवान् प्रसन्न होवेंगे। ऐसा मानकर अपने मस्तकमें स्त्रीके भग चिह्नके समान तिलकका आकार अपनाकर नारीभावसे भक्ति दृढ़ किये और करा रहे हैं। और वैरागी लोग कहते हैं कि, यही भग चिह्नका तिलक ही विष्णु भगवान्ने भी अपने मस्तकमें अपनाया है। कोई-कोई शालिग्राममें छिद्र जो दिखाई देता है, सो यही तिलकका ही चिह्न है; और राम-कृष्णने भी ऐसे ही तिलक लगाया था, यह तिलकका भग चिह्न उत्तम है, इत्यादि प्रकारसे ऐसी कल्पना किया है ॥ ६४० ॥

१२. विश्वरूप शिलाके पूजा ❀ आपू अनन्त भाव नहिं दूजा ॥ ६४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! 'विश्वरूप' कहिये विराट् भगवान् या सर्वत्र व्यापक परिपूर्ण निराकार परमात्माको मानकर सगुण साकाररूपमें पत्थरकी बनी प्रतिमा मूर्तिकी पूजा चलाये हैं। वे कहते हैं किः—

श्लोकः— "जलेविष्णुः थलेविष्णुःविष्णुः पर्वत मस्तके ॥ ज्वाला माला कुलेविष्णुः विष्णु सर्वमयं जगत् ॥"

इससे शिला मूर्तिकी की हुई पूजा भगवान्की ही पूजा होती है। अथवा कृष्णागण्डकी नदीके किनारे मिलनेवाली शालिग्राम शिला, सो साक्षात् विष्णु देवताकी 'प्रतिमा' है। वृन्दाके शापसे स्वयं विष्णुने ही शालिग्राम अवतारको धारण किया है। इससे विश्वरूप मान करके उस शिलाकी पूजा करते-कराते हैं। कोई पत्थरकी बनी हुई चतुर्भुजी विष्णु, राम, कृष्ण, शिवलिङ्ग, गणेश, देवी, देवता इत्यादि अनेकों मूर्तियोंकी पूजा करते-कराते हैं। गुरुवालोग कहते हैं— आप परमात्मा तो सर्वव्यापक है; सगुण-निर्गुण गुप्त-प्रगट अनन्त रूपमें विराजमान हैं। अतएव जल, थल पावक, पवन और आकाशमें अनन्त प्रकारसे ईश्वरको मानकर अष्ट प्रतिमा पूजा किया हुआ उन्हीं भगवान्को प्राप्त होता है। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः— "आकाशात् पतितंतोयं यथा गच्छति सागरे ॥ सर्वदेवः नमस्कार केशवंप्रति गच्छति॥"

—"जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल नदियोंमें घूम-फिर करके समुद्रमें ही जाकर समा जाता है। तैसे ही सब देवताओंको किया हुआ नमस्कार वा पूजा अन्तमें उन्हीं केशवके प्रति पहुँच जाती है।" अतः यहाँ दूसरा भाव तो हो ही नहीं सकता है। भक्तोंके अनन्त भावको भी भगवान् एक ही रूपसे ग्रहण करते हैं। इसलिये अद्वैतमें कभी दूसरा द्वैत-भाव ही नहीं होता है; ऐसा कल्पनासे मानकर धोखेमें ही पड़े हैं ॥ ६४१ ॥

साखीः— कामिनीरूपी सोई कला ❀ विष्णु किया विस्तार ॥

[१८३] ममा विरह बियाधते ❀ होय शून्य भरतार ॥ ६४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग आदि प्राप्तिकी कामना या चाहनासे उपासना मार्गमें स्त्रीरूप बना करके या भक्तिनी वा भक्त बनकर जो नाम-स्मरण, कीर्तनादि करते हैं, सोई कामिनीरूपी कलाको या इस भक्तिरूपी उपासनामार्गके भागको विष्णु नामक मनुष्यने प्रथम प्रगट करके विस्तार किया वा फैलाया है। जैसे स्त्री पतिके (परदेश

जानेसे या मर जानेपर) वियोग होनेसे विरहरूपी रोगसे पीड़ित वा दुःखी रहती है। तैसे ही माना हुआ भरतार=परमपति परमात्माकी तो कोई रूप-रेखा वा चिह्न तो नहीं है; उसे शून्य, निराकार, निरञ्जन माना है। परन्तु, उसी पतिरूप परमात्मा प्राप्तिकी चाहना, विरह व्याधिसे दुःखी साधक भक्त लोग 'ममा' कहिये मायारूप गुरुवालोगोंके फन्दाओंमें पड़करके भक्ति, योगादि साधनाओंसे वृत्तिको शून्य करके आकाशमें परमेश्वरको ढूँढ़ने लगे। कोई अनाड़ी भक्त स्त्री-भाव लेकर विरहमें व्याकुल हुए। वह कल्पनारूपी ईश्वर तो नहीं मिला। परन्तु, वे ही शून्यमें गाफिल, भ्रमिक, जड़ाध्यासी हुए हैं ॥ ६४२ ॥

साखीः— माया गुण नहिं लखि परे ❀ रहै कला सोइ भूल ॥
[१८४] विरह बाण घायल करै ❀ लाये अनेकन्हि हूल ॥ ६४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देखिये! पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य उपदेश द्वारा सत्य निर्णयको जाने बिना गुरुवारूप मायाके भक्ति, योग और ज्ञान, ये त्रिगुण या तत्त्वमस्यादि त्रिगुण, ये सब भी जीवोंको बन्धनरूप ही हैं, ऐसा बेपारखी किसीको भी लख नहीं पड़ता है या जाननेमें नहीं आता है। स्त्रीरूप मायाका काम, क्रोध, मोह, घर, धन, पुत्र आदि विषय त्रिगुण जाल हमें बन्धन है, यह भी किसीको लखनेमें या समझनेमें नहीं आता है। अतएव सोई खानी जाल स्त्री-भोगादिमें संसारी लोग और वाणी जाल ब्रह्मानन्दादि भास, अध्यास, कल्पनाकी कलामें सब साधक मनुष्य पड़े हुए निज स्वरूपको भूल रहे हैं। नर-नारीको विषयोंका विरह गृहस्थीमें लगा है; और देवी, देवता, ईश्वर, खुदा आदिका विरह योगी, भक्त और कर्मी लोगोंमें लगा है। वही विरह बढ़ानेवाली कल्पित वाणीका उपदेश सुना-सुना करके विरहरूपी बाण मार-मार कर गुरुवालोग और विषयी लोग मनुष्योंको घायल, दुःखी किये या कर रहे हैं। अज्ञानी जनोंको अनेक फन्दाओंमें लगा दिये हैं। अनेक प्रकारकी अनुमान-कल्पना तथा धोखेकी वाणीके तीर अन्तःकरणमें चुभा दिये, घुसा दिये हैं। बहुत भीड़ करके घायलोंके घावमें विष हूल दिये हैं या प्रविष्ट करा दिये हैं। इसीसे श्रीसद्गुरुके पारखका बोध हुए बिना सब नरजीव अचेत, बेभान, भ्रमिक हुए या हो रहे हैं; अनेक हूल-दङ्गामें मन लगा रहे हैं, बिना विचार ॥ ६४३ ॥

साखीः— श्वासा सो सोहं भया ❀ सोहंसे ॐकार ॥
[१८५] ॐकारसे ररा भया ❀ पण्डित! करो विचार ॥ ६४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पूर्व संस्कारसे जीवको मनुष्य देह मिला है। तहाँ आयुरूप जड़ प्राणवायुकी चलन-गति चैतन्य जीवकी सत्तासे हो रही है। जब ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप कर्मी, उपासक और योगी लोगोंने एकान्त स्थलमें बैठकर नासिका द्वारा भीतर-बाहर चलनेवाली जड़ श्वासवायुमें लक्ष्य या सुरति लगाया, और विचार किया, तब श्वासकी चलन-गतिमें तीन शब्दकी उन्होंने कल्पना किया है। नासिकासे श्वास खींचकर भीतर नाभि तक गया, तब 'सो' और श्वास बाहर आया, तब 'हं' ये दो अक्षरोंकी उत्पत्ति होनेकी कल्पना की है। ऐसे सोई श्वासकी ध्वनि ही 'सोहं' शब्दमें परिणत हुआ है। जिसका अर्थ="सो कोई ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ!" यह माना है। 'सोहं' को ही अजपा जाप, बिना जपे आप-ही-आप होनेवाला मानकर महादेवादि योगीलोगोंने इसमें लक्ष्य बाँधकर लगाया, तब वृत्तिको शून्य करके जड़ाध्यासी हुए हैं या हो रहे हैं; और जब 'सोहं' शब्दयुक्त प्राण त्रिकुटी, कण्ठ, हृदय, नाभि और मस्तकमें जाकर टकराया, तब उससे 'ॐ' शब्दकी उत्पत्ति पाँच मात्रा संयुक्त माना है। अकार मात्रा त्रिकुटीमें, उकार मात्रा कण्ठमें, मकार मात्रा हृदयमें, अर्धमात्रा नाभिमें, और बिन्दु मात्राको मस्तकमें ठहराया है। ॐकारको ही प्रणवरूप शब्द ब्रह्म कहा है। 'वोहं' कहिये "वह कोई ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ!" ब्रह्मा, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी और संन्यासी लोग इसी ॐकारके जाप और ध्यानमें लगकर भ्रमिक हुए या

हो रहे हैं; और पञ्च मात्रायुक्त ॐकारसे पाँचों स्थानमें रगड़ खा करके शब्द जब आगे शून्य ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट हुआ या लय हुआ, तब वहाँपर 'ररा' कहिये 'रं-रं' की ध्वनि होने लगी, जिसको दश नादरूप अनाहद बाजा कहते हैं। सो घन्टा, शङ्ख, मृदङ्ग, झाँझ, दुन्दुभी, भेरी, सहनाई, सितार, वीणा, और बाँसुरी बाजा सरीखी आवाज सूक्ष्म रीतिसे ब्रह्माण्ड वा शिरमें सुनाई देती है, ऐसा कहा है। भीतर जो 'रं-रं' की ध्वनि हुई, वही बाहरमें 'राम' शब्दकी कल्पना किया है। विष्णु उपासक लोग इसी जापमें लक्ष्य लगा करके भूलमें पड़े हैं, और "सबमें रमनेवाला आत्माराम मैं हूँ!" यह 'राम' शब्दका अर्थ हुआ। इसप्रकार प्राणरूप जड़ श्वास वायुसे कल्पना करके 'सोहं' हो गया, और सोहंको मथन करके उससे ॐकार आकार सिद्ध हुआ, तथा ॐ से सूक्ष्म नाद ध्वनिमें आ करके 'ररा, रं-रं वा राम,' इसकी मानन्दी दृढ़ हुई। सो इसी 'वोहं, सोहं, राम' तीन प्रकारके नाम-स्मरणरूप जापका विचार पूर्वमें त्रिदेवोंने किया है। सोई बात वर्तमानमें बड़े-बड़े पण्डित, शास्त्री, वेदवेत्ता, योगी, ज्ञानी, भक्त, साधु-सन्तोंने निश्चय करके विचार किया और कर रहे हैं। सो हे पण्डितो! हे बुद्धिमानो! आप लोग इसका यथार्थ रीतिसे विचार करिये! जहाँ जीव नहीं है, वहाँ प्राणरूप श्वास वायुकी चलन-गति भी नहीं होती है। श्वाससे सोहं, ॐ और रामकी उत्पत्ति जो माना है, सो सब मनुष्योंकी कल्पना है। उन शब्दोंमें लक्ष्य स्थिर होनेसे कुछ कालतक वृत्ति शून्य होती है; परन्तु, पारख ज्ञानके बिना जड़ाध्यास जीवोंका नहीं छूटता है; इसीसे स्वरूप स्थिति पारखके बोध हुए बिना मुक्ति हो नहीं सकती है। अतएव कल्पना भ्रमको छोड़कर जड़-चैतन्य निर्णयका यथार्थ सत्य विचार करिये! चैतन्य जाग्रत् स्वरूप स्थितिको हासिल करिये! ॥ ६४४ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ४६ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. तीन शब्द रचि कला अपारा * सोहं प्रणव कला प्रचारा ॥ ६४५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अपार माना हुआ ब्रह्म-परमात्मा प्राप्तिके वास्ते ब्रह्मादिकोंने श्वास वायुमें लक्ष्य लगा करके तीन शब्द या तीन जापोंकी कल्पनासे रचना की है। 'सोहं' महेशने, 'प्रणव' कहिये 'ॐ' ब्रह्माने और 'राम' विष्णुने, यही तीन शब्दोंकी रचना करके इसी कलाका खूब प्रचार किया है। यही जगत् जीवोंको उपदेश देकर फैलाया है। जिसका पार पाया नहीं जाता है, सो अपार परमेश्वरका साक्षात्कार इन्हीं तीन शब्दोंके जापसे होवेगा, ऐसी बहुतेक कल्पना दृढ़ाकर लोगोंको भ्रमाये हैं और अपने भूले हैं ॥ ६४५ ॥

२. पुनि चौंतीसा मात्रा लाई * पिण्ड समान रचना निरमाई ॥ ६४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर उन्हीं ब्रह्मादिकोंने 'क' से 'क्ष' तकके चौंतीस (३४) अक्षरोंमें अ, उ, म, अर्धमात्रा और बिन्दु, ये पाँच मात्राएँ लगा करके या पाँच मात्रा मिलाकर जैसे पिण्डरूप शरीर खानीकी उत्पत्ति होती है, तैसे ही पिण्डमें लक्ष्य बराबर समा करके वाणी जाल— वेद, वेदान्त, उपनिषद्, षट्शास्त्र आदिकी मनःकल्पनासे रचना करके मत, पन्थ, ग्रन्थोंको अनेकों तरहसे बना दिया है। इसप्रकार इन वाणी जालोंकी भी उत्पत्ति हुई है ॥ ६४६ ॥

३. रचि सो थूल बहु वाचा कीन्हा * भास अनेक योनि रचि दीन्हा ॥ ६४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! प्रथम वाणीकी रचना कैसे किया, इस बारेमें कहा जाता है, सुनिये! सूक्ष्म देहरूप अन्तःकरण चतुष्टय द्वारा अध्यासी जीवोंसे जैसे स्थूल देहकी रचना होकर चारखानीमें अनेकों योनियाँ प्रगट होती हैं; तैसे ही मनुष्य देह सूक्ष्म देहसे परा, पश्यन्ती और मध्यमा, ये तीन वाचाएँ बनती हैं, फिर स्थूल देहमें मुख द्वारा शब्द निकल करके वैखरी वाणीसे शब्द बहुत प्रकारसे बन जाते हैं। इसप्रकारसे सूक्ष्ममेंसे जो कल्पनाकी रचना हुई, सो वाणी द्वारा बहुत प्रकारसे विस्तार किया है। अनेकों योनियोंमेंसे जो-जो भास मनमें दृढ़ हुआ था, सो-सो सब रचना करके चार वेद, षट्शास्त्र, अठारह पुराण आदि यही नाना योनियाँ

वा भागोंको गुरुवालोगोंने रचना करके लिख दिया है; वे वही दृढ़ाते हैं। मनमें जो कुछ भास दृढ़ हुआ, सो वही विस्तार करके अनेकों ग्रन्थोंकी रचना कर दिये हैं ॥ ६४७ ॥

४. एक सो एक मिलै नहिं कोई * भिन्न भिन्न योनी सो होई ॥ ६४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे चारखानीमें चौरासी योनियाँ समूह या ढेरियाँ हैं, सो भिन्न-भिन्न योनियाँ जो हैं, वे एक-एकसे नहीं मिलती हैं। सब योनियोंके प्राणियोंके स्वभावमें फरक या विरोध लगा है। तैसे ही चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराण, कुरान, बाइबिल आदिकी नाना वाणी और मतवादी भी एक-से-एक विरोधी बने हैं। कोई किसीसे नहीं मिलते हैं, सो उन्होंने मत, पन्थ, सिद्धान्त आदि सब भिन्न-भिन्न ही बना रक्खा है ॥ ६४८ ॥

५. प्रति प्रति योनी कला अपारा * विदित जहाँ तहाँ सोइ पसारा ॥ ६४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! विभिन्न रूपमें प्रत्येक मतवादियोंके योनि वा मजहबोंका स्वभाव न मिलनेपर भी सबोंने ब्रह्म-खुदा आदि कर्त्ताको अपार, अगम, बेचून, बेनमून, मानकर अनेकों कला-कल्पना विस्तार कर रक्खा है। सो संसारमें विदित या जाहिर-प्रगटरूपमें ही हो रहा है। भूमण्डलमें जहाँ-तहाँ सब ठिकाने सोई कल्पित वाणी जाल, अनुमान, भ्रम, धोखाका ही पसारा वा फैलावा हो रहा है। सत्यज्ञान पारख बोधकी प्राप्ति हुए बिना खानी-वाणीके फन्दाओंसे बचाव नहीं होता है ॥ ६४९ ॥

६. विशेष एक देववाच कहावै * कला माँह बहु कला समावै ॥ ६५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें एक विशेष वाणी और दूसरी साधारण वाणी कहलाती है। आमतौरसे सर्वसाधारण जनोंके बोल-चालके शब्दको साधारण वाणी कहा जाता है; और विशेष पढ़े-लिखे विद्वान्लोग ही जो बोल सकते हों वा समझ सकते हों, सो 'देववाच' कहिये देवताओंकी वाचा वा वाणी संस्कृत भाषा या दिव्यवाणी कहलाती है। कहते हैं— पहलेके सत्त्वगुणी देवतारूप मनुष्य, ऋषि-मुनि लोग संस्कृत वाणी बोलकर ही सभी कार्य करते थे, व्यवहार-चलाते थे। धीरे-धीरे भाषाका रूपान्तर होकर संस्कृतका अपभ्रंश हुआ, तो पाली भाषा बनी, उससे प्रान्तीय भाषा देवनागरी जिसे शुद्ध हिन्दी कहते हैं, सो बनी। फिर अनेकों भाषाएँ बनती गयीं। उसमें भी एक देशी भाषा है, दूसरी विदेशी भाषा कहलाती है; उसका विभिन्न भेद है। जैसे देशी भाषामें— संस्कृत, हिन्दी, बङ्गला, मराठी, गुजराती, पञ्जाबी, उड़िया, तैलङ्गी, मद्रासी, काश्मीरी, आशामी, नेपाली, कन्नड़ी, मलयालम, इत्यादि अनेकों भाषाएँ प्रसिद्ध हैं। और विदेशी भाषामें— उर्दू, पारसी, अरबी, बर्मी, चीनी, भोटानी, रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जापानी, जर्मनी, डच, अमेरीकन, इटली, इत्यादि अनेकों भाषाएँ विदेशोंमें बोली जाती हैं। विशेषतः भारतवर्षमें एक संस्कृत वाणी ही सर्वश्रेष्ठ देववाच्य कहलाती है। भारतीय हिन्दुओंके सर्व वेदादि धर्म ग्रन्थ, शास्त्र, साहित्य आदि अनेकों पुस्तकें इसी संस्कृत भाषाके गद्य-पद्यमें ही लिखी हुई हैं। एक वाणीकी कलामें बहुतेक या अनेकों वाणीकी कला-कल्पनाएँ समायी हुई हैं या मिली हुई हैं। सब कोई बिना पारख भ्रमसे कल्पनामें ही पड़े हैं ॥ ६५० ॥

७. शुद्ध अशुद्ध विचारन लागे * विद्या वैयाकरण अनुरागे ॥ ६५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वाणीके ज्ञाता बुद्धिमान् पण्डित लोग जब आपसमें बैठ करके शब्द उच्चारणकी शुद्ध और अशुद्ध रीतिका विचार करने लगे, जब शब्दोत्पत्तिका कथन वर्णन करनेवाली व्याकरण विद्यामें प्रेम लगाये, तब उन्हीं लोगोंने नौ प्रकारके व्याकरण बनाये, उनका नामः— १. कौमुदी; इसमें तीन भाग हैं— लघु कौमुदी, मध्य कौमुदी और सिद्धान्त कौमुदी। २. सारस्वत। ३. चन्द्रिका। ४. मनोरमा। ५. शब्दरत्न। ६. शेखर। ७. मञ्जूषा। ८. भूषण। और ९. भाष्य। अथवा दूसरी प्रकारसे नव व्याकरणका नाम ऐसा कहा है किः— १. इन्द्र, २. चन्द्र,

३. शाकटात्सन, ४. शकटायन, ५. पिशालि, ६. पाणिनि, ७. अमर, ८. जैनेन्द्र और ९. सरस्वती। ऐसे नौ व्याकरण शास्त्रकी रचना करके उसीमें प्रेम लगा करके शब्द शुद्धिका विचार करने और कराने लगे ॥ ६५१॥

८. शब्द निरूपण अनवनि भाँती * तर्कशास्त्र कीन्ह उतपाती ॥ ६५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! व्याकरण द्वारा विचार करके अनेकों प्रकारसे शब्दोत्पत्ति-का निरूपण, कथन या वर्णन कर लिये, तहाँ भाँति-भाँतिकी युक्ति-प्रयुक्तिसे पदच्छेद, अन्वय, समास, शब्दरूप, धातुरूप, साधना, अर्थ, भावार्थ, शब्दार्थ, व्यङ्गार्थ, ध्वन्यार्थ, सङ्केतार्थ आदि तर्क-वितर्क करके तर्कशास्त्र उत्पन्न किया। जिसका नाम तर्क संग्रह, न्यायशास्त्र कह करके मान रक्खा है। उसमें जगत् पदार्थको देखकर सारी सृष्टिकी रचनाका कर्त्ता भी कोई परमेश्वर कर्त्ता होगा, ऐसा अनुमान करके तर्कसे सिद्धान्त स्थापित किया है। परन्तु, उस अनेक प्रकारसे निरूपण किया हुआ कल्पित शब्द ग्रहणसे नरजीवोंके हित-कल्याण वा मुक्तिकी बनाव तो कुछ भी नहीं होता है, बिना पारख ॥ ६५२ ॥

९. छन्द प्रबन्ध कीन्ह बन्धाना * चाल भाव कविताई नाना ॥ ६५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! शास्त्रज्ञ कवियोंने कविता रचना करनेमें सुभिताके लिये छन्दोंकी भी व्यवस्था की है। तहाँ अनुष्टुप् छन्द, दण्डक छन्द, त्रोटक छन्द, भुजङ्गप्रयात् छन्द, गीतिका छन्द, गायत्री छन्द, शिखरिणी छन्द इत्यादि संस्कृत भाषामें छन्द बनाया गया है, तथा कवित्त, सवैया, छप्पै, छन्द, दोहा, चौपाई, सोरठा, झूलना इत्यादि नामोंसे नियमित अक्षरोंका बन्धान या हिसाब कायम करके देशी भाषामें अनेकों प्रकारके पद्य छन्दोंका प्रबन्ध या इन्तजाम किया है। उसमें कहनेकी वा उच्चारण करनेकी भिन्न-भिन्न चाल, न्यारे-न्यारे भाव-कुभाव सहित नाना प्रकारकी कविता, साहित्य, दर्शनोंमें दर्शा करके बना रक्खा है। जिसको पढ़-सुन करके उसी भावनामें पारखहीन सब मनुष्य भूल रहे हैं; उसे परख करके यथार्थ भेद जान लेना चाहिये ॥ ६५३॥

१०. गन अरु अगन तहाँ बिलगाई * विद्या कावर चाल बनाई ॥ ६५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कवियोंने तहाँ काव्य रचना करनेके लिये या कविता बनानेमें 'गण' और 'अगण' का हिसाब अक्षरोंमें नियम भी खूब कायमकर रक्खा है। पण्डितोंने गण-अगणका बिलगाव या भिन्न-भिन्न उसका भेद जिस प्रकारसे कथन किया है, सो सुनिये! तीन अक्षर मिला करके एक 'गण' होता है। सो आठ प्रकारसे आठ गणोंका निरूपण पिङ्गल शास्त्रमें किया है। जैसेः— १. 'नगण' जो है, इसमें तीनों लघु अक्षर हैं (।।।) [नगर] इसका देवता 'नाग' माना है। २. 'भगण' जो है, इसमें आदि अक्षर गुरु है (ऽ।।) [भारत] इसका देवता 'चन्द्रमा' माना है। ३. 'जगण' जो है, इसमें मध्य अक्षर गुरु है (।ऽ।) [जटायु] इसका देवता 'सूर्य' माना है। ४. 'तगण' जो है, इसमें अन्त अक्षर लघु है (ऽऽ।) [तातार] इसका देवता 'आकाश' माना है। ५. 'सगण' जो है, इसमें अन्त अक्षर गुरु है (।।ऽ) [सरिता] इसका देवता 'वायु' माना है। ६. 'रगण' जो है, इसमें मध्य अक्षर लघु है (ऽ।ऽ) [रामजी] इसका देवता 'अग्नि' माना है। ७. 'यगण' जो है, इसमें आदि अक्षर लघु है (।ऽऽ) [यशोदा] इसका देवता 'जल' (वरुण) माना है। ८. 'मगण' जो है, इसमें तीनों अक्षर गुरु हैं (ऽऽऽ) [माताजी] इसका देवता 'पृथ्वी' माना है। ऐसे शब्दोंके अष्ट गणोंका लेखा कवियोंने माना है। इसमें '।'— यह चिह्न लघुका है। 'ऽ'— ऐसा चिह्न गुरुका है; ऐसे आठ गण जो हैं, सो शुभ और अशुभ फल देनेवाले माना है। श्रुतबोधमें इसका भिन्न-भिन्न फल वर्णन किया है। और 'कावर विद्या' कहिये पिङ्गल शास्त्र; उसमें गण-अगणादि मिला करके कविता जोड़कर काव्य बनानेका तरीका वर्णन किया है। पिङ्गल शास्त्रमें भिन्न-भिन्न गणोंका फल भिन्न-भिन्न ही कहा है। यही इस विद्याका वर = श्रेष्ठ विशेष चाल पण्डितोंने चतुराईसे बना

रक्खा है। उसीको पढ़-गुन करके कविलोग कल्पना और विषयादिका वर्णन करके भूले और अन्य लोगोंको भी भुला रहे हैं ॥ ६५४ ॥

साखीः— हाव भाव रस भेद ले * कविताई परचार ॥
[१८६] बन्धे जीव बहुभाँति सो * चीन्हैं नहीं लबार ॥ ६५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! दूसरेको आकर्षण करनेकी चाल, मुद्रा, स्वाङ्ग, सोई 'हाव-भाव' है। तिरछी नजर करके देखना, उसे 'कटाक्ष' कहते हैं। गायनमें नव रसका भेद कहा है। उसका नामः— १. शृङ्गार, २, वीर, ३. करुण, ४. अद्भूत, ५. हास्य, ६. भयानक, ७. बीभत्स (गालियाँ आदि भाषण), ८. रौद्र (यम दण्डादि वर्णन), और ९. शान्त रस कहा है। ऐसे हाव-भावका भिन्न-भिन्न रस अनेकों भेदसे ले करके कवि गुरुवालोगोंने अनेकों कविताके ग्रन्थ बना करके वही बात कह-कह करके जगत्में खूब प्रचार या फैलाव किया है या कर रक्खा है। संसारके बेपारखी नरजीव सब बहुत प्रकारसे विषय-विलास वर्णनकी वाणी और स्वर्ग सुख ईश्वरादिके महिमा वर्णनकी वाणियोंको सुन-गुन करके स्त्रियाँ तथा गुरुवालोगोंके फन्दोंमें खूब बन्धे, जकड़ गये हैं; माया-मोह विषय-कल्पनादिमें लिप्त हो गये हैं। तहाँ सुखके बदलेमें दुःख ही विशेष भोग रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य पारखबोधसे विवेक हुए बिना 'लबार' कहिये मिथ्यावादी गुरुवालोगोंको और झूठी वाणीको तथा झूठे विषयी लोगोंको बन्धन देनेवाले ये लबार कालरूप हैं, ऐसा कोई चीन्हते या पहिचानते ही नहीं हैं। इसीसे उन्हींके वशमें होकर चौरासी योनियोंके दुःख भोग रहे हैं, बिना पारख ॥ ६५५ ॥

साखीः— लबरीमों लबरा फँसा * लबरी लबरा माँहि ॥
[१८७] जीव सुख मानहिं ताहिंमों * जहाँ काल बाँधे गहि बाँहि ॥ ६५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे दुनियाँमें संसारी विषयासक्त गृहस्थ लोग लबरी = छिनार स्त्री, पतित मिथ्यावादिनी वेश्याओंके पासमें जा करके वे लबरा = झूठे विषयी पुरुष स्वयं जा-जाकर फँस जाते हैं; और झूठी व्यभिचारिणी लबरी वे स्त्रियाँ भी लबरा = वे ही झूठे, पामर, गुण्डे, धूर्त, भोगी पुरुषोंसे फँस जाती हैं। फिर उसी विषय व्यभिचारादि कुकर्म करनेमें मूढ़ मनुष्य जीव सुख मानते, गाफिल होकर उसीमें पड़े रहते हैं। जहाँपर कि, काल = स्त्री, पुरुषोंके हाथ-पैर पकड़कर बाँध-बाँधकर मार रही है, महान भव-बन्धनोंके क्लेशमें डाल रही है। सो न देख करके और न पहिचान करके नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं, बिना विचार। इसीप्रकार और परमार्थमें वेद, पुराण, कुरान, बाइबिल आदिकी कपोल कल्पित लबरी = झूठी वाणी सुन-सुन करके उसी वाणी कल्पनामें लबरा = अविचारी मिथ्याग्राही योगी, ज्ञानी, भक्त लोग और अनेक साधक लोग झूठे होकर बिना पारख उसीमें फँस गये हैं वा अरुझ गये हैं। अब वही लबरी = वाणी कल्पना, भ्रम, वर्तमानके लबरा = पक्षपाती अविवेकी मनुष्योंके हृदयमें दृढ़ होकर बैठ रही है। जहाँपर काल = भ्रमिक गुरुवालोग ढोंग, पाखण्ड बढ़ा करके स्वर्गादि प्राप्तिकी अनेक लोभ-लालच दिखाकर मनुष्योंको चेला-चाटी बना करके हाथ पकड़-पकड़ कर वाणी जालोंमें खैंच-खैंचकर बाँध रहे हैं। वहींपर भ्रमसे बन्धनोंमें बद्ध होकर बन्दरकी नाईं उन्हींके सङ्गमें सब अबोध मनुष्य जीव सुख-सन्तोष मान रहे हैं। लुब्ध हो करके उसी जालोंमें ही फँसे पड़े हैं। गुरुवालोगोंके और ईश्वरादिके भरोसासे मुक्ति मान करके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही घूम रहे हैं; बिना पारख ॥ ६५६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५० ॥ [चौपाई- १३ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. कलम मसी मसियानी लाई * शब्द थूल अस्थूल बनाई ॥ ६५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! वाणी लिखनेके लिये जो सामग्री जुटाये सो यहाँपर कहा जाता है। पहले बारीक और मोटा टाकवाले दो-चार कलम इकट्ठा किया; दूसरा काली,

लाल, नीली, हरी, नाना रङ्गोंकी मसी या स्याही बनाया; तीसरा रोशनाई या स्याही रखनेके लिये मसियानी=पात्र, दावात चाहिये; सो दावात सहित यह तीनों चीजें ढूँढ़ करके ले आया, इकट्ठा किया, और कागज भी ले आया। फिर जो शब्द मनमें स्फुरणा हुई थी, सो उसी सूक्ष्म भागको स्थूल अक्षराकार बना करके हाथसे कागजपर सब बात लिख करके पुस्तक बनाया। अथवा कलमरूप जीवने 'मसियानी' कहिये द्वैतरूप जगत्में रह करके 'मसि' कहिये असिपद ब्रह्ममें चित्त लगाया। प्रणव ब्रह्मको जो शब्दरूप सूक्ष्म माना था, सो उसी ॐकारमें पाँच मात्रा लगा करके फिर स्थूलाकार चौंतीस (३४) अक्षरोंसे वाणीको बाहर बना करके प्रगट किया। इसप्रकार सूक्ष्म शब्द और स्थूल शब्दोंको नरजीवोंने ही बनाया है; और दृढ़ कर रक्खा है ॥ ९५७ ॥

२. कला युक्ति अक्षर औ मन्त्रा ❀ प्रगटे रूप धरती लै पत्रा ॥ ९५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर नाना कला-कल्पनाओंकी युक्ति-प्रयुक्तिसे ग्रन्थोंकी रचना की और सोई बातको वेद मन्त्र, सूत्र, श्लोक, भाष्य, भाषा, वार्तिक प्रभृति अक्षरोंके रूपमें बनाये, सोई पिण्डरूपमें बावन (५२) अक्षरोंके आकार बने हैं। तहाँ पृथ्वीके मुख्य भाग कागजको ले करके सारी वाणी पत्राकार पुस्तकोंमें लिखी गयीं। प्रगटमें गुरुवालोग वही कागज-पत्र लिखी हुई पुस्तकोंको ले करके यजमानोंके घरोंमें जाते हैं, वे मन्त्र, श्लोक, अक्षरादि पढ़ करके युक्तिपूर्वक पुरोहिती कर्म करते हैं; ये उन्होंने पेट पालनेकी कला या धन्धा ही निकाला है ॥ ९५८ ॥

३. शब्द उचार सो थूल कहावै ❀ रूपमान अस्थूल देखावै ॥ ९५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मुख द्वारा वैखरी वाणीसे जो-जो शब्द ऊचारण करके बोला जाता है, सो 'थूल'=यानी सूक्ष्म कहलाता है। क्योंकि, शब्द अदृश्य है; कान द्वारा सुनकर जाना जाता है। और फिर वही शब्द कागज-पत्रोंमें लिखे जानेपर श्लोक, दोहा, चौपाई, गद्य, पद्यादि रूपवान् या दृश्यरूपवाला स्थूलाकार नेत्र द्वारा भी देखने, पढ़नेमें आ जाता है; सो उसके स्थूल रूपको सब कोई देखते और दिखलाते हैं ॥ ९५९ ॥

४. सोई पिण्ड पत्रा ब्रह्मण्डा ❀ विदित कला सो सबै प्रचण्डा ॥ ९६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई भोज-पत्र, ताड़-पत्र और कागज-पत्र-पत्रों आदिमें लिखित अक्षरोंके पिण्ड समूह ही बाहर ब्रह्माण्डमें ब्रह्माण्डरूपी वाणी प्रसिद्ध हुई हैं। उसी अक्षर और अङ्क समूहको मिला करके पञ्चाङ्ग नामक पत्रा बनाया गया है। उसीके विचारसे ज्योतिषी लोग बाहर ब्रह्माण्डमें नव ग्रह, नक्षत्रगण, सूर्य, चन्द्रादिकी गतिका वर्णन करते हैं; तथा राशि आदिका मिलान करके पिण्डरूप शरीरादिके सुख-दुःख, हानि-लाभादिका अनुमान किया करते हैं। संसारमें गुरुवालोगोंकी कला-कल्पना, करामात प्रचण्ड या तीक्ष्ण रीतिसे फैली हुई है; सो सबोंको विदित या जगजाहिर ही है। पारख बोधके बिना यही वाणीजाल सब मनुष्योंको धोखेमें डाल रहा है। बिरले पारखी सन्त ही उससे बच पाते हैं ॥ ९६० ॥

५. बहुविधि रूप अस्थूल बनाई ❀ अनबनि भाँति सो रहा छितराई ॥ ९६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकारसे जगत्में भ्रमिक गुरुवालोगोंने बहुत-बहुत युक्तियोंसे विधिपूर्वक अनेकों तरहसे अक्षर समूहोंको एकत्र लिख करके स्थूलरूपमें बड़े-बड़े ग्रन्थ बनाकर जतनसे रक्खे हैं। ऐसे अनेकों स्थूलाकाररूपमें पुस्तकें बनाये गये हैं। उसमें तरह-तरहके अनेकों प्रकारसे अनुमान, कल्पना, भासका विस्तारपूर्वक वर्णन करके भ्रमको छितरा रक्खे हैं। जिससे नरजीवोंका उससे कुछ कल्याण-हित नहीं बनता है; परन्तु, पारखहीन मनुष्य लोग उसी वेद-कुरान आदिकी वाणीके प्रमाणोंसे ईश्वर या खुदा आदि कोई मानकर उनसे अपना हित होनेवाला मान रक्खे हैं; सो यही महाभूल है। अतएव सब जीव वाणी और खानीके जड़ाध्यासी हो करके बहुत प्रकारके स्थूलदेह धारण करके चारखानीकी नाना योनियोंमें अनेक तरहसे छितराये हुए

कर्म फल भोग रहे हैं। यथार्थ पारख बोध द्वारा स्वरूप स्थिति हुए बिना भवचक्रसे जीवोंका छुटकारा नहीं होता है ॥ ९६१ ॥

६. अङ्ग भङ्ग कहुँ बाँचो न जाई * पृथक पृथक कहुँ सुन्दरताई ॥ ९६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! वाणीमें अक्षरोंके भेद या प्रकार भी बहुत किश्मके बने हैं। हिन्दी, गुजराती, बङ्गला, गुरुमुखी, मोड़ी, तैलङ्गी, मलयालमी आदि लिपियाँ भारतमें प्रचलित हैं; और चीनी, अंग्रेजी, रूसी, इत्यादि लिपियाँ विदेशोंमें प्रचलित हैं। इन सबोंके अक्षर भिन्न-भिन्न तरहसे लिखे जाते हैं। सीखे बिना वे अक्षर पहिचाने ही नहीं जाते हैं। कहीं उनमें भी घसीट कर लिखा गया, अङ्ग-भङ्ग हुआ, मात्रा आदि ठीक-ठीक नहीं जुटी, तो वे सीखे हुए अक्षर भी आसानीसे बाँचे या पढ़े नहीं जा सकते हैं। तब न सीखी हुई उर्दू आदि अङ्ग-भङ्ग वाणी कभी कैसे बाँची जा सकेंगी ? कभी बाँची नहीं जा सकेंगी। जहाँ कहीं अक्षरोंको अलग-अलग स्पष्ट साफ-सफाईसे लिखा हुआ रहता है, वहाँ देखनेमें भी वे सुन्दर मालूम पड़ते हैं, और सुगमतासे सब कोई पढ़ भी सकते हैं। अथवा जहाँ भाषा तथा पदमें अङ्ग-भङ्ग बेतुकी बात लिखी रहती है, वहाँ ठीकसे बाँच करके शब्द कहा नहीं जा सकता है; और जहाँ-पर सर्वाङ्ग सुन्दरतायुक्त पृथक्-पृथक् पद भाषामें लिखा रहता है, वहाँ प्रसन्नतासे वह कहा-सुना जाता है; जिसे सुनकर दूसरे भी खुश हो जाते हैं ॥ ९६२ ॥

७. सो जागृत सब शुद्ध कहावै * लिखना पढ़ना शब्द दृढ़ावै ॥ ९६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चैतन्य जीव सोई सबोंका जनैया जागृत=ज्ञान-स्वरूप शुद्ध है। मनुष्य पढ़-गुन वा सीखकर सचेत विद्वान् जब हो जाते हैं, तब सोई जागृत सब वाणियोंको शुद्ध कहने या कहलानेवाले हो जाते हैं। वे पण्डित या मास्टर लोग फिर विद्यार्थियोंको भी शब्द द्वारा ही लिखना-पढ़ना सिखलाते हैं। काव्य, कोश, व्याकरणादि ग्रन्थके प्रमाणसे नाना तरहसे शब्द दृढ़ाते हैं, उसका अर्थ बतलाते हैं। फिर वही शब्दसे ही कोई कल्पित सिद्धान्तोंको दृढ़ कराते हैं। इसप्रकार गुरु द्वारा पढ़कर जानी हुई वाणीको जागृतरूप सोई शुद्ध है; ऐसा सब कोई कहते हैं। पुनः वही शब्द अन्यको भी लिखा-पढ़ा करके दृढ़ाते हैं ॥ ९६३ ॥

८. चतुरत कुत्सित वाक्य अनेका * बहु प्रपञ्च का वर्णों तेका ॥ ९६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई पण्डित लोग चतुरत=कहिये अपनी बुद्धिकी चतुराईसे शब्दको शोभायमान् करके चार प्रकारसे कहते हैंः— १. शब्दके चातुर्य। २. शब्दके अर्थ। ३. शब्दके भाव; और ४. शब्दके बदलावसे रुकावट। ऐसे वाक्चातुर्यसे मनुष्योंको आकर्षित-मोहित करके अपने मतलबको सिद्ध करते हैं; और किसीकी निन्दा करना, विशेष दोष दिखाना, गाली देना, बकवाद करना, उलटी बातें करना, इत्यादि शब्द ही "कुत्सित् वाक्य" कहलाते हैं। ऐसे वाक्य बहुतोंको अरुचिकारक होते हैं; कई पण्डितलोग भी दूसरोंकी मिथ्या निन्दा करके अपना स्वार्थ पूर्ण करते हैं। ऐसे अनेकों प्रकारकी वाणियाँ बनी हैं। इस वाणी-जालके प्रपञ्च, पाखण्ड बहुतेक हैं। उसका वर्णन कहाँतक और कितना किया जाय ? जितना भी कहा जायगा, उतना ही थोड़ा ही है। यहाँपर तो आप लोग जिज्ञासुओंको यथार्थ परखानेके वास्ते ही सभीका सारांश संक्षेपमें थोड़ा-थोड़ा कहा गया है; और बाकीकी बात भी ऐसे ही संक्षेपमें कही जायगी ॥९६४॥

९. लिखि मिटि जग व्यवहार अरुझाना * विविधि विधि जहाँ तहाँ जहँड़ाना ॥९६५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने ऐसा लिखा है कि, सृष्टिके पूर्वमें ब्रह्मकी स्फुरणासे पुरुष-प्रकृति आदि सारा जगत् उत्पन्न हुआ; और ईश्वर कर्त्तासे वेद बना है; उसको ऋषियोंने लिखा है। वही ईश्वरीय ज्ञानका प्रचार संसारमें ऋषियोंने किया; और जो वेद आज्ञाको मिटा करके जगत् व्यवहारमें लिप्त रहते हैं, सो यम-पासमें बँधकर वा अरुझकर महानरकमें ही पड़ेंगे,

इत्यादि ऐसे नाना प्रकारकी वाणियोंको भ्रमिकोंने लिखा है। जीतेतक जगत्के नाना खानी-वाणीके व्यवहार प्रपञ्च विषय भोगादिमें तथा अनेकों साधनाओंमें ही अरुझे और दूसरोंको भी खूब अरुझाये हैं। फिर शरीर छूटनेपर वह सब मिट गया; अध्यासवश जीव सब चौरासी योनियोंके अधिकारी हुए हैं। इसप्रकारसे अनेकों तरहसे विधिपूर्वक जहाँ-तहाँ मत, पन्थ, विषयोंमें पड़े हुए मनुष्य जीव जड़ाध्यासी होकर बन्धे पड़े हैं। आवागमनमें पड़कर दुःख भोग रहे हैं, बिना पारख ॥ ६६५ ॥

१०. नौ विधि अङ्क कला परवाना ❀ दशयें एक शून्य प्रगटाना ॥ ६६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! वाणी बना करके फिर हिसाब कायम रखनेके लिये अङ्क भी बनाया गया है; सो उस बारेमें अब कहा जाता है, सुनिये !— तहाँ खास करके अङ्कका मुख्य भाग एकसे नौ तक प्रमाण किया है। जैसे किः— १। २। ३। ४। ५। ६। ७। ८। ९। ये नौ प्रकारके अङ्कोंकी कला प्रमाणित हुई है; और दशयेंकी गिनती करनेके वास्ते एक शून्य (०) गोल घेराके आकारको प्रगट किया गया है या बनाया गया है। तैसे ही शब्द शुद्धि करके शब्द बोधके लिये भी नौ प्रकारकी व्याकरण कलाको अङ्कित करके प्रमाण किया है। दशयें वेदान्त शास्त्रसे आकाशवत् शून्य एक ब्रह्म सिद्धान्तको प्रगट किया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ६६६ ॥

११. शून्याशून्य दश गुण बढ़ि आई ❀ एक अनेक सो शून्य समाई ॥ ६६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एकमें शून्य लगा करके उसे दश (१०) भाग गिनती किया है। तैसे ही दो में शून्य लगाकर बीस (२०) माना है। तथा क्रमशः शून्य बढ़ा करके आठमें शून्य रखनेपर असी (८०) हुआ; इसप्रकारसे १ में ० रखा, सो १० हुआ, तथा १० में और दूसरा ० रखा, सो १०० हुआ। ऐसे अङ्कके शून्यमें और-और शून्य लगा देनेसे दश-दश गुणा भाग बढ़ता चला जाता है। जितना शून्य बढ़ता है, उतना ही दश गुणा बुद्धिसे हिसाब भी बढ़ता ही जाता है। तहाँ एकसे अनेकों तकके सब हिसाब सोई शून्यमें जा करके समा जाते हैं या मिल जाते हैं। तैसे ही महाकाशवत् माना हुआ ब्रह्म महाशून्य है। ब्रह्मज्ञान होनेसे दशों इन्द्रियोंकी दशों दिशाओंमें आत्मगुण दश गुणा बढ़कर आता है। अन्तमें सो सब एक ही ब्रह्ममें अनन्त जगत् लय होकर शून्यमें समा जाता है, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है ॥ ६६७ ॥

१२. गनती एकते करहिं अनेका ❀ लेखा ता मध्य विविधि विवेका ॥ ६६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अङ्कमें एक (१) से गणना करके नौ (९) तक तो अङ्क भिन्न-भिन्न ही लिखा जाता है। फिर एकमें शून्य डालकर दश (१०) माना जाता है। दश और एक मिल करके ग्यारह होता है, सोई दो एक मिल करके (११) ग्यारह माना है। ऐसे ही वहां नौ तकके अङ्क दुगुना, तिगुना करते हुए हिसाब बढ़ाते हुए ले जाते हैं; और ९ में ० रहा, तो ९० तथा १ में ०० रहा, तो १०० (सौ) इसीतरह शून्य बढ़ानेसे दश गुणा भाग बढ़ती होनेको माना है। जैसे किः— १. एक, २. दश, ३. सौ, ४. हजार, ५. दश हजार, ६. लाख, ७. दश लाख, ८. करोड़, ९. दश करोड़, १०. अर्ब, ११. दश अर्ब, १२. खर्ब, १३. दश खर्ब, १४. नील, १५. दश नील, १६. पद्म, १७. दश पद्म, ८१. शङ्ख, १९. दश शङ्ख, २०. मकर, २१. दश मकर, २२. कच्छप, २३. दश कच्छप, २४. मुकुन्द, २५. दश मुकुन्द, २६. कुन्द, २७. दश कुन्द, २८. महाकुन्द, २९. महामाया, और ३०. अनन्त-असंख्य शून्य ब्रह्म; इसप्रकारसे एकसे लेकर अनन्त-असंख्य शून्य ब्रह्म पर्यन्त गिनती किया है। उन शब्दके अङ्कोंमें जो नम्बर दिया है, सो एकमें बढ़ा हुआ शून्यकी संख्या बतलाता है; सो अङ्क और बढ़े हुए शून्य समूहोंके बीचमें लेखा-जोखा या हिसाब गणित शास्त्रोंमें अनेक तरहसे किया है। हिसाबोंका भिन्न-भिन्न विवेक गणितज्ञोंने नाना भाँतिसे किया है। परन्तु, जड़-चैतन्यके यथार्थ विवेक किये बिना वे धोखेमें ही पड़े हैं।

अथवा और ईसाके पूर्व एक शताब्दीके एक बौद्ध ग्रन्थ "ललित विस्तर" में गणितज्ञ अर्जुन

तथा कुमार गौतम (बोधिसत्त्व) का वार्तालाप वर्णित है। उनके प्रश्नोंके उत्तरमें कोटिके बाद बोधिसत्त्वने गणनाका निम्न प्रकार बतलाया है:—

१०० कोटि = १ अयुत। १०० अयुत = १ नियुत। १०० नियुत = १ कङ्कर। १०० कङ्कर = १ विवर। १०० विवर = १ क्षोम्य। १०० क्षोम्य = १ निवाह। १०० निवाह = १ उत्सङ्ग। १०० उत्सङ्ग = १ बहुल। १०० बहुल = १ नागबाल। १०० नागबाल = १ तितिलम्ब। १०० तितिलम्ब = १ व्यवस्थान प्रज्ञप्ति। १०० व्यवस्थान प्रज्ञप्ति = १ हेतुहील। १०० हेतुहील = १ करहु। १०० करहु = १ हेतु विन्द्रीय। १०० हेतु विन्द्रीय = १ समाप्तलम्भ। १०० समाप्तलम्भ = १ गणनागति। १०० गणनागति = १ निखद्य। १०० निखद्य = १ मुद्रावाल। १०० मुद्रावाल = १ सर्वबाल। १०० सर्वबाल = १ विषमङ्गगति। १०० विषमङ्गगति = १ सर्वज्ञ। १०० सर्वज्ञ = १ विभुतङ्गमा। १०० विभुतङ्गमा = १ तल्लाक्षण। और तल्लाक्षण १०×५३ (दशपर तिरपन शून्य-बिन्दु) यहाँ तक कथन किया है। और जैनग्रन्थ—"अनुयोग द्वार सूत्र" ईशासे १०० वर्ष पूर्वका है। उसमें गणना असंख्य तक की गई है। जिसका परिमाण १०/१४० (दशपर एक सौ चालीस शून्य-बिन्दु) के बराबर है। एक दूसरे जैन ग्रन्थमें भी एक बड़ी संख्याका उल्लेख है, जो ७४,००,०००/२८ (चौहत्तर लाखपर अट्ठाईस शून्य-बिन्दु) के बराबर है॥ इत्यादि प्रकारसे गणित करनेवाले गुरुवालोगोंने नाना तरहसे गणित संख्यामें कल्पनाका बहुत विस्तार कर रक्खा है॥ ६६८॥

१३। ।द्या लेखा अनेक स्वभाऊ ❀ परखहु सो सब कालके दाऊ॥ ६६६॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इस अङ्क लेखन विद्याका हिसाब-किताब चाल, स्वभाव, रीति-रिवाज अनेकों प्रकारकी निकाले हैं। इसमें— पहाड़ा, पौआ, अद्धा, पौना, सवैया, ड्योढ़ा, अढ़ैया, डूँठा, ढ्यौंचा, इकन्ना, गिरैया, जोड़ना, भाग देना, घटाना, बढ़ाना, हाथ लेना, हाथ छोड़ना इत्यादि हिसाब करनेके तरीकोंका स्वभाव अनेकों प्रगट किया है। उसीको पढ़ और पढ़ा करके सीख और सिखा करके जगत् विषय व्यवहारोंके धन्धोंमें वे लोग चतुर बने पड़े हैं। हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो! तुम लोग पारखी साधु सद्गुरुके सत्सङ्गमें पारख करके सत्यासत्यको यथार्थ जानो! सो सब काल=गुरुवालोगोंने अपने जालमें फँसानेको दाव-पेंच ही निकाला है। यह सब जीवको बाँधनेकी मनःकल्पना कालका प्रबल दाव-घात है। इसमें लग करके जीवोंके कोई कल्याण नहीं होगा। तुम्हें परखाकर छुड़ानेके वास्ते ही यहाँपर मैंने यह सब बात दर्शाकर बता दिया हूँ! सो सब कालके दावको परख करके छोड़ दो! और शुभ सद्गुणोंको धारण करके जीवन सफल करो! पारखबोध प्राप्त करके नर तन पानेका लाभ उठाओ!॥ ६६६॥

साखीः— काल कला अरुझावहीं ❀ अधम अनेक व्यौहार॥

[१८८] रार परस्पर जीवन्ही ❀ कहै हमार तोहार॥ ६७०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! काल=स्त्री विषयोंकी कलामें अरुझा करके पुरुषोंको बाँधती है; और यह अधम पामर विषयी पुरुष लोग भी अनेकों व्यवहार करके भी स्त्री-विषयादिमें ही फँसे पड़े हैं। धन-धान्य, स्त्री-पुत्रादिके खातिर दुनियाँमें परस्पर जीवोंमें रार=झगड़ा, टन्टा, फसाद, बैर-विरोध लगा हुआ है। तहाँ हमारा कुल, जात, धर्म, आश्रम, ग्रन्थ, पन्थ सबसे बड़ा है; और तुम्हारा वह सब छोटा है। तू हमारी बराबरी क्या करेगा? तू नीच है; हम उत्तम हैं, इत्यादि झूठे झगड़ोंमें ही पड़कर सब विनाशको प्राप्त हो रहे हैं। अथवा काल=षट्दर्शनोंके गुरुवालोगोंने नाना पाखण्ड कल्पना भ्रमकी कलामें अबोध मनुष्योंको लोभ-लालच दे-देकर अनेकों तरहसे अरुझाया है, और फँसाते ही जा रहे हैं। अधम, दुष्ट ठगोंके जाल-फाँसमें घेरकर जीवोंको बन्धनोंमें डालनेका व्यवहार अनेकों साधनाएँ भक्ति, कर्म, योगादिके नामसे प्रगट किया है। उनके अनुयायी बने हुए भ्रमिक नरजीवोंमें परस्पर पक्षपात, झगड़ा,

हठता-शठता लगी हुई है। कोई हमारा वेदमत बड़ा है, अथवा सनातनी मत बड़ा है, तुम्हारा मत तो हमारेसे छोटा है, इत्यादि कहकर दूसरेको तुच्छ करते हैं। यही "हमारा श्रेष्ठ है, तेरा नीच है" कहते हैं। ऐसें पक्षपातकी बात बता-बता करके एक-दूसरेके विरोधी हुए और हो रहे हैं; बिना विवेक ॥ ६७० ॥

साखीः— मोर तोर सब कालके * ताहि लेखे मति भूल ॥
[१८६] आशा लेखामों बँधा * पाउ घनेरी शूल ॥ ६७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ! स्त्री, पुत्र, धनादिकी और मत, पन्थ, ग्रन्थ, ईश्वर, खुदा आदि वाणी जाल और खानी जालकी यावत् मैं-ममता, मेरी-तेरी सब झूठी है। और मेरा मत उत्तम है, तेरा सब कनिष्ठ है; यह भावना, मानना सब कालके महाजाल हैं। स्त्री और गुरुवालोगोंके हाव, भाव, कटाक्ष और रोचक-भयानकादि वाणियोंको देख-सुन करके उनके लेखा या हिसाबमें कभी मत् भूलो! उनके कुसङ्गमें कदापि भूल करके मत् पड़ो! यदि पड़ोगे, तो तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी। विषयादि सुखोंके आशासे स्त्रियोंमें और चार फल, चार मुक्ति, करामात, ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्तिकी आशा-तृष्णासे जो कोई अबोध मनुष्य उन्होंके लेखा-जोखामें बद्ध हुए, सो सबोंने घनेरी चौरासी योनियोंके शूल=दुःख भोगे। अब यदि तुम लोग भी उन्होंके लेखा पढ़-पढ़ करके झूठी महिमाको सत्य मानकर विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि सुख प्राप्तिकी आशामें उस लेखा या हिसाब, कल्पना, विषयादि मानन्दी, ममतामें बँधोगे, तो जड़ाध्यासी हो करके जन्म, मरण और गर्भवास, एवं विविधि तापोंके असह्य दुःखोंके शूल=कष्ट-क्लेश पाओगे। अतएव अभी सचेत होओ; श्रीसद्गुरुके पारख बोधसे हंसपदकी स्थितिको प्राप्त करके स्थिर हो जाओ! ॥ ६७१ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५१ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. वाचा रचि बहु कला सँवारी * राग रागिनी सृष्टि पसारी ॥ ६७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, इन चार वाणियोंसे या चार वाचाओंसे सोलह स्वर और छत्तीस व्यञ्जनोंकी रचना करके उक्त बावन (५२) वर्णोंमें पाँच मात्राएँ लगा करके विविधि वाणियाँ बनायी गयी हैं। उस वाणीसे बहुतेक कला=भाग तैय्यार किया है। उसमें बहुत ही शोभा बढ़ाया है। तहाँ उन्हीं वाणियोंकी एक कलासे छः राग और छत्तीस रागिनियोंकी सृष्टि करके संसारमें सङ्गीत विशारदोंने फैलाया है या पसारा किया है। उनका नाम इसप्रकार कहा हैः— छः राग और छत्तीस रागिनियोंके सहित उसे गानेकी विशेष ऋतुका वर्णनः— १. ग्रीष्म ऋतुमें— भैरव राग गाया जाता है। भैरवी, वैराटी, माधवी, सिन्ध और बन्ध, ये पाँच रागिनीके सहित भैरव राग कहा जाता है। २. वर्षा ऋतुमें— मेघराज राग गाया जाता है। टङ्किका, मल्लारी, गुर्जरी, भोपाली और देशकार, ये पाँच रागिनीके सहित कहा जाता है। ३. शरद ऋतुमें— मालकोष राग गाया जाता है। टोढ़ी, गौरी, गुणकली, खम्भावती और कुकुभ, ये पाँच रागिनीके सहित कहा जाता है। ४. हेमन्त ऋतुमें— दीपक राग गाया जाता है। देश, कामोद, नट, केदार और कान्हरा, ये पाँच रागिनीके सहित कहा जाता है। ५. शिशिर ऋतुमें— श्रीराग गाया जाता है। भारवा, धनाश्री, वसन्त, मालश्री और आशावरी, ये पाँच रागिनीके सहित कहा जाता है। ६. वसन्त ऋतुमें— हिण्डोल राग गाया जाता है। रामकली, देशाख, ललित, बिलावल और पटमञ्जरी, ये पाँच रागिनीके सहित कहा जाता है; और खमाज, पीलू, कल्याण, बनजारा, काफी, और कालीङ्गड़ा, ये छः रागिनी मिला करके छत्तीस (३६) रागियाँ छः रागोंमें मानी गयी हैं। अथवा आधुनिक प्रचलित छः रागोंकी छत्तीस रागियाँ निम्न प्रकारसे भी माना हैः— (१) श्रीराग है। इसमें— मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधु माधवी, और पहाड़ी, ये छः रागिनियाँ कहा है। तैसे ही सबोंमें जानना। (२) वसन्त राग है। इसमें— देशी, देवगिरि, वैराटी, टोरिका, ललित, और

हिण्डोल, ये छः हैं (३) पञ्चम राग है। इसमें— विभास, भूपाली, कर्णाटी, पटहंसिका, मालवी, और पटमञ्जरी, ये छः हैं। (४) भैरव राग है। इसमें-भैरवी, बङ्गाली, सेंधवी, रामकेली, गुर्जरी, और गुणकरी, ये छः हैं। (५) मेघराज राग है। इसमें— मल्लारी, सैरिटी, सावेरी, कैशिकी, गान्धारी, और हरश्रृङ्गार, ये छः हैं। (६) नटनारायण राग है। इसमें— कामोदी, कल्याणी आभीरी, नाटिका, सारङ्गी, और हम्मीरी, ये छः हैं। प्रथम महादेव और पार्वतीने ये छः राग और छत्तीस (३६) रागिनियाँ गायन करके निकाला है, किसीने ऐसी कल्पना की है। ऐसी वाणियोंको रचकर बहुत कला जो बनाया है, उसमें ये छः राग और छत्तीस (३६) रागिनियाँ भी वाणीकी सृष्टिमें उत्पन्न करके गायक मनुष्योंने पसारा किया है। ॥ ६७२ ॥

२. विद्या सो सङ्गीत कहाई ❀ विशेष प्रीति ताहि दृढ़ लाई ॥ ६७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! यही राग-रागिनियाँ सहित ताल मिलाकर ऊँचे स्वरसे गायन करनेकी कला सोई सङ्गीत विद्या कहलाती है। तहाँ हारमोनियम सीतार, तबला, ढोलक, खँजड़ी, मृदङ्ग आदि साज-बाज सहित धुन बाँधकर सङ्गीतमें गीत गाते हैं। उसीमें बहुतेक रजोगुणी सङ्गीत प्रेमी मनुष्योंने विशेष प्रीति दृढ़ करके मन लगाया है, और मन लगा रहे हैं। सङ्गीतमें आसक्त होकर विशेष लोगोंने उसीमें दृढ़ प्रीति लगा रक्खी है ॥ ६७३ ॥

३. तीनि ग्राम सोइ नारि विराजै ❀ स्वर सो सात स्वर्ग सोइ छाजै ॥ ६७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सङ्गीतमें सात स्वरोंका उच्चारण होता हैः— सा। रे। ग। म। प। ध। नी। इन सात अक्षरोंके साथ-साथ ध्वनि निकालते हैं। उसमें— "सा। म। नी" यही तीन ग्राम हैं। इन्हीं तीन ठिकानेपर स्वर शब्द ठहराया जाता है; और चारोंमें आवाज चढ़ाया जाता है। सोई तीनि ग्रामरूप "सा। म। नी" ये तीन अक्षरोंमें नारि=प्रकृतिरूप रागिनियाँ विराजमान रहती है। बाकी चारों अक्षरोंमें पुरुषरूप रागोंका निवास माना है। वही सात प्रकारके स्वर मानव समाजमें सात स्वर्गकी शोभाकी छायाका आनन्द दिखलाता है, ऐसा कहा है; और सात स्वर्गमें भी सोई सात स्वरोंके सङ्गीतोंकी शोभा छायी है, ऐसी कल्पना किया है ॥६७४॥

४. शब्द अलाप सो थूल सँवारी ❀ पुरुष सो राग रागिनी नारी ॥ ६७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गायन कलामें प्रथम गिड़गिड़ा करके "हाऽआऽहाऽ" ऐसे शब्दका आलाप=ध्वनि उच्चारण करते हैं। कुछ देर वैसे ही "हाऽआऽहाऽऽ" आलाप चिल्ला करके फिर गाना गाते हैं। तहाँ आलापमें जो शब्द होता है, सो सूक्ष्मरूपसे ही खड़ा करके सजाया जाता है। गाना गानेपर सोई स्थूलरूपमें प्रगट होता है, ऐसा माना है; और सो षट् राग पुरुषके भाग होनेसे पुरुषरूप हैं, तथा छत्तीस रागिनियाँ नारीका भाग होनेसे स्त्री या प्रकृतिरूपी हैं। ऐसे प्रकृति-पुरुषकी जाड़ी मिलाकर राग और रागिनियाँ बनी हैं, ऐसा माना है ॥ ६७५ ॥

५. कला ताल गति नाच उपाई ❀ सो स्थूल ले प्रगट देखाई ॥ ६७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सङ्गीतकी और भी कई कलाएँ या भाग हैं। गानाके रागके साथमें तबलोंके ताल भी मिलाते हैं। तहाँ मुख्य ताल तो तीन कहा हैः— १. ब्रह्मताल, २. रुद्रताल, और ३. लक्ष्मीताल। इसमेंसे— त्रिताल, चौताल, सप्ततालं, दादरा, धमार, लावणी, दीपचन्दी, ऐसे और कईएक ताल निकाला है। तबला बजानेके कला-तालमें:—"धिन्-धिन् धिन्ना, ताधिन् धिन्ना, ताके धिन् धिन्ना, चटपट धिन्ना, गिटिटि-गिटिटि धिन्नाता-अलबल धिन्नाता"— इसप्रकारके ताल या चाल सिखाया जाता है। और गायन कलामें राग-रागिनियोंके उपयुक्त मिलित ताल, स्वरकी गतिमें हाव, भाव, कटाक्ष करके हाथ-पैरोंकी अंगुलियाँ नचाय, झुकाय, देह मटकाय, चटकाय, ठुमुक-ठुमुक पैर ठोंक-ठोंककर घुँघुरू बजाय-बजाय चक्कर लगाय, उछल-कूद, दौड़ लगा करके इत्यादि अनेकों प्रकारसे नाच नाचनेकी तमाशा दिखलानेकी

कला नट लोगोंने उत्पन्न किया है। सो स्थूल शरीर और स्थूल साज-बाजोंको ले करके प्रत्यक्षमें प्रगटरूपसे सबोंको दिखलाते हैं। ऐसा देखनेमें जो आता है, सो इसका स्थूल भाग है ॥ ९७६ ॥

६. चाल अनेक योनि सो कीन्हा ❀ बाजा अनबनि बासा दीन्हा ॥ ९७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनेकों प्रकारकी चाल— हँसकर, रोकर, नाचना-गाना, त्यागी-रागी, राजा-रानी आदिका स्वाङ्ग बनाना, नकल करना, स्त्रीका रूप बनाना और स्त्रीको पुरुषका रूप बनाना, यही विभिन्न योनियोंकी चाल-चलन हैं, सो नाचने-गानेवालोंने प्रगट किया है या बनाया है। उसमें वासना या खुशीके अनुसार अनेकों प्रकारके बाजे बजा करके उसीमें मन ठहरा करके बासा कर दिये हैं। सितार, सारङ्गी, तबला, हारमोनियम, जलतरङ्ग, करताल, झाँझ, बाँसुरी, वीणा, सहनाई, ढोलक, खँजड़ी, चिमटा, भेरी, दुन्दुभी, घण्टा, मृदङ्ग, शङ्ख, पियानो, बिगुल, नागफनी, इत्यादि अनेकों प्रकारके बाजाएँ बनाय-बनाय उसे बजा-बजाकर रागी जीवोंने उसीमें बासा या स्थिति कर लिया है ॥ ९७७ ॥

७. अपने अपने समय सोहाई ❀ अङ्ग भङ्ग सुनिके घिनियाई ॥ ९७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो वह राग-रागिनियाँ और नाचना-गाना भी अपने-अपने समयपर यथोचित करनेपर ही शोभा देता है या अच्छा लगता है। [तहाँ राग-रागिनियोंके गानेका ऋतु-समय ऊपरके चौपाई ९७२ की टीकामें लिखा जा चुका है।] प्रभाती, भैरवी आदि सबेरे गाते हैं। सारङ्ग राग दो पहरमें, पीलू तीसरे पहरमें गाते हैं। गौरी, सन्ध्या, आरती, शामको गाते हैं; ईमन, देश, सोरठ, विहाग, रात्रिको गाते हैं। ऐसे राग-रागिनियोंके गानेका निर्धारित समय मान रक्खा है। सो उन्होंके अपने-अपने समयमें गानेपर ही वह सुहाता है या भाता है। अगर उसमें अङ्ग-भङ्ग हो गया, बेटाइमका गीत किसीने गाया, तथा ऋतु विरोध-का राग किसीने अलापा, तो सङ्गीतज्ञ, गानाके प्रेमीलोग तब नाराज होकर गानेवालेसे घृणा, अप्रेम करते हैं; और पूर्ण साज-बाज मिला करके गाया हुआ गानाको ही सुन करके प्रसन्न होते हैं। यदि उसमें त्रुटि हुई, अङ्ग-भङ्ग हुआ, तो ऐसे देख-सुनकर गायक रसिक लोग घिनियाते हैं; वहाँसे उठ करके चल देते हैं ॥ ९७८ ॥

८. शुभ अरु अशुभ मिलाइ प्रसंगू ❀ काम कलाके बहुत तरंगू ॥ ९७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भिन्न-भिन्न अवसरमें दुनियाँमें नाच, गाना, बजाना होता है। जैसे बालक जन्मनेपर तो कोई-कोई बन्दूक छोड़कर आवाज करते हैं, छठी, अन्नप्रासन, अक्षरारम्भ, व्रतबन्ध, विवाह, त्यौहार, उत्सव, लीला, कथा, कीर्तन आदिको शुभ समयका प्रसङ्ग कहते हैं; और रोग, शोक, अनिष्टका बचाव, मृत्यु, तेरहीं, श्राद्ध आदि प्रसङ्गोंको अशुभ माना है। ऐसे 'शुभ' और 'अशुभ' समयका प्रसङ्ग मिला करके उसीके अनुसार रोना, गायन करना, कीर्तन, नाच, तमाशा आदि संसारी लोग करते-कराते रहते हैं। यह सब काम भोगोंकी कला मनकी बाढ़, विषयासक्तिकी तरङ्गें हैं। ऐसी बहुतेक तरङ्गें काम-कला, विषय सागरके भवसागर या संसारमें फैली हुई या छायी हुई हैं। उन्हीं तरङ्गोंमें सब पारखहीन मनुष्य उजबुजा करके बहते हुए डूबते जा रहे हैं। कोई बिरले ही जिज्ञासु मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुदेवके शरण-सत्सङ्गमें रहकर बच पाते हैं ॥ ९७९ ॥

९. विरह हर्ष अरु शोक बधावा ❀ शोभा बहुतक विविधि बनावा ॥ ९८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अविवेकी मनुष्य लोगोंने जिन स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धवोंमें प्रेम-मोह लगा रक्खा है, उन्होंका कभी वियोग या बिछुड़न हुआ, तो मारे विरहके व्याकुल, अधीर हो जाते हैं। स्त्री वियोग-विरहकी व्यथा पुरुषोंको होती है, और पुरुष वियोग, विरहकी व्यथा स्त्रियोंको सदा खटकती रहती है; और यदि कभी बिछुड़े हुए परदेशीलोग समय-

संयोगसे आकर मिल गये, तो बड़ा हर्ष, आनन्द, प्रसन्नता होती है; और यदि कोई प्रियजन मर गया वा रोगी हुआ, कोई हानि हुई, तो बड़ा शोक मना करके रोना, चिल्लाना, पछाड़ खाना करते हैं। और कभी पुत्र, पुत्री, पौत्रादिका जन्म हुआ, तथा धनादि जागिर मिला, बड़ी पदवी या बड़ा ओहदा मिला, जन्मोत्सवादि हुआ, विवाह वगैरह हुआ, तो लोग उन्होंको बधाई देते हैं वा बधाई देने आते हैं। शुभ कामना करते हैं, आशीर्वाद देते हैं, धन्यवाद देते हैं, बड़ाई करते हैं। इसप्रकारसे गायन कलाकी शोभा, रोचकता बढ़ा करके विविधि प्रकारसे बहुतेक जाल-जञ्जाल मनुष्योंने बनाये हुए हैं। अथवा देवी-देवता, राम-कृष्णादि अवतार तथा ईश्वरादिके विरहमें व्याकुल रहते हैं और पुराणादि कथासे महिमा सुन करके या कल्पित रूपको ध्यानादिमें देख करके हर्षित होते हैं। और यम यातना, नरकके दुःख वर्णन सुनकर शोक, भय करने लग जाते हैं; फिर राम लीला, रास-लीलादि उत्सवमें बधावा देते हैं। बाजा बजा-बजा करके भजन कीर्तन करना, मन्दिरोंमें मूर्तियोंको सजा करके शोभा-सुन्दरता आदि बहुतेक चाल अनेकों तरहसे गुरुवालोगोंने बनाया हुआ है ॥६८०॥

१०. बहु विस्तार रची सो फन्दा ❀ होय रहै जिव परवश अन्धा ॥ ६८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे-ऐसे खानी-वाणीके बीचमें अनेकों फन्दा या जाल मनुष्योंने बहुत विस्तारपूर्वक खूब बढ़ा-चढ़ा करके संसारमें सोई रचना कर रक्खे हैं या रचे हुए हैं। उसी जालोंमें अरुझे और अरुझा करके मनुष्य जीव सब अपरोक्ष पारखबोधके हुए बिना अविवेकी, अन्धे, भ्रमिक, मदान्ध, कामान्ध हो-हो करके स्त्री और गुरुवालोगोंके तथा काम-क्रोधादि, मन-मानन्दी आदिके अधीन परवश हो रहे हैं। बाजीगरके बन्दरके समान जड़ाध्यासी जीव परवश होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़कर दुःख भोग रहे हैं ॥ ६८१ ॥

११. राम कहानी सुनै न काना ❀ मस्त रागके भये दिवाना ॥ ६८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ये विषयी पामर मूढ़जन कितनेक तो रामकी कहानी, रामके इतिहासको सुनते-समझते तक भी नहीं हैं, राग-रङ्गके ही कारणसे रामके रङ्गमें भी भङ्ग हो गया था, सो नहीं समझते हैं; और रामायणादिकोंकी अच्छी बातों तकको भी कानसे सुनते तक नहीं हैं। रामने न्याय-नीति धर्मका पालन किया था। माता-पिता और गुरुकी आज्ञाका पालन किया था। वे भाइयोंमें सद्भावका प्रेम रखतेथे; एक स्त्री-व्रतको ही जन्मभर रामने पालन किया था। ऋषि, मुनि, साधुओंकी सेवा, पूजा, सत्कार किया था। राजनीति और धर्मनीतिमें ठहरा था। वनवासके समयमें दुःख और राज्यकी प्राप्तिके समय सुख भोगते हुए भी धैर्यसे कर्त्तव्यको नहीं छोड़ा, इत्यादि अच्छी बातें रामकी कहानी=रामायण सुननेसे मालूम होती हैं। सो ऐसी बातोंको तो वे लोग कानोंसे सुनते तक नहीं हैं। रागी मनुष्य राग-ताल, नाचना-गाना विषय भोगादिमें ही मस्त बेहोश दिवाने यानी पागलके समान हुए या हो रहे हैं। फिर वे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें तो कभी नहीं आते हैं, यदि कभी कोई कार्यसे आ भी गये, तो वे लोग राम=देहमें रमे हुए चैतन्य जीव निज स्वरूप बोध दायक ऐसी कहानी=सत्य निर्णयका सदुपदेश गुरुमुख वाणीको कभी कान लगा करके सुनते ही नहीं हैं। व्यवहारकी बात भर करके चल देते हैं। राग-तानकी मस्तीमें वे लोग दिवाने ही हुए पड़े हैं। वैसे जीवोंका कल्याण भला ! कैसे करके होवेगा ? कभी न होवेगा ! ॥ ६८२ ॥

१२. विविधि चाल बाजा दरशावै ❀ पिण्ड ब्रह्माण्डमें शब्द समावै ॥ ६८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गायक लोग और कई तरहोंकी चालोंसे बाजाएँ बजाकर दिखलाते हैं। कोई मुखसे फूँक करके बजाते हैं, कोई तो हाथोंसे हिला-डुला कर बजाते हैं, कोई तो पाँवसे ठोंक ठोंक कर छम-छमा करके बजाते हैं, कोई तो अंगुलियाँ फेरकर बजाते हैं, और कोई डण्डोंसे ठोककर बजाते हैं। ऐसे नाना चाल-चलनसे अनेकों प्रकारकी आवाज-ध्वनियोंको निकालकर बाजा बजानेकी कला दिखलाते हैं वा दिखाई देती हैं। संसारी लोग पिण्डमें पूर्वोक्त प्रकारसे बाजाएँ

बजाकर राग-रङ्गादिमें समा करके विषय भोगोंमें आसक्त हो कर पड़े हैं। योगी, ज्ञानी और भक्त लोग दोनों कानोंको ठेढ़ी या अंगुलियोंसे बन्द करके श्वासमें सुरति लगा करके चित्तको एकाग्र कर मस्तकरूप ब्रह्माण्डमें सुनाई देनेवाला दश नाद अनहद ध्वनि शब्दको सुनकर वृत्ति उसीमें लय करके शून्यमें समा जाते हैं। ऐसे भोगी और योगी लोग पिण्ड और ब्रह्माण्डमें शब्दादि विषयोंमें ही समा करके जड़ाध्यासी बद्ध हुए हैं और बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ ६८३ ॥

साखीः— अपने अपने जालमें * सबै फँसावा जाल ॥

[१६०] बहुत भाँति उपजायके * ग्रासै काल कराल ॥ ६८४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! अनादि कालके संसारमें चतुर्वेदी, षट्शास्त्री, पौराणिक, गणितज्ञ, ज्योतिषी, गायक, नट-नाटकी, कुरानी, पारसी, बाइबिली, बौद्ध, जैन इत्यादिकोंने अपने-अपने मन-कल्पनासे भिन्न-भिन्न वाणी-खानीके नाना जाल बनाया है। वे सब तो उन्हीं जालोंमें फँसे रहे, और लोगोंको भी उनके शक्तिभर अपने-अपने जालोंमें सबोंने सबको फँसाया है या फँसा रहे हैं। उन्होंने बहुत भाँति-भाँतिसे छल-बल, कपट, उपाय, नाना चाल, रीति-रिवाज उपजा करके या प्रगट करके ये भयङ्कर या विकराल दुष्ट स्वभाववाली कालरूप स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंने सब अबोध मनुष्योंको लोभ-लालच दिखा करके ग्रास लिये, पकड़े, फँसाये, भुलाये, फिर जकड़ाकर बाँध रक्खे हैं और अभी उसी तरहसे ग्रास ही रहे हैं ॥ ६८४ ॥

साखीः— तब का चेतहु बावरे! * जब मुख परिहो काल ॥

[१६१] यहि औसर है परख ले * छूटहु महा भव जाल ॥ ६८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे बावरे भूले हुए मनुष्यो! अब तो भी चेत करो! जब तुम्हारा शरीर ही छूट जायगा; काल, कल्पना, मृत्यु, अध्यासोंके मुखमें उनके घेरा-बन्धनोंमें जिस वक्त पड़ जाओगे, तब कहो तो भला! क्या चेतोगे? तब तो शरीर छूटनेपर पशु आदि चौरासी योनियोंमें परवश होकर पड़ जाओगे। वहाँ चेतने, समझने-बूझनेका अवसर ही तुम्हें नहीं मिलेगा। "जब बुढ़ापा आवेगा, तब चेत करेंगे; परमार्थ-सत्सङ्गमें लगेंगे! अभी जवानीमें तो घर-गृहस्थी करना है, विषय रस लेना है!" ऐसा जो तुम कहते हो, तो क्या तुम पागल तो नहीं हो गये हो? दिवाने लोग ही ऐसी बेसमझकी बात करते हैं। कब शरीर छूट जायगा? इसका निश्चित समय क्या तुम्हें मालूम है? यदि बीचमें ही शरीर छूट गया, तब चौरासी योनियोंमें ही जाओगे, फिर क्या चेतोगे? अगर शरीर रहा भी तो कालरूप स्त्री तथा गुरुवाओंके मुख्य खानी-वाणीके महाजालोंमें बँध जाओगे। मनकी अनेक आशा-तृष्णादिमें पड़ जाओगे, तब क्या कुछ चेत सकोगे? कदापि चेत नहीं सकोगे। इसकारणसे अभी चेतो! जागो! उठो! अपने कल्याणके शुभ कार्यमें तत्पर होकर लगो! जीवको मनुष्य जन्म जो प्राप्त हुआ है, यह तो अच्छा शुभ अवसर है; यह कर्म भूमिका है। यहाँ जो कुछ कर्म संस्कार बनाया जाता है, सो पक्का हो जाता है। वही फिर अनेकों जन्मोंमें भोगनेका साधन-बीज हो जाता है। अतएव यह शुभ अवसर अच्छा मौका तुम्हें अभी मिला है; यह जवानीमें ही अपने सुधार हित-कल्याण होनेका कार्य कर लो! और सत्यन्यायी सत्य बोधदाता पारखी श्रीसद्गुरुदेवकी शरण-सत्सङ्गमें जाकर सत्यासत्य, जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिकी सब बातोंको जान लो! यह खानी-वाणीके फन्दाओंको यथार्थ परख करके बन्धनोंको छोड़ दो! निजस्वरूपकी स्थिति कायम कर लो! पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे, तथा निज सत्पुषार्थसे यह महान भवजालरूप अनुमान-कल्पना विषयादिके आसक्तिसे अभी जीते जी छूट जाओ! तभी जीवन्मुक्त हो सकोगे; वही निज कर्त्तव्य अपना है, ऐसा जानलो! ॥ ६८५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५२ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. रचि अनेक विद्या विधि नाना * लौन पलाका कीन्ह बन्धाना ॥ ९८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मादिक महर्षि, ऋषि-मुनि आदि पण्डितोंने उनके अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार वेद विद्या, उपवेद विद्या, चौदह विद्या, चौंसठ (६४) कला, लोक विद्या, परलोक विद्या, भूगोल-खगोल विद्या, इत्यादि अनेकों विद्याओंको विधिपूर्वक नाना तरहोंसे रचना करके विस्तार किया है। तहाँ श्वास वायुमें लक्ष्य लगा करके ज्यौतिषमें गणित विद्याकी कल्पनासे हिसाबका बन्धान इसप्रकार कथन किया है कि— तीन बार श्वास आते-जाते हुए चले, उतना समयको एक 'लौन' कहते हैं; और वैसे दो 'लौन' मिलकर एक 'पला' माना है। एक 'पला'में छैः वक्त श्वास चलते हैं। ऐसे 'लौन' और 'पला'का ठहराव करके उसी हिसाबसे आगे समयका विस्तार करके बन्धान कायम किया है, ऐसा जानिये ! ॥ ९८६ ॥

२. सोई आशा निश्चय धागा * भास दृष्टि सेवन दृढ़ लागा ॥ ९८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ईश्वर, ब्रह्म, स्वर्ग, मुक्ति, चार फलादि प्राप्तिकी आशासे वेदादि वाणी कल्पनाका जो निश्चय किया है, सोई धागाके समान सूक्ष्म वासना या लक्ष्य बढ़ता गया। भ्रमिक लोग धावते हुए भ्रममें ही बढ़ते गये हैं। ध्यान, धारणा, समाधिसे तथा मन-मानन्दीसे जो-जो भास-अध्यास हृदयमें दृढ़ हुआ, सोई प्रतीति करके विवेकदृष्टिके बिना उसे ही सेवन करने लगे। भासिक जीव निज सत्य स्वरूपको न जान करके भास दृष्टिको ही सेवन, ग्रहण कर दृढ़ करने लगे। पारख बोध हुए बिना भ्रम, कल्पनामें ही पड़ करके गाफिल हुए हैं ॥९८७॥

३. दृष्ट बन्द बाजी देखलाई * फन्द फरफन्द बहुते अरुझाई ॥ ९८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देखनेवालोंको भुला करके दृष्टिमें पर्दा डालकर चतुराई-हाथकी सफाईसे जैसे बाजीगर लोग झूठी तमाशा-खेलको भी सत्य सरीखा दिखा देते हैं। परन्तु, खेल तो झूठा ही होता है। तैसे ही गुरुवालोगोंने भी आँखें मूँदकर ध्यान लगा करके जो-जो कल्पना किया, सो सब वाणीमें लिख रक्खा है। मनुष्योंकी विवेकदृष्टिको बन्द करके रोचक-भयानक वाणी सुनाकर वही वेद-कुरान आदिकी वाणी गुरुवालोग मनुष्योंको दिखला करके पढ़कर सुनाते हैं, उन्हें भ्रमाते हैं। अनेकों मत-पन्थवाले एक वाणी कल्पनाके फन्दामेंसे अनेकों भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंके फन्दा-जालोंको रचकर अपने स्वयं अरुझ गये हैं, और दूसरे बहुतेक मनुष्योंको भी वही फन्द-फरफन्दोंमें फँसाकर अरुझाये हैं; अभी वैसे ही अरुझा ही रहे हैं॥ ९८८ ॥

४. तीन श्वास त्रिगुण अनुरूपा * एक लौनको किया स्वरूपा ॥ ९८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! लौन, पलादिकोंका हिसाब यहाँपर और भी पुष्ट-स्पष्ट करके कहा जाता है। देहमें जैसे रज, सत्त्व और तम, ये त्रिगुण हैं, तैसे ही श्वासमें भी इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीन नाड़ियाँ त्रिगुणोंके सूक्ष्मरूपसे ही बनी हैं। इङ्गला रजोगुणका रूप है, पिङ्गला सत्त्वगुणका रूप है और सुषुम्ना तमोगुणका रूप है। उन त्रिगुणोंके समान श्वास वायु सूक्ष्मगतिसे जब तीन बार चलती है, तब सो उसका स्वरूप एक 'लौन' का हुआ; यह निश्चय किया जाता है। अथवा तीन श्वास मिलकर एक लौनका स्वरूप कायम किया है। अर्थात् तीन बार श्वास चलतेमें जितना समय लगता है, उसको एक 'लौन' का समय कहते हैं। ये गुरुवालोगोंके कल्पनाके अनुसार समयका माप बतला करके परखाया जा रहा है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ९८९ ॥

५. दुई लौन मिलि मेष बनाई * सोई मेष पला उपजाई ॥ ९९० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! छैः दफे श्वास-उच्छ्वास चला, तो दो 'लौन' का समय हुआ, सोई दोनों 'लौन' एकमें मिला करके मेष या निमिषका समय बनाया है; निमिष जो उत्पन्न हुआ, सोई उसका दूसरा नाम 'पला' कहलाया। नेत्रोंकी पलकें लगने-खुलनेके

उतने समयको निमिष या एक 'पला' कहते हैं। यह हिसाब कथन करके गुरुवालोगोंने वाणी उपजाया है ॥ ६६० ॥

६. साठि पला एकठाईं कीन्हा * तेहि परवान दण्ड रचि लीन्हा ॥ ६६१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर साठ (६०) पला या साठ (६०) निमिषको इकट्ठा करनेपर जितना समय व्यतीत होता है, उतने वक्तको ही प्रमाण करके एक दण्डकी नामसे वाणी रचना या कल्पना कर लिया है। तहाँ एक घड़ीको ही एक दण्ड भी कहा है। अर्थात् साठ पलाकी एक घड़ी हुआ, इसी रचनाको गणितमें प्रमाण करके मान लिया है ॥ ६६१ ॥

७. साठ दण्ड सो दिन औ राती * चारि चारि तेहि पहर उतपाती ॥ ६६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दिन तथा रात्रिके चौबीस (२४) घन्टोंके समयमें साठ दण्ड सोई साठ घड़ी हुई। यानी साठ दण्डका समय दिन-रात मिलाकर हुआ है। इस हिसाबसे एक घन्टामें ढाई (२½) घड़ी होती है। और दिन-रातमें आठ प्रहरोंकी उत्पत्ति किया है। चार प्रहरोंकी रात और चार प्रहरोंका दिन बना है। तहाँ साढ़े सात (७½) घड़ी या तीन घन्टोंका एक प्रहर कायम हुआ; और चार प्रहरोंमें तीस (३०) घड़ी, उसका बारह (१२) घन्टोंका टाइम निकल आया है ॥ ६६२ ॥

८. चार पहर चौ कला उपाई * बाल कुमार युवा वृद्धाई ॥ ६६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चार प्रहरोंमें पहला प्रहर— ७ बजेसे ६ बजे तक है। दूसरा प्रहर— १० बजेसे १२ बजे तक है। तीसरा प्रहर— १ बजेसे ३ बजे तक है; और चौथा प्रहर— ४ बजेसे ६ बजे तकके समय हिसाबसे कायम हुआ। उन चार प्रहरोंमें उपरोक्त चार भागरूप चार कला बाहर उत्पन्न किया है। और तैसे ही पिण्डमें बालक, कुमार, युवा और वृद्ध, ये चारपनको ही चार प्रहरोंके रूपमें माना है। तहाँ जन्मसे लेकर ५ वर्ष तक, बाल्यपन कहा है, ६ वर्षसे लेकर १५ वर्षों तक कुमारपन होता है, फिर १६ वर्षसे ४८ वर्ष तक युवा अवस्था माना है; और ४९ से ऊपर वृद्धावस्थामें प्रवेश होना माना जाता है ॥ ६६३ ॥

९. चार पहर एक रूप उपाना * आठ पहर दुइ होय प्रगटाना ॥ ६६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चार प्रहरोंमें दिनका एक उजियाला रूप है; और चार प्रहरोंमें रात्रिका एक अँधियारा रूप होता है; ऐसे आठ प्रहरोंके दो भागका ही दो रूप होकरके जगत्में प्रगट हुआ है। सो ब्रह्म-पुरुषसे तो दिन हुआ, तथा माया-प्रकृतिरूप स्त्रीसे रात्रि उत्पन्न हुई है। ऐसी कल्पित वाणीको गुरुवालोगोंने प्रगट किया है ॥ ६६४ ॥

१०. छौसै सहस्र एकईस परवाना * दिन औ रात श्वास अनुमाना ॥ ६६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसी उपरोक्त हिसाबसे जोड़ मिला करके तहाँ एकईस हजार छः सौ श्वास-उच्छ्वास दिन और रात्रिकी साठ घड़ियोंमें मिला कर चल जाता है। ऐसा अनुमानसे योगीलोगोंने प्रमाण माना है। तहाँ निरोग मनुष्यके एक पलकमें छः बार श्वास वायु आते-जाते चलनेकी गिनतीसे एक मिनटमें १५ श्वास चलता है, और ६०० श्वासकी गति १ घन्टामें चलती जाती है, इसीतरहसे दिन-रातके २४ घन्टोंमें २१६०० श्वास-उच्छ्वास चलनेका अनुमान प्रमाण किया है; और षट् चक्रोंमें उसके बटवारा करनेकी भी कल्पना योगी लोगोंने किया है। पारख द्वारा परखकर उस अनुमान-कल्पनाको त्याग देना चाहिये।

अन्यत्रका प्रमाण (मनु स्मृतिः १। ६४) आँखोंके खुलने-मूँदनेको 'निमिष' या 'पलक' कहते हैं; उन अठारह पलकोंका एक 'काष्ठा' समय हुआ; तीस काष्ठाओंकी एक 'कला' हुई; तीस कलाका 'एक मुहूर्त्त' होता है; और तीस मुहूर्तोंका 'एक अहोरात्र' या दिन-रातका समय होता है ०

अथवा समयका माप हिन्दुस्तानी रीतिसेः— ६० अनुपलका १ विपल। ६० विपलका १ पल।

६० पलका १ घड़ी वा दण्ड। २½ घड़ीका १ घन्टा। ७½ घड़ीका १ प्रहर। ६० घड़ी या २४ घन्टा या ८ प्रहरोंका १ दिन-रात। ७ दिनका १ सप्ताह। १५ दिन-रातका १ पखवाड़ा। २ पखवाड़ा या ३० दिन-रातका १ माह। २ माहकी १ ऋतु। ६ ऋतुओंके १२ महीने या ३६० दिनोंका १ वर्ष। १२ वर्षका १ युग। १०० वर्षकी १ शताब्दी होती है। इसप्रकारसे हिसाब जोड़ करके माना गया है ॥ ९९५ ॥

साखीः— नारि पुरुषके भाव दुई ❀ राति दिवस परवान ॥
[१९२] श्वासा सहस्र एकईस अरु ❀ छौसै लेखा मान ॥ ९९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! रात-दिनमें भी स्त्री-पुरुषका दो भाव मिला करके गुरुवालोगोंने ऐसा प्रमाण किया है कि, रात्रि सोई नारी-प्रकृतिरूप माया स्त्री है; और दिन सोई ईश्वर या ब्रह्मरूप पुरुष है। ऐसे दिन-रातको भी प्रकृति-पुरुष या माया-ब्रह्मकी भावनामें दो प्रकारसे कल्पना किया है। आठ प्रहरोंके रात-दिनमें एकईस हजार और छः सौ श्वास उच्छ्वासकी चलन गति प्राणवायुसे होती है, ऐसी गणना करके उसी अनुमानके हिसाबको सत्य माना है ॥ ९९६ ॥

साखीः— अस्थूल पिण्ड ब्रह्माण्डके ❀ कारण लिङ्गम सोय ॥
[१९३] सन्तत वर्तत विविधि विधि ❀ कारण कारज होय ॥ ९९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! स्थूल पिण्ड शरीरादि चारखानीके भाग, तथा स्थूल ब्रह्माण्ड चारतत्त्व एवं चार वेदादि वाणियोंके उत्पन्न होनेका मुख्य कारण सोई सूक्ष्म त्रसरेणु, अणु, परमाणु तथा सूक्ष्मदेह, चित्तचतुष्टय वासनादि ही हेतु हैं। सो कारण तो सदा सूक्ष्म अदृश्य ही रहता है, और कार्य स्थूल रूपमें होनेसे दृश्य होता है। जड़ पदार्थोंके कारण तो केवल चार तत्त्वोंके परमाणु मात्र हैं; और शरीर बननेके कारणमें जीव तथा वासना संयुक्त सूक्ष्म शरीर, एवं तत्त्वोंके परमाणु संयुक्त मिलान होनेसे होता है। सन्तत=हरहमेशा या सदा-सर्वदा अनेक तरहसे विधि या नियमपूर्वक ऐसे ही हिसाबसे बर्ताव बरतता रहता है। कारणसे कार्य पदार्थ पिण्ड और ब्रह्माण्डोंमें बनते रहते हैं; और कार्य पदार्थ बिगड़ जानेपर पुनः कारणमें ही जा करके मिल जाते हैं। कारणसे कार्य तथा कार्यसे कारण, यह सदाकालसे होता ही चला आता है। अतएव यह जगत्का कर्त्ता कोई ईश्वरादि नहीं है; यह जगत् तो अनादि कालसे ऐसा ही है। जड़ और चैतन्य दोनों पदार्थ नित्य-सत्य हैं। अध्यासवश ही जीव सब आवागमनमें पड़े हुए हैं। पारखसे परख करके विवेक द्वारा सो अध्यासोंको मिटा देना चाहिये। अथवा स्थूल पिण्ड ब्रह्माण्डोंके कारण सोई सूक्ष्म माया-ब्रह्मको माना है; ब्रह्मसे जगत् सर्वदासे नाना विधिसे उत्पन्न होता रहता है, ऐसा माना है ॥ ९९७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५३ ॥ [चौपाई- १४। साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. सात वार सोइ स्वर्ग अनुरूपा ❀ ता बिच लगन कला बहुरूपा ॥ ९९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! बाहर ब्रह्माण्डमें जैसे सात स्वर्गोंकी कल्पना किया है, तैसे ही पिण्डमें सात वारः— रवि, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि, इन नामोंसे सात दिन माना है। सात वार सोई यहाँ सात स्वर्गके सूक्ष्म रूपके समान माना है। उन सात वाररूप सात दिनोंके बीचमें ज्योतिषियोंने लग्न, मुहूर्त, योग, करण, नक्षत्र आदिकी कला बहुतरूपसे वर्णन करके बनाया है। उसमें शुभ-अशुभ, हित-अहित आदि बता करके लोगोंको भ्रमा रक्खे हैं। ग्रह शान्तिके बहाने ठगाई कर रहे हैं ॥ ९९८ ॥

२. चौदह भुवन एक अपवर्गा ❀ पन्द्रह तिथि पन्द्रह परसङ्गा ॥ ९९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! चौदह भुवनः— भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जन लोक, तप लोक और सत्यलोक नामके सात लोक ऊपर आकाशमें माना है; और अतल,

वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल नामके सात लोक नीचेके तरफ कल्पना किया है। ये दोनों मिला करके चौदह (१४) लोकोंका चौदह (१४) वर्ग हुआ; और अलग ही एक अपवर्ग=निर्वाण मुक्तिको बतलाया है। ऐसे पन्द्रह (१५) भाग ब्रह्माण्डमें ठहरा करके वैसे ही पिण्डाण्डमें भी माना है। पन्द्रह तिथि प्रतिपदासे ले करके अमावास्या वा पूर्णिमा तक माना गया है। उन पन्द्रह (१५) तिथियोंमें एक पक्षके दिनोंका पर्व, व्रत, उत्सवादि कोई-न-कोई कार्य शुभ-अशुभ लक्षण हरएकमें सोई प्रसङ्ग या मौका पड़ा ही करता है। इसप्रसङ्गमें चौदह (१४) तिथियोंका वर्ग सो नारी है, और पन्द्रहवाँ एक अपवर्ग परमात्मा पुरुषरूपमें हुआ है। अमावास्या अपवर्गरूप पुरुषका भाग है, और पूर्णिमा वर्गरूप प्रकृतिका भाग है, ऐसी कल्पना किया है। ऐसे पन्द्रह (१५) भाग ब्रह्माण्डमें और पन्द्रह (१५) भाग पिण्डमें घटा करके गुरुवालोगोंने माना है॥९९९॥

३. अनेक कला तेहि पन्द्रह समाना ❀ वदी सुदी होयके प्रगटाना॥ १०००॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उन्हीं पन्द्रह तिथिरूप पन्द्रह दिनोंमें अनेकों भागसे कला-कल्पनाएँ समाकर मिला रक्खे हैं। अनेकों व्यवहार लगा रक्खे हैं। सो वदी=अँधेरी पाख या कृष्ण पक्ष है, और सुदी=उजेली पाख या शुक्ल पक्ष है, ऐसे दो भागोंमें विभक्त हो करके पन्द्रह-पन्द्रह दिन प्रगट हुए हैं। इसीमें अनेकों प्रपञ्च जाल वञ्चकोंने प्रगट कर रक्खे हैं॥ १०००॥

४. दोऊ पक्ष दोऊ सो अङ्गा ❀ दक्षिणायन उत्तरायण लिङ्गा॥ १००१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! शरीरमें जैसे दाहिना भाग पुरुषका, तथा बायाँ भाग स्त्रीका अङ्ग भेद माना है। तैसे ही बाहरमें भी 'कृष्ण पक्ष' और 'शुक्ल पक्ष' ये दोनोंको विराट् पुरुषके दो अङ्गोंके भागमें माना है। उसका चिह्न दक्षिण अङ्ग दक्षिणायन छः महीनों तक सूर्य दक्षिण-दिशाकी तरफ बढ़ता है; और छः महीनोंतक उत्तरकी तरफ सूर्यकी गति रहती है। तहाँ उत्तरायण सोई वाम अङ्ग हुआ। एक शरीरमें दायाँ-बायाँ, दो भागोंके चिह्नके समान ही एक वर्षमें भी दक्षिणायन और उत्तरायण छः-छः महीनोंका माना है। दो तरफ दो अङ्गोंमें भी वाम अङ्ग स्त्रीका है; दक्षिण अङ्ग पुरुषका है, ऐसे विशेष भाग माना है। अथवा मनुस्मृतिः—१। ६६ में लिखा है— "मनुष्योंके एक महीनाका पितरोंका एक रात-दिन होता है; उनके दोनों पक्षोंमें काम करनेके लिये कृष्ण पक्ष दिन है, और सोनेके लिये शुक्ल पक्ष रात्रि है।" फिर "मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक रात-दिन होता है।" उसका भी यह विभाग है कि-"मनुष्योंका उत्तरायण देवताओंका दिन है, और दक्षिणायन देवताओंकी रात है।" मनुस्मृतिः—१। ६७॥

ऐसी कल्पना करके लिखा है, सो जान लीजिये!॥ १००१॥

५. दुई पन्द्रहको मास कहावै ❀ चारमास एक समय समावै॥ १००२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पन्द्रह दूने तीस दिन हुआ, सो दो पक्षोंका एक महीना कहलाया या कहा गया है। सो ऐसे चार महीनोंके एक सौ बीस (१२०) दिनोंका 'एक समय' माना है। एक समयमें चारों महीना समा करके बीत जाते हैं॥ १००२॥

६. तीन समय सो तीहु तरङ्गा ❀ कफ पित्त वात अज हरि हर अङ्गा॥ १००३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उसी प्रकारसे बारह महीनोंमें चार महीनोंके एक समयके हिसाबसे सब तीन समय कायम हुए। आषाढ़से आश्विन तक वर्षाका समय है, कार्तिकसे माघतक शिशिरका समय है, फाल्गुनसे जेष्ठ तक धूपकाल है, सो इन तीनोंमें प्रकृतिकी तरङ्गें तीन तरहसे प्रवाहित होती हैं। वर्षामें मेघोंसे पानी बरसता ही रहता है। शिशिरमें ठण्ढी-शीत ज्यादा बढ़ जाता है; और धूपमें प्रचण्ड गर्मीकी वृद्धि हो जाती है। पिण्डमें सोई वात, पित्त और कफके ठिकानोंमें वही तीन समय कहा है। जैसे वर्षाकी जगहमें कफ रजोगुणरूप ब्रह्माको कहा है। शिशिरमें पित्तरूप विष्णु है और धूपमें वातरूपमें महेशको कहा है। शरीरमें यही तीनों समय पा करके तरङ्गित हो कुपित हो जाते हैं। उन्हें ही तीन गुणोंके रूपमें तीन देवता भी माना है॥ १००३॥

७. तीन समय छौ ऋतु कर डारी * पुरुष तीन तीन सौ नारी ॥ १००४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन तीन समयोंमें एकमें दो-दो भाग करके छैः ऋतु कर डाले हैं। जैसेः— गर्मीके समयमें वसन्त और ग्रीष्म, ये दो ऋतु हुई हैं। वर्षाके मौसममें— वर्षा और शरद, ये दो ऋतु हुई हैं। ठण्ढीके समयमें— हेमन्त और शिशिर, ये दो ऋतु हुई हैं। इनमेंसे ग्रीष्म, शरद और शिशिर, ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन तीन पुरुषोंके रूपमें हुए; और वसन्त, वर्षा तथा हेमन्त, ये क्रमशः सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती, इन तीन स्त्रीरूप प्रकृतिके रूपमें माना है ॥ १००४ ॥

८. बारह मास एक सम्वत कहाई * तीनसै साठ दिन रात खपाई ॥ १००५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैशाखसे चैत्र तकके बारहों महीनोंको मिलाकर एक सम्वत्‌रूप वर्ष या एक साल कहते हैं। उसमें तीन सौ साठ दिन और उतनी ही रात्रियाँ खप जाती हैं या व्यतीत हो जाती हैं। वही सम्वत् या एक वर्ष कहलाता है ॥ १००५ ॥

९. सो सम्वत अस्थूल बनाई * बारम्बार नाशै उपजाई ॥ १००६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो इसप्रकारसे सूक्ष्म हिसाब लगाते हुए स्थूलाकार या मोटा भागमें एक सम्वत् वा एक सालका रूप बनाया गया है; परन्तु, सो हमेशा ठहरा नहीं रहता है। बारम्बार आता-ही-जाता रहता है। अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये हैं; सदा नित्यप्रति काल-चक्र घूमता ही रहता है; और जीव सब कर्मोंका फल भोग-भोगकर शरीर छोड़ करके गर्भवास, जन्म और मरणमें पड़ते ही रहते हैं। बिना पारख मुक्ति नहीं होती है ॥ १००६ ॥

१०. एक साठिका पल ब्रह्मण्डा * सोई विदित ब्रह्माण्डको दण्डा ॥ १००७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर साठ वर्ष एक मनुष्यके व्यतीत हो जानेपर ब्रह्माण्डमें ब्रह्माका एक पल होना माना है। इसी प्रमाणसे साठ पल बीत जानेपर ब्रह्माण्डका एक दण्ड या एक घड़ी हुई वा होती है। सो मनुष्योंके वर्षसे चार हजार आठ सौ (४८००) वर्ष बीतनेपर ब्रह्माकी एक घड़ी होती है। वही गुरुवालोगोंने ब्रह्माण्डके महान दण्ड प्रमाण करके जाहिर कर रक्खा है; सो कल्पना ही है। इसी हिसाबसे ब्रह्माकी पूरे सौ दिव्य वर्षोंकी लम्बी आयुका वर्णन करके लेखा लगा रक्खे हैं ॥ १००७ ॥

११. युग अरु कल्प कीन्ह बन्धाना * प्रलय महा प्रलय उतपाना ॥ १००८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वोक्त प्रकारसे दिन और वर्षोंकी हिसाब-गणना करके 'चार युग' और कल्प-कल्पान्तरोंका भी बन्धान करके प्रलय और महाप्रलय होनेके पश्चात् फिर जगत्‌की उत्पत्ति होनेकी बातकी मानन्दी गुरुवालोगोंने कर रक्खा है। सो समझानेके वास्ते अन्यत्र जगहसे यहाँपर कुछ बातें उद्धृत की जाती हैं, सो सुनिये !:—

प्रथम ब्रह्मकी स्फुरणासे पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और त्रिगुण उत्पन्न हुआ; तथा तमोगुणसे पाँच तत्त्व सहित पञ्च विषयोंका पसारा हुआ। रजोगुणसे दश इन्द्रियाँ प्रगट हुईं, और सत्त्वगुणसे चौदह (१४) देवता उत्पन्न हुए हैं। तिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीन देवता प्रधान हुए। इसप्रकारसे परब्रह्मसे सारी सृष्टि रचना होकर जड़-चैतन्यकी उत्पत्ति हुई है।

अब समयोंका हिसाब सुनिये!— मनुष्योंके नेत्रोंकी पलकें जितनी देरमें लगती और खुलती हैं, उसको एक 'निमिष' कहते हैं। ऐसे अठारह निमिष मिला करके एक 'काष्ठा' हुआ; और तीस काष्ठा मिला करके एक 'कला' की संज्ञा हुई। वह तीस कला मिल करके एक 'क्षण' हुआ; और बारह क्षण मिल करके एक 'मुहूर्त' कहा गया है। तीस मुहूर्त मिलकर एक 'अहोरात्र' हुआ है। पन्द्रह दिन-रात मिल करके एक 'पक्ष' हुआ है। तहाँ वे पक्ष दो हुए हैं— 'कृष्ण' और 'शुक्ल'। दो पक्षोंका एक 'मास' होता है, दो मासोंकी एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओंका एक 'अयन'

कहा गया है। छः ऋतुओंका 'दो अयन' होता है। 'उत्तरायण' और 'दक्षिणायन' ऐसे दो 'अयन' मिलकर एक 'वर्ष' होता है। इसमें मनुष्योंके एक महीनाकी पितृ वा पितरोंकी एक दिन-रात होती है। 'कृष्ण पक्ष' उनका दिन है तथा 'शुक्ल पक्ष' उनकी रात कहा है; और मनुष्योंके एक वर्षकी देवताओं-की एक 'दिन-रात' होती है। तहाँ 'उत्तरायण' उनका दिन है और 'दक्षिणायन' रात्रि कहा है। और मनुष्योंके तीन सौ साठ (३६०) वर्ष मिलकर देवताओंका एक वर्ष होता है; और देवताओं-के बारह हजार (१२०००) दिव्य वर्ष मिल करके मनुष्योंके चारोंयुग होते हैं। उतनेमें मनुष्योंके तैंतालीस लाख बीस हजार (४३,२०,०००) वर्ष पूरे होते हैं; और उतनेमें देवताओंका 'एक युग' पूर्ण होता है। फिर ऐसे देवताओंके दो हजार (२,०००) युगों करके ब्रह्माजीका एक दिन और एक रात्रि होती है। उतनेमें मनुष्योंके आठ अर्ब चौंसठ करोड़ [८,६४,००,००,०००] वर्ष पूरे होते हैं। और तिनमें चार अर्ब बत्तीस करोड़ [४,३२,००,००,०००] मनुष्योंके उतने वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है। और इतने ही चार अर्ब बत्तीस करोड़ [४,३२,००,००,०००] और भी मनुष्योंके वर्षोंका ब्रह्माकी एक रात्रि होती है। सोई ब्रह्माके दिन और रात्रि मिला करके मनुष्योंका एक 'कल्प' होता है; और देवताओंके एकहत्तर (७१) युगोंका एक मन्वन्तर होता है॥

॥ ❀ ॥ अथ सङ्कल्पसे सृष्टि संख्या समयका हिसाब वर्णन ॥ ❀ ॥

"ॐ तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैक-देशान्तर्गते कुमारिका नाम क्षेत्रे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बौद्धावतारे अमुक नामसम्वत्सरे···इत्यादि···"

तहाँ ब्रह्माजीकी पूर्ण आयु सौ दिव्य वर्षोंकी मानी गई है। ब्रह्माण्डकी सृष्टिसे ले करके महाप्रलय तक इतना समय व्यतीत होनेका अनुमान किया है। अब तक ब्रह्माजीके पूर्व परार्ध आयुके पचास (५०) वर्ष बीत गये हैं। द्वितीय परार्धका प्रथम कल्प या दिन यह वर्तमान समयको माना है। जिसका नाम 'श्वेतवाराहकल्प' है। आजकल ब्रह्माजीके एकावनवें (५१) वर्षका प्रथम दिन चल रहा है; और उसकी १३ घड़ियाँ, ४२ पल, ३ विपल, ४३ प्रति विपल बीत चुके हैं, ऐसी कल्पनासे हिसाब लगाया है॥

श्रीमद्भागवत ३। ११। ३२-३३-३६। मार्कण्डेय-पुराण ४६। ४२ से ४४ में कहा है॥

एक कल्पमें एकहजार 'चतुर्युग' होते हैं। उन एक सहस्र चतुर्युगोंमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, ये चार युगोंके नाम हैं; और चौदह मन्वन्तरोंके नाम ये हैं:— १. स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८. सावर्णिक, ९. दक्षसावर्णिक, १०. ब्रह्मसावर्णिक, ११. धर्मसावर्णिक, १२. रुद्रसावर्णिक, १३. देवसावर्णिक, १४. इन्द्रसावर्णिक; यह वर्णन भागवत अष्टमस्कन्धमें (१। ५। १३ अध्यायोंमें), मनुस्मृतिः (१। ६१ से ६३ में), विष्णुपुराणमें (३। २), श्रीहरिवंश पुराणमें (१। ७) में लिखा है। आजकल चालू वैवस्वत मन्वन्तरके एकहत्तर (७१) महायुगोंमें अट्ठाईस (२८) सत्ययुग, अट्ठाईस (२८) त्रेता, अट्ठाईस (२८) द्वापर और सत्ताईस (२७) कलियुग बीत चुके हैं। अब अट्ठाईस (२८) वाँ कलियुग चालू है। जिसका आजकल प्रथम चरण वर्तमान है; उसमें भी आजकलके सम्वत् २००७ में पाँच हजार एकावन [५०५१] वर्ष बीत चुके हैं। एक मन्वन्तरमें एकहत्तर (७१) चतुर्युग होते हैं। एक कल्प ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्य-की सृष्टि उत्पत्ति होती है; और उनके दिनकी समाप्ति होनेपर उतने ही समयकी रात्रि होती है। उसमें महाप्रलय होता है। मनुष्योंके [८,६४,००,००,०००] आठ अर्ब चौंसठ करोड़ इतने वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माका एक दिन और एक रात होती है। इन्हीं वर्षोंको तीस (३०) से गुणा करने पर [२,५९,२०,००,००,०८०] दो खर्ब, उनसठ अर्ब, बीस करोड़ वर्षोंका ब्रह्माका एक महीना

होता है। इन्हीं अङ्कोंको बारह (१२) से गुणा करनेपर ब्रह्माका एक वर्ष बनता है। अर्थात् [३१,१०,४०,००,००,०००] एकतीस खर्ब, दश अर्ब, चालीस करोड़ वर्षोंका एक ब्राह्म वर्ष होता है। फिर उन अङ्कोंको सौ (१००) से गुणा करने पर [३१,१०,४०,००,००,००,०००] एकतीस नील, दश खर्ब, चालीस अर्ब वर्षोंमें ब्रह्माकी सौ वर्षोंकी आयु समाप्त होती है। इस ब्रह्माकी पूर्ण आयुमेंसे आजतक [१५,५५,२१,९७,२९,४९,०५०] पन्द्रह नील, पचपन खर्ब, एकईस अर्ब, सत्तान्नवे करोड़, उनतीस लाख, उनचास हजार, पचास वर्ष बीत चुके हैं ॥

॥ ❀ ॥ मानुष वर्षोंके अनुसार चारों युगोंका वर्ष संख्या वर्णन ॥ ❀ ॥

(१) सत्युगमें [१७,२८,०००] सत्रह लाख, अट्ठाइस हजार वर्ष माना है। (२) त्रेतायुगमें [१२,९६,०००] बारह लाख, छियान्नवे हजार वर्ष कहा है। (३) द्वापर युगमें [८,६४,०००] आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष कहा है। (४) कलियुगमें [४,३२,०००] चार लाख बत्तीस हजार वर्ष माना है ॥

॥ ❀ ॥ चारों युगोंके मानुषवर्षका सन्ध्या-सन्ध्यांश सहित वर्णन ॥ ❀ ॥

संख्या	युगोंका नाम.	सन्ध्या.	नियत काल.	सन्ध्यांश.	सर्वयोग.
१	सत्ययुग	१४४०००	१४४००००	१४४०००	१७२८०००
२	त्रेतायुग	१०८०००	१०८००००	१०८०००	१२९६०००
३	द्वापरयुग	७२०००	७२००००	७२०००	८६४०००
४	कलियुग	३६०००	३६००००	३६०००	४३२०००

चारोंयुगोंके वर्षोंका पूर्ण योग = ४३,२०,०००

संक्षेपमें खुलासा बात यह है कि, चार लाख बत्तीस हजार वर्ष मनुष्य वर्षके हिसाबसे कलियुग-की पूरी आयु माना है। उससे दुगुना वर्ष द्वापरमें है। कलिसे तिगुना वर्ष त्रेतायुगमें कहा है; और चौगुना वर्षोंका समय सत्युगका माना है। इसप्रकारसे चतुर्युगके [४३,२०,०००] तैंतालीस लाख, बीस हजार वर्ष हो गये। इसप्रकारसे एकहत्तर (७१) चतुर्युगोंका एक 'मन्वन्तर' होता है। इस मन्वन्तरके [३०,६७,२०,०००] तीस करोड़, सतसठ लाख, बीस हजार मनुष्य वर्ष होते हैं। और एक कल्पमें चौदह (१४) मन्वन्तर होते हैं। उनके वर्ष [४,२९,४०,८०,०००] चार अर्ब उनतीस करोड़, चालीस लाख, असी हजार वर्ष— इतने होते हैं। सृष्टि प्रारम्भसे लेकर अभी चालू साल विक्रमीय सम्वत् २००७ तक एक (१) अरब, सतानवे (९७) करोड़, उनतीस (२९) लाख, उनचास (४९) हजार और इकावन (५१) वर्ष [१,९७,२९,४९,०५१] बीत चुके हैं; ऐसा कल्पनासे हिसाब करके जोड़ किया है। हम कल्पका निरूपण ऊपर कर चुके हैं। यह श्वेतवाराह कल्प है। इसप्रकार न मालूम कितने कल्प तथा कितने ब्रह्मादि हो चुके हैं। और ब्रह्माके एक सहस्र युगोंसे विष्णुकी एक घड़ी होती है; फिर विष्णुकी बारह लाख घड़ियोंसे रुद्रकी तो आधी घड़ी ही होती है। इस गणनासे रुद्रकी आयु [२,२३,९४,८८,००,००,००,००,००,०,०००,००,०:०] उन अङ्कोंकी संख्या सहित पच्चीस शून्यवाली होती है। रुद्रकी आयुमें अनेकों विष्णु प्रगट होते हैं तथा अन्तर्धान हो जाते हैं। इस-बातका सङ्केत "बृहत्पराशर स्मृति" (१२। १८८ से १९१ तक) में लिखा हुआ मिलता है ॥

पाठकों की विशेष जानकारीके लिये यह बात हमने अमरकोशकी बड़ी टीका और कल्याण अङ्क (२४। १) आदि अन्य ग्रन्थोंमेंसे ढूँढ़कर यहाँपर लिख दिया है। देखिये! गुरुवालोगोंने कल्पनाका कितना विस्तार किया है। इसप्रकारसे भी तो सबोंकी आयुका बन्धान करनेवाले मनुष्य ही श्रेष्ठ हुए।

निज सत्स्वरूपकी स्थिति न होनेसे अनादि कालसे ही जीव अनन्त जन्म ले चुके हैं, और भी कितनेक जन्म तक चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहेंगे, इसका तो कुछ पता ही नहीं लगता है। जब तक मनुष्योंकी एकरस पारख स्थिति न होवेगी, तब तक अध्यासवश जीव आवागममोंमें ही पड़े रहेंगे; ऐसा यथार्थ जान लीजिये! वही उपरोक्त बातका वर्णन निम्न पद्योंमें भी प्रमाणरूपसे कहा है। सो किसी कवि-महात्माने लिखा है। कहा है कि:—

॥ ❀ ॥ कवित्तः— ॥ ❀ ॥

सत्रह लाख हजार अठाइस, है सतयुग चारों पग जानो॥ बारह लाख हजार छानवे, त्रेताहीपगतीनबखानो॥ आठ लाख हजार हैं चौंसठ, द्वापर धर्मके द्वैपगमानो॥ चारलाखहजारबत्तीसको, है कलिएकपगेठहरानो॥

छप्पै छन्दः— युग चारि चलि जाय, चौकड़ी एक कहावै॥ चौकड़ी बहत्तर जाय, इन्द्र एक राजकरावै॥ इन्द्र अठाइस पड़े, ब्रह्मा दिन रैनि भनीजै॥ ऐसे दिनके शत वर्ष, ब्रह्माकी आयु गनीजै॥ ब्रह्मा सहस्र व्यतीत, विष्णुकी घटिका लहिये॥ विष्णु सहस्र व्यतीत, शिवकी पल एकै कहिये॥ रुद्र एकादश जाय, शक्ति शिङ्गार सजिजै॥ शक्ति सहस्र व्यतीत, कल्पको भेद लहिजै॥

दोहाः— विधिवतसे विनती करों, कल्प हुआ परमाण॥ अगनित ब्रह्मा हो गये, गिनत न आवै ज्ञान॥

ऐसे ही बड़ी शब्दावलीमें भी एक शब्द नीचे लिखे अनुसार आया है। सुनिये!:—

शब्दः— जो बूझे सो बावरा! क्या उमर हमारी?॥ टेक॥

असंख्य युग आगे गये, तबके हम ब्रह्मचारी॥ तीन देव जाने नहीं, सोई आदि हमारी॥ कोटि आये परमात्मा, परलोक सिधारी॥ हम तो सदा मौजूद हैं, प्रगटे युग चारी॥ कोटन ब्रह्मा हो गये, दश कोट कन्हाई॥ अनन्त कोट विष्णु गये, मोरे एक पलाई॥ सात कोट शम्भु गये, मुहम्मद कोट चारी॥ देवतनकी गिनती नहीं, का सृष्टि विचारी॥ बलि बावन केते भये, कौरव दल भारी॥ लङ्कापति रावण गये, रघुपति कइ बारी॥ ना बालक ना वृद्ध हों, ना पुरुष न नारी॥ कहैं कबीर सुन गोरख!, यह उमर हमारी॥

यह शब्द मायामुखसे वर्णन हुआ है। गुरुमुख शब्द तो मूल बीजकके शब्द नम्बर १८ में निम्न प्रकारसे आया है:—

शब्दः— "४ राम गुण न्यारो! न्यारो!! न्यारो!!!॥ १॥
अबुझा लोग कहाँलों बूझै। बूझनहार विचारो॥ २॥
केतेहि रामचन्द्र तपसीसे। जिन्ह यह जग बिटमाया॥ ३॥
केतेहि कान्ह भये मुरलीधर। तिन्ह भी अन्त न पाया॥ ४॥
मच्छ कच्छ बराह स्वरूपी। वामन नाम धराया॥ ५॥
केतेहि बौद्ध निकलङ्की कहिये। तिन्ह भी अन्त न पाया॥ ६॥
केतेहि सिद्ध साधक संन्यासी। जिन्ह वन वास बसाया॥ ७॥
केतेहि मुनिजन गोरख कहिये। तिन्ह भी अन्त न पाया॥ ८॥
जाकी गति ब्रह्मै नहिं जानी। शिव सनकादिक हारे॥ ९॥
ताके गुण नर! कैसेक पैहो? कहहिं कबीर पुकारे॥ १०॥"

पं० ग्र० टीका; १६०—

इसप्रकारसे बहुत कुछ कल्पना बढ़ा करके युगोंके और कल्पोंके बारेमें वर्णन किया गया है। मुख्य सारांश यही है कि, मनुष्योंके चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका कलियुग माना गया है; इससे दुगुना द्वापर है, तिगुना त्रेता है, और चौगुना वर्ष सत्ययुगका कहा है। वैसे एकहत्तर (७१) चतुर्युग बीतनेपर एक मन्वन्तरका समय होता है। वैसे चौदह (१४) मन्वन्तर बीतनेपर एक कल्पका समय होता है; सो एक कल्प ही ब्रह्माका एक दिन माना गया है। ऐसे 'युग' और 'कल्पका' समय बन्धान गुरुवालोगोंने किया है। उस हिसाबसे ब्रह्माकी पूर्ण आयु दिव्य सौ वर्षकी ठहराया है। ब्रह्माकी रात्रिमें सारा जगत्का प्रलय होता है; और ब्रह्माके दिन उदय होनेमें फिर सारा जगत्की उत्पत्ति हो जाती है; एवं ब्रह्माकी मृत्यु होनेपर सारा जगत्का महाप्रलय हो जायगा; तब सब कुछ एक ब्रह्ममें ही मिलकर शून्यमें समा जायगा, अर्थात् जगत्का अभाव हो जायगा, निरालम्ब, निराकार-निर्गुण एक ब्रह्म मात्र रहेगा। ऐसी-ऐसी भ्रम-कल्पनाकी वाणी उत्पन्न करके मनुष्योंको गुरुवालोगोंने भ्रमा रक्खा है। सोई कसर परखानेके लिये यहाँपर यह सब बात विस्तारसे आप लोगोंको बतायी गयी है। वास्तवमें तो अनादि कालके जगत्की न कभी सृष्टि हुई है, और न कभी प्रलय वा महाप्रलय ही होगा। जड़ पाँच तत्त्व और अनन्त अखण्ड चैतन्य जीव तो सर्वदासे नित्य वैसे ही हैं और वैसे ही सदा बने रहेंगे। उनके स्वरूपका तो तीन कालमें नाश नहीं होता है। कार्य पदार्थ बनना-बिगड़ना तथा देह धरना-छोड़ना, यह प्रवाह वासना एवं तत्त्वोंकी गुण-शक्ति करके हो रहा है। सो पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ जान कर भ्रम-कल्पना विषयासक्ति आदिको छोड़कर अपना कल्याण करना चाहिये ॥ १००८ ॥

१२. सूक्ष्म अवध पिण्ड ब्रह्मण्डा * महा बिस्तार अवध परचण्डा ॥ १००९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! पिण्डरूप देहधारियोंकी आयु सूक्ष्म=कहिये थोड़ी अवधि वाली है या थोड़े काल तक ही पिण्डकी आयुकी स्थिति रहती है; और ब्रह्माण्डकी आयु बहुत महान विस्तारसे प्रचण्ड=तीक्ष्ण रीतिसे बहुत-बहुत कल्पना करके अवधि, काल वा समयका हिसाब लगा रक्खे हैं। अर्थात् सूक्ष्म=किञ्चित् आयु पिण्डकी है, और स्थूल प्रचण्ड महान् लम्बी विस्तारकी आयु ब्रह्माण्डकी ब्रह्मा आदिकोंकी आयु या अवधि कथन कर रक्खे हैं। ऐसे पिण्ड-ब्रह्माण्ड दोनोंकी आयु मनुष्य जीवोंने ही कायम किया है ॥ १००९ ॥

१३. आयु अवध आपु रचि लीन्हा * थिर नहिं औरहि औरे कीन्हा ॥ १०१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनोंकी आयुकी अवधि या समयका बन्धान, हद्द कायम, खानी-वाणीका निर्माण तो स्वयं चैतन्य मनुष्य जीवोंने अपने आप ही रचनाकर लिया है। ब्रह्माण्डकी आयुकी रचना वाणी कल्पना करके किया है, सो भ्रमसे अनुमान करके ही होती है; और पिण्डोंकी आयुकी रचना विषय कर्मोंके अध्याससे होती है। परन्तु, सो भी सदा एक-सी नहीं रहती है। आयु स्थिर तो नहीं है; घड़ी-घड़ीमें बदलनेवाली चञ्चल परिणामी है। समय बदल करके और-का-तौर, कुछ-का-कुछ हो जाता है। पारख स्वरूपकी स्थिति न मिलनेसे मनुष्य खानीसे छूटकर और-ही-और पशु-अण्डजादि योनियोंमें जड़ाध्यासी जीव चले जाते हैं। वहाँ चञ्चलताका कर्म करते रहते हैं; कभी स्थिर स्थिति तो वे पाते ही नहीं हैं ॥ १०१० ॥

१४. तेहि प्रतिति कौन विधि कीजै * छिनभङ्गी चित कबहुँ न दीजै ॥ १०११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मनुष्योंकी आयुका प्रमाण सौ वर्षोंका जो लगाया है, "आयुर्वर्षशतंनृणाम्" सो भी कुछ नियम पूर्ण नहीं होता है। सौ वर्ष जीकर मरनेवाले तो बहुत ही थोड़े मनुष्य मिलेंगे। सब तो अधबीचमें ही मरते हैं; बहुतेरे तो बालक, युवा आदि-में ही मर जाते हैं। जब पिण्डकी ही बात झूठी ठहरी, तो ब्रह्माण्डकी बात निश्चय करके सत्य कैसे

मानना ? और मनु, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शक्ति आदिकी महान आयुकी गणनाकी कल्पनाको किस प्रमाणसे सत्य मानकर विश्वास करना ? जिन्होंने ये सारी कल्पना करके वर्णन किया, वे तो पहले ही मृत्युको प्राप्त हो गये हैं; और शरीरधारी ब्रह्मा आदि भी उसी जमानेमें देह छोड़कर मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने मूल बीजक, रमैनी ५४ में कहा है:—

रमैनीः—"मरिगौ ब्रह्मा काशिको बासी। शीव सहित मूये अविनाशी ॥ १ ॥
मथुराको मरिगौ कृष्ण गोवारा। मरि-मरि गये दशों अवतारा ॥ २ ॥
मरि मरि गये भक्ति जिन्ह ठानी। सर्गुणमा निर्गुण जिन्ह आनी ॥ ३ ॥
साखीः— नाथ मछन्दर बाँचे नहीं। गोरख दत्त औ व्यास ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। ई सब परे कालकी फाँस ॥ ५४ ॥" इत्यादि ॥

अतएव वेद, ज्यौतिष, गणित विद्यादिमें वर्णन किया हुआ अनुमान-कल्पनाकी वाणीको और निश्चित की हुई, पिण्ड-ब्रह्माण्डोंकी आयुकी अवधिको अब किस प्रकारसे प्रतीति या विश्वास करके निश्चय किया जाय ? पारखी साधु ऐसी अयुक्त भ्रमिक बातोंको कभी प्रतीत नहीं करते हैं। अरे भाई ! यह शरीर तो क्षणभंगुर है; अर्थात् प्रारब्ध भोग पूर्ण होनेपर देह क्षणभरमें ही विनष्ट हो जाता है। फिर तो पलभर भी तब ठहर नहीं सकता है। जब अपने शरीरका ही यह हाल है, तब दूसरोंकी लम्बी-चौड़ी आयु वर्णन करके बिना देखे आँखें मूँदकर गप्प क्यों हाँकना ? वैसे गफाष्टकको क्यों मानना ? अतएव अपने ही शरीरको विनाश होनेवाला क्षणभङ्गी जान करके कल्पना और विषयासक्तिमें कभी मन-चित्तको जाने मत् दीजिये ! भ्रमिक गुरुवालोग और असत्य वाणीका कभी विश्वास मत् कीजिये ! निजस्वरूपके विचार तथा स्थितिमें ही सदा लगे रहना चाहिये ॥ १०११ ॥

साखीः— लेखा भाव शुभ अशुभ लै ❀ ज्योतिष दृष्टि बनाय ॥
[१९४] नित्य प्रलय प्रलय तेही ❀ महा प्रलय माहिं समाय ॥ १०१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! श्वाससे निमिषकी चाल, गतिकी गणना या लेखाका हिसाब भाव-कुभाव, शुभ-अशुभ लक्षण, लग्न, मुहूर्त, ग्रह, नक्षत्र, इत्यादि योग-कुयोगका मिलान करके कल्पनाको लेकर गुरुवालोगोंने अपनी-अपनी दृष्टि, समझ-बुद्धिके अनुसार ज्यौतिष शास्त्र, गणित विद्याओंको बनाया है। उसमें शुभाशुभ आदिका भाव लेकर प्राणियोंकी आयु, सुख-दुःख, हानि-लाभ, विद्या, बल, बुद्धि आदिका लेखा लगाया है; और युग-युगान्तर, मन्वन्तर, कल्प-कल्पान्तर आदिके समयोंका लेखा-जोखा लगा करके दृढ़ कर-करा रक्खे हैं। जैसे मनुष्यके नित्य या रोज ही सो जानेपर निद्रामें व्यवहार सब लय हो जाते हैं; और मृत्यु होनेपर शरीर पञ्चतत्त्वोंमें तथा अध्यासी जीव गर्भवासमें जाकर समा जाते हैं। तैसे ही बाहर ब्रह्माकी रात्रिमें सृष्टिका नित्यप्रलय होता है, और ब्रह्माके मृत्यु होनेपर महाप्रलय होकर सारा जगत् लय हो करके ब्रह्ममें समा जाता है, ऐसा कहा है। और कोई तो ब्रह्मज्ञानकी दृढ़ता करके रोज ही द्वैत भावको प्रलय करते हैं। फिर कोई परमहंस बनकर जड़वत् वृत्ति बना लेते हैं, उन्होंने सोई महाप्रलयमें समा जाना माना है। यही मानन्दी अध्याससे जीव गर्भवासमें जाते रहते हैं ॥ १०१२ ॥

साखीः— सत्य प्रीति परतीत दृढ़ ❀ राखे जीव अटकाय ॥
[१९५] नाशक नाशे ताहिमें ❀ अनबनि विधि भटकाय ॥ १०१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिकालमें सत्य, अखण्ड तो चैतन्य जीव ही स्वयं है। परन्तु, अबोध जीव निज सत्य स्वरूपको नहीं जानते हैं। इसीसे स्त्रियोंमें और गुरुवा-लोगोंमें प्रीति लगा करके उन्हींकी वाणी-खानीको सुखदायी, हितकर मान करके दृढ़ प्रतीति या पक्का निश्चयकर विश्वास किये हुए हैं। उन लोगोंने भी मिथ्याको ही सत्य बताकर मनुष्य जीवोंको

अपने-अपने घेरा जालोंमें घेर-घार करके अटका करके फँसा रक्खा है। नाशक=नारियाँ और गुरुवालोग उसी विषय और कल्पनामें अनेक प्रकारसे मनुष्योंको भटका-भटकाकर घुमा-फिराकर घन-चक्रमें डालकर जीवन-धन, बुद्धि, विवेक, ज्ञान, सत्यादि सद्गुणोंका नाश किये या कर रहे हैं। जिस विषय और भक्ति, योगादिमें विधिपूर्वक भटकाये हैं, उससे तो नरजीवोंका कुछ भी हित-कल्याण नहीं बनता है। नरजन्मको बर्बाद करके महाबन्धनोंमें ही पड़ जाते हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगकर जीवन सफल करना चाहिये ॥ १०१३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५४ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. यहि विधि कला अनेक प्रकाशा * लक्ष स्वभाव अगम विश्वासा ॥ १०१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! यही तरहसे या इसीप्रकारसे विधिपूर्वक गुरुवालोगोंने अनेकों कला-कल्पना, विद्या-कुविद्याके नाना भाग-विभागोंका प्रकाश करके विस्तार किया है। अपने-अपने स्वभावके अनुसार श्वासमें लक्ष्य लगाये; परन्तु, ब्रह्म-ईश्वरादिका भेद कुछ भी नहीं जान पाये। तब जहाँ गम नहीं हुआ, तहाँ 'परमात्मा अगम, अपार है!' कहकर उसी अगम्यका विश्वास करके दृढ़ निश्चय किये। उसीमें लक्ष्य लगाकर वृत्ति शून्य होनेसे ब्रह्मको अगम ठहरा करके विश्वास किये हैं। उसीकी महिमा और आगेकी कला-कल्पना जगत्में प्रचार किया है ॥ १०१४ ॥

२. विद्या अगम लक्ष स्वभावा * सिद्ध कला सो प्रगट देखावा ॥ १०१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तहाँ अध्यात्म विद्या योग विद्या, ब्रह्मज्ञानके साधनोंसे आगम माना हुआ ब्रह्ममें ही दृढ़ लक्ष्य लगा करके अपने-अपने स्वभाव, बुद्धिके अनुसार साधकोंने मन-मानन्दी दृढ़ किया है। फिर वही आगेके लक्ष्यसे विद्या प्रचार किया है। साधना पूर्ण होनेपर वे ही सिद्ध कहलाये हैं। वही ऋषि, मुनि, औलिया, षट् दर्शनोंके गुरुवालोगोंने वाक्-चातुर्यसे ढोंग तमाशा, सिद्धि कलाओंको संसारमें प्रगट करके सो सबको दिखलाया है; अज्ञानी लोगोंको खूब भुलाया है, भ्रमाया है। अथवा योग विद्याके प्रतापसे आगे होनेवाले लक्षण स्वभावों-को भी योगी लोग अपनी सिद्धि कलासे सो उसे प्रगट करके दिखला देते हैं; ऐसी मिथ्या मानन्दी दृढ़ किया है ॥ १०१५ ॥

३. पाँच तत्त्व त्रिगुण निर्माई * लक्ष सोई अगम प्रगटाई ॥ १०१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे यह देह पाँच तत्त्व तीन गुण मिलकर जीवकी सत्तासे बना है; तैसे ही ब्रह्माण्डके पाँच तत्त्व, तीन गुण समेत् सारा जगत् भी कोई ईश्वर कर्त्ताने बनाया है, ऐसा मानकर उसीमें लक्ष्य लगा करके योग साधना करते हैं। साधना सफल होनेपर ज्ञान स्वरोदय द्वारा अगम बातको भी प्रगट करके सो लक्ष्यसे पाँच तत्त्व, तीनों गुणोंकी उत्पत्ति पिण्डमें दिखा देते हैं, ऐसा गुरुवालोगोंने माना है। अथवा जो बात अगम्य है, आगे होनेवाली है, सो गुप्त बातको भी योगी लोग लक्ष्यसे ही लक्षण प्रगट करके बता देते हैं, ऐसी कल्पना ही परिपुष्ट किया है ॥ १०१६ ॥

४. पाँच तत्त्वको पाँच स्वभावा * तीनों गुण तेहि सङ्ग लगावा ॥ १०१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पाँचों तत्त्वोंके स्वभाव, धर्म, गुण आदि अलग-अलग पाँच प्रकारके हैं। पृथ्वीका— कठोरता धर्म, गन्ध गुण, खड़े चक्रवत् भ्रमण क्रिया, स्थूलाकार और पीला रङ्ग है। जलका— शीतलत्त्व धर्म, रस गुण, अर्ध गमन क्रिया, स्थूलाकार और श्वेत रङ्ग है। अग्निका— उष्ण और प्रकाश धर्म, रूप गुण, ऊर्ध्वगमन क्रिया, स्थूल-सूक्ष्माकार और लाल रङ्ग है। वायुका— कोमलत्त्व धर्म, स्पर्श और शब्द गुण, तिरछी गमन क्रिया, सूक्ष्माकार और हरा रङ्ग है; और आकाशका— शून्य धर्म निर्गुण, अक्रिय पोलाकार तथा रङ्ग रहित है। यही उक्त पाँचों तत्त्वोंके पाँच स्वभाव आदिका वर्णन है। पाँचों तत्त्वोंके सङ्गमें सदा तीनों गुणोंका लगाव या सम्बन्ध लगा ही

रहता है। पृथ्वी और जल तत्त्व मिल करके 'रजोगुण' होता है। तेज और वायु तत्त्व मिल करके 'सत्त्वगुण' होता है। समान पवनरूप आकाश तत्त्वसे 'तमोगुण' की उत्पत्ति माना है। यानी तत्त्वोंके सङ्गमें उक्त तीन गुण सदा लगे रहते हैं ॥ १०१७ ॥

५. एकन एक विरोध मिलापा * फल तेहि दुःख सुख बहुविधि थापा ॥१०१८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चार तत्त्वोंका सामान्यरूपसे चारोंमें मिलाप या संयोग सम्बन्ध लगा रहता है। वही कभी विशेष हो जानेसे विरोधी हो जाते हैं। एक-न-एक तत्त्व एक-न-एकसे विरोधी होते रहते हैं, और मिलते भी रहते हैं। तत्त्वोंके मिलाप समान रीतिसे रहनेपर ब्रह्माण्डमें और शरीरमें भी उसका फल सुख ही मिलता है; और परस्पर विरोधी हो जानेसे ज्यादा ही शीतोष्ण और अधिक वर्षा होकर तथा वात, पित्त, कफ, बिगड़ करके दुःख-ही-दुःख फल बहुत प्रकारसे हो जाता है। परन्तु, गुरुवालोगोंने पाँचों तत्त्वोंको ही देवता या ईश्वर करके माना है; और पाप-पुण्यका फल बहु विधिसे दुःख-सुख भोग ईश्वर देता है, ऐसा कह कर थापा है या माना है; सो तो कल्पना ही किया है ॥ १०१८ ॥

६. थूल अस्थूल सकल ब्रह्मण्डा * पूरण कला सोई परचण्डा ॥ १०१९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और पिण्डमें स्थूल-सूक्ष्म-रूपसे परब्रह्म परमात्माकी कला-शक्ति, परिपूर्ण व्यापकरूपसे भरा हुआ है। ऐसा मानकर गुरुवा-लोगोंने सोई बात प्रचण्ड=तीव्र कल्पनाको अनेक युक्तियोंसे सिद्ध करके और भी बहुतेक प्रपञ्च फैलाया है; सकल ब्रह्माण्डके प्राणी कोई स्थूलमें और कोई सूक्ष्ममें अरुझे पड़े हैं। पूर्ण कला=ब्रह्मज्ञानको कहा है, सो तो अति प्रचण्ड भ्रम है। इस जालसे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है। पूर्ण पारख बोध हुए बिना कोई उससे छूट नहीं सकते हैं। अथवा स्थूल-सूक्ष्म सकल ब्रह्माण्डोंमें सोई पाँच तत्त्वोंकी कला प्रचण्डरूपसे पूर्ण माना है। तत्त्वज्ञानीलोग पिण्ड-ब्रह्माण्डके हालको सिद्धि कलासे जान जाते हैं; ऐसी कल्पना विस्तार किया है ॥ १०१९ ॥

७. वाक्य विचार अक्षर निहारि * वतमान जाने सब सारी ॥ १०२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंकी वाणीके वाक्योंको विचार करके अक्षर-रूप पुस्तकोंको पढ़ करके प्रथमकी सारी बातोंको वर्तमानमें भी सब लोग जान जाते हैं। अथवा ज्योतिषीलोग प्रश्न करनेवालोंके वाक्यका विचार करके प्रश्नके अक्षरोंको गिन करके फिर ज्योतिष पुस्तकोंके अक्षरोंको देख करके भूत, भविष्यमें होनेवाली सारी बातोंको जानकर सबोंको वर्तमानमें ही बता देते हैं। अथवा मनमें कोई बात विचार कर उनके प्रश्नावली कोष्ठकके अक्षरोंमें निहार करके अंगुली रख देनेपर भी होनेवाली सब बातको वे जानकर प्रश्नकर्त्ताको फल जना देते हैं। परन्तु, यह तो एक पाखण्डका मिथ्या तमाशा ही निकाला है ॥ १०२० ॥

८. देह स्वभाव दिशा प्रभाऊ * भिन्न भिन्न विलगी सब दाऊ ॥ १०२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देहका स्वभाव, प्रकृति भी देखते हैं; प्रश्नकर्त्ता स्त्री, पुरुष, नपुंसक या बालक, युवा और वृद्ध किस प्रकारका है ? सो ध्यानमें रख लेते हैं; और काला, पीला, सफेदादि कौन रङ्ग उसके शरीरका है ? तथा किस रङ्गका कपड़ा उसने पहिना है ? और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर या उपदिशा-कोणोंसे किस दिशा तरफसे आया है ? फिर आ करके दाहिना तरफ बैठा है वा बायाँ ? सामने वा पीछे तरफ किधर बैठ करके किस तरफ मुख करके प्रश्न किया है ? यह सबोंका कल्पनासे प्रभाव घटाकर अपने दाव-पेंच चालाकीसे न्यारा-न्यारा अनेकों भेद दिखा करके सबोंको भिन्न-भिन्न फल बता देते हैं। क्योंकि, गुरुवालोगोंने स्वार्थ सिद्धिके लिये भिन्न-भिन्न बात बिलगा करके पहलेसे ही वह सब दाव बना कर यही सब बात या वाणी पुस्तकोंमें लिख रक्खे हैं ॥ १०२१ ॥

९. सोई स्वभाव दाव लखि लेई * होनीहार प्रगट के देई ॥ १०२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई ऊपर कहे हुए स्वभाव, लक्षण, प्रकृति, समयादिको दाव-घातसे मौका पा करके देख लेते हैं, और पूछ-ताछ करके भी जान-बूझ समझ लेते हैं। फिर सामुद्रिक विद्या ज्योतिषमें कहे प्रमाणसे तुम्हारा भविष्यमें ऐसा होगा; शुभ या अशुभ होगा, सुख वा दुःख होगा, हानि वा लाभ होगा, इत्यादि भविष्यमें होनेवाली बातोंको अन्दाजसे प्रगट करके बता देते हैं। यह सब अनुमान-कल्पनाकी चाल ठगाईके धन्धा ही निकाला है ॥ १०२२ ॥

१०. मनके दाव लखै सो होई * निर्णय करि देखै जो कोई ॥ १०२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! योगीलोग श्वासमें लक्ष्य लगा करके हमेशा मनकी चाल, दाव लखते या जानते रहते हैं; और स्वरोदय ज्ञानके अभ्याससे अपने मनसे स्फुरणा उठा करके दूसरोंके मनके दाव या दौड़को लखकर फिर बतला देते हैं कि, तुम्हारे मनमें यह भावना या सङ्कल्प है, सोई बात सत्य होती है; दूसरेके मनके हालको भी जान लेते हैं, ऐसी महिमा बढ़ाया है। परन्तु, सत्य निर्णय करके देखिये! तो यह बात सरासर गलत-मिथ्या ही है। क्योंकि, वे ठग लोग दश-बीस जनोंको दलाल लगाये रहते हैं, उन्हींके जरिये पुछा करके पता, इशारा, कोई लक्षण जान करके वैसी बात चतुराईसे कह देते हैं। एक-दो की बात मिल गई, तो फिर झूठ-मूठकी महिमा बढ़ा करके धोखा देकर ठगाई करते हैं। जो कोई जिज्ञासु मनुष्य सत्यासत्यके निर्णय करके पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य न्यायसे देखेंगे, वे गुरुवालोगोंके दावको ठीकसे जान पायेंगे। मनके बन्धनोंमें ले जानेकी दाव-मानन्दीको भी लख करके परित्याग करेंगे ॥ १०२३ ॥

११. बिनु तेहि साधै सिद्धि न पावै * काल चरित्र विविधि विधि गावै ॥१०२४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! यहाँपर गुरुवालोगोंका कथन ऐसा है कि, मन-इन्द्रियोंको प्रथम ठीक तरहसे साधे बिना, तथा ज्ञानस्वरोदय, ज्योतिष, अङ्कगणित आदिकोंको अच्छीतरहसे सीखकर जाने बिना, दूसरेके मनकी बातको और कर्म रेखाके फलको तथा भूत, भविष्यादिको जाननेकी सिद्धि कोई सहजमें पा नहीं सकते हैं। मनादिको साधनेवाले पूरे योगी तो अष्ट सिद्धि, नव निद्धिको भी पा जाते हैं। साधनामें जितनी सफलता होती है, उतनी ही सिद्धि भी मिलती है। मन स्थिर हुए बिना कुछ भी सिद्धि प्राप्त हो नहीं सकती है। इसप्रकारसे काल= गुरुवालोगोंने रोचक-भयानक वाणी सुना-सुना करके आशा, लालच दे-दे करके सब मनुष्योंको जालोंमें फँसाये हैं या फँसा रहे हैं। नाना प्रकारसे साधना करनेका चरित्र, लीला, पाखण्ड कर-कराके अनेकों तरहसे उसकी महिमा, फल वर्णन करके नाना वाणी गाये हैं। सो जाल परखानेके वास्ते कालरूप गुरुवाओंके जीवन चरित्र कर्त्तव्य विविध विधिसे जैसे उन्होंने गाये वा कथन किये हैं; सोई किश्म-किश्मसे यहाँपर भी वर्णन करके सत्य-मिथ्याको निर्णयसे दिखलाया हूँ; उनके प्रपञ्च सब बन्धन हैं। सो गुरुमुख निर्णयको ही ठीकसे जानकर सत्यको ही ग्रहण-धारण करना चाहिये। तभी सब भ्रम-भूल मिटेगी, सो जानिये ॥ १०२४ ॥

साखीः— मनके दाव जो लखि परै * सबै होय परकाश ॥
[१९६] पुनि थिर नाहीं ताहिके * अन्त होय सो नाश ॥ १०२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जो कोई योगी, ज्ञानी और भक्तोंको साधना समाधि द्वारा मनका दाव या मनकी चाल लख पड़ती है, तो वे योगादि युक्तिसे मनको वश कर लेते हैं। उनके शुद्ध मनमें सो त्रिकालकी सब बातें प्रकाश हो जाती हैं, तथा मनमें ही ज्योति प्रकाश-रूपमें परमात्माका दर्शन भी पा जाते हैं; ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है। अथवा जो तत्त्वज्ञानीको मनके दाव अर्थात् किस तत्त्वमें मन किधर, कैसे चला जाता है? यह भेद जब पूर्णरूपसे लख पड़ता है, तब उन्हें तत्त्व द्वारा ही पिण्ड-ब्रह्माण्डमें होनेवाली सब बातें प्रकाश हो कर जान पड़ती हैं। फिर

सो वे प्रगट करके बतला भी देते हैं। सो सब समय आनेपर उनके बताये अनुसार प्रकाश भी हो जाता है। ऐसे-ऐसे बताकर लोगोंको भ्रमा रहे हैं। उन गुरुवालोगोंकी साधन, मार्ग, सिद्धि, करामात, प्रपञ्चोंमें कहीं भी जीवोंकी स्थिति-स्थिरता नहीं होती है। क्योंकि, उसमें पारख स्थिति तो नहीं है, अन्तमें वह सब कर्त्तव्य तो नाश हो जायगा; और जब शरीरान्त होगा, तब पुनः-पुनः या बारम्बार चौरासी योनियोंके चक्रमें जाना ही पड़ेगा। यहाँके सब प्रपञ्च तो यहीं छूट जायेंगे, अध्यास-वश फिर-फिरा करके जीव गर्भवासमें ही जायेंगे। अतएव ऐसे चञ्चल भव-चक्रको छोड़कर पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लग करके स्थिर होना चाहिये ॥ १०२५ ॥

साखीः— लाख कोशको भूत बतावै ❀ करोर कोशको सिद्ध ॥

[१९७] गाड़े कुवाँको अजय बतावै ❀ तैयो यमका फन्द ॥ १०२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यहाँ भ्रमिक गुरुवालोगोंका कथन ऐसा है कि, जिस योगीने योग साधना करके श्मशान सिद्ध किया है; भूत, बेताल, वीर, महावीर, यक्ष, पिशाच, डाँकिनी-शाँकिनी आदिको अच्छी तरहसे साधकर वश किया है, सो उसी भूत शक्तिके प्रतापसे एक लाख कोशोंकी दूरीकी बात तकको भी ठीक-ठीक बता देता है; और अष्टाङ्ग योग सिद्ध किये हुए योगी जिसने अष्ट सिद्धि प्राप्त कर लिया है, सो तो अपनी सिद्धि शक्तिसे एक करोड़ कोशोंकी दूरीकी बातको भी फौरन बता देता है; और किसीने पुराने जमानेमें धन गाड़कर मर गया है; वह किसिको भी मालूम नहीं है, ऐसे न मिलनेवाले गाड़े हुए अजय=यानी धनको निकाल लेनेकी युक्ति-प्रयुक्तिमें प्रवीण ज्योतिषी लोग और मेस्मेरिज्मको जाननेवाले तथा वीर साधनेवाले साधक आदि लोग बता देते हैं, उस युक्ति प्रयोगसे गड़ा हुआ धन भी मिल जाता है, ऐसा कहा है। इससे क्या हुआ ? इतना हुआ, तो भी यमरूप गुरुवालोगोंका ही झूठा प्रपञ्च महाजालोंका फन्दा ही है। उससे किसका बन्धन छूटा ? किसकी मुक्ति हुई ? यह सब तो यमका फन्दा है। अथवा पञ्च कोशोंके इस शरीरमें लाख=प्राणादि तत्त्वोंमें लक्ष्य लगा करके 'भूत' कहिये पञ्च महाभूतरूप पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्ति गुरुवालोगोंने बताया है। भूत कालमें परब्रह्मसे यह सारा जगत्की उत्पत्ति हुई, ऐसा माना है। लयचिन्तन करके फिर जगत्को ही ब्रह्म बतलाते हैं; फिर कोईने कायामें पञ्च कोशोंसे परे परमात्माको सिद्ध किया है। घट-घट सर्वत्र व्यापक, सर्वाधिष्ठान ब्रह्म एक अद्वैत है, ऐसा सिद्ध किया है। कोई यह शरीर अनात्मा है, और कुआँके गड्ढाके समान इसमें अन्तःकरण बना है। उसमें आत्मा सच्चिदानन्दरूप धन गड़कर छिपा है। आत्मज्ञानी गुरु द्वारा इसका भेद जानना चाहिये, ऐसा कहते हैं। इसप्रकारसे भक्ति, ज्ञान और योगादिकी बात जो बतलाये हैं, सो यह सब ही गुरुवालोगोंकी वाणी-कल्पनाका फन्दा है। उसमें जीवके सत्स्वरूप पारखका यथार्थ बोध नहीं है। इसकारणसे खानी-वाणीकी जहाँ तक विस्तार है, सो सब ही यमका फन्दा है। उसमें पड़ करके जीवोंका कल्याण नहीं होता है। भूत-प्रेतोंके द्वारा सिद्धि प्राप्त करके लाखों-करोड़ों कोशोंका हाल बतानेको जो कहा है, सो मिथ्या कल्पना ही किया है; और सुवर्ण आदि धातुओंकी खान तथा गड़ा हुआ धन तो लोग ढूँढ़कर उसे खोद कर निकाल ही लेते हैं, सो युक्ति-शोधनसे होता है, ज्यौतिषादिसे नहीं होता है। देखिये ! वर्तमानमें वैज्ञानिकोंने तत्त्वोंका शोधन करके सूक्ष्म बुद्धि-विचारकी विशेषतासे कई नवीन प्रयोग करके परीक्षण करते-करते यन्त्रादिकी सहायतासे दूर श्रवण, दूर दर्शन, सुदूर शीघ्र गमनादि करनेकी कला दिखलाये हुए हैं। जैसे बेतारके तार, रेडियो, टेलीफोन, तार द्वारा दूरकी बात फौरन सुनाई देती है; और दूरबीन, टेलिस्कोप आदिसे दूरकी वस्तु नजदीक दिखाई देती है। रेलगाड़ी, हवाई-जहाज, उड़न किले आदिसे जल्दीसे दूर देशोंमें पहुँचा जाता है। खान शोधक लोग हीरा आदि रत्न, धातुओंको तलाश करके खान निकाल लेते हैं। इतनी सब विशेषता, कला-कौशल भी बढ़ा लिये, तो भी यह सब प्रपञ्च जगत् जालके बन्धन ही तो हैं। मन,

स्त्री और गुरुवालोग, ये ही यमके वे सारे फन्दे खानी-वाणियोंके जाल हैं। पारख स्वरूपकी स्थिति प्राप्ति हुए बिना आवागमनसे जीव कदापि बच नहीं सकते हैं। अतएव सत्सङ्ग द्वारा सारासारको जानकर यमके फन्दोंसे निकल कर पारख बोध धारण करके अपना कल्याण कर लेना चाहिये ॥ १०२६॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— २२२ ॥ ❀ ॥

साखीः— सिद्ध भया तो क्या भया ? * चहुँदिश फूटि बास ॥
[१९८] अन्तर वाके बीज है * फिर जामनकी आश ॥ १०२७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर वेदान्त वाक्य श्रवण-मननादि करके भावना सिद्ध किया; 'अहं ब्रह्मास्मि' कह कर स्वयं सर्वाधिष्ठान ब्रह्म हुआ, तो क्या अच्छा हुआ ? परन्तु, यह तो बन्धनमें आने-जानेका कारण ही हुआ। 'एकोहं' ब्रह्मसे ही 'बहुस्यामेति' जगत्की इच्छा-वासना या स्फुरणा होकर चारों दिशाओंमें फूट पड़ी। उसीसे चार खानी और चार वाणी वेदादि रूपमें कार्य बनीं। एकसे अनेकका विस्तार हुआ। फिर अनेकको एक ही ब्रह्ममें लय करके परमहंस सिद्ध हुए, व्यापक ब्रह्मको अपना अद्वैत स्वरूप निश्चय कर लिये। इससे क्या फायदा हुआ ? क्योंकि, उनके अन्तःकरणमें तो सारा जगत्का बीज, वासना, अध्यास भरा-पड़ा है; सो समय पा करके फिर जगत् अंकुर फूटकर ही जमेगा। फिर जन्म-मरणादिमें ही पड़ेंगे। क्योंकि, सूक्ष्म आशा अध्यास तो उनका नहीं छूटा; अपरोक्ष पारख स्वरूपका बोध न होनेसे ब्रह्मज्ञानियोंके अन्तर=हृदयमें जगत्का बीज बना रहता है। इसीसे फिर उलटकर चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं। अतएव ब्रह्म मानन्दीकी भास आशा छोड़कर निज शुद्ध स्वरूप पारखमें स्थिर रहना चाहिये। अथवा योग साधना करके कोई योगी लोग बड़े तपस्वी, सिद्ध कहलाने लगे; तो इससे क्या हुआ ? कौन-सा हित-कल्याण हो गया ? खाली अभिमान वासनाकी ही तो बढ़ती हुई। अब वही चारोंदिशाओंमें वासनाएँ फूटीं। मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी, पुजानेकी चाहना बढ़ी। अरे भाई ! उन्होंके अन्तर=मनमें तो स्थूल-सूक्ष्म सब विषयोंकी बीज-वासना, अध्यास-आसक्ति तो बहुत एकत्र होकर पड़ी है। इसीसे फिर भी जन्म, मरण और गर्भवासमें जानेकी आशा लगी ही है। इसकारणसे इन योगी, ब्रह्मज्ञानी आदि भ्रमिकोंके सङ्गको छोड़ करके पारखी साधु-गुरुके ही सत्सङ्गमें रहकर अपना कल्याण करना चाहिये ॥ १०२७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १५५ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. लिङ्गम जो ब्रह्माण्ड निहारै * भिन्न भिन्नके कला विचारै ॥ १०२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ज्योतिषी लोगोंने सूक्ष्मरीतिसे ज्योतिष-शास्त्रका विचार करके जो ब्रह्माण्डकी तरफ देखे या देखते हैं, सो तहाँ भिन्न-भिन्न कलाका विचार प्रगट करके कहते हैं। अथवा जो कोईने लिङ्गम=सूक्ष्म दृष्टिसे बाहर ब्रह्माण्डमें निहारे=देख लिये, सो वे लोगोंने भिन्न-भिन्न करके ब्रह्माण्ड कलाका विचार कर लिये। सो उसका लक्षण नीचेकी चौपाइयोंमें बतलाया है ॥ १०२८ ॥

२. ज्योतिष दृष्टि रहै लौलाई * तीक्ष्ण बुद्धि नहिं चूक गनाई ॥ १०२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अच्छी तरहसे लौ लगा करके ज्यौतिष शास्त्र पढ़ा हो; जिसने सूक्ष्म दृष्टि लगा करके ज्यौतिषकी बातोंका दृढ़तासे मनन किया हो, वैसे तीव्र बुद्धिमान् या तीक्ष्ण बुद्धिवाले पण्डित लोगोंके ग्रह-नक्षत्रोंकी गति, अङ्क गणित करनेमें कभी चूक या गलती हो नहीं सकती है। वे गणितके फल भी सत्य ही बतावेंगे, ऐसा माना है। अर्थात् तीक्ष्ण बुद्धिवाले गणितज्ञ ,गणितमें चूक नहीं करते हैं; वे तो ज्यौतिष-दृष्टिमें लौ लगा करके रहते हैं, ऐसा कहा है ॥ १०२९ ॥

३. सो होनी ब्रह्माण्ड जनावै * साधन करै सिद्धि सो पावै ॥ १०३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो ऊपर कहे लक्षण सम्पन्न ज्यौतिषके पूर्ण मर्मज्ञ पण्डित बाहर ब्रह्माण्डमें घटने-बढ़नेवाली घटना, भविष्यमें होनेवाली होनी, अपने स्वयं जानकर दूसरोंको भी जना देते हैं; यानी उसे बतला करके प्रथमसे ही मालूम कर देते हैं। जो साधक विद्यार्थी विधिपूर्वक ज्यौतिष विद्या गुरुसे पढ़कर गणित शोधन करनेमें साधना करते हैं; उनमें बुद्धिमान् साधक ज्यौतिषदृष्टि द्वारा भी सिद्धि प्राप्त करके संसारमें होनेवाली बातोंको जान पायेंगे। सो वैसी साधना करके जिसने सिद्धि-सफलता पा ली है, सो वह भी ब्रह्माण्डके होनहारको पहले ही बता करके जना देवेंगे। ऐसी कल्पनासे महिमा बढ़ा रक्खा है ॥ १०३० ॥

४. धातु मूल जिव लगन विचारे * मन मुष्टिका भेद सँवारे ॥ १०३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई मनुष्य जीव शुभाशुभके बारेमें ज्योतिषियों-से प्रश्न करते हैं, तो वे लग्न, मुहूर्त, तत्त्वादिका कुछ विचार करके फिर कोई एक फल बतला देते हैं। कोई तो अष्ट धातु वा जड़ी-बूटी आदि ले जा करके उससे लाभ-हानि पूछते हैं, तो तब भी लग्न विचार करके भेद बतला देते हैं; और व्याली, केतकी, गजपति और जैमिनी, इत्यादि शुभ लग्न और अशुभ लग्नका विचार करके धातु, रसादि, मूल, काष्ठादि औषध ग्रहण करनेका सलाह देते हैं; और किसीने मूँठीमें कोई चीज लेकर मेरे मूँठीमें क्या है ? बतलाइये ! ऐसा पूछनेपर और मेरे मन-की बात कहिये ! कहनेपर भी वही लग्न-मुहूर्तादिका विचार करके तुम्हारे मुट्ठीमें फलाना धातु या अमुक जड़ी है, ऐसा कहते हैं; तथा तुम्हारे मनमें ऐसी या वैसी बात है, इत्यादि भेद अन्दाजा करके चालाकीसे बता देते हैं। सो किसीका बात संयोगमें मिलता है; किसीका नहीं मिलता है, तो भी उन्हें भुलावा दे देते हैं ॥ १०३१ ॥

५. श्वासा लिङ्गम पिण्ड निहारे * साधन युत जो ताहि सँभारे ॥ १०३२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानस्वरोदयके अभ्यासी लोग श्वासवायु-में लक्ष्य लगा करके श्वासके द्वारा ही पिण्डकी 'लिङ्गम' कहिये सूक्ष्म गति या हालको देखनेवाले या जाननेवाले होते हैं। अथवा पिण्डरूप शरीरमें सूक्ष्म रीतिसे सुरति लगाकर श्वासोच्छ्वासकी गतिको गिनकर सदा जो देखते रहते हैं; और योग युक्तिपूर्वक सब साधनाओंके सहित जो कोई स्वरको साधकर सम्हालते या सुधारते हैं, सो उन्हें सब हाल जाननेकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, ऐसा गुरुवालोगोंने माना है ॥ १०३२ ॥

६. आगम भेद सबै सो पावै * सिद्ध स्वरोदय विद्या गावै ॥ १०३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्वर साधने वाले कहते हैं— स्वरोदय साधना करके सफलता पूर्ण या सिद्ध हो जानेपर उसीके प्रतापसे सो फिर आगे भविष्यमें होनेवाली बात जो अगम्य है, उसका भी गम या भेद सब तरहसे प्रथम ही वे जान जाते हैं या भेद पा जाते हैं। ऐसा स्वरोदय सिद्ध करने वाले गुरुवालोगोंने स्वरोदय विद्याकी सिद्धिका महिमा वर्णन करके गुण गाया है। अब उसीके लक्षण-फलादि भी वर्णन किया जाता है, सो सुनिये !— ॥ १०३३ ॥

७. सुषमना गगन सो कारण नाशा * वायु अनल पिङ्गला सुख बासा ॥ १०३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्वर साधनेवाले कहते हैं कि, दोनों स्वर बराबर चल रहा हो, उसवक्त सुषुम्ना नाड़ी और आकाश तत्त्वका प्रवेश रहता है। यदि ऐसे वक्तमें आ करके कोई प्रश्न करे, तो जान लेना कि, यह कार्य इसका नाश होनेवाला है। क्योंकि, सुषुम्ना तथा आकाश सो सब कार्योंको नाश करनेका कारण है। इससे ऐसे वक्तके प्रश्नके उत्तरमें "कार्यका नाश होगा !" ऐसा कह देना; और फिर दाहिना नासिकासे श्वास चलता हो, सो पिङ्गला नाड़ी है। इस स्वर-में वायुतत्त्व और अग्नि, ये दोनों भी मिलित दिखाई दें, तब कोई आ करके प्रश्न करे, तो "सुखमें

निवास होगा, आराम या आसानीसे कार्य पूर्ण हो जायगा !" ऐसा बतला देना। क्योंकि, वायु, अग्नि तथा पिङ्गलाका मिलाप सुखवासको देता है, ऐसा कहा है ॥ १०३४ ॥

८. इङ्गला जल पृथिवी हितकारी ❀ दूनहुँ अङ्ग बेप्रीति सँवारी ॥ १०३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नासिकाके बाँया छिद्रसे वायु चलती होवे, सो इङ्गला नाड़ी है। इसमें जल तथा पृथ्वी तत्त्व भी मिले हुए दिखाई देवें, तो 'स्थिर कार्य करनेमें सो सबका हितकारी होता है।' और इसके विपरीत दोनों अङ्गसे सुषुम्ना चलता हो, तो वह 'अहितकारी विनाशक होगा।' अथवा इङ्गलामें अग्नि और वायु दिखें, तब भी 'उलटा काम बनेगा। प्रीति बिगड़ जायगी; दोनों अङ्गोंकी हानि ही होगी !' ऐसा जानकर बता देवें; ऐसा कहा है ॥ १०३५ ॥

९. दहिने अङ्ग पुरुषके दाऊ ❀ चर कारज तेहि माँहि बनाऊ ॥ १०३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दाहिना अङ्गसे चलने वाली पिङ्गला नाड़ीमें पुरुषकी शक्ति और दाव ज्यादा रहता है। इससे दाहिनी तरफसे श्वास चलता हो, तब 'चर कारज' कहिये चञ्चल कार्य करना चाहिये। जैसेः— स्नान, भोजन, पढ़ाई, अस्त्र-शस्त्र चलानेका अभ्यास, हाथी-घोड़े आदिकोंकी सवारी, खरीद, ऋण लेना-देना, शौच, मन्त्र जाप, कीर्तन, मैथुन, वाद-विवादमें जाना, विरोधीके पास जाना और लड़ाई करना, इत्यादि पिङ्गला नाड़ीमें करनेसे ठीक अच्छा बनाव होकर सफल होता है, ऐसा कहा है ॥ १०३६ ॥

१०. अर्धङ्गी बायें सो नारी ❀ थिर कारज तेहि मध्य सँवारी ॥ १०३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसके अर्ध अङ्ग=वामाङ्ग, इङ्गला नाड़ी है, सोई नारी है। इसमें स्त्रीका बल ज्यादा रहता है। इसलिये इङ्गलाके मध्यमें स्थिर कार्य बनावे। जैसेः— दान देना, तीर्थ स्नान, विवाह, वस्त्र-आभूषण धारण करना, घर बनाना, छाना, नया घरमें जाना, बाग-बगीचा लगाना, कुआँ-बावड़ी खोदाना, खेती-बाड़ी लगाना, दवाई करना, बही-खाता या पुस्तकोंका लिखना, गुरुदीक्षा लेना, योगाभ्यास करना, इत्यादि स्थिर कार्य कहलाते हैं। सो चन्द्र-नाड़ी-इङ्गला चले, उस बीचमें करनेसे सो सब काम अच्छे गुणकारी होते हैं। ऐसा स्वर साधकोंने मानन्दी किया है ॥ १०३७ ॥

११. अपनी अपनी राज सँवारै ❀ बेप्रीति परस्पर काज बिगारै ॥ १०३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना, ये तीनों नाड़ियाँ अपने-अपने राज=घेरामें, अपने-अपने कार्योंको सम्हालकर बनाती हैं। इसकारणसे जिस नाड़ीमें जो कार्य करनेको कहा है, वही करनेसे अच्छा लाभ होता है। उसके विपरीत कार्य करनेसे विरोध होकर परस्परके तनावसे कार्योंको बिगाड़ देते हैं। उलट-पलट करके विघ्न उपस्थित कर देते हैं; बिगाड़ पैदा कर देते हैं। इसीसे स्वरोदयमें कहे मुताबिक ही सोच-समझ करके सब काम करे। ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है ॥ १०३८ ॥

साखीः— कारण चञ्चल पुरुषके ❀ थिर कारण सो नार ॥
[१९९] पथिक चले पथ नाथके ❀ कारज सो विस्तार ॥ १०३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहस्यसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पुरुषके अंशरूप पिङ्गला नाड़ीके कारणसे चञ्चल कार्य होते हैं। इसीसे पिङ्गला चलतेमें किये हुए सब 'चर कार्य' पुरुषोंके सफल हो जाते हैं। तैसे ही स्त्रीके अंशरूप इङ्गला नाड़ीके कारणसे स्थिर कार्य होते हैं। इङ्गला चलतेमें किये हुए सब स्थिर कार्य पूर्ण हो जाते हैं। इसप्रकारसे नाथ=कहिये गुरुवालोगोंकी रोचक वाणी सुन करके पथ=स्वरोदयके मार्गसे पथिक=बहुतेक भावुक मनुष्य राहगिर बन करके चले गये और चल रहे हैं। जैसे कृषक लोग बैलोंको नाथकर वशमें कर लेते हैं। तैसे ही गुरुवालोगोंने भी अबोध मनुष्योंको वाणीमें नाथकर भुला करके वश कर लिया है। अब वे पथिक या साधक बने हुए लोग उस कल्पना-

के रास्तासे खूब उत्साह पूर्वक चल रहे हैं। रास्ता चलनेमें या साधना करनेमें थकावट भी नहीं मानते हैं। गुरुवालोगोंने सोई जाल, सोई कार्य अनेकों प्रकारसे फैला करके विस्तार किया है या कर रहे हैं॥ १०३९॥

साखीः— थिर पृथिवी अस्थूल सो * चञ्चल लिङ्गम श्वास॥

[२००] युगल एकत्र वर्तत रहै * विरह परस्पर नाश॥ १०४०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पृथ्वी तत्त्वका भाग स्थूलाकार होनेसे स्थिर अचल होता है। तैसे ही पृथ्वीरूप स्थूल देहमें प्रकृति या स्त्रीके भागमें इङ्गला नाड़ी है। सो उसमें सब स्थिर कार्य मोटा भाग बन जाता है; और चञ्चल वायु तत्त्वके अंश भाग सूक्ष्माकार श्वास है। सो सदा चला ही करता है। वैसे ही श्वासरूप चञ्चल वायु है, सो पुरुषके भागमें पिङ्गला है। इसीसे उसमें चञ्चल कार्य करे तो पूर्ण हो जाते हैं। वे दोनों नाड़ीके भेदको भलीभाँति जानकर उसी प्रकारसे चले, तो सदा सुख ही होगा। अगर इङ्गला-पिङ्गला, ये दोनों इकट्ठी मिलकर चलती रहे या एकत्र ही दोनोंका वर्ताव हुआ, तब तो सुषुम्ना नाड़ी आ करके दोनोंको ही नाश कर देती है। अथवा वैर-विरोध-विरह होनेसे परस्पर एक-दूसरेका नाश करनेवाली हो जाती हैं, इससे दोनों नाड़ियोंको नहीं मिलने देना। सुषुम्नामें कोई कार्य नहीं करना; ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है॥ १०४०॥

साखीः— तर अरु ऊपर आपु ही * दुइ दुइ भाग विस्तार॥

[२०१] कठिन काल परपञ्च है * परखहु होय उबार॥ १०४१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हे जिज्ञासुजनो! यह सारी कल्पना तो मनुष्योंने ही विस्तार किया है। इसको परख करके जानो! देखो, तर= नीचे नाभि स्थानमें और ऊपर=मस्तक स्थानमें जीवकी सत्तासे आप-ही-आप एक श्वास वायु चल रही है। परन्तु, उसमें गुण न्यारा-न्यारा कथन किया है। स्त्री-पुरुष, इङ्गला-पिङ्गला, चन्द्र-सूर्य, स्थूल-सूक्ष्म, बाँया-दाहिना, इत्यादि दो-दो भाग खड़ा करके कल्पनाका ही विस्तार किया है। तहाँ तरमें=स्त्री, इङ्गला, चन्द्र, स्थूल, बाँया भागको माना है, तथा ऊपरमें=पुरुष, पिङ्गला, सूर्य, सूक्ष्म, दाहिना भागको ठहराया है। परन्तु, ये दोनोंको बतानेवाला तो आप ही नरजीव सत्य ही हैं। जीवकी सत्तासे ही स्थूल-सूक्ष्म देहोंका सब कार्य चल रहा है। जीवके बिना तो वे सब मुर्दा हो जाते हैं। तथापि जीवको छोड़कर शिव कोई एक ईश्वर कर्त्ता दुःख-सुखोंका दाता ऊपर आकाशमें कल्पना किया है; और देवी-देवता आदिकी जड़ मूर्ति तर=पृथ्वीपर स्थापना करके चार धाम, चौंसठ (६४) तीर्थादि बनाया है। परन्तु, सो दोनोंको मानने, थापनेवाले तो मनुष्य जीव ही हैं; सो आप ही भ्रममें पड़ रहे हैं। कोई तरमें-जड़ मूर्ति पूजामें लगे हैं; और ऊपरमें ध्यान, योग-समाधि लगानेमें लगे हैं। खानी-वाणीमें अनेकों दो-दो भाग विस्तार करके उसीमें सब बद्ध हो रहे हैं। काल=गुरुवालोगोंने पञ्च कोशोंकी वाणीका प्रपञ्च ऐसा फैलाया है कि, जो पारख बिना छूटना अत्यन्त कठिन है; और काल=स्त्रियोंने भी महा कठिन जबर्दस्त पञ्च विषयादिकोंके जाल फैला रक्खी है। पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण, सत्सङ्ग-में रहकर उन सब जालोंको परख करके परित्याग करो! सद्गुण रहनी-रहस्यको धारण करो! तभी इन भव जालोंसे तुम्हारा बचाव या उबार होगा, सो ऐसा जानकर पारख बोधको ग्रहण करके धारण करो॥ १०४१॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५६ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- ६ । शब्द- २ है] ॥ ❀ ॥

१. श्वासा साधन युक्ति बनाया * योग अभ्यास कर्म अरुझाया॥ १०२४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! फिर गुरुवालोगोंने प्राण वायुरूप श्वास वायुको दूसरे प्रकारसे साधना करने लगे, तो उसमें भी और युक्ति-प्रयुक्ति कल्पना करके योगमार्ग-

को बनाया। तिस योगकाण्डमें लक्ष्यको एकाग्र करके साकार वा निराकार, शून्य, प्रणवादिमें ध्यान लगा करके माना हुआ ईश्वरसे मिलनेके लिये कई प्रकारके प्रयोग, अभ्यास या योगाभ्यासके नाना कर्ममें फँसा करके मनुष्योंको खूब अरुझाये हैं। तहाँ शुरूमें नेती, धोती, वस्ती, गज कर्म, न्योली कर्म, त्राटक कर्म, ये हठ योगमें छहों कर्म या क्रियाओंको क्रमशः सिखाते हुए प्रथम देह साफ करनेको बतलाते हैं। उक्त छहों क्रियाओंको ठीक तरहसे अभ्यास पूर्ण होनेपर योगी लोग आगे समाधि लगानेकी प्रक्रियाको बतलाते हैं ॥ १०४२ ॥

२. शनै शनै श्वासाको साधै ❀ संयम बहु विधि चित्त दृढ़ बाँधै ॥ १०४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! योगाभ्यासीलोग शनैः-शनैः या धीरे-धीरे श्वासको ऊपर खींचकर चढ़ाते हैं, सो 'पूरक क्रिया' है। रोक रखते हैं, सो 'कुम्भक क्रिया' है। फिर धीरे-धीरे बाहर छोड़ते हैं, सो 'रेचक क्रिया' है। ये ही प्रकारसे श्वासको साधते हैं। फिर संयमसे इन्द्रियोंको वश करके अल्पाहार अल्प विहार आदिसे बहुत विधिसे चित्तको श्वासमें ही लगाकर दृढ़ करके बाँधते हैं। अर्थात् श्वासमें लक्ष्य लगा करके चित्तको दृढ़तासे एकाग्र करते हैं। वही बात शिष्योंको भी सिखलाते हैं ॥ १०४३ ॥

३. अपनी वशि जब पावै बाई ❀ सूर्त अष्टाङ्ग योगमें लाई ॥ १०४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पहिले धीरे-धीरे श्वास चढ़ाने, उतारने, रोकनेका अभ्यास करते हैं। फिर जब साधनासे अपने वशमें वायु हो गयी, ऐसा समझ पाते हैं या सरलतासे वायु चढ़ाना सीख जाते हैं। तब फिर सुरति या लक्ष्यको पीछे पिण्डसे ब्रह्माण्डमें चढ़ाते हैं, अष्टाङ्ग योग साधनेमें लगाते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये ही योगमार्गके 'अष्टाङ्ग' कहलाते हैं। उनमें यम पाँच हैंः— अहिंसा, सत्य, अस्तेय=असत् और चोरीका त्याग, ब्रह्मचर्य, क्षमा है। नियम भी पाँच हैंः— तप (इन्द्रियवश), सन्तोष, आस्तिकता (श्रद्धा), दान, पूजा है। आसन चौरासी (८४) कहा है। प्राणायाममें पूरकमें सोलह (१६) मात्राएँ, कुम्भकमें चौंसठ (६४) मात्राएँ, और रेचकमें बत्तीस (३२) मात्राएँ कहा है। और अष्टप्रकारके कुम्भकः— १. सूर्य भेदी, २. उज्जायी, ३. शीतकारी, ४. शीतली, ५. भस्त्रिका, ६. भ्रामरी, ७. मूर्च्छा और ८. प्लाविनी वा केवली कहा है। प्रत्याहारः— दशों इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना है। धारणाः— पञ्चतत्त्वादि एक-एकमें धारणा करना है। ध्यानः— पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत, ऐसे चार तरहके ध्यान कहा है। समाधिः— भक्ति, योग और ज्ञानकी तीन समाधियाँ हैं; तथा कर्म समाधि, धर्म समाधि और सहज समाधि कहा है। सहविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधिसे दो भेद कहा है। इन सबोंका वर्णन योग शास्त्रमें बहुत प्रकारसे किया है। यहाँपर तो नाम संज्ञा भर जना दिया है। इसप्रकारसे अपने वशमें वायुको पा करके अष्टाङ्ग योगमें सुरतिको लगाये या शून्यमें सुरति लगाते हैं; बेभान-गाफिल हो जाते हैं ॥ १०४४ ॥

४. चौरासी आसन परवाना ❀ एकनि एक करै विधि नाना ॥ १०४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चौरासी (८४) आसनोंका प्रमाण ऐसा किया है किः— प्रथम चौरासी लाख योनियोंका वर्णन निम्न प्रकारसे किया हैः—

दोहाः— "नवलख जलको जन्तु हैं, दश लख पक्षी जान ॥ एकादश कीट भृङ्ग हैं, स्थावर बीस बखान ॥
तीस लाख पशु योनि हैं, चतुर्लक्ष नर होय ॥ इनमें जो हरि भजे, तुलसी धन है सोय ॥"

ऐसा कहा है। कल्पित चौरासी लाख उक्त योनियोंके बैठकमें एक लाख योनियोंमें एक आसनके हिसाबसे चौरासी लाख योनियोंमें सब चौरासी (८४) आसन योगी महादेवने योग साधनोंके लिये निकाला है, ऐसी कल्पना किया है। योगके चौरासी (८४) आसनोंके नाम निम्न प्रकारसे कहा हैः—

१. सिद्धासन। २. प्रसिद्ध सिद्धासन। ३. पद्मासन। ४. बद्ध पद्मासन। ५. उत्थित पद्मासन।

६. ऊर्ध्वपद्मासन । ७. सुप्तपद्मासन । ८. भद्रासन । ९. स्वस्तिकासन । १०. योगासन । ११ प्राणासन या प्राणायामासन। १२. मुक्तासन। १३. पवनमुक्तासन। १४. सूर्य्यासन। १५. सूर्यभेदनासन। १६. भस्त्रिकासन १७. सावित्रीसमाधि आसन । १८. अचिन्तनीयासन । १९. ब्रह्मज्वरांकुशासन। २०. उड्डारकासन। २१. मृत्युभञ्जकासन। २२. आत्मारामासन। २३. भैरवासन। २४. गरुड़ासन। २५. गोमुखासन । २६. वातायनासन । २७. सिद्धमुक्तावली आसन । २८. नेतिआसन। २९. पूर्वासन। ३०. पश्चिमोत्तानासन। ३१. महामुद्रासन। ३२. वज्रासन। ३३. चक्रासन। ३४. गर्भासन। ३५. शीर्षासन । ३६. हस्ताधारशीर्षासन । ३७. ऊर्ध्वसर्वाङ्गासन । ३८. हस्तपादांगुष्ठासन। ३९. पादांगुष्ठासन। ४०. उत्तानपादासन। ४१. जानुलग्नहस्तासन। ४२. एकपादशिरासन। ४३. द्विपाद-शिरासन। ४४. एकहस्तासन । ४५. पादहस्तासन । ४६. कर्णपीडमूलासन । ४७. कोणासन। ४८. त्रिकोणासन। ४९. चतुष्कोणासन। ५०. कन्दपीडनासन। ५१. तुलितासन। ५२. लोल वा ताड़ या वृक्षासन। ५३. धनुषासन। ५४. वियोगासन। ५५. विलोमासन। ५६. योन्यासन। ५७. गुप्ताङ्गासन। ५८. उत्कटासन। ५९. शोकासन। ६०. सङ्कटासन। ६१. अन्धासन। ६२. रुण्डासन। ६३. शवासन। ६४. वृषासन। ६५. गोपुच्छासन। ६६. उष्ट्रासन। ६७. मर्कटासन। ६८. मत्स्यासन। ६९. मत्स्येन्द्रासन। ७०. मकरासन। ७१. कच्छपासन। ७२. मण्डूकासन। ७३. उत्तानमण्डूकासन। ७४. हंसासन। ७५. वकासन। ७६. मयूरासन। ७७. कुक्कुटासन। ७८. फोद्यासन। ७९. शलभासन। ८०. वृश्चिकासन। ८१. सर्पासन। ८२. हलासन। ८३. वीरासन। और ८४. शान्तिप्रियासन, ऐसा कहा है। इसप्रकार ८४ आसनोंकी गिनती करके उसको प्रमाण करके माना है।

उन आसनोंको विधिपूर्वक एक-एक करके योगी लोग सीखकर क्रमानुसार नाना विधिसे उसे करते और दूसरोंको सिखलाते हैं। आसन लगा करके कोई तो लोगोंको तमाशा भी दिखलाते हैं; और उन आसनोंके प्रयोगसे कई तरहके रोग मिटनेका महिमा वर्णन भी कर रक्खा है। शरीरके पुर्जे, जोड़ नस-नाड़ियाँ तन करके स्वस्थ, साफ होकर काया निरोग होनेसे योग साधना करनेमें बड़ी मदद मिलती है, ऐसा बताया गया है ॥ १०४५ ॥

५. दृढ़कै मूल दुवारा बाँधै ❀ उलटी पवन ऊर्धको साधै ॥ १०४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! योगियोंके कर्त्तव्य सुनिये ! प्रथम सिद्धासन करनेको बायें पाँवकी एँड़ीसे मूलस्थान गुदाद्वारको बन्द करते हैं। अर्थात् गुदा और अण्डकोशके बीचमें दृढ़तासे एँड़ी लगाते हैं; और दाहिने पाँवकी एँड़ीको लिङ्ग इन्द्रियके ऊपरके भागमें दृढ़तासे लगाते हैं। ठोढ़ी हृदयमें, कण्ठ मूलसे थोड़ी दूर हृदयपर लगाकर स्थिर और सीधा शरीर करके पलकों और आँखोंको न हिलाते हुए भौंहोंके बीचमें दृष्टि स्थिर करते हैं। हाथ घुटनोंमें या मध्यमें मिला करके रखते हैं; इसको सिद्धासन कहते हैं। फिर अपान वायुको ऊपर खींचते हैं, इसे 'मूल बन्ध' कहते हैं। जालन्धर बन्ध=हृदयमें वायुको रोकते हैं। उड्डियान बन्ध=सब द्वारोंको बन्दकर नाभिमें वायु रोकते हैं। इसप्रकारसे दृढ़ करके मूलद्वार आदि दशों द्वारोंको बाँधकर या बन्द करके नीचेकी वायुको ऊपर उलटा करके या उलटी गति चला करके अपान वायुको समानमें मिला करके समानको प्राणमें, प्राणको उदानमें, ये चारोंको व्यानमें और व्यान सहित पाँचों वायुको ब्रह्माण्डमें चढ़ानेकी साधना योगीलोग साधते हैं; शून्य समाधिमें मस्त रहते हैं ॥ १०४६ ॥

६. बेधि चक्र छौ मेरुहि जाई ❀ शब्द अनाहद सो लौ लाई ॥ १०४७ ॥

[अब प्रथम यहाँपर षट् चक्रोंका वर्णन करके कोष्ठकमें दर्शाकर पश्चात् चौपाईका अर्थ नीचे बतलाया जायगा, सो जानिये !]

॥ ❀ ॥ षट् चक्र विवरण ॥ कोष्ठक ॥ ❀ ॥

नं०	चक्र।	दल।	अक्षर।	स्थान।	तत्त्व।	देवता।	बीजमंत्र	रङ्ग।	लोक
१	मूलाधार चक्र	४	व से स ४	गुदा	पृथ्वी	ईश	लँ	पीतवर्ण	भूः
२	स्वाधिष्ठान चक्र	६	ब से ल ६	पेडू या लिङ्ग	जल	गणेश	वँ	श्वेतवर्ण	भुवः
३	मणिपूर चक्र	१०	ड से फ १०	नाभि	अग्नि	दुर्गा	रँ	लाल ,,	स्वः
४	अनाहद चक्र	१२	क से ठ १२	हृदय	वायु	सूर्य	यँ	हरित ,,	महः
५	विशुद्धि चक्र	१६	स्वर अ से अः १६	कण्ठ	आकाश	विष्णु	हँ	काला (नील)	जनः
६	आज्ञा(अग्नि)चक्र	२	ह से क्ष २	भ्रूमध्य	मन	जीव	हँ	फीका लाल वर्ण	तपः
७	सहस्रार चक्र	१०००	ॐ १	शिर	बुद्धि (महत्)	सद्गुरु	ॐ	फीका पीतवर्ण	सत्यः

श्लोकः—"नभसोऽधिपतिर्विष्णु राग्नेश्चैव महेश्वरी ॥ वायोः सूर्यः क्षितेरीशः जीवनस्य गणाधिपः ॥"

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ गणेश क्रियासे पहला चक्र बेधते हैं; और गज क्रियासे दूसरा चक्र बेधा जाता है; और धोती क्रियासे तीसरा चक्र बेधते हैं; और कुञ्जल क्रियासे चौथा चक्र बेधा जाता है। फिर लम्बिका योगकी क्रियासे पाँचवाँ चक्र बेधते हैं; और नेती क्रियासे छठा चक्र बेधा जाता है। [इसका विस्तारसे वर्णन बीजक टीका (त्रिजा) के शब्द ८७ में देखिये !] इस तरहसे षट्चक्रोंको क्रमशः बेधन करके प्राण पञ्चकोंको खींचकर ब्रह्माण्डमें मेरुकी जगह सहस्रदल कमल-पर वृत्तिको ले जाकर टिकाते हैं। फिर ब्रह्माण्डमें अनाहद शब्द दश प्रकारकी बाजा नाद—ध्वनिसुननेमें प्रेम लगाते हैं। पहले सोई दश नादका शब्द सुननेमें लौ लगाते हैं, पीछे शून्य वृत्ति करके बेभान हो जाते हैं॥१०४७॥

७. सोई सिद्ध योगी कहलावै ❀ नाश समय सूर माँह लखावै ॥ १०४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! श्वासके स्वरमें स्वरोदयकी रीतिसे लक्ष्य लगाने-वालोंका अभ्यास पूर्ण होनेपर अपनी मृत्युका समय पहलेसे ही उन्हें लखा देता है या उन्हें जाननेमें आ जाता है। जिसको अपना शरीर नाश होनेका समय ठीक तरहसे स्वरमें ही लखनेमें आ जावे, वही संसारमें सिद्ध महायोगी, कालका ज्ञाता कहलाते हैं; ऐसे भ्रमिक गुरुवालोगोंने उन्होंकी खूब महिमा गाया है ॥ १०४८ ॥

८. समय जानि सो जाहि पराई ❀ आशा जीवन देई बौराई ॥ १०४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे सिद्ध योगीलोग स्वरोदय ज्ञानसे जब यह जान जाते हैं कि, अब इतनी घड़ीमें हमारा शरीर छूटने वाला है; सो योगी मृत्युका समय निकट जानकर मृत्युके डरसे और काया अमर रखनेकी कल्पनासे श्वासको ऊपर ब्रह्माण्डमें चढ़ा करके भाग-भाग कर अमरगुफामें जाकर छिपे रहते हैं; और समय ज्यादा व्यतीत होनेपर मृत्युका समय टल गया जानकर फिर प्राणको नीचे उतार लेते हैं। देह सहित अमर रहनेकी या बहुत काल कल्प-कल्पान्तर तक जीते रहनेकी, आयु बढ़ानेकी, ऐसी असम्भव बातकी मिथ्या आशा—तृष्णामें पड़कर गुरुवालोग बौरा गये हैं। उन पागलोंकी वाणी सुन करके बहुतेक नरजीव और भी बौरा रहे हैं। क्योंकि, उन्होंने ही अनेक प्रकरसे धोखा दे करके भ्रमा-भुला दिये हैं। संसारमें महादेवसे ले करके नौनाथ, चौरासी (८४) सिद्ध आदि बड़े-बड़े योगी हुए हैं। यदि योग साधनाओंसे देह अमर रहता या आयु बढ़ती जाती, तो वे लोग क्यों मर जाते ? जब वे भी बच नहीं सके, समयपर मर ही

गये, तब अभीके ये मामूली योगी क्या बचेंगे ? पूर्वके कर्माभ्याससे जितना प्रारब्ध संस्कार बन चुका है, उतना ही पूरा जी करके फिर योगी और भोगी सबोंका शरीर तो एक-न-एक दिन अवश्य छूट ही जाता है; यह निश्चित बात है। परन्तु, जीनेकी आशा-वासना ही जीवोंको बौरा देता है; सो पारखदृष्टि खोलकर भ्रमको छोड़ देना चाहिये ॥ १०४९ ॥

९. कछुक काल सो खेल खेलाई ❀ नाशै अन्त न रहै सिद्धाई ॥ १०५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोग अबोध जीवोंको भ्रमा करके कुछ कालतक यानी जब तक आयु है, तब तक—५। १०। २०। ५०; इत्यादि वर्षोंतक अष्टाङ्ग योग साधनाओंका खेल अपने खेलते हुए और शिष्योंको भी खेलाते-सिखाते रहते हैं। आखिरमें वह सभी खेल-साधनाएँ शरीरके साथमें ही नाश हो जाती हैं। किसीकी कुछ भी सिद्धाई तब नहीं रहती है। देह तो नाशवान् है, चाहे कितने ही योगादि सिद्ध करो, तो भी प्रारब्ध समाप्त होनेपर क्षणभर भी नहीं टिक सकता है; अन्तमें नाश हो ही जाता है। फिर किसीका कुछ कर्त्तव्य या सिद्धि उस मृत कायाको जिलाके रखनेमें समर्थ हो ही नहीं सकती है; और परकाया प्रवेश आदि वाक्य तो मिथ्या कल्पना ही मात्र है। जिस देहसे जीव कर्म भोग पूर्ण करके निकल गया, फिर कर्म नियमके विरुद्ध उसे कोई अन्य जीव प्रवेश करके जिला नहीं सकते हैं; देह तो अवश्य विनाश ही होवेगा ॥ १०५० ॥

१०. जैसे सर्पहि गरुड़ खेलावै ❀ भोजन करै बहुविधि नचावै ॥ १०५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे गरुड़ नामक पक्षी सर्पोंका आहार करता है; तो सर्पोंको पकड़ करके पहले तो वह गरुड़ खूब खेल खेलाता है। पकड़ता, छोड़ता, पछाड़ता है, ऐसे बहुत प्रकारसे नचा करके फिर अन्तमें उसे ही भोजन कर लेता है। यानी मार करके सर्पको खा जाता है। इसीप्रकारसे गुरुवालोग भी अबोध मनुष्योंको योगादि साधनाओंके खेलमें बहुविधिसे नचाकर गुरुवाईसे पुजवाकर भोजन करते हैं। यानी उन्हें ठग करके पेट पालन करते, गुजारा करते हैं। अथवा गरुड़रूपी कल्पना सर्पवत् अभिमानी योगी आदिकोंको साधनोंके खेलमें नाना तरहसे नचा-नचा कर आयु बिता देती है। फिर मरनेपर चौरासी योनियोंमें ले जाती है ॥ १०५१ ॥

११. नेती धोतीके षट कर्मा ❀ संयम यतन अनेकनि धर्मा ॥ १०५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! १. नेती कर्मः— नाकमेंसे सूतकी बत्ती हाथभर लम्बी डाल करके मुखसे निकाल करके साफ करते हैं। २. धोती कर्मः— दो अंगुल चौड़ा और नौ हाथ लम्बा पतला मलमल कपड़ाको मुखमें डालकर धीरे-धीरे प्राणायाम विधिसे लीलना, फिर निकालकर धोना, ऐसे तीन बार तक करते हैं। ३. वस्ती कर्मः— गुदासे बाँशकी नली = पोंगा लगा करके पानी खींच-खींच कर छोड़ना, पेट साफ करना, ऐसा करते हैं। ४. गज कर्मः— द्वादश अंगुलका गज बनाकर उसे लिङ्गमें चला करके साफ करते हैं। ५. कुञ्जल कर्मः— सबेरे तीन बार तक खूब पानी पी-पी कर निकालना और सवा हाथका ब्रह्म दातौन बनाकर उसको मुखमें डाल करके फिर पानी पीकर छोड़ते जानेकी क्रिया करते हैं। ६. लम्बिका योगः— दोहन क्रियासे जिभ्या बढ़ाना, ऊर्ध्व द्वारमें जिभ्या लगाकर अमृतरूप लार चाखना करते हैं; और न्योली कर्मः— पद्मासनसे बैठ करके दोनों हाथोंको दोनों घुटनोंपर रखकर, पेट और पीठको बराबर सीधा करके नाभिके दाहिने और बायें नलोंको हिलाना करते हैं। त्राटक कर्मः— खुले नेत्रोंसे एक टकसे देखते रहना, पलकें लगने न देना; यही सब हठ योगके षट्कर्मोंमें गिने जाते हैं; और संयमः— भूख मिटानेके लिये अल्प आहार करे, ज्यादा न खावे। प्यास मिटानेको थोड़ा पानी पीवे, ज्यादा नहीं पीवे। निद्रा भी थोड़ा करे, ज्यादा नहीं सोवे। थोड़ा बोले, वाद-विवाद न करे। थोड़ा ही रास्ता चले; ज्याद न चले। सात्त्विक आहार करे, खेल-तमाशा आदि नहीं देखे। ऐसे वृत्ति समेटकर रखना, सब बातोंमें परहेज करना, पथ्य ग्रहण

करना, कुपथ्य छोड़ देना, इसीको 'संयम' कहते हैं। ऐसे-ऐसे संयम, नियमोंका यत्न या उपाय धर्मके नामसे अनेक प्रकारसे बतलाया है। सो सब यत्न गुरुवालोग पालन करते और कराते रहते हैं, संसारमें ऐसे अनेकों धर्म प्रचलित किया हुआ है॥ १०५२ ॥

१२. योग युक्ति छिनमाँह नशाई * काल बली कछु नहीं बसाई ॥ १०५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सत्यग्राही मनुष्यो! शरीर बनाये रखनेके लिये किया हुआ योग-युक्ति और अनेक साधनोंकी युक्ति-प्रयुक्ति तो प्रारब्ध भोग है, तभी तक होते हैं। जब आयु पूर्ण हो जाती है, तब वह योगादि सब युक्तियाँ क्षणभरमें ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं। यह शरीर तो क्षणभंगुर है, क्षणमें ही बिगड़कर नाश हो जाता है। काल=मृत्यु बड़ा बलिष्ठ है, मृत्युके सामने किसीकी युक्ति नहीं चलती है। योगी, ज्ञानी और भक्तादि किसीका भी बल, जोर, वश नहीं लगता है कि, मृत्युको टाल सकें। जितनी भी युक्तियाँ बनाया गया है, सो सब मरणकी घड़ीमें नाश हो जाते हैं। जड़ाध्यास बड़ा बलवान् होता है, सो जीवोंको चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही ले जाकर डाल देता है; और ये काल=गुरुवालोग जो अभी कल्पनामें बलिष्ठ बने हैं, सो इन्होंका तब कुछ भी वश नहीं चलेगा; जब शरीर छूटेगा, सब युक्ति बर्बाद हो जायगी। अध्यासी जीव आवागमनमें ही जा करके पड़ेंगे। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा सत्यनिर्णय करके सब भ्रम कल्पना, विषयादि वासनाको छोड़कर अध्याससे रहित हो जाना चाहिये ॥ १०५३ ॥

साखीः— केते साधहिं योग सो * रच्छा करन शरीर ॥
[२०२] नाशै अन्त बाँचै नहीं * जतन घनेरी पीर ॥ १०५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! कितनेक अविवेकी मनुष्यलोग तो शरीर-की रक्षा, काया अमर, और आयु वृद्धि करनेके लिये ही, सो अष्टाङ्ग योगको विधिपूर्वक साधते-सीखते और सिखलाते हैं। भला! यह नाशवान् शरीर कभी अविनाशी, एकरस हो सकता है? कभी नहीं। पूर्वका बना हुआ कर्म भोग जितना है, उतना भोग पूर्ण करके शरीरका नाश हो जायगा। सब साधनाएँ-पुरुषार्थका अन्त हो जायगा। योग साधना करके भी देह सदा नहीं बचेगा या देह सदा बना नहीं रहेगा। ये बेपारखी गुरुवालोग जीतेमें भी कल्पनासे योगादि मार्गोंकी साधना करनेमें बहुतेक दुःख सहते हैं; फिर शरीर छूटनेपर भी जड़ाध्यासके कारणसे ही चारखानीमें जा करके घनेरी दुःख, कष्ट, यातना, त्रिविधि तापोंको सहते रहते हैं। योग साधनासे चौरासी योनियों-का दुःख भोग नहीं मिटता है, बिना पारख ॥ १०५४ ॥

साखीः— सम्पूरण चूसे सोई * जीव लखै नहिं ताहि ॥
[२०३] कष्ट अनेक लहै सदा * करै तराहि तराहि ॥ १०५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे जोंक खून चूसता है, तैसे ही स्त्री लिपट करके बल-वीर्यादि सम्पूर्ण मुक्तिका सामान हरण करके नाश कर देती है। स्त्री तो सम्पूर्ण शक्ति चूसती-खींचती ही जाती है; परन्तु, विषयी मूर्ख पुरुषलोग सो हानि तो देखते ही नहीं हैं; सदा स्त्री-परिवारों-के फन्दोंमें रहकर नाना कष्ट भोगते रहते हैं। सो दुःखोंसे छूटनेके लिये त्राहि-त्राहि करते हैं, तो भी छूट नहीं सकते हैं। देवी-देवता, ईश्वरादिको पुकारते हैं, सहायता चाहते हैं कि, कोई उसे दुःखोंसे बचावे। परन्तु, बचानेवाले कोई नहीं हैं, अथवा कोई रक्षक नहीं होते हैं। वैसे ही षट्दर्शनोंके गुरुवालोग और भ्रम, अनुमान, कल्पनादिका मार्ग ये सब मनुष्यके हंस गुण-लक्षण, न्याय, विचार, विवेकको नष्ट करके तन, मन, धनादिको चूस-चूस कर निकम्मा, शक्ति-सारहीन कर देते हैं। सोई गुरुवालोग भी जोंकवत् बनकर सब सारको चूस रहे हैं। नरजीव सब बेपारखी बने हैं, सो उन्हें कुछ भी हानि-लाभ लखनेमें या जानने-समझनेमें आता ही नहीं है। सत्यन्याय विवेकदृष्टि न होनेसे मनुष्य जीव उन गुरुवालोगोंको ठग-पाखण्डी नहीं जानते हैं। परन्तु, उन्हें हितकारी समझ करके उन्हींके

जालोंमें सहजमें ही अरुझे पड़े हैं। इसीसे पारख बोध हुए बिना सदा-सर्वदासे आवागमनोंके अनेकों कष्ट सहे; तथाजप, तप, व्रत, उपवास, योगादि साधनाएँ करनेमें भी अनेकों कष्ट-दुःख पाये हैं या वैसे ही सदा दुःख ही पाते रहते हैं; और जगत्के दुःखोंसे छूटनेके लिये कल्पनासे ईश्वरादि कोई कर्त्ता मान करके त्राहि-त्राहि करके पुकारते-चिल्लाते रहते हैं। हे भगवान्! हे ईश्वर! हे परमात्मा! या खुदा! हमें इस कष्टसे बचाओ! हम लोग तेरी शरणमें पड़े हैं, इत्यादि प्रार्थना करते हैं। परन्तु, वहाँ तो सुननेवाला कोई भी नहीं है, तो सुनेगा कौन? झूठी पुकारा करनेसे वे जड़ाध्यासी जीव दुःखोंसे बच तो नहीं पाये; परन्तु, चौरासी योनियोंमें जा करके और भी दुःख ही भोग पाते रहते हैं। इससे अभी पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो करके सत्य-विचारसे श्रीसद्गुरुके सत्य निर्णयको लेकर अपने जीवनका सुधार-उद्धार कर लेना चाहिये ॥ १०५५ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, मूल बीजक, साखी नम्बर— ४२। ४३ ॥ ❀ ॥

साखीः— झिल मिल झगरा झूलते * बाकी छूटि न काहु ॥
[२०४] गोरख अटके काल पुर * कान कहावै साहु ॥ १०५६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! झिलमिल = प्रकाशरूप परमतत्त्व-परमात्मा मानकर उसे देखनेके लिये तारक योग साधना करके झगड़ा = धिङ्गामस्तीमें योगी लोग भूलने लगे। उस तारकादि अष्ट योग, खेचरी आदि दश मुद्राओंमें भूलनेवाले योगीलोगोंके हृदयमें भी जड़ाध्यास बाकी ही रही। पारख बोध हुए बिना कोई भी भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनासे नहीं छूटे। अथवा 'झिलमिल' = कहिये ज्योति स्वरूपको ब्रह्म मानकर उसकी प्राप्तिके लिये वेद प्रमाणसे अनेकों मतवादके झगड़ामें पड़े हैं। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि नाना सिद्धान्त, मत-पन्थामें जीव भूले। परन्तु, वासना-बीज तो सबोंका बाकी ही रहा; किसीका भी भ्रम नहीं छूटा। गोरखनाथ सरीखे योगी, दत्तात्रेय, शुकदेव सरीखे ज्ञानी, नारद सरीखे भक्त, ये सब लोग भी कल्पनाके शहरमें मन-मानन्दीके नगरमें जा-जा करके अटके और भटके छिपे रहे। जैसे चोर चोरी करके लोगोंसे बचनेके लिये छिपते हैं; तैसे ये गोरखादि भी 'कालपुर' = कहिये जगत् और भ्रमरगुफामें काल = मृत्युके डरके मारे छिपे रहे। परन्तु, 'हमारी मन-मानन्दी-कल्पना ही काल है'— ऐसा पारख बिना उन्हें परखनेमें नहीं आया। सब जगह काल तो उनके साथ ही रहा। ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, आनन्द, निर्विकल्प आदि जो उन्होंने स्थिति माना, सोई कालने उन्हें खाया। गोरखादि पूर्वके गुरुवालोग ही बेपारखी वाणीके चोर हुए, अब और साधारण आजकलके गुरुवा लोग कौन सच्चे साहु या पारखी सत्यन्यायी कहावेंगे। वे बेपारखी लोग तत्त्वोंकी देह शून्य समाधि और विषयादिकी वासना लेकर ब्रह्म-जगत्के फन्दोंमें मैं-ममतामें पड़ करके चोर बने हैं; बिना पारख वे कोई साहु नहीं कहला सकते हैं ॥ १०५६ ॥

साखीः— गोरख रसिया योगके * मुये न जारी देह ॥
[२०५] मास गली माटी मिली * कोरो माँजी देह ॥ १०५७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! गोरखनाथ योगके बड़े रसिक या प्रेमी हुए रहे। जिन्होंने लय, तारक, अमनस्क, सांख्य, लम्बिका, कुण्डलिनी, हठयोग और राजयोग, ये आठों योगोंकी साधनाका खूब रस लिया, दशों मुद्रा लगाया, छहों चक्र बेधकर शून्य समाधि लगाया। काया नहीं जले, नहीं बिगड़े, नहीं मरे; काया अमर हो, और ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्त हो; ये कल्पनाको ले करके मन लगा करके चौरासी (८४) बार काया कल्प किया, ऐसा योगी लोग कहते हैं। जिससे देह ऊपरके मांस, त्वचा गलकर मिट्टीमें मिल गई, और 'कोरो' = कहिये हड्डियाँ तकके विकार साफ होकर देह माँजी गई। देहमें नवीनता, सुन्दरता प्राप्त होकर हीरावत् प्रकाश-प्रभा

छा गई थी, ऐसा कहा है। ऐसे योगके रसिया भी निज पारख स्वरूपके बोध हुए बिना भ्रम-कल्पनामें पड़कर बद्ध हुए, आयु पूर्ण होनेपर गोरखकी भी मृत्यु हो गई; जीर्ण शरीर जल-गलकर मिट्टी आदि चार तत्त्वोंमें ही मिल गया। जड़ाध्यासी जीव पुनः नया शरीर धारण करनेके लिये स्त्रीके गर्भवासमें चला गया। तहाँ संस्कारके अनुसार शरीर बना लिया। चैतन्य जीवके पारख स्वरूपके बोधसे स्वरूप स्थितिपर स्थिर वा कायम हुए बिना और किसी युक्तिसे भी मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। इसीसे गोरखआदि योगी लोग बिना पारख भव-बन्धनोंसे नहीं छूटे ॥ १०५७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द, नम्बर—८ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, शब्द नम्बर-२ ॥ ❀ ॥

१. सन्तो ! जागत नीन्द न कीजै ॥ १०५८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! हे जिज्ञासु जीवो ! सदा जागते हुए रहिये ! नींदरूप गाफिली मत् करिये ! देखिये ! जीव तो चैतन्य ज्ञान स्वरूप है। सो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, ज्ञान, विज्ञान, दुःख-सुखादि सर्व कलाओंको जाननेवाला द्रष्टा या साक्षी है। अतः पारखदृष्टि करके निज स्वरूपमें ही जाग्रत् सावधान हो स्थिर हो रहिये ! कभी किसी प्रकारसे भी खानी-वाणी प्रपञ्चोंमें लगकर 'नींद' कहिये अचेतपना, गाफिली, भूल, लापरवाही मत् कीजिये ! नरजन्मके अमूल्य समयको व्यर्थमें मत् खोइये ! जाग्रत् हो, सत्पुरुषार्थ करके पारखबोध प्राप्त कर सद्गुण लेकर निज हित-कल्याण कर लीजिये ! यही कहनेका भावार्थ है ॥ १०५८ ॥

२. काल न खाय कल्प नहिं व्यापै * देह जरा नहिं छीजै ॥ १०५९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! चैतन्य स्वरूप जीव तो नित्य, सत्य, अखण्ड, अविनाशी है। इससे काल=समय और मृत्यु जीवको खाकर नाश कर नहीं सकता है; और चैतन्य जीवका स्वरूप ठोस अखण्ड है, इसलिये स्वरूपमें कल्पनादि विकार भी व्यापकर प्रवेश कर नहीं सकता है। यह स्थूल देह ही तत्त्वोंके कार्य विकाररूप होनेसे जरा-मरणमें क्षीण हो विनाशको प्राप्त होता है। परन्तु देहका रचयिता चैतन्य जीवका ज्ञान-स्वरूप जो पारख है, सोई निज देह वा सत्य स्वरूप है। उस 'देह'=कहिये पारख स्वरूपको, जरा=बुढ़ापा, जीर्ण-क्षीण नहीं कर सकता है; मृत्यु भी कभी नाश कर नहीं सकती है। जीव अमर है, इससे सब मानन्दी-कल्पना त्याग करके निज पारख स्वरूपमें ही स्थिति कायम करिये ॥ १०५९ ॥

३. उलटी गङ्ग समुद्रहि सोखै * शशि औ सूरहि ग्रासै ॥ १०६० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे गङ्गादि नदियाँ हिमालय पहाड़से बहती हुई सीधी समुद्रमें जाकर मिल जाती हैं; और समुद्रके जलको चन्द्र-सूर्यादि शोषण करते हैं; सो भाफ बनकर मेघ मण्डलमें मिल जाता है। परन्तु, यहाँपर तो वह बात उलटी हो जाती है। मनुष्य जीव सो यह तो ज्ञानका समुद्रवत् है; सो मनुष्योंसे ही वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि सब प्रकारकी वाणी बनी है। अब 'गङ्ग'=कहिये वाणी कल्पनाको उलटा करके गुरुवालोग अन्य मनुष्योंको भ्रमाते हैं। तन, मन, धनादिका शोषण वा हरण करते हैं। सुख प्राप्तिकी लालच देकर नाना दुःख ही भुगा देते हैं। वाणी कल्पना मनुष्योंसे ही निकली, तो फिर उलट करके वही सब मनुष्योंको सोखने वा भ्रमाने लगी। इस कल्पनामें शशि-सूर कहिये योगी-ज्ञानी, वे भी ग्रसित हुए, भ्रमिक हो गये हैं। तहाँ शशि=योगी लोगोंने अष्टाङ्ग योग मार्गोंके साधनाओंमें लगा करके लोगोंको ग्रासे हैं; और सूर=ज्ञानी लोगोंने ब्रह्मज्ञानका मार्ग अद्वैत सिद्धान्त दृढ़ा करके ग्रसित किये; लोगोंको भ्रमाये और भुला करके धोखेमें डाल दिये हैं ॥ १०६० ॥

४. नौ ग्रह मारि रोगिया बैठो * जलमें बिम्ब प्रकाशै ॥ १०६१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! रोगी लोग जैसे रोगसे पीड़ित होते हैं, तब नौ ग्रहरूप नौ द्वारोंको और मनको मारकर वा रोककर परहेज किये बैठते हैं; और पानीमें अपने शरीर-

की परछाँहीं प्रकाश देख करके दुबला-पतला, निर्बल होनेसे दुःखी होते हैं। अथवा किसीको रोग लगा, तो ज्योतिषी-पुरोहित लोग उन्हें नौ ग्रहोंका दोष बता करके सात बार तथा राहु और केतु, ये नौ ग्रह शान्ति करनेको बैठाते हैं। तहाँ पाठ-पूजादि करनेके बाद जलरूप पतला तेल-घृतादिमें देहकी छाया मुखका सोई बिम्ब-प्रकाशको दिखा करके रोग मुक्त होओगे, ऐसा कहकर भुला देते हैं। अथवा रोगिया=कहिये भोगिया लोग वृद्धावस्थामें नौ ग्रहरूप नौ द्वार तथा दशों इन्द्रियाँ शिथिल होनेसे भोग भोगनेकी इच्छा होते हुए भी लाचारीसे मन मारकर बैठे रहते हैं; और 'जल' कहिये काम-रूप वीर्य-रजमेंसे जो-जो बिम्बरूप पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन्हींका प्रकाशरूप मुखको देखकर सन्तोष कर लेते हैं; उसीमें खुश हो रहते हैं। इतना अर्थ तो उपरी खानी भागमें हुआ, अब वाणी भागमें अर्थ सुनिये! अथवा नौ ग्रह=सोई नौ द्वारोंको बन्द करके मारकर वशमें कर रोगिया=योगी लोग इङ्गला-पिङ्गला नाड़ीको खींच करके कुम्भक लगा करके ध्यान-समाधिमें बैठे। तब देहमें नाद-बिन्दका सङ्घर्षण होनेसे ब्रह्माण्डमें एक ज्योतिरूप बिम्बका प्रकाश देखा, तथा जल=वाणीरूप अनहद दशनाद हुआ, सो सुनकर मग्न-मस्त हुए। ज्योति-प्रकाश, नाद, आनन्द आदिको परमेश्वर कर्त्ता पुरुषके स्वरूपका दर्शन मानकर योगी लोग धोखेमें ही पड़े हैं। अथवा 'रोगिया' कहिये ब्रह्मज्ञानी, जिन्हें भ्रमका अध्यासरूप रोग लगा है, वे साधन चतुष्टय साधकर पञ्च विषय और अन्तःकरण चतुष्टय ये नव ग्रहोंको मारकर वा दबाकर ब्रह्म समाधिमें जाकर बैठ गये। उन्होंने वेदान्त वाक्यका श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके यह जाना कि— "मैं ही ब्रह्म या आत्मा सर्वत्र परिपूर्ण अद्वैत हूँ!" यह दृढ़ निश्चय करके जलरूप जगत्में बिम्बरूप ब्रह्मज्ञानकी वाणी प्रचार करके प्रकाश किये, बिना पारख वे सब धोखेमें ही पड़े हैं॥ १०६१॥

५. बिनु चरणनको दहुँदिश धावै ❀ बिनु लोचन जग सूझै॥ १०६२॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! मन-कल्पनाका चरण=पैर तो नहीं है; परन्तु, वह दशों दिशाओंमें धावती है या दौड़ लगाती है। दशों इन्द्रियोंके साथमें मन विषयोंमें दौड़ता रहता है; और कोई दशों दिशाओंमें परमात्माका बासा मान करके उसे ढूँढ़नेको तीर्थादिमें धावते हैं। चरणके बिना वही कल्पना 'दहुँदिश' कहिये चार वेद-षट् शास्त्र, इन्हींमें दौड़ लगाती रहती है। योगी लोग कल्पनासे दहुँदिशमें=दशों मुद्राएँ साधनेमें धावन कर रहे हैं; और ज्ञानी लोग ब्रह्मको दशों दिशाओंमें परिपूर्ण व्यापक मानकर कल्पनामें दौड़े हैं; और उन्हींकी विवेकदृष्टि तो फूट ही गई है। जगत्में जड़-चैतन्य न्यारा-न्यारा तो वे देखते ही नहीं हैं, बिना विचार नेत्र मूँदकर गुरुवालोग कहते हैं कि, यह सारा जगत् एक ही ब्रह्ममय है। हमें तो सर्वत्र एक आत्मा ही नजर आता है, "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति" अब भला! पारख बिना उन्हें सत्यासत्य क्या सूझेगा? नेत्र बिना अन्धे लोग रूपको क्या देखेंगे? तैसे ही नेत्र बन्द करके योगी-ध्यानी लोग जगत्में ज्योति स्वरूप परमात्मा सर्वत्र भरा है, हमें ध्यानमें दिखता है, ऐसी कल्पना किये हैं; अपने भ्रममें पड़कर दूसरोंको भी भ्रमा रहे हैं॥ १०६२॥

६. संशय उलटि सिंहको ग्रासै ❀ ई अचरज कोइ बूझै॥ १०६३॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! खरगोशने यदि सिंहको पकड़कर पछाड़ दिया वा ग्रास लिया, तो यह आश्चर्यकी बात हुई कि नहीं? जरूर आश्चर्यकी बात हुई! इसके अर्थको तो कोई बिरले ही बूझेंगे। सो इसका मतलब यह है कि:— सिंहरूप सोई श्रेष्ठ नरजीव है। संशय=सोई वाणी-कल्पना, अनुमानका सन्देह है। वाणी तो मनुष्य जीवोंसे ही बनी है; संशय-कल्पना तुच्छ है; परन्तु, वही कल्पना उलट करके मनुष्योंको ग्रासने-भटकाने लगी। यही तो आश्चर्य है! मनुष्य जीव अपने कर्त्तव्यमें आप ही भूलकर बद्ध पड़े हैं। यह पारख निर्णय तो कोई बिरले ही समझेंगे-बूझेंगे कि, संशयरूप ब्रह्मका भ्रम सो तो सिंहरूप श्रेष्ठ मनुष्य जीवसे ही पैदा हुआ है, फिर वही सन्देहने

उलट करके नरजीवको ग्रास किया है; चौरासी योनियोंमें डाला है। कोई पारखी सन्त ही इस बातको समझते-बूझते हैं ॥ १०६३ ॥

७. औंधे घड़ा नहिं जल बूडै * सीधे सो जल भरिया ॥ १०६४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे घड़ाको औंधा करके डाले, तो औंधा घड़ा जलमें कभी नहीं डूबता है; ऊपर ही रह जाता है; और फिर सीधा करके नदीमें डालनेपर घड़ामें जल भर जाता है।। तैसे ही औंधा घड़ा=कहिये ब्रह्म-अनुमान और सीधा घड़ा सो सत्य चैतन्य देहधारी जीव हैं। ब्रह्म तो संसारमें ढूँढ़नेपर भी कहीं नहीं मिलता है, तथा ब्रह्म स्वयं आकर जीवमें भी नहीं मिलता है। जीवमें ब्रह्म डूबता या प्रवेश कर नहीं सकता है। क्योंकि, जीव अखण्ड है; ब्रह्म तो भ्रम-कल्पना मात्र है; जीवकी ही मानन्दी मात्र है; और नरजीव ही वेद-वेदान्तकी वाणी पढ़-सुन-गुन करके "आत्मा सर्वत्र ओत-प्रोत भरा है, सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ !" ऐसी कल्पनाकी वाणी बोलते तथा कहते-सुनते हैं। इसलिये जीव ही सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है। पारखी श्रीसद्गुरुके पारख ज्ञान जाने बिना यह सब भेद कोई भी जान नहीं पाते हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग करके पारख बोधको प्राप्त कर लेना चाहिये ॥ १०६४ ॥

८. जेहि कारण नर भिन्न भिन्न करैं * सो गुरु प्रसादे तरिया ॥ १०६५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [यह जीव मुख हैः—] हे सन्तो ! भावुक नर-जीवोंका कथन ऐसा है किः— "जिस कारणसे अज्ञानता करके संसारी नरजीव भिन्न-भिन्न प्रकारकी बात करते हैं, भिन्न-भिन्न आचरण, नाना सिद्धान्त कायम करते हैं; सो हम भी उन्हींके सङ्गमें प्रथम जबतक लगे थे, वैसी ही विभिन्न धारणामें लगे थे। जिसवास्ते कि, ईश्वर-ब्रह्म आदिको न्यारा-न्यारा मानते थे, भिन्न-भिन्न है, ऐसा कहते थे। सो जब ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें आये, तब हमारी तो वह भूल मिट गई है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश— ये साक्षात् परब्रह्म स्वरूप हैं; वैसे ही ब्रह्मज्ञानी गुरु हमें मिले। उनके कृपा-प्रसादसे पहिलेकी सब द्वैतकी हमारी भूल मिट गयी है। गुरुकी कृपा तथा वेदान्तका अनुभवसे एक आत्मा अद्वैत, एकरस, सदा नित्य-निरन्तर हम ही हैं, ऐसा जान गया हूँ ! भवसागरसे सहज ही पार हो गया हूँ ! ऐसा मानकर अबोध मनुष्य लोग धोखेमें पड़े हैं। [गुरुमुखः—] तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका अभिप्राय ऐसा है कि- पारखबोध न होनेसे जिस कारणसे नरजीव निज स्वरूपसे भूले हैं, तो भिन्न-भिन्न प्रकारके मत, पन्थ, सिद्धान्त आदिकी मानन्दी करने लगे। इसीसे नाना भ्रम, कल्पनासे धोखेमें पड़े हैं; और पारखी श्रीसद्गुरुकी कृपासे जिनकी सो वह भूल मिट जाती है, सो वे भव-बन्धनोंसे छूट करके पार उतर जाते हैं; और जड़ाध्यासी जीव सब गर्भ कुण्डमें डूब जाते हैं ॥ १०६५ ॥

९. बैठि गुफामें सब जग देखै * बाहर किछउ न सूझै ॥ १०६६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गुफामें बैठकर कोई—"हमको सारा संसार दिखाई देता है" ऐसा कहे। फिर बाहर आकर "कुछ दिखता ही नहीं है" ऐसा कहे। ऐसी बात दिवाना ही कह सकता है। उसीतरहसे यहाँपर गुरुवालोग मतोंके दिवाने बने हैं। योगीलोग भ्रमरगुफामें ध्यानस्थ होकर समाधिमें बैठ करके ज्योतिस्वरूपको देखकर कहते हैं—"वही ब्रह्म ज्योतिका प्रकाश सारे जगत्में छाया हुआ हमें दिखाई दे रहा है। घट-घटमें आत्म-ज्योति भरी पड़ी है। उसेके बाहर तो और कुछ भी नहीं है !" और बाहर आँखें खोलकर जब देखते हैं, तब कहते हैं—"अरे ! बाहर तो वह प्रकाश कुछ भी दिखाई ही नहीं देता है, ध्यानमें ही दिव्य ज्योतिका दर्शन होता है।" तैसे ही ब्रह्मज्ञानी लोग भी ज्ञानगुफामें बैठकर श्रवणादि द्वारा वेदान्त प्रमाणसे जान गये कि—"सब जगत्में एक ही आत्मा भरी पड़ी है, सोई अद्वैत सत्य है" जब व्यावहारिक सत्तामें बाहर आये, तो "यहाँपर अद्वैतका लक्षण कुछ भी सूझता या दिखाई नहीं देता है" जड़-चैतन्य भिन्न-भिन्न अनेक ही

देखनेमें आते हैं। तब जैसे-का-तैसा आत्मा है, ऐसा कहकर धोखा खाये। मिथ्याको ही सत्य समझकर भूले, वैसे ही औरोंको भी भुला रहे हैं। हृदय गुफामें बैठकर जो स्वप्न देखा जाता है, सो जागनेपर बाहर वह कुछ भी दिखाई नहीं देता है, तो स्वप्नवत् जितने भी भास दृश्य होते हैं, सो सभी मिथ्या हैं। भासिक जीव ही सत्य है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १०६६ ॥

१०. उलटा बाण पारधिहि लागै ❀ सूरा होय सो बूझै ॥ १०६७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! उलटा बाण चलानेपर पारधिको ही लगता है। अगर लक्ष्य चूककर पत्थरमें बाण टकराया, तो भी बाण उलटकर पारधीको ही लग जाता है। तैसे ही उलटा बाण=कल्पनाकी वाणी ब्रह्मज्ञानका उपदेश पारधी=जिनकी बुद्धि पार पहुँची हो, सो ज्ञानी गुरुवालोगोंने मनुष्योंपर बाणरूप वाणी चलाये, बोध किये; परन्तु, सो ब्रह्मबोधने उन्हीं ज्ञानी लोगोंको ही बेधा; कल्पना उलटकर उन्हींको लगी; वे भ्रममें खूब लगे। अब यह बातको जो कोई शूर, वीर, धीर, सर्वके परीक्षक, सत्यन्यायी, पारखी होवेंगे, सोई बूझेंगे कि, जीव स्वयं कल्पना करके उसीमें लगकर आप ही बद्ध हो रहे हैं; पारख होनेपर आप ही भ्रमको छोड़ देंगे ॥ १०६७ ॥

११. गायन कहै कबहुँ नहिं गावै ❀ अनबोला नित गावै ॥ १०६८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जिसने वेद, कुरान आदि सब वाणीको गायन किया, कहा-सुना, सोई नरजीव सत्य है। परन्तु, इसकी सत्यताका विचार सत्यनिर्णयका वर्णन तो कभी भी कोई नहीं करते हैं। गायन=वाणीका कहना-सुनना तो मनुष्य जीवसे ही सब करते हैं। किन्तु, जीवको कुछ भी नहीं समझते, ईश्वरकी शक्तिके बिना जीव कभी कोई कार्य कर नहीं सकते हैं; कुछ गा नहीं सकते हैं, ऐसा कहते हैं; और अनबोला=ब्रह्मको जो माना है, उसे मन, बुद्धि, वाणीसे परे, अवाच्य कहकर भी अनुमान-कल्पनासे ब्रह्मको नित्य-सत्य, जगदाधार आदि विशेषणोंसे रोज-ही-रोज महिमा गाते जाते हैं। सत्यकी अवहेलना करके मिथ्याका गुण नित्य गा-गा कर घनचक्करमें पड़े हैं ॥ १०६८ ॥

१२. नटवट बाजा पेखनि पेखै ❀ अनहद हेत बढ़ावै ॥ १०६९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे नट बाजा बजाकर अनेकों खेल दिखलाता है। नाच-गाना देख-सुनकर लोग मोहित हो जाते हैं। बाजीगरोंका खेल सब झूठा ही होता है। तैसे ही योगी लोगोंने भी नटके समान शरीरको बट करके टेढ़ा-मेढ़ा करके नटवट=नटवत् चौरासी आसन लगाया। बाजा=दशनाद अनहद, कानको बन्द करके सुना। पेखनी=दश मुद्राः— खेचरी, भूचरी, चाँचरी, अगोचरी और सर्वसाक्षिणी; ये पाँच बहिर्मुद्राएँ हैं। सन्मुखी, उन्मिलिनी, शाम्भवी, आत्मबोधिनी और पूर्णबोधिनी, ये पाँच अन्तर्मुद्राएँ गुप्त माना है। यह दश मुद्रा लगा करके झिलमिल ज्योति प्रकाश देखते हैं; और दश नाद अनहद ध्वनि सुननेमें तो हेत= प्रीति, स्नेह खूब बढ़ाया। अथवा अनहद=जिसका हद वारापार नहीं है, सो अपार, बेहद ब्रह्म कोई मानकर उसी अनुमान-कल्पनामें प्रीति बढ़ाया। परन्तु, ये भी गुरुवालोगोंकी बाजीगरी, तमाशावत् मिथ्या भ्रम जाल है; इससे कुछ कल्याण नहीं होवेगा ॥ १०६९ ॥

१३. कथनी बदनी निजुकै जोवै ❀ ई सब अकथ कहानी ॥ १०७० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! कथनी=गुरुवाओंका कथन किया हुआ कल्पित वाणी। बदनी=उसी वेदादि वाणीको वर्णन करके कोई जगत्कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिका निश्चय कराके उन्हें ही अपना कल्याणकर्त्ता मानकर ध्यानादि साधना द्वारा ताकते हैं; दर्शन करना चाहते हैं। ई सब=भ्रमिक गुरुवालोगोंने ब्रह्मको अकथनीय=अवर्णनीय कहकर या मानकर फिर उसके कहानीरूप चरित्र, उत्पत्तिसे लेकर प्रलय पर्यन्तकी बात कल्पनाकी कथाका वेद-शास्त्रादिमें विस्तार कर रक्खे हैं। सो सब अकथ कहानी जीवकी कल्पना मिथ्या जाल बन्धन है ॥ १०७० ॥

१४. धरती उलटी अकाशहि बेधै * ई पुरुषनकी बानी ॥ १०७१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! परन्तु, बेपारखी मनुष्योंने वही वाणी गुरुवा-लोगोंसे सुनी; उन्होंने कहा कि— ब्रह्मादि, सनकादि, नारद, व्यास, शौनकादि बड़े-बड़े अग्रगण्य महापुरुषोंकी वाणी तथा उपदेश यही वेद, शास्त्र, पुराणादि हैं। इसमें बतलाये अनुसार ही चलना चाहिये, इत्यादि रोचक-भयानक वाणी सुनाये, तब धरतीके श्रद्धालु मनुष्य सब भक्ति, कर्म, योगादि साधनाएँ करके ऊपर आकाशमें सात स्वर्गादि लोक, देवताएँ, ईश्वरादिकी कल्पना करके बेधे= लक्ष्य लगा-लगा कर शून्यमें गाफिल हुए, बन्धनमें जा पड़े। उक्त पुरुषोंकी वाणीके पक्षमें सब जकड़ गये ॥ १०७१ ॥

१५. बिना पियाला अमृत अँचवै * नदी नीर भरि राखे ॥ १०७२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कोई मूर्ख पियालारूप पात्र-कटोरीके बिना ही अनुमानके प्यालामें कल्पनाका अमृत, दूध या पानी भर-भर कर पीवे, तो उससे क्या फायदा होता है ? नदीमें भरा हुआ पानी नहीं पीता है, तो प्यास कैसे जायगी ? तैसे ही कोई पिया=परमात्मा-को, आला=अच्छा सर्वाधार अमृतके समान अमर करनेवाला ऐसा मानकर उसे अँचवै=प्राप्त करना चाहते हैं। सो तो कोई वस्तु ही नहीं है; सिर्फ कल्पना ही मात्र है, फिर कैसे मिलेगा ? अमृत=अविनाशी तो जीव ही हैं; अध्याससे ही आवागमनमें पड़े हैं। नदी=पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें, नीर=सारशब्द निर्णयकी वाणीसे भरा हुआ पारख बोध रक्खा है, सो वहाँ जा करके ग्रहण तो नहीं करते हैं, इसीसे जीव भव-बन्धनों से छूटकर मुक्त भी नहीं होते हैं। ब्रह्म-ईश्वरादि मान-मान करके विषयासक्तिमें पड़-पड़ कर चौरासी योनियोंमें दुःख भोगते रहते हैं ॥ १०७२ ॥

१६. कहैं कबीर सो युग युग जीवै * जो राम सुधारस चाखै ॥ १०७३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— [मायामुखः—] हे सन्तो ! यहाँ गुरुवालोग ऐसा कहते हैं कि, अणु-रेणु सर्व जगत्में एक ही आत्माराम व्यापकरूपसे भरा हुआ सबमें रम रहा है। गुरुके उपदेश श्रवणादि द्वारा हृदयमें आत्मा-परमात्माको अभेदरूपसे एक करके जिस पुरुषने अनुभवसे जान लिया वा दृढ़ कर लिया, उस महानुभावने राम-नाम स्मरणके अमृत रसको चाखकर पी लिया। ऐसे राम सुधारसको जिसने चाखा, सो युग-युगके लिये जी गया; अमर-मुक्त स्वयं एक आत्मा हो गया है, इत्यादि कहा है ॥ १०७३ ॥

सम्बन्ध— ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर और भी सद्ग्रन्थ बीजकके शब्दका प्रमाण दिया है, सो सुनिये ! ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ भाग— ६ ॥ प्रमाण, बीजक मूल, शब्द नम्बर— ६३ ॥ ❀ ॥

१. मैं कासों कहौं ? को सुनै ? को पतियाय ? फुलवाके छुवत भँवर मरिजाय॥१०७४॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [(गुरुमुखः—) वाणी भागमेंका अर्थः—] हे सन्तो ! मैं सत्यन्याय निर्णयकी बात किससे कहूँ ? विवेकी मिले बिना यथार्थ बातको कौन सुनेगा ? और कौन प्रतीति करेगा ? क्योंकि, कल्पना-अनुमानकी वाणीका ही संसारमें मनुष्योंको दृढ़ विश्वास हो रहा है। यदि तुम लोग जिज्ञासु हो, तो सब वाणी-खानीके पक्ष छोड़ करके ध्यानपूर्वक सुनो ! पहले वाणी जालका भेद दिखाकर फिर खानी जालका भाव बतलाता हूँ ! 'काया' और 'अनुमान' यही खिला हुआ कमलके फूल सदृश है। भँवर='मन' तथा सनकादि षड्दर्शनोंके भेषधारी साधक वर्ग हैं। भक्ति, योग और ज्ञानसे धारणा, ध्यान और समाधि लगाकर अनुमानसे ब्रह्माण्डमें सहस्रदलका कमल मान करके वृत्ति एकाग्र कर ऊपर लक्ष्य लगाकर श्वास चढ़ाकर उस फूलको छूते ही उनका मन मर गया, सून्न स्थिति हो गई। जीते ही जड़ाध्यासी बनकर मुक्तिपदसे मर गये वा विनष्ट हुए। चैतन्य स्वरूपका जागत् स्थिति करना छोड़कर शून्यमें समाये। भँवर=भावुक साधक लोग ऐसे

हंसपदसे गिरकर मरे। विवेकीके सिवाय इसका प्रतीति कौन करे? कौन सुनकर विचार करे? जहरवत् अनुमानके फूलको स्पर्श करके मनरूपी भँवरा मर जाता है; परन्तु अध्यासी बन जाता है ॥ १०७४ ॥

२. जोतिये न बोइये सींचिये न सोय * बिनु डार बिनु पात फूल एक होय ॥ १०७५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जोत, बो, सींच करके यहाँ बगीचामें फूल उत्पन्न होता है। परन्तु, वहाँपर इन सबोंका कुछ काम ही नहीं पड़ता है। ब्रह्माण्डमें बैल जोड़ी हल लगा करके जोतना भी नहीं पड़ता है; किसीने जोता भी नहीं है। कमलके बीज ले जाकर वहाँ किसीने बोया भी नहीं है, बोना भी नहीं पड़ता है। पानी डालकर उसे सींचना भी नहीं पड़ता है, कभी किसीने उसे सींचा नहीं है। सो फूल आप-ही-आप जुताये, बोये सुतां लगा कर सींचे बिना ही अनुमान-कल्पनासे प्रथम ही पैदा हो गया। परन्तु, प्रत्यक्षमें दृश्य डार-पातके बिना ही एक सहस्रदल कमलका फूल ब्रह्माण्डमें प्रगट हो गया। उसमें डार=आधाररूप श्वास, तथा पात=अक्षररूप तो कुछ नहीं है, उसके बिना यों ही एक कल्पनाका फूल खड़ा हो गया। एक ब्रह्मका निवास उस फूलमें मानकर गुरुवालोग भ्रमिक हुए या भ्रमिक हो रहे हैं ॥ १०७५ ॥

३. गगन मण्डल बिच फूल एक फूला * तर भौ डार ऊपर भौ मूला ॥१०७६॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गगन मण्डल=आकाशका घेरा सोई शिरके बीचों-बीचमें एक सहस्र दलका फूल फूला, तर भौ डार=नीचे नाभि स्थानमें श्वासरूप डारका टिकाव हुआ, और ऊपर भौ मूला= शिर ऊपर ब्रह्माण्डमें उसका मूल जड़ 'सोहं ब्रह्म' रह गया, ऐसा माना है। श्वासमें लक्ष्य लगाया, तो देह इन्द्रियोंका लय होकर अभाव हो गया, पीछेसे सुरति श्वासमें ही समा गई। ब्रह्माण्डमें एक ज्योति प्रकाश दिखा, उसे ही ॐकार ब्रह्म, सबका कारण सहस्र दल कमलपर विराजमान मान लिया है ॥ १०७६ ॥

४. फूल भल फुलल मलिनि भल गाँथल * फुलवा बिनशिगौ भँवर निराशल ॥१०७७॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! फूल भल फुलल=मन-मानन्दीका फूल सहस्र दल तथा ब्रह्म-ईश्वरादि वाणी कल्पना तो खूब अच्छी तरहसे भलीप्रकारसे फूली, सो खूब फैली। मलिनि भल गाँथल=मलिन मनवाले गुरुवालोगोंने भलीभाँति वाणीका कथन वर्णन किया। बहुतोंको उसी कल्पनामें जुटाकर मलिनरूप भ्रमिक कर दिया। भलीप्रकारसे लक्ष्यको श्वासमें लगाया, सूक्ष्म देह जागा, माना हुआ सहस्र दल कमलमें गुथ गये। मेरुदण्डसे मक्तारको पकड़ करके ब्रह्माण्डमें चढ़े, सोहं शब्दसे शून्यमें समाये, खूब जड़ाध्यासी हुए; और शरीर रहा, तब तक तो ध्यान-समाधि करते रहे, उसीका उपदेश देते रहे। जब आयु पूर्ण हुई; फुलवा=शरीर छूट गया, विनाश हो गया; तो देहके साथ ही कल्पनाके सहस्रदलका कमल फूल भी नष्ट-भ्रष्ट हुआ। तब भँवर=भ्रमिक, भावुक नरजीव सब निराश-उदास दुःखित वा विवश होकर अध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासमें चले गये ॥ १०७७ ॥

५. कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई! * पण्डित जन फूल रहल लोभाई ॥ १०७८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सज्जनो! हे साधु भाई! मेरी बात सुनो! जड़-चैतन्यका निर्णय करके सब कसरको परखकर त्याग करके सद्गुणोंको धारण कर अपना कल्याण करलो! इन पण्डित गुरुवालोगोंकी वाणी सुन-सुनकर मत् भूलो! वे लोग तो आप ही धोखेमें पड़े हैं। पण्डित जन=ब्रह्मादिक कर्मी, उपासक, योगी और ज्ञानी, ये लोग सब तो बिना पारख पाँच मार्गोंकी वाणीमें फूल-फूलकर चार फल, चार मुक्ति आदिकी कल्पनामें भुला रहे हैं। विषय, भक्ति, कल्पना, ब्रह्म, इत्यादि मन-मानन्दीके फूलोंमें लुब्ध होकर बन्धनोंमें ही पड़े हैं। इसलिये इन गुरुवा-लोगोंका सङ्ग त्याग करके पारखी साधु-गुरुके सत्यन्याय-निर्णयको ही ग्रहण करना चाहिये ॥१०७८॥

अब इसी शब्दका दूसरा भाग खानीमेंका अर्थ सुनिये !:—

"मैं कासों कहौं ? को सुनै ? को पतियाय ?"— अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! ये सब संसारीलोग विषयासक्त पामर हो रहे हैं। देहको ही अपना स्वरूप मानकर पशुवत् विषय भोगनेके कर्म-कुकर्ममें लग रहे हैं। विषय भोगोंमें मस्त पड़े हैं। अब मैं बन्धन और मुक्तिकी सच्ची बात किससे कहूँ ? कौन सुनेगा ? कौन विश्वास करेगा ! परन्तु, यही विषयाध्यास ही जीवोंको बाँधनेका कठिन बन्धन है। मुमुक्षुके हितके वास्ते मैं कहता हूँ ! विषय अध्यासको लेनेवाले ब्रह्मादि भी भव-जालोंमें फँसे, तो औरकी क्या गिनती है ॥

"फुलवाके छुवत भँवर मरि जाय ॥"— यहाँपर फुलवा=भग है। भँवर=मन है। मनरूप भँवरा विषय रस लेनेको स्त्रीके पासमें गया, और मैथुन किया, तब वीर्य पतन होकर मनका वेग शान्त हुआ। मन मर गया; किन्तु, सो फिर विषयाध्यासी हुआ। देह छूटनेपर फिर वीर्य द्वारा ही अध्यासी जीव योनि मार्गसे गर्भवासको प्राप्त हुआ ॥ १०७४ ॥

"जोतिये न बोइये सींचिये न सोय"— अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! अध्याससे बँधा हुआ जीव गर्भमें जाकर अँधियारी खाईमें गिरा पड़ा रहता है। वहाँ जोतना=किसीसे मिलना-जुलना भी नहीं होता है। बोना=मन बहलाव करना, बोलना-चालना भी नहीं होता है। सींचना=कोई बात सीखना, उद्योग करना भी नहीं होता है ॥

"बिनु डार बिनु पात फूल एक होय ॥"— बिना डाल-पातका एक शरीर समयपर आप ही बन जाता है। उस शरीरमें भग कमलवाली स्त्री और लिङ्ग कमलवाला पुरुष आप अपने ही कर्म संस्कारके अनुसार हो जाते हैं ॥ १०७५ ॥

"गगन मण्डल बिच फूल एक फूला।"— अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! शरीर पुष्ट होनेपर युवावस्थामें गगन मण्डल=मस्तकके बीचमें काम कमलका और भी एक फूल फूला। तहाँ नारी-पुरुष दोनोंके कामके वेग प्रचण्ड हुआ ॥

"तर भौ डार ऊपर भौ मूला ॥"— नीचेके भग-लिङ्ग तक उसकी डार या डालरूप नली बनी है; और कामका मूल वासस्थान ऊपर मस्तक वा भालमें माना है ॥ १०७६ ॥

"फूल भल फुलल मलिनि भल गाँथल।"— अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जवानीमें काम वासनाका फूल खूब फूला। मलिनि=मनसा, इच्छाने भलीभाँति उसको गूँथी; दिन-रात कामासक्त होकर मन मलिन होने लगा। शरीर रहे तक तो विषय भोग भोगा, तो भी तृप्ति नहीं होती है, भोग भोगनेपर तो थोड़ी देरके लिये मन मर जाता है; फिर कुछ क्षणमें ही जाग उठता है। ऐसेमें ही सारी आयु बीत जाती है ॥

"फुलवा बिनशिगो भँवर निराशल ॥"— मृत्यु आई, शरीर विनाश हो गया। अतृप्तिमें ही मजबूरीसे निराश होकर जड़ाध्यासी जीव मन सहित चौरासी योनियोंके गर्भवासमें चला जाता है। फिर वैसे ही भव-चक्रमें पड़ा रहता है ॥ १०७७ ॥

"कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई !"— अर्थः— इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो भाई ! सुनो ! और सत्य निर्णयको मनमें गुनो ! ॥

"पण्डित जन फूल रहल लोभाई ॥"— ब्रह्मासे ले करके बड़े-बड़े पण्डितजन हुए, तथा अभी जो-जो चतुर पण्डित कहलानेवाले हैं; वे सब भी फूलरूप स्त्री विषयादि भग-भोग करनेमें ही लुब्ध हुए और लोभायमान हो रहे हैं। सब विषय भोग नाशवान् बन्धनरूप हैं, यह जानकर भी आसक्ति नहीं छोड़े। इसीसे बद्ध होकर आवागमनमें पड़े हैं। इसकारणसे खाली भेदको जानने मात्रसे ही बन्धन नहीं छूटता है; पूर्ण परीक्षा करके अध्याससे रहित होनेपर ही मुक्ति होती है। अतः पारखबोधसे निज स्वरूपकी स्थितिको प्राप्त करके अध्यास छोड़ देना चाहिये, सो जानिये ! ॥ १०७८ ॥

॥ ❀ ॥ प्रमाण, मूल बीजक, साखी नम्बर—६ ॥ ❀ ॥

साखीः— शब्दै मारा गिर परा * शब्दहि छोड़ा राज ॥
[२०६] जिन्ह-जिन्ह शब्द विवेकिया * तिन्हका सरिगौ काज ॥ १०७९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने अनेकों तरहके शब्दोंका मारसे बहुत उपदेश किया है। सो सुन-सुन करके मनुष्य हंसपदसे गिर पड़े; धोखा, कल्पना, भ्रममें पड़े हैं। कोई विषय कथा, कोकशास्त्र, शृङ्गारादि वाणी सुन-सुन करके विषय भोग कर्म-कुकर्ममें गिर पड़े। कोई पुराणादिके शब्द सुन करके तीर्थ, धाम, पहाड़, कन्दराओंमें जा करके पड़े। कोई मुक्तिके लिये पहाड़ ऊपरसे कूद-कूदकर मरे। रोचक-भयानकादि वाणी सुन-सुन करके भर्तृहरि, गोपीचन्द, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, शिवि, इत्यादि बड़े-बड़े राजा-महाराजाओंने भी राज-पाट छोड़कर वैराग्य ले लिया, साधु हो गये। भक्तिमें लगे, वन-वनमें ईश्वरादिको ढूँढ़ते फिरे। परन्तु, पारख बिना वे सब लोग भ्रमिक हो आवागमनमें ही गिर पड़े। अपने सत्य स्वरूपको न जानकर षट् दर्शन छियान्नवे (९६) पाखण्डोंके जालोंमें पड़े। शब्द ही सुन-सुन करके बहुतेरे तो हिंसक, शाक्त, वाममार्गी, दुराचारी, पापिष्ट हुए; तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिको मान करके कई लोग नाना मतवादी बने। वञ्चकोंके शब्दने सब अनर्थ कराया, जीवको मनुष्यपद तथा मुक्तिपदसे भी गिरा दिया है। अब जिन-जिन्होंने शब्द विवेकी पारखी साधु-गुरु का सत्सङ्ग-विचार करके गुरुवालोगोंके सकल शब्दोंकी यथार्थ विवेकसे परीक्षा की; उन्होंने कल्पित, असार, मिथ्या पक्ष, हठताको छोड़कर अपना हित-कल्याण किया। सारशब्द निर्णयको जान तथा मान करके मनुष्य जन्मको सफल किया। खानी-वाणी जालोंसे रहित जीवन्मुक्त हुए उन्हींका मनुष्य जन्म पानेका मुख्य कार्य सिद्ध हुआ है; ऐसा जानना चाहिये ॥ १०७९ ॥

साखीः— बिन पारख वाणी सुनै * धावै ताके साथ ॥
[२०७] घायल अनेकनि भावमों * तजहिं न पटकहिं माथ ॥ १०८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखदृष्टि, सारशब्द टकसारके बोध तो सब कोईको नहीं है। तब पारखको जाने बिना ही बेपारखी गुरुवालोगोंकी रोचक-भयानकादि वाणी सुन-सुन करके बहुतेक अबोध मनुष्य भ्रमिक हुए हैं, अब उन्हीं ठग गुरुवालोगोंके साथमें धाय-धाय करके लग गये हैं; दौड़-दौड़कर साथ लगे, तो भ्रम चक्रमें ही जा पड़े। नाना साधना करके ऊपर स्वर्गादि सात लोक, तैंतीस कोटि देवता, ईश्वरादिको मान करके ताकने, देखने-ढूँढ़ने लगे। परन्तु, वह तो कुछ नहीं मिला; तब अनेक प्रकारकी वाणी सुन करके घायल हुए। अनेकों भाव-कुभावमें पड़कर विरही दुःखी हुए; तो भी उन ठग गुरुवालोगोंके सङ्ग, पक्ष, कल्पनाको विवेक करके नहीं छोड़ते हैं। शिर पटक-पटककर रो-कराकर धायके वही जाल-जञ्जालोंमें ही पड़े रहते हैं। अन्तमें माथ पटक-पटककर जन्म बिता करके मर जाते हैं। चौरासी योनियोंमें जाकर कर्म भोगते रहते हैं। बिना पारख खानी-वाणी दोनोंमें जीव बँध जाते हैं वा बन्धायमान हो रहे हैं ॥ १०८० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५७ ॥ [चौपाई- १३ । साखी- ४ । रमैनी- १ है] ॥ ❀ ॥

१. बहुविधि साधन योग पसारा * कोइ उत्तम कोइ मध्य सँवारा ॥ १०८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! महादेवादि योगी लोगोंने संसारमें बहुत प्रकारसे अष्ट योग, अष्ट अङ्ग, षट् कर्म आदिक योग साधनाओंका विस्तारसे पसारा बढ़ा करके खूब प्रचार कर रक्खा है। उसमें भी कोई राजयोगको उत्तम और हठयोगको मध्यम मानते हैं। कोई अपनी रुचिके अनुसार उत्तम और मध्यम मार्ग ठहरा करके उसीकी साधना करते हैं। अथवा योगमें भी कोई दक्षिणमार्ग उत्तम है तथा वाममार्ग सो मध्यम है, अथवा नीच वाममार्ग खड़ा करके बना रक्खा है। बहुतेक उसी दोनों मार्गोंमें लगे और लगा रहे हैं ॥ १०८१ ॥

२. मुद्रा पाँच तत्त्व सो होई * त्रिगुण शक्ति मन्त्र है सोई ॥ १०८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! खेचरी आदि पाँच मुद्रा जो बनाया है, सो पाँच तत्त्वोंके ही भाग हैं; उससे पाँच तत्त्वोंका ही ध्यान करते हैं। तथा त्रिगुण— रज, सत्त्व और तमरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन तीनोंकी शक्ति या बीजमन्त्र "ॐ, ररं, तथा सोहं" कहा है, सो यही उन तीनोंका जाप माना है। अब सोई तीन मन्त्रोंको त्रिगुणी मनुष्य अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार गुरुवाओंसे दीक्षा-शिक्षा ले करके जाप करते जा रहे हैं; और "ऐं, ह्रीं, क्लीं"— ये त्रिगुणकी शक्तिका बीज मन्त्र कहा है। शाक्त लोग इसीका जाप किया करते हैं। यह सब मायाका जाल ही बना है॥१०८२॥

३. तप सन्ताप जे सृष्टि बनाई * योनी योग अनेक देखाई ॥ १०८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पञ्चाग्नि वा चौरासी धुनी तापना, जलशयन, अरण्य निवास, ठाढ़ेश्वरी, ऊर्ध्वबाहु, धूम्रपान, दिगम्बरी, नागे, निराहार, जलाहार, फलाहार, दूर्वाहार, कन्द-मूलाहार इत्यादि बहुत प्रकारसे तपस्या करके सन्ताप=कष्ट, क्लेश, दुःख सहते हैं। जो कि, संसारमें इन गुरुवालोगोंने यही सब प्रपञ्च सृष्टि करके बनाया है। योगमार्गरूपी एक खानीमें भी अनेकों योनियाँरूप अनेकों प्रकारकी साधनाएँ अष्टाङ्गयोगकी विभिन्न चाल अनेक तरहसे प्रगटा करके दिखलाये हुए हैं। सो सब पशु आदि अनेक योनियोंमें ले जानेका ही हेतु होता है॥१०८३॥

४. तेहि योनिमों जो जिव डारै * बहुत कष्ट ताहि दै मारै ॥ १०८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो मनुष्य योगी लोगोंके सङ्गमें जाते हैं, उन नर-जीवोंको वे गुरुवालोग तेहि=नाना प्रकारके योग, तपस्या, साधनाओंकी योनियोंमें डाल देते हैं। कल्पना दृढ़ा करके ऋद्धि-सिद्धिकी आशा देकर फाँसमें फँसा देते हैं। फिर उन साधक नरजीवोंको बहुत प्रकारके कष्ट देकर दुःख भोगा करके हैरान कर देते हैं; और फिर बहुत कल्पना-भ्रममें पड़कर जड़ाध्यासी होकर मारे जाते हैं। देह छूटनेपर जड़ाध्यास उन जीवोंको फिर वही चौरासी योनियोंमें ले जाकर डाल देता है; वहाँ बहुत कष्ट भोग-भोगकर मरते रहते हैं ॥ १०८४ ॥

५. योग विवश तप बन्धन बन्धा * करहिं लड़ाई मतिके अन्धा ॥ १०८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! योगमार्गकी अनेक कल्पनाओंके वशीभूत हुए, तो लाचारीसे कठिन-कठिन तपस्याओंको साधनेमें लगे; परन्तु, वही तपस्या महान बन्धनकारक हुई। पारख स्वरूपके बोध हुए बिना नरजीव नाना तपके बन्धनोंमें बद्ध हुए। अन्धे, बुद्धिहीन होकर योगी मतवादी लोग पक्ष पकड़-पकड़ करके लड़ाई, झगड़ा, उपाधि करते फिरते हैं। हम योगी बड़े सिद्ध हैं, योगमार्ग ही सबसे बड़ा है; और सब तुच्छ हैं। हमारे समान तो कोई तपस्वी ही नहीं हैं। अतः तुम सब मिलकर हमको श्रेष्ठ मानो, इत्यादि कहनेपर अगर उन्हें कोई न माने, तो उनसे लड़ पड़ते हैं। मरने-मारनेमें भी नहीं चूकते हैं, ऐसे अविवेकी मतिके अन्धे हुए हैं। इसीसे भव-बन्धनोंमें खूब जकड़े पड़े हैं ॥ १०८५ ॥

६. चहत छुटन तेहि दण्ड देखावै * बहुत महातम चौकी लावै ॥ १०८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई पहले गुरुवाओंका चेला बना हो, पीछेसे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गसे उसे योगादि मार्गमें कसर जानकर उन्होंके जालोंसे छूटना, निकलना चाहता हो, उनके सङ्गमें जाना छोड़ने लग गया हो, सो ऐसा देख करके उस जिज्ञासु मनुष्यपर गुरुवा-लोग बड़े नाराज हो जाते हैं। फिर उसे डराते-धमकाते हैं, "शाप देकर नष्ट कर दूँगा, यमराज तुझे घसीटकर नरकमें ले जाकर घनघोर दण्ड-दुःख भोगायेंगे। देखो ! हमारा मत नहीं छोड़ना ! हमारा मत ही सर्वश्रेष्ठ है, इसे छोड़ोगे, तो तुम अवश्य नरकमें तथा चौरासी योनियोंमें पड़ोगे। गुरुद्रोही, देवद्रोही, ईश्वरद्रोहीका फल महादण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा; और जाति-बिरादरीसे भी

बाहर कर दिया जायगा।" इत्यादि कहकर सब तरहसे दण्ड-दुःख ही दिखाते हैं। उनके मत प्रमाणसे चलनेपर ईश्वरादिका बहुत महात्म्य वर्णन करते हैं। सात स्वर्ग, चार फल, चार मुक्ति आदि प्राप्तिकी लालच बतलाते हैं। चारों तरफ पहरेदारोंकी चौकी गुरुवालोगोंने लगा रक्खा है। फिर चौकीमें बैठकर कथा सुना-सुना करके भुला रहे हैं॥ १०८६॥

७. लोभ डोरि दृढ़ आशा बाँधी * नाश उपाय विविधि विधि साधी॥ १०८७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! धन-धान्य सम्पत्ति वृद्धि, स्त्री-पुत्रादि प्राप्ति, विषय सुख प्राप्ति, ऋद्धि-सिद्धि सामर्थ्य प्राप्ति, ईश्वर प्राप्ति इत्यादिकोंका लोभ सोई 'डोरी' है। वही सब वस्तु सहज ही मिलनेकी आशा, लालच दृढ़ा करके दृढ़ करके मनुष्योंको मजबूतीसे धोखा देकर बाँध दिये हैं; और भी बाँध-बाँध करके जकड़ा ही रहे हैं। इन गुरुवालोगोंने जितने भी उपाय निकाला है, सो सब जीवों-को मनुष्य पदसे विनाश करनेवाला है। अनेक प्रकारकी साधना, उपाय प्रगट कर-करके मनुष्योंके बुद्धि-विचारका नाश कर रहे हैं। अतएव पारख करके इन नाशक उपायोंको त्याग देना चाहिये। गुरुवालोगोंकी नाना साधनाओंको हंस पदको नाश करनेका उपाय जानकर त्याग देना चाहिये॥१०८७॥

८. रज सत तम गुण तीनिहुँ डोरी * जेवरि प्रौढ़ बाँधि जिव भोरी॥ १०८८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! रजोगुण कर्मकाण्डकी वाणीमें 'ॐ' का जाप है। सत्वगुण उपासनाकाण्डकी वाणीमें 'राम' का जाप है। तमोगुण योग या ज्ञानकाण्डकी वाणीमें 'सोहं' का जाप है; और काम, क्रोध तथा मोह, ये तीनों ही जीवोंको भव-बन्धनोंमें बाँधनेवाली मजबूत डोरी है। गुरुवालोगोंने अपनी-अपनी कल्पनाको परिपुष्ट वा दृढ़ करके उसी त्रिविधि जालकी रस्सीसे नरजीवोंको भुला-भुलाकर कस करके बाँध दिया है। बिना पारख पशुवत् बहुतेक मनुष्य उसीमें बँधे हुए भूले पड़े हैं॥ १०८८॥

९. निकसि न सकहिं फँसे जिव रहहीं * तीनिहुँ भाँति राजदण्ड सहहीं॥ १०८९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सत्यासत्यका ज्ञान परीक्षादृष्टिका बल न होनेसे उस भ्रम चक्रसे तो कोई भी जीव निकल ही नहीं सकते हैं; परवश, लाचार हो सब जीव उसमें ही फँसे बन्धे पड़े रहते हैं। वहाँ भक्ति, योग और ज्ञान, ये तीनों ही प्रकारसे नाना साधना करते हुए राजदण्ड=गुरुवालोगोंके शासन, दबाव, क्रोध, कष्ट-क्लेश, ताप सहन करते रहते हैं। उनसे डरते रहते हैं, उनके कहे मुताबिक काम करते रहते हैं॥ १०८९॥

१०. बन्दीखाना तीन प्रकारा * तेहिमें चार आश्रम विस्तारा॥ १०९०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! त्रिकाण्डका घेरा सोई तीन प्रकारके बन्दीखाना या जेलखाना बनाया गया है। अथवा कर्म, उपासना और योगका घेरा तीन तरहके कैदखाना बने हैं। उसी कैदखानाके घेरामें चार तरहके आश्रम, कक्ष या श्रेणी, दर्जाका विस्तार किया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामसे, ये चारों आश्रमोंके कर्मोंकी मर्यादा भिन्न-भिन्न वर्णन करके विस्तार किया है। उन्होंका यथोचित नियम पालन करनेसे स्वर्गादि लोक प्राप्त होनेको बतलाकर मनुष्योंको भुला रक्खा है॥ १०९०॥

११. पँचयें नाशक आपुहि आपा * परमहंस ऊँचा पद थापा॥ १०९१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! नाशक=गुरुवालोगोंने पँचयें=पाँचवाँ आश्रम विज्ञानरूप परमहंस दशाकी धारणामें सबको विनाश करके आप-ही-आप स्वयं केवल ब्रह्म स्वरूप ही रह जाता है, ऐसा कहा है। सो परमहंसका दर्जा, ब्रह्मपदकी स्थिति सबसे ऊँची सर्वश्रेष्ठ स्थापना किया है। परमहंसको सर्वोच्च स्थापना करके उसे मुक्तपदमें माना है। परन्तु, यह तो महाबन्धनका पद है। बिना पारख भ्रम गाफिलीमें ही पड़े हैं॥ १०९१॥

१२. प्रथमें एकोहं बहुस्यामा * अनन्त भाँति भव खेती जामा ॥ १०९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यह जगत् तो अनादि कालका है। इसका उत्पत्ति-प्रलय माना हुआ सो कल्पना मिथ्या है। संसारके बीचमें भ्रमिक मनुष्यने पहले 'मैं एक ही ब्रह्म अद्वैत व्यापक हूँ !' ऐसी कल्पना किया। फिर 'मैं एकसे अनेकरूपमें प्रगट हो जाऊँ' यह भावना किया। फिर धीरे-धीरे मानन्दी-कल्पना बढ़ाते हुए अनन्त भाँतिकी वाणी-खानीके बीजसे भवरूप संसारमें खेती जमी। जैसे एक बीजसे वृक्ष उत्पन्न होनेपर अनेकों फल पैदा हो जाते हैं; तैसे ही एक वाणी कल्पनाके उपदेशसे भी अनेकों शिष्य-शाखाएँ उत्पन्न हुईं। मत-पन्थोंका जमाव होकर खूब प्रचार हुआ, जहाँ-तहाँ प्रसिद्धि हुई। फिर एक-एक मनुष्य शिष्योंसे अनेक-अनेक पाखण्ड जगत्में फैले। न एक ब्रह्म कभी था, न है और न एक ब्रह्मसे ही जगत् बना। यह तो कोरी कल्पना ही विस्तार किया है। वही कल्पनासे संसारमें वाणी प्रपञ्च खूब जमा हुआ या हो ही रहा है ॥१०९२॥

१३. बारह बानी भोजन हेतू * अभय परमपद कहहिं अचेतू ॥ १०९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर चार वेदोंसे और बारह अवान्तर वाक्योंका सिद्धान्त बनाया है। सो उनका नामः— क्षर, अक्षर, निःअक्षर- ३। जहद्, अजहद्, जहदाजहद्- ३। तत्, त्वं, असि-३। जीव, ईश्वर ब्रह्म-३। सो यह बारह वाणी कल्पनासे दृढ़ा करके जीवोंको भुला-भ्रमा करके भोजनका गुजारा चला रहे हैं। जीवोंको मुक्तिपदसे विनाश करनेका कारण वही बारह वाणीका फन्दा है। परन्तु, भ्रमिक लोग मुक्तिके वास्ते बारह वाणीका भोजन ग्रहण करके सबको एकमें मिलाकर स्वयं व्यापक ब्रह्म बनते हैं। फिर उसे अभय करा देनेवाला निर्भय परमपद, मुक्तिपद, सर्वोच्च ब्रह्मपदकी प्राप्ति होना बतलाते हैं; वैसी-वैसी झूठी ही महिमा कहते और सुनाते हैं। ब्रह्म-भ्रमकी मानन्दी दृढ़ करके अपने अचेत, बुद्धिहीन, गाफिल होते हैं, और दूसरोंको भी अचेत करा देते हैं। सो उसे परखकर परित्याग करके सचेत हो जाना चाहिये ॥ १०९३ ॥

साखीः— बन्दी शोभा विविधि विधी * दुसह कलेश अपार ॥

[२०८] पहरा चौकी महिमा * आशा फाँसी डार ॥ १०९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बन्धन देनेवाले गुरुवालोगोंने बन्धनोंमें जीवोंको फँसानेके वास्ते रोचक-पुष्पित वाणी सुना-सुना करके विविधि प्रकारसे ईश्वर, ब्रह्म, देवता, स्वर्गादिकोंकी शोभा, सुन्दरता, आराम, महिमा आदिका वर्णन करके सुनाया है। सो सुन-सुन कर अपार, अगम माना हुआ ईश्वरादि प्राप्तिके लिये असह्य कष्ट-क्लेश, नाना साधनोंका दुःख बहुत-बहुत सहन किये। तभी भी ईश्वरादि कुछ नहीं मिले; फिर भी शोभाकी याद करके नाना दुःख सहन करके भोगते जाते हैं; और चार धाम, चार आश्रममें चार वेदोंकी चौकी लगाकर वेदके बाहर कोई न जाने पावे, इसके लिये पहरेदार-सिपाही रूपमें पण्डित लोग पण्डे-पुजारी, पुरोहित आदि बनकर ठिकाने-ठिकानेपर रखवारी कर रहे हैं। चौकीमें बैठकर पुराणादिकी कथा-महिमा, देवी-देवता, ईश्वरादिकी बड़ाई सुनाते रहते हैं; और संसारी लोगोंको विषय सुख, स्वर्गादि सुख, मुक्ति प्राप्ति आदिकी आशा-फाँसीमें सब जनोंको डाल दिये, वाणीमें फँसाकर लटका दिये हैं। वही आशा-तृष्णा, खानी-वाणीकी आसक्ति वा अध्यास ही जीवोंको चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ले जाकर डाल देता है ॥ १०९४ ॥

साखीः— जहाँ तहाँ त्रिदोष ले * तत्त्वमसी परचण्ड ॥

[२०९] बारह बानी चारि तिथी * नाशक हेतु अखण्ड ॥ १०९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वात, पित्त और कफ मिलकर त्रिदोष = सन्निपात हो जाता है। तब जिधर-तिधर रोगी दौड़ने, भागने लग जाता है, फिर ज्यादा दोषकी वृद्धि होनेपर मर भी

जाता है। तैसे ही भक्ति, योग और ज्ञान; अथवा ज्ञान, अज्ञान और विज्ञान, ये तीनों दोष, विकार मनुष्यों-को जहाँ-तहाँ विषय, अनुमान-कल्पना, भ्रमादिमें भटका करके ले जाते हैं। आखिरमें 'तत्त्वमसि' का प्रचण्ड वेग उठ जाता है। तहाँ त्वंपद जीवको तत्पद ईश्वरमें मिला करके उसे भी असिपद ब्रह्ममें लय कर देते हैं। जीव-ईश्वर एकमें मिला, सो असिपद अधिष्ठान ब्रह्म अद्वैत बन जाते हैं। ऐसी वाणीकी तीव्र-तीक्ष्ण कल्पनाको फैला दिया है। फिर चार वेदोंसे चार महावाक्यः— प्रज्ञानं ब्रह्म; अहं ब्रह्मास्मि; अयमात्मा ब्रह्म; और तत्त्वमसि; ये चार तिथि ठहराया है। सो उसीमें स्थिति करनेको एक महावाक्यमें तीन वाक्य विभेदसे निकालकर चारके बारह अवान्तर वाक्य या बारह वाणी बनाया है। अखण्ड जीवको एक अखण्ड कोई परमात्मा है, ऐसा बता करके उसे प्राप्ति करानेके लिये नाना खण्ड-खण्ड कल्पनाके मार्गोंमें लगा करके हंसपदसे नष्ट कर दिये हैं। जीवोंको मनुष्यपदसे तथा मुक्तिसे विनाश करनेका मुख्य कारण—(१) यही गुरुवालोगोंकी वाणी-कल्पना ईश्वरादिकी मानन्दी है, और (२) विषयादिकी आसक्ति है; ये दोनों बन्धनोंके हेतु हैं। बिना पारख उन दोनों जालोंसे कोई छूट नहीं सकते हैं ॥ १०९५ ॥

सम्बन्ध— यहाँपर ग्रन्थकर्त्ताने सद्ग्रन्थ बीजकके साखी और रमैनीका प्रमाण दिया है, सो सुनिये!॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— २५० ॥ ❀ ॥

साखीः— प्रथम एक जो हौं किया * भया सो बारह बान ॥
[२१०] कसत कसौटी ना टिका * पीतर भया निदान ॥ १०९६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! प्रथम मनुष्य देहमें नरजीवने जो एक ब्रह्म होनेका दावा, अहङ्कार, इच्छा प्रगट किया, सो सूक्ष्म अहङ्कारसे स्थूल वाणी वैखरीसे निकली; तो एकसे बारह प्रकारकी वाणी बन गई। सो बारह वाक्यका विचार करके फिर भी "मैं एक ही ब्रह्म हूँ!" ऐसा अहङ्कार धारण किया; तो महा धोखेमें जा करके पड़ा। उस ब्रह्म सिद्धान्तको सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके समक्ष पारख कसौटीपर जब कसा गया वा परखा गया, तो वह भ्रम मात्र होनेसे नहीं टिका; सत्य नहीं ठहरा। जड़-चैतन्य स्वरूपसे भिन्न-भिन्न दोनों अनादि पदार्थ हैं; फिर एक ब्रह्म अद्वैत साबित कैसे होगा? उसकी इच्छा मात्रसे पदार्थ कैसे बनेगा? ब्रह्मसे ही सारे जगत्की उत्पत्ति मानना, सो तो सरासर मिथ्या कल्पना ही है; ऐसा सत्य निर्णयसे ठहरता है। अतएव गुरुवालोगोंके सब सिद्धान्त आखिरमें पीतलकी नाईं खोटा, व्यर्थ ही साबित हो गये। परखनेपर ब्रह्म-ईश्वरादि एक भी सत्य नहीं ठहरा। पारखरूप जीव ही स्वयं सत्य ठहरता है। अथवा नरजीवने प्रथम देहका अहङ्कार किया; देहरूप ही अपनेको माना। तिससे चार खानीमें जा करके छैः प्रकारके पुरुष और छैः प्रकारकी स्त्री, ये बारह (१२) बानमें पड़ गये। सो जीव तीन खानी भोग कर फिर मनुष्य देहमें आये, तो फिर भी अहङ्कारसे यहाँ भी चार वर्ण, चार आश्रम और चार वैष्णव सम्प्रदाय, ये बारह भाग हो गये। अथवा षड् दर्शन और षट् शास्त्री— ये बारह विभाग हो गये। इन लोगोंने बहुत मत-पन्थोंका प्रपञ्च नाना सिद्धान्त फैला दिया है। इन सबोंकी मानन्दीको भी जब श्रीसद्गुरुके पारखकी कसौटीपर कसकर निर्णय करके देखा गया, तो एक भी नहीं टिका; सत्य सार नहीं ठहरा। निदानमें पीतलवत् खराब, खोटा, असत्य, भूल ही ठहरा। अतएव उन सबका परित्याग करके सत्य पारखको ग्रहण करना चाहिये ॥ १०९६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ भाग— ६ ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर— ८ ॥ ❀ ॥

१. तत्त्वमसि इनके उपदेशा * ई उपनिषद कहैं सन्देशा ॥ १०९७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे जिज्ञासु सन्तो! सुनिये! वेद-वेदान्तके प्रमाणसे एक "तत्त्वमसि" सिद्धान्त निकाला है। उसका अर्थ ऐसा कहा है कि, त्वंपदवाच्य जीव है, तत्पदवाच्य ईश्वर है, और असिपद लक्ष्य ब्रह्म है; सोई अज्ञान, ज्ञान और

विज्ञान है। उसमें जीव-ईश्वरकी एकता करके अल्पज्ञ-सर्वज्ञ भाव मिटा करके ब्रह्म एक ही ज्यों-का-त्यों कहा है। अर्थात् हे जीव! त्वं=तू, तत्=वह ब्रह्म, असि=है। यानी तू ही सच्चिदानन्द ब्रह्म एक अद्वैत व्यापक है! ऐसा जान करके निश्चय कर! ब्रह्मादि, सनकादि व्यासादि पण्डित ब्रह्मज्ञानी इन गुरुवालोगोंकी उपदेश-शिक्षा यही "तत्त्वमसि" अद्वैत ब्रह्मबोध करनेकी हुई है; और यही "तत्त्वमसि" ब्रह्म सिद्धान्तका सन्देशरूप खबर आखिरी निर्णय वेदके बावन (५२) उपनिषद्रूप वेदान्त शास्त्र भी कहता है या उसमें भी यही बात विस्तारसे वर्णन करके कही गयी है ॥ १०९७ ॥

२. ई निश्चय इनके बड़ भारी ❀ वाहिक वर्णन करैं अधिकारी ॥ १०९८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! "तू ही ब्रह्म है!" वा "मैं ही ब्रह्म स्वरूप परिपूर्ण हूँ!" यही भ्रम कल्पित बातका बड़ा भारी निश्चय इनके=ब्रह्मादि वेदान्ती गुरुवालोगोंके मनमें प्रथम हुआ; अभी वही निश्चय हो रहा है। सबसे बड़ा महान सिद्धान्त अद्वैत ब्रह्मज्ञान ही है, यह दृढ़ करके विश्वास किये या कर रहे हैं; और कोई श्रद्धालु अधिकारी साधन चतुष्टय— विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, शमादि षट् सम्पत्तिसे सम्पन्न जिज्ञासु मिलनेपर उन्हें ब्रह्मज्ञानका अधिकारी समझकर वही "तत्त्वमसि" अद्वैत सिद्धान्तका वर्णन करके गुरुवालोग ब्रह्म बोधका उपदेश करते हैं। फिर वही बातपर पूर्ण विश्वास करके अपनेको भी मुक्तिके अधिकारी श्रेष्ठ करके मान लेते हैं; ऐसा ही वर्णन भी करते हैं ॥ १०९८ ॥

३. परमतत्त्वका निज परवाना ❀ सनकादिक नारद शुक माना ॥ १०९९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! कोई एक परमतत्त्व-परमात्मा है, सो पाँचोंतत्त्वोंमें परिपूर्ण भरा हुआ है। वही 'व्यापक परमतत्त्व ब्रह्म मैं हूँ!' ऐसी कल्पनाको ही निजस्वरूप प्रतीति करके उसे सत्य होनेका प्रमाण कर लिये वा मान लिये। यही प्रमाण सनकादि ज्ञानी, नारदादि भक्त, शुकदेवादि अवधूत, इन सबोंने विशेष करके निश्चयसे उसी मानन्दीको मान लिया था; पारख-बोध बिना 'यह तो जीवकी ही कल्पना है' सो नहीं जान पाये ॥ १०९९ ॥

४. याज्ञवल्क्य औ जनक सम्वादा ❀ दत्तात्रेय वोहि रस स्वादा ॥ ११०० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! याज्ञवल्क्य नामके मुनि जब जनक राजाके यहाँ गये थे, तब उन दोनोंके सम्वादरूप सत्सङ्ग-वार्तालाप, प्रश्नोत्तरमें भी वही "तत्त्वमसि-सिद्धान्त" का ही बोध परिपुष्ट किया है। सो वार्ता उपनिषदोंमें वर्णन हुआ है। तैसे ही अवधूत दत्तात्रेयने भी वही "अहं ब्रह्मास्मि" अद्वैत ब्रह्मज्ञान कल्पनाका खूब रस चूसकर स्वाद लिया था; उसका ही अनुभव रस लेकर शून्य स्थितिका स्वाद ले लिया था। "मैं ब्रह्म आकाशवत् हूँ!" ऐसा उन्होंने माना है; सो अवधूतगीतामें वर्णन किया है ॥ ११०० ॥

५. वोहि बात राम वशिष्ठ मिलि गाई ❀ वोहि बात कृष्ण उद्धव समुझाई ॥ ११०१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! फिर वही "तत्त्वमसि"- अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त कायम करनेकी बात या वाणीको राजा रामचन्द्रके प्रति उनके कुल पुरोहित गुरु वशिष्ठ मुनिने वेदादिका प्रमाण देकर गायन, कथन या वर्णन करके सुनाया था। "हे राम! तू तो सच्चिदान्द अद्वैत ब्रह्म है! अपनेको तू ब्रह्म जान! और भ्रम छोड़ दे! तू अकर्त्ता, अभोक्ता, असङ्ग आत्मा है। देह और दृश्य जगत्को मिथ्या "मृगजलवत्" मान!" इत्यादि वाणी सुनाया था, सो राम भी उसी अनुमानकी वाणीमें मिलकर ब्रह्म बने थे; भ्रम-धोखेमें मिल गये थे। सो बात योगवाशिष्ठ ग्रन्थमें विस्तारसे वर्णन किया है; और कृष्णने भी वही "तत्त्वमसि" ब्रह्मज्ञानकी बातको उद्धवके प्रति भलीभाँति समझाया है; सो भागवतमें कहा है; और अर्जुनके प्रति भी वही बात कहा है; सो भगवद्-गीता और महाभारत आदि ग्रन्थोंमें वर्णित है ॥ ११०१ ॥

६. बोहि बात जो जनक दृढ़ाई * देह धरे विदेह कहाई ॥ ११०२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! एक समयमें जनक राजाने ऋषि-मुनियोंको एकत्रित करके ब्रह्म-सभा कराया था, तथा अश्वारोहणमें रिकाबपर पैर रक्खा जाय, उतनी देरमें ही शीघ्रतासे ब्रह्म साक्षात्कारका बोध करा देनेका प्रश्न उपस्थित किया था; और सब मुनियोंको तो ऐसा कर देनेका साहस नहीं हुआ; परन्तु, तब आखिरमें अष्टावक्र मुनिने उठकर गुरु दक्षिणामें तन, मन और धन अर्पण कराने लगा करके घेरा डालकर युक्तिपूर्वक वही "तत्त्वमसि" अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी बात दृढ़ा दिया। उनकी युक्तिके आगे विवश होकर जो बात अष्टावक्रने कहा था, वही बात जनकके मनमें भी दृढ़तासे निश्चयसे आ गई कि, "मैं केवल ब्रह्म ही हूँ !" वही कल्पनाको धारण करके स्थूल शरीरादिके सङ्ग-साथ रहते हुए और राज चिह्नोंका धारण देहमें होते हुए भी "मैं देहातीत निर्गुण-निराकार विदेह ब्रह्म हूँ !" ऐसा कहने लगे थे; कल्पनामें पड़ गये थे। फिर प्रजाओंको भी 'विदेही' कहने लगाये थे। परन्तु, विदेही कहला करके भी तो देहधारी वे एक जीव ही थे। देह बन्धन तो कुछ नहीं छूटा था, फिर विदेही कैसे हुए? यह तो शब्दमात्रकी एक उपाधिरूप पदवीका प्रचार है। निज सत्स्वरूपका पारख बोध हुए बिना वे बेपारखी सब लोगोंका भव-बन्धन नहीं छूटा; वे जड़ाध्यासी होकर आवागमन चक्रमें ही जाकर पड़े रहे, बिना विवेक ॥ ११०२ ॥

साखीः— कुल मर्य्यादा खोयके * जीवत मुवा न होय ॥
[२११] देखत जो नहिं देखिया * अदृष्ट कहावै सोय ॥ ११०३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानकी बात सुन-सुनकर मनुष्य लोग भ्रमिक अविवेकी हुए, तब मर्य्यादाका नियम भी छोड़ दिये। पिता-पुत्र, नारी-पुरुष, गुरु-शिष्य, ज्ञानी-अज्ञानी, इत्यादि कुल=सम्पूर्ण जगत्की मर्यादा, धर्म नीति पालन, शुद्धाचरण खोयके, नशा करके, छोड़कर, स्वयं व्यापक एक ब्रह्म अधिष्ठान बने या मिथ्या मानन्दी दृढ़ किये। पशुवत् चाल, दुर्दशा, जड़वृत्ति बना लिये। इससे जीवका क्या कल्याण होता है ? कभी नहीं होता है। जीव तो चैतन्य सत्य है; वह कभी भी मुर्दारूप ब्रह्म हो नहीं सकता है, तथा वह जड़ भी कभी नहीं होता है। जीव तो सदा एकरस चैतन्य ही रहता है। कुल-मर्यादा भी मिटा दिया, पशु वृत्ति या शून्य वृत्ति भी कर लिया, तो क्या कभी जीव मुर्दावत्, जड़ कार्यवत् कारणमें मिलनेवाला होगा ? ऐसा तो त्रिकालमें भी नहीं होता है। परन्तु, निजस्वरूपकी पारखस्थिति न होनेसे ही सब जीव जड़ाध्यासी बनकर अचेत हो रहे हैं। यह नरजन्म चेतनेकी जगह है; तो भी देखते हुए भी नहीं चेतते हैं, इसीसे चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं। देखिये ! प्रत्यक्षमें नेत्र और विचारसे भी संसारमें जड़ और चैतन्य भिन्न-भिन्न ही सत्य सबको दिखाई दे रहा है। इसको तो वे वेदान्ती लोग कुछ भी नहीं देखते हैं, नेत्र मूँदकर कहते हैं कि— जगत् तीन कालमें है ही नहीं, जगत् खपुष्पवत् है; और रज्जु-सर्पवत् मिथ्या प्रतीति मात्र होता है। सर्वत्र एक ही ब्रह्म व्यापक है, इत्यादि। अब जो ब्रह्मको उन्होंने सत्य माना है, सो तो सब ठिकानेपर चर्मदृष्टिसे और विवेकदृष्टिसे भी निर्णय करके देखने-ढूँढ़नेपर भी कहीं पर दिखाई नहीं देता है। अब कहिये ! क्या प्रमाणसे ब्रह्मको सत्य मानना ? कल्पना भ्रमसे ही जो कोई दिखाई देनेवाला इस जगत् जड़-चैतन्यको मिथ्या, तथा न दिखनेवाला ब्रह्मको सत्य कहते और उसे मानते हैं, सोई अदृष्ट=अन्धे, बेपारखी, भ्रमिक, अविवेकी कहलाते हैं। पारखदृष्टिहीन होवें, सोई ऐसी अयुक्त, असम्भव बात कहते हैं। पारखी तो ऐसी भूलकी बात कभी नहीं कहते हैं। अतः ऐसे गुरुवाओंके भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये ॥ ११०३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५८ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. बहुत रहे यमजाल फँसाई * लालच लागी बड़ी बड़ाई ॥ ११०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! नारी और गुरुवालोग इन यमोंके खानी-वाणीके

जालोंमें बहुतकाल वा बहुत समयसे अनेकों जन्मसे सब जीव फँसे और फँसाये पड़े हैं; अनेकों दुःख भोग रहे हैं। फँसानेका बहुतेक उपाय यम लोग कर ही रहे हैं। तारीफ कर-करके ललचा रहे हैं। बहुत बड़ाई प्रशंसा महात्म्य सुन-सुन कर बहुतेरे लालचमें ही लगे और लग रहे हैं। एक दूसरेको फँसा रहे हैं॥११०४॥

२. सबहिं बड़ाई यमके हाथा ❀ लहहिं दुसह दुःख धुनहिं सो माथा ॥ ११०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें सब मनुष्य अपनी बड़ाई, प्रशंसा सुनना चाहते हैं। इसवास्ते यमराजरूप गुरुवालोंगोंके हाथमें वा घेरामें जा करके पड़ते हैं। क्योंकि, वे मिथ्यावादी बने हैं। सब झूठ-मूठकी बड़ाई, महात्म्य, लम्बी-चौड़ी प्रपञ्चकी बात उन्हींके हाथोंमें रहती है। वे ही कल्पनाकी वाणी लिख-लिख, पढ़-पढ़ कर मनुष्योंको अपने जालोंमें खींच लेते हैं। ईश्वर, खुदा आदि स्वर्ग लोकादिकी बड़ाई, सुख प्राप्तिकी लालच पकड़कर सब यमके हाथोंमें खिलौने बने हैं। अनेक साधनाओंमें, तपस्या, तीर्थाटन, व्रत, उपवास आदि कर-कराके दुस्सह दुःख पाते हैं। तो भी मनोकामना पूर्ण नहीं होती है। इससे शिर ठोंक-ठोंक कर पछताते हैं। सो फिर शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंमें त्रयतापादि असह्य कष्ट पा करके माथा धुनते रहते हैं; कभी सुख वा चैनकी स्थिति ही नहीं पाते हैं ॥ ११०५ ॥

३. पाया चढ़ावै ज्ञान विज्ञाना ❀ सात भूमिका लाइ निशाना ॥ ११०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सीढ़ीसे चढ़कर जैसे मकानके ऊपर जाते हैं। तैसे ही गुरुवालोगोंने वाणी कल्पनाको मजबूत करके युक्ति-प्रयुक्तिसे नाना साधनाएँ करा करके ज्ञानकी सीढ़ी चढ़ाने लगे। पिण्डसे ब्रह्माण्डमें, नरकसे स्वर्गमें, जीवसे ईश्वरमें, जगत्से ब्रह्ममें चढ़ाये; और ज्ञान साक्षीदशाको मिटाकर विज्ञानरूप कैवल्य ब्रह्ममें पहुँचा देनेके लिये साधनोंके पायरीमें चढ़ाते ले गये। तहाँपर ज्ञानकी सात भूमिका कहा हैः— १. शुभेच्छा, २. सुविचारणा, ३. तनुमानसा, ४. सत्त्वापत्ति, ५. असंशक्ति, ६. पदार्थाभाविनी और ७. तुरिया— ये सात सीढ़ी चढ़कर विज्ञान ब्रह्मकी धारणारूप निशाना ज्ञानियोंने लगाया है; और षट् चक्रोंका बेधन करके ब्रह्माण्डका निशाना योगियोंने लगाया है; और बाहर सात स्वर्गादिकी भावना कर्मियोंने की है। सात भूमिकाको पार करके कैवल्य निर्विकल्प स्थितिका निशाना परमहंसोंने लगाया है। बिना पारख सब भ्रम चक्रमें ही पड़े हैं ॥११०६॥

४. सोई तहाँ सात स्वर्ग अनुमानी ❀ पहुँचत ठौर भये विज्ञानी ॥ ११०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यहाँपर जैसे पौराणिकोंने सात स्वर्ग लोक ऊपर माना है, तैसे ही वहाँपर भी ज्ञानियोंने सोई सात ज्ञान भूमिकाको ही सात स्वर्गके ठिकाने अनुमानसे दृढ़ किया है। क्रमशः ऊपर बढ़ते हुए सातवीं तुरिया भूमिकासे बढ़कर ठौर=कैवल्य-रूप शून्य स्थितिमें पहुँचते ही जीव गाफिल हो जाता है। सो उसीके अनुभवका भास ले करके विज्ञानी परमहंस दशावाले हुए या वैसे हो जाते हैं। जब विज्ञानी हुए, तो साक्षीरूप ठौरको भी नाश किये; शून्यमें पहुँचते ही जड़ाध्यासी बद्ध हो गये ॥ ११०७ ॥

५. महाशून्य अन्धकार स्वरूपा ❀ परहिं जीव ताहि तम कूपा ॥ ११०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जानपना छूटकर वृत्ति जब शून्यमें समा जाती है, तब गाफिलीमें पड़कर आकाशवत् महाशून्य निर्विकल्प हो जाता है। सो महाशून्य व्यापक परमात्मा कैवल्य ब्रह्म तो भ्रमरूप अन्धकार महाअज्ञान दशा ही है। उस स्थितिमें गाफिली आवरणमें ही जीव पड़ा रहता है। इससे निजस्वरूपकी स्थिति छूट जाती है; और साधक जीव भटका खा करके फिर उसी तमकूप, अन्धकूप, भ्रमकूप और गर्भकूपमें गिर पड़ते हैं। जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके कूपमें जाकर पड़ जाते हैं। बिना पारख सर्वदासे इसीतरह भूल करके जीव अभ्यासवश आवागमन चक्रमें ही डोल रहे हैं ॥ ११०८ ॥

६. आपु अकेला ब्रह्म कहावै * तेहि अन्धकार कोइ लखि नहिं पावै ॥ ११०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब चारों तरफ खोज करके भी कुछ पता वार-पार नहीं पाये, तब उलट करके आप-ही-आप अकेला स्वयं ही ब्रह्म बन गये। "निर्गुण-निराकार, निरञ्जन, अद्वैत, कैवल्य ब्रह्म मैं हूँ !" ऐसा कहने-कहलाने लगे। वह ब्रह्म मानन्दी अद्वैत सिद्धान्त तो महा-अन्धकाररूप महान अज्ञानताका खाँच है। किन्तु, पारखदृष्टि न होनेसे कोई भी मनुष्य उस मिथ्या कल्पनाको नहीं देख पाते हैं या समझ नहीं पाते हैं। यह तो नरजीवकी ही भावनारूपी मिथ्या भास है, सो बन्धनदायी है; ऐसा विवेकका प्रकाश न होनेसे कोई भी सत्यासत्यको देख नहीं पाते हैं; इसीसे धोखेमें ही गिर पड़ते हैं ॥ ११०९ ॥

७. जीवहिं धरि धरि करै अहारा * महिमा बड़ी जगत विस्तारा ॥ १११० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने जगत्में ब्रह्मज्ञानकी बड़ी भारी महिमा करके ऊँचा दर्जा बताकर विस्तारपूर्वक बड़ी बड़ाई कर रक्खी है। बड़े-बड़े वेदान्तके ग्रन्थोंमें ब्रह्मज्ञानीका महात्म्य भी खूब वर्णन कर रक्खा है। नर-नारीरूप मनुष्य जीवोंको नाना उपदेश सुनाकर, चेली-चेला बनाकर उन जीवोंको घेर-घारकर पकड़-पकड़ करके उनके तन, मन, धनादिका आहार कर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। अपने देहका गुजारा भी उन्हींसे चलाते हैं; और एक ब्रह्म बना करके सब बुद्धि-विचारको स्वाहा कर देते हैं; खा-पीकर मस्त हो सण्ड-मुसण्डोंने कल्पना बढ़ाकर झूठी महिमा फैला दी है ॥ १११० ॥

८. करत विषय नहिं शङ्का मानी * आपै पुरुष विदित ब्रह्मज्ञानी ॥ १११९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानियोंने संसारमें ऐसी बात जाहिर कर रक्खा है कि, "ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति"— ब्रह्मको जाननेवाले ज्ञानी स्वयं ब्रह्म स्वरूप आप ही परम पुरुष परमेश्वररूप हो जाते हैं। अतएव वे जगत् लीलामें आकर विषय सम्भोग-क्रीड़ादि करें, तो भी किसीको कुछ शङ्का, दुर्भावना नहीं करनी चाहिये। ब्रह्मकी लीलासे ही तो सारा जगत् प्रथम उत्पन्न हुआ है। सो ब्रह्म अपने आपमें विषय खेल भी करे, तो उसे कुछ दोष नहीं होता है। और ब्रह्म-भावनासे किया हुआ सब कर्म निर्दोष होता है। ब्रह्मज्ञानी तो विधि-निषेधसे परे होते हैं; पाप-पुण्यादिसे रहित रहते हैं, इत्यादि ऐसी-ऐसी झूठी बात दृढ़ा-दृढ़ा करके स्त्री विषयादि भोग-विलास भी वे ठगलोग निधड़क कर लेते हैं; कुछ शङ्का-सङ्कोच भी वे नहीं मानते हैं। आप ही पुरुष और आप ही स्त्री भी हैं, सब कुछ ब्रह्म है; एक अद्वैत अभेद है। ऐसी मिथ्या वाणीका प्रचार करके उन्होंने जाहिर किया है। ब्रह्मज्ञानियोंने ऐसा जाल फैला करके रक्खा है ॥ १११९ ॥

९. महा अन्ध सूझै नहिं पारा * भटकहिं बहुविधि भरम अपारा ॥ १११२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोग महान अन्धे होकर महाअज्ञान, गाफिलीमें पड़कर जड़ाध्यासी बने हैं। भव-बन्धनोंसे छूटकर भवपार होकर मुक्त होनेका मार्ग-पारखबोध तो उन्हें सूझता ही नहीं है। फिर भी जन्म लेकर कर्म-कुकर्मोंका फल हमें भोगना पड़ेगा, यह भी समझ नहीं पड़ी; और अपार, अगम, अथाह, कोई एक परमात्मा मान करके भ्रम-चक्रमें पड़कर बहुत प्रकारसे भटकते रहते हैं। अत्यन्त ज्यादा भ्रम लगा है, सो नहीं छूटता है। जड़-चैतन्य न्यारा-न्यारा है, सो उसे एक बताकर धोखेमें पड़े हैं। वे अन्धे लोग भ्रमवश चौरासी योनियोंमें ही भटका करेंगे ॥ १११२ ॥

१०. आतमवादि आपुहि आपा * बहुतक सहहिं भरम सन्तापा ॥ १११३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आत्मवादी लोग "एक ही आत्मा चराचरमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है।" ऐसा कथन करके एक ही आत्माका वाद = सिद्धान्त वर्णन किया है। सो आत्मा आप-ही-आप स्वयं सर्वाधिष्ठान बन गये। अपने आप द्रष्टा न्यारा चैतन्य स्वरूपको भुला दिये हैं। "मैं आत्मा

सर्वव्यापक हूँ !" ऐसा अभिमान ले लिये हैं। पहले जीव एकदेशी थे, तो एक देहका दुःख भोगते थे। अब सर्वदेशी आत्माभिमानी अध्यासी बनकर अनेकों देह धारण करके चौरासी योनियोंके दुःख भोगी हुए हैं। भ्रान्ति-भूल, जड़ाध्यासवश बहुतेक सन्ताप, त्रिविधि ताप, जन्म-मरणादिके दुःख बारम्बार सहते रहते हैं ॥ १११३ ॥

११. बिन पारख गुरु कौन लखावै * महा कठिन यम जाल बचावै ॥ १११४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरुसे मिले बिना, आपकी शरण-ग्रहणकर, उपदेश श्रवण करके विवेक किये बिना, यह महान जबर्दस्त भव-बन्धनोंको एक-एक दर्शाकर यथार्थ रीतिसे कौन लखावेंगे ? पारखी श्रीसद्गुरुके सिवाय और कोई सारासारको नहीं लखाते हैं। छूटनेको अत्यन्त कठिन यम या कालके महान भूल-भुलैयारूप खानी-वाणियोंके जालोंसे और तो बचाने वाले कोई नहीं हैं। कायावीर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब आप एक ही सत्य-शिक्षक, शरण-रक्षक हुए हैं। आपके अनुयायी वही सत्यज्ञान पारख बोधदाता पारखी श्रीसद्गुरु जिज्ञासुओं-को एक-एक करके सभी यम जाल परखाकर लखा करके जीवोंको भ्रम बन्धनोंसे छुड़ा करके मुक्त किये, और वैसे ही अभी भी पारखी साधु-गुरु ही जीवोंका कल्याण-हित कर ही रहे हैं ॥ १११४ ॥

१२. अज्ञ तज्ञ दुहुँ भाग डुबाये * कैसे छूटै बिनु पारख पाये ॥ १११५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें— १. अज्ञ=अज्ञानमार्ग है। २. तज्ञ=ज्ञानमार्ग है। ये दो भाग विस्तार किया है। अज्ञानीलोग खानीरूप सागरकी तरङ्गोंमें पड़कर वाममार्गादि हिंसक, क्रूर, राक्षस, दुष्टाचरण करके नाना विषयोंमें डूब मरे वा मर रहे हैं; और ज्ञानीलोग वाणीरूप सागरकी कल्पनारूपी लहरीमें पड़कर दक्षिण मार्ग— योग, ज्ञान, विज्ञान आदिकी मानन्दीसे नाना साधनाएँ करके धोखेमें पड़कर डूब मरे; जड़ाध्यासी हुए वा हो रहे हैं। अब वही बात जगत्-में ज्ञान-अज्ञान, खानी-वाणी, ब्रह्म-जगत् आदि दो-दो भागोंमें फँसाकर और डुबाकर मार रहे हैं। अथवा कोई अज्ञ=कर्म, उपासना, योगादि साधनाओंमें लगे हैं; और कोई तज्ञ=ज्ञान तथा विज्ञानके भ्रममें फँसे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुसे अपरोक्ष पारख बोध जान पाये बिना, यह दोनों भागोंसे कोई कैसे छूटेंगे ? जिन्होंने पारख बोध पाया, सो वे अवश्य ही उन दोनों जालोंसे छूट जायेंगे ॥ १११५ ॥

साखीः— सूझि परै नहिं जाल सो * ज्ञान करहिं बहु भाँति ॥
[२१२] आँधर भये तम कूपमें * वर्णन करहिं सो शान्ति ॥ १११६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग भक्ति, योग और ज्ञानका कथन वर्णन बहुत भाँतिसे बढ़ा-चढ़ा करके तो करते हैं या कर रहे हैं। परन्तु, यथार्थ पारखदृष्टिके हुए बिना उन्हें भ्रम-कल्पना कुछ दिखलाई नहीं पड़ती है। ब्रह्म-ईश्वरादि जो माना है, सोई तो वाणी-कल्पनाका जाल है; यह समझ नहीं पड़ती है। आँखें मूँदकर सोई भ्रम-जालोंमें अपने भी अरुझे पड़े हैं, और दूसरोंको भी अरुझा रहे हैं। बहुत तरहके ज्ञानका उपदेश जो करते हैं, सो तो नरजीवोंको फँसानेका ढङ्ग मात्र है। विवेकदृष्टिको फोड़कर वे अन्धे ही बने हुए हैं। इसीसे तो भटकते हुए तमकूप=महा अँधियारी अज्ञानरूप ब्रह्म-मानन्दीमें गिर पड़े। भ्रम-धोखाके अन्धेरा कूआँमें घुसकर बैठे, तो अब उसीको शान्तिपद, परमपद, परमानन्द, निर्वाण ब्रह्म स्थिति मिली; सब बन्धनोंसे छूट गये, ऐसा वर्णन करते हैं। परन्तु, वह तो महाबन्धनका कारण खाँच ही है। पारख बोध हुए बिना यह भेद वे लोग कुछ भी नहीं जानते हैं ॥ १११६ ॥

साखीः— जीव न पावै मर्म सो * पुनि पुनि उठै अकुलाय ॥
[२१३] अगम अपार अथाह कहि * शिर धुनि धुनि पछताय ॥ १११७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अबोध नरजीव वाणी-कल्पनाका मर्म, गुरुवा-

लोगोंके पाखण्ड प्रपञ्चोंका भेद सो बन्धनरूप है, ऐसा तो जान ही नहीं पाते हैं। जैसी-जैसी साधना उन्होंने बताया, वैसी-वैसी साधना करते गये; कष्ट-क्लेश सहते गये, तो भी माना हुआ ईश्वर कर्त्ता या परब्रह्मका साक्षात्कार तथा प्राप्ति नहीं हुई। पुनः-पुनः या बारम्बार अकुला उठते हैं। हैरान, व्याकुल हो जाते हैं। "हे प्रभो! अब तो दर्शन देकर हमें निहाल करो!" ऐसा कहते, रोते, गाते, प्रार्थना करते हैं। फिर-फिरके उसी साधनाओंमें दुःख सहते जाते हैं। इतने करनेपर भी जब मनसा पूर्ण नहीं होती है, तब थकित होकर उस ब्रह्म-परमात्माका कुछ भी गम नहीं पाया, इसीसे अगम कहा, पार नहीं पाया, तो अपार कहा, और थाह वा पता कुछ भी नहीं मिला, तो अथाह, जैसा-का-तैसा है, ऐसा कह-कहकर भूले, धोखेमें ही गिर पड़े। फिर शिर हिला-हिलाकर और शिर पीट-पीटकर पछताते हैं, शिर ठोंक करके रोते हैं; और जब शरीर छूटता है, तो श्रेष्ठ जीव आप ही गर्भवासमें जाकर दुःख भोगते हैं; चौरासी योनियोंमें छटपटाते रहते हैं ॥ १११७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ५६ ॥ [चौपाई- १३ । साखी- ५ । शब्द- १ है] ॥ ❀ ॥

१. अज हरि हर त्रिगुण त्रैलोका ❀ चौथे शोकमें आपु अशोका ॥ १११८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें त्रिगुण जालोंका ही पसारा सब तरफ फैला हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश; रज, सत्त्व, तम; स्वर्ग, मृत्यु, पाताल; पिण्डज, अण्डज, उष्मज; स्त्री, पुरुष, नपुंसक; इत्यादि विस्तारसे त्रिगुण माया जाल तीनों लोकोंमें छाया हुआ है। और अज=ब्रह्मा तथा उनकी सन्तान ब्राह्मण, कर्ममार्गी, कर्मसाधनाओंसे ब्रह्मलोकके निवासकी प्राप्ति चाहते हैं। हरि=विष्णु और विष्णुके उपासक भक्त लोग भक्ति साधनाओंसे विष्णुलोक जाना चाहते हैं। हर=शिव और योगमार्गी योगी लोग योग साधनाओंसे शिवलोक जाना चाहते हैं। ऐसे त्रिगुणोंका राज संसारमें चला है। और चौथे=ज्ञानमार्गके साधनाओंमें ज्ञानी लोग लगे हैं। चतुर्थ-तुरिया माया जगत् दुःखोंका मूल कारण है। ज्ञान साधक लोग चिन्ता, फिक्र, शोकमें ही पड़े रहते हैं कि, कहीं साधनाओंमें त्रुटि, विघ्न न हो जाय? इसी शोकमें रहते हैं; और पाँचवाँ विज्ञानी लोग परमहंस दशाको धारण करके नाम-रूप माया विकारसे परे, स्वयं आप-ही-आप शुद्ध ब्रह्म शोकसे रहित मानते हैं। सो तुरियामें रहकर ब्रह्मकी भावना करते हैं। अथवा दुःखमय जगत्में आवागमनके कारणमें रहकर भी वे ज्ञानी लोग अपनेको अशोक, मुक्त ब्रह्म स्वरूप मानते हैं; यही तो उनकी भूल है ॥ १११८ ॥

२. भिन्न भिन्न तेहि अदल प्रमाना ❀ चौकी बन्धन जीव विधि नाना ॥ १११९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकार मुख्य पाँच मार्ग और उनकी शाखाएँ संसारमें अनेकों हुई हैं। उन्हीं गुरुवालोगोंके हुकम शासन, वाणीको प्रमाण करके भिन्न-भिन्न ही उन मार्गोंका अदल चला रक्खा है। सब तरफ पहरा, चौकी, घेरा लगा रक्खा है। अपने-अपने अनुयायी लोग सिपाहीरूपमें जगह-जगहमें बैठा रक्खा है। भजन, कीर्तन, कथा, व्याख्यान सुना रहे हैं। ऐसे नाना विधिसे सब जीवोंको गुरुवालोगोंने भव-बन्धनोंमें ही बाँधा है या गुरुवालोग मनुष्योंको ऐसे बाँध रहे हैं ॥ १११९ ॥

३. अपने स्वभाव चहै जिव जीया ❀ गोहरावै निशिदिन पिय पीया ॥ ११२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जीव तो चैतन्य स्वरूपसे अखण्ड, अमर, नित्य-सत्य है। किन्तु, पारख स्वरूपकी स्थिति हुए बिना सब जीव देहाध्यासी बद्ध बने हैं। इसीसे अपने स्वाभाविक अमर गुण-लक्षणको देहमें रहकर भी प्रगट करके कायम करना चाहते हैं। सब देहधारी जीव हमेशा जीते ही रहना चाहते हैं। कोई भी खुशीसे तो मृत्यु होना नहीं चाहते हैं; परन्तु, कर्म भोग तो शरीरमें रहकर सबोंको भोगना ही पड़ता है। तब कष्ट-दुःख, रोगादि होनेपर घबड़ा करके दुःख मिटानेके लिये दिन-रात ज्ञानी-अज्ञानी लोग अपने-अपने इष्ट देवता ब्रह्म

ईश्वर, खुदा आदिको पुकारते, गोहराते, जिलाने-बचानेका विनय करते हैं। पिया-पिया हे परमात्मा! हे भगवान्! हमें बचाओ! हमें बचाओ! ऐसी प्रार्थनाएँ करते हैं। परन्तु, दुःख और मृत्युसे तो कोई नहीं बचाते हैं; अगर सब भ्रमको त्याग करके जीव अपने पारख स्वरूपमें ठहरें, तो आवागमनसे छूट सकते हैं; अन्यथा सदा जी नहीं सकते हैं ॥ ११२० ॥

४. तोरन चहहिं फन्द यम केरा ❀ महा कलेश योग अरुझेरा ॥ ११२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोग कहते हैं कि, हे मनुष्यो! तुम लोग यदि यमराज वा कालका फन्दा तोड़ना और परमात्मामें मिलना चाहते हो, तो योगाभ्यास पूर्ण करो! उससे तुम्हारी काया अमर हो जायगी, इत्यादि बात सुनाये। इधर बहुतेरे मनुष्य यम फन्दारूप मृत्युको तोड़ करके सदा जीते ही रहना चाहते हैं या आयु बढ़ाना, चिरञ्जीव होना सब कोई चाहते हैं। उसके लिये अष्टाङ्ग योगके साधनाओंमें बहुत लोग अरुझे हैं। महान कष्ट-क्लेश, दुस्सह दुःख साधनाएँ करनेमें सहे। तो भी यम फन्दा तोड़नेमें और मृत्युसे बचनेमें कोई समर्थ नहीं हुए। बल्कि यमरूप गुरुवालोगोंके फन्दाओंमें ही बहुतप्रकारसे अरुझकर जड़ाध्यासी, बद्ध हो गये, बिना पारख ॥ ११२१ ॥

५. बन्दी तेहि कारण निर्माया ❀ घायल कसकहिं बहु अन्त न पाया ॥ ११२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भव-बन्धनोंमें पड़े हुए बन्दीजन, गुरुवालोगोंने परीक्षा बिना उसी मूर्खताके कारणसे मृत्युसे बचनेके लिये ही योगमार्गादिका निर्माण किया है, यानी जगत् दुःखोंसे छूटकर परमानन्द प्राप्तिकी आशासे ही भक्ति, योग, ज्ञानादिका साधन बनाया है। भिन्न-भिन्न मत, पन्थ खड़ा किया है। वे खानी-वाणीके विरह-वियोगसे घायल, व्याकुल, पीड़ित होकर नाना कर्म करनेमें 'कसकहिं' =कहिये रोते, कलपते सिसकते हुए असह्य दुःख परवश होकर सहते हैं। बहुत-बहुत दुःखित होते हैं, तब भी दुःखोंका अन्त नहीं होता है। ब्रह्म, खुदा आदिका पता भी कुछ नहीं पाया; मुक्ति तो नहीं मिली। जड़ाध्यासी होकर देहान्त हुआ, तो आखिरमें चौरासी योनियोंके नाना दुःख ही जीवोंने पाया। ऐसे सब प्रकारसे बन्धनोंमें ही पड़े हैं॥११२२॥

६. जन जोगाय अन्त सो नाशै ❀ तत्त्वमसि त्रिदोष सो ग्रासै ॥ ११२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारी मनुष्य जीवोंको 'जोगाने' या 'रक्षा' करनेके वास्ते दुःखोंसे बचाव करनेका भरोसा देकर गुरुवालोगोंने जो नाना वाणी गा करके उपदेश देकर भक्ति, योग और ज्ञानकी साधना कराया है। सो उससे किसीकी भी चौरासी योनियोंके दुःखोंसे रक्षा नहीं हुई। अन्तमें सोई विनाशका कारण हुआ। अथवा प्रथम वेदादि प्रमाणसे नाना मार्गोंका वर्णन किया, अन्तमें अद्वैत ब्रह्मज्ञानमें जा करके सो सबको नाश करके छोड़ दिया। आप ही ब्रह्म बना; दूसरोंको भी ब्रह्म बनाया। "तत्त्वमसि"—हे जीव तू ही वह ब्रह्म है! ऐसा कहकर फिर तू-मैं छोड़कर सारा चराचर जगत् एक ही ब्रह्म व्यापक है! ऐसा ठहराया है। तत्त्वमसिमें तीन पद=जीव, ईश्वर और ब्रह्मको एकमें मिलाया था, सो अज्ञान, ज्ञान और विज्ञान, ये त्रिदोष एकमें मिल करके सन्निपातरूप अध्यासका रोग जड़ाध्यासमें ग्रसित हुए; उसीमें औरको भी ग्रासकर सत्यानाश कर डाले हैं ॥ ११२३ ॥

७. सो विस्तार जाल केहि भाँती ❀ बिन पारख गुरु जीव कुशलाती ॥ ११२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो वाणी-खानी जालोंका अत्यन्त ज्यादा विस्तार हुआ है। उस जालमें रहकर किसी तरह भी मनुष्योंका कल्याण हो नहीं सकता है। और पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आकर यथार्थ पारखबोध हुए बिना, किसीप्रकार भी सो विस्तार जालसे नरजीव छूट नहीं सकते हैं। तब कुशलता कहाँसे होगी? पारखी श्रीसद्गुरु बिना जीवोंके कुशल, मङ्गल करनेवाले

जगत्में दूसरे कोई नहीं हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण हो उनकी सत् शिक्षाको धारण करके पारख बोध प्राप्त कर लेना चाहिये; तभी नरजीवोंकी कुशलता होगी ॥ ११२४ ॥

८. आश कुशल दृढ़ फाँसी लावै * जेवरि बन्धे जीव यम पुर धावै ॥ ११२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इधर बेपारखी गुरुवालोगोंने तो ऐसा प्रपञ्च फैलाया है कि, उनके ढोंगमें सहज ही सब भूल जाते हैं। विषय सुख, सम्पत्ति आदि प्राप्तिकी किसीको आशा-दिलाशा देते हैं, तो कोईको कार्य सिद्ध होनेकी, सामर्थ्य प्राप्तिकी, स्वर्गादि ईश्वरादि प्राप्ति होनेकी आशा एवं उसीसे चार फल, चार मुक्ति आदि मिलनेकी आशा, कुशलता दृढ़ा-दृढ़ा कर मजबूत कल्पना वाणीके फन्दाओंमें डालकर फँसा दिया है। वासना, चाहना, अध्यासकी रस्सीमें बद्ध होकर लटक-लटक कर फाँसीमें पड़े-पड़े ही मर गये। ऐसे अध्यासी जीव देह छोड़कर फिर यमपुर = चौरासी योनियोंके गर्भवासमें दौड़ते चले गये और चले ही जा रहे हैं; वहाँ नाना कर्म दण्ड दुःख पा रहे हैं ॥ ११२५ ॥

९. जे जीव तजहिं जाल यम मोटी * तेहि दृढ़ झीना फाँसी खोटी ॥ ११२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई बुद्धिमान् नरजीव संसारसे उपराम हो जाते हैं, सो घर-गृहस्थीको दुःखदायी बन्धनरूप समझकर 'मोटी यम जाल' कहिये स्त्री, पुत्र, धन, घर, बन्धु-बान्धव, राज-काज आदि इन मोटे-मोटे जगत् व्यवहारोंको तो परित्याग कर देते हैं; और षट् दर्शनोंके किसी भेषमें जाकर साधु बन जाते हैं। वहाँ वे मजबूत झीनी यम जालोंमें बद्ध हो जाते हैं। पाँच मार्गोंकी साधना, कल्पना वाणीका पक्ष, ईश्वर, ब्रह्म, खुदादिकी मानन्दी, देवी-देवता भूत-प्रेतादिका विश्वास, इत्यादि भ्रमको दृढ़ किया है, सो झीनी फाँसी है। वह तो और खोटी-असत्य है। ऐसी मोटी-झीनी मायाके दोनों बन्धनोंमें जीव पड़े हैं। बिना पारख बचाव नहीं होता है ॥ ११२६ ॥

१०. भोरे आश उबारन जिवके * औषध विष फल कहत अमीके ॥ ११२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! "तुम्हें दुःखोंसे हम बचा देंगे, भवपार करके उबार देंगे, मुक्ति करा देंगे, ईश्वरादिसे मिला देंगे," इत्यादि आशा-भरोसा देकर नरजीवोंको गुरुवा-लोगोंने भुला दिया है। धोखा दे दिया है; उबारकी आशामें ले जाकर डुबा दिया है। जिलानेका विश्वास दिलाकर मार दिया है। गुरुवालोगोंके पाँच मार्गोंके उपदेशरूप औषधि तो हलाहल विषका जहरीला फलके समान है। कल्पना, अनुमान तो मनुष्यपदको नष्ट करनेवाला तेज जहर है। परन्तु, भ्रमा करके उसे परमानन्द मुक्तिदाता अमृतवत् ब्रह्मज्ञानका उपदेश है, ऐसा कहते हैं। उसे अमृत कहकर कल्पनाकी शिक्षारूप विष खिला देते हैं। तब कहो भला ! जीवोंको मुक्ति सुख कैसे प्राप्त होवेगा ? जन्म-मरणादि दुःख कैसे छूटेगा ? ॥ ११२७ ॥

११. खाय खाय विष जीव बौराना * अपने मरणकी खबर न जाना ॥ ११२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बड़ी महिमा या तारीफ सुनकर आकर्षित हो ठग गुरुवालोगोंके विषरूप मिथ्या वाणीका उपदेश मान-मानकर विषय भोग तथा ब्रह्मानन्दादिको ग्रहण करके खा-खा करके मस्त हुए, तब जड़ाध्यासरूप उस विषका नशा-जोश, रङ्ग चढ़ा; तो वे सब जीव बौरा करके पागल हो गये। मनमाने चलने लगे। अक्क-बक्क-झक्क करके बकवाद करने लगे। पशुवत् आचरण करने लगे। इसीकारणसे स्मृति, बुद्धि ठिकानमें न रहनेसे अपनी हानि तथा मृत्यु भी नहीं समझते हैं। जड़ाध्याससे जीवके मुक्तिपद हंस रहनीका नाश हुआ; देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जा करके हमें कठिन दुःख भोगना पड़ेगा, यह बात पारख बिना वे नहीं जानते हैं; इसलिये जन्म-मरणादिमें बारम्बार पड़ा करते हैं ॥ ११२८ ॥

१२. चाहै कुशल कुशल यम फाँसी * विविधि भाँति यम जीवहिं गाँसी ॥ ११२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें कुशल-मङ्गल पाना तो सब कोई चाहते

हैं। संसारी लोग किसीको धन मिला, विवाह हुआ, सन्तान उत्पन्न हुई, रोग-शोग छूटा, राज-काज मिला, झगड़ा निपटारा हुआ, पदवी बढ़ी, इत्यादि बातोंमें वे 'अच्छा कुशल हुआ' कहकर एक-दूसरेको बधाई देते हैं; प्रशंसा करते हैं; और उधर विद्या पढ़ाई हुई, अष्टाङ्ग योग-ध्यानादि साधना पूर्ण हुई, समाधि लगी, दशनाद सुनाई दी, आनन्दकी अनुभूति हुई, ज्योति दिखी, तो गुरुवालोग उसे "बड़ा कुशल-मङ्गल-कल्याण हुआ" कहकर बतलाते हैं। सो वही विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दादि प्राप्तिका कुशल तो सब कोई चाहते हैं। परन्तु, वही कुशल माना हुआ अकुशल यम=कालकी फाँसी है। उससे मुक्तिके बदले बन्धन ही बढ़ जाता है। यम=गुरुवालोग और स्त्रियाँ विविधि प्रकारसे नरजीवोंको भुला करके कुशल होगा, बतला करके गाँसकर जकड़ा रहे हैं। पकड़-पकड़ कर बाँध रहे हैं; फाँसीमें फँसा-फँसा कर लटका रहे हैं। बिना पारख जीव फँसते जा रहे हैं॥ ११२९॥

१३. गाँस न सूझै अपनपौ न बूझै * भला कहत उलटा जिव खीजै॥ ११३०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! विवेक दृष्टिहीन कामान्ध, मोहान्ध, मत-पन्थके पक्षपाती अन्धे मनुष्योंको कुछ भी खानी-वाणी जालोंका गाँस-फाँस नहीं सूझता है, कुछ समझ नहीं पड़ती है; हित-अहित दिखाई नहीं देती है। बुद्धि विपरीत हो जाती है। अपने मनुष्यपद हंसपद, जीवपदकी पारख स्थिति सद्गुण रहनी-रहस्य कुछ भी बूझ नहीं पाते हैं। ऐसे मतवादी लोग मूढ़ बने हैं। उनकी भलाईके लिये यथार्थ गुरुमुख निर्णयका उपदेश देता हूँ कि— "हे जीव! तेरे ऊपर कोई कर्त्ता मालिक ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि नहीं है। वह सब तेरी ही कल्पना मात्र मिथ्या है। जड़ाध्याससे ही तू आवागमनोंमें पड़ा दुःख पा रहा है। सो परखकर परित्याग कर! निज सत्य स्वरूपकी स्थिति कर! पाखण्डोंमें मत् पड़!"- इत्यादि हितकारी बात कहनेपर मानना छोड़कर उलटी समझवाले निर्बुद्धि नरजीव उलटकर और खीझ पड़ते हैं। नाराज होकर लड़ाई-झगड़ा करनेको तैय्यार होते हैं। पारखी सत्यन्यायी सन्तोंसे बैर-विरोध मानते हैं। ऐसे मूर्ख नरपशुओंकी भलाई तथा कल्याण तो भी कैसे होवे? अतएव मनुष्योंने सारग्राही होना चाहिये। हित-अहितका विचार करके अपने हितकारी मार्गमें ही लगना, यही मनुष्यका धर्म है॥ ११३०॥

साखीः— गाँस फाँस बहुविधि रचा * झीना लखा न जाय॥

[२१४] नाशे नाशक रूप सो * त्रिगुण होय समुदाय॥ ११३१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भ्रमिक गुरुवालोगोंने वाणी जालोंमें बहुतेक गाँठी दे-दे करके जीवोंको फँसानेके लिये फन्दा फैला रक्खा है। कर्म, भक्ति, योग और ज्ञानादिके प्रपञ्चकी बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक रचना कर रक्खी है। सो अध्यास, कल्पना, अनुमान, भाससे माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि सब भ्रम है। यह झीनी मायाका जाल पारख बिना सबसे लखा नहीं जाता है। यह सब रचना जीवोंको आवागमनोंमें ही ले जानेवाली है। यह झीनी बातका भेद सबके समझनेमें नहीं आती है। नाशक=कालरूप गुरुवालोगोंने सोई वाणी कल्पना नाना तरहसे दृढ़ा-दृढ़ाकर सो नाना सिद्धान्तोंकी रूप-रेखा खड़ी किया है। फिर ब्रह्म बन-बना करके अद्वैतमें टिकाकर सो द्वैत-भाव सबको नाश किया। तहाँ त्रिगुण, तीन कर्मादि जगत् समुदायको भी एकमें मिला करके समष्टि, अधिष्ठान ब्रह्म अद्वैत हुए। परन्तु, फिर भी ब्रह्मकी इच्छासे त्रिगुणरूप जगत् समूह प्रगट हुआ, तो वैसी ही उपाधि लगी रही। ब्रह्म-भ्रमकी मानन्दीमें पड़ करके नरजीव स्वपदसे नष्ट हो करके चौरासी योनियोंमें त्रिगुणी बन्धनोंमें जकड़े पड़े हैं। इससे परखकर उक्त गाँस-फाँससे न्यारा हो जाना चाहिये॥ ११३१॥

॥ ❀ ॥ [टकसार] साखी ॥ ❀ ॥

साखीः— मोटी माया सब तजे * झीनी तजी न जाय ॥
[२१५] पीर पैगम्बर औलिया * झीनी सबको खाय ॥ ११३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें 'मोटी' और 'झीनी' दो प्रकारके माया जाल हैं। उनमें 'मोटी माया' खानी भागमें— स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज्य, विषय भोगादि गृहस्थीको तो सब कोई कारण विशेषसे छोड़ देते हैं या उपराम होनेपर छोड़ सकते हैं। वैराग्य विशेष-विशेष होनेपर बहुतोंने छोड़ा भी है। परन्तु, दूसरी 'झीनी माया' बड़ी जबर्दस्त है, सो सबसे छोड़ी नहीं जाती है। क्योंकि, वाणी कल्पनाके समस्त सिद्धान्त मत-पन्थादिके पक्ष इसमें लगे हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, ऋद्धि-सिद्धि, वीर, वेताल, भूत-प्रेत, भैरव-भवानी, इत्यादि कल्पनाएँ झीनी मायाकी मन-मानन्दीने ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी, ज्ञानी, भक्त, विज्ञानी और मुसलमानोंमें पीर, पैगम्बर-मोहम्मदादि, औलिया, सिद्ध सबकी मतिको खाकर भ्रमिक बना दिया; सबोंने वाणी कल्पनाको खाया या ग्रहण किया है, बिना पारख ॥ ११३२ ॥

॥ ❀ ॥ टकसार ॥ शब्द, नम्बर— १० ॥ ❀ ॥

१. भरोसे अनुभवके भूले ॥ ११३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! कल्पित ईश्वर, खुदा, देवी, देवतादिका भरोसा या विश्वास रखकर अज्ञानी संसारी लोग भूले हैं। और ध्यान-समाधिसे वृत्ति लय करके उसे निर्विकल्प ब्रह्म-परमात्मा मानकर ज्ञानीजन भूले हैं। योगाभ्याससे नाद सुनकर या ज्योति-प्रकाश देखकर, आनन्दित होकर उसको ही परमेश्वर मान करके योगी लोग भूले हैं। इस-प्रकारसे अपने-अपने इष्ट वा ध्येयके भरोसे, आशा-अनुभवका दृढ़ निश्चय करके देह और तत्त्वोंका प्रतिबिम्ब आदिके अनुमानसे जो भावना-विश्वास दृढ़ हुआ, सो अनुभूत विषयको निज स्वरूप मानकर बिना पारख योगी, ज्ञानी और भक्त आदि सब कोई भूले या महा भूलमें पड़ गये। असत्यको सत्य करके मानकर अनुमान-कल्पनाके विश्वासपर सब कोई भूले हैं ॥ ११३३ ॥

२. जीव दो दो साखी जोरि * जुगतके फीरे ज्ञानके फूले ॥ ११३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें त्रयतापादि अनेक दुःख पाकर इन दुःखोंको देखकर तथा मनकी चाहनाएँ पूर्ण न होती हुई देखकर मनुष्य जीवोंने जीवसे भिन्न और कोई दूसरा कर्त्ता परमेश्वर कोई एक कल्पनासे निश्चय किया है। तो (१) जीव, और (२) शिव, ये दो हुए। जीव दुःख पाता है, शिव सुख दाता है, ऐसा ठहराया है। और स्वर्ग-नरक, पिण्ड-ब्राह्माण्ड, देव-दानव, स्त्री-पुरुष, पाप-पुण्य, अशुभ-शुभ, ब्रह्म-जगत्, इत्यादि दो-दो भागोंका न्यारा-न्यारा विचार गुरु-शिष्योंने वेद, शास्त्रोंका प्रमाणसे साक्षी दे-देकर खानी और वाणी कल्पनाको ही परिपुष्ट किया है। इसप्रकारसे नरजीवोंने दो-दो चारमें चार वेदोंका साक्षी प्रमाण जुटाकर ईश्वर-ब्रह्म आदि मानन्दीमें लक्ष्य जोड़ा है; सोहं, वोहंमें मन लगाया है; भक्ति, योग और ज्ञानादिकी युक्ति संग्रह करके साधनाओंको सीख-सिखलाकर विषय-कल्पनामें प्रीति जोड़ा है। ब्रह्मज्ञानके प्रमाणसे "अहं ब्रह्मास्मि" कहकर फूला, तो सर्वत्र व्यापक बना; तो वे मनुष्यपदसे उलटकर फिर गये; धोखेमें पड़कर चौरासी योनियोंके दुःख भोगी हो गये। अब वे गुरुवा बनकर शिष्योंको वही वेद-वेदान्त, इन दोका साक्षी देकर = अनुमानमें प्रेम जुड़ाते हैं। जुगतके = युक्तिपूर्वक धोखा देकर मनुष्योंके विवेकको उलटा करके अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी वाणी सुना-सुनाकर भुलाये। मिथ्या मानन्दीमें फूलकर कुप्पेवत् हो गये। सारासारके पारख बिना मुक्तिपदसे पतित हो चौरासी योनियोंमें दुःख भोगी हुए, और हो ही रहे हैं ॥ ११३४ ॥

३. कर्त्ता काल नहिं पहिचाना * जिन्ह जेर किया जग सबहीं ॥ ११३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालका यह जगत् स्वयं सिद्ध है। परन्तु,

इस सारा जगत्का कर्त्ता कोई ईश्वर, ब्रह्म वा खुदा है। ऐसा काल=गुरुवालोगोंने कल्पना करके जो ठहराया, सो मिथ्या भ्रम है। वेद, कुरान आदि समस्त वाणीका रचयिता वा कर्त्ता तो मनुष्य जीव ही हैं। किन्तु, कालरूप गुरुवालोगोंने और ही दूसरा जगत् कर्त्ता दृढ़ा रक्खा है। सो पारख बिना सत्य-मिथ्याकी पहिचान किसीको नहीं हुई। जिन गुरुवालोगोंको कल्याणकारी माना है, उन्हींने सब जगत्के मनुष्योंको वाणी-जालमें फँसाकर जेर या जेलमें डालकर कैद किया है, सो भी नहीं जान पाये। अथवा जिन्होंने सारे जगत् जीवोंको जेर किया, भवन-बन्धनोंमें डाला, सो हितकारक नहीं हैं, वे गुरुवा लोग तो काल हैं। पारख बिना यह पहिचान नहीं होती है ॥ ११३५ ॥

४. अन्तकाल यह काम न आवै ❀ पछतैहैं सब तबहीं ॥ ११३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! जिन्हें तुम श्रेष्ठ या सुखदायी समझ रक्खे हो ! सो आखिर तुम्हारे दुःख भोगनेके वक्तमें कोई काम नहीं आते हैं; तथा जब तुम्हारे शरीरका अन्तकाल या तुम्हारी मृत्यु हो जायगी, तब यह जो स्त्री-पुत्रादि परिवारोंको और गुरुवालोगोंको एवं ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, देवतादिको जो रक्षक समझ रक्खे हो, सो कोई भी अन्तमें तुम्हारे काम नहीं आयेंगे, कोई कुछ भी सहायता नहीं करेंगे; तुम अकेले ही वासनावश चौरासी योनियोंमें जाकर नाना दुःख-फल भोगोगे। पीछे दुःख पड़नेपर पछतावा तो सब कोई करते हैं; परन्तु, आगे नहीं चेतते हैं। तुम सब भी अभी नहीं चेतोगे, तो पीछे वैसे ही पछताओगे, अनेक दुःख भोगोगे। इससे अभी जागो ! चेतो ! पारख बोध लेकर कल्याण करो ! ॥ ११३६ ॥

५. त्रिकुटी ध्यान धरै योगी सब ❀ उन्मनी तारि लावै ॥ ११३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! साधक ध्यानी-योगी लोग सब प्रकारसे बाह्य वृत्तिको समेटकर नेत्रोंको बन्द करके दोनों भौंहोंके बीच त्रिकुटी स्थानमें लक्ष्य लगाकर अनुमान-कल्पनासे कोई इष्टका वा ईश्वरादिका ध्यान धरते हैं, धारणा करते हैं। सब योगीजन ऐसी ही साधना करते हैं। तारी=पञ्च मुद्रा साधकर शून्य समाधिमें जब लौ लगाते हैं, तब देहादिके लय होनेसे बेभान होकर मन मरकर उन्मुन हो जाता है; लय-शून्य अवस्था हो जाती है। उसको ही परमानन्द ब्रह्म माना है; सो भी उनकी कल्पना भ्रम ही है ॥ ११३७ ॥

६. अजपा जपै शून्य मन राखै ❀ मूल भेद नहिं पावै ॥ ११३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई योगीलोग श्वास वायुमें सोहं शब्दकी कल्पना करके, उसे आप-ही-आप होनेवाला अजपा जाप मानकर उसमें मन लगाकर सोहं-सोहंका जाप स्मरण किया करते हैं। शून्य ब्रह्माण्डमें मनको ले जाकर रखते हैं; निर्विकल्प समाधिमें सदा ठहरे रहना चाहते हैं। कोई एक ब्रह्मको सब जगत्का आदि कारण मूलतत्त्व वा परमतत्त्व नामसे मान लिया है। परन्तु, इन सबोंकी मानन्दी करनेवाला मनुष्य जीव सबोंका द्रष्टा न्यारा है। सो दृश्य कभी हो नहीं सकता है। मूल=मुख्य अपने स्वरूपका शुरूका भेद, पता भी पारख न होनेसे उन योगियोंने नहीं जान पाया। इसलिये धोखेमें ही पकड़कर भटका खाया ॥ ११३८ ॥

७. नित उठि ज्ञान करे चरचा सब ❀ कथनीमों लपटाने ॥ ११३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नित्य-सत्य तो जीव है; उस निज स्वरूपको सब कोई भूले हुए हैं। भ्रमिक लोग रोज ही उठ-उठ कर ब्रह्मज्ञानकी चर्चा करते हैं। वेद-वेदान्तका कथा-कीर्तन, उपदेश, शङ्का-सामाधान, वार्तालाप नित्यप्रति किया करते हैं। परन्तु, सब कोई वे लोग वाणी कल्पनाकी कथनीमें ही लिपट करके मग्न हो रहे हैं। अनुमानरूपी ब्रह्मके भ्रममें लम्पट होकर दिवाने हो रहे हैं। उन्हें तो सबमें एक आत्माका ही भास हो रहा है ॥ ११३९ ॥

८. निर्गुण सर्गुण दोनों धोखा ❀ मूल भेद नहिं जाने ॥ ११४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई निर्गुण-निराकार, निरञ्जन ब्रह्म, आकाशवत्

कहा है; और कोई सगुण, साकार, विराट्रूप परमेश्वर या चौबीस अवतार देहधारी भगवान् जगतोद्धारक हैं, ऐसा बताया है। कोईने ब्रह्मको निर्गुण-सगुण दोनों ही बतलाया है। समानरूपसे निर्गुण, और विशेषरूपसे सगुण हो जाता है, ऐसे-ऐसे वाणी जो कहा है, सो दोनों ही मिथ्या धोखा भ्रम है। ब्रह्मको सर्वाधिष्ठान सर्वका मूल जो माना है, सो भी भूल है। मनुष्य जीवोंने ही सबोंकी मानन्दी की है; सो उन्होंने मूल=हंसपदका मुख्य भेद सद्गुण रहनी-रहस्यका मर्म, पारख स्वरूपका बोध कुछ नहीं जाना। इसीसे ब्रह्मज्ञानी लोग भ्रम चक्रमें ही पड़े हैं; निज सत्स्वरूपको पारखके भेद बिना नहीं जाना; इसीसे बद्ध हुए हैं। और ब्रह्मादिकोंके अनुभवको सत्य मानकर उसीके भरोसेमें बेपारखी मनुष्य सब भूले और भूल ही रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके बिना वह भूल नहीं मिटती है॥ ११४० ॥

९. वोहं सोहं महाकाल है * ररा तेज रहै सोई ॥ ११४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! कर्मकाण्डी लोग "वोऽहं या ॐ-ॐ"का जाप करते हैं। योगी लोग "सोऽहं-सोऽहं"का जाप श्वासमें सुरति लगाकर करते हैं। तो वह क्या है? महान कल्पना काल=गुरुवालोगोंका जाल है। उन्होंने वोऽहं, सोऽहंको परमात्मा प्राप्तिकी साधनाका मार्ग माना है, सो महा भ्रम है। और कोई राम-नामका जाप करके रँ-रँ ध्वनिमें लक्ष्य लगाकर तेज तत्त्वके ज्योति-प्रकाशमें लवलीन हो रहते हैं। सो यह सब कल्पनामें ही रह रहे हैं, इससे सोई गुरुवा लोग महाकाल बने हैं। आखिरमें ब्रह्म-ईश्वरादि अनुमानमें ही वे सब स्थिति किये रहते हैं। अतएव चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े रहते हैं॥ ११४१ ॥

१०. निशि दिन नाम निरञ्जन सुमिरै * तौ जिव पार न होई ॥ ११४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई ज्ञानी-अज्ञानी लोग दिन-रात निरञ्जन परमात्माका नाम कहकर "ॐ नमो निरञ्जनाय-ॐ नमो निरञ्जनाय" इसीकी सुमिरण वा याद किया करते हैं। वही नाम-स्मरणादिसे भवपार होना चाहते है। परन्तु, उससे नरजीवोंको निज स्वरूपकी स्थिति पारख बोध, हंस रहनीकी धारण तो नहीं हुई, जड़ाध्यासी ही बने हैं, इसीकारणसे वह सब साधना करनेपर भी जीव भवपार हो नहीं सकते हैं। पारख बोध हुए बिना कदापि मुक्त हो नहीं सकते हैं। अध्यासी जीव बारम्बार आवागमनोंमें ही पड़ते रहते हैं॥ ११४२ ॥

११. आगे खोज करो भाई सन्तो! * बानी बूझ लखु मेरी ॥ ११४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पीछे अनादि कालसे लेकर आगे कल्प-कल्पान्तर तक ठहरानेवाले, जानने, मानने, कथन करनेवाले, तो मनुष्य जीव ही हैं। इसकारणसे हे सन्त भाइयो! ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि-इन गुरुवालोगोंके सिद्धान्तोंसे आगे बढ़कर सत्सङ्गमें सत्य-सारकी खोज करो! परीक्षा करो! विवेक करो! मेरे निर्णय गुरुमुख सारशब्दकी वाणीको लखो! मेरे कहे अनुसार साँच-झूठका निर्णय, विचार करके जानो, समझो! तभी सत्यबोध होनेसे तुम्हारी भलाई होगी॥ ११४३॥

१२. ई है काल महा दुःखदाई * अन्त लेयेंगे घेरी ॥ ११४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वे ढोंगी, पाखण्डी, षट्दर्शनोंके मतवादी गुरुवालोग और स्त्रियाँ, ये ही तो मुख्य 'काल' हैं। आरम्भसे परिणाम तक इन्होंका सङ्ग जीवोंको महान दुःखदायी होता है। हरतरहसे ये काल मनुष्योंको सताकर नाना तरहसे दुःख ही देते रहते हैं। पहले लोभ-लालच दिखाकर अपने कब्जेमें कर लेते हैं, फिर अन्तमें खानी-वाणीके जालोंमें घेरकर नाश कर डालते हैं। और उन्हींके सङ्गसे जो जड़ाध्यास दृढ़ हो जाता है, सो फिर देहान्तमें जीवोंको घेरकर वा बाँधकर चौरासी योनियोंके नरक कुण्डमें ले जाकर डाल देता है। इससे अभी सावधान होकर पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर काल-जालसे बचाव करो!॥ ११४४ ॥

पं० ग्र० टीका; १६५—

१३. कहैं कबीर कहा करि भाखौं * जिभ्या कहो न जाई ॥ ११४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता यहाँपर मायारूप गुरुवालोगोंका कथन दर्शाते हैं— हे सन्तो ! [मायामुखः—] गुरुवालोग कहते हैं— हे श्रद्धालु जीवो ! परमतत्त्व परमात्मा ही एक संसारमें सार सत्य वस्तु है। उसकी महिमा अगम्य है। उसे हम क्या कहकर वर्णन करें ? किस प्रकार शब्दसे वर्णन करें ? क्योंकि, मन, बुद्धि, वाणीसे तो अति परे वह परब्रह्म है। मुख-जिभ्यासे उसके बारेमें कुछ कहा ही नहीं जा सकता है; वह तो अवाच्य है, पूर्ण व्यापक है ॥ ११४५ ॥

१४. अपरम्पार पारके पारा * सबसों न्यार रहाई ॥ ११४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अपरम्पार=जिसका कुछ पारावार पाया नहीं जा सकता, सर्वमें भरा हुआ सबके आधार, परा वाचाके भी अत्यन्त परे परात्पर, चराचरमें ओत-प्रोत होते हुए भी सबसे न्यारा, अलिप्त, माया विकारसे परे निर्विकार, निराधार, शुद्ध, केवल ब्रह्म ज्यों-का-त्यों, जहाँ-के-तहाँ रह रहा है। वह ऐसा है, कहकर पूर्ण भेद कहते नहीं बनता है। अतः सबसे न्यारा होकर तुम भी उसी ब्रह्ममें मिल जाओ ! ऐसी भ्रम-कल्पनाका उपदेश गुरुवालोगोंने किया है ॥ ११४६ ॥

साखीः— जिभ्यापर आवै नहीं * श्वास आश नहिं होय ॥
[२१६] अलख लखावहिं आपु कहँ * झरी सतगुरु कहि सोय ॥ ११४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका कथन ऐसा है कि, परब्रह्म-परमेश्वर जो है, सो देहातीत है। कभी देह बन्धनोंमें वह आ नहीं सकता है। इसलिये मुख-जिभ्यापर वाणीसे कथन वर्णन करनेमें वह परमात्मा नहीं आता है; और सूक्ष्म देह भी उसमें नहीं है। श्वास वायुके आश्रय या आधारकी भी उसे कुछ जरूरत नहीं है, श्वासकी आशा नहीं है या वह श्वासमें भी आ नहीं सकता है, वह तो स्थूल, सूक्ष्म और कारणसे परे अगम-अपार है। दशों इन्द्रियाँ, चित्त चतुष्टयसे जो लखनेमें न आवे, सो अलख ब्रह्म है। अपने आपको ब्रह्म लखे-लखावे, सोई अत्मनिष्ठ सच्चे सद्गुरु कहलाते हैं। जन्म-मरणादि दुःख झाड़ करके साफ कर डालनेवालेको झरी माना है। परन्तु, विचार करिये, जो जिभ्यापर नहीं आता है, श्वासकी आशा भी जहाँपर नहीं होती है, आप ब्रह्म अलख है, तो उसे कैसे वा किसप्रकार लखावेंगे ? 'हे जीव ! तू ही ब्रह्म है !' ऐसा कहकर तो वाणी द्वारा ही लखाते हैं। "अहं ब्रह्मास्मि"-"तत्त्वमसि" आदि कहकर जीवोंको भ्रमाते हैं। वे गुरुवालोग हैं, सच्चे सद्गुरु नहीं हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके निर्णयसे तो वे विवेकादि सद्गुणोंको झाड़कर नष्ट करनेवाले, सो ऐसे बन्धनदायी गुरुवालोग हैं। जन्मृति दुःखोंमें पड़ते रहनेका ही उपदेश कल्पित वाणीकी झड़ी लगाते हैं। इससे वे झंझटी गुरुवा लोग यम कहलाते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ११४७ ॥

साखीः— शून्य मरै अजपा मरै * अनहद भी मर जाय ॥
[२१७] सूर्त मरै अरु नीरत भी * तब जीव कहाँ समाय ? ॥ ११४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! योगी लोग अजपा जाप करते-करते शून्य समाधि लगाते हैं; कोई अनहद नाद सुनते हैं। कोई सुरत-निरतको एकमें मिला करके सच्चिदानन्द ब्रह्म होनेको कहते हैं। इसी बारेमें पारखी श्रीसद्गुरु सत्यनिर्णयसे परखाकर कहते हैं, सो सुनिये ! इन योगी लोगोंकी सदाकाल शून्य स्थिति तो बनी नहीं रहती है। वृत्ति बहिर्मुखी होकर चञ्चल होते ही शून्य नष्ट होकर मिट जाती है, सोई शून्यका मरना है। अथवा शून्य तो जड़ मृत्युरूप ही है। और अजपा जाप सोहं शब्द भी वृत्ति लय होकर शून्य होनेपर मिट जाता है; शून्य स्थितिमें अजपाका भी नाश हो जाता है। और दश नाद अनहद भी मिटकर नाश हो जाता है। सदाकाल अनहद ध्वनि भी सुनाई नहीं देती है। सोई अनहदका लय होना वा मरना है; और सदा 'सूर्त'

कहिये सुरति या लक्ष्य भी एक जगह लगा नहीं रहता है; लक्ष्य विचलित होकर नष्ट हो जाता है वा मर जाता है। और 'नीरत' कहिये निवृत्तिका आनन्द, सो हृदय, नाभि, मस्तक आदि स्थानोंपर श्वासके साथ लक्ष्य स्थिर हुआ, तो आनन्द हो जाता है; सो निरति भी समयपर नाश हो जाता है। तब कहो भला! उसमें लगनेवाले जीव फिर उसके छूट जानेपर किस ठिकानेमें, कहाँपर जा करके समायगा? कहो उस समयमें स्थिति क्या होगी? सो आगेका विचार करो! अथवा देह रहे तक तो सब प्रकारकी साधनाएँ योगी लोग करते रहते हैं; परन्तु, देह छूटनेपर सब साधनाएँ बीचमें ही छूट जायेंगी। तब मृत्युके साथ-ही-साथ शून्य भी मर जायगा, अजपा जाप भी मर जायगा, अनहद भी मर जायगा, सुरति और निरति भी मर जायगी, इन सबोंका अभ्यास करनेवाले भी मर जायेंगे। जड़तत्त्वोंके कार्य भाग देह तो कारण तत्त्वोंमें जाकर समायेंगे। परन्तु, बताओ तब जीव कहाँ जाकर समायगा? जीव तो अखण्ड है, किसीका कारण और कार्य नहीं है। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा आदि तो मिथ्या कल्पना ही मात्र है। सत्य जीव मिथ्यामें जाकर तो कभी समा ही नहीं सकता है। अतएव जड़ाध्यासी होनेसे फिर गर्भवास चौरासी योनियोंमें ही जा करके समाते हैं; और फिर कर्मानुसार देहें धारण करके फल भोगते रहते हैं। इसकारणसे उन सब प्रपञ्च मार्गोंको त्याग करके पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगना चाहिये। जिससे पारख बोध प्राप्त होनेसे जीवोंका भव-बन्धन छूट जायगा ॥ ११४८ ॥

साखीः— नित पारख परकाशमें ❀ सोई निज घर जान ॥
[२१८] बिनु घर पाये आपना ❀ परै न यम पहिचान ॥ ११४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे पारखबोध पानेपर नित्य सत्य जीव नित्य ही निज स्वरूप पारख प्रकाशरूप सत्य भूमिकामें एकरस स्थिर हो जावेंगे। सोई पारख स्वरूप ही निज=अपना, घर=अचल, अटल, स्थिति होनेकी जगह है वा ठहराव होनेकी जगह है, ऐसा यथार्थ जानिये! और वही अपनी पारख स्थितिको प्राप्त किये बिना आवागमनोंके बन्धन कदापि छूट नहीं सकते हैं। तथा अपने स्वरूप बोध यथार्थ मिलनेकी जगह पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गरूपी घरमें पहुँचे बिना या जान पाये बिना यम=स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंकी खानी-वाणीके जाल भव-बन्धन यथार्थ रीतिसे मनुष्योंको जान-पहिचान नहीं पड़ती है; और मनकी कल्पना भी पहिचाननेमें नहीं आती है। बिना पारख जीव चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़े रहते हैं। अतएव अभी मनुष्य देह रहते ही पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्ग द्वारा पारख बोध प्राप्त कर लेना चाहिये ॥ ११४९ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६० ॥ [चौपाई- ११ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. और कला साबर जो सिरजा ❀ तमगुण अधिकारी हर गिरिजा ॥ ११५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! इसके अलावा और भी अनेकों कला-कल्पनाएँ गुरुवालोगोंने फैला रक्खी है। तहाँ और दूसरे प्रकारकी कलासे जो कि, 'साबर' नामकी कुविद्या सृजन करके बना रक्खी है। 'साबर' कहिये तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र साधना, श्मशान साधना, भूत, प्रेत, पिशाचकी आराधना-पूजा, टोना करना, वीर-बेताल जगाना, इत्यादिक माना है। तमोगुण के अधिकारी=विशेष तामसी महादेव-पार्वती इन्होंने ही इन सब साबर कलाओंको भी निकाला है। तमोगुणी लोग ही इस कुमार्गके अधिकारी हुए या होते हैं। जिससे सद्गुणोंको हरण करके मुक्ति मार्गसे गिर करके नीचे चौरासी योनियोंमें जाकर पड़ते हैं ॥ ११५० ॥

२. मोहन उचाटन मारन तीन्हीं ❀ रज सत तम अज हरि हर कीन्हीं ॥ ११५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सात प्रकारकी कुविद्याएँ जो निकाला है, उनके

नामः— १. जारण। २. मारण। ३. उच्चाटन। ४. मोहन। ५. वशीकरण। ६. आकर्षण। और ७. स्तम्भन; ये ही माना है। उसमें मोहन मन्त्रकी साधना रजोगुणी ब्रह्माने की। उच्चाटन मन्त्रका अभ्यास सत्त्वगुणी विष्णुने किया और मारण मन्त्रकी साधना तमोगुणी शङ्करने की। उन तीनों कुमन्त्रोंकी साधना तीनों भाइयोंने की; और जारणकी साधना कालिकाने की, वशीकरणकी साधना लक्ष्मीने की, आकर्षणकी साधना सरस्वतीने की; तथा स्तम्भनका महामायाने प्रयोग किया। इसीके महाजालका विस्तार गुरुवालोगोंने खूब किया है; और वे विस्तार कर ही रहे हैं ॥ ११५१ ॥

३. तैंतीस कोटि देवता परवाना ❀ बीज नाम सकलों परधाना ॥ ११५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने तीनों लोकोंमें रहनेवाले सब देवताएँ तैंतीस करोड़ कल्पनासे गिनती करके उसीको प्रमाण मानकर दृढ़ निश्चय किया है। तहाँ तेरह देवताएँ, ग्यारह रुद्र, नौ दुर्गा मिला करके कुल तैंतीस (३३) हुए। उसमें एक-एक को एक-एक कोटिमें मान करके तैंतीस (३३) कोटि देवता होनेका प्रमाण माना है। अथवा बारह आदित्य। दश विश्वेदेव। अष्ट वसु। छत्तीस तुषितदेव। चौंसठ अभास्वर। उनचास पवन। दो सौ बीस (२२०) महाराजिक। बारह साध्यदेव। ग्यारह रुद्र कहा है; और उनमेंसे १२ करोड़ सूर्यके भेद हैं। ११ करोड़ रुद्रके भेद हैं। ८ करोड़ वसुके भेद हैं। २ करोड़ दस्रके भेद हैं। यही सब मिला करके तैंतीस (३३) करोड़ देवता माना है; सो यह तो मिथ्या कल्पना ही किया है। देहमें पाँच तत्त्व तीन गुणकी क्रिया और पचीस प्रकृतियाँ मिलाकर तैंतीस कोटि मानी गई हैं। सकल देवताओंके नाम-के प्रथम अक्षरको बीज नाम या बीजमन्त्र मानकर प्रधानता दिया है। पहले देवताओंका नाम लेकर मन्त्र जाप करते हैं। सब देवताओंके मुख्य नामका बीज मन्त्र माना है ॥ ११५२ ॥

४. सोई नाम ले मन्त्र बनाई ❀ तैंतीस कोटि देव अरुझाई ॥ ११५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो उन्हींके नाम साथ-साथमें ले करके उतने ही मन्त्र बनाया है। ॐ। श्रीं। ररं। सौं। ऐं। ह्रीं। क्लीं। ये सात अक्षर सर्व बीज मन्त्रोंके प्रधान बने हैं। इन्हींको सात महा बीज मन्त्र भी कहते हैं। उन्हीं मन्त्रोंके जाप करनेसे कार्य सिद्धि सुख-समृद्धि-वृद्धि आदि होना बतलाकर कल्पित तैंतीस कोटि देवताओंकी उपासनादि तैंतीस कोटि मन्त्र-जाप, इत्यादि प्रपञ्चोंमें फँसाकर जीवोंको अरुझा दिये हैं और अरुझा ही रहे हैं ॥ ११५३ ॥

५. पुनि सोइ यन्त्र तैंतीस करोरी ❀ महाजाल रचिके जिव भोरी ॥ ११५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर सोई मन्त्रोंके साथमें यन्त्र भी कल्पनासे बनाया है। एक मन्त्रके साथमें एक यन्त्रके हिसाबसे तैंतीस कोटि यन्त्र भी बनाया है। ताँबा, पीतलादि अष्ट धातुके पात्रोंमें, भोजपत्रोंमें चन्दनसे लिखकर और कागजमें स्याहीसे लिखकर तथा कपड़ामें छापा लगाकर और बर्तनोंमें खोदाई करा करके, इत्यादि अनेकों विधिसे यन्त्र बना करके उसकी पूजा करते और कराते हैं। इसप्रकारसे महान जाल-जञ्जालोंका फन्दा रचकर जीवोंको हरतरहसे भुलाकर बाँध रक्खा है। बिना पारख यह लखनेमें ही नहीं आता है ॥ ११५४ ॥

६. यन्त्र अस्थूल मन्त्र सो थूला ❀ देखि रूप बहुविधि जिव भूला ॥ ११५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तहाँ यन्त्रका रूप स्थूलाकार दृश्य बना हुआ रहता है। चित्र-विचित्र बहुत प्रकारके आकार-प्रकार बनाकर रखते हैं; और मन्त्र शब्द उच्चारण जाप अदृश्य होनेसे सो सूक्ष्म होता है। स्थूल यन्त्र और सूक्ष्म मन्त्रोंको देख-सुनकर उसीके बहुविधि रूपमें मनुष्य जीव निज सत्य स्वरूपको भूलकर भ्रमिकरूप पागल हो गये हैं। नाना विषय भोगोंकी प्राप्ति आदिके लिये उसी यन्त्र-मन्त्रोंका प्रयोग किये और कराये हैं। बिना विवेक नाहक मिथ्या जालोंमें पड़कर भूल रहे हैं ॥ ११५५ ॥

७. योनी लाख चौरासी जोई * नाम नेह बाँधे सब कोई ॥ ११५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चार खानी चौरासी योनियोंमें अनेकों दुःख देख और दिखा करके उस दुःखसे बचकर सुख प्राप्तिकी आशासे सब कोई मनुष्योंने देवताओंके नाम-स्मरण, मन्त्र, जाप, पूजा-पाठ आदि करनेमें प्रेम, विश्वास लगाया है। परन्तु, उस धोखेसे जीवोंका कुछ भी दुःख नहीं छूटा। जीते तक नाममें नेह बाँधे, मन्त्र-जाप, यन्त्र, पूजा भी खूब किये। किन्तु, कर्म-कुकर्मोंकी वासनामें बद्ध होकर फिर सब कोई शरीर छोड़कर जैसे-जैसे लक्ष्य वा संस्कार दृढ़ किये थे, वैसे-वैसे अनेकों चौरासी योनियोंमें जाकर पैदा हुए; तथा दुःख भोग रहे हैं, सो दिखाई ही दे रहा है ॥ ११५६ ॥

८. जोइ जोइ नाम मन्त्र उपराजा * यन्त्र विविधि भाँति तेहि साजा ॥ ११५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो-जो देवताओंके नाम हैं, उसी-उसी नामसे वैसे मन्त्र भी उत्पन्न किये हैं। जेसेः— ॐ ब्रह्मणे नमः, रं-रामाय नमः, सों-शिवाय नमः, क्लिं-कालिकाय-नमः, चं-चामुण्डाय नमः, दं-देव्याय नमः, इत्यादि तरहसे जो-जो नामसे मन्त्र बनाकर उत्पन्न किया है, साथ ही उसी प्रकार एक-एक यन्त्र नाना भाँतिसे सजा करके उसी मन्त्रमें यन्त्र भी लगा रक्खे हैं; और विविधि प्रकारसे उसीमें लगकर जीव भटक रहे हैं॥ ११५७ ॥

९. प्रेत योनि मन्त्र बहु भाँती * सबहिं विशेष महा उतपाती ॥ ११५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक लोगोंने झूठ-मूठ ही भूत-प्रेतादि योनि ठहराकर उन्हें वश करके सिद्धि प्राप्ति करनेकी कल्पनासे बहुत भाँतिके मन्त्र बना रक्खा है। श्मशानमें रात-रातभर बैठकर मन्त्र जाप करते हैं। कोई तो मुर्दोंकी छातीपर बैठकर अमावास्याके रात्रिमें चित्त लगा करके मन्त्र जपते हैं; कोई खप्पर, खड्ग, त्रिशूल लेकर मन्त्र फूँकते हैं। कोई अभिमन्त्रित वस्तु छोड़कर झूठा तमाशा दिखलाते हैं। कोई मन्त्र पढ़-पढ़कर होम-हवन करते हैं; और कितनेक लोग तो हिंसा करके नरबलि, पशुबलि, पक्षीबलि करते जीवको मार देते हैं। ऐसे नाना कुकर्म मन्त्र जप करके ही करते हैं। सबसे विशेष उत्पात = उपद्रव मचाते हैं। अविचारी तामसी सभी मनुष्य विशेष करके यही महा उपाधिमें लगे और लगा रहे हैं। सब कोई श्रेष्ठ शक्ति शाली बननेकी इच्छासे महा उपाधिरूप भव-बन्धनोंमें ही पड़े और पड़ ही रहे हैं ॥ ११५८ ॥

१०. विद्या अनन्त रचा विस्तारा * साँच झूठ मिश्रित सो सारा ॥ ११५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराण, चौदह विद्या, सात कुविद्या, चौंसठ कला, चार किताब, बाइबिल इत्यादिका विस्तारपूर्वक अनन्तों विद्याओं-की रचना की है; सो विस्तारपूर्वक संसारमें फैला रक्खा है। उन समस्त विद्याएँ तथा सारे ग्रन्थोंमें साँच-झूठ, सार-असार दोनों ही मिले हुए हैं। सबमें सत्य-मिथ्या मिश्रित वाणी भरी पड़ी है। पारखी विवेकी सन्त ही उसको जान सकते हैं। बेपारखीको तो कुछ पहिचान ही नहीं होती है ॥११५९॥

११. बहुत झूठ साँचा कोइ कोई * दृढ़ विश्वास भरम जिव सोई ॥ ११६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन विद्याओंमें बहुत-सी वाणी तो झूठी ही लिख रक्खी है। मिथ्या महिमा रोचक-भयानक वाणी ज्यादा तौरसे भर रक्खी है। कोई-कोई एक-दो सत्य बातका भी वर्णन आता है। जैसे गणित, वैद्यकादि, सो एक-दो सत्य बातको देख-सुन करके भ्रमसे और सभी बातोंको भी सत्य ही मानकर दृढ़ विश्वास कर लेते हैं। सोई मनुष्य जीवों-का भ्रम है। एक बात सत्य होनेपर सभी बातें सत्य होवें, यह तो कोई नियम नहीं है। ठग लोग थोड़ी-सी असली वस्तुका नमूना दिखलाकर बहुत-सी नकली चीज देकर ठग लेते हैं। तैसे गुरुवालोगोंने भी कोई एक-दो बात सच्ची लिखी और बतायी है, तो और सारा झूठ ही कथनमें ले जाकर फँसाया, धोखा दिया है। अबोध नरजीव सहज ही उनके जालोंमें विश्वासी होकर फँस

जाते हैं। कोई पारखी सन्त ही इसके यथार्थ भेदको जान पाते हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरु द्वारा ही सत्यासत्यके भेदको पहले ठीक तरहसे जान लेना चाहिये ॥ ११६० ॥

साखीः— चटक मटक बाजीगरी * झूठ साँच फैलाय ॥
[२१९] अनबनि विद्या को गनै ? * राखे जीव अरुझाय ॥ ११६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! नाना प्रकारके चाट लगाकर 'चटक' किया है; चेटकी=मिथ्या भूत-प्रेतादि मानकर उन्हें साधनासे वश करनेकी कला-कल्पना किया है। मटक=शरीर मटका करके नाच-तमाशा नाटक, थियेटर आदि खेल बनाया है। बाजीगरी=और भी नाना प्रकारके झूठे बाजीगरी खेल गुरुवालोगोंने बनाया है। वाणी कल्पनासे आशा-भरोसा पकड़कर अनेकों साधना किया और कराया है। झूठको ही सत्य बता-बता करके संसारमें फैलाया है; और सत्य जीवोंको भ्रमा करके झूठ प्रपञ्चोंमें लगाया है। और जिससे जीवोंका कल्याण-हित कुछ नहीं बनता है, उसी तरफ विषय और कल्पनादिमें घसीट-घसीटकर ले गये। उनकी वाणीरूप विद्या अनेकों बनी हैं। उन विद्या=कुविद्याओंको अब कौन गणना करके पार पा सकेंगे ? वा इतनी ही विद्याएँ सब संसारमें हैं; और नहीं, ऐसा कहकर कौन बता सकेंगे ? सब तरफसे मनुष्य जीवोंको हरेक तरहसे अरुझा-अरुझा करके खानी-वाणीमें फँसा रक्खे हैं। बिना पारख कहीं किसीको भी छुटकारा नहीं मिली है ॥ ११६१ ॥

साखीः— अश्मशान सिद्धि सबै * इन्द्रजाल माया रची ॥
[२२०] ठगहारी चोरी कपट * भेद पिशाची छल रची ॥ ११६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तैसे ही कितनेक अघोरी, तामसी लोग होते हैं। वे लोग सिद्धि पानेकी आशासे अपने मल-मूत्र तथा पशुओंके मल-मूत्र भी निधड़क खा-पी लेते हैं। कोई भूत-प्रेतादि सिद्ध करनेके लिये दिन-रात श्मशान या मर्घटमें पड़े रहते हैं। मुर्दोंके कपड़े पहिनते हैं, कोई मुर्दोंके मांस भी खा लेते हैं; मुर्दोंकी हड्डीकी माला बनाकर पहन लेते हैं; ऐसे-ऐसे सब अनर्थोंके काम कर लेते हैं। परन्तु, मानी हुई अष्ट सिद्धियाँ ही झूठी हैं, फिर ऐसे कुकर्म करके किसको क्या सिद्धि मिलती है ? सब बर्बाद होते हैं। कोईने माया प्रपञ्च फैलाकर इन्द्रजाल=बाजीगरी, कपटका खेल, तमाशा रचना किया है। कोई ठगाईका काम सीखकर ठगपना कर रहे हैं। धोखा देकर मनुष्योंके तन, मन, धन हरण कर लेते हैं। कोई चोरी करना सीखकर धन-सम्पत्ति तथा बुद्धि-विवेकादिको भी चुरा-चुरा करके छिपाकर नष्ट कर रहे हैं। कोई छल-कपट करनेमें प्रवीण बनते हैं। कोई भेद-विभेद डालकर चुगली करके फूट डाल देते हैं। बैर-विरोध करा देते हैं। कोई पिशाची कर्म=जिन्दे प्राणीको जला देना, गाड़ देना, अङ्ग काट देना, खाल उधेड़कर खटाई-निमक चुपड़ देना। खौलता तेलकी कढ़ाईमें डाल देना, इत्यादि भयङ्कर रोमाञ्चकारी कुकृत्य करते हैं। छल, बल, कपट करके पाखण्डी लोगोंने यही सब महा जालकी रचना करके फैला रक्खा है। यथार्थ भेद न पाकर सब उसी छल-प्रपञ्चमें पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं ॥ ११६२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६१ ॥ [चौपाई-११ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. डाका घात कुटिलता कीन्हा * बैर परस्पर योनी दीन्हा ॥ ११६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मूर्खताके कारणसे पामर-विषयासक्त लोग अपने-अपने स्वार्थ पूर्ण करनेके लिये कोई डाकू होकर डाका डालते हैं। कोई घातक हिंसक होकर जीवघात करते हैं। कोई कुटिल बनकर कुटिलता-कपटका व्यवहार करते हैं। परस्पर एक-दूसरेसे बैर-विरोध शत्रुता करते हैं। यही अभ्याससे फिर मर करके चार खानीकी अनेक योनियोंमें जाकर भी वे बैरी-विरोधी बनते हैं। परस्पर पशु आदिमें भी घात-प्रतिघात करते हुए देखे ही जाते हैं,

जीव बदला लेते-देते हैं। अथवा पाखण्डी गुरुवालोगोंने अबोध मनुष्योंके यहाँ जा करके दिन दहाड़े डाका डाला है। जीवोंके सद्गुण, विवेक, ज्ञान धन को लूटकर ले गये हैं। उन्हें मुक्तिपदसे गिराकर घात किये हैं, दाव देखकर कुटिलपना = कपट किये हैं। षट् दर्शनोंमें परस्पर बैर लगा है। नाना योनिरूप उन्होंके सिद्धान्त भी भिन्न-भिन्न ही बने हैं। अपने-अपने मतमें ले जाकर जीवोंको फँसा दिया है वा फँसा देते हैं। चौरासी योनियोंमें जीवोंको डाल दिया है ॥ ११६३ ॥

२. योनी मानुष उत्तम होई ❀ तेहिमें बहुत प्रपञ्च समोई ॥ ११६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैसे मनुष्य योनिमें आकर नरजन्म अर्थात् पुरुषका घट पाना तो सर्वोत्तम है। समझ-बूझ करके त्याग-वैराग्य करनेकी जगह है। कर्मभूमिका होनेसे मनुष्य बन्धन और मुक्ति पानेमें समर्थ हैं। सब प्राणियोंसे बुद्धिकी विशेषता मनुष्योंमें ही रहती है। निज पारख स्वरूपमें स्थिर होकर उत्तम या श्रेष्ठ भी हो सकते हैं। परन्तु, पारख बिना उसी मनुष्य खानीमें ही बहुत प्रकारके प्रपञ्च समाये हुए हैं। पञ्च विषयोंकी आसक्तिकी विशेषता, पञ्च कोशोंकी वाणी कल्पनाके जालकी दृढ़ता, जात, पाँत, कुल, वर्ण, आश्रम, मत, पन्थ, धर्म-अधर्म, पाँच मार्गोंकी साधना, षट् दर्शन, छियान्नवे पाखण्ड, स्वार्थ-प्रपञ्च इत्यादिक बहुत ही उपाधियाँ लगी हुई हैं। जिससे सब कोई उसीमें भूले और भुला करके चोरासी योनियोंके चक्रमें ही भटकते रहते हैं, बिना पारख ॥ ११६४ ॥

३. एकहि एक करै वशि अपना ❀ राज काजके कलह कल्पना ॥ ११६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक राजा बन करके फौजी सत्तासे अनेकों प्रजा जनोंको दबाकर अपने वशमें किये रहते हैं। राज कार्य सम्हालनेके लिये राज्य बढ़ानेके अनेकों कलह, कल्पना झगड़ा, राजा लोगोंको लगा ही रहता है। उनमें भी एक जबर्दस्त, बलिष्ठ, पराक्रमी राजा अनेकों छोटे-मोटे राजाओंको जीतकर अपने वश या अधीन कर लेते हैं। राज-काजमें तब भी भीतर-ही-भीतर कलह-कल्पना लगी ही रहती है। अथवा तैसे ही और एक-एक चतुराई कला-कौशल, विद्या बताकर एक-को-एक अपने वशमें कर लेते हैं। अपने-अपने मत-पन्थोंके अधीन शिष्योंको काबू किये रहते हैं। कोई वेदान्ती एक ही अद्वैत ब्रह्म बतलाकर सबको अपने वशमें करना चाहते हैं। उन गुरुवालोगोंके मतोंकी राज्य-साधनाके काजमें नाना कलह-कल्पना लगी ही रहती है ॥ ११६५ ॥

४. हाकिम हुकुम बड़ी प्रभुताई ❀ अनबनि योनि भरम दृढ़ाई ॥ ११६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें राजकर्मचारी बड़े हाकिम, महाराजा, राजा, प्रधान मन्त्री, गृहमन्त्री, प्रधान सेनापति, जेनरल, कर्नल, कप्तान इत्यादि बनकर राज्य-शासन कर रहे हैं, उन्होंकी हुकूमत चलती है; उन्होंकी आज्ञा बड़ी मानी जाती है। उन्होंकी बड़ी प्रभुताई, श्रेष्ठताई हो रही है। उनकी आज्ञा सबोंको मजबूरीसे पालन करना पड़ता है। उनमें छोटे-बड़े अफसरोंकी अनेक ओहदे, पद, भिन्न-भिन्न दृढ़ा रक्खे हैं। अथवा तैसे ही हाकिम बने हुए गुरुवालोग बड़े महाराज, स्वामीजी कहलाते हैं। उनकी प्रभुताई-महिमा उनके चेलोंने खूब बढ़ा रक्खी है। वे भी ईश्वरको सबसे बड़ा बतलाकर उसका हुकुम माना हुआ वेदादिको पढ़कर नाना बात बतलाते हैं। "सर्वशक्तिमान्, प्रेरक, जगत् कर्त्ता, सब कुछ वही ईश्वर है" ऐसा माहात्म्य बड़ी प्रभुताई कथन करके सुनाते हैं। मत-पन्थोंके अनेकों भाग-विभाग तथा योनियाँ बनी हैं। सब जगह भ्रम-कल्पनाको ही दृढ़ाया है। उससे किसीका कल्याण बननेवाला नहीं है। पारख बिना भ्रमको दृढ़ करके जीव अनेकों पशु आदि योनियोंमें ही भ्रमते रहते हैं ॥ ११६६ ॥

५. बनिज वैपार कृषी बहु कर्मा ❀ टहलू टहल अनेकनि धर्मा ॥ ११६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गृहस्थ लोगोंमें बनियाँ लोग वाणिज्य, धन्धा,

व्यापार, खरीद-बिक्री करते हैं। कोई कृषी=खेती-बाड़ीका काम बहुत मिहनतका कर्म करके पेट पालते हैं। कोई टहलुवा=नौकरी-चाकरी, टहल, सेवा, दासपना आदि अनेकों कर्म-धर्म करके देह गुजारा चलाते हैं; विषयासक्त बद्ध होते रहते हैं। अथवा तैसे ही गुरुवालोग बनियाँवत् गुरु बनकर नाना उपदेश देने-लेनेका व्यापार करते हैं। फिर किसान बनकर शिक्षा-दीक्षाका बीज बोकर चेलोंको मूड़कर अपनी फसल तैय्यार करते हैं; ऐसे बहुत पाखण्डोंका कर्म करते हैं। कोई टहलू बनकर जड़मूर्तिकी टहल और गुरुवालोगोंकी टहल, मठ-मन्दिरोंकी टहल, ऐसे अनेकों कार्यको धर्म मानकर करते और कराते हैं ॥ ११६७ ॥

६. इर्षा लाज भाव मर्यादा ❀ रार परस्पर लाइ विषादा ॥ ११६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अपनेसे बड़ा श्रेष्ठको देखकर ईर्षा या डाह करते हैं। बड़े-बूढ़ोंसे मुँह छिपाना, ज्यादा न बोलना, दुर्गुण प्रगट न करना, ऐसी लज्जा-शरम रखना चाहिये, ऐसा कहते हैं। सद्भावना, प्रेम, भाव, गुरुमें ईश्वर भाव रखना चाहिये, ऐसा बताया है; और गुरु-शिष्यकी, पति-पत्नीकी, पिता-पुत्रकी, अन्य नाता-गोताओंकी मर्यादा तथा हद्द बाँधा है। यह सबमें विपरीत होनेपर परस्पर एक-दूसरेमें रार=झगड़ा वा तकरार, बैर, शत्रुता मानकर हानि कर बैठते हैं, जिससे विषाद=शोक, चिन्तादि दुःख उन्हें लग जाता है ॥ ११६८ ॥

७. कारण सब कारज प्रगटाई ❀ जालहि जाल रखा अरुझाई ॥ ११६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कारण तत्त्वसे अन्य सब कार्य बनकर प्रगट होते हैं। कारण-कार्य एक-में-एक गुथे-मिले रहते हैं। तैसे ही अज्ञान जड़ाध्यासके कारणरूप बीजसे ही सब कार्यरूप देहें चारों खानीमें बनकर उत्पन्न होते हैं। फिर दुःखोंका कारण विषय जाल एकमें अनेक जाल खड़ा करके अरुझा रक्खे हैं, और अरुझे पड़े हैं। अथवा ब्रह्मको सारा विश्व चराचरका कारण बतलाकर जगत्के सब कार्य उसीसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा कहते हैं। फिर उसी ब्रह्म-परमात्माको प्राप्त करनेके लिये गुरुवाओंने सब कार्य पाँच मार्गोंकी साधना, नाना विद्या, कला-कौशल प्रगट किया है। जगत् खानी-जालके ऊपर और वाणी-जाल नाना जञ्जाल फैलाकर उसीमें सबोंको अरुझा रक्खा है वा फँसा रक्खा है। एक-एक मार्गमें अनेक-अनेक जाल लगा रक्खा है। ॥ ११६९ ॥

८. वधिक बियाध सबै निर्माई ❀ परखहु काल कला बहुताई ॥ ११७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे हत्यारे कसाई बध करनेके लिये सब हथियार बना रखते हैं। उसीसे जीव हत्या करते हैं। तैसे ही वधिकरूप गुरुवालोगोंने बियाध=रोग, शोग, कल्पना, उपाधि, नाना कर्मोंकी साधना, ये सब अस्त्र-शस्त्र पहलेसे ही निर्माण किया है या बना रक्खा है। उसीसे जीवोंको भ्रमा करके घात करते हैं। अतएव हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें रहकर उसे यथार्थ परीक्षा करके परखो ! काल=गुरुवाओंकी कला-कल्पना वाणीका पसारा बहुत ही किया हुआ है। तथा काल=स्त्रियोंके विषय जालकी कला भी बहुतायतसे वा अत्यन्त ज्यादा फैली हुई है, सो दोनों ही फन्दा है। उसे परखकर जानो ! समझ-बूझ करके उससे बचो ! ॥ ११७० ॥

९. विषय विकारमई संसारा ❀ आ हि रूप जगत विस्तारा ॥ ११७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पञ्च विषयोंके विकारसे भरा हुआ यह सारा संसार महान् विकाररूप ही हो रहा है। अपने स्वरूपको भूलकर जीव आप ही जड़ाध्यासी बनकर जगत्के चौरासी योनियोंमें नाना शरीरके नानारूप विस्तार करके जन्म-मरणादिमें पड़े हुए हैं। अथवा आप ही सच्चिदानन्द एक ब्रह्मने इच्छामात्रसे चराचररूप जगत्की विस्तारसे सृष्टि की। तहाँ विषय विकारमय सारे संसारमें भी वह ब्रह्म परिपूर्णरूपसे व्यापक है; स्वयं ब्रह्म सर्वाधिष्ठान है। ऐसी कल्पनासे नाना सिद्धान्त जगत्में विस्तार कर रक्खा है ॥ ११७१ ॥

१०. तामसरूप विकार कराला * धोखा जीव न देइ दयाला ॥ ११७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तामसरूप = अन्धकार, अज्ञान, तमोगुण कल्पनाका स्वरूप ही माना हुआ ब्रह्म-परमात्मा है। सोई सब विकार खराबियोंसे भरा हुआ, कराला = भयङ्कर दुःखोंका कारण है। परन्तु, उसे सच्चिदानन्द, सर्वश्रेष्ठ अच्छा परमानन्द आदि महिमा बढ़ा-बढ़ा करके गुरुवालोगोंने वर्णन किया है। दयाल, उपदेशक, गुरु बनकर उन्होंने मनुष्य जीवोंको यह बड़ा भारी धोखा ही दिया है। विषको अमृत बतलाकर धोखेमें डाल दिया है; और दयालु हितकारी श्रीसद्गुरु तो जीवोंको कभी कोई धोखा नहीं देते हैं; और धोखा देनेवाला कभी दयालु हो नहीं सकता है। धोखा देनेवाला ही 'काल' कहलाता है ॥ ११७२ ॥

११. परम दयालके अस नहिं करनी * नष्टरूप परमपद बरनी ॥ ११७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! परमदयालु पारखी श्रीसद्गुरु तो सदा सत्य बोध ही जीवोंको देते हैं। छल, कपट, प्रपञ्च, धोखा देकर फँसाना ऐसे कुकर्मकी करनी तो श्रीसद्गुरुकी कभी हो नहीं सकती है; और वञ्चक गुरुवालोग तो लोगोंमें परम दयालु नामसे गुरु बने या बनते हैं। जो न करना चाहिये, ऐसी खोटी करनी करते हैं। मिथ्या कल्पनाको सत्य बताकर भुलाते हैं। जिसका कोई रूप ही नहीं है, सोई नष्टरूपको निरञ्जन, निराकार, निर्गुण परमात्मा ठहरा करके उसमें घुल-मिल जानेसे परमपद, मुक्तिपद, प्राप्ति होनेका वर्णन किया है। अब विचार करिये ! नष्टरूपको परमपद बताना कितना बड़ा भारी धोखा हुआ ? अतएव गुरुवालोग महान काल ही बने हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्यबोध लेकर इन्होंके सङ्गसे बचे रहना चाहिये ॥ ११७३ ॥

साखीः— महा अघट करनी यम * घट घट रहा समाय ॥

[२२१] जीव न चीन्हैं ताहिको * रहहिं सदा लौलाय ॥ ११७४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कालरूप कसाईकी करनी नीच, तुच्छ होती है। कसाई सब पशुओंको मार-मारकर नाश करता है। तैसे ही यमराज कालरूप बने हुए गुरुवालोगोंकी नीच करनी बन्धनदायी कार्य कभी घटता ही नहीं है; और ज्यादा-ही-ज्यादा कल्पना, पाखण्ड बढ़ता ही जाता है। गुरुवालोग कहते हैं—"ब्रह्म एक ही महान अद्वैत है। अघट = देहातीत, एकरस है। सो घट, मठ, पट, तट, सर्वत्र ओत-प्रोतरूपसे समाया हुआ है; सर्वव्यापक परमात्मा है। उसे पहिचाननेके लिये वेद, शास्त्रादि पढ़ना तथा साधना, अभ्यास करना चाहिये" ऐसा बतलाये हैं। सो यही बात मनुष्योंके घट-घट सबके अन्तःकरणमें समा करके दृढ़ हुई या हो रही है। बेपारखी मनुष्य जीव सार-असारको तथा गुरुवाओंको ठीक तरहसे चीन्हते-पहचानते तो नहीं हैं। उनके फँसानेके गुप्त भेदको कुछ जानते ही नहीं हैं। इसीसे बिना पारख कालरूप स्त्रियाँ तथा गुरुवालोगोंसे ही लौ लगा करके प्रीति दृढ़कर उनके सङ्ग-साथमें ही हमेशा रहते हैं, और रह रहे हैं। अतएव भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर सदा-सर्वदा चार खानी गर्भवास आवागमनमें ही पड़े रहते हैं। सो निजस्वरूपकी स्थिति जब तक नहीं होती है, तब तक चौरासी योनियोंमें ही भ्रमते रहेंगे, बिनापारख ॥ ११७४ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ३२६ ॥ ❀ ॥

साखीः— पैठा है घट भीतरे * बैठा है साचेत ॥

[२२२] जब जैसी गति चाहै * तब तैसी मति देत ॥ ११७५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! घट = शरीरके, भीतरे = अन्तःकरण वा हृदय स्थानमें चैतन्य जीव कर्म भोगनेके लिये आकर बैठा है। पैठा है = सो उसके हृदयमें पूर्वका जड़ाध्यास घुसा ही पड़ा है। जब = जिस समयमें जीव जैसी-जैसी गति = चाल, सङ्ग आदिकी

चाहना करते हैं। तब=तिस समयमें तैसी-तैसी ही इच्छा, मति-बुद्धिकी प्रेरणा कर देते हैं। फिर वैसे-वैसे ही सुख-दुःखादि फल भोगते हैं; और नवीन संस्कार दृढ़ करके बिना पारख भव-बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं। अथवा मनुष्योंके घटरूप अन्तःकरणमें भीतर गुरुवालोगोंकी वाणी कल्पना, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिकी मानन्दी, नाना उपदेशका शब्द दृढ़ होकर घुसा पड़ा है। सोई बात मनमें सावधानीसे साचेत=हुसियार होकर बैठी है। बार-बार मनन वा याद होती रहती है। मिथ्या वाणीकी ही परिपुष्टि हो गई है। अब जब-जब जैसी-जैसी गति-मुक्ति, सुख-स्वर्गादि प्राप्तिकी चाहना करके उन्होंके पासमें जाते हैं, तब-तब तैसी-तैसी ही वाणी उपदेश कर्म श्रुति, फल श्रुति, सुना-सुनाकर कल्पना दृढ़ा करके गुरुवालोग मनुष्योंकी मति-बुद्धिको फेर देते हैं। धोखा देकर भुला देते हैं; और इच्छाके अनुसार कर्म होकर संस्कार टिक जाता है। जब जैसी गतिकी चाहना होती है, तब तैसी बुद्धिमें भी भास कर देता है। अनेक प्रकारकी मानन्दी दृढ़ कर रक्खा है। वैसी ही बुद्धि भी हो जाती है। इसलिये ही कुसङ्गियोंके सङ्ग छोड़ करके पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करना चाहिये। बिना विचार पारख न होनेसे जीव बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं ॥ ११७५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६२ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. भानु होय कला बहु कीन्हा * आपुहि आप कलामय चीन्हा ॥ ११७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ज्ञानस्वरूप चैतन्य नरजीवने भ्रमिक होकर बहुत ही कल्पनाको बढ़ाया है। तो यहाँपर भानु=सूर्यके समान तीव्र प्रकाशरूप कोई एक ब्रह्मको माना है। फिर अपने ही सर्व प्रकाशी ब्रह्म हो करके ब्रह्मज्ञानकी कला-कल्पनाका बहुत विस्तार किया है। स्वयं नरजीवने ही यह सब मानन्दी की है। परन्तु, अपने आप द्रष्टा स्वरूपको न्यारा न पहिचानकर अपने-आप ब्रह्मको कलामय सर्वाधिष्ठान निश्चय किया है। कल्पनाके रूप ही;तो जीव आप ही कैसे होंगे? जड़-चैतन्य, ब्रह्म-जगत् एक कैसे बनेगा? एक होनेका लक्षण तो कहीं भी नहीं दिखता है। पारखबोध बिना यह गुरुवालोगोंने कुछ भी नहीं चीन्हा वा नहीं समझा। अतः स्वयं ब्रह्म बनकर धोखेमें पड़े हैं ॥ ११७६ ॥

२. सर्व कला सो आपु विराजै * परख विलास लहै तम भाजै ॥ ११७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जीवके सामिल होनेसे ही सब कला-कल्पनाएँ प्रकाशित होती हैं। सो निजस्वरूपको तो नहीं जाना; और ही एक परमात्मा अपने ऊपर मानकर उसको सर्व कलाधारी, सर्वत्र विराजमान व्यापक मानकर सोई मानन्दी लेकर जीव धोखेसे भ्रममें बैठे हैं। यही महा अज्ञानतारूप गाफिली है। जिज्ञासु मनुष्य जब पारख विलासी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें आकर पारखका बोध विवेकका विलास निर्णय प्राप्त करेंगे, तभी यह अन्धकार, तमरूप ब्रह्मका भ्रम मिट-मिटाकर भाग जायगा, और सब कल्पना भी छूट जायगी ॥ ११७७ ॥

३. तामस नीच लपटि जिव माहीं * नित्य जीवन धन हरि हरि खाहीं ॥ ११७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! नीच मतिवाले गुरुवालोगोंने तामस=ब्रह्मपदका अहङ्कार जीवोंमें लपटा दिया है, सोई तो जन्म-मरणका बीज है। उसीमें लिप्त होकर नरजीव भी अहङ्कारी, तामसी, नीच बने हैं। ठग लोग नित्य ही धन हरण करके खाते हैं। गुरुवालोग नित्यप्रति जीवोंके जीवन धन, ज्ञान गुण तथा सद्गुण— सत्य, विचार, शील, दयादि अपहरण कर-करके खा जाते हैं, यानी मुक्तिपदको विनाश कर देते हैं; दुःखी दरिद्र बना देते हैं ॥ ११७८ ॥

४. तामस विवश अन्ध होय डोलै * जीव दुस्सह दुःख काल कलोलै ॥ ११७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अज्ञानी मनुष्य विवेकहीन अन्धे होकर गुरुवा-लोगोंके अधीन, विवश, लाचार होकर तामस=कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नाना कर्मोंमें भटक-भटककर डोल रहे हैं। इधर साधक जीव तो अनेक साधनाएँ करनेमें दुस्सह या असह्य दुःख

क्लेश भोग रहे हैं। उधर काल=गुरुवालोग किलोल=क्रीड़ा, मौज, ऐश-आराम कर रहे हैं। कालके गाल और जालोंमें पड़े हुए जीव सब तरफ दुःख ही भोगते हैं ॥ ११७९ ॥

५. नाशक एक जीव पुनि एका * परवश आदि कालके भेषा ॥ ११८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नाशक=गुरुवालोगोंने 'एक ब्रह्म सत्य है' ऐसा कहकर जीवोंको भुलाया है; और एक घटमें तो जीव एक ही है, पुनः एक ब्रह्म होनेकी कल्पना किया है; तहाँ गुरु-शिष्य दो दिखते हैं, तो भी सबमें एक ही ब्रह्म ठहराते हैं। कालके भेष— संन्यासी, उदासी, वैरागी आदि षट् दर्शनोंके भेष प्रपञ्चोंमें पड़कर जीव परवश जड़ाध्यासी होकर शुरूसे बद्ध हो गये हैं। तो आदि=जगत्में जीव आवागमनोंमें घूम रहे हैं, तो भी एक ब्रह्म मान-मानकर महा भूलमें गोता लगा रहे हैं ॥ ११८० ॥

६. चीन्हहु ताहिं गहहु प्रभु चरणा * सो प्रकाश पारख तम हरणा ॥ ११८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— इसलिये हे सन्तो ! हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग मुक्ति चाहते हो, तो सर्वसे श्रेष्ठ पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुके चरणोंकी शरण-ग्रहण करो। उनकी सत् शिक्षाके मुताबिक अपना रहनी-आचरण सुधार करो ! उन काल=कपटी गुरुवालोग और नारियोंके जालोंको अच्छी तरहसे पहिचान करो ! और उनके सङ्गको परित्याग करो ! सो श्रीसद्गुरुके पारख बोधका प्रकाश उद्वय होनेपर समस्त अन्धकार, तम-अज्ञानरूप रात्रि हरण या विनाश हो जायगा। अध्यास छूटनेपर मुक्ति-स्थिति भी प्राप्त हो जायगी, सो जानो ! ॥ ११८१ ॥

७. भूलहु मति अब यमके फेरे * परखहु दुसह दुःख तेहिके घेरे ॥ ११८२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे हितेच्छुक मनुष्यो ! अब तो भी चेत करो ! सावधान हो जाओ ! यम=षट् दर्शनोंके गुरुवालोग तथा स्त्रियोंके फेरा=चक्र जालोंमें मत् पड़ो ! गुरु पारखको मत् भूला ! कभी भी भूल-चूककर उन्होंके फन्दा, घेरामें नहीं जाओ ! सार-असार, बन्धन-मुक्ति, जड़-चैतन्यका यथार्थ पारख करो ! विवेकदृष्टि उघाड़कर देखो ! उन्होंके घेरा यम जाल खानी-वाणीमें सब तरफ दुस्सह दुःख, पीड़ा, त्रयतापकी ज्वाला ही धधक रही है। वहाँपर रञ्चक मात्र भी स्थिति नहीं है, सो जानो ॥ ११८२ ॥

८. यतन अनेक बझावन तोही * दहुँ दिश फाँस परो है वोही ॥ ११८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तुम्हें बझाने, पकड़-पकड़कर फँसाने, बाँधनेके लिये अनेकों प्रकारके यत्न-प्रयत्न, उपाय, दाव-घात कर रहे हैं। दशों दिशाओंमें स्त्रीका विषय जाल बिछाया हुआ है। तैसे ही उन गुरुवालोगोंकी वाणी कल्पनाका जाल भी संसारकी दशों दिशाओंमें और चार वेद, षट् शास्त्रोंमें लिखा पड़ा है। सो दशों प्रकारके फाँस तुम्हें जकड़नेके लिये ही फैला रक्खे हैं। ऐसा जानकर तुमलोग अभी ही सम्हल जाओ ! ॥ ११८३ ॥

९. परै न लख बिनु पारख प्रीती * बिनु पारख को यमको जीती ?॥ ११८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सत्यन्यायी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करनेमें, सारशब्द निर्णयका उपदेश मनन करके पारख करनेमें सच्ची प्रेम-प्रीति जाग्रत् हुए बिना यह खानी-वाणीका जालरूप बन्धन लख ही नहीं पड़ता है; कसर जाननेमें वा देखनेमें सबको नहीं आता है। अपरोक्ष पारख बोध प्राप्त हुए बिना कोई भी यम=मन, जमा हुआ अध्यास तथा नारी और गुरुवाओंको जीत करके पार नहीं पा सकते हैं। बेपारखी लोग यमको कौन जीत सकेंगे ? कोई नहीं जीत सकेंगे। पारखी सन्त ही यमको जीत करके समर विजयी, मानस विजयी, धीर, वीर होंगे; कायावीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारखी सन्त पारख स्वरूप होते हैं ॥ ११८४ ॥

१०. जति सति तपसी सिद्ध भुलाई * गाँठि न खुलहिं रहहिं अकुलाई ॥ ११८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें पहिले जति=शुकदेव, दत्तात्रेय, हनुमान्

आदि स्त्री विषय त्यागी यति हुए हैं। परन्तु, वे वाणी कल्पना मानन्दीके ग्राही हुए रहे। सति= सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, रन्तिदेव, मोरध्वजादि भक्त हुए हैं; वे कल्पित ईश्वरादि परपुरुषके स्नेही होकर निजस्वरूपकी सत्यतासे वे भी डिगे, भ्रष्ट हुए। तपसी=विश्वामित्र, पराशर, दुर्वासा, यमदग्नि, गौतम आदिने खूब तपस्या की। परन्तु, विषय भोगी होकर पीछे उन्होंने तप गवाँ बैठे, तप भ्रष्ट हुए। सिद्ध=महादेव, नव नाथ और चौरासी (८४) सिद्ध माने गये हैं। वे सब भी पारख बोधके बिना खानी-वाणीमें पड़कर निजस्वरूपको भूल गये। वे सब माया-जालमें ललचाकर भुला गये हैं। मन-मानन्दी कल्पना, विषयोंकी गाँठीरूप जड़ाध्यास तो ढीला होकर कुछ नहीं खुलता, नहीं छूटता है; उसीमें लिपट-झिपटकर उलट-पलटकर अकुला-अकुलाकर व्याकुल होते रहते हैं। अध्यासवश बारम्बार आवागमनोंके दुःख सहे और सहते रहते हैं ॥ ११८५ ॥

११. ठाढ़ेश्वरी दिगम्बर मौनी ऊर्धबाँही * छाँदे बाँधे यमपुर जाहीं ॥ ११८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ठाढ़ेश्वरी=दिन-रात वर्षोंतक खड़े-खड़े ही रहते हैं; वे खड़े-खड़े ही खाते-पीते, मल-मूत्रादि कर्म करते हैं। रस्सी-पटरीके आधारमें दोनों हाथोंको टिकाकर आड़ लेकर समय निकालते हैं। पैरोंकी पिण्डलियोंमें रक्त जमा होकर बड़े मोटे-मोटे हो करके कभी फूटकर रक्त भी निकल पड़ता है। तो भी हठसे वे कष्ट सहते जाते हैं। दिगम्बर= सब कपड़ा निकाल कर नङ्ग-धड़ङ्ग रहते हैं। दशों दिशाओंको ही कल्पनासे वस्त्रके जगहमें समझते हैं। मौनी=बोलना बन्द करके मुखसे एक अक्षर भी उच्चारण नहीं करते हैं। इशारेसे और लिखकर काम चलाते हैं। कोई बारह वर्ष वा उससे भी ज्यादा वर्ष तक भी मौनी बने रहते हैं। ऊर्धबाही=हाथको ऊपर लम्बा, उठाकर खड़ा ही किये रहते हैं। इसे सूर्यको हाथ चढ़ानेका तपस्या कहते हैं। कोई एक हाथ, कोई-कोई तो दोनों हाथोंको भी ऊपर चढ़ा करके खड़ा किये रहते हैं। कोई दोनों पैरोंको वृक्षकी डालीमें रस्सीसे बाँधकर नीचे धुआँ कराके लटकते रहते हैं। इसे धूम्रपान करना कहते हैं; और कोई पत्र, पुष्प, कन्द, मूल, फलाहार, जलाहारमें रहते हैं। इसप्रकार यह सब तप-साधना कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्ग सिद्धि आदि प्राप्तिके लिये करते और कराते हैं। छाँदे=उसीके नाना छन्द, राग, चाहना, आशा, तृष्णा, इत्यादिमें लगकर जड़ाध्यासी-बद्ध होकर यमपुर= गुरुवालोग और स्त्रियोंके घेराके शहरमें प्रवेश करके आयु बिता देते हैं। फिर शरीर छूटनेपर वासना-से खूब बँधे हुए यमपुररूप गर्भवासके कैदमें चले गये और ऐसे सब वहीं जा रहे हैं ॥ ११८६ ॥

१२. हित बानी नहिं सुनहिं अयाना * धोखे माँह रहें बौराना ॥ ११८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारी और मतवादी लोग ऐसे अज्ञानी हठी पक्षपाती मूर्ख हो रहे हैं कि, हितकारी सारशब्द निर्णय गुरुमुख वाणीको तो कान लगाकर वे ध्यानसे भी नहीं सुनते हैं, जड़-चैतन्य निर्णयको सुनकर तो वे आश्चर्य मानते हैं। कुछ-का-कुछ ही समझते हैं। पारखी सन्तोंका सत्य उपदेश सुनकर सार ग्रहणकर अपना हित करनेमें तो वे लगते ही नहीं हैं। कहीं जगत्कर्त्ता, सुख-दुःखोंका दाता, ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, देवतादि मानकर उन्हें रिझाकर सुख पानेकी, मनोकामना पूर्ण करनेकी आशा वा भरोसासे धोखेमें ही पड़कर पागल बनकर नशेमें चूर हो बौरा रहे हैं। मूढ़ पक्षपाती षट् पशु बनकर दुःखोंका भार लाद रहे हैं। बिना पारख व्यर्थ ही नरजन्मको बर्बाद कर चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं। सो अभी सचेत होकर जन्म सफल करना चाहिये ॥ ११८७ ॥

साखीः— महिमा केरी घमण्डमें * रहहिं जीव सब भूल ॥
[२२३] यतन करहिं अरुझहिं सदा * दृढ़ गाँठी नहिं खूल ॥ ११८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! कल्पित ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिकी महिमा, ऋद्धि-सिद्धि, मन्त्र-सामर्थ्यकी महिमा, देश, तीर्थ, भेष, पाखण्डोंकी महिमा, संसार विषय, राज-

काजकी बड़ाई, अष्टमद, इत्यादिकी प्रशंसा करके वा महिमा सुनकर उसीके घमण्ड=गर्व, गुमान, अभिमानमें पड़कर जीव सब निजस्वरूपको भूल रहे हैं। घमण्डमें उन्मत्त रहनेसे जीव सब बुद्धि-विचार, न्याय तथा हितको भूल गये हैं और भूल ही रहे हैं। नाना साधनाओंका यत्न, उपाय मानन्दीको परिपुष्ट करके टिकाये रखनेके लिये करते हैं। परन्तु, सदा अरुझते ही रहते हैं। कल्पना और विषयादिको दृढ़ करके मनमें जो अध्यासकी गाँठी बाँध रक्खे हैं; सो किसी प्रकार भी नहीं खुलती है। बल्कि और-और गाँठी पड़कर दृढ़ होती जाती है। पारख न होनेसे वह गाँठी किसीकी नहीं खुली और खुलती भी नहीं है ॥ ११८८ ॥

साखीः— पाँच तत्त्व गुण तीनकी ❀ आय परी है गाँठ ॥
[२२४] याहीमें भूला फिरै ❀ महापुरुषकी झाँट ॥ ११८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वके जड़ाध्यासमें बद्ध होकर जीव सब पाँच तत्त्व तीन गुणोंकी मोटरीरूप शरीर धारण करके चारखानीमें आकर कैदमें पड़े हैं। अध्यास छोड़नेके बदले और भी गाँठी पाड़ते जाते हैं। अथवा देहरूप यह गाँठमें पाँच तत्त्व, तीनगुण ये आठ भाग आ करके मिले पड़े हैं। देहको ही अपना स्वरूप मानकर कितनेक विषयी विषयभोगोंमें भूले फिर रहे हैं। नर-नारी सब लोग देहासक्तिमें पड़े हैं। और राम-कृष्णादिको महापुरुष मानकर उनकी विषयादि लीला गा-गाकर झाँट=झटकारी हुई वाणीसे महिमा वर्णन कर-करके महान विषयी हो रहे हैं। अथवा कोई जटाधारी, दिगम्बरी, बाघम्बरी-भस्मलेपी, कण्ठी, माला, तिलक, रुद्राक्षधारी ऐसे-ऐसे षट् दर्शनोंमें छियान्नवे पाखण्डोंका नाना भेष बना करके अनेकों प्रकारकी मानन्दी करके बड़े महात्मा कहलाये, इसीमें भूले-भटकते फिर रहे हैं। और ब्रह्मादि, सनकादि, व्यास, वशिष्ठ, नारद, शुकदेव, मनु, गौतमादिकोंको महापुरुष मान-मानकर उन्हींके वाणी प्रमाणसे झाँट-फटकार करके उसीका उपदेश देकर प्रचार करके धोखेमें पड़े हुए भूले फिरे हैं। वे पारखबोध बिना महापुरुष तो क्या होंगे ? तुच्छ, बद्ध, भ्रमिक हो आवागमनोंमें ही पड़े, भवचक्रमें घूम रहे हैं ॥ ११८९ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ३८ ॥ ❀ ॥

साखीः— चन्दन सर्प लपेटिया ❀ चन्दन काह कराय ॥
[२२५] रोम रोम विष भीनिया ❀ अमृत कहाँ समाय ? ॥ ११९० ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! चन्दनरूप चैतन्य जीवको सर्परूप पञ्च अभिमानने लपेट लिया है। तो जीव अभिमानी होकर शक्तिहीन हुआ, क्या करे ? उस अहङ्कारके विषका असर रोम-रोममें भींज गया है। अब अमृत=पारखमें जीव कहाँ समायेगा ? इसीसे उलटकर गर्भवासमें ही समायेगा। अथवा चन्दन=जीवको, सर्प=काया-माया-ने लपेट रक्खा है। जीव परवश हुआ, तब क्या करेगा ? रोम-रोममें तो सुखाध्यास आसक्तिरूप विष भींज रहा है। अमृत=पारखमें न आकर जीव गर्भमें जाकर समाया और समा रहा है। अथवा चन्दन=पुरुषको, सर्प=स्त्रीने लपेट लिया है। पुरुष क्या करे ? कैसे छूटे ? उसके रोम-रोममें तो स्त्रीके हाव-भाव-कटाक्ष, भोगासक्तिका विष भींज गया है। तब अमृत रूपी श्रीसद्गुरुके उपदेश उसमें कहाँ समायेगा ? अमर जीव फिर चौरासी योनियोंके गर्भमें ही जाकर समायेगा। अथवा चन्दन=अज्ञानी मनुष्योंको सर्प=गुरुवालोगोंने लपेटकर भ्रमा दिया है। तब कहो, वे अपना कल्याण क्या करेंगे ? उनके रोम-रोममें तो पक्ष, हठता-शठता, अनेक तरहके विष भींज गये हैं। अमृत=पारख उनमें कहाँ समायेगा ? इसीसे जीव चारखानीमें जाकर समाते हैं। अथवा विद्वान् मनुष्योंको सर्प=भ्रम, कल्पना, अनुमानने लपेट लिया है। तब वे क्या करें ? परवश लाचार हो धोखेमें पड़ जाते हैं। उनके रोम-रोममें तो विषरूपी ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्ग, परमानन्द, इत्यादि-की मिथ्या मानन्दी दृढ़ होकर सराबोर हो गयी है। अब कहिये, यथार्थ स्वरूपके पारख बोधका

अमृत वहाँ कहाँ समा सकता है ? वे अध्यासी भ्रमिक जीव फिर-फिरके आवागमनमें ही जाकर समाते हैं। इसप्रकार सत्य चैतन्य जीवको पाँच प्रकारके सर्पोंने सब तरफसे लपेट लिया है वा फँसा लिया है या बाँध लिया है, तो जीव वहाँ लाचार होनेके सिवाय और क्या उपाय करेंगे ? मुख्य तो उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग रोम-रोम अन्तःकरणमें वैसे पाँच प्रकारके विष, विषय सुख और ब्रह्म सुखादि दृढ़ होकर भींज चुका है। फिर अमृत=जीवको निजस्वरूपकी स्थिति पारख बोध श्रीसद्गुरुका अमृतमय उपदेश कहाँ, कैसे समावेगा ? जीवका नाश तो त्रयकालमें हो नहीं सकता है; वे तो अमर अखण्ड ही रहते हैं। परन्तु, जड़ाध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही जा करके सब समाये और समाते हैं। पारखबोध बिना गर्भवासको न जायें, तो और कहाँ जाकर समायेंगे ? जो कोई जिज्ञासुजन पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर वह सब विष उतार देंगे, तो वे पारख स्थिति पा करके मुक्त हो जावेंगे॥ ११९० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६३ ॥ [चौपाई- १५ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. औरों कला अनेक प्रचारा * वैदक रसक्रिया अनुसारा ॥ ११९१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! अबतक जितनी बात कही गई और लिखी गई है, उतनी मात्र ही नहीं है, उससे आगे और भी अनेकों कला-कल्पनाएँ, भाग-विभाग संसारमें गुरुवालोगोंने बना करके प्रचार कर रक्खा है। उसमें वैद्यक विद्याका शास्त्र अलग ही बनाया गया है। माधव निदान, भैषज्य रत्नावलि, शार्ङ्गधर संहिता, आदि अनेकों वैद्यक ग्रन्थ बने हैं। वैद्यकशास्त्र-में वर्णन किया हुआ विधि-विधानकी रसक्रिया सिद्ध करते हैं। अर्थात् रसायन बनानेकी क्रियासे सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, लोहा, अभ्रक,मूँगा, मोती, इत्यादि धातु भस्म करके उसकी औषधि बनाते हैं। फिर उपयुक्त रोगियोंको वे औषधियाँ देकर रोग निवारण करनेका प्रयत्न करते हैं। अथवा कोई वेदके प्रमाण अनुसार ब्रह्मके अनुभव रस लेनेके लिये अनेकों क्रियाएँ साधना करते रहते हैं॥ ११९१ ॥

२. कफ पित वात नाड़िका तीनी * चाल स्वभाव भिन्न कर दीन्ही ॥ ११९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कफ नाड़ी, पित्त नाड़ी और वात नाड़ी— ये तीनों नाड़ियाँ स्थूल देहमें रहकर अपना-अपना कार्य भिन्न-भिन्न ही करती हैं। तहाँ जोंक, सर्पके समान गतिसे फट्-फट् करके नाड़ी चलने लगे, तब वातका विकार विशेष बढ़ गया, ऐसा कहते हैं। मेढ़क और कागके समान गतिसे नाड़ी चलती होवे, तब पित्तका विकार विशेष बढ़ गया, ऐसा बतलाते हैं; और परेवा तथा हंसके समान चालसे धीरे-धीरे नाड़ी चले; तब कफका विकार विशेष बढ़ा हुआ बतलाते हैं; और कफ ब्रह्मा, पित्त विष्णु तथा वात महादेव करके कल्पना किया है। इसप्रकारसे उन तीनों नाड़ियोंके चाल-स्वभाव, गुण-लक्षणादि भिन्न-भिन्न रीतिसे वर्णन कर रक्खा है। उन तीनों नाड़ियोंकी परीक्षा करके रोग ठहराकर उसी मुताबिक वैद्यलोग रोगियोंको औषधि देते हैं। तहाँ किसीको फायदा होता है, तो किसीको नुकशान भी हो जाता है। सबको अच्छा ही हो, इसका कुछ भी नियम नहीं है॥ ११९२ ॥

३. पचीस प्रकृति पाँच तत्त्व केरा * विविधि उपाधि ताहि बौडेरा ॥ ११९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्थूलदेहमें पाँचतत्त्वोंके एकमें पाँच-पाँच भाग करके पच्चीस प्रकृतियाँ मानी गई हैं। उन्हीं तत्त्व-प्रकृतियोंमें बिगाड़रूप विकार पैदा होकर कार्यकी रुकावट हो जानेसे उपाधि हो, नाना प्रकारके रोग हो जाते हैं। आँधीके समान रोगका बवण्डर उठकर उससे दुःख फैल जाता है। फिर विकार साफ होकर वेग कम होनेपर रोग शान्त हो जाते हैं। रोग-शोकके अनेकों उपाधि रहट्टामें पड़ करके जीव जड़ाध्यासी दुःखी हो रहे हैं॥ ११९३ ॥

४. बैर परस्पर रोग उपाई ❀ वैदक ताके लक्ष बनाई ॥ ११९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शरीरमें प्रकृतियोंके परस्पर बैर-विरोध, तत्त्वोंकी सम-विषमता, खान-पानका बेपरहेज, अनियमका मनमाना चाल-चलनके कार्य, इत्यादि कारण पाकर कई किश्मके रोग देहमें उत्पन्न हो जाते हैं। रोग होनेपर प्राणियोंको अत्यन्त पीड़ा, बेचैनी कष्ट-क्लेश, महान दुःख भोगना पड़ता है। सो यही देखकर उन रोगोंको निवारण करके अच्छा-तन्दुरुस्त, सुखी करने-करानेके लिये उन-उन रोगोंमें लक्ष्य लगाकर लक्षणोंको देखकर फिर वैद्यक नामक शास्त्र बनाया है। तहाँ रोगका पूर्ण लक्षण और रोग निवारणका उपाय, पत्थ्य, परहेज, दवाई वगैरह बतलाया है ॥ ११९४ ॥

५. एक जड़ी एक नाशहि घाता ❀ रसक्रिया सोई यम विख्याता ॥ ११९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैद्यक ग्रन्थोंमें दवाई बनानेकी विधियोंमें भी अनेकों तरहसे लिखी हैं; और जड़ी-बूटियोंके गुण-लक्षण, भेद भी अनेकों प्रकारसे वर्णन किया है। एक जड़ी-फायदा करनेवाली होती है; और दूसरी जड़ी हानि करनेवाली हो जाती है। एक जड़ी दूसरी जड़ीके दुर्गुणको नाश करके गुणकारी बना देती है। जैसे धातु भस्म करनेवाले लोग जड़ी-बूटी, पत्र, फूल, फलादिका रस निकालकर भट्ठीमें धातुको जला करके पुट देकर उसीमें रस डालते, जलाते, रसमें बुझाते, फिर जलाते जाते हैं। सोई रसायन औषधि बनानेकी 'रसक्रिया' कहलाती है। धातुओंके विकारको वनस्पतियोंके रसोंसे मारण, शोधन, परिवर्तन करते हैं। सोई वैद्य गुरुवालोगोंने वैद्यकका यम-नियमादि विख्यात या जग जाहिर कर रक्खा है। उसी विधीसे दवाई बनाकर अच्छे वैद्यलोग औषधि तैय्यार रखते हैं। अथवा कोई एक नाम-स्मरणको मुक्तिकी जड़ी बताकर एक-एकके घातमें यमरूप गुरुवालोग लगे हैं ॥ ११९५ ॥

६. एक एकके मारन जानी ❀ शमन रोग औषधी ठानी ॥ ११९६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! एक पदार्थसे दूसरा पदार्थका मारण होता है। सो वैद्यकको जाननेवाले एक-एक जड़ी-बूटीके प्रयोगसे एक-एक धातु सोना आदि वा अभ्रक, पारा आदिको मारण करके शोधन करते हैं। अच्छे वैद्य लोग एक-एक धातुओंको मारण-शोधन करनेकी विधिको जानते हैं। बराबर सौ पुट, सहस्र पुट आदिसे धातु शुद्ध होनेपर वह शुद्ध रसायन कहलाता है। रोग मिटानेके लिये ही सो सब औषधि रसादि तथा काष्ठादि बनाया गया है। फिर वही औषधि रोगोंको शमन=शान्तकर निवारण करनेके लिये प्रयोगमें लाते हैं। यानी रोग पहिचान करके वही दवाई देते हैं; वैद्यईकी धन्धा चलाते हैं। अथवा एक-एकके सिद्धान्तको मारने-जीतनेके लिये नाना उपदेशकी वाणी बनाया है। उसीको सीखकर, जानकर फिर हारा-जीती करते हैं; तो भी जन्मृतिका रोग उन्होंका नहीं छूटता है ॥ ११९६ ॥

७. कहुँ झूठा कहुँ होवै पूरा ❀ मिथ्या सत्य चिकित्सा पूरा ॥ ११९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे गुरुवालोगोंकी बात कहीं झूठी है, तो कहीं कुछ सच्ची भी हो जाती है। ब्रह्मज्ञानी लोग सत्य-मिथ्याको एकमें मिला करके पूरे भ्रमिक होते हैं। तैसे ही वैद्य लोग भी कहीं झूठे ढोंगी होते हैं। कहीं सच्चे भी होते हैं। सत्य और मिथ्या होनेकी पूर्ण पहिचान तो चिकित्सा द्वारा ही मालूम होती है। और नाड़ी परीक्षा, मल, मूत्र, जीभ, नसें, नेत्र, रक्तादि परीक्षा करके हाल, लक्षण, रोग जाननेका नाम चिकित्सा है। इस परीक्षासे सच्चे रोगीका और झूठे ही ढोंगीका पूरा-पूरा हाल मालूम हो जाता है। रोगी भी कहीं सच्चे और कहीं झूठे बनावटी होते हैं। परीक्षासे उसका पता लग जाता है ॥ ११९७ ॥

८. बाँचन चहहिं जतन बहु करहीं ❀ त्रिदोषक सब अन्त ग्रासहीं ॥ ११९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सब कोई सदाकाल बचे रहना चाहते हैं। काया

अमर करनेकी इच्छा करते हैं। दीर्घायु होना चाहते हैं। जन्मभर सुखी रहना चाहते हैं। उसके लिये योग, व्यायाम, संयम, औषधि सेवन ऐसे अनेकों उपचार बहुतेक यत्न-प्रयत्न किया करते हैं। परन्तु, प्रारब्ध भोगनेमें सो उपाय सब व्यर्थ हो जाता है। रोग भी लगता है, वात, पित्त और कफ, एक-एक विकारसे या तीनों मिल करके सन्निपात दोष बढ़ जानेसे सभी कोई मर जाते हैं। अन्तमें सबको त्रिदोष ग्रास करके पकड़ ही लेता है, वैद्य, रोगी, भोगी, योगी आदि सबकी मृत्यु हो जाती है। सब बेपारखी लोग चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं ॥ ११९८ ॥

९. छोडै न काहु खेल खेलाई ❀ फाँसी अनबनि विधि गरे लाई ॥ ११९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे गुरुवालोग और स्त्रियाँ अच्छे-बुरे, सज्जन-दुर्जन, पण्डित-मूर्ख किसीको भी नहीं छोड़ते हैं; सबोंको पकड़-पकड़ करके विषय भोग तथा जप, तप, व्रत, उपवासादि पञ्च मार्गोंमें बहुत प्रकारके खेल खेलाकर साधना कराकर, आशा-तृष्णाकी फाँसी गलेमें यानी मनमें लगाकर अनेकों प्रकारसे जीवोंको लटकाते हैं; दुःख देकर मारते हैं। तैसे ही पूर्व कर्मके वेगसे शरीर बना है, सो शुभाशुभ कर्म भोग सबोंको भोगना ही पड़ता है। रोगादि दुःख भोगे बिना किसीका भी शरीर नहीं छूटता है। किसीका अध्यास तो नहीं छूटा, इसीसे रोग भी किसीको नहीं छोड़ता है; खेल-खेलानेके सरीखा रोगादि भोग करके ही देह छूटता है। जिससे जीवोंका कुछ हित-कल्याण नहीं बनता है; वैसे अनेक प्रकारकी विषयादि सुख चाहनाकी फाँसी गलेमें और हृदयमें लगा करके अनेकों वैद्य, हकीम, डाक्टर आदिकी दवाई करने और करानेमें लगे हैं ॥ ११९९ ॥

१०. आशा लागि अरोग शरीरा ❀ रोग मूल पावहिं बहु पीरा ॥ १२०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सब कोईको यह आशा दृढ़ करके लगी है कि, मेरा शरीर निरोग, स्वस्थ, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ होवे; सैकड़ों, हजारों वर्ष वा युग-युगान्तर तक जीते रहें, कभी मृत्यु न होवे। इसीप्रकारकी कई एक मिथ्या आशासे नाना कर्म-कुकर्म करनेमें लगे, और भूल रहे हैं। परन्तु, रोगके मूल कारणका भेद तो पाते ही नहीं हैं। जड़ाध्यास, अशुभ कर्मोंके संस्कारसे रोगादि होते हैं। सो पूर्वका कर्म भोग भोगे बिना मिट नहीं सकता है। "शरीरं व्याधि मन्दिरम्"- सारे रोगोंके खान तो यही शरीर धारण किया हुआ ही है। रोगोंके मूल कारणका भेद तो जान ही नहीं पाते हैं। रोगका मूल कारण यह देहके अध्यास-वासना और शरीर तो साथ ही लगी है। इसीसे बहुत-बहुत पीड़ा, दुःख भोग पा-पाकर जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयतापादि दुःख भी भोगते रहते हैं। सब वासनाएँ निवृत्त हुए बिना कदापि दुःख नहीं छूटता है। अध्यास-मानन्दी यही सर्व रोगोंका मूल कारणरूप जड़ है। जब तक वह है, तब तक पीड़ा बहुत तरहसे पाते ही रहेंगे। इससे उसीके विनाश करनेका सत्पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। जड़ कटनेपर शाखा, पत्र भी नष्ट होंगे, सो जानो ! ॥ १२०० ॥

११. जहाँ तहाँ तीर्थ स्थान उपाई ❀ पाप पुण्य कर्म लपटाई ॥ १२०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वके पाप कर्मसे रोग-शोकादि दुःख भोग होता है। तीर्थ-व्रतादि पुण्य कर्म करो, तो सो पाप नाश होकर सुख पाओगे, इत्यादि गुरुवालोगोंकी वाणी सुन-सुनकर जहाँ-तहाँ जड़ मूर्तिकी स्थापना तथा नदी=पानीरूप गङ्गादिकी प्रतिष्ठा, महिमा बढ़ा करके चारों दिशाओंमें चार धाम-चौंसठ (६४) तीर्थ स्थान मुख्य और अनेकों उपतीर्थादि भी उत्पन्न किया है। सो तीर्थ स्नान, देव मूर्तिका दर्शन-पर्शन, परिक्रमा, कर्म, उपासनादि मार्गाचरणसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। अन्यथा पाप होना मानकर शुभ-अशुभरूप पाप-पुण्योंके नाना कर्मोंमें लपटाकर लिप्त हो गये, सो भव-बन्धनोंमें बद्ध हो गये हैं। उसप्रकार रोग-शोक किसीका भी नहीं छूटा। अर्थात् भ्रमिक मनुष्य लोग गुरुवा बनकर जहाँ-तहाँ तीर्थस्थान आदि बना करके उत्पन्नकर उसीकी महिमा बढ़ाकर धोखेमें पड़ करके पाप-पुण्यरूप कर्म मार्गमें ही लपटा रहे हैं ॥ १२०१ ॥

१२. जल तरना बहु चाल उपाना * अन्त डुबावै जतन विधि नाना ॥ १२०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जलतरण विद्याका पसारा अलग ही किया है। उसमें जलाशय, नदी, नाले-खोले, महानदी, प्रवाह, समुद्र, भँवर आदिक जलमें तैरनेकी विधि, उलटी, सीधी, तिरछी, लम्बी चालसे तैरना, गोता लगाकर दूर निकल जाना; खड़े-खड़े पीछे हटना, आवाज करके या बिना अवाजसे तैरना, खाली हाथ हिलाकर वा हाथ-पैर दोनों हिलाकर तैरना, इत्यादि शारीरिक तैरनेकी अनेकों चाल उत्पन्न किया है; और नौका, बड़ी-बड़ी नौका, स्टीमर, पानी-मोटर, जहाज, बड़े-बड़े जलपोत वा जङ्गी जहाज पनडुब्बियाँ आदिकोंको जलमें तैराकर जल्दी-जल्दी ले जानेकी कला युक्तिकी चाल बहुत उत्पन्न किया है। परन्तु, इतना नाना विधिसे बचनेका यत्न करनेपर भी अन्तमें कितनेक लोग तो डूब-डुबा करके मर ही जाते हैं। जड़ाध्यासी जीव देहान्त होनेपर गर्भमें डूबकर महा दुःख पाते हैं। नाना तरहके जलमें तैरनेका यत्न करके भी अन्तमें गर्भवासरूप भँवरीके चक्रमें सब कोई डूबते-डुबाते ही पड़ जाते हैं। बिना पारख कोई भी बच नहीं पाते हैं ॥ १२०२ ॥

१३. वाहन वाजी अनेक प्रकारा * एक विवश एक जीवहिं डारा ॥ १२०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वाहन=सवारीमें चढ़नेकी, सवारीको चलानेकी विद्या भी अलग ही निकाला है। तहाँ हाथी चलाना, घोड़े दौड़ाना, ऊँटकी सवारी, बैल, भैंसा और याककी सवारी करते हैं। उन्हें अनेकों तरहसे सिखाय-सधायकर चलाते हैं। उनमेंसे वाहन वाजी=अश्वसँवारण विद्या, घोड़ेपर चढ़कर उन्हें अनेकों तरहकी चालसे चलने-चलानेकी चाल सिखलाते हैं। यह घोड़ेकी सवारीको सब सवारीमें मुख्य माना है। ऐसे अनेकों प्रकारसे वाजी= घोड़े आदिकी सवारी करनेकी कला बना रक्खे हैं। सो एक-एक जीवोंको घेर-घार करके, विवश, अधीन, लाचार बना करके एक-एक बन्धनमें डाल रक्खे हैं। एक-एक विद्या-बुद्धि, कला-कौशल बताकर उससे सबको मजबूर करके फँसाकर विषय तथा कल्पनामें डाल दिये हैं। एक-को-एक विवश करके नाना दुःखमें डाल रहे हैं। उसी अध्यासने जीवोंको चौरासी योनियोंमें डाल रक्खा है ॥ १२०३ ॥

१४. जतन रतनके चाल चलाई * तिल जव रति मासा परखाई ॥ १२०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर और भी चतुराई करके वस्तुओंकी तौल-माप करनेका देशी-विदेशी हिसाब अनेकों चालसे चलाया है। तहाँ देशी तौल ऐसा है:— ८ खसखस= १ चाँवल। ८ चाँवल=१ रत्ती। ८ रत्ती=१ माशा। १२ माशा=१ तोला। ५ तोला=१ छटाक। २ छटाक= एक आध ($\frac{1}{2}$) पाव। ४ छटाक=एक पाव। ८ छटाक या दो पाव=एक आधा $\frac{1}{2}$ सेर। १२ छटाक या तीन पाव=एक पौन $\frac{3}{4}$ सेर। १६ छटाक या २ आधा सेर या ४ पाव=१ सेर। ५ सेर=१ पँसेरी। ८ पँसेरी या ४० सेर=१ मन। ३ मन=१ पल्ला या एक गौन। ४ मन=१ चौमना। ३२ कुड़ो या १६ काँठा या १६० पायली=१ खण्डी। १६ खण्डी=१ गाड़ा। ५ मन=१ मानी। १०० मानी=१ मनासा। १०० मनासा=१ कनासा इत्यादि। इसमेंसे सोना, चाँदी, जेवर, दवाई इत्यादिसे तौलनेमें खसखस, चावल, रत्ती, तोला, ये काममें लाते हैं; और तौलसे अन्न, भारी वस्तु आदि तौली जाती हैं। प्राचीन सुवर्ण तौलका परिमाणः— ४ यव=१ गुञ्जा। ३ गुञ्जाका= १ वल्ल। ८ वल्ल=१ धरण। २ धरण= १ गद्यागक। १४ वल्ल=१ धटक। ५ गुञ्जा=१ माषा। १६ माषा= १ कर्ष। ४ कर्ष=१ पल। १ सुवर्ण कर्ष=१ सुवर्ण। और प्रचलित सोने, चाँदीकी तौलः— ८ खसखस=१ चाँवल। ८ चाँवल=१ घुँघुची। २ घुँघुची=१ बाल। ३ बाल= १ आना। और अंग्रेजी जौहरियोंकी तौलः— २४ ग्रेन=१ पेनीवेट। २० पेनीवेट=१ औंस। १२ औंस=१ पौण्ड। हीरे और रत्नोंकी तौल क्यारेटसे होती है। जो १ क्यारेट= ३$\frac{1}{2}$ ग्रेनके समान होता है। इसप्रकारसे हीरा, मोती, लाल, पन्ना, नीलम, पुखराज इत्यादि रत्न तौलनेके अनेकों यत्न या उपाय, चाल-चलन, रीति-रिवाज चलाया गया है। तील, जौ, रत्ती, माशा आदि झीने-झीने तौलसे सब झीना भाग रत्न तौलना उनकी कीमत आँकना, नकली-असलीका

पारख करना, उसी हिसाबसे रत्नोंकी खरीद-विक्री करना, यह बात जौहरियों और सुनारोंने परखाया या बतलाया है। वह सब कला विद्या सिद्धान्त गुरुवालोगोंने जो संसारमें चलाया है, संक्षेपमें सो सब झीनी-झीनी बातसे लेकर मोटी-मोटी बात तक पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे हमने भी यहाँपर दर्शाकर गुण-दोष परखा दिया है। उनमेंसे गुणको लेकर दोषोंको त्याग देना चाहिये ॥ १२०४ ॥

१५. गनत गनत कोई पार न पावै ❀ फैल फैलाय अम्बूह देखावै ॥ १२०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उन सब खानी और वाणी प्रपञ्च कल्पनाका विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है। गणना करते-करतेमें कोई पार नहीं पा सकते हैं। महान भयङ्कर अपार समुद्रके समान जाल फैलाते-फैलाते ले गये हैं वा फैलाते-फैलाते 'अम्बूह' कहिये समुद्रवत् बड़ा विस्तारसे दुस्तर करके दिखला देते हैं। महासागरके समान ही खानी-वाणी जालोंका फैला हुआ फैलावा दिखलाई दे रहा है। फिर उसकी गिनती समाप्त करनेका पार कौन पा सकेगा ? यहाँ तो दिग्दर्शन मात्र कराके थोड़ा-थोड़ा परखाया गया है। गुरुवालोग आखिर तक गिनती कर-करके भी जब सार वस्तु नहीं पहिचान पाये, किसीने पार नहीं पाये; तब कल्पनाको फैला-फैला करके "चराचरमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म एक ही समुद्रवत् है वा आकाशवत् सर्वत्र भरा है !" ऐसा कहकर वही धोखा वेद-वेदान्तके प्रमाण दे करके दिखला देते हैं। भ्रममें भूल करके भुला रहे हैं। सो यथार्थ परखकर सत्यासत्यको जान लेना चाहिये ॥ १२०५ ॥

साखीः— बैर विरोध मचायके ❀ रचा अनेक हथियार ॥
[२२६] धनुर्विद्या गावै तेई ❀ कारण सोइ सङ्हार ॥ १२०६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अहङ्कारी, कामी, क्रोधी आदि दुष्ट प्रकृतिके मनुष्योंने आपसमें परस्पर बैर-विरोध झगड़ा मचा करके ईर्षा-द्वेष, शत्रुताका कुभाव ले करके उन्हें मारने-पीटने, घात करनेके लिये अनेकों प्रकारके हथियारोंकी रचना किया है। जैसे— धनुर्बाण, तलवार, खड्ग, छुरी, भाला, पास, अंकुश, अस्त्र, शस्त्र, साङ्ग, शक्ति, गदा, चक्र, बज्र, बन्दूक, तोप, स्टेनगन, मसीनगन, बम, अणुबम, हाईड्रोजन बम, कीटाणु बम इत्यादि अनेकों शस्त्रास्त्रोंका विस्तार प्रथमसे अभीतक कर रक्खे हैं। उसे ही धनुर्विद्या, लक्ष्यभेदन कला गाकर कहा है। प्रतिद्वन्दी, शत्रु, विरोधीको संहार, सत्यानाशकर हानि कर देनेके लिये इसीकारणसे ही सब तरहके हथियारोंको बनाया गया है; और वैसे ही हथियार बना ही रहे हैं। सो उसीसे मनुष्यपदका नाश हुआ वा नाश हो रहा है ॥ १२०६ ॥

साखीः— रेखा लक्षण भेद सो ❀ सामुद्रिक रचि दीन्ह ॥
[२२७] चतुराई बहु भाँतिके ❀ कला प्रगट सब कीन्ह ॥ १२०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दूसरी तरफ सामुद्रिक शास्त्र, अलग ही रचना किये हुए हैं। उसमें नर-नारियोंके रूप देख करके हाथकी रेखा, पैरकी रेखा, शङ्ख, चक्रादिका चिह्न, अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका लक्षण, भालका चिह्न, रेखा, अंगुली, आकार-प्रकार आदिका विभिन्न लक्षण देख करके हिसाब लगाकर सो उसका भिन्न-भिन्न भेद, फल, बुद्धि, विद्या, धन, सन्तान, आयु, हानि-लाभ, मृत्यु, सुख-दुःखादि इस-इस प्रकारसे होगा या ऐसा हुआ होगा; ऐसा-ऐसा योगफल दिखाई देता है, सो तीन कालमें प्रगट होवेगा, इत्यादि बात अन्दाजा लगाकर कल्पनासे वे सामुद्रिक विद्याके प्रमाणसे कह देते हैं। बहुत भाँतिकी चतुराईसे यह सब कला-कल्पना ही प्रगट किया है। कितनेक लोग इधर पड़ोसियोंसे पूछताछ करके पहलेसे ही लोगोंके हाल जान रखते हैं। वही बीती हुई बात बता करके विश्वास करा, फिर भविष्यमें ऐसा-ऐसा होगा, कहकर कल्पित बात ही बता देते हैं। जिसको अविवेकी लोग सत्य मान-मान कर भूल जाते हैं। कभी अन्दाज की हुई बात एक-दो हो गयी, मिल गयी, तो और सब बातोंको भी सत्य मान-मानकर धोखेमें ही पड़ जाते हैं। यह सब गुरुवालोगोंकी

कला जीवोंको भ्रमा-भ्रमा कर बन्धनोंमें डालनेवाली ही है। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें परखकर उसे ठीकसे समझना चाहिये ॥ १२०७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६४ ॥ [चौपाई- १३ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. जेहि प्रकार अनन्त होय आई * विद्या तेहि भाँति निर्माई ॥ १२०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिसप्रकार जड़ाध्यासी जीव चारखानीमें अनन्त देहधारी होकर आये, फिर जब मनुष्य जन्म पाये, तो यहाँ जिस-जिस प्रकारसे कल्पना, स्फुरणा, सङ्कल्प-विकल्प होते गये, मन-मानन्दी बढ़ती गई। उसी-उसी प्रकारसे बुद्धिकी चतुराईसे नाना विद्या, नाना कला-कौशल, नाना भाँतिसे बना लिये हैं। जैसी-जैसी कल्पना बढ़ी, तैसी-तैसी विद्याएँ बनती गयीं। उन्हीं प्रपञ्चोंमें पड़ करके सब मनुष्य निज स्वरूपको भूल रहे हैं ॥ १२०८ ॥

२. चौदह तामें विशेषण गाँठी * अष्टाङ्गी प्रति वोई आँटी ॥ १२०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनेकों विद्याओंमेंसे उसमें मुख्य विशेषरूपसे चौदह विद्याओंकी गाँठीरूप चौदह ग्रन्थ बने हैं। उन्होंका नामः— १. ब्रह्मज्ञान। २. रसक्रिया। ३. काव्य। ४. वेद। ५. ज्यौतिष। ६. व्याकरण। ७. धनुर्विद्या। ८. जलतरण। ९. सङ्गीत। १०. वैद्यक। ११. अश्वसँवारन। १२. कोक। १३. नाटक-चाटक। और १४. चातुरी। यही चौदह विद्याओंका नाम है। तिनमें नामानुरूप कल्पनाकी गाँठी पाड़-पाड़ करके वाणी जोड़कर पुस्तकें बनाया है। पाँच तत्त्व तीन गुण संयुक्त अष्टधा प्रकृतिरूप माया=गुरुवालोगोंके पेटमें वह सभी कल्पनाएँ अँटी हुई या समाई हुई हैं। वह प्रत्येक भाग अष्टाङ्गी मायाके अन्टीमें खोंसे हुए हैं। अथवा पञ्चकोश, तत्त्वमसि ये- अष्टाङ्गमें वह प्रत्येक गाँठी लगी हुई है। वही कल्पनाका बीज गुरुवारूप मायाने मनुष्योंके हृदयरूप क्षेत्रमें बो रक्खा है। जिससे अष्ट प्रतिमा, नवधा भक्ति, अष्टाङ्ग योगादि प्रत्येकके वृक्ष उत्पन्न होकर बढ़ रहे हैं; उसी जङ्गलमें सब भटक रहे हैं ॥ १२०९ ॥

३. अष्टाङ्गी सब कला अपारा * सिद्धि सिखाय विविधि प्रकारा ॥ १२१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अष्टाङ्ग देहधारी मनुष्य गुरुवालोग सब कला-कल्पनाको सिखला-सिखलाकर बहुतेक अपार ब्रह्म कर्त्ता मान-मानकर भूलमें पड़े हैं। अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, सामर्थ्य प्राप्ति करनेकी आशा लगा-लगा करके विविधि प्रकारसे नाना विद्याओंको सिखाये और सिखा ही रहे हैं। अथवा अष्टाङ्गी नामक आदिमायाने सब कला सीख करके भी जब कुछ पार नहीं पाई, तब ब्रह्मको अपार ठहराई। फिर सिद्धिकी लालच देकर नाना प्रकारसे दूसरोंको भी वही बात सिखलाई; और भ्रमाकर भुलाई ॥ १२१० ॥

४. एक मोहनी रूप सोहाये * कल बल छल तेहि विविधि लगाये ॥ १२११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक मोहनी=मोहिनी-स्त्रीरूपमें शृङ्गार करके बड़ी सुन्दरी बनी है। स्त्रीरूप मायाने मोहित करके पुरुषोंको छलसे, बलसे, कपटसे, हास-विलास, खेल-क्रीड़ा-से, ऐसे नाना तरहसे मोह लगाकर फँसा रक्खी है। खेलनेके पशु बना करके बाँध रक्खी है। अथवा गुरुवारूप मायाने एक मन मोहिनी वाणी कल्पनाका रूप सुन्दर बनाया; रोचक वाणी सुन-सुनकर प्रेम बढ़ाकर लोगोंको बहुत अच्छा पसन्द लग रहा है। कहीं तो नाना कला दिखाकर और कहीं जबर्दस्ती बल प्रयोग करके, फिर कहीं छल-कपट, दाव-पेंच लगा करके, वही नाना प्रपञ्चोंमें मनुष्योंको लगाये, महाजालोंमें अरुझा रक्खे हैं ॥ १२११ ॥

५. धर्मराय अष्टाङ्गी नारी * बहुविधि कैल करै जग भारी ॥ १२१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! धर्मराय=निरञ्जन वा मनरूपी पुरुष बना और अष्टाङ्गी=पाँच तत्त्व तीन गुणकी मायारूप काया सोई नारी बनी। सो जगत्में तन-मनके सम्बन्धमें बहुत प्रकारसे बड़ा भारी विषय भोग, केलि, नाना साधनाएँ एवं प्रपञ्च जीवोंने पसारा किया और

कर रहे हैं। जिससे महा बन्धनमें पड़े या पड़ रहे हैं। अथवा प्रथम धर्मात्मा राजा माना हुआ धर्मराय नामका कोई पुरुष था, और अष्टाङ्गी या आद्याशक्ति माया नामकी उसकी स्त्री रही। पूर्वमें उन्होंने जगत्में बहुत प्रकारसे विषय क्रीड़ा और पाँच मार्गोंकी साधनाएँ सीखकर उसे किया। उनके अनुयायी लोगोंने जगत्में बड़ी भारी उनकी प्रसिद्धि तथा महात्म्य बढ़ा करके वही कार्य अब भी कर रहे हैं। भ्रम अध्यासके भारी बोझासे वे दबे पड़े हैं। अथवा ब्रह्म और मायाने बहुत प्रकारसे क्रीड़ा करके जगत्की भारी सृष्टि उत्पन्न किया; ऐसा भी माना है॥ १२१२॥

६. त्रिदेवा अस्थूल उपाने ❀ तबहिं धर्म महाशून्य समाने ॥१२१३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! यहाँ स्थूल शरीरमें त्रिगुण सोई त्रिदेवके रूपमें उत्पन्न हुए। तब मन शून्य सुषुप्ति या योग साधनासे ब्रह्माण्डमें महाशून्यमें समाया, समाधि लगाकर उन्मुन हुआ; हंस स्थिति नष्ट हुई। अथवा बाहर कथामें अष्टाङ्गी स्त्रीके गर्भसे स्थूल शरीर धारण करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीन पुत्ररूप त्रिदेव अवधि पूर्ण होनेपर जब उत्पन्न हुए या उनका जन्म हुआ; और वे लड़के छोटे रहे, तब ही उनके पिता धर्मराय या निरञ्जनलालकी मृत्यु हो गयी; वह मरकर अध्यासवश महाशून्य कहिये गर्भवासमें जा करके समाया। तब पितृहीन पुत्रोंको उनके माताने ही पालन-पोषण करके बड़ा किया। अथवा त्रिगुणी कर्मी, उपासक, योगियोंने स्थूलरूपसे कर्म, उपासना और योगमार्गकी उत्पत्ति किया। तभी ज्ञानी लोग ब्रह्मको महाशून्यमें मान करके धोखेमें समाये; जड़ाध्यासी होकर वे सब गर्भवासमें जाकर समाये, बिना पारख॥१२१३॥

७. अनन्त कलाके जीवहिं फाँसी ❀ आपु महाशून्य अचल अविनाशी ॥ १२१४॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें अनेकों भाग कला कल्पनाके फाँसी जीवोंपर पड़ा हुआ है। अनन्त जालोंमें सब जीव फँसे पड़े हैं। अपने ऊपर अचल, अविनाशी महाशून्य आकाशवत् परब्रह्म कर्त्ता मान-मानकर आप ही जीव भूल रहे हैं। जीव स्वयं अविनाशी अखण्ड, सत्य हैं। परन्तु, पारखबोध न होनेसे कोई परमेश्वर परमात्माको नाशसे रहित कभी चलायमान न होनेवाला, महाकाशवत् शून्य निरञ्जन-निराकार मानकर अपने-आपको भूल करके जीव जड़ाध्यासमें फँसे पड़े हैं। बेअन्त, ब्रह्म मानन्दी करके चौरासी योनियोंके फन्दोंमें अरुझे पड़े हैं॥१२१४॥

८. सब घट जीवन जीव चोरावै ❀ आपु चोरावै आपु छिपावै ॥ १२१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सब जीवोंके घट-घटमें अन्तःकरणरूप महलमें गुरुवालोग और स्त्रियोंकी कल्पना वा विषयासक्तिरूप चोर घुस गया है; तथा काम, क्रोध, लोभादि चोर पहलेसे ही वहाँ छिपे बैठे हैं। मनुष्य जीवोंके मुक्तिदायी धन— सत्य, विचार, शील, दया, विवेकादि रहनी सद्गुण-सम्पत्ति चुराकर ले जा रहे हैं। गुरुवालोग और नारियाँ अपने-आप नष्ट-भ्रष्ट होकर हंसके गुण-लक्षण, मुक्ति-धनको निज-पर घटसे चुरा लेती हैं। दुर्गुण, पाखण्ड प्रगट होने न पावे, इसलिये अपने-आप तो छिपे-छिपाये भले अच्छे बनना चाहते हैं। अथवा जड़ासक्ति भ्रम मानन्दीका चोर सब घटोंमें घुसकर जीवनधनरूपी सत्य, विचारोंको चुरा लेते हैं। ये आप ही चोर बनकर चुराते हैं। जीवोंके ज्ञानगुणको छिपा करके अपना ब्रह्मज्ञान प्रगट करते हैं। आवरण पर्दामें छिपा करके अपने आप भी निर्गुण, निराकार ब्रह्म बनते हैं; ऐसे भ्रम-चक्रमें पड़े हैं॥ १२१५॥

९. शीश छिपावै देह देखावै ❀ ताते चोर चीन्ह नहिं पावै ॥ १२१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वे चोर लोग शीश छिपाकर देह=धड़मात्र दिखा करके रहते हैं, इसीसे चोर पहिचाननेमें नहीं आता है। इसीतरह ॐकार ब्रह्म कल्पना ही एक चोर है। उसका शिर तो नहीं है, गला कटा है; शिरकी जगह तो शून्य अर्ध-बिन्दु (ँ) लगा है। उसको छिपाकर गुप्त, निराकार ब्रह्म है, ऐसा बतलाते हैं। बाकीके भाग देह=चार मात्रारूप ॐकार पिण्ड-

ब्रह्माण्डमें घटा करके दिखलाते हैं। अथवा शीश=सर्वसे श्रेष्ठ चैतन्य जीवको तो शून्य समाधिमें छिपा देते हैं; और तहाँ देहका भास, ज्योति-प्रकाश आदिको देखकर उसे श्रेष्ठ ब्रह्म बतलाते हैं। अकार—त्रिकुटीमें, उकार—कण्ठमें, मकार— हृदयमें, अर्धमात्रा—नाभिमें, बिन्दु मात्रा—शिरमें, ऐसे पाँच मात्रावाला ॐकार ब्रह्म देहमें कल्पनासे दिखलाते हैं। बाहर क्रमशः पाँच तत्त्वोंमें मिला करके दिखाते हैं। इसीवास्ते भ्रमिक होकर चोर=गुरुवालोग मन-कल्पनाको पहिचान नहीं पाते हैं। पारख बोध हुए बिना निज स्वरूपको चीन्ह ही नहीं पाते हैं। वे आप ही चोर बनकर धोखेमें छिपे पड़े रहते हैं। ढोंगी होते हैं, सो सबको चीन्हनेमें नहीं आते हैं ॥ १२१६ ॥

१०. धड़ सो माया कला प्रकाशी ❀ आपु निरीह अव्यक्त सुखराशी ॥ १२१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मायारूप काया, सो यही चोर=मनका धड़ है। इसी शरीरमें मन कल्पनासे ब्रह्म-ईश्वरादिका प्रकाश किया है। ॐकार ब्रह्म, मात्रा, कला, आनन्द-रूप शरीरमें ही घटाकर प्रकाश किया है। अथवा धड़रूप माया कलाका प्रकाशी सोई ज्योति-प्रकाशरूप परब्रह्मको ठहराया है। आप परमात्मा स्वयं निरीह=इच्छासे रहित है। अव्यक्त=व्यक्ति-गतसे रहित है, अप्रगट, गुप्त, निराकार, निराधार समुद्रवत् सुखकी राशि या आनन्दका समूह परमानन्द है। ऐसा मान करके भ्रममें गोता लगा रहे हैं ॥ १२१७ ॥

११. निर्विकार निर्लिप्त अमाया ❀ धोखा प्रगट कला सो गाया ॥ १२१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर वह परमात्मा सम्पूर्ण जगत् विकारसे रहित निर्विकार है, सर्वव्यापक होते हुए भी माया विकारसे पृथक्, सबसे निर्लिप्त न्यारा रहता है। अमाया=जिसको कायारूप मायासे सम्बन्ध नहीं है, विदेह है; सर्वाधार, सर्वाधिष्ठान वही परब्रह्म है। ऐसा कहकर जो गुरुवालोगोंने गाया, उपदेश वर्णन किया है। सो प्रत्यक्षमें धोखा देनेकी कला-कल्पना ही मात्र है। यह तो गुरुवालोगोंने प्रगटमें ही धोखा दिया है, ऐसा जानिये! ॥ १२१८ ॥

१२. ऐसो भरम बिगुर्चन कीन्हा ❀ सोई काल जिव आशा लीन्हा ॥ १२१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ऐसी-ऐसी भ्रान्तिमें पड़कर ब्रह्म-ईश्वरादि जगत्-कर्त्ता जो माना है, सो 'बिगुर्चा' कहिये धोखा, भुलावा ही खड़ा किया है। ऐसा श्रेष्ठ माना हुआ ब्रह्म सिद्धान्त तो एक धोखेका जाल ही बना करके फैलाया है। सोई ब्रह्म प्राप्ति करके या उसीमें मिलकर स्वयं ब्रह्म बनकर परमानन्द सुख पानेकी, जगत् बन्धनोंसे मुक्त हो जानेकी आशामें काल=गुरुवालोगोंने जीवोंको लगा दिया है; कल्पना दृढ़ाकर भुला दिया है। पारख बिना मिथ्यामें जीव लगे हुए हैं। ब्रह्ममें मिलनेकी आशा, फाँसको ले रहे हैं ॥ १२१९ ॥

१३. अस ठग जो ठगे दिन राती ❀ कहहु कुशल जीव कौने भाँती ? ॥ १२२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ऐसे संसारमें ठगिनी बनी हुई नारी और ठग बने हुए गुरुवालोग जो कि, दिन-रात, ज्ञानी-अज्ञानियोंके पीछे पड़कर खूब ठगाई, धूर्ताई कर रहे हैं। कहीं हाव-भाव, कटाक्ष, दाव-पेंच करके ठगा है। कहीं भक्ति, योग, ज्ञान और विज्ञानमें लगा करके ठगाई किया है। हंसगुण-लक्षणरूप कीमती धनको लूट-लूट कर ले लिया है या लूट मचा रहे हैं। अब हे हितेच्छुक मनुष्यो! कहो तो भला! उन्हींके सङ्ग, घेरा, प्रपञ्चोंमें रहकर नरजीवोंकी कुशलतारूप कल्याण या मुक्ति किस प्रकारसे हो सकेगी? कभी नहीं होगी। इसकारणसे अभी मनुष्य जन्ममें हो, सो जल्दी चेत करो! उन ठगोंके कुसङ्ग घेरासे निकल पड़ो! उनको छोड़ो! पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्गमें ठहरकर सार ग्रहण करके जीवन सफल करो! तब ही कुशल होगा ॥ १२२० ॥

साखीः— प्रीति करै जो ताहिसों ❀ जे ठगहारी धन लेत ॥
[२२८] दर्द न बूझै जीवका ❀ चूसि चूसि दुःख देत ॥ १२२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें अबोध मनुष्य सब जो कि, उन्हीं

कालरूप स्त्रियाँ तथा गुरुवालोगोंसे प्रेम-प्रीति, सङ्ग-साथ, आसक्ति किये और कर रहे हैं। ठग और ठगिनी लोग तो धन हरण करके लेनेका दाव ही देख रहे थे। मौका पाते ही विवेक, वैराग्य, बोध-भाव, सत्य, दयादि अमूल्य दिव्य धनको ठगाई करके हरण कर लेते हैं। जिन्होंने मुक्तिदायी धनको ठगकर और लूटकर छीन लिया, विनाश कर दिया है; तो भी उन्हीं लोगोंसे मूर्खजन प्रीति करते हैं। इसीसे रही-सही पूँजीको भी बर्बाद करके नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। वे घातक ठग नारी और गुरुवा-लोग "जीवोंको दुःख-दर्द होगा, तो हमें दोष लगेगा" यह कुछ भी समझते-बूझते ही नहीं हैं। जीव कितने ही दुःख पायें, छटपटायें, तो भी कसाई उसे कुछ पर्वाह ही नहीं करते हैं। हिंसक प्राणी जैसे दूसरे जानवरका खून चूस-चूस करके दुःख देकर मार डालते हैं, तैसे ही निर्दयी धूर्त लोग अपनी तरफ लोगोंको खींच-खींच कर तन, मन, धनादिके रसको चूस-चूस कर और लूट-लूट कर मसल-मसल करके, नाना धन्धा साधनाओंमें पीस-पीस कर असह्य दुःख दिये हैं, और देते रहते हैं। उसीको अच्छा समझनेवालोंपर तरस खाना पड़ता है; बिना विवेक ऐसी ही दुर्गति-दुर्दशा होती रहती है ॥ १२२१ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १२८ ॥ ❀ ॥

साखीः— तीन लोक चोरी भई * सबका सरबस लीन्ह ॥
[२२९] बिना मूँड़का चोरवा * परा न काहू चीन्ह ॥ १२२२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! तीनों लोक संसारमें एक रहस्यमय चोरी हो गई। चोरोंने सब कोईका सर्वस्व धन हरण करके ले लिया और गायब हो गया। खोज करनेपर बिना शिरका एक चोर मिला। सो किसीके पहिचाननेमें ही नहीं आया। तो इसका मतलब ऐसा है कि, तीन लोक=स्वर्ग, मृत्यु और पाताल है। यहाँ उत्तम, मध्यम और कनिष्ठरूप तीन श्रेणीके त्रिगुणी मनुष्योंके घटरूप घरमें चोरी हुई; तो काम, क्रोध, मोह आदि दस्युदल सैन्य सहित घुस करके सब मनुष्योंका सर्वस्व— ज्ञान विवेक, वैराग्य, दया, क्षमादि मूल धन हरण करके ले गये। चोरोंका सर्दार मन तथा उसकी सेनाकी शिर तो नहीं है। इसीसे किसीको बन्धन पहिचान नहीं पड़ता है। 'मेरा मन ही चोर है'-यह चीन्ह नहीं पड़ता है। अथवा तीन लोकके कामी, क्रोधी और मोही, इन त्रिगुणी मनुष्योंके घरमें चोरी हुई, तो सबोंके सर्वस्व मुक्तिके समाज दश गुण समेत् हरण कर लिया। तहाँ बिना मूँड़का चोर=कामदेवने देव, दैत्य और मनुष्य, इन सबोंका सत्य-ज्ञान, सत्यबुद्धि हरण किया। कामने अपने वश करके सबको गर्भवास अँधियारी कोठरीमें कैद किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सबोंका सर्वस्व इस काम चोरने चुरा लिया। परन्तु, बिना पारख उन्होंको चोर चीन्ह ही नहीं पड़ा। अथवा वाणीमें अर्थः— सात्त्विकी ज्ञानी लोग, राजसी भक्त लोग, और तामसी योगी लोग, इन्हीं तीन लोकमें सबोंकी स्थितिके घरमें चोरी हुई। अनुमान, कल्पना, भासने उन्होंके सर्वस्व सद्गुण पारख ज्ञान, विवेक, न्याय, विचारादि सच्चा धन नष्ट किया, हर लिया। तहाँपर कल्पना उकार मात्राने भक्तोंका घर लूटा। अनुमान मकार मात्राने योगियोंके घर चोरी की; और भास, अर्ध मात्राने ज्ञानियोंका घर लूट लिया। सबोंका सर्वस्व धन हरण करके चम्पत हुए। चारों मात्राएँ ढूँढ़ करके मिलाया, तो बिना मूड़का चोर ॐकार ब्रह्म बना। बिना पारख सो किसीको पहिचान नहीं पड़ा कि, "माना हुआ प्रणव शब्द ब्रह्म तो नरजीवकी कल्पना मिथ्या भ्रम मात्र है। मैं जीव उसको जानने-माननेवाला उससे न्यारा हूँ !" यह चीन्हे बिना धोखेमें पड़-कर सब नष्ट हो गये ॥ १२२२ ॥

साखीः— ध्यान धरहिं बहु भाँतिसो * निरखहिं शोभा ईश ॥
[२३०] आभा झलकी देहकी * मृत्यु समय बिनु शीश ॥ १२२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बेपारखी योगी, ज्ञानी और भक्त लोगोंने जगत्-

कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि कोई मानकर उसका साक्षात्कार करके प्राप्ति करनेके वास्ते नाना साधना करके बहुत प्रकारसे धारणा-ध्यान किया, समाधि लगाया। लक्ष्य एकाग्र करके ध्येयरूपका ध्यान करते-करते तदाकार वृत्ति किया। ईश्वरकी शोभा या सौन्दर्य देखनेके लिये ही यह सब साधना किया। उन्होंके मनमें ईश्वर दर्शन करनेकी अभिलाषा कल्पना लगी रही। जब ध्यानादि साधना विशेष किया, तब नाद-बिन्दुका सङ्घर्ष होनेसे स्थूल-सूक्ष्म देहोंके तत्त्वोंका प्रकाश, आभा=ज्योतिका प्रकाश झलका या दिखलाई दिया; उसे ही ईश्वरका दर्शन मानकर देखते हुए मस्त रहते हैं। "सर्वश्रेष्ठ द्रष्टा चैतन्य मैं दृश्य भाससे न्यारा हूँ!" यह पारखबोध हुए बिना जड़ाध्यासी होकर मर जाते हैं। अथवा बहुत तरहसे ध्यान करके इस देहकी शोभाको ही स्थूल-सूक्ष्मरूपसे ईश्वरकी शोभा समझकर देखते रहते हैं। अपने देहका प्रतिबिम्ब ध्यानमें झलका। तहाँ शिर सहित दिखते रहनेपर आयु बाकी रहनेका और बिना शिरके धड़ मात्र दिखे, तो मृत्यु होनेका समय नजदीक होता है, ऐसी कल्पना किया है। अथवा कोई लोग आकाशमें छाया पुरुषका दर्शन करनेका अभ्यास करते हैं। वे स्नान, सन्ध्या, पूजा करके दोपहरको छतपर या आँगनपर घाममें जाकर सूर्यकी ओर पीठ करके खड़े-खड़े जमीनमें देहकी छाया देखकर कुछ जाप, ध्यान करके ऊपर आकाशमें देखते हैं। नीचेके समान देहकी आभा=छाया ऊपर भी दिखती है; और मृत्युके समय नजदीक होनेपर ऊपरकी छायामें शिर नहीं दिखता है। बिना शिरके छाया पुरुष दिखाई देनेपर मरणकाल नजदीक आ गया जानना चाहिये। ऐसी कल्पना करके बिना शिर-पैरकी मन-मानन्दी-ॐकार, ब्रह्म, ईश्वरादिके भ्रममें पड़-पड़ करके जड़ाध्यासी हो करके मरकर चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं, बिना विवेक।। १२२३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६५ ॥ [चौपाई- १६ । साखी- ७ है] ॥ ❀ ॥

१. त्रिदेवा त्रय गुण अधिकारी * बहुविधि रूप कला बपुधारी ॥ १२२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालके जगत्में त्रिगुणी मनुष्यादि प्राणी अनेकों उत्पन्न हुए। देह धारण करके नाना कर्म, कला-कल्पना विस्तार किये; फिर शरीर छूटनेपर आवागमन चक्रमें जा पड़े। ऐसे ही सदासे होता चला आ रहा है। पूर्वमें किसी जमानेमें मनुष्य देहधारियोंमें विशेष त्रयगुणके अधिकारी=रजोगुणी ब्रह्मा, सत्त्वगुणी विष्णु और तमोगुणी महेश, ये ही नाम वाले त्रय देव कहलाते रहे। वे कर्म, भक्ति और योग मार्गोंके अधिकारी हुए। बहुत प्रकारके रूप, कला, भेष, सिद्धान्त देह रहे तक प्रचार किये। फिर शरीर छूटनेपर अध्यासवश अन्य खानीमें जाकर देह धारण कर लिये ॥ १२२४ ॥

२. तीन पुत्र जननीके पासा * विद्या बुद्धि करै परकाशा ॥ १२२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों पुत्र आद्या भवानी-जननीरूप माताके पासमें रहे। छोटेपनमें ही पिता मर गया था, तो माताने ही उन्होंका पालन-पोषण किया था। सो माताके पासमें ही रहकर नाना विद्याओंको पढ़ करके बुद्धिको प्रकाश किया। मायाने उन्हें चतुर, चालाक, विद्वान् कर दिया था। फिर उन्होंने बुद्धि अनुसार विद्याओंको फैला-कर प्रकाश किया। अथवा वाणीको उत्पन्न करनेवाले मायारूप गुरुवालोगोंके पासमें त्रिगुणी पुत्ररूप शिष्यवर्ग रहकर नाना विद्याओंको पढ़कर अपनी-अपनी बुद्धिका प्रकाश करते हैं। किसी एक सिद्धान्तको निश्चय करके प्रगट करते हैं या अनुमानका प्रकाश कर ही रहे हैं ॥ १२२५ ॥

३. जननी और कला सब जाने * जीव ठगौरी नहिं पहिचाने ॥ १२२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मत-पन्थोंके उत्पन्नकर्त्ता गुरुवालोग, वेद-वेदान्त, चौदह विद्या, चौंसठ कला और सब प्रपञ्चोंकी बात तो जान गये। परन्तु, निज पारख स्वरूपको तो जाने ही नहीं हैं; और ठगौरीरूप यह वाणी-कल्पना, विषयादि ही हम सब जीवोंको बन्धनदायी हैं,

यह बात तो वे कुछ पहिचानते ही नहीं हैं, इसीसे गुरुवालोग यम कहलाते हैं। अथवा जननी = अष्टाङ्गी आदिमाया खानी-वाणीरूप भव-बन्धनोंकी और सब कला-चालाकी तो जानती थी। परन्तु, मुक्तिमार्ग पारखको नहीं जानती थी। इसीसे उसने जीवोंको खूब ठगा; और उसके जीवरूप तीन पुत्रोंने भी यह नहीं पहचाना कि, आदिमाया वा माता हम लोगोंको ठग रही है वा भुला रही है। इसीसे विषय भोग और वाणी कल्पनामें लगकर वे तीनों पुत्र भी खूब ठगाये गये। उन्होंने भी दूसरोंको खूब ठगाई किया। अभी तक उन ठगोंकी प्रणाली चली ही आ रही है। पारखी श्रीसद्गुरुकी दया होनेपर ही कोई उससे बच पाते हैं ॥ १२२६ ॥

४. चितवत अस्ति नास्तिके ओरा ❀ तामस तमके रूप घनघोरा ॥ १२२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अस्ति = सत्य चैतन्य जीव निज पारख स्वरूपकी स्थिति न होनेसे नास्ति = मिथ्या ब्रह्म-ईश्वरादि तथा नाशवान् विषयादिकी तरफ झुककर चिन्तन करने लगे। तब तामस = अभिमानसे तम अज्ञान-अन्धकारके फैलाव होनेसे एक ब्रह्मके रूपकी कल्पना किया; कोई आप ही ब्रह्म बने। वही घनघोर भ्रम बादलोंसे वाणीरूप पानी पड़ा, खूब उपदेशोंकी वर्षा किये। सबको भिंजाकर भुलाये हैं। उन्हीं तरङ्गोंमें बहकर धोखा-अध्यासमें डूब मरे, कहीं बच नहीं पाये; ब्रह्म बनकर भी चौरासी योनियोंमें ही पड़े हैं ॥ १२२७ ॥

५. बेकार भाव इच्छा उतपानी ❀ नाम रूप गुणमय प्रगटानी ॥ १२२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! काम, क्रोधादि विकार वृद्धिकी भावनासे विषय भोगोंकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसीसे मनका नाम, शरीरका रूप, तन-मनका गुण उत्पन्न हुआ; और नाम रूप तथा गुणकी जगहमें सत्त्व, रज और तमरूप वृत्ति प्रगट हुई। फिर अनेकों कर्म-कुकर्ममें प्रवृत्ति हो गई। अथवा जो ब्रह्म माना है, सो बेकार मिथ्या है। परन्तु, उसी ब्रह्मकी भावनासे इच्छारूप माया उत्पन्न हुई। फिर उस मायासे नाम, रूप, गुणमय सारी त्रिगुणी सृष्टिकी उत्पत्ति होकर प्रगट हो गई। तथापि ब्रह्म निराकार, निर्लिप्त, सर्वत्र व्यापक है, ऐसी कल्पना किया है। अथवा रूप = ब्रह्मा, नाम = विष्णु, गुण = महेश, ये त्रिगुण स्वरूपी इच्छा मायासे बेकार = निरञ्जन पुरुषकी भावनाके अनुसार उत्पन्न होकर प्रगट हुए हैं; ऐसी कल्पना किया है ॥ १२२८ ॥

६. तेहि भग लिङ्ग अनन्त उपाना ❀ आपुहि जहाँ तहाँ छितराना ॥ १२२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पहिले ब्रह्म आप ही स्वयं एक था, उसने इच्छा करके भगाकार मायारूप स्त्रीको प्रगट करके लाया। फिर उसके सङ्ग भोग-सम्बन्ध करके भगाकार प्रकृति नारी और लिङ्गाकार पुरुष ऐसे पुत्र-पुत्री अनन्तों सन्तानरूप जगत् सृष्टिको उत्पन्न किया। फिर चराचररूप संसारमें जहाँ-तहाँ आप ही ब्रह्म बहुत रूपमें फैल गया। तो भी उसकी कुछ हानि नहीं है, ब्रह्म तो ज्यों-का-त्यों ही व्यापक है; ऐसी कल्पना किया है। अथवा वही खानी-वाणीके जड़ाध्यासी जीवरूप स्त्री-पुरुषोंके सम्भोगसे गर्भ रहकर वासनाके अनुसार भगवाली-पुत्री और लिङ्गवाला पुत्र, ऐसी अनन्तों सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं। आप ही चैतन्य जीव विषय वासनावश पशु, पक्षी, उष्मजादि योनियोंमें जहाँ-तहाँ छितराकर देहधारी हो दुःख भोग रहे हैं। अथवा उन्हीं भ्रमिक मनुष्योंने भगाकार नवधा भक्ति तथा लिङ्गाकार अष्टाङ्ग योगादि अनेकों साधना-मार्ग उत्पन्न किया है; आप ही धोखेमें पड़कर जहाँ-तहाँ छियान्नवे पाखण्डोंमें फैल गये हैं, सो जड़ाध्याससे जीव चौरासी योनियोंमें छितरा रहे हैं ॥ १२२९ ॥

७. साहेब आपु और सब दासा ❀ जीवनधन पूजा निज गाँसा ॥ १२३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सर्वश्रेष्ठ चैतन्य स्वरूपको अपने-आप भूल करके सब मनुष्य मायाके गुलाम वा दास, नीच बने हैं। उनमें गुरुवालोग चालाकीसे अपने-आप तो साहेब = श्रेष्ठ, स्वामी, गुरु, महात्मा आदि महान बने हैं, और सब लोगोंको भ्रमा करके अपन।

शिष्य, दास, सेवक, नौकर-चाकर बना लिये हैं। तब कहने लगे कि, संसारके आप ही एक परमात्मा, साहेब, श्रेष्ठ मालिक हैं; और सब तो आपके दास हैं। हम तुम्हें परमेश्वर प्राप्तिका उपाय बतलाते हैं। गुरु-पूजाके भेंटमें तन, मन, धन हमें अर्पण करो ! इत्यादि कहकर जीवोंके ज्ञानधन, जानपना, साक्षीदशाको भी पूजाके बहाने लूटकर उन्हें धोखेमें गाँस दिये हैं। अथवा जीवनधन=हंसके सद्गुण-लक्षण मुक्ति सहायक सम्पत्तिको जड़मूर्त्ति आदिकी पूजामें लगाकर नष्ट कर दिये हैं। निज स्वार्थके लिये गुरुवालोगोंने शिष्योंको नाना फन्दोंमें फँसाकर गाँस दिया है या अरुझा दिया है ॥ १२३० ॥

८. महा विकारी दुःखिया आपू ❀ निज सुख हेतु प्रजा सन्तापू ॥ १२३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अपने ऊपर कोई ब्रह्म-ईश्वरादि जो माना है, सो तो भ्रम कल्पनाका महान विकार, कसर भरा हुआ है। कोई आप ही ब्रह्म बनकर चौरासी योनियोंमें महा विकारी दुःखिया हो रहे हैं। राजा बने हुए पाखण्डी गुरुवालोग अपने सुख, ऐश-आराम, मौज-मजाके लिये नाना प्रपञ्च लगा करके तन, मन, धनादि हरण कर रहे हैं। उसी कारणसे प्रजा=शिष्यवर्ग सन्ताप भोग रहे हैं। यानी अपने सुखके वास्ते शिष्योंको नाना सन्तापमें डालकर गुरुवालोग सता रहे हैं; पीड़ा दे रहे हैं ॥ १२३१ ॥

९. राजके हेतु ठगौरी लाई ❀ कर्म धर्म मत जीव बौराई ॥ १२३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे राजा लोग राज्य व्यवस्था ठीकसे चलानेके लिये कूटनीतिकी ठगाई लगाते हैं। तैसे ही गुरुवाईका राज्य शासन चलानेके वास्ते इसीकारणसे ठगौरी=वाणी कल्पनाका घेरा लगाकर शिष्योंको उसीके भीतर डाल रहे हैं। तहाँ कर्म=कर्म मार्ग, धर्म=उपासना मार्ग, मत=योग मार्गमें जितने जीव पड़े, वे सब भ्रमिक हो करके बौरा गये हैं। उन तीनोंका नशा-विष जीवोंको पागल बना देता है; विवेकको नाश कर देता है। वे बौरे जीव अन्तमें पतित होकर गर्भ कूपमें गिर पड़ते हैं ॥ १२३२ ॥

१०. इच्छारूप सो प्रगटी नारी ❀ नहिं जाने राजा ठगहारी ॥ १२३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इच्छारूपसे कल्पना होकर जो नारी=वाणी प्रगट हुई है, सोई वाणी दृढ़ा करके राजा बने हुए गुरुवालोग नरजीवोंके सद्गुणरूपी धनको ठगकर हरण कर रहे हैं। परन्तु, इस भेदको अबोध मनुष्य कोई जानते ही नहीं हैं। इसीसे सहज ही उनके वशमें हो जाते हैं। अथवा इच्छारूप सोई नारी आदिमायाके गर्भसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों पुत्र उत्पन्न हुए। प्रगटमें माताको ही वे जानते हैं; पितारूप राजाको तो वे पहिचानते ही नहीं हैं। इसीसे ठगाई-प्रपञ्चमें पड़कर वे हार गये. तो निरञ्जन-निराकार ब्रह्म मान करके भूलमें पड़े हैं। अथवा राजा=गुरुवालोग निज पारख स्वरूपको नहीं जानते हैं। ठगाईमें लगकर हंसपदको हार गये। मनकी इच्छासे जो रूप भास प्रगट हुआ, सोई अनाड़ी लोगोंने निश्चय करके नारी=वाणीका प्रगटमें प्रकाश किया, सो ठगाईको बिना पारख कोई जान नहीं पाते हैं ॥ १२३३ ॥

११. त्रिदेवा पूछै महतारी ❀ कैसे सृष्टि भया अधिकारी ? ॥ १२३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारका भेद कुछ जान न पाकर एक समयमें त्रिदेवा=ब्रह्मा, विष्णु और महेश, वे तीनों मिलकर उनकी माताके पासमें गये; फिर विनयपूर्वक ऐसा पूछने लगे कि, हे जगज्जननी ! आदिशक्ति माताजी ! यह स्थावर-जङ्गम, जड़-चैतन्यरूप सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि कैसे ? किसप्रकारसे ? कब ? और किससे हुई है ? सृष्टिके अधिकारी=विशेष करके कारण या कर्त्ता कौन हैं ? कहाँ पर रहते हैं ? और हम तीनों भाईकी उत्पत्ति किससे हुई ? कैसे हुई ? पिता हमारे कौन थे ? यह सृष्टि उत्पत्तिका प्रकरण खुलासा करके हमें अधिकारी जानकर कृपादृष्टि करके कहिये ! समझाइये ! ऐसा प्रश्न किया ॥ १२३४ ॥

पं० ग्र० टीका; १६८—

१२. धर्मराय प्रथम उपदेशा ❀ पुरुष अरूप शून्यमें बासा ॥ १२३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! धर्मराय या निरञ्जनने मृत्युसे पहले ही मायाको उपदेश देनेकी शैली, चालाकी बताकर समझा रक्खा था कि, मुझे साधारण मनुष्य नहीं बतलाना। ये तीनों पुत्र बड़े होकर मेरा नाम पूछेंगे, तो तुम उन्हें 'ब्रह्म-निरञ्जन' नाम बतला देना; तथा निर्गुण, निराकार, आकाशमें मेरा निवास बतला देना। मुझे ही सारे जगत्का मालिक सृष्टिकर्त्ता ठहरा देना। मेरा असली भेद कोई जानने न पावें, ऐसी युक्ति फैलाना, इत्यादि सभी बातें पुरुषकी उस आदिमायाने ध्यानमें रक्खी थी। सो पुरुषकी बातको पुष्ट, कायम करनेके लिये मायाने ऐसा उपदेश देना शुरू किया कि— हे प्यारे पुत्रो ! तुम्हारे पिता धर्मके राजा सारे जगत्के मालिक, सृष्टिकर्त्ता निरञ्जन ब्रह्म-परमात्मा हैं। सारी सृष्टिमें वे एक ही परमपुरुष परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ हैं। उनका साकार देह मायारूप कभी नहीं होता है। अरूप=निराकार ही उनका स्वरूप है। वे परब्रह्म हैं; सदा-सर्वदा शून्य आकाशमें या ब्रह्माण्डमें ही निवास किये रहते हैं। वे सब उपाधिसे परे रहते हैं। 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' उनका नाम है, ऐसा जान लो ! ॥ १२३५ ॥

१३. सोई पुरुष जगत निर्माई ❀ यह उपदेश कीन्ह तेहि माँई ॥ १२३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई निरञ्जन, निराकार, निराधार, परमपुरुष परमात्माने अपनी इच्छासे तुम्हें और यह सारा चराचर जगत्का भी निर्माण किया है वा बना करके उत्पन्न किया है। वही परमेश्वर तुम्हारा पिता और सब विश्वका भी परमपिता है, सबका प्रतिपालक है। इसप्रकारसे यही उपदेश-शिक्षा ब्रह्मादिकोंकी माता महामाया आदिशक्ति, अष्टाङ्गीने दृढ़ा करके समझायी; वही बात पक्की कर दी। अथवा मायारूप गुरुवालोगोंने यही उपदेश जगत् जीवोंको किया है कि, सोई जगत्कर्त्ता परम पुरुष परमात्माने ही यह सारे जगत्को उत्पन्न किया है; और उसीके आधारसे सब संसार टिक रहा है, इत्यादि बताकर भ्रमाया है ॥ १२३६ ॥

१४. शून्य समाधि लगावहु जाई ❀ दर्श पुरुष तबहीं प्रगटाई ॥ १२३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर माया वा गुरुवालोगोंने कहा कि, हे पुत्रो ! वा हे शिष्यो ! परमात्माका दर्शन करना चाहते हो, तो एकान्त स्थान गुफा, निर्जन वन, खोह आदि निरुपाधि जगहमें जा करके पद्मासन या सिद्धासन लगाकर प्राण-अपानको एकमें मिला करके ध्यान-धारण तीव्रतासे करके ब्रह्माण्डमें सुरतिको चढ़ा करके मन-पवनको एककर शून्य समाधिको लगाओ ! वहाँ बाह्याभ्यन्तर चेतना लय होकर सब विकार छूट जावेंगे, तो हृदय शुद्ध हो जायगा। तब ही परम पुरुष जगत्कर्त्ता निरञ्जन ब्रह्म साक्षात् प्रगट होकर ज्योति या आनन्द स्वरूपमें तुम्हें दर्शन देंगे; तब प्रत्यक्ष पुरुषके दर्शन कर पाओगे। फिर तो पाप-ताप सब छूटकर परमानन्दमें मग्न हो जाओगे। इसलिये जाओ ! शून्य समाधिको लगाओ ! इत्यादि बात बतलायी ॥ १२३७ ॥

१५. जेहि प्रकार माया उपदेशा ❀ हींड़त ढूँढ़त फिरत उदासा ॥ १२३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिस-जिस प्रकारसे आदिमायाने और मायारूप गुरुवालोगोंने रोचक-भयानक वाणी सुना-सुनाकर ब्रह्मादि तीनोंको और त्रिगुणी अन्य मनुष्योंको उपदेश दिया। उसीको प्रतीतिसे मानकर उदास वा विरही होकर वन, पर्वत, कन्दरा, नदी आदि चारों दिशाओंमें हींड़ते तीर्थ यात्रा करते, ढूँढ़ते हुए फिरने लगे। बाहर पानी, पत्थरके सिवाय कुछ सार नहीं मिला, तो और भी उदास हुए। फिर कहीं ठहरकर भक्ति, योग और ज्ञानादिकी नाना साधनाओंमें चलते-चलते ढूँढ़ते फिरे; नाना भटकनाओंमें पड़े ॥ १२३८ ॥

१६. खोजत पुरुष चहत सुख मूरी ❀ सो नहिं जाने देइहैं सूरी ॥ १२३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई परम पुरुष परमात्मा सर्वशक्तिमान् मानकर उसे इसलिये खोजते हैं कि, समस्त दुःख मिटकर परमानन्द मिलेगा, इस आशासे नाना कष्ट

सहन करके भी खोजते जाते हैं। दुःखी जीव एकदम सुखका मूल बड़ाभारी अविनाशी सुख ही पाना चाहते हैं। वैसा सुख स्वरूप ब्रह्मको दृढ़ कर-करा रक्खे हैं। इसीसे ब्रह्ममें मिलकर सुख पाना चाहते हैं। उसीकी सब पुरुष लोग खोज-तलाश कर रहे हैं। परन्तु, सो यह नहीं जानते हैं कि, 'यह हमारा ही कल्पना भूल-भ्रम मात्र है।' विषयमें और ब्रह्ममें सुख माना हुआ धोखा ही है। माया तो हमें धोखा देकर शूलीपर ही डालेगी। सो यही खानी-वाणीका अध्यास हम जीवोंको गर्भवासादि शूलीपर डाल करके दुःख ही भुगतायेगा। बिना पारख यह नहीं जाने। इसीसे ब्रह्मादिसे लेकर सब जन भ्रम-भूलके चक्रमें गिर पड़े हैं ॥ १२३९ ॥

साखीः— शून्य समाधि लगायके ❀ रहैं प्रीति लौलाय ॥
[२३१] झलकी बिम्ब शरीरकी ❀ मगन भये तिहुँ भाय ॥ १२४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अष्टाङ्गी माया और गुरुवालोगोंके उपदेशको सच्चा मान करके तीनों पुत्र और अन्य लोगोंने प्रेम लगाकर भक्ति-योगादि साधनाओंमें लौ लगाकर प्रीति-प्रतीति दृढ़ किया। तो एकान्त गुफा वगैरह स्थानमें जाकर दश मुद्रा साधकर पञ्च प्राणको ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर शून्य समाधि लगा करके बैठे रहे। प्रीति ज्यादा बढ़नेसे चित्तको शून्यमें लय करके कई घन्टों तक बेहोश रहने लगे। ऐसी साधना विशेष बढ़ जानेसे नाद-बिन्दुके घर्षणसे बिम्बरूप शरीरका प्रतिबिम्बरूप ज्योति-प्रकाश, चमचमाहट वा झलझलाकार प्रकाश झलकी = दिखलाई दिया, सोई भास तत्त्वोंका प्रकाश देहकी छाया निहारकर तथा निवृत्तिमें आनन्द पाकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव— ये तीनों ही भाई अत्यन्त मग्न-मस्त हुए, तथा योगी, ज्ञानी और भक्त भी वैसी ही भावना करके मग्न हुए। उन्हें यह खूब भाया वा बहुत अच्छा लगा ॥ १२४० ॥

साखीः— जब पूँछहिं प्रतिबिम्बसो ❀ कहै न कोई भेव ॥
[२३२] मोह अन्ध व्याकुल भये ❀ भटकी थके त्रिदेव ॥ १२४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जब वे साधक त्रिगुणी मनुष्य और त्रिदेवोंने प्रतिबिम्बरूप ज्योति-प्रकाश देखा, तो उसीको परमात्माका दर्शन हुआ, ऐसा समझकर उस प्रतिबिम्बसे तब पूछने लगे कि—"हे परमपिता परमात्मा! हे भगवान्! हम तो आपके ही पासमें सर्वदा रहना चाहते हैं। क्या कसूरसे हम जगत् दुःखोंमें आ पड़े? कब इन दुःखोंसे छूटेंगे? यह दुःखमय संसार आपने कब और क्यों बनाया? इसका प्रलय कब होगा? हमें छोड़कर आप यहाँ शून्यमें आकर क्यों रहने लगे? कृपा करके इन सब बातोंका भेद बता दीजिये!" इत्यादि प्रेमसे प्रश्न किया। परन्तु, जड़ भास प्रतिबिम्ब क्या उत्तर कहेगा? उसने कुछ भी भेद नहीं कहा; कुछ उत्तर नहीं दिया। वे रोये, गाये, कराये, नाचे-कूदे, तो भी सार कुछ नहीं निकला; सब प्रयत्न व्यर्थ हो गया। कुछ भेद समझ नहीं पाये। तब मोहमें अन्धे होकर व्याकुल हुए। ज्योति-प्रकाश आदि जो देखा था, उसमें बड़े मोहित हुए। कुछ नहीं सूझा, विवेकदृष्टि फूटी, तो अन्धे हुए। चाहना पूर्ण नहीं हुई, भेद कुछ जान नहीं पाये, तो व्याकुल-दुःखी हुए। इसप्रकारसे मनकी कल्पनासे नाना अभ्यास करके भटकते-भटकते ब्रह्मा, विष्णु, महेश वा योगी, ज्ञानी, भक्त त्रिगुणी मनुष्य सब हार मानकर थक गये, जड़ाध्यासी हुए। जड़-चैतन्यका भेद पारख बिना कुछ भी जान नहीं पाये। इसीसे भव-चक्रमें ही गिर पड़े और पड़ रहे हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुका सत्यज्ञान लेकर अपना कल्याण करना चाहिये। उपरोक्त बातको सिद्ध करनेके लिये यहाँपर बीजक सद्ग्रन्थका प्रमाण दिया है ॥ १२४१ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ३४६ से ३४९ तक ॥ ❀ ॥

साखीः— ब्रह्मा पूछै जननीसे ❀ कर जोरे शीश नवाय ॥
[२३३] कौन वरण वह पुरुष है ❀ माता! कहु समुझाय? ॥ १२४२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! [जीवमुखः—] जननी = जन्म देनेवाली

मातारूप आदिमायाके पास वा समीपमें एक समय ब्रह्मा गया; और माताके चरणोंमें शिर टेककर या शिर नवाकर दोनों हाथोंको जोड़कर विनयपूर्वक भक्ति-भावसे ब्रह्माने इसप्रकार पूछा कि—हे जगज्जननी मातेश्वरि ! वह परम पुरुष परमात्माका वर्ण, आकार-प्रकार, रङ्ग-रूप, चिह्न कौन है ? वह सृजनहार पिता परमात्मा कहाँपर रहते हैं ? वह जगत्कर्त्ता परमेश्वरका दर्शन हमको कैसे मिलेगा ? हम उन्हें किस विधिसे मिलकर कैसे पहिचान सकेंगे ? यह सब बातोंका भेद खुलासा करके हे माताजी ! मुझे समझा दीजिये ! रास्ता बता दीजिये ! तो मैं उसीप्रकार जा करके परम पुरुषसे मिलूँगा, इत्यादि प्रश्न ब्रह्माने किया। इसका उत्तर मायाने नीचेकी साखीमें बतलाया है, सो सुनिये ! ॥ १२४२ ॥

साखीः— रेख रूप वै है नहीं ❀ अधर धरी नहिं देह ॥

[२३४] गगन मण्डलके मध्यमें ❀ निरखो पुरुष विदेह ॥ १२४३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! [मायामुखः—] तब ब्रह्माकी माताने ऐसा उत्तर दिया कि— सारे सृष्टिका कर्त्ता परमतत्त्व-परमात्मा सृजनहार पुरुष निरञ्जन ब्रह्म हैं। हे ब्रह्मा ! वही तुम्हारे भी पिता हैं। उनकी रेख=रेखा, चिह्न, लक्षण, तथा रूप=रङ्ग-रूप, आकार-प्रकारका विकार कुछ भी नहीं है। वे तो सदा निर्विकार, निराधार रहते हैं। अधर=आकाशवत् निराकार-निराधार निरञ्जन पुरुष सदा विदेह रहते हैं। वे कभी भी पिण्ड=देह धारण नहीं करते हैं। उन सर्वशक्तिमान्को देह धारण करनेका काम ही नहीं पड़ता है; और वे विदेह=निराकार परम पुरुष सदा गगन मण्डलके मध्यमें आकाशवत् परिपूर्ण व्यापक रहते हैं। यहाँ शरीरमें गगन=ऊपर ब्रह्माण्ड स्थानके बीचोंबीच शून्य भागमें ब्रह्म ज्योतिके स्वरूपमें आप रहते हैं। वहीं महान ज्योति-प्रकाशरूपमें आप रह रहे हैं; वे ही कर्त्ता पुरुष हैं। अष्टाङ्ग योग साधकर ध्यान-समाधि द्वारा तुम उनका दर्शन करो ! जब दर्शन पाओगे, तब तुम्हारी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी। ऐसी वाणी कल्पना महामाया माताने ब्रह्मादिको दृढ़ करा दी, अतः बिना विवेक उन्होंने भी विश्वास करके वही बातको सत्य मान लिया ॥ १२४३ ॥

साखीः— धरे ध्यान गगनके माँहीं ❀ लाये बज्र किंवार ॥

[२३५] देखी प्रतिमा आपनी ❀ तीनिउ भये निहाल ॥ १२४४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! माताके वचनमें दृढ़ विश्वास करके ब्रह्मादिकोंने तब ध्यान अभ्यास, यागसाधना किया। तहाँ पहले सिद्धासन या बज्रासन लगा करके बैठा। फिर मूलबन्ध, उड़ियानबन्ध और जालन्धरबन्ध करके नौ नाड़ीको खींचकर, दशवायुको ऊपर चढ़ाकर दशों द्वारोंके पटको बन्द कर दिया। बहिर्वृत्तिको उलटाकर अन्तर्वृत्ति किया। इङ्गला-पिङ्गलाको सम करके सुषुम्ना नाड़ीके सङ्ग-साथमें पिण्डाण्डसे सुरति खींचकर ब्रह्माण्डमें चढ़ाया। तब वहाँ एक ज्योतिरूप प्रकाश दिखा। दश अनाहद ध्वनि शब्द घनघोर सुनाई दिया। श्वासकी आवाज तीव्रतासे बढ़ी, श्वास दण्डायमान हुआ, मूर्च्छा आई; शून्य समाधि लगी। फिर होश हुआ, तो वही ज्योति-प्रकाश दिखाई दिया। पिण्डकी शक्ति ब्रह्माण्डमें लय हुई, सोई अपने देहके प्रतिबिम्ब स्वप्नवत् ज्योति आदिका भास हुआ। ऐसे अपने ही देहके जड़ प्रतिबिम्बको देखकर द्रष्टाको भूल करके दृश्यको सत्य मानकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों ही निहाल=मग्न-मस्त हुए। उसे परमपद प्राप्ति मान करके गाफिल हुए। वही ब्रह्मानन्द सुखमें उन तीनोंने स्थिति की। उसीको जगत्कर्त्ताका स्वरूप मानकर निश्चय किया। माताके वचन प्रमाणसे अनुभव हुआ, तब तो पक्का विश्वास हुआ; तब ब्रह्मादि तीनोंने आदिमाया माताकी स्तुति की कि—हे मातेश्वरि ! आप धन्य हो ! धन्य हो ! आपकी ही कृपासे हमने भी जगदीश्वरके दर्शन कर पाये हैं। इत्यादि अनेकों तरहसे प्रशंसा किये, महात्म्य बढ़ाये, सोई उपदेश उन तीनोंने ऋषि-

मुनियोंको भी दिया। वे सबोंने उसी प्रकारसे संसारमें परम्परासे वाणी फैलाते आये। बिना पारख मिथ्या भास धोखेमें ही सब गिर पड़े; भ्रमिक होकर आवागमन-चक्रके अधिकारी हुए ॥ १२४४ ॥

साखीः— ये मन तो शीतल भया * जब उपजा ब्रह्मज्ञान ॥

[२३६] जेहि बसन्दर जग जरै * सो पुनि उदक समान ॥ १२४५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! ध्यान-समाधिमें वृत्ति लय होनेसे आनन्दका अनुभव हुआ; तो ये मन उसीमें उन्मुन होकर समाया। तब शीतल= शान्त, निवृत्ति, शून्य स्थिति हुई। फिर जब ध्यानसे उठा, वेद-वेदान्तमें मन लगाया, तब ब्रह्मज्ञानका बोध उत्पन्न हुआ। ब्रह्मको सच्चिदानन्दघन अद्वैत माना, और स्वयं आनन्दरूप ब्रह्म बना। अनुभव भास तथा ग्रन्थ प्रमाण मिलनेसे उनका मन शीतल-स्थिर हो गया; कल्पनामें भूल गये। परन्तु, जिस ब्रह्मपदको सुख स्वरूप शीतल माना है, सो तो वैसा नहीं है। उलटा दुःखोंका घर गरम अग्निके समान मनुष्यपदको जलानेवाला है। क्योंकि, ब्रह्मसे जगत् और जगत्से ब्रह्म होता ही रहता है। ब्रह्मको ही उत्पत्ति-प्रलयका कारण ठहराया है, तो फिर वह जलके समान शीतल सुख-रूप मुक्तिदायी कैसे हुआ ? यदि ब्रह्म निरुपाधि सुखरूप होता, तो दुःखरूप उपाधि जगत्की सृष्टि ही उससे न होती। ब्रह्मसे पैदा हुआ यह जगत्में दुःख ही भरा है, तो ब्रह्ममें सुख कहाँसे आवेगा ? जिस बसन्दर=अग्निवत् ब्रह्म कल्पनामें सारे जगत्के जीव जल करके दुःखी हो रहे हैं; सो उसको ही फिर भ्रमिक लोग शीतल-सुखरूप बतलाकर धोखेमें डालते हैं। गाँवमें आग लगनेपर कोई मूर्ख यदि खौलता हुआ गरम पानीमें घुसकर ठण्ढी या सुख चाहे, तो क्या वह पा सकेगा ? नहीं पा सकेगा; किन्तु, मर जायगा। तैसे ही जगत्को दुःख जानकर छोड़ा, और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके मन शान्त किया। तो भी उदक=पानी अर्थात् वाणीके प्रमाणसे ब्रह्म तो व्यापक होनेसे जगत्रूप ही ठहरा, सो क्या फायदा उठाया ? फिर जीव जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही समा गये या आवागमन चक्रमें ही समा रहे हैं। अतएव यह सब परख-कर त्याग करके पारखपदमें ठहरना चाहिये ॥ १२४५ ॥

साखीः— लोभ मोह काम क्रोध * माया गागरि फूटि ॥

[२३७] कहैं कबीर हरिहूँ मिले * दुग दुग नाहीं छूटि ॥ १२४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! साधक लोगोंने जब योगादि अभ्यास किया और समाधि लगाया, तब लोभ, मोह, काम, क्रोधादिके वेगका अभाव हुआ। माया-कायाकी गागरि=इन्द्रियोंके विषयादि भी फूट गये, यानी समाधिमें स्थूल विषय सब छूट गये। और गुरुवालोगोंके कहे प्रमाणसे ज्योति-प्रकाशादि भी देखा, जिसे हरि=परमात्माका मिलना मान लिया। तो भी उन्होंके अन्तःकरणसे दुगदुगी=भ्रान्ति, सन्देह या दुविधा कुछ भी नहीं छूटी। जीव, ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिकी मानन्दीमें भूले ही रहे। अथवा देह रहते ही पारख स्वरूपका बोध नहीं हुआ। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार-अध्यास भी सर्वथा नष्ट नहीं हुआ; विषयासक्ति भी नहीं गई। और मायाकी गागरि=यही घट वा चोला तो छूट गया। और गुरुवा-लोगोंने बताया हुआ हरि भी नहीं मिला; सद्गुण-लक्षणोंको हारकर धोखेमें मिले, इसीसे जन्म-मरणकी दुगदुगी नहीं छूटी। अध्यासवश योगी, ज्ञानी, भक्त और संसारी लोग सब कोई भवचक्रमें ही पड़े हैं ॥ १२४६ ॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— ६६ ॥ [चौपाई-१२ । साखी-२ । रमैनी-१ । साखी-१ है]॥❀॥

१. कला अनन्त पावै नहिं पारा * निश्चय बोलै अगम अपारा ॥ १२४७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मनुष्योंने अनन्त कला-कल्पनाका विस्तार

किया है। तो भी जड़-चैतन्य, सत्यासत्यका भेद कुछ यथार्थ समझ नहीं पाया। जिस ब्रह्म, ईश्वरादिकी खोजके लिये नाना कला-कौशल प्रगट किया, उसका वार-पारमें कहीं भी पता नहीं पाया, तब "उसका अन्त नहीं पाया जा सकता है" ऐसा निश्चय करके बोला कि—"यह ब्रह्म-परमात्मा वास्तवमें अगम, अपार, अथाह, अगोचर, अवर्णनीय आकाशवत् शून्य निरञ्जन है!" ऐसा मानकर स्वतः सत्य स्वरूपको भूल गया ॥ १२४७ ॥

२. पुनि माता सो पूछत भयऊ ❀ जननी ! केहि विधि जग विस्तरयऊ ? ॥१२४८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इधर-उधर घूम-फिर करके जब कुछ समझ नहीं पाया, तब लौटकर घर आया; फिर ब्रह्मादि तीनोंने महामायाके पासमें बैठकर वही बात पूछने लगे कि, हे मातेश्वरि ! आपने हम लोगोंको जन्म दिया, पालन-पोषण करके हमारी रक्षा की, हमें बढ़ाया। अतः आपको छोड़ करके हमारा कल्याणकारी और कोई नहीं है। अतएव हमारे सन्देहको आप मिटा दीजिये ! हे जननी ! यह चराचररूप सारा जगत् प्रथम किस प्रकारसे उत्पन्न हुआ ? कहाँ-से कैसे बना ? जगत्का बीज कहाँ था ? किस पुरुषने किस भूमिमें, कैसे बीज डालकर जगत् सृष्टि किया ? सो विधिपूर्वक समझा दीजिये ! ॥ १२४८ ॥

३. कस भये हम कहाँते आये ? ❀ केहि कारण यह जगत् उपाये ? ॥ १२४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर ब्रह्मादिकोंने कहा— हम कैसे उत्पन्न हुए ? कहाँसे या किस ठिकानसे यहाँ आये ? किस द्वारासे हम लोग कैसे जन्म लेकर आये ? किस कारणसे यह सारा जगत्की उत्पत्ति हुई है ? हमारा जन्म किस कारणसे, किस कार्यके लिये हुआ ? किस निमित्तसे और किस उपादान कारणसे यह जगत् और देहादि पैदा हुआ है ? यह सब बात अभी तक हमारी समझमें नहीं आयी, इसका भेद सब समाधान करके बता दीजिये ! ॥ १२४९ ॥

४. खोजत खोजत अन्त न पाया ❀ माता ढूँढ़त दहुँदिश धाया ॥ १२५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मादिकोंने कहा— हे मातेश्वरि ! आपके कहे मुताबिक साधनाएँ करके परम पुरुष परमात्माको खोजते-खोजते बाहर दशों दिशा तक घूम-फिरकर दौड़ लगा आया। तथा देहमें दशों इन्द्रियोंको रोककर ब्रह्माण्डमें भी देख लिया; चार वेद, षट् अङ्गोंको भी देख डाला, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भी वह परब्रह्मका अन्त, पता या हद हमने जान नहीं पाया। आखिरमें हम लोग हार मान करके आपके ही समीपमें चले आये हैं ॥ १२५० ॥

५. जेहि विधि जीवन होय हमारी ❀ सोइ कहहु मैं शरण तुम्हारी ॥ १२५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मादिकोंने कहा— अब जिस प्रकारसे हमारा जीवन सुधार हो, रक्षा-कल्याण हो वा हमारा जन्म-कर्म, जीवनचरित्र जिस विधिसे हुआ हो, जिस कुल-गोत्र, जातिके हम हों, सो सब खुलाशा करके कहिये ? समझाइये ! हे मातेश्वरि ! हम तीनों भाई आपके चरणोंकी शरणमें पड़े हैं। हमारी भलाईकी बात कहिये ! ऐसा इत्यादि प्रकारसे ब्रह्माने कहकर विनय किया ॥ १२५१ ॥

६. पुत्र प्रऊढ़ युवा जब देखा ❀ उपजी कामके कला विशेषा ॥ १२५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब महामायाने उन्हें अच्छी तरहसे नीचेसे ऊपर तक सर्वाङ्गमें नजर लगा करके देखा कि, तीनोंपुत्र जवान हैं, युवा अवस्थामें चढ़नेसे वे प्रऊढ़= हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ठ, सुन्दर, शोभायमान् मोहक अङ्ग-प्रत्यङ्ग दिखाई दे रहा है। एकान्त स्थान-में वे उसके पासमें दास बनकर बैठे हैं। ऐसा प्रसङ्ग उपस्थित होनेसे अनङ्गरूप कामदेव विषय-वासना अभी तक मनमें जो गुप्त-सुप्त होकर दबी पड़ी थी, सो पुरुष देहरूप पुत्रोंके अङ्ग=युवक देहको देखकर काम-कलाका वेग प्रचण्ड होकर उठा, फिर उन्हींसे सम्भोग करानेकी इच्छा विशेष बलिष्ठ होकर उत्पन्न हुई; काम वासना तीव्रतासे जाग्रत् होकर प्रचण्ड हुई ॥ १२५२ ॥

७. कहा भोग तुम हमसो ठानो ❀ काहु बात शङ्का मति मानो ॥ १२५३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तब कामान्धिनी होकर आदिमायाने एकाएक पुत्रोंको आलिङ्गन-चुम्बन करके कहा कि— हे ब्रह्मा ! इन सब प्रश्नोंका उत्तर तो मैं तुम्हें पीछे समझा दूँगी ! परन्तु, इस समयमें तो हमको कामका वेग सता रहा है, अतः पहले तुम हमसे सम्भोग=मैथुन विषय कर्म करो ! और किसी बातकी भी मनमें शङ्का या सन्देह मत् मानो ! तुम तो बुद्धिमान् हो, ऐसा कोई संशय करनेकी जरूरत ही नहीं है। मैं तो तुम्हारा सब प्रकारसे हित ही करती हूँ ! यह निश्चयसे जानो ! फिर असली भेद तुम्हें पीछेसे बता दूँगी। अभी तो मैं जैसा कहती हूँ, वैसा करते चलो ! ऐसी-ऐसी बात आदिमायाने कही ॥ १२५३ ॥

८. भोग करत सकुचाने ब्रह्मा ❀ हरि सो सोई कीन्ह अरम्भा ॥ १२५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसी बेशरम, अधर्म, अन्यायकी बात माता आदिमायाके मुखसे सुनकर उस समय तो वह ब्रह्मा 'मातासे कैसे सम्भोग करूँ ?' ऐसा सोचकर शरमाकर बड़ा सकुचा गया। सङ्कोचके मारे सकपकाकर कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब तो प्रश्न करना और उत्तर सुनना भी छोड़कर चला गया। ब्रह्माके ऐसे अस्वीकारका लक्षण देखकर फिर आदिमायाने सो वही बात विष्णुसे भी कहना आरम्भ या शुरू कर दिया कि—"हे प्यारे विष्णु ! तुम ही हमसे सम्भोग करो, तो मैं तुम्हें ही सृष्टि उत्पत्तिका सब भेद बता दूँगी ! आरम्भसे परिणाम तककी बात समझा दूँगी। परन्तु, दृष्टान्त बिना सिद्धान्त ही कुछ नहीं बैठता है, इससे पहले हमारे सङ्गमें भोग-विलास करो !" ऐसी बातें कहीं ॥ १२५४ ॥

९. विष्णुहु जब नहिं मानी बैना ❀ तब शिव भोग करत भौ चैना ॥ १२५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'मैं मातासे कैसे भोग करूँ ?' ऐसा सोचकर जब विष्णुने भी उसकी बातको नहीं माना; उठकर बाहर चला गया, तब फिर आदिमायाने वही बात छोटे पुत्र शिव=शङ्करसे कही कि, "हे प्यारे शिव ! तूँ ही मेरे साथ सम्भोग कर ! देख ! तेरे दोनों बड़े भाइयोंने मेरी बातको नहीं माना है, सो अच्छा नहीं किया है। उन्हें पीछे पछताकर गिरना ही पड़ेगा। तूँ ही मेरा प्रिय कार्य करके श्रेष्ठ बन ! जगत् उत्पत्तिका सारा भेद मैं तुझे ही बता दूँगी। तूँ मेरा सबसे प्यारा होगा।" इत्यादि कहा; ऐसा फायदा देख-सुन करके तामसी, निर्बुद्धि, शिवने महा-मायाकी उस बातको तुरन्त ही मंजूर कर लिया; और चैनसे सम्भोग, विषय-विलास कर लिया। अथवा शङ्करको अपनी बात मानकर भोग करनेमें राजी जानकर महामायाने बड़ी खुशी प्रगट की। तब शिवके साथ ही प्रथम सम्भोग कराके आनन्दित हुई ॥ १२५५ ॥

१०. देखि भोग शिव बहु ललचाने ❀ विषय भोग झगरा सो ठाने ॥ १२५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विषय भोगोंमें बहुत प्रकारके क्रीड़ा-विलास या विषयानन्दादि देखकर भोग करके शिव तो और भी बहुत-बहुत भोगने लगा; बहुत लालची हुआ। उधर ब्रह्मा और विष्णुने देखा कि, बात न माननेसे माता अब हमसे प्रेम भी नहीं करती है, और खान-पान आदि सब बातोंमें तिरस्कार करती है; शिवसे ही प्रेम करती है। बड़े मौजसे सब प्रकारसे शिव भोग-विलास कर रहा है। जब शिवको ही कोई दोष नहीं लगेगा, तो हमको क्यों दोष लगेगा ? ऐसा सोच-समझ कर और भोग-विलास देखकर वे दोनों भी बहुत ललचाये या लुब्ध हुए। क्योंकि, चढ़ती जवानीमें होनेसे काम-वासना उनकी भी प्रचण्ड हो आई। तब फिर विषय भोगनेके वास्ते उन दोनोंने शिवसे झगड़ा करनेका निश्चय किया। और "हमने नहीं भोगा, तो तुम ही क्यों अकेले ही विषय भोगते हो ? उसमें तो हमारा भी हिस्सा है।" इत्यादि कहकर वाद-विवाद करके झगड़ा, टन्टा फसाद उत्पन्न किया ॥ १२५६ ॥

११. साझा तीहुँ भाई मिलि कीन्हा * लाज मिटाय विषय रस लीन्हा ॥ १२५७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर उन्होंने कहा कि, घरमें झगड़ा होना तो ठीक नहीं है। तीनों भाई मिलकर यह सलाह करो कि, अब क्या करना चाहिये? फिर तीनोंकी यह राय मिल गयी कि, चलो इसका फैसला मातासे ही करायें। माता-पिताकी सम्पत्तिमें हम तीनों ही भाई साझीदार वा हिस्सेदार होते हैं। तो उसमें हिस्सा-भाग सबोंको बराबर-बराबर मिलना चाहिये। ऐसा तै करके महामायाके पासमें वे तीनों साथ-साथ चले गये। अपने झगड़ा होनेका कारण सुनाये; तथा फैसला कर देनेको मातासे बोले। तब तो आदिमायाने कहा कि, मैंने तो तुम दोनोंको पहले ही कहा था, उस वक्त तुम दोनोंने बात नहीं मानी, इसमें तो गलती तुम्हारी ही थी। खैर, अभी तुम्हें सुबुद्धि आई, मेरे पास आये हो, सो ठीक किया; तुम्हारी सलाह हो गई हो, तो तुम तीनों ही मेल-मिलापसे मेरे सङ्ग विषय भोग कर सकते हो। तब वे तीनों सहमत हो गये; समय ठहरा लिया। लाज, शरम, धर्म, कर्म, न्याय, विचारादिको मिटा करके सद्गुणोंको नष्ट करके तीनों भाईने अपनी माताके ही सङ्ग-साथमें सम्भोग करके पशुवत् विषयानन्दका रस लिया। इसीकारणसे यदि माता जवान हो, तो युवा पुत्रोंको उसके साथ एकान्तमें कभी अकेले नहीं रहना चाहिये ॥ १२५७ ॥

१२. पूछहिं तीनों कहहु सब मोही * शरण गहेउँ दृढ़ माता तोही ॥ १२५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भोग-विलास करनेके बाद कुछ दिनमें फिर तीनों भाई शङ्का लेकर साथ ही आदिमायाके पास गये। वे कहने लगे कि, हे महामाया! हम तीनों भाई अब विनयपूर्वक पूछते हैं कि, आपकी आज्ञाका पालन तो हम लोगोंने पूरी तरहसे कर ही लिया है। अब वह पूर्वके सब वृत्तान्त हमसे कहिये कि, हमारी उत्पत्ति तथा जगत्की सृष्टि किस तरहसे, किससे हुई है? आदि कारण पिता पुरुष कौन थे? कौन कुलमें हमारा जन्म हुआ है? अब हमारा कर्त्तव्य क्या है? बालक कैसे और कहाँसे बनकर पैदा होते हैं? इत्यादि बातोंका भेद सब हमें दया करके समझाइये! हे माताजी! हम आपके ही आश्रयमें हैं; आपकी ही शरण दृढ़तासे ग्रहण करते हैं। आपने पीछे समझानेको भी कहा था; अब वह सब बातका भेद कह दीजिये! ॥ १२५८ ॥

साखीः— सुनतहि वाणी पुत्रकी * विषय चाट उपदेश ॥
[२३८] सर्व जलामयरूप है * कही अस्थूल सन्देश ॥ १२५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! महामायाने ब्रह्मादि पुत्रोंकी ऐसी सन्देह-युक्त वाणी सुनते ही समझ गई कि, इनके मनमेंसे शङ्का वा दुविधा अभी नहीं मिटी है। अब किसी तरहसे उसे मिटाना ही पड़ेगा, ऐसा सोचकर विषयमें चाट, आसक्ति लगी रहे, ऐसा उपदेश देने लगी। हे प्यारे पुत्रो! तुम्हारा यही कर्त्तव्य है कि, पाँचों विषयोंको अच्छी तरहसे सब दिन चाटो वा भोगो; ऐश-आराम करो! यही तुम्हें मेरा उपदेश है; और तुम लोग विचार करके देखो! सर्व प्राणियोंके शरीरका रूप 'जलामय' कहिये रज-वीर्यसे बनकर उत्पन्न हुआ है। सो तुम अपने ही शरीरको देखो! सारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग रज-वीर्यसे ही बने हैं। उसी रज-वीर्यका मोटा स्वरूप ही यह देह है। वह वीर्य तो ब्रह्म है; और रज मायाका मुख्य स्वरूप है। प्रकृति-पुरुषके रज-वीर्यरूप बीजसे ही चराचर जगत्रूप वृक्षकी उत्पत्ति हुई है। सो प्रकृतिरूप मैं हूँ, और पुरुषरूप तुम लोग हो! तुम्हारे-हमारे समान ही सब नर-नारीके रूप संसारमें दिखाई दे रहे हैं। उसी रज-वीर्यसे तुम लोगोंकी भी पूर्वमें सृष्टि हुई है। जो सर्वत्र जलामयरूपसे भरा-पड़ा है, सोई तुम्हारा स्वरूप है। इसीलिये सब भ्रम-सन्देहोंको छोड़कर स्थूल देहसे स्थूल पञ्च विषयोंको यथेष्ट इच्छानुसार भोगो! ऐसी स्थूल खबर वा स्थूल सन्देश देकर महामायाने उपदेश कहा या ऐसी बात सुनायी। अथवा सर्व जलामयरूप व्यापक ब्रह्म है, सो आनन्द स्वरूप है! तुम अपनेको ब्रह्म जानकर स्थूल-सूक्ष्म

विषयोंको भोगकर सुख करो! 'मैं ब्रह्म हूँ!' ऐसा जानकर विषय भोगनेसे तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा, यही सन्देश कहा। महामायाका उपदेश सुनकर ब्रह्मादि तीनोंने वही बात निश्चय किया; अतः वे विषयासक्तिमें ही डूबे रहे। अतएव मायारूप गुरुवालोगोंके तथा स्त्रियोंके कुसङ्गसे बचकर मुमुक्षुओंने दूर ही सावधान होकर रहना चाहिये ॥ १२५६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी, नम्बर—७ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर-२ ॥ ❀ ॥

१. जीवरूप एक अन्तर बासा * अन्तर ज्योति कीन्ह परकाशा ॥ १ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] वाणी भागका अर्थः— हे सन्तो! जीव=चैतन्य है, रूप=जड़ देह है, इन दोनोंकी सम्बन्धमें जीवरूप=मनुष्य देहधारी नरजीवोंने कर्मानुसार नाना सुख-दुःखादि पा करके और जगत्में नाना पदार्थोंको देखकर इसका रहस्य कुछ न जान करके एक=जगत्कर्त्ता सुख-दुःखादिका दाता, चराचरका रचयिता कोई परमेश्वर, परब्रह्म, परमपुरुष, मालिक होगा, ऐसा अनुमान या कल्पना एक भिन्न कर्त्ता होनेका किया। तब उस परमात्माकी प्राप्ति करके उससे मिलनेकी प्रबल इच्छा-वासना भीतर अन्तःकरणसे उठी। फिर मनःकल्पनासे भक्ति, योग, ज्ञान-ध्यान आदि अनेकों साधनाएँ किया। तहाँ श्वासमें लक्ष्य लगाकर मन एकाग्र किया। वृत्ति रुककर स्थिर हुई, नाद-बिन्दुका सङ्घर्ष हुआ, उससे अन्तर=भीतर त्रिकुटी, मस्तक, हृदयादि स्थानोंमें स्वप्नवत् भास खड़ा हो गया। अग्नितत्त्वकी झलक, ज्योति-प्रकाशका उजियाला भीतर प्रगट हुआ। सो ज्योति-प्रकाशको देखकर उसे ही ज्योतिरूप ब्रह्म वा ईश्वर कर्त्ता मान करके मिथ्या भासमें भासिक अबोध नरजीव भूले पड़े हैं ॥ १ ॥

२. इच्छारूपि नारि अवतरी * तासु नाम गायत्री धरी ॥ २ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— वाणी भागका अर्थः— हे सन्तो! वे साधक लोग जब ध्यान समाधिसे उठे, जाग्रत् हुए, तब हृदयमें एक इच्छा या स्फुरणा हुई, उसका रूप बहिर्गत वृत्ति निकली, तो उसी इच्छाके अनुरूप ही नारी=वाणी-कल्पना पैदा हुई। भीतरकी भास-भावनासे सब वेद, शास्त्र, कुरान आदिमें उतरकर निकल आई और लिखी गई। तासु=उस वाणी समूह वेद मन्त्र वाक्यका गायत्री, वेदमाता, भगवती ऐसा नाम रक्खा है; और चौबीस अक्षरोंकी ब्रह्म गायत्री भी उसी वेदमें बना रक्खा है। त्रिगुणी मनुष्योंने जो वाणी गाया वा कहा है। उसी शब्द राशिका नाम गायत्री रख दिया है ॥ २ ॥

३. तेहि नारिके पुत्र तीनि भयऊ * ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ ॥ ३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— वाणी भागका अर्थः— हे सन्तो! उसी वाणीरूप नारीके पदरूप पेटमेंसे तीन पुत्रके समान तीन भाग, तीन शब्द उत्पन्न हो गये। सो 'भूः' के अधिपति ब्रह्मा, रजोगुण, पृथ्वीतलमें माना है। 'भुवः' के अधिपति विष्णु, सत्त्वगुण, जल सागरमें कहा है; और 'स्वः' के अधिपति महेश्वर, तमोगुण, अग्नितत्त्वमें माना है। अंशांशीरूपसे उन्हें अधिष्ठाता देवता करके मान रक्खा है। उन्हींको उत्पत्ति, पालन और संहारकर्त्ता कहकर गुरुवालोगोंने माना है ॥ ३ ॥

४. फिर ब्रह्मैं पूछल महतारी * को तोर पुरुष केकरि तुम नारी ? ॥ ४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— वाणी भागका अर्थः— हे सन्तो! फिर ब्राह्मण पण्डितोंको बड़ा महत्त्व करके माता-पिताके समान रक्षक हितकारी समझकर अज्ञानी रजोगुणी मनुष्य पूछते हैं कि, आपने जो कर्त्ता पुरुष जगदीश्वर बताया है, सो कौन है? कहाँपर है? कैसे दर्शन होगा? आप किसके नारीरूप उपासक भक्त हैं? सो बता दीजिये! ऐसा प्रश्न किया है ॥ ४ ॥

५. तुम हम हम तुम और न कोई * तुमहिसे पुरुष हमें तोरि जोई ॥ ५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— वाणी भागका अर्थः— हे सन्तो! उसका उत्तर गुरुवालोगोंने ऐसा दिया है कि— हे शिष्य! तुम जीव हो, हम ब्रह्म हैं। हम ब्रह्मके अंशरूप ही तुम जीव हो। हम-तुम

एक ही ब्रह्म हैं; और दूसरा कोई नहीं है। तुमसे हम सत्य कहते हैं, हमको ही परब्रह्म पुरुष जान करके देखो! और सब कुभावको छोड़ करके तुम भक्ति-भावसे हमारी सेवा करो! फिर अहङ्कार प्रकृतिका बन्धन टूटकर तुम सोई पुरुष ब्रह्म हो जाओगे, इत्यादि कहकर भुला दिया है ॥ ५ ॥

नीका दूसरा अर्थ खानी भागमें सुनिये !:—

१. जीवरूप एक अन्तर बासा ❀ अन्तर ज्योति कीन्ह परकाशा ॥ १२६० ॥

खानी भागका अर्थः—[गुरुमुखः—] हे सन्तो! जीव=चैतन्य, रूप=जड़ पाँच तत्त्वके मध्यमें अध्यासके सम्बन्धसे एक नर देह बना। एक ही मनुष्य जीवके अन्तःकरणमें पूर्वके अनेकों वासना-संस्कारका टिकाव या निवास हो रहा है। अकेले जीवमें सुख-दुःख नहीं होता है। सम्बन्धमें ही सुख-दुःखादि होते हैं; और सब जीव सुखाध्यासी बने हैं। इससे पुरुषके मनमें एक स्त्रीके भग भोग-विषयानन्दादि भोग लेनेकी वासना वा चाहना अन्तर=हृदयमें प्रबल हो गई, सो वासना दृढ़ होकर युवावस्थामें बढ़ती गई। तब भीतर अन्तःकरणमें चित्त चतुष्टय द्वारा कल्पना करके पूर्व दृष्ट-श्रुत स्त्रीका स्वरूप सोई ज्योतिरूपमें स्वप्नवत् प्रकाश स्त्रीका फोटो, हाव-भाव-कटाक्ष, शृङ्गारादि स्मरण करके देखने वा भासने लगा, उसी धुनमें पुरुष एकाग्र-मस्त गाफिल हो गया ॥ १२६० ॥

२. इच्छारूपि नारि अवतरी ❀ तासु नाम गायत्री धरी ॥ १२६१ ॥

खानी भागका अर्थः— हे सन्तो! निरञ्जन या धर्मराय नामका कोई पुरुष पहले प्रसिद्ध था। उसके अन्तःकरणमें भी उपरोक्त प्रकारसे विषय चिन्तन हुआ। प्रथम सूक्ष्म इच्छारूपसे ही स्त्री भाव मानस महलमें पैदा हुई। उस पुरुषके हृदयमें सूक्ष्म चाहनारूपी स्त्री भोगनेका अध्यास उत्पन्न होकर प्रतिबिम्बवत् खड़ा हुआ। उस इच्छाका ही गायत्री, आदिशक्ति, ब्रह्मशक्ति, आदिमाया, ऐसा नाम कल्पनासे रक्खा। अथवा पुरुषके मनमें प्रथम प्रबल सूक्ष्म इच्छा स्त्री प्राप्ति करके विषय भोगनेकी उठी। जब वासना ज्यादा हुई, तब बाहर स्थूल देहसे पुरुषार्थरूप नाना कर्म करके विवाह, पुनर्विवाह, गान्धर्व विवाह इत्यादि प्रकारसे जाहिर करके या चोरी-छिपीसे किसी स्त्रीको भगा करके खुशीसे वा जबर्दस्तीसे उस स्त्रीको घरमें लाकर उतारा। फिर व्यवहार चलानेके लिये उस स्त्रीका नाम सम्बोधनमें गायत्री, महामाया, अष्टाङ्गी, शक्ति, भगवती ऐसे उस निरञ्जन पुरुषने नाम रक्खा। तहाँ गायत्री नाम विशेष प्रचलित हो गया ॥ १२६१ ॥

३. तेहि नारिके पुत्र तीनि भयऊ ❀ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ ॥ १२६२ ॥

खानी भागका अर्थः— हे सन्तो! फिर समयान्तरमें निरञ्जन और गायत्रीरूप उन स्त्री-पुरुषके विषय भोग सम्बन्धसे स्त्रीको गर्भ रहा; और समय पा करके जुड़वे तीन पुत्र उस गायत्री स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुए। बड़े पुत्रका नाम ब्रह्मा, मझोलेका नाम विष्णु और छोटेका नाम महेश्वर, ऐसा उन्होंने पुत्रोंका जातकर्म करते समयमें नाम रख दिया। रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण विशेष करके क्रमशः उन तीन पुत्रोंका स्वभाव रहा। और तीनों पुत्र छोटी अवस्थाके ही थे, तब पिता निरञ्जन पुरुषकी मृत्यु हो गयी। विधवा गायत्री माताने ही पालन-पोषणकर उन तीनों पुत्रोंको बड़ा किया। एक दिन तीनों लड़के खेलने गये थे, वहाँपर अन्य लड़कोंने उन्हें तिरस्कार करके कहा कि—"ये तीनों तो बिना बापके लड़के हैं, इनसे मत् खेलो! कहो तुम अपने बापका नाम जानते हो? क्या है? नहीं जानते हो, तो जाओ यहाँसे भागो!" ऐसा कहकर भगा दिया। तबतक ब्रह्मा समझदार बड़ा हो गया था। ऐसा साथियोंका शब्द सुनकर वह बहुत दुःखी हो गया। फिर ब्रह्मा घरमें माताके पास वह रहस्य पूछनेको चला आया ॥ १२६२ ॥

४. फिर ब्रह्म पूछल महतारी ❀ को तार पुरुष केकरि तुम नारी? ॥ १२६३ ॥

खानी भागका अर्थः—[जीवमुखः—] हे सन्तो! तदुपरान्त दोनों भाई सहित ब्रह्माने आकर अपने मातासे इसप्रकार पूछा कि, हमको आज इस-इस प्रकारसे अपमानित होना पड़ा; ऐसा तिरस्कृत होना

पड़ा। साथियोंने जो कहा उसे सुन करके बड़ा दुःख लग रहा है, ऐसा कहकर सब वृतान्त बतलाया; और बोला कि— हे मातेश्वरि ! आपके स्वामी पुरुष कौन हैं ? कहाँ हैं ? अथवा किस पुरुषके नाम-गोत्रवाला व्यक्तिकी आप पतिपरायणा स्त्री हैं। अथवा कौन पुरुष हमारे पूज्य पिताजी हैं ? वे पिताजी अब कौन ठिकाने, कहाँपर रहते हैं ? आप कृपा करके पूर्ण पता बतलाइये ? अब हम उन पिताजीका दर्शन करना चाहते हैं, ऐसा ब्रह्माने कहा ॥ १२६३ ॥

५. तुम हम हम तुम और न कोई ❀ तुमहिसे पुरुष हमें तोरि जोई ॥ १२६४ ॥

खानी भागका अर्थः—[मायामुखः—] हे सन्तो ! तब मायाने आवरण डालकर इसप्रकार उत्तर दिया कि— हे ब्रह्मा ! तुम उन मूर्ख लड़कोंकी बात सुनकर दुःखी मत् होओ; अपनेको मत् भूलो ! तुम्हें मैं खास सिद्धान्तकी बात बतलाती हूँ ! सुनो ! प्रत्यक्षमें देखो ! तुम=तुम लोग पुरुष आकारवाले हो, और स्त्री आकारवाली हम हैं; और हम स्त्री जातिकी हैं, तुम पुरुष जातिके हो, सो तो दिख ही रहा है। हमसे तुम लोग पैदा हुए हो, तैसे ही तुम्हारे सदृश पुरुषके वीर्ययुक्त मैं भी पैदा हुई हूँ ! संसारमें स्त्री जाति तथा पुरुष जाति ये दोनों हैं। इनके अतिरिक्त और कोई भी नहीं ठहरते हैं; चराचरमें प्रकृति-पुरुष ये दो ही सनातन सत्य ठहरते हैं। सब जगह देखो ! तुम्हारे सरीखे आकारवाले लिङ्गधारी ही सब पुरुष दिखलाई देते हैं; और हमारी सरीखी भगधारिणी ही सब स्त्रियाँ होती हैं। इसी खास कारणसे वर्तमानमें तुम ही हमारे मुख्य पुरुष हो ! और हम ही तुम्हारी खास स्त्री हैं; और हमारे-तुम्हारे सम्बन्धसे ही यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई या हो रही है, सो विचार करके देखो या समझ लो; ऐसा आदिमायाने कहा ॥ १२६४ ॥

साखीः— बाप पूतकी एकै नारी ❀ एकै माय बियाय ॥
[२३६] ऐसा पूत सपूत न देखा ❀ जो बापहिं चीन्है धाय ॥ १२६५ ॥

अर्थः— [मायामुखः—] आदिमाया उसीका खुलासा करके और भी कह रही है कि—हे ब्रह्मा एक सरीखी स्त्रीने ही पिता और पुत्रको पैदा किया है। इसीसे पिता-पुत्र दोनोंकी स्त्री एक ही हुई। सो कैसे, सुनो ! जिसके वीर्यसे सन्तान पैदा होती है, सो पैदा करनेमें कारण होनेसे बाप कहलाया। और वीर्यके विशेष अंशसे कायरूपमें पुरुष देहको धारण करके पैदा होनेवाला पुत्र हुआ। तहाँ पिता-पुत्र इन दोनोंका उत्पत्ति स्थान स्त्रीका स्वरूप गर्भ, योनिचक्र सब स्त्रियोंमें एक-सा ही है। और एक समान आकारवाली भगधारिणी स्त्रियाँ द्वारा ही बाप-पूत दोनों जन्म लेते हैं। संक्षेपमें एक मातारूप स्त्रीसे ही बाप और पुत्र उत्पन्न हुए हैं। और बियानेवाली (बच्चा जनने वाली), गर्भ धारण करनेवाली भगमुखी स्त्रियाँ तो सब एक ही तरहकी होती हैं। इस बातमें शास्त्रोंका प्रमाण भी आया है, सुनिये !:—

दोहाः— "माता सो मेहरी भई। पुत्र भयो सो कन्त ॥ एकै राह दूनों भये। तुम सुनो विवेकी सन्त ! ॥ १ ॥

किसी साधुने शास्त्रोंका आशय ले करके ही यह दोहामें कहा है, ऐसा जानिये ! और—

"तस्यां प्रतिरूपः पुत्रो जायते ॥"— बृहदारण्य उपनिषद्, अध्याय ४। ब्राह्मण १। मन्त्र ३ ॥

"आत्मावै पुत्रनामासि ॥"— कौषितकी ब्राह्मण उपनिषद्, अध्याय २। मन्त्र ११ ॥

अर्थः— गृहस्थोंने एक पुत्र उत्पन्न किये बादमें पति ही पुत्र देह धर करके स्त्रीरूप माताका स्तन पान करने लगा, इसीसे वह स्त्री मातावत् हो गई ॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ९। श्लोक ८ में और भी कहा हैः—

श्लोकः— "पति भार्यां सम्प्रविश्य, गर्भोभूत्वेह जायते ॥ जायायास्तद्धि जायात्वं, यदस्यां जायते पुनः ॥
श्लोकः— आत्मत्वेनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ॥ तस्माद्भार्यां नरः पश्येत् मातृवत् पुत्रमातरम् ॥"

अर्थः— पति वीर्यरूपसे स्त्रीके गर्भमें प्रवेश करके गर्भस्थापन भावको प्राप्त हो उस स्त्रीमेंसे पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। स्त्रीका वही जायात्व या जन्मानेका लक्षण है। जिससे उस स्त्रीमेंसे पति फिर पुत्ररूपमें उत्पन्न होता है ॥

— पुरुषके आत्मा फिर भी पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, ऐसा पण्डित लोग कहते हैं, इस-कारणसे एक पुत्र उत्पन्न हुए बाद पुत्रकी मातारूप अपनी स्त्रीको पुरुषने अपने ही माताके समान देखना चाहिये ॥—भागवत ॥ पिता ही दूसरे रूपमें पुत्र होकर उत्पन्न होता है। स्वयं पति ही अपनी स्त्रीके पेटमें वीर्यरूपमें जाकर पुत्ररूप धरकर जन्म लेता है ॥

इत्यादि प्रमाण श्रुति, स्मृति आदिमें जो वर्णन किया है, सोई बात आदिमायाने भी आदिमें ब्रह्मासे कही। प्रथम पुरुषने स्त्रीसे सम्भोग किया, उसके वीर्यसे गर्भ रहा, तब वह बाप हुआ। पैदा होनेवाला पुत्र हुआ; और जन्मतेमें पुत्रके लिङ्गका स्पर्श भी जननीके भगमें होनेसे वह माता भी एकप्रकारसे पुत्रकी स्त्रीके समान ही हुई। इसतरहसे एक ही नारी पिता और पुत्र दोनोंकी स्त्री हुई। एक ही स्त्रीने दोनोंको जन्माया है। भीतर गर्भमें गया, तो पुत्र हुआ; और गर्भसे बाहर आया, तो पुरुष हुआ। दोनोंका रास्ता एक है। अब ऐसा सपूत-पुत्र तो कोई देखनेमें नहीं आया कि, सच्चा बाप कौन है? उसको धाय करके चीन्हे। ऐसा प्रवृत्ति मार्ग विषय भोग तरफकी बात बतलाकर आदिमायाने फिर अन्तिम साखीके पदमें निवृत्तिमार्गकी तरफ संकेत करके बतलाया कि—हे ब्रह्मा! अमाया, निरञ्जन पुरुष ही तुम्हारे सच्चे पिता और सारे जगत्के भी पिता हैं। वे ही एक शुद्ध जगत् प्रतिपालक हैं। उनका परिचय जानना चाहते हो, तो सुनो! बापहि=सृष्टिकर्त्ता परमतत्त्व-परमात्मा विराट् स्वरूप हैं। आकाशमें सात स्वर्गके ऊपर उनका शिर है। सप्त द्वीप भूमण्डल बीचके धड़ है। सप्त पातालके नीचे उनके चरण कमल हैं। मिट्टीरूप पृथ्वी मांस है; नदियाँ सब नस-नाड़ियाँ हैं। पहाड़ हड्डी हैं; वृक्ष-वनस्पति, घास-फूस सब रोम हैं। सूर्य नेत्र है, चन्द्रमा मन है, दिशाएँ कान हैं, मुख अग्नि है, अन्तरिक्ष नाभि है, वर्षा होना पसीना है, और उनके नेत्रोंकी पलकें खुलनेपर दिन होता है, फिर पलकें लगनेपर रात्रि होती है; और सो जानेपर महाप्रलय होता है, फिर जागनेपर सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। वे ही तुम्हारा अविनाशी सच्चा बाप है। जो तुम उनका दर्शन करना वा उन्हें चान्हना चाहते हो, तो कर्म, भक्ति, योगादि साधनाओंमें धायके ध्यान, धारणा और समाधि लगाओ। वहाँ परम दिव्य ज्योति, परमानन्द, परमनाद-अनाहद ध्वनि आदिके स्वरूपमें तुम्हें साक्षात् परमात्माका दर्शन होगा। इसप्रकारसे साधना करके धाय-धायके जो परमात्माको चीन्हते, जानते वा पहिचान कर लेते हैं, सोई तो सपूत श्रेष्ठ-सज्जन हैं। और सर्वव्यापक परमेश्वरका ध्यान करके जिसने नहीं देखा, सोई तो कपूत-कुलाङ्गार है। खास पिता परमेश्वरका ध्यान करके पहिचाननेवाले सोई सपूत होते हैं। परन्तु, वैसे ज्यादे कोई दिखाई नहीं देते हैं; कोई बिरले ही होते हैं। इसीसे तुम लोग हमारे वचनको मानकर सपूत बनो, ऐसा आदिमायाने कह करके दृढ़ाया है ॥ १२६५ ॥

साखीः— विषय मूल माया लगी ❀ कीन्हें ताहि प्रऊढ़ ॥
[२४०] बड़े विवेकी तिहुँ लोकमें ❀ परखहु मतिके मूढ़ ॥ १२६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! आदिमाया स्त्रीके पासमें तो मूल=मुख्य विषय भोगकी ही चाट लगी हुई थी। सोई खानी-विषय और वाणी-विषय ब्रह्मानन्द और विषयानन्द, यही दोनोंकी नाना उपाधिमें मायाने तीनों पुत्रोंको लगाया; मनुष्यपदको नष्ट करके जड़ाध्यासी-भ्रमिक बनाया। हरतरहसे समझा करके मूल=पञ्च विषय भोगोंको ही परिपुष्ट, दृढ़-मजबूत कर दी। वही बात उन तीनोंने भी पुष्ट किया। अब त्रिगुणी मनुष्य समाजमें योगी, ज्ञानी और भक्तोंने उन ब्रह्मादि तीनोंको तीन लोकमें सबसे बड़े विवेकी, सर्वश्रेष्ठ कर्त्ता, धर्ता, हर्ता करके मान लिया और मान ही रहे हैं। अब हे जिज्ञासु मनुष्यो! आप लोग इसको यथार्थ रीतिसे परख लीजिये! निर्णय कीजिये कि, वे विवेकी नहीं थे; मति-बुद्धिके भ्रष्ट, मूढ़ ही बने थे। तभी तो विषयान्ध हो, माताके साथमें भी व्यभिचार, पशुकर्म, भोग-विलास किया। बेपारकी लोग

उनको श्रेष्ठ बतलाते हैं, यही उनकी मूढ़ता है। वह खानी-वाणी दोनों ही जीवोंको महा बन्धन है। पारखी श्रीसद्गुरुकी शिक्षा ले करके इसे परखकर त्याग देना चाहिये। बेपारखी मूढ़ गुरुवालोगोंके तथा स्त्रियोंके कुसङ्गसे सदा दूर ही रहना चाहिये। जो जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय करें, जड़ाध्याससे जीवको निकाल करके पारखपदमें ठहरें, सो विवेकी होते हैं। और जो जड़-चैतन्यको एकमें मिलाकर ब्रह्म बनते हैं, वे ही अविवेकी मतिके मूढ़ होते हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ १२६६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६७ ॥ [चौपाई –१९ । साखी– २ है] ॥ ❀ ॥

१. विषय सन्देश दूजे उपदेशा * अस्थूल कलाको दिया सन्देशा ॥ १२६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अष्टाङ्गी आदिमायाने ब्रह्मादिकोंको पहला निर्गुण ब्रह्म वाणी-कल्पनाका उपदेश किया था। फिर दूसरा सगुण ब्रह्म बतलाकर विषयानन्दको ही भगवान् बतलानेका सन्देश=खबर सुनाकर उपदेश किया। तहाँ स्थूल शरीरकी कला=भाग दशों इन्द्रियोंसे पञ्च विषयोंको भोगनेकी चतुराई सिखलाया कि, सुख वा आनन्द ही ब्रह्मका सच्चा स्वरूप है; इसलिये विषयादि भोग करके किसी तरहसे भी सुख प्राप्ति करनी चाहिये। यही स्थूल कलाका विषय भोगनेका सन्देश या उपदेश मायाने दिया ॥ १२६७ ॥

२. बीजरूप तेहि भगवाना * विषय विकार जगत अरुझाना ॥ १२६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमाया कहती है— पृथ्वीमें बीजरूपसे, मनमें वासनारूपसे और शरीरमें वीर्यरूपसे जो रहता है, सो ही सर्वशक्तिमान् भगवान् परमेश्वर है। भगवान्के विषय विकाररूप इच्छासे ही यह सारा जगत्की उत्पत्ति हुई है। जगत्में सब कोई विषयोंके विकारमें ही अरुझे पड़े हैं। अपनेको कर्त्ता-भोक्ता मानकर बद्ध होते हैं; और अपनेको अकर्त्ता-अभोक्ता ब्रह्म जानकर विषय भोगनेवाले तो मुक्त होते हैं। ऐसा जान करके ब्रह्म भावसे तुमलोग विषय रसको भोग लो, फिर कुछ दोष न होगा, ऐसा आदिमायाने कही ॥ १२६८ ॥

३. दृष्टि पसारि देखु जग माहीं * बीजरूप दूसर कछु नाहीं ॥ १२६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमाया कहती है— हे तीनों पुत्रो ! जगत्में चारों तरफ विचारदृष्टि पसारकर या फैलाकर देखो ! तो सब तरफ बीज-ही-बीजका रूप तुम्हें दिखाई देगा। बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होती है। वृक्षमें फल आनेपर फिर बीज-ही-बीज होते हैं। और वासना तथा वीर्यसे देह बनता है। फिर तन-मनमें वीर्य और वासना समाई रहती है। ब्रह्म बीजसे जगत् भी बना है। वहाँ जगत्में भी ब्रह्म बीजरूपसे समाया ही हुआ है। इससे बीजरूप ही ब्रह्म-परमात्मा है। बीजसे बढ़कर दूसरी कुछ भी श्रेष्ठ वस्तु नहीं है ॥ १२६९ ॥

४. सोई बीज तुमहिं तन धारी * माया रज हमहीं सो नारी ॥ १२७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमाया कहती है कि— हे पुत्रो ! सोई ब्रह्म बीज और वासना तथा वीर्य विशेष सम्मिलित होकर तुम तीनों भाइयोंने भी पुरुष शरीर धारण किया है। और रजरूप माया=स्त्री मैं ही हूँ ! तुम्हारे शरीरमें भी जो रज=रक्तका भाग है, सो हम नारीका ही भाग है। अथवा तुम्हारे समान समस्त पुरुषोंका शरीर वीर्यकी विशेष कलासे बनता है। तहाँ वीर्यका भाग ज्यादा रहता है; और हमारे समान सब नारियोंका शरीर विशेष रजके भागसे बना है। तहाँ रजकी मात्रा ज्यादा रहती है। अतएव बीजरूप तुम लोग पुरुष हो; रजरूप हम स्त्री हैं, ऐसा जानो ! ॥ १२७० ॥

५. तुमसो मूल हमहिं अर्धङ्गी * मेल परस्पर भये बहु रङ्गी ॥ १२७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाने कहा कि— जगत्का मूल पुरुष जो है, सो उसीके ठिकाने तुम लोग हो; हम उसकी या तुम्हारी अर्धाङ्गिनी स्त्री हैं। तुम्हारे और हमारे

परस्पर मेल-मिलाप वा भोग-विलाससे बहुत आनन्दका रङ्ग आयेगा। फिर बहुरङ्गी सन्तानोंकी सृष्टि होगी। अथवा मूल=ब्रह्म-बीज तथा अर्धाङ्गी मायारूप रजके परस्पर मिलापसे यह सम्पूर्ण जगत् बहुरङ्गी दुनियाँ त्रिगुणी सृष्टिका विस्तार हुई है। अथवा मूल पुरुषका वीर्य तथा हमारा रज परस्पर मिलाप होकर सो तुम लोग बहुरङ्गी-त्रिगुणीरूपमें उत्पन्न हुए हो, ऐसा आदि-मायाने कहा ॥ १२७१ ॥

६. नौ नाड़ी चौ कला है जोई ❀ छतीस नीर पहिचानहु सोई ॥ १२७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देखो शरीरमें भी बहुत प्रकारके रूप तथा कलाका विस्तार है। नौ नाड़ीः— हस्तिनी, शङ्खिनी, वारुणी, गणेशिनी, पयस्विनी, गन्धारी, पुहुखा, अलम्बुषा और कुहू— ये नवोंकी चाल भिन्न-भिन्न हैं। चौ कलाः— जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया, ये चार अवस्थाओंके कला-भाग अलग ही होते हैं; और पच्चीस प्रकृतियाँ, पञ्च प्राण, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन, यह सब छत्तीस नीररूप रज-वीर्यका गाँठ-पुतला सोई शरीरको ही पहिचान लो ! अथवा नौ नाड़ियोंमें नव दुर्गारूप नौ स्त्रियाँ और चौ कलामें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार वर्ण हुए हैं; इन्हें ही चौ कलाके रूपमें देखो ! और छत्तीस नीरमें देहके छत्तीस नाता-गोता माना है, सोई खानीका भाग पहिचानो ! अथवा नौ व्याकरण और चार वेदकी कलाको पढ़नेके लिये छत्तीस अक्षरोंकी वाणी बनाया है। वेद-शास्त्रोंको छत्तीस अक्षरोंका जाड़ विस्तार, वाणी-जालका भाग ही जानिये ! ऐसे भिन्न-भिन्न रङ्ग-ढङ्ग खानी-वाणीमें बहुत फैलाया हुआ है ॥ १२७२ ॥

७. पवन पचासी श्वासा माहीं ❀ कोटि उनचास कला दरशाहीं ॥ १२७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! श्वासरूप एक प्राणवायुमें ही पचासी पवनका भिन्न-भिन्न विभाग किया है। तहाँ बहत्तर कोठोंकी नाड़ियाँ, तथा तीन नाड़ियाँ— इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना तथा पञ्च प्राण और पञ्च उपप्राण मिला करके सब पचासी पवन श्वासमें कल्पना किया है; और पवन कोटिके उनचास वायु पिण्ड-ब्रह्माण्डमें मुख्य भिन्न-भिन्न रूप ही माना है। तहाँ एक-एकमें करोड़-करोड़ संख्या बतलाकर सब उनचास करोड़ पवनका भेद मायाकी कलामें और पचासवाँ कोटि निरञ्जन ब्रह्मकी कलामें कल्पना करके दर्शाया है ॥ १२७३ ॥

८. श्वासा पेड़ सार सो मूला ❀ विविधि डार पत्र फल फूला ॥ १२७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे बाहर वृक्षमें जड़, डाली, पत्र, फूल, फल लगते हैं। तैसे ही शरीरमें श्वासरूप प्राणवायु सोई वृक्ष है। उसका सार जड़-मूल नाभि स्थानमें है। श्वासका सार 'सोहं' शब्द ठहराकर 'सो' अक्षरसे उठाकर ब्रह्माण्डमें लय किया, वहाँ शून्य आनन्द हुआ, उसीको सबका सार ब्रह्म-परमात्मा माना है। स्फुरणा होनेपर 'सोहं-ॐ' और पाँच मात्राकी कल्पनाकर बावन वर्ण बनाया। उसीको जोड़-जोड़ कर चार वेद डाल, षट् शास्त्र शाखा, अठारह पुराणादि और सब वाणीरूप अनेकों पत्र लगे। उसीमें सुवासना-कुवासना नाना भाव अनेकों सिद्धान्तरूपी फूल फूले; उससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष वा चार मुक्तिकी आशा तथा सुख-दुःखादिके फल लगे। उसी चक्रमें समस्त मनुष्य आसक्त तथा भ्रमिक हो करके घूम रहे हैं; भवधारामें गोता लगाकर बह रहे हैं ॥ १२७४ ॥

९. निवृत्ति कला जो चहहू ताता ! ❀ दृढ़कै गहहु सार मम बाता ॥ १२७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमाया कहती है— हे प्यारे पुत्रो ! तुम लोग यदि निवृत्ति कलाका भाग परमार्थ साधनासे ब्रह्मानन्द प्राप्ति करके परमपदमें पहुँचना चाहते हो, तो मैं जो सार बात तुम्हें बतलाती हूँ, उसे दृढ़ विश्वास करके ग्रहण और धारण करो ! जिससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा ॥ १२७५ ॥

१०. श्वासा उलटिके नाभि समावो ❀ परमहंसके चाल चलावो ॥ १२७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमाया कहती है— पहले श्वास वायुको

सीधा खींचकर नाभिमें ले जाओ, फिर समान और प्राण दोनों वायुको एकमें मिलाकर उलटाकर ऊपर चढ़ाओ। मस्तकरूप भ्रमरगुफामें श्वासको लय करके शून्य निर्विकल्प स्थिति प्राप्त करके परब्रह्ममें जाकर समा जाओ। समाधिसे उतरनेपर उसी साधना मार्गमें औरोंको भी लगा करके दक्षिणमार्गमें परमहंसके चाल, रहनी, उपदेशको जगत्में खूब चलाओ वा प्रचार करो! ब्रह्मज्ञानकी अन्तिम स्थिति— बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक और जड़दशाको धारण कर-कराके परमहंस-विज्ञानी बन जाओ, ऐसी बात मायाने कहा ॥ १२७६ ॥

११. मूलहि समेटि रहहु अकामा ❀ उलटहु सोहं वोहं रामा ॥ १२७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आदिमाया कहती है— हे ब्रह्मा! तुम 'वोहं' शब्दको ध्यानमें रखकर श्वासमें लक्ष्य लगाओ। हे विष्णु! तुम 'ररं या राम' शब्द सहित श्वासमें सुरति लगाओ; और हे महेश! तुम 'सोहं' शब्द जाप करके श्वासमें मन लगाओ! फिर "सोहं, वोहं और राम" को तुम तीनों उलट-पलट, ऊपर-नीचे फिराते हुए जपनेका अभ्यास करो! फिर मूल= नाभिसे श्वास, शब्द समेत्को समेटकर लपेट करके ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर लय करके समाधि लगाकर निष्काम, निर्विकल्प हो परमानन्दमें मिले रहो! सोई सकल दुःख क्षय होना ही परमपदकी प्राप्ति कहलाता है ॥ १२७७ ॥

१२. जो प्रवृत्ति कला तोहिं भावै ❀ पूर विलास सदा सुख पावै ॥ १२७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आदिमाया कहती है— हे पुत्रो! अगर तुम्हारा मन निवृत्ति मार्गमें ठहरता न हो, और जो कि, तुम्हें प्रवृत्ति कलाका भाग संसार व्यवहार ही अच्छा लगता हो, घर-गृहस्थीमें मन रमता होवे, विषय भोगनेकी ही भावना होवे, तो सब चिन्ताओंको छोड़ करके मेरे साथमें पूर्ण तरहसे मन लगाकर पाँचों विषयोंको खूब पूर्णरूपसे भोग-विलास करो! जिससे दिन-रात सदा सुख ही पाओगे। तभी पूर्ण विषयानन्दका मजा या आनन्द जान पाओगे ॥ १२७८ ॥

१३. पञ्च मकार अमी जिव जानो ❀ मर्म उपदेश हमारी मानो ॥ १२७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आदिमायाने कहा— अपने शक्ति अनुसार शाक्तमत, वाममार्गको पकड़ो। तहाँ पञ्च मकारका सेवन मांस, मीन, मद्य, मुद्रा और मैथुन— इन पाँचोंको अच्छी तरहसे खाओ, पीओ, भोगो, मौज उड़ाओ। हे जीव! इसीको अमृतके समान सुखदायी जानो। हमारा अभिप्राय समझकर यह उपदेशको मानो, वैसे ही चलो, तभी इसका पूर्ण भेद तुम लोग जान पाओगे। और हमारे नामसे शाक्तमतको तुमलोग संसारमें चलाओ। जगत् जीवोंको मेरे नामसे उपदेश दो! यह मार्ग सब प्रकारसे जीवोंको सुखरूप अमृत पिलानेवाला है। हमारा उपदेश दृढ़तासे मानो, फिर पूर्ण मर्म जानोगे, इत्यादि आदिमायाने ऐसी-ऐसी रोचक वाणी सुना-सुना कर-के ब्रह्मादि तीनोंको भुलाकर धोखेमें डाल दिया था ॥ १२७९ ॥

१४. दूनहु कला तुम्हारी ताता! ❀ खण्डित काहे लहहु कहै माता ॥ १२८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! महामायाने कहा कि— हे पुत्रो! प्रवृत्ति और निवृत्ति, यह दोनों कला वा स्वार्थ और परमार्थ, यह दोनों भाग अथवा विषयानन्द-ब्रह्मानन्द, दक्षिणमार्ग-वाममार्ग, योग-भोग, ये दोनों तरफ ही तुम्हें चलनेकी पूर्ण आजादी तथा अधिकार है। यह तो तुम्हारी परम्पराकी पैतृक सम्पत्ति है। तुम्हें जब जैसा खुशीमें आवे, तब तैसा ही फल चाखो। किसी बातमें तुम लोग अधूरे मत् होओ! सब कलामें पारङ्गत कुशल हो जाओ। किसी बातमें खण्डित, अपूर्ण क्यों होने देना? योग और भोगमें तुम लोग पूरे सिद्ध हो जाओ। किसी बातका सन्देह मनमें मत् लाओ। तुम्हारे वास्ते ही ये दोनों मार्ग मैंने पहलेसे ही बना करके रक्खा है। मैं तुम्हारी माता हूँ, तुम लोगोंके सुख-हितके लिये ही कहती हूँ! मेरे कहे अनुसार चलकर

सदा अखण्ड सुख भोगो और परमपदको प्राप्त करो ! इत्यादि अनेकों तरहसे समझा करके आदिमायाने त्रिदेवोंको फँसाया था; वे भी सहजमें ही माया जालमें फँस गये थे ॥ १२८० ॥

१५. सुनि गुनि मगन भये त्रिदेवा * विषय भोग जननीके सेवा ॥ १२८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! महामायाकी ऐसी बात, प्रिय उपदेश, रुचिकर वाणी सुनकर उसको साथ ही सोच-विचार और मनन करते गये। फिर ब्रह्मा, विष्णु और महेश, उन तीनोंने मायाकी बातको अच्छा समझकर बड़ा मग्न-मस्त हो गये। एक तो विषय भोग मनमाने करना, दूसरा माताको सेवा करके प्रसन्न करना। अथवा मायाकी इच्छाके अनुसार सब प्रकारके विषय भोग भोगते जाना, सम्भोगादिसे उसे सन्तुष्ट रखना, यही जननीकी खास सेवा होनेका दोहरा लाभ समझकर बड़े आनन्दित हुए। फिर जैसे-जैसे आदिमाया कहती गई, तैसे-तैसे पशुकर्म वे सब करते गये। मनुष्यपदसे पतित हुए, बिना विवेक ॥ १२८१ ॥

१६. माया मत अरूढ़ जो कीन्हा * तासु लक्ष परगटकै दीन्हा ॥ १२८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार महामायाने जो मत-पन्थ, सिद्धान्तमें ब्रह्मादि तीनोंको आरूढ़ कर दिया था या रङ्ग चढ़ा दिया था, दृढ़-परिपुष्ट कर दिया था। उसीको उन्होंने लक्ष्य लगाकर ध्यानमें रख लिया। उसी लक्ष्यके अनुसार उनके समझके मुताबिक तीनोंने अपने-अपने तीन मत गुण-लक्षण प्रगट करके संसारमें विस्तार कर दिया है। अथवा मायाने जो मत, जो चालमें त्रिदेवोंको आरूढ़ कर दिया था, उसका लक्षण देवीभागवत पुराणादि ग्रन्थोंके प्रमाणसे गुण-दोष दिखलाकर हमने यहाँपर सो प्रगट करके दिखा दिया है, सो भेद जान करके परख लेना चाहिये ॥ १२८२ ॥

१७. लिङ्ग रूप शङ्कर निर्माई * भग जल हरि सेवा अधिकाई ॥ १२८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब ब्रह्मादिकोंने जो मत चलाया, सो सुनिये ! प्रगटमें शङ्करने वृत्तिको सूक्ष्म करके लिङ्गरूप=योगमार्ग निर्माण किया या बनाया; और गुप्तरूपमें अपना लिङ्ग इन्द्रिय पुजानेका वाममार्ग भी शङ्करने बनाकर चलाया। इससे पत्थरका लिङ्ग बना कर शिव भक्त लोग उसकी पूजा करते हैं। और विष्णुने प्रगटमें षट्गुण ऐश्वर्यको 'भग' ठहरा करके ग्रहण कर लिया, तथा भगरूप नवधा भक्ति उपासना मार्ग कायम किया। फिर गुप्तमें भग भोग, भगकी पूजा, भग जलका आचमन आदिमायाकी सेवा समझकर विशेषरूपसे ग्रहण किया। इसीसे वैष्णव लोग मस्तकमें भगाकार तिलक लगाते हैं; और शालिग्राम शिलामें छिद्रवालेको ज्यादा महिमासे पूजते हैं; और ब्रह्माने कर्ममार्ग चलाया; मैथुनादि कर्म-कुकर्ममें रत रहा, तथा उन दोनों भाइयोंके कार्यमें सहायता भी देता रहा। भग-लिङ्गकी पूजा भी करता-कराता रहा। सबसे ज्यादा तो भग-भोग करके वीर्यपात करनेको ही वे तीनोंने सेवा समझ करके करते गये; बिना विवेक नरपशु ही हुए थे ॥ १२८३ ॥

१८. भग औ लिङ्ग थापि एक ठौरी * विषय मस्त एकताई बौरी ॥ १२८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब विषयमें ज्यादा मस्त, उन्मत्त, पागलवत् हुए, तब उन्होंने स्त्री-पुरुषके दोनों अङ्ग-देह मिलाकर भग और लिङ्ग इन्द्रियोंको एक जगह या इकट्ठे मैथुन कर्मसे स्थापित किया। उसे प्रकृति-पुरुष या माया-ब्रह्मकी एकता वा मिलाप अभेद मानकर बौरा गये। सोई बाहरमें भी शिवलिङ्गका लम्बा पत्थर लिङ्ग इन्द्रियवत् बनाया और भगके समान आकारका पत्थरके जलहरी रचकर उसके बीचोंबीच छिद्रमें लिङ्ग स्थापना करके मैथुनका ढाँचा या चित्र ही बना रक्खा है। ऐसे भग-लिङ्गकी एक ठौरमें स्थापना करके उसे महादेवकी पूजा बताकर पूजा कर और करा रहे हैं। और वाममार्गी लोग तो नर-नारी प्रत्यक्षमें मिलकर ऐसे कुकर्म प्रत्यक्ष ही कर-करा लेते हैं। उन्हें लाज-शरम और धर्मका ज्ञान भी कुछ नहीं होता है। विषयकी मस्तीके मारे पागलकी नाईं कुकर्म कर लेते हैं ॥ १२८४ ॥

१६. प्रथम भोगके कारण नाहा * महादेव तामस औगाहा ॥ १२८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम माताके साथमें भग-भोगनेमें कारणरूपसे 'नाहा' = कहिये मालिकी-स्वामीपना महादेवका हुआ। इसका कारण यही है कि- वह बड़ा तामसी, दुर्बुद्धि, अविचारी, कुलक्षण, मनमती उजड्ड था; इसलिये उसने ही पहले माताके साथ भग भोगनेको स्वीकार करके वाममार्गका अधिकार ग्रहण कर लिया। इसीसे ज्यादा वाममार्ग शङ्करने ही चलाया है। अतएव उन कपटी गुरुवालोगोंके जालसे सदा बचे रहना चाहिये ॥ १२८५ ॥

साखीः— एकता ज्ञान विषयमई * भोजन पञ्च मकार ॥
[२४१] प्रगट अघोरी कर्म सो * शम्भु कला विस्तार ॥ १२८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे ब्रह्मज्ञानियोंने जीव-ब्रह्मकी एकता कथन करके ज्ञानमार्गमें अद्वैत सिद्धान्त कहा है, तैसे ही वाममार्गियोंने भी स्त्री-पुरुषकी एकता भग-लिङ्गका सम्मेलन करके ब्रह्मानन्दवत् विषयानन्दको भी महान श्रेष्ठ वर्णन किया है। इससे एकता ज्ञान जो कहा है; सो भोग विषयका ही एक रूप है। तहाँ पञ्च मकारः— मीन, मांस, मद्य, मुद्रा और मैथुन, इसीका सेवन करना, वही मुख्य भोजन है। उन दोनों मार्गोंमें विशेष प्रीति दृढ़ होनेपर विधि-निषेध छोड़कर अघोरी बन जाते हैं। अच्छा-बुरा, पाप-पुण्यका कुछ भी विचार नहीं करना, कर्म-कुकर्म कर बैठना, मल-मूत्र भी खा लेना, घृणित चाल चलना, पशु भी न करे, ऐसा तुच्छातितुच्छ कार्य करना, सो उसे ही 'अघोरी' कहते हैं। सो यह अघोरी कलाका भाग कुकर्मको प्रगट करके शम्भुने जगत्में विस्तार किया है। विषय ज्ञानकी एकता, पञ्च मकारका भोजन, अघोरी कर्मका प्रगट सो सब तमोगुणी शम्भुकी कलासे विस्तार हुआ है ॥ १२८६ ॥

साखीः— ब्रह्मा गुप्त त्रिविधि कला * रखहिं निरन्तर जन बास ॥
[२४२] पञ्च मकारी शक्ति गुण * शिवके अधिक विश्वास ॥ १२८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! रजोगुणी ब्रह्माने तो लोक-लाजके भयसे प्रगटमें तो सो अयोग्य कार्य दिखाकर नहीं किया। परन्तु, गुप्तरूपसे तीनों गुणोंका कार्य वा विषय भोगकी एकता, पञ्च मकारका सेवन और अघोरीवत् कर्म छिपे-छिपे करता ही रहा। हरहमेशा अपने अनुयायी ब्राह्मणजनोंमें शाक्तमत या वाममार्गका चलन गुप्तरूपसे रखता रहा। सदा छिपा करके लोगोंको कर्म-कुकर्म कराता रहा। इसीसे लोग उसे बहुत सज्जन समझकर विश्वास रखते थे; और माया शक्तिके मुख्य गुण पञ्च मकारको विधिपूर्वक सेवन करना, उसीसे हित-कल्याण समझना, यही विश्वास महादेवको सबसे अधिक रहा। इसीसे प्रगट करके जगत्में वाममार्ग उसीने चलाया ॥ १२८७ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६८ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. अण्डरूप शिलाके सेवा * हिरण्यगर्भ सो हरिके भेवा ॥ १२८८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें गुरुवालोगोंने नाना तरहसे कल्पना दृढ़ा रक्खा है। सो उसका खुलासा यहाँ सुनिये ! पिण्ड-ब्रह्माण्डमें व्यापक एक अण्ड ॐकाररूप ब्रह्म कोईने माना है। कोई कहते हैं, सर्वमें व्यापक परमात्माका साकार अवतार यहाँ अण्डरूप शिला = गोल-गोल शालिग्राम पत्थरको ठहराया है। सो उसीकी सेवा, पूजा गुरुवालोग करते और कराते हैं। उसमें यह भेद बताया है कि, ब्रह्मा, विष्णुका साक्षात् सूक्ष्म स्वरूप सोई शालिग्राम मूर्तिमें विराजमान है। उसी मूर्तिको प्रथमसे सेवा-पूजा करनेसे कल्याण होगा, ऐसा कहते हैं। अथवा प्रणव ब्रह्मके हिरण्यगर्भ = सूक्ष्म देहरूप ब्रह्माने भाव-भक्तिसे विष्णुकी सेवा-पूजा करनेको बतलाया वा किया है, सोई यहाँ हम लोगोंको भी अण्डरूप शालिग्रामी शिलाकी सेवा-पूजा करनी चाहिये। ऐसा ब्राह्मणादि गुरुवालोग बतलाते हैं या पूजा करते-कराते हैं ॥ १२८८ ॥

२. विश्वरूप अण्ड परधाना * सोई सो अंश शिला उतपाना ॥ १२८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अण्ड = ॐकार ब्रह्म, विश्वरूप या विराट्रूपसे सर्वत्र भरा हुआ प्रधान या मुख्य है। यानी विश्वात्मा सर्वव्यापक परमात्माके मुख्य साकार छोटा स्वरूप वही अण्डाकार शालिग्रामका स्वरूप है। सो परमेश्वरके प्रधान अंशसे ही सोई शालिग्राम शिला गण्डकी नदीमें भूतलमें उत्पन्न हुई है। ऐसा जानकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। उससे सब मनोकामना पूर्ण हो जायगी, ऐसा गुरुवालोगोंने वर्णन करके जीवोंकी भ्रमा रक्खा है वा अभी वैसे ही भ्रमा रहे हैं ॥ १२८९ ॥

३. आपु नारि होय ध्यावहिं ताहीं * भग अकार लिलाटे माहीं ॥ १२९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक नरजीव अपने सत्य स्वरूपको न जानकर भक्त बनकर स्त्रीवत् हो करके उसी कल्पित पुरुषका नारी-भावसे ध्यान, पूजन, अर्चनादि करते हैं। अपने मस्तकरूप लिलाटमें भगके समान आकार-प्रकार बना करके तिलक लगाते हैं। भगाकार पत्थरमें छिद्रवाला शालिग्राम कहीं मिला, तो उसकी बड़ी भाव-भक्तिसे पूजा करते-कराते हैं। और कोई शिलामें चन्दनादिसे भगाकार यन्त्र चिह्नाङ्कित करके पूजते हैं। पुरुष होकर भी अबोध जीव उलटे अपने नारी बनकर भग न होनेपर भी ललाटमें भगाकार बना करके दिन-रात धोखेका ध्यान-कर उसे पाना चाहते हैं; यही उनकी बड़ी मूर्खता है ॥ १२९० ॥

४. सदा धोय अमृत रस अँचवै * कामिनीरूप दहुँदिश नचवै ॥ १२९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नित्यप्रति सदा ही शालिग्राम, शिवलिङ्ग आदि पत्थर मूर्तिको धो-धो करके उस धोवन जलको अमृतके समान सुखदायी तथा मुक्तिदायी मानकर उस रसको आचमन करके पीते हैं; और अनेक कामनाएँ मनमें लेकर भक्त लोग स्त्रीके समान रूप बना-कर शृङ्गार करके दशों दिशाओंमें नाचते-फिरते हैं। अथवा दहुँदिश कहिये— श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन, ये नवधा भक्ति और दशवीं प्रेमलक्षणा भक्तिमें कभी हँसना, उठकर नाचने लगना, कभी रोने लगना, कभी गद्गद् होकर बोल भी न सकना, कभी खूब प्रेम बढ़ना, ऊँचे स्वरसे गाने लगना, कभी गूँगे समान चुपचाप मौन हो रहना, शून्य हो जाना, कल्पित ईश्वरके प्रेम तथा भक्तिमें पागलवत् हो जाना; इत्यादि भावसे दशों तरफ नाचते, भटकते रहते हैं। अथवा वाममार्गी लोग सदा भग-लिङ्गको धो-धोकरके उसके रस-पानीको अमृत समझकर पी जाते हैं। स्त्री स्वरूपमें आसक्त हो दशों इन्द्रियोंको विषय भोगके लिये दशों दिशाओंमें नचाते रहते हैं, इत्यादि कर्म-कुकर्म करते रहते हैं ॥ १२९१ ॥

५. सात्त्विक भाव विरह विधि नाना * संयम ताहि हेतु परवाना ॥ १२९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भक्तिमार्गमें सात्त्विक भावसे उत्पन्न होनेवाले विरहका और भी नाना विधिसे भाव वर्णन किया है। उसी सात्त्विक विरहकी प्राप्ति करके दृढ़ता करनेके लिये उसी हेतुसे संयम = अल्प आहार, अल्प विहार, सामान्य अल्प निद्रा, थोड़े बोलना इत्यादि साधारण मध्यम चाल रखकर चलना चाहिये, ऐसा निश्चयसे प्रमाण किया है। भक्तिके कई भेद वर्णन किया है:— भक्ति साधनमें मुख्य और गौण दो भाग हैं; सकाम और निष्काम दो प्रकार हैं। रागात्मिकाके तीन भेद हैं— रूपजन्य, सम्बन्धजन्य और स्वाभाविक, ये ही तीन हैं; और मदर्थ, तदर्थ— अतिरिक्त ये दो भेद और माना है। इसतरह संयम-नियम पालन करके सत्त्वगुणकी भावनासे अनेक तरहसे विरह बढ़ाकर ईश्वर भक्तिमें सदा लवलीन रहना, ऐसा गुरुवालोगोंने बतलाया है ॥ १२९२ ॥

६. अन्त सबनके एकै मूला * विषय विकारमई जिव भूला ॥ १२९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विषयी, कर्मी, भक्त, योगी, ज्ञानी तथा विज्ञानी, इन

सबोंका मूल ठिकानाकी पहुँच अन्तमें एक ही जगह हो जाती है। सब कोई परमानन्द प्राप्त करना चाहते हैं। आनन्दको ही मूल कारण ब्रह्म मान रक्खे हैं। इसीसे कोई स्त्री-पुरुषकी एकता करके विषय भोगके विकारमें निज स्वरूप चैतन्य जीवको भूले हैं; और कोई माया-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष, जीव-शिव, भक्त-भगवान् आदिकी कल्पनासे एकता मानन्दी करके साधनाके द्वारा योगानन्द, ध्यान, ज्ञान, ब्रह्मानन्दादिमें गाफिल होकर विकारी हो विषय सुख स्वरूप ही अपनेको मानकर उसीमें सब जीव भूले हैं और जड़ाध्यासी हुए हैं। अन्तमें शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंमें गर्भवासकी एक ही भूमिमें सब जीव चले गये वा चले जावेंगे, बिना पारख ॥ १२९३ ॥

७. जलसाई नारायण गावै * बहुविधि ब्रह्मा गाइ सुनावै ॥ १२९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कोई एक जलशायी या क्षीरसागर निवासी शेष शैय्यापर सोये हुए आदि नारायण हैं, उन्हींसे यह विश्व उत्पन्न होकर स्थित हो रहा है। वह परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, इत्यादि महिमा, गुणानुवाद बहुत प्रकारसे वेद द्वारा ब्रह्माने गायन करके सुनाया। सोई बढ़ा-चढ़ा करके ब्राह्मण लोग नाना तरहसे कथा-कीर्तन गा-गाकर लोगोंको सुना रहे हैं। ऐसे ब्राह्मण और ब्रह्मा तो अनादिकालके जगत्में बहुत लोग हुए। जीते तक उन्होंने कल्पित वाणीको गा करके सुनाया; मरकर फिर चौरासी योनियोंके चक्रमें चले गये; और अभी भी जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें ही चले जा रहे हैं ॥ १२९४ ॥

८. तासो कमल नाल उतपानी * कमलासन सोइ आपु बखानी ॥ १२९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पुराणमें लिखा है कि, क्षीरसागरमें शेषनागके ऊपर विष्णु योगनिद्रामें सोये हुए थे। एक समयमें विष्णुकी नाभिसे कमलका अंकुर फूटकर उत्पन्न हुआ, सो कमल नाल या डण्ठी बढ़ते-बढ़ते सागर जलके ऊपर तक आ गई। फिर उस नालमेंसे एक सहस्रदल कमलका फूल फूला। उस फूलमेंसे चतुर्मुखी ब्रह्मा उत्पन्न हुए। फिर ब्रह्मा हजारों वर्ष तक कमलके फूलमें ही आसन लगा करके तपस्या करते रहे। उस वक्त विष्णुके कानोंसे मैल गिरा, तो उससे मधु-कैटभ नामके दो बलवान् दैत्य पैदा हुए। उन्होंने ब्रह्माको देखकर लड़नेके लिये ललकारा; भयभीत हो ब्रह्माने कमलकी डण्ठी पकड़कर नीचे उतर करके योगमायाकी प्रार्थना की, योगमायाने विष्णुको जगाया ? तब विष्णुने मधु-कैटभसे घोर युद्ध किया, फिर वचनबद्ध करके उन्हें मार डाला। तब उन्हीं दैत्योंके शरीरके तत्त्व-प्रकृतिसे ब्रह्माने सृष्टि रचना की, इत्यादि कल्पित कथा वर्णन किया है। तहाँ विष्णुकी नाभिसे निकले हुए कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, इसीसे ब्रह्मा कमलासन कहलाया। ऐसी कल्पना करके आप ही मनुष्य जीवोंने मिथ्या बातका वर्णन किया है ॥ १२९५ ॥

९. सोई रूप विधि पुजै पुजावै * सदा शक्तिको ध्यान लगावै ॥ १२९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई विष्णु और शिवकी जड़मूर्ति प्रतिमाकी ब्रह्मारूप ब्राह्मणलोग विधिपूर्वक पूजा किये या पूजा करते-कराते हैं वा पुजवाते हैं। और सदा-सर्वदा आदिशक्ति भगवती, अष्टाङ्गी आदिमायारूप स्त्रीका ध्यान करनेमें प्रेम लगाये या ध्यानमें लौ लगाते हैं। अथवा ब्राह्मण लोग शिवलिङ्ग, शालिग्राम आदिको विधिसे पूजते और पुजवाते हैं। सदाकाल कुलदेवी शक्तिके ध्यानमें मन लगाये रहते हैं ॥ १२९६ ॥

१०. पञ्च मकार सो भोजन गुप्ता * शक्ति धर्म अज माया भक्ता ॥ १२९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देवीकी पूजा करके बलिदानमें बकरा आदि पशुको मार करके ब्राह्मण लोग मांस खाते हैं। मछली मारकर या मारी हुई मछली खरीदकर खाते हैं। मदिराको कितनेक ब्राह्मण लोग सोमरस नामसे वा भगवतीका चरणामृत-प्रसाद कहकर मद्य भी पी जाते हैं। मांसके पदार्थोंका मुद्रा बना करके देवीको चढ़ाकर खाते हैं; और मैथुन भी गुप्त रीति-से स्त्रियोंके साथ कर लेते हैं। सब ब्राह्मणवर्ग उक्त पाँचों मकारका सेवन भोजन गुप्त रीतिसे

घर-घरमें करते हैं। 'अज' कहिये ब्रह्मा शक्तिधर्मका पालन करनेवाला पूरा देवीभक्त हुआ है। इसीसे उसकी सन्तान ब्राह्मण लोग भी शाक्तमतावलम्बी तथा शैव विशेष करके शक्ति उपासक होते हैं। सो अभी तक वही मार्ग उसीप्रकार परम्परासे उनसे चला ही आ रहा है। कोई वाममार्गी देवीभक्त लोग भैरवीचक्र करनेवाले महा दुष्ट अनर्थकारी दैत्य ही होते हैं। ये सब मायारूप स्त्रीके भक्त भगासक्त महा पशु ही बनते हैं ॥ १२९७ ॥

११. तीहुँ कलामें रूढ़ प्रचण्डी ❀ विद्या बुद्धि अहं घमण्डी ॥ १२९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव— ये तीनों ही काम, क्रोध और मोहसे विषय भोगकी कलामें आरूढ़ होकर प्रचण्ड भगभोगी हुए थे; और वाणीमें— कर्म, उपासना और योगमार्गमें आरूढ़ होकर तीव्र भ्रमिक हुए थे। चौदह विद्या, चौंसठ कला आदिको सीखकर अपनेको सबसे बुद्धिमान् विद्वान् समझकर विद्या-बुद्धिका अहङ्कार बढ़ाकर बड़े घमण्डी, गर्विष्ठ (पापी) हुए थे। और उनके अनुयायी अभी वैसे ही घमण्डी अभिमानी बने फिर रहे हैं। उनको दुर्बुद्धि काल जानकर कभी उन्होंके जालमें नहीं जाना चाहिये ॥ १२९८ ॥

साखीः— तीनिहुँ तीन प्रकारसे ❀ विषय सनेही ज्ञान ॥
[२४३] विदित किया संसारमें ❀ भटके बहुत अयान ॥ १२९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश— ये तीनोंने ही तीन प्रकारसे विषय सनेही ज्ञानका प्रचार किया। काम कला करके विधि वा ब्रह्माने, मोह कला करके हरिने, और क्रोध कला करके हरने, यही तीन प्रकारसे खानीमें विषय भोगनेके ज्ञानमें, स्त्री भोगनेकी चतुराई किया; और वाणीमें विषयरूप ब्रह्मज्ञान कथन करनेकी चतुराईमें भी वे प्रवीण हुए। यही दोनोंमें स्नेह = प्रेम-प्रीति उन्होंने दृढ़तासे लगा करके फिर वही खानी-वाणी जालोंको संसारमें विदित या जाहिरकर खबर प्रगट करके उन्होंने खूब प्रचार किया। बहुतेक अज्ञानी, अविचारी मनुष्य उसी जाल-फाँसमें अरुझकर घेरेमें बद्ध हुए। बहुत-बहुत भटकना, साधना, जगधन्धामें पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हुए, आशा-तृष्णाकी फाँसीमें लटक मरे। बिना पारख नरजीव विषयासक्त, जड़ाध्यासी होकर भवचक्र गर्भकुण्डमें गिरे और गिर रहे हैं ॥ १२९९ ॥

साखीः— हरि पतिवर्ता कामिनी ❀ ब्रह्मा पुरुषमय रूप ॥
[२४४] हर एकत्र सिद्धान्त है ❀ परे विषयके कूप ॥ १३०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वोहं या ॐ भावना करके ब्रह्माने ब्रह्म पुरुषमय रूपको अपनेमें धारण किया, सोई ब्राह्मण लोग पुरुष भावनामें लगे हैं। तथा पतिव्रता स्त्रीके समान भक्तिभाव धारण करके कोई परम पुरुष परमात्मा मानकर उसकी प्राप्तिकी कामनासे अनन्य भक्ति वा अव्यभिचारी भक्ति पतिव्रता बनकर विष्णुने प्रचार किया कि, इसप्रकार भक्ति करो ! सोई भावना हरिभक्त लोग कर रहे हैं; और तमोगुणी महेशका तो स्त्री-पुरुष दोनोंको इकट्ठे स्थापना करनेका सिद्धान्त हुआ है। इसीसे भग-लिङ्गकी एकत्र स्थापना करके शिव-भक्त उसीकी पूजा करते और कराते हैं; सोई शाक्त लोग कर रहे हैं। कोई भक्ति-कर्म दोनोंको एकत्र मिला करके योग साधना करते हैं। तहाँ नाद-बिन्दु मिला करके शून्य समाधि लगाकर योगानन्द लेनेका सिद्धान्त कथन करते हैं। ऐसे स्त्री भाव, पुरुष भाव और नपुंसक भाव या दोनोंका मिलान मैथुन भोग भावना यही उन तीनोंके मुख्य सिद्धान्त हुए हैं। सबतरहसे वे तीनों विषयासक्तिसे भगकूपमें गिर पड़े। शरीर छूटनेपर फिर अन्धेरा कूप गर्भवासमें पुनः फिसल पड़े, बिना पारख ॥ १३०० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६९ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. उपदेशी नारी सो अकेली ❀ तीन पुत्र चेला कोइ चेली ॥ १३०१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें मायारूप गुरुवालोग उपदेशक हुए।

सबके पास नारी = वाणी कल्पना तो अकेली = एक-सी ही है। कोई एक परमेश्वर पुरुष बता करके उपदेश दिये, तो त्रिगुणी मनुष्य पुरुष कोई चेले हुए, और स्त्रियाँ कोई चेलियाँ हुईं। इसतरह मत-मतान्तर संसारमें फैलता गया। अथवा स्त्रीरूप आदिमायाने केवल एक ब्रह्म कर्त्ता बतलाकर सोई बात अकेली ही सबोंको उपदेश देकर समझा दी। उस जमानेमें बहुत लोगोंने तो उसकी बात ही नहीं मानी। परन्तु, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीन पुत्र उसके साथमें थे; उन्होंने ही आदिमायाकी सब बात मान ली, इससे वे ही तीनों आदिमायाके मुख्य चेले हुए। तैसे ही सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती, ये तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं; वही तीन आदिमायाकी चेलियाँ हुईं। किसीने उससे "ये आपके कौन हैं?" कहकर पूछनेपर "ये मेरे चेले और चेलियाँ हैं" ऐसा कहकर लोगोंको आदिमाया बताती रहीं; धोखेमें डालती रहीं ॥ १३०१ ॥

२. भोग करत तीन पुत्री जाये * सूक्षम कारण सोई उपाये ॥ १३०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मादि तीनोंसे मैथुन कर्म विषय सम्भोग करनेसे जो गर्भ रहा, उसीसे समय पा करके तीन पुत्रियाँ अष्टाङ्गी आदिमायाके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं। सूक्ष्म-कारण तीन पुत्रके वीर्य और आदिमायाके रज मिलकर सोई तीन पुत्रियाँ पैदा हुईं। अथवा कारण ब्रह्मादि तीन हुए, कार्यरूप सूक्ष्म तीन पुत्रियाँ हुईं और स्थूल भाग अष्टाङ्गी आदिमाया हुई। आदिमाया ही तीन पुत्र और तीन पुत्री उत्पन्न करनेवाली गुप्त कारण हुई। क्योंकि, उसीने उन छहोंको पैदा किया। परन्तु, कारण ब्रह्मसे सूक्ष्मरूपसे ब्रह्मादि उत्पन्न हुए, ऐसा कहकर धोखा देकर आदिमायाने जाल फैलाया है ॥ १३०२ ॥

३. पारवती सो सुषमना नेहा * शम्भु विहार करै सो देहा ॥ १३०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तहाँ सुषुम्नामें नेह = लक्ष्य लगा करके तमोगुणी शम्भु-ने अष्टाङ्गी मायाके साथ जब विहार या भोग-विलास किया, उससे जो गर्भ रहा, सो देह पूरा बनकर जब उत्पन्न हुआ, तो उस लड़कीका नाम पार्वती रक्खा गया। पीछे शम्भु उसी पार्वतीके साथ देह रहे तक विहार करता रहा। इस बातको छिपाकर गुरुवालोगोंने सो बात शरीरमें लाकर घटायी है। तहाँ कहते हैं— सुषुम्ना नाड़ी सोई पार्वती है; शम्भु या योगी लोग उसीमें प्रेम लगा करके योग साधना, ध्यान-समाधि आदिका विहार सो यही देहमें करते हैं; इत्यादि बात प्रगट करते हैं ॥ १३०३ ॥

४. लक्ष्मी पिङ्गला अंश उरेही * विष्णु विहार करै सो देही ॥ १३०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जब विष्णुने आदिमाया अष्टाङ्गीके साथमें देह विहार या भोग-विलास किया। पिङ्गला नाड़ी चलतेमें गर्भ रहा। उसीके अंशसे अवधि पूर्ण होनेपर लक्ष्मी नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। पीछे देह रहे तक सोई लक्ष्मीके साथमें विष्णु विहार करता रहा। सो देहमें पिङ्गला नाड़ीको लक्ष्मी या लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न पिङ्गला मानकर विष्णु भक्त लोग उसी नाड़ीके साथ ध्यानादि करके देहमें विहार करते हैं ॥ १३०४ ॥

५. सावित्री इङ्गला अधिकारी * ब्रह्मा जासों रचा धमारी ॥ १३०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जब ब्रह्माने आदिमायाके साथ भग भोग किया; इङ्गला नाड़ी विशेष चलनेपर गर्भ रहा। सो समय पाकर पुत्री उत्पन्न हुई, उसका नाम सावित्री रक्खा गया। पीछे देह रहे तक ब्रह्माने उसी सावित्रीके साथमें विशेषरूपसे विषय क्रीड़ाका राग रचता रहा। यहाँ देहमें इङ्गला नाड़ीको ही सावित्रीका अधिकारी विशेषरूपसे मानकर जिससे ब्रह्मा-रूप ब्राह्मण लोग धूमधामसे कल्पनाका राग रच रहे हैं ॥ १३०५ ॥

६. गुरु उपदेश बहुत दृढ़ कीन्हा * त्रिदेवा माथे गहि लीन्हा ॥ १३०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकार महामायाने उन्होंका गुरु = शिक्षक बन-कर खानी-वाणी जालोंके विस्तारसे बहुत प्रकारसे समझा करके उन्होंको उपदेश दिया, खूब दृढ़ कर

दिया, सोई सब बात ब्रह्मादि तीनों भाइयोंने खुशीके साथ स्वीकार करके शिरोधार्य किया, यानी वह शिक्षा ग्रहण करके शिरपर चढ़ा लिया; मनमें विश्वास करके बहुत दृढ़ किया। वही बात गुरुवालोंगोंने भी दृढ़ करके गुरु बन करके संसारमें बहुत प्रकारसे उपदेश किया, लोगोंको भ्रमाया मिथ्याको ही सत्य बतला करके धोखेको दृढ़ाया। अविवेकी त्रिगुणी मनुष्योंने उसको ही अच्छा हितकारी समझ करके माथेपर चढ़ा लिया। ब्रह्मादिको मुक्तिदाता मान-मान कर भव-बन्धनोंमें खूब अरुझे और अरुझाये हैं; चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जा पड़े और पड़ ही रहे हैं, बिना पारख ॥ १३०६ ॥

७. तीनि शक्ति सोइ रूप हमारी ❀ सौंपी जानि तुम्हें अधिकारी ॥ १३०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! एक समयमें महामायाने कहा कि— हे पुत्रो ! ध्यानसे सुनो ! रजोशक्ति सावित्री है, सत्त्वशक्ति लक्ष्मी है, तमोशक्ति पार्वती है, ये तीनों ही खास मेरे ही अंशसे प्रगट हुई हैं। इससे उन तीनों ही भगवतियोंको मेरा ही स्वरूप करके जानो ! मैंने अपनी गुप्त कलासे तुम लोगोंके सुख-सहायताके वास्ते ही इन्हें पैदा किया है। इन लड़कियोंके योग्य पति अधिकारी तुमलोगोंको जानकर मैं तुम्हें इन प्यारी पुत्रियोंके पाणिग्रहण करा करके प्रेमसे सौंप देती हूँ; ऐसा कहकर ब्रह्माको सावित्री, विष्णुको लक्ष्मी और महादेवको पार्वती, इसप्रकार तीनोंको तीन नारी सौंप दी। फिर कहा कि, इन्हें मेरे समान जानकर प्रेम करो ! सबप्रकारसे सुख-विलास करके जीवन बिताओ ! ऐसी बहुत-सी संसारी बातें आदिमायाने समझायी ॥ १३०७ ॥

८. प्रथम नाम हमारा गावो ❀ पाछे नाम पुरुष बतलावो ॥ १३०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर आदिमायाने कहा कि— देखो ! पहले कथा-कीर्तन, जाप, पूजा-पाठ आदि सब कार्य करतेमें हमारा-गायत्री भगवतीका नाम-स्मरण करो या हमारी शक्तिरूपिणी इन देवियोंका नाम गाओ। प्रथम माया-शक्तिका नाम लेकर फिर पीछेसे पुरुष-परमात्माका नाम उच्चारण करो, वही बात बतलाओ, तभी पूर्ण फल मिलेगा, कार्यकी सिद्धि होगी। वही बात ध्यानमें रखकरः— माया-ब्रह्म, शक्ति-शक्तिमान्, देवी-देवता, सावित्री-ब्रह्मा, लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शङ्कर, सीता-राम, राधे-श्याम, स्त्री-पुरुष, इत्यादि नाम-स्मरण करनेमें प्रथम नारीका नाम फिर पीछे पुरुषका नामका उच्चारण करके जाप या कीर्तनादि करते-कराते हैं। इसके बारेमें बहुत पक्ष पकड़ते हैं। स्त्रीरूप मायाका नाम शुरूमें गाकर फिर पुरुषरूप ब्रह्म या त्रिदेव आदिका नाम पीछेसे गुरुवालोग बतलाते हैं। ऐसा माया-जालका प्रचार हो रहा है ॥ १३०८ ॥

९. त्रिदेवा कर जोरि ठाढ़े ❀ प्रीति परस्पर पल पल बाढ़े ॥ १३०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! महामायाकी ऐसी आज्ञा सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों खड़े होकर दोनों हाथोंको जोड़कर विनय पूर्वक बोले— हे जगज्जननी ! आपकी सकल आज्ञा शिरोधार्य है। आपके आदेश अनुसार ही हम सब प्रचार करेंगे। आपके उपकारको हम कभी भूल नहीं सकते हैं; जन्मभर आज्ञा पालन करते रहेंगे, इत्यादि विनय सुनकर माया और त्रिदेवमें घनिष्ठ प्रीति-स्नेह परस्पर पल-पलमें बढ़ता गया। इसप्रकार विषयासक्तिकी मात्रा अत्यन्त वेगसे बढ़ती तथा फैलती गई ॥ १३०९ ॥

१०. छोभित माता कीन्ह सहाई ❀ सूक्ष्म गति सब दीन्ह लखाई ॥ १३१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब ब्रह्मादि खड़े होकर मायासे कहने लगे कि, हे मातेश्वरि ! हम पहले अपनी तथा जगत्की उत्पत्तिका हाल न जाननेसे क्षोभित=बड़े चञ्चल, उदास थे। अपने सहित विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता पुरुषके जाननेकी इच्छाको हम किसीप्रकार भी रोक नहीं सकते थे। सो हमने उसी समय आपसे प्रगट करके बतलाया था, हे माता ! आपने हमारी बड़ी सहायता की, सो सब सन्देहको ठीकसे मिटा दिया। जगत्कर्त्ता ब्रह्म-परमात्मा पहिचान करनेकी युक्ति-प्रयुक्ति स्थूल-सूक्ष्मकी सब गति या चालके भेद भी आपने हमें लखा दिया

है। जिससे हमारा समाधान हो गया है; पूर्ण, शान्तिकी प्राप्ति हो गई है। आपको सहस्रशः धन्यवाद है! ऐसी स्तुति करके बैठ गये ॥ १३१० ॥

११. जेता झीना मोटा भेवा ❀ माया प्रसाद शिष्य त्रिदेवा ॥ १३११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकारसे झीनी वाणीका जाल— भक्ति, योग तथा ज्ञानादिके मार्ग; और मोटी माया— स्त्री पञ्च विषयोंका भोग-विलास संसार प्रपञ्चके जितने भी स्थूल-सूक्ष्म भागके भेद थे, सो सब महामायाकी कृपाके प्रसादसे ब्रह्मादि त्रिदेवोंने सिखारू शिष्य होकर जान लिया वा समझ लिया। वही बात उन्होंने गुरुवा बनकर अन्य शिष्योंको भी समझाया और भ्रमाकर भुलाया है ॥ १३११ ॥

१२. शिष्य सब दुःखको मर्म न जानी ❀ तीनों पुत्र विषय अभिमानी ॥ १३१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मादि तीनों सब प्रकारसे मायाके शिष्य तो हुए। परन्तु, निज पारख बोध, चैतन्य स्वरूपका मर्म उन्होंने कुछ नहीं जाना। तीनों पुत्र माता-बहिन या पुत्रीके साथ ही सम्भोगादि कर्म-कुकर्म करके विषयके बड़े अभिमानी, दुराचारी, दम्भी हुए। यही खानी-वाणीकी विषयासक्ति, अभिमान, अध्यास ही हम जीवोंको चार खानीमें ले जाकर जन्म-मरण, गर्भवास त्रयतापादिका दुःख भोगायेगा; हमें अकेले ही तब नाना दुःख भोगना पड़ेगा। विवेक बिना यह भेद इन्होंने कुछ भी नहीं जाना। गाफिल हो नरजन्म व्यर्थ बिताये चौरासी योनि गामी हुए, अब पुत्ररूप त्रिगुणी नरजीव सब विषयोंके अभिमानी होकर बद्ध हो रहे हैं ॥ १३१२ ॥

साखीः— रचना सूत्तम हेतु जो ❀ दीन्ही सबै चिन्हाय ॥
[२४५] अधिकारी प्रति आपनी ❀ तीन्हों लीन्ह बिलगाय ॥ १३१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! खानी-वाणीकी नाना तरहसे रचना करके त्रिदेवोंको फँसाकर उसीमें लगाकर महामायाने भुला दिया। फिर देह और जगत् रचना होनेमें सूक्ष्म वा स्थूल कारण जो कुछ था, सो सब भी बता करके समझाकर चिन्हा दिया। जगत् रचनामें ब्रह्मको सूक्ष्मरूपसे कारण बतलाया; और देह रचनामें रज-वीर्य, तीन नाड़ी, जीवको सूक्ष्म कारण और कर्त्ता ठहराया। इसतरहसे और भी बहुत-सी बातें बतलाकर एक-एक करके सब चिन्हा दी। सो सुनकर योग-भोगादिमें जो जिसका अधिकारी था, सो उसने अपने-अपने शक्ति-अधिकारके मुताबिक भिन्न-भिन्न भाग बिलगा करके तीनों भाइयोंने तीन तरहका मार्ग पकड़ लिया। सोई अभी त्रिगुणी मनुष्य प्रत्येक लोग वही तीन मार्ग को अपने-अपने पसन्दके अनुसार अलग-अलग ग्रहण किये या कर रहे हैं ॥ १३१३ ॥

साखीः— अपनी धरनी राजमें ❀ तीन्हों करहिं विलास ॥
[१४६] कबहुँ परस्पर भटकि भटकि ❀ रचहिं सो विघ्न विनाश ॥ १३१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अपने-अपने राज्य, घेरा, हिस्साकी जगह घरमें निज-निज स्त्रीके साथ रहकर ब्रह्मादि तीनों विषय भोगोंका विलास करके विषयानन्द लेने लगे। कभी परस्पर झगड़ा हो जानेसे एक-दूसरेके कार्यमें उपाधि डालकर विघ्न करके विनाश कर देनेका उपायकी रचना कर-करके भटक-भटक कर सो विनाशकारी भी हो जाते रहे। अथवा कर्मके राज्यमें रहकर सावित्रीके साथ ब्रह्माने विलास किया। उपासनाके राज्यमें रहकर लक्ष्मीके साथ विष्णुने विलास किया; और योगके राज्यमें रहकर पार्वतीके साथ महेशने विलास किया। कभी-कभी परस्पर नाना कठोर साधनाओंमें भटका लगा-लगा करके ब्रह्मानन्द सुखकी चाहनासे सो सुखके बदले विनाश होनेका विघ्न ही रचना करते रहे। ऐसे मनुष्य जन्ममें ही हंस गुण-लक्षणोंको नष्टकर चौरासी योनियोंमें भटकते हुए फिरे और फिर रहे हैं ॥ १३१४ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ७० ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. अव्यक्तरूप सहज प्रकाशी * निर्विकार पूरण अविनाशी ॥ १३१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! तदुपरान्त एक समयमें महामायाने ब्रह्मादि तीनोंको बुला करके इसप्रकार शिक्षा कहकर समझाने लगी कि— [आदिमाया कहती हैः—] हे पुत्रो ! जो बात अभी तक गुप्त है, सो प्रगट करके मैं तुम्हें बतलादेती हूँ, सुनो ! परब्रह्मका लक्षण ऐसा है कि, अव्यक्त=व्यक्तिगतसे रहित, एक अप्रगट गुप्त कर्त्ता है। उसका स्वरूप सहज= आकाशवत् निराकर, निर्गुण, निरञ्जन है। वह प्रकाशी=चराचर सब जगत्को प्रकाश करनेवाला महान ज्योति प्रकाशरूप है। उसीके प्रकाशसे सूर्य-चन्द्रादि सब प्रकाशित हो रहे हैं। निर्विकार= सारे माया विकारसे रहित ब्रह्म शुद्ध स्वच्छ केवल रहता है। पूरण=भीतर-बाहर सर्वत्र भरा हुआ व्यापक है। अविनाशी=तीनकालमें उसका नाश वा हानि कभी नहीं होता है, एकरस, अखण्ड ज्यों-का-त्यों ही सदा बना रहता है। सोई परमात्मा जगत्का आदिकारण सर्वाधार है, ऐसा जानो ! ॥ १३१५ ॥

२. पराक्रम पुरुष सो भारी * सोई कारण इच्छा हम नारी ॥ १३१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाने कहा— सो परम पुरुष परमात्मा सर्व-शक्तिमान् है। जो चाहे सो कर सकता है। उसके पराक्रम, पुरुषार्थ या शक्ति बड़ी भारी है। वह राईको पर्वत, तथा पर्वतको राई बना दे सकता है। क्षणभरमें ही जगत्का उत्पत्ति और प्रलय कर दे सकता है। उसकी महिमा क्या कहना ? उसकी लीला अपार है। सोई परम पुरुष परमेश्वर तुम्हारे सहित सारा विश्वकी उत्पत्ति होनेमें मूल कारण है। उसीकी इच्छा, स्फुरणा, चाहना एवं शक्तिरूपा ही हम नारी=प्रकृति, आद्या, माया, स्त्री, अर्द्धाङ्गी, अर्धाङ्गिनी बनी हैं। उसी कारण पुरुषकी मैं स्त्री हूँ ! ॥ १३१६ ॥

३. हम इच्छा हम सो संसारा * अनन्त कलाको पावै पारा ॥ १३१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाने कहा— उस ब्रह्मकी ही इच्छारूपिणी महाशक्तिशालिनी महामाया आद्याशक्ति हम हैं। सो पुरुषके इशारासे चराचररूप सारे संसारकी सृष्टिको हमने ही पैदा करके उत्पन्न किया है। यानी समस्त संसार-सृष्टि हमसे ही बनी है। मेरेमें अनन्त कला, अनन्त शक्ति वा प्रताप मौजूद हैं; मुझे कोई जान नहीं सकते हैं। मेरी लीलाको कौन पार पा सकता है ? मेरे विरुद्ध चलनेवालोंका तो मैं सत्यानाश ही कर देती हूँ ! तुम लोगोंने मेरी आज्ञाको मान लिया, सो अच्छा किया; तुम्हारा भला होगा, इत्यादि भयानक वाणी कही ॥ १३१७ ॥

४. अंश पुरुष तुम तीन उपाये * पुत्री तीनि हमहिं निर्माये ॥ १३१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाने कहा— पहले ऊपर कहे हुए परम पुरुष परमात्माके अंश=वीर्य विशेषसे तुम ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों पुरुष देह धारण करके मेरेसे उत्पन्न हुए हो; और ये तीन पुत्रियाँ— सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती, मेरे स्वयंके रजरूप अंशसे उत्पन्न हुई हैं। उन तीनोंको मैंने स्वयं ही गुप्त कलाकी शक्तिसे बनाकर प्रगट किया है। यह भेद तुम्हें मैंने बता दिया है, सो जानो ! ॥ १३१८ ॥

५. जो झीना सोई मोटा भेवा * एक सम पिण्ड ब्रह्माण्ड उरेहा ॥ १३१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाने कहा— जैसे बीजसे वृक्ष हो जाता है, तैसे ही झीनी जो बीज है, सोई समय पा करके मोटी हो जाती है। इङ्गलादि सूक्ष्म नाड़ी सो वातादि स्थूल भी हो जाती है। कभी सृष्टि गुप्त रहती है, और कभी प्रगट भी हो जाती है। जैसे पिण्डकी उत्पत्ति होती है, तैसे ब्रह्माण्ड भी बनकर उत्पन्न होता है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड एक समान ही उत्पन्न हुआ या बनाया हुआ है। झीना ब्रह्म ही मोटा जगदाकारमें प्रगट हुआ, यही इसका भेद है; ऐसा जान लो ! ॥ १३१९ ॥

६. पिण्ड ब्रह्माण्ड राज मिलि करहू * ब्रह्मज्ञान हृदयमों धरहू ॥ १३२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमायाने कहा— हे पुत्रो ! तुम तीनों परस्पर मेल-मिलाप करके अपनी-अपनी स्त्रियोंके सहित पिण्ड-ब्रह्माण्डका राज्य किया करो। पिण्डमें पञ्च विषयोंका भोग करके सुख करो। ब्रह्माण्डमें कर्म, भक्ति और योग साधना करके भीतरी आनन्दका अनुभव करो। मेरी कृपासे तुम्हें पिण्ड-ब्रह्माण्डका साम्राज्य मिला है। उसकी सम्हाल करके रक्षा करो; और हृदयमें ब्रह्मज्ञानके अद्वैत सिद्धान्तका धारण करो ! कर्त्ता-भोक्तापनाको त्यागकर सब कार्य करो; अपनेको असङ्ग ब्रह्म जानते रहो। फिर तुम्हें कोई बाधा नहीं होगा। मनमें ब्रह्मज्ञानको रखकर तनसे पिण्ड-ब्रह्माण्डका सुख भोग करो। मेलसे राज्य किया करो, ऐसी समझानेकी बातें कही ॥१३२०॥

७. राज पाट बाँटि सो दीन्हा * तीनों तीन लोक सो लीन्हा ॥ १३२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऊपर कहे अनुसार तीनों भाइयोंको समझा-बुझाकर महामायाने उन्होंका हिस्सा बटवारा भी अलग-अलग कर दिया। राज-पाट, धन-धान्य, सम्पत्ति-जायदाद बाँटकर फिर न्यारा-न्यारा शासन करनेका अधिकार भी दे दिया। पिण्डसे ब्रह्माण्ड तकके राज्यका तीन भाग करके तीन पुत्रोंको बाँट दिया। ब्रह्मादि तीनोंने भी तीन लोकके राज्य चलानेका सो अपना-अपना अधिकार सम्हाल लिया। सो आदिमायासे तीनों लोकोंकी शासन सत्ता ब्रह्मा, विष्णु और महादेव उन तीनोंने हस्तान्तरित कर लिया ॥ १३२१ ॥

८. मृत्यु लोक ब्रह्मा अधिकारी * कर्म भूमिका भव जल भारी ॥ १३२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब किसको कौन लोक मिला, सो कहते हैं; सुनिये ! मृत्यु लोक, संसारके मध्य भागका राजा ब्रह्मा हुआ। सात द्विप, नौ खण्ड पृथ्वीके मध्यमें वा ब्रह्माण्ड भरमें ब्रह्माका अधिकार कर दिया। ऐसे ब्रह्मा मर्त्यमण्डलका अधिकारी या अधिपति हुआ; इसी भूमिकामें उसने कर्ममार्गका कानून स्थापित किया। संसारको बड़ाभारी भवसागर बतलाकर इससे पार उतरनेके लिये कर्मभूमिका मनुष्योंमें कर्मकाण्डकी वाणी-खानी जालका बड़ाभारी विस्तार किया। सारी प्रजाको उसी घेरामें रख लिया ॥ १३२२ ॥

९. स्वर्ग लोक विष्णुहि स्वीकारी * भोग अभोग कर्म विस्तारी ॥ १३२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर दूसरे भाई विष्णुने उपरी भागमें सात स्वर्ग वा पहाड़ी प्रदेशका राज्य लेना स्वीकार या मञ्जूर किया। उसे स्वर्ग लोकका राजा बनाया। सब पहाड़ी देशोंमें उसका अधिकार हो गया। ऐसे स्वर्ग या वैकुण्ठ लोकका अधिपति विष्णु हुआ। वहाँ उसने भक्तिमार्गकी साधनाका कानून विस्तार किया। भोग=फलाहारादि भोजन करके, अभोग=निराहार, निर्जल रहकर व्रत-उपवास करना। कभी पञ्च विषय भोगकी नाना लीला करना, कभी विषय त्यागकर ध्यान-धारणा करना, कभी दयालु बनकर भक्तकी रक्षा करना और कभी निर्दयी होकर शत्रुको मार डालना। ऐसा विरोधी कर्म, उपासनाका विस्तार किया ॥ १३२३ ॥

१०. शून्य पाताल सो शङ्कर राजा * पुनि प्रतिलोकमें तीहुँ विराजा ॥ १३२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तीसरे भाई शङ्करने नीचेके भाग सात पाताल शून्यान विरान भूमिका राज्य लेना मञ्जूर किया। इसीसे महेशको अर्ध-पाताल लोकका राजा बना दिया (अमेरीका आदि देशको पाताल भी कहते हैं)। ऐसे नीचेके सब पाताल देशमें उसका अधिकार हो गया। उसने अपने राज्यमें योग मार्ग और वाम मार्गका खुल्लमखुल्ला प्रचार किया। सब प्रजाओंको उसने योग-भोगके घेरामें घेर रक्खा। आदिमायाने तीनों लोकोंका राजा उन्हें बनाकर जब राज-तिलक लगा करके अभिषेक कर दिया, तब फिर वे तीनों प्रत्येक अपने-अपने लोकमें जाकर विराजमान हुए, राज्य शासन करने लगे। फिर पिण्डमें त्रिकुटी लोक जाग्रत् अवस्थाका राज ब्रह्माने लिया; कर्म करनेमें प्रवृत्त हुआ। कण्ठ लोक स्वप्न अवस्थाका राज विष्णुने लिया; उपासना करनेमें

प्रवृत्त हुआ; और हृदय लोक सुषुप्ति-शून्य अवस्थाका राज महादेवने लिया, योगाभ्यास करनेमें प्रवृत्त हुआ। ऐसे पिण्ड ब्रह्माण्डके प्रत्येक लोकमें अधिकार जमाकर तीनों विराजित हुए। इसमें प्रमाण सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सद्ग्रन्थ बीजक मूल, रमैनी— २७ में कहा है:—

रमैनी:— "ब्रह्माको दीन्हो ब्रह्मण्डा। सप्त द्वीप पृथुमी नौ खण्डा ॥ १ ॥
सत्य-सत्य कहि विष्णु दृढ़ाई। तीन लोकमा राखिन जाई ॥ २ ॥
लिङ्गरूप तब शङ्कर कीन्हा। धरती खीलि रसातल दीन्हा ॥ ३ ॥"

सद्गुरुके इन वचनोंको ही ग्रन्थकर्त्ताने यहाँपर दूसरे शब्दोंमें दरशाया है, ऐसा जानिये ! ॥ १३२४ ॥

११. अपने अपने गुणके राऊ ❀ कहत गुण औगुण सब दाऊ ॥ १३२५ ॥

अर्थ:— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! रजोगुण राग-रङ्गादि प्रिय ब्रह्मा रहा। सत्त्वगुण शील-शान्ति प्रिय विष्णु रहा। तमोगुण मार-पीट प्रिय शङ्कर रहा। ऐसे अपने-अपने गुणके राजा विशेष त्रिगुणी वे रहे। अपने ही स्वभाव गुण-लक्षणको सबसे अच्छा श्रेष्ठ कहकर दूसरे सबोंके सद्गुणोंको भी अवगुण या दुर्गुण कहते रहे। अपने-अपने दाव-घात लगा करके लोगोंको फँसाते रहे। अब उनके अनुयायी लोग अपने-अपने इष्ट देव ब्रह्मादिकोंको सद्गुणके राजा, त्रिभुवन पति, महा गुणवान् मुक्तिदायी हैं, ऐसे-ऐसे गुणगान करके महिमाको कहते हैं या कह रहे हैं। परन्तु, विवेकदृष्टिसे देखिये! तो वे सब अवगुणी, घातकी दाव-घात देखनेवाले दुष्ट बने रहे। वैसे ही उनके-मतवाले भी देखनेमें आते हैं। इसीसे वे सब बद्ध जड़ाध्यासी ही हुए हैं ॥ १३२५ ॥

१२. औगुण गर्व घमण्ड अधिकाई ❀ बिनु पारख बूड़ी चतुराई ॥ १३२६ ॥

अर्थ:— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मादिक बड़े अहङ्कारी, घमण्डी रहे; बहुत ही गर्व या अभिमान करते रहे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर, राग-द्वेष, छल-कपट आदि अवगुण उनमें बहुत विशेष रहे। निज चैतन्य स्वरूपकी पारख बोध-स्थिति उन्होंको जन्मभर नहीं हुई। इसीकारणसे पारख ज्ञानके बिना ब्रह्मादि त्रिदेवोंकी खानी-वाणीकी चतुराई, विद्या-बुद्धि, गुरुवाई सब अकार्थ वा व्यर्थ गई। जीते तक जड़ाध्यासी होकर कल्पना, भ्रम तथा भग भोग विषयोंमें डूबे रहे। फिर शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंके गर्भकूपमें गिरकर डूब मरे या दुःख भोगी हुए। अपरोक्ष पारख बोधकी स्थितिमें ठहराव हुए बिना जीवकी निस्तार वा मुक्ति नहीं होती है ॥ १३२६ ॥

साखी:— औगुणरूप त्रिगुण सबै ❀ नाशक जाके मूल ॥
[२४७] विदित कहावै गुण सोई ❀ खानि घनेरी शूल ॥ १३२७ ॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! तीनों गुण सब ही अवगुणके ही रूप हैं। और जिसके मूल=जड़ ही खराब, विकारी हो, फिर उसके वृक्ष, पत्र, फूल, फलादि अच्छे गुणकारी कहाँसे होंगे? तैसे ही जिन त्रिगुणोंका मूल कारण ब्रह्म निर्गुण शून्यको माना है, तो फिर उसके कार्य जगत्— तीन गुणोंमें अच्छे गुण कहाँसे आयेंगे? इसीसे त्रिगुणरूप भक्ति, योग, ज्ञान; काम, क्रोध, मोह और तत्त्वमसि— ये सब अवगुण विकार उपाधिके ही रूप हैं। जिसका मूल स्थान ब्रह्म भी भ्रमरूप सब सद्गुणोंका नाशक है। निरञ्जनका पुत्र ब्रह्मादि तीनोंने सोई त्रिगुणी मार्गको संसारमें विदित करके कहा है। फिर वे महान त्रिगुणके अधिष्ठाता कहलाये, तीन मार्ग जाहिर किये। परन्तु, पारखहीन होनेसे सोई त्रिगुण विषयाध्यासवश चार खानीमें जाकर घनेरी या बहुतेक शूल=असह्य दुःख भोगे। उसीका पक्ष लेनेवाले अध्यासी जीव सब अभी भी चार खानीके नाना योनि समूहोंमें जा करके अनेकों दुःख वा शूल भोग रहे हैं। अथवा औगुणके रूप ही त्रिगुणके सब विषय हैं। नाशक= मन जिसका मूल कारण है। सोई गुण चार खानियोंमें ले जा करके घनेरी शूल भोगा रहा है, सो जाहिर ही है; वही दुःखोंका बीज कहलाता है ॥ १३२७ ॥

साखीः— पृथक पृथक अनबनि कला * प्रीति जबै त्रिदोष ॥
[२४८] प्रगट करै पद आपनी * नाशक तहाँ सरोष ॥ १३२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पृथक्-पृथक् या न्यारा-न्यारा नाना प्रकारकी कलाएँ अनेक तरहके चालें, रीति-रिवाज उन तीन गुणोंकी हो रही हैं। जब रज, सत्त्व और तम- ये तीनों ही गुण प्रीति=मेल-मिलाप करके एकत्र हो जाते हैं, तब प्रचण्ड दोष हो जाता है। सन्निपातके समान महान हानिकारक हो जाता है। त्रिगुणकी भिन्न-भिन्न चाल और एकत्र होना, उससे जीवोंका कुछ हित-कल्याणका बनाव नहीं होता है। उसकी सब कलाएँ अहितकर ही होती हैं। उसमें प्रीति करते-करते जब त्रिदोषरूप ब्रह्मज्ञान हो जाता है। तब नाशक=गुरुवालोग तीव्र वेगसे रोष सहित तहाँ अपना पद=ब्रह्म स्थिति, अद्वैत सिद्धान्त प्रगट करके दिखलाते हैं या दृढ़ाते हैं। वे कहते हैं— "ब्रह्म ही अपना पद है, अद्वैत सिद्धान्त ही संसारमें सर्वश्रेष्ठ है !" इसप्रकार तहाँ श्रेष्ठ हंसपदको विनाश करके जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंके चक्रमें चले जाते हैं, बिना पारख ॥ १३२८ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ७१ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. राज मगन मन तीनिहुँ भाई * जहाँ जे गुण तीनिहुँ बिलगाई ॥ १३२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! स्त्री, राज्य, धन-सम्पत्ति, हुकूमत चलानेका अधिकार पा करके ब्रह्मादि तीनों भाई मनमें बड़े मग्न-आनन्दित, प्रफुल्लित हो गये। अपने-अपने राज्यमें रहकर मनमाने विषय भोगने लगे। इसीसे बड़ी मस्तीमें रहते रहे। अपने कामका जहाँपर जो गुण देख पाये, तहाँसे सो गुण तीनोंने न्यारा-न्यारा बिलगा करके या छाँट करके ले लिये या लेते गये। अथवा राज्य भोगमें तीनों भाई मग्न हुए; परन्तु, जहाँ वे रहते थे, उन तीनोंका गुण भिन्न-भिन्न दिखलाई देता था ॥ १३२९ ॥

२. बहु विधि ब्रह्मा कर्म उपावै * कर्म सुकर्म विष्णु बिलगावै ॥ १३३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब ब्रह्माने विधिपूर्वक बहुत प्रकारका कर्मकाण्ड उत्पन्न किया। स्नान, सन्ध्या, पूजा, पाठ, तर्पण, होम, यज्ञ-याग वलिवैश्वदेव, दशकर्म, षोड़श संस्कारके कर्म, इत्यादि बहुविधि कर्म विधि-निषेधका नियम नाना उपायसे बनाकर पैदा किया, फैलाया; और विष्णुने शुभ कर्म और अशुभ कर्मकी छान-बीन करके भक्तिमार्गको अलग निकाल लिया। तहाँ नौ वा दश प्रकारकी या और कई तरहकी उपासनाकी चाल चलायी। सगुण-निर्गुण भक्ति फैलायी ॥ १३३० ॥

३. शम्भू शून्य समाधि लगाई * योग ज्ञानके मता चलाई ॥ १३३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! महादेवने कर्म-उपासनाको एकमें मिलाकर योग मत और ब्रह्मज्ञानके अद्वैत मतको संसारमें चलाया। योग साधना द्वारा मस्तकमें प्राण चढ़ा करके शून्य समाधि लगाकर गरगाफ हो करके पड़ा रहा। वही शून्य समाधि लगानेकी युक्ति अपना मत योग मार्गके नामसे चलाया ॥ १३३१ ॥

४. ॐकार ब्रह्माके जापा * ररं शब्द हरिके परतापा ॥ १३३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'ॐकार वा वोहं' मनमें कल्पना करके श्वासमें लक्ष्य लगाकर ब्रह्माने जाप किया। यही ब्राह्मण लोगोंका मुख्य जाप ॐकार माना है। 'ररं' शब्द या 'राम-राम'का रटन और श्वासमें भी 'ररं' शब्दका जाप लक्ष्य द्वारा विष्णुने किया। उसीको भक्त लोगोंने प्रतापी शक्तिशाली विष्णुका नाम-स्मरण या मुख्य जाप मानकर जपते जा रहे हैं ॥ १३३२ ॥

५. सोहं शब्द शम्भु परवाना * तीनि वाक्य मत एकहि जाना ॥ १३३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! 'सोहं' शब्दको श्वासमें कल्पना करके महादेवने

प्रमाण मानकर जाप किया। सोई योगी लोगोंने सोहंको शिवका जाप प्रमाण करके मान लिया है। वे वाक्य तो तीन हैं; परन्तु, उसका मतलब, सिद्धान्त तीनोंका एक ही है। जैसा वोहं=वह ब्रह्म मैं हूँ। ररँ=सबमें रमनेवाला आत्मा राम मैं हूँ! सोहं=सो ब्रह्म मैं हूँ! इन तीनों शब्दोंका अर्थ तो एक ही हुआ। उन तीनोंका मुख्य मत विषयानन्द और ब्रह्मानन्द सुख प्राप्त करना भी एक-सा ही ठहरता है। निज द्रष्टा चैतन्य स्वरूपको जड़ भागसे न्यारा न समझकर सबमें भरा हुआ ब्रह्म एक है, ऐसा माना है। इससे सत्य सारको उन्होंने कुछ भी नहीं जाना। बिना पारख भिन्न-भिन्न प्रकारसे मन-मानन्दी और विषयाध्यासमें ही भूले रहे। सो जिज्ञासु मनुष्योंने पारखी श्रीसद्गुरुसे सत्सङ्ग द्वारा परख करके वह सब भूलको मिटाना चाहिये ॥ १३३३ ॥

६. एक बात माया नहिं भाखी ❀ तीनिहुँ पुत्रते गुप्तहि राखी ॥ १३३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आदिमायाने और सब प्रपञ्च माया जालकी बात तो ब्रह्मादिकोंको बतलाकर समझा दी; परिपुष्ट कर दी थी। परन्तु, उस महामायाने एक बात किसीसे भी नहीं कही। शिवादि तीनों पुत्रोंको भी वह बात नहीं बतलाई; छिपा करके गुप्त करके रक्खी। वह एक बात यही कि, जगत् जड़-चैतन्य अनादि कालका है, इनका कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि कोई नहीं है। देहधारी मनुष्य जीव ही खानी-वाणीके कर्त्ता-धर्त्ता हैं। मनुष्योंने ही कल्पना करके कोई जगत्के कर्त्ता माना है, सो भ्रम-भूल है। जीव सत्य है, ब्रह्म मिथ्या है। अपने चैतन्य स्वरूपको ही सत्य पहिचानना चाहिये। यही सत्यनिर्णयकी बात महामायाने नहीं कही। तीनों पुत्रोंको सत्यनिर्णयके यथार्थ बात न बताकर गुप्त करके छिपा रक्खी; और आवरणरूप पर्दा डाल दिया। पारखका मर्म तो आदिमाया भी नहीं जानती थी; केवल भ्रमाना ही जानती थी ॥ १३३४ ॥

७. धर्मरायके कहे उपभेवा ❀ विषय मगन भये त्रिदेवा ॥ १३३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! आदिमायाने कहा कि— यह सारा स्थावर-जङ्गमकी सृष्टि करके उत्पन्न करनेवाला धर्मका राजा निरञ्जन, निराकार, धर्मराय नामका ब्रह्म परमात्मा कोई दूसरा ही है। ऐसी अनुमान-कल्पना करके जगत्कर्त्ता कोई दूसरा ही है; उसीकी इच्छासे जगत् बना है; यही भेद (आदिमायाने) कहा। जीवके सत्य स्वरूपको छिपा करके दूसरा कर्त्ताका भेद बताकर, भूल-भुलैयामें डाल दिया। क्योंकि, धर्मरायने मृत्युके वक्त यही दूसरा भेद बतलानेको कहा था। इसीसे धर्मरायके कहे अनुसार दूसरा ही भेद बता दिया। माया-जालमें घेर-घारकर विषय भोगोंमें फँसा दिया। सो विषय भोगोंमें लगकर वे त्रिदेव भी मग्न-मस्त गाफिल हुए। आगे सत्यकी कुछ खोज- खबर नहीं किया; माया-जालमें अरुझकर अचेत पड़े रहे ॥ १३३५ ॥

८. जहाँलों त्रिगुणी फाँस बनाई ❀ लिङ्ग पिण्ड ब्रह्माण्ड अरुझाई ॥ १३३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें खानी-वाणी दोनों भागमें जहाँ तक भी त्रिगुणी फाँसी या महाजाल महामायाने बनाया, वहाँ तक नरजीवोंको फँसा-फँसा करके अरुझाई है। उसका चिह्न पिण्डमें स्थूल भोग विषयानन्दका और ब्रह्माण्डमें सूक्ष्म भोग योगानन्द और ब्रह्मानन्दादिका लिङ्ग=सूक्ष्म कला-कल्पनादिका मजबूत जाल फैलाकर सबको अरुझाई है या अरुझा रही है ॥ १३३६ ॥

९. राजपाट त्रिदेवा दृढ़ाई ❀ महाशून्य जननी मुर्ति लाई ॥ १३३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकार कर्म, उपासना, ज्ञानादिका राज तथा काम, क्रोध, मोहादिका पाट, उसीका आधार देकर ब्रह्मा, विष्णु और महेशको आदिमायाने अन्ततक खानी-वाणीकी नाना कला खूब दृढ़ाई, अच्छी तरहसे परिपुष्ट कर दी। जितनी बात वह जानती थी, सो सब एक-एक करके सिखला दी; राज-पाट चलानेकी व्यवस्था, मत प्रचार करनेकी युक्ति, सब तरहसे छल-कपट करनेकी कला बतला दी। ऐसे करते-करते उसकी आयु भी खतम हो गई।

जननी = आदिमायाने अब महाशून्य = निरञ्जन पुरुषके पास चले जानेकी सुर्ती = लक्ष्य लगाया; अर्थात् मृत्यु शैय्यापर गिर पड़ी, तो उसने बतलाया कि- "अब मैं परम पुरुष परमात्माके पास महाशून्यमें जाकर समा जाऊँगी !" प्राण कण्ठमें आया, चैतन्य-जीव निकल गया, प्राण चलना बन्द हो गया, तब ब्रह्मादिकोंकी जननी महाशून्यमें सुरति लगाते-लगाते मर गई। फिर शून्यके अध्याससे शून्य स्थान गर्भवास-चौरासी योनियोंमें जा करके समा गई ॥ १३३७ ॥

१०. रूप प्रगट अस्थूल नशानी ❀ अपने पदमें रहीं समानी ॥ १३३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब जीवके निकल जानेसे उधर महामायाका प्रगट दिखनेवाला स्थूल शरीरका रूप, आकार-प्रकार भी नाश हो गया। देह सड़ गया वा जल करके राख हो जानेसे पाँच तत्त्वके भाग तत्त्वमें ही समा गया, देहका कुछ भी भाग नहीं रहा, विनाश हो गया। मायाकी समझसे उसके पदरूप महाशून्य ब्रह्ममें समा गई। परन्तु, जीव तो शून्यमें मिल नहीं सकता है। इसीसे मायाका पदरूप स्त्रीके गर्भवासमें जड़ाध्यासवश जाकर समा गई। अपने चैतन्यपदमें स्थिति न होनेसे आवागमनके चक्रमें ही पड़ी रही ॥१३३८ ॥

११. गये बिलाय रहे त्रिदेवा ❀ राज पाटको ठानिन भेवा ॥ १३३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे एक-एक करके समयान्तरमें पिता-मातारूप धर्मराय तथा अष्टाङ्गी महामाया, यह दोनों मर-मर करके देह छोड़कर बिला गये, गुप्त हुए, चौरासी योनियोंकी गर्भ-गुफामें जाकर छिप गये वा अन्तर्धान हो गये। तब उनके युवा पुत्र त्रिदेव बाकी रहे। उन्होंने आदिमायाके उपदेशको मनन करके अच्छी तरहसे ध्यानमें रख लिया था। अब अपने-अपने राज-पाट ठीकसे चलानेका, मत प्रचार करनेका भेद सोचकर निश्चय किया। खानी-वाणी दोनों मार्गोंको प्रेम भावसे चलने और चलानेका यही भेद ठान दिया वा कायम किया ॥ १३३९ ॥

१२. हरि कमला ब्रह्मा ब्रह्मानी ❀ उमा महेश करहिं रजधानी ॥ १३४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ ब्रह्माने ब्रह्मानी = सावित्रीके साथमें मध्यप्रदेशमें रहकर विषय भोग करते हुए कर्म मार्ग, वर्णाश्रम धर्मका प्रचार किया। विष्णुने कमला = लक्ष्मीके साथ उत्तर प्रदेशमें रह करके विषय-विलास करते हुए भक्तिमार्ग, वैष्णव धर्मका खूब प्रचार किया; और महेशने उमा = पार्वतीके साथ पश्चिम वा हिमालय प्रदेशमें रह करके विषय भोग काम क्रीड़ा करते हुए योगमार्ग, वाममार्ग, शाक्त धर्मको जोरोंसे फैलाकर प्रचार किया। इसप्रकारसे अपनी-अपनी राजधानीके घेरा, दुर्गमें रहकर मनमाने राज्य किया, इच्छानुसार मत-पन्थका विस्तार किया। वही सब उनकी चाल नाद-बिन्द परम्परासे अभी तक संसारमें चली ही आ रही है। परन्तु, वह महाजाल जीवोंको महान बन्धन है। कोई बिरले ही पारखी श्रीसद्गुरुकी कृपासे सत्यबोध पानेपर बच पाते हैं ॥ १३४० ॥

साखीः— अपने अपने राजमें ❀ सबै भये परचण्ड ॥
[२४९] सोई धूम जो मचि रहा ❀ सात द्वीप नौ खण्ड ॥ १३४१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हरि, हर और ब्रह्मा, ये तीनों अपने-अपने राज्य शासनमें सब प्रवीण हुए। विषय भोग और कल्पनाके तीक्ष्ण प्रचारक हुए। त्रिगुणके राज भक्ति, योग और ज्ञानमार्ग चलानेमें प्रचण्ड बलशाली हुए। उन सबोंने निज-निज प्रपञ्चको तीव्रतासे विस्तार किया। सात द्वीप, नौ खण्ड, एकईस ब्रह्माण्ड, समस्त संसारमें सोई वाणी-खानीकी धूम, हो-हल्ला मच रहा है। पूर्वसे पश्चिम तक, उत्तरसे दक्षिण तक, प्रथमसे अभी तक उसीकी धूम-धाम जोर-शोरसे झगड़ा-फसाद, खींचातानी हो रही है। उस धूममें त्रिगुणी मनुष्य सब पीसे गये नष्ट-भ्रष्ट होते जा रहे हैं। बिना पारख सात द्वीप, नौ खण्डमें कोई बच नहीं पाये ॥ १३४१ ॥

साखीः— चारि वेद प्रगट किये * गुण सो तीनहुँ मिलाय ॥
[२५०] सोई श्वास भगवानके * ब्रह्मा रची फैलाय ॥ १३४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिगुण कलाको मिला करके रजोगुणी चतुर मनुष्योंने चार वाचासे कल्पना करके संसारमें चार वेद=ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नामसे वाणीको प्रगट किया। शब्दोच्चारणमें सो त्रिगुणका मिलाप भी होता रहता है। श्वास-उच्छ्वास चलनेसे मुखसे शब्द निकलनेपर तालु, कण्ठ, ओठ, दाँत, नासिकादि स्थानोंमें स्पर्श होकर अक्षर मात्रादि बनती हैं। उसी तरह वर्णोंको जोड़कर ब्रह्माने ही वेदकी रचना की; और मुसलमानोंके कुरान भी मुहम्मदने गुप्त रीतिसे बनाकर खुदाके नामसे प्रगट किया। वैसे ही इधर वेद तो ब्रह्माने बनाया, उधर प्रसिद्धि करनेके वास्ते परमेश्वरको वेदका कर्त्ता बतला दिया। विश्वरूप या विराट् भगवान् महानारायण परमेश्वरके श्वाससे सृष्टि उत्पन्न होनेके पहले सोई चार वेद साकाररूपमें प्रगट हुआ। वही वेद ईश्वरीय ज्ञानको संसारमें प्रचार करनेके वास्ते भगवान्ने कृपा करके वेद मुझे दिया। इससे तुम सब कोई वेद वाक्यके प्रमाणको मानो, इत्यादि प्रकारसे झूठी महिमा गाकर ब्रह्माने कल्पित वाणी-रचानाको जगत्में खूब फैलाया। अभी ब्राह्मण लोग वही बातको फैला रहे हैं ॥ १३४२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ७२ ॥ [चौपाई- १२ । साखी - २ है] ॥ ❀ ॥

१. चारि वेद ब्रह्मा अनुसारी * तामें चारि मता अनुहारी ॥ १३४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम ब्रह्मा नामक मनुष्यने चार वेदको बना करके उस वेदका सिद्धान्त संसारमें चलाया। ब्रह्माने उसकी मत-बुद्धिके अनुसार ही चार वेदके मध्यमें चार प्रकारके मत या सिद्धान्तकी मानन्दी निश्चय करके प्रगट किया। चार वेदका नाम तथा उनके सिद्धान्तका आकार-प्रकार नीचे कहा जाता है, सुनिये ! ॥ १३४३ ॥

२. प्रथमें ऋग् तुरियाके नेहा * नहिं जहाँ थूल अस्थूली देहा ॥ १३४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम, नरदेहमें तुरिया अवस्थाके लक्ष्यसे आनन्दमें स्नेह वा प्रेम या विशेष प्रीति लगा करके इच्छारूप परा वाचाके अनुभवसे ऋग्वेद बनाया। वहाँ महाकारणका घेरा होनेसे तहाँपर स्थूल-सूक्ष्म देहका व्यवहार कुछ भी नहीं रहता है। तुरियावस्थामें देह और जगत्के स्थूल-सूक्ष्मादिका अत्यन्ताभाव रहता है। इस भासको ले करके निर्गुण, निराकार, निरञ्जन परमात्माको देहातीत जगत्कर्त्ता माना है ॥ १३४४ ॥

३. साक्षी हेतु सत्य प्रतिपाला * अवस्था तीन भरममय जाला ॥ १३४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चराचर विश्वका हेतुरूप कारण, तीन अवस्था, तीन काल आदिके साक्षी, असङ्ग सृष्टिके प्रतिपालक, कभी नाश न होनेवाला नित्य-सत्य, वही परब्रह्म परमात्मा है। जाग्रतादि तीन अवस्थाओंके व्यवहार भ्रमरूप मायाका जाल मिथ्या है। अद्वैत ब्रह्म ही सर्वदा सत्य है; "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" यह महा वाक्य मानकर, ऐसा सिद्धान्त कायम किया है ॥१३४५॥

४. दूजे अथर्वण संसूतरूपा * शून्य सनेह सो कीन्ह स्वरूपा ॥ १३४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दूसरा, सुषुप्ति अवस्था वा योग समाधिमें शून्य वृत्तिका अनुभव करके शून्यमें प्रीति-अध्यास टिकाकर पश्यन्ती वाचासे अथर्ववेद बनाया। वहाँ कारण देहमें संसूत=जड़ाध्यासका रूप टिका रहता है। इसीसे शून्यमें स्नेह करके सोई शून्य स्वरूपको ही ब्रह्मरूपमें प्रगट किया है। तहाँ समस्त संसारमेंके पञ्च तत्वोंके जड़ प्रकाशको ही परमतत्व-परमात्मा ठहराया है। कोईने ज्योति स्वरूपमें परमेश्वरको माना है, और कोईने शून्यको ही निर्विकल्प ब्रह्म बतलाया है ॥ १३४६ ॥

५. वर्णन शून्य जो इस्थिर पौना ❀ सब परपञ्च विदित है जौना ॥ १३४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे सुषुप्तिमें सब वृत्ति स्थिर-शून्य हो जाती है, प्राणमात्र चलता रहता है। तैसे ही दशों वायुको ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर समाधि लगानेपर वृत्ति स्थिर होकर शून्य स्थिति हो जाती है। उसी अनुभवको ले करके शून्य आकाशवत् ब्रह्म वर्णन किया है। सब माया प्रपञ्च विश्वको भी ब्रह्मका ही स्वरूप बतलाया है। "सर्वं खल्विदंब्रह्म"-ब्रह्मको ही जगत्के उत्पत्ति और प्रलयका कारण कथन किया है। सो सब वाणी कल्पनाका प्रपञ्च संसारमें विदित ही है। जिसको जो सूझा, सोई माना और वर्णन किया है, बिना विचार ॥ १३४७ ॥

६. तीजे यजुर लिङ्गम अस्नेही ❀ सगुण अवतार विष्णुके देही ॥ १३४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तीसरा, स्वप्न अवस्था वा ध्यानमें लक्ष्य लगा करके सूक्ष्म रीतिसे प्रेम बढ़ाया। मध्यमा वाचासे यजुर्वेद बनाया। सब वासना सूक्ष्मदेहमें टिकी ही रहती है। उसी भावनासे सगुण-साकार अवतारी परमेश्वर कोई कल्पना कर लिया। कोई विष्णुके ही देहसे अंशरूपसे समय-समयपर जो अवतार हुआ, सो सब मिला करके चौबीस अवतार विष्णुका मानते हैं। उसीकी भक्ति करके सूक्ष्म ध्यानमें प्रेम लगा रहे हैं। "सगुणं ब्रह्म" ऐसा कहकर विष्णुके देह धारण करनेकी वा अवतार लेनेकी कल्पना किया है ॥ १३४८ ॥

७. असुरन मारि सङ्हारे गोसाईं ❀ पालन कर्म वधिककी नाईं ॥ १३४९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! वैष्णव भक्त लोग कहते हैं— गोसाँईं = जगत्के मालिक विष्णु भगवान् भूलोकमें जब दैत्य, राक्षस बहुत बढ़ जाते हैं। ज्यादा पाप बढ़ जाता है; तब अवतार धारण करके आते हैं। समय पा करके असुर=दैत्य या दानवोंको मार-मार करके, संहार करके धर्मकी रक्षा करते हैं। ऐसा बतलाया है कि, विष्णु ही कर्म-धर्मका पालन करते हैं; वे दयालु हैं। स्वाभाविक पालन कर्म उनका है, इत्यादि गुण गाया है। परन्तु, विचार करिये, वधिक या व्याधा=कसाईके समान हिंसक कर्म करके भी कहीं जीवोंकी पालन-रक्षा होती है ? जीवोंको संहार करनेवाला हिंसक, संहारकारी क्रूर हुआ, उसे दयालु किसप्रकार कहना ? पालन कर्मको छोड़कर विष्णुने तो वधिककी नाईं असुरोंको मारकर संहार करनेका कुकर्म किया। भ्रमिक लोग उसका झूठ ही गुण गाते हैं ॥ १३४९ ॥

८. अशुभ सङ्हारन पालन शुभके ❀ प्रगटत कारण कारज हरिके ॥ १३५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भक्त लोग कहते हैं कि, अशुभ कर्म करनेवाले पापी दानवोंको संहार या विनाश करके भगवान् शुभ कर्म करनेवाले भक्तोंका पालन-पोषण और रक्षा करते हैं। संसारमें जब ज्यादा अधर्म, अनाचार, कुकर्म, पाप बढ़ जाता है; पापी लोग धर्मात्माओंको सताते, कष्ट देते हैं, त्राहि-त्राहि मच जाती है, तब भक्त लोग भगवान्को सहायताके लिये पुकारते हैं। इसीका रणसे विष्णु अपने कारणरूप निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे कार्यरूप साकार अवतार— मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, राम, कृष्णादिके रूपमें समय-समयपर प्रगट हो जाते हैं। फिर अशुभकारी दुष्टोंका संहार करके शुभकारी भक्तोंका पालन करते रहते हैं, ऐसा माना है ॥ १३५० ॥

९. निश्चर कर्म अशुभ बहु भाँती ❀ हरि शुभ कर्म परस्पर घाती ॥ १३५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निशिचर=रात्रिमें चलने-फिरनेवाले राक्षस, चोर, डाकूलोग, बदमाशी, व्यभिचारी, कुकर्म, मार-धाड़ इत्यादि बहुत प्रकारसे तरह-तरहके अशुभ कर्म पापाचार करने लग जाते हैं। जिससे शुभ कर्म करनेवाले धर्मात्माओंको महान दुःख भोग करना पड़ता है। ऐसे अवसरमें विष्णु भगवान् वैसे ही कोई एक अवतार ले करके परस्पर दुष्टोंका घात करके मार डालते हैं। वे हरि लोगोंको देख-देख करके शुभ कर्म करनेवालोंकी रक्षा करते हैं; और अशुभकारीके तो सत्यानाश ही कर देते हैं। दुष्टोंको घात करके हरण करना ही हरिका काम है; ऐसा कहा है ॥ १३५१ ॥

१०. जहाँ देखहिं सो कला प्रगटाये * निश्चय कारज हरि होय आये ॥ १३५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भक्त लोग कहते हैं कि, परमेश्वर जहाँपर देखते हैं कि, यहाँ अनर्थ, धर्मका विरोध तथा पाप हो रहा है, सो तहाँ ही अपनी कलासे कार्य साकाररूप ले करके विष्णु ही अवतारी होकर आते हैं, तहाँ प्रगट हो जाते हैं। फिर सब कामको पूर्ण करके गुप्त हो जाते हैं। यही बात भ्रमिक भक्त लोगोंने निश्चय किया है। जहाँपर लोग देखते हैं कि, कुछ विशेष कला, पराक्रम, पुरुषार्थ, करामात, चालबाजी प्रगट हुई है, सो उसके भेद कुछ समझ नहीं पाये, तब श्रद्धालु अन्धविश्वासी भक्त लोग यही निश्चय कर लेते हैं कि, हमारे कार्यके वास्ते ही साक्षात् श्रीहरिः इसरूपमें अवतार लेकर आये हैं। अब सब काम पूर्ण हो जायगा, ऐसा मान लेते हैं ॥१३५२॥

११. सोई अवतार निश्चर सङ्हारी * कहुँ कला थोरे कहुँ–कहुँ भारी ॥ १३५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निश्चर= राक्षसोंको, दैत्य आदिकोंको जिसने संहार किया, मार-मार करके विनाश किया, सोई जगत्में विशेष अवतार कहलाया। निशिचरोंका संहार करना ही सब अवतारोंका मुख्य काम हुआ। कहींपर तो उसकी कला थोड़ी ही साधारण-रूपमें प्रगट हुई, और कहीं=कहींपर तो बड़ी भारी कला=अत्यन्त हिंसा, दुराचार प्रगट हुआ। दश अवतारमें प्रथमके पाँचने एक-एकका ही बध किया; फिर तीन अवतारोंने तो विशेष हिंसादि कर्म किया ऐसे कम-ज्यादा कला सबमें हुई ॥ १३५३ ॥

१२. यजुर कला सोई परवाना * विष्णु अवतार विदित जग जाना ॥ १३५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार यजुर्वेदकी कला या मुख्य सिद्धान्तका भाग सगुण ब्रह्म षोड़श कलाधारी ठहरा करके सोई प्रमाण सिद्धान्तरूपमें प्रगट किया है। विष्णुके चौबीस अवतार जगत्में जाहिर ही किया है। पुराण पढ़ने-सुननेवाले चौबीस अवतारोंके नाम और काम जानते ही हैं। उन्हीं अवतारोंको श्रेष्ठ करके यजुर्वेदमें माना है ॥ १३५४ ॥

साखीः— समय समय प्रगट भये * कला विशेष समान ॥
[२५१] यजुर करै वर्णन तेही * थूल मता परमान ॥ १३५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चारों युगोंके समय-समयमें कहीं सामान्य कलासे अवतारी हुए और कहीं विशेष कलाधारी हुए। किसीने साधारण कार्य किया। किसी-किसीने विशेष कार्य शुभाशुभ कर्म किया। सूक्ष्म मत उपासना मार्गको प्रमाण करके वही सूक्ष्म निराकार-निर्गुण ब्रह्मके अंशसे ही वे सब अवतार हुए, उनकी भक्ति करके गुण-लीला गानेसे कल्याण होता है, इत्यादि बातोंका यजुर्वेदमें विस्तारसे वर्णन किया है। सोई गुरुवालोग वर्णन करके सुनाते हैं। परन्तु, सो मिथ्या कल्पनाका जाल मात्र है, ऐसा जानिये ! ॥ १३५५ ॥

साखीः— चौथे साम कहै मता * जागृति रूप दृढ़ाय ॥
[२५२] कारण जलामय सत्य है * कारज जग समुदाय ॥ १३५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चौथा, जाग्रत् अवस्थामें कर्म मार्गको दृढ़ करके लक्ष्य लगाया, तहाँ वैखरी वाचासे सामवेद बनाया। दृश्य स्थूलाकार तत्त्वोंके रूपको ही परमात्माका स्वरूप दृढ़ाया। इसीसे अष्ट प्रतिमा जड़ पूजाकी परिपाटी चलाया। पृथ्वीकी गन्ध-वत् ईश्वरको ठहराया। जाग्रत्में जितने रूप दिखाई देते हैं, सो सबमें व्यापक ब्रह्मको बतलाया है। और जलके बून्द समान शून्य, बिन्दु या वीर्यरूपसे कारण वही परमात्मा नित्य-सत्य, सर्वाधिष्ठान है; और उसीसे चराचर सारा जगत् समुदाय कार्यरूपसे उत्पन्न हुआ है। इससे यह जीव ही ब्रह्म है-"तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म" ऐसा कल्पनासे कथन करके चार महावाक्य माना है। यही चतुर्थ सामवेदके मत या सिद्धान्तमें जाग्रत्में दृश्य पदार्थको दिखाकर विषयोंको दृढ़ाते हैं। वीर्यको ही सबका कारण सत्य कहकर बतलाते हैं; और जगत् समुदायको कार्य मानन्दी करते हैं ॥ १३५६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ७३ ॥ [चौपाई– १२ । साखी– २ है] ॥ ❀ ॥

१. चौथे साम बीज भगवाना * अस्ति भाति प्रियको परवाना ॥ १३५७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! जाग्रत् अवस्थाके भास वैखरी वाणीके प्रकाशसे बना हुआ विलास चौथा नम्बरमें सामवेद प्रगट हुआ है। उसमें सब जगत्के आदि कारण बीज, बिन्दु या वीर्यरूपसे भगवान् कोई कर्त्ता पुरुषको अनुमानसे माना है। विश्वात्मा भगवान् बीजरूपसे सर्वत्र विराजमान व्यापक बतलाया है। इसमें अस्ति, भाति, प्रियरूपका लक्षण घटा करके प्रमाण दिया है। अस्ति=सोई सत्को कहते हैं। भाति=भासता है, सोई चित् कहा है, और प्रिय=सुख स्वरूप है, सोई आनन्द बतलाया है। तहाँ वस्तु मौजूद है, सोई सत् है, भास होता है, सोई चित् है, अच्छा लगता है या सुखरूपमें मालूम पड़ता है, सोई आनन्द है। इसतरह संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें सच्चिदानन्द ब्रह्म-परमात्मा सर्वत्र व्यापक माना है। फिर तीन कालमें एकरस रहे, सो 'सत्' है; चैतन्य होवे, सबको जाने, सो 'चित्' है; और सुखरूप प्रतीत हो, सो 'आनन्द' कहा है। अथवा जीव सोई सत्, ईश्वर सोई चित्, ब्रह्म सोई आनन्द, ये तीनोंकी एकता करके सच्चिदानन्द परमात्माको सबमें भरा हुआ प्रमाण किया है। यही अस्ति, भाति, प्रियका प्रमाण है॥१३५७॥

२. नाम रूप कारज सो उपाधी * कञ्चन भूषण भेद सो साधी ॥ १३५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कार्यरूप जगत्में जितने भी नाम-रूप हैं, सो सब माया कृत उपाधि हैं। जैसे सोनेमेंसे आभूषण या गहने अनेकों तरहके बनते हैं; उनमें गढ़नके भेद, उपाधिसे नाम-रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। परन्तु, सबका अधिष्ठान सुवर्ण ही वास्तवमें कारणरूपसे सत्य है। इसीतरहसे जगत्में घट, तट, पट, मठ आदि अनेकों नाम-रूप मायाके कार्य जो देखने-सुननेमें आते हैं, सो मिथ्या हैं; और सुवर्णवत् अस्ति, भाति, प्रियरूप कारण ब्रह्म ही सत्य है। सो उसमें अनेकों कार्य पिण्ड-ब्रह्माण्ड भूषणवत् बीचमें ही बनते-बिगड़ते रहते हैं। परन्तु, कूटस्थ आत्मा सदा ज्यों-का-त्यों नित्य अचल बना रहता है। कार्यकी उपाधिमें ही नाम-रूपकी कल्पना होती है; किन्तु, निरुपाधि कारणमें नाम-रूप कुछ नहीं सम्भवता है। इसीलिये नाम-रूपवाला जगत् मिथ्या है; और अधिष्ठान ब्रह्म सत्य है, ऐसी मानन्दी किया है ॥ १३५८ ॥

३. घट मृत्तिका दृष्टान्त दिखावै * कारण नाम रूप समुझावै ॥ १३५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वेदान्ती गुरुवालोगोंने तहाँ घट-मृत्तिकाका दृष्टान्त देकर सिद्धान्त बतलाया है। जैसे मूल कारण पृथ्वीरूप मिट्टीसे कार्यरूपमें अनेकों घड़ाएँ बर्त्तन बनते हैं। तहाँ 'घट' यह शब्द नाम रक्खा; और गोलाकार लम्बारूप भीतर खाली जगहवाला घड़ेका आकार-प्रकार यह रूप दिखाई दिया। घड़े बननेसे ही बीचमें वह नाम-रूपकी कल्पना की गई। इससे यह नाम-रूप मिथ्या है, और दोनोंका कारण मृत्तिका सदा सत्य है। इसीतरह जगत्के सब पदार्थ तथा घड़ारूप यह शरीर नाम-रूप उपाधिवाला मिथ्या है; जगत् तीन कालमे ही सत्य नहीं है; और मृत्तिकावत् कारण ब्रह्म सर्वाधिष्ठान, सर्वाधार, सदा सत्य है। ऐसा दृष्टान्त दिखाकर भ्रमसे कल्पित ब्रह्मको ही सत्य समझाया है, यही उनका धोखा है ॥ १३५९ ॥

४. सत्य हेतु कारज भ्रमजाला * सामवेदके यही हवाला ॥ १३६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो ! चराचर जगत्का हेतु मूल कारण जो है, सो परब्रह्म-परमात्मा ही एक त्रिकालमें सत्य है; और पिण्ड-ब्रह्माण्डमें जितना भी मायाका कार्य फैला है, सो सब भ्रम-भूलका जाल होनेसे असत्य मृगजलवत् मिथ्या प्रतीति मात्र हो रहा है। ऐसा जानकर सब द्वैत भावको सर्वथा त्यागकर अद्वैत ब्रह्म भावको धारण करे। अपने आपको कारण ब्रह्म जान करके कृतकृत्य हो जावे, इत्यादि रीतिसे सामवेदमें वर्णन किया है। यही सामवेदके मुख्य सिद्धान्तका हवाला या हुलिया-पहिचानी बतलाया है, सो जानिये ! ॥ १३६० ॥

पं० प्र० टीका; १७२—

५. पुनि प्रति वेद कर्म दृढ़ कीन्हा * धर्म योगके मत लिखि दीन्हा ॥ १३६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसतरह चार सिद्धान्त कायम करके फिर प्रत्येक चारों वेदोंमें भिन्न-भिन्न कर्म साधनाको दृढ़ किया है। सामवेदमें कर्ममार्ग दृढ़ाया है। यजुर्वेदमें उपासना मार्ग बतलाया है। अथर्ववेदमें योगमार्ग दिखलाया है; और ऋग्वेदमें ज्ञान मार्ग बतलाया है। यही चार साधनासे चार मुक्ति, चार फल, सात स्वर्गादि मिलनेकी आशा लगा रक्खी है। उसी चार मार्गका दूसरा नाम कर्म, धर्म, मत और योग संक्षेपमें कहा है। वही चार मार्गकी भिन्न-भिन्न बात ही चारों वेदोंमें विस्तारसे लिख दी है। यही सब जीवोंको फँसानेका जाल बनाया गया है ॥ १३६१ ॥

६. बहुविधि कर्म भरम फैलाई * चारि वर्णके चाल चलाई ॥ १३६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मकाण्ड नामके एक भाग है, उसमें वेदके प्रमाणसे विधिपूर्वक बहुत प्रकारके कर्ममार्गका जाल फैला करके गुरुवालोग अपने भ्रममें पड़े और मनुष्योंको भी भ्रमा रहे हैं। भारतवर्षमें चार वर्ण=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार प्रकारकी हिन्दुओंमें मुख्य चार जाति बनाकर उन्होंके न्यारा-न्यारा कर्मकी चाल, रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि भी अलग-अलग ही चला रक्खे हैं। सो सब कर्म जीवोंको भ्रमानेवाला भ्रमरूप तरङ्ग ही फैलाया है ॥ १३६२ ॥

७. मुखके कर्म आपु गहि लीन्हा * बाहु कर्म क्षत्री सो कीन्हा ॥ १३६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे वेदके पुरुषसूक्तमें लिखा है किः—

"ब्राह्मणोस्य मुखमासिद् राजन्यः कृत। उरु तदस्य यद्वैश्य पभ्यां शूद्रो अजायत ॥"—

इस प्रमाणसे कहा है कि, उस जगत्कर्त्ता परमेश्वरके मुखारविन्दसे प्रथम 'ब्राह्मण' उत्पन्न हुए। उन्हें परमात्माने मुखसे वेद पाठ करनेका, पढ़ने-पढ़ानेका, शिक्षा-उपदेश देनेका, पुरोहिती कर्म तथा गुरुवाई आदि करनेका अधिकार दिया है। अपने-आप ऐसी कल्पना करके वही मुखके कहने, बोल-चाल करनेके मुख्य-मुख्य आरामके कर्म ब्राह्मणोंने अपने ग्रहण कर लिया है। और परमेश्वरके हाथोंसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति बता करके उन्हें हाथोंसे करनेका कर्म अस्त्र-शस्त्र चलाना, युद्ध करना, राज्य शासन करना, दण्ड देना, दान करना इत्यादि कर्म करनेका अधिकार दिया है; सोई क्षत्रियोंने किया वा कर रहे हैं ॥ १३६३ ॥

८. कर्म चातुरी वैश्य बखानी * पगुके कर्म शूद्र उतपानी ॥ १३६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ईश्वरकी जङ्घासे वैश्योंकी उत्पत्ति बताकर उन्हें किसानी, व्यापार-धन्धा, व्याज लेना, परदेश जाना-आना इत्यादि नाना चतुराईके कर्म करनेका अधिकार दिया है। यही बात श्रुति-स्मृतियोंमें भी वर्णन करके बतलाया गया है; और भगवान्के पैरोंके तलुवेसे शूद्रोंकी उत्पत्ति बतलाकर उन्हें चल-फिरकर तीनों वर्णोंकी सेवा दास बन करके करनेका अधिकार दिया है। पैर दबाना, बाल बना देना, कपड़े धो देना इत्यादि छोटे कर्म शूद्रोंके वास्ते उत्पन्न कर रक्खा है। ऐसे चारवर्णोंके चार कर्मोंकी मर्यादा तथा नियम बाँध रक्खा है। उसी प्रमाणसे लोग चलते और चलाते रहते हैं, तब तो सब हिन्दू लोग प्रसन्न होते हैं। उसके विरुद्ध कार्य हुआ कि, झगड़ा मच जाता है। एक-दूसरेकी हानि करनेको उतारू हो जाते हैं ॥ १३६४ ॥

९. चारि वर्णमें रचना लीन्हा * चित्रगुप्त एक परगट कीन्हा ॥ १३६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर चारों वर्णोंमें नाना कर्म-कुकर्मोंकी रचना कर लिया है, सब कोई शुभाशुभ कर्म करने लगे। तब सबोंके कर्मोंका हिसाब लगानेके लिये कि, किसने कितने पाप-पुण्य या नीति-अनीतिका कर्म किया है, यह जान करके दण्ड देनेके लिये चित्रगुप्त नामका एक वैश्यकुलके पुरुषको पटवारी बनाकर प्रगट करके रख लिया। यहाँपर मनके पासमें चित्त-गुप्तरूपसे रहता है, वही भाव-कुभावको प्रगट करता है। वहाँ यमराजाके पासमें

पटवारी वा क्लर्कके समान हिसाब-किताब बही-खाता लिखनेवाला चित्रगुप्त रहता है; वह समस्त मनुष्योंके किये हुए पाप-पुण्योंका लेखा-जोखा यम लोकके बही-खातामें लिखकर रखता है। गुरुवालोगोंने ऐसी कल्पना की है ॥ १३६५ ॥

१०. लेखा गुप्त कर्म पटवारी * लिखै हिसाब सँवार सँवारी ॥ १३६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे यहाँ पटवारीलोग खसरा, नकलको बना-बना करके जमाबन्दीका हिसाब लिखते रहते हैं। तथा एकाउण्टेण्ट या हिसाबी लोग जमा-खर्चेका हिसाब लिखे रहते हैं। तैसे ही मृत्युपुरीमें चित्रगुप्त पटवारी भी मनुष्योंने किया हुआ गुप्त-प्रगट सब पाप-पुण्योंका लेखा-हिसाब साफ-साफ सम्हाल-सम्हालकर बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखकर रख लेता है। जब मनुष्य मरते हैं, तब यमदूत आ करके उन्हें यमलोकमें ले जाते हैं, वहाँ यमराज चित्रगुप्तके लिखे हुए बही-खाताको देख करके उस जीवके पाप-पुण्यके कर्म अनुसार उसे स्वर्ग और नरकमें डाल देते हैं। इसलिये वेदमें कहे प्रमाणसे सब कोई अपने-अपने वर्णके कर्म-धर्मको पालन करो ! नहीं तो नरकमें पड़ोगे। इसप्रकारसे गुरुवालोगोंने कहा है या कह रहे हैं, सो तो मिथ्या कल्पना ही किया है। यहाँ चित्तमें जैसे-जैसे गुप्त-प्रगट अध्यासको जीव टिकाते हैं, वैसे भोग सुख-दुःख जीव चार खानीमें भोगते हैं या भोग ही रहे हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३६६ ॥

११. और अनेक जो कर्म लगाई * जोई कर्म सोई खोम कहाई ॥ १३६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! और भी जो जिसने जैसा अनेकों कर्म करनेमें मन लगाया, वहाँपर कर्मको देख करके वे वैसी जातिके माने गये हैं। जिसने जैसा कर्म किया, सो तैसा ही खोम=कौम या जातिवाला कहलाया। तेल पेरने लगा, तो तेली हुआ। कपड़ा धोने लगा, तो धोबी कहलाया। हजामत बनाने लगा, तो नाई हुआ। लकड़ीका काम करने लगा, तो बढ़ई या सुतार कहलाया। तैसे चित्रकार, सुनार, लोहार, कसेरा, शिल्पी, मुराव, कोरी, इत्यादि कर्मके मुताविक छत्तीस (३६) जातिके लोग कहलाये। उनमें अनेकों तरहके कर्म-धन्धाओंमें लोगोंको लगा रक्खा है ॥ १३६७ ॥

१२. और अनेकनि दुर्मति लाई * जाति भिन्न भिन्न बिलगाई ॥ १३६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दुर्मति वा कुकर्ममें मन लगा करके और भी अनेकों नीच जातिके मनुष्य हुए हैं। जैसे धीवर, कसाई, चमार, चाण्डाल, ढेड़, चूहड़, जल्लाद, व्याधा, यवन इत्यादि अत्यन्त नीच, पापी, दुष्ट, बुद्धिहीन बनकर नाना पाप कर्म दुराचार करनेमें लगे वा लगा रहे हैं; और दुर्मतिरूप गुरुवालोगोंने सबोंको एक-एक भ्रम-धोखा लगाकर अनेकों तरहसे फँसा रक्खा है। इसप्रकारसे मनुष्योंमें भिन्न-भिन्न कर्म होनेसे कल्पनासे न्यारी-न्यारी जातिका अनेकों भेद अलग-अलग कर रक्खा है। उसी प्रकारसे व्यवस्था करके कर्मका बाँध बना-कर रोक लगा रक्खा है; उसीमें सब भूले पड़े हैं ॥ १३६८ ॥

साखीः— उत्तम मध्यम कर्म ले * रचिया वर्ण बियाध ॥

[२५३] राखा सबै अरुझायके * अपनी अपनी बाँध ॥ १३६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! रज, सत्त्व और तम- इन त्रिगुणोंको ले करके उत्तम, मध्यम, कनिष्ट, और निकृष्ट भेदसे सुकर्म-कुकर्मोंके लक्षणोंको लेकर गुरुवालोगोंने वर्ण व्यवस्थाके नियमकी रचना की है। उन्हीं व्याधिरूप रोगोंमें पीड़ित हो सब दुःखी हो रहे हैं। सबोंको उसी वर्ण-आश्रमादि कर्मोंमें अरुझा करके बाँध रक्खे हैं। अपने-अपने बाँध या हद्द तक तुम लोगोंको कर्म करना, तथा मर्यादासे चलना चाहिये, नहीं तो पापी होकर घोर नरकमें पड़ोगे, महान दुःख पाओगे; यहाँ भी जेलमें डाल दिये जाओगे। ऐसी भयानक वाणी सुना करके भुला दिया, सबोंको

अपनी-अपनी जातिके कर्मसे चलनेकी शिक्षा देकर कर्म करनेकी सीमा बतलाकर कर्म बन्धनोंमें बाँध दिया है। बिना विवेक, सब उसीमें बन्धे पड़े हैं ॥ १३६९ ॥

साखीः— कर्म कमाइ सबनपर * राज दाम परवान ॥
[२५४] जन्मत मरत न छोड़हीं * विविधि कर्मके खान ॥ १३७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे राजा लोग सब किसानोंके खेतकी कमाईपर कर या लगान कानूनके अनुसार लगाकर खेतमें हानि हो या लाभ हो, वे लगान वसूल करना नहीं छोड़ते हैं। तैसे ही गुरुवालोगोंने भी राजा बनकर सब मनुष्योंके शुभाशुभ कर्म कमाईके ऊपर दाम=भेंट-पूजाका टैक्स ठहरा दिया है। कोई सन्तान जन्मा, तो भी जन्मोत्सव, छठीसे लेकर पुरोहित लोग दक्षिणा भेंट वसूल करने लग जाते हैं; और जब कोई मर जाते हैं, तब भी प्रेत कर्म, दाह क्रिया, तिलाञ्जली, तेरहवीं, श्राद्ध आदि कराके, वहाँ भी दक्षिणा ले लेते हैं। ऐसे कर्मकी खान बने हुए ब्राह्मण लोग नाना प्रकारसे कर्म करा-करके जन्मते-मरते जब भी दाव लगा, तभी भेंट खींच लेते हैं। यजमानको किसी वक्त भी नहीं छोड़ते हैं। उसी कर्मकी कमाईको नाना तरहसे खाते हैं; ऐसे ठग बने फिर रहे हैं। अथवा मनुष्य देहमें जीवने जो कुछ पाप-पुण्य कर्म किया है, सो उस कर्म कमाईका अध्यास सबको लगा है। मनरूप राजाके गुलाम होकर स्त्री और गुरुवाओंके कहे प्रमाणसे सब चल रहे हैं। उनकी ही सेवा करके दाम चुका रहे हैं। जड़ाध्यासको तो जीव नहीं छोड़ते हैं, विविधि प्रकारके कर्म करके और भी अध्यासी हो रहे हैं। इसीसे जन्मते, मरते चार खानीमें ही पड़े रहते हैं। पारख स्वरूपकी स्थिति हुए बिना आवागमन जीवोंका नहीं छूटता है ॥ १३७० ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ७४ ॥ [चौपाई- १४ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. नित्यप्रति सबहीं कर्म दृढ़ावैं * विषय विकार जगत अरुझावैं ॥ १३७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मी ब्राह्मण गुरुवालोगोंने सब यजमानोंको कर्म मार्गमें लगाकर नाना कर्म ही दृढ़ा रक्खा है; और रोज-रोज या नित्यप्रति सबोंको कथा, उपदेश सुना-सुना करके कर्म जाल ही दृढ़ करा रहे हैं। खानी और वाणी विषयोंके विकार कल्पना, काम-क्रोधादि महाजालोंमें अरुझे या अरुझा रहे हैं। अपने विषय भोगनेके, स्वार्थ पूर्ण करनेके वास्ते विकारी दुष्ट लोगोंने जगत् जीवोंको फँसा रक्खा है; कठिन बन्धनोंमें ही डाल रक्खा है ॥ १३७१ ॥

२. राज दण्ड दाम भार लेई * जन्मत मरत न छूटी देई ॥ १३७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्राह्मण गुरुवालोग बड़े महाराजा कहलाते हैं। शिष्योंपर हुकूमत चलाकर कोई गलती होनेपर राजदण्डमें जुर्माना करके दाम=धन-सम्पत्ति, पुजावा, भेंट ले करके अपना घर भर लेते हैं। किसीसे सेवा करा लेते हैं। किसीको कठिन दण्ड देते हैं, यही दाम भरा लेना वा कर वसूल करना जैसा लगान समेट लिया करते हैं। बालक जन्मतेमें भी खूब दान-दक्षिणा लेनेकी, मिठाई खानेकी, लम्बी हाथ मारनेकी नाना उपाधि लगाते हैं। किसीको खराब ग्रहमें जन्म हुआ, बता करके ग्रह शान्तिके नामसे भी द्रव्य ठग लेते हैं। ऐसे ही जन्मभर नाना झंझटोंमें लगाये रहते हैं; और कोई मर जानेपर भी घरवालोंको बहुत प्रपञ्च फैलाकर भ्रममें लगा देते हैं। तब भी खूब पाखण्ड पसारकर धन लूट लेते हैं। जन्मते-मरतेमें या जन्मसे लेकर मरण तक भी किसीको कर्म-जालसे छुट्टी नहीं देते हैं या कर्म बन्धनोंसे छूटने नहीं देते हैं; फँसा ही रखते हैं ॥ १३७२ ॥

३. बहुविधि उपजा खेत करावैं * राज काज अपना फैलावैं ॥ १३७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! खेतरूप संसारमें विधिपूर्वक बहुत तरहसे उपदेश देकर यही खेतीसे धन उपार्जन करते हैं। बहुत शिष्य-शाखा बना करके उन्हींसे दान-दक्षिणा लेकर पेट पालकर गुजारा करते हैं। ये लोग तो धूर्त किसान बने हैं; और अपने कर्मकाण्डके

राज्यका काज चारों तरफ यजमानोंके घर-घरमें जा-जाकर फैलाते हैं। ऐसे ब्राह्मण लोग बहुरूपिये बनकर गुरु, पुरोहित, पण्डे, पुजारी, रसोइये आदिका स्वाङ्ग बना-बना करके जाल फैलाकर लोगोंको ठगते फिर रहे हैं॥ १३७३॥

४. जन्म कर्म शुभ सगुन सगाई * वर्ण भ्रष्ट बहु कर्म लगाई॥ १३७४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! बालक जन्मनेपर यजमानोंके घर जाकर जातकर्म, शान्ति-पाठ, पूजा, जन्मोत्सव मना करके आशीर्वाद देते हैं, शुभ कामना करते हैं, उसको शुभ मानते हैं; और किसी वर-वधूके सगाई-विवाह आदिमें उन्हें भी शुभ सगुन दिखाते हैं। लग्न, मुहूर्त देखकर समयको शुभ या अशुभ बतला देते हैं। तहाँ भी भेंटके नामसे द्रव्य ऐंठ लेते हैं। किसीको जाति भ्रष्ट, वर्ण भ्रष्ट, पतित होनेका कसूर-दोष बतला करके समाजकी मर्यादा भङ्ग करके चलनेके अपराधमें प्रायश्चित्त कर्म अनेक तरहसे करने लगाकर दुःख भोगाने लगा देते हैं, सब प्रकारसे धोखा ही देते हैं। चान्द्रायण, कृच्छ्र-चान्द्रायण, अनसन आदि व्रत प्रायश्चित्तकर्म करनेमें लगाते हैं॥ १३७४॥

५. ग्रहण अमावस पूर्णिमा गावै * दक्षिणा दान जेवनार बनावै॥ १३७५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सूर्य-ग्रहण, चन्द्र-ग्रहण आदि पर्वमें चाँदी, सोना, रत्न, मणि-माणिक्य, धान्यादिक दानको बहुत ही फलदायी बतलाकर बड़ी महिमा गाया है। ग्रहणको ग्रहणका दान ले लेते हैं। अमावास्याको पितृका दिन बतलाकर सीधा-सामान लेकर पितृ-दान करा लेते हैं। पूर्णिमाको किया हुआ दान दाताकी सब मनोकामना पूर्ण करता है, ऐसा कहते हैं। सिद्धिदा प्रतिपदा, भाई दूज और फुलेरा दूज, अक्षय तृतीया वा हरितालिका तीज, गणेश चतुर्थी, नाग पञ्चमी वा वसन्त पञ्चमी, कुमार छठ, सुखदा सप्तमी, कृष्णाष्टमी वा राधाष्टमी-रामनवमी वा महानवमी, विजया दशमी, निर्जला एकादशी, वामन द्वादशी, विष्णु त्रयोदशी, धन तेरस, शिवरात्रि-चतुर्दशी वा अनन्त चौदश, दीपावली-अमावास्या, होली पूनम वा रक्षा बन्धन पूर्णिमा, इसप्रकारसे महीनाभरके सब दिन त्यौहार, पर्व बना रक्खे हैं। उसीकी गुण-महिमा गा-गाकर दान-दक्षिणा ले लेते हैं। जेवनार=अच्छा स्वादिष्ट भोजन, मिठाई बनाने लगाकर या स्वयं बना करके यजमानोंके घरमें मनमाने खा लेते हैं। ठूँस-ठूँस कर पेट भरकर खा करके फिर भेंट लेकर, तब चले जाते हैं॥ १३७५॥

६. देवी देवता भूत पुजावै * होम यज्ञ जीव वधहि करावै॥ १३७६॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कहीं तो अष्टभुजी देवी, सोलहभुजी भगवती, नवदुर्गा, चामुण्डा आदि देवी, गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य, भैरवादि देवता, तथा नन्दी, भृङ्गी, चौंसट्ठी, भूत-गण, प्रेत, बेताल, पिशाच, ब्रह्म राक्षस, मरी, श्मशान आदि सबोंको नाना कामना कर-कराके पूजते और पुजवाते हैं। अग्निमें चरु, तिल, चावल, घी आदि मिला करके मन्त्र पढ़-पढ़ कर "स्वाहा-स्वाहा" बोलकर होम कराते हैं; और यज्ञके नामसे "अजमेध, गोमेध, अश्वमेध, नरमेध, राजसूय यज्ञ" आदि कराकर उसमें पशु आदि प्राणियोंकी हत्या करके जीव वध-हिंसा कराते हैं। धर्मके नामसे महा पाप कराते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक शब्द-४६। चौपाई ५-६ में इसबारेमें कहा है:— धर्म करे जहाँ जीव बधतु हैं। अकर्म करे मोरे भाई!॥ जो तोहराको ब्राह्मण कहिये। तो काकोकहिये कसाई?॥ पुरोहित ब्राह्मण लोग ऐसे जीवघातक पातकी बने हैं॥ १३७६॥

७. पिण्ड श्राद्ध मृतुकके नाँऊ * उपजा अनबनि कर्मके गाँऊ॥ १३७७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर माता-पितादि पूर्वज गोत्रके लोग जो मर जाते हैं, उन मृतक पितृके नामसे मृत्यु तिथिमें हरसाल तर्पण तथा श्राद्ध करके पिण्ड दान कराते हैं, शैय्या दान करा लेते हैं; सब चीज मर गये लोगोंके नामसे दान करने लगाकर सो सब चीज वे सब

ब्राह्मण लोग ही ले लेते हैं। कहते हैं— उसका फल उन्हें स्वर्गमें मिल जायगा। परन्तु, यहाँपर अभी ऊपरकी मजलेमें वा धावेमें पिता बैठा हो, तो उसके नामसे पुत्र नीचेकी कोठरीमें बैठकर भोजन-जलादि दान करे, तो क्या ऊपरवाले पिताको वह मिल सकता है ? कभी नहीं मिलता है। फिर जब मर ही गया, तो यहाँसे दी हुई चीज उसको कैसे मिलेगी ? मिलती-जुलती तो कुछ भी नहीं है। सो सब ठग ब्राह्मण लोग ही समेटकर ले जाते हैं, यह तो सब कोई देखते ही हैं। परन्तु, विवेक न होनेसे कुछ भेद समझ नहीं पाते हैं। संसारमें ऐसे अनेक प्रकारके कर्म गाँव-गाँवमें उत्पन्नकर दृढ़ा रक्खे हैं। परन्तु, इससे मनुष्योंका कुछ कल्याण बननेवाला नहीं है। ब्राह्मणोंने झूठ ही कर्मोंका गुण गायन करके महिमा बतलाकर मनुष्योंको फँसा रक्खा है, सो परखकर त्यागना चाहिये ॥ १३७७ ॥

८. कर्म गाँव जे बसै न कोई ❀ तेहिपर राजा आकुल होई ॥ १३७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई बुद्धिमान् जिज्ञासु नरजीव, ब्राह्मण गुरुवाओंके कर्म गाँवके घेरा जालोंमें नहीं रहते हैं, उनके कहे प्रमाण बसते या नहीं चलते हैं। पारखी श्रीसद्गुरु साधु महात्माओंका सत्सङ्ग करके कर्म पाखण्डको छोड़ देते हैं, सद्गुण धारण करके मुमुक्षु बन जाते हैं। उनपर तो ब्राह्मण राजा बने हुए गुरुवालोग तो बहुत अकुला करके क्रोधित हो जाते हैं। नाना तरहसे निन्दा करके गाली या शाप देने लग जाते हैं, डराते-धमकाते नरकका भय दिखलाते, हरतरहसेघेर करके फिर फँसाना चाहते हैं, न फँसनेपर पछता करके रह जाते हैं ॥ १३७८ ॥

९. त्रिविधि भाँति कर्मके शोभा ❀ यज्ञ करहिं देई बहु लोभा ॥ १३७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नित्यकर्म, नैमित्य कर्म, और काम्य कर्म यही त्रिविधि वा तीन प्रकारके कर्मोंकी शोभा-सुन्दरता बहुत वर्णन किया है। उनमें तीनों गुणोंको मिलाकर कर्म, भक्ति, और योग, इन तीन मार्गोंकी शोभा, कर्मकी सराहना तो अजीब तरहसे किया है। स्त्री, पुत्र, धन, राज्य, स्वर्गादि प्राप्ति, सुख-सामर्थ्य प्राप्ति आदिकी लोभ-लालच, आशा बहुत-बहुत लगाकर भरोसा देकर अनेक प्रकारके विधानसे यज्ञ करते और कराते हैं। यज्ञ पूर्ण होनेपर इच्छानुसार फल प्राप्ति होनेको बतलाकर भुला रक्खे हैं ॥ १३७९ ॥

१०. लुब्धहि जीव न जानहिं लासा ❀ कर्मके नाना भाँति तमाशा ॥ १३८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंकी प्रशंसा सुन-सुन करके मनमें अनेक फल प्राप्ति सुख, चार फल, चार मुक्ति प्राप्ति करनेकी चाहना बढ़ जानेसे अज्ञानी नरजीव सब उसीमें लुब्ध, लालचवश हो गये हैं। परन्तु, यह भेद तो कुछ भी नहीं जानते हैं, कि चिड़ियाको फँसानेकी लासा=गोंद वा जालके समान या पतङ्ग को चिपकनेके शहद समान यही लालचकी लासा हमें फँसानेवाली है वा होगी, ऐसा बोध न होनेसे ही सब लुभा करके चिपक गये या फँसकर बद्ध हो रहे हैं। कर्मकाण्डके खेल-तमाशा संसारमें अनेक तरहसे हुए या हो रहे हैं। उनमें खेलने-देखनेवाले सब कोई अरुझे पड़े हैं। नटके तमाशा समान नाना भाँतिके कर्मका तमाशा भी सारहीन मिथ्या जाल जञ्जाल मात्र है ॥ १३८० ॥

११. त्रिगुण जेवरी कर्म बनाई ❀ महिमा महातममें अरुझाई ॥ १३८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने त्रिगुण स्वभावको ले करके जो कर्म, उपासना और योगकी जेवरी=रस्सी समान वाणी बटे या बनाये वा बना रक्खे हैं, सो नरजीवोंको फँसाकर लटकानेकी फाँसी ही बनायी है। परन्तु, पारखबोधके बिना यह भेद कोई जानते ही नहीं हैं। त्रिकाण्डवेद, शास्त्र, पुराणादिकी वाणी सुना-सुना करके तीर्थ, व्रत, कर्म-धर्म, जप, तप, देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म इत्यादिककी बहुविधि महात्म्य गुणगान, महिमा बता-बता करके सब मनुष्योंको अरुझाये, वाणी-खानीके घेरामें घेरकर कैद किये; चौरासी योनियोंके चक्रमें डाल दिये हैं वा डाल ही रहे हैं ॥ १३८१ ॥

१२. सो जेवरि डारि गर माँहीं * चहहिं उबार जीव मुढ़ ताहीं ॥ १३८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो जेवरीरूप वाणी-खानीकी वासना-आसक्तिकी रस्सी अपने गलारूप अन्तःकरणमें डाल करके उस फाँसीमें लटककर मूढ़ बेपारखी विषयी, कर्मी लोग भवसागरसे पार उतरना चाहते हैं, दुःखोंसे छूटना, मुक्त होना चाहते हैं, तो भला ! वे कैसे उबर सकेंगे ? उनकी मूढ़ता तो देखिये ! गलेमें और हाथ-पैरोंमें रस्सी बाँधकर नदी पार उतरना चाहते हैं ! परन्तु, उस तरह पार तो क्या होंगे ? किनारेमें थोड़े जलमें ही डूबकर मर जावेंगे । तैसे ही स्त्री भोगादि नाना कर्ममें बद्ध होकर गर्भवास चौरासी योनियोंमें डूबेंगे ॥ १३८२ ॥

१३. धीमर चारा लोभ देखावै * बनशी मर्म सो मीन न पावै ॥ १३८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे धीवर लोग बन्शीमें केंचुवादि चारा लगाकर सूत बाँधकर नदी वा तालाब आदिमें बन्शी डाल देते हैं । सो उसका मर्म अज्ञानी मछली कुछ जान वा समझ नहीं पाती है, इसीसे दौड़कर आहार खानेको मिला, ऐसा समझ करके पकड़कर मुखमें डाल लेती है; खींचकर ले जाना चाहती है; परन्तु, उसमें सूतके रस्सीपर बन्शी बँधी हुई है । धीवरने झटकेसे खींचा बन्शीका काँटा मछलीके तालूमें छिद गया वा गड़ गया । तब बहुत प्रकारसे तलफ-तलफ करके छूटना चाहती है, परन्तु, छूट नहीं पाती है; धीवरके हाथों मारी जाती है । इसीप्रकारसे धीवररूप गुरुवालोगोंने चारा=चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग प्राप्ति, स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज आदिकी प्राप्तिकी रोचक वाणी सुना-सुना करके ग्रन्थोंमें उसका प्रमाण लिखा हुआ दिखा-दिखा कर लोभ-लालच लगाया । परन्तु, बन्शीरूप कर्मकाण्डकी वाणी जीवोंको फँसाकर अरुझानेवाली है । उसमें कल्पनाके टेढ़े काँटे लगे हैं, वे मनमें चुभनेसे सत्यानाश कर देते हैं । मीनरूप मिथ्या मानन्दीमें पड़े हुए लालची मनुष्योंको वही चारा प्रिय लगता है । वे कर्म-बन्धनका मर्म या भेद कुछ जान नहीं पाते हैं, इसीसे फँस जाते हैं, बिना विवेक ॥ १३८३ ॥

१४. धाइ गहहिं पाछे पछताई * तलफहिं बहुविधि छूट न जाई ॥ १३८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसीकारणसे धाय-धाय करके गुरुवालोगोंके पासमें चले जाते हैं, फिर नाना कर्म साधनाओंको ग्रहण करके दृढ़तासे पकड़ लेते हैं । अनेकों कष्ट सहन करते हैं, तो भी मनकी कामना पूर्ण नहीं होती है, सुख नहीं मिलता है, तब पीछे हताश होकर पश्चात्ताप करते हैं । फिर उस कर्मके दुःख जालोंसे छूटनेके लिये छटपटाते हैं, तो भी छूट नहीं पाते हैं । इससे बहुत प्रकारसे तलफ-तलफ कर दुःख पाते हुए एक दिन मर जाते हैं । फिर अभ्यासवश चौरासी योनियोंका दुःख सहा करते हैं । तैसे ही संसारमें स्त्रीने विषयानन्द चाराके लोभ दिखलाया, तो विषयी पुरुष लुब्ध वा मोहित हुए, मूढ़ बने । विषय-वासना महान बन्धनरूप है, यह जान नहीं पाये । इसलिये दौड़-दौड़ कर स्त्री सहित पञ्च विषय भोगोंको ग्रहण किये वा पकड़ लिये; मनमाने भोग भोगे । परन्तु, सुखके बदले अधिक नाना दुःख ही पाये, इच्छा पूर्ण नहीं हुई । कष्ट पा करके पीछे पछताने लगे । दुखोंसे छुटकारा पानेके लिये बहुविधिसे तलफते जोर लगाते हैं; तो भी छोड़ा नहीं जाता है । बहुत दुःख पा करके भी घर-गृहस्थी छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं । विषय भोगमें ही आयु बिता-कर मरनेपर पशु आदि योनियोंको प्राप्त होते हैं, चौरासी यानियोंके चक्रसे छूट नहीं पाते हैं । बिना विवेक नरजन्म व्यर्थ चला जाता है ॥ १३८४ ॥

साखीः— बहु कर्महि अरुझाय जिव * डोरी अपने हाथ ॥
[२५५] नाच नचावै यम सदा * कारण कारज साथ ॥ १३८५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! धीवर जैसे जालकी डोरी अपने हाथमें पकड़े रखता है, बहुत तरहसे मछलीको पकड़-पकड़ करके नचा-नचा कर सदा मारता रहता है । और बन्दरको नचानेवाला कलन्दर (मदारी) भी डोरीका छोर अपने हाथमें पकड़कर बन्दरको

बाँधकर सदा नचाया करता है, उसी धन्धासे पेट पालता है। तैसे ही इधर स्त्री और उधर गुरुवालोग अबोध पुरुष जीवोंको विषय कर्मोंमें और नित्य, नैमित्य, काम्य, प्रायश्चित्त और निषिद्ध, ये पाँच कर्मोंमें तथा पाँच विषयोंमें अच्छी तरहसे अरुझा करके फुसलाकर फँसा करके बाँध लेते हैं। फिर उसकी डोरीरूप मन वा वासनाको अपने हाथमें मजबूतीसे पकड़े रखते हैं। तब फिर यम = नारी और गुरुवालोग सदा-सर्वदा अपनी स्वार्थ सिद्धि मन प्रसन्नताके वास्ते पुरुषोंको अनेक तरहसे नाच नचाते रहते हैं। अज्ञानी मूढ़जन भी खुशीके साथ नाच-नाचकर उन्हें रिझाते हैं। जैसे कार्य-कारणका सम्बन्ध साथ ही बना रहता है, तैसे ही कारण = गुरुवालोगोंके साथमें कार्य = शिष्यवर्ग स्वर्गादि सुख प्राप्तिके वास्ते नाना कर्म साधनाके कार्य किया करते हैं; और कारण = स्त्रियोंके साथमें कार्य = पुरुष लोग मिलकर विषयानन्द सुख भोगादिके वास्ते नाना विषय भोगनेका कर्म-कुकर्म किया ही करते हैं। और तहाँ कारण = मनके साथमें कार्य = तन लगा ही रहता है। अथवा कारण-ब्रह्मके साथमें कार्य-जगत्का मिलाप माना है। अतएव अध्यासके कारणसे चौरासी योनियों-में अनेकों कार्य देहें बनाकर दुःख भोगते रहते हैं ॥ १३८५ ॥

साखीः— चहहिं जो निस्तरनको ❀ इन्ह कर्मन छुटकाय ॥
[२५६] तेहि तीहुँफाँस ले धावहीं ❀ बन्दी देहिं दृढ़ाय ॥ १३८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई बुद्धिमान् मनुष्य अपना निस्तार = कल्याण चाहते हैं या भव-बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति पाना चाहते हैं। खानी-वाणीके उन समस्त जालरूप कर्मोंको छोड़कर कर्म-जालसे छुटकारा पाना चाहते हैं। जब यम लोग ऐसा इशारा जान पाते हैं कि, यह कर्म-जालसे छूटना चाहता है, तब तो वे काल लोग तीन प्रकारकी फाँसी ले करके उसके पासमें दौड़े चले आते हैं। कर्म, भक्ति और योग, ये तीन मार्गोंकी वाणी कल्पनाको नाना तरहसे दृढ़ा करके उन्हें जकड़कर खूब बाँधकर बन्दी या कैदी बना देते हैं। तब तो कोई छूटने नहीं पाये; वही तीनों आशा-फाँसीमें लटका-लटका करके मार डाले वा वैसे ही मार रहे हैं। अथवा जो कोई पुरुष स्त्री विषयादि भोगोंको परित्याग करके साधु होकर अपना हित-कल्याण करना चाहते हैं; ऐसा जाननेपर उसके पास स्त्रियाँ काम, क्रोध और मोहकी तीन फाँस ले करके दौड़ी चली आती हैं। हरेक तरहसे रो-गा करके वही मोह दृढ़ाकर बन्दी या बद्ध बना करके वशमें कर लेती हैं। श्रीसद्गुरुके पारखका बोध अपरोक्ष हुए बिना यह फन्दासे कोई छूट नहीं पाते हैं ॥ १३८६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ७५ ॥ [चौपाई- ११ । रमैनी- १ । साखी- ४ है] ॥ ❀ ॥

१. जो कोई जीव इन्हते अकुलाना ❀ चाहै अपना निज कल्याना ॥ १३८७ ॥

अर्थः— रामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई जिज्ञासु नरजीव सत्सङ्ग करने लगे, तो विवेकी पारखी साधु-गुरुका उपदेश सुनकर विचार करनेसे खानी-वाणीके कर्मोंमें दोष देखकर उन कर्मोंसे अकुला करके बहुत दुःखी व्याकुल हुए। उसे जाल समझकर छोड़ दिये; अपना कल्याण करनेके लिये निज स्वरूपके भेदको यथार्थ जानकर स्थिति प्राप्त करनेकी अब चाहना करने लगे। इससे नारी और गुरुवाओंके सङ्गमें जाना छोड़ने लगे; और साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाकर सत्य-विचारादि शुभ सद्गुणोंको धारण करके निज कल्याणके ही प्रयत्नमें लगे ॥ १३८७ ॥

२. बहु प्रकार तेहि सासत देई ❀ जीवन धन दोऊ हरि लेई ॥ १३८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसा उसे अपने घेरासे निकलने लगा हुआ देखकर स्त्री और गुरुवालोग बहुत प्रकारसे उस सत्सङ्गी पुरुषको सासत = दण्ड, दुःख, कष्ट दे-दे कर उपाधि मचाकर दुःख-क्लेशमें डाल देते हैं; हरतरहसे पीड़ा देने लगते हैं। उसकी आयु, नरजन्मके धन, बल, वीर्य, नरजीवनके बुद्धि, विचार, विवेक, ज्ञान, वैराग्य, तन, मन, धनादि सब पूँजी खानी और वाणी दोनों तरफसे काल लोग लूटकर हरण करके अपने कब्जेमें कर लेते हैं; ज्यादा विरोध हुआ, तो

मौका पाकर मार भी डालते हैं। सब तरफसे नाकाबन्दी करके उसे दुःख ही देते हैं। परन्तु, विवेकी सत्सङ्गी भक्तजन उन दुःखोंसे नहीं घबड़ाते हैं। आखिरमें उनके फन्दाओंसे निकल ही आते हैं ॥ १३८८ ॥

३. संयम जतन दृढ़ बरत करावै ❀ जहाँ तहाँ तीरथ दौरावै ॥ १३८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मकाण्डी और उपासक लोग यत्न वा उपायसे युक्ताहार, युक्त विहार, युक्त चेष्टा, सामान्य व्यवहार, पथ्य-परहेजसे रहना, यही संयम दृढ़तासे कराते हैं। फिर संयमका जतन दृढ़ होनेपर व्रत कराते हैं। सो एकादशीका व्रत, फलाहार, जलाहार, दूधाहार, दूर्वाहार, कन्द-मूलाहार, पत्र-पुष्पाहार, निराहार आदिक चालसे नाना किश्मके व्रत कराते हैं। यह दृढ़ाया है कि, व्रत करनेवालोंकी सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं; और तीर्थके नामसे काशी, प्रयाग, मथुरा, गोकर्ण, हरिद्वार, पुष्कर, गङ्गोत्री, यमुनोत्री, केदार, बद्री आदि चार धाम तथा चौंसठ तीर्थोंमें जहाँ-तहाँ तीर्थयात्रीको दौड़ा-दौड़ा करके ले जाते हैं। तीर्थ स्नानसे सब पापोंका नाश होना बतला करके धोखा देकर भटका रहे हैं ॥ १३८९ ॥

४. कष्ट अनल तन देवैं बासा ❀ ब्रह्मचर्य आश्रम परकाशा ॥ १३९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! और भी कई तरीकोंसे नाना कष्ट सहन करते वा कराते हैं। कोई चारों तरफ अग्नि जला करके शिरपर मटकेमें भी अग्नि रखकर जेष्ठ महीनामें दो पहरको उस प्रकार पञ्चाग्नि ताप करके कई घन्टों तक कष्ट सहते रहते हैं। कोई वैसे ही चौरासी धुनी तापते हैं, कोई लोहेकी पट्टीवाला खाटपर बैठकर नीचे धधकती हुई अङ्गार फैलाकर आँचको सहन करते हैं। उसे वे लोग तपस्या किया हुआ कहते हैं। ऐसे बहुत तरहसे दुःख देकर शरीरको सुखा देते हैं। परन्तु, मनमें स्वर्गादि सुख प्राप्तिकी वासना भरकर रखते हैं; और कर्ममार्गमें ब्रह्मचर्याश्रमका प्रकाश किया है। साधकोंको-"प्रथम ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करो !" यह कहते हैं। तहाँ ब्रह्मचारी लोग व्रत-उपवासादि नाना साधना तप किया करते हैं ॥ १३९० ॥

५. मैथुन अष्ट जितावन लागे ❀ विरह नारि दुःख सहहिं अभागे ॥ १३९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अष्ट प्रकारके मैथुन काम वासनासे रहित होनेवाला ही सच्चा ब्रह्मचारी कहलाता है। अष्ट मैथुनोंके नामः—

दोहाः-"श्रवण सुमिरन कीर्तन, चितवन बात एकान्त ॥ दृढ़ सङ्कल्प प्रयत्न पुनि, प्रापति अष्ट कहन्त ॥"

अथवा दक्ष स्मृतिः— अध्याय ७। ३१ मेंका शास्त्र प्रमाणः—

श्लोकः—"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणम् ॥ सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च ॥"

अर्थः— १. स्त्रियोंका चिन्तन, २. स्त्रीके गुणोंका वर्णन, ३. उनके साथ खेलना, ४. कामेच्छासे स्त्रियोंको देखना, ५. एकान्तमें गुप्त बात-चीत करना, ६. स्त्री प्राप्तिकी इच्छा किया करना, ७. स्त्रीप्राप्तिकी प्रयत्न करना और ८. स्त्रीसे मिलकर प्रत्यक्ष सम्भोग करना, इसे ही अष्ट मैथुनोंके नामसे कहा है। इधर तो गुरुवालोग अष्ट मैथुन जिताने लगे, उधर अपने ही भक्तरूप स्त्री बनकर कल्पित पुरुषके विरहमें व्याकुल होकर अनाड़ी, अभागे लोग दुस्सह दुःख सहते रहते हैं। पूर्ण विषय-वासनाका त्याग न होनेसे विषयासक्त पुरुष विरही होकर नाना दुःख सहते हैं। स्त्री न मिलनेसे वे अपनेको अभागे समझते हैं। "मैं अभागा हूँ ! मेरे घरमें लक्ष्मी नहीं आई ! मेरे कर्म फूट गये ! स्त्री न मिलनेसे दुःखी हूँ !" इत्यादि वे कहते भी हैं। दृढ़ वैराग्यके हुए बिना उनसे अष्ट मैथुन तो जीता नहीं गया। अभागे लोग नारीके विरहमें दुःखी, विषयाध्यासी हो चौरासी योनियोंमें नाना दुःख सहते हैं ॥ १३९१ ॥

६. लिखहिं चक्र करहिं तेहि सेवा ❀ दुस्सह कलेश फले सो मेवा ॥ १३९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई कर्ममार्गी लोग भोजपत्र, ताड़पत्र, ताम्रपत्र, कागज आदिमें भग-चक्रके गुह्यचिह्न या योनिका आकार लिख करके उसे गुह्येश्वरी देवी, सिद्धदात्री

समझकर उसी चिह्नाङ्कित यन्त्र भग-चक्रकी सेवा-पूजा, आराधना, भक्ति-भावना करते हैं। कोई तो आटासे चौका पूरकर चित्र-विचित्र चक्र लिख और लिखा करके उसीकी सेवा-पूजा करते-कराते हैं। ऐसे-ऐसे प्रपञ्चमें पड़कर अनेकों असह्य कष्ट-क्लेश भोगते रहते हैं, तो भी वे लोग कहते हैं कि, अभी कुछ दिन कर्म साधनाका कष्ट सहन करो, जिससे पीछे तुम्हें सो उसीसे मेवाका सुख फल मिलेगा कि, फिर सब दुस्सह दुःखका अन्त होकर मिट जायगा। ऋद्धि-सिद्धि, मन्त्र-सामर्थ्यकी शक्ति प्राप्त हो जायगी। महान आनन्द, सुख फल पाओगे, और पीछे ब्रह्मलोकमें जाकर अनन्त काल पर्यन्त सुख भोग भोगोगे। इससे अभी सब क्लेश सहकर साधनोंमें लगे रहो, इत्यादि कहकर भ्रमा-भुला रक्खा है, उन्हें बाँध रक्खा है ॥ १३९२ ॥

७. सो बन्दी अजके विस्तारा ❀ बन्धुवन कष्ट अनेक प्रकारा ॥ १३९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सो बन्दीखाना या कैदघर ब्रह्माका किया हुआ कर्ममार्गका विस्तार महान बन्धनरूप है। जो कोई उस कर्ममार्गमें बँधुए हुए, उन जीवोंको अनेकों प्रकारसे नाना कष्ट भोगाकर हैरान किये और कष्ट दे ही रहे हैं। सोई ब्राह्मणोंका विस्तार किया हुआ कर्म जालमें अरुझ करके घिरकर बहुतेरे बन्दी या कैदी हुए। उस जेलमें पड़े हुए कैदी लोगोंको अनेक तरहके कष्ट भोगनेके सिवाय और कुछ फायदा नहीं होता है ॥ १३९३ ॥

८. ग्रासै लोभ नहिं जानहिं शूला ❀ बहुविधि कर्म बाण यम हूला ॥ १३९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें विषय सुख प्राप्ति, स्वर्गादिके कल्पित सुख, अमृत पान, पुष्प शैय्या, अप्सराओंसे क्रीड़ा-विलास आदि झूठे लोभ-मोहमें पड़कर जीव ग्रसित हुए। गुरुवालोगोंने उन्हें खूब लुभा करके ग्रास लिया है वा जकड़ा दिया है। परिणाममें उसमें भयङ्कर शूल अत्यन्त पीड़ा-दुःख भोगना पड़ता है। परन्तु, लोभी जीव पहले यह बात नहीं जानते हैं। लालचके मारे फँस जाते हैं, पीछे पछताते रहते हैं। कर्मकाण्डकी कल्पित वाणीरूप विषैला तीर यमरूप गुरुवालोगोंने बहुत प्रकारसे गलवा मचा करके मर्मस्थानरूप हृदयमें हूलकर घुसेड़ दिया है। बाण वर्षाकी भीड़ लगा करके ढँक दिया है, हो-हल्ला मचाकर आक्रमण कर दिया है; तीर टूट-टूट कर भीतर रह गया है, इसीसे महान शूलसे पीड़ित हो-हो करके मनुष्य मर रहे हैं ॥ १३९४ ॥

९. घायल घुमहिं घाव अनेका ❀ आगिल आशा करहिं विवेका ॥ १३९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे लड़ाकू सिपाहीलोग तीरसे घायल होकर अनेकों घाव होनेपर भी रणस्थलमें घूमता हुआ लड़ता ही रहता है। आगे शत्रुको जीतनेकी आशा करता रहता है। तैसे ही वाणीकी चोट खाकर जीव घायल-भ्रमिक हुए हैं; उधर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि करके और भी अनेक घाव अङ्ग-प्रत्यङ्गमें हुए हैं। क्षत-विक्षत हुए, उसीसे तलमला-करके चहुँ दिशाओंमें कर्म-कुकर्म करते हुए घूम रहे हैं। तभी भी आगे कुछ दिनमें या मृत्यु हो जाने पर स्वर्गादि सुख, सिद्धि प्राप्ति होगी, यही आशा बढ़ाये चले जाते हैं। कोई जगत्कर्त्ता परमेश्वर होनेकी कल्पना करके उसीका विवेक-विचार करते हैं। वही ईश्वरकी कृपासे हमें आगे सुख मिलेगा, ऐसी मिथ्या आशामें भूले पड़े हैं ॥ १३९५ ॥

१०. पालहिं जहर चहहिं फल भोगू ❀ छुवत मरहिं तेहि आश अरोगू ॥ १३९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हलाहल विषका बिरुवा रोपकर उसको सींच-सींचकर पालन किया है। वृक्ष बड़ा हो जानेपर उससे अमृत तुल्य सुरस, स्वादिष्ट फल खाना चाहें, सुख भोगना चाहें, तो क्या उनकी आशा पूर्ण होगी? कभी नहीं होगी। विषको छूते ही और खाते ही मर जायेंगे, फिर उससे निरोग-सुखी होनेकी आशा करना तो व्यर्थ ही है। तैसे ही विषय वासना तथा वाणी कल्पना, यही जहरका बीज हृदयरूप भूमिमें बोया। उसे हरतरहसे प्रयत्नकर कर्मादि साधना करके पाला, रक्षा किया, बढ़ाया, तो भ्रम-आसक्तिका वृक्ष उत्पन्न होकर बड़ा

हुआ। उससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षादि मन चाहा सुख, फल भोग करना या पाना चाहते हैं, तो उस धोखेसे इन्हें क्या फल मिलेगा ? क्या इच्छा पूर्ण होगी ? कुछ नहीं होगी। जैसे कहा है कि:— दोहाः— "कबीर कमाई आपनी, निष्फल कभी न जाय। बोया पेड़ बबूलका, तो आम कहाँसे खाय ? ॥" "विष बोये विष होत है, अमृत कहाँ ते पाय। विष खाये मरि जात है, सुख स्वपने नहिं पाय ॥"

जैसे भग भोगके स्पर्श करते ही उस वक्त तो मन मर जाता है; परन्तु, उससे निरोग-सुखी, इच्छा रहित होनेकी आशा करना तो व्यर्थ है वा असम्भव है ! क्योंकि, भोगकी इच्छा और भी ज्यादा बढ़ जाती है। तैसे ही कल्पना-भासको छूते ही जीव जड़ाध्यासी होकर मर जाते हैं, हंसपदसे नष्ट होते हैं; परन्तु, उसीसे ईश्वरादि प्राप्ति करके अरोग, मुक्त, सुखी होनेकी आशा करते हैं, यही उनकी मूर्खता है। जड़ाध्यासी होकर मुक्त हो नहीं सकते हैं। पारखबोधके बिना यह जान नहीं सकते है। इसीसे आशा-तृष्णादि रोगोंसे ग्रसित होकर मर रहे हैं ॥ १३९६ ॥

११. जप तप नेम कलेश अपारा ❀ बूड़हिं बहुत मोह भव धारा ॥ १३९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसलिये भ्रमिक मनुष्य कल्पनासे कोई एक अगम अपार परमेश्वर कर्त्ता सुख-दुःखादिका दाता, मुक्तिदाता मान करके उसको प्रसन्नकर सुख प्राप्ति करनेके वास्ते कोई सप्त बीज महामन्त्रोंका जप, एक सौ आठ (१०८) माला वा हजार मालाका नाम जप करने लगे। कोई नाना तपस्या शीतोष्ण, भूख-प्यासादिको सहन करने लगे। कोई नित्य नियमसे स्नान, सन्ध्या, पूजा-पाठ, होम-हवन तर्पण आदि करने लगे। इसप्रकार अनेकों कष्ट-क्लेश, ताप-सन्ताप सहन किये। तो भी कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादिकी प्राप्ति किसीको नहीं हुई। बहुत मनुष्य संसारमें स्त्री-पुत्र, धन-जनादिके मोह, काम-धाराकी तरङ्गमें ही बह-बह करके भवसागरमें-गर्भवासमें डूब गये; और बहुतेक कर्मोजन, ईश्वर, ब्रह्म, स्वर्गादि लोक, देवी-देवता, वेदादि वाणी-कल्पनाकी मिथ्या महिमामें मोहित होकर उस माहकी धारा नाना कर्मादि साधनाओंमें बह-बह करके जड़ाध्यासी हो भवसागररूप यहा संसारमें चारखानी-चौरासी योनियोंमें जाकर डूब जाते हैं या डूबे वा डुबा रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके सत् शिक्षा ग्रहणकर हंस रहनी सद्गुण ग्रहण, धारण किये बिना यथार्थ पारख बोध नहीं होता है; और पारख बोध हुए बिना यह खाना-वाणीके कर्म जालोंसे कोई जीव छूट नहीं सकते है। अतएव जिज्ञासु मनुष्योंने पारखी श्रीसद्गुरुका सत्सङ्ग करके सत्यबोधका प्राप्तकर इस जालसे निकलजाना चाहिये ॥ १३९७ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी, नम्बर— ८ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर- ९ ॥ ❀ ॥

१. बाँधे अष्ट कष्ट नौ सूता ❀ यम बाँधे अञ्जनीके पूता ॥ १३९८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! यमरूप काल बने हुए गुरुवालोगोंने संसारमें अष्ट प्रतिमा जड़ पूजामें तथा अष्टाङ्ग योगः— लय, तारक, अमनस्क, सांख्य, लम्बिका, राज, कुण्डली और हठ, इनके अनेक साधनाओंमें, नवधा भक्तिमें, और कष्ट= ब्रह्मज्ञान प्राप्ति करनेमें साधन चतुष्टय = विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता और शमादि षट् सम्पत्तिसम्पन्न होने-में नाना कष्ट-क्लेश देकर सूता = सूत्ररूप वाणी कल्पनामय सत्य चैतन्य जीवोंको धोखा देकर बाँध दिये हैं, भ्रममें फँसाकर अरुझा दिये हैं। इसीसे बिना पारख मनुष्य सब गाफिलामें सो गये। मिथ्या कल्पनासे ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्त करनेके धोखा-भ्रममें पड़ गये। नाना साधना करके जहँड़ा गये; और जीवोंको भव-बन्धनमें डाल करके फँसानेवाला जो है, सोई 'यम' कहलाता है। यहाँपर यम = रामचन्द्रने अञ्जनी नामक स्त्रीके पुत्र हनुमान् भक्तका अपनी भक्तिरूपी माया-जाल कल्पनामें फँसा करके बाँध दिया था। "मैं राम सब जगत्का आधार आत्मा हूँ ! मुझे परमात्मा जान करके मेरी भक्ति करो ! हे कपि ! इसीसे तुम्हारी मुक्ति होगी !" इत्यादि वाणी सुना-सुनाकर भ्रमाकर बद्ध किया था। अथवा यमरूप योगीलोगोंने सूता = वासनाधारी जीवोंको अष्ट सिद्धि, नव निद्धि आदि

प्राप्तिकी लालच देकर अनेक प्रकारसे कष्ट देकर बाँधा है। उसीमें हनुमान् भी बद्ध हुआ। अथवा विषयासक्त पुरुष अष्ट मैथुनोंमें नौ द्वारोंसे विषय भोग करके नाना मिहनत-मजदूरी धन्धोंके कष्टमें वासना टिका-टिकाकर सब जीव बाँधे गये। तहाँ यमरूप स्त्रीने पुत्ररूप सब पुरुषोंको भग भोगादिमें खींच-खींच करके खूब कसकर बाँध लिया है। पारख बिना यह खानी-वाणी जाल, बन्धनोंसे कोई नहीं छूटे ॥ १३९८ ॥

२. यमके वाहन बाँधे जनी * बाँधे सृष्टि कहाँलों गनी ॥ १३९९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! यम=गुरुवालोगोंके, वाहन=उपदेशकी सवारीमें सवार होकर कर्म, उपासना, योगादिके उपदेश सुन-सुन करके नाना विद्या, नाना कल्पनामें, जनी= सब मानवजन बाँधे गये। अथवा कोई भक्त लोग स्त्री भावनासे भक्तिकी कल्पनामें बन्धायमान हुए। अथवा कोई विषयी लोगोंके शृङ्गारादिकी वाणीको सुन-सुन कर विषयासक्त होकर स्त्रीके गुलाम होकर बद्ध हुए। इसप्रकारसे सारे संसारके मनुष्य कोई विषयोंमें, कोई अनुमान-कल्पनामें, कोई भास-अध्यासमें बाँधे गये। एक-दो हों, तो मैं गिनाऊँ; यहाँ तो सारी सृष्टिके प्राणिमात्र बेपारखी हो नाना तरहसे बद्ध हुए या हो रहे हैं, तो मैं उनके नाम कहाँ तक गिना करके बताऊँ ? कोई विरले ही पारखी सन्त इस जालसे बचकर मुक्त होते हैं ॥ १३९९ ॥

३. बाँधेउ देव तैंतीस करोरी * सँवरत लोह बन्द गौ तोरी ॥ १४०० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! अनादि कालसे जीव जड़ाध्यासी हो भव-बन्धनोंमें ही पड़े हैं। मुक्त होना तो चाहते हैं, परन्तु, पारख बोध नहीं पाते हैं, इससे भटका ही करते हैं। हिन्दुओंने सब तैंतीस करोड़ देवता कल्पनासे माना है। वे देवता सब भी जड़ाध्यासी हो विषय कल्पनामें ही बद्ध हुए; और गुरुवालोगोंने उन देवताओंको सिद्ध-सुखदाता मानकर तैंतीस कोटि देवताओंके नामसे तैंतीस कोटि मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, महा जाल रचना करके उन्हींकी उपासना-आराधना, पूजा-पाठ, जाप कर्मादि नाना प्रपञ्चोंमें लगा करके मनुष्योंको हरतरहसे बाँधे, पशु बनाकर वश किया है। उसीमें गुरु और चेले सब कोई बद्ध हुए हैं। परन्तु, यहाँपर उन गुरुवालोगोंका कथन उपदेश तो ऐसा है कि—

[मायामुखः—] "सँवरत लोह बन्द गौ तोरी" अर्थात् जो कोई जगत्की आसक्ति छोड़कर भक्ति-भाव अनन्य निष्ठा प्रेमसे उन भगवान् परमेश्वरके सहस्र नामका सुमिरण, कीर्तन, भजन, जाप, आराधना नित्यप्रति किया करते हैं, वे भक्त भगवान्के बड़े प्यारे होते हैं। इससे लोहबन्द=लोहेके समान मजबूत बेड़ी, अत्यन्त कठिन मायाका भव-बन्धन चौरासी योनियोंका फन्दा सब भी उन भक्तवत्सल भगवान्की महान कृपासे अनायास ही टूट जाता है। यानी भगवान् ही भक्तोंके सब बन्धन तोड़कर मुक्त कर देते हैं। इसलिये प्रेमसे परमात्माका नाम-स्मरण सदा करो, तो तुम्हारे भी वज्र समान बन्धन सब टूट जायेंगे, इत्यादि गुरुवालोगोंने कहा है ॥ १४०० ॥

४. राजा सँवरे तुरिया चढ़ी * पन्थी सँवरे नाम ले बढ़ी ॥ १४०१ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! इसप्रकार गुरुवालोगोंकी रोचक वाणी सुन-सुन करके, सब कोई मनुष्य अपने-अपने इष्टकी साधनामें लग करके तल्लीन हुए। तहाँ राजाके समान बड़े बने हुए ज्ञानी लोग ईश्वरके नामको स्मरण करते-करते तुरिया अवस्थामें चढ़ गये। प्रथम श्रवण-मननादि करके एक आत्माका निश्चय किये। फिर जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थासे आगे बढ़कर चतुर्थ अवस्था तुरियाको प्राप्त हुए। वृत्तिकी एकाग्रतासे आनन्द मालूम हुआ, तो उसे ही साक्षी, सच्चिदानन्द ब्रह्म मानकर उसी आनन्दको ही याद करने लगे। ऐसे वे भासमें चढ़े, बद्ध हुए। जब उनका देह छूटा, तो चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़े; और जैसे मुसाफिर गाते-गाते नाम लेते हुए रास्ता तै करके बढ़ते चले जाते हैं। तैसे ही यहाँपर पन्थी=

योगी लोग योग मार्गसे साधना करके चलने लगे। नाम=सोहं शब्द अजपा जापको परमेश्वरका गुप्त नाम मान करके श्वासवायुमें लक्ष्य लगाकर स्मरण या याद करने लगे। फिर श्वासमें सोहं नाम सहित सुरति लगाकर धीरे-धीरे आगे ब्रह्माण्डरूप भ्रमरगुफामें बढ़ते चले गये। वहाँ शून्यमें सब वृत्तियाँ लय हुईं, समाधि लगी। उसी शून्य स्थितिको अपना या परमात्माका स्वरूप मान करके बद्ध गाफिल हुए। शून्य गर्भवासमें ही उलट करके चले गये ॥ १४०१ ॥

५. अर्थ बिहूना सँवरे नारी * परजा सँवरे पुहुमी झारी ॥ १४०२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने वेद-शास्त्रादिके प्रमाणसे अर्थ करके भाग, त्याग, लक्षणासे जगत्कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वर, परमात्मा आदि ठहरा करके उन्हें निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निरीह, व्यापक आदि लक्षण करके जो माना है, सो तो भ्रम-कल्पना मात्र है। विवेक करिये ! निर्गुणमें कोई गुण नहीं है, निराकारमें कोई आकार नहीं है, निरञ्जनमें कोई रूप-रेखा नहीं है, निरीहमें कोई इच्छा नहीं है, व्यापक होनेसे कहीं खाली नहीं है। फिर वह कर्त्ता बन करके गुण, आकार, रूप, इच्छा और एकदेशी जगत्की रचना या उत्पत्ति कैसे करेगा ? किसीको वह सुख-दुःख भी कैसे देगा ? वह तो सरासर नरजीवकी कल्पना, मिथ्या है; जगत् स्वयं सिद्ध अनादि है। परन्तु, अनाड़ी भ्रमिक लोग उसी अर्थ बिहूना=अनर्थ भ्रम कल्पना जो कि, अर्थ, माने, मतलबसे रहित है, उसीको परम पुरुष परमात्मा कर्त्ता, मुक्तिदाता आदि मान-मान करके स्त्री भावसे भक्ति धारण करके प्रेमसे धोखेकी ही याद नाम-स्मरण, जाप, मनन, दृढ़ निश्चय किये या कर रहे हैं। इसप्रकारसे समस्त पृथ्वी मण्डलकी प्रजा=मनुष्यवर्ग, शिष्य लोग मनमाने तौरसे ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, गॉड आदि मान-मान करके उसीका नाम-स्मरण, जाप, कीर्तन आदि अनेक साधना किये और कर रहे हैं। परन्तु, निज स्वरूपकी स्थिति पारख बोध न होनेसे सब कोई जड़ासक्त भ्रमिक हो भव-बन्धनोंमें ही पड़े हैं। अर्थरूप कल्याण होनेके बदले अनर्थ हुआ, चौरासी योनिगामी हुए; बिना पारख विपरीत समझवाले दुबुद्धि हुए हैं ॥ १४०२ ॥

साखीः— बन्दि मनावै ते फल पावै * बन्दि दिया सो देय ॥
[२५७] कहैं कबीर सो ऊबरे * जो निशिवासर नामहिं लेय ॥ १४०३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! [मायामुखः—] गुरुवालोग यहाँपर ऐसा कहते हैं कि, जैसे बन्दीगण, भाट, चारण, कवि आदि लोग राजा, महाराजा, धनपति, सेठ लोगोंका प्रसस्ति, गुणानुवाद, प्रशंसा, बड़ाई गा-गा करके सुनाते, उन्हें मनाते हैं, प्रसन्न करते हैं, तो वे इनाम, बक्सीसमें धन-धान्य, जागीरी आदि फल पाते हैं; और जिस राजाने कैदीको जेलमें डाल दिया है। यदि वह अपराधी कैदी राजाको मनावे, खुश करे, अच्छी चालसे चलनेकी प्रतिज्ञा करे और राजा प्रसन्न होवे, तो उसे बन्धनसे मुक्त भी कर दे सकता है। इसीप्रकारसे परमेश्वरने जीवोंके कर्मानुसार सबको चौरासी योनियोंके बदीखानामें डाल दिया है। उनमें अलग-अलग श्रेणी भी बना दिया है। मनुष्य खानी परीक्षा लेनेकी जगह है। इसवास्ते हे बन्दे भक्त लोगो ! तुम सब उन्हीं भगवान् जगत् उत्पत्तिकर्त्ताकी वन्दना आदि नवधाभक्ति करके मनाओ ! जिन्होंने भगवान्में अनन्य निष्ठा, प्रेम-भाव रख करके अर्चना, वन्दना, दास्य आदि किसी प्रकारसे भी मना करके उन्हें प्रसन्न कर लिया है, तो फिर वे भक्त अर्थ, धर्मादि चार फल तथा सालोक्यादि चार मुक्ति या जो चाहे, सो मनोवाञ्छित फल भी पा जाते हैं या पा सकते हैं। अथवा भगवान्के दर्शनका फल भी पा सकते हैं; और जिसने समस्त सृष्टि उत्पन्न करके सब जीवोंको कर्म-बन्धनोंमें डाल दिया है, सोई परमात्मा ही इस जगत् बन्धनसे जीवोंको मुक्त करनेमें समर्थ है। इसीसे उस परमेश्वरकी भक्ति, स्मरण, कीर्तन, भजन करके जो उसे प्रसन्न करेंगे, तो भगवान् उन भक्तोंको मुक्त कर देगा। यदि तुमलोग भी सुख, स्वर्ग और मुक्ति चाहते हो, तो ईश्वरकी भक्ति किया करो ! और दिन-रात

भगवान्का नाम-जाप करो, तो उबर जाओगे। अथवा योगी लोग कहते हैं— जो कोई साधक ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, रात-दिन आठों प्रहारोंमें 'सोहं' शब्द या राम-नामको श्वास वायुमें अखण्ड सुरति लगा करके मानसिक जाप किया करते हैं, सोई साधक योगी, भक्त दुस्तर भवसागरसे भगवद् कृपासे अनायास पार उतरकर परमपदमें पहुँच करके मुक्त हो जाते हैं। इससे सबोंको दिन-रात नाम जप करते रहना चाहिये। ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है, सो उसे परखना चाहिये॥ १४०३ ॥

साखीः— बन्दीखाना जो परे ❀ तेहि राजा खुशियाल ॥

[२५८] लोभ गरासे जीवको ❀ सूझै नहिं भव जाल ॥ १४०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! बन्दीखाना=विषयका तथा कर्म, उपासना योग और ज्ञान आदि षट् दर्शन छियान्नवे पाखण्डके कैदखाना या जेलघरके भीतर आ-आ करके जो मनुष्य जीव उन गुरुवाओंके चरणोंमें पड़े, शिष्य-शाखा, अनुयायी भक्त होकर घिर पड़े, उनकी कही बात सब मानने लगे। तब तो उन शिष्य लोगोंसे राजा=गुरुवालोग बड़े खुश होकर खुशियाली मनाते हैं; प्रसन्न बने रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार ही जीवोंको ग्रास करके खानी-वाणीके भव जाल-जञ्जालमें ले जा करके डाल देता है। वहाँ अनेकों दुःख पाते हैं, तो भी उनके पासमें विवेकदृष्टि न होनेसे उन्हें कुछ हानि-लाभ नहीं सूझता है; अन्धाधुन्ध चले जाते हैं। विषय सुख, धन, राज्य, चार फल, स्वर्गादि प्राप्तिकी लोभ-लालचमें पड़कर जीव ग्रसित हुए; कालने उन्हें पकड़ करके ग्रास कर लिया। भवजाल, नाना सधनाओंके भ्रम जाल चौरासी योनियोंकी यातनामें पीड़ित हो रहे हैं, तो भी पारखबोधके बिना वह बन्धन उन्हें कुछ दिख नहीं पड़ता है। उसीमें फँसे ही रहते हैं॥ १४०४ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर—७० ॥ ❀ ॥

साखीः— जहर जिमी दै रोपिया ❀ अमी सींचै सौ बार ॥

[२५९] कबीर खलक ना तजे ❀ जामें जौन विचार ॥ १४०५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! जैसे कोई जमीनमें जहरका बीज रोपकर उसे अमृतरूप दूधसे सौ बार भी सींचे, तो भी उससे अमृतका फल कभी नहीं आ सकता है; विषका ही फल निकलता है। तैसे ही गुरुवालोगोंने जरा-मरणको हरनेवाला ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा कोई है, ऐसी जहररूप वाणी-कल्पनाका उपदेश मनुष्योंके जिमी=अन्तःकरणरूप भूमिकामें रोप करके दृढ़ कर दिया है। अनेक प्रकारसे भ्रमा दिया है। अब सौ-सौ बार भी मैं सत्य निर्णयका वचन अमृतरूप उपदेश सींचता हूँ, अमर चैतन्य जीवके जरा-मरणको दूर करनेवाला पारख बोध देता हूँ, तो भी वे ग्रहण नहीं करते हैं, कुछ नहीं समझते हैं। क्योंकि, सब पक्षपाती, अविचारी, हठी-शठी हो रहे हैं। जिसमें जैसा विचार हुआ, तैसा मत-सिद्धान्त पकड़ करके पक्का कर रक्खा है। संसारी जीव सो मिथ्या मानन्दी पक्षको नहीं छोड़ते हैं; इसलिये उन्हें पारख बोध भी नहीं होता है। कोई ब्रह्मज्ञानी हुए, तो जगत्को ही अपना ब्रह्म स्वरूपमें मान लिया। कोईने ईश्वर कर्त्ताको भिन्न मान लिया। कोईने ईश्वर, जीव और माया, इन तीनोंको नित्य माना है। कोई पाँच तत्त्वको ही सब कुछ मान बैठे हैं। कोई शून्य, वीर्य, प्राण, मन और तनको ही निजस्वरूप मान रहे हैं; इत्यादि अनेकों प्रकारके पक्ष-भ्रमको पहलेसे जिन्होंने जैसा दृढ़ निश्चय कर लिया है, उसको वे अन्त तक नहीं छोड़ते हैं। सार-असारका कुछ विचार तो वे करते ही नहीं हैं। इसीसे उनका चौरासी योनियोंका चक्र भी नहीं मिटता है। अथवा जहररूप विषयासक्तिका बीज-वासना हृदयमें रोप रक्खा है। स्त्रीमें ही तन, मन, धनादि दे रक्खा है, अब उन्हें सौ बार भी सत्य उपदेशसे सींचे-समझावे, विषयमें कसर दिखलावे, तो भी संसारी विषयी लोग उस आसक्तिको नहीं छोड़ते हैं, निज पारख स्वरूप जीवकी तरफ लक्ष्य नहीं

करते हैं। भग भोगी, वाममार्गी, हिंसक, दुराचारी आदि लोग जिनमें जैसा-जैसा कुविचार प्रथम-से दृढ़ हो गया, बुरी आदत पड़ गई है, सो कोई नहीं छोड़ते हैं। कोई बिरले ही पारख बोध प्राप्त करके उन दोनोंके पक्षको छोड़ पाते हैं ॥ १४०५ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १३३ ॥ ❀ ॥

साखीः— विषके बिरवे घर किया * रहा सर्प लपटाय ॥

[२६०] ताते जियरहिं डर भया * जागत रैनि विहाय ॥ १४०६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः]— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंके उपदेशसे विष=वेद वाणी कल्पनाके प्रमाण द्वारा बिरवा=कोई जगत्कर्त्ता ब्रह्म है या मैं ब्रह्म हूँ, यह मानन्दीने जीवोंके अन्तःकरणमें घर किया, जड़ जमा लिया। उसी भ्रम-धोखेमें नरजीवने स्थिति कायम किया। तो वहाँ पञ्च अभिमानरूपी सर्प आ करके लपटा रहा है। एक तो घरमें विषका वृक्ष, फिर उसमें सर्प लिपटकर रहना, ये दो कारणसे नरजीवोंको बड़ा डर पैदा हुआ। तैसे ही एक तो भ्रम कल्पना, दूसरा अभिमानसे जीव जड़ाध्यासी हुए हैं। जीव तो जाग्रत्रूप चैतन्य है; परन्तु, पारख स्वरूपका बोध न होनेसे रैनि=महाअज्ञान, गाफिलीमें ही सारा जन्म बीत गया। अन्तमें चौरासी योनियोंमें गया। अथवा विषका बिरवा=नाना मतवादियोंकी वाणी सुन करके नाना सिद्धान्तोंके धोखेमें नरजीवोंने घर=स्थिति बना लिया, तो वहाँ सन्देह, भ्रम, पक्षपात, अहङ्कार, यही सर्प लपटा रहे हैं। भयानक वाणी नरक यातनाका वर्णन सुन-सुन करके इसीकारणसे खूब डर हुआ कि-भगवान्से मिले बिना नरकसे बच नहीं पायेंगे। ऐसा सोचकर भयभीत हो करके भक्ति, योग, ध्यानादि साधना करनेमें दिन-रात बिताने लगे। परन्तु, स्वरूपका बोध न होनेसे अज्ञानमें ही आयु बिता करके आवागमनमें पड़ते हैं। अथवा विष वृक्षका बीज कामासक्तिने हृदयमें घर किया है। उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्षा, द्वेष, यही सर्प चिपटकर बैठ रहे हैं। इसवास्ते स्त्री, पुत्र, धनादि विषय विलास छूट न जाय, वियोग न होजाय या स्त्री कहीं बाहर भाग न जाय, यही सब सन्देहसे डर करके जागते-जागते ही रात बिता देते हैं। परन्तु, वह सब नाशवान् पदार्थ यहीं-का-यहीं छूट जाता है। जीव अकेला ही सब जगह दुःख पाते हैं। बिना विवेक नाहक मनुष्य जन्मको बर्बादकर चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं ॥ १४०६ ॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— ७६ ॥[चौपाई- ११ । साखी- २ । रमैनी- १ । साखी-२ है] ॥❀॥

१. जो कोई जीव विचक्षण लोई * बन्दी फाँस अज बाँचा सोई ॥ १४०७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें जो कोई विशेष बुद्धिमान् विलक्षण समझ-बोधवाले तीव्र विवेकी जिज्ञासु लोग होते हैं, वे ही पारखी साधु-गुरुकी सत्सङ्ग द्वारा परीक्षासे निर्णय करके फिर सोई ब्राह्मणोंके बन्दीखाना कर्म-जालकी घेरा नजरबन्दीसे अन्धेरी कोठरी, फाँसीसे बच पाते हैं। कोई बिरले ही समझदार पुरुष इस जालसे निकल जाते हैं ॥ १४०७ ॥

२. विष्णु फाँस तेहि ऊपर डारे * धर्म भक्तिको कला सँवारे ॥ १४०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब किसीको कर्म मार्गसे निकलता हुआ देखा, तो विष्णुने झटपट जा करके उसके ऊपरमें उपासना मार्गका फन्दा डाल दिया। तहाँ भक्ति साधनाको धर्म बतला करके उसकी कला-कल्पनाका भाग बहुत प्रकारसे तैय्यार करके, बनाया है। अथवा अभी जो कोई तेज बुद्धिवाले लोग कर्म जालसे बच करके निकले, तो उसके ऊपरमें वैष्णव लोग टूट पड़ते हैं। वैष्णव सम्प्रदायका शिक्षा-दीक्षामें उसे फँसाकर बाँध लेते हैं। धर्म मार्ग भक्तिकी कलाका अनेक साधनाओंमें लगते और उन्हें लगाते हैं। इष्टमूर्तिको खूब सजा करके उसीकी जड़भक्ति करते और कराते हैं ॥ १४०८ ॥

३. बन्दी गृह आश्रम दृढ़ कीन्हा * कामिनि फाँस गले तेहि दीन्हा ॥ १४०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भक्त गुरुवालोगोंने वहाँपर मनुष्योंको कैद कर रखनेके लिये बन्दीखाना या जेलघरके समान दूसरा ठहराव गृहस्थाश्रम बना करके यह बात दृढ़ किया है कि, देखो ! तुम स्त्री-पुरुष दोनों ही मिलकर भगवान्की भक्ति किया करो; भक्ति भाव सहित घर-गृहस्थीका व्यवहार चलाया करो, सपत्निक किया हुआ धर्म कार्य ही सफल होता है, उसीसे स्वर्ग प्राप्ति होती है। देखो ! विष्णु भगवान्की स्त्री लक्ष्मी उनके साथ ही सदा रहती हैं। तैसे तुम्हें भी विवाह करके स्त्री को साथमें रखकर उपासना करनी चाहिये। ऐसा न करोगे, तो कार्य निष्फल होगा, ऐसी-ऐसी अनेकों बात सुना करके घेरघारकर पुरुषके गलेमें स्त्रीरूपी महाजाल डालकर जकड़कर बाँध दिया। अथवा बन्धनमें डालनेका घर यहाँ गुरुवाओंने वैष्णव आश्रमको दृढ़ किया है, परम पुरुष परमात्मा और स्वर्गादि प्राप्तिकी कामनाओंसे नवधा भक्तिरूपी फन्दा उन मनुष्योंके गलेमें लगा दिया है। यानी सब प्रकारसे भ्रमा करके फँसा दिया है; भुलाकर वश कर लिया है ॥ १४०९ ॥

४. सेवा शिला सुमिरन हरिनामा * भक्ति सोई जो करै अकामा ॥ १४१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कई किश्मकी शिला, शालिग्राम, पत्थरकी मूर्त्ति ठाकुरजी, विष्णु, राम, कृष्णादिकी जड़-पाषाण मूर्ति आदिकी सेवा, पूजा, ध्यान करने लगाते हैं। हे परमात्मा ! हे हरि ! हे राम ! हे भगवान् ! 'रघुपति राघव राजाराम ! पतित पावन सीताराम !' आदि नामोंका सुमिरण, जाप किया करते हैं। सकाम-निष्काम, हेतुकी-अहैतुकी आदि भक्तिके कई भेद हैं। जो निष्काम भावसे भक्ति करते हैं, उनके मनमें कोई वस्तु प्राप्तिकी इच्छा नहीं रहती है। निष्काम भक्त सर्वोत्तम और भगवान्के बड़े प्यारे होते हैं। तुम लोग जो कोई कामना रहित होकर भक्ति करोगे, सोई सायुज्य मुक्तिको पाओगे; इत्यादि गुरुवालोगोंने कहा है ॥ १४१० ॥

५. संयम जप तप नेम अचारा * भजन प्रसङ्ग हरि विषय विकारा ॥ १४११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर कोई कहते हैं कि, हरि भजनके प्रसङ्ग या अवसरमें बाह्य विषय विकारोंको जीतना चाहिये या हटाना चाहिये। उसके लिये संयमः— खान-पान थोड़ा करना, थोड़ा बोलना, थोड़ा चलना, थोड़ा सोना, ऐसे सब व्यवहारोंके कार्योंमें पत्थ्य-परहेज माफिक चला करना। राम-नामका जाप मन-ही-मन हरवक्त किया करना। धर्म पालनके लिये कष्ट-क्लेश सहनेकी तपस्या करना। नियमसे उठना, स्नान, ध्यान, पूजा, पाठ आदि सब कार्य नित्य नियम पालन करके करना। शुद्ध आचार, वर्णाश्रम धर्मका विचार करके सब काम करना। इस-प्रकार चलते हुए विषय विकारोंको छोड़ करके मौका मिलनेपर हरि भजन करनेमें ही मन लगाना चाहिये, ऐसा कहते हैं। परन्तु, ये सब विषयका ही विकार है। ज्यादातर विषयानन्द वृद्धिके लिये ही भजन-कीर्तनादि करते हैं; वह सब बन्धनका ही जाल फैलाया है ॥ १४११ ॥

६. ध्यान रूप मानसके पूजा * चौदह भुवन महातम राजा ॥ १४१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई मानसिक पूजामें इष्टदेवकी मनमें ही कल्पना करके मनःकल्पनासे ही सब सामग्री तैय्यार करके मानकर मन-ही-मन सङ्कल्पसे पूजा करनेकी भावना करते हैं। सोई विष्णु आदिकके मनःकल्पितरूपका ध्यान-धारणाको दृढ़ करके गाफिलीमें पड़ते हैं। वैष्णव भक्तलोगोंने ऊपर सात लोकोंसे नीचेके सात द्वीप पर्यन्तके मालिक एकाधिपति महाराजा, विश्वपति वे ही भगवान् नारायण हैं, इत्यादि मिथ्या महात्म्य बढ़ा करके फैलाकर लोगोंको धोखेमें डाल रक्खा है। सबकी स्थापना करनेवाले मनुष्य ही सबके राजा मालिक हैं; परन्तु, पारख बोध न होनेसे झूठी महिमा सुन-सुन कर भूल रहे हैं। झूठ-मूठ ही मानसिक पूजा और कल्पित रूपका ध्यान करते-कराते हैं। बिरले ही सत्सङ्गी मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुकी कृपासे इस धोखेको जान कर छोड़ते हैं ॥ १४१२ ॥

७. विरह अनलको कीन्ह प्रकाशा * परगट विष्णु फाँसमों फाँसा ॥ १४१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! विष्णु वा वैष्णव गुरुवालोगोंने नवधा-भक्ति उपासनाके जालमें बहुत लोगोंको फँसा करके या अरुझा करके विरहाग्नि जलाकर उसीमें डालकर गुप्त-प्रगट दोनों तरहसे जीवोंको जलाया है। भगवान्को ही परमपति सुखदाता स्वामी मानना, उसकी प्राप्तिके लिये सदा विरहाग्नि जलाये रखना, तो उसके प्रकाशमें कभी-न-कभी भगवान्का साक्षात् दर्शन पा जाओगे, इत्यादि वाणीको प्रगट करके विष्णु भक्तिके फन्दामें गुरुवालोगोंने मनुष्योंको खूब झाँसा देकर फाँसा है। सब तरफसे बन्धनके बीचमें ही जीवोंको डाल दिया है ॥ १४१३ ॥

८. छिनभर चैन न आवै तेई * हितके मतिदे दुशमन जेई ॥ १४१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसवास्ते विरहमें व्याकुल होनेवाले दुर्बुद्धि भक्तोंको विरह, भक्ति-भावना करते-करते दिन-रात चली जाती है, तो भी उन्हें कभी एक क्षण मात्र भी चैन, शान्ति, सन्तोष-स्थिति नहीं आती है, या चैन नहीं मिलता है; और हितकारी पारखी सन्त कभी उन्हें मिल गये और सत्य उपदेश निर्णयसे सद्बुद्धि देकर हित करना चाहते हैं, तो वे उन्हें दुश्मन या शत्रुके समान दिखाई देते हैं। हितकारीको बैरी समझकर वे मूढ़ लोग चौरासी योनियोंके चक्रमें ही भटकते रहते हैं ॥ १४१४ ॥

९. बाउर होय दहुँदिश धावै * और जीवको धोखा लावै ॥ १४१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! विशेष भ्रमिक भक्त लोग विरहमें व्याकुल होते-होते पागलके समान हो जाते हैं: हँसना, रोना, नाचना, गाना, उछल-कूद करना ऐसा कार्य करते हैं। कभी परम पुरुष परमात्मा प्राप्तिकी इच्छासे दशों दिशा=नाना तीर्थोंमें दौड़े चले जाते हैं; गिरि-कन्दराको छान डालते हैं। वृन्दावन, हरिद्वार, हृषिकेश, बद्री, केदार आदिमें ढूँढ़ते फिरते हैं; जङ्गल-जङ्गलमें भटकते फिरते हैं। वही धोखा छल-कपटसे बढ़ा-चढ़ा करके और जीवोंके पीछे भी लगा देते हैं। अपने तो धोखेमें पड़े ही हैं और मनुष्योंको भी धोखा दे-दे कर मनुष्यपदको नष्ट-भ्रष्ट कर-करा देते हैं। मिथ्या भ्रममें ही मन लगाते हुए गाफिलीमें पड़े रहते हैं ॥ १४१५ ॥

१०. सन्मुख घाव सहै नहिं भाजै * महिमा महातम चौकी गाजै ॥ १४१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोग कहते हैं— जैसे रण कुशल योद्धा अङ्गमें घाव लगनेपर भी रणस्थलसे नहीं भागता है; किन्तु, शत्रुके सन्मुख हो करके ही धैर्यसे लड़ता रहता है। पीछे विजय होनेकी आशा और मरनेपर भी स्वर्ग मिलनेकी कल्पनासे महिमा करता है। तैसे ही विरह-व्यथाकी घाव=चोट सहकर भगवान्की भक्ति करते रहो। सन्मुखमें कैसे भी विघ्न, दुःख हों, तो भी नहीं भागो, तो परीक्षा पूर्ण होनेपर तुम्हें परमात्माका दर्शन अवश्य होगा। ऐसी महिमा बता-बता करके उसी महात्म्यकी आशारूप चौकी या पहरा या रखवाली जीवोंके आस-पासमें बिठा दिये, सोई दृढ़ कर दिये हैं। गुरुवालोगोंने घायल होकर ऊब जानेपर भी अपने मतको छोड़कर नर-नारीको भागने नहीं दिया; और भी महिमा सुना-सुना करके घेर-घार कर रक्खा। अथवा कोई सन्मुखमें दुःख पड़नेसे दुःखसे घबराकर भक्ति मार्गको छोड़-छाड़ कर विषय भोगोंकी तरफ भागने लगा। तहाँ रोचक-भयानक वाणी सुना-सुना करके ईश्वरको सर्वशक्तिमान् बतलाकर उन्होंसे चिढ़कर चौंककर गुरुवालोग गर्जना करने लगे। भक्ति छोड़नेवालोंको महान यम दण्डका वर्णन करके मजबूत चौकीदार बैठा दिया है ॥ १४१६ ॥

११. बूड़हिं माँझधार भव जाला * करक करेजा विरह बेहाला ॥ १४१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार नाना प्रपञ्चोंमें फँसकर मनुष्य

अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंके कलेजा या हृदयमें खानी और वाणीके विरहका तीर घुसकर टूट गया; करक=निकलना कठिन हो गया, मजबूतीसे बैठ गया, उसीकी पीड़ासे बेहाल होकर जहाँ-तहाँ दौड़ने-छटपटाने लगे। विषय और कल्पनाके भवजालमें अरुझे। फिर जाल सहित कूदे, तो भवसागरके मँझधार ब्रह्म-ईश्वरादि धोखेमें डूब मरे, जड़ाध्यासी हुए। शरीर छूटनेपर अध्यासी जीव माँझधार=गर्भवास चौरासी योनियोंमें गिरकर डूब गये। फिर उन्होंको कुछ पता ही नहीं लगा। मनुष्य खानीसे भी बहुत दूर हो गये। इस जालको अभी शरीर रहते ही जिसने त्याग दिया, श्रीसद्गुरु-के सत्य पारखपदमें लगा, सोई बच पाया। बेपारखी कोई नहीं बचे; विरहमें बेहाल हो रहे हैं ॥१४१७॥

साखीः— विरही अनल जलावहीं ❀ प्रगट हरी सो रूप ॥

[२६१] दाह न देखै आपनी ❀ आश परा तम कूप ॥ १४१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अनुमान, कल्पनासे भ्रमिक हो करके कोई विश्वपति, परम पुरुष-परमात्मा, कल्याणकर्त्ता मानकर उसीको प्राप्त करनेका प्रेम बढ़ा करके नर-जीव विरही हुए। वही मिथ्या विरहकी अग्निको अपने और दूसरोंके हृदयमें जला करके खूब धधकाये। सो माना हुआ विष्णुके साकाररूपका प्रत्यक्षमें दर्शन करना चाहते हैं। परन्तु, वह कल्पना होनेसे कभी प्रगटमें उसका दर्शन तो नहीं हुआ, हाँ! स्वप्नवत् मानन्दीका भास किसीको हुआ, सो उसे ही हरिजीका स्वरूप दर्शनमें प्रगट हुआ, मानकर धोखेमें पड़कर मस्त-निहाल हुए। परन्तु, उसमें अपने मनुष्यपदका विनाश होता है, यह तो विवेकदृष्टि खोलकर वे देखते ही नहीं हैं। और त्रयताप ज्वाला जन्म-मरणादिका दाह-दुःख उसी जड़ाध्याससे अपने जीवको भोगना पड़ेगा, यह भी कुछ देखते ही नहीं हैं। हकनाहक धोखेमें मग्न होते हैं। अज्ञानवश परमपद प्राप्तिकी आशासे भ्रम कूपमें कूद पड़े। ईश्वर और स्वर्ग सुखादि प्राप्तिके आशा-भरोसासे जड़ाध्यासी हो करके अन्धकारसे भरा हुआ कूआँके समान भयङ्कर दुःख भोगका स्थान गर्भवासमें ही आखिरमें जा करके गिर पड़ते हैं ॥ १४१८ ॥

साखीः— तिन्ह आँखिन पथरा दिये ❀ समुझ दिये भ्रमजाल ॥

[२६२] छिन छिन जीवन जीवको ❀ भोगे काल कराल ॥ १४१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने उन भक्तोंके नेत्रोंको तो पथरा दिया है। यानी कल्पित वाणीका पर्दारूप आवरण डालकर सत्यको छिपाकर मिथ्याको प्रकट कर दिया है। चैतन्य जीवको दबाकर बुद्धि भ्रमाकर पत्थर, धातु, काष्ठ, मिट्टी आदिकी बनी हुई अष्ट प्रतिमाकी जड़ मूर्तिको ही विष्णु, शिव, गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, भगवती इत्यादि देवी-देवताओंके साक्षात् स्वरूपका दर्शन बतला करके वही पत्थरादिकी मूर्ति नेत्रके सामने भक्तोंको दिखला दिया है। फिर उन्हें सर्वसिद्धिदाता वर्णन करके भ्रमा दिया है, बुद्धि भ्रष्ट कर दिया है। जड़ मानन्दीमें लगा दिया है; और जड़ प्रतिमाको ही साक्षात् परमेश्वर नारायण कथन करके वाणी कल्पनाके जालमें अरुझाकर समझ-बोध ही उलटा कर दिया है। इसीसे भ्रम-चक्रमें पड़कर पत्थरादि जड़ मूर्तिको ही भक्त लोग सच्चे देवी-देवता समझ करके नित्यप्रति उसीकी सेवा-पूजामें लगे और लगा रहे हैं। क्षण-क्षणमें मनुष्य जीवोंको भुला-भुला कर, फुसला-फुसला करके जीवन, धन, सत्य, विचार, दया, धैर्यादि सद्गुण हंस रहनी शुभ लक्षणको विनाश करके तन, मन, धनादि हरणकर या लूटकर वा छीन करके विकराल-भयङ्कर तीक्ष्ण शस्त्रवाले गुरुवालोग संसारमें सब नर-नारी जीवोंको अपने वशमें करके मनमाने खानी-वाणीके विषय भोग भोगते हैं। स्वार्थ सिद्ध करके मौज करते हैं। गुरुवालोग बड़े कपटी काली कर्तूतवाले होते हैं। हित चाहने वाले मनुष्योंको चाहिये कि, पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग करके उन धूर्तोंसे बचे रहें ॥ १४१९ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी, नम्बर- ६ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर— १२ ॥❀॥

१. माटिक कोट पषाणको ताला * सोईक बन सोई रखवाला ॥ १४२० ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! जैसे राजा लोग राजधानीकी रक्षाके वास्ते मिट्टी, गारा, चूना, ईंटा, पत्थर मिलाकर बड़ी-बड़ी दिवाल शहरके चौतरफ कोट उठा करके निकलनेको मजबूत फाटक बनाकर किवाड़ लगा देते हैं। उसमें पत्थरके समान दृढ़ ताला लगाकर सिपाहीको हथियार देकर वहाँ रखवार रख देते हैं। पहरेदार हथियार-बन्द सिपाहीको देख करके लोग डर जाते हैं। जान-पहिचानके लोग ही वहाँसे जा सकते हैं, बाकी सब रोके जाते हैं। तैसे ही सिद्धान्तमें माटी-पानी आदि पञ्च तत्त्वोंके मेलसे जीवने कायारूपी कोठी बनायी; फिर खान-पानसे पाषाणवत् परिपुष्ट देह बना करके इस शरीरको ही अपना स्वरूप मानकर मन-मानन्दीका पक्का ताला लगाया; और शरीररूप ही बनकर देहादिकी रक्षा करने लगा। अथवा काया-माया, खानी-वाणीकी रक्षा, मत-पन्थके प्रचारके वास्ते गुरुवालोगोंने मनमें भ्रमको टिका करके माटिक कोट=ब्रह्म-भ्रमका एक कोट बनाया, चराचरमें एक ब्रह्म ही परिपूर्ण व्यापक है, ऐसी मानन्दीसे घेरा डाला। फिर पाषाणको ताला=बुद्धिको जड़ बना करके तालाकी सरीखी उसी कल्पनामें दृढ़ करके लगा दिया। पत्थरकी लकीरकी नाईं ब्रह्मज्ञानको पक्का दृढ़ निश्चय किया। "ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है; जीव-ब्रह्ममें भेद नहीं है, एक है" ऐसा वे कहने लगे। सोईक बन=उसीप्रकार प्रथम स्वयं ब्रह्म या ईश्वर बनकर पश्चात् उसकी इच्छासे जगत् उत्पत्तिका अनुमान बढ़ाकर सोई कल्पनासे ही वेद, शास्त्र, पुराणादिकी नाना वाणी गुरुवालोगोंने बनायी। फिर सोई वाणीका उपदेश देकर बहुतेरे शिष्यवर्ग बनाये। ज्ञानी, योगी और भक्त गुरुवालोग सोई वेदादि वाणीका घेरा डालकर जगत्जीवोंकी रखवाली करने लगे। ढोल पीट-पीटकर यह ढिंढोरा फिराये कि— "हे मनुष्यो ! तुम लोग कोई भी वेद-शास्त्रोंके आज्ञाके बाहर मत् जाओ। यह हुक्म न माननेवाले वेदद्रोही, गुरुद्रोही, ईश्वरद्रोही, महानास्तिक पापी होकर महा नरकमें पड़ोगे, फिर यम-यातनाका असह्य अनन्त दुःख भोगना पड़ेगा।" इत्यादि भयानक वाणी सुना-सुना करके पहरा लगाये हैं। पुरोहित, पण्डे, पुजारी, गुरु बनकर रखवारी कर रहे हैं; वाणी-खानी जालोंमें सबको फँसा रहे हैं ॥ १४२० ॥

२. सो बन देखत जीव डेराना * ब्राह्मण वैष्णव एकै जाना ॥ १४२१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने मुखसे जो रोचक-भयानक वाणी कही थी, सोई लिखी हुई वाणी ग्रन्थ-वेद, शास्त्र, पुराणादिकोंमें पुस्तक खोलकर प्रमाण दिखाया। तब सोई कल्पित वेदादि वाणीको देख-सुनकर जगत्के अबोध नरजीव बहुत भयभीत होकर थर-थर काँपने लगे, तथा यह कहने लगे कि-"हम वेद विरुद्ध चलकर नरकमें पड़ना नहीं चाहते हैं। हम तो वेद प्रमाणसे चल करके स्वर्ग जाना चाहते हैं। हे ईश्वर ! हमारी रक्षा करो, इत्यादि कहकर अधीन लाचार बन वशमें हो गये। तहाँ ब्रह्माकी सन्तान ब्राह्मणलोग चार वर्ण गृहस्थियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं। और विष्णुकी सन्तान वैष्णव लोग षट् दर्शनोंके भेषोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। उन दोनों ब्राह्मण और वैष्णवोंने परस्पर मिलकर एक सरीखी ही अनुमान-कल्पना दृढ़ किया कि- एक परमेश्वर ही सर्व जगत्-का मालिक कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान् व्यापक है। निराकार-साकार दोनों उसके रूप हैं। उसकी कृपासे ही जीवका कल्याण होता है। इससे हे भाई ! कर्म, उपासना साधना द्वारा भगवान्-को तुम लोग भी जानो ! इसतरहसे एक ही अनुमान-कल्पनाको ब्राह्मण और वैष्णवोंने संसारमें जनाया, ऐसे जीवोंको भ्रमाया है ॥ १४२१ ॥

३. ज्यों किसान किसानी करई * उपजे खेत बीज नहिं परई ॥ १४२२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कोई किसान खूब परिश्रम करके खेती-किसानी

करते हैं। खेतमें खाद डाल, काँटे-झाड़ी साफ करके जोत-जोत करके खेतको अच्छा बनाकर समयपर बीज बोते हैं, पानी सींचते हैं। जिससे फसलकी उपजनी तो खूब होवे; परन्तु, समयपर फसलमें बीज=दाना नहीं लगा, सब पोचट हो गया; तो किसानकी मिहनत सब बेकार चली जाती है। फायदाके बदले हानि ही होती है। इसीप्रकारसे किसान=योगी, ज्ञानी और भक्त आदि गुरुवालोगोंने खेत=संसारमें रहकर किसानी=कर्म, उपासना, योग और ज्ञानादिकी साधना तथा उसीके नाना तरहके उपदेश मनुष्योंको किया। अनेक प्रकारसे कर्मश्रुति, फलश्रुति सुन-सुन करके लालचवश तब उन्होंके अनेकों शिष्य हुए, सो फसलकी नाईं उत्पन्न हुए। शिष्य-शाखा-प्रशाखाओंने साधना भी बहुत की; भजन, कीर्तन आदि भी बहुत किया-कराया। परन्तु, जिस आशासे उन्होंने नाना साधनोंका कष्ट सहन किया था, सो मनकी आशा मनमें ही रह गई; किसीकी भी कुछ इच्छा पूण नहीं हुई। और बीज=सब जगत्का मूल कारण माना हुआ ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा भी आखिर तक किसीको भी प्राप्त या दर्शन वा साक्षात्कार नहीं हुआ। सारी साधनाओंका परिश्रम व्यर्थ गया; और अध्यासी जीव चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही चले गये ॥ १४२२ ॥

४. छाड़ि देहु नर झेलिक झेला * बूड़े दोउ गुरु औ चेला ॥ १४२३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे नरजीवो ! तुम सार-असारका विचार करो, मिथ्याका पक्ष छोड़ो, विवेक करो ! झेलिक=वेदादि वाणीके सिद्धान्त सब जालरूप फँसानेवाली कल्पना है; और झेला=ब्रह्म-ईश्वरादिको अनुमानसे जो जगत्कर्त्ता माने हो, सो भ्रम मात्र झेलने-वाला धोखा है। इसवास्ते पारख करके वाणी-कल्पना, ब्रह्म और विषय, इन दोनोंको एकदमसे बिलकुल छोड़ दो या परित्याग कर दो ! पूर्वमें इसी वाणी-खानीके भास-अध्यासको लेकर गुरु=ब्रह्मादि गुरुवालोग और चेला=सनकादि शिष्यवर्ग वे दोनों भी उसी भ्रम-चक्रमें पड़कर बिना पारख जड़ाध्यासी हुए, तो गर्भ भँवरमें डूब गये, मर-मर करके चौरासी योनियोंमें चले गये; और अभीके पारखहीन गुरु-चेले लोग भी उसी भवधारामें ही बहकर जड़ाध्यासमें डूब रहे हैं। हे नरजीव ! तुम लोग भी हमारी सत् शिक्षाको नहीं मानोगे, तो गुरु-चेले दोनों ही गर्भवासमें जड़ाध्यासी होनेसे डूब जाओगे। अतः चेत करो ! पार उतरनेका प्रयत्न करो ! ॥ १४२३ ॥

५. तीसर बूड़े पारथ भाई ! * जिन वन डाहें दवाँ लगाई ॥ १४२४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे भाई सन्तो ! और तीसरे नम्बरमें त्रिगुणी मनुष्य तो जड़ाध्यासमें डूबे ही हैं। तथा पूर्वमें पारथ=अर्जुन जिसने खाण्डव वनको अग्नि लगाकर जला दिया था, नाका रोककर वहाँ रहनेवाले प्राणियोंको अग्निमें झुलसाकर मरवा दिया था। सो ऐसे कर्म-कुकर्म काम-क्रोधादि और ब्रह्मज्ञानकी कल्पनामें अध्यासी होकर डूब मरा; और 'पारथ' कहिये पराके परे परमात्मा रहते हैं, ऐसा अर्थ बतानेवाले तीसरे कर्मी पण्डित लोग भी विषयासक्ति तथा वाणी-कल्पनामें बहकर जड़ाध्यासी होकर डूब मरे, चौरासी योनियोंमें चले गये। जिन भ्रमिक पण्डितोंने जीते तक संसारमें बड़े समझदार बनकर पण्डित कहलाकर वेद-शास्त्रादि वाणीके प्रमाणसे दवाँ लगाई=उपदेशरूप अग्नि, ईश्वर-ब्रह्म आदि प्राप्तिकी आशासे विरहकी अग्नि शिष्योंके हृदयमें लगा दिया, जिसमें सारे संसारके अबोध मनुष्योंको जला-जला करके मार डाला। भ्रमा-भुला करके त्रयताप आवागमनादि दुःखोंमें जला दिया। अभी तक उसी कल्पनाकी अग्निमें विरही होकर सब जीव झुलस रहे हैं। वे सब गर्भवासमें डूब गये या डूब रहे हैं, बिना पारख ॥ १४२४ ॥

६. भूँकि भूँकि कूकुर मरि गयऊ * काज न एकौ सियारसे भयऊ ॥ १४२५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! सियारको देखकर या उसका शब्द सुनकर कूकुर भूँकता हुआ पीछा करता है, तो सियार भागकर अपनी माँद या बिलमें छिप जाता है; कुत्ता भूँकता ही रह जाता है, कार्य तो उसका कुछ सिद्ध नहीं होता है। आखिरमें भूँकते-भूँकते थककर कूकुर ही मर जाता

है या दुःखी हो जाता है। इसीप्रकार सिद्धान्तमें कूकुर=ब्रह्मा, व्यासादि पण्डित लोगोंने जगत्को देखकर जगत्कर्त्ताकी अनुमान-कल्पना की। फिर उसे सुख-दुःखोंका दाता कल्याणकर्त्ता मान लिया। भूँकि-भूँकि=वही बातको वाणीसे कह-कह करके उपदेश दे-दे कर प्रचार किया। लिख-लिख करके ग्रन्थोंमें धर गये। अवश्य ही चराचररूप विश्वका कर्त्ता विश्वपति परमेश्वर हैं; उन्हींकी शक्तिसे सारा जगत्का कार्य चल रहा है। उनकी प्राप्ति होनेपर ही सारा दुःखका अन्त हो करके परमानन्द प्राप्त होता है, इत्यादि कथन कर-करके जड़ाध्यासी हुए, आयु पूर्ण होनेपर मर-मर कर चार खानी-चौरासी योनियोंको चले गये। परमानन्द तो किसीको नहीं मिला; वहाँ परम दुःख ही सब जीव भोगने लगे। ऐसे होशियार कहलानेवाले पण्डित लोगोंका भी वाणी-कल्पना लेकर मुक्ति-कल्याणका कार्य एक भी सिद्ध नहीं हुआ। जिन्होंने वेद-शास्त्र बनाया उन्हीं ब्रह्मादिकोंमेंसे एककी भी मुक्तिका कार्य पूर्ण नहीं हुआ; पारखहीन जड़ाध्यासी होनेसे वे बद्ध हुए। अब वही सियार=वेद वाणी आदि ग्रन्थोंको देखकर गुरुवालोग मनुष्योंको नाना उपदेश दे रहे हैं; अनेकों साधनाओंमें लगे और लगा रहे हैं। वेद वाक्यको सच्चा प्रमाण करके मान रहे हैं। कार्य-सिद्धिकी अनेक तरहसे कामना कर रहे हैं। परन्तु, अनेकों साधकोंमेंसे एकका भी कार्य सिद्ध या मुक्ति उस मिथ्या वाणी कल्पनासे नहीं हुई। किसीकी भी कल्याण प्राप्तिका काज नहीं हुआ। पारख स्वरूपकी बोध-स्थिति हुए बिना कोई खानीमें और कोई वाणीमें फँसकर जड़ाध्यासी हुए या हो रहे हैं। अतएव गुरुवालोगोंके कुसङ्गको त्याग करके पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करना चाहिये ॥ १४२५ ॥

साखीः— मूस बिलाई एक सङ्ग * कहु कैसे रहि जाय ? ॥

[२६३] अचरज एक देखो हो सन्तो ! * हस्ति सिंहहि खाय ॥ १४२६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे बिल्लीके साथमें चूहा रह नहीं सकता है। रहनेपर बच नहीं सकता है; और वन जन्तुओंमें सिंह बड़ा बलिष्ठ होता है, वह हाथीको भी मार करके खा जाता है। यदि कभी हाथी ही सिंहको मारकर खाये, तो हे सन्तो ! यह बात बड़े आश्चर्यकी हुई कि, नहीं ? यह बात गुरुवालोगोंके यहाँपर घटना हुई है। इसका सिद्धान्तमें अर्थ सुनिये !:— मूस=दीन-हीन लाचार बने हुए नरजीव सब संसारमें बिलाई=स्त्रीको विवाह आदि प्रयत्न करके घरमें लाये, सो स्त्रीके साथमें एक समान सुख भोग करके जन्म बिताना चाहते हैं। अब कहो तो भला, यह कैसे हो सकेगा ? स्त्रीके सङ्गमें सुखसे बढ़कर तो दुःख ही ज्यादा होते हैं। विषयासक्तिसे ज्ञान सद्गुणोंको विनाश करके जीव चौरासी योनियोंके ही अधिकारी होते हैं। यही एक आश्चर्य है; हे सन्तो ! हाथसे विवाह करके लाई हुई स्त्री ही सिंहरूप पुरुषके बल, वीर्य, विवेकादि मुक्तिके समाजको हरण करके खा जाती है या खा रही है; पुरुष निकम्मा हो जाता है। अथवा मूस=जीव, बिलाई=गुरुवालोग और कल्पित वाणीके साथमें एक सङ्ग होकर रहना वा सुख पाना चाहते हैं या एक ब्रह्म स्वयं बनना चाहते हैं, तो यह कैसे होगा ? कल्पनामें जीव कैसे ठहर करके रह जायगा ? भ्रमिक हो-होकर अधोगतिमें ही गिर जायगा। हे सन्तो ! और एक आश्चर्यमय घटना तो देखिये ! वेद-शास्त्रादि सब ग्रन्थोंकी वाणी मनुष्योंके हाथसे ही लिखी गई है, सो उसे कल्पनासे ईश्वर रचित मान करके पुरुषोंकी श्रेष्ठ बुद्धि नष्ट हो गई। वही वाणीको सत्य मान करके सिंहरूप मनुष्योंने ग्रहण किया कल्पनाने विवेकको खा लिया, इसलिये जीव चौरासी योनियोंमें जाकर दुःख भोग रहे हैं ॥ १४२६ ॥

॥ ❀ ॥ प्रमाण, बीजकमूल, रमैनी नम्बर- ६८ की साखी— ६८ ॥ ❀ ॥

साखीः— जे कर शर तेहि लागे * सोइ जानेगा पीर ॥

[२६४] लागे तो भागे नहीं * सुख सिन्धु निहार कबीर ॥ १४२७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! [मायामुखः—] गुरुवालोगोंका कथन

ऐसा है कि, जैसे युद्धस्थलमें जिसको बाण या गोलीकी चोट लगती है, उसका दुःख वही जानता है। अन्य दर्शकगण उस दुःखको जान नहीं सकते हैं। बाण लगनेपर भी जो योद्धा रणभूमिसे नहीं भागता है, डटकर लड़ता ही रहता है, सोई आगे विजय मिलनेके सुखरूप सागरको देखता रहता है। फिर उसे विजय भी मिल जाता है। तैसे ही जिस प्रेमी भक्त उपासकोंको ईश्वर प्राप्ति करनेका विरहरूप बाण हृदयमें अच्छी तरहसे लग गया या लग जाता है, वही सच्चा साधक भक्तिमार्गमें लगने वाला है। सोई विरह व्यथा साधनामें होनेवाले नाना दुःखोंकी पीड़ाको और ध्यान समाधि आदि आनन्द सुख अनुभवोंको भी जान लेगा या जान लेता है। उस दुःख-सुखको दूसरे कोई जान नहीं सकते हैं। गुरुवालोग कहते हैं— हे प्यारे भक्तो! परमार्थ साधनाओंमें अनेक कष्ट, निन्दा, असह्य दुःख इत्यादि विघ्न भी आ करके यदि तुम्हें चोट लगें, तब भी धैर्यसे सहन करो; साधनाओंमें डटे रहो, ईश्वर भक्ति आदि साधनाओंको छोड़कर कभी संसार विषयोंमें भाग करके नहीं जाओ। जैसे भक्ति-मार्गमें लगे हो, वैसे ही आखिर तक निभाओ। तब हे नरजीव! आगे तुम्हें महान सुख मिलेगा; और सुखके समुद्र समान जो सच्चिदानन्दघन परमेश्वर हैं, उन सर्वशक्तिमान्का तुम्हें साक्षात् दर्शन मिलेगा! यही नेत्रोंसे भगवान्की रूप माधुरी देख पाओगे, तब तो निहाल हो जाओगे। भव-बन्धनोंसे भी तुम छूट जाओगे। अथवा सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि, प्रथम नरजीवोंसे वाणी कल्पना हुई। फिर उलट करके जिसकी वाणी कल्पना थी, सो उसीको ही लग गई। वही एक-दूसरे मनुष्योंको भी लगती गई। सब जगह सोई अध्यासी जीव ही दुःख-सुखको जानते हैं। जिसको कल्पना लगी, वही उसकी पीड़ाको जानेगा; और कौन जानेगा? साधनामें अनेक कष्ट-क्लेश, झंझट लगनेपर भी भ्रम-धोखेमें पड़े हुए पक्षपाती मनुष्य तब भी उसे छोड़कर नहीं भागते हैं। गुरुवाओंके वचनमें दृढ़ हो करके लगे ही रहते हैं। वे साधक लोग आगे परमानन्द सुखरूप समुद्रको प्राप्त करके देखना चाहते हैं; मिथ्या आशामें बँधे पड़े हैं। पारख बोधके बिना सब मिथ्या प्रपञ्चमें पड़ करके बेहाल हो रहे हैं॥ १४२७॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— ७७॥ [चौपाई—१२। साखी—२। रमैनी—१। साखी—२ है] ॥❀॥

१. विष्णु फाँस जेहि लागे नाहीं * परगट शिवके फाँस अरुझाई॥ १४२८॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जिस मनुष्यपर विष्णुके उपासनामार्गका जाल या फन्दा कोई भी नहीं लगा। कर्म और भक्ति, ये दोनोंसे बचकर भी निकले, तो वे तीसरे ठिकानेमें जा करके फँस जाते हैं। शिवने जो योगमार्गका फाँस प्रगट कर रक्खा है, वही योग साधना दृढ़ा करके योगी लोग मनुष्योंको नाना तरहसे अरुझाये या फँसा करके अरुझा ही रहे हैं। अथवा जिसका मन उपासना करनेमें नहीं लगा, सो तमोगुणको प्रगट करके प्रत्यक्षमें योग फाँसमें जाकर अरुझा गया। अथवा महादेवने देखा कि- यह विष्णुके फन्दासे निकल आया है या इस मनुष्यको विष्णु भी नहीं फँसा सका, तब झटपट शङ्कर प्रगट होकर उसे अपने योगके फन्दामें अरुझा करके वशमें कर लिया; ऐसे त्रिगुणी फाँसमें नरजीव फाँसे गये हैं॥ १४२८॥

२. वर्णाश्रम संन्यास दृढ़ाई * परमहंस ले अन्त देखाई॥ १४२९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! चार वर्णके चार आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचर्य आश्रमको ब्रह्माने तथा गृहस्थाश्रमको विष्णुने दृढ़ा चुका था। इसलिये उन दोनोंको छोड़ करके महेशने चारों वर्णवालोंको योगमार्गमें लगा करके संन्यास आश्रमको दृढ़ाया। फिर संन्यासके शुभाचार कर्त्तव्य-को भी छोड़-छोड़ा करके बाल, पिशाच, मूक और जड़वत् दशाको धारणकर सब कर्मोंका अन्त करके आखिरमें ब्रह्मज्ञानकी स्थितिमें परमहंस दशाको दिखलाया। सोई संन्यासी लोग अन्तमें सबको नाश करके परमहंस होनेकी चाल जगत्में दिखलाये या दिखा ही रहे हैं॥ १४२९॥

३. चारि अवस्था चहुँ प्रतिबन्दी * पँचये नाशक आपु अनन्दी ॥ १४३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण, ये चार देहों-की क्रमशः जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरिया, ये चार अवस्थाएँ हुई हैं। उन प्रत्येकमें किया हुआ कर्म— भास, अध्यास, अनुमान और कल्पना जीवोंको बन्धनरूप है; और उन चारों अवस्थाओंके चार मार्गके घेराको छोड़कर या लाँघ करके विज्ञानी लोग पाँचवाँ तुरियातीत कैवल्य अवस्थामें पहुँचे। वहाँ अपने जानपना साक्षीपद समेत्को विनाश किये; निर्विकल्प शून्य स्थिति किये। हंस-पदको नाश करनेवाला वही नाशक धोखेको गुरुवालोगोंने "सच्चिदानन्द आप-ही परब्रह्म प्रगट हुआ है" ऐसा कहकर बतलाया है। यानी सबको नाश कर-कराके आप ही आनन्द स्वरूप ब्रह्म बने। वही बात दृढ़ाकर अन्य जीवोंको भी भ्रम-चक्रमें डाले हैं ॥ १४३० ॥

४. नाश करै आनन्द कहावै * बन्दी कठिन यम घात लगावै ॥ १४३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक-एक करके चारों देहोंकी चारों अवस्थाओंको लय करते-करते मिटा देते हैं। जानपना साक्षी दशाको भी अन्तमें नाश करके शून्य समाधिस्थ हो जाते हैं। होशमें आनेपर उसी शून्य अभावको ही आनन्दस्वरूप ब्रह्म बतलाकर उसी आनन्दको अपना निज स्वरूप कहते हैं; ब्रह्म कहलाते हैं। सो मुक्तिपद विवेकको नाश करके ही ब्रह्मानन्द कहलाया। सोई महा बन्धनमें जीव बाँधे गये। यम=गुरुवालोगोंने ऐसे-ऐसे छूटनेको अत्यन्त कठिन भव-बन्धनोंमें अज्ञानी जीवोंको कैदी बनाकर बाँध रक्खा है। अभी तक दाव-घात लगा ही रहे हैं। बड़ा घात लगा करके जीवोंका सत्यानाश कर दिये हैं। महा कठिन घेराबन्दीमें रोक रक्खे हैं। पारख बोधकेबिना उनके जालोंसे कोई निकल नहीं पाते हैं ॥ १४३१ ॥

५. योग अभ्यास बिगुर्चन भारी * दुःख सन्ताप अनन्त सँवारी ॥ १४३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! योगी लोगोंने योगकी साधना, योग अभ्यास, योग क्रियादि नामसे बड़ा भारी धोखा ही खड़ा कर रक्खा है। उसमें अनेकों क्रिया नाना तरहकी चालसे चल करके दुःख, सन्ताप, कष्ट-क्लेश भोगा करते हैं। उसी अध्याससे चार खानीमें नाना देह तैय्यार करके जन्म-मरणादिके दुःख, गर्भवास तथा त्रिविधि तापका सन्ताप, चिन्ता, शोक, पञ्च क्लेश, योग साधनाओंमें शीतोष्ण, भूख-प्यासादि सहनका कष्ट, ऐसे बहुविधि दुःख भोगते और भुगताते ही रहते हैं ॥ १४३२ ॥

६. जीवत गड़े अनल तन जारै * कुम्भ बाँधि जल माँहि पवारै ॥ १४३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई तो जीते ही जमीनमें गड्ढा खोदा करके उसमें गड़ जाते हैं, ऊपरसे मिट्टी भर करके मर जाते हैं। इसे जीवित महा समाधि लेना कहते हैं। पहले बद्री-केदारके रास्तामें "भैरव झम्पा" नामके पहाड़की ऊँची चोटीसे लोग मुक्तिके लिये नीचे कूद-कूद कर मर जाते थे। कोई कूएँ आदिमें जीते ही गड़कर मर जाते हैं। कोई चिता जला करके अग्निमें प्रवेश करके जीते ही शरीरको जला करके मर जाते हैं। कोई-कोई पञ्चाग्नि और चौरासी धुनी तापकर तनको जरा-तपाकर तपस्वी कहला रहे हैं। कोई विरहाग्निमें, कोई योगाग्निमें सन्तप्त होकर जल रहे हैं। कोई गलेमें घड़ोंको मजबूतीसे बाँधकर बड़ी-बड़ी नदियों और तालाब आदिक जलाशयोंमें कूद-कूदा करके पानीमें डूब-डुबा करके मरते या मारते हैं। तैरना नहीं जानते हैं; और जो तैरना जानते हैं, उनके हाथ-पैर कस करके बाँध देते हैं, और गलेमें बड़ा घड़ा बाँधकर फिर गहरी जगहमें ले जा करके गिरा देते हैं; घड़ेमें पानी भर जानेसे वे भी पानी पीकर नीचे डूबकर मर जाते हैं। इसप्रकारसे योगके ही नामसे ऐसे कई तरहसे आत्महत्या ही करते और कराते हैं ॥१४३३॥

७. श्वासा साधि मस्तक मसकावै * छार लगाय जगत भरमावै ॥ १४३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कोई प्राणायाम क्रियाकी विधिको सीखकर

फिर साधनासे श्वासवायुको नाभिसे उठाकर मसकाते हुए ऊपर-ऊपर उठाते-चढ़ाते हुए मस्तकमें ले जाकर रोक रखते हैं, वहाँ वृत्तिको लय कर देते हैं, उसे शून्य समाधि लगाना कहते हैं। जैसे भ्रमरगुफामें श्वासको मसका करके बाँध रखते हैं, तैसे ही जीव भी वासनामें बँधा रहता है; और कोई सर्वाङ्गमें छार=राख या विभूति, गर्दा, कीचड़ लगा करके गधेकी नाईं धमधूसर हो जाते हैं। परन्तु, बड़े त्यागी होनेका ढोंग दिखलाकर जगत् जीवोंको भ्रमाते फिरते हैं। इसतरह भेषमें गुरुपशु बनकर जहाँ-तहाँ जगत्में घूमते वा भटकते हुए लोगोंको ठगते फिर रहे हैं ॥ १४३४ ॥

८. पठवै जङ्गल कोश पहारा ❀ बहु सासत देई जिव मारा ॥ १४३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोईको भयङ्कर जङ्गली पहाड़ोंमें कई एक कोशों दूर भेजते हैं। जङ्गलमें ही रात-रातभर रहते हैं। पहाड़की कन्दरा-गुफाओंमें ध्यान करनेको पठाते हैं। कहीं जङ्गली पहाड़ी प्रदेशमें कोशों बड़ी लम्बी गुफामें भीतर थाह लगाकर आनेको भेजते हैं। वहाँ जानेवाले कई लोग गुफा भीतरकी विषैली हवासे वहीं मर भी जाते हैं। इसप्रकार योगी लोगोंने बहुत-बहुत कष्ट सासत=असह्य दुःख दे-दे कर नरजीवोंको मारा, दुःख भुगताया या अनेक तरहसे पीड़ा देकर अपने ही जीवको मार रहे हैं। वे निर्दयी जीव हिंसक पापी ही बने हैं ॥ १४३५ ॥

९. आशा बन्धन फाँस फँसाना ❀ जीव न जानै मरण अपाना ॥ १४३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! आशा=धन, स्त्री, पुत्रकी, आयु बढ़ाकर जीते रहनेकी अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, मन्त्र-सामर्थ्य प्राप्ति तथा स्वर्गादि सुख प्राप्ति, ईश्वरादि प्राप्ति, इत्यादि अनेकों आशा, तृष्णा, वासना बढ़ा करके उसी बन्धनके जालोंमें सब तरहसे फँसे और फँसाकर जीव बद्ध हुए हैं; और निज चैतन्य पारख स्वरूपको तो जीव जानते ही नहीं हैं। इसीसे अपना मरणरूप दुःख भी नरजीव जानते नहीं हैं कि, जड़ाध्यासी होनेसे अपने हंसपदकी हानि हुई है। यही अध्यास करके हमें बारम्बार चौरासी योनियोंमें जन्मते-मरते, गर्भमें जाते, त्रिविधि ताप सहते हुए असह्य दुःख ही सहते रहना पड़ेगा। पारख बोधके बिना निज स्वरूप तथा मरणका कारण नहीं जान करके जीव सब आवागमन चक्रमें पड़े हुए दुःख ही पा रहे हैं ॥ १४३६ ॥

१०. त्रिगुण फाँस कष्ट परचण्डा ❀ पूरण पिण्ड खण्ड ब्रह्मण्डा ॥ १४३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! रजोगुणका फाँस 'काम' और 'कर्म' है। सत्त्वगुणका फाँस 'मोह' और 'भक्ति' है; और तमोगुणका फाँस 'क्रोध' और 'योग' है। इन्हीं त्रिगुणी फन्दाओंमें प्रचण्ड या तीक्ष्ण रीतिसे सब तरफ कष्ट-ही-कष्ट छाया पड़ा है। बड़े वेगवाले दुर्धर्ष ये फन्दे हैं। पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सब तरफ वही फन्दा-ही-फन्दा पूरा भरा पड़ा है। कर्म, उपासना तथा योग पिण्ड भागमें, ज्ञान और विज्ञान ब्रह्माण्ड भागमें, खण्ड=न्यारे-न्यारे विभाग करके लगा रक्खे हैं। अथवा गुरुवालोगोंने ऐसी प्रचण्ड कल्पना की है कि, चार खानी पिण्ड, नौ खण्ड पृथ्वी, एकईस ब्रह्माण्ड, ऐसे चराचर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक परमात्मा भरा पड़ा है। त्रिविधि साधनोंसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, इत्यादि कह करके मनुष्योंको भुलाकर त्रिगुणी फाँसमें फँसाकर नाना कष्ट भुगता रहे हैं ॥ १४३७ ॥

११. व्याधि विविधि दुःख पावै कलेशा ❀ ठाढ़ेश्वरी मौनी दिगम्बर भेसा ॥ १४३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इधर तो संसारी मनुष्य शारीरिक व्याधि वा रोगसे ग्रसित होकर नाना क्लेश-दुःख पूर्व कर्मानुसार भोग पा रहे हैं। यह तो 'दैहिक ताप' कर्म भोग कहलाता है। उधर योगी, तपस्वी और साधक आदि लोग हकनाहक जान-बूझकर पुरुषार्थ कर्म करके रोगीकी नाईं अनेक तरहके कष्ट-क्लेश, साधनासे अनेक प्रकारके दुःख पा रहे हैं। कोई ठाढ़ेश्वरी=दिन-रात पालतू बँधुआ घोड़ेके समान खड़े-ही-खड़े होकर कल्पित ईश्वरके नाम-स्मरणमें लगे हैं, पैरमें खून जम जानेसे वे असह्य पीड़ा सहन करते रहते हैं। कोई मौनी बन करके मुखसे कुछ बोलते ही नहीं हैं।

१ वर्ष, ३ वर्ष, ५ वर्ष वा १२ वर्ष या इससे भी ज्यादा दिन तक मौनी होते हैं। परन्तु, मन तो उन्होंका स्थिर नहीं रहता है। मनसे नाना कल्पना किया ही करते हैं। और कोई दिगम्बर=नङ्ग-धड़ङ्ग खुले शरीरसे कपड़े पहने बिना ही रहते हैं। वे कल्पनासे दशों दिशाओंको ही वस्त्रकी जगहमें मान लेते हैं। ठण्ढी, गर्मी आदिके दुःख सहते रहते हैं। ऐसे-ऐसे षट् दर्शनोंके भेषमें कनफट्टा, कड़ाधारी, जटाधारी, नागे, निर्वाणी, काषायाम्बरी, पीताम्बरी, श्वेताम्बरी, श्यामाम्बरी, रक्ताम्बरी, बाघाम्बरी-मृगचर्मधारी, कण्ठी, माला, रुद्राक्ष, नाना तिलकधारी, सूतके तागा बाँधनेवाले इत्यादि अनेकों भेष छियान्नवे पाखण्डोंमें बनाये हुए हैं। सो सब जीवोंको बन्धनरूप ही हो रहा है ॥ १४३८ ॥

१२. जेवरि वाणीमें लपटावै ❀ फूला फिरै ऊर्धबाँहु कहावै ॥ १४३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई एक हाथ या दोनों हाथ ऊपर लम्बा उठा करके पशुके समान दोनों सींगका प्रतीक बनाकर नरपशु ही बन जाते हैं। परन्तु, वे ऊर्ध्वबाँहुवाले तपस्वी महात्मा कहलाकर मिथ्या अभिमानमें ही फूले फिरते हैं। ऐसे नाना प्रकारकी उपाधि वाह्यियातके झंझट-प्रपञ्चमें लगकर वे लोग फूल रहे हैं। वे सब वाणीरूपी जेवरी=रस्सीमें लपटा करके धोखेमें प्रेम लगाकर मिथ्या आशा-भरोसा रखकर वाणी-कल्पनाकी फाँसीमें शिर घुमाकर लटक-लटक करके मर गये, जड़ाध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंमें चले गये। अभी भी वही धोखेके वाणी जालोंमें लपटा-लपटाकर ऊपर हाथ उठा-उठा करके अपने-अपने मत-पन्थोंका प्रचारकर गुरुवालोग मतके अहङ्कारमें फूलकर भूले और भुला करके फिर रहे हैं; बिना पारख नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं ॥ १४३९ ॥

साखीः— पूरण पिण्ड ब्रह्माण्ड सो ❀ त्रिगुण फाँस लगाय ॥

[२६५] नाशक नाशे जीवको ❀ आपै आप कहाय ॥ १४४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पिण्ड=चार खानी और ब्रह्माण्ड=पाँच तत्त्वों-के पसारामें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक भरा हुआ कोई एक परब्रह्म जगत्कर्त्ताकी कल्पना करके सो उसको साक्षात्कार करके मिलनेके वास्ते गुरुवालोगोंने भक्ति, योग और ज्ञान, ये त्रिगुणका फन्दा सब त्रिगुणी मनुष्योंपर लगा दिया है। सोई भ्रम-कल्पना सब जगह फैल रही है। नाशक=हंसपदको विनाश कर देनेवाले ब्रह्मज्ञानी गुरुवालोग नरजीवके साक्षी पद, ज्ञान गुणादिको नाश करके जीवको मिटा करके आप-ही-आप स्वयं जगत्के कारण-कर्त्ता सर्वाधिष्ठान ब्रह्म कहलाते हैं या कहते हैं कि, मैं ब्रह्म हूँ ! अथवा पिण्ड=शरीरमें और ब्रह्माण्ड=बाहर दुनियाँमें पूर्ण रीतिसे सोई खानी-वाणीका जाल लगा करके तथा काम, क्रोध और मोह, इन त्रिगुणका फन्दा बिछा करके नाशक=स्वार्थी, ठग, घातक गुरुवालोग और स्त्री, ये सब जीवोंको नष्ट-भ्रष्ट या विनाश करके आप ही सर्व-श्रेष्ठ मालिक कहलाये या कहला रहे हैं। उनके ही वशमें सब अबोध नरजीव फँसे पड़े हैं; बिना विचार ॥ १४४० ॥

साखीः— बन्दीछोर छोड़ावहिं ❀ मेटि मेटि यम फाँस ॥

[२६६] धन्य धन्य सो जीव है ❀ तजहिं महा भव गाँस ॥ १४४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मुक्तिदाता पारखी श्रीसद्गुरुको अनन्त बार धन्यवाद है ! प्रथम बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजी ने ही समस्त खानी-वाणीके यम फाँसको मेट और मिटा करके पारख बोध देकर भव-बन्धनोंसे वा त्रिगुणी फन्दोंसे नरजीवोंको छुड़ाये, मुक्त किये; और आपके ही सच्चे अनुयायी पारखी सन्त पारखबोध हंस रहनी-रहस्य सद्गुण संयुक्त हो वर्तमानमें भी वही सत्यनिर्णयका उपदेश दे रहे हैं। बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरु ही यम=गुरुवालोग और स्त्रीके फाँस=विषय जाल और वाणी कल्पनाके जालोंको एवं मनमें जमी हुई आसक्ति, अध्यास, मानन्दी इन सबको भी परखा-परखा करके मिटा-मिटा करके दोष दिखा-दिखाकर शरणागत मुमुक्षु नरजीवोंको सब भव-बन्धनोंसे छुड़ा देते हैं। जीवन्मुक्त स्थितिमें पहुँचनेको समर्थ कर देते हैं।

पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे त्रिगुण जालकी सब फन्दाओंसे नरजीव निकल जाते हैं; और उस महान भाग्यवान् परम पुरुषार्थी, सारग्राही मुमुक्षु नरजीवोंको भी बारम्बार धन्यवाद है! धन्यवाद है! जिन्होंने सोई सत्यबोधदाता पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणको ग्रहण करके महान दुखःदायी खानी-वाणीकी गाँठी तथा सम्बन्धको परख करके तोड़ दिया या छोड़ दिया है वा जो छोड़ देते हैं, सो फिर कभी भी भव-गाँसमें नहीं पड़ते हैं। पारख बोधके द्वारा निज स्वरूपकी स्थितिमें शान्त, स्थिर होकर वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। महा कठिन भव-बन्धनोंके गाँस-फाँस आवागमन दुःखोंके कारणरूप जड़ाध्यासको जिसने पारखकी परिपुष्टि करके छोड़ दिया, सो नरजीवको और पारख बोधदाता श्रीसद्गुरुको धन्य है! धन्य है! ॥ १४४१ ॥

॥❀॥ रमैनी नम्बर— १०॥ सत्यशब्द टकसार॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर—१०॥❀॥

१. राहि ले पीपराही बही * करगी आवत काहु न कही ॥ १४४२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो! राह=मार्ग या रास्ता है, राही=रास्तासे चलनेवाले बटोही, मुसाफिर या पन्थीको कहते हैं। सो यहाँ मनुष्योंने जड़-चैतन्ययुक्त जगत् विस्तारको देखकर यथार्थ भेद समझनेमें न आनेसे भ्रम-कल्पनाको मनमें ले करके पिपराही=कोई एक जगत्कर्त्ता परमतत्त्व परमात्मा सुख-दुःखादिका दाता पियारूप सबका मालिक परमेश्वर होगा, ऐसा निश्चय करके मानन्दी कर ली। अब फिर उसीको प्राप्त करनेसे ही सब दुःख मिटेगा, यह सोच करके राही=जीव विभिन्न रास्तोंको पकड़ करके मतवादी बनकर कर्म, भक्ति और योगादि साधनाओंको लेकर चले गये या भ्रम तरङ्गमें पड़ करके बह गये; और वही कल्पनामें अभी बह रहे हैं। यह जगत् अनादि है, जगत्कर्त्ता मानना कल्पना ही है। वह कल्पना पारखहीन मनुष्योंमेंसे ही निकल-कर आई है, यह यथार्थ भेद तो कोई नहीं कहते हैं; और करगी=कल्पित वेदादि वाणीका विस्तार सब नरजीवोंके द्वारा ही मनसे निकल करके आई; और काली स्याहीसे सफेद कागजमें लिखी गई। नरजीवोंको छोड़कर वाणी और कहीं आकाश या पातालसे बनकर नहीं आई है। परन्तु, ऐसा निर्णय पारखी श्रीसद्गुरुके बिना और कोई नहीं कहते हैं; तथा विचार करके किसी मतवादीने भी ऐसा नहीं कहा है। परन्तु, गुरुवालोगोंने तो कहा है कि, "सृष्टिकर्त्ता निराकार, निर्गुण ईश्वरने ही प्रथम वेदादि वाणी बना करके मनुष्योंको भक्ति, योग और ज्ञान, साधनेको उपदेश दिया है। वेद वाक्य ईश्वर रचित होनेसे सत्य है। वेद प्रमाणसे चलकर ईश्वरको प्राप्त करो, इत्यादि कथन सुन-सुन करके मनुष्य भ्रमिक होकर वेदादि वाणीका प्रमाण मान करके धोखेमें बह गये। मनुष्यके कर्त्तव्यसे ही वाणी-खानीका फन्दा बन करके आया, उसीमें बिना पारख नरजीव बद्ध हुए हैं। ईश्वरने जीवको बना करके बन्धनमें नहीं डाला है; नरजीव स्वयं ही ईश्वरादिकी मानन्दी करके भूल रहे हैं। ऐसा निर्णय पारखी श्रीसद्गुरुके बिना और किसीने भी नहीं कहा है ॥ १४४२ ॥

२. आई करगी भौ अजगूता * जन्म जन्म यम पहिरे बूता ॥ १४४३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! वह वाणी कल्पनाका फन्दा कहाँसे आया? सो सुनिये! गुरुवालोग या चतुर मनुष्योंके मुखसे निकल करके करगीरूप वैखरी वाणी द्वारा कर्त्तव्यसे बनकर आई। फिर बाहर जगत्में आकर सो वाणी कर्ण द्वारा अन्य मनुष्योंके अन्तःकरणमें घुस करके बैठ गई; मानन्दी दृढ़ हुई। तब उन्होंके मनमें अजगूता=आश्चर्यमय सङ्कल्प-विकल्प, खलबली होने लगी या हुई। उसी भ्रमका निश्चय करके नरजीव फँस गये; जड़ाध्यासी हुए। इसीतरह मनुष्य-जन्म व्यतीत हो गया, शरीर छूट गया; फिर जो अध्यास जीते तक मनमें मनुष्य जन्ममें जमा रक्खे थे, उसीके वेगसे चौरासी योनियोंमें जा करके जीवोंने बूता=कहिये नाना देह धारण किया। ऐसे अनेकों बार जन्म-मरणके चक्रमें पड़े। इसप्रकारसे जन्म-जन्मान्तर पशु आदि खानियोंमें बिता करके फिर जब-जब जीव कर्मभूमिकारूप मनुष्यदेह मुक्ति होनेकी जगहमें आते हैं; तब-तब यम=

स्त्री और गुरुवालोग या मनमें जमी हुई वासनाएँ भी अनेक रूप बना करके जीवके सन्मुख आती हैं। मनुष्यके खोल पहिरे हुए काल नाना तरहसे विषय जाल और वाणी कल्पनामें फँसाकर फिर भी जड़ाध्यासको पहिरा देते हैं। ऐसे पारख बोधके बिना नरजीव नाना जन्म लेकर शरीर धरते रहते हैं; और स्त्री तथा गुरुवालोग भी देह लेकर ही पुरुषोंको फँसाया करते हैं ॥ १४४३ ॥

३. बूता पहिरि यम कीन्ह समाना ❀ तीन लोकमें कीन्ह पयाना ॥ १४४४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! शुभ संस्कार उदय होनेसे जीवने बूता=जब नर-देह धारण किया, तब पूर्वका अध्यास हृदयमें जो समाया हुआ गुप्त है, सो समय पा करके चञ्चल होकर प्रगट होने लगा। तहाँ तीन लोक=त्रिगुणी मनुष्य, सात्त्विक, राजस और तामस कर्म करने लगे; नाना शुभाशुभ कर्म करते हुए चलने लगे। अथवा जीवने स्त्री देह धारण किया। तहाँ सब पुरुषोंको भग भोगमें फँसाकर अपने गर्भमें समा लिया या अपने साथीको भी अपने समान ही विषयासक्त बनाया। तीन लोक=काम, क्रोध और मोहको पकड़ करके विषयीजन वही तीन भागमें चलने लगे, तो पीछे तीन खानीमें चले गये। अथवा पुरुष देहधारी मनुष्य जब भ्रमिक गुरुवा बने, तब नाना भेष पहिरकर अपने समान भ्रमिक और मनुष्योंको भी बनाया। नाना वाणी कल्पनाका उपदेश देकर ब्रह्म-भ्रमके धोखेमें समाया; ब्रह्म-ईश्वरादिकी महिमा बढ़ाया। तब उसकी प्राप्तिके लिये मनुष्य लोग तीन लोक=स्वर्ग, मृत्यु और पातालमें बासा ठहरा करके भक्ति, योग और ज्ञान, ये तीन मार्गकी साधना तथा अभ्यास कर-कराके चलने लगे। परन्तु, वे सब भूल करके कल्पनामें ही पड़े हुए हैं। इसीसे नाना योनियोंमें जाकर मनुष्य जीव दुःख भोगे और दुःख भोग ही रहे हैं ॥ १४४४ ॥

४. बाँधेउ ब्रह्मा विष्णु महेशू ❀ सुर नर मुनि औ बाँधु गणेशू ॥ १४४५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालके जगत्में पारखबोधरूप निज स्वरूपकी स्थिति न होनेसे जीव जड़ाध्यासी होकर महा बन्धनोंमें ही पड़े हैं। तहाँ पूर्वमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामके मनुष्य प्रसिद्ध हुए; वे तीनों क्रमशः रज, सत्त्व और तमोगुण विशेष वाले रहे। कर्म, उपासना और योगकी वाणी कल्पनामें तथा सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती, ये स्त्री भोगोंमें खानी जालोंमें फँसकर दोनों तरफसे वे त्रिदेव बद्ध हुए; और उन्होंने वही खानी-वाणी जालका विस्तार प्रचार करके बहुत मनुष्योंको भुला करके बाँधे। अभीके गुरुवालोग उन्हीं ब्रह्मादिको उत्पत्ति, पालन और संहार कर्त्ता ईश्वररूप बता करके कल्पनामें अपने बँधे और दूसरोंको भी बाँधे वा बाँध रहे हैं। तैसे ही सुर=सात्त्विक देवतारूप मनुष्य, नर=राजसी मानव, मुनि=मननशील तपस्वी, तामसी मनुष्य; और मानवगणोंके मालिक नरपति, भूपति तथा देवगणोंके अधिनायक गणेशजी यह सब भी त्रिगुण माया-जाल खानी-वाणी भव-बन्धनोंमें फँसकर बाँधे गये या बद्ध हुए; और उन्होंने भी बहुतेरे लोगोंको फँसा-फँसा करके बाँध डाला है ॥ १४४५ ॥

५. बाँधे पवन पावक औ नीरू ❀ चान्द सूर्य बाँधेउ दोउ बीरू ॥ १४४६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालके संसारमें चारों तत्त्व परस्पर सम्बन्धसे एक-दूसरेमें मिलकर बँधे हैं। गुण, शक्ति, धर्मादि उन तत्त्वोंमें स्वयं है। इससे पाँच-तत्त्वोंको उत्पन्न करके बाँधने वाला कोई कर्त्ता नहीं है; और पवन, पावक, नीरू, चन्द्र, सूर्य नामके मनुष्य भी पञ्च विषय तथा पञ्च मार्गादिमें ही जकड़कर बद्ध हुए। अथवा पवन="वायुः सर्वत्र गो महान"— ऐसा कहकर वायुको ही ईश्वर माननेवाले योगी या फकीर लोग हुए। पावक=अग्निको ईश्वर मानकर पूजनेवाले अग्निहोत्री ब्राह्मण लोग हुए; और नीरू=जलरूप गङ्गा, यमुनादि तीर्थ स्नान, नदी परिक्रमासे हित-मुक्ति माननेवाले कर्मी लोग हुए। ये सब भी पारख बोधके बिना खानी-वाणी माया जाल त्रिगुणमें फँस करके जड़ाध्यासी बद्ध हुए हैं या बद्ध हो रहे हैं। उन्होंने भी अन्य लोगोंको उसी मार्गमें खींच-खींच करके बाँधे या बाँध रहे हैं; और चान्द=योगी

लोग चन्द्र नाड़ीसे पूरक करके प्राणायाम साधना करके समाधि लगाकर शून्यमें गाफिल होते हैं। सूर्य=ब्रह्मज्ञानी जो प्रकाशरूपसे सर्वत्र ब्रह्मका प्रकाश व्यापक मानकर धोखेमें पड़े हैं। योगी तथा ज्ञानी, ये दोनों ही संसारमें प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ शूर-वीरके समान बड़े पराक्रमी, पुरुषार्थी, धीर-वीर बड़े महात्मा कहलाये या कहला रहे हैं। परन्तु, पारख स्वरूपकी बोध-स्थिति उनमें न होनेसे वाणी कल्पनामें लगकर भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए। इसकारणसे वे दोनों भी भव-बन्धनोंमें बद्ध हुए या बाँधे गये; और उन्होंने भी अन्य बहुतसे मनुष्योंको बाँधनेके लिये खूब वीरता दिखलायी; यानी बहुतोंको फँसा करके उन्होंने बाँधा वा जकड़ाया है ॥ १४४६ ॥

६. साँच मन्त्र बाँधे सब झारी ※ अमृत वस्तु न जानै नारी ॥ १४४७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! कर्म मार्गियोंने भी नाना तरहके कल्पित मन्त्र, तन्त्र, यन्त्रका विस्तार करके सप्त कोटि महा मन्त्र, तैंतीस कोटि यन्त्रादिकोंको ही सत्य, फलदाता, ऋद्धि-सिद्धि प्रदाता बतलाकर नाना मन्त्र जप अनुष्ठान-व्रतादिमें समस्त मनुष्योंको समेट करके बाँधा है। साँच=सत्य त्रयकालमें एकरस अखण्ड, नित्य स्वयं स्वरूप तो जीव ही है। परन्तु, निज स्वरूपको भूलकर मन्त्रादिको सत्य मान करके मनुष्य धोखेमें ही पड़े भूल रहे हैं। गुरुवालोगोंने भी सबको झारकर या समेट करके वाणी कल्पनामें लगा करके बाँध दिया है। इसीसे अनाड़ी, अज्ञानी, पक्षपाती, बेपारखी लोग अमृत वस्तु=स्वयं चैतन्य जीवके सत्यस्वरूपको पारख दृष्टि उघाड़ करके नहीं देखते या नहीं जानते हैं। जीव अजर, अमर, अविनाशी, नित्य-सत्य है। परन्तु, श्रीसद्गुरुके पारख बोधके बिना उस सत्यवस्तुको अनाड़ी लोग नहीं जानते या नहीं मानते हैं। उलटा कोई अमर, अमृत, परमात्मा परम पुरुष होगा, ऐसी कल्पना करके उसे ही अपना प्यारा पुरुष मानकर अपने स्वयं प्रेमसे नारी भाव धारण करके स्त्रीवत् भक्त बने हैं; उसीके विरहमें व्याकुल होकर बद्ध हुए, हैं। फिर देह छूटनेपर चौरासी योनियोंको ही प्राप्त हुए। पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आये बिना कोई भी अमृत वस्तु=पारख स्वरूपको यथार्थ रीतिसे जान नहीं सकते हैं। पारख बोधके बिना नरजीव सर्वदासे खानी जाल और वाणी जालोंमें ही फँसकर विषयानन्द वा ब्रह्मानन्दादि सुख भासको ही अमृत=सच्ची वस्तु मान-मान कर भूले-भटके पड़े हैं। इसीसे जड़ाध्यासी बद्ध हो-होकर आवागमनादिमें डोल रहे हैं; नाना दुःख भोग रहे हैं, बिना विचार ॥ १४४७ ॥

साखीः— अमृत वस्तु जानै नहीं ※ मगन भया सब लोय ॥
[२६७] कहहिं कबीर कामा नहीं ※ जीवहिं मरण न होय ॥ १४४८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्ता ! अमृत वस्तु=अजर, अमर, अखण्ड, अविनाशी, सत्य-चैतन्य जीवका पारख ज्ञान स्वरूप वा निजस्वरूप पारखको तो ये भ्रमिक गुरुवालोगोंने विवेक करके नहीं जाना वा नहीं पहिचाना; स्वरूप-स्थिति नहीं कर पाया। वे बिना पारख बन्धन-मुक्तिका भेद जान नहीं पाये; सत्यासत्यको लख नहीं पाये। परन्तु, मन-मानन्दी द्वारा वाणी कल्पनासे या वेदादिके प्रमाणसे "सच्चिदानन्द व्यापक परमात्मा मालिक है" वा "अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि कोई एक सिद्धान्त निश्चय करके योगी, ज्ञानी, ध्यानी, भक्त आदि सब लोग मिथ्या मनःकल्पना, अनुमानमें ही मग्न मस्त-अलमस्त, गाफिल, भ्रमिक हो गये। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब यथार्थ सत्यनिर्णयको समझा करके कहते हैं कि, हे सन्तो ! गुरुवालोगोंका माना हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्म, परमात्मा तथा अद्वैतादि सिद्धान्तोंसे और कर्म, उपासना, योगादि समाधि साधनाओंसे कुछ भी जीवोंका कल्याण-हित होनेवाला नहीं है। क्योंकि, मिथ्या मानन्दीके प्रयत्नसे जीवकी क्या भलाई होगी ? कुछ नहीं होगी। शून्यमें मिल करके मुक्ति तो नहीं होती है। इसीसे पारखबोध या स्वरूप स्थिति हुए बिना ब्रह्म-ईश्वरादिको मान करके किसीका काम या मुक्तिका कार्य भी सिद्ध नहीं होता है; और अमर जीवका तो तीन कालमें कभी नाश या

मरणरूप स्वरूपकी विकृति वा परिवर्तन, अभाव तो कदापि हो नहीं सकता है। परन्तु, अविनाशी होनेसे ही जीव जड़ाध्यास विषय संस्कारवश बद्ध होकर आवागमन गर्भवासमें पड़कर सदा दुस्सह दुःख भोगते रहते हैं। जो कोई निज पारख स्वरूपमें सदा स्थिर रहते हैं, वे ही मुक्त होते हैं। ऐसा जानकर श्रीसद्गुरुके पारख बोधको दृढ़तासे धारण करना चाहिये ॥ १४४८ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १०० ॥ ❀ ॥

साखीः— करक करेजे गड़ि रही * वचन वृक्षकी फाँस ॥
[२६८] निकसाये निकसे नहीं * रही सो काहू गाँस ॥ १४४९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! जैसे नागफनी, सोंहुड़, सिस्नु, आदिके काँटे अङ्गमें गड़नेपर निकालनेपर भी नहीं निकलते हैं, बड़ी पीड़ा देते हैं। तैसे ही सब वाणी-वचनोंके मूल वृक्षरूप वेद-वेदान्त शास्त्र बने हैं। सो गुरुवालोगोंके मुखसे वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे रोचक-भयानक वाणी सुन-सुन करके भ्रम-कल्पनामें सब फँसे हैं। ब्रह्म, ईश्वर तथा स्वर्गादि प्राप्तिके लिये आशा बढ़ी; वाणी कल्पनाका नुकीला काँटा कलेजेमें जा करके प्रवेश करके मजबूतीसे गड़ गया। बड़ा जबर्दस्त होकर करक=दृढ़तासे वहीं हृदयमें गड़ा रहा। वह बड़ा विषैला होता है, उसने सर्वाङ्गमें विष फैलाया है। उसकी जहर-ज्वालाके प्रभावसे सब अचेत हो रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुदेव दया दृष्टि करके उस वाणी-कल्पना, भ्रम-भूलको सत्य बोध देकर निकाल देना चाहते हैं। सत्य उपदेश देकर समझाते-बुझाते हैं। तो भी पक्षपाती लोगोंके मनसे भ्रम मानन्दी नहीं निकलती है। निकालने पर भी नहीं निकलती है। काहू= भ्रमिक जीव कोई जगत्कर्त्ता-परमात्मा, जगत्पति होगा, ऐसा मान-मान करके धोखा, कल्पना, भ्रममें ही गँस रहे हैं; उसमें जुटकर हिल-मिल हो रहे हैं। हंसपद विवेकसे रहित हो ब्रह्म हो रहे हैं। काहू= बेपारखी लोग ही वाणी फन्दा कल्पनामें ग्रसित हो रहे हैं। परन्तु, पारखी सन्त तो सब फन्दाओंसे न्यारा रहते हैं। विवेकी पारखी सन्तपर किसीका गाँस-फाँस नहीं लगता है। सब फन्दाको परखा करके जिज्ञासु जीवको बन्धनोंसे निकाल लेते हैं। अथवा नरजीवोंके कलेजेमें विषय वासना दृढ़तासे गड़ रही है। स्त्रीरूप वृक्षके जहरीले जाल-फाँसमें विषयासक्त पुरुष फँस रहे हैं। स्त्री-विषयमें महान दोष दिखलाकर आसक्ति निकालनेकी चाह करनेपर भी वह जल्दी नहीं निकलती है; कितनेक पुरुषोंके मनमें वही वासना गँसकर घुस करके बैठ रही है। समय पाकर निकल पड़ती है। यही वासनासे बद्ध हो चौरासी योनियोंमें जीव चले जाते हैं। कोई बिरले ही पारखी सन्त इस विषय-वासनासे रहित होते हैं। सदा वे पारख स्थितिमें विचारपूर्वक रहते हैं। इसीसे वे जीवन्मुक्त होते हैं ॥ १४४९ ॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— ७८ ॥ [चौपाई-१३। साखी-२। रमैनी-१ शब्द-१ है] ॥❀॥

१. तन मन राचे कर्म दृढ़ाई * करहिं राज बहु दण्ड देखाई ॥ १४५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! तनके स्थूल कर्म और मनके सूक्ष्म कर्म रचना करके गुरुवालोगोंने सब लोगोंको त्रिविधि प्रकारसे कर्म ही दृढ़ाया है। अबोध लोग भी उसीमें प्रेमपूर्वक दृढ़ निष्ठासे लगे वा लग करके रत हुए हैं। बहुत प्रकारके दण्ड-शाप, नरकादिका भय दिखा-सुना करके वे कपटी गुरुवालोग राजा या गुरु बनकर भूमण्डलका साम्राज्य हथिया करके सबोंको अधीनकर मौज कर रहे हैं; और कोई बाहर राजा बने हैं, तो उन्होंने तन-मनसे रचना करके जो कायदा-कानून बनाया है, सोई कर्म शासन वे सब प्रजाओंको दृढ़ाते हैं; कानून भङ्ग करनेवालोंको बहुत दण्ड, कैद दिखलाते हैं; और अपने विषय भोग कर्म-कुकर्म करके पतित हुए या हो रहे हैं ॥१४५०॥

२. सोइ राज कला धरतीके * विदित कीन्ह बलवश क्षत्रीके ॥ १४५१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई राज्य कलाका भाग पृथ्वीकी राज्यव्यवस्थाके लिये कायदा, मर्यादा, नियम बाँध करके मनु आदि प्राचीनके राजाओंने जगत्में विदित या जाहिर किया है। बलवान् क्षत्रिय राजा या शासकके वशमें प्रजावर्ग रहते हैं। जो चारों दिशाओंके पृथ्वी क्षेत्रको अपने बल-पराक्रमसे वश करके जीतकर अपनी आज्ञामें रखते हैं, उसे क्षेत्रपति, पृथ्वीपति, क्षत्री, राजा कहते हैं। बलपूर्वक पृथ्वीको जीतकर राज्य-काजको चलाना, सो क्षत्रियोंके कर्त्तव्य जाहिर किया है। अथवा धरतीके ऊपर प्रजापर हुकूमत चला करके राज्य करनेकी कला सोई गुरुवालोगोंके कपटकी एक चाल है। क्षत्रीके=नौ व्याकरण, नौ कोश वा पञ्च विषय-अन्तःकरण चतुष्टय, ये नौ भागके छः और तीनके भीतर वाणी-कल्पनाके बलसे सब अबोध मनुष्योंको वशमें कर लिया है; जगत्में जाहिर कर दिया है कि— "हमारे वेद-शास्त्र, पुराणादिके कायदा, हुक्मके प्रमाणसे चलो, तो सुख स्वर्गादि पाओगे। नहीं तो दण्ड-दुःख भोगनेको नरकमें जाओगे !" इत्यादि कहकर भुलाया है ॥ १४५१ ॥

३. बाहु कर्म जिनके बल भारी * जीतहिं जहाँ तहाँ राज विचारी ॥ १४५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिन क्षत्रिय राजाओंका बड़ा भारी भुजबल रहता है, वे हस्त चातुरीसे चपलतापूर्वक निशाना लगाकर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके बड़े भारी-भारी युद्ध करते हैं। बल-पौरुष शूर-वीरता दिखलाते हैं। जहाँ-तहाँ देश-विदेशमें जा करके सेना ले जाकर छोटे-मोटे राजाओंको छल, बल, कपट और युद्धसे जीत करके वश कर लेते हैं। छोटे-छोटे राज्योंको अपने राज्यमें मिला करके साम्राज्यका विस्तारकर सबपर अधिकार करनेका विचार करते हैं। उसी विचारको परिपुष्ट बनाकर जगह-जगहके राजाओंसे लड़ाई करके उन्हें जीतना चाहते हैं। तहाँ कोई जीतते हैं, तो कोई हार भी जाते हैं। अथवा जिन गुरुवालोगोंका बाहु कर्म=नाना वाणी ग्रन्थ हाथसे लिख करके उसीके प्रचार करनेका कर्म तथा प्रयत्न यही बड़ा भारी हो रहा है, वे जहाँ-तहाँ जाकर वाद-विवादकर तर्क-वितर्क उठा करके अबोध लोगोंको जीत लेते हैं, दबा देते हैं; अपने मत-पन्थके राज्य बढ़ानेका विचार करके डोलते फिरते हैं ॥ १४५२ ॥

४. सन्मुख मरण शूर ललकारी * करहिं घात प्रचारि प्रचारी ॥ १४५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शूर-वीर क्षत्रिय आमने-सामने खड़े होकर एक-दूसरेका नाम ले-ले कर उसे ललकार-ललकार करके सम्बोधित कर-करके कि— "देख मैं तुझे यह एक ही बाणसे वा गोलीसे मार करके गिरा देता हूँ ! तुझमें सामर्थ्य हो तो मेरे सन्मुख डट करके लड़ !" इत्यादि डाँट-फटकार सुना करके हो-हल्ला मचाकर हथियारका प्रयोग करते हैं; और पुकार-पुकार करके प्रचार-प्रचार करके क्रोधसे कुवाक्य गाली बक-बक कर एक-दूसरेका घात-प्रतिघात करके घायल, अङ्ग-भङ्ग कर देते हैं; और देखते-देखते मार डालते हैं, कभी वे भी मर जाते हैं। मरने-मारनेसे वे नहीं डरते हैं। शत्रुको सन्मुख देखकर ललकारकर उसे सावधान करके फिर शूर लोग दाव-घात लगाकर प्रहार करके उसे मार गिराते हैं। अथवा गुरुवालोग, पण्डित, शास्त्री आदि लोग शूर बनकर एक-दूसरे मतवादीको ललकार-ललकार करके फटकारकर शर्त लगा करके जीत-हारके लिये शास्त्रार्थ-गोष्ठी, वाद-विवाद प्रतियोगिता करते हैं। अपने-अपने मतानुकूल वाक्योंका प्रचार कर-करके दाव-घात लगाते हैं। फिर एक-एकको दबा करके पाखण्डका पसारा करते हैं। हारनेवाला मरण तुल्य दुःखी हो करके निश्चेष्ट होकर अधीन हो जाते हैं। ऐसे ठग गुरुवालोग जहाँ-तहाँ घात लगाते फिर रहे हैं ॥ १४५३ ॥

५. मारे मरहिं परमगति पावैं * अकथ कलाको भेद लखावैं ॥ १४५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! क्षत्रिय राजाओंने धर्मयुद्धका नियम बन्धान कर

रक्खा है। दोनों दलके योद्धा रणस्थलमें उपस्थित होकर रथी रथीके साथ, अश्वारोहीसे अश्व सैन्य, गजारोहीसे गज सैन्य, पदातिसे पैदल सेना, समान प्रतिद्वन्दीसे भिड़ करके सन्मुख डटकर युद्ध करे। तहाँ रणमें मारना और मरना पुण्य कर्म होता है; और जो कोई रणक्षेत्रमें शत्रुओंको मार-मार करके स्वयं भी शत्रुओंके हाथोंसे मारा जाता है या मर जाता है, सो पुण्यात्मा वीरजन परमगतिको या स्वर्गलोकके सुख भोगको पाते हैं; ऐसा कथन किया है। इसी बातकी पुष्टि कृष्णने भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक— ३७ में किया है। कहा है:—

श्लोकः—हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्षसे महीम्॥ तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

अर्थः— इससे युद्ध करना तेरे लिये सब प्रकारसे अच्छा है, क्योंकि या तो मरकर स्वर्गको प्राप्त होगा, अथवा जीतकर पृथिवीको भोगेगा, इससे हे अर्जुन! युद्धके लिये निश्चयवाला होकर खड़ा हो॥ ३७॥ अर्थात्— "हे अर्जुन! युद्ध करनेसे तुम्हें दोनों तरफ लाभ ही मिलेगा। यदि तुम युद्धमें मारे जाओगे, तो स्वर्ग सुखको पाओगे; और जो तुम युद्धमें जीत जाओगे, तो समग्र पृथ्वीका राज्य सुख भोग पाओगे, तो सुख भोगोगे। इसकारणसे सब सन्देहको छोड़कर युद्ध करनेके लिये दृढ़ निश्चय करके उठो, खड़े हो जाओ!" इत्यादि बहुत-सी बातें गीता, भागवत, मनुस्मृति, महाभारतादिमें विस्तारसे वर्णन किया है। युद्धमें मारे गये और मरनेवालोंको परमगति प्राप्ति होती है। ऐसे झूठी ही बात बतलाया है। क्योंकि, मरनेपर फिर जीवकी क्या गति होती है? कहाँ जाते हैं? यह तो कोई जाकर देख करके नहीं आये; और यह जाना भी नहीं जाता है। परन्तु, अकथनीय बातको भी कल्पनाकी कलासे कुछ-का-कुछ भेद लखाते हैं। मिथ्या भटकनामें ही डाल देते हैं। अथवा गुरुवालोग कहते हैं कि, यज्ञ-यागादि बलिदान, देवीकी पूजामें मारे गये बकरादि पशु मर करके स्वर्गादि गति पा जाते हैं; और कर्म, भक्ति, योगादि साधकर मरनेवाले सब परमगतिरूप मुक्तिको पाते हैं। परम तत्त्व-परमात्मा तो अकथ=अवाच्य है। उन ईश्वरकी कलाका भेद कौन लखा सकता है? जो बात वेद-शास्त्रोंमें लिखी हुई है, उसीको प्रमाण करते चलो! ऐसा कहकर भुला रहे हैं। परन्तु, पारख बोधके बिना कल्पनाका भेद कोई लख नहीं पाते हैं। जो भेद गुरुवालोगोंने लखाया, उसीको सत्य मान-मान करके भूल रहे हैं॥ १४५४॥

६. त्रिगुणमई राज परमाना ❀ चारि कला तेहि माँह ठेकाना॥ १४५५॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! रज, सत्त्व, तम और काम, क्रोध, मोह, ये त्रिगुणके लक्षण मिश्रित उपाधि स्वरूप ही राज-काज होता है। राजकार्यके ठिकाने या मुकाम-में साम, दाम, भेद और दण्ड नामकी यही चार कलाके भागको राज्य शासनकुशल लोगोंने प्रमाण माना है। उनमें तीन कलाएँ राज्यके शान्ति कालमें होती हैं; शान्तिके लिये वह वर्ती जाती है। युद्धमें चतुर्थ दण्ड-कलाका प्रयोग करते हैं। त्रिगुणी राजाओंने वही बात प्रमाण किया है। राज्य शासनके ठिकानेमें सोई चार कला लेकर चलते और चलाते हैं। अथवा गुरुवालोगोंके मत, पन्थ, सम्प्रदाय आदिका राज्य सब त्रिगुण विकारका ही रूप है। भक्ति, योग और ज्ञान, इन्हीं तीनको सबोंने कर्त्ता प्राप्तिका साधन प्रमाण किया है। चार वेद, चार वर्ण, चार आश्रमादि उस ठिकाने और लगा रक्खे हैं। उसीमें घेरवारकर सबोंको फँसा रक्खे हैं॥ १४५५॥

७. समिता भाव मिलावै जानै ❀ दाम देई अवसर अनुमानै॥ १४५६॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अब यहाँपर राजनीतिकी चार कलाके भेद दिखलाते हैं— प्रथम 'साम' नीतिसे समता भाव, सब राजाओंमें समानता या बराबरीका दर्जा, मान-मर्यादा रख करके छोटे-बड़े राजाओंको प्रेमसे खुशकर अपने तरफदारी करा करके मिलानेको जानते हैं। समान मैत्री भावसे मित्र राष्ट्रोंको परस्पर मेल-मिलाप करके रखना जानते वा जनाते हैं। जिससे शान्तिसे राज्यका सब कारोबार चलता रहता है। जब कभी ऐसा मौका आ जावे कि,

प्रबल शत्रु पीछे पड़ गया है, वह चढ़ाई करना चाहता है। अनुमानतः अपनेसे ज्यादा शक्तिशाली विपक्षी है; यह निश्चय होवे, तब ऐसे अवसरमें उसकी अधीनता स्वीकार करके 'कर' के रूपमें दाम=धन-धान्य, सम्पत्ति समझौतेके अनुसारसे उसे देकर 'दाम' नीतिसे राज्यकी रक्षा करते हैं। शत्रुको परास्त करनेकी शक्ति अपनेमें न देखकर शत्रुका प्रस्तावित शर्त मानकर सन्धिके रूपमें उसे धन-दौलत आदि दे करके सन्तुष्टकर उसे फिरा देते हैं। यह दाम कलाको राजनीतिका दूसरा भाग माना है। अथवा गुरुवालोग प्रत्येक मतवादियोंको मानपान देकर समता भावसे स्वार्थ सिद्धिके लिये अपने पक्षमें मिलाना जानते हैं। ईश्वर प्राप्तिका अनुमान करके सब धन-सम्पत्ति दान भी कर-करा देते हैं। भेंट-पूजा करके या दे करके 'मौकेपर काम आवेंगे' यह अनुमान करते-कराते हैं। ऐसी अनेक चालसे चलते या चलाते हैं ॥ १४५६ ॥

८. करहिं भेद मत भोरि भुलाई * रार परस्पर प्रीति तोराई ॥ १४५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर राजनीतिमें तीसरी कला 'भेद या विभेद' कराना है। सो किसी राजासे वैर-विरोध हो जानेपर उसके राज्यमें भेदुवे वा गुप्तचर या जासूस भेज करके उसके कर्मचारियोंको नाना तरहसे भ्रमा-भुला करके उनमें फूट करा देते हैं। लोभ-लालच देकर कार्य कर्त्ताओंको वशमें करके उनके द्वारा शत्रु राजाके हित चाहनेवाले सहायक लोगोंमें फूट डालकर परस्परकी प्रीति तथा मैत्री-भावको तोड़ा देते हैं; आपसमें कई किश्मके झगड़ा-तकरार करा देते हैं। फिर ऐसे मौकेमें फौज ले जाकर चढ़ाई करके उसे जीत लेते हैं। ऐसे छल-कपट, कूटनीतिकी चालसे राजा लोग चलते हैं। अथवा गुरुवालोग नाना तरहसे षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्डोंके मत-मतान्तरोंमें नरजीवोंको भ्रमा-भुला करके भटका देते हैं। पन्थोंमें कई भेद या विभेद कर दिये हैं। पक्ष पकड़ करके एक-दूसरेसे लड़ते-झगड़ते हैं, निन्दा-चर्चाकी बात करते हैं। एक मतवादी दूसरे पन्थवालोंसे प्रीति तोड़ते-तुड़ाते हैं। एक ही घरके वा एक ही परिवारके लोग भी मत-पन्थका पक्ष पकड़कर झगड़ाके कारण प्रेम तोड़कर विरोधी हो जाते हैं; ऐसे गोता खाते हैं वा गोता खा ही रहे हैं ॥ १४५७ ॥

९. दण्ड युद्ध बहु भाँति विचारै * राज काज सब विधिहि सँवारै ॥ १४५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! राजनीतिकी चौथी कला 'दण्ड' देना है। तहाँ नाना तरहसे दुःख देकर सताकर युद्ध करके दण्ड देते हैं। बहुत प्रकारसे लड़ाई करनेकी युक्ति विचार किये हैं। आग लगा देना, बाँध फोड़ देना, पीनेके पानीमें- तालाब, कुआँ आदिमें विष डाल देना, खुल्लमखुल्ला प्रगट होकर हथियार चला करके लड़ाई करना, छिपकर धावा बोलना वा छापा-मारकर युद्ध करना। सोये हुए, थके हुए शत्रु सैन्यको रातमें मार-मार करके विनाश करना, गोली, बम, परमाणु बम और गैश आदि छोड़कर हजारों-लाखों प्राणियोंका विनाश करना, इत्यादि अनेकों चालसे लड़ाई करनेका अनेकों तरीका विचार कर रक्खे हैं। ऐसे कठिन-कठिन भयङ्कर दण्ड देकर और सब तरहकी चाल-कुचालसे चलकर राज्य व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सब विधिसे सम्हालते, सुधारते, राज्यकी रक्षा, वृद्धि, स्वार्थोंकी पूर्ति करते हैं। वहाँ दुष्ट लोग जीवहिंसादि पापको कुछ भी नहीं समझते हैं या उसे पाप ही नहीं मानते हैं; बिलकुल नरपशु ही बन जाते हैं ॥

अथवा गुरुवालोगोंने मत-पन्थोंका पक्ष पकड़कर लड़ना-झगड़ना, अपने मतको न माननेवालोंको शक्तिभर दण्ड देकर दुःख पहुँचाना, यही प्रपञ्चोंको बहुत तरहसे विचार किया है। सम्प्रदायमें गुरुवाई चलानेका, उपदेश फैलानेका कार्य सब भाँतिसे कर-कराके सम्हाल रहे हैं; कल्पनाका प्रचार कर रहे हैं ॥ १४५८ ॥

१०. हाथ कृपाण बाण बल जाके * डरहिं जीव धरती बसि ताके ॥ १४५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिस शूर-वीर योद्धाके या क्षत्रिय राजादिके हाथमें

कृपाण=तलवार, छुरी, खड्ग, खूँडा आदि तेज धारवाले हथियार रहते हैं; और जो धनुष-बाण लिये रहते हैं। अथवा वर्तमान समयके शस्त्र— पिस्तौल, बन्दूक, मशीनगन, स्टेनगन, बमगोला आदि साथमें लिये हुए बल-बुद्धि सैन्य-शक्ति तथा खजाना जिसके अधिकारमें होता है, उस सशस्त्र प्रचण्ड व्यक्तिसे सब नरजीव डर करके थर-थर काँपते रहते हैं। इसीसे भयके मारे पृथ्वीके सब मनुष्य जीव उसके वश अधीन आज्ञाकारी हो जाते हैं। पृथ्वी क्षेत्रमें उसकी राज्यस्थापना हो जाती है। वह योद्धा भूपति या राजा वा राष्ट्रपति बन जाता है; अन्य लोग सब प्रजा माने जाते हैं। अथवा जिन चतुर गुरुवालोगोंने हाथमें वेद-कुरानादि कल्पित वाणी लिया है, पुस्तक पकड़े हुए भेष-को धारण किये फिरते हैं; सब पृथ्वीके मनुष्य जीव उनकी भयानक वाणी सुन करके डर जाते हैं, उनके ही वशमें हो करके रहते हैं; भ्रम-कल्पनामें ही पड़े रहते हैं ॥ १४५९ ॥

११. लूटहिं मारहिं करहिं कलोला * भय वशि एक एक जग डोला ॥ १४६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! शस्त्रास्त्रधारी राजे लोग, हथियार बन्द सिपाही लोग, डाकू लोग, ये सब उन्मत्त होकर शक्तिका अहङ्कार बढ़नेसे कभी-कभी नीतिको त्यागकर अनीतिके मार्गसे भी चलने लग जाते हैं; कभी-कभी वे गाँव, खेड़ा, कस्बा, पुर, शहर आदिकी जनताको खूब लूट-खसोट करते हैं। घरोंघर जाकर लूट-मार मचाते हैं। धन, सम्पत्ति हरण कर लेते हैं। लूट करनेमें रुकावट करनेवालोंको जानसे भी मार-मार करके गिरा देते हैं; हो-हल्ला, कोलाहल मचाते हैं। लूटका पदार्थ मनमाने उड़ा करके किलोल, क्रीड़ा, आनन्द, मौज करते हैं; व्यभिचार, कर्म-कुकर्म आदि करते फिरते हैं। दूसरी तरफ दुर्बल, असक्त मनुष्य भयभीत होकर डरके-मारे दुष्टोंके ही वशीभूत हो जाते हैं। अत्याचारको सहन करते जाते हैं; वे विरोध कर नहीं सकते हैं। अनेक प्राणी एक दुष्ट मनुष्यके अधीन हो रहते हैं। ऐसे एक-एक उपाधिमें पड़कर संसारमें भटकते हुए चौरासी योनियोंमें अध्यासी जीव डोल रहे हैं। अथवा गुरुवालोग अबोध मनुष्योंके घर-घर जा करके उन्हें भ्रमाकर लूट-मार मचा करके तन, मन, धनादिको हरण करके आनन्द कर रहे हैं। जीवोंके हंसपदको मार करके नाश किये। वाणी कल्पनाके भयके मारे एक-एक जीव गुरुवाओंके वश होकर साधनाओंमें डोलकर चौरासी योनियोंमें चले गये और चले ही जा रहे हैं ॥ १४६० ॥

१२. जुझहिं जुझावहिं अनबनि भाँती * पूरि रहा जग सोइ यमघाती ॥१४६१॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! राजे लोग कहीं अपने ही झगड़ा करते-करते लड़ पड़ते हैं; कहीं लाइ-लगाई लगा करके दूसरोंको झगड़ामें डालकर लड़ाई करा देते हैं। लड़ना-लड़ाना अनेक तरहसे किये और कर ही रहे हैं। सोई घातक यमराज बने हुए क्षत्रिय लोगोंका प्रपञ्च घातक कर्म संसारमें पूर्णरीतिसे फैल रहा है। स्त्री, पुत्र, धन, राज्य, प्रभुता, मान, बड़ाई आदिके लिये शत्रुताका भाव लेकर लड़ाई वा वैर-विरोध सब जगहमें हो रहा है; सब उसीमें बेहाल हो रहे हैं। अथवा अनेकों तरहसे मत-पन्थका पक्ष, हठ पकड़ करके गुरुवालोग झगड़ा करते, लड़ते-लड़ाते फिरते हैं, जिससे जीवोंका कुछ कल्याण नहीं बनता है; सोई भ्रम-कल्पना जगत्में फैल रही है। सोई गुरुवालोग घातक बन करके घात कर रहे हैं ॥ १४६१ ॥

१३. अस्तुति निन्दा हर्ष विषादा * कलह कल्पना परस्पर वादा ॥ १४६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! राजा लोगोंके यहाँ भाट, कवि, चारण आदि लोग उनकी स्तुति, प्रशंसा, धन्यवाद, गुणगान, यश वर्णन करके झूठ ही बड़ाई कर देते हैं। बड़ाईका पुल बाँध देते हैं; और दूसरे राजाओंकी निन्दा, अपयश वर्णन, अकीर्ति, तुच्छता बयान करते हैं। जिसकी निन्दा करते हैं, चाहे वह अच्छा भी हो, तो भी धन ऐंठने, इनाम पानेके लिये उलटी बात कर देते हैं। अपनी प्रशंसा और दूसरोंकी निन्दा सुनकर मूढ़ धनिक लोग हर्षित होकर उछल पड़ते हैं। फिर बड़े प्रसन्न होकर गुण गानेवालोंको बक्शीस देते हैं; और कभी अपनी निन्दा किसीसे सुने,

तो विषाद=चिन्ता करके बड़े दुःखी हो जाते हैं। वश चले तो उसे दण्ड भी देते हैं। संसार विषय भोगोंके वास्ते नाना कलह-कल्पना आशा-तृष्णा बढ़ाते हैं। आपसमें या परस्पर वाद-विवाद झगड़ा, टन्टा, फसाद किया करते हैं। इसतरह हमेशा ही बेचैन दुःखी बने रहते हैं। अथवा गुरुवालोग अपने मतकी और ईश्वरादिकी स्तुति-महिमा गाते हैं। दूसरोंके मत-पन्थोंका दोष दिखाकर निन्दा करते हैं। अपने पक्षमें लोग झुकनेपर हर्षित होते हैं; और अपने शिष्य-सेवक लोग दूसरे सम्प्रदायमें चले गये, तो खेद मान करके विषाद करके दुःखी होते हैं। परस्पर वाद-विवाद-कर विरोधी बन करके भ्रमिक हो सब कलह-कल्पनामें ही पड़े हैं; पारखी श्रीसद्गुरुका सत्सङ्गकर जिज्ञासुको इन सब प्रपञ्चोंसे निकल जाना चाहिये ॥ १४६२ ॥

साखीः— एकन्हि एकके वशि परे * त्रिगुण अदल चलाय ॥
[२६६] पूरि रहा सब सोई कला * घातक नहीं लखाय ॥ १४६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकारसे संसारमें बेपारखी मनुष्य लोग एक-न-एकके वशमें सब लाचार होकर अधीनमें पड़े हुए हैं। कहीं स्त्री-परिवारोंके वशमें हैं, कहीं राजा-रानी, सेठ-साहुकारके अधीन हैं, कहीं चोर-डाकुओंके पाले पड़े हैं, कहीं पण्डित, ज्ञानी, गुरुवालोगोंके जालमें पड़े हैं, इत्यादि अनेकोंके वशमें एक-एक करके सब घिरे पड़े हैं। सबोंने जीवोंपर त्रिगुणका अदल-हुक्म चला रक्खा है; और तहाँ सन्धि, विग्रह, दण्डका अदल=कायदा राजाओंने चला रक्खा है। तथा काम, क्रोध और मोहकी अदलरूप सत्ता स्त्रीने चला रक्खी है; और भक्ति योग, तथा ज्ञानका अदल=प्रभाव गुरुवालोगोंने चला रक्खा है। त्रिगुणी मनुष्य सब उसी मार्गमें इच्छानुसार चल रहे हैं। सोई त्रिगुणरूप (जाल) फन्दाओंका पसारा समस्त भूमण्डलमें पूरा-पूरा फैल रहा है। क्षत्रिय, स्त्री और गुरुवालोग, ये सब बड़े घातकी वा पातकी दुष्ट काल बने हैं। परन्तु, बिना पारख सो घातकोंके घात किसी मनुष्यको देखनेमें या समझनेमें नहीं आता है। इसी कारणसे सब यमके घातमें पड़ करके विनष्ट हुए या हो रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे सो पहिचानकर न्यारा होना चाहिये ॥ १४६३ ॥

॥❀॥ रमैनी नम्बर— ११ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक, मूल, रमैनी नम्बर— ८३॥❀॥

१. क्षत्री करै क्षत्रिया धर्मा * सवाई वाके बाढ़ै कर्मा ॥ १४६४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! जैसे क्षत्रिय लड़ाकू लोग लड़ाई करना ही क्षत्रियोंका धर्म मान करके लड़ते-झगड़ते जाते हैं। तहाँ उनके शत्रु भी ज्यादे ही बढ़ते जाते हैं। लड़ना-झगड़ना, युद्धादि कर्म भी सवाई बढ़ता ही जाता है, थोड़ा भी नहीं घटता है। पापसे तो पाप ही बढ़ता है, झगड़ासे और झगड़ा बढ़ जाता है, युद्धसे और आगे युद्ध ही बढ़ता जाता है;कमती नहीं होती है। तैसे ही सिद्धान्तमें क्षत्री=क्षेत्ररूप शरीरमें शक्तिमान् कायावीर सोई चैतन्य जीव है। सो नरदेहमें आ करके जीव चार वर्ण, चार आश्रम, चार सम्प्रदाय, षट्दर्शनादिके वाणी-खानी प्रपञ्चों में पड़ करके बड़े अभिमानी हुए। छः और तीन मिला करके (६+३=९) नवका व्यवहार करने लगे; तहाँ चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कार, ये चतुष्टय अन्तःकरणसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच विषयोंका उपभोग करने लगे। तथा स्थूल-सूक्ष्म देहोंके व्यवहार चलानेका, उनको जाननेका ज्ञान धर्मसे शुभाशुभ सब कर्म शरीरमें रहकर जीव ही करते हैं। ऐसे जीव ही तन-मनादिसे नौ तत्त्वोंका धर्म-कर्म करके जड़ाभ्यासी हुए या हो रहे हैं। इसीकारणसे वे अभ्यासी जीवोंके सवाई=एकके सवा गुना विशेषरूपसे ज्यादे-ही-ज्यादे वासना बढ़ी। जिससे चौरासी योनियोंमें जानेकी कर्म-वासनासे सिलसिलेवार जन्म-मरणादि दुःखदायी भोग उनके सवाई बढ़ते गये। जड़ाभ्यासी होनेसे ज्यादे चौरासी योनियोंमें पड़े। अभी जीव मनुष्य जन्ममें हैं, तो भी चेत नहीं करते हैं, फिर भी दुःख भोगनेका कर्म सवाई बढ़ा रहे हैं ॥ १४६४ ॥

२. जिन्ह अवधू गुरुज्ञान लखाया * ताकर मन ताहि ले धाया ॥ १४६५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ कहा है:—

दोहाः— "जल परमाने माछरी, कुल परमाने शुद्धि ॥ जाको जैसा गुरु मिला, ताको तैसी बुद्धि ॥"

अवधू = जिनके वधू = स्त्री न हो, सो त्यागी योगी, ज्ञानी और भक्त गुरुवालोग जिन्होंको जैसी-जैसी समझवाले भ्रमिक गुरुवालोग मिले, उन लोगोंने वैसी ही कल्पना मानन्दीसे गुरु बन करके ज्ञान, भक्ति, योगादिमार्गको लखा दिया। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि नाना सिद्धान्तको या ब्रह्मज्ञानको गुरुज्ञान बता करके लखाया, परिपुष्ट किया-कराया है। पारख बोधके बिना जड़-चैतन्यका भिन्न-भिन्न निर्णय सत्यासत्यको तो नहीं लखाये; मिथ्या धोखेका ही बोध किये। इधर संसारी मनुष्य तो प्रथम-से ही अबोध, मूढ़, अज्ञानी ही बने हैं। जैसे गुरुवालोगोंने समझाया, तैसे ही उन शिष्यवर्ग अन्य मनुष्योंको भी मनमें निश्चयसे प्रतीति हुई। फिर कल्पना-अनुमानको ही ले-ले करके सबोंने ब्रह्म-ईश्वरादिको सत्य ठहरा करके उससे मिलनेके लिये भक्ति, योग और ज्ञानादिके अनेक अभ्यास या साधनाओंमें धाये, लगे, दौड़ पड़े। मिथ्या भ्रम-धोखेमें भूल करके जड़ाध्यासी हुए। देह छूटनेपर फिर वही अध्यासने जीवोंको चारखानी चौरासी योनियोंमें लेकर धाया या चला गया; बिना पारख व्यर्थ ही नरजन्म चला गया। अथवा त्यागी बने हुए ब्रह्मज्ञानियोंने "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः" ऐसा गुरुज्ञान लखाया। तो दूसरे लोगोंका मन भी उसीमें दौड़कर जा लगा। फिर वही मन-मानन्दी जीवोंको धोखेमें ले गयी, भ्रमा दी ॥ १४६५ ॥

३. क्षत्री सो जो कुटुमसों जूझै * पाँचों मेटि एकके बूझै ॥ १४६६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! दुनियाँमें क्षत्रिय राजे लोग अपने बल-पौरुषादिका बड़ा अभिमान करते हैं कि, हम बड़े शूर-वीर हैं, हमको कोई जीत नहीं सकते हैं, हम सबको हरा देंगे। परन्तु, उन्होंका अहङ्कार झूठा है। मन, इन्द्रियके वश विषयासक्त रहनेवाले वे झूठे नकली क्षत्रिय बने हैं। वास्तवमें सच्चा असली क्षत्रियरूप शूर-वीर मनुष्य तो वही हो सकता है, जो कि, विवेक-विचारसे सद्गुण सहित रहता हो; अन्तःकरण चतुष्टयोंको पञ्च विषयोंके तरफ जाने न देकर रोक रखता हो; और मनरूप शत्रुके कुटुम्ब-सैन्य जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्षा, द्वेष, मद, अहङ्कार, कुवृत्ति, कुटेव, कुभावोंका कुवेग इत्यादि अरिदलने हृदय महलको घेर रक्खा है। तहाँ सामना करके बाहर निकलकर उनसे जूझै = लड़े। सत्य साधना विवेक, वैराग्य, बोधभावके सहित चढ़ाई करके महान संग्राम कर उन्हें छिन्न-भिन्न, नष्ट, ध्वस्त कर देवें, दबा करके हटा देवें, इस-प्रकारसे पराक्रम दिखला करके विजय प्राप्त कर लेवें, सोई मनुष्य शिरोमणि सच्चे श्रेष्ठ पारखी सन्त होते हैं; वे ही विजयी नर श्रेष्ठ हैं। वे पाँचों विषयोंको मेटकर कामादि पाँचों विकारके वेगको हटा करके और भास-अध्यास, अनुमान-कल्पना, वाणीके विषयरूप भ्रम इन पाँचोंको मेट-मिटा करके पारख स्थितिमें ही कायम रहते हैं; और गुरुवालोगोंने जो एक ब्रह्म कर्त्ता माना है, सो तो भ्रम-कल्पना-मात्र है। जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय करके सत्यासत्यको पारखदृष्टिके बलसे जानते तथा समझते-बूझते हैं। जीवकी मानन्दीरूप ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या भ्रममात्र है; जीव ही एक सत्य वस्तु है। ऐसा बूझ करके जीवको बन्धनोंसे निकाल लेते हैं; और जो पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा सार-असारको समझकर सारको ही ग्रहण करते हैं, सो पाँचों कोशोंके बन्धनोंको मेट करके एक स्वरूप स्थितिके बोधमें ही टिके रहते हैं, इससे वे ही मुक्त भी होते हैं ॥ १४६६ ॥

४. जीव मारि जीव प्रतिपाले * देखत जन्म आपनो हारे ॥ १४६७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! विषयासक्त क्षत्रियादि राजे लोग और शिकारी व्याधा लोग जो वनजन्तु हरिण, सूअर, चीता, बाघ, सिंह और चिड़ियोंको गोलियोंसे मार-मार करके खुश होते हैं; उनके मांस खाते हैं। उसी धन्धासे द्रव्य उपार्जन करके स्त्री, पुत्रादि परिवारोंका

पालन-पोषण करते हैं, उन्हें भी मांस, मछली खिलाते हैं। ऐसे ही कुकर्म करके अपना पेट पालते हैं; सो हिंसक, क्रूर नरपशु ही बने हैं। यह तो सब कोई प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि, कोई भी प्राणी खुशीसे मरना वा दुःख भोगना नहीं चाहते हैं, इसीसे तो वे डर करके बचनेके लिये भागते हैं। फिर उन्हें जबर्दस्ती घेरकर मारना, शिकार करना, हत्या करना कितने निर्दयी कसाईका काम हुआ। देखिये! अपने शरीरमें कहीं चोट लग गयी, और कहीं कट गया, अथवा काँटे ही चुभ गये, तो कितना दुःख-दर्द मालूम पड़ता है? कैसी घबराहट होती है, यह तो सब कोई देखते और जानते ही हैं। फिर अपने थोड़ेसे स्वार्थके लिये पशु आदि प्राणियोंका जीवन ही खतम कर देना, बेतहासा दुःख देकर अङ्ग-भङ्ग करके मार डालना, हत्या करना कितना नीच कुकर्म है। नाहकमें ऐसे उत्तम मनुष्य जन्मको व्याधाका कर्म करके शिरपर पापका बोझा ढोकर बर्बाद कर दिये। आयुको बिता करके दावको हारे हुए चौरासी योनियों-में जा रहे हैं। अथवा चैतन्य जीव ही सत्य है; यह न जानने वाले भ्रमिक गुरुवालोग निज-पर जीव-को कठिन साधनाओंमें लगाकर सता करके, मारकर दुःख भोग भोगा करके अपने स्वार्थ सिद्ध करके लोगोंको ठग-ठग करके उसीसे अपने सहित परिवारोंका प्रतिपालन, रक्षा, गुजारा करते हैं। अपने समान सबको सुख-दुःख होता है या हो रहा है, यह तो सब देख ही रहे हैं; तो भी विवेक-विचार-के नेत्र फोड़कर अन्धे बने हैं। इसीसे धोखा देकर ठगाई करनेमें और जीव हत्या करनेमें कुछ भी सङ्कोच नहीं मानते हैं। अपने मतलबके लिये सब कुछ कर्म-कुकर्म कर बैठते हैं। अपने कल्याणकारी सद्गुण शुभ कर्त्तव्य मुक्ति साधनादिको छोड़ करके ऐसे सर्वोत्तम कर्मभूमिकारूप नरजन्मको व्यर्थ बरबादकर आयु बिता करके मरकर जन्म-मरणादिके चक्रमें गिर पड़े। भ्रम-कल्पना विषयादिमें लग करके कर्त्तव्यको हारे, बिगाड़े, पतित हुए, इसीसे गर्भवास चौरासी योनियोंमें चले गये और चले ही जा रहे हैं ॥ १४६७ ॥

५. हाले करै निशाने घाऊ ❀ जूझि परे तहाँ मन्मथ राऊ ॥ १४६८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं—हे सन्तो! संसारी क्षत्रिय राजे, सिपाही लोग पहले युद्ध कलाकी विद्याको सीखते वा सिखलाते हैं। तहाँ दूरमें एक निशाना बना रखते हैं। फिर एक फर्लाङ्ग, दो फर्लाङ्ग या तीन-चार फर्लाङ्ग तककी दूरीपरसे उस निशानेको ताककर तीर या गोली छोड़ करके निशाना लगानेका अभ्यास करते और कराते हैं। पहले धीरे-धीरे करते हैं, फिर हालि-हालि या जल्दी-जल्दी निशानेमें चोट लगाते हैं। उसे चान्दमारी कहते हैं। ऐसे निशानेबाज फौज तैय्यार करके राजे लोग रखते हैं। फिर कहीं काम विषयके कारण स्त्री हरण करके लानेके लिये, तो कहीं धन-धान्य, सम्पत्ति, राज्य हथियानेके लिये, तो कहीं क्रोध, मद, मत्सरादिसे उन्मत्त हो करके एक-दूसरेसे मन्मति मूढ़ राजे लोग जूझ करके लड़ पड़ते हैं। जल्दी-जल्दी निशाना लगा करके हथियारसे एक-दूसरेपर प्रहार करके काट-मार-धाड़, संहार कर डालते हैं। थोड़ा-सा स्वार्थके लिये हजारों वा लाखों प्राणियोंकी हत्या, विनाश करा देते हैं; ऐसे वे बड़े दुष्ट पापी होते हैं। तैसे ही भ्रमिक गुरुवालोग मनुष्योंको भ्रमा-भुला करके कल्पित ब्रह्म-ईश्वरादिका एक निशाना लगा करके उसीमें सुरति लगवा करके हले या घुसे; और वाणीका हल्ला, कोलाहल और हलचल मचा दिये। जिससे ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके लिये सब जल्दी-जल्दी साधना करने लगे। खूब चञ्चलता बढ़ी; वाणी कल्पनाकी गोली आ-आकर हृदयमें चोट करने लगी, जिससे जीव घायल, विरही, भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए। तहाँ संसारमें राजा बने हुए ब्रह्मज्ञानी लोग बड़े मन्मति, दुर्बुद्धि हुए हैं। मन-मानन्दोसे मथन करके कल्पनासे जगत्रूप ही एक अद्वैत व्यापक ब्रह्म ठहराये हैं। अब कोई उनके भ्रमका खण्डन करे, तो उससे वे लड़ पड़ते हैं। कोई विधि-निषेधको भी छोड़ करके गाफिलीमें गिर पड़े; सबसे परे, अपार, अथाह ब्रह्मको मानकर धोखेमें पड़े। कोई परमहंस हुए; बाल, पिशाच, उन्मत्त, जड़ आदि दशाको धारण किये, नष्ट हुए। इसप्रकारसे नरजीव सब आवागमनके रहट चक्रमें पड़े हैं, बिना पारख ॥१४६८॥

साखीः— मन्मथ मरै न जीवै * जीवहिं मरण न होय ॥
[२७०] शून्य सनेही राम बिनु * चले अपन पौ खोय ॥ १४६६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! हे जिज्ञासु मनुष्यो ! 'मन्मथ' कहिये काम विषय, मन्मति, मन-मानन्दी, वाणी कल्पना, ब्रह्मका भ्रम, ये सब जड़-चैतन्यके सम्बन्धमें अध्यास मात्र उत्पन्न होते हैं। अतएव स्वतन्त्र जड़ वस्तु वा चैतन्य पदार्थ वह नहीं ठहरते हैं, जड़ मुर्दा या मरकर नाश होनेवाला लक्षण भी उस मन्मथका नहीं है; और चैतन्य जिन्दा स्थायी-रूपसे सदा जीते रहनेवाला अविनाशी भी वह नहीं है। जीवके बिना स्वयं मानन्दी जीवित भी रह नहीं सकती है। परन्तु, वही महादुःखदायी 'सन्धि' है। अध्यासका ही बनावटी कृत्रिमरूप मन्मथ है। और अखण्ड, नित्य-सत्य चैतन्य अविनाशी स्वरूप जीवका तो मरणरूप विनाश, मृत्यु, परिवर्तन तो कभी भी नहीं हो सकता है। ऐसा तो त्रयकालमें भी नहीं होनेवाला है। परन्तु, अनादिकालसे ही जगत्में सब जीव जड़ाध्यासी होते चले आ रहे हैं। उसी वासनाके प्रवाहमें बहते चले जा रहे हैं। आखिरमें मनुष्य सब आराम, सुख या आनन्द प्राप्ति करनेके लिये शून्यमें ही स्नेह लगाते जा रहे हैं। संसारी लोग स्त्रीके शून्य स्थानरूप भग-भोग करनेमें प्रीति लगा करके विषयानन्दमें आसक्त हो रहे हैं; और योगी लोग शून्य=भ्रमरगुफामें लक्ष्य, स्नेह लगा करके योगानन्दमें गाफिल हो रहे हैं। ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती लोग शून्य आकाशवत् परिपूर्ण व्यापक परब्रह्म मानकर ब्रह्मानन्दमें गरगाफ हो रहे हैं। इसप्रकारसे शून्यमें ही स्नेह, चाहना, प्रेम-प्रीति, लक्ष्य, आसक्ति, अध्यास लगा करके निजस्वरूपकी स्थितिको भूल गये। पारख बोधके बिना मिथ्या धोखेमें पड़े, सो यहाँका सुख यहीं रह गया; और जड़ाध्यासी जीव अपने मनुष्यपद वा हंसपदके सत्य, विचार, शील, दयादि मुक्तिके साधन और पारखपद सार पूँजीको खो करके नष्ट-भ्रष्ट हो करके देह छोड़कर भव-बन्धनोंमें चले गये। फिर देह छूटनेपर अध्यासवश चारखानीमें चले गये, और वैसे ही चले जा रहे हैं। अतः हे मुमुक्षुओ ! अभी अपने हंसपदमें ठहरकर उस शून्यके स्नेहको छोड़कर निज हित-कल्याणको प्राप्त करो ! ॥ १४६६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द, नम्बर— ११ ॥ प्रमाण, बीजक मूल, शब्द नम्बर— ५६ ॥ ❀ ॥

१. माया महा ठगिनी हम जानी ॥ १४७० ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! सब तरहसे परीक्षा करके हमने यह खूब जान लिया कि, माया महान ठगिनी-धूर्त है। वैसे तो प्रपञ्ची माया अनेक प्रकारकी हैं। उन सबमें मुख्य सजीव दो प्रकारकी माया हैं। (१) झीनी मायारूप गुरुवालोग हैं। (२) मोटी मायारूप स्त्रियाँ हैं। इनके जाल खानी-वाणीका विस्तार बहुत है। सो ठगिनी मायाने सबको ठग लिया और ठगती ही जा रही है ॥ १४७० ॥

२. त्रिगुणी फाँस लिये कर डोलै * बोलै मधुरी बानी ॥ १४७१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! उधर गुरुवा माया त्रिगुणी फाँस=भक्ति, योग और ज्ञानकी वाणी लिखी हुई पुस्तक हाथोंमें लेकर संसारमें डोल रहे हैं वा फिर रहे हैं; नाना कर्त्तव्य कर रहे हैं। मधुर-मधुर मीठी रुचिकर रोचक वाणीका उपदेश दे रहे हैं। कई किश्मकी बात बोल करके सुना रहे हैं। कहीं जगत्कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादिको बता रहे हैं; और कहीं जीवको ही ब्रह्म बनाये हैं। कहीं जीवको अंश, आभासमात्र ठहरा रहे हैं। कहीं आत्माको कूटस्थ कहा है। कहीं योगी, जङ्गम, सेवड़ा, संन्यासी आदि षट् दर्शनोंके छियान्नवे पाखण्डी बने हैं। यह सब तो मनुष्योंको मायाने ठगी है, धोखा देकर भुला दी है। वेद, शास्त्र, पुराण आदिकी भ्रम-कल्पनामें तीनों-गुणवाले मनुष्योंको फँसाये हैं। पुष्पित वाणी बोल करके फाँस डालकर बन्दरवत् जीवोंको नचाकर डोला रहे हैं; और इधर स्त्रीरूप मायाने काम, क्रोध और मोह, यही त्रिगुणी फाँस हाथ-

में वा साथमें लेकर हँसकर मधुरी वाणी = प्रीतिकर वाणी बोल-बोल करके डोल रही है या फिर रही है। हाव, भाव, कटाक्ष, नखरा करके पुरुषोंको आकर्षित करके काम वेगको उठा देती है, जिससे विषयासक्त होकर पुरुष चामके कीड़े बन जाते हैं। फिर वह स्त्री व्यभिचार करने लगी, तो पुरुष लोग क्रोधित होकर मरने-मारनेको भी तैय्यार हो जाते हैं। कोई स्त्रीके मोहमें आसक्त होकर अकर्त्तव्य भी कर बैठते हैं। खानीजालमें स्त्रीके कारणसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान आदि अनेक भेद बनाया है। यह सब प्रकारसे जीवकी ठगाई हो रही है। हम बड़े राजा, धनी, महाराजा, सेठ हैं; और हम बड़े साधक, तपस्वी हैं। हम बड़े सिद्ध हैं, इत्यादि मोटी-झीनी अभिमान लेकर जीव ठगा गये हैं। कालरूप गुरुवालोग और नारीने त्रिगुणी जालोंमें फँसा करके खूब ठगाई की है; और ठगाई करती ही जा रही है। मैंने पारखदृष्टिसे देखकर अच्छी तरहसे जान लिया है, इसवास्ते तुम्हारे कल्याणके लिये मैं कहता हूँ— माया महा ठगिनी है, उसके जालमें कभी किसी प्रकारसे भी नहीं पड़ना, पारख करके न्यारा हो रहना चाहिये। मायाने किस रूपसे किस-किसको ठगी, छली है, सो भी तुम्हें परखा करके कहता हूँ, ध्यानसे सुनो! ॥१४७१॥

३. केशवके कमला होय बैठी ❀ शिवके भवन भवानी ॥ १४७२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! केशव = जलसागरमें सोनेवाला माना हुआ विष्णुके घरमें, कमला = कमलमें उत्पन्न मानी हुई लक्ष्मी, सो नारायणकी प्यारी स्त्री होकर बैठी। अथवा कायाधारी पुरुषोंके घरमें कोमलाङ्गी, अर्धाङ्गी, लक्ष्मी आदि नाम धरा करके माया बैठी हुई है। अथवा विष्णु-उपासकोंके यहाँ लक्ष्मी उपासना होकर बैठी है। अथवा के = पानीरूप वाणीके प्रमाणसे कैवल्य ब्रह्म मान करके ज्ञानी लोग झाँईं में गाफिल होकर सोये। तहाँ कमला = वाणी भ्रम कल्पना ही प्रिय केवल आत्मा हो करके बैठी है। तैसे ही शिव = महादेव सदा समाधिमें मग्न होकर रहनेवाले उनके भवन = कैलाश पर्वतके घरमें भवानी = पार्वती उनकी स्त्री होकर रहीं। अथवा तमोगुणी लोगोंके यहाँ तामसी शक्ति भवसागरके कारण होकर बैठी है। अथवा शिव = साधनचतुष्टय सम्पन्न ज्ञानीके ज्ञान-भवनमें भवानी = अनुमानकी भावना हो करके बैठी है। अथवा शिव = आनन्दके ठिकाने अहंशक्ति होकर भवानी-हृदय भवनमें जाकर बैठी है। उस मायाने सबके बुद्धि-विचार ज्ञानगुणको हरण कर लिया, सबको धोखेमें डाल रक्खा है ॥ १४७२ ॥

४. पण्डाके मूरति होय बैठी ❀ तीरथहूमें पानी ॥ १४७३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! पण्डे-पुजारी लोगोंके यहाँपर जड़ मूर्ति प्रतिमा अज्ञानी लोगोंको ठगनेका साधन, लूटनेका ढङ्ग, फँसानेका औजार हो करके बैठी है। यानी पुजारी बन करके ठग लोग मूर्तिके सामनेमें स्वाङ्ग लगाकर बैठे हैं। हरतरहसे मूर्तिपूजाके बहाने ठगते-फिरते हैं। वे ही गुरुवारूप मायाने तीर्थोंकी महिमा बढ़ाया है। गङ्गा, यमुना, गोदावरी, पुष्कर, प्रयाग आदि तीर्थस्थान सब जगहोंमें जहाँ जाओ, वहाँ पानीको और पत्थरादिकी महिमा दिखाई देती है। परन्तु, वही गङ्गादि तीर्थके जलस्नान तथा परिक्रमादिकी बड़ी महिमा कर रक्खे हैं। गुरुवालोगोंने भ्रमा करके उसीमें मनुष्योंको अरुझा रक्खा है। अथवा पण्डे ब्राह्मणोंने जड़ मूर्ति और जड़ पानीकी महिमा बढ़ाकर जगह-जगह तीर्थ स्थान बनाकर वे वहाँ बैठकर लोगोंको ठग रहे हैं ॥१४७३॥

५. योगीके योगिनि होय बैठी ❀ राजाके घर रानी ॥ १४७४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! अष्टाङ्ग योग साधना करनेवाले योगी लोग पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृति, दश इन्द्रिय, चित्त चतुष्टय इन सब स्थूल-सूक्ष्म भागको लय करके शून्य समाधि लगा करके बैठे। उन योगीके यहाँ योगशक्ति होकर बैठी; और योगिनी = अणिमा, महिमा गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये अष्ट सिद्धियोंकी चाहना योगीके मनमें बैठ गई। अथवा ईश्वर साक्षात्कार करने की कामना यही योगीकी कामिनीरूप योगिनी, बिरहिनी

होकर बैठी। अथवा जीव-ब्रह्मका संयोगरूप मिलाप एकता करनेकी भ्रम-कल्पनारूप माया प्रबल होकर बैठी; और राजाके यहाँपर रानी वा महारानी बन करके मायारूप स्त्री बैठी है। तथा चारखानीमें श्रेष्ठ राजा मनुष्य है, सो मनुष्योंके घरमें माया मानवी प्यारी नारी रानी बनकर बैठी है। अथवा राजा समान बड़े बने हुए ब्रह्मज्ञानीके यहाँपर आदिशक्ति मूल-प्रकृति होकर अविद्या रानी बैठी है ॥ १४७४ ॥

६. काहूके हीरा होय बैठी ❀ काहूके कौड़ी कानी ॥ १४७५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! किसी सेठ-साहुकार जौहरियोंके यहाँपर धनदौ-लत, रत्न, जवाहरात, हीरा, लाल, मोती, पन्ना, पुखराज आदि मणि-माणिक्य नाना पदार्थ संग्रहीत होकर श्रीमान् होकर बैठे हैं। किसीको कानी कौड़ी ही प्यारी हो रही है, तो किसीको हीरादि रत्नपर ही दृढ़ प्रीति लगी हुई है। कोई धनके मदमें उन्मत्त होकर फूला न समाता है, कोई गरीब कौड़ी-कौड़ीका मोहताज होकर रो रहा है। दरिद्रतासे परेशान होकर कोई चोर, डाकू बन रहे हैं। कोई आत्महत्या कर रहे हैं। ये सब मायाके ही गुलाम बँधुवे बने हैं। अथवा किसीके यहाँपर हीरावत् चमकता हुआ प्रकाश, अंगुष्ठमात्र प्रकाश, महा ज्योति प्रकाश, भास ही ईश्वरादि सिद्धान्तके रूपमें दृढ़ होकर बैठी है। किसीके यहाँ गोबर मिट्टी, बालू, कङ्कर, झाड़, पहाड़ ही श्रेष्ठ देवता या ईश्वर बनकर बैठी है। कोई हृष्ट-पुष्ट हैं, कोई अङ्ग-भङ्ग, दुबले-पतले हैं। कोई काने, अन्धे हैं, कोई कोढ़ी, बहरे, मूर्ख हैं। कोई बाप-दादाकी सम्पत्ति समझकर कानी-कौड़ी या तुच्छ वस्तु ही सम्हाल रहे हैं। कोई हीरादि कीमती चीज रख रहे हैं। उन सबको मनरूप मायाने आशा-तृष्णा ममतादिमें फँसाकर ठग रक्खा है ॥ १४७५ ॥

७. भक्ताके भक्तिन होय बैठी ❀ ब्रह्माके ब्रह्मानी ॥ १४७६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! वही बहुरूपिणी माया इधर भक्तलोगोंके यहाँ भक्तिन, दासी, टहलुई होकर बैठी है। कितनोंको भोगोंमें ही फँसा कर भगासक्त बना रक्खी है। तहाँ कहा है:— दोहाः— "भग भोगे भग ऊपजे, भगते बचे न कोय ॥ कहहिं कबीर भगते बचे, भक्त कहावै सोय ॥"

सब भक्तजन कल्पित परम पुरुष भ्रतार कोई मालिक मानकर उसको रिझानेके लिये अपने ही स्त्री भाव धारण करके भग-तिलकधारी भक्त विरही मूढ़ हुए हैं। उस खाविन्दकी प्राप्तिके लिये भक्तोंने उनके यहाँ घरमें भक्तिन सखीरूप नवधा भक्ति बना करके रक्खा है। चित्र-विचित्र भाव प्रगट करके सो भक्तिनरूप नवधा भक्ति खूब विलास करके भक्तोंके मनमें जाकर बैठ गई; उन्हें पागल बना दिया; और ब्रह्माके घरमें माया ब्रह्मानी=सावित्री ब्राह्मणी स्त्री बनकर बैठी, तथा ब्राह्मणोंके यहाँ गायत्री चौबीस अक्षरोंका मन्त्र बनकर बैठी। रजोगुणीके यहाँ राग-रङ्ग, भोग बन करके बैठी। कर्मकाण्डियोंके यहाँ कर्मप्रधान होकर रहीं। गुरुवालोगोंके यहाँ मत-पन्थकी वाणी होकर बैठी है। अथवा ब्रह्मके पासमें आदिमाया अचिन्त्य अभिन्न शक्ति हो करके बैठी है। इसप्रकार माया-जालमें सब भूले या मायाने सबोंको भुला रक्खा है। कोई विरले ही पारखी सन्त इन माया जालोंसे पार होते हैं ॥ १४७६ ॥

८. कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! ❀ ई सब अकथ कहानी ॥ १४७७ ॥

अर्थः— इतना सब विस्तार बतला करके यहाँपर सत्य उपदेश दाता पारखी श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! हे साधुओ! आप लोग मेरी बातको सुनो! यथार्थ सत्य निर्णयकी बातको सुननेके अधिकारी आप साधु लोग ही हो! क्योंकि, मोटी-माया घर-गृहस्थियोंका आप लोगोंने त्याग किया है, अब बाकीकी झीनी-मायाको भी परखकर त्याग करिये! ये ठगिनी मायाके किसी भी जालोंमें पड़कर मत् भूलिये। इसवास्ते विशेषरूपसे सम्बोधन करके मैं आप लोगोंसे ही कहता हूँ कि- हे सन्तो! सुनिये तथा सत्यन्याय निर्णयको गुनिये! ठगिनी मायाकी अनेक

चाल और जालोंमेंसे कुछ तो मैंने ऊपर वर्णन करके कह दिया हूँ। ज्ञानी-अज्ञानी सब माया, काया, कल्पना, वाणी, गुरुवा और स्त्री, इन्हींके त्रिगुणी फाँस—रज, सत्त्व, तम। काम, क्रोध, मोह। ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान। जीव, ईश्वर, ब्रह्म। स्थूल, सूक्ष्म, कारण; इत्यादि यही मायाके महाजालोंमें अरुझे वा ठगाये हुए बद्ध पड़े हैं। यह सब कहानी, इतिहास, कथा तो मैंने कथन करके साफ-साफ कह दिया हूँ। परन्तु, बेपारखी संसारके ये मनुष्य सब तो मनरूप मायासे अनेक प्रकारकी मानन्दी कर-करके माया-मोहमें फँसते जाते हैं। तो भी उधर मन उन्मुन करके शून्य ध्यान-समाधि लगा-कर या अनुमानसे ही मन, बुद्धि, वाणी, लक्ष्य, गम्यसे परे अगम्य, अकथनीय, अवाच्य, कोई परब्रह्म व्यापक है, ऐसी कल्पना करके उसे ही मायासे परे सत्य मानते हैं। वेद-वेदान्त शास्त्र उसीकी कहानी बनी है; ये सब तो मिथ्या धोखा है। अकथ कहानी भी मायाके ठगनेका जाल है। इसे परख करके त्यागिये! और सत्य पारखपदमें स्थिर हो रहिये! ॥ १४७७ ॥

॥ ❀ ॥ चौदह विद्याएँ और चौंसठ कलाओंका वर्णन ॥ ❀ ॥

॥❀॥ चौपाई॥ भाग—७९ ॥ [चौपाई-१६। साखी-३। रमैनी-२। साखी-२ है]॥❀॥

१. त्रिदेवा जननीके सेवा * जो कछु कलाको पावै भेवा ॥ १४७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! प्रथम ब्रह्मा, विष्णु, और महेश, जगत्में प्रख्यात हुए, इन्हीं त्रिदेवोंने उस जमानेमें आदिमाया अष्टाङ्गी भगवती जननी = जिसने उन तीन पुत्रोंको जन्मायी थी, उस माताका सेवा-सत्कार, पालन-पोषण या आज्ञा पालन किया। जो कुछ भी महामायाने कहा, सो सब पूरा कार्य कर लिया। इससे मायाने प्रसन्न हो करके उनपर कृपा की; जो कुछ भी खानी-वाणीकी गुप्त-प्रगट कला संसारमें थी, सो सब उन्हें बतला दी वा सिखला दी। ऐसे महामायाके कृपा-प्रसादसे सेवाके फलरूपमें जो कुछ मायाने बताया, सो सब कुछ कलाका भेद त्रिदेवोंने जान पाया ॥१४७८॥

२. चौदह विद्या गाइ सुनाई * भिन्न भिन्नके प्रगट देखाई ॥ १४७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पुत्रोंकी सेवा-टहलसे सन्तुष्ट होकर महामायाने चौदह प्रकारकी विद्या या बुद्धि बढ़ानेकी बात चौदह तरहसे गा करके सुनाया या कहकर विस्तारसे भेद बतलाया। भिन्न-भिन्न या न्यारा-न्यारा करके चौदहों भागोंको प्रगट करके उन्हें दिखलाया, भलीभाँति सिखा करके चतुर बनाया; वही चौदह विद्याके नामसे संसारमें गुरुवालोग अभी भी प्रगट करके दिखला रहे हैं। सो उसका सार प्रथम ही हम कह चुके हैं ॥ १४७९ ॥

३. चौदह मूल अरु शाखा अङ्गा * गाँठि अनन्त सोई परसङ्गा ॥ १४८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पण्डितोंने चौदह विद्याओंको मूल मुख्य जड़के समान बड़ा आधार मान करके और शास्त्रोंको उसीका अङ्ग-प्रत्यङ्ग भाग अंशरूपमें माना है। उन चौदहोंका मौका-प्रसङ्ग वा समय-संयोग मिला करके अनेकों ग्रन्थिरूप नाना ग्रन्थ, नाना विद्याएँ, नाना कलाएँ बनाये हैं। सोई सबके प्रसङ्गमें पड़कर उसमें लगकर अनन्त जीव भ्रमसे जड़ाध्यासकी गाँठि बाँधे बद्ध हुए या हो रहे हैं। अथवा सोई विद्याके प्रसङ्गमें मूल चौदह विद्याके और शाखारूप अङ्ग-उपाङ्ग भी महामायाने बतलादी थी। उसीकी गाँठी अनेकों तरहसे बाँधे रहे ॥१४८०॥

४. चौदह मूल जगतके माँहीं * और अनन्त वर्णि नहिं जाहीं ॥ १४८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वही चौदह विद्याएँ ही समस्त संसारमें मुख्य मूल, जड़-आधार वा प्रधान करके मानी गयी हैं; और उसमेंसे अनन्तों कला-कौशल विस्तार करके जो फैलाये हैं, सो तो सब वर्णन भी नहीं किया जा सकता है। अथवा वाणीरूप वृक्षकी स्थितिके लिये जगत्के मध्यमें चौदह तो मूल विद्याएँ बनी हैं। फिर उसकी टीका-टिप्पणी तथा भाष्य, संग्रह, चुनाव आदि करके और अनन्त ग्रन्थ-पन्थ वाणी-जालका विस्तार किया है। सो उसका वर्णन हो नहीं सकता है ॥ १४८१ ॥

५. ब्रह्मज्ञान रसक्रिया जोई * वेद पाठ कवितई होई ॥ १४८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो ! अब उन चौदह विद्याओंके नाम तथा संक्षिप्त विवरण प्रगट करके कहा जाता है, सो सुनिये ! १. ब्रह्मज्ञानः— उपनिषद्को वेदान्त शास्त्र कहते हैं। उसमें जिस युक्ति-प्रयुक्ति करके ब्रह्मको जाना जाय, अद्वैत ब्रह्मका बोध निश्चय हो, अपने आपको ब्रह्म जाननेमें आवे, भेद-भाव मिटा करके अभेद बुद्धि हो जावे, वही बात विस्तारपूर्वक ब्रह्मज्ञान विद्यामें कही गई है। २. रसक्रियाः— रसायन शास्त्रको कहते हैं। उसमें सुवर्ण, मोती, मूँगा, पारा, लोहादि धातु भस्म करनेकी विधि विस्तारसे वर्णन किया है। तथा अर्क, सत, रसादि निकालनेके कार्यको 'रसायन विद्या' कहते हैं। इसमें ढालना, टाकें लगाना आदि भी सामिल हैं। ३. वेदपाठः— ऋग्, यजुर, साम और अथर्व, ये चार वेदोंको कण्ठाग्र करके वेद मन्त्रोंका विधिपूर्वक सार-स्वर, प्रास मिला करके पाठ करते और कराते हैं। वेदविद्यामें त्रिकाण्डका विस्तारसे वर्णन किया है। ४. कविताः— काव्यशास्त्र पिङ्गलादि हैं, जिसमें छन्दोबद्ध कविता रचना करके अनेकों भाव-कुभाव प्रगट करना, श्लोक, पद, छन्द, दोहा, चौपाई आदि बनाना, विस्तारसे जिसमें वर्णन किया है, सो काव्य विद्या कहलाती है। इन्हीं चार विद्याओंका खुलासा इस चौपाईमें दिखला दिया है ॥ १४८२ ॥

६. जोतिष औ विद्या सङ्गीता * वैयाकरण जलतरण समेता ॥ १४८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ५. ज्यैतिषः— जिसमें भूगोल, खगोलकी गति-विधिको विचारदृष्टिसे देख करके गणित करना, ग्रह, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न, तिथि, वार, योग, करणका फल बताना इत्यादि विस्तारसे ज्यौतिष विद्यामें वर्णन किया है। और ६. सङ्गीत विद्याः— साम मन्त्रका गायन, राग, ताल, स्वरसे आलाप करके नाना तरहके स्वरमें गाना, बजाना, बहुत प्रकारसे गायन कलाका भेद इस सङ्गीत विद्यामें बतलाया है। ७. वैयाकरणः— व्याकरण शास्त्र—

दोहाः—"सारस्वत, कौमुदी, चन्द्रिका। मनोरमा औ भाष्य ॥ भूषण, शेखर, मञ्जूषा। शब्दरत्न नव खाष्य॥"

ऐसे नौ व्याकरण बनाया है। उसमें शब्दोत्पत्तिका कथन, शब्दरूप, धातुरूप, अक्षर शुद्धि, समास, पदच्छेद, अन्वय आदिकी विधिका विस्तारसे वर्णन किया है। ८. जलतरणः— नदी, नाला, तालाब, महानदी, सागरादिके जलमें तैरकर पार उतरनेका भेद तथा नाव, अग्निबोट, जहाज वगैरहको जलमें तैरा करके वेगसे चलाकर ले जानेकी, पार उतारनेकी विस्तार शिक्षाको इस जलतरण विद्यामें कहा है। इसके समेत् आठ विद्याओंका परिचय यहाँ तक बताया गया है ॥ १४८३ ॥

७. युद्ध करन धनु बाण प्रचारी * बाहन वशि सब अश्व सँवारी ॥ १४८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ९. धनुर्विद्याः— युद्ध करनेके वास्ते धनुर्विद्याका प्रचार किया है। पहले तिरन्दाज लोग धनुमें बाण चढ़ा करके कानतक डोरीको खींचकर तीरको फेंककर निशाना मारते रहे। दूरके शत्रुको मारनेके लिये धनु या कमानमेंसे बाणका प्रयोग करके प्रहार होता रहा। अब वह काम बन्दूक, तोप आदि द्वारा होता है; गोली चला करके युद्ध करते हैं। जिसमें नाना प्रकारसे युद्ध करनेकी चाल सिखलायी गयी है या वर्णन किया गया है, सो धनुर्विद्या कहलाती है। १०. अश्वसँवारणः— सवारीमें चढ़कर जल्दीसे दूर जानेके लिये घोड़ेको सिखा-सधा करके सवार लोग अपने वश वा काबूमें कर लेते हैं। सब प्रकारके घोड़ेको वश करना; और दूसरे सवारी बनाने लायक हाथी, ऊँट (साँड़नी), बैल, खच्चर आदिको भी सिखला करके उन वाहनोंमें चढ़कर गन्तव्य स्थानोंको शीघ्र पहुँच जाना। इसीके वास्ते वाहनोंको वश करके और सब प्रकारकी चाल घोड़ोंको सिखलाकर तैय्यार रखना, यही इस विद्याका काम है। यहाँ तक दश प्रकारकी विद्याओंका गुण वर्णन हुआ है ॥ १४८४ ॥

८. विद्या वैदक कोक परवाना * नाटक चेटक चतुर सुजाना ॥ १४८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ११. वैद्यक विद्याः— नाड़ी विज्ञान, रोग परीक्षा,

व्याधिके निदान, रसादि, काष्ठादिसे औषधि निर्माण करके रोगियोंको उपयुक्त दवा देना, पत्थ्य, परहेज बताना आदि विस्तारपूर्वक वैद्यक शास्त्रोंमें बताया है। वैद्य, हकीम, डाक्टर आदि लोग उसी विद्याके आधारसे अनेकों कार्य करते हैं। १२. कोक विद्याः— स्त्री-सम्भोगकी विधि, भोगके चौरासी आसनोंका वर्णन, काम-कलाका प्रकाश, स्त्री और पुरुषोंको परस्पर वश रखनेके उपाय दर्शन, पर्शन, चुम्बन, आलिङ्गन आदिका वर्णन छैः-छैः प्रकारके स्त्री-पुरुषोंके भेदका वर्णन विस्तारसे कोकशास्त्रमें किया है। भृगु आदिने कोक विद्यामें विशेष प्रकाश डालकर वर्णन किया है। वही बात विषयी लोगोंने दृढ़ प्रमाण कर रक्खा है। १३. नाटक-चाटकः— नाच-तमाशा दिखलाना, स्वाङ्ग बना करके नाना लीला, चरित्र दिखलाना, नाटकका खेल करना; और चटक-मटक, बाजीगरी करना, पशु, पक्षीको सिखला करके उनसे विचित्र कार्य कराना। वीर-वेताल, भूत, प्रेत, श्मशान जगाना, नाना पाखण्ड ढोंग करना, जासूस बन करके गुप्तचरी काम करना, इत्यादि कार्यकी विस्तारसे शिक्षा इसी विद्यामें किया है; और १४. चातुरीः— चतुराईसे हाथकी सफाईसे अनेकों कार्य करके दिखलाना, एक-दूसरेको विश्वास करा करके धोखा देना; छल, कपट, प्रपञ्चका पसारा करना, वाक् चातुरीसे झूठको भी सत्य और सत्यको भी झूठ ठहराना, उलट-पलट कर देना, इत्यादि कार्य चातुरी विद्यामें विस्तारसे वर्णन किया है। सो यही चौदह विद्याओंके नाम और काम हैं। इसे ही अच्छी तरहसे सीख करके जानकर सब लोग अपनेको चतुर, विद्वान् बड़ा जानकार समझते हैं या हम बड़े चतुर हैं, ऐसा कहते हैं। परन्तु, निज पारख स्वरूपको जाने बिना अपठित और पठित सब लोग मूर्ख ही बन रहे हैं। अतएव हे बुद्धिमानो! यह चौदहों विद्याएँ कुविद्यारूप जीवोंको फँसानेका कठिन जाल ही फैलाया है। ऐसा जानकर उसके पीछे मत् पड़िये। पारखी साधु-गुरुकी शिक्षा ग्रहण करके अपना कल्याण, जीवन सुधार करिये! यही मुख्य सार बात है, सो जानिये! ॥ १४८५ ॥

९. चौदह रतन कीन्ह परकाशा ❀ मथिके भव जल विद्या विलासा ॥ १४८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पुराणोंमें लिखा है कि, एक समयमें देवगण तथा दानवगण मिलकर मन्दराचल पहाड़का मथानी और बासुकी नागका मथनेकी डोरी बना करके महासागरका मथन किया वा बिलोया, तो उस सागरके जलमेंसे चौदह रत्न निकलकर प्रगट-में प्रकाश हुआ। उनका नामः— १. धन्वन्तरी वैद्य। २. चन्द्रमा। ३. कौस्तुभ मणि। ४. लक्ष्मी। ५. रम्भा अप्सरा। ६. कामधेनु। ७. उच्चैश्रवा घोड़ा। ८. ऐरावत हाथी। ९. पिनाक धनुष। १०. पाञ्चजन्य शङ्ख। ११. कालकूट विष। १२. मोहिनी-नशीली-मदिरा। १३. कल्पवृक्ष। और १४. अमृत। दोहाः— "श्री मणि रम्भा वारुणी। अमी शङ्ख गजराज॥ कल्पद्रुम शशि धेनु धनु। धन्वन्तरि विष बाज॥"

इनको ही चौदह रत्न उत्पन्न हुआ, बतला करके गुरुवालोगोंने मिथ्या कल्पनाका प्रचार किया है। तैसे ही भवजलरूप संसारमें भी भ्रमिक लोगोंने मन कल्पनाको मथनरूप सङ्कल्प-विकल्प करके भोग-विलास करनेके लिये भ्रममें क्रीड़ा करके उपरोक्त चौदह विद्याओंको ही चौदह रत्नके समान श्रेष्ठ अमूल्य बतलाकर प्रकाश किया है। अथवा वाणीरूप समुद्रको मथ करके रत्न समान चौदह विद्याओंका प्रकाश करके गुरुवालोग उसीमें विलास करने लगे या विलास कर रहे हैं॥ १४८६ ॥

१०. कर्त्ता भये विद्याके सागर ❀ थाह न पावै अगम रतनागर ॥ १४८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! विद्या, बुद्धि, कला-कौशल, वाणी-खानीका कर्त्ता तो मनुष्य आप ही हुए हैं। अर्थात् विद्याके सागर और विद्याके कर्त्ता तो अपने आप मनुष्य ही हुए या होते हैं। परन्तु, वेदादि विद्याके कर्त्ता कोई निराकार परमेश्वरको कल्पनासे मान करके भ्रमिक हुए हैं। उस परमात्माको ही सर्वश्रेष्ठ सब रत्नोंकी खान, विद्याका भण्डार माना है, उससे मिलनेके लिये अनेकों तरहसे उसे ढूँढ़ने लगे। तहाँ रतनागर=वाणी कल्पनाके समुद्रका तो कुछ थाह, पता

नहीं पाया, अन्त नहीं मिला। वेदने भी "नेति-नेति" कहा। ब्रह्म-परमात्माका थाह कहीं नहीं मिला, तब अगम, अपार, अथाह जैसे-का-तैसा मान करके रत्नवत् श्रेष्ठ चैतन्य जीव महा धोखेमें पड़कर गाफिल हुए हैं; बिना पारख अध्यासमें डूब मरे हैं॥ १४८७॥

११. अनबनि रतन अन्त नहिं सोई ❀ कारण कारज परगट होई॥ १४८८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे कारण समुद्रमें कार्यरूप अनेकों रत्न भरे पड़े हैं, उसका अन्त या खतम नहीं होता है, सदा बनता ही रहता है। तैसे ही भ्रम-कल्पनाके कारणसे कार्यरूपमें प्रगट होकर अनेकों रत्न समान वाणीरूप नाना विद्याएँ बनी हैं। पारख बोधके बिना उस कल्पनाका अन्त नहीं होता है; और नवीन-नवीन वाणी-कल्पना बनती ही जाती है। इसवास्ते अध्यासी जीवोंके आवागनका अन्त भी नहीं हो रहा है। गुरुवालोग कहते हैं— जैसे कारण ब्रह्मसे कार्यरूप जगत् उत्पन्न हुआ है, तैसे एक प्रणवसे ही वेद-शास्त्रादि अनेकों विद्यारूप रत्न बने हैं। उन विद्याका अन्त कभी नहीं होता है। इसप्रकार भ्रममें मनुष्य भूले हैं। श्रीसद्गुरुके पारख बोध हुए बिना उसका अन्त या नाश नहीं होता है। कारणसे-कार्य प्रकट होता ही रहता है॥ १४८८॥

१२. गावहिं गुण कर्त्ता त्रय देवा ❀ पावै न पार अनन्त कहि तेवा॥ १४८९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पूर्वमें ब्रह्मादि त्रय देवोंने कोई परमतत्त्व-परमात्मा जगत्कर्त्ता मानकर उसका खूब गुणानुवाद गाया, उसकी महिमा बढ़ायी। भक्ति, योग और ज्ञानादि साधना कर खोज करनेपर भी जब किसीने कुछ पार नहीं पाया, तब उसे अपार, अनन्त, अथाह कहकर या ऐसा मानकर भ्रमचक्रमें ही पड़ रहा। पारख बोध नहीं पाया, इसलिये समय पूर्ण होनेपर मरकर चौरासी योनियोंको ही प्राप्त हुआ। अब वर्तमानमें गुरुवालोग वेदादि पढ़कर उसी कल्पित कर्त्ता परमेश्वरादिका गुणगान, कीर्तन कर रहे हैं; महिमा गा रहे हैं। कोई ब्रह्मादि त्रयदेवोंको ही कर्त्ता, धर्ता, हर्ता मान करके उनकी कीर्ति गा रहे हैं। साक्षात्कार करनेके लिये नाना साधनाकर रहे हैं। आखिरमें जब कुछ पार वा पता नहीं पाते हैं, तब उसे अपार कहकर गाफिलीमें पड़ जाते हैं। अपने तो भूले ही हैं; वैसे ही दूसरे बहुत लोगोंको भी दृढ़ाकर भ्रमा करके भुला देते हैं। अतएव उन गुरुवालोगोंकी कुसङ्गको त्याग करके सत्य बोधदाता पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें ही लगना चाहिये॥ १४८९॥

१३. अनन्त कला प्रगटै कर्तारा ❀ लेखा करत न पावै पारा॥ १४९०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जगत्कर्त्ता कोई परमेश्वर मानकर उसकी प्राप्तिके लिये मनुष्य जीवोंसे अनन्तों कला-कल्पना खानी-वाणीका विस्तार प्रगट हुआ है वा बनाकर फैला है। जिसके लेखा या हिसाबकी गिनती करते-करते किसीने भी पार नहीं पाया; आखिरमें सबोंने अपार परमात्मा कोई कर्त्ता सर्वशक्तिमान् है, ऐसा निश्चय किया है। पार तो कुछ नहीं पाते हैं। तो भी कर्त्ता पुरुषने ही सब जगत् प्रगट किया है, ऐसी मिथ्या कल्पना करके अनेकों कलाओंको प्रगट किये और प्रगट कर रहे हैं। अथवा कोई भ्रमिक लोगोंने ऐसा माना है कि, निरञ्जन कर्त्ता पुरुषने जगत् उत्पत्तिके साथ-साथमें अनन्त विद्याओंकी कलाएँ भी प्रगट किया है। कोई उसका लेखा करके पार पा नहीं सकते हैं। जैसे परमात्मा अपार है, तैसे उसकी कला भी अपार, अनन्त है। ऐसा मान करके जहँड़ा गये हैं; और चौंसठ (६४) कलाओंके भेद नीचे ❀ टिप्पणीमें देखिये!॥ १४९०॥

❀ टिप्पणीः— कर्त्ता पुरुष मनुष्योंसे जगत्में अनन्तों कलाएँ प्रगट हुई हैं, जिसका लेखा करके कोई पार पा नहीं सकते हैं। तहाँ मुख्य चौदह (१४) विद्याओंसे और मुख्य चौंसठ कलाएँ प्रकाश करके उन्हें ही प्रधान माना है। शास्त्रोंमें चौंसठ कलाओंके बारेमें भी विभिन्न प्रकारसे कहा है। उनमें मुख्य-मुख्य प्रकारसे चौंसठ कलाओंके

१४. सोरह कला विदित लखाई ❀ बहुमाया सिद्धि प्रगटाई ॥ १४९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोलहों आना ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, ऐसा जगजाहिर करके वेदान्ती लोगोंने लखाया है। अथवा चौदह विद्या तथा मायाकी गुप्त कला और प्रगट कला मिला करके सोलह कलासे पूर्ण विद्याको विदित करके लखाया है। अथवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय और एक मन सहित सोलह कलाका शरीर मायाका भाग है, उससे परे आत्मा है, ऐसा जाहिर करके लखाया है फिर माया=गुरुवालोगोंने योगादि साधना सिद्ध या पूर्ण होनेसे बहुत प्रकारसे ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होनेकी लालच लगायी है। प्रपञ्ची लोगोंने बहुत प्रकारकी वाणी प्रगट करके अनेक सिद्धान्त दिखलाया है। ये बहुरूपिणी मायाकी सिद्धि जीवोंको बाँधनेके लिये ही प्रगट हुई हैं ॥ १४९१ ॥

१५. चौदह भुवन भावना जोई ❀ चौदह यम होय बर्ते सोई ॥ १४९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मनुष्योंने कल्पनाकी भावनासे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें चौदह भुवन या चौदह लोक ठहरा करके भावनाकी दृष्टिसे ही देखने लगे। सोई परमात्मा चौदह

नाम निम्न रीतिसे वर्णन किया है। प्रथम प्रकारसे चौंसठ (६४) कलाओंके नामः— १. इतिहास। २. आगम। ३. काव्य। ४. अलङ्कार। ५. नाट्क। ६. गायकत्व। ७. कवित्व। ८. कामशास्त्र। ९. दुरोदर (द्यूत)। १०. देश-भाषा लिपि ज्ञान। ११. लिपि कर्म। १२. वाचन। १३. गणक। १४. व्यवहार। १५. स्वरशास्त्र। १६. शाकुन। १७. सामुद्रिक। १८. रत्नशास्त्र। १९. गज-अश्व-रथ-कौशल। २०. मल्लशास्त्र २१. सूपकर्म (रसोई पकाना)। २२. भूरुहदोहद (बागवानी)। २३. गन्धवाद। २४. धातुवाद। २५. रससम्बन्धी खनिवाद। २६. बिलवाद। २७. अग्निसंस्तम्भ। २८. जलसंस्तम्भ। २९. वाचःस्तम्भन। ३०. वयःस्तम्भन। ३१. वशीकरण। ३२. आकर्षण। ३३. मोहन। ३४. विद्वेषण। ३५. उच्चाटन। ३६. मारण। ३७. कालवञ्चन। ३८. परकाया प्रवेश। ३९. जारण। ४०. पादुकासिद्धि। ४१. वाक्सिद्धि। ४२. गुटिकासिद्धि। ४३. ऐन्द्रजालिक। ४४. अञ्जन। ४५. परदृष्टिवञ्चन। ४६. स्वरवञ्चन। ४७. मणि-मन्त्र-औषधादिकी सिद्धि। ४८. चोरकर्म। ४९. चित्रक्रिया। ५०. लोहक्रिया। ५१. अश्मक्रिया। ५२. मृत्क्रिया। ५३. दारुक्रिया ५४. वेणुक्रिया। ५५. चर्मक्रिया। ५६. अम्बरक्रिया। ५७. अदृश्यकरण। ५८. दन्तिकरण। ५९. मृगयाविधि। ६०. वाणिज्य। ६१. पशुपाल्य। ६२. कृषि। ६३. आसवकर्म। और ६४. लाव-कुक्कुट-मेषादि-युद्धकारक कौशल॥ दूसरे प्रकारसे चौंसठ (६४) कलाओंके नाम वर्णनः—

१. गीत। २. वाद्य। ३. नृत्य। ४. आलेख्य। ५. विशेषकच्छेद्य (मस्तकपर तिलक लगानेके लिये कागज, पत्ती आदि काटकर आकार या साँचे बनाना)। ६. तण्डुल- कुसुम बलिविकार (देव-पूजनादिके अवसरपर तरह-तरहके रँगे हुए चावल, जौ-तिल आदि वस्तुओं तथा रङ्ग- बिरङ्गे फूलोंको विविध प्रकारसे सजाना)। ७. पुष्पास्तरण। ८. दशनवसनाङ्गराग (दाँत, वस्त्र तथा शरीरके अवयवोंको रँगना)। ९. मणिभूमिका कर्म (घरके फर्शके कुछ भागोंको मोती, मणि आदि रत्नोंसे जड़ना)। १०. शयनरचन (पलङ्ग लगाना)। ११. उदकवाद्य (जलतरङ्ग)। १२. उदकाघात (दूसरोंपर हाथों या पिचकारीसे जलकी चोट मारना)। १३. चित्राश्च योगाः (जड़ी-बूटियोंके योगसे विविधि वस्तुएँ ऐसी तैय्यार करना या ऐसी औषधें तैय्यार करना, अथवा ऐसे मन्त्रोंका प्रयोग करना, जिससे शत्रु निर्बल हो या उसकी हानि हो)। १४. माल्यग्रथनविकल्प (माला गूँथना)। १५. शेखरकापीड़योजन (स्त्रियोंकी चोटीपर पहननेके विविध अलङ्कारोंके रूपमें पुष्पोंको गूँथना)। १६. नेपथ्यप्रयोग (शरीरको वस्त्र, आभूषण, पुष्प आदिसे सुसज्जित करना)। १७. कर्णपत्रभङ्ग (शङ्ख, हाथीदाँत आदिके अनेक तरहके कानके आभूषण बनाना)। १८. गन्धयुक्ति (सुगन्धित धूप बनाना)। १९. भूषणयोजन (नाना तरहके आभूषण बनाना)। २०. ऐन्द्रजाल (जादूके खेल)। २१. कौचुमारयोग (बल-वीर्य बढ़ानेवाली औषधियाँ बनाना)। २२. हस्तलाघव (हाथोंकी काम करनेमें फुर्ती और सफाई)। २३. विचित्रशाक-यूष भक्ष्यविकार-क्रिया (तरह-तरहके शाक, कढ़ी, रस, मिठाई आदि बनानेकी क्रिया)। २४. पानकरस-रागासव-योजन (विविध प्रकारके शर्बत, आसव आदि बनाना)। २५. सूचिवान कर्म (सूईका काम, जैसे— सीना, रफू करना, कसीदा

लोकमें चौदह देवता अधिष्ठाता होकर वर्तमानमें बरत रहा है या विराजमान हो रहे हैं। ऐसा अनुमान किया है। अथवा स्वर्ग, मृत्यु और पाताल सर्वत्र चौदहों भुवनमें परमात्मा परिपूर्ण व्यापक है, ऐसी भावना करके देखा। जिसने ऐसी भावना की, सोई गुरुवा यम=कालरूप बनकर चौदह विद्याओंके सिक्काका छाप लोगोंमें जमाया है। अबोध लोग भी उन यमके अधिन होकर वैसे ही बरतने लगे। अथवा मनुष्योंने जो चौदह भुवनके कर्त्ताकी मिथ्या भावना किया, सोई भावनासे चौदह यमरूप चौदह देवताएँ और चौदह विद्याएँ प्रगट हुई हैं। उसीके अनुसार बिना विवेक सब कोई बरत रहे हैं वा वैसे ही चल रहे हैं ॥ १४९२ ॥

१६. धर्मराय यमराज बिराजै * थूल कला झीना नित गाजै ॥ १४९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! धर्मके ठेकेदार बने हुए गुरुवालोग सोई प्रत्यक्षमें यमराज बन करके विराज रहे हैं। सोई वाणीकी सूक्ष्म कला कल्पना फैला करके मोटी-झीनीरूपसे

काढ़ना, मोजे--गञ्जी बुनना)। २६. सूत्रक्रीड़ा (तागे या डोरियोंसे खेलना, जैसे कठपुतलीका खेल)। २७. वीणाडमरुक-वाद्य (वीणा और डमरु आदिको अच्छी तरहसे बजाना)। २८. प्रहेलिका (पहेलियाँ बूझना) २९. प्रतिमाला (श्लोक आदि कविता पढ़नेकी मनोरञ्जकरीति)। ३०. दुर्वाचकयोग (ऐसे श्लोक आदि पढ़ना, जिनका अर्थ और उच्चारण दोनों कठिन हों)। ३१. पुस्तक-वाचन (सरलतासे पुस्तकोंको पढ़ना)। ३२. नाटकाख्यायिका--दर्शन (नाटक और लीला--चरित्र आदि दिखाना)। ३३. काव्यसमस्यापूरण (काव्यकी समस्याओंको पूर्ण करना)। ३४. पट्टिकावेत्रवानविकल्प (पीढ़ा, आसन, कुर्सी, पलङ्ग, मोढ़े आदि चीजें बेंत वगैरह वस्तुओंसे बनाना)। ३५. तक्षकर्म (लकड़ी, धातु आदिको अभीष्ट विभिन्न आकारोंमें काटना)। ३६. तक्षण (बढ़ईका काम)। ३७. वास्तुविद्या (मकान आदि बनानेमें कढ़ियोंका काम) ३८. रूप्यरत्नपरीक्षा (सिक्के, रत्न आदिकी परीक्षा करना)। ३९. धातुवाद (पीतल आदि धातुओंको मिलाना, शुद्ध करना आदि)। ४०. मणिरागाकर-ज्ञान (मणि आदिका रँगना, खान आदिके विषयका ज्ञान)। ४१. वृक्षायुर्वेदयोग (विरुवा-वृक्षोंकी चिकित्साका ज्ञान)। ४२. मेषकुक्कुटलावक युद्धविधि (मेंढ़े, मुर्गे, तीतर आदिको लड़ाना)। ४३. शुकसारिकाप्रलापन (तोता-मैना आदिको बोली सिखाना)। ४४. उत्सादनसंवाहन, केशमर्दनकौशल (हाथ-पैरोंसे शरीर दवाना, केशोंका मलना, उनका मैल दूर करना आदि)। ४५. अक्षरमुष्टिका-कथन (अक्षरोंको ऐसी युक्तिसे कहना कि, उस संकेतका जाननेवाला ही उनका अर्थ समझे, दूसरा नहीं; और मुष्टिसंकेत द्वारा बात-चीत करना, जैसे दलाल आदि लोग कर लेते हैं)। ४६. म्लेच्छितविकल्प (ऐसे संकेतसे लिखना, जिससे उस संकेतको जाननेवाला ही समझे)। ४७. देशभाषा-विज्ञान (देश--देशावरकी भाषाओंको जानना)। ४८. पुष्पशकटिका (फूलोंकी गाड़ी बनाना)। ४९. निमित्तज्ञान (सकुन जानना)। ५०. यन्त्रमातृका (विविध प्रकारके मशीन, कल, पुर्जे आदि बनाना)। ५१. धारणमातृका (सुनी हुई बातोंका स्मरण रखना)। ५२. संपाठय (पाठ याद करना)। ५३. मानसी काव्य--क्रिया (किसी श्लोकमें छोड़े हुए पदको मनसे पूरा करना)। ५४. अभिधानकोश (कोशका ज्ञान)। ५५. छन्दोज्ञान (छन्दोंको जानना)। ५६. क्रियाकल्प (काव्यालङ्कारोंका ज्ञान)। ५७. छलितक--योग (रूप और बोली छिपाना)। ५८. वस्त्रगोपन (शरीरके अङ्गोंको छोटे यथा बड़े वस्त्रोंसे यथायोग्य ढँकना)। ५९. द्यूतविशेष (विशेष जुवा खेलनेका ज्ञान)। ६०. आकर्ष--क्रीड़ा (पासोंसे खेलना)। ६१. बालक्रीड़नक (बालकोंको खेलानेकी युक्तिमें प्रवीण)। ६२. वैनयिकी--ज्ञान (अपने और परायेसे विनयपूर्वक शिष्टाचार करना)। ६३. वैजयिकी--ज्ञान (विजय प्राप्त करनेकी विद्या अर्थात् शस्त्रविद्या)। और ६४. व्यायामविद्या (व्यायाम करनेकी कला)। इनका विशेष विवरण जयमङ्गलने काम सूत्रकी व्याख्यामें किया है ॥

यही चौंसठ कलाएँ सारे संसारके मनुष्य समाजमें तथा विशेषतः भारतवर्षमें विस्तारसे प्रचारित हो रही हैं। कला कल्पनाओंका अन्त नहीं है, इसलिये उसे अनन्त कला कहते हैं। जिनकी रुचि जिधर होती है, सो वे उधर ही लग जाते हैं। अब उन सबोंकी गति-विधिका लेखा वा हिसाब लगा करके कौन पार पावे ? बिना पारख सब भ्रमचक्रमें ही भटक रहे हैं। अतः पारखी श्रीसद्गुरुका सत्सङ्ग करके सारासारको पहिचानकर इन सम्पूर्ण विकारी कला--कल्पनाओंसे न्यारे हो रहना चाहिये।

॥ ❀ ॥ इति टिप्पणी समाप्तम् ॥ ❀ ॥

नित्य अहङ्कारसे गर्जना करते रहते हैं। अथवा माना हुआ निरञ्जन ब्रह्म ही धर्मराय नामसे यमराज-का ही रूप प्रगट हुआ है। सोई निरञ्जन ब्रह्मकी मानन्दी मनुष्योंके हृदयमें विराज रही हैं। सोई सूक्ष्म कलाकी सूक्ष्म वासना तथा अहङ्कार नित्य ही जीवोंमें गाजती रहती हैं। अथवा 'मन' यही धर्मराज या यमराज बनकर नाना तरहके भावनामें विराजमान होता है। सूक्ष्म मनके सङ्कल्प-विकल्प कल्पनाकी झीनी कला दृश्यरूपसे रोज ही हृदयमें गर्जती है; और हमेशा चञ्चल होती रहती है। इसीसे जड़ाध्यासी जीवोंकी कभी स्वरूप स्थिति नहीं होती है। अतएव सूक्ष्म वासनावश चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं। परख करके सो मन-मानन्दी वासनाको मिटाना चाहिये ॥ १४९३ ॥

साखीः— धर्मराय राजा सोई ❀ चौदह बाहन सङ्ग ॥

[२७१] नर्क स्वर्ग दुःख सुखमई ❀ उठे अनेक तरङ्ग ॥ १४९४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! धर्मराय=माना हुआ निरञ्जन परमात्मा या मन वा गुरुवालोग सोई जगत्में बड़े राजा, कर्त्ता, अधिपति, श्रेष्ठ शासक बने हैं। सङ्गमें उनके सवारीके लिये चौदह बाहन=सोई चौदह विद्या लगी हैं। वाणीके घोड़ेको संसारमें खूब दौड़ा करके फिराये। उपदेश दे-दे करके मनुष्योंको चौदह विद्याकी पीठपर चढ़ाये हैं। अपने हाथमें लगाम रखकर जहाँ-तहाँ भटकाये हैं। वेदादि वाणीकी मर्यादाको विधिवत् पालन करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होगी; और वेद विरुद्ध चलनेवालोंको नरककी प्राप्ति होगी। जगत्को दुःखरूपमें तथा ब्रह्मको सुख स्वरूप बता करके नाना वाणी कल्पना भ्रमका तरङ्ग उठा रहे हैं। ऐसे नाना प्रकारसे मन-मानन्दीकी तरङ्ग उठा करके सब नरजीव उसीमें बहते हुए चौरासी योनियोंमें चले जा रहे हैं, बिना पारख ॥१४९४॥

साखीः— जननीके परसङ्ग सो ❀ विद्या लहै अनेक ॥

[२७२] चौदह मूल प्रमाण ले ❀ कीन्हा प्रगट विवेक ॥ १४९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मादिकोंको उत्पन्न करनेवाली महामाया जननी अष्टाङ्गीके समागम, प्रसङ्ग, नित्यकी शिक्षा, माता द्वारा रोज ही बोध देते रहनेसे ब्रह्मादि तीनों भाइयोंने अनेकों विद्या प्राप्त किया, अनेकों कला-कौशल चतुराईको सीख लिया था, अभ्यास कर-करके उसमें पारङ्गत भी हुए; उन सबमें मुख्य चौदह विद्याको ही मूल=श्रेष्ठ आधार प्रमाण मान लिया है। शास्त्रोक्त चौदह विद्याओंके नामः—

श्लोकः—"ब्रह्मज्ञानरसायनं च कविता वेदस्तथा ज्योतिषं। व्याकरणं च धनुर्धरं जलतरं सङ्गीतकं वैद्यकम्॥ अश्वारोहण कोकशास्त्र निपुणं नाट्यं तथा चातुरी। विद्या नाम चतुर्दश प्रगदिताः शेषाः कलाः कीर्तिताः॥"

अर्थः— १. ब्रह्मज्ञान। २. रसायन। ३. काव्य। ४. वेद। ५. ज्यौतिष। ६. व्याकरण। ७. धनुर्विद्या। ८. जलतरण। ९. सङ्गीत। १०. वैद्यक। ११. अश्वसँवारण। १२. कोकशास्त्र। १३. नाटक-चाटक। और १४. चातुरी। ऐसे मुख्य सब चौदह विद्याओंके नाम प्रगट किया है; और बाकीकी सब कलाएँ कहलाती हैं। इन्हीं चौदह विद्याओंका प्रमाण ले करके और चौंसठ कला बनाये। फिर उसीका विवेक-विचार भिन्न-भिन्न ठहराव निश्चय करके ब्रह्मादिकोंने पुनः चौदह विद्याओंको संसारमें प्रगट करके फैलाया वा प्रचार कर दिया है। अथवा मूल परमात्मा प्राप्तिके लिये चौदह विद्याका प्रमाण ले करके उसीके विवेक द्वारा ब्रह्म सत्य है, यह प्रगट किया; कल्पनासे धोखेमें जाकर पड़े हैं और अभी पड़ ही रहे हैं ॥ १४९५ ॥

साखीः— वर्णन करहिं बहु भाँतिते ❀ त्रिदेवा समुदाय ॥

[२७३] विदित जगत परचण्ड सो ❀ फाँस गाँस न लखाय ॥ १४९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मादि त्रिदेव गुरुवालोगोंने जनसमुदायोंमें यही बात चौदह विद्या और चौंसठ कलादिके विस्तार बहुत प्रकारसे उसवक्त संसारमें वर्णन किया

था। अपनी कथन-मानन्दीको लोगोंमें प्रचार किया था; अनेकों शिष्य-शाखा बनाया था; मत-पन्थ स्थापित करके चलाया था। सोई परम्परासे गुरुवालोग अभी तक बहुत तरहसे वर्णन कर रहे हैं। मनुष्य समुदाय उन्हींके शिष्य होकर भूले पड़े हैं, सो तो जगत्में विदित या जाहिर ही है। जो खानी-वाणीकी बात या कला जगत्में विस्तार है, सोई प्रचण्ड या तीक्ष्ण भव-बन्धनकी फाँसी या महाफ दारूप जाल है। उसीमें प्रेम लगा करके सब जुट-जुट करके अरुझते जा रहे हैं। गाँस = जोड़ना, चिपकना, लिपटना, खींचकर फँसाना, यही बात यम जालमें हो रही है। पारखदृष्टिके बिना अन्धे बेपारखीलोगोंको यह फन्दा कुछ लखनेमें या देखनेमें नहीं आता है, इसीसे उसीमें बद्ध होकर फँस रहे हैं। उसे परखकर न्यारा रहना चाहिये ॥ १४९६ ॥

॥❀॥ रमैनी नम्बर— १२ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर-४३ ॥❀॥

१. जिन्ह जीव कीन्ह आपु विश्वासा * नर्क गये तेहि नर्कहि बासा ॥१४९७॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे मुमुक्षुओ! अनादि कालके जगत्में भूतकाल और वर्तमानमें ज्ञानी, अज्ञानी, ऋषि, मुनि, महर्षि, सिद्ध, साधक, पण्डितोंने या जिन-जिन नरजीवोंने पारखस्वरूपको नहीं जान पाया; निज चैतन्य जीवकी स्थिति नहीं कर पाया; बल्कि, सत्य जीवको कुछ भी न समझ करके तुच्छ मानकर सत्य विचार छोड़ दिया; और वेदादि वाणीके प्रमाणसे कल्पना करके अपने ऊपर सुख-दुःख दाता कर्त्ता परमेश्वर कोई है, ऐसा विश्वास करके मान लिया। अथवा वेदके महावाक्यको विश्वास करके जो अपने आप ही स्वयं कर्त्ता ब्रह्म बन गये। 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा कहकर भ्रमसे धोखेका ही विश्वास किया। सोई बात उपदेश दृढ़ा करके वेद प्रमाण बता करके और दूसरोंको भी विश्वास करा दिया, भ्रमा दिया। इसप्रकार जिन नरजीवों-ने अपने ऊपर कर्त्ता ईश्वरादिका वा अपने ही ब्रह्म होनेका अन्ध विवास किया, सो वे जड़ाध्यासी हुए। इसकारणसे वे अध्यासी नरजीव दुःख भोगनेकी जगह नर्क = गर्भवास चौरासी योनियोंमें चले गये। क्योंकि, प्रथम जीव भावमें जबतक रहे, तबतक तो एक देशके अभिमानी थे, तहाँ एक देहके ही दण्ड दुःख भोगते थे। पश्चात् जब ब्रह्मज्ञानी हुए, सर्वदेशमें व्यापक बनकर समष्टिके अभिमानी अध्यासी हुए, तो चौरासी योनियोंमें सब जगह जाकर नरकके दुःख भोगने लगे। वासनावश उसी नर्ककुण्डरूप गर्भवासमें ही उन्होंका बास वा निवास या स्थिति हुई। अब भी उसी ब्रह्म सिद्धान्त-को अद्वैत व्यापक कहकर जो-जो मान रहे हैं, तिन सबोंका भी स्वरूपस्थिति न होनेसे धोखेकी मानन्दीसे वासनावश देह छूटनेपर नर्करूप गर्भवास चारखानियोंमें ही निवास होगा। पारख बोधके बिना आवागमन एवं गर्भ यातना किसीकी नहीं छूटी और छूटती भी नहीं है। अतएव अध्यासी जीव नर्कमें गये, और नर्करूप चौरासी योनियोंमें ही निवास कर रहे हैं ॥ १४९७ ॥

२. आवत जात न लागे बारा * काल अहेरी साँझ सकारा ॥ १४९८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! दिन-रात ब्रह्मज्ञानी लोग काल = शिकारीके समान ज्ञानी-अज्ञानी लोगोंपर उपदेशरूप वाणीका प्रहार करके घायल कर रहे हैं; और भ्रमा रहे हैं। वे कहते हैं कि— "परब्रह्मकी इच्छासे सृष्टि उत्पन्न हुई है, फिर प्रलयमें नाश होकर उसीमें मिल जायगी। उत्पत्ति-प्रलय होनेमें कुछ देर नहीं लगती है, परमेश्वरके सङ्कल्पमात्रसे ही उत्पत्ति और प्रलय हो जाती है।" परन्तु, वास्तवमें वह जगत्कर्त्ता ही मिथ्या है, फिर वह क्या सृष्टि करेगा? ऐसे-ऐसे वाणी कल्पना और पञ्च विषय भोगोंके जड़ाध्यासी सब जीव हुए हैं। अध्यासवश बारम्बार जन्म-मरणके चक्रमें जीव पड़े ही रहते हैं। अतएव चार खानियोंमें देह धारण करके पैदा होकर आनेमें और आयु पूर्ण होनेपर भोगान्तमें देह छोड़कर मृत्युके उपरान्त अन्य खानी चौरासी योनियोंमें जानेमें अध्यासी जीवोंको कोई देरी या रुकावट नहीं होती है। वासनाके वेग है, तब तक जन्म-मृत्यु होती ही रहती है। उसको कोई रोक नहीं सकते हैं। संसारमें गुरुवालोग और स्त्रियाँ, तथा विषयी जन, ये सब

काल बनकर दिन-रात ज्ञानी-अज्ञानी लोगोंको विषय भोग और भ्रम-कल्पनाकी वाणीमें फँसाकर जकड़कर शिकार बना रहे हैं। अनेक तरहसे नष्ट-भ्रष्ट किये और कर रहे हैं। इसीसे जीव जड़ाध्यासी होकर बिना देरीके जन्मते और मरते ही रहते हैं ॥ १४९८ ॥

३. चौदह विद्या पढ़ि समुझावा * अपने मरणकी खबरि न पावा ॥ १४९९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मादिक पण्डित गुरुवालोगोंने ब्रह्मज्ञान, रसायन, कवितादि चौदह प्रकारकी भिन्न-भिन्न विद्या, कला-कौशल दिखलाकर, वाणी बना करके बुद्धिकी चतुराईसे पढ़, सुन, गुनकर वा बाँचकर सुना करके अज्ञानी मनुष्योंको अनेक प्रकारकी बात समझाया, भ्रमाया है। जगत्कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि बताये, सात लोकका सुख सुनाये तथा ऋद्धि-सिद्धिकी महिमा गाये हैं। उन सबकी प्राप्ति होनेकी बात समझाये। जिसको सुन-सुन करके पारखबोधके बिना सब लोग भूले या भूल गये हैं। परन्तु, उन गुरुवालोगोंने अपने स्वयंकी गति या दशापर तो कुछ भी सोच-विचार नहीं किया या नहीं करते हैं कि, जीते ही अन्त तक भी माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि कोई नहीं मिले, तब मरण होकर शरीर छूटनेपर वे कैसे, कहाँपर, क्या मिलेंगे? खानी-वाणीमें लग करके हम जड़ाध्यासी हो रहे हैं, यही हमारे हंसपदका मरण है, मुक्तिपदका विनाश है, तब शरीर छूटनेपर हमें चौरासी योनियोंमें ही जाना पड़ेगा, कोई बचानेको नहीं आवेंगे। हमारी मानन्दी आशा-तृष्णा यही काल हमें विनाश करेगा। ऐसा यथार्थ भेदकी खबर वा पता, बोध उन गुरुवालोगोंने कुछ भी जान नहीं पाया। इसीसे वे पारख बोधके बिना महा भूलमें ही पड़े रहे। वैसे अभी भी चौदह विद्या पढ़-पढ़ा करके भ्रम-कल्पनाको ही सत्य समझकर वा समझा करके अपने मुक्तिपदके विनाशका मर्म नहीं जानकर बद्ध हो रहे हैं ॥ १४९९ ॥

४. जाने जीवको परा अन्देशा * झूठहि आयके कहा सन्देशा ॥ १५०० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! जड़-चैतन्यके विस्तारूप नाना प्राकृतिक पदार्थ आदि विचित्र कार्यको देख करके और सुख चाहना करके प्रयत्न करनेपर भी दुःख भोग ही पाकर सब मनुष्य जीव ताज्जुबमें पड़े। इसका असली भेद तो उन्होंने कुछ भी जान नहीं पाया। तब भेद जाननेके लिये सब उत्सुक हुए। चैतन्य जनैया नरजीवोंके मनमें इसीकारणसे अन्देशा=सन्देह, भ्रम, आकुलता, शङ्का उठ पड़ी। उसके निवारण करानेके वास्ते गुरुवालोगोंके पासमें आ करके उन्होंने संशय प्रगट किया। उधर गुरुवालोग भी स्वार्थ पूर्ण करनेके लिये घूम-फिरकर गाँव-गाँव शहर-शहर गली-गलीमें अज्ञानी लोगोंके पासमें आ-आ करके रहने लगे। तहाँ उन्होंने झूठ-मूठका ही उपदेश दे दिया। वेद, पुराण, कुरान आदिको प्रामाणिक ठहरा करके उसीकी वाणीका सन्देश वा खबर, उपदेश अनेक प्रकारसे कह दिया। ईश्वर वा खुदा आदिसे जगत् बना है, वही सबोंको सुख-दुःख दाता है, इत्यादि बहुत कल्पनाकी बात कहकर दृढ़ कराया। जिससे सन्देह निवृत्तिके बदले और भी बहुतसे भ्रम-संशयमें मनुष्य पड़ गये, वाणी-जालमें बाँधे गये। फिर ईश्वर प्राप्तिसे ही दुःख मिटेगा, यह अनुमान करके विरह-वियोगमें व्याकुल होकर नाना साधनाओंके दुःख भोगने लगे, बिना विचार ॥ १५०० ॥

५. सङ्गति छाड़ि करै असरारा * उबहै मोट नर्क कर भारा ॥ १५०१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें ठहरनेसे ही यथार्थ सत्यासत्यका बोध होता है। परन्तु, उन भ्रमिकोंने पहले शुरूमें ही पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग छोड़ दिया और विवेक-विचार न्याय आदि सद्गुण लक्षणोंको भी उन्होंने छोड़ दिया। मिथ्याका पक्ष पकड़ करके असरारा=तकरार, वाद-विवाद, तर्क-वितर्क, हठ करके मिथ्या कल्पित वाणीके नाना सिद्धान्त तथा विषय प्रपञ्चको ही वे परिपुष्ट करते हैं, उसीका आश्रय ग्रहण करते हैं। वेदादि वाणीका ही विचार-प्रचार करते हैं। अब कहिये! कैसे उनका कल्याण होगा! और इसी द्वारमें

नर्क भरा हुआ नर्ककी मोटरीरूप यह अपना ही शरीर अपवित्र है। फिर और उसपर स्त्रीका भार सिरपर उठा करके गृहस्थलोग भग-भोग करके सुख चाहते हैं; दुःखसे छूटना चाहते हैं, तो यह असम्भव बात कैसे होगी? विषय भोग सुख नहीं है, बल्कि, दुःखोंका कारणरूप बीज है। विषयाध्यासके कारणसे ही त्रिविधि ताप चौरासी योनियोंका नाना दुःख जीव सब भोग रहे हैं। भग भोगकर कदापि कोई मुक्त हो नहीं सकते हैं। अथवा पूर्वके जड़ाध्याससे नर्ककी मोटरी वा गठरी-रूप यह शरीर जीवोंने धारण किया है। तहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विषय विकारकी, और ईश्वर, ब्रह्म, देवता, स्वर्गादि प्राप्तिकी आशा-तृष्णा, कल्पना, मानन्दीसे कर्मादिक साधनाओंका भार या बोझा उठा करके उनके नाम-स्मरण, कीर्तन, आराधना, ध्यान, धारणा, समाधि लगा करके भवसागरके दुःखोंसे छूटकर पार उतरना या मुक्त होना चाहते हैं। खानी-वाणीके जड़ाध्यासका बोझा बहुत-बहुत लादकर उबहै=पार होकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, तो कैसे मुक्त हो सकेंगे? पारख स्वरूपकी स्थिति हुए बिना कोई जीव मुक्त नहीं हुए; और होंगे भी नहीं। अतएव पारख-पदमें ही स्थिति कायम करनी चाहिये ॥ १५०१ ॥

साखीः— गुरुद्रोही मन्मुखी ❀ नारी पुरुष विचार ॥

[२७४] ते नर चौरासी भरमि हैं ❀ ज्योंलों चन्द्र दिवाकार ॥ १५०२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! संसारमें सबसे श्रेष्ठ अत्यन्त वजनदार अन्धकाररूप अज्ञान विनाशक, ज्ञानप्रकाशक पारखी श्रीसद्गुरुका गुरुपद पारख महानपद है। ऐसे पारख बोधदाता पारखी साधु-गुरुसे द्रोह करनेवाले बड़े दुष्ट स्वभावके होते हैं। उनके पाखण्डका खण्डन होता हुआ देखकर वे द्वेषी होकर द्रोह=ईर्षा-द्वेष, छल-कपट, घात, वैर-विरोध करते हैं। वे मन्मति लोग मनमाने वैसे भोग विषय और कल्पना, ठगाई नाना प्रपञ्चोंमें अपने लगते हैं, तथा दूसरोंको भी उसीमें लगाते हैं। कोई मूर्ख गुरुपदको छोड़ करके वैसे ही मन्मति चालसे चलने लग जाते हैं। ऐसे गुरुद्रोही चाहे तो स्त्री घटधारी हों, अथवा पुरुष देहधारी हों, वे बड़े दुष्ट पातकी चौरासी योनियोंके ही अधिकारी होते हैं। उनमें हानि-लाभका कुछ विचार ही नहीं रहता है, अविचारी होते हैं; और कोई स्त्री वश करनेके, तो कोई पुरुष वश करनेके, विषय भोगनेके, नर-नारीको ठगनेके, लूटनेके, ऐसे ही अधम विचारोंमें लगे हैं। अथवा कोई नारी=भक्त हुए, कोई पुरुष=ज्ञानी हुए; वे कल्पनाके ही विचारमें लगे हैं। अथवा कोई तत्त्ववादी या प्रकृतिवादी हुए, कोई पुरुष ईश्वरवादी हुए; वे भ्रमका ही विचार करने लगे। अथवा कोई वाममार्गी हुए, कोई दक्षिणमार्गी हुए; वे विकारके ही विचारमें लगे। अथवा कोई नारी=वाणीसे अद्वैत ब्रह्मके विचारमें धोखेमें लगे हैं। अथवा अनाड़ी मनुष्य पुरुष गुरुवालोगोंके शिष्य बनकर अनेक पाखण्डके विचारमें ही लगे हैं। इसवास्ते ये सब लोग मन्मति होकर गुरुपदको छोड़ करके गुरुद्रोही, पाखण्डी, जड़ाध्यासी हुए हैं। अब वे पामर, विषयी, पक्षपाती, भ्रमिक, पारखहीन नरजीव वा मनुष्य सब वासना-संस्कार-वश चारखानीकी राशि=ढेरी या समूहरूप अनेकों योनियोंमें जाकर कर्मानुसार देह धारण करके भ्रमते, भटकते देह धरते-छोड़ते, नाना दुःख भोगते ही रहेंगे। जैसे दिन अस्त होनेपर रात होती है; और फिर रात व्यतीत होनेपर दिन निकल आता है। ऐसे दिन-रातका प्रवाह अनादिसे सदोदित चला ही आ रहा है। यह कभी बन्द हो नहीं सकता है; और सूर्य, चन्द्र, तारागणादि चारों तत्त्व कार्य-कारणयुक्त अनादि पदार्थ हैं। गुण, शक्ति, क्रिया, धर्म, मिलाप, तत्त्वोंमें स्वाभाविक अनादिसे ही हैं। उसीसे दिन-रात, षट् ऋतु आदि होती ही रहती हैं। इनको बनाने-बिगाड़ने-वाला कोई जगत्कर्त्ता नहीं है। चैतन्य जीव स्वयमेव जड़ाध्यासी बनकर बन्धनोंमें पड़े हैं। चन्द्र=अज्ञानी मनुष्य वा योगी लोग तथा दिवाकार=सूर्यरूप ज्ञान प्रकाश करनेवाले ज्ञानीलोग एवं भक्त, विज्ञानी आदि समस्त मनुष्योंको भ्रम, भूल, जड़ाध्यास ही दृढ़ हो रहा है। अब जब तक नर देहमें

जीवको पूर्ण पारखबोध स्वरूप स्थिति हंस रहनी-रहस्यका धारण नहीं होता है। तब तक प्रवाह-रूप बन्धन अभ्यासका वेग नाश नहीं होता है। इसीसे अभ्यास बाकी है, तब तक जीव दिन-रातकी नाईं जन्म-मरणके चक्रमें पड़ते रहेंगे। मनुष्य जन्ममें कर्म संस्कार बनाकर और पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें जाते रहेंगे। फिर पशु आदि खानीका भोग पूर्ण होनेपर या शुभ संस्कार-उदय होनेपर मनुष्य खानीमें भी आते रहेंगे। इसतरह जन्म, मरण और गर्भवासमें पड़कर दुःखोंको भोगा करेंगे। कोई बिरले ही पारखी सन्त उस दुःखरूप आवागमनसे छूट पाते हैं ॥ १५०२ ॥

॥❀॥ रमैनी, नम्बर-१३ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर-४१ ॥❀॥

१. अम्बुकी राशि समुद्रकी खाई * रवि शशि कोटि तैंतिसों भाई ! ॥ १५०३ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! प्रथम दृष्टान्तमें जैसे अम्बु = पानीकी राशि = ढेरी या जल-समूहरूप समुद्रकी अगाध गहरी खाईमें जमा हो करके रह रहा है। समस्त भूमण्डलके नदी, नाले, खोले बहते हुए अन्तमें समुद्रमें जाकर ही समाते या मिल जाते हैं। समुद्रकी गहराईका पूर्ण पता बराबर किसीने लगा नहीं पाया। चार-पाँच कोश तककी गहराईका अनुमान लगा करके रह गये हैं; और स्थल भागसे तिगुना अधिक जल भाग सागरका विस्तार बतलाया गया है। इसप्रकार समुद्रके गड्ढेमें जलकी राशि लगी रहती है। तो उसी जल राशिपर सूर्य, चन्द्र और अनन्त तारागण, वायु आदिका प्रभाव, आकर्षण या शोषण-खिंचाव सम्बन्ध लगा ही रहता है। हे भाई ! सूर्यकी उष्ण किरणसे वह स्थूल पानीका सूक्ष्म वाष्प या भाफ बन करके वातावरणमें उड़ जाता है। सोई अन्य तत्त्वोंकी शक्तिका संयोग पा करके बादल बनकर समयपर पानीकी वर्षा हो जाती है।

तैसे ही सिद्धान्तका अर्थ वाणी भागमें सुनिये ! अम्बु = पानीरूप वाणी कल्पनाओंकी राशि = ढेरीरूप वाणी सिद्धान्तका विस्तार समूह समुद्रकी = चारों वेदोंकी श्रुतियोंमें एकत्रित करके जमा किया है। वहाँ महा भ्रमरूपी गड्ढा पड़ा है। जिसका किसीने पार नहीं पाया, सो अपार ब्रह्म मान करके उसीमें मन, बुद्धि, वाणीका अन्त कर दिये। खाई = मनुष्योंने सोई अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि नाना सिद्धान्त वाणीसे कथन करके ग्रहण किया वा खाया, तभी भी किसीकी स्थिति नहीं हुई। किन्तु, रवि = ब्रह्मज्ञानियोंने ज्ञानमार्गकी वाणी ले ली। शशि = योगी लोगोंने योग साधनाकी वाणी ले ली। तैंतीसों = और भिन्न-भिन्न कर्मकाण्डियोंने कर्मकाण्डकी वाणी ले ली; और कोटि = मनुष्य कोटिके करोड़ों, अरबों, खरबों जन समुदायके लोग तथा अनेकों सम्प्रदायके लोगोंने भी हे भाई ! वही कल्पित वाणीको सब प्रकारसे दृढ़ भावना करके पकड़ लिया। सब उसीको अच्छा मान करके नाना मानन्दीकी भावनाकर रहे हैं। अथवा वाणीके प्रमाणसे समुद्रवत् एक ब्रह्म बतलाकर मायारूप गुरुवालोगोंने बुद्धिको खाया, नष्ट किया। सब वही धोखेकी भावनामें लगे, बिना विवेक गाफिल हुए हैं ॥ अब खानी भागमें इसका अर्थ सुनिये !:—

अम्बुकी = काम विषय भोगोंकी चाहनाओंमें विशेष भरी हुई चञ्चलतायुक्त विषय-वासनओंकी जिसमें ढेरी लगी है, सोई स्त्री समुद्र समान जवानीमें भरी हुई है; भगखाईको धारण करके उन्मत्त रहती है। यानी युवावस्थामें कामिनी पूर्ण काम-वासनासे भरी रहती है; और विषयासक्त भोगी पुरुष पाँचों विषयोंका भोग एक स्त्रीमें ही एकत्रित करके गड्ढारूप भगको भोग करके विषयोंको यथेष्ट खाये और खा ही रहे हैं वा भोग रहे हैं। तहाँ स्त्री भी पुरुषोंके बल, बुद्धि, वीर्यादि सद्गुणोंको खा करके या हरण करके नष्ट-भ्रष्ट पतित कर रही है। उसी भग-भोगको प्रथम सूर्यवंशी राजे लोग वा ठग ज्ञानी लोगोंने भी ग्रहण किया, तथा चन्द्रवंशी राजे लोग या धूर्त योगी लोगोंने भी भोग किया; और माने हुए तैंतीस कोटि देवताओंने वा जगत्के अनेकों सब मनुष्योंने भी ग्रहण किया। हे भाई ! अत्यन्त मलिन गन्दा भग-भोगको अच्छा सुखरूप समझ करके विषयासक्त पुरुषोंने अच्छी तरहसे भोगकर प्रेम भावना लगा करके अभ्यास टिका लिया है। बिन

विचार विषय खाईमें डूब-डूब करके सब मरे; और मर-मर कर चौरासी योनियोंमें ही जा रहे हैं ॥ १५०३ ॥

२. भँवर जालमें आसन माँड़ा * चाहत सुख दुःख सङ्ग न छाड़ा ॥ १५०४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! कोई मूढ़ मनुष्य पानीके भँवर चक्र, जालमें वा बवंडर आँधीकी जगहमें जा करके आसन लगाकर वहाँ विश्राम करके सुख पाना चाहे, तो सुख-शान्ति कैसे पावेगा ? वहाँ तो दुःखोंका घर है। इसलिये सिवाय दुःखके या कष्ट-क्लेशके वह सुख नहीं पा सकता है; दुःखका सङ्ग छोड़े बिना सुख कैसे मिलेगा ? तैसे ही वाणी कल्पनाके जालमें अरुझ करके भ्रमरूप ब्रह्म भँवरीके बीचमें दृढ़तासे मन-मानन्दी टिकाकर आसन या अध्यास लगा दिया, जीवकी स्थिति ब्रह्ममें ही मान लिया। अब उसीसे जीव-ब्रह्मकी एकता करके नित्यानन्द, परमानन्द या सच्चिदानन्द सुखमें तदाकार हो भव-बन्धनोंसे छूटना चाहते हैं। परन्तु, दुःखदायी वा दुःखका कारणरूप वाणी कल्पना, अध्यास, भास, भ्रमकी सङ्गति-प्रीति तथा भ्रमिक लोगोंसे मेल-मिलाप कर रहे हैं, उसको तो छोड़ते ही नहीं हैं। अब कहिये ! उन्हें सुख तो भी कैसे मिलेगा ? अध्यास छूटे बिना जीवन्मुक्तिका सुख नहीं मिल सकता है। इसीसे सदासे आवागमनादिका दुःख ही जीव भोग रहे हैं। अथवा संसारमें हाव, भाव, कटाक्ष करके भ्रमानेवाली स्त्रीके दुःखदायी विषय जालोंमें, भग-भोगोंमें आनन्द समझ करके प्रीति, आसक्तिके आसन लगा दिये हैं। तहाँ स्त्रीके सहवाससे विषयानन्द सुख प्राप्त करके तृप्त होना चाहते हैं। उसीके लिये जगत् धन्धामें नाना प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु, वास्तवमें चौरासी योनियोंका दुःख त्रयतापादि भोग होनेमें मुख्य हेतु स्त्री सम्बन्धी विषय वासना ही है। सो दुःखका मूल कारणरूप विषय भोग है। वह स्त्रीका सङ्ग तो विचार करके कोई नहीं छोड़ते हैं; और विषयासक्तिसे सुख पाना चाहते हैं, तो उनको सुख-शान्ति कहाँसे मिलेगी ? मुक्ति कैसे होगी ? बिना विवेक पुनः-पुनः चौरासी योनियोंका ही दुःख भोगा करते हैं। विषय-वासना मिटे बिना सुख नहीं होता है ॥ १५०४॥

३. दुःखको मर्म न काहू पाया * बहुत भाँतिके जग भरमाया ॥ १५०५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं—हे सन्तो ! जीवोंको चारखानियोंमें जो अनेकों प्रकारके दुःख हो रहे हैं। जन्म, मरण, गर्भवास, त्रिविधि तापोंमें असह्य कष्ट-क्लेश, दुःख पा रहे हैं। सो यह सब अनेक दुःख जीवोंको क्यों होता है ? क्यों भोगना पड़ रहा है ? यह दुःख कोई देता है कि, आप ही कर्म अध्याससे भोग होता है ? इसका मर्म, भेद या खबर कोई जान नहीं पाते हैं। अथवा सब दुःख होनेका मूल कारण स्त्री सम्बन्धी विषयासक्ति, और ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी वाणी कल्पनाका अध्यास, यही दो कारण हैं। इसका मर्म कोई भी बेपारखी जनोंने जान नहीं पाया वा समझ नहीं पाया। अतएव बहुत भाँतिसे खानी और वाणीमें लग करके मनमाने सुख पानेकी चाहनासे जगत्के जीव भ्रमचक्रमें गिर पड़े; और गुरुवालोगोंने नाना प्रकारसे किश्म-किश्मके मत, पन्थ, ग्रन्थ, पाखण्ड आदिकी रचना विस्तार करके बहुत प्रकारसे उपदेश दे करके अनेकों तरहसे मनुष्योंको भ्रमाया, भुलाया है; और स्वयं भी भ्रम-चक्रमें पड़े हैं; महान भव-बन्धनोंमें फँस गये हैं; बिना पारख ॥ १५०५ ॥

४. आपुहि बाउर आपु सयाना * हृदया बसै तेहि राम न जाना ॥ १५०६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं—हे सन्तो ! अपने सत्य चैतन्य पारख स्वरूपको न जान करके स्वयमेव नरजीव सब परीक्षादृष्टिके बिना धोखेमें पड़े हैं। तहाँ कोई विषयासक्त होकर आप ही कर्म-कुकर्म करके पागल हो रहे हैं; और कोई विषय प्रपञ्चमें सयाने, चतुर, बुजुर्ग कहला रहे हैं; और कोई आप ही बौरा करके नाना मूर्ति पूजा, जप, तप, व्रतादि साधनमें दिवाने होते हैं। कभी सयाने पण्डित उपदेशक बनते हैं। अथवा ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ सयाने बड़े कहलाते हैं। परन्तु, वे आप ही पागलकी नाईं बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़ादि दुर्दशाका आचरण करते हैं। जीव आप ही

कुसङ्गमें पड़कर पागल बन जाते हैं, फिर कभी सत्सङ्गमें लगे, तो सयाने, बुद्धिमान् भी हो जाते हैं; और नित्य, सत्य, अखण्ड, चैतन्य, स्वरूप सर्व श्रेष्ठ सयान तो जीव आप ही स्वयं है। परन्तु, पारख बोधके बिना अपने आपको भूल करके बाउर हो रहे हैं; और यहाँ शरीरमें हृदय स्थान या अन्तःकरणके मध्यमें स्वयं निजस्वरूप जीवका निवास प्रत्यक्ष हो रहा है। उसीकी सत्तासे चित्त, बुद्धि, मन, अहङ्कार तथा दशों इन्द्रियाँ सञ्चालित होकर विषयादिकमें रम रही हैं। नाना कर्म साधनाएँ भी हो रही हैं। चैतन्य जीव करके ही देह-गेह प्रकाशमान् वा शोभायमान् हो रहा है। वाणी-खानीका विस्तार स्वयं जीव ही कर रहे हैं। यह सब देखते हुए भी हृदयमें विवेक-विचार करके निजस्वरूपको जानते या समझते नहीं हैं। बल्कि, उलटा अनुमान, कल्पना करके कोई परमेश्वरको जगत्कर्त्ता ठहराये हैं, उसे सर्वव्यापक आत्माराम वा परमात्मा माना है; और उसी आत्मा-रामका अंश जीवात्माको माना है, तथा परमात्माकी इच्छासे वह बना ऐसा कहा है। घट, मठ, पट, तटमें भरा हुआ आत्माराम ही हृदयमें वा घटोंघटमें भरा पड़ा है। आत्मसत्तासे ही सब जीव जीवित हैं। उस रामकी सत्ताके बिना एक पत्ता भी नहीं डोलता है। वह सर्वशक्तिमान् सर्वाधार है, इत्यादि कल्पना करके गुरुवालोगोंने जीवोंको धोखेमें डाल दिया है। अब वह मानन्दी, धोखा, वासना-भ्रम जो हृदयमें दृढ़ होकर बैठ गया है, सो पारखदृष्टिके बिना उसे किसीने नहीं जाना, इसीसे भूलमें ही सब पड़े हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे किसी बिरले ही नरजीवकी वह भूल मिटती है। सो हृदयमें रहनेवाले राम=जीवको तो नहीं जानते हैं; बाहर कहीं सगुण-निर्गुण राम मानकर उसे ढूँढ़-ढूँढ़ कर पागल हो रहे हैं, बिना विवेक ॥ १५०६ ॥

साखीः— तेही हरि तेहि ठाकुर ❀ तेही हरिके दास ॥
[२७५] ना यम भया न जामिनी ❀ भामिनी चली निराश ॥ १५०७ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! उसी कल्पना धोखाने जीवोंके बुद्धि-विचार ज्ञान-गुणको हरण कर लिया है, भ्रमिक अज्ञानी मूढ़ बनाया है। फिर उसी कल्पनाको ही दुःख हरणकर्त्ता, मुक्ति दाता, परमेश्वर विष्णु करके माना है। उसीको ही जगत्का कर्त्ता, विश्वपति, मालिक, ठाकुर, सर्वश्रेष्ठ भगवान् निश्चय किया है। उसी कल्पित ईश्वर, विष्णु भगवान्रूप भ्रमके ही योगी, ज्ञानी, भक्त आदि सब बेपारखी लोग दास, सेवक या खिदमतगार, गुलाम हो गये हैं। परमेश्वरकी प्राप्तिकी इच्छासे बड़ी-बड़ी साधनाएँ किये। पूजा, पाठ, ध्यान, ज्ञान, योगादि भी बहुत किये। परन्तु, यम=माना हुआ ब्रह्म-परमात्मा, ईश्वरादि कल्पनाके सिवाय और कोई वस्तु तो नहीं है। इसीसे सो त्रिविधि ताप आवागमनादि दुःखोंसे बचानेवाला कामका नहीं हुआ, किसी वक्त भी वह सहायक नहीं हुआ, तथा जामिनी=जमानतरूप प्रमाण देनेवाली वेद-कुरानादिकी वाणी भी कुछ हितकारी वा कामकी न हुई। निकम्मी झूठी ही निकली। इसवास्ते ईश्वर, खुदा, लोकादिकी भावना करनेवाली भामिनी या भावुक जीव देहान्तमें असहाय होकर निराशासे दुःख भोगनेको अध्याससे खींचे हुए चौरासी योनियोंमें चले गये या चले जा रहे हैं। अथवा विवेक, बुद्धि आदिको हरण करनेवाले दुर्बुद्धि गुरुवालोग संसारमें दुःखहारी, सुखदायी गुरु बन करके वे ही सबके ठाकुर, मालिक, महात्मा, स्वामीजी कहलाये हैं, अज्ञानी लोग उन्हें श्रेष्ठ मान करके उन्हीं गुरुवालोगोंके दास=शिष्य-शाखा, अनुचर, सेवक, आज्ञाकारी बन रहे हैं। तो उन्होंने अच्छा मौका पा करके लोगोंके तन, मन, धनादि सबको लूटकर हरण कर लिया। जामिनी= गुरुवालोगोंने मनुष्योंको भ्रमा करके ऐसा जमानत दिया कि, वेद-शास्त्रादिमें कहे प्रमाणसे साधना करके तुम लोग चलो, तो फिर तुम्हारे सब दुःख मिट जायेंगे, फिर तो परमानन्द पाओगे; परमेश्वरका साक्षात् दर्शन होगा, और मरकर स्वर्गादि लोकमें जाओगे। इसके लिये हम जिम्मेदार हैं या जमानत देते हैं, हमारा-विश्वास करो, सहज ही भगवान्की कृपासे तर जाओगे, इत्यादि कहकर भुला दिया है।

परन्तु, वह बात सब झूठी हुई। जीते तक ईश्वर भी नहीं मिला, परमानन्द सुख भी हाथ नहीं आया। ऐसे-ही-तैसेमें आयु भी बीत गई। न ईश्वरने ही चौरासी योनियोंके दुःखसे बचाया; और न गुरुवालोग ही कुछ काम आये। भ्रमिक जीव सब अन्तमें निराश=निराधार, निराश्रय, बद्ध होकर वासनावश चारखानीमें चले गये। आवागमनसे किसीने नहीं बचाया। अथवा खानी भागमें अर्थः—

स्त्री वही मुक्तिके समाज सद्गुण रहनीको हरण करके बन्धनोंमें बाँधनेवाली दुष्टा है। परन्तु, उसे ही गृहस्थ लोग, सांसारिक दुःखोंको हरणकर सुख देनेवाली मान रहे हैं। वही स्त्री घरमें मालकिन, श्रेष्ठ हो रही है। कामासक्त पुरुष उसी स्त्रीके दास, गुलाम हो चामके कीड़े ही बने हैं। जैसा-जैसा हुक्म स्त्री करती है, सो सब फौरन ही तामिल करके पूर्ण कर देते हैं। स्त्रीको ही रिझानेमें कोई कसर नहीं रखते हैं। इतना होनेपर भी वह स्त्री मनसे किसीके अधीनमें नहीं होती है। स्त्रीके ही कारणसे बहुतोंका सत्यानाश हो गया है। यमके समान स्त्री अपने विषय स्वार्थको पूर्ण करनेके लिये पुरुषोंको नाना तरहके दण्ड दे रही है और कुचल रही है। कर्म-कुकर्म व्यभिचार कर रही है; और जमानतरूप आधार देनेवाली बनी हुई स्त्री कि, "मैं तुम्हारे दुःख-सुखकी साथिनी हूँ; अर्धाङ्गिनी हूँ! मेरेपर विश्वास करो" इत्यादिक भरोसा देनेवाली नारी भी सुखके वक्त ही सङ्गिनी होती है; और दुःखके वक्त तो सब हट जाती हैं। अन्तमें यमरूप स्त्री तथा जमानत देकर विवाह करानेवाले पुरोहित एवं माता-पिता, भाई, पुत्र परिवारके सब लोग यहीं-के-यहीं छूट जाते हैं; मरणके वक्त कोई किसीके काममें नहीं आते हैं। उन्होंके भरोसा करनेवाले जीव अकेले ही निराश होकर देह छूटनेपर विषयाध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासको चले जाते हैं वा चले गये; और चले ही जा रहे हैं। अतएव उन सबके कुसङ्गको प्रथमसे ही छोड़कर साधु पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये॥ १५०७॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८० ॥ [चौपाई- ११ । रमैनी- १ । साखी- ७ है] ॥ ❀ ॥

१. ब्रह्म समाधि त्रिदेव लगावै * तृपित रूप अक्षय सोइ गावै ॥ १५०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्म प्राप्ति करके उसमें मिलनेके वास्ते ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन त्रिदेवोंने कर्म, उपासना, योगादिक साधना करके वृत्ति एकाग्र करके शून्य समाधि लगायी। तहाँ मनोवृत्ति या लक्ष्य स्थिर होनेसे आनन्दित हो गये, फिर प्रकाश देखा, अनहद नाद सुना, लम्बिका योग द्वारा अमृत रस चाखा, ऐसे-ऐसे अनुभव करके भासमें ही तृप्त सन्तुष्ट हो गये। समाधिसे उतरनेपर फिर उसे ही तृप्त, अक्षय स्वरूप या अविनाशी परमात्मा ब्रह्मके रूपका साक्षात् दर्शन हुआ, ऐसा कहकर बहुत महिमा गाये। सोई वाणी वेदादिमें भी लिख दिये हैं। सो ब्रह्म अक्षय, तृप्त आनन्दस्वरूप है, ऐसा गुण गाये हैं॥ १५०८॥

२. तेहि तृपित सोइ आगि समाना * जेहिसे जरै सकल अरुझाना ॥ १५०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! परन्तु, उसी नित्यतृप्त, नित्यमुक्त, निरञ्जन माना हुआ ब्रह्ममें सोई माया जगत् उत्पत्तिकारिणी इच्छा अग्निवत् आगेसे ही समायी हुई या मिली हुई है। वह इच्छा हमेशा उसमें बनी ही रहती है। जिससे सारे संसारके नरजीव इच्छा, कामना, चाहनामें नाना तरहसे जल रहे हैं वा झुलस रहे हैं। फिर अन्तमें ब्रह्म बन करके भी सकल जीव उसी बन्धनमें अरुझ गये। गुरुवालोगोंने सबोंको अरुझा दिया, जिससे भ्रम, कल्पना, विरहकी अग्निमें बिना विचार सब धाय-धाय करके जल रहे हैं॥ ॥ १५०९॥

३. संशय शोक लहरि उठि आवै * पुनि सो वाही जाय समावै ॥ १५१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्म-ईश्वरादिकी प्राप्ति करनेकी इच्छासे मनमें संशय=दुविधा, सन्देह होने लगा। शोक=चिन्ता, शोच-विचारादिकी, लहरी=सङ्कल्प-विकल्प, कल्पना-अनुमानादि बारम्बार उठ-उठ करके हृदयमें चञ्चलता व्याकुलता आने लगी। फिर सो

वही कोई एक मन-मानन्दीको दृढ़ निश्चय करके धोखेमें ही जा करके समाते हैं। भ्रममें मिलकर गाफिल हो जाते हैं; और जीव-ब्रह्म एक है कि, भिन्न-भिन्न दो हैं ? कैसे होगा ? यह सन्देह होनेसे बड़ा शोककी तरङ्ग उठ आयी, बहुत दूरतक उसमें बहे। फिर किनारे लगे, वेदादि देखे, तो वही अद्वैत ब्रह्म कल्पना या भ्रममें जाकर समाये; विवेकको छोड़कर अविवेकी पक्षपाती हुए हैं ॥१५१०॥

४. परवश जीव न सूझै पारा * अगम अथाह शब्द उच्चारा ॥ १५११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मन-कल्पनाके वश तथा भ्रमिक गुरुवालोगोंके पराये हाथोंमें बिके हुए ऐसे परवश अविचारी जीवोंको भ्रमका कुछ वारापार सूझ नहीं पड़ता है, भवपार तो होना चाहते हैं; किन्तु, पार होनेका रास्ता ही उन्हें दीख नहीं पड़ता है। वाणी कल्पनाके वशमें पड़कर ब्रह्मको ही सब कुछ सत्यवस्तु करके मान लिये हैं। परन्तु, जड़-चैतन्यमें ब्रह्मको ढूँढ़नेसे भी कहीं पार वा पता नहीं मिला, कहीं भी नहीं दिखा, तब हार मानकर गुरुवालोगोंने गम न पाकर 'अगम' कहा, थाह न मिलनेसे 'अथाह' बतलाया। "अपार, अगम, अथाह, सर्वव्यापक, निर्गुण-निराकार वह परमात्मा है !" ऐसे अनर्थ शब्दोंका उच्चारण किया है। मूढ़ लोगोंने तो उसको ही गुणगान, महिमाका शब्द समझ लिया है, बिना विचार ॥ १५११ ॥

५. तीनि लोकके द्रष्टा आपू * दृश्य सबै माया परतापू ॥ १५१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानी आप ही द्रष्टा, तीन लोकके साक्षी बने हैं। तीन गुण, तीन अवस्था, तीन देह, तीन मार्ग, तीन लोक आदि समस्त जगत्के व्यवहारोंको असङ्ग होकर देखते रहनेवाला साक्षीरूप आत्मा मैं स्वयं हूँ ! और चराचर प्रपञ्च जहाँतक देखने-सुननेमें आता है, सो दृश्य जगत्के समस्त विस्तार माया = अविद्याके प्रताप करके हो रहे हैं। मायाकी कलासे त्रिगुण हुआ, फिर सब दृश्य संसारका विस्तार हुआ है। मैं उससे सदा न्यारा रहता हूँ ! माया भी मेरे प्रकाशसे ही प्रकाशित हो रही है। मैं ही सबका आधार आत्मा हूँ ! इत्यादि प्रकारसे कहीं तो गुरुवालोग ऐसा कथन करते हैं ॥ १५१२ ॥

६. नहिं पुनि दृश्य न द्रष्टा कोई * गुमसुम आपु अकेले सोई ॥ १५१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कहींपर फिर ऐसा कहते हैं कि, मुझ आत्मस्वरूपमें यह दृश्य जगत् त्रिगुणका पसारा भी नहीं है; और द्रष्टा, साक्षी सृष्टिकर्त्ता ईश्वर भी नहीं है। एक-अनेक मुझमें नहीं सम्भवता है, बीज-वृक्ष, बन्धन-मोक्ष, ज्ञान-अज्ञान, पाप-पुण्य, विधि-निषेध, द्रष्टा-दृश्यादि कोई कुछ भी मुझ आत्मामें न कभी हुआ और न होनेवाला ही है। मैं तो अपने आप सनातन स्वयं परब्रह्म, केवल अद्वैत हूँ ! अब कुछ कहना-सुनना मुझसे नहीं होता है। ऐसा कहकर वेदान्ती लोग गुमसुम = चुपचाप, जड़वत् पड़े रहते हैं। सोई महा धोखेमें जीव अपनी खुशीसे ही गिर पड़ते हैं। निज स्वरूपको भूल करके गाफिल हो जाते हैं ॥ १५१३ ॥

७. नाहिं नाहिं सो लखेउ स्वरूपा * नहिं नाशक सो आपु अनूपा ॥ १५१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं— वास्तवमें ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या है; और जीव-ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं है; अभेद है। इससे ब्रह्ममें जगत् नहीं है; और त्रिगुण नहीं है, मन, बुद्धि, वाणी भी नहीं है, पाँच तत्त्व नहीं है, तीन देह, दश इन्द्रियाँ, पच्चीस प्रकृतियाँ नहीं हैं, पुरुष-प्रकृतिका भाव भी नहीं है, इसप्रकार द्वैत उपाधि ब्रह्ममें कुछ लेश मात्र भी नहीं है। सोई स्वयं स्वरूप ब्रह्मको लक्ष्य द्वारा लख लो ! ऐसा द्वैतको निषेध करके अद्वैत ब्रह्मको ही अपना स्वरूप लख लिये हैं। नाशक = गुरुवालोगोंने सो "नाहीं पद"को ही उपमासे रहित सर्वश्रेष्ठ अनूपम स्वयं ब्रह्म निश्चय किया है। इस बारेमें सुन्दरविलासमें प्रश्न-उत्तरमें कहा भी है; सुनिये !:—

छन्द (प्रश्न):-"मेरो रूप भूमि है कि ? मेरो रूप आप है कि ? मेरो रूप तेज है कि ? मेरो रूप पौन है ? ॥
मेरो रूप व्योम है कि ? मेरो रूप इन्द्री दश ? अन्तःकरण है कि ? बैठो है कि गौन है ? ॥

मेरो रूप त्रिगुण कि ? अहङ्कार महत्तत्त्व ? प्रकृति पुरुष किधौं ? बोले है कि मौन है ? ॥
मेरो रूप स्थूल है कि ? सूक्ष्म है मेरो रूप ? सुन्दर पूछत गुरु, मेरो रूप कौन है ? ॥"

छन्द(उत्तर):- "तू तौ कछु भूमि नाहिं, आप तेज वायु नाहिं। व्योम पञ्च विष नाहिं, सो तौ भ्रम कूप है ॥
तू तौ कछु इन्द्रिय रु, अन्तःकरण नाहिं। तीन गुण तू तो नाहिं, न तौ छाँहिं धूप है ॥
तू तौ अहङ्कार नाहिं, पुनि महत्तत्त्व नाहिं। प्रकृति पुरुष नाहिं, तू तौ स्व अनूप है ॥
सुन्दर विचार ऐसे, शिष्यसूँ कहत गुरु। नाहिं नाहिं कहत रहैं, सोई तेरो रूप है ॥"

॥ सुन्दरविलास, सांख्यज्ञानको अङ्गमें इत्यादि वर्णन किया है ॥

तहाँ सबको विनाश करके स्वयं ब्रह्म बने, ऐसे धोखेमें पड़कर हंसपदको नष्ट-भ्रष्ट करके जड़ाध्यासी हुए; चौरासी योनियोंमें ही चले गये और जा रहे हैं ॥ १५१४ ॥

८. नाशक नाशे जीवहिं भोरी ❀ त्रिगुण फाँस कलेश न थोरी ॥ १५१५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे नाना प्रकारसे लोभ-लालचमें फँसा करके जीवोंको भुला-भुला कर नाशक=गुरुवालोगोंने मुक्तिपदको विनाश कर दिया है; हंस गुणको नष्ट करा दिया है। अथवा इधर कल्पना तो जीवोंका सत्यानाश करता है; बिना विवेक नरजीव उसी ब्रह्म मानन्दीमें भूल रहे हैं; और अपने समान दूसरोंको भी भुला रहे हैं। त्रिगुण फन्दारूप भक्ति, योग और ज्ञानमें, अथवा कर्म, उपासना और योगमें तथा तत्त्वमसिकी वाणीके महाजालोंमें थोड़ा दुःखके भोग मात्रसे ही छुटकारा नहीं होता है। उसमें तो बहुत ही कष्ट-क्लेश नाना झंझट लगा ही रहता है। कभी थोड़ा-सा भी किसीको चैन नहीं मिलता है, त्रिगुण जालोंका घेरा महान दुःख-का घर ही है। परन्तु, सुखकी आशा लगा-लगाकर जीवोंको फँसाकर नाश करते रहते हैं ॥१५१५॥

९. सत्य वैद्य जियावन हेतू ❀ सो नाशक वशि भये अचेतू ॥ १५१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्में अनेक दुःख पा करके घबड़ाये हुए मनुष्योंने गुरुवालोगोंके कपटकी वाणी सुनकर वा उनके स्वाङ्गरूप भेषको देख करके उन्हें सत्य वैद्य=सच्चे सद्गुरु, सत्योपदेशदाता कल्याणकर्त्ता समझकर जीवनमें सुख पानेके लिये रक्षा, कल्याण या हित-मुक्ति प्राप्त करनेकी आशासे उन्होंकी शरणमें जाकर गुरुवालोगोंके शिष्य, सेवक या दास हुए। परन्तु, सो वे तो नाशक=काल ही निकले। सब लोगोंको अपने वश अधीन करके घेर-घारकर वाणीका नशा पिलाकर वा सुँघा करके अचेत किये, गाफिल किये। इसवास्ते सो जिलानेवाले सच्चे वैद्य सद्गुरु नहीं हुए। वे तो जहर खिला करके अचेतकर मारनेवाले काल ही बने हैं। बिना पारख सोई नाशक=गुरुवाओंके वशमें होकर सब अचेत, बेखबर, भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए हैं ॥ १५१६ ॥

१०. कीन्ह अचेत सुधि नहिं राखी ❀ देखहु परखहु मत सब साखी ॥ १५१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग ऐसा कहते हैं कि, हमारा ही सिद्धान्त सच्चा तथा असली है; वेद-शास्त्र, पुराणादि सबमें साक्षी वा प्रमाण दिया है। तुम्हें सन्देह हो, तो शास्त्र खोलकर देख लो ! शास्त्रकी बातको परखनेकी या विचार करनेकी कोई जरूरत ही नहीं है। उसे मत् परखो, वेद वाक्यके ऊपर सन्देहसे विचार मत् करो ! नहीं तो वेदद्रोही नास्तिक होओगे, इत्यादि भयानक वाणी झूठ-मूठकी महिमा सुना-सुना करके मनुष्योंको अचेत=गाफिल, विचारहीन कर दिये हैं। कुछ भी सुधि=होश, विचार-विवेको बाकी नहीं रखे या रहने नहीं दिये हैं। इस-कारणसे योगी, ज्ञानी और भक्त सबने ही जीवोंको अचेत किया है। सत्यासत्यके बोधकी सुधि किसीने नहीं रक्खी है। निज चैतन्य पारख स्वरूपका ख्याल तथा खबर किसीको नहीं रही। सब भास-अध्यास, अनुमान-कल्पनामें ही पड़कर गाफिल हुए हैं। ऋषि, मुनि, ज्ञानी, उन सबोंके सिद्धान्त, मानन्दी, मत, पन्थ, ग्रन्थ वर्तमानमें भी साक्षीरूपमें मौजूद हैं। उन्हें विचारपूर्वक देखिये ! गुरुमुख निर्णय द्वारा सत्यन्यायसे परीक्षा करिये ! फिर आपको भी सारासार मालूम पड़ जायगा।

हमने तो सबोंके मत, पन्थ, ग्रन्थोंको देखा, तथा पारख किया; वहाँ कहीं भी पारखबोध किसीमें नहीं दिखता है, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही एक सच्चे पारखी सत्य शोधक हुए। सो बीजक सद्ग्रन्थ द्वारा प्रगट होता है, तथा तबसे पारखी सन्तोंकी प्रणाली भी चलती ही आ रही है। आप भी पारखी साधु-गुरुसे सत्सङ्गमें निर्णय करके सब मतवादियोंके साक्षीरूप ग्रन्थोंको देख करके पारख करिये, फिर आपको भी यथार्थ भेद मालूम पड़ेगा ॥ १५१७ ॥

११. पारखी सबके बीजक कीन्हा * जहाँ वो जीव चीन्हावै दीन्हा ॥ १५१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब सर्व प्रथम सच्चे पारखी हुए। उस समयमें प्रचलित योगी, ज्ञानी और भक्तोंके षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्ड आदिका विस्तार उन सबोंके मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त आदिके ऊपर अच्छी तरहसे पारखदृष्टि करके सत्यन्यायसे निर्णय करके आपने जो सत्य उपदेश दिया, सोई 'बीजक' नामसे सद्ग्रन्थ प्रगट किया है। जैसे धनिक राजा, महाराजा, सेठ, साहुकारोंके यहाँपर गुप्त-प्रगट धन-सम्पत्तिका हिसाब एक बही-खातामें लिखकर टोटल लगाया रहता है। उसे 'बीजक' कहते हैं। उसपरसे सब जमा-खर्च-का हिसाब मालूम पड़ जाता है। बाकी सिल्लकका भी पता लग जाता है। तैसे ही पारखी श्रीसद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबने भी 'बीजक' नामका सद्ग्रन्थ बना करके खानी-वाणीकी समस्त मानन्दी आदि खर्च अलगकर, उसमें फँसनेवाले जीव जमाको न्यारा सत्य ठहराया है। निजस्वरूपके पारखबोधरूपी सिल्लक निकाला है; और जहाँ-जहाँपर वे बेपारखी नरजीव भूले-भटके फँसे थे, उनके सिद्धान्त जहाँ-जहाँपर जो कुछ कसर थी, सो सब परखा करके चिन्हा दिया है वा लखा दिया है। आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि कर्त्ता जीवकी कल्पनारूप मिथ्या है; उसे माननेवाले नर-जीव ही सत्य हैं, यह बोध आपने ही बता दिया है। जीव स्वयं सत्य है, अपने ऊपर कोई मालिक सुख-दुःख दाता मान करके भ्रममें जो भूले हैं, सोई जीवको बन्धन है। खानी-वाणीके सकल अभ्यासको त्यागकर निज पारखस्वरूपमें स्थिति होनेपर जीव मुक्त होते हैं; इत्यादि यथार्थ निर्णय-के उपदेश दे करके गुप्त-प्रगट भेदको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने लखाकर चिन्हा दिये हैं। सोई सत्य निर्णय 'बीजक' नामक सद्ग्रन्थमें लिखा है; और बन्दीछोरके अनुयायी बीजक ज्ञानके ज्ञाता पारखी श्रीसद्गुरु वर्तमानमें भी सोई गुरु-निर्णयका बोध दे रहे हैं। उन पारखी श्रीसद्गुरुकी ही शरण-ग्रहण करके मुमुक्षुओंको बीजक ज्ञानके निर्णय पारखबोधको पहिचानकर कल्याण कर लेना चाहिये ॥१५१८॥

॥❀॥ रमैनी, नम्बर— १४ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर— ३७ ॥❀॥

१. एक सयान सयान न होई * दूसर सयान न जाने कोई ॥ १५१९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुख] हे सन्तो ! संसारमें मनुष्यजीवोंने भ्रम-भूलमें पड़ करके कोई एक श्रेष्ठ कर्त्ता परमेश्वर, महामाया, ब्रह्मादि त्रिदेव, तथा नाना प्रकारके सिद्धान्त कायम करके मान रहे हैं। परन्तु, उन सब सिद्धान्तोंको ठहरानेवाले जीव ही नित्य-सत्य, सर्वश्रेष्ठ हैं, इसका पारख न होनेसे मनमाने अपने-अपने इष्टको सबोंने श्रेष्ठ ठहराकर मत-पन्थोंका प्रचार किया है। तहाँ किसने क्या श्रेष्ठ माना है ? सो उसीका सत्य निर्णय इस रमैनीके भावार्थमें यहाँपर दिखलाया जाता है। हे जिज्ञासुओ ! आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये ! प्रथम ब्रह्मज्ञानियोंने एक अद्वैत, निर्गुण-निराकार, निरञ्जन ब्रह्म कोई कल्पना करके उस ब्रह्म-परमात्माको सयान = सर्वश्रेष्ठ, नित्य-सत्य, सर्वशक्तिमान्, जगत्का कर्त्ता वा कारण करके माना है। परन्तु, सत्यन्यायसे पारख विचार करके देखिये, तो वह माना हुआ ब्रह्म भ्रम मात्र होनेसे सयानरूप श्रेष्ठ, सत्य कदापि हो नहीं सकता है। कल्पनाके सिवाय ब्रह्म कोई वस्तु नहीं है। कल्पना करनेवाले जीव ही सत्य श्रेष्ठ हैं। जीवोंने ही कल्पना करके कोई एक ब्रह्म श्रेष्ठ है; ऐसा माना है। परन्तु, सो वास्तवमें श्रेष्ठ नहीं है। मिथ्या अनुमान कभी श्रेष्ठ हो नहीं सकता है; और भ्रम-मानन्दीको दृढ़ करके अभ्यासी

बने जीवोंकी कभी मुक्ति नहीं होती है। दूसरा नम्बरमें ज्ञानी लोगोंने निर्गुण ब्रह्मके आश्रित रहने-वाली अचिन्त्य शक्ति मायाको जगत्कर्त्री अनुमान करके दूसरी उसी मायाशक्ति भगवतीको श्रेष्ठ आराध्य पूजनीया ठहराया है; और किसीने दूसरे ईश्वर कर्त्ताको श्रेष्ठ माना है। परन्तु, इसका भेद तो कोई जानते ही नहीं है कि, यह भी मिथ्या कल्पना ही है। जब प्रथम श्रेष्ठ माना हुआ ब्रह्म ही भ्रम है, मिथ्या है। तब उसके आश्रयमें रहनेवाली माया कैसे सत्य साबित होगी? इसलिये जगत्कर्त्री मानी हुई माया भी मिथ्या भ्रम ही है; और जड़-चैतन्यरूप जगत् तो अनादि कालसे ही स्वतः है; कोई चराचर जगत्के कर्त्ता हो नहीं सकते हैं। बिना पारख यह भेदको कोई जान नहीं पाते हैं। कोई-कोई बिरले ही पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गसे परखकर यथार्थ सत्य भेदको जान पाते हैं। वे एक ब्रह्म, और दूसरी मायाको कभी श्रेष्ठ नहीं मानते हैं। मिथ्या मानन्दीमें पड़े हुए नरजीव कभी मुक्त हो नहीं सकते हैं। वे बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं, पारखी सन्तके बिना यह भेद कोई नहीं जानते हैं ॥ १५१९ ॥

२. तीसर सयान सयानहि खाई ❀ चौथे सयान तहाँ ले जाई ॥ १५२० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! तीसरे नम्बरमें त्रिगुणी मनुष्योंने भक्ति, योग और ज्ञानके मार्ग चलाने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशको सर्वश्रेष्ठ कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, सुख या मुक्तिदाता करके मान लिया है। सो उन ब्रह्मादिकोंने त्रिकाण्ड वेद वाणी-जाल तथा खानी-जालोंमें बहुविधिसे मनुष्योंको फँसा करके श्रेष्ठ सत्य चैतन्य नरजीवोंको भ्रमा करके हंसगुण-लक्षणोंको हरण करके खा लिया था। बुद्धि भ्रष्टकर निकम्मा बना करके जीवोंको कल्पना और विषयकी खाईरूप गड्ढेमें गिरा दिया वा ढकेल दिया, बद्ध कर दिया। अथवा लोभी, कामी, क्रोधी लोगोंने सयानेपना दिखा-कर श्रेष्ठ चैतन्य जीवोंकी बुद्धि-विचारको खाकर नष्ट कर दिया है। उन तीनोंने बहुत प्रकारसे जीवनको बर्बाद कर दिया है। विषय भोगोंको ग्रहण करके चौरासी योनियोंके गर्भ कुण्डमें जीव चले गये और चले जा रहे हैं; और चौथे नम्बरमें ब्रह्मा या पण्डित लोगोंने चार वेदोंको प्रगट करके बड़े सयाने या श्रेष्ठ बनकर चार वर्ण, चार आश्रम, चार मार्ग, चार लोक, चार सिद्धान्त, चार फल, चार मुक्ति, इत्यादि जञ्जाल प्रगट करके श्रेष्ठ जीवोंको तहाँ धोखेमें ले जा करके भ्रमाया है। जहाँ कुछ नहीं, शून्य है, तहाँ आकाशमें सात स्वर्ग बतलाकर तथा आकाशवत् व्यापक ब्रह्म, ईश्वर वर्णन करके धोखा भ्रम-चक्रमें ले जाकर डाल देते हैं; और तहाँ भ्रमरगुफामें योग समाधि लगाकर शून्यमें जीवको ले जाकर गाड़ते हैं; और जहाँ-तहाँ तीर्थादिमें बाहर भटकाते हैं। अन्तमें अध्यास ले करके जीव चारखानी चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं ॥ १५२० ॥

३. पचयें सयान जो जानेउ कोई ❀ छठयेंमा सब गैल बिगोई ॥ १५२१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! पाँचवाँ नम्बरमें जगत्के प्रपञ्ची पञ्च लोगोंने पञ्च तत्त्वोंको ही विराट् परमात्मा करके माना है। कोई गन्धवत् ईश्वरको मानकर पृथ्वीके भाग अष्ट प्रतिमा पूजामें लगे हैं। कोई रसवत् निश्चय करके जलके भाग तीर्थ स्नान और तीर्थ परिक्रमासे मुक्ति मान रहे हैं। कोई रूपवत् समझकर अग्निके भाग ज्योति-प्रकाश देखकर भूल रहे हैं। कोई स्पर्शवत् अनुमान करके वायुके भाग आनन्दमें मग्न हो रहे हैं; और कोई शब्दवत् ब्रह्म मान करके अनहद-नाद सुननेमें लगे हैं। कोई निर्गुण आकाशवत् ब्रह्म कल्पना करके भूलमें पड़े हैं। इसप्रकार जड़ पाँच तत्त्वोंको ही श्रेष्ठ ईश्वर समझकर लक्ष्य लगा रहे हैं। परन्तु, जड़ पाँच तत्त्वोंमें कहीं कुछ भी चैतन्य कलाका गुण-लक्षण नहीं है। फिर वह श्रेष्ठ मुक्तिदायी कैसे होगा? परन्तु, अज्ञानी मनुष्य पारखदृष्टि न होनेसे यह नहीं जानते हैं कि, सबको माननेवाले जीव ही सर्वश्रेष्ठ हैं; जीवके बिना जड़तत्त्व श्रेष्ठ हो नहीं सकते हैं। इसीसे अज्ञानी जीव कोई पञ्च विषयासक्त हो रहे हैं, कोई पाँच तत्त्वोंको ही परमेश्वर मान करके पञ्च कोशोंके व्यवहारमें भूले पड़े हैं। बिना पारख इस भेदको कोई

नहीं जानते हैं। छठवाँ नम्बरमें षट् शास्त्री, षट् दर्शनी आदि लोग सब यावत् मनुष्य जीव पञ्च तत्त्वके स्थूल देहके भीतर रहनेवाला छठवाँ मनके जालमें पड़े हैं; मन-मानन्दी करके कोई पञ्च विषय भोगोंमें लगे, मनुष्यपदसे बिगड़ गये हैं। कोई मनःकल्पनासे वाणी रचना करके ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, देवी, देवता, लोक, धाम, इत्यादि अनेकों फन्दाओंमें अरुझ करके सब जीव निज स्वरूप हंसपदको भूल गये हैं। सत्सङ्ग, सत्य-विचारादि हंसगुण-लक्षण मुक्तिका मार्ग त्याग करके कोई खानी भागमें और कोई वाणी भागमें जहँड़ा गये हैं। इसीसे नरजन्मको व्यर्थमें बिगाड़ करके बर्बाद किये हैं। अध्यासवश फिर पशु आदि खानीमें चले गये और जा रहे हैं। अर्थात् मन-मानन्दीमें पड़े हुए सब जीव हंसपदको बिगाड़ करके चौरासी योनियोंमें चले गये या जाते हैं ॥ १५२१ ॥

४. सतयाँ सयान जो जानहु भाई ! ❀ लोक वेदमों देउँ देखाई ॥ १५२२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! सातवाँ नम्बरमें जीवकी स्थितिकी भूमिका पारख-पदके रहस्यको जो जानते हैं, सो पारखी सन्त प्राणी भरमें सबसे श्रेष्ठ सर्वोपरि शिरमौर होते हैं। हे भाई! जिज्ञासु जनो! सुनो! सातवाँ सत्य पारखपद ही जीवको ठहराव होनेकी भूमिका है। संसारमें सर्वश्रेष्ठ नित्य, सत्य, अखण्ड वस्तु जो कुछ है, सो जीव ही है। उस श्रेष्ठ वस्तुको जो तुम लोग भी यथार्थ जानना चाहते हो, तो सुनो! पूर्वोक्त छहों प्रकारके प्रपञ्चोंको जानने-माननेवाले जनैया जीव उन छहोंसे न्यारे सप्तम मौजूद हैं कि नहीं? जीव भी उन छहोंकी ही भीतरी चीज होता, तो फिर उनको जानता ही कौन? दृश्यसे द्रष्टा सदैव न्यारा रहता है। यथार्थ विवेक करके इस बातको जान लो! इतनेपर भी तुम्हारे ध्यानमें बात नहीं आयी, तो मेरी तरफ देखो, लक्ष्य करो! लोक-वेदमें मैं तुम्हें इसको प्रत्यक्ष प्रमाणसे दृष्टान्त दिखला करके बता देता हूँ! प्रथम लोक=संसारमें खानीका पसारा देखो! पिता-माता, स्त्री-पुत्र, कुल-कुटुम्ब, घर-द्वार, राज-काज आदि दुनियाँके यावत् प्रपञ्च चलाने वाले जीव ही श्रेष्ठ नजर आ रहे हैं। जीवके होनेसे ही एक-दूसरेके सम्बन्धसे कार्य चल रहा है। जीवकी सत्तासे ही काया-माया सुन्दर लग रही है। नाना व्यवहार लेन-देन, मिलन-बिछुड़न, हर्ष-शोक, आदि जीव करके ही सब हो रहे हैं। जीवके बिना यह कोई भी कार्य नहीं होता है; और लोक-लोकान्तर, परलोक, सात द्वीप, नौ खण्ड जहाँ देखो, सब जगह जीव ही प्रमुख कार्यकर्त्ता दिखाई दे रहे हैं। यह खानी भागमें तुम्हें दिखलाया। अब वाणी भागमें भी देखो! वेद=चार वेदरूप वाणी अक्षर समूहोंकी नरजीवोंने ही कल्पना करके रचना की है। शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबल आदि समस्त ग्रन्थोंको और पन्थोंको मनुष्य जीवने ही बनाया है। फिर वेदादिके प्रमाणसे ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, देवता सात लोक, चौदह भुवन, सात तबक, और अनेकों विभिन्न सिद्धान्त आदि सबको भी नरजीवोंने ही कल्पना करके प्रगट किया है। जीवके बिना वेदादि वाणी तथा नाना मत कौन प्रगट करेगा? ऋद्धि-सिद्धि, करामात, मन्त्र-सामर्थ्य आदि सबकी महिमा नरजीवोंने ही बढ़ायी है। षट् दर्शन छियान्नवे पाखण्ड आदिका विस्तार सब नरजीवोंसे ही हुआ है; और हो रहा है। इसप्रकार 'लोक' और 'वेद' दोनोंमें सब जगह दृष्टि पसार करके देखो! जीवसे ही सब व्यवहार हो रहे हैं। सो मैंने खुलासा करके तुम्हें यहाँपर दिखला दिया है! तुम भी सत्यासत्यका निर्णय करके परीक्षा करो! और विषयासक्ति तथा कल्पना भ्रमको त्यागकर निज स्वरूपके पारख बोधको प्राप्तकर स्थिर हो जाओ! बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाओ! नित्य-सत्य, अविनाशी, अखण्ड स्वयं स्वरूप श्रेष्ठ जीव ही है; ऐसा पारख करके जान लो! ॥१५२२॥

साखीः— बीजक वित्त बतावै ❀ जो वित्त गुप्ता होय ॥
[२७६] ऐसे शब्द बतावै जिवको ❀ बूझै विरला कोय ॥ १५२३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! यहाँ पहले दृष्टान्त सुन लीजिये! फिर बादमें इसका सिद्धान्त बतलावेंगे। धनिक वर्ग राजा लोग तथा सेठ-साहुकारोंके यहाँपर बहुत

आमदनी धन-सम्पत्ति होती है। उसका हिसाब जमा, खर्च और बाकीका टोटल वे लोग अपने यहाँ बही-खातेमें लिख करके रखते हैं। उसको 'बीजक' वा बिल, बही कहते हैं। कीमती वस्तु रत्न आदि रखी हुई जगहोंका परिचय बही-खातामें सङ्केतसे लिखा रहता है। जिसे उसके भेदका जानकार लोग ही समझ सकते हैं। दूसरे सब कोई नहीं समझ सकते हैं। भेद जाननेवाले ही बीजकके इशारोंसे ही गुप्त छिपा हुआ धन भी आशानीसे निकाल देते हैं। इस बारेमें एक कथा आयी है; आप लोगोंके बोधके वास्ते सो दृष्टान्त भी यहाँपर लिख देता हूँ! सुनिये!:—

कथा वर्णनः— कोई एक महाधनवान् साहुकार था, उसने व्यवहार कुशलतासे अनेक चतुराई करके बहुत-सी धन-सम्पत्ति, रत्न, खजाना इकट्ठा किया था। उसके दो पुत्र थे; दोनों ही बुद्धिहीन कुसङ्गी नालायक हो गये थे। धनिक सेठ वृद्धावस्थाको प्राप्त हो चुका था; एक दिन बूढ़ाने मनमें विचार किया कि, मेरे ये दोनों पुत्र मूर्ख हैं, मेरे पीछे ये नालायक लोग सारी सम्पत्तिको उड़ाकर बर्बाद कर देंगे। इससे कोई उपाय द्वारा सारे खजानाको छिपा करके रख दूँ, तो अच्छा होगा। जिसमें आपत्ति कालमें पुत्रोंको यह धन काममें आ जावेगा। यह विचार निश्चय करके उस सेठने गुप्त रीतिसे रातमें बहुत सारी धन-सम्पति जमीनमें एक ठिकानेमें गाड़ दी; और बही-खातारूप बीजकमें एक जगह इसप्रकार लिख दिया कि— "बेटा हीरालाल! मैंने अपनी कमाईका मूलधन साठ करोड़के खजानाको सुरक्षाकी दृष्टिसे अपने शिव मन्दिरके गुम्बजके अर्ध शिखरपर शुभ मिति वि० सं० १००१ फाल्गुन शुदी, पञ्चमीके दिन मङ्गलवारको दश घड़ी, तीस पला बीतनेपर सुव्यवस्थित रीतिसे रख दिया है। मेरे बाद अगर कभी तुम्हें गरीबी आ पड़े, धनकी जरूरत हो, तो उसी दिन तुम अर्ध गुम्बजमेंसे धन निकाल लेना, और शुभकार्यमें धन खर्च करना, फजूलमें धन बर्बाद नहीं करना, इत्यादि" बहीमें गुप्त धन रखा हुआ इशारा उसप्रकार लिखकर बूढ़ा सेठ निश्चिन्त हो रहा। कुछ समयके बाद वह बूढ़ा सेठ एकाएक मर भी गया। पश्चात् मूर्ख पुत्रोंने धीरे-धीरे कुछ महीनोंमें ही कुमार्गमें धन उड़ा करके घरकी सारी सम्पत्ति बर्बाद कर दी। सारी जायदाद बेंच डाली, सो धन भी कुकर्ममें उड़ा दिया, सब वस्तु बेच-बेच करके खा गये। रहनेके एक घर सिवाय और कुछ भी नहीं रहा। अब उन्हें जाति-बिरादरीके लोग भी तुच्छ करने लगे। खाने-पीनेके लिये भी गरीब-दरिद्र मोहताज हो गये। उनसे कुछ धन्धा भी नहीं होता था, बापकी कमाई जो कुछ मिली, सो सब उड़ा चुके थे। किसी तरहसे मुश्किलसे पेट भरके दिन काटते थे। ऐसी अवस्थामें उस वणिक पुत्रने मनमें विचार किया कि, हाय! हमारे बड़े अभाग्य हैं, हम महाधनिक करोड़पति सेठके पुत्र होकर भी गरीब हो गये! क्या करें? हमारे पिताजी तो बड़े धनाढ्य थे, देखें कहीं किसीको उधार दिया होगा, तो उससे लेकर काम चलावेंगे। ऐसा सोचकर पिताके जमानेका बही-खाता पलटाकर देखने लगा। पेज उलटाता-पलटाता गया; सबमें जमा-खर्च बरोबर लिखा था, सिल्लक कुछ नहीं निकली; और जो कुछ द्रव्य सिल्लक थी, सो तो उसने खर्च कर ही चुका था। ऐसा लगातार कई दिन तक वह बही देखता गया। आखिरमें एक दिन पुराना बीजक, बही उसे मिली; उसे भी देखता गया। उसी बहीके पेजपर बीचमें एक जगह उपरोक्त बात "बेटा हीरालाल मैंने०"···इत्यादि वाक्य लिखा हुआ पिताके हस्ताक्षर सहित पढ़ा, तब तो वह खुशीके मारे नाचने लगा; उछल पड़ा। उसने समझा अब तो सब काम बन गया, गरीबी दूर हुई, बहुत सम्पत्ति अपने हाथ लग गई। फिर भाईसे सलाह करके रातोंरात शिवालयका गुम्बज खोद करके फोड़कर गिराया; परन्तु, वहाँ कुछ भी रकम नहीं मिला। तब नीचे गड़ा होगा, ऐसा सोचकर दूसरे दिन दूसरे साहुकारको बही-बीजक दिखाकर कुछ रुपया ऋण ले आया, फिर दिनमें मजदूर लगाकर सब मन्दिरके दिवाल गिराने लगाया; और खोदते-खोदते नीचे नींव तक खोद डाला, तो भी कुछ रकम हाथ नहीं लगी। मन्दिर भी उजाड़ हो गया। कूँआँके सरीखी खोदाई होनेसे खण्डहर मात्र रह गया। यह देख करके पास-पड़ोसके

लोग उसे गाली देने लगे; निन्दा करने लगे। यह लड़का हीरालाल तो बड़ा पाजी, नालायक निकला, देखो! बाप-दादाका बनवाया हुआ मन्दिर भी दरिद्रीने खोदा करके ढहा दिया। क्या कङ्कर-मिट्टी खानेको ऐसा किया? यह तो कुलमें कलङ्क ही पैदा हुआ। सारा धन बर्बाद करके भी न चेता, अब रहा-सहा धर्मको भी नष्ट कर दिया; बड़ा पापी निकला। इसका तो मुँह भी देखना नहीं चाहिये, इत्यादि प्रकारसे कुटुम्बियोंने तिरस्कार किया। इससे उसको और भी बड़ा भारी धक्का लगा; चिन्ता, शोक हो गया; और कई लोगोंको उसने वह बीजक दिखलाया, जो कि, उसके पिता सेठके हाथका लिखा था। लोगोंने कहा, तुझे मूर्ख जान करके ही ऐसा लिख दिया होगा; और कोई कहने लगे कि, सेठ बड़े पूँजीपति तो थे, किन्तु, इतनी बड़ी रकम गुम्बजमें रखनेको लिखा है, सो इसमें कोई बड़ा रहस्य होगा, मगर कुछ जाननेमें नहीं आता है, इस बेवकूफने तो खाली गुम्बज ही नहीं सारा मन्दिर ही बिगाड़ दिया, तो भी कुछ हाथ नहीं लगा, इसका ग्रह ही बिगड़ा है, इत्यादि अनेक बातोंकी चर्चा होती रही। हीरालाल तो माथा पीटकर रोता रह गया। ऐसे कई दिन गुजर गये। एक दिन मृत सेठके गुरु महात्मा रामत करते हुए उस नगरमें निकल आये, उन्होंने वहाँकी हाल-चाल पूछा; फिर उस सेवक सेठकी खबर पूछा, तो मुहल्लेके लोगोंने बतलाया कि, महाराज! उस धनपति सेठको मरनेके तो करीब पाँच वर्ष हो गये होंगे। उसके पुत्र हीरालाल और पन्नालाल बड़े बदमाश, कुलाङ्गार, दुष्ट, धर्मद्रोही निकले हैं। उन्होंने बापकी कमाई सारी सम्पत्तिको तो कुकर्ममें उड़ाके बर्बाद ही कर दिया, और जायदाद जमीन सब भी बेंच चुके हैं। सबसे बड़ी भारी दुःखकी बात तो यह हुई कि, परम्परासे पूजा होता चला आया हुआ शिव-मन्दिरको भी खोद-खाद करके चौपट मैदान कर दिया। पापियोंने देवताको भी दुःख दिया, मन्दिरको भी उखाड़ फेंका, क्या कहें बाबाजी! ऐसे दरिद्र निकले हैं कि, कुछ कहा नहीं जाता है। शर्मके मारे अब वे तो मुँह छिपाये रहते हैं, इत्यादि खबर सुनाया। महात्माजी लोगोंकी बात सुनकर उसके घरमें मिलनेको आये। उस वक्त हीरालाल अपने आँगनमें टूटी-फूटी खाटपर बैठा, चिन्तासे व्याकुल होता हुआ उसी बीजकको देखकर किश्मतको ठोंक रहा था; पछता रहा था। पिताजीके गुरु साधुजीको आते देखकर खड़ा हुआ, काँपता हुआ जाकर उनकी चरण-वन्दना किया। फिर आसन लगाकर बैठाया, महात्माके हाल पूछनेपर वह तो रो दिया। तब अपने कुकर्म फजूलखर्चीपर पछता रहा था। उसे धीरज बँधाकर सन्त-महात्माने हाल पूछा, तो उसने विस्तारपूर्वक आद्योपान्त अपनी रामकहानी हाल-खबर कहकर सुनाया। अपनी करनीपर दुःख प्रगट करके पछताया; और बीजक मिलनेका तथा मन्दिर खोदाई करके कुछ न मिलनेका हाल भी बतलाया। तब सन्तने कहा कि, वह 'बीजक' कहाँ रक्खा है, जरा मुझे दिखा तो सही! उसमें क्या लिखा है, मैं देखूँ! झटपट बीजक-बही ला करके उसने महात्माके हाथमें दिया। सन्तने उसे पढ़कर विचार किया, तो उन्हें बीजकमें लिखी हुई बात सब सही मालूम पड़ी। दिन-मानका हिसाब लगाया, तो उस वक्त पौष महीना चल रहा था, सन्तने कहा— तूने इतनी जल्दी मन्दिरको क्यों खोद करके गिरा दिया? देख, इसमें तो फाल्गुन शुदी पञ्चमीको रखने और उसी दिन निकाल लेनेकी बात लिखी है। यह बीजककी बात सब सच्ची है। बीजकका लेख कभी झूठा नहीं हो सकता है। साठ करोड़ रुपये इसी मन्दिरके अर्धगुम्बजमें गुप्त रीतिसे रक्खे हुए हैं। परन्तु, मन्दिर तोड़नेका तो कुछ भी काम नहीं था, अब फिर मन्दिर पूर्ववत् वैसे ही ऊँचा तैय्यार होना चाहिये, तब वह सब धन मिलेगा; और एक बड़ी बात यह भी है कि, आजसे तू सत्कर्म-सदाचार, सत्सङ्ग-सद्विचार द्वारा धर्म पालन करके जीवन पर्यन्त चलनेकी दृढ़तासे प्रतिज्ञा कर! और पूर्वकृत अपराधके लिये पश्चात्तापरूपी प्रायश्चित्त कर! तभी वह धन-राशि मिल सकेगी। देख! तेरे पिताके हस्ताक्षरमें भी यही बात लिखी है कि, सत्कार्यमें धन लगाना

चाहिये। अब बोल! तेरी क्या राय है? तब तो वह रोता हुआ सन्तके चरणोंमें गिर पड़ा; और बोला— अब मैं अवश्य कान पकड़ करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि, आजसे जन्म पर्यन्त धर्मपूर्वक जीवन बिताऊँगा; आपकी कही हुई सब बातें मैं स्वीकार करता हूँ! मुझे वह धन-राशि बता दीजिये! मैंने मूर्खतासे तो यही समझा था कि, लिखे प्रमाण धन गुम्बजमें ही होगा; उसे खोद करके रातोंरात निकाल लूँगा, उसके लिये दिन-मानकी क्या जरूरत है? परन्तु, उस मेरी आशापर पानी फिर गया; काम उलटा हुआ। अब मेरे भाग्यसे आप कृपालु गुरुदेव मिल गये हैं, मैं आपके शरणागत हूँ, मेरा बेड़ा पार कर दीजिये! आपकी सब आज्ञाको मैं पूर्णरीतिसे पालन करूँगा, इत्यादि उसने विनय पूर्वक कहा। सन्तने कहा— ठीक है; और अब ऐसा कर! अभी तो वह तिथि आनेमें दो महीनेसे ज्यादा ही दिन बाकी हैं, तब तक यह मन्दिर किसी प्रकार भी हो, पहले सरीखा बनवा ले! हीरालाल बोला— महाराज! मेरे पासमें तो एक पैसा भी बाकी नहीं है; मुझे ऋण भी कोई नहीं देता है, पहिले लिया हुआ ऋण फेरना भी मुश्किल हो रहा है। अब कहिये! मैं क्या करूँ? कैसे करूँ? सन्तने कहा कि— मत् घबड़ाओ! तेरे बीजककी बात तो सोलहों आना सत्य है। अभी तेरे पासमें जो मकान बाकी है, उसे ही रहेन रखकर साधारण रीतिसे मन्दिर बनाने पूर्ति रुपये उधार ले लो; फिर बादमें रुपये चुका देना; और फिर घर छुड़ा लेना। ऐसा सलाह करके किसी सज्जन-साहुकारके पास उसे ले जाकर तीन सौ रुपये ऋणमें लेनेकी व्यवस्था करा दिया। फिर उसे मन्दिर बनानेके काममें लगाकर साधु-महात्मा अपने कुटीमें चले गये; और उससे उक्त तिथिके दो-चार रोज पहले आकर उन्हें ले जानेको बोलते गये। इधर हीरालालने मन्दिर बनवाना शुरू करा दिया। कब समय पूर्ण होगा, कब वह तिथि आयेगी? इसी चिन्तामें वह पड़ा था। एक-एक रात बितानेमें एक-एक वर्षके समान भारी जाता था। किसी प्रकार वैसे ही साधरण रीतिसे मन्दिर बनाकर तैय्यार हुई। फाल्गुन वदी भी बीता, तब बड़े उत्साहसे हीरालाल महात्माके यहाँ जाकर अनुनय-विनय करके उन्हें अपने घर ले आया। फिर पूजा करके सम्मानके सहित रक्खा। तदनन्तर महात्माने मन्दिरका आकार-प्रकार तथा ऊँचाई-चौड़ाई चौतरफ घूम-फिर कर देखा। तहाँ सङ्केत-की भूमिका तलाश करते रहे। इसी बीच पञ्चमी तिथी भी आई। उसी दिन बड़ी धूम-धामसे उत्सव पूजा-पाठ हुआ। आठ घड़ी दिन बीतनेपर महात्माने जाकर गुम्बजकी छाया कहाँपर पड़ती है, सो देखा; और वहाँ आस-पासमें छड़ीसे ठोंक-ठोंककर देखते गये। एक जगहमें पत्थर गड़ा हुआ निशानी भी मिला; वहीं खजानाका चिह्न था, सो पूर्ण पता लगा पाया। फिर दश घड़ी, तीस पला बीतनेपर सेठके पुत्र हीरालाल और पन्नालालको भी बुलाया, तब महात्माने कहा— विचार करके देखो! मन्दिरका अर्ध गुम्बज इस वक्त कहाँपर है? उन लोगोंने कहा— महाराज! उसी ऊपरवाले गुम्बजको ही हम सब देखते और जानते हैं; और दूसरा अर्ध गुम्बजका अर्थ हम नहीं जानते हैं। अब आप ही कृपा करके बतला दीजिये। तब महात्माने उन्होंको उस जगहमें ले जाकर बतलाया, जहाँपर कि, भूमिमें ऊपरी गुम्बजकी वैसी ही परछाहीं पड़ रही थी। उन्हें बतलाया कि, देखो! यही अर्ध गुम्बज कहलाता है। गुम्बजका पूर्ण आकार-प्रकार छायामें उतर आया है कि, नहीं? यहींपर धनराशि रखी हुई, असली गुम्बज है, समझा! इधर आओ, देखो! यहाँपर यह पत्थरकी गड़ी हुई निशानी भी है। इस जगहपर खोदो! यहींसे बीजकमें लिखी हुई सब धन-राशि तुम्हें मिलेगी। उन्होंने वहाँपर खादना शुरू किया; थोड़ी मिट्टी हटानेपर नीचे पत्थरकी फर्सी मिला करके बिछी हुई थी। उस फर्सीको उखाड़ा, तो नीचे तहखाना बना हुआ था। वहाँपर घड़ोंमें रत्न, जवाहरात, सोना, चाँदी आदि कीमती वस्तु ढेर-की-ढेर बहुत-सी रक्खी थी, सो निकल आई। वह सब हिफाजतसे ले जा करके घरमें रक्खा; और गिनती करनेपर बीजकमें लिखे मुताबिक सब सम्पत्ति पूरी-पूरी उन्हें मिल गई। तब हर्षसे गद्-गद् होकर महात्मा-गुरुके

चरणोंमें पड़कर हर्षाश्रु बहाया। गुरुकी बड़ी कृपा उपकार मानकर अनेकों धन्यवाद दिया; स्तुति-प्रार्थना किया। महात्माने भी उन्हें सत् शिक्षा दे सत्कर्म करते हुए जीवन बितानेको चेता करके उन्हें धर्ममार्गमें लगा दिया; फिर वहाँसे विचरते हुए अन्यत्र चल दिये। तबसे उन सेठ पुत्रोंने भी गुरु वचनको पूरा-पूरा पालनकर उपकार मानते हुए सत्कर्मके सहित बाकीके जीवन सुख पूर्वक बिताया। सबोंके कर्ज चुका दिया; और दान-पुण्यादिमें अधिकांश धन लगा करके फिर सुयश-पुण्यके भागी हुए।

यहाँ तक तो घटनारूप दृष्टान्तकी कथा कही गयी। अब इसको सिद्धान्तमें घटा करके बतलाया जाता है, सुनिये! "बीजक वित्त बतावै०····· ···" कथामें जैसे गुप्त गड़ा हुआ धनका इशारा बीजक बहीमें बताया था। परन्तु, उस भेदको जाननेवाले गुरु महात्माके बिना और किसीने भी बीजक देखकर भी धनके ठौर-ठिकानां जान नहीं सके। महात्मा गुरुने ही उसका पूर्ण भेद जानकर बतलाया। तब जाकर मुश्किलसे कहीं धन मिला। नहीं तो अज्ञानी लोग बीजकको ही झूठा समझ रहे थे। पश्चात् सबको खातिरी हो गई थी कि, बीजक सच्चा है। तैसे ही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! बीजक नामका यह जो 'सद्ग्रन्थ' बना है, सो हमारा अपरोक्ष अनुभवका कथनरूप वचनका संग्रह है। बीजक सद्ग्रन्थको ही "सत्यशब्द टकसार" या "पारखज्ञानका भण्डार" भी कहते हैं। 'वित्त' कहिये मूलधनरूप चैतन्य जीव जमा है। वाणी-खानीके सब प्रपञ्च जड़ाध्यास, मानन्दी आदि खर्च नाशवान् हैं; और सत्य, विचार, शील, दयादि सद्गुण-लक्षण हंस रहनी धारण करना बाकी रहा है। वे ही मुक्तिकी साधनारूप असली धन हैं। अनादि कालसे अध्यासी होता हुआ समयान्तरमें जीवोंका जन्म-जन्मान्तर व्यतीत हो चुका है। जड़ाध्यासके महान आवरणमें सो सत्य चैतन्य जीव ढँका पड़ा है; गुप्त हो रहा है; और गुरुवालोगोंने भ्रम-कल्पनामें लगा करके तथा स्त्रियोंने विषयोंमें भुला करके और भी जीवोंको ढँक रही हैं वा छिपा रही हैं। सो सबका खुलाशा, बन्धन-मुक्तिका भेद खानी-वाणीका पारख, नारी और गुरुवाओंका प्रपञ्च, कपट, ठगाई आदि सबका भेद सत्य निर्णय करके 'बीजक' नामक सद्ग्रन्थमें बतलाया गया है, सो इशारा करके ही बीजकमें जमा-खर्च और बाकीके भेदको लखाया है। परन्तु, बेपारखी मूढ़ लोग बीजक सद्ग्रन्थ पढ़ करके भी पूर्ण रहस्य कुछ भी समझ नहीं पाते हैं। बल्कि, अर्थका अनर्थ करके उलटा ही समझ बैठते हैं। जैसे— "वेद कितेब कहा किन? झूठा, झूठा जो न विचारे॥"— वेद कितेब किसने कहा? स्वार्थी झूठे गुरुवालोगोंने कहा है। जो सत्यासत्यका यथार्थ विचार नहीं करते हैं, सो सब झूठे हैं। यही इस पदका पूरा मतलब है। परन्तु, ऐसा न समझकर वञ्चकलोग क्या कहते हैं कि, वेद-कितेबको किसने झूठा कहा, वह तो सच्चा है। उसका विचार न करनेवाला ही झूठा है। ऐसी उलटी समझ रखते हैं। इसीसे उन्हें कुछ सत्यसारका बोध ही नहीं होता है; और "राम नाम भजु, राम नाम भजु, चेति देखु मन माँही हो!॥"— "राम नाम बिनु, राम नाम बिनु मिथ्या जन्म गमाये हो!॥" और- "कहहिं कबीर भजु शारङ्ग पानी॥"— इत्यादि वाक्यमें "भजु" शब्द निषेध सूचक है। भागना त्यागना, तोड़ना ही वहाँपर मुख्य अभिप्राय है। परन्तु, गुरुवालोग उसका अर्थ भजन, स्मरण, कीर्तनादिकी तरफ विपरीत भावसे लगा करके अबोध मनुष्योंको भ्रमाकर ठग रहे हैं। इसवास्ते— "जैसे मदपी गाँठि अर्थ दै। घरहुकि अकिल गमाई हो!॥"— कल्याण तो किसीके हाथ नहीं लगता है, व्यर्थ धोखेमें पड़कर मनुष्य जन्मको भी बर्बाद करते हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके गुरुमुखसे पढ़े बिना मनमाने बीजक ग्रन्थको पढ़नेवालोंकी जैसे उपरोक्त दृष्टान्तमें वणीक-पुत्रकी दुर्दशा हुई थी, ऐसे ही दुर्दशा होती है। बीजक सद्ग्रन्थ तो सत्य निर्णयको बता रहा है। परन्तु, उसे समझनेवाले पारखी श्रीसद्गुरुके बिना यथार्थ भेद समझनेमें किसीको नहीं आता है। पारखी श्रीसद्गुरु-

के मुखारविन्द द्वारा अर्थको श्रवण करके बीजक सद्ग्रन्थका अध्ययन या पठन जिन्होंने किया है, सोई पारख बोध-विचारमें प्रवीण हो करके जो कुछ भी मोटी-झीनी मायाका जाल-बन्धन है, सो सब ठीक-ठीकसे समझ लेंगे; और स्थूल-सूक्ष्म देहादि सङ्घातमें सम्मिलित होकर छिपा हुआ या बहुविधि आवरणसे ढँका हुआ निजरूप अमूल्य धन जीव-जमाको जो पारखी हैं, सोई विवेक करके अलगकर जान पाते हैं। बीजक सद्ग्रन्थके बोधसे वे ही पूर्ण लाभ उठाते हैं। निज स्थितिमें अटल हो जाते हैं। पारखी साधु-गुरु ही अबोध नरजीवोंको जिज्ञासु जान करके बीजकके सार-शब्द निर्णय यथार्थ गुरुमुख वाणी सत्यशब्द टकसारको सत्सङ्गमें भलीभाँतिसे कहकर बतलाते वा समझाते हैं। सत्योपदेश देकर ऐसे सारशब्द बतलाते हैं कि, "हे जीव! तू ही सबका जनैया, मानन्दी करनेवाला सबसे न्यारा सत्य जमापद है; और ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, स्वर्ग-लोकादिकी तूने ही कल्पना की है। तूने ही पञ्च विषयादि भोगोंको भी विस्तार किया है; परन्तु, वह खानी-वाणीका सब भाग खर्च तुझे बन्धनरूप है। अतएव उसे परख करके परित्याग कर! बाकी हंस-रहनी युक्त निज स्वरूपमें स्थिर होकर मुक्त हो जाओ!" इत्यादि इसप्रकारसे बोध देकर बीजक सद्ग्रन्थके प्रमाणसे पारखी सन्त बतलाते हैं, समझाते हैं, भ्रम मिटाते हैं। परन्तु, वैसा निर्णय सब कोई समझ नहीं पाते हैं वा सत्य निर्णय सबको अच्छा नहीं लगता है। लाखों-करोड़ोंमें कोई-कोई एक-दो बिरले ही सारग्राही मुमुक्षु मनुष्य होते हैं, वे ही कोई पारखी श्रीसद्गुरुके गुरुमुख निर्णय पारख बोधको समझकर बूझेंगे। श्रीसद्गुरुके बतलाये मुताबिक धीर, गम्भीर हो शील-दयादि सद्गुणोंको अपनेमें धारण करके सत्य साधना द्वारा भ्रम-भूल आसक्तिको खोदकर या निकाल करके फेंककर शुद्ध चैतन्य निज स्वरूप स्थिति जीवन्मुक्तिरूपी महान धन-सम्पत्तिको पा करके कृतकृत्य हो जाते हैं। देह रहे तक श्रीसद्गुरुके उपकारका गुणानुवाद वे गाते रहते हैं। संक्षेपमें अर्थ ऐसा है कि—

जो चेतन वित्त गुप्त हो करके देहादिक आसक्ति और वाणी कल्पनामें ढँका पड़ा है, उस अमूल्य धन, रत्नरूप स्वयं स्वरूपका परिचय सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कथित बीजक सद्ग्रन्थ इशारा देकर बतलाता है। जीवको ही सत्य-सार ठहराकर ऐसे निर्णयका सारशब्द बतलाता है। कोई बिरले ही जिज्ञासु मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरु द्वारा बीजकके रहस्यको बूझते हैं। सोई भव-बन्धनोंसे छूटकर मुक्त होते हैं। अतएव बीजक-ज्ञानको ही प्रयत्न करके समझ लेना चाहिये ॥१५२३॥

साखीः— तीन लोकके द्रष्टा कहिये ❀ इच्छा रूपी राँड़ ॥
[२७७] तिनहुँके भीतर सो निकसी ❀ पैठि रही तेहि भाँड़ ॥ १५२४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! तीन लोक=स्वर्ग, मृत्यु और पातालः योगी, ज्ञानी और भक्तोंने जिस ब्रह्म-परमात्माको तीन गुण, तीन अवस्थाओंसे परे, त्रिगुण माया-जालोंसे रहित, तीन लोकके द्रष्टा-साक्षी, असङ्ग सर्वविश्व-प्रकाशी है, इत्यादि कथन करके जो कहा है, सो तो इच्छा मायारूपी रण्डी वा राँड़=वाणी कल्पनाका ही स्वरूप है। इच्छारूपी राँड़ माया ही तीन लोकका द्रष्टा बनी हुई है। ब्रह्मको तो झूठ ही भ्रम करके माना है। विचार करके कहिये तो सही, इच्छा हुए बिना कहीं ब्रह्मज्ञानका कथन होता है? कभी नहीं। ब्रह्मादि तीनों भाईके मनमें भीतरसे वह इच्छारूपी ब्रह्मका भ्रम निकला। भाँड़के समान बकवाद करके फिर उसी ब्रह्म[illegible]में ही घुसे रहे। अथवा जो कर्म, वासना, अध्यास, कल्पना, सञ्चित होकर भाँड़=वर्तमान वर्तनरूपी अन्तःकरणमें पूर्वसे घुस रही थी, सोई त्रिगुणी मनुष्य तथा त्रयमार्गी गुरुवालोगोंके हृदय भीतरसे स्फुरणा या इच्छा होकर खानी-वाणीका विस्तार बाहर निकला, और फैल रहा है। बीजकमें कहा हैः— "जो रहे करवा सो निकरे टोटी॥" इसीसे जो भीतर थी, सो बाहर निकली, फिर वही बात जीवोंके मनमें दृढ़ हो करके घुस रही है। अथवा भाँड़=विराट् ब्रह्ममें प्रथम निर्विकल्प अवस्थामें इच्छा शान्त होकर बैठी रही। फिर समय पा करके उसीके भीतरसे स्फुरणा निकल

आई, सो राँड़=माया या इच्छा सूक्ष्म स्वरूपमें ही रही, वही तीन लोकके साक्षिणी बनी। ऐसे-ऐसे वर्णन भाँड़=गुरुवालोगोंने किया है ॥ १५२४ ॥

साखीः— नहीं रोग नहिं रोगी कहते ❀ सत्य वैद्य सो नाम ॥
[२७८] संशयमई विकल फिरै ❀ पूरण ब्रह्म अकाम ॥ १५२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! [भ्रमिक ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि—] वास्तवमें सत्य ब्रह्म तो मैं ही हूँ ! सो मेरा नाम परम वैद्य, परमात्मा, परमेश्वर, प्रणव आदि कई एक हैं, सो हजारों नामोंसे मैं ही प्रसिद्ध हूँ ! जगत् मिथ्या है, तीन कालमें उसका अस्तित्व कुछ भी नहीं है। इसीसे जन्म-मरणादि रोग-शोग भी कहीं नहीं है; और आवागमनमें दुःखित होनेवाले रोगी जीव भी कहीं नहीं है। रोग-रोगी दोनों झूठा है, नाम-रूप उपाधि मिथ्या, अधिष्ठान ब्रह्म सत्य है। जिस परमेश्वरका नाम ही वैद्य=त्रिकालज्ञ, सर्वद्रष्टा सत्य है। फिर वह किसी रोग-रोगीको क्यों रहने देगा ? यह कुछ नहीं। हम कहते हैं, यदि तुम्हें रोगी होकर रोग लगनेका भ्रम है, तो वेदान्त-वाक्य श्रवण-मनन करो; फिर ब्रह्म साक्षात् होनेपर कोई कहीं रोग-रोगी, भोग-भोगी, शोग-शोगी आदि ही नहीं रहेगा, इत्यादि धोखेकी वाणी गुरुवालोग कहते हैं। अपना नाम सत्योपदेशक गुरु बतलाते हैं। इधर तो संशय, भ्रम-दुविधा अनसमझमें ही पड़कर जीव सब त्रय ताप जन्मृतिमें व्याकुल-दुःखित, त्रसित होकर जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिर रहे हैं। उधर वेदान्ती लोग एक ही ब्रह्म सर्वव्यापक परिपूर्ण कामना वा इच्छासे रहित, अकाम, निर्विकार, अलिप्त है, ऐसा बता रहे हैं। सो दोनोंका रञ्चकमात्र भी मेल नहीं खाता है। अथवा शब्दसे तो "मैं पूर्ण ब्रह्म निष्काम, नित्यतृप्त, नित्यमुक्त हूँ !" ऐसा कहते हैं। परन्तु, वहीं सन्देह लगा रहता है। संशय ग्रसित हो, व्याकुल हो करके संसारमें फिरे, भटके; देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें चक्कर लगाते रहते हैं, बिना पारख॥१५२५॥

साखीः— काल चक्रके फेरमें ❀ जियरा परै भुलाय ॥
[२७९] नित्य प्रलय परलय रहै ❀ महाप्रलय हाथ बिकाय ॥ १५२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कालरूप गुरुवालोग और स्त्रीके चक्र=विषयोंका घनचक्र, तथा वाणी कल्पनाका भ्रम चक्र, इन दोनोंकी प्रेरणामें, खिंचावमें, वेगमें, भुलावा-घुमावमें, दबावमें अनेक प्रकारसे अरुझकर पारखहीन समस्त जीव निज स्वरूपको भूल करके महा भव-बन्धनोंमें पड़े हुए हैं। वहाँ किसी प्रकार भी जीवोंकी स्थिति-ठहराव या मुक्ति नहीं होती है। जैसे रोज ही दिन-रात उदय-अस्त होते रहते हैं; तैसे रोज ही जागना-सोना, नाना कर्म धन्धा करना-छोड़ना, अनेक सङ्कल्प-विकल्प किया करना, होता रहता है; और कोई नित्य ही पूजा, पाठ, ध्यान करके उपासनासे वृत्तिका प्रलय करते हैं। कोई योग साधनासे शून्य समाधि लगाकर वृत्ति शून्य विनाश करके जड़वत् हो अचेत पड़े रहते हैं। अन्तमें कोई वेदान्तियोंके घेरामें फँसकर उनके कल्पनाके हाथमें बिक जाते हैं। एक ब्रह्म अद्वैत सत्य है, सो व्यापक ब्रह्म मैं हूँ, ऐसी भावना करके सब चराचर जगत्को महाप्रलयमें लेजाकर समा देते हैं। अत्यन्ताभावसे भावातीत भाव बनाकर विज्ञानी परमहंस लोग दुर्दशाको प्राप्त हो भ्रम-धोखेमें बिक गये। हाथके मनुष्य जन्मको व्यर्थ बिता करके चौरासी योनियोंको चले जाते हैं। अथवा मन-मानन्दीके चक्रमें पीसे जाकर सब जीव भूल-भुलैयामें भटके पड़े हैं। नित्य प्रलय=रोज ही निद्रा लेकर सोना, गाफिल होना, ऐसा करते-करते आयु बिता रहे हैं। कोई गुरुवालोगोंके हाथ पड़ करके ब्रह्मज्ञानादिमें बिक गये। जब महाप्रलय=मरण हुआ, तो अभ्यासवश गर्भवासको चले गये वा जाते हैं ॥ १५२६ ॥

साखीः— लोक देव गुण कर्म त्रय ❀ ताप कला तन तीन ॥
[२८०] तृणके ओट पहाड़ है ❀ वाणी तीन प्रवीन ॥ १५२७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे घासकी आड़में पहाड़को छिपा

करके धोखा देकर लुटेरे लोग लूट लेते हैं। तैसे ही तृणवत् त्रिगुणी मायाजाल फैला करके गुरुवा-लोगोंने जीवोंको भ्रमा रक्खा है। तहाँ तीन लोकः— ब्रह्मलोक, वैकुण्ठलोक और कैलाशलोक वा स्वर्ग, मृत्यु और पाताल अनुमान किया है। तीन देवः— ब्रह्मा, विष्णु और महेशको तीन लोकके मालिक देवता ठहराया है। तीन गुणः— रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण, ये तीन देवोंके क्रमशः प्रधान गुण माना है। तीन कर्मः— भक्तिकर्म, योगकर्म और ज्ञानकर्म ये तीन देवोंके स्वाभाविक कर्म कहा है। त्रय व्यक्तिः— देव, दानव और मनुष्य माना है। तीन तापः— दैहिक, दैविक और भौतिक, ये प्राणिमात्रको कर्म भोगके संयोगमें तीन ताप भोगना पड़ता है। देहकी तीन कलाः— स्त्री, पुरुष और नपुंसक वासनासे होते हैं; और नाद, बिन्द तथा कला ये तीन भाग हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, ये तीन अवस्थाएँ देहकी कलामें ही गिनी जाती हैं। तीन शरीरः— स्थूल, सूक्ष्म और कारण अध्यासी जीवोंके होते हैं। तीन खानी, तीन नाड़ी, तीन जाप, इत्यादि माया-प्रकृतिके तीन-तीन अङ्गोंके बहुत ही भेद विस्तार किया है। उसीकी अध्याससे जीव सब जन्म, मरण और गर्भवासमें अनेकों दुःख भोग रहे हैं। गुरुवालोग उसी त्रिविधि कलासे उसी तृणके ओटमें=आड़में पहाड़रूप परमात्माको सबमें व्यापक ठहराते हैं। तृणके ऊपरमें पहाड़ टिकाते हैं, ये आश्चर्य है! अथवा घास-फूस वा तृणके समान जीवको अल्पज्ञ, तुच्छ, नाना होनेसे शक्तिहीन ठहरा करके त्रिकाण्ड वेद वाणीके प्रमाणसे जीवको आवरणमें छिपा करके बहुत ही जड़ाध्यासी किया है। कोई पहाड़ समान विराट् ब्रह्मको निश्चय किये हैं। तहाँ तीन प्रकारकी वाणी बोले हैंः— तत्, त्वं, असि। ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान। ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान। ध्याता, ध्येय, ध्यान। द्रष्टा, दृश्य, दर्शन। मतलब यह है कि— "हे जीव! तू ही वह ब्रह्म है; मैं ही ब्रह्म हूँ; सब जगत् ही ब्रह्म है," ऐसा कहा है। रोचक, भयानक और यथार्थ, ऐसे तीन प्रकारकी वाणी होती हैं; और जीवमुख, मायामुख तथा ब्रह्ममुख वाणी भी तीन तरहकी कही गई हैं। उसमें काल, सन्धि और झाँई, ये तीन भेद रहते हैं। प्रवीण, चतुर, विद्वान् कहलानेवाले गुरुवालोगोंने यही सब तृणरूप वेद वाणीके ओट=आधारमें पहाड़रूप जगत्कर्त्ता परमेश्वरकी स्थापना कल्पनासे दृढ़ किया है, सो तीन वाणीका अध्यास ही नरजीवोंको तीन खानीमें ले जानेका कारण है। बिना पारख खानी-वाणीके महान फन्दाओंमें सब बद्ध पड़े हैं॥१५२७॥

साखीः— परवश जियरा कालके ❀ दुःख पावै संसार॥
[२८१] बिनु पारख भटकत फिरै ❀ थकै विचार-विचार॥ १५२८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! यह अनादि कालके संसारमें अबोध जीव सब काल=कल्पना, गुरुवा, स्त्री, विषय, और मन-मानन्दी जड़ाध्यासके अधीन परवश हो करके उन्होंके ही वशीभूत हुए हैं। इसवास्ते जगत्में चारखानी चौरासी योनियोंमें भटकते हुए अनन्त दुःख पाये, और त्रयतापादि असह्य कष्ट वा दुःख पा ही रहे हैं। तथापि सुख पानेकी आशासे पारख बोधके बिना संसार विषयोंमें, और जप, तप, व्रत, उपवास, योग, यज्ञ, भक्ति, ज्ञानादि अनेकों मार्गकी साधनाओंमें, छियान्नवे पाखण्डोंमें भटकते हुए इधर-उधर घूम-फिर रहे हैं। वेद-वेदान्त ज्ञानका विचार कर-करके आखिरमें थक जाते हैं; परन्तु, ब्रह्म-ईश्वरादिका कहीं पता ही नहीं पाते हैं। फिर हार मानकर झख मार करके कोई ज्यों-का-त्यों आकाशवत् ब्रह्म बतलाते हैं, कोई जगत्को ही ब्रह्म ठहराते हैं। कोई अपने ही ब्रह्म बन जाते हैं, इत्यादि तरहसे धोखेमें ही चले जाते हैं। ऐसे-तैसेमें ही नरजन्मको हार करके आयु बिताकर, फिर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही चले जाते हैं॥ १५२८॥

साखीः— महाचाक भव चक्र है ❀ ठहरै नहीं छिन एक॥
[२८२] तहाँ जियरा चाहै कुशल ❀ करि करि ब्रह्म विवेक॥ १५२९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! महाचाक=महान बड़ाभारी घेरा चक्कावाला

परब्रह्म एक ही पिण्डसे ब्रह्माण्ड तक, पृथ्वीसे आकाश पर्यन्त, पाँचों तत्त्वोंमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है, ऐसा माना है। सोई भ्रम भवचक्र वाणीकी कल्पना पञ्चकोशोंका अध्यास आवागमनोंका मूल कारण है। सो चक्र हमेशा एक-सा गतिसे चला ही करता है। अध्यासी जीव एक क्षणभरके लिये भी निज स्वरूप स्थितिमें ठहर नहीं पाते हैं। मन-मानन्दीकी चाल तीव्र वेगसे फिरती ही रहती है। सङ्कल्प-विकल्प हुआ ही करता है। रहट घड़ीकी नाईं प्रवाह बदला करता है। ब्रह्मसे जगत्, और जगत्से ब्रह्म हुआ करता है। जन्म, मरण, गर्भवासमें वासनासे जीव दुःख भोगा करते हैं। ऐसे तहाँ संसार, संशय, खानी-वाणीके बीचमें रहकर वेद-वेदान्त, उपनिषद् महावाक्यादिका विवेक-विचार दृढ़ता कर-करके जीवको ब्रह्म बना-बना करके जगत्को मिथ्या ठहरा करके धोखेमें पड़-पड़ कर वहाँपर भ्रमिक जीव कुशल, हित, कल्याण या मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, तब यह कैसे पूरा होगा ? बीजक साखीः— १०२ में कहा हैः—

"काल खड़ा शिर ऊपरे। तैं जागु बिराने मीत !॥ जाका घर है गैलमें। सो कस सोवै निश्चिन्त ?॥"

तैसे चौरासी योनियोंके कारण ब्रह्म बन करके फिर मुक्त भी होना चाहते हैं; यही बड़ा अविचार धोखा है। ब्रह्मका विवेक करके भ्रम चक्रमें पड़कर जीव कुशल चाहते हैं। परन्तु, उससे किसीका कुशल न हुआ ही है न होगा ही। जड़ाध्यासी ही जीव जन्म-मरणमें पड़ा करते हैं, बिना पारख ॥१५२९॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८१ ॥ [चौपाई- १० । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. बिन गुरु पूरण पूर न होई ❀ कोटिक जतन करै जो कोई ॥ १५३० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्ण पारखी श्रीसद्गुरु बन्दीछोरके मिले बिना पूर्ण पारखबोध किसीको नहीं होता है। पारख स्वरूपकी स्थिति किये बिना, कोई भव-बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो नहीं सकते हैं; और पारख बोध पुष्ट हुए बिना परिपूर्ण व्यापक माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि पद मिथ्या कल्पना है, यह समझनेमें ही नहीं आता है; भ्रम-भूल नहीं छूटती है। चाहे कोई करोड़ों यत्न वा उपाय नाना साधना क्यों न करें, तथापि एकरस अपरोक्ष पारख स्वरूपकी स्थिति प्राप्त हुए बिना कोई जीवन्मुक्त हो नहीं सकते हैं; और पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके श्रद्धा-भक्तिसे सेवा सहित जिज्ञासु सत्शिष्य हुए बिना कदापि सच्चा पारखबोध नहीं हो सकता है। अतएव अन्य सब यत्नको छोड़कर पारखी श्रीसद्गुरुकी सेवा तथा उनका सत्सङ्ग करके पारखबोध हासिल कर लेना चाहिये, तभी कल्याण होगा ॥ १५३० ॥

२. बहुतक जतन करै संसारा ❀ मुद्रा पाँचों नाम अधारा ॥ १५३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बेपारखी प्रपञ्चीलोग संसारमें ब्रह्मानन्द, योगानन्द, विषयानन्दादि प्राप्ति करनेकी आशा, तृष्णा, कामनासे बहुतेक लोग बहुत प्रकारके यत्न पञ्च मार्गोंके नाना कर्म, विभिन्न साधनादि उपाय किये और कर ही रहे हैं। परन्तु, उन साधनाओंसे किसीकी चाहना भी पूर्ण नहीं हुई; और किसीकी मुक्ति स्थिति भी नहीं हुई; बेकारमें बेहाल हुए। तो भी तहाँ योग साधनामें कोई खेचरी, भूचरी, चाँचरी, अगोचरी और सर्वसाक्षिणी, ये पाँच मुद्रा साधने लगे; मुद्रा लगा करके ध्यान करने लगे। कोई अजपा जाप जपकर हरि-नामका आधार पकड़ने लगे। कोई सगुण चौबीस अवतारोंके नाम पुकारने लगे, कोई षट् चक्र बेधने लगे, कोई अष्टाङ्ग योग साधन करने लगे; ध्यान, समाधि लगाने लगे, यही सब करके कोई एक ईश्वरका आधार मानकर भरोसा करने लगे; बिना विचार सब भटकनामें पड़े हैं ॥ १५३१ ॥

३. साधन विविधि बिगुर्चन भारी ❀ कामिनिरूपी भक्ति विचारी ॥ १५३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई जप, तप, उपवास, तीर्थयात्रा, यज्ञ, दान, पूजा, पाठ, होम आदि करने लगे। कोई नित्य, नैमित्य, काम्य, प्रायश्चित्त और निषिद्ध, ये पाँच कर्मोंके

विधि-विधान कायम करने लगे। कोई सगुण-निर्गुण भक्ति करने लगे। कोई नेती, धोती आदि योगके षट्कर्म करने लगे। कोई सप्त ज्ञान भूमिकाके अभ्यास करने लगे, इत्यादि अनेकों प्रकारसे नाना तरहकी साधना गुरुवालोगोंने किया और कराया; उसी उपाय द्वारा ईश्वर तथा स्वर्गादि प्राप्ति होनेको बतलाया है, सो बड़ाभारी झूठ-मूठका धोखा महा बन्धन ही फैलाकर जीवोंको फँसाया है; और वैसे ही बिगुर्चा भक्त लोगोंने भी लगाया है। भक्तिमार्गमें कोई एक परम पुरुष परमात्मा जीवका खाविन्द ठहराकर कल्पनासे अपने ही स्त्री बनकर भक्त लोग अनेक कामना करने लगे। स्त्रीके समान विरह, प्रेम भाव बढ़ा करके नवधाभक्ति, प्रेमलक्षणा भक्तिका विचार किया है। सत्यासत्यका विचार तो कुछ करते ही नहीं है। भ्रमसे अपने ही स्त्री बना; इष्ट परमेश्वरको पुरुष माना, उससे मिलनेके लिये छटपटा रहे हैं। वह तो मनकी कल्पना है; किसीको आ करके तो वह नहीं मिला, वे साधक ही मर-मरकर चौरासी योनियोंमें जा करके मिल गये ॥ १५३२ ॥

४. ब्रह्मज्ञान अद्वैत कहावै * विषय विकार सदा पछतावै ॥ १५३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानी लोग वेद-वेदान्त पठन-पाठन कर श्रवण-मननादि करके साधन चतुष्टय सम्पन्न हो करके एक अद्वैत ब्रह्मज्ञानका कथन करते हैं। श्रेष्ठ परमहंस महात्मा कहलाते हैं। उन्होंने सब प्रकारसे अद्वैत सिद्धान्तको ही दृढ़ निश्चय करके ब्रह्मको सत्य कहा है। परन्तु, वाणीका विषय-कल्पना, भ्रम-भूल, धोखेमें पड़ कर दुःख भोगते हुए सदा पछताते रहते हैं; और कोई वाचक ज्ञानी मुखसे तो अद्वैत ब्रह्मज्ञान कहते हैं। परन्तु, मनमें विषयासक्ति गड़ी हुई है। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विषय विकारमें तलमला करके सदा दुःखी हो पछताते रहते हैं। अथवा कोई पामर-विषयी लोग सदाकाल विषयमें ललचा करके भोग न मिलनेसे हाय ! हाय ! करके पछताते रहते हैं। वे सब चौरासी योनियोंके ही अधिकारी हुए हैं ॥ १५३३ ॥

५. अनहद बोहं सोहं जापा * शून्याशून्य निःअक्षर थापा ॥ १५३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने और भी विविधि साधना जो निकाला है, सो सुनिये ! कर्मी लोग 'ॐकार' का जाप करते हैं। कोई 'वोहं' शब्द श्वासमें कल्पना करके सुरति लगाते हैं। योगी लोग 'सोहं' शब्दको श्वासोच्छ्वासमें मानकर हमेशा लक्ष्य लगाकर उसीका जाप करते हैं। कोई दोनों कानोंको मूँद करके ब्रह्माण्डमें लक्ष्य लगाकर अनहद बाजा दश प्रकारके नाद-ध्वनि सुन-सुन करके मस्त होते हैं। कोई बेहद ब्रह्म मानते हैं। महाकाशवत् सर्वत्र शून्य-ही-शून्य महाशून्यको ही निःअक्षर, निरञ्जन, परब्रह्म, सर्वाधिष्ठान मान करके कोईने स्थापना किया है या माना है। ये सब भ्रम कल्पनामें ही गरगाफ हो रहे हैं, बिना पारख ॥ १५३४ ॥

६. नाम निःअक्षर जपहिं मन लाई * अर्धनाम ररा ररांई ॥ १५३५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! निःअक्षर, निरञ्जनका नाम-"निरञ्जनाय नमः-निरञ्जनाय नमः" इसीको कोई मन लगा करके प्रेमसे जप रहे हैं। कोई अक्षरातीत ज्योतिस्वरूप परमात्माका नाम-"अनामयोहं-अनामयोहं" का या "शिवोऽहं-शिवोऽहं" का जाप मन लगाकर जप रहे हैं। वे उसी जापसे ही हित-कल्याण होनेका मान बैठे हैं। कोई अर्ध नाभिस्थानमें अर्धमात्रा मानकर वहाँ लक्ष्य लगाकर महामायाका नाम जपनेमें लगे हैं। कोई अर्ध-ऊर्ध्वमें "ररा या रँरँकार" ध्वनिमें माया-ब्रह्मका संयुक्त जाप करनेमें लगे हैं; और कोई "राम-राम" अक्षरको ही चिल्ला-चिल्ला करके रटन करनेमें ही लगे हैं। ऐसे नाना तरहसे जाप जपे या जप रहे हैं ॥ १५३५ ॥

७. धावहिं स्वर अक्षरनके माँहीं * जल थल पाथरमों अरुझाई ॥ १५३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई लोग तो १६ स्वर तथा ३६ अक्षरोंका व्यञ्जन, इन्हींको परस्पर मिला करके उसमें पाँच मात्रा, तीन लिङ्ग, सन्धि जोड़कर वाणी बनाया है। तथा वही वाणी लिख करके वेदादि ग्रन्थ बनाया है। फिर सार, स्वर, ताल, अक्षरोंके जञ्जलमें पड़कर

कल्पना पकड़-पकड़ करके उसीमें दौड़ने लगे। वही वाणी पढ़ने-पढ़ानेमें दिन बिताने लगे; शब्द शुद्धि करने लगे। नाना सिद्धान्तोंका प्रचार भी वाणीसे ही करने लगे। ऐसे-ऐसे भ्रममें ही दौड़ने लगे; और कोई जल=गङ्गादिके स्नान, मार्जन, आचमन, परिक्रमा आदिसे हित मान लिये। कोई स्थल=पृथ्वीपरके जड़ पदार्थोंकी पूजा, अष्ट प्रतिमा पूजा करने-करानेमें लगे हैं। कोई पहाड़को या पत्थरकी बनी नाना प्रतिमाओंकी पूजामें लगे हैं। इसतरह बिना पारख वे सब मिथ्या धोखेमें अरुझ गये, और अरुझ ही रहे हैं ॥ १५३६ ॥

८. विविधि प्रकार युक्ति जग जापू ❀ फन्दा बन्दी सहै सन्तापू ॥ १५३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जगत् जीवोंको नाना प्रकारसे नाम-जाप करनेकी युक्ति गुरुवालोगोंने सिखलायी है। तहाँ "हरिहर, विश्वम्भर, नारायण, ॐनमो भगवते वासुदेवाय, राम-राम, कृष्ण-कृष्ण, शिव-शिव, विष्णु-विष्णु, हे भगवान्! केशव, माधव, गोविन्द" इत्यादि उच्चारण करके जपनेका, धीरे-धीरे जपनेका, तथा मन-ही-मन जपनेका एवं लक्ष्य लगा करके अजपा जाप करनेकी विविधि युक्तिसे नाना तरहके जाप जगत्में जपे और जपा रहे हैं। बन्दीखानामें पड़े हुए जीव उन्हीं सब वाणी कल्पनाके या विषयोंके फन्दामें अरुझ-अरुझ कर कैदी बन करके शोक, चिन्ता, विरह, सन्ताप, अनेकों उपाधिसे कष्ट-क्लेश सहते रहते हैं। फिर चौरासी योनियोंमें पड़ करके त्रिविधि तापोंका दुःख भी भोगते रहते हैं ॥ १५३७ ॥

९. बिनु पारख नहिं चीन्हें काला ❀ बिनु चीन्हें रहै भवके जाला ॥ १५३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा श्रीसद्गुरुकी दयासे यथार्थ अपरोक्ष पारख बोध प्राप्त हुए बिना, कोई भी मनुष्य कालकी काली करतूतोंको चीन्ह नहीं पाते हैं। जिनके मनमें कालिमा छाई है, सो कपटी गुरुवालोग, और मोहिनी माया रूप स्त्री, ये ही लोग संसारमें महाकाल बने हैं। इन्होंने खानी-वाणीका बहुत जाल-जञ्जाल फैला रक्खा है। ये नाना तरहसे लोभ-लालच देकर जीवोंको फँसा लेते हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर बन्धन-मोक्ष सत्यासत्य, हानि-लाभादिको यथार्थ पारख करके चीन्हे बिना वा कालको पहिचाने बिना, उन्हींके जालमें ही लपटकर बद्ध होकर भवसागरके प्रवाहमें ही बहते रहते हैं। कल्पना और विषयादिके जालोंमें फँसे रहते हैं। इसीसे जन्म, मरम, गर्भवासादिके दुस्सह दुःख बारम्बार भोगते रहते हैं। अर्थात् श्रीसद्गुरुके पारखके बोध हुए बिना ये काल हैं, ऐसा चीन्हनेमें नहीं आता है; और कालको पहिचाने बिना उनके भवजालमें ही जीव पड़े रहते हैं, बिना विवेक ॥ १५३८ ॥

१०. पञ्चकोशके घेरा माहीं ❀ देखहु सन्त कतहुँ सुख नाहीं ॥ १५३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मुमुक्षु सन्तो! पञ्चकोशोंका घेरा तो महा बन्धन जबर्दस्त दुःखोंकी खानी है। पारखदृष्टि उघाड़ करके देखिये! उसमें कहीं किसी जगह भी सुख, शान्ति, सन्तोष, ठहराव नहीं है। परन्तु, अबोधजन उसीमें सुख मानकर फँसे पड़े हैं। तहाँ स्थूलदेहके अन्नमयकोशमें विषयानन्दकी चाहनासे कर्ममार्गके घेरामें कई लोग घिरे पड़े हैं। सूक्ष्मदेहके प्राणमयकोशमें प्रेमानन्दकी अभिलाषासे उपासनामार्गके जाल-घेरामें बहुतेरे जीव फँसे हैं। कारणदेहके मनोमयकोशमें योगानन्दकी आशासे योगमार्गकी जालमें कितनेक लोग घिरे पड़े हैं। महाकारणदेहके ज्ञानमयकोशमें ज्ञानानन्दकी चाहनासे ज्ञानमार्गके जालमें भी बहुत लोग फँसे हैं; और कैवल्यदेहके विज्ञानमयकोशमें ब्रह्मानन्दकी भावनासे विज्ञानमार्गके महाजालमें भी बहुत लोग घिरे पड़े हैं। हे विवेकी सन्तो! विवेक-चक्षु खोलकर आप लोग सत्यन्यायसे उपरोक्त पाँचों कोशोंके घेराको देखिये! वहाँपर कहीं भी जीवन्मुक्ति सुखकी नित्य स्थिति नहीं है। वह तो दुःखमय भव-बन्धनोंका ही पसारा है। बिना पारख जीव भूलसे ही उनमें फँसे पड़े हैं। पारख बोधरूप बल हासिल करके उन सब घेरोंसे बाहर निकल आइये! तभी निज स्वरूपकी स्थिति हो सकेगी ॥ १५३९ ॥

साखीः— महाचक्रके चरखपर * घूमन लागे जीव ॥
[२८३] चैन न पावै दुःख सहै * गोहरावै पिव पीव ! ॥ १५४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने अनुमान-कल्पना करके सबसे महान या सर्वोपरि परमतत्त्व-परमात्मा ब्रह्मको जगत्कर्त्ता बतलाया है। उसीकी महाशक्तिसे जगत्का उत्पत्ति-प्रलय हुआ करता है। संसारमें दिन-रातका चक्र भी वही चलाता है। सो परमात्मामें तदाकार होकर मिलनेसे ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है। ऐसी बहुत महिमा बढ़ाया है। इसवास्ते महाचक्ररूप ब्रह्म कल्पनाके चरख=चक्कर, घेरा, रहटा, फेरापर सब अबोध नरजीव घूमने लगे; भ्रमिक होकर भटकने लगे, नाना साधना करने लगे। उसमें पड़े हुए जीव कभी चैन वा आराम नहीं पाते हैं; असह्य दुःख सहा करते हैं। कोई रक्षक ईश्वर कर्त्ता मान-मान करके उसीकी पुकार करते जाते हैं; परन्तु, सुनता तो कोई नहीं है। अथवा पञ्च कोश, पञ्च विषय, पञ्च देह, पञ्च मार्ग, पञ्च अभिमान, इत्यादि पञ्च-प्रपञ्चके जाल सोई महान वेगशाली चक्र हैं। उसके लपेटमें आकर घनचक्रपर समस्त नरजीव जड़ाध्यासी होकर चारखानी चौरासी योनियोंमें घूमने लगे हैं। आवागमन त्रिविधि तापोंमें सब तरफ कष्ट पाकर असह्य दुःख लाचारीसे सहने लगे। कहीं भी जीव सुख-चैन, शान्ति नहीं पाये या नहीं पाते हैं। तब व्याकुल होकर भ्रमिक लोग पुकारा-प्रार्थना, करने लगे कि- हे पिया ! हे परमात्मा ! हे भगवान् ! हमें दुःखोंसे बचाओ ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! हम तेरी ही शरणमें हैं। हे परमेश्वर ! आपको छोड़कर हमारे अब कोई भी आधार नहीं हैं, त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् ! रक्षः ! रक्षः ! इत्यादि गोहार लगाने लगे। परन्तु, उनकी पुकार सब व्यर्थ गयी, किसीने नहीं सुना, नहीं बचाया। चौरासी योनियोंका दुःख सहते ही रहना पड़ा। बिना पारख ध्यान, जप, योगादि करके भी बन्धन नहीं छूटा ॥ १५४० ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ४६ ॥ ❀ ॥

साखीः— कबीर भरम न भाजिया * बहु विधि धरिया भेष ॥
[२८४] साँई के परचावते * अन्तर रहि गई रेख ॥ १५४१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! कायाके धनी कबीर-रूप चैतन्यजीव पारख बोधके बिना बहुत ही भ्रमिक हुए; जड़ाध्यासी दुःखी हुए। तब सुख प्राप्तिकी इच्छा विशेष प्रबल होनेसे कोई घर-गृहस्थी छोड़कर षट् दर्शनोंके साधु हुए। वहाँपर बहुत प्रकारके भेष धारण किये। ब्रह्मचारी, संन्यासी, परमहंस, नागे, निर्वाणी, खाकी, वैरागी, नाथ, निरञ्जनी, योगी, जङ्गम, जैन, फकीर, अघोरी इत्यादि पन्थ-पन्थाई छियान्नवे पाखण्डोंका विस्तार किये। कर्म, भक्ति, योग और ज्ञानादिकी मनमानी साधनाएँ भी बहुत किये। परन्तु, इतना करके भी किसीके हृदयसे भ्रम, भूल, धोखाकी रेखा नहीं भगी वा नहीं गई, नहीं मिटी; उलटा भ्रमरूप ही हो रहे हैं। प्रथम मेरा साँई कर्त्ता मालिक कौन होगा ? यह भ्रम-कल्पना खड़ी हुई। तब उसके परिचय या पहिचान करनेकी तीव्र इच्छा हुई, तो गुरुवालोगोंके सङ्गमें जाकर विचार किया। तहाँ उन्होंने एक ईश्वर कर्त्ता मालिक बतलाया, किसीने परब्रह्म-परमात्माको ठहराया; और किसीने सहविकल्प वा निर्विकल्प, तो किसीने जैसे-का-तैसा, तो कहीं आप-ही-आप, कहीं 'अहं अयं देहः, कहीं "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि प्रकार-से पहिचान कराने लगे। परन्तु, सो सब मिथ्या धोखा ही दृढ़ किया है। सो सबकी मानन्दी करने-वाला स्वयं सत्य चैतन्य साँई तो जीव ही है। सो उसे निजस्वरूपका परिचय पारखबोध तो नहीं हुआ। मिथ्या झाँई ब्रह्मको ढूँढ़ने लगा, तो सकल जगत्का बीज, वासना-जड़ाध्यास भीतर अन्तःकरणमें रह गया। सोई निजस्वरूपमें वोट=आड़, पर्दा पड़ गया। नरजीव अध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासको ही प्राप्त हुए। अतएव बाहरी भेष मात्र बनाकर भ्रमकी बीज-वासना नहीं छूटती है। पारखी श्रीसद्गुरुकी सेवा-भक्ति करके रहनी लेकर जीवन सुधार करना चाहिये ॥१५४१॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८२ ॥ [चौपाई- ६ । रमैनी- १ । साखी- १ है] ॥ ❀ ॥

१. विशेषरूप त्रिदेव नशाना * काल कराल मुख जाय समाना ॥ १५४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! अनादि कालके जगत्में समय पा करके पूर्वमें मनुष्य देहधारी ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये त्रिगुण विशेषकी त्रिमूर्ति या त्रिदेव प्रख्यात हुए थे। उनके पिता निरञ्जन प्रसाद वे छोटे रहे, तभी मर गया था; और अष्टाङ्गी मायारूप माताने उन्हें सिखा-पढ़ा करके प्रवीण किया था। कुछ कालके बाद उन्होंकी मातारूप अष्टाङ्गीमाया भी शरीर छोड़कर मृत्युको प्राप्त हुई। तत्पश्चात् सैकड़ों वर्ष तक तीनों भाई जीवित रहकर अपने-अपने तीन तरहके मत जगत्में खूब प्रचार किया; और समयान्तरमें उन ब्रह्मादि तीनोंकी भी आयु खतम हो गई। तब पहले ब्रह्माकी मृत्यु हुई, फिर पीछे विष्णु भी मर गया। बादमें महादेवका भी शरीर छूट गया। इसप्रकार त्रिदेवका विशेषरूपमें स्थूलदेह सहित जो आकार दिखता था, सो समय पा करके विनाश भी हो गया। कार्यरूप शरीर मृत्युके पश्चात् बिगड़ करके पाँच तत्त्वोंका भाग पाँच तत्त्वोंमें ही समा गया। भयङ्कर कालरूप मृत्युके मुखमें जाकर वे तीनों भी समा गये; और जीते तक जो-जो काल=कल्पना और विषयासक्तिकी मुख्य-मुख्य बात तीक्ष्ण वा करालरूपसे हृदयमें टिका रक्खे थे, सोई जड़ाध्यासवश शरीर छूटनेपर त्रिदेवोंके जीव विकराल स्त्रीके भगमुखसे चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जाकर समाये। वे आवागमन चक्रमें पड़े, तहाँ कर्मानुसार फल भोगने लगे ॥ १५४२ ॥

२. लक्ष्मी पारवती ब्रह्मानी * एक एककै सबै बिलानी ॥ १५४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसीप्रकार आयु व्यतीत होकर अवधि पूर्ण होने-पर ब्रह्मादिकोंके स्त्रियोंकी भी मृत्यु होती गई। पहले लक्ष्मी मर गई, फिर पार्वतीका भी देहान्त हो गया, बादमें सावित्रीका भी शरीर छूट गया; एक-एक करके वे स्त्रियाँ भी मर गईं। उन्होंके पञ्च-भौतिक स्थूल शरीर जल, गल, सड़कर सब बिला गये; तत्त्वोंके कार्य भाग तत्त्वोंमें मिल गये; और जड़ाध्यासी जीव चारखानीके गर्भवासमें जा-जा करके समा गये। ऐसे तीनों देव और तीनों देवी तथा उनकी सन्तान सब भी एक-एक करके समयानुसार मर-मर करके विलीन हो गये। स्थूलदेह तो सबोंका नाश हो गया; और सूक्ष्मदेह वासनायुक्त जीव चौरासी योनियोंको प्राप्त हुए; अभीतक वे अध्यासी जीव वैसे ही आवागमनोंमें फिर रहे हैं ॥ १५४३ ॥

३. गुणमयरूप रहे त्रिदेवा * सन्तत अपनी करावै सेवा ॥ १५४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसतरह त्रिदेवोंके स्थूल देहका दृश्य आकार रूप तो नाश हो गया। परन्तु, उन्होंके त्रिगुण विशेषकी मानन्दी, मार्ग, उपदेश, सिद्धान्त, नाद-बिन्दकी वंश परम्परा, जो-जो चाल उन्होंने स्थापित कर गये हैं, सो सब तो प्रतिमा, नकलरूपमें संसारमें बाकी ही रही है। सोई उनके अनुयायी शिष्यवर्ग, पुत्रादि त्रिगुणी मनुष्योंने रज, सत्त्व और तम, ये त्रिगुणमय रूपमें ही त्रिदेवोंका वर्णन कर रहे हैं। गुरुवालोग उसीको सत्य मान करके या सत्य बता करके वही उपदेश अन्य लोगोंको देकर सदाकाल अपनी सेवा, टहल, चाकरी करा रहे हैं। सर्वदा मत-पन्थोंका प्रचार करके वही बात बताकर गुरुवाई करके अपनी सेवा कराये और सेवा करा ही रहे हैं ॥१५४४॥

४. कारण कारज विविधि प्रकारा * थूल अस्थूल उपजायकै मारा ॥ १५४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कारण ब्रह्मसे कार्य जगत् नाना प्रकारसे उत्पन्न हुई। सो ब्रह्म प्राप्ति होनेसे ही मुक्ति होती है। ऐसा दृढ़ा करके कारण ब्रह्ममें मिलनेके लिये विविधि प्रकारकी साधनाओंके कार्य-कर्म किये और कराये। सूक्ष्मरूप ब्रह्मानन्द, स्थूलरूप विषयानन्दमें प्रेम उत्पन्न करा करके गुरुवालोगोंने जड़ाध्यासी बनाकर जीवोंको खूब मारा; दुःख भोगाया या भोगा रहे हैं। अथवा कारण=खानी-वाणीकी वासना दृढ़ होनेसे उसीसे अनेक प्रकारके शरीर चौरासी योनियोंमें कार्य रूपमें बन करके तैय्यार होते हैं। तहाँ वासनायुक्त सूक्ष्म देहरूप बीजसे ही

स्थूल देह बनकर समयपर उत्पन्न होता है। फिर कर्म भोग पूर्ण करके वह स्थूल देह भी छूट करके नाश हो जाता है। इसीप्रकार वासनावश जीव जन्म-मरणमें पड़े रहते हैं ॥ १५४५ ॥

५. उपजै विनशै सहज स्वभाऊ ❀ पिण्ड ब्रह्माण्ड सब यमके दाऊ ॥ १५४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो उत्पन्न हुआ है, सो सहज ही समय पा करके विनाश हो जायगा। यह प्रकृतिकी स्वाभाविक चाल है। बनी हुई वस्तु अवश्य ही किसी-न-किसी समयमें बिगड़ ही जाती है; और जीव अखण्ड अमर है, वह किसीका कार्य-कारण नहीं है, वह अविनाशी नित्य-सत्य है। इसीसे जीवके स्वरूपका तो त्रिकालमें विनाश ही नहीं होता है। परन्तु, जड़ाध्यासी होनेसे आवागमनमें पड़ा ही करते हैं। पिण्ड-ब्रह्माण्डका अध्यास तथा आसक्ति ही जीवोंको दृढ़ बन्धन है। परन्तु, गुरुवालोग कहते हैं कि—"सहज आकाशवत् निर्गुण-निरञ्जन परमात्माके सहज स्वभाव वा इच्छामात्रसे ही समस्त संसार उत्पन्न हुआ है; और महाप्रलयमें विनाश होकर उसीमें मिल जायेगा" इत्यादि कल्पना दृढ़ाकर पिण्ड=देहधारी मनुष्योंको ब्रह्माण्ड=वाणी कल्पनामें भुलाते हैं। पिण्ड=खानीका भाग विषयासक्ति और ब्रह्माण्ड=वाणीका भाग भ्रम-मानन्दी, यही सब महा बन्धन है। यम=गुरुवालोग और स्त्रियोंका दाव-पेंच सब तरहसे जीवोंको फँसानेके लिये ही विस्तार हुआ है। अथवा यम=मनके दावसे देखा, सुना, भोगा हुआ सब संस्कार हृदयमें जमा रहता है। सोई समय पा करके स्फुरणा उत्पन्न होती है, तथा विनाश भी होती रहती है। बीजसे वृक्ष उत्पन्न होनेपर रूपान्तर हो जाता है। तैसे ही पूर्व वासनासे शरीर बनकर फिर शरीर सम्बन्धमें नाना वासनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसप्रकारसे पिण्डसे लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त कालके दाव महान बन्धनका ही विस्तार हो रहा है। कोई बिरले ही पारखी सन्त उस यमके दावसे बचकर निर्बन्ध-मुक्त हो जाते हैं ॥ १५४६ ॥

६. कोई न बचा जे जग औतारा ❀ नाशक रूपमई संसारा ॥ १५४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो जगत्में अवतार=शरीर धारणकर जन्म लिया, सोई अवतार हुआ। ऐसे देहधारी प्राणी एक ही शरीर कायम रख करके सदाकाल जीवित रहकर बचनेवाले संसारमें कोई नहीं हुए हैं। तहाँ 'जगत्' शब्द ही प्रगट करता है कि— जहाँ जाना-आना या ज=जन्मना, गत=मरकर चला जाना लगा रहता है। संसारका नाम ही मृत्युलोक है। जो जन्मा, सो अवश्य एक दिन मृत्युको प्राप्त हुआ। आवागमनका मूल घर ही संसार है। इसलिये कोई भी अवतारी पुरुष आजतक भी मृत्युसे बच नहीं पाये। परिवर्तनशील, विनाशक, नष्ट-भ्रष्ट होना, यही संसारका खास स्वरूप है। देह सहित तो अमर कोई नहीं हुआ; और न कोई होगा। अथवा प्रथम जगत्में जो-जो चौबीसों अवतारी पुरुष हुए, सो भी देह धारण करके जन्म लेकर आये थे। देह रहे तक नाना प्रकारके कर्म-कुकर्म उन्होंने किया। परन्तु, पारखबोध द्वारा निजस्वरूप स्थिति उन्होंने कर नहीं पाया। इससे खानी-वाणीके जड़ाध्याससे वे कोई भी नहीं बचे। बिना पारख सब अवतारी लोग जड़ाध्यासी हुए। क्योंकि, नाशक=नाना कल्पना करके विवेकको नाशकर उन गुरुवालोगोंने सारा संसारमें भरा हुआ व्यापक स्वरूप एक ब्रह्मको ही सत्य बताया है। "अहं ब्रह्मास्मि" "एकोब्रह्माद्वितीयो नास्ति" ऐसे धोखेकी वाणी कहा, इसवास्ते वे गुरुवालोग ही नाशक हुए, समस्त संसारको ही अपना स्वरूप मान लिये। अतएव वे हंसपदसे गरे, गिरे, बद्ध हुए। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्णादि सहित चौबीसों अवतार, और ऋषि, मुनि, पीर, पैगम्बर, औलिया, इत्यादि जगत्में बड़े श्रेष्ठ अवतारी, पराक्रमी, महात्मा, सिद्ध, साधक हुए; जिन्होंने पारख बोध नहीं पाया, वे कोई भी मन-मानन्दी, वासनासे नहीं बचे। इसीकारण आयु पूर्ण होनेपर वे सब मर-मर करके चारखानी-चौरासी योनियोंमें ही चले गये। संशय, अध्यास यही स्वरूप स्थितिका नाशक है। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर पारख बोध प्राप्त करके अध्यासरूप मृत्युसे जीते ही बचना चाहिये; तभी आवागमन छूटेगा ॥ १५४७ ॥

सम्बध— इसबारेमें सद्गुरु बन्दीछोरने बीजकमें स्पष्टरूपसे वर्णन किया है, सो प्रमाण सुनिये ! ॥ ॥❀॥ रमैनी, नम्बर– १५ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर– ५४ ॥❀॥

१. मरिगौ ब्रह्मा काशीको बासी * शिव सहित मूये अविनाशी ॥ १५४८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! काशीपुरीमें विशेष करके ब्रह्मा और महादेव रहते रहे। काशीमें दशाश्वमेध घाटपर ब्रह्माने बड़ा दश अश्वमेध यज्ञ किया था, ऐसी जनश्रुति है; और विश्वनाथके नामसे शिवलिङ्गकी तो काशीमें स्थापना करके प्रसिद्ध किया ही है। समयान्तरमें काशीके निवासी ब्रह्मा वहीं मृत्युको प्राप्त हुए। पश्चात् उनके छोटे भाई शिव सहित विष्णु भी काशीमें ही वा अन्यत्र कहीं समय आनेपर मर गये। शरीर सहित वे कोई भी अविनाशी नहीं हुए; नहीं बचे। अथवा काशीरूप कायाके निवासी देहधारी मनुष्य रजोगुणी, कर्मकाण्डी, वेदवेत्ता मतवादी ब्रह्मादि ब्राह्मण लोगोंने निज स्वरूप पारखपदको जान नहीं पाये, इससे देह रहते तक विषय भोग और वाणी कल्पना भ्रममें ही लग करके जड़ाध्यासी हुए, हंसपदसे मरे, नष्ट हुए। फिर एक दिन शरीर छोड़कर भी मर गये, तो अध्यासवश चौरासी योनियोंको ही प्राप्त हुए; और तमोगुणी योगकाण्डी, योगमार्गके अति अभिमानी शिवजी भी पार्वतीके सहित विषय भोगोंमें, और अनुमान, कल्पना, धोखेमें भूले रहे। देह सहित अपनेको अमर-अविनाशी समझते रहे या कोई अविनाशी जगत्कर्त्ता परमात्मा ठहराये रहे, इसीसे वे भी जड़ाध्यासी होकर हंसपदसे मरे। बिना पारख व्यर्थ जन्म बिताये, एक दिन शरीर छोड़ करके भी मर गये, तो अध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासको ही प्राप्त हुए; और विष्णु तो अविनाशी परमात्मा ही कहलाते रहे। सो सत्त्वगुणी उपासनाकाण्डी भक्ति प्रचारक हुए। सबोंमें विष्णु श्रेष्ठ माने गये। ऋषि, मुनि, तपस्वी, भक्त, लक्ष्मीके सहित विष्णु भी जड़ाध्यासी हुए, पारख बोध नहीं पाये, हंसपदको विनाश किये। फिर एक दिन शरीर छोड़ करके भी मरकर आवागमनमें ही चले गये। बिना पारख उन लोगोंकी मुक्ति नहीं हुई। अब अज्ञानी मनुष्य त्रिदेवादिकोंको अमर, मुक्तिदाता, सुखदाता आदि मानकर जो भक्ति, ज्ञान, योगादिकी साधनाओंमें लगे और लगा रहे हैं, सो उन्होंकी महान भूल है। पारख स्वरूपपर देह रहे तक अपरोक्ष एकरस स्थिति हुए बिना, कोई मुक्त हो नहीं सकते हैं, जीव अविनाशी है, उसके स्वरूपका तो कभी नाश नहीं होता है। परन्तु, वासनावश देह धरते-छोड़ते नाना दुःख भोगते रहते हैं। इसकारण देह रहते ही पारखपदमें ठहरकर वासनाका त्याग करना चाहिये ॥ १५४८ ॥

२. मथुराको मरिगौ कृष्ण गोवारा * मरि मरि गये दशों अवतारा ॥ १५४९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहतेहैं— हे सन्तो ! मथुरापुरीके निवासी यदुवंशी कृष्ण रहे। प्रभास क्षेत्रमें जब परस्परके झगड़ासे यादवकुलका संहार हुआ, तब कृष्ण चिन्तामग्न वृक्षके नीचे बैठे थे, उसवक्त 'जरा' नामक व्याधाने तीर मारा, सो कृष्णके पैरमें आ करके लगा। वहाँसे कृष्ण मथुरामें आये; तो उसी पीड़ाके कारण मथुरामें ही कृष्ण गोपाल मर गये। यह बात पुराणोंमें प्रसिद्ध करके लिखी है। अथवा मथुराके निवासी गोपाल कहलाने वाले कृष्ण ग्वाल-बाल यदुवंशियोंके साथ रहकर अनेकों कर्म-कुकर्म विषय लीला किये। अत्यधिक विषय भोगोंमें लिप्त-मस्त रहे; और मन-मानन्दी करके भ्रम कल्पनासे ब्रह्मज्ञानको दृढ़ करके स्वयं ब्रह्म बने रहे। इन्द्रियोंसे यथेष्ट भोग-विलास करके भी अकर्त्ता, अभोक्ता शुद्ध ब्रह्म होनेका दावा करते रहे। इससे खानी-वाणीमें आसक्त जड़ाध्यासी हो करके हंसपदसे वे पतित हुए। एक दिन शरीर छूटनेपर मरकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही चले गये। इसीप्रकार माने हुए मच्छ-कच्छादि दशों अवतारी पुरुष भी भग-भोगी, भ्रमिक, पामर, विषयासक्त, हिंसक, जड़ाध्यासी होकर मर-मर करके आवागमनमें ही चले गये। अथवा अध्यासी जीव मर-मर करके दशों अवतारोंमें शरीर धारण करनेको चले गये। तहाँ कोई मछली, कछुवे आदि

जलचर हुए। कोई सूअर, सिंह, व्याघ्रादि वनचर पशु हुए। कोई पक्षी हुए, कोई उष्मज हुए। कोई पापके कारणसे वामन=बौना, लूला, लङ्गड़ा हुए। कोई क्रोधी, महा हिंसक फरसाधारी हुए। कोई कामी तथा मोही हुए। कोई बिना हाथके हथकटे हुए। कोई महा दोषी हुए; इत्यादि दशों दिशाओंमें दशों इन्द्रिय युक्त देहधारी जीव सब कर्मानुसार गमनागमन कर रहे हैं। गुरुवालोगोंने झूठ ही महिमा बढ़ा करके चौरासी योनियोंमें उत्पन्न हुए प्राणीको परमात्माके दश अवतार कहकर बतलाये हैं; लोगोंको भुलाये हैं। वे तो स्वयं पाप-फल भोगनेको उत्पन्न हुए, फिर वे किसीका क्या भला करेंगे? समयानुसार दश अवतारके लोग भी मर-मर कर चारखानीकी अनन्त योनियोंमें जड़ाध्यास-वश चले गये। पारख ज्ञान-स्वरूपकी स्थिति हुए बिना कोई मुक्त नहीं हुए वा नहीं बचे ॥ १५४९ ॥

३. मरि मरि गये भक्ति जिन ठानी ❀ सगुणमा निर्गुण जिन्ह आनी ॥ १५५० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! जिन-जिन लोगोंने कर्मी, उपासकादि साधक बनकर कल्पनासे कोई परमेश्वर, जगत्कर्त्ता मानकर भक्त रक्षण, धर्मस्थापन असुर निकन्दनार्थ, उसी ईश्वरके मुख्य दश अवतार और गौण चौदह अवतार सब मिल करके चौबीस अवतार हुए, सो समय-समयमें प्रगट हुए, ऐसे अनुमान करके उन्होंके गुणगान, चरित्र वर्णन, लीलानुकरण, भजन-कीर्तनादि भक्ति मार्गको ठान करके कायम कर दिये। तहाँ नवधा भक्ति और प्रेमलक्षणा भक्तिका विस्तार किये। ईश्वर प्राप्तिकी साधना, उपासना, भक्तिमार्गको निश्चय करके मनमें भ्रम ठान लिये या मान लिये हैं। पारख स्वरूपका बोध हुए बिना वे सब भक्तलोग भी जड़ाध्यासी हो करके मर-मर कर चौरासी योनियोंमें ही चले गये; और जिन योगी, ज्ञानी, गुरुवालोगोंने संसारमें सगुण-साकार नरदेह धारण करके देहके आधारसे नाना कर्त्तव्यकी कल्पना की तथा साकार शरीर और जगत्को देखकर अनुमानसे यह सारा चराचरका कर्त्ता, जगत् रचयिता कोई निर्गुण-निराकार, निरञ्जन व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी की है। वे ही सोई मानन्दी सगुण देह-मनादि इन्द्रियोंमेंसे निकाल करके बाहर लाये, वाणी बनाये। वे ही वेद-वेदान्तादिकी वाणी सुना-सुना करके दूसरोंको भी भ्रमाये वा भुलाये हैं; निजस्वरूपको भूले तथा धोखेमें पड़े हैं। इसवास्ते पारखबोध निजस्वरूपकी स्थिति उन्हें नहीं हुई। इसीसे सगुण= देहमें, निर्गुण=ब्रह्मकी भावना ले आने वाले योगी, ज्ञानी लोग भी जड़ाध्यासी होकर आयु बिता-बिता कर मर-मर करके बारम्बार चौरासी योनियोंके चक्ररूप आवागमनमें ही चले गये; और वैसे ही अभी भी चले जा रहे हैं, बिना पारख ॥ १५५० ॥

साखीः— नाथ मछन्दर बाँचे नहीं ❀ गोरख दत्त और व्यास ॥
[२८५] कहहिं कबीर पुकारिके ❀ ई सब परे कालकी फाँस ॥ १५५१ ॥

अर्थः— पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुकार करके ऊँची आवाजसे गोहरा करके सबोंको सुनाकर चेतावनी दे करके कहते हैं कि— हे सारग्राही मुमुक्षुओ! सुनो! जिन-जिन-को तुमलोग महा योगी, महा ज्ञानी, परमभक्त, कल्याणकारी, मुक्त, सिद्ध, महापुरुष मान रहे हो। सो उनके पक्ष ले करके तुम्हारी कुछ भलाई वा कल्याण नहीं होगा। वास्तवमें वे ही बद्ध हुए, तो वे तुम्हें क्या मुक्त करेंगे? नौ नाथोंको बड़े सिद्ध जो मानते हो, सो तुम्हारी भूल है। क्योंकि, नौ नाथके आदिगुरु आदिनाथ महादेव हुए। वे तो कामी, क्रोधी, हिंसक बने रहे; खानी-वाणी दोनोंके अध्यासी हो बद्ध हुए; और उनके बाद मत्स्येन्द्रनाथ योगी हुए। योगक्रिया वाणी-कल्पनामें तो वे भूले ही थे। पश्चात् एक समयमें सिद्धिके अभिमानमें घूमते-फिरते हुए सिंहलद्वीपमें गये। वहाँ कमलापति रानीने मत्स्येन्द्रनाथको भग-भोगोंमें फँसा करके बाँध रक्खा। ऐसे मत्स्येन्द्रनाथ भी खानी-वाणी जालोंमें फँसकर बैलकी नाईं नाथे गये वा बद्ध हुए। बन्धनरूप जड़ाध्याससे वे नहीं बचे, आवागमनसे छुटकारा नहीं पाये; और उन्हींके शिष्य महायोगी गोरखनाथ हुए। वे तो स्थूल विषय भोगोंसे भाग करके त्यागी हुए। परन्तु, योगादि साधनाएँ करके वे सूक्ष्म विषयोंके अध्यासी हुए

थे, अनहद ध्वनिका 'शब्द', योगानन्दका 'स्पर्श', ज्योति प्रकाशका 'रूप,' अमृतपानका 'रस' और कमलका 'गन्ध' तथा शून्य समाधि वाणी कल्पनाके जड़ाध्यासी हो पारख बोधके बिना गोरखनाथ भी भव-बन्धनोंसे नहीं बचे; छूट नहीं पाये। तैसे ही दत्तात्रेय अवधूत संन्यासी, विज्ञानी परमहंस हुए। आकाशवत् व्यापक निराकार ब्रह्मकी भावनामें दत्तचित्त रहे। उसीको अपना स्वरूप मानकर भ्रमिक गाफिल हुए; और कृष्णद्वैपायन ऋषिका दूसरा नाम वेदव्यास था। इन्होंने वेदके मन्त्रोंको चार भागोंमें विभक्त किया, वेदान्त सूत्र बनाया; और अठारह पुराणोंके रचयिता भी व्यासजी ही कहलाते हैं; और कथावाचक पण्डितको भी लोकमें व्यासजी ही कहते हैं। सो वेदव्यास भी विषयासक्ति तथा वाणी-कल्पना भ्रम धोखेमें पड़ करके जड़ाध्यासी हुए थे, इससे आवागमनसे वे भी बच नहीं पाये। उन्होंके अनुयायी और अनेकों सिद्ध-साधक, ज्ञानी-ध्यानी, भक्त, योगी, कर्मी आदि हुए हैं। उन सबमें भी पारख स्वरूपके यथार्थ बोध हुए बिना किसीने मुक्ति स्थिति नहीं पायी। ई सब=ये सब लोग बेपारखी, पक्षपाती, अविचारी, हठी, भ्रमिक, विषयासक्त हुए। अतएव जड़ाध्यासी हो करके कालके फाँसमें गिर पड़े। कोई मन-मानन्दीके जालमें फँसे हैं, कोई गुरुवालोगों-की वाणी-कल्पनामें अरुझे हैं; और कोई स्त्रीके विषय-विलास भोगोंमें आसक्त हुए हैं। इसप्रकारसे खानी-जालमें विषयानन्दके मोहमें; और वाणी-जालमें ब्रह्मानन्दादिकी मानन्दीमें- यही कालके कल्पना-कृत महाजाल-फाँसमें फँस पड़े। अन्तमें चारखानी चौरासी योनियोंके गर्भवासादिमें गिर पड़े, बिना पारख। अतएव उन सबोंका पक्ष छोड़ करके पारखी श्रीसद्गुरुका सत्य बोध लेकर जीवन सुधार करना चाहिये ॥ १५५१ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८३ ॥ [चौपाई- १२ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. जेहि त्रिदोष मुये त्रिदेवा * कर्म धर्म मत रचिया भेवा ॥ १५५२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जिस त्रिदोष=काम, क्रोध और मोहके, विषय विकार स्थूल भागमें; ज्ञान, अज्ञान और विज्ञान सूक्ष्म भागमें; तत्, त्वं तथा असि कारण भागमें; और भक्ति, योग तथा ज्ञान, सम्मिश्रण भागमें एकत्र मिला करके सन्निपातके समान जिस असाध्यरोग, महाअज्ञानमें गाफिल जड़ाध्यासी होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश- ये त्रिदेव गुरुवालोग प्रथम मर गये। उसीमें फँस करके सारे संसारके नरजीव भी जड़ाध्यासी हो-होकर मर रहे हैं। पारख बोधके बिना कोई भी बच नहीं पा रहे हैं। ब्रह्मादिकोंने मरनेके पहलेसे कर्ममार्ग, धर्म=उपासना-मार्ग, मत=योगमार्गादिको बहुत प्रकारसे रचना करके उसमें भेद डाल दिया था, भ्रम कल्पनामें नरजीवोंको लगा दिया था। बहुत वाणी-खानी जालोंकी रचना करके फैला दिया है। वह सब तो मनुष्य जीवोंको फँसानेके लिये ही जाल खड़ा हुआ है। यह भेद तो कोई जानते ही नहीं है; इसलिये उसीमें अपने फँसते और दूसरोंको भी फँसाते जाते हैं ॥ १५५२ ॥

२. सोई सिद्धि सब साधुन पाई * सनकादिक मुनि नारद गाई ॥ १५५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई कर्म, उपासना, योगकी बात उनकी महिमा ब्रह्माके पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, ये चार भाई ज्ञानियोंने, और नारदादि भक्त ऋषि-मुनियोंने भी खूब गुणानुवाद गायन किया, विस्तार करके वाणी और कल्पनाको बढ़ाया। सोई सिद्धान्त, मत-पन्थकी नाना मानन्दी एक-दूसरेकी परम्परासे षट् दर्शनोंके सब साधुओंने भी सिद्ध कर पाये; और सोई बात वर्तमानके सब साधुओंमें भी सिद्धान्तरूपमें पायी जाती है। पहले निरञ्जन पुरुषने मन-मानन्दीसे जो बात कल्पना की, सो आदिमायाको बता करके मर गया। आदिमायाने भी ब्रह्मादिको सोई बात बता करके मर गई; और ब्रह्मादिकोंने भी वही बात कर्म, धर्म और मतके नामसे रचना करके सनकादि शिष्योंको सिखलाकर मर गये। फिर सनकादि, नारदादि मुनियोंने भी वही बात गाकर सुनायी। सब साधुओंको 'कर्मादि साधनासे ही सब सिद्धि पाओगे' ऐसा

दृढ़ा करके वे भी मर गये। इसीतरह परम्परासे सो आदिकी भूलरूप धोखा-भ्रम प्रचार होता हुआ चला ही आ रहा है। आज भी सब बेपारखी साधुजन उसी मार्गमें लगकर मनमाने सिद्धि पानेकी आशामें भूले पड़े हैं। अन्तमें चौरासी योनियोंमें ही जाकर गोता लगाते हैं ॥ १५५३ ॥

३. बालमीक मुनिवर इत्यादि ❀ षट मुनि षट शास्त्रनके वादी ॥ १५५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बड़े-बड़े श्रेष्ठ ऋषि-मुनि कहलानेवाले प्राचीन कालमें हो गये हैं। वशिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, यमदग्नि और अत्रि, ये सप्त ऋषि कहलाये हैं। तथा अङ्गिरा, वाल्मिकि, च्यवन, भृगु, पराशर, दुर्वाशा, याज्ञवल्क्य, इत्यादि मुनिवर अलग ही हुए। वे सब भी वेद-शास्त्रोंके मतवादी हुए। वाणी-कल्पना तथा विषयासक्त जड़ाध्यासी होकर पूर्वमें वे सब मर-मर कर आवागमनमें ही चले गये; और समयान्तरमें षट् शास्त्रोंके वाद-विवाद करनेवाले षट् शास्त्रोंके पक्षपाती व्यासादि षट् मुनि अलग ही हुए। उन्होंने षट् सिद्धान्त न्यारा-न्यारा ही कथन किया है। पारख स्वरूपकी बोध-स्थिति हुए बिना वे भी जड़ाध्यासी होकर भव-बन्धनोंमें ही जकड़ गये। फिर बहुतेक नरजीव वही शास्त्रवादी होकर भ्रमिक-गाफिल हुए; और अभी हो ही रहे हैं ॥ १५५४ ॥

४. जैमिनि और कणाद कहावै ❀ गौतम भिन्न भिन्न सो गावै ॥ १५५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब उन षट् शास्त्रकारोंके नाम और सिद्धान्त भी संक्षेपमें सुनिये ! प्रथम 'जैमिनी मुनि' कर्मवादी हुए हैं। कर्म प्रधान उनका पूर्व मीमांसा शास्त्रका सिद्धान्त है। दूसरे 'कणाद मुनि' कालवादी हुए हैं। वैशेषिकशास्त्रमें काल वा समयका विशेष महत्त्व बता करके उन्होंने वही सिद्धान्त कायम किया है; और तीसरा 'गौतम मुनि' ईश्वरवादी हुए हैं। न्यायशास्त्रमें उन्होंने ईश्वरको सर्वशक्तिमान् बताकर उसकी बड़ी महिमा गाई है; ईश्वर कर्त्ता उनका सिद्धान्त है। सो ऐसे तीनों भिन्न-भिन्न तीन शास्त्रोंके कर्त्ता हुए हैं; और भिन्न-भिन्न तीन तरहके सिद्धान्त उन्होंने प्रगट किया है; और वही प्रचार किया है ॥ १५५५ ॥

५. कपिल व्यास शेष परवाना ❀ षट शास्त्रके कीन्ह बन्धाना ॥ १५५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चौथे 'कपिल मुनि' सांख्यवादी हुए हैं। सांख्य शास्त्रमें उन्होंने प्रकृति और पुरुषके विवेकसे मुक्ति होनेका सिद्धान्त ठहराया है। पाँचवाँ शेषावतार माने हुए 'पतञ्जलि मुनि' योगवादी हुए हैं। पातञ्जल शास्त्रमें उन्होंने अष्टाङ्ग योगके साधना समाधि द्वारा ज्योति स्वरूप ईश्वर पुरुषके दर्शनसे मुक्ति बतलाया है; और छठवाँ 'व्यास मुनि' अद्वैत ब्रह्मवादी हुए हैं। वेदान्त शास्त्रमें उन्होंने अद्वैत व्यापक ब्रह्म, और जीव-ब्रह्मकी एकताका सिद्धान्त दर्शाया है। यही षट् मुनियोंने कल्पनासे उपरोक्त षट् शास्त्रोंकी रचना करके उक्त विभिन्न सिद्धान्तोंका बन्धान वा कायम, बहुभाँतिकी युक्ति-प्रयुक्तिसे निश्चयसे ठहराव किया है। परन्तु, पारखबोध हुए बिना सब उसी भ्रम कल्पनामें बाँधे गये हैं ॥ १५५६ ॥

६. उक्ति पनिच धनु वाक्य बनाई ❀ बहुमत वेद शर ताई चढ़ाई ॥ १५५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे शिकारी-व्याधा धनुषमें डोरी चढ़ा करके उस ताँदोरूप डोरीमें बाण चढ़ा करके वनजन्तुके मर्म-स्थानको निशाना लगाकर कानतक पनिच=डोरी (प्रत्यञ्चा) खींचकर बाण छोड़ देते हैं, उससे घायल हो करके जानवरादि प्राणी मारे जाते हैं। इसप्रकार हिंसा करके अपना स्वार्थ पूर्ण करते हैं। इसीतरह काल=शिकारी बने हुए गुरुवालोगोंने भी अपनी-अपनी उक्ति=कथनकी युक्ति-प्रयुक्तिको ही यहाँपर पनिच=वाणीकी मजबूत डोरी, सूतके रस्सीवत् बनाया है। वेदके महावाक्य या रोचक-भयानक वाक्य-विलास, पुष्पित वाणी कल्पनाको ही धनुष या कमानकी जगहमें दृढ़ बनाया है; और वेद-वेदान्तसे बहुत प्रकारके मतकी स्थापना करना, नाना सिद्धान्त वर्णन करना, बहुत मत-मतान्तरोंके वाद-विवाद करना,

षट् शास्त्रोंके विभिन्न मत प्रगट करना, वही सब सरासर जीवोंको भुला करके धोखा देकर नाना प्रकारकी वाणीरूपी बाण उक्त धनुषपर ठीकसे मिला करके चढ़ा दिया है। फिर मुखसे कानतक लक्ष्य खींचकर बाणरूपी वाणी धड़ाधड़ छोड़ते गये ॥ १५५७ ॥

७. उर सब जीव निशाना कीन्हा ❀ सायक विविधि चलावन लीन्हा ॥ १५५८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने वाक्यरूप धनुषमें उक्तिरूप पनिच वा डोरी लगा करके वेदके बहुमतोंकी वाणी उसमें चढ़ाकर जब हथियार तैय्यार किया। तब संसाररूपी जङ्गलमें घुस करके अज्ञानी मनुष्य जीवोंको चुन-चुन करके सब जीवोंके हृदय वा अन्तःकरणको ताककर सीधा निशाना किया; और उस निशानामें लक्ष्य लगाकर फिर अनेक प्रकारके शब्दरूपी बाण, सोई 'सायक' चला करके उन्हें मार दिया। नाना तरहकी उपदेशरूप वाणी कानमें मार-मार कर या सुना-सुना करके भ्रमाकर स्ववश बना करके अनेक साधनाओंमें लगा दिया। हृदयका निशाना बनाकर जीवोंको ऐसी वाणीकी चोट मारी कि, सबको अचेत, अशक्त बना दिया है ॥ १५५८ ॥

८. लगे तीर सबके उरमाहीं ❀ बिनु पारख सो निकसत नाहीं ॥ १५५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब उधर नरपशु, गुरुपशु, वेदपशु, शास्त्रपशु और सुरपशु बने हुए पक्षपाती, अविचारी सब मनुष्योंके हृदय या अन्तःकरणमें गुरुवालोगोंके नाना प्रकारके कल्पित शब्दबाण आ-आ करके नित्य-प्रति जोरोंसे लगने लगे, दृढ़ होने लगे। बहुत-सी भ्रम कल्पना उन्होंके मनमें भी घुस गई। वाणीरूपी तीक्ष्ण बाण उरमें चुभ गया। तब भ्रमरूपी वेदनासे छटपटाकर विरह-वियोगी हुए। अनेक भेषधारी हुए। नाना मतवादी पाखण्डी हुए। विह्वल होते-होते कितनेक लोग तो जड़ाध्यासी होकर मर भी गये, कितनेक गुरुवालोगोंका स्वार्थ पूर्ण कर रहे हैं। इसप्रकार सब वाणीरूपी बाणकी चोट खा करके निकम्मे हो गये या ऐसे ही हो रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके अपरोक्ष यथार्थ पारख बोध प्राप्त हुए बिना सो वाणीका भ्रम किसीके मनसे नहीं निकलता है। श्रीसद्गुरुके उपदेशका मनन-विचार किये बिना पारख बोध भी किसीको नहीं होता है। पारख बोधके बिना भ्रम-अध्यास कदापि नहीं छूट सकता है, अतएव मुमुक्षुको चाहिये कि, पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें जाकर पारख बोध प्राप्त करे। तभी सब गाँस-फाँस छूट जायेंगे ॥ १५५९ ॥

९. षट शास्त्र शाखा उपराजा ❀ ग्रासित काल कर्म नहिं भाजा ॥ १५६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम नरजीवोंने वाणी-कल्पनाके बीजमेंसे चार वेदरूपी वृक्ष उगाया। उन वेदोंमेंसे फिर शाखा या डालियोंके समान षट् शास्त्रोंको षट् मुनियोंने कल्पना बढ़ा करके उत्पन्न किया। दूसरा कोई जगत्कर्त्ता ठहराकर मुक्तिकी चाहना कर-करके उलटे भव-बन्धनोंमें ही जा करके फँसे पड़े हैं। तहाँ काल=गुरुवालोग नाना कल्पनामें ग्रसित हुए, काले-कलूटे हुए। जड़ाध्यासी होनेसे उन्होंका कर्म बन्धन नहीं भगा या नहीं छूटा, तथा वे मुक्त नहीं हुए। अब उन्हीं कालके नाना कर्मजालोंमें सब जीव ग्रसित बद्ध अध्यासी हुए। काल कर्मसे तथा नारी और गुरुवाओंके सङ्गसे कोई नहीं भागते हैं वा कोई उसे नहीं त्यागते हैं। इसीसे चौरासी योनियोंके चक्रसे वे छूटते भी नहीं हैं। अर्थात् षट् शास्त्र भी उत्पन्न किये, तो भी काल कर्ममें ही ग्रसित वे हुए। पारख बोधके बिना उनकी भ्रम-कल्पना नहीं भागी, तो अब वह शास्त्र पढ़नेवालोंका भ्रम कैसे भगेगा? कदापि नहीं भगेगा ॥ १५६० ॥

१०. षट शास्त्र षट अंश विराजे ❀ तीन पुरुष तीन नारि गाजे ॥ १५६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! षट् शास्त्रोंमें मुख्यतः षट् अंश ही विराजमान हो रहे हैं। छैः प्रकारकी कल्पनाका विस्तार बैठाकर सूत्रोंमें षट्शास्त्र बनाया है। उनमें तीन शास्त्र तो

पुरुषके अंशसे बने हैं, तथा तीन शास्त्र स्त्रीरूप प्रकृतिके अंशसे बने, ऐसा कथन करके गर्जना किया है। तहाँ मीमांसा, वैशेषिक और न्याय, यह तीनमें कर्म, भक्ति, प्रतिक्षा करके अपनेसे भिन्न दूसरा ईश्वरादि कर्त्ता माना है। इसीसे ये तीन नारी अंशमें गिने गये हैं; और पातञ्जल, सांख्य तथा वेदान्त यह तीनोंमें एक अद्वैत परम पुरुष परमात्मा परब्रह्म निरूपणकर योग, ध्यान और ज्ञानादिमें लगाया है। इसलिये ये तीन पुरुष अंशमें माना गया है। इसप्रकार प्रकृति-पुरुषके तीन-तीन अंश मिला करके षट् शास्त्रोंकी रचना हुई है। त्रिगुणी नर-नारी उसी मानन्दीमें भूले पड़े हैं ॥ १५६१ ॥

११. मीमांसा वैशेषिक सोई ❀ परगट न्याय पातञ्जल जोई ॥ १५६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्व मीमांसा शास्त्रमें बहुत विधिसे कर्मकाण्डका ही कथन किया है, कर्मसे ही सिद्धि-समृद्धि प्राप्ति बतलाया है। वैशेषिकशास्त्रमें समयका इन्तिजार करनेको बतलाया है; समय पा करके ही सब कुछ होता है; समयपर भरोसा रक्खो, ऐसा कहा है। सोई उन्होंके सिद्धान्तका किञ्चित नमूना है। न्यायशास्त्रमें यह सारा विश्वको गुप्त-प्रगट करनेवाले सर्वसमर्थ कोई एक ईश्वर कर्त्ता माना है। ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है, ऐसा कहा है। ये तीनों शास्त्र द्वैतवादको प्रगट करनेवाले स्त्रीरूप प्रकृतिके अंश भागमेंसे, विभक्त हुए हैं; और पातञ्जलशास्त्रमें योग साधना करके ध्यानसे ब्रह्माण्डमें ज्योतिर्मय परमेश्वरका दर्शन होता है। जो तुम्हें मुक्त होना है, तो उसीका दर्शन करो, ऐसा कहा है ॥ १५६२ ॥

१२. शास्त्र सांख्य वेदान्त सो जोरी ❀ इन्ह षट माँह बैर नहिं थोरी ॥ १५६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सांख्यशास्त्रमें विवेक द्वारा प्रकृति-पुरुषका बिलछान करके प्रकृतिके भागको त्यागकर आत्म-पुरुषमें मग्न रहना, इत्यादि कथन किया है; और वेदान्त-शास्त्रमें "एक ही अद्वैत ब्रह्म है, द्वैत भाव मिथ्या है। द्वैत भ्रमको परित्याग करके 'अहं ब्रह्मास्मि'का निश्चय करना चाहिये" इत्यादि वर्णन किया है। ये तीनों मुख्यांशतः अद्वैतवादको प्रगट करनेवाले पुरुषके अंश भागसे विभिन्न हुए हैं। सो उन छहोंको एकत्र जोड़कर षट् शास्त्रके नामसे कहा जाता है। भ्रम कल्पना, अनुमानादिमें लक्ष्यको जोड़ करके ही उक्त षट् शास्त्रोंका निर्माण हुआ है। अनुसन्धान कर विचार पूर्वक देखिये ! तो आपको भी पता लग जायगा कि, उक्त षट् शास्त्रोंमें उनके सिद्धान्तोंमें थोड़ा-थोड़ा ही मतवाद, थोड़ी ही असाम्यता तथा थोड़ा बैर ही मात्र नहीं हुआ है। परन्तु, उनमें तो परस्पर बहुत ही अनमिल बातें, एक-दूसरोंका तीव्रतासे खण्डन, बैर-विरोध लगा हुआ है। अतएव उन षट् शास्त्रोक्त बातोंकी मानन्दीसे थोड़ा-सा भी कल्याण किसी नरजीवोंका होनेकी आशा नहीं है। उन सबके पक्षको त्यागकर पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें ही लगना चाहिये ॥ १५६३ ॥

साखीः— चार वेद षट् अंश सो ❀ परगट भये जग आय ॥

[२८६] अर्थ विचारत जीव थके ❀ झगरा बहुत मचाय ॥ १५६४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चार वेदों की ही कल्पना, मुख्य अंशरूप कार्य भागसे सो वाणी षट् शास्त्रोंके रूपमें प्रगट हुई है। सोई भ्रमिक गुरुवालोगोंके द्वारा जगत्में पुस्तकाकारोंमें जमा होकर प्रगटरूपमें उत्पन्न होकर आयी है। उनमें तीन स्त्रीके अंश तथा तीन पुरुषके अंशमें कहलायी है। जैसे चारखानीके षट् पशुधर्मके अभ्याससे स्त्री-पुरुषोंके अंशरूप रज-वीर्यके सम्बन्धसे जगत्में नाना आकारको धारण करके जीव जन्म लेकर आते हैं। तैसे ही सो षट् शास्त्र भी चार वेदोंके अंशसे ही बने हैं, तथा षट् मुनियोंसे बनकर प्रगट हो करके जगत्में आये हैं। तदनन्तर संसारमें सब मनुष्य जीव उसी वेद-शास्त्रोंके शब्दोंका अर्थ, भवार्थादि विचार करने लगे। सोच-विचार करते-करते भी कुछ यथार्थ भेद समझनेमें नहीं आया, आखिरमें थकित हो गये। तब निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, परमात्मा कोई होगा, ऐसा मानकर भ्रमिक हुए। सबोंने अपना-अपना पक्ष पकड़ करके स्वमत मण्डन, और परमत खण्डन किया है। बहुत-बहुत झगड़ा

मचाया है। टन्टा, फसाद, उपाधि फैला करके तर्क-वितर्कका युद्ध किया है। वाक् बाणोंका प्रहार किया है। खूब मत-पन्थोंका झगड़ा करा दिया है। अभी तक वही झगड़ा चला ही आ रहा है। किसीका वैर-विरोध ही नहीं मिटता है। उन्मत्त झगड़ालूजन जड़ाध्यासी होकर मर मिटे, तो आवागमनमें गिरकर नाना दुःख भोग रहे हैं। ऐसे थकनेपर भी बद्ध हो जाते हैं ॥ १५६४ ॥

साखीः— खट खट षटके जानहीं * सो न परहिं भव फन्द ॥
[२८७] गुरु पारख प्रताप सो * सदा रहै आनन्द ॥ १५६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जो कोई जिज्ञासु मनुष्योंने पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर सार-असारका यथार्थ पारख कर लिया है, सो विवेकी होकर षट् शास्त्रोंके खट-खट=उपाधि, झंझटोंको अच्छी तरहसे भ्रम, बन्धनरूप जानते हैं। तथा षट् पशुधर्म, षट् ऊर्मि, षट् पक्ष, षड् दर्शन, षट् नर-नारी, षट् रिपु, षट् बन्धन आदि इन सबोंके खट्-खट् झगड़ा-फसादसे होनेवाली परेशानी, और जन्मृति दुःखोंके कारण उनको ही जो जानते हैं, सो सत्यन्यायी पारखी सन्त श्रीसद्गुरुकी दयासे कभी भी खानी-वाणीके भव-फन्दोंमें जाकर नहीं पड़ते हैं। एक वक्त उन फन्दाओंसे निकल जानेपर फिर उन खटपटी फन्दाओंमें, षट् जालोंमें वे कभी पड़ नहीं सकते हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी महान कृपादृष्टि तथा गुरुपारख बोधके बलसे या गुरुपारख दृष्टिके प्रतापसे सदाके लिये निर्बन्ध जीवन्मुक्त सुखी हो निजपारखपदमें ही स्थिर हो रहते हैं; और किसी प्रकारके आनन्दकी उन्हें इच्छा नहीं रहती है। सुख अध्यासको बन्धन जान करके कोई भी आनन्दकी तरफ लक्ष्य वे नहीं लगाते हैं। सदा हंसपदमें ही जाग्रत्, सावधान रहते हैं। इसीसे वे सब बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। अतएव मुमुक्षुजनोंको पारखी श्रीसद्गुरुके पारखबोध लेकर षट्-षट्के समस्त खट-खट-को ठीकसे जानकर त्याग देना चाहिये। उन फन्दाओंमें कभी नहीं पड़ना चाहिये। श्रीसद्गुरुके पारख-पदमें स्थिर होकर सदाके लिये सुखी हो जाना चाहिये। हितकारी पारखी श्रीसद्गुरुकी भक्ति सब प्रकारसे करते रहना चाहिये ॥ १५६५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८४ ॥ [चौपाई- १० । साखी- ४ है] ॥ ❀ ॥

१. और अठारह कथे पुराना * बहुविधि कर्म फाँस अरुझाना ॥ १५६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! तत्पश्चात् समयान्तरमें पाँच लक्षणवाला पुराण अठारह प्रकारसे १८ पुराण पण्डितोंने कथन किया है। तहाँ पुराणके पाँच लक्षण ऐसा कहा हैः-

श्लोकः— "सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च ॥ वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥"

अर्थात् सर्ग, प्रत्येक सर्ग, वंश, मन्वन्तर और उनके वंशोंके चरित्र जिसमें वर्णन किये गये हों, सो पाँच लक्षण संयुक्त कथनको पुराण कहते हैं ॥ 'व्यास' के नामसे पण्डित लोगोंने सब मुख्य अठारह पुराण बना रक्खा है। [१८ पुराणोंका नाम अलग-अलग समष्टिसारके चौपाई— ३४६की टीका पृष्ठ २५६ में लिखा है।] उसमें बहुत प्रकारसे कर्मादिकका वर्णन करके कर्मफाँसमें सब नरजीवोंको गुरुवालोगोंने बहुविधिसे अरुझाये; और अरुझा ही रहे हैं। पुराणोंके विस्तार जो किया है, सो बहुत प्रकारसे अरुझानेका जाल ही बनाया है ॥ १५६६ ॥

२. युक्ति इतिहास अनेक मिलाई * सुनहिं सुनावहिं व्यास अधिकाई ॥ १५६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पुराने जमानेमें जो-जो व्यवहार हुआ, सो उसका नाम इतिहास या पुरावृत्त रक्खा गया। फलानेने ऐसा किया, वह वैसा हुआ, इसका वंश यहाँसे चला, वहाँ टूट गया। ऐसे युद्ध हुआ, वह जीता, यह हारा, इत्यादि जीवनचरित्र कथा या कहानी, पुराना वृत्तान्त जो है, सोई पुराण=इतिहासमें युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा अनेकों छल-छिद्र, कपट, प्रपञ्चादिको एकत्र मिला करके बड़े-बड़े ग्रन्थ बनाकर लिख रक्खे हैं। सोई पण्डित लोग पुराण रचयिता व्यास= पण्डितोंका विशेष गुण गाकर पुराणादिक बाँच करके कथा सुनाते हैं; और अज्ञानी लोग भी

पण्डितोंके मुखसे पुराणोंकी कथा सुनते हैं। तहाँ कथा वाचक पण्डितोंको भी व्यासजी कहते हैं। व्यासकी अधिकाई=श्रेष्ठता, उच्चता मान करके मान-सम्मानकर भेंट-पूजा चढ़ाते हैं। कथा सुनना-सुनाना यही व्यास-पण्डितोंकी अधिकता या अधिकार हुआ; अभीतक लोग कथा वाचकको व्यासके वंशवाले मान-मान कर ठगाये जा रहे हैं ॥ १५६७ ॥

३. जो परपञ्च होय जगमाहीं ❀ उपजहिं ग्रन्थ व्यासके ताहीं ॥ १५६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें जो-जो प्रपञ्च प्राचीनकालमें हुआ, पाप-पुण्य, चोरी, लुटाई, पिटाई, विषय भोग, स्त्री हरण, लड़ाई, झगड़ा, मार-काट, इत्यादि वर्णन करके उसीको व्यासने पुराणादिमें लिखा है; और भी समय-समयमें जो-जो प्रपञ्च, उपाधि, जन्म-मरण बनाव-बिगड़ाव, युद्ध-सन्धि आदि हुए या होते गये, सो सब भी संस्कृत गद्य-पद्यमें या भाषामें लिख करके पण्डितोंने उसे भी व्यासजीके नामसे ही प्रसिद्ध करके नाना ग्रन्थ, पुराण, इतिहास, काव्यादि बना करके उत्पन्न किया है। क्योंकि, उन पण्डितोंके नामसे उन झूठी गपोड़ी कथाओंको कोई नहीं मानेगा, तब आमदनी न होवेगा, इसवास्ते सब प्रपञ्चके कथन, असम्बद्ध कहानी व्यासके नामसे प्रचार करके लोगोंको धोखा देकर ठगा है। जगत् प्रपञ्चोंका विस्तारकर उसे व्यासके नामसे ही ग्रन्थ बनाकर उपजाया है ॥ १५६८ ॥

४. ग्रन्थ अनेक को गने गनावै ? ❀ शाखामों शाखा उपजावै ॥ १५६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार चार वेद, छः शास्त्र, १४ विद्या, १८ पुराण, १८ उपपुराण, ६४ कला, इत्यादिक लिखित ग्रन्थ अनेकों विस्तार किया है। संसारभरमें कितनेक ग्रन्थ बने, और कितनेक बन रहे हैं, इसका सब पूरा-पूरा हिसाब कोई गिन भी नहीं सकते हैं, तथा गिना भी नहीं सकते हैं। क्योंकि, असंख्य ग्रन्थ बने हैं। जैसे वृक्षकी डालीमेंसे छोटी-छोटी अनेकों डाली-पत्तियाँ फूटती जाती हैं। तैसे ही एक शाखामेंके अंश लेकर हजारों, लाखों प्रकारके विचार, शिष्य-शाखा लोगोंने उत्पन्न किया है; और एक-एक ग्रन्थमें अनेक-अनेक शाखा, मतभेद खड़ा किया है। तथा और भी शाखा-प्रशाखा, अनुशाखा, अल्पशाखा, शिष्यशाखा इत्यादि उत्पन्न होती ही चली जा रही है। उसी सबकी अध्यास-ग्रन्थि जीवोंके हृदयमें पड़ती ही जा रही है। अतएव अनेकों देह धर-धर करके चौरासी योनियोंमें जीव उत्पन्न होते जा रहे हैं, बिना पारख ॥ १५६९ ॥

५. हेतु सबै कारज होय आवै ❀ एक समय पुनि ताहि मिटावै ॥ १५७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हेतु=कारण ही सब कार्यरूपमें प्रगट हो करके आते हैं। तैसे ही कारणरूप वेद वाणीकी कल्पनासे ही कार्यरूप अनेकों ग्रन्थ, पन्थ प्रगट होकर जगत्में आया है। फिर एक समयमें जब कि- अद्वैत ब्रह्मज्ञान होता है, तब फिर उन सब द्वैतको मिटा करके एक ब्रह्म हो रहते हैं। अथवा गुरुवालोग कहते हैं कि, कारण ब्रह्मकी इच्छासे ही सब कार्य जगत् उत्पन्न हो करके आया है; और एक समय ऐसा आवेगा कि, फिर महाप्रलयमें यह सारा जगत् विनाश हो करके मिट जावेगा, ब्रह्ममें ही विश्व समा जावेगा, इत्यादि कल्पना किया है। अथवा ब्रह्मानन्द और विषयानन्द प्राप्तिका बीज-वासनाके कारणसे ही नाना साधनाओंके कार्य प्रगट होकर आया है। फिर एक समयमें मृत्यु होनेपर वह सब कार्य मिट-मिटा करके विनाश हो जाता है। वासनावश जीव गर्भवासको ही प्राप्त होता है; दुःख भोगा करता है ॥ १५७० ॥

६. रहटा उपजन बिनसन केरा ❀ परखहिं जीव न रहहिं धन्धेरा ॥ १५७१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्म-जगत्का रहटा, वाणी-खानीका रहटा, वेद-शास्त्रोंका रहटा, उत्पत्ति-प्रलयका रहटा, जन्म-मरणका रहटा इत्यादि महाचक्र संसारमें बड़ा वेगसे चल रहा है। जड़ाध्यासी जीव उसीके फेरामें पड़ करके चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़कर जन्मते-मरते, गर्भवासमें जाते, त्रिविधि तापका दुःख सह रहे हैं। जो कोई नरजीव पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण

और सत्सङ्गमें आकर उस खानी-वाणी जालोंको यथार्थ परखकर त्यागेंगे, वे फिर कदापि बन्धनदायी कर्मादिक धन्धेरामें नहीं रहते हैं; उससे न्यारा होकर हंसपदमें ही वे ठहरे रहते हैं। परन्तु, भ्रमिक जीव ऐसी पारखदृष्टि तो नहीं करते हैं, इसवास्ते कर्म, उपासना, योग और ज्ञानादिके नाना कर्मोंके धन्धोंमें लगकरअन्धाधुन्ध धन्धेरामें भटकते रहते हैं। कहीं स्थिति वा स्थिरता नहीं पाते हैं; आवागनमें ही भ्रमते रहते हैं ॥ १५७१ ॥

७. धन्धारी सब कालको आहीं * भरमहिं विविधि भाँति पछताहीं ॥ १५७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हे मुमुक्षु मनुष्यो ! सावधान हो जाओ ! चेत करो ! पाँचों मार्गोंकी साधनाएँ, जितने भी धन्धारी = कर्मजाल संसारमें फैले हैं, सो सब कालके ही जाल हैं। गुरुवालोगोंने जीवोंको फँसानेके लिये महाजालका ही पसारा किया है। उसमें जो जाते हैं, सो सब भ्रमिक होकर पीछे नाना भाँतिसे दुःख पा करके पछताते ही रह जाते हैं। घबड़ा करके कितनेक फिर उसीमें फँस जाते हैं। पञ्च कोशोंका प्रपञ्च सब कालका धन्धारी है। उनमें नाना प्रकारसे प्रवेश करके जो भ्रमिक गाफिल होते हैं, सो वे चौरासी योनियोंमें अनेक तरहके दुःख भोगते रहते हैं; यही पछताना है ॥ १५७२ ॥

८. जेहि देखहु सो सृष्टि नियारा * बहै जीव सब भव जल धारा ॥ १५७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें जिसे भी देखो, सो सबने अपनी-अपनी खानी-वाणीकी सृष्टि न्यारी-न्यारी ही बना रक्खी है। सब मतवादी लोग भिन्न-भिन्न ही सिद्धान्त न्यारा-न्यारारूपमें प्रगट करके मान रहे हैं। मत-मतान्तरकी वाणी कल्पना भी अलग-अलग ही सृष्टि कर रक्खा है। इसप्रकारसे पारखहीन सब जीव भवसागररूप जगत्में जलरूप वाणीके धारा-प्रवाह भ्रममें बहते हुए चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं। अथवा गुरुवालोग कहते हैं कि- "यद्दृष्टं तन्नष्टम्" जिस स्थूल जगत् सृष्टिको तुम लोग देखते हो, सो तो मिथ्या नाशवान् मायाजाल है। सृष्टि कर्त्ता परमात्मा सृष्टिसे अलिप्त सर्वथा न्यारा है। निराकार ब्रह्म-परमात्माको प्राप्ति करना चाहते हो, तो योग, ध्यान, ज्ञानादि साधना करो, तभी समाधिमें साक्षात्कार कर पाओगे, इत्यादि कल्पना दृढ़ कर-कराके सब लोग पारखबोधके बिना वाणी धारामें बह गये और बह रहे हैं। वाणी आदि कल्पनाकी सृष्टि करने वाले नरजीव उससे तो न्यारा ही रहते हैं; परन्तु, निज द्रष्टा स्वरूपको न्यारा न जान करके दृश्य भास-अध्यासमें गाफिल होकर जड़ाध्यासी हो भवधारमें बह गये, चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े हैं ॥ १५७३ ॥

९. पार लगै जब पारख पावै * नहिं तो भवके धार डुबावै ॥ १५७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नरजीव जब पारखी श्रीसद्गुरु बन्दीछोरके शरण-सत्सङ्गमें आवेंगे, गुरु उपदेश, सत्य निर्णयको मनन करेंगे, तभी अपरोक्ष पारख बोध हंसरहनीको धारणकर पावेंगे। ऐसे पारख बोधको प्राप्त करके ही कोई इस उत्ताल तरङ्गवाले भवसागरसे पार उतरेंगे, निजस्वरूप स्थितिमें लगेंगे; जीवन्मुक्त हो जावेंगे। इसप्रकार जो पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें नहीं आते हैं, तब तो उन्हें किसी प्रकारसे भी छुटकारा नहीं होता है। खानीमें खियाँ और वाणीमें गुरुवालोग जीवोंको घेर-घार करके पकड़-पकड़ करके जबर्दस्ती भग-विषयकी धारामें तथा भ्रमरूप वाणी कल्पनाकी भवधारामें ढकेल-ढकेल कर डुबा देते हैं। कहीं भी बचने नहीं देते हैं, जड़ाध्यासमें डुबा-डुबा करके मनुष्यपदसे मार ही डालते हैं ॥ १५७४ ॥

१०. भवके धार तरङ्ग अनेका * भौर गम्भीर अथाह संशयका ॥ १५७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भवसागर कहिये भ्रम वाणी कल्पनाका जमाव, मिथ्या अनेक भावनाएँ हैं। उस मन-मानन्दीके धारा-प्रवाहमें इच्छा, स्फुरणा, सङ्कल्प-विकल्पादि-रूप लहरी या तरङ्ग अनेकों उठा ही करती हैं। भँवर = भूलका चक्र भी अत्यन्त गम्भीर = गहरा

पड़ा हुआ है। जगत्का कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि जो माना है, उसका थाह, वा पता तो आदिसे अन्त तक किसीको भी नहीं लगा। इसीसे अथाह, अगम, अपार, अगोचर, अवाच्य कहकर सब हार गये। ऐसा गम्भीर कोई एक जो ब्रह्म-परमात्मा माना है, सोई संशयका घर आवागमनका मूल कारण है। परन्तु, पारख बोधके बिना सब धोखेमें डूब रहे हैं। अथवा खानी भागमें भग-विषयादिमें आसक्त मनकी विषय धारामें या मनके वेगमें अनेक भोगोंकी इच्छाओंकी तरङ्ग-चाहनाएँ उठा ही करती है। भगचक्रके भौंर अत्यन्त गम्भीर है; स्त्रीके मनकी बातका तो थाह ही नहीं मिलता है, इससे अथाह है। परन्तु, सोई विषय-वासना ही चारखानीके गर्भवासमें ले जानेवाला संशयका घर=कारण, वही बीजरूप वासना है। जब तक पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे नरजीवोंको पूर्ण पारख स्थिति नहीं होती है, तब तक उसी खानी-वाणी भवधारामें ही बहते हुए दुःख भोग पाते रहते हैं। अतएव हित-कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको पारखी साधु-गुरुकी शरणमें आकर उक्त भव-बन्धनोंको परखकर परित्याग करना चाहिये ॥ १५७५ ॥

साखीः— महासागर संसार है * जाके संशय सार ॥
[२८८] सुर नर मुनि सब बहि गये * पारखी उतरे पार ॥ १५७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! जैसे समुद्रमें महान जल-राशिका विस्तार फैला है। उसका पार-थाह पाया नहीं जाता है, अनेकों तरगें उठती और मिटती रहती हैं। वृक्षादि सार वस्तु स्थूलभागका वहाँ अभाव रहता है। तैसे ही चराचर संसारमें जो परिपूर्ण व्यापक, आत्मा माना है, सोई भवसागर वा महासागररूपी आत्मा अधिष्ठान है। पानीरूप वाणी समूहके घेरासे संसारमें एक आत्मा ही सत्य ठहराया है। इसलिये आत्मा ही महान भवसागरका स्वरूप है। संशयरूप वाणी-कल्पना ही जिसका सार सिद्धान्त मानी गयी है। अथवा संसार यही महा भवसागर है। जिसके अन्दर बिना पारख सारे-के-सारे जीव संशय, धोखा, भ्रम-भूल आदिमें जा-जाकर पड़ रहे हैं। वेद, शास्त्र, कुरानादि वाणीके प्रमाणसे ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिका संशयरूप अनेकों मतवादमें लगे हैं; और विषयादिके सन्देहमें भी बहुतेक जीव पड़े हैं। विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दको ही सब कोई सार मानकर गाफिलीमें जा करके गिर पड़े हैं। उस प्रबलतम खानी-वाणीकी धारामें सुर=देवतारूप सत्त्वगुणी मनुष्य या भक्त लोग, नर=रजोगुणी मनुष्य या कर्मी पुरुष लोग, मुनि=तमोगुणी मनुष्य या शीलमनन करनेवाले योगी, तपस्वीलोग तथा सब त्रिगुणी विषयासक्त-जन बह-बहकर नष्ट-भ्रष्ट हुए, हंसपदसे मारे गये। इसलिये जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके जन्मृति चक्रमें चले गये। कोई बिरले ही पारखी सन्त काल, सन्धि, झाँईं को परख करके तत्त्वमस्यादि भ्रमको छोड़कर माया-मोहको दूर हटाकर विषय वासनादिको त्याग करके हंस गुण-लक्षणको धारणकर निजस्वरूप स्थितिमें ठहर करके श्रीसद्गुरुके अपरोक्ष पारखबोधरूपी जहाजमें विराजमान होकर इस महासागरसे पार उतर गये; जीवन्मुक्त हो गये। वैसे ही जो कोई पारखी सन्त होंगे, सो भी पार उतर जायेंगे। इसलिये पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें रहकर सबको परखकर पारखी होनी चाहिये, तभी कल्याण होगा ॥ १५७६ ॥

साखीः— अनुभव बहु आश्चर्य सो * युक्ति किये इतिहास ॥
[२८९] चञ्चल मायाके वशि परे * समुझि परी नहिं फाँस ॥ १५७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देखिये! इन गुरुवालोगोंके अनुभव, विचार, ठहराव, निश्चय कैसे किये हैं कि— सो तो बहुत आश्चर्यकारक है। जैसे पहले यह जगत् ही नहीं था, कर्त्ता परमात्मा निर्गुण, निराकार, निरञ्जन था; उसने कोई सामग्रीके बिना ही इच्छामात्रसे सारा विश्वको रचकर उत्पन्न कर दिया। फिर वह आप ही उस सृष्टिमें व्यापक हो गया; निर्गुण-सगुण, साकार-निराकार, एक-अनेक, छोटा-बड़ा, जीव-शिव इत्यादि वह आप ही एक परमात्मा है,

ऐसा-ऐसा बहुत प्रकारसे कथन किया है। सो क्या कम आश्चर्यकी बात है? नहीं। सो तो मिथ्या कल्पनासे गपोड़ा ही हाँका है। जिसको जैसा अनुमान दृढ़ हुआ, उसने वैसा ही मानन्दीसे अनुभव किया। फिर जैसा-जैसा अनुभव हुआ है, तैसा-तैसा ही अनेक मत-मतान्तरमें आश्चर्यमय कल्पित वाणीका सिद्धान्त विस्तार किया है। सोई बात पण्डितोंने युक्ति-प्रयुक्तिसे छन्द-प्रबन्ध, गद्य-पद्योंमें इतिहास, पुराण, कथा आदि निर्माण किया है। तहाँ जगत्-सृष्टिकी प्रथमोत्पत्तिसे ले करके युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरोंके हाल वर्णन करते हुए महाप्रलय पर्यन्तकी बात, विस्तारपूर्वक कल्पना करके वाणीमें लिख रक्खा है। तैंतीस कोटि देवताओंके जीवन-चरित्र भी बयान कर रक्खा है। परन्तु, निजस्वरूप स्थितिकी तरफ किसीने भी ध्यान ही नहीं दिया। अतएव 'चञ्चल माया' कहिये वाणी-कल्पना जो कभी स्थिर रहनेवाली नहीं है, उसीके वशमें=घेरामें, कैदमें बिना पारख सब मनुष्य जा पड़े हैं; किसीको भी वाणी-कल्पनाका जाल-फाँस समझनेमें नहीं आया। अनसमझे ही बन्धनको मुक्ति मान-मान करके फँस गये हैं; और कभी स्थिर न रहनेवाली चञ्चल मायारूप स्त्री है, तथा मन-विषयोंकी चाहनाएँ हैं; उसीके वशमें सब नरजीव जा पड़े, घिर पड़े, फँस गये। मन-मानन्दी विषयासक्ति महाजालरूप चञ्चल मायाके वशमें पड़ गये, इसीकारणसे बद्ध होकर जीव चौरासी योनियोंमें दुःख भोगते पड़े हैं। पारख बोधके बिना किसीको भी ऐसी समझ नहीं हुई। इसीसे वाणी-जाल और खानी-जालोंमें अरुझ करके फँसे पड़े हैं॥ १५७७॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजकमूल, साखी नम्बर— ८५ ॥ ❀ ॥

साखीः— हिलगी भाल शरीरमें * तीर रहा है टूट॥

[२९०] चुम्बक बिना न निकरे * कोटि पाहन गये छूट॥ १५७८॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो! जैसे किसी मनुष्यादि प्राणीके शरीरमें भालाकी नोक हिलगी=चुभ जाय, और दूसरे फिर उसको तीर आ करके लगे, तीरका नोक भी टूट कर मर्मस्थानमें ही गड़ा रहे, तब तो उस प्राणीको बड़ा दुःख होता रहता है, वेदनासे बेचैन रहता है। टुकड़ा तो देह भीतर घुसा है, जबर्दस्ती खींचते भी नहीं बनता है; ऐसी अवस्थामें यदि चुम्बक मिले, तब तो तीरका टुकड़ा आसानीसे बाहर निकल आयेगा। क्योंकि, चुम्बकमें लोहाको आकर्षण करनेकी शक्ति रहती है। चुम्बक मिले बिना और किसी भी उपायसे वह नहीं निकलेगा। चाहे और अनेकों उपाय करो, करोड़ों पत्थर, कङ्कर, मिट्टी आदि वहाँ छुवाया जाय, तो भी गड़ा हुआ तीरका टुकड़ा छूटकर बाहर नहीं आता है। चुम्बकके बिना सब प्रयत्न बेकारमें छूट जाता है; कोई काम नहीं आता है। इसीप्रकारसे सिद्धान्तमेंः— नरजीवोंके शरीररूपी अन्तःकरणमें अच्छी तरहसे गुरुवालोगोंके वेद-शास्त्रादिकोंकी कल्पित वाणी और स्त्रियोंकी मोहक तथा विषयोत्पादक वाणी बड़े वेगसे आ-आ करके चुभ गई, घुस गई, दृढ़ हो गई, समा गई है। अब वह वाणीकी नोकके समान भाव-कुभाव टूट-टूट करके मनमें ठहर रहा है। जीव उसमें परम बेहाल हो रहे हैं; और तीरके समान अनेकों विषय वासना तथा कल्पना, भ्रम जीवोंके हृदयमें गड़ करके चुभ रहा है। सो पूर्ण पारख बोधरूपी चुम्बक मिले बिना और किसी उपायसे नहीं निकलता है। सत्यश्रद्धा प्रेम निष्ठाके बिना पारखी श्रीसद्गुरुका सत्योपदेश ग्रहण-धारण नहीं होता है। उसके बिना पारख बोध नहीं होता है; और पारखदृष्टिके बिना खानी-वाणीका अध्यास नहीं छूटता है। चाहे करोड़ों और उपाय करे, योग, जप, तप, व्रत, ध्यानादि करे, स्वयं ब्रह्म-आत्मा बने, तो भी ये भ्रम-मानन्दी यहीं-की-यहीं छूट जायगी, यहीं रह जायगी, अभ्यासी जीव चौरासी योनियोंमें ही चले जायेंगे। इसप्रकार करोड़ों नरजन्म जीवोंके छूट गये, अनेकों साधनाएँ व्यर्थ हो गयीं। पारख बोधके बिना किसीकी कल्पना नहीं छूटी; और पारख स्वरूपकी स्थिति प्राप्त हुए बिना कोई जीवन्मुक्त नहीं हुए; और कोई हो भी नहीं सकते हैं। इसकारणसे पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर इस नर-जन्ममें अभी जिन्होंने पारख बोध प्राप्त कर लिया, सोई भव-बन्धनोंसे छूटे और वैसे ही छूटेंगे॥ १५७८॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १०० ॥ ❀ ॥

साखीः— करक करेजे गड़ि रही * वचन वृक्षकी फाँस ॥

[२९१] निकसाये निकसे नहीं * रही सो काहू गाँस ॥ १५७९ ॥

अर्थः— [इस साखीका विस्तारसे अर्थ तो पहले इसी ग्रन्थमें पृष्ठ १३९७में साखी नम्बर— २६८ तथा सिलसिला नम्बर— १४४९में लिखा जा चुका है। इसलिये यहाँ संक्षेपमें उसका भाव लिख करके दर्शाया जाता है। विस्तार अर्थ वहाँसे देख लीजिये !] सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! अविवेकी नरजीवोंके हृदयमें या कलेजेमें विषय वृक्षरूप नारीकी वाणी, हाव-भाव-कटाक्षादि विषय फन्दा तो शुरूसे ही गड़कर दृढ़ हुआ ही था। इसके ऊपरमें और गुरुवालोगोंके वचन कल्पित वाणीका वृक्ष— वेद-शास्त्रादिके अनेकों भ्रमोत्पादक वचन, नाना तरहसे दृढ़ होकर कलेजेमें आकर गड़ रहे हैं। अब उन्हें निकालना चाहो, तो सहजमें वे नहीं निकलते हैं। ऐसी दृढ़ मानन्दी टिकी है कि, समझा करके निकाल देनेकी कोशीश करनेपर भी अविचारी लोगोंके मनसे भ्रम-भूल विषयासक्ति नहीं निकलती है। उसी घेरेमें ही उलट-पलटकर पड़े रहते हैं। यह सब फन्दा काहु=बेपारखी नरजीवपर ही लगा रहता है। विवेकी मनुष्य तो उन सब गाँस-फाँससे निकल-कर फिर वे पारखी हो जाते हैं। पारखीपर किसीका जाल लग नहीं सकता है। इसलिये पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें ही सदा लगे रहना चाहिये ॥ १५७९ ॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— ८५ ॥ [चौपाई- १५ । साखी- २ । रमैनी- २ । साखी- २ है] ॥❀॥

१. काल कराल तरङ्ग उठावै * नाना भाँति पन्थ निर्मावै ॥ १५८० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मन-कल्पनाके जालमें पड़े हुए काल= गुरुवालोग, कराल=भयङ्कर, तीक्ष्ण वाणी-कल्पना और विषयोंकी तरङ्ग मनसे उठाया करते हैं। भोग विषयोंकी चाहना, भ्रम-धोखेकी मानन्दी इसीकी महान लहरी उन्होंने उठायी है। उसमें बहा करके सबको डुबा रहे हैं। नाना भाँतिसे जगत्में मत, पन्थ, ग्रन्थ निर्माण करके षट् दर्शन, छियान्नवे पाखण्डोंमें सबोंको फँसाया है। अनेकों सिद्धान्त प्रगट किया है। जिसमें लग और लगाकर नरजीवोंके हंसपदको नष्ट-भ्रष्ट किये। बिना पारख नरजीव सब भी नाना तरहकी चाहना, कामनादिकी तरङ्ग उठा-उठा करके अनेकों प्रकारके पन्थोंमें प्रविष्ट हो-हो करके भूल रहे हैं; उसीमें बद्ध हो रहे हैं ॥१५८०॥

२. आदम नाम कर्म बौराना * मामा हवा माँहि समाना ॥ १५८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदम नाम=पहलेके आदमीका है। सो मुसलमानोंके पूर्वज मनुष्य बाबा आदम भी खुदाका नाम रटन करके अल्लाहसे मिलनेके लिये नाना प्रकारके कर्म-कुकर्म करके भ्रमिक होकर बौरा गया था; मनुष्यपदसे पतित पागलवत् हुआ था। मामा-हव्वा नामकी स्त्रीके साथमें विषय भोगनेमें तो वह समाया ही था; और मामा=मन-मानन्दीसे हवा=मिथ्या कल्पना हुई वायुरूप कुरानादिकी वाणी-कल्पना दृढ़कर भ्रम-धोखेमें ही जा करके समाया था। हिन्दुओंने जैसे ब्रह्माको श्रेष्ठ माना है, तैसे मुस्लिमोंने भी बाबा आमदको बड़ा ठहराया है। आदिमायाके सदृश मामा-हव्वाको भी माना है। वे दोनों दीन कर्ममें दिवाने होकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही जा-जा करके समाये और समा रहे हैं ॥ १५८१ ॥

३. दुविधा भरम बीच सो डोरी * हिन्दू तुरुक दुइ जाल पसारी ॥ १५८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निज चैतन्य सत्य स्वरूपको न जानकर नरजीवने मिथ्या भ्रम-दुविधामें पड़कर अपनेसे भिन्न दूसरा जगत्कर्त्ता ईश्वर या खुदा कोई होगा, ऐसा मान लिया। सो उसी बीचमें कल्पना करके वासनासे वाणीकी डोरी बनाया, उसीमें लटक करके

कितनेक तो मर गये; और कितनेक फँसे वा फँसा रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान, इन दोनोंने वेद और कुरानरूप वाणीके तथा खानी विषयोंके दो तरहके जाल संसारमें पसारा किया है। उनमें नाम-शब्द मात्रकी ही फरक है, नहीं तो मानन्दी दोनोंकी एक-ही प्रकारकी है। अथवा हिन्दू-तुरुक दोनोंने दो-दो जाल जो फैलाया है, उसी जालकी डोरी=वाणी-खानीके बीच-बीचमें दुविधासे पड़कर सब मनुष्य भ्रमिक बद्ध हो गये हैं॥ १५८२ ॥

४. जो मत वेद किताब सो चारी * जम्बूर तौरेत इञ्जील अनुसारी ॥ १५८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पहले जो मत-सिद्धान्त चार वेदके प्रमाणसे हिन्दुओंने चलाया था। बादमें सोई मत-मानन्दी शब्दोंका अदल-बदल, अक्षरोंका फेर-फार करके चालाकीसे विरोधी पक्षवाले मुसलमानोंने भी चार किताब संयुक्त एक कुरान बना करके इस्लाम मतको प्रचार किया है; और जो कल्पना वेदमें है, सोई चार किताबमें भी लिखी हुई है। उनकी किताबके नाम इसप्रकार कहा है:— १. ऋग्वेदके समान उनकी 'जम्बूर' किताब है। २. अथर्ववेदके समान उनकी 'तौरेत' किताब है। ३. यजुर्वेदके समान उनकी 'इञ्जील' किताब है; और ४. सामवेदके समान उनकी 'फुर्कान' किताब है। सो चारोंमें चार वेदोंके अनुसार ही चार मार्गोंका विस्तारसे वर्णन किया है। विना विचार नाहक भिन्न-भिन्न पक्ष पकड़ करके लड़ते-झगड़ते, जड़ाध्यासी हो मरकर चौरासी योनियोंमें चले गये वा चले जा रहे हैं॥ १५८३ ॥

५. चौथे कहै फुरकान कुराना * चारिहु चारि मता बन्धाना ॥ १५८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मुसलमानोंमें जम्बूर, तौरत, इञ्जील और चौथा फुर्कान, ये चार किताब मिला करके एक कुरान-शरीफ कहलाता है, ऐसा कहा है। उन चारों किताबोंमें भिन्न-भिन्न चार मतका बन्धान किया है। यानी चार प्रकारके सिद्धान्त कुरान प्रमाणसे कायम किया है। उसी जालमें सारे मुस्लिम-मतावलम्बी बन्धे पड़े हैं; और अन्य लोगोंको भी भ्रमा करके बाँधते ही जा रहे हैं॥ १५८४ ॥

६. आदम आदि सलेमा नामा * नूह नबी जम्बूर कलामा ॥ १५८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मुसलमानोंने उनके मजहबके अनुसार 'आदम बाबा' को जगत् उत्पत्तिके आदिमें ब्रह्मावत् प्रगट होनेवाले आदि-पुरुष माना है। उसका दूसरा नाम सलेमा या सुलेमान=अच्छे-श्रेष्ठ महापुरुष भी कहा है। नूह=खुदाका मुकाम, असली ठिकाना बतलाने वाले, नबी=मुस्लिम धर्मके उपदेशक आदम बाबाने शुरूमें जम्बूरके कलाम या ज्ञानमार्गके वाक्य बतलाया है। ऋग्वेदके प्रमाणसे जैसे ज्ञानी लोगोंने ज्ञानकाण्डका उपदेश हिन्दुओंमें दिया है, तैसे ही आदमने भी जम्बूर प्रमाणसे ज्ञानका उपदेश किया। ऐसे दोनों तरफकी कलाओंमें मिलान हुआ है॥ १५८५॥

७. तुर्या सोई लाहूत दृढ़ाई * और सबै सो जाल देखाई ॥ १५८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ज्ञानमार्गमें तुरिया साक्षी अवस्थासे जैसे सायुज्यमुक्ति प्राप्ति होनेको दृढ़ाकर और सबको भ्रम जाल बतलाया है, तैसे ही आदमने भी और सब मार्गको भ्रमजाल दिखलाकर सोई चतुर्थ अवस्थाकी साक्षी स्थितिसे चौथी मुक्ति लाहूतकी प्राप्ति होनेको दृढ़ाया है। अर्थात् लाहूत=सायुज्य मुक्ति ही सच्ची है; और सब मिथ्या है, ऐसा दृढ़ा करके दिखलाया है॥ १५८६ ॥

८. मूसा नूर तूर पर धावै * सो तौरेत माया भटकावै ॥ १५८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मुस्लिमोंका दूसरा पैगम्बर 'मूसा नबी' हुआ है। सो तूर नामक पर्वतमें जा करके नित्य ही नूर=ज्योति-प्रकाश देखता रहा, उसी प्रकाशको उसने खुदाका नूर स्वरूपमें दर्शन माना था। योगमार्गकी साधनासे ध्यान करके त्रिकुटीमें ज्योति-प्रकाश

देखना तथा सुषुप्ति अवस्थावत् शून्य समाधि लगाना इत्यादि उसी प्रकारकी योग साधना करके मूसा नबीने भी ब्रह्माण्डपर धावन किया वा ध्यान किया, तो वहाँ तूर=पहाड़पर, नूर=ज्योति-प्रकाशको देख करके उसे ही खुदाका मिलाप मानकर मग्न-मस्त हुआ, सोई बात तौरेत किताबमें वर्णन किया है। वही वाणी सुनाकर माया-जालमें लोगोंको भटकाया। अथवा माया=मुस्लिम गुरुवालोग तौरेतका प्रमाण देकर मूसा नबीकी बातको परिपुष्ट करके नूर दृढ़ाकर लोगोंको भटका रहे हैं ॥१५८७॥

९. ईसा नबी लिङ्गम अभिमानी ❀ फलक मोकाम इञ्जील बखानी ॥ १५८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मुस्लिमोंके तीसरे पैगबर 'ईसामसीह' या 'ईसूखिष्ट' नबी हुआ है। सो भक्ति मार्गावलम्बी लिङ्गम=सूक्ष्म उपासनामार्गका अभिमानी हुआ था। खुदाकी सूक्ष्म साकार मूर्तिका ध्यान करता था। उसने इञ्जील किताबमें फलक=जहाँपर कुछ नहीं, शून्य सफा मैदान है, ऐसे चौथा आसमानके ऊपरमें मोकाम=खुदाका घर, रहनेकी जगह ठहराकर वहीं मुक्ति भूमिका माना है, सोई बात वर्णन किया है। अब वही बात इञ्जीलके प्रमाणसे तुरुक लोग बता रहे हैं। फलक मोकाम=शून्यमें स्थिति मान रहे हैं ॥ १५८८ ॥

१०. खत्मा नबी महम्मद जेहि नाऊँ ❀ जामें जमी ये चारों दाऊँ ॥ १५८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मुस्लिमोंके चौथे पैगम्बर जिसका नाम 'महम्मद' हुआ, सो इसी नबीमें आ करके पैगम्बरीका दर्जा खत्म हो गया। महम्मद ही आखिरी नबी माना गया। जिसमें कि, उसने ये चारों दाऊँ फैला करके खूब पाखण्ड जमाया। उसका प्रपञ्च लोकमें खूब जमा; और सहराजमीं, नापाक जमीं, पाक जमीं, तथा खाकजमीं, ऐसे चारोंमार्ग और विषय जालका दाव-पेंच दुनियाँमें फैलाया। उसीमें सारे मुसलमान लोग भूले पड़े हैं ॥ १५८९ ॥

११. सो फुरकान कुरान कलामा ❀ वर्णन बहुविधि चार मुकामा ॥ १५९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो महम्मदने फुर्कान किताबमें कर्म मार्गका वर्णन किया, स्थूल कर्मका अभिमानी हुआ। इसप्रकार चार किताब मिला करके एक कुरान कहलाया। सोई किताबका वाक्य कुरानका कलाम या प्रामाणिक वाणी मानी गई है। उसमें चार मुकामरूप चार तरहकी मुक्ति भी बहुत प्रकारसे वर्णन किया है। [उसका भेद आगेकी चौपाईमें देखिये !] ॥ १५९० ॥

१२. जागृत सो नासूत कहाई ❀ तहवाँ सरीखत चाल चलाई ॥ १५९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्थूल देहके कर्ममार्ग सरीखा वहाँपर 'सरियत' की चाल चलाया है। सुन्नति आदिक कर्म वहाँ कराते हैं। जाग्रत् अवस्थाके शुभ कर्मके प्रतापसे 'सालोक्य मुक्ति' प्राप्तिकी तरह उनमें खुदाकी यादमें जाग्रत् रहनेसे सो 'नासूत' तख्तको जाता है, ऐसा कहा है। यह फुर्कान किताबमें वर्णन किया है ॥ १५९१ ॥

१३. दूजे थूल मलकूत बखाना ❀ साधन जतन तरीकत अनुमाना ॥ १५९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दूसरा किताब इञ्जीलमें तरीकत=उपासनामार्गके समान चाल चलाया है। वहाँ खुदाके अनुमानसे नाना प्रकारकी साधना वा यत्न-प्रयत्न करते हैं तीस दिनके रोजेका व्रत रखते हैं। थूल=सूक्ष्म भक्तिमार्गका अहङ्कार पकड़कर 'सामीप्य मुक्ति' प्राप्तिके समान 'मलकूत' तख्तकी प्राप्तिका वर्णन किया है ॥ १५९२ ॥

१४. तीजे सो जबरूत बताई ❀ समय हकीकत तहाँ लखाई ॥ १५९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तीसरी किताब तौरेतमें योगमार्गके समान तहाँपर हकीकतका समय लखाकर योगकी चाल चलाया है। शाम-सबेरे बाँग पुकारते हैं। सो उसके प्रतापसे 'सारूप्य मुक्ति' प्राप्तिके समान 'जबरूत' तख्त प्राप्ति होनेको बतलाया है ॥ १५९३ ॥

१५. चौथे सो लाहूत अनुमाना ❀ मारफत सोई है ब्रह्मज्ञाना ॥ १५९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चौथी किताब जम्बूरमें ब्रह्मज्ञानकी तुरिया साक्षी-

पदके समान मारफतको सोई ज्ञानमार्ग बतलाया है। तहाँ पाँचों वक्त निमाज पढ़ते और पढ़ाते हैं। खुदाके ध्यानमें तदाकार हो रहते हैं। सो उसके प्रतापसे 'सायुज्य मुक्ति' प्राप्तिके समान 'लाहूत' तख्तकी प्राप्ति होनेकी अनुमान-कल्पना किया है ॥ १५९४ ॥

साखीः— पँचयें सो विज्ञानमें * है हाहूत विचार ॥

[२९२] जबराइल मिकाइल अज हरि हर * इसराफिल सङ्गार ॥ १५९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हिन्दुओंमें जिस प्रकारसे पाँचवाँ विज्ञान मार्गसे कैवल्य ब्रह्म प्राप्ति करके परमहंस लोगोंने निर्गुण-जीवन्मुक्त होनेको माना है। उसी प्रकार मुसलमानोंमें भी अवलिया लोग खुदाकी यादमें मस्त रहते-रहते पाँचवीं मुक्तिके समान 'हाहूत' 'जिमीं'का विचार किया है। अर्थात् खालीक वा खुदा सब खलकमें या जगत्में सर्वत्र व्यापक ठहरा करके खुदाके बन्दे फकीरकी जीते ही आजादी या मुक्ति माना है। यही मुस्लिमोंका विचार है। फिर रजोगुणी ब्रह्माके समान सृष्टिकर्त्ता तुरुकोंमें 'जबराइल' नामक फिरिस्ता हुआ है। सत्त्वगुणी विष्णुके सदृश पालनकर्त्ता उनमें 'मिकाइल' फिरिस्ताको माना है; और तमोगुणी महादेवके तरह संहारकर्त्ता मुस्लिमोंमें 'इसराफील' फिरिस्ताको ठहराया है; और बाबा आदमको 'मूल-पुरुष' तथा मामा-हव्वाको 'मूल-स्त्री वा मूल प्रकृति' माना है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके समान शेख, सैय्यद, मोगल और पठान, ये चार जात तुरुकोंमें भी माना है। इसप्रकारसे हिन्दू-तुरुक दोनोंकी मानन्दी तो एक-सी ही हो रही है ॥ १५९५ ॥

साखीः— दुर्मति कारण सबनके * कारण दुविधा दोय ॥

[२९३] विविधि चाल तेहि मध्यमें * सन्तत परगट होय ॥ १५९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मति-बुद्धि, विवेक-विचारको दूर करके त्यागनेवाले दुर्बुद्धि गुरुवालोगोंकी भ्रम-भूलके कारणसे ही सभी मनुष्योंकी बुद्धि भी नष्ट-भ्रष्ट हुई; और हो रही है। सबोंके मनमें गुरुवालोगोंके भ्रमानेसे दुविधा=सन्देह या शङ्का हो रही है। इन्हीं दो कारणोंसे परस्पर विरोधी दल दो-दीन भिन्न-भिन्न बने हैं। सो हिन्दू एक ईश्वरको मानते हैं, तो मुसलमान लोग एक खुदाको अलग ही मानते हैं। इसी दुविधाके कारणसे दोनोंने वेद और कुरान भी अलग-अलग ही बना रक्खा है। रीति-रिवाज भी अलग-अलग ही कर रहे हैं; और नाना प्रकारके चाल चलन, व्यवहार, कर्म आदि भी उसी कल्पनाके बीचमें पड़कर हिन्दू, तुरुक दोनों ही तरफ हो रहे हैं। सो वैसे गुण-कर्म उनकी सन्तानोंमें भी हमेशा प्रगट होते ही रहते हैं। पारख बोधके बिना जड़ाध्यासी होकर जीव सर्वदा चौरासी योनियोंमें ही देह धरके प्रगट होते रहते हैं। अथवा दुर्मतिके कारणसे ही सबोंके मनमें दुविधा उत्पन्न हुई है, सो दुविधाके कारणसे ही दो सम्प्रदाय प्रगट हुए हैं। उनमें नाना चाल चलने लगी; इसीप्रकार सदा बन्धन खड़े होते रहते हैं। पारख करके देखिये ! उन दोनोंके बीचमें नाम-रूप, भेष-भूषा, और शब्दोंका ही कुछ फरक है। नहीं तो मानन्दी, कल्पना, अध्यास, तात्पर्य तो क्या हिन्दू, और क्या मुसलमान दोनोंके एक सरीखे ही हैं।

इसबारेमें सद्गुरु श्रीकाशीसाहेबने "तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक" नामक ग्रन्थमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंके विरुद्ध पक्षको निम्नप्रकारसे दर्शाया है; सो सुनिये ! प्रथम (१) हिन्दुओंके पक्षमें दूसरा (२) मुसलमानोंके पक्षमें अङ्कोंका चिह्न लगाया है, सो जान लेना !:—

१. चार वेद, +२. चार किताब ॥ १ ॥ १. चार वर्ण, + २. चार जात ॥ २ ॥ १. चार मुक्ति, + २. चार जिमीं ॥ ३ ॥ १. चार मार्ग, +२. चार चाल ॥ ४ ॥ १. चार कर्म, +२. चार रिवाज ॥ ५ ॥ १. चार भाई सनकादि, +२. चार पैगम्बर ॥ ६ ॥ १. परमात्मा व्यापक है, +२. खालीक खलकमें भरा है ॥ ७ ॥ १. पूर्वमें ईश्वरका निवास है, + २. पश्चिममें खुदाका मुकाम है ॥ ८ ॥ १. चोटी रखाना

हिन्दूका चिह्न है, +२. डाढ़ी रखाना मुसलमानका चिह्न है ॥९॥ १.जनेऊ पहिरना द्विजोंका संस्कार है, +२. सुन्नति करना मुस्लिमोंका संस्कार है ॥ १० ॥ १. सब ठिकाने न्यारी-न्यारी जात मानना चाहिये, +२. सर्वखानाखानेमें एक ही जात मानना चाहिये ॥ ११ ॥ १. सबके लिये भोजन बनाना, +२. सबके लिये खानेको खाना बनाना ॥ १२ ॥ १. देवताओंकी पूजा करना, +२. कबरोंकी पूजा करना ॥ १३ ॥ १. हाथ-पाँव धोना, +२. डाढ़ी-मुँह धो लेना ॥ १४ ॥ १. ब्रह्मा, केशव, ईश्वर कहते हैं, +२. आदम, करीम, खुदा कहते हैं ॥ १५ ॥ १. पाँड़े, पण्डित कहलाते हैं, +२. मौलाना, काजी कहलाते हैं ॥ १६ ॥ १. चौबीस एकादशीके व्रतके दिन होते हैं, +२. तीस दिनोंके रोजाके व्रत होते हैं ॥ १७ ॥ १. मिट्टीके गणपति बनाते हैं, +२. बाँसके ताजिया बनाते हैं ॥ १८ ॥ १. वेद पाठ करते हैं, +२. कुरानके कलामका निमाज पढ़ते हैं ॥ १९ ॥ १. स्वर्ग, नरक मानते हैं, +२. बहिस्त, दोजख मानते हैं ॥ २० ॥ १. सात स्वर्ग कहते हैं, +२. सात आसमानमें सात तबक बतलाते हैं ॥ २१ ॥ इत्यादि प्रकारसे ऐसे-ऐसे हिन्दू और मुसलमान दोनोंके पक्ष न्यारे-न्यारे हुए हैं। परन्तु, वास्तवमें मतलब-मानन्दी, कल्पना, तो दोनोंकी एक समान ही हुई है। सन्तत=सर्वदा प्रगट होनेवाली तिस मध्यमें ऐसी ही विविधि चाल चलाये हैं। पारख बोधके बिना चकनाचूर होकर सब जीव चौरासी योनियोंमें ही जा रहे हैं। कोई बिरले पारखी सन्त ही बच पाते हैं। पारखी श्रीसद्गुरु ही बन्दीछोर हैं, वे ही इन सब जालोंसे मुमुक्षु जीवोंको बचाते हैं ॥ १५९६ ॥

॥❀॥ रमैनी नम्बर- १६ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर- ४०॥❀॥

१. आदम आदि सुधि नहिं पाई * मामा हवा कहाँते आई ॥ १५९७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! हिन्दुओंमें जैसे ब्रह्माको सर्वश्रेष्ठ, पितामह, आदिपुरुष, सृष्टिकर्त्ता, विधाता इत्यादि नामोंसे माना है। तैसे ही मुसलमानोंमें भी बाबा आदमको सर्वप्रथम उत्पन्न आदिपुरुष सृष्टिका मालिक, इस्लाम-मतका स्थापक माना है। इस रमैनीमें श्रीसद्गुरुने निर्णयसे दर्शाया है कि— हे जिज्ञासु मनुष्यो! उधर जैसे ब्रह्मादि धोखेमें भूले रहे, इधर भी तैसे ही आदम इत्यादि लोग भी भूले और भुला करके धोखेमें ही पड़े रहे। अनादि कालके संसारमें जीवने मनुष्य शरीर पाया, तब पहले एक मनुष्यका नाम 'आदम' या आदमी पड़ा था। उसे ही मुसलमान लोगोंने उनके मतमें पहिला पैगम्बर, महापुरुष माना है। परन्तु, उस आदमने भी इस सारा संसारका उत्पत्तिकर्त्ता कोई परमेश्वर वा खुदा होगा, ऐसी कल्पना की है। सो उसके वाणी, ग्रन्थ, सम्प्रदाय द्वारा जान पड़ता है कि, आदमने सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका यथार्थ भेद कुछ भी जान नहीं पाया; और यह जगत् अनादि है, जगत्कर्त्ता मानना-मेरी मिथ्या कल्पना मात्र ही है। इसकी सुधि=भेद-खबर भी पारख बोध प्राप्त न होनेसे उसने कुछ जान नहीं पाया था। अथवा जब मैं शरीरधारी मौजूद हूँ, तो मेरे माता-पितादि भी कोई होंगे। पाँचों तत्त्वोंका विस्तार जगत् तो प्रत्यक्ष मैं देख ही रहा हूँ। फिर जड़-चैतन्यको कोई कैसे बनावेगा? ये सत्य पदार्थ प्रथम न होते, तो कोई कैसे, कहाँसे इन्हें लाता? अभावसे भावकी उत्पत्ति तो नहीं होती है। इसकारण कोई जगत्कर्त्ता नहीं ठहरता है। जगत् तो अनादि कालका है, इत्यादि सुधि-बुधि पूर्ण भेद आदमने भी जान नहीं पाया। इसीकारण जगत्का रचयिता कोई खुदाको मान करके वह भूल गया था; और यह भी कुछ विचार नहीं किया कि, जब कि, यह दुनियाँ पहले थी ही नहीं, तब मामा-हव्वा (आदमकी स्त्री-फातिमा बीबी) सो मेरी स्त्री और मेरी भी मायारूप यह काया, और जगत्की मोह-माया आदि कहाँ, किस जगहसे, कैसे आ गई होगी? मैं कहाँसे आया? स्त्री कहाँसे आई? हमारा विवाह कैसे हुआ? शैतान कहाँसे आया? वृक्ष, फल-फूलादि कहाँसे आये? वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि कार्य-कारणको कौन बनावेगा? इन सब बातोंका यथार्थ भेद बिना विवेक उसने नहीं जाना। इसीसे कल्पना करके एक अल्लाहको ही

जगत्कर्त्ता माना। जब कि, आदम, उसकी स्त्री, वृक्ष और साँप आदि प्रथमसे रहे, तब जगत् स्वतः सिद्ध अनादि ही ठहरा। परन्तु, परीक्षाके बिना आदम भ्रम-धोखेमें ही पड़ा रहा ॥ १५९७ ॥

२. तब नहिं होते तुरुक औ हिन्दू * मायके रुधिर पिताके बिन्दू ॥ १५९८ ॥

अर्थः— गुरुवालोग सृष्टि उत्पत्तिके प्रथम कुछ भी नहीं था, ऐसा कहते हैं। उसीके बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब निर्णयसे कहते हैं— हे हिन्दू! और मुसलमानो! पहले एक ही खुदा या परमात्मा था; ऐसा जो तुम लोग कहते हो, तो बताओ हिन्दू और मुसलमान बननेवाले नरजीव थे कि, नहीं? यदि कहोगे कि, ये भी नहीं थे, तो कहो, ये हिन्दू-तुरुक कहाँसे आये? क्यों आये? किसने क्यों, दो भेद डाल करके बनाया? और आदम तथा हव्वाके कोई माता-पिता थे, कि नहीं? यदि माता-पिता कोई नहीं थे, तो रज-वीर्यका संयोग गर्भवासके हुए बिना उनके शरीर कैसे बने? तथा स्त्री और पुरुषके दो देह क्यों बने? असलमें तो माताके रुधिररूप रक्त, और पिताके बिन्दुरूप वीर्यमें तो तब प्रथम गर्भ-कालमें हिन्दू-तुरुकका कोई चिह्न या भाव कुछ नहीं होता है। बादमें बड़े होकर ही यह कुभाव जमा लेते हैं। परन्तु, भ्रमिक लोग सृष्टिके पूर्वमें ईश्वर या खुदाको एक अकेला ही मानते हैं, यह सबको निषेध करते हैं। तब उस वक्त हिन्दू-तुरुक नहीं थे। माताका रुधिर और पिताका बिन्दु भी नहीं था, इत्यादि कथन करते हैं ॥ १५९८ ॥

३. तब नहिं होते गाय कसाई * तब बिसमिल्ला किन फुरमाई? ॥ १५९९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मुसलमानो! यह बतलाओ कि, तब प्रथमारम्भमें गाय, बकरी आदि पशु खानीके प्राणी, और उन पशुओंके हत्यारे हिंसक कसाई नरजीव आदि थे कि, नहीं? अगर नहीं थे, तो इन्हें किसने क्यों बनाया? कैसे और किसमेंसे बनाया? सो कहो। भ्रमिक-जन कहते हैं कि— तब गाय, कसाई कुछ भी नहीं थे; खुदा ही एक अकला गोयमगोय था। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब उनसे पूछते हैं— हे मुसलमानो! पहले शुरूमें एक खुदा ही था, ऐसा तुम कहते हो; और जब कि, गाय और कसाई भी कुछ नहीं था, तब "बिसमिल्लाह हिर्रहिमाने रहीम" यह कुरानके कलाम, आयत शब्द, बोल करके हलालकर गायके गर्दन काटनेको किसने? कैसे? किस तरहसे? क्यों? किसको फरमाया? या हुक्म दिया? ऐसा फर्मान किसने कैसे सुना? जब कि, इस बारेमें तुम लोग कुछ जानते ही नहीं हो; और ठीक उत्तर ही दे नहीं सकते हो! इससे सहज ही जाना जाता है कि, यह सब बात मन गढ़न्त पाखण्ड तुम लोगोंने ही निकाला है। नाना वाणी गा-गा करके जीवोंको कसने, बाँधनेवाले गुरुवालोग ही पक्के कसाईरूप यम बने हैं। उन्होंने ही बिसमिल्लाहका फर्मान देकर मुसलमान लोगोंको फँसाया है ॥ १५९९ ॥

४. तब नहिं होते कुल औ जाती * दोजख बिहिस्त कौन उतपाती ॥ १६०० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे मनुष्यो! यह बताओ कि, तब प्रथमारम्भमें कुल-जाति आदि कुछ था कि, नहीं? यदि नहीं था, तो कहो भला! यह जाति-पाँति नाना सिद्धान्त अनेक मत-मतान्तर आदि; और कुल, गोत्र, वर्ण, आश्रमादि सम्पूर्ण जगत्का व्यवहार कहाँसे आया? कैसे हो गया? और दोजखरूप नरक कुण्ड, दुःखोंका घर तथा बिहिस्तरूप स्वर्ग धाम, सुखोंका घर, इनको किसने, किसके वास्ते उत्पन्न किया? पापात्मा और पुण्यात्मा मौजूद थे, तभी तो स्वर्ग-नरक बना। यदि पहले पाप-पुण्य ही कुछ नहीं था; जीव भी नहीं थे, तो खुदाने क्या अपने ही लिये दोजख और बिहिस्तको बनाया था? वह आप ही उस कैदमें भी जाता था क्या? यह सब झूठी बातकी कल्पना मनुष्योंने ही कर रक्खी है। सत्यको भुला करके मिथ्या जालमें ही लगे पड़े हैं॥१६००॥

५. मन मसलेकी सुधी न जाना * मति भुलान दुइ दीन बखाना ॥ १६०१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, जगत्कर्त्ता, देवी-देवता,

स्वर्ग-नरक, वेद-कुरान आदि सब ही मनुष्य कृत मनका मसला = मिथ्या मन-मानन्दीकी भ्रम-कल्पना मात्र है। यानी वह सब मनकी बाढ़, भ्रम-तरङ्ग मात्र ही फैली है। इन सबोंकी स्थापना करनेवाला वाणी-खानीका कर्त्ता जीव ही सत्य है; और जड़-चैतन्यरूप जगत् अनादि कालका स्वयं सिद्ध है। जगत्कर्त्ताकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। श्रीसद्गुरुके यथार्थ पारखके बोध हुए बिना मिथ्या मनकी भावनाओंकी भेद-खबर या सुधि-बुधि कोई नहीं जानते हैं; और विवेक बुद्धिको नष्ट-भ्रष्ट करके निजस्वरूपको भूल करके सत्यबोधको भुलाकर धोखेसे जीव भ्रमचक्रमें ही गिर पड़े हैं। इसवास्ते गुरुमतिको भुलाये हुए पाखण्डी लोगोंने संसारमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे हिन्दू, और मुसलमान, ये दो दीन या जाति कायम करके वेद और कुरानादिकी वाणीकी रचना करके ईश्वर या खुदाकी महिमा वर्णन किया है। अपने-अपने पक्षपातसे बहुत-सी विषय जाल तथा कल्पनाका जाल फैलाकर फँसे औरको भी फँसा रहे हैं, बिना पारख ॥ १६०१ ॥

साखीः— सञ्जोगेका गुण रवै ❀ बिजोगेका गुण जाय ॥
[२९४] जिभ्या स्वारथ कारणे ❀ नर कीन्हे बहुत उपाय ॥ १६०२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— [गुरुमुखः] हे सन्तो ! (तीन प्रकारसे इस साखीका अर्थ होता है।) प्रथम वेदान्ती गुरुवालोगोंका कथन ऐसा है कि, जगत्का उपादान तथा निमित्त कारण कर्त्ता ब्रह्म-परमात्मा तथा महामायाके संयोग-सम्बन्धसे स्फुरणा होकर फिर यह त्रिगुणमय चराचर विश्व या संसार नाम-रूप-गुणकी सृष्टि रवै = रचना होकर उत्पत्ति हो जाती है। फिर उसके विपरीत होनेसे उसी प्रकार वियोग होनेका मौका भी आकर माया-ब्रह्मके वियोग होनेसे कार्य-कारणका अलगाव वा विरोध होकर गुण = नाम, रूप, गुणमय सारा जगत् प्रलयमें नाश होकर पुनः परब्रह्ममें ही समा जाता है; लय हो करके शून्यमें ही मिल जाता है। तब निरञ्जन पुरुष ही निर्वाण, केवल रह जाता है ॥

अथवा मन कल्पनासे सङ्कल्प करके ही द्वैत भावमें त्रिगुणरूप जगत्की उत्पत्ति होती है, सो विकल्प होते ही मानसिक द्वैत सृष्टि लय हो करके त्रिगुण रहित अद्वैत ब्रह्म ही सत्य रह जाता है। इसवास्ते वेदान्त वाक्य श्रवण-मनन करके अद्वैत भाव दृढ़ करना चाहिये। यही कल्पित अद्वैत-मत या ब्रह्म सिद्धान्त सिद्ध करनेके लिये वा स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये जिभ्यासे अनेकों वाणी बोल-बोल करके वक्ता, पण्डित, उपदेशक आदि कहलाकर अच्छा-अच्छा माल खाकर पेट पाल करके स्वार्थ पूर्ण करनेके उद्देश्यसे भ्रमिक नर गुरुवालोगोंने बहुत-बहुत उपाय, प्रयत्न करके नाना मत, वेद-शास्त्रादिकोंका प्रचार किया; और अभी प्रचार कर ही रहे हैं। उसी पाखण्ड-जालोंमें लोगोंको फँसा रक्खा है। अबोध लोग भी बिना पारख उसीमें बद्ध होकर पड़े हैं ॥

अथवा दूसरे वाममार्गी लोगोंका कथन ऐसा है कि— जड़ पाँच तत्त्वोंके परस्पर संयोगरूप मिलापसे पिण्ड-ब्रह्माण्ड दोनों बन जाते हैं। तैसे रज-वीर्यके संयोगसे देह और जीव भी बन जाते हैं, फिर उनकी शक्ति घटकर कम होते-होते वियोग होनेसे एक दिन यह शरीर बिगड़ करके मृत्यु होनेपर तत्त्वोंमें ही जाकर मिल जाता है। इसवास्ते शरीर रहे तक विषयादि सुखोंका खूब भोग करना चाहिये। आवागमन होना, पाप-पुण्य भोगना, ये सभी झूठी बातें हैं। क्योंकि, मृत्यु होनेपर देह तो भस्मीभूत हो जाता है, तत्त्वोंका भाग तत्त्वोंमें ही मिल गया, फिर आवागमन कैसे होगा ? इसवास्ते निश्चिन्त हो करके पञ्च मकारका सेवन करो ! खाओ, पीओ, मौज करो; और कुछ सोच-फिक्र मत् करो, इत्यादि कहकर पामर पापी नर वा मनुष्योंने मांस, मदिरा, मछली खा-पीकर जिह्वा-स्वाद लेनेके वास्ते भैरवी चक्र, बलिदान, होम, देवी-देवताओंकी पूजा या मनमाने जीवघात करके स्वार्थ पूरा करनेको बहुत-बहुत उपाय प्रपञ्च, ढोंग, तामसी कर्म किया, व्यभिचार किया, और कर ही रहे हैं ॥

पं० ब्र० टीका; १८३—

अथवा तीसरा अर्थमें— जीवके साथमें सञ्चित कर्मोंका संस्कार रहता है, तथा अभ्यासके अनुसार वैसे खानीमें जाकर वहाँ पुरुषके वीर्यमें सम्मिलित होकर मैथुन द्वारा स्त्रीके रजका संयोग पा करके फिर वह गर्भमें स्थापित होता है, समयानुसार देह बनकर जन्म ले करके उसमें पूर्व संस्कारके अनुसार ही गुण प्रगट होते हैं; और भोग पूर्ण होनेपर सम्बन्ध छिन्न हो, वियोग पा करके शरीर छूट भी जाता है। पुनः जीव अभ्यासवश तदनुसार खानियोंमें चले जाते हैं। इसप्रकार जगत्में सब जीवोंको निज-निज कर्मानुसार ही जन्म, मरण, गर्भवास, त्रिविधि ताप, सुख-दुःखादि फल भोग हुआ करता है। परन्तु, उधर स्वार्थी ठग गुरुवालोग यह सब करानेवाला कोई ईश्वर, ब्रह्म, खुदादिको कर्त्ता बतलाते हैं। कोई तत्त्ववाद, शून्यवाद, वीर्यवाद, देहवाद करते हैं। कोई विषय-भोग आदिको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। कोई शाक्त, शैव, कापालिक आदिक नाना मतवाद करते हैं। कोई चटोर स्वादी, शिश्नोदर लम्पट हो रहे हैं। कोई महोपदेशक होनेके अभिमानमें फूल रहे हैं। इसी सबमें हिन्दू, मुस्लिम, कृस्तान, पारसी, बौद्ध आदि सबोंने अपने-अपने मतलब पूर्ण करनेके वास्ते अनेकों उपाय करके नरजीवोंको भ्रमाये-भुलाये, उसीमें फँसा रक्खे हैं, देह धर-धर करके नाना दुःख पाकर रो रहे हैं। पारख बोध प्राप्त हुए बिना कहीं भी छुटकारा नहीं होता है ॥ १६०२ ॥

॥❀॥ रमैनी—१७ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर- ३६ ॥❀॥

१. जिन्ह कलमा कलिमाहिं पढ़ाया ❀ कुदरत खोज तिनहुँ नहिं पाया ॥१६०३॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! कलि=कलियुगरूपमें माना हुआ यही संसारमें आदम, मूसा, ईसा और मोहम्मद— ये चार मुसलमानोंके पैगम्बर हुए हैं, जिन्होंने (उनमें विशेषतः मोहम्मदने) कुरानके बकलमरूप लिखे हुए वाक्य कलमा नामक शब्द समूहको अतिश्रेष्ठ मन्त्रवत् बतला करके उसवक्तके मुसलमानोंको कलमा पढ़ाया, कलमा याद कराया। मुसलमानोंके पाँच कलमाका पद निम्न प्रकारसे कहा है:—

"लाहे लाहे इलिल्ला हूल; बहूद हू वसल्लम् ॥ १ ॥ लाहे लाहे इलिल्ला हूल; अजीजुल गफार ॥ २ ॥ लाहे लाहे इलिल्ला हूल; महमदुर्रसुलिल्लाह ॥ ३ ॥ लाहे लाहे इलिल्ला हूल; कबीर समूता ॥ ४ ॥ लौवफ लाफ लाहे लाहे इलिल्ला हूल ॥ ५ ॥" "लाइ लाह; इल्लाल्लाह मोहमदर्रसूलल्लाह॥"

चार कलमा तुम प्रगट भाखो। पाँचों कलमा दिलमा राखो ॥
पाँचों कलमा इलम फकीरी। जिसके सुने कुफर होय दूरी ॥

ऐसा कहा है। यही कलमाओंको मुसलमान लोग प्रेमसे पुकारके पढ़ा करते हैं, सो जानिये ! और पाँच वक्त निमाज पढ़ाया, बाँग पुकारा किया और कराया, सारे दुनियाँका मालिक एक अल्लाह मियाँको ठहराया। खुदाके नामका पुकारा करनेसे हित बताया, खुदा और कुरानकी कसम खिलाकर बहुतोंको मुसलमान बनाया। कट्टर मुस्लिम धर्मका पक्षपाती वह हुआ। परन्तु, इतना होनेपर भी उन्होंने कुदरत क्या चीज है। इसबातका खोज-तलास करके जान नहीं पाया। कुदरत= खुदाकी मूल शक्ति जगत् उत्पन्न करनेवाली महामाया कोई अलग मानता रहा; और कुदरती, प्राकृतिक, ईश्वरीयशक्ति या खुदाई शक्तिसे ही सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होनेको माना है। सो तो जीवकी मनःकल्पित वेद-कुरानादि वाणीका विस्तार ही कुदरतरूपमें बड़ा बना है। माननेवाले नरजीव ही सत्य खुद-खुदाय चैतन्य हैं; और मानन्दी कृत वाणी कुदरत, मन-मायाका भ्रम है; मिथ्या धोखामात्र है। ऐसा यथार्थ पारख करके विवेकसे खोज-तलास करके जान नहीं पाया। इसीसे सत्यासत्यका भेद न पा करके बिना पारख जड़ाभ्यासी भ्रमिक होकर खानी-वाणीमें ही भूला रहा। कोई शक्तिशाली खुदा मानकर कलमा पढ़-पढ़ा करके उसे जगत्में ढूँढ़ा; परन्तु, उसका पता कहीं नहीं पा सका। तब कुदरत गोयमगोय है, ऐसा कहकर धोखेमें ही रह गया। ऐसे उनके अनुयायी सब पारख बोधके बिना भ्रम चक्रमें ही गिर पड़े हैं ॥ १६०३ ॥

२. कर्मत कर्म करे करतूता * वेद-कितेब भया सब रीता ॥ १६०४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! कर्म करने वाले हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंने वेद और कितेबके प्रमाणसे कर्मोंका विस्तार तो खूब ही किया। तहाँ हिन्दुओंने स्नान, सन्ध्या, पूजा, पाठ, होम, तर्पण, तीर्थ, व्रत, तपस्या इत्यादि अनेकों कर्म ईश्वर तथा स्वर्गादि प्राप्तिके लिये किया वा कराया है; और मुसलमानोंने वजू, बाँग, निमाज, कल्मा, रोजे, हज्ज, ईद आदि नाना कर्म खुदा तथा बिहिस्तादि प्राप्तिके लिये किया है; और अभी वही कर्म करा रहे हैं। कर्त्तव्य, पुरुषार्थ या प्रयत्न करके ऐसी-ऐसी बहुत कर्म साधनाएँ करके उसके करतूत=कर्त्तव्य कर्मोंका अभिमान या अहङ्कार किये; और गुमान तो करते ही रहते हैं, इसवास्ते वेद और कितेब पढ़कर भी सब बेपारखी विषयाध्यासी भ्रमिक बद्ध हुए। क्योंकि, मनुष्यपद सत्यादि सद्गुण-लक्षण स्वरूपका बोध तो उन किसीको भी नहीं हुआ; जो कुछ अच्छे गुण थे, सो सब भी निकाल करके फेंक दिये, खाली हुए, बोध-विचारसे रहित हुए, पक्षपाती हुए। इससे वेद और कितेब पढ़कर सब मतवादी अविवेकी हुए, धोखेमें पड़े, व्यर्थ ही नरजन्मको बिता करके चौरासी योनियोंको खाली कर्म अध्यास लेकर रीते ही चले गये; अर्थात् वेद-कितेबमेंसे कुछ सार नहीं निकला; खाली मिथ्या कल्पना भ्रमको ले करके सब भव-बन्धनोंमें ही जा पड़े, कर्म करनेको तो खूब किये; परन्तु, कल्याण किसीका नहीं हुआ। इसीसे कर्माध्यासवश आवागमन गर्भवासको ही चले गये या जा रहे हैं ॥ १६०४ ॥

३. कर्मत सो जग भौ अवतरिया * कर्मत सो निमाजको धरिया ॥ १६०५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! शास्त्रोंमें कहा है:— "लोकोऽयं कर्मबन्धनः" "त्रैलोक्यं कर्मबन्धनात्" (भगवद् गीता ३।९) कर्मबन्धनमें तीनों लोक बँधे हैं, ऐसा कहा है; तो भी गुरुवालोग कर्मकाण्डी कर्मके ही पक्षपाती हो रहे हैं। सो निजस्वरूप-स्थितिको भूल करके खानी-वाणी महाजालोंमें अरुझकर नाना कर्म किये, उसीके जड़ाध्यासवश जीव जगत्में जन्म-मरणादि-के चक्रमें पड़े हैं। तहाँ चारखानीमें नाना देहोंका अवतार धारण करके पैदा होकर त्रिविधि तापोंका दुःख भोग रहे हैं; और सोई पूर्वकृत कर्मोंकी वासनासे अभी भी जगत्में जीवोंने मनुष्यदेह धारण करके जन्म लेकर आये हैं। यह मनुष्यका अवतार सर्वश्रेष्ठ कर्म-भूमिका स्वरूपस्थिति करके मुक्त होनेकी जगह है। परन्तु, यहाँपर पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विवेक-विचार करके रहनी-रहस्य धारण करना छोड़ करके फिर भी सोई बन्धनरूप कर्मोंकी भटकनामें जाकर जकड़ पड़ते हैं; बड़े मूढ़ हो रहे हैं। कोई नाना कर्म-कुकर्म, हिंसा, व्यभिचारादि कर रहे हैं। कोई ईश्वर मानकर वेदादि पाठ करनेमें लगे हैं। कोई मुस्लिम लोग दुनियाँका मालिक खुदा या अल्लाहको मानकर उसका दीदार करके बिहिस्त जानेकी आशासे पाँच वख्त निमाज पढ़नेका नियम धारण किये हैं। कोई बाँग पुकारा करते हैं। कोई पूजा-ध्यान करते हैं, तो काई यज्ञ-याग, होम वगैरह किया करते हैं; कोई निमाजी काजी हुए हैं। यह सब कर्म मर्यादा कायम किये हैं। यह कर्मोंसे हित-कल्याण तो किसी जीवोंका नहीं होता है, सो उसी सबके आसक्ति-अभ्याससे भव-बन्धनोंमें ही बाँधे जाते हैं। पारख बोधके बिना कोई भव-बन्धनोंसे नहीं छूटते हैं ॥ १६०५ ॥

४. कर्मत सुन्नति और जनेऊ * हिन्दू तुरुक न जाने भेऊ ॥ १६०६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंमें विभिन्न रीति-रीवाज या प्रथाके अनुसार कर्म संस्कार सम्पन्न करानेकी परिपाटी चली ही आ रही है। तहाँ तुरुकोंमें बाल्यावस्थामें ही लड़कोंके लिङ्ग इन्द्रियकी त्वचाके ऊपरी भागके खालको थोड़ा-सा कटवा देते हैं; उसे 'सुन्नति कर्म' कहते हैं। उस वक्त बड़े विधि-विधानसे उत्सव मनाते हैं। वे लोग सुन्नति कराया हुआको ही पक्का या असली मुसलमान मानते हैं। यह भी एक धोखा भूलका ही कुकर्म है। ऐसे कईएक कर्म संस्कार मुस्लिम लोग भी करते तथा कराते रहते हैं; और तैसे ही

हिन्दू लोग भी उनके यहाँ बहुतेरे कर्म संस्कार कराते हैं। उनमें मुख्य षोड़श संस्कार ठहराया है। उनके नाम यह हैं:— १. गर्भाधान (गर्भस्थापन होनेका कर्म सो विवाहके तीन दिन बादसे लेकर सात वर्ष तक माना है)। २. पुंसवन (गर्भके दो या चार महीनेमें करनेका कर्म)। ३. सीमन्त (गर्भके आठ महीनेमें करनेका कर्म)। ४. जात कर्म (जन्म होनेपर करनेका कर्म) फिर छठी, नाल छेदनादि भी करते हैं। ५. नामकरण (ग्यारहवें दिनमें करते हैं)। ६. निष्क्रमण (चौथे महीनेमें बालकको बाहर निकालकर सूर्यका प्रकाश दिखलाते हैं)। ७. अन्न प्राशन (छठवें महीनेमें बालकको अन्न खिलानेका कर्म)। ८. चूड़ा कर्म (पाँच वर्ष होनेपर पुत्रोंके शिरका बाल बनवा देते हैं)। ९. कर्ण बेध (छोटे पनमें ही कान छेद देते हैं)। १०. उपनयन (आठवें वर्षमें ब्राह्मणोंका, ग्यारहवें वर्षमें क्षात्रियोंका, और बारहवें वर्षमें वैश्योंका व्रतबन्ध होता है; उसी वक्त जनेऊ पहिना देते हैं)। ११. वेदारम्भ (व्रतबन्ध होनेपर द्विजोंको वेद पढ़ाना शुरू करते हैं)। १२. समावर्तन (वेद पढ़ाईके समाप्त होनेपर करते हैं)। १३. केशान्त (ब्रह्मचारी अवस्थाके बाल बनाना)। १४. विवाह (पच्चीस वर्षके बादमें शादी कराना)। १५. विवाहाग्नि परिग्रह (विवाह होनेपर अग्नि छूना, ग्रहण करना)। १६. त्रेताग्नि संग्रह (तीनों अग्नि संग्रहकर उसकी पूजा करना, अथवा वानप्रस्थ होनेपर त्रिविधि अग्निका संग्रह करना)। ये हिन्दू द्विज जातियोंमें होनेवाले सोलह (१६) संस्कारोंका नाम हैं। अब तो ये सब ही पूर्ण संस्कार तो सब कोई नहीं करते हैं। नाममात्रकी विधि करके काम निपटा लेते हैं। मुख्य तो सब कोई ब्राह्मण यज्ञ रच करके जनेऊ पहिनानेका कर्म किया करते हैं। यज्ञोपवीत या जनेऊ पहन करके ब्राह्मण होनेका बड़ा अभिमान करते हैं। जनेऊ पहिननेवाले ही असली हिन्दू-ब्राह्मणादि कहलाते हैं। जनेऊ न पहिरनेवाले शूद्र माने जाते हैं। यह सब भी पाखण्डका कर्म मिथ्या धोखा ही निकाला है। ऐसे कर्मोंसे किसीका बन्धन नहीं छूटता है। परन्तु, वेदके पक्षपाती अविचारी चारोंवर्ण हिन्दू लोग और कितेब या कुरानके पक्षपाती अविवेकी सब तुरुक या मुसलमानलोग हुए हैं। अतएव सत्य पारख बोध हुए बिना यह कर्म ही हमें बन्धन देनेवाला जाल-फाँस है, यह भेद उन लोगोंने कुछ नहीं जाना। अथवा सत्यासत्य, सारासार, बन्धन-मुक्ति, जड़-चेतन, इन सबोंका यथार्थ भेद बिना पारख उन्होंने कुछ नहीं जाना। इसीसे कर्म-कुकर्म करके जालोंमें फँसे और फँसा करके चौरासी योनियोंमें चले गये और जा रहे हैं। सो परखकर कर्म बन्धनोंसे निकलना चाहिये॥१६०६॥

साखीः— पानी पवन संजोयके ❀ रचिया यह उतपात ॥
[२६५] शून्यहि सुरति समोइके ❀ कासों कहिये जात ? ॥ १६०७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! पूर्वकी विषयासक्तिकी आदत और पानीरूप वीर्यके वेगसे कामासक्ति विषय-वासनाकी वायुमें उड़कर नरजीवोंने नाना कर्म-अध्यासोंका संग्रह किया है, संस्कार टिकाया है। मृत्यु होनेपर फिर उसीप्रकार वासनावश पवनरूप प्राणवायु तथा सूक्ष्मदेह सहित निकले, तो जहाँपर विशेष अध्यास रहा, वहीं पुरुषके वीर्यमें प्रवेश किया। फिर स्त्री-पुरुषके संयोगका सम्बन्ध पा करके मैथुन कर्म द्वारा वीर्य सहित रजके सम्बन्ध होनेसे गर्भवासमें स्थापित हुआ। इसप्रकार रज-वीर्य तथा पवनरूप सूक्ष्मदेहयुक्त जीवकी सत्ता पा करके यह समूचे शरीरकी रचना, गढ़न, वृद्धि गर्भवासमें ही हो गयी ! फिर समय पूर्ण होनेपर सारी उपाधिका घर स्थूल शरीर ले करके बालकरूपमें उत्पन्न हो गया ॥

अथवा जीवने पवन-पानीको मिला करके यह शरीरकी रचना करके पैदा किया। जिसमें दुनियाँभरकी सारी उपाधि लगी पड़ी हैं। पूर्वके विषय अध्यासके कारणसे ही गर्भवास, जन्म-त्रिविध तापादि दुःख भोगना पड़ रहा है। अब फिर भी युवावस्थाको प्राप्त हो करके वैसे ही विषयासक्त हो रहे हैं; शून्यरूप भग-भोगनेमें ही सुरति=लक्ष्य-प्रेमको लगा करके मनको वहीं लगाकर महा अभ्यासी गाफिल हो सब जीव पुनः भग-विलास करके अभ्यास टिकाकर देह

छूटनेपर नाना योनिके गर्भवासमें जा रहे हैं या जानेकी तैय्यारी कर रहे हैं। भला ! कहिये ! अब मैं इसबातका हाल किससे कहूँ ? किसे मना करूँ ? एक-दो होते तो समझाया भी जा सकता था; परन्तु, यहाँ तो सब-के-सब विषयाध्यासी हो रहे हैं। सो यह बात किससे कहना ? कोई बिरले ही मुमुक्षु इससे छूट करके पारखपदको जान पाते हैं, सोई मुक्त होते हैं ॥

अथवा वाणी जालमें अर्थः— नाद-बिन्दुके संयोग मिलाप करके यह योगमार्गकी रचना करके अष्टाङ्ग योग, यह उपाधिरूप ही उत्पन्न किया है; और शून्य ब्रह्माण्ड भ्रमरगुफामें सुरति लय करके अन्धाधुन्ध बेहोश होकर गाफिलीमें चले जाते हैं। अब कहिये ! सो क्या है ? गर्भवासमें जानेका उपक्रम ही तो किया है। योगादिसे भी मुक्ति नहीं होती है; यह मैं किससे कहूँ ? सब हठ पक्ष पकड़ करके खाँचमें ही चले जा रहे हैं ॥

अथवा पानीरूप वाणी, पवनरूप मन-कल्पना, ये दोनोंको मिला करके एक ब्रह्मकी मानन्दी खड़ा किया है। वेद-वेदान्त शास्त्रसे ब्रह्मज्ञानकी रचना किये, ब्रह्मसे जगत् उत्पत्ति होनेको बता करके नाना उत्पात=उपद्रव, झंझट मचाया है। कोई परमहंस बनकर बाल, पिशाच, उन्मत्त दशा लेकर उपाधि खड़ा किये हैं। शून्य आकाशवत् निरञ्जन ब्रह्मको मान करके शून्यवृत्ति किये, उसीमें सुरति समा करके साक्षी-दशाको त्यागकर झाँई धोखेमें पड़े हैं। फिर देह छूटनेपर अध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासको चले गये। इन्होंने तो जीवकी बड़ी ही दुर्दशा की है। यह ब्रह्मका ज्ञान नहीं, भ्रमरूप महाअज्ञान गाफिलीका ही पद है। विवेक तो कोई करते ही नहीं; अब मैं यह किससे कहूँ ? इसप्रकार अज्ञानी, योगी, ब्रह्मज्ञानी, ये तीनों ही पारख स्वरूपकी स्थिति हुए बिना चारखानोंके आवागमनमें गये और जा रहे हैं। ये तीनों जालोंसे निकलकर कोई विवेकी पारखी हंस ही मुक्त हो सकते हैं ॥१६०७॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— ८६ ॥ [चौपाई-१२। मसला-१। साखी-२। शब्द-२ है] ॥❀॥

१. वेद किताब दोउ फन्दा भारी * पूर परस्पर एक अनुहारी ॥ १६०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हिन्दू और मुसलमानोंने चार वेद तथा चार किताब, यह दोनों तरफ बड़ाभारी फन्दा कल्पनाका महाजाल ही फैला रक्खा है। परस्पर वाणीकी पूर उमड़-घुमड़कर बह रही है। नाना किश्मके उपदेश दे करके सबोंको भ्रमिक बना रहे हैं। एक ही अनुमान-कल्पना उन दोनोंमें फैली हुई है। अनुमानसे एक पूर्ण व्यापक ईश्वर जगत्कर्त्ता इधर माना है। तैसे ही उधर एक खुदाको पूर्ण ठहराया है। उन सबके स्वरूप, आकारकी स्थिति एक ही भ्रममें हो रही है ॥ १६०८ ॥

२. सन्तत पन्थ अनेक उपराजे * सैय्यद खान मिरजा होय गाजे ॥ १६०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार सर्वदासे पारखहीन सब जीव जड़ाध्यासी होते ही चले आ रहे हैं। सदाकालसे चौरासी योनियोंमें भटका खा रहे हैं। हमेशासे गुरुवालोग खानी-वाणीका विस्तार बढ़ाकर अनेकों मत, पन्थ, ग्रन्थ उत्पन्नकर बहुतेरे शिष्य-शाखाओंको मूँड़कर धोखेमें डाल करके बाँधते आ रहे हैं; और नाना पन्थ-पन्थाईमें बाँध ही रहे हैं; और मुसलमानोंमें कोई सैय्यद=क्षत्रियवत् बड़े शूर-वीर कहलाते हैं। कोई खान-पठान=शूद्रवत् छोटे माने जाते हैं। कोई मिरजा या मोगल=वैश्य वा बनियावत् व्यापारी होते हैं; ये वर्णाश्रमी खानी-वाणीमें आसक्त हो करके अभिमान, क्रोध, दम्भमें गर्जना कर रहे हैं। इन्हींसे निकला हुआ विभिन्न मत-पन्थ संसारमें सदासे फैलता जा रहा है। उसीमें सब नरजीव बन्धे पड़े हैं ॥ १६०९ ॥

३. चौथे शेखमों सिखत दासा * पाँड़े मोलना समहिं विलासा ॥ १६१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्राह्मणलोग जैसे 'शिक्षक' होकर अन्य सेवकोंको शिक्षा दे करके विद्यादि सिखलाते हैं। तैसे ही मुस्लिमोंमें भी चौथे शेख लोग शिक्षक गुरु बनकर सिखापन देते हैं। मुरीद=शिष्य लोग दास बनकर उनसे ही शिक्षा लेते हैं। हिन्दुओंमें 'दास'

कहते हैं। सोई तुरुकोंमें 'सिखत वा गुलाम' कहते हैं। वह शिष्य-सेवककी पदवी है। गुरुको वे लोग 'पीर साहब' कहते हैं; और जैसे हिन्दुओंमें 'पाँड़े=पण्डे-पुजारी, ब्राह्मण, पुरोहित' होते हैं। तैसे ही तुरुकोंमें 'मोलना या मौलाना' पुरोहित माने जाते हैं। ऐसे दोनोंमें एक समान वा बराबर वाणीकी कल्पना प्रपञ्च, भ्रम और विषयोंका विलास वा किलोल-क्रीड़ा हो रही है ॥ १६१० ॥

४. पण्डित काजी निर्णय देहीं ❀ हाकिम राजा पोता लेहीं ॥ १६११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! न्याय-अन्याय, झूठ-साँच, धर्म-अधर्मका निर्णय कर देनेवाले उपदेशक विद्वान्को यहाँपर हिन्दुओंमें 'पण्डित' कहते हैं। तैसे ही वाजिब-नावाजिब, खरा-खोट, ठीक-बेठीक आदिकोंका इन्शाफ कर देनेवालेको तुरुक लोग 'काजी' कहते हैं। वह जजवत् न्यायकारी, निर्णय कर देनेवाला माना जाता है; और भूपतिको हिन्दू लोग 'राजा वा महाराजा' कहते हैं। वैसे ही जनपद प्रधान मुखिया वा मालिकको तुरुक लोग 'हाकिम, अफसर, नबाब' कहते हैं। राजा लोग जैसे जमीनके पोत, लगानके पैसे-रुपये वसूल करते हैं। तैसे उनमें भी हाकिम लोग कर-लगान या टैक्स नाना तरहसे उगाहकर ले लेते हैं। उसीप्रकार हिन्दू और मुस्लिमोंके पण्डित और काजी बने हुए गुरुवालोग अनेक प्रकारसे शिष्य बनाकर उनपर शासन चलाकर तन, मन, धनादि भेंट-पूजामें खींच लेते हैं; और कितनेक लोगोंसे साल-सालके भेंटका भी लगानके समान बन्धान कर रक्खे हैं। उनके भेंट-पूजाके टैक्सरूप पोत भर देनेसे अन्तःकरण शुद्ध होगा, और ज्ञान प्रकाश होगा, स्वर्गादि फल मिलेगा, इत्यादि बतलाकर धोखेमें फँसा रक्खे हैं ॥ १६११ ॥

५. दण्ड परस्पर एक समतूला ❀ शाहनशाह महाराजी भूला ॥ १६१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुद्रोही, वेदद्रोही, ईश्वरद्रोहीको सङ्गत-पङ्गतसे हटा देना, नास्तिक बतलाना, शाप देना, नरकका डर, यम-दण्डका वर्णन और भी नाना प्रकारके दण्ड विधान हिन्दुओंने कर रक्खा है; और तैसे ही दोजखका खौफ, बूतपरस्तीका तिरस्कार, इस्लाम विरोधीको अनेकों प्रकारसे सता करके मार डालना, काफिर बताना, शूलीपर चढ़ाना, फाँसी देना, ऐसे धर्मान्धपनाका नाना दण्ड मुस्लिम लोग भी देते हैं। ऐसे दोनोंमें दण्ड भी परस्पर एक समान वा बराबर ही निकाला है; और शाहनशाह, जहाँपनाह नामसे बादशाहकी बड़ी पदवी मुसलमानोंमें माना है, तैसे ही महाराजाधिराज, सम्राट्, राजराजेश्वर बन करके या ऐसा मानकर ऐसी उच्चताके अभिमानमें हिन्दूलोग भूल रहे हैं। सो दोनों ही हंसपदसे भूले हैं। अथवा परमेश्वर, परमात्मा तथा अल्लाहमियाँको ही जगत्का मालिक सबके शिरमौर महाराजा या बादशाह मान-मानकर मिथ्या कल्पनामें दोनों दीनके लोग भूले और भूल ही रहे हैं ॥ १६१२ ॥

६. चक्रवर्ति आपु पद पाई ❀ कला विशेष भये प्रभुताई ॥ १६१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उदयाचलसे लेकर अस्ताचल पर्यन्त सातों द्वीप, नौ खण्डमें जिसका एकाधिपत्य साम्राज्य फैला हो, एकछत्र राज्य शासन हो, हुकूमतका पालन भूमण्डलमें होता हो, उसे ही चक्रवर्त्ती सम्राट् या महाराजा कहते हैं। मान्धाता, पृथु, सुहोत्र, शिवि, नहुष और मरुत, ऐसे छः चक्रवर्ती महाराजे प्रथम मुख्य हुए माने गये हैं। तैसे ही गुरुवा-लोगोंने चराचर जगत्में परिपूर्ण व्यापक माना हुआ परब्रह्मको चक्रवर्ती एक ही परमात्मा हिन्दुओं-में ठहराया है। तथा सब खल्कमें भरा हुआ खालिक ही सारे दुनियाँका मालिकरूप चक्रवर्ती मुस्लिमोंने माना है। अथवा हम ही सर्वाधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप हैं; ऐसा माननेवाले ब्रह्मज्ञानियोंने अपने आप स्वयं ब्रह्म बन करके चक्रवर्तीका पद पाया; और जहाँपर विशेष कला-कल्पना, चतुराई, पाखण्ड, छल-कपट, शूर-वीरता आदि कोई एक ज्यादा कला या चमत्कार प्रगट हुआ, अज्ञानी बेपारखी लोग उसीकी महिमाका प्रचार करते हैं। सो इसीतरह गुरुवालोगोंकी प्रभुताई अबोध लोगोंने वर्णन किया, उन्होंने भी खूब पाखण्ड फैलाया। यानी विशेष वाणी-कल्पनाकी कलामें गुरुवालोग

जब प्रवीण-चतुर हुए, तब लोगोंमें उनकी प्रभुताई वा महिमा हुई, फिर तो स्वयं ब्रह्मपदमें टिककर—"अहं ब्रह्मास्मि" कहने लगे। तैसे मुस्लिमोंमें भी "अनहलहक" कहकर फकीर लोग दिवाने हुए। वहाँपर उन्हींकी प्रभुताई वा बड़ाई होती गई। बिना विचार खूब भ्रम फैलाया हुआ है ॥ १६१३ ॥

७. अदबुद पन्थ जीव अकुलाई ❀ दुविधा फन्द जो करै उपाई ॥ १६१४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! विवेक-विचार, सद्बुद्धिसे रहित, अद्बुद=आश्चर्यमय, बुद्धि भ्रष्ट करनेवाले गुरुवालोगोंके पन्थ, षट् दर्शनोंके सम्प्रदायका मार्गमें लगकर बुद्धिको बिगाड़कर नरजीव आकुल-व्याकुल हो रहे हैं। नाना साधनोंमें लगकर दुःख पा करके घबड़ा रहे हैं। जगत् बन्धन दुःखोंसे छूट करके परमानन्द पानेकी आशासे जो-जो उपाय वा प्रयत्न किये, सो-सो दोहरा दृढ़ बन्धन ही हो गया। क्योंकि, दुविधा कुछ भी नहीं छूटी। ईश्वर और खुदाकी मानन्दी-से सन्देहमें पड़कर आखिरमें अपने ही किये हुए कर्म उद्योगसे महाफन्दामें अरुझ गये ॥ १६१४ ॥

८. आकुल होय वोहि मग धावै ❀ जहाँ कसाई छुरी चलावै ॥ १६१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मनकी आशा-तृष्णा, भरोसा पूर्ण न होनेसे तलमला करके दुःखमें पड़नेसे जीव अकुला जाते हैं। छटपटा करके जिधर-तिधर भागने लगते हैं। तब उसी कण्टकाकीर्ण भयानक जङ्गलके रास्तेवत् खानी-वाणीके महासघन पथमें दौड़ते हुए चले जाते हैं। फिर थककर विश्रान्तिके लिये उस घरमें प्रवेश करते हैं, जहाँपर कि, वाणी-कल्पनामें कसने वा बाँधने वाले कसाई=गुरुवालोग बैठे हुए वेद-वेदान्त और कुरानादिकी वाणीरूप तेज धारवाली छुरी= भ्रम-धोखेका उपदेश बहुविधिसे चलाते हैं। हंसपदको काट करके नाना मार्गोंमें चलाते हैं। जैसे कोई जानवर जङ्गलोंमें पीड़ित-भयभीत हो करके बचावके लिये मनुष्यके घरमें या कसाईखानेमें आकर रातमें घुस रहा, सबेरे मनुष्योंने वा कसाइयोंने उसे देखते ही गोलीसे मार दिया वा कसाईने तो छुरी चला करके ही काट डाला। वहाँ जङ्गलमें कहीं पड़ा रहता, तो कुछ समय तो बचता, यहाँ आ करके तो जल्दी ही मारा गया। तैसे ही संसारी लोग घर-गृहस्थीमें दुःख पा करके वहाँसे भागकर आये, तो गुरुवालोगोंके पासमें जा करके कोई एक भेषके साधु हो गये। जहाँपर कि, गुरुवालोगोंने नाना प्रकारकी वाणीकी छुरी चला-चला करके भ्रम-कल्पनाका उपदेश दृढ़ा-दृढ़ाकर बुद्धि, विचार-विवेक सबोंको काट दिया, नष्ट-भ्रष्ट, भ्रमिक जड़ाध्यासी बना दिया। यहाँ और भी साधना, टहल-का दुःख-जञ्जाल सहना पड़ा। बन्धन छूटनेके बदले महा बन्धनमें पड़ गये। तहाँ श्रीरामरहससाहेबने टकसारके साखी— ३१७ में ऐसा कहा है:—

दोहाः-"घर जञ्जाल बाहर जञ्जाल, जञ्जाल काया माथे ॥ जो जञ्जाल तजि योगी भये, सो जञ्जाल है साथे ॥"

इसप्रकारसे और भी कठिन झीनी-मायाके बन्धनोंमें पड़ गये। घरमें रहते तो भी सत्कर्म, दान-पुण्य, भक्ति, सत्सङ्ग करके कुछ सुधार भी करते; किन्तु, भेषमें आकर तो वह सब भी छोड़ करके महा अभिमानी, दम्भी, पाखण्डी होकर फौरन मुक्तिपदसे मारे गये। अथवा कोई संसारमें आकुल=दुःखी हो करके उसीमार्गमें दौड़ते हैं, जहाँपर कि, कसाईरूप स्त्री, विषयकी छुरी चलाकर पुरुषके हृदयको वेध देती है; मनुष्यपदको नष्ट कर देती है। इसप्रकार पारख बोधके बिना खानी-वाणी दोनोंमें जीव जड़ाध्यासी होकर मारे जाते हैं ॥ १६१५ ॥

९. कुहके जीव अनेक कुचाला ❀ बलि प्रदान कोइ करै हलाला ॥ १६१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अविचारी लोग अनेक प्रकारके कुचाल-कुकर्म, चोरी, हिंसा, परस्त्रीगमन, निन्दा, मिथ्या, गाली-गलौज, बकवाद, वाममार्गाचरण, राक्षसी कर्म करके सुखके बदले बड़े दुःखी हुए, तो रो रहे हैं। दुःखी होनेपर भी नाना कुसङ्गमें लगकर कुचाल-से खराब बर्ताव ही कर रहे हैं। हिन्दू लोग देवी-देवताओंकी मनौती करके, और नियत तिथिमें हरसाल बलिदानके नामसे गरीब पशु बकरा, भैंसा, कबूतर, बतक, मुर्गा आदि प्राणीको देवी-

देवताओंके नामसे जानसे मारकर खूनकी धारा बहा देते हैं। फिर उनका मांस खा जाते हैं। कितनेक हत्यारे लोग तो चाहे जब बलिप्रदान करके जीव हिंसा कर लेते हैं; और कोई तुरुक लोग तो खुदाके नामसे वा पीर-पैगम्बरादिके नामसे मनौती करके हलाल करते हैं। तहाँ गाय, बैल, भैंसा, बकरा आदि जानवरोंको मार-मार करके खून-खच्चर करके मांस खा लेते हैं। इसप्रकार हिंसा, क्रूरता, दुष्टता आदि दोनों तरफ प्रचलित हो रही है ॥ १६१६ ॥

१०. झटका हलाल न शङ्का मानै ❀ आपुन छागर सो नहिं जानै ॥ १६१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे मुझको दुःख-सुख होता है, तैसे इन मूक पशु छागर=बकरादि प्राणियोंको भी दुःख होता होगा या हो ही रहा है। जब कि, थोड़ा-सा अपने अङ्ग कटनेपर तथा एक काँटा गड़नेपर भी हमें पीड़ा-व्याकुलता होती है, तो उनको जानसे मार देनेपर कितनी पीड़ा होती होगी ? दुःख भोगना तो कोई जीव नहीं चाहते हैं; दूसरेके हाथसे मारे जाना भी कोई नहीं चाहते हैं। फिर जबर्दस्ती छागर=बकरादि पशुको बाँधकर मार डालते हैं, तो इसका नतीजा बुरा होगा; पुनर्जन्ममें हमें भी वैसे ही पशु बन करके बदला देना पड़ेगा, सो यह सच्ची बात सोच-विचारकर वे कुछ भी नहीं जानते हैं। देखिये ! श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक साखी- २१२-२१३ में कहा हैः—

साखीः— "जीव मति मारो बापुरा ! सबका एकै प्राण ॥ हत्या कबहुँ न छूटि है। जो कोटिन सुनो पुराण॥
जीवघात ना कीजिये ! बहुरि लेत वै कान ॥ तीरथ गये न बाँचि हो ! जो कोटि हीरा देहु दान॥"

सब जीवोंको एक समान वेदना होती है। शरीरमें कहीं कट जानेपर अपनेको जैसे दुःख होता है, तैसे ही उन पशु आदि सब प्राणियोंको भी होता है। फिर अपने पालन-पोषण करके खिला-पिलाकर, जिला करके रखे हुए प्राणी छागर या बकरा, भेड़ा, दुम्बा, खसी, गाय, भैंसा, बैल एवं चिड़ियें, वे सब भी अपने घरके परिवार लड़के-बच्चोंके समान ही होते हैं। पूर्व संस्कारसे ही तो सब परिवारोंका सम्बन्ध होता है। फिर उन्होंको मार-मार करके उनका मांस खाना, यह कितना निर्दय राक्षसी कर्म है। जीवघात किया हुआ बदला तो किसी प्रकारसे भी छूट नहीं सकता है। फिर इन बकरादि पशुओंको हम मारते हैं, तो मरनेपर हमें भी ऐसे ही बकरादि योनिमें जाना पड़ेगा, तब वैसे ही हम भी उनसे मारे जायेंगे; और नाना दुःख भोगते रहेंगे। ऐसे यथार्थ निर्णय विचारकी बात मूढ़, हिंसक, दुष्ट लोग कुछ भी नहीं जानते हैं; और वे जानना भी नहीं चाहते हैं। इसवास्ते झटका और हलाल करके जीव-हत्या करनेमें कुछ शङ्का ही नहीं मानते हैं, निधड़क निडर हो करके लापर्वाहीसे हिन्दू लोग तो भैंसादिके शिरको खम्भेमें बाँधकर और बकरादिको एक व्यक्ति पीछेके दोनों पैरोंको पकड़ रखता है, दूसरा गला और शिरमें रस्सी बाँधे हुए खैंचकर कुछ दूर खड़ा रहता है, और तीसरा व्यक्ति आ करके तलवार, खुँड़ा, खड्ग, खुकुरी आदि तेज हथियारसे बड़े जोरसे झटका मार करके बहुतोंको तो एक ही झटकेमें मारते हैं; किसी-किसीको दो-तीन बार झटकासे प्रहार करके गला काटकर रुण्डसे मुण्ड छिन्न-भिन्न कर देते हैं; और मुस्लिमोंमें उसके विपरीत हलाल करनेकी चाल चलाया है। वे लोग गाय, बकरादि पशुके चारों पैर बाँध करके उन्हें जमीनमें गिरा करके मूँडको पीछेकी तरफ उलटा फिराकर उसे दबाये रखते हैं। फिर एक आदमी आ करके तेज छूरीसे गलेमें धीरे-धीरे रगड़-रगड़कर बहुत सासत देकर हत्या करता है। उसे ही हलाल करना कहते हैं। इसप्रकारसे हत्या करनेसे इसका महापाप हमें लगेगा। जिसका परिणाम खराब निकलेगा; हमें भी जन्मान्तरमें चौरासी योनियोंमें ऐसे ही असह्य दुःख भोगना पड़ेगा, इत्यादि सोच-विचार, शङ्का तो वे पापी लोग कुछ भी नहीं मानते हैं। शिश्नोदर लम्पट हो करके जिभ्या स्वार्थके कारणसे हिंसादि अनेकों कुकर्म कर रहे हैं। पश्चात् अपनी भी वैसी ही दुर्दशा होनेकी बात वे लोग जानते ही नहीं हैं। अतएव चौरासी योनियोंमें दुःख भोगते हुए वे भी मारे जाते हैं ॥ १६१७ ॥

११. जरहिं दुनों घर यमकी आगी * झुलसि झुलसि रहे आशा लागी॥१६१८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यमरूप गुरुवालोग तथा स्त्री या मन, काम-क्रोधादिसे हिंसा, दुराचार, घात, कुकर्मादि यही सबकी सम्मिलित महाअग्नि संसारमें हिन्दू और मुसलमान इन दोनोंके घरोंमें धर्म वा मजहबमें तथा घटोंघटमें जा करके वह आग लगी है। बहुतेरे उस आगमें भस्म होकर जल मरे; और कितनेक झुलस-झुलस करके अधमरे हो रहे हैं। कामाग्नि, क्रोधाग्नि, कल्पनाग्नि,और ब्रह्माग्नि, इन्हीं पाँच अग्निमें जले और जला करके झुलसे और झुलसा करके आगे सुख-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र आदि मिलनेकी आशामें तथा स्वर्गादि, ईश्वर एवं खुदादि प्राप्तिकी आशामें मन लगा करके मिथ्या धोखेमें लगे और लगा रहे हैं। इसीसे यहाँपर नाना साधनाओंका कष्ट सहते हैं। परन्तु, किसीकी मिथ्या आशा पूर्ण नहीं होती है; और आसक्ति-अध्याससे चौरासी योनियोंमें जाकर नाना कर्मोंका दुःख भोग भोग रहे हैं॥ १६१८॥

१२. बाचा फेर बहु पन्थ देखावै * मत एकै जहाँ तहाँ होय धावै॥ १६१९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! संसारमें जो बहुत प्रकारके मत, पन्थ, ग्रन्थ दिख रहे हैं या देखनेमें आते हैं, सो उनमें सिर्फ वचनरूप वाणी या शब्द वा वाचा मात्रका फेर-फार है या वाणीका ही हेर-फेर वा अदल-बदल है। नहीं तो सबोंकी मानन्दी एक ही किश्मकी हो रही है। इसके बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक रमैनीकी साखी— ५ में कहा हैः—

साखीः-"बिन गुरु ज्ञान दुन्द भई। खसम कही मिलि बात॥ युग युग सो कहवैया। काहु न मानी बात॥"

पारख ज्ञानका बोध न होनेसे नाना मत-पन्थ निकलकर संसारमें झगड़ा तो खूब हुआ। परन्तु, कोई एक ईश्वर या खुदा जगत्कर्त्ता मालिक है, इत्यादि अनुमान-कल्पनाकी बात तो सबोंकी मिल गई; और "युगानयुगका तथा ईश्वरादिकी कल्पना करनेवाले नरजीव ही सत्य हैं; जगत् अनादि है। जगत्कर्त्ता मानना भूल, मिथ्या धोखा है।" ऐसे यथार्थ निर्णयकी बात मैं कहता हूँ ! सो अविचारी लोग कोई नहीं मानते हैं। इसीसे उनका भ्रम भी नहीं छूटता है। इसलिये केवल अक्षरका फरक करके हिन्दू और मुसलमानोंने षट् दर्शन, छियान्नवे (९६) पाखण्डोंका पन्थ बहुत तरहसे फैला करके दिखाया है। उन्होंके मत सिद्धान्त, मानन्दी, कल्पना, अनुमान, भ्रम तो एक ही समान हो रहे हैं। पारख बोधके बिना भ्रमिक हो करके जहाँ-तहाँ मत-पन्थोंमें, तीर्थ-व्रतोंमें, और मक्का-मदीनामें दौड़े जाते हैं। परन्तु, वहाँपर कुछ नहीं पाते हैं, धोखाधारमें ही बहते चले जाते हैं। जहाँ वेदमें ईश्वरको जगत्कर्त्ता बतलाया है, वैसे ही तहाँ कुरानमें भी अल्लाहको कर्त्ता मालिक ठहराया है। इसीप्रकारसे दोनों दीनकी सारी बातोंका दौड़-मतवाद एक-सा ही हुआ है। बिना विचार भिन्न-भिन्न मतके पक्षपाती विरोधी होकर जड़ाध्यासी गाफिल हुए हैं। इसीसे चौरासी योनियोंके दुःख भोगी हुए हैं; और अनेकों योनियोंमें जा करके नाना दुःख त्रयतापादि कष्ट सह रहे हैं, बिना पारख॥ १६१९॥

॥❀॥ नम्बर— ३ ॥ सत्य निर्णयका मसला ॥ [सच्चा फैसलाकी कहावत कहा है] ॥❀॥

[३] मसलाः— नदिया एक घाट बहुतेरी * कहहिं कबीर वचनकी फेरी॥ १६२०॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! दृष्टान्तमें जैसे एक नदी-गङ्गादि होती है, वहाँ नदीके किनारोंमें बहुतेरी घाट पण्डे लोग बनाये रखते हैं। प्रत्येक घाटमें स्नान-पूजादि करनेकी भिन्न-भिन्न ही महिमा लगाये रखते हैं। तीर्थयात्रियोंको वे अपने-अपने घाटमें ले जा करके नाना तरह-से भ्रमा करके ठगते हैं। चाहे कोई भी घाटमें जाओ, नदीका पानी तो एक ही है। फिर गोघाट, राज-घाट, शिवघाट, ब्रह्माघाट, विष्णुघाट, पञ्चगङ्गाघाट, दुर्गाघाट, पीपलघाट, इन्द्रघाट, सूर्यघाट, इत्यादिकी कल्पना खाली वचनका ही तो फरक है। उस नदीमें कहीं भी नहाओ, धोओ, पीओ, पानी तो एक ही है; पानीमें तो कुछ फरक ही नहीं पड़ता है। घाट अलग-अलग तो लोगोंको ठगने-फँसानेके लिये भ्रम जाल ही फैलाया है। तैसे ही सत्य निर्णयसे गुरुवालोगोंके सिद्धान्तको सद्गुरु

श्रीकबीरसाहेबने कह करके परखाया है, सो सुनिये ! संसाररूप यह महानदीमें पानीरूप वाणी कल्पना सब जगह एक-सी बह रही है। संसारको उत्पन्न करनेवाला कोई एक ही ईश्वर, खुदा, गाँड़, तत्त्व, शून्य, पञ्च देव, निरञ्जन और आदिशक्ति, इत्यादि सबोंने एक-एक इष्टकी कल्पना कर रक्खी है; और उस कर्त्ताकी प्राप्तिके लिये बहुतेरे मत, पन्थ, ग्रन्थ, षट् दर्शन, छियान्नवे पाखण्ड, उनके विभिन्न सिद्धान्त, नाना भेष, नाना साधना, यही अनेकों घाट गुरुवालोगोंने बनाया है। अपने-अपने मार्ग वा मतोंकी महिमा बहुत बढ़ायी है। लोगोंको अपने-अपने मतोंमें खींच रहे हैं; लोभ-लालच देकर फँसा रहे हैं। आखिरमें जीव सब जगह जाकर भ्रमिक जड़ाध्यासी ही होते हैं। पारख बोधके बिना कहीं भी कल्याण नहीं होता है। वेद, कुरान, हिन्दू, मुसलमान, बाइबिल, क्रिस्तान आदिक इनमें सिर्फ ऊपरके वचनका ही फरक है, नहीं तो सब लोग भ्रम-कल्पनामें ही गरगाफ पड़े हैं। पारखबोध किसीमें नहीं है, इसलिये अध्यासवश नाना योनियोंमें भटका खा रहे हैं ॥ १६२० ॥

साखीः— रेख रूप बिनु वेदमें * औ कुरान बेचून ॥

[२६६] आपसमें दोऊ लड़ैं * जाना पै न दोहून ॥ १६२१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! रेखा, चिह्न, रूप-रङ्ग, आकार-प्रकारसे रहित नाम-रूप-गुणके बिना निर्गुण-निराकार, निरञ्जन, परमतत्त्व-परमात्मा कोई एक विश्वकर्त्ता विश्वपति, परमेश्वर है। ऐसी बात वेदोंमें लिखी है, सोई हिन्दू लोग मानते हैं; और तैसे ही बेचून, बेनमून गोयमगोय दुनियाँका मालिक खुदाने खलक पैदा करके उसीमें स्वयं खालिक होकर समा गया है। इसीसे खुदा लामुकाम है, इत्यादि वार्ता कुरानकी किताबोंमें लिखी है। उसीको मुसलमान लोग मानते हैं। दोनोंकी बातका तात्पर्य और कल्पना तो एक ही हुई। परन्तु, अपने-अपने मजहबको भिन्न-भिन्न मान करके पक्ष पकड़कर दोनों आपसमें धर्मान्धताके कारणसे लड़ाई, झगड़ा, उपाधि किया करते हैं। पै= परन्तु, उन दोनों हिन्दू और तुरुकोंने सब कल्पनाका कर्त्ता सत्य चैतन्य जीवको पारख बोधके बिना नहीं जाना। वे विषय तथा कल्पनामें गाफिल हो नष्ट-भ्रष्ट हुए या हो रहे हैं। अथवा वेदमें बिना रूप-रेखाका एक परमेश्वर बताया है; और कुरानमें बेचून-बेनमून एक खुदा ठहराया है। उसीकी प्राप्तिसे कल्याण होनेकी महिमा गुरुवालोगोंने बतलाया है, अतः वे अपने-अपने मतानुसार नाना साधनाओंमें जुटकर आखिर तक लड़े-भिड़े। परन्तु, उसका असली भेद किसीने भी जान नहीं पाया कि, यह तो हमारी ही मानन्दी मिथ्या कल्पना है, सो हमारा क्या कल्याण करेगी ? महाअज्ञानमें पड़ करके दोनों दीन बद्ध हुए, बिना पारख चौरासी योनियोंमें चले गये और चले जा रहे हैं ॥ १६२१ ॥

॥❀॥ शब्द, नम्बर— १२ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, शब्द नम्बर— ३० ॥❀॥

१. भाई रे ! दुई जगदीश कहाँते आया ? * कहु कौने बौराया ? ॥ १६२२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे भाई ! मनुष्यो ! हे हिन्दूओ ! हे मुसलमानो ! मेरी बात सुनो ! और मनमें उसे गुन करके यथार्थ उत्तर दो ! एक जगत्को बनानेवाला दुई जगदीश=दो जगत्कर्त्ता मालिक कहाँसे आया ? सो कैसे हुआ ? और कहाँपर है ? तुमने अनुभव करके कहा है कि, या यों ही झूठी गप्प हाँका है ? सो कहो तो भला ! इस शरीरका कार्य एक जीवकी सत्तासे चल रहा है कि, दो जीव मिल करके एक शरीरको चला रहे हैं ? गर्भमें एक ही जीव जा करके देह बनाया कि, दो जीव जा करके एक देह बनाया है ? इसका विचार करो ! जब कि, पिण्डरूप देहमें भी उसके दो कर्त्तारूप दो जीवोंने एक देहको बनाते हुए कहीं नहीं देखा जाता है। फिर अनादि ब्रह्माण्ड नित्य चार तत्त्व तथा अनन्त चैतन्य जीवोंको कौन, कैसे बनावेगा ? जड़-चैतन्यरूप जगत्का वास्तवमें एक भी कर्त्ता सत्य नहीं ठहरता है। तब दो-दो जगत्कर्त्तारूप जगदीश कहाँसे आवेगा ? कहो तो भला ! तुम्हें दो जगत्कर्त्ता बता करके किसने भ्रमा करके बौरा दिया है ? वह कर्त्ता किस कोनेमें, किस दिशामें बैठा है ? सो उसका ठीक ठिकाना वा पता तो भी बताओ ?

वह निराकार है कि, साकार है ? एकदेशी है कि, सर्वदेशी है ? सगुण है कि, निर्गुण है ? देहधारी है कि, विदेह है ? दृश्य है कि, अदृश्य है ? इसका यथार्थ निर्णय करके कहो ! पहले यह जड़-चैतन्य-रूप जगत् नहीं था, तो कर्त्ताने कहाँसे क्या ला करके कैसे इन पदार्थोंको बनाया ? अभावसे भावकी उत्पत्ति तो कभी हो नहीं सकती है। जब पाँच तत्त्वादि कोई वस्तु ही नहीं थी, तब माना हुआ ईश्वर वा खुदा कर्त्ता कहाँपर, कैसे ठहरा था ? फिर उसे जगत् बनानेकी क्या आवश्यकता हुई ? क्यों हुई ? जगत् बना करके उसने क्या फायदा उठाया ? और उसको जगत् बनाते हुए किसने, कहाँपर बैठ करके देखा ? सो विचार-विवेक करके बतलाओ !—

"(कबीर) यह जगजबनाहता। तब रहाएकभगवान्॥जिन्ह देखा यहनजर भरी। सो रहेउकौनमकान ?॥"

॥ श्रीकबीरपरिचय साखी— १११ ॥ और बीजक साखी- २०३ में भी कहा है:—

साखी:—"जहिया किर्तम ना हता। धरती हती न नीर॥ उत्पति परलय ना हती। तबकी कहैं कबीर॥"

यदि कहो कि, जगत् बनाते हुए तो किसीने नहीं देखा है; किन्तु, वेद और कुरानमें लिखा है, सो हम मानते हैं। सो वेद और कुरानादिकी वाणीको मनुष्यके सिवाय दूसरा बनानेवाला ही कौन है ? इसलिये सो तो झूठी ही कल्पना किया है ? बिना देखे, बिना समझे ही जगत्कर्त्ता मान बैठना, यह कीतनी मूर्खता है ? यदि कहो, किसी पूर्वजने जगत् बनाते हुए उसे देखा होगा, तो फिर प्रथमसे ही पाँच तत्त्व तथा अनन्त चैतन्य जीवसहित जगत् साबित ही हुआ। फिर इसको बनानेवाला कोई कर्त्ता ही नहीं ठहरा। मैंने देखा, ऐसा कहने वाला भी झूठा ही निकला। क्योंकि, उसने क्या देखा ? किसको देखा ? नेत्रादि इन्द्रियाँ संयुक्त उसका शरीर रहा कि, नहीं ? कहीं कुम्हारको घड़े बनाते हुए, लोहार वा सुनारको औजार, बर्तन, आभूषण बनाते हुए, यही देखा होगा। तभी भ्रमसे दृश्य जगत्को देखकर अदृश्य निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, बेचून, बेनमून, व्यापक, सर्वदेशी, कोई एक परमेश्वर, जगदीश्वर कर्त्ता हिन्दुओंने अनुमान किया है। उसीका अनुकरण वा नकल करके मुस्लिमोंने भी जगत्कर्त्ता खुदाका अनुमान किया है। सो भ्रमिक गुरुवालोगोंने ही मनुष्योंके कानमें कल्पित मिथ्या वाणी उपदेश फूँक-फूँक करके कोई जगदीश्वर कर्त्ता बता करके भ्रमा करके धोखेमें डाला है। उसी सनकमें लग करके अविचारी पक्षपाती लोग सनकाहा हुए, बौराये, आव-बाव बकने लगे। अरे भाई ! यह समस्त विश्व तो अनादि है, इसको किसीने कभी नहीं बनाया है; और कोई एकदमसे सम्पूर्ण विश्वका नाश भी नहीं कर सकता है। एक भी जगत् रचयिता कर्त्ता नहीं ठहरता है, सो दो जगत्-कर्त्ता मानना तो महाभूल है, ऐसी वाणी किसीने कल्पनासे न कही होती, तो तुम लोग भी नाहक क्यों भ्रमिक होते ? इसकारण इन गुरुवालोगोंने ही तुम्हें धोखा देकरके फँसाया है। इन्हींका सङ्ग छोड़कर पारखी सत्यन्यायी साधु-श्रीसद्गुरुका सत्सङ्ग करो, तभी भूल मिट करके तुम्हें यथार्थ सत्य बोध होगा, फिर कोई तुम्हें भुला नहीं सकेंगे। तभी सत्यासत्य जान सकोगे, सो जानो ! ॥ १६२२ ॥

२. अल्लाह राम, करीमा केशव ❀ हरि हजरत नाम धराया ॥ १६२३ ॥

अर्थः— [दो ईश्वर कैसे माना है, उसके बारेमें श्रीसद्गुरुने ऐसा दर्शाया है—] श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! अल्लाह मियाँको जहानका मालिक मुस्लिम लोगोंने माना है। तैसे आत्माराम, राजाराम वा परमात्माको विश्वपति हिन्दूलोगोंने माना है। ये दोनों ही मनुष्योंकी कल्पना है। केशव = सागरके जलमें शयन करने वाले विष्णुको कोई हिन्दूने जगत्कर्त्ता माना है। तो वैसे ही करीमको विश्व प्रतिपालक कर्त्ता तुरुकोंने माना है; तथा हरि = दुःख-दरिद्रताको हरण करनेवाला सुखदाता विष्णुको कोई हिन्दू लोग सर्वोपरि मानते हैं; तो कोई 'हजरत' को माननीय महापुरुष हरिके समान ठहराकर मुस्लिमोंने माना है। ऐसे-ऐसे नाम प्रसिद्ध कर रक्खा है। तो यह नाम किसने रक्खा ? उन्होंने अपना नाम आप ही रक्खा या किसी दूसरेने रक्खा ? रूपके बिना नाम मिथ्या होता है। इसलिये उनके देहका रूप रहा होगा, तभी किसीने नाम रक्खा। कहो सो नाम रखनेवाला कौन हुआ ? अरे ! मनुष्यके

बिना यह नाम कौन रक्खेगा ? इसवास्ते जगत् अनादि ही है। तभी नरजीवोंने नाना प्रकारकी अनुमान-कल्पना करके वैसे ही नाम धराया है। सो हरहालतमें नाम रखनेवाला बड़ा होता है, तुम लोग भी इसका विचार करो ! ॥ १६२३ ॥

३. गहना एक कनक ते गहना * यामें भाव न दूजा ॥ १६२४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! 'कनक-कुण्डलन्याय' या 'सुवर्ण-भूषणन्याय', इसमें कनक=सुवर्णसे ही नाना गहनारूप आभूषण बनते हैं। जैसे मुद्रिका, बाजूबन्द कर्णफूल, नथ, कण्ठहार, करधनी, दुलरी, तीलरी, कुण्डल, बाला, इत्यादि गहने नाना गढ़न काढ़ कर भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके आभूषण एक ही सुवर्णके बनाये जाते हैं। विचार दृष्टिसे देखिये ! अनेक गहना होने-पर भी तहाँ नाम-रूप मात्रका फरक है, वास्तवमें सुवर्ण तो एक ही है। सुवर्णसे भिन्न दूसरा ही कोई पदार्थ भूषण नहीं होता है। इसीतरह सुवर्णवत् शुद्ध ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा आदि कोई एकको ही कल्पनासे जगत्कर्त्ता ठहराया है। उसी एक भ्रम-कल्पनाको सिद्ध करनेके लिये गहनावत् अनेक मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त आदि गढ़न करके गुरुवालोगोंने विस्तार किया है। तहाँ सत्य निर्णय करके देखिये ! तो हिन्दू और मुसलमानोंके मतमें भ्रम, कल्पना, अनुमान तो एक ही विस्तार हो रहा है। इसमें उनकी मानन्दी कोई दूसरा सत्य भावका विचार तो नहीं है। द्वैत भावको छोड़ करके एक अद्वैत भाव करना चाहिये, ऐसा कहते हैं। फिर दुविधामें पड़ करके झगड़ा भी करते हैं। इसीतरह वे अविवेकी मूढ़ ही बने हैं॥ १६२४ ॥

४. कहन सुननको दुइ कर थापै * एक निमाज एक पूजा ॥ १६२५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! कहने-सुनने वा सुनानेके लिये ही नाना शब्द जालकी रचना कर रक्खे हैं। दोनों दीनने दो मतवादकी स्थापना कर रक्खी है। एक तरफ मुसलमान लोग निमाज पढ़नेको कहते हैं; पाँच वक्त खुदाकी आराधना करके निमाज पढ़ते और पढ़ाते हैं। सो वैसे ही और दूसरी तरफ हिन्दू लोग पूजा करनेको कहते हैं। वेदादिका पाठ करके देवी, देवता, ईश्वरादिको मान करके अनेक तरहसे षोड़शोपचारसे पूजा करते और कराते हैं। इसमें सिर्फ नामका ही तो फरक हुआ, मतलब तो दोनोंका एक ही ठहरा ॥ १६२५ ॥

५. वोही महादेव वोही महम्मद * ब्रह्मा आदम कहिये ॥ १६२६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! वही तमोगुणी मनुष्य जिसने योगमार्गका प्रचार किया, सो महादेव योगी कहलाया। पहलेके अन्य-अन्य मनुष्य जैसे भ्रमिक, जड़ाध्यासी हुए थे, तैसे ही वही बात भ्रम, कल्पना, अनुमानको लेकर महादेव भी जड़ाध्यासी हुआ। पारख बोधके बिना भ्रम, धोखेको ही सत्य मानता रहा। वैसे ही मुसलमानोंमें मोहम्मद भी बेपारखी भ्रमिक जड़ाध्यासी हुआ। महेशके समान मुस्लिमोंमें भी मोहम्मदको श्रेष्ठ माना जाता है। परन्तु, उसने भी वही मिथ्या कल्पनाकी बात ही कही। रजोगुण प्रधान, उत्पत्तिकर्त्ता, प्रथम पुरुष ब्रह्माको परमेष्ठी करके इधर माना है। उधर वैसे ही ब्रह्माके समान गुणवाले मूल पुरुष बाबा आदमको ठहराया है। जो कर्मकाण्डकी मिथ्या कल्पित बात ब्रह्माने कही, कर्ममार्ग चलाया, सोई बात कर्म=सरीयतकी चाल आदमने भी चलायी। अब कहिये उन दोनोंका एक ही तात्पर्य हुआ कि, भिन्न-भिन्न हुआ ? किन्तु, तात्पर्य तो उन्होंका एक ही हुआ ॥ १६२६ ॥

६. को हिन्दू ? को तुरुक कहावै ? * एक जिमीपर रहिये ॥ १६२७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! विचार करिये ! सब मनुष्य एक ही पृथ्वीके सपाट मैदानमें घर बना करके रहते हैं। एक ही सदृश पाँच तत्त्वोंके भागसे जीवकी सत्ता पा करके कार्यरूप सबोंका शरीर भी एक सरीखा ही बना है। एक समान सब शरीरधारी हो करके पृथ्वीपर रह रहे हैं। फिर किसको हिन्दू और किसको मुसलमान कहना ? क्योंकि, दोनों दीनके सब मनुष्य

एक अनुमान-कल्पनाकी जिमी या भूमिकापर ही तो रह रहे हैं। ईश्वर और खुदाकी मानन्दीमें सब टिक रहे हैं। सालोक्यादि मुक्तिके समान नासूत, मलकूतादि मुक्ति=जिमींकी आशा लगा रहे हैं। मिथ्या पक्ष पकड़ करके कोई हिन्दू कहलाये, कोई मुस्लिम कहलाये। जड़ाध्यासी हुए, सो मर-मर करके एक समान चारखानी गर्भवासमें जा करके रहने लगे॥ १६२७॥

७. वेद कितेब, पढ़े वै कुतबा * वै मोलना वै पाँड़े॥ १६२८॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! चार वेद या श्रुति, स्मृति आदिक संस्कृत भाषा देवनागरी लिपिको ब्राह्मणादि हिन्दूलोग पढ़ते-पढ़ाते, पाठ करते, घोखते, याद करते हैं। तदनुसार कर्मादिक कोई मार्गसे चलते हैं। वैसे ही चार कितेबरूप कुरान मुसलमानोंमें भी बनाया है। पढ़नेके लिये वे 'कुतबा करना' कहते हैं। नाना प्रकारसे कल्पित कुरानरूप किताबकी वाणी समूह पढ़ते हैं; रोजेका व्रत तीस दीन पूरा करनेके बाद गाँवके बाहरवाला मसजीदमें जाकर जो वाक्य पढ़ते हैं, सो उसे भी कुतबा करना कहते हैं; और इधर ब्राह्मण लोगोंको पाँड़े, पण्डे, पुजारी महाराज आदि शब्दसे सम्बोधन करते हैं। वैसे ही उधर शेख, सैय्यद लोगोंको मोलना, मुल्ला या मौलवी भी कहते हैं। हिन्दू ब्राह्मणादि लोग वेदपाठी होते हैं, सो पाँड़े, पण्डित कहलाते हैं। तैसे ही तुरुकोंमें कुरानकी किताबसे निमाज पढ़नेवाले तथा पढ़ानेवाले वे मोलना कहे जाते हैं। उन दोनोंमें नामके शब्द-मात्रका फरक दिखता है; किन्तु, काम, मतलब तो एक-सा ही हो रहा है॥ १६२८॥

८. बेगर बेगर नाम धराये * एक मिट्टीके भाँड़े॥ १६२९॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! जैसे कुम्हार एक ही मिट्टीसे अनेकों वर्तन बनाता है। कोई छोटा, कोई बड़ा, तहाँ उन्होंके नाम— घड़ा, मटका, सुराही, प्याला, सकोरा, दिया, चिलम, नादा, इत्यादि विभिन्न नाम-रूप बना करके व्यवहार चलाते हैं। परन्तु, आखीरमें वे सब तो एक ही मिट्टीके भाँड़े हैं, सबोंमें मिट्टी ही भरी है। ध्येय भी द्रव्य उपार्जन करना एक ही है। तैसे ही सिद्धान्तमें हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान, पारसी, यहूदी, बौद्ध, जैन, जङ्गम, इत्यादि बेगर-बेगर या न्यारे-न्यारे मतवाद, पृथक्-पृथक् पन्थ-पन्थाई, अलग-अलग मानन्दी सिद्धान्त बना करके सबोंका नाम भिन्न-भिन्न ही धराये हैं, भिन्न-भिन्न ही धारणा सबोंने कर रक्खी है। परन्तु, सबोंका शरीर एक ही मिट्टी-पानी आदि पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ जड़ नाशवान् है; और सबोंकी मानन्दी भी एक-सी मनःकल्पनासे बनी है। वाणीसे ही एक परमात्मा सर्वत्र व्यापक गन्धवत् माने हैं। एक ही विषयासक्तिमें सब टिके भी हैं॥ १६२९॥

९. कहहिं कबीर वै दूनों भूले * रामहिं किनहु न पाया॥ १६३०॥

अर्थः— पारखप्रकाशी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब सत्यन्याय निर्णयसे कहते हैं— हे सन्तो! वे हिन्दू और मुसलमान दोनों भ्रम-धोखेमें पड़कर निजस्वरूपको भूल गये; और एक सर्वव्यापक सबमें रमा हुआ आत्माराम मान करके तथा खलकमें भरा हुआ खालिक मान करके बहुविधि साधना करके उसे ढूँढ़े, तलास किये। परन्तु, उसे तो किसीने भी प्राप्त कर नहीं सका; और बेअन्त कहकर सब भूलमें ही पड़े रहे। "यह मेरी मानन्दी मिथ्या भ्रम धोखा मात्र है। इन सबमें रमनेवाला रमैया-राम चैतन्य जीव मैं ही सत्य हूँ!" ऐसा यथार्थभेद पारख बोध हुए बिना उन किसीने भी जान नहीं पाया। इसीसे वे सब कोई खानी-वाणीमें धँसकर गरगाफ हो जहँड़ा गये हैं। तहाँ आराम किसीने भी नहीं पाया॥ १६३०॥

१०. वै खसी वै गाय कटावैं * बादिहिं जन्म गमाया॥ १६३१॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! इसीकारणसे वे मूढ़ लोग हिंसक, राक्षस, पातकी, मनमति हुए हैं। तहाँ वे हिन्दू मतवादी लोग शक्ति-उपासना करके देवीकी पूजा कराकर बलिदानमें खसी, बकरा, भेड़ें, आदिको झटकासे गला काट करके मार-मारकर गिराये, अतः वे

मांसभक्षी तामसी दानव ही बने हैं। तैसे ही वे मुस्लिम लोग भी खुदा वा पीर-पैगम्बरोंके नामसे जबरन गायको हलाल करके गला काट कर मारने लगे। निरपराध जानवरोंको गला काट-काट कर मार करके कसाई बने हैं या चाण्डाल, जल्लाद ही बने हैं। ऐसे अमूल्य शुभ अवसर कर्म-भूमिका मनुष्य जन्मको बिना पारख हकनाहक व्यर्थमें ही वाद-विवाद करके बर्बाद कर दिये हैं। सुधार होनेका अवसर खो दिये हैं। कर्म बिगाड़ लिये हैं, इसतरह जड़ाध्यासी अधम-अपराधी हुए हैं। अतएव आयु बीतनेपर शरीर छोड़कर चौरासी योनियोंको प्राप्त हुए वा प्राप्त होवेंगे, बिना पारख ॥१६३१॥

॥❀॥ शब्द, नम्बर — १३ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, शब्द नम्बर— १० ॥❀॥

१. सन्तो ! राह दूनों हम दीठा ॥ १६३२ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! हे सज्जनो ! खानी और वाणीके दोनों रास्तोंको हमने अच्छी तरहसे परीक्षा करके देख लिया है कि, सर्वथा यही जीवोंको मुख्य बन्धन है; और पूर्व तथा पश्चिमके मतवादियोंके विभिन्न रास्ते भी हमने ठीक-ठीक तरहसे छान-बीन करके देख लिया है। तहाँ पारख बोध किसीको भी नहीं मिला है। हम=अहङ्कारी, अभिमानी ही सब हो गये हैं। विवेकदृष्टि उनकी फूट गई है। इसलिये वे मनमानी चालसे चल रहे हैं; उन्मत्त हो करके कर्म-कुकर्म कर रहे हैं। हमने तो उनकी सब लीला, हिन्दू तथा मुसलमानोंके दोनों रास्तोंको देख लिया है। सो परखानेके वास्ते मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ! ॥ १६३२ ॥

२. हिन्दू तुरुक हटा नहिं माने ❀ स्वाद सबनको मीठा ॥ १६३३ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! हिन्दू और मुसलमानोंके दोनों मार्गोंको ठीक-ठीक-से देख करके उनके कल्याणके वास्ते कुमार्गमें जानेसे, पाप कर्म करनेसे उन्हें हमने हटाया, रोका, समझाया-बुझाया, और कर्म-विपाकको दिखलाया, तब भी वे हठी, दुराग्रही, पक्षपाती मूढ़ लोग हमारे सत्य उपदेशको तो नहीं मानते हैं। हटानेपर भी नहीं मानते हैं; और नहीं हटते हैं। कुकर्म मत् करो, कहकर रोकनेसे भी नहीं रुकते हैं। शिस्नोदर तथा जिह्वा-लम्पट तामसी लोग सभीको मांस, मछली, मदिरा, मैथुन, मुद्रा आदि खान-पान भोगोंकी स्वाद=चाट, आसक्ति बड़ी मीठी लग रही है। गुप्त-प्रगटरूपसे सभी वाममार्गी, हिंसक, पापी, घातकी बन रहे हैं। कितने भी दोष दिखाओ, तो भी स्वादकी चाट वा आदत पड़ी हुई होनेसे उन्हें कुछ समझनेमें नहीं आता है; और वक्ता, उपदेशक, गुरु, कवि आदि बन करके झूठ-मूठका भुलावा देकर स्वार्थ सिद्ध करनेका छल-कपटका स्वाद भी सबोंको मीठा वा अच्छा लग रहा है। मैं उन्हें बारम्बार समझाता हूँ, ऐसे कुचालसे चलनेसे तुम्हारे हंसपदकी महान हानि होगी। अतः अभक्ष भक्षण न करो, किसीको धोखा मत् दो, नहीं तो नरककुण्डरूप चौरासी योनियोंके गर्भवासादिमें पड़कर महान दुःख पाओगे। तथापि स्वादकी आसक्तिमें पड़े हुए लोग यह हितकर शिक्षाको नहीं मानते हैं। पतनके मार्गमें ही चले जाते हैं ॥१६३३॥

३. हिन्दू बरत एकादशी साधे ❀ दूध सिङ्घारा सेती ॥ १६३४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! इधर देखिये ! हिन्दू धर्मावलम्बी लोग वैसे तो कई किश्मके व्रत रखते हैं। उनमें पक्षके ग्यारहवें रोज मुख्य एकादशीका व्रत रख करके साधना करते हैं। तहाँ कोई निराहार रहते हैं, कोई दूधाहार, तो कोई फलाहार करते हैं। सिङ्घाड़ेके आटेकी रोटी, हलुवा या उसे उबाल कर ही खाते हैं, कोई आलू उबालकर, कन्द, मूल, फल-फूलादिके भोजन उस दिन करते हैं। सेंत-मेंतमें पौष्टिक माल खा करके व्रत रखनेका वा आहार साधनेका मिथ्या अभिमान करते हैं। दूध-सिङ्घाड़ा आदिके भोजनसे पेट भर करके फिर उससे व्रत रखनेका ढोंग-स्वाङ्ग ही करते हैं ॥ १६३४ ॥

४. अन्नको त्यागे मनको न हटके ❀ पारन करे सगौती ॥ १६३५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! एकादशीके रोज चावल, दाल, उरद, मसूरादि अन्न

अथवा सब अनाजोंको त्याग करते हैं। उस दिन अन्नका भोजन तो नहीं करते हैं; परन्तु, मनमाने मिठाई खा लेते हैं; और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सरादि कुवृत्ति-कुमार्गादिमें जानेसे मनको नहीं हटाते वा नहीं रोकते हैं, निधड़क मनको विषय वासनामें, लगा करके कर्म-कुकर्म करते रहते हैं। दम्भ करके लोगोंको ठगते फिरते हैं। झूठ ही एकादशी महात्म्यका कथा सुना करके लोगोंको ठगते फिरते हैं। व्रतके रोज भी मांसादि अभक्ष्य भक्षणके लिये ललचाये रहते हैं। व्रतका बन्धान होनेसे किसी तरह उस दिन तो मुश्किलसे रुकते हैं। कब रात्रि व्यतीत होगी, यही सोचते रहते हैं। जब द्वादशीका सबेरा हुआ, तब झटपट स्नानादिसे निवृत्त होकर चार आनेका गोदानरूप दक्षिणा ब्राह्मणको देकर व्रत समाप्ति करते हैं, उसे 'पारन' करना कहते हैं। फिर बकरादि जीवका हिंसा करके 'सगौती'=कहिये मांसका नाना व्यञ्जन सहित तैय्यार कराकर प्रसन्न हो करके उसे खाने लग जाते हैं। ऐसे व्रतके दूसरे ही दिन पारणा करके मांस, मछली आदि राक्षसी भोजन कर लेते हैं। अब कहिये! यह एकादशीका व्रत हुआ कि, कुकर्म हिंसाकी पूरी राक्षसी कुआदत वा लत हुई? दश इन्द्रियाँ सहित मनको शमन तथा दमन करके पञ्च विषयोंकी तरफसे उन्हें रोक रक्खे, सो सच्ची एकादशीका व्रत है। विषयासक्तिसे रहित रहना ही सच्चा व्रत है। अथवा "धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धैर्य, विद्या, सत्य और अक्रोध" ये धर्मके दश लक्षणोंको पूर्ण पालन करना, उसीसे नित्य ही असली एकादशीके व्रतका फल लाभ होता है। सो हितकारी व्रतका पालन तो वे मन्दमति लोग करते ही नहीं हैं। झूठ ही पाखण्डका पसारा करते हैं। अन्न मात्रका एकदिन त्याग करते हैं, मनको नहीं रोकते हैं, पारणा करते ही मांसादि भोजन करने लग जाते हैं, ऐसे मूढ़ बने हैं॥ १६३५॥

५. तुरुक रोजा निमाज गुजारै ❀ बिसमिल बाँग पुकारै॥ १६३६॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! दूसरी तरफका हाल भी सुनिये! तुरुक= मुसलमान लोग इस्लाम मजहबके अनुसार तीस दिनके रोजेका व्रत लगातार महीनाभर तक दिनभर-दिनभर तो व्रतका नियम पालन करते हैं। दिनभरके लिये तो खान-पान छोड़ रखते हैं। सबेरे ही उठ करके मौलवी लोग बाँग पुकारा करते हैं, निमाज पढ़कर दिन गुजारनेकी सूचना देते हैं। तब मुसलमान लोग इकट्ठे हो करके "बिसमिल्लाह हिर्रहिमाने रहिम" से शुरू करके निमाज पढ़ते हुए दिन बिताते हैं। इसतरहसे तुरुक लोग रोजामें निमाज-गुजार करके बिसमिल्लाहके नामसे बाँग पुकारा करते हैं, सब दिन अल्लाहकी यादमें बितानेका या व्रतमें लगे रहनेका ढोंग करते हैं। परन्तु, मन तो नाना विषय प्रपञ्चोंमें दौड़ाये ही रखते हैं॥ १६३६॥

६. इनको बिहिस्त कहाँसे होवै? ❀ जो साँझै मुरगी मारै॥ १६३७॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! मुसलमान लोग फिर सन्ध्या होते ही सब धर्म-कर्मको छोड़कर राक्षस बन करके पाप कर्म हिंसा-घातादि करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं। अँधेरा हुआ कि, सही शामको कई एक मुर्गियाँ लाकर खुदाके नामसे हलाल करके उन्हें मार डालते हैं। उनके परोंको नोंच-नोंच करके फेंक देते हैं; मांस बना करके पकाकर खा जाते हैं। अब कहिये! रोजा रखनेसे क्या फायदा हुआ? शाँझमें ही मुर्गियोंको मारकर भ्रष्टाचारी होते हैं। बीजक, रमैनी-४६ में भी कहा है:—
साखीः— "दिनको रहत है रोजा। राति हनत हैं गाय॥ यह खून वह बन्दगी। क्योंकर खुशी खुदाय?॥"

कई मुसलमान लोग रोजाकी रातमें हत्या करके गायको मारकर फिर सब लोग मिल करके उसका मांस खा जाते हैं। ऐसे रोजा रख करके भी कोई मुर्गियों और कोई गाय आदिको मारकर हिंसा करते हैं; और सब रूहमें खुदाका नूर भरा हुआ है, ऐसा भी कहते हैं। खुदाई सृष्टि बतलाते हैं। फिर क्या उन मुर्गी और गाय आदिमें खुदाका नूर नहीं है? उन्हें खुदाने नहीं बनाया है? फिर खुदाकी सृष्टिको उजाड़कर बरबाद करनेवाले वे तुरुक खुदाके दुश्मन बने कि, नहीं? अब

उन्हें ऐसे-ऐसे पाप करके बहिस्तरूप स्वर्ग सुख या मुक्ति भी कहाँसे मिलेगी ? कैसे होगी ? पापकर्ममें बँधे हुए दोजखरूप नरक वा चौरासी योनियोंके गर्भमें ही चले गये वा चले जायेंगे ॥१६३७॥

७. हिन्दूकी दया मेहर तुरुकनकी * दोनों घटसों त्यागी ॥ १६३८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! हिन्दुओंके यहाँ धर्मात्मा लोगोंने तन, मन, वचनसे जीव-दया पालन करनेको ही बड़ा धर्म कहा है— "दया धर्मका मूल है ।" तैसे ही सरीफ मुस्लिम लोगोंने भी प्राणियोंपर मेहरकी निगाह रखनेको फर्ज माना है । 'दया' वा 'मेहर' एक ही बात है । परन्तु, मनमति हिन्दू और मुसलमान लोग दोनोंने अपने-अपने घट=अन्तःकरणसे दया वा मेहरको त्याग करके निकालकर फेंक दिये । निर्दयी काल-कसाई, बेरहमी बने ॥ १६३८ ॥

८. ई हलाल वै झटका मारैं * आग दूनों घर लागी ॥ १६३९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! इसीकारणसे धर्मके नामसे अधम पाखण्ड चला करके पूरे कसाई बने हैं । ई=इधर मुसलमान लोग तो गाय आदि पशुको बाँध करके पछाड़कर हलाल करके तेज छूरी गलेमें फेरकर जिन्दे पशुको मार डालते हैं । वह भी खुदाके नामपर हलाल=जीवघात करते हैं; और वै=उधर हिन्दू लोग देवी-देवता, भैरवादिके नामसे बकरादि पशुओंको खम्भेमें बाँधकर तेज तलवार, खड्ग आदिसे जोरके झटकेसे गलेमें प्रहार करके एक-दो ही झटकोंमें मार डालते हैं । दो अंगुल जिभ्या-स्वादके कारणसे बहुतेरे अनाथ प्राणियोंकी हत्या कर देते हैं । ऐसे हिंसा, क्रोध, स्वार्थ, छल-कपट, काम, घात-प्रतिघातादिकी पापाग्नि हिन्दू और तुरुक उभय धर्मियोंके घटोंघटमें घरोंघर सब जगह दोनों प्रकारसे दावानल लग गई है । बिना पारख सब मनुष्य झुलस-झुलस करके उसीमें भस्म हो रहे हैं । मनुष्यपदकी शुद्ध रहनी सद्गुणादिको जलाकर खाक उड़ा रहे हैं । पाखण्डमें जन्म बिताकर चौरासी योनियोंके नर्क-कुण्डमें जा रहे हैं ॥ १६३९ ॥

९. हिन्दू तुरुककी एक राह है * सतगुरु सोई लखाई ॥ १६४० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सज्जनो ! अब आप लोग विवेक करके देखिये ! हिन्दू और मुसलमानोंका मार्ग दो तरहका हुआ, कि एक ? उपरोक्त निर्णय करनेसे उन दोनोंका मूल राह तो एक ही साबित हुई । क्योंकि, एक ईश्वर या एक खुदा जगत्का कर्त्ता वे दोनोंने माना है । उसीके नामसे अनेकों कर्म-कुकर्म भी करते हैं । सोई बात, उन्होंके माने हुए बड़े सतगुरु=ब्रह्मादिने वेदादि प्रमाणसे हिन्दुओंको लखाया कि, ईश्वर तथा देवतादिको मानो, यज्ञ-यागादि करो ! और बलिदान दो ! तहाँ मनुस्मृतिः, अध्यायः— ५, श्लोक— ३९ में कहा हैः—

श्लोकः— "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य, तस्माद्यज्ञे वधोऽ वधः ॥"

—अर्थात् यज्ञके वास्ते स्वयं ब्रह्माने ही पशुओंकी सृष्टि की है; और यज्ञसे ही सब प्राणियोंका हित होता है, इसलिये यज्ञमें बध किया हुआका बधका दोष नहीं लगता है, इत्यादि बहुत-सा प्रमाण मनुस्मृतिः आदि शास्त्रोंमें आया है; और उधर तुरुकोंके माने हुए सतगुरु=मोहम्मदादियोंने भी कुरानके प्रमाणसे मुस्लिमोंको ऐसा लखाया है कि, तहाँ कहा हैः—

"तुमपर मुर्दार लोहू और गोस्त सूअरका हराम है; और अल्लाह बिना जिसपर कुछ पुकारा जावै ॥"

॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १५९ ॥

"जो कुछ आसमान और पृथ्वीपर है, उसीके लिये है, चाहे उसके कुरसीने आसमान और पृथ्वीको समा लिया है ॥" मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २३७॥

यह वाक्य सिर्फ मुर्दे और सूअरको छोड़ करके और सब प्राणियोंके मांस तथा मदिरा आदि सब पदार्थोंको खाने-पीनेके लिये प्रमाण मानते हैं । इसप्रकार सोई धोखा, अन्याय, हिंसा, कुटिलताका मार्ग गुरुवालोगोंने सबोंको लखाया वा दृढ़ाया है। परन्तु, वास्तवमें वे सद्गुरु नहीं थे,

वे तो झूठे काल ही बने थे। नित्य-सत्य चैतन्यस्वरूप जीवको जो लखावें, पारख बोध देवें, भ्रम-भूलको छुड़ावें, सोई सच्चे श्रीसद्गुरु बन्दीछोर होते हैं। इसका भेद सत्सङ्ग द्वारा पारखी सन्तोंसे जान करके गुरुवालोगोंकी कुसङ्ग आदिको त्याग देना चाहिये ॥ १६४० ॥

१०. कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! ❀ राम न कहूँ खुदाई ॥ १६४१ ॥

अर्थः— सत्यवक्ता पारखी श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! साधुओ ! आप लोग मेरे यथार्थ निर्णय वचनको सुनो ! और मनमें गुनो ! विचार करो ! कहींपर सुख-दुःख दाता, राम या खुदा मानकर जो तुम लोग उसे ढूँढ़ रहे हो, सो तुम्हारी मिथ्या धोखा-कल्पना ही है। न कहीं राम वा ईश्वर बैठा है; और न कहीं खुदा वा अल्लाह बैठा है, जो कि, तुम लोगोंको मिलेगा। अरे ! वह तो मिथ्या भ्रममात्र है, सो कहाँसे मिलेगा ? यह संसार अनादि कालका है, जड़त्व स्वयं गुण-शक्ति धर्मादिसे बाहरके कार्य चल रहे हैं। जीवके कर्म-अध्यास, सत्ता-सम्बन्धसे देहादिका कार्य हो रहा है। कर्मानुसार तन धरकर दुःख-सुखादि फल सब जीव स्वयमेव निज-निज संस्कारके अनुसार पा रहे हैं। इसवास्ते राम और खुदाको तुम लोगोंने जो कर्त्ता माना है, सो सरासर भ्रम-कल्पना है; सो कहीं नहीं मिलेगा। अतएव सत्यन्यायी पारखी साधु-गुरुके शिक्षा-बोधको लेकर सब मिथ्या मानन्दीका परित्याग करो। सद्गुण हंस रहनीको धारण करके जीवन सुधार करो; पारखपदपर स्थिर हो रहो ! ॥ १६४१ ॥

साखीः— बड़ उतपात यम जाल है ❀ परखहु सन्त सुजान ! ॥

[२९७] घात करे बहु भाँति सो ❀ तहाँ जीव चहै कल्यान ॥ १६४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! यम जालके घेरामें नित्यही बड़ा उत्पात वा उपद्रव लगा रहता है। तहाँ गुरुवालोगोंके वाणीजालमें अरुझे हुएको नाना साधना करनेकी उपाधि बड़ी झंझट लगी ही रहती है। तथा स्त्रियोंके खानी विषय जालमें फँसे हुए लोगोंको नाता-गोता, कुल-कुटुम्ब, इज्जत आबरू रखनेकी मिहनत-मजदूरी, उद्योग-धन्धा करके कमाई करनेकी बड़ी उत्पात-परेशानी लगी ही रहती है। एवं मनके जालमें घिरे हुए जीवोंको उन दोनों उपाधिमें पड़ करके बड़ी बेचैनी लगी रहती है। हे हितेच्छुक मनुष्यो ! तुम लोग सुजान=अच्छे जानकार अपरोक्ष सर्व पारखी सत्यनिर्णयी ऐसे पारखी सन्तोंके शरण-सत्सङ्गमें जा करके उक्त उन तीनों यम जालोंको अच्छी तरहसे परखकर उनके कसर-खोटको जान लो ! सार-असारको पहिचान लो ! और उनके जालको पारख बलसे तोड़-ताड़ करके फेंक दो; बाहर निकल आओ, तभी कुशल होगा। नहीं तो उनके जालमें फँसे रहनेवालोंको वे काल बन करके विकराल चालसे बहुत भाँति-भाँतिसे घात, हिंसा, लूट-मार करते हैं, नाना तरहसे शासत देकर सताते हैं। स्वार्थ पूर्ण करनेके लिये सब तरहसे पीस करके कचूमर निकाल डालते हैं। जैसे कसाईके हाथमें पड़कर पशु हित चाहे, तो कैसे होवेगा ? वह तो मौका आनेपर मार ही डालेगा। तैसे ही तहाँ मन, स्त्री और गुरुवालोगोंकी मानन्दी, विषय और कल्पनाके घेरामें रहकर उनके सङ्ग-साथमें सदा बैठ करके अबोध नरजीव अपना कल्याण-हित, सुख, मुक्ति प्राप्ति करना चाहते हैं, तो कहिये भला ! यह विपरीत बात कैसे पूर्ण होगी ? कभी न होगी। जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जीव घूमते रहेंगे। पारख बोध हुए बिना मुक्ति हो नहीं सकती है ॥ १६४२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८७ ॥ [चौपाई-१६ । साखी-५ । छन्द-२ । शब्द-२ है] ॥ ❀ ॥

१. असी सहस्र मिलि नबी कहाई ❀ बिन गुरु आदम अन्त न पाइ ॥ १६४३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— से सन्तो ! जैसे हिन्दू धर्मके उपदेशकोंको 'ऋषि,' 'मुनि' कहते हैं। अठासी हजार वे मुनिवर्ग गिने गये हैं। तैसे ही इस्लामधर्मके उपदेशकोंको 'नबी'

कहते हैं। वे (एकलाख) अस्सी हजार नबी, पैगम्बर हुए, ऐसा उन्होंने माना है। वे सब नबी तो कहलाये, परन्तु, विषयासक्ति, अनुमान-कल्पनामें ही मिलकर पतित हुए। पारखी श्रीसद्गुरु तो उनको नहीं मिले, सत्य चैतन्य पारख स्वरूपका बोध भी उनको नहीं हुआ। इसीसे बाबा आदमको ही नबियोंने गुरु माना। पारख बोध हुए बिना आदमने तो अनुमान-कल्पनाका कुछ अन्त वा पता नहीं पाया, धोखेमें ही पड़ा था। फिर उसे माननेवाले उसके अनुयायी आदमरूप और आदमी या मनुष्योंने भी खुदा और उसकी मानी हुई कुदरतको किसीने भी जान नहीं पाया; अन्त=पता, आखिरी ठिकाना कुछ जान नहीं पाया। पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आये बिना किसीने भी पारखका बोध नहीं पाया। मनुष्योंने अनेक प्रयत्न किया, तथापि अन्त तक निज स्वरूपके यथार्थ बोध स्थितिको नहीं पाया। अतएव जड़ाध्यासी होनेसे वे सब चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ रहे हैं॥१६४३॥

२. मध्य मध्य फन्दा बहुतेरा ❀ विविधि कलेश जीव अरुझेरा ॥ १६४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जन्म-मरणके मध्य या बीच-बीचमें आ करके जीवोंने मनुष्य शरीर धारण किया, तो यहाँ बहुतेरे फन्दा-जालोंमें वे घिर गये। खानी-वाणीके बीच-बीचमें फँस करके नाना तरहके कष्ट-क्लेश सहते हुए भी जीव पुनः-पुनः उसीमें अरुझे हुए दुःख सहन कर रहे हैं। कहीं स्त्री, पुत्र, धन, घरादिमें अरुझे हुए नाना दुःख भोग रहे हैं। कहीं ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवतादि अनेकों भ्रम-फन्दोंमें अरुझकर जप, तप, व्रत, उपवासादि अनेकों साधनों का क्लेश पा रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरु मिले बिना कहीं छुटकारा नहीं हो रहा है॥ १६४४॥

३. उरझ रहै जिव जहाँ तहाँ बन्धा ❀ बन्दीछोर न चीन्है अन्धा ॥ १६४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! विवेक-विचारकी दृष्टिसे हीन, बेपारखी अन्धे लोग विषयान्ध, मदान्ध, क्रोधान्ध, उन्मत्त होकर जहाँ-तहाँ भटकते रहते हैं। षड्दर्शन-छियान्नबे पाखण्डोंके नाना मत, पन्थ, ग्रन्थोंके भिन्न-भिन्न सिद्धान्त भ्रम-धोखेको जिधर-तिधर पकड़कर अरुझते हुए पक्ष पकड़ करके वहीं बन्धायमान हुए या बद्ध हो रहे हैं। मूर्खताके कारण आँखें फोड़कर अन्धे बने हैं। इसवास्ते बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरु जो कि, सकल खानी-वाणी भव-बन्धनोंसे छुड़ानेवाले हैं। यदि ऐसे श्रीसद्गुरु मिल भी गये, तो उन्हें चीन्हते वा पहिचानते नहीं। प्रत्युत पानी, पत्थर, पर्वत, जङ्गल, शून्यादिकमें जहाँ भी जाते हैं, वहीं दृढ़तासे मानन्दी टीका करके अरुझे ही रहते हैं। बन्दीछोर प्रभुको वे अन्धे कदापि चीन्ह नहीं पाते हैं॥ १६४५॥

४. क्षर अक्षर निःअक्षर धावै ❀ त्रिगुण फाँस ही में अरुझावै ॥ १६४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई क्षर=वाणी-खानीकी मोटी नाशवान् मायामें लगे दौड़ रहे हैं। कोई अक्षर=श्वासवायुका विचार, अजपा-जापके अभ्यासमें लगे हैं। कोई निःअक्षर=श्वासको लय करके भीतर तेजतत्त्वका प्रकाश देखकर उसे ही अक्षरातीत ब्रह्म मान करके भ्रममें दौड़ रहे हैं। अथवा क्षर=नाशवान् देह है; अक्षर=अविनाशी ईश्वर कहा है; निःअक्षर=निर्गुण ब्रह्म ठहरा करके मिथ्या मानन्दीमें धाय रहे हैं। अथवा क्षर=संसारको उत्पन्न करनेवाला सोई अक्षर=ॐकार परमात्मा विशेषरूपसे कर्त्ता परमेश्वर है; और सामान्यरूपसे कर्त्ता निरञ्जन निःअक्षर ब्रह्म होता है। ऐसा मानकर उससे मिलनेके लिये अनेक मार्गोंमें दौड़ रहे हैं। रज, सत्त्व और तम, ये त्रिगुण फाँसमें ही मनको अरुझाते हैं। गुरुवालोग तत्त्वमसि, भक्ति, योग, ज्ञानादि त्रिगुणी फाँसीमें ही अरुझा देते हैं। तथा लोभ, काम, क्रोधादि ये त्रिगुणी फाँसमें स्त्रियाँ अरुझा रही हैं। इसप्रकारसे जीव भव-बन्धनोंमें जकड़े पड़े हैं॥ १६४६॥

५. परख न टीके और मन लावै ❀ जतन कलेश सोई सोइ भावै ॥ १६४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! यथार्थ निर्णयसे परीक्षा करनेपर जो वस्तुतः कुछ भी पारख कसौटीमें सत्य टिकता ही नहीं है, कुछ ठहरता ही नहीं है, मिथ्या धोखा, कल्पना, भ्रम, जो कि,

जीवके स्वरूपसे भिन्न है, उसीमें ही मन लगाते हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि मान करके उसमें मन ठहराव करते हैं; और निजस्वरूप सत्य पारखमें कोई नहीं टिकते हैं, पारख स्थिति कोई नहीं करते हैं; और ही अनुमानमें मन लगा करके नाना यत्न-प्रयत्न करके अनेक साधनाओंमें कष्ट-क्लेश, दुःख सहन करते हैं। वही साधनोंमें लगते हैं, जो कि, दुःखदायी है। सोई-सोई अनुमान कल्पना, विषयादि बन्धनोंमें उनका भाव टिका है। सो वही-वही बात ही अच्छा लगता है। इसवास्ते उसी-उसीमें मन लगा करके नाना प्रयत्नकर कष्ट-क्लेश सहा करते हैं ॥ १६४७ ॥

६. अमली अमल ही के लत लागी ❀ पतङ्ग न लखहिं उतङ्गहि आगी ॥ १६४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे अमली, नशेबाज लोग शराब, गाँजा, भाँग, चरस, पोस्ता, अफीम, इत्यादि नशीली चीजको खा-पीकर उसके नशामें उन्मत्त-गाफिल रहते हैं। नशाके कारणसे गाली-गलौज, मार-पीट भी करते हैं; लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते चलते-चलते कभी-कभी नालीमें भी गिर पड़ते हैं; बड़ी दुर्दशाग्रस्त होते हैं। ऐसी फजीती होनेपर भी नशा करना नहीं छोड़ते हैं। क्योंकि, नशाकी लत, आदत, चाट अमलीको दृढ़ हो करके लगी रहती है। इसवास्ते लतको छोड़ नहीं पाते हैं। तहाँ श्रीसद्गुरुने बीजक कहरा-६ में कहा है:—

"जैसे मदपीगाँठिअर्थदै। घरहुकिअकिलगमाई हो !॥३॥ स्वादेवोद्रभरेधौंकैसे?ओसैप्यासन जाईहो !॥४॥
"हरि उतङ्ग तुम जाति पतङ्गा। यम घर कियेहु जीवको सङ्गा ॥" बीजक, रमैनी—६५ ॥ चौपाई ६ ॥

पतङ्गी=पङ्खवाले कीड़े उधर धधकती हुई प्रज्ज्वलित, उतङ्ग=महान अग्नि दीप-शिखाको देखकर भी नहीं डरते हैं। यह जलानेवाली है, सो ऐसा भी नहीं समझते हैं; वे तो सिर्फ रूप विषयमें मोहित हो करके उसमें मिले रहनेको कूद पड़ते हैं। अग्निको 'यह जलानेवाली है' ऐसा वे पतङ्ग नहीं लखते हैं, परन्तु, अग्निको कोई लखो या न लखो, वह तो जो उसमें पड़ेगा, उसे जलायेगी ही। उसका तो दाहक धर्म ही है। उसीप्रकार सिद्धान्तमें अमली जीव संसारमें पञ्च विषय भोगोंके नशाकी आदतमें पड़े हैं। परमार्थमें भक्ति, योग, ज्ञान और विज्ञान इन्हीं चार मार्गोंके यही अमलकी लत, आदत, पक्ष, हठमें ही सब मनुष्य लगे हुए हैं। कल्पना करके ब्रह्म-ईश्वरादिको निर्मल शुद्ध-बुद्ध निरञ्जन बतलाते हैं। उसकी प्राप्तिकी इच्छा ब्रह्मानन्द आदिकी चाहनासे नाना साधनोंमें स्वयं लगे और अन्यको भी लगा रहे हैं। अनेकों कष्ट सहन करके दुर्दशाको झेलते हुए भी वह भ्रमको वे नहीं छोड़ते हैं। इधर विषयीलोग कामासक्त पुरुष पतङ्गके समान बनकर स्त्रियोंके रूपको देखकर मोहित होते हैं। वे विचारदृष्टिसे नहीं देखते हैं कि, वह स्त्री मैलेके समान अपवित्र मोटरी है, और उतङ्ग=तीव्र धधकती हुई ज्ञान-गुणको जलानेवाली नर्क-कुण्डकी महान अग्नि सदृश है। इसीके भग-भोगादिमें कूद-कूदकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। उधर साधकलोग यागादि ध्यान-समाधि लगा करके तेजतत्त्वके ज्योति-प्रकाशादिको देखकर उसे ही परमेश्वर मान करके भूल गये हैं। यह भास, अध्यास, कल्पनाकी अग्नि तुरन्त ही मुक्तिपदको भस्म करनेवाली महान दुःखदायिनी है। ऐसा पारखदृष्टिसे निर्णय करके वे कोई नहीं लखते हैं। इसीसे गाफिल हो आवागमनमें ही भटकते रहते हैं ॥ १६४८ ॥

७. काल मता मद जीव बौराना ❀ विविधि उक्ति बहु पन्थ उपाना ॥ १६४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! काल=स्त्री और गुरुवाओंके मत, पन्थ, सिद्धान्तोंमें नाना तरहसे लगे हुए दुर्बुद्धि नरजीव अष्टमदमें लगकर उन्मत्त होकर पागल हो गये। भ्रमिक जड़ाध्यासी बन करके दिवाने हुए। बहुत बकवाद करने लगे। गुरुवालोगोंने अनेक प्रकारकी उक्ति=वाणी कल्पनाका कथन वर्णन जो किया, उसीको सुन-सुनकर, उसी वाक्यका प्रमाण मान-मानकर मतवादियोंने जगत्में बहुतेक पन्थ, मार्ग, धर्म, मजहब उत्पन्न कर दिया है। उसमें नाना तरहकी चालसे अबोध लोग चल रहे हैं। परन्तु, वह तो बन्धनका पन्थ है; यह नहीं जानते हैं। इसीसे पन्थ-पन्थाईके पशु बन करके नष्ट-भ्रष्ट हो गये और नष्ट हो ही रहे हैं, बिना पारख ॥ १६४९ ॥

८. साहेब नाम ओट धरे काला * जीवहिं भोरि करे बेहाला ॥ १६५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे धूर्त ठग लोग बड़े आफिसके नामसे उसके ओटमें अपने छिपकर लोगोंको धोखा देकर ठगते फिरते हैं। कोई बड़े कारखाना, फर्मके मालिक, मैनेजर बन करके नकली लोग झूठा ही प्रसिद्धि कराके बड़ी-बड़ी रमक हाथ मारकर चम्पत हो जाते हैं। ऐसे लोगोंको भुलाकर ठगकर बेहाल करनेकी घटनाएँ तो दुनियाँमें होती ही रहती हैं। परन्तु, यहाँपर त्यागी, साधु, परमार्थी बने हुए गुरुवालोग भी तो वैसे ही ठग वा काल बन रहे हैं। उन्होंने भेष का पर्दा तथा श्रेष्ठ माना हुआ परमेश्वरके नामकी आड़, वेद-शास्त्रादि वाणीके ओटमें अपनेको छिपाकर बाहर तो बड़े साहेब, महात्मा, ज्ञानी, परमहंस, योगी, तपस्वी आदि बनकर अपनी बड़ी प्रसिद्धि की है। परन्तु, उनका मन तो बड़ा काला-मैला स्याही पोता हुआ सरीखा हो रहा है। आशा-तृष्णा, ठगाईकी चालबाजीमें लगकर वे काल बने हैं। अज्ञानी जीव नर-नारी मनुष्योंको अनेक तरहसे भुला-भुला कर रोचक-भयानक वाणी सुनाकर तन, मन और धन हरणकर अपने वशमें करके बेहाल या परम दुःखी बनाये हैं। वैसे ही कुचालमें लग रहे हैं। अथवा इधर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब-के पारख सत्य ज्ञानके प्रतापसे मनुष्योंको धोखा जालोंसे छूटते हुए देख करके गुरुवालोगोंने सोचा कि, ओ हा ! इसप्रकार इनका ज्ञान बढ़ता गया, तो हमारी आमदनीमें बड़ी हानि होगी; पाखण्ड जालका भी अन्त हो जायगा ! अब किसी मूल्यसे भी इसको बचाना कर्त्तव्य है। ऐसा निश्चय करके वे धूत लोग भी नकली कबीरपन्थी बन गये। फिर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके नामसे अनेकों गद्य-पद्य-की रचना करके उसमें मिथ्या कल्पना भर दिये। फिर तो बिना रोक-टोकके ठगाई करनेका अवसर कालका मिल गया। समयान्तरमें उन्होंने बारह अथवा पचीसों पन्थ भी बनाया। उनमें वेद-शास्त्र, पुराण, कुरानवादी घुस गये। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैतादि वेदके कल्पित सिद्धान्त प्रगट करके दृढ़ किये और कराये हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके नामसे पन्थके ओट=आड़, पर्दामें काल=गुरुवालोगोंने भी बहुतरूप धारण किया। जिसे देख-सुन करके बहुतेरे अज्ञानी भावुक जीव वहीं भूल गये; और वे भी कहते हैं कि, हम क्या कबीरपन्थी नहीं हैं ? हम तो बड़े कबीरपन्थी हैं। हमारे पूर्व पुरुषको ही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने मुख्य गद्दी सौंप दी थी। हम लोग मूलकबीर, रामकबीर, सत्यकबीर पन्थी आदि हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके वक्तकी उनकी मूलवाणी हस्त लिखित प्रति हमारे यहाँ गद्दीमें धरी है। इसवास्ते तुम लोग हमारे पन्थको ही श्रेष्ठ-सच्चा जानो, इत्यादि बातोंका आवरण लगाकर वेदादिमें वर्णित कल्पित सिद्धान्तको ही वे लोग परिपुष्ट करते हैं। बीजक सद्ग्रन्थके सत्य पारख सिद्धान्तको एकदम ढँककर छिपा देते हैं। कहते हैं कि, वेद-शास्त्रके मतको ही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें परिपुष्ट किया है। इससे वेद-मत ही सबसे श्रेष्ठ है, इत्यादि प्रकारसे धोखा देकर नाना प्रपञ्चमें जीवोंको फँसाकर भुला करके फिर जीवोंको बेहाल=परम दुःखी, जड़ाध्यासी, भ्रमिक कर देते हैं। वैसे किये भी हैं; और कर भी रहे हैं। बेचारे अबोध मनुष्य इसका भेद तो कुछ भी समझ ही नहीं पाते हैं। बिना पारख धोखेमें ही पड़े रहते हैं। जब कोई विवेकी सत्यन्यायी पारखी सन्त मिलते हैं, तब वे यथार्थ रीतिसे सद्गुरु और गुरुवा, काल-दयाल, बन्धन-मुक्ति' हानि-लाभ, सत्य-मिथ्या आदिकी गुरुमुख वाणी सत्य निर्णय बीजकके सार सिद्धान्त द्वारा पारख बोधको समझाते हैं। तभी कोई विचारवान् जिज्ञासुजन सारासारका भेद समझ पाते हैं। फिर सब पूर्व-पक्षोंको छोड़कर पारख बोधको ग्रहण करके निज-पर हित साधनामें ही तत्पर होते हैं, वे ही भव-बन्धनोंके दुःखोंसे छूटकर मुक्त होते हैं ॥ १६५० ॥

९. सदा काल बहु फन्द बनावै * सोई फाँस जीवहिं उरमावै ॥ १६५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अनादि कालके जगत्में सदा-सर्वदासे

कालरूप नारी और गुरुवालोग विषयजाल और कल्पित वाणी फन्दोंको बहुतप्रकारसे बनाये, तथा बना ही रहे हैं। सोई विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि जाल-फाँसमें सब नरजीवोंको फँसाये वा अरुझाये हैं। वही सुखकी आसक्ति, चाट सब जीवोंके हृदयमें दृढ़ हो गई है, इसीसे उन फन्दाओंमें फँसे रहना ही जीवोंको प्रिय लग रहा है। सोई अभ्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासमें पड़कर नाना दुःख भोग रहे हैं और भोगेंगे ॥ १६५१ ॥

१०. चलहु जीव यम फाँस बचाई ❀ जेहि विधि तीर चुभै नहिं भाई ! ॥१६५२॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें शीघ्र ही चले-चलो ! जिससे यम=नारी और गुरुवाओंके फाँस=विषय, वाणी आदिके जालसे तभी बच सकोगे। पारख बोध लखा करके श्रीसद्गुरु ही जीवोंको यम-फाँससे बचाते हैं। सो हे जीवो ! उन्हींकी शरणमें चलो ! सत्य-शिक्षाको धारण करके यम-फाँस बचा करके मन-मानन्दी त्यागकर मुक्तिमार्ग-में चलो ! हे भाई ! अभी नर तनको पाये हो, तो जिस प्रकारसे भी हो सके या जैसे भी करके ऐसा सत्पुरुषार्थ करो कि, वाणी-कल्पनाका तीर हृदयमें नहीं चुभे; और पञ्च विषयोंका अध्यास अन्तःकरणमें नहीं गड़े वा नहीं धसे, नहीं टिके या नहीं लगे, ऐसा उपाय करो। यही खानी-वाणीका अध्यास बड़ा जबर्दस्त भव-बन्धनका कारण है। नर जन्ममें हो, अभी परखकर त्यागनेसे ही अध्यास छूट सकता है। अतएव मोह निद्रासे जागो ! कल्याण मार्गमें लगो ! ॥ १६५२ ॥

११. रहहु परखमें हो हुशियारा ❀ छार भार सब यम शिर मारा ॥ १६५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मुमुक्षुओ ! बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोध, वही एक जीवोंको मुक्तिदायी है, इसवास्ते पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उस पारख बोधको प्राप्त करके यमके घेरासे निकलकर सदा होशियार या सावधान, जाग्रत् होकर अपरोक्ष पारख स्वरूपकी स्थितिमें ही स्थिर हो रहो ! और यम=स्त्री और गुरुवाओंने जो बेकारका बोझा राख, गर्दाके समान निकृष्ट विषय तथा भ्रमका भार तुम्हारे ऊपर लाद दिया है, सो अपने शिरसे उस बोझेको उतारकर उन्हीं यमके शिरपर पटककर मार दो ! उनके भारको छोड़ो; तुम्हें मारने, जड़ाध्यासी बनाने, स्वार्थ पूर्ण करनेके लिये ही यह सब प्रपञ्चका बोझा यमने तुम्हारे शिरपर रक्खा है। सो मैं तुम्हें चेता देता हूँ ! अब वक्त आ गया है, होशियार हो जाओ। छार-भार दोनों तरफके प्रपञ्चोंकी गठरी उतारकर यमके ही शिरपर वापिस मारकर भाग आओ ! पारख बोधमें शान्त हो रहो ! ॥ १६५३ ॥

१२. शरणागत पारख लौलाये ❀ यमके फन्दा चलहु मिटाये ॥ १६५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— मुक्ति चाहनेवाले हे मनुष्यो ! यमरूप मन, गुरुवालोग और स्त्रियोंकी विषय वासना, वाणी कल्पना तथा भ्रमादि महाफन्दाओंको विवेक-बलसे तोड़-ताड़कर मिटा दो ! हटा करके फेंक दो ! फिर निरुपाधि होकर बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर पारखज्ञानमें लौ लगाओ, फिर तो जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति भी तुम्हें अविलम्ब हो जायगी। अथवा पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर जिसने दृढ़ निश्चयसे पारख बोधमें प्रीति लगाये, सो वे यमके फन्दाओंको मिटाकर चल देते हैं। ऐसे ही तुम लोग भी पारखी श्रीसद्गुरुके पारखपदमें लौ लगाकर मन, स्त्री और गुरुवालोग, इन यमोंके फन्दाओंको मिटा करके बहाकर मुक्तिमार्गमें अग्रगामी होकर चले चलो, स्वरूपमें स्थिति कायम करो ! ॥ १६५४ ॥

१३. निज घर बास करहु जिय अपना ❀ यमपुर बहुत कलेश कल्पना ॥१६५५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे कल्याणेच्छुक नरजीवो ! अभी तक तुम लोभ-लालच, भ्रमसे विदेशमें आकर पराये घरमें ही भूलकर बैठ रहे हो ! यम=गुरुवाओंके, पुर=सिद्धान्तोंके शहरमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ता बनाकर उसकी प्राप्तिके लिये बहुत-बहुत साधनाएँ बतलाये हैं;

बहुत ही कष्ट-क्लेश दुःख भोगाये या भोगा रहे हैं। परन्तु, सो सब भ्रमिक कल्पनामें ही पड़े हैं; और स्त्रियोंकी विषय नगरीमें भी बहुत ही दुःख, पछतावा, झंझट सहते ही रहना पड़ता है। अभी तक तुम लोग वही उपाधिमें ही पड़े हुए हो! अब तो भी उस बहुत क्लेश कल्पना भरे हुए यमपुरको छोड़ो! और हे जीवो! तुम निजघरमें आकर निवास करो। अपना हंसपद सद्गुण, रहनी-रहस्य धारण संयुक्त निज पारख स्वरूप बोधके घेरामें अभी एकरस स्थिति कायम करो! एकरस पारखस्वरूपमें स्थिति होवे, सोई जीवन्मुक्तपद है। ऐसा नहीं हुआ, तो अध्यासमें बँधा हुआ जीव गर्भवास नर्क नगरीमें जाते हैं; वहाँ असह्य दुःख भोगकर जन्मृति त्रिविधि तापमें पड़ा करते हैं। इसलिये निजपदमें ही निवास या स्थिति करो! ॥ १६५५ ॥

१४. कल्पत कल्पत जन्म सिराई ❀ सदा रहै यम घात लगाई ॥ १६५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— अरे भाई! अध्यास दृढ़ करते-करते ऐसे अनेकों नरजन्म तुम्हारे प्रथम व्यतीत हो चुके हैं। अब पुनः नरदेहमें भी आये हो, तो कुछ लाभ नहीं उठा रहे हो; वैसे ही व्यर्थमें समय खो रहे हो। कल्पना करते-करते सारा जन्म ही बीता जा रहा है। विषय भोगते-भोगते पशुवत् नरजन्म व्यर्थ ही बिता रहे हैं। सदा-सर्वदा यमरूप स्त्री और गुरुवालोगोंसे ही सम्बन्ध, प्रीति लगा रहे हैं। उनके ही विकार, वासनाको हृदयमें जमा रहे हैं। उधर यम तो सदा अपने मतलबके लिये घात लगाये ही बैठे रहते हैं। दाव पाते ही पकड़-पकड़कर फँसा लेते हैं। नाना तरहसे खानी-वाणीके क्षेत्रमें नचा-नचाकर अन्तमें विनाश कर डालते हैं। अध्यास जमा करते-करते सारी आयु यों ही खतम हो जाती है। फिर यम=वासना सदा ही जीवोंका दाव-घात लगाये ही रहती है। बिना पारख यमसे बचाव नहीं होता है ॥ १६५६ ॥

१५. बाँचहिं तेहि जे परम सयाने ❀ सुर्ति समेटि प्रभुपद लपटाने ॥ १६५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वे ही इस महान काल-जालसे बचेंगे, जो कि परमपारखी, सत्यन्यायी सर्व श्रेष्ठ श्रीसद्गुरु प्रभुके शरणागत होकर सुर्ति=लक्ष्य वासना, अध्यास, वृत्तियोंको खानी-वाणीके विलास, ममता-मोहादिकी तरफसे समेटकर हटाकर या खींचकर फिर गुरुपद पारखबोधमें लपटाये रहते हैं। अर्थात् परमप्रभु पारखी श्रीसद्गुरुदेवकी शरण होकर तन, मन, धनादि सर्वस्व अर्पण कर श्रीसद्गुरुके चरण कमलोंकी सेवामें लपटाने=प्रेम लगाये रहते हैं। लक्ष्यको अन्य तरफसे खींचकर एकाग्र कर सत्सङ्ग-विचारमें ही लगाये रहते हैं। वे ही परम सयाने=चतुर, बुद्धिमान्, श्रेष्ठ हैं। ऐसे ही कोई जिज्ञासु श्रीसद्गुरुकी दयासे यमफन्दाओंसे स्वयं बचते हैं; और दूसरोंको भी भरसक बचाते हैं ॥ १६५७ ॥

१६. परखत शब्द सुर्ति करै जीवा ❀ होय अशङ्क शरण सम कीवा ॥ १६५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जब कि,-जिसवक्त पारखी श्रीसद्गुरु सारासारका सत्य निर्णय सारशब्द उपदेश द्वारा परखावें, समझावें, तब उस समयमें जिज्ञासु शिष्योंको सब तरफसे वृत्तिको समेट करके श्रीसद्गुरुके शब्द श्रवण करनेमें ही सुरति या लक्ष्यको एकाग्र करके लगाना चाहिये; तभी पूर्ण पारख बोध होता है। इधर-उधर लक्ष्य लगा करके उपदेश सुननेवालेको पूरा-पूरा बोध नहीं होता है। जो कोई बुद्धिमान नरजीव श्रीसद्गुरुके परखते-परखाते, उपदेश देते समयमें गुरुमुख शब्दमें ही लक्ष्य लगातार एकाग्र करके लगाये रहते हैं। फिर सुनी हुई बातोंका पूरा-पूरा मनन, निदिध्यासन कर लेते हैं, सो ऐसे मुमुक्षु पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आनेका पूरा लाभ उठा लेते हैं। उनके सब सन्देह, भ्रम, कल्पना, अध्यास, मिट जाते हैं, श्रीसद्गुरुकी दयासे वे भी निःशङ्क, निर्बन्ध श्रीसद्गुरुके समान हंसपद, पारख स्थितिमें बराबर कायम होकर जीवन्मुक्तिको प्राप्त हुए या हो जाते हैं। बन्दीछोर श्रीसद्गुरु दया करके अपने समान उन्हें बोधवान् कर देते हैं। जिससे सब शङ्का निवृत्त होकर वे अशङ्क हो जाते हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें

जाकर नरजीवोंको श्रीसद्गुरुके शब्द-उपदेश श्रवण करके परखतेमें अपना सुरति=वृत्ति एकाग्र करके स्थिर करे। तभी सन्देह रहित होकर गुरुपदमें शान्ति स्थिति प्राप्ति हो जायगी, सोई बनाना मुख्य कर्त्तव्य है ॥ १६५८ ॥

साखीः— परखत सुरत समेटते * भये अशङ्क शरणाय ॥
[२९८] शिर कूटत यम आपना * नेकौ नाहिं बसाय ॥ १६५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरुकी चरण-शरणमें आकर जिन्होंने अपनी सुरति या लक्ष-वृत्तिको समेटकर सत्यासत्य, जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्ति आदिके भेदको जानकर यथार्थ परख लिया, सो अशङ्क हुए या निर्बन्ध हो गये। उनकी सब शङ्काएँ मिट गयीं। ऐसे जो-जो गुरुपदकी शरणमें आये, सो-सो सन्देह रहित हो गये। सब तरफसे सुरतिको समेटकर पारख तख्तपर आशीन हुए। यमके घेरासे बाहर होकर निर्भय हो गये। ऐसा अपने जालसे निकल कर उन्हें स्वच्छन्द भ्रमण करते हुए देखकर यम=स्त्री और गुरुवालोग शोक करते हैं। हाय ! हाय ! यह तो हमारे घेरासे निकल गया; बड़ी गलती हुई। फिरसे किसी तरह इसको फँसाओ, ऐसा कहकर नाना प्रकारके छल, बल, कपट जाल फैलाते हैं। परन्तु, उनका एक भी वश, जरा-सा भी दाव-घात नहीं चलता है। पारखीको कोई फँसा नहीं सकते हैं। तब काल अपना-अपना शिर कूट-कूटकर माथा ठोंक-ठोंक, शिर पीट-पीटकर पश्चात्ताप करके रोते रह जाते हैं। लाचार होकर रह जाते हैं। तब अपना-अपना जाल और भी कड़ा, कठिन बना लेते हैं। अथवा जो पारखी सन्त गुरुपदमें स्थित होकर सब तरफसे वृत्तिको समेटकर मनकी चालको परखते रहते हैं। सो मनको वश करके मन-मानन्दीसे रहित, अशङ्क हो जाते हैं। तब यम=मन तलमला करके अपना, शिर कूटता है। निकलकर फँसानेके लिये छटपटाता है; परन्तु, उसकी नेकौ=एक भी, जरा-सी भी चालबाजी वहाँ नहीं चलती है ॥१६५९ ॥

साखीः— पारख अचल अखण्ड है * ताहि परे नहिं और ॥
[२९९] बिनु तेहि भटकि जग रहे * जहाँ नहीं थिति ठौर ॥ १६६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सबका परीक्षक गुरुपद पारख बोध सबसे न्यारा, स्वयं स्वरूप नित्य-सत्य, चैतन्य, अखण्ड, अटल अचल, अविनाशी, एकरस जीवका असली ज्ञानस्वरूप है। सोई पारखपद जीवन्मुक्ति स्थितिकी भूमिका है। उससे परे और कोई भी सत्य वस्तु नहीं है; पारखपदसे बढ़ करके और कोई दूसरा श्रेष्ठ पद ही नहीं है। पारखबोध मिलनेसे ही भव-बन्धनोंसे जीवका छुटकारा होता है। तथा जीवसे परे परमात्मा, ईश्वर, खुदा आदि और कोई नहीं है। परन्तु, यथार्थ स्वरूपज्ञान पारख स्थितिकी प्राप्ति न होनेसे पारख बोधके बिना नरजीव खानी-वाणी जगत्के जञ्जालोंमें ही भटक-भटककर चौरासी योनियोंके आवागमन चक्रमें ही पड़े रहते हैं। जगत्में स्त्री-भोग आदि पञ्च विषय तथा भक्ति, योग, ज्ञान, ध्यान, समाधि, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता तीर्थ-व्रतादि वाणी-खानी जालोंमें जहाँ तक भी जीव जाते हैं, वहीं बद्ध हो जाते हैं, जहाँ कि, जीवको कुछ स्वरूपकी स्थिति-ठहराव नहीं होती है, वहीं जा-जाकर भटक-भटककर आवागमन चक्रमें जड़ाध्यासी होकर पड़े रहते हैं; और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ १६६० ॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर- [६] ॥ ❀ ॥

१. भटकि बहे बहुधारमें * पारख बिना नहिं ठौर है ॥ १६६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अनादि कालसे अनन्तों जीव बहुत प्रकारसे भवधारामें बहते हुए संसारमें स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज, काज आदि नाना विषयोंमें भटकते-भटकते मर गये; और भेषमें वेद, शास्त्र, पुराण-कुरानादिकी वाणी कल्पनाकी धारामें बहते हुए भ्रमिक लोग तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ, जप, तप, पञ्चमार्गादिमें भटक-भटककर ठोंकरें खा-खाकर जड़ाध्यासी

हो-होकर मरे और ऐसे ही मर रहे हैं। बहुत वेगवती धारामें बह रहे हैं। गुरुपद पारख बोधको प्राप्त हुए बिना, षट् दर्शनोंमें तथा समस्त मनुष्योंमें कहीं भी किसीको ठौर-ठिकाना मुक्ति स्थिति नहीं मिली। मुक्त होनेके लिये एक पारखपदका ही ठौर है। पारख बोध पाये बिना कहीं भी जीवके ठहरावकी जगह ही नहीं है। पारखी श्रीसद्गुरुके बिना और जगह पारखका नामोनिशान नहीं है॥१६६१॥

२. बूड़ै न पावै थाह सो ❀ गम्भीर दहुँदिश भौ रहै ॥ १६६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसीवास्ते ज्ञानी-अज्ञानी, योगी-भोगी, रोगी, ध्यानी, दानी, मानी इत्यादि समस्त मनुष्य जड़ाध्यासी हो करके खानी-वाणीके बीचमें डूब गये हैं। अनेकों प्रकारसे दुःख पाये, तब कोई कर्त्ता परमात्माकी अनुमान-कल्पना किये; नाना साधना करके खोज किये। परन्तु, उस धोखेका थाह तो किसीने भी नहीं पाया, फिर चार वेद, षट् शास्त्रोंका अध्ययन किया, तो दशों दिशाओंमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म माना। आखिरमें वेदमें भी "नेति-नेति" श्रुतिः प्रमाण देखकर हार गये। तब तो सो परमात्माको अथाह, अगम, अपार, ठहरा करके बड़ी गहरी महान भँवरी ऐसे गम्भीर भ्रम-कल्पनामें डूब-डूबकर चौरासी योनियोंके चक्रमें गोता लगाने लगे। डूबनेवाला समुद्रका क्या थाह पावेगा, सो वहाँ तो गम्भीर दशोंदिशाओंमें तरङ्ग, भँवर छाया हुआ है; और दशोंदिशा=दशों इन्द्रियोंमें विषयोंका घेरा छलक रहा है। पारख बोधके आधार बिना कोई उससे पार हो नहीं सकते हैं ॥ १६६२ ॥

३. तामस वशी जिव उजबुजै ❀ चहै और गावत और है ॥ १६६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तामस=मनकी मानन्दीके वशीभूत होकर जीव सब उसी संसार सागरमें पड़े हुए उजबुजै=ऊपर-नीचे भीतर-बाहर, स्वर्ग-नरक, पशु-मनुष्य आदिमें गोता लगाते हुए जाते-आते ही रहते हैं। अथवा कोई तामसरूप निर्गुण निरञ्जन ब्रह्मको व्यापक मान करके वाणी-कल्पना, भ्रमके वश सदा उजबुजाते, भटकते हुए ब्रह्म-जगत्के घनचक्रमें पड़ते रहते हैं। आवागमनसे वे कभी छुटकारा नहीं पाते हैं; और ही अलौकिक परमानन्द सुख प्राप्ति करना, अपनेसे भिन्न और कोई ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, खुदा आदिसे मिल करके मुक्ति प्राप्त करना, इत्यादि चाहना तो और ही कुछ किया करते हैं। परन्तु, सो चार फल, चार मुक्ति, ऋद्धि-सिद्धि आदि यहाँ जीवके हाथमें नहीं है, सो तो वहाँ ईश्वरके हाथमें है। जब परमेश्वर प्रसन्न होंगे, तभी किसी भाग्यवान्को मिलेगी। इससे उन भगवान्को ही गुण गाकर रिझाओ! ऐसे औरोंको भी और-का-तौर गीत, गुण, महिमा गा करके सुनाते हैं; और ही कोई ईश्वरादिसे मिलकर परमपदको पाना चाहते हैं, वे तो और ही अनुमान-कल्पनाके गुण गाते हैं। ऐसे भ्रमिक हो सदा चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं॥ १६६३॥

४. आशा मगर भक्षण करै ❀ जेहि ग्रास हेतक गौर है ॥ १६६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसार सागर या मनरूपी समुद्रके भीतर आशा-तृष्णा, राग-द्वेष, छल-कपट आदि जलजन्तु भयङ्कर मगर या ग्राहवत् छिपे रहते हैं। परन्तु, वे दुष्ट विनाशक हैं, यह भेद जाने बिना, उसी आशारूपी ग्राहपर सवार हो करके भवपार होना चाहते हैं। ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके आशा-भरोसा लगा रहे हैं। वही भ्रम जीवोंके सद्गुण-लक्षणों-को भक्षण=खाकर विनाश करता है। जो कि, ग्रास करनेवाला जड़ाध्यासी बनाकर निगलकर पेट-गर्भमें ले जानेवाला विनाशका मूल कारण है, उसे ही कल्याणकारी मान करके धोखेमें चले गये; और उसी भ्रममें ही, गौर है=मिल रहे हैं; और जो नारी मुक्तिका ग्रास करनेवाली तथा विनाशक काल है, उसीमें ही प्रेम लगा करके घुल-मिल रहे हैं। अब कहिये, मुक्ति कैसे पावेंगे? इसी तरह खानी-वाणीकी आसक्तिसे ग्रसित होकर जन्म-मरणादिमें पड़े रहते हैं ॥ १६६४ ॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर— [७] ॥ ❀ ॥

१. गावै विषय विकारके * नित्य ध्यावै अगम अपारके ॥ १६६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई तो स्वयं ही कर्म-कुकर्म करके नाना विषयोंको भोगकर उसी महा विकारी विषयोंकी गुण-महिमा गा रहे हैं। कोई भक्त लोग ब्रह्मादि त्रिदेवोंकी और चौबीस अवतारोंकी लीला, चरित्र, विषय-कथा, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारकी ही प्रशंसा करके गुण गा रहे हैं। चीरहरण, गोपी विरह, क्रीड़ा आदि वर्णनके ही गीत, पद, श्लोक आदि बना-बना करके गा रहे हैं। झूठ-मूठकी महिमा बढ़ा रहे हैं; नित्यप्रति सगुण-निर्गुणकी ध्यान-धारणा, पूजा-पाठ, आराधना करते हैं। कोई वेदान्ती ब्रह्म-परमात्माको अगम, अपार, अथाह कहकर, फिर उसीका कथन-निरूपण, ध्यान भी करते और कराते हैं। उसी निराकारके विषय-विकार मायारूप जगत्को ठहराते हैं। जगत्-ब्रह्ममें अभेद, अद्वैत बतलाते हैं। कोई राम-कृष्ण आदिके उपासक उनके विषय-विकारके चरित्रका गुण गा करके फिर उन्हें निर्गुण, अगम, अपार, परब्रह्मरूपमें मानकर ध्यान करते हैं। इसप्रकारसे धोखेकी ही दलदलमें बस फँसते जा रहे हैं। सत्यासत्यका विचार तो कुछ करते ही नहीं हैं ॥ १६६५ ॥

२. नहिं थाह सो संसारके * चहै पार आश लबारके ॥ १६६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसार सागरमें डूबते हुए जीवोंको संशय, भ्रम, कल्पनाके विषय विकारका तो कुछ थाह, खबर, पता ही नहीं मिलता है कि, वही आवागमनका मूल कारण है; खानी-वाणीका अध्यास ही बन्धन है। मुक्ति कैसे होगी ? बन्धन कैसे हुआ ? इसकी खबर उन बेपारखियोंमें किसीको भी नहीं है। फिर संसारको भी अथाह भवसागर माना है; और ब्रह्मको भी अथाह, परमात्मा माना है। बीचमें वे नाना दुःख पाये, तो उन दुःखोंसे छूटकर भवसागरसे पार उतरकर परमानन्द या मुक्तिको प्राप्त करना चाहते हैं, इसी आशासे लबार = मिथ्यावादी गुरुवालोगोंके पासमें जा करके शरणागत हुए। उन्होंने मिथ्या प्रपञ्चोंमें लगाकर अबोध लोगोंको और भी भ्रमिक, जड़ाध्यासी बनाकर बीचमें डुबा दिया है। ऐसे बिना पारख जीव सब तरफ दुर्दशाग्रस्त हुए हैं ॥ १६६६ ॥

३. मति भ्रष्ट करत खुवार तेई * यार परम विचारके ॥ १६६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो-जो मत-पन्थ गुरुवालोगोंने निकाला है, सो सब भ्रमका विस्तार होनेसे मनुष्योंकी सद्बुद्धिको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला खुवार = बड़ा खराब है; जड़ाध्यासी गाफिल बनानेवाला है। परन्तु, उन्हीं पारखहीन प्रपञ्ची लोगोंको परमोत्तम, अच्छे विचारवान् मानकर यार = दोस्त, मित्र, परम हितकारी समझकर प्रेम लगा रहे हैं। अरे ! जिनको श्रेष्ठ समझते हैं, वे ही तो मनुष्यपदको खराब करनेवाले दुष्ट बने हैं। उनके गुण-लक्षणको विचार करके देखिये, वे कपटी लोग हितैषीकी नाईं बन-बनकर बुद्धिको बिगाड़कर सत्यानाश कर देते हैं; अबोध नरजीव उनके जालोंमें फँस जाते हैं, बिना विवेक ॥ १६६७ ॥

४. घर चोर ठौर उबारके * मत विदित जस सरकारके ॥ १६६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कोई चोरके घरमें ठहरकर अपना निस्तार चाहे, तो यह कैसे होगा ? और भारत सरकारके न्यायमें भी यह बात जाहिर है कि, चोरके घरमें रहनेवाला वह भी चोर या चोरका साथी माना जाता है। तथा सरकारका मत तो लोकमें विदित ही है कि, मुख्य मतलब तो न्याय-अन्यायका निर्णय करना है। परन्तु, वहाँ भी गुप्त चोर ठग रिश्वतखोर अफसर बन जाते हैं वा बड़े बने बैठे हैं, वे तो नाना तरहसे लोगोंको ठगकर सताते रहते हैं; और सता ही रहे हैं। यह बात तो सबोंको जाहिर ही है। इसीप्रकार संसारमें महाराजा, सरकार, मालिक बने हुए बड़े-बड़े मठाधिपति महन्त, मण्डलेश्वर कहलानेवाले गुरुवालोगोंकी

यश-कीर्ति, हुकूमत, मत, पन्थ, ग्रन्थोंके सिद्धान्तादि सब संसारमें विदित या जाहिर हो हैं। वे अन्यायी, अविचारी, हठी-शठी, पक्षपाती हो रहे हैं। सत्यासत्य सारासारका न्याय-निर्णय तो वे कुछ करते ही नहीं हैं। तन, मन, धनादि, सद्गुणके घरको चुरानेवाले उन्हीं चोर=गुरुवालोगों-के घर=स्थिति, सिद्धान्तमें जा करके ठौर-ठहराव, स्थिरता, रहनेका ठिकाना कर लिये, अबोध मनुष्य उन्हें ही दुःखोंसे उबार करके मुक्ति करनेवाले, कल्याणकर्त्ता सुखकारी समझकर उन्होंके ही घेरामें रहकर मुक्त हो भवपार होना चाहते हैं। अब कहिये, यह मिथ्या आशा कैसे पूर्ण होगी? गाफिलीसे बीच भवधारमें ही डूब मरेंगे। अध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें ही जायेंगे। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आकर सब भेद समझकर अपना हित करना चाहिये ॥ १६६८ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द नम्बर— १४ ॥ टकसार ग्रन्थके सत्य निर्णयका शब्द ॥ ❀ ॥

१. ऐसो वेद वैद्य जगमाँहीं * ताते रोगी जीवत नाहीं ॥ १६६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जैसे वैद्यकका पूर्ण हाल-भेद न जाननेवाले अज्ञानी वैद्यसे दवाई करानेवाले रोगी सुख नहीं पाते हैं और नहीं जीते हैं। तैसे ही ऐसे भ्रमिक, मूढ़, मतवादी, वेद-शास्त्रोंके पक्षपाती बेपारखीलोग जगत्में वैद्य, गुरु, उपदेशक, जानकार, विद्वान् कहला रहे हैं। जगत्में वे लोग वेदादिके प्रमाणसे नाना प्रकारके उपदेश देते हैं, खानी-वाणीके विषयादिको ही परिपुष्ट करते हैं। बड़े वञ्चक लबार हो रहे हैं। मूल रोग आवागमनके कारणका तो कुछ भेद ही नहीं जानते हैं; नाना उपाधि धोखेकी साधनाओंमें लगा देते हैं, घेर-घार करके दोहरा बन्धनमें जीवोंको बाँधते हैं। इसीवास्ते रोगीरूप अज्ञानी जीव जन्मृति रोग, त्रयतापादि दुःखोंसे कदापि बच नहीं पाते हैं। जड़ाध्यासी होनेसे कर्म बन्धनमें बँधे हैं, इसीसे सदा जीते रह नहीं सकते हैं, सुख भी नहीं पाते हैं, विषयासक्ति, भ्रम-कल्पनाका सेवन कर-करके मनुष्यपदसे नष्ट हो मर जाते हैं। कोई जीव निज स्वरूप पारखकी स्थिति करके जीवित रहे, ऐसा प्रयत्न तो करते ही नहीं हैं। बिना पारख कोई रोगी जीव नहीं जीते हैं वा मुक्त नहीं होते हैं ॥ १६६९ ॥

२. कथा कर्म काटनके ताईं * सुनता है सब कोई ॥ १६७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अपने किये हुए पाप तथा कर्म बन्धनोंको काटने, मेटने, छुड़ानेके वास्ते सब कोई संसारी और भेषधारी आदि लोग गुरुवालोगोंसे उपदेश सुनते हैं। भागवत, रामायण, अठारह पुराणादिकी कथा, इतिहास, जीवन चरित्र, लीलाओंको बड़े चावसे सुनते हैं। सो कथा सुननेसे ही अपना हित मानते हैं। परन्तु, निर्णयसे विचार करिये! जब अपने किये हुए कुकर्म चोरी, हिंसा, व्यभिचार, अत्याचार आदिसे किसीकी भलाई नहीं होती है। तब पाप कर्मको काटनेके लिये प्रायश्चित्त करके कृष्णादिके किये हुए वे ही पाप कर्म—चोरी, विषय भोग, लड़ाई, छल-कपट आदि भरी बातोंका वर्णन ही तो कथामें सुनते और सुनाते हैं! फिर कीचड़से कहीं कीचड़ धोया जाता है? पापसे कहीं पाप छुटता है? कुकर्म करके उसीका वर्णन सुनकर कहीं कर्म कटता है? सो ऐसी उलटी बात तो कदापि हो नहीं सकती है। परन्तु, मूढ़ लोग वैसा ही विपरीत विश्वास कर रहे हैं, बिना विचार ॥ १६७० ॥

३. औषध और रोग कछु औरहिं * कुपथ परै सब लोई ॥ १६७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे रोगकी परीक्षा किये बिना दी हुई औषधि कुपथ्य बनकर घातक होती है। तैसे ही जीवोंको रोग तो जन्म, मरण, गर्भवास, त्रिविधि तापादि असह्य महा कष्ट-क्लेश भोगना पड़ रहा है, सो कुछ और ही दीर्घकालसे लगा हुआ है। उससे प्राणी पीड़ित हैं। परन्तु, उसका निदान=हेतु न जान करके बेपारखी गुरुवालोग और ही कुछ मिथ्या उपदेशकी औषधि देते हैं। अवतारोंकी विषय-लीलाकी कथा सुनाते हैं; जप, तप, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, गङ्गास्नान, भक्ति, योग, ज्ञानादिमें लगाते हैं; और-ही-और प्रपञ्चकी बातें

समझाते रहते हैं। उसीको सब लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक ग्रहण करते हैं। सब अनाड़ी लोग खराब कुरास्तेमें पड़ गये; सबके मनमें कुपत्थ्य उलटी समझ पड़ गई। कल्पनासे कोई सबसे परे परम पुरुष परमेश्वर मान करके सब लोग उसीके भक्तरूप स्त्री बने, विरह-वियोगमें व्याकुल हो करके उलटे रास्तेमें चल पड़े, तो महाविकारी जड़ाध्यासी, बद्ध ही सब हुए। फायदा, सार किसीको नहीं हुआ ॥ १६७१ ॥

४. गोपी कृष्ण काँधकै लीन्हा ❀ सबको यही बतावै ॥ १६७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कृष्ण-उपासक बने हुए पण्डित लोगोंने भागवतकी कथा सुना-सुनाकर दशमस्कन्धमें यह वार्ता वर्णन किया है कि, कृष्णजीकी लीला मन-मोहिनी होती थी; उनकी रूप-माधुरी तथा वंशी ध्वनिमें आसक्त हो करके सब गोपिकाएँ व्रजनारियाँ उनके ही वशमें रहती थीं। गोपिकाओंके साथमें अनेक तरहकी विषयलीला कृष्णने की थी, माखन चुराया, ठगाई किया, नटक-मटककर स्त्रियोंको रिझाया। एक समय चीरहरण लीला किया, फिर रास मण्डलमें नाच करके भोग-विलास किया। कृष्णने गोपिका स्त्रीको या राधाको अपने कन्धेपर चढ़ाकर क्रीड़ास्थलीमें ले गया। उस स्त्रीसे चुम्बन, आलिङ्गन, मिलन आदि विविधि प्रकारसे खेल किया। सब गोप-स्त्रियोंकी विषयकामना पूर्ण करके सन्तुष्ट किया। यही विषय चरित्रकी बात सबोंको खुल्लमखुल्ला प्रगट करके वे कथा वाचक पण्डित गुरुवालोग बताते हैं या बता रहे हैं। कोई उसे रूपकका आवरण लगाकर दूसरे रूपमें बतलाते हैं। सबको यही कहते हैं कि, श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर थे; गोपिकायें वे श्रुतियाँ थीं। उनमें रमण करके गुण गाया करती थीं। उन्हें जगत् विकारका कोई दोष लग नहीं सकता है। अतएव कृष्णको परम पुरुष मानकर सब भक्तोंको स्त्री भाव धारणकर गोपिकाओंके समान प्रेम-निष्ठासे वैसे ही स्त्री-पुरुष मिलकर कृष्णलीला प्रदर्शन करते रहना चाहिये। जैसे भी हो कृष्णमें ही मनको लगाये रखना चाहिये, इत्यादि बतलाते हैं। अब कहिये, कहाँसे उनमें विवेक-वैराग्य सुबुद्धि उदय हो ? कैसे सत्यासत्यका बोध हो ? ॥ १६७२ ॥

५. जैसी सुनै उपजै पुनि तैसी ❀ लहरि विषयकी आवै ॥ १६७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! क्योंकि, जो कोई जैसी-जैसी वार्ता सुनते हैं, तैसी-तैसी भावनाएँ, वैसे ही विचार मनमें उत्पन्न होते हैं। लोभीके वचन सुननेसे लोभ जाग्रत् होता है। कामीके वचन सुननेसे मनमें कामका वेग उत्पन्न होता है। क्रोधीके वचन श्रवण करनेसे उग्र क्रोध होने लग जाता है। मोहीकी वार्ता श्रवण करनेसे मोहासक्ति हो जाती है। भयावनी वाणी सुननेसे भय होने लग जाता है, इत्यादि प्रकारसे जैसी-जैसी वाणी सुनी जाती है, वैसी-वैसी तरङ्ग वेग, झकझोर भाव-कुभाव, सङ्कल्प-विकल्पादि चञ्चलता हृदयमें उत्पन्न हो जाती है। इसकारणसे कृष्ण-चरित्र, रास-विलास, विषय क्रीड़ादिके प्रसङ्ग, कथा-कीर्तन सुनते रहनेसे उन भक्त-भक्तिनियोंके मनमें भी विषयकी लहरी उमड़-घुमड़कर आने लग जाती है। उसके वेगको रोक न पानेसे वे लोग भी विषय व्यभिचार गुप्त वा प्रगटरूपसे करने लग जाते हैं। फिर इष्टके अनुकरणकी परम्परासे दुष्कर्म चलाते जाते हैं। बड़ा अनर्थ हो जाता है। आज उसी कृष्णलीलाके नामसे बहुत-सी जगहमें बदमाशी, गुण्डाई, रण्डीबाजी हो रही है। अब कहाँ भव-बन्धनोंसे छूटनेके लिये सर्वथा विषयासक्ति त्याग करनेकी अपेक्षा सब प्रकारसे विषयासक्तिको बढ़ा रहे हैं, इसीसे चौरासी योनियोंमें नर्कके कीटादि होनेके सिवाय और उन्हें कुछ लाभ हो नहीं सकता है। पूर्ण त्याग और पारख बोधके बिना जन्म-मरण नहीं छूटता है ॥ १६७३ ॥

६. बारह बरषको पुरुष बतावै ❀ सोरह बरषकी नारी ॥ १६७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ कहा गया है कि, पुरुषरूप कृष्ण बारह वर्षका हुआ था, जबसे सोलह शृङ्गारवाली सोलह वर्षीया स्त्रियाँ, गोपिकाओंसे विषय भोग करने लगा

था, ऐसा बताते हैं। अथवा किसी पुरुषका विवाह छोटी उम्रमें हुआ था, सो बारह वर्षकी अवस्थामें पहुँचते ही स्त्री मर गयी। तब उसने मनमें बहुत ही दुःख मानकर शोक किया। विषयसे वैराग्य उदय होनेके कारण जगत्को असार जानकर गृहस्थी त्यागकर वैरागी साधु हो गया। फिर बारह वर्षतक वह पुरुष तीर्थाटन करता हुआ घूमता-फिरता रहा; और वैसे ही दूसरी तरफ किसी स्त्रीका पति सोलह वर्षकी अवस्थामें मर गया, तब उसके विरह-वियोगसे वह व्याकुल होकर बहुत ही अधीर हुई, पश्चात् उसने भी जगत्को दुःखमय समझकर घर-गृहस्थीको छोड़ दी; किसी भेषमें साधुनी, वैरागिनी होकर तीर्थयात्रा करनेको निकली। चारोंधामकी तीर्थ-परिक्रमा करते-करते सोलह वर्ष तक उसने भी बिता दिया। उन दोनों (द्वादश वर्ष तक तपस्या करनेवाला पुरुष एवं षोड़श वर्ष तक तपस्या करनेवाली स्त्री) ने निर्गुण निरञ्जन परमात्माको बहुत विधिसे ढूँढ़ा, तो भी कहीं पता नहीं पाया। फिर सगुण परमेश्वरकी भक्तिमें लगकर अवतार माने हुए देवताओंकी मूर्तियोंके दर्शन करते हुए एक समयमें भिन्न-भिन्न रास्तासे वे दोनों नर-नारी वृन्दावनमें कृष्णमूर्तिका दर्शन करनेको आये; और समय संयोगसे एक ही धर्मशालामें उन दोनोंका विश्राम हुआ। आगे वहाँ धर्मशालामें भागवतकी कथा हुआ करती थी; उस दिन राधा-कृष्णकी रासलीला, विषय कथाके चरित्र वर्णनका प्रसङ्ग निकल पड़ा। अनेक प्रकारसे चित्ताकर्षक ढङ्गसे स्त्री-पुरुषके सम्भोगमें आनन्दकी महिमा सुनायी गयी। नर-नारी मिलकर राधा-कृष्णके भावसे ऐसी लीला करनेवालोंका परम सौभाग्य बताया गया। कृष्ण भक्तिके प्रतापसे भोग भोगते हुए मुक्ति प्राप्त होनेकी बात समझायी गयी। ऐसे कृष्ण-लीलामें न लगनेवालोंका दुर्भाग्य, व्यर्थ जीवन इत्यादि कहा गया। यह सब विषयोत्पादक कथा सुनकर उपरोक्त बारह वर्षके तपस्वी पुरुष तथा सोलह वर्षकी तपस्विनी स्त्रीके मनमें भी पूर्व अध्याससे कामका वेग प्रचण्ड हो उठा; वे दोनों अपने-अपने मनमें बड़ा पश्चाताप करने लगे। उसीकी चोटसे बाहर रोने भी लगे। भोगेच्छा तीव्र होती गई। तब परस्पर वहाँ उपस्थित स्त्री और पुरुषको देखकर वे दोनों अवधूत-अवधूतानी भी समीप-समीप आकर बात-चीत करने लगे। वार्ता होते-होते उन्होंने अपने-अपने पूर्वका वृत्तान्त कह सुनाया। अपने उपयुक्त दोनोंको पाकर देह और समय निहार कर विषय विलास करनेकी वार्त्ता भी प्रगट किया। सब विवेक-विचार तपस्या, वहाँ नष्ट-भ्रष्ट हो गई। दोनोंमें समझौता हो गया। मौका पाकर फिर भग-भोगादिमें संलग्न होकर पतित हो गये। नरपशु ही होकर जन्म गमाये। इन सबके पतित होनेमें मुख्य कारण वहाँपर कृष्णकी विषय लीलाका श्रवण करना ही हुआ। उससे बारह और सोरह वर्षसे विस्मृत काम वासना भी एकदम भड़क उठी। सूखी घास-फूस पाते ही अग्नि जैसे उसे तुरन्त भस्म कर देती है। तैसे ही विषय वार्ता श्रवण करके कुभावनाएँ उठ जाती हैं। फिर वैसा संयोग भी मिला, तो नष्ट-भ्रष्ट होनेमें कोई देर नहीं लगती है। अतएव सदा कुसङ्ग, कुवार्तासे दूर हो बचे रहना चाहिये ॥ १६७४ ॥

७. कहहिं कबीर भली समुझाई ❀ भूला चोर कटारी ॥ १६७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता यहाँपर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको अच्छी तरहसे समझा करके कह रहे हैं कि— हे सन्तो! जैसे कोई चोर चोरीमें पकड़ा गया; अपनी कटारीको उसवक्त वह भूल रहा था। घरवाले सेठकी स्त्रीके इशारेकी बात सुन पाकर उसे याद आ गयी, फिर पकड़नेवालेको मारकर चोर भाग गया। तब उसने कहा कि— "भली समझाई, मैं बच गया!" इसके बारेमें एक दृष्टान्त आया है, सो भी सुन लीजिये !:—

दृष्टान्तः— एक समयमें कोई एक धनपति सेठके महलमें एक चतुर चोर चोरी करनेको घुस गया। पीछे कुछ खटका सुन करके गृहपति सेठ जाग पड़ा; और चोर आनेका सन्देह दृढ़ होनेसे उठकर सावधान हो गया। इतनेमें अन्धेरामें वह चोर भी उसी कोठामें प्रवेश किया। तब धनपति

सेठने झपटकर चोरको पकड़ लिया। उसने छूटनेको बहुतेरा जोर लगाया, परन्तु, सेठने चोरको दबा रक्खा; और फिर गृहपतिने अपनी स्त्रीसे कहा कि— लक्ष्मी! तुम बाहर जाकर मोहल्लामें हल्ला करो कि, चोर घरमें घुस आया है, लोग सहायता करके पकड़नेको जल्दी आवें, तब तक इसे मैं पकड़ रखता हूँ! पतिकी ऐसी आज्ञा सुनकर पत्नी आज्ञा पालनकर घरसे तो निकली थी, परन्तु, जाते-जाते उस स्त्रीके मनमें सङ्कल्प-विकल्प हुआ; और यह याद करके वह काँप गई कि, चोरोंके पासमें तो कटारी, बर्छी, छुरी, आदि हथियार रहते हैं। कहीं सेठजीका अनिष्ट न हो, चलकर पहले उन्हें चेता दूँ, फिर लोगोंको खबर करूँगी, ऐसी सोच-विचार करके उलटे पैर सेठानी वापिस आई, और कहने लगी कि— प्राणनाथ! देखना, कहीं गाफिल न होना! होशियारीसे रहना; चोरोंके पासमें तो छुरी-कटारी भी रहती है। अब मैं लोगोंको खबर करनेको जाती हूँ। इतनी बात कहकर वह तो चली गई। इधर चोरके पास कटारी तो पहलेसे मौजूद ही थी, किन्तु, डरके मारे उसे भूला हुआ था। सेठानीके वचन सुन करके सेठसे पहले तो वह चोर ही सावधान हो गया। फिर झटपट कमरसे कटारी या तेज छुरी निकालकर उसने धनपति सेठकी छातीमें जोरसे भोंक दिया, उसे मार डाला। फिर जो कुछ हाथ लगा, चुराकर जल्दीसे निकलकर भाग गया। लोग उसे अन्धेरामें नहीं पकड़ सके। वहाँ सेठकी मृत्यु होनेमें कारण सेठानीके असमयका वचन ही हुआ। पीछे सेठानी और दूसरे लोग आये, तो सेठको मरा पाये, तब हाय! हाय! बड़ा अनर्थ हुआ कह-कर रोते-शोक करते रह गये। इसीप्रकार सिद्धान्तमें जिस विषय वासनामें जीव भूलते हुए अनादि कालसे आवागमनमें पड़े हुए हैं। वही काम, क्रोध, लोभ, मोह, विषयासक्तिरूपी कटारी मनरूपी चोरने हृदयमें छिपा ही रक्खा है। जीवरूप साहुकारके देहरूप महलमें मनरूप चोर चोरी करनेको घुसा! तहाँ विवेकने सावधान करके मनको पकड़ा, तो गुरुवालोग भगवद् भक्त सेठानीके समान राम लीला, कृष्ण लीलादि समझाने आये— "भगवान्‌की भक्ति करो, सावधान् रहो, देखो! काम, क्रोधादि कटारी मनके पास रहता है, नहीं भूलना! हम कृष्णलीलाका हल्ला प्रचारकर आते है" ऐसा कहकर उन्होंने ज्यों-ही रास-विलासकी लीला वा विषय भोगके चरित्रका वर्णन किया, त्यों-ही अब तक वैराग्यादिके जोशमें भूली हुई, विषय-वासना याद हो आई; विशेष बढ़ती गई। पण्डितजीने अच्छा समझाया कहकर कृष्ण-लीलाके नामसे विषय-व्यभिचारमें उन्मत्त हुए। कुकर्त्तव्यकी कटारी जीवपर भोंकी गई; इसप्रकार नरजीव जड़ाध्यासी होकर मारे गये। कोई बारह वर्षके बाद विषयोंमें फँसे, तो कोई सोलह वर्ष, बीस वर्ष, चौबीस वर्ष, अठचालिस, पचास, साठ वर्षके बाद तथा वृद्ध, अतिवृद्ध होकर मृत्युपर्यन्त भी भूले हुए विषय भोगोंकी याद करके जीव आसक्त होते हैं। फिर अध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासको ही प्राप्त होते हैं। गुरुवालोगोंने बन्धनका मार्ग तो खूब समझाया; भूले हुए विषयोंकी याद दिलायी। भला! उससे जीवोंका क्या कल्याण हुआ? कुछ नहीं। ऐसे छल-कपटसे जीव मारे जा रहे हैं। सो पारखी श्रीसद्‌गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ समझकर उस जालसे निकलकर बचाव करना चाहिये ॥ १६७५ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द नम्बर— १५ ॥ टकसार ग्रन्थके सत्य निर्णयका शब्द ॥ ❀ ॥

१. सहज एक ऐसी हूल परी ॥ १६७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अचानक एक ऐसी हूल-दङ्गा, भीड़-भाड़ आ करके संसारमें पड़ी, बड़ा कोलाहल हुआ; किन्तु, वह कहाँसे क्यों हुआ? इसका मतलब किसीको कुछ भी समझ ही नहीं पड़ा। सो चराचर विश्वको देखकर इसके अनादि होनेका यथार्थ भेद जब गुरुवालोगोंको जान नहीं पड़ा, तब उन्होंने अनुमान-कल्पना करके सहज-ही-सहज आकाशवत् निराकार, निर्गुण, व्यापक एक परब्रह्म-परमात्मा कर्त्ता पुरुष विश्वपति कोई है, ऐसी मानन्दी दृढ़ किया। सोई वाणीकी गलबा हुल-हुला करके सब मनुष्योंके अन्तःकरणमें घुस पड़ी; दृढ़ हो गई है। बिना पारख आसानीसे ही यह एक भ्रम-धोखा सबके मनमें पड़ रहा है ॥ १६७६ ॥

२. भागे शुक सनकादिक नारद * मोहे अक्षय हरी ॥ १६७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उस कल्पित वाणीके दङ्गा-फसादमें ब्रह्मकी मानन्दी करके सनकादिक चारों भाई, घर-गृहस्थी छोड़कर भागे, जङ्गल, पहाड़, गुफामें जाकर तपस्या करने लगे, वे ज्ञानी कहलाये। तैसे शुकदेवजी भी ब्रह्मज्ञानको दृढ़ करके छोटेपनमें ही माता-पितादि गृह-परिवारोंको त्यागकर भागे; अवधूत होकर विचरण करने लगे। नारदजी भी मायासे भागकर भक्त हुए। परन्तु, मौका पड़नेपर वे मायामें भी लुब्ध होते रहे। वे सब योगी, ज्ञानी और भक्त लोग वाणी कल्पनासे अक्षय=क्षयसे रहित, अविनाशी कोई विश्वात्मा, परमात्मा, हरि, कर्त्ता पुरुष, महानारायण आदि मान-मान कर उसीमें मोहित, भ्रमित हुए। वही बात महिमा बढ़ाकरके लोगोंको उपदेश किये, सो सुन-सुन कर सब मनुष्य मोहित होते गये या माना हुआ कोई अक्षय हरि भी माया जालमें मोहित होकर बद्ध हुआ। ब्रह्मको सत्य एवं जगत्को मिथ्या बतलाकर उसी जगत्में सब भाग-दौड़ किये। परन्तु, पारख बोधके बिना वे कोई भी जड़ाध्याससे नहीं भाग सके; मन-मानन्दी त्याग नहीं सके ॥ १६७७ ॥

३. ब्रह्मा विष्णु आदिले भागे * सुध बुध सब बिसरी ॥ १६७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उसके भी पहले ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदिसे लेकर उनके माता-पिता, बन्धु-बान्धव, त्रिगुणी मनुष्य सब भी कोई विषय भोगोंमें भाग-भाग कर गिर पड़े, कोई कर्म, भक्ति, योग और ज्ञानादि पकड़कर आगे बढ़े, सब भ्रमिक हुए, सत्यासत्यका विचार, जड़-चैतन्यका निर्णय, निजस्वरूपकी स्थिति शोध-बोध तथा सुधि-बुधि सबको बिसारकर भुला दिये। भ्रमिक होकर धोखेमें भागते-भागते अद्वैत व्यापक ब्रह्मके खाँचमें गिर पड़े। वहीं उनका प्राण छूट गया; कहीं स्थिति नहीं हुई ॥ १६७८ ॥

४. ये तीनोंके देखा देखी * दुनियाँ भागी सगरी ॥ १६७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! वे ही ब्रह्मादि तीन ज्ञानी, योगी और भक्तोंकी साधना उपदेशोंको देखा-देखी, और सीखा-सिखी संसारमें दुनियाँके सम्पूर्ण मनुष्यवर्ग बिना विचारे भेड़िया-धसानकी नाईं बेतहाशा लम्बी दौड़ लगाकर भागते हुए कोई खानी जालमें और कोई वाणी जालोंमें ठसाठस, फँसा-फँस हो रहे हैं। उन्होंने शोर मचाया कि- अरे भाई! दौड़ो, परमात्माकी प्राप्ति हुए बिना नरकादि यम-यातनाएँ कभी नहीं छूटती हैं। देखो! जिधर जिस साधनामें हम लोग भागे जा रहे हैं, उधर उसी मार्गमें लग करके तुम लोग भी हमारे पीछे-पीछे चले आओ! ऐसी पुकार सुन-सुन कर सारी दुनियाँके लोग धोखेमें ही भागे जा रहे हैं, बिना विचार ॥ १६७९ ॥

५. नौ दश भागे औ तैंतीसों * चौरासी सगरी ॥ १६८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! उसी प्रकार अनादि कालके जगत्में जो-जो पैदा हुए, सो-सो हंसपदसे भागकर बद्ध हुए। तहाँ गोरखनाथादि नौ नाथ योग साधनामें भागकर भ्रमरगुफामें जा करके छिपे, गाफिल हुए। दश अवतार-मत्स्यादि जीव-जन्तु कर्मादिमें भागते-भागते चारखानी-में दुःख भोगी हुए; और माने हुए तैंतीस करोड़ देवता, ये सब भी विषय भोग और भ्रम-कल्पनामें ही भागे, तथा माने हुए सारे चौरासी सिद्ध भी भाग-भाग कर भ्रम तरङ्गमें ही बह गये। इसप्रकार चारखानीके सारे प्राणी बिना पारख स्वरूप स्थितिसे भाग-भागकर नाना प्रपञ्चोंमें पड़कर जड़ाध्यासी हो सब चौरासी योनियोंमें भटककर लटक पड़े हैं। भ्रम-भूलकी हूलमें दबकर सब पिस-कर मारे गये, और ऐसे ही मर रहे हैं ॥ १६८० ॥

६. भेष अलेख करेको लेखा * काहु न परख करी ॥ १६८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अलेख=अगम, अपार, अथाह, बेअन्त कोई एक ब्रह्म ईश्वर, या खुदादि कल्पनासे मानकर उसकी प्राप्तिके वास्ते विचित्र-विचित्र भेष बनाये, तहाँ संन्यासी,

उदासी, वनवासी, नागे, निर्वाणी, गोसाँई, नाथ, निरञ्जनी, योगी, जङ्गम, जैन, बौद्ध, फकीर, पादरी, पारसी, ध्यानी, ज्ञानी, परमहंस, भक्त, कर्मी, इत्यादि नाना प्रकारके भेषोंमें पाखण्डोंका पसारा हुआ है। उनमेंकी शाखाओं तथा पन्थ-पन्थाईके विभिन्न मतवादोंका लेखा या गिनती तो भी कौन करे ? क्योंकि, अलेख = अनुमान-कल्पना माननेवालोंका लेखा लगाया जा नहीं सकता है। जितना घट है, उतना ही आकार-प्रकार, गुण-स्वभावादिमें भी फरक है; सोई जीवोंका भेष या बाना है, सो असंख्य वा नाना है। सो उनमें किसीने या कोई मनुष्यने पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गके बिना जड़-चैतन्यका निर्णय, सत्यासत्यका पारख नहीं किया; निजस्वरूपका यथार्थ पारख बोध नहीं पाया, ब्रह्म-ईश्वरादि तो जीवकी ही कल्पना है, अतः सो मिथ्या है; जीव पत्य है। यह पारख किसीने भी नहीं किया। वे सब कोई धोखेमें ही पड़े रहे; और अभी धोखेमें ही पड़े हैं, बिना पारख ॥ १६८१ ॥

७. धीरज राखि रहे नहिं कोई ❀ छाड़ि चले नगरी ॥ १६८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़-वैराग्य, यह अष्टाङ्ग मुक्तिदायी महान सद्गुणोंको हृदयमें रख करके हंस रहनी-रहस्यको धारण-कर निजस्वरूप पारखमें स्थिर, निश्चल, शान्त होकर खानी-वाणीके अध्याससे रहित होकर जीवन्मुक्त स्थितिमें तो वे गुरुवालोग कोई भी नहीं रहे, और नहीं रहते हैं। इसीसे उनका निस्तार नहीं हुआ या नहीं होता है। संसारमें शरीर नगरीमें आये, कर्म-कुकर्म कमाये, फिर एकदिन इस काया नगरी-को छोड़कर मृत्यु होनेपर जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासमें कूच करके चले गये; और अभी भी कितनेक जा ही रहे हैं। नरतन नगरीको छोड़कर सशु आदि जङ्गलोंमें भटक-भटक करके मरते-जन्मते रहते हैं, बिना पारख ॥ १६८२ ॥

८. कहहिं कबीर हटो नहिं माने ❀ धोखेकी बिडरी ॥ १६८३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके उपदेशका सार ग्रन्थकर्त्ता दर्शाते हैं कि— हे सन्तो ! देखिये ! पारखी श्रीसद्गुरु तो यथार्थ ही कहते हैं, बन्धन-मुक्तिका मार्ग कसर-खोट निर्णय करके दर्शाते हैं। कुमार्गमें जानेसे हटाते वा मना करते हैं। हरतरहसे समझा करके खानी-वाणीके जाल-जञ्जालोंमें जाकर फँसनेसे रोकते हैं; जीवोंको कल्याणकारी उपदेश देते हैं। जिसको पालन करके सुगमतासे जीव भवपार हो सकते हैं। परन्तु, वे हठी, दुराग्रही, मतवादी, पक्षपाती. अविचारी, मूढ़ लोग बन्दीछोर श्रीसद्गुरुके कहे हुए यथार्थ निर्णय, सत्यन्याय, पारखबोधको तो मानते ही नहीं हैं। श्रीसद्गुरुने बीजक, शब्द-३२ में कहा भी है कि:—

" तजि अमृत विष कै लिन सारा ॥ ४ ॥ आगे बड़े ऐसेहि बूड़े। तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥ ५ ॥"

हकनाहक मिथ्या-धोखामें पड़कर बिगड़ गये। कहीं विषय भोगादि विकारको ही सुख मान करके वाममार्गी आदि लोग वहीं बिगड़ करके नष्ट-भ्रष्ट, खराब हो रहे हैं। कहीं योगी, ज्ञानी और भक्त लोग भ्रम, भास, कल्पनामें लगकर धोखेसे कोई कर्त्ता परमेश्वर मान करके भ्रमिक हो हंसपद-से बिगड़ रहे हैं। कहीं परमहंस स्वयं सर्वाधिष्ठान ब्रह्म बने। तहाँ ब्रह्मसे "एकोहं बहुस्याम्"की इच्छासे जगत्का उत्पत्ति-प्रलय हुआ करता है, ऐसा माना है,। ऐसे-ऐसे महा धोखा भ्रम-गाफिलीमें पड़-कर जीव मनुष्यपद-मुक्तिपदसे बिगड़ गये, जड़ाध्यासी हुए, तो नाना देह धरते-छोड़ते चौरासी योनियोंके चक्र आवागमनमें ही पड़ रहे हैं। बिना पारख सहज ही एक ऐसे भ्रमकी हूल वा भूलमें पड़कर सब लोग विनष्ट हुए वा हो रहे हैं ॥ १६८३ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १२६ ॥ ❀ ॥

साखीः— एक शब्द गुरुदेवका ❀ ताका अनन्त विचार ॥

[३००] थाके मुनिजन पण्डिता ❀ वेद न पावै पार ॥ १६८४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब गुरुवालोगोंके अभिप्राय बतलाते हैं:— हे सन्तो ! [मायामुखः-]

गुरुवालोग कहते हैं—एक शब्द=ब्रह्म है, उसे प्रणव या ॐकार भी कहते हैं। सो त्रिदेवमें प्रथम देव ब्रह्मा—गुरुका मूल मन्त्र है। वेदका प्राण है, सब ब्राह्मणोंका घ्राण है, जीवनका त्राण है, महाकालका बाण है। उस ॐकार निरञ्जन ब्रह्मका अन्त कोई विचार करके भी नहीं पा सकते हैं। अनन्त प्रकार-से विचार उस प्रणव ब्रह्मका होता है। अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दु-ये पाँच भागसे ब्रह्माण्डमें पाँच तत्त्व, पिण्डमें पाँच स्थान, सम्पूर्ण चराचरमें व्यापक हो करके परिपूर्ण भरा है। ब्रह्मवेत्ता गुरुदेवने 'ॐ' ऐसे एक शब्द कह दिये, सुनने और कहनेमें तो वह एक शब्द है; परन्तु, विचार करने लगो, तो उसके अनन्त विचार प्रगट होते जाते हैं। तथापि उसका अन्त पाया नहीं जा सकता है, सो बेअन्त, निरान्त, एकान्त, शान्त और महान्त है; और बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, महामुनि, महर्षि, राजर्षि, देवर्षि, भक्तजन, योगीजन तथा ब्रह्मादि पण्डित, व्यास, वशिष्ठ, वाल्मिकि आदि विद्वान् इत्यादि समस्त सिद्ध-साधकगण भी प्रणव ब्रह्मका विचार करते-करते थक गये, उसका अन्त किसीने नहीं पाया; और चार वेदने भी ब्रह्मका पार नहीं पाया, तब अपार, अथाह "नेति-नेति" श्रुतिः कहकर मौन हो गया। शास्त्र-पुरणादि कहीं भी उसका पूरा पता नहीं लगा; सबोंने अगम्य, अथाह माना है। सब विश्व या विराट् ही प्रणव ब्रह्मका स्वरूप है, फिर उसका भेद तो भी कौन पावे? मन, बुद्धि, वाणीसे परे वह परब्रह्म है। इसवास्ते और कुछ कहा तो नहीं जा सकता है, "बोलो, हरिः ॐ तत् सत्! हरिः ॐ तत् सत्!! हरिः ॐ तत् सत्!!!" इत्यादि॥

इसप्रकार बिना पारख गुरुवालोग सहज ही मिथ्या धोखेमें पड़े हैं। ऊपर कहे हुए शब्दका यथार्थ भाव दिखलानेके लिये बीजक प्रमाणसे मायामुख भावकी यह ऊपर लिखित साखी ग्रन्थकर्त्ता-ने यहाँ दर्शाया है। देखिये! सहज ही एक ऐसी कल्पित वाणीकी गलवा मची कि, सब कोई आकाशवत् ब्रह्म-परमात्मा मानकर उसमें अपने भी भूले और दूसरोंको भी भुलाये हैं। बिना विवेक नष्ट-भ्रष्ट तथा गाफिल हुए हैं॥ १६८४॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १३३ ॥ ❀ ॥

साखीः— विषके बिरवे घर किया * रहा सर्प लपटाय॥

[३०१] ताते जियरहिं डर भया * जागत रैन बिहाय॥ १६८५॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः] हे सन्तो! विष=वाणी कल्पनाके बिरवा=ॐकार ब्रह्म प्रतिपादक गुरुवालोगोंके उपदेश वेद-शास्त्रादिकी वाणी भ्रम-धोखेने जीवोंके अन्तःकरणमें घर किया है वा स्थिति किया है। इसलिये सर्प=पाँच प्रकारका अभिमान हृदयमें लपटा रहा है; दृढ़ हो रहा है। इसवास्ते सब जीवोंको नाना प्रकारसे कामना उठनेसे डर हुआ। ईश्वर, ब्रह्म, यम और नरकका डर तथा आवागमनादिके दुःखोंसे बड़ा भय हुआ। सो दुःख मिटानेके लिये भक्ति, योग, ज्ञान-ध्यानादिमें जागते, साधना करते हुए रैन=अविद्या रूप रात्रि आयु वा समय बिताने लगे। बिना पारख वैसी साधनामें जागनेपर भी अध्यासरूप सर्पने आकर काट खाया, तो सब अचेत होकर मर गये, इत्यादि। [इसका और विस्तारसे अर्थ प्रथम साखी नम्बर- २६०, सिलसिला नम्बर- १४०६ में (पृष्ठ नं० १३८३में) लिखा जा चुका है, वहाँसे देख लीजिये! यहाँपर संक्षेपार्थ मात्र जनाया है]॥ १६८५॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १३४ ॥ ❀ ॥

साखीः— जो घर हैगा सर्पका * सो घर साधन होय॥

[३०२] सकल सम्पदा ले गये * विष भरि लागा सोय॥ १६८६॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा आदिकी मानन्दी जो है, सो तो मिथ्या संशयका ही घर वा घेरा है। वह तो भ्रम-कल्पनारूप सर्पका घर है। पञ्चमुखी अभिमानरूप साँपका डेरा है। सो उसी ठिकाने, उसी घरमें भक्ति, योग, ज्ञान,

और कर्मादिकी अनेक साधनाएँ हो रही हैं। तो विचार करिये, सर्पके घरमें रहकर सुखपूर्वक क्या हितकारी साधना हो सकती है? कदापि नहीं होगी। सर्प तो मौका पाकर अवश्य कभी-न-कभी काट ही खायेगा, घात करेगा; वहाँ साधना कभी पूर्ण नहीं होगा। तैसे ही खानी-वाणीके बीचमें जड़ाध्यासी होकर कभी कोई मुक्त हो ही नहीं सकते हैं; हे साधु! ब्रह्म, ईश्वरादि मानन्दीमें रहकर जीवकी स्थिति कभी हो नहीं सकती है। वह कल्पना ही तो आवागमनका घर-द्वार है। पाँचों अभिमान बड़े जहरीले अध्यासको बढ़ाने-चढ़ानेवाले हैं। बेपारखी लोग भ्रमिक हो करके साधना करनेको गये। वहाँ काम, क्रोध, अहङ्कारादि सर्पने आ करके काट दिया, विष चढ़ा दिया, कर्माध्यास दृढ़ हो गया। इसवास्ते मुक्तिदायी सकल सद्गुण सम्पत्ति— सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति, सन्तोष, क्षमा, इत्यादि सद्धर्मके लक्षणका विनाश हो गया; और डाकू आ करके लूटकर ले गये, विष=ब्रह्मानन्द और विषयानन्दादिका तीक्ष्ण अध्यास हृदयमें भर गया। उसी विषने जीवनके सर्वस्वको खा लिया। इसीसे चराचरमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म मानकर सोई धोखेमें जीव लगे, महा अज्ञान गाफिलीमें लगे। कोई संसार विषय प्रपञ्चोंमें लगे, तो महा विनाशको प्राप्त हुए, बिना पारख! अथवा विषके बिरवा=स्त्री, सो उसीमें फँसकर पुरुषोंने स्त्रीमें घर किया या घरमें नारीको ला करके स्थिति किया। तब वहाँ तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ये पाँच सर्प सदा लपटा रहे हैं। इसीसे विषय भोगासक्तिके कारणसे आवागमनमें जानेका डर हुआ अज्ञानमें ही जीव-ने सारी आयु बिता दी; और जो काम सर्पका घर आसक्ति बन्धनरूप है। सो घर-गृहस्थी स्त्री-भोगमें रहकर कभी किसीकी मुक्ति नहीं हो सकती है। स्त्री विषय-वासना ही बन्धनका मूल कारण है; और ज्ञान-क्रियादि मुक्तिके समाज सकल सद्गुण सम्पत्ति स्त्रीने लूटकर ले गई, कीचड़में डाल दी, विषयासक्तिकी जहर पुरुषोंके हृदयमें भर गई। जिस विषय-वासनासे अनेकों जन्म बीत चुके, अब फिर भी नादान लोग उसीमें लग रहे हैं; चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं, बिना विचार ॥१६८६॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८८ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. सो त्रिदोष ब्रह्माण्ड विराजै * सोई कला घट भीतर साजै ॥ १६८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सोई त्रिदोष=वात, शम्भु, योग। पित्त, विष्णु, भक्ति; और कफ, ब्रह्मा, ज्ञान। बाहर ब्रह्माण्डमें और त्रिकाण्ड वेदादि वाणीमें विराजमान हो रहा है। सोई तत्त्वमसि, सच्चिदानन्द ब्रह्म अद्वैत सिद्धान्त वेद-वेदान्तमें ठहरा रक्खा है। वही वाणी-कल्पना मनुष्योंके हृदय भीतरमें मानन्दी समा रही है; और रोगका त्रिदोष तो सबोंके घटमें सजाया ही हुआ है। तैसे ही रज, सत्त्व और तम, ये तीन गुणोंकी कलाएँ; काम, क्रोध और मोह-की कलाएँ; भीतर अन्तःकरणमें पिण्ड भागमें भी सो सब भाग मौजूद हैं। सब साज सजाया हुआ है। जैसे कारणका गुण-दोष कार्यमें आ जाता है, तैसे ब्रह्माण्डकी विकार भी पिण्डमें लगा हुआ है॥१६८७॥

२. त्रिविधि अपनी फाँस चलावै * बहुविधि रोग शोग उपजावै ॥ १६८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे बाहर वर्षा, शिशिर और धूप होकर उसकी अपनी-अपनी शक्तिका फन्दा चलता है। तहाँ प्राणियोंको नाना तरहके रोग-शोगादि उत्पन्न होते हैं। तैसे ही यहाँपर शरीरमें वात, पित्त और कफ, अपने-अपने जालका वेग चलाते हैं, जिससे बहुत प्रकारके रोग होनेसे शोक उत्पन्न होता है। अथवा गुरुवालोग भक्ति, योग और ज्ञान, ये तीन प्रकारकी वाणीके जालका उपदेश चला करके चेलाओंमें प्रचार करते हैं; लोगोंको भुलाते हैं; उसीमें सबको फँसा देते हैं। बहुत तरहसे विरह, वैराग्य, तपस्या आदिकी व्यथा बढ़ाकर दुःखी कर देते हैं। देवी, देवता, स्वर्गादि लोक, ईश्वर, ब्रह्म, इत्यादि प्राप्तिकी आशामें बाँधकर नाना तरहके रोग, शोग, चिन्ता उत्पन्न कराते हैं। अथवा स्त्री भी हाव-भाव-कटाक्षका प्रयोग करके तीनों तरहसे अपने विषयका जाल फैलाती है या पुरुषोंपर वही जाल डालती है। जिसके कारण तनमें बहुत प्रकारके

रोग, मनमें चिन्ता-फिक्र अफशोस, शोक उत्पन्न कराती है। यही सब अध्यासके कारणसे चार-खानीमें अनेकों शरीर उत्पन्न होते हैं, तहाँ नाना दुःख भोग होता रहता है ॥ १६८८ ॥

३. अनवनि रागको वर्णै पारा * सब मिलि गाइ गाइ पुनि हारा ॥ १६८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बाहर तीन समयके बीचमें अनेकों प्रकारकी विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। तैसे ही शरीरमें भी त्रिदोषके कारणसे अनेकों प्रकारके रोग हो जाते हैं। उन सबका वर्णन करके कौन पार पावे ? तैसे ही स्त्री, पुत्र, धनादिके कारणसे भी अनेकों प्रकारके पीड़ा-दुःख, कष्ट-क्लेश होते हैं। उसीप्रकार गुरुवालोगोंके मार्ग त्रिविधि सिद्धान्तमें भी ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्तिके वास्ते की जानेवाली साधनाका रोग, विरह, तपस्या, जप, तप, व्रत, उपवासादिका कष्ट सहन अनेकों प्रकारसे करते हैं। वार-पार तक कौन उसका वर्णन करे ? ब्रह्मको मन, बुद्धि, वाणीसे परे अपार, अवाच्य वर्णन किया है। जिससे जीवका कुछ कल्याण नहीं बनता है, उसीमें सब लगे हैं। सब मतवादियोंने अनुमान-कल्पनामें मिल-मिलकर परमेश्वरसे मिलनेके वास्ते बहुत प्रयत्न किया, उसी इष्ट-देवता परमात्माके गुणानुवाद, कीर्तन, स्तुति, प्रार्थना, महिमा, गा-गाकर सबोंने नाना तरहसे विनय किया कि— हे भगवान् ! हमें दर्शन दीजिये ! दुःखोंसे पार कीजिये ! अपने लोकमें ले चलिये ! आपकी महिमा अपरम्पार है ! अब तो भी हमारा उद्धार करिये, इत्यादि पुकार वर्णन किये। निराकारने तो कुछ नहीं सुना, इससे अथाह, अपार, ठहराकर हार मान करके हाथ मलते रह गये। नाहक मनुष्य जन्मको भी हार गये। विवेक-विचारको हारकर या खोकर दरिद्र हो चौरासी योनियोंमें चले गये या चले जा रहे हैं ॥ १६८९ ॥

४. नाशे अन्त न रखै शरीरा * घुर्महि रहटा साँझ सकेरा ॥ १६९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिस विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि सुख पानेके लिये बहुत-बहुत प्रयत्न किये, सो तो देहान्तमें सब विनाश हो गया, शरीरको तो कोई एकरस रख नहीं सके हैं। खानी-वाणीमें सुखके लिये किया हुआ सब प्रयत्न व्यर्थ हुआ। दुःख भोगका नाश तो किसीका भी नहीं हुआ। अन्तमें देहके साथ सब व्यवहार भी नाश हो गया। ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदि किसीने भी यह शरीरको रक्षा करके रख नहीं सका। जीव जड़ाध्यासी हुए, तो दिन-रात रहट घड़ीकी नाईं आवागमन चौरासी योनियोंमें घूमने-भटकने लगे; जन्मृतिके चक्रमें गिर पड़े। ज्ञानी-अज्ञानीको सोई भ्रमचक्र सपाटेसे जहाँ-तहाँ घुमा रहा है। उसीमें दिन-रातका जीवन निकलता जा रहा है ॥ १६९० ॥

५. जन्म मरण सोई कहलावै * रहटा माँहिं जीव घुर्मावै ॥ १६९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जन्म-मरणादिमें जानेका कारण सोई खानी-वाणी-का जड़ाध्यास ही कहलाता है। अथवा साँझ-अज्ञान, जन्म है। सकेरा-ज्ञान, मरण कहलाता है। अथवा उत्पत्ति-प्रलयरूप जन्म-मरणका हेतु सोई अधिष्ठान ब्रह्म कहलाता है। अथवा रात-दिन, शुभ-अशुभ, बन्धन-मुक्ति, नरक-स्वर्ग, पैदा-नाश, इत्यादि दो-दो भाग बनकर बिगड़ना सोई जन्म-मरणका पर्यायवाची शब्द कहा जाता है। मुख्यतः पञ्च विषयोंकी आसक्ति तथा वाणी-कल्पना पञ्च कोशोंकी मानन्दीसे बद्ध होकर जीव आवागमनमें पड़े हैं। उसी रहटारूप विषय भोग और नाना साधनोंमें जीवोंको यम लोग घुमा रहे हैं। चौरासी योनियोंके चक्र रहट-यन्त्ररूप वासनामें पड़कर जीव सब घूम रहे हैं; नाना देह धरकर दुःख भोग रहे हैं ॥ १६९१ ॥

६. चारि खानिके आशा चारी * उलटि पलटि सोइ बासा डारी ॥ १६९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चार फल, चार मुक्ति आदि प्राप्तिकी आशा, चार मार्गोंकी साधनासे ऋद्धि-सिद्धि प्राप्तिकी आशा, सदा जीते रहनेकी, आयु बढ़ानेकी अभिलाषा, मन चाहे विषय भोगनेकी आशा, इत्यादि चारों तरफकी आशा वा आसक्ति तथा अध्यास यही जीवों-

को मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज, इन चारखानियोंमें ले जाकर दुःख भोगानेका कारण होता है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया, ये चार अवस्थाओंमेंसे चार मार्ग द्वारा किये हुए कर्माध्याससे फल प्राप्तिकी आशासे जीव चारखानीमें चले गये और जा रहे हैं। उलटा-पलटा करके घुमा-फिराकर वही वासना जीवोंको चौरासी योनियोंमें ले जा करके डालती रहती है ॥ १६९२ ॥

७. जोइ आशा सोई बासा लाई ❀ उपजन विनशन बीज बनाई ॥ १६९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जो मनुष्य जैसा-जैसा कर्म करके आशा-तृष्णा, वासनाओंको बढ़ा करके जीते तक मनमें उसे टिकाये रखते हैं, सो उसी-उसी प्रकारसे अध्यासवश खानीमें जाकर निवास करते हैं। सो मनुष्य जीवनमें ही नाना योनियोंमें जाकर फल भोगनेकी, जन्म-मरण होनेकी बीज वासना बनायी जाती है या बनती है। जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होकर समयान्तरमें विनाश हो जाता है। तैसे ही पूर्व वासनारूप बीजके वेगसे चारखानीमें जा करके देह उत्पन्न करके भोग-भोगकर मृत्युको प्राप्त होते हैं। ऐसे जन्म-मरणमें ही पड़नेका बीज बनाते रहते हैं ॥ १६९३ ॥

८. आशा तुर्या पिण्डज परधाना ❀ बासा धरती कीन्ह ठेकाना ॥ १६९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अब यहाँ किस आशासे किस खानीकी प्राप्ति होती है, उसके बारेमें खुलासा करके कहते हैं। ज्ञानमार्गकी साधनासे चतुर्थी तुरिया अवस्थाको प्राप्त करके सहविकल्प समाधि साक्षी स्थितिमें रहनेवाले ज्ञानीलोग सायुज्य मुक्तिकी आशा लगाये रहते हैं। परन्तु, माना हुआ ब्रह्म निर्गुण धोखा होनेसे उसमें तो वे मिल नहीं सकते हैं। शरीर छूटनेपर विशेष ज्ञान संस्कारके प्रतापसे पुनः वे ज्ञानी लोग पिण्डज खानीमें प्रधान या मुख्य मनुष्य देह धारण करके उत्पन्न होते हैं। ऐसे ज्ञान खानी कर्मभूमिका नरतनको प्राप्त करते हैं; और पृथ्वीमें उत्तम ठिकानेमें मनुष्य शरीर धारण करके निवास करते हैं; और धरती=स्थूल देहकी जाग्रत् अवस्था, कर्ममार्गसे चलनेवाले लोग विशेष करके स्थूल विषय भोगोंमें ही दृढ़ वासना लगाये रहते हैं। उस विषय वासनासे वे जीव पृथ्वीमें पिण्डज खानीके अन्तर्गत पशु आदि खानीके ठिकाने जन्म लेकर फल भोगा करते हैं ॥ १६९४ ॥

९. अचल खानि आशा थिर पौना ❀ धरती बास जड़ताई तौना ॥ १६९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! योगमार्गकी साधनासे तृतीय सुषुप्ति अवस्थाकी सरीखी शून्य समाधि लगाकर पञ्च प्राणरूप पवनको ब्रह्माण्डमें चढ़ा करके लय, स्थिर, शून्य वृत्ति कर लेते हैं। वे योगी लोग सारूप्य मुक्ति प्राप्ति करनेकी आशा, ज्योति स्वरूप ईश्वरमें मिलनेकी इच्छा, वासना लगाये रहते हैं। परन्तु, सो मानन्दी मनकी कल्पना होनेसे पूर्ण नहीं होती है, कोई ज्योति आदिमें मिल नहीं सकते हैं। देह छूटनेपर उसी आशा-अध्याससे वे अचल खानी=वृक्ष, वनस्पति आदि न चलनेवाले जड़ अंकुरजोंमें लकड़ियोंमें फल-फूलोंमें कृमि-कीटादि देहको धारण करते हैं। पृथ्वीमें वे जहाँ कहीं रहेंगे, जड़वृत्ति किये ही पड़े रहेंगे। अथवा परमहंस लोग पवनरूप वृत्तिको स्थिर करके व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी दृढ़कर तदासक्त, मूढ़ होकर पड़े रहते हैं। ब्रह्ममें मिलनेकी आशासे विधि-निषेध त्यागकर मनमाने चलते हैं; कहीं जड़वत् पड़े रहते हैं। ऐसे लोग जड़ स्वभाववाली खानियोंमें जाते हैं। उसी वासनासे पृथ्वीमें अजगर, केंचुवादि योनियोंमें जाकर उसीमें जन्म ले करके जड़त्व स्वभावके होते हैं॥ १६९५ ॥

१०. अण्डज आशा धरती लाई ❀ बासा शून्य अधिकार उड़ाई ॥ १६९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई पृथ्वीमें देह रहेतक कर्ममार्गकी साधनासे प्रथम जाग्रत् अवस्थामें ही नाना कर्म-कुकर्म करनेमें मन लगाते हैं। सगुण-निर्गुण उपासना भी कुछ किया करते हैं। शून्य आकाशमें सातस्वर्ग अनुमान करके सालोक्य मुक्ति प्राप्तिकी आशा लगाये रहते हैं। शून्यरूप जड़कर्मोंमें लगकर मूढ़ होते हैं। जङ्गल, पहाड़, खोह, तीर्थ स्थानोंमें जहाँ-तहाँ भटका

लगाया करते हैं। परन्तु, देवतादि जड़मूर्ति और स्वर्गादि मिथ्या कल्पना होनेसे उससे तो कुछ फल नहीं मिलता है। किन्तु, उसी अध्याससे जीव अण्डज खानीको प्राप्त होते हैं। तहाँ पक्षी योनिवालोंको विशेष करके शून्य-आकाशमें उड़ते रहनेकी अधिकार-शक्ति मिलती है। ऊपर स्वर्गादिकी आशा पूर्वकी लगी होनेसे अधरमें ही वे जीव पक्षी होकर उड़ा करते हैं ॥ १६९६ ॥

११. आशा उखमज श्वास बनाई ❀ बासा अनल देइ भरमाई ॥ १६९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो! जो कोई उपासना या भक्तिमार्गकी साधनासे द्वितीय स्वप्न अवस्थावत् मानसिक ध्यानसे पूजा-पाठ, चिन्तन-मनन किया करते हैं। इष्ट मूर्तिके ध्यानमें लवलीन रहते हैं। कल्पित भासमें मग्न हो रहते हैं। वृत्तिको सूक्ष्म करते-करते श्वासमें ही लय कर देते हैं। मनमानी कल्पनाके रूप बनाते हैं; देवी-देवतादिकी भक्ति किया करते हैं। उससे सामीप्य मुक्तिकी आशा लगाये रहते हैं; तथा दोनों नेत्रोंको मूँदकर दिखाई देनेवाला तेज तत्त्वका प्रकाश देखकर उसे ही परमेश्वरका दर्शन मानकर भूल जाते हैं। वही प्रकाश दूसरोंको भी दिखलाकर या बतला करके उसमें ही स्थिति कराकर लोगोंको भ्रमा देते हैं। सो सब भास-प्रकाश मिथ्या है। अतएव उसी अध्यासवश जीव उष्मज खानीमें जाकर छोटे-छोटे देह बनाते हैं। वासनानुसार कहीं उष्णता पा करके, कहीं रूप, रस, गन्धसे उष्मजखानीमें नाना तरहके शरीर बनाते हैं। कीड़े, मकोड़े, चिल्लर जूँ, खटमलादि देह धरके भ्रमते रहते हैं। इसप्रकार नाना इच्छा-वासनासे भ्रमिक हुए जड़ाध्यासी जीव स्थूल शरीर छोड़कर सूक्ष्मदेह सहित चारखानियोंमें जा करके पुनः अनेकों तरहके देह बनाकर कर्म भोगते रहते हैं। पूर्ण पारखबोधसे स्वरूप स्थिति होनेपर ही बिरले नरजीवकी मुक्ति होती है॥ १६९७॥

साखीः— सबै कला सब खानिमें ❀ अधिकारी बिलगाय ॥
[३०३] और योनिते औरमें ❀ कारण देइ भरमाय ॥ १६९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जैसे मनुष्य खानीमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, छाजन, भोजन, निद्रा, भय, मैथुन, मोहादि, नाना कलाएँ मौजूद हैं, तैसे ही वे सब कलाएँ षट् पशु धर्मादि विकार सब खानियोंमें समान-विशेषरूपसे रह रही हैं। जहाँ विशेष होती हैं, वहाँ अलग-अलग चाल देखनेमें आती है। हंसपदसे पतित होकर और ही काग स्वभावसे कुकर्म करके मनुष्य योनिसे छूटनेपर जीव और-ही-और योनियोंमें चले जाते हैं। कारणरूप विषयाध्यास ही जीवोंको नाना योनियोंमें घुमाता रहता है। अथवा एक ही मनुष्य खानीमें अन्य सब खानियोंकी सब कलाएँ एकत्रित हैं। जैसे वृक्षके सब भाग एक बीजमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं; तैसे मनुष्योंमें भी चारों खानीके सब भाग हैं। सो मनुष्यका देह वही पिण्डज खानीका बना है। ढील, चील्लर, जूँ, शरीरमें जो पड़ते हैं, वे अण्डज खानीमें आवेंगे। पेटमें बारीक-बारीक कीड़े, चुरना पड़ते हैं, सो उष्मजमें माने जायेंगे; शिर आदिके रोम अंकुरजमें गिने जायेंगे। इसप्रकार सब कलाएँ सब खानीमेंकी सूक्ष्मरूपसे शरीरमें रही हैं। तथापि जहाँ जो अधिकारी=विशेष कलाएँ एकत्रित होती हैं, फिर वहाँ उन्हें न्यारा करके अलग खानियोंमें गिना जाता है। ऐसे सब चार भागमें विभक्त चार ही खानी हैं। परन्तु, उनमें जाति विशेषसे अनेक-अनेक योनियाँ लगी हैं; और मनुष्य खानीमें नाना प्रकारके संस्कार जमा करके फिर वही जीव वासनाके अनुसार एक योनिसे निकल करके और भी कईएक योनियोंमें चले जाते हैं। वहाँ पाँच अवस्थाओंमें किया हुआ कर्म अध्यास ही कारण हो करके जीवोंको भ्रमा कर भ्रमण करा देता है। अथवा कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी और विज्ञानी, इन सबोंके यहाँ खानी-वाणीकी कला सब एक सरीखी ही विस्तार हो रही है। एक-एकमें पाँच-पाँच मार्गकी कला-कल्पना और अवस्था भी लगी हुई है। जहाँ विशेष अवस्थामें विशेष कर्म किया जाता है, तहाँ अधिकारी या अधिक वालेको बिलगा करके अलग किया जाता है। उसे भिन्न माना जाता है। एक सिद्धान्तसे और-और अनेक सिद्धान्तमें कारणरूप भ्रम-सन्देह ही भ्रमा देता है। सबोंका उद्देश्य एक ब्रह्म, ईश्वरादि प्राप्ति करना ही हुआ है। इसीकारणसे और-ही-

और मार्गमें लग और लगा करके भ्रमा रहे हैं, बिना पारख। अतएव खानी-वाणी जालोंकी सब कला-कल्पना तथा अध्यासोंको लेकर जीव सब खानियोंमें चले जाते हैं। अपने-अपने अधिकारोंको बिलगाय लेते हैं; मनुष्य योनिसे चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं। वही अध्यास ही आवागमनका कारण होकर जीवोंको भ्रमण करा रहा है ॥ १६९८ ॥

साखीः— बढ़े विलास चहुँ खानिमें ❀ अपने अपने आश ॥

[३०४] चलन अधिकता जहाँ नहीं ❀ जिनकी जैसी बास ॥ १६९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! चार खानी, चार वाणी, चार वेद, चार अवस्था, चार आश्रम, चार वर्ण, चार सम्प्रदाय, चार्वाक् इत्यादि चारों दिशाओंमें सब तरफ बहुत बड़ा भारी क्रीड़ा-विलास बढ़ा। विषयानन्दसे लेकर ब्रह्मानन्द तक अपनी-अपनी आशा, आसक्ति, रुचि,-प्रियता जिसको जैसी थी, वैसे मार्गमें सब आगे बढ़ते गये। अपनी-अपनी मानन्दी अवस्था मार्गके मुताबिक विभिन्न कर्माध्यासोंको टिकाये हैं। फिर देह छूटनेपर निज-निज वासनावश चार खानियोंमें जाकर खूब विषय-विलास बढ़ाये हैं। अण्डज, पिण्डज, उष्मजादिका देह धारण किये वहाँ भी वे सब वैसे विलास ही बढ़ा रहे हैं। जिनकी जैसी वासना है, तैसे ही आकार-प्रकार, गुण, स्वभाव, रूप, रङ्ग-ढङ्ग आदि बने हैं। कहीं विशेष, कहीं सामान्य, चञ्चलतासे वैसी ही बुद्धि भी रहती है। जैसा जिसका अध्यास होता है, तैसी ही जगहमें निवास होता है; और जहाँपर विशेष चलन-शक्ति नहीं होती है, अजगर, केंचुवे आदि सो वैसे ही हीन कर्म, जड़ाध्यास, जड़वृत्ति करनेके कारणसे ही ऐसे जन्मको पाते हैं। परमहंस लोग, नशेबाज, म्लेच्छ, नीच महा कुकर्मी आदि लोग ही ऐसी निकृष्ट योनियोंमें चले जाते हैं। क्योंकि, उन्होंने नरदेहमें जीते तक वैसा ही स्वभाव बनाया था, इसीसे वे जहाँपर चलनशक्तिकी अधिकता नहीं होती है, वैसी ही जगहमें जाकर निवास किये हैं। जड़वृत्ति करके कदापि मुक्ति नहीं होती है। जो पारख स्वरूपकी स्थितिमें जाग्रत्-सावधान रहते हैं, वे ही कोई बिरले ही पारखी सन्त जीवन्मुक्त होते हैं। अतएव पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके निज स्वरूपकी स्थिति करनी चाहिये ॥ १६९९ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ८९ ॥ [चौपाई- १३। साखी- २। चौंतीसा- १ है] ॥ ❀ ॥

१. तैसो फन्द जनमके हेता ❀ भिन्न भिन्न तेहि लक्ष सचेता ॥ १७०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! तैसे ही सो उन्हें चार अवस्था, चार मार्गादिकी खानी-वाणीके जालमें फँसना, प्रेम लगाना करके जड़ाध्यासके कारणसे ही जन्म, मरण, गर्भवास, चारखानी चौरासी योनियोंमें जाने-आनेका सिलसिला बँधा हुआ है। सावधानीसे जैसा-जैसा लक्ष्य, सुरति अध्यासोंमें लगाये हैं, तैसी-तैसी भिन्न-भिन्न योनियोंमें जीव भिन्न-भिन्न वासनाको लेकर ही जाते हैं। चेतन जीवके साथ लक्ष्यरूप वासना सचेत = सुरक्षित न्यारा-न्यारा दृढ़ बना रहता है। वही फन्दा जन्मादि होनेमें मूल कारण होता है ॥ १७०० ॥

२. देह माँह जस कर्म कमावै ❀ सोई कर्म बुद्धि होयके धावै ॥ १७०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मनुष्य देहमें शुभ, अशुभ, पाप-पुण्यादि जैसा-जैसा कर्मोंकी कमाई जीव करते हैं। जैसा संस्कार हृदयमें टिकाते हैं, सोई कर्मानुसार ही विद्या-बुद्धि, सुख-दुःख, हानि-लाभादिके रूपमें समयानुसार प्रगट होकर आते हैं। पूर्वकर्मके वेगसे वैसे ही अभी बुद्धि प्रगट हो करके आई है। सङ्ग-संस्कारके अनुसार ही बुद्धि बन करके उसी तरफ दौड़ती है। अर्थात् नरदेहमें जैसा कर्म उपार्जन होता है, सोई कर्मके प्रतापसे उस प्राणीकी बुद्धि भी वैसे ही हो करके चलायमान होती है, दृढ़की हुई बात ही याद होती है। बुद्धिसे निश्चय किये हुए कर्ममें ही मन, अहङ्कार, चित्त भी लग जाते हैं। अन्तःकरणमें सब संस्कार टिके रहते हैं। सोई जीवोंको चारखानीमें ले जाकर समयानुसार नाना भोग भोगाता रहता है ॥ १७०१ ॥

३. लक्ष स्वभाव सोइ सोइ होई * घट साँचा घटमाँहि समोई ॥ १७०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसा-जैसा लक्ष्य लगता है या लक्ष्य लगाया जाता है, तैसा-तैसा स्वभाव भी हो जाता है। उसके लक्ष्य-स्वभावके अनुसार ही सोई-सोई कर्म भी होते जाते हैं। सत्य चैतन्य जीव प्रथम भी देहधारी था, उसी पूर्व घटके अध्याससे अभी भी इस घटमें आ करके जीव समाया है या टिका हुआ है। घटरूपी सूक्ष्मदेहके साँचा या यन्त्र-मशीन, स्थूल देहमें ही समाये रहते हैं। अथवा प्रवाहरूप अनादि कालसे देह बन्धनोंमें पड़ते हुए जीव अवागमनमें घूम रहे हैं। अमर, अखण्ड, सच्चा जीव पारख बोधके बिना अभी तक सूक्ष्म देहसे न्यारा कभी नहीं हुए हैं। सो घटमें मौजूद हैं। एक घटके साँचासे दूसरा घट तैय्यार करके वासनावश उसमें जा करके समा जाते हैं। सूक्ष्म साँचा तो जीवके साथ ही वहाँ भी चले जाते हैं। पूर्वके देखे-सुने-भोगे हुएकी वासना अन्तःकरणमें संस्कारकी छाप लगकर टिक जाती है। जैसे साँचामें ढालनेसे वैसे ही आकार-प्रकारका पदार्थ बन जाते हैं। तैसे ही वासनानुसार जीव चारखानियोंमें जहाँ भी जिस घटमें भी समाते हैं। वहाँ उसीप्रकारका शरीर बन जाता है। उत्पन्न होनेपर उसके पूर्ववत् लक्ष्य-स्वभाव योनिके मुताबिक वही-वही कर्म भी होते रहते हैं। मनुष्यतनमें ही सब कर्त्तव्योंके सुधार और बिगाड़ भी होते हैं। अतएव यहाँ ही प्रयत्न करके कर्त्तव्यका सुधार करना चाहिये ॥ १७०२ ॥

४. देह अभिमानी देह निवासा * थूल अभिमानी लिङ्गम बासा ॥ १७०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्मकाण्डी लोग विश्व अभिमानसे स्थूल देहमें विषय भोग तथा कर्ममार्गादिके बड़े अभिमानी जड़ाध्यासी होते हैं। नाना शुभाशुभ कर्म करके उसके अहङ्कारमें मस्त पड़े रहते हैं। पशुवत् अनाचार-अविचारका कर्म करके अध्यास टिकाये रहते हैं। इसवास्ते एक शरीर छूटनेपर भी दूसरा वैसा ही स्थूलदेह धारण करके पशु आदि योनियोंमें वे निवास किया करते हैं। क्योंकि, "जहाँ आशा तहाँ होवै बासा, मनका यही तमाशा है॥" और सूक्ष्म देहके तैजस अभिमानी उपासक लोग सूक्ष्म वायुरूप देहधारी देवी-देवता आदिकोंको मान करके भक्ति किया करते हैं। उनकी ध्यान-धारणामें लवलीन रहते हैं। नाना तरहसे अध्यास टिकाये रहते हैं; सूक्ष्म मानन्दीमें ही उनकी बासा रहती है। इससे देह छूटनेपर वे जीव अण्डजादि खानीमें जाकर जन्म लेते हैं। पशु आदिकोंसे छोटा शरीर पक्षी आदिकोंका होता है। सोई सूक्ष्म अहङ्कारसे लिङ्गम या सूक्ष्म बासा हुआ है ॥ १७०३ ॥

५. शून्य अभिमानी शून्यहि राखै * तुर्या अभिमानी निरञ्जन चाखै ॥ १७०४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! कारणदेहके प्राज्ञ अभिमानी योगी लोग योगमार्गके अध्याससे समाधि लगा करके वृत्तिको शून्यकर उसी शून्य स्थितिमें ही बासा बनाये रखते हैं। सोई जड़वृत्तिके अध्यासवश बुद्धि रहित उष्मजादि योनियोंमें उनके संस्कार उन्हें लेजाकर रखता है। अथवा शून्य गर्भवासादिमें ले जा करके रखता है; और महाकारण देहके प्रत्यगात्म अभिमानी तुरिया साक्षीके अहङ्कारी ज्ञानी लोग कोई निरञ्जन ब्रह्म मानकर उसीके विचारसे साक्षी-पदमें टिके रहते हैं। जो आचार, खानपान, शुद्ध रखते हैं, ज्ञान संस्कारको बढ़ाते हैं। सो इसवास्ते वे पुनः मनुष्य देहमें आ करके निरञ्जनरूप मनसे पाँचों विषयोंका स्वाद वा आनन्द चाखते हैं। तुरिया अभिमानी लोग आनन्दको ही निरञ्जन ब्रह्म मानकर चाखते हैं या अनुभव करते हैं। उस ज्ञान-संस्कारसे मनुष्य शरीरमें आते हैं। इसप्रकार पुनर्जन्म होता रहता है ॥ १७०४ ॥

६. ताहि कला चौ कला उपाई * कला बीच बहुकला समाई ॥ १७०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो उसी चार देहोंकी चार कलाएँरूप चार अवस्थाओंके कर्म संस्कारसे ही चार खानीकी चार कलाएँ संसारमें उत्पन्न हुई हैं। जैसे एक-एक मार्गकी कलामें अनेक-अनेक भाग, भिन्न-भिन्न कला-कल्पनाएँ उस बीचमें समायी हुई हैं। तैसे ही

एक-एक खानीके बीचमें अनेक-अनेक योनियाँ उनकी बहुतेक कला, चाल, रङ्ग-ढङ्ग समाया हुआ है। चारखानीके बीचमें चौरासी योनियाँ उत्पन्न होकर तहाँ बहुत कलाएँ समायी हुई हैं। असंख्य जीव वासनावश नाना देहें धर-धर करके भटक रहे हैं, बिना पारख ॥ १७०५ ॥

७. देह बुद्धि जेहि जीव लगावै * सोई आशा होय उपजावै ॥ १७०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई जीव अपनेको देह-बुद्धिमें लगाते हैं, देह स्वरूप ही जीवको समझते हैं, मैं ब्राह्मणादि वर्ण हूँ, चार आश्रमी हूँ, हिन्दू, तुरुक हूँ, सुरूप-कुरूप हूँ, स्त्री-पुरुषादि हूँ, बलवान्-दुर्बल हूँ, मोटा-पतला हूँ, इत्यादि अभिमान टिका करके अहङ्कारी जड़ाध्यासी होते हैं। देहसे न्यारा जीवको समझते ही नहीं हैं। वे देहवादी बुद्धिको भ्रष्ट करके जीवको नाना कर्म-कुकर्म विषय भोगादि करनेमें लगाते हैं। सोई विषयोंकी आशा-तृष्णा, आसक्ति बन्धन बीजरूप हो करके पुनः-पुनः वा बारम्बार नाना देह उत्पन्न कराती है। जन्म, मरण और गर्भवासादिका दुःख भोगाती है ॥ १७०६ ॥

८. विनशै देह, देह सोई पावै * अण्डज खानिमों जाइ समावै ॥ १७०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! स्थूल देहके अभिमानी विषयासक्त लोग उसी कर्ममार्गमें लग करके ही आयु बिता दिये हैं। तब उनके स्थूल शरीर तो नाशवान् होनेसे प्राण छूटते ही विनाश हो जाता है; और सूक्ष्म देहमें सब बीजरूप वासना जमा रहती है, उसीसे फिर भी दूसरा स्थूल देहको जीव प्राप्त करते हैं; विशेष चञ्चलताके अध्याससे नरदेह छूटनेपर वे जीव अण्डज खानीमें जाकर समाते हैं या अण्डज योनियोंमें प्रवेश करते हैं। तहाँ कितनेक पङ्खवाले पक्षी होकर आकाशमें उड़ा करते हैं। वहाँका कर्म भोग बाकी रहते तक जन्मते-मरते, अण्डेमें जाते-आते दुःख भोगते रहते हैं। एक देहको छोड़कर फिर वैसे ही अन्य देह धारण करते रहते हैं। इसप्रकारसे कर्मभूमिका मनुष्यदेहमें कर्म संस्कार जमा करके फिर चौरासी योनियोंमें वासनानुसार जीव भ्रमते ही रहते हैं ॥ १७०७ ॥

९. पहिली आश बास उलटाई * थीर पौन दुनियाँ भरमाई ॥ १७०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पहली आशाकी बासा स्थूल देहके कर्ममार्गमें हुई थी। किसीने उसको उलटा करके दूसरी ही आशाकी बासा सूक्ष्म देहके उपासनामार्गमें लगाया। तो वे भी पलटा खाकर देह छूटनेपर अण्डजोंमें ही जा करके समाये। भक्ति और योगमार्गसे पवनको स्थिर करके प्राणको रोककर मनोकामना पूर्ण करनेकी कल्पनामें लगे; और अन्य जीवको भी लगा करके गुरुवालोगोंने दुनियाँमें मनुष्योंको नाना तरहसे भ्रमाकर भुला दिये हैं। पवन स्थिर करनेके लिये नाना साधनाओंमें लगा दिये हैं। परन्तु, वही सूक्ष्म वासना जीवोंको चौरासी योनियोंमें घुमाती रहती है। यह भेद पारख बोधके बिना कोई नहीं जानते हैं। अथवा प्रथम कर्मकी आशासे अण्डजमें गये। फिर उसे उलटा करके दूसरी भक्तिकी आशासे उष्मजमें जाते हैं; तीसरे प्राणको रोककर भ्रमाये, तो लकड़ी आदिमें जाकर कीड़े हुए। चौथे ज्ञान संस्कार रहनेसे मनुष्य हुए। ऐसे चारखानीका चक्र अध्यासके वेगसे घूम ही रहा है ॥ १७०८ ॥

१०. ज्ञानी थूल थूल सो आशा * पलटि उखमज तेहि दीन्ह निवासा ॥ १७०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानी लोग सूक्ष्म रीतिसे सबमें व्यापक ब्रह्मको भरा हुआ मानकर उसे प्राप्त करनेकी या मिलनेकी आशा वा आसक्ति, सो सूक्ष्म मनमें ही लगाये रहते हैं। मिथ्या भ्रममें ही लगे रहते हैं, इसीसे मनुष्य तन छूटनेपर फिर पलटा खा करके नीचे गिर पड़ते हैं। उन्हें वही पूर्वकी वासना उष्मज खानीमें ले जा करके निवास करा देती है। अथवा ज्ञानखानी मनुष्य देह है, यहाँ निजस्वरूपकी स्थिति करना छोड़कर कोई ब्रह्मज्ञानी हुए, कोई भक्त

आदि हुए। सूक्ष्म आशा-वासा दृढ़ किये, तो वे मनुष्य खानीसे पलटकर वहीं उष्मजादि खानियोंमें जाकर निवास किये; आवागमनमें पड़े और पड़ ही रहे हैं ॥ १७०९ ॥

११. थीर पौन अभिमान दृढ़ाई ❀ खानि अंकुरज जाइ समाई ॥ १७१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तैसे ही योगमार्गमें अष्टाङ्ग योगकी साधना करके योगी लोगोंने पञ्च प्राणरूप पवनको ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर कुम्भक करके समाधि लगा करके स्थिर किये। अनहद नाद सुने, ज्योति देखे, आनन्दित हुए, फिर सिद्ध कहला करके बड़ा अभिमान दृढ़ किये। तामसी अहङ्कारको ही दृढ़ाये; गाफिल जड़ाध्यासी हुए। इससे वे जीव अंकुरजादि वनस्पतियोंमें छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े वा कीटाणु हो करके जाकर वहीं समाये। स्थावर-उद्भिज या अंकुरज, ये स्वतः जड़खानी हैं। चारों तत्त्वोंकी शक्तिके सम्बन्ध एवं बीजकी शक्तिसे उन्होंकी पैदायश समयानुसार होती रहती है। वे जीवकी सत्ता-वासना करके उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु, बीज और तत्त्वोंकी सम्बन्ध-शक्तिसे स्वयं उत्पन्न होते हैं। अतएव अंकुरज जड़, निष्प्राण, निर्जीव हैं। अध्यासी जीव अलग ही उनमें देहधारी होकर कर्म भोगते हुए जन्मते-मरते रहते हैं। यहाँपर न्यारा-न्यारा भेदको ठीक तरहसे समझ रखना चाहिये। अर्थात् शून्यके दृढ़ अध्याससे जीव अंकुरजोंमें जा करके उनके भीतर समाकर कृमि-कीटादि देहधारी होते हैं ॥ १७१० ॥

१२. तुर्या ज्ञान न और अलम्भा ❀ पिण्डज तेहि राखै जगदम्बा ॥ १७११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! तुरिया साक्षी ज्ञानमार्गमें लगे हुए ज्ञानी लोग बाहर और किसीकी अलम्भा=अवलम्ब, आधार, भरोसा तो नहीं रखते हैं। परन्तु, परमानन्द, सच्चिदानन्द एक आत्मा मानन्दी करके उसमें भ्रमिक हो आनन्दके भास-अध्यासमें गाफिल रहते हैं। उनमें साक्षी-दशावाले शुद्ध ज्ञानी ज्ञानसंस्कारके प्रतापसे पिण्डज खानीमें श्रेष्ठ मनुष्य योनिमें आ करके जन्म लेते हैं; और जगदम्बा=महामायारूप गुरुवालोग ज्ञानमार्गका अध्यास रखते हैं, फिर तेहि=उसमें लगनेवाले जीवको पिण्डजरूप मनुष्य देहमें पुनः लेजाकर रख देते हैं। अर्थात् तुरिया ज्ञानमें और किसीका आधार न लेनेपर भी जगत्की अम्बा=मायारूप मूल बीज जड़ाध्यास बना ही रहता है। देह छूटनेपर वही अध्यास जीवको पिण्डजादि खानीमें पहुँचाकर रख देता है। बिना पारख वह अध्यास किसी प्रकार भी नहीं छूटता है ॥ १७११ ॥

१३. उलटि पलटि योनी भरमावै ❀ आपुहि आश बास होइ धावै ॥ १७१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकार मनुष्य जन्ममें जमा किया हुआ कर्म अध्यास ही जीवोंको उलटा-पलटाकर नाना योनियोंमें घुमाता-फिराता रहता है। एक ही विषयाध्याससे पशु, पक्षी, उष्मजादि खानीमें भी जीव जाते हैं। तहाँ संसारी-विषयी, कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी और विज्ञानी लोग विशेष कर्मके अध्याससे क्रमशः प्रथम सीधे ही पशु, पक्षी, उष्मज, मनुष्य, अजगरादि योनियोंको जाकर फिर वहाँसे अन्य खानियोंमें भी वासनानुसार उलट-पलट करके जाते ही रहते हैं। देहान्तमें जो अध्यास सन्मुख होता है, उसी खानीमें जीव पहुँचते हैं। आप ही जीव जैसी-जैसी आशा करके वासना-संस्कार बनाते हैं, वैसे-ही-वैसे अपने-आप अध्यासवश होकर दौड़ते हुए अनेकों चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं। जैसे यहाँ उलटा-पलटी करके कर्म, भक्ति, योग और ज्ञानादिके योनि=सिद्धान्तरूप योनियोंमें जीव भ्रमिक होकर लगते हैं। आप ही स्वर्ग, मुक्ति फलादिकी आशा-वासनासे मतवादी हो करके जहाँ-तहाँ नाना साधनाओंमें दौड़ते चले जाते हैं। तैसे ही अध्यासी जीव भी स्वयं ही आसक्तिसे चारखानियोंमें धायकर निवास करते हैं। कर्मोंको भोगकर जन्म-मरणादिके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। पूर्ण पारख बोध होनेपर कोई बिरले ही उक्त आवागमन चक्रसे छूट पाते हैं, सोई बनाना चाहिये ॥ १७१२ ॥

साखीः— उलटि पलटि बहु भाँतिते * चौरासी भरमाय ॥
[३०५] आश भरोशा कुशलके * अन्ध सबै पतियाय ॥ १७१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानी, अज्ञानी और विज्ञानी, सब कोई नर-नारी बहुत प्रकारसे उलट-पलट करके औंधा-सीधा रास्तामें चल करके जड़ाध्यासी होकर चारखानी और उनमेंकी चौरासीरूप नाना योनियोंमें जाते-आते जन्मते-मरते गर्भवासमें पड़ते हुए भ्रमण कर रहे हैं। खानीसे वाणीमें और वाणीसे खानीमें भटका खाकर घूमते रहते हैं। स्थूलसे कैवल्य, और केवल्यसे स्थूलमें चक्कर लगाया करते हैं। जगत्से ब्रह्म, और ब्रह्मसे जगत् बनाया करते हैं; भ्रमा करते हैं। इसप्रकार उलट-पलट करके मनुष्य खानीसे चौरासी योनियोंमें जाते हैं। वहाँ कर्म भोग खतम होनेपर फिर मनुष्य खानीमें कर्म बनानेके लिये चले आते हैं; और गुरुवा-लोगोंकी झूठी कल्पनाकी बात कोई कर्त्ता, ब्रह्म-ईश्वरादि, स्वर्गादि प्राप्तिको सत्य मान करके अन्धे, बुद्धिहीन, बेपारखी, अज्ञानी, अविवेकीजन पतिया करके सब लोग धोखेका ही विश्वास कर रहे हैं। तहाँ गुरुवालोग, ईश्वर, देवी, देवतादिके भरोसे उसीकी निश्चयसे कुशल, कल्याण, हित-मुक्ति, सुख-सम्पत्ति आदि प्राप्तिकी आशा लगाकर अन्धे लोग झूठको ही सत्य समझ रहे हैं। इसीलिये बिना विचारे ही वेद-वेदान्तकी वाणी, भ्रमिकोंके उपदेशमें विश्वासकर विवेकरूप नेत्रोंको फोड़कर अन्धे बन करके सब जीव कुशलके आशा-भरोसामें दोनों तरफसे चौरासी योनियोंमें ही भ्रमते हैं, बिना पारख ॥ १७१३ ॥

साखीः— विविधि प्रकार उपजा करै * एकते करै अनेक ॥
[३०६] चहै भक्ति जेहि जीवको * देई विज्ञान विवेक ॥ १७१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नाना प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प, भ्रमिक मनुष्योंसे उपजा करता है। एक मनसे अनेक मानन्दी, कल्पना, अनुमान, भ्रम आदि अनेक विकार विस्तार किया करते हैं। चाहे जैसी भावना जीवोंकी होवे, बिना पारख अज्ञान चक्रसे नहीं छूटते हैं। अथवा गुरुवालोग अनेक प्रकारकी कल्पना करके वेद, शास्त्र, पुराणादिकी वाणी उपजाया करते हैं। नाना तरहसे उपदेश दिया करते हैं। जिससे अनेकों शिष्य-शाखाएँ बनकर उत्पन्न हुआ करती हैं। एक कल्पनासे अनेक वाणी जालोंके मत, पन्थों, ग्रन्थोंका विस्तार किया करते हैं; और एक ब्रह्म कर्त्ताने अनेक जगत् सृष्टिको उत्पन्न किया, ऐसा कहते हैं; और गुरुवालोगोंके पासमें जा करके भक्ति, योग और ज्ञानादिका जैसा भी उपदेश नरजीव चाहते हैं, वैसी ही वाणी जीवोंको दृढ़ा देते हैं, किसीको भक्तिमें लगाते हैं, किसीको योगमें और ज्ञानमें लगाते हैं; और किसीको अद्वैत ब्रह्मज्ञान-विज्ञानमार्गका विवेक बतला देते हैं। सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा निश्चय करा देते हैं। सब प्रकारसे भटका देते हैं। अथवा एक मनुष्यके कर्त्तव्यसे ही अनेकों योनियोंमें नाना तरहसे प्राणी देह धारण करके उपजा करते हैं। मुक्तिके लिये जीवोंको पारखी श्रीसद्गुरुकी भक्ति और पारख बोध धारण करना चाहिये, सो तो हासिल नहीं करते हैं, और विज्ञानमें ब्रह्म-विवेक करनेमें मन लगा देते हैं। सत्सङ्ग करके सत्य निर्णय करनेमें तो नहीं लगते हैं; हंस रहनीको धारण नहीं करते हैं, इसीसे भव-बन्धनोंसे कोई नहीं छूटते हैं, बिना पारख चौरासी योनियोंके रहटामें पड़ा ही करते हैं ॥ १७१४ ॥

॥❀॥ नम्बर- १ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, ज्ञान चौंतीसा नम्बर- ४ ॥❀॥

१. घघा घट विनशै घट होई * घटहीमें घट राखु समोई ॥ १७१५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! [मायामुखः—] गुरुवालोगोंका कथन ऐसा है कि— घ=घनवत् व्यापक चैतन्य ब्रह्म, आकाशवत् असन्धिरूपमें भरा हुआ है; और

घा = उसी ब्रह्मका अंश जीवको प्रतिबिम्ब मानकर वेदान्ती लोग ऐसा उपदेश देते हैं कि, हे जीव ! तू तो ब्रह्मका अंश शुद्ध-बुद्ध, निरञ्जन आकाशवत् ब्रह्मस्वरूप ही है। घट उपाधिसे तू परिछिन्न हुआ, मायामें विमोहित होकर फँस गया है; और तूने मैं-ममता करके सुखी-दुःखी, बनकर जन्म-मरणादि अपनेमें जो माना है, सो मिथ्या भ्रान्ति मात्र है। वेदान्त ज्ञानको मनन करके उस भ्रमको छोड़ दो! यह घट तो विनाश होकर भी फिर घट उत्पन्न हो जाता है। परन्तु, आकाश ज्यों-का-त्यों ही रहता है। तैसे ही आत्मा घटके साथ कभी उत्पन्न और विनाश नहीं होता है। आत्माको अखण्ड अविनाशी जानकर घट-पटादिकी भ्रान्ति तुम छोड़ दो ! यह घट = अन्तः करणमें ही घटाभास द्वैत भ्रमको लय करके समाये रक्खो! फिर तुम ब्रह्ममें मिल जाओगे, तो आवागमनका भ्रम सब मिट जायगा॥१७१५॥

२. जो घट घटै घटहिं फिरि आवै * घटहीमें फिर घटहि समावै ॥ १७१६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! [मायामुखः—] नहीं तो, यह घट जो घटते-घटते एक दिन नाश हो जायगा, तो फिर भी द्वैत भ्रम रहनेसे दूसरा घट बनकर आवेगा। मायाकी उपाधि लगी रहेगी; उस घटमें फिर भी पूर्ववत् सुख-दुःखादि लगा रहेगा। वास्तवमें भ्रम करके बीचमें घट ही बनता-बिगड़ता है। आत्मा तो बनता-बिगड़ता नहीं है, जन्मता-मरता नहीं है। जैसे मिट्टीके घड़ा बनते ही उसमें आकाश समा जाता है; और घड़ा फूटनेपर आकाश जहाँ-के-तहाँ ही रह जाता है। तैसे ही देह बननेपर ब्रह्मका प्रतिबिम्ब भी उसमें प्रकाश हो जाता है; और देह छूटनेपर वह ब्रह्ममें ही समाया रहता है। ऐसा समझ करके ब्रह्ममें समाये रहो ! इत्यादि मायामुखसे गुरुवालोगोंने कहा है। अब गुरुमुखसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका अभिप्राय कहा जाता है— हे नरजीवो ! जिस देहको तुम लोगोंने अपना स्वरूप मान रक्खा है, सो घट तो विनाश होनेवाला नाशवान् है। घर-द्वार, शरीरादि बनी हुई सब वस्तु, कार्य पदार्थ अवश्य ही एकदिन विनाश होकर बिगड़ जायँगे। परन्तु, घटाध्याससे फिर भी चौरासी योनियोंमें नया-नया शरीर दूसरा बनता ही रहेगा। इसकारणसे सब घटाध्यास-जड़ाध्यासको वर्तमान नरदेहमें ही परख-कर मिटा करके समा रक्खो या बराबर स्वरूप बोधमें मन लगा रक्खो, तो अभी इस नरदेहमें मुक्त हो जाओगे। नहीं तो, जो यदि जड़ाध्यास जीते ही तुमने नहीं घटाया या नहीं मिटाया है; और अध्यास रखकर ही शरीर छूट गया, तब तो फिर भी उलटकर चारखानीमें देह धारण करके जन्म लेकर आओगे, और फिर उस घटरूप शरीर पैदा होनेपर हृदयमें घटाध्याससे काम-क्रोधादि विकार राग-द्वेष, छल-कपट, दुःख-सुख, त्रयताप, कष्ट-क्लेशादि फिर भी कई गुना बढ़कर समावेगा। उससे जन्म-मरणमें पड़ करके स्त्री घटके गर्भवासमें जाकर समाते हुए दुःख भोगते रहोगे। अतएव उन सब दुःख जन्मृतिसे छूटकर यदि तुम मुक्त होना चाहते हो, तो सावधान होओ ! पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर हंस रहनी-रहस्यको धारण करके खानी-वाणी जालोंके मोह, अध्यासोंको अभी एकदमसे परित्याग करो ! निज पारख स्वरूपमें ही स्थिर, शान्त, अचल हो रहो ! यही मुख्य कर्त्तव्यको जी-जानसे पूर्ण करो ! ॥ १७१६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ९० ॥ [चौपाई- १७ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. बुद्धि थूल मिलावै जाही * भुगतावै स्वर्गादिक ताही ॥ १७१७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! जिसे गुरुवालोगोंके सङ्गसे थूल = सूक्ष्म-भावकी बुद्धि मिली या मिलती है, वे लोग उपासना मार्गमें अपनी बुद्धिको दृढ़ करके मिलाते हैं। ऊपर सात स्वर्गादि लोक कल्पना करके वहाँ वायुरूप देहधारी देवताओंका निवास और सुख भोग माना है। वही स्वर्गादि सात लोकोंके सुख भोगादि यहाँसे भक्ति-साधना करके जाओगे, तो वह फल वहाँ पाओगे, इत्यादि ऐसे-ऐसे आशा-भरोशा देकर वही कल्पित स्वर्गादिक सुख प्राप्तिके धोखेमें फँसाकर सुखके बदले अभी नाना साधनाओंकी कष्ट-पीड़ा उन्हें गुरुवालोग यम बन करके भुगताते

हैं। फिर देह छूटनेपर वही अध्यास जीवोंको चौरासी योनियोंका दुःख भोगाता है। अथवा स्थूल देहसे नाना कर्म करके सूक्ष्म वासनाको बुद्धि अन्तःकरणमें मिलाती है। स्वर्गादिक आशासे किया हुआ कर्म अध्यास ही जीवको जन्म-मरणादि दुःख भोगाता रहता है ॥ १७१७ ॥

२. थूल अस्थूलके जेहि नहिं आशा ❀ बुद्धि शून्य अचेत निवासा ॥ १७१८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिन लोगोंकी स्थूल देहके कर्ममार्ग तथा सूक्ष्म देहके उपासनामार्ग, इन दोनोंकी आशा नहीं रही; वे तीसरे कारण देहके योगमार्गमें लगे रहते हैं। शून्य स्थितिमें ही उनकी बुद्धि लगी रहती है; समाधि लगाकर बुद्धि सहित चित्तचतुष्टयको शून्यमें लय करके अचेत या बेहोश हो गाफिलीमें निवास किये रहते हैं। अतएव वे शून्यके अध्याससे उष्मजादि योनियोंमें जा करके कर्म भोग भोगा करते हैं। अथवा स्थूल-सूक्ष्मकी जिसे आशा नहीं रहती है, सो बुद्धि भ्रष्ट करके और भी कारणरूप शून्यमें अचेत होकर निवास करते हैं; वे उसी-प्रकारसे जड़ाध्यासी होते हैं ॥ १७१८ ॥

३. शून्यहि छोड़ि ज्ञान रस पागे ❀ सर्वसाक्षिणी पद अनुरागे ॥ १७१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई योगको छोड़कर आगे बढ़कर ज्ञानमार्गमें जाते हैं, तो शून्य-समाधि स्थितिको छोड़कर तुरियावस्था साक्षी स्थितिमें ज्ञानरसका पान करते हुए आनन्दके अनुभवमें निमग्न रहते हैं। वे सर्वसाक्षिणी-पदमें अनुराग=बड़ा प्रेम लगाये रहते हैं। "मैं चराचर सर्वका साक्षी या द्रष्टा हूँ ! घट-घटका वासी "सूत्रमणि न्याय" आत्मा हूँ ! मेरा पद सर्वोपरि है !" ऐसा मानकर ज्ञानी लोग साक्षीपदमें टिके रहते हैं। परन्तु, पारख बोध न होनेसे अपनेको सबमें भरा हुआ व्यापक मानकर जड़ाध्यासी होते हैं। तो वे शुद्ध ज्ञान-संस्कारवाले जीव मनुष्य खानीको प्राप्त होते हैं ॥ १७१९ ॥

४. एकते एक कला अधिकाई ❀ भास विलास न सन्धि लखाई ॥ १७२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे एकसे एक बढ़ करके अपने-अपने मत-पन्थ, सिद्धान्तकी कला अधिकाई या विशेषरूपसे प्रगट किया है वा विशेष माना है; और संसारी पामरसे अच्छे विषयी हुए, उनसे विशेष अर्थार्थी हुए, उनसे जिज्ञासु अच्छे हैं, उनसे मुमुक्षु श्रेष्ठ माने जाते हैं; और विषयी लोगोंसे उत्तम कर्मी, इनसे बढ़कर उपासक, इससे आगे योगी, ज्ञानी, विज्ञानियोंने एक-से-एक अधिक कला-कल्पनादिका कथन किया है। अपने-अपने मार्गके सुख विलास, भास-अध्यासमें फँसे पड़े हैं। श्रीसद्गुरुके पारख बोध वा पारखदृष्टि हुए बिना उन्हें उसमेंकी सन्धि=-मानन्दीरूप बन्धनका भेद कुछ लखनेमें नहीं आता है या जाननेमें नहीं आया कि, जो हमने भास विलासको मान रक्खा है, सोई सुखाध्यास हमारा काल है। वही महाबन्धनका कारण हो हमें चौरासी योनियोंमें ले जायगा। पारख बोध न होनेसे वैसा किसीको लखनेमें नहीं आता है ॥१७२०॥

५. सर्वासर्व गिरासहि ताही ❀ तुर्यातीत होय पद जाही ॥ १७२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक वेदान्ती गुरुवालोगोंने गिरा=वेद-वेदान्तकी कल्पित वाणीके प्रमाणसे सर्वासर्व=सर्वत्र सबोंमें ब्रह्म है, सो सत्यासत्य, सारासार, चराचरमें परिपूर्ण व्यापक परब्रह्म-परमात्मा कोई एक ठहरा करके ताही=उसी अद्वैत ब्रह्मको सही=सत्य बतलाकर निश्चय किये और कराये हैं। यानी सर्व अवस्थाओंसे परे सर्व-असर्वमें भरे हुए निर्गुण ब्रह्मको वाणीकी प्रमाणसे ही ठहराकर उसे सत्य मानकर जीवोंको ग्रसित-जड़ाध्यासी, भ्रमिक करते हैं; और तुरियातीतपदमें प्रविष्ट होकर कैवल्य ब्रह्म बन, विज्ञानी परमहंस दशामें चले जाते हैं। वहाँ साक्षीको भी खोकर जड़वत् वृत्ति कर लेते हैं, जिससे हंसपदका विनाश हो जाता है। विवेक, विचार, गुरुभक्ति, सद्गुण रहनी-रहस्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। सबमें भरा हुआ एक आत्मा

अपनेको मानकर उसी मिथ्या मानन्दीमें अरुझा करके जीवोंको गिरासहि=पकड़कर ग्रसित-बद्ध कर और बद्ध करा देते हैं॥ १७२१ ॥

६. उतपति प्रलय सो तहाँ सुभाई * उलटि पलटि पुनि पुनि जहँड़ाई ॥ १७२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सो इसप्रकारसे माना हुआ एकब्रह्ममें तो कभी निश्चल स्थिति नहीं होती है। क्योंकि, तहाँ ब्रह्ममें तो स्वाभाविक ही इच्छा-स्फुरणा लगी हुई है। उसकी इच्छामात्रसे सारे जगत्की उत्पत्ति होती है; फिर अनिच्छासे महाप्रलय होकर सब जगत् उसमें ही समा जाता है। ऐसा-ऐसा मानकर स्थूलसे उलटकर कैवल्य तक जाते हैं। फिर कैवल्यसे पलटकर स्थूल जगत्में आ जाते हैं। उलट-पलटकर बारम्बार वा पुनः-पुनः ब्रह्मसे जगत्, और जगत्से ब्रह्म होते हैं। जड़ाध्यासी-बद्ध होनेसे जन्मसे मरण, और मरणसे जन्म तथा गर्भवास, त्रिविधि ताप दुःख भोगा करते हैं। उसी खानी-वाणीमें घूम-फिरकर जहँड़ाते हुए, अध्यासमें बाँधे जाते हैं। जहाँ वेगवान् प्रवाहका स्वभाव हो, वहाँ ठहराव वा स्थिति चाहें, तो कैसे हो सकता है? इसीसे पारख बोधके स्थिति हुए बिना कोई भी बन्धनोंसे नहीं छूटे हैं; और नहीं छूट सकते हैं॥१७२२॥

७. सर्व खेत उपजा उपजाई * पेरहिं कोल्हू कष्ट देखाई ॥ १७२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे किसान लोग अपने सब खेतमें फसल उत्पन्न करके फिर सरसों, तील, मुंफली, अलसी, रेंडी आदि और ऊख पेरकर कोल्हूमेंसे रस, तेल आदि चुवाकर निकाल लेते हैं। उस आमदनीसे अपना व्यवहार चला लेते हैं। तैसे ही सर्वखेतरूप सब संसारमें किसानरूप गुरुवालोगोंने नाना प्रकारके उपदेशरूप बीज बो करके फसलरूप शिष्य शाखा-प्रशाखा, सेवक, भक्त, अनुयायी बनाया है; तहाँ बहुत-बहुत शिष्यवर्ग उत्पन्न हुए; और मत, पन्थ, ग्रन्थकी परिपाटी, चाल-चलन बहुत उपजाये हैं। स्वर्गादिलोक, धन-सम्पत्ति राज-पाट ऋद्धि-सिद्धि आदि मनचाही वस्तु प्राप्तिकी लोभ-लालच आशा देकर कर्म, उपासना और योगादिक साधनारूप कोल्हूमें पेरते हैं; यानी पीड़ित करते हैं। अनेकों साधनाओंमें लगाकर कष्ट-क्लेश भोगाते हैं। रोचक-भयानक वाणी दिखा-सुनाकर भुलाते हैं। स्वर्गादिमें सुख और नरकादिमें दुःख, महाकष्ट दिखलाकर कि, अभी यहाँ कर्म, भक्ति आदिमें कुछ कष्ट सहन न करोगे, तो फिर रौरवादि नरकमें जाकर असह्य दुःख भोगोगे, इत्यादि डर दिखलाकर धोखेमें डालकर पीसते, पेरते, हैरान करते रहते हैं या अभी उसीप्रकार हैरान कर ही रहे हैं॥ १७२३ ॥

८. कोल्हुहि पेरि रस लेत चुवाई * महा कराह साधन औंटाई ॥ १७२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोल्हूमें पेर करके निकाला हुआ ऊखके रसको बड़ी भारी कढ़ाईमें गरमकर औंटाते हैं। तैसे ही गुरुवालोग ऊखरूप उनके शिष्यवर्गोंको कर्म, उपासनादि कल्पनाके कोल्हूमें पहले खूब पेरकर घुमा-फिराकर, भ्रमा करके तन, मन, धनादिके सार रसको चुवा करके लूट लेते हैं, खींच लेते हैं। फिर कोई एक मानन्दी अनुमानसे अनुभव रसको चुवा करके गिरा देते हैं। फिर ब्रह्म-परमात्माको महान जगदीश्वर ठहराकर चिल्ला-चिल्लाकर बताने लगे; और उसकी प्राप्ति करनेके वास्ते साधनारूप महान कढ़ाईमें औंटाने, गर्माने, सन्तप्त करने लगे। जप, तप, व्रत, पूजा, पाठ, होम, पञ्चाग्नि, जलशयन, अरण्य निवास, योग साधना इत्यादि करनेमें बड़ा भारी दुःख भोगते और भोगाते हैं॥ १७२४ ॥

९. कर्म सुकर्म इन्धन बहुतेरा * अनल विरह तन चूल्ह निबेरा ॥ १७२५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! छोटी-बड़ी लकड़ी कचरोंको भट्टी-चूल्हेमें बहुतेरे डालकर अग्नि जला करके तब रसको खौलाते, सुखाते, गाढ़ा करते हैं। तैसे ही यहाँ-पर गुरुवालोग साधारण कर्म, विशेष शुभकर्म, पाप-पुण्यके कर्म, अच्छे-बुरे कर्म, शुभ-अशुभ कर्म, तथा कर्म, सुकर्म, कुकर्म, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ कर्म, बहुतेरे इन्धन=लकड़ीके समान इकट्ठा किये।

सो वही कर्म बन्धनोंमें नाना तरहसे पड़े; और स्थूल शरीर यही चूल्हा = भट्टीके समान बनाकर इसमें कर्मरूप काठपर विरहरूपी प्रचण्ड अग्नि सुलगाये। इसप्रकार मानन्दीरूप रसको खौलाने लगे। अपने-अपने सिद्धान्तका निर्णय, छान-बीन सबोंने किया। विरह-वियोगमें बहुतेरे जल मरे, खाक हुए। तनो-बदनकी भी सुधि न रही, गरगाफ हो गये, बिना विवेक ॥ १७२५ ॥

१०. रस औटत कोउ रावा भयऊ ❀ कोई चक्की गुर स्थूल उपयऊ ॥ १७२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर रस औंटा करके पानी सुखानेपर कोई तो रावा = गाढ़ा राव बनाकर रखते हैं। कोई स्थूलाकार गुड़की चक्की बना करके रखते हैं। उसी प्रकार मन-मानन्दीकी चाहनारूप रसको विरहाग्निकी आँचमें औंटते, साधना करतेमें कर्मके पानी सूख जानेसे कोई रावा = साधक भक्त हुए। वे लोग पञ्च प्राण, इङ्गलादि तीन नाड़ी, ये अष्ट वायु संयुक्त सूक्ष्म देहधारी देवी-देवता, भूत-प्रेतादिको कल्पनासे समर्थ ठहराकर सुख-दुःखदाता मानकर उन्हींकी उपासना भक्ति करने लगे। ऐसे भ्रमिक हुए; और कोई कर्मी हुए, तो स्थूल शरीरसे स्थूल-सूक्ष्म गुर = कर्म चक्रको उत्पन्न कर लिये। कोई शरीरको ही गुड़की चक्कीके समान बनाकर जगह-जगह उसे लुढ़का दिये। स्थूल-सूक्ष्म देह धरनेमें कारण मुख्यतः वही देहाध्यास ही है। उसीसे चौरासी योनियोंमें स्थूल देह उत्पन्न हुआ करता है ॥ १७२६ ॥

११. अति प्रसन्न न गुरके मीठा ❀ रही कन्द जो मिलि सब सीठा ॥ १७२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर गुड़ खाते-खाते गुड़के मिठाससे किसीका अत्यन्त प्रसन्नता नहीं हुई। क्योंकि, गुड़की भेलीमें गन्नाके सीठा = छिलका, कचरा मिला रहता है। तब उसको और भी प्रयत्न करके साफ करने लगे। वैसे ही यहाँपर स्थूल-सूक्ष्म कर्मादिके साधनाओंसे अत्यन्त प्रसन्नतारूप परमानन्दकी प्राप्ति न हुई। विषयानन्द और प्रेमानन्दके मिठाससे तृप्ति न हुई; और संस्कारका कन्द अन्तःकरणमें जमा रहा। योग साधनासे फिर जड़-चैतन्य मिश्रित परमानन्द कन्द मानन्दी किये। परन्तु, उसीमें सब सीठा = पूरा जड़ाध्यास जमा होकर मिला रहा। जो कि, समय पा करके उसीसे फिर भी स्थूल देह बना। अर्थात् कर्म, भक्ति करते-करते भी मनोकामना पूर्ण न होती हुई देखकर फिर योगाभ्यास किये। परन्तु, उसमें भी सब अभ्यासका कचरा मिला रहा। जो चाहना किया था, सो पूर्ण न हुई। चौरासी योनियोंके फन्दाओंमें ही पड़े रहे ॥ १७२७ ॥

१२. रावा कसी शक्कर सो कीन्हा ❀ छोई कसरी भिन्न कै लीन्हा ॥ १७२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! रावाको कस करके धीमी आँचमें परिपक्व करके उसको हिला-हिला कर पूरा ताव आनेपर उसे उतारकर सो उसका शक्कर बना लेते हैं। छान-छून करके उसमेंके सब कचरारूप छोई, कसरी भिन्न कर देते हैं। तब साफ शक्करको अलग करके घरमें रख लेते हैं। इसीतरह सिद्धान्तमें भी गुरुवालोग उसीप्रकार करते हैं। अर्थात् रावा = भक्तिमार्ग, नवधाभक्ति आदिको और अच्छी तरहसे कसकर ध्यानादि साधना करके मन स्थिर करनेके लिये शक्करूप योगमार्गको प्रगट किया है। वहाँ अष्टाङ्ग योगका अभ्यास करके मन-पवनकी गाँठ बाँधकर उन्मुन किया, शून्य समाधि लगाया, इसलिये उन्होंने छोई = कर्ममार्ग, कसरी = उपासना मार्गादिका विचार वा विकार चञ्चलताको हटा करके भिन्न करके त्याग दिया। सब विधिसे योगमार्गको ही शक्कर या सुखकर समझ करके ग्रहणकर धार णकर लिया ॥ १७२८ ॥

१३. शक्कर दूध विचार मिलाई ❀ अनबनि भाँति ताहि फरियाई ॥ १७२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर दूध-शक्कर और घी मिला करके अपने-अपने विचारके अनुसार अनेकों तरहके पकान्न, मिठाई आदि बनाने लगे। कोई-कोईने तो शक्करमें भी कसर देखकर उसको छाननेके लिये उसमें दूध मिलाकर औंटा करके छानने लगे। अनेक प्रकारसे छान-छानकर विकार निकालने लगे। कसरसे न्यारा करके शुद्ध-साफ शक्करको बना लिये। वैसे ही यहाँपर दूधरूप

चैतन्य जीव योगमार्गमें प्रवेश किया, तहाँ अपने स्वरूपका विचार छोड़कर हठयोग, राजयोगादि अष्टाङ्ग योगका विचार करने लगा। उसी यौगिक विचारमें जीव सम्मिलित हुए। फिर नाना भाँतिसे उसको फरियाने लगे, न्याय-निर्णय करने लगे। तो किसीने शून्य समाधिको सत्य ठहराया; और किसीने अनहद, ज्योति-प्रकाश, आनन्दादिको कायम किया। बिना पारख जिसमें जीवका कोई कल्याण बननेवाला नहीं है, उसीमें जाकर फँस गये वा धँस गये; जड़ाध्यासी होकर बद्ध हो गये ॥१७२९॥

१४. दीन्ह सेवार धीरता बहुताई ❀ चीनी कीन्ह निज माटन माँही ॥ १७३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर जैसे उसप्रकार बनाया हुआ दानादार शक्करमें भी सेवार वा जम्बाल नामक घास, वनौषधि आदि डालकर बहुत ही धैर्यसे धीरे-धीरे शुद्ध करके छानते हैं। उसीका बारीक मैदाके समान साफ चीनी बनाकर तैय्यार करके अपने कामके वास्ते उस चीनीको कोई मटका, घड़ादि बर्तनोंमें भरकर घरमें रख देते हैं। इसीप्रकार यहाँपर गुरुवालोग योग मार्गसे चलकर आगे बढ़े, धैर्यरूपी सेवार उसमें डाल दिये। साधनामें सवार होकर बहुत धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाने लगे। बहुत ही धैर्य रख करके पिण्डाण्डसे ब्रह्माण्डमें चढ़ने लगे। वहाँ निज माटन=अपनी लक्ष्य-वृत्ति एकाग्र करके नाभि वा मस्तक, ब्रह्माण्डरूप पात्रमें भरने लगे। चीनी-कीन्ह=मनको अति सूक्ष्म करके चञ्चलता हटाकर वहीं स्थिर किये वा रोक रक्खे। ऐसे परमात्माको चीन्हनेके लिये मनको एकाग्र किये, समाधि लगाकर योगानन्दमें गाफिल शून्य हो रहे। बिना पारख निज स्वरूपको नहीं चीन्हे ॥ १७३० ॥

१५. पुनि पुनि ताहि दोबारा करहीं ❀ तुरिया शुद्ध बोद्र तेहि भरहीं ॥ १७३१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! फिर-फिर दोबार, चौबार विधि-विधानसे चीनीका शोधन करके परिशुद्ध मिश्री बनाते हैं। उसे खाकर तृप्त हो करके पेट भरते हैं। तैसे यहाँपर भी योगी लोग पुनः-पुनः उसी योगाभ्यासको दोहरा-दोहरा करके दो, चार, छै, सैकड़ों-बार या बारम्बार योग क्रियाकी साधनाओंको प्रतिदिन किया करते हैं। यम-नियमसे लेकर धारणा, ध्यान, समाधि तक लगाया करते हैं। पिण्डसे ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डसे पिण्डमें जाया-आया करते हैं। पश्चात् चतुर्थ तुरिया अवस्थाको प्राप्त करके शुद्ध साक्षी आत्मा बनकर सहविकल्प समाधिकी आनन्द स्थितिसे बोद्र=पेटरूप अन्तःकरण भरते हैं, तृप्त होते हैं। सर्वत्र आत्माको भरा हुआ व्यापक मानकर सन्तुष्ट होते हैं। परन्तु, बिना विवेक गाफिलीमें निज स्थितिसे गिर पड़ते हैं ॥ १७३१ ॥

१६. मिश्री सो विज्ञान कहावै ❀ सब विधि कालके मुखहिं समावै ॥ १७३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! चीनीसे विशेष शुद्ध गुणकारी, महँगी या कीमती मिश्री होती है। तैसे ही सो यहाँपर जड़-चैतन्य मिश्रित एक ब्रह्म, अद्वैत सिद्धान्त ठहरानेवाला ब्रह्मज्ञान तथा विज्ञान-मार्ग कैवल्य ब्रह्म स्थिति श्रेष्ठ मिश्रीके समान कहलाया। परन्तु, सो उसे यथार्थ सत्यन्याय-निर्णयकी पारख-दृष्टिसे देखिये! तो वह अद्वैत ब्रह्मज्ञान महा अज्ञान, धोखा ही ठहरता है। वे ब्रह्मवादी सब प्रकारसे काल=कल्पना, वाणी, गुरुवालोगोंके मुख्य बन्धनके घेरामें ही समाकर अरुझ जाते हैं; और काल=मनकी मानन्दीके मुखमें समाकर जड़ाध्यासी हो जाते हैं। इसीसे निज स्वरूपकी स्थिति पारख बोध हुए बिना चौरासी योनियोंमें जाकर समाते हैं ॥ १७३२ ॥

१७. महिमा बास फूल प्रभुताई ❀ तेहिते कन्द बिकन्द बनाई ॥ १७३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें महिमाके वास्ते, धन कमानेके लिये, बड़ाईके लिये, तथा औषधि आदिके उपयोगको पुरुषार्थी लोग फिर उस मिश्रीको भी शोधन कर-करके कन्द बनाते हैं; और कन्दको ज्यादा शोधन करनेपर अन्तमें 'बिकन्द' नामक तीव्र विष तैय्यार हो जाता है। वह जहर कीमती औषधिके लिये काम आती है। उसीप्रकार यहाँपर गुरुवालोगोंने वेद-वेदान्त ग्रन्थोंसे महिमा बढ़ाते-बढ़ाते कई मार्ग निकाला है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैतादि सिद्धान्त

कायम किया है। ब्रह्म-ईश्वरादिकी खूब महिमाका वर्णन किया है। स्वर्गादि सुख प्राप्तिकी तथा विषयसे ब्रह्म तककी आनन्द-प्राप्तिकी सुवास=खुसबू या सुगन्ध जगत्में खूब फैलाया है। अष्टमदमें सब फूले हैं। वाणी कल्पनाके फूलकी सुगन्ध सबके मनमें समायी है। चार फल, चार मुक्ति आदिकी आशासे सब कोई मनमाने नाना साधनाओंमें लगे हैं। निज-निज पन्थोंमें प्रधान या प्रमुख होकर प्रभुताई, मान-सम्मान, बड़ाईमें फूलकर बड़े अभिमानी, पक्षपाती, अविवेकी हुए हैं। इसीवास्ते उससे किसीका कल्याण नहीं हुआ। उस योग मार्गसे लेकर ज्ञान, विज्ञान तककी मानन्दी करके ठहराव बनाये; परन्तु, वहाँ भी जीवकी स्थिति वा गति-मुक्ति नहीं हुई। योगसे आगे परोक्ष विज्ञानको कन्दवत् बनाये; और विज्ञानकी अपरोक्ष धारणा, अखण्ड व्यापक सर्वाधिष्ठान एक ब्रह्मकी मानन्दी सोई बिकन्दके समान बनाया है। परन्तु, अन्तमें वह तो बड़ा भारी धोखा, भ्रम, हलाहल-विषवत् ही बना। उसको खा करके या ग्रहण करके तो जीव हंसपदसे मरे, तो जड़ाध्यासी हुए; चौरासी योनियों-के अधिकारी दुःख भोगी हुए। इतना सारा प्रयत्न किया हुआ व्यर्थ, बर्बाद हो गया। अतएव सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें रहकर सबका निर्णयकर पारख बोध प्राप्त करके जीवन्मुक्त होना चाहिये ॥ १७३३ ॥

साखीः— सब विधि खाई आपुहि ❀ शुभ अरु अशुभ बनाय ॥
[३०७] कोउ मीठा बहु भाँति सो ❀ गुड़ करनी समुदाय ॥ १७३४ ॥

अर्थः—श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! जैसे अच्छा और खराब गुड़ वा मिश्री बना करके सब प्रकारसे उसे मनुष्य अपने ही खा जाते हैं। कोई फीका, कोई खारा, कोई तीता, कोई चर्परा और कोई मीठा बहुत प्रकारके पदार्थ बना करके स्वाद लेते हैं। गुड़से मिश्री, कन्द, बिकन्द तक बनानेमें बहुत कर्त्तव्य समुदाय किया करते हैं। तैसे ही सिद्धान्तमें आप ही जीव अपने-आपको भूलकर महाजालोंमें फँस पड़े। तहाँ किसीने अशुभ कर्म बनाया। हिंसा, घात, व्यभिचार, चोरी, ठगाई, छल-कपट, निन्दा, मिथ्या, गाली, इत्यादि कुकर्मको खूब कमाया; और किसीने उन सब कुकर्मोंको त्याग करके शुभ कर्म बनाया। दान-पुण्य, धर्म, परोपकार, दया, पूजा, पाठ, सन्ध्या-वन्दन नित्य-नैमित्तिकादि कर्म करते गये। किसीने भक्ति मार्गकी साधनामें सगुण-निर्गुण भक्ति बनाया। किसीने अष्टाङ्ग योग साधन किया; और किसीने बहुत मीठा=परमानन्द प्राप्तिके वास्ते साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर ज्ञान-विज्ञानका मार्ग ग्रहण किया। इसप्रकार सब विधिसे कर्त्तव्य समूह जमा करके स्वयं उसको खाये वा ग्रहण करके मानन्दी टिकाये। शुभाशुभ कर्म संस्कारको पक्का बनाये हैं। दृष्टान्तमें "गुड़ करनी-न्याय" सब जीव समुदाय सब मतवादी लोग सुखकी अभिलाषासे नाना कर्त्तव्य करनेमें ही लगे हैं। कोई-कोई ब्रह्मानन्द कैवल्य ब्रह्म स्थितिको बहुत मीठा वा परमगति मानकर वहाँ तक पहुँचनेके लिये बहुत प्रकारसे प्रयत्न करनेमें लगे हैं। परन्तु, वह तो बिकन्दके समान घातक जहर ही बना है। उसे खा करके तो तुरन्त ही मर गये; यानी जड़ाध्यासी होकर बद्ध हुए हैं। ज्ञान-साक्षीपदमें रहते, तो भी कुछ ठीक ही था; किन्तु, तुरियतीतमें जाकर तो हंसपद मुक्तिका सत्यानाश ही किये। इसकारणसे उस कुरास्ताको छोड़ करके पारखी श्रीसद्गुरुके उपदेशको ग्रहणकर उसे धारण करके अपना कल्याण कर लेना चाहिये ॥ १७३४ ॥

बिना विचारे हानि-लाभको न देखकर अति लोभ करनेसे नुकशानके सिवाय फायदा किसीको भी हो नहीं सकता है। यदि गुड़-शक्करमें ही लोग सन्तुष्ट होते, तो फिर बिकन्दरूप जहर खाकर उन्हें मरना न पड़ता। परन्तु, असन्तोषके कारण गुड़से शक्कर बनाये, फिर खालीस चीनी किये, फिर मिश्री बनाये, फिर कन्द बना; और कन्दसे आगे बढ़े तो बिकन्द बना करके खाये; अन्तमें वह तो तीव्र विष ही बन गया था, इससे उसे खाते ही मर गये। वैसे ही नाना साधना करके फिर ब्रह्म बनते ही व्यापक होकर चौरासी योनियोंमें भर गये, फिर तो आवागमन छूटना असाध्य हो गया। लोभके बारेमें अति लोभसे हानि होनेका दृष्टान्त आया है, सो भी सुनिये !:—

(१) दृष्टान्तः—"अति लोभसे हानि ॥" एक समयमें एक शिकारीने जङ्गली भैंसेको तीर-कमान-से मारा, फिर मृत पशुके पासमें गया, तो वहाँ काला सर्पने उसे काट खाया, तो वह शिकारी भी वहीं मर गया। उसके गिरनेसे साँप भी संयोगसे दब करके वहीं मर गया। उधर एक भूखा सियार आहार ढूँढ़ता हुआ, वहीं आ पहुँचा, वहाँपर तीन प्राणियोंको मरा हुआ देखकर वह सियार बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने मनमें सोचा, यह बड़ा मुर्दा-भैंसाके मांससे एक महीना निकल जायगा, फिर यह आदमीके मांससे पन्द्रह रोज तो कट ही जायगा, और एक दिन इसी सर्पको खाकर पूरा हो जायगा, तो आज पहले किसको खाऊँ? वहाँपर शिकारीका धनुष भी गिरा पड़ा था, उसमें चमड़ेकी डोरी लगी थी, उसे देख करके सियारने सोचा कि, पहले इसीको खा लूँ, फिर क्रमशः दूसरोंको खाकर मजेमें दिन बिताऊँगा! मेरे बड़े भाग्य खुल गये हैं, जो एक-साथ इतने मुर्दे हाथ लगे हैं, ऐसा सोच-समझ करके खुश होकर परिणामको विचारे बिना सियारने उन सब मुर्दोंको खाना छोड़कर पहले धनुषके चमड़ेकी डोरी-को दाँतसे काटने लगा। जब डोरी टूटी, तो तना हुआ कमान बड़े जोरके वेगसे उछल करके उसी लोभी सियारके शिरपर धमाकेसे जा लगा। चोट खाकर सियार वहीं गिर पड़ा; शिर फूट जानेसे तुरन्त ही वह मर भी गया। अब देखिये! उतना ज्यादा लोभ न करता, तो वह सियार क्यों मरता? इसलिये ज्यादा लोभ कभी नहीं करना चाहिये। यदि ज्यादा लोभ करोगे, तो उसी सियारके समान मारे जाओगे। अतः यथाप्राप्तमें सन्तोष रख करके धर्म कार्यमें धनको लगाना चाहिये॥

दूसरा और दृष्टान्त भी सुनिये!:—

(२) दृष्टान्तः—एक समयमें एक कुत्ताको एक मोटी रोटी कहींपर मिल गई। वह खाता, तो उसका पेट भर जाता। परन्तु, उसने सोचा, यहाँपर दूसरे बिरादरीके लोग सतायेंगे; छीना-झपटी करेंगे। इससे चलो कहीं एकान्त जगहमें बैठकर तब मौजसे इसे खायेंगे। ऐसा निश्चय मनमें होनेसे मुखमें उस रोटीको दबाकर चला गया। आगे रास्तामें एक नाला वा छोटी नदी आ पड़ी, उसे तैरकर पार जाने लगा। बीचमें जब वह पहुँचा, तो स्वच्छ जलमें अपनी ही परछाँहीं उसे दिखाई दी, उसने समझा एक कुत्ता और उधरसे रोटी लिये आता है, उससे तो हम बलिष्ठ हैं। हमारे सामनेसे वह रोटी लेते जावे, यह तो ठीक नहीं है। अब तो ऐसा करें कि, उससे लड़कर वह रोटी भी छीन लें, फिर दोनों रोटी साथ ही खायेंगे, ऐसा सोचकर मुखकी रोटी उसने ज्यों ही नीचे रक्खा, त्यों ही बहते हुए पानीके वेगमें वह रोटी भी बह गई। उधर तो मिथ्या भ्रम भास जो हुआ था, सो तो कुछ नहीं मिला, इधर पासकी सच्ची रोटी भी विनष्ट हुई; हाथसे बाहर हुई। तब वह मूर्ख कुत्ता पछताता हुआ, चला गया। इसीप्रकार सिद्धान्तमें भास, प्रतिबिम्ब आदि देखकर साधक लोग भ्रमिक होकर धोखे-में पड़ जाते हैं। मनुष्य जन्म भी इधर व्यतीत हो जाता है; अपने हाथसे कर्त्तव्य बिगाड़ लेते हैं, जड़ाध्यासी होते हैं। उधर ब्रह्म-ईश्वरादि भी कुछ नहीं मिलते हैं, तब देह छूटनेपर नरजीव दुःखी होकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें चले जाते हैं। वहाँ उनको कोई बचाने नहीं आते हैं; असह्य कष्ट पाते रहते हैं॥ तीसरा और भी दृष्टान्त आया है, उसे भी सुन लीजिये!:—

(३) दृष्टान्तः—एक शहरमें रहनेवाले चार जनें ब्राह्मणोंमें घनिष्ट मित्रता थी। मेल-मिलापसे किसी प्रकार गुजारा करके वे रहते थे। परन्तु, वे लोग महान दरिद्र थे। पैसे-पैसेके लिये मुहताज थे। एक समयमें वे चारों जनें एकत्र होकर अपनी स्थितिपर विचार करने लगे। गरीबीके कारण दुःखी होकर उन लोगोंने सलाह किया कि, चलो भाई! हम चारों साथ ही परदेश चले जायें, वहाँ-से किसीप्रकार प्रयत्न करके धन कमा लायें, तभी अच्छी तरहसे जिन्दगी चलेगी; तब उन्होंकी सलाह मिल गई, राजी-खुशीसे विदेश जानेकी तैय्यारी करके एक दिन घर-द्वार, स्त्री-पुत्रादि परिवारों-को छोड़कर चुपकेसे वे निकल पड़े; और परदेश चले गये। चलते-चलते आगे-आगे बढ़ते-बढ़ते रास्ता-को तै करके उज्जयिनी नगरीमें जा पहुँचे। वहाँ क्षिप्रानदीमें स्नानादि कर्मसे निवृत्त होकर आगे बढ़े,

तो उन्हें एक मठ मिला। वहाँ गये तो भैरवानन्द नामक रसायन शोधन करनेवाले एक संन्यासीसे परिचय हुआ। उसने इनका सत्कार करके भोजन कराकर, फिर कुछ देरमें बात-चीतके प्रसङ्गमें उनका नाम, गाँव, आनेका कारण, उद्देश्य, गन्तव्य स्थान आदि बात एक-एक करके पूछा, तब उन चारोंने अपनी राम-कहानी-दरिद्रताके हाल कह सुनाया। धनकी खोजमें निकला हुआ बतलाया। फिर उन्होंने कहा कि, आपकी महिमा हम लोगोंने सुन रक्खी है; आप सिद्ध रसायनिक हैं, इसलिये हमलोग आपके पासमें आये हैं। आप कृपा करके धन मिलनेका उपाय बता दीजिये! फिर वह चाहे जितना कठिन कार्य होगा, तो भी हम उसे खुशीके साथ प्रयत्न करके करेंगे। नहीं तो हमारी मृत्युके सिवाय और कोई रास्ता नहीं है, इत्यादि विनम्र विनय किया, तो भैरवानन्दको भी कुछ दया आई। तब बहुत कुछ समझानेपर भी जब उन्होंने धनकी ही इच्छा प्रगट किया, तो उसने उन चारोंको कुछ युक्ति बताकर रसायनिक चार सिद्धिवर्तिकाएँ देकर कहा कि, देखो! अब यहाँसे सीधे मार्ग पकड़ कर उत्तराखण्ड हिमालय पर्वतकी तरफ तुम लोग चले जाओ! उस रास्तेमें जहाँ कहीं भी तुम्हारे हाथसे ये वर्तिकाएँ गिर जाएँ, तो वहाँपर अवश्य ही कोई-न-कोई खान-खजाना पाओगे। फिर उस जगह खोदकर जितना उठा सको, उतना धन लेकर जरूर घरको तुरन्त ही लौट पड़ना, तभी कार्य सिद्ध होगा, इत्यादि बात समझाकर उन्हें भेज दिया। उसीप्रकार वे लोग भी आगे बढ़ते चले गये। किसी एकदिन जब हिमालय पर्वतके पथमें वे पहुँचे, तो उनमेंसे एकके हाथकी रसायनिक चुम्बक बत्ती गिर पड़ी। वहाँपर खोदी गई, तो उसे ताँबाकी खान मिली। तब उसने प्रसन्न होकर तीनों साथियोंसे कहा कि, भाइयो! अब चाहे सब जनें यहाँसे जितना लगे, उतना ताँबा ले चलो! तब दूसरोंने कहा कि भाई! हमारी तो बत्ती यहाँपर नहीं गिरी है। हम तो आगे ही बढ़ेंगे। ताँबा लेकर हम क्या करेंगे? कितना भी ताँबा लेंगे, तो भी उससे गरीबी थोड़ी छूट जायगी? तुझे चाहिये, तो तू ही ताँबा ले ले! नहीं तो हमारे साथ आगे चले-चलो! उसने कहा— बस, मैं आगे नहीं जाऊँगा! ऐसा कहकर उठा सके, उतना ताँबा खोदकर वापिस उसे लेकर लौट पड़ा। बाकी और तीन जनें आगे बढ़ते चले गये। कुछ दूर जानेपर फिर एकके हाथसे बत्ती गिर पड़ी। वहाँपर खोदनेपर चाँदीकी खान मिली। उसने प्रसन्न होकर कहा कि, मित्रो! अब अपना काम पूर्ण हुआ, चाहे जितना चाँदी लेना चाहो, लेकर सब जनें घर लौट चलो! व्यर्थ कष्ट सहनेकी अब कोई जरूरत नहीं है। उन्होंने कहा, देखो! पहले ताँबा, फिर चाँदीकी खान मिली है, इससे निश्चय होता है कि, आगे सोनेकी खान मिलेगी। कितने भी चाँदी ले जानेपर भी हमारी दरिद्रता नहीं मिटेगी। इससे आगे चलो! उसने नहीं माना, सो उठा सके उतना चाँदी लेकर वह भी लौट पड़ा; और वे दो जनें आगे बढ़ते ही चले गये। फिर कुछ दूर पहुँचनेपर एकके हाथकी बत्ती गिर पड़ी। वहाँ खोदनेपर सोनेकी खान मिली। तब वह बहुत प्रसन्न होकर दूसरे साथीसे कहने लगा कि, भाई! हमारा अच्छा भाग्य रहा, सुवर्ण मिल गया। इससे बढ़कर और कोई धातु नहीं होते हैं। अब हम-तुम उठा सकें, उतना सुवर्ण लेकर घर लौट चलें! दूसरेने कहा— अरे मूर्ख! अभी तक तेरी समझमें कुछ नहीं आया। देख! पहले क्रमशः ताँबा, चाँदी, सोना, मिलता गया है, इससे सहज ही निश्चय होता है कि, आगे चलनेपर रत्नोंकी खान मिलेगी। यदि कहीं एक भी रत्न हाथ लग जायगा, तब तो जन्मभरकी दरिद्रता दूर हो जायगी। सोनेका बोझा लाद करके भी ले गया, तो उतना फायदा नहीं होगा। तेरी इच्छा हो, तो तू भी आगे बढ़े चल! उसने कहा— मैं तो अब आगे नहीं जाता, थक भी गया हूँ, मेरे भाग्यसे जो मिला, सो यही सुवर्ण ही लेकर जाऊँगा। हाँ! तुम जब तक न आओगे, तब तक यहाँ मैं ठहरा रहूँगा। तुम्हें आगे जाना हो, तो चले जाओ; परन्तु, जल्दी लौट आना। ऐसा कह करके एक तो वहीं बैठ गया; और दूसरा लालची-लोभी अकेले ही आगे बढ़ता चला गया। दिनके दोपहरका समय होनेसे तीव्र घामसे शरीर तप गया, थक भी गया;

और प्यास लगनेसे कण्ठ सूखने लगा, चित्त चञ्चल, व्याकुल हो गया। इधर-उधर पानीकी खोजमें भटकने लगा, सीधा रास्ता छूट गया; और भूलसे जङ्गली रास्तामें चला गया, घूमता-फिरता उस जगहमें वह पहुँच गया, जहाँपर कि, एक पुरुष रक्तसे लथ-पथ हो बड़ा कष्ट पाकर बैठ रहा था; और उसके मस्तकपर एक महाचक्र तीव्र गतिसे घूम रहा था। उसे ऐसी अवस्थामें देखकर आगन्तुकको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह पथिक ब्राह्मण कौतूहलवश झट-पट उसके नजदीकमें आकर उससे कहने लगा कि-क्यों भाई! तुम कौन हो? इसतरह यहाँ तुम क्यों बैठ रहे हो? और तुम्हारे मस्तकपर यह चक्र क्यों घूम रहा है? अच्छा पहले यह तो बताओ कि, यहाँ कहीं पानी मिलता भी है कि, नहीं? मुझे बड़ी प्यास लग रही है। उस ब्राह्मणके ऐसे प्रश्न करनेपर उस स्थानीय पुरुषने अपने मस्तकपर घूमनेवाला घनचक्रको उस ब्राह्मणके ही मस्तकपर पटक दिया, तब तो उसीके शिरपर वह चक्र वेगसे घूमने लगा। ऐसा देखकर घबड़ा करके आगन्तुकने कहा कि, अरे भाई! तुमने यह क्या किया? मेरे शिरपर यह घनचक्र क्यों डाल दिया? इसको उतारो! उस स्थानीय पुरुषने उत्तर दिया कि, यहाँका यही नियम है। मैं इसे नहीं उतार सकता हूँ! इसीप्रकार मेरे शिरपर भी वह चक्र आया था, अच्छा हुआ कि, तुम आज यहाँ आ गये। पथिक ब्राह्मणने पूछा कि, तो आखिर यह उतरेगा कब? उसने उत्तर दिया कि, जैसे तुम हमसे पूछने आया था, उसीप्रकार और कोई जब तुमसे पूछने आयेगा, तब तुम भी इसीतरह उसे उतार सकोगे। मुझे यहाँ रहते अब तक अनेकों वर्ष बीत गये। यह कठिन काल-चक्र हमारे शिरपर अहोरात्र घूम रहा था। अब तुम हमारे उत्तराधिकारी बनकर आ गये। इस चक्रको तुम सम्हालो! जब कोई और उत्तराधिकारी ऐसे ही तुमसे भी प्रश्न करने आवेगा, तब यह घनचक्र उसपर डालकर अवकाश ग्रहण करना। तुम इसी घेरेमें घिरे रहो, मैं तो अब जाता हूँ, ऐसा कहकर वह पुरुष उठकर चला गया; और आते-आते रास्तेमें बैठा हुआ सुवर्ण सिद्धि ब्राह्मण मिला, उन दोनोंमें बात चीत हुई, उस ब्राह्मणके महाफाँसमें फँसनेका, कालचक्र शिरपर घूमनेका इत्यादि बातका सब वृत्तान्त उससे कह सुनाया; और दीर्घ काल तक उस बन्धनसे वह नहीं छूट सकेगा, यह भी बतला दिया। वह तो साथीके असन्तोषके कारण घनचक्रमें फँस जानेका हाल सुनकर उसे छुड़ाना अपने सामर्थ्यके बाहर समझकर पछताता हुआ दुःखी होकर वह वहींसे सुवर्ण लेकर घर लौट पड़ा। इसप्रकारसे वह असन्तुष्ट ब्राह्मण नष्ट हुआ॥

यह तो एक दृष्टान्त हुआ, अब इसका असली सिद्धान्त ऐसा है कि- महानगरी संसारमें सत्यज्ञान-रूप धनसे हीन मनुष्य दरिद्र बने हैं। उनमें वेदको माननेवाले सनातनी उक्त चार ब्राह्मणोंके समान हुए। ज्ञानधन प्राप्त करनेके लिये वे परदेशरूप=पराया उपदेश गुरुवालोगोंके घेरामें चले गये। संन्यासी-के समान पण्डित वेदवेत्ता लोगोंसे मिले, उन्होंने चार फल, चार मुक्ति आदि धन प्राप्तिके लिये चार मार्गका उपदेश, दीक्षा-शिक्षाकी बत्ती उन्हें पकड़ा दिया, और हिमालयरूप चार धाम, तीर्थयात्राको भेज दिया। वे उसी वेद प्रमाणसे चलते-चलते आगे बढ़े। पहला कर्ममार्गमें उसकी बत्तीरूप बुद्धि गिरी, तो वहाँ रुक गये; ताँबाके समान 'कामना-फल'को लेकर सालोक्य मुक्तिमें लौट पड़े। दूसरे उपासना मार्गमें अटक गये, तो चाँदीवत् 'धर्म-फल' को लेकर सामीप्य मुक्ति मान लिये। तीसरे योग मार्गमें समाधि लगाकर बैठ गये, सुवर्णवत् 'अर्थ-फल' ऋद्धि-सिद्धिकी आशा ज्योति दर्शनादि-से सारूप्य मुक्ति प्राप्ति ठहराये; और चौथे ज्ञानीलोग इन सबसे आगे बढ़े, तो ज्ञान मार्गमें भटकते-भटकते बहुत दूर निकल गये; 'मोक्ष-फल' पाकर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे, सो नहीं हुआ। नरजीवनके दोपहरमें कल्पनाके घामसे सन्तप्त होकर परमानन्दकी प्याससे इधर-उधर भटक करके आगे विज्ञानी परमहंसके पासमें पहुँचे। उनको पशुसे भी बढ़कर अघोरी चालके घनचक्रमें घूमते हुए देख करके बड़े आश्चर्यित होकर उनसे ब्रह्म-स्थितिके बारेमें प्रश्न किये। उन्होंने धोखारूप महाचक्र वाणीका कल्पना भ्रम सोई घनचक्र अपने शिररूप अतःकरणसे निकालकर उनके

ऊपर उपदेश द्वारा पटक दिया। एक अद्वैत व्यापक ब्रह्म बना दिया। तब उसने पूछा कि— "मैं भव-बन्धनोंसे कब मुक्त होऊँगा?" वेदान्तीने कहा- जब मेरे समान अद्वैतवादी अघोरी होओगे, तब इसीप्रकार तुमसे भी कोई अधिकारी शिष्य पूछने आवे, तो तुम भी इस वाणी कल्पना-धोखेका घनचक्र उसपर डाल देना। तब तक ब्रह्मज्ञानका मनन करते रहो! ऐसे समझा करके मर गये; अध्यासवश वे चौरासी योनियोंमें समा गये। शुद्ध पारखबोधकी हंस स्थिति हुए बिना उन किसीकी भी मुक्ति नहीं हुई; और सब प्रकारसे शुभाशुभ कर्म बना करके अपने खाये वा ग्रहण किये। कोई बहुत प्रकारसे वेदान्तका विचार करके सच्चिदानन्द ब्रह्म भी हुए, तो भी आवागमनादि महाचक्रसे छूट नहीं पाये। अतएव उन गुरुवालोगोंके जालोंमें कभी नहीं पड़ना चाहिये। पारख विचारसे स्थिर होना चाहिये॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ४७ ॥ ❀ ॥

साखीः— बिनु डाँडे जग डाँड़िया * सोरठ परिया डाँड़ ॥

[३०८] बाट निहारे लोभिया * गुरते मीठी खाँड़ ॥ १७३५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! जीवके ऊपर शिव माना हुआ कोई ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, यम आदि दण्ड देनेवाला सुख-दुःख दाता कोई दूसरा कर्त्ता तो नहीं है। अपने-अपने किये हुए कर्मोंका फल ही सब जीव पा रहे हैं। जबर्दस्ती किसीने आकर जीवोंको दण्ड-दुःख नहीं दिया है, तो भी जगत् जीवोंको दण्ड-दुःख भोग भोगना पड़ रहा है। सो अज्ञानता, मूर्खताके कारणसे ही है। तहाँ सोरह ठिकाने डाँड़ पड़ा। सो नित्य, नैमित्य, काम्य, प्रायश्चित्त और निषिद्ध, ये पाँच कर्म, वे कर्मके दण्ड हैं; सगुण-निर्गुण भक्तिमें विरह, तपस्याका दो दण्ड, अष्टाङ्ग योगमें शीतोष्ण, क्षुधा-तृषादि सहन करनेका आठ दण्ड; और एक दण्ड ज्ञानमार्गका मिला करके सब सोलह ठौरका डाँड़ साधकोंको वाहियातकी उपाधि आ पड़ी। लोभिया=लालची जीव चार फल, चार मुक्ति आदि मन चाही वस्तु पानेका रास्ता देखते रहते हैं। उसे प्राप्त करनेके लिये नाना साधनाएँ किया करते हैं। गुर=जगत् विषयानन्द सुखसे बढ़कर अत्यन्त मीठा ब्रह्मानन्द सुखको खाँड़के समान समझकर उसे प्राप्त करना चाहते हैं; धोखा-खाँचमें गिरते हैं॥

अथवा जैसे जुवारीको किसीके दण्ड दिये बिना भी स्वयं जूवा खेलकर हार करके आप ही डाँड़=नुकशान उठा लेते हैं। सो कैसे कि, सुनिये! सोरठ=अंगरेजी चालमें जूवेको सोरठ कहते हैं। इंगलिस भाषामें उसे "लॉटरी" भी कहते हैं। सो किसी माल=धन-सम्पत्ति या नियमित धन-राशिपर सोरठ कायम करके 'बाँटनी' लगा करके चिट्ठी डालते हैं। जैसे कि, तीन श्रेणी किये- पहला दश हजार, दूसरा पाँच हजार, तीसरा एक हजार पावेगा; यह घोषित करके पचास हजार वा उससे भी ज्यादा चिट्ठी, रसीद-पत्र छाप करके बाँटे। तहाँ एक रुपयेमें एक चिट्ठी बेंचे; रसीदमें पूरा नाम-पता लेनेवालेका लिखते हैं। फिर सब चिट्ठी बिक जानेपर एक दिन मुकर्रर करके वह बेंचा हुआ पत्रका आधा भाग नाम-पताके सब रसीद-पत्रको एक बड़ा बाक्स या कोई उपयुक्त बर्तनमें डाल करके सबको एकमें गोल-मालसे मिलाकर हैंडिलसे उसे घुमा-फिरा कर पीछेसे उसके मुखके ऊपरमें जो चिट्ठी आई, उसे पढ़कर सुनाते हैं। फिर जिसके नामकी वह चिट्ठी निकली, वह तो सोरठके जूवाको जीत गया। तीन नम्बर तक आनेपर नियत धन-राशिको वह पाता है; और जिन-जिनके नामकी चिट्ठी नम्बरमें नहीं निकली, सो अपना दिया हुआ मूल रुपयारूप बाँटनी भी हारा, तथा सोरठ भी व्यर्थ गया, कुछ हासिल न हुआ। कहीं इस जूवेका नाम 'चिट्ठाका खेल' भी कहते हैं। तैसे ही सिद्धान्तमें इस जगत्में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, इन चार पदार्थोंपर सोरठकी लालच पड़ी। सो सोरह ठिकाने जाकर जीवोंने डाँड़ खाया। गुरुवालोगोंने कहा कि, हे मनुष्यो! तुम लोग जिस-जिसको चार पदार्थोंमेंसे जो-जो फल चाहिये, सो-सो ले सकते हो। उसके लिये तुम लोग अपनी-अपनी शक्तिभर प्रयत्न करके कर्म, उपासना, योग, ज्ञानादिकी साधना करो! इस नर-

जन्मको बाँटनीके समान परमार्थमें ईश्वर-स्मरण करनेमें लगाओ। फिर समयपर जिसका पुण्य कर्म उदय होगा, सो अवश्य चार मुक्तिको पायेगा। जो पहिला नम्बरमें आयेगा, सो ब्रह्मज्ञानसे अद्वैत स्थिति करके कैवल्य या निर्वाण मोक्षको पायेगा, इत्यादि महिमाकी वाणी गुरुवालोगोंने वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे बतलाया है, सो रोचक वाणी सुन-सुन करके संसारमें मनुष्योंको खूब लोभ-लालच बढ़ी। तब सबोंने साधनाकी सोरठमें तन, मन और धनादि बाँटनी=पूँजी लगाया; और प्रतिक्षा करके रास्ता देखने लगा कि, हम कब जीतेंगे? कब हमें मनमानी सुख मिलेगा? परन्तु, लोभिया जीवोंने उसी सब प्रपञ्चोंमें लगते-लगते नरजन्म हार दिया वा आयु खो दी। फिर देह छूटा, तो चौरासी योनियोंमें नाना देह धरकर दुःख भोगनेकी उलटी डाँड़ पड़ गई। परन्तु, सो वह दण्ड तो जीवोंको किसीने नहीं दिया है; अपनी ही खुशीसे नाना कर्त्तव्य कर-करके अध्यास टिका करके वह दण्ड पाये या पा रहे हैं। 'गुरते मीठी खाँड़' मान करके 'लोभिया' ने दाव हारा है। तहाँ गुर=जीवको, खाँड़=ब्रह्मको ठहरा करके जीवसे बड़ा ब्रह्मको माना है; और अविद्या वेष्टित मायाके-वश मलिन 'जीव' है। शुद्ध ब्रह्म सर्वाधिष्ठान मायाधीश निर्मल 'शिव' है, ऐसी अनुमान-कल्पना जगत्-जीवोंमें खड़ी हुई। सो मिथ्या महिमाकी वाणी सुन-सुन करके जीवोंको लोभ लगा, तो लोभी बनकर नरजन्मकी बाँटनी वे व्यर्थमें हार गये। गुर=जगत्के सुख विषयानन्दादिको अनित्य, नाशवान् क्षणिक जानकर किसीने उसे छोड़ा; और खाँड़=ब्रह्मपदके सुख-आत्मानन्दादिको नित्य, अविनाशी, स्थायी, अखण्ड, मानकर उसे ग्रहण किया। परन्तु, यह मिथ्या मानन्दीमात्र होनेसे उससे जीवकी स्थिति कुछ नहीं हुई। कर्त्तव्य बिगाड़ करके हंसपदको हारकर जड़ाध्यासी होकर जन्म-मरणादिमें पड़े और पड़ ही रहे हैं, बिना पारख ॥ १७३५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- ६१ ॥ [चौपाई— १२। साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. सर्व कला शाखा यम मूला * सो वशि जीव सहै बहु शूला ॥ १७३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें चौंसठ कलादिसे ले करके और जितने भी कला-भाग प्रगट हुए हैं, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि ग्रन्थ, सो सर्व कलाएँ शाखा=डालियोंके समान कार्य-भाग हैं। उसका मूल=जड़के समान मुख्य कारण तो एक वाणी कल्पना ही है। यम=गुरुवालोगोंने अनेक युक्ति-प्रयुक्तिसे जमा कर-करके वह वाणी-जाल ही तैय्यार किया है। अथवा सर्व जगत्के विषयोंकी कलाएँ शाखारूप हैं, उसका मूल-कारण यमरूपी स्त्रियाँ ही हैं। सो खानी-वाणीके बीज-वृक्ष, कला-कल्पना, अध्यास मुख्य करके मनमें जमा हुआ दृढ़ हो करके पड़ा है। उसीकी मोह-आसक्ति, संस्कारसे बन्धनके वशीभूत हो करके सब जीव चारखानी चौरासी योनियोंमें बहुत ही शूल=असह्य दुःख, त्रिविधि तापोंके कष्ट-क्लेश सहे और सह रहे हैं। पारख बोध न होनेसे स्वयं ही नाना कर्त्तव्य करके उन जालोंमें फँसकर फिर परवश होकर शूल सहा करते हैं। इसप्रकार अनादि कालके जगत्में जीवके अनन्त जन्म व्यतीत हो गये। अनेकों बार मनुष्य देह पाये, तथापि कोई नहीं चेते; पारख स्थितिको नहीं पाये। इसीसे यम-जालसे भी नहीं छूटे। अभी नर देहमें जो कोई जिज्ञासु चेतेंगे, पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर निजपद पारखमें ठहरेंगे, सो कोई बिरले ही यम जालोंसे छूटकर मुक्त होवेंगे ॥ १७३६ ॥

२. सब विधि पिण्ड ब्रह्माण्ड नशाई * महाशून्यमें रहत समाई ॥ १७३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारख बोधके बिना भ्रमिक हो करके जीव सब, सब प्रकारसे पिण्डमें स्त्री-भोग, पञ्च विषयासक्तिमें पड़कर नष्ट हो गये हैं; और ब्रह्माण्डमें पञ्चकोशकी वाणी कल्पनामें पड़कर विनष्ट हुए हैं। महाशून्यरूप भग-भोगमें संसारी लोग समाये हैं; और शून्य-समाधि लगाकर महाकाशवत् ब्रह्म मान करके परमार्थी लोग उसमें समाये हैं। देहान्तमें वे दोनों गर्भवास-में जाकर समाये और समा रहे हैं। अथवा कोई पिण्डमें कर्म, उपासनादिकी साधना करनेमें लगे हैं,

और कोई ब्रह्माण्डमें योग, ज्ञान करके चढ़ने लगे हैं। वे सब तरहसे धोखेमें पड़कर मनुष्यपद हंस रहनीसे नष्ट-भ्रष्ट हुए हैं। अन्तमें विज्ञानमार्गसे कैवल्य ब्रह्म-स्थितिमें पहुँचकर महाशून्य=झाँई, धोखेमें समा करके चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही पड़े रहे। निज स्वरूपके ज्ञान बिना महा अज्ञान जड़वत् मूढ़दशाको ही प्राप्त हुए हैं ॥ १७३७ ॥

३. पुनि सोइ भाँति जगत निर्मावै * साँझ सबेरा प्रगट देखावै ॥ १७३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर उसीप्रकार कल्पनासे ही जगत्की उत्पत्तिका कथन करके वाणी निर्माण करते हैं। निरञ्जन ब्रह्ममें "एकोहं बहुस्याम्"की इच्छा=स्फुरणा सर्व प्रथम हुई, तब सबेरा=ज्ञानस्वरूप ब्रह्मसे ही सारे जगत्की सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। फिर कालान्तरमें ब्रह्मने जगत् विलय करनेका चिन्तन किया, तो साँझ=अज्ञानरूप महामाया प्रगट हुई, उसने महाप्रलय करके अँधियारा वा शून्य कर दिया। इसप्रकार साँझ-सबेरा=ज्ञान-अज्ञान, ब्रह्म-जगत्, उत्पत्ति-प्रलयादिका वर्णन वेदादि वाणीमें प्रगट करके गुरुवालोग जीवोंको दिखला रहे हैं। उसे ही पढ़ा, सुना, गुना करके भुला रहे हैं। सत्यको छिपा करके असत्यको ही प्रगट कर रहे हैं ॥ १७३८ ॥

४. आदि अन्त मध्य बहुत सँवारा * तामें जीव एक परा बेचारा ॥ १७३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालके जगत्में जड़ाध्यासवश जीव सब आवागमनमें भटक रहे हैं। तहाँ पूर्वके संस्कारसे आदिमें नर देहकी उत्पत्ति हुई, मध्यमें तरुण होनेपर बुद्धि तीव्रतासे चञ्चल हुई, तो अनादि जगत्का भेद न पाकर जगत् उत्पत्तिकी भी कल्पना किये कि, कोई एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरने शुरूमें जगत्की सृष्टि की होगी; और फिर अन्तमें महाप्रलय होकर जगत् सब परब्रह्ममें ही मिल जायगा। वही ब्रह्म ही सबका अधिष्ठान कारण ज्यों-का-त्यों रहेगा। इसप्रकार आदि-अन्त=जगत्-ब्रह्म, जन्म-मरण, उत्पत्ति-प्रलय, शुरू-आखिरी इत्यादि, इन्हीं सबके मध्यमें या संसारके बीचोंबीचमें बहुत ही वाणी-खानी जालोंको बनाकर तैय्यार किया है। स्त्री, पुत्र, धन-जनादि संसारके प्रपञ्च, देवी-देवता, भूत-प्रेत, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, सात लोकादि अनेकों वाणीके प्रपञ्च खड़ा करके उसे सजा रक्खे हैं। दोनों तरफ जाल बिछा रक्खे हैं। बेचारा अकेला जीव बिना पारख उन्हीं सब मोटी-झीनी मायाके फन्दोंमें फँसकर महान दुःख भोग रहा है। बीजक, साखीः— २११ में श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा भी हैः—

साखीः—"बहु बन्धनसे बाँधिया, एक विचारा जीव ॥ की बल छूटै आपने, कीरे छुड़ावै पीव ॥"

एक पारख दृष्टिके बिना जीव एकाएकी जा-जा करके उसी जालमें अरुझकर आदि=जन्म, अन्त=मरण, और मध्य=गर्भवासमें वा गर्वमें जाते हैं, बहुत प्रकारसे दुःख पाते हैं। जो कोई मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आकर गुरुबल पारखसे परख पाते हैं, वे ही उन जालोंसे छूट जाते हैं। नहीं तो और अविचारी जीव सब उसीमें ही पड़े रहते हैं ॥ १७३९ ॥

५. जो यह काल जाल लखि पावै * झाँईं गाँसि सब दूरि बहावै ॥ १७४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जो कोई मुमुक्षु नरजीव सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके सत्योपदेश श्रवण करके सत्सङ्ग-विचार, विवेक द्वारा यह काल=जीवोंको संहार करनेवाले विकराल गुरुवालोग तथा स्त्रियोंके छल, कपट, धोखा आदि विकारोंसे भरे हुए वाणीजाल और खानीजालोंको महान बन्धनरूप जानकर यथार्थ दिव्यदृष्टिसे लख पायेंगे, अच्छी तरहसे जब उसके सब भेदको जान जायेंगे, तब झाँईं=गाफिली, मोह-आसक्ति, ब्रह्म-ईश्वरादि तरफकी और स्त्री-पुत्रादि विषय तरफकी दोनों ही गाँसि=गाँठी, बन्धन, जालोंको खोल-खोलकर तोड़ताड़कर बिगाड़ करके उसे दूर फेंक देंगे। मोहासक्तिको अपने पास कभी भी नहीं रक्खेंगे। ब्रह्मानन्द और विषयानन्दादिको महाबन्धनरूप जानकर उसे दूर छोड़ देंगे या उससे बहुत दूर रहेंगे। इसकारण काल-जालको लखनेके लिये पारख बोध प्राप्त करना चाहिये ॥ १७४० ॥

६. आशा पारख पारख बासी * जीवन जीव सदा सुखरासी ॥ १७४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सन्त सर्व आशा-तृष्णा, वासनाओंको हटा करके निराश वर्तमानमें निज पारख स्वरूपकी स्थितिमें ही निवास किये हुए स्थिर रहते हैं। वे जीते ही सर्व बन्धनोंसे रहित सदा जीवन्मुक्त सुखराशिमें ही शान्त रहते हैं। 'पारख' ही जीवों-का 'जीवन' है; और जड़ाध्यास ही 'मरण' कहलाता है। जिन्होंने पूर्वके और अभीके जड़ाध्यासोंको मिटाकर निजस्वरूपमें स्थिति की है, वे जीव जीवन्मुक्त सुखी होते हैं। ऐसे सच्चे पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें पारखबोध प्राप्तिकी आशासे जो जिज्ञासु नरजीव आते हैं, और शिष्यभावसे उनकी सेवा करते हुए जो उनके पास या समीपमें निवास करते हैं, उन सारग्राही जीवोंको जीवन-धन विवेक, वैराग्य, बोधभाव, सत्य, दयादि सद्गुण हंसरहनी-रहस्य प्राप्त हो जाता है। उसे पूर्णतासे धारण करनेवाले पुरुषार्थी हंस-जीव सदाके लिये भव-बन्धनोंके दुःखोंसे छूटकर सुखकी राशिके समान जीवन्मुक्त हो पारखपदमें पहुँच जाते हैं ॥ १७४१ ॥

७. आशा पारख बरते जबहीं * काल फाँस नहिं व्यापै तबहीं ॥ १७४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! भूत-भविष्यकी समस्त आशा, तृष्णा, कामना, मानन्दी आदिकोंका परित्याग करके वर्तमानमें ही सिर्फ पारखबोध प्राप्त करके भव-बन्धनोंसे छूटनेकी आशासे जो कोई श्रद्धालु नरजीव पारखी साधु-गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगीमें जब बर्तते हैं या लगे रहते हैं। तभी उन्हें पूर्ण पारखबोध प्राप्त होता है। तब उन्हें काल=मन, गुरुवालोग और स्त्री आदिकोंके फाँस=विषय जालोंमें काम, क्रोध, मोहादिकी फन्दा तथा वाणी जालोंमें कल्पना, अनुमान, भास, काल, सन्धि, झाँई आदिकोंकी फँसावट कोई भी नहीं व्याप सकती है या कोई जालमें वे नहीं फँसते हैं। उसका असर उनपर नहीं होता है। पारखी सन्तोंपर कालका एक भी फाँस नहीं लग सकता है। इसवास्ते पारख बोधका आसरा या आधार पकड़ करके ही बर्तना चाहिये ॥ १७४२ ॥

८. आदि अन्तकै पारख पावै * सोई यमपर अदल चलावै ॥ १७४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदि-अन्त=जगत्-ब्रह्म या खानी-वाणी, मोटी-झीनी, शुरू-आखिरी, इन सबका वासना जड़ाध्यास ही जीवोंको जन्म-मरणादि चौरासी योनियोंके चक्रमें नचानेवाला दुःख भोगानेका मूल कारण है। ऐसा सत्यन्याय-निर्णयसे यथार्थ परखकर जिन्होंने अपरोक्ष करके निजस्वरूप बोधको जान पाया, समझ पाया या ऐसे पारख बोधको जो जान पाते हैं, सोई सच्चे शूर, वीर, धीर, कायावीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारखी सन्त यमरूप मनपर अपना अदल=हुकूमत चलाते हैं। मनको वश करके दबाये रखते हैं। मनमें जमा हुआ अभ्यास सबको निकाल करके फेंक देते हैं; और स्त्री तथा गुरुवालोग, इन बाहरी यमोंपर भी नियमसे कायदा-कानून लगा करके अपने अदल=सर्वोच्च सत्ता-शासनसे दमनकर आज्ञामें उन्हें चलाते हैं। फिर उन्हें कोई धोखा देकर ठग नहीं सकते हैं, सबके भेदको पारखी सन्त जानते हैं। उनके अदलमें ही सबको चलना पड़ता है; और यमका मद-मर्दन करके स्ववश करनेवाले सोई महाबलिष्ठ पारखी साधु होते हैं ॥ १७४३ ॥

९. आप बचै और जीव बचावै * जो समुझै तेहि बन्दि छोड़ावै ॥ १७४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! समस्त भूमण्डल या संसारमें परम पुरुषार्थी, सत्यशोधक महापुरुष आप ही सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए। जिन्होंने स्वयमेव पारख स्वरूपके अपरोक्ष बोधको प्राप्त करके सब काल-जालोंसे अपने आप बच गये। वही पारख बोध देकर अन्य जिज्ञासु नरजीवोंको भी बचाये। बन्दीछोरके उपदेशको जिन-जिन्होंने समझा, उन सबोंका भी बन्धन छूट गया या छुड़ा दिये। अथवा वही गुरुबोध पारखज्ञानको वर्तमानमें भी जो दृढ़तासे ग्रहण वा धारण किये हैं। सो पुरुष अपने आप तो काल-जाल खानी-वाणी सम्बन्धी सब भव-बन्धनोंसे

बचे या बचे ही रहते हैं। फिर और जो कोई जिज्ञासु नरजीव उनके शरण-सत्सङ्गमें आये या आते हैं, उन्हें भी यथार्थ रीतिसे विषय-जाल तथा वाणी-कल्पनामें कसर दिखलाकर काल-जालोंके घेरासे बाहर निकालकर बचा देते हैं। आवागमन फेरासे अपने बचकर दूसरोंको भी बचाते हैं। वे तरण-तारण भवभय हरण, बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी पारखी सन्त कहलाते हैं; और जो भी मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य उपदेश बीजकके ज्ञानको सत्सङ्ग-विचारसे भलीभाँति समझ लेते हैं, उनके भी मोटी-झीनी मायाके बन्धन सब छुड़ा देते हैं। यानी पारख बोधको समझनेपर सब बन्धनके घेरारूप तार टूटकर जीव छूट जाते हैं वा मुक्त हो जाते हैं ॥ १७४४ ॥

१०. यम पछताइ हारि मुख गोई ❀ पारख पाय परमपद सोई ॥ १७४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यमरूप मन, स्त्री तथा गुरुवालोगोंने जब देखा कि, उनके द्वारा फँसाकर रक्खे हुए जीव एक-एक करके पारख बोधके बल पाकर उनके जालोंसे निकल-निकलकर निर्भय हो करके चले जा रहे हैं। तब तो वे बहुत क्रुद्ध हुए; पहले कटु वचन कहकर डरा-धमकाकर गाली-गलौज किये। उतनेपर भी नहीं माना, तो नाकाबन्दी करके लड़ाई-झगड़ा करने लगे; यमलोकका डर बताये, शाप देनेको तैय्यार हुए। फिर तो तहाँ पारखी सन्त श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, साखीः— ३०८ में कहा है किः—

साखीः— "साँचे श्राप न लागै, साँचे काल न खाय ॥ साँचहि साँचा जो चलै, ताको काह नशाय ॥"

यह पद कहकर गुरुवालोगोंको डाँट-फटकारकर उलट पड़े। यमने देखा कि, अब तो इनसे हमारा वश ही नहीं चलता है, ज्यादा लड़ेंगे, तो हम ही मारे जायेंगे या और बहुत-से लोग भी उधरसे निकल-निकलकर भाग जायेंगे। यह विचारकर हार मानकर मुख छिपा करके भागकर घर-में चले आये। फिर बहुत पछतावा करने लगे, दुःखी हुए। जबसे हारे तबसे पारखी सन्तोंसे मुख छिपाकर ही रहने लगे। पारखपदकी प्राप्ति करना ही सोई परमपद पाना है; और पारखपद सर्वोपरि मुक्तिका धाम, सर्वोच्च स्थिति है। वही यथार्थतः परमपदरूप जीवन्मुक्तिका प्रधान पद है। उसी पदमें अन्तिम तक ठहराव करके देहान्त होनेपर फिर सदाके लिये उपाधि रहित, विकार रहित, विदेहमुक्तिमें जीवका स्वच्छ-पारखपदमात्र रह जाता है। सोई नित्य-मुक्तपद, महानपद परमपद कहलाता है। नरदेहमें सब प्रकारसे पुरुषार्थ करके उसी पारखपदमें स्थिति करनी चाहिये ॥ १७४५ ॥

११. जेहि प्रसाद छूटे यम फाँसा ❀ रहै न एकौ वाके गाँसा ॥ १७४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिन्होंको यम-फाँससे छूटनेकी अभिलाषा हो, वे पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर गुरुकृपाको प्राप्त करें; और बन्दीछोर श्रीसद्गुरुके कृपा-प्रसादसे जिन जिज्ञासुओंको पारख बोध हो जाता है, फिर वे यम=गुरुवालोग और स्त्रियों-के फाँसरूप विषय जाल, वाणी-कल्पनाओंसे छूट जाते हैं। उन मुमुक्षुओंके पासमें फिर कोई एक भी संशय, वाणी-विषयादिका ग्रन्थि-सम्बन्ध, जोड़, बन्धनोंका गाँस कुछ भी बाकी नहीं रहता है, सब छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। उन्हीं कृपालु, श्रीसद्गुरुकी सेवा-बन्दगीमें जीवन पर्यन्त लगे रहना चाहिये ॥ १७४६ ॥

१२. परख विलास मगन मन अपने ❀ संशय भरम कलेश न सपने ॥ १७४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सत्यन्यायी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-धाममें सदा नित्यप्रति पारख निर्णयका विलास, विवेक-विचार, बोध, वैराग्यादिका रमण, सुख, विहार, हंस रहनी सद्गुणका धारण, मनोविकारका मारण, मानन्दीका जारण, भवसागरसे तरण-तारण होता रहता है। इसलिये मनकी समस्त चञ्चलताएँ मिटा करके अपने निज चैतन्य स्वरूपमें ही स्थिति कायम करके मग्न, सन्तुष्ट, शान्त, सुखी रहते हैं। इसवास्ते ऐसे जाग्रत्, सावधान, पारखी सन्तोंके मनसे ब्रह्म-ईश्वरादिका संशय, जगत्कर्त्ता, सुख-दुःख दाता आदिका भ्रम, ब्रह्म और

विषय आनन्दोंकी मानन्दी-कल्पना, भास-अध्यासादि सब पारखके प्रतापसे मिट जाते हैं। अतएव संशयसे उत्पन्न होनेवाले भूल-भ्रम जाग्रत्वत् दीर्घकाल तक रहनेवाले ऐसा तो कौन कहे, स्वप्नवत् क्षणिक भासमात्र भी नहीं रहता है, जरा-सी लेशमात्र भी भ्रम-भूल उनमें नहीं रहती है; उन्हें ही पारखी सन्त जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १७४७ ॥

साखीः— रामरहस साहेब शरण ❀ अभय अशङ्क उद्योत ॥

[३०९] आवागमनकी गम नहीं ❀ भोर साँझ नहिं होत ॥ १७४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जब मैं बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारख बोधवान् पारखी श्रीसद्गुरु साहेबकी चरण-शरणमें गया, तब श्रीसद्गुरुकी दयासे अपूर्व पारख ज्ञान बोधको मैंने पाया। जिससे सब मिथ्या भय भ्रम-भूलसे छूट करके निर्भय, अशङ्क हुआ; और पारख ज्ञानरूप सूर्यका उद्योत=प्रकाश हृदयमें हुआ, तभी अज्ञान-अन्धकार, अविद्या मिट गई। यथार्थ स्वरूपकी स्थिति हुई। फिर तो पारख बोधके प्रतापसे सब कसर-खोट, सारासार परखनेमें आ गया है। सो इसीप्रकार मेरे समान ही जो कोई जिज्ञासुजन सत्य श्रद्धा-भक्तिसे पारखी श्रीसद्गुरु साहेबके शरणागत जब होवेंगे, तब श्रीसद्गुरुकी दयासे राम=रमैया चैतन्य जीवका, रहस=रहस्य, भेद, मतलब, भाव, सार सत्यासत्य पारखको जान पायेंगे; और अच्छीतरहसे मनमें पारख-प्रकाशके उदय होते ही गुरुवालोगोंके लगा रक्खे हुए सब शङ्का-डर, भ्रम, धोखे आदिका एकदम विनाश हो जायगा। जैसे सूर्योदय होनेपर रात्रिका अन्धकार नष्ट हो जाता है, तैसे ही पारख बोध होनेपर भी सब भूल मिट जाती है। निर्भय, निःशङ्क, शान्त, स्व-स्वरूपमें स्थिति हो जाती है। आवागमनमें पड़े हुए लोगोंको उस जीवन्मुक्त-स्थितिका गम=मालूम नहीं हो सकता है। क्योंकि, पारखपद आवागमनादिसे रहित स्थिरपद है। इसीसे कहीं जाना-आना, बनना-बिगड़ना, कार्य-कारण होना, ऐसा गम=बुद्धिका विकार मार्ग वहाँपर लगा नहीं रहता है, बेपारखी लोगोंकी वहाँ पहुँच ही नहीं होती है; और भोर=ब्रह्मज्ञान, उत्पत्ति, जन्मनादिके शुरू वा सवेरा है, तथा साँझ=माया, अज्ञान, प्रलय, अस्त, मरणादिकी आखिरी वा सन्ध्या भी जहाँपर नहीं होती है, सोई अचल गुरुपद स्थिर मुक्तिकी भूमिका है। कोई बिरले ही भाग्यवान् परम पुरुषार्थी नरजीव वहाँ तक पहुँच पाते हैं ॥ ॥ १७४८ ॥

साखीः— नाशकके सब रूप हैं ❀ रहै तेहि मध्य समाय ॥

[३१०] कष्ट विविधि विधि पावते ❀ पारख लीन्ह छोड़ाय ॥ १७४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग जीवोंके बुद्धि-विवेकादि हंस रहनी सद्गुणोंको विनाश करनेवाले होनेसे वे ही नाशक=घातक, काल बने हैं। वेद-शास्त्र, पुराण-कुरानादि वाणी ग्रन्थ तथा षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्ड खानी वा पन्थादि सब प्रचण्ड उन्हींके स्वरूप नाना मत, सिद्धान्त, जगत्में प्रगट हुए हैं; और पिण्ड-ब्रह्माण्डमें चराचरके सब स्वरूप उसी नाशक=ब्रह्मके ही रूप मान रहे हैं। उसी ब्रह्मका भ्रम तथा विभिन्न पन्थ-पन्थाईके सिद्धान्त, अनेक मानन्दीके मध्यमें सब मनुष्य जीव समा रहे हैं, हिल-मिलकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। अनेक साधनाएँ करनेमें अभी दुःखी हुए, और जड़ाध्यासी हो करके चारखानीमें तन धर-धरकर विविधि प्रकारके कष्ट-क्लेश नाना तरहसे त्रिविधि तापादि दुःख भोग पाये वा पा रहे हैं या पाते हैं। पहले मैं भी ऐसे ही नाना कष्टमें पड़ा था, अनेकों तरहसे दुःख पा रहा था। पारखी बन्दीछोर श्रीसद्गुरु साहेब जब मिले, तब मुझे अपनी शरणमें लेकर उक्त काल-जालोंको परखाकर छुड़ा दिये या पारखी श्रीसद्गुरुदेवने हमें उन कष्ट जालों-से छुड़ाकर अपनी शरणमें ले लिये, तब कहीं बच पाया; और ऐसे नाना कष्ट पाते हुए मनुष्योंको पारखी श्रीसद्गुरुदेव जब मिलेंगे, और वे जीव पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत जब होवेंगे, सत्य

पारख बोधको जब लेवेंगे, तभी यम-जालोंसे छूट सकते हैं। वैसे ही पारख बोध देकर दूसरोंको भी बन्धनोंसे छुड़ा सकते हैं। एकमात्र पारख बोधको लेकर ही काल-जालसे जीव छूटकर तथा छुड़ाकर मुक्त होते हैं ॥ १७४९ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ९२ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- ५ है] ॥ ❀ ॥

१. मिथ्या सत्य सबै जग झूठा * परखहु खोलहु मर्कट मूठा ॥ १७५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे सज्जनो ! आप लोग उन भ्रमिक गुरुवालोगोंकी वाणीको यथार्थ निर्णयसे पारख करके देखिये ! कि, सब चराचर दृश्य जगत्को मिथ्या रज्जु-सर्पवत्, खपुष्पवत्, मृगजलवत् सर्वथा असत्य तीन कालमें नास्ति, जगत् ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह जो दिख रहा है, सो तो झूठका पसारा मात्र है; और सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही सत्य है। सबका आदि कारण अविनाशी पूर्ण व्यापक है। ऐसे 'ब्रह्म सत्य' तथा 'जगत् मिथ्या' है; जीव-ब्रह्म दोनों एक अभेद-अद्वैत है। ऐसा कथन, अद्वैत सिद्धान्त गुरुवालोगोंने ठहराया है। परन्तु, सो सब वाणी कल्पना जगत् जीवोंकी धारणा झूठी मानन्दीमात्र भ्रम है। उसे ठीक-ठीकसे परखकर देखिये ! ब्रह्म जो माना है, सोई झूठा है। जड़-चेतनरूप जगत् तो अनादि कालका स्वतः सत्य ही है। पारख बोधके बिना उलटा धोखेमें पड़े हैं; और जैसे बन्दर चनेकी छोटी मुँहवाली हाँड़ीमें हाथ डाल करके मूँठी बाँधकर आप ही फँसकर बद्ध हो जाता है, तैसे ही जीव सब भी आप ही अपने मानन्दी-अध्यासमें बन्धे पड़े हैं। हे मनुष्यो ! उस मन-मानन्दीको, बन्दरवत् बाँधी हुई भ्रमकी मूठीको ठीकसे परख करके खोलो ! भ्रम छोड़ करके पारखपदको देखो ! फिर कठिन बन्धनसे भी छूटकर मुक्त हो जाओगे ॥ १७५० ॥

२. जाके नाशक मूल कहावै * सो पद सत्य कहाँते पावै ॥ १७५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिसका मूल, जड़ वा कारण ही नाशक=ब्रह्म कहलाता है। सबको विनाश या लय करके एक ब्रह्म ठहराते हैं। फिर सो भ्रमिक गुरुवालोग उस कल्पनामें ठहर करके वहाँपर सत्य पारखपद कहाँसे पायेंगे ? जिस वृक्षकी जड़ ही कटी है, तो उसमेंसे अच्छे फल-फूल कहाँसे मिलेंगे ?— "नास्ति मूलः कुतः फलम्" और— "छिन्नेमूले नैव शाखा न पत्रम् ॥" वैसे ही माना हुआ कर्त्ता ब्रह्मकी रूप-रेखा, आकार-प्रकार तो कुछ भी नहीं है, फिर उस निराकारसे साकार जगत् कैसे उत्पन्न होगा ? फिर उसमें इच्छा-स्फुरणा सदैव लगी रहती है, उत्पत्ति-प्रलय हुआ करता है, ऐसा माना है। अब कहिये ! वहाँपर सो सच्चा मुक्तिपद कहाँसे प्राप्त होगा ? इसीसे नाशक=ब्रह्मके धोखेमें जा करके मनुष्यपदको नष्टकर जीव जड़ाध्यासी होकर बद्ध होते हैं। इसीसे निजपदके सत्य पारख बोधको नहीं जान पाते हैं ॥ १७५१ ॥

३. नाशक झूँठ साँच प्रभु शरणा * महा विकट दारुण दुःख हरणा ॥ १७५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! अतएव तुम लोग यह निश्चयसे जानो कि, नाशक=गुरुवालोग और उन्होंकी कल्पित वाणीका सिद्धान्त ईश्वर-कर्त्ता, ब्रह्म-परमात्मा, देवी देवता, भूत-प्रेत, खुदा, इत्यादि विनाशक वाणी जाल हैं, सो घातक-धोखा झूठा प्रपञ्च पाखण्ड ही फैलाया है। विवेक करके उन सबोंको छोड़ दो; और खानी-वाणीकी आशा त्यागकर सच्चे पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुजीके शरणागत हो जाओ ! तभी साँच=पारख बोधको तुम जान पाओगे। जीवनपर्यन्त उन प्रभुजीके शरण सत्सङ्गमें लगे रहो ! श्रीसद्गुरुके पारख बोधकी स्थिति-से ही जीवोंके महान भयङ्कर अत्यन्त कष्टकर विकट असह्य त्रिविधिताप, जन्म, मरण, गर्भादिके भोग सब दारुण दुःख=अति कठिन पीड़ादि वह सब एकदम हरण हो जाते हैं, छूट जाते हैं या मिट जाते हैं। इसलिये दुःखदायी नाशक झूठे गुरुवालोग और नारियोंका सङ्ग छोड़कर महा विकट दारुण दुःखोंको हरण करनेवाले पारखी प्रभुकी शरण-ग्रहण करो ! तभी सत्यपद प्राप्त होगा ॥ १७५२ ॥

४. ऐसो शरण न आवै जोई * राखनहार और नहिं कोई ॥ १७५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे पारखी श्रीसद्गुरु प्रभु जो कि, शरणरक्षक, सत्यशिक्षक, बन्दीछोर, मुक्तिदाता हैं। उनकी शरणमें कल्याण मार्ग देखकर जो नहीं आते हैं, सो बड़े अभागे, कर्महीन, पथभ्रष्ट, मूढ़ हैं। फिर उन्हें यम-यातना भव-बन्धन चौरासी योनियोंके चक्र आवागमनके असह्य दुःखोंसे बचाकर रखनेवाले और दूसरे कोई भी नहीं होते हैं। जन्ममृति दुःखोंसे बचानेवाले हंसपद मुक्ति-स्थितिमें रखनेवाले एकमात्र पारखी श्रीसद्गुरु हैं। ऐसे सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च प्रभुकी शरणमें जो नहीं आते हैं; फिर उन्हें काल-जालोंके महादुःखोंसे और कौन बचा सकेंगे ? अर्थात् कोई बचानेवाले नहीं हैं ॥ १७५३ ॥

५. ब्रह्मादिक सनकादिक जेते * पीर पैगम्बर औलिया तेते ॥ १७५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनादि कालके जगत्में समय-समयपर भिन्न-भिन्न समझवाले अनेकों मनुष्य हो गये हैं। उनमें हिन्दू समाजके अग्रगण्य— ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनकादि चार भाई, नारद, व्यास, वशिष्ठ, शुक, पराशर, सप्तऋषिसे लेकर अट्ठासी हजार ऋषि-मुनि आदि हुए माने गये हैं; और योगी, ज्ञानी, भक्तादि उनके अनुयायी अभी भी बहुतेक हैं। तैसे ही मुस्लिम समाजमें— आदम, मूसा, ईसा, मोहम्मदादि पैगम्बर, पीर, औलिया, फकीर, नबी, काजी, मौलबी आदि एकलाख अस्सी हजार पैगम्बर हुए, ऐसा माना है। उनके अनुयायी सीया, सुनी, बोहरा आदि मुस्लिम, यहूदी, ईसाई वगैरह आज भी अनेकों हैं। जितने हिन्दुओंमें माना है, उतने या उससे भी ज्यादे तुरुकोंमें कल्पनाको माना है ॥ १७५४ ॥

६. बूड़े भव जल मायाके चेरा * गहहु शरण दृढ़ परख सबेरा ॥ १७५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऊपर जितने गिनाये गये हैं, वे सब बिना पारख माया=गुरुवालोग, मन, वाणी और स्त्री आदिकोंके चेरा=चेला, दास, गुलाम, अधीन, वश हो करके भवजल=संसार, वाणी-खानीके सागररूप महातरङ्गमें बहकर जड़ाध्यासरूपी बीच भँवरमें डूबे, फिर देह छूटनेपर गर्भवास चौरासी योनियोंमें बूड़े, तो उनका कहीं पता ही नहीं लगा; अभी तक वे सब भवजलमें डूब ही रहे हैं। आवागमनमें फिर रहे हैं। इसकारणसे विषयीजन, स्त्री और गुरुवालोगोंके कुसङ्गको सर्वथा छोड़ करके जहाँतक हो सके अति जल्दी ही सबेरा=यह मनुष्य जन्मके प्रभात बेलामें निकलकर शीघ्र पारखी श्रीसद्गुरु महाप्रभुकी शरणका ग्रहण दृढ़तापूर्वक करो ! सत्य शिक्षाको दृढ़तासे धारण करके जल्दीसे पारख बोधको ग्रहण करो ! तभी भव-बन्धनोंसे छुटकारा होगा। इसलिये कहा है कि:—

साखीः— "काल करै सो आजकर, आज करै सो अब्ब ॥ पलमें परलय होयगी, बहुरि करोगे कब्ब ॥"

जब पारखी श्रीसद्गुरुदेवकी शरण गहोगे, तब शीघ्र ही तुम्हें पारख बोध हो जायगा। फिर सरलतासे काल जालोंसे छूट जाओगे; निजस्वरूप स्थितिको पा जाओगे ॥ १७५५ ॥

७. आशा इन्ह परपञ्च न कीजै * जीवन जन्म सफल कर लीजै ॥ १७५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे मनुष्यो ! यदि मुक्ति तथा हित चाहते हो, तो तुम लोग इन प्रपञ्ची, स्वार्थी, संसारी, विषयी लोगोंकी भी आशा मत् करो ! पञ्च विषय भोगादिकी आशा भी न करो ! और प्रपञ्ची गुरुवालोगोंके पञ्च कोशोंकी वाणी-कल्पनासे प्रतिपादन किया हुआ चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग, ब्रह्म-ईश्वरादिकी प्राप्तिकी भी आशा, सो सब झूठी है। उस झूठी आशाको लेकर उसके लिये प्रपञ्च कभी मत् करो ! वाहियातकी उपाधिमें कभी मत् पड़ो ! और सत्यन्यायी, हितकारी, सत्योपदेशक, पारखी श्रीसद्गुरु साधुके शरण-सत्सङ्गमें रह करके सारासारको परखकर, सार हंस रहनीको धारणकर यह मनुष्य जन्मके अमूल्य जीवन, आयु, समयको कल्याण

मार्गमें लगाकर परम पुरुषार्थ करते हुए सफल = अच्छा सार्थक, पूर्ण, जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लीजिये ! उसीको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करके अपने अधिकांश समयको उसीमें लगा दीजिये ! जीवनमें नर-जन्म सफल होनेका कर्त्तव्य कर लीजिये ! यहाँ जो कुछ करोगे, सोई फल तुम्हें भविष्यमें भी मिलेगा। इससे अभी सत्सङ्ग-विचारमें मन लगाकर स्वरूप स्थितिकर मुक्त हो जाइये ! ॥ १७५६ ॥

८. विघ्न कोई नहिं कष्ट अपारा ❀ जाते सुख साहेब दरबारा ॥ १७५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई जिज्ञासु मनुष्य सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख बोधमें विराजमान पारखी बन्दीछोर प्रभु सद्गुरु साहेबके शरणागत होकर उनके सत्यन्याय होनेका दरबार— "श्रीकबीर निर्णय मन्दिर" में सत्सङ्गमें बीजक-ज्ञान श्रवण करनेको जाते हैं, फिर वे सब दुःखोंसे छूटकर सुखी हो जाते हैं। पारख ज्ञानकी धारणामें कोई किसी प्रकारके विघ्न, उपाधि, झंझट, झगड़े आदि नहीं रहते हैं। अपार, अथाह माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्ति करने-करानेकी मार्गमें गुरुवालोगोंने जितने बहुत उपाधि कष्ट लगा रक्खे हैं। सो एक भी कष्ट-क्लेश, पारख ज्ञानके मार्गमें नहीं है। पार पाया ही न जा सके, वैसा धोखा भी वहाँ नहीं लगा है। अर्थात् कोई विघ्न नहीं है, कोई कष्ट नहीं है, कोई अपारका धोखा नहीं है; सुख साहेबके सत्सङ्गके दरबारमें जाते ही वे सब विकार मिट जाते हैं। फिर आखिरमें जीवन्मुक्तरूप श्रेष्ठ सुख फलको भी जीव पा जाते हैं ॥१७५७॥

९. शरण समान करहिं प्रभु अपना ❀ जन्म मरणके मिटे कल्पना ॥ १७५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निष्कपट-शुद्ध मुमुक्ष भावसे जो मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुकी चरण-शरणमें जाकर मिलते हैं। सत्सङ्ग-विचारमें सामिल होते हैं, सत्य श्रद्धासे उपदेश-को ग्रहण करते हैं, ऐसे शिष्योंको सद्गुरु महाप्रभु प्रयत्न करके उन्हें भी अपने समान ही बोधवान् स्थितिवान्, पारखी जीवनमुक्तिमें कायम कर देते हैं। निजस्वरूपका बोध देकर हंस रहनी-रहस्यमें परिपक्व कर देते हैं। इसवास्ते जन्म-मरणके कारणरूप उनकी कलह-कल्पना, विषयाध्यास, भ्रम-भूलादि सब पारखके प्रतापसे मिट जाती है; आवागमनसे छूटकर वे मुक्त हो जाते हैं ॥ १७५८ ॥

१०. सत्यलोक सुख सागर सोई ❀ प्रभु शरणागत पारखी जोई ॥ १७५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय जहाँपर होता हो; असत्य जड़-भास, ब्रह्म-ईश्वरादि अनुमान-कल्पनाको मिटाकर विषयाध्यासको हटा करके सत्य चैतन्य जीवको जहाँपर पारख तख्तपर टिकाया जाता है, सोई सर्वोपरि प्रत्यक्षमें सत्यलोक है। समुद्रके समान जीवन्मुक्तिमें शुद्ध सुखका केन्द्र रहता है। जो कोई पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुके शरणागत हो-कर स्वरूप स्थितिको प्राप्त करते हैं, सोई दिव्य दृष्टिसे वह सच्चा सत्यलोकको यहाँ ही प्रत्यक्षमें देख लेते हैं; और कहींपर सत्यलोक ऊपर आकाशमें मानना सो तो मिथ्या कल्पना मात्र है। स्वर्गादिके ऊपर सातवाँ माना हुआ सत्यलोक असिद्ध मिथ्या वाणीका कथन मात्र है। योगी, ज्ञानी, भक्तादि भ्रमिक लोगोंके ऊपरका सिद्धान्त पारखपंद है, सो सत्यन्यायी पारखी सन्तोंके लोक या स्थिति-ठहरावकी भूमिका है। पारखी साधु श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गरूपी दरबारका ही दूसरा नाम 'सत्यलोक' है। उसका तीसरा नाम सोई 'सुखसागर' है। पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुकी शरणमें आनेवाले ही उसे ठीक-ठीकसे देख पाते हैं; और बेपारखी लोग तो बाहर आसमानके ऊपर कहीं सत्यलोक मानकर भ्रम-धोखेमें भटकते रहते हैं, बिना विवेक ॥ १७५९ ॥

११. सो सत्यलोक करहु विश्रामा ❀ आश तजहु यमरायके ग्रामा ॥ १७६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— अतएव हे हितेच्छुक मनुष्यो ! सोई सच्चा सत्यलोक, सत्सङ्ग, न्याय-निर्णय मन्दिरमें सारासार, सत्यासत्य, जड़-चेतनादिका यथार्थ निर्णय करके निजस्वरूप पारख स्थितिमें विश्राम करो ! और उसके अलावा यमराजरूप गुरुवालोगोंने वाणी-कल्पनाको बढ़ा करके ग्रामरूप कहीं ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, इन्द्रलोक, वैकुण्ठ, सप्तलोक,

और अनन्त योजनोंके ऊपर शून्य आकाशमें एक कल्पित सत्यपुरुषका सत्यलोकादि, ऐसे जो लोक-लोकान्तर माना है, वहाँके सुखकी बहुत-बहुत बड़ाई, महिमा गाया है, सो तो झूठी गपोड़ा है; कोरी कल्पना मात्र है। बीजक, शब्द— १०१, तथा साखी— ३६ में सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है:— "बैठा पण्डित पढ़े पुरान। बिनु देखेका करत बखान। कहहिं कबीर यह पदको जान। सोई सन्त सदा परवान॥ साखीः— पर्वत ऊपर हर बहै। घोड़ा चढ़ि चले गाँव॥ बिना फूल भौंरा रस चाहै। कहु बिरवाको नाव?॥"

गुरुवालोग उपरोक्त लोक प्राप्ति, सुख प्राप्ति आदिकी आशा लगाकर कर्म, उपासना, योग और ज्ञानादिमें घुमाते, भटकाते, भुलाते हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, सात स्वर्ग, नवनिद्धि, अष्टसिद्धि, षट्गुण ऐश्वर्य प्राप्ति, करामात मन्त्र-सामर्थ्य प्राप्ति आदिकी झूठी आशामें लोगोंको फँसा रक्खे हैं; और कोई मरनेपर चन्द्रमुक्त शिलापर जा करके मुक्ति बतलाये हैं। कोई पञ्च मकार सेवनमें सुख-मुक्ति कहते हैं। कोई तत्त्व-तत्त्वमें समाकर मुक्ति मानते हैं। कोई शून्य समाधि लगाकर, तो कोई परमहंस बन ब्रह्ममें मिल करके मुक्ति कथन किये हैं; इत्यादि अनेकों प्रकारसे यमराज=गुरुवालोगोंके ग्राममें प्रपञ्च फैले हैं। सोई संसारमें प्रचार कर रक्ख हैं। सो सब बिलकुल झूठा भ्रम जाल है। इसवास्ते उन सबको परखकर उस तरफ लगी हुई आशा, वासा, कल्पना, आसक्ति, तृष्णा, मानन्दीको जल्दी-से-जल्दी छोड़ दो! त्याग दो! और यमरायकी राजधानीरूप घेरासे भागकर निकल आओ! फिर जहाँपर तुम्हें पारख स्वरूपका बोध प्राप्त हो, सोई श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग-निर्णयरूपी सत्यलोकमें सदाके लिये विश्राम करो! सबोंका भेद तुम्हें पारखी श्रीसद्गुरुसे मिल जायगा! फिर सब भटकना भ्रम छूट जायगा। जीवन्मुक्ति स्थितिका विश्राम भी होगा, सो मिलनेपर कर्त्तव्यकी इतिश्री हो जायगी। अतएव जी-जानसे लगकर उसी तरफ बढ़ो; स्वरूप स्थितिको ही प्राप्त करो! यही मुख्य कर्त्तव्य है, सो जानो! ॥ १७६० ॥

साखीः— प्रभु शरणागत परख दृढ़ ❀ सत्यलोक परवान ॥
[३११] सन्तत जीव विलास है ❀ झूठा काल गुमान ॥ १७६१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जो मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरु महाप्रभुके शरण-सत्सङ्गमें आ करके दृढ़ करके अपरोक्ष पारख बोधको धारणा कर लेते हैं, सोई सच्चे प्रत्यक्ष सत्यलोकमें निवास करनेवाले साक्षात् सत्यपुरुष पारखी सन्त होते हैं। इसे ही प्रमाण करके मानने योग्य है। यानी प्रभुके शरणागत होकर पारख बोधको दृढ़ करना, सत्यमें ठहरे रहना, यही प्रामाणिक सत्यलोकका निवास करना है; और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें सदोदित या सदा-सर्वदा जीवोंको पारखबोध प्राप्तिका विवेक-विलास मिलता रहता है। पारखपदमें स्थिति किये हुए सन्त जीवन्मुक्त सुखके विलासमें रमण करते रहते हैं। सत्पदकी स्थितिमें रहनेवाले जीव सदा सुखी रहते हैं। कालका झूठा गुमान, मिथ्या अभिमान, विषयसे ब्रह्म तकका हन्ता वा अध्यास उन्हें एक भी नहीं लगता है; और अन्यत्र शून्य आकाशमें कहीं सत्यलोक, सत्पुरुष, जगत्कर्त्ता परमेश्वरादि बताना, तथा उसे सत्य मानना, यह काल=गुरुवालोगोंकी वाणी-कल्पनाका गुमान= सरासर असत्य वा झूठा है। वह प्रमाण हो नहीं सकता है, अतः सो मानने योग्य नहीं है। अथवा शरणागत रक्षक पारखी बन्दीछोर श्रीसद्गुरु प्रभु वे ही हमारे सत्पुरुष, आराध्य इष्टदेव हैं। वे पारखबोधको ही दृढ़ाते हैं। जहाँपर जिस भूमिकामें आप पारखी प्रभु विराजमान रहते हैं, सोई सत्यलोक, सत्यका धाम, सत्सङ्गका मुकाम, पारखका नाम, निष्काम रहता है, सोई निश्चयका सच्चा प्रमाण है। सर्वदा पारखी श्रीसद्गुरुके यहाँ जीवोंको सत्यबोध देनेका ही विलास=सत्सङ्ग होता है। वहीं नरजीवोंको स्वरूपस्थिति होकर नित्यसुखकी प्राप्ति भी होती है; और कालरूप मन, गुरुवालोग तथा स्त्रियोंका झूठा गुमान, अध्यास वहाँ, एक भी रहने नहीं पाता है। सब अध्यास छूटकर पारखी सन्त मुक्त हो जाते हैं ॥ १७६१ ॥

साखीः— पारख सीढ़ी झाँकके * पलटि बहै भवधार ॥
[३१२] थाह न पावहिं बूड़हीं * नहिं ताके निस्तार ॥ १७६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई मनुष्य सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके समीप आ करके इसतरफके सत्सङ्ग सीढ़ीमें जरा-सा झाँककर एक-दो पायरी चढ़कर गुरुके सेवक वा शिष्यरूप साधु बनकर कुछ उपदेश सुनकर भी उसे मनन, विवेक-विचार न करके धारण न होनेसे विशेषकर पूर्वके अध्यास तथा मानन्दीको ही बढ़ा करके खानी-वाणी जालोंमें ही प्रेम लगाकर उधर ही पलट जाते हैं, वे मूढ़मति, अभागे पथभ्रष्ट, नरजीव हंसपदसे उलटकर कागपदमें ही चले जाते हैं। फिर भवसागरमें गिरकर भग भोगनेमें तथा वाणी कल्पनाकी धारामें, मन तरङ्गमें बहते हुए चौरासी योनियोंके गर्भवासमें चले जाते हैं। फिर चौरासी योनियोंसे वे कब मनुष्य जन्ममें आवेंगे, इसका कुछ पता नहीं लग सकता है। क्योंकि, डूबते-डूबते महान भँवरमें पड़ गये, तो नीचे-ही-नीचे चले जावेंगे, ऐसे चौरासी योनियोंमें ही सब जा रहे हैं। इसकारण जन्म-मरणादिसे छुटकारा वा निस्तार या भवपार, मुक्ति अब उनकी कदापि नहीं हो सकती है। खाली झाँककर जानेवाले चोरवत् होते हैं। कोई हौसलासे कण्ठी बँधा करके श्रीसद्गुरुके शिष्य तो बने; परन्तु, शिक्षा नहीं रुची। स्त्रीका खण्डन सुनकर विषयासक्तिके कारणसे विरोधी होकर उलट पड़े, तो विषय भोगादिकी धारामें बह गये; हित-अहितके मार्गका उन्होंने कुछ थाह नहीं पाया; भग वा गर्भवासमें ही डूब गये, फिर उनका तहाँ निस्तार नहीं होता है। अथवा कोई भेष लेकर साधु तो हुए, परन्तु, सद्गुण रहनीका धारण नहीं हुआ, तो वे स्वादी ठग, पाखण्डी हुए, पारख-धामकी सीढ़ी मात्र झाँककर विवेक न होनेसे पलट गये। कोई तो अन्य मतवादको ही पकड़ लिये। तहाँ वाणी कल्पनाकी धारामें खूब बहे, बहुत भटका वा गोता खाये। ब्रह्म-ईश्वरादिका थाह वा पता तो किसीने भी नहीं पाया, तो अथाह अगम, अपार, कहकर भ्रम-धोखेमें डूब गये, जड़ाध्यासी हुए। अब उनका आवागमनसे निस्तार वा छुटकारा हो नहीं सकता है। इसलिये हे मनुष्यो ! पारख सीढ़ी झाँककर कभी भी नहीं पलटना। जो सीढ़ी चढ़ करके ऊपर पहुँच जाते हैं, उन्हें ही स्थायी विश्रान्तिरूप मुक्ति मिलती है ॥ १७६२ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— २८६ ॥ ❀ ॥

साखीः— गुरु सीढ़ीते ऊतरे * शब्द विमूखा होय ॥
[३१३] ताको काल घसीटि हैं * राखि सकै नहिं कोय ॥ १७६३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! संसारमें गुरुपद पारख बोधसे बढ़ करके दूसरा कोई सर्वोच्च, श्रेष्ठपद नहीं है। सर्वोपरि मुक्ति-भूमिका एकमात्र गुरुपद ही है। इसलिये गुरुपदकी सीढ़ीमें चढ़कर ऊपर जानेवाले स्वरूप स्थितिको प्राप्त करके मुक्त होते हैं; और जो कोई गुरु सीढ़ी = पारखी श्रीसद्गुरुका हंसपद, गुरुका विचार, रहनी-रहस्य, सत्यन्याय, नियम, मर्यादा, श्रीसद्गुरुके बोधादिमें अग्रसर हो करके ऊपर जाना छोड़कर विषयासक्ति, भ्रम-मानन्दी पुष्टताके कारण उस श्रेणी वा पदसे खसकते हुए नीचे-नीचे ही उतर आते हैं। मनमती होकर जहाँ-तहाँ दौड़े जाते हैं। मनुष्यपदसे पतित हो जाते हैं; खानी-वाणीमें बह जाते हैं, बिलकुल विवेकसे उतरकर अविवेकी, पक्षपाती, हठी, शठी, विषयी, जड़ासक्त हो जाते हैं। वे मनमुखी जीव पारखी श्रीसद्गुरुके सारशब्द निर्णय उपदेशसे विमुख-विरोधी, पक्षपाती हो करके मुख छिपा करके मनमाने रास्तोंमें लगकर कुसङ्ग, कुविचार, कुकर्ममें चले जाते हैं। मदोन्मत्त होनेसे, भ्रमचक्र, भवचक्र, भगचक्र और चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जाकर गिर पड़ते हैं। उस गुरुविमुख जीवको काल = मन, गुरुवालोग, कल्पना और स्त्री आदि वासना, धोखा, भ्रम, पञ्च विषय, भग-भोगादि संसारके नाना दुःखोंमें तथा विरह, वैराग्य, तपस्या, योगादि साधनाओंके कष्टमें घसीट-घसीट

करके अपनी-अपनी तरफ खींच-तान कर-करके हैरान करते रहते हैं। जैसे बाघ बछड़ेको घसीट करके मारकर खा जाता है, तैसे ही वे काल भी जीवोंको घसीट-घसीट करके लछार-पछार करके जड़ाध्यासी बना करके मार-मारकर तन, मन और धनादिको खा जाते हैं, स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं। वासनामें खिंचे हुए जीव चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जा-जाकर नाना दुःख भोग रहे हैं। मनुष्य जन्ममें आ करके नरजीवकी पारखपदमें स्थिति होनेपर ही बचाव होता है। सो उससे तो विमुख हो गये। चौरासी योनियोंके चक्रमें खुशीसे जाकर पड़े। अब वहाँ दुःख पाकर व्याकुल होते हैं, पछताते हैं; तो क्या होता है? वहाँ जीवको रख करके बचा सकनेवाले रक्षा करनेवाले और दूसरे तो कोई नहीं है। गुरुपद विमुखको आवागमन, त्रिविधि तापादि दुःख भोगोंसे कोई रोककर बचा नहीं सकते हैं। अतएव कभी पारखी श्रीसद्गुरुकी सीढ़ीसे नहीं उतरना चाहिये, गुरुपदसे विमुख नहीं होना चाहिये। सदा गुरु विचारमें लगे रहना चाहिये ॥ १७६३ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ३०८ ॥ ❀ ॥

साखीः— साँचे श्राप न लागै * साँचे काल न खाय ॥
[३१४] साँचहि साँचा जो चलै * ताको काह नशाय ? ॥ १७६४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! सच्चे, सत्यन्यायी पारखी सन्तपर किसीके शाप, कुवाक्य, कटुक वचन, गाली, निन्दादि भयानक वाक्यका असर कुछ भी नहीं पड़ता है। तथा सत्यवादीको काल वा कल्पना, असत्य मार्गमें लगाकर नारी और गुरुवालोग उन्हें कभी खाकर नशा नहीं सकते हैं। तीन कालमें जिसका नाश नहीं होता है, उसे ही 'सत्य' कहते हैं। ऐसा एकरस सत्य स्वरूप जीव ही अखण्ड, अविनाशी प्रत्यक्ष सत्य है; और जो कोई शाप देकर जीवका नाश करना चाहे, तो ऐसा कभी हो नहीं सकेगा; नित्य वस्तुका विनाश किसी प्रकारसे भी कभी नहीं होता है; और अखण्ड सत्यवस्तुको काल=समय, दिन-रात, कल्पनादि कभी खाकर विनाश नहीं कर सकते हैं; और उस सत्य चैतन्य, अजर, अमर, अखण्ड निजस्वरूप पारखपदको पहिचानकर गुरुबोधको प्राप्तकर सत्यकी रहनी, सत्यकी गहनी, सत्यकी वाणी, सत्यका विचार, सत्य हंस पारखीकी चालसे जो नरजीव चलते हैं; सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़ वैराग्यादि सद्गुण रहस्य धारणके साँच-ही-साँच मार्गसे जो चलते हैं, सो पारखपदको अपरोक्ष रीतिसे प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। फिर उनको कौन विचलित करके नशा सकता है? तीन कालमें कोई भी नशा नहीं सकता है। क्योंकि, शाप झूठा है, काल जड़ है; और जीव चैतन्य सत्य है। फिर यह उलटा विरोधी-भाव एकमें कैसे लगेगा? वास्तवमें किसी भी जीवको चाहे सिद्ध-साधकादि किसीका भी दिया हुआ आशीष तथा शापादि कुवाक्य क्यों न हो, सो कदापि लग नहीं सकता है, जड़ शब्द चैतन्य जीवके स्वरूपको नुकशान करनेमें समर्थ नहीं है; और जीवोंने जैसा-जैसा कर्म संस्कार टिकाया है, वैसा-ही-वैसा फल भोग स्वयं देह धारण करके हो ही रहा है; उस भोगको और कोई बाहरसे बना और बिगाड़ नहीं सकते हैं। कर्मानुसार सुख-दुःख फल आप-ही-आप सब जीव पा रहे हैं। उस बने हुए कर्म अध्यासको अभी कोई हेर-फेर कर नहीं सकते हैं। भोगे बिना कर्म नहीं मिटता है। "आपने कर्म न मेटो जाई" अतएव जीवको शाप भी नहीं लगता है; और काल भी नहीं खाता है। जड़ाध्यासी होनेसे आवागमनमें पड़कर स्वयं ही कर्म भोगनेमें नाना दुःख पा रहे हैं; और जो कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आ करके खानी-वाणीकी आसक्ति छोड़कर परख करके सबके भास-अध्यास त्याग दिये हैं। श्रीसद्गुरुकी दयासे निज सत्य स्वरूपका पारख बोध प्राप्त कर लिये हैं। हंस रहनी सद्गुण धारण विचारके मार्गसे जीवन पर्यन्त जो चलते हैं, फिर उनको विचलित करके कौन नशा सकेगा? कोई नहीं। वे सकल बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। इसीसे सत्सङ्गके मार्गसे चलकर सत्य-ही-सत्य सद्गुणोंको सदा धारण करके जन्म सफल करना चाहिये ॥ १७६४ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ३३४ ॥ ❀ ॥

साखीः— साँच बराबर तप नहीं * झूँठ बराबर पाप ॥
[३१५] जाके हृदया साँच है * ताके हृदया आप ॥ १७६५ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—[गुरुमुखः—] हे सन्तो ! सत्य भाषण करना और सत्य चैतन्य जीवको निज स्वरूपमें स्थित (कायम) रखना, यही बड़ी भारी सच्ची तपस्या है। सत्य पालनरूप व्रतकी बराबरी करनेवाली और कोई भी तपस्या संसारमें नहीं है। सत्यसे बढ़ करके तो कौन कहे; किन्तु, उसके समान बराबरी दर्जाका फल देनेवाला भी और कोई जप, तप, व्रत, उपवास, तीर्थ, योग, ध्यान, ज्ञान, विज्ञानादि भी हो नहीं सकता है। बराबर, हमेंशा बोलनेमें भी साँच ही वाणी बोले, कर्त्तव्य भी सत्य ही करे, सत् मार्गसे चले, सत्सङ्गमें लगे, निज सत्स्वरूपमें ठहराव करे, सद्गुण-रहनी-रहस्यको धारण करे, तो फिर ऐसे सत्पुरुषको और कोई बाह्य तपस्यादि करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती है। क्योंकि, सब प्रकारसे सत्यमें टिके रहना, यही बड़ी भारी तपस्या है; और सन्मार्गको छोड़कर अन्य कष्टकर भारी-भारी तपस्या भी किया, तो भी व्यर्थ है वा निष्फल है ! और झूठ बोलना, मिथ्या छल-कपटकी प्रपञ्च रचना करना, धोखा देना, इसके समान (इसकी) बराबरी करनेवाला महापाप भी दूसरा कोई नहीं है। झूठ बोलनेवाला सब प्रकारके पाप, दोष, अनर्थ कर बैठता है। सो वह कुमार्गसे नहीं हिचकता है। झूठ ऐसा बड़ा दोष है वा कुटेब है, जो कि, बराबर = हमेंशा पाप ही कराता रहता है। कुसङ्ग वा कुमार्गमें ले जा करके फँसा देता है। झूठके कारणसे अनेकों पाप बढ़ते जाते हैं। इसीसे पापका मूल कारण ही झूठ बोलना है। यहाँ तो भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनाके व्यवहार सब झूठ हैं। जीवोंको छोड़ करके ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता, स्वर्गादि श्रेष्ठ बताना और उसकी प्राप्तिके लिये आशा लगाकर नाना मार्गकी साधना कराना, वह सब भी मिथ्या वाणी प्रपञ्च ही है। अतएव पापरूप दोष जड़ाध्यासका कारण है। वहाँ सत्यका तो लेश भी नहीं है। सत्य चैतन्य जीवको सबोंने भ्रमाया वा भुलाया है; और जिन विवेकी पारखी सन्तोंके हृदयमें निजस्वरूपका सत्य पारख बोध हो रहा है, उनके हृदयमें अपने आपको छोड़कर ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी-कल्पना, भ्रम-भूल कुछ भी नहीं रहती है। जिसके हृदयमें सत्य, विचार, शील, दयादि सद्गुणोंकी धारणा तथा पारख बोध दृढ़ है, सो स्वयं निज स्वरूपमें स्थिर रहते हैं। इसवास्ते उनके हृदयमें जड़ाध्यासका विकार कुछ भी नहीं रहता है। अपने-आप जीवको सत्य पहिचान करके सत्पुरुषार्थ करनेवाले नरजीव जीवन्मुक्त होते हैं। जिसके मनमें सत्यपर ही दृढ़ निष्ठा है, सत्य भाषण, सत्कर्म, सदाचार, सत्सङ्गादिको ही श्रेष्ठ समझते हैं, सो उनके हृदयसे आप ही विकार मिट जाते हैं। वे अपनेको भव-बन्धनोंसे छुड़ा लेते हैं। अतएव झूठरूप पापको त्याग करके सत्य धर्मको ही ग्रहण करे वा सत्यको ग्रहण करना चाहिये। सत्य पारख बोधको हृदयमें रखकर अपना हित-कल्याण करना चाहिये ॥ १७६५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६३ ॥ [चापाई- १२ । साखी- ३ । शब्द- १ है] ॥ ❀ ॥

१. विधि हरि हर बहुरूप करङ्गा * जहाँ तहाँ ताके उठै तरङ्गा ॥ १७६६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें गुरुवालोगोंने पाखण्डका प्रचार करके विधिपूर्वक भ्रमा करके मनुष्योंके बुद्धि-विवेक, सद्गुणोंको हरण कर लिये हैं। तहाँ पहले रजोगुणी ब्रह्माने विधि-विधानसे कर्मका बहुतरूप प्रगट किया। सत्त्वगुणी विष्णुने विधिपूर्वक उपासनाका बहुतरूप उत्पन्न किया; और तमोगुणी महेशने युक्तिपूर्वक योग मार्गके बहुत रूपोंका निर्माण किया। तथा उन्होंने अनेकों भेष, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्तादि करङ्गा = कल्पनाके रङ्गका प्रचार किया। सोई तबसे अब तक जहाँ-तहाँ कर्मी, भक्त, योगी और ज्ञानियोंमें उसी वाणी कल्पना

भ्रमकी तरङ्ग या लहरी उमड़-घुमड़कर उठी और उठ रही है। इसीसे भ्रमिक मनुष्य दशों-दिशाओंमें जिधर-तिधर जा करके ब्रह्म-ईश्वरादिको ताकने लगे; कोई ब्रह्मादि त्रिदेवोंको ही जगत्कर्त्ता मानकर ताके। बिना विचार मन-कल्पनाके तरङ्गमें ही बह-बह कर सब मरे, जड़ाध्यासी हुए या आवागमनमें पड़कर दुःखी हो रहे हैं॥ १७६६॥

२. उठत तरङ्ग उक्ति बहुतेरा ❀ हेतक फाँस काल बौंडेरा॥ १७६७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! त्रिदेव या त्रिगुणी मनुष्योंमें मनसे सङ्कल्प-विकल्प, भ्रम, कल्पनाकी तरङ्ग वेगवान् धारा-प्रवाहसे उठते ही बहुतेरा उक्ति=वाणीका कथन, वेद, शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थ बना। सो उसी कथनमें प्रेम लगाकर उसे हितकारी माना। सबोंने उसमें लक्ष्य लगाया। परन्तु, वह तो बौंडेरा=वायुके बवंडर चक्रके समान भ्रमचक्रमें उड़ा करके ले जानेवाला काल=गुरुवालोगोंकी कल्पनाका फाँस=फँसानेका महाजाल है। आत्माको सर्वव्यापक मानकर ब्रह्म-जगत्में घुमानेवाला फन्दा बनाया है। जो बहुतेरे वाणी-कथनकी तरङ्ग उठी, सोई कालका फाँस तथा आवागमनका कारण बनी है। उसमें ही पड़कर जीव सब चक्कर खाने लगे॥ १७६७॥

३. बौंडेरा उठि जाय बिलाई ❀ उड़हि सङ्ग सो उलटि गिराई॥ १७६८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे कि, वायुके गोलाकार चक्र बौंडेरा उठकर दूरतक जा करके फिर विलीन हो जाता है। उसके वेगमें जो कुछ रजकण, घास-फूस, पत्ती आदि वायुके सङ्गमें उड़ते हैं, सो फिर उलटकर नीचे ही दूर-दूरमें जा करके गिर पड़ते हैं। तैसे ही वाणी-कल्पना भ्रमका बौंडेरा मनमें उठा, सो ब्रह्म-ईश्वर, अनुमान-विषयादिमें जा करके विला गया वा लय हुआ। जो-जो मनुष्य उस वाणी-खानीके सङ्गमें उड़े, सो सब जड़ाध्यासी-बद्ध होकर मनुष्य-पदसे उलटकर पशु आदि चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जा करके समाये; उलट-उलट कर गिर रहे हैं, बिना विवेक। अथवा मनसे नाना वासनाएँ उठती हैं, फिर विलीन हो जाती हैं। वासनाके सङ्गमें उड़नेवाले सो सब जीव हंसपदसे उलटकर पशुपदमें गिर पड़ते हैं॥ १७६८॥

४. बौंडेरा आवै बहु भाँती ❀ बाँचहु उड़े नाहिं कुशलाती॥ १७६९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भीतर-बाहरसे तन, मन और वचनके मार्गसे वासना-सङ्कल्प, वाणी कल्पना, विषय विकारोंका वेग, यही सब बौंडेरा बहुत प्रकारसे जोर लगा करके आते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा-तृष्णा, राग-द्वेषादि कचरा, विकार उसके साथ-साथ उड़ाकर ले आता है, जो उसमें पड़ते हैं, सो महा उपाधिरूप जन्मृति चक्रमें पड़ जाते हैं। इसकारणसे हे मनुष्यो! पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आ करके उस घेरासे निकलो, बचो! और अब तो बचनेकी उपाय करो! विषय वासना-कल्पादिमें उड़नेसे किसी जीवकी कुशलता=कल्याण, हित, मुक्ति कभी हो ही नहीं सकती है। इससे अभी नरदेहमें रहते ही उस बौंडेरासे बचे रहो॥ १७६९॥

५. रज समान सङ्ग पौन उड़ाई ❀ जलमें पायके कीच समाई॥ १७७०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे समान-विशेषरूप पवनके साथमें उड़-उड़कर बारीक धूर=रज-मिट्टी जमा होती है। फिर जलमें मिलकर या जलका संयोग पा करके भींजकर कीचड़ या चहला हो जाती है। वह जिसको लगी कि, दाग लगा देती है। तैसे ही रज, सत्त्व और तम, ये तीन गुणोंमें मिलकर काम, क्रोध, मोह, कल्पनादिमें समा करके वासना, इच्छारूप पवनके सङ्गमें जीव उड़े जाते हैं। कहीं सम-समान आकाशवत् व्यापक ब्रह्म बनते हैं। तहाँ जलरूप वाणी-की मानन्दीमें धोखेको पा करके कीचड़वत् जड़-चेतन मिश्रित आत्मा अधिष्ठानमें समाते हैं। कोई भगमें समाते हैं। उसी अध्याससे शरीर छोड़कर जीव सुषुम्ना पवनके सङ्गमें उड़कर पुरुषके वीर्यमें प्रवेश करके मैथुन समय स्त्रीके रजके सङ्ग योनिमें वीर्य मिलकर या समा करके गर्भमें जाते हैं। वहाँ जलरूप रक्तमें रज-वीर्यकी कीचड़में जीव समाये, सो समय पा करके देह बन जानेपर उत्पन्न होते हैं; फिर वैसे ही जन्मृतिमें भटकते रहते हैं॥ १७७०॥

६. त्याग करहिं प्रथम जग मोटा * बिना विचार वशी सब खोटा ॥ १७७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पहले तो गुरुवालोग जगत्के मोटे पदार्थोंमें दोष दिखलाकर माता-पिता, स्त्री-पुत्र, घर-द्वार, धन, कुल-कुटुम्बादि जगत्में मोटी--मायाको त्याग करते और त्यागकराते हैं। परन्तु, बिना विचार झीनी--मायाके जालोंमें जाकर वे फँस जाते हैं। तहाँ श्रीकबीरपरिचय, साखी—६ में कहा है:—

"त्याग करनेको सब चले, हुआ नहीं वैराग ॥ जो चोरवा जग मूसिया, सो सबके पीछे लाग ॥"

ब्रह्म, ईश्वरादि, स्वर्गादि प्राप्तिकी आशासे पहले तो घर-गृहस्थीके मोटे स्थूल विषयोंको त्यागा। पीछे वेद-वेदान्तादिको पढ़कर आनन्द स्वरूप ब्रह्मको व्यापक माना। पूर्वका त्याग-वैराग-वहाँपर सब उड़ गया। फिर विषयादि भोगोंको भोगकर या ध्यान--समाधि लगाकर चाहे कैसे भी आनन्द लो ! कोई बातकी शङ्का ही उनमें नहीं रहती है। त्यागके बदले बड़ाभारी राग ही उन्होंने ग्रहण किया। श्रीसद्गुरुके यथार्थ पारख बोध विचार हुए बिना वे मतवादी सब खोटी कल्पना, ब्रह्म-भ्रम, धोखा, मन-मानन्दीके ही वशी भूत होकर बद्ध हुए। इसीसे जन्म--मरणादिमें ही पड़े रहे; और अभी बिना विचार उसी प्रकार जड़ाध्यासी होकर बद्ध हो रहे हैं। खोटामें भूले पड़े हैं, बिना पारख ॥१७७१॥

७. जब नहिं देखि परे भ्रम त्यागा * मनहिं मन पछताहि अभागा ॥ १७७२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! ईश्वर, खुदा, ब्रह्म, परमात्मादि कोई एक कर्त्ता मान करके उनके दर्शन प्राप्त करनेके लिये मोटी--मायारूप घर-बारका त्यागकर षट् दर्शनोंमें जाकर कहीं साधु हुए। कर्म-धर्म, तीर्थ--व्रतादि नाना साधना करने लगे। ऐसे अनेक तरहसे खोज करने-पर भी जब कि, उन्हें कुछ दिख नहीं पड़ा। दर्शन, भेंट--मुलाकात प्राप्ति भी कुछ नहीं हुई। तब भ्रमिक होकर भ्रमसे अद्वैत ब्रह्म एक मान लिये। जब वह भी कुछ दिख नहीं पड़ा, तब अभागे लोग मन-ही-मनमें पछताने लगे। उसी भ्रममें आयु बीती, एक दिन शरीर भी छूटा; फिर चौरासी योनियोंमें पड़कर अभागे लोग नाना दुःख भोगते हुए दुःखी होने लगे; सोई मन-ही-मनमें पछताना है। इसतरहसे व्यर्थ ही मनुष्य जन्म बिता रहे हैं ॥ १७७२ ॥

८. कथनी कहहीं उड़हि अकाशा * पुनि सोइ विषयमई जग बासा ॥ १७७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोग वाणीकी कथनी तो बहुविधिसे वर्णन करके ऐसी-ऐसी बात कहते हैं कि— आकाश-पाताल दशों दिशा तक उड़ते जाते हैं, कल्पना बढ़ाते जाते हैं। आकाशवत् व्यापक ब्रह्म कथन करके स्वयं ब्रह्मके भ्रमसे शून्य धोखेमें उड़ते फिरते हैं। सोई वेदान्तकी वाणी कहकर दूसरोंको सुनाते भी हैं। फिर सोई ब्रह्मानन्द और विषयानन्दादि स्वरूप ही बन करके विषयाध्यासी होकर जन्म, मरण, गर्भवासके जगत्में निवास करते हैं। जगत्-रूप होकर विषय भोगोंमें ही वासना टिकाते हैं। अर्थात् कथनी कहकर तो आकाशमें उड़ते हैं, फिर करनीसे विषयरूप जगत्में ही बास करके सोई विषयासक्तिको मनमें रखते हैं। अब कहिये ! उनकी दुर्गति न हो, तो किसकी हो ? ॥ १७७३ ॥

९. मत मतवारे बाउर लोगा * बिनु पारख सब भये संशय शोगा ॥ १७७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे मदिरा पी करके लोग उन्मत्त होते हैं, वे बकते-झकते हैं। तैसे गुरुवालोग मत-मतान्तरके मतवाले उन्मत्त पक्षपाती, हठी-शठी, बकवादी पागल हो रहे हैं। बकते-झकते नाना प्रपञ्चोंमें लोगोंको लगा रहे हैं। अज्ञानी लोग भी दिवाने होकर वैसे ही उनके पीछे लग रहे हैं। यथार्थ पारखदृष्टि श्रीसद्गुरुके पारख बोधको पाये बिना सब मनुष्य ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ताकी संशय=दुविधामें पड़ करके शोकमें वा विरहमें पड़कर व्याकुल हो रहे हैं। पारख बोधके बिना उस दुःखसे कोई नहीं छूटे, और छूट भी नहीं सकते हैं ॥ १७७४ ॥

१०. सुख अनुमान जग उनके चरणा * तेहि सन्ताप विविधि विधि मरणा ॥१७७५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्के अबोध नरजीव संसारमें त्रिविधि तापादि नाना दुःख पूर्वकृत कर्मोंका फल भोग पा करके घबड़ाकर उन वञ्चक गुरुवालोगोंके यहाँपर जानेसे सुख प्राप्ति होनेका अनुमान करके या सुख स्वरूप ब्रह्म प्राप्ति होनेकी मानन्दी करके उनके चरणोंमें शरणागत होकर गुरुवालोगोंके शिष्य हो गये। उन्होंके बताये अनुसार साधनाओंका आचरण करने लगे। परन्तु, वहाँ उन्हें सुख तो कुछ भी नहीं मिला; उलटा नाना प्रकारके सन्ताप=विरह, वैराग्य, तपस्यादिका दुःख, त्रिविधि तापका कष्ट, तरह-तरहके क्लेश, अनेकों प्रकारसे मनुष्यपदका मरण, विदारण, जड़ाध्यास बढ़ाकर उसी कारणसे नाना तरहसे जन्म-मरणादि असह्य दुःख भोग रहे हैं॥१७७५॥

११. वोहि बन्दी जग जोहहिं आशा * नाश कलेश यम करे तमाशा ॥ १७७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर वही यमरूप गुरुवालोगोंके बन्दी=कैदी बन करके मूर्ख लोग जगत्में उन्हींके घेरा-बन्दीखानारूप कर्म, उपासनादिमें रहकर चार मुक्ति, चार फलादि प्राप्तिकी आशा लगाकर सुख होनेकी बाट देखते रहते हैं कि, हमें कब सुख मिलेगा ? कब मनोकामना पूर्ण होगी ? इष्टके दर्शन कब मिलेंगे ? इत्यादि आशा पूर्ण होनेका रास्ता देखा करते हैं। परन्तु, उन्हें सुख देनेके लिये तो यमने नहीं बाँधा है। उनके बुद्धि-विचार, तन, मन, धनादिका विनाश करके अनेक तरहसे कष्ट-क्लेशमें पीड़ित करके नचानेके लिये ही बाँधा है। सो उसीप्रकार तमाशा करके यम=गुरुवालोग मौज करते रहते हैं; और मनमें जमा हुआ अध्यास भी चौरासी योनियोंके चक्रमें डालकर जीवोंको तमाशा करता रहता है। मुक्तिपदको नाश करके असह्य दुःख भोगाता रहता है। अर्थात् जहाँपर यम नाना खेल खेला करके दुःख भोगाते हुए नाश करते हैं, वहीं अज्ञानी जीव बन्दी होकर भी सुखकी आशा करते हैं; बिना विचार भूलमें पड़े हैं ॥ १७७६ ॥

१२. सुखके घमण्ड कछु वर्णि न जाई * रोवहिं आशा निराशा भाई ! ॥१७७७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारी लोग विषयानन्द सुख और सम्पत्तिमें फूलकर मदोन्मत्त होकर बड़ा भारी घमण्ड वा अभिमान करते हैं; और उधर गुरुवालोग भी योगानन्द, ज्ञानानन्द, ब्रह्मानन्द, सच्चिदानन्दादिको सर्वोत्तम महान सुखरूप मान करके सुखाध्यासी बनकर उस मार्गके पक्षपाती बड़े घमण्डी, अहङ्कारी, मताभिमानी हुए हैं। ऐसा घमण्ड बढ़ाये हैं कि, कुछ कहा नहीं जाता है। ब्रह्मको मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवर्णनीय, अवाच्य, कुछ वर्णन ही किया जा न सके, ऐसा परमानन्द सुख स्वरूप माना है। परन्तु, जैसा माना है, वैसा सुख तो किसीको भी नहीं मिला। हे भाई ! कैवल्य महान ब्रह्मपदकी आशा करके नाना प्रयत्न करके भी जब अन्तमें ब्रह्म नहीं मिला, तब निराश हो करके रोते हैं; आवागमनमें दुःख ही भोगते रहते हैं। संसारमें विषय भोग, स्त्री, पुत्र, परिवारादिकी आशा करनेवाले और इनको त्यागकर स्वर्गादि, ईश्वर, देवतादिकी आशा करनेवाले तथा नीरे कैवल्यकी आशावाले ये सब अन्तमें आशा पूर्ण न होनेसे रोते हैं। निराश होकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही चले जाते हैं, बिना पारख ॥ १७७७ ॥

साखीः— कथनी कथै अगाधकी * ज्यों आकाशको गिद्ध ॥
[३१६] चारा वाके भूमिपर * उड़ै भया क्या सिद्ध ? ॥ १७७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे गिद्ध, बाज, चील आदि हिंसक, मांसाहारी पक्षी, ऊपर आकाशमें शून्यशान गगन मण्डलमें उड़ते हैं, बहुत दूर तक उड़ते-उड़ते चढ़ जाते हैं, निराधार वातावरणमें चक्कर लगा करके उड़ते रहते हैं। परन्तु, वहाँ तो उनका ठहराव नहीं होता है। क्योंकि, उनका चारा=खुराक या भोजन तो नीचे भूमिपर ही रहता है। कहाँपर मुर्दा पड़ी है, लाश किधर सड़-गल रही है, चारा कहाँपर यथेष्ट मिलेगा ? इसीको ऊपर आकाशमें उड़ करके देखते रहते हैं; और गिद्धकी तेज दृष्टि रहती है, वह तीन-चार कोश दूर तकके चाराको

भी देख लेता है; ऐसा वर्णन किया है। आकाशमें उड़नेसे गिद्धका क्या सिद्ध हुआ? आशा तो मुर्दोंके मांस खानेमें लगी है। तैसे ही यहाँपर भी योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवालोग कथनी=वाणी-कल्पनाके कथनका तो ऐसा वर्णन करते हैं कि, जिसका पारावार ही कुछ नहीं मिलता है। अगाध=अत्यन्त गहिर-गम्भीर, अथाह, अपार, अगम, अगोचर, आकाशवत् असीम व्यापक कोई परमात्मा है; वह मन, बुद्धि, वाणीसे अत्यन्त परे अवाच्य है। फिर कथनीसे उसकी बड़ी महिमा भी वर्णन करते जाते हैं। सायुज्य मुक्तिके कैवल्य ब्रह्म स्थितिका कथन करते हैं। जैसे आकाश निराकार सर्वत्र भरा है, तैसे परब्रह्म भी आकाश सहित पाँचोंतत्त्व वा चराचरमें सर्वत्र व्यापक ओतप्रोत, भरा है, "सो अधिष्ठान ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप मैं हूँ!" ऐसा गिद्ध=ब्रह्मज्ञानी लोगोंने गीत गाया है। वे तो धोखेमें लुब्ध हो रहे हैं। परन्तु, ऐसी वाणी-कल्पनामें उड़नेसे उन भ्रमिकोंको क्या हासिल हुआ? कौन-सा कार्य सिद्ध हुआ? भ्रममें उड़नेसे किसका कल्याण हुआ? क्योंकि उनका चारा=खाद्य वस्तु विषयोंकी चाहना तो यहीं पिण्डरूप भूमिपर है; और मुर्दा=माया-मोहकी आसक्तिमें उनका मन लगा है। नाना प्रयत्न करके विषय सुखसे लेकर ब्रह्मानन्दादि तक प्राप्त करनेकी आशासे गिद्धदृष्टि लगा करके लुभायमान हो रहे हैं। सब विषयोंके चाराका भोग तो यहीं देहमें ही होता है। फिर योग-समाधिमें वाणी विलासमें उड़ने मात्रसे क्या लाभ हुआ? पारख बोधके बिना किसको मुक्ति मिली? बीजक, रमैनी— ७१ चौपाई- ३ में कहा है:—

"आसन उड़ाये कौन बड़ाई? जैसे कौवा चील्ह मिड़राई॥"

जगत्की आशा छोड़कर ब्रह्म-ईश्वरादिकी आशा-वासा कल्पनासे मनको शून्यमें उड़ाकर ले गये, तो इससे कौन बड़ाई हुई? शून्यमें तो काग, गिद्ध, चीलादि भी उड़ते हैं। बिना पारख जीव जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें गिर पड़ते हैं॥ १७७८॥

साखीः— घर जञ्जाल बाहर जञ्जाल ❀ जञ्जाल काया माथे॥

[३१७] जो जञ्जाल तजि योगी भये ❀ सो जञ्जाल है साथे॥ १७७९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हे जिज्ञासुओ! सुनो! घर-गृहस्थीमें पहले रहे; वहाँ राग-द्वेष, छल-कपट, घात-प्रतिघात, विषय प्रपञ्चसे दुःखित होते रहे। माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुत्रादि मायाका जञ्जाल घरमें लगा था, उनके भरण-पोषण प्रतिपालन करनेके लिये झूठ-साँच नाना कर्म-कुकर्म उद्यम व्यापार, कृषि, नौकरी आदि अनेक उपाधियोंका प्रपञ्च लगा रहता था। उससे घबड़ा करके कोई घर छोड़कर बाहर निकल आये, तो षट् दर्शनोंमें कहीं जा करके भेष धारण कर लिये। वहाँपर भी और दूगुना जञ्जाल लगा। भेषका प्रपञ्च, मठ-मन्दिरकी सम्हाल, टहल, शिष्य-शाखाका मोह, पञ्चकोशोंके वाणी प्रपञ्च, पञ्च मार्गादिको नाना कष्टकर साधनाओंकी उपाधि, चार धाम, तीर्थ यात्राकी भटकना, मत-पन्थोंके पक्ष, झगड़ा, महान जञ्जालमें जाकर पड़े; और कोई मठ-मन्दिर जमातसे उदास होकर मन उपराम होनेसे वहाँसे भी निकल करके कहीं अकेले कुटी बना करके रहने लगे, तथा कोई गुफा-कन्दरादिमें रहने लगे। तो वहाँ भी कुछ-न-कुछ उपाधि लगी ही रही। सब तरफमें ही झंझट प्रपञ्चोंमें पड़ जाते हैं। काया-मायाका बोझा तो सबके माथे या शिरपर चढ़ा है। इसीवास्ते देह करके बहुतेरे जञ्जाल खड़े होते रहते हैं। भूख-प्यास, ठण्ढी-गर्मी, सुख-दुःख, रोग-शोग, जन्म-मरणादि नाना उपाधि देहधारियोंमें लगी ही रहती है। जो कोई घर-गृहस्थीकी मोटी-मायाका जञ्जाल छोड़ करके त्यागी बनकर योगी, ज्ञानी, भक्त हुए; परन्तु, बिना पारख सो सब उपाधिका कारण झीनी-मायाका जञ्जाल जड़ाध्यास भ्रम, कल्पना, चाहना, मानना, धोखा, आशा-तृष्णादिके सारे विकार उनके साथ-साथ अन्तःकरणमें ही भरे पड़े रहे। घरमें मिहनत करनेका दुःख था, बाहरमें साधना करनेका दुःख होता है; शरीरमें त्रिविधि ताप एवं रोगादिका दुःख, योगमें वियोगका दुःख, इत्यादि सब तरफ दुःख-जञ्जाल ही लगा है। खानी-

वाणीके घेरामें सब तरफ बन्धन-ही-बन्धन छाया है। अन्तर-बाहर, काया-माया, योग-भोगादि सोई जञ्जालोंके साथमें जीव फँसे पड़े हैं। बिरले ही पारखी कोई-कोई पारख स्थितिमें कायम रहकर इन सब जञ्जालोंसे बचे रहते हैं, सोई मुक्त होते हैं॥ इसके बारेमें (१) कान्तादासवत्। (२) संन्यासी विशुद्धानन्दवत्। (३) अज्ञ बाबाजीके गीता-मोहवत्; और (४) अनधिकारी लोगोंके एकान्तवासवत्; चार उपयुक्त दृष्टान्त आया है। जिससे पारखके बोध हुए बिना सब तरफ जञ्जालके महाजाल ही बिछा हुआ है। जिसमें सब कोई अरुझे पड़े हैं। उसका खुलासा विवरण नीचे टिप्पणीमें ❀ लिख दिया गया है। वहाँसे पढ़ करके मतलब जान लीजिये !॥ १७७९ ॥

❀ **टिप्पणीः**— हे सन्त-सज्जनो ! "घर जञ्जाल०"— आदिके बारेमें उपयुक्त दृष्टान्त निम्न प्रकारसे आया है। उसे श्रवण करके सार ग्रहणकर अपना-अपना सुधार करना चाहिये। सो अप । स्वभावका सुधार कर लीजिये ! ॥

(१) **दृष्टान्तः**— घर गृहस्थीमें फँसे रहना तो प्रथम महा जञ्जालमें घिरे रहना ही है। एक पुरुष साधारण स्थितिमें रहता था। एक स्त्री और तीन-चार सन्तानें उसकी थीं। गरीब था, मेहनत-मजदूरी करके गुजारा चलाता था। स्त्री उसकी कर्कशा थी; रोज कलह किया करती थी। इतना होनेपर भी समयपर भोजन बना करके उसको दिया करती थी। तुम तो खानेको हुशियार हो, कमाई कुछ भी नहीं करते हो तो कहो, मैं कहाँ तक तुम्हें ला-ला करके खिलाऊँ ? जबसे मैं तुम्हारे यहाँ आई, तबसे मुझे तो सुख स्वप्नमें भी नहीं मिलता है। हाय ! मेरे कर्म फूट गये थे, जो तुम्हारे पाले पड़ी। इत्यादि बक-झक करके कभी-कभी तो थप्पड़ भी लगा दिया करती थी। रोज ही पतिका तिरस्कार किया करती थी; और माताकी देखा-देखी उसके बच्चे भी बापको बुरा-भला सुनाकर गाली देकर मार बैठते थे। तथापि मोह-ममताके कारण आसक्त हो करके वह आलसी बनकर उसी जञ्जालमें दिन बिता रहा था। इसीतरह १५-२० वर्ष गुजर गये। रोजका कलह करना, कहना-सुनना, लड़ना-झगड़ना उनका अभ्यास-सा हो गया था।

एक समयमें झगड़ा होनेपर स्त्रीने डण्डोंसे पुरुषको दनादन मार-पीट की। जिससे दुःखी होकर वह 'कान्तादास' रोते हुए घरसे निकल पड़ा। संयोगसे समीपके दूसरे गाँवमें वैरागी साधु लोग रामत करते हुए आ करके पड़ाव डाले हुए थे; और उनके श्रद्धालु सेवक लोगोंके तरफसे मालपुआ, पूरी आदिका भण्डारा लगा हुआ था, सब मजेसे खा-पीकर मस्त पड़े थे; वह 'कान्तादास' भी वहीं जा पहुँचा। भाग्यसे उसे भी भरपेट भण्डाराका माल, मिठाई, प्रसाद खानेको मिला। बस, वह प्रसन्न होकर रातमें वहीं रहा। दूसरे दिन भी किसी दूसरेकी तरफसे भण्डारा हुआ, तो अच्छा-अच्छा माल ही खानेको पाया, काम उसे कुछ करना ही नहीं पड़ता था, दूसरे लोग ही सब काम कर लेते थे। तब उसके मनमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि, साधु होनेमें ही मजा मालूम पड़ता है, देखो न, ये साधु लोग कैसे मस्त पड़े हैं ! काम-धन्धा तो कुछ करना ही नहीं पड़ता है; और रोज ही ऐसे माल खानेको मिलता है। घर-गृहस्थीमें तो दिनभर मिहनत करके तब कहीं रूखी-सूखी रोटी खानेको मिलती है; और हमारे तो अभाग्यसे सो भी बड़ी मुश्किलसे मिलती है। झगड़ाका पाठ रोज ही सुनना पड़ता है। अब तो मैं इनके सरीखा ही साधु बनकर आरामसे रहूँगा, घरमें तो महा जञ्जाल है, उसे तो मैं छोड़ ही दूँगा, ऐसा निश्चय करके उन साधुओंके मुखियाके पास जा करके हाथ जोड़कर बोला— "महाराज ! मुझे भी अपना चेला बना लो ! मैं अब तो आपकी शरणमें ही रहूँगा !" इत्यादि कहा। उन साधुने पूछा—"क्या तुझे घर गृहस्थीसे वैराग्य हो गया है ?" उसने कहा— "हाँ महाराज ! अब मुझे घरकी कोई आशा नहीं है, मैं आपकी शरणमें रहकर भगवान्के भजनमें लगना चाहता हूँ।" ऐसी बहुस-सी बात कहा। तब साधुके मुखिया बोले— "देखो कान्तादास ! हम लोग तो रामलमें हैं, इसलिये हम तो तुम्हें साधु नहीं बनावेंगे। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम्हें एक उपाय बता देते हैं, बोलो !"— "हाँ महाराज ! उपाय ही बता दीजिये।" वैरागी बोले— "यहाँसे दश कोश पूर्व एक रामटिला है, वहाँ कुटीमें 'रामदास महाराज' रहते हैं, तुम उन्हींके पासमें जाकर चेले बनो; और गुरुकी सेवा करते हुए हरि भजनमें लगो !" इत्यादि बता दिये। उसने भी सोचा हाँ ठीक है, अपने गाँवसे दूर जाना ही ठीक है। फिर पूरा पता लिखा करके 'कान्तादास' दूसरे दिन सबेरे ही वहाँसे चल पड़ा। सारा दिन पैदल चलकर पूछते-पूछते बड़ी मुश्किलसे शामको रामटिलामें जाकर पहुँचा; और रामदासकी कुटीमें जा करके उतरा। दोनोंने एक-दूसरेसे पूछ-ताछकर परिचय किया। आगन्तुकको बड़ी भूख-प्यास लग रही थी, थकावटसे सुस्त पड़ा हुआ था। कुएँसे जल निकाल करके पीया, फिर रामदासने सूखी मोटी-मोटी दो रोटी लाके दी, सो अन्यमनस्क भावसे खाया

और सो गया। दूसरे दिन बड़ी देरीसे उठा, फिर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर रामदासके पास गया और "मुझे चेला बनाइये !" कहा। उन्होंने भी कुछ पूछ-ताछकर तुरन्त ही मूँड़-मुड़ा करके उसे चेला बना लिया, और जानकीदास उसका नाम रक्खा। फिर गुरुवाने कहा— "हमारा गुजारा तो नित्यकी भिक्षा वृत्तिसे होता है; और मैं तो कभी-कभी जङ्गली कन्द-मूल लाकर ही भगवान्का भोग लगाता हूँ। ! बेटा ! साधुको, कठिन वैराग्यसे क्षुधा--तृषा, शीतोष्ण सहकर ही भगवान्का भजन करना होता है। आज तुम नवीन चेले बने हो, तो मैं भिक्षा माँगने नहीं जाऊँगा, तुम ही जा करके गाँवमेंसे भिक्षा माँग लाओ ! देखो, वहाँपर झोली टँगी है। यहाँसे उत्तर तरफ कोशभर दूरमें सज्जारी गाँव है, वहाँ जाकर भिक्षा माँगकर जल्दी लौट आओ ! तब उसे अमनियाँ करके भोजन बनावेंगे; और फिर भगवान्को भोग लगेगा, समझे !" इत्यादि बातें कहकर उसे झोली पकड़ा दिया। तब नवीन साधु जानकीदास हक्का-बक्का-सा झोली पकड़कर कुटीसे बाहर निकल पड़ा; और एक जगह जाकर बैठकर अफशोस करने लगा। मैंने तो समझा था पूरी, कचौरी, मालपुआ, मिठाई आदि ही रोज साधुओंको आरामसे खानेको मिलता होगा। इसी आशासे मैं वहाँ दश कोश दूर तक चला आया। हाय दैव ! यहाँ तो मेरी आशापर पानी पड़ गया। साधुका चेला बना, तो यहाँपर खाने-पीनेका कुछ ठेकान ही नहीं है। कल उतने दूरसे थककर आया, तो दो ही सूखी रोटी खानेको मिली, उससे आधापेट भी नहीं भरा, और थकावट अभी मिटी नहीं कि, कोशों दूर भिक्षा माँगनेको निकलना पड़ा, हाय भगवान् ! क्या आफतमें पड़ना पड़ा, इत्यादि सङ्कल्प-विकल्प करता हुआ गाँवकी तरफ चला गया। धीरे-धीरे जा करके दो-तीन घण्टोंमें गाँवमें पहुँचा। इसने कभी भिक्षा माँगा तो नहीं था, इससे कैसे भिक्षा माँगना ? सोचते-विचारते दिनभर गाँवमें इधर-उधर घूमनेमें ही बिता दिया; और भूखके मारे व्याकुल हो रहा था, तो भी कहीं कुछ खानेको नहीं मिला। फिर हताश हो शामको कुटीमें लौट आया। उसे दिन बिता करके भी खाली हाथ लौट आया देखकर गुरुवा बड़ा नाराज हुआ, खूब डाँट फटकारा। "ऐसा नालायक चेला हुआ है, इसे भिक्षा माँग लानेका ढङ्ग तक नहीं है, फिर यह और क्या करेगा ! इसके कारणसे आज भगवान्को भोग भी नहीं लग सका। क्यों रे जानकीदास ! क्या तूने यहाँ मामाका घर वा ससुराल समझकर तो नहीं आया था ? यहाँ बहुत-सा काम करना बाकी पड़ा है, तूने दिनभर वहाँ क्यों बिताया ? खैर, आज तो तू नया है, मैं ज्यादा कुछ नहीं कहता, यदि कल भी ऐसे ही करेगा, तो डण्डोंसे तेरी मरम्मत करूँगा; समझा ! यह साधुका आश्रम है। यह तेरा घर नहीं है कि, तू चैन करता रहे। साधु होना क्या तूने खेलवाड़ समझा है ? आज भिक्षा नहीं आया, तो उपवास ही करो ! यही भगवान्की इच्छा थी," इत्यादि खरी-खोटी सुनाकर कुछ भी खानेको नहीं दिया। रात हो चुकी थी, भूखके मारे व्याकुल हो रहा था, वह अपने भाग्यको कोश रहा था, घरके जञ्जालसे भी कठिन उसे बाहरका जञ्जाल तब मालूम पड़ा। पछताने लगा, लेशमात्र भी वैराग्य तो उसमें था नहीं, अतः बुद्धि पलट गई। मनमें सोचने लगा— "यहाँसे तो घरमें ही सौ गुना अच्छा था, वह तो अपना ही घर था। स्त्री, पुत्र, परिवार सब अपने ही तो लोग थे; प्यारकी गाली और मार भी अच्छी होती है। आज तक घरमें यहाँ सरीखा कभी भूखों मरना तो नहीं पड़ा था। स्त्री बकती-झकती थी, तो भी बखतमें भोजनके वास्तेमें दोनों वक्त भर पेट रोटी खानेको तो देती ही थी। आज मालूम पड़ा घर छोड़नेपर कैसा आफत होता है। ये बिराने लोगोंकी डाँट-फटकार सुनना, भूखों मरना और मार भी खाना पड़े, यह कौन अच्छी बात है ? यह तो बड़ी बुरी बात है। कहाँ अशुभ घड़ीमें मैं घरसे निकला, अब ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा," इत्यादि उधेड़-बुन करता हुआ उसे रातमें नींद भी नहीं आई। सबेरे चार बजे ही उठकर चुपचाप कुटीसे निकलकर चल पड़ा, घरका रास्ता लिया। मन-बुद्धिने घरके दुःखोंको ही उत्तम समझ लिया। यही मोह-ममताका प्रताप है। फिर कभी घर नहीं छोड़नेकी दृढ़ता करके कान पकड़ लिया। सारा दिन चलकर भूखा-प्यासा, थका-माँदा शामको घर पहुँच गया। अब तक घरसे बाहर निकले उसे सात रोज हो चुके थे। तब तक स्त्री घरमें चैनसे रह रही थी। इसे लौटकर आया हुआ देख देवीने वाक् बाणकी वर्षा करके, उलटी-सीधी सुनाकर तिरस्कारसे स्वागत किया। "चले गये थे, तो अब क्यों यहाँ मरनेको आये ? तुम्हारे जानेपर तो घरमें आनन्द-ही-आनन्द था, अब फिर दुःखका पहाड़ टूट पड़ा। हे दैव ! कैसे दुष्टके सङ्गमें पड़ना पड़ा।" इत्यादि बड़बड़ाती हुई खूब गाली सुनाई। कान्तादास चुप रहा; पीछे कहा— "मालकिन ! मेरेसे जो कसूर हुआ, सो माफ करो ! अब आइन्दासे ऐसी गल्ती नहीं करूँगा। जो-जो बात कहोगी, सो सब मानूँगा, तुम्हारे काममें मैं हस्तक्षेप नहीं करूँगा !" इत्यादि विनय करके नारीका गुलाम होकर रहा लाखों कष्ट-क्लेश सह करके भी घरमें राजी रहता था, फिर घरसे निकलनेका उसने कभी नाम तक नहीं लिया। अच्छी तरहसे चिपक करके विषयासक्त हो सरायके टट्टू और गधेकी नाईं अभी तक संसारमें वह दुस्सह दुःख भोग रहा है। उसके दुःखोंका कभी अन्त ही नहीं होता है।

इस दृष्टान्तमें घर–जञ्जाल और बाहर–जञ्जाल दोनों तरफकी थोड़ी–थोड़ी झलक दिखलायी गयी है। बिना विवेक सब कोई जञ्जालोंमें ही घिरे पड़े हैं। कोई विवेकी ही उससे न्यारे होते हैं॥

सत्सङ्ग–विचारसे रहित अविचारके त्यागसे कुछ लाभ नहीं होता है। क्योंकि, पश्चात् समय पा करके उसके मनमें राग उत्पन्न होकर वही दुःखदायी जञ्जालमें फँसानेवाला हो जाता है। इसके बारेमें एक दृष्टान्त आया है, सो सुनिये!:—

(२) **दृष्टान्तः**— नाना तरहसे दुःख पा करके एक पुरुषके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। वैराग्यका जोश ज्यादा होनेसे घर–बारको त्यागकर वह निकल पड़ा; और किसी संन्यासीसे दीक्षा लेकर काषायाम्बर धारणकर संन्यासी हो गया। फिर तीर्थाटन करते हुए भ्रमण करने लगा। जनसमुदायसे वह बहुत भयभीत रहता था, सदा एकान्तस्थान वनखण्डमें ही निवास करता था। इसीतरह कई वर्ष व्यतीत हो गये।

एक समय उत्तर प्रदेशमें गङ्गा किनारे जङ्गलके नजदीकमें वह संन्यासी रहने लगा। मीलभरके पासमें ही गाँव पड़ता था। यद्यपि विशेष करके वह गाँवमें नहीं जाता था, तथापि ग्वाल लोग अपने गाय–भैंस आदि पशु चरानेको उधर ही आते थे। ग्वालोंके द्वारा गाँवके लोगोंको भी मालूम हो गया कि, एक महात्मा वहाँ रहते हैं। फिर श्रद्धालु भक्त लोग दर्शनार्थ आने लगे, उन्हें कुछ उपदेश भी महात्मा कर देते थे, वे फलाहार, जङ्गलके कन्द–मूलपर ही अपना निर्वाह कर लेते थे, किसीसे कुछ माँगते नहीं थे। इसीसे भक्त लोगोंकी उनपर बड़ी श्रद्धा थी। फलहारी होनेसे भक्त लोग दूध पहुँचा दिया करते थे। एक भक्तकी ऐसी श्रद्धा उत्पन्न हुई कि, महात्माजीको दुग्धपान करनेके लिये एक दुधारू गाय–बछड़ा सहित चढ़ा देना चाहिये। समय पा करके उसने महात्मासे अपनी श्रद्धा प्रगट की; और कहा कि, नित्यप्रति गाँवके लोगोंसे दूध पहुँचानेकी सेवा हो नहीं सकेगी; अतः मेरी श्रद्धा ऐसी है कि, दूध देनेवाली एक गाय बछड़ा समेत् आपको चढ़ाकर यहाँपर बाँध दूँ, जिससे रोज ही समयपर आपको दूध मिला करेगा। इतनी मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये!

संन्यासी बोले— भाई! तुम्हारा श्रद्धा करना तो अच्छी बात है; परन्तु, हमसे प्रवृत्तिके कार्य कुछ नहीं होगा। गैयाको रखकर उसकी देख–भाल कौन करेगा? दूध कौन दूहेगा? इसका सारा खटपट कौन करेगा? भक्त बोला— महाराज! आपकी सेवाके लिये मैं स्वयं रोज ही आकर यह सब प्रबन्ध कर दिया करूँगा। आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा; आपकी स्वीकृति भर चाहिये। एक कुटी आपको रहनेके लिये और दूसरा ओसारा गैया–बछड़ाको रखनेके लिये हम सब गाँववाले मिल करके बना देवेंगे। सब काम हम लोग ही कर देंगे, आप सिर्फ यहाँ विराजमान रहिये, ऐसा कहा। संन्यासीने मनमें सोचा, अपनेको उपाधि तो कुछ होनेकी ही नहीं, फिर भक्तोंकी श्रद्धा है, तो क्या हरकत है? सब काम वे ही सम्हाला करेंगे। प्रगटमें बोले— भगतजी! तुम्हारी जैसी श्रद्धा है, वैसा करो! हमने तो पहले ही कह दिया है कि, हमसे तो कुछ प्रवृत्तिका काम–धाम होनेका नहीं। सब तुमको ही करना पड़ेगा। भक्तने कहा— हाँ महाराज! आप कुछ मत् करिये, काम तो सब हम ही कर लेंगे। संन्यासीकी अनुमति पा करके भक्त गाँवमें चला गया। इधर उन्होंने सोचा भ्रमण करते–करते थक भी चुके हैं। यहाँके भक्त लोग श्रद्धालु हैं, और स्थान भी रमणीक एकान्त है, अब यहीं विश्राम करके भगवद् भजनमें समय बितायेंगे। उधर उसने गाँवके अन्य श्रद्धालु लोगोंकी मदद् ले करके उसी रोज सब सामान जुटाकर गङ्गाके किनारे महात्माके लिये एक पर्णकुटी और गैयाके लिये भी पास ही एक ओसारा बना दिया। दूसरे रोज घरसे एक गाय–बछड़ा सहित लाकर वहाँ बाँध दिया; और दूध दुह करके गरमाकर महात्माको दे दिया, तथा गाय–बछड़ेको चारा–पानी करके चला गया। इसीप्रकार कुछ दिन तक तो वह भक्त करता रहा, फिर घर–गृहस्थीके काम-में उसे फुर्सत न मिलनेसे मीलभर दूर रोज दोनों टायम जाने–आनेमें उसे दिक्कत होने लगी। तब शामके लिये उसने एक आदमी लगाया, सबेरे अपने आकर काम कर जाया करता था। दो–चार दिनके बाद नौकरने कहा— शामको कुटीसे आनेमें देर होती है, रास्तामें अकेला आनेमें मुझे डर लगता है। भक्तने कहा— वहाँ ही रातमें रहनेका प्रबन्ध हो जाय, तो तुम रहोगे न? आदमीने कहा— हाँ, तब तो रहूँगा, सबेरे भी काम करके चला आया करूँगा। उस दिन भक्तने जा करके संन्यासीसे कहा— महाराज! गाँवमें रहनेवाली गाय यहाँ जङ्गलमें अकेली रहनेसे डर भी जाती है; और यह आदमी रातमें घर लौटकर आनेमें डर जाता हूँ, ऐसा कहता है, यहाँ गैयाके पासमें यह आदमी एक तरफ रहेगा, रातमें उठ करके चारा–पानी भी करेगा, गैयाको भी आधार होगा; और सबेरे भी मेरे आनेसे पहिले ही यहाँके सब काम करके जाया करेगा। रातमें इसको यहाँ एक तरफ रहनेकी आप आज्ञा दीजिये? उन्होंने सोचा, गाय–बछड़ा तो रहते

ही हैं, उनके कामके लिये एक आदमी भी एक तरफ रहेगा, तो उससे हमको कोई उपाधि नहीं है। ऐसा विचारकर बोले— अच्छा रातमें आदमीको रहने दो! परन्तु, हल्ला-गुल्ला न करे, ऐसा उसे समझा देना। क्योंकि, हम ध्यानमें रहते हैं। अच्छा महाराज! समझा दूँगा, ऐसा कहकर भक्त चला गया। तबसे वह आदमी वहाँ ही रातमें रहने लगा। दूध दुहकर गरमारकर संन्यासीको दे देता, वे सेरभर दूध अपने लेकर बाकी उसे ही दे देते, वह भी पी जाता। इसतरह दो-चार महीना गुजरा, तो गाय-बछड़े रहनेसे गोबर-मूत्र घास-फूसका खाद भी कुछ इकट्ठा हो गया। वहाँ गङ्गाके किनारे कुटीके आस-पासमें दश-बारह एकर जमीन यों ही बञ्जर पड़ी थी। उसे देखकर उस आदमीके मनमें आया कि, यहाँ खेती की जाती तो अच्छी फसल आती। उस नौकरने भक्तसे और महात्मासे भी मौका पा करके वह बात कही। फिर भक्त और संन्यासी बैठे थे, तब भी वही जिकर निकाला। यहाँ इतनी सारी जमीन बेकार पड़ी है; और गोबर-खाद भी बहुत-सा जमा हो गया है, काम तो हम सब ही करेंगे, इसमें कुछ भी चिन्ता आपको करनी नहीं पड़ेगी, फसल उत्पन्न होनेपर हम गरीबोंका भी गुजारा चलेगा। घास-चारा निकलेगा, सो गैयाके लिये सालभरको पूरा हो जायगा, इत्यादि कहा। भक्तने भी उसकी हाँ-में-हाँ मिलाया। संन्यासीने कुछ सोच-विचार करके कि, मुझे तो इसमें प्रवृत्तिकी उपाधिमें कुछ पड़ना ही नहीं पड़ेगा, बेचारे गरीबकी भलाई होती है, तो अपनेको क्या हर्ज है? वह काम करेगा और खायेगा। प्रगटमें बोले— देखो भाई! मैं तो कुछ भी उपाधिमें पड़ना नहीं चाहता हूँ! यह तो तुम लोग जानते ही हो; और मैं अनाज खाता भी नहीं हूँ, तुम खेती करो, सम्हालो, खाओ, गैयाको चारा खिलाओ, इसमें तो मुझे कुछ एतराज नहीं है। मेरे भजनमें विघ्न न हो, उस रीतिसे, युक्तिसे अन्न पैदा करके खाओ।

नौकर बोला— महाराज! आप बेफिकर रहिये! हम लोग मजदूर दिनमें आ करके ही खेतमें काम करेंगे। शाम-सबेरे और रात आपके भजनके लिये सुरक्षित रहेगी। संन्यासीकी अनुमतिसे वहाँ खेती भी होने लगी; कुछ फुलवारी लगाई गई; और कुछ अच्छे-अच्छे फलोंके बिरुवे बगीचा भी लगाया गया। इसतरह वहाँ तीन-चार वर्षमें अच्छी उपज होने लगी, संन्यासी दूध और फल खाते थे; और अनाज आदि सब वही नौकर ले लेता था।

एक दिन पटवारीने आकर देखा और पूछा कि, यह किसकी जमीन और बगीचा है? नौकरने कहा— महात्मा विशुद्धानन्दजीका है। पटवारीने खातामें उनका नाम दर्ज कर लिया; और पूछा— कितने वर्षसे यह जमीन जोती जाती है। नौकरने कहा— तीन वर्षसे। फिर पूछा— तुम कौन हो? उसने कहा— मैं स्वामीजीका खास नौकर हूँ। इतनी पूछ-ताछ करके पटवारी चला गया। उसने जाकर लगान लेनेवाला अफसरको बतलाया। फलाने जगहमें अच्छी कास्तकारी हो रही है; बगीचा भी लगा है, उसका मालिक एक संन्यासी है, तीन सालसे लगान वसूल हुआ कि, नहीं? अपने खातामें देखिये! उसने देखा, तो उनका नाम ही नहीं था, उसने नाम दर्ज किया। फिर पटवारीको भेजकर माप कराया; और अच्छी जमीनके गिनतीमें एकरके हिसाबसे लगान लगाकर तीन वर्षका लगान इकट्ठा भरनेको नोटिस दे दिया। नोटिस आनेपर "मैं यह व्यवहार कुछ भी नहीं जानता हूँ!" ऐसा कहकर नोटिस भी नहीं लिये। चपरासी म्याद सुनाकर चला गया। मुद्दतके भीतर लगान जमा नहीं हुआ, तो आफिसरने वह बात राजाके पासमें शिकायत कर दी, तो राजा बड़ा नाराज हो गया। उसने चार-छै सिपाही भेज करके संन्यासीको पकड़कर लाओ, कहा। सिपाही गये, उनके पास पहुँचकर राजाकी आज्ञा सुनाये; और अभी हमारे साथ चलिये, कहा। उन्होंने जानेसे इन्कार किया, तो सिपाहियोंने उन्हें पकड़कर बाँध करके हथकड़ी डालकर ले जाकर राजाके समक्ष पेश किया, आनेसे भी इन्कार करता था, बतलाया। राजाने कहा— विशुद्धानन्दजी! आपने खेती और बगीचासे आदमनी तो खूब पैदा किया है, फिर राज्यके लगान क्यों नहीं भर देते हैं? आप साधु हो करके भी ऐसी मक्कारी क्यों करते हैं? आप यदि अपना हित चाहते हैं, तो लगानकी रकम आज ही भर दीजिये! वह जमीन हमने आपको माफीमें नहीं दी है; लगान आपको भरना ही पड़ेगा, इत्यादि कहा।

संन्यासी बोले— राजन्! इस जञ्जालकी उपाधिमें मैं तो फजूलमें ही पड़ गया हूँ। एक तो फलाहारके सिवाय मैं अनाज कुछ नहीं खाता हूँ। दूसरा, वहाँकी जमीनका काम जो करता है, वही आमदनी भी ले लेता है; मैं उससे कुछ भी नहीं लेता हूँ। तीसरा, मेरे पास द्रव्यका संग्रह कुछ भी नहीं है, तो कहिये! मैं लगान कैसे कहाँसे लाकर भर सकता हूँ! जो जमीन जोतता है, उससे लगान लीजिये! राजा बोला— वाह! आपके नामसे जमीन दर्ज है, काम करनेवाला नौकर होता है; उससे क्या मतलब? यह देखाबेके झूठे त्यागकी बात आपकी यहाँपर नहीं चलेगी। लगान भरना है कि, नहीं?

कहिये ! नहीं तो कायदेके अनुसार दण्ड भुगतना पड़ेगा । संन्यासी बोले— राजन् ! मेरे पासमें द्रव्य नहीं है, मैं लगान भरनेमें असमर्थ हूँ । मैं वहाँ अविवेकसे रहा, यह मेरेसे भूल हुई, इस कसूरका आप मुझे दण्ड दे दीजिये !

तब राजाने सोच-विचारकर अपने सिपाहीको हुक्म दे दिया कि, इस संन्यासीको कैदमें डालनेके बदले ऐसा करो कि, गङ्गाके किनारे बालूके मैदानमें ले जाकर लङ्गोटी छोड़कर और सब कपड़ेको उतार डालो, फिर मनभरका एक पत्थर शिरपर ढोनेको दे दो ! घाममें सारा दिन इसे खड़ा रक्खो, बैठने नहीं देना, खाने-पीनेको भी कुछ नहीं देना । रात होनेपर इसे छोड़ देना; और जमीन नीलाम करके लगानका रुपया वसूल कर लो ! फिर राजाकी आज्ञाके अनुसार ही सब काम हुआ । उस वक्त जेष्ठका महीना चल रहा था । सिपाहियोंने संन्यासीको ले जाकर गङ्गाके रेतीले मैदानमें नङ्गा करके खड़ा किया, फिर मनभर पत्थरका बोझा उनके शिरपर रखकर उठाने लगाया । संन्यासीने भी अपनी भूल, सङ्ग-दोषका प्रायश्चित्त समझकर शान्त भावसे पत्थरका बोझा उठाये दिनभर खड़ा रहा । सर्वाङ्गमें गरम वायु-'लू' का चपेटा लगता था, नीचे बालू तप जानेसे असह्य चटका ताप लग रहा था, ऊपर पत्थर भी तप गया था । उन्होंने यम-यातनाका दुःख प्रत्यक्ष वहाँ-पर ही देखा । भूख-प्याससे कण्ठ सूखनेसे प्राण व्याकुल हो रहा था । यह सब दण्ड दूध पीनेका ही फल मिला, ऐसा समझकर पछता रहे थे । फिर ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा, मन-ही-मन ऐसी प्रतिज्ञा कर रहे थे । शक्तिभर वे वेदना सहन करके खड़े रहे, धैर्य रखते रहे । परन्तु, अति दुःख होनेसे शरीरने सहन करनेको असमर्थ होकर जवाब दे दिया । चक्कर आकर वे तीसरे पहरमें गिर पड़े, 'लू' लग गयी थी । संयोगसे पत्थर एक तरफ गिरा, संन्यासी दूसरे तरफ लुढ़के, मूर्च्छा आ गई थी । सिपाहियोंने ऐसी अवस्था देखकर राजाको खबर दी । राजाने "उसे वैसा ही छोड़कर तुम लोग सब चले आओ !" ऐसा फर्माया । हुक्म पाकर संन्यासीको रेतीमें अकेला ही बेहोश छोड़कर सब सिपाही चले गये । रात होनेपर संन्यासीकी मूर्च्छा टूटी, देखा, तो अकेले पड़े हैं, हाथ-पैर सब उनके काँप रहे थे; प्रारब्ध शेष था, वे बच गये । धीरेसे उठकर गङ्गाजीमें पहुँच गया, फिर स्नान किया और जल पीकर प्यास मिटाया । अपने अविवेकसे हुई भूलका यह दण्ड समझकर ग्लानि त्याग दिया । फिर शान्तचित्तसे उस देशको छोड़कर अन्यत्र चले गये । तबसे सदा सावधान होकर असङ्ग ही रहकर जीवन बिताये ।

इधर दूसरे रोज गाँववाले भक्तोंको मालूम हुआ कि, महात्मा पकड़े गये । फिर भक्त लोगोंने दौड़-धूप करके पता लगाया । राजाकी तरफसे दण्ड देनेका हाल मालूम हुआ; और महात्माकी खोज की तो फिर उन्हें कहीं पता ही नहीं लगा । सब अफशोस करके घर लौट आये; कुछ दिनमें सब उनको भूल गये । परन्तु, इस बातकी घटनाको दृष्टान्तरूपसे आज भी स्मरण किया जाता है । घरका जञ्जाल छोड़नेपर भी कभी असावधानीसे धीरे-धीरे करके बाहर जङ्गलमें भी बड़ा भारी जञ्जाल उपस्थित हो जाता है । जिसका नतीजा बड़ा कष्टकारक हो जाता है । सो ऊपरी दृष्टान्त इसी बातको बतलाता है । साधु होने मात्रसे ही जञ्जाल नहीं छूटता है । जितना जञ्जाल घरके भीतर होता है, उतना ही जञ्जाल बाहर भी है, इसीसे "जञ्जाल काया माथे" कहा है । शरीरके ऊपरमें ही सारा जञ्जाल लगा रहता है । थोड़ी-सी भूलसे वह बढ़ते-बढ़ते बड़ा विस्तारवाला हो जाता है । फलाहारी संन्यासीको दूधाहारमें लग जानेके कारणसे ही सारा जञ्जाल बढ़कर दुःख भोगना पड़ा था । अतः यह देहकी आसक्ति तथा पञ्चविषयोंकी आसक्तिके कारणसे ही सब प्रकारके जञ्जाल विस्तार होते हैं । इसलिये परीक्षा दृष्टिको सदा जाग्रत् रख करके सन्तोंको अपने हितके मार्गमें सत्पुरुषार्थयुत लगे रहना चाहिये ॥

सत्सङ्ग-विचारसे ज्ञान प्राप्त हुए बिना वैराग्यकी स्थायी स्थिति नहीं होती है; और क्षणिक आवेशमें आकर लिया हुआ वैराग्य थोड़े कालमें ही नष्ट हो जाता है । रामायणमें कहा है:—

चौपाईः— "नारि मुई घर सम्पति नाशी । मूँड़ मुड़ाय भये संन्यासी ॥"

इसप्रकार नकली बनावटी साधुओंका समय आनेपर पतन हो जाता है । घरके जञ्जालसे निकलकर भी वे फिर बाहर वैसे ही जञ्जाल मूर्खतासे इकट्ठे कर लेते हैं; इसपर एक दृष्टान्त आया है, सो भी सुन लीजिये !:—

(३) दृष्टान्तः— घरमें दुःख पा करके एक पुरुष निकला, तो वैरागियोंकी जमातमें जाकर वह साधु हो गया । वह पूरा ही मूर्ख था; और आलसी भी था । भर पेट खा करके सण्ड-मुसण्ड हो फिरा करता था । जैसे कि कहा है:—

दोहाः— "राम भजनको आलसी । खानेको हुशियार ॥ तुलसी ऐसे नरनको । बार बार धिक्कार ॥"

ऐसा ही लक्षण उसमें था । विशेष पढ़ा-लिखा तो वह नहीं था; हाँ कुछ-कुछ अक्षर वह जरूर जानता था । उतनेमें भी वह अपनेको बड़ा बुद्धिमान् समझता था । एक समय किसी संन्यासीसे उसकी वार्तालाप हुई, तो उसकी मूर्खताका

परिचय मिला। तब संन्यासीने उसे यह समझा दिया कि— "गीता ब्रह्मज्ञानका भण्डार है, उपनिषदोंका सार है, गीता अवश्य ही पढ़नी चाहिये।" यह बात उसके मनमें भी ठस गई; और गीताकी पुस्तक प्राप्त करनेका उपाय वह सोचने लगा। गीता खरीद लेनेके लिये उसके पासमें पैसा नहीं था; इधर-उधर घूम रहा था, ऐसे ही मौकेमें एक दिन उस देशके राजा साहब हवा खाने बाहर निकले थे। बाबाजीको मालूम हुआ, तो जिधर राजा टहल रहा था, उधर जा पहुँचा, तथा राजा साहबको जा घेरा और दोनों हाथोंको जोड़कर राजाके सामनेमें खड़ा हो गया। राजाने उसे उसप्रकार खड़े देखकर पूछा— कहिये! आप क्या चाहते हैं? क्यों आप इतनी तकलीफ उठा रहे हैं? कहिये, क्या कहना चाहते हैं? बाबाजी बोला— महाराज! हमें गीताकी एक अच्छी पोथी ले दो! और हमको कुछ नहीं चाहिये। यही कहनेको हम आपके पासमें आये हैं ऐसा उसका वचन सुनकर प्रसन्नतासे राजाने अपने अधिकारियोंको हुक्म दिया कि, जाओ, इन बाबाजीको गीताकी एक अच्छी पुस्तक खरीदकर दे देना। वह अधिकारीके पास चला गया। अधिकारीने उसे बाजारमें ले जाकर पुस्तकोंकी दूकानमेंसे बड़ी उत्तम मोटी-मोटी अक्षरवाली भाषा-टीका सहित लाल कपड़ेकी जिल्द बँधी हुई, सुनहरी पुट्ठेवाली गीताकी एक अच्छी पुस्तक खरीदकर उसे दे दी। यह भोले बाबा लाल जिल्दकी सुन्दर गीताकी पुस्तक पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। नाचने-कूदने लगा। पढ़नेके बदले उसे शिरपर चढ़ाने लगा; और फिर ऐसे चिल्ला-चिल्ला कर गीत गाने लगा कि— "गीता! गीता! गीता! हमारी सुन्दर गीता! मेरी अच्छी गीता! लाल-लाल गीता! सुनहरी गीता! मेरी प्राण गीता! प्राण प्यारी गीता! गीता! गीता!! गीता!!! धन्य! धन्य!! गीता!!!" इत्यादि पुकारता हुआ नाचता जाता था; और वह बारम्बार उस जिल्दको अपनी छातीसे लगाता; और फिर भी कहता था कि— "हाँ! हाँ! गीता! बड़ी अच्छी गीता! मेरी अच्छी गीता! अहा! अहा! गीता!" कभी उसे चूमता फिर कहता— 'मेरी अच्छी गीता!' इसतरह गीता पा करके खुश होकर पुस्तक लेकर जब वह मार्गमेंसे आ रहा था, तो उसने मनमें विचार किया कि, इसमें बाँधनेके लिये कोई बसना वा बस्ता भी होना चाहिये, नहीं तो इसका जिल्द बिगड़ जायगा। ऐसा सोचकर फिर बाजार गया; और किसी कपड़ावाले सेठसे अनुनय-विनय करके कपड़ाका टुकड़ा माँगकर उसमें गीताको लपेटकर ले आया, उस दिन वह बड़ा प्रसन्न था, सब लोगोंसे गीताकी बड़ाई करता था, वही ऊपरवाला गीताका गीत गाता था। रातको अपनी कुटीमें गीताको हिफाजतसे एक तरफ रखकर वह सो गया। परन्तु, रातमें चूहे आकर वहाँ पहुँच कर उस गीताकी जिल्दको कुतर गया। प्रातःकालमें जब वह उठा, तो प्रथम वह उसी गीताको देखने गया, तो देखता क्या है कि, चूहे आकर उसे काट गये हैं; कुतर करके जिल्द खराब कर दिये हैं। ऐसा देख कर अज्ञ बाबाजीको मनमें बड़ा दुःख हुआ। सैकड़ों गाली-शाप उस चूहेको दिया, तब जा करके कुछ सन्तोष हुआ। दूसरे दिन अज्ञ बाबाने यद्यपि बड़ी सावधानीके साथ गीताकी पोथी हिफाजत करके ऊँची जगहमें टाँग रक्खी थी, तथापि रातमें चूहे आकर वहाँ पहुँच कर उसे फिर कुतर गये। सबेरे उठकर देखा, तो उसे कुतरा हुआ देखकर वह खूब नाराज हुआ, गाली बक-झक करके रह गया। चूहे तो उसे मिलते नहीं थे, अतः झक मारकर रह गया; और उसके पास कोई सन्दूक तो नहीं थी कि, जहाँ पुस्तक छिपाकर रखता। तीसरे दिन पुस्तकको दूसरी खूँटीमें सरका करके टाँग कर रक्खा; और उसी पुस्तककी याद करते-करते सो गया, फिर भी रातमें चूहे आकर उछलकर वहाँ पहुँचकर ग्रन्थको कुतरके ही गये। सबेरे उठ कर आज भी कुतरा हुआ देखकर वह बड़ा दुःखी हुआ, विलाप करके रो पड़ा। फिर हजारों गाली चूहोंको दिया, फिर सोचा, ऐसे रोज ही चूहे पुस्तक काटते रहेंगे, तो यह नहीं बचेगी; इन मूर्ख चूहोंको मारे बिना पुस्तक नहीं बचेगी। अब मारें तो कैसे मारें, पकड़में तो आते ही नहीं हैं। चलो! गाँवके लोगोंसे पूछकर कोई उपाय मालूम करेंगे, ऐसा सोचकर वह पुस्तक लेकर गाँवमें गया; और लोगोंको अपनी रामकहानी सुना करके पूछा कि, कहो भाई! अब क्या करें? नित्य ही दुष्ट चूहे आकर हमारी गीताकी सुन्दर पुस्तक कुतर जाते हैं। आज तीन दिनसे बराबर कुतर रहे हैं, देखो! कहकर ग्रन्थ दिखलाया। तब गाँवके लोगोंने कहा— बाबाजी! आप एक बिल्ली पालिये! जिससे कि, चूहे आपकी पोथी न कुतर सकें। बिल्ली सब चूहोंको निकलते ही मार डालेगी, तब आप सुखसे सो सकेंगे। ऐसा सुनकर गाँवसे एक बिल्ली कुटीमें ले जाकर उसी दिनसे पालने लगा। एक-दो दिन तो उस बिल्लीने चूहे तोड़े; किन्तु, जब वह अन्न आदि खुराक पाये बिना भूखों मरने लगी, तब उसने चूहे तोड़ना भी बन्द कर दिया। भागकर गाँवमें चली आई। फिर चूहोंका गीता कुतरना शुरू हो गया। तब दुःखी होकर अज्ञ बाबाने लोगोंसे आकर कहा— भाई! अब तो बिल्ली भी चूहोंको नहीं तोड़ती; बल्कि, कुटीसे भागकर गाँवमें ही आ गई है। अब बताओ, क्या करें? लोगोंने कहा— बाबाजी! आप बिल्लीको कुछ

खानेको भी देते हो या नहीं ? उसने कहा— नहीं । तब बिल्ली चूहे कैसें तोड़े ? कुछ खानेको तो पाती नहीं है । कुटीमें बिल्लीको रखना है, तो आप उसे गायका दूध पिलाया करिये । तब देखना फिर बिल्ली चूहेको कैसे नहीं तोड़ती है ? दूध-रोटी रोज उसे खिलाते रहनेसे बिल्ली आपके यहाँ रहकर सब दुष्ट चूहोंको मार डालेगी । ऐसा सुनकर अज्ञ बाबाने गाँवके लोगोंसे कह-सुनकर बड़े प्रयत्नसे एक दूध देनेवाली गाय कुटीमें ले जाकर पालने लगा । इसलिये गाय पाला कि, गायका दूध बिल्लीको पिलावेंगे, दूध पीकर बिल्ली पुष्ट होगी, तो चूहोंको मारा करेगी, तो चूहे गीताकी पुस्तक न कुतरेंगे । एक-दो रोज तो यह काम चला; परन्तु, गाय भी दो दिन दूध देकर तीसरे दिन लात फेंकने लगी । अब अज्ञ बाबा फिर लाचार होकर गाँववालोंके पासमें गया; और कहने लगा कि, अब तो गायने भी दूध देना बन्द कर दिया, जो कि, बिल्ली दूध पीये और चूहे तोड़े, ताकि, गीताकी पोथी बची रहे । गाँवके लोगोंने कहा— गायको कुछ खिलाते-पिलाते भी हो कि, यों ही तुमको भूखों सब दिन दूध देती रहे, सो ऐसे कैसे हो सकता है ? इसे आप हरी-हरी घास लाकर खिलाया करो, तब गाय भी रोज दूध दिया करेगी; समझे, इत्यादि कहा ।

तदुपरान्त अज्ञ बाबाने एक-दो रोज तो इधर-उधरसे घास लाकर गायको खिलाया । फिर आलसी स्वभाव होनेसे थक गया, कुटीमें बैठकर चिन्ता करने लगा, अब क्या करें ? अपनेसे तो रोज घास लाया नहीं जाता है, यदि कोई आदमी घास लानेवाला मिल जाता, तो अच्छा होता, उसे ही रख लेते । फिर वह रोज हरी-हरी घास लाया करता । ऐसे सोच-विचारमें बैठा था, इतनेमें समय-संयोगसे एक पचीस वर्षकी गरीब स्त्री भीख माँगती हुई घूमती-फिरती इनके यहाँ आ पहुँची और भीख माँगने लगी; तब अज्ञ बाबाने उससे कहा— अरी बाई ! तू कहाँ भटकती फिर रही है ? देख ! हमारे यहाँ एक गैया है, उसके लिये हमको रोज घास चाहिये । तू हमारे यहाँ रह जा ! और रोज ही एक गट्ठा हरी-हरी घास गैयाके लिये ले आया कर ! हम तुझे खानेभरको रोटी-भोजन दे दिया करेंगे, समझी ! उस स्त्रीने कहा— हाँ महाराज ! आपकी दया है, मैं रह जाऊँगी । जो काम आपने कहा है, सो मुझे मंजूर है, ऐसी बात कही । उस दिनसे वह वहीं रह गई । तबसे वह रोज गायके लिये हरी-हरी घास छील करके ले आती, और उसकी सेवा किया करती थी । शाम-सबेरे खानेभरको रोटी उसे मिल जाया करती थी, वह भी खुश थी । अब तो उस अज्ञ बाबाकी गाय भी खूब दूध देने लगी । जिससे कि, बिल्ली तो दूध पीती ही थी, और अज्ञ बाबा भी खूब दूध रबड़ी आदि खाया-पीया करता था । बचा-बचाया वह स्त्री भी खा लेती थी । ऐसी परिस्थितिमें आप समझ सकते हैं कि, कौन अपने-आपको काबूमें रख सकता है ? तहाँ शास्त्रमें कहा है:—

श्लोकः-"विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनास्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः॥ शाल्यन्नं सघृतं पयोदधि युतं भुञ्जन्तिये मानवास्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ॥"

—अर्थात् जब विश्वामित्र और पराशर इत्यादि मुनि बड़े तपस्वी थे, ऐसे बड़े-बड़े ऋषि भी जो पत्ते, जल और वायुके आहारसे निर्वाह करते थे । समय आनेपर वे भी स्त्रीके सुन्दर मुख कमलको देखकर मोहको प्राप्त हुए । विश्वामित्र मेनका अप्सरासे फँसे और मत्स्यगन्धासे पराशर बिगड़े थे) फिर जो पुरुष (मनमाने, नियम छोड़कर) दूध, दही, घीके सहित अच्छे शालि अन्नका भोजन नित्यप्रति करते हैं, (ऐसी अवस्थामें) यदि उनकी इन्द्रियाँ रुकी रहें, ऐसा हो सके, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्रमें तैरने लग जाय । अर्थात् जैसे समुद्रमें पहाड़ नहीं तैर सकता है, तैसे राजसी भोजन करनेवाले मनुष्योंके इन्द्रियाँ भी वशमें नहीं रह सकती हैं । मौका पानेपर कर्म-कुकर्म करनेमें वे प्रवृत्त होते ही हैं ॥

इसप्रकार जब रूखी-सूखी खानेवाले भी कामके वेगमें मौका आनेपर पड़ जाते हैं । तब दूध-रबड़ी आदिका भोग लगाने वाला, एकान्तमें स्त्रीके साथ नित्य रहनेवाला अज्ञ वैरागी भला कब तक बचता । बस ! थोड़े दिनमें ही अज्ञ बाबा उस घँसियारिन स्त्रीसे फँस गया । इसीतरह कुछ समय निकल गया । फिर समय पा करके उस स्त्रीसे वैरागी द्वारा एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न हुई; और एक दिन वह अज्ञ बाबा लड़काको इस कन्धेपर और लड़कीको उस कन्धेपर तथा गीताकी पुस्तक बगलमें, पीछे-पीछे वह स्त्री, उसके पीछे गाय और गायके पीछे बिल्ली कतार लगा करके इस सारे परिवारके साथ कहीं चले जा रहे थे; और उधरसे उन्हीं राजा साहबकी सवारी आ निकली, जिन्होंने अज्ञ बाबाको गीताकी पोथी दिला दी थी । जब राजा उसके पास आये, तो उसे पहिचान लिया; और सवारी खड़ी करके पूछा— क्यों बाबाजी ! गीता कितनी पढ़ी ? तब अज्ञ बाबाने जवाब दिया कि— महाराज ! अभी तो मेरे सिर्फ पाँच अध्याय पूरा हुए हैं । सो यह कि, दहिने कन्धेकी ओर इशारा करके यह पाँचवाँ

अध्यायमें प्राप्त हुआ है। बाएँकी ओर संकेत करके यह चतुर्थ अध्यायमें मिली है। पीछेकी तरफ इशारा करके यह तृतीय अध्यायमें मिली है। गायकी ओर इशारा करके वह द्वितीय अध्यायमें लाई गई है; और बिल्लीकी ओर संकेत करके वह प्रथम अध्यायमें ठहराई गई है। इस तरह उसने पाँचों अध्याय गिना दिया; और बोला कि, भगवान्‌की दया होगी तो कभी-न-कभी इसी तरह अठारहों अध्याय गीता पढ़कर पूरा कर लूँगा। आपको शुभ आशीर्वाद है। ऐसी उसकी उलटी बातें सुनकर और विचित्र रङ्ग-ढङ्ग देख करके राजा तो आश्चर्यचकित हो गया, उसकी मूर्खता देखकर चुपचाप चला गया।

अब विचार करिये! वह मूर्ख वैरागीने गीताका श्लोक तो एक भी नहीं पढ़ा, और उसमें लिखी हुई बातको समझनेका प्रयत्न तो उसने कभी भी नहीं किया। ऊपरकी जिल्द देखकर ही वह फूल गया, और अपने कर्त्तव्यको भूल गया। यदि गीताके जिल्दकी रक्षामें इतना माथापच्ची वह न करता, तो कोई तरह मायाके जञ्जालमें काहेको फँसता! मूर्खतासे ऐसी ही दुर्गति-उपाधि हुआ करती है। इसीतरह जो लोग सार बातको ग्रहण करना छोड़कर असार प्रपञ्चमें ही लगते हैं, वे भी अपने जीवनको नष्ट-भ्रष्ट, करके पतित हो जाते हैं; और थोड़े-बहुत साखी-शब्दोंको सीखकर मनमाने जहाँ-तहाँ देश-देशान्तरमें फिरने वाले घुमक्कड़ भेषधारी लोग भी ऐसे ही कहीं-न-कहीं जञ्जालोंमें फँसकर गिर पड़ते हैं; और वे उभय भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिये हितेच्छुक सन्तोंको चाहिये कि, गुरु आज्ञासे नियम प्रमाण कहीं रहें वा बरतें, जिससे खानी-वाणीके जञ्जालोंसे बच सकेंगे। सत्सङ्गके घेरा, साधु-गुरुके अधीन उनके साथ रहनेसे सुधार होता है, तब मन-इन्द्रियाँ भी काबूमें रहती हैं; और उसके विपरीत मनमतिसे चलनेसे बिगाड़ ही होता है। कितने लोगोंकी इसीतरह हानि भी हुई है। अतएव अज्ञ बाबा-के गीता रक्षा करनेमें जञ्जालमें पड़नेकी तरह, अविचारका बर्ताव कभी नहीं करना चाहिये। पुस्तकादिकी ऊपरी चमक-दमक सुन्दरता देखकर उसीमें आसक्त-मोहित हो उसके ही संरक्षणमें लगे रहना, वस्तामें बाँधे रखना, बिगड़नेके डरसे कभी खोलकर न पढ़ना, यह मूर्खता भी बड़ी हानि करनेवाली होती है। ऐसा जानकर शास्त्र-पशु होना छोड़कर सारग्राही परीक्षक सच्चा मनुष्य होना चाहिये॥

अविचारी कच्चे साधकोंको ज्ञान बोध भी दिया, सद्ग्रन्थ भी पढ़ाया, और उन्होंने एकान्तमें रहनेकी नकल भी किया, तो भी वे कुछ लाभ उठा नहीं सकते हैं। किन्तु, अपनी हानि ही कर बैठते हैं। इसकेबारेमें एक दृष्टान्त आया है, सो सुनिये!

(४) दृष्टान्तः— मध्यप्रदेशकी एक शहरमें एक जौहरी रहता था, तिसके तीन पुत्र थे। वे तीनों लड़के जब जवान हो गये, तब एक दिन जौहरीने अपने तीनों पुत्रोंको पासमें बुला करके कहा— पुत्रो! मेरे पासमें एक महागुणी अमोलिक मणि है। उस मणिमें अनेकों गुण भरे हैं; और वह श्रेष्ठ मणि इस डिबियामें रक्खी है, मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ, जिन्दगीका कौन भरोसा? न मालूम कब प्राण निकल जाय, इसलिये मैं अभी इस अमूल्य वस्तुको तुम लोगोंको सौंप देना चाहता हूँ। इसे ले लो! और इस मणिको तुम लोग सँभाल करके रख लो! मेरे देह न रहनेपर तुम लोग इसमेंसे गुण ग्रहण करना। रात्रिके समय अपनी-अपनी पारी लगाकर इसे लेकर बैठना, रात्रिके तीन विभाग करके एक-एक भागमें एक-एक लड़का इस मणिको लेकर एकान्तमें बैठकर इस गुणी मणिमेंसे गुणोंको ग्रहण करे, तो बहुत ही लाभ होगा, इत्यादि महिमा बताकर उन्हें मणि दे दिया। उसके पुत्रोंने भी मणिवाली डिबियाको लेकर हिफाजतसे तिजोरीमें धर दिया। फिर कुछ समयके पीछे उनका पिता वह जौहरी मर गया। तब उस मणि वाली बातको याद करके एक दिन लड़कोंने मणि लेकर बैठनेकी सलाह तै किया। फिर रात्रिका तीन विभाग करके यानी सवा-सवा प्रहरकी एक-एककी पारी लगा दी।

तदुपरान्त प्रथम बड़ा लड़का तिस मणिको लेकर कोठेपर एकान्त स्थानमें जाकर बैठ गया; और मणिको निकाल-कर उसने अपने सामनेमें रक्खा। तो उस मणिके प्रकाशसे अन्धेरा मिट गया, उसे देख करके वह खुश हो गया। जब कि, मणि-को रख करके देखते हुए कुछ क्षण व्यतीत हो गया, तब तिसका मन खाली बैठनेमें न लगा, वह उकता गया, क्या करे समय तो बिताना ही था, इसलिये उसने यही काम किया कि, कुछ राख बटोरकर ला करके अपने पास रख लिया। थोड़ी देर मणिको देखता रहै; जब कि, थोड़ी देर बीत जावे, तब जरा-सी राख मणिपर डाल देवे, फिर जरा-सी राख अपने शिरके ऊपर भी डाल लेवे। इसीतरह राख डाला-डाल करते-करते उसकी सवा प्रहरकी पारी गुजर गई। फिर दूसरे मझोले भाईकी पारी आई, वह भी एकान्त कोठेमें जाकर अकेले मणिको सन्मुख रखकर बैठ गया, प्रकाश देखकर प्रसन्न हुआ; परन्तु, उसको भी शान्तिसे सवा प्रहर बिताना मुश्किल हो गया। इसीसे वह दूसरा उपाय कुछ न देख करके तिस मणिके प्रकाशमें शिकार मार करके खाने लगा। इसीतरह उसने भी समय बिता दिया। फिर तीसरे छोटे भाईकी पारी आई, वह बुद्धिमान्

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर—५३ ॥ ❀ ॥

साखीः— गृह तजिके भये उदासी * बन खण्ड तपको जाय ॥
[३१८] चोली थाकी मारिया * बेरई चुनि चुनि खाय ॥ १७८० ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! गुरुवालोगोंकी रोचक-भयानक आदि वाणी, नाना उपदेश सुन-सुन करके ईश्वरादि प्राप्ति करनेकी आशा, प्रेम ज्यादा बढ़नेसे कई लोग घर-गृहस्थी संसारी व्यवहारको छोड़-छाड़ कर मन उदास होनेसे उदासी,

निकला। उसने एकान्त स्थान छतमें जा करके बैठकर मणिको निकालकर सन्मुख रक्खा; और एकटक दृष्टि लगाकर देखने लगा। इतनेमें चन्द्रमाका भी उदय हो आया। फिर चन्द्रमाकी किरण जो उस मणि पर पड़ी, तो उसमेंसे पानी टपकने लगी क्योंकि, वह चन्द्रकान्तमणि ही था, इसीसे मणिमें चन्द्रमाकी किरण पड़नेसे अमृततुल्य रस निकलने लगा, उसके नीचे कटोरी धर दी, जितना रस जमा होता जाता, उतने उस अमृत-रसको वह पीता जाता था। इसप्रकार सुखपूर्वक उसका समय व्यतीत हुआ। रस पीनेके प्रतापसे उसके देहका बहुत-सा रोग भी निवृत्त हुआ। ऐसे वह अपनी बुद्धिमानीसे कर्त्तव्यको सफल करके सुखी हो गया ॥

इस दृष्टान्तका सिद्धान्त ऐसा है कि, संसाररूपी शहरमें जौहरी रूपी पारखी सन्त रहते हैं। उनके त्रिगुण स्वभावधारी शिष्य लोग ही पुत्ररूपमें हैं। उन्हें बुला करके श्रीसद्गुरुने सद्बुद्धि सत् शिक्षा और सद्ग्रन्थ बीजकरूपी अमूल्य मणि दिया; और उससे सद्गुण ग्रहण करनेको बतलाया। उन शिष्योंने श्रीसद्गुरुकी अनुपस्थितिमें मणिरूपी बीजक सद्ग्रन्थको निकालकर अविद्यारूपी रात्रिमें देखने लगा। परोक्षमें निर्णयका प्रकाश तो हुआ; किन्तु, रहनी धारण न होनेसे स्थिति नहीं हुई। इसीसे तमोगुणी स्वभाववालेने विषय भोग कुकर्म आदिकी राख डालते-डालते ही समय बिताया, लाभ कुछ नहीं पाया। दूसरा रजोगुणी पुरुष साधु बनकर गुरुवाई करके अबोध मनुष्योंकी शिकार करने लगा। गुरु ज्ञान सुना-सुनाकर लोगोंके तन, मन और धनका हरण करके अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगा। ऐसे करते-करते ही सारी आयु उसने बिता दी; और तीसरा सत्त्वगुणी होनेसे बुद्धिमान् ज्ञानका अधिकारी निकला। उसने गुरुबुद्धिसे बीजक सद्ग्रन्थको देखा, तो मनरूपी चन्द्रमाकी किरण भी उसमें एकाग्रतासे पड़ी। जिससे पारख बोधरूपी असली अमृत उसे प्राप्त हुआ, जीवके सत्स्वरूपका बोध हुआ। अतः वही जीवन्मुक्त होकर सदाके लिये सुखी हो गया ॥

इसलिये पारखी श्रीसद्गुरुने चेताते हुए "घर जञ्जाल०" की साखी कही है। अर्थात् अबोध पुरुष जहाँ भी रहेंगे वहीं जञ्जालमें पड़े रहेंगे। घरमें रहेंगे, तो वहीं जञ्जाल इकट्ठी हो जायगी; और यदि घरसे बाहर निकलेंगे, तो बाहर भी नाना तरहके जञ्जालोंमें ही पड़ेंगे। जहाँ भी वे जायेंगे, वहीं जञ्जालमें घिरे रहेंगे। क्योंकि, "जञ्जाल काया माथे"—अज्ञानी लोग तो कायाके माथपर ही जञ्जालको ढोये-ढोये फिरते हैं; और उन्होंने जिस-जिसको जञ्जाल समझ करके छोड़ा, भोग त्यागकर योगी हुए, परन्तु, वही जञ्जाल परिवर्तित होकर दूसरे-दूसरेरूपसे उनके साथमें ही लगी रही, कुछ नहीं छूटा। उसके लिये प्रथमके चारों दृष्टान्त घटनामें घट जाते हैं। (१) कान्तादास घरका दुःख देखकर निकला; किन्तु, बाहर भूखों मरनेसे घर ही अच्छा है, समझकर घर लौट गया था। (२) त्यागी विशुद्धानन्द संन्यासी भी विवेक न करके धीरे-धीरे दूसरे लोगोंके कथनमें लगकर आश्रमवासी होकर राजदण्डका दुःख सहा था। (३) अज्ञ बाबाजी गीताकी पुस्तककी आसक्तिमें पड़ करके धीरे-धीरे पतन होकर पूरा महाजञ्जाली हो गया था; और (४) अनधिकारी लोगोंने महागुणी मणिको एकान्त स्थानमें पा करके भी व्यर्थ समयको बर्बाद किया था। मणिसे लाभ तो उस एक ही अधिकारी व्यक्तिने उठाया, जिससे वह कृतकृत्य हो गया था। इसीतरह मनुष्य जन्मको पाकर जीवन सफल करनेवाले तो कोई बिरले ही होते हैं। मायाका जञ्जाल बड़ा कठिन फन्दा है। बहुतेरे तो यहाँ संसारमें खानी-जालमें ही फँसे पड़े हैं। जो यहाँसे निकले, सो वे वाणी जालके घेरामें जाकर फँस जाते हैं। इसलिये छुटकारा कहीं भी नहीं पाते हैं। कोई बिरले ही मनुष्य शुभ संस्कारी भाग्यवान् निकलते हैं। जो पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होते हैं, और सत्सङ्ग करके विवेक-विचारमें लगकर सद्गुण रहनीको धारण करते हैं, सदा सावधान रहते हैं, श्रीसद्गुरुके निर्णय नियम अनुसार बर्तते हैं। इसीसे वे ही सब जञ्जालोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। मुमुक्षुओंको शुभ सत् पुरुषार्थ करके सोई स्थिति बनानी चाहिये ॥

॥ ❀ ॥ इति टिप्पणी— दृष्टान्त समाप्तम् ॥ ❀ ॥

संन्यासी, वनवासी, वैरागी, नागे, निर्वाणी, मौनी, दिगम्बर, नाथ, खाकी इत्यादि कोई एक भेष-धारी साधु-तपस्वी, साधक हो गये; और गाँव-शहरमेंसे लोगोंकी उपाधि भीड़से ऊबरकर यहाँ पूर्ण साधना होती न देखकर ग्राम वा नगरादिको भी छोड़ करके उग्र तपस्या करनेके वास्ते कहीं बियाबान, शूनशान, निर्जन वनखण्डमें चले गये । पहाड़, गिरिगह्वर, गुफा, कन्दरा, सपाट मैदान, सघनवन, और भयानक जङ्गलादि भिन्न-भिन्न वन्य प्रदेशमें जा करके वहाँ मनमानी तपस्या करने लगे । पञ्चाग्नि और चौरासी धुनी तापना, जलशयन, ओसस्नान, निराहार, पवनाहार, इत्यादि व्रत रखकर विधि-विधानसे कई दिन तक उत्साहसे तपस्या की । तब भी ईश्वरादिका दर्शन नहीं मिला । मनोकामना पूर्ण नहीं हुई । इधर चोली=शरीर भी लगातारके उपवास, साधनाओंके कठिन कष्ट-क्लेशसे थकित=दुर्बल, अशक्त हो गया; भूख-प्यासके दुःखके मारे व्याकुल हुए । देहकी शक्ति घट गई, मरणासन्न हुए, क्षुधासे प्राण विकल होने लगा । तब ईश्वरादिका भरोसा छोड़कर लाचार हो, अन्तमें पेट भरनेका उपाय करने लगे । जङ्गलमें अन्नका भोजन तो नहीं मिला; और दूसरा कोई साथमें भी नहीं रहा । तब घिसड़-घिसड़कर जङ्गलमें जा करके खट्टा-मीठा जो कुछ मिला, बेरके छोटे-छोटे फल ही चुन-चुन या बिन-बिन करके खाने लगे । फिर कुछ शक्ति आने-पर जङ्गली पदार्थ कन्द-मूल, फल-फूल, पत्र-अंकुरादि अच्छे-अच्छे पदार्थोंको खोज-खोज करके चुन-चुनकर खाने लगे । फिर जङ्गलसे भागकर ग्राममें आकर भिक्षान्न खाकर गुजारा करने लगे । बार-बार ऐसे ही व्यर्थकी साधना करते-करते आयु बिता दिये; जड़ाध्यासी हो करके मर गये, तो संसाररूपी वनमें नाना जन्तु हो गये । तब पूर्व अध्याससे वही बेरई आदि चुन-चुन करके खा रहे हैं । अथवा कोई चार मुक्तिकी आशासे घर छोड़कर उदासी हो वनखण्डमें जाकर तपस्या करने लगे । वहाँ साधना करते-करते थकित हुए, मनने हार माना, तो साधना छोड़ करके फिर बेरई=वाणी कल्पनाका विचार तथा विषय भोगोंका सेवन यही चुन-चुन करके खाये और खा रहे हैं । इसीसे अध्यासी जीव बारम्बार आवागमन चक्रमें ही पड़कर दुःख भोगते रहते हैं, बिना पारख ॥ १७८० ॥

॥ ❀ ॥ शब्द नम्बर— १६ ॥ टकसारग्रन्थके सत्यनिर्णयका शब्द ॥ ❀ ॥

१. सुनरे सुभगिया ! * कौने कारण बन लौले अगिया ? ॥ १७८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— शब्दार्थः— अरे हे सुभागे भले मानुष ! किसवास्ते तूने वनमें आग लगाई ? मेरी बात सुन ! यह तो तूने बड़ा पाप कर्म किया । आग लगा करके वहाँ रहनेवाले अनेकों प्राणियोंको जला करके मारा, सो तुझे बदलामें कर्मफल दुःख ही भोगना पड़ेगा ॥

भावार्थः— तैसे ही अरे सुभगिया मनुष्य ! मेरे वचन सुन ! और उसे गुन ! किस कारणसे वनरूप संसारमें तूने विषयी बनकर कामाग्निको मनमें लगाया । उसी अध्याससे तू फिर भी गर्भाग्निमें जा-जा कर जलता ही रहेगा । अब भी बचनेका प्रयत्न क्यों नहीं करता है ? अथवा हे सुभागे ! श्रेष्ठ भाग्यवान् चैतन्य जीव ! तू ही नित्य-सत्य है ! तुझसे बढ़कर श्रेष्ठ कोई कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि नहीं है । फिर गुरुवालोगोंकी वाणी सुन-सुनकर बिना विचारे क्यों दीन-दुःखी, दरिद्र हो रहा है ? मैं जो सत्य निर्णयका वाक्य कहता हूँ, उसे अब ध्यान पूर्वक सुन ! बन=संसारमें भ्रमिक नाना मतवादी बनकर किस कारणसे तूने विरहाग्नि वा वाणी-कल्पनाकी अग्नि लगाया ? आखिर उस अग्निमें तू ही घिरकर जल करके मरेगा; जड़ाध्यासी होगा । कोई ब्रह्म, ईश्वर, देवतादिको जगत्-का मूल कारण, सुखदाता मानकर तूने उसमें जो प्रेम लगाया, सोई फन्दा बनकर आगे तुझे चौरासी योनियोंमें ले जायगा । अरे जीव ! तू क्यों कारणरूप ब्रह्म बना है ? उसमें तो इच्छारूपी आग लगी है । संसारमें मिथ्या ही वाणी-खानी जालका प्रचार क्यों कर रहे हो ? उसमें तो तुम बद्ध होते जा रहे हो, परखकर अब तो उसे त्याग करो ! ॥ १७८१ ॥

२. नहिं बन कतरा नहिं बन कूश * अगिया लौले बन आगन फूस ॥ १७८२॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दार्थः— जैसे वनमें कचरा और कुश दोनों भी नहीं हो, वनके खाली सपाट मैदानमें वा फूसमें आग लगा दिया; सो आग लगाना ही व्यर्थ है। कहो किस कारणसे आग लगाये हो ? ऐसे शब्दार्थमें पूछा गया ॥ भावार्थः— तैसे ही सिद्धान्तमें अर्थ सुनो ! कुश नामक घासके कतरा छोटा-छोटा टुकड़ाके समान भी ब्रह्म-ईश्वरादि कोई सत्य वस्तु सिद्ध नहीं होता है। वेद-वेदान्तकी वाणीके प्रमाणसे जगत् नहीं, जीव नहीं, एक अद्वैत ब्रह्म ही कूश=सबका अधिष्ठान है। ऐसा जो बतलाया है, सो यथार्थ नहीं है; मिथ्या है। वह तो जगत् जङ्गलकी वाणीरूप कचरा ही है; और ब्रह्मवादी लोग जगत्में हो रहकर जगत्को मिथ्या तीन कालमें नहीं है, मृगजलवत् मिथ्या प्रतीतिमात्र बतलाते हैं। संसारमें ब्रह्माग्नि लगा करके भ्रमिक बनाकर आगे कानमें मन्त्र फूँक-फूँककर नर जीवोंको भुलाये और जलाये हैं। जिस कल्पनामें लोगोंने प्रेम लगाया है, सो फास्समफुस्स कुछ भी नहीं है। नाहक धोखेमें पड़कर नर-जन्म गमा रहे हैं। अर्थात् कतरा=खशरूपी ब्रह्म तो कुछ भी नहीं है; और घास-फूसरूपी जगत्को ही धोखेमें जला रहे हैं। किन्तु, आप ही उसमें सन्तप्त होकर जल रहे हैं, बिना विचार ॥ १७८२ ॥

३. रोवहीं आशा रोवहिं निराशा * भरलि डेहर मोर जरे कपासा ॥ १७८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे डेहरी वा कोठीमें भरा हुआ मेरा कपास जरा, कहकर आशा और निराशामें लोग रोया करते हैं; तैसे और कोई तो संसारमें विषय सुख भोगों-की आशासे कर्म, उपासना, योगादि साधनाओंमें दुःखी हो करके रो रहे हैं। कोई नाना उद्यम धन्धाओंमें कष्ट भोग करके रोते हैं; उनकी मनोकामना पूर्ण नहीं होती है। कोई तो जगत्से निराश होकर ब्रह्मज्ञान वा विज्ञानमें लगते हैं; वहाँ सर्वदा शून्य-स्थिति न होनेसे दुःखी हो करके रोते और पछताते हैं। इसप्रकार आशावाले भी रोते हैं, निराशा वाले भी रोते हैं। खानी-वाणी दोनोंके अभ्याससे जीव चौरासी योनियोंमें नाना दुःख भोगते हैं। यहाँ अनेक साधना करके भी किसीकी आशा-तृष्णा पूर्ण नहीं होती है, इसीसे सब रोया करते हैं; और मेरे स्वजातीय चैतन्य जीव, डेहर=देहधारी होकर यह शरीरके अन्तःकरणमें मोर=मैं-ममतादि भ्रम और विषयाध्यासोंको भरलि=भर करके कहीं व्यापक ब्रह्म पूर्ण भरा हुआ मानन्दी करके जरे। कपास=कपासके भरे हुए डेहरीमें आग लगकर जल जानेके सरीखा भीतर-ही-भीतर जीव त्रिविधि ताप, नाना साधना, जन्मृतिमें जहाँ-तहाँ जल रहे हैं; जड़ाध्यासी हो रहे हैं। पारख बोधके बिना कोई विषय वासना-को भर करके; और कोई ब्रह्म-भ्रमको भर करके विषय और कल्पनाकी अग्नि सुलगा-सुलगा करके खाक उड़ा रहे हैं। आशा और निराशामें नरजन्मको बर्बाद करके पशु आदि खानीमें जा रहे हैं॥१७८३॥

४. यहि ठगनीके पाँच भ्रतार * ठगत ठगत आइलि संसार ॥ १७८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे कि, द्रौपदी नामक एक ही स्त्रीके पाँच पुरुष= पाँच पाण्डव पति थे। वैसे ही यही ठगिनी=स्त्रीके कामी, क्रोधी, लोभी, मोही और डरपोक— ये पाँच पुरुष हैं। उन सबोंको संसारमें ठगते-ठगते ही यह आ रही है। अथवा यह ठगिनी माया= गुरुवालोगोंके ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और सूर्य, ये पाँच भ्रतार=पाँच इष्टदेव, मालिक बने हैं। संसारमें आ करके उन्हीं पाँचोंकी भक्तिमें लगा करके सबको ठग रहे हैं। अथवा यही ठगिनीरूप वाणी-कल्पनाके पाँच भ्रतार=पञ्चकोशरूप पाँच भ्रमके कतार हैं। सो पञ्चमार्गियोंने ग्रहण किया है। सब जीवोंको भ्रमा करके ठगते-ठगते संशय-वाणी संसारमें आई है। अभी भी वह सबको धोखा दे-दे कर तन, मन और धनादि पूँजीको ठगकर हरणकर रही है। जीवोंको निर्धन करके भवधारमें डुबा रही है। तथापि पारख बोधके बिना किसीको चेत नहीं होता है ॥ १७८४ ॥

५. कहैं कबीर मोर जतिया झीन * गुरुके शब्दसे रहत लौलीन ॥ १७८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! [मायामुखः—] यहाँपर गुरुवालोग कहते हैं— हमारा ब्रह्म सिद्धान्त तो बड़ा ही झीना=अत्यन्त सूक्ष्म है। इसवास्ते सबके समझनेमें वह नहीं आता है, हमारे मतानुयायी जतिया=त्यागी, योगी, ज्ञानी और भक्त ही उस झीना मार्गको समझते हैं। जिससे वे जगत् माया-जालसे भिन्न वा न्यारा हो करके हमेशा गुरु=ब्रह्मा, विष्णु और महेशके मूल शब्द उपदेश दीक्षा-मन्त्र "ॐ, सोहं, राम," यही शब्दसे तदाकार होकर सुरतिको लयकर उसीमें समरस होकर भींजकर लवलीन होकर आनन्दमें मग्न-मस्त रहते हैं। कर्मी—प्रणव-ब्रह्ममें मिले रहते हैं। उपासक— आत्मारामसे मिलते रहते हैं; और योगी— सोहं-ब्रह्ममें लौलीन रहते हैं। इसप्रकार गुरुके शब्दमें आरूढ़ होकर भवसागरसे पार उतर जाते हैं; इत्यादि महिमा बढ़ा करके सबको फँसाये और फँसाते ही जा रहे हैं। बिना विचार झीनी मायामें जाकर गरगाफ हो रहे हैं॥१७८५॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६४ ॥ [चौपाई- १३ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. त्याग सोई जो सदा सुखारी * आशा मोह भव फन्दा भारी ॥ १७८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सोई सच्चा त्याग-वैराग्य है, समस्त मोटी-झीनी आशा, बासा, कल्पनाओंको परित्याग करके जो निजस्वरूप पारख स्थितिमें रहते हैं, वे ही जीवन्मुक्त सदा सुखी होते हैं। मुक्ति-स्थितिमें पहुँचानेवाला त्याग ही असली त्याग, शुद्ध वैराग्य कहलाता है। नहीं तो षट् दर्शनोंमें भेष मात्र पहिने हुए त्यागके स्वाङ्ग करनेवाले वे तो ढोंगी होते हैं। क्योंकि, उनके मनमें तो संसारी परिवार विषयोंकी आशा, मोह-आसक्ति लगी ही रहती है; और ब्रह्म-ईश्वर, देवी-देवता, सीताराम, राधेश्याम, स्वर्गादि प्राप्तिकी आशा, वाणी सिद्धान्तोंका पक्ष, मोह, दृढ़ होकर लगा है। सोई खानी-वाणीकी आशा, मोह ही तो बड़ाभारी भवसागरका फन्दा, अरुझानेका जाल है। योगी, ज्ञानी, भक्त और संसारी आदि सब कोई बेपारखी उसमें फँसकर जकड़ गये हैं। अतएव उनके राग सदा दुःख देनेवाले ही हुए वा दुःखदायी ही होते हैं ॥ १७८६ ॥

२. मोह नदीमें सब कोई डूबै * सुसुकि सुसुकि उजबुज होय ऊबै ॥ १७८७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इधर संसारमें माता-पिता, भाई, स्त्री, पुत्रादि परिवार विषयानन्दकी, माया-मोहकी प्रबल नदीमें सारे संसारी लोग डूब गये हैं; और उधर गुरु, गुरुभाई, मठ, मत-पन्थ, सिद्धान्त, इष्ट देवता, ईश्वरादिकी वाणी-कल्पनाके महा मोह, पक्षपातकी नदीमें सब कोई परमार्थी साधक-सिद्ध, ऋषि-मुनि मतवादी लोग भ्रम धारामें डूब गये हैं। दोनों तरफ मनकी चाहनाएँ पूर्ण न होनेसे सुसुकि-सुसुकि सोच-फिक्र, चिन्ता कर-करके लम्बा-लम्बा श्वास खींच-खींचकर आकुल-व्याकुल हो करके ऊब जाते हैं; अकुता करके अधीर हो जाते हैं। उसीमें उजबुज=डूबते-उतराते, नीचे जाते, ऊपर आते, जन्मते-मरते सदा दुःख ही भोगते रहते हैं। पारख बोधके आधार बिना कोई पार उतर नहीं पाये, और बच नहीं सके ॥ १७८७ ॥

३. थाह नहीं नहिं देखै पारा * पुनि पुनि बहै भवहीके धारा ॥ १६८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उस महान भयङ्कर उत्ताल तरङ्गवाला खानी-वाणी भवसागरका पारखहीन भ्रमिक मनुष्यलोग किसीको भी पूरा-पूरा थाह, पता, ठिकाना, भेद नहीं मिला। वार-पार भी कुछ सार ठहराव देख नहीं पाये। इसीवास्ते अपार, अथाह, अगम, अगोचर, जैसे-का-तैसा परमात्मा मान-मानकर भूले हैं। फिर-फिर उलट-पलट करके ब्रह्मानन्द और विषयानन्द-की आशा पकड़कर भव=वाणीकी भ्रमधारामें तथा स्त्रीरूप भगकी विषयधारामें बह गये; और बह-बह करके सब पुनरपि चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जा रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आये बिना उससे पार होनेका मार्ग वा उपाय कोई देख ही नहीं सकते हैं। कौन बन्धन है ? कौन मुक्ति-है ? क्या सार है ? क्या असार है ? इसका कुछ भी पता नहीं पाते हैं, इसलिये पुनः-पुनः नारी और

गुरुवाओंके साथ उनकी सङ्गति करके विषय और कल्पनादिको ही पकड़ करके जड़ाध्यासमें बह रहे हैं। उसे परख करके त्यागना चाहिये। तभी भवधारासे बचाव होगा ॥ १७८८ ॥

४. करहु विचार तजहु सो आशा ❀ संशय शोग मोह भ्रम नाशा ॥ १७८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो! सत्यन्यायी पारखी साधु श्रीसद्गुरु-का सत्सङ्ग करके सत्यासत्यका यथार्थ विवेक-विचार करो! सार-असार, जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिका ठीक-ठीक विचार करो! स्त्री, पुत्र और धनादि संसारके विषयोंकी आशा, तथा ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, स्वर्गादि, ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्तिकी झूठी आशा, वासना, तृष्णादिको एकदम छोड़ दो! वही आशा ही यमका फाँस है; बन्धनोंका मूल कारण है। इसलिये सब आशा और आसक्तिका परित्याग करो! आशा करके ही सन्देह उपन्न होता है; शोक-मोह बढ़ता है। भ्रममें पड़कर मनुष्यपदका विनाश होता है। अतएव निज सत्यस्वरूप पारखके विचारमें ठहरकर सो सब आशा-को तजो! ईश्वरादिका संशय, उसकी प्राप्तिके लिये विरह, शोक, वाणीके सिद्धान्तका मोह, कल्पनाका भ्रम, इन सबको भी परख करके हटाओ, विनाश करो! तभी जीवको चैन मिलेगा ॥१७८९॥

५. पारख अटल सदा सुख करहू ❀ भरमि भरमि जिव काहे मरहू१॥ १७९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मुमुक्षु जनो! निज पारख स्वरूपमें अटल, अचल, स्थिर, शान्त होकर सदा पारखमें स्थिति करके रहनी बनाकर हंस रहनी सद्गुण धारणकर जीवन्मुक्त सुखमें ही सर्वदा विहार करते रहो! ऐसा सच्चा सुख मुक्तिपदको छोड़कर विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिको सुख मान-मान करके भ्रमिक हो-होकर भटक-भटक करके हे नरजीवो! तुम लोग नाहकमें क्यों जड़ाध्यासी होकर मरते हो? किसलिये ऐसे त्रिविधि ताप आदि असह्य दुःखोंको भोगते हो? अब तो भी जागो! चेतो! गुरुवालोग और नारियोंके कुसङ्गसे भागो! पारखको अटल करके फिर सदाके लिये सुख प्राप्त करो! नरजन्मको सफल करो!॥ १७९० ॥

६. पारख सब जग गाँस मिटावै ❀ बिनु परिश्रम परमपद पावै ॥ १७९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! एक पारख बोध ही मृत-सञ्जीवनी बूटी है। पारख ज्ञान ही जगत्की खानी-वाणीके गाँस-फाँसको मिटाता है। जो नरजीव पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्गमें प्रेम लगाता है, तो उसे श्रीसद्गुरुकी दयासे पारखबोध मिल जाता है। फिर जगत्के गाँसरूप गाँसा हुआ, जोड़ा हुआ मैं और ममताकी गाँठ, बन्धन जाति, वर्ण, कुल, आश्रम, मत, पन्थ, ग्रन्थसे लेकर ब्रह्म-ईश्वरादि तक सब मोटी-झीनी मायाके जालोंको परखाकर पारख उन्हें मिटा देता है। बन्दीछोरकी दयासे अपरोक्ष पारख स्थिति होनेपर फिर बिना परिश्रम किये ही योग, ध्यान, ज्ञानादि; कर्म, भक्ति, तपस्या आदिकके कष्ट सहे बिना ही आरामसे सरलता-पूर्वक परमपदरूप जीवन्मुक्तिको नरजीव पा जाते हैं। सर्वोपरि पारखपद ऐसा महानपद है, जिसे अपरोक्षकर लेनेपर बिना कठिनाईके ही महान मुक्तिपद अनायास ही मिल जाता है। फिर जगत्के सब जाल मिट-मिटा करके नष्ट हो जाते हैं। इसलिये पारख बोधको ही प्राप्त कर लेना चाहिये ॥१७९१॥

७. रामरहस गुरु शरणा आये ❀ सब भय संशय तुरित मिटाये ॥ १७९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मैं 'रामरहस' जब पारखी श्रीसद्गुरु साहेबकी शरणमें आया, और सत्सङ्ग-विचारमें लौ लगाया, तब श्रीसद्गुरुकी दयासे सत्य चैतन्य निज पारख स्वरूपका यथार्थ बोधका भेद जान पाया। जिससे पूर्वकी जगत्कर्त्ता-मानन्दीके भ्रम-संशय, ईश्वर, यमराज, नरकादिका मिथ्या भय आदि जन्म-मरणके कारणरूप जड़ाध्यास सब भय-सन्देह, शङ्कादि विकारोंको श्रीसद्गुरुदेवने सत्योपदेश देकर तुरन्त ही मिटा दिया है। तब शीघ्र ही डर, और दुविधा हमारे मनसे मिट-मिटा करके नष्ट हो गई। इसवास्ते मैं (रामरहस) दृढ़तापूर्वक निश्चय-से कहता हूँ कि, जो कोई मुमुक्षु नरजीव पारखी श्रीसद्गुरुदेवके शरणागत हुए या जो श्रीसद्गुरु-

की शरणमें आये वा आवेंगे, सो वे भी राम=निज चैतन्य जीव रमैया-रामके, रहस=रहस्य, भेद, पारख बोधको जानकर सत्य, विचार, शील, दयादि शुद्ध सद्गुणोंको धारण करके हंस पारखी हो जाते हैं। श्रीसद्गुरुकी कृपासे उनका सब संशय=मरण, नरक, यमादिका भय=भ्रम-भूल आदि तुरन्त ही मिट जाती है। वे अपना विकार मिटा करके दूसरेके भय, सन्देह मिटानेमें भी समर्थ हो जाते हैं। इसलिये पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होनेपर सब प्रकारसे हित-कल्याण हो जाता है। सोई बनाना चाहिये ॥ १७९२ ॥

८. नहिं कछु साधन नहिं कछु युक्ती ❀ नहिं कछु बौडेराकी उक्ती ॥ १७९३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुका सत्यज्ञान निर्भय निज स्थितिमें पहुँचानेवाला है। पारख सिद्धान्तमें कोई उपाधि टिक नहीं सकती है। श्रीसद्गुरुकी दया और साधुओंके सत्सङ्गके प्रतापसे ही पारख बोध मिलता है; और कोई उपायसे मिल नहीं सकती है। उसके लिये जप, तपस्या, व्रत, तीर्थादि कर्म, योगादि कठिन क्लेशकारी कुछ भी साधना करनेकी आवश्यकता नहीं है। उस धोखेकी साधनासे किसीको पारखबोध मिल नहीं सकता है; और कर्मयुक्ति, धर्मयुक्ति, योगयुक्ति, ध्यान, धारणा, समाधि, षट् क्रियादि, षट् चक्र, भेदनादिक युक्ति-प्रयुक्ति वहाँ कोई कुछ भी करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी कुछ युक्तिमात्र करके सत्यका बोध नहीं होता है; और गुरुवालोगोंके भ्रमचक्ररूप बौडेरा=वेद और कुरानादिकी, उक्ती=वाणी-कल्पनाके कथनसे प्रतिपादित ब्रह्म, खुदा आदि सो कोई कुछ भी सत्य पदार्थ नहीं है। इसलिये वह वाणी पढ़कर माथा-पच्ची करनेका भी कुछ काम नहीं है। नरजीवोंको भ्रममें उड़ानेवाली उस वाणीमें कुछ सार पारख बोध लिखा नहीं है। इसीसे तो उससे किसीको लाभ होनेकी, स्वरूप स्थितिकी कुछ आशा नहीं है। पारखीके ठिकाने वह साधना, युक्ति-उक्तिका भ्रम जाल, रुकावट, कष्ट आदि कुछ भी नहीं रहता है ॥ १७९३ ॥

९. पूजा सन्तन गुरु सेवकाई ❀ परख विलास अटल देखलाई ॥ १७९४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मुमुक्षुजन पारख ज्ञानके अधिकारियोंके करने योग्य नित्य कर्त्तव्य सत्साधना यह है कि— पारखी सन्त-महात्माओंकी पूजा करना, मान, आदर-सत्कार करना, भोजन कराना, भेंट-पूजा जो बने, सो चढ़ाना, श्रीसद्गुरुकी शिक्षा सुनकर गुनना चाहिये। और श्रेष्ठ शिरोमणि पारखी श्रीसद्गुरुके चरणोंमें तन, मन, धनादि अर्पण करके मान-अभिमानको मिटाकर दासातन भावसे सेवकाई करना। सेवा, टहल, बन्दगी, चाकरी यथानुकूल समय देखकर योग्य कार्य करते रहना चाहिये। मुख्यतया आज्ञा पालन करना चाहिये। जिससे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विलासमें न्याय निर्णयके विहारकी भूमिकामें प्रश्नोत्तररूपी विलास द्वारा सत्यासत्यको परखकर निज पारख सत्स्वरूपमें अटल, अचल, स्थिति भी दिखलाई देगी। उस स्थितिमें पहुँचनेपर जीवन्मुक्तिका श्रेष्ठ पद भी दर्शन हो जायगा। अतएव प्रेमपूर्वक श्रीसद्गुरु तथा साधु-सन्तोंकी सेवा, पूजा, आरती, बन्दगी आदि सत्कर्मको जीवन पर्यन्त करते रहना चाहिये; और जड़मूर्ति पत्थर, पीतल, लकड़ी, मिट्टी आदि अष्ट प्रतिमाओंकी जड़पूजा कभी नहीं करनी चाहिये।

दोहाः— "महा अधम जड़ पूजना, मध्यम धारण ध्यान। उत्तम ज्ञान विचार कही, जाते हो कल्यान॥
हितकारी गुरु साधु जन, पूजा चेतन सोय। लाभ यथारथ ताहिते, पारख पावै सोय॥"

सिर्फ इतना ही सत्कर्त्तव्य जिज्ञासु जनोंने हमेशा पालन करते रहना चाहिये कि, पारखी श्रीसद्गुरुके शिष्य हो, उनकी सब प्रकारसे सेवकाई करे, बोधवान् पारखी सन्त तथा उनके अनुयायी साधुओंकी भी समय मिलनेपर पूजा भाव-भक्ति करता रहे। फिर सत्सङ्गमें सदा विचारका विलास करते रहनेसे अटल पारखदृष्टि खुलकर फिर सब सारासार हिताहित दिखलाई देगा ॥१७९४॥

पं० ग्र० टीका; १९३—

१०. जो पारख तजि और लोभाना * निश्चय यमके हाथ बिकाना ॥ १७९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे हित-कल्याणकारी पारखी साधु श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गको छोड़ करके पारख विचारको परित्यागकर जो और-ही-औरमें लुब्ध हो जाते हैं; विषयानन्दसे ब्रह्मानन्द तकके सुखमें लोभायमान होते हैं। सो निश्चयसे यम=मन, गुरुवालोग और स्त्रियोंके वशमें होकर उनके हाथ=घेरा, विषय-कल्पनादिमें बिक जाते हैं। वाहियातके भव-चक्र फन्दाओंमें पड़कर निकम्मे हो जाते हैं। अनुमान-कल्पना, विषयादिको निश्चयसे दृढ़ करके जो जड़ाध्यासी हुए, सो पारखज्ञानको तजकर और ही ब्रह्म-ईश्वरादि रोचक वाणीमें लुभाये हैं। मनमें नानाप्रकारसे वासना जमाये हैं। उसके परवश होकर आवागमन चौरासी योनियोंमें पड़े हैं। ऐसे यमके हाथमें बिके हुए बेपारखीको कभी पारखका निश्चय ही नहीं होता है ॥ १७९५ ॥

११. जो चेतहु तो होय उबारा * नहिं तो होइहो यमके चारा ॥ १७९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! अभी नरदेहमें हो, तब तक ही जो तुम लोग चेत करोगे, पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आ करके सत्यासत्यको परखोगे, होशमें आकर सम्हल-कर पारखपदको ग्रहण करोगे, तब तो भवधारासे पार उतर जाओगे ! उबार=मुक्ति हो जायगी। नहीं तो खानी-वाणीके बीचमें पहुँचते ही मारे जाओगे, जड़ाध्यासी होओगे। यम=स्त्री, और गुरुवालोग तथा मनके खुराक वा चारा बनोगे। फिर वहाँसे छूट नहीं सकोगे। वासनावश चारों-खानीमें भटक-भटक करके दुःखी होओगे। कहीं बच नहीं पाओगे। इसलिये मत् भूलो ! अभी चेत करो ! हितकारी कार्य वा सत्सङ्ग करनेमें लगे रहो ! ॥ १७९६ ॥

१२. कर्म धर्म मत सब बौराये * कहहु परमपद कैसे पाये ? ॥ १७९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कर्ममार्गमें ब्राह्मणादि कर्मनिष्ठ लोग लगे हैं। धर्म=भक्ति मार्गमें वैष्णवादि भक्तलोग लगे हैं। मत=योगमार्गके मतमें योगी आदि लोग लगे हैं। सोई मार्ग ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नामसे गुरुवालोगोंने फैलाया है। उसीमें लगकर और लगा करके सब ज्ञानी अज्ञानी, विज्ञानी लोग पागलवत् होकर बौराये हैं। आव-बाव बकके बकवाद करने लगे, महा भ्रमिक पक्षपाती हुए हैं। अब कहो तो भला ! उन बेपारखी भ्रमिक लोगोंमें किसने, कैसे, कहाँपर परमपदरूप सर्वोच्च मुक्तिपद स्वरूप स्थितिको कहाँ पाया है ? कहो उन दिवानोंको परमपद कैसे मिलेगा ? या कैसे पायेंगे ? कभी नहीं पायेंगे। जड़ाध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंमें ही गोता खायेंगे ॥ १७९७ ॥

१३. तजहु आश भ्रम जालके बानी * लहहु विलास परख पद जानी ॥१७९८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— इसकारणसे हे मनुष्यो ! यदि तुमलोग अपनी खास भलाई चाहते हो, तो कल्पित भ्रम-धोखेसे भरा हुआ वाणी-जालकी आशा, ईश्वर, ब्रह्म, देवतादिके भरोसा तथा खानी जालमें नारी-पुत्र, धन-कुटुम्बादिकी आशा, ये दोनों तरफकी आसक्ति, मोह, मद, ममतादि विकारोंको सर्वथा परित्याग करो ! भ्रमजालकी वाणी-खानीमें कभी भूल करके भी मत् पड़ो ! पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण, सत्सङ्ग-विलासमें आ करके अपरोक्ष पारखपदको यथार्थ जानकर सुख-शान्तिका विश्राम प्राप्त करो ! तभी जीवन्मुक्त सुखको भी जान पाओगे। पारख विलासी सन्त ही निजपदको जानकर बन्धनोंसे रहित हो स्व-स्वरूप स्थितिको प्राप्त करते हैं। हे जिज्ञासु लोगो ! उसीप्रकारसे तुम लोग भी चलोगे, तो पारखपदको जान करके सुख-विलासको पाओगे, सो जानो ॥ १७९८ ॥

साखीः— पूजा सन्तन कीजिये * सेवकाई गुरुकेर ॥
[३१९] भूखे अन्न जेवाँइये * पारख करहु सबेर ॥ १७९९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ परमपूज्य ऐसे जो सत्यन्यायी विवेकी पारखी सन्त समाज हैं, उनकी ही सत्यप्रेम, निष्ठा, भक्ति-भावपूर्वक पूजा करके

पत्र-पुष्प, फल-जलादि भेंट अर्पण करना चाहिये। उन पारखी सन्तोंमें शिरमौर सब भेषधारियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ तमरूप अज्ञान अविद्या अन्धकारका नाशकर सूर्यवत् पारखज्ञानका प्रकाशकर देनेवाले पारख बोधदाता बन्दीछोर श्रीसद्गुरु साहेबकी तो सब प्रकारसे सेवा-पूजा, चाकरी, तन, मन और धन लगा करके जीवन पर्यन्त करते रहना चाहिये। यही सत्कर्त्तव्यको उत्साहसे नित्यप्रति किया कीजिये! हितकारी साधु-गुरुकी सेवामें ही मन लगाइये! और इसके सिवाय जड़-मूर्तिकी पूजा, भूत-प्रेत, श्मशान, भैरव, देवी-देवता, गणेश, शिवलिङ्गकी पूजा आदिमें कभी लगना वा लगाना नहीं चाहिये। क्योंकि, वह कुमार्ग है, जीवोंको भटकानेवाला कालका फाँस है। इससे षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्डमें कभी मत् लगिये! और अगर आप सेवक भावसे घर-गृहस्थीमें रहते हों, तथा मठ-मन्दिरोंमें भेष युक्त भी निवास करते हों, तो साधु-गुरुकी सेवा-पूजा करते हुए साथ-साथ भूखे प्राणियोंको भी अन्न-जल जेवाँइये=खिलाइये-पिलाइये! अपनेसे बन सके, तो शक्ति अनुसार भूखेको भोजन, प्यासेको पानी और नङ्गोंको वस्त्र उचितरूपमें दीजिये! प्राणियोंको सुख पहुँचाइये! यही सच्चा पुण्यका कर्म है। सब प्रकारसे पारखी साधु-गुरुकी सेवा-पूजा करके उन्हें भोजन कराकर धर्मकी रक्षा कीजिये! उनकी आज्ञाका पालन करके सद्गुण रहनी-रहस्यको धारणकर इस नरजन्ममें जल्दी ही पारख बोध प्राप्त कर लीजिये! यही मुख्य कर्त्तव्य है। अथवा हे सन्त जनो! पारख बोधदाता बन्दीछोर श्रीसद्गुरुदेवकी ही दीन-दासातन भावसे सेवकाई=टहल करते हुए नित्यप्रति साधु-गुरुकी पूजा किया कीजिये! सावधानीसे आज्ञाको भी पालन किया कीजिये। क्योंकि-"आज्ञा सम न सुसाहेब सेवा"- आज्ञानुसार चलना भी एक बड़ी भारी अच्छी सेवा है; और ज्ञान बोधके भूखे अन्य दूसरे श्रद्धालु मनुष्य यदि आपके पास आकर उपदेशकी याचना करें, तो उन्हें भी सत्यज्ञान गुरुमुख निर्णय, सारशब्द टकसारका सत्य वाणीका उपदेश सुनाना-रूपी भोजन कराइये! उनके आज्ञानकी भूखको मिटाइये! आशा-तृष्णादि मिटनेका उपाय बतलाइये! इसप्रकार नरजन्मके प्रभात बेलामें शीघ्रातिशीघ्र निजस्वरूप पारखपर एकरस स्थिति कायमकर लीजिये! जिससे जीवन्मुक्त होकर कृतकृत्य हो जाइये! इसी नरदेहमें आवागमनका अन्त कर दीजिये! ॥१७६६॥

साखीः— जो तू आया जगतमें ❀ तो ऐसा कर लेउ ॥

[३२०] कर साहेबकी बन्दगी ❀ भूखेको कछु देउ ॥ १८०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! भाग्यवान् धर्मपरायण हे नरजीवो! जो कि, तुम लोग अनादि कालके जगत्में अध्यासवश चारखानियोंमें जन्मते-मरते, गर्भवासमें जाते-आते मनुष्यसे पशु आदि खानीमें घूमते-फिरते, त्रिविधि ताप सहते हुए अनन्त जन्म बिता चुके हो! पूर्वके शुभ संस्कार उदय होनेसे अभी फिर भी तुम लोग संसारके मध्यमें नरदेह पा करके आये हो। यह कर्मभूमिका मुक्तिके द्वारपर आ पहुँचे हो। तो अबकी बार ऐसा शुभ सत्पुरुषार्थ करो कि, जिससे फिर उस चौरासी योनियोंके चक्रमें तुम्हें जाना न पड़े। अब सावधान हो करके इसी नरजन्ममें सम्पूर्ण अध्यासोंको मिटाकर निज पारख स्वरूपमें स्थिति एकरस कर लो! और जिनकी कृपा-प्रसादसे अभी अपरोक्ष वा परोक्ष पारख स्वरूपका बोध हुआ, सब भ्रम-संशय निवृत्त हुआ, उन बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरु साहेबके महान उपकारकी स्मृति करते हुए तन, मन, धन और सर्वस्व अर्पण करके उनके चरणोंमें निछावर कर साधु-गुरुकी अयवार बन्दगी करके सेवा-टहल, चाकरी, पूजा-अर्चा किया करो! देह रहे तक श्रीसद्गुरुका गुण गाया करो! पारखबोध दाता श्रीसद्गुरु यदि सदेह मौजूद होवें, तो सदा उनकी सेवा तथा आज्ञा पालन करनेमें हाजिर रहा करो! और भूखे-प्यासे, दुःखी, अभ्यागत अतिथि कोई आवें, तो उनका यथोचित सत्कार करो! यदि पासमें अन्न-जलादि पदार्थ संग्रह होवे, तो उन्हें कुछ खिला-पिलाकर सन्तुष्ट करो! यदि पदार्थ न हो, तो मीठे वचन ही कहकर उन्हें परिस्थिति समझाओ! और विवेक-विचार ज्ञानके ही कोई

क्षुधित, तृषित हों, तो तुम जितना जानते हो, उसीमेंसे शान्तिपूर्वक कुछ उन्हें भी सत्यासत्य गुरुनिर्णयको समझा दो ! परन्तु, वाद-विवाद, झगड़ा किसीसे न हो, यह ख्याल रखकर वर्ता करो ! मुख्य अपना ही सुधार किया करो ! गुरुभक्ति-बोधभावका अन्त तक पालन किया करो ! ॥१८००॥

साखीः— फेर परा नहिं तत्त्वमें ❀ नहिं इन्द्रियनके माहिं ॥

[३२१] फेर परा कछु बूझमें ❀ सो निरुवारेहु नाहिं ॥ १८०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यों सरसरी निगाह करके स्थूल दृष्टिसे देखिये ! तो ज्ञानी-अज्ञानी, रागी-वैरागी, बद्ध-मुक्त, पारखी-वेपारखी, न्यायी-अन्यायी आदि पुरुषोंके ऊपरी आकार-प्रकार आदिमें मात्र देखिये ! तो उसमें वैसे कुछ फरक दिखाई नहीं देगा। वैसे पाँच तत्त्वका पुतलारूप शरीर सबका एक सरीखा ही बना है। सब जगह तत्त्वोंके कार्य समानरूपसे रहे हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, और पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी सबोंकी एक समान ही यथास्थान दिखती हैं, वैसे उनका काम भी हो रहा है। इसप्रकारसे तत्त्व, इन्द्रियाँ, प्रकृतियाँ, विषय, गुण आदि जड़का भाग कार्य-कारणमें कुछ फरक नहीं पड़ा है। वह तो वैसे ही सब जगह चल रहा है; और स्वजातीय चैतन्य जीवमें भी कहीं फरक नहीं पड़ा है। जो कुछ फरक पड़ा है, सो मनुष्योंकी विभिन्न समझ-बूझ, मानन्दीके ठहरावमें ही फरक पड़ा है। जड़-चैतन्यके सम्बन्धमें सुखाध्यासवश जीव सब जड़ देहादिको अपना स्वरूप मानकर भूले हैं। कोई ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ता परमात्मा मान करके भूले हैं। तहाँ सर्वोपरि न्यारा स्वरूपका पारख बोध उन्होंको नहीं हुआ, इसीलिये बद्ध हुए; उसका निरुवार यथार्थ निर्णय नहीं किया। तभी अनुमान, कल्पना, भास सहित जड़ाध्यासी बनकर जीव आवागमनके चक्रमें पड़े हैं। जिन्होंने पारख दृष्टिसे जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्तिका यथार्थ निर्णयकर सब मानन्दी, अध्यासको त्यागकर निजस्वरूपमें स्थिति किया है, सो पारखी सन्त मुक्त हुए। ऐसे कुछ बीचकी बूझमें फेर-फार पड़ा है, उसका निरुवार नहीं किया; इसलिये जन्मृतिके महा फेरमें जीव पड़ रहे हैं॥१८०१॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— ६५ ॥ [चौपाई – ११ । साखी– १ । रमैनी–१ । साखी– १ है] ॥❀॥

१. और जतन कछुवो मत करहू ❀ केवल पारख साहेब लहहू ॥ १८०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! मुक्ति और सुखादिकी आशासे तुम लोग और ही कुछ प्रपञ्च-तीर्थ, व्रत, तपस्या, योग, ध्यान, पूजा, पाठ, जाप, होम, अनुष्ठान इत्यादि अनेकों यत्न=उपाय, कष्टकर साधनाएँ जो कर रहे हो, सो मुक्तिके लिये कोई कामकी नहीं है, वह तो व्यर्थकी उपाधि मात्र है। इसवास्ते वह और यत्न तो तुम कुछ भी मत् करो ! अन्य साधनाओंमें मत् भटको ! सिर्फ इतना करो कि, पारखी श्रीसद्गुरु साहेबके शरणागत होकर श्रीसद्गुरुकी सत् शिक्षा लेकर हंस रहनी-रहस्ययुक्त मात्र पारखदृष्टि स्वरूप-बोधको प्राप्त करो ! पारख धारणामें ठहराव करो ! इसके अलावा और कुछ भी उपाय मत् करो ! क्योंकि, बेपारखका यत्न सब बन्धनोंमें जकड़ानेवाला है। केवल सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका पारख ही एक मात्र जीवको मुक्तिकारी है। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुसाहेबकी ही शरणागत हो, सेवा करके निज पारख स्वरूपका बोध हासिल करो ! उसीमें अन्ततक स्थिति किये रहो ! वही जीवन्मुक्तिका परमपद है; ऐसा जानो ! ॥ १८०२ ॥

२. शङ्का सन्धि रहत कछु नाहीं ❀ नाशक आपुहि आप बिलाहीं ॥ १८०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यथार्थ पारख बोध होनेपर फिर किसी प्रकारकी शङ्का=प्रश्न, दुविधा, सन्देह, भ्रम तथा सन्धि=मानन्दी, जोड़, मिलाप, जड़ाध्यास इत्यादि बन्धनों-का जाल कुछ भी बाकी नहीं रह सकती है। वे सब नष्ट हो जाते हैं। निःसन्देह मानन्दी रहित हो जाता है। नाशक=ब्रह्म-ईश्वरादि गुरुवालोगोंके सिद्धान्त, वाणी-कल्पना जो कि, मुक्तिपदको विनाश करनेवाली है, सो भ्रम-भूल भी पारख बोध होनेपर अपने-आप या स्वयमेव बिला करके नाश हो जाती है। सूर्यके किरण पड़ते ही जैसे ओसकी बून्द सूख जाती है, तैसे ही पारख ज्ञान उदय होते ही मनके कल्पना, अध्यास भी आप ही मिट जाते हैं ॥ १८०३ ॥

३. जे नाशक स्नेही कीन्हा * कष्ट घनेरी माथे लीन्हा ॥ १८०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिन्होंने पारखी साधु श्रीसद्गुरुका सत्सङ्ग सत्य बोधको छोड़ करके नाशक=गुरुवालोग तथा कामिनियोंसे स्नेह-बन्धनको दृढ़ किया, मोह-ममता, प्रीति किया, सो वे निजपदसे विनाश हुए। नाशक=कालने जीवोंके विवेक-विचार, ज्ञान, बल, वीर्य, बुद्धि आदिको नष्ट करके विनाश कर दिया है। इससे प्रीतिके कारण उनकी सङ्ग छोड़ नहीं सके, इसवास्ते उद्यम, नौकरी-चाकरी आदि एवं भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना साधनाएँ करनेमें घनेरी=बहुत ही उपाधि-कष्ट अपने माथे या शिरपर उठा लिये हैं। असह्य कष्ट-क्लेश भोगने लगे हैं। उसी अध्यासवश देह छूटनेपर अनेकों दुःख त्रिविधि तापादि कष्ट चौरासी योनियोंमें जा-जा करके पा रहे हैं ॥ १८०४ ॥

४. बोध चहहु पारख प्रभु शरणा * बिना प्रयासे भव जल तरणा ॥ १८०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे बुद्धिमानो ! अगर तुम लोग निजस्वरूपका अपरोक्ष पारख बोध प्राप्त करना चाहते हो; बन्धन-मुक्तिका भेद, जड़-चैतन्यका भेद, सारासार, सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यबोधको यथार्थ जानना चाहते हो; कल्याण चाहते हो; तब तो हे भाई ! शीघ्र ही पारखी श्रीसद्गुरु महाप्रभुकी शरणमें सीधे ही चले जाओ ! देर मत् करो ! बन्दीछोर प्रभुके शरणागत होते ही तुम्हें पारखबोध मिल जायगा, तथा हंसपदके रहनी-रहस्यमें तुम्हारी स्थिति-ठहराव हो जायगी। जिससे कोई विशेष परिश्रम किये बिना ही कर्म, जड़भक्ति, जप, तप, योग, यज्ञ, व्रतादि कष्ट किये बिना ही आरामसे वा सुगमतासे गुरुबोधके जहाजमें विश्राम करके भवसागरकी जलधारारूप काम-क्रोधादि विषय तरङ्गोंसे तथा वाणी, अनुमान-कल्पनादिसे पार उतरकर मुक्त हो जाओगे। परिश्रमके बिना मुक्त होनेका यही एक पारखका मार्ग है, सो उसे श्रीसद्गुरु प्रभुके शरण-ग्रहण करके प्राप्त कर लो ! उसे दृढ़ कर लो ! ॥ १८०५ ॥

५. बिनु पारख प्रतीति न होई * बिना प्रतीति प्रीति नहिं सोई ॥ १८०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सत्यन्यायी श्रीसद्गुरुसे मिले बिना सच्चा पारख बोध नहीं मिलता है, फिर सत्यज्ञान पारखबोध अपरोक्ष हुए बिना—"मैं चैतन्य जीव ही नित्य-सत्य, अखण्ड, अविनाशी हूँ !" ऐसा दृढ़ निश्चय, विश्वास किसीको हो नहीं सकता है। तैसे ही निज सत्स्वरूप पारखमें दृढ़ विश्वास या प्रतीतिसे यकीन हुए बिना, सोई पारखी श्रीसद्गुरुके गुरुपद पारखमें पूर्ण सत्य प्रीति या अटूट प्रेम भी नहीं होता है। अथवा सत्य ही चैतन्य जीव सबके घटोंघटमें विराजमान है। परन्तु, बेपारखीको जीव ही सत्य है, ऐसा मालूम नहीं पड़ता है; वे तो ब्रह्म-ईश्वरादिको सत्य मान रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुसे पारखबोध मिले बिना "सर्वोपरि जीव ही सत्य है !" यह विश्वास ही नहीं होता है; और निज चैतन्य जीवको ही सत्य जानकर विश्वास किये बिना, अन्य अनुमान-कल्पनामें लगायी हुई प्रीति कोई काम लायक नहीं होती है। पूर्ववत् जड़ाध्यासी होकर सोई जन्म-मरणादिमें ही पड़े रहते हैं; बन्धनोंसे नहीं छूटते हैं ॥ १८०६ ॥

६. प्रीति बिना नहिं साहेबके शरना * भटकि भटकि भव जलमें बहना ॥ १८०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कल्याण प्राप्तिमें सत्य प्रेम-प्रीति प्रगट हुए बिना खानी-वाणीका घेरा छोड़कर पारख बोध दाता श्रीसद्गुरु साहेबके शरणमें भी कोई नहीं आते हैं। तथा पारखी श्रीसद्गुरु साहेबके शरणागत हुए बिना, मुक्तिके लिये शुद्ध प्रेम-प्रीति भी जाग्रत् नहीं होती है। इसीसे पारखका यथार्थ बोध भी किसीको नहीं होता है। अतएव विषयासक्ति, भ्रम, कल्पनादिके वशीभूत होकर दशों दिशाओंमें भटक-भटक करके परेशान होते हैं। फिर कोई भग-भोगादि काम धारामें बहते हैं। कोई वाणी-कल्पना, भ्रमकी धारामें बहते हैं। ऐसे भव जलमें बहनेके सिवाय उन्हें कहीं ठहराव नहीं मिलता है, अतः जड़ाध्यासी जीव जन्मृतिमें पड़ा करते हैं ॥ १८०७ ॥

७. बाँचन चहहु जो यह यम फाँसा * बचन बसावहु परख विलासा ॥ १८०८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! यदि तुम लोग आवागमन दुःखोंसे बचना चाहते हो; और जो यह यम फाँस=गुरुवालोगोंके प्रपञ्च वाणी-जाल तथा स्त्रियोंके विषय प्रपञ्च खानी-जाल, इन महान फन्दाओंसे निकल करके छूटना चाहते हो, बचाव-उद्धार चाहते हो, तो मेरा बातको मानो ! सुनो ! ऐसा करो कि, पारख विलासी पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें विहार करो ! और सब सन्देह मिटा करके निर्णय बचन=गुरुमुख वाणी या सारशब्दरूप गुरुबोधको अपने हृदयमें बसाओ, धारण करो ! विवेक-विचार द्वारा पारखमें विलास करके सार निर्णय वचनको मनमें पक्का बैठाओ ! अर्थात् सत्य बोधको धारण करो ! तभी यम फाँससे अनायास बच जाओगे ॥१८०८॥

८. सत्यशब्द टकसार कहावै * बीजक जीवन पद परखावै ॥ १८०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बीजक सद्ग्रन्थकी गुरुमुख वाणी जो है, सोई निर्णय वचन, सारशब्द है। उसे पारखी सन्त "सत्यशब्द टकसार" भी कहते हैं। सो बीजक सद्ग्रन्थका ही दूसरा नाम 'सत्यशब्द टकसार' है। इसका अर्थ ऐसा है कि, सत्य=त्रिकालाबाध्य, नित्य, अखण्ड चैतन्य जीव है। गुरुवालोगोंने नाना असत्य वाणी-वेदादिसे आवरणरूप पर्दा डालकर जीवको ढँक दिया है। चिदाभास, अंश, परा-प्रकृति, प्रतिबिम्ब, कार्य इत्यादि जीवको ठहराकर ब्रह्म-ईश्वरादिके-धोखेमें भुला दिये हैं; और अनेक प्रकारसे भ्रमा दिये हैं। सो सब कसर-खोट सत्य-सत्य यथार्थ गुरुमुख निर्णयसे सारशब्द द्वारा प्रथम पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सत्सङ्गके टकसारमें जिज्ञासु नर-जीवोंको यथार्थ भेद परखाया। जैसे टकसाल घरमें नगदी असली रुपया ढाला जाता है। वहाँसे ही कलदार रुपया वितरण किया जाता है। तैसे ही सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें सत्यबोध होता है। तभी सार-असार आदि परखनेमें आता है। सो निर्णयका शब्द पारख ज्ञानका भण्डाररूप बीजक सद्ग्रन्थमें एकत्र किया है। इसलिये बीजक ही "सत्यशब्द टकसार" कहलाता है। सो जीवों-को पारख धन बता देता है, दरिद्रतारूपी अज्ञान दूर करता है। जीव सत्य है, और ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या है, यही परखाता है। वही बीजकके सत्यज्ञानको खुलासा करके पारखी सन्त सत्सङ्गमें परखाते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सार उपदेश, सत्य निर्णयकी वाणी मूल बीजक सद्ग्रन्थ ही प्रसिद्ध है; और सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीने यथार्थ पारख बोध दर्शक बीजक टीकारूप 'त्रिजा' निर्माण किया है, सो भी सन्त समाजमें प्रख्यात है। सो बीजक रहस्यके ज्ञाता पारखी सन्त ही जीवोंको निजपद पारख बोध परखा करके स्थिर करते हैं ॥ १८०९ ॥

९. जहाँ जो जीव रहै अरुझाई * फाँस गाँस यम सबहिं लखाई ॥ १८१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें जहाँपर जिस प्रकारसे जो-जो जीव खानी-वाणीके भीतर अनेक तरहसे अरुझ गये या अरुझ रहे हैं, सो उसका पर्दा खोलकर विस्तारसे भेद दर्शाकर बीजक प्रमाणसे पारखी सन्त परखाते हैं। षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्ड, षट् शास्त्री, चौदह विद्या, अठारह पुराण, चारवाक्, चार कितेबके कुरान, हिन्दू-तुरुकादिकी असत्य मानन्दीको निर्णयसे खण्डन करके बीजकमें दिखला दिया है। यम=स्त्रियाँ, विषयीजन तथा गुरुवालोगोंकी मोटी-झीनी मायाका जाल, गाँठी, सम्बन्ध, जोड़, फँसाव आदिको कि, कौन कहाँपर किस प्रकारसे फँसे हैं; और कैसे फँसाये गये हैं। सो सबको प्रसङ्गानुसार एक-एक करके बीजक सद्ग्रन्थमें यथार्थ लखाया गया है वा समझाया गया है। सोई निर्णय समझा करके पारखी श्रीसद्गुरु जीवोंके बन्धन छुड़ा रहे हैं ॥१८१०॥

१०. देखत पारख छूटै फाँसा * तहँवाँ यमके रहै न बासा ॥ १८११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आ करके बीजक सद्ग्रन्थको देख-सुन-गुनकर गुरुमुखसे पढ़ते ही जिज्ञासुको पारखबोधका दर्शन हो जाता है। पारख दृष्टिसे चौतरफ देखते ही सब खानी-वाणीका फाँस=फन्दा-जाल घेरासे जीव छूट जाते हैं। फिर

पहलेकी मानन्दीके बन्धन टूट-टूट करके सब छूट जाते हैं । अतः उस पारख बोध प्राप्त नरजीव-के घटमें विषय और वाणी-कल्पनादिकी कलुषित वासनाएँ जमी नहीं रह सकती हैं; और यम=मन, नारी तथा गुरुवाओंके वशमें बासा करके वे विवेकी कदापि नहीं रह सकते हैं । फिर भास-अध्यासादि उनके पास रह नहीं सकते हैं। तब सब फन्दाओंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १८११ ॥

११. सन्तत शरण जीव सुखकारी * नाशक जाल सबै भवहारी ॥ १८१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— इसकारणसे हे मुमुक्षुओ ! पारखबोध दाता पारखी सन्त, श्रीसद्गुरुके शरणागत होना, हमेशा या सदाके लिये जीवोंको सुखकारी, मङ्गल करनेवाला हितकारी होता है । नाशक=नारियाँ और गुरुवालोग तो सदा मुक्तिपदको विनाश करनेवाले बने हैं । उनकी खानी-वाणीका जाल सदैव जीवोंको फँसानेवाला हुआ है । पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आनेपर सो सब भवभय हरण, मारण, निवारण हो जाता है । तरण-तारण श्रीसद्गुरुदेव पारखको परखा करके भव दुःखोंको मिटा देते हैं । अतएव निज स्वरूपमें स्थिति होनेपर सदाके लिये जीव निर्भय सुखी, जीवन्मुक्त होते हैं । वही पारख बोध देकर और नरजीवोंको भी सुखी करके भव दुःखके सब जाल जला करके मिटा देते हैं ॥ १८१२ ॥

साखीः— वचन बसावहु पारखी * बीजक है सो नाम ॥
[३२२] अक्षर अक्षर गुरुसे लखहु * संशय मेटहु तमाम ॥ १८१३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो ! इसी नरदेहमें मुक्त होनेके लिये मैं तुम्हें जो उपाय बता देता हूँ, सो ध्यानपूर्वक सुनो ! प्रथम पारख प्रकाशी आदिगुरु श्रीसद्गुरु बन्दीछोर पारखी श्रीकबीरसाहेबके यथार्थ सत्यनिर्णयका वचन, सारशब्द बीजकको हृदयस्थ करके भीतर बसाओ, दृढ़तासे सत्यनिर्णयको धारण-ग्रहण करो ! उसे पालन करो ! सो सत्य पारखबोध देनेवाला महान अमूल्य सद्ग्रन्थका नाम 'बीजक' है । यथा नाम तथा गुणके अनुसार जैसे उसका नाम है, वैसे ही उसमें रूप-गुण भी भरा हुआ है। यहाँ लोकमें साधारण जनता तक प्रचलित शब्दमें रखी हुई कीमती धन-राशिका परिचय टोटल सांकेतिक लेखवाले बही-खाताको 'बीजक', नामसे सम्बोधित करते हैं। एवं बिल-पत्रको भी बीजक जमा-नामें दर्शक पत्र कहते हैं। धनिक लोग कीमती धनको कहीं छिपा करके या पृथ्वीमें गाड़कर रखते हैं । उसके विवरण उसी बहीमें इशारेसे लिखे रहते हैं । उनके मर जानेपर भी कालान्तरमें वारिस लोग उसीमें लिखित इशाराको समझकर धन प्राप्त कर लेते हैं। उसीप्रकार वाणी-खानीके धनिक भ्रमिक जड़ाध्यासी लोगोंने जीव जमारूपी अमूल्य चेतन-धनको वासनावश चार खानीके गर्भवासमें छिपा दिया है, जन्म लेनेपर मैं-ममताकी भूमिपर फिर अनुमित ब्रह्म, आत्मा अधिष्ठानमें जीवको लुका दिया है । यह भेद और किसीने भी नहीं जाना, इससे वे दरिद्र-वत् होकर बन्धनमें ही पड़े रहे। महान पुरुषार्थी महापुरुष शोध-बोधकर्त्ता पारखी सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने स्वयं ही स्वयंस्वरूपका पारख बोध प्राप्त किये, स्वयं भव-बन्धनोंसे छूट करके मुक्त हुए। आपने अन्य जीवोंके कल्याणके लिये सारासारके सत्यनिर्णयका वचन पद्य रचना करके उपदेश कहा । उसमें जीव जमा सत्य, खानी-वाणीकी मानन्दी खर्च असत्य, मुक्तिके लिये हंसपदमें पारख सिल्लक बाकी-का टोटल लगा करके सारा भेद बता दिया है। उसी सत्योपदेश पदसमूहका ही "बीजक सद्ग्रन्थ" नाम धरा है । सारी बात उसमें सांकेतिकरूपमें इशारेसे दृष्टान्त-सिद्धान्त घटा करके पारखबोध दर्शाया हुआ है । पद्यमें बीजक सद्ग्रन्थ बना हुआ होनेसे मूलमात्र पढ़कर सबको यथार्थ बातका बोध नहीं हो सकता है । श्रीसद्गुरुने पारख भण्डारकी कुञ्जी पारखी सन्तोंके हाथमें सौप दी है । यद्यपि दयालु पारखी साधु-गुरुने बीजक मूलकी टीका भाषामें बना करके सरल मार्ग भी बना दिया है। तथापि विशेष बोधवान्के लिये ही वह टीका आधाररूप सहायक होती है । खाली टीकावाला ग्रन्थ अपने ही पढ़कर पूरी-पूरी सन्धि सबको मालूम नहीं हो सकती है । सब भेद नहीं खुलता है । इसवास्ते

पारखी श्रीसद्गुरु द्वारा गुरुमुखसे श्रवण करके बीजक सद्ग्रन्थको पढ़ना चाहिये। पहले तो बीजक पढ़ानेवाले पारखी श्रीसद्गुरुसे बीजक-पदका अक्षर-अक्षर एक-एक चौपाई श्रवण करके पढ़ो; कण्ठाग्र करो! इससे शुद्ध पाठकी याद होगी। पाठ भेदसे होनेवाली अशुद्धता नहीं होगी। जब समग्र बीजकपद कठस्थ याद हो जायगा, तब उसके अर्थ पढ़ानेवाले पारखी सत्यन्यायी श्रीसद्गुरुके आश्रित हो सेवा, टहल, बन्दगी करते हुए, सत्य श्रद्धा भक्ति-भावके सहित नियमपूर्वक बीजककी अर्थ श्रवण करके याद करो! प्रथमसे ही क्रमशः अक्षर-अक्षर चौपाई-चौपाई पद-पदके शब्दार्थ-भावार्थ, पदार्थ, ध्वन्यार्थ, व्यङ्गार्थ, शरलार्थ, कठिनार्थ, उभयार्थ, इत्यादि समस्त भेदको जहाँ जैसा आवे, सो अच्छी तरहसे गुरुमुखसे लख लो! और जीवमुख वाणी, मायामुख वाणी, ब्रह्ममुख वाणी, तथा गुरुमुख निर्णयकी वाणीके कर्मको ठीक-ठीकसे समझ लो! फिर क्षर, अक्षर, निःअक्षर, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, आत्मा और कूटस्थका भेद भी भलीभाँतिसे जान लो! आदि-अनादि, जड़-चैतन्य, बन्ध-मुक्ति, एक-अनेक, ब्रह्म-जगत्, प्रकृति-पुरुष, उत्पत्ति-प्रलय, काल, सन्धि, झाँई, तत्त्वमस्यादि पञ्चकोशोंका वाणी-जाल, और पञ्चविषयोंका खानी-जाल इत्यादि समस्तके भेदको श्रीसद्गुरुके न्यायसे लखकर जान-बूझ समझकर तमाम संशयको, दुविधाको, भ्रम-भूलको मिटा डालो! अपरोक्ष पारख स्वरूपकी स्थितिमें ठहरकर निर्बन्ध मुक्त हो जाओ। उसीके लिये पारखी श्रीसद्गुरुके निर्णय वचनको हृदयमें पक्का करके धारण करना चाहिये ॥ १८१३ ॥

॥❀॥ रमैनी नम्बर— १८ ॥ सत्यशब्द टकसार॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर— ५८ ॥❀॥

१. तैं सुत मान हमारी सेवा * तो कहँ राज देउँ हो देवा ! ॥ १८१४ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने इस रमैनीमें गुरुवालोगोंका कथन बतलाया है— हे सन्तो! [मायामुखः—] गुरुवालोग मनुष्योंको घेर-घार करके पारखी सन्तोंके सत्सङ्गसे छुड़ा करके कहते हैं कि— हे सुत! हे पुत्र! वा हे प्रियशिष्यो! तुम लोग सब हमारी बात, उपदेश, शिक्षाको मानो! हम तुम्हें वेद-वेदान्तकी गोपनीय सूक्ष्म बात बतलाते हैं, उसको विश्वास करके मानो! इसलोक-परलोककी सुख और मुक्ति पाना चाहते हो, तो हमारी योगी, ज्ञानी, भक्तोंकी सब प्रकारसे मन लगा करके खूब सेवा किया करो! सेवासे ही मेवा मिलता है, इसवास्ते तन, मन और धन अर्पण करके हमारी ही सेवा, टहल, चाकरी, भक्ति सदा करते रहो। हो देवा! अहो प्यारे भक्तो! हे शिष्यो! अगर तुम लोगोंने मन लगा करके हमारी सेवा, भक्ति-भाव खूब करके हमें प्रसन्न किया, तो फिर हम तुम-लोगोंको पिण्ड-ब्रह्माण्डका राज्य, अठारहों वर्णोंके ऊपरकी सत्ता, सर्वोच्च पदवी, ब्रह्मज्ञान तक दे देवेंगे। राज्याधिकार सुख-सम्पत्तिको पा करके फिर तुम परमानन्दको पाओगे। इसवास्ते हे पुत्रो! पहले हमारी बातको मानो! हमारी सेवा करो, फिर तुम्हारा अधिकार देखकर मृत्युलोक, देवलोकसे लेकर ब्रह्मलोक तकका राज्याधिकार हम तुम्हें दे देवेंगे ॥ १८१४ ॥

२. अगम दगम गढ़ देउँ छुड़ाई * औरो बात सुनहु कछु आई ॥ १८१५ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोग कहते हैं— हे शिष्यो! और भी तुम लोग हमारी बातको ध्यानसे सुनो! वास्तवमें परब्रह्म तो एक अद्वैत मन, बुद्धि, वाणीसे परे है; और जगत्में जितने भी निरूपण हैं, सो भ्रममात्र हैं। इसलिये अगम=गममें न आनेवाला अदृष्ट या अदृश्यको कहते हैं। दगम=दृष्टिगोचर वा देखनेमें आनेवाला दृश्य है। ये दोनों धोखा वा भ्रमका गढ़रूप किला है। ब्रह्मज्ञानका निश्चय करके उसको छोड़ दो! मैं तुम्हें अद्वैत ब्रह्मका वेद-वेदान्त प्रमाणसे पक्का बोध दृढ़ करा देता हूँ! द्वैत भ्रमको छुड़ा देता हूँ! जिससे तुम्हारे मनसे भी गम-अगमके, दृश्य-अदृश्यके साकार-निराकारके गढ़े हुए भेद-भ्रम सब छूट जायेंगे। भ्रम गढ़ छूट जानेसे परमपद मिल जायगा; और भी वेदोक्त अद्वैत सिद्धान्तकी बात जो कुछ जानना बाकी है, सो भी हमारे शरण-सत्सङ्गमें नित्यप्रति आ करके ध्यानसे सुना करो! अभी तो कुछ-कुछ थोड़ी बात ही तुम्हें बताई है, और बहुत कुछ बात समझना बाकी है; इससिये मन लगाकर और भी कुछ सुन लो! ॥ १८१५ ॥

३. उतपति परलय देउँ देखाई * करहु राज सुख बिलसो जाई ॥ १८१६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं— हे शिष्यो ! उतपति = चराचर जगत्की उत्पत्ति, सृष्टि वा प्रारम्भः होना या जन्म लेकर पैदा होना है। परलय = महाप्रलयमें जगत् सृष्टि बिगड़कर नाश होना, परिणाममें बदलजाना, अन्त होना या मृत्यु होकर विनाश हो जाना है। घटना-बढ़ना, बनना-बिगड़ना, यह सब माया-प्रकृति करके हो रहा है। उन सब विकारोंसे ब्रह्म निर्लिप्त न्यारा है। परन्तु, कारण ब्रह्म ही सबका अधिष्ठान है। उसकी इच्छा मात्रसे जगत्की उत्पत्ति होती है; अनिच्छासे प्रलय होता है। इसलिये ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या, भ्रान्तिसे प्रतीति मात्र हो रहा है। ऐसा अद्वैत ब्रह्मज्ञानका सिद्धान्त है, सो मैंने तुम्हें दिखा दिया है। यही बात दृढ़ निश्चयसे मैं तुम्हें दिखा देता हूँ ! सो तुम भी अब अभेद-दृष्टिको उघाड़ लो ! फिर निःसन्देह होकर "अहं ब्रह्मास्मि"-का दृढ़ निश्चयकर तीनों लोकोंपर एकछत्र अखण्ड राज्य प्राप्त कर लो ! ब्रह्म समाधि परमहंस स्थिति-में जाकर सच्चिदानन्द, परमानन्द, महासुखमें विलास करो ! उसी भोग-विलासमें रमण करके मग्न हो जाओ ! वहाँ सुखके सिवाय और जगत्का कोई दुःख जा ही नहीं सकता है। उत्पत्ति-प्रलयका अधिष्ठान आत्मा तुम ही हो, यह मैंने दिखा दिया है। अब तुम अपने राज्यमें जाकर सुखका विलास करो ! ॥१८१६॥

४. एकौ बार न होईहैं बाँको * बहुरि जन्म न होइहैं ताको ॥ १८१७ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं— हे शिष्यो ! देखो ! अद्वैत ब्रह्म-निष्ठामें पूर्ण कायम होनेपर उन ब्रह्मज्ञानियोंकी वृत्ति फिर कभी एक बार भी द्वैत भावनामें प्रवृत्त, विचलित, टेढ़ी नहीं होती है, इसवास्ते कोई उनको एक बाल मात्र भी खसकाकर वहाँसे डिगा नहीं सकते हैं। अथवा कोई उन्हें सता करके कष्ट देकर नाश भी नहीं कर सकते हैं; क्योंकि, उनका कोई एक छोटा-सा बाल या रोम मात्र भी टेढ़ा नहीं कर सकते हैं। किसीके कितने ही उपाय करनेपर भी उनका कुछ बिगाड़ वा हानि नहीं होगी। भेद-भावकी दृष्टि उनमें कभी नहीं होगी। इसकारणसे फिर उलटकर देहान्त होनेपर पुनः परमहंस विज्ञानीकी जन्म = उत्पत्ति, देह धारण होना, आवागमनमें पड़ना, यह बात नहीं होगी। वे ब्रह्ममें मिल करके नित्यमुक्त, नित्यतृप्त देहातीत हो जाते हैं ॥ १८१७ ॥

५. जाय पाप सुख होइहैं घना * निश्चय बचन कबीरके माना ॥ १८१८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग कहते हैं— हे भक्तो ! ब्रह्मज्ञानीके पाप-रूप सब दोष दुःख-क्लेश एकदम छूट जाते हैं। सच्चिदानन्दघन परमानन्द सुख सदैव प्राप्त होता रहता है। वे महान वा बहुत घनाकार सुखमें रहते हैं। इसलिये गुरुवालोग कहते हैं कि— हे जीवो ! कबीर = ब्रह्मज्ञानीरूप हम गुरु लोगोंका उपदेश वेद प्रमाणके वचनको मनमें दृढ़ निश्चय करके मान लो; और जिन्होंने ब्रह्मनिष्ठ गुरुके वेदान्त ज्ञानके वचनको निश्चय करके पक्का विश्वास कर लिया, अद्वैत सिद्धान्तको ही मान लिया, तो निश्चयसे उस भाग्यवान् जीवकी पापरूप तन-मनादिके दोषरूप विकार द्वैत भाव सब छूट जायगा; और घना = महदानन्द सुखकी प्राप्ति होगी। ब्रह्ममें मिलकर मुक्त हो जायगा, इत्यादि मायामुखसे भ्रमिक गुरुवालोगोंने समझा करके जीवोंको भुला रक्खा है। सो परखानेके लिये यहाँ प्रमाण दिया है कि, देखिये ! कालने कैसा जाल फैलाया है; बिना पारख इससे कोई निकल नहीं सके ॥ १८१८ ॥

अथवा ग्रन्थकर्त्ताके यहाँपर यह प्रमाण देनेका आशय गुरुमुखसे हो, तो तहाँपर संक्षिप्त अभिप्राय ऐसा निकलता है कि, सुनिये !:—

"तैं सुत मान हमारी सेवा * तो कह राज देउँ हो देवा ! ॥"

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे शिष्यो ! तुमलोग हमारे सारशब्द निर्णयको मानो ! पारखी साधु-गुरुकी सेवा, चैतन्य भक्ति करो ! पारखी सन्त ही तुम्हें त्रिदेवोंके राज, तीन मार्गादिके बन्धन समझा देवेंगे। त्रिगुणी जालोंको मैं तुम्हें समझा देता हूँ ! ॥ १८१४ ॥

"अगम दृगम गढ़ देउँ छुड़ाई * औरों बात सुनहु कछु आई ॥"

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे शिष्यो ! अगम = अदृश्य निराकार ब्रह्म, दृगम = दृश्य, साकार जगत्में अष्ट प्रतिमा पूजादि गुरुवालोगोंके मत सब भ्रम कल्पनाका गढ़ है, उसे परख करके छोड़ दो ! और भी सारासारकी जो कुछ बात है, सो भी सत्सङ्गमें आ करके सुनो ! और समझो ! ॥ १८१५ ॥

"उतपति परलय देउँ देखाई * करहु राज सुख विलसो जाई ॥"

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे शिष्यो ! जड़-चैतन्यरूप विश्व अनादिकालका है। किसी कर्त्तासे विश्वका उत्पत्ति-प्रलय नहीं होता है। जड़ाध्यास करके ही जीवोंसे चारखानीमें शरीरकी उत्पत्ति और नाश हुआ करता है, सो निर्णयसे परखाकर मैं तुम्हें दिखला देता हूँ ! अपने मन, इन्द्रियादिको वशकर उन्हें विजय करके स्वराज्य करो ! सत्सङ्गमें जा करके विवेक-विचारका विलास करो ! ॥१८१६॥

"एकौ बार न होईहैं बाँको * बहुरि जन्म न होइहैं ताको ॥"

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे शिष्यो ! अनेक बार जड़ाध्यासी होकर तुमलोग जन्म-मरणादिमें पड़ते आ रहे हो ! अब वर्तमानमें एक बार भी पारख स्वरूपकी स्थिति तुम करोगे; और एक बाल बराबर भी तिरछा अध्यास न रक्खोगे, तो फिर तुम्हारा वा उसका जन्म-मरणादि भविष्यमें फिर नहीं होगा ॥ १८१७ ॥

"जाय पाप सुख होइहैं घना * निश्चय बचन कबीरके माना ॥"

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे मुमुक्षु नरजीवो ! हमारे सत्य निर्णयके वचनको निश्चय करके मानो ! तो तुम्हारा ही कल्याण होगा ! और पाप-ताप, दोषरूप विकार, भ्रम-भूल सब पारखके प्रतापसे मिट करके छूट जायगी। महान जीवन्मुक्तिका सुख भी प्राप्त हो जायगा। मैं तुम्हारे हित-कल्याणके लिये ही कह रहा हूँ ! जिन्होंने मेरे सत्य निर्णयके वचनको निश्चय करके मान लिया, उनके मनसे सब आसक्ति छूटनेसे वे सुखी हुए हैं; वैसे तुम्हें भी सुख होगी, सो जान लो ! ॥१८१८॥

साखीः— साधु सन्त तेई जना * जिन्ह मानल बचन हमार ॥

[३२३] आदि अन्त उत्पति प्रलय * देखहु दृष्टि पसार ॥ १८१९ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! [मायामुखः—] गुरुवालोग कहते हैं— जिन-जिन जिज्ञासु मनुष्योंने हमारे वेद-वेदान्तके सिद्धान्तका वचन, उपदेश, कथा, योगी, ज्ञानी आदि हमारे अनुयायीके मुखसे सुनकर दृढ़ निश्चय करके सत्य मान लिया है, विश्वास कर लिया है; और उसी मुताबिक चलने तथा चलाने भी लगे हैं, वे ही समझदार बुद्धिमान् हैं। योग-युक्तिसे तन-मनादिको साधनेवाले साधक वे ही साधु हैं। भक्ति, योग और ज्ञानमें लगकर वृत्तिको शान्त, एकान्त, स्थिर करनेवाले वे ही सन्त हैं; और ईश्वर भक्त, श्रद्धालुजन, वे ही खास करके निपुण भक्त हैं। हमारे वचन माननेवाले ही सच्चे साधु-सन्त, भक्त हो सकते हैं; और हमारे वचन वेदको न माननेवाले तो चाहे कैसे कोई भी हों, असाधु, असन्त, अभक्त होते हैं। हे मनुष्यो ! ब्रह्मज्ञानकी विचार दृष्टि चौतरफ पसारकर या फैलाकर देखो ! आदि = जगत्का प्रथमारम्भ परब्रह्मकी इच्छा द्वारा हुई है। तैसे देहका आदि = जन्म भी उसीसे हुआ है। उसीको जगत्की उत्पत्ति कहते हैं; और अन्तमें यह सब सृष्टि प्रलय = विलय होकर उसी ब्रह्ममें ही समा जाता है। इसप्रकार वह अधिष्ठान ब्रह्मसे ही जगत्का आदि-अन्त होता रहता है। उसीका नाम उत्पत्ति-प्रलय है। ऐसे बनने-बिगड़नेवाला जगत् मायाका विकार असत्य है। ऐसा जान करके सब द्वैत-भावको छोड़ दो ! अद्वैत अभाव ब्रह्म स्थितिमें ही टिके रहो, वही परमपद है। वेद-वेदान्त शास्त्रमें दृष्टि पसार करके देखो ! फिर तुम्हें मालूम हो जायगा, ब्रह्म सिद्धान्त ही सबसे बड़ा महान है, एक आत्मा ही सब रूपमें भरी है। यह तुम भी देखकर जान पाओगे, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है ॥

अथवा गुरुमुखसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सोई सज्जन विचारवान् साधु, सन्त, भक्त होते हैं; जिन्होंने हमारे सत्य निर्णयके वचनको मान लिया है। सार-असारका पारख करनेमें लगे हैं। जगत् तो अनादि कालके है, इसका उत्पत्ति-प्रलय तो कभी नहीं होता है। शुरूसे-आखिर तक खानी-वाणीके अध्यासको जीवने ले रक्खा है, इसीसे चारखानियोंमें देहकी उत्पत्ति होना सो आदि है, और देहका अन्त=नाश होना, प्रलय कहलाता है। पारख दृष्टिको सब तरफ फैला करके देखो ! पारखस्वरूपकी स्थिति हुए बिना सब जीव आवागमन चक्रमें ही पड़े या पड़ रहे हैं। अतएव परख करके जड़ाध्यासको त्याग करके निजस्वरूपमें ही स्थिति करनी चाहिये; इत्यादि रीतिसे समझाया है, सो जान लीजिये ! ॥ १८१९ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ९६ ॥ [चौपाई- १६ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. वचन वचन जग सब कोइ कहहीं * वचन कला बिरले कोइ लहहीं ॥ १८२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसार बन्धनोंसे बचना चाहिये, आवागमनसे छूट करके मुक्त होना चाहिये। भवपार उतरो ! बचो ! बचो ! हम बचायेंगे। हमारे मत, पन्थमें आओ। हमारे ग्रन्थके वचन पढ़ो ! ग्रहण करो ! इत्यादि प्रकारसे जगत्में सब कोई मतवादी गुरुवालोगोंने नाना प्रकारके वाणी-वचन रोचक-भयानकादि उपदेश कहा और कह रहे हैं। परन्तु, पारख बोधके बिना भव-बन्धनोंसे जीवोंका बचाव कैसा होता है ? इसका भेद वे कुछ नहीं जानते हैं। कल्पना, भ्रम, धोखेमें डाल करके और भी जीवोंको जकड़ा देते हैं। कोई बिरले ही सत्यन्यायी निर्णयी पारखी सन्त उस वचन कलाके भेदको यथार्थ जानते हैं। आवागमनसे बचकर छूटनेकी पारख कलाको कोई बिरले पारखी ही जान पाते हैं। गुरुमुख निर्णयका सारशब्दरूप वचनसे सब खानी-वाणी कला-कल्पनाको परख-परखाकर बिरले ही कोई मुक्ति-स्थितिको प्राप्त होते हैं ॥ १८२० ॥

२. पारखी वचन बचावन फाँसा * और वचन हैं यमके गाँसा ॥ १८२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखप्रकाशी परम पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयका वचन गुरुमुख वाणी सारशब्द ही एक-मात्र जीवोंको नाना फाँस, मोटी-झीनी मायाके जाल-जञ्जाल, विषय, अनुमान-कल्पना, धोखा आदिसे बचा करके रक्षा करनेवाला भव-बन्धनोंसे छुड़ाकर पार करनेवाला है। ऐसे ही पारखी सन्तोंका वचन ही सब प्रकारसे फन्दोंसे बचानेवाला है; और बाकी सब बेपारखीके वचन— वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदिकी वाणी यम=गुरुवालोगोंका बनाया हुआ जाल है। जीवोंको अटकाने और भटकाने तथा लटकानेकी गँसी हुई जोड़रूप डोर, वही यमपास है। यमका वचन जीवोंको भ्रमिक, जड़ाध्यासी बनाकर चौरासी योनियोंमें डालनेवाला है। अतएव कल्पित वचनमें लगना नहीं चाहिये ॥ १८२१ ॥

३. विषके गुण अमृत कहि ताके * भोरे जीव परहिं वशि जाके ॥ १८२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोग बड़े धोखेबाज होते हैं। विषके समान अवगुण करनेवाली वाणी कल्पना तथा ब्रह्मानन्द-विषयानन्दादिको अमृतके समान गुणकारी बता करके सुख वा मुक्तिकी आशा दे और दिला करके उसी भ्रम कल्पनाको ताकने और तकाने लगे। ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्तिकी लालच बता-बता कर सब जीवोंको भ्रमा करके भुलाये हैं। अबोध नरजीव भी आशा-तृष्णासे उन्हीं गुरुवालोगोंके शरण वा पासमें जा-जा करके घिर पड़े हैं। भूले हुए जीव उन्हींके अधीन हो वशमें पड़े और पड़ रहे हैं। बिना पारख अमर, अमृत निजस्वरूपको न्यारा करके तो जानते ही नहीं हैं; विषरूप वाणी कल्पनासे ईश्वरादिको अमृत तत्त्व कह-सुनकर उसी धोखेके पीछे पड़े, तो जड़ाध्यासी होकर मर गये। अब वही पञ्चमार्ग वर्णन करके चार फल, चार मुक्ति आदिकी आशामें फँसाकर जीवोंको भुला दिये हैं। जिसके वशमें पड़कर जीव आवागमनादि

चक्रमें पड़े हैं; और दुस्सह दुःख भोग रहे हैं। इसप्रकार उलट-पलटकर खानी-वाणी जालोंमें ही सब जीव बन्धे पड़े हैं। परख करके उससे छूट जाना चाहिये ॥ १८२२ ॥

४. जेहि जेहि पूँजी भवजल बेरा * सबके बीजक परख निबेरा ॥ १८२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भवसागरसे पार उतरनेके लिये संसारमें गुरुवा-लोगोंने अनेकों बेड़ा बाँधा है। भिन्न-भिन्न मत-पन्थ, सिद्धान्तोंका जहाज बनाये, उसपर सबलोग आरूढ़ हुए। जिस-जिसने जो-जो मानन्दीकी पूँजी = धन-सम्पत्ति जमा की; अपने इष्टकी पूजा-अर्चा, ध्यान-धारणादि की, सो भवजलसे पार उतारनेके बदले बीच धारामें डुबानेवाला ही हुई। सो संसारमें तब तक जितने मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त आदि प्रगट हुए, सो उन सबका पारख यथार्थ निर्णय सत्यासत्यका विचार कसर-खोटका बिलगाव सत्यन्यायका ठहराव, पारखप्रकाशी स्वानुभवी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबने 'बीजक' नामक सद्ग्रन्थमें दर्शाया है। हंसके समान पारखसे नीर-क्षीरका निबेरा करके बतलाया है। गुरुमुख द्वारा सो एक "बीजक" सद्ग्रन्थको ही अध्ययन करनेसे समस्त मत-मतान्तरोंका सार निर्णय जाननेमें आ जाता है। जहाँ-जहाँ पर जिस-जिस प्रकारसे जो-जो अटके हैं, सो सब भी परखनेमें आ जाता है। अतएव और सब ग्रन्थ पढ़नेमें समयको बर्बाद करना व्यर्थका परिश्रम उठाना छोड़कर एक "बीजक" सद्ग्रन्थको ही ध्यानपूर्वक पढ़-सुनकर पारख निर्णयको ग्रहण और धारण करना चाहिये ॥ १८२३ ॥

५. साखी शब्द रमैनी कीन्हा * बेलि बिरहुलि कहरा रचि दीन्हा ॥ १८२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! "बीजक" सद्ग्रन्थमें सब ग्यारह प्रकरण आया है। क्रमानुसार उन प्रकरणोंका नाम इस नीचेके दोहामें कहा हैः—

दोहाः—"रमैनी शब्द रु चौंतीसा। विप्रमतीसी चार॥ कहरा वसन्त चाचर। बेलि बिरहुली धार॥
हिण्डोल सो दशवाँ अहै। साखी रुद्र पिछान॥ कहहिं कबीर टकसार यह। बीजक है परमान॥"

[रुद्र = ग्यारहको कहते हैं॥] अनादि कालसे संसारमें खानी और वाणी ये दोनों जालोंका पसारा होता ही चला आ रहा है। मानव समाज उसमें अनेक तरहसे बद्ध पड़े थे। विभिन्न मत-पन्थोंके पाखण्डका प्रचार करके एक-दूसरे उसीमें फँसते और फँसाते आ रहे थे। संस्कृत ग्रन्थमें अनेकों छन्द, प्रबन्ध, कविता बनी पड़ी थी। वैसे ही देशी भाषामें भी लोकगीत, भजनादि गाये जाते थे। भाषाकी कविता वा पदमें लोगोंकी ज्यादातर रुचि बढ़ने लग गयी थी। अतएव षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्डोंकी कसर परखानेके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी लौकिक हिन्दी भाषामें ही पद्य रचना करके साखी, शब्द, रमैनी आदि ग्यारह विभागोंमें जिज्ञासुओंको सत्य उपदेश देकर चेताये। वही पद-समूह एकत्र जमा होनेपर "बीजक" नामसे कहलाया। 'बीजक' सद्ग्रन्थमें सब मोटी-झीनी मायाके जालोंका विस्तारसे वर्णन करके बतलाया है; और खानी-वाणीका झगड़ा मचा था; फैसला नहीं होता था। कोई खानी सत्य कहते थे, और कोई वाणी सत्य कहकर लड़ रहे थे। कोई आत्माको साक्षी बतलाते थे, तो कोई देहको ही साक्षात् सत्य ठहराते थे। इन सबका साक्षी जीव उनसे न्यारा है, यह निर्णय फैसला साखी भागमें- ३५३ साखीके भीतर वर्णन किया है; और कोई ॐ शब्दको ब्रह्म मान रहे थे, कोई सोहं शब्दको ब्रह्म बता रहे थे, कोई अनहद नादको श्रेष्ठ कह रहे थे। जीव बिना उन सबको कौन जाने? शब्द जड़ है; जनैया जीव चैतन्य सत्य है, यह निर्णय शब्द भागमें शब्द नम्बर- ११५ तकमें वर्णन हुआ है। तथा ऐनी जीवने वेद-कुरानादि वाणी बनाकर उसे ऐन-कानून मानकर ईश्वर, खुदा, ब्रह्म आदिको कर्ता ठहराकर उसी मिथ्या धोखेमें रम रहे थे। कोई विषयोंमें रमणकर रहे थे। रमनेवाला जीव न्यारा सत्य है; यह निर्णय रमैनी भागमें, रमैनी नम्बर- ८४ तकमें वर्णन किया है। वाणी कल्पनाकी लता तथा विषय वासना बढ़ती हुई शून्यमें जो गई थी, सो निर्णय बेली भागमें बेली २ में कहा है। कोई विषय भोगके लिये स्त्री-पुरुषमें विरही हुए थे, कोई एक कल्पित

ईश्वरादिको खाविन्द मानकर उससे मिलनेके लिये विरहमें व्याकुल हुए थे, सो धोखेको बिरहुली भागमें, बिरहुली नम्बर— १ में परखाया है। संसारमें विषय भोग, योग, ब्रह्मानन्द आदिके लिये बड़ा कोलाहल, कष्ट, पीड़ा, व्यथा बढ़ गयी थी, सो १२ कहराके पदमें निर्णय किया है। ऐसे भिन्न-भिन्न करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने अलग-अलग उक्त छै भागोंमें उनकी रचना कर दी है ॥ १८२४ ॥

६. और वसन्त हिण्डोला लगनी ❀ विप्रमतीसी अर्थमें बरनी ॥ १८२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बारहों महीनोंमें भोग और योगादि करके जीवोंको जन्म-मरण त्रय तापादिमें दुःख भोग हो रहा देखकर सो वसन्त भागमें १२ वसन्त तकमें परखाया है। फिर ऊँचे-नीचे, स्वर्ग-नरक, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, ब्रह्म-जगत्, भीतर-बाहरमें लगन लगा करके भूलनामें भूलकर जीव जन्म-मरणके हिण्डोलामें वेग भर रहे थे, सो हिण्डोला भागमें हिण्डोला ३ तकमें निर्णय किया है; और विप्रमतीसी भागमें ब्राह्मणोंकी मति-बुद्धि स्वार्थमें लगकर जैसे नष्ट-भ्रष्ट हुई है, सो विप्रमतीसी नं० १ में दर्शाया है। इन सबका अर्थ विस्तारपूर्वक (टीका) सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने बीजककी त्रिजा या टीकामें वर्णन किया हुआ है। सोई टीकासे इन सभीका तात्पर्य, मतलब, अर्थ समझनेमें आता है ॥ १८२५ ॥

७. चाँचर लार विरह जग जेता ❀ जेहि जेहि बूझ वेग सब तेता ॥ १८२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! लगवारके लार=लगार, प्रीतिमें सुध-बुध खो करके जितने प्रकारसे जगत् जीव विरही, भ्रमिक, व्यभिचारी आदि हुए सो बन्धनका निर्णय चाचर भागमें २ चाचर तकमें वर्णन किया है। जो-जो जिज्ञासु मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुके गुरुमुख द्वारा इन बीजकके प्रकरणोंको अच्छी तरहसे पढ़ेंगे, अर्थ समझेंगे-बूझेंगे, तब तितने सब ही विषयोंको वा उन सब भागोंको यथार्थ परखकर शीघ्र ही जान जायेंगे; सारासारको परख लेंगे ॥ १८२६ ॥

८. बिपर्जय चौंतीसा सब बानी ❀ नाम अर्थमें सबहि बखानी ॥ १८२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बिपर्जय=विपरीत या विरुद्ध, दूसरे मतवादीकी मान्यता, उन्होंका कहा हुआ कथन, सब वाणी जालोंके अक्षर-अक्षरका निर्णय, सबोंकी वाणीका फैसला, ज्ञानचौंतीसा भागमें ज्ञानचौंतीसा- ३५ तकमें परखाया गया है। नाम, रूप, गुणोंका सब विवरण चौंतीसाके भीतरी अर्थमें वर्णन किया गया है। अर्थसे ही सब पदोंका मतलब निकलता है। सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीने विस्तारपूर्वक बीजक त्रिजारूप अर्थमें सो सबोंका खुलासा अक्षर-अक्षरका अर्थ निर्णयसे वर्णन किया हुआ है। सो टीका पढ़नेवाले जिज्ञासुको बहुतसे निर्णयकी बातोंका बोध हो जाता है। सारग्राही हंसदृष्टिवालेको बीजक मूल वा टीका पढ़ते ही यथार्थ पारखबोध हो जाता है। सो पारख बोधको ही धारण करना चाहिये ॥ १८२७ ॥

९. आयत बैत हदीश रुबाई ❀ मसला मसल सब भेद सुनाई ॥ १८२८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें विभिन्न देशकी भाषाओंमें वहाँके कवियोंने नाना प्रकारकी कविताएँ बना रक्खी है। जिसको पढ़-सुनकर मनुष्य भूल रहे हैं। उनके कुछ नाम यहाँपर दर्शा देते हैं, सुनिये ! हिन्दुओंने संस्कृतमें वेद— मन्त्र, सामगान, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष और पिङ्गल, ये वेदके षट् अङ्ग बनाया है। सूत्र, श्लोक, छन्द, प्रबन्ध, गद्य, पद्य, सूक्ति आदि उनके अन्तर्गत रचे गये हैं। देशी भाषा हिन्दीमें दोहा, चौपाई, सोरठा, छन्द, कवित्त, सवैया, छप्पै, घनाक्षरी, चौबोला, १६ मात्रिका, ३१ मात्रिका, ३२ मात्रिका-सवैया, चौकड़ी, इत्यादि भेदसे बहुत-सी कविताएँ बनी हैं; और उनके भाग-विभाग करके अध्याय, प्रकरण, स्कन्द, विश्राम, समुल्लास, तरङ्ग, सोपान, विराम, ब्राह्मण, मन्त्र, खण्ड, मुण्डक, मण्डल, अनुवाक, प्रकाश, पाद, आह्निक, वल्ली, मञ्जरी, इत्यादि नाना भेद बना रक्खे हैं। इसीप्रकारसे मुसलमानोंने भी उनके मजहबके बात अरबी, उर्दू, पारसी, मिश्री आदि भाषाओंमें अनेकों भेद करके लिखा है, सो-

मञ्जिल, सिपारा, सूरत, सुरतुल, फातिया, आयत, पर्व, वैत, हदीश, रुबाई, मसला, मसलन, इत्यादिके सब भेद कहकर सुनाया है। तहाँ कुरानके अध्यायवत् भागको 'आयत' कहा है। चौपाई, चौकड़ीके समान पढ़ी जानेवाली कविता-छन्दको 'वैत-मूल' कहते हैं; और कर्ममार्गके समान विधान लिखी हुई शरियतकी वाणीको 'हदीश' कहा है। रुबाई=जीवको सुधारनेके लिये नाना तरहकी कविताओं-की वाणी बनाया है। परन्तु, उससे कोई जीव नहीं सुधरे, उलटा नाना दुःख पा करके रो रहे हैं, और रुला रहे हैं। तथा कहावत, चुटकुला, लोकोक्ति आदि वाणीको 'मसला वा मसलन' कहते हैं। उसे दृष्टान्त-सिद्धान्तका घटना भी कहा है। रोजा, बाँग, निमाज, हज्ज आदिका भेद उन्होंने सुनाया है। सो सबका मर्म, सत्यासत्यका निर्णय करके पारखी श्रीसद्गुरुने फैसला सुनाकर परखाया है॥ १८२८॥

१०. रेखता और भूलना भेदा ❀ षट अष्टादश मत चहुँ वेदा ॥ १८२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कवि गुरुवालोगोंने और भी अनेक प्रकारकी वाणी रचना की है। तहाँ रेखता, भूलना और अरिल्ल, शेर, सायर, गजल, कौव्वाली, ठुमरी इत्यादि अनेकों रागोंके भेद प्रगट करके उसीमें जीवोंको भूला झुलाया है। इसप्रकार हिन्दू, मुसलिमोंने चार वेद, चार उपवेद, चार किताब, षट् शास्त्र, चौदह विद्या, अठारह पुराण, इत्यादि अनेकों ग्रन्थोंकी विस्तारसे रचना करके अपने-अपने मत-मानन्दी, सिद्धान्तोंका प्रचार कर रक्खा है; और उनमें मनहरण छन्द, भुजङ्गप्रयात छन्द, चामर, तोमर, मोदक, त्रोटक, रोला, गोला, कुण्डलिया, मञ्जुमालिनी, गीतिका, त्रिभङ्गी, प्रहर्षिणी, शिखरिणी, स्रग्विणी, चपलिनी, इत्यादि अनेकों छन्द-प्रबन्धके भेद बन्धान किये गये हैं। पारखबोध हुए बिना सब नर-नारी उसमें बद्ध हुए वा बद्ध हो रहे हैं॥ १८२९॥

११. जे सब गुप्त मता रखु गोई ❀ पारख टाटि सबनके खोई ॥ १८३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! असंख्य वर्षोंसे जो कि, सब गुरुवालोगोंने जो-जो मत, मानन्दी, सिद्धान्त गुप्त करके बड़े यत्नसे छिपा रक्खा था; ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, लोक, स्वर्गादि सत्य बताकर भुला रक्खा था, सो सब भ्रम-भूल, कल्पनाके आवरणरूप पर्दा, आड़, ओट, धोखेको परम दयालु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने यथार्थ पारखबोध दे करके सबोंकी टाटीको खो दिया, भ्रमको मिटा दिया। अभी पारखी सन्त भी वैसे ही बीजक ज्ञानका पारखबोध देकर सब जिज्ञासुओंकी भूलकी पर्दा हटा करके मिटा रहे हैं। जो मत सबोंने गुप्त करके ढाँक रक्खा है, उन सबोंके कसर-खोटकी पर्दा पारखदृष्टि खुलनेपर हट जाती है। तभी स्वयं स्वरूप सत्य चैतन्य जीवको निजरूपकी पहिचान होता है॥ १८३०॥

१२. जाल फाँस परखहिं जे जीवा ❀ विविधि प्रकार शब्द तेहि कीवा ॥ १८३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणागत होकर जो कोई जिज्ञासु नरजीव सत्यासत्यका निर्णय, विवेक करके गुरुवालोगोंके वाणी जालका फन्दा तथा स्त्रीके विषय फाँसको भलीभाँति परखेंगे, जानेंगे, समझेंगे, बूझेंगे, सो वे फिर कभी उन यमोंके नाना प्रकारसे विस्तार किये हुए शब्दोंमें तथा स्पर्शादि विषयोंमें नहीं भूलेंगे, उससे न्यारा हो रहेंगे। कालने यही विविधि प्रकारके शब्द नरजीवोंको बाँधनेके लिये ही रचना की है। सो उसे 'बीजक' सद्ग्रन्थके सत्य निर्णयके गुरुमुख शब्दसे परखकर परित्याग करना चाहिये। तभी अपने जीवनका कल्याण होगा॥ १८३१॥

१३. परख विलास करहिं जो कोई ❀ संशय मोह रहित जिव होई ॥ १८३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जो कोई बुद्धिमान् मनुष्य पारख विलासी पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें प्रेमपूर्वक लगे रहते हैं, विवेक-विचारमें रमणरूप विलास करते हैं, सो सदा सुखी होते हैं। श्रीसद्गुरुकी दयासे सो नरजीव फिर संशय=ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, खुदा आदिके धोखा, तथा मोह=स्त्री, पुत्र, धन, घर, कुटुम्ब आदि के माया-मोह, ब्रह्म और विषय उन दोनों

आनन्दोंका अध्यास कोई भी बन्धन उसके बाकी नहीं रहेंगे। सब तरफसे छूटकर वे निःसन्देह, निर्मोह, निर्भय, जीवन्मुक्तपदको प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् जो कोई पारखपदमें ही विलास करते हैं, सो नरजीव संशय, मोहरूप वाणी-खानी जालोंके बन्धनोंसे रहित मुक्त हो जाते हैं ॥ १८३२ ॥

१४. आवागमन बीज नहिं राखी * परख विलास प्रगट है साखी ॥ १८३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी सन्तोंके सत्सङ्गमें निवास वा विलास करनेवाले ऐसे पारखी सन्तकी एक भी वासना अध्यासका बीज आवागमनमें जानेका कारण बाकी नहीं रहता है। जीवन्मुक्त पुरुषका प्रत्यक्ष व्यवहार ही उसके लिये साक्षी वा प्रमाण मौजूद है। अथवा आवागमनमें जानेके वासना-बीजको पारखी सन्त कच्चा कदापि नहीं रखते हैं। सब जड़ाध्यास बीजको पारख बोधकी तीव्र ज्ञानाग्निमें जला करके भस्म कर डालते हैं। सदा पारखमें जाग्रत् हो करके हंस रहनी-रहस्य, सद्गुणमें ही वे विलास-रमण करते रहते हैं। इसके बारेमें सद्ग्रन्थ मूल बीजककी साखीका प्रमाण प्रगट है; सुनिये !:—

साखीः—"जो तू चाहै मूझको। छाड़ सकलकी आश ॥ मुझ ही ऐसा होय रहो। सब सुख तेरे पास ॥२९८॥" "पूरासाहेब सेइये। सबविधि पूरा होय ॥ ३०९॥" "साँचहि साँचा जो चलै। ताको काह नशाय? ॥३०८॥" "सज्जन सोई सराहिये ! जो पारख राखै साथ ॥२४६॥" "पारखीसे सङ्ग करु। गुरुमुख शब्द विचार॥८२॥" "संशय खण्डे सो जना। जो शब्द विवेकी होय ॥ ८८ ॥" इत्यादि साखी बीजकमें प्रत्यक्ष बता ही रहा है कि, पारखी सन्तके पासमें आवागमन होनेका कोई बीज नहीं रहता है; और प्रत्यक्षके लिये जीवन्मुक्त पारखी सन्तकी हंस चाल दर्शनीय साक्षी प्रगट है। सो उनके सत्सङ्ग करनेपर आपको भी मालूम हो जायगा ॥ १८३३ ॥

१५. बिस्मय एकौ नहीं जो आपै * परख विलास जाप सोइ जापै ॥ १८३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अपने आप निज पारख स्वरूपमें जो अटल, अचल, स्थिर रहते हैं, उन पारखी सन्तको फिर कोई एक भी बातमें बिस्मय=आश्चर्य, अज्ञान, भ्रम, संशय, धोखा नहीं रहता है, अपने स्वयं स्वरूप सत्यकी सदा निश्चय स्थिरता निजपदमें ही बनी रहती है। पारख विलासी पारखी सन्त बाहर सत्सङ्ग सत्योपदेशमें तथा मनमें भी "पारख स्वरूप मैं हंस जीव सत्य हूँ !" इसी जापको जपते हैं। यानी उसीका हमेशा स्मरण या याद करते हैं; अर्थात् निजस्वरूपके सत्यज्ञानकी ही याद किया करते हैं। जीवकी सत्यताका ही निर्णय उपदेशसे वर्णन करते हैं। वही सत्यबोधको धारण, मनन किये रहते हैं। इसलिये निजस्वरूपके विषयमें उन्हें कोई सन्देह नहीं रहता है। सदा नित्यप्रति सत्सङ्गमें विवेक-वैराग्य, विचार, दया, धैर्य, सत्यादि सद्गुणोंको ग्रहणकर उसीसे सुख विलासमें रहते हैं। सोई पारख बोधका ही जापरूप स्मरण करते रहते हैं। अतएव वे मुक्त होते हैं; किसी प्रकार कोई बन्धनमें वे पड़ नहीं सकते हैं ॥ १८३४ ॥

१६. जप तप जतन करत जिव मरहीं * परख विलास कष्ट सब हरहीं ॥१८३५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो !! गुरुवालोगोंके जालमें घिरे हुए नरजीव स्वर्गादि सुख, मुक्ति, और ईश्वरादि प्राप्तिकी आशासे नाना जप, अनेक उग्र तपस्या, कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादिके यत्न-प्रयत्न, अनेकों साधना करते-करते नाना कष्ट-क्लेश सहन करके आखिरमें जड़ाध्यासी होकर मरते हैं। फिर चौरासी योनियोंमें जा करके कर्मानुसार दुःख भोगते हैं; त्रिविधि तापमें पड़ते हैं। जब कोई भाग्यवान् मनुष्य पारखी साधु-गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्ग-विचारमें लगते हैं; तब उनके सब कष्ट-क्लेश धोखे छूट जाते हैं। पारखी श्रीसद्गुरु पारख बोध दे करके जिज्ञासुके सब कष्ट हरण कर देते हैं, भव-बन्धनोंसे छुड़ा देते हैं। सदा जीवको जीवन्मुक्त सुखी करा देते हैं। इसप्रकार पारख बोधसे सब कष्ट हरण होनेपर जीवन्मुक्ति सुख विलासमें नरजीव रहते हैं। जिज्ञासु जनोंको प्रयत्न करके सोई बनाना चाहिये ॥ १८३५ ॥

साखीः— जे जीव परख विलासमें * लहैं सदा सुख चैन ॥
[३२४] तिन्हके त्रास न कालके * और कहै को बैन ? ॥ १८३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जो जिज्ञासु सत्सङ्गी नरजीव पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विलासमें निवास करते रहते हैं। सो माया-मोहके सकल बन्धनोंसे छूटकर; सदा-सर्वदा निज स्वरूपकी स्थिति, चैन, शील, सन्तोष, शान्ति, धैर्यादि सद्गुणोंके सहित निवृत्ति-निरुपाधि, स्वच्छन्द, नित्य सुखको पाते हैं। सदाके लिये स्थायी सुख-चैन हासिल कर लेते हैं। त्रिगुणी कालरूप गुरुवालोग और नारियोंकी तरफसे होनेवाली उपाधि, शासतका त्रास, घबराहट, भय, पारखी सन्तको नहीं रहता है; और उनको काल-कल्पना, मन-मानन्दी, विषयादिसे होनेवाली मृत्युका भी डर रञ्चक मात्र भी नहीं रहता है; और ज्यादा बात बढ़ा करके विशेष महिमा कौन कहे ? क्या कहे ? इतनेमें जान लीजिये कि, परोक्ष मिथ्या वाणी-खानीका भय, आसक्ति-अध्यास उनमें कुछ भी नहीं रहता है; निर्भय निज स्वरूपमें स्थिति करके जीवन्मुक्त पुरुष संसारसे पार हो जाते हैं ॥ १८३६ ॥

साखीः— परख विलासी जीव जे * धन्य सोई संसार ॥
[३२५] और सबै निर्धन रहै * यमके हाथ खुवार ॥ १८३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो नरजीव स्वयं प्रबल पुरुषार्थ करके गुरुबलके प्रतापसे खानी-वाणीरूप महासागरसे पार उतर गये हैं। उस पार निज स्वरूप स्थितिके घरमें पहुँचकर वे पारख पदमें विलास, हंसपदमें रमण करते हैं; और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विलासमें प्रेम लगा करके मग्न हो रहते हैं। ऐसे जो नरजीव हैं, सोई एक संसारभरमें धन्यवादके पात्र हैं। बार-बार उनको ही धन्य है ! धन्य है ! शाबास है ! नर देहका पूर्ण लाभ उन्होंने ही उठाया है ! ऐसे पारख विलासी हंस जीव ही मुक्त कहे जाते हैं; और बाकीके सब जीव तो जड़ाध्यासी होनेसे निर्धन=दरिद्र ही हो रहे हैं। हंसगुण रहनीसे रहित सब जीव गरीब बन रहे हैं। वे लोभ-लालच, विषय-कल्पना, भ्रमादिके कारण यमरूप मन, गुरुवालोग और स्त्रियोंके हाथ=घेरामें पड़कर खराब होते हैं। मुक्तिपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो जड़ाध्यासी हो करके गर्भ खाँचमें फेंके जाते हैं, बिना पारख॥१८३७॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६७ ॥ [चौपाई- ४ । साखी- २ है] ॥ ❀ ॥

१. जीवन धन पारख है तेरा * दृढ़कै गहहु सो समुझ सबेरा ॥ १८३८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मुमुक्षु नरजीवो ! तुम्हारा जीवनधन सदा जीते रहनेका अमूल्य मुक्तिका साधन, कभी विनाश न होनेवाला श्रेष्ठ सर्वस्व जो कुछ भी सर्वोच्च पद है, सो एक पारख बोध ही तुम्हारी मूल अविनाशी सम्पत्ति है। ऐसा जान करके अभी वर्तमानके मनुष्य देहमें ही सर्वोत्तम प्रभात बेलामें ही सबेरा = युवावस्थामें ही अत्यन्त शीघ्रता करके पारखी श्रीसद्गुरुसे पारखपदको यथार्थ समझो-बूझो; उसे दृढ़ करके ग्रहण करो ! अपरोक्ष पारख स्थितिको अभी हो सके उतनी जल्दी प्राप्त करके ठहराव करो ! अथवा हे जीव ! नरजीवनमें सत्य, विचारादि हंस रहनी-सद्गुण रहस्ययुक्त पारख बोधको तुम परिपुष्ट करो ! पारख ही तुम्हारा मुक्तिदाता धन है। सो अभी जल्दीसे समझकर श्रीसद्गुरुके पारखबोधको ही तुम दृढ़ करके धारण कर लो ! जिससे तुम्हारे भव-बन्धनोंका सदाके लिये अन्त हो जायगा, सो जानो ! ॥ १८३८ ॥

२. जो जहाँ प्रीति अटल है जाके * बासा तेई तहाँ है ताके ॥ १८३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो-जो नरजीवोंकी जहाँ-जहाँ पर प्रेम-प्रीति, श्रद्धा-भाव, विश्वास, जिस-जिस मत, पन्थ, ग्रन्थ आदिमें दृढ़ पक्का अटल हो गया है; फिर वही-वही मार्ग-सिद्धान्तोंमें जा-जा करके तहाँ-तहाँ पर ही लक्ष्यसे ताक-ताक करके उसी मानन्दीमें बासा,

स्थिति, निश्चय कायम किया करते हैं। उसी मतके पक्षपाती हठी, शठी, अविचारी हुआ करते हैं। बिना पारख उन लोगोंको कदापि मुक्ति मिल नहीं सकती है। अथवा संसारमें जहाँपर जो कोई जीवोंने पञ्च विषयोंमें जिस-जिस विषयपर प्रीति अटल किया है, उसी तरफ ही आकर्षित होकर जा करके लक्ष्य लगाकर प्रेमसे तहाँपर ही बासा किये और बासा कर रहे हैं, सो तो प्रत्यक्ष ही है। जिस तरफ जिनकी प्रीति लगी है, वहीं उनका बासा, जमघट हो रहा है। तहाँ कहा भी है:—

'जहाँ सन्त तहाँ सन्त सिधावैं। मिलि रहैं धूतहि धूत ॥" बीजक, रमैनी-साखी-६४ ॥

व्यभिचारी, चोर, डाकू, कसाई, व्याधा आदि लोग अपने-अपने सङ्गी-साथियोंके ठिकाने ही निवास किये रहते हैं। तैसे ही विषयी, कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, और विज्ञानी आदि लोग भी अपने-अपने मत-पन्थके सिद्धान्तोंमें बासा बनाये रखते हैं; और नरदेहमें जीते तक जहाँ-जहाँपर जिन-जिन्होंने आशा-आसक्ति टिकाया था, वैसे ही अध्यासवश पशु, पक्षी, उष्मज और मनुष्य, इन चारखानियोंमें अनन्त योनि समूहोंमें वासनावश खिंचे हुए जाकर उन-उन जीवोंका वहाँ-वहाँपर निवास, देह धारण, सुख-दुःखादि फल भोग हो रहा है। इसीलिये यह संक्षेपमें कहा गया है कि—"जो कोईके जिसकी जहाँपर प्रीति अटल हो रही है, उसी अध्याससे उसका वहाँपर उस योनिमें ही बासा हुआ या हो रहा है।" ऐसा जान करके सर्व वासना त्यागकर जो पारखमें निवास करते हैं, सोई मुक्त हो जाते हैं ॥ १८३९ ॥

३. अधिकारी खैंचे निज ओरा ❀ सो जीव जानि परहु जनि भोरा ॥ १८४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मत-मतान्तरके अधिकारी गुरुवालोग अपने-अपने मत-पन्थके तरफ भोले मनुष्योंको फँसा करके खींचा-तानी किया करते हैं। सो अनजान मनुष्य उस ओर जाकर भूले और भुला करके हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। पाखण्ड जालमें बद्ध हो जाते हैं। कोई विषय कुण्डमें डूब जाते हैं। हे नरजीवो! यदि तुम लोग हित चाहते हो, तो उसको परखो! धोखेकी टाटीको अच्छी तरहसे जानकर उस महा भूलमें गाफिल हो करके मत् पड़ो! सावधान हो जाओ! पारखमें ठहराव करो! अथवा कर्म वासना, जड़ाध्यास जिस तरफका विशेष दृढ़ करके अन्तःकरणमें टिका है, सोई तदनुकूल निज-निज अधिकारी जीवोंको अपने-अपने विषय वेगसे देह छूटनेपर चौरासी योनियोंकी ओर खींचकर ले जाता है। वहाँ वैसी ही शरीर रचना होकर कर्मानुसार फल भोगा करते हैं। सो हे जीव! तुम्हारे नरदेहमें रचित कर्मानुसार ही सब जगह दुःख-सुख फल भोग होता है। ऐसा जानकर अभी खानी-वाणीकी भूलमें मत् पड़ो! उठो! जागो! पारखपदमें स्थिति करके निज कल्याणपदको हासिल करो! बन्धनमें पड़ना वा मुक्त होना, अभी तुम्हारे ही हाथमें है, ऐसा जानो! ॥ १८४० ॥

४. यमके गाँस अनेकन्हि भाँती ❀ भूलि सो बहुमति मोहके राती ॥ १८४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मुमुक्षुओ! संसारमें अनेक प्रकारसे भाँति-भाँतिके यमजाल सब तरफ फैला है। यम=यही मन, गुरुवालोग और स्त्री आदि जीवोंको फँसानेवाले काल बने हैं। उनके गाँस=सम्बन्ध, मेल-मिलाप, मोह, स्नेहकी गाँठी अनेकों तरहसे मनमें बन्धी पड़ी है; और मोहकी रात्रिमें डोल करके साँपको रस्सी वा आधार समझकर मत् पकड़ो, नहीं तो उसके डसनेसे तुम मर जाओगे! और अँधियारी रात्रिमें मुर्दाको नाव समझ करके चढ़कर उसमें मत् बैठो, नहीं तो उस भूलमें बह करके तुम्हारा कहीं ठिकाना नहीं लगेगा। स्त्री विषयका मोह, तथा ब्रह्मानन्दका मोह, वह महा अज्ञान और विज्ञानकी भयङ्कर रात्रिमें धोखेसे विषय और कल्पनामें बहकर मत् जाओ! उससे तो तुम गर्भवासके भौंरमें डूब करके महा दुःख पाओगे! अभी उन सब भूलोंको मिटाकर निज स्वरूप पारखपदपर ठहराव करो! जिससे सदाके लिये भव-बन्धनोंसे मुक्त हो जाओगे! सोई अभी सत्पुरुषार्थ करके बनाओ! ॥ १८४१ ॥

पं० प्र० टीका; १९५—

साखीः— अधम कला सब कालके ❀ देखहु उलटी रीति ॥
[३२६] करै प्रतीति दृढ़ चोर सो ❀ साहेबसे नहिं प्रीति ॥ १८४२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! काल=स्त्री और गुरुवालोगोंकी, कला=विषय-कल्पना महा अधम, नीच-कुटिल पापसे भरी रहती है। अधर्म, घात, छल-कपट, हिंसा, दुराचार आदि पाप करनीमें ही सदा कालका मन लगा रहता है। इसलिये महा पाप तथा भव-बन्धन दृढ़ करनेकी ही अधमकला कालने सब जगह फैला रक्खी है। इन अविचारी मनुष्योंकी मूर्खताको तो देखिये कि, ये कैसे उलटी रीतिसे चल रहे हैं ? हित-अहितका भी कुछ विचार नहीं करते हैं, सार-असार, सत्य-असत्य, बन्धन-मुक्ति, जड़-चैतन्य आदिका भी कुछ विवेक ही नहीं करते हैं। मनमाने आँखे मूँदकर जहाँ-तहाँ चले जाते हैं; और जो चोर, ठग, काल, लुटेरे हैं, उन्हीं नारियाँ और गुरुवालोगोंसे प्रेम-प्रीति दृढ़ करके उन्हें सुखदायी समझकर उनका पक्का विश्वास किये हैं या कर रहे हैं। तो वे सहज ही हंस गुण-लक्षण, मुक्तिके समाजको चुराकर या लूट करके छीन लिये या छीन करके उड़ा रहे हैं। अनेक प्रकारसे आफत-झंझटमें डाल रहे हैं, तो भी उन्हीं चोरोंसे दृढ़ प्रतीति कर रहे हैं, नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं, फिर भी चेत नहीं करते हैं; और भवभयहारी बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी आपके सत्य पारख बोधके दाता सद्गुरु श्रीपारखीसाहेबसे तो कुछ भी स्नेह वा प्रीति नहीं करते हैं, सत्सङ्ग-विचारमें भी कभी नहीं आते हैं। साधु-गुरुकी सेवा, टहल, बन्दगी भी कुछ नहीं करते हैं। अब कहिये भला ! कैसे इन नरजीवोंकी सुधार और कल्याण होगा ? बिना पारख चौरासी योनियोंके मझधारमें ही बहते हुए गर्भमें गोता लगा रहे हैं, दुस्सह दुःख पा रहे हैं॥१८४२॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर—१०२ ॥ ❀ ॥

साखीः— काल खड़ा सिर ऊपरे ❀ तैं जागु बिराने मीत ! ॥
[३२७] जाका घर है गैलमें ❀ सो कस सोवै निश्चिन्त ? ॥ १८४३ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे भूले हुए मनुष्यो ! तुम्हारे शिरके ऊपरमें काल=मृत्यु ताक लगाये घात करनेके लिये खड़ा है; मौका पाते ही वह तुम्हें मार डालेगा। इसवास्ते मैं तुम्हें चेता देता हूँ कि, अरे हे बिराने मीत ! तू गाफिल हो करके क्यों सो रहा है ? अभी नर जन्ममें है, तो जल्दीसे जाग ! और चेत करके काल-जालसे भाग ! फिर पीछे पछतानेसे कुछ नहीं बनेगा। देखो ! जिसका घर आमरास्ताके बीच सड़कमें होवे, सो उसे क्या निश्चिन्त्य हो करके बेखबर सोते रहना चाहिये ? कभी नहीं ! सो कैसे बेफिकरसे सो सकेगा ? यदि सोयेगा, तो लूटा, मारा जायगा। इसलिये जागो ! समयको बर्बाद मत् करो ! अपने हित-कल्याणके मार्गमें लगो ! अथवा श्रीसद्गुरु चेतावनी देते हुए कह रहे हैं कि— हे नरजीव ! तेरे सिर=अन्तःकरणके ऊपरमें विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्म और निरञ्जन— यह पाँच मुखवाला महाविषधर सर्परूप अहङ्कार सोई कालके विकरालरूपसे तुम्हारे शिरपर खड़ा होकर प्रहार कर रहा है। तुम्हारे हंसपदको मारकर खा जाना चाहता है; और तुम तो दूसरे ही विजातीय, बिराने, पराये, अजनबी, राहगिर, धूर्त गुरुवालोगोंसे बिना जाने-बूझे ही रोचक वाणी सुनकर घनिष्ट मित्रता कर लिये हो; प्रेम लगा करके उनके साथ मत-मतान्तरोंमें सो रहे हो, पक्षपाती होकर गाफिल हो रहे हो ! इससे तुम्हारा बड़ा अनर्थ होगा। मैं दया करके तुम्हें जगाता हूँ ! अब भी तो तुम शीघ्र जागो ! बिराने मिताईको छोड़ो ! नहीं तो काल तुम्हारे सद्गुणरूप अङ्गको काट करके खा जायेंगे। जड़ाध्यासकी हड्डी मात्र तुम्हारे पासमें रह जायगा। अतएव हे मीत ! जागो ! बिरानेके सङ्गसे भागो ! अपने कल्याणपदमें लगो। ठगोंके मार्गमें जिसका पड़ाव वा घर हो, सो निश्चिन्त हो सो करके कैसे बचेगा ? तैसे ही ब्रह्म स्थिति सोई आवागमन होनेका घर है। जगत्-ब्रह्म होनेके मार्गरूप विज्ञानमें जिसने ठहराव कर लिया है, सो निश्चिन्त वा गाफिल होकर शून्यमें चला जाता है। तहाँ निरञ्जन अभिमानका अध्यास

उसे लूटकर मार डालता है, फिर बाँधकर चौरासी योनियोंके चक्रमें गिरा देता है। इसवास्ते अभी नर तनमें होते ही पाँचों अहङ्कारोंको परखकर त्याग करो! होशियार या सावधान हो जाओ! और निज पारखपदमें स्थिर हो रहो, ऐसी स्वरूप स्थितिमें स्थिर हो रहना चाहिये ॥

अथवा खानी भागमें अर्थः— काम विषयासक्तिरूपी म .काल सब पुरुषोंके शिरपर खड़ा हो रहा है। समय पाकर वह ताड़ना करके जीवोंको मारा करता है। हे नरजीवो! तुमलोग बिरानी = विजातीय स्त्रियोंसे मित्रता, प्रेम कर रहे हो, तो अवश्य चौरासी योनियोंमें जाकर पड़ोगे। खूब लूटे, ठगे जाओगे। नर जीवनका सर्वस्व तुम्हारा बर्बाद हो जायगा। स्त्रीके साथमें रहकर काम सर्पके हलाहल विषसे तुमलोग कैसे बचोगे? कदापि नहीं बच सकोगे। तो हे भाई! यदि तुमलोग अपनी भलाई चाहते हो, तो अभी जल्दी जागो! स्त्री तथा विषयी लोगोंके कुसङ्गसे भागो! पारखी साधु श्रीसद्गुरुकी शरणमें आ करके अपना बचाव करो! उठो, जल्दी मोहरूप निद्रासे जागो! चेत करो! निज हितके साधना त्याग-वैराग्यमें लगो! और कामासक्त हो स्त्रीके सङ्गमें सोनेवाले जीव कभी चौरासी योनियोंके गर्भवासादि दुःखसे बच नहीं सकते हैं। क्योंकि, जिसका घर वा नित्यका निवास आवागमनके मूल कारणरूप रास्तामें बना है। पूर्व अध्याससे स्त्रीके गर्भमें जीव गया, देह बननेपर भग द्वारा जन्म लेकर आया; और फिर भी जन्मस्थानरूप भगमें ही भोग करके आसक्ति टिका रहे हैं, तो यह निश्चित बात है कि, फिर भी जीव वहीं गर्भमें हो जायेंगे। सो विषयी जीव तब कैसे निश्चिन्त होकर सोवेंगे? कैसे निर्बन्ध होंगे? और जोतेतक स्त्री मुक्तिरूपी धनको लूट करके नष्ट कर देगी। मरकर चौरासी योनियोंके बन्धनमें पड़ेंगे; गर्भमें कैद हो जायेंगे। इसकारणसे हे जिज्ञासु जनो! हे मुमुक्षु लोगो! किसी स्त्रीसे प्रेम मत् करो! नवजात लड़कीसे लेकर अतिवृद्ध बुढ़िया तकके सङ्ग-साथमें भी कभी मत् रहो! जन्मृतिका मार्ग स्त्री ही है, ऐसा जान करके सच्चा त्याग-वैराग्यकी दृढ़तासे पारख विचारमें लगे रहो! ॥ १८४३ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ६८ ॥ [चौपाई- ११ । छन्द- ५ । साखी- १ है] ॥ ❀ ॥

१. साहेब अनबनि भाँति बुझावै * सुनै न जीव चोर सङ्ग धावै ॥ १८४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पारख प्रकाशी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब तथा आपके सच्चे अनुयायी पारखी सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब आदि प्राचीन पारखी सन्तोंने अनेकों प्रकारसे मनुष्योंको समझाया, बुझाया, चेताया, परखाया; और अभी वर्तमानमें भी पारखनिष्ठ श्रीसद्गुरु साहेब नाना तरहसे युक्तिपूर्वक मनुष्योंको सत्यासत्य समझा-बुझा रहे हैं। जिसमें जीवोंका हित बनाव हो जावे। अनुमान-कल्पना, विषयाध्यास छूट जावे, ऐसे सत्योपदेश दिये और दे रहे हैं। तथापि मूढ़ पक्षपाती, हठी, अविचारी जीव ऐसे हितकारी पारखी श्रीसद्गुरुके उपदेशको कान लगा करके ध्यानसे भी नहीं सुनते हैं। कान बन्द करके भाग-भागकर चोर = गुरुवालोग और स्त्रियोंके कुसङ्गमें चले जा रहे हैं। चोरोंका साथकर वे भी बदमाश, चोर हो रहे हैं। पामर, विषयियोंके सङ्ग लगकर कुमार्गमें चले जा रहे हैं। गुरुवालोगोंके सङ्ग भ्रम, धोखेमें दौड़ रहे हैं। बिना विवेक वे चौरासी योनियोंमें गिरे और गिर रहे हैं ॥ १८४४ ॥

२. नाना रङ्ग सब रहै रङ्गाई * सूझै न निजपद तमहि तमाई ॥ १८४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जगत्के जीव सब बहुरूपिया बनकर नाना रङ्गमें मस्त रङ्गीन हो रहे हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें साखी- ९४ में कहा हैः—

साखीः— "नाना रङ्ग तरङ्ग है। मन मकरन्द अलूझ॥ कहहिं कबीर पुकारिके। तैं अकिल कला ले बूझ॥"

कोई विषयके रङ्गमें भींजकर चार वर्ण, छत्तिस जात-पाँत, नाता, कुल-गोत्रादिके कुरङ्गमें तसब जगह रङ्ग रहे हैं। कोई षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्डका रङ्ग नाना भेष, नाना साधनाओंमें स्वयं लगे और दूसरोंको भी लगा करके सबको उसी रङ्गमें रङ्गीन कर रहे हैं। सबके अन्तःकरणमें महा अज्ञानरूपी

रात्रिका अन्धकार ही छाया है। तमरूप अविद्या गाढ़ा अन्धकार चारों दिशारूप अन्तःकरण चतुष्टयमें फैला हुआ है। इसवास्ते निजपद पारख किसीको भी नहीं सूझता है, हित-अहितका मार्ग स्पष्ट नहीं दिखता है। जहाँ-तहाँ कुपन्थमें भटक करके गर्भ खाँचमें गिर पड़ते हैं; व्यर्थ ही मनुष्य जन्म बिता देते हैं ॥ १८४५ ॥

३. औषध पारख जीवहि लावै ❀ नैन रोग सब तुरित मिटावै ॥ १८४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उस हृदयरूपी नेत्रका विकार मोतियाबिन्दरूप कैवल्य ब्रह्मका भ्रम महा दुःखदायी अन्धकारके जाला है। पारख ज्ञानाञ्जनरूप सलाका लगे बिना वह विकार कदापि मिट नहीं सकती है; और जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी श्रीसद्गुरुरूप वैद्यकी शरणमें जा करके पारखबोधरूपी दिव्य औषधि सुरमाको लगाते हैं, अर्थात् अपने स्वरूप बोधमें लौ लगाते हैं। यानी जीवको पारख पदमें ही और तरफसे हटा करके लगाते हैं। तब भीतरी नेत्रके रोग विवेक-विचारपर छाया हुआ कसर-विकार सब तुरन्त ही मिट-मिटा करके साफ हो जाता है। सब जड़ाध्यासको मिटा करके जीव दिव्य दृष्टि सम्पन्न-सुखी हो जाते हैं। तब उनकी विषयासक्ति तथा ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रमकी मानन्दी सब शीघ्र ही मिट जाती है ॥ १८४६ ॥

४. तब देखहु जिव आँख पसारी ❀ साहेब सुख तस्करके खुवारी ॥ १८४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें जाकर जब अन्तर दृष्टिमें पारख बोधको लगाते हैं, तब हे जीव ! हृदयके नेत्र खोलकर उसे फैलाकर उन आँखोंसे सब तरफ देखो ! फिर तुम्हें सबोंकी मानन्दी करनेवाले यह जीव ही सत्य दिखेगा; और जितने माननेमें आवें, सो मिथ्याका पसारा मालूम पड़ेगा; और जब पारख दृष्टिसे निहारकर सब तरफ देखेंगे, तब स्वयं ही नरजीवको मालूम हो जायगा कि, पारखी श्रीसद्गुरु बन्दीछोर साहेबके शरण-सत्सङ्गमें नित्य सुख, शान्ति, सन्तोष, जीवन्मुक्ति पद तककी प्राप्ति होती है; और तस्कर=चोर, ठग, धूर्त गुरुवालोगोंके सङ्गमें वा उनकी घेरामें मनुष्य पदकी खराबी, उपाधि भव-बन्धन नाना साधनाओंका कष्ट त्रिविधि तापादिका दुःख लगा ही रहता है। ऐसा देखकर वा जानकर स्वयं उस तरफसे विवेकी जन हट जाते हैं; निज स्थितिमें लग जाते हैं ॥ १८४७ ॥

५. ठाकुर तस्कर केहि विधि मानो ❀ फूटि आँख एकौ नहिं जानी ॥ १८४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! जीवनधनको चुरानेवाले नाना भ्रम-कल्पनामें भटकानेवाले हंस रहनी सद्गुणोंको नशानेवाले, ऐसे चोर, ठग, लुच्चे, धूर्त, पाखण्डी गुरुवालोगों-को अज्ञानतावश तुम लोगोंने ठाकुर=श्रेष्ठ, मालिक, सुखदाता, रक्षक, हितकारी आदि समझकर उन्हें मान रहे हो, सो अब यथार्थ विचार करो कि, चोर किस प्रकारसे साहु, ठाकुर हो सकता है ? चोरको कैसे श्रेष्ठ मान रहे हो ? तुम्हारा विवेक नेत्र फूट गया है क्या ? एक भी सत्य बातको तुम नहीं जानते हो ! इसलिये तुम्हारे हृदयकी आँखें फूट गईं मालूम पड़ती हैं। एक अपनी सत्यताको भी तो तुम नहीं जानते हो कि, "मैं जीव ही सत्य हूँ ! एक ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या कल्पना है।" अतएव भ्रमिक हो करके महा चक्रमें पड़ रहे हो ! अब भी प्रयत्न करके उस चक्रसे निकलो, तो ठीक है। नहीं तो चौरासी योनियोंमें पड़कर सदा दुःख ही भोगा करोगे, सो जानो ! ॥१८४८॥

६. जो जानहु तो करहु विचारा ❀ तस्कर सङ्ग कौन निस्तारा ? ॥ १८४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यदि सत्यासत्य जाननेका कुछ भी विवेक-विचार तुम्हारे पासमें है, हित-अहितको जानते हो; तो फिर सत्यन्याय-निर्णयसे जड़-चैतन्य, बन्धन-मोक्ष, सारासारका यथार्थ विचार करो ! हितकारी और अहितकारीको ठीक-ठीकसे पहिचान करो ! भला ! यह तो बताओ कि, चोर, ठग, बदमाश, दुष्टोंका सङ्ग करके किसकी-कौनसी भलाई हुई है ? गुरुवालोगोंके साथमें लगकर कौन संसारसे मुक्त हुए हैं ? दया, सत्य, शील आदि सद्गुण रहनीको

त्याग करके कौन, किसका सुधार हुआ है ? चोरका सङ्ग करके भी कहीं निस्तार हो सकता है ? कभी नहीं। इसलिये नारी और गुरुवाओंके कुसङ्गको छोड़कर पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें लगकर सद् विचार करते रहो ! ॥ १८४९ ॥

७. तस्करके सङ्ग कौन भलाई ❀ जीवनधन हरि हरि ले जाई ॥ १८५० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सज्जनो ! चोरके सङ्ग करनेसे कहीं भी कोई भलाई नहीं होती है। क्योंकि, चोर तो जीवोंके धन-माल चुरा-चुरा करके हरणकर ले जाते हैं। उसके साथमें हिंसा आदि अन्य कुकर्म भी वे करते हैं। एक दिन पकड़े जानेपर फिर वे फाँसीमें लटकाये जाते हैं। उसी प्रकार यहाँपर चोर=काम-क्रोधादि स्त्री-परिवारादिका सङ्ग-साथ करते रहनेसे कौन-सी भलाई वा कल्याण होता है ? किसकी भलाई हुई है ? किसीकी नहीं हुई है; क्योंकि, जीवनधन= सद्बुद्धि बल-वीर्य, त्याग-वैराग्य, बोध-विचारादि जीवका मूल धन हितकारी साधनाओंको तो स्त्री-परिवारादि लोग हरण कर-करके चुराकर लूटकर छीन करके ले जाते हैं। पुरुषको अपहरण करके कुमार्गरूप विषयमें ले जाकर फँसा देते हैं। वैसे ही प्रवीण चोर गुरुवालोग हैं। उनका सङ्ग करनेसे भी जीवोंकी कोई भलाई मुक्ति शान्ति प्राप्ति नहीं होती है। उलटे वे चोर गुरुवालोग धूर्ताई करके आशा-तृष्णा, लोभमें जीवोंका फँसा करके चालाकीसे अनेक रोचक-भयानकादि वाणीको सुना-सुना करके जीवोंके तन, मन, धन आदि सर्वस्व भी हरण करके छीन ले जाते हैं। कोई हरि-परमात्मा तुम्हारे मालिक मुक्तिदाता हैं, ऐसा बताकर भ्रम धोखेकी तरफ ले जाते हैं। लोगोंको भुलाकर जीवनपदको नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। इसकारणसे ऐसे गुप्त चोरोंको ठीक तरहसे पहिचान करके सदा उनसे होशियार होकर बचे रहो ! ॥ १८५० ॥

८. करहु सम्भार वचन गुरु मानो ❀ विष अमृत मत एकै सानो ॥ १८५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे जिज्ञासु जनो ! इसप्रकार जीवके अनन्त जन्म व्यतीत हो चुके हैं। अभी वर्तमानमें तुम मनुष्य देहमें हो, इसवास्ते मैं दया करके हितकारीकी दृष्टिसे जोर दे करके बार-बार कह रहा हूँ कि, तुम लोग अब तो भी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबके यथार्थ निर्णयका वचन गुरुमुख वाणीको समझा करके जो पारखी साधु-गुरु कह रहे हैं, उसे मानो ! गुरु आज्ञाका पालन करो; और अपने कर्त्तव्यका सुधार-सम्हार करो ! गाफिल मत् होओ ! पारखी श्रीसद्गुरुके वचनको मानकर खानी-वाणीकी आसक्ति त्यागकर जीवन सुधारकर सफल करो ! और विष= कल्पनारूप ब्रह्म और विषयोंके आनन्द, नाना मानन्दी-आसक्तिरूप हलाहल कालकूट विषमें अमृत=अजर, अमर, अविनाशी निज चैतन्य जीवको ले जाकर एकमें-एक करके मत् सानो, बोरकर मत् गाड़ो ! अगर सानोगे, तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। उसे न्यारा-न्यारा करो; विषको छोड़कर अमृतमें स्थिति करो ! इस बारेमें श्रीसद्गुरुने बीजक, रमैनी-११ में कहा है, सो सुनो !:—

रमैनीः— "विष अमृत गौ एकै सानी। जिन जानी तिन विषकै मानी ॥ काह भये नर शुद्ध बेशुद्धा।
बिन परिचय जग बूड़ न बुझा ॥ मतिके हीन कौन गुण कहई। लालच लागी आशा रहई ॥"

अर्थात् विष=विषय, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी-देवतादि मनकी कल्पना और पञ्च विषय-इनमें ले जाकर अमृत=जीवको गबरगुण्ड-गोलमाल, कीचड़ करके मत् सानो ! जड़-चेतनमें मिश्रित मानकर ब्रह्म-भ्रममें जीवको मत् मिलाओ ! यदि मिलाओगे, तो इससे सत्यानाश होनेके सिवाय और कुछ लाभ नहीं होगा। अतएव श्रीसद्गुरुके निर्णय वचनको मानकर जीवका सम्हार करो; सावधान होकर अपना कल्याण करो ! ॥ १८५१ ॥

९. विषके खाये न जीवै जीवा ❀ देखहु अनेक जतन जो कीवा ॥ १८५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! यह बात तो संसारमें सब कोई जानते भी हैं कि, जहरको खा करके कोई जीव सुखी हो, जीवित नहीं रह सकते हैं। यह तो तुम सब कोई देखते-

सुनते ही हो कि, अनेकों यत्न करनेपर भी कालकूट विष खाया हुआ प्राणी नहीं बचता है, तहाँ श्रीसद्गुरुने भी कहा है:—

"विषके खाये विष नहिं जावै। गारुड़सो जो मरत जियावै॥" बीजक, रमैनी-२९। चौपाई-६ ॥

यहाँपर विष=विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि वाणी-कल्पना, भास, पञ्च विषयोंके भोगोंको जिन-जिन्होंने खाया, ग्रहण किया, दृढ़ किया, वे जीव जीवित होकर निजपदमें रह नहीं सके, जड़ाध्यासी होकर गाफिल हुए। इसीसे वाणी-खानीके विषको, नशाको खा करके कोई जीव नहीं जीये; और कभी मुक्त भी हो नहीं सकते हैं, विवेक दृष्टिसे देखो! गुरुवालोगोंने तथा विषयी लोगोंने जो अनेक यत्न-प्रयत्न, साधना, धन्धा आदि किये वा कराये हैं या करा रहे हैं, सो सब जीवोंको फँसानेकी ही चाल है; परखकर उससे अलग हो रहो! ॥ १८५२ ॥

१०. स्वारथ परमारथके हेता ❀ सहहु कलेश गहहु गुण केता ? ॥ १८५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई संसारी विषयी बनकर स्वार्थके लिये स्त्री-पुत्र, परिवार, धन-घरादिका पालन-पोषण, रक्षण, वृद्धि करनेमें लगे हैं। तहाँ अनेकों धन्धा, व्यापार, कृषि, नौकरी आदि करके दुस्सह दुःख-क्लेश सहन करते हैं। कोई परमार्थके लिये भेषधारी षट् दर्शनोंके साधु- योगी, ज्ञानी, भक्तादि बनकर विरह, वैराग्य, तपस्यादि अनेकों साधनाएँ करनेमें नाना तरहसे कष्ट-क्लेश, पीड़ा सहन कर रहे हैं। उन दोनों तरफ तुम लोग बहुत दुःख सहन करते हो! परन्तु कहो तो भला! उससे तुम्हें कितना गुणका लाभ होगा? अन्तमें कुछ भी तो लाभ नहीं होता है। अतः उसमें मत् भूलो! पारखपदमें ठहरकर पूरा लाभ उठाओ! अर्थात् कोई स्वार्थमें, कोई परमार्थ मान करके भ्रममें प्रेम लगा करके उसीके कारणसे नाना तरहसे कष्ट-क्लेश सहते हैं। परन्तु, विचार करके कहो, उसमें मनुष्योंको लाभ और कल्याण करनेवाले गुण ही कितने हैं? वास्तवमें खानी-वाणीके जालोंमें बन्धनके सिवाय कुछ भी सद्गुण नहीं है। फिर उसमें लगकर क्यों अनन्त कष्ट सहते हो? और हितकारी पारखी साधु-गुरुकी सेवा, टहल करके सत्सङ्ग-विचारसे सत्यज्ञान और सद्गुणोंको लेनेमें थोड़ा भी कष्ट क्यों नहीं सहन करते हो? ऐसा करना तो तुम्हारा बड़ा अभाग्य ही है। अतः कष्ट सहन करके भी पारखी साधु श्रीसद्गुरुके सेवा-सत्सङ्ग करनेमें लगे रहना चाहिये ॥१८५३॥

११. परख लहहु साहेबके शरणा ❀ स्वतः स्वभाव सबै दुःख हरणा ॥१८५४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— इसकारण हे मुमुक्षुओ! सब तरफका भटकना छोड़कर यदि अपना हित चाहते हो, तो फिर शीघ्र ही पारखनिष्ठ श्रीसद्गुरु साहेबके शरणागत हो जाओ! श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें जड़-चैतन्यका सत्य निर्णयकर खानी-वाणीकी आसक्ति त्यागकर निजस्वरूपके बोध, अपरोक्ष पारखपदको प्राप्त करो! स्वयं स्वरूपमें स्थिति कायम होनेपर स्वतः ही निज स्वभाव-रूप प्रकृतिके ऊपर शासन वा नियन्त्रण हो जायगा। जिससे सब दुःखोंका हरण होकर आवागमनादिका अन्त हो जायगा। पारखी श्रीसद्गुरु स्वतः मुक्त हो करके स्वाभाविक दयादृष्टिसे शरणागत नरजीवोंके सब भव-दुःख हरण कर देते हैं। मोटी-झीनी मायाके सब जालोंसे जीवोंको छुड़ा करके निर्बन्ध मुक्त कर देते हैं। अतएव अभी नरदेहमें जी-जानसे महत् प्रयत्न करके पारखी श्रीसद्गुरु साहेबके शरण-सत्सङ्गमें रहकर सब प्रकारसे पारख बोधको ही हासिल करो! स्वतः वा स्वयं स्वरूप-की नित्यताका भाव, एकरस पारख विचारको कायम रखकर जीवन्मुक्त स्वच्छन्द सुखी हो जाओ। उस स्थितिमें आवागमन, त्रिविधि ताप आदि वे सब दुःख हरण होकर अन्त वा शान्त हो जाते हैं। सोई सत्पुरुषार्थ करके बनाना चाहिये ॥ १८५४ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरु स्तुति—महिमा वर्णन ॥ पञ्चक छन्द ॥ छन्द नम्बर-[८] ॥ ❀ ॥

१. साहेब स्वतः प्रकाश पारख ❀ त्रास नहीं यम दण्डके ॥ १८५५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सर्वश्रेष्ठ सम्माननीय बड़े पुरुषोंको 'साहेब'

कहते हैं। यह आदरणीय वचन है। समस्त संसारमें सर्व ज्ञानियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ सर्वोच्च स्थितिवाले श्रेष्ठ शिरोमणि, यथार्थ सत्यवक्ता, अपरोक्ष परम पारखी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब ऐसे एक ही महापुरुष हुए हैं। आप साहेबने स्वयं सत्पुरुषार्थ करके जड़-चैतन्य, सत्यासत्य, सारासार, हिताहित, बन्धन-मुक्ति आदिका यथार्थ सत्य निर्णय करके विवेकरूप कसौटीपर कसकर खरा-खोट-की पहिचान किया। स्वयं शोधनसे वा स्वानुभवसे पारख स्वरूपका बोध स्वयमेव संसारमें प्रकाश किया। अतएव पारख प्रकाशी प्रथम सद्गुरु या पारखी 'आदि सद्गुरु' श्रीकबीरसाहेब ही हुए। उसी स्वयं स्वरूपके बोधको ही 'स्वतः पारख प्रकाश' कहते हैं। यद्यपि जीव ज्ञानस्वरूप ही है, तथापि पारखबोध न होनेसे सब यम फाँसमें फँस करके नाना दण्ड=दुःख भोग रहे हैं। सो जो कोई पारखी श्रीसद्गुरुको शरणमें आकर सत्सङ्ग-विचारमें लगते हैं, उन्हें पारखी श्रीसद्गुरुसाहेब स्वयं स्वरूपका पारख प्रकाश, जो कि, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने प्रथम प्रगट करके विकाश किया था, वही युक्तिसे स्वतः चैतन्य स्वरूपका बोध पक्का वा दृढ़ निश्चय करा देते हैं। निर्मल पारख ज्ञानको प्राप्त कर लेनेपर जीव भी सदाके लिये निर्मल हो जाता है। फिर उसको यमदण्डका कोई त्रास ही नहीं रहता है। उसके मन वश होनेसे उससे होनेवाला काम-क्रोधादिके विकारका त्रास भी नहीं रहता है; और स्त्री, पुत्र, परिवारादि घर-गृहस्थीका त्याग तथा दृढ़ वैराग्य होनेसे उनके सङ्गसे होनेवाली मिहनत, धन्धा, मजदूरी, चाकरी आदिकी उपाधि-घबराहट भी कुछ बाकी नहीं रहती है; और यमरूप गुरुवालोगोंकेजालोंसे छूट जानेसे उन्होंने जो ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्तिके लिये आशा लगा करके और एकईस नरकोंका भयङ्कर यमदण्ड दुःखोंका वर्णनकर त्रास दे करके उससे बचनेका उपाय कर्मादि पञ्च मार्ग बताया है। तहाँ पञ्चाग्नि, ऊर्ध्वबाहु, मौनी, दिगम्बरी, जटाधारी, दूर्वाहारी, दुग्धाहारी, निराहारी, जलशयनादि साधनाएँ, तीर्थ, व्रत, उपवासादिकी पीड़ा नाना दण्ड दे करके दुःख भोगाते थे; अन्तमें फिर चौरासी योनियोंके दुःखोंका दण्ड भोगना पड़ता था, सो सब त्रास श्रीसद्गुरुकी दयासे पारख प्रकाश होनेपर आप ही छूट गई या वह सब छूट जाती हैं। कुछ लेशमात्र भी फिर उनका भय नहीं रहता है ॥ १८५५ ॥

२. बास शरण विलास तजि सब ❀ आश पिण्ड ब्रह्माण्डके ॥ १८५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जो कोई भाग्यवान् जिज्ञासु नरजीव ऐसे पारखी श्रीसद्गुरु-के शरणागत होकर सब प्रकारसे गुरुपदरूप पारखमें बासा=स्थिति या निवास-ठहराव कर लेते हैं, फिर उनकी आशा-तृष्णादिके सब फाँस टूट जाते हैं। तहाँ पिण्ड=देह सम्बन्धी मोटी माया— स्त्री, पुत्र, धन, घरादिकी आशा वा आसक्ति विषयानन्दकी चाहनाको भी छोड़ देते हैं; तथा ब्रह्माण्ड= वेद-शास्त्रादि वाणीके प्रमाणसे झीनी माया— ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, सात स्वर्ग, सत्यलोक, ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्तिकी आशा भी कुछ नहीं रहती है, उसे मिथ्या कल्पना जानकर उसकी आशा भी नहीं रखते हैं; और सब प्राणी विषय-विलासमें भूल रहे हैं; पारखी सन्त उसे भी त्याग देते हैं। तहाँ विषयानन्द तथा प्रेम, योग, ध्यान, ज्ञानसे लेकर ब्रह्मानन्द तकके समस्त आनन्द सुखोंकी चाहनाएँ अध्यास भव-बन्धनका ही बीज है। ऐसा यथार्थ जानकर आशा, वासा, कल्पनादि सब मानन्दीको परित्याग करके पारखी सन्त पारख विलासमें सुखी, जीवन्मुक्त हो जाते हैं। उनके शरणागत जिज्ञासु नरजीव भी आखिरमें उसी स्थितिको पहुँच जाते हैं। गुरुपदकी वही विशेषता है ॥१८५६॥

३. सब गाँस फाँस मिटाय दास ❀ हुलास ज्ञान अखण्डके ॥ १८५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होनेपर परमदयालु बन्दीछोर श्रीसद्गुरु साहेब उस निजदास=मुमुक्षु शिष्योंके ऊपर महान कृपादृष्टि करके यमरूप नारी और गुरुवालोगोंकी सब खानी-वाणीके जाल बन्धनोंके कारण गँसा हुआ अध्यासके गाँस= गाँठी, सम्बन्धका फन्दा, मानन्दीके घेरादि सबोंको तोड़-फोड़ करके मिटाकर जालसे बाहर

निकालकर फिर अखण्ड पारख ज्ञान, चैतन्य निज स्वरूपका बोध लखा देते हैं। जिससे जीव निजपद-की स्थितिमें हुलास=प्रसन्न, सुखी, परमोत्साही हो जाते हैं। निजस्वरूपको अखण्ड जानकर उसी सत्यज्ञानके बोधमें निमग्न, शान्त हो रहते हैं। इसकारण उनके गाँस-फाँस सब मिट-मिटा करके नष्ट हो जाते हैं। श्रीसद्गुरुकी दासत्व भाव-भक्ति देह रहे तक करते रहते हैं। अन्य शिष्योंको भी अखण्ड ज्ञानका बोध देते रहते हैं ॥ १८५७ ॥

४. नहिं नाशते इतिहास सुनि सोई * आदि अन्त प्रचण्डके ॥ १८५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्राचीन कालमें ऐसा हुआ है, ऐसा है, ऐसा था, फिर ऐसा होगा, इत्यादि कथन विस्तार पूर्वक वर्णन करके गुरुवालोगोंने इतिहासरूप वेद, शास्त्र, पुराणादि नाना ग्रन्थ बना रक्खे हैं। वही कथा इतिहासका प्रमाण देकर वाणी-कल्पनाका उपदेश अनेक तरहसे गुरुवालोग कर रहे हैं। तहाँ उन्होंने बताया कि, 'ते'=वह परब्रह्म-परमात्मा जगत्कर्त्ता कोईएक है, सो उसका कभी नाश, बिगाड़ वा अन्त नहीं होता है। वह तो अविनाशी नित्य-सत्य, निराकार, व्यापक, सर्वशक्तिमान् ब्रह्म-परमेश्वर है। हाँ ! तो उसी परमेश्वरकी इच्छामात्रसे ही प्रथमारम्भमें समस्त चराचर जगत् उत्पन्न होकर साकाररूपमें प्रगट हुआ; और महाप्रलयमें फिर सब सृष्टिका विनाश होकर अन्तमें उसी ब्रह्ममें ही समा जाता है। वह अविनाशी ब्रह्म सदा ज्यों-का-त्यों बना रहता है। उसकी व्यापकतामें कभी दोष नहीं आता है। जीव-ब्रह्मकी एकता होनेपर ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है। इत्यादि वाणी-कल्पनासे जगत्के उत्पत्ति-प्रलय आदिका इतिहास, झूठी कथा सुन-सुन करके सब मनुष्य भ्रमिक होकर बद्ध हुए। इसवास्ते आदि=इस जगत्में देहधारी होकर शुरूसे ही पारखहीन हुए। फिर पूर्ववत् नाना कर्म-कुकर्म करके जड़ाध्यासी हुए हैं; और अन्तमें ब्रह्मज्ञानसे सबका निषेध वा लय करके अपने-आप एक ब्रह्म बन गये। सोई ब्रह्म-जगत्, खानी-वाणीका अध्यास ही जीवोंको आवागमनमें ले जानेका कारण हुआ। इसीसे जड़ाध्यासवश आदि-अन्त, जन्म-मरणादिके प्रचण्ड=अति तीक्ष्ण, वेगवान् चक्रमें गिर पड़े, और गिरते ही जा रहे हैं। उस महाचक्रसे पारखी श्रीसद्गुरु निजदासको बचा लेते हैं। बिना पारख और कोई उससे बच नहीं पाते हैं, तो फिर दूसरोंको वे कैसे बचावेंगे। एक श्रीसद्गुरु ही पारख बोध देकर नर जीवोंको बचाते हैं, ऐसा जानिये ! ॥ १८५८ ॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर— [९] ॥ ❀ ॥

१. यम हन्त एक अनन्त, तेहिके * फाँस बहु वरणन्तके ॥ १८५९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! यम=मन, स्त्री और नाना वाणी-कल्पना-में बाँधनेवाले गुरुवालोग, यही जगत्में महाकाल बने हैं। अनेकों नरजीवोंको घेरघारकर एक अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तके धोखेमें डालकर साक्षीपदकी हत्यारूप विनाश कर रहे हैं; और मूर्ख नरजीव भी बिना विचारे एक ब्रह्म-भ्रमकी मानन्दी वा अहङ्कारमें जकड़े पड़े हैं। "एकोऽहं बहुस्याम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ऐसा कहकर धोखेमें कूद रहे हैं; और जब कि, खोज करते-करते भी उसका कुछ अन्त नहीं पाया, तब अनन्त, अपार, अथाह, अद्वैत, सर्वव्यापक कह करके रह जाते हैं। उसीकी महिमा कहकर विस्तारमें सब वेदादि वाणी बनी हैं। रोचक-भयानकादि वाणी जीवोंको फँसानेका फाँसरूप वाणी-जाल अनेक तरहसे बहुत ही वर्णन किये हैं। वाणीके तेज कृपाणसे नर-पशुके बुद्धि-विचारको काट-काट कर मुक्तिपदसे नीचे गिरा रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके बिना यह खानी-वाणी जालको यथार्थ परखाकर वर्णन करके कसर दिखलानेवाले और कोई भी नहीं हैं ॥ १८५९ ॥

२. बहु जन्त गाइ हरन्त, कूप— * पतन्त बहुते गनन्तके ॥ १८६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने वही वेद-वेदान्तादिकी वाणी गा-गा करके सुनाकर लोभ-लालचमें लगा करके बहुत प्रकारसे जन्त=जीव-जन्तुरूप मनुष्योंके जीवन-

धन, बुद्धि, विचार-विवेक, तन, मन और धनादि सबको मनमाने तरहसे हरन्त=हरण कर लिया है या लूट लिया है। बहुतेक नरजीवोंका सर्वस्व छीन लिया है। तब बुद्धि भ्रष्ट होकर ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नाना जतन या प्रयत्न करके नष्ट-भ्रष्ट हुए या हो रहे हैं। इसवास्ते जीव भ्रमकूपमें फिसल करके ब्रह्मरूप धोखाके खन्दकमें गिर पड़े। इसप्रकार बहुत ही मनुष्य अथवा असंख्य जीव, मनुष्यपदरूप हंस भूमिसे पतित होकर चौरासी यौनियोंके गर्भकूपमें जा पड़े हैं। ऐसे ब्रह्म-भ्रम, भग और गर्भकूपमें डूब रहे हैं। ऐसे एक-दो-चार होते, तो कोई गिना करके भी बता सकते थे; परन्तु, यहाँ तो अनगणित सारे जीव उसी आवागमन चक्रमें पड़कर जड़ाध्यासवश घूम रहे हैं। फिर उनकी गिनती तो भी कौन कर सकेगा? बद्ध जीवको कौन गिने? यानी चारखानीमें जीव असंख्य हैं; उनकी गणना हो नहीं सकती है ॥ १८६० ॥

३. सब दास होय रहन्त, दुष्ट- ❀ परन्त चीन्ह न कन्तके ॥ १८६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखहीन अज्ञानी, अविचारी मनुष्य सब दुष्टा स्त्रियाँ और दुष्ट कुटिल गुरुवालोग— योगी, ज्ञानी, भक्त नाम धारी इन ठग लोगोंके ही दास, गुलाम, चेले, सेवक बनकर अधीन हो रहे हैं। मुक्तिपदसे फेरकर बन्धनमें गिरानेवाले धूर्तोंको ही सब अज्ञानीलोग मालिक, राजा, स्वामी मान रहे हैं। क्रीतदासकी नाईं उनका आज्ञा पालन कर रहे हैं। गुरुवालोगोंके बताये अनुसार नाना साधनाएँ करते जा रहे हैं। कौन दुष्ट हैं? कौन मालिक मानने योग्य हैं? यह भी उन्हें चीन्ह नहीं पड़ता है, पारखी सन्त ही जीवोंके रक्षक, पूज्य, कन्त=स्वामी या मालिक हैं। सत्योपदेश देकर वे ही भव-बन्धनोंसे छुड़ाते हैं। उनके ही शरण-ग्रहणकर सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके पारख बोधको प्राप्त किये बिना दुष्ट यमके फन्दोंको ठीक-ठीक चीन्हनेमें नहीं आता है॥१८६१॥

४. आदि अन्त जे सुनहिं सन्त ❀ नहिं ध्यावहीं सो बेअन्तके ॥ १८६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जो कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी श्रीसद्गुरु वा साधु-गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर यथार्थ गुरुमुख वाणीको ध्यानपूर्वक सुनते और गुनते हैं, फिर सो सब यम जालोंके भेदको जान जाते हैं। आदि=जगत्- यही खानीजाल है। अन्त=ब्रह्म- यही वाणीजाल है। ब्रह्मानन्द और विषयानन्द उन दोनोंकी अध्यास-मानन्दी ही जीवोंको जन्म-मरणादिमें ले जानेका मुख्य कारण है। उसी संस्कारसे जीव चौरासी योनियोंमें घूम रहे हैं। जगत्का उत्पत्ति और प्रलय मानना मिथ्या धोखा है; इत्यादि निर्णय सत्यज्ञानको जो पारखी सन्तसे सुनते और गुनते हैं, सो सत्यासत्यके सब भेदको जान जाते हैं। इसलिये भ्रमिकोंने माना हुआ बेअन्त=जिसका अन्त या पता जड़-चैतन्य दोनोंमें कहीं भी थाह नहीं लगता है, सो मिथ्या धोखा है, अथाह माना हुआ व्यापक ब्रह्मपदको असिद्ध कल्पनाकी बाढ़ पहिचानकर उस बेअन्तके पीछे वे सन्त नहीं दौड़ते हैं। ब्रह्म-ईश्वरादिका ध्यान भी नहीं करते हैं। उसके लिये कोई साधनादि प्रयत्न भी नहीं करते हैं; ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिकी मिथ्या चाहनासे रहित ऐसे पारखी सन्त सदा निज पारख स्वरूपमें ही जाग्रत्, सावधान, अटल हो रहते हैं ॥ १८६२ ॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर—[१०] ॥ ❀ ॥

१. जीव हाल कीन्ह बेहाल काल ❀ कराल सुनि अब जालके ॥ १८६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! एक तो प्रथमके ही जड़ाध्याससे सब जीव त्रिविधि तापादि नाना दुःखोंमें हलकर या प्रवेश करके हाल=वर्तमानमें दुःखी होकर कष्ट भोग रहे हैं। आप ही कर्म भोगनेमें पीड़ित हो रहे हैं। दूसरा, उसपर और भी कालरूप स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंने जीवोंको अनेक तरहसे बेहाल कर रक्खा है। यानी विशेष दुःखी, परेशान कर रहे हैं। अब वर्तमानमें उन्हीं कालका कराया हुआ या चिल्लाया हुआ कराल=तीक्ष्ण, भयङ्कर, विकराल, नाना वाणीका जाल, रोचक-भयानक वाक्योंको सुन-सुन करके मोह ग्रसित होकर हरिणवत् सब

कोई खानी-वाणी जालोंमें बद्ध हुए हैं। इसप्रकार कालने हालमें भी जीवोंको बेहाल किया है। वाणी सुन-सुन करके मनुष्य जालोंमें फँस गये हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके बिना अब उस जालसे कौन बचावेंगे ? कोई नहीं बचावेंगे ॥ १८६३ ॥

२. उरशाल अनेकन्हि भाल सो— * वाचाल कवितन गालके ॥ १८६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो तीक्ष्ण धारवाली वाणीका नुकीला तीर वाचाल = बात फरोस, वञ्चक, बात बनानेवाले बोलनेमें चालाक, बातूनी, ऐसे धूर्त गुरुवालोग भ्रमिक ऋषि-मुनि, कवि-कोविद आदि उन्हींके मुख या गालसे निकला, तो सीधे ही कर्ण द्वारा मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके मनको छिन्न-भिन्न करने लगा। तहाँ श्रीसद्गुरुने बीजक, साखीमें कहा है कि:—

साखीः—"मधुर वचन है औषधी। कटुक वचन है तीर॥ श्रवण द्वार होय सञ्चरे। साले सकल शरीर॥३०१॥
करक करेजे गड़ि रही। वचन वृक्षकी फाँस॥ निकसाये निकसै नहीं। रही सो काहू गाँस॥ १०॥"

वेद, शास्त्र, पुरान, कुरानादिकी वाणी कवियोंके मुखकी सफाई गफाष्टकोंका आडम्बर कल्पनाका विस्तार मात्र है। धोखारूप उसी भ्रमपूर्ण अनेकों प्रकारकी वाणियोंको श्रवण कर-कराके मनुष्योंके उररूप अन्तःकरणमें नोकदार भालाके समान नाना भावनाएँ चुभ गईं; जड़ाध्यास-कल्पना शाल = समा गई, गड़ गई, दृढ़ हो गई है। अतएव उससे व्याकुल हो करके नरजीव चौरासी योनियोंके चक्रमें भटक रहे हैं, कहीं बचाव नहीं होता है ॥ १८६४ ॥

३. तेहि टाल डाल प्रचण्ड होहु * निहाल नाल कृपालके ॥ १८६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग उन महादुःखोंसे बचना चाहते हो, निज हित वा कल्याण करना चाहते हो, तो सुनो ! ऐसा करो कि, परम कृपालु दीन दयालु शरण रक्षक, सत्य शिक्षक, परम पारखी श्रीसद्गुरु बन्दीछोरके शरणागत हो जाओ ! और उन्हीं कृपालुकी बतायी हुई शिक्षा धारण करके नाल = सत्यमार्ग जो कि, निजपद पारखको प्राप्त करानेवाला है, उसी सत्यपथमें अग्रसर होकर आगे बढ़ते चलो ! और तेहि = पूर्वके पक्ष, वही खानी-वाणीके रास्ता विषय और कल्पना, ममता-मोह, अध्यास आदि विकारोंको एकदमसे टालकर वा मूँद करके बाहर हटा दो ! उसे बाहर निकालकर डाल दो, फेंक दो ! प्रचण्ड = तीव्र पारख दृष्टिसे उन सब वासना बीजोंको परित्याग करके सावधान होकर निज पारख स्वरूप स्थितिमें शान्त हो करके रहो ! उसीसे परम सुखी निहाल = जीवन्मुक्त हो जाओगे। कृपालु श्रीसद्गुरुका यही मार्ग वा हंसपद ही मुक्ति देनेवाला है, ऐसा जानो ! ॥ १८६५ ॥

४. लहु परख मालामाल मेटि—* भवजाल शरण दयालके ॥ १८६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दयासागर, ज्ञान आगर, पतित पावन, पारखी श्रीसद्गुरु दयालकी शरणमें जो मनुष्य गये या जाते हैं, सो सब भवजालोंको मेटकर मुक्त-सुखी हो जाते हैं या ऐसे सुखी हुए हैं। अतएव हे जिज्ञासुजनो ! तुम लोग भी उन्हीं दयालु पारखनिष्ठ श्रीसद्गुरुकी चरण-शरणमें शीघ्रातिशीघ्र चले जाओ। प्रभुकी उपदेश-शिक्षाको दृढ़तासे धारण वा पालन करो ! फिर खानी-वाणीकी मोटी-झीनी मायाके सब भव-बन्धन जालोंको मेंट-मिटा करके वा ध्वंस करके साफ-सफाई कर दो ! सब खर्चका हिसाब चुकता करके निर्बन्ध-मुक्त हो, निज स्वरूप-स्थिति, जमापद पारख बोधको प्राप्त कर लो ! जिससे फिर तुम मालामाल = परम ऐश्वर्यशाली, अटूट, भरपूर धन सम्पन्न, अखण्ड जीवन्मुक्त परम सुखी हो जाओगे। फिर तो तुम्हारे पासमें ज्ञान-बोधरूपी धनकी कभी कमी नहीं रहेगी। जैसे पारसमणि पानेवाला मालामाल हो जाता है; ऐसा कहा है, सो तो रोचक वाणीमात्र है। परन्तु, पारखबोध मिलनेपर जीव वास्तवमें अखण्ड अमूल्य धनी श्रीमान् हो जाता है। उसके पासमें शील-सन्तोषादि सब सद्गुण रत्न आ जाते हैं। तहाँ कहा भी है:—

साखीः—"गोधन गजधन बाजिधन। और रतनधन खान॥ जब आवै सन्तोष धन। सबधन धूरि समान॥"

"पारस पारखि दो उमें। बड़ो अन्तरो जान॥ वह लोहा कञ्चन करै। यह करैं आप समान॥"

अतएव पारखबोधको लेकर मालामाल होओ! और श्रीसद्गुरु दयालके शरणागत हो करके भवजालको मिटा डालो! यही मुख्य कर्त्तव्य है॥ १८६६॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर— [११] ॥ ❀ ॥

१. यह बुद्बुदा जो शरीर नीर * न थीर झूठा हीरके॥ १८६७॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जैसे पानीमें बुलबुला, गुब्बारा बनते और बिगड़ते ही रहते हैं। बुद्बुदा बना, क्षण भर रहा, फिर बिगड़ करके फूट गया। तैसे ही यह जो स्थूल शरीर अभी सुन्दर, शोभायमान्, मन-मोहक दिख रहा है। सो तो रज-वीर्यरूप पानीका' बुद्बुदा जमकर बना है। रज-वीर्यका गोला ही यह पिण्ड है। यह कायाको सच्चा हीराकी नाईं स्थायी समझ करके जो तदासक्त हो रहे हैं, सो धोखेमें ही भूल रहे हैं। क्योंकि, यह कार्यरूप देह सर्वदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। पानीके बुद्बुदावत् क्षणभंगुर, अनित्य, नाशवान् है। नकली झूठा हीरावत् सुन्दर दिखनेवाला यह शरीर भी गन्दगीसे भरा हुआ विनश्वर है। देहासक्ति करके ही जीव गर्भ कुण्डमें जा रहे हैं। अथवा नीर=पानी सोई वाणी है। यह सूक्ष्म शरीरसे जो सङ्कल्प-विकल्पका बुद्बुदा उठा, उसीसे वेद-शास्त्रादिकी नाना वाणी बनी हैं। फिर उसी वाणी कल्पनाके प्रमाणसे कोई एक जगत्कर्त्ता परब्रह्म-परमात्माको हीरावत् श्रेष्ठ प्रकाशवान् शुद्ध सत्य माना है। परन्तु, वह खाँड़के हीरावत् झूठा, चञ्चल, मनकी सूक्ष्म मानन्दी, असत्य भ्रममात्र है। ब्रह्म बन करके कभी स्थिर ठिकाना वा मुक्ति मिल ही नहीं सकती है। अतएव ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिके लिये की हुई सब साधनाएँ व्यर्थ होती हैं। जड़ध्यासी जीव आवागमन चक्रमें पड़कर दुःख भोगा करते हैं॥१८६७॥

२. परपञ्च बहु तदबीर तेहिके * बीर उबरे धीरके॥ १८६८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! एक तो संसारमें विषय जालके प्रपञ्च— स्त्री, पुत्र, परिवार, घरादिमें नाना तरहकी उपाधियाँ लगी ही हुई हैं। दूसरा, संसारमें होनेवाले दुःखोंसे बचनेके लिये षट् दर्शनोंमें जा करके भेष धारण किये। वहाँ गुरुवालोगोंने पञ्चकोशोंकी बहुत ही वाणी कल्पना करके जो प्रपञ्च फैलाया हुआ है, वहीं जाकर अरुझे पड़े हैं। तब स्वर्ग, देवी-देवता, ऋद्धि-सिद्धि प्राप्ति, ब्रह्म-ईश्वरादिमें मिलनेके लिये बहुतेक तदबीर=उपाय, प्रयत्न या नाना युक्ति-प्रयुक्ति किये और कराये। कोई भक्त, योगी, ज्ञानी वीर होकर धैर्यपूर्वक साधना करके संसार सागरसे पार उतर जायगा, ब्रह्ममें मिल जायगा, ऐसा बतला करके धोखा देकर फँसा रक्खे हैं। अब उस खानी-वाणीके महाप्रपञ्च जालोंसे बचनेके लिये बहुत ही सावधान हो, जो कोई मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें आकर जी-जानसे तदबीर या प्रबल पराक्रम वा सत् पुरुषार्थ करते हैं, सोई शूर, वीर, धीर, कायावीर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चेअनुयायी होकर सत्यबोधमें अटल होते हैं। फिर कैसी भी आपत्ति, आक्षेप, विघ्नकारी उपाधि आनेपर भी धैर्य धारण करके श्रीसद्गुरुके पारखपदमें दृढ़तासे वे डटे रहते हैं। ऐसे ही कोई बिरले पारखी धैर्यवान् सत्पुरुष उन सब जालोंसे पार उतर करके जीवन्मुक्त हो जाते हैं। उनके सत्सङ्गमें ही जिज्ञासु जनोंने लगे रहना चाहिये॥ १८६८॥

३. तजु नलिनि कीर फकीर जेहि डर * नहिं वजीर अमीरके॥ १८६९॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कीर=तोता या शुग्गा-पक्षी जैसे कोई फलको देख करके उसे सरस, मधुर, सुन्दर समझकर खानेको चला जाता है। परन्तु, बहेलिया वहाँ नलिकामें जाल लगाया रहता है, तोता फलके लालचसे जाकर नलिकाको मजबूतीसे पकड़कर स्वयं बन्धनमें पड़

जाता है। उसीप्रकार सिद्धान्तमें कीर=शुग्गावत् अबोध नरजीव— स्त्री, पुत्र, धन, घरादि विषय सुखरूप फलको देख करके लोभ-लालचमें आकर मोहासक्तिको दृढ़तासे पकड़कर उसी नलिका=घर-गृहस्थीमें इधर बद्ध हो जाते हैं। उधर वाणी-कल्पनासे चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्गादि प्राप्ति तथा ब्रह्मानन्दादि सुख प्राप्तिकी आशा, लोभ-लालचसे नाना मत और सिद्धान्तोंके पक्षरूपी नलिकाको दृढ़तासे पकड़ करके जड़ाध्यासी-बद्ध हो जाते हैं। नाना कर्म-संस्कारसे बारम्बार आवागमनमें ही पड़ा करते हैं। इसवास्ते श्रीसद्गुरु मुमुक्षुओंको चेतावनी दे करके कहते हैं कि— हे जीव! तू अभी नर देहमें है, चेत कर! खानी-वाणीकी लोभ-लालचरूपी नलिकाको पकड़ करके क्यों बद्ध हो रहे हो? उसे परखकर शीघ्र परित्याग कर दो! यदि भव-बन्धनोंसे मुक्त होना चाहते हो, तो पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर फकीर=सच्चे साधु हो जाओ! फिर सत्य, विचार, शीलादि सद्गुण हंस रहनी-रहस्यको धारण कर लो! श्रीसद्गुरुकी दयासे जब पूर्ण पारखबोध हो जायगा, तब तुम निर्भय हो जाओगे; और अमीर=राजा-महाराजाके समान श्रेष्ठ, बड़े, भक्ति, योग और ज्ञान मार्गके आचार्य माने हुए ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये त्रिगुणी मायाका, तथा उनके वजीर=प्रधान मन्त्रीके समान ब्रह्मादिके अनुयायी भक्त, योगी, ज्ञानी आदि गुरुवालोगोंकी वाणी-कल्पनाका, यमराज, ईश्वरादिका, भ्रम, संशय, डर जो लगा रक्खा था, सो सब भय पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे सत्यज्ञानको पानेपर वह भ्रम-भूल सब निवृत्त हो जायगी। फिर पारखी सन्तको उन फन्दाओंमें पड़नेका कोई डर नहीं रहता है; और मृत्युका महा भय भी उनका छूट जाता है॥ १८६६॥

४. गुरु! पीर हरें भव भीर अभय ❀ गम्भीर शरण कबीरके॥ १८७०॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! समस्त संसारमें पारखी एक श्रीसद्गुरु ही पारख बोधको लखा करके भव भयको हरण करके जन्मृति दुःखोंसे छुड़ाकर सुखी, निर्भय कर देते हैं। ऐसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो, सत्य शिक्षाको ग्रहण करनेपर निज स्वरूप पारखमें अविचल, स्थिर, गम्भीर पदकी प्राप्ति हो जाती है। कायाके काम-क्रोधादि विकार, तथा मनकी ब्रह्म-ईश्वरादि मानन्दी आदि सब मोटी-झोना माया-मोहके आसक्ति-अध्यासको जीते ही परित्याग किये हुए, ऐसे शूर-वीर-धीर कायावीर सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब ही गम्भीर पारखबोध प्रकाशी सद्गुरु बन्दीछोर महापुरुष प्रसिद्ध हुए हैं। तैसे ही आपके सच्चे अनुयायी पारखी सन्त भी हुए हैं, और वर्तमानमें हैं। ऐसे पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण जो हुए, सो निजपद स्थितिमें गम्भीर, स्थिर, शान्त हो गये। श्रीसद्गुरुने उनके खानी-वाणीसे होने-वाले सब भयोंको निर्मूल करके मिटा दिया है; और पीर=नाना साधनाओंके कष्ट-क्लेश और जन्म-मरणादि दुःखोंके कारणरूप बीजको भी हरण करके नष्ट कर दिये। तब जीव अभय, निःसन्देह होकर जिवन्मुक्त हुए या होते हैं। अतएव हे मनुष्यो! तुम लोग भी सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सच्चे अनुयायी पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर सब दुःखोंको हरण करके भव भयकी भीर=भीड़-उपाधिसे रहित हो निर्भय, गम्भीर, जीते ही मुक्त हो जाओ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख ज्ञानको छोड़कर और कहीं भी जीवोंका निस्तार नहीं होता है; तथा पारख बोध ही सर्वोपरि महानपद मुक्तिदायी है; यह निश्चय है, सो जान लीजिये!॥ १८७०॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर— [१२] ॥ ❀ ॥

१. नारदादि शुकादि दै ❀ ब्रह्मादि सब जेहि गावहीं॥ १८७१॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुके बिना प्रथम किसीको भी पारखकाबोध प्राप्त नहीं हुआ। यहाँ पूर्वके पारखहीन भ्रमिक लोगोंका संक्षिप्त परिचय देते हैं, सुनिये! प्रथम, नारदादि भक्त वर्ग— नारद, सप्तऋषि, अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, रन्तिदेव,

शिवी, सुरथ आदि बहुतेरे भक्त हुए हैं। दूसरे, शुकादि ज्ञानी वर्ग—शुकदेव, व्यास, वशिष्ठ, लोमस, पराशर, मार्कण्डेय, कपिल, दत्तात्रेय, वामदेव इत्यादि अनेकों ऋषि-मुनि हुए हैं। तीसरे, उनसे भी पहले ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—ये कर्मी, भक्त, ज्ञानी या योगी हुए हैं; इत्यादि ऋषि-महर्षि, मुनि-तपस्वी, यति, सति, व्रती हुए हैं। उन सबोंने मन-मानन्दीसे कल्पना करके कोई एक जगत्कर्त्ता, परमतत्त्व-परमात्मा निर्गुण-निराकार, सर्वज्ञ, व्यापक माना है। उसकी प्राप्तिके लिये अथवा उसे प्रसन्नतार्थ अनेक वेद-पुराणादि कथन करके जिसके वास्ते स्तुति, वेद-पाठ, प्रशंसा महिमा वर्णन तथा नाना सिद्धान्तोंका प्रतिपादन अनेक तरहसे किये हैं। सोई बातका गुण-गान अभी सब मनुष्य भी गायन वा कीर्तन कर रहे हैं ॥ १८७१ ॥

२. गाइ ध्याइ हेराइ, बारम्बार— * मन पछतावहीं ॥ १८७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी मत-पन्थोंके पथिक होकर योगी, ज्ञानी, और भक्तोंने बहुविधिसे वेद-वेदान्त, कर्म, भक्ति आदिकी वाणी गाये वा कहे; और कोई नाम-जप, लीला-कीर्तन, स्तोत्र-पाठ, स्तुति-प्रार्थनादिका गायन किये। फिर कोई योगीजन ध्यान-धारणा लगाकर ब्रह्माण्डमें परमेश्वरको ढूँढ़ने लगे। कोई कर्मी बाहर तीर्थ-यात्रा, व्रतादि करके चारों दिशाओंमें दौड़कर खोज करने लगे। कोई ज्ञानी लोग शून्य समाधि, निर्विकल्प स्थितिमें पहुँचे, तो वहाँ साक्षीपदको भी लय करके हेरा दिये। स्वरूप बोधको गायब करके खो दिये, शून्यमें गाफिल हुए; मुक्ति मार्गसे छूटकर पतित हुए। इसप्रकार साधनाएँ तो बहुत किये; परन्तु, सो उन्हें मिलता तो कुछ भी नहीं है, तो भी ईश्वरके दर्शनकी इच्छासे बारम्बार कष्टकर साधनाओंमें मन बढ़ाते ही जाते हैं; दुःख पाते हुए मनमें पछताते जाते हैं। हाय ! हम अभागे हैं; पापके कारणसे हमने ईश्वरके दर्शन कर नहीं पाये। हे प्रभो ! क्षमा करके दर्शन दो ! इत्यादि पुकारा करते हैं। तब भी किसीकी मनसा पूर्ण नहीं होती है, जड़ाध्यासी हो करके मरते हैं, तो चौरासी योनियोंमें नाना दुःख भोगते रहते हैं। वही मनमें पछताना है। इसतरह दुःखी होते रहते हैं ॥ १८७२ ॥

३. जस जस यतन छूटन करहिं * भव बूड़े थाह न पावहीं ॥ १८७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानी, अज्ञानी और विज्ञानी लोग जैसे-जैसे मानन्दी करके भवसागरके महाबन्धनोंसे छूटनेके लिये यत्न-प्रयत्नरूप अनेक उपाय करके नाना कर्मादि साधनाएँ करते जाते हैं, तैसे-तैसे ही भ्रमिक, जड़ाध्यासी, पक्षपाती हो-हो कर धोखेके दल-दलमें और भी फँसते जाते हैं। खोज किया हुआ परमेश्वर जब कहीं भी नहीं मिला, तब खूब भ्रमिक मूढ़ हो जाते हैं। पारख बोधके बिना अनुमान-कल्पनाका थाह तो वे कुछ नहीं पाते हैं, इसीसे अथाह, अपार, अगम, अगोचर, मन, बुद्धि और वाणीसे परे ठहराकर शिर पीटते रह जाते हैं। अतएव वे लोग वाणीरूप नशाके झोंकमें भवरूप एक आत्मा व्यापक बन करके भ्रममें डूबकर फिर गर्भवासके भँवरीमें जाकर डूब जाते हैं। पारख बोधके बिना वह भवसागरमें पड़नेके कारणका पता कोई जान नहीं पाते हैं। इसीसे नाना कर्म करके अध्यासी होकर चौरासी योनियोंके गर्भमें जाकर डूब जाते हैं ॥ १८७३ ॥

४. सोइ धार कठिन अन्धारते * गहि पार पारख लावहीं ॥ १८७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने वेद, पुराण, कुरान आदि वाणीका विस्तार तो बहुत किये; परन्तु, कोई भव-बन्धनोंसे छूट नहीं सके, और भी विशेषरूपसे जकड़ गये। क्योंकि, अपठित लोग तो खाली खानी जालकी एक मोटी-मायामें ही बद्ध रहते हैं। कोई परखनेवाले मिले, तो वे जल्दी ही छूट जाते हैं। परन्तु, पठित-मूर्ख बने हुए पण्डित लोग तो खानीके साथ-साथ वाणी जालमें भी बँधे रहते हैं। विद्याके अभिमानमें पारखी श्रीसद्गुरुके बोधको भी नहीं लेते हैं। इसीवास्ते भग-भोग तथा वाणी-कल्पनाकी कठिन धारामें वे वेगसे बहे जाते हैं। सो छूटनेको अति मुश्किल महा कठिन धारा है। महा अविद्याके अन्धकारमें गिर करके उत्ताल

तरङ्गोंमें बहकर बेहाल हो रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुने मुझे शरणागत जानकर सो कठिन धाराके अन्धकारसे हाथ पकड़ करके पार लगा दिया है। पारख बोध देकर सुखी कर दिया है। इसकारणसे मैं अपरोक्ष अनुभवके दृढ़ निश्चयसे कहता हूँ कि— हे जिज्ञासुजनो ! पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर उनके ही पल्ला पकड़ो ! पारख बोधको ही धारण करो ! वही पारखबोधरूपी जहाजको तुम सब अच्छी तरहसे पकड़ो ! सो पारख बोध ही तुम्हें महा कठिन अविद्या-अन्धकारमय जड़ाध्याससे छुड़ाकर भवपार मुक्ति-स्थितिमें लगायेगा। चराचर व्यापक मानन्दीरूप अन्धकारका धोखा छुड़ायेगा। अर्थात् नारी और गुरुवालोग जीवोंको कठिन अन्धार धारामें डाल देते हैं। पारखी श्रीसद्गुरु उनके हाथ पकड़ करके उससे जिज्ञासु नरजीवोंको छुड़ाते हैं; भवपार करते हैं। ऐसा जानकर शीघ्र ही अब पारखी श्रीसद्गुरुदेवके पद पकड़ करके उनके शरणागत होकर भवपार हो जाओ ! ॥ १८७४ ॥

साखीः— सन्तत सुख है पारखमें ❀ साधन यतन विनाश ॥
[३२८] भूलि भटकि मति जाहु जिव ❀ विविधि कर्मके फाँस ॥ १८७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मुमुक्षु नरजीवो ! सदा-सर्वदा निज पारख स्वरूपमें एकरस स्थिति अटल करनेपर ही सच्चा सुख सदाके लिये प्राप्त हो जाता है। क्योंकि, गुरुपद पारख सर्वोच्च या सर्वोपरि मुक्तिकी भूमिका है। अतएव जड़-चैतन्यका निर्णय करके सार-असारका ही विचार-विवेक करते रहो ! और हंस देहके सद्गुण लक्षणोंको धारण करके निज पारख स्वरूपमें ही सदोदित शान्त, स्थिर, अचल हो रहो ! उसीमें अलौकिक सत्य सुख है। सर्व अध्यासका क्षय होनेसे जीवन्मुक्ति पदकी प्राप्ति भी उसीसे होती है। ऐसे निजपद महान सुखका धाम छोड़कर दूसरी तरफ भ्रम-विषयके धोखेमें कभी मत् जाओ ! और गुरुवालोगोंने ईश्वर, ब्रह्म, स्वर्गादि प्राप्तिकी लालच लगाकर कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादिकी नाना साधनाओंमें युक्ति-प्रयुक्तिसे नाना यत्न-प्रयत्नमें जो अबोध मनुष्योंको लगाये हैं, सो जीवोंको निज हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है; शून्य गाफिलीमें डालनेवाला है। सो पारखपदको छोड़कर दूसरे साधनाओंमें जो लगे, वे विनष्ट हुए या हो रहे हैं। इसकारणसे हे नरजीवो ! कभी पारखपदको मत् छोड़ो ! और निजस्वरूपको एवं सत् कर्त्तव्यको भूलकर इधर-उधर भटकी-भटका करके नाना मत-मतान्तरोंमें और विषयी लोगोंके कुसङ्गमें, हे जीव ! तुम कदापि मत् जाओ ! काम, क्रोध और मोह; कर्म, भक्ति, योगादिके नाना कर्म-कुकर्मोंकी फाँस=फन्दा या जालोंमें किसी कारणसे भी नहीं फँसो ! वहाँसे निकल आओ ! अभी वक्त है; चेतो ! बचो ! सुधरो ! फिर समय निकल जानेपर पछतानेके सिवाय और कुछ हाथ नहीं आयेगा। इसलिये भूलकर भटक करके विविधि कर्मोंके फाँसमें कभी नहीं जाओ ! विनाश करनेवाले सब साधनाओंको छोड़ करके पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें सदा लगे रहो ! उसीसे सदा सुख पाओगे, सो ऐसा जानो ! ॥ १८७५ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— ९९ ॥ [चौपाई— १० । साखी— १ । रमैनी— १ । साखी— २ है] ॥ ❀ ।

१. कर्म फाँस बहुते कठिनाई ❀ बिनु पारख कोइ छुटै न भाई ! ॥ १८७६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे विवेकी सन्तो ! जड़ाध्यासी जीवोंको यह फाँससे छूटना अत्यन्त कठिन या मुश्किल हो गया है। क्योंकि, कर्मजालका विस्तार बहुत है। तनमें इन्द्रियोंका कर्म, मनादि चित्त चतुष्टयोंका कर्म, वचनमें बोल-चालके कर्मके साथ-साथ विषय भोग सम्बन्धी कर्म-कुकर्म, गुरुवालोगोंकी साधना सम्बन्धी जप-तप, तीर्थ-व्रत, पूजा-पाठ आदि अनेकों कर्मोंकी झीनी-मोटी जालोंके भीतर जीव सब पड़े हैं। वे बहुत ही कठिन बन्धन हैं। हे भाई ! अपरोक्ष पारखबोध स्थिति ठहराव हुए बिना कोई भी जीव उस कर्म फाँसके घेराऊ अध्यासले छूट नहीं

सकते हैं। अतएव अब जल्दी ही पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें आकर पारख बोध प्राप्त करके भव-बन्धनोंसे छूट जाओ ! ॥ १८७६ ॥

२. काल बली राखै जीव रोकी ❀ परख न देई जाल त्रिलोकी ॥ १८७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! काल=मन, जीवकी सत्ता पा करके बड़ा बलिष्ठ, प्रबल हो रहा है। जो कि, उसने उलटकर जीवको ही मुक्तिमार्गमें जानेसे रोक रक्खा है। क्योंकि, वह प्रपञ्ची मन जीवको परखनेका मौका ही नहीं देता है; इससे किसीको पारख बोध ही नहीं होता है। मनका जाल भीतर— चित्त, बुद्धि और अहङ्कारमें लगा है; और बाहर— त्रिगुणमें काम, क्रोध और मोहमें फैला है। इससे किसीको भी छूटने नहीं देता है; और मनरूप कालका सहायक घरमें स्त्री है; बाहर गुरुवालोग बलवान् महाकाल बने हैं। उन्होंने और भी जीवोंको विषय भोगोंमें और कर्म, भक्ति, योगोंमें घेरघार करके रोक रक्खा है। त्रिलोकी=त्रिगुणी जीवोंको उनके जालोंसे छूटकर सहजमें कभी पारखपद प्राप्त होने नहीं देते हैं। वाणी-कल्पना और विषयासक्ति, इसीने सब जीवोंको बाँध रक्खा है। पूर्ण पारखबोध प्राप्त हुए बिना वह जाल दिखाई नहीं देता है; और नहीं छूटता है। अथवा त्रिदेवका जाल त्रिलोकमें फैला है, सो किसीको पारखमें जाने वा निर्णय करने नहीं देता है, धोखेमें ही डाले रखता है ॥ १८७७ ॥

३. बहुमत मदिरा सबनि मताई ❀ भये अचेत न रही चेताई ॥ १८७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! षट् दर्शन-छियान्नवे पाखण्डकी विस्तार शाखा-प्रशाखा बहुतेक मत-मतान्तर प्राचीन-अर्वाचीन, आस्तिक-नास्तिक, चार्वाक्, बौद्ध, जैन, ईसाई, हिन्दू, तुरुक इत्यादि संसारमें बहुत ही मतवाद खड़े हुए हैं। उसी विभिन्न मतके पक्षपात, हठ, मद-ममता, माया-मोहकी नशीला शराब पी-पी करके सब उन्मत्त, बदहवाश अचेत हुए हैं। विषय भोग और वाणी-कल्पनाने सब बेपारखियोंको पागल बना दिया है। इसीसे सब अचेत, मूढ, गाफिल हुए या हो रहे हैं। किसीको भी निज स्वरूपकी यथार्थ बोध स्थिति चित्त-चैतन्यता, जाग्रत् भाव नहीं रहा। इसीसे वे लोग सब चौरासी योनियोंके बँधुए हुए हैं ॥ १८७८ ॥

४. लाज सकुच परिवार उपाधा ❀ नेम बाँध अनेकन्हि बाँधा ॥ १८७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब देखिये ! सत्यमार्गमें तो कोई लगना ही नहीं चाहते हैं, झूठ मार्गमें लगकर नाना प्रपञ्च कर रहे हैं। साधु-गुरुके दर्शन करनेमें लाज मानते हैं। पशुवत् विषय भोगनेमें शर्माते भी नहीं हैं, पारखी सन्तोंसे सत्सङ्ग-विचार करनेमें परमार्थमें धन लगानेमें सङ्कोच करते हैं; और कुमार्गमें लगकर व्यर्थ धन उड़ानेमें कुछ भी नहीं हिचकिचाते हैं, जी खोलकर खर्च करते हैं; और स्त्री-पुत्र, कुल-कुटुम्ब, परिवारके सङ्ग-साथमें दिन-रात उपाधि सहते रहते हैं। वहाँ व्यर्थके लाज-संकोच देखानेकी नकल करते हैं; और घर-गृहस्थीमें तथा गुरुवालोगोंके पन्थ-पन्थाईमें अनेकों प्रकारकी नियम-मर्यादाका बाँध बाँधा है। इस हद्दके बाहर नहीं जाना; यदि जाओगे, तो जाति, कुल, देशके द्रोही, ईश्वर, गुरु, वेदके द्रोही, पापी, दण्डके भागी होओगे; महा नरकमें डाले जाओगे ! इत्यादि कपटके वाणी सुना करके अनेकों तरहसे जीवोंको बाँध रक्खे हैं। कोई बिरले ही पारखी उससे छूट पाते हैं ॥ १८७९ ॥

५. कौन सुनै को मानै बाता ? ❀ यमके घात सोई कुशलाता ॥ १८८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके यथार्थ निर्णय गुरुमुखकी वाणी बीजक ज्ञान सत्य उपदेशको मैं नरजीवोंके हितके लिये कहता हूँ, तो उसको कोई ध्यानसे नहीं सुनते हैं, और सुनकर भी कोई नहीं मानते हैं। क्योंकि, उनकी बुद्धि भ्रमिक हो गई है। लोक-वेदके घेरामें घिरे पड़े हैं। उनकी उलटी समझ तो देखिये ! यम=स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंने खानी-वाणी जाल पसार करके जो कि, जीवोंको फँसाकर मारनेका घात लगा रहे हैं। उसका भेद तो वे कुछ नहीं

समझते हैं। ऊपरकी चमक-दमक, सुन्दरता, हाव-भाव-कटाक्ष, मीठी-मीठी बातें देख-सुन करके सोई यमके घातको ही कुशलता, मुक्ति, हित-सुख मान करके फँसे जा रहे हैं; गड़ते जा रहे हैं। अब ऐसे अविचारी लोग श्रीसद्गुरुके सत्य निर्णयके सत्योपदेशकी बात कौन सुनेंगे? और कौन मानेंगे? कौन समझेंगे? वा कौन उसकी धारणा करेंगे? पक्षपाती लोग कोई भी पारखी सन्तोंकी बात सुनकर नहीं मानते हैं; कोई बिरले ही निष्पक्ष जीव उपदेश सुन करके सत्य निर्णयको मानते हैं। वे ही जीवनका पूरा लाभ उठा पाते हैं ॥ १८८० ॥

६. मोह नींद बहु विधिते लागे ❀ गाढ़ी नींद जगाये न जागे ॥ १८८१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें एक तो माता-पिता, स्त्री-पुत्र, परिवार, धन, घर, राज-काज, लोक-लाज, कुलमर्यादा, पञ्च विषय, विषयासक्तिके माया-मोहकी गाफिलीरूप निद्रामें बहुत प्रकारसे विषयी जीव लग रहे हैं। ऐसी गाढ़ी, घनघोर निद्रा लगी है कि, दोष दिखाकर समझा करके जगानेपर भी कोई जागते ही नहीं हैं। तैसे ही दूसरी तरफ वेद, शास्त्र, पुराण-कुरानादिकी वाणीका मोह, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता, स्वर्गादि सुख मानकर उसकी प्राप्तिकी आशा, कल्पित वाणीके सिद्धान्तका पक्ष महा मोहकी निद्रामें नरजीव बहुत प्रकारसे लगे और लगा रहे हैं। ऐसी गाढ़ी निद्रा, महान गाफिलीमें पड़े हैं कि, बिलकुल अचेत मुर्दाके समान जड़ या जड़ासक्त हो रहे हैं। हितैषी पारखी साधु-गुरु जड़-चैतन्यका निर्णय करके सत्योपदेश देकर भ्रम धोखेसे जीवोंको जगाते हैं, तो भी कोई नहीं जागते हैं, कल्पनाको नहीं छोड़ते हैं, गाफिलीमें जकड़े ही रहते हैं ॥ १८८१ ॥

७. बिरले जागहिं परख प्रकाशा ❀ तम तामसके होय विनाशा ॥ १८८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य निर्णयके उपदेशको सुन-कर मनमें गुनकर विवेक-विचारके नेत्रोंको खोलकर पारख ज्ञानरूप रविके तीव्र प्रकाशको देख करके कोई बिरले ही बुद्धिमान् जीव जाग्रत् हो जाते हैं। पारखके महा प्रकाशमें चौतरफ देख करके फिर निज हित सत् कर्त्तव्यमें लग जाते हैं। तब सदाके लिये तमरूप अज्ञान, अविद्याके अन्धकार विषयादिकी मोहासक्ति तथा तामस=ब्रह्म-भ्रमकी कल्पना, धोखा, ईश्वरादिके संशय, त्रिगुण तथा मनका विकार, इत्यादि बन्धनका कारण सब पारखी सन्तोंका विनाश, अन्त वा मटियामेट हो जाता है; ऐसे कोई पारखी सन्त ही मुक्त होते हैं ॥ १८८२ ॥

८. बहुत सुनहिं नहिं खोलहिं नैना ❀ परख पुकार दहुँदिश बैना ॥ १८८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें बहुत लोग तो पारखी सन्तोंके दर्शनमें ही नहीं आते हैं; यदि कोई आये भी तो व्यवहारकी बात मात्र ही करके चले जाते हैं; सत्योपदेश नहीं सुनते हैं; और बहुत लोग तो कथाकी नाईं उपदेशको सुनते हैं; कुछ भी नहीं समझते हैं, वे तो पल्ला झाड़ करके सुनी हुई बातको भूलकर चल देते हैं। ऐसे लोग बहुत बार निर्णयके उपदेशको सुन करके भी हृदयकी पारख दृष्टिको ही नहीं खोलते हैं, आँखें मूँदे रहते हैं। हितकारी पारखी साधु-गुरु चौतरफ विचरण करके पारख निर्णयकी पुकार सुना करके नरजीवोंको जगा रहे हैं। निर्णयसे गुरुमुख वाणीसे दशों दिशाका भेद बता रहे हैं। तो भी उस पुकारको सुनकर भी कोई विवेकरूपी नेत्रको नहीं खोलते हैं; बल्कि दहुँदिश=चार वेद और षट् शास्त्रोंकी वाणी-कल्पनामें ही लिप्त हो रहे हैं। कोई दशों दिशामें, दशों इन्द्रियोंसे विषय भोगनेमें ही मस्त हो रहे हैं। उसे छोड़कर पारखबोध दाता पारखी श्रीसद्गुरुकी पुकारको कोई नहीं सुनते हैं वा सुनकर भी लक्ष्य नहीं लगाते हैं। बहुत बार पुकारनेपर भी कोई नेत्र खोल करके विचार नहीं करते हैं, इसीसे बद्ध हो रहते हैं ॥ १८८३ ॥

९. मातें नीन्द पलक जो खोलहीं ❀ औरहि और भोर मत बोलहीं ॥ १८८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! निद्राके मदमें माते हुए लोग जो कदाचित् थोड़ी-

सी पलकें भी खोलते हैं, तो पड़े-पड़े और ही कुछ-का-कुछ बकने लग जाते हैं। कहते हैं— अभी प्रभात नहीं हुआ है, मत् बोलो, हमें मत् जगाओ; अभी सोने दो, पीछे जागेंगे, इत्यादि बकवाद करके फिर आँखें मूँद लेते हैं। तैसे ही पञ्च विषयोंके माया-मोहकी निद्रामें पड़े हुए संसारी लोग पिण्ड कलाके चार मदमें उन्मत्त होकर माते हैं। जो कभी पलकें खोल करके या फुर्सत पाकर सत्सङ्गमें भी आये, तो निर्णय उपदेश सुन करके और-ही-और फिजूलकी बातें बकने लग जाते हैं। या तो निन्दा करेंगे या अभी हमारा बुढ़ापा नहीं आया है, जब बूढ़े होंगे, तब सत्सङ्ग सुनेंगे; पीछे धर्म-कर्ममें लगेंगे। अभी तो विषय भोगनेका, कमाई करनेका वक्त है, इत्यादि भूलकी बात करते हैं; और वाणी-कल्पनाकी निद्रा गाफिलीमें सोये हुए गुरुवालोग ब्रह्माण्डकलाके चार मदमें मदमस्त होकर माते हैं। जो कभी थोड़ा-सा पक्षपातको ढीला करके पारखी सन्तोंके उपदेश सुननेमें भी आये, तो भी कल्पनाकी गाँठी तो वे खोलते ही नहीं हैं। इसवास्ते और-ही-और भ्रमिक बातें बोलने लग जाते हैं। विभिन्न मत-मतान्तरोंकी वाणी बोलकर अपने भूलते हैं और दूसरे अबोध जीवोंको भी भुला देते हैं। निज हंसपदसे पतित होकर धोखेमें गिर जाते हैं; विवेक नहीं करते हैं ॥ १८८४ ॥

१०. छिन छिन आँख ढपि-ढपि जाई ❀ चेत नहिं महि परखै को भाई ! ॥१८८५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसलिये बारम्बार क्षण-क्षणमें हृदयकी विवेक दृष्टि-पर आवरण पड़ता जाता है। मन ब्रह्मका भ्रम और विषयोंकी आनन्द प्राप्तिकी तरफ ही लग-लग जाता है। आशा तथा आसक्तिसे जीवोंकी बुद्धि ढँक जाती है। उन मनुष्योंको कुछ चेत ही नहीं है, तो हे भाई ! महि=इस पृथ्वी या भूमण्डलमें 'मैं चैतन्य जीव ही पारख स्वरूप सत्य हूँ !' यह बोध पारखी सन्तके सिवाय और दूसरे कौन परखेंगे ? कोई परखनेवाले नहीं हैं। अर्थात् हे सन्तो भाई ! जिसको कुछ भी चेत हो, कल्याणकी इच्छा हो, वही सार-असारको यथार्थ परखकर सारको ग्रहण और असारको त्याग करते हैं। परन्तु, जिसको जड़-चैतन्यका विचार पारख ही नहीं है, चेत ही नहीं होता है, वह सत्यासत्यको क्या परखेगा ? जड़-चैतन्य मिश्रित व्यापक ब्रह्म निश्चय करके "अहं ब्रह्मास्मि" बना, तो क्षण-क्षणमें भ्रम-कल्पनाका जोश आ करके विवेक-विचारका नेत्र ढकाढक हो करके बन्द हो गया, तो खूब जड़ाध्यासी हुए; फिर चौरासी योनियोंमें गये या जा रहे हैं; और किसीके भग-भोगादि विषयकी मस्तीसे पल-पलमें बुद्धिपर पर्दा पड़ रही है। वे चेतानेपर भी चेत नहीं करते हैं। कोई पारख करके निज स्वरूपमें नहीं ठहरते हैं। जिसको जैसी-जैसी भावना दृढ़ हुई है, वैसे-वैसे उधर ही दौड़कर सब अचेत हो रहे हैं। बिना पारख हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं ॥ १८८५ ॥

साखीः— जगै न खोलै पलक जो ❀ बारम्बार जगाय ॥
[३२९] झूठी मीठी नींद है ❀ आँख ढपि ढपि जाय ॥ १८८६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! दयालु पारखी साधु श्रीसद्गुरु बद्ध-दुःखी नरजीवोंपर महान कृपादृष्टि करके बारम्बार सत्यन्याय-निर्णयका उपदेश देकर जगाये और जगा रहे हैं। तब भी अविचारी, हठी-शठी मनुष्य जगत् विषयका पक्ष तथा ब्रह्म-ईश्वरादि वाणी-कल्पनाका पक्ष जो पकड़े हैं, वही उनका पलक लगाना है। उसमें कसर दिखला करके जगानेपर भी पलकरूपी पक्षको खोलकर हटाकर कोई जाग्रत्, सचेत नहीं होते हैं। यदि कोई भीतर जागता हो, वाणी-खानी मार्गका दुःख जानता हो; परन्तु, आसक्ति अध्यासको निकालता न हो, तो वह भी कभी मुक्त हो नहीं सकता है, भव-बन्धनोंमें ही पड़ा रहेगा। ज्ञानी-मोटी माया-मोहकी निद्रामें सोना, गाफिल होना झूठा ही है। आलसीको गाढ़ी निद्रा मीठी लगती है। विषयीको पञ्च विषय भग-भोगादिरूप मीठी निद्रा लगी है। योगीको समाधि शून्यतारूप मीठी नींद लगी है। ज्ञानीको ब्रह्म मानन्दीकी गाफिलीरूप मीठी नींद लगी है। सो सब झूठी असत्य, नाशवान्, भ्रमरूप हैं। तथापि

बिना पारख घटाध्यास, जड़ाध्यासके कारणसे विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिमें ही बुद्धि लग-लग जाती है। आवरण पुनः-पुनः पड़ता जाता है। विचार ढक-ढक जाता है। होश जाता रहता है। पक्ष पुष्ट वा दृढ़ होता जाता है। इसलिये जीव अभ्यासवश फिर-फिर भी चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही जाते रहते हैं। बिना पारख किसीका ठहराव नहीं होता है ॥ १८८६ ॥

॥❀॥ रमैनी, नम्बर— १६ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर- २६ ॥❀॥

१. बज्रहुते तृण खिनमें होई * तृणते बज्र करै पुनि सोई ॥ १८८७ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब इसमें गुरुवालोगोंके कथन बतला रहे हैं। [मायामुखः—] टकसारमें इस रमैनीका प्रमाण पहले भी आ चुका है। साखी नम्बर- ६१के पश्चात् रमैनी भाग-४ तथा सिलसिला नम्बर-१२०से १२६ (पृष्ठ १०५२से१०५४) तक विस्तारपूर्वक अर्थ लिखा जा चुका है; वहाँसे देख लीजिये! यहाँपर संक्षिप्त अर्थ लिख दिया जाता है, सो सुनिये! गुरुवा लोग कहते हैं कि— परमेश्वर सर्वशक्तिमान् हैं; वे जो चाहें, सो कर सकते हैं। क्षण भरमें कठोर बज्रको तृण=घास, तथा तृणको भी बज्र कर सकते हैं। तैसे ही राजाको रङ्क, और रङ्कको राजा भी बना सकते हैं। सुखीको दुःखी, और दुःखीको सुखी भी कर सकते हैं। वे ही जगत्का उत्पत्ति और प्रलय करते हैं। ऐसा जानकर उनके भक्ति-भाव, आराधनामें लगे रहो, इत्यादि महिमा बतला करके भुलाया है ॥ १८८७ ॥

२. निझरु नीरु जानि परिहरिया * कर्मका बाँधा लालच करिया ॥ १८८८ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! गुरुवालोगोंके ऐसे नाना उपदेशोंको सुनकर निझरु=न झरनेवाला अविनाशी ब्रह्म, नीरु=झरनेवाला नाशवान् जगत्को मिथ्या जान करके जगत्-भावमें मोटी मायाको परिहरिया=परित्याग कर दिया और अद्वैत ब्रह्म-भावको टिका लिया। जीव-ब्रह्मकी एकता, ईश्वरादिका दर्शन तथा स्वर्गादि सुख प्राप्तिकी लालच करके नरजीव सब नाना कर्म साधनाओंमें बद्ध हुए हैं; कर्म जालोंमें बाँधे गये हैं, बिना विचार ॥ १८८८ ॥

३. कर्म धर्म मत बुद्धि परिहरिया * झूठा नाम साँच ले धरिया ॥ १८८६ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! प्रथम ब्रह्मादिकोंने कर्म, उपासना, योग और ज्ञानमार्ग निकाला। वहाँ सारासार सत्य-मिथ्या विवेक करनेकी सद्बुद्धिको उन्होंने त्याग दिया। कोई साक्षी दशाको भी त्याग करके विज्ञानी बने, धोखेमें पड़े। झूठा नाम या बोधको सच्चा समझ करके धारण कर लिये। कोई नाम-स्मरण करने लगे, कोई झूठा ही ब्रह्म बननेका स्वाङ्ग करने लगे। इसीसे भ्रमिक, जड़ाध्यासी हुए ॥ १८८६ ॥

४. रजगति त्रिविधि कीन्ह प्रकाशा * कर्म धर्म बुद्धि केर विनाशा ॥ १८६० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! रज्जु-सर्पवत् दृष्टान्त देकर जगत् मिथ्या और अधिष्ठान ब्रह्म सत्य कथन किया है। तहाँ त्रिविधि=तत्त्वमसि, सच्चिदानन्दका व्याख्या करके अद्वैत ब्रह्मज्ञानका प्रकाश वा प्रचार किया है; और उसी ब्रह्मपदमें पहुँचनेके लिये प्रथम जीवोंको कर्म, उपासनादि साधनाओंमें लगाकर जड़-चैतन्यका भेद सत्यासत्य निर्णय विचार करनेकी बुद्धिको विनाश करके नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं। कल्पनामें लगकर हंस बुद्धिका नाश कर-करा रहे हैं ॥ १८६० ॥

५. रविके उदय तारा भौ छीना * चर बीहर दूनोंमें लीना ॥ १८६१ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे सन्तो! [ब्रह्ममुखः—] यहाँ ब्रह्मज्ञानीका कथन ऐसा है कि— प्रचण्ड सूर्यवत् अद्वैत ब्रह्मज्ञानका प्रकाश उदय होनेपर तारा गणोंके समान द्वैत भ्रान्ति, विभिन्न कर्मादि साधनाके नियम क्षीण होकर छूट जाते हैं। वास्तवमें तो परब्रह्म चर और अचर दोनोंमें पूर्ण व्यापक या लीन है। वहाँ कुछ भी द्वैत भाव नहीं है। "अहं ब्रह्मास्मि"का निश्चय होते ही सब कर्म क्षय हो जाते हैं ॥ १८६१ ॥

६. विषके खाये विष नहिं जावै * गारुड़ सो जो मरत जियावै ॥ १८९२ ॥

अर्थः— तदुपरान्त सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब अपनी तरफसे निर्णय करके कहते हैं कि, [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! विष खाये हुएको और भी विष ही खिला देनेसे उसका बचाव नहीं होता है। अथवा किसीने जहर खाया हो, तो उसको काला साँपसे कटा दिया, तो वह बचनेके बदले तुरन्त ही मर जायगा। उसी प्रकारसे संसारमें पहलेसे ही पञ्च विषयासक्तिको ग्रहण करके सब जीव जड़ाध्यासी, बद्ध, दुःखी, पीड़ित हो रहे हैं। फिर उसपर गुरुवालोगोंने ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रमको दृढ़ किया और दृढ़ कराया है, खानीके विष खाये हुएको और भी वाणीका विष खिला करके अचेत वा गाफिल किया; और भी हंसपदसे पतित किया है। वाणी प्रमाणसे ब्रह्म-कल्पनाको ग्रहण-धारण करके खाने या लेनेसे कदापि भव-बन्धनोंका दुःख मिटकर नहीं जाता है। सोई गारुड़=पारखी सन्त सच्चे भव-भयहारी, मुक्तिदाता होते हैं, जो कि, विषयासक्ति, ब्रह्म-अनुमान, कल्पनामें भ्रमिक, जड़ाध्यासी होकर मरते दुःख पाते हुए नरजीवोंको अपरोक्ष पारखबोध दे करके जिलाकर वा बचाकर मुक्त कर देते हैं। उन्हीं पारखी सन्तोंकी विशेषता वा धन्यता है ! उनके ही सत्सङ्गसे लाभ मिलता है ॥ १८९२ ॥

साखीः— अलख जो लागी पलकमें * पलकहिमें डँसि जाय ॥
[३३०] विषहर मन्त्र न मानै * तो गारुड़ काह कराय ? ॥ १८९३ ॥

संक्षिप्त अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! योगी लोगोंने अलक्ष्य वा अगोचरी मुद्रा लगा करके वृत्तिको एकाग्रकर दोनों नेत्रोंकी पलकोंको मूँदकर श्वासमें सुरति समाकर त्रिकुटी मध्यमें ध्यान लगाये। नेत्रपर पित्त चढ़नेसे नेत्र मूँदे-ही-मूँदे भीतर एक ज्योतिका प्रकाश देखनेमें आया। उसे ही परमेश्वरका साक्षात्कार मान लिया। तो सोई भ्रम-कल्पनाने एक पलकमें ही हृदयमें जा करके डँस दिया वा दंश मार दिया वा विवेकको काट खाया। शून्यमें गरगाफ कर दिया; जहँड़ा दिया। अलख ब्रह्म मान करके पल-पलमें जीव जड़ाध्यासी हो गये। पारखी श्रीसद्गुरु जीवोंके हितके वास्ते खानी-वाणीके विषरूप विकारको हरण करनेवाला मन्त्र=सलाह, यथार्थ गुरुमुख निर्णयका उपदेश देते हैं। काल-जालोंसे छुड़ानेका उपाय, सरल मार्ग बतलाते हैं। तहाँ जो गुरु-मन्त्ररूप शिक्षाको मानते हैं, सो वे तो भव दुःखोंसे छूटकर सुखी होते हैं; और जो गुरु उपदेशको नहीं मानते हैं, तो उनका विष हरण भी नहीं होगा। शिक्षा देने-परखानेके सिवाय पारखी सन्त और क्या उपाय करेंगे ? श्रीसद्गुरुके सत्य वचनको न मानकर मनमतिसे बन्धनमें पड़कर दुःख भोगते हैं। उन्हें दूसरा कोई क्या करें ? हठीके लिये श्रीसद्गुरुका उपाय भी कुछ नहीं लगता है, वे अपनी भूलसे आप ही मरते रहते हैं ॥ १८९३ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १०४ ॥ ❀ ॥

साखीः— मन मायाकी कोठरी * तन संशयका कोट ॥
[३३१] विषहर मन्त्र माने नहीं * काल सर्पकी चोट ॥ १८९४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! जड़ाध्यासी जीवने अपने रहनेके लिये सुरक्षाकी दृष्टिसे दो कोठरी बनाया। सो एक तो मन=सूक्ष्म देह, सूक्ष्म इन्द्रियोंकी भीतरी गुप्त कोठरी बनाया। दूसरी माया=कायाका स्थूल भाग विस्तार करके स्थूलाकार देहकी बाहरी कोठरी बनाया। फिर बाहर संशय खड़ा हुआ कि, कहींसे तन-मनके ऊपर आपत्ति, विघ्न न आ जाय। उसके बचावके लिये वेदादि वाणीके प्रमाणसे अपनी चारों तरफ संशयरूपी कोट=किला बन्दीका घेरा बनाया कि, दशों दिशामें परिपूर्ण व्यापक कोई एक ब्रह्म-ईश्वर रक्षक है। यह निश्चय कर लिया। परन्तु, मन-मायाकी कोठरीरूप देहमें रहकर तन संशयका कोट एक ब्रह्म मानकर भी त्रिविधि तापके दुःख भोगोंसे किसीका बचाव नहीं हुआ। उसी कोट और कोठरीके भीतर कल्पनाकी सुराखसे काला सर्प घुसा, सो पञ्चमुखी सर्प=पञ्च अभिमानने जीवोंको ऐसा काट खाया कि, सबको

बेहोश, मरणासन्न कर दिया। उस काल सर्पकी चोटसे कोई बच नहीं पाये। कोई विषयी हुए, कोई विरही हुए, कोई गरगाफ हुए, कोई उन्मत्त, मूक, जड़, बाल, पिशाच हुए, सर्वाङ्गमें विष चढ़ा, साक्षीपना गायब हुआ; ब्रह्म बन करके भ्रम चक्रमें पड़े। प्रथम मन-मायासे ही कल्पना खड़ी हुई, संशय बढ़ा, सुख-दुःखोंका दाता, जगत्कर्त्ता, कोई ब्रह्म-परमात्मा माना। उसी कोटके घेरामें घिरे रहे। तहाँपर एक काला सर्परूप इच्छाने आकर चोट मारा वा डंस लिया। कोई विषयानन्दमें चकनाचूर हुए, और कोई ब्रह्मानन्दमें गाफिल हुए, सुध-बुध जाती रही। अब सकल विषरूप आसक्ति, भ्रमको हरण करनेवाले पारखी श्रीसद्गुरुके सत्यन्याय-निर्णयका उपदेश, श्रीसद्गुरुके विचारके मन्त्ररूप हितकारी वचनको तो वे लोग कोई मानते ही नहीं हैं, इसवास्ते आवागमन बन्धनोंसे भी वे बच नहीं पाते हैं, अन्तमें काल कोठरीरूप गर्भवासमें जाकर कैदी बनकर महान दुःख भोगते रहते हैं। काल सर्पकी चोट बड़ी कठिन भयङ्कर विषैली है। बिना पारख कोई उससे बच नहीं पाते हैं ॥१८९४॥

॥❀॥ चौपाई ॥ भाग— १०० ॥ [चौपाई–१४ । साखी–३ । छन्द–२ । साखी–१ है]॥❀॥

१. रहहु सदा पारख हुशियारा * नाशक नष्ट सदा व्यौहारा ॥ १८९५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे मुमुक्षु नरजीवो ! यदि तुमलोग अपना हित चाहते हो, तो पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें सदा लगे रहो ! और सकल काल-जालको परखकर निजपद पारखमें सदा-सर्वदा सावधान या हुशियार हो रहो। क्योंकि, नाशक=मन, स्त्री तथा गुरुवालोगोंका व्यवहार=कर्म, उपासनादि एवं विषयादि धन्धा सदा ही जीवनको विनाश करनेवाला होता है। हंसपदको नष्ट-भ्रष्ट करनेका नाना प्रपञ्च व्यवहार ही नाशक= गुरुवालोगोंने खड़ा कर रक्खा है। अतएव उन सबोंको परखकर परित्याग करके सजग हो रहो, तभी कुशलता होगी। नहीं तो बर्बाद होनेमें कुछ देर नहीं लगेगी, सो जानो ! ॥ १८९५ ॥

२. अदबुद रूप देखाय भुलाई * नाशक नास्ति नहीं कुशलाई ॥ १८९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! काल=गुरुवालोगोंने आश्चर्यमय ब्रह्म सिद्धान्त दिखलाकर मनुष्योंको भुलाया है। वहाँ बुद्धि-विचारका निर्णय तो कुछ भी नहीं है। बुद्धिको बिगाड़ करके भ्रमिक बनकर मन, बुद्धि, वाणीसे परे ब्रह्म आकाशवत् व्यापक, निराकार या जगत्ही रूप विराट् परमात्मा है। ऐसे बाजीगरी-खेलके समान वेद-वेदान्त प्रमाणसे अद्वैतरूपके सिद्धान्त देखे और दूसरोंको भी वही दिखलाकर भूले और भुला रहे हैं। नाशक=गुरुवालोगोंका कथन ब्रह्म तो नास्ति=मिथ्या धोखा है। सो कोई सत्य वस्तु नहीं है। इसवास्ते ब्रह्म बनकर जीवकी कुछ भी कुशलाई या कल्याण नहीं होता है, नाशक=कल्पित ब्रह्म कोई चीज ही नहीं है, नास्ति=असत्य भ्रममात्र है। इसीसे उससे किसीकी भलाई, गति-मुक्ति होनेवाली भी नहीं है ॥ १८९६ ॥

३. नष्ट कला नाशक पहिचानी * फाँस गाँस मेटहु बिलछानी ॥ १८९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसकारणसे हे मनुष्यो ! नाशक=गुरुवालोग, ब्रह्म और स्त्री तथा मनादिककी नष्ट कला=हंसपदको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाली कल्पना, विषय, आशा-तृष्णादिके भागको महा बन्धनका कारण जान करके श्रीसद्गुरुके पारखबोधके बलसे यथार्थ पहिचान लो ! फिर छान-बीन करके जड़-चैतन्यका निर्णयकर खानी-वाणी भागको न्यारा-न्यारा हटाकर हंस बनकर नीर-क्षीरका निबेरा वा बिलछान करो ! और मोटी-झीनी फाँसका गाँस=सम्बन्ध विछिन्न कर डालो ! भास, अध्यास, अनुमान और कल्पनाका मिटा दो, हटा दो, त्याग दो ! फिर स्वच्छन्द निजस्वरूप पारखमें कायम हो रहो ! ॥ १८९७ ॥

४. रहस दयाल रहहु लौलाये * आश गाँस छूटे पारख पाये ॥ १८९८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे हितेच्छुक मनुष्यो ! पारखनिष्ठ श्रीसद्गुरु दीनदयाल साहेब कृपालु प्रभुके पारख रहस्य हंसदेहके सद्गुण, शुद्ध रहनीको धारणकर गुरुपदमें लौ लगा

करके सत्य प्रेम भक्ति-निष्ठा सहित वर्तते रहो ! अपरोक्ष श्रीसद्गुरुके पारखबोधको प्राप्त कर लेनेपर फिर सब आशा वा आसक्तिकी गाँस=गाँठी, जोड़, अध्यास भी छूट जायगा। क्योंकि, जिन्होंने श्रीगुरु-दयालके पारखबोध सद् रहस्यमें लौ लगा करके स्वरूपबोधको जान पाये हैं, वे आशा-तृष्णादिके गाँस= घेरासे छूट गये हैं। अतएव जो-जो नरजीव पारख बोधको पाते हैं, सो-सो खानी-वाणीके जालोंसे छूट जाते हैं। फिर उन्हें विषय-विलासकी और ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्तिकी कोई भी आशा नहीं रहती है। निराश वर्तमानमें रहते हुए वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १८९८ ॥

५. नहिं अनुमान न अटपट चाला * परखहु सब विधि यम जञ्जाला ॥ १८९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सच्चा पारख ज्ञानमें अनुमान-कल्पनाका कुछ लवलेश मात्र भी नहीं रहता है। और भास-अध्यासादिको उटपटाङ्ग चाल-कुचाल भी नहीं होती है; जगत्कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादिकी वहाँ मानन्दी रहती ही नहीं है। भक्ति, योग, कर्मादिकी अटपट चाल, नाना कष्टकर साधनाकी उपाधि भी कुछ नहीं होती है। सब विधिसे सुखदायी पारखी श्रीसद्गुरुका सत्यज्ञान है। इसवास्ते हे मनुष्यो ! तुम लोग सीधे पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गरूप भूमिका— यही सत्यलोकमें आकर सब प्रकारसे सद्गुणोंको ही धारण करके यमरूप स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंके पञ्च कोश, पञ्च विषयादि वाणी-खानीके जञ्जाल, बन्धनकारी उपाधिको अच्छी तरहसे परखकर परित्याग करो ! और गुरुज्ञानमें लक्ष्य लगाकर निज स्वरूपमें ही स्थिर हो रहो ॥१८९९॥

६. जाने जनावै पारख सोई * लहत शरण सुख जीवहि होई ॥ १९०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैसे तो चैतन्य जीव स्थूल-सूक्ष्मादि इन्द्रियाँ, देह, प्राण पञ्चक, चित्त-चतुष्टय, तत्त्व, प्रकृति, गुण, पञ्च विषयसे लेकर रोम-रोमके हालको सदैव जानता है। उन्हें सत्ता देकर अपने ज्ञान गुण चैतन्य लक्षणको प्रगट करके जनाता है। सुख-दुःखादि तथा षट् पशु धर्मका ज्ञान जानना-जनाना तो चारों खानीके बद्ध जीवोंमें भी एक समान है। वहाँ निज स्वरूपका पारखबोध नहीं होता है, इसीसे बद्ध होकर दुःखोंमें ही पड़े हैं; और जो जड़-चैतन्यके यथार्थ भेदको जानते हैं; सार-असार, सत्य-असत्य, बन्धन-मुक्तिको ठीकसे पहिचानते हैं। जिनको निज स्वरूपका अपरोक्ष बोध हुआ है। काल, सन्धि, झाँई, तथा भास-अध्यास, अनुमान-कल्पना, खानी-वाणी आदि सब जालोंको परखकर जो स्वयं उससे न्यारे हो गये हैं; और जिज्ञासु नरजीवोंको भी जैसे अपने जानते हैं, उसी तरह सबोंका कसर-खोट परखाकर यथार्थ भेद जना देते हैं, पारखबोध करा देते हैं; सोई पारखी सन्त मुक्त जीव स्वयं सुखी तथा सुखदायी होते हैं। भव-बन्धनको पूरा-पूरा जान करके दूसरोंको भी जना वा लखा देना, सबसे न्यारा स्वयं स्वरूपमें स्थिर रहना, सोई गुरुपद पारखबोध है। ऐसे सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुको शरण वा आश्रय मिलते ही नरजीवोंको सत्य पारखबोध हो जाता है। जिससे सदाके लिये जीव सुखी, मुक्त, शान्त-निर्भ्रान्त हो जाते हैं। उनके दुःखदायी विषय विकार भी सब छूट जाते हैं। तथा ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पना, विरह, तपस्यादिका कष्ट, भ्रम भी मिट जाता है। "मैं हंस जीव सबका जनैया सबसे न्यारा हूँ !" ऐसा एकरस पारखबोध होनेसे जीव सुखी हो जाते हैं ॥ १९०० ॥

७. सन्तत जीवै जीव व्यवहारा * नाशक नष्टमई संसारा ॥ १९०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिकालमें अमर, अखण्ड, अविनाशी, नित्य-सत्य, सदा-सर्वदा जीते रहनेवाला अमृत स्वरूप, ऐसे लक्षणवाला सोई जीव है। सुख-दुःखादि जानना-जानपना दर्शाना, यही जीवका व्यवहार नित्यका देह सम्बन्धमें कार्य है। संसारमें बना हुआ कार्य-रूप शरीर बिगड़ करके विनाश होनेवाला जड़ भाग नष्टरूप ही है। परन्तु इसी देहासक्तिमें पड़के जीव निज स्वरूपको भूल रहे हैं। तहाँ देहरूप ही अपनेको मानकर विषयासक्त हो नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। कोई नाशक=गुरुवालोगोंके फन्दाओंमें पड़कर जगत्रूप ही ब्रह्मको एक मान रहे हैं। स्वयं ब्रह्म

बन करके भ्रममें पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं; और जो कोई नरजीव पारखी श्रीसद्गुरुके शरण सत्सङ्गसे पारखबोधको पा जाते हैं, वे सब मानन्दीको त्याग करके सदाकाल अपना जीवके स्वयंस्वरूपका ही विचारमें लगे रहते हैं; और जीवके कल्याण होनेका सद्व्यवहार साधु-गुरुकी सेवा-भक्ति, ज्ञान-वैराग्य, विचार-विवेकमें ही लगे रहते हैं। शुद्ध व्यवहारसे यथार्थ पारखपदके टकसारमें रहते हैं। वे ही सच्चे जीनेवाले मुक्त जीव कहलाते हैं। बन्धन हो, वैसा कोई कर्म वे नहीं करते हैं; और संसारमें देह रहे तक नाशक=गुरुवालोग और नारियोंकी नष्टमयी=विषय और कल्पनादिमें पारखी सन्त कभी नहीं पड़ते हैं। वे सदा पारख भूमिमें ही सजग हो रहते हैं॥ १६०१॥

८. सो अव्यक्त नहिं चीन्है कोई ❀ यद्यपि आपु व्यक्तरूपि है सोई॥ १६०२॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखज्ञानके बिना सो मनकी कल्पना, आवागमनके कारण भ्रम-धोखा, अध्यासको कोई चीन्हते-पहिचानते नहीं हैं। अव्यक्त=व्यक्तिगतसे रहित गुप्त, निर्गुण-निराकार जगत्का मूलकारण कोई कर्त्ता ब्रह्म, निरञ्जन परमात्माको मान रहे हैं। "यह तो मेरी ही कल्पना है, मैं जीव ब्रह्मको माननेवाला उससे न्यारा हूँ! अतः भ्रमरूप अव्यक्त ब्रह्म मैं कैसे हो सकता हूँ?" ऐसा विवेक करके कोई नहीं चीन्हते हैं। यद्यपि आप अपने स्वयं जीव ज्ञानस्वरूप सबको जाननेवाला व्यक्त=प्रत्यक्ष या प्रगट वा जाहिर स्वरूप है। प्रगटमें जीव आप ही सबको जानता, मानता, ठहराता है; परन्तु, स्वयं उससे भिन्न ही रहता है। तथापि स्वयं स्वरूपकी पारखबोध न होनेसे कोई एक अव्यक्त ब्रह्म मान करके सोई अधिष्ठान ब्रह्म स्वयं ही बन जाते हैं। ऐसे महा धोखेमें पड़कर जड़ाध्यासी होकर जन्म-मरणादिमें पड़े रहते हैं॥ १६०२॥

९. देखहु व्यक्त सो सब अव्यक्ता ❀ आपु ब्रह्म आपुहि सो शक्ता॥ १६०३॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! विवेक दृष्टि खोल करके देखो! तुम जीव स्वयं स्वरूप व्यक्त=प्रत्यक्ष प्रगट मौजूद हो! और जगत्कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि कोई अव्यक्त=अप्रगट या गुप्त, निर्गुण, निराकार जो ठहराये हो, सो सब वाणी-कल्पनाके विस्तारको भी व्यक्त=प्रगट करनेवाले तुम जीव ही द्रष्टा सत्य हो! पारखबोध प्राप्त करके देखो, तुम्हारे सिवाय अव्यक्त-को कौन व्यक्त करेगा? कौन कथन करके वर्णन करेगा? तुम आप ही ब्रह्म बनते हो; आप ही सर्वशक्तिमान् ईश्वरको मानते हो, कहीं आदिशक्ति मायाको ठहराते हो, कहीं भक्ति, योग, ज्ञानादि विस्तार करते हो! अपनेको जाने बिना आप ही अपनी शक्तिको बर्बाद करके माया-ब्रह्म आदि मान-मानकर जड़ाध्यासी, बद्ध हो रहे हो! उसे परखो, विषयभोग और कल्पनाकी आसक्ति त्यागकर निज पारख स्वरूपमें स्थिति कायम करो!॥ १६०३॥

१०. पारख लहत नियारा होई ❀ आश बास हेतु सब खोई॥ १६०४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! नरजीवोंको जब गुरुमुख द्वारा यथार्थ पारखबोधकी प्राप्ति हो जाती है, तब सबसे न्यारा होकर वे निज स्वरूपमें ही कायम वा स्थिर हो जाते हैं। फिर जगत् विषयोंकी आशा-तृष्णा, वासना तथा वाणी विषयोंकी ब्रह्म-ईश्वरादिकी आसरा, अभिलाषा, बासा, आसक्ति, अध्यास जो कि, चौरासी योनियोंमें ले जानेका कारणरूप बीज है, सो सब जल-बलकर खाक हो जाता है, अर्थात् वह मिटकर नाश हो जाता है; आवागमनके सब हेतु खोकर हेराय जाते हैं। इस तरह पारखबोध पा करके नरजीव सबसे न्यारे, निर्बन्ध, मुक्त हो जाते हैं॥ ॥ १६०४॥

११. सहजहिं नष्ट स्वभाव शरीरा ❀ त्याग जतन तेहि अनबनि पीरा॥ १६०५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर प्रारब्ध भोग खतम होनेपर शरीर तो सहज ही विनाश हो जायगा! स्वाभाविक विनाशी क्षणभंगुर यह काया है। जीवन्मुक्त पुरुषके सब स्वभाव तथा देह सम्बन्ध देहान्त होते ही छूट जाते हैं। अध्यास रहित होनेसे फिर वे कभी देह धारण नहीं करते हैं; और अध्यासी जीवोंके शरीर छूटनेपर भी सूक्ष्म संस्कार बना रहता है। उसीसे चौरासी योनियोंमें

अनेकों देह धारणकर नाना दुःख भोगते रहते हैं। अथवा भ्रमिक जीव सहज ही आकाशवत् ब्रह्मको मानकर हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। नाश हो जाना, यही शरीरका स्वभाव है। सो देह रहे तक कोई विषय भोगी हुए; वे संसारके नाना दुःख सहे। कोई त्यागी साधु हुए; भक्ति, योग, ज्ञानादि साधनाओंमें अनेकों कष्टकर तपस्या, विरह, वैराग्यादिकी पीड़ा सहे। ऋद्धि-सिद्धि, स्वर्गादि, ईश्वरादि प्राप्तिकी आशासे बहुत कष्ट-क्लेश सहे। परन्तु, उनकी कुछ इच्छा पूर्ण नहीं हुई; कुछ कल्याण नहीं बना। एक दिन शरीर भी छूटा, तो वे जीव वासनावश चारखानीमें जाकर अनेकों दुःख भोगने लगे। अतएव जीते ही सो सब आशा और आसक्ति त्याग करके सुखी होओ! ॥ १६०५ ॥

१२. यतन युक्ति मत नाशक केरा * सो सब तन है करहु निबेरा ॥ १६०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें यत्न-प्रयत्न, युक्ति-प्रयुक्ति, मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त, नाना प्रकारके उपदेश जितने भी प्रगटमें प्रचार कर रक्खे हैं, सो सब नाशक=पाखण्डी गुरुवालोगोंके महा जाल-जञ्जाल हैं। नरजीवोंको फँसा करके अपना स्वार्थ पूर्ण करनेके वास्ते ही सो फैला रक्खे हैं। खानी जाल और वाणी जाल छूटनेको अत्यन्त कठिन हो गया है। पारखहीन सब मनुष्य उसीमें अरुझे पड़े हैं। विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि प्राप्तिके लिये ही नाना यत्न वा युक्ति हो रही हैं। परन्तु, बिना विचार सब कोई विनाशके रास्तामें ही जा रहे हैं। हे मुमुक्षुओ! तुम लोग यदि मुक्ति चाहते हो, तो अभी यह नरदेह साबूत है, आयु बाकी है, जब तक पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर हंसदृष्टिसे सो सब जालोंको एक-एक निर्णय करते, त्यागते जाओ! जीते ही अध्याससे रहित होकर निज स्वरूपमें ठहरो! और देहासक्तिरूप विकारोंको हटाकर जड़-चैतन्यका निर्णय करते रहो! ॥ १६०६ ॥

१३. योनी भरमत पीरा भारी * जन्म मरण दुःख दुसह विचारी ॥ १६०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! चारखानीकी अनेकों योनियोंमें भ्रमण करते-करते बड़ा भारी बहुत-बहुत पीड़ा जीव अध्यासवश सहे और सह रहे हैं। वहाँ जन्म, मरण और गर्भवासमें पड़कर त्रिविधि तापादि असह्य कष्ट-क्लेश पाये या दुस्सह दुःख पा रहे हैं। तब भी उससे छूटनेका विचार पारखबोधको धारण नहीं करते हैं, यही आश्चर्य है! कोई सुखके लिये गुरुवालोगोंके पासमें गये, मतवादी हुए; वहाँ कर्म-योनि, उपासना-योनि, योग-योनि और ज्ञान-योनियोंके अनेकों मार्गोंमें भ्रमते-भटकते, नाना साधना, तपश्चर्यादि करते हुए बड़ी भारी कठिन पीड़ा सहन कर रहे हैं। ईश्वरादिसे मिलकर आवागमनादि दुःखोंसे छूटनेका विचार करते हैं। परन्तु, ईश्वरादि ही असिद्ध मनकी कल्पना है, तो उससे किसीकी भी आशा पूर्ण नहीं होती है। अध्यासी होकर जीव पुनः जन्म-मरणादिमें पड़कर दुस्सह दुःख पाते हैं। तो भी उससे छूटनेके लिये निज स्वरूपका पारखबोध न होनेसे विचार कर नहीं पाते हैं, उलट-पलटकर भव-बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं ॥ १६०७ ॥

१४. तन अभिमान लहहु दुःख काहे ?* बनिहै परख विलासकी चाहे ॥ १६०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो! शरीरकी पञ्च अभिमान, अहङ्कार, जड़ाध्यास करके ही वह असह्य जन्मृतिका दुःख जीवोंको सहना पड़ रहा है। वही तो दुःखोंका घर वा मूल कारण है। बिना सोचे-समझे देहादिका मान-अभिमान वा गुमान लेकर बेकारमें क्यों दुःख भोगते हो? अब भी चेतो! समय रहते ही मन-मानन्दीके पाँचों अहङ्कारोंको मिटा डालो! उसमें दुःखके सिवाय और कुछ नहीं है, यह जानो! यदि तुम्हें मुक्तिकी चाहना हो, तो पारख विलासी पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहो! जब तुम पारखबोधमें ही सन्तुष्ट, तृप्त होकर विलास करने लगोगे, तभी तुम्हारे कल्याणका बनाव बन जायगा, पारखमें विलास करनेवालेको और किसी बातकी चाहना नहीं रहती है। पारखबोधके प्रतापसे ही उसके मुक्तिमार्गका साधन सब पूर्ण बन जाता है। इससे दुःखदायी तन आदिके अभिमानको सर्वथा छोड़कर फिर चाहे वैसे पारख ज्ञानके विलासमें दृढ़ बने रहो! ॥ १६०८ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ६२ ॥ ❀ ॥

साखीः— दोहरा तो नौ तन भया * पदहिं न चीन्हैं कोय ॥
[३३२] जिन्ह यह शब्द विवेकिया * छत्रधनी है सोय ॥ १६०६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं;— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! विचार-दृष्टिसे देखिये! दोहरा = ब्रह्म-जगत्की डबल मानन्दी तो नयी ही खड़ा हुई है, जब नरजीवने माना, तब हुई। उत्पत्ति और प्रलयकारी कर्त्ताकी कल्पनाका तो अनादि कालके जगत्में पीछेसे भ्रमिक मनुष्योंने नया ही कथन किया है; और अनुमान-कल्पनाके दोहरा चक्करमें पड़कर नौ कोशोंकी वाणीका मायाजाल विस्तार किया है। अथवा स्त्री-पुरुषके दो तरहके चिह्नाङ्कित शरीर तो वासनानुसार पीछेसे बने हैं। जीव पूर्वमें देहधारी थे, जैसा-जैसा अध्यास दृढ़ किये, तैसा-तैसा दोहरा नर-नारीका शरीर बनाकर पैदा हुए। फिर उसी स्त्री-पुरुषके स्थूल देहोंकी दृष्टिसे विषयासक्त होकर भूल रहे हैं। कोई ब्रह्मज्ञानमें और कोई विषयके अज्ञानमें भूले और दूसरोंको भी भुला करके भटका रहे हैं। चैतन्य जीवके हंसपद, पारखपदको तो विवेक करके कोई चीन्हते-पहिचानते ही नहीं हैं। हक-नाहक मिथ्या अहङ्कार लेकर कोई स्त्री-पुरुष देहोंके विषयके अभिमान ले रहे हैं। कोई आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर और दास बन और बना करके अहङ्कारी हो रहे हैं। जहाँसे वेदादि वाणी बनी, ब्रह्म-ईश्वरादि सिद्धान्त निकली, विषय प्रपञ्च फैली, सो जीव अपने-आपको तो नहीं चीन्हते हैं। दूसरे-ही-दूसरेको चीन्हना चाहते हैं। जिसने अपनेको नहीं जाना, वह दूसरेको क्या पहिचानेगा? यों तो देहरूप क्षेत्रका धनी जीव ही सब प्रकारसे नित्य-सत्य है। स्वरूप ज्ञान नहीं है, इसीसे बद्ध है; और जिसने सम्पूर्ण वेदादिक शब्दोंका विवेक किया, सब मत, सिद्धान्तोंका निर्णय किया, यह गुरुमुख सारशब्दका विचार किया, जड़ाध्यास-मानन्दीसे अपने जीवको न्यारा करके हंसपदमें स्थिति कायम किया, सोई छत्रधनी = पारखी सन्त निर्बन्ध-जीवन्मुक्त होते हैं। वे ही सर्वोपरि श्रेष्ठ-शिरोमणि हैं। उन्हींकी सत् शिक्षाको लेकर विवेकी हो करके निज कल्याण करना चाहिये ॥ १६०६ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १५६ ॥ ❀ ॥

साखीः— साहू चोर चिन्हैं नहीं * अन्धा मतिका हीन ॥
[३३३] पारख बिना विनाश है * कर विचार होहू भीन ॥ १६१० ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! साहू = सत्य चैतन्य जीव, सत्यन्यायी साधुरूप पारखी श्रीसद्गुरु हैं। चोर = मन, गुरुवालोग, स्त्री, परिवार, वेद-शास्त्रादिकी वाणी, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि कल्पना, नाना देवता, ये सब जीवन-धनको चुरानेवाले चोर, लुटेरे, डाकू, ठग हैं। उन साहू = पारखी सन्त, और चोर = बेपारखीके लक्षणोंको वा चाल-कुचालको देख करके भी ठीक-ठीकसे पहिचानते वा चीन्हते नहीं हैं, सो मति-बुद्धि, विवेक-विचारके हीन मूर्ख अन्धे हैं। पक्षपातसे विवेक-दृष्टिको फोड़ करके वे पक्के अन्धे बने हैं। चोरोंकी सङ्गतिमें रहकर सर्वस्व लुटे गये, तो वे भी चोर ही बन रहे हैं। पारखदृष्टि न होनेसे हित-अहितको जाने बिना जड़ाध्यासी, गाफिल हुए हैं। आगे उसीमें वे मारे जाते हैं। पारखबोध न होनेसे नरजीवके हंसपदका विनाश हो रहा है। पारखी श्रीसद्गुरुके मिले बिना जड़ाध्यासरूप उस विनाश मार्गसे मनुष्योंको बचानेवाले दूसरे कोई भी नहीं हैं। इसवास्ते हे मनुष्यो! पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें आकर पारखपदका विचार करो! सत्यासत्यका निर्णय करो! साहू और चोरका ठीकसे पहिचान करो! सार-असार, जड़-चैतन्यका पारख करो! और चोररूप गुरुवालोगोंकी सङ्गति, मानन्दी, कल्पना, विषयादि विकारसे न्यारे हो रहो! सबसे भिन्न द्रष्टा निज चैतन्य पारखस्वरूपमें स्थिति किये रहो! कभी हंसपदसे बाहर मत् निकलो! पारखबोधके बिना बहुतोंका विनाश हो गया है। अतएव सदा तुम पारख पदका विचार करके उसीमें एकरस होकर जड़ भास-अध्याससे अलग हो रहो! वही जीवकी महानपद-मुक्ति स्थिति है, सो जानो! ॥ १६१० ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १४० ॥ ❀ ॥

साखीः— माया तजे क्या भया ? * जो मान तजा नहिं जाय ॥
[३३४] जेहि माने मुनिवर ठगे * सो मान सबनको खाय ॥ १९११ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! संसारकी मोटी माया—स्त्री-पुत्र, पिता-माता, भाई-बहिन, कुल-परिवार, धन-सम्पत्ति, घर-द्वार, राज-पाट, इत्यादि संसारी माया-जाल छोड़कर षट् दर्शनोंके किसी भेषमें साधु हो गये। योगी, ज्ञानी, भक्त, विज्ञानी, सिद्ध-साधक हुए। परन्तु, उससे क्या लाभ हुआ ? भेष ही मात्र बदलनेसे क्या किसीकी वासना-अध्यास छूटी ? किसको पारखबोध मिला ? किसीको नहीं मिला। बल्कि, पहलेसे भी ज्यादा उपाधि उलटा मान-गुमान, अहङ्कार, मद-मत्सरादि विकार लग गया। अब कहिये ! माया तजकर भी उसको क्या फायदा हुआ ? यदि मान-मानन्दी भी छोड़ देते, और पारखपदपर ठहरे रहते, तब तो पूर्ण लाभ होता। परन्तु, मान-मानन्दी तो किसीसे भी तजी नहीं गयी। वर्ण-आश्रमादिके अभिमान, और आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, नाना देवी-देवता, भूत-प्रेत-गण, सात स्वर्गादिमें अनेक सुख, ऋद्धि-सिद्धि, मन्त्र सामर्थ्य, षट् दर्शन, छियान्नवे पाखण्डके अनेकों सिद्धान्त इत्यादि मिथ्या प्रपञ्च सभीने मान रक्खा है। मिथ्याको ही सत्य करके दृढ़तासे मान रक्खे हैं। सो विवेक करके छोड़ा नहीं जाता है, अपने-अपने पक्षकी मानन्दी सभीको प्रिय लगी है; और कोई विज्ञानी परमहंस लोग ब्रह्मको निर्गुण मानकर अपने भी निर्गुणियाँ हुए, बाल, पिशाच, मूक, उन्मत्त और जड़वत् हुए, तो इससे क्या हित हुआ ? जड़ाध्यासी हो-हो करके चौरासी योनियोंके ही अधिकारी हुए; और जिस मान, मानन्दी, पक्ष, धोखा, भ्रममें पड़कर पूर्वमें देवता, ऋषि, मुनि, श्रेष्ठ बड़े-बड़े ज्ञानी, तपस्वी, योगी, कर्मी, भक्तादि बिना पारख ठगा गये; मनुष्यपदसे पतित हुए। कल्पनामें पड़ करके व्यर्थ नर-जन्म गमाये, बद्ध हुए। सोई मान-अभिमान, मानन्दी, खैंचातान, पक्षपात, भ्रम, भूल, जड़ाध्यासने अभी वर्तमानके पण्डित तथा मूर्ख सब मतवादी, पीर-पैगम्बर, औलिया, इत्यादि समस्त भूमण्डल-के मनुष्योंको भ्रमा-भुला करके बुद्धिको खा रहा है; नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है। कल्पनाने सबके विवेक-को खा लिया वा नशा दिया। इसीवास्ते कहा गया है कि, सिर्फ मोटी माया ही छोड़नेसे क्या हुआ ? बीजरूप झीनी मायाका मान तो छोड़ा नहीं गया, तो फिर भी चौरासी योनियोंमें पड़ेंगे। जिस मानने बड़े-बड़े मुनियोंको ठगा, वह छोटे लोगोंको क्या छोड़ेगा ? सोई मानने सबोंके मनुष्यपदको खा लिया और अभी खा रहा है; और वह सब मान-मानन्दी छोड़े बिना पारखपदकी प्राप्ति नहीं होती है, पारख स्वरूपमें स्थिति हुए बिना जीव आवागमनसे छूट नहीं सकते हैं। मुक्तिके लिये सब मानन्दी छोड़ना परम आवश्यक है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १९११ ॥

॥ ❀ ॥ त्रोटक छन्द, नम्बर— [१३] ॥ ❀ ॥

१. संसार संशय शरीर * भवधार गहिर गम्भीर ॥ १९१२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! एक संशय = वाणी जाल है, दूसरा शरीर = खानी जाल है, यही मुख्य महान संसारका रूप है। उसके आसक्ति-जड़ाध्यासके कारणसे ही सब जीव जन्म, मरण, गर्भवास, त्रिविधि तापादिके नाना दुःख भोग रहे हैं। संसरण = जाना-आना, जन्मृतिमें पड़ना, जहाँ हो रहा है, उसीका नाम 'संसार' है। नर देहधारी जीवोंको शरीर और बाहरी पञ्च तत्त्वोंका विस्तार देखकर एक बड़ा भारी संशय या दुविधा उत्पन्न हुई कि, यह पिण्ड-ब्रह्माण्ड कैसे बना ? किसने बनाया होगा ? और फिर शरीरमें दुःख-सुखादिका अनुभव करके इच्छा पूर्ण न होनेसे आखिरमें कोई एक सर्वशक्तिमान् जगत्कर्त्ता परमेश्वरादिको अनुमानसे निश्चय किया। सोई भवधार = मनःकल्पित वाणीकी धारा बड़ी गहिरी गम्भीर स्थिर जीवोंकी बुद्धिमें अटल हो गयी

है; और जिस विषय वासना करके शरीर बना है, सोई विषय भोगोंकी चाहना, भवधार बड़ी गहिरी गम्भीर हुई। तब अपार, अथाह, अकथनीय कहकर धोखेमें डूब गये ॥ १९१२ ॥

२. भव तरङ्ग बहु पीर ❀ पारख लगावै तीर ॥ १९१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक तो भोगेच्छाकी तरङ्गरूप सङ्कल्प उठा करते हैं, उससे संसारी बहुत पीड़ित-दुःखित होते हैं। दूसरा, भव तरङ्ग=मनःकल्पित वाणीकी लहरी, इष्ट प्राप्तिका विरह बार-बार उठा करता है, जिससे कठिन तपस्या, कर्म, भक्ति, योगादिक साधनाएँ करनेमें बहुत ही दुःख सहन करते हैं। अन्तमें दोनोंके अध्याससे चौरासी योनियोंके दुःख सहा करते हैं; और जो कोई मुमुक्षुजन लोक-वेदकी आशा छोड़कर पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके पारख ज्ञानरूप जहाजमें आरूढ़ हो जाते हैं; सो श्रीसद्गुरुके पारखबोध-बलके प्रतापसे सुगमतासे खानी-वाणीके भवसागरके उसपार हंसपदके किनारामें लग जाते हैं। एक पारखबोधरूपी पोत ही जीवोंको मुक्तिके तटमें लगाता है। सब विघ्नोंसे पार उतार देता है। इससे पारखबोधमें ही सदा लगे रहना चाहिये ॥ १९१३ ॥

३. बहु बहि गये तेहि धार ❀ कहि कहि अथाह अपार ॥ १९१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनादि कालके जगत्में बहुतेक नरजीव उसी छूटनेको अत्यन्त कठिन माया-मोह पञ्च विषयोंकी धारामें और पञ्च कोशोंकी वाणी कल्पनाकी धारामें बह करके भ्रम चक्र और गर्भचक्रमें पड़ गये। अभी तक हंस भूमिपर लौट करके नहीं आये। जाते-जाते यह पुकारते गये कि, वह जगदीश्वर परब्रह्म-परमात्माका हमने गम नहीं पाया, थाह नहीं पाया। वेद भी 'नेति-नेति' कहकर थक गया। इसवास्ते वास्तवमें वह अगम, अपार, अथाह, अगोचर, मन, बुद्धि, वाणीसे परे जैसे-का-तैसा परमात्मा है; ऐसा कह-कहकर धोखेमें डूब मरे; और दूसरोंको भी डुबा रहे हैं। निज द्रष्टा चैतन्य जीवकी तरफ उन किसीने भी लक्ष्य नहीं किया। अतः वे भ्रममें ही बहे और बहा रहे हैं, बिना विवेक ॥ १९१४ ॥

४. सूझै न धून्द अन्धार ❀ परख प्रकाश उबार ॥ १९१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निज स्वरूपको भूलकर भटक करके नरजीव पहले तो निधड़क विषय भोग और कल्पनाके मार्गमें चले गये। वहाँ माया-मोहका सघन अन्धकार छा गया, हित-अहित कुछ भी देखनेमें नहीं आया। फिर भी अन्धाधुन्ध आगे बढ़ते चले गये। ज्ञान-अज्ञान, सत्य-मिथ्या, सार-असार उन्हें कुछ भी नहीं सूझा। असिपद ब्रह्मानन्दमें गरगाफ हुए। महा-अज्ञान, अविद्या अन्धेरगर्दीमें पड़े, विभ्रम हुए; मनःकल्पनाकी बाढ़में बह गये। भ्रम-भूलकी बाढ़ने उन्हें ऐसे वेगसे बहाई कि, कहीं रुक ही नहीं सके, बहते-बहते चौरासी योनियोंमें पहुँच गये; और नरदेहमें आकर जिन नरजीवोंको श्रीसद्गुरुके पारखज्ञानका प्रकाश उदय हुआ, उन्हें सब कसर-खोट देखनेमें आया, तो निजपदमें ठहर करके वे भवधारसे बच गये। पारखबोधका अपरोक्ष प्रकाश ही नरजीवोंको भव-जलसे उबारकर पार उतारकर सुखी-निस्पृह कर देता है। बिना पारख सूर्य-चन्द्रादिके जड़ प्रकाश और तत्त्व सम्बन्धी ज्योति-प्रकाश, भक्ति, योग, ब्रह्मज्ञानके प्रकाश इत्यादि कोई भी नरजीवको मुक्त कर नहीं सकते हैं। पारखबोधमें स्थिति होनेसे ही जीवन्मुक्ति पद प्राप्ति हो जाती है। इसीसे नरजीवोंका उबार हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १९१५ ॥

५. तेहि धन्य ! धन्य ! सो जीव ❀ जिन्ह परख पाये पीव ॥ १९१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिन जिज्ञासु मनुष्योंने पीव=पिया-पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुको पहिचान पाया तथा पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें प्रेम लगाकर सारासार-को परख पाया, निज स्वरूपका अपरोक्ष पारखबोध कर पाया। उन्हीं बड़े भाग्यशाली बुद्धिमान् नरजीवोंको धन्य है ! धन्य है ! सोई पारखी सन्तरूप नरजीवको अनन्तों धन्यवाद है ! सब प्रशंसा उन ही

पर न्यौछावर है ! उन्होंने ही नरदेह पानेका यथार्थ लाभ उठाया है। अपने स्वयं जीवको भव-बन्धनोंसे छुड़ाकर फिर अन्य जीवोंको भी सत् मार्गमें लगाते हैं। तरण-तारण पारखी सन्तकी ही विशेषता सर्वोपरि है। जिन्होंने पारखबोध पाया, उन्होंने ईश्वरादि कर्त्ता, मालिककी कल्पना तथा भ्रमको भी हटाया। परीक्षा-दृष्टिसे जान पाया कि, यह नरजीवकी ही मिथ्या कल्पना है; जीव ही सत्य है॥१९१६॥

६. बहु छीर कवि मत कीव * मथि मथि निकारै घीव ॥ १९१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दूध जमा करके दहीको मथन कर-करके जैसे घी निकाल लेते हैं, तैसे ही क्षीर=दूधरूप अनेकों नरजीवोंने कल्पनाके खटाई-जामन डाल करके अपनेको जमाया वा भ्रमाया। कवि=ब्रह्मादि, वाल्मीकि, व्यासादि नाना पण्डितोंने अनेकों वाणी मनकी कल्पनासे रचकर नाना मत स्थापित किया है। उसीको पढ़, सुन, गुनकर मनसे मथन करते-करते भ्रमिकोंने घीवरूप अनेक अनुभव सिद्धान्त स्थापन किया है। परन्तु, सो सबमें धोखा-कसर ही भरा है, अतः वह खोटा है। क्योंकि, वहाँ कहींपर भी पारखबोध नहीं है। अविचारी बहुत नरजीव कवि कृत भ्रमपूर्ण मतके पक्षपाती बनकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। कोई बिरले पारखी सन्त ही सब ग्रन्थ-पन्थोंको छान-बीनकर बिलोय करके या मथ-मथ कर न्यारा पारखबोधका घीव निकालकर जीवको भव-बन्धनोंसे छुड़ा करके रक्षा करते हैं। सारासारका निर्णय करके सारको ही ग्रहण करते हैं ॥१९१७॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर— [१४] ॥ ❀ ॥

१. सो वचन हैं टकसार * करु एक एक विचार ॥ १९१८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! सो सब खानी-वाणियोंको मथनकर सार-असारका यथार्थ सत्य निर्णय किया हुआ 'सत्यशब्द टकसार' नामक=बीजक सद्ग्रन्थके सारशब्द गुरुमुख वाणीरूप सत्यन्यायका वचन मौजूद है; और उसी निर्णयको ले करके यह टकसार नामका ग्रन्थ भी बना है। सो यह भी श्रीसद्गुरुके निर्णय वचनके न्यायको ही पुष्ट करके पारख बोध दर्शाता है। अतएव मूल बीजक सद्ग्रन्थके और पञ्चग्रन्थीके एक-एक शब्दको विचार करते हुए एक-एक जालका निरुवारकर त्यागते जाइये ! बीजक साखी- ८१में श्रीसद्गुरुने कहा हैः—

साखीः— "एक एक निरुवारिये। जो निरुवारी जाय ॥ दोय मुखका बोलना। घना तमाचा खाय ॥"

एक जीव और एक ब्रह्मका विचार करिये, फिर जीव सत्य और ब्रह्म मिथ्याको पारख करके यथार्थ जान जाइये ! ॥ १९१८ ॥

२. मत देखहु सहज लबार * करे जीवनहि सङ्घार ॥ १९१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बराबर पारख दृष्टिको खोलकर देखिये ! सहज ही झूठे गुरुवालोगोंके मत-पन्थके सिद्धान्त आकाशवत् निर्गुण व्यापक ब्रह्म तो भ्रम मात्र मिथ्या-धोखा है। तैसे ही लबार=मिथ्यावादियोंके सब मतमें दृष्टि फैलाकर देखिये ! वहाँ कहीं भी सार पारख बोध नहीं है। सहज ही शून्यमें गिरे और गिरा रहे हैं। वे गुरुवालोग काल बनकर नरजीवोंके जीवन हंसपदको संहार=विनाश, चकनाचूर किये या नष्ट-भ्रष्ट पतित कर रहे हैं। इसवास्ते चेत करके उनके कुसङ्गसे न्यारा हो रहना चाहिये ॥ १९१९ ॥

३. बेढ़ा सो खेत उजार * तेहि आश भास उबार ॥ १९२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे किसान लोग खेतकी रक्षाके लिये काँटी-फाँसकी बेड़ा, बाड़ या बागड़ चौतरफ लगाते हैं। यदि वह बाड़ ही खेतकी फसलको उजाड़ करे, तब एक तो आश्चर्य हुआ; दूसरा, उस बाड़से सिवाय हानिके और क्या लाभ हुआ ? कुछ नहीं हुआ। तैसे ही खेतरूप संसारमें फसलरूप शिष्योंकी रक्षा वा मुक्तिके वास्ते किसानवत् गुरुवालोगोंने वेद-शास्त्रोंकी मर्यादासे बाड़-बन्धन लगाया। कुल रीति, वेद रीतिसे चलनेको लगाया, अन्तमें वेदान्तके प्रमाणसे नभवत् ब्रह्म मान करके शून्यमें निवास किये। सो बेड़ा=वाणी कल्पनाने जीवके साक्षी-पदरूप

खेतको खाकर उजाड़ कर दिया। उसी मिथ्या भास ब्रह्म-ईश्वरादिकी प्राप्तिसे कल्याणकी आशा करके दुःखसे उबरना वा पार होना चाहते हैं। परन्तु, पारखबोधरूप पोतके आधार बिना बीच धारामें जाकर जड़ाध्यासी होकर डूब मरते हैं ॥ १९२० ॥

४. परपञ्च सब बदकार * बेबुध करैं इतवार ॥ १९२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंके पञ्च कोशोंका नाना वाणी प्रपञ्च और विषय प्रपञ्च वह सब ही बेकाम, सड़ा हुआ मुर्दाके समान निकम्मा बदकार=खराब, नकली, खोटा, दुर्गन्ध वायुरूप खानी-वाणीकी वासनासे भरा हुआ जीवोंको चौरासी योनियोंमें भटकाने-वाला है। परन्तु, बेबुध=बुद्धि विचारहीन, पारखहीन, पठित और अपठित मूर्ख लोग बिना सोचे-समझे स्त्री और गुरुवालोगोंका बड़ा विश्वास कर रहे हैं। विषयानन्द और ब्रह्मानन्दको अच्छा सुख मान रहे हैं। वेद और कुरानादि वाणीको दृढ़ निश्चय करके मान रहे हैं। मिथ्याको सत्य समझ-कर अन्ध-विश्वासी लोग जड़ाध्यासी हो करके मारे जाते हैं, बिना विवेक ॥ १९२१ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— १०६ ॥ ❀ ॥

साखीः— बेहा दीन्हों खेतको * बेहा खेतहि खाय ॥

[३३५] तीन लोक संशय परी * मैं काहि कहौं समुझाय ॥ १९२२ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो! बेहा=बाड़, बड़ाङ्ग, काँटी आदिका घेरा खेतका फसल बचानेके लिये किसान लोग खेतके चौतरफ लगाते हैं; और रखवाली रखते हैं। यदि कभी वही बेड़ा या बाड़ और रखवार ही सब खेतको खा जाय, नाश करे, तो कितना विपरीत अनर्थ हुआ? फिर खेत रक्षाके सब आशा-भरोसापर पानी फिर गया, यानी व्यर्थका परिश्रम मात्र हुआ; लाभ नहीं मिला, हानि हो गई। तैसे ही यही संसाररूप खेतमें जीवरूप फसल उत्पन्न हुई। नरजीवोंको हित, कल्याण, मुक्ति, सुखादि प्राप्ति करनेकी प्रबल इच्छा हुई; और कल्पना करके ईश्वरादि कर्त्ता मानकर वेद-शास्त्रादि अनेकों वाणीजाल बनाये। वही वेद-वेदान्तादिके प्रमाणसे, गुरुवालोगोंने नरजीवोंको नाना तरहके उपदेश दृढ़ाये। चार वर्ण, चार आश्रमोंका घेरा लगाया है; कर्मादि पञ्च मार्गोंका बड़ाङ्ग गाड़ा है। ब्रह्म-ईश्वरादिको निराकार ठहरा करके फिर उसे प्राप्त कर सुखी होनेका आशा लगाया है। इसप्रकार जो कल्पित वाणीकी शिक्षा जीवोंको उन्होंने दी वा ली वही भ्रम, कल्पना, धोखारूपमें मनुष्योंकी विवेक बुद्धिको खा गई; और भ्रमा-भ्रमा करके खा रही है। अथवा पुरुषोंकी रक्षाके वास्ते संसारमें विवाह करके स्त्री लाकर घर-गृहस्थीमें साथ लगा दिया। अब वही स्त्री ही पुरुषोंके बल, वीर्य, बुद्धि, सद्गुण विचार-वैराग्यादिको खा रही है। रक्षाके बदले दोनों तरफसे हानि हो ही रही है; और ईश्वर, वेद वाणी, गुरुवालोगोंके भरोसे नरजीव नाना मार्गमें बेफिक्र हो करके लग रहे हैं। परन्तु, वही मनुष्योंको भ्रमा रहे हैं, भुला करके नष्ट कर रहे हैं। उसीसे जीवनका विनाश हो रहा है। भला! कैसे चौरासी योनियोंसे बचेंगे? कल्पना ही जीवका काल हो करके खा रही है। तीन लोक=सात्त्विक, राजस और तामस या भक्त, कर्मी और योगी, तथा कामी, क्रोधी और मोही— सारे संसारके यही त्रिगुणी मनुष्योंको नाना तरहके संशय आ करके पड़ी। जगत्के पदार्थोंको देखकर, सुख-दुःखोंको देहमें अनुभव करके इसके यथार्थ भेदको न जाननेसे कोई कर्त्ता ईश्वरादिका अनुमान दृढ़ हुआ है। उससे मिलनेके लिये नाना प्रयत्न किया, परन्तु, सब व्यर्थ हुआ। इसीसे तो सब सन्देहमें पड़ गये कि, परमेश्वरसे मिल नहीं सके, अब हमारी कैसे गति-मुक्ति होगी? जगत्में सब कोई मतवादी पक्षपाती, अविचारी, भ्रमिक हो रहे हैं। मेरे वचनपर लक्ष्य नहीं करते हैं, तो मैं किसको सत्य न्याय-निर्णयका भेद समझा करके कहूँ? वास्तवमें पाँच जड़ तत्त्व और अनन्त चैतन्य जीव स्वयं सिद्ध अनादि हैं। ये कभी किसीसे नहीं बने हैं, और कोई इनके स्वरूपको बिगाड़कर नाश भी नहीं कर सकते हैं। जगत्कर्त्ता मानना

सरासर मिथ्या है, मनुष्योंकी भूल है। अतएव ईश्वरादि प्राप्तिके लिये की हुई सब साधनाएँ व्यर्थ निष्फल हो जाति हैं। जीव ही सत्य हैं; परन्तु, जड़ाध्यासी होनेसे आवागमनमें पड़ रहे हैं। मच्छी-की नाईं अपनी भूलसे आप ही दुःख पा रहे हैं। पारख स्वरूपकी स्थिति हुए बिना किसीकी गति-मुक्ति नहीं होती है। यह निर्णय मैं किसे कहकर समझाऊँ! कोई जिज्ञासु विवेकी ही इस निर्णयको समझेंगे ॥ १६२२ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १०१ ॥ [चौपाई- ११ । साखी- ३ है] ॥ ❀ ॥

१. संशय भरम मिटावहु भाई ! * परख विलास प्रीति अधिकाई ॥ १६२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे भाई सन्तो ! हे मनुष्यो ! सारग्राही होकर भ्रमरूप सकल संशयको परख करके मिटाओ ! तुम्हें सुख-दुःख देनेवाला ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी-देवतादि कोई नहीं हैं। क्यों मिथ्या भ्रम मानन्दीमें पड़ते हो ? निज कृत कर्मोंका फल ही समयानुसार तुम लोग पा रहे हो। ब्रह्म आदि जो तुम मान रहे हो, सो मिथ्या भ्रम ही है। भ्रम-संशय ही दुःखदायी अध्यासका कारण है। इसलिये सार-असारका निर्णयकर उसे मिटाओ, हटाओ; मिथ्या भावनाको छोड़ो ! और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विलास, न्याय-निर्णयमें विशेष ही प्रेम-प्रीति लगाये रहो ! सत्सङ्ग, विवेक-विलासमें अधिक प्रीति होनेसे पारखबोधकी परिपुष्टि होती है। जिससे निःसन्देह भ्रम रहित होकर जीव निजपदमें ही ठहर जाते हैं ॥ १६२३ ॥

२. परख परे नहिं और ठिकाना * धोखेमें मति फिरहु भुलाना ॥ १६२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखपद सर्वोपरि सर्वोच्च स्वतन्त्र मुक्ति स्थिति है। पारखसे परे जीवको ठहराव होनेका ठिकाना या भूमिका मुक्तिका पद और कोई भी कहीं नहीं है। अपरोक्ष पारखबोध प्राप्त होते ही नरजीव निर्बन्ध हो जाते हैं; और कोई आशा-बासा, कल्पना उनमें नहीं रहती है। इसलिये पारख भूमिकामें ही सब प्रकारसे कायम हो रहो ! और ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि मिथ्या मानन्दीका तो कहीं पता ही नहीं लगता है। अतएव निजपदको भुला करके धोखेमें पड़कर गुरुवालोगोंके कुसङ्गमें जहाँ-तहाँ मारा-मारा मत् फिरो ! इधर-उधर मत् भटको ! जो धोखेमें पड़े, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, हंसपदको भुला करके कुमार्गमें फिरने लगे। वे नाना तरहसे दुःख पाये और पा रहे हैं। यदि अब भी कल्याण चाहते हो, तो भ्रम, धोखेके मार्गमें नहीं फिरो ! उधरसे हटकर पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें रहकर अपना सुधार करो, पारख बोधको प्राप्तकर हंसपदमें विश्राम करो ! यही सत् कर्मको पूर्ण करो ! ॥ १६२४ ॥

३. और बिरानेके मत बौरा * फिरहि बिकल दहुँदिश जग दौरा ॥ १६२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे बौरे ! नरजीव ! तुम लोग निजपद पारख और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गको छोड़कर क्यों बिराने = दूसरे-दूसरे धोखा, भ्रम, कल्पनामें लगानेवाले भ्रमिक मतवादी पाखण्डी गुरुवालोगोंके नाना कुमतमें लगकर पागल हो रहे हो ? नाहक क्यों बौरा रहे हो ? जो कोई और ही बिराने विजातियोंके मतमें लगे या लग रहे हैं; सो बुद्धि-विचारको खोकर दिवाने हो गये और दिवाने हो रहे हैं। सारको छोड़कर असारमें लगे हैं। इसलिये कल्पित ईश्वरादि प्राप्तिके लिये विरहमें व्याकुल होकर दौड़ते, रोते, कराहते, नाचते-गाते, उछलते-कूदते हुए बाहर दशों दिशाओंमें चारधाम-चौंसठ तीर्थादिमें भटकते फिर रहे हैं; और कोई चार वेद, षट् शास्त्रोंकी दशों दिशाओंमें कल्पना लेकर दौड़ लगा रहे हैं। कोई योगाभ्यास करके मनको दौड़ा करके दशों इन्द्रियोंको रोककर विकल हो करके शून्यमें फिर रहे हैं। कोई दशों दिशाओंमें परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म मानकर उसमें मिलनेके लिये व्याकुल हो कर दौड़ रहे हैं। बाल, पिशाच, मूक, उन्मत्त ऐसे दुर्दशाको ले करके फिर रहे हैं; बिना पारख जड़ाध्यासी हो रहे हैं ॥ १६२५ ॥

४. कतहुँ न थीर झीना औ मोटा * नाशक नष्टमई कलि खोटा ॥ १९२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मोटी-माया खानी जाल— स्त्री, पुत्र, धन, घरादि विषय प्रपञ्चोंमें लगकर तथा झीनी-माया वाणी जाल— वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, स्वर्गादि प्राप्तिकी आशासे कर्मादि साधनाओंमें लगकर उनमें कहीं भी जीवको स्थिरपद या ठहराव होनेकी भूमिका नहीं मिलती है; मोटी-झीनी दोनों माया हंसपदका नाशक है। कलि=संसारमें विषय और कल्पना दोनों ही खोटी, असत्य नष्टरूप हैं। अतएव नाशक=स्त्री और गुरुवालोगोंके नष्टमई=खानी-वाणी जालमें कभी नहीं लगना चाहिये। वह विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दकी कली खोटी है। उसे परख करके परित्याग करो ! सत्य हंसपदमें पहुँचकर आराम करो ! ॥ १९२६ ॥

५. लहहु परख परखावहु हंसा ! * जे कछु गाँठि बाँधेहु संसा ॥ १९२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे हंस जीव ! कुमति-कुटिल कागरूप पाखण्डियोंके कुसङ्गको छोड़कर हंसरूप पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गरूपी सरोवर, साधु मण्डलमें सदा निवास करके विवेक-विचार पूर्वक प्रथम स्वयं स्वरूपका पूर्ण पारखबोध प्राप्त करो ! निजपदकी स्थिति होनेपर फिर और दूसरे जिज्ञासु हंस मनुष्योंको भी उसी प्रकारसे सत्य निर्णय लखा करके जड़-चैतन्यका भेद यथार्थ परखाओ ! भ्रम-भूल छुड़ा करके हंस जीवको पारखपदमें ठहराओ ! प्रथमसे अबोध अवस्थामें जो कुछ भी संशयकी गाँठी मनमें बाँध रक्खे हो, सो सबको यथार्थ परख-परख करके खोलो ! जड़ाध्यासकी ग्रन्थिको मिटाओ ! और संसारमें अबोध मनुष्योंने जो कुछ भी मोटी-झीनी, विकारकी गाँठी बाँध रक्खा है, उन्हें भी लखा-लखा कर उनका सन्देह निवृत्त करो ! निःसन्देह, निर्बन्ध, स्वच्छन्द, मुक्त हो जाओ ! ॥ १९२७ ॥

६. परखत गाँठि संशय नशावै * नाशक अपनो रूप देखावै ॥ १९२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें टकसारकी रीतिसे परखते ही सत्यासत्यका पूरा-पूरा भेद मालूम हो जायगा। पारख कसौटीमें कस करके निर्णय करके देखनेपर खरा-खोटाकी उसी वक्त पहिचान हो जायगी। कठिन-से-कठिन संशयकी गाँठी भी खुलकर वा छूटकर नाश हो जायगी। ब्रह्म या खुदा आदिकी मिथ्या मानन्दी कुछ रहने न पायेगी। परन्तु, हंस जीवको उसप्रकार जालसे छूटता हुआ देखकर तहाँ धूर्त गुरुवालोग अपना कपटरूप दिखलाते हैं। झूठा स्वाङ्ग बनाते हैं; पारखी सन्तोंके जैसे ही मिलता-जुलता भेष, छलनेकी वाणी बनाते हैं। आत्मा-परमात्माके भेद-अभेद करके अद्वैत सिद्धान्तका रूप दिखलाते हैं। कहीं अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, ज्योति-दर्शन, नाद-श्रवण, अमृत-पान, ऋद्धि-सिद्धि आदिकी महिमा वर्णन करके हंसपदको विनाश करनेके लिये लोभ, मोह, भय, लालच, इत्यादि अपना-अपना अनेकों रूप-विरूप, विचित्र स्वरूप दिखलाते हैं; मनुष्योंको नाना प्रकारसे भुलाना चाहते हैं। परन्तु, पारखी सन्त उनके समस्त कपट जालोंको जानते हैं। इसवास्ते कभी उनके घेरामें नहीं पड़ते हैं, परखते ही नाशककी सब सन्देह ग्रन्थिको नशाकर शान्त हो रहते हैं ॥ १९२८ ॥

७. सो पहिचान मान सब डारो * परवश यम जीवन मति हारो ॥ १९२९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! जड़-चैतन्य, सार-असारादिका विवेक करके नित्य-सत्य स्वरूपको पारख-दृष्टिसे देखकर पहिचान करो ! और बन्धन-मुक्तिके हेतुको भी पहिचानो ! अज्ञान करके तुमने जो-जो मानन्दी कर रक्खी है, ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, देवी-देवता, स्वर्ग-नरक, भूत-प्रेतादि मिथ्या भ्रम हैं। उनके मान-गुमान पाँचों अभिमान आदि सब विकारोंको निकाल डालो ! भीतरसे निकालकर उसे बाहर फेंक दो ! अरे भाई ! मिथ्या मानन्दीको लेकर यमरूप मन, स्त्री और गुरुवालोगोंके अधीन वा पराये वश होकर अपने अमूल्य नरजीवनके दावको व्यर्थमें मत् हारो, मत् खोओ ! नहीं तो तुम्हें पीछे बड़ा पछतावा करना पड़ेगा।

समय बीतनेपर कुछ भी नहीं सुधरेगा। इसलिये अभी सावधान हो जाओ! सो दुष्ट यमको पहिचानकर उनका सङ्ग त्याग दो! और उनके घेरामें कभी मत् पड़ो! ॥ १६२६ ॥

८. बहियाँ बल पारख प्रभुताई * गहत शरण सो लेत छोड़ाई ॥ १६३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिनके हाथमें पारख ज्ञानका महाबल है। साथमें सर्वाङ्ग हंस रहनी-रहस्य, सद्गुण सम्पन्न हैं, ऐसे पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुकी विशेषता सर्वोपरि है। पारख ज्ञानके दिव्य बलवाले पारखी सन्त परम प्रभु श्रीसद्गुरुकी जो सच्चे दिलसे शरण-ग्रहण करके उनके सद् उपदेशको धारण कर लेते हैं, सो उन्हें पारखी श्रीसद्गुरु काल-जालोंसे बाहर निकालकर छुड़ा लेते हैं। बन्धन छुड़ा करके मुक्त भी कर देते हैं। इसीसे उस बारेमें चेतावनी देते हुए श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, साखी— २७७में कहा हैः—

साखीः-"करु बहियाँ बल आपनी। छाड़ बिरानी आस॥ जाके आँगन नदिया बहै। सो कस मरै पियास?॥"

श्रीसद्गुरुके पारखबोधके बल प्रतापसे सब धोखेसे जीव छूट जाते हैं। सबसे महान पारख पदकी प्रभुताई है। पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-ग्रहण करते ही जीवको महान गुरुबल प्राप्त हो जाता है। सो हंस जीवको पारखी श्रीसद्गुरु सब भव-बन्धनोंसे छुड़ा लेते हैं। इसवास्ते सबकी आशा वा आसक्ति त्यागकर प्रबल सत् पुरुषार्थ करके पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होओ! तभी सब जालोंसे छूटकर तुम मुक्त होओगे, सो जानो! ॥ १६३० ॥

९. कलह कल्पना सब जग भर्मा * निर्मल चाल परखमय मर्मा ॥ १६३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देखिये! पारख ज्ञानका विचार न होनेसे सब जगत्के मानव जीव कोई विषयासक्त हो राग-द्वेष, छल-कपट, काम-क्रोधादिके वश हो, नाना कलह-झगड़ा, टन्टा, फसाद कर रहे हैं। कोई वाणी-कल्पनासे नाना मत-पन्थ, सिद्धान्तोंका पक्ष पकड़कर भ्रमिक-पाखण्डी हो रहे हैं। उन सबोंकी बिल्ली, बगुले, चीतादिके समान मलिन घातक चाल-कुचाल लगी है। उसमें जानेवाले सब नष्ट-भ्रष्ट होकर जहँड़ा जाते हैं। सत्यन्यायी पारखी सन्तोंकी चाल हंसवत् शुद्ध रहनी-रहस्य, सद्गुणयुक्त मल, विक्षेप, आवरण विकारोंसे रहित निर्मल नीर-क्षीररूप जड़-चैतन्यका निर्णयकर सुचालसे बर्तते हैं। काल, सन्धि, झाँई सबका मर्म या भेद जानकर सबसे न्यारा पारख स्वरूपमें ही सदा स्थिर रहते हैं। कोई बिरले ही स्व-स्वरूप पारखमय मर्मके ज्ञाता होते हैं। वे ही निर्मल हंस चालसे चलते हैं। अतएव सब कलह-कल्पना जगत् जालके भ्रम छोड़कर निर्मल हंस चालसे चलो! परीक्षा-दृष्टि खोलकर सबके भेदको जानो! निजपदमें ठहराव करो! ॥ १६३१ ॥

१०. सुजन सेवक साहेब गुरुदेवा * धाय गहिल करहिं तेहि सेवा ॥ १६३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सत्य पारख बोध दाता बन्दीछोर श्रीसद्गुरु साहेब प्रत्यक्ष चैतन्य पूजनीय इष्ट गुरुदेव मान्यवर सत्य मूर्ति हैं। परम सज्जन, बुद्धिमान् जिज्ञासु मनुष्य उन्हींका चरण सेवकरूप सच्चे शिष्य होते हैं। हितेच्छुक मनुष्य धाय-धाय करके जगह-जगहसे आ-आ करके पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो श्रीसद्गुरुके सत्यबोधको ही ग्रहण-धारण करते हैं; और सब प्रपञ्चोंकी साधनाएँ, उपायको छोड़कर उन्हीं श्रीसद्गुरुदेवकी सेवा सब प्रकारसे तन, मन, धनादि सर्वस्व अर्पण करके सत्य श्रद्धा, भक्ति-भावके सहित जीवन पर्यन्त करते रहते हैं। गुरुसेवाके प्रतापसे सब अभिमान-आसक्ति गलित होकर वे शुद्ध पारख स्वरूपमें ही स्थिर होते हैं। इसवास्ते सुजन-सेवक हो करके श्रीसद्गुरुदेव साहेबके शरणमें धायके पारखबोधको ग्रहणकर उन्हीं साधु श्रीसद्गुरुकी ही सेवा सदा करते रहना चाहिये ॥ १६३२ ॥

११. चरणोदक परसादी लेहीं * परख प्रताप जीव सुख देहीं ॥ १६३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! बहिरङ्ग गुरुभक्तिकी निष्ठाके लिये बाहर पारखी

श्रीसद्गुरुदेवके चरणोदक तथा महाप्रसाद प्रेमपूर्वक लेना चाहिये। क्योंकि, बोधवान् शिष्य भी समय-समयपर श्रीसद्गुरुदेवके चरणामृत, सीत-प्रसाद भक्ति-भावसे लेते रहते हैं। उसी प्रकार भक्ति निष्ठा रख करके सबको चलना उचित है। वास्तवमें उसका भाव ऐसा है कि— चरण= श्रीसद्गुरुके बताये हुए शुद्धाचरणसे चलना, उदक=पानीरूप मनकी उद्वेग-चञ्चलताको हटाकर गुरुमुख वाणी-निर्णयको धारण करना, सब तृष्णाओंको हटाना है। परसादी=श्रीसद्गुरुके कृपा-प्रसादसे मिला हुआ सत्य उपदेश पारख ज्ञानको लेकर सब आशा-वासनासे रहित निराश-निर्बन्ध होना चाहिये। जो ऐसे श्रीसद्गुरुके सद् विचारको लेते हैं, सो नरजीव पारख बोधके महाप्रताप-प्रबल पराक्रमसे सर्व जड़ाध्यासोंको हटा करके निज-पर जीवको सुख-शान्ति ही देते हैं; जीवन्मुक्त हो जाते हैं। आवागमनादिका सब दुःख उनका छूट जाता है। देह रहते ही उसी प्रकार पारख करके जीवको सुख देना चाहिये। निज-पर जीवोंको भव-बन्धनोंसे छुड़ाना चाहिये ॥ १६३३ ॥

साखीः— साहु साहेब गुरु सोई ❀ दरश प्रत्यक्षहि होय ॥

[३३६] ध्यान अनुमान यमके कला ❀ चले अपन पौ खोय ॥ १६३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! सच्चे पारखी साधु-गुरु सोई सर्वश्रेष्ठ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी हंस गुण-लक्षण रहनी-रहस्यवाले पारखनिष्ठ साहेब होते हैं। आप पारख धनरूप सद्गुण विवेक-वैराग्य सम्पन्न बड़े ऐश्वर्यशाली साहुरूप सच्चे सुखदायी हैं। ऐसे सत्यज्ञान पारख बोधदाता पारखी श्रीसद्गुरुसाहेबका दर्शन-पर्शन या साक्षात्कार तो सबको प्रत्यक्ष ही होता है। जिनके कृपा-प्रसादसे जिज्ञासु नरजीवोंको स्व-स्वरूपका ज्ञान पारखबोध भी प्रत्यक्ष ही हो जाता है या हो ही रहा है। यह तो हितकारी मुक्तिका मार्ग है; और ऐसे श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारको छोड़कर अनुमान-कल्पनासे कोई ब्रह्म, ईश्वर, देवतादि सुखदाता मानकर उनके दर्शनकी प्राप्तिके लिये सगुण-निर्गुण ध्यान, धारणा, समाधि, नवधा भक्ति, अष्टाङ्ग योगादि साधनाएँ जो करते और कराते हैं, सो यम=गुरुवालोगोंकी मिथ्या वाणीका जाल, कला-कल्पनाका कौशल झूठा खेल है। उससे जीवोंका कुछ भी हित नहीं होता है; परन्तु, बिना विवेक झूठे आडम्बर मान-गुमान पाखण्डोंमें ही लग और लगा करके जीव अपने हंसपदरूप विवेकादि सद्गुणोंको खो करके खानी-वाणीके महाजञ्जालमें चले गये, और चले जा रहे हैं। जिससे जड़ाध्यासी, बद्ध होकर देह छूटनेपर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें चले गये, त्रिविधि तापका दुःख भोगने लगे। अतएव उस यमके कला अनुमानके झूठी ध्यानको छोड़कर सत्य-प्रत्यक्ष पारखी साधु-गुरुके दर्शन-सत्सङ्ग करके पारखबोधको प्राप्त कर लेना चाहिये। तभी जीवन सफल होकर कल्याण होगा; सोई बनाना चाहिये ॥ १६३४ ॥

साखीः— पारख मिले संशय भजै ❀ रहै न कल्पना कोय ॥

[३३७] और परे कोई नहीं ❀ धोखा यमके होय ॥ १६३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मनुष्यो! सत्यन्यायी पारखनिष्ठ श्रीसद्गुरु बन्दीछोरके शरण-सत्सङ्गमें जा करके जो जिज्ञासु मिले, उन्हें श्रीसद्गुरुकी दयासे पूर्ण पारखबोध प्राप्त होता है; और अपरोक्ष पारखबोध मिलनेपर संशय=जगत् विषयके सुख-दुःखोंका सन्देह तथा ब्रह्म, ईश्वर, कर्त्ता, देवता, स्वर्गादि कल्पना, दुविधा, भ्रम-धोखा सब भजै=भाग जाते हैं, छूट जाते हैं, टूटकर नाश हो जाते हैं। फिर पारखी हंस जीवके हृदयमें कोई भी कपोल-कल्पना, अध्यास, मिथ्या मानन्दी ही नहीं रहती है या रह नहीं सकती है। पारखपदसे बढ़ करके श्रेष्ठ और परे परात्पर परमात्मा कोई नहीं है। जो सबसे परे व्यापक आत्माको माना है, सो और कोई नहीं, सिर्फ वाणीकी कल्पना मात्र है। जो कोई कहते हैं कि, जीवके परे शिव हैं, जगत्के परे ब्रह्म है, जीवात्माके परे परमात्मा है, मृत्युलोकके परे स्वर्गादि लोक हैं, पृथ्वी निवासी प्राणीके परे स्वर्गादि निवासी देवगणादि हैं,

इत्यादि कथन यम=गुरुवालोगोंकी भ्रमपूर्ण वाणीका धोखा ही है; वह तो असत्य है। वह बात पारख निर्णयमें ठहरती ही नहीं है। जिसको यमके धोखा दृढ़ हुआ रहता है, वही ऐसी-ऐसी मिथ्या भावना किया करते हैं, जीवसे परे कोई ब्रह्म-ईश्वरादि मान करके धोखेमें भटका करते हैं। फिर जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ा करते हैं, बिना विवेक ॥ १६३५ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर — १२३ ॥ ❀ ॥

साखीः— जाके मुनिवर तप करे * वेद थके गुण गाय ॥

[३३८] सोई देउँ सिखापना * कोई नहिं पतियाय ॥ १६३६ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब गुरुवालोगोंके कथन कहते हैं— हे सन्तो! [मायामुखः—] गुरुवालोग ऐसा उपदेश देते हैं कि, जिस परब्रह्म-परमात्माके प्राप्तिके लिये और गति-मुक्तिके लिये श्रेष्ठ बड़े-बड़े ऋषि-मुनिगण व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्रादि तपस्या, उग्रसाधना किये; और अन्य मुनिजन भी कठिन तप आदि साधना कर रहे हैं। फिर वेद भगवान् भी जिस परमात्माके गुण गा-गा करके थक गये। आखिरमें 'नेति-नेति' श्रुतिः कह दिया। अर्थात् परमेश्वरके इति वा अन्त नहीं; अनन्त, अथाह है, ऐसा कहा है। सोई वेद-वेदान्तका सार ब्रह्मज्ञान "तत्त्वमसि" अद्वैत सिद्धान्तका उपदेश सिखापन या शिक्षा मैं संसारमें कहता हूँ! बोध करता हूँ! "हे जीव! तू ही ब्रह्म है" यह बताता हूँ! परन्तु, अज्ञानके वशीभूत हुए जीव कोई भी अद्वैत ज्ञानको विश्वास करके नहीं पतियाते हैं। तो भला! इन्हें सुख कहाँसे होगा? ब्रह्मानन्दरूप परमसुखको देनेवाला तो एक ब्रह्मज्ञान ही है, इत्यादि कथन गुरुवालोगोंने सुनाया वा दृढ़ाया है। जिससे बेपारखी जीव लालची, भ्रमिक हुए, फिर उसी धोखेमें गिर पड़े, गाफिल हुए ॥ अथवाः—

[गुरुमुखः—] फिर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब अपने सार निर्णयको दर्शाते हैंः— हे सन्तो! जिस परमपद कल्याणरूप नित्यमुक्ति प्राप्ति करनेकी अभिलाषासे महा अरण्य, गिरि-कन्दरा, गुफादिमें जा करके फल, मूल, जल, पत्र-पुष्पादिको खाकर बड़े-बड़े श्रेष्ठ कहलानेवाले मुनियोंने पञ्चाग्नि तापना, अरण्य निवास, जल शयनादि कठोर तपस्या, तितिक्षादि किया, और कर रहे हैं। तभी भी सत्यसारका पता वे पा नहीं रहे हैं। कोई वेदके भरोसे ध्यान, धारणा, समाधि कर रहे हैं। कोई ब्रह्मज्ञानका प्रचार कर रहे हैं। तो हे भाई! जिन्होंने वेद बनाया, वे ब्रह्मादि लोग भी निर्गुण ब्रह्मका गुण गाते-गाते अन्तमें थके; वेदमें 'नेति-नेति' लिख दिया। अगम, अपार, अगोचर, अथाह कहकर महान धोखा-धारमें बह गये। परन्तु, वेद प्रमाणसे किसीको भी सत्यका बोध नहीं हुआ। ऐसे जीवोंकी दुर्दशा देख करके दया स्वभावसे अपना स्वजातीय जीव जानकर सोई महान भ्रम-भूल निवृत्ति करनेके लिये मैं अपना अपरोक्ष पारखबोध दर्शा करके इन्हें सिखापन=सत् शिक्षा या सत्य निर्णयका उपदेश-"जीव चैतन्य सत्य है; और मानन्दी कल्पना मिथ्या है।" ऐसा समझकर भ्रमको त्यागकर हंसपदमें ठहरो, इत्यादि कहता हूँ। परन्तु, ये अविचारी, पक्षपाती, संसारी और भेषधारी कोई भी मनुष्य हमारे सत्य निर्णयको प्रतीत या विश्वास नहीं करते हैं। इसी कारणसे काल-जालमें बद्ध होकर भवचक्रमें सदा पड़े रहते हैं। नाना दुःख पाते रहते हैं, बिना पारख उनका उद्धार नहीं होता है, जन्म-मरण नहीं छूटता है ॥ १६३६ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग— १०२ ॥ [चौपाई-१४। साखी-१। भूलना-१। रमैनी-१ है] ॥ ❀ ॥

१. गुरुके मिलत कल्पना भाजै * सोई साहेब सत्य विराजै ॥ १६३७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरुदेवके कृपा-प्रसादसे निजस्वरूप पारखका यथार्थ बोध मिलते ही नरजीवोंके हृदयमें अनेकों वर्षोंसे लगी हुई कल्पना=भ्रम, धोखा, सन्देह, अध्यासादि शीघ्र ही भाग जाते हैं; टूट-छूट करके अलग हो जाते हैं। सूर्यका प्रकाश

होते ही जैसे अन्धकारका नाश हो जाता है, तैसे ही पारख ज्ञानरूपी सूर्यका प्रकाश होते ही तमरूप अज्ञान, भास-कल्पनादिका विनाश हो जाता है। फिर सोई जिज्ञासु नरजीव श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेब, तथा आपके अनुयायी पारखी श्रीसद्गुरु साहेबके सत्यबोधरूप पारखपदमें विराजमान होकर अटल हो जाते हैं। फिर वही सत्यपदमें विराजमान होनेवाले पारखी सन्त सर्वश्रेष्ठ साहेब निर्बन्ध, जीवन्मुक्त हो जाते हैं; आप सद्गुरु ही तरण-तारण जीवन हितकारी हो जाते हैं ॥ १६३७ ॥

२. तजहु आस यम केरा ❀ पारख सब दुःख करै निबेरा ॥ १६३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे हितेच्छुक मनुष्यो ! हंसपदको छोड़कर और सबकी आशा-तृष्णा, मद्-मत्सरादिको परित्याग कर दो ! क्योंकि, आशा सोई यमका फाँस है। यम=गुरुवालोग और स्त्रियोंकी सङ्गतिसे नाना आशा, कामनाएँ बढ़ती जाती हैं। भोग, धन, पुत्र, राज्यादि लोककी आशा, और ऋद्धि-सिद्धि, सात स्वर्ग, ईश्वरादि प्राप्तिकी आशाके घेरामें फँसा करके यम=काल नरजीवोंको दुःख दे-दे कर नचा रहे हैं; और दूसरी तरफकी यमकृत आशाएँ सबको छोड़ो ! निराश-निवृत्त होकर मुक्तिके लिये पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-ग्रहण करो ! और जड़-चैतन्य, बन्धन-मुक्ति, सार-असार, इन सबोंकी यथार्थ निबेरा या निर्णय करो ! पारखबोध पक्का होनेपर फिर सब दुःखोंका निवारण हो जायगा। अतएव पारखबोध प्राप्त करके निर्णय करते हुए सब दुःखोंके कारणका विनाश करो ! ॥ १६३८ ॥

३. हंस दशा धरि बिहरहु भाई ! ❀ नीर छीर बहु विधि फरियाई ॥ १६३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे भाई सन्तो ! नरजीवनमें अभी शुद्ध हंस-दशाको धारण करो ! खानी-वाणीके सच्चा त्यागी साधुका भेष हो, सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति और दृढ़ वैराग्य सहित हंसकी रहनीमें रहो ! सत्यसारकी गहनी, सत्यनिर्णय गुरुमुख वाणीकी कहनी, शुद्ध आचार-विचार, शुद्ध खान-पान, शुद्ध सत्सङ्ग, शुद्ध चाल-चलन, ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर हंस दशाको धारण करके फिर संसारमें कहीं भी बिहरहु=विचरण करते रहो ! जहाँ कहीं अनुकूल-निरुपाधि जगह हो, वहाँ ही निवास करो ! सत्सङ्गमें विहार किया करो ! विचरते हुए भी जिज्ञासुको सत्यासत्य परखाया करो ! जैसे हंस-पक्षी मिला हुआ दूध और पानीको बिलगा करके दूधको पीकर पानीको छोड़ देता है। तैसे ही तुम भी सत्यन्यायी हंस पारखी होकर नीर=जलरूप जड़ पाँच तत्त्व, विषय-विकारादिमें मिला हुआ क्षीर=दूधरूप चैतन्य स्वरूप जीवको पारख दृष्टिसे छानकर नीररूप जड़ाध्याससे पृथक् या न्यारा करो ! बहुत प्रकारसे मोटी-झीनी मायाका आवरण जो जीवमें पड़ा है, उसे विधिपूर्वक बहुत सावधान होकर एक-एक करके निकाला करो ! बहुत तरहसे फरियाओ— न्याय-निर्णय करो ! सत्य सारको ही समझो और समझाओ ! इसप्रकारसे निज-पर हित साधनाके सत् कार्यमें लगे रहो ! ॥ १६३९ ॥

४. निबैरी बर्तै व्यवहारा ❀ एक अनेक बहै भव धारा ॥ १६४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें पारखबोधके बिना भ्रमिक होकर कोई एक अद्वैत ब्रह्म मानकर भूले हैं। कोई अनेक देवी-देवता, भूत-प्रेत, तैंतीस कोटि देवगणादि मानकर वाणी कल्पनाकी धारामें ही सब मनुष्य बह रहे हैं; और कोई एक वाणी विषयमें, तो कोई अनेक खानीके पञ्च विषयादिमें नाना तरहसे बह गये और बह रहे हैं। कर्म-कुकर्ममें लग रहे हैं। उनके कुसङ्गसे सदा बचे रहना चाहिये। समय-संयोगसे कहीं रहतेमें या विचरण करतेमें उन भ्रमिक मनुष्योंसे सम्मेलन हुआ, तो दैनिक उपस्थित व्यवहारमें मन, वचन, कर्मसे निर्बैरी=वैर-विरोधकी कुभावनासे रहित होकर विवेकीने बर्तना चाहिये। झगड़ा, टन्टा, फसाद करके कभी उपाधिमें पड़ना नहीं चाहिये। समता सहित निर्विरोध बर्ताव रखकर चलना चाहिये। पक्षपातके बीचमें नहीं पड़ना चाहिये। पारखबोधके प्रतापसे पारखी सन्त जानते हैं कि, अबोध नरजीव एक,

और अनेककी भवधारामें बह रहे हैं। फिर उन्हें चिढ़ा करके दुःखी करना ठीक नहीं है; कोई श्रद्धालु-जन मिलें, प्रश्न करें, तभी उन्हें परखाना, बोध करना, समझाना चाहिये। नहीं तो निर्वैरी होकर वर्तमान कार्य चलावें। अपने ही सुधारमें लगे रहें ॥ १६४० ॥

५. एकै जीव अनेक बनाई * केहिसे बैर करहु मेरे भाई ! ॥ १६४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैसे प्रत्येक घटमें जीव भिन्न-भिन्न हैं; अनन्तों देहधारी जीव असंख्य हैं। तथापि जीवके चैतन्यत्त्व ज्ञान-गुण जाति एक समान है। इसलिये जीवमात्र स्वजातीय कहलाते हैं। एक जीवने नरदेहमें आकर अनेकों कर्म-कुकर्म करके कर्माध्यास नाना वासनाको बनाया, फिर देह छूटनेपर चारखानीमें जाकर अनेकों देह क्रमानुसार धारण कर लिया। सब जीव एक सरीखा जड़ाध्यासी होकर अनेकों विचित्र-विचित्र देह बना करके कर्म फल भोग कर रहे हैं; और अनेकों खानी-वाणी जालोंका विस्तार एक ही नरजीवने बनाया, तो उसीमें सब अरुझे और अरुझाये पड़े हैं। पूर्व अज्ञान अवस्थामें तुम लोग भी वैसे ही बद्ध थे। अतएव हे मेरे स्वजातीय भाई ! नरजीवो ! अब तुम किससे बैर-विरोध करोगे ? जो करोगे, तो सो भरोगे ! इससे हृदयसे बैर-भावको त्याग करके सब जीवोंपर दया करो ! सबके हित हो, ऐसा बर्ताव करो ! राग-द्वेष छोड़कर विचारपूर्वक अपने कल्याण मार्गमें लगो ! ॥ १६४१ ॥

६. परखहु दुर्मति करहु विनाशा * जोई विकार यम केर विलासा ॥ १६४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे मुमुक्षुजनो ! अपने ही हृदयके, चित्त चतुष्टयके कार्यकी परीक्षा करो, खराब कुमति-कुविचार, ईर्षा-द्वेष, काम, क्रोधादि विकारोंको विनाश करो ! यही विकारको देख-देख करके उसीके साथ यम=मन विलास करता रहता है। अथवा यम=स्त्री और गुरुवालोगोंका विषय विलास, वाणी कल्पनाके विलास जो कुछ हैं, सो सब हानिकारक विकार हैं। उसे पारख दृष्टिसे देखकर दुर्मति=गुरुवालोग और नारीकी खानी-वाणी जालको अच्छी तरह-से परख करके उसे विनाश करो वा हटाओ ! ॥ १६४२ ॥

७. त्रिविधि फाँस सबै बौराई * भाँति अनेकन्हि दुर्मति लाई ॥ १६४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिविधि=काम, क्रोध, मोहकी; भक्ति, योग, ज्ञान-की; तथा तत्, त्वं, असिकी; ये ही तीन प्रकारकी त्रिगुणी मायाके मोटी-झीनी फाँसरूप फन्दा वा जालमें अरुझकर खैंच-तान करते-करते सब नर-नारी बौरा गये हैं; बड़े पागल हुए हैं। उनका होश-हवास उड़ गया है; कर्म-कुकर्म करा करके चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े हैं। सोई संसारमें अभी तक स्त्रियाँ और गुरुवालोगोंने अनेकों प्रकारसे नाना तरहकी दुर्मति, कुभावना, विषयाध्यास तथा भ्रम धोखेमें सब मनुष्योंको लगा दिया है। तथा स्वयं स्वरूपके सत् विचार-को नशा करके दूर शून्य आकाशमें एक निरञ्जन ब्रह्म है, तथा सात स्वर्गादि लोक ऊपर कहीं हैं, वहाँपर अपार सुख मिलता है, इत्यादि दृढ़ाकर मतिको दूर करके कर्मादि नाना भाँतिकी साधनाओंमें लगा दिये हैं, सब तरफसे जहँड़ा दिये हैं ॥ १६४३ ॥

८. धोखा दयाल कर्म कठिनाई * विष्णु दुर्मति चाल चलाई ॥ १६४४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! त्रिगुणी काल-फाँसमें विष्णु-सत्त्वगुणी, दयाल, प्रतिपालक या रक्षक ऐसे तो कहलाया; परन्तु, सो महिमा झूठी ही निकली। क्योंकि, धोखा देकर हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपुको विष्णुने ही मार डाला, तथा वामन बनकर बलिराजाको छला; दानमें सब राज्य हड़प करके बलिको बाँधकर पातालमें भेजा; और वृन्दा (जालन्धरकी स्त्री) के सत्यको कपटसे नष्ट करके जालन्धरको मरवाया, इत्यादि छल-कपट, ठगाई, धोखाधड़ी करके मारा वा मरवाया। क्या यही दयालुका कर्म होता है ? कभी नहीं। छूटनेको अत्यन्त कठिन ऐसे कर्म-कुकर्म, भक्ति-कुभक्तिकी चाल-कुचालसे विष्णु चला और वही दुर्मतिकी चाल संसारमें

उसने चलायी। सो अभी तक वैरागियोंमें वैसे चाल चली ही आ रही है। उसमें लगकर हानिके सिवाय कुछ लाभ मिल नहीं सकता है ॥ १६४४ ॥

६. ब्रह्मा राज तिलक अनुसारी * अदल न्याय परपञ्च सँवारी ॥ १६४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो.! विष्णुके बड़े भाई ब्रह्माने कर्म-राज्यकी टीका लगा करके संसारमें कर्ममार्गको खूब चलाया। अपने स्वयं तो राजा-अधिपति बनकर मस्तकमें सुन्दर राज्य तिलक लगाया और राज्य गद्दीमें जा बैठा। उसने मन्मतिके अनुसार विविधि कर्म-भ्रमका प्रपञ्च प्रचार किया। सत्यन्यायके अदल-हुकूमत चलानेके बदले झूठ-मूठका पाखण्ड, पञ्च कोशका वाणी प्रपञ्च, पञ्च विषयोंका खानी प्रपञ्च ही खड़ा करके सँवारा, सजाया, विस्तार किया। अन्याय अकर्मके कुमार्गसे ही वह चला और दूसरोंको उसीमें चलाया। सो अभी भी उसके वंशज उसकी सन्तानरूप ब्राह्मण-वर्गमें कर्मका प्रपञ्च वा ठगाई चल रही है। इस कर्म जालमें लगकर भी अहितके सिवाय जीवोंके हित कुछ नहीं होता है ॥ १६४५ ॥

१०. जुलमी जुलम तिलक नहिं शोभे * झूठ महातम सबै जीव लोभे ॥ १६४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे कसाई, जल्लादको कण्ठी, माला, तिलक लगाया हुआ कुछ शोभा नहीं देता है, तैसे ही मिथ्यावादी, व्यभिचारी, अन्यायी, जीव-हिंसक, दोषी, ऐसे जुलमी दुर्गुण भरे हुए आततायी जुलम=अपने स्वार्थ सिद्धिके लिये नेत्र मूँद करके सब कुछ करनेवाले दया धर्मसे नष्ट-भ्रष्ट ब्रह्मा और ब्राह्मणादि मनुष्योंको न्यायका चिह्न, धर्मकी छाप लगाना, तिलक सजाना, मस्तकमें राज तिलक लगाना, यह कुछ भी शोभा नहीं देता है, सत्यनिर्णयी न्यायी पुरुषको ही तिलक लगाया हुआ शोभा देता है। मनमें छल-कपट रखकर बाहरी भेषमात्र बनानेवालेको कुछ फायदा नहीं होता है; परन्तु, गुरुवालोगोंने झूठा ही महिमा-महात्म्य ब्रह्मादिकों-का बढ़ा दिया है। ईश्वर, देव, स्वर्गादिकी मिथ्या महिमा सुना रहे हैं। ऐसी वाणी सुन-सुन करके अविचारी नरजीवोंका मन उसीमें लुभा गया है। सब कोई उसी असत्यमें लुब्ध होकर बन्शीमें पड़ी हुई मछलीवत् धोखेमें मारे जा रहे हैं ॥ १६४६ ॥

११. विषय त्यागि हर बाना धारी * जती कहावै सती सङ्घारी ॥ १६४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर महादेवने ऊपर तो भोग विषयादि त्याग करनेका ढोंग दिखाया। त्यागी, साधु, योगी, यति, तपस्वी कहलाया। बाहर बाना=भेष भी वैसे ही धारण किया; कुछ दिन परम विरक्त जैसे झूठा स्वाङ्ग भी किया। आखिरमें उनका कपट प्रगट ही हो गया। पहले तो दक्ष प्रजापतिकी कन्या सतीदेवीको विवाह करनेके लिये कपट किया। विष्णुकी आड़से दक्ष प्रजापतिको छलकर शिवने सतीदेवीसे विवाह किया; और उससे विषय भोग करके तहाँ त्याग भेषकी सत्यताको संहार=विनाश किया। फिर बिना बुलाये ही सतीदेवी एक समयमें दक्षके यज्ञमें गई, तो वहाँपर शिवकी निन्दा सुनकर क्रोधसे यज्ञ-कुण्डमें कूदकर जलमरी। फिर सतीके मोहके कारणसे महेशने भैरवगण भेजकर दक्षके यज्ञ विध्वंस करके बहुत सारे प्राणियोंका संहार भी किया वा कराया। फिर समयान्तरमें पार्वतीसे विवाह करके पूरा गृहस्थ हुआ। इसप्रकारसे उनके यति कहलाना झूठा ही हुआ। वे तो छली-कपटी, धूर्त, हिंसक, तामसी रहे। तैसे ही उनके अनुयायी योगी लोगोंके कुचाल भी चल रही है ॥ १६४७ ॥

१२. जामें पुत्र जतीके शोभा * देखत राम सीता मन लोभा ॥ १६४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गणेश तथा कार्तिकेय कुमार दो पुत्र जिस महादेवके पार्वती द्वारा उत्पन्न हुए थे, उसे यति=त्यागी, कामजीत, इन्द्रिय निग्रही कहना, झूठी महिमा बढ़ाना क्या शोभा देता है? ऐसा कभी शोभा नहीं देता है। यह तो एक उपहास सदृश बात है, शङ्कर तो पक्का भगलम्पट, अघोरी रहा। कुछ समझे-बूझे बिना मिथ्या प्रशंसक लोगको तो बार-

बार धिक्कार है, वे लायक नहीं, नालायक प्रशंसक बने हैं; और तैसे ही रामोपासक लोग भी रामचन्द्रको निर्विकार शुद्ध, ईश्वररूप मानते हैं। परन्तु, स्वयंवर होनेके कुछ दिन पहले ही जनकपुरकी पुष्प वाटिकामें जब रामने प्रथम ही सीताको देख लिया था, तो उसके सौन्दर्यमें मोहित हो करके सीताके प्रति राम कामासक्त हो गया था। सीताका रूप देखते ही रामका मन लुब्ध हो गया था, यह प्रसङ्ग रामयणमें वर्णन हुआ है; और फिर सीता हरण होनेपर तो महा अज्ञानी बन करके विरह व्याकुल हो वन-वनमें रोते फिरे थे। फिर उनको निर्विकार मानना, उनके विषय लीला गा करके मुक्ति मानना, कितनी मूर्खता है? विवेक करके वैसी मूर्खताको वा मिथ्या मानन्दीको छोड़ना चाहिये ॥ १६४८ ॥

१३. सतवन्ती पतिव्रता कहाये * विधि संयोग कुम्भज ऋषि आये ॥ १६४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सतवन्ती नामकी स्त्रीको गुरुवालोग बड़ी पतिव्रता रही ऐसा कहते हैं। फिर दूसरी जगहमें वर्णन करते हैं कि, एक समयमें ब्रह्माजीने आ करके सतवन्तीको देखा, तो मोहित होकर लुब्ध हुए, फिर छल-बल करके उससे विषय सम्भोग किया, तो उसे गर्भ रहा। फिर वही जब जन्म लेकर आया, तो पीछे उसका नाम कुम्भज ऋषि कहलाया। अब कहिये! वह परपुरुष गामिनी स्त्री कैसे पतिव्रता हुई? और कहीं तो ऐसा भी लिखा है कि, एक समयमें मित्रावरुण ऋषि तपस्यामें लगे थे, तब शृङ्गारयुक्त उर्वशी अप्सराको कहीं उसी मार्गसे जाती हुई उन्होंने देखा, तो कामासक्त होकर उनका वीर्य स्खलित हुआ। उस वीर्यको घड़ेमें रक्खा, यानी मैथुन द्वारा किसी स्त्री घटरूपी गर्भमें स्थापन किया, जिससे पीछे कुम्भज ऋषि जन्म लेकर आया। और महाभारतमें लिखा है कि, उपरिचर वसु नामक राजाकी सुपुत्री तथा दासराज मछुएकी पालित कन्या मत्स्यगन्धा थी, उसे सत्यवती भी कहते थे। पराशर ऋषिके नावमें ही सम्भोग करनेसे कृष्ण द्वैपायन नामक व्यास पुत्र उसीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। फिर पीछेसे वही सत्यवती शान्तनु राजासे व्याही गई थी। जिससे चित्राङ्गद और विचित्र वीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इसप्रकार सत्यवतीको पतिव्रता कहना वा कहलाना झूठ ही हुआ। विषय व्यभिचारी दुर्बुद्धि लोग असत्यको भी सत्य बता देते हैं। परख करके उसे जानकर भ्रमको परित्यागकर न्यारा होना चाहिये ॥ १६४९ ॥

१४. वर्णन सबके चाल कुचाला * विदित पुराणन तिन्हके हाला ॥ १६५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! देवता, ऋषि-महर्षि, मुनि, भक्त, योगी-भोगी, राजा-प्रजा, इत्यादि प्रथम जो-जो प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये, उन सबोंके जीवनचरित्र, चाल=अच्छी मर्यादा, शुभकर्म और कुचाल=खराब कुकर्म, पापाचार, अन्याय, अनीतिका अनुचित कार्य जो कुछ उन्होंने जीवनमें किया, सो सब विस्तारसे पुराणोंमें वर्णन करके लिखा है। पुराण पढ़ने-सुननेवाले उन देवी-देवता, ऋषि-मुनियोंकी चाल-कुचालकी हाल-खबरको अच्छी तरहसे जानते हैं। अठारह पुराण हिन्दुओंके बने हैं, सो जगत्में जाहिर ही हैं। उसीमें उनके सब हाल-चालका वर्णन किया गया है। यदि हमारे लेखसे आप लोगोंको पूरा समाधान न हो वा विश्वास न हो, तो इस प्रसङ्गको पुराणोंमें ढूँढ़कर पढ़िये! फिर आपका सब सन्देह दूर हो जायगा। यहाँ तो संक्षेपमें सिर्फ सार-असारका परिचय निर्णय मात्र दिखला दिया गया है ॥ १६५० ॥

साखीः— बहुतक चाल दुर्मति रचे * धोखा आश लगाय ॥
[३३९] महिमा केरी गाँसमें * अन्ध सबै पतियाय ॥ १६५१ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें दुर्बुद्धि मनुष्योंने बहुतेक चाल-कुचाल, कर्म-कुकर्म, न्याय-अन्याय, हित-अहित, साँच-झूठ करके नाना प्रपञ्च बढ़ाया है। दुर्मति=गुरुवालोगोंने वाणी-खानी जालोंको बहुत तरहसे रचना करके विस्तार किया है। तहाँ अबोध मनुष्योंको धोखा दे करके भुला दिया है; झूठ-मूठकी आशामें लगा दिया है। स्त्री-पुत्र, धन-धान्य

सुख प्राप्तिकी आशा और देवी-देवता, स्वर्गादि सुख, सामर्थ्य ईश्वरादि प्राप्तिकी आशामें वे लगे और दूसरोंको लगाये हैं। परन्तु, वह आशा किसीकी पूर्ण नहीं होती है, धोखेमें ही जन्म गमा देते हैं। पण्डितोंने तीर्थ-व्रत, कर्म साधनासे देवता ईश्वरादिकी बड़ी लम्बी-चौड़ी मिथ्या महिमा, महात्म्य, गुणगान करके बता रक्खा है। उसी महिमाको ही सत्य समझकर गुरुवालोगोंके गाँस-फाँसमें अरुझे और अरुझा रहे हैं। वाणी कल्पना भ्रमके चक्रमें पड़कर अन्धे पारख-दृष्टि विवेकहीन मनुष्य सब अन्धाधुन्ध असत्यको ही सत्य मान करके उसीका पक्का विश्वास कर रहे हैं। उनकी अन्ध परम्परा बढ़ती ही चली जा रही है। बिना विचार नरजीवनसे नष्ट-भ्रष्ट होकर आवागमनमें जा रहे हैं ॥ १९५१ ॥

॥ ❀ ॥ भूलना नम्बर— २ ॥ सत्य निर्णयका पद शब्द ॥ ❀ ॥

१. गुरुदेवकी नारी, जो हरलई चन्द्रमा * कुन्ता कुमारीसे सूर्य प्रसङ्ग कीन्हा ॥१९५२॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे मनुष्यो! वञ्चक गुरुवालोगोंने वाणी कल्पनाकी आड़में भ्रमरूप पर्दासे जीवको छिपा करके लोक-परलोकमें सुखादि प्राप्ति होनेके आशा-भरोसा देकर ईश्वरादिसे लेकर तैंतीस करोड़ देवताओंकी उपासना भक्ति, आराधना, पूजा-पाठ, जाप आदि करनेमें जो लगाया है, सो तुम्हें धोखा ही दिया है। अभी वे सुखदाता माना हुआ देवता कोई जीवित सबे नहीं हैं, देहधारी जो हुए थे, सो पूर्वमें कर्म-कुकर्म कर-करके मर गये हैं। उनके कुकर्म पापसे उनकी ही भलाई नहीं हुई। फिर उसे गा-ध्या करके तुम्हारी क्या भलाई होगी? कुछ भी नहीं होगी। जिन देवताओंकी बड़ी शक्ति-सामर्थ्य तुम लोगोंने सुन रक्खी है; वे तो कामी, क्रोधी, हिंसक, लोभी, मोही, दुष्ट, दुराचारी, व्यभिचारी हुए रहे। सो हाल-खबर विस्तारसे पुराणोंमें ही लिखी हुई है। उस घटनाका कुछ हाल प्रसङ्गानुसार यहाँपर इस भूलनामें लिखकर मैं भी दर्शा देता हूँ! उसे विवेक करके परखो! और कुसङ्गका परित्याग करके पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहकर अपना जीवन सुधार करो, सार ग्रहण करो, असार मानन्दी-कल्पनादिको छोड़ो! अब यहाँपर गुरुवालोगोंके माने हुए सूर्य, चन्द्र, इन्द्रादि देवताओंकी लीलाके बारेमें सुनिये! उन्होंने कैसे पशु लाला किया था, सो मालूम हो जायगा ॥

॥ ❀ ॥ कथानक वर्णन ॥ ❀ ॥

अत्रि ऋषिका पुत्र चन्द्रमा हुआ। कहीं उसे समुद्र मथनसे उत्पन्न हुआ भी लिखा है; और देवताओंके कुलगुरु बृहस्पतिसे चन्द्रमाने विद्याध्ययन किया। विद्या पढ़नेको नित्य चन्द्रमा गुरु बृहस्पतिके घरमें जाया करता था। कुछ कालके पश्चात् यजमानोंके यज्ञ करानेके लिये निमन्त्रण आनेसे घरकी देख-रेखका कार्य भार चन्द्रमाको सौंपकर स्त्रीको घरमें ही छोड़कर बृहस्पति कहीं दूर देशमें चले गये। तदनन्तर गुरु-पत्नीका सौन्दर्य देखकर चन्द्रमा कामासक्त हो गया। फिर गुरुका विश्वासघात करके और गुरुकी स्त्रीको धोखा देकर उसे हरण करके अपने घरमें ले गया। फिर उसे डरा-धमका, फुसलाकर हरतरहसे अपने अधीनमें करके बलपूर्वक गुरुकी नारीके साथ मैथुन-सम्भोग किया। जो कि, चन्द्रमासे उसे गर्भ रहा, सोई बादमें 'बुध' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। देखिये! चन्द्रमाने कैसे छल-कपट, धोखा किया? फिर डेढ़-दो सालके बादमें जब बृहस्पति घर आये, ऐसी अनुचित खबर पाकर स्त्रीको लानेके लिये चन्द्रमाके घर गये। वहाँ बुध लड़काको सुन्दर देखकर उसे लेनेके बारेमें उन दोनोंमें परस्पर झगड़ा हुआ। बादमें ब्रह्मादिने आकर यह फैसला किया कि, स्त्रीको बृहस्पति ले जावें, और बुध पुत्रको चन्द्रमा रख लें। फिर वैसा ही किया गया ॥

कुन्तीके बारेमें ऐसा लिखा है कि, पृथा-पुत्री राजा सूरसेनकी प्रथम सन्तान थी। मित्र राजा कुन्तीभोजसे मैत्री ठहरावके अनुसार उस पुत्रीको सूरसेनने कुन्तिभोजको दे दिया था। तबसे पृथाका नाम 'कुन्ती' पड़ा, वह वहीं बड़ी हुई। एक समय दुर्वासा मुनि राजभवनमें

आये; कुछ दिन विश्राम किये। उस वक्त मुनिकी सेवा-शुश्रूषा भलीभाँति कुन्तीने ही की थी, जिससे दुर्वासा प्रसन्न होकर उसे वशीकरण मन्त्र वा युक्ति सिखा दिया। इस युक्तिसे चाहे जिस देवताको जब बुलाकर तू पुत्र उत्पन्न कर सकेगी, ऐसा कह गये। मुनिका ऐसा वचन सुनकर कुन्तीको बड़ा आश्चर्य हुआ; और कुमारी अवस्थामें ही कुन्तीने एक समयमें उसी युक्तिसे सूर्य देवताको बुलाया, तो सूर्य सुशोभित अलंकृत होकर कुन्तीके भवनमें आ गये और बोले कि, मैं आ गया, अब बतला तू क्या चाहती है? मैं तेरा कौन प्रिय कार्य कर दूँ? कुन्तीको देखकर सूर्य भी उधर विषयासक्त मोहान्ध हो गया था। कुन्तीने कहा कि, मैंने गलतीसे आपको बुलाई हूँ; मेरे अपराधको क्षमा करके आप चले जाइये! तब सूर्य बोला कि, मैं तो तेरे बुलानेपर ही आया हूँ। अब मैं खाली नहीं जाता, मैं तो तुझसे भोग-विलास करके ही जाऊँगा, ऐसा कहकर और भी बहुत-सी लोभ-लालचकी बात बताकर न माननेपर शाप देनेका भय दिखलाकर जबर्दस्ती पकड़ करके सूर्यने कुन्तीसे मैथुन-भोग-विलास करके चला गया। ऐसे कुमारी कुन्तीसे सूर्यने विषय-भोगका प्रसङ्ग किया। उससे कुन्तीको गर्भ रहा; समय पूर्ण होनेपर एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, पीछेसे जिसका नाम 'कर्ण' पड़ा। उधर लोक लाज, कुल मर्यादाके भयसे भयभीत होकर एक दाईसे मिल करके काठके एक बाक्समें उस बालकको सुलाकर ढाँक करके गुप्त रीतिसे नदीके जल प्रवाहमें उसे बहा दिया गया। सो बहता हुआ जा रहा था, तो उधर सूत पुत्र अधीरथके हाथ पकड़नेमें लगा, उसने राधा स्त्रीको उस बालको ले जाकर दिया। वहाँ उसका नाम 'वसुषेण' रक्खा गया। उन्हींके घर वह बड़ा हुआ। ऐसे सूर्यने भी विवेक-विचारको खोकर कुन्तीके साथ व्यभिचार करके कुकर्म किया॥ १९५२॥

२. गौतमकी घरणिसे, सुरपतिने छल करी ❀ कृष्ण सब गोपिन, कै रङ्ग भीना॥१९५३॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कहते हैं कि, गौतम मुनिकी स्त्री अहिल्याबाई विशेष रूपवती सुन्दरी थी, जिसे देखकर सुरपति=देवताओंका राजा इन्द्र अहिल्यापर मोहित-कामासक्त हो गया था। बहुत दिन तक उससे मिलनेका मौका नहीं पाता रहा। एक दिन चन्द्रमा-से इन्द्रने सलाह करके उसे साथ लेकर गौतमकी कुटीमें आधीरातमें आया, और चन्द्रमाने बनावटी कागके समान वा मुर्गाके समान आवाज लगाया। जिसे सुनकर गौतम मुनि प्रभात बेला हो गया, ऐसा समझकर नदीमें स्नानार्थ चले गये। इधर मौका पाकर नकली गौतम बना हुआ इन्द्र घरमें घुसा। स्त्रीके पास जाकर बोला कि, प्रिये! मैं कामदेवसे पीड़ित होकर लौट आया हूँ! जल्दी मेरी इच्छा पूर्ण करो, ऐसा कहकर छल, बल, कपट करके उसे खैंचकर फिर अहिल्याके साथमें विषय सम्भोग किया। उधर गौतमने नदीमें जाकर विचार करके देखा, तो अभी आधी ही रात हुई है, ऐसा जानकर घरमें लौट आया। तब तक इन्द्र भोग कर चुका था और मुनिके आनेकी आहट पा करके बिल्लीके समान दबककर भागनेको तत्पर हुआ। परन्तु, गौतम दरवाजेपर पहुँच ही चुके थे। उसे भागते देखकर मुनिने डाँट करके कहा— तू कौन है? रातमें चोरवत् दूसरेके घरमें छिपा है। फिर भयभीत इन्द्र प्रगट होकर क्षमा याचना करने लगा। गौतमने लक्षणसे सब हाल जानकर क्रोधित हो, इन्द्रको शाप दे दिया कि—हे इन्द्र! तू ने जिस एक भग-भोग भोगनेकी आसक्तिसे आज ऐसा अनुचित काम किया है; जा, उसीसे तेरे शरीरमें ही हजार भगके चिह्न हो जायेंगे। पीछे समयान्तरमें इन्द्र कोढ़ी हुआ, ऐसा वर्णन है। ऐसे सुरपतिने इन्द्राणीको छोड़कर गौतम मुनिकी घरणीरूप स्त्रीको छल करके मैथुन किया, जिससे महादोषी बना; और गौतमने पीछे फिर अहिल्याको भी पत्थर-शिलावत् होनेका शाप दे दिया, ऐसा लिखा है। और कृष्ण विष्णुका आठवाँ अवतार कहलाया। उसे गुरुवालोग सोलह कलाधारी परब्रह्म बाल-ब्रह्मचारी पूर्ण परमेश्वरका सगुण अवतार बतलाते हैं। भागवत, गीता, महाभारत, इत्यादि पुराणादिकोंमें कृष्णकी बहुत-बहुत बड़ी महिमा गाया है, सो सब झूठी प्रशंसा अन्ध-विश्वासका पसारामात्र है। क्योंकि, उसी भागवतादि

ग्रन्थोंमें कृष्णके जीवनचरित्र, विषय-लीलाका भी बहुत विधिसे वर्णन किया है। बालकपनसे ही चोरी करनेको सीखा था। तरुण होनेपर नाना तरहसे विषय प्रपञ्च फैला करके छिपे-छिपे तरुणी गोप स्त्रियोंके साथमें भोग-विलास विषय क्रीड़ा करता रहा। कामके रङ्गमें तदासक्त होकर सब परनारियोंके सङ्गमें रमण करनेमें उन्मत्त रङ्गीन हो करके भींजा रहा। रास-लीला, चीरहरण, कामिनियोंसे सम्मेलन करता रहा; छल, बल, कपटसे अनेकों प्राणियोंकी हिंसा करके मारकर और मरवाकर घातक भी हुआ था। ऐसे अनेकों अनर्थ कृष्णने किया था। जीतेतक अनेकों काम-क्रोधादिकके कर्म-कुकर्म करके जड़ाध्यासी हो, मरनेपर चौरासी योनियोंमें चला गया। बिना पारख आवागमनमें ही सब जीव पड़े हैं ॥ १९५३ ॥

३. ब्रह्मा सुता सङ्ग, भागा फिरे ❀ शिव मोहिनी देखिके, भये अधीना ॥१९५४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्माजी जिनको लोक पितामह कहते हैं; विधाता, सृष्टि-कर्त्ता, स्वयंभू मानकर गुरुवालोगोंने बड़ी महिमा कही है। परन्तु, एक समयमें ब्रह्माके भी बुद्धि भ्रष्ट हुई थी। एक तो पहले शुरूमें ही निर्भय होकर मातासे झूठ बोला था। दूसरा, सावित्री स्त्रीसे ब्रह्माको प्रथम एक पुत्री उत्पन्न हुई थी। जिसका नाम 'सरस्वती' रक्खा था। समयान्तरमें सरस्वती युवती हुई। एक समयमें ब्रह्मा कोई कामसे सरस्वतीके पास गया। उस वक्त एकान्तमें वह सुन्दरी शृङ्गारसे सजी-सजायी बैठी थी और वीणा बजा रही थी। उसके रूपको देखकर ब्रह्मा कामासक्त मदान्ध हो गया, तो अपनी ही पुत्रीके पास जा करके उसका हाथ पकड़कर विषय भोग करनेके लिये कहा, तो पुत्री घबराकर भागी। तो ब्रह्मा भी उसके पीछे-पीछे भागता फिरा; अन्तमें लड़कीको पकड़ करके लाकर जबर्दस्ती ही निज पुत्रीके सङ्गमें मैथुन-सम्भोग किया। देखिये ! जो काम मूर्ख साधारण गृहस्थ भी नहीं करते हैं; सोई विपरीत कुकर्म पण्डित होकर भी ब्रह्माने किया। तब भी उसकी बड़ाई करना, तो आँखोंमें धूल झोंकना है। पक्षपाती लोग बड़े मूर्ख नरपशु ही होते हैं। और जिन शिवजीको लोग कामारि, सिद्ध योगी, मनको जीतनेवाले सबसे श्रेष्ठ महादेव कहते हैं, सो महिमा भी झूठी है। क्योंकि, समुद्र मथनके बाद अमृत बाँटनेमें देव-दानवोंमें कलह-झगड़ा होनेसे विष्णुने 'मोहिनी' अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीका रूप सोलहों शृङ्गारयुक्त बनाया; और असुरगणोंको कटाक्षसे विमोहित करके देवगणोंको अमृत पिलाया। यह समाचार पाकर शङ्कर पार्वतीके सहित नन्दी बैलपर सवार होकर विष्णुके पास मोहिनीरूप देखनेके लिये आया। फिर विनयपूर्वक अपनी मनसा कह सुनाया। फिर भी उन्होंने वही मोहिनीरूप दिखलानेका विष्णुसे आग्रह किया। पश्चात् विष्णुने अन्तर्धान होकर वैसी ही मोहिनी स्त्रीकी रूप बना करके षोड़श शृङ्गार करके आया। गेंद उछालती हुई आती परम सुन्दरी कामिनी रूपको देखकर महादेव तो इतने कामासक्त हुए कि, उनके होश, विवेक बुद्धि सब जाती रही। पार्वतीके सामने ही निर्लज्ज होकर उस स्त्रीकी तरफ लपका, तो मोहिनी भी उन्हें आते देखकर भागी, तब तो कामके अधीन मदमस्त होकर शङ्कर भी उसके पीछे-पीछे भागता फिरा। इसी चक्करमें वीर्य स्खलित होकर गिर पड़ा; तब जोश कम पड़ा, तो देखते क्या हैं कि, उधरसे शृङ्गार फेंक करके विष्णु आ रहे हैं; अपने-को नग्न बेसहुर देखकर वे बड़े शर्माये, फिर लौटकर चले गये। ऐसी दुर्दशा कई दफे उनको विषय भोगके कारण हुई। तो भी मूर्ख लोग उनकी बड़ी महिमा झूठ ही गा रहे हैं ॥ १९५४ ॥

४. हरि जग आयके, जन्त सत्त टारिया ❀ माता पुत्रिसों तीहुँ, भोग कीन्हा ॥१९५५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विष्णुकी महिमा भक्त लोगोंने जो बहुत विधिसे गाया है। उसे सर्वशक्तिमान्, जगदाधार, विश्वपति ठहराया है, सो भी झूठा ही है। ऐसा कोई एक जगत्का कर्त्ता तो नहीं है। पारख-दृष्टिसे भी ऐसा नहीं ठहरता है, जड़ाध्यासी जीव देहधारी होकर आया, जगत्में नरजन्म लेकर 'विष्णु' या 'हरि' नाम धराया, सो वह तो प्रपञ्ची पाखण्डी ही हुआ।

जगत्में जब विष्णु उत्पन्न हुआ, तो बड़ा होकर वह बहुरूपिया बना। यति=त्यागी साधु मुनियोंके पासमें आ-आ करके सत्य मार्गके विचारसे उन्हें टार दिया वा हटा दिया। मिथ्या धोखाके प्रपञ्चोंमें लगा दिया। अथवा जगत्में आ करके हरिने यही किया कि, अपने और पराये त्यागकी सत्यताको नष्ट-भ्रष्ट किया; यतिके त्यागको माया-जालमें फँसा करके बिगाड़ दिया; और सती 'वृन्दा' आदिके पातिव्रत्य सतित्वको भी छल-कपटसे भग-भोगकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। बहुतेरी सती नारियोंको बिगाड़कर असती व्यभिचारीणी बना दिया। हानिके सिवाय सच्चा हित तो किसीका भी नहीं किया। ब्रह्मा, विष्णु, और महेश—ये तीनों तो ऐसे व्यभिचारी अविवेकी नरपशु हुए कि, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका भी कुछ उन्होंने ख्याल नहीं रक्खा। मनमाने निषिद्धाचरण करते चले गये। जवान होते ही पहले शुरू-शुरूमें अपनी ही जननी वा मातासे भग-भोग सम्भोग किया। पहले शङ्करने लग्गा लगाया, फिर ब्रह्मा और विष्णुने भी माताके ही भग भोगा। फिर उनके समागमसे क्रमशः तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। पार्वती या सती, सावित्री और लक्ष्मी सो अपने-अपने अंशसे पैदा हुईं लड़कियोंसे उन्होंने फिर विवाह करके उन्हें स्त्री बनाकर उनसे भी मनमाने भग-भोग किया। जो बात साधारण मूर्ख गृहस्थ भी नहीं करते हैं, वही जग निन्दित पशु-कर्म उन्होंने किया। इसवास्ते वे बड़े ही नरपशु हुए। वैसे ही नरपशु लोग अभी उन्हींकी प्रशंसा करते फिरते हैं, बिना विचार ॥ १९५५ ॥

५. अञ्जनीके छलनको, देव तीनों गये ❀ पाप औ पुण्य जिन्ह घोरि पीन्हा ॥ १९५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! 'अञ्जना' नामकी लड़की 'विरज' वानरकी पुत्री थी, वह युवा अवस्थामें कपि केशरी नामक पुरुषसे व्याही गई थी। वह पति परायणा सती थी। परन्तु, उसे छलनेको ब्रह्मादि तीनों देव गये। एक समयमें उसे एकान्त स्थलमें पाकर वायुकी सहायतासे महेशने जबर्दस्ती उससे सम्भोग किया; उसे गर्भ रहा। पीछे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वही हनुमान् हुआ। वह पवन सुत या रुद्र पुत्र कहलाया। अथवा पुराणोंमें दूसरी भी कथा आयी है। तहाँ एक सती अनसूयाके आख्यान भी आया है। अनसूयाकी माता देवहूति स्वायम्भुव मनुकी पुत्री थी; कर्दम ऋषिकी स्त्री देवहूतीके गर्भसे अनसूया उत्पन्न हुई थी। पीछे महर्षि अत्रिसे वह व्याही गई थी। वह बड़ी पतिव्रता-सती थी। एक समयमें नारदजीके चुगली लगानेसे लक्ष्मी, पार्वती और सावित्रीने असन्तुष्ट होकर अनसूयाके सतीत्व भङ्ग करनेके लिये प्रेरणा करके त्रिदेवोंको भेजा था; तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश, वे तीनों मिलकर अनसूयाको छलनेके लिये अत्रिके आश्रममें गये। भेष बदलकर मुनि बन करके तीनों ही कुटीमें जा पहुँचे; वहाँ बैठ गये। उस वक्त अत्रि मुनि वहाँपर नहीं थे। सतीके आतिथ्य सत्कारको अस्विकार करके वचन बद्धकर वस्त्र रहित होकर सत्कार करनेको उन्होंने कहा। तब उनके कपटको जान करके अनसूयाने भी अपने सतीत्वका सङ्कल्प करके उन्हें छः-छः महीनेका बच्चा बनाया, ऐसा लिखा है। फिर नङ्गी होकर स्तन पान कराकर सुला दिया। पश्चात् लक्ष्मी आदिके आकर क्षमा माँगकर विनय करनेपर पुनः पानी छोड़ करके त्रिदेवोंको पूर्ववत् बनाकर विदा की थी, इत्यादि कथा विस्तारसे पुराणोंमें लिखा है। सो सार निर्णय दर्शानेके लिये ही यहाँपर कुछ बात संक्षेपमें लिख दिया है। इसप्रकार अञ्जनीको छलनेके लिये तीनों देव गये थे। परन्तु, वहाँ आप ही बद्ध गाफिल हुए। पाप-पुण्यको घोल-घालकर उन्होंने पी लिये। उन तीनोंने शुभाशुभ, हिताहित होनेके रास्ताके विचारको छोड़कर मनमाने चले गये। पाप=जगत् विषय, वाणी जालके विषयानन्दको और पुण्य=परमार्थ, धर्म-कर्म, वाणी जालके ब्रह्मानन्दादिको एकमें मिला करके चराचरमें व्यापक ब्रह्म मानकर दोनों तरफके जड़ाध्यासको ग्रहण कर लिया। जिन्होंने सत्यासत्यका कुछ भी निर्णय नहीं किया। जब जैसा खुशीमें आया, तब तैसा ही किया। इसकारणसे भव-बन्धनोंमें बद्ध होकर चौरासी योनियोंके महाचक्रमें गिर पड़े, बिना पारख ॥ १९५६ ॥

६. कहहिं कबीर सब देव अन्याई भये ❀ तिनहिंका कहा, सब जगत कीन्हा ॥१९५७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता उपरोक्त घटना दर्शाकर यहाँपर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको

कहते हैं कि— हे सारग्राही मनुष्यो ! अब आप सब विचार करो कि, वे सब देवता कितने अन्यायी अविचारी, पापी, कुकर्मी हुए। उनका नाममात्र देवता रहा, नहीं तो काम सब छल, कपट, प्रपञ्च विस्तार तो दैत्यका ही हुआ। ब्रह्मादि त्रिदेवोंसे ले करके सब देवगण बड़े अन्यायी, पक्षपाती, अविवेकी हुए। चोरी, हिंसा व्यभिचार, निन्दा, मिथ्या, गाली, क्रोध, ईर्षा, मान, छल, कपट, इत्यादि सारे दुर्गुण बहुतायतसे उनमें भरे थे। परन्तु, अज्ञानी जगत् जीव मूर्ख मनुष्य सब उन्हीं प्रपञ्ची देवोंको सर्वश्रेष्ठ शक्तिमान्, भुक्ति-मुक्तिदाता मानकर बड़ी महिमा वर्णन किये हैं; और उन्हीं ब्रह्मादि देवोंकी कही हुई वेदादि वाणीको प्रमाण मानकर जगत्में संसारी और भेषधारी सब कोई वर्णाश्रम धर्मका पालन कर रहे हैं। उसी अनुसार बर्ताव करके चल रहे हैं। अन्यायीके अनुयायी बन करके उनके वचन माननेवाले भी महाअन्यायी बन रहे हैं। उन्हीं योगी, ज्ञानी, भक्त, पण्डितोंके कही हुई बात मानकर हित-कल्याण सुखादिकी आशासे जगत्के सब मनुष्य नाना साधनाएँ जप-तप, व्रत-उपवास इत्यादि कर रहे हैं। कोई वाममार्ग पकड़कर विषय-व्यभिचार भी कर रहे हैं। अब कहिये ! ऐसे दुर्बुद्धि महान पशुवत् नरजीवोंका कैसे कल्याण होगा ? कभी नहीं होगा। इसकारण हे सज्जनो ! मनुष्य देह पाये हो, सो अभी अपना हितकारक उपाय करो ! छैः पक्ष पकड़नेवाले लोग पशुमें गिने जाते हैं। जैसेः— १. स्त्रीके पक्ष, २. बड़े-बड़े मनुष्योंके पक्ष, ३. देवताओंके पक्ष, ४. पुराणोंके पक्ष, ५. शास्त्रोंके पक्ष और ६. वेदोंके पक्ष पकड़कर पशु मत् बनो। शरण रक्षक पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके सच्चे मनुष्य बनो, सार सत्यज्ञानको ग्रहण करो ! असार मिथ्या धोखेको परित्याग करो। सत्यन्याय-निर्णयकी सारशब्द गुरुमुख वाणीका ही दृढ़तासे प्रमाण मानो। उसी मुताबिक हंस रहनी-रहस्य सद्गुण धारण करके बरतो, तभी जीवन सफल होगा, ऐसा जानो ! और कुकर्मी देवताओंके चरित्रके बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने भी बीजक सद्ग्रन्थमें उसी प्रकार दर्शाकर वर्णन करके कहा है। सो भी सुन लीजिये ! ॥ १९५७ ॥

॥❀॥ रमैनी, नम्बर— २० ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, रमैनी नम्बर — ८१ ॥❀॥

१. देव चरित्र सुनहु हो भाई ! ❀ जो ब्रह्मा सो धियउ नशाई ॥ १९५८ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैंः— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! हे भूले हुए भोले भाले भाइयो ! जिन्होंको तुम लोग श्रेष्ठ देवता महान पुरुष मानकर उनसे अपने कल्याणकी आशा रख रहे हो ! अब जरा कान लगा करके उन्होंके विषयका चरित्र, कुकर्मोंकी लीला, कुचालको तो ध्यानसे सुनो ! पुराणोंमें जो बात विस्तारसे वर्णन किया है, सोई मैं संक्षेपमें कह देता हूँ ! पहले जिस ब्रह्माको लोक-पितामह स्वयंभू, श्रेष्ठ करके तुम लोगोंने माने हो, सोई कामान्ध होकर निज पुत्री सरस्वतीके साथ मैथुन भोगादि कुकर्म करके बुद्धिसे भ्रष्ट हो, मनुष्यपदसे नशा गया था; अतः ब्रह्माके पक्ष लेकर जीवोंका कल्याण कुछ भी नहीं होगा, सो जानो ! ॥ १९५८ ॥

२. दूजे कहौं मन्दोदरि तारा ❀ जेहि घर जेठ सदा लगवारा ॥ १९५९ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! दूसरा भी कथा कहता हूँ, सुनो ! मन्दोदरी रावणकी स्त्री बड़ी थी; विभिषणके भौजाई होनेसे मातावत् लगती थी। परन्तु, जिसके घरमें रावणके मरते ही देवर, लगवार दूसरा पुरुष, जाररूप विभिषणने फिर उसे अपनी स्त्री बनाकर रख लिया था; और तारा बालीकी स्त्री होनेसे सुग्रीवकी जेठ लगती थी; किन्तु, बालीके मरते ही सुग्रीवने ताराको अपने घरमें लाकर स्त्री बना करके रक्खा, उससे भोग-विलास किया; और फिर वे दोनों रामके प्रिय भक्त भी कहलाये। लगवार बनकर सदा जेठी भौजाईसे वे दोनोंने कुकर्म विषय भोग करते रहे; ऐसे अन्यायी पामर हुए थे ॥ १९५९ ॥

३. सुरपति जाय अहिल्या छरी ❀ सुर गुरु घरणी चन्द्रने हरी ॥ १९६० ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो ! एक समयमें देवताओंके राजा इन्द्रने भी गौतमकी

अनुपस्थितिमें उनके आश्रममें जा करके कपट रूपसे छल-बलका प्रयोग करके गौतमकी स्त्री अहिल्याको छला; भग-भोग करके सत्यसे नष्ट-भ्रष्ट हुआ। तैसे ही देवताओंके गुरु बृहस्पतिकी स्त्रीको छल-बल-कपट करके या फुसला करके गुरुके घरमें न होतेमें चन्द्रमाने हरण करके लाया। उससे भग-भोग किया, जिससे बुध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। देखिये! यह कैसा उन लोगोंका दुराचार हुआ!॥१९६०॥

४. कहहिं कबीर हरिके गुण गाया * कुन्तिहि कर्ण कुँवारेहि जाया ॥ १९६१ ॥

अर्थः— श्रीसद्गुरु कहते हैं— हे सन्तो! राजा पाण्डुकी स्त्री कुन्तीने विवाह होनेसे पहले पिताके घरमें कुँवारी अवस्थामें ही सूर्य नामक पुरुषको बुला करके उससे फँसकर विषय भोग वा मैथुन भोग करायी थी। जिससे गर्भ रहा, तो समय पूर्ण होनेपर उससे कर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। परन्तु, लोक लाजसे उस पुत्रको नदीमें बहा दी थी। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— दुःख दूर करनेकी आशा-से जिन देवताओंकी गुणानुवाद-स्तुति हिन्दू मनुष्योंने की और कर रहे हैं, वे सब देवता तो महा-कुकर्मी, पापी हुए, अब वे कौन इन्होंके दुःखादि हरण करेंगे? कोई नहीं। अथवा विशेष करके लोग विष्णुका गुण गाते हैं। परन्तु, विष्णु भी तो वैसा ही अन्यायी हुआ था; और उसके माने हुए दश अवतार सभी हिंसक, क्रूर, विषयी, व्यभिचारी, कुकर्मी ही हुए हैं। वृन्दाके सतीत्वको तो विष्णुने ही छल करके हरण किया था, इत्यादि उनके चरित्र पुराणोंमें जाहिर ही किया है। विषयी, पामर, नरपशु, पाखण्डियोंके लीला वर्णन करके गुण गानेसे जीवोंका कुछ हित-कल्याण होनेवाला नहीं है। उनके नाम-स्मरण करनेसे भी कोई फायदा नहीं है। वैद्य ही रोगी है, तो वह दूसरेका रोग कैसे हटायेगा? तैसे देवता ही पापी हुए, तो फिर मनुष्योंके पापको वे क्या दूर करेंगे? कैसे करेंगे? अजी! जिनको तुम पुकारते हो, वे तो कबके मर-मर करके चौरासी योनियोंमें जा चुके हैं। फिर वे कैसे तुम्हारी सहायता करनेको आवेंगे। ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवतादि सब मिथ्या कल्पना है, सो कोई तुम्हारे सहायक होने वाले नहीं हैं। अतएव मिथ्या भ्रम-भूलको छोड़ो। पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर अपना यथार्थ हित कल्याण करो! यही मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य है; सो जानो! ॥ १९६१ ॥

॥❀॥[यह अन्तका भाग है]॥ चौपाई ॥ भाग- १०३ ॥[चौपाई-११। साखी-२। छन्द-१ है]॥❀॥

१. करहिं कुचाल महातम भारी * धोखा देइ देइ जीवन मारी ॥ १९६२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! पाखण्डी गुरुवालोग गुप्त-प्रगटरूपसे करनेको तो कुचाल, कुकर्म, हिंसा, व्यभिचारादि पशुकर्म ही करते हैं। परन्तु, उसके महिमा-महात्म्य तो बड़ा भारी वर्णन करते हैं। जिन-जिन देवताओंने ज्यादा-ज्यादा कुचाल, कुकर्म, पाप किया है, उनकी तो और भी ज्यादा प्रशंसा, विशेष महिमा गाते हैं। और निर्गुण-निराकार, ब्रह्म-ईश्वरादि मानकर उसको सर्वशक्तिमान् बतला करके भारी महात्म्य किया है। उसको प्राप्ति करनेकी आशासे नाना चाल-कुचालसे चलते हैं। उन काल=गुरुवालोगोंने नाना प्रकारसे धोखा दे-दे करके नरजीवों-को मनुष्यपदसे मारकर गिराये और मार रहे हैं। सद्गुण-लक्षण जो नरजीवनका सार है, उसको नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। अतः कुजन लोगोंके कुसङ्गसे न्यारा होकर दूर ही रहना चाहिये ॥ १९६२ ॥

२. पातशाह शिर टोपी दीन्हा * सोउ चाल कुचाल गहि लीन्हा ॥ १९६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे बादशाहके शिरपर टोपी=मुकुट या ताज लगा देते हैं, सो ठीक-ठीक न्याय करनेके लिये है। यदि ताज लगाकर भी अन्याय करता है, तो वह पापी माना जाता है। तैसे ही पहले ब्रह्माने बादशाह या महाराजाधिराज स्वयं ही बन करके अपने शिरपर न्याय करनेका भार लिया; टोपीके समान रत्न जड़ित मुकुट लगाया। वेद वाणीसे कर्मादिकी हुकूमत चलाया। परन्तु, सत्यासत्यका न्याय न करके ब्रह्माने मनमाने कुचालका अन्यायी चाल ही ग्रहण कर लिया। होम-हवन, बलिदान, हिंसा, भोग-व्यभिचार, ठगाई, इत्यादि पशु चालकी कुचालको ही पकड़ लिया; वही संसारमें प्रचार किया; ऐसा अन्यायी हुआ ॥ १९६३ ॥

३. कफनी कफन अजादि बाना * तीनहुँ सोई फाँस अरुझाना ॥ १९६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! विष्णुने भी तिलक, कण्ठी, लगा करके बाहर तो दयाका रूप बनाया; परन्तु, भीतर कपट रखकर कपट मुनि बना। बहुतोंको धोखा देकर घात किया। महेशने भी कफन=मुर्देके कपड़ेकी कफनी=अलफी आदि पहिरनेको बनाया, लङ्गोटा लगाया, ऐसे परम विरक्त त्यागी-योगीके भेष बनाया; परन्तु, वही पीछेसे महा भग लम्पट, वाममार्गी हुआ। कुछ लेशमात्र भी त्याग-वैराग्यका अंश बाकी न रहा। अजादि=ब्रह्मादि त्रिदेवोंका बाना=भेष तो मनमाने आजादीका, स्वतन्त्र खुशीका हुआ। जैसा-जैसा उन्होंको भाया, तैसा-तैसा टोपी, कफनी, कफन, माला, कण्ठी, तिलक, लङ्गोटा, अड़बन्द आदि ग्रहण करके भेष बनाये थे। किन्तु, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, उन तीनोंके स्थान=स्थिति ठेकान तो सोई खानी-वाणी जाल या फाँसमें ही हुआ; इसलिये मुक्तिका स्थान तो उन्हें नहीं मिला। जड़ाध्यासी होकर अरुझे, जहाँ कोई स्थान नहीं, तहाँ शून्यमें लक्ष्य लगाकर फिर गर्भवासमें ही चले गये। वे तीनों उसी फाँसमें अरुझे तथा उन तीनोंके त्रिगुणी फाँसमें जो अरुझ रहे हैं, वे सब भी उसी प्रकार चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ रहे हैं॥१९६४॥

४. पारखी सबके पारख कीन्हा * अपनी भेष अपनाय सो लीन्हा ॥ १९६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकारसे संसारमें खानी-वाणीका महा बन्धन फैलता हुआ दृढ़ होता चला आ रहा था। तत्पश्चात् अभूतपूर्व महापुरुष शुभ संस्कारी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब उत्पन्न हुए। आप सत्यशोधक, परम पुरुषार्थी, ज्ञानी, ध्यानी, विवेक-वैराग्यादि सर्व सद्गुण सम्पन्न परम पारखी, पारख प्रकाशी, आदिगुरु, सद्गुरु बन्दीछोर हुए। आप पारखी श्रीसद्गुरुने स्वयं बोध बलसे जगत्में प्रचलित समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थोंके और सबके सिद्धान्तोंके सारासार, सत्य-मिथ्याकी परीक्षा द्वारा निर्णय करके पारख किये। सबके कसर-खोट विकारादिको जान गये। फिर असार, असत्य, खोटी मानन्दी-कल्पनादिको परित्याग करके सार, सत्य, चैतन्य निज स्वरूपके बोधको ग्रहण कर लिये। फिर देह रहे तक अपनी रहनी-रहस्य हंसपदमें स्थिति कायम करनेके लिये, अपने हित-कल्याणके लिये शुद्ध टकसारी भेषको अपना लिये, सोई उपयुक्त सच्चा शुद्ध भेषको धारण कर लिये ॥ १९६५ ॥

५. भेष यथारथ राखि सो साखी * और अमङ्गल एकौ नहिं राखी ॥ १९६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निज-पर जीवके हित-कल्याणके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सत्य यथार्थ शुभ त्याग-वैराग्यका चिह्न साधुका भेष-रहनीके लिये अपने पासमें रख लिये। सो सब झगड़ोंको मिटानेवाला साक्षीवत् सोई आपके अनुयायी पारखी सन्तोंका शुद्ध भेष अभी भी प्रत्यक्ष साक्षीरूप मौजूद है। वही यथार्थ हंस भेषको आपने मुमुक्षुके लिये कायम कर रक्खे हैं। वही नरजीवोंका हितकारक है। और अमङ्गल भेष, अभद्र, अकल्याण, विनाश करनेवाला कालका जाल है। जैसे— खाक लगाना, जटा बढ़ाना, कपड़े रँगा करके पहिरना, नागे, दिगम्बर, बाघम्बरी, मृगचर्मधारी, कान फड़ानेवाले, कङ्कणधारी, बहुरूपिया भेष षट् दर्शन-छियासवे पाखण्डोंके बाना, सो सब अमङ्गल, अहितकारी, उजड्ड गँवार गुरुवालोगोंका जाल है। इसवास्ते उन्होंका अशोभनीय दाम्भिक भेष एक भी अपने पासमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने नहीं रक्खा। सो अभी पारखी सन्त भी एक भी भयङ्कर बेहुदा भेषको अपने मण्डलमें नहीं रखते हैं। शुद्ध सार हंस भेषको ही रखते हैं या रख रहे हैं। जो यथार्थ भेष सद्गुरुने रक्खा था, सोई वर्त्तमानमें भी पारखी सन्तोंका भेष प्रत्यक्षमें सबोंको प्रगट करके साक्षी दे रहा है; सो सबको जाहिर ही है ॥ १९६६ ॥

६. निजपद जानि भेष अपनाई * कण्ठी तिलक लङ्गोट सोहाई ॥ १९६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निज स्वरूप पारखपदको अपरोक्ष जान करके देह

रहे तक उसी निजपदमें एकरस कायम रहनेके लिये त्याग-वैराग्यको ही उत्तम, श्रेष्ठ जानकर साधु भेषको अपना लिये। तहाँ कण्ठी पहिरना, तिलक लगाना, लङ्गोटा बाँधना ये तीन ही चिह्न साधु भेषके लिये अच्छा समझकर ग्रहण कर लिये। यही खास भेष साधु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका है। सन्त समाजमें सोई शोभा देता है। उस पर ऊपरसे अचला कपड़ादि पहिरा जाता है। इसे ही सुन्दर मुद्रावाला 'भद्र भेष' कहते हैं। अथवा शरणागत जिज्ञासु मनुष्योंको निज पारखपद बोध प्राप्त करनेके अधिकारी जान करके उसे अपनी शरणमें ले करके अपने त्याग भेष श्रीसद्गुरुने उसे भी पहिरा दिये। तिलक लगाकर कण्ठी बाँधकर लङ्गोटा पहिरा दिये; अचला लगाकर शिष्यको साधु बना लिये। सो त्याग भेष अत्यन्त सुन्दर शुद्ध स्वच्छ लगता है। मन, वचन, कर्मसे छोटे-बड़े जीवोंपर दया रख करके निर्वैरी होनेका चिह्न ही कण्ठीरूप हीरा=मणका पहिरना है। सत्यन्याय-से निष्पक्ष बर्ताव करनेका चिह्न ही नासिकाग्र भागसे शिर तक लम्बा खड़ा तिलक मस्तकमें लगाना है; और भीतर-बाहरसे अष्ट मैथुन भोग विषय वासना परित्याग करके त्यागी सच्चे साधु होनेका चिह्न ही अचला-लङ्गोटा-अड़बन्द बाँधना वा पहिरना है। विवेक-विचारपूर्वक सत्यन्याय-से जीवन सफल करनेके लिये यही हंस भेष शुद्धतासे श्रीसद्गुरुने अपने धारण करके अन्य शरणागत मनुष्योंको भी वही भेष धारण कराया है ॥ १९६७ ॥

७. टोपी कफनी कुरता राजै * परख विलास सबै शुभ साजै ॥ १९६८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! उपरोक्त भेष-चिह्नके अतिरिक्त पारखी सन्त भिन्न वस्तुएँ भी देह व्यवहारके कार्यमें प्रयोगमें लाते हैं। ताजके समान लम्बी-खड़ी टोपीको शिरमें पहिरते हैं। कफनी=ढीली-ढाली अलफी बिना बाँहकी होती है, सो भी पहिरते हैं। कुरता=पूरा बाँहवाला, देहमें फिट हो, ऐसा कुरता, बन्डी आदि कपड़े भी वे शीतोष्ण रक्षाके लिये लगाते हैं; सो टोपी, कफनी, कुरता आदि वस्तु देह गुजाराको रक्खें अथवा वे नहीं रक्खें यों ही साधारण रीतिसे काम चला लेवें, पारख विलासी सन्त जो होवें, तो उन्हें सब शोभा ही देता है। क्योंकि, पारखी सन्त सदा सत्सङ्ग-विचारके विलासमें ही रहते हैं। सर्वदा शुभ कर्त्तव्य ही करते हैं। उनका सीधा-सादगी वर्तमान सदा सबोंको शोभा ही देता है। यदि किसीने बाहर ऊपरसे तो भेषकी शोभा बहुत दिखलाया, और भीतर पारख दृष्टिकी रहनी नहीं हुई, तथा सर्व जड़ाध्यास रहित पूर्णतासे पारख दृष्टि ग्रहण नहीं हुई, तो उन सन्तोंकी जीवन्मुक्ति नहीं होगी। खाली भेषमात्रसे कल्याण नहीं होगा। अतः रहनीके लिये ही भेष लेना और वैसा ही बर्ताव करना चाहिये ॥ १९६८ ॥

८. सोई भेष सो मङ्गलकारी * और अनेकन्हि जतन खुवारी ॥ १९६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सोई पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका निर्णित त्यागी साधुका भेष-चिह्न धारण करना, सो नरजीवोंका मङ्गल-हित-कल्याण करनेवाला ग्राह्य मङ्गलकारी है। पारखी श्रीसद्गुरुके भेष और आदेश हंस रहनीको छोड़कर जो मनुष्य और ही अनुमान-कल्पना पकड़कर गुरुवालोगोंके अमङ्गल भेषमें जाते हैं। कर्म, भक्ति, योगादि और ही अनेकों यत्न-प्रयत्न नाना साधनाएँ करनेमें लग जाते हैं, सो मुक्तिदायी हंसपदसे पतित होकर खराब-जड़ाध्यासी हो जाते हैं। अनेकों और सब यत्न जीवनको खराब करनेवाले बेकार हैं। ऐसा समझकर खराब नाना यत्नको छोड़ करके हितकारी पारखी श्रीसद्गुरुके भेषको ही धारण करना चाहिये ॥ १९६९ ॥

९. छीर नीर सो हंस निबेरा * बक बक ध्यान कालके प्रेरा ॥ १९७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जैसे हंस पक्षी मिश्रित क्षीर-नीरका निबेरा करके नीरको त्यागकर क्षीरको ही ग्रहण कर लेता है; और बकुला झूठा ध्यान लगा करके काल बन जाता है। तैसे ही हंस=पारखी सन्त, नीर=पञ्च तत्त्व, पञ्च विषय, जड़ देहादिकी आसक्तिमें पड़े

हुए, क्षीर=शुद्ध निज चैतन्य जीवको, जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय करके जड़ाध्याससे न्यारे कर लेते हैं, फिर सद्गुण रहनी सहित पारख बोधमें स्थिर होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। तैसे बकुले= गुरुवालोग वाणीकी मिथ्या बकवाद कर-करके मनमानी कल्पनाकी प्रेरणामें पड़ करके झूठे ही ब्रह्म, ईश्वर, देवतादिकी भावनासे ध्यान, धारणा, समाधि लगा करके मिथ्या धोखेमें गाफिल होते हैं। जड़-चैतन्यमें मिश्रित कोई परमात्मा मान करके जड़ाध्यासी होते हैं। बगुला-भगत, बकवादी, ध्यानी, अभिमानी लोग कालके कुचक्रमें पड़कर चौरासी योनियोंकी जन्मृतिमें घूमा करते हैं। बिना पारख पथभ्रष्ट हो जाते हैं ॥ १९७० ॥

१०. बक अरु हंस चाल बिलगावै ❀ परख विलास सदा सुख पावै ॥ १९७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखहीन बकुले बकवादी गुरुवालोगोंकी चालबाजी जीवोंको सब तरफसे घेर-घारकर काल-जालमें डाल करके स्वार्थ पूर्णकर मुक्तिपदसे गिराकर नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले हैं। यमकी कुचाल बड़ी खराब त्रिविधि दुःखदायी है; और हंसरूप पारखी सन्त दयालु श्रीसद्गुरु सब प्रकारसे जीवोंको बचा करके भव-बन्धनको नशाकर मुक्ति मार्गमें जीवोंको लगानेवाले हैं। जो जिज्ञासु नरजीव विवेक दृष्टिसे सद्गुरु और गुरुवाकी चालको देखते हैं, निर्णय करके न्यारा-न्यारा बिलगाव करते हैं; सो गुरुवाओंके कुसङ्गको त्यागकर पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें ही आ जाते हैं। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें रहकर सबकी परीक्षा करके भ्रम-भूल, अभ्यासको तजकर परख विलासी सन्त पारख प्रतापसे जीवन्मुक्त होकर सदा सुख ही पाते हैं। सर्व संशय निवृत्त होनेसे सदाके लिये निर्बन्ध, स्वच्छन्द, सुखी हो जाते हैं। अतएव बक=गुरुवा और हंस=पारखी श्रीसद्गुरुको चालको बिलगा करके पारख विलासमें रहकर सदा सुखको पाओ, जीवन्मुक्त हो जाओ ! ॥ १९७१ ॥

११. आदि अन्त परखो परखावो ❀ झाँईं दुर्मति दूर बहावो ॥ १९७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— इसलिये हे सन्तो ! हे मनुष्यो ! आखिरमें तुम्हे मैं यही हितकारी शिक्षा देता हूँ कि, आदिसे अन्त तक या शुरूसे आखिरी तक जो कुछ गुरुवालोगोंने खानी-वाणीका जाल फैलाया है, उसे अच्छी तरहसे तुम प्रथम स्वयं ही परखो ! तहाँ आदि-अन्त कहिये उत्पत्ति-प्रलय, जगत्-ब्रह्म, प्रवृत्ति-निवृत्ति, जड़-चैतन्य, जन्म-मरण, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक, विषयानन्द-ब्रह्मानन्द, इत्यादिको यथार्थ निर्णय करके गुरुमुख द्वारा ठीक-ठीक परीक्षा करके सार-असार, सत्यासत्य, बन्ध-मुक्तिके हेतुको परखो, जानो, समझो-बूझो ! फिर भव-बन्धनके मूल कारणको निर्मूल ध्वंसकर निज स्वयं-स्वरूपमें अटल स्थिर हो जाओ ! सदा गुरु विचार करते रहो। फिर कोई जिज्ञासु जीव मिल गये, तो उन्हें भी दया करके उपरोक्त श्रीसद्गुरुके पारख ज्ञानको शान्तिपूर्वक परखाओ, बताओ, भ्रम-भूलको मिटाओ ! सब प्रकारसे परम पुरुषार्थ कर-कराके जीते ही दुर्मति=दुष्ट बुद्धिवाले गुरुवालोग तथा स्त्रियोंके कुसङ्ग, माया-मोह, मानन्दी, झाँईं=ब्रह्म और विषयोंकी गाफिली, आसक्ति आदि सब विकारोंको परीक्षा दृष्टिसे देख-देख करके निकालकर दूर फेंक दो, बहा दो, हटा दो। बुद्धिमें किसी प्रकारकी दुर्भावना कभी आने न दो ! सदा सावधान होकर निजपद पारख युक्त हंस भूमिकामें आयु रहे तक ठहरे रहो ! इसप्रकार अभी वासनासे रहित हो जीवन्मुक्त कृतकृत्य हो जाओ ! ॥ १९७२ ॥

साखीः— जिन्ह चेता तिन्ह चेता ❀ मानुष केरी दाव ॥
[३४०] नहिं तो दुर्मत फेरमें ❀ सहै घनेरी घाव ॥ १९७३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जिन्होंने चित्त-चैतन्य जीवके सत्स्वरूपको यथार्थ पहिचान करके हृदयमें चेतना, जाग्रत् सावधानी किया, सोई निज चैतन्य पारखपदमें स्थित-अटल हुए। यह मनुष्य जन्मका दाव, मौका या अवसर जीवनका कल्याण करनेके लिये ही

मिला है। क्योंकि, नरदेह या मनुष्य खानी ही कर्मभूमिका है। यहाँ ही कर्म बनाना और बिगाड़ना होता है। बन्धनमें जानेके और मुक्त होनेके दोनों कर्म मनुष्य शरीरमें ही होते हैं। खानी-वाणीके अध्यास कुसङ्ग-कुकर्मादिसे भव-बन्धन पुष्ट वा दृढ़ होता है। पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहकर सुकर्म सद्गुणादि धारण करके पारख बोधमें ठहरनेसे सर्व बन्धन क्षय होकर मुक्ति प्राप्ति हो जाती है। ऐसे सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति करनेका अच्छी दाव शुभ मौका अभी नरजीवको मनुष्य शरीरमें मिला है। जिन्होंने यहाँपर चेता, तिन्होंने ही चैतन्यपदपर स्थिति पानेका पूर्ण लाभ उठाया। जो नहीं चेते वे ठगा गये। यदि नरजीवोंको पारखबोध नहीं हुआ, उन्होंने चेत करके बोध प्राप्तिके लिये सत्प्रयत्न भी नहीं किया, तब तो वे जीव अवश्य दुर्मति, दुष्ट-बुद्धिका काल= गुरुवालोग और स्त्रियोंके खानी-विषयोंका मोह और वाणी कल्पनाके पक्ष उसीके फेरा वा चक्करमें पड़ करके बुद्धिको नष्ट-भ्रष्ट कर नाना कर्म-कुकर्म साधनाओंमें भटका खाकर घनेरी घाव=बहुत तरहसे घायल, दुःखी, पीड़ित होकर यहाँ विरह, वैराग्य, तपस्याका तथा काम, क्रोध, मोह जनित नाना दुःख सहन किया करते हैं; और शरीर छूटनेपर अध्यासवश चौरासी योनियोंके चक्रमें जा करके जन्म, मरण, गर्भवास तथा त्रिविधि तापादि दुस्सह दुःखरूप घावका शूल घटोंघटमें सहा करते हैं। अतएव हे मनुष्यो ! अभी ही चेत करके उस कठिन चोटसे बचो ! ॥ १९७३ ॥

॥ ❀ ॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नम्बर— ११३ ॥ ❀ ॥

साखीः— मानुष जन्म नर पायके * चूकै अबकी घात ॥
[३४१] जाय परे भव चक्रमें * सहै घनेरी लात ॥ १९७४ ॥

अर्थः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— [गुरुमुखः—] हे सन्तो ! अनादि कालके संसारमें अनन्त बार जीव जड़ाध्यासके कारणसे चारखानी चौरासी योनियोंमें असंख्यों देह धारण कर-करके बहुत-बहुत दुःख भोग चुके हैं। मनुष्य खानी कर्मभूमिका है और पशु आदि त्रयखानी भोग-भूमिका है। स्वरूप बोध न होनेसे उसी कर्मचक्रमें सब जीव पड़े हैं। सुधार, बनाव, हित-कल्याण होनेका सत्पुरुषार्थ सिर्फ मनुष्य जन्ममें ही होता है। इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने चेतावनी देते हुए इस साखीमें कहा है कि— हे सज्जनो ! अबकी बार तुमने शुभ संस्कारके प्रतापसे मनुष्य खानीमें जन्म लेकर नरदेहको पाया है, तो अच्छा तुम्हारा भाग्य खुल गया है। उठो, जागो ! चेतो ! पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर निज कल्याण करनेमें कटिबद्ध हो करके लगो। मैं तुम्हारे हितके वास्ते ही कह रहा हूँ, सो सत् शिक्षाको पालन करो ! हे नरजीवो ! यदि ऐसे अमूल्य समय मनुष्य जन्ममें आ करके श्रेष्ठ संस्कारसे नर तन या पुरुष देहको पाकर अबकी बार भी तुम लोग चूक जाओगे, तो फिर कहीं तुम्हारा ठिकाना नहीं लगेगा। मौका चूका कि, उसका सर्वस्व गया। सत्य-विचारादि सद्गुण धारण करके हंस स्वभावको जिसने नहीं बनाया, और जीवघात, हिंसा, ठगाई, चोरी, व्यभिचारी, विषयभोग, कल्पना, अनुमान, भ्रम-धोखादिमें जो लगा रहा, सोई मुक्ति पथको भूल करके चूक गया। खानी-वाणीमें जहँड़ा गया, जड़ाध्यासी हुआ। इसकारणसे हंसपदसे पतित वे जीव सब वासनावश भव चक्र, संसार चक्र, चौरासी योनियोंके चक्र, योनि चक्र, अध्यास चक्रमें बँधे हुए वहीं जा करके गिर पड़े। वहाँ पशु, पक्षी, उष्मजादि अनेकों छोटे-बड़े देह धारण करके घनेरी=बहुत-बहुत अनेकों लात=दुस्सह दुःख कष्ट-क्लेश त्रिविधि ताप, जन्म-मरणादि ठोकरका दर्द सहन किये। भव चक्रमें जाकर फिर भी पड़ेंगे, तो वैसे ही लातें, मुक्के, धक्के, दण्डादि पा करके दुःख सहा करेंगे; और गुरु पारखसे जो चूके, विमुख हुए हैं, सो नर-नारीके भगचक्रमें पड़कर डूबे तथा गुरुवालोगोंके भ्रमचक्रमें जा करके पड़े, तहाँ बहुतेक दुःख सहे और सह रहे हैं। फिर देह छूटनेपर आवागमनादि महादुःख पाते रहते हैं। बिना पारख जीवोंकी ऐसी दुर्दशा होती रहती है। इसलिये हे मनुष्यो ! अबकी बेर चूक मत् करो ! पारखी साधु-गुरुके सत्य ज्ञानको धारण करके मुक्ति मार्गमें अग्रसर हो जाओ ! ॥ १९७४ ॥

॥ ❀ ॥ छन्द, नम्बर— [१५] ॥ ❀ ॥

१. जेहि हेतु सुर नर मुनि जना * बहु योग जप रट लावहीं ॥ १९७५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुजनो ! वास्तवमें सब कोई मनुष्य परमानन्द, परमपद, नित्यसुख, मुक्ति, स्वतन्त्रताको ही अपने हस्तगत करके प्राप्त करना चाहते हैं या वहाँ तक पहुँचना, तृप्त होना, इच्छा पूर्ण करना चाहते हैं। जिसके वास्ते बिना पारख सुर, नर, मुनि जनोंने कुछ-की-कुछ ही कल्पना कर बैठे हैं। कोई विषयासक्त हुए हैं, तो कोई वाणीकी भ्रम-भूलमें ही पड़े हैं। सुर=सत्त्वगुणी देवता माननेवाले भक्त लोग, नर=रजोगुणी कर्मी लोग, मुनि=मननशील योगी, तपस्वी लोग, जना=संसारी विषयी नर-नारी लोग या उन्होंके अनुयायी सेवक लोग, इन सबोंने वेद-शास्त्रादिके प्रमाणसे कोई एक जगत्का कर्त्ता विश्वपति, सुख-दुःखोंका दाता परमेश्वर, परब्रह्म मानकर उसे ही मूल कारण ठहराया है। उसीसे मिलनेपर परमानन्द होनेका अनुमान किया है। जिसके वास्ते आशा-भरोसा लगा करके योगी, ज्ञानी, भक्तजन, त्रिगुणी मनुष्य बहुत प्रकारके साधन करनेमें लगे और लगाये हैं। जप-तप, नाम-स्मरणका रटन, उच्चारण, कीर्तन, उपवास, तीर्थयात्रा, नवधा भक्ति, अष्टाङ्ग योग, सप्त ज्ञान भूमिका, विज्ञान मार्ग इत्यादि अनेकों कष्टकर साधना अभ्यास करनेमें मन लगाये और लगा रहे हैं। उसी कल्पनाके रटन वा धुनमें वे सब लोग अन्धाधुन्ध चले जा रहे हैं, बिना पारख ॥ १९७५ ॥

२. नहिं ओर छोर बेकार पावहिं * अगम कहि कहि गावहीं ॥ १९७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तथापि वह मन-मानन्दीके भ्रम-विकाररूप परब्रह्मका कोई किसीने भी ओर-छोर=इस किनारासे उस किनारा तक, जड़-पाँच तत्त्वसे अनन्तों चैतन्य जीव तक भी कहीं पता लगाकर दर्शन कर नहीं पाया। बेकारके धोखेमें पड़े; परन्तु, उसका भेद कुछ जान नहीं पाया। जिसका ओर-छोर, हद्द हीं नहीं है, वह बेकारका भ्रम है, तो कहाँसे मिलेगा ? परन्तु, उसको पानेकी आशासे आगे शक्ति चले तक बढ़ते चले गये। अन्तमें थक गये, कुछ नहीं मिला, फिर हाथ मलकर शिर धुन करके उसका झूठ ही गुण गाने लगे। अगम, अगोचर, अथाह, अपार, बेअन्त, मन-बुद्धि-वाणीसे परे वह परब्रह्म है, ऐसा कह-कह कर "नेति-नेति" श्रुतिःका प्रमाण दे-देकर मिथ्या महिमा गाये और गा रहे हैं। वही वेद-वेदान्तका उपदेश ब्रह्मज्ञान दृढ़ा-दृढ़ाकर अज्ञानी लोगोंको गुरुवालोग भुला रहे हैं ॥ १९७६ ॥

३. सो आदि अन्त जे सुजन जन ! * पारख करहिं परखावहीं ॥ १९७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो खानी-वाणीका जाल आदिसे अन्त तक, जगत्-से ब्रह्म तक, शुरूसे आखीरी तक महा विकारी जन्म-मरणादिमें ले जानेवाला मूल भव-बन्धनका कारण है। आदिमें विषयके बन्धनमें पड़े, फिर अन्तमें ब्रह्मज्ञानके बन्धनमें उलट-पलटकर जीव पड़ रहे हैं। सच्चे कोई विरले पारखी ही सो सबको जान करके उससे न्यारा हो रहते हैं। जो जिज्ञासु-जन बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर उनके सत्योपदेश, सारशब्द गुरुमुख निर्णयका श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हैं, सोई आदि-अन्तका यथार्थ भेद जान पाते हैं। सत्सङ्गमें ठहर-कर वे ही काल, सन्धि, झाँईं, तत्त्वमसि, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, सारासार, सत्य-मिथ्याको हंसबुद्धि विवेक दृष्टिसे मोटी-झीनी सकल मानन्दीको स्वयं पारख करके परीक्षा करते हैं। फिर सत्यको ग्रहण और असत्यका त्याग करते हैं; और पक्षपात रहित कोई जिज्ञासु मनुष्य मिला, तथा उसने विनय किया, तो उन सबको भी सत्य निर्णय गुरु न्यायको परखा करके दर्शा देते हैं। सुजन=सर्वश्रेष्ठ हंस पारखी जो होते हैं, सो ब्रह्म-जगत्के कसर-खोटको पारख कसौटीपर कस करके पारख निर्णय करते हैं, और अधिकारी मनुष्यको भी यथार्थ परखा देते हैं; वे पारखी सन्त निज-पर हितकारी होते हैं ॥ १९७७ ॥

४. सब गाँस भास मिटाय अभय * अशङ्क सोइ पद पावहीं ॥ १६७८ ॥

॥*॥ इति श्रीपारखनिष्ठ श्रीरामरहससाहेब विरचित-पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थे-पञ्चम ग्रन्थः टकसार मूलग्रन्थः प्रथम भाग सम्पूर्णम्॥५॥*॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग न्याय-विचारमें लगे हुए नरजीव साधु-गुरुकी दया एवं अपने प्रबल सत् पुरुषार्थसे क्रमशः मोटी-झीनी मायाकी गाँस=मोह-ममताकी ग्रन्थि, सम्बन्ध, जोड़, मिलाप, आसक्ति, खानी-वाणीका समस्त अध्यास तथा ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या मानन्दीकी भास, भावना, भ्रम-भूल एवं धोखा— इन सब विकारोंको मेट और मिटा करके साफ कर देते हैं। निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध स्वयं स्वरूप पारखमें अविचल या स्थिर हो जाते हैं। जिससे ईश्वर, यम, भूत-प्रेतादिका मिथ्या भय और मरणके भी डर उनका छूट जाता है। सब भ्रम दुविधा, शङ्काओंसे भी रहित हो जाते हैं। जिनकी पारखमें निष्ठा है, ऐसे पारखी सन्त अभय, अशङ्क, निर्मल, शुद्ध-बुद्ध होकर सोई निर्बन्ध जीवन्मुक्ति महानपदको पा जाते हैं। निजपद पारखमें एकरस स्थिति होनेपर सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं। अतएव हे मनुष्यो ! टकसारका सार उपदेश आखिरमें यही है कि, सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें रहकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक यथाशक्ति सेवा सुश्रुषा करते हुए सब ही गाँस, भास, अध्यासोंको मिटाकर अभय निःशङ्क होकर सोई निजपद पारख मुक्ति स्थितिको जीते जी प्राप्त कर लो ! उसीके लिये सत्प्रयत्नमें सदा लगे रहो ! माया-मोहमें कभी गाफिल मत् होओ ! सदा जाग्रत् हो रहो ! ॥ १६७८ ॥

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत- पञ्चम ग्रन्थ समाप्तिका मङ्गलाचरण पद वर्णन ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

धन्य धन्य गुरु धन्य हो ! पारख प्रकाश कबीर ॥ मङ्गलकारि महान्य हो ! सर्वोपरि मति धीर ॥१॥

कवित्तः— मत पन्थ बिलछान, शोध बोध कै महान ॥ जीव सत्य सार जान, धोख खोट अनुमान॥
पारख वित्त दीन्ह दान, तम दीनता नशान ॥ रामस्वरूप गुरु ज्ञान, करे जीवन कल्यान ॥२॥

॥ सवैयाः— ॥ जगमें प्रभु ! एक महान भये, सब बन्ध छुड़ायके मुक्त किये ॥
पारख प्रकाश कबीर कहे, तम भास आश विनाश हिये ॥
सोइ गुण पारखि सन्त लिये, रामरहस टकसार किये ॥
गुरुमुख पढ़ि गुनि रामस्वरूप, टीका लिखित विस्तार किये ॥ ३ ॥साखीः—

रामरहस टकसार कृत । पञ्चम ग्रन्थ महान ॥ रामस्वरूप गुरुकी दया । टीका पूर्ण लिखान ॥४॥
बीजक निर्णय ज्ञानकी । पञ्चग्रन्थी विस्तार ॥ ताकी टीका सरल करि । दर्शायो सब सार ॥५॥
शब्दभावकीअर्थसबखोलिखोलिलिखिदीन्ह॥ जिहिं विधि पढ़ते सन्त जन । पठन प्रणाली चीन्ह ॥६॥
सोई युक्ति मुताबिक । टीका लिखा खुलास॥ पढ़ि सुनि गुनिके बोध लई । रामस्वरूप सो खास ॥७॥
छन्दः— शुभ सतसङ्ग सार । सो पारख टकसार ॥ हंस रहनि हिय धार । कामादिक मद मार॥८॥
बोध रहनीके लिये, सत्सङ्ग करना सार है ॥ तन मनादि विकारको, परखि करना क्षार है ॥
आशा निराशा त्यागिके, गुरु पारखी आधार है। रामस्वरूप निजपद स्थिति, हो जाय सो भवपार है॥९॥
टकसार ग्रन्थ बड़ा अहै, सब सार सार बखानियाँ ॥ वेद शास्त्र पुराण विद्या, कुरान मत प्रगटानियाँ ॥
पाखण्ड दर्शन सकलके, निर्णय प्रगट पहिचानियाँ। रामरहस गुरु पारखी, रामस्वरूप ठहरानियाँ॥१०॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

निज स्वरूप नहिं जान । भ्रमत रहत भवधारमें ॥ होवै परख पिछान । भव बन्धन तब छूटई॥११॥
मानन्दी अध्यास । बन्धन यही जिव साथमें ॥ खानी वाणि विलास । आसक्ति करि पुष्टता॥१२॥

साखीः-श्रीकबीर साहेब प्रभु पारख ज्ञान निधान ॥ परखायो सब जालको । ग्रन्थ बीजक प्रगटान॥१३॥
मुक्तिदायी श्रीसद्गुरु । महिमा अमित सुचीन्ह ॥ पारखबोध प्रकाशिया । काल जालकरि छीन्ह॥१४॥
रामरहस पारखी भये । गह्यो सो बीजक सार ॥ सब यम जाल परखायके । पञ्चग्रन्थी निर्धार ॥१५॥
पञ्चकोश सम्पुट कहि । मानुष सार विचार ॥ गुरुबोध रु टकसार यहि । पदमें ग्रन्थ पसार ॥१६॥
पदसंख्यां टकसारकी । कहुँ संक्षिप्त बनाय ॥ बृहद् ग्रन्थ टकसार यह निर्णय सकल लखाय॥१७॥
नौ दोहा प्रथमें अहै । मङ्गलाचरण सो जान ॥ त्रयशत इकतालिस तहाँ । दोहा साखी बखान॥१८॥
सोलह शब्द, मसला दुई । झूलना दुइ कहि दीन्ह ॥ रमैनी बीस, चौकड़ि इक । पन्द्रह छन्द सुचीन्ह॥१९॥
चार लगनियाँ गाइया । चार मार्ग दरशाय ॥ एक सौ तीन विभागमें । चौपाई समुझाय॥२०॥
करि संख्या सोई सकल । पद संख्या या माहिं ॥ उन्निस सौ अठहत्तर । पूर्ण ग्रन्थ इति याहिं॥२१॥
रामरहससाहेब इमि । निर्णय रचना कीन्ह ॥ गुरुमुख पढ़िके रामस्वरूप अर्थ यथार्थ सुचीन्ह॥२२॥
पारखी सद्गुरुकी दया । पारखबोध प्रकाश ॥ रामस्वरूप पदमें स्थिति । आशा भास विनाश॥२३॥
नाशमान तन कार्य सकल । अविनाशी सो बोध ॥ दियो बोधगुरु साहेब । तन सो छूट्यो शोध॥२४॥
सन्तन आग्रह सो लखी । अर्थ लिखा या माहिं ॥ शब्द भाव निर्णय सहित बोध रहस्य दरशाहि॥२५॥
कबीर निर्णय मन्दिर । नागझिरी शुभ स्थान ॥ बुरहानपुरमें बैठिके । अध्यापन गुरुज्ञान ॥२६॥
नियम प्रणालि जस हता । तस परिमार्जित कीन्ह ॥ टीका भाषामें लिखी । सबन सुगम करि दीन्ह॥२७॥
सबहीं पदके विस्तृत । अर्थ लिखा है खुलास ॥ पढ़ै गुनै जो रामस्वरूप । होवै बोध प्रकाश ॥२८॥
सद्गुरु बन्दीछोरकी । पाइ दयाकी दृष्टि ॥ रामस्वरूप हित सबनके । नाशै कल्पित सृष्टि ॥२९॥
गुरु भक्ति ठहराव बिना । बोध यथार्थ न होय ॥ याते ज्योंलों तन रहै । गुरुभक्ति गहु सोय ॥३०॥
रहनि बिना निष्फल कथन । गहिये रहनी मीत ! ॥ रहनि रहस्ययुत होय सफल । समुझि लहो सोचीत३१
वाणी पढ़ि वञ्चक भये । जानिये ताको काल ॥ याते ठग मत होइये । काल महा विकराल॥३२॥
जिज्ञासु सत भावते । गुरुमुख लीजे बोध ॥ बोध भाव रखि वर्तिये । तस अधिकारि प्रबोध॥३३॥
सन्तत सत पुरुषार्थ जिन । मनमें साँच विरक्ति ॥ खानि वाणि अध्यास गत पारखि जीवन्मुक्ति॥३४॥
सो पद प्राप्तिके लिये । करु प्रयत्न नर जाग ॥ रामस्वरूप बन्धन मिटै । साँचा दृढ़ वैराग॥३५॥
श्रीकबीर पूरण गुरु ! वन्दौं पद त्रय बार ॥ रामरहससाहेब पद । रामस्वरूप हिय धार॥३६॥
जो जिज्ञासु गुरु शरण । दृढ़ पारख सतसङ्ग ॥ ताके सब बन्धन मिटै । सदा विचार तरङ्ग ॥३७॥
पञ्चग्रन्थी टीका सहित । पढ़िये नितप्रति सन्त ! ॥ बीजक टीका मनन करि । तजिये दूसर ग्रन्थ॥३८॥
यहिते पारख होवई । हित पारखते जान ॥ और तजि परिश्रम सब । गुरुपदमें ठहरान॥३९॥
पञ्चग्रन्थी टकसारकी । टीका भया समाप्त ॥ रामस्वरूप सत सार गहु । सारशब्द पर्याप्त ॥४०॥
युग सहस्र वसु सम्वत । छठी शुद्ध वैशाख ॥ बार शनि सन् उन्निस । एक्यावन मह दु दशाख॥४१॥
वन्दौं पारखि सन्त सकल रामस्वरूप शिर नाय ॥ कृपाप्रसाद गुरु साधुकी । भव बन्धन विनशाय ॥४२॥

॥❀॥ इति श्रीपारखनिष्ठ पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेब विरचित— मूल पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थका- पञ्चम ग्रन्थः 'टकसार' नामक ग्रन्थके प्रथम भागकी— रामस्वरूपदास, अनुवादित— "शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका" श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ५॥❀॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ पारखनिष्ठ परम पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेब विरचितः— ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ सद्ग्रन्थ टकसारके द्वितीय भागरूप मूल "सत्ताईस रमैनी" सद्ग्रन्थकी— ॥ ❀ ॥

[शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका सहित ।]

॥❀॥ अथ "सत्ताईस रमैनी" नामक, सद्ग्रन्थः प्रारम्भः ॥❀॥

॥❀॥ अथ टीकाकारकृत—श्रीसद्गुरु पद वन्दना, मङ्गलाचरण आदि प्रारम्भः ॥❀॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

कबीर साहेब सद्गुरु ! पारखज्ञान प्रकाश ॥ भक्तिभाव वन्दन करौं । रामस्वरूप सहुलाश ॥१॥
पूरण साहेब सद्गुरु ! पद वन्दौं दिन रैन ॥ रामरहस गुरु बन्दगी । रामस्वरूप मन चैन ॥२॥
पारखी सन्त समस्तको । बन्दगी है त्रय बार ॥ रामस्वरूपदास सदा । सद्गुरु दया आधार ॥३॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

दियो पारख सत बोध । पद वन्दौं सद्गुरु प्रभु ! ॥ कियो सारको शोध । रामरहस कबीरगुरु ॥४॥
बीजक ज्ञान महान । कह्यो सो बन्दीछोर ॥ पञ्चग्रन्थी बिलछान । ग्रन्थी मिटावै जीवकी ॥५॥
अनबनि शब्दके जाल । परखायो यहि भागमें ॥ धोखे कल्पना टाल । रामस्वरूप पारख स्थिति ॥६॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

अव्यक्त व्यक्तकी जक्तमें, उत्पत्ति शब्द जेहि भाँति सो । वर्णमात्रा स्वर सहित, स्थान वाचा दिखातिसो ॥
काल सन्धि झाँई जाल, चार अर्थ लखात सो । रामस्वरूप परखायसद्गुरु, भ्रम नाशिया यहिभाँति सो ॥ ७ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

भाग द्वितीय टकसारकी । अहै रमैनी प्रकर्ण ॥ सब रमैनी सत्ताईस । निर्णय ज्ञान सो वर्ण ॥८॥
अक्षर उतपति आदिकी । वाणि जाल विस्तार ॥ बीस-सात रमैनीमें । वर्णन है सो सार ॥९॥
वाणी चार प्रकारकी । गुण लक्षण प्रगटाय ॥ रामरहस यामें कहि । सकलो भेद लखाय ॥१०॥
गुरुवन धोखा जालको । परखायो गुरुदेव ! ॥ रामस्वरूप पारख करि । सार शब्द गहि लेव ॥११॥
सारशब्द बिनु जीवकी । हित कबहूँ हो नाहिं ॥ वाणि जाल भव चक्रमें । कबहूँ चैन न ताहिं ॥१२॥
काल सन्धि झाँई अहै । वाणी जालके माहिं ॥ पारख बिनु छूटै नहीं । काल जाल कठिनाहिं ॥१३॥
गुरुकबीर पारखी भये । परखायो सब जाल ॥ खानि वाणि दरशायके । मुक्त कियो सो दयाल ॥१४॥
मुक्तिप्रदाता पारखी । सद्गुरु बन्दीछोर ! ॥ गुरुवा काल कराल हैं । जीवन धनके चोर ॥१५॥
बिनु पारख जिव बद्ध है । पारख हो तब मुक्त ॥ याते पारखी गुरु शरण । गहिसतसङ्गतयुक्त ॥१६॥
करिये हित नर देहमें । यहि कर्त्तव्य सुसार ॥ रामस्वरूप स्थितिके बिना । सकलो औरअसार ॥१७॥
त्रय बन्दगी गुरु चरणमें । तन मन शीश नवाय ॥ कबीर साहेब पूरण । रामरहस गुरुराय ॥१८॥

दया गुरुकी पायके । टीका लिखौं बनाय ॥ रामस्वरूप संशय नशै । पठन मनन चितलाय॥१६॥
अनादि कालके जक्तमें । जड़ अध्यासी जीव ॥ जान्यो नहिं निजरूपको । कल्प्यो कोऊ पीव॥२०॥
कर्त्ता कारण कार्य सब । बने वेद बहु बानि ॥ दहुँ दिशमें भटकन लगे। करि करि खैंचातानि॥२१॥
यहि विधि खानी वाणिकी । जगमें भो विस्तार ॥ बिनु पारख भव वेगमें । जीव पड़े मँझधार॥२२॥
दयादृष्टि सद्गुरु किये । पारख दीन्हों बोध ॥ सुकृत पद ठहराय निज । जड़ चेतनको शोध॥२३॥
पारखकी महिमा अमित । जेहि लहे जिव मुक्त ॥ ऐनी ऐन पिछानिके । रहित सुसद्गुणयुक्त॥२४॥
यहिकी टीका रामस्वरूप । पठन अनुक्रम कीन्ह ॥ पूर्ण अर्थ करि लेखमें । गुप्त प्रगटको चीन्ह॥२५॥
गुरुकी कृपा आधार ते । सो रमैनि सत्ताईस ॥ लिखौं अर्थ सर्वाङ्ग सो । प्रमाण विश्वाबीस॥२६॥
गुरुपद वन्दौं प्रेमते । रामस्वरूप हौं दास ॥ साधु गुरु सत्सङ्गते । पूरण हो सब आश ॥२७॥

॥ * ॥ इति टीकाकार कृत— श्रीसद्गुरु पद वन्दना मङ्गलाचरण इत्यादि वर्णन समाप्तः ॥ * ॥

॥❀॥ दया गुरुकी— ॥ अथ लिख्यते ग्रन्थ सत्ताईस रमैनी ॥[द्वितीय भाग]॥❀॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ७ । साखी— १ है] ॥ १. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १ ॥ ❀ ॥

[प्रथम शब्द शून्याकारसे चार वाचायुक्त शब्दोत्पत्ति वर्णन ।]

१. प्रथम शब्द है शून्याकार * परा अव्यक्त सो कहै विचार ॥ १ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—'हे सन्तो ! अब यहाँपर शब्दोत्पत्तिके बारेमें शुरूसे ही कहता हूँ, सो सुनिये ! जीव जब नर देहमें आया, तब सर्वप्रथम मौन अवस्थामें रहा; तब शब्दका कोई स्थूलाकार नहीं रहता है, इसीसे तहाँ शून्याकार=मस्तकमें समान वायु स्थिर रहती है। उसे 'परा-अव्यक्त' नामसे विचारकर गुरुवालोगोंने कहा है। अर्थात् प्रथमारम्भमें जब नर देहमें शून्य स्वभाव रहता है, तब शून्याकार शब्द बिन्दुरूपसे ब्रह्माण्ड स्थानमें लीन हो रहता है। उसको ही गुरुवालोग निर्विकल्प, निरामय केवल ब्रह्म कहते हैं। फिर वहाँसे उद्वेग उठकर हृदयमें जब स्फुर्ति होती है, सोई सहविकल्प, अर्धमात्रा तुरियाकी उत्पत्ति हुई। उसी तुरियावस्थाके आनन्दको ही अव्यक्त-सबल ब्रह्म कहते हैं। परावाचा नाभिस्थानमें माना है वा कोईने स्फुरणारूप इच्छाको ही परावाचा कहा है; और प्रगट किया जा नहीं सके, गुप्त रहे, व्यक्तिगत नानात्वसे रहित हो, उसे 'अव्यक्त' कहते हैं। सो गुरुवालोग कल्पनाका विचार मनन करके ऐसा कहते हैं कि, प्रथम शब्द स्वरूपी ॐकार ब्रह्म निरञ्जन-निराकार, निर्गुण रहता है। फिर उसमेंसे इच्छारूप स्फुरणा उठ पड़ी, वही अव्यक्त माया प्रगट हुई, सो उसीसे चराचर सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है; और नर देहमें शून्याकार शब्द नाभिमें आ करके अव्यक्त-परा-वाचाके रूपको धारण कर लिया, इत्यादि प्रकारसे अपना-अपना विचार मतवादियोंने कहा है। उसे सत्य निर्णयके विचारसे परखना चाहिये ॥१॥

२. अन्तःकरण उदय जब होय * पश्यन्ती अर्धमात्रा सोय ॥ २ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर सोई शब्द नाभिस्थानमें विकाररूपसे अर्धमात्रामें रहता है। तब वहाँसे चित्त चतुष्टय उदय होता है। उसे ही अन्तःकरण पञ्चककी उत्पत्ति माना है। जब अन्तःकरण उदय होता है, तब अर्धमात्रा छूट करके सोई पश्यन्ती वाचा कहलाता है; और चित्तसे चिन्तन या अनुसन्धान होता है, बुद्धि उसे निश्चय करती है, सोई बुद्धि-बोधरूप स्वरूप महत्तत्त्व कहलाती है, उसे ही कोई कूटस्थरूप आत्मा भी कहते हैं। फिर शून्य

स्वरूपसे शब्द कुण्डल्याकार बनकर मकार मात्रा हो करके हृदय प्रदेशमें आया, तो मनके उद्वेगसे वहाँ सङ्कल्प-विकल्प होने लगा या ऐसे हो जाता है। इसप्रकार पश्यन्ती वाचामें आ करके चित्त, बुद्धि, मनका उदय हुआ। सोई अर्धमात्रासे निर्मित मकार मात्रा हुई। ऐसा मानकर लेखा लगाया गया है ॥ २ ॥

३. स्वर सो कण्ठ मध्यमा जान * चौंतिस अक्षर मुख अस्थान ॥ ३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! हृदयसे उठकर वह शब्द फिर कण्ठस्थानमें आया। तहाँ मध्यमा वाचा प्रगट हुई। कण्ठमें शब्द दण्डक हो करके उकार मात्राके रूपमें रहा। जिससे वहाँपर पाँच कला उत्पन्न हो गईं, सो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, यह पञ्च विषय खड़ा हुआ। इसीका सूक्ष्म देह बना। नाना कल्पना-भावना होने लगी। सोई कण्ठ स्थानीय मध्यमा वाचासे सोलह स्वर "अ से अः" तक उत्पन्न हुए, ऐसा माना है; सो जानिये ! और फिर वही शब्द ऊपर त्रिकुटी स्थानमें आकर अकार मात्रा स्थूलाकार तारकरूपको बना लेता है, फिर करतूतसे अहङ्कार लेकर फूटता है। सो मुख स्थानमें आकर वैखरी वाणीकेरूपमें चौंतीस अक्षरकी कलाको धारण कर लेता है। "क से क्ष" तकके चौंतीस अक्षर मुख द्वारा ही उच्चारित होकर फूटते हैं। सोई चौंतीस अक्षरकी माया वाणी कल्पनाका झीना जाल है। उसे यथार्थ रीतिसे परखकर त्यागना चाहिये ॥ ३ ॥

४. अनबनि बानी तेहिके माँहिं * बिन जाने नर भटका खाहिं ॥ ४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी चौंतीस अक्षरोंके भीतरमें सोलह स्वर तथा 'अ, ब्र' ये दो अक्षर समेत् मिला करके बावन वर्ण बनाकर उसमें अकारादि पाँच मात्रा, वर्ग, उच्चारण, सन्धि, स्वरसन्धि, व्यञ्जनसन्धि, विसर्गसन्धि, शब्द विचार, संज्ञा, लिङ्ग, वचन, कारक, कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन, विभक्ति, इत्यादि अनेकों भेदसे मेल मिला करके संसारमें मनुष्योंसे अनबनी = अनेकों वाणी बनी। जिससे चार वेद, छः शास्त्र, चौदह विद्या, अठारह पुराण, चौंसठ कलादि हिन्दुओंमें और चार किताबका कुरान, बाइबिल आदि तुरुक, ईसाई आदिक लोगोंमें उसी वाणीसे कल्पना कर-करा करके लिखकर अनेकों शब्द समूह ग्रन्थ बने हैं। जिससे जीवोंकी हित वा बनाव तो कुछ बननेवाला नहीं है, उसीमें मनुष्य बिना विचारे लगे और लग रहे हैं। यथार्थ पारखसे निज सत्य स्वरूपको जाने बिना अनुमान-कल्पनासे ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि कर्त्ता मान-मानकर अबोध नरजीव सब धोखेको जाने बिना नाना वाणी-कल्पनासे नाना मत-मतान्तरोंमें भटका खा रहे हैं। वाणी-खानीके जाल-जञ्जालमें मनुष्य भटक रहे हैं; गुरुमुख सारशब्दके भेदको जाने बिना मिथ्या वाणी जालोंमें ही सब अरुझे तथा अरुझ रहे हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें आकर निर्णय द्वारा सब भेदको जानकर उस भ्रमके भटकनासे न्यारा हो जाना चाहिये ॥ ४ ॥

५. बानी अक्षर स्वर समुदाय * अर्ध पश्यन्ती जात नशाय ॥ ५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तत्पश्चात् पुनः सब विस्तृत वाणी समूह चौंतीस अक्षर, सोलह स्वरके पूर्वोक्त समुदाय सब ही वैखरी वाणीका विस्तार मध्यमामें जा करके मिल जाते हैं, तथा मध्यमाके इन्द्रिय भास समूह भी नीचे उतर करके हृदय स्थानस्थ पश्यन्तीमें जा करके लय हो जाते हैं। फिर वह भी अर्धमात्रा नाभिस्थान, प्रत्यगात्माभिमानमें जाकर पहुँचते ही नशा जाता है। जिस प्रकार वाणीकी उत्पत्ति हुई थी, उसीप्रकार एक-एक करके वाणीका कार्य भीतर लय होते-होते नशा भी जाता है। लय होनेपर विनाश हो जाता है। ऐसे ऊर्ध्व वेग उलटकर अर्धमें जा करके मिल जाता है ॥ ५ ॥

६. शून्याकार सो प्रथमा रहै * अक्षर ब्रह्म सनातन कहै ॥ ६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर अन्तमें केवल एक शून्याकार ही मस्तक या

ब्रह्माण्ड स्थानमें सोई प्रथमके समान अव्यक्तरूपसे शब्द लय हो रहता है। प्रथम जैसे पराके परे परात्पर शून्याशून्य-निर्विकल्प स्थिति थी, पीछे भी योग-समाधि, शून्य-सुषुप्ति और विज्ञान दशामें तद्वत् हो जाता है। गुरुवालोग उसे सनातन=अविनाशी-अपरिमित, अक्षर ब्रह्म ॐकारका मूल स्वरूप पिण्ड-ब्रह्माण्डमें व्यापक परमात्मा कहते हैं। उसको आदि-अनादि जगत्का मूल कारण ब्रह्म भी कहा है। सो मनुष्यकी ही कल्पनाका विस्तार है, ऐसा जानिये ! ॥ ६ ॥

७. निरवर्त परवर्त है शब्दाकार ❀ प्रणव जानै यही विचार ॥ ७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निरवर्त=निवृत्ति, निरान्त, लय, शून्य ब्रह्मपदका कथन है। परवर्त=प्रवृत्ति, विस्तार, उत्पत्ति, मात्रा, वाचादि जगत्का विस्तार है, सो सब कथन वर्णन शब्दके विकारका ही आकार है। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, साकार, निराकार, सात लोकादि वर्णन जो किया है, सो मिथ्या शब्दके चित्र मात्र हैं। सब कोई उसी शब्दको पढ़, गुन, देख-सुनकर धोखेमें भूल रहे हैं। आखिरमें सबके मूल आदिकारण प्रणवरूप ॐकार ब्रह्मको ही ठहराया है। तहाँ ॐकार सोई कारण ब्रह्म है, तथा चौंतीस अक्षर सोई माया कार्यरूपमें माना है। गुरुवालोग सो प्रणवको ही सर्वश्रेष्ठ कर्त्ता जानते या मानते हैं, यही उन भ्रमिकोंका सार विचार है। परन्तु, उसके कल्पना कर्त्ता नरजीव उससे न्यारा है, ऐसा कोई बिरले पारखी ही सत्य निर्णयके विचारको जानते हैं। अथवा शून्य समाधि लगाना, और कर्मादि साधनाओंमें लगना, यह सब शब्दोंका ही बहुविधि आकार-प्रकार है। ब्रह्मको प्रणवरूप व्यापक जानते हैं। यही विचार पारखहीन लोगोंने दृढ़ किया है। सो सत्सङ्गमें परखकर उसका यथार्थ भेद जानना चाहिये ॥ ७ ॥

साखीः— अकुलाहटके शब्द जे ❀ भये चारि सो भेष ॥
[१] बहु बानी बहुरूपकी ❀ पृथक पृथक सब देश ॥ ८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे आकाशमें कोई क्रिया नहीं है, तो सहज ही शून्य, स्थिर, निःशब्द रहता है। ऐसे बाहर आकाशमें स्थिर शब्दको निःअक्षररूप परब्रह्म माना है। तैसे कायाके ब्रह्माण्डमें जहाँपर चार वाचाओंका कुल-आहट कुछ नहीं रही, सो निर्विकल्प समाधिको ब्रह्म-स्थिति माना है। वह शून्य स्थानसे जो शब्द प्रगट हुआ, जिससे चार वाचारूप चार भेषका स्वरूप क्रमशः बन गया। अथवा पहले ब्रह्म प्राप्तिके लिये धारणा, ध्यान, समाधि लगाये, तो शून्यमें स्थिति कुछ नहीं मिली, प्राण वायु डण्डायमान हुई, तब अकुलाहट या घबराहटके मारे जो शब्द स्फुरणारूपमें निकली, सोई स्फुरणासे परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, ये वाचारूप चार भेष शब्दके चार आकार उत्पन्न हुए। फिर उसीसे परासे ऋग्वेद, पश्यन्तीसे अथर्व वेद, मध्यमासे यजुर्वेद और वैखरीसे सामवेद कल्पना करके बनाये गये। उसी वेदके प्रमाणसे जगत्में चार वर्ण, चार आश्रमकी मर्यादा भी बाँध लिये; और उसीसे ब्रह्मचारी, वैरागी, नागे, संन्यासी, ये चार तरहके भेष सम्प्रदाय भी प्रगट कर दिये। स्थिति न पा करके घबड़ा करके जो शब्द गुरुवालोगोंने कहा, उसीसे चार भेष, चार सिद्धान्त बनाये। इसप्रकार संसारमें नाना तरहके नाम, रूप, गुणोंकी बहुतेक वाणी बनी हैं। जैसे बाहर सब देश वासियोंकी भाषा भिन्न-भिन्न हैं, तैसे ही सब मतवादियोंकी मानन्दी भी न्यारी-न्यारी ही हुई हैं। सबके सिद्धान्त अलग-अलग ही हुए हैं। षट् दर्शन-छियानवे पाखण्डोंकी सब देशमें पृथक्-पृथक् ही चालें चली हैं। अथवा कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठादि इन सब देशसे पृथक्-पृथक् अक्षरें निकल करके सो एकत्र सम्मिलित होकर बहुत मतोंके बहुरूपकी वाणी बनकर विस्तार हुई हैं। बिना पारख सब कोई उसीमें भूले पड़े हैं। उसे परखकर जान लेना चाहिये ॥ ८ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी— १ है] ॥ २. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २ ॥ ❀ ॥

[चार प्रकारके वाणीका भेद वर्णन ।]

१. अनबनि बानी चार प्रकार * काल सन्धि झाँई औ सार ॥ ६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें नरजीवोंने कल्पना करके अनेकों वाणी-जाल बनाया है। परन्तु, उससे जीवोंके कल्याणका बनाव तो कुछ नहीं बनता है, और बननेवाला भी नहीं है। अनबनी = वह अनन्तों वाणी चार भागमें बँटी हैं। सो मुख्यतया चार प्रकारसे बने हैं। जैसे चारखानी-में अनेकों योनियाँ समाविष्ट हुए हैं, तैसे ही अनेकों वाणियोंका मिलान यही चार वाणियोंमें आ करके होती है। काल, सन्धि, झाँई और सार, ये उनके नाम संज्ञा हैं। काल = त्वंपदार्थ, कल्पना वेष्टित, अज्ञानी जीवोंने भूलमें पड़ करके ईश्वर, ब्रह्म, देवतादिको श्रेष्ठ कर्त्ता मानकर उसकी प्राप्तिके लिये विनय, प्रार्थना, स्तुति आदि करके कर्म, उपासना, योगकी वाणीका विस्तार किया है, उसमें अपने भूले और दूसरेको भी भुलाये हैं, सो 'काल शब्द' कहलाता है। ऐसे शब्दोपदेशक गुरुवालोगोंको और स्त्रीको 'काल' कहते हैं। क्योंकि, उनके मोहक-रोचक-भयानक शब्द जीवोंको महाखाँचमें डाल देता है, इसीसे वे काल ही बने हैं। सन्धि = तत्पदार्थ, परोक्ष ईश्वर वा ब्रह्मकी मानन्दी करके भ्रमिक हो, जो कोई ज्ञानी हुए; उन्होंने ज्ञान काण्डकी वाणीका विस्तार किया है। साक्षी आत्मा 'सूत्रमणिन्याय' घट-घट व्यापक ठहरा करके परोक्ष-अपरोक्ष आत्मज्ञानका प्रचार किया है। व्यापक और साक्षी एकमें ठहरा करके, ऐसे असम्बद्ध कथनकर उसी मिथ्या मानन्दीमें सम्बन्ध स्थापित करके-भ्रममें मेल-मिलाप कर-करा करके जहँड़ा गये हैं; ऐसोंको महाकाल कहते हैं। झाँई = असिपदार्थ, विज्ञान अद्वैत एक ब्रह्म निश्चयकी भ्रम आवरणरूप पर्दाकी ओट गाफिली है। विज्ञानी लोग स्वयं ब्रह्म बनकर विधि-निषेधको छोड़कर परमहंस बन करके बाल, पिशाच, मूक और उन्मत्त दशाको धारणकर महाअज्ञानमें गाफिल होते हैं। सो विकराल यम ही हो जाते हैं। यही त्रिगुणी त्रिकाण्ड महाजालका गाँस है। इसमें लगे हुए जीवोंकी कदापि मुक्ति नहीं होती है; और सो सब काल, सन्धि, झाँईके विकारको नशानेवाला गुरुमुख सत्य निर्णयकी यथार्थ वाणी सारशब्द टकसार सत्य शिक्षा पारखी श्रीसद्गुरुके उपदेश सब सार-के-सार, मुक्तिका आधार, भव करन पार, गुरु करणधार, जीवन सुधार करनेवाला सर्वश्रेष्ठ है। वही सारशब्द ग्रहण करके अपना कल्याण कर लेना चाहिये॥ ६॥

२. हेतु शब्द बूझिये जोय * जानि यथारथ द्वारा सोय ॥ १० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! उपरोक्त चारों प्रकारके शब्दोंका हेतु = कारण, मतलब, ध्येय, अन्तिम स्थितिको विवेक दृष्टिसे देख-देख करके पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें परख-परख करके अच्छी तरहसे समझिये-बूझिये ! जो कुछ उनमें भेदका फरक है, सो सब पारखी श्रीसद्गुरुके गुरुमुख निर्णयसे निकला हुआ सोई सारशब्द द्वारा जीवमुख, मायामुख और ब्रह्ममुखकी मानन्दी कसर-खोट विकार आदिको सत्यन्यायसे यथार्थ जान लीजिये ! जो कोई शब्दके हेतुको बूझ लेते हैं, सो परीक्षादृष्टि द्वारा यथार्थ हालको जानकर निज स्वरूप पारखमें ही स्थिति किये रहते हैं। अन्य खानी-वाणीके जञ्जालोंसे सदा न्यारा हो रहते हैं ॥ १० ॥

३. भरमिक झाँई सन्धि औ काल * सारशब्द काटे भ्रम जाल ॥ ११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोगोंके कथन उपदेश जीवोंको सब तरफसे भ्रमानेवाला है। झाँई = असिपद विज्ञान ब्रह्मकी मानन्दी महाअज्ञानताकी गाफिली भूल भ्रम है। सन्धि = ईश्वर कर्त्ता या आत्मा-परमात्माकी मानन्दी सो भी धोखा है; और काल = कर्म, उपासना, योगादिका मार्ग सोई काल-जाल है। ऐसे तीन फाँसवाला पाँच मार्ग, पञ्च कोशकी वाणी पञ्च विषयादिमें भटक करके भ्रमिक जीव जड़ाध्यासी होकर मारे जाते हैं; और पारखी श्रीसद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सारशब्द गुरुमुख सत्य निर्णयका शब्द वह सब भ्रम जालको काट-छाँट करके सफाकर पारख बोध लखाकर जीवको भव-बन्धन रहित मुक्त करता है; ऐसा यथार्थ भेदको जान लो ! ॥ ११ ॥

४. द्वारा चारि अर्थ परमान * पदारथ बिङ्गारथ पहिचान ॥ १२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुखके द्वारा क्रमशः काल, सन्धि, झाँई तथा सारशब्द कहा गया है। उन चार द्वाराका अर्थ भी चार किश्मके निकलते हैं। शब्द प्रयोगमें निकले हुए चार अर्थमें यथार्थ निर्णयका अर्थ ही प्रमाण करके मानने योग्य है। उक्त चार द्वारसे जो अर्थ प्रमाण किया है, सो ऐसा है— पदार्थ, व्यङ्गार्थ, भावार्थ और ध्वन्यार्थ है।

(१) पदार्थ=शब्द समूहसे बना हुआ पदके साधारण अर्थको पदार्थ वा शब्दार्थ कहते हैं। तैसे बोल-चालका सीधा-सादा मतलब, सरल भाषा भी पदार्थमें आ जाती है। पदका सरल मोटा अर्थ ही पदार्थ कहलाता है। जैसे कि बीजक साखी १२में कहा हैः—

"पानी पियावत क्या फिरो ? घर घर सायर वारि ॥ तृषावन्त जो होयगा। पीवैगा झक मारी ॥"

इसके पदका ऊपरी अर्थ तो सीधा ही है। उसे सब कोई समझते हैं। परन्तु, अभिप्राय और ही है। यदि पदरूप वस्तु सत्य हो, तो उसका अर्थ भी सत्य होता है। यदि वस्तु ही मिथ्या हो, तो उसका अर्थ भी मिथ्या होता है। तैसे गुरुवालोगोंने वाणीरूप पदसे अर्थ करके अद्वैत सिद्धान्त कथन किया, सो ब्रह्म-परमात्माको मुक्तिदायी सत्य पदार्थ माना है। उसमें बहुत-सी शब्दार्थ-वाणीकी रचना किया है। कहीं शब्द स्वरूपी ॐकारको ही ब्रह्म ठहराया है। यह तो पदका अनर्थ ही कथन किया है। अनुमान-कल्पनायुक्त पदका अर्थ व्यर्थ ही होता है। उसे सत्सङ्ग द्वारा पहिचान लेना चाहिये।

(२) बिङ्गारथ=व्यङ्गार्थ, वक्रोक्ति, उलटा शब्द, समझनेको अत्यन्त गूढ़ हो, उसको 'व्यङ्गार्थ' कहते हैं। बोल-चालमें ताना देना, मसखरी करना, छेड़खान करना, आड़े हाथों लेना, जिसमें गूढ़ मतलब हो, उलटी बात कही गई हो, उसे व्यङ्गवचन कहते हैं। उसमें शब्द कहने-सुननेमें एक होता है, तो उसका अर्थ दूसरा ही निकलता है। वाच्य और लक्ष्य दो प्रकारके अर्थ होते हैं। जैसे 'गदहा' शब्द पशुके प्रति इशारा करके कहा, तो वह वाच्य कहलाता है; और 'वह मनुष्य बड़ा गदहा है' ऐसा कहा, तो मूर्खताका द्योतक हुआ, वहाँपर वह शब्द लक्ष्य कहलाता है। उसीप्रकार वेद-शास्त्रादिकोंमें भी बहुतसे व्यङ्गार्थ भरे पड़े हैं। जैसे किः—

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवोब्रह्मैव ना परः"— अर्थात् एक ब्रह्म ही सत्य है, सब जगत् मिथ्या है, जीव और ब्रह्ममें कोई भेद ही नहीं है। यह एक प्रकारसे व्यङ्ग वचनका ही प्रयोग है। रात्रिको दिन बताना जैसे असत्य है, तैसे ही जीवको ब्रह्म बताना और ब्रह्म बनाना भी मिथ्या है। पृथक्-पृथक् जड़-चैतन्यको एकमें मिलाकर व्यापक अद्वैत ब्रह्मज्ञान कथना भी निरर्थक है। और:—

"मूस तो मञ्जार खायो, स्यार खायो श्वाना ॥" बीजक शब्द-१११ ॥— चूहाने बिल्लीको खाया, सियारने कुत्ताको खाया, ऐसा विपरीत कहनेमें वक्ताका मुख्य तात्पर्य नहीं है। इसमें व्यङ्गार्थ लगा है। सो ऐसा है कि, मूसरूप जीवने मञ्जाररूप माया, स्त्री आदिको खायो=ग्रहण किया, तो सुखी कैसे होगा ? और स्यारूप होशियार लोगोंने सजा करके बनायी हुई वेदवाणीको श्वानरूप पण्डितोंने ग्रहण किया, तो कल्पनाने उन्हें खा लिया वा भ्रमाया, इत्यादि और मूर्खको पण्डित कहना, अलोनाको बहुत नमकीन बताना, दुर्जनको सज्जन कहना, इत्यादिमें व्यङ्ग अर्थ भरा रहता है। सीधे शब्दमें निषेध न करके उलटी रीतिसे आक्षेप करना वही व्यङ्गका लक्षण है। तैसे ही जगत्कर्त्ताका कथन, जगत् उत्पत्तिका वर्णन, लोक और स्वर्गादिकी विशेषता, इत्यादि सब असत्य बिगड़ा हुआ अर्थ गुरुवालोगोंने जो कहा है, सोई बिङ्गारथ है, ऐसा सत्य निर्णयसे पहिचानिये ! ॥ १२ ॥

५. भाव अर्थ धुन्यारथ चार * द्वारा शब्द कोइ लखै विचार ॥ १३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! (३) भाव अर्थ=शब्दके भीतरी मतलब, अभिप्राय तात्पर्य, कहनेका मुख्य भावको ही भावार्थ कहते हैं। जैसे हितेच्छुक लोग कहते हैं:—"मेरे कहने-समझानेका मतलब मुख्य भाव यही है कि, आप अपने कर्त्तव्यका सुधार करिये" इत्यादि। तैसे ही वाणी, गद्य-पद्योंमें भी कहनेका भाव भीतर छिपा रहता है। जैसे किः—

"बेड़ा बाँधिन सर्पकी। भवसागरके माहिं॥ जो छोड़े तो बूड़े। गहै तो डसे वाहिं॥" बीजक, साखी- ११८॥

सर्पकी बेड़ा=पुल या जहाज भवसागरके बीचमें बाँधा। जो उसे छोड़े, तो डूबे और पकड़ रखनेपर सर्प हाथमें डँसता है या काट खाता है। यह तो उपरी शब्दार्थ हुआ। परन्तु, उसका भावार्थ ऐसा है कि, भवसागररूप यही संसारके मध्यमें जीवोंने सर्परूप पञ्च अभिमानके पाँच मार्गका बेड़ा बाँधा, यानी जहाज या पुल बनाया। तब पञ्च कर्म अहङ्कार छोड़ना चाहते हैं, तो देह छूटनेका, नरकादिमें जानेका डर लगा है; और पकड़ रखनेपर बारम्बार जड़ाध्यास दृढ़ होता जाता है। उसीसे दुःखी होते रहते हैं। तहाँ पारख बूटी पासमें हो, तो वे ही सरलतासे पार उतरते हैं; इत्यादि। और गुरुवालोगोंने कल्याणके लिये ईश्वर, ब्रह्म, परमात्माकी भावना करना चाहिये, भगवान् भावके भूखे होते हैं। दृढ़ भावना करनेसे सर्वत्र परमात्माका दर्शन होता है, इससे मनकी भावना शुद्ध करके भगवद् स्मरण करना चाहिये, इत्यादि भावार्थ कहा है। उसे परखकर जान लेना चाहिये।

और (४) धुन्यारथ=जिसकी केवल ध्वनिमात्र सुनाई पड़ती है, उसे ध्वन्यात्मक शब्द कहते हैं। जैसे— बाजोंकी झनझनाहट शब्द, गुम्बजादिकी प्रतिध्वनि, पशु-पक्षी आदि जन्तुओं-की बोलीके शब्द; जिसको ठीक-ठीकसे उच्चारण करना, लिखना नहीं हो सकता है; आँयँ, बाँयँ, साँयँ, अल्ल, बल्ल, कल्ल, अण्ट, सण्ट, कण्ट आदि निरर्थक शब्द हैं। जो ध्वनिमात्र सुनाई देती हो, खास अर्थ उसमें न हो, मनमाने चाहे जो अर्थ लगाया जा सके, जैसे घड़ीके टिक्-टिक् पक्षियोंके कलरव, नदियोंकी कल-कल आवाज और झरनोंके चुल-चुल शब्द इत्यादि सब ध्वन्यार्थमें आ जाते हैं। जैसे एक तीतर चिड़िया डालीपर बैठकर उसकी स्वाभाविक बोलीमें:— "तीन तारा तितिरिक्-तीन तारा तितिरिक्" ऐसे बोल रही थी। वहाँपर चार विभिन्न जात-स्वभाववाले चार दोस्त शैर करते हुए आ पहुँचे। उन्होंने अपनी-अपनी भावनाके अनुसार निम्न ध्वन्यार्थ कल्पना किया। प्रथम ब्राह्मणने कहा कि— भाइयो! सुनो तो यह पक्षी कितनी सुन्दर रीतिसे भगवान्का नाम जप रहा है:— "सीताराम दशरथ-सीताराम दशरथ" अहा! हा! धन्य है। दूसरा बनियाँ बोला कि— नहीं जी! तुमने इसका पूरा मतलब नहीं समझा! सुनो मैं बतलाता हूँ, पक्षी कहता है कि—"नोन हल्दी अदरख-नोन हल्दी अदरख" यही तो रोजाना रसोईमें काम आता है। फिर तीसरा पहलवान बोला—अरे! महाशयो! आप दोनोंने भाव नहीं समझे। मैंने उसके कहनेका मतलबको समझा हूँ! सो यह है कि— "दण्ड, मुग्दर, कसरत-दण्ड, मुग्दर, कसरत" ऐसा चिड़िया कहती है। इसीसे तो स्वास्थ्य ठीक रहता है। फिर अन्तमें चौथा मुसलमान् दोस्तने कहा कि— तोबा! तोबा! यारो! तुम लोग तीनोंने भी कुछ खास मतलब नहीं समझा! सुनो चिड़िया खास कह रही है कि—"अल्ला! तेरी कुदरत-अल्ला! तेरी कुदरत।" वह तो अल्लामियाँके गुण गा-गाकर तारीफ कर रही है। ऐसा परस्परमें विरुद्ध बातें करते लड़ते, झगड़ते चले गये। इसीप्रकार यहाँ शरीरमें भी श्वासरूप ध्वनिमें लक्ष्य लगा करके कर्मी, उपासक, योगी आदियोंने 'वोहं, राम, सोहं' शब्दकी कल्पना किया है। ब्रह्माण्डमें वृत्ति स्थिर होनेपर दश नाद ध्वनि सुने, उसे अनहद ब्रह्म माना है। शब्दको प्रणव ब्रह्म माना है, फिर चार मात्राकी कल्पना करके वर्णरूप वाणी बनाया। उसको मिलाकर भीतरकी कल्पना सब बाहर वेद, शास्त्र, पुराणादिमें प्रगट किया है। श्वासकी ध्वनि वाणी-कल्पना तो एक-सी है। परन्तु, सिद्धान्त द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सबोंका न्यारा-न्यारा हुआ है। अपनी-अपनी कल्पनाको बढ़ा करके उसे ही सत्य मानकर पक्ष पकड़कर लड़ते-झगड़ते नरजन्म व्यर्थमें बिताकर फिर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जड़ाध्यासी होकर चले गये और चले जा रहे हैं। इसप्रकार मनुष्यपदका मुख्य पदार्थ स्वरूप स्थितिको छोड़कर दूसरा ब्रह्म पदार्थ मान कर भूले हैं। जीवको जड़ देहरूप ही मान करके व्यङ्गार्थमें जहँड़े पड़े हैं। खानी-वाणीका भाव-कुभावमें पड़ करके मुख्य भावार्थ पारखबोधको नहीं जानते हैं। प्राणायामादि साधना करके मिथ्या धुन्यार्थमें भटक रहे हैं।

ये चार मार्ग द्वारा सब शब्दोंका विस्तार हुआ या हो रहा है। पारखी श्रीसद्गुरुके गुरुमुख निर्णय द्वारा कोई बिरले ही विवेकीजन उन सब शब्दोंको ठीक तरहसे विचारकर लखते और कसर-खोटको परखते हैं। सारको ग्रहण करके बाकी असारको त्याग देते हैं। वे ही हंस पारखी कहलाते हैं; और बेपारखी बगुलेजन धोखा खाकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव चारों शब्दोंके द्वाराको विचार करके लखिये ! ॥ १३ ॥

६. परा पराइत मुख सो जान ❀ मोरे सोरह कला निदान ॥ १४ ॥

अर्थः—ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! परावाचा, पराविद्या, आत्मज्ञान सो यही पराइत = बेपारखी गुरुवालोगोंकी मुख्य सर्वोपरि मानन्दी है। सो उसे अच्छी तरहसे जानिये कि, वह मनका ही भ्रम विजातीय धोखा है। उसी पराविद्यारूप ब्रह्मज्ञानको उन्होंने मोरे = अपने कल्याणकारक मानन्दी किया है। निदान = आखिरमें शून्यमें स्थिति नहीं हुई, तो प्रवृत्तिमें आ करके कण्ठ स्थानसे सोलह स्वर निकाले, और मुख द्वारा चौंतीस व्यञ्जन प्रगटाये। उसी स्वर-वर्णादि, मात्राको मिला करके वेद-शास्त्रादि नाना वाणी बनाये। उसमें अपने भूले और दूसरोंको भुलाये हैं। अथवा ब्रह्मज्ञानके अपरोक्ष अनुभवको 'पराविद्या' कहा है। उसके अतिरिक्त बाह्य परोक्ष वाणी चार वेद, वेदके षट् अङ्ग, षट् शास्त्र, चौदह विद्या, अठारह पुराणादिको 'अपरा विद्या'में इधर गिना है। निदानमें सोरह कलारूप स्वरको तोड़कर ही वह सब वाणी बनी हैं; और दश इन्द्रियाँ, पञ्च विषय तथा मन मिल करके परासे लेकर इधर पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीमें आकर मुखसे शब्द निकालते हैं। सो बिना पारख यह जीव विजातीय गुरुवाओंके नाना वाणी जालोंमें अरुझकर बद्ध हो रहे हैं। उसको परख करके यथार्थ भेद जानिये ! सोरहों कलाके विकारोंको तोड़ताड़ करके बाहर निकल जाना चाहिये ॥ १४ ॥

साखीः— बिनु जाने सोरह कला ❀ शब्दी शब्द कौवाय ॥

[२] शब्द सुधारि पहिचानिये ❀ कौन कहाँ बौवाय ? ॥ १५ ॥

अर्थः—ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोरह कला, १६ स्वर, १६ आना, १६ भेद, १६ शृङ्गार आदिकको अच्छी तरहसे जाने बिना कि, यही जीवोंको बाँधने वाली हैं। सब प्रकारसे उसीमें गाफिल, आसक्त हो जीव भ्रमिक हुए। मन सहित सोलह कलाके घेरामें पड़कर जीव निज स्वरूप पारखको जाने बिना कल्पना करके स्वर-मात्रादि लगा करके नाना वाणी बनाये और उसी मानन्दीमें बद्ध हुए। शब्दके रचयिता शब्दी = नरजीव धोखेमें पड़कर शब्दोंका कोलाहल करने लगे। वेद-वेदान्त, शास्त्र-पुराण, कुरान आदि बनाकर ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिको चिल्ला-चिल्ला करके पुकारा करने लगे। वहाँ कोई हो, तब तो सुने, उत्तर दे ! अरण्य रुदनवत् शून्यमें पुकारा किये, तो आखिरमें कुछ भी नहीं मिला। अभी तक योगी, ज्ञानी, भक्त आदि वही शब्द बक रहे हैं; वाणी कह-कह कर सुना रहे हैं। बिना विवेक मिथ्या मानन्दीमें पड़कर पतित हो रहे हैं। इसवास्ते पारखी श्रीसद्गुरु चेतावनी देकर कहते हैं कि— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! अब तो भी अपने चाल-चलनको सुधारिये, हंस चालसे चलिये, शब्द जालको अच्छी तरहसे परख करके पहिचान लीजिये ! सार-असार, सत्य-मिथ्या, बन्ध-मुक्तिको ठीक-ठीक तरहसे जानिये ! गुरुवालोग कौन-कौन कहाँ-कहाँ पर अटक करके बौराये ? उनकी स्थिति कहाँ पर है ? क्या मानन्दी करके बौराये हैं ? कौन कहाँ तक पहुँचे हैं ? दिवाने हो करके कहाँ अटक रहे हैं ? इन सबोंके यथार्थ भेद सत्यन्यायी-पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें परीक्षा करके यथार्थ पहिचान कर लीजिये ! फिर गुरुमुख सारशब्दसे अन्य सकल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन विषय जालोंको पहिचान करके उससे न्यारे हो जाइये ! निज स्वरूप स्थितिमें ही सदा अटल-अचल हो रहिये ! ॥ १५ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ७ । साखी— १ है] ॥ ३. रमैनी ॥ खण्ड — ॥ ३ ॥ ❀ ॥

[काल, सन्धि और झाँई इन अक्षरोंका भेद वर्णन ।]

१. अक्षर वेद पुराण बखान * धर्म कर्म तीरथ अनुमान ॥ १६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! दूसरी रमैनीमें संकेत किया हुआ काल, सन्धि और झाँईं का जाल खुलासा करके इस रमैनीमें बताया गया है। हे मनुष्यो ! उसे तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो ! क्षर = नाशवान् शरीरादि वस्तु है । अक्षर = चैतन्य अविनाशी जीवको कहते हैं। निःअक्षर = अक्षरातीत ब्रह्मको कहते हैं । यहाँपर नरजीवने अपने स्वयं स्वरूपको न जानकर श्वासमें लक्ष्य लगा-कर युक्ति-प्रयुक्ति करके बावन अक्षर या वर्ण-मात्राकी कल्पनासे रचना की । उसके आकार-प्रकार कायम या निश्चित किया है। फिर उसे यथास्थान स्थापन करके लेखन कला प्रगट किया है। तदनन्तर अक्षर समूहको लिपिबद्धकर मन-मानन्दो-कल्पनाको लिख डाले । सोई चार वेद, षट्-शास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष— ये वेदके षट् अङ्ग बना करके पीछेसे अठारह पुराणादि बहुविधि विस्तारसे वर्णन किया है । उसमें कर्मकाण्डका नित्य षट् कर्मः— स्नान, सन्ध्या, पूजा, पाठ, तर्पण तथा होम; और नित्य, नैमित्यिक, काम्य, प्रायश्चित्त, निषिद्ध— ये पाँच कर्म और भी बनाया है; तथा यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह, ये मुख्य ब्राह्मणोंका षट् कर्म ठहराया है। धर्ममें उपासना काण्डको प्रगट किया है। नवधा भक्ति, प्रेम लक्षणा भक्ति, सगुण-निर्गुण उपासना, स्मार्त, वैष्णव सम्प्रदाय, विरह, वैराग्य, तपस्या, दान-पुण्य, तीर्थ स्नान, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोमती, कावेरी, क्षिप्रा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, बाँगमति, इत्यादि तीर्थोंकी दर्शन-पर्सन, अरसठ तीर्थोंकी परिक्रमा कर-करा करके हित-मुक्ति होनेका अनुमान किया है; और ईश्वर, देवी-देवताओंको प्रसन्न कर चार फल, चार मुक्ति आदि मनोवाञ्छित फल प्राप्तिकी आशा लगा करके मिथ्या अनुमान-कल्पनामें पड़े हैं॥ १६ ॥

२. अक्षर पूजा सेवा जाप * और ग्रहातम जेते थाप ॥ १७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वही वेदादिक वाणी अक्षररूप ग्रन्थोंको पढ़-पढ़ा करके ही गुरुवालोग अष्टप्रतिमा जड़ मूर्तिकी पूजा कर-करा रहे हैं। चार धामोंमें नाना तरहकी मूर्ति पूजा हो रही है; सूर्य, गणेश आदि पाञ्चायन देवताओंकी पूजा घर-घरमें हो रही है। धूर्त गुरुवालोगोंको ही तन, मन और धन अर्पणकर सब कोई उनकी सेवा कर रहे हैं या कोई देवी-देवताओंकी झूठी सेवामें लगे हैं । कोई तैंतीस कोटि महामन्त्रोंका जाप करने-करानेमें लगे हैं । "ब्रह्मणे नमः, विष्णवे नमः, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ नमो रामाय, दं दुर्गायै नमः, लं लक्ष्मीनारायणाय नमः, ॐ, श्रीं, ररं, सों, ऐं, ह्रीं, क्लीं" इत्यादि बीज मन्त्रोंका जाप करने-करानेमें लगे हैं; और भी ईश्वर, देवता, धाम, क्षेत्र, व्रत, अनुष्ठान, विधि-विधानका अनेकों तरहसे जितने भी महिमा-महात्म्य, प्रशंसा, गुणानुवादकी स्थापना वर्णन किया है, सो सब त्रिकाण्ड वाणी जालके भीतर ही आ जाते हैं॥ १७॥

३. यही कहावत अक्षर काल * जाय गड़ी उर होयके भाल ॥ १८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऊपर जितनी बात कह आये हैं; सो यही वाणीका जाल, अक्षर काल = कालका शब्द कहलाता है। त्रिकाण्ड वेद, कुरानादिकी कर्म, उपासना और योगका विस्तार सब कालरूप गुरुवालोगोंके शब्द जाल, कल्पना अक्षररूपी महाकाल, जीवनपद विनाशक यही है। सो तीव्र विषैला शब्द बाण गुरुवालोगोंके मुखसे निकलकर हाथसे छूट करके अबोध मनुष्योंके कान द्वारासे हृदयरूप मर्मस्थानमें नोकदार भालाके समान हो कर बड़े वेगसे जा करके लगा। वहाँ अन्तःकरणमें सो कल्पित वाणी गड़ गई, धस गई, चुभ गई, मजबूत पक्की हो गई है । उस पक्षपातने विवेक-विचारको क्षत-विक्षत कर दिया; जीव जड़ाध्यासी हो करके मारे गये। बिना पारख वह वाणीकी भाला नहीं निकलती है ॥ १८ ॥

४. सोहं सोहं आतम राम * माया मन्त्रादिक सब काम ॥ १९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम सीढ़ीको छोड़कर दूसरी सीढ़ीमें आये,

तो यहाँपर श्वास वायुमें लक्ष्य लगाये, जिसकी जैसी भावना हुई, तैसे श्वासमें सुरति समाये। कोऽहं, वोऽहं, सोऽहं, शिवोऽहं, अनामयोऽहंका रटन करने लगे। कोई आत्माराम को सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक घट-घटमें भरा हुआ मानने लगे। कोई शरीरको बेभान करने लगे। कोई शक्ति-मायाका बीज मन्त्र जपने लगे। तन्त्र, यन्त्र, मन्त्रादिककी साधना करने लगे। ऋद्धि-सिद्धि, करामात मन्त्र सामर्थ्य आदि प्राप्तिकी आशासे कठिन-कठिन कार्य साधना सब भी करने लगे। मनोकामना पूर्ण करनेकी इच्छासे सब योगी, ज्ञानी भक्तजन धोखेमें गिर पड़े ॥ १६ ॥

५. यह सब अक्षर सन्धिक कहै ❀ जेहिमा निशि बासर जीव रहै ॥ २० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानकाण्डकी वाणी साक्षी आत्माकी मानन्दी, बतानेवाला यह सब अक्षर वेदान्तादिका शब्द सोई 'सन्धिक' कहलाता है। जो कुछ आत्मज्ञान गुरुवालोगोंने कहा है, सो सब मानन्दी मिथ्या वाणी जाल है। जिसमें भ्रमिक हो करके ज्ञानी-अज्ञानी जीव सब दिन-रात निज स्वरूपको भूले हुए गाफिलोमें पड़े रहते हैं। आठों प्रहर श्वासमें सुरति लगाये ही रहते हैं। बिना पारख यह मिथ्या मानन्दी किसीकी नहीं छूटती है ॥ २० ॥

६. निर्गुण अलख अकह निर्वान ❀ मन बुद्धि इन्द्री जाई न जान ॥ २१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! फिर दूसरी सीढ़ी भी लाँघकर तोसरी पायरीमें चढ़े, सो वहाँका लक्षण बतलाते हैं। त्रिगुणसे परे निर्गुण या गुणातीत विज्ञानपदमें माना है। अलख = जो किसी प्रकार भी किसीसे लखनमें, समझनेमें नहीं आता है। अकह = वह ऐसा-वैसा साकार या निराकार कुछ कहते नहीं बनता है, अकथनीय या अवाच्य है। निर्वान = सब बन्धनोंसे रहित, मुक्त माना है। जिसको मनसे सङ्कल्प-विकल्प किया जा नहीं सकता है। बुद्धिसे ठहरा करके निश्चय करनेमें सामर्थ्य नहीं है। इन्द्रियोंकी गति वहाँ तक पहुँच नहीं सकती है, तो वह अगोचर है। वह परब्रह्म-परमात्मा सर्वव्यापक होनेसे किसी प्रकार भी जाना जा नहीं सकता है। जीव-ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है, अभेद-अभाव, अद्वैत, निरञ्जन, सोई है या मैं ही हूँ ! ब्रह्मज्ञानी लोगोंने ऐसा ही माना है ॥ २१ ॥

७. विधि निषेध जहाँ बनत न दोय ❀ कहहिं कबीर पद झाँई सोय ॥ २२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसवास्ते जहाँपर विज्ञानदशाकी धारणा हुई, वहाँपर 'विधि' और 'निषेध' यह दोनोंका बनाव कुछ भी नहीं बनता है। अर्थात् विधि-विधानसे पुण्य करना तथा पाप-कुकर्मको वर्जित करना, यह दोनों बातमें एक भी नहीं बनता है। पाप-पुण्य, बुरा-भला, शुभ-अशुभ, दया-निर्दया, सार-असार, बन्ध-मुक्ति आदिका निर्णय विवेक करना वहाँ कुछ नहीं होता है। क्योंकि, इसे "द्वैत उपाधि मिथ्या है" कहकर छोड़ देते हैं; उपेक्षा कर देते हैं। परमहंस लोग बाल, पिशाच, मूक, जड़, उन्मत्त होकर दुर्दशाको धारण कर महान भ्रमिक हो जाते हैं। यहाँपर ग्रन्थकर्त्ता दर्शाते हैं कि- उसीको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने 'झाँई पद' कहा है। पदभ्रष्ट करनेवाला सोई झाँई महा गाफिली, महाअज्ञान, धोखेका पद है। उसे ही केवल ब्रह्मानन्द स्थिति गुरुवालोगोंने कहा है। परन्तु, वही जन्म-मरणका मूल कारण है। उसमें सब जड़ाध्यास-भास टिके रहते हैं। उसी ब्रह्म मानन्दी आवरणमें पड़कर जीव भ्रमचक्रमें डोल रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी कृपा हुए बिना पारखबोध नहीं होता है। बिना पारख वह भ्रम-भूल नहीं मिटती है, अतः श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें लगे रहना चाहिये ॥ २२ ॥

साखीः— पहले झाँई झाँकते ❀ पैठा सन्धिक काल ॥
[३] पुनि झाँई की झाँई रही ❀ गुरु बिन सके को टाल ॥ २३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम नर देहमें जीव सुखाध्यासी हो

ब्रह्मानन्दकी भावना करके झाँईं = विज्ञान ब्रह्मको वेद-वेदान्तका श्रवण-मननादि करके झाँकने लगे। खोज-तलाश करके इधर-उधर ताकने वा ढूँढ़ने लगे। जिससे हृदयमें ब्रह्मज्ञानकी सन्धिक = दृढ़ निश्चयसे मानन्दी घुसी, सो पक्का होकर बैठ गई। उसीसे फिर काल-जालका विस्तार हुआ। विज्ञानसे ज्ञान, फिर कर्म, उपासना, योग मार्ग बने। फिर घूम-फिरकर अन्तमें विज्ञानमें ही पहुँचे। "अहं ब्रह्मास्मि, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" ऐसा कहकर उसी झाँईं-की-झाँईं में ही गाफिल हो रहे हैं। भ्रमिक होकर जगत् ही रूप ब्रह्म हो रहे हैं। चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिरे पड़े रहे। पारखी श्रीसद्गुरु मिले बिना यथार्थ लखाकर वा परखा करके उस भ्रम-भूलको कोई टालकर निकाल नहीं सकते हैं। उस झाँईं-को और कौन हटा सकेगा? कोई नहीं। क्योंकि, पारखी श्रीसद्गुरुको छोड़कर और सब गुरुवालाग तो काल ही बने हैं। फिर धोखारूप बन्धनोंको वे कैसे टालेंगे? अथवा पहिले मनुष्य जन्ममें देहकी आभा = सुन्दरतारूप विषयके प्रकाश झाँईं को देखकर मनमें विषय भोगोंकी वासना पैठी, फिर स्त्री आदिसे सम्बन्ध स्थापित करके भोगमें जुटा; विषयानन्दकी मानन्दी दृढ़ हुई। सोई काल जालमें जीव जकड़ पड़े। फिर देहाध्यासी जीव नरदेह छोड़ करके भी पशु आदि देह धारणकर चौरासी योनियोंकी झाँईं में ही पड़ रहे हैं। सोई विषयासक्तिके कारण आवागमन हो रहा है। श्रीसद्गुरुके अपरोक्ष पारखबोध हुए बिना कोई भी उस वासनाको टाल नहीं सकते हैं। इसकारणसे ब्रह्मानन्द और विषयानन्द सम्बन्धी झाँईं, सन्धि, और कालको पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें ठहरकर सारशब्द निर्णयकी धारणाकर मुमुक्षुओंको उसे टालकर हटा देना चाहिये; तभी जीवन सफल होगा ॥ २३ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ८। साखी— १ है] ॥ ४. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ ४ ॥ ❀ ॥

[प्रथम शब्दोत्पत्ति करके फिर ५२ अक्षरोंको बनाकर षट्दर्शन-छियान्नवे पाखण्ड विस्तार हुए, सो वर्णन]

१. प्रथमें सम्भव शब्द अमान ❀ शब्दी शब्द कियो अनुमान ॥ २४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालके संसारमें जीव नरदेहमें जब आया, सोई प्रथमें कहलाया। क्योंकि, नरदेह कर्मभूमिका होनेसे पहिला नम्बर इसीका है। प्रथम मनुष्य देहमेंसे भ्रम-भूल, संशयका सम्भव = उत्पत्ति हुई। तहाँ सब शब्द वाणीजाल मनुष्य घटमें ही भरा हुआ समाया था। अनुमान-कल्पना करनेके पहले शब्दकी कोई मानन्दी भी नहीं हुई थी। फिर शब्दके कर्त्ता शब्दी = नरजीवने स्वयं ही अनुमान-कल्पना करके शब्दोंकी रचना की। "शब्द ब्रह्मेति श्रुतिः" कहकर कोई ॐकार ब्रह्मको अनुमान किया। उसी शब्दसे एक अमान = जगत् बन्धनोंसे परे कर्त्ता पुरुष परमेश्वरको भी माना है। इसप्रकार प्रथम मनुष्यने ही नाना इच्छासे स्वयमेव शब्दोंकी उत्पत्ति की। फिर भ्रमिक होकर जीवने ही अनुमानसे ब्रह्म, ईश्वर, आत्मादिका कथन विस्तार करके महिमा बढ़ायी है। मानन्दी करनेवाला नित्य-सत्य, स्वयं अपने आपको तो भूल ही गया; अतः धोखेके पीछे लगा, बिना पारख ॥ २४ ॥

२. मान महातग मान भुलान ❀ मानत मानत बावन ठान ॥ २५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! सत्यासत्य, जड़-चैतन्यका यथार्थ भेद न जान करके सभी मनुष्योंने अपने-अपने इष्ट देवको जगत्कर्त्ता माना है। ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदि ठहरा करके उनका बड़ा भारी महात्म्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, विश्वपति आदि महिमा गाये हैं। मानन्दीसे मिथ्या धोखेकी महिमामें भ्रमिक होकर सब जीव निज स्वरूपको भूल गये हैं। फिर अनेकोंने मनौती माना। भ्रमको मानते-मानते नाना वाणी बनाया; और चतुर लोगोंने मन-मानन्दी कर-करके कल्पनासे अक्षरोंकी रचना किया। "अ से अः" तक सोलह स्वरकी उत्पत्ति कण्ठसे माना है; और "क से क्ष, त्र, ज्ञ" यह छत्तिस अक्षरोंकी उत्पत्ति मुखसे माना है, वही सब एकत्र मिला करके हिन्दू-समाजमें मूल अक्षर ५२ ठाने हैं या निश्चयसे कायम किये हैं। उन्हीं बावन अक्षरोंसे मनकी

सब मानन्दी ग्रन्थोंमें लिखी गई। उसी वाणी जालकी मिथ्या महिमा बढ़ा-बढ़ा कर नरजीव भूले हैं, और दूसरोंको भी भुला रहे हैं ॥ २५ ॥

३. फेरा फिरत भया भ्रम जाल * देह आदिक जग भये विशाल ॥ २६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्से ब्रह्म होना, फिर ब्रह्मसे जगत् होना; यही फेरा फिरते-फिरते महान भ्रम जाल ही परिपुष्ट हुआ है। ध्यान-समाधिका फेरा फिरकर भ्रमका फन्दा ही दृढ़ हुआ है। शून्यसे अक्षर, ॐ, सोहंका फेरा फिरते-फिरते भ्रमरूप वाणी जाल ही उत्पन्न हो गया है। श्वाससे सोहं, ॐ, पाँच मात्रा, १६ स्वर और ३४ अक्षर बना करके फिर उन्हें शून्य ब्रह्माण्डमें लय करके निर्विकल्प होकर रहे। फिर स्फुरणा करके सङ्कल्प किये, ऐसे सङ्कल्प-विकल्पादि चक्रमें घूमते हुए महाअज्ञानरूप भ्रम जालमें जकड़ गये। उसी भ्रम-भूल, जड़ाध्यासके कारणसे भवचक्रमें गिर पड़े। वहाँ जगत्में तन, मन, धन, त्रिविधि ताप, जन्म, मरण, गर्भवास, देह, घर, नाता-गोता, कुल-कुटुम्ब आदि खानी-वाणीका भव-बन्धन विशाल = बहुत बड़ा जगत् जाल खड़ा हुआ। पारख स्वरूपके बोध हुए बिना इसप्रकार जीव आवागमनके चक्रमें पड़े, और पड़ रहे हैं ॥२६॥

४. देह भयेते दैहिक होय * जगत भयेते कर्त्ता कोय ॥ २७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देह उत्पन्न हुआ है, तो देहका कर्त्ता जीव इसमें मौजूद है। जैसा-जैसा कर्म-अध्यास पूर्वमें जीवने बनाया था, वैसा-वैसा ही कर्म फल भोग देहधारी जीव सब पा रहे हैं। देह पैदा होनेसे ही कर्मानुसार दैहिक, दैविक और भौतिक, ये तीन तापोंका भोग जीवोंको होता है या हो रहा है। सो पिण्डमें ऐसी व्यवस्था देख करके सुख चाहते हुए भी दुःख भोग ही पा करके मनुष्योंकी बुद्धि भ्रमिक हो गई। इसवास्ते उन्होंने जगत्रूप पाँच तत्त्वोंका पसारा देखकर कोई एक जगत्कर्त्ता होगा, ऐसा अनुमान किया है, जो यह जगत् उत्पन्न हुआ है, तो जगत्को उत्पन्न करनेवाला कर्त्ता ब्रह्म-परमात्मा परमेश्वरादि कोई अवश्य ही होगा ? कर्त्ताके बिना आप ही जगत् कहाँसे आयेगा ? जैसे देहका कर्त्ता जीव है, तैसे ब्रह्माण्डरूप जगत्का कर्त्ता भी कोई शिव-परमेश्वर होगा ? ऐसी भ्रम-कल्पना दृढ़ हो गई। बिना पारख जड़-चैतन्य दोनों अकर्त्ता स्वयं अनादि हैं, यह भेद नहीं जाने। अनुमान-कल्पनाके आधारसे ईश्वरादि कर्त्ता-की मानन्दी किये हैं ॥ २७ ॥

५. कर्त्ता कारण कर्महिं लाग * घर घर लोग कियो अनुराग ॥ २८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जगत्कर्त्ता परमात्माकी कल्पना परिपुष्ट होनेके पश्चात् यह समझकर कि, यदि हमें वे परमेश्वर मिल जायें, तो फिर सब दुःखोंका अन्त हो जायगा। परमानन्द, परमपदकी प्राप्ति भी हो जावेगी। ऐसा ही आशा-भरोसा देकर गुरुवालोगोंने भी रोचक-भयानकादि वाणी दृढ़ा रक्खा है। इसलिये भ्रमिक लोग जगत्कर्त्ता कल्पित ईश्वर, खुदा आदि प्राप्ति करनेकी आशासे इसीकारण नाना तरहसे कर्मादि साधना करने लगे। पूजा-पाठ, जप-तप, अनुष्ठान, व्रत, होम, उपासना, तीर्थयात्रा, योगादि नाना किश्मके कर्म करने और कराने लगे। पारखहीन सब मनुष्य लोगोंने अपने घरोंघरमें धोखेसे प्रेम बढ़ाये हैं। घटोंघटमें भी वही अनुराग बढ़ा कि, कब भगवान्से मिलें ? घर-घरमें देवी-देवताओंकी आराधना, अष्ट प्रतिमादिक पूजा होने लगी। बिना विचार सब लोग भटकनामें पड़े हैं ॥ २८ ॥

६. छौ दर्शन वर्णाश्रम चार * नौ छौ भये पाखण्ड बेकार ॥ २९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी भूल-भुलैयाके मार्ग-कुमार्गमें चक्कर लगा करके जगह-जगहमें जीव अटके, इसकारणसे ब्राह्मणादि चार वर्ण बने, और ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम स्थापित किये। योगी, जङ्गमादि षट् दर्शन बना लिये। नौ नाथ, चौरासी सिद्ध अलग-अलग ही हुए, इनमेंसे और छियान्नवे पाखण्ड विस्तार हुए हैं। वे सब बेकारके अनुमान-कल्पना, भास-

अध्यासादिमें विकारी होकर नष्ट-भ्रष्ट हुए हैं; और त्रिवेदी, चतुर्वेदी, षट् शास्त्री, पौराणिक आदि होकर वाणी-कल्पनाके विकारमें गबरगुण्ड हो नाहक नर जन्मको बिताकर बिना पारख चौरासी योनियोंमें चले गये और जा रहे हैं ॥ २९ ॥

७. कोई त्यागी अनुरागी होय * विधि निषेध मायाते दोय ॥ ३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सो उसी कठिन भ्रमचक्रमें पड़कर ईश्वरकी खोज करनेके वास्ते घर-गृहस्थीको छोड़कर कोई बाहर निकल पड़े; भेषधारी संन्यासी, वैरागी, वनवासी, त्यागी हुए। कोई अनुरागी=गृहस्थ भक्त, बड़े प्रेमी भक्तिपरायण हुए। वे नवधा भक्ति करने लगे। कोई तपस्वी हुए, पञ्चाग्नि तापना, जलशयन करना, कन्द-मूल-फलाहारादि करने लगे। ऐसे साधक-सिद्ध, योगी-भोगी, भक्त, ज्ञानी आदि तो बहुत हुए हैं। उन्होंने साधनाएँ भी बहुत-बहुत की; परन्तु, किसीकी ईश्वर प्राप्तिकी आशा पूर्ण नहीं हुई। तथा वेद-शास्त्रादिमें करने योग्य बताया हुआ प्रमाण-विधान सोई विधि=शुभ कर्म है; और यह-यह काम नहीं करना, ऐसा कहकर मना किया हुआ अयोग्य अशुभ कर्म 'निषेध' है। सो दोनों मायारूप गुरुवालोगोंकी वाणीका विलास मात्र है। बिना विवेक उसीमें सब जीव अरुझ गये हैं; और अरुझ ही रहे हैं ॥ ३० ॥

८. कल्पेउ ग्रन्थ पुराण अनेक * भरमी रहे सब बिना विवेक ॥ ३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसीप्रकार भ्रमिक होकर पण्डित व्यास आदिने कल्पना कर-करके इतिहासरूप अठारह पुराण बनाया है; और पण्डितोंने अठारह ही उपपुराण भी बनाया है, ऐसे पुराणादि ग्रन्थोंमें अनेकों कल्पनाका विस्तार किया है। सत्यासत्य, सारासार, जड़-चैतन्यका यथार्थ विवेक पारखबोधके बिना सब मनुष्य उसी शब्दके जङ्गलमें भ्रमण करके भ्रमिक हो रहे हैं। दशों दिशामें भटक रहे हैं। अपनी हंस स्थिति न पाकर बिना विचार भवधारमें बह रहे हैं। जहाँ-तहाँ खानी और वाणीमें अरुझ रहे हैं। जिज्ञासुको चाहिये कि, उसे परखकर सार ग्रहण करके असारको परित्याग करे और अपना कल्याण करे ॥ ३१ ॥

साखीः— भर्मि रहा सब शब्दमों * शब्दी शब्द न जान ॥
[४] गुरु कृपा निज परख बल * परखो धोखा ज्ञान ॥ ३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें सब मानव समाज बिना विवेक गुरुवालोगोंकी कल्पनाके शब्द रोचक-भयानक वाणी और स्त्रियोंकी विषयोत्पादक मोहक वाणी सुन-सुनकर आकर्षित होकर भ्रमिक हो रहे हैं। भूल-भूल करके भटका खा रहे हैं; हृदयमें शब्द बाण लगनेसे विरह-व्याकुल होकर मारा-मारा फिर रहे हैं। यह शब्द मेरी ही कल्पनाका विकाररूप है; असार वाणी जाल हमें बाँधने वाला है। सो शब्दी=जीव शब्दके कर्त्ता हो करके भी पारख न होनेसे यह भेद नहीं जानते हैं। अतएव काल, सन्धि, झाँईं के शब्दोंका मर्म न जान करके सब कोई उसी वाणी जालमें ही पड़कर भ्रमिक होकर बद्ध हो रहे हैं। अब हे मुमुक्षुजनो ! यदि तुम लोग यथार्थ ही मुक्त होना चाहते हो, तो नारी और गुरुवाओंके कुसङ्गको सर्वथा परित्याग करके छोड़ दो ! और पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें प्रेम लगाओ ! साधु-गुरुकी निष्कपट सत्य सेवा भक्ति करो ! आज्ञा पालन करो ! पारखी श्रीसद्गुरुकी महान कृपाके प्रसादसे सत्य बोध प्राप्त करके निजस्वरूपमें स्थिति कायम करो ! पारख बलमें बलिष्ठ-पुष्ट हो जाओ। इसतरह श्रीसद्गुरुकी कृपा तथा निज पारख ज्ञान, बोध बलके प्रतापसे जगत्में प्रचलित समस्त धोखारूप ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान और मोटी-झीनी मायाके जालको परखो; अच्छी तरह जानो, समझो-बूझो ! फिर उसे परित्याग करके निज पारख स्वरूपमें ही सदाके लिये स्थिर हो जाओ। आशा-बासा, कल्पनादिका कुछ लेशमात्र भी विकार न रक्खो ! निर्विकार हो निराश-वर्तमानमें स्थिर रहो ! ॥ ३२ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी — १ है]॥ ५. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ ५ ॥ ❀ ॥

[प्रथम धोखा आदिका परीक्षा वर्णन ।]

१. धोखा प्रथम परखिये भाई ! * नाम जाति कुल कर्म बड़ाई ॥ ३३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे भाई ! जिज्ञासुओ सुनो ! शब्दके भेदको अच्छी तरहसे न जान करके नरजीव महा धोखेमें पड़े हुए हैं। सो अभी तुम लोग मनुष्य देहमें हो, तब तक पहले आरम्भके, फिर परिणामके, दोनों धोखाओंको पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें निर्णय करके परखो ! प्रथम, धोखा ब्रह्म-ईश्वर, आत्मा-परमात्मा, देवी-देवता, भूत-प्रेत, स्वर्गादि, सिद्धि आदि हैं। दूसरा, धोखा खानी जालमें देहके नाम— प्रसाद, दास, लाल, सिंह, जङ्ग, चन्द इत्यादि विशेषण-युक्त कल्पित नामकी मानन्दी छोड़ो ! फिर जाति=ब्राह्मणादि चार वर्ण, छत्तिस जाति देहके नाता, हिन्दू, तुरुक, जैन, बौद्ध, पारसी, ईसाई, यहूदी, इत्यादि जातीयताका अहङ्कार भी त्यागो ! कुल= लोकाचार-कुलाचारके सम्पूर्ण प्रपञ्चोंको परखो ! कर्म=चार आश्रमोंका कर्म-बन्धान नाना शुभाशुभ कर्म तथा झूठी बड़ाई, प्रशंसा, कीर्ति गुणगानमें आसक्ति इत्यादि जो मान रहे हो, सो सब धोखा है। इससे नरजीवोंकी कोई कल्याण नहीं होती है। अतएव पहले ही इस भ्रम-धोखेको परखकर उसके सब मानन्दीको परित्याग करो ! ॥ ३३ ॥

२. क्षिति जल पावक मरुत अकाश * तामहँ पञ्च विषय परकाश ॥ ३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशरूप पोल या समान पवन, ये जड़ पाँच तत्त्व हैं। उन्हीं पाँचोंमें क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, और शब्द, ये पञ्च विषय प्रगट होकर प्रकाश होते हैं। पाँचों तत्त्व अनादिसे कार्य-कारणरूपसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें रहे हुए हैं। उन्हीं पञ्चविषयोंमें आसक्ति-अध्यास टिका करके जीव सब स्वयमेव भव-बन्धनोंमें जकड़े पड़े हैं। परखकर विषयासक्तिको त्यागनेवाले ही कोई बिरले जीव जीवन्मुक्त होते हैं ॥ ३४ ॥

३. तत्त्व पाँचमें श्वासा सार * प्राण अपान समान उदार ॥ ३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पिण्डरूप शरीरमें यहाँ पाँचों तत्त्वोंकी कलामें श्वास-रूप प्राणवायु मुख्य, प्रधान, सार या श्रेष्ठ हो रही है। अन्य चार वायु उसीके आधारसे चल रही हैं। देहमें प्राणवायु हृदयमें रहकर सदा श्वासको चलाती रहती है। अपान वायु गुदामें रहकर मल त्याग कराती है। समानवायु उदारतासे सब नसोंमें रक्त पहुँचाती है; वह नाभिमें रहती है। यह तीन वायुके नाम और कामका वर्णन इस चौपाईमें हुआ है ॥ ३५ ॥

४. उदान व्यान बावन सञ्चार * निज निज थल निज कारज कार ॥ ३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उदान वायु कण्ठमें रहकर अन्न-जलको छान-छानकर कोठेमें भेजती है, तथा स्वप्न दिखानेका काम भी करती है; और व्यान वायु देहभरमें घूमती-फिरती रहती है। फिर पाँच प्राणसे दश वायु, नौ नाँड़ियाँ मिलकर उन्नीस पवन हुए, उसमें और तीस वायुकी गाँठ मिलाकर सब उनचास पवन गिने हैं। [उनचास वायुके नाम "तत्त्वयुक्त निज बोध विवेक"में लिखा है।] फिर इङ्गलादि तीन नाड़ी और भी उसमें सम्मिलित करके सब प्रधान बावन वायु सञ्चालित हो रही हैं, ऐसा माना है। वह सब वायु समूह अपने-अपने ठिकाने अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें रहकर उस स्थानसे अपने-अपने मुख्य कार्य सदोदित करते ही रहते हैं। प्राणादि उन्हीं वायुकी सहायतासे बाहर सब बावन अक्षर बना करके प्रगटकर वाणी जालका विस्तारसे प्रचार भी कर रक्खे हैं; और तैसे ही भोगी-योगी, कर्मी, भक्त, ज्ञानी लोग भी निज-निज ठिकाने आश्रम-भूमिकामें अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म, अकर्म, विकर्मादि नाना कार्य करते हुए फिर रहे हैं। उसीमें जड़ाध्यासी होकर बद्ध हो रहे हैं। सो श्रीसद्गुरुके पारखबोधसे परख करके न्यारा होना चाहिये ॥ ३६ ॥

५. इङ्गला पिङ्गला औ सुखमनी ❀ एकईस सहस्र छौ सतसै गनी ॥ ३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शरीरमें मुख्य प्रधान तीन नाड़ियाँ माना है। उनमें इङ्गला=चन्द्र नाड़ी, नासिकाके बायाँ छिद्रसे चलनेवाली वायु है। पिङ्गला=सूर्य नाड़ी, नासिकाके दाहिना छिद्रसे चलनेवाली वायु है; और सुषुम्ना=राहु नाड़ी, दोनों छिद्रसे बराबर चलनेवाली वायुको कहते हैं। इन्हीं तीनों नाड़ियोंसे सर्वदा श्वासोच्छ्वासकी चलनगति प्राणवायुसे होती रहती है। दिन-रातके आठ प्रहर या चौबीसों घण्टोंमें निरोग मनुष्यके श्वास एकईस हजार छः सौ बार तक चल जाता है। ऐसा हिसाब योगी लोगोंने कल्पना करके गिनती किया है। इसबारेमें विस्तारसे समष्टिसारकी चौकड़ी खण्ड नम्बर-१३ के चौकड़ी-२१ सिलसिला नम्बर-२६९ (पृष्ठ २२२)में वर्णन हो चुका है; और टकसार ग्रन्थमें नम्बर-११५ (पृष्ठ १२६७)में भी लिखा गया है, चाहे वहाँसे भी देख लीजिये ! ऐसे तीन नाड़ियोंसे २१,६०० श्वासकी चलनगति गिना है ॥ ३७ ॥

६. निगम अगम सो सदा बतावै ❀ श्वासा सार स्वरोदै गावै ॥ ३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उपर्युक्त सोई कल्पित हिसाबको निगम=वेद और आगम=शास्त्र भी सदा सत्य कहकर प्रमाण करके बतलाते हैं। वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे गुरुवालोग भी सदा-सर्वदासे उसीको मानन्दी करके बताये और बता रहे हैं। ज्ञान-स्वरोदय और शिव-स्वरोदय-को जाननेवाले योगी लोग भी स्वरोदय शास्त्रके प्रमाणसे श्वासरूप प्राणवायुको ही सबका सार परमतत्त्व-परमात्मा बता करके उसका गुणानुवाद गा रहे हैं; बहुविधिसे महिमा वर्णन किये या कर रहे हैं। जिसको सुन-सुन करके सब मनुष्य भ्रमिक हो रहे हैं, बिना विवेक धोखेमें ही पड़े हैं॥ ३८॥

साखीः— धोखा अन्धेरी पायके ❀ यहि विधि भया शरीर ॥
[५] कल्पेउ कर्त्ता एक पुनि ❀ बढ़ी कर्मकी पीर ॥ ३९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देहको अपना स्वरूप मानना और ब्रह्म-ईश्वरादिको सत्य ठहराना, यही महा धोखेमें पड़कर अज्ञान, अविद्या, माया, मोह, काम, क्रोधादि विकार, यही महान अन्धकारमें प्राप्त हो करके जीव सब जड़ाध्यासी बद्ध हुए हैं। देह रहे तक शुभाशुभ कर्माध्यास-को जमा किये। फिर देह छूटनेपर सूक्ष्म देह सहित निकले, संस्कारके मुताबिक चारखानीमें चले गये। वहाँ प्रथम पुरुषके वीर्यमें प्रवेश करके पश्चात् स्त्रीकी योनि द्वारा गर्भवासरूप अन्धेरी कोठरीमें जाकर कैद हुए। फिर समय पा करके स्थूल देह सहित बालकरूपमें उत्पन्न होते हैं। इसीप्रकारसे अध्यास-रूप बीजके कारणसे वृक्षरूप यह शरीर पैदा हुआ है। उसी शरीरको ले करके नाम, जाति, कुल, कर्म, बड़ाई आदि खानीके धोखेका विस्तार हुआ। जब प्राणियोंको अनचाहे भी कर्म संयोगसे सुख-दुःखादि भोग होने लगा, त्रिविधि तापमें सन्तप्त हुए; और ब्रह्माण्डके तत्त्व-प्रकृति आदिका रहस्य भी कुछ समझनेमें नहीं आया। प्राकृतिक कार्य देखकर आश्चर्य चकित हुए। इन्हीं सब कारणोंसे भ्रमिक हो करके मनुष्योंने पिण्ड-ब्रह्माण्डकी रचना करनेवाला जगत्कर्त्ता या जगदीश्वर कोई एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर होगा, ऐसी मिथ्या कल्पनाको दृढ़ किया। फिर उसी ईश्वरके ही दर्शन-पर्शनादि करनेसे ही दुःख निवारण होगा, ऐसा सोच करके कर्त्ता परमेश्वर प्राप्ति करनेके लिये नाना यत्न-प्रयत्न कर्मादि साधना करने और करानेकी पीड़ा, असह्य दुःख ही आगे बढ़ता गया। उसी कर्मकी पीरमें अन्धाधुन्ध सब भ्रमिक जीव बढ़ते चले गये। कहीं ठौर न पाकर जड़ाध्यासी हो, फिर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिर पड़े, बिना पारख ॥ ३९ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाइ— ५ । साखी— १ है] ॥ ६. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ ६ ॥ ❀ ॥

[काल कर्मोंकी साधना आदिका वर्णन ।]

१. योग जप तप ध्यान अलेख ❀ तीरथ फिरत धरत बहु भेष ॥ ४० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मनुष्योंने जब सत्यासत्यका कुछ भी भेद

नहीं पाया, तब भ्रमिक होकर गुरुवालोगोंकी शरणमें गये। वहाँ योगी, ज्ञानी और भक्तोंने एक अलेख, निर्गुण-निराकार परमेश्वर ठहराया। फिर उसके प्राप्तिकी आशा देकर अनेकों साधनाओंमें मनुष्योंको लगाया। तहाँ कोई अष्टाङ्ग योगका अभ्यास करने लगे। नेती, धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जल, न्योली क्रियादि साधने लगे; यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि लगाने लगे। त्राटक, दश मुद्रा करने लगे; इत्यादि योगकी नाना साधनाओंमें लगे और लगाये। कोई भक्तलोग सप्त बीज महामन्त्र और गायत्री, तैंतीस करोड़ देवताओंके नामोंका मन्त्र बना करके बहुत विधिसे जाप करने लगे। नाम-स्मरण, कीर्तन, विनय करने लगे। कोई तपस्वी बनकर शीतोष्ण सहन-कर पञ्चाग्नि, चौरासी धुनी तापना, जलशैय्या, अरण्य निवास, ठाढ़ेश्वरी, ऊर्ध्व बाहु, धूम्रपान, मौनी, दिगम्बरी, वाघम्बरी आदि हुए। कोई ध्यानी लोग अलेख-परमात्माका सगुण-निर्गुण ध्यान, मानसिक पूजादि करने लगे। समाधि लगाने लगे। कोई तीर्थयात्री बनकर चारोंधामके अठसठ तीर्थोंमें मारा-मारा घूमने-फिरने, भटकने लगे। कोई बहुत प्रकारके भेष धारण करने लगे। पञ्चकेशी, ब्रह्मचारी, मृगचर्मधारी हुए। आभूषणधारी चित्र-विचित्र कीमती वस्त्र पहिरनेवाले गृहस्थ हुए। वल्कल वसनी वानप्रस्थी हुए। मुण्डी, काषायाम्बरी, दण्डी, संन्यासी हुए। पीताम्बरी, श्वेताम्बरी, रक्ताम्बरी, नीलाम्बरी, श्यामाम्बरी, रुद्राक्ष, कण्ठी, माला, तिलक, चिमटा, कमण्डलु, इत्यादि ग्रहण करके ऐसे षड्दर्शनोंमें बहुतेक भेष या बाना धरते हुए संसारमें जहाँ-तहाँ फिर रहे हैं; लोगोंको ठगाई कर रहे हैं॥४०॥

२. योगी जङ्गम सिद्ध उदासी * घरको त्यागि फिरत बनवासी ॥ ४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! योगी=अवधड़, नाथ, नागे, गोसाँई आदि बारह प्रकारके योगी हुए हैं। जङ्गम=गलेमें शिवलिङ्ग धारण करनेवाले शैव-कपालिक, कृतिवासादि अठारह प्रकारके जङ्गम हुए हैं। सिद्ध=नौ नाथ सम्प्रदायमें— लूहिपा, लीलापा, विरुपा, गोरक्षपा, शान्तिपा इत्यादि ८४ सिद्ध माना है; और श्रीचन्द्रसे उदासी सम्प्रदाय चला है। इसप्रकार कोई योगी, कोई जङ्गम, कोई सिद्ध, कोई उदासी, इत्यादि मतवादी हुए; ईश्वरादि प्राप्तिके विरह विशेष बढ़नेसे कितनेक पुरुष तो घर-गृहस्थीके माता-पिता, स्त्री-पुत्र, परिवार, राज-काज, धन-सम्पत्ति विषय विलास, महल आदिको परित्याग करके कोई वनवासी मुनि हुए; कोई त्यागी, वैरागी आदि साधु हो करके जङ्गल, पहाड़, गुफा, कन्दरा आदिमें भटक-भटक करके धूर छानते हुए फिर रहे हैं। तथापि ईश्वरादि इष्ट किसीको भी नहीं मिला, तो परम दुःखी बेहाल हो गये या दुःखी हो रहे हैं। बिना पारख अध्यासवश चौरासी योनियोंके महावनमें निवास कर रहे हैं॥ ४१ ॥

३. कन्द मूल फल करे अहार * कोइ कोइ जटा धरे शिर भार ॥ ४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जब घर, गाँव-वस्ती छोड़कर वनवासी हो करके वनमें रहने लगे, तपस्या करने लगे। वहाँ अन्नका आहार तो उन्हें नहीं मिला; भूखके मारे देहकी शक्ति क्षीण होने लगी, तब जङ्गलमें ढूँढ़नेपर जो कुछ मिला, सोई आहार करके गुजारा करने लगे। तहाँ जमीकन्द, सकरकन्द, तरुल, भ्याकुर, ओल गीठादि कन्द-मूल खोद-खोद कर खाने लगे। कोई मूल=मुरही, वृक्षोंकी जड़ वगैरह उखाड़कर आहार करने लगे। कोई वनफल, रामफल, सीताफल, कैथ, बेर, अमरुद, बेल, नासपाती, चिउरी, जङ्गली केले, कोहँड़ा इत्यादि यथाप्राप्त फल ही खा करके दिन काटने लगे। कोई पुष्पाहार, पत्राहार, दूर्वाहार, दूधाहार जलाहार, निराहार, करके व्रत अनुष्ठान साधनामें लगे; और कोई-कोई मनुष्योंने जब कुछ कर नहीं पाया, तो शिरमें बाल बढ़ाना ही शुरू कर दिया; नकली बाल भी जोड़ते-जोड़ते बड़ा भारी जटाजूट बना लिया। हमेशा एक पसेरीभर जटाका भार या बोझाको शिरपर ढोते फिरने लगे, पशुवत् व्यर्थका बोझा ढो करके ही वे अविचारी लोग प्रसन्न रहने लगे। उसी अध्याससे मरकर वे रीछ, सिंह, भेड़ी आदि पशु होकर कर्म फल भोग रहे हैं, और ऐसे ही कर्म भोगा करेंगे॥ ४२ ॥

४. मन मलीन मुख लाये धूर * आगे पीछे आगि औ सूर ॥ ४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो! श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग विवेक-विचार बिना उन पाखण्डी गुरुवालोगोंका मन तो अत्यन्त मलीन हो रहा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, भय, आशा, तृष्णा, विषय चाहना, इत्यादिसे कलुषित मनमें पाप-ही-पापका बड़ा भारी मैला भर गया है। धोखा देने, ठगाई, धूर्ताई करनेमें प्रवीण हो रहे हैं। सों कलङ्क, दुर्गुणको छिपानेके लिये उन्होंने तो मुखमें धूर लपेट लिया है, राख घोलकर मुखमें तथा सर्वाङ्गमें पोतकर लगा लिया है। ऐसे तो वे गधेवत् ही हो रहे हैं; धूरमें लोट-पोट करके मस्त रहते हैं। कहा है कि:—

"मन मलीन तन सदा उदासी। गलमें डिम्भ कपटके फाँसी॥"— ऐसे ठग्गू-भगत, बगुला-भगत हो रहे हैं। उनके "मुखमें राम राम, बगलमें छूरा" वाली कहावत जैसी चाल रहती है। मौका पाते ही लूट मचा देते हैं; भारी कुकर्म करनेमें भी नहीं हिचकते हैं। जैसे बाहर मुखमें धूर, कचरा, कीचड़, राख लगा करके बैठे हैं, तैसे ही उनका मन भी सदा मलीन-अपवित्र बना रहता है, घात-प्रतिघातमें ही वे सदा लगे रहते हैं। इसीवास्ते देखानेको नाना ढोंग किया करते हैं। आगे-पीछेका विवेक-विचार करके तो वे कुछ भी नहीं देखते हैं, और नाहकमें ढोंगी तपस्वी बनकर आगे सन्मुख-में बड़े-बड़े लक्कड़ जला करके आग तापते हैं। पीछे पीठ खुला रखकर सूर्यकी प्रखर तेज धूप सदा सहा करते हैं। तहाँ कहा भी है:—

"अग्रे बह्नी पृष्ठे भानुः रात्रौचिबुकसमर्पित जानुः।करतलभिक्षातरुतलवासस्तदपिनमुञ्चत्याशापाशः॥"

—अर्थात् तपस्वी लोग सन्मुखमें अग्नि रखते हैं, पीठ पीछे सूर्यकी किरण तापते हैं। ठण्ढीके महीनेमें कपड़े न होनेसे रात्रिमें शीतके मारे दोनों घुटनोंके बीचमें शिरकी ठोढ़ी दबा करके रात बिताते हैं। भिक्षा करके हाथोंमें ही खाते हैं, वृक्षके नीचे ही सदा निवास करते हैं, तथापि सत्य-ज्ञानके बिना वे आशारूपी पाशसे नहीं छूटते हैं, यानी उनकी आशा-दुराशा नहीं छूटती है; इसीसे भव-बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं। अथवा कोई चारों तरफ अग्नि जला करके जेष्ठ महीनेमें उसके ऊपर सूर्यके तापको सहन करते हैं। बिना सत्सङ्ग-विचार व्यर्थ ही मनुष्य जन्मको बर्बाद करते हैं॥ ४३॥

५. नगन होय नर खोरिन फिरै * पीतर पाथरमें शिर धरै ॥ ४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! किसीने सुना कि, परमेश्वर निराकार-निराधार, दिगम्बर व्यापक है, तो अपने भी वैसे ही होना चाहिये, ऐसा सोच करके सब कपड़े उतारकर लङ्गोटी भी फेंक दिया। नङ्ग-धड़ङ्ग पशुवत् निर्लज्ज हो गये। सद्गुणोंको गमाकर निर्गुणियाँ हुए। वे नङ्गे दिगम्बरी कहलाये। ऐसे महान नरपशु ही हो करके उन्मत्त-बावलेकी नाईं जहाँ-तहाँ खोरियोंमें घूमने-फिरने लगे। गिरि-कन्दरा, खोह, निर्जन-बियावान वन और गाँव-गाँव गली-गली देश-विदेशमें भटकते हुए फिरने लगे। जो कुछ मनमें आया, वैसे ही दुराचरण पशुके समान कुचालसे चलने लगे। कोई तद्वत् परमहंस हुए। कोई मूर्तिपूजक हुए; पत्थर, मिट्टी, बालू, धातु, काष्ठ, काँच, चित्र, चन्दन-लिखित मूर्ति, ऐसे अष्ट जड़ प्रतिमा, पीतल, ताँबा आदिकी जड़ मूर्तियोंको देवता, ईश्वर, सिद्धिदाता मानकर उसी जड़ मूर्तियोंपर ही शिर पटक रहे हैं वा माथ नवाते हैं, श्रेष्ठ मान करके वही जड़की ही ध्यान-धारणा मनमें धरते हैं। वैसे ही शिष्योंको भी पीतर पाथरपर शिर धराते हैं। श्रीसद्गुरुके पारखबोध हुए बिना वे सब धोखेमें पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं॥ ४४॥

साखीः— काल शब्दके शोरते * होर परी संसार ॥
[६] देखा देखी भागिया * कोई न करै विचार ॥ ४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो! काल=गुरुवालोगोंके कर्म, उपासना, योग, प्रतिपादक वेद-शास्त्रोंके नाना शब्दोंके शोर=उपदेश, हो-हल्ला, चिल्लाहटसे संसारमें बड़ी खलबली मची;

धूम-धामका दङ्गा, खैंचाखैंची, पक्षपात बढ़ा। होर=मतवादियोंमें होड़, शर्त, करार, तकरार बढ़ता गया। साधना कर्म आदि कमाई करनेकी शर्त लगी कि, देखें तू ज्यादा साधना करता है कि, मैं ज्यादा करता हूँ! ज्यादा साधना करनेवाला जीता, और दूसरा कम साधना करनेवाला हारा, यह ठहराव रहा, ऐसा कहकर कल्पित काल शब्दके शोरसे संसारमें समस्त मनुष्योंको संशय उत्पन्न हुआ। उसी हुल-दङ्गामें सब बिना विवेक लपट पड़े। तब एक-दूसरेकी देखा-देखी अन्य लोग भी वैसे ही अनुकरण वा नकल करने लगे। गुरुवालोगोंके कर्त्तव्यकी देखा-देखी, सुना-सुनी सब कोई सत्सङ्ग न्याय-निर्णयको छोड़-छोड़कर भागाभाग किये; भ्रम-धोखा, कल्पना, विषयादिमें जा-जा करके छिप गये। अब कोई भी मतवादी सत्यासत्य, सारासार, जड़-चैतन्यका यथार्थ विचार पारख तो करते ही नहीं हैं। मनमाने वैसे-वैसे कर्म-कुकर्म करके जहँड़ा रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें ठहरकर बन्धन-मुक्तिका विचार तो कोई भी नहीं करते हैं, इसवास्ते इस कठिन भव-बन्धन-रूप कैदसे भी कोई नहीं छूटते हैं, और अधिक-अधिक फँसते जाते हैं। जैसे—"भेड़िया धसान धसते जाय" की नाईं करते हैं, भेड़-बकरियोंको सैकड़ोंकी तायदादमें चरवाह लोग चरानेको ले जाते हैं। कहीं नदी पार करनेके मौकामें छोटे पुलपरसे भेड़ोंको हाँककर ले गया। पुल सकरा था, भेड़ें ठेलमठेल, ठसाठस होकर जाने लगे, ऐसेमें अचानक एक भेड़ाका पैर पुल परसे फिसल गया; नीचे नदीमें वह गिर पड़ा, और बहने लगा। तब दूसरे भेड़ोंने भी देखा कि, हमारा एक साथी तो इधर गया है, तो चलो हम लोग भी उधर ही कूद पड़ें। फिर क्या था, धड़ाधड़ सब भेड़ें नदीमें कूद पड़े और बह गये। चरवाह कितना भी उन्हें मना करता रहा कि, सीधे चलो, पुल पार करो, क्यों नीचे कूद करके बहे जाते हो? आखिरमें भेड़ोंने एक नहीं माना; सब नदीमें ही कूद-कूद करके बह गये। संसारमें ऐसे ही अविचारी मनुष्योंका भी हाल है। इस बारेमें एक दृष्टान्त आया है, सो भी सुन लीजिये!

॥ ❀ ॥ मूर्ख मनुष्योंका भेड़िया धसान चाल वर्णन ॥ ❀ ॥

दृष्टान्तः—एक ब्राह्मण बेचारे बड़े ही सीधे-सादे भ्रमिक भक्त थे, और नित्य पूजा-पाठ घण्टों बैठकर किया करते थे। पूजा समाप्ति करतेमें प्रतिदिन शङ्ख-घण्ट बजाया करते थे; और उनके मकानके पिछवाड़ेमें एक धोबीका भी घर था, उसके पास एक गदहा था। पण्डितकी शङ्ख ध्वनिके साथ-साथ धोबीका गदहा भी नित्य बोला करता था। ऐसा गधेको शङ्खके साथ नित्य बोलता हुआ सुनकर पण्डितने सोचा कि, यह पूर्वजन्मका कोई महात्मा होगा, इसीसे तो शङ्ख ध्वनिपर इसका इतना प्रेम है कि, राज ही शङ्खके शब्दको स्वागत करके बोला करता है। इसवास्ते इनका नाम "शंखेश्वर" रखना उचित है; ऐसा सोच करके उस गधेका नाम उस पण्डितने "शंखेश्वर" रक्खा। कालान्तरमें एक दिन अनायास वह गदहा मर गया। तो उस दिन पण्डितकी पूजा समाप्तिके समय शङ्खके साथ वह नहीं बोला। तब संशयमें पड़कर कारण जाननेके लिये पण्डित धोबीके घर चला गया और शंखेश्वरका हाल-चाल पूछने लगा। धोबीने कहा कि, महाराज! आज हमारा प्यारा गदहा मर गया है; वह स्वर्ग लोक वासी हो गया है। ऐसा सुन करके पण्डितजी खिन्न होकर चिन्तित मनसे घर चले आये। उन्होंने सोचा, खैर जो होना था, सो तो हो गया। हमसे और ज्यादा तो कुछ हो नहीं सकता है, तो लाओ चलो महात्मा शंखेश्वरके मृत्यु शोकमें अपना बाल ही बनवा डालें। ऐसा निश्चय करके पण्डितजीने अपनी दाढ़ी-मूँछ तथा शिरके हजामत बनवा-घुटवा सफाचट होकर नहा-धोकर बनियाँकी दूकानपर कुछ सौदा लेनेके लिये गये, तब बनियाँने पूछा—पण्डितजी! आज बाल क्यों बनवाये हो? उन्होंने उत्तर दिया कि, शंखेश्वर नामके एक महात्मा थे, उनका आज स्वर्गवास हो गया है, तो हमने यही विचार किया कि, एक महात्माके शोकमें और कुछ नहीं कर सकते तो चलो बाल ही बनवा डालें! हमारी आत्मासे उनके सम्मानके प्रति यही किया गया। ऐसा सुनकर बनियाँने कहा—महाराज! यदि ऐसी बात है, और आप कहें, तो उन महात्माके शोकमें हम

भी अपना बाल बनवा डालें, तो कैसा हो ? ठीक है न ? पण्डित बोला— वाह ! आप बड़े समझदार हैं। इससे उत्तम और क्या बात है ? बाल बना डालो ! बस ! तब क्या देखना था, सेठजी भी शिर घुटा बैठे। दूसरे दिन बाजारके लोगोंने उस सेठसे पूछा— कहो सेठजी ! आपने बाल क्यों बनवा डाले हो ? सेठने कहा— सुनो ! भाइयो ! यहाँ एक शंखेश्वर नामक महात्मा रहते थे, उनका स्वर्गवास हो गया है, तो हमसे और कुछ नहीं होता है, तो एक महात्माके शोकमें अपना बाल ही बनवा लिया है। फिर बाजारवालोंने कहा कि— अगर हम लोग भी आज अपना बाल बनवाकर उन महात्माका शोक मनायें, तो कैसा हो ? सेठने कहा— वाह ! भाई ! इससे अच्छी और कोई बात नहीं। बेशक बाल बना डालो ! फिर क्या पूछते हो, अब तो सारा-का-सारा बाजारके लोग मूँड़ मुड़ा बैठे। दूसरे ही दिन संयोगसे पल्टनके सिपाही लोग रसद लेनेको बाजार आये। उन्होंने बाजारवालोंसे पूछा— क्यों भाइयो ! आज तुम लोग सब-के-सब बाल क्यों बनवाये हो ? क्या कोई पर्व है ? सिपाही लोगोंसे बाजारवालोंने कहा— सुनोजी ! शंखेश्वर नामके एक बड़े भारी महात्मा यहाँ रहते थे, उनका चोला छूट गया, स्वर्गवास हो गया है। फिर हम लोगोंने सोचा, ऐसे उच्च महात्माका शोक मनाना चाहिये; और तो हम लोग कुछ कर नहीं सकते हैं, फिर चलो अपना बाल ही बनवा डालें। इसीसे सबोंके बाल बने हैं। ऐसा वचन सुनकर पल्टनके सिपाही लोगोंने कहा कि, अगर हम लोग भी अपना-अपना बाल बनवाकर उन महात्माजीका शोक मनायें, तो कैसा हो ? बाजारवालोंने कहा— क्या पूछते हो भाई ! वाह ! वाह ! यह तो बहुत अच्छी बात है। अपना-अपना धर्म तो सबोंने पालन करना ही चाहिये। बस, उन फौजी सिपाहियोंने जाकर अपनी पल्टनभरमें सबोंको वह बात खबर कर दी। फिर क्या देखना था, सारी बटालियन, पल्टन-की-पल्टन सब सिपाही शिर घुटा बैठे। चौथे दिन जब अंग्रेज कप्तान कवायद लेनेको आ पहुँचा, तो अपनी सारी पल्टनोंके जवानोंकी खोपड़ी घुटी हुई देखकर उन सिपाही लोगोंसे आश्चर्य चकित होकर पूछा— वेल ! तुम लोगोंने यह क्या किया ? क्यों एकदम सब लोगोंने अपना-अपना बाल बनवा दिया ? सो ठीक-ठीक हाल कहो ? तब सिपाहियोंने बतलाया कि— हुजूर ! यहाँपर एक शंखेश्वर नामके महात्मा थे, वे मर गये हैं। इसलिये उनके शोकमें हम लोगोंने अपना-अपना बाल बनवा लिया है। कप्तानने पूछा— अच्छा, यह तो बताओ वह महात्मा कहाँपर रहता था ? और कौन था ? सिपाहियोंने कहा— साहब ! हमलोगोंको यह तो मालूम नहीं कि, वे कौन थे ? कहाँ रहते थे ! हाँ ! हम लोगोंने बाजारवालोंसे यह सुना था कि, शंखेश्वर महाराज एक सच्चे महात्मा थे। तब कप्तान नाराज हो करके झिड़ककर कहा— वेल ! तुम लोग बड़ा डैम हो, जब तुम लोग उसे जानते नहीं हो, फिर क्यों सबोंने बाल बनवा लिया ? अच्छा चलो, हम तुम लोगोंके साथ बाजार चलेगा। ऐसा कहकर कुछ सिपाहियोंको साथ लेकर कप्तान जब बाजार पहुँचा, तब बाजारवालोंसे पूछताछ कर कहा कि— वेल ! तुम लोगोंने जो हमारी पल्टनके लोगोंसे कहा है, वह शंखेश्वर महात्मा कौन था ? और कहाँ रहता था ? फिर बाजारवालोंने कहा— हुजूर ! चलिये, कहकर उस बनियाँकी दुकानपर ले जाकर बोले— साहब ! हम लोगोंको इस बनियाँने बताया था, आप इससे पूछिये, ऐसा कहकर वे लोग चले गये। बनियाँके पास जाकर कप्तानने पूछा— बताओ सेठजी ! तुमने जो बाल बनवाया है और सब लोगोंसे कहा है, सो तुम जानते हो कि— शंखेश्वर महात्मा कौन था ? कहाँ था ? बनियाँने कहा— हुजूर ! मैं इतना ही जानता हूँ कि— अमुक गिरीधारी पण्डितजीसे मैंने उन महात्माके बारेमें महिमा सुनी है। आपको पूरा हाल तो उन्हींसे पता चलेगा। कप्तान बोला— आइयो डैम ! तुमने पूरा हाल जाने बिना बाल क्यों बनवाया ? और सब लोगोंसे क्यों कहा ? अन्तमें पता लगाते-लगाते कप्तान उस पण्डितके पास तक पहुँच ही गया और सारा वृत्तान्त पूछा, तत्पश्चात् पण्डितसे मालूम हुआ कि— शंखेश्वर नामका महात्मा और कोई नहीं था, एक धोबीका गदहा था। वह नाम भी उस पण्डितकी ही मन गढ़न्त कल्पना थी, उसकी मृत्युमें उसने शोक मनाया था, उसके

देखा-देखी और सुना-सुनी दूसरे लोगोंने भी शिर मुड़ाया था। तब तो अंग्रेज कप्तान उन्होंसे बड़ा नाराज होकर उन्हें धिक्कार देने लगा— ओ डैम ! काले आदमियो ! तुम लोग बिलकुल उल्लू हो ! एक गदहाके लिये बिना सोचे-समझे इतना प्रपञ्च बढ़ा लिये हो ? ऐसा कहकर तिरस्कार करके वह चला गया। फिर तो सब-के-सब बड़े शर्मिन्दा अवाक् हो गये। इसतरह अविचारी लोग भले-बुरे मार्गमें दूसरे लोगोंको जाते देखकर परिणामका विचार किये बिना ही भेड़ोंकी तरह उधर ही दौड़ पड़ते हैं। उस मार्गका पारख करनेवाले तो कोई बिरले ही होते हैं।

अब कथामें देखिये ! उस पण्डितके काल शब्द कपोल कल्पित शंखेश्वरकी महिमाके शोरसे शहरभरमें हुल्लड़, हाहाकार, शोक पड़ गया, पण्डितका मूँड़ मुड़ाया देखकर बनियाँने भी शिर घुटवाया। फिर उसे देख-सुनकर सारे बाजारके लोगोंने और हजारों सिपाहियोंने भी बिना सोचे-समझे अन्धविश्वासमें आ करके बाल बनवा लिया, शोक मनाया। परन्तु, निदानमें जाँच करनेपर वह सब एक गदहाके कारण हुआ; सार कुछ नहीं निकला, कप्तानके जाँच करनेपर पीछे उन्हें पछताना पड़ा। इसलिये कहा है:—

"बिना विचारे काम करे, सो पाछे पछताय। काम बिगारे आपनो, जगमें होत हँसाय ॥"—
असली बातका विचार तो कोई करते ही नहीं हैं, नकली ढोंगमें ही सब भूल रहे हैं ॥

एक समयकी बात है:— दिल्लीके सदर बाजारमें दो साँड़ परस्पर लड़ पड़े, सड़कमेंसे बचनेको सब आदमी लोग भागे, दौड़ पड़े। तहाँ किसीने झूठा ही चिल्ला करके भागा कि, दङ्गा हुआ, हिन्दू-मुसलमानका झगड़ा हुआ, भागो ! भागो ! फिर क्या देखना था, शोर सुनते ही सब लोग भागने लगे, उन्हें भागते जाते देख करके अन्य सब मनुष्य भी कुछ मतलब जाने बिना भागाभाग करने लगे। एकदम सारा बाजार बन्द हो गया; हुल्लड़ मच गया। कुछ देरमें पुलिसका समूह भी वहाँ आ गया। असली कारणका पता लगाया, तो मालूम हुआ कि, विशेष बात तो कुछ नहीं थी, दो साँड़ लड़े थे; उसीको लेकर सरारती लोगोंने ये बवाल उठाया था। बहुत देरमें जाकर वह झूठी अफवाह मिटी। ऐसे बहुत सारे लोग देखादेखीमें ही भागे जाते हैं, ठीक-ठीक विचार कोई नहीं करते हैं, धोखेमें पड़ जाते हैं। उपर्युक्त कथाका सिद्धान्त ऐसा है:—

पण्डितरूप उपासक लोग हैं। उनके पासमें धोबीरूप कर्मकाण्डी लोग रहते हैं। उनके पासमें वाणी-कल्पनाका बोझ ढोनेके लिये मूर्ख मनुष्य गदहावत् बने पड़े हैं या उनके इष्ट देवता वा गुरु गदहाकी जगहमें हैं। भक्तोंके कीर्तनरूपी शङ्ख ध्वनिके साथ अन्य मूर्ख मनुष्य भी गाया, नाचा करते हैं। एक दिन उनके साथी गधाप्रसाद या देवता वा गुरु आदि मर गये; अदृश्य वा ओझल हो गये। राम-कृष्ण आदि दश अवतारोंका भी शरीर छूट गया। इसकारणसे पण्डितरूप भक्तोंको बड़ाभारी विरह, व्यथा, शोक-सन्ताप व्यापा। उन्होंने सोचा हाय ! हाय ! अब क्या करें, इष्टदेव तो निराकार हो गये, साथी भी मर गये ! तहाँ:—

"नारि मुई घर सम्पति नाशी। मूँड़ मुड़ाय भये संन्यासी ॥" अब घर-गृहस्थीमें रहना व्यर्थ है। अपनेसे ज्यादा और कुछ हो नहीं सकता है, तो चलो मूँड़ मुड़ा करके साधु ही हो जायें। ऐसा शोचकर षट् दर्शनमें कहीं जा करके भेषधारी साधु होगये। इसतरह शोक मनाये। फिर भिक्षा करनेको शहरमें गये, वहाँपर विवेकरूप आँखोंके अन्धे और कल्पनारूप गाँठके पूरे ऐसे लोगोंने उनसे हवाल पूछा कि— महाराज ! आप साधु क्यों हुए हो ? मूँड़ क्यों मुड़ाये हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि— हे भाई ! सुनो, पहले संसारमें परमेश्वर-परमात्मा, साकार अवतारी थे; परन्तु, अब वे निराकार हो गये, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक, सत्यलोक, साकेत, गोलोक आदिमें चले गये। उन्हींके विरहमें हमने और कुछ अपनेसे नहीं बना, तो भेष ही बदल डाला है; मूँड़ मुड़ाया, खाक लगाया, कान फड़ाया, भगवा वस्त्र पहिना, जटा बढ़ाया, माला, छाप, कण्ठी, तिलक, रामनामी चद्दर आदि धारण किया है, सो

उनके ही गुण गाते हुए फिर रहे हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं, जब प्रसन्न होंगे, तो दर्शन देकर निहाल कर देंगे, दुःख-दारिद्र्य दूर कर देंगे। सब मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। ऐसी रोचक वाणी काल शब्दकी शोर सुनकर अब तो संसारमें बड़ी होड़ पड़ी। सब लोग देखादेखी मूँड़ मुड़ा करके कर्मी, भक्त, योगी आदि होने लगे; कथा-कीर्तन, जप, तप, व्रत, तीर्थ, नाम-स्मरण होने लगा। इसतरहसे सब विरही हुए; और कितनेक सिपाहीवत् श्रीसद्गुरुके शिष्य कहलानेवाले पन्थ-पन्थाईके लोग और कबीरपन्थी कहलानेवाले नाममात्रके पन्थी लोग भी भ्रमिक होकर बिना विचारे गुरुवालोगोंके जालमें फँस गये, तो ढोंग ही करने लगे। ऐसा देखकर कक्षानवत् पारखी सन्तने सत्सङ्गमें आये हुए लोगोंसे पूछा कि— कहो मनुष्यो! तुम लोगोंने नाना पाखण्डका भेष क्यों धारण कर लिया है, इसका कारण बतलाओ! उन्होंने कहा— प्रभुजी! एक परमेश्वर परमात्मा अवतारी पुरुष थे, उनका स्वर्गवास हो गया है। इसीवास्ते हमसे और कुछ हो नहीं सका, तो उनकी स्मृतिमें हमने यह शोक चिह्न-भेष ही धारण कर लिया है। पारखी सन्त बोले— वह परमात्मा कहाँ रहते थे? और कौन थे? बतावो? सत्सङ्गी लोगोंने कहा— हे साहेब! यह बात तो हम नहीं जानते हैं, हाँ! वे सर्वशक्तिमान् रहे, ऐसा हमने बड़े गुरुके मुखसे सुना है। फिर उन्हें लेकर बड़े गुरुवाके पास जा करके ईश्वरका हाल पूछा, तो उन्होंने कहा कि— महाराज! हम भी यह बात पूर्णरूपसे नहीं जानते हैं कि, ईश्वर कौन थे? हमें भी गुरुघन्टालने घन्टा हिला-हिला करके ऐसी बात बताया है; आप उन्हींसे पूछिये। फिर पारखी सन्तने जाकर भ्रमिक गुरुघन्टालसे पूछा कि— बताओ! तुमने जिसके वास्ते मूँड़ मुड़ा करके इन सबोंको भी भ्रमाया है, सो परमेश्वर कौन है? कहाँ है? उसने कहा— मैं यह बात नहीं जानता हूँ! मैंने तो पण्डितजीसे वेद, शास्त्र, पुराणादिकी कथा सुनी है कि, परमात्मा सर्व समर्थ हैं। पूरा हाल आप पण्डितजीसे पूछिये! अन्तिममें पण्डितके भी पासमें जाकर पूछा— तो उसने बताया जैसे कि— बीजक रमैनीके साखी- ७७ में कहा है:—

"अपरंपरं रूप मगु रङ्गी। आगे रूप निरूप न भाय॥ बहुत ध्यानकै खोजिया। नहिं तेहि संख्या आय॥"

सुनिये! बात ऐसी है, हम तो नित्य ही पूजा-पाठ करते थे, और ये चतुर्वेदी, षट्शास्त्रीजी रोज ही वेद-शास्त्रकी शिक्षा सुनाया करते थे। फिर पुराणकी कथा चली; संसार उत्पत्तिके वर्णन, दश अवतारकी जन्म लीला भी सुनी। एक दिन संयोगसे प्रलयकी कथा आई; और दश अवतारकी लीला भी समाप्त हो गई; भगवान् परमधामको सिधारे। जिसे सुन करके हमें बड़ा वैराग्य उपजा, तो हमने मूँड़-मुड़ा लिया है, और निराकार-परमात्मा प्राप्तिके वास्ते भजन-कीर्तनादिमें लगे हैं। आखिरमें इसप्रकारसे वह परमेश्वर तो धोबीके ही गदहावत् तुच्छ निकला। उसका नाम भी मनुष्योंने ही कल्पना करके रक्खा है, महिमा भी झूठ-मूँठकी बढ़ाया है। निर्गुण, निराकार, निरञ्जन कोई वस्तु ही नहीं है; वह तो पारखहीन नरपशुओंका भ्रम-धोखा मात्र है। फिर उसके वास्ते किया हुआ प्रयत्न सब व्यर्थ गया, कोई भी इसका यथार्थ विचार ही नहीं करते हैं, पारखी सन्त यह पूर्ण हाल जानकर उन्हें धिक्कार दे करके उल्लू समझकर चले गये। वे मतवादी लोग भी खिसियाते, पछताते रह गये। इसप्रकार सब लोग भ्रम चक्रमें दौड़ रहे हैं। इसीप्रकार दूसरी भी कथा धोबीकी गधीके बच्चा सोढ़रमल-के बारेमें आयी है। उस बच्चेके भी मर जानेसे धोबिन रोई, उसे देखकर नौकरानी, चेरी, रानी, राजा, मन्त्रिवर्ग तथा तमाम शहरके लोग रोये थे। पीछे भेद खुलनेपर वे सब भी पछताये थे। [सोढ़रमल गदहाकी कथा "तिमिर भास्कर" ग्रन्थमें छपी है। उसमें देखकर जान लीजिये!]। वैसे ही तीसरी कथा राजदण्ड प्राप्त नकटाके बारेमें आयी है। उसने अपनेको नारायणदर्शी जाहिर करके नकटा पन्थ चलाया था। हजारों मनुष्य उसके नकटा पन्थमें जाकर अपने-अपने नाक कटा करके उसके मतमें सामिल हो गये थे। पश्चात् बुद्धिमान् वृद्ध दिवानके द्वारा भेद खोल देनेसे राजा नाक कटानेसे बचा, फिर उसे राजाने कठोर दण्ड दिया था, तब जाकर वह पन्थ बन्द हुआ। यह दोनों कथाएँ मशहूर हैं। इसवास्ते

विस्तारसे यहाँपर नहीं लिखा है। सुज्ञ पारखी सन्त जिज्ञासुओंको विस्तारसे कहकर भेद समझाते ही हैं। विशेष बात सत्सङ्ग द्वारा जान लेना चाहिये। उपदेश श्रवण और मनन करके विचार करनेसे ही सत्य ज्ञानका बोध होता है, सो जान लीजिये ! ॥ ४५ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ७ । साखी— १ है] ॥ ७. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ ७ ॥ ❀ ॥

[सन्धि शब्दोंका भ्रम-विकारादि वर्णन ।]

१. जब पुनि आय बसी अस बानी * तब चित माँहि कियो अनुमानी ॥ ४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासुओ ! सुनो ! फिर ऐसी-ऐसी वाणी-कल्पना जब मनुष्योंके हृदयमें आ करके बैठ गई, तब उन्होंने दृढ़ निश्चय करके उसे धारण किया। तो उसी भ्रमरूप वाणीके वशीभूत हुए; ऐसे घनचक्रमें पड़े कि, कहींपर ठौर-स्थिति नहीं मिली। तब चित्त-चतुष्टयमें स्फुरणा उत्पन्न करके मनमाने अनुमान करने लगे। बाहर कर्म, उपासना, और योग साधनाएँ करके भी कुछ नहीं मिला, तो उस मार्गको छोड़कर आगे बढ़े; ज्ञान मार्गमें प्रवेश किये। अद्वैत सिद्धान्तकी वाणी सुनी। नाम-रूप मिथ्या, सच्चिदानन्द ब्रह्म सत्य, ऐसा ठहराये। चित्तसे चिन्तन करके तब अन्तमें यही अनुमान किया कि—"अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा भाव दृढ़ निश्चय करके भ्रम-भूलमें पड़ गये ॥ ४६ ॥

२. मैं ही ब्रह्म कर्त्ता जग केरा * परे सो जाल जगतके फेरा ॥ ४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो ! गुरुवालोगोंने ऐसा मानन्दी किया है कि, वह अद्वैत अपार सबल ब्रह्म मैं ही हूँ ! समस्त चराचर जगत्का कर्त्ता और आदि कारण भी मैं ही हूँ ! अस्ति, भाति, प्रियरूप सर्वाधिष्ठान आत्मा जो है, सो मैं हूँ ! "अहं ब्रह्मास्मि 'या ब्रह्मैवाहमस्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि प्रकारसे मनःकल्पनासे मानन्दीको दृढ़ करके सो भ्रमिक लोग वाणी-जालमें फँस पड़े, जड़ाध्यासी हुए। इसीसे जगत् और ब्रह्मके फेरामें जा पड़े, तो जन्म, मरण, गर्भवास तथा त्रयतापादि भोगनेको चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े। पहले जीव एक देह, एक देशके अभिमानी थे, पीछे ब्रह्म बन करके सर्वदेशके अभिमानी बनकर बद्ध हुए। इसीसे उलट-पलटकर जगत्के मोटी-झीनी जाल-जञ्जालके फेरा या चक्रमें ही जा पड़े या पड़ रहे हैं; बिना विचार जहँड़ा रहे हैं॥ ४७ ॥

३. पाँच तीनि गुण जग उपजाया * सो माया मैं ब्रह्म निकाया ॥ ४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानी कहते हैं— पृथ्वी-जलादि पाँच तत्त्व, रज-सत्त्वादि तीन गुण, ये अष्टधा प्रकृति मायाके भाग हैं। इसीसे चराचर जगत्की उत्पत्ति हुई और हो रही है। सो समस्त जगत् अष्टधा प्रकृतिके विकार मायाका पसारा है। मैं तो असङ्ग पुरुष उस माया-जालसे परे, कायासे रहित निराकार-निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्म हूँ ! निश्चय करके मैं विदेह, नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, परब्रह्म-परमात्मा हूँ ! सो मायासे सदा मैं न्यारा रहता हूँ, इत्यादि कथन किया है ॥ ४८ ॥

४. उपजै खपै जगत विस्तारा * मैं साक्षी सब जाननिहारा ॥ ४९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मूल प्रकृति मायाके अंशसे ही प्रथमारम्भमें सारा जगत् उत्पन्न होकर विस्तार हुआ या होता है। माया ही उसे पालन वा रक्षण भी करती है; और अन्तमें महाप्रलय होनेपर सब चराचरका विनाश होकर खप जाता है, फिर तो माया ही सबको खा जाती है। ऐसे आदि-अन्त और मध्यका विकार सब मायामें ही लगा रहता है। मैं परमात्मा उन सबको जाननेवाला, देखनेवाला केवल द्रष्टा, साक्षीमात्र हूँ ! निर्विकार, निराधार, निरीह, निरञ्जन, निर्गुण, ऐसा शुद्ध-बुद्ध मैं ब्रह्म हूँ ! जगत् बनने-बिगड़नेसे मेरा कोई हानि-लाभ नहीं है। मैं तो साक्षीरूप न्यारा घट द्रष्टाकी नाईं हूँ ! मुझमें जगत् विकार तीनों कालमें नहीं व्यापता है; परन्तु, जगत्में जो कुछ होता है, सो सबको मैं जानता रहता हूँ ! ऐसा ब्रह्मज्ञानी लोगोंने कहा है ॥ ४९ ॥

५. मोंकहँ जानि सकै नहिं कोई ❀ जो पै विधि हरि शङ्कर होई ॥ ५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मज्ञानी लोग अद्वैत ब्रह्म स्वयं बनकर कह रहे हैं कि, मैं ब्रह्म अगम, अपार, अगोचर, व्यापक हूँ ! इसवास्ते मुझको यथार्थतः कोई भी जान नहीं सकते हैं। जो कोई ब्रह्मा, विष्णु और महेशके समान साधना सम्पन्न, कर्म, भक्ति और योगमें निपुण होवें, परन्तु, वे भी मुझे ठीकसे जान नहीं सकते हैं; तो फिर साधारण लोगोंकी क्या गिनती है। क्योंकि, प्रथम ब्रह्मा कर्म मार्गका विधान करते-करते हार गया। तथा विष्णु भक्ति मार्गका विस्तार कर-करके हारा और महेश योग मार्गका अनुसन्धान करते-करते थकित हुआ। जब वे ही मुझ ब्रह्मको यथार्थ जान नहीं सके, तो और लोग कैसे जानेंगे ? इसलिये मन, बुद्धि, और वाणीसे परे मैं ब्रह्म ज्यों-का-त्यों अगम्य हूँ, इत्यादि कहा है ॥ ५० ॥

६. अस सन्धिककी परी बेकार ❀ बिन गुरुकृपा न होय उबार ॥ ५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ऐसे-ऐसे इसप्रकारसे सन्धिक=ब्रह्म, आत्मा, मानन्दीका भ्रम विकार महान धोखा कसर जीवोंमें आकर पड़ा। यह सन्धिक ज्ञान तो, दूसरा महाअज्ञान ही है। वेद-वेदान्तकी वाणी पढ़कर वेदान्तियोंके उपदेश सुन-सुन करके विवेक-विचारको नष्ट-भ्रष्ट करके हकनाहक बेकारकी भ्रम तरङ्गमें नरजीव पड़े हैं; और अथाह भव जल धारामें डूबते-उतराते बहे या बह रहे हैं। परमदयालु पारखी सत्यन्यायी बन्दीछोड़ श्रीसद्गुरुके कृपा-प्रसादसे सत्योपदेशका भेद पारखबोध पाये बिना किसी मनुष्यकी उस महान भ्रम-भूलसे उबार या पार, छुटकारा हो नहीं सकता है। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर सेवा-टहल कर श्रीसद्गुरुके कृपाको प्राप्त करना चाहिये। तभी दुस्तर भवसागरसे उबार हो सकेगी ॥ ५१ ॥

७. मगन ब्रह्म सन्धिकके ज्ञान ❀ अस जानि अब भौ भ्रम हान ॥ ५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोगोंके कल्पित ब्रह्मज्ञानको दृढ़ निश्चय करके "मैं ही अधिष्ठान ब्रह्म हूँ !" यह मानन्दी करके वेदान्तीलोग मग्न-मस्त हुए। तब उन्होंने ऐसा जाना या मनमें ऐसा मान लिया कि, अब हमारी भ्रम-भूलका अन्त हो गया, भवसागरसे हम पार हो गये, मुक्तिकी हानि करनेवाला द्वैत भ्रमकी ही हानि हो गई, हम तो कृतकृत्य हो गये हैं। 'शिवोऽहं-शिवोऽहं' ऐसा कहकर महा भूल, धोखेमें ही फिसल पड़े। बिना पारख कठिन सन्धिमें बद्ध हुए हैं। ब्रह्मानन्दमें ब्रह्मज्ञानी लोग मग्न तो हुए; परन्तु, यही मानन्दी जीवको बाँधनेवाली है, ऐसा नहीं जाने। अब उसी मिथ्या भ्रमसे हंसपद, मुक्तिपदकी हानि हुई। श्रीसद्गुरुके पारख बोध हुए बिना, ऐसा यथार्थ न समझकर उन्होंने उलटा ही समझ लिया है। इसवास्ते अभिमानी, जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े हैं ॥ ५२ ॥

साखीः— सन्धि शब्द है ब्रह्ममें ❀ भूलि रहा कित लोग ॥
[७] परखेउ धोखा भेव नहीं ❀ अन्त होय बड़ शोग ॥ ५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जीव-ब्रह्मको एकमें मिलानेवाली सन्धि=भ्रम-मानन्दीका शब्द जो है, सो साक्षीपद या अद्वैत ब्रह्मज्ञानमें पहुँचानेवाला है। उसी मनःकल्पित भ्रमरूप ब्रह्मज्ञानमें कितनेक लोग बिना विचार भूल रहे हैं। वे अविवेकी लोग यह कुछ सोचते-समझते नहीं हैं कि, हम भूलमें पड़कर किधर जा रहे हैं ? जहाँ जाना चाहते हैं, वहाँपर पहुँच भी पायेंगे कि, नहीं ? बिना पारख किधर-के-किधर जाकर भटक रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके शरण सत्सङ्गसे पारखका बोध हुए बिना धोखेको नहीं परखते हैं, जड़-चैतन्य, सारासारके यथार्थ भेदको जान नहीं पाते हैं। जन्मभर मिथ्या धोखा वाणी प्रपञ्चमें ही लगे रहते हैं, अन्तमें कुछ नहीं मिला, तो बड़ाभारी शोक, चिन्ता, फिक्र, पछतावा हुआ। एक दिन शरीर भी छूटा, जड़ाध्यासवश परिणाममें जन्म,

मरण, गर्भवास, त्रिविधिताप आदि दुःख भोग करके उन्हें शोक ही प्राप्त हुआ। बिना पारख किसीकी भी भूल, आवागमन नहीं मिटा, इसलिये बड़े शोकमें पड़े हैं ॥ ५३ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई — ५ । साखी— १ है] ॥ ८. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ ८ ॥ ❀ ॥

[झाँई शब्दका भ्रम-विकारादि वर्णन ।]

१. जो कोई सन्धिक धोखा जान ❀ सो पुनि उलट कियो अनुमान ॥ ५४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जो कोईको ज्ञानमार्गमें भी सन्तोष नहीं हुआ, सो ऐसे कोई-कोई आगे विज्ञान मार्गमें बढ़ते चले गये। तुरिया अवस्था, साक्षीपदकी सन्धिक=स्नेह-सम्बन्ध, मानन्दी भी उन्हें धोखारूप व्यर्थ जान पड़ी। साक्षी भाव रहेतक बन्धन नहीं मिटता है, इसलिये साक्षी भावको भी मिटाकर निर्विकल्प कर देना चाहिये; ऐसा कहने लगे। सो विज्ञानी लोग फिर हंसपदसे उलट करके परमहंस हुए। अनुमान-कल्पनाके बलसे कैवल्य ब्रह्म ओत-प्रोत अधिष्ठान माना हुआ ब्रह्म-भ्रमको ही दृढ़ करने और कराने लगे। विवेक-विचारको उलटकर औंधाकर बुद्धिको नष्ट-भ्रष्ट कर मन-मानन्दीसे ही ऐसा व्यापक ब्रह्म अनुमान किये ॥ ५४ ॥

२. मन बुद्धि इन्द्री जाइ न जान ❀ निर्वचनी सो सदा अमान ॥ ५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने ऐसा माना है कि, उस परात्पर परब्रह्मको जानने, समझने, बूझने-बुझानेमें कोई भी समर्थ नहीं हैं। क्योंकि, वह मन, बुद्धि, वाणीसे अति परे अगम्य, अकथनीय है। इसवास्ते परब्रह्मके बारेमें मन भी सङ्कल्प-विकल्प कर नहीं सकता है, वहाँपर पहुँचते ही मन उन्मुन हो जाता है। बुद्धि भी उसे किसी तरहसे निश्चय कर नहीं सकती है। आत्मा तो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है। वह तो अगोचर, अदृश्य, निराकार, निर्गुण है। इसकारण दशोंइन्द्रियाँ भी उसे किसी प्रकार जान नहीं सकती हैं। उधर लक्ष्य लगाते ही सब इन्द्रियाँ निर्बल शून्य हो जाती हैं। निर्वचनी=वाणी वा वचनसे बोलना, कहना-सुनना भी ब्रह्मपदमें नहीं होता है, वह तो अवाच्य है। सोई परमतत्त्व-परमात्मा सदा-सर्वदा एकरस अमान=माया विकार जगत्की द्वैत-भावनासे रहित त्रिगुणातीत निर्बन्ध ज्यों-का-त्यों व्यापक है; ऐसी कल्पना कर लिये हैं ॥ ५५ ॥

३. अकल अनीह अबाद अभेद ❀ नेति नेति कहि गावहिं वेद ॥ ५६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अकल=जहाँपर लक्ष्य या वृत्ति भी पहुँच नहीं सकती है, जिसकी कोई कला या भाग भी नहीं है। अनीह=इच्छा-स्फुरणासे भी वह रहित है। अबाद=किसीका रुकावट-बन्धन भी उसको नहीं है; वह तो स्वतन्त्र मुक्त है। अभेद=छोटा-बड़ा, गुण-दोषादिके कोई भेद भी उसमें नहीं होता है, वह तो भेदाभेद विवर्जित है; और जिस परब्रह्मके गुणानुवादमें ज्ञानकाण्ड प्रतिपादक वेदने भी आखिरमें "नेति-नेतिति श्रुतिः" अर्थात् उस परमात्माका अन्त नहीं, पता नहीं, बेअन्त है, ऐसा कहकर फैसला करके गुण गाया है। वेदने भी जिसका पार नहीं पाया, तो दूसरे लोग कैसे उसका पता पावेंगे? अतः कभी कोई थाह पा नहीं सकते हैं ॥ ५६ ॥

४. सोहं वृत्ति अखण्डित रहै ❀ एक दोय अब को तहाँ कहै? ॥ ५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिसकी महिमा इतनी सारी कह आये, सो स्वयंस्वरूप परब्रह्म मैं ही हूँ! ऐसा दृढ़ निश्चय करके जिन्होंने वृत्तिको सोहं शब्दके साथ ही मिलाकर ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर शून्यमें तदाकार होकर या ब्रह्ममें सोहं भावसे अखण्डित होकर निर्विकल्प समाधिमें ही लौ लगा करके गरगाफ हो रहते हैं। अब तहाँपर एक अद्वैत है वा द्वैत है, ऐसा कौन कहे? कहनेवालेका होश तो वहाँपर नहीं रहता है, बेहोश या परमहंस लोग पागलवत् हो जाते हैं। "अहं ब्रह्मास्मि" में एक-दोका निर्णय कौन कहे? कोई नहीं ॥ ५७ ॥

५. जानि परी तब नित्याकार ❀ झाँई सो भ्रम महा विकार ॥ ५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसतरहसे गोलमाल करके जड़-चैतन्य दोनोंको

एकमें मिश्रित करके तब विज्ञानियोंको मानन्दीसे ऐसा जान पड़ा कि, शून्यमें मग्न-मस्त तदाकार हो सोहं-ब्रह्ममें वृत्ति अखण्डित रह गया है, सो यही नित्याकार, निरञ्जन परमतत्त्व-परमात्माका स्वरूप है, सोई मैं हूँ ! या मेरा वही स्वरूप है। ऐसे भास-भासिक वहाँ एक-मैं-एक हो गये, सोई तो झाँई =महान गाफिली, निज स्वरूपका भूल है। उस भ्रममें महान विकार जगत् या देह उत्पत्ति होनेका बीज भरा पड़ा है; वही तो बड़ा भारी धोखा है, महाअज्ञान अविद्याकी खानी है। उसमें जो लगे, सो निजस्वरूपको एकदम भूले। पूर्ण पारख दृष्टि करके उस भूलको मिटाना चाहिये ॥५८॥

साखीः— सम्भव शब्द अमान जो * झाँई प्रथम विकार ॥
[८] परखो धोखा भेव निजु * गुरुकी दया उबार ॥ ५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिससे सारे शब्दोंकी सम्भव=उत्पत्ति हुई, सो ॐकार या प्रणव शब्दको जो गुरुवालोगोंने अमान=माया विकारसे रहित, निर्मल, निरञ्जन परमात्मा माना है, सो झाँई=गाफिली जन्म-मरणादिका कारण, प्रथम=मनुष्य देहकी महाविकार भूल है। नरजीव निज स्वरूपको भूलकर अनुमान-कल्पना, विषयादि धोखेमें जा पड़े, वही झाँई से शब्द-ब्रह्मकी मानन्दी किया। फिर पाँचों विषयरूप जगत्की उत्पत्ति उसी ॐ शब्दसे माना। अमान ब्रह्मको जगत्का कारण माना है; सो सब शुरूसे ही विकारवाला है। हे जिज्ञासुओ ! पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहकर यथाशक्ति साधु-गुरुकी सेवा करते हुए उस धोखेको सत्यन्याय-निर्णयसे परखो, जानो, समझो-बूझो ! निजस्वरूपको पहिचानो, निज अपरोक्ष पारखबलसे सकल भेदको लखो ! बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरुकी दयादृष्टिसे पारख बोध जिन्होंने जान पाया, उन्हींकी भवधारासे उबार हुई या होती है। पारख बोधदाता श्रीसद्गुरुकी दयासे ही मुमुक्षु मनुष्योंकी काल, सन्धि, और झाँई से छुटकारा होकर पार वा मुक्ति होती है। अतएव श्रीसद्गुरुदेवकी दया हासिल करके निजपदका भेद जानकर सत्यासत्यको परखो; धोखेसे निकलो, तभी मुक्त हो जाओगे ॥ ५९ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी— १ है] ॥ ९. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ ९ ॥ ❀ ॥

[षट् स्थानोंसे ५२ अक्षरोंकी उत्पत्ति, क्रम संख्या वर्णन ।]

१. पहिले एक शब्द समुदाय * बावन रूप धरै छितराय ॥ ६० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जड़ाध्यासी जीव गर्भमें आया, तब उसवक्त शब्द समुदायमें एक भी शब्द उत्पन्न नहीं हुआ था। सूक्ष्म देहमें पाँचों विषय सूक्ष्मरूपमें ही लय थे। फिर मनुष्य शरीर पैदा हुआ, तो पहले एक रोनेका ही शब्द निकला। तत्पश्चात् देह वृद्धिके साथ-साथ अनेकों शब्द कहते-सुनते, सीखते-सिखाते गये। तभी बावनरूप धारण करके शब्द छितराया। अथवा गुरुवालोगोंने कल्पना की है कि, प्रथमारम्भमें शब्दब्रह्म एक ही निःअक्षर, गुणातीत, अव्यक्तरूपमें विराजमान था। सब शब्द समूह भी उसी बिन्दु ब्रह्ममें लय थे। पश्चात् परमात्माने जब स्फुरणा की, तब एक शब्दमेंसे अनेक शब्द वर्ण-समुदाय व्यक्त या प्रगट होकर वह 'अ से अः' तक १६ स्वर, तथा 'क से क्ष, त्र, ज्ञ' तक ३६ वर्ण या व्यञ्जनोंका विभिन्न ५२ रूप धारण करके फैल गया या उस तरह छितरा गया। तहाँ पहिलेके एक शब्दका लोप हो करके पीछेका शब्द समूह बावन वर्णका नानारूपने ही जगत्को धारण किया। तथापि प्रणव ब्रह्म एक ही सर्वशक्तिमान् पूर्ण व्यापक है, इत्यादि कथन किया है ॥ ६० ॥

२. इच्छा नारि धरी तेहि भेष * ताते ब्रह्मा विष्णु महेश ॥ ६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निर्गुण ब्रह्मकी अर्धाङ्गिनी इच्छारूपिणी स्त्री मूल-प्रकृति, आदिमायाने परब्रह्मकी प्रेरणासे अर्धमात्रासे बदलकर अक्षरोंका आकार-प्रकार, भेष, रूप-रङ्गादिको धारण कर लिया। इसवास्ते बिन्दु-ब्रह्म, अर्धमात्रा-नारी, इन दोनोंके संयोगसे ब्रह्मा-अकार, विष्णु-उकार और महेश-मकार, ये तीन मात्रारूप तीन पुत्र उत्पन्न हुए; ऐसा माना है। अर्थात्

नरजीवकी सत्तासे हृदयमें इच्छारूप प्रकृति उठी, अक्षरोंका भेष, रूप-रङ्ग भी उसीने धारण किया। उसी इच्छा द्वारा ही ब्रह्मादिरूप त्रिगुणका विकार-देहमें प्रगट हो गया ॥ ६१ ॥

३. चारिउ उरपुर बावन जागे * पाँच अठारह कण्ठहि लागे ॥ ६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अर्ध मात्रा, परा वाचा, नाभि स्थानमें; मकार मात्रा, पश्यन्ती वाचा, हृदय स्थानमें; उकार मात्रा, मध्यमा वाचा, कण्ठ स्थानमें; एवं अकार मात्रा, वैखरी वाचा, त्रिकुटी वा मुख स्थानमें; ऐसे उरपुर=हृदयरूपी शहरमेंसे उक्त चारों मात्राएँ, चार वाचाएँ आविर्भूत हुईं। सोई चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कारकी सहायतासे चारिउ उरपुरमें बावन अक्षरोंकी रचना होकर जाग्रत् हो गये। वे अक्षर जब बाहर निकले, तो निम्नरूप लिखनेमें आया। "अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः" ये १६ स्वर कहलाये; और "क, ख, ग, घ, ङ, । च, छ, ज, झ, ञ, । ट, ठ, ड, ढ, ण, । त, थ, द, ध, न, । प, फ, ब, भ, म, । य, र, ल, व, । श, ष, स, ह, क्ष, । त्र, ज्ञ, । ये ३६ व्यञ्जन कहलाते हैं। प्रथम हृदयमें ही सूक्ष्म स्फुरणा, सङ्कल्प-विकल्परूपसे उक्त ५२ वर्ण जाग्रत् हुए, फिर क्रमानुसार विभिन्न स्थानोंसे उच्चारण हो करके बहिर्गत हुए। तहाँ क वर्गके पाँच अक्षर— क, ख, ग, घ, ङ, और 'अ से अः' तक १६ स्वर तथा 'ह, क्ष' ये दो अक्षर मिला करके अठारह हुए, सो इन दोनों-५+१८-मिला करके सब २३ अक्षर कण्ठ स्थानमें ही आ करके लगे। यानी ये कण्ठसे उत्पन्न होनेवाले कहलाये। ऐसे पाँच और अठारहकी कण्ठमें लाग लगाया है ॥ ६२ ॥

४. तालू पाँच शून्य सो आये * दश रसनाके पूत कहाये ॥ ६३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तालू स्थानके संस्पर्शसे च वर्ग— च, छ, ज, झ, ञ, ये पाँच अक्षर उच्चारण होकर उत्पन्न हुए। सो पाँचों शून्यसे प्रगट होकर आये; इसलिये शून्य अक्षर भी कहलाये हैं। तथा दश अक्षर ट वर्ग पाँच— ट, ठ, ड, ढ, ण। त वर्ग पाँच— त, थ, द, ध, न, वे दोनों मिला करके वे दश, रसना या जिभ्या एवं दन्त-मूर्द्धा सम्बन्धसे निकलनेवाले होनेसे रसनाके अंशरूप पुत्र=कार्य भाग कहलाये, ऐसा माना है ॥ ६३ ॥

५. पाँच अधर अधरहिमा रहे * शून्यहि कण्ठ सम मध्यहि बहे ॥ ६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पाँच अक्षर अधर=ओष्ठ स्थानसे निकले, प वर्ग— प, फ, ब, भ, म, ये सदा अधररूप ओष्ठमें ही रहते हैं, यानी वे ओष्ठ सम्बन्धमेंसे ही उच्चारण होते हैं; और बाकी रहे हुए य वर्गः— य, र, ल, व, ये चार अक्षरोंको 'अन्तस्थ' कहते हैं। एवं श वर्गः— श, ष, स, ह, ये अक्षर 'उष्म' कहलाते हैं। ङ, ञ, ण, न, म, ये पाँच अनुस्वार नासिकासे भी उच्चारण होते हैं। 'य से क्ष' तकके नव 'सुलभ' अक्षर भी कहलाते हैं। शून्य ऊर्ध्वस्थान तथा कण्ठमें एक समान बराबर वायुका धक्का लग करके उसके बीचमें ही अक्षरोंकी धारा-प्रवाह बहता रहता है। फिर उसी वाणीके मध्यमें बिना विचार सब बहे और बह रहे हैं ॥ ६४ ॥

६. ओठ कण्ठ ले प्रगटे ठौर * बोलन लागै औरकी और ॥ ६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ शब्द उच्चारण करनेके लिये मुख्य कण्ठसे ओठ तकमें तालू, दन्तालू या मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, कण्ठतालू, कण्ठओष्ठ, नासिका, दन्तोष्ठ, द्विस्पृष्ट, इतने ठौर या ठिकाना ले करके मुख-रसनाका सम्बन्ध मिलाकर ५२ अक्षर प्रगट किया है। उसमें पाँच मात्रा मिला करके एक-एकके बारह-बारह अक्षर किये। इसप्रकार फिर चौतीस बाराँ चार सौ आठ अक्षर बनाये। फिर दो-दो अक्षर, तीन-तीन अक्षरोंको एक साथ संयोग मिला करके संयुक्ताक्षर बनाये। उसमें त्रिलिङ्ग विभाग करके ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत भेदसे और-का-और कुछ-का-कुछ ही बोलने कथन करने, कहने-सुनने लगे। वह वाणी सब तो पिण्डमें जीवकी सत्तासे बनी है। परन्तु, महिमा, ब्रह्माण्डमें ब्रह्म-ईश्वर, आत्मा-परमात्मा, देवी-देवतादिका झूठा ही गुण गाने लगे। वेद, पुराण, कुरान शास्त्रादि सब वाणी ग्रन्थ तो मनुष्योंने ही बनाया है। किन्तु, प्रपञ्ची ठग लोग कुछ और ही ईश्वर

खुदा आदिने वेद और कुरान बनाकर जगत्में गिरा दिया, ऐसे और-की-और ही मिथ्या वाणीका बकवाद करने लगे। अपने धोखेमें भूलकर अन्य मनुष्योंको भी भ्रमा-भ्रमा करके भुलाने लगे। जिसके मनमें जो आया, वैसे ही बकवाद करने लगे। बिना पारख मनुष्य वही मिथ्या वाणी जालोंमें अरुझ रहे हैं। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसे यथार्थ परखकर परित्याग करके न्यारा हो जाना चाहिये॥६५॥

साखीः— एक शब्द समुदाय जो ❀ जामें चारि प्रकार ॥
[९] काल शब्द सन्धि शब्द ❀ झाँई औ पुनि सार ॥ ६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! शब्दका नाम तो एक है; परन्तु, जो उसके रूप समुदाय हैं, सो अनेक हैं। समष्टिरूपमें एक प्रणव शब्द हुआ; और व्यष्टिरूपमें वाणीका विस्तार हुआ। एक शब्दको 'निःअक्षर' कहा है और अनेक शब्द समुदायको बहुवाणी या अनेक अक्षर कहते हैं। ऐसे अनन्तों अक्षर या शब्द समूहमें मुख्यतया चार प्रकारके भागमें विभक्त हुए हैं। जैसे अनन्तों योनियाँ मुख्य चार खानीके ही अन्तर्गत मानी जाती हैं। तैसे ही समस्त वाणीके सिद्धान्त समूहके अक्षर भी चारमुख वाणीके भीतर आ जाते हैं। इन चार ठौरको छोड़कर और पाँचवाँ कोई ठौर नहीं है। उसमेंके यही चार प्रकार हैं— १. काल शब्दः— भ्रम कल्पनाकी वाणी है; इसमें समस्त संसारके प्राणीमात्रके शब्द आ जाते हैं। कर्म, उपासना और योग तकके सारे ग्रन्थ, पन्थके शब्द भी इसीमें माने जाते हैं; इसे 'जीवमुख' वाणी कहते हैं। २. सन्धि शब्दः— आत्मा मानन्दी करानेवाला ज्ञान मार्गकी वाणी है। सब आत्मज्ञानी, ध्यानियोंके सिद्धान्तकी मानन्दीकी वाणी इसमें आ जाती है; इसे 'मायामुख' वाणी कहते हैं। ३. झाँई शब्दः— विज्ञान मार्गके अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक वेदान्तकी वाणी सब इस भागमें आ जाती है; इसे 'ब्रह्ममुख' वाणी कहते हैं; और फिर उन तीनोंको परखा करके कसर-खोट दिखलाकर सार-असारका निर्णय करनेवाला, सर्व भ्रम-जड़ाध्यास मिटाकर जीवोंको मुक्त करनेवाला, सोई ४. चतुर्थ, सारशब्दः— सत्यन्याय-निर्णयकी 'गुरुमुख' वाणी, पारख बोधदाता है। इसी सारशब्दके बोधसे ही जीवोंको सत्य सारकी प्राप्ति होकर कल्याण होता है। अतएव पारखी साधु श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें आकर सत्यशब्द टकसारका बोध प्राप्तकर सब खानी-वाणी जालोंको परखकर जीवनका कल्याण करना चाहिये ॥ ६६ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— १० । साखी— १ है] ॥ १०. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १० ॥ ❀ ॥
[तीन शब्दोंसे— (५ । ३ । ९ । ६ । ४ । १८) बहुविधि शब्द जाल विस्तार वर्णन ।]

१. पाँच तीन नौ छौ औ चार ❀ और अठारह करैं पुकार ॥ ६७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मादि गुरुवालोगोंने चार वेदः— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जो बनाया है, उनमें कर्म, उपासना और ज्ञान, ये तीन काण्ड मुख्य ठहराया है। जिसमेंसे कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान, ये पाँच मार्ग और निकाला है। और वेदके गूढ़ार्थ समझानेके लिये शिक्षा, कल्पादि षट् अङ्ग अलग ही बनाया है। फिर शब्द शुद्धिको नौ व्याकरण भी रचना कर रक्खा है। षट् शास्त्र पृथक् ही बना रक्खे हैं। षट् दर्शनोंमें छियान्नवे पाखण्डका प्रचार जोर-शोरसे हो ही रहा है; और ब्रह्म, पद्म, नारद, भागवतादि मुख्य और उपपुराण आदि भेदसे अठारह-अठारह पुराणोंकी पुकार पण्डित लोग भिन्न-भिन्न ही कर रहे हैं। इसप्रकार सब लोग वाणी जालके घेरामें पड़े हैं; और खानीमें पाँच तत्त्व, पञ्च विषय, तीन गुण, नौ खण्ड, षट् पशुधर्म और चार वर्ण, चार आश्रम एवं चार अवस्थाओंमें फँसे पड़े हैं; और फिर अठारह तरहके ब्राह्मण, तथा अठारह तरहके जङ्गम इत्यादि हुए हैं, उन्होंने अपने-अपने विषय जालकी पुकार और प्रचार अलग-अलग ही कर रक्खा है। इसप्रकारसे संसारमें वाणी जाल और खानी जालका विस्तार बहुत-बहुत हुआ है। बिना पारख सब जीव उसीमें अरुझे पड़े हैं। उसीकी पुकार कर-करके चौरासी योनियोंके चक्रमें फिर रहे हैं ॥ ६७ ॥

२. कर्म धर्म तीरथके भाव * ये सब काल शब्दके दाव ॥ ६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी वेद-शास्त्रादिके प्रमाणसे गुरुवालोगोंने—नित्यकर्म, नैमित्यकर्म, काम्यकर्म, निषिद्ध कर्म तथा प्रायश्चित्त कर्म अलग-अलग बता रक्खा है। धर्ममें—दान, पुण्य, सदाव्रत, भक्ति, पूजा-पाठ, तीर्थ-व्रत, मानसिक पूजा, तीर्थस्नान-परिक्रमादि करनेका भाव-कुभाव लगा रक्खा है। विशेष करके स्थूल-सूक्ष्म, कर्म-उपासनादिका जितना भी वर्णन, प्रचार कर रक्खा है, सो सब मनुष्योंको फँसानेवाला काल शब्दका दाव-घात, पेंच ही लगाया हुआ है। ये सब स्वार्थी गुरुवालोगोंने अपने-अपने मतलब पूर्ण करनेके लिये ही दाव लगा रक्खा है। उस दावमें पड़कर जो भूले-भटके हुए धोखेमें पड़ जाते हैं, वे काल शब्दके बाणके प्रहारसे मारे जाते हैं; और सारशब्दके आश्रयमें जो मनुष्य रहते हैं, सो कर्म, धर्मके भ्रम वा तीर्थादिके कुभावमें नहीं पड़ते हैं; सब काल शब्दके दावको जान करके उसे परखकर न्यारे हो रहते हैं ॥ ६८ ॥

३. सोहं आतम ब्रह्म लखाव * तत्त्वमसि मृत्युञ्जय भाव ॥ ६९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई उससे एक फर्लांङ्ग आगे बढ़े, तो वहाँपर दूसरे घेरेमें अरुझ पड़े। अपने नित्य, सत्य, चैतन्य जीवके पारख स्वरूपको तो भूल गये; और ही अनुमान, कल्पना करके—"सोहं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा लखने या लखाने लगे। कोई श्वासमें ही सुरति लगा करके 'सोहं' शब्दका विचार करने लगे। अपने आपको सच्चिदानन्द आत्मा या ब्रह्म होनेका दावा करके लक्ष्य लगाने लगे। "तत्त्वमसि" में— "तू ही ब्रह्म है ! या यह जीव ही ब्रह्म है !" ऐसा कहने लगे; और "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का दृढ़ निश्चय करके मृत्युञ्जय भाव=मृतक दशाको धारण कर लिये, परमहंस हुए; तब तो उन्होंने अपने मनमें ऐसा समझा कि, अब हमने तो कालको जीत लिया, मृत्युपर विजय प्राप्त कर लिया; ब्रह्ममें मिल करके मुक्त हो गये। परन्तु, उनकी मानन्दी कल्पना, सोई काल बनकर उन्हें ग्रास किया। बिना पारख सो भेद नहीं जानते हैं। कुभावसे दुर्दशाको ले करके जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़ते हैं ॥६९॥

४. पञ्च कोश नौ कोश बखान * सत्य झूठमें कियो अनुमान ॥ ७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे पाँच तत्त्वके स्थूल शरीर और उसीके सूक्ष्म भाग नौ तत्त्वका सूक्ष्म शरीर कहा गया है; तैसे ही गुरुवालोगोंने मुख्य पञ्चकोश तथा गौण और चार कोश मिला करके सब नौ कोशोंकी वाणीरूप माया जालोंका बखान किया है। उक्त नव कोश वर्णनः— १. अन्नमय। २. प्राणमय। ३. मनोमय। ४. ज्ञानमय। ५. विज्ञानमय। ६. शब्दमय। ७. आनन्दमय। ८. प्रकाशमय। और ९. आकाशमय; ये नौ कोशोंके नाम हैं। अब इनके संक्षेपमें लक्षण सुनिये ! १. अन्नमय कोशः— अन्नसे उत्पन्न होकर अन्नादिमें ही आसक्त रहनेवाला स्थूलदेह, पृथ्वी तत्त्वका मुख्य भाग है। इसमें कर्मकाण्डका आवरण पड़ा है। वर्णाश्रम कर्म, उदर पोषण कर्म, वाम मार्ग, दक्षिण मार्गादि सर्व कर्म इसीसे प्रगट हुए और हो रहे हैं। पहला पर्दा यही जीवपर पड़ा है। २. प्राणमय-कोशः— प्राणसे उत्पन्न होकर प्राणमें आसक्त रहनेवाला सूक्ष्म देह, जलतत्त्वका प्रधान भाग है। इसमें उपासना काण्डका आवरण पड़ा है। सगुण-निर्गुण उपासना तथा भक्ति मार्गादिक कर्म इससे प्रगट हुए और हो रहे हैं। जीवपर यह दूसरा पर्दा पड़ा है। ३. मनोमय कोशः— मनसे उत्पन्न होकर मनमें ही आसक्त होनेवाला कारण देह, अग्नि तत्त्वका विशेष भाग है। उसमें योग काण्डका आवरण पड़ा है। राजयोग-हठयोगादि अष्टाङ्ग योगके सब कर्म इसमेंसे प्रगट हुए हैं और हो रहे हैं। यह तीसरा पर्दा जीवपर पड़ा है। ये तीन कोशोंके भोक्ता त्वंपद अज्ञानी, जड़ासक्त मनुष्यादि जीव मायावश पिण्डकलाके अनेक कर्मोंमें बँधे हैं। ४. ज्ञानमय कोशः— ज्ञानसे उत्पन्न होकर ज्ञानमें ही तदासक्त होनेवाला, महाकारण देह, चञ्चल वायु तत्त्वका मुख्य भाग है। उसीसे जो ज्ञानकाण्ड प्रगटा, सोई आवरण पड़ा है। परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान, तुरिया साक्षी अवस्था ज्ञानदशा उसमें

माना है। इस कोशका भोक्ता तत्पदवाच्य ईश्वर ज्ञानी, मायाधीश कल्पना किया है। चतुर्थ पर्दा यह जीवपर पड़ा है; और ५. विज्ञानमय कोशः— विज्ञानसे उत्पन्न होकर विज्ञानमें ही मिले रहने-वाला कैवल्य देह, आकाश तत्त्वरूप समान वायु तत्त्वका भाग माना है। उसीसे विज्ञान मार्गका आवरण प्रगटा है। उसमें वाणीका ज्ञान कहने मात्र परोक्ष और अनिर्वाच्य अद्वैत ब्रह्म परमहंस-दशाकी धारणा अपरोक्ष माना है। यह कोशका भोक्ता असिपद लक्ष्य ब्रह्म ठहराया है; सो मिथ्या भ्रम ही है। यह पाँचवाँ पर्दा जीवपर पड़ा है। ६. शब्दमय कोशः— शब्दसे उत्पन्न हो शब्दमें ही आसक्त रहनेवाला, अन्नमय-प्राणमयकी मध्य सन्धिको माना है। तहाँ दश नादके शब्द सुनते हैं। यह छठा पर्दा जीवपर पड़ा है। ७. आनन्दमय कोशः— जो आनन्दसे उत्पन्न हो आनन्दमें ही आसक्त रहने-वाला, प्राणमय-मनोमयकी मध्य सन्धिको माना है; समाधिमें आनन्द होता है। सातवाँ पर्दा यही जीवपर पड़ा है। ८. प्रकाशमय कोशः— जो तेज तत्त्वके रूप विषयसे उत्पन्न होकर प्रकाशमें ही आसक्त होनेवाला है, मनोमय-ज्ञानमयके मध्य सन्धिको माना है। तहाँ ध्यानादिमें ज्योति-प्रकाश दिखाई देता है। यही आठवाँ पर्दामें जीव ढका पड़ा है; और ९. आकाशमय कोशः— आकाशसे उत्पन्न हो शून्यमें ही लय होनेवाले सो ज्ञानमय-विज्ञानमयकी मध्य सन्धिको माना है। वह ज्ञानसुषुप्ति व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी, गाफिली मात्र है। सो यही हठ-पक्षपातका बड़ा भारी नवम पर्दा जीवपर पड़ा है। [नौ कोशोंका विस्तारपूर्वक वर्णन प्रथम ग्रन्थः 'पञ्चकोश'की व्याख्यामें लिखा है। वहाँसे देख लीजिये!] इसप्रकार पञ्च कोश तथा नव कोशोंके वाणी-खानी जालोंको विविधि प्रकारसे बखान करके वञ्चक मनुष्य एक-दूसरेको भुला-भ्रमा रहे हैं। सत्य जीवने पारख बोधको जाने बिना झूठमूठके मिथ्या पाखण्ड धोखेमें पड़कर जड़-चैतन्य मिश्रित कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादिकी अनुमान-कल्पना किया। निज हंसपदको नष्ट-भ्रष्ट कर महा भव-बन्धनोंमें पड़े हैं। उन नौ कोशोंसे न्यारा हो सत्य पारखपदको नहीं जाने; इसलिये जीव अध्यासी हो चौरासी योनियोंमें गिर पड़े हैं ॥ ७० ॥

५. ईश्वर साक्षी जाननिहार ❀ ई सब सन्धिक कहै विचार ॥ ७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर ईश्वर उपासक और परोक्ष वाचक ज्ञानी लोग कहते हैं कि— एक सर्वशक्तिमान् ज्ञानी द्रष्टा जगत्का साक्षी परमेश्वर है। वह त्रिकालज्ञ सबके हालको जाननेवाला है; घट-घटका वासी है। ईश्वरको न्यायी, दयालु, प्रेरक, सर्वज्ञ, साक्षी, सर्वव्यापक और जगत्कर्त्ता माना है। उसकी प्रेरणा बिना एक पत्ता मात्र भी हिल नहीं सकता है, तृण मात्र भी टूट नहीं सकता है, इसीसे तो जगत्में सब कार्य ईश्वरकी इच्छा वा मर्जीके माफिक ही हो रहे हैं, इत्यादि प्रकारसे कल्पित ईश्वरकी महिमा गाया है। यह सब मायामुख वाणी सन्धिक=मिथ्या मानन्दीका विचार गुरुवालोगोंने कहा है। सो उसे सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा पारख निर्णयसे परख लेना चाहिये। भ्रमकी मानन्दीको त्याग देना चाहिये ॥ ७१ ॥

६. कारण कारज जहाँ न होय ❀ मिथ्याको मिथ्या कहि सोय ॥ ७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मज्ञानीलोगोंने ब्रह्मको चराचरका निमित्तोपादान हेतु या मूल कारण माना है, और जगत्को उसका कार्य बतलाया है; और फिर जहाँपर ब्रह्म अद्वैत व्यापक है, वहाँपर जगत् द्वैत तीनकालमें भी नहीं है या हो नहीं सकता है। ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, सो ऐसा कहकर गाफिल हुए हैं। जब जगत् मिथ्या है; कोई सत्य वस्तु ही नहीं है। ब्रह्म एक है, दूसरा कोई नहीं है; तब बताओ, मिथ्याको मिथ्या कहनेकी क्या आवश्यकता हुई? किसने, किससे ऐसा कहा? क्यों कहा? जहाँपर कारण-कार्य कुछ नहीं होता है, सो शून्य तो मिथ्या भ्रम मात्र है। वेदान्तीलोग जगत्को रज्जू-सर्पवत् मिथ्या कहकर आकाशवत् निराकार ब्रह्मको सत्य कहते हैं, वास्तवमें सोई कल्पना मिथ्या है। सत्यको मिथ्या और मिथ्याको ही सत्य बतानेवाले वे अन्यायी, मिथ्यावादी हुए हैं ॥ ७२ ॥

७. बैन चैन नहिं मौन रहाय * ई सब झाँईं दीन्ह भुलाय ॥ ७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी परिपुष्टि होनेपर परमहंस-दशाको धारण कर लेते हैं। बाहर बोलना-चालना भी कुछ नहीं करते हैं; गूँगेके सरीखा मौन= चुपचाप हो रहते हैं। परन्तु, वाणी-कल्पनाके मारे भीतर उन्हें कभी चैन ही नहीं पड़ता है; अशान्ति-घबराहट होती रहती है। अपना हाल बोल करके किसीको नहीं बतलाते हैं; जड़, मूक, उन्मत्तादि दशाको धारण किये रहते हैं। यह सब लक्षण विज्ञान मार्गकी वाणी, चाल, स्वभाव आदि सोई झाँईं =असिपद ब्रह्मकी दृढ़ता निज चैतन्य स्वरूपकी गाफिली बड़ी भारी भूल, भ्रम-धोखा है। ब्रह्ममुखी वाणी सुना-सुना करके गुरुवालोगोंने सब मनुष्योंको भुला दिया है। वे अपने तो भूलमें गाफिल पड़े ही हैं, बिना पारख धोखेमें अटक करके, भटक रहे हैं ॥ ७३ ॥

८. कोइ काहुका कहा न मान * जो जेहि भावै तहाँ अरुझान ॥ ७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी, त्रिगुणी, पञ्चमार्गी, भ्रमिक मनुष्यवर्ग अपनी मदमस्तीमें बेभान अविचारी, पक्षपाती, हठी-शठी हुए या हो रहे हैं। वे अविवेकी मनुष्य कोई भी किसीका कहा हुआ कुछ मानते ही नहीं हैं। चाहे हितकारी, सत्यन्यायी, पारखी श्रीसद्गुरुकी कही हुई यथार्थ निर्णयकी वाणी, सारशब्द ही क्यों न होवे, तो भी मूर्खता, हठके कारण उसको भी वे नहीं मानते हैं। हितकी बात बतानेवालेसे उल्टे लड़ने-झगड़नेको उतारू होते हैं। वाद-विवाद, बकवाद करते फिरते हैं। जो जिसको जैसी-जैसी भावना हुई, जैसे-जैसे सङ्ग-कुसङ्गमें प्रेम-प्रीति लगी, जिसको जो बात अच्छी लगी, चाहे वह विनाशक बुरी बात ही क्यों न हो, तहाँ-तहाँ ही जा करके अरुझे पड़े हैं। कोई खानी जालमें और कोई वाणी जालमें फँसे पड़े हैं। अपने कुमार्गको अच्छा कहते हैं, और दूसरेके सुमार्गको भी खराब बता रहे हैं। इसतरह भव-जालमें ही बद्ध हो रहे हैं; बिना विवेक ॥ ७४ ॥

९. परे जीव तेहि यमकी धार * ज्योंलों पावै शब्द न सार ॥ ७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारके समस्त मनुष्य जीव वही यम=गुरुवालोग और स्त्री तथा मनकी तेज धारवाली वाणी-कल्पना, विषय-विलास, राग-द्वेष, क्रोध, मोहादि छुरीके बीचमें गिर पड़े हैं। इससे सद्गुण-रहनी, विवेक बोधादि सब कट-कट करके नष्ट-भ्रष्ट हो गये। निज चैतन्य पारख स्वरूपकी स्थिति न होनेसे जड़ाध्यासी हो जीव सब आवागमनादि प्रवाहमें पड़कर बह गये हैं। सो चारखानी गर्भवासमें पहुँचे। अब जब तक सारशब्द गुरुमुख निर्णय उपदेशको श्रवण करके नर जीव सत्य पारख बोधको जान नहीं पाते हैं, तब तक काल जाल जड़ाध्यासादि बन्धनोंसे छूट करके मुक्त हो नहीं सकते हैं। अतएव हे मनुष्यो ! शीघ्र ही पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्ग द्वारा सारशब्दके मर्मको जान जाओ, तभी महाजालसे छूट पाओगे ॥ ७५ ॥

१०. जीव दुस्सह दुःख देखि दयाल ! * तब मेरी प्रभु ! परख रिसाल ॥ ७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! दयाके भण्डार स्वरूप दीनदयालु बन्दीछोर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने दिव्यदृष्टिसे परीक्षा करके जब चारों तरफ देखा, तो जीव सब वासनावश हो निज स्वरूपको भूलकर जड़ाध्यासके कारण चौरासी योनियोंमें ही पड़ करके नाना शरीर धारण-कर जन्म, मरण, गर्भवास, त्रिविधिताप जरा, आधि, व्याधि, उपाधिमें घिरे हुए असह्य नाना दुःख-कष्ट-क्लेशादि पाते हुए देखा। ऐसा करुणदृश्य देखकर द्रवित हो गये। तब आप पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुने जिज्ञासु हंस मनुष्योंकी बुद्धिमें पारखबोधकी प्रेरणा किये। अर्थात् सारशब्दके उपदेश द्वारा पारख बोध देकर रिसाल=बुद्धिको बढ़िया, तीव्र, सारग्राही कर दिये। प्रभुके प्रेरित सत्योपदेश मिष्ट, सुरस, सच्चा पारख अमृतका रस भरा हुआ, बन्धनोंसे नरजीवोंको बचाकर मुक्त

करनेवाला ऐसा हितकारी हुआ। सो जिन-जिन्होंने पारखी श्रीसद्गुरुकी सत् शिक्षा सारशब्दको ग्रहण-धारण किया या कर रहे हैं, वे काल-जालके दुःखोंसे छूट करके सुखी हुए और सुखी हो रहे हैं। जीवोंको दुस्सह दुःखोंमें पड़े हुए देखकर ही दयालु पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुने पारखरूपी मृतसञ्जीवनी बूटी महौषधिका उपदेश द्वारा पान कराया है। सोई पारखबोध प्राप्त करके नरजीव मुक्त होते हैं; सोई बनाना चाहिये ॥ ७६ ॥

साखीः— परखावै प्रभु एकको ❀ जामें चार प्रकार ॥
[१०] काल सन्धि झाँई लखी ❀ लखी शब्द मत सार ॥ ७७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुने प्रथम एक शब्द-जालको ही परखा दिया। जिसमेंसे चार प्रकारका भेद निकला। सो काल, सन्धि, झाँईके सब कसर-खोट निर्णयसे लखा करके दिखला दिये; और फिर सारशब्द द्वारा सच्चा सार मत पारख सिद्धान्तको भी लखा करके दर्शा दिये। जिससे मुमुक्षु नरजीव सब जालोंसे छूटकर मुक्त हुए या हो रहे हैं; और एक अव्यक्त निःअक्षर शब्द ब्रह्मको पिण्ड-ब्रह्माण्डमें व्यापक ॐकारके रूपमें गुरुवा-लोगोंने जो माना है, उसका भेद पारखी श्रीसद्गुरु प्रभुने ही ठीक-ठीक परखाया है। जिस बिन्दुरूप केवल ब्रह्ममें और भी चार प्रकारकी मात्रा लगी हैं। अ, उ, म और अर्धमात्रा मिला करके तब कहीं ॐकार बनता है। अ, उ, म—ये तीन मात्राएँ काल शब्दमें, अर्धमात्रा सन्धि शब्दमें, और बिन्दुमात्रा झाँई शब्दमें लखाया है। गुरुमत सारशब्दके प्रतापसे सो सब मनुष्योंकी ही कल्पना है, यह भेद लखनेमें आ गया है। अथवा श्रीसद्गुरु प्रभु नरजीवोंको एक पारख बोध ही परखाते हैं। बिना पारख जगत्में सब नरजीव चार प्रकारसे भ्रममें पड़े हैं। कर्मी, भक्त, योगी और ज्ञानी, इन लोगोंने परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, ये चार वाचाओंसे नाना वाणी-कल्पना की है। उसीमेंसे चार तरहके वेद बनाये हैं। तहाँ कालमें द्वैत वाद है, सन्धिमें विशिष्टाद्वैत वाद है, झाँईमें अद्वैत वादको ही गुरुवालोगोंने लखा और लखाया है। उसी भ्रम धोखेमें वे भूले और दूसरोंको भी भुलाये हैं। जब पारखी श्रीसद्गुरुके सार मतसे सारशब्द निर्णय लखनेमें आया, तब उधरकी सब कल्पना लखने और जाननेमें आ गई कि, यह सब धोखा मिथ्या मानन्दी मात्र भूल है। तब उस भ्रमसे छूटकर नरजीव निःसन्देह जीवन्मुक्त हुए और हो जाते हैं। अतएव उसी सारशब्दको ही सब प्रकारसे पारख करके ग्रहण करना चाहिये ॥ ७७ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ८। साखी— १ है] ॥ ११. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ ११ ॥ ❀ ॥

[भ्रम शब्दोंसे निर्मित नाना कष्टकर साधना आदि वर्णन।]

१. प्रथमें एक शब्द आरूढ़ ❀ तेहि तकि कर्म करैं बहु मूढ़ ॥ ७८ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! अनादि कालके जगत्में जड़ाध्यासी हो करके सब जीव आवागमनोंमें पड़े हैं। पहला नरजन्ममें जैसा-जैसा संस्कार टिकाया था, वैसा-वैसा ही अन्य पशु आदि योनियोंमें भोग हो रहा है। फिर शुभ संस्कारसे जीव नरजन्ममें आये, तब प्रथमें=यही मनुष्य जन्ममें पहले एक जगत्कर्त्ताकी अनुमान-कल्पना किये, तहाँ वेद प्रमाणसे शब्द स्वरूपी एक ब्रह्म एकाक्षर ॐ शब्दको मान करके उसीमें भ्रमिक जीव आरूढ़ हुए। फिर ओहं, सोहं शब्दको श्वासमें लक्ष्य लगा करके रटना करने लगे। शब्दी=जीव, शब्दरूप सवारीपर आरूढ़ हो गये। तदुपरान्त उसीको ताक करके या उसीमें सुरति लगा करके ब्रह्म साक्षात्कार कर परमानन्द प्राप्त करनेकी आशासे विवेकको खो करके बहुतेक मूढ़ मनुष्य कल्पनासे नाना तरहकी कर्म, उपासना, योगादि साधना किये या करने लगे। अर्थात् पहले नरजीव एक कल्पनाके शब्दरूपी सीढ़ीपर चढ़े। फिर वेद-शास्त्रादिको देख-देख कर वाणीको पढ़-सुन करके ईश्वरादि प्राप्तिके वास्ते अविचारी मूढ़ लोग बहुतेक कर्मादि साधना करने और कराने लगे; भ्रम चक्रमें भटकने लगे ॥ ७८ ॥

२. ब्रह्म भरम होय जगमें पैठा * निर्मल होय फिरत बहु ऐंठा ॥ ७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वेदान्ती लोग जब बहुत ही भ्रमिक हुए, तब स्वयं ब्रह्म बन गये। ब्रह्मज्ञानके भ्रममें निज स्वरूपको भूल करके व्यापक होकर चराचर जगत्में भीतर घुसे या धोखेमें प्रवेश किये, तो महा मलिन जड़ाध्यासी हो गये। परन्तु, वे तो निर्मल=माया-मल-विकारसे रहित स्वयं ब्रह्म होनेका दावा करते हैं। तथापि सर्वाधिष्ठान ब्रह्म बन करके विश्व अभिमानसे निरञ्जन अभिमान तकके बड़े भारी अहङ्कारको पकड़ करके ऐंठते हुए अकड़कर किसीको कुछ भी न समझ करके भटकते हुए जहाँ-तहाँ मारा-मारा फिरते रहते हैं। बिना पारख माना हुआ ब्रह्म हमारी कोरी भ्रम-भूल मात्र है, यह तो जानते ही नहीं हैं। इसलिये ब्रह्म-भ्रममें गाफिल हो करके जगत् चौरासी योनियोंके चक्रमें फिर रहे हैं ॥ ७९ ॥

३. भरम सनातन गावै पाँच * अटकि रहै नर भवकी खाँच ॥ ८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक गुरुवालोगोंने पाँच प्रकारके सनातन ब्रह्म बतला करके उसके गुण गायन किया है। सो १. तारक ब्रह्म, २. दण्डक ब्रह्म, ३. कुण्डल्य ब्रह्म, ४. अर्धचन्द्र ब्रह्म और ५. बिन्दु ब्रह्म, सो इन्हें पाँच मात्राके ठिकाने माना है, सो इसीको सनातन या अविनाशी पञ्च ब्रह्म कथन करके बहु विधिसे महिमा बखान कर उनके गुण गाया है। सो जीवकी मिथ्या भ्रम-भूल ही है। बिना विवेक नरजीव भ्रमिक पक्षपाती हो करके वाणी-कल्पनामें ही अटक रहे हैं। कोई उसी वाणीके जङ्गलमें भटका खा रहे हैं। आत्मा बन करके महा खाँच वाणी-कल्पनाके धोखेमें ही पड़े हैं। उसीसे बद्ध हो भवरूप संसारमें गर्भवासकी खाँचमें गिर पड़े। तहाँ चौरासी योनियोंमें अटके हुए पड़े हैं ॥ ८० ॥

४. आगे पीछे दहिने बाँय * भरम रहा चारिउ दिश छाँय ॥ ८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आगे जीव खानी जालमें बन्धे थे, फिर पीछे वाणी-जालमें जाकर अरुझे हैं। वहाँपर कोई दहिने=दक्षिण मार्गकी शुद्ध चालसे चले, तो कोई बाँय= अशुद्ध मलिन वाममार्गी हुए हैं। चारों दिशा, चारों वेदादिमें भ्रम-भूलका बादल ही छा रहा है। अथवा आगे ब्रह्मादि त्रिदेव बड़े-बड़े गुरुवा हुए। पीछे उनके अनुयायी सनकादि, व्यासादि ऋषि-मुनिजन हुए; और अभी उन्हींके मतावलम्बी योगी, ज्ञानी, भक्तादि मतवादी कोई वाममार्गी हैं, कोई दक्षिणमार्गी हुए हैं, वे अपने-अपने मत-पन्थोंको नाना तरहसे चला रहे हैं। परन्तु, वहाँ कहीं भी किसीको पारख ज्ञानका बोध नहीं हुआ है। इससे चारोंदिशा, चार खानी, चार वाणी आदिका महा भ्रम ही सब ठिकाने फैला-फैला करके छाया हुआ विस्तार हो रहा है। उसे परखकर भ्रमसे निकल जाना चाहिये ॥ ८१ ॥

५. पैठि भरम नर भये उदास * घरको त्यागि फिरत बनवास ॥ ८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंकी मिथ्या भ्रमानेवाली वाणी तथा उपदेशको सुन-सुन करके ब्रह्म, ईश्वर, देवी, देवता, स्वर्गादि प्राप्ति, ऋद्धि-सिद्धि प्राप्तिकी आशारूपी भ्रम नरजीवोंके हृदयमें जब घुसा; दृढ़ हो करके बैठा, तब भ्रमके मारे मनुष्य लोग बड़े उदास विरह-व्याकुल हुए। ज्यादा भ्रम बढ़ जानेसे घर-बार गृहस्थी स्त्री, पुत्र, धन, परिवार, राज-काज, इत्यादि संसारी ठाट छोड़-छाड़ करके त्यागी, वैरागी, संन्यासी, उदासी, नागे, निर्वाणी, खाकी आदि होकर वनवासी तपस्वी बने। कोई वन-वनमें घूमने-फिरने भटकने लगे। देश-विदेश, पहाड़, गुफा, कन्दरा, महावन, कुञ्ज, गली-गलीमें शैर-सपाटा करके बेफजूल घूम-फिर रहे हैं। ढोंग दिखा करके धोखा देकर अबोध लोगोंको ठग-ठग कर लूट मचा रहे हैं। निज-पर जीवनको बर्बाद कर रहे हैं ॥ ८२ ॥

६. भरम बढ़ी शिर केश बढ़ाये * तके गगन कोइ बाँह उठाये ॥ ८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब वही मिथ्या भ्रम अत्यधिक मात्रामें बढ़ा, तब

बाबाजीने शिरमें लम्बे-लम्बे केश बढ़ाया, बड़ी मिहनतसे नकली और भी बाल लटमें जोड़-जोड़ कर जटाजूट बनाया। जो कि, खोलनेपर शिरसे पैर तक या उससे भी लम्बा ४—५ हाथ बड़ा बढ़ा करके शिरमें लपेटे; उसी जटाका पगड़ी बाँधा। वाहियातमें गधेकी नाईं दिन-रात जटाका बोझ उठाये फिरते हैं; और कितनेक भ्रमिक लोग तो ऊर्ध्वमुखी होकर ऊपर आकाशकी निलिमाको ही ताकते रहते हैं; वहाँपर परमात्माका दर्शन करना चाहते हैं। कोई ऊर्ध्वबाहु होते हैं; वे कोई एक हाथको ऊपर ऊठा करके सूर्यको चढ़ाते हैं। कोई-कोई तो दोनों ही हाथोंको ऊपर उठाये रखते हैं। कुछ दिन बाद रक्त सञ्चालन न होनेसे हाथ सूखकर अकड़ जाता है। उन नरपशुओंके शिरमें पशुवत् सींग नहीं आया, तो दोनों हाथोंको ही उठा करके सुखाकर सींगवत् बना लिये हैं। शून्य ब्रह्माण्डमें सदा लक्ष्य लगाये रहते हैं। इससे दुर्गतिके सिवाय जीवके कोई कल्याण नहीं होता है, नरजन्मको व्यर्थ ही बिता देते हैं॥ ८३॥

७. दै तारी कर नासा गहै ❀ भरमिक गुरु बतावै कहै॥ ८४॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई कर्ममार्गी लोग सन्ध्या वन्दनादि जाप करनेको बैठते हैं, तब दोनों हाथोंको पीट करके ताली बजाकर बकरेकी नाईं कुछ बड़बड़ाते हैं। फिर नासिकाको अंगुलियोंसे पकड़कर दबाते हैं और फिर छोड़ते हैं; ऐसे प्राणायाम करनेकी नकल करते हैं। अङ्गन्यास, करन्यास करके "अस्त्राय फट्" कहकर ताली ठोंकते हैं। पश्चात् देवी-देवताओंके ध्यान, मन्त्र जाप, पाठ-पूजादि करते हैं। इसप्रकारसे भ्रमिक गुरुवालोगोंने जैसे-जैसे बताये, सिखाये, कहने और करने लगाये, वैसे-वैसे चेले लोग भी भ्रम-भूलमें पड़ करके उनके कहे अनुसार कहने और करने लगे। बिना विचार उसी पाखण्डका प्रचारकर एक-दूसरेको भ्रमाने वा भुलाने और बाँधने लगे। साँच-झूठका कोई विवेक ही नहीं करते हैं॥ ८४॥

८. भरम बढ़ी अरु घूमन लागै ❀ बिन गुरु परचै कहु को जागै?॥ ८५॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! किसीको भ्रम बढ़ते-बढ़ते उग्र हुआ, चञ्चलता विशेष ही बढ़ी, मन काबूसे बाहर हो गया, तब मनके नचानेसे पृथ्वी परिक्रमा करके घूमने-फिरने लगे। चार धाम, चौंसठ तीर्थोंकी यात्रा करना; दर्शन, पर्शन, स्नान, देव मन्दिर, तालाब, गङ्गादि नदियोंकी परिक्रमा करना और तीर्थोंमें जाकर घूमना, नाचना, गाना, रोना, इत्यादि अनेकों प्रकारसे भ्रम चक्रके महावेगमें पड़कर चक्कर लगा रहे हैं। जिससे जड़ाध्यासी होकर सब जीव चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़कर जन्म-मरणादिमें घूम रहे हैं। हे जिज्ञासु मनुष्यो! पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर यथार्थ सत्य निर्णयसे श्रीसद्गुरुके पारख बोधके बलसे उक्त खानी-वाणी जालका परिचय वा पूर्ण भेद जाने बिना कोई भी निज स्वरूपमें जाग्रत् होकर बन्धन और मुक्तिको जान नहीं पाते हैं। कहो तो भला! गुरुबोधके परिचय पाये बिना कौन जाग्रत् हो करके बन्धनोंसे मुक्त हुआ है? कोई भी नहीं। अतएव और सब उपाय छोड़कर पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणागत होकर निज स्वरूप और बन्धन-मुक्तिका पूर्ण परिचय प्राप्तकर शीघ्र जागो! और कटिबद्ध होकर कल्याण-पथमें लागो! यही नर जन्म पानेका सार है, सो जानो!॥ ८५॥

साखीः— कहहिं कबीर पुकारिके ❀ गहहु शरण तजि मान॥

[११] परखावैं गुरु भरमको ❀ बानि खानि सहिदान॥ ८६॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हे मुमुक्षु नरजीवो! सुनो! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने तथा पारखी सन्तोंने पुकार करके ऊँची आवाजसे सब जिज्ञासु मनुष्योंको सुना-सुना करके ऐसा कहा है कि— हे मनुष्यो! तुम लोग यदि अपना हित-कल्याण करना चाहते हो, तो शीघ्रतिशीघ्र सत्यन्यायी बन्दीछोर पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणको ही ग्रहण करो! और ब्रह्म-ईश्वरादि मिथ्या कल्पना-को मानन्दी कर उसके लिये जो-जो कठिन साधना कर रहे हो, सो तो भ्रम होनेसे व्यर्थ है। इसवास्ते

उन सब मानन्दीको छोड़ दो ! तथा जाति, वर्ण, आश्रम, विद्या, बुद्धि, धन, जन, राज, काज, चतुराई, इत्यादि जो कुछ भी मान, गुमान, मर्यादा मान रक्खे हो, सो सब भी बन्धनका ही घेरा है, ऐसा जान करके सब मन-मानन्दियोंको परित्यागकर पारखी श्रीसद्गुरुके ही शरणागत हो जाओ ! पारखी श्रीसद्गुरु ही तुम्हें ब्रह्म-जगत्के समस्त भ्रम-धोखा, भूलको यथार्थ निर्णय करके परखावेंगे। आवागमनका मूल कारण झीनी वाणी-जाल तथा मोटी खानी-जाल है। सो ब्रह्म-भ्रम वाणी-कल्पनाका विकार है; तथा विषयासक्ति खानी देहका विकार है। इनकी यथार्थ सहिदानी = चिन्हारी, लक्षण, पहिचान, कसर-खोटका ज्ञान, सारासार, बन्धन-मुक्तिको पारखी श्रीसद्गुरु न्याय-निर्णयसे परखाते वा बतलाते हैं। जिससे भव-बन्धनोंसे छूटकर नरजीव मुक्त हो जाते हैं। अतएव देह रहे तक पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें ही लगे रहो ! ॥ ८६ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ५ । साखी— २ है] ॥ १२. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १२ ॥ ❀ ॥

[वाणी कृत-विशेष भ्रमका विस्तार वर्णन ।]

१. भरमें जीव परमातम माया * भरम देह और भरम निकाया ॥ ८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें सत्यासत्यका भेद न जान करके मनुष्य जीव सब भरमें या भ्रम चक्रमें पड़े हैं। ऐसे भ्रमिक लोगोंने कोई एक परमात्मा जगदाधार माना है; उसका अंश कल्पनासे जीवात्माको ठहराया है, सो भ्रम ही है; और मायाको अचिन्त्य शक्तिशालिनी, साकार-निराकारसे विलक्षण सगुण-निर्गुण, सत्य-असत्य, कुछ भी कहते न बने, ऐसी अनिर्वचनीयरूपा माया माना है, रज्जू-सर्पवत् मायाको मिथ्या कहा है; सो भी मनुष्योंके भ्रम अज्ञान ही है। सोई भ्रम-भूल अध्यास करके ही देह बना है, और देह सम्बन्धसे जितनी भी मानन्दी, विषय-विलास बढ़ाया है, सो भी भ्रमका विस्तार है। तथा सगुण देहधारी अवतारी भगवान्को जो माना है, वह भी भ्रम है। फिर किसीने कायासे रहित विदेह, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, ब्रह्मको माना है, सो भी भ्रमकी ही तरङ्ग है। इसप्रकार जीवात्मा-परमात्मा, प्रकृति-पुरुष, साकार-निराकार, सदेह-विदेह, ब्रह्म-जगत्, काया-निकाया, इत्यादि नरजीवोंने जो अपनेसे भिन्न मान रक्खा है, सो सब भ्रम-भूल, कल्पनाका ही पसारा है। उसे परख करके जान लेना चाहिये ॥ ८७ ॥

२. अनहद भरम औ ज्योति प्रकाश * आदि अन्तलों भरमहि भास ॥ ८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! योगी लोगोंने दोनों कानोंको ठेड़ीसे वा अंगूठोंसे बन्द करके ब्रह्माण्डमें लक्ष्य लगाकर, दश नाद अनहद— घण्टा, शङ्ख, मृदङ्ग, बाँसुरी आदिकी ध्वनि जो सुने या सुनते हैं, सो भी मिथ्या भ्रम ही है; और पञ्च मुद्रा लगाकर आँखें बन्द करके प्राणायाम, धारणा, ध्यानादि करनेसे नाद-बिन्दुका सङ्घर्षण होने और पित्त चढ़ जानेसे जो नाना तरहके ज्योति-प्रकाश योगी, ध्यानी लोगोंको दिखाई देता है, जिसे उन्होंने परमेश्वरकी ज्योतिका दर्शन होना माना है, सो तेज तत्वके प्रकाशको ईश्वरादि मानना मिथ्या भ्रम-भूल है। आदि = जगत्में जन्मसे ले करके, अन्त = मृत्यु तक ब्रह्म, ईश्वर, देवी-देवता स्वर्गादि तथा विषयानन्दादिका जो-जो भास, अध्यास मनमें टिकाया है, सो सब भी भ्रम-भूलका ही मिथ्या जाल है। ऐसे शब्द विषय-अनहद, रूप विषय-ज्योति प्रकाश और आदि-अन्त = जगत्-ब्रह्म तक सब ही भ्रमका भास है। विवेक द्वारा परखकर उस भासको त्याग देना चाहिये ॥ ८८ ॥

३. इत उत करै भरम निर्मान * भरम मान औ भरम अमान ॥ ८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इत = जगत्में पिण्डाण्डसे ले करके, उत = ब्रह्माण्डमें ब्रह्म तककी दौड़ लगाते हैं। खानी-वाणी, विषयानन्द-ब्रह्मानन्द, मोटी-झीनी माया-जालोंमें इधर-उधर, जहाँ-तहाँ भटका करते हैं। जिससे भ्रमका ही निर्माण होता है, यानी यहाँ-वहाँ जा करके

भ्रम ही खड़ा करते हैं। मान=जगत् विषय-विलासमें मैं-मेरीकी ममता, मायाकी मानन्दी- यह भी भ्रम जाल मिथ्या ही है। अमान=माया विकारसे रहित शुद्ध माना हुआ परमेश्वर या परब्रह्म, सो भी मिथ्या भ्रम-कल्पना ही है। सो मान-अमानरूप माया-ब्रह्मके अभिमान लेकर इधर-उधर दोनों तरफ भ्रम-भूलका बन्धन ही बना करके परिपुष्ट करते हैं। इसलिये उसे परखकर ऐसे कुसङ्गसे सदा दूर ही हो रहना चाहिये ॥ ८९ ॥

४. कोई जगत कहाँते भया ? * ई सब भरम अति निर्मया ॥ ९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारख बोध न होनेसे जीव अपने आपको भूले हैं, निज सत्य स्वरूपको न जानकर भ्रममें पड़े हैं। ऐसे अज्ञानी अविवेकी नरजीव सोचते या कहते हैं कि— "मैं कौन हूँ ? कहाँसे, कैसे आया हूँ ? मुझे किसने, क्यों बनाया है ? मैं अब क्या करूँ ? क्या करनेको आया हूँ ? और यह सारा जगत् कहाँसे उत्पन्न हुआ है ? क्यों, कैसे हुआ है ? किसने, क्यों उत्पन्न किया है ? फिर आखिरमें इसका क्या होगा ? कहाँ जा करके जगत् समायेगा ?" इत्यादि सबोंका भेद पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा निर्णयको जाने बिना कुछ समझ नहीं पाये। इसकारण यही सब भ्रम, भूल, सन्देह, धोखा अत्यन्त विस्तार हो करके उत्पन्न हो गया या खड़ा हुआ है। जड़-चैतन्य, सत्यासत्यके यथार्थ भेद न जाननेसे ये सब भ्रममें जीव पड़े हैं। अति विशेषरूपसे वही भ्रम ही निर्माण करते गये हैं। पारख बोध होनेपर ही यह सब भ्रम छूटता है; और उपायसे नहीं छूटता है ॥९०॥

५. प्रलय चारि भ्रम पुण्य औ पाप * मन्त्र जाप पूजा भ्रम थाप ॥ ९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनेक तरहसे चराचर जगत्की उत्पत्तिका वर्णन किया है, सो भी भ्रम है। तथा जगत्का प्रलय चार प्रकारसे जो माना है— नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, विश्व प्रलय और महा प्रलय। अथवा दैनन्दिन प्रलय, जलामय प्रलय, महा प्रलय, एकान्तिक प्रलय, इन चार प्रलयोंमें समस्त विश्वका विनाश माना है, सो भी मिथ्या भ्रम है। पुण्य=धर्म-कर्म, ईश्वरादि प्राप्तिकी साधना, और पाप=कुकर्म भूत-प्रेतादि सिद्धिकी साधनादि भी भ्रम-भूल ही है। अथवा पाप-पुण्यरूप ऊपर-नीचे कहीं स्वर्गादि, नरकादिका वर्णन भी भ्रम है; और मनोकामना पूर्ण करनेके लिये सप्त बीज महामन्त्रोंसे लेकर तैंतीस कोटि महामन्त्रोंका नाना विधिसे जाप करते और कराते हैं। तैसे ही कल्पित तैंतीस करोड़ देवताओंकी अष्ट प्रतिमाओंकी जड़मूर्ति बनाकर उसीकी षोड़शोपचारसे पूजा करते और कराते हैं, सो सब भी मिथ्या धोखा-भ्रमकी ही स्थापना किया है। इसतरहसे उत्पत्ति-प्रलय, पाप-पुण्य, मन्त्रोंकी जाप, पूजा-पाठ, होम-हवन, तर्पण-श्राद्ध, बलिवैश्वदेव, यज्ञादि विधि-विधानसे गुरुवालोगोंने जो स्थापना, दृढ़ निश्चयसे कायम किया है, सो सब मिथ्या भ्रम-भूलका ही पसारा है। धोखेसे जीव उसे सच्चा मान-मान करके अरुझे पड़े हैं। सोई भव-बन्धनोंका कारण है। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परखकर उस भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये, तभी कल्याण होगा ॥ ९१ ॥

साखीः— बाप पूत दोउ भरम हैं * आध कोश नौ पाँच ॥

[१२] बिनु गुरु भरम न छूटै * कैसे आवै साँच ? ॥ ९२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! चैतन्य जीव किसीका पिता, कारण, पुत्र, कार्य, कदापि हो नहीं सकता है। देहके नातासे बाहर देह सम्बन्धमें ही बाप-पूत होते हैं; बिना विवेक पिता-पुत्र दोनों भ्रममें ही पड़े हैं। अथवा बाप=ब्रह्मको सबका मूल कारण या अधिष्ठान माना है। पूत=उसी ब्रह्म कारणका प्रधान अंश या कार्य जीवोंको माना है। सो दोनों अंश-अंशी या कारण-कार्य भाव ब्रह्म-जीवको मानना महान भ्रम-भूल, अज्ञानता है। बिना विवेक जीवको ईश्वरका अंश मान रक्खा है। ब्रह्म-ईश्वर दोनों ही भ्रम-भूल मात्र है, और आधकोश=अर्धमात्रा तुरिया साक्षीको आत्मपद ठहराया है। सो भी भ्रमके पर्दासे ही ढकी हुई कल्पना है। कहा हैः—

"छौ मासके हींड़ते । आधकोश पर गाँव ॥" बीजक, साखी- ५२ ॥"—

—षट्शास्त्रोंकी वाणी पढ़ते, देखते, हींड़ते साधनोंमें चलते अर्धमात्रामें स्थिति किया, उसीसे कैवल्य ब्रह्म प्राप्तिकी आशा लगाया। तैसे ही नौ कोशोंका महान आवरणरूप पर्दा जीवोंपर पड़ा है। नौ कोशके बारेमें खुलासा वर्णन रमैनी खण्ड-१० । चौपाई-७० में हो चुका है, चाहे वहाँसे देख लीजिये ! और श्रीसद्गुरुने बीजक, साखी- ५० में कहा है:—

साखी:— "चलते चलते पगु थका। नग्र रहा नौ कोश ॥ बीचहिमें डेरा परा। कहहु कौनको दोष? ॥५०॥'

मुख्य पाँच कोश मान करके पाँच मार्गोंका विस्तार किया है। सो भी भ्रम-भूल ही है। अथवा बाप=ब्रह्मादि गुरुवालोग, पूत=सनकादि शिष्य लोग दोनों ही बिना पारख भ्रम-चक्रमें पड़े थे। पञ्च विषय, नौ द्वार आदिकी अध्यास-आसक्ति रख करके आधकोशरूप गर्भवासको प्राप्त हुए। निज स्वरूपको नहीं जान पाये हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो अपरोक्ष पारख स्वरूपका बोध पक्का हुए बिना किसीके भी भ्रम, भूल, संशय, धोखा छूट नहीं सकता है। वह भ्रम छूटे बिना निज चैतन्य हंस पदमें सच्ची रीतिसे जीव कैसे आवेगा? सत्य-विचारादि सद्गुण भी गुरुबोधके बिना कैसे आवेंगे? पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण हुए बिना नरजीवोंके हृदयमें सत्य पारखबोधका उदय कैसे होगा? कभी भी नहीं होगा। श्रीसद्गुरुकी कृपा तथा सत्सङ्ग विचारके बिना आप ही पारखबोध नहीं आवेगा; अतएव साधु-गुरुके सत्सङ्गमें सदा लगे रहना चाहिये ॥९२॥

साखी:— बाट बाट सब भरम है ❀ माया रची बनाय ॥

[१३] भेद बिना भरमें सकल ❀ गुरु बिन कहाँ लखाय ? ॥ ९३ ॥

अर्थ:— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें चार वर्ण, चार आश्रम, छत्तिस नाता, हिन्दू, मुसलमान् आदिकोंमें षट्दर्शन-छियान्नवे पाखण्डोंके भीतर-बाहर, बाट-बाट=रास्ता-ही-रास्ता कर्म-उपासनादि मार्ग, नाना मत, पन्थ, ग्रन्थोंके सिद्धान्त अनेकों तरहकी मानन्दी भिन्न-भिन्न साधनाएँ चला रक्खे हैं, सो सब भी जीवोंको धोखेमें ही ले जानेवाला होनेसे महान भ्रमका चक्र है। सब उसीमें पड़कर बिना विचार भ्रमिक-गाफिल हो रहे हैं। मोटी माया=स्त्री आदि, तथा झीनी माया=गुरुवालोगोंने ही युक्ति-प्रयुक्तिसे छल, बल, कपट फैलाकर खानी-वाणीका महान जाल-जञ्जाल रचना कर-करके बनाया है; और सारे संसारमें उसको चारों खूँटामें तानकर पसार रक्खा है। उसका यथार्थ भेद जान पाये बिना सकल नरजीव भ्रम-चक्रमें गिर पड़े, तो उन दोनों जालोंमें जकड़ करके अरुझ गये, और अरुझते, फँसाते ही जा रहे हैं। पारखी बन्दीछोर श्रीसद्गुरु मिले बिना वह जाल किसको? कहाँ लखनेमें आया? कहीं नहीं। पारखी श्रीसद्गुरुके लखाये बिना कहीं किसीको भी ठीकसे बन्धन-मुक्ति लखनेमें नहीं आया। इसलिये भ्रम-भूल धोखेमें ही सब जीव पड़ रहे हैं। श्रीसद्गुरुके पारख बोधका प्रकाश हुए बिना कहाँ, कैसे, किसको, सारासार, सत्यासत्य लखनेमें आया ! किसीको नहीं आया। भेद न पाकर बेपारखी सब कोई भ्रममें भरमें रहे और भ्रममें ही पड़े हुए हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणागत होकर पारख बोधको प्राप्तकर सकल भेदको जान लेना चाहिये ॥ ९३ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ५ । साखी— १ है] ॥ १३. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १३ ॥ ❀ ॥

[मुस्लिमोंकी प्रबल भ्रम-भूलका वर्णन ।]

१. कलमा बाँग निमाज गुजारे ❀ भरम भई अल्लाह पुकारे ॥ ९४ ॥

अर्थ:— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! मुसलमानोंके भ्रमकी मानन्दी इस रमैनीमें दिखलाते हैं। सत्य-मिथ्याका कुछ भेद न पाकर मुस्लिम लोग भ्रम-चक्रमें पड़े हैं। तहाँ तुरकोंने हिन्दुओंसे विरुद्ध मत चलाया है। सब उलटा-ही-उलटा काम करने लगे। मुस्लिम लोग पाँच प्रकारसे कल्मा पढ़ने लगे, सो निम्न प्रकारसे पाँच कलमा कहा है:— "लाइ लाइ इलिल्ला हल,

बहूद हू वसल्लम् ॥ १ ॥ लाहे लाहे इलिल्ला हूल; अजी जुल गफ्फार ॥ २ ॥ लाहे लाहे इलिल्ला हूल; महम्मदुर्रसुलिल्लाह ॥ ३ ॥ लाहे लाहे इलिल्ला हूल; कबीर लमूता ॥ ४॥ लौवफ् लाफ् लाहे इलिल्लाहूल ॥५॥

ऐसे पाँच कल्मा नामक पदको उच्चारण करते हैं; और सबेरे एक प्रहर रात रहते ही उठ करके मसजिदमें खड़े होकर अंगुलीसे अपने कान बन्द करके ऊँची आवाज लगाकर जोर-जोरसे बाँग पुकारा करते हैं; मुस्लिमोंको इसतरह 'अज्ञानं'=निमाज पढ़नेकी सूचना देते हैं। वैसे ही शामको भी मुल्ला बाँग पुकारा करता है; और मसजिद, दरगाह आदिमें सब मुसलमान इकट्ठे हो करके पाँच बार निमाज पढ़ते हैं, खुदाकी याद, प्रार्थना करते हैं। खुदाकी यादगिरीमें लगं करके दिनको गुजार देते हैं। इस्लाम धर्मावलम्बियोंको जब ज्यादा ही भ्रान्ति दृढ़ हुई, तब "अल्ला हो अकबर! या अल्लाह प्रवर दिगार मालिक मेहरवानी कर! या खुदा! अल्ला हो!" इसीकी जी-जानसे पुकार करने लगे। दुःख मिटानेकी आशासे अल्लाहका नाम जपने लगे। चौदह तबक वा विहिस्तमें जानेकी आशासे मुल्लाओंके कथनको सत्य मानकर पाँच वक्त कल्माके मन्त्र जाप करने लगे; शाम-सबेरे पाँचों वक्त बाँग पुकारने लगे, प्रतिदिन पाँच बार निमाज पढ़ने लगे; और विशेष-विशेष अवसरोंपर भी निमाज पढ़ने-पढ़ाने लगे। इसप्रकार खुदाकी पुकार करके धोखेमें ही जिन्दगी गुजार दिये या व्यर्थ ही नरजन्मको व्यतीत किये और कर रहे हैं। खुद-खुदायरूप जीवका भेद जाने बिना भ्रम-कल्पनाकी ही पुकार कर रहे हैं ॥ ९४ ॥

२. अजब भरम एक भई तमाशा ❀ अल्लाह मकान बेचून नेवासा ॥ ९५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! भ्रम-भूलसे एक आश्चर्यमय वाणी-कल्पनाका मिथ्या खेल-तमाशा मुसलमानोंके यहाँ भी हुआ। सो क्या है? कि, जिस अल्लाहको सारी दुनियाँका मालिक कर्त्ता पुरुष माना है, उसके ठौर-ठिकानाका तो कहीं पता ही नहीं लगता है। उस अल्लाह या खुदाका मकान रहनेकी जगह, मुकाम या स्थानके बारेमें ऐसा कहा है कि— लामुकाम, गोयमगोय, बेचून, बेनमून, खालिक खलकमें जर्रे-जर्रेमें भरा हुआ है। ऐसा रेख-रूपसे रहित सर्वव्यापक, निर्गुण-निराकारके ही समान स्थितिरूप निवास खुदाका भी बतलाया है। यही तो भ्रमका एक अजब तमाशा खड़ा हुआ है। जिसका कहीं कुछ पता ही नहीं लगता है, उसीकी आशा-भरोसा करते हैं। कर्म-कुकर्म करके विवेक बिना नाहक मनुष्य जन्मको बिता देते हैं; फिर जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं ॥ ९५ ॥

३. बेनमून वै सबसे पारा ❀ आखिर ताको करे दिदारा ॥ ९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! मुसलमानोंने खुदातालाको बेनमून=जिसका कोई नमूना ही न हो, बेमिशाल=उपमासे रहित, सब चराचर जगत्से उस पार, मन, बुद्धि और वाणीसे भी अत्यन्त परे, सबसे पार परम पुरुष निश्चय करके माना है। फिर उसीके दिदार=दर्शन, साक्षात्कार करके आँखोंसे देखने, भेंट-मुलाकात करनेके लिये भी नाना उपाय करते हैं, रोजोंका व्रत रखते हैं, कल्मा, निमाज आदि पढ़ा करते हैं। आखिर देह रहे तक तो उस अल्लाहको ताकते रहनेपर भी दिदार नहीं हुआ। तब हताश होकर समझाने लगे कि— भाइयो! नहीं घबड़ाओ, खुदाका सुमिरण करते जाओ, यह काया-मायाके जालमें रहतेमें तो खुदाका दर्शन होना दुर्लभ है। आखिरमें जब शरीर छूट जायगी, तब रूह भी बेचून-बेनमून हो जायगी, तब अवश्य अल्लाह मियाँका दिदार हो जायगी। यदि उसवक्त भी किसी कारणसे दर्शन नहीं हुआ, तो एक समयमें कयामतका दिन आवेगा, उसवक्त सारी दुनियाँ फना हो जायगी, तब आखिरमें खुदाका दर्शन अवश्य होगा। उस समयमें खुदातालाा न्यायके तख्तपर बैठकर सब रूहोंकी नेकी और बदीका हिसाब लगा करके इन्साफ करेगा, और नेकीवालोंको 'बहिस्त' पहुँचावेगा और बदीवालोंको 'दोजख' भेजेगा; इत्यादि मनगढ़न्त मिथ्या कल्पना करके भूले और दूसरोंको भी भुला रहे हैं। जो बेनमून सबसे पार है,

आखिर उसका दिदार तो भी कौन, कैसे करेगा ? नाहक मिथ्या धोखेमें पड़े हैं ॥ ९६ ॥

४. रगरे नाक मसजीद अचेत * नीन्दे बूत परसते हेत ॥ ९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पाखण्डी मुसलमान लोग अपने आप तो इस्लामके पक्षपाती होकर मसजिदमें जा करके निमाज पढ़कर जमीनमें नाक रगड़ते हैं; उठाबैठी करके नाक घिसाघिस करते हैं; बिना विवेक धोखेमें पड़कर अचेत=गाफिल, बेफहम हो जाते हैं; और हिन्दू मजहबियोंकी बूत=देवताओंकी जड़ मूर्ति पूजादि देखकर उनकी निन्दा करते हैं। हिन्दुओंको बूतपरस्ती या मूर्ति पूजक, पाखण्डी, अनाड़ी बतलाते हैं। क्या बूतमें कभी ईश्वर आ सकता है ? तुम लोग मूर्ख हो, ऐसे-ऐसे तुच्छ शब्दसे निन्दा-मसखरी करते हैं। परन्तु, वे तुरुक खुद भी प्रेम-प्रीतिपूर्वक परस=फर्सके बने हुए मसजिद और कब्रको बड़े उत्साहसे मानते-पूजा करते और कराते हैं। कब्रके उपर सन्दल (चन्दन) चारों तरफ लीपकर लगा करके गलेफ=कपड़ा ढाँक करके फूल चढ़ाकर, अगरबत्ती जलाकर, प्रेमसे मानते, पूजते और पुजाते हैं; और उसीको फातिया (नैवेद्य भोग) लगा देते हैं। ये भी बूतपरस्ती नहीं हुई, तो क्या हुई ? पक्षपातके मारे अन्धे लोग कुछ विचार तो करते ही नहीं हैं, अन्धाधुन्ध मनमें आवे, वहाँ वैसे ही चले जाते हैं ॥ ९७ ॥

५. बावन तीस वर्ण निरमान * हिन्दू तुरुक दोऊ भरमान ॥ ९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इधर हिन्दुओंने बावन अक्षरः— सोलह स्वर-'अ से अः' तक, छत्तिस वर्ण-'क से क्ष, त्र, ज्ञ' तक सब ५२ अक्षरोंको देवनागरी लिपिमें रचनाकर उसीसे वेद-शास्त्र, पुराणादि बनाकर वाणी-कल्पनामें भूले पड़े हैं। तैसे ही उधर मुस्लिमोंने भी अरबी, फारसी, उर्दू भाषाकी रचनामें पहले तीस वर्ण या तीस 'हुरुफ' गढ़न करके कायम किया है। उनका नाम निम्न लिखे अनुसार कहा है। उर्दूके तीस हुरुफ ये हैं:— अलिफ। बे। पे। ते। टे। से। जोम। चे। हे। खे। दाल। डाल। ज़ाल। रे। जे। शीन। स्वाद। तोय। जोय। ऐन। गैन। फे। काफ़। गाफ़। लाम। मीम। नून। बाव। हमजा। ऐ। इन्हीं ३० हुरुफोंसे बैत रचना करके चार कितेबोंकी कुरान बना रक्खा है; और भी बहुत-सी पुस्तकें उर्दूमें बना करके मुसलमानोंने फैला रक्खा है। इसप्रकार ५२ वर्ण और ३० अक्षरोंको भिन्न-भिन्न निर्माण करके वेद, कुरान आदि अनेकों वाणी जालोंको बढ़ाकर ईश्वर तथा खुदाका मुख्य कल्पनामें लगे और लगा करके हिन्दु लोग तथा मुसलमान लोग ये दोनों ही भ्रमिक हो करके खानी और वाणी दोनों तरफ फँस गये और फँसे तथा फँसा रहे हैं। जड़ाभ्यासी हो करके चौरासी योनियोंके चक्रमें वे सब जीव भ्रमण कर रहे हैं। बिना पारख जीवोंकी उस धारासे कभी निस्तार नहीं होता है। अतएव श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगकर निज स्वरूपका पारख बोध अभी देह रहते ही प्राप्त कर लेना चाहिये ॥ ९८ ॥

साखीः— भरमि रहा सब वर्णमों * हिन्दू तुरुक बखान ॥

[१४] कहहिं कबीर पुकारिके * बिन गुरु को पहिचान ? ॥ ९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सब कोई मनुष्यवर्ग निजस्वरूप चैतन्य जीव वाणीके कर्त्ताको सत्य न जान करके हिन्दी, उर्दू आदिके अक्षर समुदायसे वेद और कुरान आदि वाणी बना करके नाना कल्पनामें पड़कर सब-के-सब भ्रमिक हो रहे हैं। भ्रमचक्रमें घूम रहे हैं। कोई हिन्दू बने, वे ईश्वर, देवी-देवतादिकी आराधनामें लगे, उनकी महिमा वर्णन किये हैं; और कोई तुरुक बने, वे खुदा तथा फरिस्तोंकी प्रार्थना वा पुकारामें लगे, झूठ-मूठकी महिमा उन्होंका बखान किये हैं। इसतरहसे पूर्व-पश्चिमादिके सब मनुष्य अक्षररूप वाणी तथा चार वर्ण, चार आश्रमादिके प्रपञ्च विषयादिमें भूले पड़े हैं। उनके कसर-खोटका निर्णय पुकार-पुकार करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक सद्ग्रन्थमें कहा है। सोई सार यहाँपर भी बतलाया गया है। पारखी श्रीसद्गुरुसे मिले बिना और पारख बोध उदय हुए बिना कोई भी उस भूल-भ्रम, खानी-वाणीके भव-बन्धनोंको पहिचान

नहीं सकते हैं। श्रीसद्गुरुके पारख बोध पाये बिना उसको और कौन पहिचानेंगे? कोई नहीं। शब्द-जालका विस्तार बहुत है; श्रीसद्गुरुके सारशब्दसे भेद जाने बिना सो परखनेमें नहीं आता है ॥६६॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ८। साखी— १ है] ॥ १४. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १४ ॥ ❀ ॥

[महान भ्रम-भूलका चौ तरफ पसारा वर्णन।]

१. भरमत भरमत सब भरमाने ❀ राम सनेही कोइ बिरला जाने ॥ १०० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! वाणी-कल्पनामें लग करके भ्रमले-भ्रमते भूलते-भटकते, हिन्दू, मुसलमान पारसी, क्रिस्तान या ईसाई, रूसी, चीनी, बौद्ध, जैन, यहूदी, इत्यादि समस्त भूमण्डलके सब मनुष्य भ्रमिक हो गये हैं। विभिन्न प्रकारसे अनेकों भ्रम-भूलमें वे पड़े हैं। उसीके कारण चौरासी योनियोंमें भ्रमण करते-करते मनुष्य जन्ममें आये, यहाँ पुनः नाना तरहसे भ्रमाये गये हैं। जिस आत्मा-परमात्मा राममें उन्होंने स्नेह या प्रीति लगाया है, सो भी मिथ्या धोखा है। कोई विषय सुखमें आरामके स्नेही हुए हैं। कोई रामके उपासक भक्त रामस्नेही भ्रमिक हुए हैं। अपनेसे भिन्न कोई साकार-निराकार राम मान करके भूलमें पड़े हैं। कोई बिरले ही पारखी सन्त निजस्वरूप सत्य चैतन्य जीव रमैयारामको पारखके प्रतापसे जानते हैं; और सब तरफसे प्रेम हटा करके निज स्वरूप स्थितिमें ही प्रेम लगाये रहते हैं। वे ही मुक्तिके भेदको यथार्थ जानते हैं। एवं भव-बन्धनोंसे छूटकर मुक्त भी हो जाते हैं ॥ १०० ॥

२. त्रिदेवा सब खोजत हारे ❀ सुर नर मुनि नहिं पावत पारे ॥ १०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! श्रीसद्गुरुके पारख बोध प्राप्त हुए बिना प्रथम ब्रह्मा, विष्णु, और महेश, ये त्रिदेव, पश्चात् योगी, ज्ञानी, भक्त, उन्होंके अनुयायी मनुष्य सब भी अनुमान-कल्पनासे, जगत्कर्त्ता परमेश्वर कोई मानकर उसको खोजते-खोजते तलाश करके ढूँढ़ते-ढूँढ़ते नाना साधनाएँ करते-करते आखिरमें हार गये, उसका पता भेद कुछ भी जान नहीं पाये। नाहक धोखेमें लग करके नर जन्मको भी हारे, सार कुछ नहीं पाये; और सुर=देवता, सत्त्वगुणी उपासक लोग, नर=पुरुष, रजोगुणी कर्मी लोग, मुनि=मनन शील तपस्वी साधक लोग, इन्होंने भी परमात्मा प्राप्तिके लिये बहुत-बहुत प्रयत्न किया; परन्तु, किसीने भी ब्रह्मका पार नहीं पाया, तो अपार, अथाह, अगम, कह-कह करके हाथ मलते, शिर पटकते चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जा-कर रह गये। जब उन बड़े-बड़े तुम्हारे पूर्व गुरुवालोगोंको ही परमात्मा नहीं मिला, तो फिर तुम्हें कैसे मिलेगा? इसका अब तो भी ठीकसे विचार करो, भ्रमको छोड़ो! ॥ १०१ ॥

३. थकित भये तब कहै बेअन्ता ❀ बिरहिनि नारि रही बिनु कन्ता ॥ १०२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मादि ऋषि-मुनि, तपस्वी, सिद्ध-साधक लोगोंने जहाँ तक उनकी शक्ति चली, वहाँ तक तो परब्रह्मकी खोज-तलाश बहुत किया। जब अन्तमें थकित हुए, कहीं भी कुछ रूप-रेखाका पता लगा नहीं पाया। तब हार मान करके उसे बेअन्त, अनन्त, असीम, अगोचर, अवाच्य कहने लगे। ज्यों-का-त्यों जगत्रूप ही ब्रह्मको ठहराया है। जैसे स्त्री विषयासक्तिके कारणसे पति वियोगमें विरहिनी होकर व्याकुल, दुःखित हो रोती रहती है। कन्त मिले बिना उसे चैन ही नहीं आता है। तैसे ही वे अनाड़ी अविवेकी लोगोंने भी कल्पनासे कोई एक परमपुरुष-परमात्मा सबका स्वामी ठहराकर उसे अपना पति मानकर भक्त लोगोंने स्वयं स्त्री भाव धारणकर लिया। फिर नवधा भक्तिसे आगे बढ़ करके प्रेमलक्षणा भक्तिमें पागलवत् हो गये। ईश्वर विरहके मारे बेचैन उन्मत्त हो गये। जिसको उन्होंने कन्त या मालिक माना है, उसकी तो रूप-रेखा कुछ भी नहीं है; उसे तो निराकार-निर्गुण माना है। इसीसे उससे मिलनेकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई, अतः जड़ाभ्यासी होकर चौरासी योनियोंमें ही गिरे पड़े रहे, बिना पारख ॥ १०२ ॥

४. कोटिन तर्क करै मन माहीं * दिलकी दुविधा कतहुँ न जाहीं ॥ १०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे शेखचिल्लीने दो पैसेकी मजदूरीपर अनेकों तर्क-वितर्क कल्पना बढ़ा करके लखपति होनेकी कल्पना किया था। तो भी उसकी दरिद्रता कुछ नहीं छूटी। तैसे ही बेपारखी भ्रमिक लोग भी अपने-अपने मनमें करोड़ों तर्क-वितर्क, सङ्कल्प-विकल्प, भाव-कुभाव किया करते हैं। अनेकों सिद्धान्तोंकी मानन्दी करके उसीका विचार, पक्ष दृढ़ किया करते हैं। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, इत्यादिका तर्क-वितर्क करते रहते हैं। तथापि दिलमें जो दुविधा या सन्देह लगा है कि— जड़-चैतन्य एक है, कि दो है ? ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, साकार-निराकार क्या है ? कहाँ है ? है कि नहीं है ? क्या निश्चय करना, इत्यादि संशय जो उनके हृदयमें लगा है, सो निकल करके कभी कहीं भी नहीं जाती है। दिलमें सदा दुविधा लगी ही रहती है; वह खटकती रहती है। वैसे तो मनमें करोड़ों तर्क वे करते हैं, तो भी श्रीसद्गुरुके पारखका बोध हुए बिना, दिलकी भ्रम-दुविधा कहीं निकलकर नहीं जाती है। इसलिये परेशान होकर जड़ाध्यासवश आवागमनमें ही पड़े रहते हैं। बिरले ही कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आ करके श्रीसद्गुरुकी दयासे पारख बोधको पाते हैं। तब उन्हींका सब भ्रम छूटता है। वे ही निजपदमें स्थिर होते हैं ॥ १०३ ॥

५. कोई नख शिख जटा बढ़ावै * भरमि भरमि सब जहाँ तहाँ धावै ॥ १०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! परमात्माको कल्पनासे अपना परम पुरुष पति मानकर जब भक्त लोग बिरह व्याकुल हुए, तब बहुत प्रकारके नखरा, स्वाङ्ग धारण करके नाना तरहसे विचित्र भेष बना लिये। वहाँ नारीवत् बनकर अनाड़ी लोग धोखेमें ही लौ लगा लिये। तहाँ उन्होंने ऐसा शृङ्गार किया कि— कोईने तो हाथ-पैरकी नाखून बढ़ा करके बाघ, भालूके पञ्जोंकी नाईं बना लिया; बड़े-बड़े लम्बे-लम्बे तीक्ष्ण नखवाले हुए। कोईने शिरके बीचोंबीचके केश थोड़ा-सा घेराको लम्बा बढ़ा करके शिखा या चोटी रखानेवाले हुए। वे बालिस्तभर या हाथभरके शिखाधारी अभिमानी चोटीके पक्षपाती हठी मूर्ख ही हुए हैं। उन्होंने शिखा रखना ही स्वधर्म मान लिया है। कोई वैरागी, उदासी, वनवासी, हो करके बड़े-बड़े जटाजूट बढ़ाये हैं। व्यर्थ ही पशुवत् बोझा लादकर उलटा जटाके अहङ्कारमें फूले न समाते हैं। जैसे बाहर जटाको बढ़ाया है, तैसे ही भीतर हृदयमें भी मूर्खता, काम, क्रोध, मोह, मद-मत्सरादि विकारको भी खूब बढ़ा रक्खा है। बिना विवेक भ्रमिक हो-हो करके सब मतवादी लोग जहाँ तहाँ नाना तरहकी साधना, तीर्थयात्रा, चारोंधाम, चौंसठ तीर्थ, जप, तप, व्रत, योग, भोग, शोग, कर्म-कुकर्ममें धावते हैं। मनमाने उधर दौड़े चले जाते हैं। विषय भोग और कल्पनादिके महा खाँचमें गिर पड़ते हैं; वे चौरासी योनियोंके अधिकारी होते हैं। अभ्यासवश फिर पशु, पक्षी, उष्मजादि खानियोंमें जहाँ-तहाँ चले जाते हैं, बिना विवेक ॥ १०४ ॥

६. बात न सूझै भई अँधेरी * होय रही वाणीकी चेरी ॥ १०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखदृष्टिके बिना गुरुवालोगोंकी कही हुई धोखेकी बात तो कोई भी मतवादी लोग बूझते-समझते नहीं हैं; कि, ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिको निर्गुण, निराकार, व्यापक आदि कहा है, सो तो निषेध करनेकी बात हुई, न कि, स्थापना करने की। जिसका पार किसीने नहीं पाया, तो वह मिथ्या धोखा हुआ कि, नहीं ? परन्तु, हठी लोग मूर्खताके कारणसे बिना ही सोचे-समझे गुरुवालोगोंकी बात यों ही झटपट मान लेते हैं। जिससे सत्यासत्य उन्हें कुछ भी सूझता या दीखता नहीं है। उनके हृदयमें महा अज्ञान अविद्या भ्रम, धोखा, छा गया, उसीसे अन्धेरी महा गाफिली हो गई। विवेक-विचाररूपी उनके नेत्र फूट गये, तो पक्षपातके वश होकर सारासार, हिताहित कुछ भी नहीं सूझा। गुरुवालोगोंके चेले वाणी कल्पना भ्रमके दास हो रहे हैं। मिथ्या वाणीके ही गुलाम जड़ाध्यासी बन रहे हैं; धोखा धारमें बह रहे हैं ॥ १०५ ॥

७. नाना पन्थ वर्णि नहिं जाई * नाम जाति गुण कर्म बड़ाई ॥ १०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रपञ्ची गुरुवालोगोंने संसारमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रको चार आश्रमादिके पन्थसे चलनेको बतलाया है। तैसे ही योगी, जङ्गम, जैन, संन्यासी, ब्रह्मचारी, फकीर, इन्होंके भीतरसे-छियान्नवे पाखण्डकी शाखा निकली और चारवाक्, बौद्ध, ईसाई आदि मतवाद अलग ही विस्तार हुए हैं। वैष्णव-वैरागियोंके चार सम्प्रदाय, शैव, शाक्त, दत्त पन्थ, वाममार्ग, चैतन्य सम्प्रदाय, नानक पन्थ वा सिक्ख सम्प्रदाय, मानभाव पन्थ, जरथोस्ती पन्थ, पीराना पन्थ, प्रणामीपन्थ, रैदासी, सेनपन्थ, खाकी, मलूकदासी, दादूपन्थी, आपापन्थी, पल्टूपन्थ, सतनामी, अनन्तपन्थी, चूहड़पन्थी, माधवीपन्थ, इत्यादि नाना पन्थ-पन्थाई चलाया है। उन सबोंका पूरा नाम-काम वर्णन किया भी नहीं जा सकता है; क्योंकि, जितने अनन्त घट हैं; उतनी अनन्त बुद्धियाँ भी हैं। उनसे निकला हुआ असंख्यों मत, पन्थ, ग्रन्थोंका भी विस्तार संसारमें हो रहा है। उन सबोंने भी ईश्वर और खुदा आदिको अवाच्य, अथाह माना है। कोई ईश्वर, देवता, राम आदिके नामकी महिमा बड़ाई करके गुण गाने लगे, नाम-स्मरण करने और कराने लगे। तहाँ रामायणमें कहा हैः—

चौपाईः—"राम भालु कपि कटक बटोरा। सेतु हेतु श्रम कियो न थोरा॥
नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मन माहीं॥"
"राम नाम मणि दीप धरु। जे हिरदे हरि द्वार॥ तुलसी भीतर बाहिरौ। जो चाहसि उजियार॥"

कोई अपने नाम, जाति आदिकी विशेषता बताने लगे। कोई चौबीस अवतारोंके गुण, कर्मोंकी बड़ाई करने लगे; लीला-कथादिका बखान करने लगे। कोई अपने ही गुण कला-कौशलके कर्म-कुकर्मादिकी बड़ाई विशेषताका बखान करने लगे। इसप्रकार बाहर मिथ्या प्रपञ्चका ही विस्तार किये, उसीमें अरुझे और अरुझाये हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग करके निजस्वरूपकी स्थिति नहीं करते हैं। इसलिये भव-बन्धनोंसे भी कोई नहीं छूटते हैं॥ १०६॥

८. रैन दिवस वे ठाढ़े रहहीं * वृक्ष पहाड़ काहे नहिं तरहीं ?॥ १०७॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई महाअविद्यामें पड़े, तो घोड़ेकी नाईं ठाढ़ेश्वरी हुए। दिन-रात वे खड़े-ही-खड़े बिताने लगे। उसीसे अपनी गति-मुक्ति या ईश्वर-स्वर्गादि प्राप्ति होनेको मान लिये, धोखेमें पड़े। बड़े कष्ट भोगने लगे, ढोर-पशुवत् खड़े-खड़े ही मल-मूत्र त्याग करना, खड़े-खड़े ही खाना-पीना, नींद लगे, तो झूलाकी पटरीपर दोनों हाथ-छातीमात्र टिका करके सोना; तथापि जमीनपर नहीं बैठना या नहीं लेटना। ऐसी दुर्दशा करने लगे। अब हे सन्तो ! विचार करिये ! स्थावर खानी वृक्ष समूह अठारहों भार वनस्पति, पहाड़, गिरिश्रृङ्ग, ऊँची-ऊँची चट्टानें, वन, उपवन, बाग, अरण्य, टीला, इत्यादि सब जड़त्व भावसे दिन-रात ठाढ़े-ही-ठाढ़े रहते हैं। फिर वे क्यों नहीं तरे या क्यों भवपार नहीं उतरे ? प्राणियोंमें सवारीके घोड़ोंको चारों खूटोंमें पैरमें रस्सीसे बाँधे रखते हैं; जिससे वह बैठ नहीं सकता है। दिन-रात खड़ा ही रहता है, तो क्या वह मुक्त होगा ? कभी नहीं होगा। ऐसे अज्ञानताके जड़वत्, पशुवत् कर्मसे कोई मुक्त हो नहीं सकते हैं; इसलिये कुसङ्ग, कुकर्मादिको त्याग करके सत्सङ्गमें लगना चाहिये। हंस रहनी वा सद्गुणोंको धारण करके निजस्वरूप पारखपदपर स्थिति कायम किये बिना कोई भी मुक्त हो नहीं सकते हैं, स्वरूप ज्ञान होनेसे ही मुक्ति प्राप्ति होती है, यह निश्चय है॥ १०७॥

साखीः— खसम न चीन्है बावरी * परे पुरुष लौलीन॥
[१५] कहहिं कबीर पुकारिके * परी न बानी चीन्ह॥ १०८॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सबको माननेवाला थापनेवाला, चैतन्य जीव ही सर्वश्रेष्ठ सबका खसम या मालिक, स्वामी है। सो अपने स्वरूपको कि—"मैं जीव ही सत्य हूँ, सबका

जनैया, मनैया हूँ !" ऐसी पारख दृष्टि करके अपने-आपको तो कोई नहीं चीन्हते हैं; और भ्रमिक, पागल या बौराहा हो करके परमतत्त्व-परमात्मा सबसे परे कोई कर्त्ता एक परमपुरुष अपना मालिक मानकर उसीमें तन-मनादि लगा करके लवलीन या तल्लीन हो प्रेम लगा रहे हैं। गुरुवालोगोंने जो ब्रह्म, ईश्वर, खुदाको एक खसम बताया है, सो मिथ्या धोखा है; सो पारख न होनेसे उसे चीन्हते-पहिचानते नहीं हैं। कल्पित परमपुरुषमें ही प्रेमसे मन लगा रहे हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पुकार-पुकार करके यथार्थ निर्णयका उपदेश कहा है कि, विवेक, पारखदृष्टिके बिना रोचक, भयानक, अनुमानकी वाणीको यथार्थ न्याय-निर्णयसे किसी भी प्रकार कोई गुरुवालोगोंको चीन्ह नहीं पड़ी। और पारखी सन्त गुरुमुख वाणी सारशब्दका उपदेश भलीभाँति समझा रहे हैं, तथापि पक्ष छोड़कर विचार किये बिना यह किसीको समझनेमें नहीं आता है। चारमुखकी वाणीके भेदको चीन्हे बिना जीव भ्रम-भूलसे नहीं छूटते हैं ॥ १०८ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी— १ है] ॥ १५. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १५ ॥ ❀ ॥

[लगवारका प्रेम, वाणी-विषयका विरह, शृङ्गारादि वर्णन ।]

१. कनरसकी मतवाली नार * कुटनिनसे खोजै लगवार ॥ १०९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे विषयोन्मत्त व्यभिचारिणी स्त्री मीठी-मीठी बातें सुन-सुन करके मतवाली होकर कुटिनी स्त्रियोंसे परपुरुष खोज कराने लगती है; और पराये पुरुषसे फँस करके व्यभिचार-कुकर्म करने लगती है। तैसे ही सिद्धान्तमें कनरस=कानसे सुननेमें प्रिय लगनेवाली रोचक वाणी, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा स्वर्गादिकी महिमा, चार फल, चार मुक्ति प्राप्तिकी आशा-तृष्णाको पकड़ करके अविचारी नरजीव मतवाले, नाना मत-मतान्तरके पक्षपाती हो, उसीमें मस्त पड़े हैं। कुटनिन=कपटी, कुटिल, धूर्त गुरुवालोगोंसे साठ-गाँठ लगाकर उनके शिष्य-शाखा बनकर कोई एक सर्वोत्तम, सर्व समर्थ लगवार=परमपुरुष परमात्माको मानकर उसीकी नाना उपायसे खोज किये और खोज कर रहे हैं। परमेश्वरसे मिलकर परमानन्द प्राप्त करना चाहते हैं। इसवास्ते बहुविधिसे कर्त्ता पुरुषको बाहर खोजने लगे ॥ १०९ ॥

२. कुटनी आँखिन काजर दीऊ * लगी बतावन ऊपर पीऊ ॥ ११० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब कपटी, धूर्त, गुरुवालोग कुटनी बनकर अबोध मनुष्योंको नाना तरहसे भ्रमाये। विवेक-विचाररूपी नेत्रोंमें कल्पना-धोखाका पर्दा लगा दिये। कायाका पाप जलानेके लिये नाना कर्म-उपासनादि साधना कराने लगे। कोई योगी लोग नेत्रोंको ऊपर उलटाकर खेचरी मुद्रा कराने लगे; और ऊपर ब्रह्माण्डरूप भ्रमरगुफामें, आकाशमें सात स्वर्गादिमें, साकार और निराकार या ज्योतिस्वरूप पिया=परमतत्त्व-परमात्माका बासा बताने लगे। कर्मादि साधना करके मुद्रा लगाकर ध्यान करोगे, तो परमेश्वरका दर्शन तुम्हें होगा, फिर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायगी, इत्यादि कहकर बताने और भ्रमाने लगे ॥ ११० ॥

३. काजर देके होय गई अन्धी * सम्मुखि न परी बातकी सन्धी ॥ १११ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तब सब भावुक मनुष्य गुरुवालोगोंके कहे अनुसार नाना तरहसे आँखोंमें काजर देकर कर्म, भक्ति और योगादिकी साधनाएँ करके तथा खेचरी आदि पञ्च मुद्रा लगा करके ध्यान, धारणा और समाधि लगाने लगे, तो कल्पना-भ्रमको पकड़ करके विवेकरूपी नेत्रको नष्टकर अन्धे, पारखहीन जड़ाध्यासी हो गये; और गुरुवालोगोंने जो रोचक-भयानकादि बात बतलाया, सो उसीको प्रतीत कर लिये। ये तो मिथ्या मानन्दी बीचकी सन्धि, सम्बन्ध, कल्पनाका जोड़ है, सो तो जीवका भ्रम है; यह कुछ भी बेपारखी लोगोंको समझनेमें नहीं आया। उसीमें वे भूले और दूसरोंको भी भुला करके धोखेमें ही पड़े हैं। बिना पारख भ्रम-मानन्दीको ही सत्य समझ लिये हैं ॥ १११ ॥

४. बाजै कुटनी मारै मटकी * ई सब छिनरों तामें अटकी ॥ ११२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कुटनीरूप कुटिल, कपटी, धूर्त गुरुवालोगोंने रोचक वाणीके बाजे खूब बजाया। मुख खोल-खोल करके घूम-घूमकर बहुत वाणी बोल करके नाना उपदेश दृढ़ाया। तन मन, और वचनसे शिष्योंको वाणीका ढेला खूब मारा, हंस देहकी रहनीको फोड़ करके विनाश कर डाला। इधर उन मूर्ख शिष्योंने भी गुरुवालोगोंके उपदेश सुन-सुन करके आकर्षित होकर मटकीरूप शरीरको नाना कष्टकर साधनाओंमें लगाकर मारने, दुःख भोगने लगे, कोईने खेचरी, भूचरी चाँचरी आदि मुद्रा लगा करके मन-बुद्धिको मारा, तब तो नेत्रोंमें पित्तकी गर्मी छा गई, जिससे चम-चम, चिम-चिम, चकाचौंध प्रकाश दिखाई देने लगा। उसीको परम पुरुषका साक्षात्कार वा दर्शन हुआ, ऐसा समझ करके ई सब = अविवेकी मूर्ख जड़ाध्यासी, छिनरों = छिनार लोग बुद्धि भ्रष्ट, अविचारी मनमति होकर व्यभिचारिणी स्त्रीकी नाईं होकर उसी तेज तत्त्वके प्रकाश-भासमें अटके, भटके और लटक गये हैं। कोई स्थूल देहकी सुन्दरतामें आसक्त होकर विषय भोगोंमें अटके। कोई सूक्ष्म देहके भास-अध्यासमें अरुझ गये। द्रष्टा चैतन्य जीवको भास-अध्यासादिसे न्यारा न निकालकर सब बद्ध हुए हैं। कोई बिरले पारखी सन्त ही उससे न्यारे होकर मुक्त होते हैं॥११२॥

५. बिरहिन होयके देह सुखावै * कोई शिरमें केश बढ़ावै ॥ ११३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अविचारी मनुष्य मनःकल्पित खसम ईश्वरादिके विरह-वियोगमें पड़कर दुःखी हुए। 'हाय भगवान् ! कब दर्शन देओगे !' ऐसा कहकर रोने-कराहने छटपटाने लगे। तब भी कुछ कार्य पूर्ण नहीं हुआ, दर्शन नहीं मिला, इससे सत्याग्रहके नामसे दुराग्रह करने लगे। तहाँ विरहिनी नारीके समान हो करके अन्न-जलादि खाना-पीना भी छोड़कर शरीरको सुखाने लगे। कृशकाय या दुबला-पतला हो कमजोर होने लगे। शीतोष्ण, क्षुधा, तृषादिको सहन करके महान कष्ट भोगते हुए देह सुखाते-सुखाते अस्थि-पञ्जर मात्र रह गया, रोते-रोते आँखें भी सूज गयीं; फिर मूर्च्छा खा करके बेहोश हो गये। होश आनेपर 'हाय पिया ! हाय पिया !' ऐसा कहकर चिल्लाते हैं। इसीतरह नरजन्म व्यर्थ ही बिता करके मर-मर कर चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं। कोई-कोई तो भगवान्को रिझानेकी आशासे शिरमें केशको ही बढ़ाने लगे। जटाजूट बनाकर सँवारने लगे। होड़ लगा लिये कि, देखें किसकी जटा बड़ी होती है, तेरी कि, मेरी। राम-लक्ष्मणने भी जब वनवासमें गये थे, तब जटा बढ़ाया था, तैसे ही रामोपासकको भी जटा रखनी चाहिये, ऐसे कहकर जटाके पक्षपाती हुए हैं। फिर जटावत् सब दुर्गुण, विकार भी उनके मनमें खूब बढ़ा, उसीमें वे लटापट हुए। महान दम्भी ठग हुए, निजपदसे गिर गये हैं॥ ११३ ॥

६. मानि मानि सब कीन्ह सिङ्गारा * बिनु पिया परसे सबै अङ्गारा ॥ ११४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बिना विवेक मिथ्या मानन्दी कर-करके ब्रह्म, ईश्वर, देवी-देवता, भूत-प्रेतादिकोंको भ्रम-कल्पनासे सत्य मान-मान करके उन्हें मनमाने इष्टदेवरूप पति ठहराये हैं। फिर उस परमपुरुषको रिझाने, खुश करानेके लिये मनभावनि शृङ्गार षोड़शोपचारसे कर लिये। तहाँ उन्होंने— १. कान फड़ाया, २. रुद्राक्ष माला, ३. कण्ठी, ४. नाना तरहका तिलक लगाया, ५. भस्म रमाया, ६. केश बढ़ाया, ७. भगुवा वस्त्र पहिना, ८. मूड़ मुड़ाया, ९. चित्र-विचित्र कफनी पहिना, १०. दण्ड, ११. कमण्डलू, १२. मृग-चर्म, १३. व्याघ्रका चर्म लिया, रुण्ड-मुण्डकी माला पहिना, १४. कड़ा, १५. कङ्कण लगाया, दाढ़ी-मोंछ लम्बी-लम्बी बढ़ाया, १६. मुखमें पट्टी बाँधा; इसप्रकार षोड़श शृङ्गार किया; और भी कई तरहसे देहको सजा करके बहुरूपिया बने। परन्तु, माना हुआ पिया-परमात्मा तो किसीको भी नहीं मिलता है या नहीं मिला है। इसीसे सब नरजीव अनुमान, कल्पनाकी अग्निमें जल मरे, सब शृङ्गार जीवको जला करके जड़ाध्यासी करानेवाला अङ्गारकी नाईं हुआ; और जीवोंको सत्य बोधदाता सच्चे मालिक, पारखी श्रीसद्गुरुके दर्शन-सत्सङ्ग प्राप्ति हुए बिना निजस्वरूप पारखका

बोध किसीको भी नहीं हुआ। अतएव जीतेतक विषयाग्नि, कल्पनाकी अग्निमें जलकर खाक हो गये। उनकी सब करनी उन्हें ही जलानेवाली हुई। फिर देह छूटनेपर सब चौरासी योनियोंकी गर्भाग्निमें जलकर पीड़ित हुए या दुःखी हो रहे हैं। बिना पारख नष्ट-भ्रष्ट हुए। इसलिये पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें ही सदा लगे रहना चाहिये ॥ ११४ ॥

साखीः— अटकी नार छिनार सब * हरदम कुटनी द्वार ॥
[१६] खसम न चीन्है बावरी * घर घर फिरत खुवार ॥ ११५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! छिनार स्त्री सब व्यभिचार, बदमाशी, कुकर्ममें ही अटक और भटक करके हमेशा कुटनी-चुडैलके ही द्वारमें बैठा करती है या हरवक्त अपने द्वारमें कुटनीको लगाये रखती है। उसके द्वारा परपुरुषोंसे मिला-जुला करती है। वह पगली हो गई; अपने विवाहिता पतिके साथ रहनेमें ही फायदा होगा, यह तो वह कुछ पहिचानती ही नहीं है। पराये पुरुषोंके घरोंघर फिरकर बदमाशी करके खराब होती है। फिर राँड़-पातुरी निकम्मी हो जाती है। तैसे ही सिद्धान्तमें नार=अनाड़ी जीव, छिनार=अविचारी मूर्ख, हठी, पक्षपाती होकर सब कोई मनुष्य लोग खानी जाल और वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादिके कल्पित वाणी जालोंमें जहाँ-तहाँ अटक गये वा अरुझ गये। आशा, तृष्णा, लोभ, मोह, लालचादिको पकड़कर हरदम या हरवक्त कुटनी=कुटिल, कपटी, धूर्त गुरुवालोगोंके पास उनके शरणमें लौ लगाये रहते हैं। गुरुवालोगोंके द्वारा जैसे-जैसे उपदेश सुने, वैसे-वैसे नाना साधनाएँ करनेमें लगे हैं। कपट जाल पाखण्डोंमें ही फँसे पड़े हैं। ठग लोगोंसे ही हमेशा प्रेम लगा रहे हैं। अबोध मनुष्य ऐसे पागल, भ्रमिक, अविवेकी, बावले हो गये हैं कि, सबका खसम, सर्वश्रेष्ठ निज चैतन्य जीवको पारख दृष्टिसे देख करके "मैं हंस जीव सत्य हूँ !" ऐसा चीन्हते-पहिचानते तो नहीं हैं; और पारख बोधदाता श्रीसद्गुरु साहेब जो मुमुक्षुके खसम हैं, उन्हें भी वे नहीं चीन्हते हैं, वाणी-कल्पनामें लग करके दिवाने हो गये हैं। नाना मतवादके सिद्धान्तकी स्थितिमें फिरते-फिरते या घट-घट व्यापक आत्मा एक मान करके खराब जड़ाध्यासी हो रहे हैं। इसकारण हंसपदसे पतित होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े हैं, वहाँ घर-घर=अनेकों घटरूप नाना योनियोंमें देह धरते-छोड़ते, घूमते-फिरते, खराब, परम बेहाल हो आवागमनादिके असह्य दुःख भोग रहे हैं, बिना पारख ॥ ११५ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी— १ है] ॥ १६. रमैनी ॥ खण्ड — ॥ १६ ॥ ❀ ॥

[बावन वर्णरूपी वाणी भूतका प्रबलता वर्णन ।]

१. नौ दरवाजा भरम विलास * भरमें बावन बहै बतास ॥ ११६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! निजस्वरूपकी पारख स्थिति न पा करके मनुष्य लोग योगी, ज्ञानी, भक्त और विषयी आदिक बने हैं। तहाँ भोगी और योगी लोग भ्रमसे नव द्वारोंमें विलास करने लगे। सो देहमें नव दरवाजारूप नव द्वार निम्न हैः— दो कानोंके छिद्र, दो नाकके छिद्र, दो नेत्रोंके द्वार, मुख, लिङ्ग और गुदा, इन्हीं नव द्वारों द्वारा भोगी लोग अधर्ममें विषय विलास करने लगे; और योगी लोग ऊर्ध्वमें प्राण चढ़ा करके शून्य समाधि लगाकर आनन्द-विलास करने लगे। वह दोनों जीवोंको भटकानेवाला, सत्यसे दूर ले जाकर धोखेमें डालनेवाला होनेसे मिथ्या भ्रम मात्र है; और लिङ्ग देहके नव तत्त्व, पृथ्वीके नव खण्ड, वाणीके नव व्याकरण, नव कोश, नव ग्रह, नवधाभक्ति, नव निधि, इत्यादि नव-नव भागके बाह्य दरवाजोंका विलास भी सब भ्रम-भूलकी भटकना ही है। बिना पारख सब उसीमें लगकर भ्रमित हो रहे हैं। इसतरह जब नरजीव भ्रमे, तो उनचास पवन चली; उनमें शीतल, मन्द और सुगन्ध— ये तीन वायु मिलाकर बावन बतास खूब जोर-शोरसे बहीं। सो उसीसे बावन अक्षरकी वाणी बनाया है; फिर वासनानुसार मत, पन्थ, सिद्धान्तोंको कायम करके उसी वाणी कल्पनाके बतासमें सब उड़ गये, तो जहाँ-तहाँ भ्रम-

धोखेमें ही गिर पड़े, स्वरूप स्थिति नहीं हुई; और सब जीव वासनासे उड़-उड़ करके चौरासी योनियोंमें जाकर पड़े हैं, बिना विवेक ॥ ११६ ॥

२. कनउज बावन भूत समान * कहल गाँव सो प्रथम उड़ान ॥ ११७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई बावन भूत = बावन अक्षरोंसे बनी हुई वाणी-कल्पनाका भ्रम-भूत, ब्रह्मकी मानन्दी पहले गुरुवालोगोंके अन्तःकरण तथा मुख द्वारा निकल करके आयी; तो यहाँ शिष्य लोगोंके कनउज = कान द्वारा भीतर प्रवेश करके उजबुजाने लगी; मनमें सङ्कल्प-विकल्प होने लगा, उस बौना भूतरूप ब्रह्मका भ्रम हृदयमें जाकर समाया, तो सम-समान व्यापक ब्रह्म मान लिये। गुरुवालोगोंने उसीको परिपुष्ट करके कहा कि— हे शिष्यो ! यह गाँवरूप संसारमें एक ही परमतत्त्व परमात्मा अद्वैत सत्य है। सो प्रथम शुरूमें ब्रह्मादि, सनकादि लोग ब्रह्मज्ञानसे उड़-उड़ करके ब्रह्म स्थितिको प्राप्त हुए हैं। फिर व्यास, शुकादि उड़-उड़ कर वहाँ पहुँचे। सो तुम लोग भी वेद-वेदान्तके वाक्यको दृढ़ प्रतीति करके परमहंस दशाको धारणकर 'अहं ब्रह्मास्मि'की उड़ान भरकर उस गाँवमें पहुँच जाओ, स्वयं ब्रह्म बनो, इत्यादि भ्रमका कथन किया। उसे सुन-सुनकर मनुष्य सोई प्रथम नर देहके भास ब्रह्म अनुमान तक उड़ान भरकर गये, धोखेमें पड़े। इसतरह जो वाणी गुरुवालोगोंने कही वा गायी, सोई उनके मुखसे निकलकर उड़ती हुई बावन वर्णका भूत बनकर कानमें प्रवेश करके हृदयमें समा गयी, उसने सबको भ्रमाया वा भुलाया है ॥ ११७ ॥

३. माया ब्रह्म जीव अनुमान * मानतहीं मालिक बौरान ॥ ११८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! आदिमाया वा आद्या-अचिन्त्यशक्ति, अनिर्वचनीय महामाया तथा मन, बुद्धि और वाणीसे परे परब्रह्म, परमात्मा निर्गुण-निराकार व्यापक कर्त्ता है, ऐसा माना है। सो माया और ब्रह्म दोनों ही भ्रमिक नरजीवोंकी मिथ्या अनुमान-कल्पना है। अपनेसे भिन्न कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादिको जगत्पति श्रेष्ठ सर्वाधार मानते ही अपने हंसपदका निर्णय छूट गया। इसलिये मानन्दीका स्वरूप स्वयं ब्रह्म बन करके सब कल्पनाके मालिक नरजीव बौरा गये; पागल-भ्रमिक गाफिल हो गये। अथवा अपनेसे भिन्न कोई सर्वशक्तिमान् शिव-शक्तिका अनुमान करके अपनेको भूलकर मानन्दीमें लगकर जीव पागल हो गये। इसीसे कोई एक मालिक परमेश्वर मानकर जहँड़ा गये हैं ॥ ११८ ॥

४. अकबक भूत बकै परचण्ड * व्यापि रहा सकलों ब्रह्मण्ड ॥ ११९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वह वाणी-कल्पनाका भ्रम-भूत बड़ा जबर्दस्त है। वह भूत जिसके शिरपर चढ़ जाता है, उसे सत्यासत्य, जड़-चैतन्य एवं तीन कालका कोई भान ही नहीं रह जाता है, मनमें जैसा आवे, वैसा बकवाद करने लग जाते हैं। शराबकी नशासे भी बढ़कर वाणीकी नशा तेज होती है। अकबक = बेठिकानकी बात- अक्क, बक्क, झक्क, अल्ल, बल्ल, कल्ल, चिल्ल-चिल्ल, इनमें जैसे कोई भी अर्थ नहीं है, व्यर्थका बकवाद है, तैसे ही—"तत्त्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, एकमेवाद्वितीयं-ब्रह्म, ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः" इत्यादि वाणी भी अनर्थ बकवाद ही किया है। परन्तु, भ्रम-भूतकी वायुरूप वाणीका पक्ष जिसे दृढ़ हो जाता है, सो प्रचण्ड या तीक्ष्ण रीतिसे मनमाने वैसा बकने लग जाता है। अपने-अपने सिद्धान्तको हरतरहसे पुष्ट करते हैं। सारे संसारमें खानी-वाणीका विकार ही व्याप्त हो रहा है। ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं— "पिण्ड-ब्रह्माड सकल ठौरमें एक परब्रह्म ही ओत-प्रोत, परिपूर्ण व्यापक हो रहा है। कहीं अणुमात्र भी जगह खाली नहीं है।" इसतरह वही वाणीकी विकार-कल्पना घटोंघटमें भरी पड़ी है। बिना पारख सब धोखेमें गोता लगा रहे हैं ॥ ११९ ॥

५. ई भ्रम भूतकी अकथ कहानी * गोतै जीव जहाँ नहिं पानी ॥ १२० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भूत-प्रेत, ब्रह्म-ईश्वर, देवी-देवतादि मानना सब

भ्रम-कल्पना मिथ्या है। परन्तु, सो यही भ्रम-भूत=मिथ्या वाणीकी कल्पना, जो भ्रम करके उत्पन्न हो गयी है, बीत गयी है, नाश हो गयी है, सो उसकी कहानी=इतिहास, कथा भी कहने लायक नहीं है। अकथ=अवर्णनीय कहकर कथन किया है। जिस ब्रह्मज्ञानकी महिमा अद्वैत सिद्धान्तकी वाणी सुन-सुन करके दृढ़ निश्चय कर जहाँ पानी नहीं, जलकी एक बून्द भी जहाँ ठहर नहीं सकती है, वहाँपर मन, बुद्धि और वाणीसे परे अवाच्य, निरीह, निरञ्जन, निराकार, परब्रह्मकी स्थिति मानकर भ्रमिक लोग गोता लगाते और लगवाते हैं। सो तो धोखा है, धोखेमें गोता लगाकर जड़ाध्यासी हो गर्भमें जाकर डूबते हैं, नाना दुःख भोगते रहते हैं ॥ १२० ॥

६. तनिक तनिक पर बौरे दौरा ❀ जहाँ जाय तहाँ पावै न ठौरा ॥ १२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—हे सन्तो! अविवेकी मनुष्य खानी-विषय और वाणी-कल्पनाकी जहर खाकर बौरा गये; बुद्धिहीन भ्रमिक पागलवत् हो गये। अब थोड़ी-थोड़ी बातोंमें भी वे चौंककर दौड़ने लगे, भागाभाग करने लगे। तनिक रोचक-भयानकादि वाणी सुनी, तनिक मिथ्या भास प्रगट हुआ, बाजीगरी तमाशावत् कुछ चमत्कार गुरुवालोगोंने दिखाया और सुनाया कि, अब क्या पूछते हो! अन्धाधुन्ध दौड़ पड़े, गुरुवालोगोंके पीछे पड़े। जहाँ गये वहीं हैरान हुए, फिर तो बड़े आफतमें पड़ गये। भालूके कम्पट—"पकड़ना न छोड़ना" हो गया। संसारमें स्त्री-पुत्र, परिवार, धनादिमें गये, वहाँ भी इच्छा पूर्ति उनकी नहीं हुई। उधर भक्ति, योग, ज्ञान, विज्ञानादिमें गये, तो वहाँभी गाफिल हुए। जहाँ गये, वहाँ ठौर-स्थिति पारखबोध मुक्तिपद नहीं पाये, बन्धनमें ही पड़े रहे। ब्रह्मानन्द और विषयानन्दादिकी जरा-जरा-सी चाट लगी कि, बौरे लोग बौरा करके उधर ही दौड़ पड़े। नरजीव स्त्री और गुरुवालोगोंके घेरामें जहाँ भी जाते हैं, तहाँपर ही जहँड़ा जाते हैं। निजस्वरूपकी पारख स्थिति नहीं पाते हैं। इसवास्ते जड़ाध्यासी होकर भवचक्र, गर्भचक्रमें ही पड़ जाते हैं। अतएव जिज्ञासुओंने पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगकर भ्रम-भूलको हटाकर जीवन सफल कर लेना चाहिये ॥ १२१ ॥

साखीः— योगी रोगी, भक्त बावरा ❀ ज्ञानी फिरै निखट्टू ॥

[१७] संसारीको चैन नहीं है ❀ ज्यों सरायका टट्टू ॥ १२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! समस्त संसारमें सकल जड़ाध्यासी जीवोंकी वासा चारखानीकी अनेकों योनियोंमें हो रही है। उन सबमें मनुष्य खानी कर्मभूमिकाके नाते सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्योंमें भी पुरुषवर्ग उत्तम हैं। समस्त विश्वके नरजीव चार श्रेणीके भीतरमें आ जाते हैं। सो वे योगी, भक्त, ज्ञानी और संसारी-विषयी कहलाते हैं। परन्तु, उन चारोंको स्वरूप ज्ञान पारखका बोध न होनेसे बद्ध हो चौरासी योनियोंके अधिकारी ही हुए या हो रहे हैं। यही बात इस साखीमें संकेत करके दिखलाये हैं। सो कैसे कि, सुनिये!— १. पहले योगियोंको तो आप रोगियोंके समान ही जान लीजिये! क्योंकि, योगी लोग योग साधना करनेमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इन अष्ट अङ्गोंको पत्थ्य-परहेजकी नाईं खूब सावधानीसे पालन करते हैं। फिर संयम रखकर थोड़ा खाना, थोड़ा पीना, थोड़ा चलना-फिरना, थोड़ा मिलना-जुलना, थोड़ा बोलना, थोड़ा सोना, सदा लक्ष्य एकाग्र किये रहना, ऐसा हिसाब रखते हैं; और नेती, धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जल, न्योली, त्राटक आदि क्रियाओंको भी नित्यप्रति साधते रहते हैं। दश मुद्रा लगाना, अष्टाङ्ग योगादिको साधना, शीतोष्ण सहन करना, भूख-प्यासादिको रोकना, षट्चक्र वेधन करना, इत्यादि करते-करते रोगीके समान हाय! हाय! करते कराहते, आशा-तृष्णामें नर-जन्मको व्यर्थ बिता देते हैं। अन्तमें मरण, जन्म और गर्भवासके गालमें समा जाते हैं। शून्य सुषुप्ति, मूर्च्छावत्, शून्य समाधि लगाकर गाफिल होते हैं। इसलिये योगीजन दीर्घकालके रोगीके समान हुए हैं॥

२. दूसरे भक्तोंको बावले या पागलके समान ही जानिये! क्योंकि, भक्तजन दूसरा, कर्त्ता

ईश्वर, इष्टदेव मान करके उसको रिझानेके लिये सगुण-निर्गुण, उपासना, नाम-स्मरण, अष्ट प्रतिमा पूजा, मानसिक पूजा, नवधा भक्ति, प्रेमलक्षणा भक्ति, नाचना, रोना, गाना, चिल्लाना, ताल ठोंकना, दौड़ना, चारधाम-चौंसठ तीर्थोंमें जाना, जप, तप, व्रत, उपवास करना, अनेकों देवी-देवताओंको मानना, विचित्र भेषका रूप बनाना, स्त्रीस्वभाव धारण करना, विरह-वियोगमें व्याकुल रहना, इत्यादि प्रकारसे भक्त लोग पागलके समान ही बर्ताव रखकर मनुष्य जन्मको व्यर्थ बिता देते हैं। तब भला! उनको सत्य स्वरूपका बोध कहाँसे होवे? दिवानेकी नाईं उन्होंकी भी दुर्गति होगी, ऐसा जानिये ॥

३. तीसरे ज्ञानी लोग तो निखट्टू=किसीकी बात न माननेवाले मनमति आवाराके समान ही इधर-उधर घूमते-फिरते रहते हैं। क्योंकि, ब्रह्मज्ञानियोंने एक ही अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त दृढ़ निश्चय कर लिया है। अपने-आप स्वयं ही ब्रह्म बन गये हैं, इसवास्ते विधि-निषेध वे कुछ भी नहीं मानते हैं, पाप-पुण्य, शुद्ध-अशुद्ध, हित-अहितादि कुछ भी वे ठीक-बेठीक नहीं समझते हैं, भक्षाभक्ष, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, उचित-अनुचितका विचार वे कुछ भी नहीं करते हैं, परमहंस बन बाल, पिशाच, मूक, जड़, उन्मत्त दशाको धारण करके मनमाने जहाँ-तहाँ मस्तीसे निखट्टू, बेधड़क, निस्संकोच पशुवत् घूमते ही फिरते रहते हैं। अब कहिये! उन्होंको निजस्वरूकी ज्ञान और स्थिति कहाँसे होवे? कदापि हो नहीं सकती है ॥

४. अब चौथा नम्बरमें संसारी विषयासक्त लोग बाकी रहे हैं; उन्हें तो भाड़ेके टट्टूके समान ही कभी भी चैन नहीं मिलता है, ऐसा जान लीजिये! क्योंकि, संसारी लोग घर-गृहस्थीके झंझट, उपाधिमें लगे हुए हैं। वहाँपर माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुत्र, कुटुम्बी, नाता-गोता, इज्जतका सवाल है। धन-सम्पत्ति कमाने, परिवारके भरण-पोषण करनेके लिये नौकरी, चाकरी, वाणीज्य-व्यापार, किसानी, कारीगरी, हुनर इत्यादिसे धन्धा करनेमें मरे जाते हैं, देश-विदेश जा करके नाना तरहकी मिहनत-मजदूरी करके अनेकों कष्ट भोगते हैं; चिन्ता-फिक्र, परेशानी, आधि-व्याधि, उपाधि आदिके नाना क्लेशमें झुलसा करते हैं। जैसे सराँयका टट्टू भाड़ा कमानेवालोंके हाथमें पड़ा, तो इधर शहरके धर्मशाला, धरादिसे सवारीका बोझा बैठा करके स्टेशनमें पहुँचाया, फिर उधरकी सवारी, मुसाफिरोंको ताँगेमें बैठाकर शहरमें लाया। इसीतरह दिन-रात बीत जाते हैं; खानेको पेटभर भी नहीं पाता है। ऐसे-ही-तैसेमें वह मर जाता है। तैसे ही गृहस्थ लोग बाहर मिहनत करके घर आये, फिर घरका काम किये; और बाहर मजदूरी करने गये, इसतरह सारा जन्म बिता देते हैं। पूर्वके कर्म फल भोग अभी भोग रहे हैं और अभी नया कर्म बना रहे हैं। खानीसे वाणीमें जाते हैं, और वाणीसे उलट करके फिर खानी जालमें ही आकर बद्ध होते हैं। कभी भी पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाकर भव-बन्धनोंसे छूट करके मुक्त होनेका सद्विचार, सत्प्रयत्न नहीं करते हैं। इसप्रकार दीर्घरोगी बनकर योगी लोग, पागल वा सनकाहा बनकर भक्त लोग तथा मनमति निखट्टू बनकर परमहंस ज्ञानी लोग, ये तीनों झीनी माया वाणी-जालमें अरुझे पड़े हैं; और संसारी पामर वा विषयी विषयासक्त लोग भाड़ेके टट्टूवत् होकर मोटी माया—स्त्री, घर-गृहस्थीमें फँसे पड़े हैं। उन्हें कभी चैन, शान्ति, सन्तोष ही नहीं होता है। इसवास्ते पारखबोधके बिना वे सब-के-सब जड़ाध्यासी हो आवागमनके चक्रमें ही पड़े हैं। कोई बिरले ही पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें आ करके पारख बोधको प्राप्तकर खानी-वाणीके जालोंसे निकलकर मुक्त होते हैं ॥ १२२ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ११ । साखी— ५ है] ॥ १७. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १७ ॥ ❀ ॥

[वाणी भूतसे पीड़ित लोगोंकी महा दौड़ और दुर्दशा आदिका वर्णन।]

१. इत उत दौरे सब संसारा * छुटै न भरम कियो उपचारा ॥ १२३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जैसे रोगी लोग रोगसे व्याकुल हो करके संसारमें इधर-उधर सब वैद्य, हकीम, डाक्टरोंके पास दौड़े-दौड़े चले जाते हैं। तहाँ औषधि

सेवनादिका उपचार करनेपर भी यदि रोग न छूटे, तो असाध्य रोग होकर दुःख पाते हुए मर भी जाते हैं। तैसे ही सब संसारके जीवोंको अज्ञान, ज्ञान और विज्ञान आदिका रोग लगा है, इससे सब मनुष्य जीव परम दुःखी हो रहे हैं। वह दुःख मिटानेके लिये भव-बन्धनोंसे छूटनेके लिये संसारमें सब मनुष्य इधर खानी-जाल या पिण्डाण्डमें, उधर वाणी-जाल या ब्रह्माण्डमें दौड़े, स्त्री और गुरुवालोगोंके पासमें गये, विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादिकी चाहना करने लगे। उसके लिये मिहनत, मजदूरी, पुरुषार्थ तथा कर्मादि अनेकों साधनाएँ भी करने लगे। ऐसे उपचार, प्रयत्न, मेल-मिलाप गुरुवालोगोंके उपदेशरूप औषधि सेवन, नियम पालन भी बहुत-बहुत किये, तथापि भ्रम-भूल, कल्पना, अध्यास-आसक्ति बिना पारख किसीकी नहीं छूटी, और छूटनेवाली भी नहीं है। विषयका भ्रम तथा ब्रह्म, ईश्वर, देवी-देवता, सात स्वर्गलोकादि, ऋद्धि-सिद्धि, करामात मन्त्र-सामर्थ्य आदि यही सब महान भ्रम-भूलमें सब मनुष्य लोग पड़े हैं। वेद, पुराण, कुरान आदि वाणी भी बहुत बनाये, तो भी कोई भ्रमसे नहीं छूटे; बिना पारख सब जीव बन्धनोंमें ही जकड़े पड़े हैं ॥१२३॥

२. जारे जीवको बहुरि जरावै ❀ काटे ऊपर लोन लगावै ॥ १२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, साखी-७१में कहा है कि—

साखीः— "धौंकी डाही लाकड़ी, वो भी करे पुकार ॥ अब जो जाय लोहार घर, डाहै दूजी बार ॥"

इसी प्रमाणसे यहाँपर कहते हैं— एक तो जीव स्वयं ही प्रथमसे निज स्वरूपको भूल करके जड़ाध्यासी हो आवागमन, त्रिविधि तापमें सन्तप्त होकर जल रहे हैं; विषय बन्धनोंमें पड़कर नाना दुःख भोग रहे हैं। विषयाग्नि, गर्भाग्निमें जारे हुए अबोध जीवोंको चार फल, चार मुक्ति आदिका आशा-भरोसा देकर दुष्ट गुरुवालोग फिर भी प्रज्ज्वलित कल्पनाकी अग्निमें जलाते हैं। सुखकी आशासे उन्होंको शरणमें गये; परन्तु, नाना साधनाओंमें लगाकर असह्य दुःख भोगाते हैं। अध्यासी जीवोंको और भी भ्रमिक जड़ाध्यासी बनाते हैं; और फिर जैसे किसीका अङ्ग कट गया, तो वहाँपर जाड़नवाला ठण्ढक मलहम-पट्टी लगानेके बदले नमक-मिर्चा और खटाई लगा देवे, तो असह्य वेदना भागेगा, यह दुश्मनीका काम हुआ कि, नहीं ? तैसे ही विषयासक्तिकी छुरीने जीवोंके हंसपदको काटा है; मनमें जड़ाध्यासकी दरार पड़ गई है; मुक्तिसे फट गये हैं। उन्हें पारख बोध देकर शान्त करनेके बदले उलटा और लोनरूप अनुमान-कल्पनामें ही लगाते हैं। भक्ति, योग, और ज्ञानके उपदेश दृढ़ा करके भ्रम-भूलमें ही लक्ष्य वा प्रेम लगाते या लगवाते हैं। इसवास्ते पारखी श्रीसद्गुरु मिले बिना नरजीवोंको सुख-शान्ति मुक्ति कहींपर भी नहीं मिलती है, सब तरफ दुःख ही पाये हैं या नाना तरहसे दुःख पा रहे हैं ॥ १२४ ॥

३. योगिनकी ऐसी हाल बनाई ❀ उलटी बत्ती नाक चलाई ॥ १२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई कर्ममें भ्रमे, कोई उपासनामें दिवाने हुए। और कोई योगी लोगोंने तो ऐसा हाल बनाया कि, निज-पर जीवोंकी दुर्दशा ही कर डाली है। योग साधना करनेके लिये षट् क्रियाओंमेंसे पहले नेती क्रिया सिद्ध करनेके लिये नाकमें उलटी-बत्तीको चलाया। पतला कपड़ा या सूतकी बारह अंगुल लम्बी और पाव अंगुल उतनी चौड़ी बटकर गोल बत्ती बना करके उसमें मोम लगाकर अरड्ड कड़ा बनाते हैं; और अंगुलभर चौड़ी, बिलास-भर लम्बी उसके नीचे कोरा कपड़ा रहता है। वही नेतीकी बत्तीको नाकके छिद्रमेंसे डालकर गलेके पास निकालकर फिर मुखमें हाथ डाल करके उसे बाहर निकाल लेते हैं। इसीतरह दोनों नासिकाके छिद्रसे उसे डाल करके मुखसे निकालकर साफ करते हैं; और फिर धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जल, न्योली, त्राटक आदि क्रिया भी सब उलटी-ही-उलटी करके साधते हैं। पश्चात् षट्चक्र भेदन करके पञ्च प्राणको उलटा करके ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर शून्य समाधि लगाकर गरगाफ हो जाते हैं। ऐसी-ऐसी कठिन साधनाएँ करनेमें योगी लोग जीवको बेहाल करते हैं ॥ १२५ ॥

४. कोई विभूति मृगछाला डारै * अगम पन्थकी राह निहारै ॥ १२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई तपस्वी बने हैं, वे लोग शरीरभरमें शिरसे पैर तक विभूति रमाने लगे। यानी राख लपेट करके भूरे कोहँड़ेकी नाईं वा गधे सरीखे धमधूसर हो जाते हैं। उसपर मृगछाला काँधपर डाले हुए, बाघम्बर पहिने, त्रिपुण्ड्र-तिलक, रुद्राक्ष माला लगाये, जटाजूट बाँधे, सर्पके केचुली लटकाये, मृगचर्मको बिछाकर उसपर बैठकर आँखें मूँदकर ध्यानी होनेका स्वाङ्ग या ढोंग करते हैं, वे बगुला-भगत ही होते हैं। जिसका कोई गम ही नहीं है, सो अगम, अगोचर, अपार, अथाह माना हुआ परमतत्त्व-परमात्माका दर्शन पानेकी आशाएँ लगाकर योगाभ्यास करके रास्ता देखते रहते हैं। कब परमेश्वर मिलेंगे ? कब मनोकामना पूर्ण होगी ? कब सिद्धि मिलेगी ? इसीके लिये नाना साधनाएँ करके रास्ता देखा करते हैं, बिना विवेक मिथ्या धोखेमें ही भूले पड़े हैं ॥ १२६ ॥

५. काहूको जल माँहि सुतावै * कहरत ही सब रैन गमावै ॥ १२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई हठी लोग हठयोगादिकी साधनाएँ करते और कराते हैं। तहाँ किसीको पौष-माघकी ठण्ढीके दिनोंमें गङ्गादि नदियोंमें मचान बाँधकर सुलाते हैं। उसे जलशयन करना कहा है। दिनभर वा रातभर उन्हें जलमें ही सुलाये रहते हैं। बह न जाय, उसके लिये रस्सीसे देह बाँधे रखते हैं। ठण्ढीसे उनका सारा शरीर अकड़ जाता है, शीत हवाकी चोट तलवार प्रहारके समान लगती है। असह्य वेदना होने लगती है। सारी रात कहरते हुए हूँ ! हूँ ! ओफ् ! ओफ् ! चिल्लाते हुए बिता देते हैं; सबेरे तक वे मूर्च्छित भी हो जाते हैं। फिर शिष्य लोग उन्हें उठाकर लाते हैं, तब फिर परिचर्या करके ठीक करते हैं। अग्निमें सेंककर तेल लगा करके उन्हें दुरुस्त करते हैं। ऐसे ही बार-बार जलशयन करते हुए वे दुःख ही भोगा करते हैं। कोई पञ्चाग्नि वा चौरासी धुनी गर्मीके दिनोंमें तापते हैं। वर्षामें खुले मैदानमें बैठकर भींजते रहते हैं, इत्यादि अनेकों प्रकारसे तपस्वी लोग कष्ट-क्लेश पाया करते हैं। बिना पारख धोखेसे वे छूट नहीं पाते हैं ॥ १२७ ॥

६. भक्ति नारि सब कीन्ह सिङ्गारा * बिनु पिया परचै सबै अङ्गारा ॥ १२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनाड़ी लोग भक्त बने, तहाँ कोई एक परमपुरुष-परमात्माका अनुमान दृढ़ करके नारी भावको धारण कर लिया। उन्होंने नवधा वा दशधा भक्तिमें प्रेम लगाकर सोलहों शृङ्गार खूब किया। कोई भक्तने तो हूबहू स्त्रीकी ही भेष सर्वाङ्गमें पहिर लिया। भक्तिमति नारी बन सबोंने विधिवत् उपासनाका शृङ्गार धारण किया। परन्तु, माना हुआ पिया = परमेश्वर तो मेरी ही कल्पना, मिथ्या भ्रम है, और मानन्दी कर्त्ता मैं जीव ही सत्य हूँ, ऐसा यथार्थ परिचय या पहिचान हुए बिना सब विरहाग्निमें जल मरे। उनकी सब साधनाएँ कर्त्तव्य जलानेवाली प्रज्ज्वलित अग्नि या अङ्गारकी नाईं हुई; और जीवन हितकारी पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गकी चिन्हारी पारखका बोध हुए बिना सब कोई विषय और कल्पनादिके अङ्गारमें जल रहे हैं, जड़ाभ्यासी बद्ध हो रहे हैं ॥ १२८ ॥

७. एक गर्भ ज्ञान अनुमान * नारि पुरुषको भेद न जान ॥ १२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई कितने अनेक मनुष्य तो वेद-वेदान्त पढ़ करके अनुमान प्रमाणसे ब्रह्मज्ञानका दृढ़ निश्चय करके "एकोहं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" ऐसा कहकर एक अद्वैत ब्रह्मका गर्भ = निरञ्जन अभिमान या सूक्ष्म अहङ्कारको पकड़ लिया। प्रकृति-पुरुषका भेद तो उन्होंने कुछ भी नहीं जाना। ज्ञान स्वरूपी जीव ही सत्य है, माना हुआ एक ब्रह्म मिथ्या है। जड़ पाँच तत्त्व सोई नारीरूप प्रकृति है, अनन्त देहधारी चैतन्य जीव सोई सच्चे पुरुष हैं। जड़-चैतन्यसे भिन्न दूसरा कोई प्रकृति-पुरुष और ब्रह्म नहीं है, जगत् अनादि है। अज्ञानी नरजीवने

ही स्वयं नारी भाव धारण करके कोई ईश्वर-पुरुष कल्पना की है, सो तो भ्रम-भूल है। बिना पारख यह भेद उन्होंने कुछ भी नहीं जाना, इसलिये वे भूले रहे ॥ १२९ ॥

८. संसारी कहुँ कल न पावै * कहरत जगमें जीव गमावै ॥ १३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब परमार्थी कहलानेवालोंका ही कहीं ठिकाना नहीं लगा, तब संसारी लोग कहाँसे पार पावेंगे ? संसारी विषयी लोग तो स्त्री, पुत्र, धनादिके संशयमें तथा ईश्वर, देवी-देवता, स्वर्ग-नरकादिके सन्देहमें डूबे पड़े हैं। खानी-वाणीमें कहीं भी जाकर वे संशय ग्रसित नरजीव कभी कहीं जरा भी कल=विश्रान्ति, शान्ति, सन्तोष, चैन, आराम नहीं पाते हैं; झीनी-मोटी मायाके जालोंमें ही अरुझते, सन्तप्त होते, नाना दुःख पाते, कराहते, पुकारते, छटपटाते, मरते, गर्भमें जाते, जगत्में जन्म लेकर आते, इसीतरह सदैव जन्म और जीवनको व्यर्थ ही गमाते हैं या बिताते हैं। कभी सुखपूर्वक रह नहीं पाते हैं ॥ १३० ॥

९. चारि दिशा सो मन्त्री झारे * लिये पलीता मोलना हारे ॥ १३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इस राजधानीरूप संसारमें जीवरूप राजाको विषयासक्ति तथा भ्रम-भूत वाणी-कल्पनाने आ घेरी, वह शिरपर चढ़ी, तो अकबकाने लगे। तब मनरूप मन्त्री और पण्डित गुरुवालोग योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मी लोग ओझा बने। चार दिशारूप संसारमें बैठ करके चार वेद, चार कितेबकी झाड़ू ले करके भ्रम-भूतको झारने, शान्त करने, उतारने लगे; और हाथमें जलती हुई पलीता=मशालकी नाईं वेद और कुरानकी वाणी पकड़कर उससे प्रकाश करने लगे। जगत्कर्त्ता कोई ईश्वर वा खुदाको बताने लगे। पलीता=उसी वाणीके मशालरूप परोक्ष ज्ञानके प्रकाशमें व्यापक ब्रह्म कथन करके दिखलाये। अन्तमें कुछ भी नहीं दिखा और कुछ भी नहीं मिला; तब तो मुस्लिमोंके धर्मज्ञ मोलना या मौलवी लोग तथा हिन्दुओंके विद्वान् गुरुवालोग वे दोनों हार मानकर गाफिलीमें पड़े हैं। व्यर्थमें मनुष्य जन्मका दाव भी हार गये। अतः वे जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके अधिकारी हो गये हैं ॥ १३१ ॥

१०. झरै न भूत बड़ो बरियारा * काजी पण्डित पढ़ि पढ़ि हारा ॥ १३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वाणी-कल्पनाका भ्रम-भूत तथा विषयासक्ति जो जीवपर चढ़ी है, तो वह बड़ी जबर्दस्त होकर मजबूतीसे दिल वा दिमागमें जाकर बैठ गई। पारखहीन लोगोंने बहुत प्रयत्न किया, जोर लगाया कि, मुक्त हो जायें; परन्तु, वह भ्रमरूपि भूत नहीं झरा; अध्यास नहीं निकला और भी दृढ़ होकर बैठ गया। मनरूप भूत बड़ा बलवान् है। पारख बोध हुए बिना और किसी प्रकारसे भी वह झरकर या उतर करके शान्त नहीं होता है। मुस्लिमोंके इन्साफ करनेवाले काजी लोग और हिन्दुओंको धर्म बतानेवाले पण्डित लोग चार वेद, षट्शास्त्रादि और चार कितेब-कुरानादि पढ़-पढ़ करके उसके अनुसार विचार करके साधना कर और कराके नर देहका भी हार गये। तथापि भ्रम-भूल, अध्यास किसीका नहीं छूटा; कोई मुक्त हो नहीं सके, बिना पारख ॥ १३२ ॥

११. इन दोनोंपर एकै भूत * झारैंगे क्या माकी चूत ? ॥ १३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इन हिन्दू और मुसलमान, नर-नारी दोनों पार्टीके मनुष्योंपर भूतरूपी वाणी-कल्पना तथा विषयोंका अध्यास एक ही या एक-सा ही लगा हुआ है। सब कोई मनके वशीभूत पक्षपाती, जड़ाध्यासी हो रहे हैं। दोनोंमें एक ही अनुमान, भास, अध्यास यह भूत, भविष्य, वर्तमानमें लगा है या लग रहा है। अपरोक्ष गुरुपारखका बोध तो उन्होंको नहीं है; फिर भ्रम, अध्यास, आसक्तिको वे क्या झारेंगे ? कैसे हटावेंगे ? वे तो माकी=मायाकी झाँकीमें मोहित हो करके मोटी-झीनी माया जालमें ही अरुझ रहे हैं। इसवास्ते चूत=हंस रहनी मुक्तिपदसे च्युत हो, गिरकर नष्ट-भ्रष्ट हुए या हो रहे हैं। मनुष्यके कर्त्तव्यको चूक गये; मौका गमा दिये। वे मायाके

गुलाम क्या बन्धनोंको झारेंगे ? क्या मुक्त होंगे ? कभी नहीं होंगे। जड़ाध्यासवश देह छूटनेपर माँरूपी स्त्रीकी गर्भवास या योनिमें जाकर कैद हो जावेंगे। अतएव उनके सङ्गको त्यागकर पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ १३३ ॥

साखीः— भूत न उतरे भूत सो ❀ सन्तो ! करो विचार ॥
[१८] कहहिं कबीर पुकारिके ❀ बिन गुरु नहिं निस्तार ॥ १३४ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हे सज्जनो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें रह करके आप लोग जड़-चैतन्य स्वरूपका यथार्थ विचार-विवेक कर लीजिये ! पञ्च महाभूत वा पाँच तत्त्व स्वयं जड़ हैं। उनमें चैतन्य-कलाका सर्वथा अभाव है। अतएव जड़ तत्त्वोंमें लक्ष्य लगा करके या जड़ वाणी-कल्पनामें प्रेम लगा करके कभी भी तीन कालमें जड़ासक्ति नहीं उतरती है। अथवा पञ्च तत्त्व निर्मित देहका भाग खानी जालरूप भूतकी पञ्च विषयासक्तिको सो वाणी-कल्पनारूपी भूतसे छुड़ाना चाहे, तो कभी नहीं छूटती है या नहीं उतरती है। क्योंकि, खानी-वाणी दोनों ही जीवको बन्धन हैं। मोटी माया छोड़कर झीनी माया पकड़ा, तो भी बन्धनमें ही रहा। जो आप ही भ्रमिक हैं, वे दूसरेका भ्रम क्या छुड़ायेंगे ? इसलिये हे सन्तो ! गुरुमुख सत्यनिर्णयसे इसका ठीक-ठीक विचार कीजिये ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने पुकार करके चेतावनी देते हुए सबोंको सुना करके कहा है कि— हे मुमुक्षु जनो ! सुनो ! सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत होकर पारखबोध प्राप्त किये बिना नरजीवोंका निस्तार या खानी-वाणी बन्धनोंसे छुटकारा कदापि हो नहीं सकता है। श्रीसद्गुरु देवके बिना उसको परखा करके जीवोंको निस्तार=पार करनेवाले और कोई नहीं हैं। अतएव पारखी श्रीसद्गुरुके ही शरण-सत्सङ्गमें लगकर अपना हित-कल्याण करो ! ॥ १३४ ॥

साखीः— परम प्रकाश भास जो ❀ होत प्रौढ़ विशेष ॥
[१९] तदप्रकाश सम्भव भई ❀ महाकाश अवशेष ॥ १३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वेदादि वाणीके प्रमाणसे योगी, ज्ञानी, गुरुवालोगोंने परमप्रकाश ज्योति स्वरूप परमतत्त्व-परमात्मा कोई एक जगत्कर्त्ता मालिक बतलाया है। उसकी प्राप्ति होनेसे मनोकामना पूर्ण होनेको बताया है। तब उसे सुनकर जीवोंकी आशा-लालच बढ़ी। राज योग, हठ योग, ध्यान तथा तुरिया अवस्थामें सहविकल्प समाधि लगाये। नाद-बिन्दुके सङ्कर्षण होकर वृत्ति एकाग्र होनेसे भीतर त्रिकुटी मध्यमें परम सुउज्ज्वल सूर्यवत् महाप्रकाश ज्योतिका भास जो उदय हुआ, उसीमें लवलीन हो गये। गुरुवालोगोंका कथन एवं अपने अनुभवका भास दोनोंका मिलान होते ही विशेषरूपसे साधकोंको वही भास प्रौढ़=परिपुष्ट या दृढ़ हो गया कि, अब हमें परमात्माका दर्शन साक्षात्कार हो गया; ऐसा निश्चय हुआ। उसी प्रकाशको तत्पदवाच्य ईश्वर सर्वज्ञपद मान लिये। उसी प्रकाशसे पश्चात् गाफिली शून्यता झाँईं विज्ञान कैवल्यपदकी सम्भव=उत्पत्ति हो गई। अन्तमें सोई ब्रह्मपद महाआकाशवत् निर्गुण-निराकार, व्यापक चराचररूप सारे संसारमें परिपूर्ण ठहराकर अवशेष=सर्वसे श्रेष्ठ बाकी रहनेवाला अखण्ड शुद्ध केवल ब्रह्म मान लिये। अर्थात् संक्षेपमें परमप्रकाशका भास जो हुआ, वही मनमें परिपुष्ट हो गया। उसी प्रकाशके बाद जो झाँईं उत्पन्न हुई, उसीको महाकाशवत् अवशिष्ट ब्रह्मपद मान करके गुरुवालोग गरगाफ हुए। बिना पारख महान धोखेके खाँचमें प्रविष्ट हुए ॥ १३५ ॥

साखीः— झाँईं सम्भव बुद्धि ले ❀ करै कल्पना अनेक ॥
[२०] सो प्रकाशक जानिये ❀ ईश्वर साक्षी एक ॥ १३६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकार प्रथम सबको लय करके अद्वैत 'अहं ब्रह्म' बने। फिर उस झाँईं ब्रह्मरूप भ्रमकी गाफिलीसे पश्चात् वहींसे इच्छारूप मूलप्रकृति मायाकी सम्भव=

उत्पत्ति हो गई, उसे सबल ब्रह्म या सर्वशक्तिमान् परमेश्वर कहने लगे। तदनन्तर चित्तसे जो चिन्तन हुआ, उसीको बुद्धिसे निश्चय किये, मनसे सङ्कल्प-विकल्प उठाकर अहङ्कारसे करतूत विस्तार किये। उसी चित्त चतुष्टयोंको साथमें ले करके फिर अनेक वाणीकी कल्पना, नाना मत-मतान्तरोंकी मानन्दी कर लिये। फिर सो चित्त चतुष्टय, देह, इन्द्रियाँ, पिण्ड-ब्रह्माण्ड सबको प्रकाश करनेवाला परमप्रकाशक या प्रकाशमान सबका साक्षी सर्वद्रष्टा सोई एक ईश्वर समर्थ है, ऐसा अनुमानसे जाने या उस तरहसे मान लिये। वह तो नरजीवकी भ्रम-कल्पना ही है, परखकर उसे जान लीजिये, उसे यथार्थ समझिये, भाससे न्यारा द्रष्टा जीवको पहिचानिये ! ॥ १३६ ॥

साखीः— विषय भई सङ्कल्प जब * तदाकार सो रूप ॥
[२१] महा अँधेरी भूल सो * परे अविद्या कूप ॥ १३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! प्रथम शून्य स्थिति सुषुप्ति वा समाधिमें निर्विकल्प अवस्था रही। फिर स्फुरणा होनेसे सहविकल्प भाव हो गया। तहाँ अन्तःकरणमें सूक्ष्म इन्द्रियाँ सञ्चालित हुईं। चित्तसे चिन्तन, मनसे मनन, बुद्धिसे निश्चय और अहङ्कारसे करतूत, ये विषय अन्तरमें प्रगट हो गये। फिर बाह्य विषयोंमें लक्ष्य चला गया। जब पञ्च विषयोंकी चाहसे सङ्कल्प-विकल्प होने लगा, सो उसी विषयोंके एक-एक रूप या आकारमें लक्ष्यको टिकाकर जीव सब निज स्वरूपको भूल करके तदाकार या विषयाकार वृत्ति बनाकर विषयरूपी ही हो गये। भासमें भासिक जीव मिल गये। सोई स्वयंस्वरूपकी प्रथम भूलका कारण होनेसे महा अँधेरी = महान अज्ञान, महान गाफिली, बड़ाभारी भव-बन्धनोंका मूल कारण हुआ। उसी अविद्या कूप = अबोध, अन्धकार, अनसमझसे भ्रम-कूप, जगत्-कूप, चौरासी योनि-कूप, भग-कूप और गर्भ-कूपमें जा-जा करके सब जीव गिर पड़े। ब्रह्म बनकर जगत्रूप ही हो रहे। अथवा ब्रह्मानन्द और विषयानन्द प्राप्तिकी जब इच्छा वा सङ्कल्प हुआ, तब सोई रूपमें वृत्ति तदाकार हुई। वाणी-खानीका खींचाव सोई महा अँधेरी भूल है। ब्रह्म प्राप्तिकी इच्छा करके फिर स्वयं ही अद्वैत ब्रह्म बने। महान अविद्यासे अन्ध-कूप चौरासी योनियोंके गर्भवासमें गिर पड़े। अतः अब पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग करके सारासारको परखकर पारखबोधके प्रतापसे उबरना चाहिये ॥ १३७ ॥

साखीः— महातत्त्व त्रिगुण पाँच तत्त्व * समष्टि व्यष्टि परमान ॥
[२२] दोय प्रकार होय प्रगटे * खण्ड अखण्ड सो जान ॥ १३८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वेदान्तियोंने ऐसा माना है कि— समष्टि = एक अद्वैत व्यापक कारण ब्रह्मसे ही व्यष्टि = चराचर दृश्य जगत् कार्यरूपमें उत्पन्न हुआ है। तथापि ब्रह्म तो निर्विकार एक ही है, ऐसा प्रमाण वेद-वेदान्तके कथनसे गुरुवालोगोंने माना है। तो प्रथमारम्भमें ब्रह्मसे जगत् कैसे ? या किस प्रकारसे उत्पन्न हुआ ? उसके बारेमें ऐसा कहा है, सो सुनिये ! प्रथम परब्रह्म निर्गुण निराकार, निरञ्जन ज्यों-का-त्यों निरान्त रहा था; कुछ कालान्तर बादमें एकाएक स्वयमेव ब्रह्ममें इच्छारूप स्फुरणा उदय हुई—"एकोहं बहुस्यामेति प्रजायेय" ऐसा कहा; तब सोई स्फुरणासे मूल पुरुष कर्त्ता बना, फिर पुरुषके अङ्गसे अर्धाङ्गिनी मूल प्रकृति प्रगट हुई, उस प्रकृतिसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ; फिर महत्तत्त्वसे मूल अहङ्कारका जन्म हुआ, उसी अहङ्कारसे त्रिगुण खड़ा हुआ, त्रिगुणसे सारे संसार उत्पन्न हुए। तहाँ सत्त्वगुणसे चौदह देवताएँ हुए, रजोगुणसे दश इन्द्रियाँ बनीं, और तमोगुणसे विषय पञ्चक पैदा हो गये। उन्हीं विषयोंसे पाँच तत्त्वोंकी सृष्टि हुई। शब्दसे आकाश, स्पर्शसे वायु, रूपसे अग्नि, रससे जल तथा गन्धसे पृथ्वी पैदा हुई और इन पाँचों तत्त्वोंसे चराचर या स्थावर-जङ्गमोंकी उत्पत्ति हुई। तहाँ सूक्ष्म देहाभिमानी ईश्वर हिरण्यगर्भ हुआ, तथा स्थूल देह विश्वके अभिमानी विराट् पुरुष कहलाया। इसप्रकार उत्पन्न होकर त्रिगुण पाँच तत्त्वका जो विस्तार फैला, सो व्यष्टि = नानातत्त्व या भिन्न-भिन्न भागवाला जगत् कहलाया; और उन सबोंको जैसे

उत्पन्न हुए थे, वैसे ही लय-चिन्तन करके एक-में-एक समेटकर वा लपेटकर विलय करके मिला दिया, सो महत्तत्त्व एवं ब्रह्म समष्टि=अद्वैतरूपमें माना गया है। सो गुरुवालोगोंके वेदान्तमतका प्रमाण है; ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी लोगोंने माना है। ऐसे एकसे दो प्रकारके लक्षण-विलक्षण हो करके संसारमें प्रगट हुए हैं। अखण्ड माना हुआ कारण ब्रह्मसे ही पुरुष-प्रकृति त्रिगुणसे संसार आदि खण्ड-खण्ड कार्यरूपमें उत्पन्न हुए; ऐसा कहा है। अब विचार करिये! सो उस ब्रह्मको अखण्ड कैसे जानना? जिससे सात द्वीप, नौ खण्ड पृथ्वी उत्पन्न हुई, वह अखण्ड कहाँ रहा? उक्त खण्ड और अखण्ड दोनों ही मिथ्या कल्पना है। जगत्में जड़-चैतन्य दोनों वस्तु नित्य-सत्य हैं। निज स्वरूपको भूल करके स्वयं अखण्ड चैतन्य जीव खानी-वाणीके जड़ाध्यासी हो आवागमनके चक्रमें ही पड़े हैं। बिना पारख वह भ्रम-भूल नहीं मिटती है। परख करके उसे मिटाना चाहिये, सो जानिये! ॥ १३८ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६। साखी— १ है] ॥ १८. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १८ ॥ ❀ ॥

[भास और अध्यासका कार्यके विस्तार वर्णन।]

१. सदा अस्ति भासै निज भास * सोई कहिये परम प्रकाश ॥ १३९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं—हे सन्तो! जो तीन काल, तीन अवस्थादिमें सदा-सर्वदा एकरस, अखण्ड बना रहता है, सोई अस्ति=नित्य, सत्य, चैतन्य स्वरूप कहते हैं, सोई जीव है। परन्तु, पारख स्वरूपकी बोध-स्थिति न होनेसे ही निज सत्य स्वरूपको भूलकर अपनेसे उत्पन्न भास, अध्यास, कल्पनादिमें जीव लगे हुए हैं। कोईने देहरूप ही अपनेको माना है, और कोईने "मैं अद्वैत ब्रह्म सत्य हूँ!" इसी भावनासे सदा स्मरण करने लगा, तो हंस पद उलट गया, तथा अपने विषयमें ब्रह्म पदका भास भासा; 'अहं ब्रह्म'का भाव दृढ़ हो गया। भास-भासिक तदाकार हुए, वृत्ति एकाग्र होनेपर स्वप्नवत् परमप्रकाश ज्योतिका भास हुआ, सोई परमप्रकाश परमतत्त्व-परमात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म कहलाया। अब कहिये! वह भास मिथ्या भ्रम है, तो सत्य चैतन्य जीव सो भासरूप ही कैसे होगा? कभी हो नहीं सकता है; परन्तु, गुरुवालोगोंने उसी प्रतिबिम्बको ही परमप्रकाश परमात्मा कहकर मनुष्योंको भुला रक्खा है ॥ १३९ ॥

२. परम प्रकाश ले झाँई होय * महदाकाश होय बरतै सोय ॥ १४० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकार निज सत्यपदको भूल करके परमप्रकाश ज्योतिका भास और वाणी-कल्पनाको ही अपने ऊपर जीवोंने ले लिया या उसीमें सुरतिको लय किया, तब झाँईं रूप महान गाफिली महाअज्ञानरूप विज्ञानपद खड़ा हुआ। यानी जीव उसी झाँईं में ही तदाकार होकर समरस हुआ। पश्चात् सोई सर्वमें परिपूर्ण व्यापक महान आकाशवत् शून्यमें लीन होकर परमहंसकी चालसे बर्तने लगा। अर्थात् देहादिक स्थूल रूपका भास ही सदा जीवको भासता रहता है। उसे ही वाणी-कल्पनासे परमप्रकाश ब्रह्म कहा है। वाणीका कथन साक्षी भाव लय होनेसे झाँईं हुआ, सोई पश्चात् महदाकाशवत् व्यापक ब्रह्म स्वयं हो करके मनमाने बर्तने लगा, धोखाधारमें बह गया ॥ १४० ॥

३. बरतै वर्तमान परचण्ड * भासक तुर्यातीत अखण्ड ॥ १४१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पहलेके ब्रह्मज्ञानी गुरुवालोग जो कथन दृढ़ा गये हैं, जैसा-जैसा सिद्धान्तकी स्थापना कर गये हैं, सोई मत-मतान्तरोंको परिपुष्ट कर उनके अनुयायी लोग भी वर्तमानमें ब्रह्मज्ञानादिका उपदेश प्रचार करके प्रचण्ड या तीक्ष्ण रीतिसे ब्रह्म-भ्रमके अभिमानी होकर बरत रहे हैं; और घूम-फिर रहे हैं। अपने-अपने सिद्धान्तको दृढ़ कर-कराके निर्वाह कर रहे हैं। भासक=नरजीव अपनी स्थिति चैतन्य साक्षी-पदको भी छोड़कर तुरियातीत शून्य निर्विकल्प स्थितिमें पहुँच करके अखण्ड, अद्वैत, निर्विकल्प ब्रह्म बन रहे हैं। भ्रम खाँचमें पड़ रहे हैं। वह शून्य भासका जनैया भासक जीव वही भास रूप ही कैसे होगा? उस भाससे जीव

सदा न्यारा द्रष्टा रहता है, यह पारख करके न जानकर गुरुवालोग भ्रमिक होकर उसी मिथ्या भासको ही सत्य मानकर भूले पड़े हैं ॥ १४१ ॥

४. काल सन्धि होय उश्वास * आगे पीछे अनबनि भास ॥ १४२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पूर्वोक्त विधिसे जीव झाँईं में पड़कर जब गाफिल हुए, तो अपने-आपको ही ब्रह्म मान लिये। तदनन्तर श्वासोच्छ्वास चलन गतिके साथ-साथमें उनकी बेहोशी छूटी, तो होश आया। फिर जो भास खड़ा हुआ था, उसीका निजस्वरूप मानकर कल्पनाको ही पुष्ट किया। साईं काल, सन्धिकी उश्वास = उत्पत्ति हो गई। जिससे सन्धिसे ज्ञान मार्ग और कालसे कर्म, उपासना और योग मार्ग प्रगट हुआ। तहाँ जीवके आगे-पीछे अनेकों तरहसे भास-अध्यास, अनुमान-कल्पनाका घेरा पड़ा। अथवा आगे ब्रह्मादि बड़े-बड़े गुरुवालोग हुए, और उनके पीछे-पीछे चलनेवाले सनकादि, नारद, वशिष्ठ, व्यास, शुकादि, ऋषि, मुनि, योगी, ज्ञानी, भक्तादि समस्त मनुष्यवर्ग भी बिना पारख अनेकों प्रकारसे मिथ्या भासादिमें ही जकड़ गये वा बद्ध हुए। जिसमें जीवोंके कल्याणका बनाव कुछ नहीं है, उसी खाना-वाणी प्रपञ्चोंमें नाना तरहसे सब लोग लगे और लग रहे हैं। इसीसे जन्म-मरणके चक्रमें घूम रहे हैं, बिना विवेक ॥ १४२ ॥

५. विविधि भावना कल्पित रूप * परकाशिक सो साक्षी अनूप ॥ १४३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मनुष्योंने अनेक प्रकारकी भावना उठा करके मानन्दी ठहरा करके कल्पित वाणीका रूप ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा आदि नाना सिद्धान्त प्रगट किया। सो सभी वाणी-खानीके मतको उत्पन्न करके प्रकाश करनेवाले द्रष्टा साक्षी जीव ही सत्य हैं। परन्तु, स्व-स्वरूपको भूल करके नरजीवोंने मन-कल्पनासे एक कर्त्तारूपको खड़ा किया। उसे सब जगत्का प्रकाशिक परमेश्वर तीन काल, तीन देह, तीन लोकादिका साक्षी निर्गुण-निराकार, आकाशवत् अनूप = उपमासे रहित जैसे-का-तैसा सर्वाधार माना है, ऐसा गुरुवालोगोंने कथन किया है। ऐसे-ऐसे अनेकों भावनाकी वाणी कल्पना कर रक्खी है ॥ १४३ ॥

६. शून्य अज्ञान सुषुप्ति होय * अकुलाहट तेहि नाद है सोय ॥ १४४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अज्ञान दशा और ज्ञान दशा, दोनों तरहकी 'सुषुप्ति' होती हैं। सोजानेपर जाग्रत्-स्वप्नके व्यवहारका लय हो जाना, गाढ़ी निद्रामें बेभान होना, सो शून्य स्थिति 'अज्ञान सुषुप्ति' है। कुल-आहट शब्दादि विषयोंका व्यवहार वहाँ कुछ भी नहीं होता है; खाली उसवक्त नादरूप श्वास वायु मात्र चलती रहती है। सो उसीसे पीछे घबराहट हो करके स्वप्न और जाग्रत् अवस्था भी हो जाती है। तैसे ही ध्यान, धारणा, समाधि लगा करके तथा ब्रह्म भावना करते-करते जब वृत्ति शून्य हो जाती है। उसे 'ज्ञान सुषुप्ति' कहते हैं। वहाँ भी तन-मनादिका कुछ भान नहीं रहता है; कैवल्य निर्विकल्प स्थितिमें धुन्ध-गाफिल पड़े रहते हैं। उसी शून्यमें बीजरूप अज्ञान सुप्त होकर छिपा रहता है। प्रथम तो नादरूप प्राणवायुकी कुछ भी आहट या शब्द वहाँपर नहीं रहता है, बादमें घबराहट होकर ध्यान-समाधि खुलती है; फिर बाहर आकर शब्दसे अनुभव वर्णन करने लगते हैं। उसे ही नादरूप प्रणव ब्रह्म कहते हैं। सो वाणीकी ही कल्पना है। वही आवागमनमें ले जानेका बीज या कारण है ॥ १४४ ॥

७. नाद उद्वेग आकर्षण जान * तेज नीर प्रगटे तेहि आन ॥ १४५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! उसी शून्यके आनन्द-भास नादरूप श्वासवायुकी चञ्चलताका सङ्घर्षण या आकर्षण हो जानेसे अन्तःकरणमें उद्वेग = इच्छाका उदय, सङ्कल्प-विकल्प करनेका ज्ञान हुआ। सोई इच्छा-स्फुरणारूप तेजसे पानीरूप वाणी बन करके फिर भीतरका भास ब्रह्मानन्दादिकी महिमा वर्णन होकर बाहर उसी वाणीमें प्रगट होकर आई, जिसने बेपारखियोंको भुलाई। अथवा गुरुवाओंका कथन है कि— नादरूप प्रणव ब्रह्मको प्रथम उद्वेग हुआ, तो उसने इच्छा-

मायाको आकर्षण कर लिया। नाद = समान वायुके उद्वेग, चञ्चल वायुके खिंचावसे उसीसे पीछे अग्नि और जल प्रगट होकर आये। अथवा प्राणधारी नरजीवोंके मनमें विषय-वासनाका सङ्कल्प होनेसे स्त्रीरूपमें आकर्षण हुआ। जिससे कामाग्नि प्रचण्ड होकर वीर्य प्रगट हो करके आया, सो विषय भोगोंकी बात तो सब कोई जानते ही हैं ॥ १४५ ॥

८. पानी पौन गाँठि परिजाय ❀ देही देह धरै जग आय ॥ १४६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पानी = रज-वीर्य, तथा पवन = प्राण वायु युक्त सूक्ष्म देह सहित जीव, इन दोनों भागकी जब गाँठि = सम्बन्ध, गठबन्धन हो जाता है; यानी जब नाद, बिन्दु और कला गर्भ भूमिकामें आ करके एकत्र गाँठ पड़ जाती है, तभी देहाध्यासी देही = जीव कर्मानुसार देहोंको धारण कर लेते हैं। फिर समय पा करके जन्म लेकर जगत्में आते हैं। तहाँ कर्म-फल भोगते रहते हैं। अथवा पानीरूप वाणी-कल्पनासे पवनरूप श्वास वायुके सम्बन्ध करके नाना प्रकारसे वासना अध्यासादिकी गाँठि पड़ गई। फिर देह छूटनेपर अध्यासवश चारखानीमें ही जीव चले जाते हैं। जो पहले विदेह ब्रह्म बना था, सोई पीछे जगत्रूप स्थूल देहको धारण करके आया, ऐसे दोनों तरहसे चौरासी योनियोंमें ही जहँड़ाये हैं ॥ १४६ ॥

९. सो कौवार शब्द परचण्ड ❀ बहु व्यवहार खण्ड ब्रह्मण्ड ॥ १४७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अब सोई भ्रम-भूलकी कहानी वर्णन करके ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा आदिको जगत्कर्त्ता मानकर सो उसीकी महिमा गा-गा करके कौवार = कागकी नाईं पुकारा, चिल्लाहट, प्रार्थना, गोहार कर रहे हैं। प्रचण्ड या तीव्र-तीक्ष्ण कल्पनाके शब्द प्रचार कर रहे हैं। कोई ॐकार शब्दको ही जगत्का कारण ब्रह्म बता रहे हैं। खानी-वाणीके शब्दादि विषयोंके महाजाल अत्यन्त प्रचण्ड छूटनेको कठिन हो रहा है। संसारमें उसी मोटी-झीनी मायाके बहुत प्रकारके व्यवहार खण्ड = न्यारे-न्यारे नव खण्ड पृथ्वीमें तथा सारे ब्रह्माण्डमें फैले हुए हैं; उसीमें सब जीव बन्धे पड़े हैं; और उसी कल्पित वाणीके ही साधना-व्यवहारसे कर्म, भक्ति, योग, पिण्ड-खण्डमें तथा ज्ञान, विज्ञान, ब्रह्माण्ड भागमें चलाये हैं। बिना पारख अबोध जीव बहुत फन्दोंमें पड़े हैं ॥ १४७ ॥

साखीः— जतन भयो निज अर्थको ❀ जेहि छूटै दुःख भूर ॥
[२३] धूर परी जब आँखिमें ❀ तब किमि सूझै निज मूर ? ॥ १४८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसारमें समस्त मनुष्य अपने-अपने मतलब, स्वार्थ सिद्धिके लिये यत्न-प्रयत्न, साधना-पुरुषार्थ कर रहे हैं। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ये चार फल प्राप्तिके वास्ते खूब उपाय किये। त्याग-वैराग्यसे शीतोष्ण सहन करने लगे। जिससे सकल दुःख छूट जाय, और भूर = बड़ाभारी दुःख जन्म, मरण, गर्भवास, त्रिविधि तापादि कष्ट-क्लेश भी दूर हो जाय, परमानन्दकी प्राप्ति हो जावे या कैसे भी करके दुःख मिटे: सुख होवे, उसीके वास्ते योग, जप, तप, ध्यान, ज्ञान हो रहा है; और नाना व्यवहार धन्धा हो रहा है। परन्तु, जब नरजीवोंको श्रीसद्गुरुके पारखका बोध नहीं हुआ, तो हृदयके नेत्र— विवेक-विचारमें आत्मा अनुमानकी भ्रमरूपी धूर खूब झोंक पड़ी; ज्ञानमें झाँईं छा गई; मन-बुद्धिमें आसक्ति-अध्यास पड़ गया, धोखेमें जीव पड़े। तब कहो तो भला ! निज मूर = निज स्वरूप कैसे दिखाई देगा ? कैसे पारख स्वरूपका बोध होगा ? कदापि हो नहीं सकता है। अतएव भ्रमिक जीव जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके गर्भ-वासादिमें पड़कर नाना दुःख भोगते ही रहेंगे। अन्तमें अर्थ पूर्ण होनेके बदले अनर्थ ही हुआ, पारख बोधको पाये बिना हंस पदसे पतित होकर अन्धाधुन्ध भवचक्रमें गिरे पड़े हैं ॥ १४८ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी— १ है] ॥ १६. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ १६ ॥ ❀ ॥

[परीक्षा मार्ग और सारशब्दसे काल, सन्धि और झाँईं का पहिचान वर्णन ।]

१. पाँजी परख जबै फरियाय * तुरितहिं सबै विकार नशाय ॥ १४६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें अनेकों मार्ग बने हैं, वे सब मार्ग तो जीवोंको भ्रमानेवाले कुमार्ग वा औघट घाट हैं। गुरुमुखसे निर्णय किया हुआ यथार्थ पाँजी = पारख बोध-का मार्ग या परीक्षा-दृष्टिकी सड़क जब जिज्ञासु मनुष्योंको मिल जाती है या वह मार्ग जब पहिचाननेमें आ जाती है, तब जड़-चैतन्य, सार-असार, सत्यासत्य, हित-अहित, बन्धन-मुक्ति आदि सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। सत्यन्याय-निर्णयसे त्याज्य-ग्राह्यका फैसला हो जाता है। निज घाटमें लगकर जीव निर्मल हो जाते हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गके प्रतापसे मल, विक्षेप और आवरण आदि सब दोष मिट जाते हैं; और कायिक, वाचिक, मानसिक, तथा काम, क्रोधादि, अनुमान-कल्पनादि समस्त गुप्त-प्रगट विकार भी श्रीसद्गुरुके पारख दृष्टिके बलसे तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं। निर्विकार, शुद्ध निज पारख स्वरूपमें ही स्थिति हो जाती है। अतएव श्रीसद्गुरुके सत्य ज्ञान वा पारख ज्ञानका मार्ग पकड़ करके ही सीधा मुक्ति मार्गमें चलना चाहिये ॥ १४६ ॥

२. शब्द सुधारे रहै अकर्म * सौति भक्तके खोटे कर्म ॥ १५० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! शब्द नाना तरहके होते हैं; श्रीसद्गुरुके निर्णयसे शब्दके कसर-खोटको परख करके सुधार कर लेना चाहिये। गुरुवालोगोंने तो शब्दको ही ब्रह्म वा ईश्वर समझ करके भ्रमको ही धारण कर लिया है। कोई सोऽहं, वोऽहं, रामको श्रेष्ठ मुक्तिदाता नाम-स्मरण समझ करके उसी शब्दको मनमें धारण किये हैं। कोई ब्रह्म-ईश्वरादिको त्रिगुणातीत निष्कर्म वा कर्मसे रहित अकर्म माने हैं; और उपासक लोग ईश्वरके भरोसामें पड़े हैं; जो कुछ परमेश्वर करेंगे, सोई होगा; ऐसा कहते हैं। तहाँ रामायणमें कहा हैः—

चौपाईः— "होइ हैं सोई जो राम रचि राखा। को कहि तर्क बढ़ावै-शाखा ॥"

इत्यादि कथन करके वही निश्चय कर रक्खे हैं। कोई विज्ञानी स्वयं ब्रह्म बनकर कुकर्मी हो रहे हैं। वेद-शास्त्रादिके कल्पित भ्रमरूप शब्दको ही सबोंने मनमें धरकर दृढ़कर रक्खा है; और सौति-भक्त = न्यारे-न्यारे देवताओंके उपासक लोग, सौतके समान परस्पर डाह, ईर्षा-द्वेष, कलह, झगड़ा आदि उपाधि मचा करके खैंचातान करके खोटे कर्ममें ही वे लगे और लगा रहे हैं। कोई सगुण-निर्गुण उपासना, पञ्च देवताओंकी भक्ति— यज्ञ-याग, होम-बलिदान, देवी-देवता, भूत-प्रेतादिकी पूजा, इत्यादि खोटा = खराब कर्म-कुकर्म ही वे कपटी लोग भक्त कहला करके कर रहे हैं। उन्हींके कुशब्दोंको त्यागकर सावधान रहना चाहिये ॥ १५० ॥

३. काल जाल ज्यों लखी न आय * तौलों निज पद नाहिं पाय ॥ १५१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हे मनुष्यो! काल = गुरुवालोग और स्त्रियाँ, मन आदिके जाल = वाणी-कल्पना, विषय-विलास, मानन्दी, ममता-मोहादि फन्दोंको जब तक ठीक-ठीक तरहसे परख करके गुण-दोषोंको पूर्ण समझकर लखा या पहिचाना नहीं जाता है, तब तक जीवको निजपद पारख स्वरूपकी अपरोक्ष स्थिति प्राप्ति हो नहीं सकती है। काल-जालको परख करके त्याग किये बिना निज पारखपदको जीव कभी पा नहीं सकते हैं ॥ १५१ ॥

४. झाँईं सन्धि काल पहिचान * सारशब्द बिन गुरु नहिं जान ॥ १५२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! झाँईं = विज्ञान, कैवल्य ब्रह्मके भ्रमरूप भूलका पद सोई गाफिली है। सन्धि = ज्ञान, तुरिया साक्षी परमेश्वरकी मानन्दी वाणीका सम्बन्ध है। काल = अज्ञान, शून्य समाधि योग, भक्ति, कर्मादिकी कल्पना, आयुके समयको बर्बाद करनेवाला जड़ाध्यास है; और विषयाध्यास भी काल है। यह त्रिपुटी मुक्तिपदको विनाश करनेवाला महान जबर्दस्त फन्दा

है। कोई बिरले पारखी सन्त ही इसके समस्त भेद, कसर-खोटको पूर्ण तौरसे पहिचानते हैं। इसे अच्छी तरहसे पहिचानकर त्यागे बिना कोई कदापि मुक्त हो नहीं सकते हैं। सारशब्द सत्यनिर्णयकी गुरुमुख वाणीसे ही वह पहिचाननेमें आती है। पारखी श्रीसद्गुरु बन्दीछोरके शरण-सत्सङ्गमें लगे बिना और कोटि उपाय करके भी काल, सन्धि तथा झाँईं का भेद लखनेमें नहीं आता है। श्रीसद्गुरुकी दयासे पारखबोध होते ही सब कालका भेद जाननेमें आ जाता है। इसलिये श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा सारशब्दको ही जान लेना चाहिये ॥ १५२ ॥

५. परखै रूप अवस्था जाय * आन विचार न ताहि समाय ॥ १५३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! निजरूप-पररूप, जड़रूप-चैतन्यरूप और समस्त सिद्धान्तके स्वरूपको जो पारखी सन्त यथार्थ रीतिसे श्रीसद्गुरुके निर्णयसे परख लेते हैं। सबके असली भेदको जानकर स्वयं स्वरूपमें जाग्रत् सावधान हो रहते हैं। उनके हृदयमें सदा एकरस पारख प्रकाश बना रहता है। चारों अवस्थाओंके समस्त विकार पारखी सन्तोंके मिट जाते हैं। जाग्रत्में जो कुछ देखा, सुना, भोगा हुआका संस्कार दृढ़ किया रहता है, सोई भास स्वप्नमें होता रहता है, तथा उसीका अध्यास सुषुप्तिमें भी बीजरूपसे बना रहता है। तभी जाग्रत् होते ही पूर्ववत् स्मृति सन्मुख हो जाती है। स्वप्नके भासरूप समस्त व्यवहार जाग्रत् होते ही जैसे मिट जाते हैं; तैसे ही पारख स्वरूपमें जाग्रत् होनेपर भी अज्ञानरूप जाग्रत्के भास-अध्यासके कर्त्तव्य सब छूट जाते हैं। अज्ञानरूप मोहके रात्रिमें सोनेवालोंकी जाग्रत् अवस्था भी दीर्घकालीन स्वप्नवत् ही है। स्वरूप ज्ञान होनेपर माया-मोहकी खिंचाव-आसक्ति सर्वथा मिट जाती है। फिर सञ्चित अध्यास भी पूर्ण पारख ज्ञानका अपरोक्ष बोधसे नाश हो जाता है। क्रियमाण संस्कार उनका बनता ही नहीं है। रहा एक प्रारब्ध, सो उसमें हंस रहनी-रहस्यको धारणकर जाग्रत्में नित्यानित्य, सत्यासत्य, सारासारके रूपोंको परखते हुए वे न्यारे रहते हैं। जाग्रत्के दृढ़ संस्कार ही स्वप्नमें भास होते रहते हैं; कदाचित् पूर्व संस्कारके वेगसे अन्य भी भास हुआ, तथापि वे जली हुई रस्सीकी ऐंठनवत् देखने मात्रके निकम्मे होते हैं। फिर अन्न-भोजनादिकी गर्मी, थकावटसे गाढ़ा निद्रारूप सुषुप्ति अवस्था होता है, सो भी भूँजे हुए बीजके सरीखा निर्बल हो जाता है। उसे देह निर्वाहके लिये उपयुक्त मात्रामें रखकर पारखी सन्त पारख दृष्टिसे जड़ाध्यास रहित सदा निज स्वरूपमें स्थिर होते हैं, वे ही जीवन्मुक्त होते हैं। इसप्रकारसे निज स्वरूपको परख लेनेपर जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति— ये तीनों अवस्थाओंके बन्धन मिट जाते हैं। तुरियादि अवस्थाओंके भी भ्रम-भास कुछ नहीं रहते हैं। अतएव अन्य अनुमान-कल्पनादिके कुविचार ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी-देवता, भूत-प्रेत, स्वर्गादि, एवं सांसारिक सुख विषयानन्द, माया-मोहकी आसक्ति, गाफिली, मैं-ममता, काम, क्रोध, लोभ, भयादिके अविचार भी उन विवेकी पारखी सन्तोंमें कभी किसी प्रकार भी समा नहीं सकते हैं। सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्य, इसीको धारण किये हुए जीवन पर्यन्त सचेत हो रहते हैं। प्रारब्ध भोग पूर्ण होनेपर एक दिन देहका अन्त तो आप ही हो जाता है। फिर जीव विदेहमुक्त स्वयं स्वरूपमें स्थित हो जाता है। जीवन्मुक्त पारखी सन्त स्वरूप स्थितिकारी विचारके सिवाय और विचारको मनमें कभी समाने नहीं देते हैं। इससे वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। सोई स्थिति बनाना सब मुमुक्षु पुरुषोंका मुख्य कर्त्तव्य है ॥ १५३ ॥

६. झाँईं सन्धि ले परखै जोय * संशय वाके रहै न कोय ॥ १५४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो जिज्ञासु मनुष्य ऐसे सत्य बोधदाता पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्गमें ठहरकर खानी जाल, काल-कल्पनासे लेकर वाणी जाल सन्धि = ईश्वर, आत्मा आदिकी भ्रम-मानन्दी, झाँईं = अद्वैत ब्रह्मकी भ्रम-गाफिली विज्ञान तक समस्त भेदोंको पारख दृष्टिसे देख-देख करके सत्य निर्णय करके जो कसर-खोटको यथार्थ परखेंगे, बन्धन-मुक्तिके

रहस्यको भलीभाँति जान जायेंगे। फिर उन विवेकी पारखी सन्तको संशय, धोखा, दुविधा, सन्देह, शङ्का, एवं जड़ाध्यासादिका बन्धन फिर कुछ भी बाकी नहीं रहेगी; सब संशय ग्रन्थिको परखकर उन्होंने खोल दिया वा मिटा दिया है। इसलिये वे ही पारखी सन्त निर्बन्ध, स्वच्छन्द, निर्भय, जीवन्मुक्त तरण-तारण हो जाते हैं। उन्होंके ही शरण-सत्सङ्गमें लगे रहनेसे जीवनका हित-कल्याण हो जाता है ॥ १५४ ॥

साखीः— धन्य धन्य तारण तरण * जिन परखा संसार ॥

[२४] बन्दीछोर कबीर सों * परगट गुरु विचार ॥ १५५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिन्होंने संसारमें आ करके नरदेहको पाकर अपने मुक्ति-कल्याणके लिये प्रबल सत्पुरुषार्थ करके प्रयत्न किया है। संसारके महा बन्धन खानी-वाणी महा-जालके समस्त कसर-विकारोंको श्रीसद्गुरुके पारख बोधकी कसौटीपर एक-एक करके कसकर परख लिया, यथार्थ जान करके सबोंके भेदको समझ लिया है। अपने हृदयसे सब जड़ाध्यास, मानन्दी आदिको निकाल दिया, स्वयंस्वरूप पारखमें स्थिति कायम किया, वैसे पारखी सन्त स्वयं संसारके सब भव-बन्धनोंसे छूट गये हैं। दुस्तर भवसागरको लाँघकर पारख ज्ञानके बोध बलसे अपने तो पार उतर गये वा जीवन्मुक्त हो गये हैं; और जो जिज्ञासु मुमुक्षु मनुष्य सत्य श्रद्धा-भक्तिसे ऐसे पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें जाते हैं, उन्हें भी समस्त मोटी-झीनी जालोंको यथार्थ दिखाकर परखा करके निजवत् बोधवान् पारखी बना करके तारण = भवजलसे पार उतार देते हैं। ज्ञानरूपी जहाजमें चढ़ाकर उसे पार मुक्ति स्थितिमें पहुँचा देते हैं। ऐसे सत्पुरुष पारखी साधु श्रीसद्गुरुका धन्य है ! धन्य है ! अनन्त या असंख्यबार धन्यवाद है ! उन महापुरुषकी बलिहारी है ! जिन्होंने संसारमें संशयादि कठिन जालको विध्वंसकर मुक्ति मार्गको प्रशस्त किया है। सो सकल भव-बन्धनोंसे जीवको छुड़ानेवाले खानी-वाणी जालोंके सारे भेदको दिखलानेवाले संसारमें सर्वप्रथम श्रीसद्गुरु बन्दीछोर पूर्ण पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही महापुरुष अग्रणी हो गये हैं। तमरूप अज्ञान विनाशक, पारख प्रकाशक अत्यन्त गरुवापद गुरुपदके पारख विचार सत्यज्ञानको आप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ही सबसे पहले जगत्में प्रत्यक्ष प्रगट करके जाहिर कर प्रचार किया है। इससे पारख ज्ञानके आविष्कारक "आदिगुरु" आप ही हुए हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके द्वारा पारख बोधका प्रकाश होनेपर पश्चात् एक-दूसरेसे परम्परागत पारखी सन्तोंसे पारख बोधके निर्णयका प्रचार होता ही चला आ रहा है। उक्त श्रीसद्गुरुके विचार पारखबोधको प्रगट करनेवाले पारखी सन्त जो हैं, सो वे भी बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबके अनुयायीरूपमें माननीय हैं। अर्थात् तरण-तारण पारखी सन्तको धन्य है ! धन्य है !! जिन्होंने संसारके मूल भेदको पारखबोधसे परख लिया है। सो गुरुविचारका पारखज्ञान बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबसे संसारमें प्रगट हुआ है। वैसे विचार पारखबोधको अभी जो धारण कर रहे हैं, सो वे भी प्रत्यक्षमें बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायीरूपमें परमपूज्य मानने योग्य हैं। उन्हींका पारख गुरुबोध ले करके ही नरजीवोंका कल्याण होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥१५५॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी— १ है] ॥ २०. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २० ॥ ❀ ॥

[शब्द सन्धि, नाद सन्धि और झाँई आदिका जाल वर्णन ।]

१. शब्द सन्धि ले ज्ञानी मूढ़ * देह कर्म जगत् आरूढ़ ॥ १५६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! ज्ञानकाण्डकी, शब्द सन्धि = आत्मज्ञानकी मानन्दी, दृढ़ निश्चयको ले करके वाचक आत्मज्ञानी लोग मूढ़ अविचारी, पक्षपाती, भ्रमिक बने, और वैसे ही हो रहे हैं। देह रहतेमें विदेह ब्रह्म बनते हैं; परन्तु, देहका स्वाभाविक कर्म तो कुछ भी नहीं छूटता है। देह-मनादिसे नाना प्रकारके शुभाशुभ कर्म करके जगत् बन्धनमें पड़कर जन्म, मरण, और गर्भवासमें आरूढ़ होकर चढ़े हुए हैं। कर्मरूप घोड़ापर चढ़कर चौरासी योनियोंमें सटासट भटक

रहे हैं। अथवा देह-इन्द्रियादिकसे जगत्में नाना विषयादि भोग कर्म-कुकर्ममें आरूढ़ या प्रवृत्त होकर भी फिर वेद-वेदान्तके शब्दको पढ़, सुन, गुनकर अपनेको अकर्त्ता-अभोक्ता असङ्ग आत्मा मानन्दी कर लेते हैं। वे ज्ञानी लोग सरासर मूढ़ अविवेकी बने हैं। क्योंकि, जीवकी सत्ता बिना क्या जड़ इद्रियाँ स्वयं कर्म कर लेती हैं या भोग लेती हैं? ऐसा कहीं नहीं होता है। यदि ऐसा होता ही है, तो निर्जीव मुर्दोंमें भी कर्म करना और भोगना चाहिये था, ऐसा तो कहीं नहीं होता है। इसकारणसे जीव ही कर्म करते हैं, और देह सम्बन्धमें भोगते भी हैं। अपनेको कर्त्ता-भोक्ता न मानकर मनमाने कर्म करनेवाले ज्ञानी लोग तो अज्ञानीवत् महामूर्ख बने हैं। वे चौरासी योनियोंके अधिकारी ही होते हैं ॥ १५६ ॥

२. नाद सन्धि ले सपना होय ❀ झाँई शून्य सुषुप्ति सोय ॥ १५७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई नादरूप श्वास वायुको ही ईश्वर मान करके श्वासके साथ सोहं वा ओहंमें लक्ष्य लगा करके नाम-स्मरण करने लगे। वृत्तिकी एकाग्रतासे ज्योति-प्रकाश, दश नाद अनहदादि जो भास हुआ, उसीको परमात्मा करके मान लिया है। सो स्वप्नवत् मिथ्या भास है। परन्तु, वही सन्धिरूप मानन्दीको ले करके सपना=उपासना मार्गकी साधनामें लगे हैं। फिर मन-कल्पनासे जो भास प्रगट हुआ, उसीमें मग्न हो गये, बिना विचार; और कोई योग मार्गकी साधनाओंमें लगे, राज-योग, हठ-योग सिद्ध होनेपर शून्य सुषुप्तिकी नाईं शून्य समाधि लगी। भीतर-बाहरकी सब इन्द्रियाँ लय हो गईं, सो उसी झाँई=गाफिलीको परमानन्द, मुक्तिपद कथन किया है। इसप्रकारसे तीन देह, तीन मार्गोंकी तीन सन्धिमें त्रिगुणीजन भूले पड़े हैं ॥ १५७ ॥

३. ज्ञान प्रकाशिक साक्षी सन्धि ❀ तुर्यातीत अभास अबन्धि ॥ १५८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई उसके आगे बढ़े, तो ज्ञान मार्गके लक्ष्यांशमें पहुँचे। वहाँपर सन्धि-सम्बन्धसे यह मानन्दी किये कि, "मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप सब चराचर दृश्य-अदृश्यका प्रकाशिक, द्रष्टा, घट द्रष्टाकी नाईं तीन देह, तीन काल आदिका साक्षी 'सूत्रमणिन्याय' घटोंघटमें भरा हुआ हूँ!" ऐसे सन्धिको निश्चय किये हैं; और कोई-कोई उससे भी आगे निकल गये, शून्यकी चोटीपर पहुँच गये, बेहद्द हुए। तुर्यातीत=साक्षीपदसे रहित, गाफिलीकी अवस्थामें घुसे। अभास=वहाँ जानने, कहने-सुननेकी भासरूप भावना भी नहीं होती है; बेभान गरगाफ बने रहते हैं। अबन्धि=बन्धन, घेरा, हद्द भी जिसका कुछ नहीं है। निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, व्यापक, असीम ब्रह्म मानकर महान धोखेमें ही पड़े हैं या वैसे ही भ्रम-धोखेमें पड़ जाते हैं ॥ १५८ ॥

४. झाँई ले बर्तें वर्तमान ❀ सो जो तहाँ परै पहिचान ॥ १५९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकारसे पहलेके गुरुवालोग अद्वैतादिक मतवाद कथन कर गये हैं। अब वर्तमानमें उनके अनुयायी सोई वाणीको प्रमाण मान करके कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान, ये ही पाँच मार्गोंको पकड़कर चल रहे हैं। अन्तमें झाँई=गाफिलीरूप कैवल्य ब्रह्मपदको ही सर्वश्रेष्ठ मानकर जड़ाध्यासको ले करके वर्तमानमें सब कोई निज-निज मतवादमें बरत रहे हैं वा चल रहे हैं; एक-दूसरेको उसीमें फँसा रहे हैं। सो उन्हें पारखबोध विवेक तो नहीं है, फिर तहाँ सत्स्वरूपकी पहिचान कैसे होवे? जो कोई जिज्ञासु पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गसे विवेकमें लगते हैं, सो सकलके भेद कसर-खोटकी पहिचान सत्यासत्यका निर्णय, वहाँपर उन्हें पारखी श्रीसद्गुरुके न्याय-निर्णय द्वारा ही मालूम पड़ जाता है। तभी सब भूलें मिट जाती हैं ॥ १५९ ॥

५. काल इस्थितिके भास नशाय ❀ प्रेम प्रकाश लक्ष बिलगाय ॥ १६० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! परीक्षादृष्टि खुल जानेपर काल=नारी और गुरुवालोगोंके खानी-वाणीकी स्थिति, ठिकानेके विषय-विलास, कल्पना, कर्म, भक्ति, योग, ज्ञानादिके भास=स्वर्गादि, देवादि, प्रेमानन्द, योगानन्द, ब्रह्मानन्द, शून्य-समाधि आदिका काल-

कल्पित भास, जड़ाध्यासादि विकार सब ही पारखबोधके बल तथा श्रीसद्गुरुकी दयासे सब नशा करके छिन्न-भिन्न हो जाते हैं; और ज्योति-प्रकाश, अनहद, आनन्द आदिको हितकर, परमात्मा मानकर अबोधपनामें जो प्रेमपूर्वक लक्ष्य लगाया था, सो भी गुरुपदमें सत्य प्रेम लगकर अपरोक्ष पारख बोधका प्रकाश उदय होते ही उधरसे आप ही लक्ष्य हट जाता है। बिलगाय = जड़-चैतन्यको न्यारा-न्यारा निर्णयकर जड़ भास-अध्यासकी तरफसे लक्ष्यको हटा करके निजपदमें ही जो स्थिर हो जाते हैं, वे ही काल-जालोंसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं ॥ १६० ॥

६. बिलगे लक्ष अपन पौ जान ❀ आप अपन पौ भेद न आन ॥ १६१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जब जिज्ञासु मनुष्योंको पारखी श्रीसद्गुरुके सत्योपदेश श्रवण, सत्सङ्ग-विचारके बलसे विषय और कल्पनादिकी तरफसे लक्ष्य, सुरति, यादगीरी हट जायगी, अलग होगी; मान-मानन्दीको छोड़कर न्यारा होनेपर लक्ष्यकी स्थिति निजपदमें ही होगी। जिससे जीवका अपना हंसपद पारखपदकी पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जायगी। आप स्वयं चैतन्य जीव और उसके अपना पारखपदमें दूसरा भिन्न भेद तो कुछभी नहीं है। जैसे सूर्य और उसका प्रकाश दो नहीं है, वस्तुतः एक ही है। तैसे ही जीव, चैतन्य, ज्ञानस्वरूप द्रष्टा, ज्ञाता, ये शब्द पर्यायवाची हैं। जड़ाध्याससे रहित हंस आप जीवमें तथा पारखपदमें कोई भिन्न-भिन्न भेद नहीं रहता है; स्वरूप एक है। खानी-वाणीकी तरफसे एकदम लक्ष्य हट जानेपर ही स्वयं स्वरूपका अपरोक्ष पारख बोध होगा; फिर सकल भेद खुल जायगा। जब निज द्रष्टा हंसस्वरूको न्यारा जान लिया, तब जगत्-ब्रह्मकी तरफसें लक्ष्य पृथक् हो गया। प्रथम अनुभव भासको ही अपना स्वरूप जो मान रक्खा था, सो पारखबोधसे उसका भेद, भूल, भ्रम-धोखा समझनेमें आ गया; तब भ्रम छूट गया। सब मानन्दीसे रहित होनेपर जीव निजस्वरूपमें स्थिर होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १६१ ॥

साखीः— आप अपन पौ भेद बिनु ❀ उलटि पलटि अरुझाय ॥

[२५] गुरु बिन मिटै न दुगदुगी ❀ अनबनि यतन नशाय ॥ १६२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नरजीव आप स्वयं शुद्ध चैतन्य हंस स्वरूप है। उसका स्थिर स्थिति-ठहरावका अचलपद अपरोक्ष पारखपद है। परन्तु, आप-अपने पारखपदका भेद स्वयं नहीं जानता है कि, "मैं कौन हूँ ? मेरा पद क्या है ? कर्त्तव्य क्या है ?" और सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-सत्सङ्गमें जा करके आप-अपने पदके भेदको जाननेका प्रयत्न भी कुछ नहीं करता है। निजपदके भेदको जाने बिना सिंह ही गदहावत् बनकर लादी ढो रहा है। बाघ भी बकरावत् बनकर घास खाने लगा। राजा भी महा दरिद्र बनकर भीख माँगने लगा। ऐसे ही बहुत-सा विपरीत कर्म करने लगा। खानी भागमें गया, तो जड़ शरीरको ही मैं, अपना स्वरूप, तथा देह सम्बन्धी स्त्री-पुत्रादि परिवारमें मेरापन वा उन्हें अपना साथी समझ कर मैं-ममताको ग्रहण किया है। कहीं देहवाद, वीर्यवाद, तत्त्ववाद, शून्यवाद आदि नास्तिकताको दृढ़ किया है। कहीं प्राण, मन, बुद्धि, अन्तःकरणादिको ही अपना स्वरूप मान लिया है। कहीं ज्योति, आनन्द, अनहद, अमृत रस, कमल गन्ध-को ही परमात्मा वा अपना मूल पद मान लिया है। इसप्रकारसे खानी-वाणी, झीनी-मोटी, जगत्-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष, इसीमें उलट-पलट करके गोता खा-खाकर अरुझे और अरुझा रहे हैं। सत्यन्यायी सर्व-द्रष्टा पारखी श्रीसद्गुरु द्वारा यथार्थ पारख बोधका भेद मिले बिना मनकी दुगदुगी— ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा आदिकी मानन्दीका भ्रम कदापि किसीका मिट नहीं सकता है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैतके सन्देहमें जीव पड़े रहते हैं। कर्त्ता पुरुष, देवी-देवता, स्वर्गादि प्राप्तिकी आशा-तृष्णासे अनेकों प्रकारके यत्न-प्रयत्न, नाना साधनाओंका पुरुषार्थ कर-करा करके आखिरमें हंसपद स्थितिसे नशा जाते हैं। भ्रमिक जड़ाध्यासी नष्ट-भ्रष्ट होकर मुक्तिके द्वारसे गिरकर चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ जाते हैं। जिसके कुछ बनाव होनेवाला ही नहीं है, वही उपाय करते हैं, फिर नाश होनेके सिवाय और

क्या होगा ? इसलिये हे मुमुक्षुओ ! और सब उपाय छोड़ करके पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें ही लगे रहो ! ॥ १६२ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— १४ मात्र है] ॥ २१. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २१ ॥ ❀ ॥

[नरजीवने निज स्वरूपको भूलकर कैवल्य, तुरिया आदि मार्गोंको ग्रहण करके पुनः महा अज्ञानताका विस्तार किया, इत्यादि वर्णन ।]

१. निज प्रकाश झाँईं जो जान * महासन्धि माकाश बखान ॥ १६३ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! हंस जीवने निज पारख स्वरूपको भूलकर निज सत्ता सामिलतासे जब ध्यान-समाधि लगाया, तब ब्रह्माण्डमें नाद-बिन्दुका सङ्घर्षण हो जानेसे अपने ही देहका प्रतिबिम्ब ज्योति-प्रकाश भास हुआ। फिर वृत्ति शून्य होकर झाँईं-निर्विकल्प हुआ। उसी गाफिलीको जो कि, प्रकाश, आनन्दादि भास हुआ था, जीवने भ्रमसे अपना स्वरूप जान लिया या मान लिया; और महासन्धि = सो महान अज्ञानता धोखेकी मानन्दी है। परन्तु, उसे महाकाशवत् परिपूर्ण व्यापक, निराकार असिपद ब्रह्म ठहराकर महिमा विशेष ही वर्णन किया है ॥ १६३ ॥

२. सोई पाँजि ले बुद्धि विशेष * परकाशिक तुर्या अवशेष ॥ १६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सोई ज्ञान-विज्ञानकी पाँजी = मार्गको पकड़कर ले लिये, दृढ़ निश्चय किये। वही मानन्दीको विशेष परिपुष्ट करके बुद्धिमें पक्का किये हैं। बुद्धिकी विशेषतासे 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगे। विज्ञान ब्रह्मपदको ही सर्वोच्च करके मान लिये हैं; और सकल जगत्का प्रकाशी कोई एक परमात्मा अनुमान करके उसमें आशिक वा मोहित हुए। तहाँ तुरिया अवस्थामें साक्षी सहविकल्पपद बाकी रहा। उसीमें ठहर करके तुरियातीत निर्विकल्प स्थितिको सर्वश्रेष्ठ अवशिष्ट-ब्रह्मपद मान लिये। परन्तु, उसका प्रकाशी चैतन्य जीव उस धोखा, झाँईं, सन्धिके भेदको न जानकर भूलमें ही पड़े हैं ॥ १६४ ॥

३. विविधि भावना बुद्धि अनुरूप * विद्या माया सोई स्वरूप ॥ १६५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसप्रकारसे नरजीव निज हंसपदको भूलकर जब भ्रमिक हुए, तब स्थूल-सूक्ष्म बुद्धिके अनुसार नाना प्रकारकी भावनाएँ, अनेकों तरहसे प्रगट हुईं। ब्रह्म, ईश्वर, जगत्, देह-गेहादिकी तरफ लक्ष्य फैला करके रुचिके अनुसार वैसी-वैसी भावनाएँ किये, सो बुद्धिमें दृढ़ हो गई। शुद्ध अज्ञान, शुभ भावना, साक्षी आत्मपदकी स्थिति, सोई विद्या माया = आत्मज्ञानका मूल स्वरूप है। वहाँ घट-घटका साक्षी तथा सर्वत्र व्यापक दोनों एकसाथ माना है। इसलिये वही विद्यामायारूप पण्डित गुरुवालोगोंकी स्थितिका स्वरूप है। परन्तु, सारी अविद्या वहींसे प्रगट होती हैं। वही तो अविद्याका घर है। बिना पारख यह भेद उन्होंने नहीं जाना। अर्थात् लोगोंकी बुद्धिके अनुरूप (बुद्धिकी समझके मुताबिक) ही नाना प्रकारकी भावनाएँ प्रगट होती हैं, सोई विद्यामायाका सूक्ष्म स्वरूप है; और यही विद्यामाया ही अविद्या मायाकी जननीरूप वा कारणरूप है। नाना मार्गोंकी विभिन्न कल्पित भावनाएँ दृढ़ कर-कराके गुरुवालोग भव-बन्धनोंमें पड़े हैं, और दूसरोंको भी फँसा रहे हैं, सो जानिये ! ॥१६५ ॥

४. सो सङ्कल्प बसे जिव आप * फुरी अविद्या बहु सन्ताप ॥ १६६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मैं ब्रह्म हूँ ! वा ब्रह्मका अंश हूँ ! जगत् मेरेसे उत्पन्न हुआ है; सो मेरा ही स्वरूप है। सो यही भूलका सङ्कल्प जीवमें आ करके बसा, नरजीवने ही ऐसी कल्पना मनमें बसाया, उसीमें अपने आपको भूल गया। फिर कहने लगा कि, मैं कौन हूँ ? यह जगत् क्या है ? अद्वैतमें द्वैत उपाधि कहाँसे आई ? कुछ समझनेमें नहीं आता है, तो चलो यही निश्चय हुआ कि—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" सो ऐसा सङ्कल्प-विकल्प जीवने अपने हृदयमें बसाया। उसीसे बादमें नाना इच्छा होकर अविद्या माया = अज्ञान, जड़ाध्यास स्फुरित हो करके आई।

विद्या मायासे ही अविद्या मायाका जन्म हुआ, ब्रह्मसे ही जगत् बना। अन्तःकरणसे ही इच्छाएँ उत्पन्न हुईं, जड़ाध्याससे ही शरीरकी रचना हुई, पश्चात् बहुत सन्ताप-कष्ट-क्लेश, त्रिविधिताप, जन्म-मरणादिमें पड़कर अविद्याके कारणसे जीवोंने नाना तरहसे असह्य दुःख भोगे और भोग ही रहे हैं ॥१६६॥

५. त्रिगुण पाँच तत्त्व विस्तार ❀ तीन लोक तेहीके मँझार ॥ १६७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर गुरुवालोगोंका कथन है कि— परब्रह्मकी प्रेरणासे आदि पुरुष, मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, महाअहङ्कार, उससे तीन गुण—सत्त्व, रज और तम उत्पन्न हुए। उसमेंसे तमोगुणसे पहले तो पञ्च विषय उत्पन्न हुआ, फिर पञ्च विषयोंसे ही पाँच तत्त्वोंका विस्ताररूपसे पसारा हुआ है। तीन लोक=स्वर्ग, मृत्यु, और पताल लोक भी उसीके भीतर बीचमें ही उत्पन्न हुए हैं। सत्त्वगुणसे चौदह देवताएँ हुए, और रजोगुणसे दश इन्द्रियोंके गोलक पैदा हो गये। इसप्रकार सारा संसार कारण ब्रह्मके द्वारा कार्यरूपमें उत्पन्न हुआ है, ऐसी कल्पना किया है। अथवा त्रिगुण, पाँच तत्त्वोंका विस्तार तीन लोक ब्रह्माण्ड सब पिण्डाण्डमें वही बुद्धिके मध्यमें ही समाया हुआ है। बुद्धि करके ही सबका विकाश होता है, ऐसा माना है, सो भी भ्रम ही है। त्रिगुणी मनुष्य उसी कल्पनाके मँझधारमें गोता लगा रहे हैं, बिना पारख ॥ १६७ ॥

६. अदबुद कला वर्णि नहिं जाय ❀ उपजै खपै तेहि माह समाय ॥ १६८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे जिज्ञासु मनुष्यो! उन भ्रमिक गुरुवालोगोंकी कला=कल्पना-का कौशल, तमाशा, चतुराई, अदबुद=आश्चर्यरूप बुद्धिको भ्रमानेवाले अनेकों वाणी जालोंका विस्तार है। सो सब तो वर्णन किया जा भी नहीं सकता है। मुख्य-मुख्य बात कसर परखानेके लिये यहाँपर दर्शायी गयी है। निर्बुद्धि मतवादियोंकी कल्पनाकी कला तो ऐसी है कि— परब्रह्म जो है, सो मन, बुद्धि, वाणीके परे है, इसवास्ते अवाच्यपदको वाणीसे कुछ भी निश्चय करके वर्णन किया जा नहीं सकता है। क्योंकि, सर्वाधिष्ठान वही परमात्मा है। प्रथमारम्भमें ब्रह्मकी इच्छासे ही चराचर पिण्ड-ब्रह्माण्डकी सृष्टि उत्पन्न होती है या हुई है; और फिर महाप्रलयमें समस्त स्थावर-जङ्गम, खपै=विनाश हो करके या बिगड़-बिगड़ा करके उसी मूल कारणरूप परब्रह्ममें ही समा जायगा वा मिल जायगा। तब अकेला निरञ्जन ब्रह्म ही ज्यों-का-त्यों रहेगा। फिर कालान्तरमें पूर्ववत् ब्रह्मकी इच्छासे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सर्वदा होता ही रहेगा। यह सृष्टिचक्र ऐसे ही घूमता रहेगा। इसप्रकारसे धोखेमें समा करके जीव अध्यासवश आवागमनमें पड़ा करते हैं, बिना पारख ॥ १६८ ॥

७. निज झाँईं जो जानी जाय ❀ शोच मोह सन्देह नशाय ॥ १६९ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! जो कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी सत्यन्यायी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जा करके जड़-चैतन्यके यथार्थ निर्णयसे जब असली मर्मको जान जाते हैं, सो निज हंस स्वरूपको न्यारा समझ लेते हैं। श्रीसद्गुरुके पारखबोधके प्रतापसे स्वयं स्वरूपमें पड़े हुए भास-अध्यासके झाँईं का आवरण, गाफिली-भ्रम, धोखेको ठीक-ठीकसे जो जान जायेंगे। सो उन विवेकीका भ्रम-बन्धन सब दूर हो जायगा। सोच-फिक्र, चिन्ता, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभादि विकार, सन्देह, शङ्का, अविद्या अध्यास आदि चौरासी योनियोंमें ले जानेके कारण सब भी पारखी सन्तके नशा जाते हैं। वे ही पारखी सन्त निज स्वरूपमें स्थिर हो करके जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १६९ ॥

८. अनजानेकी येही रीति ❀ नाना भाँति करै परतीति ॥ १७० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जिसने अजर, अमर, अखण्ड, निज स्वयंस्वरूप सत्य चैतन्य जीवको पारख दृष्टिसे देख करके नहीं जाना-पहिचाना है, और पारखी श्रीसद्गुरुको भी नहीं चीन्हा है, ऐसे अनजाने=अज्ञानी, ज्ञानी और विज्ञानी, अनसमझ, अभिमानी, दम्भी, भ्रमिक,

पक्षपाती, बेपारखी, माया-मोहमें आसक्त, ऐसे मनुष्य लोगोंकी यही रीति=चाल, रिवाज, परम्परा अन्धाधुन्ध चली आ रही है कि, वे लोग विवेक-विचारसे निर्णय न करके मनमाने वैसे नाना भाँतिसे अन्धविश्वासी हो जाते हैं। जड़ देह विषयादिको ही सत्य मान लेते हैं, भासको ही निज स्वरूप समझ बैठे हैं। उसीसे वाममार्गी, अघोरी, सर्वभक्षी चारवाक्, शून्यवाद, तत्त्व, देह, वीर्यादिवाद, आनन्द, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेतादि मिथ्या भ्रमको ही नाना तरहसे दृढ़ करके उसी धोखेको ही प्रतीत=निश्चय वा निश्वास किये हैं, और कर रहे हैं। उसीसे हित, सुख, कल्याण मान-मान करके भूले और दूसरोंको भी भुला रहे हैं ॥ १७० ॥

९. सकलों जगत जाल अरुझान * बिरला और कियो अनुमान ॥ १७१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इसीसे श्रीसद्गुरुके पारखबोध पाये बिना इसप्रकारसे संसारके मनुष्यवर्ग विशेषरूपसे जगत्में खानी जालमें फँसे हुए पञ्च विषय भोगादिके कर्म-कुकर्ममें ही अरुझे पड़े हैं; और उसके साथ-साथ वाणी जालोंमें भी खूब जहँड़ाकर अरुझे और अरुझा रहे हैं। षट् पशुधर्ममें सब कोई मस्त पड़े हैं। निज चैतन्य स्वरूपका बोध तो किसीको भी नहीं है। बिरले कोई-कोई विषयोंकी आसक्ति छोड़कर त्यागी साधु भेषधारी हुए। परन्तु, श्रीसद्गुरुके पारखका बोध पाये बिना वे भी स्थिति नहीं पा सके। अपने जीवसे भिन्न और कोई जगत्कर्त्ता, सुख-दुःखादिका दाता सर्वशक्तिमान् परमेश्वर कोई होगा, यह अनुमान किये हैं। जिसने यह सारी सृष्टि बनायी है, उसीकी प्राप्ति होनेसे ही मनोकामना पूर्ण होगी, कल्याण होगा, इत्यादि सोच करके मिथ्या अनुमानसे परमात्माकी प्राप्तिके लिये सब कोई नाना साधनाओंमें लगे और दूसरोंको भी लगाये हैं। बिना विवेक वे धोखेमें ही पड़े हैं। अर्थात् सकल संसारी लोग तो जगत्के विषयादि जाल-जञ्जालमें ही अरुझे हुए हैं। उनमेंसे कोई बिरलेने मन-मानन्दीको बढ़ा करके और आगे एक प्रबल अनुमान-कल्पनाको प्रगट किया; सो उसका खुलासा नीचेकी चौपाईमें कहा है ॥ १७१ ॥

१०. कर्त्ता ब्रह्म भजै दुःख जाय * कोई आपै आप कहाय ॥ १७२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अनुमान-कल्पनासे जगत्कर्त्ता परमात्माको जब निश्चय करके मान लिये, तब उसी कर्त्ता जगदीश्वर परब्रह्म परमपुरुषके ध्यान, गुणगान, भजन, पूजन, आराधना, नाम-स्मरण प्रार्थनादि भावना करते रहनेसे प्राणियोंके सकल दुःख छूट जायेंगे। त्रिविधिताप जन्म-मरणादिका दुःख भी मिट जायगा, ऐसा मानने और कहने लगे, ब्रह्म-ईश्वरादिका भजन करनेसे परमानन्दकी प्राप्ति, चार फल, चार मुक्ति आदिकी प्राप्तिका कथन किये हैं; मिथ्या आशामें पड़े हैं; और कोई विज्ञानी लोग तो आप-ही-आप स्वयं निर्गुण ब्रह्म बने। "अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहं, केवलोऽहं" ऐसा कहने लगे। परमहंस बनकर स्वयं ब्रह्म स्वरूप कहलाये। जड़-चैतन्यको एकमें सान करके अधिष्ठान ब्रह्म बने; विवेकको छोड़कर वे जड़ाध्यासी हुए हैं ॥ १७२ ॥

११. पूरण सम्भव दूसर नाहिं * बन्धन मोक्ष न एकौ आहिं ॥ १७३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मवादी लोग कहते हैं कि— सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक भीतर-बाहर त्रसरेणु, अणु, परमाणुमें ओत-प्रोत भरा हुआ एक अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ ! मुझमें द्वैत भावना दूसरी कुछ सम्भवती ही नहीं है, अद्वैत ब्रह्ममें और दूसरा कुछ भी द्वैत भाव नहीं है। जीव-शिव एक ही है, इसकारण मुझमें बन्धन और मोक्ष एक भी नहीं है। क्योंकि, बन्धनमें पड़ना और मुक्त होना, यह तो द्वैत उपाधिमें होता है। ब्रह्ममें तीन कालमें भी द्वैत नहीं है, इसीसे तो बद्ध होना और मुक्त होना, यह एक भी उसमें हो नहीं सकता है। मैं तो सच्चिदानन्द स्वच्छन्द हूँ ! पूर्णब्रह्मसे दूसरी कुछ उत्पत्ति भी नहीं होती है, इत्यादि प्रकारसे भ्रम-भूलकी वाणीका कथन किये हैं, वैसे ही मान रहे हैं ॥१७३॥

१२. फल आश्रित स्वर्गहिके भोग * कर्म सुकर्म लहै सञ्जोग ॥ १७४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई कर्मी वा भक्त लोग चार फल, चार मुक्ति,

स्वर्गादि सात लोकमें जाकर नाना तरहकी सुख भोग भोगनेकी इसी आशासे इष्ट देवता ईश्वरादिके आश्रित या आधार पकड़ करके समय-संयोगके मुताबिक शुभाशुभ कर्म या कुकर्म-सुकर्म करने लगे, उसी कर्म संयोगके अभ्याससे चौरासी योनियोंमें नाना देहें धारणकर सुख-दुःख फल भोगने लगे। कर्मानुसार ही जीवोंको संयोग भी वैसा मिलता ही गया; और वेदान्ती लोग कहते हैं कि— द्वैत उपाधिमें ही फलकी चाहना, स्वर्गादिके सुख भोगनेकी ही आशा और आधार होता है। कर्म-सुकर्म करके इच्छा मुताबिक संयोग मिलकर फल भी पाते हैं; परन्तु, मुझ अद्वैत ब्रह्ममें तो कोई फलकी आशा नहीं है। कर्म करके कोई संयोग भी नहीं होना है, मैं तो सदा निष्कर्म, निरीह, निर्गुण-व्यापक ब्रह्म हूँ! मैं सबसे परे हूँ! कोई मेरा पार पा नहीं सकते हैं, इत्यादि कथन करके जहँड़ा गये हैं ॥ १७४ ॥

१३. कर्महीन बाना भगवान् * सूत कुसूत लियो पहिचान ॥ १७५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ऐसे कोई कर्महीन = निष्कर्मी, अकर्मी, सारे त्रिगुणके कर्मसे रहित, गुणातीत ब्रह्म बने हैं, कोई षट्गुण ऐश्वर्यधारी सर्वशक्तिमान् भगवान् परमेश्वर सगुण-निर्गुण अवतारी वर्णन किया है। कोई स्वयं ही भगवान् बने, जीव-ईश्वरकी एकता करके ब्रह्म कहा है, कोई कर्त्ता ईश्वर न्यारा ठहरा करके उपासना करने लगे। तहाँ भगवान्ने दश अवतारमें जो-जो बाना = भेष बनाया था, सोई इष्टका बानारूप भेष, छाप, तिलक, कण्ठी, रुद्राक्ष, भस्म आदि भक्त लोग धारण करने लगे। फिर ईश्वरको कर्मसे रहित मान करके अपने भी कर्महीन होने लगे। सूत = वासनारूप सूत्रको धारण करनेवाले नरजीवोंने, कुसूत = मिथ्या कल्पित वाणी— वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिके रोचक-भयानक वाणीको ही प्रमाण मानकर दृढ़ प्रतीत कर लिये हैं। बिना पारख सत्यासत्यकी पहिचान उन्होंने नहीं की। इसीसे वाणी-खानी जालोंमें ही बन्धे पड़े रहे। कोई बिरले ही पारखी सन्त उसको यथार्थ पहिचानकर न्यारा होते हैं। भ्रम-कल्पनासे वे ही निज-पर जीवको पृथक् करके भव-बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥ १७५ ॥

१४. भाँतिन भाँतिन पहिरै चीर * युग युग नाचै दास कबीर ॥ १७६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! संसारमें पतिको रिझानेके वास्ते जैसे स्त्रियाँ नाना तरहकी रङ्गी-बिरङ्गी साड़ी कपड़े पहिर करके नाच-नखरा दिखाती हैं। फिर कामी पुरुषोंको वशमें करके फँसा लेती हैं। तैसे ही भ्रमिक भक्त लोगोंने भी अपनेमें स्त्री भाव धारण करके मन-कल्पनासे कोई एक परमपुरुष परमात्माको माना है। उस पुरुषको प्रसन्न करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके भेष, तरह-तरहके स्वाङ्ग भाँति-भाँतिके कपड़े पहिरे हैं। सफेद, लाल, पीला, हरा, काला, गेरुवा, नीला, चित्र-विचित्र वस्त्र लगाये हैं। कान फड़ाये, जटा बढ़ाये, खाक लगाये, नङ्ग-धड़ङ्ग हो करके डोल रहे हैं। कङ्कण, घुँघुरू, बाजूबन्द आदि गहने भी उसपर सजाये हैं। इसप्रकार बहुरूपिये भेषधारी कामिनी हो करके दास कबीर = कल्पनाके दास बने हुए भक्त लोग युगानुयुगसे, युग-युग = स्त्री-पुरुषका दो-दो या जोड़ा-जोड़ा मिला करके नवधा भक्तिका खेल दिखला करके नाच रहे हैं। लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शङ्कर, माया-ब्रह्म, सीता-राम, राधे-श्याम, इत्यादि युगल-जोड़ीकी उपासनामें लगे और दूसरोंको भी लगा रहे हैं। स्त्री, गुरुवा, वाणी-अनुमान, विषयका दास, सेवक बनकर कायावीर कबीररूप अबोध नरजीव यहाँ नाना साधना, कर्म-कुकर्म, धन्धाओंमें नाच रहे हैं। जड़ाध्यासी हो शरीर छूटनेपर चारखानी चौरासी योनियोंमें अनेकों शरीर धारण करके तरह-तरहसे नाच रहे हैं। बिना पारख जीवोंका कहीं भी स्थिति-ठहराव नहीं हो रहा है। अनेकों तरहसे दुस्सह दुःख ही जहाँ-तहाँ भोग रहे हैं। परवश लाचार होकर ही नाच रहे हैं। नाना साधनाओंका दण्ड सहन कर रहे हैं। अतः सत्यन्याया पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें परख करके उन सब जालोंसे निकल जाना चाहिये ॥ १७६ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ६ । साखी— १ है] ॥ २२. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २२ ॥ ❀ ॥

[भासके अनेक रूप और नाना सिद्धान्त वर्णन ।]

१. भासेव जीवरूप जो एक * तेहि भासके रूप अनेक ॥ १७७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! अनादि कालके संसारमें जीव सब जड़ाध्यासी होकर आवागमनोंमें पड़े हुए हैं। शुभ संस्कार उदय होनेसे कभी कर्मभूमिकारूप मनुष्य खानीमें आते हैं। परन्तु, निजस्वरूपका पारख बोध न होनेसे फिर भी वही भास-अध्यासके कुचक्रमें पड़ जाते हैं। जीव = चैतन्य ज्ञानस्वरूप जीव, और रूप = जड़ पाँच तत्त्वके अध्यासरूप संयोग-सम्बन्धसे दोनोंके बीचमें मनुष्य देहका स्वरूप खड़ा हुआ है। सोई नरजीवरूप मनुष्योंके हृदयमें प्रथम जो एक मिथ्या भ्रम-भास उत्पन्न हुआ कि, सुख-दुःखोंका दाता जगत्कर्त्ता विधाता परमतत्त्व-परमात्मा कोई एक होगा ? सो ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा कोई-न-कोई विश्वपति एक तो अवश्य होगा ? ऐसी अनुमान-कल्पनाकी स्फुरणा हुई, जो एक बीजरूपसे भासा। पश्चात् उसी भासका रूप वाणी सिद्धान्तके अनेकों विस्तार हो गये। रूप = आकार, भेष, सिद्धान्त, स्थिति, मानन्दी वृक्षके समान हुआ; उसके शाखा-प्रशाखा अनेकानेक उसी भासके कार्य संसारमें नाना मत-मतान्तरके रूपमें फैलते गये। बिना पारख सब कोई अबोध मनुष्य उसीमें अरुझे वा अरुझा गये हैं ॥ १७७ ॥

२. कोई मगन रूप लौलीन * कोई अरूप ईश्वर मन दीन ॥ १७८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तहाँ कोई विषयीजन स्थूलरूपकी सुन्दरतामें ही मोहित-आकर्षित होकर विषयानन्दमें मग्न-मस्त हुए, देहरूपमें ही लौलीन विषयासक्त हो रहे हैं। वाममार्गी, चारवाक्, तत्त्ववादी, देहवादी आदि इसी रूपमें तल्लीन हो रहे हैं। अथवा कोई भक्त, कर्मी लोग सगुण ध्यान, उपासना करनेमें मग्न-मस्त होकर ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिके सगुण रूपकी कल्पना करके मानसिक पूजा, आराधना करनेमें प्रेम लगाकर लवलीन हो रहे हैं; और कोई निर्गुण-उपासक होकर अरूप = निराकार, रूपसे रहित प्रणव ब्रह्मके ध्यान करनेमें लगे हैं। निर्गुण-निराकार परमेश्वर घट-घटका प्रकाशी 'सूत्रमणिन्याय' है। ऐसा निश्चय करके उसी कल्पित ईश्वरमें मनको लगा दिये हैं। अपने आपकी सुध-बुध खोये हैं। ऐसे दोनों प्रकारसे मिथ्या धोखेमें ही जा पड़े हैं। निराकारवादी लोग आकाशवत् परमात्मा मान लिये। साकारवादी लोग अष्ट प्रतिमा पूजक हुए; वे सब लोग भ्रमचक्रमें ही गिर पड़े हैं ॥ १७८ ॥

३. कोई कहै कर्म रूप है सोय * शब्द निरूपण करे पुनि कोय ॥ १७९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई मीमांसा शास्त्रके प्रमाणसे कहते हैं कि— कर्म ही सो परमात्माका मुख्य स्वरूप है। तहाँ श्रीमद् भगवद् गीता अध्याय-३, श्लोक-२० में कहा है:—

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥"

चौपाईः— "कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै तसै फल चाखा ॥
कोइ न काहु सुख दुःख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता ॥" रामायण ॥

श्लोकः— "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयतेकर्म कल्पकोटि शतैरपि ॥"

"ब्रह्मायेन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे। विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तो महासंकटे ॥
रुद्रोयेन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनंकारितः। सूर्योभ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥"

भावार्थः— किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ेगा। भोगे बिना सैकड़ों कल्पमें भी कर्म नाश नहीं होते हैं ॥ और जिस कर्मने ब्रह्माको ब्रह्माण्ड पात्रके पेटमें रहकर कुम्हारके समान कर्म करनेको लगाया, विष्णुको दश अवतार लेनेमें महान सङ्कट भुगाया, महेशको खप्पर हाथमें पकड़ा करके भिक्षा करनेको घुमाया, और आकाशमें सूर्य सदाकाल घूम ही रहा है। ऐसे उस महान बलशाली कर्मको इसीकारण नमस्कार करते हैं, ऐसा भर्तृहरिने कहा है ॥

इत्यादि प्रकारसे कोई जड़ कर्मको ही ईश्वर निरूपण किया है; और कोई कर्मकाण्डी लोगोंने ॐ शब्दको ही पिण्ड-ब्रह्माण्डका कारण ब्रह्म निरूपण किया है, "शब्दब्रह्मेति श्रुतिः" शब्दसे ही विश्वका प्रकाश हुआ है। सब वेदादि ग्रन्थ भी शब्द स्वरूप ही हैं। शब्दसे ही ज्ञान होता है ऐसा वे लोग कहते हैं; और प्राणिनि आदि व्याकरणवादी लोग उच्चारित शब्दको ही सार ईश्वररूप करके ठहराये हैं। फिर कोई परावाचाको परमात्मा निरूपण किये हैं। अतः चैतन्य जीवको छोड़कर वे सब निर्जीव विषयोंमें ही लगे हैं, बिना पारख ॥ १७९ ॥

४. समयरूप कोई भगवान् ❀ कर्त्ता न्यारा कोई अनुमान ॥ १८० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोईने वैशेषिक शास्त्रके प्रमाणसे समयरूप त्रिकालकी अवधिको ही सर्वशक्तिमान् भगवान् करके माना है। किसीने कहा हैः—

दोहाः— "धीरे धीरे रे मना! धीरे सब कुछ होय॥ माली सींचे सौ घड़ा! ऋतु आये फल होय ॥"

"समय पाय तरुवर फले। केतिक सींचो नीर॥" अतः समय पा करके ही उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति, सुख-दुःख, जन्म-मरणादि होते रहते हैं। इसलिये कालरूप समय ही ईश्वरका सत्य स्वरूप है, ऐसी कल्पना किये हैं। कोईने न्याय शास्त्रके प्रमाणसे एक सर्वशक्तिमान् त्रिकालज्ञ, जगत्के कर्त्ता परमेश्वरको सबसे न्यारा निराधार-निराकार अनुमानसे माना है। कार्यरूप जगत्का कारण, कर्त्ता वा निमित्तोपादान कारण ईश्वरको ही ठहराया है। परन्तु, वह माना हुआ कर्त्ता जीवका अनुमान मात्र होनेसे मिथ्या है। जीव उससे न्यारा है, यह पारख दृष्टि करके नहीं जाने, इसीसे वे धोखेमें ही भूले पड़े हैं ॥ १८० ॥

५. कोई कहै ईश्वर ज्योतिहि जान ❀ आत्माको कोई स्वतः बखान ॥ १८१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई योगशास्त्रके प्रमाणसे वह परमात्मा ज्योति स्वरूप है। योग साधना तथा ध्यान द्वारा वह ब्रह्म-ज्योतिका दर्शन होता है। तहाँ कहा हैः— छन्दः— "नूरमें नूर है तेजमें तेज है, ज्योतिमें ज्योति मिलिमिलि रहिये॥ झलामलं समस्त विश्व तेजमें बखानिये॥"

ऐसा कोई-कोई योगी ही जानते हैं, कहा है। ज्योतिस्वरूप ईश्वरको जाननेवाले ही परमपदको पाते हैं, ऐसा गुरुवालोगोंने कहा है। तेजतत्त्वके प्रकाश जड़भास ज्योतिको ही उन्होंने श्रेष्ठ माना है, और कोई सांख्य शास्त्रके प्रमाणसे 'अयमात्मा ब्रह्म" कहकर सर्वत्र परिपूर्ण कोई एक आत्माको कल्पना-कर उसे स्वतः स्वतन्त्र पुरुष वर्णन किया है। तहाँ कहा हैः—

"असङ्गः पुरुषः प्रोक्त बृहदारण्यकेपि च॥"— वह आत्म पुरुष असङ्ग, निर्लिप्त, शुद्ध-बुद्ध है, ऐसा बृहदारण्य उपनिषद्में भी कहा है। जीवात्मा, परमात्मा, विश्वात्मा ऐसा विभाग करके फिर तीनोंका एकमें मिला करके स्वतः आत्मा विभु पुरुषकी बहुविधि महिमाका बखान किये हैं। सो सब नरजीवोंकी कल्पना मिथ्या धोखा है। सत्य पारख पदको उनमेंसे कोईने भी नहीं जाना ॥ १८१ ॥

६. कोई कहै सब पुनि सबते न्यार ❀ आपै राम विश्व विस्तार ॥ १८२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! कोई वेदान्त शास्त्रके प्रमाणसे कहते हैं कि— घट, मठ, पट, तट, सर्वत्र ओत-प्रोत परिपूर्ण व्यापक परमतत्त्व-परमात्मा है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" चराचर, दृश्यादृश्य सब कुछ ब्रह्मका ही स्वरूप है। फिर ऐसा भी कहा है कि— सब माया विकारसे परब्रह्म न्यारा शुद्ध-बुद्ध, निर्लिप्त, निरञ्जन, निराकार है। वह कभी किसीमें लेपायमान नहीं रहता है, सर्वदा सबसे न्यारा ही रहता है। सबमें रमनेवाले "रमेतीतिरामः" आप ही परमात्माने स्वयं सङ्कल्प करके "एकोहं बहुस्यामेतिप्रजायेयः" ऐसा कहकर प्रथमारम्भमें सृष्टि उत्पन्न किया है। ऐसे सारा विश्वरूप संसारकी रचनाका विस्तार स्वयं आत्मारामसे हुआ है; और उसी विश्वमें विश्वात्मा व्यापक हो रहा है। उसको विराट् पुरुष कहते हैं। ऐसी-ऐसी कल्पनाका वर्णन करके धोखेमें ही सब पड़े हैं ॥ १८२ ॥

७. शब्द भाव कोई अनुमान * अद्वयरूप भई पहिचान ॥ १८३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई योगी लोग दशनाद अनहद शब्दको ही अनुमानकी भावनासे बेहद ब्रह्म माने हैं। गुरुवालोगोंने जो-जो भ्रमका शब्द बतलाया है, उसीमें भूलकर अनुमान-कल्पनाको प्रतीत कर रहे हैं। कोई 'ॐ' शब्दको ही ब्रह्मका स्वरूप अनुमान किये हैं। "शब्दब्रह्मेति श्रुतिः" कहकर प्रमाण दिया है। ऐसे शब्दकी मिथ्या भावनामें वे भूले और दूसरोंको भी भुला रहे हैं। अनुमान करते-करते असली भेदका जब कुछ भी पता नहीं लगा, तब आखिरमें थक करके शब्दकी मिथ्या भावनामें कल्पनाको टिकाकर एक अद्वैत ब्रह्म स्वरूपकी पहिचान करने लगे। अद्वैतरूप ब्रह्म है, सोई बात दृढ़ निश्चय हो गई। तहाँ ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, ध्याता-ध्यान-ध्येय, द्रष्टा-दृश्य-दर्शनादि सकल त्रिपुटीसे परे परमात्माको कौन पहिचान करे? तो वह जैसे-का-तैसा है, ऐसा कहकर भ्रमचक्रमें पड़े हैं। अद्वैतवादीने एक ही ब्रह्मको सत्य माना है। द्वैतवादीने एक ईश्वर कर्त्ता तथा दूसरा उसका अंश जीव नाना कार्यरूपमें ईश्वरकी सत्तासे चलनेवाले दो पदार्थ नित्य माना है; और विशिष्टाद्वैतवादीने एक नित्य सर्वशक्तिमान् ईश्वर, दूसरा अल्पशक्तिमान् नित्य जीव, तीसरी माया शक्ति, उन तीनोंको नित्य पदार्थ माना है। वे लोग जीवोंकी नित्यमुक्ति कभी नहीं मानते हैं। ऐसे-ऐसे मतवाद खड़ा करके बिना पारख भ्रम-धोखेमें ही पड़े और पड़ रहे हैं ॥ १८३ ॥

८. दुग दुग रहिके बोलै बात * बोलतहिं सब तत्त्व नशात ॥ १८४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखहीन भ्रमिक गुरुवालोग दुग-दुग=भ्रमचक्र सन्देह, दुविधा, अनिश्चित धोखेमें ही रहकर नाना प्रकारके मतवादके अनेकों सिद्धान्तोंकी बात शब्द बहुत-बहुत बोले हैं, और बोल ही रहे हैं। उससे यथार्थ सत्यका बोध तो किसीको भी नहीं हुआ। बल्कि, उसके विपरीत मिथ्या वाणी बोलते ही मिथ्यावादी दोषी होकर पतित हुए। मुक्तिदायी सद्गुण रहनी-रहस्य शुद्ध तत्त्व विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति, सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, इत्यादि हंस देहकी तत्त्व-प्रकृति भी सब नशा गयी। जड़ाध्यासी होकर जीव सब चौरासी योनियोंमें ही चले गये और चले जा रहे हैं ॥ १८४ ॥

९. बोल अबोल लखै पुनि जोय * भास जीव नहिं परखै सोय ॥ १८५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! बोल=बोलचालकी वाणी वैखरी वाचा द्वारा कहने-सुननेसे ही अबोल=निःअक्षर ब्रह्म, जिसे मन, बुद्धि और वाणीसे परे अवाच्य माना है। किन्तु, सो वाणीसे ही तो लखनेमें आया; वह शब्द सुन करके ही तो लखते और लखाते हैं। फिर उसको अलख मानते हैं; उसका दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं। जो लखनेमें आया, सो तो जीवका भास है; जो लखनेमें नहीं आया, सो मिथ्या कल्पना है। फिरबोल-अबोल जो कुछ मैंने माना हूँ और लखा हूँ, सो सब मेरा ही भास, असत्य, नाशवान् भ्रम है; और उसका भासिक जनैया 'मैं जीव सत्य हूँ !' ऐसा निर्णय पारखसे पहिचान करके जब तक नरजीव नहीं परखते हैं, तब तक सो भ्रम बन्धन धोखा जीवोंका नहीं छूटता है। अथवा बोलको लखकर जो अबोल ब्रह्म भी हुआ, तो भी धोखेमें ही पड़ा, फिर सो तो नरजीवका ही भास होनेसे भ्रम है, ऐसा कोई नरजीव नहीं परखते हैं, इसीसे गाफिलीमें जहँड़ा करके आवागमन चक्रमें ही पड़े रहते हैं, बिना पारख ॥ १८५ ॥

साखीः— निजध्यास झाँई लहै * सो सन्धिक भौ भास ॥

[२६] प्रथम अनुहार सो कल्पना * सदा करै परकाश ॥ १८६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! चैतन्य नरजीव निज स्वरूपकी स्थिति न करके पारख बोधके बिना अपनेको भूलकर जड़ाध्यासी हुए हैं। उसी निज अभ्याससे झाँई=गाफिली, ब्रह्मरूपी भ्रमके पदको प्राप्त हुए हैं। सोई तत्त्वोंका प्रकाश, निवृत्तिका आनन्दादि जो अनुभव

जीवको भास हो गया, उसीको अपना या ब्रह्मका स्वरूप करके मान लिये। सो सन्धिक=मिथ्या मानन्दीका ही भास जीवको दृढ़ हुआ है। प्रथम नरजीवने मनुष्य देहमें अनुहार=सूक्ष्म स्वरूपकी भावना जो-जो प्रगट की, सो सब कल्पना है। वाणी द्वारा मनुष्य जीव उसी भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनाको ही सदा-सर्वदासे जगत्में प्रकाश कर रहे हैं। अर्थात् जीव अपने ही अध्याससे झाँईं में मिला, आगे सोई भासको निजरूप मान लिया। जाग्रत् होनेपर प्रथमके स्वरूपके भासको ही सो वाणी-कल्पनासे सदा प्रकाश करके प्रचार करने लगे। उसीमें बिना विवेक अपने भूले और दूसरोंको भी भुलाये या भुला रहे हैं, बिना पारख ॥ १८६ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ८ मात्र है] ॥ २३. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २३ ॥ ❀ ॥

[देह बुद्धिरूप देहाध्याससे चौरासी योनियोंकी प्राप्ति और विषय-विकारके मध्य संग्राम, तथा राम-खटोलाके आराम इत्यादि वर्णन।]

१. लक्ष चौरासी योनी जेते * देह बुद्धि जानिये तेते ॥ १८७ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! चौरासी योनियोंका लक्षण कहते हैं, सो सुनिये! मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज, ये चार खानियोंमें एक-एकमें अनेक-अनेक योनियोंकी जाति, राशि, समूह, ढेरीरूप नाना प्रकारके देहधारी प्राणी जन्म लिये हैं। सो संक्षेपमें उसे चौ-राशि=चारखानीकी अनेकों योनियोंको ही कहा जाता है। यहाँ चौरासी (८४) अङ्ककी गणनासे मतलब नहीं है; समूह वाचक शब्दसे तात्पर्य है। संसारमें जितने भी चौ-राशि योनियोंके लक्षण गुप्त-प्रगट या दृश्य-अदृश्य प्राणी हैं, सो अगणित-अनन्त जीव हैं। जितने सब देह बुद्धिवाले जड़ाध्यासी हुए या हो रहे हैं। स्थूल-सूक्ष्म देहोंमें विषय बुद्धिसे जहाँ-जहाँपर उन्होंने दृढ़ लक्ष्य लगाया है, तहाँ-तहाँपर देह छूटनेपर उतने ही नवीन देहें अध्यासी जीवोंने धारण कर लिया है। पूर्ण पारख बोध हुए बिना चौरासी योनियोंके तरफका लक्ष्य पशु स्वभाव, देह-बुद्धि या जड़ाध्यास किसीका भी नहीं छूटता है। अथवा नौ नाथ, चौरासी सिद्ध, षट् दर्शन-छियाञ्चवे पाखण्ड आदि जितने योनियाँरूप विभिन्न मतवादी हुए हैं, उन सबोंका लक्ष्य, देह बुद्धि=देह सम्बन्धमें तत्त्वोंके भास, आनन्द, प्रकाश आदिमें ही अटका रहा; निज स्वरूपको उन्होंने यथार्थ नहीं जाना, इससे तिसने सब देहाध्यासी ही हुए हैं। यह पारख दृष्टिसे देख करके जान लीजिये! ॥ १८७ ॥

२. जहाँ जेहि भासा सोइ सोइ रूप * निश्चय किया परे भव कूप ॥ १८८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! पारखहीन समस्त मतवादियोंको तथा सकल मनुष्योंको जहाँ-जहाँ पर जिस-जिस प्रकारसे जैसा-जैसा भास सन्मुख खड़ा हुआ, दिखाई दिया, और अनुमान-कल्पना, भास-अध्यास पक्का हुआ, उसी मुताबिक सोई-सोई मत-मजहबके रूप=आकार, स्वरूप, सिद्धान्तादि दृढ़ निश्चय कर लिये; और भासिक निज स्वरूपको भुला दिये हैं। भास, अनुभूत, प्रतिबिम्ब, ज्योति, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि मोटी-झोनी मायाके विषयोंको ही अपना या परमात्माका स्वरूप मानकर भ्रमरूप खानी-वाणीके भव-कूप, भग-कूप, गर्भ-कूप, चौरासी योनियोंके जगकूपमें गिर पड़े हैं। अन्धेरी कोठरीमें कैद हुए हैं, बिना विवेक ॥ १८८ ॥

३. नाना भाँति विषय रस लीन्ह * अरुझि अरुझि जिव मिथ्या दीन्ह ॥ १८९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! जब तक जीते रहे, तब तक नाना प्रकारसे प्रयत्न करके चौरासी आसन लगा करके कोई भग भोगके पञ्च विषय-विलासकी रस भाँति-भाँतिसे चूस लिये। कोई अष्टाङ्ग योग समाधिकी अनेकों तरहसे अनुभव रस लिये। कोई अष्ट प्रतिमा पूजा, नवधा भक्ति, सप्त ज्ञान भूमिका आदिकी रस नाना भाँतिसे लिये। इसतरह विविधि प्रकारसे खानी-वाणीका ही जहरीला रस लेकर नशेमें चूर होकर दोनों जालोंमें अपने अरुझ-अरुझ करके दूसरोंको भी उसीमें अरुझा-अरुझा कर मिथ्या मानन्दीके माया-जालमें जीवोंको लगा दिये हैं।

नाशवान् विषयोंकी आसक्तिमें जीवोंको लगा करके जड़ाध्यासी हुए; अमूल्य मनुष्य जन्मकी आयुको व्यर्थ खोकर आवागमनके चक्रमें पड़े हैं ॥ १८९ ॥

४. दावा विषय जरै सब लोय ❀ बाँचा चहै गहै पुनि सोय ॥ १९० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भयङ्कर दावानलके समान प्रज्ज्वलित अग्नि संसारमें लगी है। जठराग्नि, गर्भाग्नि, कामाग्नि, विषयाग्नि, क्रोधाग्नि, कर्माग्नि, योगाग्नि, ज्ञानाग्नि, ब्रह्माग्नि, भ्रमाग्नि, ऐसी-ऐसी खानी-वाणी भीतरके नाना तरहके विषयादि अग्निमें दबे और दबा करके झुलसकर सब लोग जल रहे हैं, बेहाल हो रहे हैं। सबकी विवेक-बुद्धि भस्म हो रही है। अत्यन्त व्याकुल-दुःखी होकर कितनेक लोग तो उस दुःखसे छूटकर बचना चाहते हैं; हित-कल्याण, मुक्ति, विश्रान्ति पाना चाहते हैं। परन्तु, उन्हें स्वयं पारखदृष्टि तो नहीं है; और पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत भी नहीं होते हैं, तो कैसे बचेंगे ? घबड़ा करके पहले इधर-उधर भागकर फिर लाचार हो करके वही खानी-वाणी जाल-जञ्जालको ही पकड़ लेते हैं। जड़ भास-अध्यासको ही ग्रहण कर लेते हैं। अतएव चौरासी योनियोंके चक्रमें ही भ्रमते रहते हैं। कोई बिरले ही पारखी सन्त इस जालसे छूटकर मुक्त होते हैं ॥ १९० ॥

५. दृढ़ विश्वास भरोसा राम ❀ कबहूँ तो वह आवै काम ॥ १९१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कितनेक भक्त लोग सगुण-निर्गुण परमात्मा घट-घट व्यापी आत्माराम या कोई परमेश्वर कर्त्ता पुरुष मालिक मानकर उसके नाम-स्मरण, भक्ति, ध्यानादि करते हुए दृढ़ विश्वाससे रामपर भरोसा रक्खे हैं या रख रहे हैं कि, हम रामकी भक्ति-भावना, ध्यान-धारणा करते रहेंगे, तब कभी तो भी हमारे दुःखके समयमें परमात्मा हमारे काम आवेंगे, दुःखसे बचा करके हमें सुखी करेंगे, सामीप्य मुक्ति देंगे, इत्यादि आशा लगा रहे हैं। परन्तु, सो सब व्यर्थ हो जाता है; कल्पना किसीके कभी काम नहीं आती है। अथवा स्त्री, पुत्र, धन, परिवारादिसे आराम होनेका भरोसा लेकर कभी तो ये हमारे काम आवेंगे, यह विश्वास संसारी लोग दृढ़ कर रहे हैं। अथवा योगी, ज्ञानी लोग आत्मारामपर पक्का दृढ़ विश्वास करके भरोसा कर रहे हैं। कभी-न-कभी मृत्यु होनेपर हमारे कल्याण, मुक्तिके काम पूर्ण करनेको परमात्मा आवेंगे, हमारे सहायक होंगे, यह मान रहे हैं। परन्तु, मन-मानन्दीके मिथ्या आशा-भरोसा किसी जीवके काम नहीं आता है। वासनामें बँधे हुए जीव सब चौरासी योनियोंके कैदमें ही जाकर दुःख भोगा करते हैं ॥ १९१ ॥

६. विषय बेकार माँझ संग्राम ❀ राम खटोला कियो आराम ॥ १९२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इधर संसारमें सब कोई विषयके विकार=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, आशा, तृष्णादि विषय सम्बन्धी विकारोंमें पड़ करके तन, मन, धन, जनके बीचमें पड़ करके एक-दूसरेसे लड़न्त-भिड़न्त, मार-काट कर रहे हैं। कोई विषयानन्दरूप आरामके लिये स्त्रीको साथमें लेकर खटोला वा झुलनामें झूल रहे हैं; मदमस्त हो रहे हैं; और उधर वाणीमें कल्पना, अनुमान, भ्रम धोखादि वाणी विषयके विकार ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी-देवता, स्वर्गादि मान करके नाना मत-मतान्तरके बीचमें खड़े होकर अनेक साधनाएँ करनेमें, खण्डन-मण्डन करनेमें संग्राम मचा रहे हैं। रामकी भक्ति, नाम-जप करनेमें जी-जानसे लगे हैं। दोहाः—"अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान। जन्म जन्म सियाराम पद, यह बरदान न आन॥"

—तुलसीदासजीका इत्यादि पद कहकर संग्राममें जुटे हैं; और खटोला=षट्शास्त्रोंके प्रमाणसे एक आत्मारामको ही सत्य मानकर उसी भ्रमरूप हिण्डोलामें झूलकर आराम वा आनन्द किये। देह छूटने-पर फिर गर्भवासरूपी झूलामें झूलनेको चले गये; मायाकी गोदमें आराम किये और कर रहे हैं ॥१९२॥

७. घायल बिना तीर तरवार ❀ सोई अभरण जेहि रिझै भतार ॥ १९३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैसे तीर-तलवार आदि शस्त्रोंकी चोट स्थूल

शरीरमें लग करके घाव होनेपर सो औषधोपचार करनेपर कभी अच्छा भी हो जाता है। परन्तु, वहाँ दूसरी तरफ कामी-कामिनी लोग और भक्त लोग तो स्थूल अस्त्र-शस्त्रके चोट लगे बिना ही काम-बाण, विरह बर्छी, भ्रमधारोंकी तलवार लग जानेसे अत्यन्त घायल, बेहाल हो रहे हैं। बड़ी करारा चोट लग गई है, तो कोई मूर्च्छित हुए, कोई कहरते हुए कराह रहे हैं। तीर=जड़-चैतन्यके किनारामें वह परमात्मा कहीं भी नहीं दिखता है, बिना देखे ही उसका आश्रय पकड़कर पार होना चाहते हैं। फिर उसका धार-पार न पा करके अपार कहकर डूब जाते हैं। जैसे स्त्रियाँ पतिको रिझानेके लिये नाना प्रकारके गहनोंको पहिर करके नाचती, गाती, हाव-भाव दिखाकर कटाक्षका प्रयोग करती हैं। जिससे विषयी पुरुष उनके वश हो रहते हैं। तैसे ही भक्त लोगोंने भी कल्पित परम पुरुष परमात्माको पति मानकर उसे रिझाने वा प्रसन्न करनेके वास्ते सोई आभरण=प्रेम-भक्तिका गहना, नवधा भक्तिकी शृङ्गार-सजावट करके जड़ मूर्तिके सामने नाचना-गाना, राग अलापना, भाव-भङ्गी दिखाना, रोना, लोटना, इत्यादि नखरा, स्वाङ्ग करने लगे। बिल्कुल स्त्रीके समान मूर्ख हो गये। जिससे कि, कल्पित भ्रतार या खाविन्द रीझे, खुश हो, वशमें होकर उन्हें मनावे, ऐसा चाहने लगे। परन्तु, सब बेकारके धोखेसे उनका कुछ भी काम नहीं सरा। व्यर्थ ही नरजन्म बिता करके जड़ाध्यासी जीव पीछे पशु आदि योनियोंमें जा करके नाना देहधारी जन्तु हुए ॥ १६३ ॥

८. कामिनि पहिर पिया सो राँची ❀ कहैं कबीर भव बूड़त बाँची ॥ १६४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! इसप्रकारसे प्रेमलक्षणा भक्तिके आभूषण, प्रेमपाटकी चोलना, अनन्य भक्ति-भावकी महान-महीन साड़ी, अनेकों मनकी कामनाएँ, इच्छा, वासना, आशा, तृष्णादिको सर्वाङ्गमें पहिर करके कामिनी=स्त्रीरूपी भक्त जीव माना हुआ पिया=परम पुरुष परमेश्वर-के विरहमें तल्लीन हुए। नाना प्रकारसे भ्रमको पहिर करके ईश्वरमें स्नेह लगाकर, राँची=रत हुए, लवलीन हुए, गरगाफ हुए; धोखाधारमें गाता लगाने लगे। परन्तु, तहाँपर कहैं कबीर=गुरुवालोग तो ऐसा कहते हैं कि— जो उसप्रकारसे नवधा भक्ति और प्रेमलक्षणा भक्तिमें प्रवीण या पारङ्गत हो गये वा ऐसे होवेंगे, सो भवसागरमें वा आवागमनमें डूबनेसे बच गये वा बच जायेंगे, उसे परमेश्वर स्वयं ही आकर भवपार करदेंगे, उस भक्तका कार्य पूर्ण हो जायगा, इत्यादि रोचक वाणी सुना-सुना करके अबोध लोगोंको भुलाये वा भटकाये हैं। जब माना हुआ ईश्वर ही मनकी कल्पना मात्र मिथ्या है, तो वह क्या मिलेगा? क्या भवसे पार करेगा? कुछ नहीं। खानी-वाणीके जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंके गर्भमें ही डूबा करते हैं। बिना पारख कोई बच नहीं पाते हैं। जो श्रीसद्गुरुके पारख ज्ञानका अपरोक्ष बोध ज्ञान पायेंगे, सोई भव-धारमें डूबनेसे बच जायेंगे, और कोई बच नहीं सकते हैं ॥ १६४ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ७ मात्र है] ॥ २४. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २४ ॥ ❀ ॥

[भ्रमसे कल्पित बेड़ामें चढ़कर मँझधारमें एक ब्रह्मका विवेक किया, तो वहीं डूब मरे इत्यादि वर्णन।]

१. भव बूड़त बेड़ा भगवान ❀ चढ़ै धाय लागि लौ ज्ञान ॥ १६५ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! संसार यही महान विस्तारवाला भवसागर बना है। पहले गृहस्थ लोग भग-भोगादि विषयके प्रवाहमें बहते हुए त्रिविधि तापादि नाना दुःखोंमें डूब रहे थे। दुःखके मारे अधीर, व्याकुल हो रहे थे। दुःखोंसे बचनेके लिये जहाँ-तहाँ भटक रहे थे। फिर ऐसे समयमें धूर्त गुरुवालोग आ करके उनसे बोले कि— हे भाइयो! तुम लोग भवसागरमें मत् डूबो, देखो! हमने तुम्हारे वास्ते भगवान्की नवधा भक्ति राम-नामका बेड़ा=जहाज, बड़ा भारी नौका लाये हैं। इसमें प्रेमलक्षणा भक्तिका पतवार भी लगा है? आओ! जल्दी करो! भगवान्के नाम-स्मरणरूपी बेड़ामें आरूढ़ हो जाओ! फिर तुम्हें भगवान् क्षणभरमें ही भवसागरसे पार कर देंगे, इत्यादि रोचक वाणी सुन करके आकर्षित हो, संसारके दुःखोंमें डूबते हुए बहुतसे लोगोंने भगवान्को बेड़ा मानकर पकड़े। धाय-धाय करके कर्म, भक्ति, ज्ञान, ध्यान आदिमें प्रेमसे लौ लगा करके तब

धड़ाधड़ सब कोई साधनारूप मार्गमें चढ़े। अन्तमें ब्रह्मज्ञानमें जाकर विशेष प्रेम दृढ़ करके लगाये। तथापि भव धारमें डूबनेसे नहीं बचे; और भी बीच भँवरमें फँसकर डूब मरे। भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें ही जा पड़े हैं ॥ १९५ ॥

२. थाह न पावै कहै अथाह ❀ डोलत करत तराह तराह ॥ १९६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! साधना करते हुए गये, तो बढ़ करके आगे अन्तिममें ब्रह्मज्ञान तक भी पहुँचे; तथापि ईश्वर, ब्रह्म-परमात्माकी कुछ थाह, खबर, पता ही नहीं पाये। तब मन, बुद्धि और वाणीसे परे अथाह, अगम, अगोचर, अवाच्य कहकर हार गये। तो भी उनके मनमें सन्तोष नहीं हुआ; कैसे परमात्माका दर्शन हो, किस विधिसे दर्शन मिले ? हे प्रभु ! मुझ दासपर दया करके दर्शन दो ! ऐसा कहकर पुकारते हुए "त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् ! तव शरणं रक्षः ! रक्षः !" ऐसा चिल्लाते हुए दशों दिशाओंमें दौड़े चले गये, वहाँ तक डोलते-फिरते, तीर्थयात्रा करते, देश-विदेशोंमें भटकते फिरने लगे। नाना पुरुषार्थ, यत्न-प्रयत्न भी खूब करने लगे। परन्तु, सो सब प्रयत्न निष्फल हुआ, फिर तो थर-थर काँपते हुए रो-रो कर तरह-तरहके विलाप करने लगे। इसीतरह मनुष्य जन्मको व्यर्थ बिताकर आवागमनादिके दुःख भोगी हुए हैं ॥ १९६ ॥

३. सूझ परै नहिं वार न पार ❀ कहै अपार रहै मँझधार ॥ १९७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसार सागरमें साधनाओंके तख्तमें बैठ करके परमतत्त्व-परमात्मारूपी तट देखने, ताकने, खोजने लगे; खाली आँखोंसे कुछ भी नहीं दिखा, तो कोई भक्तिका चश्मा लगाये, कोई योगकी दूरबीन लगाये, नेत्र मूँद करके ध्यान करने लगे। कोई ज्ञानके टेलिस्कोपसे लक्ष्य लगा करके निहारने लगे। फिर भी परमात्माका आकार-प्रकार कुछ सूझ नहीं पड़ा। वार = जड़ पाँच तत्त्वोंमें, और पार = अनन्त चैतन्य जीवोंके स्वरूपमें भी माना हुआ परमेश्वरका लक्षण कहींपर कुछ देखनेमें नहीं आया। तब प्रवीण गुरुवालोगोंने भ्रमाकर कहा कि, वह परब्रह्म-परमात्मा तो अपार है, उसका कोई भी किसी प्रकारसे पार पा नहीं सकते हैं। हाँ ! सर्वव्यापक होनेसे वह संसारके बीचमें ही परिपूर्ण ओत-प्रोत हो रहा है। "भक्त प्रेम वश परगट होई"—सो तुम सच्चे दिलसे भगवान्का भजन करो, तो कदाचित् दर्शन हो भी जायगा; इत्यादि प्रकारसे अपार कह करके वाणी कल्पनाके मझधार ब्रह्म धोखेमें ज्ञानी लोग डूबे और दूसरोंको भी डुबा रहे हैं ॥ १९७ ॥

४. माँझ धारमें कियो विवेक ❀ कहाँका दूजा कहाँका एक ? ॥ १९८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! संसाररूप समुद्रके बीचोंबीच वेद वाणीकी कल्पनारूपी धारामें बहते हुए ब्रह्मज्ञानियोंने वेदान्त शास्त्रका आधार पकड़ा, तहाँ अद्वैत सिद्धान्तको हृदयमें धारण करके ऐसा विवेक किया कि— "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।" जब जगत् त्रिकालमें ही सत्य नहीं है, मृगजलवत् भासमात्र मिथ्या है। "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या" यह प्रमाण है। फिर कहो तो भला ! ब्रह्मसे भिन्न दूसरा द्वैत कहाँ ? कैसे हो सकता है ? जब जगत् ही मिथ्या ठहरा, तब उसको उत्पन्न करनेवाला एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर, ब्रह्मसे पृथक् अन्यत्र कहाँ ? कैसे हो सकता है ? एक कहाँका है ? दूजा कहाँका है ? यह सब कथन भ्रममात्र माया कल्पित है। जहाँ वाचा पहुँच ही नहीं सकती है, वहाँ कथन तो भी क्या कैसे होगा ? ब्रह्मपद तो लक्ष्यांश द्वारा अनुभवगम्य है। वास्तवमें तो वह निर्विकल्प कैवल्य है, उसको कुछ कहते नहीं बनता है। ऐसे कह करके महान धोखेके खाँचमें गिर जाते हैं। विवेक-विचार निर्णयको परित्याग करके ब्रह्म-भ्रमके चक्रमें चक्कर लगाते हुए चौरासी योनियोंके गर्भवास जन्म-मरणादिमें पड़ा करते हैं, बिना पारख ॥ १९८ ॥

५. बेरा आपु आपु भव धार ❀ आपुहि चहै उतरन पार ॥ १९९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! एक समुद्र, दूसरा जहाज, तीसरा जहाज़में चढ़कर पार उतरनेवाले, ये तीनों भिन्न-भिन्न रूपवाले होते हैं। संसारमें तो उक्त त्रिपुटीके सम्मेलनसे

ही काम चलता है। परन्तु, गुरुवालोगोंके यहाँपर तो इससे उलटी बात है। क्योंकि, वेदान्तीलोग अद्वैत ब्रह्म बने हैं, तहाँपर बेरा = जहाज, राम-नामरूपी ज्ञान-पोत भी आप ही स्वयं हुए हैं; और भवधार-रूप संसार सागर भी आप स्वयं विराट् पुरुष बने हैं; जगत्-ब्रह्ममें अभेद बतलाया है। फिर ब्रह्मका अंश जीवको माना है; जीव मायाके बन्धनोंमें ही पड़े हैं, और आप ही पीछेसे जीव-ब्रह्मकी एकता करके भाग, त्याग, लक्षणासे "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः" ऐसा कथन करके भवजलसे पार उतरनेकी चाहना करने लगे; और भवजलसे उतर करके भी जायेंगे कहाँ? उस पार तो शून्य धोखा ही है। अब देखिये! कैसे आश्चर्यकी बात है, जीव और ईश्वरकी त्रिपुटी उड़ाकर केवल ब्रह्म हुए; वहाँपर समुद्र, जहाज तथा पार उतरनेवाला तीनों अपने-आप ही बन गये, ऐसी-ऐसी असम्भव बात कथन करके मूर्खताका परिचय दे रहे हैं; धोखाधारमें बह रहे हैं ॥ १९९ ॥

६. बिनु जानै जाने है और ❀ आपै राम रमै सब ठौर ॥ २०० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! अज्ञान, ज्ञान और विज्ञान मतवादीकी समझ और-ही-और भिन्न-भिन्न है। गुरुवालोग कहते हैं कि— आत्मज्ञानको जाने बिना भ्रम करके ही नानात्व जगत् द्वैत प्रपञ्चकी प्रतीति हो रही है। परन्तु, ब्रह्मज्ञानको जान लेनेपर वास्तविकता और कुछ ही मालूम पड़ती है। वहाँ द्वैतकी भाव त्रिकालमें ही नहीं रहता है, एक अद्वैतके ही सिद्धि हो जाती है। क्योंकि, आप ही स्वयं आत्माराम, परमात्मा-परमतत्त्व है। "रमेतीतिरामः"— इस लक्षणसे सब ठौर अणु, परमाणु, चराचर दृश्यादृश्य जगत्में सर्वत्र भीतर-बाहर एक ही आत्माराम अपने-आप रमण कर रहा है, सब ठिकाने वही परिपूर्ण व्यापक हो रहा है, असन्धि भरा है, रामके बिना कोई जगह खाली नहीं है। ऐसा आत्मज्ञानी जान लेते हैं; और अज्ञानी नाना तरहकी भावना किया करते हैं। विज्ञानी अपने ही अधिष्ठान ब्रह्म बन जाते हैं। बिना विवेक वे तीनों ही भ्रम धोखेके खाँचमें गिर पड़ते हैं ॥ २०० ॥

७. वार पार नहिं जाने जोर ❀ कहैं कबीर पार है ठौर ॥ २०१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! बहुत जोर = बल, पुरुषार्थ, तर्क-वितर्क, नाना उपाय, युक्ति-प्रयुक्ति, सोच-विचार करके भी जब योगी, ज्ञानी, भक्तोंने ब्रह्म-परमात्माके वारापारकी भेद कुछ भी नहीं जाना। वार = इधरके किनारा वा जड़ पाँच तत्त्वोंमें भी कहीं पता नहीं पाया; और पार = जड़से उस पार देहधारी अनन्त चैतन्य जीवोंमें भी कहीं ब्रह्मका लक्षण देखनेमें नहीं आया, तब तो बड़े हैरान, दुःखी, मूढ़ हो गये। परन्तु, अपने मतके पत बनाये रखनेके लिये वे अविवेकी लोग हठ पकड़ करके जोर-जुल्म करनेको उतारू हो गये या हो जाते हैं। यहाँपर गुरुवालोग कहते हैं कि— हे भाई! वह ब्रह्म स्थिति या आत्म स्थिति, परमपद, सबसे दूर अत्यन्त पार या परे है। भगवद् गीता, अध्याय— ३, श्लोक— ४२ में कहा हैः—

श्लोकः—"इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥"

अर्थः— "शरीरसे तो इन्द्रियोंको परे कहते हैं और इन्द्रियोंसे परे मन है तथा मनसे परे बुद्धि है; और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है ॥" सबसे पार जो है, सोई मुक्तिका पद आत्मठौर कैवल्य ब्रह्म स्थिति है। सो भेदाभेद विवर्जित है। साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर वेदान्त वाक्य श्रवण-मनन करके अन्तमें परासे परेके ठौरमें पहुँच जाना चाहिये; इत्यादि वर्णन करके अपने भ्रमिक हुए, और दूसरोंको भी भ्रमाये-भुलाये, धोखेमें डाल रक्खे हैं। वे जड़ाध्यासी हो भवचक्रमें ही पड़े हैं। पारखपद उन सबसे भिन्न है; वही मुक्ति स्थिति है। कोई बिरले ही श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें आ करके पारखपदको जान पाते हैं, वे ही भ्रम-भूल भव-बन्धनोंसे छूट करके निर्बन्ध-मुक्त होते हैं ॥२०१॥

॥ ❀ ॥ चौपाई— ८ । साखी— १ है] ॥ २५. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २५ ॥ ❀ ॥

[खानी-वाणी और समस्त जगत्-जाल अक्षरके भीतर और अक्षर = जीवसे ही सब अक्षरोंकी उत्पत्ति तथा विस्तार इत्यादि वर्णन ।]

१. अक्षर खानी अक्षर बानी ❀ अक्षरते अक्षर उतपानी ॥ २०२ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! क्षर, अक्षर और निःअक्षर, इसमें तीन भेद हैं । नाश होनेवाला कार्य पदार्थको 'क्षर' कहते हैं । अविनाशीको 'अक्षर' कहा है, और शून्यको 'निःअक्षर' बतलाया है । अब यहाँपर अक्षरका विस्तार भेद दर्शाया है, सो अक्षरके बारेमें बहुतसे अर्थ प्रयोग निकलते हैं । उन सबोंका मर्म खुलासा करके बतलाया जाता है, सो सुनिये ! वर्ण, शब्द, वाणी=वचन, अविनाशी, जीव-शिव, ॐ, इत्यादि सब अक्षरके ही बहुवाचक अर्थ होते हैं । सो प्रसङ्गानुसार वैसे ही भावार्थ भी कहा जाता है । संसारमें अखण्ड अविनाशी नित्य-सत्य अक्षर जीव ही है । जड़ाध्यासी जीवोंसे ही चारखानीकी स्थिति बनी है । मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज, ये चारखानीमें असंख्य जीव कर्म फल भोग रहे हैं; और मनुष्य जीवोंने परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, इन चार वाचाओंसे विस्तार करके वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिकी वाणी बहुविधिसे बना रक्खे हैं; और जीवकी ही सत्तासे देह बन करके शरीरमें प्राणरूप श्वास चला, उसमें लक्ष्य लगा करके 'सोहं, ॐ, राम' ये अक्षररूप शब्द योगी, ज्ञानी और भक्तोंने कल्पना करके बाहर उत्पन्न किया है; और ॐ से पाँच मात्राएँ, एवं बावन वर्ण भिन्न-भिन्न मानन्दी करके उत्पन्न किया है । इसप्रकार खानी-वाणीके सब विस्तार जीवसे बने हैं; और अक्षररूप वाणीसे ही ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादिकी कल्पना उत्पन्न हुई है । उसीको सत्य मान और मनाकर महाभ्रम-धोखेमें जीव सब पड़े हैं; बिना पारख अन्धाधुन्ध भवधारमें गिरे और गिराकर बहे और बहाये जा रहे हैं ॥ २०२ ॥

२. अक्षर कर्त्ता आदि प्रकाश ❀ ताते अक्षर जगत विलास ॥ २०३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अक्षररूप वाणीके कर्त्ता नरजीवने आदिमें मनुष्य देह धारण करके जगत्में वेद-वेदान्त, पुराण, कुरान, बाइबिल आदिके शब्दोंका अनेकों तरहसे प्रकाश करके प्रचार किया है । उसी अक्षरके प्रमाणसे जगत्के आदि कर्त्ता कोई ब्रह्म, परमेश्वरादि हैं; ऐसे कल्पनाका प्रकाश=महिमा बढ़ा-चढ़ा करके प्रचार कर रक्खा है । इसवास्ते वाणीके विलाससे जगत् जीवोंने माया-ब्रह्मके क्रीड़ा-विलाससे सारा संसार निर्माण हुआ, ऐसा भ्रमसे मान रक्खा है । अथवा जगत्कर्त्ता ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा-परमात्मा, खुदा आदिका अक्षर द्वारा प्रकाश करके फिर उनकी प्राप्तिके वास्ते कर्म, भक्ति, योग तथा ज्ञानादिमें प्रवृत्त हो करके नाना साधनाओंमें सब मनुष्य विलास करने लगे । इसलिये जगत्में कल्पित अक्षररूप वाणीका ही विलास हुआ और हो रहा है । कोई बिरले ही पारखी सन्त इसके भेदको जान करके उससे न्यारा हो रहते हैं ॥ २०३ ॥

३. अक्षर ब्रह्मा विष्णु महेश ❀ अक्षर रज सत तम उपदेश ॥ २०४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अक्षररूप ॐकार निर्गुण ब्रह्मको ब्रह्मा, विष्णु और महेशने भी कर्त्ता पुरुष माना है । उन्होंने अक्षररूप वेदादि वाणी द्वारा ही जगत्के नरजीवोंको त्रिगुणमय उपदेश दृढ़ाया है । ब्रह्माने रजोगुण प्रधान कर्ममार्गादिका उपदेश दिया है । विष्णुने सत्वगुण प्रधान भक्ति मार्गादिका उपदेश किया है; और महेशने तमोगुण प्रधान योग मार्गादिका उपदेश दृढ़ाया है । उसी युक्तिसे अविनाशी अक्षररूप परमात्माकी प्राप्ति होनेकी कल्पना लगा करके सबको भुलाया है । पश्चात् कालान्तरमें अबोध पारखहीन मनुष्य सब वेद-शास्त्रादि पढ़ सुन करके उत्पत्ति कर्त्ता ब्रह्माको, पालन कर्त्ता विष्णुको और संहार कर्त्ता महेशको अक्षर वा अविनाशी करके मान लिये । योगी, ज्ञानी, और भक्त, उनके त्रिगुण जालका ही उपदेश संसारमें प्रचार कर रहे हैं । बिना विचार सब कोई उसी अक्षररूप वाणी-जालमें ही फँसे और फँसाये हुए हैं ॥ २०४ ॥

४. छिति जल पावक मरुत अकाश * ये सब अक्षरमा परकाश ॥ २०५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये जड़ पाँच तत्त्व कार्य-कारणरूपसे अनादि अविनाशी स्वरूप हैं । इनकी जड़त्व प्रकाश, गुण, धर्म, क्रिया, शक्ति आदि भी अनादिसे स्वतः अविनाशी है; और ज्ञानस्वरूप अखण्ड अनन्त चैतन्य जीव भी स्वरूपसे अविनाशी सत्य अध्यासयुक्त देहधारी प्रत्यक्ष ही हैं । नरजीवोंने ही निजस्वरूपको भूलकर पञ्च तत्त्वोंके कार्यरूप शरीरमें बासा करके खानी-वाणीका प्रकाश किया है । फिर उक्त तत्त्वादिके नाम धरा करके अक्षररूप वाणीमेंसे ही कथन करके नाना मत प्रकाश किया है; और सिद्धान्तमें— आकाशवत् निराकार व्यापक ब्रह्म, वायुवत् सूक्ष्म घट-घट वासी 'सूत्रमणिन्याय' आत्मा, अग्निवत् ज्योति स्वरूप परमात्मा, जलवत् शीतल रसके समान ईश्वर और पृथ्वीके गन्धवत् परमेश्वर हैं, ऐसा कहकर पञ्च तत्त्व, पञ्च विषयरूप ही इष्टदेव जगत्कर्त्ताको मतवादियोंने श्रेष्ठ ठहराया है । यह सब कल्पित सिद्धान्त अक्षररूप वाणीमेंसे ही नरजीवोंने प्रकाश किया है । बिना विवेक मिथ्या भास वा कल्पनामें ही भूले पड़े हैं ॥ २०५ ॥

५. दश अवतार सो अक्षर माया * अक्षर निर्गुण ब्रह्म निकाया ॥ २०६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! मत्स्य-कच्छपादि विष्णुके दश अवतार जो कथन किया है; जिनकी बहुविधि महिमा वर्णन किया है; सो माया=गुरुवालोगोंके अक्षररूप पुराणोंकी वाणी-कल्पना कृत गफाष्टकका ही विस्तार है; और माया-कायाके अध्यासी अक्षर-अविनाशी जीव चौरासी योनियोंमें जा करके कहीं मछली, कछुवे वगैरह दश अवतार लेकर दशेन्द्रिययुक्त मायाके वशीभूत हो ही रहे हैं; और कोई कायासे रहित, विदेह, निर्गुण ब्रह्मकी महात्म्य भी वेद-शास्त्रादिकी वाणी या अक्षरसे ही कथन कर रक्खे हैं । तद्यथा भगवद् गीता, अध्याय-८ । श्लोक-३ में कहा है:—

"अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥"—परम अक्षर=जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानन्दघन परमात्मा तो ब्रह्म है; और अपना स्वरूप=जीवात्मा अध्यात्म नामसे कहा जाता है ॥

श्लोकः—"यदक्षरं वेदविदो वदन्ति । विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥" भ० गीता, अ० ८ । श्लो० ११ ॥

—वेदके जाननेवाले विद्वान्पुरुष जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको ॐकार नामसे कहते हैं, और आसक्ति रहित यत्नशील महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं ॥

श्लोकः— "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥"

—जो पुरुष, ॐ ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ-स्वरूप मेरेको चिन्तन करता हुआ, शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है ॥ भगवद् गीता, अध्याय— ८ । श्लोक— १३ ॥

श्लोकः—"अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः । शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥"

अर्थः— हे अर्जुन ! अनादि होनेसे और गुणातीत होनेसे यह अविनाशी परमात्मा, शरीरमें स्थित हुआ भी वास्तवमें न करता है और न लिपायमान होता है ॥ भ० गीता, अ० १३ । श्लो० ३१ ॥

श्लोकः— "क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा । भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥"

अर्थः—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा विकार सहित प्रकृतिसे छूटनेके उपायको, जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परब्रह्म-परमात्माको प्राप्त होते हैं ॥ भगवद् गीता, अध्याय-१३ । श्लोक-३४ ॥ इसप्रकारसे निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, निःअक्षर ब्रह्मका कथन भी अक्षररूप वाणीसे ही कह करके वर्णन किया है । उसी वाणीके भ्रममें नरजीव बिना पारख भूले पड़े हैं ॥ २०६ ॥

६. अक्षर काल सन्धि औ भाँई * अक्षर दहिने अक्षर बाँई ॥ २०७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नरजीवने ही अक्षररूप वाणी बनाकर कल्पना करके

काल=त्वंपदमें कर्म, उपासना और योग, ये तीन मार्ग बनाया है। सन्धि=तत्पदमें मानन्दी करके ज्ञानमार्ग निकाला है; और झाँई=असिपदमें विज्ञान व्यापक ब्रह्म ठहराया है। यह सब वाणीके जालमें अटकानेकी तीन घाटी हैं। तैसे ही नरजीव भ्रमिक हुए, तहाँ किसीने दहिने=दक्षिणमार्गमें पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, दान-पुण्यादि शुद्ध शुभ कर्म-धर्मादिका विस्तार किया है; और कोईने उसके विपरीत वाममार्गमें अशुद्ध, कुकर्म, मलिन चाल पञ्च मकार सेवनादि प्रचार किया है। उक्त दोनों मार्गका विस्तार अक्षररूप वाणी द्वारा ही हुआ और हो रहा है। उसीमें सब मनुष्य अन्धाधुन्ध चले जा रहे हैं, बिना विवेक ॥ २०७ ॥

७. अक्षर आगे करैं पुकार * अटके नर नहिं उतरे पार ॥ २०८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! कोई जड़ मूर्तिके आगे हाथ जोड़कर पुकारा करते हैं। कोई श्मसान जङ्गलोंमें जाकर, मसजिद वा मन्दिरोंमें जा करके, चारों दिशाओंमें जाकर अपने-अपने इष्ट देवताओंकी स्तुति, पुकारा वाणी द्वारा ही मनुष्य कर रहे हैं। प्रथम जो गुरुवालोग हुए, उन्होंने भी वैसे ही धोखेकी वाणीका पुकारा कर गये; ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदि कर्त्ता बताये, सात स्वर्ग, चौदह लोक, चौदह तबक आदि ठहराये हैं। भविष्यमें अन्तिम निःकलङ्की अवतार होगा, ऐसा ढिंढोरा पीटे हैं। शून्यके आगे अक्षर ब्रह्म मान-मान करके नाना तरहसे पुकारा करने लगे; और अभी भी भ्रमिक लोग वैसे ही कल्पित वाणीरूप अक्षरका पुकारा, विनय, स्तुति, उपदेश सबोंके आगे कर रहे हैं। अण्ट-सण्ट बकवाद करके पक्षपात पकड़कर लड़-झगड़ कर नाना मत, पन्थ, ग्रन्थ, सम्प्रदाय, षट् दर्शनोंके छियान्नवे पाखण्डोंका विस्तृत भव-जालकी धारा वाणी-खानीमें बहते हुए सब नरजीव बिना विवेक भ्रम-धोखाके भँवरीमें ही अटक गये, जहाँ-तहाँ भटके हैं। कोई भी भवपार उतर नहीं सके। बिना पारख स्वरूप स्थिति न होनेसे आवागमनोंमें ही पड़े या पड़ रहे हैं ॥ २०८ ॥

८. गुरु कृपा निज उदय विचार * जानि परी तब गुरुमुख सार ॥ २०९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जब कोई जिज्ञासु मनुष्य सत्य श्रद्धासे जाते हैं, सर्वस्व अर्पण करके शरणागत होते हैं, तब उस सत्शिष्यपर श्रीसद्गुरुकी भी पूर्ण कृपादृष्टि हो जाती है। सकल काल-जालको परखा करके स्वरूप ज्ञान पारखका बोध दृढ़ कर देते हैं। ऐसे श्रीसद्गुरुकी कृपासे निज स्वरूपका बोध-विचाररूप भानु जब हृदयमें उदय=प्रकाश हो जाता है, परीक्षादृष्टि खुल जाती है, तब गुरुमुख निर्णयसे सारशब्द सत्यन्यायके प्रतापसे सकल भव-बन्धनोंके कारण जान पड़े; और खानी-वाणीके जाल अक्षरोंके जञ्जाल, गुरुवालोग और नारी, ये ही काल हैं, ऐसा पहिचान करके समझनेमें आई। तभी असारको परित्याग करके श्रीसद्गुरुके मुख्य सारनिर्णय पारखबोधको ग्रहण किये, हंस रहनी-रहस्यको धारण करके निर्बन्ध, स्वच्छन्द मुक्ति पदको प्राप्त होते हैं। गुरु प्रतीतिसे परिपुष्ट हुआ पारख बोधसे सत्यासत्यको यथार्थ जान करके जीवन्मुक्ति हो जाता है, सोई बनाना चाहिये ॥ २०९ ॥

साखीः— जहाँ ओसको लेश नहीं * बूड़े तहाँ जहान ॥

[२७] गुरुकृपा निज परख बल * तब ताको पहिचान ॥ २१० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पहले तो गुरुवालोगोंने बहुत वाणी कल्पनाका विस्तार किया, अन्तिम स्थितिमें वहाँ पहुँचे कि, जहाँपर ओसके समान रञ्चक जलका बिन्दुमात्र भी नहीं है, ऐसी मरुभूमि मृगतृष्णाकी नदीमें ले जा करके सारे संसारको डुबाये। अर्थात् जहाँपर ओसवत् श्वासवायुसे निर्मित उच्चारित वाणीकी पहुँच ही नहीं है; मन, बुद्धि और वाणीसे परे अवाच्य माना है, लेशमात्र भी वहाँ द्वैत भाव नहीं है। उसीको परमतत्त्व-परमात्मा सर्वाधार, सर्वशक्तिमान् कल्याणकारी मान-मान करके सारे जगत्में के मनुष्य जीव उसी धोखाधारमें जाकर डूब गये हैं।

सब जगत्को उड़ा करके मिथ्या बतलाकर एक ब्रह्मको ही सत्य ठहराये हैं। परन्तु, सो तो नरजीवोंका भ्रममात्र है। इसवास्ते जीव जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें डूब मरे। कहीं स्थिति-ठौर नहीं पाये। जब कोई मुमुक्षु सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाकर सत्य श्रद्धा-भक्तिसे निष्कपट भावसे श्रीसद्गुरुकी सेवा-सुश्रुषा किये, उनपर श्रीसद्गुरुकी महत् कृपादृष्टि हुई, स्वरूपज्ञान लखा दिये। श्रीसद्गुरुके पारखज्ञानके प्रतापसे निजपारखदृष्टि खुली, फिर पारखबोधका महाबल अपनेमें आया, तब उस विवेकी हंस मनुष्यको सकल सारासार, बन्धन-मुक्ति, जड़-चैतन्यका भेद पहिचाननेमें आ गया। खानी-वाणीकी समस्त कसर-खोट पहिचानकर उससे न्यारे निर्विकार हो स्वयं स्वरूपमें स्थिति करके ऐसे कोई बिरले ही पारखी सन्त मुक्त हो जाते हैं। अर्थात् वैसे तो वाणीसे परे ब्रह्मको मानकर सारे नरजीव उसीमें भूल रहे हैं। श्रीसद्गुरुके कृपासे जब निजपारख बोधका बल अपनेमें आ जाता है, तब यह धोखा पहिचाननेमें आता है, तभी उसका सब भ्रम भी छूट जाता है ॥ २१० ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— ८ । साखी— १ है] ॥ २६. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २६ ॥ ❀ ॥

[अक्षरमें ही काया-माया, यन्त्र-मन्त्र, पूजा, इत्यादिका भेद, अक्षर-जालका विस्तार वर्णन।]

१. अक्षर काया अक्षर माया * अक्षर सतगुरु भेद बताया ॥ २११ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! जड़-चैतन्यरूप संसार स्वतः अनादि है। सब जीव जड़ाध्यासी हो करके जन्म-मरणके प्रवाहमें पड़कर देह बन्धनमें पड़े हैं। स्वयं जीव अक्षय अविनाशी हैं, इसलिये यहाँपर नित्य, सत्य, अक्षररूप जीव हैं। उन्हीं जीवोंने चारखानियोंमें विषयाध्यास-वश बहुविधि कायाको बनाया है। फिर मनुष्य शरीरमें आकर बावन वर्णादि अक्षरोंको नरजीवोंने ही बनाया है; और माया = गुरुवालोगोंने अक्षररूप वाणी द्वारा ही कोई एक जबर्दस्त अचिन्त्य शक्तिवाली ऐसी अनिर्वचनीय माया बताकर, कपट जालके माया-मोहमें फँसा रक्खे हैं; और मायारूप स्त्री भी कायासे नखरा दिखाकर नाना वचन सुना करके ही फँसाती है। अक्षर काया = ॐकार ब्रह्मको माना है। अक्षर माया = ब्रह्मकी शक्ति आदिमायाको ठहराया है। प्रणवको ब्रह्म बतानेका भेद ही सतगुरु बने हुए या माने गये ब्रह्मादि गुरुवाओंने वेदादिमें बहुविधिसे वर्णन करके बतलाया हुआ है। उन सबोंका यथार्थ भेद वाणी जालकी रत्ती-रत्ती पहिचान, शब्द समूह, अक्षरकी कसर-खोट पारखी श्रीसद्गुरुने गुरुमुख निर्णयसे परखा करके बतलाया और बतला रहे हैं। स्वयं स्वरूप प्रत्यक्ष जीवको सत्य बताकर और मिथ्या मानन्दी ब्रह्म-ईश्वरादिके भ्रम हटा दिये हैं। वाणी-खानी काया-मायाका विकार है। श्रीसद्गुरुके पारख बोधके बलसे उन सब विकारोंको मिटा करके निज शुद्ध पारख स्वरूपमें ही स्थिर हो रहना चाहिये। यही मुख्य कर्त्तव्य स्वधर्म है, ऐसा जानिये!॥२११॥

२. अक्षर यन्त्र मन्त्र औ पूजा * अक्षर ध्यान धरावत दूजा ॥ २१२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नरजीवोंने कल्पना करके तैंतीस कोटि देवताओंको मानकर उन्होंके नामसे उतने ही मन्त्र, अक्षरोंकी सन्धि मिला करके बनाया है। शब्द समूहसे वेद-मन्त्र रचना कर रक्खा है। चौबीस अक्षरोंका गायत्री मन्त्र बना है, जिसे ब्राह्मण लोग रोज शाम-सबेरे जपा करते हैं। सात अक्षरोंका सप्त महाबीज मन्त्र बनाया है; और अक्षरोंके कथनसे ही नाना प्रकारके यन्त्र भी बनाया है; ताम्रपात्र आदि धातुओंके पात्रमें आकार-प्रकार आदि खोदाकर षट् कोणादि बनाते हैं। भोजपत्रादिमें चन्दनसे लिखाते हैं, उसे 'यन्त्र' कहा जाता है। तथा विष्णुयामल तन्त्र, शिवयामल तन्त्र, देवी तन्त्र, इत्यादि नामसे तन्त्र शास्त्र अलग ही अक्षरोंमें रचना करके लिख रक्खा है। मन्त्र जप करके यन्त्रका पूजा करते और कराते हैं, और पाञ्चायन देवता— राम, कृष्ण, देवी, गणेश, सूर्य आदिके विविधि जड़ मूर्तिकी पूजा भी वाणीके भ्रममें पड़कर ही हो रही है। तैसे ही अक्षर समूह शब्द द्वारा जीवसे भिन्न दूसरा ही सर्वश्रेष्ठ सर्वशक्तिमान् कोई ईश्वर,

ब्रह्म, परमात्मादि ठहरा करके उसके महान गुण गा करके सगुण-निर्गुण ध्यान-धारणा करते और ध्यान धरावते हैं। यह सब अक्षरोंसे बनी हुई वाणी-कल्पनासे ही हो रही है ॥ २१२ ॥

३. अक्षर पढ़ि पढ़ि जगत भुलाना * अक्षर बिनु नहिं पावै ज्ञाना ॥ २१३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! ब्रह्मादि गुरुवालोगोंने बावन अक्षरोंको जोड़-जोड़ करके वेद, शास्त्र, पुराणादिमें जो वाणी बनाया, उसी, वेदादि ग्रन्थोंके अक्षर या वाणी रोचक-भयानक शब्द, पढ़-पढ़ करके सुन-सुनाकर, गुन-गुन करके जगत्में सारे मनुष्य भ्रमिक होकर भूल गये हैं, बिना विवेक धोखेमें पड़े हैं। भक्ति, ज्ञान और विज्ञानमें लगे, अक्षरातीत ब्रह्मको मानकर मूढ़ हुए हैं। बिना अक्षरके जो है, सो निःअक्षर भासमें लग करके उसमें ज्ञानरूपी चैतन्यता ढूँढ़नेपर भी कहाँ पा सकते हैं? नरजीव गुरुमुख निर्णय सारशब्दका भेद पाये बिना यथार्थ पारखज्ञान कहीं पा नहीं सकते हैं, गुरुज्ञान पारख बोधसे ही क्षर-अक्षरादिका मर्म जाननेमें आ जाता है। जड़-चैतन्य स्वरूपका पूर्ण ज्ञान हो सकता है, तभी वाणीका भ्रम भी छूट जाता है ॥२१३॥

४. बिनु अक्षर नहिं पावै गती * अक्षर बिनु नहिं कारज रती ॥ २१४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! क्षर, अक्षर, निःअक्षर, आत्मा, कूटस्थ, इनके पारख द्वारा पूर्णपरीक्षासे भेद जान पाये बिना कोई भी नरजीव सुगति, हंसगति, गति-मुक्ति पा नहीं सकते हैं। पारखबोध मिले बिना जीवको गति कैसे होवे? और सारशब्द जाने बिना सत्यासत्यका पारख नहीं होता है, और जीवके बिना तो जड़ देहादिसे रत्तीभर भी ज्ञान, क्रिया, अवस्था, सुख-दुःखादिका लक्षण कार्य हो नहीं सकती है। निर्जिवमें उक्त कार्य कहीं भी रत्तीभर देखनेमें नहीं आती है, और अक्षररूप वाणीकी प्रेरणा बिना कोई भी किसी कार्यमें रत होकर भी नहीं लगते हैं, सब जगह अक्षर पढ़-सुन करके ही नाना साधनाओंके कार्यमें लगे और लगा रहे हैं। तैसे ही सारशब्दके बोध धारण हुए बिना रञ्चक मात्र भी मनुष्य जीवका कल्याण नहीं होता है ॥ २१४ ॥

५. अक्षर भये अनेक उपाय * अक्षर सुनि शून्य समाय ॥ २१५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! भ्रमिक नरजीवोंने ही अक्षररूप वाणीको जोड़-जोड़ करके चौदह विद्या और चौंसठ कलादि बना लिया। फिर ईश्वर वा यमादिकी मानन्दीसे भयभीत होकर उनके प्रकोपसे बचनेके लिये अनेक उपाय, नाना प्रकारके साधनाएँ, तीर्थ, व्रत, पूजा, पाठ, होम, यज्ञ, दान, अनुष्ठान, जप, तपस्यादि बहुतेक यत्न वा उपाय वाणीसे ही विस्तार किया है; और योग मार्गके अक्षर या वाणी सुन-सुन करके कई लोग हठयोग, राजयोगादिकी साधनाकर समाधि लगा करके शून्य ब्रह्माण्डमें समाये, गरगाफ हुए हैं। कोई वेदान्तकी वाणी सुन-सुन करके आकाशवत् ब्रह्म मानकर शून्य धोखेमें ही समाये और समा रहे हैं। उसी अभ्याससे जीव शून्यस्थानरूप गर्भवासमें ही जा करके समा रहे हैं, बिना पारख ॥ २१५ ॥

६. अक्षरते भव आवै जाय * अक्षर काल सबनको खाय ॥ २१६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! तीन कालमें जीवका नाश तो नहीं होता है, इसवास्ते जड़ाध्यासी हो करके जीव भग द्वारा गर्भवासमें जाते-आते रहते हैं, चौरासी योनियोंके आवागमनमें पड़ा करते हैं; और अक्षरसे कारण ब्रह्म बनकर भवरूप जगत्में आते-ही-जाते रहते हैं। शब्द सुन-सुन करके ही जीव खानी-वाणी जालके चपेटामें आकर फिर चारखानीमें देह छोड़कर जाते रहते हैं। सो काला अक्षरसे लिखी हुई वाणी-कल्पनाने सभी बेपारखी मनुष्योंके बुद्धि-विचारादिको खा गया। कालरूप गुरुवालोग भी अक्षर पढ़ा-पढ़ा करके ही सबोंके तन, मन, धनादिको खाकर नष्ट कर रहे हैं। अक्षर काल = ॐकार ब्रह्मकी भ्रम-कल्पनाने सभी ज्ञानी, योगी, और भक्तोंकी बुद्धिको खा करके भ्रमाया है। अक्षररूप वाणी ही काल हुई, सबोंने वाणीको ग्रहण किये, तो भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए हैं ॥ २१६ ॥

७. अक्षर सबका भाखैं लेखा * अक्षर उतपति प्रलय विशेषा ॥ २१७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जगत् उत्पत्तिसे लेकर महाप्रलय तककी कल्पनाका कथन सबोंके सिद्धान्तका लेखा-जोखा हिसाब जोड़ आदि यह सबका विस्तार भी अक्षररूप वाणी द्वारा ही वर्णन कर रक्खे हैं। सबोंके भाषण, उपदेश, शिक्षा, दीक्षा, व्याख्यान, चातुरी आदि भी अक्षरोंमें लिख और लिखा करके संग्रह किये हुए हैं। उत्पत्ति और प्रलयकी विशेष-विशेष बात भी अक्षरोंमें ही लिख रक्खे हैं; और अक्षरोंकी विशेषता तो यह हुई कि, कोई एक अक्षर ॐकाररूप ब्रह्मको मान करके उससे चराचर जगत्के उत्पत्ति और प्रलय होते रहनेकी कल्पना किया है। विशेषरूपसे वाणी-जालमें ही ज्ञानी, ध्यानी आदि सब कोई बन्धे पड़े हैं, बिना पारख ॥ २१७ ॥

८. अक्षरकी पावै सहिदानी * कहहिं कबीर तब छूटै प्रानी ॥ २१८ ॥

अर्थः— इसलिये ग्रन्थकर्त्ता यहाँपर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्यनिर्णयका अभिप्राय कहते हैं— हे सन्तो ! यह प्राणधारी नरजीव जिज्ञासु मनुष्य तभी भव-बन्धनोंसे छूटेंगे या छूट सकेंगे, जब कि, सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुका शरणागत होकर सत्सङ्गमें ठहरकर विधिपूर्वक पारख बोधको जान जाते हैं। जड़-चैतन्यका गुण, लक्षण, सम्बन्ध आदि भी भलीभाँति समझ पाते हैं। सारशब्द निर्णयके बलसे वा पराक्रमसे श्रीसद्गुरुकी कृपा द्वारा काल, सन्धि, झाँईं; तत्, त्वं, असि, जीव, ईश्वर, ब्रह्म; अज्ञान, ज्ञान, विज्ञान; ॐ, सोहं, राम; वेद, शास्त्र, पुराण, इत्यादिक गूढ़ क्लिष्ट शब्द अक्षर आदिकी सहिदानी=पहिचानी, चिन्हारी प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा कर पाते हैं। जब इसप्रकार सकल अक्षर जालके भेदकी पहिचान नरजीव कर पाते हैं, तभी पारखबोधके प्रतापसे प्राणी काल-जाल-के बन्धनोंसे छूट जाते हैं, ऐसा सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है। सो उसके लिये प्रमाण बीजक मूल रमैनी-२५ में जो कहा है, सो देख लीजिये !:—

रमैनीः—"चौंतीस अक्षरका है विशेषा। सहस्रों नाम, याहिमें देखा ॥ १ ॥
भूलि भटकि नर फिर घट आया। होत अजान सो सबन गमाया ॥ २ ॥
खोजहिं ब्रह्मा विष्णु शिव शक्ति। अनन्त लोक खोजहिं बहु भक्ति ॥ ३ ॥
खोजहिं गण गन्धर्व मुनि देवा। अनन्त लोक खोजहिं बहु भेवा ॥ ४ ॥"

साखीः—जती सती सब खोजहिं। मनहिं न मानै हारि ॥ बड़-बड़ जीव न बाँचिहैं। कहहिं कबीर पुकारि२५

इसप्रकार पूर्ण रीतिसे अक्षरकी सहिदानी जब पहिचान पाते हैं, तभी वे बोधवान् प्राणी काल-जालोंसे छूट पाते हैं; ऐसा जान लीजिये ! ॥ २१८ ॥

साखीः— परखावै गुरु कृपा करी * अक्षरकी सहिदानि ॥
[२८] निजबल उदय विचारते * तब होवै भ्रम हानि ॥ २१९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जो कोई जिज्ञासु मनुष्य पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाते हैं, सच्ची जिज्ञासा प्रगट करते हैं, उन्हें परम कृपालु, दीन दयालु, बन्दीछोर श्रीसद्गुरु कृपादृष्टिसे निहारकर सब मोटी-झीनी मायाका भेद दिखला करके सार-असार यथार्थ परखा देते हैं। अक्षरकी सहिदानी=निशानी, चिह्न, पहिचानी, कसर-खोट भी सब खोल-खोल करके बतला देते हैं। सत्यासत्यको परखा करके पूर्ण पहिचान करा देते हैं। फिर श्रीसद्गुरुकी कृपा, निज पारख बोधके महान बलसे हृदयमें विवेक-विचारका उदय हो ज्ञानरूप भानुका प्रकाश फैल जाता है। जिससे भ्रम-धोखा, भूल, अविद्या, तमरूप अज्ञान रजनीकी हानि होकर सत्यानाश हो जाता है। अर्थात् खानी-वाणी भव-बन्धनके कारणरूप निशानी दिखाकर जब पारखी श्रीसद्गुरु कृपा करके परखा देते हैं, और गुरु विचार उदय हो करके निज पारखबोधका बल परिपुष्ट होनेसे तभी भ्रम-भूलकी हानि या विनाश होकर जीव सुखी जीवन्मुक्त हो जावेंगे। इसलिये सदा पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगकर विचार करते रहना चाहिये ॥ २१९ ॥

॥ ❀ ॥ [चौपाई— १६ । साखी— ३ है] ॥ २७. रमैनी ॥ खण्ड— ॥ २७ ॥ ❀ ॥

[५२ अक्षरोंकी तरङ्गोंमें नाना भास, अपार लहरी, जबर्दस्त तीक्ष्ण अक्षरका त्रास, सम्पूर्ण अक्षरका विलास, इत्यादि अक्षरोंसे होनेवाली बन्धन और मुक्तिका भेद, सार-असार यथार्थ निर्णय वर्णन ।]

१. बावनके बन बने तरङ्ग ❀ ताते भासत नाना अङ्ग ॥ २२० ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो ! संसार यही महावन है, सोई जगत्रूप जङ्गलमें जाकर सब जीव जड़ाध्यासी होकर भव चक्रमें पड़े हैं। तहाँपर मनुष्योंने वैखरी वाचासे निकाल-निकाल करके 'अ से अः' तक सालह स्वर, तथा 'क से क्ष, त्र, ज्ञ' तक छत्तिस व्यञ्जन, सबको मिला करके सब बावन अक्षरोंकी वाणीकी धारा बहा करके महानदी बनाया है। उसमें मनके सङ्कल्प-विकल्पकी तरङ्गें बहुत-बहुत उठ गईं। उसी तरङ्गके वेगसे नाना मत, सिद्धान्त स्थापित हुए। फिर तो जीव बहुरूपिया बन गये। इसवास्ते नाना तरहके भेष-भूषा अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें धारण किये हुए विचित्र भेषधारी भासने या दिखने लगे। अथवा बावन अक्षरोंको मिला करके मन-कल्पनाकी तरङ्गसे बहुविधि शब्द बने। उसीकी मानन्दीके दृढ़तासे नाना मतके नाना अङ्गोंका भास खड़ा हो गया। बिना पारख उसी भासमें लगकर जीव पुनः जड़ाध्यासी ही हो गये हैं ॥ २२० ॥

२. उपजे औ पालन अनुसरे ❀ बावन अक्षर आखिर करे ॥ २२१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! नरजीवकी सत्ता सम्बन्धसे मनुष्य देहमेंसे वैखरी वाणी उत्पन्न हुई, जिससे बावन अक्षर प्रगट हुए। उसे कागजादिमें लिख करके पालन = परिपुष्ट वा रक्षा किये। उसी वाणी कथनके अनुसार ही सब कोई नाना साधनाओंमें चलने लगे। आखिरमें शून्य समाधि लगा करके उक्त बावन अक्षरोंको प्रलय या अन्त कर दिये। निर्विकल्प स्थिति बना करके बेभान रहने लगे। इसीप्रकार बारम्बार वाणी चक्रमें घूमा करते हैं। अथवा वाणीके प्रमाणसे ब्रह्म-ईश्वरादि कोई कर्त्ता मानकर उससे सृष्टि उत्पत्ति, पालन हो करके और आखिरमें वही कर्त्ता ईश्वर महाप्रलयमें जगत्को विनाश भी कर देता है, ऐसी-ऐसी कपोल कल्पना करके बावन अक्षरोंसे वेद-शास्त्रोंमें लिख रक्खे हैं। वही प्रचार करके चला रहे हैं। बिना विवेक उसे सत्य मान करके भ्रम-धोखेमें ही सब पड़ रहे हैं ॥२२१॥

३. राम कृष्ण दोउ लहरि अपार ❀ जेहि पद नर गहि उतरैं पार ॥ २२२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पहले रामचन्द्र और कृष्णजी जो हुए थे, वे दोनों भी वाणी-खानीकी अपार लहरीमें भ्रमिक हो करके बह गये। उन्होंने ब्रह्म-आत्माकी कल्पनाको खूब बढ़ाया; जब पार नहीं पाये, तब अपार परमात्मा मान करके कल्पनाकी लहरमें डूब गये, जड़ाध्यासी हुए; और गुरुवालागोंने राम तथा कृष्ण इन दोनोंको ही अपार ब्रह्मके साकार पूर्ण अवतार मान और मनाकर उन्हींकी बड़ी महिमा गाया है। रामायण और भागवतमें उनकी ही कीर्ति लिख कर वाणी भरे हैं। बहुविधि वाणी तरङ्ग बहाया है। जिस वाणी कल्पनाके पदको ग्रहण करके राम-कृष्णको सगुण ब्रह्म मानकर वैरागी रामोपासक, और कृष्ण भक्त लोग और अविचारी सब नरजीव उन्हींका आसरा लेकर भवसागरसे पार उतरना चाहते हैं, यानी परमात्मापद कल्पनाको पकड़ करके मुक्त होना चाहते हैं। परन्तु, पारख ज्ञानके बोध बिना बीच भवधारामें ही जाकर डूब मरते हैं, जड़ाध्यासी गाफिल हो जाते हैं ॥ २२२ ॥

४. महादेव लोमश नहिं बाँचे ❀ अक्षर त्रास सबै मुनि नाचे ॥ २२३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! देवोंके देव माने गये महादेव महायोगी, उग्र तपस्वी हुए, वे सिद्ध कहलाये। प्रथम योग मार्ग प्रगट करके उन्होंने ही प्रचार किया था। शून्य समाधि लगा करके स्वयं सच्चिदानन्द ब्रह्म बने थे; परन्तु, पारख बोधके बिना काल, कल्पना, धोखा, अध्यास, विषय-विकारादिसे वे भी नहीं बाँचे। तथा लोमश मुनिको महातपस्वी माना है, और दीर्घायु भी वैसे ही बताया गया है। सदा वे अखण्ड तप-समाधिमें रहते हैं, जब कल्पान्त होता है, तब उनका

एक रोम मात्र गिर जाता है। उस तरह सर्वाङ्गका रोम गिर जानेपर ही लोमश मुनिकी मृत्युरूप महाप्रलय होता है, ऐसी कल्पनाका वर्णन किया है। परन्तु, वे भी पारखबोधके बिना मन-मानन्दी और कल्पनासे नहीं बचे। जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके ही अधिकारी हुए। तैसे वेद-शास्त्रोंकी भयानक वाणीरूप अक्षरका त्रास=डर-घबराहट, कम्पकम्पीसे बड़े-बड़े सब ऋषि-मुनिगण चक्कर खा करके भ्रममें गिर पड़े। योगी, ज्ञानी, भक्त, मुनिजनादि सब कोई कल्पित ईश्वर तथा यमराजसे भयभीत होकर गति-मुक्ति, ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नाना कर्मोंमें, उपासना, योग, ध्यान, ज्ञान, तीर्थयात्रादि करनेमें खूब नाचे; बहुत-बहुत, कठिन-कठिन साधना किये। परन्तु, निज स्वरूप पारखकी बोध-स्थिति न होनेसे सब कोई गाफिल जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़कर जन्म-मरणादिमें नाच रहे हैं; चारखानिमें अनेकों प्रकारसे दुःख भोग रहे हैं ॥ २२३ ॥

५. ब्रह्मा विष्णु नाचे अधिकाई ❀ जाकी धर्म जगत सब गाई ॥ २२४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मा, विष्णु तो विषय भोगोंमें तथा कर्म मार्ग, उपासना मार्गमें अत्यन्त ज्यादा प्रचण्ड होकर विशेषरूपसे नाचे, साधनाका खूब बढ़ाये, भोग भी खूब किये। जहाँ तक दौड़ चली, वहाँ तक वेग लगाये, कूदते-फाँदते, नाचते-गाते, ताल बजाते हुए विचरण किये। यही उन्होंकी अधिकता हुई; कर्म और भक्तिका अत्यधिक प्रचार किये। जिनके धर्म-कर्मकी महिमा जगत्के मनुष्य लोग अभी तक गा रहे हैं; गुणानुवाद कीर्तन, महात्म्य वर्णन कर रहे हैं, उन्हें धर्मके स्वरूप उत्पत्ति, पालन-कर्त्ता परमेश्वर ठहराकर स्तुति गा रहे हैं। परन्तु, बिना विचार सब लोग धोखेमें ही पड़े हैं। वे लोग तो विशेष ही जड़ाध्यासी हो अधिक-अधिक आवागमनादिके दुःख भोगी हुए और दुःख भोगी हो रहे हैं ॥ २२४ ॥

६. नाचे गण गन्धर्व मुनि देवा ❀ नाचे सनकादिक बहु भेवा ॥ २२५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! फिर उन्हीं त्रिदेवोंके उपदेशोंको मानकर ब्रह्म, ईश्वरादि जगत् कर्त्ताका अनुमान-कल्पनाको प्रतीत करके बहुत प्रकारके भेद-विभेदसे सनकादि चार भाई, नारद, वशिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, पराशर, अत्रि, गोतम, विश्वामित्र, यमदग्नि, इत्यादि ऋषि-मुनिगण भी नाना कर्मादि साधनाओंमें खूब नाच नाचे; और गण=षट् दर्शनोंके भेष समूह, मानवगण, गन्धर्व=गायन करनेवाले गवैये, कीर्तनकार, हरिभक्त लोग, माने हुए तैंतीस करोड़ देवता, इन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर आदि मुनि=मननशील तपस्वी लोग, इत्यादि योगी, ज्ञानी, भक्त और कर्मी लोग सब ही बहुत प्रकारसे भाव-कुभावसे विविधि प्रकारकी साधनाएँ करनेमें नाचे, दौड़े, कूदे, फाँदे वा छलाङ्ग मारे। कोई विषय भोग-विलास करनेमें जगत् जालमें नाचे और नचाये, आखिरमें निज स्वरूपकी स्थिति न होनेसे सब कोई गर्भ खाँचमें गिरे और गिरते ही जा रहे हैं; बिना पारख ॥ २२५ ॥

७. अक्षर त्रास सबनको होई ❀ साधक सिद्ध बचे नहिं कोई ॥ २२६ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! गुरुवालोगोंने अक्षर लिख-लिखकर जो वेद, शास्त्र पुराण आदि पुस्तक बना रक्खा है। सोई पढ़-सुन, गुन कर भयानक वाणीको याद करके ईश्वर प्राप्ति न होनेसे नरकमें जाकर भयङ्कर यमयातना भोगनका त्रास, थरथराहट, डर सब कोईको होने लगा या तीव्र भय हो गया। बिना पारख कल्पित अक्षर वा ईश्वरादिका त्रास सबोंको होता है। उस भ्रम जनित भय ईश्वरादिकी मानन्दीसे साधक=सनकादि, नारदादि शिष्यवर्ग और सिद्ध=महादेवादि त्रिदेव गुरुवालोग, नौ नाथ, चौरासी सिद्ध, मतवादमें पारङ्गत लोग, इत्यादि कोई भी विवेक पारख बोधके बिना नहीं बचे। सिद्ध-साधक मतवादी लोग तो बहुत हुए; परन्तु, उन सबोंका अक्षरके कल्पना नरकादिका त्रास होता रहा। स्वयं स्वरूप पारखका ज्ञान न होनेसे भव-बन्धनासे कोई भी बच नहीं पाये ॥ २२६ ॥

८. अक्षर त्रास लखै नहिं कोई ❀ आदि भूल बन्धे सब लोई ॥ २२७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जिस अक्षररूप अविनाशी माना हुआ ब्रह्म-परमात्माके दर्शन न होनेसे सब कोई त्रसित, भयभीत होकर घबड़ा रहे हैं कि, अब क्या गति होगी ? परमात्मा नहीं मिला, अब नरकसे कौन बचायेगा ? इत्यादि सोचकर डर रहे हैं। परन्तु, वह तो मिथ्या-धोखा है। मेरे मनकी झूठी कल्पनासे उत्पन्न हुई त्रास ही मुझे दुःख दे रहा है। शास्त्रोंमें लिखित भयानक वाणी सब असत्य हैं। "मैं सबको माननेवाला, जाननेवाला जीव ही सत्य हूँ !" ऐसा पारख करके उसे तो कोई नहीं लखते हैं, नाहक अक्षरके झूठे त्रासमें पड़े हैं। आदि=जगत्में हंस वा मनुष्य जीवने निजस्वरूपको भूल करके जगत्कर्त्ता ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादि जो माना है, उसी भूलको दृढ़ प्रतीति कर और कराके सब लोग बद्ध हुए हैं। उसीमें लग करके भूलते हुए सब-के-सब भव-बन्धनोंमें ही जकड़े जा रहे हैं, बिना विचार वाणी-जालमें ही फँसे पड़े हैं ॥ २२७ ॥

९. अक्षर सागर अक्षर नाव ❀ करणधार अक्षर समुदाव ॥ २२८ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! गुरुवालोगोंके कथनसे जगत्-ब्रह्म दोनोंका नाश नहीं होता है, क्योंकि उसका तो उलट-पलट ही होता रहता है। अक्षररूप वेदादि वाणीके प्रमाणसे यही संसारको ही महासागर माना है। यहाँ त्रिविधि तापादि नाना दुःख पाये, तो भवपार होनेकी इच्छा हुई, अतः गुरुवालोगोंकी शरणमें गये। उन्होंने शास्त्रोंके अक्षरोंको मथन करके 'सोहं, ओहं, राम'-ऐसे दो-दो अक्षरका नाम-स्मरण करना, तो भवपार हो जाओगे, ऐसा कहकर नाम-स्मरणकी आसरारूपी नौकामें या कागजी अक्षरकी नावमें बैठा करके भवकी धारामें बहा दिये; और फिर उसी अक्षर समुदायको ही करणधार=पार उतारनेवाला, मल्लाहवत् गुरु, परमगुरु, परमात्मा समझकर उसका पल्ला पकड़ लिये। परन्तु, वह अक्षरोंका समुदाय तो नरजीवकी मिथ्या कल्पनामात्र है। इसलिये उससे पार होनेके बदले बीच भँवरमें पड़कर चक्कर लगा-लगा करके डूँब मरे, चौरासी योनियोंके गर्भमें चले गये ॥२२८॥

१०. अक्षर सबका भेद बखान ❀ बिनु अक्षर नहिं अक्षर जान ॥ २२९ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! सबोंने मत, पन्थ, सिद्धान्तादिको नाना प्रकारसे वर्णन करके उन सबके भेदको ग्रन्थोंमें विस्तारसे बखान कर अक्षरोंमें ही लिख रक्खा है। खानी-वाणीकी छोटी-मोटी आदि समस्त बातोंका भेद अक्षर द्वारा ही वर्णन किया जाता है। सो भेदको वर्णन करनेवाले जीव अविनाशी हैं। वाणी-कल्पना नाशवान् है। जैसे लोहाके छेनी और घनके आधारसे लोहाकी बेड़ी काटी जाती है, तैसे सारशब्दसे अन्य सब शब्दोंका कसर-खोट परखा जाता है। इसवास्ते गुरुमुख वाणीरूप निर्णय शब्दके बिना अक्षय, अविनाशी अक्षर=स्वयं जीव ही सत्य, अखण्ड, एकरस है; यह स्वरूप बोध जाननेमें नहीं आता है। श्रीसद्गुरुके उपदेशरूप सारशब्द श्रवण होनेपर ही सार-असार अक्षरकी पहिचान होती है ॥ २२९ ॥

११. अक्षर आशते फन्दा परे ❀ अक्षर लखेते फन्दा टरे ॥ २३० ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! अक्षर लिखित शास्त्र, पुराणोंकी रोचक वाणीकी आशा, फल-श्रुतिकी आशा, वाणी पढ़-पढ़ करके ब्रह्म-ईश्वर, देवी-देवता, सात स्वर्ग, ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्तिकी आशा, आसक्ति, मोहको लगानेसे ही नाना कर्म जालोंके फन्दोंमें नरजीव पड़े हैं। फिर उसी आसक्ति-अध्यासके कारणसे ही चौरासी योनियोंके फन्दामें भी पड़े और पड़ रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्गमें ठहरकर गुरुमुख निर्णयसे उक्त अक्षरोंके भेदको यथार्थ लखनेसे वह फन्दा टर जाता है वा मिट जाता है। पारख ज्ञानके विवेकसे जड़से भिन्न स्वयं स्वरूप जीव ही सत्य है; और जीवको मानन्दो कृत अक्षररूप वाणी-जाल मिथ्या भ्रम-भूल, धोखा है; उससे कोई हित-कल्याण नहीं होता है। निज पारख स्थितिसे ही जीवका कल्याण है, ऐसा लखते ही सब बन्धन नष्ट होकर जीव मुक्त हो जाता है ॥ २३० ॥

१२. गुरु शिष्य अक्षर लखे लखावै * चौरासी फन्दा मुक्तावै ॥ २३१ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! वैसे संसारमें गुरुवालोग शिष्य सहित अनुमानमें मिलकर 'ॐ' यह एक अक्षरको ही पिण्ड-ब्रह्माण्डमें व्यापक विराट् ब्रह्म लखते और लखाते हैं। सो कल्पना ही मात्र है, इससे वे चौरासी योनियोंके फन्दामें ही बद्ध होकर पड़ते हैं। वेदादि वाणीरूप अक्षरोंको पढ़ते और पढ़ाते हुए कर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादिको ही मान-मान करके भूले और भुला रहे हैं। पारखी श्रीसद्गुरु तो उस वाणी-जाल अक्षरको अच्छी तरहसे लखकर उसके भेदको भलीप्रकार जानते हैं। तथा जो कोई जिज्ञासु मनुष्य शिष्य भावसे श्रद्धा-भक्ति पूर्वक पारखी श्रीसद्गुरुकी शरणमें जाते हैं; कृपा करके उन शिष्योंको भी अक्षरोंका भेद लखा देते हैं कि— "यह जीव ही सत्स्वरूप अविनाशी है। निज स्वरूपको भूल करके अनुमान-कल्पनासे जगत्कर्त्ता मानकर बावन अक्षरोंका निर्माण करके मनुष्योंने ही वेद, कुरान आदि वाणी-जालका पसारा किया है, और भ्रम चक्रमें बिना विचार नाच रहे हैं; सो भ्रमको छोड़कर निज स्वरूपमें स्थिति करो ! खानी-वाणीके अध्यासको एकदम हटाओ !" इत्यादि सत्य निर्णयको लखाकर चौरासी योनियोंमें ले जानेका फन्दा= विषय और कल्पनादिके जालको पारख ज्ञानरूप अग्निसे जला करके सकल बन्धनोंसे छुड़ाकर नरजीवोंको मुक्त कर देते हैं। जिससे नरजीव आवागमनसे छूट जाते हैं। इसप्रकार एक पारखी श्रीसद्गुरु ही मुक्तिदाता होनेसे महान हैं ॥ २३१ ॥

१३. बिन गुरु अक्षर कौन छुड़ावै ? * अक्षर जालसे कौन बचावै ? ॥ २३२ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! पारखी श्रीसद्गुरुके बिना अविनाशी जीवका और कौन भव जालमें छुड़ावेंगे ? कोई नहीं। पारखी श्रीसद्गुरुको छोड़कर और दूसरे कोन अक्षररूप वाणी-जालोंसे जीवको बचावेंगे ? कोई बचानेवाले नहीं हैं। क्योंकि, सब कोई बेपारखी गुरुवालोग तो उसी जालमें ही बन्धे पड़े हैं, फिर वे दूसरेको, क्या, कैसे छुड़ावेंगे ? पञ्चग्रन्थी, मानुषविचार साखी— ४७ में कहा हैः—

साखीः— "बन्धेको बन्धा मिला, छूटे कौन उपाय ॥ कर सेवा निर्बन्धकी, जो पलमें लेहि छुड़ाय ॥"

गुरु अक्षर=वजनदार गरुवापद तमरूप अज्ञानको विनाश करके पारखज्ञान प्रकाश करनेवाला सारशब्द निर्णय श्रीसद्गुरुके उपदेश पाये बिना उसे धारण-ग्रहण किये बिना कोई भी जीव भव-बन्धनोंसे नहीं छूटे और वे किसीको छुड़ा भी नहीं सकते हैं, पारख ज्ञान बिना कौन, किसको, कैसे छुड़ावेंगे ? कोई छुड़ा नहीं सकते हैं, और जो अक्षर जालमें ही स्वयं अरुझे पड़े हैं, सो किसको, कैसे बचावेंगे ? किसी तरह भी नहीं बचावेंगे। इसलिये सबको छोड़कर पारखी श्रीसद्गुरुके ही शरण-ग्रहण करना चाहिये ॥ २३२ ॥

१४. सञ्चित क्रिया उदय जब होय * मानुष देह पावै तब सोय ॥ २३३ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जीवोंको मनुष्य देह बड़े भाग्यसे ही मिलता है। चौपाईः— "बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा ॥" ऐसा रामायणमें कहा है॥ "जन्तूनां नर जन्म दुर्लभ मतः ॥" ऐसा शङ्कराचार्यने विवेक-चूड़ामणि श्लोक २ में कहा है। "ऐसेहि जन्म गमायउ आछा ॥" बीजक, रमैनी—४४ ॥ "मानुष जन्म दुर्लभ है ?" बीजक, साखी—११५॥

इत्यादि अनेकों प्रमाण तथा अनुभवसे भी निश्चित वा सिद्ध है कि— मनुष्य जन्म तथा नर देह बहुत कठिनाईसे ही कदाचित् जीवोंको मिलता है; और मनुष्य शरीर छूट करके पुनः दुबारा भी मनुष्य ही देहमें आना, तो कोई बिरले ही करोड़ों, अरबों जीवोंमेंसे एक-दो ही भाग्यवान् जीव आ सकते हैं। क्योंकि "सञ्चित क्रिया उदय जब होय" अर्थात् पूर्वके मनुष्य जन्ममें किये हुए शुभ कर्मोंके शुभ संस्कार अर्थात् दया, शील, सत्य, क्षमा, विचार आदि सद्गुण-लक्षण शुद्धता ज्ञानकी साधनाओंका संस्कार जब अन्तिम अवस्था देहान्तके समयमें उदय वा प्रकाश, उद्भूत हो जीवके सन्मुख हो

जाते हैं, तब उसी शुभ ज्ञान संस्कारके प्रतापसे वा शुभ संस्कारके आकर्षणसे जीव मनुष्य खानीमें आ करके नर देहको पाते हैं। तहाँ भगवद् गीता, अध्याय— ६। श्लोक— ४५ में कहा है:—

"अनेक जन्म संसिद्धस्ततो यांति परां ग तम् ॥"— अर्थात् अनेक जन्मोंसे अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त हुआ जीव उस साधनके प्रभावसे परम गतिको प्राप्त होता है। सारांश, पूर्वकृत क्रियमाण कर्मकी शुभ वासना जो अन्तःकरणमें सञ्चित=सञ्चय, जमा, एकत्र होकर ठहर रही है; फिर जब वही शुभ वासना मृत्युके वक्त उदय वा स्फुरण होकर जीवके सन्मुख आती है, तभी उसके बल-वेगसे जीवको मनुष्यका देह प्राप्त होता है; और ऐसे संस्कारी नरदेहधारी हंस जीवोंको जब पूर्व सञ्चित संस्कारसे सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति, वैराग्य, ये शुद्ध सद्गुण-लक्षण उदय हो करके हंस रहनी-रहस्य धारण होते हैं; और पारखी श्रीसद्गुरुके शरण-सत्सङ्गके प्रतापसे इसी मनुष्य देहमें ही सो हंसजीव निजस्वरूपके पारख बोधको पा जाते हैं। जिससे जीवन्मुक्त भी हो जाते हैं। अतएव शुभ सत्कर्मको करते हुए सद्गुण धारण करके सत्सङ्ग विचारमें ही सदा लगे रहना चाहिये ॥ २३३ ॥

१५. गुरु पारख बल उदय विचार ❀ परखि लेहु जग गुरुमुख सार ॥ २३४ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो! ऐसे सर्वोत्तम मनुष्य जन्ममें आकर तुमने जो नरदेह पाये हो, तो यह तुम्हारा बड़ा भारी भाग्य ही खुला है। इसका पूर्ण लाभ तुम्हें लेना चाहिये। क्षणिक विकारी विषय भोगोंमें लग करके आयुको बर्बाद मत् करो! परन्तु, सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-ग्रहण करो! और श्रीसद्गुरुकी कृपासे पारख बोधका दिव्य बल-पराक्रम प्राप्त होते ही सत्यासत्य निर्णय करनेका हंस विचार-विवेक उदय हो जायगा। उसी ज्ञानरूप पारख विचारके महा प्रकाशमें गुरुमुखसे निकला हुआ, वचनामृत-सारशब्द निर्णय द्वारा जगत्के समस्त मत-पन्थोंके रहस्य, सिद्धान्त काल, सन्धि, झाँई आदिको परीक्षा करके देख लो, और असार मिथ्या मानन्दी कसर-खोटको परित्याग करके सत्यसार पारख पदको ही ग्रहण-धारण कर लेओ! अर्थात् श्रीसद्गुरुके पारखबोधके बलसे स्वरूप विचारको उदय करके गुरुमुखसे निर्णय किया हुआ सारशब्दके आधारसे जगत्में जड़-चैतन्यके भेदको पारख करके परख लो! और जड़ाध्यास-भास आदिको हटा करके निजपद पारख स्वरूप स्थितिमें ही स्थिर, अटल, अचल हो रहो! यही मुमुक्षु मनुष्योंका मुख्य कर्त्तव्य है, सो जान लो! ॥ २३४ ॥

१६. हंस अस्ति प्रकाश अपार ❀ गुरुमुख सुख निज अति दातार ॥ २३५ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो! हे जिज्ञासुओ! सुनो! हंस=ज्ञानस्वरूप जीव यही शुद्ध चैतन्य है; अस्ति=नित्य, सत्य, एकरस, अखण्ड, त्रिकाल-अबाध, सद्वस्तु है। रोम-रोमको जानना, सुख-दुःख आदि मालूम होना, यही हंसका सच्चा प्रकाश है। जीवकी सत्ताके प्रकाशसे ही देह सुन्दर या शोभायमान हो रहा है। परन्तु, जीव निज स्वरूपको भूल करके नाना प्रकारसे जड़ प्रकाशमें आकृष्ट हो रहे हैं। कोई पञ्च विषयोंके प्रकाशमें लुब्ध, आसक्त हो रहे हैं। कोई योग, ध्यान, ज्ञान-साधना करके भीतर तेज तत्त्वका भास ज्योति-प्रकाश जो हुआ या देहकी आभा प्रतिबिम्बकी जो झलक पड़ी, नाद-बिन्दुके घर्षणसे शुभ्र हीरावत् प्रकाश जो दिखाइ दिया, उसे ही भ्रमसे अपार, अथाह, परब्रह्मका ज्योति-प्रकाश स्वरूपमें दर्शन मिला, ऐसा समझ करके बहुतेरे लोग उसीमें गाफिल हुए और गाफिल हो रहे हैं। इसप्रकार सत्य जीव मिथ्या प्रकाश-भासमें भूले हैं। सो गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ पारख बोध होनेपर ही वह भ्रम-भूल छूटती है। एक पारखी श्रीसद्गुरु ही निज पारख स्वरूपमें स्थिति कायम कराके सकल भव भय दुःखोंको हरण करके जीवोंको अत्यन्त सुख देनवाले हैं। अतएव हे हंस जीवो! अपार प्रकाश माना हुआ ब्रह्म-भ्रम आदिको तजकर अपने सत्य स्वरूपमें स्थिति-ठहराव करो! उसके लिये अत्यन्त दयालु सत्य बोध दाता पारखी श्रीसद्गुरुके

शरण-सत्सङ्गमें रहकर गुरुमुख निर्णयसे निज स्वरूपका बोध भलीप्रकारसे प्राप्त करो ! और सकल आशा-वासा कल्पना, जड़ाध्यासको त्यागकर खानी-वाणीके विकारसे रहित, निर्विकार, निर्मल, निर्भय, निःसन्देह, निर्बन्ध, जीवन्मुक्त सुखी हो जाओ ! ऐसे ही सत्य बोध अन्य श्रद्धालु मनुष्योंको भी देते रहो ! निराश-वर्तमानमें रह करके प्रारब्धको पूर्ण करो, सो जानो ! ॥ २३५ ॥

साखीः— अक्षर है तिहुँ भर्मका * बिनु अक्षर नहिं जान ॥
[२९] गुरुकृपा निज बुद्धि बल * परखो धोखा ज्ञान ॥ २३६ ॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे जिज्ञासु नरजीवो ! बावन वर्णसे बने हुए जितने अक्षरोंके विलास हैं, सो सब त्रिगुणके भ्रमका ही विस्तार हुआ है; और त्वंपद, तत्पद, असिपद, ये तीनोंपदसे काल अक्षर, सन्धि अक्षर, और झाँई अक्षर, ये तीनों भ्रम करके ही प्रगट हुए हैं। कर्म, उपासना और ज्ञान— ये तीन भ्रमके मार्ग उसमेंसे निकाल करके प्रचार कर रहे हैं। ॐ, सोहं और राम, ये तीनों अक्षर भी भ्रमका ही झूला है। जीव तो सत्य है; परन्तु, बिना विवेक भ्रमिक हो करके वही त्रिगुणी फाँसमें ही अरुझे पड़े हैं। इसवास्ते बन्धन-मुक्तिके मार्गको वे लोग कुछ भी नहीं जानते, और गुरुमुख निर्णयके सारशब्द सच्चा अक्षरको समझे बिना वह भ्रम कसर-खोट जाननेमें भी नहीं आता है; इसबारेमें श्रीसद्गुरुने बीजक, साखी-४ में कहा हैः—

"शब्द बिना सुरति आँधरी। कहो कहाँको जाय॥ द्वार न पावै शब्दका। फिर फिर भटका खाय॥"

सब शब्दको परखानेके वास्ते ही गुरुमुख शब्दसे निर्णय कहा गया है। जैसे काँटासे काँटा निकाला जाता है, तथा बज्रसे बज्र काटा जाता है या घन- छेनीसे बेड़ी काटी जाती है, सो मुक्तिदायी-सुखदायी होती है। तैसे ही सारशब्दसे भी अन्य शब्दोंके कसर परखा करके जीवोंको मुक्त किया जाता है। शब्द बिना लक्ष्य अन्धा रहता है, बिना शब्दके कहो, लक्ष्य कहाँ जायगा ? शून्यमें लक्ष्य जायगा; और सारशब्दका द्वार जब तक नहीं पाते हैं, तब तक भ्रम चक्रमें ही फिर-फिरा करके बारम्बार आवागमनमें ही भटका खाते रहते हैं। सो काल-जालका भेद सारशब्दका अक्षर देखे सुने बिना कोई कुछ भेद जान नहीं सकते हैं। इसवास्ते हे मनुष्यो ! कृपालु पारखी श्रीसद्गुरुके शरणागत हो, श्रीसद्गुरुकी कृपा प्राप्त करके अपने भी शुद्ध बुद्धिके बलकी ताकत या जोर लगाकर परमपुरुषार्थमें कटिबद्ध होकर सब ज्ञान, अज्ञान, विज्ञानको परखो ! धोखा ज्ञानको परित्याग करो ! सत्यज्ञानको धारण करो ! पारखबोधके बलसे बुद्धिको स्वच्छ, निर्मल करके मल, विक्षेप और आवरणसे रहित हो निजस्वरूपमें ही स्थिति कायम करो ! यही सत्कर्त्तव्यको पूर्ण करो ! ॥ २३६ ॥

साखीः— जहवांसे प्रगटे सबै * सो हंस समुझत नाहिं ॥
[३०] यह अज्ञान है मानुषा * मन वच ब्रह्म कहाहिं ॥ २३७ ॥

अर्थः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जहाँ-जिस ठिकानेसे वाणी-खानी, अनुमान-कल्पना, भ्रम, मानन्दी, तथा अध्यास, इत्यादि सब प्रगट हुए और हो रहे हैं। सो तो मनुष्य जीवकी सत्ताके सम्बन्धसे देह-अन्तःकरणादिसे प्रगट हुए या होते हैं। परन्तु, सो सबका प्रकाशी नित्य, सत्य, हंस चैतन्य जीव स्वयं है। सो पारख बोधके बिना निज स्वरूपको तो जीव समझते ही नहीं हैं। "मैं ही हंस जीव सत्य हूँ !" यह जानते ही नहीं हैं, और उलटा भ्रम-कल्पनासे मन, वचन लगा करके "अहं ब्रह्मास्मि" यानी मैं ही ब्रह्म हूँ ! आत्मा हूँ ! व्यापक हूँ ! इत्यादि कहलाते या कहते हैं। यही मनुष्योंके महा अज्ञान, भ्रम-भूल, धोखेकी गाफिली है। द्रष्टा न्यारा चैतन्य स्वरूपका पारख विचार छोड़ करके आकाशवत् परिपूर्ण व्यापक, मन, बुद्धि, वाणीसे परे निरञ्जन, निराकार, सच्चिदानन्द ब्रह्म कहलाते हैं। यही तो अज्ञान आवरण है, वही मुक्ति पदसे गिरा करके जीवका चारासी योनियोंके चक्रमें डाल देता है। अथवा चराचर जगत् या यह सारा संसार जहाँ ब्रह्मकी इच्छासे प्रगट हुआ और विस्तार हुआ ऐसा कहते हैं। "एकोहं बहुस्यामेतिप्रजायेयः" यह वेदका

प्रमाण देते हैं। तो विचार करिये, इतना सारा विकार भव-बन्धन जहाँसे उत्पन्न हुआ, सो ब्रह्म तो निश्चयसे सब विकार, उपाधिका मूल अधिष्ठान होनेसे आवागमनका खास कारण ही ठहरा। ब्रह्म बनकर चौरासी योनियोंमें भ्रमण करना, दुःख भोगना, इसके सिवाय और क्या सार निकला? कुछ नहीं। परन्तु, अबोध हंस जीव सो उसका पूर्ण भेद तो कुछ समझते ही नहीं हैं, पारख विचार करते ही नहीं हैं। बल्कि, और भी भ्रमको दृढ़ करके ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्म बन करके परमहंस हो जाते हैं। बाल, पिशाच, मूक, उन्मत्त, जड़वत् दशाको धारण कर लेते हैं। यही मनुष्योंमें महा अज्ञान, भ्रम, गाफिली लगी है। वेदान्तकी वाणीको श्रवण करके फिर उसे मनमें मनन कर बुद्धिसे अद्वैत सिद्धान्तको निश्चय कर वही वचनसे बाहर निकाल करके कहते हैं कि-"मैं एक ही ब्रह्म हूँ! ओत-प्रोत सर्वत्र भरा हुआ व्यापक हूँ! दूसरा द्वैत कुछ भी नहीं है। जगत् सब मिथ्या मृगजलवत् भ्रान्ति है। श्लोकः—"श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः। ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापरः॥"

—अर्थात् जो बात वेदान्तके करोड़ों ग्रन्थोंमें विस्तारसे कही गयी है, सो मैं यहाँपर उसीको आधा श्लोकमें कह देता हूँ! खास बात यही है कि—"ब्रह्म एक अद्वैत सत्य है; जगत् द्वैत तीन कालमें नहीं है, इसलिये जगत् मिथ्या है; तथा जीव और ब्रह्ममें कुछ भी भेद भिन्नता नहीं है।""अतः जीव ही ब्रह्म है॥" ऐसा कहकर भ्रम खाँचेमें जाकर विश्रान्ति लेते हैं, सो यह तो बड़ा भारी अज्ञान है। इसी महा अविद्या जड़ाध्यासवश जन्म, मरण, गर्भवासके चक्रमें वे जीव घूमा करते हैं, बिना पारख॥२३७॥

साखीः— ब्रह्म विचारै ब्रह्मको ❀ पारख गुरु परसाद॥
[३१] रहित रहै पद परखिके ❀ जीवका होय उबार॥ २३८॥

॥❀॥ इति श्रीपारखनिष्ठ सत्य निर्णयी पारखी सन्त श्रीरामरहससाहेब विरचित पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थ टकसार पञ्चम ग्रन्थान्तगत द्वितीय भाग मूल सत्ताईस रमैनी प्रकरणम् समाप्तम्॥ ❀॥

अर्थः— श्रीरामरहससाहेब कहते हैं— हे सन्तो! ब्रह्मज्ञानी लोग वेद-वेदान्तको श्रवण, मननादिसे विचार करके स्वयं ही एक अद्वैत व्यापक ब्रह्म स्वरूप बन जाते हैं। फिर द्वैतमें आ करके ही विधि-विधानसे ब्रह्मका निरूपणकर उसी ब्रह्म स्वरूपको विचारसे निश्चय करते और दृढ़ कराते रहते हैं। अथवा वे स्वयं ब्रह्म बनते हैं, फिर दूसरेको भी ब्रह्म बनाते वा ब्रह्मज्ञान बनाते रहते हैं। अब बताइये! यह कितने आश्चर्यकी भ्रमपूर्ण मिथ्या बात है! यदि ब्रह्म ही ब्रह्मका विचार करता है, तो हम उनसे पूछते हैं कि, वह क्यों, कैसे और किसलिये ऐसा ब्रह्मका विचार करता है? यह बतलाइये कि, ब्रह्ममें देह, मन, इन्द्रियादि और जीव है कि, नहीं है? यदि है, तो वह देहधारी एकदेशी जीवरूप ही ठहरा। यदि वह कुछ भी नहीं है, तो निर्जीव देह इन्द्रियादि रहित जड़ निराकारमें भला! ब्रह्मका विचार कहाँसे, कैसे होगा? जब कि, ब्रह्म एक अद्वैत आकाशवत् है, तब उसे 'मैं ब्रह्म हूँ!' यह कहनेकी क्या आवश्यकता हुई? किसे देखकर ऐसा कहना है? निराकारमें कहीं भी इच्छा नहीं होती है, फिर ब्रह्ममें इच्छा कैसे और क्यों हुई? जब पहले जगत् कुछ था ही नहीं, तो आया कहाँसे? और इच्छा मात्रसे कोई भी सत्य वस्तु बन नहीं सकती है। लोहार, सोनार, बढ़ई आदि कारीगरोंके पासमें यदि उपादान कारण लोहा, सोना, लकड़ी आदि वस्तु न हो, तथा साधारण कारण औजार आदि भी कुछ साधन न हो, तो वे अकेले बैठ करके इच्छा मात्र करके कोई भी वस्तु बना नहीं सकते हैं, यह बात जगजाहिर है। उन्हींके पासमें तो साकार शरीर भी मौजूद था, तथापि अन्य वस्तुओंके सम्बन्ध हुए बिना कोई काय बना नहीं सके; और वहाँ तो ब्रह्मके पासमें शरीर भी नहीं है, फिर इच्छा कैसे हुई? चराचर सृष्टि नहीं थी, तो कहाँसे लाया? इत्यादि प्रकारसे युक्ति-प्रणाम, विचार-विवेकसे निर्णय करनेपर ब्रह्म तो भ्रमके सिवाय और कुछ भी नहीं ठहरता है। अद्वैत व्यापक मानकर उसका विचार करना ही फजूल है; और सत्यन्याया पारखी श्रीसद्गुरुके कृपा-प्रसादसे अपरोक्ष पारख बोध प्राप्त होते ही वैसा-वैसी तमाम भ्रम-भूलें सब मिट जाती हैं। झाँईं, सन्धि और कालके घेरासे हंस जीव बाहर निकल जाते हैं। फिर वे कभी

ब्रह्म-भ्रमरूपी धोखेका विचार नहीं करते हैं। पारखी श्रीसद्गुरुकी दया या कृपादृष्टिसे प्रसादरूपमें मिला हुआ सत्य उपदेश सारशब्द गुरुमुख वाणीको श्रवण, मनन, निदिध्यासन जिसने कर लिया, उसे स्वयं स्वरूप पारख बोधका साक्षात्कार हो जाता है, सो विवेकी सन्त फिर निजपदमें ही पक्का स्थिर हो जाते हैं; और ब्रह्मपद ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, तत्त्वमस्यादि सकल वाणी-खानीके मन्य पद, भूमिका, पदवी; उपाधि, स्थिति, सिद्धान्त आदिके सत्यासत्यको पारख निर्णयसे परीक्षा करके या यथार्थ परख करके सब भव-बन्धनोंसे रहित, विकारसे रहित हो, सदा जाग्रत् निजपद पारखमें ही स्थिति किये रहते हैं। इसप्रकारसे जो रहते हैं, उन्हीं नरजीवोंको भव धारसे उबार= आवागमनसे बेड़ा पार हो जाता है। वे पारखी सन्त जीते ही जीवन्मुक्त हो जाते हैं। मन-मानन्दी, कल्पना जड़ाध्यास आदिसे रहित होकर उस पार पारख भूमिकामें पहुँच जाते हैं। उनके शरण-सत्सङ्गमें रहनेवाले श्रद्धालु नरजीवोंकी भी उसी प्रकार उबार या मुक्ति हो जाती है। इसप्रकार ग्रन्थकर्त्ता सत्यन्यायी, पारख बोधमें प्रवीण, सत्य शोधक, पारख बोधक, पारखनिष्ठ सद्गुरु श्रीरामरहससाहेबने ग्रन्थ समाप्तिकी अन्तिम साखीमें फैसला करते हुए दर्शा दिया है कि—ब्रह्मज्ञानी तो ब्रह्मका विचार करके भ्रमिक होकर चौरासी योनिग्रोंके चक्रमें पड़े या पड़ते हैं; और पारखी सन्त श्रीसद्गुरुके कृपा-प्रसादसे पारख बोध पा करके उसमें अटल होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं; और जो-जो मुमुक्षुजन भी सत्सङ्ग द्वारा श्रीसद्गुरुके पारखबोधको प्राप्त करके फिर पारखपदसे और सकल पदको यथार्थ परख करके भ्रम-अध्यासादिसे रहित हो जाते हैं; सो श्रीसद्गुरुकी दयासे पारखबोधके प्रतापसे उन सब नरजीवोंकी भी उबार हो जाती है; सो इसीतरह नरजीव मुक्त हो जावेंगे, ऐसा जानना चाहिये। अतएव जिज्ञासु तथा मुमुक्षु मनुष्योंने सर्वश्रेष्ठ ज्ञान शिरोमणि, सत्यन्यायी, पारख बोधदाता वर्तमानमें मोजूद उत्तम पारखी सन्तके शरणागत हो करके सत्सङ्गमें दृढ़तासे ठहर करके पारख बोध सहित रहनी-रहस्यको अपूहेमें ग्रहणकर लेना चाहिये। सत्य श्रद्धा-भक्ति सहित गुरुभक्ति बोध भावमें निष्ठा रखकर साधुरूप श्रीसद्गुरुकी यथाशक्ति सेवा, टहल, बन्दगी करते हुए शुभ सद्गुण लक्षणोंको धारणकर नरजीवनको सफलकर जीते ही मुक्त हो जाना चाहिये; उसीके लिये सदा सत्पुरुषार्थमें लगे रहना चाहिये ॥ २३८ ॥

॥❀॥टीकाकारकृतपञ्चमग्रन्थद्वितीयभागसमाप्तिकीश्रीसद्गुरुपद वन्दना,महात्म्य इत्यादिवर्णन॥❀॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

बन्दौं कबीर सद्गुरु! श्रीपूरणसाहेब चरण ॥ रामरहससाहेब पुनि। पारख प्रकाशी दुःख हरण॥१॥

॥ ❀ ॥ छन्दः— ॥ ❀ ॥

परख लखाय मिटाय भव दुःख,काल जाल निकन्दनम् ॥हंस पद ठहराय पारख,भर्म धोख विदारणम्॥ वाणि खानि प्रपञ्च सन्धि, छिन्न ग्रन्थि उदारणम् ॥ रामस्वरूप विशेषता सो,सद्गुरुपदवन्दनम्२ काया वीर कबीरसाहेब,बन्दीछोरमहानभये॥मथिमथिसकलोमतपन्थनको,पारखबोधनिकारिलिये॥ बीजकज्ञानमहानिधिपुस्तक,शिक्षासारसुनायदिये॥रामरहसअवलोकनकरिके,पञ्चग्रन्थीविस्तारकिये पाँच ग्रन्थी लखानेवाला,'पञ्चग्रन्थी' है ताकोनाम॥ जैसा नाम रूप है वैसा, पारख निर्णयसे है काम॥ जड़चैतनकाभेदलखाकर, निजस्वरूपस्थितिआठौंयाम॥रामस्वरूपटकसारसारलखि,जीवन्मुक्तभया निष्काम ॥ ४ ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

धन्य! धन्य! गुरु पारखी! काल जाल सब टाल ॥ रामस्वरूपको स्थिति दई। जीवनके रक्षपाल ॥५॥ मुक्ति प्रदाता पारखी। बन्धन करि विध्वंस ॥ रहनि गहनि धारण किये। मुक्त भये सो हंस ॥६॥ भवबन्धनअतिही कठिन। विघ्न भरा है अनेक ॥ झीनी मोटी फाँस बहुत। पारखिबिरलविवेक॥७॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः— ॥ ❀ ॥

आगम निगम पुराण । अरुझनि कथनी जाल सब ॥ मिलै नहीं सत ज्ञान । पारखि गुरु सतसङ्ग बिनु ॥८॥
याते तजि सब यत्न । गुरु सतसङ्गमें लागिये ॥ हंस रहनि प्रयत्न । जाते हो कल्याण निजु ॥९॥
सदा रहो हुशियार । विषय रपट गिरबेकि भय ॥ गुरुज्ञान हियधार । हंस समाजके मध्य रहु ॥१०॥

चौपाईः— मनमति गति नहिं इत उत जावो । नहिं तो पीछे बहु पछतावो ॥ ११ ॥
समय गये नहिं बनिहैं काजा । कोटि उपाय करे कोउ साजा ॥ १२ ॥
नर तनमें जस ध्यास बनावै । तस ही तस सब ठौर भोगावै ॥ १३ ॥
तजि कुसङ्ग सतसङ्गमें लागी । सो नर सुबुधि अहै बड़ भागी ॥ १४ ॥
बीजक पञ्चग्रन्थी पढ़ि लीजे । गुरुमुख लखि नित मनन सु कीजे ॥ १५ ॥

॥ ❀ ॥ दोहाः— ॥ ❀ ॥

पारखज्ञान अमूल्य धन । बीजक है सद्ग्रन्थ ॥ पञ्चग्रन्थी निर्णय सोई । प्रगट कीन्ह सतपन्थ ॥१६॥
पञ्चकोश समष्टि कहा । मानुषविचारगुरुबोध ॥ टकसार प्रथम भाग पुनि । दूजा रमैनी शोध ॥१७॥
बीस सात रमैनीमें । तीस एक अरु साखी ॥ दोशतअठतीसपद सकल । शब्दनिर्णय कहि भाखी ॥१८॥
पारख पण्डित रामरहस । मूल पद्य निर्माण ॥ रामस्वरूपदास सोई । टीका लिखी बखाण ॥१९॥
गुरुमुखपढ़िसुनिमननकरि । सन्तसमाजपढ़ाय ॥ पठन पाठन परम्परा । गुरुकीदया चलिआय ॥२०॥
बुरहानपुर शुभ नगरमें । नागझिरी शुभ धाम ॥ कबीर निर्णय मन्दिर । पारखी सन्त मुकाम ॥२१॥
अर्थ पढ़ाई होत है । बीजक औ यह ग्रन्थ ॥ गुरुमुख पढ़ि हमहूँ लहा । सार समग्र सु ग्रन्थ ॥२२॥
साधुनको अध्यापन । सबकोस्मृतिनहिंहोय ॥ शब्दअर्थभावार्थसहित । टीका लिखा तब सोय ॥२३॥
जस पढ़ाई अनुक्रम । तसविधिलिखियाटीका ॥ सम्पूरण सो हो गया । सार गहे ते नीका ॥२४॥
बाँचि विचारे याहिको । संशय मिटै तमाम ॥ मुक्ति लाभको पायके । रामस्वरूप निष्काम ॥२५॥
पारखरूप कबीर गुरु । बन्दौं ज्ञान दिनेश ॥ बन्दीछोर महान प्रभु ! रामस्वरूप सन्देश ॥२६॥
सार असार लखावता । साँचा सो टकसार ॥ रामस्वरूप परिचय मिलै । गुरुज्ञान सत सार ॥ २७ ॥
ऐनी ऐन बनायके । रमा विविधि परकार ॥ सत्ताईस रमैनिमें । परखायो निर्धार ॥ २८ ॥
सो संक्षिप्त क्रम यहि । लखि लीजे या माहिं ॥ शून्य प्रथम शब्द कहि । परा अव्यक्त सो ताहिं ॥२९॥
दूजे अनबनि बानिमें । चार प्रकार दरशाय ॥ काल सन्धि झाँई पुनि । सार शब्द परखाय ॥ ३० ॥
अक्षर वेद पुराण सो । धर्म कर्म तृ बखान ॥ चौथे शब्दी अनुमानते । सम्भव शब्द अमान ॥ ३१ ॥
पञ्चम धोखा जानिये । नाम जाति कुल कर्म ॥ योग जप तप ध्यान षट् । तीरथ भेष बहु धर्म ॥ ३२ ॥
सप्तम बानी आय बसी । तब चितसे अनुमान ॥ अष्टम सन्धिक धोख लखि । उलटि कियो अनुमान ॥ ३३ ॥
एक शब्द समुदायते । नवमें बावन रूप ॥ तीन चार षट पञ्चम । नौ अठारह दश कूप ॥ ३४ ॥
एक शब्द आरूढ़ सो । ग्यारहमें बहु कर्म ॥ भरमे जीव परमातमा । बारह सो सब भर्म ॥ ३५ ॥
तेरह कलमा बाँग पढ़ि । अल्लह कियो पुकार ॥ चौदह भरमाने सकल । राम सनेहि कोइ यार ॥ ३६ ॥
मतवाली कनरस तिया । पन्द्रह खोजै लगवार ॥ नौ दरवाजा सोलह । भरमें बावन धार ॥ ३७ ॥
इत उत दौरे सत्रह । भरम कियो उपचार ॥ सदा अस्ति निज भास भसै । अठार प्रकाशहि सार ॥ ३८ ॥
उन्निस पाँजी परखकी । फरियाय विकार नशाय ॥ बीस शब्द सन्धि गहि । ज्ञानी मूढ़ ठहराय ॥ ३९ ॥
निज प्रकाश झाँई सोई । महासन्धि इक्किस कहि ॥ जीव रूप जो भासिया । बाइस नाना रूप तेहि ॥ ४० ॥
योनि चौरासी तेईस । देह बुद्धि तित जान ॥ बूड़त बेड़ा चौबीस । चढ़े कहै भगवान ॥ ४१ ॥
खानि वाणि दुइ अक्षर । पचीस अक्षर जाल ॥ काया माया अक्षर । छब्बीस अक्षर काल ॥ ४२ ॥
सत्ताईस रमैनी अन्तिम । बावनके विस्तार ॥ वाणी बने तरङ्ग बहु । भासत नाना सार ॥ ४३ ॥

पं० ब्र० टीका, २११३—

अक्षर जाल परखायके। दरशायो सब सार ॥ तिहुँ अक्षर सो भर्म सब। गुरुमुख लखि भवपार ॥४४॥
द्वितीय रमैनी भागमें। यहि विधि सार बखान ॥ रामरहस पदमें रच्यो। सारशब्द गुरुज्ञान ॥ ४५ ॥
दया गुरुकी हो गई। सब जान्यो सो भेद ॥ रामस्वरूपदास पुनि। लिखि टीका उम्मेद ॥ ४६ ॥
अर्थ सकल दरशायके। टीका लिखा तमाम ॥ रामस्वरूप गुरुकी दया। पूर्ण भयो यहि ठाम ॥ ४७ ॥
ग्रन्थ पढ़ेते सन्धि मिटै। होवै बोध प्रकाश ॥ रामस्वरूप गुरुमुख पढ़े। रत्ति रत्ति परकाश ॥ ४८ ॥
दृढ़ पारख अपरोक्षको। गुरुमुख सुनि गुनि लेहु ॥ गुरुभक्ति सेवा करि। जीवन सफल करेहु ॥ ४९ ॥
गुरुआज्ञा प्रतिपालिये। नियम बर्तिये सन्त ! ॥ हंस रहनि ठहराव करि। मन मानन्दी अन्त ॥ ५० ॥
पारखी गुरु सतसङ्ग सो। मुक्ति मार्ग पिछान ॥ काल जाल सब लखि परे। सर्वोपरि गुरुज्ञान ॥ ५१ ॥
श्रीकबीर गुरु पारखी। पारखी सन्त समस्त ॥ रामस्वरूपदास त्रय-। बन्दगी नित नतमस्त ॥५२॥
युग सहस्र वसु सम्वत। जेष्ठ कृष्ण दशमी तिथि ॥ बुधवार सन् उन्निस। एकावन मई दिन तीस इति५३
ता दिन समाप्ति टीका भया। नागझिरी शुभस्थान ॥ पढ़ि सुनि हित करु सन्तजन ! यही गुरुका ज्ञान ॥५४॥
श्रेष्ठ पारखी सन्त सकल। बन्दगी मम त्रय बार ॥ रामस्वरूपदास अब। गुरुकी दयाते पार ॥ ५५ ॥

॥ ❀ ॥ पञ्चग्रन्थी ॥ ❀ ॥

पञ्चग्रन्थी गुरु पारख बोध दिलाती। पञ्चग्रन्थी गुरु वाणीका अमृत पिलाती ॥ १ ॥
पञ्चग्रन्थी पञ्चकोशके भेदको दिखाती। पञ्चग्रन्थी समष्टिसार सार बताती ॥ २ ॥
पञ्चग्रन्थी मानुषविचार पुष्ट कराती। पञ्चग्रन्थी गुरुबोधको दिलाती ॥ ३ ॥
पञ्चग्रन्थी टकसार विधि कहाती। पञ्चग्रन्थी सत सार सरिता बहाती ॥ ४ ॥
पञ्चग्रन्थी सबको मर्यादा सिखाती। पञ्चग्रन्थी गुरु भक्ति भाव मनाती ॥ ५ ॥
पञ्चग्रन्थी वैराग्य दृढ़ प्रेम बढ़ाती। पञ्चग्रन्थी निज स्वरूप स्थिति कराती ॥ ६ ॥
पञ्चग्रन्थी माया-मोह पाश हटाती। पञ्चग्रन्थी सब विकारको मिटाती ॥ ७ ॥
पञ्चग्रन्थी बीजक-कबीर मर्म बताती। पञ्चग्रन्थी रामस्वरूप प्रत्यक्ष कराती ॥ ८ ॥

दोहाः- सब विधि उपयोगी अहै। पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थ ॥ सार गही निज हित करै। धन्य सोई सत पन्थ॥९॥
श्रीकबीर बीजक कही। सोई मर्म हिय धार ॥ पञ्चग्रन्थी किये रामरहस। रामस्वरूप सतसार॥१०॥

॥ * ॥ इति श्री पारखनिष्ठ पारखी सन्त श्रीरामरहसलाहेब विरचित मूल पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थका पञ्चम ग्रन्थः 'टकसार' ग्रन्थके द्वितीय भागरूप मूल "सत्ताईस रमैनी" सद्ग्रन्थकी— रामस्वरूपदास, अनुवादित— 'शब्दार्थ-भावार्थ, सत्य निर्णय, यथार्थ पारख रहस्य बोधिनी, सरल टीका" श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥ * ॥

श्रीसद्गुरुकी दयासे इति सद्ग्रन्थः टकसार दोनों भागकी टीका—व्याख्या सम्पूर्णम् ॥

॥ ❀ ॥ सद्ग्रन्थः पञ्चग्रन्थी—सटीक समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

॥ सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थीकी, अन्त भूमिका वर्णन, दोहाः— ॥

नित प्रति गुरुको बन्दगी। चरण कमल शिर नाय ॥ सदा रहे गुरु ज्ञान हिय। मन अन्ते नहिं जाय ॥ १ ॥
पारख भो गुरुकी दया। आशा भास विनाश ॥ निज पद स्थिति होवै सदा। नाशै सब अभ्यास ॥ २ ॥
अन्त भूमिका परख है। हंस पारखी पाय ॥ मिटि उपाधि रहनी रहै। उभय मुक्ति ठहराय ॥ ३ ॥
अहो हंस ! सोइ कीजिये। निज-पर हित कल्यान ॥ रामस्वरूप कोजे स्थिति। मान अमान बिलान ॥ ४ ॥
सार कहा सब ग्रन्थमें। ताको लीजे धार ॥ रामस्वरूप सो भूमिका। ठहरि रहे भव पार ॥ ५ ॥

हे विवेकी साधु-सज्जनो ! पञ्चग्रन्थीकी यहाँपर सम्पूर्ण ही टीका लिख करके समाप्त हो गई है, उसकी यह आखिरी भूमिका है। संसारमें प्रचलित समस्त मत, पन्थ, ग्रन्थोंके सार-सिद्धान्तों-का निर्णय इस सद्ग्रन्थमें हो गया है। किसने क्या माना है ? वह कहाँ तक ठीक या बेठीक है ? उसकी समालोचना भी यथास्थान खुलासासे की गयी है। प्रथम 'पञ्चकोश'मेंः— पञ्च विषयोंकी वाणी-खानीका जाल भलीभाँतिसे दिखला करके उसके ग्राह्य और त्याज्य भागको यहाँपर दर्शाया गया है। फिर संसारभरके सार-असारको बटोर करेके गुरुवालोगोंने जो-जो मत निश्चय किया था; सो छानबीन करके द्वितीय 'समष्टिसार' में बतला दिया गया है। चारों खानीके स्वभाव, गुण, लक्षण तथा सच्चा मनुष्यकी एवं रूपमात्र मनुष्यकी प्रकृति भी वर्णन करके दृष्टान्त-सिद्धान्त घटा करके तृतीय 'मानुषविचार' में बतलायी गयी है। फिर गुरु-शिष्यके सम्वादमें लोक-वेदकी रीति वर्णाश्रमका धर्म, सत्यासत्यका बोध, बोधवान्की रहनी, हंसदेहकी तत्त्व-प्रकृतियाँ, कच्ची-पक्की देहोंका निर्णय, इत्यादि गुरुमुखसे चतुर्थ 'गुरुबोध' में बोध किया गया है। तदनन्तर टकसारका भेद बहुत विस्तारसे यहाँपर पँचवाँ 'टकसार' ग्रन्थमें दर्शाया गया है। चार वेद, षट् शास्त्र, चौदह विद्या, अठारह पुराण, अठारह उप पुराण, भागवत और देवीभागवतादिको कथा और चौंसठ कलाएँ तथा चार किताब-कुरान इत्यादिकी मान्यता, उनकी मुख्य-मुख्य बात भी निर्णय करके संक्षेपमें दिखलायी गयी है; और उपयुक्त जगहमें मूल बीजकका प्रमाण भी देते गये हैं। फिर अन्तिम द्वितीय भागमें शब्द, अक्षर, काल, सन्धि, झाँईका जाल विशेषरूपसे विवरण करके बता दिया गया है। तत्त्वमसिका भेद भी सारशब्दसे परखाया गया है। इसप्रकारसे वाणी-खानीका सम्पूर्ण रास्ता, बन्धन-मुक्तिके नाकाओंका भेद इस ग्रन्थमें पूरा-पूरा बतला करके दिखला दिया गया है। पारख सिद्धान्त बतलानेवाला अद्वितीय सद्ग्रन्थ तो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयका उपदेशरूप मूल बीजक सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कृत टीकायुक्त प्रकाश हुआ है। वह समस्त कबीरपन्थभरमें सर्वोच्च, सर्वमान्य है। उसमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके हृदय और मुखारविन्दसे निकले हुए गुरुमुख सारशब्द अङ्कित हैं। सोई कबीरपन्थका मुख्य सैद्धान्तिक सर्वमान्य 'बीजक' सद्ग्रन्थ है। उसके पश्चात् दूसरा नम्बरमें पारखनिष्ठ श्रीरामरहससाहेबका बनाया हुआ, पारख सिद्धान्त प्रतिपादक प्रामाणिक यही "पञ्चग्रन्थी" सद्ग्रन्थ माना जाता है। विवेकी सकल कबीरपन्थी समाज 'मूल बीजक' और 'पञ्चग्रन्थी' के ही प्रमाणसे पारख सिद्धान्तको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। किन्तु, अविवेकी, पक्षपाती, अन्धविश्वासी, हठी लोगोंकी तो बात ही तुच्छ होनेसे उनकी मानन्दी सब ही त्याज्य है। जैसे रामायणमें कहा हैः—

"साकवणिक मणि गुण गण जैसे ॥" "सत सङ्गति फल लागे न कैसे। नाग बेलि बिच रामसर जैसे ॥"
"मलयागिरिकी बासमें। बेधा ढाँक पलास ॥ बेना कबहूँ न बेधिया। जुग जुग रहिया पास ॥"
बीजक, साखी- ४९, इत्यादि ॥ अतः सारग्राही लोग ही सत्यसारको सादर ग्रहण कर लेते हैं ॥

श्रीकबीर निर्णय मन्दिर स्थान नागझिरी, बुरहानपुर गद्दीमें परम्परासे गुरुमुख द्वारा "बीजक सद्ग्रन्थ और पञ्चग्रन्थी" की मूल पद द्वारा अर्थ पढ़ाई होती ही चली आ रही है। वर्तमानमें भी वैसे ही अर्थ पढ़ाई सन्तोंमें चल रही है। समयके फेरसे पूर्ण अर्थको याद रखनेवाले योग्य स्थायी उत्तराधिकारी दृष्टिगत न होनेसे गुरुज्ञान प्रचारकी प्रणाली लुप्त होने न पावे, इस उद्देश्यसे महत् प्रयत्न उठाकर हमने इसकी टीका लिख दी है; सो श्रीसद्गुरुकी महान कृपा प्रताप-से आज निर्विघ्नरूपसे समाप्त भी हो गई है। दिनाङ्क २८। ८। १९५० ई० के रोजसे टकसार ग्रन्थकी टीका लिखना शुरू किया था, सो दिनाङ्क १२। ५। १९५१ ई० के रोज टकसार प्रथम भागकी टीका लिखकर पूर्ण किया है। [इस बीचमें चार महीना करीब बिमारीके कारणसे लिखाई नहीं हुई थी] और दि० १३। ५। १९५१ ई० से आज दि० ३१। ५। १९५१ ई० तक सत्ताईस रमैनीकी टीका लिखना भी

शुरू होकर यहाँ तक सम्पूर्ण लिखाई समाप्त हो गयी है। श्रीसद्गुरुकी दयासे शुभ समयमें निर्णयसारादि षट् ग्रन्थोंकी टीका भी सम्पूर्ण लिख करके और छपकर भी समाप्त हो चुकी है। विस्तारसे भावार्थ रहस्य दर्शाकर इन सबोंकी टीका लिखी गयी है, सो जान लीजिये! अब अन्तमें यही कहना है कि, हे सन्त-सज्जनो! इस टीकाको पढ़, सुन, गुन करके सत्यसारको ही ग्रहण कर लीजिये! यदि कहीं दृष्टि दोषसे टीकाकी लेखमें अथवा छपाई आदिमें त्रुटि रह गई हो, तो उसे कृपा करके सुधार लीजिये! पारख बोधको दृढ़ करके जीवन सफल कर लीजिये! ॥

॥ * ॥ इति सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी सटीककी, अन्त भूमिका वर्णन समाप्तम् ॥ * ॥

लेखकः— रामस्वरूपदास, श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, स्थान— नागझिरी, बुरहानपुर ॥

॥ दिनाङ्क—३१।५।१९५१ ईसवी सन् ॥ [दि० १५।५।१९५६ई० को छपाई अन्त तक समाप्तः]

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

॥ * ॥ पारखी सन्तोंके सत्य निर्णयका उपदेश, सद्ग्रन्थरूपमें प्रकाश ॥ * ॥

१)	सद्ग्रन्थ बीजक मूल-मात्र।	... ...	(१)
२१)	सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी (टीका सहित)।	...	(२)
१५)	" संयुक्त षट् ग्रन्थः (टीका सहित)।	...	(३)
४)	" निर्णयसार (टीका सहित)।	...	(४)
४॥)	" वैराग्यशतक (टीका सहित)।	...	(५)
१)	" एकईस प्रश्न तथा " पारख विचार ग्रन्थः	(टीका सहित)।	(६)
४॥।)	" श्रीकबीरपरिचय साखी " तथा ग्यारह शब्द ग्रन्थ	(टीका सहित)।	(७)
५॥)	" निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन।	...	(८)
३)	" तिमिर भास्कर (बड़ा)।	...	(९)
२॥)	" तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक।	...	(१०)
	" सत्यज्ञान बोध नाटक।	...	(११)
=)	" जड़ चेतन भेद प्रकाश।	...	(१२)
।=)	" तिमिर भास्करका नमूना।	...	(१३)
।)	" मूल सन्ध्यापाठ मात्र।	...	(१४)
१।)	" सन्ध्यापाठ (टीका सहित)।	...	(१५)
।=)	" न्यायनामा-बड़ादीगर (टीका सहित)।	...	(१६)
१।=)	" श्रीबालक भजनमाला।	... ...	(१७)

[ऊपर लिखित सब ग्रन्थः हिन्दी भाषामें छपे हुए हैं।]

पुस्तक प्राप्ति स्थानम्:—

रामस्वरूपदासजी, आचार्य कबीरपन्थ।

गद्दीस्थान— श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, मुकाम— नागझिरी मोहल्ला ॥

डाकघर— बुरहानपुर। जिला— निमाड़ (खण्डवा) [मध्यप्रदेश]